दी
इंडियन लॉ रिपोर्ट्स
इलाहाबाद संस्करण

*****



इलाहाबाद हाई कोर्ट के सभी प्रकाशन योग्य निर्णय

२०२५ – भाग ५

(मई)

पृष्ठ १ से २५४६

उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन प्रकाशित
इंडियन लॉ रिपोर्टर अनुभाग, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

इंडियन लॉ रिपोर्टिंग काउंसिल

इलाहाबाद संस्करण

****

अध्यक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली

******

परिषद

माननीय न्यायमूर्ति श्री अजित कुमार

माननीय न्यायमूर्ति श्री समीर जैन

माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी.चौहान

माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार सिंह

****

संपादक मंडल

वरिष्ठ विधि संपादक

१. श्री विनय सरन, वरिष्ठ अधिवक्ता

२. श्री समीर शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता

कनिष्ठ विधि संपादक

१. श्री अनूप बरनवाल, अधिवक्ता

२ श्री आशुतोष मणि त्रिपाठी, अधिवक्ता

३. सुश्री नूर सबा बेगम, अधिवक्ता

४. श्री सरोज गिरि, अधिवक्ता

५. सुश्री मनीषा चतुर्वेदी, अधिवक्ता

६. श्री अरविन्द कुमार गोस्वामी, अधिवक्ता

७. श्री विनीत दूबे, अधिवक्ता

८. . श्री प्रशान्त मिश्रा, अधिवक्ता

९ . श्री अबू बख्त, अधिवक्ता

****

माननीय न्यायमूर्तिगण

मुख्य न्यायमूर्ति माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली	
न्यायमूर्ति	
१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज कुमार गुप्ता (वरिष्ठ न्यायमूर्ति इलाहाबाद)	३५. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक वर्मा
२. माननीय न्यायमूर्ति श्री अंजनी कुमार मिश्र	३६. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार सिंह
३. माननीय न्यायमूर्ति श्री महेश चंद्र त्रिपाठी	३७. माननीय न्यायमूर्ति श्री पियूष अग्रवाल
४. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरिंदम सिन्हा	३८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम शमशेरी
५. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार बिरला	३९. माननीय न्यायमूर्ति श्री जसप्रीत सिंह
६. माननीय न्यायमूर्ति श्री अताउ रहमान मसूदी (वरिष्ठ न्यायमूर्ति लखनऊ)	४०. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव सिंह
७. माननीय न्यायमूर्ति श्री अश्वनी कुमार मिश्रा	४१. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान
८. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजन राय	४२. माननीय न्यायमूर्ति श्री करूणेश सिंह पवाँर
९. माननीय न्यायमूर्ति श्री यशवनत वर्मा	४३. माननीय न्यायमूर्ति डॉ० योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
१०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा	४४. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष माथुर
११. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चन्द्रा	४५. माननीय न्यायमूर्ति श्री रोहित रंजन अग्रवाल
१२. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक चौधरी	४६. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजबीर सिंह
१३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह	४७. माननीय न्यायमूर्ति श्री विपिन चन्द्र दीक्षित
१४ माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर बी सराफ	४८. माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर कुमार यादव
१५. माननीय न्यायमूर्ति श्री सलिल कुमार राय	४९. माननीय न्यायमूर्ति श्री दीपक वर्मा
१६. माननीय न्यायमूर्ति श्री जयन्त बनर्जी	५०. माननीय न्यायमूर्ति डॉ. गौतम चौधरी
१७. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेश सिंह चौहान	५१. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश पाठक
१८. माननीय न्यायमूर्ति श्री इरशाद अली	५२. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीश कुमार
१९. माननीय न्यायमूर्ति श्री सरल श्रीवास्तव	५३. माननीय न्यायमूर्ति श्री समित गोपाल
२०. माननीय न्यायमूर्ति श्री जे.जे. मुनीर	५४ माननीय न्यायमूर्ति श्री दोनाडी रमेश
२१. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव गुप्ता	५५ माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार पचौरी
२२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ	५६ माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष चन्द्र शर्मा
२३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजित कुमार	५७ माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय कुमार श्रीवास्तव-प्रथम
२४. माननीय न्यायमूर्ति श्री रजनीश कुमार	५८ माननीय न्यायमूर्ति श्री चन्द्र कुमार राय
२५. माननीय न्यायमूर्ति श्री अब्दुल मुईन	५९ माननीय न्यायमूर्ति श्री कृष्ण पहल
२६. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव मिश्रा	६० माननीय न्यायमूर्ति श्री समीर जैन
२७. माननीय न्यायमूर्ति श्री चन्द्र धारी सिंह	६१ माननीय न्यायमूर्ति श्री आशुतोष श्रीवास्तव
२८. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय भनोट	६२ माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष विद्यार्थी
२९. माननीय न्यायमूर्ति श्री नीरज तिवारी	६३ माननीय न्यायमूर्ति श्री बृज राज सिंह
३०. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज बजाज	६४ माननीय न्यायमूर्ति श्री श्रीप्रकाश सिंह
३१. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश पाडिया	६५. माननीय न्यायमूर्ति श्री विकास बुधवार
३२. माननीय न्यायमूर्ति श्री आलोक माथुर	६६. माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी चौहान
३३. माननीय न्यायमूर्ति श्री पंकज भाटिया	६७ माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्रीवास्तव
३४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ लवानिया	६८ माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश शुक्ला

६९. माननीय न्यायमूर्ति श्री मुहम्मद अजहर हुसेन इदरीसी
७० माननीय न्यायमूर्ति श्री राम मनोहर नारायण मिश्र
७१. माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव
७२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद कमर हसन रिज़वी
७३. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीश कुमार निगम
७४. माननीय न्यायमूर्ति श्री अनीश कुमार गुप्ता
७५. माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला
७६. माननीय न्यायमूर्ति श्री क्षितिज शैलेन्द्र
७७ माननीय न्यायमूर्ति श्री विनोद दिवाकर
७८. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रशांत कुमार
७९. माननीय न्यायमूर्ति श्री मंजीव शुक्ल
८०. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरूण कुमार सिंह देशवाल
८१. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रवीण कुमार गिरि
८२. माननीय न्यायमूर्ति श्री जितेन्द्र कुमार सिन्हा
८३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अनिल कुमार-X
८४. माननीय न्यायमूर्ति श्री संदीप जैन
८५ माननीय न्यायमूर्ति श्री अवनीश सक्सेना
८६ माननीय न्यायमूर्ति श्री मदन पाल सिंह
८७ माननीय न्यायमूर्ति श्री हरवीर सिंह

अंतराम गोयल बनाम पावर ग्रिड ट्रांसमिशन लि. एवं अन्य पृष्ठ-1931

अंबिका प्रसाद @ अंबिका प्रसाद पांडे और अन्य बनाम श्याम बिहारी और अन्य पृष्ठ-1283

अजहर अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1882

अत्तर सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-1095

अनवर ढेबर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-1542

अनिल कुमार जायसवाल बनाम यूनियन बैंक ऑफ इंडिया एवं 1 अन्य पृष्ठ-1937

अन्नू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-248

अब्दुल रकीब @ पेहतूल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-2118

अब्दुल वहाब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य पृष्ठ-1998

अब्बास अंसारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-754

अर्जुन उर्फ गोलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-1001

अलख प्रसाद उर्फ अलख देव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-699

अल्फा डायग्नोस्टिक सेंटर एवं अन्य बनाम राज्य उपयुक्त प्राधिकारी एवं अन्य पृष्ठ-1891

आदित्य मूर्ति बनाम सी.बी.आई./ए.सी.बी. पृष्ठ-1300

आसिफ अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-886

इमरान खान उर्फ अशोक रत्न बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-826

इमरान खान एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-412

अनुवादित

इससे जुड़े अन्य मामले: शिवम पांडे और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-480

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम दिनेश कुमार पृष्ठ-460

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम चंद्र मोहन यादव पृष्ठ-508

ओंकार नाथ गौर और एक अन्य बनाम डी.एम./अध्यक्ष अपीलीय न्यायाधिकरण लखनऊ और अन्य पृष्ठ-1451

ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम दयावती गुप्ता और अन्य पृष्ठ-2071

कमलवीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 5 अन्य पृष्ठ-274

कमलेश यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-2014

कमलेश सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1942

कल्लू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-860

कामता प्रसाद बनाम भारत संघ और अन्य पृष्ठ-2203

कृष्ण कुमार गुप्ता बनाम प्रीति गुप्ता पृष्ठ-1834

कोदई बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-2039

खार्गेश उर्फ गोलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-990

चन्द्रधर गौड़ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-2414

चल्ला @ भगवान दास बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-1084

जय राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य पृष्ठ-90

जवाहर लाल गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-1714

अनुवादित

जहिद बेग @ जहिद जमाल बेग बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-2469

जाइटेक पॉलीब्लेंड्स प्रा० लि० बनाम श्री दुर्गा बंसल फ़र्टिलाइजर लि० पृष्ठ-2336

जितेंद्र पासवान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 3 अन्य पृष्ठ-2367

जुगेश्वर प्रसाद बनाम हनुमान प्रसाद पृष्ठ-2285

जुम्मा शाह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-2028

टुंकू सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-1123

ट्रेंडशिप्स ऑनलाइन सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड बनाम आयुक्त वाणिज्यिक कर उत्तर प्रदेश लखनऊ व अन्य पृष्ठ-329

डॉ. अमोद कुमार सचान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-612

डॉ. नीरज कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-2306

डॉ. मनोज कुमार रावत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-906

डॉ. संजय मित्तल बनाम भारत संघ व अन्य पृष्ठ-913

ताले हसन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-1564

द नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम रीतू देवी एवं अन्य पृष्ठ-2270

दुर्गा यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-844

देवेन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-469

नफीस अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-2148

नरेन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-551

असंपादित

निर्मल कुमार फुकन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-2521

निहारिका सिंह बनाम प्रवर्तन निदेशालय लखनऊ पृष्ठ-1310

नीरज @ बंती शाही और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य पृष्ठ-1695

नेयाज अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-86

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम शिवा विश्वकर्मा नाबालिग पृष्ठ-2081

नेहा शर्मा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-650

नैपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद एवं अन्य पृष्ठ-1186

नौशाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-1591

पंकज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-1622

परियोजना निदेशक, यू.पी.एच.एस.डी.पी., लखनऊ और अन्य बनाम वाणिज्यिक न्यायालय संख्या-1 लखनऊ और अन्य पृष्ठ-1513

पूरन सिंह बनाम जनपद न्यायाधीश लखनऊ और अन्य पृष्ठ-1411

पृथ्वी राज सिंह बनाम मुख्य महाप्रबंधक (मानव संसाधन), यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, केंद्रीय कार्यालय, मुंबई पृष्ठ-1842

प्रदीप सोनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-2353

प्रबंध समिति, जनहित माध्यमिक विद्यालय व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य पृष्ठ-1949

प्रबंधन समिति, जामी मस्जिद संभल अहमद मार्ग कोट संभल बनाम हरि शंकर जैन और अन्य पृष्ठ-2162

प्रवीण प्रताप सिंह एवं अन्य बनाम सी.बी.आई. पृष्ठ-2255

अनुवादित

प्रशांत राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-1748

प्रशांत शुक्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य पृष्ठ-21

प्रिन्स यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-925

प्रेम पाल सिंह बनाम प्रेम पाल सिंह धनगर और अन्य पृष्ठ-2048

प्रेमवती एवं अन्य बनाम मिहीलाल शर्मा एवं अन्य पृष्ठ-2275

प्रो. (डॉ.) मुजाहिद बेग बनाम भारत संघ एवं अन्य पृष्ठ-1859

प्रो. आनंद सुब्रमण्यम बनाम भारत संघ और अन्य पृष्ठ-557

प्रो. हरीश चंद्र चौधरी और अन्य बनाम भारत संघ और 3 अन्य पृष्ठ-1381

फुरकान पुत्र अख्तर अली और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य पृष्ठ-1335

फ्यूचर जनरली इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम अजय कुमार सिंह एवं अन्य पृष्ठ-2066

बन्ना लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-1403

बलराम चारी दुबे बनाम राज्य उत्तर प्रदेश पृष्ठ-357

बीरेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य पृष्ठ-1361

ब्रह्म प्रकाश सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1810

मायाशंकर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-516

मीनू राजवंशी बनाम बृजेश पृष्ठ-1153

मे. साह एजेंसीज प्राइवेट लिमिटेड व अन्य बनाम सिन्नी फाउंडेशन ट्रस्ट व अन्य पृष्ठ-320

अनुवादित

मेसर्स ओम ऑटोमोबाइल्स व अन्य बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन व अन्य पृष्ठ-12

मेसर्स गणपति क्लासिक बनाम भारत संघ एवं अन्य पृष्ठ-751

मेसर्स मैरियन बायोटेक प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-1423

मेसर्स राजधानी इंटर स्टेट ट्रांसपोर्ट कं. नई दिल्ली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1211

मेसर्स सैनी ज़र्दा स्टोर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य पृष्ठ-345

मैसर्स पतंजलि आयुर्वेद लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य पृष्ठ-929

मैसर्स रॉडर पेट्रोलियम प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य पृष्ठ-1975

मोहनीश जैन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश और अन्य राज्य पृष्ठ-421

मोहम्मद आरिफ खान और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-1966

मोहम्मद जुबैर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य पृष्ठ-290

मोहम्मद तल्हा बनाम भारत संघ एवं अन्य पृष्ठ-1199

मोहम्मद मुस्तकीम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-796

मोहम्मद रफीक एवं अन्य बनाम अपर आयुक्त (प्रशासन) गोण्डा एवं अन्य पृष्ठ-793

यूपीपीसीएल बनाम सुनीता वर्मा और अन्य पृष्ठ-2103

रजनीकांत शुक्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-2155

रज्जन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-232

रज्जन बनाम राज्य सूचना आयोग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ एवं अन्य पृष्ठ-1902

अनुवादित

रमन साहनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य अपर मुख्य सचिव विभाग गृह लखनऊ पृष्ठ-53

राघवेन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-375

राजकुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-838

राजन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य दो पृष्ठ-534

राजवीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राजकीय निर्माण निगम लि. एवं अन्य पृष्ठ-1839

राजे भसीन बनाम पुलिस आयुक्त, पुलिस आयुक्तालय, लखनऊ व अन्य पृष्ठ-206

राजेंद्र और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-2235

राजेन्द्र प्रसाद त्रिपाठी बनाम हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड पृष्ठ-537

राजेश @ सजेश तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-211

राजेश और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-1045

राधे लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-1058

रानी पांडे एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1222

राम कृष्ण मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-498

राम पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1164

रामदेव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-133

राहुल गांधी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-382

रोहित राजपूत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-405

अनुवादित

लक्ष्मी आपत्ति दाखिल उचित पीठ एवं अन्य बनाम उप जिलाधिकारी/उप-मंडलीय अधिकारी, मिश्रिख, सीतापुर एवं अन्य पृष्ठ-1963

लखन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-1135

लवकुश तिवारी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-1773

वक्फ मदरसा कासिमुल उलूम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-2087

विजय कुमार @ कृष्णा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1802

विजय कुमार दुबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1254

विनय कुमार गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य पृष्ठ-1349

विनोद कुमार मिश्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-673

विनोद पटेल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-2456

विपिन तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-1267

विवेक यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-658

विष्णु प्रभाकर बनाम भारत संघ पृष्ठ-1322

वीरेंद्र कुमार त्रिपाठी बनाम अमित दुआ व अन्य पृष्ठ-350

वीरेंद्र सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य पृष्ठ-2481

शंबू और अन्य बनाम राज्य पृष्ठ-171

शकील अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-80

शनि देव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-1234

अनुवादित

शम्भू प्रसाद पाण्डेय एवं अन्य बनाम उपनिदेशक, चकबन्दी, अयोध्या एवं अन्य पृष्ठ-708

शशांक गुप्ता @ गुड्डू और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य पृष्ठ-1656

शशांक मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य पृष्ठ-266

शशांक सचान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-632

शाहिद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-95

शिव नारायण एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-853

शिव नारायण गुप्ता बनाम गरीब चंद्र पृष्ठ-2096

शीतला प्रसाद बनाम अमृत लाल एवं अन्य पृष्ठ-736

शेरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-150

शैलेंद्र कुशवाहा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-2217

शैलेन्द्र कुमार राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-624

श्री सुशान्त गुप्ता एवं अन्य बनाम केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो एस.सी.बी. लखनऊ पृष्ठ-2395

श्रीमती कुसुम लता सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1174

श्रीमती कृष्णा कांत गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-690

श्रीमती बंदना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1917

श्रीमती माया बनाम जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी बागपत एवं अन्य पृष्ठ-1178

श्रीमती रवीना मीणा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-816

अनुवादित

संघप्रिया गौतम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-2004

संजय सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-1009

संतोष कुमार पाल बनाम यूनियन ऑफ इंडिया और 5 अन्य पृष्ठ-643

संदीप भटनागर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1817

सर्वनारायण तिवारी व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-105

सर्वेश कुमार दुबे व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-124

सविता देवी @ पिंकी गौतम @ शिवांगी शिशोदिया बनाम जितेंद्र गौतम पृष्ठ-316

सिकन्दर आलम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-1532

सिया राम और अन्य बनाम राज्य पृष्ठ-1024

सीतम @ प्रिंस (अल्पवयस्क) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-2375

सुखदेव सिंह मजीठिया और अन्य बनाम भवनेश कुमार जिंदल और अन्य पृष्ठ-2209

सुखलाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-2240

सुधा शुक्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-2112

सुधीर @ सुधीर कुमार चौरसिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य जरिए गृह मंत्रालय के प्रधान सचिव और 3 अन्य पृष्ठ-29

सुभाष चन्द्र एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-2430

सुरेश चन्द्र शुक्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-682

अनुवादित

सूरजपुर इंडेन गैस सेवा, अग्रवाल मार्केट, जिला गौतम बुद्ध नगर बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड (प्रबंध निदेशक) एवं अन्य पृष्ठ-1227

सौम्या सजीव कुमार शर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-2379

सौरभ मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1908

हरीशंकर बनाम जिला न्यायाधीश, कौशाम्बी एवं अन्य पृष्ठ-620

हीरा कोल बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य पृष्ठ-1070

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 8

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन

सिविल विविध मध्यस्थता आवेदन संख्या-109 वर्ष 2024

व

सिविल विविध मध्यस्थता आवेदन संख्या-110 वर्ष 2024

व

सिविल विविध मध्यस्थता आवेदन संख्या-1 वर्ष 2025

मेसर्स ओम ऑटोमोबाइल्स व अन्य **...आवेदक**

बनाम

इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन व अन्य **...प्रतिवादी**

आवेदकों के अधिवक्ता:

बृज भूषण सिंह, गौरव मेहरोत्रा, प्रांजल अपूर्वा, संदीप कुमार मिश्रा, तुषार मित्तल

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

अशोक कुमार सिंह

अनुवादित

सिविल विधि-मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996-धारा 11, 11(6), 11(8), 12(1), 12(5) और 16-अधिनियम, 1996 की धारा 11 के अधीन आवेदन-एक स्वतंत्र मध्यस्थ की नियुक्ति की मांग-साथ ही इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति को चुनौती देना-जो बाद में आईओसी के कर्मचारी और शेयरधारक दोनों होने का खुलासा हुआ-पांचवीं और सातवीं अनुसूचियों के अधीन पूर्वाग्रह के आधार पर-प्रारंभ में, आवेदकों ने एक कर्मचारी के लिए धारा 12(5) को माफ कर दिया था लेकिन शेयरधारक के लिए कोई छूट नहीं दी गई थी-*पर्किन्स ईस्टमैन आर्किटेक्ट्स डीपीसी बनाम एचएससीसी (इंडिया) लिमिटेड* का हवाला देते हुए, न्यायालय ने माना कि-एक बार आवेदकों ने श्री एस के सिंह को मध्यस्थ के रूप में नियुक्ति के संबंध में अपनी सहमति वापस ले ली है जो आईओसी में एक कर्मचारी और शेयरधारक हैं, स्पष्ट रूप से वैध नहीं पाया गया है और स्पष्ट रूप से विधि की दृष्टि में स्वीकार्य नहीं है-परिणामस्वरूप, न्यायालय ने श्री एस के सिंह की नियुक्ति को निरस्त कर दिया और अधिनियम, 1986 की धारा 11(6) के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए नए मध्यस्थ के रूप में न्यायमूर्ति डी.के.अरोड़ा (सेवानिवृत्त) को नियुक्त करने का प्रस्ताव रखा। (प्रस्तर-31, 32, 33, 34, 35)

आवेदन लंबित (ई-11)

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची</u>:

1. पर्किन्स ईस्टमैन आर्किटेक्ट्स डीपीसी बनाम एचएससीसी (इंडिया) लिमिटेड, (2020) 20 SCC 760, 2. वाल्टर बाउ एजी बनाम म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन ऑफ ग्रेटर मुंबई, (2015) 3 SCC 800,

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन द्वारा उद्घोषित)

1. श्री बृज भूषण सिंह व श्री तुषार मित्तल, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता के साथ श्री अशोक कुमार सिंह, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे इसके बाद 'अधिनियम, 1996' संदर्भित किया जाएगा) की धारा 11 के अधीन एकमात्र मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए एक आवेदन है।

3. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं का तर्क है कि तीनों आवेदनों में निहित बिन्दु समान हैं। इस प्रकार, न्यायालय सभी आवेदनों को एक साथ सुन रहा है और एक सामान्य आदेश पारित किया जा रहा है। सुविधा के लिए, सिविल विविध मध्यस्थता आवेदन संख्या-109 of 2024 के तथ्यों को लिया जा रहा है।

4. श्री अशोक कुमार सिंह, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई है कि प्रतिवादियों ने पहले ही दिनांक 24.06.2024 के पत्र के द्वारा से श्री एस.के. सिंह को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया है, जिसकी एक प्रति आवेदन का संलग्नक-14 है। उनका कहना हैं कि यदि आवेदक उक्त मध्यस्थ की नियुक्ति से व्यथित हैं, तो आवेदकों के लिए अधिनियम, 1996 की धारा 16 के संदर्भ में विद्वान मध्यस्थ के समक्ष ही विवाद उठाना हमेशा उपलब्ध है और परिणामस्वरूप वर्तमान आवेदन पोषणीय नहीं है।

5. उपरोक्त के उत्तर में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि प्रकरण के इस पहलू पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***पर्किन्स ईस्टमैन आर्किटेक्ट्स डीपीसी बनाम एचएससीसी (इंडिया) लिमिटेड, (2020) 20 SCC 760*** में विचार किया गया है, जिसमे ***वाल्टर बाउ एजी बनाम म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन ऑफ ग्रेटर मुंबई, (2015) 3 SCC 800*** में अपने पूर्व के निर्णय पर विचार करने के बाद, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना है कि अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन आवेदन पोषणीय होगा।

6. गुणावगुण के आधार पर, अनावश्यक विवरणों से रहित, तथ्य यह हैं कि आवेदकों और प्रतिवादियों-इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन (जिसे इसके बाद 'आई.ओ.सी.' कहा जाएगा) के बीच थोक पेट्रोलियम उत्पादों के सड़क

अनुवादित

परिवहन के लिए दिनांक 08.09.2022 को एक समझौता हुआ। समझौते की एक प्रति आवेदन का संलग्नक-2 है।

7. उक्त समझौते का खंड 18 प्रावधान करता है कि यदि समझौते के संबंध में या उससे उत्पन्न होने वाले पक्षों के बीच किसी भी प्रकार का कोई विवाद या मतभेद उत्पन्न होता है, तो ऐसे विवाद या मतभेदों को मध्यस्थता के माध्यम से हल किया जाएगा।

8. यह तर्क दिया गया है कि पक्षों के बीच एक विवाद उत्पन्न हुआ, जिसके परिणामस्वरूप दिनांक 24.01.2024 के पत्र के माध्यम से, जिसकी प्रति आवेदन का संलग्नक-10 है, आवेदकों ने प्रतिवादियों से मध्यस्थ की नियुक्ति का अनुरोध किया।

9. दिनांक 02.02.2024 का पत्र, जिसकी प्रति आवेदन का संलग्नक-11 है, प्रतिवादियों से प्राप्त हुआ जिसमें आवेदकों से आई.ओ.सी. के अधिकारी को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करने के लिए सहमति देने की आवश्यकता थी और अधिनियम, 1996 की धारा 12(5) की प्रयोज्यता को छोड़ने की सहमति की भी आवश्यकता थी।

10. उसके तुरंत बाद, आवेदकों ने दिनांक 06.02.2024 का एक पत्र भेजा, जिसकी प्रति आवेदन का संलग्नक-12 है, जिसमें पक्षों के बीच विवाद का निर्णय करने के लिए आई.ओ.सी. के अधिकारी को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करने के लिए सहमति दी गई।

11. उसके अनुसरण में, आई.ओ.सी. ने दिनांक 24.06.2024 के पत्र के माध्यम से श्री एस.के. सिंह को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया, जिसकी प्रति आवेदन का संलग्नक-14 है। उसके बाद, दिनांक 24.07.2024 के पत्र के माध्यम से, जिसकी प्रति आवेदन का संलग्नक-16 का भाग है, मध्यस्थ ने आवेदकों को लिखा कि वे आई.ओ.सी. के शेयरधारक और कर्मचारी हैं।

12. उस पर, आवेदकों का दावा है कि उन्होंने दिनांक 12.08.2024 का पत्र भेजा, जिसमें आई.ओ.सी. के एक कर्मचारी और शेयरधारक अर्थात् एस.के. सिंह को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करने के लिए अपनी सहमति वापस ले ली। हालांकि, आवेदकों द्वारा दी गई सहमति की वापसी के कारण कुछ भी ठोस नहीं हुआ और आई.ओ.सी. द्वारा उक्त मध्यस्थ को वापस नहीं लिया गया और परिणामस्वरूप इस न्यायालय द्वारा एक स्वतंत्र मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए वर्तमान आवेदन।

13. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि यद्यपि अधिनियम, 1996 की धारा 12(5) स्पष्ट रूप से प्रावधान करती है कि किसी भी पूर्व समझौते के विपरीत होने के बावजूद, कोई भी व्यक्ति जिसका संबंध पक्षों या अधिवक्ता या विवाद के विषय-वस्तु के साथ, सातवीं अनुसूची में निर्दिष्ट किसी भी श्रेणी के अंतर्गत

आता है, मध्यस्थ के रूप में नियुक्त होने के लिए अपात्र होगा लेकिन पक्षों के बीच विवाद उत्पन्न होने के बाद, पक्ष लिखित में एक स्पष्ट समझौते द्वारा इस उप-धारा की प्रयोज्यता को छोड़ सकते हैं।

14. तर्क यह है कि यद्यपि समझौते में मध्यस्थता खंड विशेष रूप से मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए प्रावधान करता था, जो एक कर्मचारी हो सकता था और प्रतिवादियों ने स्वयं मध्यस्थ के रूप में कर्मचारियों में से एक को नियुक्त करने का प्रस्ताव दिया था और शर्त को आवेदकों द्वारा विशेष रूप से क्षमा कर दिया गया था, फिर भी शर्त मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किए जाने वाले एक कर्मचारी के संबंध में माफ की गई थी, लेकिन बाद में एक बार जब मध्यस्थ ने स्वयं अपने पत्र दिनांक 24.07.2024 के माध्यम से सूचित किया कि वे कंपनी के कर्मचारी और शेयरधारक दोनों हैं, ऐसे में एक शेयरधारक के मध्यस्थ के रूप में कार्य नहीं करने के लिए पांचवीं और सातवीं अनुसूचियों दोनों में प्रदान की गई विशिष्ट बाधा पर विचार करते हुए आवेदकों ने आई.ओ.सी. के एक कर्मचारी श्री एस.के. सिंह को मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिए अपनी सहमति वापस ले ली है, जिस पर प्रतिवादियों द्वारा कार्रवाई की जानी चाहिए थी फिर भी उन्होंने उक्त मध्यस्थ की नियुक्ति वापस नहीं ली है परिणामस्वरूप अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन वर्तमान आवेदन मान्य होगा।

15. इस संबंध में, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने यह इंगित करने के लिए पांचवीं अनुसूची के मदों 17 और 32 के साथ-साथ सातवीं अनुसूची की मद 17 की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है कि जहां मध्यस्थ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पक्षों में से एक में या पक्षों में से एक के सहयोगी में शेयर रखता है, जो निजी तौर पर धारित है, उसको मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए एक बाधा माना जा सकता है।

16. जवाब देते हुए श्री ए.के. सिंह, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि एक बार आवेदकों द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति के अनुरोध पर, दिनांक 02.02.2024 के पत्र ने विशेष रूप से आवेदकों से अधिनियम, 1996 की धारा 12(5) की प्रयोज्यता को माफ करने की आवश्यकता की, जिसे उन्होंने स्वीकार किया और सहमति दी परिणामस्वरूप एक बार आवेदकों द्वारा दी गई सहमति के दृष्टिगत मध्यस्थ नियुक्त किया गया है, ऐसे में आवेदकों के लिए अधिनियम, 1966 की धारा 16 के संदर्भ में मध्यस्थ के समक्ष आपत्तियां उठाना हमेशा उपलब्ध है, परिणामस्वरूप वर्तमान आवेदन पोषणीय नहीं होगा।

17. श्री अशोक कुमार सिंह, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि एक बार आवेदकों ने स्वयं एक कर्मचारी अर्थात् श्री एस.के. सिंह को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करने के लिए सहमति दी है, ऐसे में उनके लिए दी गई सहमति से पीछे हटना के लिए बहुत देर हो चुकी है और इस प्रकार उनके द्वारा योजित आवेदन निरस्त करने योग्य है।

18. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया।

अनुवादित

19. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा उठाए गए तर्कों और अभिलेख के अवलोकन से, यह उभरता है कि स्वीकृत रूप से पक्षों के बीच दिनांक 08.09.2022 का एक समझौता है, जिसका खंड 18 मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए प्रावधान करता है। आवेदकों ने मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अनुरोध किया। प्रतिवादियों द्वारा दिनांक 02.02.2024 का एक पत्र जारी किया गया, जिसमें आवेदकों से आई.ओ.सी. के एक अधिकारी को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करने के लिए सहमति देने की आवश्यकता थी और आवेदकों से अधिनियम, 1996 की धारा 12(5) की प्रयोज्यता को छोड़ने की सहमति देने की भी आवश्यकता थी।

20. आवेदकों ने दिनांक 06.02.2024 का एक पत्र भेजा, जिसमें आई.ओ.सी. के एक अधिकारी को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करने के लिए सहमति दी गई और उसके अनुसरण में आई.ओ.सी. ने श्री एस.के. सिंह को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया।

21. विवाद तब उत्पन्न हुआ, जब मध्यस्थ श्री एस.के. सिंह ने दिनांक 24.07.2024 का एक पत्र भेजा, जिसमें बताया गया कि वे आई.ओ.सी. के कर्मचारी और शेयरधारक दोनों हैं।

22. आवेदकों ने दिनांक 12.08.2024 का एक पत्र भेजा, जिसमें श्री एस.के. सिंह को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करने के लिए सहमति वापस ले ली। प्रतिवादियों द्वारा इसे स्वीकार नहीं किया गया है और इसलिए मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए वर्तमान आवेदन।

23. प्रतिवादियों ने एक प्रारंभिक आपत्ति उठाई है कि चूंकि श्री एस.के. सिंह को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया गया है, ऐसे में आवेदकों के लिए उनकी नियुक्ति से संबंधित कोई भी विवाद या आपत्ति, जो उनकी हो, मध्यस्थ के समक्ष ही उठाना उपलब्ध है और परिणामस्वरूप वर्तमान आवेदन पोषणीय नहीं है।

24. क्या मध्यस्थ की नियुक्ति के बाद आपत्तियां सदैव मध्यस्थ के समक्ष उठाई जानी चाहिए या न्यायालय भी हस्तक्षेप कर सकता है, इस पर ***पर्किन्स ईस्टमैन आर्किटेक्ट्स डीपीसी (उपरोक्त)*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया है, जहां माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णीत किया है:-

"26. आगे जो प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या अधिनियम की धारा 11 के अधीन इस न्यायालय द्वारा शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, जब प्रतिवादी द्वारा पहले ही मध्यस्थ की नियुक्ति की जा चुकी है और क्या अपीलकर्ता को विधि में उपलब्ध उपायों के संदर्भ में उचित चरण में चुनौती उठाने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए। इस न्यायालय के एक नामित न्यायाधीश द्वारा वाल्टर बाउ एजी [वाल्टर बाउ एजी बनाम म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन ऑफ ग्रेटर मुंबई, (2015) 3 SCC 800 : (2015) 2 SCC (Civ) 450] में इसी तरह के विवाद पर विचार किया गया और इस बिंदु पर चर्चा निम्नानुसार थी: (SCC पृ. 805-06, प्रस्तर 9-10)

"9. जबकि यह सही है कि एन्ट्रिक्स [एन्ट्रिक्स कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम देवास मल्टीमीडिया (प्राइवेट) लिमिटेड, (2014) 11 SCC 560 : (2014) 4 SCC (Civ) 147] और प्रिकोल लिमिटेड [प्रिकोल लिमिटेड बनाम जॉनसन कंट्रोल्स एंटरप्राइज लिमिटेड, (2015) 4 SCC 177 : (2015) 2 SCC (Civ) 530] में, इस न्यायालय द्वारा यह राय व्यक्त की गई थी कि मध्यस्थ की नियुक्ति किए जाने के बाद, व्यथित पक्ष का उपाय धारा 11(6) के अधीन नहीं है बल्कि ऐसा उपाय अन्यत्र और मध्यस्थता अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों (धारा 12 और 13) के अधीन निहित है, जिस संदर्भ में उपरोक्त दृष्टिकोण व्यक्त किया गया था उसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। एन्ट्रिक्स [एन्ट्रिक्स कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम देवास मल्टीमीडिया (प्राइवेट) लिमिटेड, (2014) 11 SCC 560 : (2014) 4 SCC (Civ) 147] में, आईसीसी नियमों के अनुसार मध्यस्थ की नियुक्ति, सहमत वैकल्पिक प्रक्रिया के अनुसार थी, जबकि प्रिकोल लिमिटेड [प्रिकोल लिमिटेड बनाम जॉनसन कंट्रोल्स एंटरप्राइज लिमिटेड, (2015) 4 SCC 177 : (2015) 2 SCC (Civ) 530] में, जिस पक्ष ने मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन आवेदन दायर किया था, वह पहले ही मध्यस्थ के क्षेत्राधिकार के प्रति समर्पित हो चुका था। वर्तमान मामले में, स्थिति अन्यथा है।

10. जब तक मध्यस्थ की नियुक्ति स्पष्ट रूप से वैध नहीं है और ऐसी नियुक्ति मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले न्यायालय को संतुष्ट नहीं करती है, धारा 11(6) के अधीन क्षेत्राधिकार को रोकने के लिए ऐसी नियुक्ति को एक पूर्णतः स्थापित तथ्य के रूप में स्वीकार करना विधि में स्वीकार नहीं किया जा सकता। *वर्तमान मामले में, पक्षों के बीच सहमत प्रक्रिया ने पहले पक्ष से नोटिस प्राप्त होने के 30 दिनों के भीतर दूसरे पक्ष द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति का विचार किया। जबकि दातर स्विचगियर्स लिमिटेड [दातर स्विचगियर्स लिमिटेड बनाम टाटा फाइनेंस लिमिटेड, (2000) 8 SCC 151] में निर्णय ने मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन आवेदन दायर करने से पहले के समय बिंदु तक विस्तार करके पक्षों द्वारा सहमत समय-सीमा में कुछ लचीलापन पेश किया हो सकता है, यह नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि वर्तमान मामले में श्री न्यायमूर्ति ए.डी. माने की नियुक्ति स्पष्ट रूप से आईसीएडीआर द्वारा मध्यस्थों की नियुक्ति को नियंत्रित करने वाले नियमों के प्रावधानों के विपरीत है, जिसका पालन करने के लिए पक्ष ऐसी नियुक्ति के मामले में सहमत हुए थे। प्रतिवादी निगम को आईसीएडीआर द्वारा प्रस्तुत पैनल से परे जाने और अपनी पसंद के किसी भी व्यक्ति को नियुक्त करने का विकल्प दिया गया था, यह स्पष्ट रूप से पक्षों के विचार में नहीं था। यदि ऐसा है, तो स्पष्ट रूप से, श्री न्यायमूर्ति ए.डी. माने की नियुक्ति विधि में शून्य है। इसलिए, ऐसी नियुक्ति मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन इस न्यायालय द्वारा क्षेत्राधिकार के प्रयोग को बाधित नहीं करेगी। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि वर्तमान कार्यवाही विधि में मान्य नहीं है। याचिकाकर्ता द्वारा नोटिस प्राप्त होने के 30 दिनों के बाद की गई श्री न्यायमूर्ति ए.डी. माने की नियुक्ति, यद्यपि दातर स्विचगियर्स लिमिटेड [दातर स्विचगियर्स लिमिटेड बनाम टाटा फाइनेंस लिमिटेड, (2000) 8 SCC 151] में निर्धारित विधि के अनुरूप प्रतीत हो सकती है, स्पष्ट रूप से सहमत प्रक्रिया के विपरीत है जिसमें प्रतिवादी निगम द्वारा की गई नियुक्ति आईसीएडीआर द्वारा प्रस्तुत पैनल से होनी आवश्यक थी। इसलिए, उक्त नियुक्ति स्पष्ट रूप से विधि में अमान्य है।"*

27. यह यहां ध्यान दिया जा सकता है कि वाल्टर बाउ एजी [वाल्टर बाउ एजी बनाम म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन ऑफ ग्रेटर मुंबई, (2015) 3 SCC 800 : (2015) 2 SCC (Civ) 450] में नामित न्यायाधीश के उपरोक्त दृष्टिकोण को टीआरएफ लिमिटेड [टीआरएफ लिमिटेड बनाम एनर्जो इंजीनियरिंग प्रोजेक्ट्स लिमिटेड, (2017) 8 SCC 377 : (2017) 4 SCC (Civ) 72] में अपीलकर्ता की ओर से सेवा में लाया गया और नामित न्यायाधीश द्वारा व्यक्त की गई राय इस न्यायालय के बाध्यकारी प्राधिकरणों के अनुरूप पाई गई। यह देखा गया: (टीआरएफ मामला [टीआरएफ लिमिटेड बनाम एनर्जो इंजीनियरिंग प्रोजेक्ट्स लिमिटेड, (2017) 8 SCC 377 : (2017) 4 SCC (Civ) 72], SCC पृ. 397, पैरा 32-33)

"32. श्री सुंदरम, अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने वाल्टर बाउ एजी [वाल्टर बाउ एजी बनाम म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन ऑफ ग्रेटर मुंबई, (2015) 3 SCC 800 : (2015) 2 SCC (Civ) 450] में इस न्यायालय के नामित न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय से भी प्रेरणा ली है, जहां विद्वान न्यायाधीश ने एन्ट्रिक्स कॉर्पोरेशन लिमिटेड [एन्ट्रिक्स कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम देवास मल्टीमीडिया (प्राइवेट) लिमिटेड, (2014) 11 SCC 560 : (2014) 4 SCC (Civ) 147] का उल्लेख करने के बाद, उससे विभेद किया और प्रिकोल लिमिटेड बनाम जॉनसन कंट्रोल्स एंटरप्राइज लिमिटेड [प्रिकोल लिमिटेड बनाम जॉनसन कंट्रोल्स एंटरप्राइज लिमिटेड, (2015) 4 SCC 177 : (2015) 2 SCC (Civ) 530] में प्राधिकरण को भी अलग किया और यह माना: (वाल्टर बाउ एजी मामला [वाल्टर बाउ एजी बनाम म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन ऑफ ग्रेटर मुंबई, (2015) 3 SCC 800 : (2015) 2 SCC (Civ) 450], SCC पृ. 806, पैरा 10)

'10. जब तक मध्यस्थ की नियुक्ति स्पष्ट रूप से वैध नहीं है और ऐसी नियुक्ति मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले न्यायालय को संतुष्ट नहीं करती है, धारा 11(6) के अधीन क्षेत्राधिकार को रोकने के लिए ऐसी नियुक्ति को एक पूर्णतः स्थापित तथ्य के रूप में स्वीकार करना विधि में स्वीकार नहीं किया जा सकता।...'

33. हम तुरंत यह कह सकते हैं कि उपरोक्त मामले में व्यक्त की गई राय हमारे द्वारा पहले संदर्भित बाध्यकारी प्राधिकरणों के अनुरूप है।"

(इस न्यायालय द्वारा महत्व प्रदत्त)

25. ***पर्किन्स ईस्टमैन आर्किटेक्ट्स डीपीसी (उपरोक्त)*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अवलोकन से, यह पता चलता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णीत किया है कि जब तक मध्यस्थ की नियुक्ति स्पष्ट रूप से वैध नहीं है और ऐसी नियुक्ति अधिनियम, 1986 की धारा 11(6) के अधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले न्यायालय को संतुष्ट नहीं करती है, धारा 11(6) के अधीन क्षेत्राधिकार को रोकने के लिए ऐसी नियुक्ति को एक पूर्णतः स्थापित तथ्य के रूप में स्वीकार करना विधि में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

26. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि प्रतिवादियों द्वारा श्री एस.के. सिंह को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किए जाने के बाद भी, जब तक श्री एस.के. सिंह की मध्यस्थ के रूप में नियुक्ति स्पष्ट रूप से वैध नहीं पाई जाती है, इस न्यायालय के पास अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन क्षेत्राधिकार होगा और इसे उक्त क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से नहीं रोका जा सकता। इस प्रकार प्रारंभिक आपत्ति खारिज की जाती है।

27. गुणावगुण के आधार पर, यह उभरता है कि मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए प्रतिवादियों ने आवेदकों से आई.ओ.सी. के एक अधिकारी को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करने के लिए सहमति देने की आवश्यकता की थी और अधिनियम, 1996 की धारा 12(5) की प्रयोज्यता को छोड़ने की सहमति की आवश्यकता की थी, जो आवेदकों ने स्वेच्छा से दी। इस प्रकार, मध्यस्थ के रूप में आई.ओ.सी. के एक अधिकारी की नियुक्ति के लिए छूट की आवश्यकता थी लेकिन मध्यस्थ, श्री एस.के. सिंह द्वारा 24.06.2024 को उनकी नियुक्ति के बाद जारी किया गया पत्र इंगित करता है कि मध्यस्थ ने आवेदकों को लिखा कि वे आई.ओ.सी. के शेयरधारक और कर्मचारी दोनों हैं।

28. जैसा कि ऊपर पहले ही संकेत दिया गया है, प्रतिवादियों द्वारा मांगी गई सहमति आई.ओ.सी. के एक कर्मचारी की नियुक्ति के लिए अधिनियम, 1996 के प्रावधानों के संदर्भ में छूट थी जो आवेदकों द्वारा स्वेच्छा से दी गई थी लेकिन केवल आई.ओ.सी. के एक कर्मचारी को नियुक्त करने के बजाय प्रतिवादियों ने आई.ओ.सी. के एक शेयरधारक और कर्मचारी को नियुक्त किया जो प्रतिवादियों द्वारा मांगी गई विशिष्ट छूट के विरुद्ध था, जिसे आवेदकों द्वारा दिया गया था।

29. अधिनियम, 1996 की पांचवीं और सातवीं अनुसूची विशेष रूप से मदों 17 और 32 (पांचवीं अनुसूची की) और मद 17 (सातवीं अनुसूची की) में प्रावधान करती है कि जहां मध्यस्थ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पक्षों में से एक में शेयर रखता है, उसको मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए एक बाधा माना जा सकता है।

30. इसमे कोई संदेह नहीं, पांचवीं अनुसूची की मद 17 'विवाद में मध्यस्थ का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हित' शीर्षक के अंतर्गत आती है फिर भी यह देखते हुए कि मध्यस्थ स्वयं शेयरधारक होने की बात स्वीकार करता है, स्पष्ट रूप से उसका शेयरधारक की क्षमता में आई.ओ.सी. से संबंधित विवाद में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष वित्तीय हित होगा। परिणामस्वरूप एक बार पांचवीं और सातवीं अनुसूची के अधीन एक विशिष्ट बाधा है, जो मध्यस्थ की स्वतंत्रता या निष्पक्षता के बारे में उचित संदेह को जन्म देती है और प्रतिवादियों द्वारा मध्यस्थ के रूप में शेयरधारक की नियुक्ति के लिए कभी कोई सहमति नहीं मांगी गई थी और सहमति केवल मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किए जाने वाले कर्मचारी के संबंध में थी, ऐसे में यह स्पष्ट है कि प्रतिवादियों ने श्री एस.के. सिंह को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करने में स्पष्ट रूप से गलती की है, जो स्वीकार्य रूप से आई.ओ.सी. के शेयरधारक हैं।

31. इस प्रकार, एक बार आवेदकों ने श्री एस.के. सिंह को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करने के लिए सहमति वापस ले ली है, जो सहमति, जैसा कि ऊपर पहले ही संकेत दिया गया है, एक कर्मचारी की नियुक्ति के लिए थी फिर भी एक कर्मचारी और शेयरधारक को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया गया है, ऐसे में श्री एस.के. सिंह की मध्यस्थ के रूप में नियुक्ति स्पष्ट रूप से विधि की नजर में स्वीकार्य नहीं है।

32. तदनुसार, ***पर्किन्स ईस्टमैन आर्किटेक्ट्स डीपीसी (उपरोक्त)*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि पर विचार करते हुए, श्री एस.के. सिंह की मध्यस्थ के रूप में नियुक्ति स्पष्ट रूप से वैध नहीं पाई गई है और उनकी नियुक्ति इस न्यायालय को संतुष्ट नहीं करती है और स्पष्ट रूप से विधि की दृष्टि में स्वीकार्य नहीं है और इस प्रकार विधि में अमान्य माना जाता है।

33. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, आवेदकों द्वारा योजित इस आवेदन को पोषणीय मानने का आधार बनता है।

34. तदनुसार, न्यायालय आवेदन स्वीकार करता है और दिनांक 24.06.2024 के पत्र के प्रभाव को निरस्त करता है, जो श्री एस.के. सिंह को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करता है और मध्यस्थ की नियुक्ति को निरस्त करता है।

35. इसके अतिरिक्त, अधिनियम, 1986 की धारा 11(6) के अधीन प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में यह न्यायालय, न्यायमूर्ति डी.के. अरोड़ा (सेवानिवृत्त) निवासी टाइप VII, न्यू कैंपस, एसजीपीजीआई, रायबरेली रोड, लखनऊ को पक्षों के बीच विवाद का निस्तारण करने के लिए मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करना प्रस्तावित करता है।

36. अभिलेख पर याचिकाओं की एक प्रति, संशोधन अधिनियम 2015 के साथ अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के साथ माननीय श्री न्यायमूर्ति डी.के. अरोड़ा, इस न्यायालय के एक पूर्व न्यायमूर्ति को भेजी जाए जिससे अधिनियम, 1996 की धारा 11(8) सपठित धारा 12(1) और अनुसूची VI और VII के संदर्भ में अनुसूची के प्रारूप पर उनके विवरणों को प्राप्त किया जा सके, जो संशोधन अधिनियम 2015 द्वारा संशोधित किए गए हैं, और विवाद को हल करने के लिए मध्यस्थ के रूप में नियुक्ति के लिए उनकी सहमति भी प्राप्त की जा सके।

37. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता उक्त उद्देश्य के लिए एक सप्ताह के भीतर कार्यालय को आवेदन की एक अतिरिक्त प्रति प्रदान करेंगे।

38. उत्तर/सहमति प्राप्त होने के तुरंत बाद सूचीबद्ध करें।

(2025) 5 ILRA 14

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 02.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

धारा 482 भा.ना.सु.सं. के अधीन आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन संख्या-398 वर्ष 2025

प्रशांत शुक्ला **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य **...विपक्षी पक्ष**

आवेदक के अधिवक्ता:
रक्षित राज सिंह, आयुष अग्रवाल

विपक्षी के अधिवक्ता:
शा.अधि.

अनुवादित

आपराधिक विधि-भारतीय न्याय संहिता, 2023-धारा 80 एवं 85-दहेज निषेध अधिनियम, 1961-धारा 3/4-सत्र न्यायालय ने तीन सह-अभियुक्तों के अग्रिम जमानत आवेदनों पर विचार किया लेकिन अंतरिम संरक्षण देने से इनकार कर दिया, जिससे उनकी गिरफ्तारी की आशंका बनी रही-उचित संभावना है कि यदि आवेदक सत्र न्यायालय में जाता तो उसे भी अंतरिम राहत से वंचित कर दिया जाता-ये परिस्थितियाँ असाधारण स्थिति का गठन करती हैं, जो आवेदक, जो एक युवा बी.टेक. छात्र है, के द्वारा सीधे उच्च न्यायालय में अग्रिम जमानत के लिए आने को उचित ठहराती हैं-तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, जिसमें प्र.सू.रि. में आवेदक की माँ (सह-अभियुक्त) पर गला घोंटने का आरोप लगाया गया है, जबकि पोस्टमार्टम रिपोर्ट में मृत्यु का कारण मृत्यु-पूर्व फाँसी के कारण श्वासावरोध बताया गया है जिसमें केवल 6 सेमी का अवरुद्ध गला घोंटने का निशान है और कोई अन्य चोट नहीं है, आवेदक के विरुद्ध कोई विशिष्ट आरोप नहीं लगाया गया है, वह 21 वर्षीय इंजीनियरिंग का छात्र है, उसने अन्वेषण व विचारण में सहयोग करने का वचन दिया है, अग्रिम जमानत देने के लिए मामला बनता है। (प्रस्तर 8, 16)

आवेदन स्वीकृत (E-13)

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची</u>:

1. अंकित भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य: 2020 SCC OnLine All 1949, (प्रस्तर 17 से 22)

2. विनोद कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2019 SCC OnLine All 4821

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी, द्वारा उद्घोषित)

1. श्री रक्षित राज सिंह, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता, श्री रवि श्रीवास्तव, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री विवेक कुमार राय, सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, जिन्होंने अपना वकालतनामा योजित किया है, जिसे अभिलेख पर लिया गया है, को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

2. सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने एक प्रारंभिक आपत्ति उठाई है कि आवेदक ने सत्र न्यायालय के समक्ष अग्रिम जमानत के लिए आवेदन योजित किए बिना सीधे इस न्यायालय में आवेदन किया है और इसलिए, वर्तमान आवेदन पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। यह प्रस्तुत किया गया है कि तीन सह-अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा योजित अग्रिम जमानत आवेदन सत्र न्यायालय के समक्ष लंबित हैं और उनकी अंतरिम संरक्षण की प्रार्थना को सत्र न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है।

3. उपरोक्त के उत्तर में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आवेदक 21 वर्ष की आयु का एक युवा व्यक्ति है और बी.टेक. पाठ्यक्रम कर रहा है। उसकी परीक्षाएं शीघ्र ही शुरू होने वाली हैं और चूंकि सत्र न्यायालय ने पहले ही तीन सह-अभियुक्त व्यक्तियों को अंतरिम संरक्षण देने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया है, इसलिए आवेदक ने उपरोक्त असाधारण परिस्थितियों को देखते हुए सीधे इस न्यायालय में आवेदन किया है।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता और सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के पाँच माननीय न्यायमूर्तियों की पीठ द्वारा **अंकित भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य**: 2020 SCC OnLine All 1949 में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें निम्नलिखित प्रश्नों को वृहद पीठ को संदर्भित किया गया था: -

"(i) क्या शपथपत्र में उल्लिखित बाध्यकारी कारणों के विचारोपरांत, उन्हें आकर्षक न पाए जाने पर, न्यायालय के पास अग्रिम जमानत को अस्वीकार करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा, जो इस न्यायालय में सीधे आने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा;

(ii) क्या विनोद कुमार (उपरोक्त) में निर्णय में दिए गए आधारों में से, क्रम संख्या (ए) के आधार को किसी पुनर्विचार की आवश्यकता है जिससे सह-अभियुक्त को इस न्यायालय में सीधे आने से रोका जा सके, यदि अन्य सह-अभियुक्त की नियमित जमानत/अग्रिम जमानत को सत्र न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है और क्या उसे भी ऐसे शपथपत्र योजित करने के लिए अधीन किया जाना चाहिए, जिसमें उन परिस्थितियों को दर्शाया जाए, जिनमें उसे इस न्यायालय में सीधे आने के लिए बाध्य महसूस करना पड़ा;

(iii) क्या विनोद कुमार (उपरोक्त) में निर्णय में दिए गए आधारों में से, क्रम संख्या (बी) के आधार को किसी पुनर्विचार की आवश्यकता है कि क्या एक अभियुक्त, जो संबंधित सत्र न्यायालय के क्षेत्राधिकार के भीतर नहीं रहता है, गिरफ्तारी का खतरा झेल रहा है, को ऊपर प्रस्तर 6 में दी गई तर्कसंगतता के आधार पर अग्रिम जमानत आवेदन करने के लिए सीधे उच्च न्यायालय में जाने की अनुमति दी जानी चाहिए; और

(iv) क्या ऐसे अग्रिम जमानत आवेदनों पर विचार किया जाना चाहिए, जिनमें इस न्यायालय में सीधे आने के लिए कोई बाध्यकारी कारण नहीं है।"

5. पाँच न्यायमूर्तियों की पीठ ने **विनोद कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**: 2019 SCC OnLine All 4821 में निर्णय का संदर्भ दिया, जिसमें यह निर्णीत किया गया है कि: -

*"ए. **धारा 438 दं.प्र.सं. अपने सरल शब्दों में किसी पक्ष को अग्रिम जमानत के लिए उच्च न्यायालय में आवेदन करने से पहले सत्र न्यायालय में जाने को अनिवार्य या आवश्यक नहीं बनाती है। यह प्रावधान जैसा कि यह है, किसी व्यक्ति को इस न्यायालय के समक्ष सुनवाई का अधिकार दिए जाने से पहले सत्र न्यायालय में जाना आवश्यक नहीं करता है।***

*बी. **धारा 438 दं.प्र.सं. के अधीन अग्रिम जमानत देने के लिए उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय को समवर्ती क्षेत्राधिकार प्रदान किए जाने के बाद भी, सत्र न्यायालय के समक्ष उपलब्ध उपचार को प्रयोग किए बिना पहले उच्च न्यायालय जाने के औचित्य में मजबूत, ठोस, बाध्यकारी और विशेष परिस्थितियाँ आवश्यक रूप से मौजूद होनी चाहिए। क्या वे कारक स्थापित हैं या किसी विशेष मामले के तथ्यों में मौजूद हैं, यह प्रत्येक प्रकरण में न्यायालय द्वारा विचार किए जाने के लिए आवश्यक रूप से छोड़ा जाना चाहिए***।

सी. "असाधारण" या "अत्यधिक" शब्दों को असामान्य, दुर्लभ, सामान्य से बाहर, असामान्य या असाधारण के रूप में समझा जाता है। यदि धारा 438 दं.प्र.सं. द्वारा प्रदत्त न्यायालय के क्षेत्राधिकार को परिभाषित किया जाए या केवल असाधारण स्थितियों में ही प्रयोग किए जाने के रूप में मान्यता दी जाए तो यह फिर से धारा 438 दं.प्र.सं. द्वारा प्रदत्त विवेक को बांधने और संकुचित करने के समान होगा। ऐसी व्याख्या वैधानिक अधिदेश के स्पष्ट विरोध में होगी। हरेन्द्र सिंह के सिद्धांत को विशेष, गंभीर और बाध्यकारी कारणों और परिस्थितियों के अस्तित्व को स्थापित करने की आवश्यकता के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए, जो इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार के आह्वान को उचित ठहराते हैं, भले ही सत्र न्यायालय के समक्ष निवारण का एक स्वस्थ मार्ग उपलब्ध था।

डी. प्रदत्त शक्ति की प्रकृति के आलोक में "विशेष परिस्थितियाँ" क्या होंगी, यह किसी विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के उचित मूल्यांकन पर न्यायाधीश द्वारा एकत्र किए जाने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए। विशेष परिस्थितियों क्या होंगी यह विस्तार से लिखना विवेकहीन होगा। यह पहचानना या संक्षेप में

स्थापित करना असंभव है कि विशेष परिस्थितियाँ क्या होंगी। सिब्बिया ने "नई स्थितियों की आवश्यकताओं की अपूर्ण जागरूकता" की बात की। यह वह बाधा है, जो न्यायालय को इसे न्यायाधीश की बुद्धिमत्ता और विधि द्वारा उसमें निहित विवेक पर छोड़ने के लिए आवश्यक बनाती है।

ई. जबकि स्पष्टीकरण ने धारा 438(1) के अधीन पारित आदेश को चुनौती देने के लिए पीड़ित व्यक्ति के लिए एक मार्ग बनाया हो सकता है, इसे उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को अग्रिम जमानत देने के आवेदन पर विचार करने से रोकने के रूप में नहीं समझा जा सकता या नहीं देखा जा सकता, भले ही वह प्रार्थना सत्र न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दी गई हो।

एफ. जब तक धारा 438 दं.प्र.सं. के अधीन आदेश किस अवधि के लिए संचालित होना चाहिए, इस प्रश्न का निर्णय वृहद पीठ द्वारा दिया जा रहा है कि अग्रिम जमानत देने वाले न्यायालय को यह निर्दिष्ट करना होगा कि यह केवल तब तक प्रवत्त रहेगा जब तक न्यायालय धारा 173(2) दं.प्र.सं. के अधीन प्रस्तुत की जा सकने वाली रिपोर्ट के आधार पर अभियुक्त को सम्मन नहीं करता है, जिसके बाद आवेदक के लिए उपस्थित होने पर धारा 439 दं.प्र.सं. में किए गए प्रावधानों के अनुसार नियमित जमानत मांगना उपलब्ध होगा।"

(महत्व प्रदत्त)

6. **अंकित भारती** (उपरोक्त) में, इस न्यायालय की पाँच न्यायमूर्तियों की पीठ ने विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की और निम्नलिखित निष्कर्ष दिए: -

*"17. इसलिए, हम निर्णीत करते हैं कि **विनोद कुमार** में दर्ज नतीजों पर, जो विशेष या असाधारण परिस्थितियों का अर्थ बताते हैं, दोबारा सोचने की आवश्यकता नहीं है। जैसा कि वहाँ बताया गया है, यह संबंधित न्यायाधीश पर छोड़ देना चाहिए कि वह किसी विशेष प्रकरण में उपलब्ध तथ्यों के आधार पर विधि के अधीन अपने अधिकार का प्रयोग करे।*

*18. दूसरा पक्ष, जिस पर बल देने और दोहराने की आवश्यकता है, वह यह है कि **विनोद कुमार** में कुछ ऐसी स्थितियों के बारे में बताते हुए, जिनमें सीधे उच्च न्यायालय जाया जा सकता है, उन बातों को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करने और वास्तविक रूप में सिद्ध करने की आवश्यकता पर बल दिया था। बिना आवश्यक विवरण के, एक बिना साक्ष्य का दावा न तो उच्च न्यायालय में आवेदन देने के लिए काफी था और न ही उस निर्णय से ऐसा कोई निष्कर्ष निकलता है। **विनोद कुमार** ने स्पष्ट किया है कि अग्रिम जमानत का आवेदन धुंधले और बिना साक्ष्य वाले आरोपों या जल्द गिरफ्तारी के खतरे के समर्थन में आवश्यक विवरण की कमी पर आधारित नहीं हो सकती। इस पहलू पर बात करते हुए विद्वान न्यायमूर्ति ने रश्मि रेखा थातोई बनाम उड़ीसा राज्य (2012) 5 SCC 690 में सुप्रीम न्यायालय की कही गई आवश्यक बातों का भी ज़िक्र किया है। इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि **विनोद कुमार** में न्यायमूर्ति ने जिन कुछ हालातों को विशेष परिस्थितियां के तौर पर देखा है, उन्हें खोखली बातें नहीं समझना चाहिए, बल्कि रिकॉर्ड में मौजूद चीज़ों से उनका समर्थन और पुष्टि*

*होनी चाहिए। याचिका में गिरफ्तारी के खतरे के समर्थन में एक मज़बूत बुनियाद होनी चाहिए, जैसा कि कहा गया है। इस बात पर संविधान पीठ ने **सुशीला अग्रवाल** प्रकरण में भी बल दिया है, जैसा कि ऊपर उद्धरित अंशों से स्पष्ट है, जिसमें यह कहा गया है कि आवेदन "ठोस तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए (न कि अस्पष्ट या सामान्य आक्षेपों पर)"।*

19. इस पृष्ठभूमि में देखने पर यह साफ़ है कि न्यायमूर्ति के लिए हर केस के तथ्यों का आकलन करना और यह राय बनाना उपलब्ध था कि क्या कोई विशिष्ट परिस्थितियाँ थीं या नहीं, जिससे आवेदक सीधे उच्च न्यायालय जा सके। ऊपर बताए गए दृष्टिकोण से देखने पर, यह स्पष्ट है कि न्यायमूर्ति द्वारा विरचित प्रश्न (i) वास्तव में गलत है। अगर न्यायमूर्ति की राय थी कि विशिष्ट परिस्थितियाँ होने के समर्थन में कही गई बातें "आकर्षक नहीं" [जैसा कि वह इसे बताना चाहते हैं] या यकीन न करने वाली थीं, तो न्यायालय को ऐसा मानने से कोई नहीं रोक सकता था।

*20. इसलिए हम संदर्भ का निर्णय यह मानकर देंगे कि विनोद कुमार में दिया गया निर्णय किसी भी तरह से पुनर्विचार या पुनः स्पष्ट करने योग्य नहीं है। जैसा कि उस निर्णय में सही कहा गया है, ऐसी कोई पूरी या सामान्य बातें नहीं बताई जा सकतीं जिनमें किसी आवेदक को सीधे उच्च न्यायालय जाने का अधिकारी माना जा सके। न्यायालय अगर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन न्यायालय को प्रदत्त अधिकार के प्रयोग को मार्गदर्शित करने वाला एक जैसा कोड या नियम बनाने की कोशिश करता है तो यह स्पष्ट रूप से गलत होगा। विधायिका ने समझदारी से जो अधिकार बिना रोक-टोक के छोड़े हैं, उन्हें हर विशेष प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर प्रयोग करने के लिए मौजूद माना जाना चाहिए। **विनोद कुमार** में विशिष्ट परिस्थितियों के उदाहरण के तौर पर बताए गए उदाहरण, जहां सही तरीके से सिद्ध हो जाएं, सीधे उच्च न्यायालय में याचिका योजित करने का आधार बन सकती हैं।*

21. जिन विशेष परिस्थितियों को उच्च न्यायालय ने सीधे अग्रिम जमानत के आवेदन पर विचार करने के लिए आवश्यक माना है, उन्हें उस माननीय न्यायमूर्ति के विचार के लिए छोड़ देना चाहिए, जिसके सामने आवेदन सूचीबद्ध है और उस विशिष्ट प्रकरण के तथ्यों व परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उस पर निर्णय लेना चाहिए। हालांकि, उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार इस्तेमाल करने से पहले विशेष परिस्थितियां ज़रूर होने चाहिए और उन्हें सिद्ध किया जाना चाहिए। आवेदन को गिरफ्तारी की आशंका और उच्च न्यायालय के समवर्ती क्षेत्राधिकार को सही ठहराने के लिए एक मज़बूत आधार पर खड़ा होना चाहिए। विनोद कुमार के तथ्य, जिनमें (ए) और (बी) शामिल हैं, विशेष परिस्थितियां बनाने के लिए किसी पुनरीक्षण योग्य नहीं हैं, सिवाय इसके कि किसी विशेष परिस्थितियां का होना, निश्चित रूप से सिद्ध होना चाहिए और वह अस्पष्ट आरोपों पर आधारित नहीं होना चाहिए।

22. ऊपर बताई गई बातों को ध्यान में रखते हुए, हम संदर्भ का निर्णय इस तरह करते हैं:

प्रश्न (i) और (iv) स्पष्ट रूप से पर किसी स्पष्टीकरण के योग्य नहीं हैं क्योंकि यह संबंधित न्यायमूर्ति को पता लगाना है कि क्या किसी विशेष प्रकरण में विशेष परिस्थितियां मौजूद हैं, जिनके लिए उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को सीधे इस्तेमाल करने की आवश्यकता है। हम प्रश्न (ii) और (iii) का जवाब नहीं में देते हैं और निर्णीत करते हैं कि ***विनोद कुमार*** *किसी भी पुनर्विचार या अतिरिक्त स्पष्टीकरण के योग्य नहीं हैं। यह संबंधित न्यायमूर्ति को हर विशेष प्रकरण के तथ्यों के आधार पर यह मत बनाना होगा कि क्या विशेष परिस्थितियां मौजूद हैं और वे सही तरह से सिद्ध हैं।"*

7. इस प्रकार इस बिंदु पर विधि यह है कि आवेदक सीधे उच्च न्यायालय में अग्रिम जमानत की प्रार्थना के साथ आ सकता है, जब कुछ विशेष परिस्थितियाँ हों, जो उसके पहले सत्र न्यायालय न जाने को उचित ठहराती हों।

8. वर्तमान प्रकरण में, सत्र न्यायालय ने तीन सह-अभियुक्त व्यक्तियों के अग्रिम जमानत आवेदनों पर विचार किया है लेकिन उन्हें अंतरिम संरक्षण देने से इनकार कर दिया है। इसलिए, उन सह-अभियुक्त व्यक्तियों की गिरफ्तारी की आशंका बनी हुई है। एक उचित आशंका है कि यदि आवेदक सत्र न्यायालय में जाता है, तो सत्र न्यायालय अपने दृष्टिकोण को बनाए रखेगा और उसे भी अंतरिम अग्रिम जमानत नहीं दी जाएगी। ये परिस्थितियाँ एक असाधारण परिस्थिति बनाती हैं, जो अग्रिम जमानत की प्रार्थना के साथ सत्र न्यायालय में जाने की जगह सीधे इस न्यायालय में जाने के लिए आवेदक को उचित ठहराती हैं, जो एक युवा व्यक्ति है व बी.टेक. पाठ्यक्रम कर रहा है।

9. तदनुसार, सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति को अस्वीकार किया जाता है।

10. वर्तमान आवेदन, आवेदक द्वारा प्र.सू.रि. संख्या-0238 सन 2025, धारा 80 और 85 भा.न्या.सं. और धारा 3 एवं 4 डी.पी. अधिनियम, पुलिस थाना-सुशांत गोल्फ सिटी, लखनऊ दक्षिण, के संबंध में अग्रिम जमानत मांगते हुए योजित किया गया है।

11. उपरोक्त प्रकरण 31.03.2025 को आवेदक, उसके पिता, माँ और बड़े भाई के विरुद्ध दर्ज एक प्र.सू.रि. के आधार पर पंजीकृत किया गया है, जिसमें यह कहा गया है कि सूचनाकर्ता ने अपनी बेटी की शादी आवेदक के बड़े भाई/सह-अभियुक्त-सुशांत शुक्ला से 21.04.2024 को की थी; कि सभी अभियुक्त व्यक्ति दहेज की मांग करते हुए उसे परेशान करते थे; कि मृतका का पति भारतीय सेना में लांस नायक के रूप में काम कर रहा है और गुवाहाटी में तैनात है, वह अपनी पत्नी को कुछ समय के लिए अपने साथ ले गया था लेकिन वह भी उसके साथ दुर्व्यवहार करता था; कि उसने कुछ दिन पहले अपनी पत्नी को अपने घर छोड़ दिया था, जहाँ अन्य अभियुक्त व्यक्ति अतिरिक्त दहेज की मांग करते हुए उसे परेशान करते थे; कि सूचनाकर्ता की बेटी ने अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा किए गए दुर्व्यवहार के बारे में अपने माता-पिता से शिकायत की थी, लेकिन सूचनाकर्ता ने इस

संबंध में कोई शिकायत नहीं करने का विकल्प चुना और यह कि आवेदक की माँ (सह-अभियुक्त रेखा) ने कथित तौर पर 29.03.2025 को उसकी बेटी का गला घोंट दिया।

12. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता के साथ-साथ सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आवेदक को अग्रिम जमानत देने की प्रार्थना का विरोध किया है। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने न्यायालय के अवलोकन के लिए केस डायरी के संबंधित अंश की एक प्रति प्रस्तुत की है।

13. पोस्टमार्टम परीक्षा रिपोर्ट में गर्दन के चारों ओर एक गला घोंटने का निशान का उल्लेख है, जो तिरछे ऊपर और पीछे की ओर गुजरता है, जो गर्दन के बाईं ओर के पार्श्व पीछे के पहलू पर 6 सेमी द्वारा बाधित था और मृत्यु का कारण मृत्यु-पूर्व फाँसी के कारण श्वासावरोध बताया गया है। मृत शरीर पर कोई अन्य चोट नहीं बताई गई थी।

14. सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सह-अभियुक्त-शिव प्रकाश शुक्ला और आवेदक प्रशांत शुक्ला ने आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 3407 सन 2025 और 3404 सन 2025 योजित की थी, जिन्हें आदेश दिनांक 23.04.2025 के द्वारा वापस लेने के रूप मे निरस्त कर दिया गया है।

15. प्र.सू.रि. को खंडित करने के लिए योजित रिट याचिका और अग्रिम जमानत के लिए योजित आवेदन पूरी तरह से अलग उपाय हैं, जिन्हें विचार और आधारों के विभिन्न सेटों पर तय किया जाना है। प्र.सू.रि. को रद्द करने की मांग करने वाली रिट याचिका का निरस्तीकरण, अग्रिम जमानत के आवेदन योजित करने पर रोक नहीं लगाएगी और इसी पर इसकी योग्यता के आधार पर विचार किया जाना है।

16. प्रकरण के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि यद्यपि प्र.सू.रि. में आरोप है कि आवेदक की माँ (सह-अभियुक्त रेखा) ने अन्य अभियुक्त व्यक्ति की मदद से मृतका का गला घोंट दिया, पोस्टमार्टम परीक्षा रिपोर्ट में केवल गर्दन के चारों ओर एक गला घोंटने के निशान का उल्लेख है जो 6सेमी द्वारा बाधित था; कि मृत्यु का कारण मृत्यु-पूर्व फाँसी के कारण श्वासावरोध बताया गया है; कि मृत शरीर के किसी अन्य भाग पर कोई अन्य चोट नहीं पाई गई है; कि आवेदक के विरुद्ध कोई विशिष्ट आरोप नहीं लगाया गया है; कि आवेदक 21 वर्ष की आयु का एक युवा व्यक्ति है, जो इंजीनियरिंग में स्नातक पाठ्यक्रम कर रहा है और उसने अन्वेषण व विचारण में सहयोग करने का वचन दिया है, मैं इस विचार का हूँ कि उपरोक्त तथ्य आवेदक को अग्रिम जमानत देने के लिए पर्याप्त हैं।

17. उपरोक्त के आलोक में, आवेदक का अग्रिम जमानत आवेदन **स्वीकार** किया जाता है। उपरोक्त प्रकरण में अपराध में आवेदक-**प्रशांत शुक्ला** की गिरफ्तारी/विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थिति की स्थिति में, उसे थानाध्यक्ष/संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के अनुसार व्यक्तिगत बॉन्ड और दो विलायक जमानतदार,

प्रत्येक समान राशि में, निम्नलिखित शर्तों पर और विचारण न्यायालय द्वारा निर्धारित की जा सकने वाली किसी अन्य शर्त के अधीन अग्रिम जमानत पर रिहा किया जाएगा:

(i). कि आवेदक आवश्यक होने पर, किसी पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए स्वयं को उपलब्ध कराएगा;

(ii) कि आवेदक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को ऐसे तथ्यों को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को प्रकट करने से हतोत्साहित करने के लिए कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा या साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा;

(iii) कि आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा;

(iv) कि आवेदक निर्धारित प्रत्येक तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा, जब तक कि उसकी व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट न दी गई हो; और

(v). कि आवेदक अभियोजन गवाह पर दबाव/धमकी नहीं देगा।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 20

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 30.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर

धारा 438 दं.प्र.सं. के अधीन आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन संख्या-447 सन 2025

सुधीर @ सुधीर कुमार चौरसिया **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य जरिए गृह मंत्रालय के प्रधान सचिव और 3 अन्य **...विपक्षी**

आवेदक के अधिवक्ता:
प्रदीप कुमार, आदर्श त्रिपाठी, प्रभात कुमार मिश्रा

विपक्षी के अधिवक्ता:
शा.अधि.

अनुवादित

ए. आपराधिक विधि-आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 438-भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 420, 467, 468 एवं 471 स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985-धारा 22(सी)- अग्रिम जमानत आवेदन की पोषणीयता, इस तथ्य को देखते हुए कि यह एन.डी.पी.एस. अधिनियम से संबंधित है और इसलिए धारा 438(6) दं.प्र.सं. की शर्तों के अनुसार पोषणीय नहीं है-न्यायालय ने निर्णीत किया कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता का निरसन और भा.ना.सु.सं. 2023 द्वारा इसका प्रतिस्थापन, उ.प्र. संशोधन (अधिनियम संख्या 4 सन 2019) को नहीं बचाता, जिसने एन.डी.पी.एस. अधिनियम के अपराधों में अग्रिम जमानत पर रोक लगा दी थी-भा.ना.सु.सं. राज्य विधायी संशोधनों के लिए बचत खंड नहीं है, और इसमें "अधिसूचना" शब्द संविधान के अनुच्छेद 246 के अधीन राज्य अधिनियम को शामिल नहीं कर सकता-संवैधानिक सिद्धांतों, सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6, और अनुच्छेद 254(2) के परंतुक पर भरोसा करते हुए, न्यायालय ने निर्णीत किया कि जहां संसद बाद में अंतर के साथ एक विधि को फिर से अधिनियमित करती है, वह विरोधाभासी राज्य विधि पर अधिभावी हो जाता है-चूंकि धारा 482 भा.ना.सु.सं. धारा 438(6) दं.प्र.सं. के अधीन पहले के प्रतिबंध को छोड़ देती है, अग्रिम जमानत अब एन.डी.पी.एस.अधिनियम के अपराधों में भी स्वीकार्य है तथ्यों पर, आवेदक से कोई बरामदगी न होने, लंबित एफएस एल रिपोर्ट, और भा.दं.सं. धाराओं के अधीन अग्रिम जमानत की पूर्व मंजूरी को देखते हुए, न्यायालय ने आवेदक को अग्रिम जमानत दी। (प्रस्तर 1 से 61) आवेदन स्वीकृत। (ई-6)

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची</u>:

1. तमिलनाडु राज्य बनाम पी. कृष्णमूर्ति व अन्य (2006) 4 SCC 517

2. महाराष्ट्र स्वास्थ्य विज्ञान विश्वविद्यालय बनाम सचिकित्सा प्रसारक मंडल (2010)

3 SCC 786 3. पंजाब राज्य बनाम हरनेक सिंह (2002) 3 SCC 481

4. विनय कुमार पांडेय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, Cri.MWP संख्या 13827 सन 2024

5. जितेन्द्र प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ABAIL Appl. संख्या 144 सन 2024

6. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हिरेंद्र पाल सिंह (2011) 5 SCC 305

7. पंजाब राज्य बनाम मोहर सिंह (1954) 2 SCC 483

8. मनफूल सिंह शर्मा बनाम अहमदी बेगम, (1994) 5 SCC 456

9. गजराज सिंह व अन्य बनाम S.T.A.T. व अन्य (1997) 1 SCC 650

10. जावेर भाई अमाईदास बनाम बॉम्बे राज्य (1954) 2 SCC 345

11. नईम बानो @ गैंडो बनाम मो. रहीस व अन्य, SLP (c) संख्या 16460 सन 2023

12. M. रवींद्रन बनाम राजस्व खुफिया निदेशालय (2021) 2 SCC 485

13. तोलाराम रेलुमल व अन्य बनाम बॉम्बे राज्य (1954) 1 SCC 961

14. सुशीला अग्रवाल बनाम राज्य (NCT दिल्ली) (2020) 5 SCC 1

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर द्वारा उद्घोषित)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता, श्री प्रभात कुमार मिश्रा और राज्य के लिए श्री निखिल सिंह, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता की सहायता से डॉ. वी.के. सिंह विद्वान शासकीय अधिवक्ता को सुना। विवाद की बेहतर विवेचन के लिए इस न्यायालय ने श्री एस.के. सिंह, श्री अतुल वर्मा, श्री गौरव मेहरोत्रा, श्री नदीम मुर्तजा और श्री दिलीप कुमार पांडेय, अधिवक्ताओं को विद्वान न्याय-मित्र के रूप में भी सुना।

2. प्रथम अग्रिम जमानत आवेदन, पुलिस थाना-कोतवाली, जिला बाराबंकी में पंजीकृत धारा 22(सी) एन.डी.पी.एस. अधिनियम 1985 के संबंध में योजित किया गया है।

3. पूर्व में, इसी मुकदमा अपराध संख्या के संबंध में, अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1713 सन 2024 में आवेदक को भा.दं.सं. की धारा 420, 467, 468 और 471 के अधीन अग्रिम जमानत दी गई थी। वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन, एन.डी.पी.एस. अधिनियम की जोड़ी गई धारा 22(सी) के संबंध में योजित किया गया है।

4. प्रारंभ में ही, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य को देखते हुए अग्रिम जमानत आवेदन की पोषणीयता के संबंध में एक प्रारंभिक आपत्ति उठाई है कि यह एन.डी.पी.एस. अधिनियम से संबंधित है और

इसलिए धारा 438(6) दं.प्र.सं. की शर्तों के अनुसार पोषणीय नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि पहले उ.प्र. अधिनियम संख्या 16 सन 1976 के माध्यम से उत्तर प्रदेश राज्य के लिए धारा 438 दं.प्र.सं. के अग्रिम जमानत से संबंधित प्रावधानों को हटा दिया गया था और उ.प्र. अधिनियम संख्या 4 सन 2019 के माध्यम से फिर से शामिल किया गया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि अग्रिम जमानत के उपरोक्त प्रावधान धारा 438(6) के प्रतिबंध के अधीन थे, जो स्पष्ट रूप से इंगित करता था कि अग्रिम जमानत के प्रावधान एन.डी.पी.एस. अधिनियम के मामले में लागू नहीं होंगे। यह प्रस्तुत किया गया है कि यद्यपि दं.प्र.सं. को बाद में भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता 2023 द्वारा निरस्त कर दिया गया है, भा.ना.सु.सं. की धारा 531(2)(बी) के आलोक में धारा 438 दं.प्र.सं. में संशोधन के माध्यम से शामिल किए गए प्रावधान उन्ही शर्तों में जारी रहेंगे। विद्वान अधिवक्ता ने अपनी प्रस्तुति को पुष्ट करने के लिए सामान्य खंड अधिनियम 1897 की धारा 6, 6-ए, 8 और 24 के प्रावधानों का भी उल्लेख किया है कि उस मामले में जहां एक केंद्रीय अधिनियम को राज्य विधायिका द्वारा एक अधिनियम के माध्यम से संशोधित किया गया है और बाद में भारत के राष्ट्रपति द्वारा सहमति दी गई है, राज्य अधिनियम भारत के संविधान के अनुच्छेद 254(2) की शर्तों में क्षेत्र को नियंत्रित करना जारी रखेगा और ऐसी स्थिति में केंद्रीय अधिनियम का निरसन अप्रासंगिक होगा। विद्वान अधिवक्ता ने सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6-ए पर अपने तर्क को पुष्ट करने के लिए विशेष रूप से बल दिया है कि चूंकि आशय पृथक प्रतीत होते हैं, इसलिए केंद्रीय अधिनियम का निरसन, केंद्रीय अधिनियम के संशोधन की निरंतरता को प्रभावित नहीं करेगा, जो वर्ष 2019 में राज्य अधिनियम द्वारा किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने भा.ना.सु.सं. 2023 की धारा 2(पी) पर भी यह प्रस्तुत करने के लिए भरोसा किया है कि भा.ना.सु.सं. की धारा 2(पी) के अधीन 'अधिसूचना' की परिभाषा एक अधिसूचना होगी, जो शासकीय राजपत्र में प्रकाशित की गई है, जिसे बदले में सामान्य खंड अधिनियम की धारा 3(39) में परिभाषित किया गया है। इसलिए यह प्रस्तुत किया गया है कि भा.ना.सु.सं. की धारा 531(2)(बी) में उल्लिखित 'अधिसूचना' शब्द को वर्ष 2019 में धारा 438 दं.प्र.सं. में राज्य संशोधन द्वारा किए गए संशोधन का एक बचत खंड माना जाएगा।

5. विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों का संदर्भ दिया है:
पंजाब राज्य बनाम हरनेक सिंह, (2002) 3 SCC 481; विनय कुमार पांडेय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा निर्णीत आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 13827 सन 2024; जितेन्द्र प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, में इस न्यायालय की खंडपीठ आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 144 सन 2024।

6. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान न्याय-मित्र ने राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों को इस प्रस्तुति के साथ खंडित किया है कि यह वास्तव में भारत के संविधान के अनुच्छेद 254(2) का परंतुक है, जो इस क्षेत्र को नियंत्रित करेगा न कि सामान्य खंड अधिनियम के प्रावधान, जिन पर विद्वान शासकीय अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान मामले में, यह सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 है, जो लागू होगी।

7. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि धारा 531(2)(बी) राज्य सरकार की विधायी शक्ति से संबंधित किसी बचत खंड का संकेत नहीं देती है और केवल प्रशासनिक आदेशों को इंगित करती है, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 246 की शर्तों में अधिनियम के दायरे में नहीं आते हैं और इसलिए केंद्रीय अधिनियम का निरसन वास्तव में एक निरसन होगा, जो उसमें किए गए किसी भी राज्य संशोधन सहित पूरे अधिनियम को समाप्त कर देता है, जिसमें वर्ष 2019 में राज्य अधिनियम द्वारा धारा 438 में शामिल किया गया राज्य अधिनियम भी शामिल होगा। विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भी भरोसा रखा है:
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हिरेंद्र पाल सिंह (2011) 5 SCC 305; पंजाब राज्य बनाम मोहर सिंह (1954) 2 SCC 483; मनफूल सिंह शर्मा बनाम अहमदी बेगम, (1994) 5 SCC 456; गजराज सिंह व अन्य बनाम राज्य परिवहन अपीलीय न्यायाधिकरण व अन्य (1997) 1 SCC 650; जावेर भाई अमाईदास बनाम बॉम्बे राज्य (1954) 2 SCC 345; नईम बानो उर्फ गैंडो बनाम मोहद रहीस व अन्य, विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 16460 सन 2023

8. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार करने पर निम्नलिखित प्रश्न विचार के लिए उत्पन्न होते हैं:
(i) क्या भा.ना.सु.सं. की धारा 531(2)(बी) के प्रावधानों को, उ.प्र. अधिनियम संख्या 4 सन 2019 के प्रावधानों का बचत खंड माना जा सकता है?
(ii) क्या उ.प्र. अधिनियम संख्या 4 सन 2019 के माध्यम से सम्मिलित की गई धारा 438 दं.प्र.सं. का 482 भा.ना.सु.सं. के रूप में पुनः अधिनियमन, सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6, 6-ए, 8 और 24 की शर्तों में बचेगा?

<u>प्रश्न संख्या 1</u>

9. उपरोक्त पहलू के संबंध में, भा.ना.सु.सं. की धारा 531(2)(बी) के प्रावधानों का परीक्षण करना आवश्यक है और ये निम्नानुसार हैं:-
"(बी) उक्त संहिता के अधीन प्रकाशित सभी अधिसूचनाएं, निर्गत की गई उद्घोषणाएं, प्रदत्त शक्तियां, नियमों द्वारा प्रदान किए गए प्रपत्र, परिभाषित स्थानीय क्षेत्राधिकार, पारित किए गए दंड और आदेश, नियम और नियुक्तियां, विशेष मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्तियां न होते हुए, जो इस संहिता के प्रारंभ से तुरंत पहले लागू हैं, क्रमशः इस संहिता के संगत प्रावधानों के अधीन प्रकाशित, जारी, प्रदत्त, निर्दिष्ट, परिभाषित, पारित या बनाई गई मानी जाएंगी;

10. उपरोक्त प्रावधान के अवलोकन से यह संकेत मिलता है कि निरसन और बचत खंड इस प्रभाव का है कि क्षेत्राधिकार को परिभाषित करने वाली सभी प्रकाशित अधिसूचनाएं आदि, पारित किए गए दंड, जो संहिता के प्रारंभ से तुरंत पहले लागू थीं, को संहिता के संगत प्रावधानों के अधीन प्रकाशित, जारी, प्रदत्त, निर्दिष्ट, परिभाषित, पारित या बनाया गया मना जाएगा।

11. यह प्रासंगिक है कि विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने 'अधिसूचना प्रकाशित' शब्द पर विशेष बल दिया है और प्रस्तुत किया है कि उ.प्र. अधिनियम संख्या 4 सन 2019, भा.ना.सु.सं. की धारा 2(पी) के संदर्भ में एक अधिसूचना की प्रकृति का था और इसलिए भा.ना.सु.सं. की धारा 531(2)(बी) के संदर्भ में बचाया जाएगा। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि उपरोक्त अधिनियम को सामान्य खंड अधिनियम की धारा 3(39) के संदर्भ में शासकीय राजपत्र में प्रकाशित किया गया था, इसलिए उक्त प्रावधान विशेष रूप से लागू होगा।

12. हालांकि यह एक प्रासंगिक कारक है कि उ.प्र. अधिनियम संख्या 4 सन 2019, भारत के संविधान के अनुच्छेद 246 के अधीन लागू किया गया था लेकिन यह संकेत नहीं देता कि यह किस विशिष्ट तिथि से प्रभावी होगा। उक्त उद्देश्य के लिए, सामान्य खंड अधिनियम की धारा 5 का संदर्भ लेना प्रासंगिक होगा, जो निम्नानुसार है:-

"5. अधिनियमों का प्रचलन में आना-

[(1) जहां कोई केंद्रीय अधिनियम किसी विशेष दिन को प्रचलन में आने के लिए निर्दिष्ट नहीं किया गया है, तो यह उस दिन प्रचलन में आएगा, जिस दिन यह स्वीकृति प्राप्त करता है;-

(ए) संविधान के प्रारंभ से पहले बनाए गए केंद्रीय अधिनियम के मामले में, गवर्नर-जनरल की, और (बी) संसद के अधिनियम के मामले में, राष्ट्रपति की।][* * *]*

(3) जब तक विपरीत व्यक्त न किया गया हो, एक [केंद्रीय अधिनियम] या विनियमन को उसके प्रारंभ से पहले के दिन की समाप्ति पर तुरंत प्रचलन में आने के रूप में समझा जाएगा।"

13. उपरोक्त के संदर्भ में, उक्त उ.प्र. अधिनियम संख्या 4 सन 2019, उस तिथि से प्रभावी हुआ, जब इसे भारत के राष्ट्रपति से स्वीकृति प्राप्त हुई न कि उस तिथि से, जब इसे शासकीय राजपत्र में अधिसूचित किया गया था। इस न्यायालय की सुविचारित राय में, संविधान के अनुच्छेद 246 के संदर्भ में राज्य विधानमंडल द्वारा अधिनियमन और एक अधिसूचना में पर्याप्त अंतर है, जिसे शासकीय राजपत्र में अधिसूचित की गई तिथि से प्रभावी होना आवश्यक होगा। प्राथमिक अंतर यह है कि सामान्य खंड अधिनियम की धारा 5 के संदर्भ में एक अधिनियमन, उस तिथि से प्रभावी होगा जब इसे क्रमशः भारत के राष्ट्रपति या राज्य के राज्यपाल से स्वीकृति प्राप्त हुई, जिसमें शासकीय राजपत्र में इसकी अधिसूचना अप्रासंगिक है, जब तक विशेष रूप से संकेत न दिया गया हो। यह केवल केंद्र या राज्य सरकार द्वारा किसी विधि द्वारा प्रदत्त शक्तियों के संदर्भ में जारी विशिष्ट आदेशों के मामले में है, जो एक अधिसूचना के दायरे में आएगा, जो केवल उस तिथि से प्रभावी होगा, जब इसे शासकीय राजपत्र में अधिसूचित किया जाता है, और इस प्रकार प्रशासनिक आदेश या अधिकतम, अधीनस्थ विधान के समान होगा।

14. ऐसी परिस्थितियों में, यह न्यायालय विद्वान शासकीय अधिवक्ता की इस तर्क को मानने में असमर्थ है कि उ.प्र. अधिनियम संख्या 4 सन 2019 अधिसूचना की परिभाषा के भीतर आएगा और इसलिए बचाया जाएगा।

15. उपरोक्त पहलू सामान्य खंड अधिनियम की धारा 3(19) के दृष्टिकोण से और समर्थित है, जो एक अधिनियमन को एक विनियमन को शामिल करने के लिए परिभाषित करती है और इसलिए एक अधिसूचना से काफी अलग है, जिसे स्पष्ट रूप से 'अधिनियमन' का हिस्सा नहीं बनाया गया है। एक विधान और एक अधिसूचना के बीच का अंतर संविधान के अनुच्छेद 246 के अवलोकन से काफी स्पष्ट होगा, जिसके अधीन संविधान की 7वीं अनुसूची के संदर्भ में विधि बनाने के लिए शक्तियां प्रदान की गई हैं। कल्पना के किसी भी विस्तार से यह नहीं कहा जा सकता कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 246 के संदर्भ में लागू किए गए विधि एक अधिसूचना के दायरे में आएंगे न कि एक अधिनियमन के।

16. एक अधिनियमन और एक अधिसूचना के बीच का अंतर इस पहलू से भी जांचा जा सकता है कि सभी अधिनियमनों को अधिसूचित किए जाने की आवश्यकता हो सकती है लेकिन सभी अधिसूचनाएं एक अधिनियमन के दायरे में नहीं आती हैं। उक्त अवधारणा को आसानी से इस तरीके से समझाया जा सकता है कि एक अधिनियमन भारत के संविधान के अनुच्छेद 246 के अधीन प्रयोग की गई संवैधानिक शक्ति का संदर्भ है, जिसमें अधीनस्थ विधान ऐसी विधि द्वारा प्रदत्त शक्ति के संदर्भ में जारी या अधिसूचित कोई नियम या विनियमन है। ऐसे अधिनियमन या अधीनस्थ विधान का दायरा सीधे तौर पर भारत के संविधान या उस अधिनियमन का संदर्भ है जिसके अधीन ऐसी शक्ति प्राप्त की गई है, जबकि एक अधिसूचना अपनी प्रकृति से किसी भी अधिकारी द्वारा जारी की जा सकती है, जरूरी नहीं कि संसद या विधानमंडल हो, किसी भी खाली जगह को भरने के लिए जो या तो अधिनियमन या अधीनस्थ विधान द्वारा कवर नहीं की गई है। कार्यकारी शक्ति के प्रयोग में प्रशासनिक अधिकरियों द्वारा पारित किए जा सकने वाले ऐसे आदेश को संसद या विधानमंडल की किसी मुहर की आवश्यकता नहीं होती है।

17. यह अवधारणा भी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **तमिलनाडु राज्य बनाम पी कृष्णामूर्ति व अन्य (2006) 4 SCC 517** में निम्नलिखित तरीके से समझाई गई है:-

"23. यूनियन ऑफ इंडिया बनाम साइनामाइड इंडिया लिमिटेड [(1987) 2 SCC 720] में इस न्यायालय ने विधायी कार्यों और गैर-विधायी कार्यों के बीच इस प्रकार अंतर किया: (SCC पृष्ठ 735-36, प्रस्तर 7)

"दोनों के बीच का अंतर आमतौर पर 'सामान्य और विशेष के बीच' के रूप में व्यक्त किया गया है। 'एक विधायी कार्य विशेष मामलों के संदर्भ के बिना आचरण के एक सामान्य नियम का निर्माण और प्रख्यापन है; एक प्रशासनिक कार्य एक विशिष्ट निर्देश का निर्माण और जारी करना या नीति की आवश्यकताओं के अनुसार एक विशेष मामले पर एक सामान्य नियम का अनुप्रयोग है।' 'विधान विशेष मामलों के संदर्भ के बिना आचरण के एक सामान्य नियम को तैयार करने की प्रक्रिया है और आमतौर पर भविष्य में संचालित होती है; प्रशासन विशेष कार्यों को करने, विशेष आदेश जारी करने या निर्णय लेने की प्रक्रिया है जो विशेष मामलों पर सामान्य नियमों को लागू करती है।' यह भी कहा गया है: 'नियम-निर्माण सामान्य रूप से व्यापक रूप से पहचाने जाने योग्य वर्ग के सभी सदस्यों पर सामान्य अनुप्रयोग वाली आवश्यकताओं के निर्माण की ओर निर्देशित होता है' जबकि, 'दूसरी ओर, एक न्यायनिर्णयन विशिष्ट व्यक्तियों या स्थितियों पर लागू होता है।' लेकिन, यह केवल एक व्यापक अंतर है, जरूरी नहीं कि हमेशा सच हो। प्रशासन और प्रशासनिक न्यायनिर्णयन भी सामान्य

अनुप्रयोग के हो सकते हैं और केवल विशेष अनुप्रयोग का विधान हो सकता है। वह खारिज नहीं किया गया है। फिर से, न्यायनिर्णयन अतीत और वर्तमान के तथ्यों को निर्धारित करता है और अधिकारों और देनदारियों की घोषणा करता है जबकि विधान कार्रवाई के भविष्य के पाठ्यक्रम को इंगित करता है। न्यायनिर्णयन अतीत और वर्तमान का निर्धारक है जबकि विधान भविष्य का संकेतक है। नियम का उद्देश्य, इसके अनुप्रयोग की पहुंच, इससे उत्पन्न अधिकार और दायित्व, अतीत, वर्तमान और भविष्य की घटनाओं पर इसका इच्छित प्रभाव, इसका रूप, इसकी प्रख्यापन का तरीका कुछ ऐसे कारक हैं जो विधायी और गैर-विधायी कार्यों के बीच रेखा खींचने में मदद कर सकते हैं।"

18. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अधिसूचनाएं प्रशासनिक अधिकरियों द्वारा भी उनकी कार्यकारी शक्ति के प्रयोग में जारी की जा सकती हैं जबकि अधिनियमन केवल भारत के संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों के संदर्भ में लागू किए जा सकते हैं।

19. इस दृष्टिकोण से, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, चूंकि भा.ना.सु.सं. की धारा 531 विधायी अधिनियमनों से संबंधित किसी भी शब्दावली का संकेत नहीं देती है, इसलिए भा.ना.सु.सं. की धारा 531(2)(बी) के प्रावधानों को उ.प्र. अधिनियम संख्या 4 सन 2019 के संबंध में एक बचत खंड नहीं कहा जा सकता है।

20. यह भी एक प्रासंगिक तथ्य है कि भा.ना.सु.सं. की धारा 531 के प्रावधानों के उचित परीक्षण के उद्देश्यों के लिए, प्रावधान को उसकी संपूर्णता में जांचा जाना आवश्यक है न कि इसमें शामिल कुछ वाक्यों को। विधि की व्याख्या के सिद्धांतों के संदर्भ में, *'ejusdem generis'* के सिद्धांत के पहलू का विशेष अनुप्रयोग *'noscitur a sociis'* के सिद्धांत के साथ है जिसे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **महाराष्ट्र यूनिवर्सिटी ऑफ हेल्थ साइंसेज बनाम सतचिकित्सा प्रसारक मंडल (2010) 3 SCC 786** में निम्नलिखित शब्दों में समझाया गया है:-

"27. लैटिन अभिव्यक्ति "ejusdem generis" जिसका अर्थ है "एक ही प्रकार या प्रकृति का" निर्माण का एक सिद्धांत है, जिसका अर्थ है कि जब एक वैधानिक पाठ में सामान्य शब्द प्रतिबंधित शब्दों से घिरे होते हैं, तो सामान्य शब्दों के अर्थ को प्रतिबंधित शब्दों के अर्थ के साथ निहितार्थ द्वारा प्रतिबंधित माना जाता है। यह एक सिद्धांत है जो "भाषाई निहितार्थ से उत्पन्न होता है जिसके द्वारा शब्द जो शाब्दिक रूप से व्यापक अर्थ रखते हैं (जब अलगाव में लिए जाते हैं) को मौखिक संदर्भ द्वारा दायरे में कम माना जाता है।" इसे अण्डाकार का एक उदाहरण माना जा सकता है, या निहितार्थ पर निर्भरता। यह सिद्धांत तब तक लागू होता है जब तक कि कोई विपरीत संकेत न हो [ग्लेनविले विलियम्स, द ओरिजिन्स एंड लॉजिकल इम्प्लीकेशंस ऑफ़ द एजुसडेम जेनेरिस रूल, 7 कॉनव (एनएस) 119 देखें]।

28. यह ejusdem generis सिद्धांत noscitur a sociis के सिद्धांत का एक पहलू है। लैटिन सूक्ति noscitur a sociis यह विचार करती है कि एक वैधानिक शब्द अपने संबद्ध शब्दों द्वारा पहचाना जाता है। लैटिन शब्द "sociis" का अर्थ है "समाज"। इसलिए, जब सामान्य शब्द विशिष्ट शब्दों के साथ संयुक्त होते हैं, तो सामान्य

शब्दों को अलगाव में नहीं पढ़ा जा सकता है। उनका रंग और उनकी सामग्री उनके संदर्भ से प्राप्त की जानी है। (विस्काउंट सिमोंड्स की अटॉर्नी जनरल बनाम प्रिंस अर्नेस्ट ऑगस्टस ऑफ हनोवर [1957 एसी 436: (1957) 2 डब्लूएलआर 1: (1957) 1 ऑल ईआर 49 (एचएल)], एसी पृष्ठ 461 में समान टिप्पणियां देखें।)"

21. वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में उपरोक्त निर्णय की प्रयोज्यता पर, यह एक प्रासंगिक तथ्य है कि एक अधिनियमन की धारा में सामान्य शब्दों को अलगाव में नहीं पढ़ा जा सकता है बल्कि उनकी सामग्री को उनके संदर्भ से परिभाषित किए जाने की आवश्यकता है।

22. वर्तमान मामले में भा.ना.सु.सं. की धारा 531(2)(बी) के प्रावधान स्पष्ट रूप से अधिसूचनाओं या उद्घोषणाओं का संदर्भ देते हैं जिनके द्वारा शक्तियां प्रदान की गईं, स्थानीय क्षेत्राधिकार परिभाषित किए गए, सजाएं पारित की गईं और संहिता के अधीन नियुक्तियों के आदेश बनाए गए। स्पष्ट रूप से धारा 531(2)(बी) केवल प्रक्रियात्मक पहलू से संबंधित है, जो दं.प्र.सं. के अधीन प्रावधानित किए गए थे और संहिता के संगत प्रावधानों के अधीन बनाए गए माने जाने की आवश्यकता थी। उक्त प्रावधान को विधि की न्यायालयों के समक्ष आरोपी को उपलब्ध विधिक उपायों की अनुरक्षणीयता के संबंध में विशिष्ट निषेध की निरंतरता के लिए एक बचत खंड नहीं माना जा सकता है क्योंकि उक्त पहलू भा.ना.सु.सं. की धारा 531(2)(बी) के अधीन इंगित सामान्य संदर्भ में किसी भी शब्द के भीतर नहीं आएगा।

23. अधिसूचना बनाम विधायी अधिनियमन के पहलू के संबंध में, विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने **पंजाब राज्य बनाम हरनेक सिंह, (2002) 3 SCC 481** में निर्णय पर भरोसा किया है।

24. हालांकि उपरोक्त निर्णय के अवलोकन मात्र से यह स्पष्ट हो जाएगा कि वह वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में अप्रयोज्य है, क्योंकि उक्त मामले में, विवाद भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(ए) के अधीन इस पर प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना से संबंधित था। इसलिए यह स्पष्ट है कि सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान आकर्षित करने वाला पहलू वास्तव में विधायी अधिनियमन के अधीन राज्य सरकार को प्रदत्त शक्ति से संबंधित था न कि अधिनियमन से ही।

25. इसी प्रक्रर, **इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा निर्णित आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या- 13827 वर्ष 2024, विनय कुमार पाण्डेय बनाम उ.प्र. राज्य व अन्य** में विवाद आपराधिक विधि (संशोधन) अधिनियम 1932 की धारा 10 के अधीन राज्य सरकार द्वारा प्रयोग की गई शक्ति थी। स्पष्ट रूप से उपरोक्त प्रकरण भी विधि का ऐसा कोई सिद्धांत निर्धारित नहीं करता है कि विधायी अधिनियमन के अधीन जारी की गई अधिसूचना को ही विधायी अधिनियमन माना जा सकता है।

26. **आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन संख्या-144 वर्ष 2024, जितेंद्र प्रताप सिंह बनाम उ.प्र. राज्य** प्रकरण में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा केवल इस विधि को स्पष्ट किया गया है कि जब विधि के

शब्द स्पष्ट और असंदिग्ध हों, तो न्यायालयों को विधायी आशय और शाब्दिक व्याख्या को प्रभावी करना चाहिए। जाहिर है उपरोक्त विधि के सिद्धांत का उसमें इंगित परिस्थितियों में पालन किया जाना आवश्यक है लेकिन फिर से यह उस सिद्धांत के लिए विधि नहीं है कि वैधानिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य द्वारा जारी की गई अधिसूचना को ही विधि के समान माना जा सकता है।

27. इसलिए उपरोक्त प्रश्न का राज्य के विरुद्ध नकारात्मक रूप में उत्तर दिया जाता है।

<u>प्रश्न संख्या 2</u>

28. उपरोक्त प्रश्न के संबंध में, उ.प्र. अधिनियम संख्या 4 सन 2019 द्वारा सम्मिलित की गई दं.प्र.सं. की धारा 438 और भा.ना.सु.सं. 2023 की धारा 482 का संदर्भ आवश्यक होगा, जो निम्नानुसार हैं:-

धारा 438 दं.प्र.सं.	धारा 482 भा.ना.सु.सं., 2023
"438. गिरफ्तारी की आशंका वाले व्यक्ति को जमानत देने का निर्देश.- *[(1) जहां किसी व्यक्ति को यह विश्वास करने का कारण है कि उसे गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है, तो वह इस धारा के अधीन एक निर्देश के लिए उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय में आवेदन कर सकता है कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में उसे जमानत पर रिहा किया जाएगा; और वह न्यायालय, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित कारकों पर विचार करने के बाद, अर्थात्-* *(i) आरोप की प्रकृति और गंभीरता;* *(ii) आवेदक के पूर्ववृत्त जिसमें यह तथ्य शामिल है कि क्या उसने पहले किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि पर कारावास भुगता है;* *(iii) आवेदक द्वारा न्याय से भागने की संभावना; और* *(iv) जहां आरोप आवेदक को इस प्रकार गिरफ्तार करके उसे चोट पहुंचाने या अपमानित करने के उद्देश्य से लगाया गया है,* *या तो आवेदन को तुरंत अस्वीकार कर सकता है या अग्रिम जमानत देने के लिए एक अंतरिम आदेश जारी कर सकता है:*	**"482. गिरफ्तारी की आशंका वाले व्यक्ति को जमानत देने का निर्देश**.- *(1) जब किसी व्यक्ति को यह विश्वास करने का कारण हो कि उसे गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है, तो वह इस धारा के अधीन एक निर्देश के लिए उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय में आवेदन कर सकता है; और वह न्यायालय, यदि वह उचित समझे, तो निर्देश दे सकता है कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में, उसे जमानत पर रिहा किया जाएगा।* *(2) जब उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय उप-धारा (1) के अधीन एक निर्देश देता है, तो वह विशेष मामले के तथ्यों के प्रकाश में ऐसे निर्देशों में ऐसी शर्तें शामिल कर सकता है, जैसा कि वह उचित समझे, जिसमें शामिल है-* *(i) यह शर्त कि व्यक्ति अपने आप को एक पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए उपलब्ध कराएगा, जब और जहां आवश्यक हो;* *(ii) यह शर्त कि व्यक्ति, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को इस तरह के तथ्यों को न्यायालय या किसी पुलिस*

परंतु, जहां उच्च न्यायालय या, जैसा भी हो, सत्र न्यायालय ने इस उप-धारा के अधीन कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है या अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन को अस्वीकार कर दिया है, तो एक पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी को बिना वारंट के, आवेदक को ऐसे आवेदन में आशंकित आरोप के आधार पर गिरफ्तार करना उपलब्ध होगा। *(2) जहां उच्च न्यायालय या, जैसा भी हो, सत्र न्यायालय, उप-धारा (1) के अधीन अग्रिम जमानत देने के लिए एक अंतरिम आदेश जारी करना समीचीन समझता है, तो न्यायालय इसमें वह तिथि इंगित करेगा, जिस पर अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन को अंतिम रूप से सुना जाएगा और उस पर आदेश पारित किया जाएगा, जैसा न्यायालय उचित समझे, और यदि न्यायालय अग्रिम जमानत देने वाला कोई आदेश पारित करता है, तो ऐसे आदेश में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित शर्तें शामिल होंगी, अर्थात्-* *(i) कि आवेदक अपने आप को पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए उपलब्ध कराएगा, जब और जहां आवश्यक हो;* *(ii) कि आवेदक, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को इस तरह के तथ्यों को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को प्रकट करने से हतोत्साहित करने के लिए कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा,* *(iii) कि आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा; और* *(iv) ऐसी अन्य शर्तें जो धारा 437 की उप-धारा (3) के अधीन लगाई जा सकती हैं, जैसे कि जमानत उस धारा के अधीन दी गई थी।* *स्पष्टीकरण-उप-धारा (1) के अधीन निर्देश के लिए आवेदन पर दिया गया अंतिम आदेश इस संहिता के उद्देश्य के लिए एक अंतरवर्ती आदेश के रूप में नहीं माना जाएगा।*	*अधिकारी को प्रकट करने से हतोत्साहित करने के लिए कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा;* *(iii) यह शर्त कि व्यक्ति न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा;* *(iv) ऐसी अन्य शर्त, जो धारा 480 की उप-धारा (3) के अधीन लगाई जा सकती है, जैसे कि जमानत उस धारा के अधीन दी गई थी।* *(3) यदि ऐसा व्यक्ति उसके बाद एक पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी द्वारा ऐसे आरोप पर बिना वारंट के गिरफ्तार किया जाता है, और गिरफ्तारी के समय या ऐसे अधिकारी की हिरासत में रहते हुए किसी भी समय जमानत देने के लिए तैयार है, तो उसे जमानत पर रिहा किया जाएगा; और यदि एक मजिस्ट्रेट जो ऐसे अपराध का संज्ञान लेता है, यह निर्णय लेता है कि उस व्यक्ति के विरुद्ध पहली बार में वारंट जारी किया जाना चाहिए, तो वह उप-धारा (1) के अधीन न्यायालय के निर्देश के अनुरूप एक जमानती वारंट जारी करेगा।* *(4) इस धारा में कुछ भी भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 65 और धारा 70 की उप-धारा (2) के अधीन अपराध करने के आरोप में किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी से जुड़े किसी भी मामले पर लागू नहीं होगा।"*

(3) जहां न्यायालय उप-धारा (1) के अधीन एक अंतरिम आदेश देता है, तो वह तुरंत लोक अभियोजक और पुलिस अधीक्षक को कम से कम सात दिन का नोटिस दिए जाने का कारण बनेगा, ऐसे आदेश की एक प्रति के साथ, लोक अभियोजक को सुनवाई का उचित अवसर देने के दृष्टिकोण से, जब आवेदन को न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से सुना जाएगा। *(4) उप-धारा (2) के अधीन अंतरिम आदेश में इंगित तिथि पर, न्यायालय लोक अभियोजक और आवेदक को सुनेगा और उनके तर्कों पर उचित विचार करने के बाद, वह अंतरिम आदेश की पुष्टि, संशोधन या रद्द कर सकता है।* *(5) उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय, जैसा भी हो, उप-धारा (1) के अधीन अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन को आवेदन की तिथि से तीस दिनों के भीतर अंतिम रूप से निस्तारित करेगा;* *(6) इस धारा के प्रावधान लागू नहीं होंगे,-* *(ए) निम्न से उत्पन्न अपराधों से,-* *(i)गैरविधिक गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1967;* *(ii) स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985;* *(iii) आधिकारिक गोपनीयता अधिनियम, 1923;* *(iv) उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स और असामाजिक गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1986.* *(b) उन अपराधों में, जिनमें मृत्युदंड दिया जा सकता है।* *(7) यदि किसी व्यक्ति द्वारा इस धारा के अधीन कोई आवेदन उच्च न्यायालय में किया गया है, तो उसी व्यक्ति द्वारा सत्र न्यायालय द्वारा कोई आवेदन स्वीकार नहीं किया जाएगा।" [उ.प्र. अधिनियम संख्या 4 सन 2019, धारा 2 के माध्यम से (1-6-2019 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई और उ.प्र. राजपत्र,*	

अनुवादित

अतिरिक्त, भाग I, अनुभाग (क), दिनांक 6.6.2019 में प्रकाशित।)]	

29. यह एक प्रासंगिक तथ्य है कि अग्रिम जमानत के प्रावधान को उ.प्र. राज्य के लिए अधिनियम संख्या 16 सन 1976 द्वारा विलोपित कर दिया गया था और उसके बाद उ.प्र. अधिनियम संख्या 4 सन 2019 के माध्यम से फिर से शामिल किया गया है।

30. उपरोक्त राज्य संशोधन, तब प्रभावी हुआ जब इसे भारत के राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई लेकिन बाद में, संपूर्ण दं.प्र.सं. को 1 जुलाई, 2024 से प्रभावी भा.ना.सु.सं. 2023 के प्राख्यापन के साथ निरस्त कर दिया गया।

31. सबसे पहले, उ.प्र. राज्य में लागू धारा 438 के प्रावधानों में भा.ना.सु.सं. की धारा 482 के साथ अंतर पर विचार की आवश्यकता होगी।

32. इसके अवलोकन मात्र से, यह स्पष्ट है कि भा.ना.सु.सं. के प्राख्यापन से पहले उ.प्र. राज्य में लागू अग्रिम जमानत के प्रावधानों में और उसके बाद में काफी अंतर है। धारा 438(6) दं.प्र.सं. में इंगित निषेधों के अतिरिक्त दोनों प्रावधानों में प्राथमिक अंतर यह है कि दं.प्र.सं. की धारा 438(1) के अधीन अग्रिम जमानत देने के लिए इंगित कारक भा.ना.सु.सं. की धारा 482 के अधीन स्पष्ट रूप से अनुपस्थित हैं। दं.प्र.सं. की धारा 438(1) का परंतुक भी गायब है जबकि धारा 438(3) और (4) के प्रावधान भी नए शामिल किए गए भा.ना.सु.सं. की धारा 482 के अधीन कोई स्थान नहीं पाते हैं।

33. इसलिए यह स्पष्ट है कि भा.ना.सु.सं. 2023 के प्राख्यापन के बाद अग्रिम जमानत देने से संबंधित धारा 482 भा.ना.सु.सं. के अधीन पर्याप्त परिवर्तन किया गया है।

34. दं.प्र.सं. के उपरोक्त निरसन और अग्रिम जमानत के लिए नए प्रावधान सम्मिलित किए जाने के संबंध में, विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6, 6A, 8 और 24 पर विशेष भरोसा किया है, जो निम्नानुसार हैं:-

***"6. निरसन का प्रभाव**.-*

जहां यह अधिनियम, या इस अधिनियम के प्रारंभ के बाद बनाया गया कोई [केंद्रीय अधिनियम] या विनियमन, अब तक बनाए गए या बाद में बनाए जाने वाले किसी अधिनियमन को निरस्त करता है, तो, जब तक कि एक अलग आशय प्रकट न हो, निरसन नहीं होगा-

(ए) उस समय लागू या मौजूद किसी भी चीज को पुनर्जीवित नहीं करेगा, जब निरसन प्रभावी होता है; या

(बी) इस प्रकार निरस्त किसी भी अधिनियमन के पिछले संचालन या उसके अधीन उचित रूप से किए गए या सहे गए किसी भी चीज को प्रभावित नहीं करेगा; या

(सी) इस प्रकार निरस्त किसी भी अधिनियमन के अधीन अर्जित, प्राप्त या उत्पन्न किसी भी अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व या देयता को प्रभावित नहीं करेगा; या

(डी) इस प्रकार निरस्त किसी भी अधिनियमन के विरुद्ध किए गए किसी भी अपराध के संबंध में उत्पन्न किसी भी दंड, जब्ती या सजा को प्रभावित नहीं करेगा; या

(ई) उपरोक्त किसी भी ऐसे अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व, देयता, दंड, जब्ती या सजा के संबंध में किसी भी जांच, विधिक कार्यवाही या उपाय को प्रभावित नहीं करेगा;

और ऐसी कोई भी जांच, विधिक कार्यवाही या उपाय स्थापित, जारी या लागू की जा सकती है, और कोई भी ऐसा दंड, जब्ती या सजा लगाई जा सकती है जैसे कि निरस्त करने वाला अधिनियम या विनियमन पारित नहीं किया गया था।

***6ए अधिनियम या विनियमन में पाठ्य संशोधन करने वाले अधिनियम का निरसन**-जहां इस अधिनियम के प्रारंभ के बाद बनाया गया कोई केंद्रीय अधिनियम या विनियमन किसी भी अधिनियमन को निरस्त करता है, जिसके द्वारा किसी केंद्रीय अधिनियम या विनियमन के पाठ को किसी भी मामले के स्पष्ट लोप, सम्मिलन या प्रतिस्थापन द्वारा संशोधित किया गया था, तो, जब तक कि एक अलग आशय प्रकट न हो, निरसन इस प्रकार निरस्त अधिनियमन द्वारा किए गए और ऐसे निरसन के समय संचालन में किसी भी ऐसे संशोधन की निरंतरता को प्रभावित नहीं करेगा।*

8. निरस्त अधिनियमनों के संदर्भों की व्याख्या-

[(1)] जहां यह अधिनियम, या इस अधिनियम के *प्रारंभ के बाद बनाया गया कोई [केंद्रीय अधिनियम] या विनियमन, संशोधन के साथ या बिना, एक पूर्व अधिनियमन के किसी भी प्रावधान को निरस्त और पुन: अधिनियमित करता है, तो किसी अन्य अधिनियमन में या किसी उपकरण में इस प्रकार निरस्त प्रावधान के संदर्भ, जब तक कि एक अलग आशय प्रकट न हो, इस प्रकार पुन: अधिनियमित प्रावधान के संदर्भ के रूप में माने जाएंगे।*

[(2)] [जहां 15 अगस्त, 1947 से पहले, यूनाइटेड किंगडम की संसद के किसी अधिनियम ने संशोधन के साथ या बिना, किसी पूर्व अधिनियमन के किसी भी प्रावधान को निरस्त और पुन: अधिनियमित किया], तो किसी [केंद्रीय अधिनियम] में या किसी विनियमन या उपकरण में इस प्रकार निरस्त प्रावधान के संदर्भ, जब तक कि एक अलग आशय प्रकट न हो, इस प्रकार पुन: अधिनियमित प्रावधान के संदर्भ के रूप में माने जाएंगे।]

***24. निरस्त और पुन: अधिनियमित अधिनियमनों के अधीन जारी आदेशों आदि की निरंतरता**.- जहां कोई [केंद्रीय अधिनियम] या विनियमन, इस अधिनियम के प्रारंभ के बाद, संशोधन के साथ या बिना निरस्त और पुन: अधिनियमित किया जाता है, तो, जब तक कि यह अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं किया गया हो, निरस्त अधिनियम या विनियमन के अधीन जारी किया गया कोई [नियुक्ति, अधिसूचना] आदेश, योजना, नियम, प्रपत्र या उप-नियम [बनाया गया था], जहां तक यह पुन: अधिनियमित प्रावधानों के साथ असंगत नहीं है, लागू रहेगा, और इस प्रकार पुन: अधिनियमित प्रावधानों के अधीन [बनाया गया था] जारी माना जाएगा, जब तक कि और*

जब तक कि यह इस प्रकार पुन: अधिनियमित प्रावधानों के अधीन [बनाई गई या] जारी किसी [नियुक्ति अधिसूचना,] आदेश, योजना, नियम, प्रपत्र या उप-नियम, [बनाया गया या] द्वारा अधिक्रमित नहीं हो जाता [और जब कोई [केंद्रीय अधिनियम] या विनियमन, जो अनुसूचित जिला अधिनियम, 1874, (14 वर्ष 1874) की धारा 5 या 5ए या किसी समान विधि के अधीन एक अधिसूचना द्वारा, किसी स्थानीय क्षेत्र तक विस्तारित किया गया है, एक बाद की अधिसूचना द्वारा, ऐसे क्षेत्र या उसके किसी भाग से वापस ले लिया गया है और फिर से विस्तारित किया गया है, तो ऐसे अधिनियम या विनियमन के प्रावधानों को ऐसे क्षेत्र या भाग में इस धारा के अर्थ में निरस्त और पुन: अधिनियमित माना जाएगा]।

35. उपरोक्त धाराओं के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 के अतिरिक्त, अन्य कोई भी धारा वर्तमान जैसी परिस्थितियों में लागू नहीं होगी। अधिनियम की धारा 6-ए केवल उस मामले में लागू होगी, जहां कोई केंद्रीय अधिनियम या विनियमन एक अधिनियमन को निरस्त करता है जिसके द्वारा किसी पहले के केंद्रीय अधिनियम या विनियमन के पाठ को संशोधित किया गया था। इसलिए यह स्पष्ट है कि धारा 6-ए केवल उन मामलों में लागू होगी, जहां पहले के केंद्रीय अधिनियम को बनाए रखा गया है और बाद का केंद्रीय अधिनियम या विनियमन केवल पहले के केंद्रीय अधिनियम में किए गए संशोधन को संशोधित करता है। उपरोक्त धारा केवल उस मामले में लागू होती, यदि दं.प्र.सं. के प्रावधानों को संसद द्वारा अधिनियमित रूप में बरकरार रखते हुए राज्य अधिनियमन को निरस्त किया गया होता।

36. इसी प्रकार सामान्य खंड अधिनियम की धारा 8, जो भा.ना.सु.सं. की धारा 531(2)(बी) के साथ समान प्रतीत होती है, केवल निरस्त अधिनियमों के संदर्भों के उद्देश्यों के लिए लागू होगी और किसी भी कल्पना से वर्तमान मामले में राज्य अधिनियम को बचाने के उद्देश्यों के लिए लागू नहीं होगी।

37. सामान्य खंड अधिनियम की धारा 24 भी लागू नहीं होगी क्योंकि यह केवल उन पहलुओं से संबंधित है, जहां निरस्त अधिनियम के अधीन की गई कोई नियुक्ति, अधिसूचना, आदेश, योजना, नियम, प्रपत्र या उपविधि अधिनियम के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं है और लागू रहेगी। उपरोक्त धारा इसलिए विधि के पुनः अधिनियमन के मामलों में अनुपयुक्त है जो पहले के अधिनियमन के साथ असंगत हो सकता है।

38. वर्तमान प्रकरण में, जैसा कि ऊपर देखा गया है, उ.प्र. अधिनियम संख्या 4 सन 2019 द्वारा संशोधित अग्रिम जमानत के प्रावधानों और भा.ना.सु.सं. की धारा 482 के अधीन अग्रिम जमानत के पुनः अधिनियमित प्रावधानों में काफी अंतर है।

39. वास्तव में वर्तमान जैसी परिस्थितियों में, यह सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 है, जो विशेष रूप से उस मामले में लागू होगी, जहां पूर्व प्रावधान के निरसन के बाद पुनः अधिनियमित प्रावधानों में भिन्न आशय स्पष्ट किया गया हो। इसलिए निरसन के बाद भी पूर्व प्रावधानों को जारी रखने के आशय को विशेष रूप से संकेत करना होगा। सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6(बी) स्पष्ट रूप से निरसन से संबंधित है, जो इस प्रकार

निरस्त किसी भी अधिनियम के **पिछले संचालन** या उसके अधीन विधिवत किए गए या भुगते गए किसी भी चीज़ को प्रभावित नहीं करता है।

40. उक्त प्रावधान का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि इस प्रकार निरस्त किसी भी अधिनियम या ऐसे अधिनियम के किसी भी प्रावधान के निरंतर संचालन के लिए निरसन करने वाले अधिनियम में विशिष्ट आशय की आवश्यकता होगी। सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6(डी) और (ई) यह भी इंगित करती है कि निरसन के बाद भी विधिक कार्यवाही या उपाय जारी रखने के लिए, बाद के अधिनियम में एक अलग आशय आवश्यक है। यह भी प्रासंगिक है कि सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6(ई) के अधीन, किसी भी ऐसे अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व, देयता, दंड, जब्ती या सज़ा के संबंध में केवल जांच, विधिक कार्यवाही या उपाय को इंगित किया गया है। यह स्वाभाविक रूप से अनुसरण करता है कि संशोधन अधिनियम द्वारा किसी भी विधिक कार्यवाही या उपाय पर लगाए गए किसी भी प्रतिबंध को इसकी निरंतरता के लिए बाद के अधिनियम में इंगित विशिष्ट आशय की आवश्यकता होगी। उक्त पहलू पर **उ.प्र.राज्य बनाम हिरेन्द्र पाल सिंह, (2011) 5 SCC 305** के में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित रूप में विचार किया गया है:-

"22. यह एक स्थापित विधिक सिद्धांत है कि जब भी कोई अधिनियम निरस्त किया जाता है, तो इसे ऐसा माना जाना चाहिए जैसे कि यह कभी अस्तित्व में ही नहीं था। निरसन का उद्देश्य अधिनियम को सांविधिक पुस्तकों से मिटा देना है, सिवाय कुछ उद्देश्यों के जो सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 के अधीन प्रदान किए गए हैं। निरसन केवल स्वरूप का नहीं अपितु सार का होता है। इसलिए, निरसन पर, पूर्व प्रावधान पूरी तरह से मिट जाते हैं/समाप्त हो जाते हैं/नष्ट हो जाते हैं यानी आंशिक निरसन (दागी राम पिंडी लाल बनाम त्रिलोक चंद जैन [(1992) 2 SCC 13:AIR 1992 SC 990]; गजराज सिंह बनाम STAT [(1997) 1 SCC 650: AIR 1997 SC 412]; प्रॉपर्टी ओनर्स एसोसिएशन बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2001) 4 SCC 455: AIR 2001 SC 1668] और मोहन राज बनाम डिंबेश्वरी सैकिया [(2007) 15 SCC 115: (2010) 2 SCC (Cri) 782: AIR 2007 SC 232] देखें)।"

41. धारा 6 के संदर्भ में निरस्त अधिनियम के प्रावधानों को जीवित रखने के लिए बाद के अधिनियम में व्यक्त विशिष्ट आशय के पहलू पर **पंजाब राज्य बनाम मोहर सिंह**, **(1954) 2 SCC 483** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित रूप में विचार किया गया है:-

"12. उच्च न्यायालय ने, अपने द्वारा लिए गए दृष्टिकोण के समर्थन में, दानमल परषोत्तम दास बनाम बाबू राम छोटे लाल [दानमल परषोत्तम दास बनाम बाबू राम छोटे लाल, 1935 SCC OnLine All 328: AIR 1936 All 3] में मुख्य न्यायमूर्ति सुलेमान की कुछ टिप्पणियों पर बहुत भरोसा किया। उस मामले में उठाया गया सवाल यह था कि क्या साझेदारी अधिनियम की धारा 69 के लागू होने के बाद, एक अपंजीकृत फर्म द्वारा तीसरे पक्ष के विरुद्ध मुकदमा, अधिनियम की धारा 74(बी) में निहित बचत खंड के बाद भी, उस धारा द्वारा वर्जित होगा। मुख्य न्यायमूर्ति को इस बिंदु पर कुछ संदेह था और वे यह मानने को इच्छुक थे कि धारा 74(बी)

मुकदमे को बचाने के लिए काम करेगी हालांकि इसके द्वारा लागू किए जाने की मांग किया गया अधिकार अधिनियम के प्रारंभ से पहले उत्पन्न हुआ था; लेकिन अंततः उन्होंने अपने सहयोगी से सहमति व्यक्त की और कहा कि धारा 69 मुकदमे को बाधित कर देगी। अपने फैसले के दौरान साझेदारी अधिनियम की धारा 74(2) के प्रावधान पर चर्चा करते हुए, विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति ने सादृश्य के तौर पर सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6(ई) का उल्लेख किया और निम्नानुसार टिप्पणी की (पृष्ठ 7 पर):

"ऐसा लगता है कि धारा 6(ई) केवल उन मामलों पर लागू होगी, जहां पिछले विधि को केवल निरस्त किया गया है और इसकी जगह लेने के लिए कोई नया विधि नहीं है। जहां एक पुराने विधि को केवल निरस्त किया गया है, तो निरसन किसी भी पिछले अधिकार को प्रभावित नहीं करेगा, जो अर्जित किया गया है और न ही यह पहले से अर्जित अधिकार के संबंध में बाद में दायर मुकदमे को भी प्रभावित करेगा। लेकिन जहां एक नई विधि है, जो न केवल पुराने विधि को निरस्त करती है, बल्कि पुराने विधि की जगह प्रतिस्थापित की जाती है, सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6(ई) लागू नहीं होती है, और हमें नए अधिनियम के प्रावधानों पर ही वापस लौटना होगा।"

ये टिप्पणियां निस्संदेह केवल "आकस्मिक कथन" से अधिक नहीं हो सकते क्योंकि वे मामले के उद्देश्यों के लिए बिल्कुल भी आवश्यक नहीं थीं, हालांकि निस्संदेह वे बहुत सम्मान के अधिकारी हैं। मुख्य न्यायमूर्ति सुलेमान के इस सिद्धांत से सहमति में, पंजाब उच्च न्यायालय ने, वर्तमान प्रकरण में अपने निर्णय में, टिप्पणी की है कि जहां एक साधारण निरसन है और विधायिका ने या तो पुराने अपराधियों पर मुकदमा चलाने के मामले में अपना विचार नहीं दिया है, या उस प्रश्न से निपटने वाला एक प्रावधान अनजाने में छोड़ दिया गया है, सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 निस्संदेह आकर्षित होगी।

13. लेकिन ऐसी कोई चूक नहीं मानी जा सकती, जहां विषय पर एक नई विधि बनाई गई हो और यदि नया अधिनियम मामले से निपटता नहीं है, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि विधायिका ने पुराने अधिनियम के अधीन उत्पन्न देयता को जीवित रखना उचित नहीं समझा। हमारी राय में इस प्रश्न के प्रति उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण बिल्कुल सही नहीं है। जब भी किसी अधिनियम का निरसन होता है, तो सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 में निर्धारित परिणाम होंगे जब तक कि, जैसा कि धारा स्वयं कहती है, एक अलग आशय प्रकट नहीं होता है। एक साधारण निरसन के मामले में विपरीत राय की अभिव्यक्ति के लिए शायद ही कोई जगह है। लेकिन जब निरसन के बाद उसी विषय पर नई विधि बनाई जाती है तो हमें निस्संदेह नए अधिनियम के प्रावधानों को देखना होगा, लेकिन केवल यह निर्धारित करने के उद्देश्य से कि क्या वे एक अलग आशय इंगित करते हैं।"

42. उपरोक्त निर्णय इसलिए विधि का एक सिद्धांत होगा कि किसी अधिनियम के निरसन के मामले में, सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 में निर्धारित परिणाम होंगे, जब तक कि एक अलग आशय प्रकट नहीं होता है। यदि नई विधि पहले की धारा के प्रावधानों के साथ असंगत या विपरीत आशय को प्रकट करती है, तो बचत खंड को इंगित करने के लिए ऐसी असंगतता का पता लगाना होगा। उक्त निर्णय का इसके बाद **मनफूल सिंह शर्मा बनाम अहमदी बेगम, (1994) 5 SCC 456** में अनुमोदन के साथ अनुसरण किया गया है।

43. **गजराज सिंह व अन्य बनाम राज्य परिवहन अपील अधिकरण व अन्य, (1997) 1 SCC 650** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 के संबंध में उक्त पहलू को भी निम्नलिखित तरीके से दोहराया है:-

"24. जब निरसन और साथ ही पुनः अधिनियमन होता है, तो सा.खं. अधिनियम की धारा 6 ऐसे मामले पर लागू होगी, जब तक कि निरसन करने वाले अधिनियम से विपरीत आशय एकत्र नहीं किया जा सकता है। धारा 6 ऐसे मामलों में लागू होगी जब तक कि नई विधि धारा के आवेदन के साथ असंगत या विपरीत आशय को प्रकट नहीं करती है। ऐसी असंगतता का पता नए अधिनियम के सभी प्रासंगिक प्रावधानों से लगाना होगा। इसलिए, जब निरसन के बाद उसी विषय पर एक नई विधि बनाई जाती है, तो न्यायालय निस्संदेह नए अधिनियम के प्रावधानों को देखेगा केवल यह निर्धारित करने के उद्देश्य से कि क्या नया अधिनियम अलग आशय इंगित करता है। निरसन और पुनः अधिनियमन का उद्देश्य निरस्त अधिनियम को मिटाना और कुछ अप्रचलित मामलों से छुटकारा पाना है।

xxx xxxx xxxx

31. विधिक व्याख्या के प्रमुख नियम (तीसरा संस्करण) द्वारा रैंडल, ए.ई. 1924 में, पृष्ठ 531-32 पर इस प्रकार कहा गया है:

"माननीय न्यायमूर्ति... यह मानते हैं कि, एक विधि से निपटने में जो केवल सीमित संचालन के एक पूर्व विधि को निरस्त करने का दावा करता है, और संशोधित रूप में इसके प्रावधानों को पुनः अधिनियमित करता है, उन्हें आवश्यक रूप से उन प्रावधानों के संचालन को उन व्यक्तियों के वर्गों तक विस्तारित करने के आशय का अनुमान नहीं लगाना है, जो पहले उनके अधीन नहीं थे, जब तक कि विपरीत नहीं दिखाया जाता है; लेकिन वे आसपास की परिस्थितियों के संदर्भ में विचार किए गए पूरे विधि की उचित व्याख्या पर निर्धारित करना है कि क्या ऐसा आशय मौजूद था। ब्राउन बनाम मैक्लाक्लन [(1872) LR 4 PC543:42 LJ PC18] PCपृष्ठ 550:LJPC पृष्ठ 23 पर, सर डब्ल्यू. कॉलविले, न्यायिक समिति का निर्णय सुनाते हुए।

'जहां आपके पास एक निरसन है, और आपके पास एक बचत खंड भी है, तो आपको विचार करना होगा कि क्या प्रतिस्थापित अधिनियम में पहले से मौजूद अधिनियम के साथ असंगत कुछ भी है। सवाल यह है, हां या नहीं, क्या दोनों के बीच असंगतता है? और उन मामलों में न्यायमूर्तियों ने, यह मानते हुए कि निरसन को रद्द करने के लिए पर्याप्त बड़ा बचत खंड था, कहा कि आपको देखना चाहिए कि क्या सच्चा प्रभाव निरस्त अधिनियम में अधिनियम के साथ असंगत कुछ को प्रतिस्थापित करना था; और यदि आपको निरसन करने वाले अधिनियम में निरस्त अधिनियम में सामान्य अधिनियमों के साथ असंगत कुछ मिलता है, तो आपको निरस्त अधिनियम के अधीन क्षेत्राधिकार को आंशिक रूप से समाप्त मानना चाहिए। यह बसफील्ड, इन रे [(1886) 32 Ch D 123: 55 LJ Ch 467] और ह्यूम बनाम सोमरटन [(1890) 25 QBD 239: 59 LJQB 420] के मामलों द्वारा तय किया गया है।' आर., इन रे [(1906) 1 Ch 730 : 75 LJ Ch 421], Ch पृष्ठ 736 : LJ Ch पृष्ठ 423 पर, कोलिन्स, एम.आर."

44. सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 की प्रयोज्यता के पहलू का भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 254(2) के परंतुक की प्रयोज्यता के संबंध में परीक्षण किया जाना आवश्यक है, जो निम्नानुसार है:-

"254. संसद द्वारा बनाए गए कानूनों और राज्यों की विधायिकाओं द्वारा बनाए गए कानूनों के बीच असंगति- *(1) यदि किसी राज्य की विधायिका द्वारा बनाई गई विधि का कोई प्रावधान संसद द्वारा बनाई गई विधि के किसी प्रावधान के प्रतिकूल है, जिसे बनाने के लिए संसद सक्षम है, या समवर्ती सूची में दिए गए किसी एक विषय के संबंध में किसी मौजूदा विधि के किसी प्रावधान के प्रतिकूल है, तो, खंड (2) के प्रावधानों के अधीन, संसद द्वारा बनाई गई विधि, चाहे ऐसे राज्य की विधायिका द्वारा बनाए गए विधि से पहले या बाद में पारित किया गया हो, या, जैसा भी हो, मौजूदा विधि, प्रभावी होगी और राज्य की विधायिका द्वारा बनाई गई गया विधि, प्रतिकूलता की सीमा तक, शून्य होगा।*

(2) जहां समवर्ती सूची में दिए गए किसी एक विषय के संबंध में किसी राज्य की विधायिका [***] द्वारा बनाई गई विधि में उस विषय के संबंध में संसद द्वारा बनाई गई पूर्व विधि या मौजूदा विधि के प्रावधानों के प्रतिकूल कोई प्रावधान शामिल है, तो ऐसे राज्य की विधायिका द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि, यदि इसे राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित किया गया है और उसकी सहमति प्राप्त हो गई है, उस राज्य में प्रभावी होगी:
बशर्ते कि इस खंड में कुछ भी संसद को किसी भी समय उसी विषय के संबंध में कोई भी विधि बनाने से नहीं रोकेगा, जिसमें राज्य की विधायिका द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि को जोड़ने, संशोधित करने, बदलने या निरस्त करने वाला विधि शामिल है।"

45. अनुच्छेद 254(2) का उक्त परंतुक भी इस तथ्य का संकेत है कि यदि केंद्रीय अधिनियम के बाद बनाया गया राज्य अधिनियम राष्ट्रपति से सहमति प्राप्त करता है और उसके संदर्भ में उस राज्य में प्रभावी होता है, तो संसद अपनी विधायी क्षमता के भीतर राज्य विधायिका द्वारा बनाए गए विधि को जोड़ने, संशोधित करने, बदलने या निरस्त करने वाले बाद के विधि को अधिनियमित करेगी। उपरोक्त पहलू पर **ज़ेवरभाई अमैदास बनाम बॉम्बे राज्य, (1954) 2 SCC 345** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित रूप में विचार किया गया है:-

"15. न्यायमूर्ति बावडेकर, जो विपरीत निष्कर्ष पर पहुंचे, ने टिप्पणी की, और काफी सही ढंग से, कि भारत सरकार अधिनियम की धारा 107(2) के अधीन प्रतिकूलता स्थापित करने के लिए, यह आवश्यक नहीं था कि एक विधि "करो" कहे, जो दूसरा विधि "मत करो" कहता है, और प्रतिकूलता तब हो सकती है जब दोनों विधि एक ही क्षेत्र को आच्छादित करते हैं। लेकिन उन्होंने यह दृष्टिकोण लिया कि 1947 के अधिनियम 36 के अधीन बढ़ी हुई सज़ा का मुद्दा आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियां) अधिनियम के अधीन सज़ा से एक अलग मामला था, और चूंकि बढ़ी हुई सज़ा के संबंध में विधि केवल तब था, जब अपराध निर्धारित मात्रा के दोगुने से अधिक खाद्य पदार्थों का कब्जा था, 1947 के अधिनियम 36 का विषय-वस्तु अन्य मामलों के संबंध में 1950 के अधिनियम 52 द्वारा अछूता रहा। दूसरे शब्दों में, उन्होंने माना कि 1947 के अधिनियम 36 के अधीन बढ़ी

हुई सज़ा का मुद्दा आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियां) अधिनियम और इसके संशोधनों के अधीन केवल सज़ा से एक अलग मामला था; और इसमें, सम्मान के साथ, उन्होंने एक त्रुटि कर दी। 1947 के अधिनियम 36 और 1950 के अधिनियम 52 दोनों के अधीन आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियां) अधिनियम के अधीन आदेशों के उल्लंघन के लिए सज़ा का प्रश्न एक एकल विषय-वस्तु बनाता है और विद्वान न्यायमूर्ति द्वारा सुझाए गए तरीके से विभाजित नहीं किया जा सकता है। इस सिद्धांत पर क़ानूनों से संबंधित व्याख्या का नियम टिका है कि:

"जब सज़ा या दंड को डिग्री में बदल दिया जाता है लेकिन प्रकार में नहीं, तो बाद के प्रावधान को पहले वाले को प्रतिस्थापित करने के रूप में माना जाएगा"।

(कानूनों की व्याख्या पर मैक्सवेल, 10वां संस्करण, पृष्ठ 187 और 188)। "यह व्याख्या का एक सुस्थापित नियम है", स्मिथ बनाम बेनाबो [स्मिथ बनाम बेनाबो, (1937) 1 केबी 518 (डीसी)] में न्यायमूर्ति गोडार्ड ने टिप्पणी की

"कि यदि कोई बाद की विधि फिर से पिछली द्वारा बनाए गए अपराध का वर्णन करती है, और एक अलग सज़ा लगाता है, या प्रक्रिया को बदलता है, तो पहले का विधि बाद के विधि द्वारा निरस्त हो जाता है*: मिशेल बनाम ब्राउन [मिशेल बनाम ब्राउन, (1858) 1 El & El 267 पृष्ठ 274 : 120 ER 909] देखें, लॉर्ड कैंपबेल के अनुसार". (केबी पृष्ठ 525)*

16. यह सच है, जैसा कि पहले ही बताया गया है, कि अनुच्छेद 254(1) के अधीन एक सवाल पर कि क्या संसद का एक अधिनियम राज्य के विधि के विरुद्ध प्रभावी होता है, निरसन का कोई सवाल नहीं उठता है; लेकिन वह सिद्धांत जिस पर निहित निरसन का नियम टिका है, अर्थात्, यदि बाद के विधि का विषय-वस्तु पहले के साथ समान है, ताकि वे दोनों एक साथ खड़े नहीं हो सकें, तो पहले को बाद के अधिनियमन द्वारा निरस्त कर दिया जाता है, अनुच्छेद 254(2) के अधीन एक सवाल पर समान रूप से लागू होगा कि क्या संसद द्वारा आगे का विधि राज्य विधि के समान विषय के संबंध में है। हमें तदनुसार यह मानना चाहिए कि बॉम्बे अधिनियम 36 सन 1947 की धारा 2, 1950 के अधिनियम 52 द्वारा संशोधित आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियां) अधिनियम 24 सन 1946 की धारा 7 के विरुद्ध प्रभावी नहीं हो सकती।"

46. यही पहलू हाल ही में **नईम बानो उर्फ गैंडो बनाम मोहम्मद रहीस व अन्य, विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या-16460 of 2023** में फिर से निम्नलिखित रूप में विचार किया गया है:-

"9.1 इसके अतिरिक्त, गौरी शंकर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, [1993] Supp.1 SCR 667 में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार कहा:

"इस नियम में सीएल2 द्वारा एक अपवाद जोड़ा गया है, अर्थात्, यदि राज्य विधि को विचार के लिए आरक्षित किया गया है और राष्ट्रपति राज्य विधि को सहमति देता है, तो यह संघ द्वारा बनाए गए पूर्व विधि के प्रतिकूल होने के बाद भी प्रभावी होगा, हालांकि दोनों विधि समवर्ती विषय से संबंधित हैं, जो एक ही क्षेत्र में काम करते हैं लेकिन टकराव में। राष्ट्रपति से प्राप्त सहमति, राज्य अधिनियम, जो संघ विधि के साथ असंगत है, उस राज्य में प्रभावी होता है और केवल उस राज्य में इसके आवेदन में संघ विधि के प्रावधानों को ओवरराइड करता

है। हालांकि, यदि संसद, अनुच्छेद 254(2) के परंतुक के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए, संघ विधि को जोडने, संशोधित करने या निरस्त करने वाला विधि बनाती है, तो राष्ट्रपति की सहमति से राज्य विधि द्वारा सुरक्षित प्रभुत्व छीन लिया जाता है और प्रतिकूल राज्य विधि हालांकि यह राष्ट्रपति की सहमति के आधार पर वैध हो गया था, या तो सीधे या उसी विषय के संबंध में इसकी प्रतिकूलता से शून्य होगा।" [महत्व प्रदत्त]

9.2 इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम आईसीआईसीआई बैंक, [2017] 8 SCR 33 में इस न्यायालय ने अनुच्छेद 254 पर निर्णय विधि का परीक्षण किया और विधि की स्थिति को संक्षेप में प्रस्तुत किया। वर्तमान प्रकरण के संबंध में, निम्नलिखित बिंदु प्रासंगिक हैं:

50. उपरोक्त संदर्भित निर्णय विधि, इसलिए, निम्नलिखित सिद्धांत देती है:

XXX

vi) प्रतिकूलता इस अर्थ में प्रत्यक्ष हो सकती है कि प्रतिस्पर्धी क़ानूनों की वास्तविक शर्तों में असंगति है और इसलिए, प्रतिस्पर्धी क़ानूनों के दो या अधिक प्रावधानों के बीच सीधा संघर्ष है। इस अर्थ में, असंगति स्पष्ट और प्रत्यक्ष होनी चाहिए और ऐसी प्रकृति की होनी चाहिए, जो दो अधिनियमों या उसके भागों को एक दूसरे के साथ सीधे टकराव में लाए, एक स्थिति तक पहुंच जाए जहां एक का पालन करना दूसरे की अवज्ञा किए बिना असंभव है। यह तब होता है जब दो अधिनियम समान तथ्यों पर लागू होने पर अलग विधिक परिणाम उत्पन्न करते हैं।

XXX

viii) जब संसदीय विधि और राज्य विधि एक ही विषय पर अपनी शक्तियों का प्रयोग करने का प्रयास करते हैं, तो संघर्ष उत्पन्न हो सकता है। यह सीधे संघर्ष के रूप में होना आवश्यक नहीं है, जहां एक कहता है "करो" और दूसरा कहता है "मत करो"। इस शीर्ष के अधीन विधि तब भी प्रतिकूल होते हैं जब दोनों कानूनों द्वारा निर्धारित आचरण का नियम समान हो। ऐसे मामलों में लागू किया गया परीक्षण उस सिद्धांत पर आधारित है जिस पर निहित निरसन का नियम टिका है, अर्थात्, यदि राज्य विधि या उसके भाग का विषय-वस्तु संसदीय विधि के साथ समान है, ताकि वे दोनों एक साथ खड़े नहीं हो सकें, तो राज्य विधि को संसदीय विधि के प्रतिकूल कहा जाएगा। हालांकि, यदि राज्य विधि या उसका भाग उन मामलों से निपटता नहीं है, जो संसदीय विधि का विषय-वस्तु बनाते हैं बल्कि अन्य और अलग मामलों से निपटते हैं हालांकि संबंधित और सहयोगी प्रकृति के, तो कोई प्रतिकूलता नहीं है।

ix) राज्य द्वारा प्रतिकूल विधि केवल प्रतिकूलता की सीमा तक शून्य है। दूसरे शब्दों में, केवल राज्य के विधि का वह हिस्सा, जो प्रतिकूल पाया जाता है, शून्य घोषित किया जाना है।

x) उपरोक्त का एकमात्र अपवाद तब है जब यह पाया जाता है कि एक राज्य विधि संसदीय विधि या मौजूदा विधि के प्रतिकूल है यदि मामला अनुच्छेद 254(2) के अंतर्गत आता है, और राष्ट्रपति की सहमति राज्य विधि के लिए प्राप्त की जाती है, उस स्थिति में राज्य विधि उस राज्य के भीतर संसदीय विधि या मौजूदा विधि पर प्रभावी होता है। यहां फिर से, राज्य विधि को किसी भी बाद के संसदीय विधि को रास्ता देना होगा जो राज्य की विधायिका द्वारा बनाए गए विधि को जोड़ता है, संशोधित करता है, बदलता है या निरस्त करता है, अनुच्छेद 254(2) परंतुक के संचालन के आधार पर।" (हमारे द्वारा रेखांकित)"

47. उपरोक्त निर्णयों की प्रयोज्यता पर, यह स्पष्ट है कि सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 के आधार पर, निरस्त प्रावधानों को जारी रखने के लिए एक अलग आशय को बाद के अधिनियमन में विशेष रूप से बताया जाना आवश्यक है, इसमें विफल होने पर, अनुच्छेद 254(2) के परंतुक के प्रावधान लागू होंगे जिसके अधीन बाद के अधिनियमन के साथ किसी भी प्रतिकूलता या अंतर के मामले में, संसद द्वारा बनाया गया विधि प्रभावी होगा।

48. उपरोक्त निर्णयों की प्रयोज्यता पर, यह इस प्रकार स्पष्ट है जैसा कि ऊपर देखा गया है कि भा.ना.सु.सं. 2023 के बाद के अधिनियमन में अधिनियम संख्या 4 सन 2019 के माध्यम से किए गए राज्य संशोधन को बनाए रखने के लिए कोई विशिष्ट आशय इंगित नहीं किया गया है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 254(2) के परंतुक के संदर्भ में भी, अधिनियम संख्या 4 सन 2019 और भा.ना.सु.सं. 2023 की धारा 482 के बीच अग्रिम जमानत के प्रावधानों में काफी अंतर होने के कारण, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, यह पुनः अधिनियमित भा.ना.सु.सं. 2023 की धारा 482 के प्रावधान हैं, जो प्रभावी होंगे।

49. अधिनियम संख्या 4 सन 2019 के माध्यम से शामिल अग्रिम जमानत के प्रावधानों और भा.ना.सु.सं. 2023 की धारा 482 में अंतर के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि संसद ने दं.प्र.सं. की धारा 438(6) में इंगित प्रतिबंधों को समाप्त करने का सचेत निर्णय लिया, विशेष रूप से चूंकि यह माना जाएगा कि संसद को मानने की कल्पना के आधार पर अधिनियम संख्या 4 सन 2019 के माध्यम से शामिल प्रावधानों के बारे में पता था और इसलिए पुनः अधिनियमित प्रावधानों को जानबूझकर भा.ना.सु.सं. 2023 की धारा 482 को अधिनियमित करते समय संसद द्वारा मिटा दिया गया कहा जा सकता है।

50. इससे संबंधित एक और पहलू यह अवधारणा है कि दंड विधि की व्याख्या में किसी भी अस्पष्टता के मामले में, अभियुक्त के अधिकारों की रक्षा की दिशा में अनुकूल व्याख्या आवश्यक है। उक्त पहलू पर **एम. रवींद्रन बनाम राजस्व खुफिया निदेशालय, (2021) 2 SCC 485** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित रूप में विचार किया गया है:-

"17.9 इसके अतिरिक्त, यह सुस्थापित है कि दंड विधि की व्याख्या में किसी भी अस्पष्टता की स्थिति में, न्यायालयों को उस व्याख्या का पक्ष लेना चाहिए जो अभियुक्त के अधिकारों की रक्षा की ओर झुकती है, व्यक्तिगत अभियुक्त और राज्य मशीनरी के बीच सर्वव्यापी शक्ति असमानता को देखते हुए। यह न केवल सारभूत दंड क़ानूनों के मामले में बल्कि अभियुक्त की स्वतंत्रता के कटौती के लिए प्रदान करने वाली प्रक्रियाओं के मामले में भी लागू होता है।"

51. उक्त पहलू पर **तोलाराम रेलूमल व अन्य बनाम बॉम्बे राज्य, (1954) 1 SCC 961** में भी निम्नलिखित रूप में विचार किया गया है:-

"8. ऐसी स्थिति में हमारे निर्धारण की आवश्यकता वाला प्रश्न यह है कि क्या धारा 18(1) समय के एक क्षण में पैसे की प्राप्ति को दंडनीय बनाता है, जब पट्टा अस्तित्व में नहीं आया था, और जब एक संभावना थी कि विचाराधीन पट्टा कभी अस्तित्व में नहीं आ सकता है। यहां यह देखा जा सकता है कि धारा 18(1) के प्रावधान प्रकृति में दंडात्मक हैं और यह दंड क़ानूनों की व्याख्या का एक सुस्थापित नियम है कि यदि किसी दंड प्रावधान पर दो संभावित और उचित व्याख्याएं की जा सकती हैं, तो न्यायालय को उस व्याख्या की ओर झुकना चाहिए, जो विषय को दंड से छूट देती है न कि वह जो दंड अधिरोपित करती है। न्यायालय के लिए विधायिका के आशय को पूरा करने के लिए विधायिका द्वारा उपयोग किए गए अभिव्यक्ति के अर्थ को बढ़ाना सक्षम नहीं है। जैसा कि लंदन एंड नॉर्थ ईस्टर्न रेलवे कंपनी बनाम बेरिमन [लंदन एंड नॉर्थ ईस्टर्न रेलवे कंपनी बनाम बेरिमन, 1946 AC 278 पृष्ठ 295 (HL)] में लॉर्ड मैकमिलन द्वारा बताया गया है: (AC पृष्ठ 295)
"... जहां उल्लंघन के लिए दंड अधिरोपित किए जाते हैं, तो किसी नियम की भाषा को खींचना वैध नहीं है, हालांकि, इसका आशय कितना भी लाभदायक हो, इसकी भाषा के निष्पक्ष और सामान्य अर्थ से परे।"

52. ऊपर की गई चर्चा को देखते हुए, यह पूर्णतः स्पष्ट है कि भा.ना.सु.सं. 2023 की धारा 482 के प्रावधान, अधिनियम संख्या 4 सन 2019 द्वारा किए गए संशोधन पर प्रभावी होंगे।

53. तदनुसार प्रश्न संख्या 2, राज्य के विरुद्ध नकारात्मक रूप से उत्तरित किया गया है।

54. धारा 438 दं.प्र.सं. के अधीन आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन संख्या-1710 वर्ष 2024, रमन साहनी बनाम उ.प्र. राज्य में हाल ही के निर्णय में इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने भी कहा है कि भा.ना.सु.सं. की धारा 482 के संदर्भ में, अग्रिम जमानत उन मामलों में स्वीकार्य होगी जहां एनडीपीएस अधिनियम लगाया गया है।

55. इसके आलोक में, यह निर्णीत किया जाता है कि अग्रिम जमानत आवेदन, उन मामलों में स्वीकार्य होगा जहां प्र.सू.रि. में एनडीपीएस अधिनियम की धाराओं को लागू किया गया है।

56. प्रकरण के गुण पर, यह स्पष्ट है कि प्र.सू.रि./बरामदगी प्रमाण पत्र की सामग्री के अनुसार, घटना 8 मई, 2024 को हुई कही जाती है, जब सूचना के आधार पर पुलिस टीम ने पंजीकरण संख्या उ.प्र. 32 जेएन 9524 वाली एक पिकअप वैन को राज कुमार उर्फ सोनू नामक सवारी के साथ पकड़ा, जिसके द्वारा आवेदक का नाम वाहन के मालिक के रूप में बताना कहा जाता है। कोडीन मिश्रित कफ सिरप के कार्टन की बरामदगी कही जाती है। यह भी कहा गया है कि संपर्क करने पर आवेदक ने कहा कि उपरोक्त उत्पाद अमनदीप पुत्र गुरमीत सिंह के थे और आवेदक के वाहन द्वारा परिवहन किया जा रहा था।

57. यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों में झूठा फंसाया गया है, जो इस तथ्य से स्पष्ट होगा कि आवेदक को न तो मौके से पकड़ा गया है और न ही उससे कोई बरामदगी है।

यह प्रस्तुत किया गया है कि वाहन वास्तव में उसकी मां श्रीमती कमल देवी का था और कफ सिरप की बोतलों के परिवहन के उद्देश्यों के लिए आवेदक द्वारा मांगा गया था, जिसे जब्त कर लिया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त पहलू प्र.सू.रि. से ही स्पष्ट हैं। उन्होंने यह प्रस्तुत करने के लिए 1985 के अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों के नियम 52-ए का भी उल्लेख किया है कि मिथाइल मॉर्फिन, जिसे आमतौर पर कोडीन के रूप में जाना जाता है, उसे पतला करके व एक या अधिक सामग्रियों के साथ ऐसे मिश्रित किया जाता है कि प्रति इकाई दवा के 100 मिलीग्राम से अधिक नहीं होना चाहिए। इसलिए यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि अभी तक एफ.एस.एल. रिपोर्ट उपलब्ध नहीं कराई गई है, इसलिए ऐसी कोई धारणा नहीं बनाई जा सकती है कि जब्त कोडीन की मात्रा व्यावसायिक या निर्धारित सीमा से अधिक है।

58. विद्वान अ.शा.अधि. ने जमानत आवेदन का विरोध किया है लेकिन स्वीकार करते हैं कि एफ.एस.एल. रिपोर्ट अभी तक प्राप्त नहीं की गई है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आरोप पत्र अभी तक दाखिल नहीं किया गया है।

59. पक्षों के लिए विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए तर्कों के विचार और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के अवलोकन पर, प्रथम दृष्टया परीक्षण में प्रस्तुत साक्ष्य के अधीन, यह प्रतीत होता है कि पहले आवेदक के विरुद्ध एनडीपीएस अधिनियम 1985 की धारा 22(सी) को छोड़कर धाराओं पर आरोप पत्र दाखिल किया गया था, जो बहुत बाद में लगाया गया है। उपरोक्त पहलू पर परीक्षण न्यायालय द्वारा इस पहलू के साथ विचार करना होगा कि क्या जब्त कोडीन की मात्रा 1985 के अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों के संदर्भ में निर्धारित सीमा से अधिक है, जो वर्तमान में एफ.एस.एल. रिपोर्ट की कमी के कारण पता नहीं लगाई जा सकती है।

60. उपरोक्त परिस्थितियों को देखते हुए, एनडीपीएस अधिनियम की धारा 37 के प्रावधान आवेदक के पक्ष में पाए जाते हैं।

61. इस प्रकार **सुशीला अग्रवाल बनाम राज्य (दिल्ली रा.रा.क्षे.),** (2020) 5 SCC 1 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि को देखते हुए, धारा 438 दं.प्र.सं./482 भा.ना.सु.सं. के अधीन आवेदक को अग्रिम जमानत देना उचित होगा।

62. उपरोक्त को देखते हुए, यह प्रावधानित किया जाता है कि गिरफ्तारी की स्थिति में, आवेदक-सुधीर @ सुधीर कुमार चौरसिया को उपरोक्त मुकदमा अपराध संख्या में अग्रिम जमानत पर रिहा किया जाएगा, जब वह गिरफ्तार करने वाले अधिकारी/जांच अधिकारी/संबंधित थानाध्यक्ष की संतुष्टि के लिए प्रत्येक समान राशि में दो जमानतदारों के साथ व्यक्तिगत बंधपत्र प्रस्तुत करेगा निम्नलिखित शर्तों के साथ:-

(i) कि आवेदक जैसे और जब आवश्यक हो, पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए स्वयं को उपलब्ध कराएगा;

(ii) कि आवेदक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा जिससे उसे न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के सामने ऐसे तथ्यों को प्रकट करने से रोका जा सके या साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ न करे;

(iii) कि आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा;

(iv) कि यदि आरोप पत्र प्रस्तुत किया जाता है तो आवेदक परीक्षण के दौरान साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा;

(v) कि आवेदक अभियोजन गवाह पर दबाव नहीं डालेगा/डराएगा नहीं;

(vi) कि आवेदक परीक्षण न्यायालय के समक्ष प्रत्येक निर्धारित तिथि पर उपस्थित होगा जब तक कि व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट नहीं दी जाती है;

(vii) कि उपरोक्त शर्तों में से किसी के भी उल्लंघन के मामले में, इस आदेश का लाभ आवेदक को उपलब्ध नहीं होगा।

आवेदन स्वीकार किया जाता है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 38

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

धारा 438 दं.प्र.सं. के अधीन आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन संख्या-1710 सन 2024

रमन साहनी ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य अपर मुख्य सचिव विभाग गृह लखनऊ ...विपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता:
सुशील कुमार सिंह, आयुष सिंह

विपक्षी के अधिवक्ता:
शा.अधि., अभिसार देव, प्रशांत कुमार सिंह, रचित गुप्ता, श्रीनिवास बाजपेयी

आपराधिक विधि-उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986-धारा 2 एवं 3-अग्रिम जमानत-पोषणीयता-उच्च न्यायालय द्वारा निर्णीत आपतियां यह है कि क्या आवेदन पोषणीय है क्योंकि सीधे योजित किया गया है, अंकित भारती (उपरोक्त) के विपरीत-क्या दं.प्र.सं. (उ.प्र. संशोधन) अधिनियम, 2018 (अधिनियम संख्या 4 सन 2019), जिसने उ.प्र. में धारा 438 दं.प्र.सं. में संशोधन किया, दं.प्र.सं. 1973 के निरसन और भा.ना.सु.सं., 2023 के अधिनियमन पर निरस्त हो जाएगा-आवेदक ने सत्र न्यायाधीश के समक्ष अग्रिम जमानत आवेदन योजित न करने के लिए इस आधार पर याचिका योजित की कि प्रतिद्वंद्वी पक्ष और उसके सहयोगी आर्थिक रूप से सुदृढ़ हैं-आवेदक के विरुद्ध पंद्रह से अधिक प्र.सू.रि. दर्ज हैं, जिनमें शत्रुता के कारण उसके बहनोई द्वारा भी कई शामिल हैं-विरोधी पुलिस अधिकारियों पर अनुचित दबाव डाल रहे हैं, न्यायिक कार्यवाही को प्रभावित कर रहे हैं-गंभीर शत्रुता और जीवन को खतरे का हवाला देते हुए-चूंकि, दं.प्र.सं. 1973 निरस्त है और इसके राज्य संशोधन भा.ना.सु.सं. 2023 के बचत खंड में स्थान नहीं पाते हैं, उ.प्र. संशोधन (अधिनियम संख्या 4 सन 2019) अब लागू करने योग्य नहीं है-राज्य के प्रति-शपथपत्र से पता चलता है कि संहिता 2023 के अधीन अग्रिम जमानत के लिए नया मसौदा संशोधन तैयारी के अधीन है-भले ही स्पष्ट रूप से निरस्त न किया गया हो, संसद द्वारा उसी मामले पर अधिनियमित बाद का विधि संविधान के अनुच्छेद 254 के परंतुक के आधार पर राज्य विधि को निहित रूप से निरस्त कर देगा, जहां यह राज्य विधान को जोड़ता, संशोधित करता, बदलता या निरस्त करता है-इस प्रकार, दं.प्र.सं. (उ.प्र. संशोधन) अधिनियम, 2018

अनुवादित

(उ.प्र. अधिनियम संख्या 4 सन 2019) निहित रूप से निरस्त हो गया है-विपक्षी पक्ष द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति निरस्त। (प्रस्तर 3, 5, 47 से 50)

आवेदन लंबित। (ई-13)

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची</u>:

1. अंकित भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य 2020 SCC OnLine All 1949, (प्रस्तर 16 से 22)
2. माता सेवक उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1995 JIC 1168
3. रोड्रिग्स बनाम विश्वजीत पी-राने व अन्य, 2017 11 SCC 62 (AIRES)
4. बॉम्बे राज्य बनाम पांडुरंग विनायक चाफलकर व अन्य 1953 1 SCC 425
5. हर्षद एस. मेहता व अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य 2001 8 SCC 257
6. आंध्र प्रदेश राज्य व अन्य बनाम श्रीमती पी. लक्ष्मी देवी 2008 4 SCC 720
7. हरकेश चंद बनाम कृष्ण गोपाल मेहता व अन्य 2017 4 SCC 537
8. दीपू व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य 2024 SCC OnLine All 4289, (प्रस्तर 16)
9. जावेरभाई अमाईदास बनाम बॉम्बे राज्य 1954 2 SCC 345, (प्रस्तर 13, 14, 16)
10. टी.बरई बनाम हेनरी आह होए व अन्य 1983 1 SCC 177, (प्रस्तर 15, 16)
11. इन्नोवेंटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम आईसीआईसीआई बैंक 2017 SCR पृष्ठ 33, (प्रस्तर vi, viii से x)
12. नईम बानो @ गैंडो बनाम मोहम्मद रहीस व अन्य, विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 16460 सन 2023, (प्रस्तर 9.5, 9.6)

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह द्वारा उद्घोषित)

1. श्री सुशील कुमार सिंह, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के लिए श्री अविनाश सिंह विशेन, अधिवक्ता की सहायता से श्री आई.बी. सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता; श्री शिवेंद्र शिवम सिंह राठौर की सहायता से श्री वी.के. सिंह, शा.अधि., श्री वैभव श्रीवास्तव, श्री निर्मल पांडेय, विद्वान अ.शा.अधि. की सहायता से श्री अनिरुद्ध कुमार सिंह, अशाअधि-I; श्री उत्सव मिश्रा, अकबर अहमद, मधुर झावर, मारिया फातिमा, अलीना, चिन्मय मिश्रा, रवि सिंह, हर्ष वर्धन मेहरोत्रा, रामेंद्र यादव, श्रिया अग्रवाल, अहद, अंकित त्रिपाठी (अधिवक्ताओं) की सहायता से श्री गौरव मेहरोत्रा, अधिवक्ता, न्याय-मित्र, और श्री श्रीनिवास बाजपेयी, शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान जमानत आवेदन आवेदक की ओर से इस प्रार्थना के साथ योजित किया गया है कि उसे मुकदमा अपराध संख्या-124 सन 2021, उ.प्र. गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2 व 3, पुलिस स्टेशन-कोतवाली जिला-सीतापुर में अग्रिम जमानत दी जाए।

3. शुरुआत में ही, वर्तमान आवेदन की पोषणीयता के संबंध में दो प्रकार से आपत्ति उठाई गई है। एक तो यह कि आवेदक ने यह आवेदन सीधे इस न्यायालय में प्रस्तुत किया है, जो **अंकित भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2020 SCC OnLine All 1949** में निर्धारित विधि के अनुसार पोषणीय नहीं है और दूसरा, उ.प्र. राज्य विधायिका द्वारा संशोधित दं.प्र.सं. की धारा 438 की उप-धारा 6(ए)(बी) के प्रावधान के आलोक में अर्थात्, उ.प्र. राज्य संशोधन 2019, (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम 2018 (उ.प्र. अधिनियम संख्या 4 सन 2019) (इसके बाद 'अधिनियम 2018, उ.प्र. अधिनियम संख्या 4 सन 2019' के रूप में संदर्भित) अग्रिम जमानत के प्रावधान का लाभ गैंगस्टर अधिनियम से संबंधित मामले में उपलब्ध है।

4. विवाद को संक्षेप में प्रस्तुत करने के लिए, दो प्रश्न विरचित किए जा सकते हैं;

'I- क्या, वर्तमान प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों में, अग्रिम जमानत आवेदन सीधे इस न्यायालय के समक्ष योजित किया जा सकता है?

II- क्या, आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (इसके बाद 'दं.प्र.सं. 1973' के रूप में संदर्भित) के निरसन और बाद में, भा.ना.सु.सं. 2023 (इसके बाद 'संहिता 2023' के रूप में संदर्भित) के पुनः अधिनियमन के आलोक में, राष्ट्रपति की सहमति के साथ आपराधिक प्रक्रिया संहिता (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम 2018 (उ.प्र. अधिनियम संख्या 4 सन 2019) निरस्त हो जाएगा?

5. जहां तक पहली आपत्ति का संबंध है, आवेदक द्वारा सत्र न्यायाधीश, सीतापुर के समक्ष अग्रिम जमानत आवेदन योजित न करने का आधार यह लिया गया है कि प्रतिद्वंद्वी, सत्यनारायण और उसका परिवार ईंट-भट्टा और परिवहन के व्यवसाय में शामिल है और आवेदक के विरुद्ध पंद्रह से अधिक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई हैं और आगे आवेदक के बहनोई अर्थात्, आनंद ने शत्रुता में, उसके विरुद्ध कई प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई हैं। यह भी कहा गया है कि आवेदक का विरोधी आर्थिक और राजनीतिक रूप से शक्तिशाली होने के कारण, पुलिस अधिकारियों पर दबाव डाल रहा है और इसके अतिरिक्त, वे विचारण न्यायालय के समक्ष न्यायिक कार्यवाही को भी प्रभावित कर रहे हैं। सीधे इस न्यायालय में आने का अगला आधार यह है कि आवेदक के जीवन को खतरा है क्योंकि पक्षों के बीच तीव्र शत्रुता है और आवेदक के लिए अग्रिम जमानत के लिए विद्वान जिला और सत्र न्यायाधीश के पास जाना सुरक्षित नहीं है। उपरोक्त आधार पर, यह प्रार्थना की गई है कि अग्रिम जमानत आवेदन को इस न्यायालय द्वारा सीधे विचार किया जा सकता है।

6. विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता ने खंडन किया है और प्रस्तुत किया है कि चूंकि, इस न्यायालय में सीधे आने का कोई विशेष कारण नहीं है, इसलिए, आवेदन निरस्त किए जाने योग्य है।

7. **अंकित भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2020 SCC OnLine All 1949** में संदर्भ का निर्णय करते समय, स्थापित विधि निर्धारित किया गया। इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा किया गया संदर्भ का निर्णय निम्नानुसार है:

"16. उस अर्थ में, संदर्भ स्पष्ट रूप से गुणयुक्त नहीं था। हालांकि और चूंकि हमने न केवल संदर्भ की पोषणीयता के प्रश्न पर बल्कि हमारे विचारार्थ विरचित प्रश्नों पर भी पक्षकारों को सुना है, हम उन संदेहों को दूर करने के लिए अपना निर्णय देना उचित समझते हैं, जो प्रतीत होते हैं।

17. इसलिए, हम निर्णीत करते हैं कि विनोद कुमार में दर्ज नतीजों पर, जो विशेष या असाधारण परिस्थितियों का अर्थ बताते हैं, दोबारा सोचने की आवश्यकता नहीं है। जैसा कि वहाँ बताया गया है, यह संबंधित न्यायाधीश पर छोड़ देना चाहिए कि वह किसी विशेष प्रकरण में उपलब्ध तथ्यों के आधार पर विधि के अधीन अपने अधिकार का प्रयोग करे।

18. दूसरा पक्ष, जिस पर बल देने और दोहराने की आवश्यकता है, वह यह है कि विनोद कुमार में कुछ ऐसी स्थितियों के बारे में बताते हुए, जिनमें सीधे उच्च न्यायालय जाया जा सकता है, उन बातों को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करने और वास्तविक रूप में सिद्ध करने की आवश्यकता पर बल दिया था। बिना आवश्यक विवरण के, एक बिना साक्ष्य का दावा न तो उच्च न्यायालय में आवेदन देने के लिए काफी था और न ही उस निर्णय से ऐसा कोई निष्कर्ष निकलता है। विनोद कुमार ने स्पष्ट किया है कि अग्रिम जमानत का आवेदन धुंधले और बिना साक्ष्य वाले आरोपों या जल्द गिरफ्तारी के खतरे के समर्थन में आवश्यक विवरण की कमी पर आधारित नहीं हो सकती। इस पहलू पर बात करते हुए विद्वान न्यायमूर्ति ने रश्मि रेखा थातोई बनाम उड़ीसा राज्य (2012) 5 SCC 690 में सुप्रीम न्यायालय की कही गई आवश्यक बातों का भी ज़िक्र किया है। इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि विनोद कुमार में न्यायमूर्ति ने जिन कुछ हालातों को विशेष परिस्थितियां के तौर पर देखा है, उन्हें खोखली बातें नहीं समझना चाहिए, बल्कि रिकॉर्ड में मौजूद चीज़ों से उनका समर्थन और पुष्टि होनी चाहिए। याचिका में गिरफ्तारी के खतरे के समर्थन में एक मज़बूत बुनियाद होनी चाहिए, जैसा कि कहा गया है। इस बात पर संविधान पीठ ने सुशीला अग्रवाल प्रकरण में भी बल दिया है, जैसा कि ऊपर उद्धरित अंशों से स्पष्ट है, जिसमें यह कहा गया है कि आवेदन "ठोस तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए (न कि अस्पष्ट या सामान्य आक्षेपों पर)"।

19. इस पृष्ठभूमि में देखने पर यह साफ़ है कि न्यायमूर्ति के लिए हर केस के तथ्यों का आकलन करना और यह राय बनाना उपलब्ध था कि क्या कोई विशिष्ट परिस्थितियाँ थीं या नहीं, जिससे आवेदक सीधे उच्च न्यायालय जा सके। ऊपर बताए गए दृष्टिकोण से देखने पर, यह स्पष्ट है कि न्यायमूर्ति द्वारा विरचित प्रश्न

(i) वास्तव में गलत है। अगर न्यायमूर्ति की राय थी कि विशिष्ट परिस्थितियाँ होने के समर्थन में कही गई बातें "आकर्षक नहीं" [जैसा कि वह इसे बताना चाहते हैं] या यकीन न करने वाली थीं, तो न्यायालय को ऐसा मानने से कोई नहीं रोक सकता था।

20. इसलिए हम संदर्भ का निर्णय यह मानकर देंगे कि विनोद कुमार में दिया गया निर्णय किसी भी तरह से पुनर्विचार या पुनः स्पष्ट करने योग्य नहीं है। जैसा कि उस निर्णय में सही कहा गया है, ऐसी कोई पूरी या सामान्य बातें नहीं बताई जा सकतीं जिनमें किसी आवेदक को सीधे उच्च न्यायालय जाने का अधिकारी माना जा सके। न्यायालय अगर दंड प्रक्रिया संहिता को धार 438 के अधीन न्यायालय को प्रदत्त अधिकार के प्रयोग को मार्गदर्शित करने वाला एक जैसा कोड या नियम बनाने की कोशिश करता है तो यह स्पष्ट रूप से गलत होगा। विधायिका ने समझदारी से जो अधिकार बिना रोक-टोक के छोड़े हैं, उन्हें हर विशेष प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर प्रयोग करने के लिए मौजूद माना जाना चाहिए। विनोद कुमार में विशिष्ट परिस्थितियों के उदाहरण के तौर पर बताए गए उदाहरण, जहां सही तरीके से सिद्ध हो जाएं, सीधे उच्च न्यायालय में याचिका योजित करने का आधार बन सकती हैं।

21. जिन विशेष परिस्थितियों को उच्च न्यायालय ने सीधे अग्रिम जमानत के आवेदन पर विचार करने के लिए आवश्यक माना है, उन्हें उस माननीय न्यायमूर्ति के विचार के लिए छोड़ देना चाहिए, जिसके सामने आवेदन सूचीबद्ध है और उस विशिष्ट प्रकरण के तथ्यों व परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उस पर निर्णय लेना चाहिए। हालांकि, उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार इस्तेमाल करने से पहले विशेष परिस्थितियां ज़रूर होने चाहिए और उन्हें सिद्ध किया जाना चाहिए। आवेदन को गिरफ्तारी की आशंका और उच्च न्यायालय के समवर्ती क्षेत्राधिकार को सही ठहराने के लिए एक मज़बूत आधार पर खड़ा होना चाहिए। विनोद कुमार के तथ्य, जिनमें (ए) और (बी) शामिल हैं, विशेष परिस्थितियां बनाने के लिए किसी पुनरीक्षण योग्य नहीं हैं, सिवाय इसके कि किसी विशेष परिस्थितियां का होना, निश्चित रूप से सिद्ध होना चाहिए और वह अस्पष्ट आरोपों पर आधारित नहीं होना चाहिए।

22. ऊपर बताई गई बातों को ध्यान में रखते हुए, हम संदर्भ का निर्णय इस तरह करते हैं:
प्रश्न (i) और (iv) स्पष्ट रूप से पर किसी स्पष्टीकरण के योग्य नहीं हैं क्योंकि यह संबंधित न्यायमूर्ति को पता लगाना है कि क्या किसी विशेष प्रकरण में विशेष परिस्थितियां मौजूद हैं, जिनके लिए उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को सीधे इस्तेमाल करने की आवश्यकता है। हम प्रश्न (ii) और (iii) का जवाब नहीं में देते हैं और निर्णीत करते हैं कि विनोद कुमार किसी भी पुनर्विचार या अतिरिक्त स्पष्टीकरण के योग्य नहीं हैं। यह संबंधित न्यायमूर्ति को हर विशेष प्रकरण के तथ्यों के आधार पर यह मत बनाना होगा कि क्या विशेष परिस्थितियां मौजूद हैं और वे सही तरह से सिद्ध हैं।"

8. संदर्भ का निर्णय करते हुए, यह निर्णीत किया गया है कि उच्च न्यायालय द्वारा सीधे आवेदन को स्वीकार करना, उस माननीय न्यायमूर्ति के लिए है, जिनके समक्ष याचिका प्रस्तुत की गई है। इसका अर्थ यह

है कि ऐसा कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है कि जिस व्यक्ति को गिरफ्तारी की आशंका है, वह सीधे उच्च न्यायालय नहीं जा सकता, बल्कि यह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, जिसके आधार पर माननीय न्यायमूर्ति अपने विवेक का प्रयोग करेंगे और ऐसे अग्रिम जमानत आवेदन की पोषणीयता के संबंध में निर्णय लेंगे।

9. जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, अग्रिम जमानत आवेदन के प्रस्तर 3 में विस्तृत कारण बताए गए हैं। यह प्रकट होता है कि आवेदक 15 से अधिक प्रथम सूचना रिपोर्टों का सामना कर रहा है, जो एक ही शिकायतकर्ता द्वारा दर्ज की गई हैं और विशेष रूप से यह आधार लिया गया है कि शिकायतकर्ता आर्थिक रूप से सुदृढ़ है और आवेदक को विचारण न्यायालय में जाने में जबरदस्त खतरा है, क्योंकि शिकायतकर्ता और उसके गुर्गे 'गढ़ा बंदी' करते हुए आवेदक का पीछा कर रहे हैं।

10. उपरोक्त विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, विशेष रूप से अंकित भारती के प्रकरण में निर्धारित विधि को ध्यान में रखते हुए, सीधे इस न्यायालय आने के आधार पर अग्रिम जमानत आवेदन की पोषणीयता के संबंध में आपत्ति में कोई बल नहीं है और इस प्रकार, इसे निरस्त किया जाता है।

11. अब, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि दूसरी आपत्ति यह है कि अधिनियम 2018 (उ.प्र. अधिनियम सं. 4 वर्ष 2019) की धारा 6(ए)(बी) की शर्तें दं.प्र.सं. 1973 के निरसन और 'संहिता 2023' के पुनः अधिनियमन के बाद भी लागू/प्रयोज्य हैं। दंड प्रक्रिया संहिता, संसद द्वारा 1973 में अधिनियमित की गई थी और उस समय उत्तर प्रदेश राज्य में उभरी विशिष्ट परिस्थितियों को देखते हुए, उ.प्र. राज्य विधानसभा ने एक संशोधन किया और उसके आधार पर, दं.प्र.सं. 1973 की धारा 438 के अधीन प्रावधानित अग्रिम जमानत के प्रावधान को निलंबित कर दिया गया था। लगभग 40 वर्षों की अवधि के बाद, परिस्थितियों में परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए, दं.प्र.सं. 1973 में प्रावधानित अग्रिम जमानत के प्रावधान को कुछ उद्देश्यों/शर्तों के साथ प्रस्तुत किया गया, अर्थात्, 'अधिनियम 2018 (उ.प्र. अधिनियम सं. 4 वर्ष 2019)'। वे शर्तें जो मूल रूप से दं.प्र.सं. 1973 की धारा 438(1) की उप-धारा 6 में परिकल्पित हैं, नीचे प्रस्तुत की गई हैं:

"(6) इस धारा के प्रावधान लागू नहीं होंगे,
(ए) उन अपराधों पर जो उत्पन्न होते हैं,
(i) गैरविधिक अपराध (रोकथाम) अधिनियम, 1967;
(ii) स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985;
(iii) आधिकारिक गोपनीयता अधिनियम, 1923;
(iv) उत्तर प्रदेश गुंडागर्दी और असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986.
(बी) उन अपराधों में, जिनमें मृत्युदंड दिया जा सकता है।"

12. तथ्य यह है कि 1.7.2024 से प्रभावी, दं.प्र.सं. 1973 को निरस्त कर दिया गया है और संसद भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 के नाम से नए विधि के साथ आई। संहिता 2023 की घोषणा से पहले, भारत सरकार के विधि व न्याय मंत्रालय की प्रेस विज्ञप्ति के अनुसार, ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय न्याय संहिता, भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता और भारतीय साक्ष्य अधिनियम के लिए एक महत्वपूर्ण निःशुल्क विधायी परामर्श था। इस विज्ञप्ति में यह जानकारी है कि यह सभी हितधारकों-'राज्यपालों, मुख्य मंत्रियों, उप-राज्यपाल, राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के प्रशासकों' से आपराधिक विधियों में व्यापक संशोधन पर उनके सुझाव मांगे गए और भारत के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति और सभी उच्च न्यायालयों के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति, विधिक परिषद, विधि विश्वविद्यालय/संस्थान, संसद के सभी सदस्यों (लोकसभा और राज्यसभा) से भी सुझाव मांगे गए। न केवल यह, बल्कि कुलपति, राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय (एनएलयू), दिल्ली की अध्यक्षता में आपराधिक विधियों में सुधारों का परीक्षण करने व सुझाव देने के लिए एक समिति का भी गठन किया गया था। समिति ने जनता और सरकार सहित विभिन्न पक्षों से सुझाव आमंत्रित किए थे और **राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों**, भारत के उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों, न्यायिक अकादमी, विधि संस्थानों और संसद के सदस्यों से भी इनपुट/सुझाव प्राप्त किए थे। कुलपति, राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय, दिल्ली की अध्यक्षता में गठित समिति ने सभी सुझावों पर विचार करते हुए और सभी हितधारकों के साथ व्यापक परामर्श और गहन अनुसंधान के साथ फरवरी, 2022 में अपनी सिफारिशों के साथ अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और उसके बाद, संसद ने व्यापक चर्चा के बाद 'संहिता 2023' पारित की।

13. संहिता 2023, 1.7.2024 से प्रभावी हुई और संहिता 2023 की धारा 1(3) के अधीन प्रदत्त शक्ति से, केंद्र सरकार ने 1.7.2024 को अधिसूचना जारी की। अब, जो संरक्षित हैं और निरस्त हैं, वे संहिता 2023 की धारा 531 के अधीन प्रदान किए गए हैं। धारा 531 निम्नानुसार प्रस्तुत की गई है:

"531. निरसन और संरक्षण-(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) ऐतदद्वारा निरस्त की जाती है।
(2) ऐसे निरसन के बाद भी
(a) यदि, उस तिथि से ठीक पहले जिस पर यह संहिता लागू होता है, कोई अपील, आवेदन, मुकदमा, जांच या अन्वेषण लंबित है, तो, ऐसी अपील, आवेदन, मुकदमा, जांच या अन्वेषण का निपटारा, जारी रखा जाएगा, आयोजित किया जाएगा या बनाया जाएगा, जैसा भी मामला हो, दंड प्रक्रिया संहिता. 1973 (2 वर्ष 1974) के प्रावधानों के अनुसार, जैसा कि ऐसे प्रारंभ से ठीक पहले लागू था (इसके बाद उक्त संहिता के रूप में संदर्भित), जैसे कि यह संहिता लागू नहीं हुआ था:
(b) सभी अधिसूचनाएं प्रकाशित, घोषणाएं जारी, शक्तियां प्रदान की गईं, नियमों द्वारा प्रदान किए गए प्रपत्र, स्थानीय क्षेत्राधिकार परिभाषित, वाक्य पारित और आदेश, नियम और नियुक्तियां, विशेष मजिस्ट्रैट के रूप में नियुक्तियां नहीं होने के कारण, उक्त संहिता के अधीन की गईं और जो इस संहिता के प्रारंभ से ठीक पहले लागू हैं, क्रमशः इस संहिता के संबंधित प्रावधानों के अधीन प्रकाशित, जारी, प्रदान, निर्दिष्ट, परिभाषित, पारित या की गई मानी जाएंगी;

(c) उक्त संहिता के अधीन दी गई कोई भी स्वीकृति या सहमति, जिसके अनुसरण में उस संहिता के अधीन कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई थी, इस संहिता के संबंधित प्रावधानों के अधीन दी गई या दी गई मानी जाएगी और ऐसी स्वीकृति या सहमति के अनुसरण में इस संहिता के अधीन कार्यवाही शुरू की जा सकती है।

(3) जहां उक्त संहिता के अधीन किसी आवेदन या अन्य कार्यवाही के लिए निर्दिष्ट अवधि इस संहिता के प्रारंभ पर या उससे पहले समाप्त हो गई थी, इस संहिता में कुछ भी ऐसा नहीं माना जाएगा जो केवल इस तथ्य के कारण कि इस संहिता द्वारा इसके लिए एक लंबी अवधि निर्दिष्ट की गई है या इस संहिता में समय के विस्तार के लिए प्रावधान किए गए हैं, इस संहिता के अधीन ऐसे किसी आवेदन को बनाने या कार्यवाही शुरू करने में सक्षम बनाता है।"

14. निरसन और संरक्षण के प्रावधानों का केवल अवलोकन, यह प्रकट करता है कि यह पूर्ववर्ती दं.प्र.सं. 1973 में किए गए किसी भी राज्य संशोधन पर मौन है। अब, तुलनात्मक अध्ययन करना प्रासंगिक होगा, विशेष रूप से पुराने दं.प्र.सं. की धारा 438 के अधीन प्रदान की गई अग्रिम जमानत के प्रावधान और राज्य विधानमंडल द्वारा संशोधन और बाद में, संहिता 2023 में प्रदान की गई धारा 482 के प्रावधान, क्योंकि प्रश्न विशेष रूप से अग्रिम जमानत के प्रावधानों के संदर्भ में है, हालांकि यह राज्य संशोधनों के अस्तित्व के संबंध में मुद्दे की जड़ में जाता है, जो केंद्रीय विधियों में किए गए हैं, विशेष रूप से भारत का संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची III में प्रदान की गई प्रविष्टियां।

15. पूर्ववर्ती दं.प्र.सं. 1973 की धारा 438, 'अधिनियम 2018' और संहिता 2023 की धारा 482 के अधीन निहित अग्रिम जमानत के प्रावधानों के बीच अंतर को दर्शाने वाला तुलनात्मक चार्ट निम्नानुसार दिया गया है:

धारा 438, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973	**धारा 438, दंड प्रक्रिया संहिता (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, 2018 (उ.प्र. अधिनियम सं. 4 वर्ष 2019)**	**धारा 482, भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 ("भा.ना.सु.सं.")**
"438. [(1) जहां किसी व्यक्ति को यह विश्वास करने का कारण है कि उसे गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है, तो वह इस धारा के अधीन एक निर्देश के लिए उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय में आवेदन कर सकता है कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में उसे	438.(1) <u>जहां</u> किसी व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसे गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है, वह इस धारा के अधीन एक निर्देश के लिए उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय को आवेदन कर सकता है कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में उसे	"482. *<u>गिरफ्तारी की आशंका वाले व्यक्ति को जमानत देने का निर्देश.- (1) जब</u>* किसी व्यक्ति को यह विश्वास करने का कारण हो कि उसे गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है, तो वह इस धारा के अधीन एक निर्देश के लिए उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय में

जमानत पर रिहा किया जाएगा; और वह न्यायालय, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित कारकों पर विचार करने के बाद, अर्थात्-	जमानत पर रिहा किया जाए, और वह न्यायालय, निम्नलिखित कारकों पर विचार करने के बाद, अन्य बातों के साथ, अर्थात्:-	आवेदन कर सकता है; *और वह न्यायालय, यदि वह उचित समझे, तो निर्देश* दे सकता है कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में, उसे जमानत पर रिहा किया जाएगा।
(i) आरोप की प्रकृति और गंभीरता;	i. आरोप की प्रकृति और गंभीरता;	*(2) जब उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय उप-धारा (1) के अधीन एक निर्देश देता है, तो वह विशेष मामले के तथ्यों के प्रकाश में ऐसे निर्देशों में ऐसी शर्तें शामिल कर सकता है, जैसा कि वह उचित समझे, जिसमें शामिल है-*
(ii) आवेदक के पूर्ववृत्त जिसमें यह तथ्य शामिल है कि क्या उसने पहले किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि पर कारावास भुगता है;	ii. आवेदक के पूर्ववृत्त, जिसमें यह तथ्य शामिल है कि क्या उसने पहले किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि पर कारावास भुगता है;	(i) यह *शर्त* कि *व्यक्ति* अपने आप को एक पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए उपलब्ध कराएगा, जब और जहां आवश्यक हो;
(iii) आवेदक द्वारा न्याय से भागने की संभावना; और	आवेदक द्वारा न्याय से भागने की संभावना;	(ii) यह *शर्त* कि *व्यक्ति*, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को इस तरह के तथ्यों को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को प्रकट करने से हतोत्साहित करने के लिए कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा;
(iv) जहां आरोप आवेदक को इस प्रकार गिरफ्तार करके उसे चोट पहुंचाने या अपमानित करने के उद्देश्य से लगाया गया है, या तो आवेदन को तुरंत अस्वीकार कर सकता है या अग्रिम जमानत देने के लिए एक अंतरिम आदेश जारी कर सकता है:	iii. और जहां आरोप आवेदक को इस प्रकार गिरफ्तार करके उसे चोट पहुंचाने या अपमानित करने के उद्देश्य से लगाया गया है;	(iii) यह *शर्त* कि *व्यक्ति* न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा;
परंतु, जहां उच्च न्यायालय या, जैसा भी हो, सत्र न्यायालय ने इस उप-धारा के अधीन कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है या अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन को अस्वीकार कर दिया है, तो एक पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी को बिना वारंट के, आवेदक को ऐसे आवेदन में आशंकित आरोप के आधार पर गिरफ्तार करना उपलब्ध होगा।	iv. आवेदन को तुरंत निरस्त कर दें या अग्रिम जमानत देने के लिए एक अंतरिम आदेश जारी करें: परंतु यह कि जहां उच्च न्यायालय या, जैसा भी हो, सत्र न्यायालय ने इस उप-धारा के अधीन कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है या अग्रिम जमानत देने के आवेदन को निरस्त कर दिया है, तो पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी के लिए यह खुला होगा कि वह ऐसे आवेदन में आशंकित आरोप के आधार पर बिना वारंट के आवेदक को गिरफ्तार करे।	(iv) ऐसी अन्य शर्त, जो धारा 480 की उप-धारा (3) के अधीन लगाई जा सकती है, जैसे कि जमानत उस धारा के अधीन दी गई थी।
(1ए) जहां न्यायालय उप-धारा (1) के अधीन एक अंतरिम आदेश देता है, तो वह तुरंत लोक अभियोजक	(2) जहां उच्च न्यायालय या, जैसा भी हो, सत्र न्यायालय, उप-धारा (1) के अधीन अग्रिम जमानत देने के लिए एक अंतरिम आदेश जारी	*(3) यदि ऐसा व्यक्ति उसके बाद एक पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी द्वारा ऐसे आरोप पर*

और पुलिस अधीक्षक को कम से कम सात दिन का नोटिस दिए जाने का कारण बनेगा, ऐसे आदेश की एक प्रति के साथ, लोक अभियोजक को सुनवाई का उचित अवसर देने के दृष्टिकोण से, जब आवेदन को न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से सुना जाएगा। (1बी) अग्रिम जमानत मांगने वाले आवेदक की उपस्थिति, आवेदन की अंतिम सुनवाई और न्यायालय द्वारा अंतिम आदेश पारित करते समय अनिवार्य होगी, यदि किसी आवेदन पर, जहां उच्च न्यायालय या, जैसी भी स्थिति हो, सत्र न्यायालय ने इस उप-धारा के अधीन कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है या अग्रिम जमानत देने के आवेदन को अस्वीकार कर दिया है, तो थाने के प्रभारी अधिकारी के लिए यह खुला होगा कि वह बिना वारंट के, ऐसे आवेदन में आशंकित आरोप के आधार पर आवेदक को गिरफ्तार कर सके। (2) जहां उच्च न्यायालय या, जैसी भी स्थिति हो, सत्र न्यायालय, *उप-धारा (1) के तहत अग्रिम जमानत देने के लिए अंतरिम आदेश जारी करना समीचीन समझता है, न्यायालय उसमें वह तारीख इंगित करेगा, जिस पर अग्रिम जमानत देने के आवेदन की अंतिम सुनवाई की जाएगी और उस पर आदेश पारित किया जाएगा, जैसा कि*	करना समीचीन समझता है, न्यायालय उसमें वह तिथि इंगित करेगा, जिस पर अग्रिम जमानत देने के आवेदन को अंततः सुना जाएगा, जैसा कि न्यायालय उचित समझे, और यदि न्यायालय अग्रिम जमानत देने वाला कोई आदेश पारित करता है, तो ऐसे आदेश में अन्य बातों के साथ निम्नलिखित शर्तें शामिल होंगी, अर्थात्:- i. यह कि आवेदक आवश्यकतानुसार एक पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए स्वयं को उपलब्ध कराएगा; ii. यह कि आवेदक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा जिससे उसे ऐसे तथ्यों को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को प्रकट करने से हतोत्साहित किया जा सके; iii. यह कि आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा; और iv. ऐसी अन्य शर्तें जो धारा 437 की उप-धारा (3) के अधीन लगाई जा सकती हैं, जैसे कि जमानत उस धारा के अधीन दी गई थी। स्पष्टीकरण:-उप-धारा (1) के अधीन निर्देश के लिए आवेदन पर दिया गया अंतिम आदेश इस संहिता के उद्देश्य के लिए एक	*बिना वारंट के गिरफ्तार किया जाता है, और गिरफ्तारी के समय या ऐसे अधिकारी की हिरासत में रहते हुए किसी भी समय जमानत देने के लिए तैयार है, तो उसे जमानत पर रिहा किया जाएगा; और यदि एक मजिस्ट्रेट जो ऐसे अपराध का संज्ञान लेता है, यह निर्णय लेता है कि उस व्यक्ति के विरुद्ध पहली बार में वारंट जारी किया जाना चाहिए, तो वह उप-धारा (1) के अधीन न्यायालय के निर्देश के अनुरूप एक जमानती वारंट जारी करेगा।* *(4) इस धारा में कुछ भी भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 65 और धारा 70 की उप-धारा (2) के अधीन अपराध करने के आरोप में किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी से जुड़े किसी भी मामले पर लागू नहीं होगा।"*

न्यायालय उचित समझे, और यदि न्यायालय अग्रिम जमानत देते हुए कोई आदेश पारित करता है, तो ऐसे आदेश में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित शर्तें शामिल होंगी, अर्थात्:-	अंतर्वर्ती आदेश के रूप में नहीं माना जाएगा।	
i. यह शर्त कि आवेदक जब और जैसे आवश्यक हो, पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए स्वयं को उपलब्ध कराएगा;	(3) जहां न्यायालय उप-धारा (1) के अधीन एक अंतरिम आदेश देता है, वह तुरंत लोक अभियोजक और पुलिस अधीक्षक को कम से कम सात दिन का नोटिस, ऐसे आदेश की प्रति के साथ दिया जाएगा, जिससे लोक अभियोजक को उचित अवसर दिया जा सके जब आवेदन को अंततः न्यायालय द्वारा सुना जाएगा।	
(i) यह शर्त कि आवेदक अपने आप को पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए उपलब्ध कराएगा, जब और जहां आवश्यक हो;	(4) उप-धारा (2) के अधीन अंतरिम आदेश में इंगित तिथि पर, न्यायालय लोक अभियोजक और आवेदक को सुनेगा और उनके तर्कों पर उचित विचार के बाद, वह अंतरिम आदेश की पुष्टि, संशोधन या रद्द कर सकता है।	
(ii) यह शर्त कि आवेदक, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को इस तरह के तथ्यों को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को प्रकट करने से हतोत्साहित करने के लिए कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा,	(5) उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय, जैसा भी हो, उप-धारा (1) के अधीन अग्रिम जमानत देने के आवेदन का अंतिम रूप से ऐसे आवेदन की तिथि से 30 दिनों के भीतर निस्तारण करेगा।	
(iii) यह शर्त कि आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा; और	(6) इस धारा के प्रावधान लागू नहीं होंगे,-	
(iv) ऐसी अन्य शर्तें जो धारा 437 की उप-धारा (3) के अधीन लगाई जा सकती हैं, जैसे कि जमानत उस धारा के अधीन दी गई थी।	(ए) उन अपराधों पर जो उत्पन्न होते हैं, गैरविधिक अपराध (रोकथाम) अधिनियम, 1967; स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985; शासकीय गोपनीयता अधिनियम, 1923; उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स और	
(3) यदि ऐसा व्यक्ति उसके बाद थाने के प्रभारी अधिकारी द्वारा ऐसे आरोप पर बिना वारंट के गिरफ्तार किया जाता है, और		

गिरफ्तारी के समय या ऐसे अधिकारी की हिरासत में रहते हुए किसी भी समय जमानत देने के लिए तैयार है, तो उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा; और यदि ऐसे अपराध का संज्ञान लेने वाला मजिस्ट्रेट निर्णय लेता है कि पहली बार में उस व्यक्ति के विरुद्ध वारंट जारी किया जाना चाहिए, तो वह उप-धारा (1) के तहत न्यायालय के निर्देश के अनुरूप जमानती वारंट जारी करेगा। *(4) इस धारा की कोई बात ऐसे किसी मामले पर लागू नहीं होगी, जिसमें भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 376 की उप-धारा (3) या धारा 376एबी या धारा 376डीए या धारा 376डीबी के अधीन अपराध करने के आरोप में किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी शामिल हो।*	असामाजिक गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1986. (बी) उन अपराधों में, जिनमें मृत्युदंड दिया जा सकता है (7) यदि इस धारा के अधीन किसी व्यक्ति द्वारा उच्च न्यायालय में कोई आवेदन योजित किया गया है, तो उस व्यक्ति के किसी आवेदन को सत्र न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया जाएगा।"	

अनुवादित

16. यह उल्लेख करना उचित है कि पूर्ववर्ती दं.प्र.सं., 1973 की धारा 438 में निहित पुराना प्रावधान संहिता 2023 की धारा 482 में निहित अग्रिम जमानत के नए प्रावधान से पूर्णतः भिन्न है। यह ऐसा मामला नहीं है, जहां पूर्ववर्ती दं.प्र.सं., 1973 की धारा 438 में निरस्त प्रावधान को संहिता 2023 की नई धारा 482 के अधीन शब्दशः बनाए रखा गया है, जो इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि पूर्ववर्ती दं.प्र.सं., 1973 की धारा 438 में राज्य संशोधनों को संहिता 2023 की नई धारा 482 में पढ़ा जाना है क्योंकि उपरोक्त दोनों प्रावधान भिन्न हैं और बिल्कुल समान नहीं हैं।

17. इसके अतिरिक्त पूर्ववर्ती 'दं.प्र.सं. 1973' की धारा 438 में निहित पुराने प्रावधान में कुछ मार्गदर्शक कारक थे, जिन पर अग्रिम जमानत मांगने वाले आवेदन का निर्णय करते समय विचार किया जाना था, हालांकि, संहिता 2023 की धारा 482 में निहित नया प्रावधान उन मार्गदर्शक कारकों को हटा देता है, जिन्हें माननीय

न्यायालय को अग्रिम जमानत आवेदनों की सुनवाई करते समय ध्यान में रखना था, जैसे कि आरोप की प्रकृति और गंभीरता, आपराधिक पूर्ववृत्त और आरोपी द्वारा न्याय से बचने की संभावना।

18. पूर्ववर्ती दं.प्र.सं. 1973 की पुरानी धारा 438(5) के अधीन 30 (तीस) दिनों के भीतर अग्रिम जमानत आवेदन का निर्णय करने की अनिवार्य आवश्यकता भी संहिता 2023 की नई धारा 482 में हटा दी गई है। इसी तरह, पूर्ववर्ती दं.प्र.सं., 1973 की धारा 438(1ए) के अधीन उस आवश्यकता को, जो यह प्रावधानित करती थी कि जहां माननीय न्यायालय उपरोक्त धारा 438 की उप-धारा (1) के अधीन एक अंतरिम आदेश देता है, वह तुरंत लोक अभियोजक और पुलिस अधीक्षक को कम से कम 'सात दिन' का नोटिस, ऐसे आदेश की प्रति के साथ देगा, जिससे लोक अभियोजक को उचित अवसर दिया जा सके, जब आवेदन को अंततः माननीय न्यायालय द्वारा सुना जाएगा, भी संहिता 2023 की धारा 482 के अधीन समाप्त कर दिया गया है।

19. स्पष्ट रूप से, संहिता 2023 की धारा 482 के अधीन, माननीय न्यायालयों को अग्रिम जमानत देने के लिए व्यापक शक्तियां और विवेक प्रदान किया गया है। यह केवल धारा संख्या नहीं है बल्कि अग्रिम जमानत देने के प्रावधान के अवयव और आशय भी संहिता 2023 की धारा 482 में निहित नए प्रावधान के अधीन बदल दिया गया है।

20. इस मोड़ पर, यह जांच करना है कि यदि किसी केंद्रीय विधि को भारत का संविधान के साथ संलग्न सातवीं अनुसूची की सूची-III में निहित प्रविष्टियों के संबंध में निरस्त और पुनः अधिनियमित किया जाता है, जिसमें राज्य विधानमंडलों द्वारा पूर्ववर्ती अधिनियम में किए गए संशोधन, राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त करने के बाद भी, निहित रूप से निरस्त हो जाएंगे या स्वतंत्र रूप से अपना अस्तित्व बनाए रखेंगे।

21. पूर्ववर्ती केंद्रीय विधि में राज्य संशोधनों/राज्य विधियों के निरसन के प्रश्न में जाने से पहले, अनुच्छेद 254 के प्रावधान पर चर्चा करना आवश्यक है। भारत का संविधान का अनुच्छेद 254 निम्नानुसार है:

"254. संसद द्वारा बनाए गए विधियों और राज्यों की विधानसभाओं द्वारा बनाए गए विधियों के बीच असंगति.- (1) यदि किसी राज्य की विधानसभा द्वारा बनाए गए विधि का कोई प्रावधान संसद द्वारा बनाए गए विधि के किसी प्रावधान के विपरीत है, जिसे बनाने के लिए संसद सक्षम है, या समवर्ती सूची में गिनाए गए मामलों में से किसी एक के संबंध में किसी मौजूदा विधि के किसी प्रावधान के विपरीत है, तो, खंड (2) के प्रावधानों के अधीन, संसद द्वारा बनाया गया विधि, चाहे वह ऐसे राज्य की विधानसभा द्वारा बनाए गए विधि से पहले या बाद में पारित किया गया हो, या, जैसा भी मामला हो, मौजूदा विधि, प्रबल होगा और राज्य की विधानसभा द्वारा बनाया गया विधि, विरोध की सीमा तक, शून्य होगा।

(2) जहां समवर्ती सूची में दिए गए मामलों में से किसी एक के संबंध में किसी राज्य की विधानसभा द्वारा बनाए गए विधि में संसद द्वारा बनाए गए पहले के विधि या उस मामले के संबंध में किसी मौजूदा विधि के

प्रावधानों के विपरीत कोई प्रावधान है, तो, ऐसे राज्य की विधानसभा द्वारा इस प्रकार बनाया गया विधि, यदि वह राष्ट्रपति के विचार के लिए सुरक्षित रखा गया है और उनकी सहमति प्राप्त कर ली है, तो उस राज्य में प्रभावी होगा:

परंतु यह कि इस खंड में कुछ भी संसद को किसी भी समय उसी विषय के संबंध में कोई विधि बनाने से नहीं रोकेगा, जिसमें राज्य की विधानसभा द्वारा इस प्रकार बनाए गए विधि को जोड़ने, संशोधित करने, बदलने या निरस्त करने वाला विधि भी शामिल है।"

22. भारत का संविधान के अनुच्छेद 254 की उप-धारा 1 और 2, दो विधियों के बीच किसी भी असंगति के संबंध में बहुत स्पष्ट है; एक संसद द्वारा और दूसरा राज्यों की विधानसभाओं द्वारा और यह प्रावधान प्रदान करता है कि किसी भी विधि के विरोध की सीमा तक, राज्य की विधानसभा द्वारा संसद द्वारा बनाए गए विधि का अधिनियम शून्य होगा।

23. वास्तव में मुद्दे का सार अनुच्छेद 254 के परंतुक में शामिल है जो प्रावधानित करता है कि अनुच्छेद 254 का प्रावधान संसद को "**समान विषय वस्तु**" के संबंध में कोई विधि बनाने से नहीं रोकेगा, राज्य की विधानसभा द्वारा इस प्रकार बनाए गए विधि को **जोड़ने, संशोधित करने, बदलने या निरस्त** करने वाली विधि।

24. निस्संदेह, दं.प्र.सं. 1973 की धारा 438 में संशोधन लाने के लिए उ.प्र. राज्य द्वारा अधिनियमित 'अधिनियम 2018 (अधिनियम सांख्य. वर्ष 2019)' को भारत के राष्ट्रपति से सहमति प्राप्त हुई थी।

25. यहां यह उल्लेख करना उचित है कि 16.7.2024 को, भारत सरकार, विधि एवं न्याय विभाग ने सामान्य खंड अधिनियम 1897 (इसके बाद 'अधिनियम 1897' के रूप में संदर्भित) की धारा 8 के अनुसरण में एक अधिसूचना जारी की, जो प्रावधानित करती है कि संसद द्वारा बनाए गए किसी अधिनियम में; राज्य की विधानसभा द्वारा बनाए गए अधिनियम में; अध्यादेश; भारत का संविधान के अनुच्छेद 240 के अधीन बनाए गए विनियम; राष्ट्रपति का आदेश; किसी अधिनियम, अध्यादेश या विनियम के अधीन बनाए गए नियम विनियम आदेश या अधिसूचना में भा.दं.सं., दं.प्र.सं. और साक्ष्य अधिनियम या उसके किसी प्रावधान का कोई संदर्भ दिया गया है, तो ऐसा संदर्भ क्रमशः पढ़ा जाएगा। 16.7.2024 की अधिसूचना नीचे प्रस्तुत की गई है:

"विधि एवं न्याय मंत्रालय

(विधायी विभाग)

अधिसूचना

नई दिल्ली, 16 जुलाई, 2024,

एस.ओ. 2790(ई). *सामान्य खंड अधिनियम, 1897 (10 वर्ष 1897) की धारा 8 के अनुसरण में, केंद्र सरकार इसके द्वारा अधिसूचित करती है कि जहां भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860), या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) या भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1 वर्ष 1872) या उसके किसी प्रावधान का कोई संदर्भ किसी में दिया गया है-*

(ए) संसद द्वारा बनाया गया अधिनियम, या

(बी) किसी राज्य की विधानसभा द्वारा बनाया गया अधिनियम;

(सी) अध्यादेश,

(डी) संविधान के अनुच्छेद 240 के अधीन बनाए गए विनियम;

(ई) राष्ट्रपति का आदेश,

(एफ) किसी अधिनियम, अध्यादेश या विनियम के अधीन बनाए गए नियम, विनियम, आदेश या अधिसूचना, जो वर्तमान में लागू है, ऐसा संदर्भ क्रमशः भारतीय न्याय संहिता, 2023 (45 वर्ष 2023) (बीएनएस), भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 (46 वर्ष 2023) (बीएनएसएस) या भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 2023 (47 वर्ष 2023) (बीएसए) के संदर्भ के रूप में पढ़ा जाएगा, और ऐसे विधि के संबंधित प्रावधानों की व्याख्या तदनुसार की जाएगी।

[एफ.सं. 13(12)/2024-विधा.1]

दिवाकर सिंह, अपर सचिव"

26. 'अधिनियम 1897' की धारा 8 प्रावधानित करती है कि निरस्त अधिनियमों के संदर्भों की व्याख्या कैसे की जाए। यह कहता है कि जब किसी पूर्व अधिनियम के प्रावधान को निरस्त और पुनः अधिनियमित किया जाता है, तो अन्य अधिनियमों या अभिलेखों में निरस्त प्रावधान के किसी भी संदर्भ की व्याख्या पुनः अधिनियमित प्रावधानों के संदर्भ के रूप में की जानी चाहिए, उदाहरण के लिए किसी भी अधिनियम में दं.प्र.सं. का कोई भी संदर्भ जो वर्तमान में प्रचलित है, संहिता 2023 के संदर्भ के रूप में पढ़ा जाएगा और इसी तरह अन्य निरस्त अधिनियमों पर लागू होगा। अधिनियम 1897 की धारा 8 नीचे प्रस्तुत की गई है:

"8. निरस्त अधिनियमों के संदर्भों की व्याख्या. [(1)] [धारा 8 को अधिनियम 18 वर्ष 1919, धारा 2 और अनु.I द्वारा इसकी उप-धारा (1) के रूप में पुनः क्रमांकित किया गया।] जहां यह अधिनियम, या इस अधिनियम के प्रारंभ होने के बाद बनाया गया कोई [केंद्रीय अधिनियम] [A.O. 1937 द्वारा प्रतिस्थापित, "कौन्सिल इन गवर्नर जनरल के अधिनियम" के लिए।] या विनियम, संशोधन के साथ या बिना, किसी पूर्व अधिनियम के किसी प्रावधान को निरस्त और पुनः अधिनियमित करता है, तो किसी अन्य अधिनियम में या किसी उपकरण में इस प्रकार निरस्त प्रावधान के संदर्भ, जब तक कि कोई भिन्न आशय प्रकट न हो, इस प्रकार पुनः अधिनियमित प्रावधान के संदर्भ के रूप में माने जाएंगे।2[[जहां 15 अगस्त, 1947 से पहले, यूनाइटेड किंगडम की संसद के किसी अधिनियम ने किसी पूर्व अधिनियम के किसी प्रावधान को निरस्त और पुनः अधिनियमित किया] [धारा 8 को इसकी उप-धारा (1) के रूप में पुनः क्रमांकित किया गया और उप-धारा (2) को अधिनियम 18 वर्ष 1919, धारा 2 और अनु.I द्वारा डाला गया।] संशोधन के साथ या बिना, तो किसी [केंद्रीय अधिनियम] [ए.ओ. 1937 द्वारा प्रतिस्थापित, "कौन्सिल इन गवर्नर जनरल के अधिनियम" के लिए।] में या किसी विनियम या उपकरण में इस प्रकार निरस्त प्रावधान के संदर्भ, जब तक कि कोई भिन्न आशय प्रकट न हो, इस प्रकार पुनः अधिनियमित प्रावधान के संदर्भ के रूप में माने जाएंगे।]"

27. इसका अर्थ यह है कि अधिनियम 1897 की धारा 8 यह प्रदान नहीं करती कि समवर्ती सूची के किसी विषय पर एक केंद्रीय अधिनियम के निरसन का क्या प्रभाव होगा, जिस पर राज्य संशोधन पेश किए गए हैं।

28. यहां यह उल्लेख करना भी उचित नहीं है कि अधिसूचना का किसी विधि या अधिनियम से अलग अर्थ होता है। जी.पी.सिंह की वैधानिक व्याख्या के सिद्धांत पुस्तक में दी गई अधिसूचना की परिभाषा के संदर्भ के अनुसार, अधिसूचना शब्द की व्याख्या मुख्य रूप से वैधानिक परिभाषाओं और न्यायिक उदाहरणों के संदर्भ में की जाती है। हालांकि पुस्तक एक स्वतंत्र 'शब्दकोश शैली' की परिभाषा प्रदान नहीं करती है, यह अधिनियम 1897 और प्रासंगिक मामले के विधियों जैसे प्रमुख स्रोतों से ली गई है। उत्तर प्रदेश सामान्य खंड अधिनियम 1904 (उ.प्र. अधिनियम सं. I वर्ष 1904) से अधिसूचना की परिभाषा निम्नानुसार ली जा सकती है:

'अधिसूचना का अर्थ है आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना।'
इसके अतिरिक्त, भारत के संविधान के अनुच्छेद 366(19) के अधीन 'सार्वजनिक अधिसूचना' को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:
"सार्वजनिक अधिसूचना" का अर्थ है भारत के गज़ट में अधिसूचना, या, जैसा भी हो, किसी राज्य के आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना;

29. उपरोक्त को देखते हुए, एक अधिसूचना बाध्यकारी है और विधि का बल रखती है, जब तक कि इसे किसी न्यायालय द्वारा रद्द नहीं किया जाता है या जारी करने वाले प्राधिकारी द्वारा वापस नहीं लिया जाता है, हालांकि, यह मूल विधि के दायरे को ओवरराइड या उससे आगे नहीं जा सकती; इसका अर्थ यह है कि अधिसूचना विधि के समान नहीं है और इसलिए, 16.7.2024 की अधिसूचना का राज्य विधि यानी 'अधिनियम सं. 4 वर्ष 2019' की निरंतरता या प्रवर्तनीयता के संबंध में कोई प्रभाव नहीं होगा।

30. जहां तक अधिनियम 1897 की धारा 24 के अधीन निहित प्रावधान का संबंध है, वह यह निर्धारित करता है कि जहां कोई केंद्रीय अधिनियम या विनियम संशोधन के साथ या बिना निरस्त या पुनः अधिनियमित किया जाता है, तो जब तक अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं किया जाता है, निरस्त अधिनियम या विनियम के अधीन की गई या जारी की गई कोई भी नियुक्ति, अधिसूचना, आदेश आदि, जहां तक यह पुनः अधिनियमित प्रावधान के साथ असंगत नहीं है, लागू रहेगा और इस प्रकार पुनः अधिनियमित प्रावधान के अधीन की गई मानी जाएगी। अधिनियम 1897 की धारा 24 निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत की गई है:

"24. निरस्त और पुनः अधिनियमित अधिनियमों के अधीन जारी आदेशों आदि की निरंतरता-जहां कोई केंद्रीय अधिनियम या विनियम, इस अधिनियम के प्रारंभ होने के बाद, संशोधन के साथ या बिना निरस्त और पुनः अधिनियमित किया जाता है, तो, जब तक अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं किया जाता है, निरस्त अधिनियम या विनियम के अधीन [की गई या] [अधिनियम 1 वर्ष 1903, धारा 3 और अनु.II द्वारा डाला गया।] जारी की गई कोई भी [नियुक्ति, अधिसूचना] [अधिनियम 1 वर्ष 1903, धारा 3 और अनु.II द्वारा डाला गया।], आदेश,

योजना, नियम, प्रपत्र या उपनियम, जहां तक यह पुनः अधिनियमित प्रावधानों के साथ असंगत नहीं है, लागू रहेगा, और इस प्रकार पुनः अधिनियमित प्रावधानों के अधीन [की गई या] [अधिनियम 1 वर्ष 1903, धारा 3 और अनु.II द्वारा डाला गया।] जारी की गई मानी जाएगी, जब तक और जब तक कि इसे इस प्रकार पुनः अधिनियमित प्रावधानों के अधीन [की गई या] [अधिनियम 17 वर्ष 1914, धारा 2 और अनु.I द्वारा डाला गया।] जारी की गई किसी [नियुक्ति, अधिसूचना] [अधिनियम 1 वर्ष 1903, धारा 3 और अनु.II द्वारा डाला गया।], आदेश, योजना, नियम, प्रपत्र या उपनियम द्वारा अधिक्रमित नहीं किया जाता है [और जब कोई [केंद्रीय अधिनियम] [अधिनियम 1 वर्ष 1903, धारा 3 और अनु.II द्वारा डाला गया।] या विनियम, जो [अनुसूचित जिला अधिनियम, 1874 (14 वर्ष 1874)] ए.ओ.1937 द्वारा निरस्त।] की धारा 5 या 5ए के अधीन एक अधिसूचना द्वारा या किसी समान विधि द्वारा, किसी स्थानीय क्षेत्र तक विस्तारित किया गया है, एक बाद की अधिसूचना द्वारा, ऐसे क्षेत्र या उसके किसी भाग से वापस ले लिया गया है और पुनः विस्तारित किया गया है, तो ऐसे अधिनियम या विनियम के प्रावधानों को ऐसे क्षेत्र या भाग में इस धारा के अर्थ के भीतर निरस्त और पुनः अधिनियमित माना जाएगा।]"

31. यह स्पष्ट है कि किसी केंद्रीय अधिनियम या विनियम के निरसन और पुनः अधिनियमन के मामलों में, उसके अधीन की गई या जारी की गई अधिसूचनाएं, आदेश, नियम, उपनियम संचालित होते रहेंगे और अस्तित्व में रहेंगे जब तक कि वही स्पष्ट रूप से प्रतिबंधित नहीं हो जाता है और इसलिए, यह स्पष्ट है कि अधिनियम 1897 की धारा 24 का प्रावधान 'राज्य संशोधनों' के मामलों में लागू नहीं होगा, जो भारत का संविधान के सातवीं अनुसूची की सूची-III में प्रविष्टियों के संबंध में केंद्रीय विधि में पेश किए गए हैं।

32. वह बिन्दु भी, जो इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित कर रहा है, वह है **माता सेवक उपाध्याय बनाम उ.प्र.राज्य, 1995 JIC 1168** में इस माननीय न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा निर्धारित विधि और उसके बाद, **2017 11 SCC 62, (एयर्स) रोड्रिग्स बनाम विश्वजीत पी-राणे व अन्य** निर्णय में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुमोदित। बिन्दु निर्णयाधीन यह था कि क्या पिछले दं.प्र.सं. 1898 के संदर्भ में आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम 1932 (इसके बाद 'अधिनियम 1932' के रूप में संदर्भित) की धारा 10 के अधीन जारी की गई अधिसूचना को दं.प्र.सं. 1973 के संदर्भ में जारी की गई के रूप में पढ़ा जाना है या नहीं?

33. जब पुराना दं.प्र.सं. 1898 अस्तित्व में था, तब अधिनियम 1932 नामक एक संसदीय अधिनियम लागू किया गया था और धारा 10 राज्य सरकार को दं.प्र.सं. 1898 में कुछ प्रावधानों में संशोधन करने की शक्ति प्रावधानित करती है, जिससे कुछ अपराधों को अधिसूचना जारी करके और ऐसी शक्ति का आह्वान करके 'जमानती' और 'गैर-संज्ञेय' बनाया जा सके। राज्य सरकार ने 31.7.1989 को एक अधिसूचना जारी की जिसमें भा.दं.सं. 1860 की धारा 506 के अधीन अपराध को संज्ञेय और गैर-जमानती घोषित किया गया और वही दं.प्र.सं. 1973 के निरसन तक अस्तित्व में रहा, लेकिन जैसे ही पुराना दं.प्र.सं. 1898 निरस्त किया गया और पूर्ववर्ती दं.प्र.सं. 1973 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया, 31.7.1989 की अधिसूचना को इस न्यायालय के समक्ष इस आधार पर चुनौती दी गई कि अधिनियम 1932 की धारा 10 के अधीन राज्य सरकार की शक्ति केवल दंड

प्रक्रिया संहिता 1898 के संबंध में प्रयोग की जा सकती है और दंड प्रक्रिया संहिता 1973 के अस्तित्व में आने के बाद, शक्ति बनी नहीं रहती है।

34. अधिनियम 1932 की धारा 10 के अधीन जारी अधिसूचना की वैधता का परीक्षण इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा किया गया था और यह निर्णीत किया गया है कि अधिनियम 1932 भी एक केंद्रीय विधि है, जो आपराधिक विधि को पूरक बनाने के लिए अधिनियमित किया गया था और वह कभी भी दं.प्र.सं. 1973 द्वारा निरस्त नहीं किया गया था और इस प्रकार, अधिनियम 1932 की धारा 10 के अधीन जारी अधिसूचना की वैधता को बनाए रखा गया।

35. न केवल पूर्ण पीठ ने यह निर्णय लिया, बल्कि अन्य माननीय उच्च न्यायालयों ने विभिन्न निर्णयों के माध्यम से अपने विचार रखे, जिससे दो विरोधाभासी विचार उभरे, जो अंततः (एयर्स) रोड्रिग्स (उपरोक्त) में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत किया गया, जिसने अंततः माता सेवक उपाध्याय (उपरोक्त) में निर्धारित विधि को बनाए रखा। हालांकि, इस न्यायालय की माननीय पूर्ण पीठ और माननीय उच्चतम न्यायालय का निर्णय वर्तमान मामले की तुलना में पूरी तरह से तथ्य के अलग आधार पर है, क्योंकि अधिनियम 1932 आपराधिक विधियों को पूरक बनाने के लिए एक केंद्रीय विधि था और यह पूरी तरह से एक अधिनियम था, जिसे पुराने दं.प्र.सं. 1898 को प्रतिस्थापित करते हुए दं.प्र.सं. 1973 द्वारा निरस्त नहीं किया गया था जबकि, वर्तमान मामले में बिन्दु संहिता 2023 के पुनः अधिनियमन के बाद पूर्ववर्ती दं.प्र.सं. 1973 में उ.प्र. के राज्य विधानमंडल द्वारा किए गए संशोधनों की प्रयोज्यता के संबंध में है। वास्तव में आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम 1897 के अधीन कोई अधिसूचना नहीं है, बल्कि यह संसद द्वारा एक स्वतंत्र विधि है और इसलिए, इसे विधि एवं न्याय विभाग, भारत सरकार द्वारा जारी 16.7.2024 की अधिसूचना के समान नहीं किया जा सकता है। जैसा कि पूर्ववर्ती प्रस्तरों में स्पष्ट रूप मए चर्चा की गई है कि एक अधिसूचना की निरंतरता का विधानमंडल द्वारा पारित किसी विधि की निरंतरता से कोई समानता नहीं है और यह भी स्पष्ट किया गया है कि अधिसूचना एक विधि नहीं है बल्कि यह मूल अधिनियम से शक्ति प्राप्त करके जारी की जाती है।

36. यह न्यायालय इस बात से भी अवगत है कि **द स्टेट ऑफ बॉम्बे बनाम पांडुरंग विनायक चफलकर व अन्य 1953 1 SCC 425, हर्षद एस. मेहता और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2001 8 SCC 257, आंध्र प्रदेश राज्य व अन्य बनाम श्रीमती पी. लक्ष्मी देवी, 2008 4 SCC 720 और हरकेश चंद बनाम कृष्ण गोपाल मेहता व अन्य, 2017 4 SCC 537** वादों में निर्धारित विधि, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं हैं।

37. इस न्यायालय ने **दीपू व अन्य बनाम उ.प्र. राज्य व अन्य 2024 SCC OnLine All 4289** में दिए गए निर्णय व आदेश को भी नोट किया है, जिसमें इस न्यायालय की समवर्ती खंडपीठ ने भा.दं.सं. और दं.प्र.सं. के निरसन और भा.न्या.सं. और भा.ना.सु.सं. के पुनः अधिनियमन के प्रभाव से संबधित बिन्दु को संक्षेप में प्रस्तुत किया है। संदर्भ के लिए उपरोक्त निर्णय के प्रस्तर 16 को नीचे प्रस्तुत किया गया है:

"उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर, यह न्यायालय भा.दं.सं. और दं.प्र.सं. को क्रमशः भा.न्या.सं. और भा.ना.सु.सं.द्वारा निरस्त करने के प्रभाव के संबंध में विधि को भी संक्षेप में प्रस्तुत कर रहा है और वह नीचे उल्लिखित किया जा रहा है:

(1) यदि कोई प्र.सू.रि. 1.7.2024 को या उसके बाद, 1.7.2024 से पहले किए गए अपराध के लिए दर्ज की जाती है, तो प्र.सू.रि. भा.दं.सं. के प्रावधानों के अधीन दर्ज की जाएगी लेकिन अन्वेषण भा.ना.सु.सं.के अनुसार जारी रहेगी।

(ii) 01.07.2024 को लंबित अन्वेषण में (नए आपराधिक विधियों के प्रारंभ की तिथि पर), अन्वेषण दं.प्र.सं. के अनुसार जारी रहेगी जब तक कि पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान नहीं लिया जाता है और यदि सक्षम न्यायालय द्वारा आगे के अन्वेषण के लिए कोई निर्देश दिया जाता है, तो वह दं.प्र.सं. के अनुसार जारी रहेगा;

(iii) 01.07.2024 को या उसके बाद लंबित अन्वेषण पर संज्ञान भा.ना.सु.सं.के अनुसार लिया जाएगा और सभी बाद की कार्यवाही जिसमें अन्वेषण, विचारण या अपील शामिल है, भा.ना.सु.सं.की प्रक्रिया के अनुसार की जाएगी।

(iv) भा.ना.सु.सं.की धारा 531(2)(ए) ने केवल लंबित अन्वेषण, विचारण, अपील, आवेदन और जांच को बचाया, इसलिए, यदि कोई मुकदमा, अपील, संशोधन या आवेदन 01.07.2024 के बाद दिया जाता है, तो वह भा.ना.सु.सं.की प्रक्रिया के अनुसार चलेगा।

(v) 01.07.2024 को लंबित विचारण, यदि 01.07.2024 को या उसके बाद समाप्त होता है तो ऐसे विचारण में पारित निर्णय के विरुद्ध अपील या संशोधन भा.ना.सु.सं.के अनुसार होगी। हालांकि, यदि अपील में कोई आवेदन दायर किया जाता है, जो 01.07.2024 को लंबित था तो दं.प्र.सं. की प्रक्रिया लागू होगी।

(vi) यदि आपराधिक कार्यवाही या आरोप-पत्र को 01.07.2024 को या उसके बाद उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जाती है, जहां अन्वेषण दं.प्र.सं. के अनुसार किया गया था, तो वह भा.ना.सु.सं.की धारा 528 के अधीन दायर की जाएगी न कि धारा 482 दं.प्र.सं. के अधीन।"

38. यह प्रकट होता है कि उपरोक्त मामले में समवर्ती पीठ के समक्ष बिन्दु पूरी तरह से अलग था और यहां बिन्दु, पूर्ववर्ती दं.प्र.सं. 1973 के निरस्त होने के बाद 'अधिनियम 2018 (अधिनियम सं. 4 वर्ष 2019)' के अस्तित्व के संबंध में है और संहिता 2023 के रूप और नाम में नया अधिनियम अस्तित्व में आया इसलिए, उपरोक्त निर्णय का सिद्धांत वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा।

39. अब, सार की ओर आते हुए कि बार-बार, उ.प्र. राज्य सहित राज्य विधानमंडलों ने पूर्ववर्ती दं.प्र.सं. 1973 में संशोधन पेश किए और विशेष रूप से उ.प्र. राज्य ने 'अधिनियम सं. 4 वर्ष 2019' की घोषणा के

आधार पर, दं.प्र.सं. 1973 की धारा 438 में कुछ संशोधन पेश किए। दं.प्र.सं. 1973 के निरसन और संहिता 2023 नामक नए अधिनियम के बाद, पूर्ववर्ती दं.प्र.सं. 1973 में राज्य संशोधनों की प्रयोज्यता पर सवाल उठाया गया है। निस्संदेह, भारत का संविधान के अनुच्छेद 254 के अधीन प्रदान किए गए प्रावधानों के अनुसार संसदीय अधिनियम के विपरीत कोई भी राज्य विधि शून्य होगा, लेकिन जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, एक स्पष्ट बिन्दु, जो विरोधाभास के मुद्दे के समान नहीं है, कि संसद द्वारा बनाया गया बाद का विधि यदि स्पष्ट रूप से, किसी राज्य विधि को निरस्त नहीं करता है, तो क्या, "समान विषय" के संबंध में राज्य विधि निहित रूप से निरस्त हो जाएगा।

40. इस संबंध में, मैं **ज़ेवरभाई अमैदास बनाम बॉम्बे राज्य, 1954 2 SCC 345** में माननीय उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा दिए गए निर्णय का उल्लेख कर सकता हूं जिसमें, उच्चतम न्यायालय ने समान विषय के संबंध में संसद द्वारा बाद के विधि के लागू होने पर राज्य विधि के निहित निरसन के सिद्धांतों से निपटते हुए प्रस्तर संख्या- 13, 14 और 16 में निम्नानुसार धारित किया है:

"13. वर्तमान मामले में, अनुच्छेद 254(2) के परंतुक की शर्तों में अधिनियम -52 वर्ष 1950 द्वारा बॉम्बे अधिनियम का कोई स्पष्ट निरसन नहीं था। फिर निर्णय लेने के लिए एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या 1948, 1949 और 1950 में केंद्रीय विधानमंडल द्वारा आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियाँ) अधिनियम में किए गए संशोधन, भारत सरकार अधिनियम की धारा 107(2) के अंतर्गत आने वाला "अग्रेतर विधि" हैं या अनुच्छेद 254(2) के अंतर्गत आने वाला "समान विषय के संबंध में विधि"। इस प्रावधान के संदर्भ में विचार करने वाली महत्वपूर्ण बात यह है कि क्या विधि "समान विषय के संबंध में" है। यदि बाद का विधि उन मामलों से नहीं बल्कि जो पहले के विधि का विषय बना था, बल्कि अन्य और अलग मामलों से निपटता है, हालांकि संबंधित और सहयोगी प्रकृति का, तो अनुच्छेद 254(2) का कोई आवेदन नहीं होगा। धारा 107(2) और अनुच्छेद 254(2) में निहित सिद्धांत यह है कि जब केंद्र और प्रांत दोनों द्वारा समान आधार को कवर करने वाला विधि होता है, दोनों ही इसे अधिनियमित करने में सक्षम होते हैं, तो केंद्र का विधि राज्य के विधि पर हावी होना चाहिए।

14. इस दृष्टिकोण से मामले पर विचार करते हुए, पहला प्रश्न यह पूछा जाना है कि बॉम्बे अधिनियम 36 वर्ष 1947 का विषय-वस्तु क्या है? प्रस्तावना में कहा गया है कि यह " आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियाँ) अधिनियम, 1946 के अधीन किए गए आदेशों के उल्लंघन के लिए दंड की वृद्धि के लिए प्रदान करने के लिए" था। फिर अगला प्रश्न यह है कि 1948, 1949 और 1950 में बाद के विधि का दायरा क्या है? चूंकि आवेदक को जिस अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है वह 6-4-1951 को किया गया था, इसलिए वर्तमान अपील के उद्देश्य के लिए अधिनियम 52 वर्ष 1950 के प्रभाव पर विचार करना पर्याप्त होगा, जो उस तिथि को लागू था। उस अधिनियम द्वारा, आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियाँ) अधिनियम की धारा 7(1) जैसा कि 1946 में पारित किया गया था और जैसा कि 1948 और 1949 में संशोधित किया गया था, को निरस्त कर दिया गया था, और उसके स्थान पर, एक नई धारा को प्रतिस्थापित किया गया था। उस धारा की योजना यह है कि सजा के उद्देश्यों के लिए, अधिनियम के अधीन अपराधों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है-वे जो सूती

वस्त्र से संबंधित हैं, वे जो खाद्य पदार्थों से संबंधित हैं, और वे जो वस्त्र या खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त आवश्यक वस्तुओं से संबंधित हैं। कई श्रेणियों में लगाए जाने वाले दंड अलग से निर्दिष्ट हैं। खाद्य पदार्थों के संदर्भ में, जो सजा दी जा सकती है जब अपराध में निर्धारित अधिकतम से दोगुना से अधिक खाद्यान्न का कब्जा शामिल है, तो सात साल तक की अवधि के लिए कारावास है, जुर्माने और वस्तुओं की जब्ती के आगे के प्रावधानों के साथ। अन्य मामलों में, कम सजा है कारावास की, जो तीन साल तक बढ़ सकती है। धारा 7 इस प्रकार एक व्यापक कोड है जो अधिनियम के अधीन अपराधों के लिए सजा के पूरे क्षेत्र को कवर करता है, वस्तुओं और अपराध के चरित्र के अनुसार वर्गीकृत। बढ़ी हुई सजा का विषय जो अधिनियम 36 वर्ष 1947 में निपटाया गया है, अधिनियम 52 वर्ष 1950 में भी शामिल है, वही खाद्यान्न की जमाखोरी के मामले तक सीमित है। इसलिए हम मुख्य न्यायमूर्ति छागला और न्यायमूर्ति छैनानी की राय से पूरी तरह सहमत हैं कि अधिनियम 52 वर्ष 1950 अधिनियम 36 वर्ष 1947 के समान विषय के संबंध में एक विधि है।

16. यह सच है, जैसा कि पहले ही बताया गया है, कि अनुच्छेद 254(1) के अधीन एक प्रश्न पर कि क्या संसद का एक अधिनियम राज्य के विधि के विरुद्ध प्रभावी होता है, निरसन का कोई प्रश्न नहीं उठता है; लेकिन वह सिद्धांत जिस पर निहित निरसन का नियम टिका है, अर्थात्, यदि बाद के विधि का विषय-वस्तु पहले के साथ समान है, जिससे वे दोनों एक साथ नहीं खड़े हो सकें, तो पहले को बाद के अधिनियम द्वारा निरस्त कर दिया जाता है, अनुच्छेद 254(2) के अधीन एक प्रश्न पर समान रूप से लागू होगा कि क्या संसद द्वारा आगे का विधि राज्य विधि के समान विषय के संबंध में है। इसलिए हमें यह मानना चाहिए कि बॉम्बे अधिनियम 36 वर्ष 1947 की धारा 2 आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियाँ) अधिनियम 24 वर्ष 1946 की धारा 7 के विरुद्ध प्रभावी नहीं हो सकती है, जैसा कि अधिनियम 52 वर्ष 1950 द्वारा संशोधित किया गया है।"

41. उपरोक्त मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष बिन्दु यह था कि आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियाँ) अधिनियम 24 वर्ष 1946 (अधिनियम 1946) केंद्रीय विधानमंडल द्वारा 9 व 10 जॉर्ज VI, अध्याय 39 द्वारा प्रदत्त शक्तियों के आधार पर अधिनियमित किया गया था और यह पूरे ब्रिटिश भारत पर लागू होता था। धारा 7(1) ने अधिनियम 1946 के अधीन जारी आदेशों के उल्लंघन के लिए सजा के प्रावधान की परिकल्पना की थी, हालांकि, बॉम्बे राज्य ने माना कि अधिनियम 1946 की उपरोक्त धारा 7 में प्रदान की गई तीन साल की कारावास की अधिकतम सजा अपराधों के लिए पर्याप्त नहीं है और इसलिए, सजा बढ़ाने के उद्देश्य से, अधिनियम सं. 36 वर्ष 1947 (अधिनियम 1947 की धारा 2) को अधिनियमित किया। अधिनियम 36 वर्ष 1947 की विषय-वस्तु समवर्ती सूची के भीतर आई और इसलिए, बॉम्बे राज्य ने गवर्नर जनरल की सहमति प्राप्त की और यह 25.11.1947 को लागू हुआ और उसके बाद, वर्ष 1948 में आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियाँ)अधिनियम) के नाम से एक संशोधन हुआ, जिसके द्वारा धारा 7(1) के परंतुक को निरस्त कर दिया गया और एक नया परंतुक प्रतिस्थापित किया गया। इसके अतिरिक्त वर्ष 1949 में धारा 7 (1) को निरस्त कर दिया गया और एक नया खंड प्रतिस्थापित किया गया और उसके बाद केन्द्रीय अधिनियम 52 वर्ष 1950 लागू किया गया, जिसके अधीन पुरानी धारा 7 को निरस्त कर दिया गया और एक नई धारा अधिनियमित की गई। परिणामस्वरूप, अनुच्छेद 254(2) के परंतुक की शर्तों में केन्द्रीय अधिनियम 52 वर्ष 1950 द्वारा बॉम्बे

अधिनियम 36 वर्ष 1947 का कोई स्पष्ट निरसन नहीं था, हालांकि, उच्चतम न्यायालय ने माना कि बॉम्बे अधिनियम 36 वर्ष 1947 की धारा-2 आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियाँ) अधिनियम 24 वर्ष 1946 की धारा 7 के विरुद्ध प्रभावी नहीं हो सकती है, जैसा कि अधिनियम 52 वर्ष 1950 द्वारा संशोधित किया गया है।

42. उपरोक्त विधि को **टी. बरई बनाम हेनरी आह हो और अन्य 1983 1 SCC 177** में दोहराया गया है जिसमें, उच्चतम न्यायालय के समक्ष बिन्दु यह था कि क्या खाद्य एवं मिलावट निवारण संशोधन अधिनियम 1976 (केंद्रीय संशोधन अधिनियम) द्वारा डाली गई खाद्य एवं मिलावट निवारण संशोधन अधिनियम 1954 की धारा 16-A का प्रवर्तन खाद्य औषधियों एवं प्रसाधन सामग्री में मिलावट की रोकथाम, (पश्चिम बंगाल संशोधन) अधिनियम 1976 को निहित रूप से निरस्त कर देगा और परिणामस्वरूप, लंबित कार्यवाही केन्द्रीय संशोधन अधिनियम 34 वर्ष 1976 द्वारा डाली गई धारा 16-ए के अधीन प्रक्रिया द्वारा शासित होगी। माननीय उच्चतम न्यायालय ने ज़ेवरभाई अमैदास (उपरोक्त) के मामले में निर्णय को दोहराते हुए, माना कि भले ही केन्द्रीय संशोधन अधिनियम ने पश्चिम बंगाल संशोधन अधिनियम को स्पष्ट रूप से निरस्त नहीं किया था, फिर भी यह भारत का संविधान के अनुच्छेद 254(2) के परंतुक के आवश्यक निहितार्थ से निरस्त हो जाएगा। टी. बरई (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय का प्रासंगिक अंश निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"15. लागू विधि के बारे में कोई संदेह या कठिनाई नहीं है। संविधान का अनुच्छेद 254 सबसे पहले प्रावधान करता है कि समवर्ती सूची में गिनाए गए विषयों के संबंध में केंद्रीय और राज्य विधि के बीच संघर्ष के मामले में क्या होगा, और दूसरा, ऐसे संघर्ष को हल करने के लिए। अनुच्छेद 254(1) सामान्य नियम को व्यक्त करता है कि समवर्ती क्षेत्र में संघ और राज्य विधि के बीच संघर्ष की स्थिति में, पूर्व बाद पर प्रभावी होता है। खंड (1) यह निर्धारित करता है कि यदि एक समवर्ती विषय से संबंधित राज्य विधि, संघ विधि के "विरोधाभासी" है, जो उस विषय से संबंधित है, तो, चाहे संघ विधि समय में पहले हो या बाद में,संघ विधि प्रभावी होगी और राज्य विधि, ऐसे विरोधाभास की सीमा तक, शून्य होगी। खंड (1) में निर्धारित सामान्य नियम के लिए, खंड (2) एक अपवाद जोड़ता है अर्थात् यदि राष्ट्रपति एक राज्य विधि को सहमति देते हैं जिसे उनके विचार के लिए सुरक्षित रखा गया है, तो यह संघ के पहले के विधि के साथ अपने विरोधाभास के बाद भी प्रभावी होगी, दोनों विधि एक समवर्ती विषय से निपटते हैं। ऐसे मामले में, केंद्रीय अधिनियम केवल दोनों के बीच असंगति की सीमा तक राज्य अधिनियम को रास्ता देगा, और अधिक नहीं। संक्षेप में, एक राज्य अधिनियम, जो एक समवर्ती विषय से संबंधित पिछले संघ विधि के साथ असंगत है, उसे राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त करने का परिणाम यह होगा कि राज्य अधिनियम उस राज्य में प्रभावी होगा और केंद्रीय अधिनियम के प्रावधानों को केवल उस राज्य में उनकी प्रयोज्यता में ओवरराइड करेगा। राज्य विधि की प्रमुखता को हटाया जा सकता है यदि संसद खंड (2) के परंतुक के अधीन विधि बनाती है। अनुच्छेद 254(2) का परंतुक संघ संसद को एक विरोधाभासी राज्य विधि को निरस्त या संशोधित करने का अधिकार देता है, भले ही यह राष्ट्रपति की सहमति के आधार पर वैध हो गया हो। संसद विरोधाभासी राज्य विधि को सीधे निरस्त या संशोधित कर सकती है, या स्वयं "समान विषय" के संबंध में राज्य विधि के विरोधाभासी एक विधि बना सकती है। भले ही संसद द्वारा बनाया गया बाद का विधि स्पष्ट रूप से किसी राज्य विधि को निरस्त नहीं करता है, फिर भी, राज्य विधि शून्य हो जाएगा जैसे ही संसद

का बाद का विधि जो विरोधाभास पैदा करता है, बनाया जाता है। एक राज्य विधि संघ विधि के विरोधाभासी होगा जब दो विधियों के बीच सीधा संघर्ष होता है। ऐसा विरोधाभास तब भी उत्पन्न हो सकता है जहां दोनों विधि एक ही क्षेत्र में काम करते हैं और दोनों संभवतः एक साथ नहीं खड़े हो सकते हैं, उदाहरण के लिए, जहां दोनों एक ही अपराध के लिए सजा निर्धारित करते हैं लेकिन सजा डिग्री या प्रकार या निर्धारित प्रक्रिया में भिन्न होती है। ऐसे सभी मामलों में, संसद द्वारा बनाया गया विधि अनुच्छेद 254(1) के अधीन राज्य विधि पर प्रबल होगा। ऐसा होने पर, जब संसद ने कदम बढ़ाया और केन्द्रीय संशोधन अधिनियम को अधिनियमित किया, यह संसद द्वारा "समान विषय के संबंध में" बनाया गया एक बाद का विधि होने के कारण, पश्चिम बंगाल संशोधन अधिनियम निहित रूप से निरस्त हो गया।

16. ज़ेवरभाई अमैदास बनाम बॉम्बे राज्य [AIR 1954 SC 752: (1955) 1 SCR 799: 1954 SCJ 851: 1954 Cri LJ 1822] का मामला अनुच्छेद 254(2) के परंतुक के आवेदन को दर्शाता है। आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियाँ) अधिनियम, 1946 केंद्रीय विधानमंडल द्वारा अधिनियमित किया गया था, जिसकी धारा 7 ने अधिनियम की धारा 3 के अधीन किए गए आदेशों के उल्लंघन के लिए दंड प्रदान किया। दंड के संबंध में प्रावधान यह था कि यदि कोई व्यक्ति धारा 3 के अधीन किए गए किसी आदेश का उल्लंघन करता है, तो वह तीन साल तक की अवधि के लिए कारावास या जुर्माने या दोनों से दंडनीय होगा। तब बॉम्बे के प्रांत ने महसूस किया कि अधिनियम की धारा 7 द्वारा प्रदान की गई तीन साल की कारावास की अधिकतम सजा अधिनियम के अधीन अपराधों के लिए पर्याप्त नहीं थी और इसमें प्रदान की गई सजा को बढ़ाने के उद्देश्य से, अधिनियम 36 वर्ष 1947 को अधिनियमित किया। उस अधिनियम की धारा 2 द्वारा यह प्रदान किया गया था कि आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियाँ) अधिनियम, 1946 में निहित किसी भी चीज के बाद भी, जो कोई भी अधिनियम की धारा 3 के अधीन किए गए आदेश का उल्लंघन करता है, वह सात साल तक की अवधि के लिए दंडनीय होगा लेकिन लिखित में दर्ज किए जाने वाले कारणों को छोड़कर, छह महीने से कम नहीं होगा और जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा। बॉम्बे अधिनियम ने इस प्रकार सजा को सात साल की कारावास तक बढ़ा दिया और जुर्माने की सजा लगाना भी अनिवार्य बना दिया, और आगे छह महीने की न्यूनतम सजा के लिए प्रदान किया और न्यायालय को लिखित में दर्ज किए जाने वाले कारणों को छोड़कर न्यूनतम सजा लगाना बाध्य था। अधिनियम को गवर्नर जनरल की सहमति के लिए सुरक्षित रखा गया था और भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 107(2) के अधीन उनकी सहमति प्राप्त की, बॉम्बे के प्रांत में विरोधाभास के बाद भी काम में आया। बाद में, आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियाँ) अधिनियम, 1946 में पर्याप्त परिवर्तन हुए और अंत में आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियाँ) संशोधन अधिनियम, 1950 द्वारा पुनर्गठित किया गया। 1950 में किए गए संशोधन ने अधिनियम की धारा 7 के स्थान पर एक नई धारा को प्रतिस्थापित किया। नई धारा की योजना यह थी कि सजा के उद्देश्यों के लिए, अधिनियम के अधीन अपराधों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया था और कई श्रेणियों में लगाई जाने वाली सजा अलग से निर्दिष्ट की गई थी। धारा 7 इस प्रकार एक व्यापक कोड था, जो अधिनियम के अधीन अपराधों के लिए सजा के पूरे क्षेत्र को कवर करता है, वस्तु और अपराध के चरित्र के अनुसार वर्गीकृत। इस न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि बॉम्बे अधिनियम आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियाँ) संशोधन अधिनियम, 1950 की धारा 7 द्वारा निहित रूप से निरस्त कर दिया गया था।"

43. इसे आगे **इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम आईसीआईसीआई बैंक 2017 SCR page 33** में दिए गए निर्णय में दोहराया गया है और वहां भी, 'निहित निरसन' के सिद्धांतों को समझाते हुए, यह धारित किया गया है कि यदि राज्य विधि की विषय-वस्तु या उसका एक हिस्सा संसद विधि के साथ समान है, तो राज्य विधि को संसदीय विधि के निहित रूप से विरोधाभासी माना जाएगा। तैयार संदर्भ के लिए प्रस्तर संख्या- vi, viii, ix और x निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत हैं:

"vi) विरोधाभास इस अर्थ में प्रत्यक्ष हो सकता है कि प्रतिस्पर्धी विधियों की वास्तविक शर्तों में असंगति है और इसलिए, प्रतिस्पर्धी विधियों के दो या अधिक प्रावधानों के बीच सीधा संघर्ष है। इस अर्थ में, असंगति स्पष्ट और प्रत्यक्ष होनी चाहिए और ऐसी प्रकृति की होनी चाहिए, जो दोनों अधिनियमों या उनके हिस्सों को एक दूसरे के साथ सीधे टकराव में ला दे, एक ऐसी स्थिति तक पहुंच जाए जहां एक का पालन करना दूसरे की अवज्ञा किए बिना असंभव हो। यह तब होता है जब दो अधिनियम समान तथ्यों पर लागू होने पर अलग-अलग विधिक परिणाम उत्पन्न करते हैं।

viii) एक संघर्ष तब उत्पन्न हो सकता है जब संसदीय विधि और राज्य विधि एक ही विषय वस्तु पर अपनी शक्तियों का प्रयोग करना चाहते हैं। यह एक सीधे संघर्ष के रूप में होना आवश्यक नहीं है, जहां एक कहता है "करो" और दूसरा कहता है "मत करो"। इस शीर्षक के अधीन विधि विरोधाभासी हैं भले ही दोनों विधियों द्वारा निर्धारित आचरण का नियम समान हो। <u>ऐसे मामलों में लागू किया गया परीक्षण उस सिद्धांत पर आधारित है, जिस पर निहित निरसन का नियम टिका है, अर्थात्, यदि राज्य विधि की विषय-वस्तु या उसका हिस्सा संसदीय विधि के साथ समान है, जिससे वे दोनों एक साथ नहीं खड़े हो सकें, तो राज्य विधि को संसदीय विधि के विरोधाभासी कहा जाएगा।</u> हालांकि, यदि राज्य विधि या उसका हिस्सा उन मामलों से नहीं जो संसदीय विधि का विषय बना था, बल्कि अन्य और अलग मामलों से निपटता है, हालांकि संबंधित और सहयोगी प्रकृति का, तो कोई विरोधाभास नहीं है।

ix) राज्य द्वारा विरोधाभासी विधि केवल विरोधाभास की सीमा तक शून्य है। दूसरे शब्दों में, राज्य के विधि का केवल वह हिस्सा जो विरोधाभासी पाया जाता है, शून्य घोषित किया जाना है।

x) उपरोक्त का एकमात्र अपवाद तब है जब यह पाया जाता है कि एक राज्य विधि संसदीय विधि या किसी मौजूदा विधि के विरोधाभासी है यदि मामला अनुच्छेद 254(2) के अंतर्गत आता है, और राज्य विधि के लिए राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त की जाती है, जिस स्थिति में राज्य विधि उस राज्य के भीतर संसदीय विधि या मौजूदा विधि पर हावी होता है। <u>यहां फिर से, राज्य विधि को अनुच्छेद 254 (2) परंतुक के संचालन के आधार पर, राज्य की विधानसभा द्वारा बनाए गए विधि को जोड़ने, संशोधित करने, (बदलने या निरस्त करने वाले किसी भी बाद के संसदीय विधि को रास्ता देना होगा।</u>"

(महत्व प्रदत्त)

44. माननीय उच्चतम न्यायालय के सबसे हाल के **विशेष अनुमति याचिका (सी) सं. 16460 वर्ष 2023, नईम बानो@गैंडो बनाम मोहम्मद रहीस व अन्य** में पारित निर्णय में यह धारित किया गया है कि समवर्ती सूची में पाए गए विधि के प्रावधान के संबंध में एक राज्य विधानमंडल के संशोधन के बाद संसद द्वारा किसी प्रावधान में संशोधन की स्थिति में, राज्य विधि को किसी भी बाद के संसद विधि को रास्ता देना होगा, जो राज्य की विधानसभा द्वारा बनाए गए विधि को जोड़ता है, संशोधित करता है, बदलता है या निरस्त करता है, इसका अर्थ यह है कि राज्य सरकार का ऐसा विधि, समान विषय वस्तु पर, निहित विरोधाभास के कारण महत्वहीन हो जाएगा। निर्णय के प्रस्तर संख्या-9.5 और 9.6 निम्नानुसार उद्धृत किए गए हैं:

"9.5 इस प्रकार, "कृषि भूमि के अतिरिक्त संपत्ति का हस्तांतरण" विषय वह है, जो ऊपर बताई गई प्रविष्टि 6, सूची III के दायरे और परिधि के भीतर आता है और संसद और राज्य विधानमंडल दोनों को उक्त विषय पर विधि बनाने की विधायी क्षमता है जिसमें टी.पी. अधिनियम के किसी प्रावधान में संशोधन का अधिनियमन शामिल है। यदि टी.पी. अधिनियम के किसी प्रावधान, जैसे कि वर्तमान मामले में धारा 106 में, राज्य विधानमंडल द्वारा एक संशोधन किया जाता है और अनुच्छेद 254 की उप-धारा (2) के आदेश का राज्य द्वारा अनुपालन किया जाता है, तो राज्य विधि और संसदीय विधि के बीच किसी भी असंगति के परिणामस्वरूप राज्य में राज्य विधि प्रभावी होगी।

9.6 वर्तमान मामले में, यह नोट किया गया है कि उ.प्र. राज्य की विधानसभा ने 30.11.1954 के संशोधन द्वारा धारा 106 में संशोधन किया जिसके द्वारा टी.पी. अधिनियम की धारा 106 में "15 दिन का नोटिस" शब्दों को "30 दिन का नोटिस" द्वारा प्रतिस्थापित किया गया और प्रतिस्थापित खंड उ.प्र. राज्य में प्रभावी रहा। हालांकि, संसद द्वारा 31.12.2002 से प्रभावी अधिनियम 3 वर्ष 2003 द्वारा धारा 106 में किए गए संशोधन के दृष्टिगत, उ.प्र. राज्य की विधानसभा द्वारा धारा 106 में किया गया प्रतिस्थापन निहित रूप से निरस्त हो गया है और धारा 106 जैसा कि 31.12.2002 से प्रभावी संसद द्वारा संशोधित किया गया है, लागू होगा। यह संविधान के अनुच्छेद 254 के खंड (2) के परंतुक की शक्ति पर है। इस स्थिति को संविधान के अनुच्छेद 254 और ऊपर चर्चा किए गए उक्त अनुच्छेद पर प्रासंगिक न्यायिक सिद्धांतों का संदर्भ देकर बेहतर समझा जा सकता है। अनुच्छेद 254 के खंड (2) का परंतुक वर्तमान मामले में पूरी तरह से लागू होता है।"

45. वास्तव में, संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम 1882, जो समवर्ती सूची के अधीन 'कृषि भूमि के अतिरिक्त संपत्ति के हस्तांतरण' विषय पर एक केंद्रीय विधि है, उ.प्र. राज्य की विधानसभा ने 30.11.1954 को धारा 106 में एक संशोधन लाया था, जिसके द्वारा, पट्टे की समाप्ति के लिए '15 दिन के नोटिस' की अवधि को '30 दिनों' में बदल दिया गया था और इस तरह, उ.प्र. के राज्य विधानमंडल द्वारा संशोधित धारा 106, राज्य में प्रभावी रही, लेकिन बाद में, संसद ने 31.12.2002 से प्रभावी संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम 1882 की धारा 106 को प्रतिस्थापित किया, उपरोक्त प्रावधान में पूरी तरह से संशोधन किया, इस प्रकार, प्रश्न उठा कि क्या 30.11.1954 से प्रभावी उ.प्र. राज्य विधानमंडल द्वारा धारा 106 में किए गए पहले के संशोधन निहित निरसन के सिद्धांत के कारण महत्वहीन होंगे।

46. उपरोक्त चर्चाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि जब समान विषय वस्तु पर संसदीय विधि और राज्य विधि के प्रावधानों की प्रयोज्यता के संबंध में संघर्ष उत्पन्न होता है, तो यह कहना उचित है कि किसी विधि को निरस्त करने के लिए एक विधायी निकाय की शक्ति विधि को अधिनियमित करने की उसकी शक्ति के साथ सह-विस्तृत है और विधि को निरस्त करने का प्रभाव, संसद के रिकॉर्ड से पूरी तरह से मिटाना है, जैसे कि, यह कभी अस्तित्व में ही नहीं था। यदि कोई विधानमंडल किसी अधिनियम को निरस्त कर रहा है, तो वही निरस्त विधि के अधीन प्रदान किए गए किसी भी अधिकार, विशेषाधिकार या उपाय को बचाने की शक्ति के भीतर है। वास्तव में, यह 'विधायी सर्वोच्चता' और 'सुसंगतता' के संवैधानिक सिद्धांत के साथ संतुलन बनाता है। इसके अतिरिक्त, सहकारी संघवाद और विधि के शासन के संवैधानिक आदेश भी संसद और राज्य विधानमंडल द्वारा अधिनियमित विधि के अस्तित्व और प्रयोज्यता के संबंध में निष्कर्ष पर आने के लिए प्रकाश की किरणों में से एक है।

47. जहां तक वर्तमान मामला है कि दं.प्र.सं. 1973 को निरस्त कर दिया गया है और दं.प्र.सं. 1973 का कोई अस्तित्व नहीं है और पूर्ववर्ती दं.प्र.सं. 1973 में किए गए राज्य संशोधनों को नए अधिनियमित संहिता 2023 के बचत खंड में स्थान नहीं मिलता है। यह न्यायालय ने प्रति-शपथपत्र में कही गई राज्य सरकार की स्थिति को भी नोट किया है कि उ.प्र. राज्य, संहिता 2023 में अग्रिम जमानत के संबंध में राज्य संशोधन के साथ आगे बढ़ा है और मसौदा संशोधन भी तैयार किया गया है, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि राज्य सरकार भी इस बात से अवगत है कि पहले के दं.प्र.सं. 1973 के निरसन के बाद, अधिनियम सं. 4 वर्ष 2019 के माध्यम से संशोधन लागू करने योग्य नहीं है।

48. उपरोक्त प्रस्तुति और चर्चाओं के दृष्टिगत, मैं इस विचारित राय का हूं कि संसद द्वारा बनाया गया बाद का विधि, हालांकि स्पष्ट रूप से राज्य विधि को निरस्त नहीं करता है, फिर भी, राज्य विधि निहित रूप से निरस्त हो जाएगा और वह "समान विषय" के संबंध में किसी भी बाद के संसद विधि को रास्ता देगा, जो भारत का संविधान के अनुच्छेद 254 के परंतुक के संचालन के आधार पर, राज्य की विधानसभा द्वारा बनाए गए विधि को जोड़ता है, संशोधित करता है, बदलता है या निरस्त करता है।

49. परिणामस्वरूप, राज्य विधानमंडल द्वारा पारित दंड प्रक्रिया संहिता (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम 2018 (उ.प्र. अधिनियम सं. 4 वर्ष 2019) निहित रूप से निरस्त माना जाएगा।

50. परिणामस्वरूप, इस न्यायालय द्वारा विरचित बिन्दु संख्या II को 'सकारात्मक' में निर्णीत किया जा रहा है। इस प्रकार, प्रतिवादी द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति को निरस्त किया जाता है।

51. कहने की जरूरत नहीं है कि राज्य विधानमंडल के लिए नए अधिनियमित संहिता 2023 में राज्य संशोधन लाना हमेशा उपलब्ध है।

52. यह भी स्पष्ट किया जाता है कि बाकी बिन्दु विचार के लिए उपलब्ध हैं।

53. इस मामले को जुलाई, 2025 के प्रथम सप्ताह में उपयुक्त न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध करें।

54. पूर्व में पारित अंतरिम आदेश, तब तक बना रहेगा।

55. आदेश के अतिरिक्त, यह न्यायालय इस न्यायालय की सहायता करने के लिए न्याय-मित्र, श्री गौरव मेहरोत्रा के अथक, अपरिहार्य और कुशल प्रयास की सराहना करता है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 59

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-10409 वर्ष 2025

शकील अहमद ..... आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य .... विपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता:
अश्विनी कुमार सचान, गौरव कुमार श्रीवास्तव, सौरभ सचान, शुभम

विपक्षी के अधिवक्ता:

ए. आपराधिक कानून-भारतीय न्याय संहिता (भा.न्या.सं.) 2023-धारा 303(2), 317(2)-भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (भा.न्या.सं.S), 2023-धारा-479-खान खनिज अधिनियम, 2023-धारा 4/21 और सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान की रोकथाम अधिनियम, 1984-धारा 3-भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988-धारा 7-आवेदक 5000 रुपये की रिश्वत स्वीकार करते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया-अभियोजन पक्ष ने तर्क दिया कि आवेदक ने शिकायतकर्ता को पहले के एक मामले में फंसाने के लिए रिश्वत की मांग की थी ,जहां वह अन्वेषण अधिकारी था-आवेदक ने उस मामले में कोई अन्वेषण करने से इनकार किया-केस डायरी की समीक्षा करने पर न्यायालय ने पाया कि कोई अभिलेखीय साक्ष्य नहीं है जो दर्शाता हो कि आवेदक ने पूर्व प्रकरण का अन्वेषण किया था-न्यायालय ने माना कि अन्वेषण निष्पक्ष रूप से नहीं किया गया था और आवेदक को झूठा फंसाया गया है-परिणामस्वरूप, शर्तों के साथ जमानत दी गई। (प्रस्तर 1 से 16)

आवेदन स्वीकार किया गया। (ई-6)

(माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता और उत्तर प्रदेश राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. यह जमानत आवेदन, आवेदक-शकील अहमद द्वारा विचारण के लंबित रहने की अवधि में उसे मुकदमा अपराध सांख्य-01 वर्ष 2025, धारा-7 भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, पुलिस स्टेशन भ्रष्टाचार निरोधक मिर्जापुर, जिला मिर्जापुर में जमानत पर छोड़े जाने की प्रार्थना के साथ योजित किया गया है।

3. संक्षेप में अभियोजन पक्ष के अनुसार, शिकायतकर्ता-प्रमोद कुमार सिंह ने दिनांक 20.02.2025 को निरीक्षक विनय सिंह, भ्रष्टाचार निरोधक संगठन, मिर्जापुर को एक शिकायत की जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह आरोप लगाया गया कि 09.01.2025 को श्री दीपक कुमार राजभर द्वारा मुकदमा अपराध संख्या-0008 वर्ष 2025, धारा 303(2), 317(2) भा.न्या.सं., धारा 4/21 खान और खनिज अधिनियम और धारा-3 सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान की रोकथाम अधिनियम के अधीन अज्ञात व्यक्ति के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, जिसमें आवेदक-शकील अहमद अन्वेषण अधिकारी थे और जिन्होंने शिकायतकर्ता-प्रमोद कुमार सिंह से 15,000 रुपये की रिश्वत की मांग की थी जिससे उस मामले में उसका नाम आरोपी के रूप में प्रकट न किया जाए लेकिन मामला 5,000 रुपये में तय हो गया। प्र.सू.रि. में यह भी आरोप लगाया गया है कि उक्त शिकायत का संज्ञान लेते हुए, मामले में आगे बढ़ने के लिए प्रथम दृष्टया संतुष्टि के लिए प्रारंभिक जांच की गई। जांच रिपोर्ट में दी गई राय से संतुष्ट होने पर, रिश्वत स्वीकार करते समय आवेदक को रंगे हाथों पकड़ने के लिए एक ट्रैप टीम का गठन किया गया। तदनुसार ट्रैप टीम स्वतंत्र गवाहों और शिकायतकर्ता के साथ ट्रैप कार्यवाही को अंजाम देने के लिए निर्धारित स्थान पर गई। यह अभियोजन पक्ष का मामला है कि शिकायतकर्ता ने अपनी जेब से उपचारित रिश्वत के 5000 रुपये के नोट निकाले और आवेदक को दिए। जिस क्षण आवेदक ने रिश्वत स्वीकार की, ट्रैप टीम ने उसे रंगे हाथों पकड़ लिया। इसके बाद निरीक्षक श्री विनय सिंह, भ्रष्टाचार निरोधक संगठन, मिर्जापुर ने मामले में 22.02.2025 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के तर्क निम्नानुसार हैं:-

i. आवेदक मुकदमा अपराध संख्या-8 वर्ष 2025 का अन्वेषण अधिकारी नहीं था, इसलिए आवेदक द्वारा प्र.सू.रि. दिनांक 22.02.2025 में आरोपित रिश्वत की मांग करने का कोई अवसर नहीं था।

ii. आवेदक द्वारा रिश्वत की कथित मांग की कोई तिथि और स्थान शिकायतकर्ता द्वारा प्रकट नहीं की गई है।

iii. मुकदमा अपराध संख्या-8 वर्ष 2025 की प्र.सू.रि. 09.01.2025 को दर्ज की गई थी और उक्त मामले का अन्वेषण श्री महेंद्र राम भारती को सौंपा गया था।

iv. इसके बाद प्रभारी निरीक्षक, पुलिस स्टेशन जिगना, जिला मिर्जापुर ने दिनांक 10.01.2025 का एक आदेश पारित किया, जिसके द्वारा उन्होंने मुकदमा अपराध संख्या-08 वर्ष 2025 का आगे का अन्वेषण, आवेदक (एसआई शकील अहमद) को आवंटित की। चूंकि आवेदक को महाकुंभ, 2025 में कार्यभार सौंपा गया था, इसलिए

वह अन्वेषण करने में असमर्थ था। तदनुसार, उसने उक्त प्रकरण में कोई अन्वेषण नहीं किया और पहले के अन्वेषण अधिकारी, श्री महेंद्र राम भारती ने केस डायरी संख्या-3 दिनांक 11.01.2025 तैयार की है।

v. उपरोक्त तथ्यों के आधार पर, यह तर्क देते हुए बहुत बल दिया गया है कि आवेदक को इस मामले में झूठा फंसाया गया है।

vi. यह भी बताया गया है कि इस न्यायालय के दिनांक 15.04.2025 के आदेश के द्वारा, पुलिस अधीक्षक, भ्रष्टाचार निरोधक संगठन, वाराणसी को शिकायतकर्ता को उसके बयान की रिकॉर्डिंग के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष पेश करना सुनिश्चित करने का निर्देश दिया गया था, लेकिन वह भी नहीं किया गया है क्योंकि संबंधित विचारण न्यायालय खाली चल रहा है।

vii. अंत में यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक 22.02.2025 से जेल में बंद है, इसलिए वह जमानत पर छोड़े जाने का अधिकारी है।

5. मामले के उपरोक्त तथ्यात्मक पहलू को स्पष्ट करने के लिए, जैसा कि आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है, 28.05.2025 को इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किया गया था:-

"संक्षेप में अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, आवेदक के विरुद्ध आरोप यह है कि 09.01.2025 को श्री दीपक कुमार राजभर द्वारा मुकदमा अपराध संख्या-0008 वर्ष 2025 में भा.न्या.सं. की धारा 303(2), 317(2), खान और खनिज अधिनियम की धारा 4/21 और सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान की रोकथाम अधिनियम की धारा 3 के अधीन अज्ञात व्यक्ति के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, जिसमें वर्तमान आवेदक-शकील अहमद अन्वेषण अधिकारी थे। चूंकि प्र.सू.रि. अज्ञात व्यक्ति के विरुद्ध दर्ज की गई थी, इसलिए आवेदक ने प्रमोद कुमार सिंह (वर्तमान मामले के शिकायतकर्ता) से 15,000 रुपये की रिश्वत की मांग की, इस बहाने कि वह मुकदमा अपराध संख्या-0008 वर्ष 2025 में उसका नाम आरोपी के रूप में शामिल नहीं करेगा, तदनुसार, उक्त मामला 5,000 रुपये में तय हो गया। यह अभियोजन पक्ष का मामला है कि आवेदक 5,000 रुपये की रिश्वत स्वीकार करते समय रंगे हाथों पकड़ा गया था।

आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता के तर्क का मुख्य आधार यह है कि आवेदक ने उपरोक्त मुकदमा अपराध संख्या-0008 वर्ष 2025 की जांच नहीं की है, इसलिए आवेदक द्वारा कथित रिश्वत की मांग करने का कोई अवसर नहीं था।

इस संबंध में प्रश्न रखने पर, विद्वान अशाअधि, न्यायालय को आवेदक की ओर से उठाई गई उक्त दलील के बारे में अवगत कराने की स्थिति में नहीं है।

उपरोक्त के दृष्टिगत, श्री कृष्ण मोहन राय, निरीक्षक भ्रष्टाचार निरोधक संगठन, मिर्जापुर, जो जो मुकदमा अपराध संख्या-01 वर्ष 2025, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7, पुलिस स्टेशन भ्रष्टाचार निरोधक मिर्जापुर, जिला मिर्जापुर से उत्पन्न इस मामले के अन्वेषण अधिकारी हैं, को विद्वान अशाअधि की सहायता के लिए मुकदमा अपराध संख्या-8 वर्ष 2025 की पूरी केस डायरी के साथ कल (29.05.2025) को सुबह 10:30 बजे इस न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है।

इस मामले को कल यानी 29.05.2025 को नए वाद के रूप में सूचीबद्ध करें।

इस न्यायालय के निबंधक (अनुपालन) के साथ-साथ विद्वान अशाअधि आज ही इस आदेश को पुलिस अधीक्षक, मिर्जापुर के साथ-साथ श्री कृष्ण मोहन राय, निरीक्षक भ्रष्टाचार निरोधक संगठन, मिर्जापुर को सूचित करेंगे।"

6. इस न्यायालय के उपरोक्त आदेश के अनुसरण में, श्री कृष्ण मोहन राय, निरीक्षक, भ्रष्टाचार निरोधक संगठन, मिर्जापुर, जो वर्तमान प्रकरण, मुकदमा अपराध संख्या 01 वर्ष 2025, के अन्वेषण अधिकारी हैं, व्यक्तिगत रूप से इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हैं और न्यायालय के अवलोकन के लिए मुकदमा अपराध संख्या-08 वर्ष 2025 की केस डायरी प्रस्तुत की है।

7. मुकदमा अपराध संख्या-08 वर्ष 2025 की केस डायरी को देखने पर, मैं पाता हूं कि 11.01.2025 को, एसआई महेंद्र राम भारती ने जांच की है और केस डायरी नंबर 3 भी तैयार की है। इसके बाद, केस डायरी नंबर 4 को 28.02.2025 को एसआई चंद्र शेखर द्वारा तैयार/लिखा गया था और उन्होंने उल्लेख किया है कि इस मामले की पहले की जांच एसआई शकील अहमद खान (आवेदक) द्वारा की जा रही थी, जबकि रिकॉर्ड में यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि वर्तमान आवेदक ने कभी केस डायरी का कोई पेपर तैयार/लिखा है, इस प्रकार, केस डायरी नंबर 4 दिनांक 28.02.2025 में दूसरे अन्वेषण अधिकारी-एसआई चंद्र शेखर द्वारा गलत उल्लेख किया गया है कि इस मामले की पहले की जांच आवेदक द्वारा की जा रही थी।

8. श्री कृष्ण मोहन राय, निरीक्षक, भ्रष्टाचार निरोधक संगठन, मिर्जापुर भी इस न्यायालय के समक्ष स्वीकार करते हैं कि इस मामले का रिकॉर्ड भी, कभी अन्वेषण के लिए श्री शकील अहमद खान (आवेदक) को नहीं सौंपा गया था।

9. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों और वर्तमान मामले के अन्वेषण अधिकारी को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, मैं पाता हूं कि श्री कृष्ण मोहन राय, इस मामले के अन्वेषण अधिकारी ने निष्पक्ष जांच नहीं की है और उन्होंने निष्पक्ष रूप से यह सत्यापित करने का कष्ट नहीं किया कि आवेदक-शकील अहमद खान ने कभी मुकदमा अपराध संख्या-8 वर्ष 2025 में कोई अन्वेषण किया था या नहीं। उपरोक्त के दृष्टिगत, मैं आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता की इस दलील में बल पाता हूं कि आवेदक ने कभी मुकदमा अपराध संख्या-08 वर्ष 2025 का अन्वेषण नहीं किया और उसे कोई रिकॉर्ड नहीं दिया गया था।

10. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ अपराध की प्रकृति, साक्ष्य, आरोपी की संलिप्तता और पक्षकारों के लिए विद्वान अधिवक्ता की दलीलों के साथ-साथ ऊपर उल्लिखित आवेदक के मुकदमे की स्थिति को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय इस विचार का है कि आवेदक ने प्रथम दृष्टया जमानत के लिए मामला बना लिया है। अतः आवेदक का जमानत आवेदन स्वीकार किया जाता है।

11. आवेदक-शकील अहमद को उपरोक्त मुकदमा अपराध संख्या में व्यक्तिगत बंधपत्र और दो जमानतदार प्रत्येक समान राशि में संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्तों के साथ जमानत पर रिहा किया जाए, जो न्याय के हित में लगाई जा रही हैं:-

(i). आवेदक विचारण के शीघ्र निस्तारण में सहयोग करेगा और अपरिहार्य न होने पर नियमित रूप से न्यायालय में उपस्थित होगा।

(ii). आवेदक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को ऐसे तथ्यों को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष प्रकट करने से हतोत्साहित करने के लिए कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा या साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा।

(iii). रिहाई के बाद, आवेदक किसी भी आपराधिक गतिविधि में शामिल नहीं होगा।

(iv). जमानतदारों की पहचान, स्थिति और आवासीय प्रमाण को आवेदक को जमानत पर रिहा करने से पहले संबंधित न्यायालय द्वारा सत्यापित किया जाएगा।

12. समाप्त करने से पहले, यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि इस न्यायालय के दिनांक 28.05.2025 के आदेश के अनुसरण में, श्री कृष्ण मोहन राय, निरीक्षक, भ्रष्टाचार निरोधक संगठन, मिर्जापुर, जो इस मामले के अन्वेषण अधिकारी हैं, अपने पद के लिए निर्धारित उचित वर्दी पहने बिना इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए। वे इस न्यायालय के समक्ष रंगीन कमीज और पैंट पहनकर उपस्थित हुए, जबकि वे न्यायालय की कार्यवाही में भाग लेने और विद्वान राज्य अधिवक्ता की सहायता करने के लिए अन्वेषण अधिकारी की क्षमता में इस न्यायालय में आए थे। पुलिस अधिकारियों से न्यायालयों के समक्ष उपस्थित होते समय निर्धारित वर्दी पहनने की अपेक्षा की जाती है। न्यायालय की कार्यवाही में आकस्मिक नागरिक कपड़े पहनकर किसी भी पुलिस अधिकारी की उपस्थिति न्यायालय के शिष्टाचार के उल्लंघन और न्यायालय की कार्यवाही को कमजोर करने के बराबर है। राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अशाअधि ने भी इस न्यायालय को अवगत कराया कि जब उन्होंने उचित वर्दी में न आने के लिए श्री राय को टोका, तो वे नाराज हो गए और उनके प्रति उनका इशारा अनुचित था। श्री कृष्ण मोहन राय के ऐसे आचरण की इस न्यायालय द्वारा निंदा की जाती है और उन्हें भविष्य में सावधान रहने की चेतावनी दी जाती है।

13. इस आदेश के प्रस्तर संख्या- 12 में की गई टिप्पणियों के दृष्टिगत, पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश लखनऊ को मामले को देखने और सभी संबंधितों को आवश्यक निर्देश/दिशानिर्देश जारी करने का निर्देश दिया जाता है कि जब भी वे आधिकारिक क्षमता में न्यायिक कार्य के लिए किसी न्यायालय के समक्ष उपस्थित हों, तो उन्हें अपने पदों के लिए निर्धारित उचित वर्दी पहननी चाहिए।

14. इस न्यायालय के निबंधक (अनुपालन) को इस आदेश के प्रस्तर संख्या-13 में उल्लिखित निर्देशों के अनुपालन के लिए एक सप्ताह के भीतर पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश लखनऊ को इस आदेश को सूचित करने का निर्देश दिया जाता है।

15. इस आदेश की प्रति सूचना के लिए प्रमुख सचिव (न्याय), उत्तर प्रदेश राज्य को भी भेजी जाए।

16. इस आदेश का अनुपालन, महानिबंधक, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के माध्यम से छह सप्ताह के भीतर इस न्यायालय को सूचित किया जाएगा।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 62

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांकित: इलाहाबाद 09.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. गौतम चौधरी

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-12896 वर्ष 2024

सम्बद्ध

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-1107 वर्ष 2025

सम्बद्ध

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-1100 वर्ष 2025

सम्बद्ध

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-36927 वर्ष 2024

नेयाज़ अहमद **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...विपक्षी**

आवेदक के अधिवक्ता:
मसहूद अब्बास

विपक्षी के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता, सिद्धार्थ श्रीवास्तव

अनुवादित

आपराधिक विधि-भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 147, 148, 149, 302, 336, 427-आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 1932-धारा 7-अभियुक्त का द्वितीय जमानत आवेदन पत्र है-पूर्व में दायर जमानत प्रार्थना पत्रों पर जमानत स्वीकृत हुई थी, किन्तु अभियोजन द्वारा दाखिल अपील पर उच्चतम न्यायालय ने अपराध की गंभीरता को दृष्टिगत रखते हुए जमानत खारिज कर दी-आवेदक के अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया कि पोस्टमार्टम रिपोर्ट में मृतक की मृत्यु का कारण रक्तस्रावी आघात हेतु मृत्यु से पहले लगी चोट दर्शित है तथा मृतक के सिर पर कोई चोट नहीं पाई गई-जुलाई 2024 से अब तक अभियोजन साक्षी संख्या 1 के अलावा किसी भी साक्षी का बयान दर्ज नहीं हुआ है-साथ ही, उच्चतम न्यायालय द्वारा इन्द्राणी प्रतिम मुखर्जी (अधोलिखित) में प्रतिपादित विधि का हवाला देते हुए कहा गया कि अभियुक्त का लंबा निरुद्ध रहना उसके मौलिक अधिकार (अनुच्छेद 21) के विरुद्ध हैं-अधिवक्ता के तर्क, उपलब्ध अभिलेख, शव विच्छेदन आख्या एवं मोदी के विधि शास्त्र तथा इन्द्राणी प्रतिम मुखर्जी (अधोलिखित) में प्रतिपादित न्यायदृष्टि के परिशीलन के

उपरान्त, सबूतों की प्रकृति व विरोधात्मक सामग्री के अभाव को देखते हुए, आवेदकगण को जमानत प्रदान किए जाने का उपयुक्त आधार विद्यमान है। (पैरा 1, 2, 6, 8)

आवेदन स्वीकार किया गया। (ई-13)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

इन्द्राणी प्रतिम मुखर्जी बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो एवं अन्य, विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 1627 / 2022

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. गौतम चौधरी द्वारा उद्घोषित)

सूची पुनरीक्षित

1. वर्तमान दाण्डिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र, आवेदकगण नियाज अहमद/अब्दुल्ला/नासिर/ मुजम्मिल की ओर से मु०अ०स० 359/2022, अन्तर्गत धारा 147/ 148/ 149/ 302/ 336/ 427 भा.द.वि. एवं धारा 7 सी.एल.ए एक्ट, थाना गम्भीरपुर, जिला आजमगढ़ में जमानत पर मुक्त करने हेतु प्रस्तुत किया गया है।

2. यह आवेदकगण का द्वितीय जमानत आवेदन पत्र है, चूंकि आवेदकगण के प्रथम जमानत आवेदन पत्र सं. क्रमशः 5775/2023, 13988/2023, 14388/2023, 53539/2023 को इसी न्यायपीठ द्वारा भिन्न-भिन्न तिथियों पर जमानत दे दी थी परन्तु अभियोजनकर्ता ने प्रथम जमानत आवेदन पत्र में पारित उक्त आदेशों के खिलाफ माननीय उच्चतम न्यायालय में क्रिमिनल अपील सं.1305/2023 एवं स्पेशल लीव पिटीशन (क्रिमिनल) सं.8347/2023 दाखिल किया जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा आवेदकगण की जमानत इस आधार पर खारिज कर दिया कि उच्च न्यायालय द्वारा आवेदकगण को जमानत देते समय अपराध की गंभीरता को देखा नहीं गया। इसलिए इन जमानत आवेदन पत्र को द्वितीय जमानत आवेदन पत्रों की श्रेणी में माना जाएगा।

3. आवेदकगण के विद्वान अधिवक्ता, परिवादी के विद्वान अधिवक्ता की सहयोगी अधिवक्ता सौम्या शुक्ला एवं विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना तथा पत्रावली का परिशीलन किया।

4. आवेदकगण के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि आवेदकगण को इस प्रकरण में गलत एवं फर्जी ढंग से झूठा फंसाया गया है, उन्होंने कथित अपराध कारित नहीं किया है। बयान डॉक्टर अमित सिंह एवं पोस्टमार्टम के अवलोकन से मृतक को कुल 02 चोट आना दर्शित है जो कि निम्न लिखित है।

1. खरोंच का आकार 01 सेंटीमीटर x 01 सेंटीमीटर दाहिने घुटने के जोड़ के 15 सेंटीमीटर नीचे दाहिनी अगली टांग के मध्य भाग पर उपस्थित।

2. चोट 20 सेंटीमीटर x 10 सेंटीमीटर बायीं बगल से 5 सेंटीमीटर नीचे छाती के बायीं ओर पार्श्व में उपस्थित। उन्होंने न्यायालय को स्पष्ट करते हुए यह अवगत कराया कि मृतक को केवल 02 ही चोट आयी है। चोट न.02 को ही पोस्टमार्टम रिपोर्ट के आंतरिक परीक्षण में बिन्दु सं.03 छाती में आयी चोट को अलग से दर्शित किया गया है जोकि इस प्रकार है-बायीं ओर की पसली संख्या 7 टूटी हुई है।

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान मोदी की न्यायशास्त्र की ओर आकृष्ट किया। जिसमें उन्होंने बताया कि सिर्फ पसली के टूटने पर कोई प्राणघातक चोट नहीं आती जब तक कि पसली से किसी आंतरिक अंग को चोट नहीं पहुंचती। मोदी की न्यायशास्त्र में कुछ इस प्रकार दर्शित है जो कि निम्नलिखित है।

<u>29.4.2 छाती की दीवार</u>-छाती की दीवार पर चोट के निशान और खरोंच किसी कुंद हथियार, लात, ऊंचाई से गिरने या वाहन दुर्घटनाओं में भारी वजन के नीचे दबने से हो सकते हैं, इमारतों के गिरने और भगदड़ भी छाती पर कुचलने की चोटों के कारण हो सकते हैं। इसके साथ पसलियों या उरोस्थि का फ्रैक्चर हो सकता है, या गंभीर आंतरिक अंग की चोट से जुड़ा हो सकता है। यहां तक कि जब ऐसी चोटों के साथ नहीं भी हो, छाती की दीवार पर गंभीर प्रहार छाती के आघात का कारण बन सकते हैं जिससे काफी झटका लगता है और उसके बाद मृत्यु हो सकती है।

छाती की दीवार पर साधारण चोट के निशान और खरोंच के बाद फुफ्फुस या निमोनिया हो सकता है।

छाती की दीवार के घाव खतरनाक नहीं होते, <u>जब तक कि गुहा में प्रवेश न हो और किसी महत्वपूर्ण अंग को चोट न लगे</u>। गैर-भेदक घावों में, विभाजित स्तन और वक्षीय धमनियों से मुक्त रक्तस्राव हो सकता है। तेज भेदक हथियारों या गोलीबारी से छाती की भेदक चोट के मामले में, बाहरी रक्तस्राव बहुत कम या बिल्कुल नहीं हो सकता है। लेकिन प्रचुर और घातक आंतरिक रक्तस्राव हो सकता है। यह हथियार की वापसी के बाद घाव पर ऊतक के वाल्व जैसे ओवरलैप के कारण होता है। एकत्रित रक्त तरल, थक्का या आमतौर पर दोनों का मिश्रण हो सकता है।

6. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह भी कहा गया कि पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अवलोकन से मृतक की मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व चोट के कारण रक्तस्रावी सदमा दर्शित है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के मुताबिक मृतक को सिर पर कोई चोट नहीं है। आवेदकगण के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय को यह भी अवगत कराया कि अवर न्यायालय में जुलाई माह 2024 में अभियोजन साक्षी सं.01 के सत्र परीक्षण के बाद अभी तक किसी भी अभियोजन साक्षी का बयान नहीं हुआ है। आवेदकगण के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क के समर्थन में इंद्राणी प्रतिम मुखर्जी बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो व अन्य, जो विशेष अनुमति अपील (आपराधिक) संख्या-1627 सन 2022 में पारित हुआ, यह प्रस्तुत करने के लिए कि एक विचाराधीन व्यक्ति का लंबे समय तक कारावास भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उसके मौलिक अधिकारों के विरुद्ध है, में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि-व्यवस्था की ओर न्यायालय का ध्यान आकृष्ट किया। इस प्रकार से आवेदकगण

निर्दोष हैं तथा वे इस प्रकरण में क्रमशः दिनांक 08.05.2023/ 15.04.2024/ 15.04.2024/ 15.04.2024 से कारागार में निरुद्ध हैं इसलिए आवेदकगण को जमानत पर छोड़ दिया जाय।

7. परिवादी के विद्वान अधिवक्ता एवं विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आवेदकगण के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों का प्रबल विरोध करते हुए तर्क प्रस्तुत किया कि आवेदकगण द्वारा कारित अपराध संज्ञेय एवं गंभीर प्रकृति का है, इसलिए आवेदकगण को जमानत पर न छोड़ा जाये।

8. आवेदकगण के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों के परिप्रेक्ष्य में पत्रावली पर उपलब्ध सुसंगत तथ्यों एवं परिस्थितियों का समग्र रूप से अवलोकन करने, उपरोक्त वर्णित मोदी की न्यायशास्त्र का अवलोकन करने के तथा शव विच्छेदन आख्या में मृत्यु के कारण को देखने तथा माननीय उच्चतम न्यायालय की न्यायदृष्टि इंद्राणी प्रतिम मुखर्जी बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो का परिशीलन करने पश्चात, सबूतों की प्रकृति और किसी भी ठोस विरोधात्मक सामग्री की अनुपस्थिति एवं उपलब्ध सामग्री से छेड़छाड़ की संभावना न होने के तथ्य को देखते हुए मेरी राय में आवेदकगण को जमानत पर मुक्त करने का उपयुक्त आधार है।

9. अतः वाद के गुण दोष पर बिना कोई टिप्पणी किये हुए आवेदकगण को उपरोक्त वर्णित अपराध में संबंधित न्यायालय की सन्तुष्टि पर व्यक्तिगत बंध-पत्र एवं उसी धनराशि के दो-दो प्रतिभू प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्तों के साथ जमानत पर छोड़ दिया जाय।

1. आवेदकगण विवेचना या परीक्षण के दौरान अभियोजन साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ नहीं करेंगे।

2. आवेदकगण अभियोजन साक्षियों व पीड़िता/शिकायतकर्ता को डराएंगे/धमकाएंगे नहीं।

3. आवेदकगण न्यायालय के आदेशों का पालन करेंगे, वह परीक्षण के दौरान बिना कोई अनावश्यक स्थगन लिए निर्धारित तिथि पर न्यायालय में उपस्थित होंगे तथा परीक्षण में ईमानदारी से सहयोग करेंगे।

4. आवेदकगण जमानत पर रिहा होने के बाद जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेंगे और किसी भी अपराधिक गतिविधि में संलिप्त नहीं होंगे न कोई अपराधिक कृत्य करेंगे।

5. आवेदकगण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति या पुलिस अधिकारियों को कोई प्रलोभन या धमकी नहीं देंगे न ही उनसे कोई वायदा करेंगे, जिसके कारण उन्हें न्यायालय में तथ्यों को उजागर करने से विरत रहना पड़े।

उपरोक्त शर्तों में से किसी के उल्लंघन के मामले में, परीक्षण न्यायालय आवेदकगण की जमानत नियमानुसार रद्द करने को स्वतंत्र है।

(2025) 5 ILRA 66

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 05.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-13228 वर्ष 2024

जय राम ..... आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य .....विपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता:
बृजेश कुमार, करुणाकर श्रीवास्तव

विपक्षी के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

अनुवादित

आपराधिक विधि-भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा-376 डीए-यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012-धारा 5जी/6-आवेदक सहित पांच व्यक्तियों के विरुद्ध दर्ज प्र.सू.रि. के आधार पर आरोप लगाया गया कि जब सूचनादाता की बहन अपनी दादी को दूसरे घर में खाना देने जा रही थी, तो आरोपी व्यक्तियों ने उसे गन्ने के खेत में घसीटा और उससे बलात्कार किया-जब सूचनादाता की मां और बहन पीड़िता की तलाश में गन्ने के खेत में पहुंचीं, तो आरोपी व्यक्ति भाग गए, वह बेहोश अवस्था में पड़ी थी-पीड़िता (अभि.सा.-2) ने अपनी मुख्य परीक्षा में अभियोजन का समर्थन किया-उसने स्वीकार किया कि उसने दुष्कर्मियों के चेहरे नहीं देखे क्योंकि उसकी आंखें बंद थीं, होश खो दिया था, अगले दिन होश आया-प्रतिपरीक्षा के दौरान दोहराया गया, पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया-तथ्यात्मक रूप से गलत प्रस्तुति पर सह-आरोपी को दी गई जमानत आवेदक की रिहाई के लिए समानता को उचित नहीं ठहरा सकती-एक अन्य सह-आरोपी को जमानत दी गई क्योंकि विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज उसके बयान में अभियुक्ता द्वारा उसके विरुद्ध कोई आरोप नहीं लगाया गया था-अभियुक्ता ने अपराध करने में आवेदक की संलिप्तता के बारे में बयान दिया, उसकी मां ने उसे घटना स्थल पर देखा और जब वह वहां पहुंची तो आवेदक भाग गया-इसलिए, जिस आधार पर सह-आरोपी को जमानत दी गई वह आवेदक पर लागू नहीं होता है। (प्रस्तर-3, 15, 22 से 24)

आवेदन अस्वीकृत (ई-13)

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची</u>:

तरुण कुमार बनाम प्रवर्तन निदेशालय: 2023 SCC OnLine SC 1486, (प्रस्तर-19)

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा दिया गया)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता, श्री करुणाकर श्रीवास्तव और राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता-I, श्री मोहम्मद आसिफ खान को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

2. आवेदक को मुकदमा अपराध संख्या-660 वर्ष 2022, धारा-376डीए भारतीय दंड संहिता और धारा-5जी/6 यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012, पुलिस स्टेशन मोहम्मदी, जिला लखीमपुर खीरी में पंजीकृत प्रकरण में जमानत पर रिहाई की मांग करने वाला यह दूसरा आवेदन है।

3. उपरोक्त प्रकरण 11.09.2022 को आवेदक सहित पांच व्यक्तियों के विरुद्ध दर्ज एक प्र.सू.रि. के आधार पर पंजीकृत किया गया है, जिसमें कहा गया है कि जब लगभग 15 वर्ष की आयु की सूचनादाता की बहन दूसरे घर में अपनी दादी को खाना देने जा रही थी, आरोपी व्यक्तियों ने 10.09.2022 को रात लगभग 9.30 बजे उसे गन्ने के खेत में घसीटा और उसके साथ बलात्कार किया। जब सूचनादाता की मां और बहन पीड़िता की तलाश में गन्ने के खेत में पहुंचीं तो आरोपी व्यक्ति भाग गए और पीड़िता बेहोश अवस्था में खेत में पड़ी मिली।

4. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन दर्ज पीड़िता के बयान में उसने कहा कि उसे अंधेरे में गन्ने के खेत में घसीटा गया था और बेहोशी की हालत में उससे बलात्कार किया गया। उसकी आंखें बंद थीं, इसलिए वह आरोपी व्यक्तियों को पहचान नहीं सकी, उसने उन्हें उनकी आवाजों से पहचाना।

5. पीड़िता की मां का बयान भी दर्ज किया गया और उसने कहा कि वह अपनी दूसरी बेटी वंदना के साथ अपनी बेटी की तलाश में गई थी और उसने आरोपी व्यक्तियों को गन्ने के खेत के अंदर देखा था। उसे आते देखकर आरोपी व्यक्ति भाग गए और उसे उसकी बेटी गन्ने के खेत में बेहोश पड़ी मिली।

6. पीड़िता की चिकित्सा-विधिक परीक्षा रिपोर्ट में उल्लेख है कि योनि से रक्तस्राव मौजूद था और पीड़िता को जननांगों में दर्द था। पीड़िता का हाइमन ताजा फटा हुआ था और योनि में जबरन प्रवेश के के संकेत थे।

7. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन दर्ज पीड़िता के बयान में उसने कहा कि सभी आरोपी व्यक्तियों ने उससे बलात्कार किया था, जिसके कारण वह बेहोश हो गई थी। पीड़िता को सामुदायिक स्वास्थ्य

केंद्र, मोहम्मदी ले जाया गया, जहां से उसे जिला अस्पताल लखीमपुर खीरी भेजा गया। जब उसकी स्थिति में सुधार नहीं हुआ, तो उसे लखनऊ भेजा गया, जहां वह 13.09.2022 तक भर्ती रही।

8. विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज सूचनादाता के बयान की एक प्रति जमानत आवेदन के साथ संलग्न की गई है और उसने प्र.सू.रि. के संस्करण का पूरी तरह से समर्थन किया है। पीड़िता को अभि.सा.-2 के रूप में परीक्षित किया गया है और उसने भी अपनी मुख्य परीक्षा में प्र.सू.रि. के संस्करण का समर्थन किया है। हालांकि, अपनी प्रतिपरीक्षा में उसने कहा कि वह अपराधियों को नहीं देख सकी।

9. पीड़िता की मां को भी विचारण न्यायालय द्वारा अभि.सा.-3 के रूप में परीक्षित किया गया है और उसने अभियोजन पक्ष का समर्थन किया है। यहां तक कि अपनी प्रतिपरीक्षा में भी उसने स्पष्ट रूप से कहा है कि उसने आवेदक को घटना स्थल से भागते हुए देखा था।

10. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि निखिल और विमल नामक दो सह-आरोपी व्यक्तियों को इस न्यायालय की समन्वय पीठों द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-5494 वर्ष 2024 और 11145 वर्ष 2024 में पारित आदेश दिनांक 28.08.2024 और 21.02.2025 के द्वारा पहले ही जमानत पर रिहा कर दिया गया है।

11. सह-आरोपी विमल का प्रथम जमानत आवेदन खारिज कर दिया गया था और द्वितीय आवेदन इस आधार पर स्वीकार किया गया है कि पीड़िता पक्षद्रोही हो गई है।

12. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि पीड़िता ने अपनी प्रतिपरीक्षा में कहा है कि वह अपराधियों को नहीं देख सकी, इसलिए आवेदक जमानत पर रिहा होने का अधिकारी है।

13. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता-I ने जमानत की प्रार्थना का विरोध किया है और उन्होंने प्रस्तुत किया है कि आवेदक द्वारा किया गया अपराध प्रकृति में जघन्य है और वह इस न्यायालय द्वारा जमानत पर रिहा होने का अधिकारी नहीं है।

14. विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज बयानों के अवलोकन से पता चलता है कि सूचनादाता ने प्र.सू.रि. के संस्करण का समर्थन किया है और कहा है कि जब वह घटनास्थल पर पहुंचे, तो उनकी बहन गन्ने के खेत में बेहोश पड़ी थी, उसके कपड़े अव्यवस्थित और खुले हुए थे। उसके चेहरे और बालों पर मिट्टी थी। उसे बेहोश अवस्था में ले जाया गया और एक एम्बुलेंस बुलाई गई और उसे मोहम्मदी अस्पताल ले जाया गया, जहां से उसे जिला अस्पताल ले जाया गया और अगले दिन उसे लखनऊ भेजा गया।

15. पीड़िता को अभि.सा.-2 के रूप में परीक्षित किया गया है और उसने अपनी मुख्य परीक्षा में अभियोजन पक्ष का समर्थन किया है। हालांकि, अपनी प्रतिपरीक्षा में उसने कहा कि वह दुष्कर्मियों के चेहरे नहीं देख सकी क्योंकि उसकी आंखें बंद थीं और उसके बाद वह बेहोश हो गई थी और अगले दिन उसे होश आया। अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान भी पीड़िता ने कहा कि वह दुष्कर्मियों के चेहरे नहीं देख सकी। पीड़िता को पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया है।

16. पीड़िता की मां को अभि.सा.-3 के रूप में परीक्षित किया गया है और उसने अभियोजन पक्ष का समर्थन किया है। उसने कहा कि पीड़िता घर वापस नहीं आई, वह अपनी दूसरी बेटी के साथ उसे खोजने गई थी। उसने स्पष्ट रूप से कहा है कि उसने टॉर्च की रोशनी में निखिल, जयराम (आवेदक) और पवन को खेत में देखा था और उसे देखकर वे भागने लगे। पीड़िता वहां बेहोश पड़ी थी। उसकी योनि से खून बह रहा था। उसने शोर मचाया, जिस पर उसके पति, बेटे और कई ग्रामीण वहां पहुंचे और वे पीड़िता को घर ले गए और उसके बाद उसे एम्बुलेंस में अस्पताल ले जाया गया। पीड़िता ने उसे अस्पताल में बताया था कि निखिल, जयराम (आवेदक), पवन, विमल और पुष्पेंद्र ने उससे बलात्कार किया था। अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान भी पीड़िता की मां ने कहा कि उसने विमल को रास्ते में आते देखा था। उसने जयराम (आवेदक), पवन और निखिल को वहां खड़े देखा था। हालांकि, उसने आवेदक को दुष्कर्म करते हुए नहीं देखा था, लेकिन जैसे ही वह घटना स्थल के पास पहुंची जयराम, निखिल और पवन भाग गए थे।

17. एक अन्य प्रश्न के उत्तर में पीड़िता की मां ने दोहराया कि उसने आवेदक को घटना स्थल पर खड़ा देखा था और उसके बाद जब जयराम ने उसे देखा तो भाग गया। उसने आवेदक के चेहरे की पहचान की थी।

18. पीड़िता के पिता को विचारण न्यायालय द्वारा अभि.सा.-4 के रूप में परीक्षित किया गया है और उन्होंने भी अभियोजन पक्ष का समर्थन किया है।

19. इस प्रकार, आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता की यह प्रस्तुति कि पीड़िता पक्षद्रोही हो गई है, सही नहीं है।

20. जहां तक समानता के आधार पर आवेदक को जमानत देने के प्रश्न का संबंध है, सह-आरोपी निखिल को इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-5494 वर्ष 2024 में पारित आदेश दिनांक 28.08.2024 के द्वारा आवेदक के विद्वान अधिवक्ता की इस तर्क पर विचार करते हुए जमानत दी गई है कि अभियुक्ता ने मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया है। इस न्यायालय ने उस मामले में आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए बयान पर विश्वास करके प्रस्तुति को स्वीकार कर लिया था और न्यायालय ने उसकी सत्यता को सत्यापित नहीं किया था। हालांकि, अभियुक्ता के बयान के अवलोकन से पता चलता है कि उसने अभियोजन पक्ष का पूरी तरह से समर्थन किया है। यहां तक कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन दर्ज उसके बयान में और धारा 164 के अधीन

दर्ज उसके बयान में, अभियुक्ता ने कहा था कि उसने आरोपी व्यक्तियों को नहीं देखा क्योंकि उसकी आंखें बंद थीं और उसने अपराधियों को उनकी आवाजों से पहचाना था। इसलिए, यह स्पष्ट है कि सह-आरोपी निखिल को जमानत देने वाला आदेश दिनांक 28.08.2024 उस मामले में आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई गलत तथ्यात्मक प्रस्तुति के आधार पर पारित किया गया है।

21. **तरुण कुमार बनाम प्रवर्तन निदेशालय**: 2023 SCC OnLine SC 1486 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि:-

"19. यह स्वयंसिद्ध है कि समानता का सिद्धांत, संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित विधि के समक्ष सकारात्मक समानता की गारंटी पर आधारित है। हालांकि, यदि किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के पक्ष में कोई अवैधता या अनियमितता की गई है, या किसी न्यायिक मंच द्वारा गलत आदेश पारित किया गया है, तो अन्य लोग समान अनियमितता या अवैधता को दोहराने या बढ़ाने के लिए या समान गलत आदेश पारित करने के लिए उच्च या उच्चतर न्यायालय के क्षेत्राधिकार का आह्वान नहीं कर सकते। अनुच्छेद 14 का उद्देश्य अवैधता या अनियमितता को बनाए रखना नहीं है। यदि किसी अधिकारी या न्यायालय द्वारा बिना किसी विधिक आधार या औचित्य के एक या कुछ लोगों को कोई लाभ या फायदा दिया गया है, तो अन्य व्यक्ति ऐसे गलत निर्णय के आधार पर अधिकार के रूप में लाभ का दावा नहीं कर सकते।"

22. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त विधि के दृष्टिगत, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता की तथ्यात्मक रूप से गलत प्रस्तुति को स्वीकार करके सह-आरोपी निखिल के पक्ष में पारित जमानत आदेश को समानता के आधार पर आवेदक की रिहाई का दावा करने के लिए आधार नहीं बनाया जा सकता।

23. एक अन्य सह-आरोपी विमल को इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-11145 वर्ष 2024 में पारित आदेश दिनांक 21.02.2025 के द्वारा इस आधार पर जमानत दी गई है कि अभियुक्ता ने विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज अपने बयान में सह-आरोपी विमल के विरुद्ध कोई आरोप नहीं लगाया है।

24. अभियुक्ता ने अपराध करने में आवेदक की संलिप्तता के बारे में स्पष्ट रूप से बयान दिया है। अभियुक्ता की मां ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उसने आवेदक को घटना स्थल पर खड़ा देखा था और जैसे ही वह वहां पहुंची उसने आवेदक को भागते हुए देखा। इसलिए, सह-आरोपी विमल को जमानत देने वाले आदेश दिनांक 21.02.2025 में उल्लिखित कारण आवेदक के लिए उपलब्ध नहीं है।

25. बिना कोई ऐसी टिप्पणी किए, जो विचारण के परिणाम को प्रभावित कर सकती है, मैं इस सुविचारित मत का हूं कि इस मामले के तथ्य और परिस्थितियां, आवेदक को जमानत पर रिहा करके इस न्यायालय के विवेक का प्रयोग करने के लिए प्रेरित नहीं करतीं। तदनुसार जमानत आवेदन ***अस्वीकृत*** किया जाता है।

असंशोधित

(2025) 5 ILRA 70

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 30.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजीव गुप्ता

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष चंद्र शर्मा

कैपिटल वाद संख्या-1 सन 2024

शाहिद ..... अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ..... प्रतिवादीगण

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
नरेंद्र कुमार सिंह

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:
अराफ खान, शासकीय अधिवक्ता, लिहाजुर रहमान खान

ए. आपराधिक विधि-भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 302, 201 और 376डीबी-यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012-धारा 5 व 6-हत्या और बलात्कार-मृत्युदंड-परिस्थितिजन्य साक्ष्य-प्रासंगिकता-अंडरवियर लेने के संबंध में फर्द को सिद्ध करने के लिए कोई साक्षी प्रस्तुत नहीं किए गए-प्रभाव-निर्णय दिया गया, मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, इसलिए अभियोजन पक्ष को आरोपी के अपराध को दर्शाने वाली परिस्थितियों की श्रृंखला में प्रत्येक कड़ी को सिद्ध करना है, लेकिन फर्द कागज संख्या 14ए/1, एफएसएल और डीएनए रिपोर्ट कागज संख्या-15ए और 50ए को अप्रमाणित छोड़ दिया गया है, जबकि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा आरोपी को दोषसिद्ध करने और सजा देने में इस पर भरोसा किया गया, बिना उसे इनके बारे में स्पष्टीकरण देने का अवसर दिए-उच्च न्यायालय ने मृतका के शव से अंडरवियर लेने के संबंध में फर्द को सिद्ध करने और एफएसएल/डीएनए रिपोर्ट की तैयारी और जारी करने से जुड़े वैज्ञानिक विशेषज्ञों को पूरी सहायक सामग्री के साथ न्यायालय के साक्षियों के रूप में सम्मन करने और आरोपी को प्रति-परीक्षा का अवसर दिए जाने के लिए विद्वान विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित कर दिया। (प्रस्तर 24 और 26)

बी. आपराधिक विधि-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 313-विचारण न्यायालय ने मृत्युदंड आदेश पारित करते समय एफएसएल रिपोर्ट पर विचार किया-लेकिन रिपोर्ट को आरोपी/अपीलकर्ता के समक्ष धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन उसे इसे स्पष्ट करने का अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से नहीं रखा गया-अपीलकर्ता से डीएनए रिपोर्ट

अनुवादित

के संबंध में कोई प्रासंगिक प्रश्न नहीं पूछा गया-प्रभाव-निर्णय दिया गया, यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि किसी भी अपराधी साक्ष्य को दोषसिद्धि के लिए विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा भरोसा किए जाने के लिए आरोपी को उसकी सामग्री के बारे में स्पष्टीकरण देने में सक्षम बनाने के लिए प्रदान किया जाना चाहिए, जबकि विद्वान न्यायालय द्वारा उक्त प्रयास नहीं किया गया है, जो विद्वान विचारण न्यायालय की ओर से एक स्पष्ट त्रुटि है और दोषसिद्धि के आदेश को विधि में दूषित करती है। (प्रस्तर 19)

अपील स्वीकृत। (ई-1)

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची</u>:

1. अनोखीलाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य; AIR 2020 SC 232

2. आपराधिक अपील संख्या 166/1668 सन 2021; इरफान उर्फ भयू मेवाती बनाम मध्य प्रदेश राज्य 16.01.2025 को निर्णीत

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष चंद्र शर्मा द्वारा उद्घोषित)

1. अपीलकर्ता द्वारा यह अपील, मुकदमा अपराध संख्या-179 सन 2023, धारा 302, 201, 376डीबी भारतीय दंड संहिता और धारा 5/6, यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, पुलिस स्टेशन कम्पिल, जिला फर्रुखाबाद से उत्पन्न विशेष सत्र विचारण संख्या-921 सन 2023 (राज्य बनाम शाहिद) में विशेष न्यायाधीश (पॉकसो अधिनियम)/अपर सत्र न्यायाधीश, फर्रुखाबाद द्वारा पारित निर्णय व आदेश दिनांक 20.12.2023 के विरुद्ध योजित की गई है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता शाहिद को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन मृत्युदंड और 1,00,000 रुपये के अर्थदंड से दोषसिद्ध किया गया और सजा सुनाई गई व व्यतिक्रम की स्थिति में छह महीने का सश्रम कारावास; भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के अधीन तीन वर्ष की अवधि का सश्रम कारावास और 20,000 रुपये का अर्थदंड व व्यतिक्रम की स्थिति में तीन महीने का सश्रम कारावास और पॉकसो अधिनियम की धारा 5/6 के अधीन मृत्युदंड और 1,00,000 रुपये का अर्थदंड व व्यतिक्रम की स्थिति में छह महीने का सश्रम कारावास।

2. विद्वान विचारण न्यायालय ने मृत्युदंड की पुष्टि के लिए इस न्यायालय को संदर्भ भी दिया है।

3. संक्षेप में अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि 12.09.2023 को लगभग सुबह 9 बजे, लगभग 4 वर्ष की आयु की पीड़िता अपने घर के बाहर खेलते समय गायब हो गई। उसके परिवार के सदस्यों ने उसे खोजा लेकिन उसे नहीं ढूंढ सके। लगभग शाम 6 बजे उसी गांव के निवासी नवाब आलम ने सूचनादाता/अब्दुल हक को बताया कि लगभग सुबह 10 बजे उसने पीड़िता को शाहिद और उसके दोस्त दारेन के पीछे-पीछे पोल्ट्री फार्म की ओर जाते हुए देखा। इस सूचना पर, सूचनादाता साकिब, नूरुल हक व अन्य व्यक्तियों के साथ शाहिद के

पोल्ट्री फार्म की ओर गए और उसे खोजने की कोशिश की, परंतु उन्हें पोल्ट्री फार्म से 100-150 मीटर दूर पीड़िता/मृतका का विकृत शव पड़ा मिला। सूचनादाता ने फिर 12/13.09.2023 को रात 1.01 बजे संबंधित पुलिस स्टेशन में लिखित तहरीर देकर एक प्र.सू.रि. दर्ज कराई, जो मुकदमा अपराध संख्या-179 सन 2023 के रूप में भारतीय दंड संहिता की धारा 376डीबी, 302, 201 और पॉकसो अधिनियम की धारा 5/6 के अधीन पंजीकृत की गई।

4. प्रकरण का अन्वेषण, एसआई अशोक कुमार को सौंपी गई।

5. मृतका का पंचनामा एसआई दीपक सिंह द्वारा 13.09.2023 को लगभग 01.45 बजे से सुबह 3 बजे तक किया गया। मृतका के शव को सील कर दिया गया और अन्य प्रासंगिक अभिलेख तैयार करने के बाद, इसे पोस्टमॉर्टम के लिए भेजा गया।

6. 13.09.2023 को लगभग शाम 4.10 बजे पोस्टमॉर्टम, डॉ. सुमित कुमार, वरिष्ठ चिकित्सा अधिकारी, प्रा.स्वा.कें. फतेहगढ़ द्वारा किया गया। उसके शरीर पर निम्नलिखित मृत्यु-पूर्व चोटें पाई गईं:

(1) चेहरे और गर्दन पर पशु का काटना, जिसमें दोनों मैस्टॉइड क्षेत्र, बी/सी मैक्सिलर और मैंडिबुलर क्षेत्र शामिल हैं व गर्दन और चेहरे की बाहरी और आंतरिक संरचना शामिल है। यह चोट मृत्यु-पूर्व प्रतीत होती है। कुछ ट्रेकियल अनुपस्थित हैं और कुछ दबे हुए हैं।

(2) नाक के जोड़ के दाहिने पार्श्व पहलू पर 1.5 सेमी x 0.6 सेमी का कंट्यूजन। विच्छेदन पर नाक का जोड़ थोड़ा दबा हुआ है।

(3) छाती, धड़ दोनों नितंबों और जांघों की पीठ पर 3.5 सेमी x 1.3 सेमी से 1.0 सेमी x 0.5 सेमी मापने वाले कई खरोंच।

(4) लेबिया मेजोरा सहित निजी अंगों पर 3.3 सेमी से 1.5 सेमी की रैखिक खरोंच।

(5) छाती के दोनों तरफ के पूर्वकाल पार्श्व पहलू पर 3 सेमी x 1 सेमी से 1.8 सेमी x 0.7 सेमी के कई खरोंच कंट्यूजन।

(6) दो योनि स्लाइड और योनि स्वाब तैयार किया गया। दो गुदा स्लाइड और स्वाब (गुदा) तैयार किया गया।

डॉक्टर की राय में, मृत्यु का कारण मृत्यु-पूर्व चोट के परिणामस्वरूप दम घुटना हो सकता है।

अनुवादित

7. अन्वेषण अधिकारी ने सूचनादाता और अन्य साक्षियों के बयान दर्ज किए और घटना स्थल के निरीक्षण के बाद साइट प्लान भी तैयार किया। भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 201, 376डीबी और पॉकसो अधिनियम की धारा 5/6 के अधीन मामला अन्वेषण के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर स्थापित पाया गया, जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान अपीलकर्ता और अन्य सह-आरोपी दारेन के विरुद्ध चार्जशीट दायर की गई, जो कथित घटना के समय नाबालिग था।

8. विद्वान विचारण न्यायालय ने 17.10.2023 को अपराधों का संज्ञान लिया और सह-आरोपी दारेन के मामले को उसके किशोर होने के कारण, वर्तमान अपीलकर्ता के मामले से अलग कर दिया।

9. विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर सामग्री को ध्यान में रखते हुए, अपीलकर्ता शाहिद के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 376डीबी, 302, 201 और पॉकसो अधिनियम की धारा 5/6 के अधीन आरोप विरचित किए। आरोपों को अपीलकर्ता को पढ़कर सुनाया और समझाया गया, उसने दोषी नहीं होना कहा, आरोपों से इनकार किया और विचारण की प्रार्थना की।

10. अभियोजन पक्ष ने अभि.सा.-1 अब्दुल हक, सूचनादाता; अभि.सा.-2 नवाब आलम, साक्षी जिसने सूचनादाता को पीड़िता के बारे में बताया; अभि.सा.-3 कमरे आलम, जिसे संयोग साक्षी कहा जाता है; अभि.सा.-4 जाहिरुल हक; अभि.सा.-5 एसआई दीपक सिंह, जिन्होंने मृतका का पंचनामा किया; अभि.सा.-6 डॉ. सुमित कुमार सिंह, जिन्होंने मृतका का पोस्टमॉर्टम किया; अभि.सा.-7 एसआई अशोक कुमार, अन्वेषण अधिकारी और अभि.सा.-8 डॉ. प्रवीण कुमार श्रीवास्तव, वैज्ञानिक/प्रभारी कानपुर क्षेत्रीय फील्ड यूनिट, कानपुर नगर को परीक्षित किया।

11. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य की समाप्ति के बाद, आरोपी अपीलकर्ता का बयान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन दर्ज किया गया, जिसमें उसने बलात्कार, हत्या और साक्ष्य छिपाने के आरोपों से इनकार किया और अभियोजन पक्ष के साक्षियों को हितबद्ध साक्षी बताया। उसने अभि.सा.-2 नवाब आलम और अभि.सा.-3 कमरे आलम की गवाही को झूठा बताया और आगे कहा कि पुलिस ने उसे उसके घर से गिरफ्तार किया और उसका झूठा कबूलनामा बयान दर्ज किया और उसे चालान भी किया।

12. बचाव पक्ष में, डीडब्लू-1 राधेश्याम को परीक्षित किया।

13. विद्वान न्यायालय ने दोनों पक्षों के तर्कों को सुनने के बाद दिनांक 13.12.2023 का आक्षेपित निर्णय व आदेश पारित किया, जिसमें अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 201, 376डीबी और पॉकसो अधिनियम की धारा 5/6 के अधीन दोषसिद्ध किया गया, इसके बाद, सजा पर सुनवाई का अवसर देते हुए, दिनांक 20.12.2023 का आदेश पारित किया, जिसमें अपीलकर्ता को मृत्युदंड दिया गया। आक्षेपित निर्णय व

आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा संदर्भ के साथ वर्तमान अपील को योजित किया गया है।

14. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री नरेंद्र कुमार सिंह की सहायता से श्री वीपी श्रीवास्तव, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, राज्य के विद्वान अधिवक्ता, श्री जितेंद्र कुमार जायसवाल, प्रथम सूचनादाता के लिए श्री अराफ खान, विद्वान अधिवक्ता की सहायता से श्री सगीर अहमद, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को सुना गया।

15. अपीलकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित तर्क रखे कि: (i) पंचनामा के समय न तो मृतका के शव पर कोई अंडरवियर मिला और न ही इसे कब्जे में लिया गया। इसी तरह, पोस्टमॉर्टम के समय भी वह नहीं मिला लेकिन एफएसएल रिपोर्ट के अनुसार, जांच के लिए भेजे गए कपड़ों के बंडल में एक अंडरवियर था, जो पूरी अभियोजन कहानी को संदिग्ध बनाता है।

(ii) सीओ द्वारा आवश्यक कार्रवाई के लिए एसओ, कम्पिल को 17.12.2023 को अग्रेषित एफएसएल रिपोर्ट दिनांकित 16.12.2023, अपीलकर्ता को दिनांक 13.12.2023 को दोषसिद्ध करते समय अभिलेख पर नहीं ली गई थी। इस एफएसएल रिपोर्ट को बाद में अभियोजन पक्ष द्वारा दाखिल किया गया और अपीलकर्ता को दोषसिद्ध करने के बाद विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अभिलेख पर लिया गया और दिनांक 20.12.2023 के आदेश के द्वारा मृत्युदंड देते समय विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा विचार किया गया, जो अपीलकर्ता के सामने नहीं रखा गया था, इस प्रकार उसे इसे स्पष्ट करने के अवसर से वंचित किया गया, जो उसके बचाव के अधिकार को गंभीर रूप से प्रभावित करता है।

(iii) पीड़िता 12.09.2023 को लगभग सुबह 9 बजे गायब होना बताया गया है और उसका शव उसी दिन लगभग शाम 6 बजे खोजा गया था और तहरीर भी 12.09.2023 को लिखी गई थी लेकिन प्र.सू.रि. 13.09.2023 को लगभग 01.01 बजे बिना किसी स्पष्टीकरण के लगभग छह घंटे की देरी से दर्ज की गई थी।

(iv) मृतका की गर्दन पर पाई गई मृत्यु-पूर्व चोटें वास्तव में पशु के काटने का परिणाम थीं, जो अपीलकर्ता द्वारा कारित किए गए नहीं कहे जा सकते, जो अभियोजन पक्ष की कहानी को विश्वसनीयता नहीं देता कि अपीलकर्ता ने मृतका की हत्या की है।

(v) मामले में कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है लेकिन प्र.सू.रि. संदेह पर दर्ज की गई थी, यह मानते हुए कि अपीलकर्ता ने मृतका के साथ बलात्कार और हत्या की। डीएनए रिपोर्ट नकारात्मक है और यह तथ्य स्थापित नहीं करता कि अपीलकर्ता ने पीड़िता के साथ बलात्कार किया। तदनुसार, मामला, परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित होने के कारण, उचित संदेह से परे सिद्ध नहीं माना जा सकता। चूंकि शव अपीलकर्ता के पोल्ट्री फार्म के पास से बरामद हुआ था इसलिए यह माना गया कि उसने बलात्कार और हत्या की हो सकती है। संदेह कितना भी मजबूत क्यों न हो, प्रमाण का स्थान नहीं ले सकता।

(vi) प्र.सू.रि. में और संयोग साक्षी की गवाही में कुछ भी नहीं है कि मृतका को अपीलकर्ता द्वारा ले जाया जा रहा था, सिवाय इस संस्करण के कि वह पोल्ट्री फार्म की ओर अपीलकर्ता के पीछे-पीछे जा रही थी।

16. विद्वान अ.शा.अधि. ने अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों का बलपूर्वक विरोध किया और तर्क दिया कि इस मामले में, प्र.सू.रि. उसी रात तुरंत दर्ज की गई थी। पीड़िता को अभि.सा.-2, 3 और 4 ने पोल्ट्री फार्म की ओर अपीलकर्ता के पीछे जाते हुए देखा। शव भी पोल्ट्री फार्म के पास मिला और मृतका के शरीर पर कई चोटें थीं, जो दर्शाती हैं कि उसके साथ बलात्कार किया गया और फिर मार डाला गया और अपीलकर्ता द्वारा अन्य सह-आरोपी के साथ खेत में फेंक दिया गया। जांच के दौरान, वैज्ञानिक/प्रभारी क्षेत्रीय फील्ड यूनिट कानपुर नगर द्वारा अपीलकर्ता से नमूने लिए गए। अभि.सा.-8 के रूप में परीक्षित डॉ. प्रवीण कुमार श्रीवास्तव ने बेंजिडीन परीक्षण किया, जिसमें अपीलकर्ता शाहिद के दोनों हाथों पर रक्त पाया गया और पेरिनियल स्वाब में रक्त और वीर्य भी उपस्थित पाए गए, जिसके आधार पर उसकी संलिप्तता स्थापित पाई गई। यह भी तर्क दिया गया कि मृतका/पीड़िता के शव पर मौजूद अंडरवियर को प्रभारी फील्ड यूनिट द्वारा 12.09.2022 को कब्जे में लिया गया था और अन्वेषण अधिकारी को सौंप दिया गया था। फर्द, चालान तैयार किया गया था यानी कागज संख्या 14-ए/1, इसलिए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि पंचनामा या पोस्टमॉर्टम के समय कोई अंडरवियर नहीं मिला, जो अभियोजन पक्ष के संस्करण को झूठा बनाता है, अस्थिर है। आगे इस पर कोई विवाद नहीं किया जा सका कि फर्द चालान कागज संख्या 14-ए/1 तैयार किया गया है और संबंधित अधिकारी द्वारा सिद्ध किया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि एफएसएल रिपोर्ट दिनांक 16.12.2023 को अपीलकर्ता को दोषसिद्ध करने के बाद अभिलेख पर लिया गया था और इसे विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा सहायक साक्ष्य के रूप में भी भरोसा किया गया था, हालांकि रिपोर्ट की सामग्री अपीलकर्ता के सामने नहीं रखी गई थी, लेकिन यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 293 के अधीन प्रासंगिक और स्वीकार्य है। इस प्रकार केवल उस आधार पर, दोषसिद्धि और सजा अवैध नहीं कही जा सकती।

17. अपीलकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता के साथ-साथ विद्वान अ.शा.अधि. द्वारा उठाए गए तर्कों से, ऐसा प्रतीत होता है कि बिन्दु संख्या 1 और 2 आरोपी के साथ-साथ पीड़िता के लिए निष्पक्ष सुनवाई की अवधारणा के मूल पर प्रहार करते हैं, इसलिए, हम अपने आप को पहले इन दो बिंदुओं तक सीमित रखते हैं और बाद में अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए अन्य पहलुओं पर विचार करेंगे।

18. बिन्दु संख्या 1:- जहां तक पंचनामा और पोस्टमॉर्टम के समय मृतका के अंडरवियर की अनुपस्थिति और एफएसएल रिपोर्ट में इसकी उपस्थिति से संबंधित तर्क का संबंध है, यह यहां इंगित करना उचित है कि पंचनामा 13.09.2023 को रात 1.45 बजे एसआई दीपक द्वारा की गई और सुबह 3 बजे समाप्त हुई। पंचनामा के दौरान रक्त और मिट्टी से सना हुआ आधे बांह की हल्के गुलाबी रंग की बनियान मिली लेकिन अंडरवियर का कोई उल्लेख नहीं है। कागज संख्या 15ए एफएसएल तालग्राम, कन्नौज द्वारा दिनांक 20.09.2023 को अग्रेषित एफएसएल रिपोर्ट है, जो अन्य वस्तुओं के साथ क्रम संख्या 6 पर अंडरवियर की प्रविष्टि दिखाती है। इसी तरह एफएसएल आगरा से एफएसएल रिपोर्ट कागज संख्या 50-ए दिनांक 16.12.2023 भी अन्य वस्तुओं

के साथ क्रम संख्या 5 पर अंडरवियर दर्शाती है। कागज संख्या 14-ए/1 है, जिस पर यह उल्लेख है कि हल्के क्रीम रंग का रक्त और मिट्टी से सना आधा अंडरवियर, जो मृतका के बाएं पैर में फंसा हुआ पाया गया था, घटनास्थल पर मौजूद अन्वेषण अधिकारी को सौंप दिया गया था, यह मृतका के शव से अंडरवियर की बरामदगी भी दिखाता है लेकिन इस कागज संख्या 14-ए/1 को उस अधिकारी द्वारा सिद्ध और प्रदर्शित नहीं किया गया है, जिसने इसे तैयार किया, हालांकि विधि के अधीन इस फर्द को तैयार करने वाले अधिकारी द्वारा इसे सिद्ध करना आवश्यक है। यह विद्वान न्यायालय के समक्ष अभियोजन पक्ष की ओर से असावधानी दिखाता है। दूसरी ओर, यह विद्वान विचारण न्यायालय का भी कर्तव्य था कि वह न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करके ऐसे साक्षी को सम्मन करे और परीक्षित करे लेकिन यह नहीं किया गया। इस बिंदु पर विद्वान अभियोजक के साथ-साथ विद्वान विचारण न्यायालय ने अपने कर्तव्यों के निर्वहन में त्रुटि की।

19. बिन्दु संख्या 2:- विद्वान विचारण न्यायालय ने 13.12.2023 को अपीलकर्ता को दोषसिद्ध किया। तब तक एफएसएल आगरा से भेजी गई दिनांक 16.12.2023 की एफएसएल रिपोर्ट अभिलेख पर नहीं थी। कागज संख्या 50-ए, 17.12.2023 को सीओ की प्रविष्टि के बाद आवश्यक कार्रवाई के लिए एसओ, कम्पिल को भेजी गई थी, जो अपीलकर्ता को दोषसिद्ध करने के बाद न्यायालय में दाखिल किया गया था लेकिन विद्वान विचारण न्यायालय ने 20.12.2023 को सजा के प्रश्न पर विचार करते समय उक्त एफएसएल रिपोर्ट पर विधिवत विचार किया है और फोरेंसिक विशेषज्ञ द्वारा दर्ज निष्कर्षों पर भरोसा करते हुए आरोपी को मृत्युदंड दिया है, जो विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के प्रस्तर 135 के पठन मात्र से स्पष्ट है। वास्तव में इस रिपोर्ट के अवयव को अपीलकर्ता के समक्ष धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन उसे इसे स्पष्ट करने का अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से नहीं रखा गया है, जबकि यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि किसी भी अपराध संकेती साक्ष्य को दोषसिद्धि के लिए विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा भरोसा किए जाने के लिए आरोपी को उसकी सामग्री के बारे में स्पष्टीकरण देने में सक्षम बनाने के लिए प्रदान किया जाना चाहिए, हालांकि विद्वान न्यायालय द्वारा उक्त प्रयास नहीं किया गया है, जो विद्वान विचारण न्यायालय की ओर से एक स्पष्ट त्रुटि है और दोषसिद्धि के आदेश को विधि में दूषित करती है।

20. डीएनए रिपोर्ट कागज संख्या 50-ए पर 16.12.2023 को एफएसएल आगरा के डीएनए अनुभाग के उप निदेशक द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं। कागज संख्या 15-ए एफएसएल, तालग्राम रिपोर्ट 20.09.2023 को एफएसएल, तालग्राम के उप निदेशक के हस्ताक्षर के अधीन तैयार की गई थी। हालांकि, डीएनए रिपोर्टों की सामग्री/निष्कर्षों को सिद्ध करने के लिए किसी भी विशेषज्ञ का परीक्षण नहीं किया गया। न तो विद्वान न्यायालय के समक्ष रिपोर्ट दाखिल करने वाले पुलिस अधिकारियों के बयान के दौरान इसे प्रदर्शित किया गया और न ही बचाव पक्ष के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा इसकी वास्तविकता को स्वीकार किया गया।

21. यहां तक कि डीएनए रिपोर्ट के संबंध में प्रासंगिक प्रश्न आरोपी व्यक्ति/अपीलकर्ता से नहीं पूछे गए, जब उसके बयान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन दर्ज किए गए, जिससे उसे पूर्वाग्रह हुआ।

22. अपराध का संज्ञान 17.10.2023 को लिया गया था और विचारण की समाप्ति के बाद, अपीलकर्ता को 13.12.2023 को यानी एक महीने और छब्बीस दिनों के भीतर दोषसिद्ध किया गया बिना आवश्यक साक्षियों के परीक्षण को पूरा किए, कड़ियों को सिद्ध किए और आरोपी को सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना और अनुचित जल्दबाजी के साथ विचारण को समाप्त किया। विचारण न्यायालय की कागज संख्या 14ए/1 को सिद्ध करने और डीएनए रिपोर्ट पर भरोसा करने के लिए वैज्ञानिक विशेषज्ञों की जांच सुनिश्चित करने में विफलता न्याय की विफलता है, जो विचारण को दूषित करती है। ऐसे मामलों में, जहां फांसी की सजा आरोपी को वैकल्पिक दंड हो सकती है, विद्वान विचारण न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि वह अधिक सतर्क और संभल कर रहे जिससे आरोपी को हर चरण में सुनवाई का अवसर प्रदान किया जा सके अन्यथा यह आरोपी के मौलिक अधिकार का उल्लंघन होगा, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन गारंटीकृत निष्पक्ष सुनवाई के उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन करेगा।

23. माननीय शीर्ष न्यायालय के समक्ष ***अनोखीलाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य AIR 2020 SC 232*** में इसी तरह का विवाद उठाया गया था, जहां मामले को नए सिरे से सुनवाई के लिए विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित कर दिया गया था, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पूरी सुनवाई एक महीने से कम की अवधि में पूरी की गई थी और डीएनए रिपोर्ट लगभग मामले के अंतिम चरण में प्राप्त हुई थी, ऐसी प्राप्ति के बाद हालांकि तकनीकी रूप से आरोपी को एक अवसर दिया गया था, बिन्दु को उसी दिन समाप्त कर दिया गया था। प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:

"26. आपराधिक मामलों में शीघ्र निस्तारण निस्संदेह आवश्यक है और यह स्वाभाविक रूप से निष्पक्ष सुनवाई की गारंटी का हिस्सा होगा। हालांकि, प्रक्रिया को तेज करने के प्रयास निष्पक्षता के बुनियादी तत्वों और आरोपी को अवसर की कीमत पर नहीं होने चाहिए, जिन सिद्धांतों पर, आपराधिक न्याय का पूरा प्रशासन स्थापित है। शीघ्र निस्तारण में, न्याय को कभी भी पीड़ित या बलिदान करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। जो सर्वोपरि है, वह न्याय है और बुनियादी सामग्री को सुरक्षित रखते हुए जो एक मूल विचार और आदर्श के रूप में सुरक्षित करता है, प्रक्रिया को तेज किया जा सकता है, लेकिन प्रक्रिया की तेज ट्रैकिंग को कभी भी न्याय के कारण को दफनाने का परिणाम नहीं होना चाहिए।

.....

28. हम सावधानी के तौर पर केवल इतना कह सकते हैं कि उन मामलों में जहां मृत्युदंड वैकल्पिक सजाओं में से एक हो सकता है, न्यायालयों को पूरी तरह से सतर्क रहना चाहिए और यह देखना चाहिए कि हर चरण में आरोपी को पूर्ण अवसर प्रदान किया जाए।

29. इसलिए, हमें अपीलकर्ता के विरुद्ध विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णयों और सजा के आदेशों को अपास्त करने और नए सिरे से विचार का निर्देश देने में कोई संकोच नहीं है। विचारण न्यायालय में अपीलकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता के लिए मुद्दों को छूने वाली

कोई भी प्रस्तुतियां करना खुला होगा (i) क्या विचारण न्यायालय द्वारा तय किए गए आरोपों को संशोधित करने की आवश्यकता है या नहीं; (ii) क्या किसी अभियोजन पक्ष के साक्षियों को आगे की प्रति-परीक्षा के लिए वापस बुलाने की आवश्यकता है; और (iii) क्या एफएसएल रिपोर्ट और डीएनए रिपोर्ट के जवाब में कोई विशेषज्ञ साक्ष्य देने की आवश्यकता है। इसके बाद, मामले पर विधि के अनुसार अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर विचार किया जाएगा।"

24. चूंकि वर्तमान मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, इसलिए अभियोजन पक्ष को आरोपी के अपराध को दर्शाने वाली परिस्थितियों की श्रृंखला में प्रत्येक कड़ी को सिद्ध करना है लेकिन फर्द कागज संख्या 14ए/1, एफएसएल और डीएनए रिपोर्ट कागज संख्या 15ए और 50ए को अप्रमाणित छोड़ दिया गया है, जबकि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा आरोपी को दोषसिद्ध करने और सजा देने में इन पर भरोसा किया गया, बिना उसे इनके बारे में स्पष्टीकरण देने का अवसर दिए।

25. आगे ***16.01.2025 को निर्णीत, इरफान उर्फ भयू मेवाती बनाम मध्य प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या-166/1668 सन 2021*** में, जहां डीएनए को न तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 294 के अधीन स्वीकार किया गया था और न ही डीएनए विशेषज्ञ रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करने वाले का साक्ष्य प्रस्तुत किया गया था लेकिन इन रिपोर्टों पर विद्वान न्यायालय द्वारा भरोसा किया गया था और भारतीय दंड संहिता की धारा 376डीबी के अधीन अन्य धाराओं और पॉकसो अधिनियम के साथ मृत्युदंड दिया गया था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर संख्या 29, 30, 31 और 32 में निर्णय दिया, जैसा कि नीचे उद्धृत किया गया है:

"29. वर्तमान प्रकरण में फांसी की सजा दी गई है और इस प्रकार, आरोपी को अपना बचाव करने के लिए एक निष्पक्ष अवसर प्रदान करना अनिवार्य और अपरक्राम्य है। वर्तमान प्रकरण में सुनवाई आरोपी को बचाव का उचित अवसर प्रदान किए बिना और मामले के पंजीकरण की तारीख से दो महीने से कम की अवधि के भीतर समाप्त कर दी गई, जो अनुचित जल्दबाजी का प्रतिबिंब है। डीएनए रिपोर्ट पर भरोसा करते हुए वैज्ञानिक विशेषज्ञों के बयान को सुनिश्चित करने में विचारण न्यायालय की विफलता ने निश्चित रूप से न्याय की विफलता को जन्म दिया है, जिससे विचारण को दूषित किया गया है।

30. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, हम अपीलकर्ताओं द्वारा योजित आवेदन को स्वीकार करते हैं। प्रकरण को विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया जाता है, जो डीएनए रिपोर्ट की तैयारी और जारी करने से जुड़े वैज्ञानिक विशेषज्ञों को पूरी सहायक सामग्री के साथ सम्मन करेगा। इन वैज्ञानिक विशेषज्ञों को सम्मन किया जाएगा और उस क्रम में अभियोजन और बचाव पक्ष को परीक्षण के उचित अवसर के साथ न्यायालय के साक्षियों के रूप में परीक्षित किया जाएगा। यदि आरोपी का उनकी पसंद के अधिवक्ता द्वारा प्रतिनिधित्व नहीं किया जाता हैं, तो आरोपियों का बचाव करने के लिए अनोखीलाल (उपरोक्त) (इस निर्णय के प्रस्तर 26 में दिया गया) में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों के संदर्भ में पर्याप्त अनुभव वाले एक बचाव पक्ष के अधिवक्ता को नियुक्त किया जाएगा, नए सिरे से सुनवाई में।

31. वैज्ञानिक विशेषज्ञों की गवाही दर्ज होने के बाद, आरोपियों से फिर से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन ताजा साक्ष्य के संदर्भ में पूछताछ की जाएगी। उन्हें बचाव पक्ष का साक्ष्य प्रस्तुत करने का उचित अवसर प्रदान किया जाएगा। इसके बाद, विचारण न्यायालय तर्कों को फिर से सुनने के लिए आगे बढ़ेगा और विधि के अनुसार मामले का नए सिरे से निर्णय करेगा। ऊपर निर्देशित पूरी प्रक्रिया, इस आदेश की प्राप्ति की तिथि से चार महीने की अवधि के भीतर पूरी की जाएगी।

32. यह कि ऊपर की गई चर्चा आरोपियों के डीएनए रिपोर्ट से जुड़े वैज्ञानिक विशेषज्ञों की जांच की मांग करने के अधिकार के मुद्दे तक सीमित है और इसे प्रकरण की योग्यता पर प्रतिबिंब के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए, जिस पर विचार किया जाएगा और इस आदेश में हमारे द्वारा की गई किसी भी टिप्पणी से प्रभावित हुए बिना जांच की जाएगी।"

26. इस प्रकार, हम सुविचारित मत के हैं कि वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, और उपरोक्त मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के दृष्टिगत, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय व आदेश दिनांक 20.12.2023 अपास्त किया जाता है और प्रकरण को विद्वान विचारण न्यायालय को मृतका के शव से अंडरवियर लेने के संबंध में फर्द को सिद्ध करने और एफएसएल/डीएनए रिपोर्ट की तैयारी और जारी करने से जुड़े वैज्ञानिक विशेषज्ञों को पूरी सहायक सामग्री के साथ न्यायालय के साक्षियों के रूप में सम्मन करने और आरोपी को प्रति-परीक्षा का अवसर दिए जाने के लिए प्रतिप्रेषित किया जाता है, ***इरफान उर्फ भयू मेवाती (उपरोक्त)*** में की गई टिप्पणियों के प्रकाश में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है और फिर प्रकरण का नए सिरे से निर्णय करने के लिए।

27. तदनुसार, अपील ***स्वीकार*** की जाती है और संदर्भ निस्तारित किया जाता है।

28. इस निर्णय की प्रति के साथ अवर न्यायालय के मूल अभिलेख को आवश्यक अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय को प्रेषित किया जाए।

(2025) 5 ILRA 77

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 30.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला

माननीय न्यायमूर्ति जितेंद्र कुमार सिन्हा

आपराधिक अपील संख्या 328 सन् 1986

सर्वनारायण तिवारी व अन्य **..... अपीलकर्ताओं**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **..... प्रतिवादी**

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:
कृतिका पांडेय, आर.पी. सिंह, राजेश कुमार सिंह

प्रत्यर्थी के लिए अधिवक्ता:
अ.शा.अधि.

ए. दंड विधि-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374(2)-भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 302/34 एवं 201/34 चुनौती-दोषसिद्धि-घटना 1983 में जिला आजमगढ़ में घटित हुई थी-कथित तौर पर अपीलकर्ताओं द्वारा भूमि विवाद को लेकर मृतका पर लाठियों और अन्य हथियारों से हमला किया गया था-परिवादी/अभि.सा.-1 द्वारा सभी अभियुक्तों को नामित करते हुए तुरंत प्र.सू.रि. दर्ज की गई थी-पोस्टमार्टम ने कुंद बल आघात के अनुरूप चोटों की पुष्टि की-न्यायालय ने पाया कि प्रत्यक्षदर्शियों के विवरण सुसंगत और विश्वसनीय थे, प्र.सू.रि. तुरंत दर्ज की गई थी, चिकित्सा और चक्षुदर्शी साक्ष्य में कोई गंभीर विरोधाभास नहीं था-घटनास्थल पर हथियारों के साथ सभी अभियुक्तों की उपस्थिति, सभी तीन प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा सिद्ध की गई थी-अन्य प्रत्यक्षदर्शियों ने अभि.सा.-1 के संस्करण की पुष्टि की, बताया कि सभी अभियुक्तों ने लाठियों और डंडों से लैस होकर मृतका पर हमला किया-चिकित्सा रिपोर्ट ने हमले की प्रकृति और उपयोग किए गए हथियारों के प्रकार के संबंध में प्रत्यक्षदर्शियों के विवरणों की पूरी तरह से पुष्टि की-अभि.सा.5 (डॉक्टर) द्वारा किए गए पोस्टमार्टम रिपोर्ट से पता चलता है कि मृतका को शरीर के महत्वपूर्ण अंगों पर कई घावों और फ्रैक्चर का सामना करना पड़ा-पक्षों के बीच भूमि विवाद को हेतुक के रूप में उद्धृत किया गया और बचाव पक्ष कोई अन्य समुचित वैकल्पिक हेतुक खंडित करने या पेश करने में विफल रहा-सभी अभियुक्तों का साझा आशय और भागीदारी सभी साक्ष्यों द्वारा अच्छी तरह से समर्थित थी-इस प्रकार, भा.दं.सं. की धारा 302/149 के अधीन दोषसिद्धि और आजीवन कारावास की सजा को बनाए रखा गया। (प्रस्तर 1 से 34)

अनुवादित

अपील निरस्त की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. जोस @ पप्पाचन बनाम एस.आई. कोयिलैंडी और अन्य, (2016) 10 SCC 519
2. कृष्णा मोची व अन्य बनाम बिहार राज्य, (2002) 6 SCC 81
3. शरद बिरदीचंद सरदा (1984) 4 SCC 116
4. हरिप्रसाद उर्फ किशन साहू बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2024) 2 SCC 557
5. राज्य द्वारा पुलिस निरीक्षक बनाम लाली @ मणिकंदन, (2022) SCC OnLine SC 1424
6. त्रिमुख मारोती किरकन बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2006) 10 SCC 681

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला द्वारा उद्घोषित)

1. दोनों आपराधिक अपीलें, सत्र विचारण संख्या 249 सन् 1984 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, बलिया द्वारा पारित निर्णय व आदेश दिनांक 10.12.1985 के विरुद्ध योजित की गई हैं, जिसके द्वारा अपीलकर्ताओं को धारा 302/34 और 201/34 भा.दं.सं. के अधीन दोषसिद्ध किया गया और क्रमशः आजीवन सश्रम कारावास और तीन वर्ष के कारावास की सजा सुनाई गई थी।

2. दिनांक 12.01.2024 के आदेश के अनुसार मुख्य अपील अपीलकर्ता संख्या 2-सुभ नारायण तिवारी के संबंध में उपशमित हो गई और दिनांक 06.03.2017 के आदेश के अनुसार संबद्ध अपील अपीलकर्ता संख्या 1-सीता राम के संबंध में उपशमित हो गई। अब, मुख्य अपील केवल अपीलकर्ता संख्या 1- सर्वनारायण तिवारी के संबंध में शेष है और संबद्ध अपील केवल अपीलकर्ता संख्या 2-सरस्वती देवी उर्फ सुरसतिया के संबंध में शेष है।

3. हमने मुख्य आपराधिक अपील संख्या-328 सन् 1986 में जीवित-अपीलकर्ता संख्या 1-सर्वनारायण तिवारी और संबद्ध अपील संख्या 3328 सन् 1985 में जीवित अपीलकर्ता संख्या 2-श्रीमती सरस्वती देवी उर्फ सुरसतिया के विद्वान अधिवक्ता, श्री राजेश कुमार सिंह के साथ-साथ उत्तर प्रदेश राज्य के लिए विद्वान राज्य विधि अधिकारी, सुश्री मयूरी मेहरोत्रा को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

4. लिखित सूचना के अनुसार अभियोजन पक्ष का संस्करण यह है कि 06.09.1984 को थाने पर श्री राम तिवारी द्वारा सूचना दी गई कि उनके पड़ोसी सीता राम तिवारी की बहू अपने घर में जली हुई मृत पड़ी है। उन्होंने आगे सूचित किया कि आज, दोपहर में उसे उसके देवर-सुभ नारायण तिवारी ने पीटा था, पीटते समय उसने कहा कि कहीं जाकर डूब मरो और हमारे घर में तुम्हारे लिए कोई जगह नहीं है। मृतका के घर से धुआं निकलता देख पड़ोस के लोग वहां पहुंचे और तब तक उसकी मृत्यु हो चुकी प्रतीत हुई। ऐसा प्रतीत हुआ कि या

तो पीटे जाने के कारण या किसी अन्य कारण से, जो उन्हें ज्ञात नहीं है, सीता राम की बहू की जलने से मृत्यु हो गई। सीता राम और उसके बेटे घर में नहीं थे। उक्त लिखित सूचना के आधार पर, अपराध संख्या 133/84 में धारा 306, 498ए और 323 भा.दं.सं. के अधीन मामला दर्ज किया गया। तत्पश्चात अगले दिन अर्थात 07.09.1984 को पोस्टमार्टम किया गया। मृतका के शरीर पर निम्नलिखित मृत्यु-पूर्व चोटें पाई गईं:

(1) चेहरे के बाईं ओर अनुदैर्ध्य दिशा में आकार 3 cm x 0.5 सेमी x मांसपेशी गहरा कटा हुआ घाव।

(2) दाहिने पैर के फ्लू और दाहिने पैर के पृष्ठभाग को छोड़कर पूरे शरीर पर चतुर्थ डिग्री का जलना। शरीर काला पड़ गया, सिर के सभी बाल जल कर काले पड़ गए। कई जगहों पर शरीर से त्वचा उतर गई।

5. तत्पश्चात अन्वेषण अधिकारी द्वारा अन्वेषण प्रारंभ किया गया और उसे समाप्त करने के बाद अभियुक्तों के विरुद्ध धारा 302/34 और 201/34 भा.दं.सं. के अधीन आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। अभियुक्तों ने आरोप के लिए दोषी नहीं होने की दलील दी और मृतका की हत्या करने से इनकार किया। उन्होंने दावा किया कि उन्हें दुश्मनी के कारण झूठा फंसाया गया है।

6. अभियोजन पक्ष ने कुल 8 साक्षियों को परीक्षित किया है, अर्थात्, अभि.सा.1-श्री राम तिवारी, अभि.सा.2-व्यास तिवारी, अभि.सा.3- श्याम लाल तिवारी अभि.सा.4- हृदयानंद सिंह, अभि.सा.5- भृगु नाथ सिंह, अभि.सा.6-नंद कुमार राय, अभि.सा.7-डॉ. जी.पी. त्रिपाठी और अभि.सा.8-शिव शंकर सिंह।

7. अभियोजन पक्ष ने अभिलेखीय साक्ष्य भी प्रस्तुत किए हैं, जिन्हें प्रदर्श क-1-प्र.सू.रि., प्रदर्श क-2-आरोपपत्र, प्रदर्श क-3-पंचायतनामा, प्रदर्श क-4-पुलिस रिपोर्ट संख्या 13, प्रदर्श क-5-मृतका सुनैना का फोटोनाश, प्रदर्श क-6-नमूना मोहर, प्रदर्श क-8-जी.डी. प्रविष्टि, प्रदर्श क-9-पोस्टमार्टम रिपोर्ट, प्रदर्श क-10-सूचकांक के साथ नक्शा नज़री, प्रदर्श क-11-जली हुई मिट्टी और बालों की बरामदगी ज्ञापन के रूप में चिह्नित किया गया था।

8. जीवित अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का प्रस्तुतीकरण यह है कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है, जिसमें परिस्थितियों की कड़ी और श्रृंखला स्थापित नहीं है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि आपराधिक आरोप पर सफल होने के लिए मामला "सत्य होना चाहिए" की श्रेणी में आना चाहिए न कि "सत्य हो सकता है" की श्रेणी में। यह प्रस्तुत किया गया है कि यदि दो दृष्टिकोण संभव हैं, एक अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करता है और दूसरा उसकी निर्दोषता की ओर, तो अभियुक्त के पक्ष में अनुकूल वाला अपनाया जाना चाहिए। अपने विधिक प्रस्तुतीकरण के समर्थन में उन्होंने **जोस उर्फ पप्पाचन बनाम पुलिस सब इंस्पेक्टर कोयिलैंडी व अन्य, (2016) 10 SCC 519** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है।

9. तथ्यों पर, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है। अभि.सा.1-श्री राम तिवारी, अभि.सा.2- व्यास तिवारी और अभि.सा.3- श्याम लाल तिवारी, जो तथ्य

के साक्षी बताए गए हैं, के बयानों में गंभीर असंगति है, । यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रारंभ में प्रथम सूचना रिपोर्ट धारा 306, 498ए और 323 भा.दं.सं. के अधीन दर्ज की गई थी, हालांकि, आरोपपत्र धारा 302/34 और 201/34 भा.दं.सं. के अधीन प्रस्तुत किया गया था। यह बताया गया कि जीवित अपीलकर्ता सर्वनारायण तिवारी, मृतका के पति, और सरस्वती देवी, मृतका की विवाहित ननद हैं। प्रथम सूचना रिपोर्ट की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए यह प्रस्तुत किया गया कि वह श्री राम तिवारी-अभियुक्तों के पड़ोसी द्वारा दर्ज की गई थी, जिसमें केवल सुभ नारायण तिवारी-सर्वनारायण तिवारी के भाई के विरुद्ध आरोप लगाए गए थे और प्रथम सूचना रिपोर्ट में जीवित अपीलकर्ताओं के विरुद्ध कोई आरोप नहीं था और मामले में सुधार करके उन्हें बाद में दुर्भावनापूर्ण इरादे से केवल पूरे परिवार के सदस्यों को फंसाने के कारण फंसाया गया है जबकि यहां अपीलकर्ताओं के विरुद्ध कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि घटनास्थल पर अभियुक्तों की उपस्थिति के संबंध में अभि.सा.1-श्री राम तिवारी, अभि.सा.2- व्यास तिवारी और अभि.सा.3- श्याम लाल तिवारी के बयानों में गंभीर विरोधाभास हैं और उन्होंने अपने संस्करण में सुधार किया है।

10. उन्होंने बताया कि अभि.सा.-1- श्री राम तिवारी ने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करते हुए आरोप लगाया कि मृतका (सुनैना) को सुभ नारायण तिवारी द्वारा पीटा जा रहा था और उसे गाली भी दी जा रही थी और पीटते समय, उसने कहा कि कहीं जाकर डूब मरो और हमारे घर में तुम्हारे लिए कोई जगह नहीं है। मृतका के घर से धुआं निकलता देख पड़ोस के लोग वहां पहुंचे और तब तक उसकी मृत्यु हो चुकी प्रतीत हुई। उन्होंने कहा कि ऐसा प्रतीत होता है कि या तो पीटे जाने के कारण या किसी अन्य कारण से, जो उन्हें ज्ञात नहीं है, सीता राम की बहू की जलने से मृत्यु हो गई। उन्होंने कहा कि सीता राम और उसके बेटे घर में नहीं थे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि जबकि 20.03.1985 को दर्ज न्यायालय के समक्ष बयान में उन्होंने कहा था कि सभी अभियुक्त, अर्थात्, सुभ नारायण तिवारी, सीता राम तिवारी, सर्वनारायण तिवारी और सरस्वती सुनैना (मृतका) को लात और मुक्कों से पीट रहे थे और यह भी कहा कि "तुम डूब जाओ, मर जाओ, तुम्हारे जैसी औरत की मेरे घर में जरूरत नहीं है" और उसके अतिरिक्त सूचनाकर्ता, व्यास तिवारी, श्याम लाल तिवारी और अन्य व्यक्ति घटनास्थल पर पहुंचे और मृतका को बचाने की कोशिश की, हालांकि, सुनैना (मृतका) को उनके द्वारा घर के अंदर ले जाया गया, तत्पश्चात मृतका की चीख और चिल्लाहट घर से आ रही थी और फिर यह सुनाई दिया "बाप रे बाप जान गइल"। तत्पश्चात, अभियुक्तों के घर से धुआं और जलने की गंध आ रही थी और बाद में, अभियुक्त घर से बाहर आए। वह प्रस्तुत करते हैं कि अभि.सा.-1 ने अपने बयान में स्पष्ट सुधार किया है। यह और बताया गया कि अभि.सा.-1 ने अपनी प्रति-परीक्षा में स्वीकार किया था कि उसने केवल सुभ नारायण को घटनास्थल से भागते देखा था। उन्होंने अपनी प्रति-परीक्षा में यह भी स्वीकार किया कि कमरे के अंदर रखा कोई सामान जला हुआ नहीं मिला।

12. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे बताया कि अभि.सा.2-व्यास तिवारी ने अपनी प्रति-परीक्षा में हत्या का हेतुक दिया था कि फूलन देव तिवारी पुत्र सीता नाथ तिवारी का सर्वनारायण तिवारी की पत्नी मृतका-सुनैना के साथ अवैध संबंध था और मृतका की ननद सरस्वती ने फूलन देव तिवारी को सुनैना के कमरे से भागते हुए देखा था, जिसने बदले में अपने पिता सीता राम को सूचित किया और सीताराम ने यह सुभ

नारायण तिवारी को बताया और इसलिए, वे उसे गाली दे रहे थे और कहा "हरामजादी तुम डूब मरो, तुम्हारे लिए इस घर में जगह नहीं है"। उन्होंने कहा कि शोर और चीख-पुकार सुनने के बाद, वह, श्री राम तिवारी (सूचनाकर्ता) और बुद्धु घटनास्थल पर पहुंचे और पीड़िता को बचाने की कोशिश की, हालांकि, सभी अभियुक्तों ने सुनैना को घर के अंदर ले जाकर उसे पीटना शुरू कर दिया, कुछ समय बाद यह सुनाई दिया "अरे बाप रे जान गइल" और कुछ समय बाद, घर से धुआं निकलने लगा और आसपास में जलने की गंध महसूस हुई। तत्पश्चात, चारों अभियुक्तों ने घटनास्थल छोड़ दिया। अपनी प्रति-परीक्षा के प्रस्तर 6 में उन्होंने हेतुक दिया है कि सरस्वती ने फूलन देव को सुनैना के कमरे से अपनी खिड़की (जंगला) से भागते हुए देखा था। अपनी प्रति-परीक्षा में जहां तक इस तथ्य का संबंध है कि उसने क्या देखा था सर्वनारायण तिवारी को घटनास्थल से भागते हुए, उसने कहा कि उसने सर्वनारायण को नहीं देखा है और केवल उसका शोर सुना है।

13. अभि.सा.-3-श्याम लाल तिवारी के बयान की ओर ध्यान आकर्षित किया गया कि अपनी प्रति-परीक्षा में उन्होंने कहा था कि उन्होंने दोपहर से पहले किसी भी अभियुक्त को सुनैना को पीटते हुए नहीं देखा था और उन्होंने दोपहर में सर्वनारायण तिवारी को कहीं से आते हुए नहीं देखा था। उन्होंने दरवाजा खुला पाया और घर में सभी सामान जले हुए नहीं थे और कमरे की दीवार पर धुएं का कोई निशान नहीं था और उनके सामने उनके घर से कोई अभियुक्त बाहर नहीं आया।

14. अभि.सा.-1, अभि.सा.-2 और अभि.सा.-3 के बयान को उजागर करते हुए यह प्रस्तुत किया गया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में वर्णित घटना के संस्करण में सुधार हुआ था और इसलिए, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में उक्त बयानों पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है और दोहराया गया कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है, इसलिए, संदेह का लाभ जीवित अभियुक्त अपीलकर्ताओं के पक्ष में जाना चाहिए।

15. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि किसी भी स्थिति में मुख्य आरोप सुभनारायण तिवारी (मृतका के देवर) के विरुद्ध था और जीवित अभियुक्त अपीलकर्ताओं के विरुद्ध हत्या करने का कोई विशिष्ट आरोप नहीं था। अभि.सा.-7-डॉ जी.पी. त्रिपाठी के बयान को उजागर करते हुए कि चोट संख्या 1 किसी तेज धार वाले हथियार से लगी थी, हालांकि, ऐसी कोई बरामदगी नहीं है और इस प्रकार अभियोजन पक्ष का संस्करण संदिग्ध हो जाता है। उन्होंने डी.डब्लू.1, सुनैना देवी के बयान की ओर ध्यान आकर्षित किया है, जो स्वयं को फूलन देव तिवारी की पत्नी होने का दावा करती हैं और कहती हैं कि वह सुनैना देवी हैं और सर्वनारायण तिवारी की पत्नी जमवंती है न कि सुनैना देवी। वह कहती हैं कि सर्वनारायण तिवारी की पत्नी, उसके पति फूलन देव तिवारी की भाभी है और उसके पति फूलन देव का किसी अन्य महिला के साथ कभी अवैध संबंध नहीं रहा। प्रस्तर 4 में उन्होंने कहा कि एक बार सर्वनारायण की पत्नी घर आई लेकिन अचानक भाग गई और यह ज्ञात नहीं है कि वह कहां गई थी। उन्होंने आगे कहा कि उनकी जानकारी के अनुसार दो वर्षों के भीतर सीता राम तिवारी के घर के अंदर कोई महिला नहीं जली थी। उन्होंने इस सुझाव से इनकार किया कि सर्वनारायण तिवारी की पत्नी का नाम सुनैना था। इस प्रकार उजागर किए गए बयानों की ताकत पर, प्रस्तुतीकरण यह है कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है और **जोस (उपरोक्त)** के निर्णय के प्रकाश में परिस्थितिजन्य

साक्ष्य की कड़ी और श्रृंखला स्थापित नहीं है और यहां अभियुक्त अपीलकर्ताओं को संदेह का लाभ दिया जाना है।

16. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि किसी भी स्थिति में प्रथम सूचना रिपोर्ट सुभ नारायण तिवारी के विरुद्ध दर्ज की गई है न कि जीवित अपीलकर्ता सर्वनारायण तिवारी और सरस्वती के विरुद्ध और इसलिए, वे सभी आरोपों से दोषमुक्त होने के अधिकारी हैं।

17. इसके विपरीत, सुश्री मयूरी मेहरोत्रा, उत्तर प्रदेश राज्य की विद्वान राज्य विधि अधिकारी ने प्रस्तुत किया है कि यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है; पहले तुरंत पिटाई हुई, उसके बाद गला घोंटकर हत्या की गई और उसके तुरंत बाद साक्ष्य को नष्ट करने के लिए शव जला दिया गया। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि घटना अभियुक्तों के घर के अंदर हुई थी, इसलिए, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के अनुसार अपनी निर्दोषता सिद्ध करने का भार अभियुक्तों पर था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट तात्कालिक थी। यह भी प्रस्तुत किया गया कि हत्या करने का एक मजबूत हेतुक है क्योंकि मृतका का फूलन देव तिवारी के साथ अवैध संबंध था।

18. आगे बढ़ने से पहले, **कृष्ण मोची व अन्य बनाम बिहार राज्य, (2002) 6 SCC 81** निर्णय को देखना उचित होगा, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर 32 में निम्नानुसार कहा है:

"32*. इस प्रकार, एक आपराधिक मुकदमे में एक अभियोजक को बहुत सारी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। साक्ष्य की विवेचना करते समय न्यायालय को जीवन की इन वास्तविकताओं से अनजान नहीं रहना चाहिए और हाथीदांत के महल में बैठकर अवास्तविक दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए। मुझे लगता है कि हाल के समय में किसी अभियुक्त को आसानी से दोषमुक्त करने की प्रवृति तेजी से बढ रही है। निस्तारण के मानदंड को प्राप्त करने के लिए एक संक्षिप्त निर्णय द्वारा मामले में उठाए गए मामूली बिंदुओं के आधार पर दोषमुक्ति का आदेश पारित करना बहुत आसान है। प्रत्येक और हर मामले में कुछ विसंगति होना निश्चित है, जो न्यायालय के ऊपर तब तक प्रभाव नहीं डालनी चाहिए जब तक कि यह अभियोजन मामले को गंभीर रूप से प्रभावित नहीं करती। यदि बताई गई विसंगतियां कंकरीले क्षेत्र में हैं, तो न्यायालय को इस पर चलना चाहिए, लेकिन यदि वह बोल्डर हैं, तो न्यायालय को इससे कूदने का प्रयास नहीं करना चाहिए। आजकल जब अपराध बढ़ रहा है और मानवता पीड़ित है और समाज इससे इतना प्रभावित है, न्यायालयों के कर्तव्य और जिम्मेदारियां बहुत अधिक हो गई हैं। अब यह कहावत "सौ दोषी व्यक्तियों को दोषमुक्त होने दो, लेकिन एक भी निर्दोष को दोषसिद्ध नहीं ठहराया जाए" व्यवहार में, दुनिया भर में बदल रही है और न्यायालयों को यह स्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ा है कि "समाज गलत दोषसिद्धियों से पीड़ित है और यह समान रूप से गलत दोषमुक्तियों से पीडित है"। मुझे लगता है कि इस न्यायालय ने हाल के समय में समय-समय पर इन तथ्यों का ईमानदारी से संज्ञान लिया है। इंदर सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) [(1978) 4 SCC 161 : 1978 SCC (Cri) 564 : AIR 1978 SC 1091] में न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर ने यह निर्धारित किया कि: (SCCपृष्ठ 162,प्रस्तर 2)*

"उचित संदेह से परे साक्ष्य एक दिशानिर्देश है, एक बुत नहीं और दोषी आदमी इससे बच नहीं सकता क्योंकि सच्चाई को मानव प्रक्रियाओं के माध्यम से प्रक्षेपित होने पर कुछ दुर्बलता का सामना करना पड़ता है।" उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अनिल सिंह [1988 Supp SCC 686 : 1989 SCC (Cri) 48 : AIR 1988 SC 1998] में यह निर्णीत किया गया कि एक न्यायाधीश केवल यह देखने के लिए एक आपराधिक मुकदमे की अध्यक्षता नहीं करता है कि कोई निर्दोष व्यक्ति दंडित न हो। एक न्यायाधीश यह देखने के लिए भी अध्यक्षता करता है कि एक दोषी आदमी बच न जाए। एक उतना ही महत्वपूर्ण है जितना दूसरा। दोनों सार्वजनिक कर्तव्य हैं, जो न्यायाधीश को करने हैं। पच्छिम बंगाल राज्य बनाम ऑरिलाल जायसवाल [(1994) 1 SCC 73 : 1994 SCC (Cri) 107] में यह निर्णीत किया गया कि न्याय को इस दलील पर बाँझ नहीं बनाया जा सकता कि सौ दोषियों को बचने देना बेहतर है बजाय एक निर्दोष को दंडित करने के। दोषी को बचने देना विधि के अनुसार न्याय करना नहीं है। मोहन सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(1999) 2 SCC 428 : 1999 SCC (Cri) 261 : (1999) 1 SCR 276] में यह निर्णीत किया गया कि न्यायालय अनाज से भूसा हटा रहे है। इसे संदेह के बादल को हटाना होगा और धूल के धब्बे को बाहर निकालना होगा क्योंकि ये सभी चीजें सच्चाई को बाधित करती हैं। जब तक भूसा, बादल और धूल बनी रहती है, अपराधियों को संदेह का लाभ प्राप्त करने के लिए इस सुरक्षात्मक परत से सुसज्जित किया जाता है। इसलिए यह न्यायालयों का गंभीर कर्तव्य है, न केवल निष्कर्ष निकालने और मामले को छोड़ने का जिस क्षण संदेह पैदा होते हैं। यह न्यायालय का कठिन कर्तव्य है, अनुमति योग्य सीमा के भीतर, सच्चाई का पता लगाना। इसका मतलब है, एक तरफ किसी भी निर्दोष आदमी को दंडित नहीं किया जाना चाहिए लेकिन दूसरी तरफ यह देखना कि कोई अपराध करने वाला व्यक्ति बच न जाए। यदि ऐसे प्रयास के बाद भी संदेह नहीं घुलता, तो यह बड़े पैमाने पर लिखा रहता है, संदेह का लाभ अभियुक्त को दिया जाना है।"

(महत्व प्रदत्त)

19. ***शरद बिरदीचंद सरदा*, (1984) 4 SCC 116** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक निर्णय के प्रस्तर 153, 154, 159, 163, 164 और 165 को उद्धृत करना भी उचित होगा। इस निर्णय पर जोस (उपरोक्त) में भरोसा किया गया है:-

"153. इस निर्णय का करीबी विश्लेषण यह दिखाएगा कि किसी अभियुक्त के विरुद्ध मामले को पूरी तरह से स्थापित होने से पहले निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए:

(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, वे पूरी तरह से स्थापित होनी चाहिए।

यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय ने संकेत दिया कि संबंधित परिस्थितियां "चाहिए या होनी चाहिए" न कि "हो सकती हैं" स्थापित। शिवाजी साहबराव बोबड़े बनाम महाराष्ट्र राज्य, [(1973) 2 SCC 793 : 1973 SCC (Cri) 1033 : 1973 Crl LJ 1783] में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित "सिद्ध हो सकता है"

और "सिद्ध होना चाहिए या होना चाहिए" के बीच न केवल व्याकरणिक बल्कि एक विधिक अंतर है जहां टिप्पणियां की गईं: [SCC प्रस्तर 19, पृष्ठ पृष्ठ 807: SCC (Cri) पृष्ठ 1047]
"निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि अभियुक्त दोषी होना चाहिए न कि केवल दोषी हो सकता है, इससे पहले कि एक न्यायालय दोषसिद्ध कर सके और 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच मानसिक दूरी लंबी है और अस्पष्ट अनुमानों से निश्चित निष्कर्षों को विभाजित करती है।"

(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात्, वे किसी अन्य परिकल्पना पर व्याख्या योग्य नहीं होने चाहिए सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है,

(3) परिस्थितियां निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए,

(4) उन्हें सिद्ध की जाने वाली एक को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, और

(5) साक्ष्य की एक श्रृंखला होनी चाहिए जो इतनी पूर्ण हो कि अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़े और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानव संभावना में कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।

154.ये पांच स्वर्णिम सिद्धांत, यदि हम ऐसा कह सकते हैं, तो परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर मामले के साक्ष्य के पंचशील का गठन करते हैं।

159. यह देखा जाएगा कि यह न्यायालय स्पष्टीकरण की अनुपस्थिति या एक गलत स्पष्टीकरण को ध्यान में रखते हुए यह मानता है कि यह श्रृंखला को पूरा करने के लिए एक अतिरिक्त कड़ी होगी लेकिन इन टिप्पणियों को इस न्यायालय ने पहले जो कहा था उसके प्रकाश में पढ़ा जाना चाहिए अर्थात् इससे पहले कि एक गलत स्पष्टीकरण को अतिरिक्त कड़ी के रूप में उपयोग किया जा सके, निम्नलिखित आवश्यक शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए:

(1) अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की श्रृंखला में विभिन्न कड़ियां संतोषजनक ढंग से सिद्ध की गई हैं,

(2) उक्त परिस्थिति उचित निश्चितता के साथ अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करती है, और

(3) परिस्थिति समय और स्थिति के निकट है।

163. फिर हम एक अन्य महत्वपूर्ण बिंदु पर आते हैं जो उच्च न्यायालय द्वारा पूरी तरह से चूक गया प्रतीत होता है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जहां साक्ष्य पर दो संभावनाएं उपलब्ध हैं या खुली हैं, एक जो

अभियोजन के पक्ष में जाती है और दूसरी जो एक अभियुक्त को लाभ देती है, अभियुक्त निस्संदेह संदेह का लाभ पाने का अधिकारी है। काली राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य [(1973) 2 SCC 808 : 1973 SCC (Cri) 1048 : AIR 1973 SC 2773 : (1974) 1 SCR 722 : 1974 Cri LJ 1] में इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियां कीं: [SCC प्रस्तर 25, पृष्ठ 820: SCC (Cri) पृष्ठ 1060]

"एक और स्वर्णिम धागा, जो आपराधिक मामलों में न्याय के प्रशासन के जाल के माध्यम से चलता है, वह यह है कि यदि मामले में प्रस्तुत साक्ष्य पर दो दृष्टिकोण संभव हैं, एक अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करता है और दूसरा उसकी निर्दोषता की ओर, जो दृष्टिकोण अभियुक्त के पक्ष में है उसे अपनाया जाना चाहिए। इस सिद्धांत की विशेष प्रासंगिकता उन मामलों में है जिनमें अभियुक्त के अपराध को परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा स्थापित करने की मांग की जाती है।"

164. अब हम जहर देने के द्वारा हत्या के मामलों के साक्ष्य के तरीके और ढंग पर आते हैं। रामगोपाल प्रकरण [(1972) 4 SCC 625 : AIR 1972 SC 656] में इस न्यायालय ने इस प्रकार कहा: (SCC पृष्ठ 629, प्रस्तर 15)

"ऐसे मामलों में तीन प्रश्न उठते हैं, अर्थात् (पहले), क्या मृतक की मृत्यु, प्रश्नगत जहर से हुई? (दूसरे), क्या अभियुक्त के पास प्रश्नगत जहर था? और (तीसरे), क्या अभियुक्त के पास मृतक को प्रश्नगत जहर देने का अवसर था? यह केवल तब है जब हेतुक है और ये सभी तथ्य सिद्ध हो जाते हैं कि न्यायालय यह अनुमान लगा सकता है कि अभियुक्त द्वारा मृतक को जहर दिया गया था, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई।"

165. जहां तक इस मामले का संबंध है, ऐसे मामलों में न्यायालय को सावधानीपूर्वक साक्ष्य को स्कैन करना चाहिए और चार महत्वपूर्ण परिस्थितियों को निर्धारित करना चाहिए, जो दोषसिद्धि को उचित ठहरा सकती हैं:

(1) मृतक को जहर देने के लिए अभियुक्त का एक स्पष्ट हेतुक है,
(2) कि मृतक की मृत्यु कथित रूप से दिए गए जहर से हुई,
(3) कि अभियुक्त के पास जहर था,
(4) कि उसे मृतक को जहर देने का अवसर मिला।"

20. विधि के उक्त प्रस्ताव का पालन करते हुए, **हरि प्रसाद उर्फ किशन साहू बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2024) 2 SCC 557** में हाल के निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसी दृष्टिकोण को दोहराया गया है।

21. जहां तक परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है, विधि के स्थापित सिद्धांत से कोई विवाद नहीं है। हालांकि, मामले के तथ्यों और अभिलेख पर साक्ष्य की विवेचना पर, हम पाते हैं कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में विधि लागू नहीं होता है, हालांकि अभिलेख पर साक्ष्य की निकट जांच की आवश्यकता हो सकती है।

22. चोट रिपोर्ट का अवलोकन, जो ऊपर उद्धृत की गई है, स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि चोट संख्या 1 कटा हुआ घाव था और डॉक्टर की राय के अनुसार यह किसी तेज धार वाले हथियार से लगाया जा सकता था। उन्होंने आगे राय दी कि मृत्यु गला घोंटने के कारण हुई और दाहिने पैर के ऊपरी हिस्से और पीछे के हिस्से पर चौथी डिग्री का जलना था; सभी बाल लगभग जल गए थे। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि यह केवल जलने का मामला नहीं है बल्कि वास्तव में मृतका पर न केवल महत्वपूर्ण अंग यानी चेहरे पर तेज धार वाले हथियार से हमला किया गया था बल्कि उसका गला भी घोंटा गया था और पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार वह गला घोंटने के कारण मर गई और इसके बाद ही साक्ष्य को नष्ट करने के लिए उसे जलाया गया। अन्वेषण अधिकारी ने घटनास्थल से जली हुई मिट्टी के साथ-साथ मृतका के जले हुए बालों को बरामद किया। यह बरामदगी अन्वेषण अधिकारी-शिव शंकर सिंह, उप पुलिस अधीक्षक द्वारा विधिवत सिद्ध की गई, जो वर्तमान मामले में अभि.सा.-8 के रूप में उपस्थित हुए हैं। निःसंदेह, उस कमरे की दीवारें जहां अपराध किया गया था, जली हुई नहीं पाई गईं, हालांकि, नक्शा नज़री स्पष्ट रूप से इंगित करेगी कि "एक्स" अभियुक्त के निवास के बाहर वह स्थान है जहां अभियुक्त व्यक्ति द्वारा मृतका को पीटा गया था; "**ए**" वह स्थान है जहां मृतका का शव मिला था; "**बिन्दु के साथ एक्स**" घटना का स्थान है, जहां मृतका का शरीर जली हुई स्थिति में पड़ा था जहां से जली हुई मिट्टी, जले हुए बाल और सादी मिट्टी बरामद की गई थी। यह स्थान "**एक्स बिंदुओं के साथ**" लगभग कमरे के बीच में था और इसलिए, यह आवश्यक नहीं था कि दीवार पर कोई दृश्यमान जलने का निशान प्रकट होता। यह भी विवाद में नहीं है कि सभी अभियोजन साक्षी अर्थात् अभि.सा.-1, अभि.सा.-2 और अभि.सा.-3 स्वतंत्र साक्षी हैं और अभियुक्तों के पड़ोसी हैं और उनकी प्रति-परीक्षा में अभियुक्तों के साथ उनकी दुश्मनी के संबंध में कुछ भी सामने नहीं आया कि वे वर्तमान मामले में झूठा क्यों फंसाएंगे, वास्तव में केवल दुश्मनी का धुंधला सुझाव दिया गया था लेकिन सभी तीन साक्षी अपनी प्रति-परीक्षा के दौरान अपरिवर्तित रहे। हम यह भी पाते हैं कि घटना का वर्णन और अभियुक्तों की संलिप्तता सभी तीन अभियोजन साक्षियों द्वारा मुख्य परीक्षा में विशेष रूप से बताई गई थी और वे ऐसे तथ्यों पर अपनी प्रति-परीक्षा के दौरान अपरिवर्तित रहे।

23. इस स्तर पर, हम अपनी राय व्यक्त कर सकते हैं कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला नहीं है बल्कि यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है भले ही अभियुक्तों ने पूरी घटना नहीं देखी हो। वास्तव में तीन घटनाएं एक के बाद एक, जो भी, निकटता से जुड़ी हुई थीं, वर्तमान मामले में हुईं, एक, अभियुक्तों के घर के बाहर मृतका की पिटाई, जिसे नक्शा नज़री में स्थान "**एक्स**" के रूप में दिखाया गया है, जहां मृतका सुनैना को सुभनारायण तिवारी द्वारा पीटा जा रहा था जैसा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार है, दो, जहां से सुनैना को सभी अभियुक्तों द्वारा घर के अंदर ले जाया गया और यह तब है जब अभियोजन साक्षी घटनास्थल पर पहुंचे और उसे अभियुक्तों से बचाने की कोशिश की, तीसरी घटना घर के अंदर मृतका की हत्या थी। मृत्यु का स्थान नक्शा नज़री में "**बिन्दु के साथ एक्स**" के रूप में चिह्नित था। यह बाद की घटना अभियुक्तों द्वारा तेज धार वाले हथियार से चेहरे पर कटा हुआ घाव लगाने और गला घोंटकर उसकी हत्या करने और तत्पश्चात, साक्ष्य को नष्ट करने के लिए शरीर को जलाने की थी। सभी तथ्य के साक्षी इस तथ्य पर अटल हैं कि उन्होंने अभियुक्तों के घर से धुआं निकलते देखा था और तत्पश्चात उन्होंने कमरे के अंदर जलती हुई अवस्था में शव देखा है। यह ध्यान देने योग्य है कि सभी साक्षियों ने कहा कि घटना 06.09.1984 की दोपहर लगभग 12.00

बजे हुई थी; उन्होंने अभियुक्तों को उनके घर के बाहर मृतका को पीटते हुए देखा था और लगभग डेढ़ घंटे बाद, लगभग 2.00 बजे अभियुक्तों के घर से धुआं निकलता देखा गया। प्रथम सूचना रिपोर्ट उसी दिन शाम 4.30 बजे दर्ज की गई थी। प्र.सू.रि. दर्ज करने में कोई देरी नहीं है क्योंकि कोई समझ सकता है कि यह पड़ोसी द्वारा दर्ज की गई थी न कि घटनास्थल पर उपस्थित मृतका से संबंधित किसी व्यक्ति द्वारा। इसलिए, हम पाते हैं कि प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रकृति में तात्कालिक है।

24. निःसंदेह, किसी भी अभियोजन साक्षी ने किसी भी अभियुक्त को वास्तव में किसी तेज धार वाले हथियार से कटा हुआ घाव लगाते हुए और मृतका का गला घोंटते हुए नहीं देखा। कारण सरल प्रतीत होता है क्योंकि घटना अभियुक्तों के बंद दरवाजे वाले घर के अंदर हुई और पड़ोसी होने के नाते वे सुनैना को सभी अभियुक्तों द्वारा पीटने के समय से दो घंटे बाद अभियुक्तों के घर से निकलने वाले धुएं और जलने की गंध के स्वाभाविक साक्षी थे। सभी साक्षियों द्वारा घटना का वर्णन स्वाभाविक प्रतीत होता है और किसी भी साक्षी द्वारा दिए गए बयानों में कोई बड़ी विसंगतियां नहीं हैं। साक्ष्य पोस्टमार्टम रिपोर्ट के साथ-साथ अभि.सा.7-डॉ. जी.पी. त्रिपाठी के चिकित्सा साक्ष्य के साथ पूरी तरह से पुष्ट था। इसलिए, भले ही यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला माना जाता है, श्रृंखला की कड़ियां पूर्ण हैं।

25. जहां तक अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का संबंध है कि जिस हथियार से कटा हुआ घाव लगाया गया था, उसकी कोई बरामदगी नहीं हुई, यह कहना पर्याप्त है कि अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए अपराध कारित करने में उपयोग किए गए हथियार की बरामदगी एक अनिवार्य शर्त नहीं है। यदि प्रत्यक्षदर्शी के रूप में प्रत्यक्ष साक्ष्य है, तो हथियार की बरामदगी की अनुपस्थिति में भी, अभियुक्त को दोषसिद्ध किया जा सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **राज्य द्वारा पुलिस इंस्पेक्टर बनाम लाली @ मणिकंदन; 2022 SCC OnLine SC 1424** में कहा है कि:

"*इसी प्रकार, यह मानते हुए कि उपयोग किए गए हथियार की बरामदगी स्थापित या सिद्ध नहीं है, यह भी अभियुक्त को दोषमुक्त करने का आधार नहीं हो सकता, जब प्रत्यक्षदर्शी का प्रत्यक्ष साक्ष्य हो। अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए अपराध कारित करने में उपयोग किए गए हथियार की बरामदगी एक अनिवार्य शर्त नहीं है। यदि प्रत्यक्षदर्शी के रूप में प्रत्यक्ष साक्ष्य है, तो हथियार की बरामदगी की अनुपस्थिति में भी, अभियुक्त को दोषसिद्ध किया जा सकता है। इसी प्रकार, प्र.सू.रि./शिकायत दर्ज करने के समय के संबंध में कुछ विरोधाभासों के मामले में भी अभियुक्त को दोषमुक्त करने का आधार नहीं हो सकता, जब अभियोजन मामला प्रत्यक्षदर्शी के बयान पर आधारित हो।*"

(महत्व प्रदत्त)

26. हम यह भी पाते हैं कि डी.डब्लू.-1 का बयान विश्वास योग्य नहीं है। वह बचाव के पक्ष में साक्ष्य बनाने के लिए न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत एक साक्षी प्रतीत होती है। उसकी पहचान सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है। प्रस्तर 7 में, हालांकि, उसने कहा कि सर्वनारायण तिवारी की पत्नी सुनैना देवी की मृत्यु

के संबंध में पुलिस और डिप्टी एस.पी. गांव गए थे और वह अपने पति फूलन देव के साथ हर समय नहीं रहती है और जहां भी वह जाता है, उसके साथ नहीं जाती है। हालांकि, अपनी प्रति-परीक्षा में उसने इस सुझाव से इनकार किया कि वह सर्वनारायण तिवारी की पत्नी है और कहा कि वह फूलन देव की पत्नी है और उसे सर्वनारायण तिवारी की पत्नी की हत्या के बारे में जानकारी नहीं है। एक ओर, अपनी प्रति-परीक्षा में, उसने कहा कि उसे सर्वनारायण तिवारी की पत्नी के बारे में कोई जानकारी नहीं है और दूसरी ओर, उसने कहा कि सर्वनारायण की पत्नी सुनैना की हत्या के संबंध में पुलिस और डिप्टी एस.पी. गांव आए थे। हम आगे पाते हैं कि धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन दर्ज बयान में सभी अभियुक्तों ने केवल कहा है कि सुनैना, फूलन देव तिवारी की विवाहित पत्नी है और उन्होंने अपने बचाव में कुछ भी नहीं कहा है सिवाय इसके कि उन्होंने केवल यह कहकर बयान दिया कि अभियोजन साक्षियों ने दुश्मनी के कारण उनके विरुद्ध बयान दिए हैं जबकि उनके साथ दुश्मनी क्यों थी, इसके बारे में एक शब्द भी नहीं कहा गया। हालांकि प्रथम सूचना रिपोर्ट में हेतुक नहीं बताया गया है लेकिन यह अभिलेख पर आया है कि मृतका का फूलन देव तिवारी के साथ अवैध संबंध था। सूचनाकर्ता पड़ोसी है, हालांकि, उस हद तक उसने कहा था कि सुभ नारायण तिवारी दोपहर के समय मृतका को पीट रहा था और गाली दे रहा था और कहा कि "हरामजादी तुम डूब मरो, तुम्हारे लिए इस घर में जगह नहीं है" और मृतका के घर से धुआं उठता देख पड़ोस के लोग वहां पहुंचे लेकिन तब तक सुनैना की मृत्यु हो चुकी प्रतीत हुई और उसने केवल एक पड़ोसी के रूप में यह दृष्टिकोण व्यक्त किया था कि ऐसा प्रतीत हुआ कि या तो पीटे जाने के कारण या किसी अन्य कारण से जो उन्हें ज्ञात नहीं है, सीता राम की बहू की जलने से मृत्यु हो गई। पड़ोसी से यह प्रथम सूचना रिपोर्ट काफी स्वाभाविक प्रतीत होती है और स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि अभियुक्त और मृतका के बीच कुछ गलत था।

27. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **जोस (उपरोक्त)** पर भरोसा किया है न केवल अपने इस तर्क के समर्थन में कि यह मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य का है और श्रृंखला की कड़ियां पूर्ण या स्थापित नहीं हैं, बल्कि यह भी तर्क देने के लिए कि धारा 106 भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 का वर्तमान मामले में कोई अनुप्रयोग नहीं है और अभियुक्तों पर कोई साक्ष्य का भार नहीं डाला जा सकता है, क्योंकि घर में उनकी उपस्थिति न तो स्वीकार की गई है और न ही सिद्ध हुई है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि किसी भी स्थिति में, जैसा कि **जोस (उपरोक्त)** में कहा गया है, संदेह, गंभीर साक्ष्य का स्थान नहीं ले सकता है और अभियोजन को एक कहानी सिद्ध करनी चाहिए, जो सच होनी चाहिए न कि केवल 'सच हो सकती है', इसलिए, किसी भी स्थिति में, अपीलकर्ता को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए। **जोस (उपरोक्त)** का प्रस्तर संख्या 52 इस प्रकार उद्धृत है:-

"52. प्रत्यक्षदर्शियों का साक्ष्य जब डॉक्टर की साक्ष्य के संयोजन में विचार किया जाता है तो अपीलकर्ता को मृतक की अप्राकृतिक मृत्यु के लिए वास्तविक कार्य से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नहीं जोड़ता है। किसी भी ठोस साक्ष्य की अनुपस्थिति में यह मानने के लिए कि प्रासंगिक समय पर अपीलकर्ता घर में मौजूद था, साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के अधीन परिकल्पित के रूप में उस पर कोई भार डालना भी अनुमति योग्य नहीं होगा। अपीलकर्ता और उसके बेटे की सुसंगत साक्ष्य इस आशय के लिए कि पोट्टा से उनकी वापसी पर बस से

उतरने के बाद, मृतक को डीडब्लू 1 के साथ घर वापस जाने के लिए बनाया गया था जबकि अपीलकर्ता अगले दिन अपने परिसर में काम के लिए मजदूरों की खोज में गया था और उसके बाद जब तक डीडब्लू 1 अपने पैतृक घर के लिए रवाना हुआ था, अपीलकर्ता घर वापस नहीं लौटा था, अपीलकर्ता की निर्दोषता के बचाव पक्ष की दलील को मजबूत करता है।"

28. इस स्तर पर, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 106 को नोट करना उचित होगा, जो इस प्रकार है:-

*"**106. विशेष रूप से ज्ञान के भीतर तथ्य को सिद्ध करने का भार**-जब कोई तथ्य विशेष रूप से किसी व्यक्ति के ज्ञान के भीतर होता है, तो उस तथ्य को सिद्ध करने का भार उस पर होता है।"*

29. हम इस राय के हैं कि इस प्रकार उठाया गया तर्क विधि की नजर में बने रहने योग्य नहीं है।

30. **त्रिमुख मारोती किरकन बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2006) 10 SCC 681** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यदि एक घर के अंदर गोपनीयता में एक अपराध किया जाता है, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के दृष्टिकोण से, घर के निवासियों पर भी एक संगत भार है कि वे एक ठोस स्पष्टीकरण दें कि अपराध कैसे किया गया और वे इस आधार पर चुप रहकर दूर नहीं जा सकते कि अभियोजन को अपने मामले को सिद्ध करने का भार निर्वहन करना चाहिए। यह आगे कहा गया कि यदि अभियुक्त कोई ठोस स्पष्टीकरण देने में विफल रहता है या एक स्पष्टीकरण प्रदान करता है, जो असत्य पाया जाता है तो इसे पूर्ण करने के लिए अभियुक्त के विरुद्ध परिस्थितियों की श्रृंखला में एक अतिरिक्त कड़ी के रूप में माना जा सकता है। प्रस्तर संख्या 14 से 22 इस प्रकार उद्धृत हैं:-

"14. यदि कोई अपराध एक घर की गोपनीयता के अंदर होता है और ऐसी परिस्थितियों में, जहां हमलावरों को अपनी पसंद के समय और परिस्थितियों में अपराध की योजना बनाने और करने का सभी अवसर होता है, तो अभियोजन के लिए अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करना अत्यंत कठिन होगा यदि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के सख्त सिद्धांत, जैसा कि ऊपर बताया गया है, पर न्यायालयों द्वारा बल दिया जाता है। एक न्यायाधीश केवल यह देखने के लिए एक आपराधिक मुकदमे की अध्यक्षता नहीं करता है कि कोई निर्दोष व्यक्ति दंडित न हो। एक न्यायाधीश यह देखने के लिए भी अध्यक्षता करता है कि एक दोषी आदमी बच न जाए। दोनों सार्वजनिक कर्तव्य हैं। (स्टर्लैंड बनाम लोक अभियोजन निदेशक [1944 AC 315 : (1944) 2 All ER 13 (HL)] देखें- पंजाब राज्य बनाम करनैल सिंह [(2003) 11 SCC 271 : 2004 SCC (Cri) 135] में न्यायमूर्ति अरिजित पसायत द्वारा अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया।) विधि अभियोजन पर ऐसे चरित्र के साक्ष्य को प्रस्तुत करने का कर्तव्य नहीं लगाता है, जो लगभग असंभव है या किसी भी दर से अत्यंत कठिन है। अभियोजन पर कर्तव्य ऐसे साक्ष्य को प्रस्तुत करना है जिसे यह प्रस्तुत करने में सक्षम है, तथ्यों और मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए। यहां साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 को ध्यान में रखना आवश्यक है जो कहती है कि जब कोई तथ्य विशेष रूप से किसी व्यक्ति के ज्ञान के भीतर होता है, तो

उस तथ्य को सिद्ध करने का भार उस पर होता है। इस धारा में जोड़ा गया उदाहरण (बी) इस प्रावधान की सामग्री और दायरे पर कुछ प्रकाश डालता है और यह है:
"(बी) ए पर बिना टिकट के रेलवे पर यात्रा करने का आरोप है। यह सिद्ध करने का भार कि उसके पास टिकट था, उस पर है।"

15. जहां एक घर के अंदर गोपनीयता में हत्या जैसा अपराध किया जाता है, मामले को स्थापित करने का प्रारंभिक भार निस्संदेह अभियोजन पर होगा, लेकिन आरोप को स्थापित करने के लिए इसके द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले साक्ष्य की प्रकृति और मात्रा परिस्थितिजन्य साक्ष्य के अन्य मामलों में आवश्यक के समान डिग्री की नहीं हो सकती है। भार तुलनात्मक रूप से हल्के चरित्र का होगा। साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के दृष्टिकोण से घर के निवासियों पर एक संगत भार होगा कि वे एक ठोस स्पष्टीकरण दें कि अपराध कैसे किया गया। घर के निवासी केवल चुप रहकर और कोई स्पष्टीकरण नहीं देकर इस अनुमानित आधार पर दूर नहीं जा सकते कि अपने मामले को स्थापित करने का भार पूरी तरह से अभियोजन पर है और एक अभियुक्त पर कोई स्पष्टीकरण देने का कोई कर्तव्य नहीं है।

16. समुद्री सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 167 और 178-ए के संबंध में इस न्यायालय द्वारा कलेक्टर ऑफ कस्टम्स बनाम डी. भूरमल्ल [(1974) 2 SCC 544 : 1974 SCC (Cri) 784 : AIR 1974 SC 859] में कुछ हद तक समान प्रश्न की जांच की गई थी और प्रस्तर 30 से 32 को पुनरुत्पादित करना उचित होगा, जो निम्नानुसार हैं: (SCC पृष्ठ 553-54)

"30. यह विवादित नहीं किया जा सकता कि धारा 167 के खंड (8) के अधीन दंड लगाने की कार्यवाही में, जिस पर धारा 178-ए लागू नहीं होती है, यह सिद्ध करने का भार कि सामान तस्करी का सामान है, विभाग पर है। यह सभी आपराधिक या अर्ध-आपराधिक कार्यवाही में साक्ष्य से संबंधित एक मौलिक नियम है, जहां विपरीत कोई वैधानिक प्रावधान नहीं है। लेकिन, इसके दायरे और इसके द्वारा डाले गए दायित्व की प्रकृति की विवेचना में, हमें अन्य संबंधित सिद्धांतों पर उचित ध्यान देना चाहिए, कम मौलिक नहीं, सार्वभौमिक अनुप्रयोग के। उनमें से एक यह है कि अभियोजन या विभाग को अपने मामले को गणितीय सटीकता के साथ एक प्रदर्शन योग्य डिग्री तक सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि, सभी मानव मामलों में पूर्ण निश्चितता एक मिथक है, और-प्रो. ब्रेट कहते हैं-'सभी सटीकता एक धोखा है'। पूर्ण साक्ष्य का एल डोराडो अप्राप्य होने के कारण, विधि इस कार्य-दिवस की दुनिया में एक काम करने वाले विकल्प के रूप में इसके लिए संभावना को स्वीकार करता है। विधि अभियोजन को असंभव को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। यह सभी की आवश्यकता है संभावना की ऐसी डिग्री की स्थापना कि एक विवेकपूर्ण व्यक्ति, इसके आधार पर, मुद्दे में तथ्य के अस्तित्व में विश्वास कर सकता है। इस प्रकार, विधिक साक्ष्य आवश्यक रूप से सही साक्ष्य नहीं है; अक्सर यह मामले की संभावनाओं के लिए एक विवेकपूर्ण व्यक्ति के अनुमान से ज्यादा कुछ नहीं है।

31. साक्ष्य के भार की घटना पर एक महत्वपूर्ण प्रभाव रखने वाला अन्य मूल सिद्धांत यह है कि साक्ष्य की पर्याप्तता और वजन पर विचार किया जाना है-ब्लैच बनाम आर्चर [(1774) 1 काउप 63 : 98 ER 969] में लॉर्ड मैन्सफील्ड के शब्दों का उपयोग करने के लिए, काउप, पृष्ठ 65 - 'साक्ष्य के अनुसार जो यह एक पक्ष की शक्ति में सिद्ध करने के लिए था, और दूसरे की शक्ति में विरोधाभासी था'। चूंकि अभियोजन के लिए उन तथ्यों को सिद्ध करना अत्यंत कठिन है, यदि बिल्कुल असंभव नहीं है, जो विशेष रूप से प्रतिद्वंद्वी या अभियुक्त के ज्ञान के भीतर हैं, तो इसे अपने प्राथमिक भार के हिस्से के रूप में उन्हें सिद्ध करने के लिए बाध्य नहीं किया जाता है।

32. तस्करी विधिक कर्तव्यों से बचने के लिए सामान का गुप्त संवहन है। गोपनीयता और चोरी इसके आवरण गार्ड होने के कारण, निवारक विभाग के लिए प्रक्रिया के हर लिंक को उजागर करना असंभव है। इस अवैध व्यवसाय से संबंधित कई तथ्य संबंधित व्यक्तियों के विशेष या विशिष्ट ज्ञान में रहते हैं। धारा 106, साक्ष्य अधिनियम के अंतर्निहित सिद्धांत पर, उन तथ्यों को स्थापित करने का भार संबंधित व्यक्ति पर डाला जाता है; और यदि वह उन तथ्यों को स्थापित या समझाने में विफल रहता है, तो उसके विरुद्ध एक प्रतिकूल तथ्य का अनुमान उत्पन्न हो सकता है, जो अभियोजन या विभाग द्वारा प्रस्तुत अनुमानित साक्ष्य के साथ मिलकर उस व्यक्ति के पक्ष में निर्दोषता की प्रारंभिक धारणा को खारिज कर देगा, और परिणाम में, उसे दोषी सिद्ध करेगा। जैसा कि Best (साक्ष्य के विधि में, 12वां संस्करण, अनुच्छेद 320, पृष्ठ 291 में) द्वारा बताया गया है, 'निर्दोषता की धारणा, निस्संदेह, presumptio juris(न्याय-पूर्वानुमान) है; लेकिन हर दिन का अभ्यास दिखाता है कि यह चोरी की संपत्ति के हाल के (अस्पष्टीकृत) कब्जे से उत्पन्न होने वाले अपराध की धारणा द्वारा सफलतापूर्वक सामना किया जा सकता है', हालांकि बाद वाला केवल तथ्य की एक धारणा है। इस प्रकार अभियोजन या विभाग पर भार उनके पक्ष में उत्पन्न होने वाली तथ्य की ऐसी धारणाओं द्वारा भी काफी हल्का किया जा सकता है। हालांकि, इसका मतलब यह नहीं है कि आगे बढ़े गए व्यक्ति का विशेष या विशिष्ट ज्ञान अभियोजन या विभाग को उस तथ्य के मुद्दे के संबंध में कुछ साक्ष्य उत्पादन करने के भार से पूरी तरह से मुक्त कर देगा। यह केवल उस भार को कम करेगा, जिसे निर्वहन करने के लिए, बहुत मामूली साक्ष्य पर्याप्त हो सकता है।"

(महत्व प्रदत्त)

17. उक्त सिद्धांत को बलराम प्रसाद अग्रवाल बनाम बिहार राज्य [(1997) 9 SCC 338 : 1997 SCC (Cri) 612 : AIR 1997 SC 1830] में अनुमोदित और पालन किया गया था, जहां एक विवाहित महिला ने दहेज की मांग और निःसंतान होने के कारण अपने पति और ससुराल वालों द्वारा दी गई दुर्व्यवहार के कारण आत्महत्या कर ली थी।

18. साक्ष्य के भार का प्रश्न जहां कुछ तथ्य अभियुक्त के व्यक्तिगत ज्ञान के भीतर हैं पश्चिम बंगाल राज्य बनाम मीर मोहम्मद उमर [(2000) 8 SCC 382 : 2000 SCC (Cri) 1516] में जांच की गई थी। इस मामले में हमलावरों ने बलपूर्वक मृतक, महेश को घर से खींचा, जहां वह रात लगभग 2.30 बजे अभियुक्त के डर के कारण शरण ले रहा था और उसे ले गए। अगले दिन सुबह उसका विकृत शरीर अस्पताल में पड़ा मिला। विचारण न्यायालय ने अभियुक्तों को धारा 364 धारा 34 भा.दं.सं. के अधीन दोषसिद्ध किया और उन्हें 10 वर्ष का

साधारण कारावास का दंड दिया। अभियुक्तों ने अपनी दोषसिद्धि के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की और राज्य ने भी हत्या के आरोप के लिए अभियुक्तों की दोषमुक्त करने को चुनौती देते हुए अपील दायर की। अभियुक्तों ने कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया कि महेश को अपहरण के बाद क्या हुआ। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर विधि का संदर्भ देते हुए यह पाया था कि मृतक को अंतिम बार अभियुक्तों के साथ देखे जाने के बाद और अस्पताल में मृत शरीर मिलने के बाद साक्ष्य की श्रृंखला में एक कड़ी गायब थी और यह निष्कर्ष निकाला कि अभियोजन उचित संदेह से परे अभियुक्तों के विरुद्ध हत्या का आरोप स्थापित करने में विफल रहा था। इस न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के प्रावधानों को नोट किया और प्रस्तर 31 से 34 में निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किया: (SCC पृष्ठ 392)

"31. मूल नियम कि साक्ष्य का भार अभियुक्त के अपराध को सिद्ध करने के लिए अभियोजन पर है, को एक जीवाश्म सिद्धांत के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए, जैसे कि यह बुद्धिमान तर्क की कोई प्रक्रिया स्वीकार नहीं करता है। धारणा का सिद्धांत उपरोक्त नियम के लिए विदेशी नहीं है, न ही यह नियम के स्वभाव को खराब करेगा। दूसरी ओर, यदि अभियोजन पर साक्ष्य के भार से संबंधित पारंपरिक नियम को शैक्षणिक कवरेज में लपेटने की अनुमति दी जाती है, तो गंभीर अपराधों में अपराधी प्रमुख लाभार्थी होंगे और समाज हताहत होगा।

32. इस मामले में, जब अभियोजन उपर्युक्त-वर्णित परिस्थितियों को स्थापित करने में सफल रहा, तो न्यायालय को कुछ तथ्यों के अस्तित्व को मानना होगा। धारणा विधि द्वारा मान्यता प्राप्त एक पाठ्यक्रम है जिस पर न्यायालय इस तरह की स्थितियों में भरोसा कर सकता है।

33. तथ्य की धारणा कुछ अन्य तथ्यों के अस्तित्व से एक तथ्य के अस्तित्व के लिए एक अनुमान है, जब तक कि ऐसे अनुमान की सच्चाई खंडित नहीं होती है। तथ्य की धारणा साक्ष्य के विधि में एक नियम है कि एक तथ्य अन्यथा संदिग्ध कुछ अन्य सिद्ध तथ्यों से अनुमानित किया जा सकता है। अन्य सिद्ध तथ्यों के सेट से एक तथ्य के अस्तित्व का अनुमान लगाते समय, न्यायालय तर्क की एक प्रक्रिया का प्रयोग करता है और सबसे संभावित स्थिति के रूप में एक तार्किक निष्कर्ष पर पहुंचता है। उपरोक्त सिद्धांत ने भारत में विधायी मान्यता प्राप्त की जब धारा 114 साक्ष्य अधिनियम में शामिल की गई। यह न्यायालय को किसी भी तथ्य के अस्तित्व को मानने का अधिकार देता है जो यह सोचता है कि होने की संभावना है। उस प्रक्रिया में न्यायालय को प्राकृतिक घटनाओं के सामान्य पाठ्यक्रम, मानव आचरण, आदि के संबंध में मामले के तथ्यों के संबंध में ध्यान रखना होगा।

34. जब यह न्यायालय की संतुष्टि में सिद्ध हो जाता है कि महेश का अपहरण अभियुक्तों द्वारा किया गया था और वे उसे उस क्षेत्र से बाहर ले गए, केवल अभियुक्त जानते थे कि उसके साथ क्या हुआ जब तक वह उनके साथ था। यदि वह अपहरण के थोड़े समय के भीतर हत्या किया गया पाया गया तो अनुमत तर्क प्रक्रिया न्यायालय को यह धारणा बनाने में सक्षम करेगी कि अभियुक्तों ने उसकी हत्या की है। ऐसा अनुमान बाधित

किया जा सकता है यदि अभियुक्त न्यायालय को बताएगा कि महेश के साथ और क्या हुआ कम से कम जब तक वह उनकी हिरासत में था।"

19. उक्त सिद्धांत को लागू करते हुए, यह न्यायालय धारा 364 धारा 34 भा.दं.सं. के अधीन दोषसिद्धि को बनाए रखते हुए धारा 302 धारा 34 भा.दं.सं. के अधीन दोषमुक्ति के आदेश को अपास्त कर दिया और अभियुक्तों को उक्त प्रावधान के अधीन दोषसिद्ध किया और उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई।

20. राम गुलाम चौधरी बनाम बिहार राज्य [(2001) 8 SCC 311 : 2001 SCC (Cri) 1546] में अभियुक्तों ने एक लड़के पर क्रूरता से हमला किया और उसके बाद उसे ले गए और उसके बाद लड़का जीवित नहीं देखा गया और न ही उसका शरीर मिला। हालांकि, अभियुक्तों ने कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया कि उन्होंने लड़के को ले जाने के बाद क्या किया। यह निर्णीत किया गया कि लड़के के बारे में अभियुक्तों की ओर से किसी स्पष्टीकरण की अनुपस्थिति के लिए, यह अनुमान लगाने के लिए हर औचित्य था कि उन्होंने लड़के की हत्या की थी। यह और पाया गया कि भले ही साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 अभियोजन को उचित संदेह से परे अभियुक्त के अपराध को सिद्ध करने के अपने भार से मुक्त करने का इरादा नहीं रख सकती है, लेकिन धारा वर्तमान जैसे मामलों पर लागू होगी, जहां अभियोजन मृत्यु के संबंध में एक उचित अनुमान लगाया जा सकने वाले तथ्यों को सिद्ध करने में सफल रहा है। अभियुक्त अपने विशेष ज्ञान के आधार पर एक स्पष्टीकरण देना चाहिए जो न्यायालय को एक अलग अनुमान लगाने के लिए प्रेरित कर सकता है।

21. परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक मामले में जहां कोई प्रत्यक्षदर्शी विवरण उपलब्ध नहीं है, विधि का एक और सिद्धांत है, जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए। सिद्धांत यह है कि जब अभियुक्त के सामने एक आपत्तिजनक परिस्थिति रखी जाती है और उक्त अभियुक्त या तो कोई स्पष्टीकरण नहीं देता है या एक स्पष्टीकरण प्रदान करता है जो असत्य पाया जाता है, तो वही श्रृंखला को पूर्ण बनाने के लिए परिस्थितियों की श्रृंखला में एक अतिरिक्त कड़ी बन जाता है। यह दृष्टिकोण इस न्यायालय के निर्णयों की एक श्रृंखला में लिया गया है। [टी.एन. राज्य बनाम राजेंद्रन [(1999) 8 SCC 679 : 2000 SCC (Cri) 40] (SCC प्रस्तर 6); उत्तर प्रदेश राज्य बनाम डॉ. रवींद्र प्रकाश मित्तल [(1992) 3 SCC 300 : 1992 SCC (Cri) 642 : AIR 1992 SC 2045] (SCC प्रस्तर 39 : AIR प्रस्तर 40); महाराष्ट्र राज्य बनाम सुरेश [(2000) 1 SCC 471 : 2000 SCC (Cri) 263] (SCC प्रस्तर 27); गणेश लाल बनाम राजस्थान राज्य [(2002) 1 SCC 731 : 2002 SCC (Cri) 247] (SCC प्रस्तर 15)और गुलाब चंद बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(1995) 3 SCC 574 : 1995 SCC (Cri) 552] (SCC प्रस्तर 4) देखें।]

22. जहां एक अभियुक्त पर आरोप लगाया जाता है कि उसने अपनी पत्नी की हत्या की है और अभियोजन यह दिखाने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने में सफल होता है कि अपराध कारित करने से कुछ समय पहले उन्हें एक साथ देखा गया था या अपराध उस आवास गृह में होता है, जहां पति भी आम तौर पर रहता था, तो यह लगातार निर्णीत किया गया है कि यदि अभियुक्त कोई स्पष्टीकरण नहीं देता है कि पत्नी को चोटें कैसे लगीं

या एक ऐसा स्पष्टीकरण प्रदान करता है, जो झूठा पाया जाता है, तो यह एक मजबूत परिस्थिति है, जो इंगित करती है कि वह अपराध कारित करने के लिए जिम्मेदार है। निका राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य [(1972) 2 SCC 80 : 1972 SCC (Cri) 635 : AIR 1972 SC 2077] में यह पाया गया कि तथ्य यह है कि अभियुक्त अकेले अपनी पत्नी के साथ घर में था, जब "खुखरी" से उसकी हत्या कर दी गई थी और तथ्य यह है कि अभियुक्त के साथ उसके संबंध तनावपूर्ण थे, उसके द्वारा किसी ठोस स्पष्टीकरण की अनुपस्थिति में, उसके अपराध की ओर इशारा करेगा। गणेशलाल बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1992) 3 SCC 106 : 1993 SCC (Cri) 435] में अपीलकर्ता पर अपनी पत्नी की हत्या के लिए मुकदमा चलाया गया, जो उसके घर के अंदर हुई थी। यह पाया गया कि जब मृत्यु उसकी अभिरक्षा में हुई थी, तो अपीलकर्ता धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन अपने बयान में उसकी मृत्यु के कारण के लिए एक समुचित स्पष्टीकरण देने के लिए बाध्य है। अभियोजन मामले से मात्र इनकार, किसी स्पष्टीकरण की अनुपस्थिति के साथ अभियुक्त की निर्दोषता के साथ असंगत माना गया, लेकिन इस परिकल्पना के अनुरूप कि अपीलकर्ता अपनी पत्नी की हत्या कारित करने में एक प्रमुख अभियुक्त है। उत्तर प्रदेश राज्य बनाम डॉ. रवींद्र प्रकाश मित्तल [(1992) 3 SCC 300 : 1992 SCC (Cri) 642 : AIR 1992 SC 2045] में चिकित्सा साक्ष्य ने दर्शाया कि पत्नी की मृत्यु देर रात या सुबह के घंटों के दौरान गला घोंटने से हुई और उसके शरीर को मिट्टी का तेल छिड़कने के बाद आग लगा दी गई थी। पति का बचाव यह था कि पत्नी ने स्वयं को जलाकर आत्महत्या कर ली थी और वह उस समय घर पर नहीं था। पत्नी द्वारा अपने रिश्तेदारों को लिखे गए पत्रों से पता चला कि पति ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया और उनके संबंध तनावपूर्ण थे और आगे साक्ष्य से पता चला कि वे दोनों रात में एक कमरे में थे। यह निर्णीत किया गया कि परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण थी और यह पति था, जिसने गला घोंटकर अपनी पत्नी की हत्या की और तदनुसार इस न्यायालय ने अभियुक्त को दोषमुक्त करने वाले उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त कर दिया और उसे धारा 302 भा.दं.सं. के अधीन दोषसिद्ध किया। टी.एन. राज्य बनाम राजेंद्रन [(1999) 8 SCC 679 : 2000 SCC (Cri) 40] में पत्नी को एक झोपड़ी में मृत पाया गया, जो आग पकड़ चुकी थी। साक्ष्य से पता चला कि अभियुक्त और उसकी पत्नी को लगभग रात 9.00 बजे झोपड़ी में एक साथ देखा गया था और अभियुक्त सुबह छत के माध्यम से बाहर आया जब झोपड़ी में आग लग गई थी। उसका स्पष्टीकरण यह था कि यह आकस्मिक आग का मामला था, जिसके परिणामस्वरूप उसकी पत्नी और एक बेटी की मृत्यु हो गई। चिकित्सा साक्ष्य से पता चला कि पत्नी की मृत्यु गला घोंटने के परिणामस्वरूप श्वासावरोध के कारण हुई न कि जलने की चोटों के कारण। यह निर्णीत किया गया कि इस निष्कर्ष पर आने में कोई हिचकिचाहट नहीं हो सकती कि यह अभियुक्त (पति) था, जो अपराध का अपराधी था।"

31. इन परिस्थितियों में, हम पाते हैं कि **जोस (उपरोक्त)** का निर्णय वर्तमान मामले में अपीलकर्ताओं को कोई मदद नहीं करता है। घटना अभियुक्तों के घर के अंदर हुई थी और भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के अनुसार अपनी निर्दोषता सिद्ध करने का भार अभियुक्तों पर था।

32. अभि.सा.1-श्री राम तिवारी, सूचनाकर्ता की साक्ष्य और प्र.सू.रि. में गंभीर सुधार के तर्क पर हमारे द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की पुष्टि करने के लिए, हमने दिनांक 07.09.1984 की केस डायरी देखी है। हम पाते हैं

कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के बाद इसमें पंचायतनामा है और तुरंत बाद, निरंतरता में, सूचनाकर्ता का बयान दर्ज किया गया, जिसमें उसने स्पष्ट रूप से कहा था कि सुभ नारायण तिवारी, सर्वनारायण तिवारी, सीताराम तिवारी और सरस्वती मृतका को लात और मुक्कों से पीट रहे थे और वह चिल्लाई और रोई। न्यायालय के समक्ष बयान भी उसी प्रभाव के लिए है। धारा 161 दं.प्र.सं. के अधीन साक्षियों का बयान 07.09.1984 को जांच के तुरंत बाद दर्ज किया गया था, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि अभि.सा.-1- श्री राम तिवारी के बयान में सुधार हुआ था और अन्य दो साक्षियों अर्थात्, अभि.सा.-2-व्यास तिवारी और अभि.सा.-3-श्याम लाल तिवारी ने भी उसी प्रभाव के बयान दिए हैं और अपनी प्रति-परीक्षा में भी अपरिवर्तित रहे हैं।

33. इसलिए, भले ही इस मामले को केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला माना जाता है, यहां की गई चर्चा के अनुसार, हम दोनों अपीलों में कोई बल नहीं पाते हैं। दोनों जीवित अभियुक्त अपीलकर्ताओं अर्थात् सर्वनारायण तिवारी और श्रीमती सरस्वती देवी की अपराध करने में प्रत्यक्ष संलिप्तता किसी संदेह की छाया से परे सिद्ध होती है।

34. इस स्तर पर, हमने विचारण न्यायालय के निर्णय का भी अवलोकन किया है और पाते हैं कि विचारण न्यायालय द्वारा दिया गया तर्क पूरी तरह से न्यायसंगत और उचित है और हम, अभिलेख पर साक्ष्य की अपनी स्वयं की विवेचना पर, दोनों अपीलों में कोई योग्यता नहीं पाते हैं और उन्हें तदनुसार **निरस्त** किया जाता है। मुख्य आपराधिक अपील संख्या 328 सन् 1986 में जीवित-अपीलकर्ता संख्या 1-सर्वनारायण तिवारी और संबद्ध आपराधिक अपील संख्या 3328 सन् 1985 में जीवित अपीलकर्ता संख्या 2-श्रीमती सरस्वती देवी उर्फ सुरसतिया की दोषसिद्धि की पुष्टि की जाती है।

35. चूंकि दोनों अपीलों को निरस्त कर दिया गया है और विचारण न्यायालय द्वारा दी गई दोषसिद्धि और सजा की हमारे द्वारा पुष्टि की गई है, उनके जमानत बॉन्ड रद्द कर दिए गए हैं और जमानतदार उन्मोचित कर दिए गए हैं। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बलिया को निर्देशित किया जाता है कि वह मुख्य आपराधिक अपील संख्या 328 सन् 1986 में जीवित-अपीलकर्ता संख्या 1-सर्वनारायण तिवारी और संबद्ध अपील संख्या 3328 सन् 1985 में जीवित अपीलकर्ता संख्या 2-श्रीमती सरस्वती देवी उर्फ सुरसतिया को हिरासत में ले और विचारण न्यायालय द्वारा दी गई और हमारे द्वारा पुष्ट की गई सजा को पूरा करने के लिए उन्हें जेल भेजे।

36. इस आदेश की एक प्रति रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा एक सप्ताह के भीतर संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को अनुपालन के लिए भेजी जाए।

37. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बलिया को यह भी निर्देशित किया जाता है कि वह एक महीने के भीतर इस न्यायालय को अपनी अनुपालन रिपोर्ट भेजे।

38. अवर न्यायालय का अभिलेख तुरंत संबंधित न्यायालय को भेजा जाए।

(2025) 5 ILRA 93

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 29.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार

आपराधिक अपील संख्या-495 सन् 1996

सर्वेश कुमार दुबे व अन्य **...अपीलकर्तागण**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...प्रतिवादी**

अपीलकर्तागण के अधिवक्ता:
एस.एन. शुक्ला, आदिल अजीज खान, गौरव मिश्रा

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

ए. दंड विधि-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374(2)-भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 324/34, 307/34, 504 एवं 109-चुनौती-दोषसिद्धि-पीड़ित पर कथित तौर पर अपीलकर्तागण द्वारा हमला किया गया था-अपीलकर्ता ने 10 दिन पहले पीड़ित से रु.100 की मांग की थी और भुगतान न करने पर परिणाम भुगतने की धमकी दी थी, घटना के दिन, एक अपीलकर्ता ने पीड़ित को पकड़ लिया और दूसरे अपीलकर्ता को उस पर गोली चलाने के लिए उकसाया-प्र.सू.रि. दर्ज की गई और पीड़ित की चिकित्सकीय जांच की गई-बंदूक की गोली से लगी चोट की पुष्टि की गई-अभि.सा.-1 (पीड़ित) ने अभियोजन की कहानी का समर्थन किया और प्रति-परीक्षा का सामना किया-अभि.सा.-2 (डॉक्टर) ने बंदूक की गोली से लगी चोट की पुष्टि की-अभि.सा.-3 (अन्वे.अधि.) ने प्रक्रियात्मक साक्ष्य की पुष्टि की और आरोपपत्र दायर किया-न्यायालय ने माना कि एक अपीलकर्ता अर्थात् सर्वेश ने न केवल उकसाया बल्कि पीड़ित को पकड़कर अपराध में सक्रिय रूप से सहायता भी की-साझा आशय और उकसावा स्पष्ट रूप से स्थापित किया गया-घायल साक्षी की गवाही उच्च साक्ष्य मूल्य रखती है और जांच के अधीन भी विश्वसनीय पाई गई-दोषसिद्धि एक घायल या विश्वसनीय साक्षी की एकमात्र गवाही पर बरकरार रखी जा सकती है-न्यायालय ने पालकोम अब्दुल रहीम व अन्य निर्णयों पर भरोसा किया ताकि भा.दं.सं. की धारा 34 के अधीन संयुक्त दायित्व और साझा आशय के नियम पर जोर दिया जाए। (प्रस्तर 1 से 23)

अपील निरस्त की जाती है। (ई-6)

अनुवादित

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची</u>:

1. पालकोम अब्दुल रहीम बनाम एस.एच.ओ., बडियाडका पी.एस., केरल व अन्य (2019) 4 SCC 795
2. पंजाब राज्य बनाम हाकम सिंह (2005) 7 SCC 408
3. उत्तर प्रदेश बनाम वीरेंद्र, MANU/UP/0911/2008 Kr. & oरु.,
4. जोधराज सिंह बनाम राजस्थान राज्य, (2007) 15 SCC 294

(माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार द्वारा उद्घोषित)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री आदिल अजीज खान के लिए सुश्री मेघा सचान, अधिवक्ता और श्री बद्रुल हसन, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता (इसके बाद अ.शा.अधि. के रूप में संदर्भित) को सुना।

2. दंड प्रक्रिया संहिता (इसके बाद दं.प्र.सं. के रूप में संदर्भित) की धारा 374(2) के अधीन यह आपराधिक अपील, सत्र विचारण संख्या-44 सन् 1991, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सर्वेश कुमार दुबे व अन्य, धारा 307/34, 504 व 109 भारतीय दंड संहिता (इसके बाद भा.दं.सं. के रूप में संदर्भित), पुलिस स्टेशन लालगंज, जिला प्रतापगढ़ में तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश, प्रतापगढ़ के न्यायालय द्वारा पारित निर्णय व आदेश दिनांक 28.10.1996 के द्वारा दी गई दोषसिद्धि और सजा को निरस्त करने के लिए दायर की गई है, जिसके माध्यम से अपीलकर्ता संख्या 1-सर्वेश कुमार दुबे को धारा 324 सपठित धारा 34 और 109 भा.दं.सं. के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और अपीलकर्ता संख्या 2-राजीव कुमार मिश्रा को धारा 324 भा.दं.सं. के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और उन्हें 2½ वर्ष के सश्रम कारावास और रु.500 अर्थदंड की सजा सुनाई गई है और अर्थदंड भुगतान में व्यतिक्रम की स्थिति में, एक महीने का सश्रम कारावास भुगतना होगा।

3. अपीलकर्ता संख्या 2-राजीव कुमार मिश्रा की अपील लंबित रहने की अवधि में मृत्यु हो गई, इसलिए, आदेश दिनांक 14.03.2013 के माध्यम से उनके सापेक्ष अपील उपशमित हो गई। अब यह अपील केवल अपीलकर्ता संख्या 1-सर्वेश कुमार दुबे के सापेक्ष बची है।

4. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता को मामले में गलत और अवैध रूप से दोषसिद्ध किया गया है। अभियोजन के ही अनुसार, अपीलकर्ता की भूमिका केवल उकसावे की थी और उसने धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन अपने बयान में कहा है कि उसे राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के कारण फंसाया गया है, लेकिन इस पर विचार किए बिना, उसे धारा 324 भा.दं.सं. के अधीन दोषसिद्ध किया गया है। इस प्रकार, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश बने रहने योग्य नहीं है और निरस्त किए जाने योग्य है।

5. इसके विपरीत, विद्वान अ.शा.अधि. ने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित निर्णय और आदेश विधि के अनुसार सही ढंग से पारित किया गया है, क्योंकि अपीलकर्ता की भूमिका केवल उकसावे की नहीं है बल्कि उसने पीड़ित को भी पकड़ा था और शोर मचाकर दूसरे अभियुक्त से गोली चलाने और उसे मारने के लिए कहा, इसलिए, उसे धारा 324 भा.दं.सं. सपठित धारा 34 और 109 भा.दं.सं. के अधीन सही ढंग से दोषसिद्ध किया गया है। इस प्रकार, अपील गलत धारणा और निराधार आधार पर दायर की गई है, जो निरस्त किए जाने योग्य है।

6. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं के प्रस्तुतीकरण पर विचार किया है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

7. अभियोजन की कहानी के अनुसार, प्रदीप कुमार तिवारी पुत्र राधे श्याम तिवारी, निवासी हदीराही पुलिस स्टेशन लालगंज, जिला प्रतापगढ़ ने दिनांक 16.12.1988 को कोतवाली लालगंज, जिला प्रतापगढ़ के कोतवाल साहिब को एक हस्तलिखित आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें कहा गया कि सर्वेश कुमार दुबे पुत्र राम मनोहर दुबे, निवासी कोठार मंगोले ने 10 दिन पहले उससे रु.100 मांगे थे और जब उसने उसे वह राशि नहीं दी, तो वह उससे नाराज हो गया और कहा कि यदि तुम पैसे नहीं दोगे, तो यह तुम्हें महंगा पड़ेगा। उक्त तारीख को शाम 5 बजे, वह अपने घर से सगरा बाजार जा रहा था, जब सर्वेश कुमार दुबे और राजीव कुमार मिश्रा, निवासी पहाड़पुर (दकिनहन का पुरवा), पुलिस स्टेशन संगीपुर, जिला प्रतापगढ़ उससे मिले और सर्वेश कुमार दुबे ने उक्त नाराजगी और दुश्मनी के कारण उसे गाली दी और सह-अभियुक्त राजीव कुमार मिश्रा से गोली चलाने और उसे मारने के लिए कहा। उसने शोर मचाया। शोर मचाने पर, रमेश्वर प्रसाद तिवारी पुत्र विश्व नाथ तिवारी, हरीश चंद्र तिवारी पुत्र मुन्नू तिवारी व अन्य वहां पहुंचे और राजीव और सर्वेश का पीछा किया लेकिन दोनों भाग गए। यह भी आरोप लगाया गया कि उसे पेट में 'कट्टा' की गोली की चोट लगी है। उक्त लिखित शिकायत के आधार पर, प्रथम सूचना रिपोर्ट (इसके बाद "प्र.सू.रि." के रूप में संदर्भित) दर्ज की गई, जो प्रदर्श क-3 है और उक्त अभियुक्तों के विरुद्ध अपराध संख्या-396 सन् 1988, धारा 307, 504 भा.दं.सं. के अधीन मामला दर्ज किया गया। शिकायतकर्ता को चिकित्सकीय जांच के लिए भेजा गया। उसकी जांच उन्नत प्रा.स्वा.कें. लालगंज के अधीक्षक/प्रभारी द्वारा 18.12.1888 को रात 11:00 बजे की गई और प्रदर्श क-2 के अनुसार, उसके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:-

"प्रवेश की बंदूक की गोली का घाव 0.5 सेमी x 0.5 सेमी x 1 सेमी गहरा, जहां तक आसानी से जांचा गया, नीचे की ओर और बाहर की ओर जाता हुआ बाईं ओर पेट के निचले हिस्से में नाभि से 6 सेमी बाहर 4 बजे की स्थिति में घाव के चारों ओर घिसा हुआ कॉलर मौजूद है। खून का रिसाव मौजूद। टैटूइंग मौजूद।"

8. अन्वेषण के दौरान, कोट, बनियान, लुंगी और बुशर्ट के कब्जे में लेने का मेमो तैयार किया गया, जो प्रदर्श क-5 है। अन्वेषण अधिकारी द्वारा 22.02.1988 को स्थल योजना तैयार की गई, जो प्रदर्श क-6 है। अन्वेषण पूरा होने के बाद, उक्त दो अभियुक्तों के विरुद्ध धारा 307, 504 भा.दं.सं. के अधीन दिनांक 13.02.1989 को आरोपपत्र प्रदर्श क-7 के रूप में दायर किया गया।

9. मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया। इसलिए, जीवित अपीलकर्ता-सर्वेश कुमार दुबे के विरुद्ध धारा 307/34, 504 और 109 भा.दं.सं. के अधीन और मृतक अपीलकर्ता-राजीव कुमार मिश्रा के विरुद्ध धारा 307 भा.दं.सं. के अधीन 27.04.1991 को आरोप विरचित किया किया गया। अपीलकर्तागण ने आरोप से इनकार किया और विचारण की प्रार्थना की।

10. अभियोजन ने प्रदीप कुमार तिवारी को अभि.सा.-1 के रूप में, डॉ.पी.एन. सिंह को अभि.सा.-2 के रूप में और अन्वेषण अधिकारी राजेंद्र प्रसाद सिंह को अभि.सा.-3 के रूप में परीक्षित किया। अभियोजन साक्ष्य पूरा होने के बाद, धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन अभियुक्त का बयान दर्ज किया गया। अभियुक्त सर्वेश कुमार दुबे ने आरोप से इनकार किया और कहा कि प्रदीप कुमार तिवारी के चाचा ग्राम प्रधान चुनाव के लिए उम्मीदवार थे और वह प्रतिद्वंद्वी उम्मीदवार के साथ था और इस दुश्मनी के कारण, उसे झूठा फंसाया गया है। मृतक अपीलकर्ता-राजीव कुमार मिश्रा ने भी आरोप से इनकार किया और कहा कि चुनाव की दुश्मनी के कारण, उसे झूठा फंसाया गया है। तत्पश्चात, पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, अपीलकर्तागण को दोषसिद्ध किया गया और उपरोक्तानुसार सजा सुनाई गई। उसी से व्यथित होकर यह वर्तमान आपराधिक अपील दायर की गई है।

11. अभि.सा.-1-प्रदीप कुमार तिवारी, जो तथ्य का साक्षी और घायल व्यक्ति है, ने कहा कि दोनों अभियुक्त 'बदमाश टाइप' के व्यक्ति हैं। 16.12.1988 को, वह सगरा बाजार से अपने घर जा रहा था, जब वह सगरा बाग के उत्तर में लाल गुप्ता खेत के पास पहुंचा, तो अभियुक्त सर्वेश और राजीव उससे मिले; अभियुक्त सर्वेश ने पूछा क्या तुम पैसे लाए हो, तो उसने कहा कि उसके पास पैसे नहीं हैं और वह पैसे नहीं देगा। जब यह बातचीत चल रही थी, तो उसने सर्वेश को उसे गाली देने से रोका, तो उसने उसे पीछे से पकड़ लिया और शोर मचाया; तब सर्वेश ने गोली चलाने के लिए प्रेरित किया क्योंकि वह पैसे नहीं दे रहा था, "मार दो साले को गोली पैसा मांगने पर नहीं देता है।" उसके उकसावे पर, मृत अपीलकर्ता-राजीव कुमार मिश्रा ने अपनी पैंट की जेब से 'कट्टा' निकाला और गोली चला दी। उसे पेट की बाईं ओर 'कट्टा' की चोट लगी और वह गिर गया। तत्पश्चात, अभियुक्त भाग रहे थे, तो शोर मचाने पर, रमेश्वर प्रसाद, हरीश चंद्र व अन्य गांव के लोग वहां पहुंचे, और वे उसे एक डॉक्टर के पास ले गए, जिसने प्र.सू.रि. दर्ज करने की सलाह दी, तो उसके पिता, उसके दादा व अन्य लोग उसे पुलिस स्टेशन ले गए जहां उसने प्र.सू.रि. दर्ज की। उसे चिकित्सकीय जांच के लिए पुलिस द्वारा अस्पताल ले जाया गया और अगले दिन, जिला अस्पताल, प्रतापगढ़ में एक्स-रे की गई। उसने आगे कहा कि जब अभियुक्तों ने उससे रु. 100/- की मांग की, तो उसने उन्हें बताया कि उसके पास पैसे नहीं हैं, तो उसने उसे दूसरों से पैसे लेने के लिए कहा और यदि तुम पैसे नहीं दोगे, तो यह उसे महंगा पड़ेगा। चूंकि उसने पैसे का भुगतान नहीं किया था, इसलिए, उस पर हमला किया गया। साक्षी की तीन तिथियों पर प्रति-परीक्षा की गई, जिसमें उसने अभियोजन की कहानी का समर्थन किया।

12. प्रति-परीक्षा में, अभि.सा.-1 ने कहा कि वह तहमद, बनियान, शर्ट और कोट पहने हुए था। जब वह अपने घर से निकला तो अंधेरा था और चांदनी थी। वह अपने बच्चे के लिए दवा के लिए सगरा गया था। उसने

विनया मेडिकल स्टोर्स से दवाएं खरीदी थीं और लगभग 07:15 बजे सगरा बाजार पहुंचा। उसने आगे कहा कि सगरा बाजार में, राजीव ने उससे पैसे की मांग की। उस समय, कोई अन्य व्यक्ति नहीं था। वह राजीव कुमार मिश्रा की दुकान में बैठा था, जब सर्वेश कुमार ने उसे बुलाया और जैसे ही वह उसके पास पहुंचा, राजीव ने लगभग 11 और 11:30 बजे रु. 100 की मांग की लेकिन उसने जवाब दिया कि वह कहां से पैसे देगा। उसके पास पैसे नहीं हैं। तब उसने कहा कि यदि तुम पैसा नहीं दोगे, तो यह तुम्हें महंगा पड़ेगा। इस बातचीत में केवल एक मिनट लगा। जब सर्वेश ने उसे पीछे से पकड़ लिया और प्रेरित किया 'मार दो साले को ऐसा मौका फिर नहीं मिलेगा', तो उसने शोर मचाया और आबादी के लोग वहां पहुंचे क्योंकि वह बेहोश हो गया था। चक-सड़क से दो हाथ की दूरी पर खेत में उस पर हमला किया गया था। वह एक घंटे बाद होश में आया। वह नहीं कह सकता कि इस एक घंटे के बीच क्या हुआ। वह होश में आया, जब वह सगरा पहुंचा। उसने लालगंज चौराहे पर प्र.सू.रि. तैयार की, जो पुलिस स्टेशन से थोड़ी दूरी पर है। वह पुलिस स्टेशन गया क्योंकि उसने सोचा कि प्र.सू.रि. दर्ज करना आवश्यक है। इस प्रकार, अभि.सा.-1, जो घायल है, ने अभियुक्त अपीलकर्ता के विरुद्ध आरोप सिद्ध किया है और प्रति-परीक्षा में उससे कुछ भी निकाला नहीं जा सकता, जो उसकी गवाही के बारे में कोई संदेह उठा सके।

13. अभि.सा.-2-डॉ.पी.एन. सिंह, उन्नत प्रा.स्वा.कें. लालगंज के अधीक्षक ने चिकित्सा परीक्षण रिपोर्ट सिद्ध की। उन्होंने कहा कि 16.12.1988 को रात 11 बजे, उन्होंने कांस्टेबल राम शंका यादव द्वारा लाए गए प्रदीप कुमार तिवारी की चिकित्सा परीक्षण की। उन्होंने आगे कहा कि चोट, परीक्षण के समय, ताजा थी और यह बंदूक की थी और 16.12.1988 को 'कट्टा' द्वारा कारित की गई हो सकती है। उन्होंने आगे कहा कि यह चार फीट की दूरी से कारित किया गया हो सकता है, जहां से गोल बन जाता है। उनके द्वारा प्रा.स्वा.कें. में एक्स-रे मशीन में एक्स-रे की गई, जो उनके पास उपलब्ध थी। उसमें कोई 'छर्रा' नहीं मिला। उन्होंने आगे कहा कि यह आवश्यक नहीं है कि करीबी फायरिंग से 'छर्रा' अंदर हो। इस प्रकार, अभि.सा.-2 ने घटना में शिकायतकर्ता अर्थात् अभि.सा.-1 को आई चोटों को सिद्ध किया।

14. अभि.सा.-3- राजेंद्र प्रसाद सिंह, स्टेशन अधिकारी, जलालपुर, जिला जौनपुर ने चिक रिपोर्ट, आरोपपत्र और स्थल योजना के साथ-साथ बरामदगी मेमो सिद्ध किया। इस प्रकार, उक्त घटना में शिकायतकर्ता को आई गई चोट के साथ-साथ घटना सिद्ध हुई है। तदनुसार, आरोप सिद्ध होता है।

15. उपरोक्त के दृष्टिगत, अपीलकर्ता संख्या 1-सर्वेश कुमार दुबे पर आरोप केवल गोली चलाने के उकसावे का नहीं है बल्कि उसने शिकायतकर्ता को पकड़कर एक प्रत्यक्ष कार्य भी किया, इसलिए, अपीलकर्ता को धारा 324 सपठित धारा 34 और 109 भा.दं.सं. के अधीन सही ढंग से दोषसिद्ध किया गया है और धारा 324 भा.दं.सं. के अधीन प्रदान की गई सजा से दंडित किया गया है।

16. धारा 324 भा.दं.सं. खतरनाक हथियार या साधन द्वारा स्वैच्छिक रूप से चोट पहुंचाना और इसके लिए सजा प्रावधानित करती है। धारा 109 भा.दं.सं. प्रावधानित करती है कि जो कोई भी किसी अपराध को उकसाता

है, यदि उकसाए गए कार्य को उकसावे के परिणामस्वरूप किया जाता है, और इस संहिता द्वारा ऐसे उकसावे की सजा के लिए कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं किया गया है, तो अपराध के लिए प्रदान की गई सजा से दंडित किया जाएगा। धारा 109 भा.दं.सं. में जोड़ा गया स्पष्टीकरण प्रदान करता है कि एक कार्य या अपराध को उकसावे के परिणामस्वरूप किया गया कहा जाता है, जब इसे उकसावे के परिणामस्वरूप, या साजिश के अनुसरण में, या उस सहायता के साथ किया जाता है, जो उकसावे का गठन करती है। धारा 34 भा.दं.सं. प्रावधानित करती है कि जब एक आपराधिक कार्य कई व्यक्तियों द्वारा सभी के साझा आशय को आगे बढ़ाने में किया जाता है, तो ऐसे प्रत्येक व्यक्ति उस कार्य के लिए उसी तरह उत्तरदायी है, जैसे कि यह उसके द्वारा अकेले किया गया हो।

17. उपरोक्त के दृष्टिगत, चूंकि वर्तमान मामले में धारा 324 भा.दं.सं. के अधीन अपराध, अपीलकर्ता द्वारा उकसावे/उकसावे पर साझा आशय को आगे बढ़ाने में किया गया है, जिसने न केवल अन्य अभियुक्त को उकसाया/प्रेरित किया बल्कि सूचनाकर्ता/घायल को पकड़ने के अपने प्रत्यक्ष कार्य से उसकी सहायता भी की, इसलिए, वह भी उसी अपराध के लिए दंडित किए जाने के लिए उत्तरदायी था। इस प्रकार, उसे भी सही ढंग से दोषसिद्ध किया गया है और सजा भी सही ढंग से उसे दी गई है। यह न्यायालय अभि.सा.-1, अभि.सा.-2 और अभि.सा.-3 के साक्ष्य पर विचार करने के बाद, और अभिलेख पर सामग्री के आधार पर विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्षों में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं पाता है, भले ही उनके साक्ष्य में मामूली विसंगतियां हों जो संभवतः घटना और साक्ष्य में समय बीतने के कारण हैं। यह न्यायालय आक्षेपित निर्णय और आदेश में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं पाता है, जो इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की मांग कर सके।

18. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने, **पालकोम अब्दुल रहिमन बनाम स्टेशन हाउस ऑफिसर, बडियाडका पुलिस स्टेशन, केरल व अन्य; (2019) 4 SCC 795** में निर्णीत किया कि धारा 34 भा.दं.सं. का सही अर्थ यह है कि यदि दो या दो से अधिक व्यक्ति जानबूझकर संयुक्त रूप से एक कार्य करते हैं, तो विधि की स्थिति वैसी ही है जैसे कि उनमें से प्रत्येक ने इसे व्यक्तिगत रूप से किया हो। प्रासंगिक प्रस्तर 22 और 23 नीचे दिए गए हैं:-

"22. धारा 34 भा.दं.सं. का सही उद्देश्य यह है कि यदि दो या दो से अधिक व्यक्ति जानबूझकर संयुक्त रूप से एक कार्य करते हैं, तो विधि की स्थिति वैसी ही है जैसे कि उनमें से प्रत्येक ने इसे व्यक्तिगत रूप से किया हो, विधि की प्रक्रिया का उद्देश्य एक ऐसी स्थिति को पूरा करना है, जिसमें एक पार्टी के व्यक्तिगत सदस्यों के कार्यों के बीच अंतर करना मुश्किल हो सकता है, जो साझा आशय को आगे बढ़ाने में कार्य करते हैं, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा चिंता पुल्ला रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य3 और गिरिजा शंकर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य4 में निर्णीत किया गया है

23. धारा 34 भा.दं.सं. में उल्लिखित सिद्धांतों का अनुप्रयोग, जब एक अभियुक्त को धारा 302 धारा 34 भा.दं.सं. के अधीन दोषसिद्ध किया जाता है, विधि में इसका मतलब है कि अभियुक्त उस कार्य के लिए

उत्तरदायी है, जो मृतक की मृत्यु का कारण बनी, उसी तरह जैसे कि यह उसके द्वारा अकेले किया गया हो। जैसा कि इस न्यायालय ने चिंता पुल्ला रेड्डी प्रकरण [3] में निर्णीत किया, धारा 34 तब भी लागू होती है जब किसी विशेष अभियुक्त द्वारा स्वयं कोई चोट नहीं पहुंचाई गई हो। धारा 34 की प्रयोज्यता पर इस न्यायालय द्वारा गिरजा शंकर प्रकरण4 में निम्नानुसार विचार किया गया है: (SCCपृष्ठ 797.प्रस्तर 9)

"9. धारा 34 को आपराधिक कार्य करने में संयुक्त दायित्व के सिद्धांत पर अधिनियमित किया गया है। धारा केवल साक्ष्य का एक नियम है और एक मूल अपराध नहीं बनाती है। धारा की विशिष्ट विशेषता कार्रवाई में भागीदारी का तत्व है। एक व्यक्ति का, दूसरे द्वारा, कई व्यक्तियों द्वारा किए गए आपराधिक कार्य के दौरान किए गए अपराध के लिए दायित्व धारा 34 के अधीन उत्पन्न होता है, यदि ऐसा आपराधिक कार्य अपराध करने में शामिल होने वाले व्यक्तियों के साझा आशय को आगे बढ़ाने में किया जाता है। साझा आशय का प्रत्यक्ष प्रमाण शायद ही कभी उपलब्ध होता है और, इसलिए, ऐसा आशय केवल मामले के सिद्ध तथ्यों और सिद्ध परिस्थितियों से प्रकट होने वाली परिस्थितियों से ही अनुमानित किया जा सकता है। साझा आशय के आरोप को सिद्ध करने के लिए, अभियोजन को साक्ष्य द्वारा स्थापित करना होता है, चाहे प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य, कि अपराध करने के लिए सभी अभियुक्तों के दिमाग की एक योजना या बैठक थी जिसके लिए उन्हें धारा 34 की सहायता से आरोपित किया गया है, चाहे यह पूर्व-व्यवस्थित हो या क्षण की प्रेरणा पर; लेकिन यह आवश्यक रूप से अपराध कारित होने से पहले होना चाहिए। धारा की सच्ची अवधारणा यह है कि यदि दो या दो से अधिक व्यक्ति जानबूझकर संयुक्त रूप से एक कार्य करते हैं, तो विधि में स्थिति वैसी ही है जैसे कि उनमें से प्रत्येक ने इसे व्यक्तिगत रूप से स्वयं किया हो। जैसा कि अशोक कुमार बनाम पंजाब राज्य में निर्णीत किया गया है, इस धारा के आवेदन के लिए अपराध में भागीदारों के बीच साझा आशय का अस्तित्व आवश्यक तत्व है। यह आवश्यक नहीं है कि संयुक्त रूप से अपराध कारित करने के साथ आरोपित कई व्यक्तियों के कार्य समान या समान रूप से समान होने चाहिए। कार्य चरित्र में भिन्न हो सकते हैं, लेकिन प्रावधान को आकर्षित करने के लिए एक ही साझा आशय से प्रेरित होने चाहिए।"

19. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **पंजाब राज्य बनाम हाकम सिंह; (2005) 7 SCC 408** में समान दृष्टिकोण लिया है।

20. इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने, **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम वीरेंद्र कुमार व अन्य; MANU/UP/0911/2008** में निर्णीत किया कि यह गवाहों की उपस्थिति या अनुपस्थिति नहीं है, जो निर्धारण कारक होनी चाहिए। न्यायालय को यह देखना होता है कि अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य विश्वसनीय है और भरोसे योग्य है। अभियोजन संस्करण पर संदेह करने में विचारण न्यायालय का रवैया, केवल इसलिए कि स्वतंत्र साक्षी प्रस्तुत नहीं किए गए थे, अनुचित और गलत है। न्यायालय को प्रस्तुत साक्ष्य की जांच करनी चाहिए, और उचित निष्कर्ष निकालना चाहिए। यह आगे माना गया है कि विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय, जे.सी. हेज के प्रस्तावना के साथ ए. पेज़ेविक की पुस्तक 'लॉ एण्ड रीज़न' में प्रतिपादित 'कोहरेंस थ्योरी ऑफ लॉ', यूनिवर्सिटी ऑफ़ लुंड स्वीडन का सहारा लिया जाना चाहिए।

21. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने, **जोधराज सिंह बनाम राजस्थान राज्य; (2007) 15 SCC 294** में निर्णीत किया है कि दोषसिद्धि एक एकल साक्षी की गवाही पर भी आधारित हो सकती है और यदि साक्ष्य और अभिलेख पर सामग्री के विचार पर, यह पाया जाता है कि अपीलकर्ता की ओर से साझा आशय मौजूद है, तो उसे भी उसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जा सकता है। प्रासंगिक प्रस्तर 14 से 17 नीचे दिए गए हैं:-

"14. यह सामान्य बात है कि केवल इसलिए कि एक साक्षी, एक या दूसरे कारण से, कुछ हद तक अपने पहले के बयान से फिर गया है, अपने आप में अभियोजन मामले को पूर्णता में खारिज करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है। ऐसी स्थिति में भी न्यायालय शक्तिहीन नहीं हैं। अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री को ध्यान में रखते हुए, विधि के न्यायालय के लिए उस साक्षी की गवाही के एक हिस्से पर भरोसा करना स्वीकार्य है जिसे शत्रुतापूर्ण घोषित किया गया है।

15. अपीलकर्ता को अन्य अभियुक्तों की संगति में देखा गया था। अभिलेख पर पर्याप्त सामग्री लाई गई है यह स्थापित करने के लिए कि उसने अपराध कारित करने में भाग लिया। सभी अभियुक्त एक टेम्पो में एक साथ आए। वे विभिन्न हथियारों से लैस थे। उन्होंने मृतक पर हमला किया। विद्वान सत्र न्यायाधीश के साथ-साथ उच्च न्यायालय ने अपराध कारित करने के लिए एक हेतुक का अस्तित्व पाया। वे एक साथ घटना के स्थान से निकल गए। यह हो सकता है कि मृत्यु का अंतिम कारण मृतक के सिर पर पत्थर से हमला पाया गया, जो भूपेंद्र का कृत्य कहा जाता है लेकिन केवल इसके कारण से अपीलकर्ता की ओर से साझा आशय का अस्तित्व अनुपस्थित नहीं कहा जा सकता है।

16. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का मिट्ठू सिंह बनाम पंजाब राज्य4 [(2001) 4 SCC 193] पर भरोसा गलत है। इसमें, उसमें अपीलकर्ता को कोई प्रत्यक्ष कार्य नहीं दिया गया था। न्यायालय ने पाया कि उसके विरुद्ध कोई साक्ष्य अभिलेख पर नहीं लाया गया था, गवाहों की ओर से उनके द्वारा (ipse dixi)t को छोड़कर। इस न्यायालय ने, उक्त तथ्य स्थिति में, राय दी:

"6. धारा 34 की सहायता से धारा 302 के अधीन आरोप को सिद्ध करने के लिए यह दिखाया जाना चाहिए कि शिकायत किया गया आपराधिक कार्य अभियुक्तों में से एक द्वारा दोनों के साझा आशय को आगे बढ़ाने में किया गया था। साझा आशय को समान या एक आशय से अलग किया जाना है। यह सच है कि अभियुक्त के आशय के प्रमाण में प्रत्यक्ष साक्ष्य एकत्र करना और प्रस्तुत करना मुश्किल है, यदि असंभव नहीं है, और अधिकतर आशय के बारे में एक अनुमान अभियुक्त के कार्यों या आचरण या अन्य प्रासंगिक परिस्थितियों से निकाला जाना होगा, जैसा कि उपलब्ध है। साझा आशय के बारे में एक अनुमान तुरंत नहीं निकाला जाएगा; दोषी दायित्व केवल तभी उत्पन्न हो सकता है यदि ऐसा अनुमान एक निश्चित डिग्री के आश्वासन के साथ निकाला जा सकता है। सबसे बुरी स्थिति में मिट्ठू सिंह, अभियुक्त-अपीलकर्ता, को पता था कि उसका सह-अभियुक्त भारपुर सिंह एक पिस्तौल से लैस था। भारपुर सिंह और मृतक के बीच मौजूद पिछली दुश्मनी का ज्ञान भी मिट्ठू सिंह को दिया जा सकता है। लेकिन अभिलेख पर कुछ भी उपलब्ध नहीं है यह अनुमान लगाने

के लिए कि सह-अभियुक्त भारपुर सिंह मृतक के घर उसकी मृत्यु का कारण बनने के आशय से गया था और ऐसा आशय मिट्ठू सिंह को ज्ञात था, उसके द्वारा साझा किया गया तो बहुत कम। केवल इसलिए कि मिट्ठू सिंह स्वयं एक पिस्तौल से लैस था आवश्यक रूप से यह अनुमान नहीं लगाया जाएगा कि वह मृतक के घर पहुंचा था या सह-अभियुक्त भारपुर सिंह के साथ गुरदयाल कौर की मृत्यु का कारण बनने के आशय से था। हमारी राय में, मिट्ठू सिंह, अभियुक्त-अपीलकर्ता के बारे में एक अनुमान, जिसने भारपुर सिंह के साथ मृतक गुरदयाल कौर की हत्या के साझा आशय को साझा किया, नहीं निकाला जा सकता है। धारा 302/34 भा.दं.सं. के अधीन उसकी दोषसिद्धि बरकरार नहीं रखी जा सकती और निरस्त की जानी चाहिए।"

ऐसी स्थिति यहां नहीं है।

17. वैजयंती बनाम महाराष्ट्र राज्य5, [(2005) 13 SCC 134] में, साझा आशय के गठन के संबंध में, इस न्यायालय ने राय दी: (SCC परिस्थत 138, प्रस्तर 9)

"भारतीय दंड संहिता की धारा 34 परिकल्पना करती है कि "जब एक आपराधिक कार्य कई व्यक्तियों द्वारा सभी के साझा आशय को आगे बढ़ाने में किया जाता है, तो ऐसे प्रत्येक व्यक्ति उस कार्य के लिए उत्तरदायी है, उसी तरह जैसे कि यह उसके द्वारा अकेले किया गया हो"। उक्त प्रावधान के पीछे अंतर्निहित सिद्धांत आपराधिक कार्य करने में व्यक्तियों का संयुक्त दायित्व है जो इसे आगे बढ़ाने में आपराधिक कार्य करने में कार्यों में दुश्मनी के साझा आशय के अस्तित्व में पाया गया होगा। इस संबंध में विधि अब res integra (निर्णयाधीन) नहीं है। संबंधित व्यक्ति की ओर से एक सकारात्मक प्रत्यक्ष कार्य होना आवश्यक नहीं है। कुछ करने के लिए उसकी ओर से एक चूक भी उक्त प्रावधान को आकर्षित कर सकती है। लेकिन यह किसी भी कैविल के संदेह से परे है कि प्रश्न का उत्तर प्रत्येक मामले में प्राप्त तथ्य स्थिति को ध्यान में रखते हुए दिया जाना चाहिए।"

22. उपरोक्त के दृष्टिगत और मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों और प्रस्तुत साक्ष्य पर विचार करते हुए, यह न्यायालय आक्षेपित निर्णय व आदेश में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं पाता है, जो तर्कसंगत आदेश द्वारा विधि के अनुसार अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और सामग्री पर विचार और मूल्यांकन करने के बाद पारित किया गया है। अपील गलत धारणा और निराधार आधार पर योजित की गई है।

23. तदनुसार, अपील **निरस्त** की जाती है।

(2025) 5 ILRA 100

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति मदन पाल सिंह

आपराधिक अपील संख्या 538 सन् 2021

संबद्ध

आपराधिक अपील संख्या 461 सन् 2021

रामदेव **...अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
ओम नारायण पांडेय, विंदेश कुमार

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
शा.अधि., संदीप कुमार दुबे

अनुवादित

(ए) दंड विधि-परिस्थितिजन्य साक्ष्य-अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत-भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 302, 201 एवं 120-बी-द्वितीयक साक्ष्य की स्वीकार्यता (फोटोस्टेट प्रति)-भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872-धारा 63 एवं 65-फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट-अभिरक्षा की श्रृंखला-अंतिम बार देखे जाने वाले साक्षियों के रूप में परिवार के सदस्यों की विश्वसनीयता-प्रबल संदेह साक्ष्य का स्थान नहीं ले सकता-परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला पूर्ण होनी चाहिए-अभियोजन पक्ष को अपना मामला उचित संदेह से परे सिद्ध करना होगा-मात्र संदेह या घटनाओं की अधूरी श्रृंखला दोषसिद्धि के लिए अपर्याप्त है-अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत पर्याप्त नहीं है, जहां महत्वपूर्ण समय अंतराल मौजूद है और स्वतंत्र पुष्टि अनुपस्थित है। (प्रस्तर-28, 31, 35-39, 44-62, 55, 58, 61, 62) मृतक को कथित तौर पर अभियुक्त अपीलकर्तागण के साथ अंतिम बार देखा गया था-प्र.सू.रि. दर्ज करने में देरी-अभियोजन परिस्थितिजन्य साक्ष्य और "अंतिम बार देखे जाने" के सिद्धांत पर आधारित था-हथियार की बरामदगी का मेमो द्वितीयक साक्ष्य के रूप में प्रदर्शित किया गया-फोरेंसिक साक्ष्य पर सवाल उठाया गया-विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि-दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील। (प्रस्तर-3-25)

निर्णीत:-अभियोजन पक्ष, अभियुक्त-अपीलकर्तागण के विरुद्ध अपना मामला उचित संदेह से परे सिद्ध नहीं कर सका। विचारण न्यायालय ने "अंतिम बार देखी गई" गवाहियों और परिस्थितियों की अधूरी श्रृंखला पर भरोसा करने में त्रुटि की। संदेह पर आधारित दोषसिद्धि टिकाऊ नहीं है। आक्षेपित दोषसिद्धि और सजा रद्द की गई। अभियुक्त राम देव को तत्काल रिहा किया जाए, जब तक कि वह किसी अन्य मामले में वांछित न हो। अभियुक्त लड्डन, जमानत पर है, उसको समर्पण करने की आवश्यकता नहीं है। जमानत बांड उन्मोचित किया गया। (प्रस्तर-62-65)

अपीलें स्वीकार की गईं। (ई-7)

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची</u>:

1. कलिया बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2013) 10 SCC 758
2. गोवा राज्य बनाम पांडु रंग मोहिते, AIR 2009 SC 1066
3. शरद बिरधिचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 SCC 116

(माननीय न्यायमूर्ति मदन पाल सिंह द्वारा उद्घोषित)

<u>Preliminary</u>

1. ये दोनों आपराधिक अपीलें, मुकदमा अपराध संख्या-107 सन् 2011, पुलिस स्टेशन-जलालाबाद, जिला-शाहजहांपुर से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या-487 सन् 2011 (राज्य बनाम लड्डन और अन्य), धारा 302, 201 व 120-बी भा.दं.सं. में अपर सत्र न्यायाधीश/पॉकसो अधिनियम, न्यायालय संख्या 43, शाहजहांपुर द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय व आदेश दिनांक 7 दिसम्बर, 2020 के विरुद्ध निर्देशित हैं, जिसके द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ता राम देव और लड्डन को धारा 302/34 और 201 भा.दं.सं. के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है और उन्हें धारा 302/34 भा.दं.सं. के अधीन अपराध करने के लिए रु.20,000/- अर्थदंड के साथ आजीवन सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई है; अर्थदंड के भुगतान में व्यतिक्रम की स्थिति में तीन महीने का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा और धारा 201 भा.दं.सं. के अधीन अपराध के लिए रु.10,000/- के अर्थदंड के साथ सात वर्ष का सश्रम कारावास; अर्थदंड के भुगतान में व्यतिक्रम की स्थिति में दो महीने का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा। सभी सजाओं को समवर्ती रूप से चलने का निर्देश दिया गया है।

2. यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि उसी आक्षेपित निर्णय के अधीन, विचारण न्यायालय ने सत्र विचारण संख्या-506 सन् 2011 (राज्य बनाम पिंटू @ अरविंद व 2 अन्य) का निर्णय करते हुए अभियुक्त पिंटू @ अरविंद, पंकज और भूधर को धारा 120-बी भा.दं.सं. के अधीन अपराध के लिए दोषमुक्त कर दिया है।

<u>पृष्ठभूमि/तथ्य</u>

अनुवादित

3. मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि 14 फरवरी, 2011 को सुबह 11:00 बजे, गांव चौकीदार, अर्थात्, धारक ने जलालाबाद पुलिस स्टेशन-जलालाबाद, जिला शाहजहांपुर को सूचना दी कि लगभग 35 वर्ष की आयु के अज्ञात व्यक्ति का मृत शरीर अनवर शाह के गेहूं के खेत के पास, उसके गांव की सड़क के किनारे पड़ा हुआ है। उक्त शरीर को आस-पास के स्थानों के लोगों ने भी देखा था। उसने अनुमान लगाया कि उक्त शव किसी बाहरी व्यक्ति का था। उक्त सूचना को जनरल डायरी में जी.डी. संख्या 17 पुलिस स्टेशन-जलालाबाद जिला शाहजहांपुर में उसी दिन अर्थात् 14 फरवरी, 2011 को सुबह 11:00 बजे दर्ज किया गया और पंचायतनामा के बाद, मृतक के शरीर को पोस्टमार्टम के लिए भेजा गया।

4. जी.डी. प्रविष्टि के आधार पर जी.डी. संख्या 46 दिनांक 15 फरवरी, 2011 को 19:40 बजे होने के कारण, वर्तमान प्रकरण मुकदमा अपराध संख्या-107 सन् 2011 के रूप में, धारा-302 और 201 भा.दं.सं. के अधीन, पुलिस स्टेशन-जलालाबाद, जिला-शाहजहांपुर में दर्ज किया गया।

5. 18 फरवरी, 2011 को, बाहरी स्रोत से सूचना प्राप्त करने पर, प्रथम सूचनाकर्ता राजेश और उसकी मां मुन्नी देवी (यहां क्रमशः अभि.सा.-1 और अभि.सा.-2) ने कपड़े और फोटोग्राफ देखकर मृत शरीर की पहचान की। तत्पश्चात यह प्रकाश में आया कि मृत शरीर प्रथम सूचनाकर्ता (अभि.सा.-1) के भाई, अर्थात्, देवेन्द्र पाल (यहां मृतक) का था। 20 फरवरी, 2011 को, प्रथम सूचनाकर्ता/शिकायतकर्ता (अभि.सा.-1) ने प्रभारी इंस्पेक्टर, पुलिस स्टेशन जलालाबाद, जिला शाहजहांपुर को एक आवेदन दिया कि 13 फरवरी, 2011 को शाम 4:00 बजे, उसके भाई देवेन्द्र सिंह (मृतक) को दो व्यक्तियों, अर्थात्, लड्डन और रामदेव (यहां अभियुक्त-अपीलकर्ता) ने बुलाया और यू.पी. 27-9072 नंबर की पल्सर मोटरसाइकिल पर ले गए। अभियुक्त-अपीलकर्ता लड्डन के पास एक सिंगल बैरल बंदूक थी। उसके भाई देवेन्द्र सिंह की गांव किरियाकलां के पिंटू @ अरविंद, पंकज और भूधर से दुश्मनी थी। तीनों जेल में सजा काट रहे थे। उन्होंने मृतक देवेन्द्र को मारने के लिए जेल से ही षड्यंत्र रचा। जब अभियुक्त-अपीलकर्ता लड्डन और रामदेव मृतक देवेन्द्र को मोटरसाइकिल पर ले गए और गांव के बाहर पहुंचे, तो मनोज उर्फ भयातु, मक्कू और आलोक भी एक अन्य मोटरसाइकिल पर उनके साथ गए। प्रथम सूचनाकर्ता के गांव के गवाड़े और परमेश्वर ने कथित तौर पर उन्हें देखा, जब वे एक साथ जा रहे थे। इन व्यक्तियों ने देवेन्द्र सिंह की हत्या कर दी और उसके शरीर को पुलिस स्टेशन जलालाबाद के क्षेत्र में फेंक दिया। मृतक देवेन्द्र ने प्रथम सूचनाकर्ता को बताया कि वह उपरोक्त व्यक्तियों के साथ एक विवाह समारोह में जा रहा है और वह अगले दिन दोपहर 12:00 बजे तक लौट आएगा। जब उसका भाई अगले दिन नहीं लौटा, तो उसने अपने भाई के बारे में अपने रिश्तेदारों से पूछताछ की लेकिन कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई। 18 फरवरी, 2011 को, उसे पता चला कि पुलिस स्टेशन जलालाबाद के अधीन एक क्षेत्र में एक अज्ञात शव मिला है। वहां पहुंचने पर, अज्ञात शव की पहचान उसके भाई अर्थात् देवेन्द्र सिंह (मृतक) के रूप में की गई। यह आरोप लगाया गया कि अभियुक्त-अपीलकर्ता लड्डन और रामदेव ने उसके भाई की हत्या की योजना बनाई थी जब वे जेल में थे।

6. अज्ञात शरीर (जिसे बाद में मृतक देवेन्द्र सिंह के शरीर के रूप में पहचाना गया) का पोस्टमार्टम 15 फरवरी, 2011 को दोपहर 03:30 बजे डॉ. कमल कुमार (अभि.सा.-7) द्वारा किया गया और पोस्टमार्टम रिपोर्ट

(प्रदर्श क-4) में, अभि.सा.-7 ने राय दी कि मृतक की मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व बंदूक की गोली की चोटों के कारण सदमे और रक्तस्राव था।

7. उपरोक्त मुकदमा अपराध संख्या के पंजीकरण के बाद, अन्वेषण अधिकारी ने अध्याय-XII दं.प्र.सं. के अधीन वैधानिक अन्वेषण प्रारंभ किया और अन्वेषण के दौरान उसके द्वारा एकत्र की गई सामग्री और साक्ष्य के आधार पर धारा 161 दं.प्र.सं. के अधीन दर्ज साक्षियों के बयानों सहित, अन्वेषण अधिकारी ने दिनांक 17 मई, 2011 की चार्जशीट पिंटू उर्फ अरविंद, पंकज और भुघर के विरुद्ध धारा 120-बी भा.दं.सं. के अधीन और दिनांक 29 मार्च, 2011 की चार्जशीट राम देव और लड्डन के विरुद्ध धारा 302 और 201 भा.दं.सं. के अधीन प्रस्तुत की, जिन्हें क्रमशः प्रदर्श क-3 और क-2 के रूप में चिह्नित किया गया। उपरोक्त चार्जशीट/पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने पर, संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 190 (1) (बी) के अधीन शक्ति के प्रयोग में संज्ञान लिया गया। चूंकि अपराध विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था, धारा 207 दं.प्र.सं. के प्रावधानों का अनुपालन करने के बाद, संबंधित मजिस्ट्रेट ने धारा 209 दं.प्र.सं. के अनुसार, प्रकरण को सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया।

8. 21 सितंबर, 2011 को, संबंधित न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलकर्ता लड्डन और राम देव के विरुद्ध धारा 302/34 भा.दं.सं. और धारा 201 भा.दं.सं. के अधीन आरोप विरचित किए।

<u>अभियोजन साक्षी, जिनका विचारण के दौरान परीक्षण किया गया</u>

9. विचारण प्रारंभ हुआ और अभियोजन पक्ष ने नौ साक्षियों को परीक्षित किया, जो निम्नानुसार थे:-

1	राजेश सिंह, प्रथम सूचनाकर्ता/शिकायतकर्ता (मृतक का भाई)	अभि.सा.1
2	मुन्नी देवी, (मृतक और प्रथम सूचनाकर्ता की मां)	अभि.सा.2
3	गवाड़े (मृतक का मित्र)	अभि.सा.3
4	पुष्पा (प्रथम सूचनाकर्ता की पत्नी और मृतक की भाभी)	अभि.सा.4
5	यशपाल सिंह, तत्कालीन एस.एस.आई., जलालाबाद पुलिस स्टेशन, जिन्होंने वर्तमान प्रकरण का अन्वेषण किया और अभियुक्त पिंटू @ अरविंद, पंकज और भूधर के विरुद्ध दिनांक 17 मई, 2011 की चार्जशीट प्रस्तुत की	अभि.सा.5
6	वीर सिंह, तत्कालीन एस.एस.आई. जलालाबाद पुलिस स्टेशन, जिन्होंने अन्वेषण अधिकारी होने के कारण लड्डन और राम देव के विरुद्ध दिनांक 29 मार्च, 2011 की चार्जशीट प्रस्तुत की	अभि.सा.6
7	डॉ. कमल कुमार, जिन्होंने एक अज्ञात व्यक्ति के शरीर का पोस्टमार्टम किया, जिसे बाद में मृतक के रूप में पहचाना गया	अभि.सा.7

8	पंकज श्रीवास्तव, तत्कालीन उप-निरीक्षक, पुलिस स्टेशन-जलालाबाद, जिन्होंने लड्डन की गिरफ्तारी का मेमो और एस.एस.आई. जे.के. तोमर के बोलने पर सिंगल बैरल बंदूक और 12 बोर के पांच कारतूसों की बरामदगी का मेमो तैयार किया	अभि.सा.8
9	सुनील कुमार, तत्कालीन कांस्टेबल पुलिस स्टेशन जलालाबाद, जिन्होंने लड्डन की गिरफ्तारी के मेमो और सिंगल बैरल बंदूक और 12 बोर के पांच कारतूसों की बरामदगी के मेमो पर हस्ताक्षर किए	अभि.सा.9

10. अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को स्थापित करने के लिए निम्नलिखित अभिलेखीय साक्ष्य पर भी भरोसा किया, जो विधिवत सिद्ध किए गए और परिणामस्वरूप प्रदर्श के रूप में चिह्नित किए गए:

1	खाली कारतूसों और मोबाइल कवर की बरामदगी का मेमो दिनांक 14 फरवरी, 2011	प्रदर्श क.-12
2	पंचायतनामा/पंचायत रिपोर्ट दिनांक 14 फरवरी, 2011	प्रदर्श क.-7
3	पोस्टमार्टम रिपोर्ट दिनांक 15 फरवरी, 2011	Ex. Ka.-4
4	सूचकांक के साथ स्थल योजना दिनांक 16 फरवरी, 2011	प्रदर्श क.-5
5	लिखित रिपोर्ट दिनांक 20 फरवरी, 2011	प्रदर्श क.-1
6	बंदूक और कारतूस की बरामदगी का मेमो दिनांक 28 फरवरी, 2011	Ex. Ka.-13
7	चार्जशीट दिनांक 29 मार्च, 2011	प्रदर्श क.-3
8	अनुक्रमणिका के साथ स्थल योजना दिनांक 28 फरवरी, 2011	प्रदर्श क.-6
9	चार्जशीट दिनांक 17 मई, 2011	प्रदर्श क.-2
10	फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट दिनांक 16 जनवरी, 2012	प्रदर्श क.-18
11	फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट दिनांक 20 अक्टूबर, 2012	प्रदर्श क.-20
12	फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट दिनांक 20 अक्टूबर, 2020	प्रदर्श क.-21

अनुवादित

11. अभियोजन साक्ष्य पूरा होने के बाद, अभियुक्तों के बयान धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन दर्ज किए गए। अभियुक्तों ने अभियोजन संस्करण से इनकार किया और कहा कि साक्षियों ने उनके प्रति शत्रुतापूर्ण कुछ लोगों के प्रभाव में झूठे साक्ष्य दिए। उन्होंने आगे कहा कि वे निर्दोष हैं और उन्हें वर्तमान प्रकरण में झूठा फंसाया गया है क्योंकि वे 2002 से जेल में थे। बचाव पक्ष ने अपने समर्थन में कोई साक्षी प्रस्तुत नहीं किया है।

12. अभियुक्त के विरुद्ध अपराध और आरोपों को सिद्ध करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने कुल नौ साक्षियों का परीक्षण किया, जिसमें तथ्य के साक्षी और औपचारिक प्रकृति के साक्षी भी शामिल थे।

13. अभि.सा.-1 राजेश सिंह ने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि उसने स्वयं मृतक को देखा था, जब वह अभियुक्त-अपीलकर्ता राम देव और लड्डन के साथ एक विवाह समारोह में भाग लेने के लिए पल्सर मोटरसाइकिल पर जा रहा था। जब वे गांव के बाहर पहुंचे, तो आलोक कुमार, मनोज कुमार @ मक्कू और मैत्तु ने एक अन्य मोटरसाइकिल पर उनका पीछा किया। उन्होंने फिर कहा कि जब मृतक अभियुक्त-अपीलकर्तागण के साथ जा रहा था, तो परमेश्वर और अभि.सा.-3 गवाड़े ने भी उन्हें देखा। जब मृतक अपने घर नहीं लौटा, तो अभि.सा.-1 ने उसे खोजा और उसके बाद वह गांव बधाऊ, जिला-मिर्जापुर में लड्डन के स्थान पर गया। लड्डन ने अनभिज्ञता का बहाना किया और अभि.सा.-1 के अनुसार उससे कहा कि उसे कोई अंदाजा नहीं है कि मृतक कहां है। वह उसके बारे में कुछ नहीं जानता है क्योंकि वह उसके साथ नहीं आया। 18 फरवरी, 2011 को, उसे पता चला कि पुलिस स्टेशन-जलालाबाद में एक अज्ञात मृत शरीर मिला है। इस सूचना पर, वह अपनी मां (अभि.सा.-2), भाई और मामा के साथ पुलिस स्टेशन-जलालाबाद गया और फोटोग्राफ और कपड़ों से, उसने उक्त मृत शरीर को अपने भाई के रूप में पहचाना।

14. अपनी मुख्य परीक्षा में इस साक्षी ने आगे कहा है कि उसके परिवार और अभियुक्त अरविंद @ पिंटू, भूधर और पंकज के परिवारों के साथ दुश्मनी थी और उस दुश्मनी में, दोनों पक्षों से विभिन्न हत्याएं हुईं। मृतक उनके भाई की हत्या के मामले में एक अभियुक्त था। यह और कहा गया है कि जब मृतक नन्हे की हत्या के मामले में जेल में था, तो वह अभियुक्त-अपीलकर्ता लड्डन और राम देव से मिला और वे दोस्त बन गए। मृतक के जमानत पर रिहा होने के बाद, अभियुक्त राम देव, लड्डन और पिंटू, पंकज और भूधर जेल में मैत्रीपूर्ण हो गए, जहां उन्होंने मृतक की हत्या का षड्यंत्र रचा। तत्पश्चात जब अभियुक्त-अपीलकर्ता राम देव और लड्डन को जमानत पर रिहा किया गया, तो पिंटू और अन्य ने मृतक की हत्या के लिए उन्हें पैसे दिए। चूंकि अभियुक्त राम देव और लड्डन मृतक से मिलने के लिए प्रथम सूचनाकर्ता के घर आते थे, इसलिए, वह उन्हें जानता था। मृतक की हत्या के षड्यंत्र को रामपाल और गवाड़े ने उसे प्रकट किया।

15. अभि.सा.-2 मुन्नी देवी ने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि जब वह जलालाबाद से घोड़ा-गाड़ी (टांगा) पर आ रही थी और उरवरिया जान पहुंची, तो उसने देखा कि मृतक को अभियुक्त-अपीलकर्ता राम देव और लड्डन ले जा रहे थे। बाद वाले के पास एक सिंगल बैरल बंदूक थी, जब वह मोटरसाइकिल पर बैठा था। उसने आगे कहा कि वह अपने घर लौट आई। जब उसका बेटा देवेन्द्र (मृतक) अपने घर नहीं लौटा, तो वह, उसका बेटा राजेश, उसका भाई सुखपाल, उसका भतीजा और अन्य परिवार के सदस्य गांव बधाऊ में लड्डन के निवास पर गए, जहां वह मिट्टी जोत रहा था। जब उन्होंने मृतक के बारे में पूछताछ की, तो अभियुक्त लड्डन ने कहा कि वह गांव आशुवा आएगा और वहां सभी मिलकर मृतक को खोजेंगे। उन्होंने मृतक को खोजा लेकिन उसका पता नहीं लगा। अपनी मुख्य परीक्षा में, इस साक्षी ने यह भी स्वीकार किया है कि उसके परिवार और अभियुक्त पिंटू, पंकज और भूधर के बीच दुश्मनी थी और उक्त दुश्मनी के कारण प्रत्येक परिवार की कई हत्याएं हुई थीं।

16. अभि.सा.-3 गवाड़े ने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि प्रश्नगत घटना लगभग चार वर्ष पहले हुई थी। वह अम्बा प्रसाद की हत्या के लिए जेल गया था। सभी अभियुक्त भी जेल में थे। इस मामले में मृतक, देवेन्द्र,

जेल में था। अहमद भी जेल में था। देवेन्द्र को पहले जमानत पर रिहा किया गया था। जब अभियुक्त पिंटू, भूधर, पंकज और लड्डन बैठकर चर्चा कर रहे थे, तो उसने अपनी आंखों से देखा और अपने कानों से सुना कि वे एक लाख रुपये के लिए मृतक देवेन्द्र की हत्या का षड्यंत्र रच रहे थे, जिसमें यह तय किया गया कि हत्या से पहले आधा और हत्या के बाद आधा लिया जाएगा। योजना के अनुसार, देवेन्द्र की हत्या अभियुक्त भूधर, पंकज और पिंटू ने रामदेव और लड्डन की सहायता से की। लड्डन राम देव का मित्र है। उसने यह भी कहा कि वह और मृतक अम्बा प्रसाद की हत्या के मामले में एक साथ जेल में थे। इस साक्षी ने आगे कहा कि चार दिन बीतने के बाद जब वह जेल से बाहर आया, तो उसे मृतक की हत्या के बारे में पता चला।

17. इस साक्षी अर्थात् अभि.सा. 3 को प्रस्तुत करने का अभियोजन का आशय यह स्थापित करना था कि अभियुक्तों द्वारा मृतक देवेन्द्र को मारने के लिए जेल में षड्यंत्र रचा गया था, जबकि विचारण न्यायालय ने स्वयं षड्यंत्र के इस सिद्धांत को खारिज कर दिया था और अभियुक्त पिंटू @ अरविंद, भूधर और पंकज को भा.दं.सं. की धारा 120-बी के अधीन दोषमुक्त कर दिया था। इसलिए, इस साक्षी के साक्ष्य पर और चर्चा करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

18. अभि.सा.-4 श्रीमती पुष्पा ने कहा कि घटना की तिथि को शाम लगभग 4 बजे, अभियुक्त-अपीलकर्ता लड्डन और रामदेव एक काली मोटरसाइकिल पर उसके घर के पास आए और मृतक देवेन्द्र यह कहते हुए उक्त मोटरसाइकिल पर उनके साथ गया कि वह एक विवाह समारोह में भाग लेने जा रहा है। लड्डन देवेन्द्र का बहुत अच्छा दोस्त था। उसकी एक किराना की दुकान थी। देवेन्द्र सिंह ने जाते समय उससे हरसिंगार के पांच पैकेट लिए थे और उसके बाद मृतक नहीं लौटा। उसने आगे कहा कि अभियुक्त-अपीलकर्तागण ने देवेन्द्र सिंह को गोली मारकर मार डाला और शरीर को सिकंदरपुर गांव के जंगल में फेंक दिया।

19. अभि.सा.-5 तत्कालीन एस.एस.आई. यशपाल सिंह थे, जिन्होंने अभियुक्त पिंटू @ अरविंद, भूधर और पंकज के संबंध में प्रकरण का अन्वेषण किया था और उनके विरुद्ध दिनांक 17 मई, 2011 की चार्जशीट प्रस्तुत की थी। उन्होंने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा था कि उन्होंने अभि.सा.-1 के आदेश पर अभि.सा.-2, अभि.सा.3 और अन्य साक्षियों के बयान दर्ज किए थे। उन्होंने आगे कहा कि अन्वेषण के दौरान, उन्हें पता चला कि मृतक और अभि.सा.-2 एक हत्या के मामले में एक साथ अभियुक्त थे और एक साथ जेल गए थे।

20. अभि.सा.-6 तत्कालीन एस.एस.आई. वीर सिंह, जिन्होंने एस.एस.आई. जे.के. तोमर के स्थानांतरण के बाद मामले का अन्वेषण किया और दिनांक 29 मार्च, 2011 की चार्जशीट प्रस्तुत की। उन्होंने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि उन्होंने पंचायत के साक्षियों और कांस्टेबल मनोज कुमार के बयान दर्ज किए, जिन्होंने मृतक के शरीर का पोस्टमार्टम करवाया और एस.आई. भगवत सिंह के बयान भी दर्ज किए, जिन्होंने पंचायत तैयार की। अपनी प्रति-परीक्षा में, इस साक्षी ने कहा है कि यह कहना सही था कि मृतक देवेन्द्र @ दिन दहाड़े एक कुख्यात अपराधी था, जिसके विरुद्ध विभिन्न गैंगस्टर और अपहरण के मामले लंबित थे।

21. अभि.सा.-7 डॉ. कमल कुमार, जिन्होंने मृतक के शरीर का पोस्टमार्टम किया, ने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि पोस्टमार्टम के दौरान उन्हें मृतक के शरीर पर निम्नलिखित मृत्यु पूर्व चोटें मिलीं:

"1. बंदूक की गोली के प्रवेश का घाव आकार 3.0 सेमी x 2.5 सेमी x छाती की गुहा गहरी और पूरी तरह से सीने के दाहिने हिस्से के बाईं ओर स्थित। दाहिनी बगल से 5.00 सेमी नीचे मार्जिन उलटे काले और टैटू घाव के चारों ओर मौजूद हैं दिशा दाहिने से बाएं और पीछे और नीचे की ओर।
2. बंदूक की गोली के निकास का घाव आकार 4.00 सेमी x 3.5 सेमी पीठ की बाईं ओर मौजूद, बाएं स्कैपुल के निचले कोण के ठीक नीचे।
3. बंदूक की गोली के प्रवेश का घाव 3.00 सेमी x 3.00 सेमी x पेट की गुहा गहरी-पेट के सामने मौजूद; मार्जिन उलटे काले और टैटू घाव के चारों ओर मौजूद है। दिशा:- आगे से पीछे की ओर।
4. 6सेमी x 5.0 सेमी आकार का नीलगु सीने के बाएं हिस्से पर मौजूद।"

22. इस साक्षी ने आगे कहा कि मृतक के शरीर की पेट की गुहा और लीवर में एक बैंडिंग पीस और पांच धातु के टुकड़े पाए गए। उन्होंने राय दी कि मृतक की मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव था। मृतक की मृत्यु लगभग डेढ़ दिन पहले हुई होगी।

23. अभि.सा.-8 तत्कालीन एस.आई. पंकज श्रीवास्तव ने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि उन्होंने एस.एस.आई. जे.के. तोमर के बोलने पर अभियुक्त लड्डन की गिरफ्तारी का मेमो तैयार किया। उन्होंने एस.एस.आई. जे.के. तोमर के हस्ताक्षरों को भी सिद्ध किया, जो जो सिंगल बैरल बंदूक के बरामदगी मेमो (प्रदर्श क-13) पर किए गए थे, जिसे अभियुक्त-लड्डन के कब्जे से बरामद करने का आरोप है।

24. अभि.सा.-9 एस.आई. सुनील कुमार ने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि वह अभियुक्त-लड्डन की गिरफ्तारी के समय एस.एस.आई. जे.के. तोमर और एस.आई. पंकज श्रीवास्तव के साथ गए थे। इस साक्षी ने प्रथम अन्वेषण अधिकारी एस.एस.आई. जे.के. तोमर के बोलने पर अभियुक्त लड्डन की गिरफ्तारी के मेमो और सिंगल बैरल बंदूक और 12-बोर के पांच कारतूसों की बरामदगी के मेमो पर हस्ताक्षर किए। उन्होंने खाली कारतूसों, मोबाइल कवर, तीन चंद्रिका हरसिंगार के बरामदगी के मेमो को भी सिद्ध किया।

25. उपरोक्त साक्ष्य के संपूर्ण विश्लेषण के आधार पर, विचारण न्यायालय ने पाया कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य सुसंगत, तर्कयुक्त और विश्वसनीय था और अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अभियुक्त के अपराध को सिद्ध करने में सफल रहा और तदनुसार, अभियुक्त-अपीलकर्ता लड्डन और रामदेव को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 धारा 34 और धारा 201 के अधीन दोषसिद्ध किया।

26. विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय व आदेश से व्यथित होकर, अभियुक्त-अपीलकर्तागण ने उपरोक्त दोनों अपीलें योजित की हैं।

27. हमने अभियुक्त-अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता, श्री ओम नारायण पांडेय, प्रथम सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री संदीप कुमार दुबे और राज्य के लिए विद्वान अ.शा.अधि., श्री अमित सिन्हा को सुना है।

<u>तर्क</u>

28. अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि अभियुक्त को अपराध कारित करने से जोड़ने वाला कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है; अभियुक्त-अपीलकर्तागण के संबंध में हेतुक बिल्कुल कमजोर है; अभियोजन मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर टिका है, जिसमें घटनाओं की श्रृंखला बिल्कुल गायब थी।

29. अभियुक्त-अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि किसी ने भी 13 फरवरी, 2011 को मृतक को अभियुक्त-अपीलकर्तागण द्वारा ले जाते हुए नहीं देखा था। 18 फरवरी, 2011 को, जब प्रथम सूचनाकर्ता/अभि.सा.-1 को पता चला कि पुलिस स्टेशन के एक कांस्टेबल ने 14 दिसंबर, 2011 को एक अज्ञात शरीर पाया था, तो दो दिन बाद भी अर्थात् 20 फरवरी, 2011 तक प्र.सू.रि. दर्ज नहीं की गई। केवल एक अधिवक्ता के परामर्श और सलाह के बाद, प्रथम सूचनाकर्ता/अभि.सा.1 ने पुलिस स्टेशन-जलालाबाद को एक लिखित शिकायत दी।

30. अभियुक्त-अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि मृतक के परिवार के सदस्यों ने मृतक को गंभीरता से क्यों नहीं खोजा और न ही उन्होंने अभियुक्त-अपीलकर्तागण का नाम लेकर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की क्योंकि उन्होंने देखा था कि अभियुक्त उसके भाई को 13 फरवरी, 2011 को उनके द्वारा ले जाया जा रहा था। यह एक अस्पष्ट और कमजोर बहाना है कि वे रिश्तेदारों से संपर्क करके और टेलीफोन पर भी मृतक को खोज रहे थे और यह पांच दिनों तक जारी रहा। यह सब यह दिखाता है कि वास्तव में किसी ने भी अभियुक्त को मृतक को ले जाते हुए नहीं देखा था और इसलिए 20 फरवरी, 2011 से पहले अभियुक्तों के विरुद्ध कोई प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी।

31. यह भी तर्क दिया गया है कि अभिलेख के अनुसार, मृतक एक कुख्यात मुजरिम/अपराधी था, जिसके कारण उसे "दिन दहाड़े" के रूप में जाना जाता था। जब वह केवल 19 वर्ष का था, तो मृतक ने पहली हत्या की थी। हत्याओं और हत्या के प्रयासों के विभिन्न मामले उसके विरुद्ध लंबित बताए गए थे। इसलिए, यह संभावना खारिज नहीं की जा सकती है कि मृतक की हत्या अन्य अपराधियों द्वारा उसकी दुश्मनी के कारण की गई होगी।

32. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि दोषसिद्धि और सजा, विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्तागण के विरुद्ध साक्ष्य की विवेचना किए बिना पारित की गई थी। उपरोक्त आधार पर, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि आक्षेपित निर्णय अपास्त किए जाने योग्य था।

33. तर्क के दौरान, हम पाते हैं कि सिंगल बैरल बंदूक और कारतूसों की बरामदगी के मेमो की एक फोटो प्रति, जो अभियुक्त-लड्डन के कब्जे से 28 फरवरी, 2011 को बरामद होने का आरोप था, को प्रदर्श क-13 के रूप में प्रदर्शित किया गया था और इसे विचारण न्यायालय के समक्ष द्वितीयक साक्ष्य के रूप में माना गया था।

34. अभिलेख से, विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह स्पष्ट नहीं था कि कब, कहां और कैसे बरामदगी के मेमो की फोटोस्टेट प्रति विचारण न्यायालय के अभिलेख पर आई। कोई आदेश नहीं था, जिसके द्वारा इसे स्वीकार किया गया था, प्रदर्शित किया गया था और द्वितीयक साक्ष्य के रूप में माना गया था। इस बात का भी कोई उल्लेख नहीं है कि फोटोस्टेट प्रति को द्वितीयक साक्ष्य के रूप में मानने के लिए क्या प्रक्रिया अपनाई गई थी।

35. इस स्तर पर, वह बिन्दु, जो न्यायालय के समक्ष परीक्षा के लिए आएगा, यह होगा कि उपरोक्त बरामदगी मेमो की फोटोस्टेट प्रति को द्वितीयक साक्ष्य के रूप में मानने के लिए क्या प्रक्रिया अपनाई गई थी। द्वितीयक साक्ष्य के रूप में फोटोकॉपी की स्वीकार्यता मुख्य रूप से भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872, विशेष रूप से धारा 63 और 65 द्वारा नियंत्रित होती है। उक्त बिन्दु को निर्णीत करने के लिए, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 (2) और 65 (सी) को पुनरुत्पादित करना उपयोगी होगा, जो यहां दी गई हैं:

***"63. द्वितीयक साक्ष्य**---द्वितीयक साक्ष्य का अर्थ है और इसमें निहित है---*

...

(2) मूल से ऐसी यांत्रिक प्रक्रियाओं द्वारा, जो प्रक्रियाएं स्वयं ही प्रति की शुद्धता सुनिश्चित करती है, बनाई गई प्रतियां तथा ऐसी प्रतियों से तुलना की हुई प्रतिलिपियाँ;;

.....

***65. ऐसे मामले जिनमें अभिलेख से संबंधित द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं**–निम्नलिखित मामलों में किसी अभिलेख के अस्तित्व, स्थिति या सामग्री के द्वितीयक साक्ष्य दिए जा सकते हैं:*

.....

(सी) जब मूल प्रति नष्ट हो गई हो या खो गई हो, या जब साक्ष्य प्रस्तुत करने वाला पक्ष, अपनी स्वयं की चूक या लापरवाही से उत्पन्न न होने वाले किसी अन्य कारण से, उसे उचित समय मे प्रस्तुत नहीं कर सकता हो;

....."

36. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की उपरोक्त दो धाराओं के पठन मात्र से, हम पाते हैं कि धारा 63 (2) के अनुसार एक अभिलेख को द्वितीयक साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, यांत्रिक प्रक्रिया द्वारा तैयार की गई प्रति होने के कारण। हालांकि फोटोस्टेट अभिलेख की शुद्धता स्थापित करनी होगी। धारा 65 (सी) प्रदान करती है कि जब एक पक्ष फोटोस्टेट प्रति प्रस्तुत करना चाहता है, तो उसे एक निश्चित मामले के साथ आने के लिए एक नींव रखनी होती है कि मूल नष्ट हो गया था या खो गया था। यह धारा स्पष्ट करती है कि एक

अभिलेख की एक फोटोस्टेट प्रति को साक्ष्य में केवल तभी प्रस्तुत किया जा सकता है, जब यह आक्षेप लगाया जाता है और सिद्ध किया जाता है कि मूल अस्तित्व में था लेकिन खो गया था या नष्ट हो गया था या विपरीत पक्ष के कब्जे में है, जो इसे प्रस्तुत करने में विफल रहा।

37. उपरोक्त दो प्रावधानों का एक साथ अवलोकन दिखाता है कि एक अभिलेख की फोटोस्टेट प्रति को मूल अभिलेख की अनुपस्थिति में केवल द्वितीयक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करने की अनुमति दी जा सकती है। जब एक पक्ष फोटोस्टेट प्रति प्रस्तुत करना चाहता है तो उसे यह सिद्ध करके मूलभूत तथ्यों को रखना होता है कि मूल अभिलेख अस्तित्व में था लेकिन खो गया है या विपरीत पक्ष के कब्जे में है, जो इसे प्रस्तुत करने में विफल रहा। न्यायालय द्वारा साक्ष्य में फोटोस्टेट प्रति के उत्पादन की अनुमति देना इसके प्रमाण के समान नहीं है। इसका प्रमाणात्मक मूल्य स्वतंत्र रूप से सिद्ध और मूल्यांकन किया जाना है। यह दिखाया जाना है कि यह एक विशेष स्थान और समय पर मूल से बनाया गया था। जब तक न्यायालय संतुष्ट नहीं है कि फोटोस्टेट प्रति वास्तविक और सटीक है, इसे साक्ष्य में नहीं पढ़ा जाना चाहिए। फोटोस्टेट प्रति की सटीकता को शपथ पर न्यायालय की संतुष्टि के लिए उस व्यक्ति द्वारा स्थापित किया जाना चाहिए जिसने प्रति तैयार की या जो इसकी सटीकता के बारे में बोल सकता है।

38. वर्तमान मामले के तथ्यों में, विचारण न्यायालय के अभिलेख से, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष द्वारा कोई आवेदन दायर नहीं किया गया था, जिसमें सिंगल बैरल बंदूक और कारतूसों के बरामदगी मेमो की फोटो स्टेट प्रति को इसके प्रदर्शन के बाद द्वितीयक साक्ष्य के रूप में माना जाने की मांग की गई थी और यह कहते हुए कि मूल खो गया था या अभियोजन पक्ष की चूक या उपेक्षा के बिना नष्ट हो गया था और उक्त फोटो स्टे प्रति यांत्रिक प्रक्रिया के माध्यम से तैयार की गई थी। हमने विचारण न्यायालय के अभिलेख से भी नहीं पाया है कि विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के आवेदन को अनुमति देते हुए कोई अलग आदेश पारित किया था, जिसे इसके प्रदर्शन के बाद द्वितीयक साक्ष्य के रूप में माना जाने के लिए इसके द्वारा आपूर्ति की गई फोटो स्टेट प्रति के लिए। हम यह भी पाते हैं कि विचारण न्यायालय द्वारा प्रासंगिक व्यक्ति द्वारा फोटोकॉपी सिद्ध करने के लिए कोई समर्थन नहीं किया गया था। यह स्पष्ट नहीं है कि क्या अभिलेख पर उपलब्ध उक्त फोटो स्टेट प्रति जिसे प्रदर्श क-13 के रूप में चिह्नित किया गया है, मूल अभिलेख से तैयार की गई थी या फोटोस्टेट की प्रति से। इसे संबंधित पुलिस स्टेशन के पुलिस अधिकारी द्वारा प्रमाणित नहीं किया गया था, जिसमें यह सत्यापित किया गया था कि वह मूल अभिलेख से बनाया गया था।

39. हमारे विचार में, एक अभिलेख का केवल प्रदर्शन, इसके निष्पादन के प्रमाण को समाप्त नहीं करता है। द्वितीयक साक्ष्य को मूलभूत साक्ष्य द्वारा प्रमाणित किया जाना चाहिए कि कथित प्रति वास्तव में मूल की एक सच्ची प्रति है। साक्ष्य में एक अभिलेख को स्वीकार करना मात्र इसके प्रमाण के समान नहीं है। इसलिए, अभिलेखीय साक्ष्य को विधि के अनुसार सिद्ध करना आवश्यक है। न्यायालय का दायित्व है कि वह इसका समर्थन करने से पहले द्वितीयक साक्ष्य में एक अभिलेख की स्वीकार्यता के प्रश्न का निर्णय करे। [संदर्भ-**कलिया बनाम मध्य प्रदेश राज्य,** ***(2013) 10 SCC 758]***

40. दूसरी ओर राज्य के लिए विद्वान अ.शा.अधि. ने प्रस्तुत किया कि हालांकि अभियोजन साक्षी अर्थात् अभि.सा.-1 से अभि.सा.-4 मृतक के रिश्तेदार या मित्र थे, लेकिन मृतक को अभियुक्त के साथ अंतिम बार देखने के उनके साक्ष्य को खारिज नहीं किया जा सकता है और ऐसा कोई नियम नहीं है कि परिवार के सदस्यों के साक्ष्य पर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

41. फिर यह तर्क दिया गया है कि बिना किसी संदेह के कि वर्तमान मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित था, जिसमें घटनाओं की श्रृंखला अभियोजन पक्ष द्वारा पूरी की गई थी। अभियोजन मामले को चिकित्सा साक्ष्य द्वारा भी समर्थित किया गया है। इसलिए, अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त-अपीलकर्तागण के विरुद्ध लगाए गए आरोप को उचित संदेह से परे सिद्ध किया है। उपरोक्त आधार पर, विद्वान अ.शा.अधि. ने प्रस्तुत किया कि अपीलों में कोई योग्यता नहीं है और ये निरस्त खारिज किए जाने योग्य हैं।

<u>निष्कर्ष/ चर्चा</u>

42. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत संबंधित तर्कों की जांच की है और अवर न्यायालय के अभिलेखों सहित वर्तमान अपील के अभिलेखों का अवलोकन किया है।

43. एकमात्र प्रश्न, जिसे इस अपील में संबोधित और निर्धारित करने की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या विद्वान विचारण न्यायालय का अपराध का निष्कर्ष और दी गई सजा विधिक है और विधि में बने रहने योग्य है और किसी कमजोरी और विकृति से ग्रस्त नहीं है।

44. हमने विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय को ध्यान से देखा है और हम पाते हैं कि विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलकर्तागण, अर्थात्, राम देव और लड्डन को केवल दो बिंदुओं/मुद्दों पर दोषी ठहराया है:

(i) विचारण न्यायालय ने माना कि अभि.सा.1, अभि.सा.-2 और अभि.सा.-4 के साक्ष्य विश्वसनीय हैं, जिनमे कहा गया हैं कि उन्होंने अंतिम बार अभियुक्त को मृतक के साथ जाते हुए देखा था, जब उसे 13 फरवरी, 2011 को एक मोटरसाइकिल पर एक विवाह समारोह में भाग लेने के लिए ले जाया गया था।

(ii) विचारण न्यायालय ने यह भी माना कि चूंकि 12-बोर के तीन खाली कारतूस, जो उस स्थान से बरामद किए गए थे, जहां पुलिस ने 14 फरवरी, 2011 को मृतक के मृत शरीर को पाया था और सिंगल बैरल बंदूक जो 28 फरवरी, 2011 को अभियुक्त लड्डन के कब्जे से बरामद की गई थी, संबंधित फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला की रासायनिक विश्लेषण रिपोर्ट में मिलान किए गए थे और यह राय दी गई थी कि तीन खाली कारतूस एक ही बंदूक से दागे गए थे, इसलिए, यह स्पष्ट था कि अभियुक्त-अपीलकर्ता लड्डन प्रश्नगत अपराध कारित करने में शामिल था।

45. उपरोक्त दो बिंदुओं/मुद्दों के निष्कर्ष पर आने के लिए, हम पाते हैं कि अंतिम बार देखे गए सभी अभियोजन साक्षी अर्थात् अभि.सा.-1, अभि.सा.-2 और अभि.सा.-4 क्रमशः मृतक के बड़े भाई, मां और भाभी

(प्रथम सूचनाकर्ता/अभि.सा.1 की पत्नी) थे और उन्होनें दावा किया हैं कि उन्होंने मृतक को देखा था, जब वह 13 फरवरी, 2011 को एक विवाह समारोह में भाग लेने के लिए अभियुक्त-अपीलकर्तागण, अर्थात्, राम देव और लड्डन के साथ मोटरसाइकिल पर जा रहा था। चूंकि अभि.सा.-1, अभि.सा.-2 और अभि.सा.-4 मृतक के परिवार के सदस्य हैं, इसलिए उनके साक्ष्य के गहन परीक्षण की आवश्यकता है।

46. प्रारंभ में ही, हम इस विचार के हैं कि हर अपराधी गुप्त रूप से एक अपराध करता है जिससे कोई भी उसके उस अपराध के बारे में न जान सके, जिसे उसने किया है, लेकिन वर्तमान मामले में, अभियुक्त-अपीलकर्ता लड्डन और राम देव मृतक के घर आए और वह भी अभियोजन पक्ष के अनुसार एक सिंगल बैरल बंदूक के साथ और उसे अपने परिवार के सदस्यों और ग्रामीणों की उपस्थिति में अपने साथ ले गए और उन्होंने कथित तौर पर अगली तिथि अर्थात् 14 फरवरी, 2011 को मृतक की हत्या कर दी। इस तरह के अपराध को करने में अभियुक्त-अपीलकर्तागण का यह आचरण स्वाभाविक नहीं है। जब वास्तव में, अभियुक्त-अपीलकर्तागण के पास मृतक को मारने के पर्याप्त अवसर थे, जिससे कोई भी व्यक्ति उन्हें न देख सके, जब उन्होंने वही किया। अभिलेख से यह स्पष्ट है कि मृतक भी एक कुख्यात अपराधी था और कभी-कभी वह किसी को सूचित किए बिना अपने घर से दूर दो से चार दिनों के लिए कहीं और गया होगा। ऐसी स्थिति में, अभियुक्त-अपीलकर्तागण के पास किसी भी समय कहीं भी मृतक को मारने का पर्याप्त अवसर था, जब उन्हें उसे अकेला पाने का मौका मिला।

47. यह विश्वास करना भी असंभव है कि एक परिवार का बेटा और भाई घर के परिवार के सदस्यों को यह सूचित करने के बाद कि वह अगले दिन दोपहर 12:00 बजे तक लौट आएगा, एक विवाह समारोह में भाग लेने के लिए दो व्यक्तियों के साथ मोटरसाइकिल पर बाहर गया था और जब वह पांच दिनों तक नहीं लौटा, तो ऐसे में परिवार के सदस्यों का उसकी मां और भाइयों सहित उसे खोजने के लिए बाहर जाना स्वाभाविक था। इस मामले में वे लगभग पांच दिनों के बाद खोज और जांच शुरू करते हैं और वह भी उसकी मृत्यु की खबर मिलने के बाद। अभियोजन मामले के अनुसार, जब मृतक अगली तिथि अर्थात् 14 फरवरी, 2011 को नहीं लौटा, तो परिवार के सदस्यों ने अपने रिश्तेदारों से मृतक के ठिकाने के बारे में पूछताछ की लेकिन केवल फोन पर जब तक उन्हें उसकी मृत्यु की सूचना नहीं मिली। अभि.सा.-1 और अभि.सा.-2 की गवाहियों के अनुसार, वे लड्डन की घर पर भी गए थे, जहां वह मिट्टी भर रहा था। तब भी उन्होंने केवल लड्डन से आकस्मिक तरीके से मृतक के बारे में पूछा। उसने भी उत्तर दिया कि वह नहीं जानता कि मृतक कहां था। उन्होंने लड्डन से कठोरता से नहीं पूछा कि जब मृतक उसके और राम देव के साथ गया था तो वह उस तिथि तक क्यों नहीं लौटा था और उन्होंने मृतक को कब और कहां छोड़ा था, और वह कितने समय तक उनके साथ था। यह भी ध्यान देने योग्य है कि पांच दिनों अर्थात् 13 से 18 अप्रैल, 2011 के बाद भी, मृतक के परिवार के सदस्यों जैसे अभि.सा.-1, अभि.सा.-2 और अभि.सा.4 में से किसी ने भी मृतक के संबंध में कोई लापता रिपोर्ट दर्ज नहीं करवाई थी। उन्होंने अभियुक्त-अपीलकर्तागण का नाम लेकर कोई प्रथम सूचना रिपोर्ट भी दर्ज नहीं की थी, जब वास्तव में वे अच्छी तरह से जानते थे (अभि.सा.-1, अभि.सा.-2 और अभि.सा.-3 की गवाहियों के अनुसार), कि मृतक 13 फरवरी, 2011 को अभियुक्त-अपीलकर्तागण के साथ गया था। मृतक के परिवार के सदस्यों अर्थात् अभि.सा.-1,

अभि.सा.-2 और अभि.सा.-4 का यह आचरण बिल्कुल अस्वाभाविक था। अन्यथा भी, यह भी ध्यान देने योग्य है कि प्रथम सूचनाकर्ता अभि.सा.-1 और अभि.सा.-2 (मृतक की मां) को 18 फरवरी, 2011 को मृतक की हत्या के बारे में पता चलने के बाद भी जब वे पुलिस स्टेशन पहुंचे और फोटोग्राफ और कपड़ों से अज्ञात शरीर को मृतक के रूप में पहचाना, उन्होंने अभियुक्त-अपीलकर्तागण के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की और दो दिन बीतने के बाद अर्थात् केवल 20 फरवरी, 2011 को और एक अधिवक्ता की सलाह प्राप्त करने के बाद, अभि.सा.-1 ने अभियुक्त-अपीलकर्तागण के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की। मामले के उक्त पहलू यह दिखाते हैं कि परिवार के सदस्यों अर्थात् अभि.सा.-1, अभि.सा.-2 और अभि.सा.-4 में से कोई भी नहीं जानता था कि मृतक कब और किसके साथ अपना घर छोड़ गया था और वह कहां गया था। यही कारण था कि पूरा परिवार चुप रहा और उन्होंने पूरे पांच दिनों तक किसी भी अभियुक्त के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं की और उसकी वापसी का इंतजार किया।

48. यहां यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि अभि.सा.-1 ने अपनी प्रति-परीक्षा में कहा था कि वह घटना से पहले न तो अभियुक्त-अपीलकर्ता राम देव को जानता था और न ही अभियुक्त-अपीलकर्ता लड्डन को। उसने यह भी कहा है कि वह नहीं जानता कि क्या अभियुक्त-अपीलकर्ता राम देव घटना से पहले जेल गया था या नहीं। इस साक्षी ने इस तथ्य से इनकार किया कि अभियुक्त पिंटू और अन्य ने देवेन्द्र को मारने के लिए राम देव और लड्डन को पैसे दिए थे। उसने कहा था कि उसने उक्त तथ्य को अफवाह के रूप में सुना था। किसी भी चीज के बारे में निश्चित कुछ भी नहीं था।

49. अभि.सा.-1 की उपरोक्त गवाही से यह पता चलता है कि वह प्रश्नगत घटना से पहले अभियुक्त-अपीलकर्ता लड्डन और राम देव को नहीं जानता था, इसका मतलब है कि उसने कैसे पहचाना कि वे व्यक्ति रामदेव और लड्डन थे, जिन्होंने कथित तौर पर 13 फरवरी, 2011 को मोटरसाइकिल पर मृतक को अपने साथ ले जाया था।

50. जहां तक अभि.सा.-2 मृतक की मां की गवाही का संबंध है, इस साक्षी ने अपनी प्रति-परीक्षा में बयान दिया कि मृतक के घर छोड़ने के पांच दिन के बाद, उसे पता चला कि मृतक देवेन्द्र की मृत्यु हो गई थी। उसने यह भी बयान दिया कि अक्सर मृतक उक्त घटना से पहले भी दो से चार दिनों के लिए बाहर जाता था। उस कारण से, उसने या किसी अन्य परिवार के सदस्य ने यह पता लगाने का कोई प्रयास नहीं किया कि मृतक कहां गया था। इसलिए, पांच दिनों तक अभि.सा.-2 ने मृतक को नहीं खोजा कि वह कहां गया था। उसका कहना है कि यह स्थिति तब भी थी जब वह जानती थी कि वह अभियुक्त-अपीलकर्तागण के साथ गया था। यह साक्ष्य भी पुष्ट करता है कि वास्तव में किसी ने भी मृतक को अभियुक्त-अपीलकर्तागण के साथ जाते हुए नहीं देखा था।

51. अभि.सा.-2 ने अपनी प्रति-परीक्षा के अंत में स्वीकार किया है कि उसने इस मामले की किसी घटना को नहीं देखा। अन्य व्यक्ति के कहने पर, उसने पिंटू @ अरविंद, भूधर और पंकज के विरुद्ध बयान दिया। उसने यह भी स्वीकार किया कि वह प्रश्नगत घटना के संबंध में कभी पुलिस स्टेशन नहीं गई और न ही कोई

पुलिस कर्मी घटना के बारे में पूछताछ करने के लिए उसके घर आया। उसने विशेष रूप से कहा कि वह घटना के संबंध में किसी भी पुलिस कर्मी से नहीं मिली।

52. अभि.सा.-2 की उपरोक्त गवाही यह स्पष्ट करती है कि वह प्रश्नगत घटना के बारे में कुछ भी नहीं जानती थी।

53. अभि.सा.-2 के उपरोक्त बयान से यह पता चलता है कि वह नहीं जानती थी कि मृतक 13 फरवरी, 2011 को कहां और किसके साथ गया था और 5-6 दिनों के बाद एक अधिवक्ता के परामर्श के बाद, अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की, जैसा कि अभि.सा.-1 की गवाही से स्पष्ट है और अभि.सा.-2 के साक्ष्य द्वारा पुष्ट किया गया है।

54. हमारे विचार में, यह विश्वास करना असंभव है कि परिवार के सदस्यों में से कोई भी, जिसका एक परिवार सदस्य लापता था, ने उसे गंभीरता से नहीं खोजा और न ही उन्होंने कोई लापता रिपोर्ट या प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की, जिसमें उन दो विशेष व्यक्तियों का नाम लिया गया हो, जिनके साथ वे जानते हैं कि उनके परिवार का सदस्य गया था। यह तथ्य यह दिखाता है कि वास्तव में उन्होंने अभियुक्त को नहीं देखा था, जब वे कथित मोटरसाइकिल पर मृतक को अपने साथ ले जा रहे थे और यह जानने के बाद कि मृतक की हत्या कर दी गई थी, अभियोजन पक्ष ने विधिक सलाह के साथ अभियुक्त-अपीलकर्तागण के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करके वर्तमान मामले को बनाया है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि मृतक के परिवार के सदस्यों में से किसी ने भी अभियुक्त राम देव से कभी संपर्क नहीं किया, जिसके बारे में आरोप है कि वह 13 फरवरी, 2011 को अभियुक्त लड्डन के साथ मृतक को ले गया था।

55. यहां यह उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है कि मृतक, जो कथित तौर पर 13 फरवरी, 20211 को शाम 04:00 बजे अभियुक्त-अपीलकर्तागण के साथ गया था, अगले दिन अर्थात् 14 फरवरी, 2011 को सुबह 11:00 बजे बरामद/पाया गया। इसका मतलब था कि वह गया और जब वह पाया गया, उसमे 19 घंटे का अंतर था। इस प्रकार यह खारिज नहीं किया जा सकता है कि उन 19 घंटों की अवधि के दौरान, वह अन्य व्यक्तियों के संपर्क में भी आया होगा। सर्वोच्च न्यायालय ने **गोवा राज्य बनाम पांडु रंग मोहिते,** ***AIR 2009 SC 1066*** में कहा है कि एक साथ अंतिम बार देखे जाने की परिस्थितियां स्वतः यह अनुमान नहीं लगाती हैं कि यह अभियुक्त था, जिसने अपराध कारित किया था। अभियुक्त और अपराध के बीच संबंध स्थापित करने के लिए कुछ और होना चाहिए। अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत तब काम में आता है, जब वह समय जब अभियुक्त और मृतक को जीवित अंतिम बार देखा गया था और जब मृतक मृत पाया जाता है, उसके बीच समय का अंतर इतना कम होता है कि अभियुक्त के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के अपराध कारित करने की संभावना असंभव हो जाती है। वर्तमान मामले में 19 घंटे का अंतराल है, जब मृतक को अभियुक्त के साथ अंतिम बार देखा गया था और मृत शरीर बरामद किया गया था। इस प्रकार यह एक बहुत लंबी अवधि है और यह खारिज नहीं किया जा सकता है कि इन 19 घंटों में मृतक किसी अन्य व्यक्ति के संपर्क में नहीं आया होगा।

56. जहां तक उस स्थान से बरामद तीन खाली कारतूसों के मिलान का संबंध है, जहां मृतक का मृत शरीर पाया गया था, हम पाते हैं कि संबंधित फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट के अनुसार अभियुक्त लड्डन के कब्जे से बरामद कथित सिंगल बैरल बंदूक मेल नहीं खाती थी। यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि अभियुक्त लड्डन को अभियोजन संस्करण के अनुसार 28 फरवरी, 2011 को सिंगल बैरल बंदूक के साथ गिरफ्तार किया गया था, जब उसने भागने की कोशिश की। लड्डन की गिरफ्तारी के समय, सिंगल बैरल बंदूक के अतिरिक्त, उसके कब्जे से कुछ भी और बरामद नहीं हुआ था जैसे बैग, कपड़े, पैसे आदि। यह विश्वास करना असंभव है कि कोई भी व्यक्ति, जो कहीं से भागने की कोशिश करता है, अपना घर से खाली हाथों भागेगा। अन्यथा भी, यह विश्वास करना भी असंभव है कि अपराध करने के बाद, अपराधी उसी क्षेत्र में 14 दिनों तक घूमेगा, जिससे पुलिस उसे पकड़ सके।

57. उपरोक्त के अतिरिक्त, फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट का अवलोकन दिखाता है कि 12-बोर के विवादित खाली कारतूस, जो ई.सी.-1, ई.सी.-2 और ई.सी.-3 के रूप में चिह्नित थे, में केवल पिन का निशान था, जबकि टी.सी.-1 और टी.सी.-2 के रूप में चिह्नित परीक्षण किए गए कारतूसों में पिन का संकेत और साथ ही ब्रीच का संकेत भी मिला। यह तथ्य भी उसी बंदूक द्वारा दागे गए कारतूसों के मिलान के संबंध में अभियोजन कहानी को संदिग्ध और अविश्वसनीय बनाता है, जिसे अभियुक्त-अपीलकर्ता लड्डन के कब्जे से बरामद होने का दावा किया गया है।

58. अभिलेख पर इस बात का भी कोई साक्ष्य नहीं है कि खाली कारतूस उस स्थान से बरामद किए गए थे, जहां मृतक का मृत शरीर पाया गया था। इस तथ्य का कोई संकेत नहीं है कि उन्हें पुलिस स्टेशन में सुरक्षित अभिरक्षा में रखा गया था। ऐसा नहीं हो सकता था क्योंकि उन्हें चार महीने बाद रासायनिक विश्लेषण के लिए संबंधित फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला में भेजा गया था। यह श्रृंखला भी गायब है, जो अभियोजन कहानी में एक संदेह उत्पन्न करती है। इसके अतिरिक्त, यदि तीन खाली कारतूसों और बरामद सिंगल बैरल बंदूक के मिलान के सिद्धांत को सही माना जाता है, तो यह अभियुक्त लड्डन के विरुद्ध एक एकल परिस्थिति है और केवल इस परिस्थिति के आधार पर, परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला को पूर्ण नहीं माना जाएगा। **शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य**, *(1984) 4 SCC 116* में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित पांच स्वर्णिम सिद्धांत संतुष्ट नहीं होते हैं।

59. हम यह भी दर्ज कर सकते हैं कि जब तक अभियुक्त-अपीलकर्ता लड्डन और राम देव की उपस्थिति उस स्थान पर सिद्ध नहीं होती है, जहां मृतक का मृत शरीर पाया गया था, केवल संदेह के आधार पर उनके विरुद्ध कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता है, क्योंकि यह सामान्य विधि है कि संदेह मजबूत हो सकता है लेकिन साक्ष्य का स्थान नहीं ले सकता है।

60. यह भी संभव है कि किसी अन्य सिंगल बैरल बंदूक का उसी लॉट और मेक का किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा इस अपराध में उपयोग किया गया था, क्योंकि मृतक एक कुख्यात अपराधी था, जिसके विरुद्ध अपहरण, गैंगस्टर, हत्या का प्रयास और हत्या के कई मामले लंबित थे।

61. यह भी सामान्य विधि है कि इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात्, वे किसी अन्य परिकल्पना पर व्याख्या योग्य नहीं होने चाहिए सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है।

62. इस प्रकार, यहां ऊपर की गई चर्चा के दृष्टिगत हम इस राय के हैं कि विचारण न्यायालय ने "अंतिम बार देखे जाने" के साक्ष्य की जांच इसके सही परिप्रेक्ष्य में नहीं की है और अभि.सा.-1, अभि.सा.-2 और अभि.सा.-4 की गवाहियों पर भरोसा करने में त्रुटि की। इस प्रकार हम आक्षेपित दोषसिद्धि के निर्णय को पारित करते समय विचारण न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं। हम आश्वस्त हैं कि अभियोजन पक्ष अपने मामले को उचित संदेह से परे सिद्ध करने में विफल रहा और यह सिद्ध करने में भी विफल रहा कि प्रश्नगत अपराध अभियुक्त-अपीलकर्तागण के अतिरिक्त किसी अन्य द्वारा नहीं किया गया था। विचारण न्यायालय ने केवल संदेह के आधार पर आक्षेपित निर्णय पारित करते समय अभियुक्त अपीलकर्तागण को दोषसिद्ध किया।

<u>निष्कर्ष</u>

63. उपरोक्त चर्चाओं और विचार-विमर्श के दृष्टिगत, अभियोजन पक्ष अभियुक्त-अपीलकर्तागण के विरुद्ध अपना मामला उचित संदेह से परे सिद्ध नहीं कर सका। इसलिए, दोनों अपीलें स्वीकार किए जाने योग्य हैं।

64. तदनुसार, दोनों अपीलें सफल होती हैं और **स्वीकार** की जाती है। मुकदमा अपराध संख्या-107 सन् 2011, पुलिस स्टेशन-जलालाबाद, जिला-शाहजहांपुर से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या 487 सन् 2011 (राज्य बनाम लड्डन और राम देव), धारा 302, 201 और 120-बी भा.दं.सं. में अपर सत्र न्यायाधीश/पॉकसो अधिनियम, न्यायालय संख्या 43, शाहजहांपुर द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्तागण के विरुद्ध पारित आक्षेपित निर्णय दिनांक 7 दिसम्बर, 2020, को अपास्त किया जाता है।

65. अभियुक्त अपीलकर्ता-राम देव, जो 13 अप्रैल, 2012 से जेल में है, को तत्काल रिहा किया जाएगा, जब तक कि वह धारा 437-ए दं.प्र.सं. के प्रावधानों के अनुपालन में किसी अन्य मामले में वांछित न हो। जबकि अभियुक्त-अपीलकर्ता लड्डन, जो जमानत पर बताया गया है, उसे अवर न्यायालय के समक्ष समर्पण करने की आवश्यकता नहीं है। उसका जमानत बांड उन्मोचित किया गया समझा जाएगा।

66. इस निर्णय की एक प्रति आवश्यक अनुपालन के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, शाहजहांपुर को भेजी जाए।

(2025) 5 ILRA 113

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 29.05.2025

समक्ष

माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा

माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-I

आपराधिक अपील संख्या 652 सन् 2001

संबद्ध

आपराधिक अपील संख्या 605 सन् 2001

शेरा **...अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
सुदीप कुमार, ए.के. पांडेय

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

अनुवादित 2

(ए) दंड विधि-साक्ष्य की विवेचना-गवाही की विवेचना-भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 302, 307, 323 एवं 504-शस्त्र अधिनियम, 1959-धारा 3/25-साक्ष्य अधिनियम, 1872-धारा 134 एवं 114 (जी)-साक्ष्य की मात्रा नहीं, बल्कि गुणवत्ता निर्णायक है-दोषसिद्धि निकट संबंधी साक्षियों की साक्ष्य पर तभी आधारित हो सकती है, जब वह पूर्णतः विश्वसनीय और उत्कृष्ट चरित्र की हो-संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए, जहां अभियोजन साक्ष्य गंभीर कमियों से ग्रस्त है और मुख्य साक्षी अविश्वसनीय या केवल आंशिक रूप से विश्वसनीय पाए जाते हैं-संदेह, चाहे कितना भी गंभीर क्यों न हो, साक्ष्य का स्थान नहीं ले सकता-संबंधित/हितबद्ध साक्षी-साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए और यदि पूर्णतः विश्वसनीय नहीं है, तो पुष्टि की जानी चाहिए-समानता पर दोषमुक्त करना, जहां सह-अभियुक्तों को समान साक्ष्य पर दोषमुक्त किया गया है-सबूत का मानक-'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच एक लंबी दूरी है-जहां मुख्य साक्षी पूर्णतः विश्वसनीय नहीं हैं और पुष्टि का अभाव है, और अभियोजन मामले में गंभीर विसंगतियों के साथ महत्वपूर्ण साक्षियों की अस्पष्ट गैर-प्रस्तुति है, वहां दोषसिद्धि टिकाऊ नहीं है और संदेह का लाभ अभियुक्त को मिलना चाहिए। (प्रस्तर 48, 49, 58, 60, 61, 63 से 68)

(बी) दंड विधि-समान साक्ष्य पर दोषमुक्त करना-संदेह का लाभ-यदि सह-अभियुक्तों को समान साक्ष्य के समूह पर दोषमुक्त किया जाता है, तो शेष अभियुक्त भी समान लाभ के अधिकारी हैं-दोषसिद्धि समान साक्ष्य पर आधारित नहीं हो सकती, जो सह-अभियुक्तों को दोषसिद्ध करने के लिए अपर्याप्त थी। (प्रस्तर 63 से 65)

दो आपराधिक अपीलें धारा 302 भा.दं.सं. (लखन) और धारा 307 भा.दं.सं. सपठित धारा 3/25 शस्त्र अधिनियम (शेरा) के अधीन दोषसिद्धि के विरुद्ध उत्पन्न हुईं, एक मामले में हत्या और कई व्यक्तियों को चोटों के कारण-दोषसिद्धि केवल संबंधित/घायल साक्षियों की साक्ष्य पर आधारित थी-केवल दो को छोड़कर, शेष दो घायल साक्षियों के गैर-परीक्षण के साथ-चक्षुदर्शी और चिकित्सा साक्ष्य में विसंगतियां थीं-अभियोजन साक्षियों के बीच विरोधाभास-और स्वतंत्र साक्षियों के गैर-परीक्षण के साथ-साथ फोरेंसिक (एफएसएल) लिंक के साथ बरामदगी की गैर-पुष्टि की व्याख्या करने में विफलता। (प्रस्तर - 1 से 7, 22 से 29, 32 से 41, 59 से 63)

निर्णीत:-अभि.सा.-2 की साक्ष्य पूर्णतः अविश्वसनीय पाई गई और अभि.सा.-1 की केवल आंशिक रूप से विश्वसनीय। घायल साक्षियों कीका परीक्षण नहीं किया गया। बरामदगी की स्वतंत्र रूप से पुष्टि नहीं की गई। अभियोजन कहानी में गंभीर विसंगतियां मौजूद थीं। अभियोजन पक्ष अपना मामला उचित संदेह से परे सिद्ध करने में विफल रहा। अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य इस मामले में अपीलकर्ताओं के अपराध को सिद्ध करने के लिए आवश्यक मानक को पूरा करने वाला नहीं कहा जा सकता। अपीलकर्ताओं को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए था। दोषसिद्धि और सजा रद्द की गई। अपीलकर्ता दोषमुक्त किए गए। (प्रस्तर-65 से 70)

अपीलें स्वीकृत (ई-7)

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची</u>:

1.चंद्रशेखर सुरेश चंद्र भट्ट बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2000 (10) SCC 582
2. गोविंद बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1994 (1) SCC 536
3. मेहरबान व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2000 (1) JIC 519
4. दहारी व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 10 SCC 256
5. राम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2024) 4 SCC 208
6. जावेद शौकत अली कुरेशी बनाम गुजरात राज्य, (2023) 9 SCC 164
7. उपेन्द्र प्रधान बनाम उड़ीसा राज्य, (2015) 11 SCC 124

(माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा द्वारा उद्घोषित)

1. इन दोनों आपराधिक अपीलों में, सत्र विचारण संख्या 194 सन् 1998, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम छोटे लाल व अन्य में पंचम अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, लखनऊ द्वारा पारित निर्णय व आदेश दिनांक

20.07.2001 को चुनौती दी गई हैं, जिसमें आपराधिक अपील संख्या 605 सन् 2001 में अपीलकर्ता लखन को भारतीय दंड संहिता (इसके बाद 'भा.दं.सं.' के रूप में संदर्भित) की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया गया और उसे आजीवन कारावास की सजा और रु.5000/- का अर्थदंड अधिरोपित किया दिया गया, जिसके भुगतान में व्यतिक्रम की स्थिति में छह महीने का अतिरिक्त साधारण कारावास, और शेरा को धारा 307 भा.दं.सं. सपठित शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25 के अधीन दोषसिद्ध किया गया और उसे पांच वर्ष का सश्रम कारावास और रु.2000/- का अर्थदंड अधिरोपित किया गया, जिसके भुगतान में व्यतिक्रम की स्थिति में दो महीने का अतिरिक्त साधारण कारावास।

2. संक्षेप में अभियोजन कथा यह है कि केश कुमार पुत्र रियोति पासी, निवासी मधरमऊ, थाना-गोसाईगंज, लखनऊ ने दिनांक 09.10.1997 को थाना-गोसाईगंज में मुकदमा अपराध संख्या 383 सन् 1997, 11:50 अपराह्न पर अपीलकर्ता, शेरा पुत्र प्रहलाद, और लखन पुत्र छोटे लाल और प्रहलाद पुत्र फत्ते, छोटे लाल पुत्र दुक्खा, सभी गांव मधरमऊ के निवासी, के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई जिसमें यह आरोप लगाया गया कि पुनरवासी पुत्र छोटे लाल की लगभग चार महीने पहले हत्या कर दी गई थी, और पुनरवासी के परिवार के सदस्यों को सूचनाकर्ता के चाचा ननकऊ पर संदेह था। 09.10.1997 को, जब सूचनाकर्ता के चाचा ननकऊ साइकिल पर कुनवारे के साथ लखनऊ से अपने घर आ रहे थे, तो सभी अभियुक्तों ने ननकऊ को रास्ते में रोका, उनकी साइकिल को ननकऊ की साइकिल से टकराया। जैसे ही ननकऊ गिर गए, उन सभी ने ननकऊ को पीटना शुरू कर दिया। कुनवारे, जो ननकऊ के साथ थे, मदद के लिए चिल्लाते हुए, गांव की ओर भागे। ननकऊ भी गांव की ओर भागे। मदद के लिए इस चिल्लाने को सुनकर, सूचनाकर्ता के दादा दुक्खा (मृतक), और दुक्खा के अन्य परिवार के सदस्य घटनास्थल की ओर दौड़े। सूचनाकर्ता के परिवार को देखकर अभियुक्त भाग गए। जब दुक्खा और सूचनाकर्ता सहित अन्य परिवार के सदस्य रात लगभग 08:00 बजे अपने गांव की ओर लौट रहे थे तो सभी अभियुक्तों ने फरसा और तमंचे का उपयोग करके सूचनाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों पर हमला किया। अभियुक्तों ने सूचनाकर्ता के दादा, दुक्खा पुत्र मंगल की हत्या कर दी, और सूचनाकर्ता के पिता, रियोति, उसके भाई मुकेश कुमार और जसकरन पुत्र छेदा लाल पर गोली चलाकर और फरसा और लाठी से हमला करके घायल कर दिया।

3. सूचनाकर्ता ने चार व्यक्तियों अर्थात् लखन, शेरा, प्रहलाद और छोटे लाल पर आरोप लगाया था। प्र.सू.रि., मुकदमा अपराध संख्या-383 सन् 1997 में धारा 302, 323, 307, 504 भा.दं.सं. के अधीन दर्ज की गई थी। मृतक दुक्खा के शरीर को पोस्टमार्टम परीक्षा के लिए भेजा गया, जो दिनांक 10.10.1997 को जिला अस्पताल में डॉ. एस.एच. सिद्दीकी द्वारा किया गया। अन्य घायलों अर्थात्, सूचनाकर्ता केश कुमार, उसके पिता रियोति, उसके भाई मुकेश कुमार, और उसके चाचा ननकऊ और जसकरन की चिकित्सीय अन्वेषण डॉ. सुशील कुमार द्वारा की गई और उन्हें बलरामपुर अस्पताल में एक्स-रे परीक्षा के लिए भेजा गया। उप-निरीक्षक, अरविंद मोहन जायसवाल द्वारा अन्वेषण किया गया और चारों अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया। विचारण दिनांक 22.01.1998 को सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया।

4. अन्वेषण के दौरान, गोसाईगंज पुलिस ने अभियुक्त शेरा को एक बिना लाइसेंस के देशी पिस्तौल और एक 12 बोर जिंदा कारतूस के साथ गिरफ्तार किया और शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25 भी अभियुक्त के विरुद्ध अधिरोपित की गई।

5. अभियुक्तों ने आरोपों से इनकार किया और विचारण की प्रार्थना की।

6. अभियोजन पक्ष ने तथ्य के दो साक्षी प्रस्तुत किए, अभि.सा.-1 केश कुमार सूचनाकर्ता, और अभि.सा.-2, ननकऊ उसके चाचा। पोस्टमार्टम रिपोर्ट को सिद्ध करने के लिए अभि.सा.-3 डॉ.एस.एच. सिद्दीकी को प्रस्तुत किया गया। घायलों की चिकित्सा विधिक परीक्षा रिपोर्ट को सिद्ध करने के लिए डॉ. सुशील प्रकाश चौधरी को अभि.सा.-6 के रूप में प्रस्तुत किया गया। रेडियोलॉजिस्ट डॉ. एस.के. हसन को अभि.सा.-5 के रूप में प्रस्तुत किया गया और उप निरीक्षक अरविंद मोहन जायसवाल को अभि.सा.-4 के रूप में प्रस्तुत किया गया। हेड कांस्टेबल बी.सी.दीक्षित, जिन्होंने चिक प्र.सू.रि. तैयार की थी और जीडी प्रविष्टियों को सिद्ध किया, को अभि.सा.-7 के रूप में प्रस्तुत किया गया।

7. अभियुक्तों ने कोई बचाव साक्षी प्रस्तुत नहीं किए। सभी साक्ष्यों पर विचार करने के बाद विचारण न्यायालय ने प्रहलाद और छोटे लाल को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया है। उसने शेरा को धारा 307 भा.दं.सं. के अधीन और लखन को धारा 302 भा.दं.सं. के अधीन दोषसिद्ध किया है और उन्हें उपरोक्त सजा सुनाई है।

8. अपीलकर्ताओं की ओर से सुश्री राधिका वर्मा ने श्री सुदीप कुमार के लिए तर्क दिया कि विचारण न्यायालय ने अभि.सा.-1 केश कुमार और अभि.सा.-2 उसके चाचा ननकऊ के बयान पर भरोसा करने में विधि की एक स्पष्ट त्रुटि की है क्योंकि दोनों अभियोजन साक्षियों के बयानों में कई विसंगतियां थीं।

9. यह तर्क दिया गया है कि अभि.सा.-1 ने कहा कि शेरा द्वारा कम से कम चार से पांच गोलियां चलाई गईं, जिसने सूचनाकर्ता और उसके परिवार के अन्य सदस्यों को आश्रय के लिए भागने पर मजबूर किया। उन्होंने स्वयं को छिपा लिया और हमलावरों के चले जाने के बाद ही लौटे। लौटने पर, उन्होंने दुक्खा को मृत पाया। उसने जमीन पर पड़े किसी खाली कारतूस को नहीं देखा। तत्पश्चात, सूचनाकर्ता व अन्य एक टेम्पो पर एक लिखित रिपोर्ट के साथ थाने गए, जो अभि.सा.-1 द्वारा आंशिक रूप से उसके गांव में और आंशिक रूप से थाने के रास्ते में टेम्पो स्टैंड के पास एक भोजनालय में लिखी गई थी। प्र.सू.रि. दर्ज करने के बाद, उप-निरीक्षक ने अभि.सा.-1 का बयान लिया, जहां उसने फरसा की तेज धार से लखन द्वारा मारने के तरीके को शुरू में और बाद में गलत दिशा से वार देने का विवरण नहीं दिया। अभि.सा.-1 ने यह भी कहा कि उसने अपने दादा की गर्दन पर केवल एक चोट देखी, क्योंकि रात अंधेरी थी, उसने उसके शरीर पर अन्य चोटों को नहीं देखा और क्या उनमे से खून बह रहा था। वह निश्चित था कि उसके दादा को कोई बंदूक की गोली की चोट नहीं लगी थी। जसकरन, मुकेश, और सूचनाकर्ता को अकेले बंदूक की गोली की चोटें आईं। उसके पिता, रियोति और उसके

चाचा ननकऊ को प्रहलाद और छोटे लाल द्वारा ईंटों से मारा गया था। उन्हें उपचार के लिए गोसाईगंज प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र ले जाया गया, जहां से उन्हें अगली सुबह बलरामपुर अस्पताल एक्स-रे के लिए भेजा गया।

10. अभि.सा. -1 ने कहा कि जिस साइकिल पर ननकऊ सवार थे, वह गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त नहीं थी क्योंकि मुकेश कुमार उसे पकड़े हुए था, जब वे अपने गांव की ओर वापस जा रहे थे। अभि.सा.-1 ने यह भी स्वीकार किया कि वह उप-निरीक्षक के साथ उस स्थान पर नहीं गया था, जहां हमला हुआ था और उसने यह नहीं दिखाया कि वे प्रत्येक लोग कहां खड़े थे, जब शेरा ने उन पर गोली चलाई थी। उसने अन्वेषण अधिकारी को शुरू में नहीं बताया था कि छोटे लाल और प्रहलाद उन पर ईंटें फेंक रहे थे। उसने यह भी स्वीकार किया कि जैसे ही दुक्खा पर लखन द्वारा फरसे का पहला वार किया गया, वो दूर चल गया और जब वह गिर गए और लखन द्वारा पुनः मारे जाने लगे, तब वे उन्हें बचाने के लिए आगे आए, लेकिन शेरा ने उन पर गोली चलाई और वे छिप गए और लगभग 10 मिनट बाद लौटे, जब अभियुक्त घटनास्थल छोड़ चुके थे और उन्होंने दुक्खा को मृत पाया। अभि.सा.-1 ने यह भी स्वीकार किया कि उसने अपनी लिखित रिपोर्ट में यह नहीं कहा कि प्रहलाद और छोटे लाल ने उसके दादा को मुक्कों और लातों से पीटा था। प्रहलाद और छोटे लाल आपस में संबंधित नहीं हैं। प्रहलाद शेरा के पिता हैं। उनकी प्रहलाद से कोई पूर्व दुश्मनी नहीं थी। उसने बचाव के अधिवक्ता द्वारा किए गए सुझाव से इनकार किया कि दुक्खा की मृत्यु हो गई और सूचनाकर्ता और उसके अन्य परिवार के सदस्यों को उनके घर में डकैतों द्वारा हमले में चोटें आईं और वे अन्वेषण अधिकारी के कहने पर अभियुक्तों को झूठा फंसा रहे थे।

11. यह तर्क दिया गया है कि अभि.सा.-2, ननकऊ ने कहा कि जब चारों अभियुक्तों ने घर लौटते समय उस पर हमला किया, तो उन्होंने भागना शुरू कर दिया और मदद के लिए चिल्लाए और राहगीरों ने जिन्होंने घटना देखी, मधरमऊ में उसके परिवार के सदस्यों को सूचित किया, जो उसे बचाने के लिए घटनास्थल पर पहुंचे, लेकिन चारों अभियुक्त भाग गए थे। जब वे रात लगभग 8 बजे फिर से घर लौट रहे थे, तो चारों अभियुक्तों ने उन पर हमला किया और वे भागने लगे, लेकिन उसके पिता दुक्खा नहीं भाग सके, और उसे अभियुक्त लखन ने पकड़ लिया और उसने उन्हें अपने फरसे से मारा और दुक्खा मदद के लिए चिल्लाए, वे सभी मुड़े और दुक्खा की ओर भागे। लेकिन शेरा के पास एक देशी पिस्तौल थी, जिससे उसने उन पर गोली चलाई, जिसके परिणामस्वरूप उसके भाई रियोति, उसके दो भतीजे केश कुमार और मुकेश कुमार, और जसकरन को चोटें आईं। अभियुक्तों ने उन्हें लातों और मुक्कों से भी पीटा। ननकऊ मदद के लिए चिल्लाते हुए भागा, और जब तक अन्य ग्रामीण इकट्ठे हुए अभियुक्त भाग गए थे। वहां पहुंचने पर, उन्होंने पाया कि दुक्खा अपनी चोटों के कारण पहले ही मर चुके थे। उसके भतीजे, केश कुमार ने घटना को एक कागज के टुकड़े पर लिख दिया और फिर वे सभी प्र.सू.रि. दर्ज करने के लिए थाना, गोसाईगंज गए। ननकऊ को सटीक तिथि याद नहीं थी ,जब घटना हुई और उसने कहा कि वह निरक्षर था, लेकिन घटना दशहरा से कम से कम दो दिन पहले हुई थी। वह लखनऊ में एक सफेदी करने वाले के रूप में काम कर रहा था, जो उसके गांव से 11 किमी दूर है। घर लौटते समय, अभियुक्तों द्वारा उस पर हमला किया गया था। उसने यह उल्लेख नहीं किया कि वह कुनवारे, उसके चचेरे भाई के साथ था। उसने यह भी कहा कि अभियुक्त शेरा ने अपनी साइकिल से उसकी साइकिल को

भिड़ाया, जिसके परिणामस्वरूप ननकऊ गिर गया, और जैसे ही वह अपनी साइकिल से गिरा, उसे लातों और मुक्कों से पीटा गया और वह खेत की ओर भागा और छिप गया। राहगीरों ने घटना देखी और गांव में उसके परिवार को सूचित किया और जब वे आए थे, तो वह खेत में अपने छिपने के स्थान से बाहर आया था, लेकिन जब उसका परिवार आया तो अभियुक्त भाग गए थे। उसने अपनी साइकिल उठाई और उनके साथ चलना शुरू किया। उसके परिवार के सदस्य निहत्थे थे, जब वे घर जा रहे थे। उन्होंने रास्ते में अभियुक्तों को फिर से उन पर हमला करने के इरादे से देखा। इस बार अभियुक्त हथियारबंद थे और ननकऊ और उसके परिवार के सदस्य भाग गए, लेकिन उसके पिता दुक्खा नहीं भाग सके और लखन ने उन्हें फरसे से मारा और वह मदद के लिए चिल्लाए। वे मुड़े और अपने पिता को बचाने के लिए उनकी ओर बढ़ने लगे, लेकिन शेरा ने उन पर अपनी बंदूक से गोली चलाई जिसने उसके दो भतीजों और जसकरन को घायल कर दिया। हालांकि, ननकऊ ने यह नहीं कहा कि दुक्खा को फरसे से मारे जाने और जमीन पर गिरने पर, उसके सभी परिवार के सदस्य भाग गए थे और राकेश भुजुवा के घर के पीछे शरण ली और 10 से 15 मिनट तक छिपे रहे, जब तक कि अभियुक्तों ने घटनास्थल नहीं छोड़ा। जब वे लौटे तो उन्होंने दुक्खा को मृत पाया, वे सभी थाने के लिए एक टेम्पो लेकर गए और रात लगभग 10:30 अपराह्न पर वहां पहुंचे।

12. अभि.सा.-2 ने परिवार के पहले गांव जाने का उल्लेख नहीं किया, जहां सूचनाकर्ता ने अपनी लिखित रिपोर्ट का हिस्सा लिखा। उसने शेष रिपोर्ट लिखने के लिए एक भोजनालय में रुकने का भी उल्लेख नहीं किया। अभि.सा.-2 ने भी दुक्खा पर फरसे का प्रारंभिक वार नहीं देखा और अपने पिता के गिरने को भी नहीं देखा। उसने कहा कि जैसे ही दुक्खा गिर गए, वह एक घर की दीवार के पीछे छिप गया था। उसके परिवार के सदस्यों ने भी आसपास विभिन्न स्थानों पर शरण ली।

13. सुश्री राधिका वर्मा ने अभि.सा.-1 केश कुमार के बयान में पहली घटना के स्थान के संबंध में विसंगतियों को इंगित किया है, जैसा कि उसके द्वारा और अभि.सा.-2 ननकऊ द्वारा वर्णित किया गया है। उसने यह भी इंगित किया है कि दुक्खा को कोई बंदूक की गोली की चोट नहीं लगी और पोस्टमार्टम रिपोर्ट मृतक के शरीर पर केवल कटे हुए घावों का खुलासा करती है।

14. सुश्री राधिका वर्मा द्वारा यह भी इंगित किया गया है कि अभि.सा.-2 ने कहा कि उसकी साइकिल क्षतिग्रस्त नहीं थी और वह इसके साथ घर चला गया था। जबकि अभि.सा.-1 ने कहा था कि पहिए में कुछ तीलियां निकल गई थीं और उसका छोटा भाई मुकेश ननकऊ की साइकिल के साथ चल रहा था जब चारों अभियुक्तों ने फिर से उन पर हमला किया।

15. अभि.सा.-1 ने कहा था कि जब अभियुक्तों ने फरसे और बंदूक के साथ दूसरी बार हमला किया, तो ननकऊ और उसके परिवार के सदस्यों ने भागकर बचने की कोशिश की, लेकिन दुक्खा बूढ़े थे और वह नहीं भाग सके और लखन द्वारा पकड़े गए फरसे से पहला वार लगने पर गिर गए। तब वे दुक्खा को बचाने के लिए मुड़े, लेकिन शेरा ने उन पर अपनी बंदूक से गोली चलाई, जिसके परिणामस्वरूप केश कुमार, मुकेश कुमार और

जसकरन को चोटें लगीं। वे फिर से आश्रय के लिए भागे और केवल 10 से 15 मिनट बाद लौटे। दूसरी ओर, ननकऊ ने अपनी साक्ष्य में कहा है कि वे नहीं भागे और छिपे नहीं।

16. सुश्री वर्मा ने अभि.सा.-1 द्वारा आंशिक रूप से अपने गांव में और आंशिक रूप से थाना, गोसाईगंज पहुंचने से पहले टेम्पो स्टैंड के पास एक भोजनालय में लिखित रिपोर्ट लिखने के संबंध में विसंगति को भी इंगित किया है। दूसरी ओर, अभि.सा.-2 ने कहा है कि विक्रम टेम्पो पर थाने जाते समय, वे कहीं नहीं रुके थे, और केश कुमार ने थाने में रिपोर्ट लिखी थी।

17. इस न्यायालय ने अभि.सा.-1 और अभि.सा.-2 की साक्ष्य से पाया है कि अभि.सा.-2 स्वीकार्य रूप से अन्य परिवार के सदस्यों के साथ थाने नहीं गया था और इसलिए, वह कोई बयान नहीं दे सकता था कि लिखित रिपोर्ट अभि.सा.-1 द्वारा थाने में ही लिखी गई थी, क्योंकि अभि.सा.-2 ने यह भी कहा था कि वह स्वयं को बचाने के लिए थिकरिया गांव की ओर भागा था जहां वह गिर गया और लगभग 10 मिनट तक वहीं पड़ा रहा, जब अन्य ग्रामीण पहुंचे, तो वे उसे साइकिल पर थाने ले गए। अभि.सा.-2 ने यह भी इनकार किया कि कृष्णा कुमार व अन्य उसके साथ थाने गए थे। अभि.सा.-2 इस संबंध में अपनी कहानी बदलता रहा कि वह या उसके परिवार के सदस्य, प्र.सू.रि. दर्ज करने के लिए थाने कैसे पहुंचे। अभि.सा.-2 ने यह भी कहा कि जब दूसरी घटना में उसके परिवार के सदस्यों पर हमला किया जा रहा था, तो उसने अन्य ग्रामीणों से उनके दरवाजे खटखटाकर मदद मांगने की कोशिश की, लेकिन कोई ग्रामीण मदद के लिए बाहर नहीं आया।

18. सुश्री वर्मा ने अभि.सा.-2 द्वारा दुक्खा को फरसे से मारने वाले लखन की घटना के वर्णन में विसंगति को भी इंगित किया। सुश्री वर्मा ने इंगित किया था कि जबकि अभि.सा.-1 कहता है कि प्रहलाद और छोटे लाल ने उसके पिता और चाचा पर ईंटें फेंककर हमला किया, अभि.सा.-2 शुरू में कहता है कि किसी भी अभियुक्त ने बिल्कुल भी ईंटों का उपयोग नहीं किया लेकिन बाद में अपनी कहानी में सुधार किया व अन्यथा कहा।

सुश्री वर्मा ने अभि.सा.-1 और अभि.सा.-2 की साक्ष्य से यह भी इंगित किया था कि उनका धारा 161 दं.प्र.सं. के अधीन उनके बयान से उन विवरणों की अनुपस्थिति के संबंध में कई बार सामना किया गया था, जो वे अपनी मुख्य परीक्षा के समय उल्लेख कर रहे थे लेकिन उन्होंने दोहराया कि वे केवल वही कह रहे थे, जो उन्होंने धारा 161 दं.प्र.सं. के अधीन अपने बयान में उल्लेख किया था। इसके अतिरिक्त, वे कोई कारण नहीं बता सके कि अन्वेषण अधिकारी ने धारा 161 दं.प्र.सं. के अधीन उनके द्वारा दर्ज किए गए बयान में ऐसे विवरण का उल्लेख क्यों नहीं किया।

19. अभि.सा.-2 ने यह भी कहा था कि उसके पिता उनसे लगभग 8 से 10 कदम आगे चल रहे थे और वे पीछे थे, और जब उसके पिता नन्हा बढ़ई के घर पहुंचे तो अभियुक्त अचानक से बाहर आए और जोर से उन्हें गाली देने लगे। प्रारंभ में, छोटे लाल और प्रहलाद ने दुक्खा को लातों और मुक्कों से मारा, जब दुक्खा गिर गए, तो लखन ने उसे अपने फरसे से चार से पांच बार मारा। अभि.सा.-2 ने स्वीकार किया कि जब दुक्खा मारे जाने पर गिर गए थे और शेरा ने अन्य परिवार के सदस्यों पर एक गोली चलाई थी, तो वह गांव की ओर भाग गया

था जबकि अन्य परिवार के सदस्य वहीं रहे। लेकिन उसी समय, उसने कहा कि उसने प्रहलाद और छोटे लाल को उन पर ईंटें फेंकते हुए देखा था। अपनी प्रति-परीक्षा के दौरान एक बिंदु पर, अभि.सा.-2 ने यह भी कहा कि उसने हमले की पहली घटना के बाद साइकिल नहीं देखी थी।

20. यह आगे तर्क दिया गया कि विचारण न्यायालय ने दोषसिद्धि को केवल संबंधित और हितबद्ध साक्षियों की साक्ष्य पर आधारित किया है, विशेष रूप से सूचनाकर्ता, जो मृतक का पोता था और ननकऊ, जो मृतक का बेटा था। कथित तौर पर दो स्वतंत्र साक्षी थे, एक कुनवारे जो काम से घर लौटते समय ननकऊ के साथ था और जसकरन, जो सूचनाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों के साथ था और सभी परिवार के सदस्यों को अभियुक्तों के बाद के हमले में बंदूक की गोली के घाव आए थे। अन्वेषण अधिकारी ने न तो कुनवारे या जसकरन के बयान दर्ज करने का कोई प्रयास किया और अभियोजन पक्ष ने कहानी का समर्थन करने के लिए कोई स्वतंत्र साक्षी प्रस्तुत नहीं किया।

21. यह भी तर्क दिया गया कि विचारण न्यायालय ने यह विवेचना नहीं की कि मृतक दुक्खा को मारने के लिए अपीलकर्ताओं का कोई हेतुक नहीं था, विशेष रूप से जब दुश्मनी, जो बताई गई थी, वह ननकऊ उसके बेटे के साथ थी, जिसे केवल मामूली चोटें जैसे कंट्यूजन लगे और ननकऊ का बयान सूचनाकर्ता के बयान के साथ घटनाओं के क्रम के संबंध में मेल नहीं खाता था, जिसके कारण मृतक की मृत्यु हुई।

22. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि चिकित्सा साक्ष्य अभि.सा.-1 और अभि.सा.-2 के चक्षुदर्शी साक्ष्य का समर्थन नहीं करता है क्योंकि दुक्खा के शरीर पर पाई गई आठ चोटों में से सात तेज धार वाले हथियार से लगी कटी हुई चोटें थीं और एक कंट्यूजन था। कोई आग्नेयास्त्र चोट नहीं थी।

23. यह भी तर्क दिया गया है कि एक हमलावर के लिए पहले पीड़ित पर फरसे की तेज धार से हमला करना और फिर इसे घुमाकर गलत दिशा से मारना शुरू करना काफी अस्वाभाविक है। यह भी तर्क दिया गया है कि शुरू में जब ननकऊ पर हमला किया गया था, तो कुनवारे उसके साथ थे और कुनवारे का परीक्षण अन्वेषण अधिकारी द्वारा नहीं किया गया और न ही न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया। इसी तरह, दूसरे हमले के दौरान, जसकरन और मुकेश कुमार को भी बंदूक की गोली की चोटें आईं लेकिन उन्हें अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया। जसकरन एक स्वतंत्र साक्षी होने के कारण और सूचनाकर्ता के परिवार से संबंधित नहीं होने के कारण अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित कहानी का समर्थन करने के लिए महत्वपूर्ण था।

24. यह भी तर्क दिया गया है कि ननकऊ अभि.सा.-2 के साक्ष्य से, यह स्पष्ट है कि वह गांव थिकरिया से अन्य लोगों के साथ रात लगभग 09:00 अपराह्न पर थाने पहुंचे। हालांकि, अभि.सा.-1, अन्य घायल साक्षियों के साथ रात लगभग 11:30 अपराह्न पर थाने पहुंचे। उस समय तक, ननकऊ पहले से ही थिकरिया से संबंधित अन्य ग्रामीणों के साथ थाने में था। इसके अतिरिक्त देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं है और सभी संभावना में, प्र.सू.रि. थाना गोसाईगंज में पुलिस के साथ उचित चर्चा और विचार-विमर्श के बाद अपीलकर्ताओं को झूठा

फंसाने के लिए दर्ज की गई थी। प्र.सू.रि. दर्ज करने के तरीके, प्र.सू.रि. लिखने के स्थान और प्र.सू.रि. लिखने के समय के संबंध में अभि.सा.1 और अभि.सा.2 के बयान में गंभीर विरोधाभास हैं।

25. यह भी तर्क दिया गया है कि फरसे की बरामदगी लखन से नहीं की गई लेकिन लखन को धारा 302 भा.दं.सं. के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और आजीवन कारावास दिया गया है। केवल तमंचा/देशी पिस्तौल कथित तौर पर शेरा के बताने पर बरामद की गई थी और फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट से, यह स्पष्ट है कि यह घायलों के शरीर में पाई गई गोलियों से अलग बोर की थी, फिर भी शेरा को धारा 307 भा.दं.सं. के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और आजीवन कारावास की सजा दी गई है। यह भी तर्क दिया गया है कि तथ्यों के समान समूह पर दो सह-अभियुक्त, छोटे लाल और प्रहलाद, को दोषमुक्त कर दिया गया है जबकि अपीलकर्ताओं को दोषसिद्ध किया गया है।

26. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, हमने विचारण न्यायालय के अभिलेख में उपलब्ध साक्ष्य और निर्णय व आदेश दिनांक 20.07.2021 का भी परीक्षण किया है।

27. मृतक का पोस्टमार्टम परीक्षण डॉ.एस.एच. सिद्दीकी द्वारा किया गया था, जो साक्षी बॉक्स में उपस्थित हुए और पोस्टमार्टम रिपोर्ट को सिद्ध किया। मृतक के सिर, चेहरे, और गर्दन, और बाएं कंधे और अग्रभाग और बाएं जांघ पर सात कटे हुए घाव थे, और कोहनी के जोड़ के नीचे दाएं अग्रभाग पर 9 सेमी पर एक कंट्यूजन था। एक विशिष्ट प्रश्न के उत्तर में चिकित्सा अधिकारी ने इस सुझाव को खारिज कर दिया कि चोटें आधी रात या भोर में लगी हो सकती थीं। इसके बजाय, उन्होंने राय दी कि वे दिनांक 09.10.1997 को रात लगभग 10:00 या 11:00 अपराह्न पर लगी हो सकती हैं, लेकिन साथ ही कहा कि उनके द्वारा बताई गई मृत्यु का समय में दोनों तरफ दो घंटे तक का अंतर हो सकता है।

28. डॉ. सुशील प्रकाश चौधरी, अभि.सा.-6 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र गोसाईगंज लखनऊ के प्रभारी चिकित्सा अधिकारी ने बाकी घायल व्यक्तियों की जांच की और उन्हें कृष्णा कुमार, अभि.सा.-1 की दाहिनी ऊपरी भुजा पर और बाएं हाथ, मध्य उंगली पर दो बंदूक की गोली के घाव मिले। दोनों चोटों पर टैटूइंग पाई गई और उन्होंने एक्स-रे की सलाह दी।

अभि.सा.-6 को सूचनाकर्ता के छोटे भाई मुकेश पर छाती के बाईं ओर, दाहिनी जांघ पर, दाहिनी हथेली पर, छोटी उंगली के आधार पर, और बाएं घुटने के जोड़ के पास चार बंदूक की गोली के घाव मिले। सभी चोटें साधारण थीं और आग्नेयास्त्र से लगीं। इन सभी घावों पर टैटूइंग मौजूद था, और उनमें से कुछ में गोलियां स्पर्शनीय थीं। एक्स-रे की सलाह दी गई।

जसकरन को भी उसके माथे के दाहिने हिस्से पर और बाईं ऊपरी जांघ पर दो बंदूक की गोली के घाव आए। टैटूइंग मौजूद थी। सभी चोटें प्रकृति में साधारण थीं जो आग्नेयास्त्र से लगीं। एक्स-रे की सलाह दी गई।

चिकित्सा अधिकारी अभि.सा.6 ने सूचनाकर्ता के पिता रियोति की चोटों का भी वर्णन किया। उसे अपने कंधे और घुटने के जोड़ पर दो कंट्यूजन आए और गर्दन के बाईं ओर एक अपघर्षित कंट्यूजन आया। सूचनाकर्ता

के चाचा ननकऊ को बाएं कंधे पर, दाहिनी छाती के निचले हिस्से पर, दाहिने ऊपरी स्कैपुलर क्षेत्र पर तीन अपघर्षित कंट्यूजन थे, और बाईं जांघ के बाहरी हिस्से पर एक साधारण कंट्यूजन भी था।

29. सभी घायलों की एक्स-रे रिपोर्ट डॉ.एस.के. हसन अभि.सा.-5 द्वारा सिद्ध की गईं और उन्हें घायलों की एक्स-रे प्लेटों में विदेशी धातु के टुकड़े मिले।

30. अन्वेषण अधिकारी ने दिनांक 10/11 नवंबर 1997 को शेरा को गिरफ्तार किया था। शेरा, प्रहलाद के बेटे से 12 बोर की एक देशी बिना लाइसेंस की पिस्तौल बरामद की गई। शेरा द्वारा पहनी गई पतलून की जेब से 12 बोर का एक कारतूस भी बरामद किया गया। फत्ते के बेटे प्रहलाद को भी गिरफ्तार किया गया, लेकिन उससे कोई हथियार बरामद नहीं किया गया।

दोनों अभियुक्तों ने पुलिस टीम के समक्ष स्वीकार किया कि उन्होंने दुक्खा की हत्या की थी और तब से वे गांव से फरार थे।

31. हालांकि, धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन अपने बयान में, उन्होंने किसी भी ऐसी संलिप्तता से इनकार किया और दावा किया कि उन्हें झूठा फंसाया गया था और उन्हें साजिश में फंसाया जा रहा था। हालांकि, अभियुक्तों द्वारा सूचनाकर्ता या उसके परिवार को झूठा फंसाने का कोई उद्देश्य नहीं बताया जा सका। चूंकि शेरा से एक देशी बनी पिस्तौल बरामद की गई थी, इसलिए शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25 भी उसके विरुद्ध अधिरोपित की गई थी।

32. हमने अभि.सा.-1 केश कुमार उर्फ कृष्णा कुमार की साक्ष्य को विवेचित किया है, जो सूचनाकर्ता भी है। उसने कहा है कि अभियुक्तों के मन में पुनरवासी पुत्र छोटे लाल की मृत्यु उसके चाचा ननकऊ द्वारा होने का संदेह था और एक दिन जब ननकऊ एक दूर के रिश्तेदार कुनवारे के साथ रात लगभग 07:00 अपराह्न पर काम से घर लौट रहा था, तो चारों अभियुक्तों ने उसे रास्ते में रोक दिया और जब ननकऊ अपनी साइकिल से गिर गए, तो शेरा ने उसे पीटना शुरू कर दिया। कुनवारे गांव की ओर भागे, मदद के लिए चिल्लाते हुए। जानने पर, सूचनाकर्ता के दादा दुक्खा, उसके पिता रियोति, उसके छोटे भाई मुकेश, एक जसकरन, और सूचनाकर्ता उसे बचाने गए। ननकऊ, जब तक वे उस स्थान पर पहुंचे जहां घटना हुई थी, भागने में सफल रहे थे और अभियुक्त भाग गए थे। जब वे घर लौट रहे थे तो रात लगभग 08:00 अपराह्न थी, अभियुक्त फिर से आए और शेरा के हाथ में एक देशी पिस्तौल थी, लखन के पास एक फरसा था, प्रहलाद और छोटे लाल निहत्थे थे। लखन द्वारा फरसे से दुक्खा पर पहला वार हुआ और दुक्खा जमीन पर गिर गए। जब सूचनाकर्ता और उसके अन्य परिवार के सदस्य दुक्खा को बचाने के लिए उनकी ओर पहुंचे, तो शेरा ने अपनी पिस्तौल से गोली चलाई जिसके परिणामस्वरूप सूचनाकर्ता, जसकरन और मुकेश को चोटें आईं। प्रहलाद और छोटे लाल उन पर ईंटें फेंक रहे थे, ऐसी ईंटों ने रियोति और ननकऊ को मारा। जैसे ही सूचनाकर्ता और उसके अन्य परिवार के सदस्य दूर गए, लखन ने दुक्खा को अपने फरसे की गलत दिशा से मारा और शेरा ने अपनी देशी पिस्तौल के बट का उपयोग करके दुक्खा को कई बार मारा। सूचनाकर्ता और उसके परिवार के सदस्य भागे और छिप गए। दुक्खा जमीन

पर पड़े रहे। लगभग 10 से 15 मिनट बाद अभियुक्त चले गए और फिर वे दुक्खा के पास पहुंचे लेकिन उन्हें मृत पाया। इसके बाद, सूचनाकर्ता अपने परिवार के सदस्यों के साथ एक लिखित रिपोर्ट दर्ज करने के लिए गोसाईगंज थाने गए। रिपोर्ट दर्ज होने के बाद पुलिस ने उन्हें उपचार के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, गोसाईगंज भेजा जहां सूचनाकर्ता, उसके पिता, उसके चाचा, उसके छोटे भाई और जसकरन रात में रुके। बाद में वे चिकित्सा अधिकारी की सलाह के अनुसार एक्स-रे के लिए बलरामपुर अस्पताल गए, जिन्होंने प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, गोसाईगंज में उन्हें उपचार दिया था।

33. प्रति-परीक्षा में, सूचनाकर्ता ने कहा कि कुनवारे एक दूर के रिश्तेदार थे और वह केवल मदद के लिए चिल्लाए थे जबकि गांव की ओर भाग रहे थे, और उन्होंने उस स्थान पर उनके साथ नहीं गए थे जहां ननकऊ पर शुरू में हमला किया गया था। जसकरन उनसे संबंधित नहीं थे। उन्होंने स्वीकार किया कि जो प्र.सू.रि. दर्ज की गई थी उसमें कुनवारे के ननकऊ के साथ होने का कोई उल्लेख नहीं किया गया था जब उस पर शुरू में हमला किया गया था। उसने प्रारंभिक हमले के सटीक स्थान के बारे में भी विवरण नहीं दिया। जब वे घटनास्थल पर पहुंचे तो अभियुक्त भाग गए थे। घटनास्थल पर पहुंचने के बाद, ननकऊ 2 से 3 मिनट बाद पहुंचे क्योंकि वह छिप गए थे, वे घटनास्थल पर 4 से 5 मिनट तक रहे और ननकऊ के साथ घर लौट रहे थे, जिसने उन्हें बताया कि कैसे शेरा ने शुरू में उसकी साइकिल को अपनी साइकिल से टकराया और वह अपनी साइकिल के साथ जमीन पर गिर गए, और बाद में शेरा ने उसे कई बार थप्पड़ मारा। अभि.सा.1 ने यह भी कहा कि उसने उप-निरीक्षक को शेरा द्वारा ननकऊ की साइकिल को अपनी साइकिल से मारने, उसे गिरा देने और फिर उसे थप्पड़ मारने के बारे में बताया लेकिन नहीं जानता था कि ये विवरण धारा 161 दं.प्र.सं.के अधीन बयान में क्यों नहीं उल्लिखित किए गए। सूचनाकर्ता को अभियुक्त के अधिवक्ता द्वारा बार-बार उस सटीक स्थान के बारे में पूछताछ की गई, जहां ननकऊ को शुरू में अभियुक्तों द्वारा रोका गया था। उससे बार-बार उस सटीक स्थान के बारे में भी पूछा गया, जहां दूसरा हमला किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप दुक्खा की मृत्यु हुई। उन्होंने कहा कि जब वे घर लौट रहे थे, तो मुकेश ननकऊ की साइकिल पकड़े हुए था। दुक्खा को शुरू में लखन द्वारा फरसे की तेज धार से मारा गया था, और दुक्खा जमीन पर गिर गए, बाद में, उसे लखन द्वारा फरसे की गलत दिशा से बार-बार मारा गया। जब उन्होंने उसे बचाने की कोशिश की, तो शेरा ने अपनी बंदूक से गोली चलाई जिसके कारण उन्हें चोटें आईं और वे पीछे हट गए और शेरा ने भी उसके दादा दुक्खा को अपनी पिस्तौल के बट से मारा। अभि.सा.-1 को याद नहीं था कि दुक्खा को भी बंदूक की गोली की चोट आई थी या नहीं।

34. अभि.सा.-1 को यह सुझाव दिया गया कि शेरा को फंसाने का उद्देश्य था क्योंकि 1996 के वसंत में, माता प्रसाद, उसके चाचा के परिवार में एक विवाह था, जहां शेरा ने हनुमान मंदिर में पंचायत में अभि.सा.-1 पर माता प्रसाद की साली को अपहरण करने का आरोप लगाया था। लड़की को बाद में बरामद किया गया। अभि.सा.-1 ने इस सुझाव से इनकार कर दिया। अभि.सा.-1 को यह भी सुझाव दिया गया कि दुक्खा को मार दिया गया था व अन्य परिवार के सदस्यों को उनके घर पर रात में की गई एक डकैती में घायल किया गया था। इस सुझाव से भी इनकार कर दिया गया। यह भी सुझाव दिया गया कि दुक्खा नकली देशी शराब बनाने के लिए कुख्यात थे और जेल भी गए थे, और ननकऊ भी विभिन्न अपराधों में शामिल थे, जिसके परिणामस्वरूप

उनके कई दुश्मन थे, और उनमें से कोई भी हमले को अंजाम दे सकता था। इस सुझाव से भी इनकार कर दिया गया।

35. हालांकि, सभी अभियुक्तों द्वारा धारा 313 दं.प्र.सं.के अधीन दर्ज उनके बयान में उन्होंने अभि.सा.-1 की प्रति-परीक्षा के दौरान दिए गए सुझावों को प्रमाणित नहीं किया है कि शेरा को झूठा फंसाया जा रहा था क्योंकि उसने पंचायत के समक्ष साक्ष्य दी थी कि अभि.सा.-1 अपने भाई माता प्रसाद की साली के अपहरण में सहायक था। उन्होंने दुक्खा और ननकऊ के आपराधिक इतिहास और कई दुश्मन होने के अपने दावे को भी प्रमाणित नहीं किया। उनके अधिवक्ता द्वारा प्रति-परीक्षा के दौरान दिए गए किसी भी सुझाव को धारा 313 दं.प्र.सं.के अधीन लिए गए अभियुक्त के बयान में किसी भी तरह से प्रमाणित या विस्तारित नहीं किया गया था।

36. अभि.सा.-4, अरविंद मोहन जायसवाल, अन्वेषण अधिकारी ने अपनी परीक्षा के दौरान कहा था कि सूचनाकर्ता मुकेश, रियोति और जसकरन के साथ दिनांक 09.10.1997 को रात लगभग 11:50 अपराह्न पर थाने पहुंचे थे और बयान दर्ज करने के बाद, उन्होंने घायलों को एक कांस्टेबल, अनिल कुमार यादव के साथ प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, गोसाईगंज भेजा था। वह स्वयं उप-निरीक्षक राम तीरथ पांडे और पुलिस टीम के अन्य सदस्यों के साथ अपराध के दृश्य के लिए रवाना हुए। उप-निरीक्षक, राम तीरथ पांडे ने मृतक के शरीर की एक तस्वीर ली थी, पंचायत रिपोर्ट तैयार की गई, और शरीर को सील किया गया और पोस्टमार्टम के लिए मेडिकल कॉलेज भेजा गया और उन्होंने साक्षियों की उपस्थिति में खून से सनी मिट्टी और साधारण मिट्टी एकत्र की। साइट योजना तैयार की गई और ननकऊ, एक चक्षुदर्शी साक्षी का बयान लिया गया। फिर उन्होंने उस स्थान का दौरा किया जहां शुरू में ननकऊ पर हमला किया गया था और एक और साइट योजना तैयार की। दिनांक 11.10.1997 को, उन्होंने शेरा को उसकी देशी बनी पिस्तौल और 12 बोर के लाइव कारतूस के साथ गिरफ्तार किया था और प्रहलाद को भी गिरफ्तार किया और उनके बयान दर्ज किए। दिनांक 15.10.1997 को उन्हें सभी घायलों की चिकित्सा परीक्षा रिपोर्ट और दुक्खा की पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्राप्त हुई। दिनांक 23.10.1997 को छोटे लाल और लखन ने न्यायालय में आत्मसमर्पण किया। दिनांक 24.10.1997 को उन्होंने रियोति प्रसाद, मुकेश प्रसाद के बयान लिए और दिनांक 11.11.1997 को, जेल में छोटे लाल और लखन के बयान लिए। दिनांक 28.11.1997 को, उन्होंने जसकरन का बयान लिया और दिनांक 01.12.1997 को, उन्हें जसकरन, मुकेश और कृष्णा कुमार की एक्स-रे रिपोर्ट प्राप्त हुई।

अभि.सा.-4 ने इनकार किया कि अभि.सा.-1 और अभि.सा.-2 ने धारा 161 दं.प्र.सं.के अधीन बयान में घटना के किसी भी विवरण को कहा था, जैसा कि उनकी मुख्य परीक्षा में उल्लेख किया गया था।

37. अन्वेषण अधिकारी ने कहा कि उस स्थान से दो कदम दूर एक लैंप पोस्ट था, जहां दुक्खा पर हमला किया गया था और सभी साक्ष्य ऐसे लैंप पोस्ट से प्रकाश की मदद से एकत्र किए गए थे। उन्होंने यह भी कहा कि उन्होंने शरीर को नन्हा बढ़ई के घर के पास पड़ा हुआ पाया था। उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें अपराध के स्थान के पास कोई गोलियां या खाली कारतूस नहीं मिले। वहां कोई ईंटें भी पड़ी नहीं मिलीं। उन्होंने ननकऊ

की मदद से दोनों स्थानों की साइट योजना तैयार की थी। अपराध-स्थल थाने से लगभग आधा किलोमीटर दूर था। साइट योजना उनके द्वारा सुबह सूर्योदय के समय तैयार की गई थी। उन्होंने बचाव अधिवक्ता द्वारा दिए गए सुझाव से इनकार किया कि ननकऊ रात लगभग 08:00 अपराह्न पर थाने पहुंचे थे और उन्होंने प्र.सू.रि. दर्ज की थी और कृष्णा कुमार द्वारा दर्ज की गई वह उसी घटना की दूसरी प्र.सू.रि. थी और इसे थाना गोसाईगंज में पुलिस के साथ उचित विचार-विमर्श के बाद मुकदमा अपराध संख्या-383 सन् 1997 के रूप में देर से पंजीकृत किया गया था।

38. मृतक की पोस्टमार्टम परीक्षा में, डॉक्टर ने आठ चोटें पाई थीं, जिनमें से सात तेज धार वाले हथियारों से लगी थीं। खोपड़ी में ललाट, टेम्पोरल, और ओसीपिटल हड्डी फ्रैक्चर पाई गई। मैक्सिलरी हड्डी में भी फ्रैक्चर था। ग्रासनली और श्वासनली कट गई थीं। क्रेनियल फोसा में भी फ्रैक्चर पाया गया था।

39. मुकेश को बंदूक की गोली के चार घाव थे, जसकरन को बंदूक की गोली के दो घाव थे, कृष्णा कुमार को बंदूक की गोली के दो घाव थे, और रेडियोलॉजिस्ट ने अपनी साक्ष्य में मुकेश, जसकरन और कृष्णा कुमार की एक्स-रे प्लेटों में धात्विक घनत्व के विदेशी धातु पाए जाने को सिद्ध किया। चिकित्सा अधिकारी जिन्होंने प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र गोसाईगंज में घायलों की जांच की थी, ने कहा था कि ये चोटें रोगियों द्वारा स्वयं नहीं लगाई जा सकती थीं। इसके अतिरिक्त, रियोति की चिकित्सा विधिक रिपोर्ट ने तीन कंट्यूजन दिखाए जिनमें से एक अपघर्षित था, जो या तो लाठी या डंडा से या खींचने से लगे थे। उन्होंने ननकऊ की भी जांच की थी और चार कंट्यूजन पाए थे, जिनमें से तीन अपघर्षित थे। सभी चोटें प्रकृति में साधारण थीं, जो एक कुंद वस्तु से लगीं। डॉक्टर ने राय दी कि ये चोटें या तो लाठी या डंडा से या खींचने से लगी हो सकती थीं। इसके अतिरिक्त, चिकित्सा अधिकारी ने राय दी कि चोटें पिछली रात लगभग 08:00 अपराह्न पर लगी हो सकती थीं।

40. हेड कांस्टेबल ने जी.डी. एंट्री और प्र.सू.रि. को सिद्ध किया। अन्वेषण अधिकारी ने खून से सनी और साधारण मिट्टी के संग्रह, पंचायत रिपोर्ट की तैयारी, दो स्थानों की साइट योजना की तैयारी जहां घटनाएं हुई थीं, शेरा से तमंचा/देशी पिस्तौल और 12 बोर के एक जिंदा कारतूस की बरामदगी, और जिला मजिस्ट्रेट से अनुमति के बाद उसके विरुद्ध शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25 के अधीन दूसरी प्र.सू.रि. दर्ज करने को सिद्ध किया।

41. आधिकारिक साक्षियों के साक्ष्य को दर्ज करने और प्र.सू.रि. की सामग्री और धारा 313 दं.प्र.सं.के अधीन अभियुक्त के बयान पर विचार करने के बाद, विचारण न्यायालय ने निर्णय के आंतरिक पृष्ठ 11 से विस्तार से अभियोजन कहानी और बचाव के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों पर विचार किया है। उन्होंने इस संबंध में बिन्दु विरचित किया कि क्या दुक्खा की मृत्यु और विभिन्न साक्षियों को लगी चोटें अभियोजन पक्ष द्वारा बताई गई तिथि और समय और स्थान पर आई थीं। उन्होंने अभि.सा.-1 कृष्णा कुमार की साक्ष्य की विवेचना की,

जिन्हें बंदूक की गोली के घाव आए थे और जो सूचनाकर्ता थे, और अभि.सा.-2 ननकऊ की भी विवेचना की, जिन्हें भी प्रकृति में साधारण चोटें आई थीं।

42. विचारण न्यायालय ने बचाव पक्ष द्वारा उठाए गए तर्क पर भी विचार किया है कि सूचनाकर्ता अभि.सा.-1 ने पहली घटना के स्थान को स्पष्ट रूप से नहीं बताया है और कुनवारे, जिन्होंने पहली घटना देखी थी और मदद के लिए चिल्लाते हुए गांव की ओर भागे थे, को एक साक्षी के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया था। विचारण न्यायालय ने अभि.सा.-2 ननकऊ की साक्ष्य पर विचार किया, जो उक्त हमले में घायल व्यक्ति थे, एक प्रथम दृष्ट्या विवरण के रूप में और इसे सत्य पाया क्योंकि उन्होंने कहीं भी यह नहीं कहा कि सभी अभियुक्तों ने हथियारों के साथ उन पर हमला किया था। उन्होंने केवल कहा था कि शेरा ने साइकिल टकराई और उससे गिरने पर, उसे शेरा और लखन ने पीटा। चूंकि रिपोर्ट अभि.सा.-1 द्वारा दर्ज की गई थी, इसलिए उन्होंने केवल वही कहा जो उन्होंने अपने चाचा से सुना था और इसलिए हमले के स्थान और हमले के तरीके के संबंध में विवरण उनके द्वारा प्र.सू.रि. में बहुत स्पष्ट रूप से नहीं बताए जा सकते थे, जो समझने योग्य था।

43. उसी रात लगभग 08:00 अपराह्न पर हुई दूसरी घटना के संबंध में, अभि.सा.-1 की साक्ष्य अधिक विश्वसनीय लगी क्योंकि उसे बंदूक की गोली की चोटें आई थीं और उसने एक प्रथम दृष्ट्या विवरण दिया था। अभि.सा.-2 ने स्वीकार किया था कि वह भाग गया था और छिप गया था। अभि.सा.-2 ननकऊ निरक्षर था और उसने बार-बार प्रति-परीक्षा पर अपने बयानों में सुधार करने की कोशिश की थी। कभी-कभी उसने कहा कि उसने स्वयं को छिपाया नहीं था, अन्य समय पर उसने कहा कि उसने स्वयं को छिपाया था और गांव तिकरिया भाग गया था, जहां से उसने मदद इकट्ठी की और स्वयं थाने गया।

44. विचारण न्यायालय ने बचाव अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क पर विचार किया है कि प्र.सू.रि. में यह लिखा गया था कि दुक्खा को फरसे और तमंचे से मार दिया गया था लेकिन पोस्टमार्टम परीक्षा के दौरान उसके शरीर पर कोई बंदूक की गोली की चोट नहीं पाई गई। विचारण न्यायालय ने सावधानीपूर्वक अभि.सा.-1 और अभि.सा.-2 की साक्ष्य का विवेचन किया, जिन्होंने कमोबेश समान तथ्य बताए थे कि शुरू में लखन द्वारा फरसे से मारे जाने पर दुक्खा गिर गए थे और जब अन्य लोगों ने उसे बचाने की कोशिश की, तो शेरा ने अपनी पिस्तौल से उन पर गोली चलाई जिसने उन्हें आश्रय के लिए भागने पर मजबूर किया। दुक्खा गिर गए थे, उन पर बार-बार फरसे से हमला किया गया, जिससे उनकी मृत्यु हो गई। अन्य परिवार के सदस्यों पर शेरा द्वारा गोली चलाने के संबंध में बयान कम से कम तीन व्यक्तियों को आई बंदूक की गोली के घावों और उनकी एक्स-रे रिपोर्ट में विदेशी धात्विक टुकड़े के रूप में गोलियों के मिलने से सिद्ध होता है।

45. हालांकि, विचारण न्यायालय ने छोटे लाल और प्रहलाद द्वारा ननकऊ और रियोति को ईंटों से मारने के संबंध में अभियोजन कहानी पर अविश्वास किया, क्योंकि ननकऊ और रियोति दोनों को लगी चोटें गिरने और खींचने से और लाठी और डंडा से भी लगी हो सकती थीं, जैसा कि डॉक्टर ने राय दी, जिन्होंने उनकी जांच की। इसके अतिरिक्त, अन्वेषण अधिकारी को अपराध स्थल के पास कोई ईंटें पड़ी नहीं मिलीं, जब वे अपराध

स्थल का निरीक्षण करने और उसी रात साइट योजना तैयार करने गए थे। केवल दो कदम दूर एक लैंप पोस्ट था, जो काम कर रहा था। जब दुक्खा पर हमला किया गया था, अन्वेषण अधिकारी ने भी नोट किया था जिसका अर्थ है कि स्थान का निरीक्षण करने के लिए पर्याप्त प्रकाश था। विचारण न्यायालय ने बचाव अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क को खारिज कर दिया कि रात एकदम अंधेरी थी और इसके बजाय अन्वेषण अधिकारी और अभि.सा.-1 और अभि.सा.-2 पर विश्वास किया, जिन्होंने यह भी कहा था कि उस रात चांद की चाँदनी थी।

46. विचारण न्यायालय ने अभि.सा.-1 और अभि.सा.-2 की साक्ष्य में इस संबंध में इंगित मामूली विसंगतियों पर विचार किया है कि दुक्खा कहां खड़े थे, जब अन्य परिवार के सदस्यों ने उन्हें गिरते हुए देखा, और शेरा कहां खड़ा था, जब उसने परिवार के सदस्यों पर अपने तमंचे से गोली चलाने के लिए उपयोग किया, जिन्होंने दुक्खा को बचाने की कोशिश की थी, और प्रत्येक परिवार के सदस्य कहां खड़े थे, जब वे ऐसे बंदूक की गोली से गोलियों से मारे गए। न्यायालय ने पाया कि मुख्य अभियोजन कहानी न केवल अभि.सा.-1 और अभि.सा.-2 द्वारा, बल्कि तीन चिकित्सा अधिकारियों की साक्ष्य द्वारा भी सिद्ध की गई है, जो अभि.सा.-3, अभि.सा.-5 और अभि.सा.-6 के रूप में परीक्षित हुए थे।

47. विचारण न्यायालय ने पाया कि प्रत्येक साक्षी के लिए बिल्कुल समान विवरण के साथ बिल्कुल समान कहानी बताना स्वाभाविक नहीं है। विचारण न्यायालय ने इस तथ्य पर भी विचार किया कि अभि.सा.-1 और अभि.सा.-2 दोनों से बचाव के अधिवक्ता द्वारा विभिन्न तारीखों पर बार-बार प्रति-परीक्षा की गई थी और हर बार अलग तरीके से समान प्रश्न पूछे गए थे, और ऐसे ग्रामीण साक्षियों के लिए बार-बार बिल्कुल एक ही बात बताना संभव नहीं था। विचारण न्यायालय ने *चंद्रशेखर सुरेश चंद्र भट्ट बनाम महाराष्ट्र राज्य*, 2000 (10) SCC 582 और *गोविंद बनाम मध्य प्रदेश राज्य*, 1994 (1) SCC 536 पर भरोसा किया, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने माना था कि न्यायालय में दिए गए बयानों और धारा 161 दं.प्र.सं.के अधीन दिए गए बयान में कुछ अंतर को अभियोजन कहानी का संवर्धन या सुधार नहीं कहा जा सकता और यदि चक्षुदर्शी साक्षी का धारा 161 दं.प्र.सं.के अधीन बयान घटना को बहुत विस्तृत तरीके से इंगित नहीं करता है, जो बयान अंततः केवल अन्वेषण अधिकारी द्वारा अपने स्वयं के द्वारा किया गया एक रिकॉर्डिंग है, तो ऐसे चक्षुदर्शी साक्षी के साक्ष्य को अमान्य नहीं किया जा सकता है। *मेहरबान व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*, 2000 (1) JIC 519, में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने पाया था कि केवल मुख्य बिंदुओं को अन्वेषण अधिकारी द्वारा अपनी डायरी में धारा 161 दं.प्र.सं.के अधीन दिए गए बयान में दर्ज किया जाता है।

48. एक बार जब हमने तथ्य के साक्षियों के बयानों को रेखांकित कर दिया है, अर्थात्, अभि.सा.-1, केश कुमार और अभि.सा.-2, ननकऊ, हम पाते हैं कि अभि.सा.-1, केश कुमार मृतक के पोते हैं, जबकि अभि.सा.-2, ननकऊ मृतक के बेटे हैं। अभियोजन पक्ष ने केवल इन दो साक्षियों को प्रस्तुत करना चुना है, जो स्पष्ट रूप से संबंधित साक्षी हैं। इसलिए, इससे पहले कि हम अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षित उपरोक्त दो तथ्य के साक्षियों की गवाहियों की जांच करें, हम **दहारी व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 10 SCC 256** में माननीय

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के प्रस्तर संख्या 11 का उल्लेख करना चाहेंगे, जो यहां नीचे उद्धृत किया गया है:-

"यह एक स्थापित विधिक सिद्धांत है कि निकट संबंधी साक्षियों के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच और विवेचना की जानी चाहिए, इससे पहले कि किसी दिए गए मामले में दोषी/अभियुक्त के संबंध में कोई निष्कर्ष निकाला जाए। यदि साक्ष्य में सच्चाई है, तो यह सुसंगत, विश्वसनीय और भरोसेमंद है, इस पर भरोसा किया जा सकता है, और निश्चित रूप से किया जाना चाहिए। [*हिमांशु बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली*) [(2011) 2 SCC 36:(2011) 1 SCC (Cri) 593], *रणजीत सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य* [(2011) 4 SCC 336 : (2011) 2 SCC (Cri) 227 : AIR 2011 SC 255] और *ओंकार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य* [(2012) 2 SCC 273 : (2012) 1 SCC (Cri) 646] देखें]"

(***महत्व प्रदत्त***)

49. यह अब निर्णयाधीन नहीं है कि एक आपराधिक मामले में दोषसिद्धि को अभियोजन साक्षी की एकमात्र साक्ष्य के आधार पर सुरक्षित रूप से दर्ज किया जा सकता है, बशर्ते ऐसे साक्षी की साक्ष्य पूर्णतः विश्वसनीय हो और किसी भी दोष से मुक्त हो और उत्कृष्ट चरित्र की हो।

50. लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-1, में यह उल्लेख किया गया है कि मृतक को अभियुक्त व्यक्तियों, अपीलकर्ताओं सहित, द्वारा फरसा और तमंचा का उपयोग करके मार दिया गया था। लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-1, में यह भी उल्लेख किया गया है कि जब प्रथम सूचनाकर्ता, अपने पिता रियोति, भाई मुकेश, और जसकरन के साथ, अपने दादा (मृतक) को बचाने की कोशिश कर रहा था, तो वर्तमान अपीलकर्ताओं सहित चारों अभियुक्त व्यक्तियों ने उन पर आग्नेयास्त्र की चोटें भी पहुंचाईं। यह देखा जा सकता है कि लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-1, में किसी विशेष अभियुक्त को कोई विशिष्ट हथियार नहीं सौंपा गया था, लेकिन यह एक विधिक आवश्यकता भी नहीं है।

51. जहां तक अभि.सा. -1, केश कुमार का संबंध है, हम पाते हैं कि, उसके अनुसार, घटना होने के बाद, वह प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने गया था। उसने कहा कि लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-1, दो भागों में तैयार की गई थी, इसका कुछ हिस्सा संबंधित गांव में लिखा गया था और शेष हिस्सा थाने के पास एक भोजनालय में लिखा गया था। हालांकि, पुनरावृत्ति की कीमत पर, हम उल्लेख कर सकते हैं कि अभि.सा. -2, ननकऊ, ने बहुत स्पष्ट रूप से कहा है कि लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-1, संबंधित थाने में लिखी गई थी। यह एक तथ्य है, जिसे मामूली या असंगत विसंगति की श्रेणी में आने वाला नहीं कहा जा सकता।

52. एक अपीलकर्ता, अर्थात्, शेरा से एक छूटे हुए कारतूस और एक 12-बोर देशी आग्नेयास्त्र की बरामदगी की गई। इसका बरामदगी मेमो प्रदर्श क-18 है, जबकि छूटे हुए कारतूस और 12-बोर देशी बनी आग्नेयास्त्र की परीक्षा के संबंध में एफ.एस.एल. रिपोर्ट प्रदर्श क-25 है। यह भी स्पष्ट है लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-1, से कि

प्रश्नगत घटना दिनांक 09.10.1997 को दो चरणों में हुई बताई गई है, और वह भी शाम को। मृतक, दुक्खा, को दिनांक 09.10.1997 को ही शाम 08:00 अपराह्न पर मार दिया गया बताया गया है।

53. यह भी उल्लेखनीय है कि एफएसएल, लखनऊ द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट, जिसे प्रदर्श क-25 के रूप में सिद्ध किया गया, उल्लेख करती है कि कथित तौर पर एक देशी बनी 12-बोर पिस्तौल की बैरल में बारूद पाया गया। हालांकि, अपीलकर्ताओं में से एक, अर्थात्, शेरा के कब्जे से कथित 12-बोर कारतूस की बरामदगी के बावजूद, इस बात की पुष्टि करने वाली किसी भी रिपोर्ट का पूर्ण अभाव है कि उक्त कारतूस बरामद देशी बनी 12-बोर आग्नेयास्त्र से दागा गया था।

54. अभि.सा.-1, केश कुमार, ने अपनी साक्ष्य में अभि.सा.-1 के रूप में कहा है कि अपीलकर्ता शेरा एक पिस्तौल से लैस था, जबकि अपीलकर्ता लखन एक फरसा ले जा रहा था, जबकि अन्य अभियुक्त व्यक्ति, अर्थात्, छोटेलाल और प्रहलाद, कोई हथियार नहीं ले जा रहे थे। उसने यह भी कहा है कि घटना की तिथि को, अभियुक्त व्यक्तियों ने न केवल कई गोलियां चलाईं बल्कि ईंटें फेंककर ननकऊ पर भी हमला किया। अपीलकर्ता लखन ने मृतक पर एक फरसे से हमला किया और ऐसा करते समय, उसने फरसे के दोनों तेज धार और कुंद यानी उल्टे तरफ से उपयोग किया। उसने यह भी कहा है कि जब अभियुक्त व्यक्तियों ने फिर से गोली चलाने की कोशिश की, तो प्रथम सूचनाकर्ता, उसके पिता रियोति, उसके भाई मुकेश, और जसकरन गांव की ओर भाग गए। उसने विशेष रूप से कहा है कि अभियुक्त व्यक्ति, अर्थात्, छोटेलाल और प्रहलाद, जिन्हें विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया है, ने मृतक पर लातों और मुक्कों से हमला किया था। ऐसा करते समय, उन्होंने वह भी चिल्लाया कि मृतक को जीवित नहीं छोड़ा जाना चाहिए। अभि.सा.-1, केश कुमार, ने यह भी कहा है कि "जब मुलज़िमान फिर से हम लोगों पर गोलियां चलाने को बढ़े तो हम लोग गांव की तरफ भागे।" अभि.सा.-1, केश कुमार का यह बयान सुझाव देता है कि कम से कम एक से अधिक अभियुक्त आग्नेयास्त्र ले जा रहा था। यह, उसके अपने पहले के बयान के अनुसार, सही नहीं है, क्योंकि आग्नेयास्त्र केवल अपीलकर्ता शेरा को आरोपित किया गया है।

55. अभि.सा.-1 ने स्वयं कहा है कि जब वह प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए थाने गया, तो उसके साथ जसकरन, ननकऊ, रियोति, मुकेश, और आलोक थे। दो अन्य व्यक्ति भी उसके साथ गए थे, जिनके नाम वह याद करने में असमर्थ था। उसने यह भी स्वीकार किया है कि उसे पहले चरण की घटना के बारे में एक कुनवारे द्वारा सूचित किया गया था। हालांकि, न तो कुनवारे का नाम लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-1 में उल्लेख किया गया है और न ही उसे किसी भी समुचित कारण के बिना अभियोजन पक्ष द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष परीक्षित किया गया था।

56. जब हम अभि.सा.-2, ननकऊ के बयान की जांच करते हैं, जिसे इस घटना को स्वयं देखना बताया जाता है, हम पाते हैं कि, अभि.सा.-2, ननकऊ के अनुसार, लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-1, एक उप-निरीक्षक की उपस्थिति में थाने में लिखी गई थी। हालांकि उसने कहा है कि लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-1 के अवयव किसी भी

पुलिस कर्मी द्वारा नहीं बताए गए थे, हालांकि, उसने कहा है कि वह, प्रथम सूचनाकर्ता व अन्य के साथ, रात लगभग 10:00–10:30 अपराह्न पर थाने पहुंचे। वे सभी एक विक्रम टेम्पो पर एक साथ थाने गए। वे सीधे थाने गए और बीच में कहीं नहीं रुके, जो कि अभि.सा.-1, केश कुमार द्वारा इस संबंध में कहे गए के बिल्कुल विपरीत है। अभि.सा.-1, केश कुमार, ने कहा है कि लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-1, का कुछ हिस्सा गांव में लिखा गया था, जबकि शेष हिस्सा एक भोजनालय में लिखा गया था।

57. हमने यह भी पाया है कि, अभि.सा.-2, ननकऊ के अनुसार, उसे भी इस घटना में एक बंदूक की गोली की चोट लगी थी। हालांकि, चिकित्सा रिपोर्ट, प्रदर्श क-14, इसकी पुष्टि नहीं करती है। इसलिए, एकमात्र तार्किक निष्कर्ष यह है कि यह साक्षी सच नहीं बता रहा था। इसलिए, अभि.सा.-2, ननकऊ के बयान में प्रकट होने वाली विसंगतियों का प्रभाव उसकी साक्ष्य को पूर्णतः अविश्वसनीय बनाता है।

58. हालांकि यह अभियोजन पक्ष के लिए यह अनिवार्य नहीं है कि वह अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिए सभी अभियोजन साक्षियों को परीक्षित करे, विशेष रूप से साक्ष्य अधिनियम की धारा 134 को देखते हुए, यह भी स्थापित विधिक स्थिति है कि किसी विशेष साक्षी की साक्ष्य के साक्ष्य मूल्य का मूल्यांकन करने में साक्ष्य की गुणवत्ता मायने रखती है न कि मात्रा। हालांकि, ऐसा कहने के बाद, हम यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक पाते हैं कि अभियोजन पक्ष के अनुसार, अभि.सा.-1, केश कुमार और अभि.सा.-2, ननकऊ सहित, कथित घटना में पांच व्यक्तियों को चोटें आईं। इसके बाद भी, घायल व्यक्तियों, अर्थात्, जसकरन, कृष्णा कुमार, और रियोति की अभियोजन पक्ष द्वारा अपने मामले को सिद्ध करने के लिए जांच नहीं की गई। अभिलेख से, हमें ऐसा करने का कोई समुचित कारण नहीं मिलता है।

59. सभी घायल साक्षियों की चोट रिपोर्ट अभिलेख पर उपलब्ध हैं, हालांकि ऊपर उल्लेख किया गया है, जो व्यक्ति कथित तौर पर इस घटना में घायल हुए थे, उन्होंने न तो उपस्थित होने का चुनाव किया और न ही विचारण न्यायालय के समक्ष साक्ष्य दी। जैसे, चोट रिपोर्ट किसी भी तरह से अभियोजन मामले की सहायता नहीं करती हैं। कथित घायल साक्षियों, अर्थात्, जसकरन, कृष्णा कुमार और रियोति की चोट रिपोर्ट यह प्रकट करती हैं कि दिनांक 10.10.1997 को, जब उनकी रिपोर्ट तैयार की गई थी, उनके शरीर पर विभिन्न चोटें मौजूद थीं। हालांकि, चूंकि वे साक्षी कटघरे में प्रवेश नहीं किए और यह नहीं बताया कि किसने उन चोटों को किस समय और कहां पहुंचाया, इसलिए, यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि ऐसी चोटें अपीलकर्ताओं या किसी अन्य सह-अभियुक्त द्वारा उनको पहुंचाई गई थीं।

60. वर्तमान प्रकरण में, उपर्युक्त अनेक कारणों से, हम इस विचार के हैं कि अभि.सा.-2, ननकऊ एक पूर्णतः अविश्वसनीय साक्षी है। हालांकि, अभि.सा.-1, केश कुमार, को आंशिक रूप से विश्वसनीय साक्षी की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसलिए, अभि.सा.-1, केश कुमार की साक्ष्य को कम से कम किसी अन्य साक्षी की कुछ अन्य विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा पुष्टि की आवश्यकता थी, जो, वर्तमान मामले में, अभियोजन पक्ष द्वारा उसे ज्ञात कारणों के लिए नहीं किया गया था।

61. कथित घायल साक्षियों, अर्थात्, जसकरन, कृष्णा कुमार और रियोति के गैर-परीक्षण को एक अलग दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। चूंकि अभियोजन पक्ष इन अन्य घायल साक्षियों को परीक्षित नहीं करने के लिए कोई समुचित कारण प्रदान करने में सफल नहीं रहा है, जिनमें से एक, अभि.सा.-2 ननकऊ, को हमने पूर्णतः अविश्वसनीय पाया है, जबकि अभि.सा.-1 केश कुमार, हमारे विचार में, केवल आंशिक रूप से विश्वसनीय है, इसलिए, साक्ष्य अधिनियम की धारा 114(जी) में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, यह सुरक्षित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि इन साक्षियों को परीक्षित किया गया होता, तो उनके साक्ष्य अभियोजन पक्ष के लिए प्रतिकूल होतीं।

62. हम यह भी पाते हैं कि बरामदगी का कोई स्वतंत्र साक्षी नहीं था, हालांकि कुछ स्वतंत्र साक्षियों ने उनकी तैयारी के समय बरामदगी मेमो, प्रदर्श क-7 और क-18, पर हस्ताक्षर किए थे। हालांकि, उन्हें अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षित नहीं किया गया और उनके गैर-परीक्षण के लिए कोई समुचित स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया।

63. हम इस स्तर पर स्वयं को यह याद दिलाना भी आवश्यक पाते हैं कि, लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-1, के अनुसार, वर्तमान अपीलकर्ताओं के अतिरिक्त, सह-अभियुक्त, अर्थात्, छोटे लाल और प्रहलाद, को भी प्रश्नगत अपराध कारित करना बताया गया है। छोटे लाल और प्रहलाद के नाम, जिन्हें दोषमुक्त कर दिया गया है, का लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-1 में उल्लेख मिलता है। उनकी भूमिका को अभि.सा.-1, केश कुमार, और अभि.सा.-2, ननकऊ द्वारा दोहराया गया है। हालांकि, विद्वान विचारण न्यायालय ने उन्हें दोषमुक्त कर दिया है। इसलिए, इस तथ्य के बावजूद कि *falsus in uno, falsus in omnibus* (एक बात में झूठ, हर बात में झूठ) का सिद्धांत हमारे देश में लागू नहीं है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि विद्वान विचारण न्यायालय, साक्ष्य के उसी समूह के आधार पर वर्तमान अपीलकर्ताओं को दोषसिद्ध करने के लिए आगे बढ़ा जो सह-अभियुक्त, छोटे लाल और प्रहलाद को दोषसिद्ध करने के लिए अपर्याप्त पाया गया था, हम यह निर्णीत करना उचित पाते हैं कि, ऐसी स्थिति में, वर्तमान अपीलकर्ता भी संदेह के लाभ के अधिकारी थे।

64. ऐसा करते समय, हमें **राम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2024) 4 SCC 208** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए हाल के निर्णय द्वारा समर्थन दिया गया है, जिसमें **जावेद शौकत अली कुरेशी बनाम गुजरात राज्य, (2023) 9 SCC 164** में पूर्व के निर्णय पर भरोसा किया गया है। **राम सिंह प्रकरण** (**उपरोक्त**) में, यह विशिष्ट रूप से निर्णीत किया गया था कि यदि विचारण न्यायालय ने एक सह-अभियुक्त को संदेह का लाभ दिया है, यहां तक कि इस आधार पर कि अभियुक्त और अभियोजन साक्षियों में से एक के बीच एक द्वेष था और दो अभियुक्तों के विरुद्ध चक्षुदर्शी साक्षियों का समान या एक जैसा साक्ष्य है, उन्हें समान या समान भूमिका आरोपित करते हुए, न्यायालय एक अभियुक्त को दोषसिद्ध करते समय दूसरे को दोषमुक्त नहीं कर सकता।

65. इसलिए उपरोक्त सिद्धांत को वर्तमान अपीलों के तथ्यों पर लागू करते हुए, हम इस विचार के हैं कि चक्षुदर्शी साक्षियों द्वारा प्रदान किया गया साक्ष्य गंभीर कमियों से ग्रस्त है। अभि.सा.-1, केश कुमार, और अभि.सा.-2, ननकऊ की साक्ष्य, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, पूर्णतः विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त, महत्वपूर्ण साक्षियों का परीक्षण नहीं किया गया है। इसलिए, समग्र रूप से, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य इस मामले में अपीलकर्ताओं के अपराध को सिद्ध करने के लिए आवश्यक मानक को पूरा करने वाला नहीं कहा जा सकता।

66. हम इस तथ्य के प्रति सचेत हैं कि वर्तमान मामले में, एक बूढ़े व्यक्ति को मार दिया गया है लेकिन तथ्य यह है कि यह अभियोजन पक्ष का कर्तव्य है कि वह उचित संदेह से परे अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के विरुद्ध अपना मामला सिद्ध करे। संदेह, चाहे कितना भी गंभीर क्यों न हो, साक्ष्य का स्थान नहीं ले सकता। इस संबंध में, **उपेंद्र प्रधान बनाम उड़ीसा राज्य, (2015) 11 SCC 124** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर-14 में निम्नानुसार निर्णीत किया है:-

"14. पहले प्रश्न पर विचार करते हुए, हम इस मत के हैं कि यदि दो विचार हैं, जो साक्ष्य के विवेचन और विधि के आवेदन से निकाले जा सकते हैं, तो वह विचार लिया जाना चाहिए, जो अभियुक्त के पक्ष में है। इसे इस न्यायालय द्वारा एक मानव अधिकार के रूप में मान्यता दी गई है। नरेन्द्र सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, [(2004) 10 SCC 699 : 2004 SCC (Cri) 1893], में इस न्यायालय ने निर्दोषता की धारणा को एक मानव अधिकार के रूप में मान्यता दी है और यह कहा है कि: (SCC पृष्ठ 708 & 709, प्रस्तर 30-31 & 33)

"30. यह अब सुस्थापित है कि संदेह का लाभ अभियुक्त का है। यह भी तथ्य है कि संदेह, चाहे कितना भी गंभीर क्यों न हो, साक्ष्य का स्थान नहीं ले सकता। यह भी समान रूप से अच्छी तरह से स्थापित है कि 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच एक लंबी दूरी है।

xxxx xxxx xxxx xxxx

xxxx xxxx xxxx xxxx

xxxx xxxx xxxx xxxx"

(महत्व प्रदत्त)

67. इस प्रकार, हम निष्कर्ष निकालते हैं कि अभि.सा.-1, केश कुमार, एक पूर्णतः विश्वसनीय साक्षी नहीं है, जबकि अभि.सा.-2, ननकऊ, एक पूर्णतः अविश्वसनीय साक्षी है व अन्य साक्षी, अर्थात्, जसकरन, कृष्णा कुमार और रियोति, जो इस घटना में घायल साक्षी के रूप में भी दर्शाये गए थे, अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षित नहीं किए गए। अभि.सा.-1, केश कुमार की साक्ष्य, हमारे विचार में, ऐसी उत्कृष्ट चरित्र की नहीं है कि केवल इसके आधार पर अपीलकर्ताओं को दोषसिद्ध करने के लिए समुचित हो। इसलिए, यह एक ऐसा प्रकरण है, जिसमें अपीलकर्ताओं को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए था। विद्वान विचारण न्यायालय ने, अभियोजन साक्ष्य की विवेचना करते समय, ऊपर उल्लिखित विभिन्न पहलुओं को अनदेखा कर दिया है। तदनुसार, दिनांक

20.07.2001 का आक्षेपित निर्णय व आदेश, बने रहने योग्य नहीं होने के कारण, अपास्त किए जाने योग्य है और अपीलकर्ता इस मामले के तथ्यों में दोषमुक्त हो जाने योग्य हैं।

68. उपरोक्त समग्र चर्चा के दृष्टिगत, हम इस विचार के हैं कि विद्वान विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णय व आदेश दिनांक 20.07.2001 द्वारा द्वारा निष्कर्षित अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि का निष्कर्ष बने रहने योग्य नहीं है और अपास्त किए जाने योग्य है, और तदनुसार, अपास्त किया जाता है।

69. तदनुसार, अपीलें **स्वीकार** की जाती हैं।

70. अपीलकर्ता, अर्थात्, शेरा और लखन जमानत पर हैं। इसलिए, उनके जमानत बांड रद्द किए जाते हैं और जमानतदार उन्मोचित किए जाते हैं। उन्हें समर्पण करने की आवश्यकता नहीं है, यदि वे किसी अन्य मामले में वांछित नहीं हैं।

71. धारा 437-ए दं.प्र.सं. में निहित प्रावधान के अनुपालन में अपीलकर्ताओं को आज से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर संबंधित न्यायालय के संतोष के अनुसार अपने व्यक्तिगत बांड और प्रत्येक को दो जमानतदार प्रस्तुत करने का निर्देश दिया जाता है।

72. इस निर्णय की एक प्रति, संबद्ध आपराधिक अपील संख्या-605 सन् 2001, लखन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के अभिलेख पर रखी जाए।

73. विचारण न्यायालय के अभिलेख के साथ इस निर्णय की एक प्रति तत्काल फैक्स/ई-मेल के माध्यम से इसकी जानकारी और आवश्यक अनुपालन के लिए विद्वान विचारण न्यायालय को प्रेषित की जाए।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 130

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांकित इलाहाबाद 28.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मुहम्मद अजहर हुसेन इदरीसी

आपराधिक अपील संख्या 1507 सन 1983

शंबू और अन्य **... अपीलकर्ता**

बनाम

राज्य **... प्रतिवादी**

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

पवन शुक्ला (न्या.मि.), अयंक मिश्रा, महा प्रसाद, तन्मय वर्मा, विवेक कुमार श्रीवास्तव

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

अ.शा.अधि.

(ए) आपराधिक विधि-हत्या और हत्या का प्रयास-दोषसिद्धि-भारतीय दंड संहिता 1860-धारा 302, 307 सपठित धारा 34-सामान्य आशय का प्रमाण-उद्देश्य और चक्षुदर्शी साक्ष्य स्थापित-संबंधित या हितबद्ध साक्षियों की गवाही, यदि विश्वसनीय और भरोसेमंद हो, तो दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त है-चक्षुदर्शी साक्षियों की उपस्थिति, पोस्टमार्टम और रासायनिक विश्लेषण द्वारा समर्थित, ने अपीलकर्ताओं के अपराध को उचित संदेह से परे पर्याप्त रूप से स्थापित किया-हेतुक और घटनाओं के क्रम ने झूठे आरोपण को खारिज कर दिया (प्रस्तर-12, 42, 47 से 53, 72, 73)

(बी) शब्द और वाक्यांश-'हितबद्ध साक्षी' का अर्थ 'संबंधित साक्षी' नहीं है-एक हितबद्ध साक्षी वह है, जिसका दोषसिद्धि में व्यक्तिगत हित है (प्रस्तर 40)

अभियुक्त ने सूचनाकर्ता के भतीजे की विधवा से विवाह किया था-कृषि भूमि पर एकमात्र दावा मांगते हुए शत्रुता विकसित हुई-जब सूचनाकर्ता ने दाखिल खारिज अधिकारों का दावा करते हुए विधिक कार्यवाही शुरू की-26.11.1982 को सुबह लगभग 7 बजकर 30 मिनट पर अभियुक्त और एक अन्य तब्बलों से लैस होकर सूचनाकर्ता के पुत्र पर हमला किया और उसकी हत्या कर दी-सूचनाकर्ता और एक अन्य साक्षी पर गोली चलाकर हत्या का प्रयास किया लेकिन वे बिना चोट के बच गए- प्रथम सूचना रिपोर्ट उसी दिन सुबह 10 बजकर 15 मिनट पर तुरंत दर्ज की गई (प्रस्तर 3, 15 से 18, 30)

अनुवादित

निर्णीत: भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और 307 सपठित धारा 34 के अधीन अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि की पुष्टि की गई। अभियोजन ने चिकित्सा साक्ष्य द्वारा समर्थित विश्वसनीय चक्षुदर्शी साक्षियों के माध्यम से उचित संदेह से परे अभियुक्तों के अपराध को स्थापित किया। बचाव का सिद्धांत अविश्वसनीय और असंतोषजनक पाया गया। प्रथम सूचना रिपोर्ट तुरंत दर्ज किया गया माना गया। घटना स्थल पर अभियुक्तों की उपस्थिति और अपराध में उनकी भागीदारी सिद्ध हुई (प्रस्तर 72, 73)

अपील निरस्त (ई-7)

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची:</u>

1. बथुला नागमल्लेश्वर राव व अन्य बनाम राज्य द्वारा लोक अभियोजक, 2008 2 CRIMES 188 (SC)
2. अप्पुकुट्टन बनाम राज्य, 1989 Cri LJ 2362
3. अमर सिंह बनाम बलविंदर सिंह व अन्य, (2003) 2 SCC 518
4. कृष्णा मोची व अन्य बनाम बिहार राज्य, (2002) 6 SCC 81
5. मसालती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, AIR 1965 SC 202
6. दरया सिंह बनाम पंजाब राज्य, AIR 1965 SC 328
7. आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एस मतप्पा व अन्य, (2006) 4 SCC 512
8. पुलिचेरला नागराजू उर्फ नागराजा रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2006) 11 SCC 444
9. जयबलन बनाम पांडिचेरी संघ राज्य क्षेत्र, 2010 (68) ACC 308 (SC)
10. धरणीधर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 7 SCC 759
11. राम भरोसे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, AIR 2010 SC 917
12. बाबन शंकर दाफल व अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2025 SCC Online SC 137
13. शहजा उर्फ शाहजान इस्माईल मोहम्मद बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2023) 12 SCC 558
14. पहलवान सिंह व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2020 (6) ALJ 166
15. जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2009) 9 SCC 719
16. वडिवेलु थेवर व अन्य बनाम मद्रास राज्य, AIR 1957 SC 614
17. मथुरा प्रसाद व अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1992 Supp (1) SCC 406
18 उत्तराखंड राज्य बनाम दर्शन सिंह, (2020) 12 SCC 605
19. गोपी राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2006 (55) ACC 673 SC
20. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नबाव सिंह, 2005 ACC (Cri.) 33
21. शिव राज बापू मत जाधव बनाम कर्नाटक राज्य, (2003) 6 ACC 392

अनुवादित

22. राजस्थान राज्य बनाम अर्जुन सिंह, AIR 2011 SC 3380

23. राधा मोहन सिंह बनाम राज्य, 2005 CRLJ 167

24. गुजरात राज्य बनाम अनिरुद्ध सिंह, AIR 1997 SC 278

(माननीय न्यायमूर्ति मुहम्मद अजहर हुसेन इदरीसी द्वारा उद्घोषित)

1. (i) दिनांक 03.08.1983 की कार्यालय रिपोर्ट यह दर्शाती है कि विचारण न्यायालय अभिलेख वर्ष 1983 में ही प्राप्त हो गया था और अभियुक्त अपीलकर्ताओं को आदेश दिनांक 09.06.1983 के द्वारा जमानत पर छोड़ दिया गया था। पेपर बुक भी आदेश दिनांक 15.07.2019 के अनुसरण में तैयार की गईं। आदेश पत्रक से पता चलता है कि अभियुक्त अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता, निरंतर आदेशों के बाद भी अपील में बहस करने के लिए न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने से बचते रहे। इन बाध्यकारी परिस्थितियों में 15.07.2019 को अभियुक्त अपीलकर्ताओं के विरुद्ध गैर जमानती वारंट जारी किए गए, जो अभियुक्त अपीलकर्ताओं पर विधिवत निष्पादित किए गए। अभियुक्त अपीलकर्ता मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट उरई स्थित जालौन के न्यायालय में उपस्थित हुए और इस वचनबंध के साथ जमानत पर छोड़े गए कि वे निर्धारित तिथि पर इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे। आदेश पत्रक के अवलोकन से यह और स्पष्ट होता है कि अपील सुनवाई के लिए 16.03.2022 और 31.08.2022 को सूचीबद्ध की गई थी लेकिन बहस करने के लिए अपीलकर्ताओं की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ। अपील को पुनः 31.01.2024 को सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया गया। उस तिथि पर अभियुक्त अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता उपस्थित हुए और स्थगन के लिए अनुरोध किया। अपील को पुनः 12.07.2024 को सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया गया लेकिन बार सदस्यों द्वारा हड़ताल के कारण सुनवाई नहीं हो सकी। पुनः अपील को 25.07.2024 को सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया गया और इस बीच मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, उरई स्थित जालौन द्वारा दिनांक 5.6.2024 को भेजे गए पत्र और दिनांक 3.7.2024 की कार्यालय रिपोर्ट से स्पष्ट है कि अभियुक्त अपीलकर्ताओं पर व्यक्तिगत रूप से नोटिस तामील किए गए। अंततः अपील 5.11.2024 को सूचीबद्ध की गई। उस तिथि पर बार बार पुकारे जाने के बाद भी अपील में बहस करने के लिए अभियुक्त अपीलकर्ताओं की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ। इस प्रकार अभिलेख यह प्रदर्शित करता है कि अभियुक्त अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता के साथ साथ स्वयं अभियुक्तों ने अपील को सुनवाई बिना अनिश्चित काल तक लंबित रखने के लिए सभी युक्तियों का उपयोग किया। वर्ष 1983 की वर्तमान अपील, अधिवक्ताओं के साथ साथ स्वयं अभियुक्त अपीलकर्ताओं द्वारा अपनाई गई देरी और विलंबकारी रणनीति पर वर्षों से लंबित है।

(ii) उपरोक्त के दृष्टिगत हम इस मत के हैं कि वर्तमान अपील को अपीलकर्ताओं के लिए अधिवक्ता को तीन तिथियों पर बहस करने के लिए समायोजित करते हुए और अधिक समय तक लंबित रखने में कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा। न्यायालय पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की सुनवाई के बाद मामले को आगे बढ़ाने

और इसका निर्णय करने के लिए बाध्य है। परिणामस्वरूप श्री पवन शुक्ला, अधिवक्ता को अभियुक्त अपीलकर्ताओं की ओर से अपील में बहस करने के लिए न्याय-मित्र के रूप में नियुक्त किया गया।

2. वर्तमान अपील, अपीलकर्ताओं की ओर से मुकदमा अपराध संख्या-292 सन 1982, धारा 302, 307 भारतीय दंड संहिता, पुलिस स्टेशन-कदौरा, जिला जालौन से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या-16 सन 1983, राज्य बनाम शम्भू व अन्य में विशेष न्यायाधीश/अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, उरई स्थित जालौन द्वारा पारित निर्णय व आदेश दिनांक 21.5.1983 के विरुद्ध योजित की गई है, जिसके द्वारा अपीलकर्ताओं को धारा 302 भारतीय दंड संहिता के अधीन दंडनीय अपराध के लिए प्रत्येक को 1000/- रुपये के अर्थदंड के साथ आजीवन कारावास भुगतने की सजा सुनाई गई है और उन्हें धारा 307 भारतीय दंड संहिता के अधीन दंडनीय अपराध के लिए व्यतिक्रम प्रावधानों के साथ 500/- रुपये के अर्थदंड के साथ पांच वर्ष के सश्रम कारावास की सजा भुगतने का भी निर्देश दिया गया। दोनों सजाओं को एक साथ चलने का निर्देश दिया गया।

3. (i) संक्षेप में अभियोजन पक्ष का मामला जैसा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट (संक्षेप में प्र.सू.रि.) व अन्य निर्विवाद तथ्यों और परिस्थितियों से प्रकट होता है, वह यह है कि 26.11.1982 को लगभग 7 बजकर 30 मिनट पर सूचनाकर्ता घनजुआ पुत्र मतैन, निवासी गांव कहाटा, अंतर्गत पुलिस स्टेशन अता, जिला जालौन ने पुलिस स्टेशन कदौरा को 26.11.1982 को लगभग 07 बजकर 30 मिनट पर हुई घटना के बारे में मौखिक रूप से सूचित किया। उसने सूचित किया कि अभियुक्त अपीलकर्ता मूल रूप से गांव कहाटा, पुलिस स्टेशन अता के निवासी हैं लेकिन पिछले कुछ वर्षों से वे गांव कनखेड़ा में रहने लगे हैं, जहां घटना घटित हुई थी। गांव कनखेड़ा में सूचनाकर्ता घनजुआ पुत्र मतैन और उसके भतीजे रघुबीर पुत्र चुनबड़्ढी के परिवार रह रहे थे और उनकी कुछ संयुक्त कृषि भूमि थी। रघुबीर की मृत्यु घटना से लगभग सात वर्ष पहले हो गई थी और उसकी मृत्यु के बाद रघुबीर के स्थान पर सूचनाकर्ता के साथ संयुक्त रूप से राजस्व अभिलेखों में उसकी पत्नी श्रीमती जनकिया का नाम दाखिल-खारिज कर दिया गया था।

(ii) लगभग तीन वर्ष पहले श्रीमती जनकिया ने अभियुक्त शम्भू से पुनर्विवाह किया। तब से अभियुक्त शम्भू और उसके अन्य परिवार के सदस्य गांव कनखेड़ा में जनकिया के साथ रहने लगे। घटना से लगभग एक महीने पहले अभियुक्त शम्भू ने शिकायतकर्ता घनजुआ से कहा कि उसे जनकिया की भूमि पर राजस्व अभिलेखों से अपना नाम हटवा देना चाहिए और उसे अपना नाम हटवाने के लिए सहमति देनी चाहिए। सूचनाकर्ता घनजुआ इसके लिए सहमत हो गया। वह अभियुक्त शम्भू के साथ कदौरा गया और जनकिया की भूमि पर से अपना नाम हटाने के लिए चकबंदी अधिकारियों के समक्ष अपनी सहमति दी। इसके बाद शिकायतकर्ता घनजुआ ने विधिक प्रक्रिया शुरू करने के लिए वकीलों से परामर्श और विचार विमर्श किया।

(iii) वकीलों के साथ विमर्श के दौरान उसे पता चला कि चूंकि उसकी चचेरी बहू जनकिया ने शम्भू से पुनर्विवाह कर लिया था, इसलिए मृतक रघुबीर से संबंधित भूमि पर उसका कोई अधिकार स्वामित्व या हित नहीं होगा और रघुबीर द्वारा छोड़ी गई भूमि उसके हिस्से में वापस आ जाएगी। इस विधिक सलाह पर घनजुआ

ने आगामी विधिक प्रक्रिया के लिए तैयारी करना शुरू कर दिया। घटना से दो दिन पहले शिकायतकर्ता घनजुआ विधिक तंत्र में कार्रवाई शुरू करने की प्रक्रिया की तैयारी के लिए अपने अधिवक्ता को निर्देश देने के लिए काल्पी गया था। संयोग से अभियुक्त शम्भू भी काल्पी में उपस्थित था और वह किसी तरह सूचनाकर्ता के आशय के बारे में जान गया और इसका बुरा मान गया।

(iv) घटना से एक दिन पहले शम्भू ने सूचनाकर्ता के पुत्र गयादीन को बुलाया और धमकी दी कि चूंकि सूचनाकर्ता उसके विरुद्ध मुकदमेबाजी के लिए तैयारी कर रहा था, इसलिए वह उसे देख लेगा। उसने सूचनाकर्ता के पुत्र से 2 रुपये वापस करने के लिए भी कहा, जो उसने राजस्व अभिलेखों में उसका नाम हटाने के लिए सहमति देने के लिए कदौरा ले जाने में खर्च किए थे। अभियुक्त अपीलकर्ता शम्भू ने गयादीन पर दबाव डाला कि वह अपने पिता को 2 रुपये वापस करने के लिए सूचित करे और यह भी चेतावनी दी कि वह उनके विरुद्ध कठोर कदम उठाएगा। अभियुक्त अपीलकर्ता शम्भू के साथ शब्दों के इस आदान प्रदान को गयादीन ने अपने पिता शिकायतकर्ता को विधिवत सूचित कर दिया, यह सुझाव देने के लिए कि अभियुक्त अब शक्ति-प्रदर्शन पर तुला हुआ था।

(v) अभियोजन की कहानी से यह भी पता चला कि दुर्भाग्यपूर्ण दिन पर लगभग 7 बजकर 30 मिनट पर सूचनाकर्ता का पुत्र ठाकुरदीन मवेशियों के लिए हरा चारा काटने के लिए हसिया लेकर अपने खेत में जा रहा था। सूचनाकर्ता शिकायतकर्ता घनजुआ और साक्षी रसना, जो उसी गांव के निवासी हैं, खेत में शौच के लिए जा रहे थे और मृतक के पीछे चल रहे थे। जब मृतक गांव के बाहर स्थित जगन्नाथ सिंह वर्मा के गढ़ैया वाला ज्वार खेत के अंत के पास पहुंचा तो अभियुक्त शम्भू और लखन, दोनों पुत्र गौरी शंकर मतदास, गांव कहाटा, पुलिस स्टेशन अता, जिला जालौन के निवासी, जो शिकायतकर्ता के गांव में रह रहे थे, तब्बलों से लैस होकर ज्वार की फसल की झाड़ी में छिपे हुए थे, प्रकट हुए और अचानक मृतक ठाकुरदीन पर तब्बलों से प्रहार करने लगे। मृतक घातक चोटें आने के बाद तुरंत जमीन पर गिर गया। सूचनाकर्ता और साक्षी रसना ने शोर मचाया और हमलावरों को चुनौती दी और चीखते व चिल्लाते हुए उनकी ओर दौड़े। शिकायतकर्ता और रसना द्वारा मचाए गए शोर और तीव्र आवाज सुनकर सूचनाकर्ता घनजुआ का एक अन्य पुत्र गयादीन, जो संयोग से उसी गांव से संबंधित साक्षी कदोरा पुत्र आलम के घर पर उपस्थित था और जिसका घर घटनास्थल से लगभग 5 से 6 कदम दूर स्थित है, शोर मचाते हुए घटनास्थल पर पहुंचा। घटना के समय, गयादीन और कदोरा बातचीत कर रहे थे और तंबाकू खाने की तैयारी कर रहे थे, जब उन्होंने चीखें सुनीं। वे तुरंत घटनास्थल की ओर दौड़े और अभियुक्त व्यक्तियों को मृतक पर हमला करते हुए भी देखा। जब अभियुक्त व्यक्तियों को चुनौती दी गई तो वे घनजुआ और रसना की ओर बढ़े। अभियुक्त शम्भू ने अपनी जेब से पिस्तौल निकाली और उन्हें मारने के आशय से उन पर गोली चलाई। साक्षी रसना बिना किसी चोट के बाल बाल बच गया क्योंकि रसना तुरंत बैठ गया और सूचनाकर्ता घनजुआ ने स्वयं को पास के खेत में खड़ी फसल में छिपा लिया। शिकायतकर्ता और गांव के अन्य लोगों द्वारा पीछा करने पर अभियुक्त अपीलकर्ता आतंक फैलाते हुए घटनास्थल से गायब हो गए। अभियुक्त अपीलकर्ताओं द्वारा उत्पन्न भयावह और भयानक परिदृश्य के कारण शिकायतकर्ता और इलाके के अन्य लोग उनका पीछा करने का साहस नहीं जुटा सके। इस के बाद, वे ठाकुरदीन की ओर मुड़े और उसे

घटनास्थल पर मृत पाया। (vi) शिकायतकर्ता सूचनाकर्ता तुरंत चौकीदार के साथ पुलिस स्टेशन कदौरा गया जिससे पुलिस को घटना के बारे में सूचित किया जा सके। उसकी मौखिक सूचना को दिनांक 26.11.1982 को सुबह 10 बजकर 15 मिनट पर काइमी जीडी संख्या 13 में दर्ज किया गया और चिक प्र.सू.रि. प्रदर्श क-4 के रूप में लिखा गया और स्टेशन अधिकारी, सब इंस्पेक्टर अर्जुन सिंह तोमर की उपस्थिति में मुकदमा अपराध संख्या-292 सन 1982, धारा 302, 307 भारतीय दंड संहिता (संक्षेप में भा.दं.सं.) अभियुक्त अपीलकर्ता शम्भू और लखन के विरुद्ध पुलिस स्टेशन कदौरा, जिला जालौन में पंजीकृत किया गया। यह उल्लेख किया जा सकता है कि पुलिस स्टेशन घटनास्थल से लगभग 10 किलोमीटर दूर है और अभियुक्त अपीलकर्ता को प्र.सू.रि. में नामित किया गया था।

(vii) स्टेशन अधिकारी सब इंस्पेक्टर अर्जुन सिंह तोमर ने स्वयं मामले का अन्वेषण संभाला और अन्वेषण प्रारंभ किया। उन्होंने उसी दिन पुलिस स्टेशन में ही शिकायतकर्ता का बयान दर्ज किया और घटना के दो घंटे के भीतर घटनास्थल पर पहुंच गए। आवश्यक औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद अं.अधि. और साक्षियों की उपस्थिति में मृतक के शव का पंचनामा किया गया। पंचनामा रिपोर्ट को प्रदर्श क-1 के रूप में तैयार किया गया। शव को कपड़ों में लपेटा, सील किया और उसी दिन यानी 26.11.1982 को लगभग 3 बजे शाम को शव परीक्षा के लिए मुर्दाघर में ले जाने के लिए कांस्टेबल सीपी 68 रामजी तिवारी और कांस्टेबल सीपी 468 ओम प्रकाश को उनकी निगरानी और सतर्कता में सौंप दिया गया।

(viii) अं.अधि. ने अभियोजन पक्ष के मामले की पुष्टि करने के लिए अपराध से संबंधित सामग्री एकत्र की जैसे खून से सने कपड़े जूतों की जोड़ी, हसिया प्रदर्श 1, जो मृतक घटना के समय कथित तौर पर अपने साथ ले जा रहा था, यह दो भागों में था। अं.अधि. ने हसिया के दोनों टुकड़े, सादी और खून से सनी मिट्टी एकत्र की और उन्हें रासायनिक परीक्षा के लिए भेजा। मृतक का शव पोस्टमार्टम परीक्षा के लिए भेजा गया। अं.अधि. ने उसी दिन शिकायतकर्ता के बताने पर साइट प्लान भी तैयार किया। मृतक ठाकुरदीन का पोस्टमार्टम 27.11.1982 को दोपहर लगभग 1 बजे अभि.सा.-6 डॉ एचजी गुप्ता द्वारा किया गया। डॉक्टर के मत में मृतक ठाकुरदीन की मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव है। अन्वेषण अधिकारी ने साक्षियों के बयान भी दर्ज किए और विश्वसनीय और ठोस सामग्री एकत्र करने के बाद सीजेएम, जिला जालौन की न्यायालय में अभियुक्त अपीलकर्ताओं के विरुद्ध घटना में उनकी संलिप्तता दर्शाते हुए आरोप पत्र प्रस्तुत किया, जिन्होंने मामले का संज्ञान लिया। चूंकि मामला विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था, सीजेएम, जालौन ने इसे अपने आदेश दिनांक 08.02.1983 के द्वारा सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया, जहां इसे एसटी संख्या-16 सन 1983 के रूप में पंजीकृत किया गया और बाद में विचारण के लिए विशेष न्यायाधीश/अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, उरई स्थित जालौन को स्थानांतरित कर दिया गया।

4. विद्वान विचारण सत्र न्यायाधीश ने अपने आदेश दिनांक 02.03.1983 के द्वारा धारा 302 और 307 दोनों सपठित धारा 34 भा.दं.सं. के अधीन औपचारिक आरोप विरचित करने का निर्देश दिया। तदनुसार अभियुक्त अपीलकर्ताओं के विरुद्ध 02.03.1983 को औपचारिक आरोप विरचित किए गए, यह उल्लेख करते हुए कि

उन्होंने ये अपराध अपने सामान्य आशय के क्रम में किए हैं। अभियुक्त अपीलकर्ता ने आरोपों से इनकार किया। उन्होंने दोषी न होने की दलील दी और विचारण की प्रार्थना की।

5. अभियुक्त अपीलकर्ताओं के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष ने निम्नानुसार चक्षुदर्शी साक्ष्य में साक्षियों का परीक्षण किया है:

क्रम संख्या	अभि.सा.-संख्या	नाम	टिप्पणियां
1.	अभि.सा.-1	भूरा	पंचनामा का साक्षी
2.	अभि.सा.-2	घनजुआ	सूचनाकर्ता/चक्षुदर्शी साक्षी
3.	अभि.सा.-3	रसना	चक्षुदर्शी साक्षी
4.	अभि.सा.-4	करहोरा	चक्षुदर्शी साक्षी
5.	अभि.सा.-5	कांस्टेबल एस.एन. तिवारी	हेड मोहर्रिर साक्षी
6.	अभि.सा.-6	डॉ एच.जी. गुप्ता	पोस्टमार्टम किया
7.	अभि.सा.-7	अर्जुन सिंह तोमर	अं.अधि.

6. अपीलकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को और अधिक प्रमाणित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित अभिलेखीय साक्ष्य भी प्रस्तुत किए हैं:

क्रम संख्या	प्रदर्शित अभिलेख	द्वारा सिद्ध	प्रदर्श संख्या
1	पंचायतनामा	अभि.सा.-7	प्रदर्श-1
2	रिकवरी मेमो बी स्टेन्ड/प्लेन मिट्टी	अभि.सा.-1, 3, 7	प्रदर्श-2
3	रिकवरी मेमो जूते, हसिया	अभि.सा.-1, 3, 7	प्रदर्श-3
4	रिकवरी मेमो बी स्टेन्ड, धोती	अभि.सा.-1, 3, 7	प्रदर्श-4
5	मौखिक सूचना चिक प्र.सू.रि.	अभि.सा.-2, 7	प्रदर्श-5
6	काइमी जीडी	अभि.सा.-5	प्रदर्श-6
7	पोस्टमार्टम रिपोर्ट	अभि.सा.-6	प्रदर्श-7
8	सूचकांक के साथ साइट प्लान	अभि.सा.-7	प्रदर्श-8
9	फोटो लाश	अभि.सा.-7	प्रदर्श-9
10	चालान लाश	अभि.सा.-7	प्रदर्श-10
11	आरोप पत्र	अभि.सा.-7	प्रदर्श-11

अनुवादित

12	रासायनिक परीक्षा रिपोर्ट	अभि.सा.-7	प्रदर्श-12
13	रासायनिक परीक्षा रिपोर्ट	अभि.सा.-7	प्रदर्श-13
14	सीएच 5	-	पेपर न -64

7. इसके अतिरिक्त अभियोजन पक्ष के मामले की और पुष्टि में इसने अपने साक्ष्य में गंभीर वस्तुओं को भी निम्नानुसार प्रदर्शित किया है:

क्रम संख्या	**प्रदर्शित वस्तुएं**	**द्वारा सिद्ध**	**प्रदर्श संख्या**
1	टूटे हुए भागों के साथ हसिया	अभि.सा.-7	प्रदर्श-1
2	खून से सनी मिट्टी	अभि.सा.-7	प्रदर्श-2
3	सादी मिट्टी	अभि.सा.-7	प्रदर्श-3
4	जूतों की एक जोड़ी	अभि.सा.-7	प्रदर्श-4
5	ईंटों के साथ	अभि.सा.-7	प्रदर्श-5
6	खून से सनी धोती	अभि.सा.-7	प्रदर्श-6
7	मृतक का कुर्ता	अभि.सा.-7	प्रदर्श-7 & 8
8	अंडरवियर	अभि.सा.-7	प्रदर्श-9
9	तहमद	अभि.सा.-7	प्रदर्श-10

8. (i) अभियोजन पक्ष की साक्ष्य के समापन के बाद अभियुक्त अपीलकर्ताओं को विचारण के दौरान उनके विरुद्ध प्रस्तुत साक्ष्य से अवगत कराया गया और धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन उनके बयान दर्ज किए गए। अपने बयान में अभियुक्त अपीलकर्ताओं ने आरोपों से इनकार किया और दावा किया कि उन्हें शत्रुता के कारण झूठा फंसाया गया है

(ii) अभियुक्त व्यक्तियों के अनुसार दोनों पक्षों के बीच शत्रुता इस तथ्य से संबंधित है कि शम्भू ने श्रीमती जनकिया से जमीन खरीदी थी। यह शिकायतकर्ता को पसंद नहीं आया। यह आरोप लगाया गया है कि शिकायतकर्ता ने इस शत्रुता के कारण दो अभियुक्त व्यक्तियों को झूठा फंसाया। बिक्री विलेख प्रदर्श ख-3 से यह स्थापित है और जिसे अभियोजन पक्ष ने विवादित नहीं किया है कि मार्च 1980 में श्रीमती जनकिया रघुबीर की विधवा ने गांव कनखेड़ा में कुछ कृषि भूमि शम्भू को बेची थी।

9. अभियुक्त अपीलकर्ताओं ने अपने बचाव के समर्थन में चक्षुदर्शी साक्ष्य के रूप में निम्नलिखित साक्षियों का परीक्षण किया है:

क्रम संख्या	**अभि.सा.-संख्या**	**साक्षी का नाम**	**टिप्पणियां**

अनुवादित

1	डीडब्ल्यू-1	कृष्णा लाल	बचाव साक्षी
2	डीडब्ल्यू-2	मणिराम अहीरवार	बचाव साक्षी
1	डीडब्ल्यू-3	परम सुख	बचाव साक्षी

10. अपने बचाव को और मजबूत करने के लिए अभियुक्त अपीलकर्ताओं ने निम्नानुसार अभिलेखीय साक्ष्य भी प्रस्तुत किए हैं:

क्रम संख्या	**प्रदर्शित अभिलेख**	**द्वारा सिद्ध**	**प्रदर्श संख्या**
1	कदोरा का शपथ पत्र	डीडब्ल्यू-1	प्रदर्श-खा 1
2	रसना का शपथ पत्र	डीडब्ल्यू-1	प्रदर्श-खा 2
3	बिक्री विलेख	डीडब्ल्यू-3	प्रदर्श-खा 3
4	समझौता विलेख	-	पी नो खा 89

11. श्री पवन शुक्ला, न्या.मि., अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले श्री अमित सिन्हा, विद्वान अ.शा.अधि. को विस्तार से सुना और अभिलेख पर संपूर्ण सामग्री का भी अवलोकन किया।

12. दोनों पक्षों की प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों को सुनने और साक्ष्य व अभिलेख पर अन्य सामग्री के मैराथन विश्लेषण के बाद विद्वान विचारण सत्र न्यायाधीश ने निष्कर्ष निकाला कि अभियोजन पक्ष ने पूरी तरह से सिद्ध कर दिया है कि अभियुक्त अपीलकर्ता ने सभी उचित संदेहों से परे अपराध किया और दिनांक 21.05.1983 के निर्णय और आदेश द्वारा धारा 302 और 307 सपठित धारा 34 भा.दं.सं. के अधीन अपराध के लिए अभियुक्त अपीलकर्ताओं को इस आधार पर दोषसिद्ध किया और सजा सुनाई कि ये अपराध अभियुक्त अपीलकर्ताओं द्वारा उनके सामान्य आशय के क्रम में कारित किए गए हैं। अपनी दोषसिद्धि और सजा से व्यथित अभियुक्त अपीलकर्ताओं ने इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान अपील योजित की। अपने पक्ष को बल देने के लिए अभियुक्त अपीलकर्ताओं के लिए उपस्थित विद्वान न्याय-मित्र और विद्वान अ.शा.अधि. ने विभिन्न तर्क और प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियां प्रस्तुत की हैं, लेकिन उनकी प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों को उनके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की कसौटी पर परखना होगा। इसलिए इस स्तर पर पहले अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य पर चर्चा करना आवश्यक है।

13. अभि.सा.-1 भूरा ने 21.03.1983 को परीक्षित किया गया, जिसने शपथ पर कहा कि घटना लगभग चार महीने पुरानी थी। ठाकुरदीन, जो उनके गांव का था, की हत्या कर दी गई थी। पुलिस स्टेशन कदौरा के स्टेशन अधिकारी, घटना का अन्वेषण करने के लिए कनखेड़ा आए थे। अन्वेषण अधिकारी ने उनकी उपस्थिति में ठाकुरदीन की पंचनामा रिपोर्ट तैयार की थी। उन्होंने पंचनामा रिपोर्ट पर अपने हस्ताक्षर की पहचान की और

सत्यापित किया, जिसे अभि.सा.-1 भूरा द्वारा प्रदर्श क-1 के रूप में विधिवत सिद्ध किया गया। उन्होंने खून से सनी और सादी मिट्टी के संग्रह के साथ साथ अं.अधि. द्वारा मृतक ठाकुरदीन के शव को अपने कब्जे में लेने को भी सिद्ध किया। उन्होंने इन वस्तुओं के रिकवरी मेमो पर अपने हस्ताक्षर की भी पहचान की, प्रदर्श क-2 के रूप में। उन्होंने अन्वेषण के दौरान एकत्र किए गए जूते, कपड़े व अन्य अपराध संबंधी वस्तुओं की रिकवरी मेमो को भी सिद्ध किया और उन्हें प्रदर्श क-3 और प्रदर्श क-4 के रूप में विधिवत सिद्ध किया। खून से सनी धोती, प्रदर्श 6, जिससे मृतक ठाकुरदीन को ढका गया था, भी कब्जे में ली गई और इसकी रिकवरी मेमो तैयार की गई। उन्होंने इसे प्रदर्श क-4 के रूप में सिद्ध किया। अभि.सा.-1 भूरा ने किसी अलंकरण के बिना स्वाभाविक तरीके से घटना का वर्णन किया। उन्होंने घटनास्थल पर देवी दयाल, रसना विद्यासागर, नामतण सिंह और इलाके के अन्य लोगों की उपस्थिति को भी सिद्ध किया।

14. अपनी प्रति-परीक्षा में अभि.सा.-1 भूरा ने स्वीकार किया कि वह दोपहर लगभग 12 बजकर 30 मिनट पर ठाकुरदीन के शव के पास पहुंचे। उन्हें सह ग्रामीणों से ठाकुरदीन की हत्या के बारे में पता चला। इस प्रकार यह साक्षी निश्चित रूप से सुबह 07 बजकर 30 मिनट पर घटना के समय उपस्थित नहीं था और घटना का चक्षुदर्शी साक्षी नहीं है और सह ग्रामीणों से घटना के बारे में जाना। हालांकि उन्होंने घटना स्थल, प्रदर्श क-8, पंचनामा रिपोर्ट, प्रदर्श क-1, को सिद्ध किया था और उन्होंने घनजुआ और रसना को अपने परिवार का सदस्य होना भी स्वीकार किया।

15. अभियोजन पक्ष ने 21.03.1983 को अभि.सा.-2 घनजुआ पुत्र मताया, शिकायतकर्ता को परीक्षित किया। उन्होंने शपथ पर कहा कि घटना लगभग चार महीने पहले हुई थी। वह सुबह लगभग 7 बजकर 30 मिनट पर हार में खेत में शौच के लिए एक संकरी गली के रास्ते से जा रहा था। उक्त संकरी गली का रास्ता जगन्नाथ वर्मा के खेत से होकर जाता था। साक्षी रसना भी उनके पीछे था। उनका पुत्र ठाकुरदीन मवेशियों के लिए हरा चारा काटने के लिए उनसे आगे जा रहा था। जब ठाकुरदीन गढ़ैया वाला ज्वार के खेत के बीच में पहुंचा, जो जगन्नाथ वर्मा का था, जहां ज्वार की फसल लगभग 5 फुट की ऊंचाई तक खड़ी थी और इसके नीचे अरहर की फसल खड़ी थी, अभियुक्त अपीलकर्ता ज्वार और अरहर की झाड़ियों में छिपे हुए थे। जब ठाकुरदीन उस खेत के बीच में पहुंचा तो उन्होंने उसे रुकने के लिए कहा। इस पर पीड़ित ठाकुरदीन वहीं रुक गया, दोनों अभियुक्त व्यक्ति अर्थात् शम्भू और लखन तब्बल से लैस होकर उस पर कई वार करने लगे। अभि.सा.-2 घनजुआ और रसना अभि.सा.-3 पीड़ित ठाकुरदीन से लगभग 40 से 45 कदम पीछे थे। पीड़ित ठाकुरदीन की चीख और चिल्लाहट पर शिकायतकर्ता और उन्होंने भी शोर मचाया। भयानक चिल्लाहट और रोना सुनकर उनका पुत्र गयादीन, शिकायतकर्ता का अन्य पुत्र कदोरा के साथ घटनास्थल की ओर दौड़ा। इस बीच साक्षी रसना भी उनके पास पहुंच गया। अभियुक्त हमलावरों ने ठाकुरदीन की हत्या करने के बाद, उनकी ओर रुख किया। अभियुक्त शम्भू ने अपनी जेब से कट्टा (देसी पिस्तौल) निकाला और उन पर गोली चलाई। शिकायतकर्ता और रसना, जीवन के खतरे को भांपते हुए खड़ी फसलों की झाड़ियों की ओर भागे। शिकायतकर्ता और रसना कट्टे से फायरिंग से बाल बाल बच गए। अभियुक्त हमलावर गांव की ओर भाग गए। साक्षियों ने अभियुक्त हमलावरों का कुछ दूर पीछा किया लेकिन उनके द्वारा फैलाए गए भय और आतंक के कारण वे घायल पीड़ित ठाकुरदीन

के पास वापस आ गए और ठाकुरदीन को उसके शरीर पर पहुंचाई गई मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप मृत पड़ा पाया। वह घटनास्थल पर एकत्रित कई लोगों की निगरानी में ठाकुरदीन के शव से अलग होकर चौकीदार के साथ संबंधित पुलिस स्टेशन पर गया। उसने पुलिस स्टेशन पर पुलिस को घटना की सूचना दी। शिकायतकर्ता अभि.सा.-2 के बयान पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। रिपोर्ट लिखने के बाद अभि.सा.-2 घनजुआ का अंगूठे का निशान उस पर लगाया गया। उक्त रिपोर्ट को विधिवत लिखित रूप में परिवर्तित किया गया और उनके द्वारा प्रदर्श क-5 के रूप में चिह्नित और सिद्ध किया गया। बयान दर्ज करने की प्रक्रिया में अभि.सा.-2 घनजुआ द्वारा यह बताया गया कि रघुबीर उनके भतीजे के साथ उनकी संयुक्त कृषि भूमि है। उनके भतीजे रघुबीर का विवाह जनकिया से हुआ था। रघुबीर की मृत्यु हो गई थी और उनकी मृत्यु के बाद रघुबीर की उक्त कृषि भूमि घनजुआ के नाम पर दाखिल खारिज कर दी गई थी, लेकिन यह जनकिया के स्वामित्व और कब्जे में आ गई। रघुबीर की मृत्यु से कुछ समय बीतने के बाद जनकिया शम्भू के संपर्क में आई और शम्भू के साथ विवाह कर लिया। चकबंदी कार्यवाही के दौरान अभियुक्त शम्भू ने शिकायतकर्ता को बताया कि उसका नाम रघुबीर के अंश पर दाखिल खारिज किया जाए और शिकायतकर्ता घनजुआ को सौहार्दपूर्ण ढंग से हटाया जा सकता है। उक्त प्रकरण ठाकुरदीन की हत्या से एक महीने पूर्व की घटना से संबंधित है। अभि.सा.-2 घनजुआ अभियुक्त शंभू के साथ गया था और अभियुक्त शंभू ने उसके टांगा किराये के लिए 2 रुपये का भुगतान किया था। तत्पश्चात वह काल्पी गया और वकीलों से परामर्श किया, जिन्होंने उसे सुझाव दिया कि चूंकि जनकिया ने पुनर्विवाह कर लिया था, इसलिए मृतक रघुबीर द्वारा छोड़ी गई भूमि, उसके परिवार के सदस्यों के स्वामित्व और कब्जे में होगी। इसने अभि.सा.-2 घनजुआ को रघुबीर द्वारा छोड़ी गई भूमि प्राप्त करने के लिए विधिक लड़ाई शुरू करने के लिए प्रेरित किया। यह तथ्य किसी तरह शंभू की जानकारी में आ गया, जिसने उनके विरुद्ध द्वेष और शत्रुता पाली।

16. अभि.सा.-2 द्वारा यह भी बताया गया कि उक्त घटना से एक महीने पूर्व, जब उसका पुत्र गयादीन हार से अपने घर वापस आ रहा था, तो शंभू ने उसे बुलाया और कहा कि पहले उसके पिता घनजुआ ने अपना नाम हटवाने के बाद भूमि वापस करने की सहमति दी थी, अब वह धोखेबाज और भ्रामक खेल खेल रहा है और इसलिए अब उसे गंभीर परिणाम भुगतने होंगे। उसने उस पर दबाव भी डाला कि वह अपने पिता घनजुआ को 2 रुपये वापस करने के लिए कहे, जो उसने उसके टांगा किराये का भुगतान किया था। यह तथ्य गयादीन ने अभि.सा.-2 घनजुआ को बताया और इस मौखिक झगड़े के तीन दिन बाद, अभियुक्त अपीलकर्ताओं ने ठाकुरदीन की हत्या का उक्त अपराध किया। अभि.सा.- 2 घनजुआ ने अभियुक्त अपीलकर्ताओं द्वारा अपराध करने के पीछे पोषित मजबूत हेतुक सिद्ध किया। उसने यह भी सिद्ध किया कि टूटा हुआ हंसिया ठाकुरदीन के शव से दो कदम की दूरी पर पड़ा था। इस प्रकार अभि.सा.-2 घनजुआ ने प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुरूप घटना का विस्तृत विवरण दिया। उसने स्वाभाविक और स्पष्ट तरीके से घटना का वर्णन करते हुए जीवंत और विश्वसनीय दृश्य प्रस्तुत किया। उसने बिना किसी सजावट और अलंकरण के अभियोजन पक्ष के संस्करण को सिद्ध करने की पूरी कोशिश की।

17. अभियोजन पक्ष ने 23.3.1983 को रसना को अभि.सा.-3 के रूप में परीक्षित किया, जिसने गवाही दी कि लगभग चार महीने पहले सुबह लगभग 7.30 बजे वह वर्माजी के खेत से होकर शौच के लिए जा रहा था। ठाकुरदीन उसके आगे जा रहा था। वह घनजुआ के पीछे जा रहा था। जब ठाकुरदीन वर्माजी के गढ़ैया वाला ज्वार के खेत का लगभग आधा हिस्सा पार कर चुका था, तो उसने एक दयनीय और दिल दहला देने वाली आवाज सुनी। वह आवाज की ओर दौड़ा और देखा कि अभियुक्त अपीलकर्ता शंभू और लखन अरहर के खेत की दक्षिण दिशा से प्रकट हुए और ठाकुरदीन पर तब्बल से वार कर रहे थे। जैसे ही अभि.सा.-3 रसना आगे दौड़ते हुए बढ़े, अभियुक्त शंभू ने उस पर गोली चलाई, यह याद रखना चाहिए कि रसना अभि.सा.-2 घनजुआ के पीछे चल रहा था। वे अपनी जान बचाने के लिए नीचे गिर गए। इस प्रकार वे दोनों बाल-बाल बच गए। अभि.सा.-3 रसना आतंक के कारण स्तब्ध और हैरान रह गया, इसलिए वह अभियुक्त व्यक्तियों के गायब होने को नहीं देख सका। इस बीच गयादीन और कड़ोरा पुत्र आलम भी घटनास्थल पर पहुंच गए। अभियुक्त व्यक्तियों के गायब होने और जाने के बाद, वे ठाकुरदीन के पास पहुंचे और उसे घातक चोटों और अत्यधिक रक्तस्राव के कारण मृत पाया। तत्पश्चात, पुलिस कर्मी घटनास्थल पर पहुंचे और आवश्यक औपचारिकताएं पूरी कीं अर्थात रक्त से सने और सादे मिट्टी की बरामदगी, रक्त से सने हंसिया की बरामदगी, रक्त से सनी धोती और जूतों की बरामदगी जिन्हें विधिवत प्रदर्श 2, 3 और 4 के रूप में चिह्नित किया गया। अभि.सा.-3 रसना की विभिन्न बिंदुओं पर विस्तार से प्रति-परीक्षा की गई लेकिन प्रति-परीक्षा में उसकी गवाही को खंडित करने के लिए कुछ भी नहीं निकाला जा सका। अभि.सा.-3 रसना ने बिना किसी रंगत के जीवंत और स्वाभाविक तरीके से हमले के तरीके और घटना के ढंग का वर्णन किया।

18. अभियोजन पक्ष ने 23.3.1983 को अभि.सा.-4 कड़ोरा पुत्र आलम को परीक्षित किया। उसने गवाही दी कि यह लगभग चार महीने पहले की बात है, वह सुबह लगभग 7.30 बजे अपने दरवाजे की सीढ़ियों पर बैठा था, जहां गयादीन पुत्र घनजुआ भी मौजूद था। उसके घर के पास से मरगायान पार करने के लिए एक रास्ता था। उस रास्ते से जगन्नाथ वर्मा के गढ़ैया वाला ज्वार के खेत की ओर 4 फीट चौड़ाई की एक नाली भी थी। उक्त नाली का उपयोग आम तौर पर बरसात के मौसम में किया जाता था और बाकी महीनों में इसका उपयोग रास्ते के रूप में किया जाता था। गयादीन ने उसे तंबाकू देने के लिए कहा। अभि.सा.-4 कड़ोरा ने तंबाकू रगड़कर स्वयं लिया और गयादीन को दिया। इसी बीच मदद मांगने वाली एक भयानक और डरावनी आवाज सुनाई दी। अभि.सा.-4 कड़ोरा और गयादीन तेजी से वर्माजी के खेत की ओर दौड़े। उन्होंने देखा कि शुंभू और लखन ठाकुरदीन पर तब्बल से वार कर रहे थे, जो वर्मा जी के खेत से आने वाली संकरी गली से डेढ़ फीट की दूरी पर था। कुछ कदम पर राखन उर्फ रसना, घनजुआ व अन्य मौजूद थे और चिल्ला रहे थे। हमलावरों ने ठाकुरदीन की गर्दन, सिर आदि पर तब्बल से चोटें पहुंचाई थीं। तत्पश्चात, शंभू ने उन पर गोली चलाई लेकिन वे बाल-बाल बच गए। ठाकुरदीन को चोटें पहुंचाने के बाद, हमलावर घटनास्थल से गायब हो गए। जब अभि.सा.-4 कड़ोरा व अन्य ठाकुरदीन के पास पहुंचे तो उन्होंने उसे मृत पाया। प्रति-परीक्षा में, बचाव पक्ष अभि.सा.-4 कड़ोरा की गवाही को झुठलाने और खंडित करने वाली कोई सामग्री निकाल नहीं सका बल्कि अभि.सा.-4 कड़ोरा की गवाही घटना का विश्वसनीय चित्रण थी, जिसने अभियोजन पक्ष के संस्करण में गति जोड़ी। उसने घटना के

समय घटनास्थल पर अपनी उपस्थिति सिद्ध की और सभी पूछताछ का सरल और स्वाभाविक तरीके से उत्तर दिया।

19. अभियोजन पक्ष ने 25.3.1983 को कांस्टेबल 381 सिद्धनाथ तिवारी को अभि.सा.-5 के रूप में भी परीक्षित किया। उसने गवाही दी कि वह 25.03.1983 को पुलिस स्टेशन कड़ोरा में कांस्टेबल मोहर्रिर के रूप में तैनात था। उसने घनजुआ के मौखिक बयान पर उसके द्वारा लिखी गई चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श क-5 को सिद्ध किया। उक्त सूचना को कायमी जीडी नंबर 13 में कॉपी किया गया, जिसे प्रदर्श क-6 के रूप में चिह्नित किया गया है। 27.11.1982 को सुबह 10.15 बजे अन्वेषण अधिकारी/थानाध्यक्ष ए.एस. तोमर ने अपराध संकेती वस्तुओं अर्थात रक्त से सनी मिट्टी, सादी मिट्टी, टूटा हंसिया, धोती, जूते व अन्य वस्तुओं को सील बंद कवर में उसे सौंपा था। उसने बताया कि 26.11.1982 को लगभग 10.30 बजे थानाध्यक्ष घटनास्थल का निरीक्षण करने के लिए गए थे। थानाध्यक्ष 26.11.1982 को पुलिस स्टेशन वापस नहीं आए। वे 27.11.1982 को पुलिस स्टेशन वापस आए। प्रथम सूचना 26.11.1982 को थानाध्यक्ष की उपस्थिति में दर्ज की गई थी। चौकीदार दिव्या भी सूचनाकर्ता के साथ थे। इस घटना से संबंधित प्रथम सूचना रिपोर्ट 26.11.1982 को 12.20 बजे संबंधित अधिकारियों और इलाका मजिस्ट्रेट को भेजी गई थी। उक्त रिपोर्ट कांस्टेबल 294 श्याम किशोर के माध्यम से भेजी गई थी। 26.11.1982 को लगभग 21.45 बजे, उक्त कांस्टेबल विशेष रिपोर्ट देने के बाद पुलिस स्टेशन वापस आ गया। इस आशय की एक प्रविष्टि 26.11.1982 को जीडी नंबर 28 में की गई थी। उसने कहा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट 26.11.1982 को 12 बजे से पहले दर्ज की गई थी इस प्रकार बचाव पक्ष साक्षी 5 सिद्धनाथ तिवारी की गवाही में कोई कमी निकालने में सफल नहीं हुआ और अभियोजन पक्ष का संस्करण पूरी तरह से संदेह से ऊपर रहा।

20. (i) 25.3.1983 को अभियोजन पक्ष ने डॉ. एच.जी. गुप्ता, मेडिकल ऑफिसर जेल अस्पताल औरई को अभि.सा.-6 के रूप में परीक्षित किया, जिन्होंने शपथ पर कहा कि 27.11.1983 को वे औरई में पुलिस और जेल अस्पताल के मेडिकल ऑफिसर के रूप में तैनात थे। दुर्भाग्यपूर्ण दिन पर, ठाकुरदीन पुत्र घनजुआ का शव कांस्टेबल सीपी 68 रामजी तिवारी और कांस्टेबल 468 ओम प्रकाश द्वारा लाया गया, जो पुलिस स्टेशन कड़ौरा में तैनात थे। ठाकुरदीन का शव सही-सलामत सील बंद कवर में था।

(ii) अभि.सा.-6, डॉ.श्री एच.जी. गुप्ता ने 27.11.1982 को लगभग 01.00 बजे मृतक ठाकुरदीन के शव की पोस्टमार्टम परीक्षा की। शव परीक्षण के दौरान डॉक्टर ने निम्नलिखित तथ्य पाए, जो पोस्टमार्टम रिपोर्ट में उल्लिखित हैं।

(iii) **<u>मृत्यु पूर्व चोटें</u>**: डॉक्टर ने शव परीक्षण के समय मृतक के शरीर पर निम्नलिखित मृत्यु पूर्व चोटें पाईं:

(1) बाएं कंधे की बाहरी तरफ ह्यूमरस हड्डी पर 7 सेमी x 3 सेमी x 2 सेमी का कटा हुआ घाव। इसके नीचे की हड्डी कट गई थी। घाव का शीर्ष पीछे की ओर था।

अनुवादित

(2) 2 सेमी x आधा सेमी का घर्षण, जो चोट नंबर 1 से ढाई सेमी ऊपर था।

(3) परिटल क्षेत्र पर खोपड़ी के बाईं ओर 14 सेमी x 4 सेमी x 3 सेमी का कटा हुआ घाव। परिटल हड्डी कट गई थी और घाव से मस्तिष्क बाहर आ रहा था। घाव बाएं कान के ऊपरी हिस्से से शुरू हुआ और सिर के मध्य और शीर्ष तक फैला हुआ था।

(4) 8 सेमी x डेढ़ सेमी x 3 सेमी का कटा हुआ घाव। यह खोपड़ी की हड्डी गहरा कटा हुआ घाव 8 सेमी x डेढ़ सेमी x 3 सेमी था। यह खोपड़ी की हड्डी गहरा था और बाएं मास्टॉइड और ऑक्सीपिटल हड्डी टूटी हुई थी। घाव से मस्तिष्क का पदार्थ बाहर आ रहा था।

(5) बाएं निचले जबड़े के कोण के ठीक नीचे 1 सेमी x 1 सेमी x 4 सेमी का छेद वाला घाव। किनारे साफ कटे हुए थे और दिशा दाहिनी ओर थी।

(6) 1 सेमी x 1 सेमी x 3 सेमी का छेद वाला घाव जो चोट नंबर 5 से 1 सेमी नीचे था। किनारे साफ कटे हुए थे और दिशा श्वासनली की ओर थी।

मृत्यु का कारण: अभि.सा.-6 डॉक्टर के मत में, मृतक ठाकुरदीन की मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व चोटों विशेष रूप से चोट नंबर 3 और 4 के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव था।

अभि.सा.-6 डॉ.एच.जी. गुप्ता के अनुसार, ठाकुरदीन की मृत्यु शव परीक्षण से लगभग डेढ़ दिन पहले हुई थी। उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि उनकी मृत्यु 26.11.1982 को सुबह 07 से 07.30 बजे हुई हो सकती है। डॉक्टर ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट को प्रदर्श क-7 के रूप में सिद्ध किया।

पोस्टमार्टम रिपोर्ट दर्शाती है कि मृतक का पेट खाली था और छोटी आंत में अर्ध-तरल पदार्थ मौजूद था। बड़ी आंत ठोस मल से भरी हुई थी। मूत्राशय में 100 ग्राम मूत्र था।

डॉक्टर ने मत दिया कि कटे हुए घाव तब्बल से हो सकते थे। छेद वाले घाव भी तब्बल से हो सकते थे, यदि तब्बल का एक नुकीला और तेज धार वाला सिरा हो। बचाव पक्ष चिकित्सा रिपोर्ट को खारिज करने के लिए कुछ भी नहीं निकाल सका, जो अभियोजन पक्ष के संस्करण के अनुरूप रही।

अपनी प्रति-परीक्षा में अभि.सा.-6 डॉ. एच.जी. गुप्ता ने एक जगह कहा है कि मृतक की मृत्यु सुबह (25/26 की रात में) लगभग 03.00 से 04.00 बजे भी होना संभव है।

21. (i) अभि.सा.-7 अर्जुन सिंह तोमर थानाध्यक्ष पुलिस स्टेशन कड़ौरा जिला जालौन औरई में, मामले के अन्वेषण अधिकारी हैं। उनका अभियोजन पक्ष द्वारा 11.4.1983 को परीक्षण किया गया। उन्होंने गवाही दी कि प्रथम सूचना रिपोर्ट उनकी उपस्थिति में दर्ज की गई थी। उक्त घटना के संबंध में सूचना मिलने पर, उन्होंने मामले का अन्वेषण शुरू किया। अन्वेषण के दौरान, उन्होंने संबंधित पुलिस स्टेशन पर शिकायतकर्ता का बयान दर्ज किया। तत्पश्चात वे घटनास्थल पर गए और कड़ोरा, रसना और भूरा आदि नामक साक्षियों का बयान दर्ज किया। उन्होंने शिकायतकर्ता घनजुआ के बताने पर साइट प्लान, फोटो लाश, चालान लाश तैयार किया और

रक्त से सनी और सादी मिट्टी, जूते, धोती, कुर्ता, तहमद भी कब्जे में लिया। उन्होंने जूतों की एक जोड़ी, टूटा हंसिया, धोती और मृतक ठाकुरदीन की अन्य अपराध संकेती वस्तुएं भी बरामद कीं। उन्होंने इन वस्तुओं के बरामदगी मेमो तैयार किए। उन्होंने कहा कि सभी अपराध संकेती वस्तुएं घटनास्थल से एकत्र की गईं। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि उन्होंने रक्त से सनी वस्तुओं को रासायनिक विश्लेषक के पास भेजा था। रक्त से सनी मिट्टी को लाल कंटेनर में रखा गया था और सादी मिट्टी को हरे कंटेनर में रखा गया था। अन्वेषण के दौरान यह भी सामने आया कि जनकिया ने अपनी कुछ भूमि शंभू के पक्ष में बेची थी। घटना से एक महीने पहले उसके द्वारा खरीदी गई भूमि पर शंभू का नाम दर्ज किया गया था। अन्वेषण अधिकारी ने विवादित संपत्ति के संबंध में घनजुआ से कोई राजस्व पत्र एकत्र नहीं किया। अन्वेषण अधिकारी द्वारा एकत्र की गई जानकारी के अनुसार, जनकिया ने शंभू को लगभग दस एकड़ से अधिक भूमि बेची थी।

(ii) अन्वेषण के दौरान, अन्वेषण अधिकारी की जानकारी में यह आया कि तब्बल कुल्हाड़ी से बड़ा होता है लेकिन भाले से छोटा होता है। तब्बल के दोनों तरफ नुकीली धार होती है।

(iii) साइट प्लान शिकायतकर्ता के बताने पर तैयार किया गया था। अन्वेषण अधिकारी द्वारा विधिवत तैयार और हस्ताक्षरित साइट प्लान की, उन्होंने पहचान की। उन्होंने साइट प्लान को प्रदर्श क-8 के रूप में सिद्ध किया।

22. रासायनिक विश्लेषक की रिपोर्टें भी हैं, जिन्हें रक्त से सनी अपराध संकेती वस्तुएं रासायनिक विश्लेषण के लिए भेजी गई थीं। इन रिपोर्टों के अनुसार, रक्त से सनी वस्तुओं अर्थात धोती, कुर्ता, तहमद, अंडरवियर पर मानव रक्त के धब्बे पाए गए, जो मृतक ठाकुरदीन ने दुर्भाग्यपूर्ण दिन पर पहने हुए थे। इसी तरह के रक्त के धब्बे रक्त से सनी मिट्टी और हंसिया पर पाए गए, जो अन्वेषण अधिकारी ने घटनास्थल से एकत्र किए थे। ये सभी रक्त से सनी वस्तुएं रक्त समूह 'ए' से संबंधित थीं।

23. प्रदर्श क-14 सीएच फॉर्म नंबर 5 में नोटिस है। टिप्पणी कॉलम में एक नोट दिखाया गया है कि श्रीमती जनकिया ने शंभू से पुनर्विवाह किया था और रघुबीर की भूमि पर, घनजुआ का कब्जा दर्ज किया गया था। यह नोटिस 22.07.1982 को जारी किया गया था और काश्तकार का नाम जनकिया, रघुबीर की विधवा के रूप में दिखाया गया है।

24. इस स्तर पर बचाव पक्ष के साक्ष्य पर भी चर्चा करना उचित होगा। बचाव पक्ष ने कृष्ण लाल पुत्र बलदेव प्रसाद को बचाव पक्ष साक्षी 1 के रूप में परीक्षित किया है। उन्होंने कहा कि उन्होंने 05.01.1983 को कानाखेड़ा निवासी कड़ोरा और रसना के शपथपत्र तैयार किए हैं। उन्होंने उनके निर्देशों के अनुसार शपथपत्र तैयार किए। वे इस तथ्य के संबंध में शपथपत्र तैयार करना चाहते थे कि उन्होंने घटना नहीं देखी है और उन्हें अभियुक्त शंभू और लखन के विरुद्ध आरोप पत्र में गलत तरीके से साक्षी के रूप में नामित किया गया है। अपनी प्रति-परीक्षा में उन्होंने स्वीकार किया कि ये बयान देने वाले उन्हें पहले से जाने जाते थे क्योंकि वे उनके

पड़ोसी वकील से मिलने आते थे लेकिन वे कोई उदाहरण देने में विफल रहे, जब ये बयान देने वाले पहले उनसे मिले थे। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि रसना और कड़ोरा अनपढ़ हैं। वे पहले किसी अन्य काम के लिए कभी नहीं आए। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि उन्होंने तैयार किए गए नोटरी शपथपत्र के साथ अपनी वकालतनामा संलग्न की है। वे यह बताने में असमर्थ हैं कि किस न्यायालय में ये शपथपत्र दाखिल किए गए थे।

25. बचाव पक्ष साक्षी 2 मनीराम अहिरवार को भी बचाव पक्ष द्वारा परीक्षित किया गया है। उन्होंने कहा कि उन्होंने 05.01.1983 को रसना और कड़ोरा के शपथपत्र तैयार किए हैं। कृष्ण लाल (बचाव पक्ष साक्षी 1) ने उनकी पहचान की थी। अपनी प्रति-परीक्षा में उन्होंने कहा है कि ये बयान देने वाले उन्हें पहले से नहीं जानते थे। बचाव पक्ष साक्षी 1 कृष्ण लाल और मनीराम अहिरवार बचाव पक्ष साक्षी 2 का बयान अत्यधिक संदिग्ध है। क्योंकि वे बयान देने वाले रसना और कड़ोरा को अनपढ़ व्यक्ति बताते हैं लेकिन उन्होंने कथित शपथपत्र पर हस्ताक्षर किए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये शपथपत्र बयान देने वालों के अतिरिक्त किसी और ने किसी गुप्त उद्देश्य के लिए तैयार करवाए हैं। इसलिए ये शपथपत्र बिल्कुल भी विश्वास नहीं दिलाते हैं और बचाव पक्ष की मदद भी नहीं करते हैं, विशेष रूप से जब रसना और कड़ोरा की मुकदमे के दौरान न्यायालय में परीक्षित किया गया है।

26. परमसुख की बचाव पक्ष द्वारा बचाव पक्ष अभि.सा.-3 के रूप में परीक्षित किया गया है। उन्होंने कहा कि वे छूंक के निवासी हैं। उन्होंने यह बताने की कोशिश की कि जिस दिन घटना हुई थी, उस दिन दोनों अभियुक्त गांव कानाखेड़ा में नहीं थे। हालांकि, इस संबंध में बचाव पक्ष साक्षी 3 के बयान पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वे स्वयं एक अन्य गांव के निवासी हैं और गांव कानाखेड़ा में उनकी उपस्थिति संदिग्ध है। उन्होंने कहा कि वे श्रीमती जनकिया की कृषि भूमि की देखभाल कर रहे हैं और उसका प्रबंधन कर रहे हैं। वे उस गांव के निवासी हैं, जिसमें उनके मामा शंभू रहते थे, जो उनकी बिरादरी के सदस्य हैं। साक्षी यह नहीं बता सका कि जनकिया अपनी कृषि भूमि पर कितना भूमि राजस्व देती है। वे कथित जनकिया की उक्त भूमि की सीमाओं को भी बताने में असमर्थ हैं। सभी बातें उनके इस बयान के बारे में संदेह पैदा करती हैं कि वे जनकिया की भूमि का प्रबंधन करते हैं और शंभू ने जनकिया से शादी नहीं की थी या अभियुक्त दुर्भाग्यपूर्ण दिन पर गांव कानाखेड़ा में मौजूद नहीं थे। इस प्रकार उनका बयान बिल्कुल भी विश्वास नहीं जगाता है और विश्वसनीय नहीं है। अभियोजन पक्ष के साक्षियों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि शंभू ने जनकिया से शादी की थी और उसके बाद शंभू गांव कानाखेड़ा में रहने लगा, हालांकि हिंदू रीति के अनुसार विवाह वैध नहीं था लेकिन यह आवश्यक भी नहीं था। साक्ष्य से यह स्पष्ट रूप से स्थापित है कि शंभू श्रीमती जनकिया के साथ रह रहा था और उसने जनकिया से भूमि भी खरीदी थी, जो मूल रूप से रघुबीर, घनजुआ के भतीजे की थी। यह भी स्थापित है कि घनजुआ जनकिया की उक्त भूमि खरीदने में रुचि रखता था।

27. इस मोड़ पर, हम विद्वान न्याय-मित्र और विद्वान अ.शा.अधि. की विभिन्न प्रस्तुतियों का उल्लेख करने और उन्हें दोनों पक्षों के ऊपर चर्चा किए गए साक्ष्य की कसौटी पर परखने का विचार रखते हैं।

28. अभियुक्त अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान न्याय-मित्र ने प्रस्तुत किया कि घटना 26.11.1982 को लगभग 7.30 बजे हुई होने का आरोप है और प्रथम सूचना रिपोर्ट उसी दिन लगभग 10.15 बजे दर्ज की गई है जबकि घटनास्थल से पुलिस स्टेशन की दूरी लगभग 10 किलोमीटर है। इस प्रकार, स्पष्ट रूप से प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में ढाई घंटे की देरी है। विद्वान न्याय-मित्र ने यह भी प्रस्तुत किया कि मृतक की सुबह 3.00 से 4.00 बजे के बीच हत्या की गई थी और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में देरी को पूरा करने के लिए यह दर्शाया गया है कि वह लगभग 7.00 से 7.30 बजे मरा। अभि.सा.-6 डॉ. एच.जी. गुप्ता ने अपनी परीक्षा में कहा है कि मृतक की मृत्यु लगभग 07.00 से 07.30 बजे या 03 से 04 बजे भी हो सकती थी। इस प्रकार, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में लगभग 30 घंटे की देरी है। प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में इस अत्यधिक देरी के लिए कोई स्वीकार्य और ठोस स्पष्टीकरण नहीं है। प्रथम सूचना रिपोर्ट काफी विचार-विमर्श और परामर्श के बाद अपीलकर्ताओं का नाम लेकर दर्ज की गई प्रतीत होती है, जिससे व्यक्तिगत बदला लिया जा सके। विद्वान अ.शा.अधि. ने अभियुक्त अपीलकर्ताओं के लिए उपस्थित विद्वान न्याय-मित्र के तर्कों का खंडन किया।

29. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि आपराधिक विधि को क्रियाशील करने वाला प्रारंभिक कदम, प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रथम सूचना रिपोर्ट) दर्ज करना है। यह सूचना पुलिस अधिकारी को मौखिक या लिखित रूप में दी जा सकती है। यदि यह मौखिक रूप से प्रदान की जाती है, तो इसे लिखित रूप में परिवर्तित किया जाना चाहिए। अपराध कारित होने के बाद, जितनी जल्दी हो सके प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जानी चाहिए, हालांकि ऐसा करने के लिए किसी भी विधि या विनियम में निर्दिष्ट कोई समय प्रतिबंध नहीं है। न्यायाधीशों का निर्धारण कि क्या स्वीकार्य समय है, प्रत्येक मामले के तथ्यों के अनुसार भिन्न होगा। ***बाथुला नागमल्लेश्वर राव व अन्य बनाम राज्य द्वारा लोक अभियोजक 2008 (2) CRIMES 188 (एससी)*** में सुप्रीम कोर्ट ने उद्घोषणा की कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में उचित देरी घातक नहीं है। ***अप्पुकुट्टन बनाम राज्य, 1989 Cri LJ 2362*** में सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय दिया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट तो तुरंत दर्ज करने और इसे तात्कालिक रूप से मजिस्ट्रेट को सूचित करने का मुख्य उद्देश्य किसी भी अलंकरण से बचना और मजिस्ट्रेट को जांच के बारे में सूचित करना है। ***अमर सिंह बनाम बलविंदर सिंह व अन्य, (2003) 2 SCC 518*** में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि ऐसा कोई कठोर और सख्त नियम नहीं है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में किसी भी देरी से अभियोजन पक्ष का मामला स्वतः संदिग्ध हो जाएगा। इस प्रकार, विलंबित प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के बिंदु पर विधि सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न उद्घोषणाओं में बिल्कुल स्पष्ट है। आम तौर पर न्यायालयों ने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में देरी को संदेह के साथ देखा क्योंकि अभियुक्त के विरुद्ध साक्ष्य की रचना की संभावना है। दूसरी ओर समय पर रिपोर्ट दर्ज करना अभियोजन पक्ष के संस्करण की सत्यता की असंदिग्ध गारंटी है। इसलिए अभियोजन पक्ष का यह कर्तव्य है कि वह देरी को संतोषजनक ढंग से समझाए और यहां तक कि एक लंबी देरी को भी माफ किया जा सकता है, यदि सूचनाकर्ता के पास अभियुक्त को फंसाने का कोई हेतुक नहीं है।

30. (i) वर्तमान मामले में तथ्यों के सभी अभियोजन पक्ष के साक्षियों अर्थात अभि.सा.-2 घनजुआ, अभि.सा.-3 रसना और अभि.सा.-4 कड़ोरा ने स्पष्ट रूप से कहा है कि घटना 26.11.1982 को लगभग 07.00 से 07.30

बजे हुई। हालांकि ये साक्षी अनपढ़ हैं, लेकिन चूंकि घटना सुबह के समय हुई, कोई भी समझ सकता है और घटना के समय का ठीक से अनुमान लगा सकता है।

(ii) अभि.सा.-2 सूचनाकर्ता घनजुआ ने कहा कि मृतक के शव से हटकर और उसे वहां एकत्रित गांव के लोगों को सौंपकर, वह चौकीदार के साथ पुलिस स्टेशन कड़ौरा गया, जो घटनास्थल से लगभग 10 किमी दूर है, और पुलिस स्टेशन पर घटना के बारे में मौखिक रूप से सूचित किया। अभि.सा.-5 सीपी एस.एन. तिवारी जिन्होंने मौखिक सूचना को कायमी जीडी प्रदर्श क-6 और चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श क-5 में लिखा, जिसमें यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि घटना 26.11.1982 को लगभग 07.00 से 07.30 बजे हुई और उसी दिन सुबह 10.15 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। उन्होंने यह भी कहा कि उन्होंने उसी दिन लगभग 12.30 बजे उच्च प्राधिकारी और संबंधित मजिस्ट्रेट को अपराध की रिपोर्ट भेजी। अभि.सा.-7 अन्वेषण अधिकारी ने हेड मोहर्रिर अभि.सा.-5 के बयान की पुष्टि की। इस प्रकार, 26.11.1982 को लगभग 7.30 बजे हुई एक घटना की प्रथम सूचना रिपोर्ट तुरंत दर्ज की गई है और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में कोई अनुचित देरी नहीं दिखाई देती है। इन सभी तथ्यों का परिणामी प्रभाव यह है कि मामले में उचित समय में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में कोई देरी नहीं है, क्योंकि तथ्य और परिस्थितियां अपने आप कहानी बताती हैं।

(iii) विद्वान न्याय-मित्र ने अभि.सा.-6 डॉ.एच.जी. गुप्ता की प्रति-परीक्षा का उल्लेख करते हुए तर्क दिया कि मृतक की हत्या 25/26 नवंबर 1982 की रात में 3 से 4 बजे के बीच कुछ बदमाशों द्वारा हुई थी। इस प्रकार, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में लगभग 7 घंटे की देरी है। विद्वान अ.शा.अधि. ने तर्क का खंडन किया। उन्होंने अभियोजन पक्ष के समर्थन में विभिन्न प्रस्तुतियां और मामले की आसपास की परिस्थितियां प्रस्तुत कीं।

(iv) एक ओर डॉ. एच.जी. गुप्ता ने स्पष्ट रूप से कहा है कि मृतक की मृत्यु 26.11.1982 को 07 से 07.30 बजे के बीच हुई। डॉक्टर का यह बयान अन्य अभियोजन पक्ष के साक्षियों द्वारा अच्छी तरह से पुष्टि किया गया है और संपूर्ण साक्ष्य को चक्षुदर्शी साक्षियों के बयानों और आसपास की परिस्थितियों के प्रकाश में पढ़ा जाना चाहिए।

(v) ऐसी परिस्थितियां हैं, जो 26.11.1982 को 03 से 04 बजे मृत्यु होने और फिर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में लगभग 30 घंटे की देरी की संभावना को खारिज करती हैं। उदाहरण के लिए, निर्विवाद रूप से घटना नवंबर के महीने में हुई अर्थात सर्दियों का मौसम। घटना जगन्नाथ सिंह वर्मा के खेत में हुई, जो गांव के करीब है। कोई कारण/स्पष्टीकरण नहीं है कि मृतक सर्दियों के मौसम में रात में लगभग 03 से 04 बजे घटनास्थल पर क्यों होगा। इसके अतिरिक्त चिकित्सा रिपोर्ट यह सुझाव नहीं देती है कि घटना 07.30 बजे नहीं हो सकती थी। एक और परिस्थिति पर ध्यान दिया जा सकता है कि मृतक ठाकुरदीन घटना के समय अपने साथ एक हंसिया ले जा रहा था क्योंकि वह मवेशियों के लिए हरा चारा इकट्ठा करने जा रहा था। हंसिया प्रदर्श-1 घटनास्थल से बरामद किया गया था। इन परिस्थितियों को देखते हुए सिर्फ इसलिए कि डॉक्टर कहते हैं कि

घटना 03 या 04 बजे भी हो सकती थी, इसका मतलब यह नहीं है कि यह वास्तव में उस समय हुई। इस प्रकार, बचाव पक्ष का संस्करण कि मृतक की मृत्यु 26.11.1982 को 03.00 या 04.00 बजे हुई, आधारहीन प्रतीत होता है। इस प्रकार, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में देरी के बारे में न्याय-मित्र का तर्क टिकाऊ नहीं है और किसी भी बल से रहित है।

31. विद्वान न्याय-मित्र ने आगे प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन करने के लिए कोई स्वतंत्र और निष्पक्ष साक्षी नहीं है। अभियोजन पक्ष के साक्षियों की गवाही इसकी सत्यता और सच्चाई को मजबूत करने के लिए कोई विश्वास नहीं जगाती है। साक्षियों के बयानों में गंभीर असंगतियां और विरोधाभास हैं, जो संदेह को जन्म देते हैं। अभि.सा.-3 रसना और अभि.सा.-4 कड़ोरा ने अपने शपथपत्र इस आशय के दिए थे कि उन्होंने घटना नहीं देखी थी। घटनास्थल पर अभियोजन पक्ष के साक्षियों की उपस्थिति अत्यधिक संदिग्ध और अविश्वसनीय है। अभियोजन पक्ष के साक्षियों के बयान में गंभीर संघर्ष और विरोधाभास हैं, जिनके द्वारा उनकी गवाही अविश्वसनीय बना दी गई है। अभियोजन पक्ष के संस्करण में गंभीर असंगतता और विसंगति है। कुछ अभियोजन पक्ष के साक्षियों ने अपने बयान में सुधार किए थे और घटना के तरीके को इस तरह से बताया था, जो सामान्य परिश्रम और विवेक से नहीं माना जा सकता है। विद्वान न्याय-मित्र ने यह भी प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष ने अपने सर्वोत्तम साक्षियों जनकिया और गयादीन को रोक रखा था, जिनका न्यायालय के समक्ष परीक्षण नहीं किया गया। विद्वान अ.शा.अधि. ने विद्वान न्याय-मित्र के तर्क का बलपूर्वक विरोध किया। विद्वान अ.शा.अधि. ने विद्वान न्याय-मित्र द्वारा दिए गए तर्क का बलपूर्वक विरोध किया। अभियोजन पक्ष के साक्षियों की करीबी जांच से यह स्थापित होता है कि उनका साक्ष्य सभी मामलों में भरोसेमंद है।

32. विद्वान न्याय-मित्र और विद्वान अ.शा.अधि. द्वारा दी गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों के संदर्भ में यह उल्लेख किया गया है कि अभियोजन पक्ष ने तथ्यों के चार साक्षियों का परीक्षण किया है। अभि.सा.-1 भूरा, शिकायतकर्ता घनजुआ की बिरादरी से संबंधित है, अभि.सा.-2 घनजुआ शिकायतकर्ता और मृतक ठाकुरदीन का पिता है। अभि.सा.-3 रसना, अभि.सा.-2 घनजुआ के साथ एक सह-पीड़ित है, जिस पर अपीलकर्ता शंभू ने कट्टा से उन्हें मारने के आशय से गोली चलाई थी और जो गोली को बाल-बाल बचाते हुए बच गए। इस प्रकार, शंभू ने उनकी हत्या करने का प्रयास किया। आगे बढ़ने से पहले संबंधित/हितबद्ध और घायल साक्षी के साक्ष्य मूल्य के बिंदु पर विधि पर चर्चा करना दिलचस्प होगा।

33. **कृष्ण मोची व अन्य बनाम बिहार राज्य (2002) 6 SCC 81** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक मुकदमे में साक्ष्य की विवेचना करते समय आपराधिक न्यायालयों द्वारा अपनाए जाने वाले यथार्थवादी दृष्टिकोण पर जोर दिया, जिसका प्रस्तर 32 निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"32..... न्यायालय को साक्ष्य की विवेचना करते समय जीवन की इन वास्तविकताओं को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए और हाथी दांत की मीनार में बैठकर एक अवास्तविक दृष्टिकोण नहीं अपना सकता है.. इन दिनों जब अपराध बड़े पैमाने पर फैल रहा है और मानवता पीड़ित है और समाज इससे इतना प्रभावित है, न्यायालयों के

कर्तव्य और जिम्मेदारियां बहुत अधिक हो गई हैं। अब यह कहावत "सौ दोषी व्यक्तियों को दोषमुक्त कर दिया जाए, लेकिन एक भी निर्दोष को दोषसिद्ध नहीं ठहराया जाए" व्यवहार में दुनिया भर में बदल रही है और न्यायालयों को यह स्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ा है कि "समाज गलत दोषसिद्धि से पीड़ित होता है और यह गलत दोषमुक्ति बरी से भी समान रूप से पीड़ित होता है"..”

34. **मसालती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, AIR 1965 SC 202** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर 14 में निम्नानुसार टिप्पणी की:

“14. लेकिन यह सोचना हमारे विचार में अनुचित होगा कि साक्षियों द्वारा दिए गए साक्ष्य को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए कि यह पक्षपाती या हितबद्ध साक्षियों का साक्ष्य है।.. इस एकमात्र आधार पर कि यह पक्षपाती है, ऐसे साक्ष्य की यांत्रिक अस्वीकृति हमेशा न्याय की विफलता की ओर ले जाएगी।“

35. **दरया सिंह बनाम पंजाब राज्य, AIR 1965 SC 328** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी दृष्टिकोण लिया है कि संबंधित साक्षी का मतलब जरूरी नहीं है या हितबद्ध साक्षी के समान है। एक साक्षी को केवल तभी हितबद्ध कहा जा सकता है, जब वह मुकदमे के परिणाम से कुछ लाभ प्राप्त करता है; एक दीवानी मामले में एक डिक्री, या एक आपराधिक मुकदमे में किसी व्यक्ति को दंडित होते देखने में, जिसका प्रस्तर 6 निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

“6. सिद्धांत रूप से, हालांकि, यह स्वीकार करना मुश्किल है कि यदि एक साक्षी को मृतक का रिश्तेदार दिखाया गया है और यह भी दिखाया गया है कि उसने हमलावर के प्रति पीड़ित की शत्रुता साझा की, तो उसके साक्ष्य को तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक कि यह महत्वपूर्ण विवरणों पर पुष्टि नहीं हो जाती।

36. सर्वोच्च न्यायालय ने **आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एस. मतप्पा व अन्य, (2006) 4 SCC 512** में टिप्पणी की कि अब यह लगभग एक फैशन है कि जनता विशेष रूप से आपराधिक मामलों में न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने और गवाही देने से अनिच्छुक है और इस कारण से मामलों को वर्षों और वर्षों तक घसीटा जाता है, जिसका प्रस्तर 6 निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

“6. .. अब तक, यह विधि का एक अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि एक साक्षी की गवाही जो अन्यथा विश्वास को प्रेरित करती है, इस आधार पर खारिज नहीं की जा सकती कि वह मृतक का रिश्तेदार होने के कारण एक हितबद्ध साक्षी है। एक करीबी रिश्तेदार, जो एक बहुत ही स्वाभाविक साक्षी है, उसे हितबद्ध साक्षी नहीं कहा जा सकता। हितबद्ध शब्द का अर्थ है कि संबंधित व्यक्ति को किसी न किसी तरह से अभियुक्त व्यक्ति को दोषी ठहराए जाते देखने में कुछ प्रत्यक्ष रुचि होनी चाहिए या तो शत्रुता या कुछ अन्य कारणों से।“

37. **पुलिचेर्ला नागराजू @ नागराजा रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2006) 11 SCC 444** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर 16 में निम्नानुसार धारित किया है:

"16. इस मामले में, हम पाते हैं कि विचारण न्यायालय ने अभि.सा.-1 और अभि.सा.-2 के साक्ष्य को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया था कि वे मृतक के भाई और पिता होने के कारण हितबद्ध साक्षी थे। लेकिन यह अच्छी तरह से स्थापित है कि एक साक्षी के साक्ष्य को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि वह या तो पक्षपाती या हितबद्ध या मृतक से निकटता से संबंधित है, यदि यह अन्यथा, भरोसेमंद और विश्वसनीय पाया जाता है। इसे केवल अधिक देखभाल और सावधानी के साथ परीक्षण की आवश्यकता है, जिससे न तो दोषी बच सके और न ही निर्दोष को गलत तरीके से दोषी ठहराया जाए। यदि ऐसी सावधानीपूर्वक जांच पर, साक्ष्य विश्वसनीय और संभावित पाया जाता है, तो इस पर कार्रवाई की जा सकती है। यदि यह असंभावित या संदिग्ध पाया जाता है, तो इसे खारिज किया जाना चाहिए। जहां साक्षी के पास अभियुक्त को झूठा फंसाने का हेतुक है, वहां गंभीर विवरणों के संबंध में उसकी गवाही की पुष्टि होनी चाहिए इससे पहले कि इसे स्वीकार किया जाए।.."

38. **जयाबालन बनाम पांडिचेरी संघ राज्य क्षेत्र**, 2010 (68) ACC 308 (एससी) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर 21 में निम्नानुसार धारित किया:

"21.हम इस विचार के हैं कि उन मामलों में जहां न्यायालय को हितबद्ध साक्षियों के साक्ष्य से निपटने के लिए कहा जाता है, ऐसे साक्षियों के साक्ष्य की विवेचना करते समय न्यायालय का दृष्टिकोण पांडित्यपूर्ण नहीं होना चाहिए। न्यायालय को हितबद्ध साक्षियों द्वारा दिए गए साक्ष्य की विवेचना और स्वीकार करने में सावधान रहना चाहिए लेकिन न्यायालय को ऐसे साक्ष्य के प्रति संदिग्ध नहीं होना चाहिए। न्यायालय का प्राथमिक प्रयास स्थिरता की तलाश करना होना चाहिए। एक साक्षी के साक्ष्य को केवल इसलिए अनदेखा या खारिज नहीं किया जा सकता है कि यह किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा दिया गया है, जो पीड़ित से निकटता से संबंधित है।

39. **धरणीधर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 7 SCC 759** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि कोई कठोर और तेज नियम नहीं है कि परिवार के सदस्य घटना के सच्चे साक्षी कभी नहीं हो सकते हैं और वे हमेशा न्यायालय के समक्ष झूठी गवाही देंगे। यह हमेशा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

13. इसी तरह का दृष्टिकोण इस न्यायालय ने **राम भरोसे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** [AIR 2010 SC 917] में लिया था, जहां न्यायालय ने विधि के सिद्धांत को बताया कि मृतक का एक करीबी रिश्तेदार, अपने आप में, एक हितबद्ध साक्षी नहीं बन जाता है। एक हितबद्ध साक्षी वह है, जो प्रतिशोध या शत्रुता या विवादों के कारण किसी व्यक्ति की दोषसिद्धि में रुचि रखता है और केवल उस आशय से न्यायालय के समक्ष गवाही देता है और न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए नहीं। एक हितबद्ध साक्षी के साक्ष्य की विवेचना से संबंधित

विधि अच्छी तरह से स्थापित है, जिसके अनुसार, एक हितबद्ध साक्षी के संस्करण को फेंका नहीं जा सकता है, लेकिन इसे स्वीकार करने से पहले सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए।

14. उपरोक्त निर्णयों के प्रकाश में, यह स्पष्ट है कि कथित हितबद्ध साक्षियों के बयानों पर अभियोजन पक्ष की कहानी के समर्थन में न्यायालय द्वारा सुरक्षित रूप से भरोसा किया जा सकता है। लेकिन यह देखभाल के साथ किया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आपराधिक न्याय प्रशासन को उन व्यक्तियों द्वारा कमजोर नहीं किया जाता है, जो मृतक से निकटता से संबंधित हैं। जब उनके बयानों को अन्य साक्षियों, विशेषज्ञ साक्ष्य और मामले की परिस्थितियों द्वारा पुष्टि मिलती है, तो स्पष्ट रूप से साक्ष्य की श्रृंखला के पूरा होने का चित्रण होता है जो अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करता है, तो हम कोई कारण नहीं देखते हैं कि तथाकथित 'हितबद्ध साक्षियों' के बयान पर न्यायालय द्वारा भरोसा क्यों नहीं किया जा सकता है।

40. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **बाबन शंकर दफल व अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य**, 2025 SCC Online SC 137 में साक्षी की गवाही के संबंध में हाल ही में दिए गए निर्णय में, जिसे केवल पीड़ित के साथ संबंध के कारण खारिज नहीं किया जाना चाहिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने, प्रस्तर 27 और 28 में, निम्नानुसार धारित किया है:

"27.... न्यायालय निर्णयों की श्रृंखला में कि केवल अगर एक साक्षी रिश्तेदार है, तो उनकी गवाही को उस आधार पर अकेले खारिज नहीं किया जा सकता है।

28. आपराधिक मामलों में, साक्षियों की विश्वसनीयता, विशेष रूप से वे जो पीड़ित के करीबी रिश्तेदार हैं, अक्सर जांच की जाती है। हालांकि, रिश्तेदार होना स्वचालित रूप से एक साक्षी को "हितबद्ध" या पक्षपाती नहीं बनाता है। "हितबद्ध" शब्द उन साक्षियों को संदर्भित करता है जिनका परिणाम में व्यक्तिगत हित है, जैसे कि प्रतिशोध की इच्छा या शत्रुता या व्यक्तिगत लाभ के कारण अभियुक्त को झूठा फंसाना। दूसरी ओर, एक "संबंधित" साक्षी कोई ऐसा व्यक्ति है, जो स्वाभाविक रूप से अपराध के दृश्य पर मौजूद हो सकता है, और उनकी गवाही को केवल पीड़ित के साथ उनके संबंध के कारण खारिज नहीं किया जाना चाहिए। न्यायालयों को उन्हें अविश्वसनीय के रूप में लेबल करने के बजाय उनके बयानों की विश्वसनीयता, स्थिरता और सुसंगतता का आकलन करना चाहिए।

41. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **शाहजा @ शाहजन इस्माइल मोहम्मद बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2023) 12 SCC 558** में दिए गए हालिया निर्णय में टिप्पणी की गई है कि चक्षुदर्शी साक्ष्य की विवेचना एक कठिन कार्य है और आपराधिक मामले में चक्षुदर्शी साक्ष्य की विवेचना के लिए कोई निश्चित या सीधा सिद्धांत नहीं है। चक्षुदर्शी साक्ष्य के न्यायिक रूप से शामिल सिद्धांत चक्षुदर्शी साक्ष्य की विवेचना में विधि और दिशानिर्देश प्रदान करते हैं। मामूली विवरणों के मामले में, मामूली भिन्नताओं या कमियों के आधार पर साक्ष्य को खारिज

करना उचित नहीं होगा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसे दिशानिर्देशों की एक लंबी सूची गिनाई है, जो बहुत मदद की है।

29.2... मामूली विवरणों के मामले में, मामूली भिन्नताओं या कमियों के आधार पर साक्ष्य को खारिज करना उचित नहीं होगा।..

29.3 जब चक्षुदर्शी साक्षी का विस्तार में परीक्षण किया जाता है तो यह काफी संभव है कि वह कुछ विसंगतियां करे। लेकिन न्यायालयों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि केवल तभी जब एक साक्षी के साक्ष्य में विसंगतियां उसके संस्करण की विश्वसनीयता के साथ असंगत हों कि न्यायालय उसके साक्ष्य को खारिज करने में उचित है।

29.4 मामले के मूल को छूने वाले मामूली मामलों पर मामूली विसंगतियां, यहां या वहां साक्ष्य से संदर्भ से बाहर फाड़े गए वाक्यों को लेकर हाइपर तकनीकी दृष्टिकोण, अन्वेषण अधिकारी द्वारा की गई कुछ तकनीकी त्रुटि को महत्व देना जो मामले की जड़ में नहीं जाती है, सामान्य रूप से साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज करने की अनुमति नहीं देगी।

42. **पहलवान सिंह व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2020 (6) ALJ 166** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार धारित किया:

"48. इस प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों के संदर्भ में, यह अब विधि की एक स्थापित स्थिति है कि अभियोजन पक्ष की कहानी के समर्थन में न्यायालय द्वारा हितबद्ध साक्षियों के बयानों पर सुरक्षित रूप से भरोसा किया जा सकता है। लेकिन यह देखभाल के साथ किया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आपराधिक न्याय प्रशासन को उन व्यक्तियों द्वारा कमजोर नहीं किया जाता है, जो मृतक से निकटता से संबंधित हैं। जब उनके बयानों को अन्य साक्ष्य, विशेषज्ञ साक्ष्य और मामले की परिस्थितियों द्वारा पुष्टि मिलती है, तो स्पष्ट रूप से साक्ष्य की श्रृंखला के पूरा होने का चित्रण होता है, जो अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करता है, तो कोई कारण नहीं है कि तथाकथित 'हितबद्ध साक्षियों' के बयान पर न्यायालय द्वारा भरोसा क्यों नहीं किया जा सकता है। यह विश्वास करना कठिन होगा कि करीबी रिश्तेदार असली अपराधी को छोड़ देंगे और निर्दोष व्यक्तियों को झूठा फंसाएंगे केवल इसलिए कि उनकी अभियुक्त व्यक्तियों के साथ शत्रुता है।

43. **जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य (2009) 9 SCC 719** में सर्वोच्च न्यायालय ने घायल अभियुक्त की गवाही को दिए गए विशेष साक्ष्य स्थिति को दोहराया। यह तथ्य कि साक्षी को घटना के समय और स्थान पर चोटें आईं, उनकी इस गवाही का समर्थन करता है कि वे घटना के दौरान मौजूद थे।

44. अभियुक्त अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान न्याय-मित्र ने **<u>वडिवेलु थेवर व अन्य बनाम मद्रास राज्य, AIR 1957 SC 614; मथुरा प्रसाद व अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1992 Supp (1) SCC</u>**

406 और उत्तराखंड राज्य बनाम दर्शन सिंह, (2020) 12 SCC 605 में सुप्रीम कोर्ट के निर्णयों पर भरोसा रखा, यह तर्क देने के लिए कि एक साक्षी की गवाही को तीन अलग श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

(i) पूरी तरह से विश्वसनीय,

(ii) पूरी तरह से अविश्वसनीय, और

(iii) न तो विश्वसनीय और न ही पूरी तरह से अविश्वसनीय।

45. ऐसे मामले में जहां गवाही पूरी तरह से विश्वसनीय है, किसी और पुष्टि की आवश्यकता नहीं होगी। यदि एक साक्षी की गवाही दूसरी श्रेणी में आती है तो इसे पुष्टि की आवश्यकता होगी। हालांकि, जब एक साक्षी की गवाही तीसरी श्रेणी में रखी जाती है, तो यह पूरी तरह से अविश्वसनीय है।

46. वर्तमान मामले में, अभि.सा.-1 भूरा की गवाही तीसरी श्रेणी में आएगी। उसने अपनी प्रति-परीक्षा में गवाही दी है कि घनजुआ (अभि.सा.-2 मृतक के पिता) और रसना उसकी बिरादरी से संबंधित हैं और वे उसके खानदान से आते हैं। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष के साक्षी मृतक और शिकायतकर्ता से संबंधित हैं, लेकिन मुख्य बिंदु यह है कि क्या उसका साक्ष्य भरोसेमंद और विश्वसनीय है। अभि.सा.-1 ने अपनी परीक्षा में स्पष्ट रूप से कहा है कि वह लगभग 12.30 बजे मृत शरीर के पास घटनास्थल पर पहुंचा और उसे गांव के लोगों से ठाकुरदीन की हत्या के बारे में पता चला। इस प्रकार, स्वीकार्य रूप से वह घटना का चक्षुदर्शी नहीं है। हालांकि, उसने स्वीकार किया कि उसने मृत शरीर की पूछताछ कार्यवाही में भाग लिया था और पूछताछ रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किए थे। अन्वेषण अधिकारी ने उसकी उपस्थिति में विभिन्न अपराध संकेती वस्तुएं ली थीं। उसने शवगृह का भी दौरा किया। इस तरह, हालांकि वह एक चक्षुदर्शी नहीं है लेकिन उसकी उपस्थिति में अन्वेषण अधिकारी द्वारा आयोजित बाद की कार्यवाही में भाग लिया है। स्वाभाविक रूप से, उसके बयान का उतना हिस्सा विश्वसनीय है।

47. अभि.सा.-2 घनजुआ को घटना का चक्षुदर्शी कहा जाता है। हालांकि, वह मृतक ठाकुरदीन का पिता है, लेकिन उसकी गवाही की करीबी जांच से पता चलता है कि उसकी उपस्थिति में घटनास्थल पर घटना हुई। उसने बिना किसी अलंकरण के स्वाभाविक तरीके से घटना का वर्णन किया है। उसने घटनास्थल पर देवी दयाल, रसना, विद्या सागर, नामतण सिंह और इलाके के अन्य लोगों की उपस्थिति भी सिद्ध की है। अभि.सा.-2 ने कहा है कि घटना के समय वह सुबह लगभग 7.30 बजे खेत में एक संकरी गली के रास्ते से शौच के लिए जा रहा था, जो जगन्नाथ वर्मा के खेत से होकर जा रही थी। साक्षी रसना भी शौच के लिए उसके पीछे से आ रहा था। ठाकुरदीन मवेशियों के लिए हरा चारा काटने के लिए उसके आगे जा रहा था। जब मृतक मधैया के बीच के खेत में पहुंचा, जो जगन्नाथ वर्मा के खेत से संबंधित था। ज्वार की फसल लगभग 5 फीट की ऊंचाई पर खड़ी थी और इसके नीचे अरहर की फसल खड़ी थी। अभियुक्त अपीलकर्ता ज्वार और अरहर की झाड़ियों में छिप रहे थे जब मृतक उनके खेत के पास पहुंचा, तो उन्होंने उन्हें रोकने की कोशिश की। जैसे ही पीड़ित ठाकुरदीन रुका, दोनों अभियुक्त व्यक्ति शंभू तब्बल से लैस होकर मृतक पर मृतक ठाकुरदीन को कई चोटें पहुंचाने लगे। अभि.सा.-2 पीड़ित ठाकुरदीन से लगभग 40-50 कदम पीछे था। चीख और चिल्लाने पर, उसका

दूसरा पुत्र गयादीन एक अन्य व्यक्ति कड़ोरा के साथ जुड़ गया और घटनास्थल की ओर दौड़ा। रसना भी उनके पास पहुंच गया। साक्षियों को अपनी ओर आते देखकर अभियुक्त शंभू ने अपनी जेब से कट्टा निकाला और उन पर गोली चला दी। जान के खतरे को महसूस करते हुए अभि.सा.-2 घनजुआ खड़ी फसल की झाड़ियों की ओर भागा। वे दोनों गोलीबारी और कट्टे की मार से बाल-बाल बच गए। बाद में अभियुक्त व्यक्ति गांव की ओर भाग गए। उन्होंने उनका कुछ कदम तक पीछा किया, लेकिन उनके द्वारा फैलाए गए भय और आतंक के कारण, वे घायल पीड़ित ठाकुरदीन के पास वापस आ गए और उसे मृत पाया। वह संबंधित पुलिस स्टेशन गया और मौखिक रूप से प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई जिसे बाद में पुलिस स्टेशन कड़ौरा के हेड मोहर्रिर द्वारा लिखा गया।

48. अभि.सा.-3 रसना ने कहा कि घटना के दिन, सुबह लगभग 7.30 बजे, वर्मा जी के खेत से होकर शौच के लिए जा रहा था। ठाकुरदीन का खेत उसके आगे जा रहा था। वह घनजुआ (अभि.सा.-2) के पीछे जा रहा था। ठाकुरदीन वर्मा जी के मधैया के खेत का लगभग आधा हिस्सा पार कर चुका था, उसने दयनीय और दिल दहला देने वाली आवाजें सुनी। फिर वह दौड़ा और देखा कि अभियुक्त अपीलकर्ता शंभू और लखन अरहर के खेत की दक्षिण दिशा से प्रकट हुए और उस पर तब्बल से वार कर रहे थे। जैसे ही वह दौड़ता हुआ आगे बढ़ा, अभियुक्त शंभू ने उन पर गोली चलाई। वह अपनी जान बचाने के लिए नीचे गिर गया। इस प्रकार वह बिना चोट के बच गया। साक्षी ने यह भी कहा कि इस बीच, गयादीन और कड़ोरा घटनास्थल पर पहुंच गए। घटनास्थल से अभियुक्त अपीलकर्ताओं के जाने के बाद वे ठाकुरदीन के पास पहुंचे और पाया कि घातक चोट और अत्यधिक रक्तस्राव के कारण, वह मर गया था। तत्पश्चात, अभि.सा.-2 ने संबंधित पुलिस स्टेशन को सूचित किया और पुलिस कर्मी घटनास्थल पर पहुंचे और आवश्यक औपचारिकताएं पूरी कीं। उसकी गवाही को खंडित करने के लिए कुछ भी नहीं निकाला जा सका। अभि.सा.-3 रसना ने हमले के तरीके और घटना के ढंग का बिना किसी रंगत के और बहुत सहज और स्वाभाविक तरीके से जीवंत और स्वाभाविक तरीके से वर्णन किया था। इस प्रकार, अभि.सा.-2 घनजुआ, अभि.सा.-3 रसना और अभि.सा.-4 कड़ोरा न केवल चक्षुदर्शी हैं और उन्होंने पूरी घटना का चक्षुदर्शी विवरण दिया है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है (अभि.सा.-2) घनजुआ/शिकायतकर्ता और (अभि.सा.-3) रसना। अभि.सा.-4 कड़ोरा ने गवाही दी है कि घटना के दिन सुबह 7.00 से 7.30 बजे गयादीन शिकायतकर्ता (अभि.सा.-2) का दूसरा पुत्र उसके साथ उसकी दहलीज पर बैठा था। उसने कड़ोरा को तंबाकू देने के लिए कहा। इस बीच, उन्होंने चीख और चिल्लाहट "दौड़ो बचाओ" सुनी। इस पर वे दोनों घटनास्थल पर पहुंचे और देखा कि अभियुक्त अपीलकर्ता शंभू और लखन वर्मा जी के खेत में संकरी गली के पास तब्बल से मृतक ठाकुरदीन को मार रहे थे। रसना और घनजुआ भी मौजूद थे, जो उसके शरीर के ऊपरी हिस्से और गर्दन पर चोटें आने पर शोर और चिल्लाहट कर रहे थे। अभियुक्त नुकीली तेज धार वाले तब्बल का उपयोग कर रहे थे। ठाकुरदीन जमीन पर गिर गया। जब घनजुआ और रसना मृतक की ओर बढ़े तो अभियुक्त अपीलकर्ताओं ने "कट्टा" से उन पर गोली चला दी। घनजुआ और रसना ज्वार के खेत में गिर गए और स्वयं को बिना चोट के बचा लिया। बाद में वह अन्य के साथ ठाकुरदीन के पास पहुंचा जो मरा हुआ पड़ा था। यह साक्षी भी घटना का चक्षुदर्शी है जिसने अभियुक्त अपीलकर्ताओं को तब्बल से ठाकुरदीन को मारते हुए और घनजुआ और रसना पर गोली चलाते हुए देखा। ठाकुरदीन वर्मा जी के खेत से आने वाली संकरी गली से डेढ़ फीट की दूरी पर पड़ा था,

कुछ कदम पर। रसना, घनजुआ व अन्य मौजूद थे और अलार्म और चिल्लाहट कर रहे थे। हमलावरों ने ठाकुरदीन की गर्दन और सिर आदि पर तब्बल से चोटें पहुंचाई थीं। उसकी प्रति-परीक्षा में बचाव पक्ष अभि.सा.-3 रसना की गवाही को झुठलाने और खंडित करने वाली कोई सामग्री निकाल नहीं सका। अभि.सा.-4 कड़ोरा की गवाही घटना का साफ चित्रण था, जिसने अभियोजन पक्ष के संस्करण को बल दिया। उसने सभी पूछताछ का सरल और स्वाभाविक तरीके से वर्णन करके घटना के समय घटनास्थल पर अपनी उपस्थिति सिद्ध की। इस प्रकार, अभि.सा.-2, अभि.सा.-3 और अभि.सा.-4 चक्षुदर्शी हैं। उन्होंने विश्वसनीय भरोसेमंद और विश्वसनीय साक्ष्य दिया है। उनका साक्ष्य उत्कृष्ट गुणवत्ता का प्रतीत होता है। शेष साक्षी प्रकृति में औपचारिक हैं।

49. विद्वान न्याय-मित्र ने बलपूर्वक तर्क दिया है कि अभियोजन पक्ष ने घटना के असली साक्षी गयादीन और जनकिया को परीक्षित नहीं किया है। अभियोजन पक्ष का कोई स्वतंत्र और निष्पक्ष विश्वसनीय साक्षी नहीं है। अभि.सा.-1 भूरा ने अभियोजन पक्ष के संस्करण का बिल्कुल भी समर्थन नहीं किया है। यह अभियोजन पक्ष के मामले की सच्चाई के बारे में गंभीर संदेह पैदा करता है। विद्वान अ.शा.अधि. ने विद्वान न्याय-मित्र द्वारा दिए गए तर्क का बलपूर्वक विरोध किया है। इस बिंदु पर विधि बिल्कुल स्पष्ट है कि अभियुक्त अपीलकर्ताओं के अपराध को स्थापित करने के लिए प्रस्तुत किए गए साक्षियों की गुणवत्ता महत्वपूर्ण है न कि मात्रा। दोषसिद्धि एक भी विश्वसनीय और विश्वसनीय साक्षी पर भी टिकी हो सकती है। वर्तमान मामले में, हालांकि अभि.सा.-1 भूरा एक चक्षुदर्शी विवरण नहीं है लेकिन घटनास्थल पर अभि.सा.-2 घनजुआ, अभि.सा.-3 रसना और अभि.सा.-4 कड़ोरा की उपस्थिति किसी भी संदेह से परे है, इसलिए, उनका साक्ष्य उत्कृष्ट गुणवत्ता का है। इस पृष्ठभूमि में यदि अभि.सा.-1 भूरा एक चक्षुदर्शी नहीं है फिर भी वह घटनास्थल पर उपस्थित रहा और बाद की कार्यवाही में भाग लिया और उसका साक्षी रहा।

50. विद्वान न्याय-मित्र ने तर्क दिया है कि अभियोजन पक्ष के साक्षियों के बयान में गंभीर विरोधाभास हैं लेकिन ऐसा कोई विरोधाभास नहीं बताया गया है, जो अभियोजन पक्ष के मामले को ध्वस्त कर सके या इसमें कोई अलंकरण हो। बल्कि उनका साक्ष्य स्वाभाविक और सहज है। उन्होंने पूरी कहानी को स्वाभाविक तरीके से बताया है, जो उनके बयानों की विश्वसनीयता और सत्यता को प्रेरित करता है।

51. विद्वान न्याय-मित्र ने आगे प्रस्तुत किया कि अन्वेषण अधिकारी ने मामले का ठीक से अन्वेषण नहीं किया है। ऐसी गंभीर कमियां हैं, जो अन्वेषण के मार्ग पर जाती हैं और अभियोजन पक्ष की कहानी की सच्चाई के बारे में गंभीर संदेह पैदा करती हैं। विद्वान अ.शा.अधि. ने तर्क का खंडन किया। इस संबंध में यह प्रस्तुत किया जा सकता है कि अन्वेषण पूर्ण रूप से किया गया है। अन्वेषण अधिकारी ने उचित संदेह से परे अभियुक्त अपीलकर्ताओं के अपराध को स्थापित करने के लिए अपराध संकेती, विश्वसनीय और विश्वास प्रेरित करने वाले ठोस साक्ष्य एकत्र किए हैं।

52. विद्वान न्याय-मित्र ने बलपूर्वक तर्क दिया कि मृतक को पहुंचाई गई चोटों की प्रकृति, तब्बल द्वारा कारित नहीं हो सकती थी। विद्वान अ.शा.अधि. ने तर्क का विरोध किया। यह उल्लेख किया जा कि तब्बल का

एक नुकीला और तेज धार वाला सिरा था। इस प्रकार, मृतक को पहुंचाई गई चोटें तब्बल द्वारा की गई सिद्ध हुईं। कटे हुए घाव और छेद वाले घाव तब्बल द्वारा नुकीली धार और तेज धार से हुए हैं। अभि.सा.-6 डॉ. एच.जी. गुप्ता ने निष्कर्ष की पुष्टि की है। इसके अतिरिक्त सभी अभियोजन पक्ष के साक्षियों ने गवाही दी है कि उन्होंने अभियुक्त अपीलकर्ता शंभू को तब्बल से मृतक ठाकुरदीन को चोटें पहुंचाते हुए देखा। इस प्रकार, चिकित्सा साक्ष्य तथ्यात्मक साक्ष्य की पुष्टि करता है।

53. उपरोक्त चर्चा से पता चलता है कि वर्तमान मामले में अभियुक्त अपीलकर्ता शंभू और लखन ने मृतक के पिता, घनजुआ/शिकायतकर्ता (अभि.सा.-2) और सह-पीड़ित रसना (अभि.सा.-3) पर उन्हें मारने के आशय से गोली चलाई, जो घनजुआ के रिश्तेदार हैं। हालांकि वे गोली से बाल-बाल बच गए। दूसरे शब्दों में अभियुक्त अपीलकर्ता द्वारा उनकी हत्या करने का प्रयास किया गया। ये सभी साक्षी हालांकि मृतक और शिकायतकर्ता से संबंधित हैं लेकिन वे चक्षुदर्शी हैं जिनकी घटनास्थल पर उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है। अभि.सा.-1 भूरा हालांकि चक्षुदर्शी के रूप में नामित है लेकिन उसने इस बात से इनकार किया है कि घटना उसकी उपस्थिति में घटनास्थल पर हुई और कहा कि वह लगभग 12.30 बजे घटनास्थल पर पहुंचा। हालांकि उसने इस पर अपने हस्ताक्षर की पहचान करके पूछताछ रिपोर्ट प्रदर्श क-1 सिद्ध की है। यह सब घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति को भी स्थापित करता है। इन परिस्थितियों में और ऊपर चर्चा किए गए विधि के संदर्भ में, इन साक्षियों की उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है। उन्होंने स्वयं घटना देखी है इसलिए, वे चक्षुदर्शी हैं और उनकी गवाही को मुख्य रूप से इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि वे मृतक से संबंधित हैं, बल्कि वे घटनास्थल के निकट निवास करने वाले स्वाभाविक साक्षी हैं और घटनास्थल पर उनकी उपस्थिति सहज है और उनका बयान भरोसेमंद है।

54. विद्वान न्याय-मित्र ने तर्क दिया है कि साक्षियों, अभि.सा.- 3 रसना और अभि.सा.-4 कड़ोरा ने अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन नहीं किया है क्योंकि उन्होंने घटना के समय घटनास्थल पर उनकी उपस्थिति और उन्हें साक्षी के रूप में झूठा नामित करने के बारे में न्यायालय के बाहर तैयार किए गए शपथपत्र दाखिल किए हैं। इस संबंध में यह उल्लेख किया जा सकता है कि अभि.सा.-3 रसना और अभि.सा.-4 कड़ोरा ने पहले प्रदर्श ख-1 और ख-2 शपथपत्र इस आशय के दिए थे कि उन्होंने कोई घटना नहीं देखी है और शिकायतकर्ता द्वारा उन्हें गलत तरीके से साक्षी के रूप में नामित किया गया है। हालांकि न्यायालय में उनकी परीक्षा के दौरान इन दोनों साक्षियों ने ऐसे शपथपत्र देने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि उन्होंने पंपिंग सेट खरीदने के लिए कुछ ऋण लिया था। उन्हें पूर्ण सहायक उपकरण के साथ उचित पंपिंग सेट नहीं मिला और इसलिए वे संतुष्ट नहीं थे। वे न्यायालय में एक आवेदन देने आए थे कि उपर्युक्त परिस्थितियों को देखते हुए वे इसका ऋण नहीं लेंगे। साक्षियों के अनुसार उन्होंने न्यायालय में एक वकील से संपर्क किया और उसे उस आवेदन के बारे में समझाया, जिसे वे तैयार करवाना चाहते थे। वकील ने कई कागजों पर उनके अंगूठे के निशान प्राप्त किए और 3-4 दिन बाद फिर से आने के लिए कहा। कुछ दिनों के बाद उन्हें पता चला कि उनकी ओर से अभियुक्त व्यक्तियों के लाभ के लिए कुछ शपथपत्र न्यायालय में दाखिल किए गए हैं। उन्होंने अपने प्रति शपथपत्र दाखिल किए, जो पहले से ही अभिलेख पर हैं। इस प्रकार यह कोई फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि साक्षियों

ने प्रति शपथपत्र दाखिल किए हैं। इसके अतिरिक्त न्यायालय के समक्ष शपथ पर साक्षियों के बयान साक्ष्य का गठन करते हैं और न्यायालय के समक्ष उनके पिछले बयान, केवल विरोधाभास या साक्षियों की सत्यता को चुनौती देने के उद्देश्यों के लिए उपयोग किए जा सकते हैं। न्यायालय में अभि.सा.-3 रसना और अभि.सा.-4 कड़ोरा द्वारा दिया गया साक्ष्य पूरी तरह से सुसंगत और संभावित है और यह प्रतीत नहीं होता है कि वे झूठ बोल रहे हैं या उन्होंने घटना नहीं देखी थी। इस दृष्टि से भले ही उन्होंने पहले अभियुक्त के समर्थन में स्वेच्छा से कुछ शपथपत्र दिए हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। हालांकि, यह उल्लेख किया जा सकता है कि परिस्थितियां यह संकेत नहीं देती हैं कि उन्होंने स्वेच्छा से अभियुक्त के लिए शपथपत्र, जैसे ख-1 और ख-2 दिए थे। बचाव पक्ष ने बचाव पक्ष साक्षी 1 श्री कृष्ण लाल, अधिवक्ता की जांच की है, जिन्होंने कथित तौर पर अभि.सा.-3 रसना और अभि.सा.-4 कड़ोरा के निर्देशों पर शपथपत्र प्रदर्श ख-1 और ख-2 तैयार किए और एक नोटरी के समक्ष उनकी पहचान की और इन साक्षियों की ओर से न्यायालय में वे शपथपत्र दाखिल किए। उसके कथन का अवलोकन विश्वास प्रेरित नहीं करता है। वह अधिवक्ता है, जिसके पास साक्षी किसी भी काम के लिए पहली बार गए हैं। साक्षी ने कहा कि वह कड़ोरा और रसना को पहले से जानता था केवल इसलिए कि वे श्री दया राम अहिरवार, वकील से मिलने जाते थे, जिनकी सीट श्री कृष्ण लाल, वकील की सीट के पास है। चूंकि वे उनसे मिलने के लिए ऐसे दौरे करते थे, इसलिए यह साक्षी भी उन्हें जानने लगा। श्री दया राम अहिरवार, वकील की इस साक्षी के बयान की पुष्टि और समर्थन करने के लिए परीक्षण नहीं किया गया है। साक्षी यह नहीं बता सका कि रसना और कड़ोरा किसी दीवानी या आपराधिक मामले के संबंध में दया राम अहिरवार, वकील के पास आते थे। वह किसी ऐसी तिथि का अवसर नहीं प्राप्त कर सका जिस पर इन साक्षियों ने श्री दया राम अहिरवार, वकील से मुलाकात की। उसने कहा कि वह यह बताने में असमर्थ है कि उसने किस न्यायालय में इन साक्षियों के शपथपत्र दाखिल किए थे और किस समय ये शपथपत्र न्यायालय में प्रस्तुत किए गए थे। इन बयानों को देखते हुए बचाव पक्ष साक्षी 1 कृष्ण लाल, वकील के बयान पर ज्यादा भरोसा नहीं किया जा सकता है और यह अत्यधिक संदिग्ध है कि रसना और कड़ोरा ने बचाव पक्ष द्वारा आरोपित 5.1.1983 को अभियुक्त के पक्ष में स्वेच्छा से कोई शपथपत्र दिया था। इसलिए, हम इस मत के हैं कि अभि.सा.-3 रसना और अभि.सा.-4 कड़ोरा के बयानों को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि उन्होंने कथित तौर पर न्यायालय के समक्ष शपथ पर अपनी परीक्षा में कुछ शपथपत्र दिए थे कि उन्होंने घटना नहीं देखी थी। उन्होंने किसी भी ऐसे शपथपत्र भरने से इनकार कर दिया है और अभियोजन पक्ष के संस्करण का पूरी तरह से समर्थन किया है। इसलिए, विद्वान न्याय-मित्र के तर्क स्वीकार नहीं किए जाते हैं।

55. प्रत्यक्षदर्शियों के बयानों पर अविश्वास करने का कोई अच्छा कारण नहीं है। इन साक्षियों का अभियुक्त व्यक्तियों को झूठा फंसाने का कोई हेतुक नहीं है। घटना दिन के उजाले में हुई और घटनास्थल के पास साक्षियों की उपस्थिति अत्यधिक संभावित और विश्वसनीय है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि अभियुक्त व्यक्तियों का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में था जो बिना देरी के दर्ज की गई थी। श्रीमती जनकिया द्वारा शंभू के पक्ष में बिक्री विलेख घटना से लगभग 3 साल पहले निष्पादित किया गया था। अभिलेख पर यह सुझाव देने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि इन तीन वर्षों की अवधि के दौरान शिकायतकर्ता ने अभियुक्त को किसी अन्य मामले में झूठा फंसाने का कोई प्रयास किया या शत्रुता व्यक्त करने वाला कोई अन्य कार्य किया।

56. विद्वान न्याय-मित्र ने प्रस्तुत किया कि अभियुक्त अपीलकर्ता को मृतक और उसके परिवार के विरुद्ध कोई शत्रुता नहीं थी। अभियोजन पक्ष वर्तमान मामले में किसी भी हेतुक को सिद्ध करने में विफल रहा है। यह उल्लेख करना उचित है कि विधि अच्छी तरह से स्थापित है कि आपराधिक मामलों में जब चक्षुदर्शी साक्ष्य उपलब्ध होता है, तो हेतुक बहुत महत्वपूर्ण नहीं होता है। इस संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला है। गोपी राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2006 (55) ACC 673, SC, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नबाव सिंह 2005 ACC (Cri.) 33 और शिव राज बापू मत जाधव बनाम कर्नाटक राज्य, (2003) 6 ACC 392, राजस्थान राज्य बनाम अर्जुन सिंह AIR 2011 SC 3380, राधा मोहन सिंह बनाम राज्य 2005 CRLJ 167 और गुजरात राज्य बनाम अनिरुद्ध सिंह AIR 1997 SC 278 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विधि को दोहराया है कि जहां चक्षुदर्शी साक्ष्य होते हैं, हेतुक अपना अधिकांश महत्व खो देता है।

57. वर्तमान प्रकरण, चक्षुदर्शी साक्ष्य का प्रकरण है। इसलिए, हेतुक पृष्ठ भाग में है। हालांकि, इस मामले में अभि.सा.-2 घनजुआ का बयान स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि क्योंकि घनजुआ ने अपने भतीजे रघुबीर की भूमि प्राप्त करने के लिए शंभू के विरुद्ध विधिक कार्यवाही करने की तैयारी शुरू कर दी थी, जिसमें शंभू भी रुचि रखता था। इन तथ्यों से प्रेरित होकर अभियुक्त व्यक्तियों ने यह अपराध किया। इसके अतिरिक्त, जनकिया ने शंभू को कुछ भूमि बेच दी थी, जैसा कि बचाव पक्ष साक्षी 1 के बयान और बिक्री विलेख प्रदर्श ख-3 से साक्ष्य है। इन परिस्थितियों में हेतुक बहुत संभावित और वर्तमान घटना को कारित करने के लिए पर्याप्त हो जाता है। हालांकि, अभियोजन पक्ष ने यह दिखाने के लिए कोई अभिलेख दाखिल नहीं किया है कि घनजुआ ने वास्तव में कोई विधिक कार्यवाही शुरू की लेकिन प्रदर्श क-14 सीएच फॉर्म नंबर 5 में नोटिस है, जो दर्शाता है कि रघुबीर की विधवा जनकिया की भूमि पर, घनजुआ द्वारा लिया गया कब्जा दिखाया गया था और जनकिया के शंभू के साथ पुनर्विवाह का तथ्य दर्ज किया गया था। यह शिकायतकर्ता अभि.सा.-2 घनजुआ के बयान को विश्वास दिलाता है। यह नोटिस 22.7.1982 को जारी किया गया था जबकि घटना 26.11.1982 को हुई। इसलिए, अभियुक्त व्यक्तियों के पास यह अपराध करने का स्पष्ट हेतुक था। अभि.सा.-3 रसना और अभि.सा.-4 कड़ोरा, शिकायतकर्ता से संबंधित नहीं दिखाई देते हैं हालांकि वे एक ही बिरादरी से हैं। लेकिन केवल इस आधार पर उनके बयानों पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है और यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि वे सच नहीं बोल रहे थे।

58. अभियुक्त के लिए विद्वान न्याय-मित्र ने यह भी तर्क दिया कि अभियुक्त शंभू के पास एक आग्नेयास्त्र था और इन परिस्थितियों में यदि उसे मृतक की मृत्यु का कारण बनना था, तो वह तब्बल का उपयोग करने के बजाय आग्नेयास्त्र का उपयोग कर सकता था। हम इस मत के हैं कि इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि अभियुक्त व्यक्तियों ने अपराध नहीं किया था। हम नहीं जानते कि अभियुक्त के पास कितना गोला-बारूद था और इसके अतिरिक्त हथियार की लोडिंग में भी कुछ समय लगता है और इन बातों ने अभियुक्त को आग्नेयास्त्र के बजाय तब्बल का उपयोग करने के लिए प्रेरित किया होगा और उन्होंने साक्षियों को डराने के लिए आग्नेयास्त्र के उपयोग को बेहतर माना होगा।

59. इसके बाद यह तर्क दिया गया कि अभियोजन पक्ष यह स्थापित करने में सफल नहीं हुआ है कि जनकिया ने शंभू से पुनर्विवाह किया था और इसके लिए बचाव पक्ष साक्षी-3 परम सुख को परीक्षित किया गया है। वह छौंक का निवासी है और उसने यह भी कहने की कोशिश की है कि जिस दिन घटना हुई उस दिन दोनों अभियुक्त गांव कानाखेड़ा में नहीं थे। हमारे विचार में, उसके बयान पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है। सबसे पहले, वह स्वयं एक अन्य गांव का निवासी है और प्रासंगिक समय पर गांव कानाखेड़ा में उसकी उपस्थिति संदिग्ध है। उसने कहा कि वह श्रीमती जनकिया की कृषि भूमि की देखभाल कर रहा है और इसका प्रबंधन कर रहा है। वह उस गांव का निवासी है, जिसमें शंभू के मामा रहते थे और इस साक्षी के अनुसार उसके मामा, साक्षी की बिरादरी से हैं। साक्षी यह नहीं बता सका कि श्रीमती जनकिया अपनी कृषि भूमि पर कितना भूमि राजस्व देती है। वह उक्त भूमि की सीमाओं को भी बताने में असमर्थ था। इस दृष्टि से, यह संदिग्ध है कि वह श्रीमती जनकिया की भूमि का प्रबंधन करता है और उसका यह बयान कि शंभू ने श्रीमती जनकिया से शादी नहीं की थी और घटना के दिन अभियुक्त गांव कानाखेड़ा में मौजूद नहीं थे, विश्वसनीय नहीं है। अभियोजन पक्ष के साक्षियों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि शंभू ने जनकिया से शादी की थी और गांव कानाखेड़ा में रहना शुरू कर दिया था। हालांकि हिंदू रीति के अनुसार विवाह स्थापित नहीं है लेकिन यह आवश्यक भी नहीं था। साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि शंभू श्रीमती जनकिया के साथ रह रहा था और जनकिया से भूमि खरीदना चाहता था क्योंकि उक्त भूमि मूल रूप से रघुबीर की थी, जो घनजुआ का भतीजा था। यह भी कहा गया है कि घनजुआ ने उक्त भूमि पर अपना दावा करना शुरू कर दिया था।

60. विद्वान न्याय-मित्र ने तर्क दिया है कि अभियुक्त अपीलकर्ता को शत्रुता के कारण वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। जहां तक शत्रुता की दलील का संबंध है, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि शत्रुता एक दोधारी हथियार है, जो दोनों तरह से काटता है। एक ओर यह अपराध करने का आधार हो सकता है, लेकिन यह झूठे आरोप लगाने का आधार भी हो सकता है। वर्तमान मामले में जब शिकायतकर्ता घनजुआ ने अपने भतीजे रघुबीर की भूमि के दाखिल खारिज का विरोध किया, तो अभियुक्त अपीलकर्ताओं इसका बुरा मान गए और उनके लिए विरोधियों के विरुद्ध अपराध करने की अधिक संभावना है। इस प्रकार हेतुक भयानक अपराध करने के लिए बहुत संभावित और पर्याप्त प्रतीत होता है, इसलिए उन्होंने न केवल घनजुआ के बेटे की हत्या की बल्कि घनजुआ और रसना की हत्या करने का भी प्रयास किया।

61. वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, घटना का समय अभियोजन पक्ष द्वारा सुबह 07.30 बजे निर्धारित किया गया है। जहां तक घटनास्थल का सवाल है, इस संबंध में अधिक विवाद नहीं है। साक्षी 7 अन्वेषण अधिकारी अर्जुन सिंह तोमर ने साइट प्लान प्रदर्श क-8 तैयार किया और बिंदु "ए" पर घटनास्थल को दिखाया। अन्वेषण अधिकारी अभि.सा.-7 ने घटनास्थल पर सादी और रक्त से सनी मिट्टी भी एकत्र की। हालांकि एक रासायनिक रिपोर्ट प्रदर्श क-12 ने घटनास्थल से एकत्र की गई मिट्टी को पाया और मिलान किया। यह घटनास्थल की भी पुष्टि करता है।

62. विद्वान न्याय-मित्र ने प्रस्तुत किया है कि प्रत्यक्षदर्शियों ने उस स्थान के बारे में अलग-अलग संस्करण दिए हैं, जहां मृतक पर हमला किया गया था और जहां मृतक गिर गया। यह बताया गया कि कुछ साक्षियों ने कहा है कि यह जगन्नाथ सिंह वर्मा के खेत के बीच में था। कुछ अन्य ने कहा कि यह खेत के अंत की ओर था और साक्षियों ने उक्त स्थान से 'मेंड' या अन्य निश्चित बिंदुओं से अलग-अलग दूरी दी है। हमने तर्क के प्रकाश में साक्षियों के बयानों की जांच की है और इस मत के हैं कि साक्षियों द्वारा दिया गया घटनास्थल एक व निश्चित है और कोई विरोधाभास नहीं है। यह फिर से ध्यान दिया जाना चाहिए कि साक्षी पूरी तरह से अनपढ़ हैं और ग्रामीण हैं। उनसे दूरियों के बारे में स्पष्ट और अच्छी समझ होने की उम्मीद नहीं की जा सकती है और विशेष रूप से जब दूरी बहुत अधिक हो। अभि.सा.-2 घनजुआ ने कहा है कि घटनास्थल 'नरिया' अर्थात जगन्नाथ सिंह वर्मा के खेत से होकर गुजरने वाली नाली से लगभग 8 या 10 कदम है। अन्वेषण अधिकारी ने भी इस नाली को उस स्थान से कुछ कदम की दूरी पर दिखाया है, जहां मृतक का मृत शरीर पाया गया था। अभि.सा.-3 रसना ने भी कहा है कि मृत शरीर 'नरिया' से लगभग 10 कदम दूर था और पगडंडी पर था। साक्षी 2 घनजुआ ने भी कहा कि मृत शरीर पगडंडी पर था। साक्षी 4 कड़ोरा ने भी कहा है कि मृत शरीर जगन्नाथ सिंह वर्मा के खेत में पगडंडी पर था। विद्वान बचाव पक्ष के वकील ने इन साक्षियों से खेत की 'मेंड' से या कुएं से घटनास्थल की दूरी देने के लिए कहा, जो घटनास्थल से लगभग 100 कदम दूर था या साक्षियों के घर से। इन दूरियों को देते हुए साक्षियों ने निस्संदेह अलग-अलग माप दिए हैं लेकिन मेरे विचार में यह घटनास्थल को नहीं बदलता है और यह केवल वकील का कौशल है कि वह इन विरोधाभासों को अभिलेख पर लाने में सक्षम था। हालांकि, वे बहुत मामूली हैं और इस तथ्य को देखते हुए स्वाभाविक हैं कि साक्षी अनपढ़ ग्रामीण हैं। यहां तक कि शिक्षित साक्षी भी ऐसी गलतियां कर सकते हैं। हमारे विचार में इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि साक्षियों ने घटना नहीं देखी।

63. विद्वान न्याय-मित्र ने तर्क दिया है कि अभियुक्त अपीलकर्ता के कब्जे से या उसके बताने पर कोई अपराध संकेती वस्तु बरामद नहीं की गई है। अन्वेषण अधिकारी, अभियुक्त अपीलकर्ता से हमले के हथियार तब्बल को बरामद करने में विफल रहे हैं। यह अभियोजन पक्ष का मामला है कि अपराध करने के बाद अभियुक्त अपीलकर्ता घटनास्थल से भाग गए और घटनास्थल से गिरफ्तार नहीं किए जा सके। हालांकि शिकायतकर्ता घनजुआ और गांव के अन्य ग्रामीण लोगों और साक्षियों ने कुछ हद तक उनका पीछा करने का प्रयास किया लेकिन सह-अभियुक्तों के आतंक के कारण रुक गए। जब अभियुक्त भाग गए तो वे अपने साथ तब्बल ले गए। बाद में उन्होंने 29.11.1982 को औरई में सीजेएम, जालौन की न्यायालय में आत्मसमर्पण कर दिया। इस बीच उन्होंने किसी को भी तब्बल के बारे में खुलासा नहीं किया। यह उनकी सर्वोत्तम जानकारी में है कि तब्बल कहां छिपाया गया है। हालांकि यह स्थापित है कि अभियुक्त अपीलकर्ता ने महत्वपूर्ण हिस्सों पर मृतक को मारने में तब्बल का उपयोग किया। इसी तरह देशी पिस्तौल भी अभियुक्त अपीलकर्ता से बरामद नहीं हो सकी लेकिन अभियोजन पक्ष के साक्षियों ने घनजुआ और रसना में हत्या के उपयोग का प्रयास करने में कट्टा का उपयोग करते हुए देखा। इन परिस्थितियों में, तब्बल और देशी पिस्तौल (कट्टा) की गैर-बरामदगी अभियोजन पक्ष के मामले को प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं करती है।

64. विद्वान न्याय-मित्र ने प्रस्तुत किया है कि अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार घटना के समय मृतक ठाकुरदीन एक हंसिया के साथ मवेशियों के लिए हरा चारा एकत्र करने जा रहा था। गांवों में, कृषि उपकरण के रूप में हंसिया का उपयोग खेत में घास, चारा व अन्य फसलों को काटने के लिए किया जाता है। इसलिए यह विचित्र नहीं है कि घटना के समय जब मृतक ठाकुरदीन मवेशियों के लिए खेत से हरा चारा लेने जा रहा था, तो उसके पास हंसिया प्रदर्श-1 भी था। अभियोजन पक्ष के साक्षियों ने अपने बयानों में इस तथ्य को दोहराया है कि घटना के समय ठाकुरदीन के पास हंसिया था लेकिन घटनास्थल से यह हंसिया दो भागों में टूटी हुई स्थिति में बरामद किया गया था। विद्वान न्याय-मित्र ने मुद्दा उठाया है कि हंसिया कैसे टूट गया और दो टुकड़ों में बदल गया। ऐसा प्रतीत होता है कि अभियोजन पक्ष ने इसे अभियोजन पक्ष के मामले को रंग देने के लिए किया है। विद्वान अ.शा.अधि. ने न्याय-मित्र के इस तर्क का खंडन किया। वर्तमान मामले में यह स्थापित है कि हंसिया प्रदर्श-1 दो टुकड़ों में टूटा हुआ है। अभि.सा.-3 रसना जो एक चक्षुदर्शी है, ने यह भी कहा है कि ठाकुरदीन ने अपने हाथ में उठाकर स्वयं को बचाने के कुछ प्रयास किए यह काफी स्वाभाविक भी है। साक्षियों ने कहा कि ठाकुरदीन के हाथ में हंसिया है और अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा दिए गए कुछ वार मृतक के हंसिया पर भी पड़े और हंसिया गिर गया। यह बताता है कि हंसिया कैसे टूट गया और साक्ष्य बहुत संभावित और ठोस प्रतीत होता है।

65. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मृतक घटना के समय हंसिया ले जा रहा था, यह तथ्य अभियोजन पक्ष के संस्करण की पुष्टि करता है कि वह मवेशियों के लिए हरा चारा एकत्र करने के लिए खेत में जा रहा था। यह तथ्य घटना के समय की भी पुष्टि करता है कि सुबह 07.30 बजे बहुत संभावित और विश्वसनीय है और मृतक के लिए सर्दियों के मौसम में हंसिया के साथ अपने घर से बाहर आने और जगन्नाथ सिंह वर्मा के खेत में उपस्थित होने का कोई अवसर नहीं था। इसलिए बचाव पक्ष का संस्करण कि घटना 26.11.1982 को अंधेरे घंटों में लगभग 03 बजे या 04 बजे कुछ समय हुई और कुछ अज्ञात व्यक्ति अभियुक्त अपीलकर्ता के विरुद्ध शत्रुता और द्वेष पाल रहे थे, उसे समाप्त करने की उनकी जहरीली और गंदी योजना में सफल हुए और किसी ने भी घटना नहीं देखी। अभियुक्त व्यक्तियों को वर्तमान मामले में संदेह के आधार पर नामित किया गया है, आधारहीन है और स्वीकार नहीं किया गया है और अभियोजन पक्ष का साक्षी इस बिंदु पर पूरी तरह से विश्वसनीय है।

66. विद्वान न्याय-मित्र ने तर्क दिया कि प्रत्यक्षदर्शियों के बयान की विश्वसनीयता को बचाव पक्ष ने चिकित्सा साक्ष्य के प्रकाश में चुनौती देने की कोशिश की है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, चिकित्सा साक्ष्य ने दिखाया कि "ए" मृतक की गर्दन पर दो छेद वाले घाव थे। वे निचले जबड़े के कोण के ठीक नीचे 1 सेमी x 1 सेमी x 4 सेमी गहरे थे और 1 सेमी x 1 सेमी x 3 सेमी जो उपरोक्त छेद वाले घाव से 1 सेमी नीचे था। अभियुक्त अपीलकर्ता के लिए विद्वान न्याय-मित्र ने तर्क दिया कि तब्बल एक घुमावदार तेज काटने वाला हथियार है और ऐसे छेद वाले घाव नहीं हो सकते थे और इसलिए न्यायालय के समक्ष शपथ पर उनकी परीक्षा में साक्षियों के चक्षुदर्शी विवरण पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए। अभिलेख पर साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच करने के बाद मुझे इसमें कोई बल नहीं मिला। जिस उपकरण से चोटें पहुंचाई गई थीं, वह न्यायालय के

समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है। साक्षी, जिन्होंने हथियार का विवरण दिया, पूरी तरह से अनपढ़ और अशिक्षित हैं और अपने नाम पर भी हस्ताक्षर नहीं कर सकते हैं। वे दिशाओं अर्थात पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण को समझकर बयान देने में भी असमर्थ हैं। हालांकि, यह उनके बयानों में आया है कि अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा उपयोग किए गए तब्बल के नुकीले सिरे थे। अभि.सा.-2 घनजुआ ने कहा है कि मृतक के गिरने के बाद, अभियुक्त ने चोटें पहुंचाने के लिए अपने हथियार का ऊर्ध्वाधर रूप से भी उपयोग किया। इस प्रकार यदि हथियार के सिरे नुकीले और बाहर की ओर थे, तो छेद वाले घाव साक्षी द्वारा उल्लिखित तरीके से उनके उपयोग से हो सकते थे। अभि.सा.-3 रसना ने भी अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा उपयोग किए गए हथियार को दोनों तरफ नुकीले सिरों वाले घुमावदार तेज धार वाले तब्बल के रूप में वर्णित किया है जिसे उसने कुल्हाड़ी की तुलना में पतला बताया है। इस साक्षी ने यह भी कहा है कि अभियुक्त व्यक्तियों ने मृतक पर चोटें पहुंचाने के लिए अपने हथियार का ऊर्ध्वाधर रूप से उपयोग किया था जब बाद वाला गिर गया था। अभि.सा.-4 कड़ोरा का बयान भी इसी प्रभाव का है। उसके अनुसार, तब्बल एक ऐसा हथियार है जिसकी काटने की धार घुमावदार है और नुकीले सिरों को अलग करने के लिए।

67. अभि.सा.- 6 डॉ. एच.जी. गुप्ता ने भी स्वीकार किया है कि यदि अभियुक्त द्वारा उपयोग किए गए हथियार में नुकीले सिरे हों और तेज धार हो, तो मृतक के पोस्टमार्टम रिपोर्ट में वर्णित प्रकृति का छेद वाला घाव इससे हो सकता है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि मृतक पर छेद वाले घाव को अभियोजन पक्ष द्वारा स्पष्ट रूप से समझाया गया है और यह नहीं कहा जा सकता है कि ये घाव तब्बल से नहीं हो सकते थे। इस प्रकार यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि साक्षियों ने घटना नहीं देखी थी।

68. विद्वान न्याय-मित्र ने तर्क दिया कि मृतक के शरीर पर तथाकथित कटे हुए घाव वास्तव में कटे हुए घाव नहीं थे बल्कि फटे हुए घाव थे। उन्होंने अपने तर्कों को डॉक्टर रिपोर्ट पर आधारित किया, जहां यह उल्लेख किया गया है कि उन चोटों के नीचे की हड्डियां टूटी हुई थीं और कटी हुई नहीं थीं, इसके अतिरिक्त डॉक्टर ने अपने बयान में कहा कि वह नहीं कह सकता कि उसने इन चोटों के किनारों की जांच आवर्धक ग्लास से की है। यह आगे तर्क दिया गया कि एक हड्डी वाले हिस्से पर कुंद हथियार से चोट किसी भी कटे हुए घाव की उपस्थिति दे सकती है। अभि.सा.-6 डॉ. एच.जी. गुप्ता ने स्पष्ट रूप से कहा है कि हालांकि उन्होंने कटी हुई चोट के नीचे की हड्डियों के लिए "टूटा हुआ" अभिव्यक्ति का उपयोग किया लेकिन वास्तव में उनका मतलब था कि हड्डियां कट गई थीं। कटी हुई चोटें लेकिन वास्तव में उनका मतलब था कि हड्डियां कट गई थीं। यह काटा गया था। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि एक योग्य और शिक्षित साक्षी अपनी मत व्यक्त करने के लिए सटीक शब्द का उपयोग करने में विफल रहा लेकिन साक्षियों के बयानों व अन्य परिस्थितियों के प्रकाश में, मैं इस मत का हूं कि न्यायालय के समक्ष डॉक्टर का दिया गया बयान विश्वसनीय है। पोस्ट मार्टम रिपोर्ट प्रदर्श क-7 में उल्लिखित मृत्यु पूर्व चोटों में से एक चोट जो चोट नंबर 1 है, बाएं ह्यूमरस हड्डी पर एक कटा हुआ घाव है। शरीर का यह हिस्सा एक खिंची हुई त्वचा से ढकी हुई हड्डियों वाला हिस्सा नहीं है। जब डॉक्टर ने इस हिस्से पर 7 सेमी x 3 सेमी x 2 सेमी के आकार के कटे हुए घाव का उल्लेख किया है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि वह कटे हुए घाव के लिए फटे हुए घाव की गलती कर सकता था। हालांकि, यह बेहतर होता यदि

डॉक्टर ने रिपोर्ट में ही उल्लेख किया होता कि उसने घावों के किनारों को देखने के लिए आवर्धक ग्लास का उपयोग किया था या नहीं। डॉ. गुप्ता ने स्पष्ट रूप से कहा है कि मृत्यु पूर्व चोट नंबर 4, इसकी लंबाई को ध्यान में रखते हुए, निश्चित रूप से किसी तेज काटने वाले हथियार से हुई है न कि कुंद हथियार से। अभि.सा.-6 डॉ. एच.जी. गुप्ता के बयान के प्रकाश में पढ़े गए प्रत्यक्षदर्शियों के बयानों के संदर्भ में, यह नहीं कहा जा सकता है कि कोई गंभीर असंगति है और मृतक को पहुंचाई गई चोटें तब्बल जैसे तेज काटने वाले हथियार से नहीं पहुंचाई गई थीं।

69. जांच भी अभियुक्त अपीलकर्ताओं को अभियोजन पक्ष द्वारा लगाए गए अनुचित दबाव पर फंसाने के तिरछे हेतुक के साथ पांडित्यपूर्ण और सुस्त तरीके से की गई थी। अभियुक्त अपीलकर्ताओं के इशारे पर कोई अपराध संकेती वस्तु बरामद नहीं की गई है, जो पूरी अभियोजन कहानी को अत्यधिक अविश्वसनीय और असंतोषजनक बनाती है। अभियोजन पक्ष की ओर से कोई निर्णायक सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है, जो यह स्पष्ट करे कि अभियुक्त अपीलकर्ताओं ने ठाकुरदीन को खत्म करने के लिए प्रतिशोध लिया था।

70. विद्वान न्याय-मित्र ने कहा है कि साक्ष्य और परिस्थितियों की श्रृंखला भी पूरी नहीं है, जिससे यह निर्णायक रूप से स्थापित किया जा सके कि अभियुक्त अपीलकर्ता ठाकुरदीन की भयानक हत्या के वास्तविक अपराधी हैं। शिकायतकर्ता और उसके परिवार के सदस्य भी अपराधी प्रकृति के व्यक्ति थे और उनके कई विरोधी थे। कुछ अज्ञात व्यक्ति अभियुक्त अपीलकर्ताओं के विरुद्ध शत्रुता और द्वेष पाल रहे थे, जो उसे समाप्त करने की अपनी जहरीली और गंदी योजना में सफल रहे और किसी ने भी घटना नहीं देखी। अभियुक्त अपीलकर्ताओं को वर्तमान मामले में संदेह के आधार पर नामित किया गया है। कथित घटना 26.11.1982 को कुछ अज्ञात बदमाशों द्वारा लगभग 3 या 4 बजे कारित हुई प्रतीत होती है।

71. अभियुक्त अपीलकर्ताओं को मृतक और उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध कोई शत्रुता नहीं थी। अभियोजन पक्ष ने भी अभियुक्त अपीलकर्ताओं के विरुद्ध कोई हेतुक सिद्ध नहीं किया, जिसने उन्हें इतना कठोर कदम उठाने के लिए प्रेरित किया। यह शिकायतकर्ता की जानकारी में होगा कि उसने अभियुक्त अपीलकर्ताओं को क्यों चित्रित किया और उन्हें वर्तमान मामले में झूठा फंसाया।

72. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, हम निष्कर्ष निकालते हैं कि अभियुक्त अपीलकर्ता ने 26.11.1982 को लगभग 7.30 बजे गांव कानाखेड़ा में जगन्नाथ सिंह वर्मा के खेत में मृतक ठाकुरदीन पर हमला किया और घटना को अभि.सा.-2 घनजुआ, अभि.सा.- 3 रसना और अभि.सा.-4 कड़ोरा ने देखा। इन हमलों के परिणामस्वरूप ठाकुरदीन की घटनास्थल पर मृत्यु हो गई। मामले की परिस्थितियों में, यह स्पष्ट है कि उनका मृतक की मृत्यु का कारक बनने का आशय था और उन्हें यह भी ज्ञान था कि उनके कार्य से वे मृतक की मृत्यु का कारण बनेंगे। इसलिए, वे दोनों धारा 302 सपठित धारा 34 भा.दं.सं. के अधीन दंडनीय अपराध कारित करने के दोषी हैं। जब अभि.सा.- 2 घनजुआ और अभि.सा.-3 रसना मृतक ठाकुरदीन को बचाने के लिए पहुंचे तो दोनों

अभियुक्त अपीलकर्ताओं ने उन्हें मारने के आशय से उन पर गोली चलाने का प्रयास किया। इस प्रकार, उन्होंने धारा 307 सपठित धारा 34 भा.दं.सं. के अधीन दंडनीय अपराध भी कारित किया है।

73. इस प्रकार, ऊपर की गई विस्तृत और शब्दाडंबरपूर्ण चर्चाओं के प्रकाश में और मामले के पूरे दायरे और परिस्थितियों को भी ध्यान में रखते हुए, हम इस मत के हैं कि अभियोजन पक्ष ने उचित संदेह से परे अपने आरोपों को सिद्ध किया है, जो अभियुक्त अपीलकर्ताओं के अपराध की निर्विवाद रूप से ओर इशारा करता है। विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के साक्ष्य को स्वीकार करते हुए अभियुक्त अपीलकर्ताओं को धारा 302/307 सपठित धारा 34 भा.दं.सं. के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया है। परिस्थितियों की समग्रता का संचयी प्रभाव दर्शाता है कि श्रृंखला में सभी कड़ियां पूर्ण हैं और अवर न्यायालय द्वारा दिया गया अपराध का निष्कर्ष पूरी तरह से स्थापित है क्योंकि अभियोजन पक्ष के साक्षियों का साक्ष्य सुसंगत है और चिकित्सा साक्ष्य से उचित पुष्टि पाता है। चक्षुदर्शी और अभियुक्त अपीलकर्ता, एक ही इलाके से संबंधित थे और घटना से पहले एक दूसरे को जानते थे, जिसने पूरी तरह से सिद्ध किया है कि अभियुक्त अपीलकर्ताओं ने सभी उचित संदेहों से परे अपराध किया है जिसके आधार पर उन्हें विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा दोषसिद्ध किया गया है और सजा सुनाई गई है। अभियुक्त अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता अभियुक्त निर्णय में हस्तक्षेप करने के लिए किसी भी त्रुटि या गलती को इंगित नहीं कर सके।

74. परिणामस्वरूप, हमारी सुविचारित मत में, अभियुक्त अपीलकर्ता एक निर्दोष व्यक्ति ठाकुरदीन की मृत्यु का कारण बनने के अपराध के दोषी हैं। हम विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय व आदेश दिनांक 21.5.1983 में हस्तक्षेप करने के लिए कोई ठोस और पर्याप्त कारण नहीं पाते हैं। विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय व आदेश दिनांक 21.5.1983 की पुष्टि की जा रही है। अपील योग्यता रहित है और तदनुसार निरस्त की जाती है। अपीलकर्ता जमानत पर हैं। उन्हें सजा काटने के लिए तुरंत हिरासत में ले लिया जाए।

75. विचारण न्यायालय को निर्णय को प्रमाणित करें, जिससे संबंधित रजिस्टर में इस अपील के परिणाम की प्रविष्टि शामिल की जा सके। इस न्यायालय को दो महीने के भीतर अनुपालन की रिपोर्ट दी जाए।

76. विचारण न्यायालय का अभिलेख तुरंत वापस भेजा जाए।

77. श्री पवन शुक्ला को वर्तमान मामले में न्याय-मित्र नियुक्त किया गया था। उन्होंने न्यायालय को मूल्यवान सहायता प्रदान की है। न्यायालय वर्तमान आपराधिक अपील की सुनवाई में उनके द्वारा प्रदान की गई सक्षम सहायता के लिए श्री पवन शुक्ला, अधिवक्ता को शुल्क के रूप में भुगतान किए जाने के लिए 15,000 रुपये निर्धारित करता है। उक्त भुगतान इस न्यायालय की रजिस्ट्री द्वारा आज से एक महीने के भीतर श्री पवन शुक्ला, अधिवक्ता को किया जाएगा।

(2025) 5 ILRA 158

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांकित: लखनऊ 21.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

आपराधिक अपील संख्या-1546 वर्ष 2025

राजे भसीन **...अपीलकर्ता**

बनाम

पुलिस आयुक्त, पुलिस आयुक्तालय, लखनऊ व अन्य **...प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
क्षितिज मिश्रा, प्रवीण कुमार सिंह

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
शा.अधि.

(ए) आपराधिक विधि-संपत्ति की कुर्की और अवमुक्ति-अपील की पोषणीयता-उ.प्र. गैंगस्टर्स एवं असामाजिक गतिविधियां (निवारण) अधिनियम, 1986-धारा 14, 15, 16, 17, 18 एवं 29-अधिनियम की योजना प्रदान करती है कि अपील केवल न्यायालय के आदेश के विरुद्ध होती है न कि प्रशासनिक आदेश के विरुद्ध-जिला मजिस्ट्रेट (या प्रत्यायोजित प्राधिकारी) को अवमुक्ति आवेदन को अस्वीकार करने के बाद जांच के लिए सक्षम न्यायालय को मामला भेजना अनिवार्य है-विशेष न्यायालय से संपर्क करने की स्वतंत्रता, धारा 16 के अधीन सांविधिक संदर्भ दायित्व का स्थान नहीं ले सकती-जहां अधिकारी धारा 15 के आवेदन को अस्वीकार करने के बाद धारा 16 के अधीन अनिवार्य संदर्भ देने में विफल रहता है, उच्च न्यायालय ऐसे संदर्भ को निर्देशित करने के लिए आदेश को संशोधित कर सकता है।

विवाद गैंगस्टर्स अधिनियम के अधीन संपत्ति की कुर्की से संबंधित है-पुलिस आयुक्त ने गैंगस्टर्स अधिनियम की धारा 14(1) के अधीन एक फ्लैट को कुर्क किया-यह आरोप लगाते हुए कि यह अपराध की आय से अर्जित किया गया था-अपीलकर्ता ने दावा किया कि वह प्रतिफल का सद्भावी क्रेता है और 2016 से उक्त फ्लैट के कब्जे में है-धारा 15 के अधीन संपत्ति की अवमुक्ति के लिए अपीलकर्ता का आवेदन पुलिस आयुक्त द्वारा अस्वीकार कर दिया गया-जिसके विरुद्ध धारा 18 के अधीन वर्तमान अपील योजित की गई।

अनुवादित

निर्णीत:-अवमुक्ति आवेदन को अस्वीकार करने वाले आक्षेपित आदेश को इस सीमा तक संशोधित किया गया कि प्रकरण ऐसे मामलों की सुनवाई करने के क्षेत्राधिकार वाले विशेष न्यायालय को संदर्भित किया गया। पुलिस आयुक्त को सक्षम न्यायालय को मामला भेजने के लिए शीघ्रता से उचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया। कुर्की के आदेश को तब तक स्थगित रखने का निर्देश दिया गया जब तक कि सक्षम न्यायालय द्वारा विधि के अनुसार मामले का निर्णय नहीं हो जाता।

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई। (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा दिया गया)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री प्रवीण कुमार सिंह की सहायता से श्री संजय भसीन, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता तथा प्रतिवादियों के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. उ.प्र. गैंगस्टर अधिनियम, 1986 की धारा 18 के अधीन वर्तमान आपराधिक अपील, वाद संख्या-4 वर्ष 2022 और 4 वर्ष 2022 में पुलिस आयुक्त, लखनऊ द्वारा पारित निर्णय व आदेश दिनांक 16.10.2023, 26.02.2024 और 24.02.2025 के विरुद्ध योजित की गई है।

3. अपीलकर्ता द्वारा बताए गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि वर्तमान विवाद फ्लैट संख्या-एम-1202, रोहताश प्लूमेरिया अपार्टमेंट, लखनऊ स्थित संपत्ति से संबंधित है। उक्त संपत्ति के संबंध में पुलिस आयुक्त, लखनऊ ने गैंगस्टर्स अधिनियम की धारा 14(1) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए 26.02.2024 को कुर्की का आदेश पारित किया।

4. अपीलकर्ता का कहना है कि उक्त संपत्ति आरंभ में परेश रस्तोगी पुत्र लक्ष्मी चंद्र रस्तोगी द्वारा निर्मित की गई थी, जो मेसर्स एंडीज टाउन प्लानर लिमिटेड के निदेशक हैं। यह कहा गया है कि उक्त फ्लैट-फ्लैट संख्या-एम 1202, रोहताश प्लूमेरिया विभूति खंड, गोमती नगर, लखनऊ, मेसर्स सचिन बिल्डकॉन प्राइवेट लिमिटेड द्वारा मेसर्स एंडीज टाउन प्लानर लिमिटेड से दिनांक 07.10.2011 के आवंटन पत्र द्वारा रु.28,44,525/- की राशि में खरीदा गया था। अपीलकर्ता ने कहा है कि उसने बदले में उक्त संपत्ति मेसर्स सचिन बिल्डकॉन प्राइवेट लिमिटेड से रु.55,00,000/- के प्रतिफल के लिए खरीदी है, जो उसके द्वारा सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया पर आहरित चेक संख्या 066105 दिनांक 17.05.2016, रु.1,00,000/-, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया पर आहरित चेक संख्या 068441 दिनांक 17.06.2016, रु.4,00,000/- के माध्यम से भुगतान किया गया है, रु.50,00,000/- का भुगतान एचडीएफसी बैंक से आवास ऋण के माध्यम से डिमांड ड्राफ्ट संख्या 124075 दिनांक 21.06.2016 द्वारा किया गया है। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि जब उक्त फ्लैट मेसर्स एंडीज टाउन प्लानर लिमिटेड द्वारा सौंपा गया था, तब एचडीएफसी बैंक द्वारा खरीद को अंतिम रूप दिया गया था।

5. यह उपरोक्त परिस्थितियों में है कि अपीलकर्ता, जिसने विवादित फ्लैट की खरीद के लिए संपूर्ण प्रतिफल का भुगतान किया है और यहां तक कि उसे 17.05.2016 को कब्जा भी दिया गया है, पर चूंकि फ्लैट के बिल्डर, जो मेसर्स एंडीज टाउन प्लानर लिमिटेड के निदेशक थे, भाग गए हैं और फ्लैट का हस्तांतरण नहीं किया है, जिसके कारण अपीलकर्ता के पक्ष में उक्त फ्लैट का पंजीकृत विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया जा सका, हालांकि वह उक्त संपत्ति के कब्जे में है।

6. गैंगस्टर्स अधिनियम के अधीन कार्यवाही परेश रस्तोगी के विरुद्ध शुरू की गई थी और उसके द्वारा निर्मित भवन को कुर्क कर लिया गया था, यह मानते हुए कि वह अपराध की आय से अर्जित किया गया है और तदनुसार जब्त किया गया। उपरोक्त परिस्थितियों में, अपीलकर्ता द्वारा गैंगस्टर्स अधिनियम की धारा 15 के अधीन अवमुक्ति के लिए एक आवेदन दिया गया था। उक्त आवेदन में यह कहा गया था कि अपीलकर्ता प्रतिफल द्वारा सद्भावी क्रेता है, इसके अलावा उसने यह भी कहा है कि यह संकेत करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि उक्त संपत्ति अपराध की आय से निर्मित या खरीदी गई थी और परिणामस्वरूप उक्त फ्लैट की अवमुक्ति के लिए प्रार्थना की।

7. अपीलकर्ता द्वारा योजित आवेदन पर पुलिस आयुक्त, लखनऊ द्वारा दिनांक 24.02.2025 का आदेश पारित किया गया है, जिसमें कहा गया है कि अभिलेखों के अनुसार और थाना प्रभारी-गोमती नगर, लखनऊ से प्राप्त रिपोर्ट के अनुसार, परेश रस्तोगी द्वारा अपराध की आय से भवन का निर्माण किया गया है और तदनुसार परेश रस्तोगी की 22 संपत्तियां जब्त की गई हैं और इस प्रकार उक्त संपत्ति की अवमुक्ति के लिए अपीलकर्ता के आवेदन को अस्वीकार कर दिया।

8. अपीलकर्ता ने, दिनांक 24.02.2025 के आदेश के विरुद्ध, गैंगस्टर्स अधिनियम की धारा 18 के अधीन अपील योजित की।

9. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि पुलिस आयुक्त, लखनऊ अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए किसी भी आधार पर विचार करने में विफल रहे हैं और उक्त संपत्ति को कुर्क करने के लिए गैंगस्टर्स अधिनियम की धारा 14 का आह्वान किया है, यह अभिलेखित करते हुए कि उक्त फ्लैट अपराध की आय से निर्मित/खरीदा गया था जबकि सामान्य और अस्पष्ट निष्कर्ष बिना किसी वास्तविक आधार के दर्ज किए गए हैं। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता प्रतिफल का सद्भावी क्रेता होने के कारण प्रतिकूल रूप से पूर्वाग्रहित नहीं होना चाहिए और यह भी कि वह 2016 से उक्त संपत्ति के कब्जे में है और उसके अधिकारों की रक्षा किए जाने की आवश्यकता है।

10. दूसरी ओर विद्वान अ.शा.अधि. ने वर्तमान अपील का विरोध करते हुए यह प्रस्तुत किया है कि गैंगस्टर्स अधिनियम की धारा 18 के अधीन अपील पोषणीय नहीं है। वे प्रस्तुत करते हैं कि गैंगस्टर्स अधिनियम की धारा 18 के अधीन अपील केवल न्यायालय के आदेश के विरुद्ध पोषणीय होगी और वर्तमान अपील में आक्षेपित

आदेश पुलिस आयुक्त, लखनऊ द्वारा गैंगस्टर्स अधिनियम की धारा 15 के अधीन प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में पारित किया गया है और इसलिए अपील निरस्त करने के लिए प्रार्थना करते हैं।

11. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

12. वर्तमान अपील की पोषणीयता के संबंध में अधिनियम की योजना पर विचार करना प्रासंगिक होगा। गैंगस्टर्स अधिनियम की धारा 14 के अनुसार, जिला मजिस्ट्रेट को किसी भी संपत्ति को कुर्क करने का अधिकार दिया गया है, जहां उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि उक्त संपत्ति चाहे चल हो या अचल, किसी व्यक्ति द्वारा उक्त अधिनियम के अधीन विचारणीय अपराध के करने के परिणामस्वरूप अर्जित की गई है। एक बार कुर्की का आदेश पारित हो जाने के बाद गैंगस्टर्स अधिनियम की धारा 15 के अधीन किसी भी व्यक्ति द्वारा जो व्यथित है, उसकी अवमुक्ति के लिए आवेदन किया जा सकता है। संपत्ति की अवमुक्ति के लिए प्रार्थना करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष एक प्रत्यावेदन दिया जाना होगा, जिसमें स्पष्ट रूप से उन परिस्थितियों और स्रोतों को बताया जाएगा, जिनसे उक्त संपत्ति अर्जित की गई थी और जिला मजिस्ट्रेट को उक्त आवेदन पर विचार करना अनिवार्य है और यदि वह किए गए दावे की वास्तविकता से संतुष्ट है, तो वह दावेदार के पक्ष में संपत्ति को तुरंत अवमुक्त करेगा।

13. ऐसे मामले में, जहां गैंगस्टर्स अधिनियम की धारा 14 के अधीन कुर्की की गई है और गैंगस्टर्स अधिनियम की धारा 15 के अधीन अवमुक्ति के लिए कोई आवेदन नहीं दिया गया है, या यहां तक कि अधिनियम की धारा 15 के अधीन आवेदन किया गया है और उक्त आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया है, तो जिला मजिस्ट्रेट को अपनी रिपोर्ट के साथ मामले को उक्त अधिनियम के अधीन अपराध की सुनवाई करने के क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय को भेजना होगा।

14. तदनुसार, इस स्तर पर वर्तमान मामले के तथ्यों पर वापस आते हुए, जहां अपीलकर्ता के आवेदन को आक्षेपित आदेश दिनांक 24.02.2025 द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है, यह जिला मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट की शक्ति का प्रयोग करने वाले किसी अन्य अधिकारी पर अनिवार्य था कि वह मामले को ऐसे अपराधों की सुनवाई करने के क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय को भेजे।

15. आक्षेपित आदेश में, क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय को मामला भेजने की जगह, पुलिस आयुक्त, लखनऊ ने अपीलकर्ता को विशेष न्यायाधीश (गैंगस्टर्स अधिनियम) के न्यायालय से संपर्क करने की स्वतंत्रता दी है। एक बार जब मामला गैंगस्टर्स अधिनियम की धारा 16 के अधीन भेजा गया है, तो सक्षम न्यायालय को ऐसे मामलों पर विचार करना होता है, और यह पता लगाने के लिए जांच करनी होती है कि क्या संपत्ति किसी अपराध के करने के परिणामस्वरूप अर्जित की गई थी। यदि न्यायालय पाता है कि यह संकेत करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि संपत्ति अपराध के माध्यम से प्राप्त आय के स्रोत से अर्जित की गई है, तो वह उक्त संपत्ति को कुर्की से अवमुक्त करेगा और इसे उस व्यक्ति को सौंप देगा, जो इसके कब्जे का अधिकारी है। किसी

भी व्यक्ति को, जो गैंगस्टर्स अधिनियम की धारा 17 के अधीन पारित न्यायालय के आदेश द्वारा सम्मन किया गया है, अधिनियम की धारा 18 के अधीन अपील योजित करने की स्वतंत्रता है और ऐसी अपील उस न्यायालय के समक्ष होगी, जिसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 29 के अधीन संदर्भित किया गया है।

16. गैंगस्टर्स अधिनियम के उपरोक्त प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि एक बार अवमुक्ति के आवेदन को अस्वीकार कर दिया जाता है, तो जिला मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट की शक्ति का प्रयोग करने वाला अधिकारी, मामले को उक्त अधिनियम के अधीन किसी भी अपराध की सुनवाई करने के लिए सक्षम न्यायालय को भेजने के लिए बाध्य है। गैंगस्टर्स अधिनियम की धारा 15 के अधीन अवमुक्ति के आवेदन को अस्वीकार करते समय, जिला मजिस्ट्रेट के लिए प्रकरण को सक्षम न्यायालय को भेजना अनिवार्य है, तदनुसार वर्तमान मामले में जिला मजिस्ट्रेट अपीलकर्ता को विशेष न्यायालय या सक्षम क्षेत्राधिकार के किसी अन्य न्यायालय से संपर्क करने की स्वतंत्रता नहीं दे सकता था। तदनुसार, उस सीमा तक आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता है और अवमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपीलकर्ता को न्यायालय से संपर्क करने के लिए दी गई स्वतंत्रता की जगह, मामला गैंगस्टर्स अधिनियम की धारा 17 के अधीन प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में उक्त बिन्दु पर विचार करने के लिए सक्षम न्यायालय को संदर्भित किया जाता है।

17. तदनुसार, यह न्यायालय विद्वान अ.शा.अधि. द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति में योग्यता पाता है कि अपीलकर्ता के दावे पर गैंगस्टर्स अधिनियम की धारा 17 के अधीन सक्षम न्यायालय द्वारा विचार किया जाना चाहिए था और वे इस तथ्य का विरोध नहीं करते हैं कि जिला मजिस्ट्रेट गैंगस्टर्स अधिनियम की धारा 16 के अधीन निहित सांविधिक प्रावधानों के अनुसार मामले को भेजने में विफल रहे हैं।

18. उपरोक्त को देखते हुए, आक्षेपित आदेश को इस सीमा तक संशोधित किया जाता है कि प्रकरण ऐसे मामलों की सुनवाई करने के क्षेत्राधिकार वाले विशेष न्यायालय को संदर्भित किया जाता है और पुलिस आयुक्त, लखनऊ को शीघ्रता से सक्षम न्यायालय को उक्त मामला भेजने के लिए उचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाता है।

19. अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत तथ्यात्मक मैट्रिक्स से और कुर्की के आदेश के साथ-साथ आक्षेपित आदेश दिनांक 24.02.2025 के अवलोकन से, अपीलकर्ता के पक्ष में सीमित हस्तक्षेप के लिए इस सीमा तक मामला बनता है कि कुर्की के आदेश को तब तक स्थगित रखा जाएगा, जब तक कि सक्षम न्यायालय द्वारा विधि के अनुसार मामले का निर्णय नहीं हो जाता।

20. उपरोक्त के प्रकाश में, वर्तमान अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। आक्षेपित आदेश को यहां ऊपर दिए गए निर्देशों के अनुसार संशोधित किया जाता है। पुलिस आयुक्त इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से दो सप्ताह के भीतर उचित आदेश पारित करेंगे और विशेष न्यायालय, जिसे मामला भेजा गया है, को विधि के अनुसार आगे बढ़ने और शीघ्रता से मामले का निर्णय करने का निर्देश दिया जाता है।

(2025) 5 ILRA 162

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांकित: लखनऊ 29.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

आपराधिक अपील संख्या 1598 वर्ष 2007

राजेश उर्फ साजेश तिवारी **...अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
दिनेश चंद्र तिवारी, देश रतन मिश्रा, देश रतन

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

अनुवादित

परिस्थितिजन्य साक्ष्य-हत्या का कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं-प्रथम सूचनाकर्ता (अपीलकर्ता के पिता) द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने की शुरुआत से ही अपीलकर्ता की मानसिक अस्वस्थता के बारे में तथ्य उभर रहे हैं-और साक्षी 2,3 और 4 के बयान में, जिसे नजरअंदाज किया गया है-अपीलकर्ता द्वारा अपने बचाव में मानसिक अस्वस्थता की दलील ली गई-धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन उसके बयान में-चिकित्सा पर्चे प्रस्तुत किए गए-विचारण न्यायालय बचाव पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की विवेचना करने में विफल रहा है-दोषसिद्धि रद्द की गई।

अपील स्वीकृत (ई-9)

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची:</u>

1. भज्जू बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2012)4 SCC 327
2. त्रिमुख मारोती किर्कन बनाम महाराष्ट्र राज्य (2006)10 SCC, 681
3. 'सबित्री समंतराय बनाम ओडिशा राज्य' (2023) 11 SCC 813
4. शरद बिरधीचंद शारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 SCC, 116

5. जेम्स मार्टिन बनाम केरल राज्य, (2004)2 SCC 23

6. चुन्नी बाई बनाम छत्तीसगढ़ राज्य 2025 SCC Online SC 955

7. गुजरात राज्य बनाम भालचंद्र लक्ष्मीशंकर दावे, (2021)2 SCC 735

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह द्वारा उद्घोषित)

1. अपीलकर्ता राजेश उर्फ साजेश तिवारी की ओर से उपस्थित विद्वान न्याय-मित्र, श्री देश रतन मिश्रा, राज्य के लिए विद्वान अ.शा.अधि.-I श्री विजय प्रकाश द्विवेदी को सुना और हमारे समक्ष उपलब्ध संपूर्ण अभिलेख का अवलोकन किया।

2. इस आपराधिक अपील, मुकदमा अपराध संख्या-216 वर्ष 2002, धारा 302 भारतीय दंड संहिता, पुलिस स्टेशन-फखरपुर, जिला-बहराइच से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या-229 वर्ष 2002, 'राज्य बनाम राजेश उर्फ साजेश तिवारी' में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट संख्या-1, बहराइच द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय व आदेश दिनांक 24-12-2005 को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता राजेश उर्फ साजेश तिवारी को दोषसिद्ध किया गया और 20,000 रुपये के अर्थदंड के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी और जुर्माने की राशि के भुगतान के व्यतिक्रम की स्थिति में, उसे दो वर्ष की साधारण कारावास की अतिरिक्त अवधि भुगतने का निर्देश दिया गया है।

3. संक्षिप्त अभियोजन कहानी यह है कि अपीलकर्ता के पिता, प्रहलाद कुमार तिवारी, सूचनाकर्ता ने आक्षेप लगाया कि उनका बेटा, राजेश उर्फ साजेश तिवारी, आयु लगभग 36 वर्ष, पिछले एक वर्ष से मानसिक अस्वस्थता से पीड़ित था और उसका इलाज करवाया गया था। उन्होंने आगे आक्षेप लगाया कि अपीलकर्ता, संयुक्त परिवार से अलग होने के बाद, अपने परिवार के साथ रह रहा था और 31-08-2002/01-09-2002 की रात में लगभग 02.00 बजे, उसने अपनी पत्नी और बेटे दुर्गेश की हत्या कर दी।

4. प्रथम सूचनाकर्ता, प्रहलाद कुमार तिवारी द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-1 के आधार पर, प्रथम सूचना रिपोर्ट, प्रदर्श क-2/6 अपीलकर्ता के विरुद्ध 01-09-2002 को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के अपराध के लिए दर्ज की गई।

5. पंचनामा कार्यवाही 01-09-2002 को दोपहर 12.35 बजे शुरू हुई और उसी दिन दोपहर 01.15 बजे समाप्त हुई। पंचनामा रिपोर्ट प्रदर्श क-2 के रूप में, अभि.सा.-2, संत राम और अभि.सा.-4, महाराज कुमार द्वारा विधिवत सिद्ध की गई है।

अनुवादित

6. मृतक के पोस्टमार्टम रिपोर्ट, प्रदर्श क-5 के अनुसार, जिसे अभि.सा.-7, डॉ.आर.एस.मधोरिया द्वारा सिद्ध किया गया है, मृतक दुर्गेश के शरीर पर चार कटे हुए घाव थे। चोट संख्या 1, गर्दन के बाईं ओर बाएं कान के 3 सेमी नीचे 9 सेमी x 3 सेमी हड्डी तक गहरा कटा हुआ घाव है। दूसरी चोट भी एक कटा हुआ घाव है, बाएं कान के 2 सेमी नीचे मांसपेशी तक गहरा और तीसरी चोट भी पीछे की ओर 12 सेमी x 7 सेमी हड्डी तक गहरा कटा हुआ घाव है और चौथी चोट ठुड्डी के 7 सेमी नीचे 9 सेमी x 6 सेमी हड्डी तक गहरा कटा हुआ घाव है। शरीर के ऊपरी हिस्से में अकड़न मौजूद नहीं थी, जबकि दोनों पैरों में यह मौजूद थी। पेट खाली था और दिल के दोनों कक्ष खाली थे। डॉक्टर की राय है कि उक्त चोटें किसी तेज धार वाले हथियार से लगाई गई थीं और सभी चोटें डेढ़ दिन पुरानी थीं। मृत्यु का कारण चोटों से अत्यधिक रक्तस्राव था।

7. इसके अतिरिक्त मृतका श्रीमती कमलेश की पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार, दो कटे हुए घाव और एक खरोंच थी। कटा हुआ घाव संख्या 1, 7 सेमी x 2 सेमी, गर्दन के बाईं ओर मांसपेशी तक गहरा, बाएं कान के 4 सेमी नीचे है। दूसरी चोट भी कटा हुआ घाव है 12 सेमी x 5 सेमी हड्डी तक गहरा ठुड्डी के 7 सेमी नीचे सामने की ओर ग्रीवा की ओर और चोट संख्या 3, 6 सेमी की एक खरोंच है जो बाएं कंधे के 2 सेमी नीचे सामने की ओर है और डॉक्टर की राय के अनुसार चोट संख्या 1 और 2 किसी तेज धार वाले हथियार से लगाई गई थीं और चोट संख्या 3 किसी नुकीले हथियार से लगाई गई थी। शरीर के ऊपरी हिस्से पर कोई मृत्यु पश्चात अकड़न नहीं थी, जबकि शरीर के निचले हिस्से पर अकड़न मौजूद थी। दिल के दोनों कक्ष खाली थे और आंत भी खाली थी। चोटें लगभग डेढ़ दिन पुरानी थीं और मृत्यु का कारण गंभीर चोटों के कारण अत्यधिक रक्तस्राव है।

8. अन्वेषण अधिकारी ने दं.प्र.सं. की धारा 161 के अधीन साक्षियों के बयान दर्ज किए और उन्होंने घटनास्थल का भी दौरा किया और साइट प्लान, प्रदर्श क 6/10 तैयार किया।

9. अन्वेषण के समापन के बाद, अन्वेषण अधिकारी ने 15-07-2003 को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के अधीन अपीलकर्ता के विरुद्ध आरोपपत्र प्रस्तुत किया। भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए अपीलकर्ता/अभियुक्त के विरुद्ध आरोप विरचित किए गए, जिन्होंने आरोपों से इनकार किया और विचारण की प्रार्थना की।

10. अपीलकर्ता के अपराध को सिद्ध करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने प्रहलाद कुमार तिवारी, अभि.सा.-1, संत राम, अभि.सा.-2, शिवम, अभि.सा.-3, महाराज कुमार, अभि.सा.-4, राम कैलाश, अभि.सा.-5, सी/350 सीपी सुधीर कुमार तिवारी, अभि.सा.-6, डॉ. आर.एस. मधोरिया, जिन्होंने पोस्टमार्टम रिपोर्ट तैयार की और अभि.सा.-7 के रूप में मृतकों की चोटों का परीक्षण किया, कांस्टेबल 277 पृथ्वी पाल, अभि.सा.-8 और जय सिंह, एसएसआई, अभि.सा.-9 को प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त, डॉ. आर.सी. सिंह को सी.डब्ल्यू.-1 के रूप में प्रस्तुत किया गया, जिन्होंने अपीलकर्ता की मानसिक स्थिति के संबंध में उसका परीक्षण किया।

11. धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन दर्ज अपने बयान में अपीलकर्ता ने अभियोजन की कहानी को झूठा बताया और यह भी कहा कि उसे वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है और खुद को निर्दोष होने का दावा किया। अभियोजन के प्रश्न संख्या 4 के उत्तर में, अपीलकर्ता ने जवाब दिया कि अपराध की घटना की रात में वह घर में मौजूद नहीं था क्योंकि वह जन्माष्टमी के अवसर पर नृत्य देखने के लिए बिरहिम डीहा गांव में था। प्रश्न के उत्तर में कि क्या उसे कुछ कहना है, उसने कहा कि वह पिछले डेढ़ वर्ष से मानसिक रूप से अस्वस्थ है और इसी कारण से वह लोगों को गाली देता था और इस कारण से, लोगों की उससे दुश्मनी थी और इसलिए, उसे झूठा फंसाया गया है।

12. यह एक ऐसा प्रकरण है जहां अभियुक्त की ओर से कोई बचाव साक्षी प्रस्तुत और परीक्षित नहीं किया गया।

13. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष और अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत अभिलेख पर साक्ष्य की विवेचना करने के बाद, अपीलकर्ता को दोषसिद्ध किया और सजा सुनाई। उपरोक्त संदर्भित परिस्थितियों में, अभियुक्त-अपीलकर्ता इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान अपील में आया है।

14. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का हमारे समक्ष तर्क यह है कि अपराध की घटना की रात में, अपीलकर्ता वास्तव में घर में मौजूद नहीं था क्योंकि वह नृत्य देखने के लिए पड़ोसी गांव बिरहिम डीहा गया था और जब वह सुबह वापस आया, तो उसने पाया कि उसकी पत्नी और बेटे दुर्गेश की हत्या कर दी गई है।

15. यह भी तर्क दिया गया है कि घटना घटित होने के डेढ़ वर्ष पहले से, अपीलकर्ता राजेश उर्फ साजेश तिवारी की मानसिक स्थिति ठीक नहीं थी और वह मानसिक अस्वस्थता के इलाज करवा रहा था और सूचनाकर्ता द्वारा गलत तरीके से यह अनुमान लगाया गया कि अपीलकर्ता ने अपनी पत्नी और बेटे की हत्या की है और इसलिए, उसे केवल संदेह के आधार पर झूठा फंसाया गया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि अपीलकर्ता के न्यूरोलॉजिकल इलाज के संबंध में चिकित्सा पर्चे विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए थे, लेकिन उन पर विचार नहीं किया गया, बल्कि उन्हें नजरअंदाज कर दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप एक दोषपूर्ण निर्णय हुआ। उन्होंने यह भी बताया कि मानसिक अस्वस्थता के कारण, अपीलकर्ता बहुत बड़बड़ाता था और सूचनाकर्ता ने खुद प्रथम सूचना रिपोर्ट में अपीलकर्ता की मानसिक अस्वस्थता के बारे में स्वीकार किया है और प्रति-परीक्षा में, सूचनाकर्ता ने यह भी कहा है कि अपीलकर्ता घटना की तिथि के डेढ़ वर्ष पूर्व से मानसिक रूप से अस्वस्थ था।

16. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अभि.सा.-2, संतराम और अभि.सा.-4, महाराज ने भी कहा है कि अपीलकर्ता पिछले डेढ़ वर्ष से मानसिक रूप से अस्वस्थ था। अपीलकर्ता के चिकित्सीय परीक्षण से, यह पाया गया कि उसकी बाईं आंख से तरल स्राव हो रहा था और उसके माथे पर फुंसियां थीं और वह असंगत बातें करता था।

17. उन्होंने आगे तर्क दिया कि किसी ने भी घटना को नहीं देखा है और केवल संदेह के आधार पर, अपीलकर्ता को फंसाया गया है। उन्होंने कहा कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का प्रकरण है, जिसमे अभियोजन अपने पक्ष को स्थापित करने में विफल रहा है। इसके अतिरिक्त, उन्होंने बल देकर कहा कि अपीलकर्ता का प्रकरण भारतीय दंड संहिता की धारा 84 के अंदर आता है, क्योंकि ऐसे साक्ष्यों की बहुतायत है अर्थात अभियोजन पक्ष के साक्षियों के स्वयं के बयान, कि अपीलकर्ता मानसिक अस्वस्थता से पीड़ित था और इसलिए, अपीलकर्ता भारतीय दंड संहिता की धारा 84 के अधीन पागलपन के बचाव के लाभ का अधिकारी है, जिसे विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा गलती से नजरअंदाज किया गया है।

18. इसके विपरीत, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अ.शा.अधि. ने प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ता को दिनांक 24-12-2005 के निर्णय व आदेश के माध्यम से सही ढंग से दोषसिद्ध किया गया है, जो सुविचारित व तर्कसंगत है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ता को प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह आक्षेप आरोप लगाते हुए नामित किया गया है कि उसने अपनी पत्नी और बड़े बेटे पर तेज धार वाले हथियार से उनके शरीर के महत्वपूर्ण भागों पर हमला किया, जिससे उनकी मृत्यु हो गई। उन्होंने आगे जोड़ा कि अभियोजन पक्ष ने विश्वसनीय और निर्विवाद साक्ष्य के आधार पर अपना पक्ष सिद्ध किया है और इसलिए, इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप उचित नहीं है। तदनुसार, उन्होंने इस आपराधिक अपील को निरस्त करने की प्रार्थना की है।

19. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुतियों, राज्य के लिए विद्वान अ.शा.अधि. पर विचार करते हुए और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के अवलोकन के बाद, हम पाते हैं कि कथित घटना 31-08-2002/01-09-2002 की रात लगभग 02.00 बजे हुई कही जाती है, जिसके संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट, प्रदर्श क-2/6, 01-09-2002 को लगभग 08.00 बजे दर्ज की गई थी। प्रथम सूचनाकर्ता, अभि.सा.-1, अपीलकर्ता के पिता ने लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-1 को सिद्ध किया है और प्रथम सूचना रिपोर्ट, प्रदर्श क-2/6, को अभि.सा.-8, पृथ्वी पाल द्वारा सिद्ध किया गया है। इसलिए, हम पाते हैं कि विचाराधीन घटना के संबंध में एक त्वरित प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई, जो अभियुक्त-अपीलकर्ता के झूठे फंसाए जाने की संभावना को खारिज करती है। लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-1 के अनुसार, मृतकों की हत्या वर्तमान अपीलकर्ता द्वारा तेज धार वाले हथियार से की गई कही जाती है क्योंकि दोनों मृतकों को उनके शरीर के महत्वपूर्ण भागों पर कई कटे हुए घाव प्राप्त हुए थे। मृतकों के शव अपीलकर्ता के घर में पड़े पाए गए थे, जहां वह अपनी पत्नी और बच्चों के साथ सो रहा था। अभियुक्त-अपीलकर्ता को गिरफ्तार किया गया और उसके बताने पर, कथित अपराध में इस्तेमाल किया गया हथियार बरामद किया गया।

20. पंचनामा रिपोर्ट, प्रदर्श क-2, को अभि.सा.-8, पृथ्वी पाल द्वारा सिद्ध किया गया है। पंचनामा के साक्षियों की राय के अनुसार, मृतकों की मृत्यु उनके शरीर पर चोटों के कारण हुई थी। अभि.सा.-8 भी पंचनामा के साक्षियों की राय से सहमत थे।

21. पोस्टमार्टम रिपोर्ट, प्रदर्श क-3, को अभि.सा.-7, डॉ.आर.एस. मधोरिया द्वारा सिद्ध किया गया है, जिसके अनुसार घावों का विवरण और उनकी स्थिति और राय, प्रदर्श क-7 और क-8, को यहां पुनरुत्पादित किया गया है:

"16- अभियोजन साक्षी पी.डब्ल्यू-7 डॉ. आर.एस.मधोरिया परीक्षित हुए हैं। जिन्होंने यह साक्ष्य दिया है कि दिनांक 02-9-02 को 2-45 पी.एम. पर उन्होंने मृतक दुर्गेश का नियमानुसार पोस्टमार्टम किया था और उसके शरीर पर मृत्यु के पूर्व की निम्नलिखित चोटें पायी थीं -

1- कटा हुआ घाव 9 सेमी. x 3 सेमी. हड्डी तक गहरा गले के बाईं ओर कान से 3 सेमी. नीचे घाव में सभी मांसपेशियां कटी हुई थीं, नसें व रक्त वाहिनी नलिकायें भी कटी हुई थीं।

2- कटा हुआ घाव मांस तक गहरा, बायें कान के 2 सेमी. नीचे। 3- कटा हुआ घाव 12 सेमी x 7 सेमी. हड्डी तक गहरा 3 सेमी. नीचे बायें कन्धे पर पीछे की ओर 3 सेमी नीचे। 4- कटा हुआ घाव 9 सेमी. x 6 सेमी. x हड्डी तक गहरा ठुड्डी से 7 सेमी. नीचे।

मृतक के उपरी हिस्से की अकड़न जा चुकी थी, परन्तु दोनों पैरों में अकड़न मौजूद थी। मृतक का पेट खाली था तथा हृदय के दोनों चैम्बर खाली थे।

मृतक के शरीर पर किसी धारदार हथियार से चोटें आई थीं। सभी चोटें करीब डेढ़ दिन पुरानी थीं।

मृतक की मृत्यु मृत्यु पूर्व पहुंचायी गयी चोटों से आघात एवं रक्तस्राव के कारण हुई थी। उसी दिन दो बजे मृतका श्रीमती कमलेश का भी उन्होंने पोस्टमार्टम किया था और उनके शरीर पर मृत्यु पूर्व निम्नलिखित चोटें पाई थीं -

1- कटा हुआ घाव 7 सेमी. x 2 सेमी. मांस तक गहरा गर्दन के बाई तरफ 4 सेमी बांये कान के नीचे।

2- कटा हुआ घाव 12 सेमी. x 5 सेमी. हड्डी तक गहरा ठुड्डी से 7 सेमी. नीचे आगे की ओर सरवाइकल की ओर था।

3- रेखीय खरोंच 6 सेमी लम्बाई में बायें कन्धे के 2 सेमी नीचे आगे की ओर था।

चोट संख्या 1 व 2 किसी धारदार हथियार से आई थीं तथा चोट संख्या 3 किसी नुकीले हथियार से आना सम्भावित था। मृतका के शरीर की उपरी हिस्से की अकड़न जा चुकी थी एवं नीचे के हिस्से पर अकड़न मौजूद थी।

हृदय के दोनों चैम्बर खाली थे, आमाशय भी खाली था।

मृतका के शरीर पर आई हुई चोटें करीब डेढ़ दिन पुरानी की थीं तथा मृतका की मृत्यु, मृत्यु पूर्व कई चोटों से रक्तस्राव व आघात के कारण हुई थी।

इस साक्षी ने यह भी साक्ष्य दिया है कि उसने उक्त दोनों पोस्टमार्टम रिपोर्ट अपने लेख व हस्ताक्षर में तैयार किया था, जोकि क्रमशः प्रदर्श क-7 व प्रदर्श क-8 है।"

22. मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के रूप में बताया गया है।

23. अभि.सा.-1, प्रहलाद कुमार तिवारी, जो प्रथम सूचनाकर्ता हैं, सबसे पहले घटनास्थल पर पहुंचे थे, ने मुख्य परीक्षा में अपने संस्करण का समर्थन किया, लेकिन बाद में, प्रति-परीक्षा में, उन्हें पक्षद्रोही घोषित किया

गया। तथ्य यह है कि मुख्य परीक्षा में, उन्होंने कहा कि उनका पोता रात में लगभग 1.00 बजे आया और उन्हें जगाया और उन्हें बताया कि अपीलकर्ता और उसकी पत्नी झगड़ रहे थे और उन्हें अपने घर जाने के लिए कहा और इसके बाद, वह अपने पोते को अपने घर में छोड़कर अपीलकर्ता के घर गए और जैसे ही वह वहां पहुंचे, उन्होंने पाया कि उनकी बहू और उनके एक पोते दुर्गेश के शव खाट पर पड़े थे और उनके गले काटे गए थे। उन्होंने अपीलकर्ता को घटनास्थल पर नहीं देखा। उन्होंने चिल्लाना शुरू किया और ऐसी चीखों पर, उनके दूसरे बेटे, राकेश और उनकी बेटियां, पूनम और गीता और उनकी पत्नी वहां आ गईं। मुख्य परीक्षा में अपीलकर्ता के पिता का बयान यह है कि जैसे ही उनके पोते द्वारा उन्हें सूचित किया गया कि अपीलकर्ता और उसकी पत्नी झगड़ रहे थे, वह घटनास्थल पर पहुंच गए और पाया कि उनके पोते और बहू की हत्या कर दी गई थी। हालांकि, वह बाद में प्रति-परीक्षा में पक्षद्रोही बन गए, जो स्वाभाविक मानवीय व्यवहार है, जहां अगर किसी कारण से बेटे का जीवन खतरे में है तो, एक पिता अपने बेटे को बचाने के लिए आगे आएगा और सर्वोत्तम प्रयास करेगा। विधि के स्थापित सिद्धांत के अनुसार, एक महत्वपूर्ण साक्षी के बयान को केवल इसलिए खारिज या नजरअंदाज नहीं किया जा सकता क्योंकि वह पक्षद्रोही हो गया है, बल्कि न्यायालय मुख्य परीक्षा सहित उसके पूरे बयान को देखेगा और सच्चाई और प्राकृतिक बयान को खोजने की कोशिश करेगा, जो वास्तव में प्रथम सूचना रिपोर्ट में प्रारंभिक वर्णन से पुष्टि पाता है।

24. हम पक्षद्रोही साक्षी के संबंध में विधि का उल्लेख कर सकते हैं, जिस पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***भज्जू बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2012)4 SCC 327*** में चर्चा की है। उक्त निर्णय का प्रस्तर संख्या 36 यहां उद्धृत किया गया है:-

"36. यह स्थापित विधि है कि पक्षद्रोही साक्षियों के साक्ष्य पर भी अभियोजन पक्ष उस सीमा तक भरोसा कर सकता है, जहां तक यह घटना के अभियोजन संस्करण का समर्थन करता है। ऐसे साक्षियों के साक्ष्य को अभिलेख से मिटा हुआ नहीं माना जा सकता, यह परीक्षण में स्वीकार्य रहता है और ऐसी गवाही के आधार पर अभियुक्त की दोषसिद्धि का आधार बनाने में कोई विधिक बाधा नहीं है, यदि अन्य विश्वसनीय साक्ष्यों द्वारा पुष्टि की जाती है..."

25. अभि.सा.-1 द्वारा मुख्य परीक्षा में वर्णित बयान कि जैसे ही उनके पोते द्वारा सूचना दी गई, वे घटनास्थल पर गए, जहां उन्होंने पाया कि उनकी बहू और पोते की हत्या कर दी गई थी और अपीलकर्ता स्वाभाविक रूप से भाग गया था क्योंकि अपराधी आमतौर पर अपराध करने के बाद भाग जाता है। इसलिए, लगभग 11 वर्ष की उम्र के एक निर्दोष लड़के द्वारा अपने दादा को माता-पिता के बीच झगड़े के बारे में सूचना, अभि.सा.-1 के बयान की इस हद तक पुष्टि करती है कि अपीलकर्ता घर में मौजूद था और केवल उसने ही और किसी ने नहीं, घातक रात में हत्या की थी।

26. उपरोक्त के अतिरिक्त, यह भी प्रथम सूचना रिपोर्ट के साथ-साथ अभि.सा.-1 के बयान से ध्यान देने योग्य है कि अपीलकर्ता का इलाज चल रहा था और वह कुछ अनिर्धारित मानसिक अस्वस्थता से पीड़ित था और इस तथ्य को अभियोजन पक्ष के अन्य साक्षियों द्वारा भी समर्थन दिया गया है।

27. अभि.सा.-2, संतराम, जो एक चक्षुदर्शी साक्षी नहीं है, ने भी कहा कि जब उन्हें सूचना मिली कि अपीलकर्ता के बेटे और पत्नी की हत्या कर दी गई है, तो वह सुबह लगभग 09.00 बजे अपीलकर्ता के घर गए, जो उनके निवास से दूर है और जैसे ही वह वहां पहुंचे, उन्होंने देखा कि अपीलकर्ता की पत्नी कमलेश और उनके बेटे दुर्गेश के शव खाट पर पड़े थे। दुर्गेश का शव आंगन में पड़ा था, जबकि श्रीमती कमलेश का शव कमरे के अंदर पड़ा था और मृतकों के गले पर कटे हुए घाव थे। उन्होंने कहा कि अपीलकर्ता, राजेश पुलिस जीप के अंदर बैठा था। अभि.सा.-2 को भी पक्षद्रोही घोषित किया गया है, लेकिन, इस साक्षी का बयान इस हद तक अपीलकर्ता की पत्नी और उसके बेटे की हत्या को सिद्ध करता है कि शव अपीलकर्ता के घर के अंदर पाए गए थे।

28. अभि.सा.-3 अपीलकर्ता का बड़ा बेटा है और 11 वर्ष की उम्र का है, जो अपने पिता और अपनी मां के बीच हो रहे झगड़े के बारे में सूचित करने के लिए अपने दादा के घर गया था। अपनी मुख्य परीक्षा में, उन्होंने कहा कि उन्होंने अपनी मां और पिता के झगड़े की आवाजें सुनीं और इसलिए, वह अपने दादा के पास इसी के बारे में सूचित करने के लिए गए, जो अलग रह रहे थे और जिनका निवास घटनास्थल से थोड़ा आगे है। उन्होंने अपनी प्रति-परीक्षा में यह भी कहा कि उनके पिता और मां बहुत झगड़ते थे, लेकिन, वह नहीं जानता था कि अपराध की घटना के उस दिन झगड़े के पीछे क्या कारण था। उन्होंने इस हद तक अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन किया है कि जैसे ही उन्होंने अपने दादा को सूचित किया, दादा घटनास्थल पर गए और वह अपने दादा के स्थान पर रहे और वह सुबह अपने घर वापस आए और पाया कि उनके भाई दुर्गेश और मां श्रीमती कमलेश के शव घर में पड़े थे, उन्होंने यह भी देखा कि मृतकों के गले काटे गए थे। बयान का यह हिस्सा न केवल अभि.सा.-1 के बयान की पुष्टि करता है, बल्कि इसने अभियोजन पक्ष की कहानी को समर्थित किया है।

29. अभि.सा.-4, महाराज कुमार ने अपनी गवाही में कहा है कि वह सुबह घटनास्थल पर गए थे क्योंकि उन्हें सूचित किया गया था, और उन्होंने देखा कि अपीलकर्ता की पत्नी और बेटे के शव आंगन में पड़े थे और इसके बाद, वह अपने घर लौट आए और जब स्टेशन हाउस ऑफिसर घटनास्थल पर आए, तो उन्हें बुलाया गया और उनके सामने, खून से सनी मिट्टी और बिस्तर यानी 'कथरी' एकत्र किए गए और अलग-अलग बक्सों में सील किए गए। उन्होंने अपनी मुख्य परीक्षा में यह भी कहा कि जब उन्होंने घटनास्थल का दौरा किया, तो उन्होंने पाया कि खून से सना हुआ 'गंडासा' एक 'तख्त' पर रखा हुआ था। उन्हें भी अभियोजन पक्ष द्वारा पक्षद्रोही घोषित किया गया है।

30. अभि.सा.-5, राम कैलाश ने कहा कि मृतका श्रीमती कमलेश कुमारी, उनकी बेटी है और उनकी बेटी की शादी घटना की तिथि से लगभग 12 वर्ष पहले अपीलकर्ता से हुई थी और अपीलकर्ता कभी-कभी उनकी बेटी को

प्रताड़ित करता था, और यह उनकी बेटी ने उन्हें बताया था और गांववालों ने भी उन्हें उपरोक्त के बारे में बताया था। उन्होंने यह भी कहा कि अपीलकर्ता अपनी बेटी से पैसे की मांग करता था और इसे पूरा नहीं करने की स्थिति में, वह अपनी बेटी को प्रताड़ित करता था। अभि.सा.-5 का उपरोक्त बयान अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन करता है, जहां तक हत्या के पीछे की मंशा और आशय का सवाल है।

31. इसके अतिरिक्त अभि.सा.6, सी/350 सीपी सुधीर कुमार तिवारी ने चिक प्र.सू.रि./प्र.सू.रि. को सिद्ध किया है और यह भी कहा गया है कि लिखित तहरीर, प्रहलाद कुमार तिवारी, अभि.सा.-1, सूचनाकर्ता द्वारा 01-09-2002 को लगभग 08.00 बजे दी गई थी और उसी के आधार पर, उन्होंने चिक प्र.सू.रि. तैयार की।

32. डॉ.आर.एस. मधोरिया, अभि.सा.-7, जो सदर अस्पताल, बहराइच में चिकित्सक के रूप में तैनात थे, ने भी मृतकों की पोस्टमार्टम रिपोर्ट को सिद्ध किया है और कहा है कि उन्होंने मृतकों का पोस्टमार्टम किया था, और मृतक दुर्गेश के शरीर पर चार कटे हुए घाव पाए गए थे, और मृतका श्रीमती कमलेश के शरीर पर तीन कटे हुए घाव पाए गए थे, और बरामद हथियार की प्रकृति मृतकों के शरीर पर लगाई गई चोटों का समर्थन करती है। हमले का तेज धार वाला हथियार अर्थात 'बंका' साक्षी, संत राम लोध की उपस्थिति में अपीलकर्ता के इशारे पर बरामद किया गया था, जो मृतकों के शरीर पर चोटों की पुष्टि करता है।

33. अभियोजन पक्ष यह है कि मृतक पत्नी के साथ-साथ मृतक बेटे की रात में अपीलकर्ता-पति/पिता के घर में हत्या की गई थी और उक्त तथ्य अपीलकर्ता के पिता के साक्ष्य में आया है, जो सूचनाकर्ता और प्रकरण में अभि.सा.-1 हैं। इसलिए, अपीलकर्ता पर यह भार था कि वह स्पष्टीकरण दे कि रात के अंधेरे में क्या हुआ, जब घटना हुई और ऐसा करने में विफल रहने पर, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (इसके बाद 'अधिनियम, 1872' के रूप में संदर्भित) की धारा 106 के अधीन अनुमान आकर्षित हुआ और इसलिए विद्वान विचारण न्यायालय ने सही निष्कर्ष निकाला है कि चूंकि अपीलकर्ता स्पष्टीकरण देने में विफल रहा है, जो स्वीकार्य नहीं था, इसलिए वह अपनी पत्नी और बेटे की मृत्यु के लिए जिम्मेदार था।

34. हमने पहले ही अभि.सा.-1 के साक्ष्य का परीक्षण किया है और हम पाते हैं कि अपीलकर्ता का बेटा झगड़े का शोर सुनते हुए, अपने दादा के घर गया और उन्हें सूचित किया और ऐसी सूचना पर, अपीलकर्ता का पिता घटनास्थल पर आया, जहां बहू (अपीलकर्ता की पत्नी) और पोते (अपीलकर्ता के बेटे) के शव पाए गए और दोनों शवों के गले काटे गए थे। बचाव पक्ष की ओर से ऐसा कोई सुझाव नहीं दिया गया है कि अभि.सा.-1 ने घटनास्थल पर नहीं गए थे, जैसे ही उन्हें उनके पोते ने सूचित किया था।

35. इसके अतिरिक्त, यह किसी भी साक्ष्य या किसी सुझाव द्वारा बचाव पक्ष का प्रकरण भी नहीं है कि घटना कहीं और हुई थी। अपीलकर्ता के बेटे द्वारा अपने दादा को दी गई सूचना के समय में निकटता और अपराध और 31-08-2002/01-09-2002 की मध्यवर्ती रात में अपनी पत्नी और बेटे के साथ घर में अपीलकर्ता की उपस्थिति सिद्ध होती है।

36. हम पाते हैं कि अपीलकर्ता के पिता के साथ-साथ अपीलकर्ता के बड़े बेटे की गवाहियों पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है, जो स्पष्ट रूप से बताते हैं कि अपीलकर्ता 31-08-2002/01-09-2002 की मध्यवर्ती रात में घर में मौजूद था। हथियार यानी 'बंका' भी साक्षियों की उपस्थिति में स्टेशन हाउस ऑफिसर द्वारा बरामद किया गया था और विचारण न्यायालय के समक्ष भी सिद्ध किया गया था। मृत्यु रात के अंधेरे में कमरे/घर में हुई, जहां अपीलकर्ता-पति, मृतक-पत्नी और मृतक-बेटा, तीन अन्य बेटों सहित रह रहे थे और अपराध के समय अपीलकर्ता की उपस्थिति अपीलकर्ता के बड़े बेटे के बयान से सिद्ध होती है, जिसे अभि.सा.-1 के बयान से समर्थन मिला है। उपरोक्त परिस्थितियों में, अभियुक्त अधिनियम, 1872 की धारा 106 के अधीन स्पष्टीकरण देने के दायित्व के अधीन है, क्योंकि वही जानता होगा कि रात के अंधेरे में क्या हुआ और उसकी पत्नी और बेटे की मृत्यु कैसे हुई, जो प्राकृतिक नहीं थी और एक हत्या थी। मृतक पत्नी को तीन कटे हुए घाव थे और मृतक बेटे को चार कटे हुए घाव थे और चिकित्सीय साक्ष्य के अनुसार, मृत्यु मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई थी। यह तथ्य कि मृतकों के शव अपीलकर्ता के घर के आंगन और कमरे में पड़े पाए गए थे, साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए अभियोजन पक्ष द्वारा उचित संदेह से परे स्थापित किया गया है।

37. अपीलकर्ता द्वारा यह कहते हुए लिया गया बचाव कि घटना की रात में, वह दूसरे गांव में था, एक निर्दोष बच्चे के बयान से झूठा सिद्ध हो गया है कि मां और पिता घर में झगड़ रहे थे। एक बच्चे के लिए अपने माता-पिता के बीच झगड़े के संबंध में झूठ बोलने का कोई अवसर नहीं था। यह बच्चे का प्राकृतिक आचरण है और परिणामस्वरूप, जब अभि.सा.-1/सूचनाकर्ता घटनास्थल पर आया, तो उसने अपीलकर्ता की पत्नी और बेटे के शव पाए, जो कोई संदेह नहीं छोड़ता है कि अपीलकर्ता उक्त रात को घटना के स्थान पर मौजूद था।

38. इस संदर्भ में, हम माननीय सर्वोच्च न्यायालय के ***त्रिमुख मारोती किर्कन बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2006)10 SCC, 681*** निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें निम्नानुसार निर्णीत किया गया है:-

"14. यदि कोई अपराध किसी घर की गोपनीयता के अंदर होता है और ऐसी परिस्थितियों में जहां हमलावरों के पास अपनी पसंद के समय और परिस्थितियों में अपराध की योजना बनाने और करने का सभी अवसर होता है, तो अभियोजन पक्ष के लिए अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करना अत्यंत कठिन होगा, यदि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के सख्त सिद्धांत, जैसा कि ऊपर बताया गया है, न्यायालयों द्वारा बल दिया जाता है। एक न्यायाधीश केवल यह देखने के लिए आपराधिक मुकदमे की अध्यक्षता नहीं करता कि कोई निर्दोष व्यक्ति दंडित न हो। एक न्यायाधीश यह देखने के लिए भी अध्यक्षता करता है कि एक दोषी व्यक्ति बच न जाए। दोनों सार्वजनिक कर्तव्य हैं। (स्टर्लैंड बनाम डायरेक्टर ऑफ पब्लिक प्रोसिक्यूशन 1944 AC 315 देखें, जिसे न्यायमूर्ति अरिजीत पसायत ने पंजाब राज्य बनाम करनैल सिंह (2003) 11 SCC 271 में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया)। विधि, अभियोजन पक्ष पर ऐसे चरित्र के साक्ष्य प्रस्तुत करने का कर्तव्य नहीं लगाता है, जो लगभग असंभव है या किसी भी तरह प्रस्तुत करना अत्यंत कठिन है। अभियोजन पक्ष पर कर्तव्य ऐसे साक्ष्य

प्रस्तुत करने का है, जो वह प्रस्तुत करने में सक्षम है, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए। यहां साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 को ध्यान में रखना आवश्यक है, जो प्रावधानित करती है कि जब कोई तथ्य विशेष रूप से किसी व्यक्ति के ज्ञान के भीतर हो, तो उस तथ्य को सिद्ध करने का भार उस पर होता है। इस धारा में जोड़ा गया उदाहरण (ख) इस प्रावधान की सामग्री और दायरे पर कुछ प्रकाश डालता है और यह कहता है:

(ख) ए पर बिना टिकट रेलवे पर यात्रा करने का आरोप लगाया गया है। यह सिद्ध करने का भार कि उसके पास टिकट था, उस पर है।"

15. जहां हत्या जैसा अपराध किसी घर के अंदर गोपनीयता में किया जाता है, मामले को स्थापित करने का प्रारंभिक भार निस्संदेह अभियोजन पक्ष पर होगा, लेकिन आरोप को स्थापित करने के लिए इसके द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले साक्ष्य की प्रकृति और मात्रा परिस्थितिजन्य साक्ष्य के अन्य मामलों में आवश्यक समान डिग्री की नहीं हो सकती है। भार तुलनात्मक रूप से हल्के चरित्र का होगा। साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के दृष्टिगत घर के निवासियों पर एक सुसंगत स्पष्टीकरण देने का संबंधित भार होगा कि अपराध कैसे किया गया। घर के निवासी केवल चुप रहकर और कोई स्पष्टीकरण नहीं देकर इस कथित आधार पर दूर नहीं हो सकते कि अपने मामले को स्थापित करने का भार पूरी तरह से अभियोजन पक्ष पर है और किसी भी स्पष्टीकरण की पेशकश करने का कोई कर्तव्य अभियुक्त पर बिल्कुल नहीं है।

...

21 परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामले में जहां कोई चक्षुदर्शी साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, विधि का एक और सिद्धांत है जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए। सिद्धांत यह है कि जब अभियुक्त के सामने एक दोषी परिस्थिति रखी जाती है और उक्त अभियुक्त या तो कोई स्पष्टीकरण नहीं देता है या एक स्पष्टीकरण देता है जो असत्य पाया जाता है, तो वही इसे पूर्ण करने के लिए परिस्थितियों की श्रृंखला में एक अतिरिक्त कड़ी बन जाता है। यह दृष्टिकोण इस न्यायालय के निर्णयों की एक श्रृंखला में लिया गया है। [तमिलनाडु राज्य बनाम राजेंद्रन (1999) 8 SCC 679 (प्रस्तर 6); उत्तर प्रदेश राज्य बनाम डॉ. रवींद्र प्रकाश मित्तल AIR 1992 SC 2045 (प्रस्तर 40); महाराष्ट्र राज्य बनाम सुरेश (2000) 1 SCC 471 (प्रस्तर 27); गणेश लाल बनाम राजस्थान राज्य (2002) 1 SCC 731 (प्रस्तर 15) और गुलाब चंद बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1995) 3 SCC 574 (प्रस्तर 4) देखें]।

22.जहां किसी अभियुक्त पर अपनी पत्नी की हत्या करने का आरोप लगाया जाता है और अभियोजन पक्ष यह दिखाने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने में सफल होता है कि अपराध कारित करने से कुछ समय पहले वे एक साथ देखे गए थे या अपराध उस आवास गृह में होता है, जहां पति भी सामान्य रूप से रहता था, तो यह सदैव निर्णीत किया गया है कि यदि अभियुक्त कोई स्पष्टीकरण नहीं देता है कि पत्नी को चोटें कैसे आईं या एक ऐसा स्पष्टीकरण देता है, जो झूठा पाया जाता है, तो यह एक मजबूत परिस्थिति है जो इंगित करती है कि वह अपराध कारित करने के लिए जिम्मेदार है..."

*(22) इस निर्णय का अनुसरण **'सबित्री समंतराय बनाम ओडिशा राज्य' (2023) 11 SCC 813** में किया गया, जिसमें प्रस्तर संख्या 19 में निम्नानुसार निर्णीत किया गया:-*

"15. इस न्यायालय ने त्रिमुख मारोती किर्कन बनाम महाराष्ट्र राज्य (2006) 10 SCC 681 में अपने निर्णय में भी यह कहा है:-

"15. जहां हत्या जैसा अपराध किसी घर के अंदर गोपनीयता में किया जाता है, मामले को सिद्ध करने का प्रारंभिक भार निस्संदेह अभियोजन पक्ष पर होगा, लेकिन आरोप को स्थापित करने के लिए इसके द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले साक्ष्य की प्रकृति और मात्रा परिस्थितिजन्य साक्ष्य के अन्य मामलों में आवश्यक समान डिग्री की नहीं हो सकती है। भार तुलनात्मक रूप से हल्के स्वरूप का होगा। साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के दृष्टिगत घर के निवासियों पर एक सुसंगत स्पष्टीकरण देने का संबंधित भार होगा कि अपराध कैसे किया गया। घर के निवासी केवल चुप रहकर और कोई स्पष्टीकरण नहीं देकर इस कथित आधार पर दूर नहीं हो सकते कि अपने मामले को स्थापित करने का भार पूरी तरह से अभियोजन पक्ष पर है और किसी भी स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का कोई कर्तव्य अभियुक्त पर बिल्कुल नहीं है।"

...

19. इस प्रकार, यद्यपि धारा 106 किसी भी तरह से अभियोजन पक्ष को किसी अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने के अपने भार से मुक्त करने के उद्देश्य से नहीं है, यह उन मामलों पर लागू होती है जहां घटनाओं की श्रृंखला को अभियोजन पक्ष द्वारा सफलतापूर्वक स्थापित किया गया है, जिससे अभियुक्त के विरुद्ध एक उचित निष्कर्ष निकाला जाता है। इसके अतिरिक्त, परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामले में, जब भी अभियुक्त से कोई दोषी प्रश्न पूछा जाता है और वह या तो प्रतिक्रिया से बचता है, या एक प्रतिक्रिया देता है जो सच नहीं है, तो ऐसी प्रतिक्रिया स्वयं में घटनाओं की श्रृंखला में एक अतिरिक्त कड़ी बन जाती है। [त्रिमुख मारोती किर्कन बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2006) 10 SCC 681 देखें]"

*(23) इसका अनुसरण **'राजस्थान राज्य बनाम ठाकुर सिंह'**, (2014) 12 SCC 211 में एक अन्य निर्णय में भी किया गया, जिसमें प्रस्तर संख्या 17 से 20 और 22 इस प्रकार हैं:-*

"17. त्रिमुख मारोती किर्कन बनाम महाराष्ट्र राज्य (2006) 10 SCC 681 में एक विशिष्ट उदाहरण में इस न्यायालय ने कहा कि जब पत्नी को उस आवास गृह में चोट लगती है, जहां पति सामान्य रूप से रहता है, और पति अपनी पत्नी की चोटों के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं देता है, तो परिस्थितियां यह संकेत देंगी कि पति चोटों के लिए जिम्मेदार है। यह कहा गया:

"22. जहां किसी अभियुक्त पर अपनी पत्नी की हत्या करने का आरोप लगाया जाता है और अभियोजन पक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करने में सफल होता है यह दिखाने के लिए कि अपराध कारित करने से कुछ समय पहले वे एक साथ देखे गए थे या अपराध उस आवास गृह में होता है, जहां पति भी सामान्य रूप से रहता था, तो यह

लगातार निर्णीत किया गया है कि यदि अभियुक्त कोई स्पष्टीकरण नहीं देता है कि पत्नी को चोटें कैसे आईं या एक ऐसा स्पष्टीकरण देता है, जो झूठा पाया जाता है, तो यह एक मजबूत परिस्थिति है, जो इंगित करती है कि वह अपराध कारित करने के लिए जिम्मेदार है।"

18. इस न्यायालय द्वारा गणेशलाल बनाम महाराष्ट्र राज्य (1992) 3 SCC 106 पर भरोसा किया गया, जिसमे अपीलकर्ता पर अपने घर के अंदर अपनी पत्नी की हत्या के लिए मुकदमा चलाया गया था। चूंकि मृत्यु उसकी अभिरक्षा में हुई थी, इसलिए यह निर्णीत किया गया कि अपीलकर्ता दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपने बयान में मृत्यु के कारण के लिए स्पष्टीकरण देने के दायित्व के अधीन था। अभियोजन पक्ष के मामले की अस्वीकृति के साथ किसी भी स्पष्टीकरण की अनुपस्थिति को अभियुक्त की निर्दोषता के साथ असंगत माना गया, लेकिन इस परिकल्पना के साथ संगत माना गया कि अपीलकर्ता अपनी पत्नी की हत्या कारित करने में प्रमुख अभियुक्त था।

19. इसी तरह, ज्ञानेश्वर बनाम महाराष्ट्र राज्य (2007) 10 SCC 445 में इस न्यायालय ने देखा कि चूंकि मृतका की उसके वैवाहिक घर में हत्या की गई थी और अपीलकर्ता ने यह प्रकरण नहीं स्थापित किया था कि अपराध किसी और ने किया था या बाहरी व्यक्ति द्वारा अपराध करने की संभावना थी, इसलिए पति के लिए यह स्पष्ट करना था कि उसकी पत्नी की अप्राकृतिक मृत्यु के क्या आधार थे।

20. जगदीश बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2009) 9 SCC 495 में इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा:

"यह दोहराना उचित है कि अपीलकर्ता और मृतक परिवार के सदस्य कमरे के एकमात्र निवासी थे और इसलिए अपीलकर्ता के लिए यह आवश्यक था कि वह अपने अपराध के बारे में किसी संदेह से बचने के लिए कुछ स्पष्टीकरण दे।"

....

22. इसलिए, विधि काफी अच्छी तरह से स्थापित है कि किसी अभियुक्त के अपराध को सिद्ध करने का भार अभियोजन पक्ष पर होता है, लेकिन किसी अपराध से संबंधित कुछ तथ्य हो सकते हैं, जो केवल अभियुक्त को ही ज्ञात हो सकते हैं, या अभियोजन पक्ष के लिए सिद्ध करना वस्तुतः असंभव हो। इन तथ्यों को अभियुक्त द्वारा समझाया जाना चाहिए और यदि वह ऐसा नहीं करता है, तो यह उन तथ्यों के आधार पर उसके अपराध की ओर इशारा करने वाली एक मजबूत परिस्थिति है।"

39. उपरोक्त के अतिरिक्त, हमने यह भी पाया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के अधीन दर्ज की गई है और प्रथम सूचना रिपोर्ट में, यह वर्णित है कि सूचनाकर्ता का बेटा मानसिक रूप से अस्वस्थ था और वह एक न्यूरो साइकियाट्रिक डॉक्टर से इलाज करवा चुका था और इस संबंध में कुछ चिकित्सा पर्चे रखे गए थे, जो मूल विचारण न्यायालय अभिलेख के अवलोकन से स्पष्ट है। यह भी पता चलता है कि दिनांक 12-02-2002 के जमुना न्यूरो साइकियाट्रिक सेंटर के पर्चे में, डॉक्टर ने अपीलकर्ता के व्यवहार

को 'बकते हैं', 'मेरे पास ब्रह्म शक्ति है' के रूप में नोट किया है। रोगी का इतिहास भी 'पोस्ट हेपैटिक न्यूराल्जिया' के रूप में उल्लिखित है और इसी तरह, कई चिकित्सा पर्चे, अभिलेख पर हैं। पर्चों के सत्यापन और अपीलकर्ता की मानसिक अस्वस्थता के लिए, तत्कालीन अपर सत्र न्यायाधीश/एफ.टी.सी., बहराइच श्री अशोक कुमार मिश्रा द्वारा 08-09-2003, 14-10-2003 और 01-11-2003 को पत्र भेजे गए थे, लेकिन, इस संबंध में (जिला जेल के अधीक्षक, बहराइच से) कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली, लेकिन उपरोक्त तथ्यों को नजरअंदाज करते हुए प्रकरण आगे बढ़ा और विचारण समाप्त हो गया।

40. उपरोक्त परिदृश्य में और अभि.सा.-1, अभि.सा.-3, अभि.सा.-4 के बयानों की पृष्ठभूमि में, एक बात सामान्य है कि अपीलकर्ता कुछ मानसिक अस्वस्थता से पीड़ित था। चिकित्सा पर्चे भी अपराध की घटना की तिथि और समय से बहुत पहले के हैं और इसलिए, उन्हें अपराध से बचने के उद्देश्य से तैयार किया गया नहीं कहा जा सकता।

41. जैसा कि अभिलेख से स्पष्ट है, निर्दोषता का दावा और धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन परीक्षा के दौरान ली गई अतिरिक्त दलील, जिसमें आरोपों की अस्वीकृति शामिल है, अपीलकर्ता द्वारा कि चूंकि अपीलकर्ता किसी अदृश्य शक्ति के प्रभाव में था या किसी भ्रम के अधीन था, वह अपनी कार्रवाई को उसके सही परिप्रेक्ष्य में समझने में असमर्थ था, जो आवश्यक रूप से सिद्ध करेगा कि ऐसे अपराध को करने के लिए कोई *मेन्स-रिया* नहीं था। वास्तव में, यह एक "*एक्टस रीअस*" है, जो '*मेन्स-रिया*' का अनुमान लगाता है।

42. जब हम इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में अपीलकर्ता के कार्य का परीक्षण करते हैं, तो यह स्पष्ट है कि हत्या अपीलकर्ता के घर में की गई है और उसे घटना के स्थान के पास गिरफ्तार किया गया था। यह तथ्य एक अपराधी की ओर से कार्रवाई के अप्राकृतिक कृत्य की ओर इशारा करता है। यदि अभियुक्त शुरू में घटना के स्थान से भाग गया होता तो उसे फिर से घटना के स्थान पर वापस नहीं आना चाहिए था या उसके पास कहीं भी नहीं दिखना चाहिए था। इसके अतिरिक्त अपीलकर्ता ने धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन दर्ज अपने बयान में एक विशिष्ट दलील ली थी कि वह पड़ोसी गांव में कुछ नृत्य प्रदर्शन देखने के लिए गया था और आगे, वह घटना की तिथि से पिछले डेढ़ वर्ष से मानसिक अस्वस्थता से पीड़ित था।

43. अपीलकर्ता द्वारा दलील ली गई है कि वह ऐसी मानसिक स्थिति में नहीं था कि वह अपने कार्य की प्रकृति को जान सके क्योंकि वह किसी अदृश्य शक्ति के प्रभाव में था। इस तर्क को देखते हुए कि अपीलकर्ता अस्वस्थ मन का है, हम पूरी कहानी को फिर से परीक्षित कर सकते हैं। यह स्पष्ट है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने की शुरुआत से ही, यह कहा गया है कि अपीलकर्ता मानसिक रूप से अस्वस्थ था और उसका इलाज चल रहा था। इसके अतिरिक्त, अन्य अभियोजन पक्ष के साक्षियों ने भी अपनी गवाहियों में कहा है कि अपीलकर्ता मानसिक अस्वस्थता से पीड़ित था, इस तथ्य के साथ कि उसके मनोरोग उपचार के संबंध में चिकित्सा पर्चे विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए थे और अभिलेख पर उपलब्ध हैं, जिन्हें इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पूरी तरह से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है और इस प्रकार, हम भारतीय दंड

संहिता की धारा 84 के अधीन प्रदान किए गए वैध बचाव के प्रकाश में अपीलकर्ता के मामले की आगे जांच करने के लिए संकोच नहीं कर रहे हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 84 को यहां पुनरुत्पादित किया गया है:-

"84. अस्वस्थ मन के व्यक्ति का कार्य:-कोई भी चीज अपराध नहीं है, जो किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा की जाती है, जो इसे करते समय, मन की अस्वस्थता के कारण, कार्य की प्रकृति को जानने में असमर्थ है, या यह कि वह जो कर रहा है वह या तो गलत है या विधि के विपरीत है।"

44. पहला सिद्धांत, 'साक्ष्य का भार' का ***शरद बिरधीचंद शारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 SCC, 116*** में अच्छी तरह से व्याख्या की गई है, और यह निर्णीत किया गया है कि उचित संदेह से परे एक मामले को स्थापित करने का साक्ष्य का भार अभियोजन पक्ष पर है, जबकि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 105 प्रदान करती है कि 'अपवाद खंड' की किसी भी दलील के मामले में, साक्ष्य का भार उस व्यक्ति पर स्थानांतरित हो जाएगा, जो ऐसे अपवाद का दावा कर रहा है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 105 को यहां पुनरुत्पादित किया गया है:-

"105. यह सिद्ध करने का भार कि अभियुक्त का प्रकरण अपवादों के भीतर आता है:-जब किसी व्यक्ति पर किसी अपराध का आरोप लगाया जाता है, तो भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860) में किसी भी सामान्य अपवाद के भीतर या उसी संहिता के किसी अन्य भाग में या अपराध को परिभाषित करने वाले किसी विधि में निहित किसी विशेष अपवाद या प्रावधान के भीतर मामले को लाने वाली परिस्थितियों के अस्तित्व को सिद्ध करने का भार उस पर होता है, और न्यायालय ऐसी परिस्थितियों की अनुपस्थिति को मान लेगा।"

45. वास्तव में, विशेष परिस्थितियों, सूचना या अपवाद का अस्तित्व, ऐसे व्यक्ति के ज्ञान में, संभावना की प्रधानता के आधार पर, जो इसे सिद्ध करता है, अपवादों का लाभ मिलेगा। न्यूरो साइकियाट्रिक चिकित्सक के चिकित्सा पर्चे प्रस्तुत करते हुए अपीलकर्ता की ओर से साक्ष्य प्रस्तुत करने का सर्वोत्तम प्रयास किया गया है, लेकिन, विद्वान विचारण न्यायालय इस पर विचार करने में विफल रहा है। यह भी एक स्थापित विधि है कि हर परिस्थिति में यह आवश्यक नहीं है कि अभियुक्त को बचाव पक्ष का नेतृत्व करना चाहिए, लेकिन, न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर इस पर विचार कर सकता है।

46. ***जेम्स मार्टिन बनाम केरल राज्य, (2004)2 SCC 23*** में प्रस्तर संख्या 13 में, निम्नानुसार निर्णीत किया गया है:-

"13. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (संक्षेप में साक्ष्य अधिनियम) की धारा 105 के अधीन, साक्ष्य का भार ऐसे अभियुक्त पर होता है, जो आत्मरक्षा की दलील लेता है, और, साक्ष्य की अनुपस्थिति में, न्यायालय के लिए आत्मरक्षा की दलील की सच्चाई को मानना संभव नहीं है। न्यायालय ऐसी परिस्थितियों की अनुपस्थिति को मान लेगा। यह अभियुक्त के लिए है कि वह या तो स्वयं सकारात्मक साक्ष्य प्रस्तुत करके या अभियोजन पक्ष के लिए जांच किए गए साक्षियों से आवश्यक तथ्यों को प्राप्त करके अभिलेख पर आवश्यक सामग्री रखे।

निजी बचाव के अधिकार की दलील लेने वाले अभियुक्त के लिए आवश्यक रूप से साक्ष्य देना आवश्यक नहीं है; वह अभियोजन पक्ष के साक्ष्य से ही उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों के संदर्भ द्वारा अपनी दलील स्थापित कर सकता है। ऐसे मामले में प्रश्न अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के वास्तविक प्रभाव का आकलन करने का प्रश्न होगा न कि अभियुक्त द्वारा किसी भार को निर्वहन करने का प्रश्न।"

47. अब हम मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में मामले की जांच करेंगे कि क्या यह प्रकरण अपवाद खंडों में से एक में आएगा कि अपीलकर्ता पागलपन से पीड़ित था या अपराध कारित करने के समय वह अपने कार्यों की प्रकृति को समझने के लिए मन की ऐसी स्थिति में नहीं था और क्या चोटें पहुंचाने के लिए आशय/आशय अपीलकर्ता की कार्रवाई में स्पष्ट है।

48. यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का प्रकरण है क्योंकि अपीलकर्ता द्वारा कथित रूप से की गई हत्या का कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है। अपीलकर्ता की मानसिक अस्वस्थता के तथ्य भी, प्रथम सूचनाकर्ता (अपीलकर्ता के पिता) द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने के प्रारंभ और अभियोजन पक्ष के साक्षियों, 2,3 और 4 के साक्ष्य के बयान में ही प्रकट हो रहे हैं, जिसे विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा नजरअंदाज किया गया है।

49. इसके अतिरिक्त, हमने यह भी देखा है कि मानसिक अस्वस्थता की दलील भी अपीलकर्ता द्वारा धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन दर्ज उसके बयान में बचाव में ली गई है। विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष कई चिकित्सा पर्चे प्रस्तुत किए गए थे और विचारण न्यायालय के ज्ञान में थे क्योंकि तीन बार, अपीलकर्ता की चिकित्सा जांच के लिए जेल अधीक्षक को पत्र लिखे गए थे, लेकिन, उनका कोई जवाब नहीं मिला। अपीलकर्ता की मानसिक अस्वस्थता के संबंध में समग्र परिदृश्य विशेष रूप से, एक पर्चे में डॉक्टर का अवलोकन कि वह 'बेतुका' बात कर रहा था और कहा कि 'उसके पास ब्रह्मरक्षक है' अपीलकर्ता के पागलपन के लक्षणों का संकेत है।

50. इसी संदर्भ में, हम माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***चुन्नी बाई बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, 2025 SCC Online SC 955*** में दिए गए निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें प्रस्तर संख्या 32,33,34,35,36 और 58 में निम्नानुसार निर्णीत किया गया है:-

"32. उपरोक्त विधिक स्थिति के प्रकाश में, हम अब तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ अभिलेख पर साक्ष्य का परीक्षण कर सकते हैं यह विचार करने के लिए कि क्या अपीलकर्ता वास्तव में पागलपन से पीड़ित थी या यह समझने के उद्देश्य से अपराध कारित करने के समय मन की उचित स्थिति में नहीं थी कि उसका क्या "आशय" था या क्या उसने जानबूझकर और सचेत रूप से बिना किसी बहाने के कार्य किया।

33. विचारण न्यायालय द्वारा उसकी परीक्षा के दौरान अपीलकर्ता द्वारा ली गई दलील यह है कि जब उसने कृत्य किया तो वह कुछ अदृश्य शक्ति के प्रभाव में आ गई थी। हालांकि, यह दलील विधिक रूप से मान्यता

प्राप्त अपवाद प्रतीत नहीं होती है, जैसा कि अचानक और गंभीर उकसावे, जोश की गर्मी, आत्मरक्षा के अधिकार आदि। चिकित्सीय पागलपन और विधिक पागलपन के बीच अंतर है। धारा 84 भा.दं.सं. जो प्रावधानित करती है, वह विधिक पागलपन है, जो चिकित्सीय पागलपन से अलग है। एक व्यक्ति को अस्वस्थ मन का कहा जाता है, जिस पर आपराधिक दायित्व नहीं अधिरोपित किया जा सकता है, यदि कार्य कारित करने के समय, वह कार्य की प्रकृति को जानने में असमर्थ है, या यह कि वह जो कर रहा था वह या तो गलत था या विधि के विपरीत था। यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि "मन की अस्वस्थता" या "पागलपन" शब्द को दंड संहिता, 1860 में परिभाषित नहीं किया गया है, हालांकि इनका उपयोग एक दूसरे के स्थान पर किया गया है। इन शब्दों की सटीक परिभाषा की अनुपस्थिति में, पागलपन या मन की अस्वस्थता को न्यायालयों द्वारा मानसिक विकार की विभिन्न डिग्रियों में विभिन्न रूप से समझा गया है और न्यायालयों ने इस विशेषता को लागू किया है जिससे मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, संदेह का लाभ दिया जा सके या नहीं। हालांकि, केवल अजीब व्यवहार या कुछ शारीरिक या मानसिक बीमारियां, जो भावनाओं या सोचने और ठीक से कार्य करने की क्षमता को प्रभावित करती हैं, को धारा 84 भा.दं.सं. के दायरे में "अस्वस्थ मन" नहीं माना गया है। सभी प्रकार के पागलपन जैसा समझा जाता है, वे धारा 84 भा.दं.सं. के अधीन आच्छादित नहीं होते हैं लेकिन केवल ऐसे कार्य से संबंधित हैं, जब किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किए जाते हैं, जो कार्य की प्रकृति को जानने में असमर्थ था या यह कि वह जो कर रहा था वह या तो गलत था या विधि के विपरीत था। परिणामस्वरूप, केवल ऐसी मानसिक या चिकित्सीय स्थिति, जो व्यक्ति की क्षमता को प्रभावित या व्यथित करती है, जो उसे किए गए कार्य की प्रकृति को जानने में असमर्थ बनाती है या यह कि वह जो कर रहा था, उसे वह नहीं जानता था कि वह गलत था या विधि के विपरीत था, उसे धारा 84 भा.दं.सं. के अधीन पागलपन का लाभ दिया जा सकता है, और इस प्रकार आपराधिक दायित्व से बच सकता है।

(हमारे द्वारा महत्व प्रदत्त)

34. वर्तमान मामले में, यह देखा गया है कि धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन उसके परीक्षण के दौरान अपीलकर्ता द्वारा ली गई दलील के अतिरिक्त कि वह अदृश्य शक्ति के प्रभाव में थी, अपीलकर्ता द्वारा अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं लाया गया है, जो सिद्ध करे कि वह धारा 84 भा.दं.सं. के अर्थ में "अस्वस्थ मन" की थी।

35. फिर भी, केवल इसलिए कि अपीलकर्ता स्वयं को विधिक रूप से समझने योग्य अभिव्यक्ति या अपनी मानसिक स्थिति के मुहावरे में व्यक्त नहीं कर सकी, विधिक पागलपन के अस्तित्व को इंगित करने के लिए या ऐसी स्थिति को सिद्ध करने और साक्ष्य प्रदान करने के लिए, हमारी राय में, ऐसी दलील को विचारण न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा पूरी तरह से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था।

36. वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, और यह भी ध्यान में रखते हुए कि घटना एक ग्रामीण परिवेश में हुई और अपीलकर्ता अत्यधिक शिक्षित नहीं है, उसकी अस्थिर मानसिक स्थिति या निर्णयात्मक शक्ति की अस्थायी चूक, जो अस्थायी पागलपन की सीमा पर है, की संभावना को पूरी तरह से खारिज नहीं

किया जा सकता है, जिसे अपीलकर्ता ने अदृश्य शक्ति के प्रभाव में आने के रूप में बताया, "आशय" की अनुपस्थिति के बारे में संदेह का लाभ देने के उद्देश्य से।

ग्रामीण व्यक्तियों के लिए यह आम नहीं है कि वे विभिन्न मानसिक विकारों/बीमारियों जैसे स्किज़ोफ्रेनिया, बाइपोलर डिसऑर्डर के बारे में जागरूक हों, जो अस्थायी रूप से किसी व्यक्ति की मानसिक स्थिति को दूषित कर सकते हैं। अक्सर ही, ये विकार से अपरिचित रहते हैं और अनुपचारित रहते हैं क्योंकि लक्षणों की पहचान करना मुश्किल हो सकता है और वे उचित और समय पर चिकित्सा नहीं लेते हैं, जिसके परिणामस्वरूप ऐसी चिकित्सा/मानसिक स्थितियां होती हैं, जिन्हें अंधविश्वास के आधार पर अदृश्य ताकतों के प्रभाव के जादू के साथ गलत व्याख्या या भ्रमित किया जा सकता है।

वर्तमान मामले में, हमने यह भी देखा है कि "अदृश्य प्रभाव" की प्रकृति के बारे में कोई विवरण नहीं बताया गया है और इस तरह यह विशुद्ध रूप से अटकलों के दायरे में हो सकता है कि यह "अदृश्य प्रभाव" ऊपर संदर्भित ऐसी मानसिक स्थितियों का लक्षण हो सकता है। हालांकि, अपीलकर्ता के अजीब, विचित्र और अकथनीय व्यवहार के प्रकाश में, कोई अन्य संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं है, जो दी गई परिस्थितियों में उसके आचरण से जुड़ा हो सकता है, सिवाय यह अनुमान लगाने के कि वह एक निश्चित खराब मानसिक स्थिति में थी, जिसे अपीलकर्ता ने अदृश्य शक्ति के प्रभाव में होने के रूप में वर्णित किया।

58. हालांकि, ऊपर चर्चा की गई परिस्थितियों और अभिलेख पर अन्य साक्ष्यों के बाद भी, अपीलकर्ता की मानसिक स्थिति के संबंध में किसी निर्णायक चिकित्सीय साक्ष्य की अनुपस्थिति में, हमारी राय है कि वर्तमान मामले में अपीलकर्ता को दोषमुक्त करने के लिए धारा 84 भा.दं.सं. में समाहित अपवाद का देने के लिए यह पर्याप्त नहीं हो सकता है।

फिर भी, हमारे विचार में, परिस्थितियां वर्तमान मामले में अपराध करने के लिए अपीलकर्ता के आशय के अस्तित्व के बारे में संदेह की छाया डालने के लिए पर्याप्त हैं। इस प्रकार, हम संतुष्ट हैं कि वर्तमान मामले में "मृत्यु कारित करने का आशय" सिद्ध हुआ नहीं कहा जा सकता।"

51. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर बल दिया है कि केवल इस कारण से कि अपीलकर्ता स्वयं को विधिक रूप से और समझने योग्य अभिव्यक्ति में अपनी मानसिक स्थिति को विधिक पागलपन को सिद्ध करने के लिए व्यक्त नहीं कर सका, उसे पूरी तरह से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। अदृश्य प्रभाव वास्तव में एक अटकल है, जिसे या तो शारीरिक लक्षणों से या ऐसे व्यक्ति के व्यवहार से पढ़ा जा सकता है।

52. हम यहां ***गुजरात राज्य बनाम भालचंद्र लक्ष्मीशंकर दवे, (2021)2 SCC 735*** में निर्णीत विधि का भी उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें यह तय किया गया है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय होने के कारण, उच्च न्यायालय के लिए अभिलेख पर उपलब्ध सम्पूर्ण साक्ष्य की पुनः विवेचना करना आवश्यक है और विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए तर्क की भी, जिसमें विफल रहने पर अभियोजन पक्ष या अभियुक्त प्रभावित हो सकता है।

53. निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर संख्या 5.1, 5.2,5.3 और 6 को यहां उद्धृत किया गया है:-

"5.1. उच्च न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आक्षेपित निर्णय व आदेश के अवलोकन पर, हम पाते हैं कि, जैसे, प्रतिवादी-अभियुक्त को दोषमुक्त करते हुए अभिलेख पर उपलब्ध सम्पूर्ण साक्ष्य की विस्तार से कोई पुनः विवेचना नहीं हुई है। उच्च न्यायालय ने केवल परीक्षित साक्षियों के बयानों पर सामान्य टिप्पणियां की हैं। हालांकि, अभिलेख पर पूरे साक्ष्य की विस्तार से कोई पुनः विवेचना नहीं है, जो विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय व आदेश से निपटते समय उच्च न्यायालय द्वारा की जानी चाहिए थी।

5.2. उच्च न्यायालय को विवेचना करनी चाहिए थी कि वह विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के आदेश के विरुद्ध प्रथम अपील से निपट रहा था। प्रथम अपीलीय न्यायालय होने के कारण, उच्च न्यायालय को अभिलेख पर पूरे साक्ष्य की पुनः विवेचना करने की आवश्यकता थी और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषसिद्ध करते समय दिए गए तर्क की भी। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य की पुनः विवेचना का अभाव, अभियोजन पक्ष या अभियुक्त को भी प्रभावित कर सकती है। प्रथम अपीलीय न्यायालय होने के कारण, उच्च न्यायालय को बिना किसी सीमा के अभिलेख पर उपलब्ध सम्पूर्ण साक्ष्य की पुनः विवेचना करनी चाहिए थी, जो विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति आदेश के विरुद्ध अपील से निपटते समय हो सकती है।

5.3. एक अपीलीय न्यायालय जब विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील से निपट रही होती है, तो उसे यह ध्यान में रखना होता है कि दोषमुक्ति के मामले में अभियुक्त के पक्ष में दोहरी धारणा है। सबसे पहले, निर्दोषता की धारणा उसे आपराधिक न्यायशास्त्र के मौलिक सिद्धांत के अधीन उपलब्ध है कि प्रत्येक व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाएगा जब तक कि उसे विधि की सक्षम न्यायालय द्वारा दोषी सिद्ध नहीं किया जाता है। दूसरा, अभियुक्त ने अपनी दोषमुक्ति प्राप्त की है, उसकी निर्दोषता की धारणा विचारण न्यायालय द्वारा और मजबूत, पुनः पुष्ट और मजबूत की गई है। इसलिए, विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति करने के मामलों से निपटते समय, अपीलीय न्यायालय की कुछ सीमाएं होंगी। उमेदभाई जादवभाई बनाम गुजरात राज्य, SCC p. 233,प्रस्तर 10, में विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति में भी इस न्यायालय द्वारा कहा व निर्णीत किया गया है कि:

"10. एक बार दोषमुक्ति आदेश के विरुद्ध अपील उचित रूप से अंगीकृत की गई, तो उच्च न्यायालय स्वतंत्र रूप से पूरे साक्ष्य की पुनः विवेचना करने और अपने स्वयं के निष्कर्ष पर आने का अधिकारी था। सामान्यतः, उच्च न्यायालय सत्र न्यायाधीश की राय को उचित महत्व देगा, यदि वह साक्ष्य की उचित विवेचना के बाद निष्कर्षित किया गया हो।"

उच्च न्यायालय विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के विरुद्ध भी उचित होगा, यहां तक कि पूरे साक्ष्य की स्वतंत्र रूप से पुनः विवेचना करने और अपने स्वयं के निष्कर्ष पर आने पर कि दोषमुक्ति विकृत और स्पष्ट रूप से गलत है। हालांकि, जहां तक दोषसिद्धि के आदेश के विरुद्ध अपील का संबंध है, ऐसे कोई प्रतिबंध नहीं हैं और अपीलीय न्यायालय के पास साक्ष्य के विवेचना की व्यापक शक्तियां हैं और उच्च न्यायालय

को प्रथम अपीलीय न्यायालय होने के कारण अभिलेख पर उपलब्ध सम्पूर्ण साक्ष्य की पुनः विवेचना करनी होगी। यह ध्यान में रखते हुए कि एक बार विद्वान विचारण न्यायालय ने दोषसिद्ध किया है तो निर्दोषता की कोई धारणा नहीं होगी, जैसा कि दोषमुक्ति में होगा।

6. उच्च न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आक्षेपित निर्णय व आदेश के अवलोकन पर, हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय का निर्णय स्थापित विधिक स्थिति को नजरअंदाज करते हुए पूरी तरह से गलत विधि के दृष्टिकोण पर आधारित है। साक्ष्य से निपटने/गैर-निपटने में उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से अवैध था, जिससे न्याय का गंभीर विपथन हुआ। इसलिए, हम दृढ़ राय के हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय व आदेश प्रतिवादी-अभियुक्त को दोषमुक्त करते हुए विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषसिद्ध करते समय दिए गए कारणों की ओर ध्यान दिए बिना और अभिलेख पर उपलब्ध सम्पूर्ण साक्ष्य की विस्तार से पुनः विवेचना किए बिना बना नहीं रह सकता और वह अपास्त करने योग्य है। हमारी राय है कि इसलिए प्रकरण उच्च न्यायालय को विधि के अनुसार और अपने स्वयं के गुणों के आधार पर अपील पर नए सिरे से विचार करने और निपटने के लिए प्रतिप्रेषित करने योग्य है, उपरोक्त टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए। उच्च न्यायालय को विवेचना करनी चाहिए थी कि यह भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराधों से निपट रहा था, जो अपराध समाज के विरुद्ध हैं। और इसलिए उच्च न्यायालय को अधिक सावधान रहना चाहिए था और विस्तार में जाना चाहिए था। हम उस तरीके को स्वीकृत नहीं करते हैं, जिस तरह से उच्च न्यायालय ने अपील से निपटा है।"

54. जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, स्पष्ट रूप से, विचारण न्यायालय अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर विचार करने में विफल रहा है, हालांकि, वह अभिलेख पर उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन दर्ज अपीलकर्ता के बयान को विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पूरी तरह से नजरअंदाज किया गया है।

55. यह लंबे समय से स्थापित विधि है कि एक आपराधिक मुकदमे में, धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन अभियुक्त व्यक्ति के परीक्षण का उद्देश्य, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत की आवश्यकता को पूरा करने के लिए है यानी *ऑडी अल्ट्राम पार्टेम* और इस कार्यवाही के आधार पर, अभियुक्त उन परिस्थितियों के संबंध में स्पष्टीकरण प्रस्तुत करता है और यह परिस्थितियों की श्रृंखला को पूरा करने के लिए महत्वपूर्ण कारकों में से एक है। धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन कार्यवाही केवल एक औपचारिकता नहीं है, बल्कि, यह एक अभियुक्त के बचाव का एक मूल्यवान अधिकार है और इसलिए, अभियुक्त के सामने महत्वपूर्ण परिस्थितियों को रखने में विफलता, गंभीर अनियमितता है, जो मुकदमे को दूषित करती है, विशेष रूप से, जब यह दिखाया गया है कि अभियुक्त को पूर्वाग्रह हुआ है।

56. वर्तमान प्रकरण में, जिस तरीके से विद्वान विचारण न्यायालय ने धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन दर्ज अपीलकर्ता के बयान पर विचार किया है, वह उक्त प्रावधान की आवश्यकता के अनुरूप नहीं है। वास्तव में, जो प्रश्न पूछे गए हैं, वे

न केवल अत्यंत यांत्रिक तरीके से पूछे गए हैं, बल्कि, अपीलकर्ता द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण/उत्तर विशेष रूप से, उसकी मानसिक अस्वस्थता के संबंध में, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा निपटाया नहीं गया है। इसके अतिरिक्त, चिकित्सा पर्चे, जो अभिलेख पर हैं, अपीलकर्ता की मानसिक अस्वस्थता के संबंध में, धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन दर्ज अपीलकर्ता के बयान का दृढ़ता से समर्थन करते हैं, लेकिन, वह भी, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा नजरअंदाज किया गया है।

57. अभियोजन पक्ष के साक्षियों के बयानों सहित साक्ष्यों की समग्र परीक्षण यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त है कि अपीलकर्ता कुछ खराब मानसिक स्थिति से पीड़ित था और इस प्रकार, वर्तमान प्रकरण स्पष्ट रूप से, सामान्य अपवाद की श्रेणी में आता है।

58. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, हम पाते हैं कि विद्वान विचारण न्यायालय बचाव पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की विवेचना करने में अपने सही परिप्रेक्ष्य में विफल रहा है, जिसमें धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन दर्ज अपीलकर्ता का बयान शामिल है, जिसने स्पष्ट रूप से अपीलकर्ता को पूर्वाग्रह पहुंचाया और इस प्रकार, विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को दोषसिद्ध करने और सजा सुनाने में गलती की है। इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय व आदेश विधि की नजर में बने रहने योग्य नहीं है और वह अपास्त करने योग्य है।

59. उपरोक्त के दृष्टिगत, वर्तमान आपराधिक अपील स्वीकार की जाती है।

60. परिणामस्वरूप, मुकदमा अपराध संख्या 216 वर्ष 2002, धारा 302 भारतीय दंड संहिता, पुलिस स्टेशन-फखरपुर, जिला-बहराइच से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या 229 वर्ष 2002, 'राज्य बनाम राजेश उर्फ साजेश तिवारी' में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट नंबर 1, बहराइच द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय व आदेश दिनांक 24-12-2005 को अपास्त किया जाता है।

61. अभियुक्त-अपीलकर्ता, राजेश उर्फ साजेश तिवारी जेल में है। अभियुक्त-अपीलकर्ता, राजेश उर्फ साजेश तिवारी को तुरंत जेल से रिहा किया जाए, यदि वह किसी अन्य मामले में वांछित नहीं है।

62. दं.प्र.सं. की धारा 437 ए के प्रावधानों के अनुपालन में, यह निर्देश दिया जाता है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता, राजेश उर्फ साजेश तिवारी, जेल से रिहा होने के दो सप्ताह के भीतर संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए समान राशि में एक व्यक्तिगत बांड और दो जमानतदार प्रस्तुत करेगा।

63. विचारण न्यायालय के अभिलेख को इस आदेश की प्रति के साथ आवश्यक जानकारी और अनुपालन के लिए तुरंत संबंधित विद्वान विचारण न्यायालय को प्रेषित किया जाए।

(2025) 5 ILRA 179

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांकित: इलाहाबाद 19.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति सैय्यद कमर हसन रिजवी

आपराधिक अपील संख्या-2135 वर्ष 1983

रज्जन **...अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
जी.पी. दीक्षित

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
डी.जी.ए.

आपराधिक विधि-भारतीय दंड संहिता-धारा 304-पीलकर्ता ने अन्य सह-अभियुक्तों के साथ मिलकर मृतक पर 'लाठी' से कई चोटें पहुंचाईं-मृतक को उसके सिर पर घातक प्रहार हुआ-उसकी मृत्यु कारित करने का कोई आशय नहीं था-स्वीकार्य रूप से अपराध का हथियार लाठी है, जो इस देश में ग्रामीणों द्वारा ले जाई जाने वाली एक आम वस्तु है-भा.दं.सं. की धारा 300 का कोई भी खंड आकर्षित नहीं होता-क्योंकि अपीलकर्ताओं का मृत्यु कारित करने या ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने का आशय, जो वे जानते थे कि अन्य व्यक्ति की मृत्यु का कारण होगा या प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त होगा, सिद्ध नहीं होता है-मृतक को सिर की चोट लगी थी और घटना के तीन दिन बाद उसकी मृत्यु हो गई-कोई विशिष्ट भूमिका नहीं दी गई थी अपीलकर्ता का मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग II) के अधीन आएगा।

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई (ई-9)

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची</u>:

1. आपराधिक अपील संख्या-2043 वर्ष 2023 (अनबाझगन बनाम राज्य द्वारा पुलिस निरीक्षक)
2. बासदेव बनाम पेप्सू राज्य, MANU/SC/0027/1956 : AIR 1956 16 SC 488

अनुवादित

3. पुलिचेरला नागराजू उर्फ नागराज रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, MANU/SC/8419/2006 :2006:INSC:520 : 2006 (11) SCC 444

4. जुगत राम बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2020) 9 SCC 520

5. गुरमुख सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2009) 15 SCC 635

6. मुहम्मद शकील बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2007) 3 SCC 119

(माननीय न्यायमूर्ति सैय्यद कमर हसन रिजवी द्वारा)

1. यह आपराधिक अपील, मुकदमा अपराध संख्या 75/1978, पुलिस स्टेशन-दिबियापुर, जिला इटावा से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या 341/1981 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रज्जन) में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश चतुर्थ, न्यायालय संख्या-1, इटावा द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा के निर्णय व आदेश दिनांक 06.09.1983 के विरुद्ध अभियुक्त रज्जन द्वारा योजित की गई है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/149 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया और आजीवन कारावास का दंड दिया गया, साधारण चोट पहुंचाने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 323/149 और भारतीय दंड संहिता की धारा 147 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए भी दोषसिद्ध किया गया।

2. अभियुक्त को दिबियापुर पुलिस स्टेशन की पुलिस द्वारा भा.दं.सं. की धारा 302/149, 323/149 और 147 के अधीन दंडनीय अपराध करने के लिए चालान किया गया था। प्रकरण विचारण के लिए सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया था।

3. अभियुक्त के विरुद्ध आरोप यह है कि रज्जन ने बाबू राम, वेदप्रकाश, बलवीर और 7/8 अन्य साथियों के साथ मिलकर 23.4.78 को गांव जमौली, पुलिस स्टेशन दिबियापुर, जिला इटावा में ब्रह्मदेव मेले में एक गैरकानूनी सभा बनाई, जिसका सामान्य उद्देश्य मुरली प्रसाद की हत्या करना और अन्य व्यक्तियों जैसे रामप्रकाश, होरीलाल, कन्हैयालाल और रामप्रताप को चोट पहुंचाना था। अपने सामान्य उद्देश्य को आगे बढ़ाते हुए, उन्होंने मुरली प्रसाद को लाठी से कई चोटें पहुंचाईं, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई। उन्होंने रामप्रकाश, रामप्रताप, होरीलाल, कन्हैयालाल को भी लाठी से चोटें पहुंचाईं। इस प्रकार, अभियुक्त/अपीलकर्ता-रज्जन के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता के विभिन्न प्रावधानों के अधीन मामला दर्ज किया गया। इसके बाद, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 302/149, 323/149 और 147 के अधीन दंडनीय अपराध करने के लिए आरोप विरचित किए गए।

4. सह-अभियुक्त बलबीर, वेद प्रकाश और बाबू राम को विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय व आदेश दिनांक 08.06.1981 के माध्यम से अलग से विचारण किया गया, दोषसिद्ध किया गया और दंडित किया गया, जिसके विरुद्ध उन्होंने आपराधिक अपील संख्या-1346 वर्ष 1981, पृथक अपील योजित की।

5. वर्तमान अपीलकर्ता रज्जन पर उसी अपराध के लिए एक अलग सत्र विचारण में मुकदमा चलाया गया, जो सत्र विचारण संख्या-341 वर्ष 1981 है, जिसके परिणामस्वरूप दिनांक 06.09.1983 के आक्षेपित निर्णय व आदेश के माध्यम से दोषसिद्धि हुई, जिससे वर्तमान अपील उत्पन्न हुई।

6. अभियोजन पक्ष का मामला उम्मेद प्रसाद, निवासी गांव-देव राय का पुरवा, पुलिस स्टेशन दिबियापुर, जिला-इटावा के द्वारा शुरू किया गया था, जो घटना के सूचनाकर्ता थे। श्रीमती जल देवी और मान सिंह, क्रमशः सूचनाकर्ता की भांजी और भतीजे हैं। श्रीमती जल देवी की शादी वेद प्रकाश से हुई थी, जिसने उसका परित्याग कर दिया था और उसका भरण-पोषण नहीं कर रहा था। घटना के दिन, अर्थात, 23.4.1978 को श्रीमती जल देवी अपने भाई मान सिंह के साथ लगभग 2.00 बजे गांव झमौली में आयोजित मेला देखने गई थीं। जब वे एक आम के बगीचे के पास पहुंचे, तो उन्होंने पाया कि वेद प्रकाश, बलबीर, बाबू राम और 8/9 अन्य व्यक्ति वहां मौजूद थे। वे सभी लाठियों और छोटे डंडों से लैस थे, और उन्होंने उन्हें घेर लिया। वास्तव में, उन्होंने श्रीमती जल देवी का हाथ पकड़ लिया और उसे खींचने की कोशिश की। अपने को खतरे में पाकर दोनों चिल्लाए। परिणामस्वरूप, राम प्रकाश, होरी लाल, राम प्रताप, कहैया लाल, मुरली प्रसाद और सूचनाकर्ता (उम्मेद प्रसाद), जो भी मेला देखने गए थे, घटना स्थल पर पहुंच गए। जब उन्होंने हस्तक्षेप करने की कोशिश की, तो वेद प्रकाश और अन्य द्वारा उन पर भी हमला किया गया। मुरली प्रसाद उसे लगी चोटों के कारण बेहोश हो गए। हालांकि, जब अभियुक्त व्यक्तियों ने घटनास्थल से भागने की कोशिश की तो ग्रामीणों ने बाबू राम को घटनास्थल पर पकड़ लिया। हालांकि, उसके अन्य साथी पकड़े जाने से बचने में सफल रहे। इसके बाद, मुरली प्रसाद को बैलगाड़ी पर पुलिस स्टेशन भेजा गया जबकि सूचनाकर्ता-उम्मेद प्रसाद, राम प्रकाश, होरी लाल, कन्हैया लाल और राम प्रताप, पकड़े गए अभियुक्त बाबू राम के साथ पैदल पुलिस स्टेशन दिबियापुर गए, जहां उम्मेद प्रसाद ने हरि बाबू की सहायता से एक रिपोर्ट लिखवाई और फिर इसे 23.04.1978 को शाम 6.05 बजे पुलिस स्टेशन में दर्ज कराया। पुलिस स्टेशन घटना के स्थान से 6 मील की दूरी पर था। घायल व्यक्तियों को उनकी चिकित्सा परीक्षा के लिए पुलिस द्वारा अस्पताल भेजा गया।

7. अन्वेषण उप-निरीक्षक आर.के.यादव द्वारा किया गया, जिन्होंने सभी आवश्यक औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद, सभी अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आरोपपत्र प्रस्तुत किया।

8. अभियोजन पक्ष के साथ-साथ बचाव पक्ष के मामले को ध्यान में रखते हुए और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर, विचारण ने अभियुक्त व्यक्तियों को दोषसिद्ध किया। इसके बाद वर्तमान अपील योजित की गई।

9. हमने अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री रमेश कुमार के तर्क सुने हैं और राज्य-प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री राहुल अस्थाना को सुना है और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के साथ-साथ आक्षेपित निर्णय व आदेश का अवलोकन किया है।

10. हमारे समक्ष उपलब्ध उपलब्ध अभिलेख के अनुसार, अभियोजन पक्ष ने अपना मामला सिद्ध करने के लिए निम्नलिखित नौ साक्षियों को परीक्षित किया:-

अभि.सा.-1 उम्मेद प्रशाद
अभि.सा.-2 राम प्रकाश
अभि.सा.-3 राम प्रताप
अभि.सा.-4 अब्दुल रशीद (सेवानिवृत्त एस.आई.)
अभि.सा.-5 ठाकुर दास
अभि.सा.-6 घनश्याम सिंह
अभि.सा.-7 लायक सिंह
अभि.सा.-8 आर. के. यादव (एस.आई.)
अभि.सा.-9 रणवंत सिंह

प्रस्तुत किए गए दो बचाव पक्ष के साक्षी डी.डब्ल्यू.-1, एस.एच. जाफरी (सहायक जेलर) और डी.डब्ल्यू.-2, तुलसी राम थे।

11. अभियोजन पक्ष ने अपना मामला सिद्ध करने के लिए कुल नौ साक्षियों का परीक्षण किया, उनमें से उम्मेद प्रसाद (अभि.सा.-1), राम प्रकाश (अभि.सा.-2) और राम प्रताप (अभि.सा.-3) घटना के तथ्य के साक्षी थे, जबकि अन्य सभी औपचारिक साक्षी थे।

12. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता निर्दोष था और विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य की उचित विवेचना किए बिना अपीलकर्ता को गलत तरीके से दोषसिद्ध किया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता ने मृतक और अन्य व्यक्तियों को कोई घातक चोट नहीं पहुंचाई थी। यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि मृतक की मृत्यु अपीलकर्ता द्वारा पहुंचाई गई चोट के कारण हुई।

13. अपीलकर्ता की ओर से यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अभियोजन पक्ष के साक्षियों के बयानों में गंभीर विरोधाभास और चूक हैं लेकिन विद्वान विचारण न्यायालय ने उसको नजरअंदाज करके और अपीलकर्ता को दोषसिद्ध करने में विधि में गलती की थी।

14. अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया है कि चिकित्सा रिपोर्ट के अनुसार, डॉक्टर ने राय दी थी कि अभियोजन पक्ष के व्यक्तियों को 16 चोटें पहुंचाई गई थीं और मुरली प्रसाद के सिर के ऊपर एक चोट को छोड़कर, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई, सभी प्रकृति में साधारण थीं। किसी भी अभियुक्त को विशेष रूप से मृतक मुरली प्रसाद के सिर पर चोट पहुंचाने की भूमिका नहीं सौंपी गई थी, जो उसके जीवन के लिए

घातक सिद्ध हुई। इसके अतिरिक्त, यदि अभियोजन पक्ष के मामले को उसके सही परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो वह भारतीय दंड संहिता की धारा 304(भाग-II) में निहित अपराध से आगे नहीं जाएगा।

15. अपीलकर्ता की ओर से बलपूर्वक तरीके से प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान विचारण न्यायालय अभियोजन पक्ष के साक्ष्य की सही ढंग से विवेचना करने में विफल रहा था और इसलिए अपीलकर्ता को दोषसिद्ध करने में गलती की थी। अतः, अपीलकर्ता दोषमुक्त होने का अधिकारी है।

16. इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि मृतक की मृत्यु अपीलकर्ता द्वारा पहुंचाई गई चोटों के कारण हुई और विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को उचित रूप से सजा सुनाकर बहुत सही ढंग से दोषसिद्ध किया है। उन्होंने वर्तमान अपील को निरस्त करने की प्रार्थना की।

17. हमने पक्षों के प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार किया है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

18. अभियोजन पक्ष का साक्षी अभि.सा.-1, उम्मेद प्रसाद, जो घटना का प्रत्यक्षदर्शी है, ने अपनी मुख्य परीक्षा में अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन किया है। उन्होंने आगे कहा है कि वह व्यक्ति की पहचान के लिए इटावा जेल गए थे और परीक्षण पहचान परेड में भाग लिया था और अपीलकर्ता की पहचान की थी। अपनी प्रति-परीक्षा में, वह घटना घटित होने के तरीके में दृढ़ रहे।

19. अभि.सा.-2 राम प्रकाश को अभियोजन पक्ष द्वारा एक प्रत्यक्षदर्शी के रूप में परीक्षित किया गया, जिन्होंने अपनी मुख्य परीक्षा में अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन किया है और आगे कहा है कि उन्होंने वर्तमान अपीलकर्ता-रज्जन की भी पहचान की थी, जब वह जेल में था। अपनी प्रति-परीक्षा में, उन्होंने कहा था कि यह कहना गलत है कि अपीलकर्ता-रज्जन अपने गांव में मोती लाल के घर जाते थे। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने अपने गांव में अपीलकर्ता-रज्जन को कभी नहीं देखा था।

20. अभि.सा.-3 राम प्रताप को भी अभियोजन पक्ष द्वारा एक प्रत्यक्षदर्शी के रूप में परीक्षित किया गया था। वह भी दृढ़ रहे और अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है, जिसमें बताया गया है कि घटना किस तरीके से हुई थी। अपनी प्रति-परीक्षा में, उन्होंने कहा कि उन्होंने अपने गांव में अपीलकर्ता-रज्जन को कभी नहीं देखा था और इस सुझाव से इनकार किया था कि अपीलकर्ता-रज्जन गांव में बलवीर के साथ जाते थे। उन्होंने अपीलकर्ता के साथ अपने पिछले परिचय के संबंध में सुझाव से भी इनकार किया था। पुनः परीक्षा पर, उन्होंने कहा था कि वह अभियुक्त-अपीलकर्ता की पहचान करने के लिए जेल गए थे और उनकी सही ढंग से पहचान की थी।

21. अभि.सा.-4 अब्दुल रशीद अन्वेषण अधिकारी थे, जिन्हें 06.11.1978 को अन्वेषण सौंपा गया था और उन्होंने अपीलकर्ता-रज्जन के विरुद्ध आरोपपत्र प्रस्तुत किया है।

22. अभि.सा.-5 ठाकुर दास हेड कांस्टेबल हैं, जो 23.04.1978 को हेड मोहरिर के रूप में तैनात थे और उन्होंने चिक रिपोर्ट को प्रदर्श क-4 के रूप में सिद्ध किया है।

23. अभि.सा.-6 कांस्टेबल घनश्याम सिंह को जेल से परदे में अपीलकर्ता-रज्जन को ले जाने का काम सौंपा गया था। उन्होंने आगे कहा है कि जब अपीलकर्ता उनकी हिरासत में था, तो उन्होंने किसी को भी अपीलकर्ता का चेहरा देखने का अवसर नहीं दिया।

24. अभि.सा.-7 कांस्टेबल लायक सिंह सुबह 6:00 बजे से सुबह 9:00 बजे तक सुरक्षा ड्यूटी पर थे और उन्होंने कहा है कि अपीलकर्ता परदे में था और किसी को भी उसे देखने का अवसर नहीं दिया गया था।

25. अभि.सा.-8 आर.के. यादव, अन्वेषण अधिकारी ने मामले का अन्वेषण किया है और कहा है कि उन्होंने 07.05.1978 को अपीलकर्ता-रज्जन लाल को उसके घर से गिरफ्तार किया, फिर उसे परदे में लिया और परीक्षण पहचान तक उसे परदे में रखा। उन्होंने आगे कहा कि अभियुक्त-बाबू राम के बयान पर और वर्तमान अपीलकर्ता-रज्जन और नौ अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के नाम प्रकाश में आए।

26. अभि.सा.-9 हेड कांस्टेबल रणवंत सिंह हैं, जिन्होंने कहा है कि 07.05.1978 को, उप-निरीक्षक आर.के. यादव ने सुबह 06:45 बजे पुलिस स्टेशन पर परदे में अपीलकर्ता-रज्जन को पेश किया और उसी दिन सुबह 09:15 बजे पुलिस स्टेशन से जेल ले जाया गया। पुलिस स्टेशन पर अपीलकर्ता की हिरासत के दौरान, किसी को भी उसका चेहरा देखने की अनुमति नहीं दी गई थी।

27. विचारण न्यायालय ने इसके बाद धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन अभियुक्त-अपीलकर्ता का बयान दर्ज किया, जिसमें उसने अभियोजन पक्ष के साक्षियों द्वारा उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से इनकार किया। उसने यह भी कहा है कि जब उसे गिरफ्तार किया गया था, तो उसका चेहरा खुला था और उसके बाद उसे खुले चेहरे के साथ जेल से ले जाया गया था।

28. बचाव पक्ष ने डी.डब्ल्यू.-1 एस.एच. जाफरी, सहायक जेलर को प्रस्तुत किया है, जिन्होंने सात अभियुक्त व्यक्तियों की प्रविष्टि वाला रजिस्टर प्रस्तुत किया, जो ढके चेहरे के साथ रखे गए थे और वर्तमान अपीलकर्ता के लिए, उस रजिस्टर में 'कवर' शब्द दर्ज नहीं किया गया था।

29. डी.डब्ल्यू.-2 तुलसी राम ने कहा कि जगन्नाथ और श्री राम उसके सगे भाई हैं। उन्होंने यह भी कहा कि अपीलकर्ता-रज्जन श्री राम के बेटे हैं।

30. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए तर्कों के प्रकाश में, इस न्यायालय को इस प्रश्न पर विचार करना है कि क्या भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि

के संबंध में विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष, विधि के अधीन निर्धारित मापदंड के अनुरूप हैं या नहीं?

31. अब हम धारा 302/149 और 323/149 भा.दं.सं. के अधीन दोषसिद्धि के संबंध में चोटों की जांच करने के लिए आगे बढ़ते हैं। अभियोजन पक्ष के संस्करण के अनुसार मुरली प्रसाद, राम प्रकाश, राम प्रताप, कन्हैया लाल, होरी लाल और बाबू राम को इस घटना में चोटें आईं। उनकी जांच निम्नानुसार की गई:-

मुरली प्रसाद की जांच

डॉ. एच.सी.यादव ने 23.04.1978 को शाम 6.30 बजे मुरली प्रसाद की चिकित्सीय जांच की और 3 सूजन, एक फटा हुआ घाव पाया और चोट संख्या-1, रोगी की बेहोशी से संबंधित थी। चोट संख्या-1 व 5 को अवलोकन के अधीन रखा गया था, जबकि अन्य चोटें प्रकृति में साधारण पाई गईं। बाद में मुरली प्रसाद की 26.04.1978 को शाम 7.00 बजे अस्पताल में मृत्यु हो गई। जंग बहादुर राय, उप निरीक्षक, पुलिस स्टेशन स्वरूप नगर, कानपुर ने 26.04.1978 को रात 11.00 बजे मृतक मुरली प्रसाद की पंचनामा रिपोर्ट तैयार की और शव को पोस्टमार्टम परीक्षा के लिए मुर्दाघर भेजा जहां डॉ. आर.एम. सक्सेना, ए.सी.एम.ओ.(चिकित्सा) कानपुर द्वारा 19.04.1978 को शाम 6.00 बजे शव परीक्षा की गई। उन्हें सिर के ऊपर केवल एक चोट मिली। इस अभिलेख की सत्यता स्वीकार की गई है।

राम प्रकाश की जांच

राम प्रकाश के शरीर पर तीन फटे घाव और एक खरौंच पाई गई और डॉक्टर की राय में, सभी चोटें प्रकृति में साधारण थीं।

होरी लाल की जांच

होरी लाल के शरीर पर एक फटा हुआ घाव, मांसपेशी तक गहरा पाया गया, जो डॉक्टर के अनुसार प्रकृति में साधारण था।

कन्हैया लाल की जांच

कन्हैया लाल के शरीर पर दो चोटें। एक फटा हुआ घाव गहरा है और दूसरा अग्रबाहु पर सूजन है। डॉक्टर की राय में, दोनों चोटें प्रकृति में साधारण हैं।

राम प्रताप की जांच

राम प्रताप के व्यक्ति पर चार चोटें एक फटे हुए घाव की प्रकृति में, दो लाली चोट और एक सूजन। डॉक्टर की राय में, सभी चोटें प्रकृति में साधारण हैं।

अनुवादित

32. यहां यह बताना उचित है कि वर्तमान मामले में, अपीलकर्ताओं पर आक्षेपित हथियार **लाठी** है, जिसे किसी भी कल्पना से, घटना में इस्तेमाल किया गया एक घातक हथियार नहीं कहा जा सकता है, जिसके आधार पर, अब हम यह निर्धारित करेंगे कि क्या अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की ओर से मृतक की मृत्यु कारित करने का कोई आशय था या सिर्फ शारीरिक चोट पहुंचाने के आशय से उस पर हमला करना था।

33. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने हालिया निर्णय **आपराधिक अपील संख्या-2043 वर्ष 2023 (अनबाझगन बनाम राज्य द्वारा पुलिस निरीक्षक)** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने '**आशय**' और '**ज्ञान**' शब्दों के बीच अंतर को बहुत स्पष्ट रूप से समझाया है।

34. "आशय" शब्द, तीरंदाजी या लक्ष्य शब्द से लिया गया है। एक आदमी को मारने के "आशय" के साथ "कार्य" का प्रयास किया जाना चाहिए।

35. आशय, जो मन की एक स्थिति है, को कभी भी प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा एक तथ्य के रूप में सटीक रूप से सिद्ध नहीं किया जा सकता है; इसे केवल अन्य तथ्यों से घटाया या अनुमान लगाया जा सकता है, जो सिद्ध होते हैं। आशय *रेस जेस्टे* द्वारा, घटना या घटना से पहले या बाद के कृत्यों या घटनाओं से, स्वीकृति पर सिद्ध हो सकता है। किसी व्यक्ति के आशय को प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता है लेकिन एक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से निष्कर्षित किया जाना है।

36. **बासदेव बनाम पेप्सू राज्य, MANU/SC/0027/1956 : AIR 1956 16 SC 488, पृष्ठ 490** पर न्यायमूर्ति चंद्रशेखर अय्यरद्वारा निम्नलिखित टिप्पणियां की गई हैं:-

"6... बेशक, हमें हेतुक, आशय और ज्ञान के बीच अंतर करना होगा। हेतुक वह चीज है जो एक आदमी को एक आशय बनाने के लिए प्रेरित करती है और ज्ञान कार्य के परिणामों की जागरूकता है। कई मामलों में आशय और ज्ञान एक दूसरे में विलीन हो जाते हैं और कमोबेश एक ही चीज का मतलब होता है और आशय को ज्ञान से माना जा सकता है। ज्ञान और आशय के बीच सीमांकन रेखा निस्संदेह पतली है लेकिन यह समझना मुश्किल नहीं है कि वे अलग-अलग चीजों को दर्शाते हैं। यहां तक कि कुछ अंग्रेजी निर्णयों में भी, तीनों विचारों का उपयोग एक दूसरे के स्थान पर किया जाता है और इससे एक निश्चित मात्रा में भ्रम पैदा हुआ है।"

महत्व प्रदत्त)

37. उपरोक्त निर्णय में सुझाए गए परीक्षण को ध्यान में रखते हुए और यह भी ध्यान में रखते हुए कि हमारे विधानमंडल ने दो अलग-अलग शब्द 'आशय' और 'ज्ञान' का उपयोग किया है और ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के आशय से किए गए कार्य के लिए अलग-अलग सजाएं प्रदान की गई हैं, जो मृत्यु कारित करने की संभावना है और एक कार्य के लिए जो इस ज्ञान के साथ किया गया है कि उसका कार्य मृत्यु कारित करने की

संभावना है बिना ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के आशय के जो मृत्यु कारित करने की संभावना है, यह मानना उचित होगा कि 'आशय' और 'ज्ञान' को एक दूसरे के साथ समान नहीं माना जा सकता है। वे अलग-अलग चीजों को दर्शाते हैं। कभी-कभी, यदि परिणाम इतना स्पष्ट है, तो यह हो सकता है कि ज्ञान से, आशय को माना जा सकता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं होगा कि 'आशय' और 'ज्ञान' समान हैं। आवश्यक आशय को निर्धारित या अनुमान लगाते समय 'ज्ञान' केवल ध्यान में रखी जाने वाली परिस्थितियों में से एक होगा।

38. **MANU/SC/8419/2006:2006:INSC:520:2006 (11) SCC 444, पुलिचेरला नागराजू उर्फ नागराज रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य** में एक अन्य मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न प्रासंगिक परिस्थितियों को निर्धारित किया है, जिनसे आशय एकत्र किया जा सकता है। कुछ प्रासंगिक विचार निम्नलिखित हैं:-

(i) उपयोग किए गए हथियार की प्रकृति, (ii) क्या हथियार अभियुक्त द्वारा ले जाया गया था या घटनास्थल से उठाया गया था, (iii) क्या प्रहार शरीर के महत्वपूर्ण भाग पर निशाना है, (iv) चोट पहुंचाने में प्रयुक्त बल की मात्रा, (v) क्या कार्य अचानक झगड़े या अचानक लड़ाई के दौरान था, (vi) क्या घटना संयोग से हुई या क्या कोई पूर्व योजना थी, (vii) क्या कोई पूर्व दुश्मनी थी या क्या मृतक एक अजनबी था, (viii) क्या कोई गंभीर या अचानक उकसावा था और यदि हां, तो ऐसे उकसावे का कारण, (ix) क्या यह जोश की गर्मी थी, (x) क्या चोट पहुंचाने वाले व्यक्ति ने अनुचित लाभ लिया है या क्रूर तरीके से कार्य किया है, (xi) क्या अभियुक्त व्यक्तियों ने एक प्रहार या कई प्रहार किए हैं।

39. इस प्रकार, सदोष मानववध और हत्या के अपराध को परिभाषित करते समय, भा.दं.सं. के निर्माताओं ने निर्धारित किया कि आवश्यक आशय या ज्ञान को अभियुक्त पर आरोपित किया जाना चाहिए, जब उसने वह कार्य किया, जो मृत्यु का कारण बना जिससे उसे सदोष मानववध या हत्या के अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जा सके। भा.दं.सं. के निर्माताओं ने जानबूझकर दो शब्दों 'आशय' और 'ज्ञान' का उपयोग किया, और यह माना जाना चाहिए कि निर्माताओं ने इन दो अभिव्यक्तियों के बीच अंतर करने का आशय किया। एक कार्य करने में जो परिणाम हो सकते हैं उसका ज्ञान, ऐसे परिणामों का आशय होने के समान नहीं है। उन मामलों को छोड़कर जहां यह सिद्ध करने के लिए *मेन्स रिया* की आवश्यकता नहीं है कि एक व्यक्ति को कुछ ज्ञान था, उसे "जागरूक होना चाहिए कि कुछ निर्दिष्ट हानिकारक परिणाम होंगे या हो सकते हैं।" (रसेल ऑन क्राइम, ट्वेल्फ्थ एडिशन, वॉल्यूम पृष्ठ 40 पर)।

40. भा.दं.सं. की धाराओं 299 और 300 की शब्दावली इस बात में कोई संदेह नहीं छोड़ती है कि इन धाराओं के अधीन जब यह कहा जाता है कि एक विशेष कार्य दंडनीय होने के लिए ऐसे आशय से किया जाना चाहिए, तो आवश्यक आशय अभियोजन पक्ष द्वारा सिद्ध किया जाना चाहिए। यह सिद्ध किया जाना चाहिए कि अभियुक्त ने लक्ष्य रखा या इच्छा की कि उसका कार्य ऐसे और ऐसे परिणामों की ओर ले जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, जब धारा 299 के अधीन यह कहा जाता है "जो कोई भी मृत्यु कारित करने के आशय से

एक कार्य करके मृत्यु कारित करता है" यह सिद्ध किया जाना चाहिए कि अभियुक्त ने कार्य करके, विशेष परिणाम लाने का आशय किया, अर्थात, मृत्यु कारित करना। इसी तरह, जब यह कहा जाता है "जो कोई भी ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के आशय से एक कार्य करके मृत्यु कारित करता है जो मृत्यु कारित करने की संभावना है" यह सिद्ध किया जाना चाहिए कि अभियुक्त का ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने का लक्ष्य था जो मृत्यु कारित करने की संभावना थी।

41. इस प्रकार, आशय के संबंध में विधि की आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए कि सदोष मानववध के अपराध को सिद्ध किया जाए, यह आवश्यक है कि दो विशिष्ट इरादों में से कोई भी सिद्ध होना चाहिए। लेकिन, तब भी जब ऐसा आशय सिद्ध नहीं होता है, अपराध सदोष मानववध होगा यदि कार्य करने वाला इस ज्ञान के साथ मृत्यु कारित करता है कि वह अपने ऐसे कार्य से मृत्यु कारित करने की संभावना है, अर्थात, इस ज्ञान के साथ कि उसके कार्य करने का परिणाम ऐसा हो सकता है जो मृत्यु में परिणत हो सकता है।

42. बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न, जिसने इस मामले में हमारा ध्यान आकर्षित किया है, यह है कि क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में हमें धारा 302 के अधीन अपराध के लिए यहां अपीलकर्ता की दोषसिद्धि को बनाए रखना चाहिए या हमें इसे भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग II) में परिवर्तित करना चाहिए?

43. भा.दं.सं. की धाराएं 299 और 300 क्रमशः 'सदोष मानववध' और 'हत्या' की परिभाषा से संबंधित हैं। धारा 299 के संदर्भ में, 'सदोष मानववध ' को मृत्यु कारित करने के एक कार्य के रूप में वर्णित किया गया है (i) मृत्यु कारित करने के आशय से या (ii) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के आशय से, जो मृत्यु कारित करने की संभावना है, या (iii) इस ज्ञान के साथ कि ऐसा कार्य मृत्यु कारित करने की संभावना है। जैसा कि इस प्रावधान को पढ़ने से स्पष्ट है, इसका पूर्व भाग 'आशय' अभिव्यक्ति पर जोर देता है जबकि बाद का 'ज्ञान' पर। ये दोनों सकारात्मक मानसिक दृष्टिकोण हैं, हालांकि, विभिन्न डिग्री के। 'सदोष मानववध' में मानसिक तत्व, अर्थात, आचरण के परिणामों के प्रति मानसिक दृष्टिकोण आशय और ज्ञान में से एक है। एक बार तीन बताए गए तरीकों में से किसी में भी अपराध कारित किया जाता है, तो यह 'सदोष मानववध' होगी। भा.दं.सं. की धारा 300, हालांकि, 'हत्या' से संबंधित है, हालांकि भा.दं.सं. की धारा 300 में 'हत्या' की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं है। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा बार-बार कहा गया है, 'सदोष मानववध' जीनस है और 'हत्या' इसकी प्रजाति है और सभी 'हत्याएं' 'सदोष मानववध' हैं लेकिन सभी 'सदोष मानववध' 'हत्याएं' नहीं हैं। (रामपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, MANU/SC/0589/2012 : 2012:INSC:302 : (2012) 8 SCC 289 देखें)।

44. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे आपराधिक अपील संख्या-2043 वर्ष 2023 (उपरोक्त) में अपने निर्णय में इस प्रकार कहा है कि सदोष मानववध (भा.दं.सं. की धारा 299) और हत्या (भा.दं.सं. की धारा 300) के बीच अंतर को हमेशा ध्यान से ध्यान में रखा जाना चाहिए, जब धारा 302 भा.दं.सं. के अधीन आरोप से निपटा जा रहा हो। सदोष मानववध की श्रेणी के अधीन, दोनों, हत्या के समान सदोष मानववध के मामले और हत्या के समान नहीं वाले मामले आएंगे। सदोष मानववध हत्या नहीं है, जब मामला भा.दं.सं. की धारा 300 के

पांच अपवादों के भीतर लाया जाता है। लेकिन, भले ही उक्त पांच अपवादों में से कोई भी याचिका नहीं दी गई है या अभिलेख पर साक्ष्य पर प्रथम दृष्टया स्थापित नहीं है, अभियोजन पक्ष को अभी भी विधि के अधीन हत्या के आरोप को कायम रखने के लिए भा.दं.सं. की धारा 300 के चार खंडों में से किसी के अधीन मामला लाने की आवश्यकता होगी। यदि अभियोजन पक्ष भा.दं.सं. की धारा 300 के चार खंडों में से किसी एक को स्थापित करने में इस दायित्व को निर्वहन करने में विफल रहता है, अर्थात, प्रथम से चतुर्थ, हत्या का आरोप नहीं बनेगा और मामला भा.दं.सं. की धारा 299 के अधीन वर्णित हत्या के समान नहीं सदोष मानववध का हो सकता है।

45. जब अभियुक्त द्वारा पहुंचाई गई चोट के परिणामस्वरूप पीड़ित की मृत्यु हो जाती है, तो एक सामान्य सिद्धांत के रूप में, कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि अभियुक्त का मृत्यु कारित करने या उस विशेष चोट को पहुंचाने का आशय नहीं था जिसके परिणामस्वरूप पीड़ित की मृत्यु हुई। क्या किसी अभियुक्त का आवश्यक दोषी आशय था या नहीं, यह तथ्य का प्रश्न है जिसे प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्धारित किया जाना है।

46. अब, हम घटना के दुर्भाग्यपूर्ण दिन वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को संक्षेप में बताते हैं, अपीलकर्ता रज्जन ने अन्य सह-अभियुक्तों के साथ मिलकर मुरली प्रसाद पर 'लाठी' से कई चोटें पहुंचाईं, जिसके परिणामस्वरूप मुरली प्रसाद की मृत्यु हो गई, मृतक को उसके सिर पर एक घातक प्रहार हुआ जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई, हालांकि, उसकी मृत्यु कारित करने का कोई आशय नहीं था। वर्तमान मामले में, स्वीकार्य रूप से अपराध का हथियार लाठी है, जो इस देश में ग्रामीणों द्वारा ले जाई जाने वाली एक आम वस्तु है, जो उसकी पहचान से जुड़ी है।

47. इस प्रकार, उपरोक्त परिस्थितियों से, हम विचारित राय के हैं कि भा.दं.सं. की धारा 300 का कोई भी खंड आकर्षित नहीं होता क्योंकि अपीलकर्ताओं का मृत्यु कारित करने या ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने का आशय, जो वे जानते थे कि अन्य व्यक्ति की मृत्यु का कारण होगा या प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त होगा, सिद्ध नहीं होता है।

48. अब, अगला प्रश्न यह होगा कि क्या अपीलकर्ता भा.दं.सं. की धारा 304 के भाग-I या भाग-II में दोषी होंगे। धारा 304 के अधीन वैधानिक प्रावधान इस प्रकार हैं:-

हत्या के समान नहीं सदोष मानववध के लिए सजा

जो कोई भी हत्या के समान नहीं सदोष मानववध करता है, उसे आजीवन कारावास, या किसी भी विवरण के कारावास से दंडित किया जाएगा जो दस साल तक बढ़ सकती है, और जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा, यदि वह कार्य जिससे मृत्यु होती है, मृत्यु कारित करने के आशय से किया जाता है, या ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के आशय से जो मृत्यु कारित करने की संभावना है, या किसी भी विवरण के कारावास से जो दस साल तक

बढ़ सकती है, या जुर्माने से, या दोनों से, यदि कार्य इस ज्ञान के साथ किया जाता है कि यह मृत्यु कारित करने की संभावना है, लेकिन मृत्यु कारित करने के किसी भी आशय के बिना, या ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के जो मृत्यु कारित करने की संभावना है।

49. धारा 304 दो भागों में है। यदि विश्लेषण किया जाए, तो धारा दो अलग-अलग स्थितियों के लिए दो प्रकार की सजा प्रदान करती है। यदि वह कार्य, जिससे मृत्यु होती है, मृत्यु कारित करने के आशय से या ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के आशय से किया जाता है जो मृत्यु कारित करने की संभावना है। यहां महत्वपूर्ण घटक "आशय" है; यदि कार्य इस ज्ञान के साथ किया जाता है कि यह मृत्यु कारित करने की संभावना है लेकिन मृत्यु कारित करने के किसी भी आशय के बिना या ऐसी शारीरिक चोट जो मृत्यु कारित करने की संभावना है। जब कोई व्यक्ति शरीर के महत्वपूर्ण भाग पर लाठी डंडा से इतने बल के साथ मारता है कि मारा गया व्यक्ति मृत हो जाता है, तो ज्ञान को अभियुक्त पर आरोपित किया जाना है। उस स्थिति में, मामला धारा 304 भा.दं.सं. के भाग II में आएगा, जैसा कि वर्तमान मामले में है।

50. धारा 302 भा.दं.सं. (हत्या) से धारा 304 भाग II भा.दं.सं. (हत्या के समान नहीं सदोष मानववध) में दोषसिद्धि को बदलने के लिए, विश्लेषण इस प्रकार हैं:-

(1) अभियोजन और बचाव पक्ष का साक्ष्य

अभि.सा.-1,2 व 3, और (उम्मेद प्रसाद, राम प्रकाश, राम प्रताप): घटनास्थल पर रज्जन की उपस्थिति स्थापित की, हमले में उनकी भागीदारी, लेकिन कोई विशिष्ट बयान नहीं दिया कि उन्होंने मुरली प्रसाद को सिर की चोट पहुंचाई। अन्य अभि.सा. (औपचारिक साक्षी) ने गिरफ्तारी, पहचान, और पोस्टमार्टम रिपोर्ट के सामान्य तथ्यों को सिद्ध किया। डी.डब्ल्यू.-1 (जेलर) और डी.डब्ल्यू.-2 (ग्रामीण) ने पहचान में प्रक्रियात्मक अनियमितताओं और पूर्व परिचय का सुझाव दिया, लेकिन ये गंभीर रूप से अपराध को प्रभावित नहीं करते हैं। हालांकि, वे पहचान स्पष्टता के बारे में संदेह को मजबूत करते हैं, जो रज्जन की विशिष्ट भूमिका की सीमा का आकलन करते समय उपयोगी है।

(2) चिकित्सा और फोरेंसिक साक्ष्य: पोस्टमार्टम रिपोर्ट से पता चला कि मृतक मुरली प्रसाद को केवल एक घातक चोट लगी: सिर के ऊपर एक चोट, जबकि अन्य चोटें या तो सूजन या फटे हुए घाव थे और जांच करने वाले डॉक्टर द्वारा साधारण के रूप में वर्गीकृत किया गया था। इस चोट की प्रकृति मारने के लिए एक पूर्वनिर्धारित योजना या आशय की अनुपस्थिति का सुझाव देती है, विशेष रूप से एक समूह हमले के संदर्भ में जहां व्यक्तिगत भूमिकाओं को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया था।

(3) हमले की समूह प्रकृति और उकसावा: घटना एक मेले (ब्रह्मदेव मेला) में हुई, जहां एक व्यक्तिगत पारिवारिक विवाद बढ़ गया। अभियुक्त, रज्जन सहित, कथित तौर पर श्रीमती जल देवी को खींचने का प्रयास किया, जिससे

अचानक वृद्धि और रिश्तेदारों और ग्रामीणों द्वारा हस्तक्षेप हुआ। घटना की अचानकता, पूर्वनियोजन की अनुपस्थिति, और लाठियों का उपयोग-जो अपने आप में घातक हथियार नहीं हैं-हत्या करने के आशय की कमी को इंगित करते हैं, लेकिन ज्ञान कि ऐसे कार्य से मृत्यु हो सकती है।

51. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य को देखने के बाद, मृतक को सिर की चोट लगी थी जिसने उसके जीवन को खतरे में डाल दिया। मृतक की 26.04.1978 को घटना के तीन दिन बाद मृत्यु हो गई। पोस्ट मॉर्टम रिपोर्ट मृत्यु पूर्व चोट के रूप में सिर के ऊपर एक चोट दिखाती है और डॉक्टर की राय में, मृत्यु का कारण सिर की चोट के परिणामस्वरूप रक्तस्राव था। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता को ध्यान में रखते हुए, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अपीलकर्ता-रंजन को उस घातक प्रहार को पहुंचाने के लिए कोई विशिष्ट भूमिका नहीं दी गई थी, जो मुरली प्रसाद की मृत्यु में परिणत हुई।

52. वर्तमान मामले में, चोट का अस्तित्व सिद्ध होता है। अब सवाल यह है कि क्या परिस्थितियों ने यह निष्कर्ष निकालने की गारंटी दी कि अपीलकर्ता ने ऐसी चोट पहुंचाने का आशय किया जो वास्तव में पहुंचाई गई है या क्या उसके पास आवश्यक ज्ञान था कि वह ऐसी चोट पहुंचाएगा जो अंततः घायल की मृत्यु का कारण बन सकती है। जब एक अभियुक्त 'लाठी' का उपयोग कर रहा है, तो उसे उस बल के बारे में जागरूक माना जाना चाहिए, जो वह उपयोग करने वाला है या उपयोग किया है और इसलिए, उसके कार्य के परिणाम के आवश्यक 'ज्ञान' के साथ जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। क्या अभियुक्त के पास आवश्यक आशय या ज्ञान था, देखा जाना होगा। आवश्यक आशय या ज्ञान का पता लगाने के लिए लागू किया जा सकने वाला मूल मानदंड यह है कि क्या वह उन परिणामों के बारे में जागरूक था, जो अनुसरण करेंगे या उसके कार्य के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में अनुसरण करने की संभावना थी। जहां प्रत्यक्ष परिणामों या संभावना की उच्च डिग्री की ऐसी जागरूकता को अभियुक्त पर जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है, अपराध धारा 302 भा.दं.सं. के अधीन भी नहीं आ सकता है। हमारी दृढ़ राय में, ऐसे मामलों में अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग II) के अधीन कवर किया जाएगा।

53. ऐसा प्रतीत होता है कि अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि मृतक को मारने में अपीलकर्ता का कार्य इस ज्ञान के साथ किया गया था कि यह मृत्यु कारित करने की संभावना थी लेकिन मृत्यु कारित करने के किसी भी आशय के बिना या ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के जो मृत्यु कारित करने की संभावना है। अपीलकर्ता का मामला, इसलिए, भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग II) के अधीन आएगा, कार्य इस ज्ञान के साथ किया जाना चाहिए कि यह मृत्यु कारित करने की संभावना है, लेकिन मृत्यु कारित करने के आशय के बिना। तथ्य इंगित करते हैं कि मारने का आशय उचित संदेह से परे सिद्ध नहीं हुआ है, हालांकि सिर पर लाठी के उपयोग से ज्ञान का अनुमान लगाया जा सकता है। इसलिए, यह मामला धारा 304 भाग II के दायरे में अधिक उचित रूप से आता है।

54. **जुगत राम बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2020) 9 SCC 520 (प्रस्तर 6 से 10)** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "**एक लाठी** इस देश में एक ग्रामीण द्वारा ले जाई जाने वाली एक आम वस्तु है, जो उसकी पहचान से जुड़ी है", जो हमले के हथियार के रूप में उपयोग किए जाने में सक्षम है लेकिन यह इसे सरलता से हमले का हथियार नहीं बनाती है और, इसलिए, लाठी से सिर पर हमला हमेशा प्रत्येक मामले में तथ्य का प्रश्न है कि क्या मृत्यु कारित करने का आशय था या केवल ज्ञान कि मृत्यु होने की संभावना थी। **गुरमुख सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2009) 15 SCC 635** और **मुहम्मद शकील बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2007) 3 SCC 119** में निर्धारित उपरोक्त विधि के प्रकाश में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभियुक्त की दोषसिद्धि को **धारा 302 से धारा 304 (भाग II) भा.दं.सं.** में **बदल दिया**, निम्नानुसार कहा:

"6. एक लाठी इस देश में एक ग्रामीण द्वारा ले जाई जाने वाली एक आम वस्तु है, जो उसकी पहचान से जुड़ी है। यह तथ्य कि यह हमले के हथियार के रूप में भी उपयोग किए जाने में सक्षम है, इसे सरलता से हमले का हथियार नहीं बनाती है। वर्तमान जैसे मामले में, लाठी से सिर पर हमला, यह हमेशा प्रत्येक मामले में तथ्य का प्रश्न है कि क्या मृत्यु कारित करने का आशय था या केवल ज्ञान कि मृत्यु होने की संभावना थी। परिस्थितियां, हमले का तरीका, चोटों की प्रकृति और संख्या सभी को आशय या ज्ञान को समझने के लिए संचयी रूप से विचार करना होगा। हम इस संबंध में वीरसा सिंह बनाम पंजाब राज्य, 1958 SCR 1495 में निर्धारित पहले सिद्धांतों पर विस्तार करना आवश्यक नहीं समझते हैं, जो अच्छी तरह से स्थापित हैं। दृष्टांत से यह नोट करना पर्याप्त है कि जोसेफ बनाम केरल राज्य, (1995) SCC (Cri.) 165 में, अपीलकर्ता ने मृतक के सिर पर दो प्रहार किए। मृतक की दो दिन बाद मृत्यु हो गई। पोस्ट मॉर्टम रिपोर्ट ने सिर पर फटा हुआ घाव पाया और आंतरिक जांच ने ओसीसीपिटल हड्डी में फ्रैक्चर का खुलासा किया जो टेम्पोरल हड्डी तक फैला हुआ था। हाई कोर्ट ने अपीलकर्ता को धारा 302 भा.दं.सं. के अधीन दोषसिद्ध किया यह मानते हुए कि लाठी से पहुंचाई गई चोट मृतक की मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थी। इस न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की:

"3.....उपयोग किया गया हथियार एक घातक हथियार नहीं है, जैसा कि विद्वान अधिवक्ता ने सही ढंग से तर्क दिया। पूरी घटना एक तुच्छ घटना का परिणाम थी और उन परिस्थितियों में अभियुक्त ने लाठी से सिर पर दो प्रहार किए, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने ऐसी चोट पहुंचाने का आशय किया जो पर्याप्त है (अपठनीय)। अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि ऐसी चोटें पहुंचाकर उसे ज्ञान था कि वह मृत्यु कारित करने की संभावना थी। जिस स्थिति में उसके द्वारा किया गया अपराध हत्या के बराबर नहीं सदोष मानववध होगा। तदनुसार हम अपीलकर्ता की धारा 302 भा.दं.सं. के अधीन दोषसिद्धि और उसके अधीन दी गई आजीवन कारावास की सजा को रद्द करते हैं। इसके बजाय हम अपीलकर्ता को धारा 304 भाग II भा.दं.सं. के अधीन दोषी ठहराते हैं और उसे पांच साल की कठोर कारावास की सजा सुनाते हैं।"

7. चमरू बुधवा बनाम मध्य प्रदेश राज्य, AIR 1954 SC 652 में, अपीलकर्ता ने लाठी से मृतक के सिर पर एक प्रहार किया जो घातक सिद्ध हुआ। चोट को चिकित्सकीय रूप से सामान्य क्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त माना गया। धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि हुई। इस न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की:

"5. अब यह विचार करना बाकी है कि उसके द्वारा किया गया अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के पहले भाग या दूसरे भाग के भीतर आता है या नहीं। जब अभियोजन पक्ष द्वारा आरोपित तरीके से केवल एक प्रहार द्वारा अपीलकर्ता द्वारा मृतक के सिर पर घातक चोट पहुंचाई गई तो यह भी हो सकता है कि जिस कार्य से मृत्यु हुई वह मृत्यु कारित करने के आशय से या ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के आशय से नहीं किया गया जो मृत्यु कारित करने की संभावना है। कार्य इस ज्ञान के साथ किया गया प्रतीत होता है कि यह मृत्यु कारित करने की संभावना थी, लेकिन मृत्यु कारित करने के किसी भी आशय के बिना या ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के जो भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के भाग II के अर्थ के भीतर मृत्यु कारित करने की संभावना है।

"6. तदनुसार हम इस सीमा तक अपील की अनुमति देते हैं कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपीलकर्ता की दोषसिद्धि और उसे दी गई आजीवन सजा को रद्द किया जाएगा, लेकिन अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग II के अधीन अपराध करने का दोषसिद्ध किया जाएगा और उसे सात साल की सश्रम कारावास की सजा सुनाई जाएगी।"

8. गुरमुख सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2009) 15 SCC 635 में, मृतक की एक लाठी से सिर पर हमले के तीन दिन बाद मृत्यु हो गई, जो सामान्य प्रकृति के क्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त मानी गई। यह मानते हुए कि हमला पूर्व योजना के बिना झटके में किया गया था, दोषसिद्धि को धारा 302 से धारा 304 भाग II में बदल दिया गया और सात साल की सजा सुनाई गई। इसी तरह मोहम्मद शकील बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2007) 3 SCC 119 में, अपीलकर्ता ने केवल एक चोट पहुंचाई थी और स्वयं भी चोट खाई थी। धारा 302 भा.दं.सं. के अधीन दोषसिद्धि को 304 भाग II में बदलते हुए, अपीलकर्ता को 1999 से भुगती गई अवधि की सजा सुनाई गई।

9. हम नहीं मानते कि लल्टू घोष (उपरोक्त) और एस. रायप्पा (उपरोक्त), संबंधित साक्षियों की विश्वसनीयता के संबंध में, हमारे द्वारा तय किए जा रहे प्रश्न के लिए कोई प्रासंगिकता है।

10. तदनुसार हम अपीलकर्ता की दोषसिद्धि को धारा 302 भा.दं.सं. से धारा 304 भाग II, भा.दं.सं. में बदलते हैं। अपीलकर्ता 2004 से हिरासत में है। उसने पहले ही इसके अधीन निर्धारित सजा की अधिकतम अवधि से गुजर चुका है। इसलिए, अपीलकर्ता को तुरंत स्वतंत्रता पर छोड़ने का निर्देश दिया जाता है जब तक कि वह किसी अन्य मामले में वांछित न हो।

11. अपील स्वीकार की जाती है।"

55. उपरोक्त विश्लेषण की संपूर्णता के आधार पर, हम इस विचार के हैं कि अपीलकर्ता भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सपठित धारा 149 के अधीन दोषसिद्ध करने योग्य नहीं है, बल्कि अपीलकर्ता को भारतीय दंड

संहिता की धारा 304 (भाग II) सपठित धारा 149 के अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता है। जैसे, भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सपठित धारा 149 और धारा 323 सपठित धारा 149 के अधीन अपीलकर्ता की दोषसिद्धि के संबंध में विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय व आदेश को संशोधित किया जाता है और तदनुसार, अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग II) और धारा 323 सपठित धारा 149 के अधीन दोषसिद्ध किया जाता है।

56. अब, भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग II) सपठित धारा 149 भारतीय दंड संहिता के अधीन सजा के मुद्दे को संबोधित करते हुए, चूंकि अभियुक्त-अपीलकर्ता मुकदमे के दौरान के साथ-साथ दोषसिद्धि के बाद हिरासत में रहा और उसके द्वारा पहले ही भुगती कारावास की अवधि को ध्यान में रखते हुए, हम अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा पहले ही भुगती अवधि के बराबर सजा अधिरोपित करना उचित समझते हैं।

57. इस प्रकार अपील उपर्युक्त शर्तों में आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। अपीलकर्ता जमानत पर है। उसे आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है। जमानत बांड उन्मोचित किए जाते हैं।

58. इस आदेश की एक प्रति जानकारी के लिए संबंधित विद्वान विचारण न्यायालय को भेजी जाए।

59. प्रमाणित प्रति, नियमानुसार।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 191

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांकित: लखनऊ 26.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा

आपराधिक अपील संख्या 2240 वर्ष 2008

अन्नू **...अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
अरुण सिन्हा, हरि बक्स, रवि कांत पांडेय

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
जी.ए., जी.एस. वर्मा, एस.पी. तिवारी, शिव प्रमोद तिवारी, विकास पांडेय

(ए) आपराधिक विधि-हत्या-हत्या का प्रयास-गंभीर चोट-हथियारों का धारण-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374(2), 428 और 437ए-भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 302, 307, 326-शस्त्र अधिनियम, 1959-धारा 3/25-साक्ष्य अधिनियम, 1872-धारा 6-"समान संव्यवहार " का सिद्धांत-घायल साक्षी की प्रत्यक्ष साक्ष्य-विश्वसनीयता-चिकित्सा साक्ष्य बनाम प्रत्यक्ष साक्ष्य-संबंधित साक्षी-साक्षियों की संख्या-हेतुक की अनुपस्थिति-प्रभाव-जहां चक्षुदर्शी साक्षी का विवरण विश्वसनीय और भरोसेमंद पाया जाता है, वहां वैकल्पिक संभावनाओं की ओर इशारा करने वाली चिकित्सा राय को निर्णायक के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है-जहां घायल चक्षुदर्शी का प्रत्यक्ष साक्ष्य भरोसेमंद है और अन्य साक्षियों और चिकित्सा साक्ष्य द्वारा पुष्ट किया जाता है, वहां हेतुक का अभाव या दोषपूर्ण जांच दोषमुक्ति करने की गारंटी नहीं देती है-मृत्युदंड के विकल्प के रूप में कारावास की किसी विशिष्ट अवधि या दोषी के जीवन के अंत तक प्रदान करने वाली संशोधित सजा लगाने की शक्ति, केवल उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जा सकती है न कि किसी अन्य अवर न्यायालय द्वारा। (प्रस्तर-38 से 41, 44 से 46, 48 से 52, 54)

देसी पिस्तौल से लैस-अपीलकर्ता ने-गांव में खेल रहे दो लड़कों पर गोली चलाई-गोली ने एक (अभि.सा.-2) के हाथ को छुआ और दूसरे (रफीक), 18 वर्षीय, को घातक रूप से घायल कर दिया- ग्रामीणों द्वारा हथियार के साथ मौके पर पकड़ा गया-रफीक की अगली सुबह मृत्यु हो गई-विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को दोषसिद्ध

किया-हत्या के लिए उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाई-अन्य अपराधों के लिए समवर्ती सजाएं-इसलिए अपील। (प्रस्तर-7 से 14)

निर्णीत:-दोषसिद्धि पुष्ट की गई। धारा 302 भा.दं.सं. के अधीन सजा को आजीवन कारावास से संशोधित कर 25 वर्ष का सश्रम कारावास किया गया। अर्थदंड बनाए रखा गया। विचारण न्यायालय के निष्कर्षों में कोई विकृति नहीं। (प्रस्तर-52 से 56)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई। (ई-7)

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची</u>:

1. एडक्कंडी दिनेशन बनाम केरल राज्य, 2025 (3) SCC 273
2. रामकांत राय बनाम मदन राय और अन्य, MANU/SC/0780/2003 : 2004 Cri LJ 36
3. धनंजय सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2004 JIC 399
4. चंदन बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), 2024 (6) SCC 799
5. मदन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2023 (15) SCC 701
6. दीन दयाल तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2025 SCC OnLine SC 237

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा द्वारा उद्घोषित)

1. यह आपराधिक अपील, मुकदमा अपराध संख्या-183 वर्ष 2005 और 184 वर्ष 2005, धारा 307, 302, 326 भा.दं.सं. और धारा 3/25 शस्त्र अधिनियम, पुलिस स्टेशन-ईशा नगर, जिला-खीरी से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या 593 वर्ष 2005 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, एफ.टी.सी.-षष्ठम, लखीमपुर खीरी द्वारा पारित निर्णय व आदेश दिनांक 02.09.2008 ले विरुद्ध दं.प्र.सं. की धारा 374(2) के अधीन योजित की गई है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता को दोषसिद्ध व निम्नानुसार दंडित किया गया है-भा.दं.सं. की धारा 302 के अधीन आजीवन सश्रम कारावास और अर्थदंड, धारा 307 भा.दं.सं. के अधीन सात वर्ष का साधारण कारावास और अर्थदंड, धारा 326 भा.दं.सं. के अधीन सात वर्ष का साधारण कारावास और अर्थदंड, और शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25 के अधीन दो वर्ष का साधारण कारावास और अर्थदंड; सभी सजाएं समवर्ती रूप से चलने के लिए, और प्रत्येक मद पर जुर्माने के भुगतान में व्यतिक्रम की स्थिति में, अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा।

2. यह अपील प्रारंभ में श्री अरुण सिन्हा द्वारा योजित की गई थी। वह इसके बाद विभिन्न तिथियों पर उपस्थित होने में विफल रहे, और इस न्यायालय ने उनकी ओर से न्याय-मित्र के रूप में हरि बक्श सिंह, अधिवक्ता को नियुक्त किया। बाद में, श्री रवि कांत पांडेय ने 27.03.2023 को अपीलकर्ता की ओर से अपन वकालतनामा दाखिल किया और इसके बाद किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015

की धारा 9(2) के अधीन एक आवेदन योजित किया, जिसमें अपीलकर्ता को घटना के समय किशोर घोषित करने के लिए कहा गया। ऐसा आवेदन फरवरी, 2024 में योजित किया गया था, जिसमें अभकठन किया गया कि अपीलकर्ता, 10.02.1988 को पैदा हुआ था, जैसा कि स्कूल छोड़ने के प्रमाण पत्र में उल्लिखित है, घटना के समय किशोर था, जब घटना 28.03.2005 को घटित हुई थी। उसके स्कूल रिकॉर्ड में उसका नाम गणेश दत्त के रूप में दिखाया गया है, जैसा कि पूर्व माध्यमिक विद्यालय, धौरहरा, लखीमपुर खीरी द्वारा जारी स्थानांतरण प्रमाण पत्र से स्पष्ट है। वह प्रमाण पत्र उसके असली नाम-गणेश दत्त पुत्र उदय नारायण तिवारी में निर्गत किया गया था।

3. इस न्यायालय ने दिनांक 05.08.2024 के आदेश द्वारा, शिकायतकर्ता के अधिवक्ता को किशोरता का दावा करने वाले आवेदन के विरुद्ध आपत्तियां दाखिल करने के लिए समय दिया। आपत्तियां 21.08.2024 को योजित की गईं। उक्त आपत्तियों में यह आरोप लगाया गया कि अपीलकर्ता घटना की तिथि को 22 वर्ष की आयु का था और उसकी वास्तविक जन्म तिथि 05.01.1983 है, जैसा कि प्राथमिक विद्यालय, करोहन द्वारा जारी स्कूल छोड़ने के प्रमाण पत्र से स्पष्ट है, जहां उसने 05.07.1991 को कक्षा-I में प्रवेश लिया था, और उसका नाम अन्नू लाल, पुत्र उदय नारायण के रूप में दर्ज किया गया था। जब वह कक्षा-V में पढ़ रहा था तब स्कूल से उसकी निरंतर अनुपस्थिति के कारण 16.01.1996 को उसका नाम स्कूल की सूची से काट दिया गया था। 16.04.2002 को जारी परिवार रजिस्टर की एक प्रति में अपीलकर्ता को 2002 में 18 वर्ष की आयु दिखाया गया था।

4. यह भी कहा गया कि अपीलकर्ता और उसके पिता कल्लू उर्फ उदय नारायण ने 23.02.2002 को गांव चौहान के निवासी त्रिभुवन दत्त तिवारी की बेरहमी से हत्या कर दी थी, और वे धारा 302 और 307 भा.दं.सं. के अधीन मुकदमा अपराध संख्या 55 वर्ष 2002, पी.एस.-धार में अभियुक्त थे। अपीलकर्ता पर सत्र विचारण संख्या 522 वर्ष 2002 में मुकदमा चलाया गया और दिनांक 07.06.2004 के आदेश द्वारा आजीवन कारावास से दोषसिद्ध किया गया। उन्होंने इस न्यायालय के समक्ष आपराधिक अपील संख्या 1352 वर्ष 2004 में आदेश को चुनौती दी, जो लंबित है। अपीलकर्ता को आपराधिक अपील संख्या 1532 वर्ष 2004 में जमानत मिल गई और उसने साक्षियों को धमकाना और डराना शुरू कर दिया। फिर उसने 28.03.2005 को रफीक पुत्र जहूर की एक और हत्या कर दी और वर्तमान अपील में आक्षेपित आदेश व निर्णय द्वारा विचारण किया गया और दोषसिद्ध किया गया।

5. 28.08.2024 को, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने कहा कि अपीलकर्ता किशोरता की दलील उठाने वाले आवेदन पर बल नहीं देना चाहता है, बल्कि गुणदोष पर अपील में बहस करेगा। किशोरता की दलील उठाने वाले आवेदन को तदनुसार खारिज कर दिया गया और अपील को सुनवाई के लिए सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया गया।

6. हमने अपीलकर्ता के लिए श्री रवि कांत पांडेय और प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री विकास पांडेय, और राज्य के लिए विद्वान अ.शा.अधि. को सुना है।

7. संक्षेप में, अभियोजन की कहानी, जैसा कि सूचनाकर्ता राजेंद्र प्रसाद पुत्र मुनीम ब्राह्मण, गांव पंडित पुरवा, पी.एस.-ईशा नगर द्वारा प्रस्तुत लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-1 में उल्लिखित है, यह है कि 28.03.2005 को, वह अपने घर के सामने मसूर (एक प्रकार की दाल) साफ कर रहा था और उसका बेटा आनंद मोहन उसके साथ था, जो कुछ दूरी पर बच्चों के साथ खेलने चला गया। थोड़ी देर बाद, उसने कुछ शोर सुना और वह, जहूर पुत्र बदलू, रमेश और विनोद, पुत्र इंद्रबली, मोबिन पुत्र मंगारे, बनवारी पुत्र लल्लू के साथ, उस स्थान की ओर भागा, जहां से शोर आ रहा था। उन्होंने देशी पिस्तौल, 315 बोर के साथ एक व्यक्ति को गोली चलाते देखा। यह सुबह लगभग 11:00 बजे का समय था। इसके परिणामस्वरूप, उसका बेटा आनंद मोहन और रफीक पुत्र जहूर, घायल हो गए। सूचनाकर्ता ने अन्य ग्रामीणों के साथ मिलकर हमलावर को पकड़ लिया और उसे पीटा। उसने अपना नाम अन्नू पुत्र कल्लू उर्फ उदय नारायण, गांव करौहा, पी.एस.-धौरहरा बताया। सूचनाकर्ता अपने घायल बेटे आनंद मोहन, रफीक पुत्र जहूर, जहूर और अन्य ग्रामीणों के साथ घायल हमलावर और उसकी देशी पिस्तौल के साथ पुलिस स्टेशन आया था।

8. इस लिखित रिपोर्ट के आधार पर, प्रथम सूचना रिपोर्ट, प्रदर्श क-6, पंजीकृत की गई और जी.डी. प्रविष्टि संख्या 16, प्रदर्श क-7, दोपहर 12:30 बजे की गई। अभियुक्त के विरुद्ध शुरू में धारा 307 भा.दं.सं. के अधीन अपराध संख्या-183 वर्ष 2005 (धारा 302 भा.दं.सं. बाद में जोड़ी गई) पंजीकृत की गई, और शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25 के अधीन मुकदमा अपराध संख्या-184 वर्ष 2005 पंजीकृत किया गया।

9. प्र.सू.रि. दर्ज करने के बाद, घायल आनंद मोहन और रफीक को पुलिस कांस्टेबल के साथ उपचार के लिए जिला अस्पताल खीरी भेजा गया और रफीक की अगली सुबह 29.03.2005 को सुबह 07:00 बजे मृत्यु हो गई।

10. मृतक रफीक के शव को पोस्टमार्टम के लिए भेजा गया, जो डॉ. बदरीश कुमार द्वारा किया गया, और पोस्टमार्टम रिपोर्ट, प्रदर्श क-5, तैयार की गई। मृत्यु पूर्व चोटें, जो नोट की गईं वे निम्नानुसार थीं:

बाएं पेट पर एक बंदूक की गोली का प्रवेश घाव 1 सेमी x 1 सेमी पेट में गहरा बाईं ओर, बाएं निप्पल के 20 सेमी नीचे। किनारे उलटे, अनियमित थे, और ऐसे घाव को खोलने पर, पेट, छोटी आंत, और अनुप्रस्थ बृहदान्त्र सभी फटे हुए पाए गए, और एक शंक्वाकार गोली ऐसी पेट की गुहा में फंसी हुई पाई गई। संपूर्ण पेट तरल पदार्थ, रक्त, और मल पदार्थ से भरा हुआ पाया गया।

जो गोली प्राप्त की गई, उसे सील किया गया और पुलिस अधीक्षक, खीरी को भेजा गया।

11. डॉक्टर की राय में, मृत्यु का कारण अत्यधिक रक्तस्राव और सदमा था, जो मृत्यु पूर्व बंदूक की गोली की चोट के कारण हुए ऐसे रक्तस्राव से हुआ।

12. अन्वेषण अधिकारी ने 24.04.2005 को आरोपपत्र तैयार किया और इसे मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, खीरी के न्यायालय के समक्ष दाखिल किया। अभियुक्त को न्यायालय में पेश किया गया और उसे सभी प्रासंगिक अभिलेखों की प्रतियां सौंपी गईं, और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने 30.05.2005 को मुकदमे को सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया। इसके बाद धारा 307, 302 और 326 भा.दं.सं. और शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25 के अधीन आरोप विरचित किए गए। अभियुक्त ने दोषी नहीं होने की दलील दी और विचारण की प्रार्थना की।

13. अभियोजन पक्ष ने ग्यारह साक्षियों पर भरोसा किया:-

राजेंद्र प्रसाद अभि.सा.-1, आनंद मोहन पाठक अभि.सा.-2, जहूर अभि.सा.-3, डॉ. राजेंद्र प्रसाद अभि.सा.-4, डॉ. बदरीश कुमार अभि.सा.-5, कांस्टेबल मान सिंह अभि.सा.-6, डॉ. एस.एन.एच. रिजवी अभि.सा.-7, एसओ कैलाश यादव अभि.सा.-8, एसआई बलराम यादव अभि.सा.-9, एसआई सरजू प्रसाद अभि.सा.-10 और कांस्टेबल राजाराम को अभि.सा.-11 के रूप में।

14. लिखित रिपोर्ट, प्र.सू.रि., देशी पिस्तौल और चलाए गए कारतूस के बरामद होने के संबंध में तैयार रिकवरी मेमो, पंचनामा रिपोर्ट, पोस्टमार्टम रिपोर्ट, चोट रिपोर्ट, एक्स-रे रिपोर्ट, शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25 के अधीन अभियोजन स्वीकृति, और मुख्य चिकित्सा अधिकारी को भेजे गए पत्र से संबंधित पुलिस कागजात, और रिजर्व निरीक्षक को, एक्स-रे प्लेट्स, अन्वेषण अधिकारी द्वारा तैयार साइट प्लान, से संबंधित अभिलेखीय साक्ष्य, आधिकारिक साक्षियों द्वारा सिद्ध किए गए।

15. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री रवि कांत पांडेय ने तर्क दिया है कि किसी ने भी वास्तव में अभियुक्त अन्नू को बंदूक की गोली चलाते हुए नहीं देखा, जो आनंद मोहन और रफीक को लगा। उन्होंने अभि.सा.-1 राजेंद्र प्रसाद के दर्ज बयान से बताया है कि उन्होंने शुरू में अपनी मुख्य परीक्षा में कहा था कि वह अपने बेटे के साथ अपने दरवाजे पर मसूर साफ कर रहे थे, जब उनका बेटा आनंद मोहन गांव में बच्चों के साथ खेलने के लिए भाग गया। उसने कुछ चीखें और शोर सुना और रमेश और विनोद, इंद्रबली के पुत्रों, बनवारी, मोबिन और जहूर के साथ उस स्थान की ओर भागा, जहां बच्चे खेल रहे थे और पाया कि उसके बेटे आनंद मोहन को उसके दाहिने हाथ पर बंदूक की गोली लगी थी, और रफीक को भी उसके पेट में गोली लगी थी और दोनों जमीन पर गिर गए थे। उन्होंने तुरंत हमलावर को पकड़ लिया, जो अपने हाथ में बंदूक पकड़े हुए था और उसे पीटा और तमंचा उससे छीन लिया, और उसने अपना नाम अन्नू पुत्र कल्लू उर्फ उदय नारायण बताया। अभि.सा.-1, और घायलों, अभियुक्त और अन्य ग्रामीणों के साथ पुलिस स्टेशन ईशा नगर जाने से पहले श्रीदया यादव द्वारा रिपोर्ट लिखवाई। ऐसी लिखित रिपोर्ट को मुकदमा अपराध संख्या 183 वर्ष 2005, धारा 302, 307, 326 भा.दं.सं. और मुकदमा अपराध संख्या 184 वर्ष 2005, शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25 के अधीन प्र.सू.रि.का आधार बनाया गया।

यह तर्क दिया गया है कि अभि.सा.-1 ने केवल अपने बेटे आनंद मोहन और रफीक को बंदूक की गोली सुनने के बाद गिरते हुए देखा था।

16. यह तर्क दिया गया है कि अभि.सा.-1 ने अपनी प्रति-परीक्षा में कहा है कि उसका बेटा मसूर साफ करने में उसकी मदद कर रहा था और उन्होंने लगभग डेढ़ घंटे तक काम किया और फिर साफ की गई मसूर को एक बोरी में भर दिया और घर में रख दिया और अपना भोजन खाने लगे। आनंद मोहन ने अपना भोजन जल्दी खा लिया और बाहर बच्चों के साथ खेलने के लिए भाग गया, और जब अभि.सा.-1 अपना भोजन समाप्त कर रहे थे तो उन्होंने एक बंदूक की गोली चलने की आवाज सुनी, और वे बाहर भागे और देखा कि लगभग सौ कदम दूर, उनका बेटा के हाथ से खून बह रहा था। इस बीच, अन्य लोग वहां इकट्ठा हो गए थे और वे कह रहे थे कि पंडित के बेटे को गोली मार दी गई थी। वे अपने घायल बेटे और रफीक को भी अन्य ग्रामीणों अर्थात जहूर, बनवारी, रमेश और राजेंद्र के साथ, एक मार्शल जीप में पुलिस स्टेशन ले गए थे, और वहां से वे घायलों को अस्पताल ले गए। वह अठारह दिनों तक अस्पताल में रहे और इसलिए अन्वेषण अधिकारी को अपराध स्थल नहीं दिखा सके।

17. हमने अभि.सा.-1 की साक्ष्य की जांच की है और हमने पाया है कि अभि.सा.-1 ने यह भी स्वीकार किया कि वह अन्नू को बचपन से जानता था क्योंकि उसके मामा साहज राम नौरंगाबाद में रहते हैं, जो उसी गांव सभा का एक गांव है, और वह यह भी जानता था कि अन्नू को पहले हत्या के लिए दोषसिद्ध किया गया था। उन्होंने यह भी कहा कि घटना के समय रफीक लगभग अठारह वर्ष की आयु का था और वह अपने बेटे आनंद मोहन से लगभग एक बित्ता लंबा था। उन्होंने इस सुझाव से इनकार किया कि अन्नू अक्सर पुलिस स्टेशन जाता था और घायल व्यक्तियों के साथ घटना की रिपोर्ट करने के लिए गए थे, तब पुलिस स्टेशन में पुलिस कर्मियों के इशारे पर उसे अपराध में झूठा फंसाया गया था।

18. अभि.सा.-2 आनंद मोहन पाठक लगभग साढ़े बारह वर्ष की उम्र का था, जब अन्नू ने उस पर गोली चलाई थी। उसने कहा कि वह रफीक और अन्य बच्चों के साथ गांव में खेल रहा था, जब अन्नू अपने हाथ में तमंचा लेकर आया। रफीक ने उससे कहा कि तमंचा न लहराए क्योंकि पुलिस गांव में आएगी और उसे गिरफ्तार कर लेगी। अन्नू नाराज हो गया और उन पर अपना तमंचा चलाया, जो उसके दाहिने हाथ को छूकर रफीक के बाएं पेट में लगा। दोनों जमीन पर गिर गए और मदद के लिए चिल्लाए, जब उसके पिता राजेंद्र प्रसाद, अन्य ग्रामीणों के साथ, आए और अन्नू को उसके तमंचे के साथ पकड़ लिया। उसके पिता, रफीक के पिता जहूर और अन्य ग्रामीणों के साथ उसे पुलिस स्टेशन ले गए और वहां से अस्पताल ले गए, जहां दोनों को भर्ती कराया गया। रफीक की अगली सुबह मृत्यु हो गई। अभि.सा.-2 ने स्वीकार किया कि वह कभी स्कूल नहीं गया था और उसके पिता के पास जमीन थी, जिस पर गन्ना, मक्का और धान बोया जाता था। 28.03.2005 को, वह खलिहान में अपने पिता के साथ मसूर साफ कर रहा था, जो उसके घर से लगभग चार से पांच घर दूर था।

19. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि अभि.सा.--2 ने यह भी कहा कि घटना के दिन वह संतोष, रफीक, अन्नू, गुड्डू, दयाशंकर, आदि, लगभग दस से बारह बच्चों के साथ गांव में खेल रहा था। लगभग पचास से साठ ग्रामीण उन्हें खेलते हुए देख रहे थे। जब गोली उसके हाथ में लगी, तो वह संतोष के पीछे भाग रहा था, और रफीक उससे थोड़ा पीछे उसके दाहिनी ओर था। गोली उसे पीछे से लगी और वह गिर गया और बेहोश हो गया। उसने केवल बंदूक की गोली की आवाज सुनी थी। उसे होश केवल अस्पताल में आया। हालांकि, उसने इस सुझाव से इनकार किया कि कम से कम दो बंदूक की गोली चलाई गई थीं, जिनमें से एक उसे लगी और दूसरी रफीक को। उसने स्वीकार किया कि उसने नहीं देखा कि गोली उसे कैसे लगी क्योंकि वह दौड़ रहा था। उसने यह भी स्वीकार किया कि अन्नू उसे जानता था क्योंकि उसका ननिहाल गांव नौरंगाबाद में था।

20. अभि.सा.-3 जहूर, मृतक रफीक के पिता ने कहा कि वह राजेंद्र प्रसाद, रमेश, बनवारी, मोबिन और अन्य के साथ, गांव के दक्षिण की ओर भागा था, जहां उन्होंने एक तेज आवाज सुनी थी। स्थान पर पहुंचने पर, उसने अन्नू को अपने हाथ में एक तमंचा पकड़े हुए पाया, और उसने तमंचा चलाया और बंदूक की गोली ने पहले आनंद मोहन को उसके हाथ में मारा, और बाद में उसके बेटे रफीक को उसके पेट में मारा। ग्रामीणों ने उसे घेर लिया और उसे पकड़ लिया और तमंचा छीन लिया। वे इसके बाद घायलों के साथ पुलिस स्टेशन पहुंचे, और राजेंद्र प्रसाद ने प्र.सू.रि.दर्ज कराई। तमंचा उप-निरीक्षक को सौंप दिया गया, और घायलों को ईशा नगर के अस्पताल ले जाया गया, जहां से उन्हें लखीमपुर जिला अस्पताल भेजा गया। घायलों को भर्ती कराया गया। रफीक की अगली सुबह मृत्यु हो गई।

21. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि अभि.सा.-3 ने कहा कि घटना के दिन, वह अपने खेत में काम करने नहीं गया था, बल्कि अपने दरवाजे पर अपने परिवार के सदस्यों के साथ घर पर बैठा था, जब उसने किसी को चिल्लाते हुए सुना कि अन्नू तमंचे के साथ घूम रहा है। वह अन्नू को पहले से जानता था। हालांकि, जब वह स्थान पर पहुंचा तो उसने देखा कि रफीक को पहले ही मारा जा चुका था और राजेंद्र के बेटे को भी बंदूक की गोली लगी थी और वे जमीन पर पड़े थे। अभियुक्त को अपराध स्थल पर हमले के हथियार के साथ राजेंद्र प्रसाद, बनवारी, रमेश और स्वयं द्वारा पकड़ा गया था। उन्होंने अन्नू को पीटा और इस प्रक्रिया में उसे कुछ चोटें आई हो सकती हैं, और तमंचा छीन लिया। वे सभी एक जीप में पुलिस स्टेशन गए, जो ग्रामीणों द्वारा लाई गई थी। उसके बेटे को गोली मारी गई थी और नाले/नाली के उत्तर की ओर गिरा था, जो लालता प्रसाद के घर के पश्चिम में था। उसने उप-निरीक्षक को अपराध स्थल दिखाया था और उसे जमीन पर खून के धब्बे भी दिखाए थे। अपराध स्थल पर कोई खाली कारतूस नहीं मिला था; यह तमंचे में फंसा हुआ था।

22. हमने अभि.सा.-3 की साक्ष्य की जांच की है और हम पाते हैं कि अभि.सा.-3 ने यह भी कहा था कि उसका बेटा रफीक अस्पताल में धीरे से बोल रहा था, और ईशा नगर पुलिस स्टेशन का एक पुलिस कांस्टेबल उससे कुछ सवाल पूछ रहा था। उसने नहीं सुना कि उसका बेटा क्या कह रहा था। उप-निरीक्षक मौजूद नहीं था।

उसके बेटे रफीक की अगले दिन भोर से पहले मृत्यु हो गई। उसने राजेंद्र प्रसाद, मोबिन, रमेश और बनवारी के साथ मिलकर अन्नू को पकड़ लिया था और तमंचा उससे छीन लिया था।

23. श्री रवि कांत पांडेय ने तर्क दिया है कि अभियोजन पक्ष के किसी भी साक्षी ने अन्नू द्वारा बंदूक की गोली चलाने की घटना नहीं देखी है, जिसने आनंद मोहन और रफीक को मारा; और उनके बयानों पर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

24. इसके अतिरिक्त, यह तर्क दिया गया है कि अभि.सा.-2 ने कहा था कि घटना दोपहर लगभग 1:00 बजे हुई थी, जबकि अभि.सा.-1 और अभि.सा.-3 ने कहा कि यह सुबह लगभग 11:00 बजे हुई थी। समय में अंतर था, और इसलिए, ऐसे साक्षियों को विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता है।

25. यह भी तर्क दिया गया कि यद्यपि तथ्य के सभी अभियोजन पक्ष के साक्षियों ने कहा था कि अन्य ग्रामीण मौजूद थे, जब अन्नू को पकड़ा गया और तमंचा उससे छीन लिया गया, कोई स्वतंत्र साक्षी को परीक्षित नहीं किया गया। केवल संबंधित साक्षियों की जांच की गई, जो स्पष्ट रूप से अभियुक्त की दोषसिद्धि में रुचि रखते थे।

26. हमने अभि.सा.-4, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, चिकित्सा अधिकारी, जिन्होंने लखीमपुर जिला अस्पताल में घायलों की जांच की थी, की साक्ष्य भी देखी है, और उन्होंने अपनी साक्ष्य में कहा था कि रफीक, घायल, को कांस्टेबल अशोक वर्मा द्वारा पुलिस स्टेशन ईशा नगर से दोपहर लगभग 3:00 बजे लाया गया था, और परीक्षा पर, उसके बाएं पेट पर बंदूक की गोली से हुआ एक फटा हुआ घाव पाया गया, और उसे एक्स-रे की सलाह दी गई। चोट ताजा थी और उसी सुबह 11:00 बजे हुई हो सकती है।

27. अभि.सा.-4 ने आनंद मोहन की भी जांच की और दाहिने ऊपरी बांह की पीठ पर बंदूक की गोली के प्रवेश का घाव पाया, दाहिने कंधे के 15 सेमी नीचे कालापन, टैटू और उलटे मार्जिन के साथ। उनके द्वारा एक्स-रे की सलाह दी गई। ऊपरी बांह के सामने बंदूक की गोली के निकास का एक घाव पाया गया, दाहिने कंधे के 14 सेमी नीचे उलटे मार्जिन के साथ। एक्स-रे की सलाह दी गई। चोट परीक्षा से लगभग छह घंटे पहले हुई थी, जो दोपहर 3:20 बजे हुई थी। प्रति-परीक्षा के दौरान, अभि.सा.-4 ने कहा कि यदि वे बगल में खड़े थे तो एक बंदूक की गोली से आनंद मोहन और रफीक दोनों को चोट लगना संभव नहीं था।

28. श्री रवि कांत पांडेय ने तर्क दिया है कि अभियोजन पक्ष के सभी साक्षियों ने कहा है कि अन्नू द्वारा केवल एक बंदूक की गोली चलाई गई थी, जिसने आनंद मोहन और रफीक दोनों को मारा। चिकित्सा राय प्रत्यक्ष साक्ष्य के विपरीत है, और यह संभव है कि अभियोजन पक्ष के साक्षियों ने घटना नहीं देखी थी और झूठ बोल रहे थे।

29. हमने अन्य अभियोजन पक्ष के साक्षियों की साक्ष्य की भी जांच की है। डॉ. बदरीश कुमार, चिकित्सा अधिकारी, जिला अस्पताल, लखीमपुर खीरी, को अभि.सा.-5 के रूप में जांच की गई, और उन्होंने कहा कि उन्होंने रफीक का पोस्टमार्टम किया था। मृतक लगभग 18 वर्ष की आयु का था। वह 29.03.2005 को सुबह 7:00 बजे जिला अस्पताल में मृत्यु हो गई। बाएं पेट पर बंदूक की गोली के प्रवेश का घाव उलटे और अनियमित मार्जिन के साथ पाया गया। घाव को खोलने पर, पेट, छोटी आंत, और अनुप्रस्थ बृहदान्त्र सभी फटे हुए पाए गए, और एक शंक्वाकार गोली प्राप्त की गई, जिसे सील किया गया और पुलिस अधीक्षक को भेजा गया। चोट के लगभग छह फीट की दूरी से होना संभव था, क्योंकि घाव पर कोई कालापन नहीं पाया गया था।

30. अभि.सा.-6, कांस्टेबल मान सिंह, आधिकारिक साक्षी के रूप में, चिक प्र.सू.रि.और जी.डी. प्रविष्टि को भी सिद्ध किया था। उन्होंने कहा कि राजेंद्र प्रसाद तीन अन्य ग्रामीणों के साथ एक लिखित रिपोर्ट लेकर आए थे। उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें कोई जानकारी नहीं थी कि अन्नू को दोषसिद्ध किया गया था और वह एक हिस्ट्री-शीटर था। उन्होंने यह भी कहा कि जब देशी पिस्तौल को सील किया गया था, तो अभियुक्त अन्नू के हस्ताक्षर नहीं लिए गए थे, हालांकि वह पुलिस स्टेशन ईशा नगर में मौजूद था।

31. डॉ. एस.एन.एच. रिजवी, रेडियोलॉजिस्ट, की अभि.सा.-7 के रूप में जांच की गई, और उन्होंने कहा कि एक्स-रे किए जाने पर, उन्होंने पाया कि आनंद मोहन के दाहिने ह्यूमरस शाफ्ट में कई फ्रैक्चर थे। रफीक का एक्स-रे भी उनके द्वारा किया गया था, और उन्होंने एल2 कशेरुका के पास उसके बाएं पेट में एक लंबी शंक्वाकार धातु अपारदर्शी गोली पाई।

32. हमने कैलाश यादव की साक्ष्य की भी जांच की है जो अभि.सा.-8 के रूप में दूसरे अन्वेषण अधिकारी थे, और बलराम यादव, जो तीसरे अन्वेषण अधिकारी अभि.सा.-9 थे। उन्होंने लॉक-अप में अन्नू का बयान दर्ज किया था। उप-निरीक्षक सरजू प्रसाद को अभि.सा.-10 के रूप में, जो पुलिस स्टेशन में हेड कांस्टेबल के रूप में तैनात थे, ने मृतक रफीक की पंचनामा रिपोर्ट तैयार की थी और उनके द्वारा तैयार आधिकारिक अभिलेखों को सिद्ध किया था।

33. अभि.सा.-11, कांस्टेबल राजाराम ने कहा कि उप-निरीक्षक रिछपाल सिंह मूल रूप से अन्वेषण अधिकारी थे जिन्होंने साइट प्लान तैयार किया था, लेकिन उनका स्थानांतरण हो गया और बाद में सेवानिवृत्त हो गए। उन्होंने श्री रिछपाल सिंह को काम करते देखा था, और उन्होंने उनकी हस्तलेखन को पहचाना।

34. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि अन्नू ने दं.प्र.सं. की धारा 313 के अधीन अपने बयान में घटना में किसी भी संलिप्तता से इनकार किया और कहा कि पुलिस ने उसे झूठा फंसाने की साजिश रची थी। उनके पिता कल्लू उर्फ उदई नारायण ने भी कहा कि उनके बेटे से कोई हथियार बरामद नहीं हुआ था और उसे पुलिस के इशारे पर झूठा फंसाया गया था। हालांकि, अभियुक्त और उसके पिता द्वारा कोई कारण नहीं बताया जा सका कि पुलिस अन्नू को झूठा क्यों फंसाएगी।

35. रवि कांत पांडेय ने तर्क के दौरान कहा है कि फोरेंसिक साइंस लेबोरेटरी ने हथियार, कथित रूप से अभियुक्त से बरामद देशी पिस्तौल का परीक्षण नहीं किया, क्योंकि पार्सल पर सील बरकरार नहीं थी, और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि मृतक के शरीर से बरामद गोली वास्तव में उसी हथियार से चलाई गई थी।

36. श्री विकास पांडेय, जो शिकायतकर्ता के लिए उपस्थित हुए, ने तर्क दिया है कि यह स्थापित विधि है कि संबंधित साक्षियों की साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है, लेकिन अधिक देखभाल और सावधानी के साथ विवेचना की जानी चाहिए। यह तर्क दिया गया है कि अभियोजन पक्ष अभियुक्त द्वारा अपराध किए जाने को सिद्ध करने के लिए स्वतंत्र साक्षियों की एक विशिष्ट संख्या प्रस्तुत करने के लिए बाध्य नहीं है। यह भी तर्क दिया गया है कि निस्संदेह अपराध स्थल पर कई लोग थे, और न केवल अभि.सा.-1 और अभि.सा.-3, बल्कि कई अन्य ग्रामीणों ने भी अन्नू को उसकी देशी पिस्तौल से गोली चलाते देखा था। लेकिन देहाती और साधारण ग्रामीण न्यायालय में साक्ष्य देने के लिए कम इच्छुक होते हैं। केवल संबंधित साक्षी ही इच्छुक और दृढ़ हैं, जो न्यायालय में साक्ष्य देने के लिए उपस्थित होना जारी रखते हैं। अकेले उनकी ईमानदारी उनकी साक्ष्य को अविश्वसनीय नहीं बना देगी। और यह कम संभावना है कि वे एक निर्दोष व्यक्ति को झूठा फंसाएंगे और वास्तविक अपराधी को छिपाएंगे।

37. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, हम सभी अभियोजन पक्ष के साक्षियों, संबंधित और आधिकारिक दोनों के बयानों से गुजर चुके हैं, और अभियुक्त निर्णय को भी।

38. यह अभि.सा.-1, अभि.सा.-2, और अभि.सा.-3, तथ्य के तीन साक्षियों के बयान से स्पष्ट है कि घटना 28.03.2005 की पूर्वाह्न में हुई, क्योंकि पुलिस स्टेशन, ईशा नगर में दोपहर 12:30 बजे प्र.सू.रि. दर्ज की गई थी। ऐसे साक्षियों की साक्ष्य से यह भी स्पष्ट है कि न केवल वे, बल्कि कई अन्य ग्रामीण भी मौजूद थे, जब घटना हुई थी, और वे घायलों के साथ-साथ अभियुक्त, जिसे मौके पर पकड़ा गया था, को पुलिस स्टेशन ले गए थे। घायलों को अस्पताल में भर्ती कराया गया। उनकी मेडिको-लीगल परीक्षा रिपोर्ट, एक्स-रे प्लेट्स, और पोस्टमार्टम रिपोर्ट को जिला अस्पताल, लखीमपुर खीरी के डॉक्टरों द्वारा सिद्ध किया गया। चोटों के संबंध में चिकित्सा साक्ष्य ने अस्पताल में उनकी जांच के छह घंटे के भीतर चोटों के लगने के प्रत्यक्ष साक्ष्य की पुष्टि की, जो लगभग दोपहर 3:00 बजे हुई थी। मृतक के पेट से .315 बोर की एक शंक्वाकार गोली बरामद की गई। आनंद मोहन, जो केवल लगभग बारह वर्ष की आयु का था, को उसके दाहिने ह्यूमरस शाफ्ट में कई फ्रैक्चर हुए थे और वह लगभग दस दिनों तक अस्पताल में भर्ती रहा। एक घायल साक्षी होने के नाते, उसकी साक्ष्य सत्य और विश्वसनीय होने की अंतर्निहित गारंटी के साथ आती है। इस साक्षी ने स्वाभाविक रूप से कहा था कि वह संतोष के पीछे दौड़ रहा था और रफीक उसका अनुसरण कर रहा था, जब अचानक अभियुक्त द्वारा एक गोली चलाई गई, जो उसके दाहिने हाथ से होकर गुजरी और रफीक को मारा, जो उसके कुछ कदम पीछे था, उसके पेट में। रफीक अठारह वर्ष का था, और आनंद मोहन केवल लगभग बारह वर्ष का था, इसलिए उनकी ऊंचाई में

अंतर था। और यदि गोली उसके दाहिने ऊपरी बांह से होकर गुजरी, तो सभी संभावना में, यह रफीक को उसके पेट में मारेगी क्योंकि वह उसके ठीक पीछे था।

39. विचारण न्यायालय ने बचाव पक्ष के अधिवक्ता के तर्क पर विचार किया है कि अभियोजन पक्ष के किसी भी साक्षी ने वास्तव में अन्नू को बंदूक की गोली चलाते हुए नहीं देखा, जिसने आनंद मोहन और रफीक दोनों को मारा, और सभी साक्षियों की साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, विचारण न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 6 के प्रावधानों का संदर्भ दिया है।

40. साक्ष्य अधिनियम की धारा 6 को यहां उद्धृत किया जा रहा है:-

6. समान संव्यवहार का भाग बनने वाले तथ्यों की सुसंगिता-*तथ्य जो, हालांकि विवाद में नहीं हैं, किसी विवाद में तथ्य के साथ इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि समान संव्यवहार का हिस्सा बनते हैं, सुसंगत हैं, चाहे वे एक ही समय और स्थान पर हुए हों या अलग-अलग समय और स्थानों पर।*

(ए) ए पर बी को पीटकर उसकी हत्या करने का आरोप है। जो कुछ भी ए या बी या दर्शकों द्वारा पिटाई में कहा या किया गया था, या उससे थोड़ा पहले या बाद में इतना कि संव्यवहार का भाग बने, एक सुसंगत तथ्य है।

(बी) ए पर [भारत सरकार] के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का आरोप है जिसमें सशस्त्र विद्रोह में भाग लेकर संपत्ति नष्ट की जाती है, सैनिकों पर हमला किया जाता है और जेलों को तोड़ा जाता है। इन तथ्यों की घटना सुसंगत है, क्योंकि सामान्य संव्यवहार का भाग है, हालांकि ए उन सभी में उपस्थित नहीं हो सकता है।

(सी) ए पत्राचार का हिस्सा बनने वाले एक पत्र में निहित मानहानि के लिए बी पर मुकदमा करता है। पक्षों के बीच पत्र जिस विषय से मानहानि उत्पन्न हुई उससे संबंधित हैं, और उस पत्राचार का हिस्सा बनते हैं जिसमें यह निहित है, सुसंगत तथ्य हैं, हालांकि उनमें स्वयं मानहानि नहीं है।

(डी) सवाल यह है कि क्या बी से ऑर्डर किए गए कुछ सामान ए को दिए गए थे। सामान कई मध्यवर्ती व्यक्तियों को क्रमिक रूप से दिया गया। प्रत्येक डिलीवरी एक सुसंगत तथ्य है।

41. विचारण न्यायालय ने पाया कि सभी अभियोजन पक्ष के साक्षियों ने नाले/नाली के पास खेत में खेलते बच्चों और रफीक के बारे में, अन्नू को तमंचा न लहराने के लिए कहना क्योंकि पुलिस गांव में आती रहती है और उसे गिरफ्तार कर सकती है, के संबंध में एक ही कहानी कही थी। मिनटों के भीतर, बंदूक की गोली चलाई गई, जो पहले आनंद मोहन को लगी और फिर रफीक को उसके पेट में। लगभग उसी समय, राजेंद्र प्रसाद, जहूर और अन्य ग्रामीण घटनास्थल पर पहुंचे और बच्चों को गिरते हुए देखा। उन्होंने अन्नू को वश में कर लिया, जो अभी भी अपने हाथ में तमंचा पकड़े हुए था। मौके पर मौजूद अन्य ग्रामीण भी कह रहे थे कि अन्नू ने बंदूक की गोली चलाई थी, जो दो बच्चों को लगी। अभियोजन पक्ष के तथ्य के साक्षियों का साक्ष्य विश्वसनीय और समान संव्यवहार से संबंधित था।

42. विचारण न्यायालय ने बचाव पक्ष के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क पर भी विचार किया है कि अपराध स्थल के विवरण में, अभियोजन पक्ष के साक्षियों ने लालता प्रसाद और प्यारे लाल के घरों की दिशा के संबंध में अलग-अलग संस्करण दिए हैं। साइट प्लान ने एक अलग दिशा दिखाई। विचारण न्यायालय ने पाया कि साक्षियों ने कहा था कि प्यारे लाल का घर पश्चिम में स्थित था और लालता प्रसाद का घर नाले के पास ग्राम समाज की जमीन के पूर्व में स्थित था, जहां बच्चे खेल रहे थे। साइट प्लान में, हालांकि, प्यारे लाल और लालता प्रसाद के घरों की दिशा क्रमशः पूर्व और पश्चिम में दिखाई गई थी, अर्थात, साक्षियों ने जो कहा था उसके विपरीत, लेकिन उस स्थान के पास अन्य ग्रामीणों के घरों के संबंध में अन्य सभी विवरण सही बताए गए पाए गए, जहां बच्चे खेल रहे थे। केवल इसलिए कि प्यारे लाल और लालता प्रसाद के घरों की दिशा अलग तरीके से बताई गई थी, साक्षियों की साक्ष्य को खारिज नहीं किया जा सकता है। साक्षियों की साक्ष्य, अन्यथा सुसंगत और विश्वसनीय होने के कारण, अन्वेषण अधिकारी की साक्ष्य को प्राथमिकता दी जाएगी, जिन्होंने साइट प्लान तैयार किया था और जो इसे सिद्ध करने के लिए भी उपस्थित नहीं थे क्योंकि वह पहले ही सेवानिवृत्त हो चुके थे। हम विचारण न्यायालय के ऐसे निष्कर्ष में कोई कमी नहीं पाते हैं।

43. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***एडक्कंडी दिनेशन बनाम केरल राज्य, 2025 (3) SCC 273*** में निम्नानुसार कहा है:-

"26. रिकॉर्ड पर संपूर्ण साक्ष्य की संचयी पठन से पता चलता है कि अन्वेषण उचित और अनुशासित तरीके से नहीं हुआ है। विभिन्न क्षेत्र हैं, जहां एक उचित अन्वेषण अपने मामले को मजबूत कर सकती थी। पारस यादव बनाम बिहार राज्य [पारस यादव बनाम बिहार राज्य, (1999) 2 SCC 126 : 1999 SCC (Cri) 104] में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार कहा:

"8... अन्वेषण अधिकारी की ओर से चूक को अभियुक्त के पक्ष में नहीं लिया जाना चाहिए। यह हो सकता है कि ऐसी चूक जानबूझकर या लापरवाही के कारण की गई हो। इसलिए, अभियोजन पक्ष के साक्ष्य का विवेचन ऐसी चूकों के बावजूद यह पता लगाने के लिए किया जाना चाहिए कि क्या उक्त साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं। इस उद्देश्य के लिए, राम बिहारी यादव बनाम बिहार राज्य [राम बिहारी यादव बनाम बिहार राज्य, (1998) 4 SCC 517 : 1998 SCC (Cri) 1085] से इस न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियों को उद्धृत करना उपयुक्त होगा: (SCC पृष्ठ 523-24, प्रस्तर 13)

'13... ऐसे मामलों में, अभियोजन पक्ष की कहानी की जांच ऐसी चूकों और अधिकारियों के दूषित आचरण के बावजूद की जानी होगी अन्यथा जो शरारत जानबूझकर की गई थी, वह बनी रह जाएगी और शिकायतकर्ता पक्ष न्याय से वंचित हो जाएगा और यह स्पष्ट रूप से लोगों के विश्वास को न केवल विधि-प्रवर्तन एजेंसी में बल्कि न्याय प्रशासन में भी हिला देगा।' "

44. विचारण न्यायालय ने अभियुक्त द्वारा उठाए गए तर्क पर भी विचार किया है कि कम से कम दो गोलियां चलाई गईं, एक आनंद मोहन पर और दूसरी रफीक पर, क्योंकि चिकित्सा अधिकारी जिन्होंने दोनों घायलों की जांच की थी, ने कहा था कि यदि वे बगल में खड़े थे तो एक गोली से आनंद मोहन और रफीक दोनों को मारना संभव नहीं था। हालांकि, विचारण न्यायालय ने साक्षियों की साक्ष्य से पाया कि आनंद मोहन ने स्पष्ट रूप से कहा था कि वह संतोष के पीछे दौड़ रहा था और रफीक उसके दाहिनी ओर उसके पीछे था। यदि वे विकर्ण रूप से स्थित थे, रफीक लगभग दो कदम दूर था, तो यह संभव था कि गोली जो आनंद मोहन के दाहिने हाथ को छेद गई और उससे होकर गुजरी, रफीक को उसके बाएं पेट में मार सकती थी, क्योंकि दोनों बच्चों की ऊंचाई में अंतर था।

45. ***रामकांत राय बनाम मदन राय और अन्य,*** **MANU/SC/0780/2003 : 2004 Cri LJ 36** में, सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर संख्या 22 में निम्नानुसार कहा है:

"22. यह सर्वविदित है कि जहां चक्षुदर्शी साक्षी का विवरण विश्वसनीय और भरोसेमंद पाया जाता है, वैकल्पिक संभावनाओं की ओर इशारा करने वाली चिकित्सा राय को निर्णायक के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है। साक्षी, जैसा कि बेंथम ने कहा, न्याय की आंखें और कान हैं। इसलिए विचारण प्रक्रिया की गुणवत्ता का महत्व और प्राथमिकता, चक्षुदर्शी साक्षी के विवरण को उनकी विश्वसनीयता के लिए एक सावधानीपूर्वक स्वतंत्र मूल्यांकन और मूल्यांकन की आवश्यकता होगी जिसे चिकित्सा साक्ष्य सहित किसी अन्य साक्ष्य को, ऐसी विश्वसनीयता के परीक्षण के एकमात्र कसौटी के रूप में, प्रतिकूल रूप से पूर्व-निर्णय नहीं किया जाना चाहिए। साक्ष्य की विवेचना इसकी अंतर्निहित स्थिरता और कहानी की अंतर्निहित संभावना के लिए की जानी चाहिए; विश्वसनीय माने जाने वाले अन्य साक्षियों के विवरण के साथ स्थिरता; निर्विवाद तथ्यों के साथ स्थिरता साक्षियों का 'क्रेडिट'; साक्षी बॉक्स में उनका प्रदर्शन; उनकी अवलोकन शक्ति आदि। फिर ऐसे साक्ष्य का प्रामाणिक मूल्य एक संचयी मूल्यांकन के लिए तराजू में रखे जाने के योग्य बन जाता है।"

46. विचारण न्यायालय ने अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क पर भी विचार किया है कि अन्नू को अपराध स्थल पर नहीं पकड़ा गया था बल्कि वह पुलिस स्टेशन में था, और जब राजेंद्र प्रसाद ने अन्य ग्रामीणों के साथ लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत की, तो उसे, सुविधाजनक रूप से उपलब्ध होने के कारण, पुलिस स्टेशन में पुलिस कर्मियों के इशारे पर झूठा फंसाया गया। विचारण न्यायालय ने 28.03.2005 को दोपहर 12:50 बजे अन्नू की मेडिको-लीगल परीक्षा पर विचार किया है और पाया है कि उसके सिर और शरीर के ऊपरी हिस्से पर कम से कम चार फटे घाव और कई चोटें, एक खरोंच थी और अभि.सा.-1 और अभि.सा.-3 के दर्ज बयान से तुलना की है, जिन्होंने अन्य ग्रामीणों के साथ मिलकर तमंचा छीनते समय उसे पीटने की बात स्वीकार की थी। सभी चोटें ताजा और प्रकृति में साधारण थीं और एक कठोर और कुंद वस्तु द्वारा पहुंचाई गई थीं।

47. विचारण न्यायालय सही निष्कर्ष पर पहुंचा कि अन्नू, ग्रामीणों द्वारा पकड़े जाने के कारण, पीटा गया था और इस प्रक्रिया में ऐसी चोटें आई हो सकती हैं।

48. विचारण न्यायालय ने बचाव पक्ष के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क पर भी विचार किया है कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा उस स्थान से रक्त-सनी मिट्टी एकत्र नहीं की गई थी, जहां घटना हुई थी, लेकिन कहा है कि ***धनंजय सिंह बनाम पंजाब राज्य*, 2004 JIC 399** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार, विचारण न्यायालय को केवल दोषपूर्ण जांच के कारण अभियुक्त को संदेह का लाभ नहीं देना चाहिए।

49. विचारण न्यायालय ने अभियुक्त के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क पर भी विचार किया है कि अन्नू के लिए बंदूक की गोली चलाने का कोई हेतुक नहीं था, जो आनंद मोहन और रफीक को लगे। विचारण न्यायालय ने कहा कि जब अन्नू उस स्थान पर आया, जहां बच्चे खेल रहे थे, तो उसके हाथ में एक तमंचा था, और रफीक ने कहा कि उसे इसे नहीं लहराना चाहिए क्योंकि उसे पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया जा सकता है। इससे अन्नू नाराज हो सकता है, और उसने गोली चलाकर प्रतिशोध लिया। इसके अतिरिक्त, विचारण न्यायालय ने कहा है कि यदि घटना के संबंध में प्रत्यक्ष चक्षुदर्शी विवरण उपलब्ध है, तो अकेले हेतुक का अभाव अभियुक्त की दोषीता तय करने में एक प्रासंगिक कारक नहीं होगी। हम विचारण न्यायालय द्वारा पहुंचे गए निष्कर्ष में कोई विधिक कमी नहीं पाते हैं।

50. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***चंदन बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), 2024 (6) SCC 799*** में प्रस्तर 10 और 11 में निम्नानुसार कहा है:-

"10. शिवाजी गेनू मोहिते बनाम महाराष्ट्र राज्य [शिवाजी गेनू मोहिते बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1973) 3 SCC 219 : 1973 SCC (Cri) 214 : AIR 1973 SC55] में, यह निर्णीत किया गया कि यह आपराधिक न्यायशास्त्र में एक सुस्थापित सिद्धांत है कि जब प्रत्यक्ष साक्ष्य न्यायालय के विश्वास को प्रेरित करती है, तो अभियोजन पक्ष को हेतुक स्थापित करने की आवश्यकता नहीं होती है। केवल हेतुक का अभाव, एक विश्वसनीय चक्षुदर्शी की साक्ष्य पर प्रभाव नहीं डालेगी। हेतुक परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में विचार के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है। लेकिन जब प्रत्यक्ष चक्षुदर्शी हो, तो हेतुक महत्वपूर्ण नहीं है। जो निर्णीत किया माना गया, वो ये है: (SCC पृष्ठ 224-25, प्रस्तर 12)

"यदि अभियोजन पक्ष एक बाध्यकारी हेतुक खोजने में सफल नहीं है, तो यह एक सिद्ध विश्वसनीय चक्षुदर्शी साक्षी की विश्वसनीयता को प्रतिबिंबित नहीं कर सकता। हेतुक के संबंध में साक्ष्य, निस्संदेह, पूरी तरह से परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर निर्भर मामलों में एक लंबा रास्ता तय करेगा। ऐसा साक्ष्य ऐसे मामले में परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला में कड़ियों में से एक बनेगा। लेकिन विश्वसनीय चक्षुदर्शी साक्षियों वाले मामलों में ऐसा नहीं होगा, हालांकि ऐसे मामलों में भी यदि एक हेतुक ठीक से सिद्ध होता है, तो ऐसा साक्ष्य अभियोजन पक्ष के मामले को मजबूत करेगा और अपने अंतिम निष्कर्ष में न्यायालय को बल प्रदान करेगा। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि यदि हेतुक स्थापित नहीं होता है, तो एक चक्षुदर्शी का साक्ष्य अविश्वसनीय हो जाता है।"

11. यह सिद्धांत कि हेतुक की कमी या अभाव महत्वहीन है, जब प्रत्यक्ष साक्ष्य अपराध को स्थापित करता है, इस न्यायालय द्वारा बीकाऊ पांडेय बनाम बिहार राज्य [बीकाऊ पांडेय बनाम बिहार राज्य, (2003) 12 SCC

616 : 2004 SCC (Cri) Supp. 535]; राजगोपाल बनाम मुथुपांडी [राजगोपाल बनाम मुथुपांडी, (2017) 11 SCC 120 : (2017) 3 SCC (Cri) 872]; योगेश सिंह बनाम महाबीर सिंह [योगेश सिंह बनाम महाबीर सिंह, (2017) 11 SCC 195 : (2017) 4 SCC (Cri) 257] में दोहराया गया है।

51. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मदन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2023 (15) SCC 701** में प्रस्तर 65 और 66 में निम्नानुसार कहा है:-

65. इस संबंध में, हम इस न्यायालय के आंध्र प्रदेश राज्य बनाम बोगम चंद्रैया [आंध्र प्रदेश राज्य बनाम बोगम चंद्रैया, (1986) 3 SCC 637 : 1986 SCC (Cri) 357] में निर्णय का लाभप्रद रूप से संदर्भ ले सकते हैं, जो इस प्रकार है: (SCC पृष्ठ 640, प्रस्तर 11)

"11.... निर्णय में एक और कमी यह है कि उच्च न्यायालय ने निर्णीत किया है कि अभियोजन पक्ष अपराध कारित करने के लिए पर्याप्त हेतुक सिद्ध करने में विफल रहा है, बिना इस सुस्थापित नियम को ध्यान में रखे कि जब अपराध कारित करने के संबंध में स्वीकार्य प्रकृति का प्रत्यक्ष साक्ष्य होता है, तो हेतुक का प्रश्न न्यायालय के विवेक को उलझन में नहीं डाल सकता।"

66. इस न्यायालय ने दरबारा सिंह बनाम पंजाब राज्य [दरबारा सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2012) 10 SCC 476 : (2013) 1 SCC (Cri) 1037] में इस प्रकार कहा है: (SCC पृष्ठ 482, प्रस्तर 15)

"15. जहां तक हेतुक के बिन्दु का संबंध है, यह एक स्थापित विधिक सिद्धांत कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य वाले मामले में हेतुक का बहुत महत्व है, लेकिन जहां प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध है, जो भरोसा करने योग्य है, तो हेतुक अपना महत्व खो देता है।"

52. इस प्रकार, विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत अभियोजन पक्ष के साक्षियों के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच के बाद, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के लिए विद्वान अ.शा.अधि. की प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों के प्रकाश में, हम विचारित मत के हैं कि विद्वान विचारण न्यायालय ने, अपीलकर्ता को धारा 302, 307, 326 भा.दं.सं. और शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25 के अधीन अपराधों का दोषी मानने में कोई अवैधता या अनियमितता नहीं की है। **ऐसा निष्कर्ष किसी भी विकृति से ग्रस्त नहीं हैं। इसलिए धारा 302, 307, 326 भा.दं.सं. और 3/25 शस्त्र अधिनियम के अधीन अपीलकर्ता के अपराध का निष्कर्ष, पुष्ट किया जाता है।**

53. हम धारा 307, 326 भा.दं.सं. और शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25 के अधीन अपराधों के संबंध में एकमात्र अपीलकर्ता को दी गई सजाओं में भी कोई अवैधता या अनियमितता नहीं पाते हैं।

54. हालांकि, हम माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **दीन दयाल तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2025 SCC OnLine SC 237** में दिए गए निर्णय के प्रस्तर संख्या 23 का संदर्भ देना प्रासंगिक पाते हैं, जिसे संदर्भ के लिए यहां उद्धृत किया गया है:-

"23. यह न्यायालय, भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, न केवल किसी अभियुक्त की दोषसिद्धि की जांच करने की शक्ति रखता है बल्कि लगाई गई सजा की उपयुक्तता की भी। जैसा कि स्वामी श्रद्धानंद, (2008) 13 SCC 767 में निर्धारित सिद्धांतों में व्यक्त किया गया है, दंड संहिता के निर्धारित ढांचे के भीतर सजा लगाने या संशोधित करने की शक्ति विशेष रूप से उच्च न्यायालय और इस न्यायालय में निहित है। मृत्यु से दंडनीय अपराधों के लिए वैकल्पिक सजा, जैसे कि 14 वर्ष से अधिक की एक विशिष्ट अवधि के लिए कारावास या दोषी के प्राकृतिक जीवन तक, इस न्यायालय और उच्च न्यायालय की न्यायिक अंतरात्मा के भीतर बनी रहती है। यह सुनिश्चित करता है कि अपराध की गंभीरता, कम करने वाली और बढ़ाने वाली परिस्थितियों, और सुधार की संभावना का अपरिवर्तनीय सजाओं जैसे मृत्युदंड की पुष्टि से पहले पूरी तरह से मूल्यांकन किया जाता है। इसलिए, मृत्युदंड के विकल्प के रूप में, दोषी के प्राकृतिक जीवन की शेष अवधि के लिए कारावास में मृत्युदंड का परिवर्तन, अच्छी तरह से इस न्यायालय के न्यायिक विशेषाधिकार के भीतर है और न्याय सुनिश्चित करने के संवैधानिक अधिदेश का पालन करता है। यूनियन ऑफ इंडिया बनाम वी. श्रीहरन, (2016) 7 SCC में इस न्यायालय की संविधान पीठ ने इन सिद्धांतों पर व्याख्या की है। उसी से प्रासंगिक प्रस्तर को यहां पुनरुत्पादित किया गया है:

"103. वास्तव में, ऐसा कहते हुए हमें यह भी बताना चाहिए कि सत्र न्यायाधीश द्वारा मृत्युदंड या आजीवन कारावास के अधिरोपण में शक्ति का ऐसा प्रयोग उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा अनिवार्य रूप से जांच करेगा, जब सजा मृत्यु हो और आजीवन कारावास के संबंध में भी अपरिहार्य रूप से खंडपीठ द्वारा आपराधिक प्रक्रिया संहिता में प्रदान किए गए अपील उपाय के आधार पर जांच की जाती है। इसलिए ऊपर बताए गए हमारे निष्कर्ष को यह कहकर बल प्रदान किया जा सकता है कि ऐसे निर्दिष्ट अपराधों के दंड भाग की हमेशा सत्र न्यायालय के निर्णय के बाद कम से कम एक बार उच्च न्यायालय द्वारा जांच की जाती है और वह भी दो माननीय न्यायमूर्तियों से मिलकर बनी खंडपीठ द्वारा।

104. इसके अतिरिक्त, ऐसे अधिकांश मामलों में, जहां विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित दंड, मृत्युदंड या आजीवन कारावास है और उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पुष्ट किया गया है, संबंधित दोषसिद्ध को इस न्यायालय में विशेष अनुमति से आगे अपील योजित करके ऐसे निर्णय के परीक्षण करवाने का अवसर मिलेगा। अत्यधिक सावधानी के रूप में और संहिता के निर्धारित विधि और आपराधिक न्यायशास्त्र के अनुसार, हम बल दे सकते हैं कि ऐसे निर्दिष्ट गंभीर अपराधों के अपराध की प्रारंभिक निष्कर्ष और मृत्यु या आजीवन कारावास दंड अधिरोपण के बाद, जब उच्च न्यायालय की खंडपीठ की जांच के अधीन आता है, तो यह केवल उच्च न्यायालय है, जो दंड संहिता से शक्ति प्राप्त करता है, जो मृत्यु और वैकल्पिक सजा निर्धारित करता है, उक्त सजा को या तो दोषी के जीवन की संपूर्णता के लिए या 14 वर्ष से अधिक की किसी विशिष्ट अवधि के लिए,

जैसे 20, 30 या इसी तरह, किए गए अपराध की गंभीरता और ऐसे अपराध के लिए उपयुक्त न्यायिक अंतरात्मा के प्रयोग पर निर्भर करते हुए, बदलने के लिए।

105. इसलिए, हम दोहराते हैं कि ऐसे निर्दिष्ट अपराधों के लिए दंड संहिता में प्रदान किए गए दंड के भीतर किसी भी संशोधित सजा के लिए दंड संहिता से प्राप्त शक्ति केवल उच्च न्यायालय द्वारा और आगे अपील की स्थिति में केवल सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जा सकती है और इस देश में किसी अन्य न्यायालय द्वारा नहीं। इसे अलग तरीके से कहें तो, मृत्युदंड के विकल्प के रूप में कारावास की किसी विशिष्ट अवधि या दोषी के जीवन के अंत तक के लिए प्रदान करने वाली संशोधित सजा लगाने की शक्ति, केवल उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जा सकती है और किसी अन्य अवर न्यायालय द्वारा नहीं।

106. उस संबंध में देखा जाए, तो हम कहते हैं कि स्वामी श्रद्धानंद (2) [स्वामी श्रद्धानंद (2) बनाम कर्नाटक राज्य, (2008) 13 SCC 767 : (2009) 3 SCC (Cri) 113] में निर्धारित सिद्धांत कि सजा की एक विशेष श्रेणी; मृत्यु के बजाय; 14 वर्ष से अधिक की अवधि के लिए और उस श्रेणी को माफी के आवेदन से परे रखना अच्छी तरह से स्थापित है और हम उक्त प्रश्न का सकारात्मक उत्तर देते हैं। इसलिए, हम इस न्यायालय द्वारा संगीत बनाम हरियाणा राज्य [संगीत बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 2 SCC 452 : (2013) 2 SCC (Cri) 611] में व्यक्त मत से सहमत नहीं हैं कि 20 या 25 वर्ष की सजा देकर या बिना किसी माफी के उपयुक्त सरकार की माफी शक्ति से वंचित करना अनुमेय नहीं है, विधि के अनुरूप नहीं है और हम इसे विशिष्ट रूप से निरस्त करते हैं।"

(हमारे द्वारा बल प्रदत्त)

55. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अभियुक्त-अपीलकर्ता विचाराधीन अपराध कारित करने के समय लगभग 18 वर्ष की आयु का था और किशोरता के संबंध में उसकी दलील को इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था, क्योंकि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इसपर बल नहीं दिया गया था। अपीलकर्ता 16 वर्षों से अधिक समय से जेल में है। हम विचाराधीन अपराध करीत करने के लिए कोई विशिष्ट हेतुक भी खोजने में सफल नहीं हुए हैं। इसलिए, इस मामले के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जिसमें अपराध किया गया था, इस सुविचारित मत के हैं कि भा.दं.सं. की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए अपीलकर्ता को दी गई सजा संशोधित करने योग्य है। इसलिए, दिनांक 02.09.2008 के आक्षेपित आदेश व निर्णय में दर्ज किए गए अनुसार भा.दं.सं. की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए अपीलकर्ता की दोषसिद्धि के निष्कर्ष की पुष्टि करते हुए, हम विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश व निर्णय दिनांक 02.09.2008 के माध्यम से भा.दं.सं. की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए अपीलकर्ता को दी गई सजा को आजीवन कारावास से पच्चीस वर्ष के सश्रम कारावास में संशोधित करना उचित पाते हैं। 1,000 रुपये का अर्थदंड पुष्ट किया जाता है।

56. वर्तमान आपराधिक अपील **आंशिक रूप से स्वीकार** की जाती है।

57. अभियुक्त-अपीलकर्ता, अन्नू द्वारा उपरोक्त सत्र विचारण में पहले से ही भुगतान की गई अवधि, या तो विचाराधीन के रूप में या दोषसिद्धि के बाद, दं.प्र.सं. की धारा 428 के संदर्भ में इस न्यायालय द्वारा दी गई सजा में समायोजित की जाएगी।

58. यह निर्देश दिया जाता है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता दं.प्र.सं. की धारा 437-ए के प्रावधानों के अनुपालन में जेल से रिहा होने की तिथि से चार सप्ताह के भीतर संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए समान राशि में व्यक्तिगत बांड और दो जमानतदार प्रस्तुत करेगा।

59. विचारण न्यायालय रिकॉर्ड को इस निर्णय की प्रति के साथ आवश्यक जानकारी और अनुपालन के लिए फैक्स/ई-मेल के माध्यम से तुरंत संबंधित विद्वान विचारण न्यायालय को प्रेषित किया जाए।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 205

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांकित: इलाहाबाद 15.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी

माननीय न्यायमूर्ति अनिल कुमार-X

आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-9733 वर्ष 2025

शशांक मिश्रा **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य **...प्रतिवादीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
कृष्ण कुमार, प्रवीन श्रीवास्तव

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

अनुवादित

आपराधिक विधि-भारतीय संविधान, 1950-अनुच्छेद 226 एवं 227-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 50-भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 120बी, 307, 323, 498ए एवं 506-दहेज निषेध अधिनियम, 1961-धारा 3 एवं 4-रिट याचिका-प्रथम सूचना रिपोर्ट-गिरफ्तारी-प्रक्रियात्मक अनियमितता का आरोप-अभियुक्त-याचिकाकर्ता का तर्क है कि न तो उसे और न ही उसके परिवार को गिरफ्तारी के आधार की सूचना दी गई-रिमांड मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया गया-शिकायत कि रिमांड मजिस्ट्रेट प्रक्रियात्मक चूक का समाधान करने या उचित सुनवाई देने में विफल रहे-प्रबीर पुर्कायस्थ बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए, याचिकाकर्ता ने अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के समक्ष रिमांड आदेश को रद्द करने की मांग करते हुए आवेदन किया-आवेदन लंबित रहा-वर्तमान रिट याचिका उक्त आवेदन को शीघ्रता से निर्णीत करने के निर्देश की मांग करते हुए दायर की गई-न्यायालय ने कहा कि-याचिकाकर्ता का जमानत आवेदन पहले ही समन्वय पीठ द्वारा गुण-दोष के आधार पर खारिज किया जा चुका है, वर्तमान रिट को स्वीकार करना अप्रत्यक्ष रूप से समन्वय पीठ के आदेश को निरस्त करने और अवर न्यायालय को अपनी जमानत अस्वीकृति की समीक्षा करने का निर्देश देने के समान होगा, याचिका अस्पष्टीकृत विलंब और लापरवाही से ग्रस्त है, याचिकाकर्ता सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय के समक्ष जमानत कार्यवाही के दौरान अवैध गिरफ्तारी का मुद्दा उठाने में विफल रहा,-न्यायालय ने माना कि, संपार्श्विक चुनौती विधिक रूप से अस्वीकार्य है और न्यायिक आदेशों की पदानुक्रम और अंतिमता को नष्ट करने के समान है, अनुच्छेद 226 के अधीन रिट क्षेत्राधिकार का आह्वान दंड प्रक्रिया

संहिता के अधीन वैधानिक उपचारों को दरकिनार करने के लिए नहीं किया जा सकता है-तदनुसार, रिट याचिका निरस्त की जाती है। (प्रस्तर-14, 15, 16, 17)

रिट याचिका निरस्त (ई-11)

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची</u>:

1. भारत संघ व अन्य बनाम किर्लोस्कर न्यूमेटिक कंपनी लिमिटेड - (1996) 4 SCC 453,
2. ईस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड बनाम दुगल कुमार - AIR 2008 SC 3000,
3. शंकर रामचंद्र अभ्यंकर बनाम कृष्णाजी दत्तात्रेय बापट - AIR 1970 SC 1,
4. लल्लूभाई जोगीभाई पटेल बनाम भारत संघ - (1981) 2 SCC 427,
5. मनजीत सिंह @ इंदर @ मनजीत सिंह चाना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य-आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-934 वर्ष 2025,
6. सचिन सोनी @ आंसू @ सचिन कुमार सोनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य-आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-905 वर्ष 2025,
7. प्रबीर पुर्कायस्थ बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) (उपरोक्त) - LAWS (SC)-2024-5-46,
8. मोहम्मद अमीर कसाब @ अबू मुजाहिद बनाम महाराष्ट्र राज्य-(2012) 8 SCC 1 (प्रस्तर 484-488),
9. पंकज बंसल बनाम भारत संघ - LAWS (SC)-2023-10-3,
10. विहान कुमार बनाम हरियाणा राज्य - LAWS (SC) 2025-2-20 (प्रस्तर-21)
11. आशीष कक्कड़ बनाम चंडीगढ़ संघ राज्य क्षेत्र-आपराधिक अपील संख्या 1518 वर्ष 2025 जो विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 1662 वर्ष 2025 से उत्पन्न हुई और 25.03.2025 को निर्णीत की गई।

(माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी एवं माननीय न्यायमूर्ति अनिल कुमार-X द्वारा उद्घोषित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री प्रवीन श्रीवास्तव को सुना; राज्य-प्रतिवादियों के लिए विद्वान अपर सरकारी अधिवक्ता-I श्री पारितोष मालवीय को सुना; और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

2. वर्तमान रिट याचिका निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए दायर की गई है:

"(i) परमादेश की प्रकृति में विद्वान अपर जिला न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट (ओ.ए.डब्ल्यू.), झांसी को एक आदेश या निर्देश निर्गत करें कि वे याचिका के साथ संलग्नक संख्या-5 के रूप में संलग्न लंबित आवेदन दिनांक 29.04.2025 का निर्णय, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के प्रकाश में और इस माननीय

अनुवादित

न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या-934 वर्ष 2025 (मनजीत सिंह @ इंदर @ मनजीत सिंह चाना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य) में दोहराए गए सिद्धांतों के अनुसार करें, जो याचिका के संलग्नक संख्या-4 के रूप में संलग्न है।"

3. याचिकाकर्ता का तर्क है कि उसके विरुद्ध दिनांक 09.10.2023 को प्रथम सूचना रिपोर्ट, मुकदमा अपराध संख्या-396 वर्ष 2023, धारा 498ए, 323, 506, 120बी व 307 भारतीय दंड संहिता, 1860(1) और धारा 3 व 4 दहेज निषेध अधिनियम, 1961(2),थाना नवाबाद, जिला झांसी में दर्ज की गई थी। उसे अगले दिन अर्थात् 10.10.2023 को गिरफ्तार किया गया था। यह विशेष रूप से दावा किया गया है कि उसकी गिरफ्तारी के समय, उसके आधार न तो उसे प्रकट किए गए और न ही उसके परिवार के किसी सदस्य या उसके द्वारा अधिकृत किसी व्यक्ति को सूचित किए गए। गिरफ्तारी ज्ञापन (संलग्नक संख्या 2) की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए, विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि उसमें गिरफ्तारी के आधार युक्त कोई विशिष्ट कॉलम नहीं दर्शाया गया है। जब याचिकाकर्ता को 10.10.2023 को विद्वान रिमांड मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया गया, तो उक्त अनियमितता को नजरअंदाज कर दिया गया। यह आगे बताया गया है, संलग्नक संख्या 1, रिमांड शीट का संदर्भ देते हुए, कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने गिरफ्तारी के आधार प्रकट करने की अनिवार्य आवश्यकता के संबंध में अन्वेषण अधिकारी द्वारा गैर-अनुपालन के संबंध में कोई अवलोकन दर्ज नहीं किया। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता को रिमांड कार्यवाही के चरण में सुनवाई का प्रभावी अवसर नहीं दिया गया।

4. उपरोक्त परिस्थितियों को देखते हुए, याचिकाकर्ता ने अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट, झांसी के समक्ष दिनांक 29.04.2025 को एक आवेदन योजित किया, जिसमें **प्रबीर पुर्कायस्थ बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) (उपरोक्त)**3 में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के प्रकाश में रिमांड आदेश को अपास्त करने की प्रार्थना की गई। अतः, वर्तमान रिट याचिका परमादेश की प्रकृति में एक निर्देश की मांग करते हुए योजित की गई है कि उक्त न्यायालय, दिनांक 29.04.2025 के लंबित आवेदन का शीघ्रता से निर्णय करे, जो ऊपर उद्धृत निर्णयों में निर्धारित सिद्धांतों के अनुरूप हो।

5. विद्वान अधिवक्ता ने **मोहम्मद अमीर कसाब @ अबू मुजाहिद बनाम महाराष्ट्र राज्य4, प्रबीर पुर्कायस्थ (उपरोक्त), पंकज बंसल बनाम भारत संघ5, विहान कुमार बनाम हरियाणा राज्य6, और आशीष कक्कड़ बनाम चंडीगढ़ संघ राज्य क्षेत्र7** सहित निर्णयों पर बलपूर्वक भरोसा किया है। यह तर्क दिया गया है कि ये निर्णय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 50 और भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(1) के अधिदेश के अनुपालन की अनिवार्यता को रेखांकित करते हैं। इन मामलों में से प्रत्येक में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने लगातार धारित किया है कि गिरफ्तारी के आधार के गैर-संचार से गिरफ्तारी असंवैधानिक और अवैध हो जाती है, जिसके कारण अभियुक्त की रिहाई होनी चाहिए।

6. इसके अतिरिक्त इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिनांक 09.04.2025 को **मनजीत सिंह @ इंदर @ मनजीत सिंह चाना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य8** में पारित हाल के निर्णय, और उसी तिथि के **सचिन**

सोनी @ आंसू @ सचिन कुमार सोनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य9 के निर्णय पर भरोसा किया गया है, जिसमें इस न्यायालय ने उपरोक्त सिद्धांतों का पालन करते हुए न्यायिक रिमांड के आदेशों को रद्द कर दिया और गिरफ्तारी के आधार के गैर-संचार के कारण याचिकाकर्ताओं की रिहाई का आदेश दिया।

7. दूसरी ओर, राज्य-प्रतिवादियों के लिए उपस्थित विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री पारितोष मालवीय ने याचिका का यह तर्क देते हुए विरोध किया है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही पहले ही एक उन्नत चरण में है। यह प्रस्तुत किया गया है कि मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया जा चुका है और वर्तमान में अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट, झांसी के समक्ष विचारण लंबित है। याचिकाकर्ता का जमानत आवेदन विद्वान मजिस्ट्रेट और सत्र न्यायालय द्वारा पहले ही खारिज किया जा चुका है, और बाद में इस न्यायालय द्वारा दिनांक 15.04.2024 के आदेश के माध्यम से खारिज किया गया है। इन परिस्थितियों में, यह तर्क दिया गया है कि वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से मांगी गई राहत इस विलंबित चरण में मान्य नहीं है।

8. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है, अभिलेख पर सामग्री का अवलोकन किया है और उद्धृत निर्णयों पर विचारपूर्ण विचार किया है।

9. संलग्नक संख्या 2 के रूप में संलग्न गिरफ्तारी ज्ञापन से पता चलता है कि गिरफ्तार करने वाले अधिकारी ने केवल उस मामले के अपराध संख्या का उल्लेख किया, जिसके अधीन याचिकाकर्ता को गिरफ्तार किया गया था और उसके चाचा का नाम और मोबाइल नंबर दर्ज किया, जिसे गिरफ्तारी की सूचना दी गई थी। हालांकि, दिनांक 10.10.2023 की रिमांड शीट (संलग्नक संख्या 1) से पता चलता है कि जब याचिकाकर्ता को मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया गया, तो उसे निःशुल्क विधिक सहायता के माध्यम से विधिक सहायता की पेशकश की गई, जिसे उसने अस्वीकार कर दिया। वही अभिलेख दर्ज करता है कि याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर दिया गया था। स्पष्ट रूप से विधिक सहायता का अवसर प्रदान किया गया था, जिसे याचिकाकर्ता ने स्वयं अस्वीकार कर दिया, और वह रिमांड के चरण में कोई शिकायत उठाने में भी विफल रहा। इस तरह वह इस न्यायालय के समक्ष यह दावा नहीं कर सकता कि उसे अवसर से वंचित किया गया है। विधि सुस्थापित है कि जो पक्ष उपयुक्त चरण में किसी उपाय या अधिकार का लाभ उठाने का विकल्प नहीं चुनता है, उसे बाद के समय में इसे उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इस प्रकार, याचिकाकर्ता के इस तर्क में योग्यता का अभाव है।

10. तर्क का दूसरा पहलू कि गिरफ्तारी के आधार को संप्रेषित नहीं किया गया था, में कुछ सार प्रतीत होता है। गिरफ्तारी ज्ञापन केवल मामले की अपराध संख्या को दर्शाता है लेकिन गिरफ्तारी के वास्तविक आधार या कारण को प्रकट नहीं करता है। ऐसे मात्र संदर्भ को भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(1) और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 50 के अधीन परिकल्पित "गिरफ्तारी के आधार के संचार" के साथ समीकृत नहीं किया जा सकता है। **लल्लूभाई जोगीभाई पटेल बनाम भारत संघ10** में, माननीय शीर्ष न्यायालय ने "संप्रेषित करना" शब्द

की व्याख्या की कि इसका अर्थ है गिरफ्तारी के आधार का गठन करने वाले बुनियादी तथ्यों का पर्याप्त ज्ञान लिखित रूप में और अभियुक्त द्वारा समझी जाने वाली भाषा में प्रदान करना। वर्तमान मामले में, ऐसा प्रभावी संचार अनुपस्थित प्रतीत होता है।

11. उपरोक्त के बाद भी, यह ध्यान देना प्रासंगिक है कि याचिकाकर्ता ने गिरफ्तारी के लगभग डेढ़ साल बाद इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। इस मध्यवर्ती अवधि के दौरान, इस न्यायालय सहित कई चरणों में उसके जमानत आवेदनों को खारिज कर दिया गया। इस तरह वर्तमान मामला मनजीत सिंह (उपरोक्त) और सचिन सोनी (उपरोक्त) से अलग है। वर्तमान कार्यवाही से पहले किसी भी बिंदु पर याचिकाकर्ता ने अवैध गिरफ्तारी या उसके संवैधानिक अधिकारों के उल्लंघन का मुद्दा नहीं उठाया। **विहान कुमार (उपरोक्त)** में निर्धारित विधिक स्थिति को यह अर्थ देने के लिए नहीं खींचा जा सकता है कि एक वादी जो पूरे समय चुप रहा, किसी भी चरण में, अनुच्छेद 226 के अधीन असाधारण क्षेत्राधिकार का आह्वान अपने रिमांड को चुनौती देने के लिए कर सकता है। वह नीचे प्रस्तुत किया गया है:

"21इसलिए, हम निष्कर्ष निकालते हैं:

ए) गिरफ्तार व्यक्ति को गिरफ्तारी के आधार की सूचना देने की आवश्यकता अनुच्छेद 22(1) की एक अनिवार्य आवश्यकता है;

बी) गिरफ्तारी के आधार की सूचना गिरफ्तार व्यक्ति को इस तरह से प्रदान की जानी चाहिए कि आधार का गठन करने वाले बुनियादी तथ्यों का पर्याप्त ज्ञान प्रदान किया जाए और गिरफ्तार व्यक्ति को उस भाषा में प्रभावी रूप से संप्रेषित किया जाए जिसे वह समझता है। संचार का तरीका और विधि ऐसी होनी चाहिए कि संवैधानिक सुरक्षा का उद्देश्य प्राप्त हो;

सी) जब गिरफ्तार अभियुक्त अनुच्छेद 22(1) की आवश्यकताओं के गैर-अनुपालन का आरोप लगाता है, तो भार हमेशा अन्वेषण अधिकारी/एजेंसी पर होगा कि वह अनुच्छेद 22(1) की आवश्यकताओं के अनुपालन को साबित करे;

डी) अनुच्छेद 22(1) के साथ गैर-अनुपालन उक्त अनुच्छेद द्वारा गारंटीकृत अभियुक्त के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होगा। इसके अतिरिक्त, यह संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन होगा। इसलिए, अनुच्छेद 22(1) की आवश्यकताओं के साथ गैर-अनुपालन अभियुक्त की गिरफ्तारी को दूषित करता है। इसलिए, आपराधिक न्यायालय द्वारा रिमांड के आगे पारित आदेश भी दूषित हो जाते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह जांच, आरोप पत्र और मुकदमे को दूषित नहीं करेगा। लेकिन, साथ ही, आरोप पत्र दाखिल करना अनुच्छेद 22(1) के अधीन संवैधानिक आदेश के उल्लंघन को मान्य नहीं करेगा;

अनुवादित

ई) जब एक गिरफ्तार व्यक्ति को रिमांड के लिए न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तो यह मजिस्ट्रेट का कर्तव्य है कि वह पता लगाए कि अनुच्छेद 22(1) और अन्य अनिवार्य सुरक्षा उपायों के साथ अनुपालन किया गया है या नहीं; और

एफ) जब अनुच्छेद 22(1) का उल्लंघन स्थापित हो जाता है, तो यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह तुरंत अभियुक्त की रिहाई का आदेश दे। यह जमानत देने का आधार होगा भले ही जमानत देने पर वैधानिक प्रतिबंध मौजूद हों। वैधानिक प्रतिबंध न्यायालय की शक्ति को प्रभावित नहीं करते हैं जब संविधान के अनुच्छेद 21 और 22 के उल्लंघन की स्थापना हो जाती है।"

12. **विहान कुमार (उपरोक्त)** में निर्णय के खंड (एफ) में, उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से देखा कि संवैधानिक अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर रिहाई केवल तभी दी जा सकती है जब ऐसे उल्लंघन को अभियुक्त द्वारा या अन्यथा न्यायालय के ध्यान में लाया जाता है। विचाराधीन मामले में, अभिलेख पुष्टि करता है कि याचिकाकर्ता को विधिक सहायता की पेशकश की गई थी, जिसे उसने अस्वीकार कर दिया। उसने न तो पहले अपनी गिरफ्तारी को चुनौती दी और न ही जमानत कार्यवाही के दौरान कोई शिकायत की। वर्तमान याचिका उन आधारों पर रिहाई सुरक्षित करने का एक प्रच्छन्न प्रयास प्रतीत होती है, जो कभी उपयुक्त मंचों के समक्ष नहीं लिए गए या नहीं उभारे गए।

13. यह न्यायालय आगे नोट करता है कि वर्तमान रिट याचिका को सुनना, प्रभावी रूप से इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 15.04.2024 को याचिकाकर्ता की जमानत को खारिज करने वाले आदेश को निरस्त करने के समान होगा। ऐसी कार्रवाई विधिक रूप से अनुमेय नहीं है, क्योंकि यह नई राहत की आड़ में उक्त आदेश की समीक्षा करने के समान होगा। विलय का सिद्धांत, जैसा कि **शंकर रामचंद्र अभ्यंकर बनाम कृष्णाजी दत्तात्रेय बापट11** में प्रतिपादित किया गया है, लागू होता है। अब मांगा गया अनुतोष, पृथक नहीं है बल्कि अनिवार्य रूप से पहले से अस्वीकार की गई राहत की पुनरावृत्ति है। वह नीचे दिया गया है:

"3. अब जैसा कि अच्छी तरह से ज्ञात है, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 उच्च न्यायालय को किसी भी मामले का रिकॉर्ड मंगाने का अधिकार देती है जो इसके अधीनस्थ किसी न्यायालय द्वारा निर्णीत किया गया है और जिसमें इसके लिए कोई अपील नहीं है। यह हस्तक्षेप कर सकता है यदि अधीनस्थ न्यायालय ने विधि द्वारा निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया हो या इस प्रकार निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में विफल रहा हो या अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में विधिक रूप से या सामग्री अवैधता के साथ कार्य किया हो। इस धारा के अधीन उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार की सीमाएं न्यायिक निर्णयों के एक लंबे पाठ्यक्रम द्वारा अच्छी तरह से परिभाषित हैं। यदि पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का आह्वान किया जाता है और दोनों पक्षों को सुना जाता है और एक आदेश बनाया जाता है तो सवाल यह है कि क्या अधीनस्थ न्यायालय का आदेश उच्च न्यायालय के आदेश में विलीन हो गया है। यदि यह विलीन हो गया है और आदेश केवल उच्च न्यायालय का है, तो अधीनस्थ न्यायालय के आदेश को उच्च न्यायालय में कार्यवाही के किसी अन्य सेट द्वारा चुनौती या हमला नहीं किया जा सकता

है, अर्थात् संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के अधीन एक याचिका के माध्यम से। यह केवल तभी है जब पुनरीक्षण याचिका को खारिज करने से अधीनस्थ न्यायालय का आदेश उच्च न्यायालय में विलीन नहीं हुआ है कि यह पार्टी के लिए खुला हो सकता है कि वह उस न्यायालय के असाधारण रिट क्षेत्राधिकार का आह्वान करे। वहां फिर से सवाल उठेगा कि क्या उच्च न्यायालय के लिए यह सही और उचित होगा कि वह एक रिट याचिका में अधीनस्थ न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप करे जब धारा 115, सी.पी.सी. के अधीन पुनरीक्षण के लिए एक याचिका, उसी आदेश के खिलाफ, खारिज कर दी गई हो। ऐसा विचार अनुच्छेद 225 या 227 के अधीन एक याचिका में विवेक के प्रयोग में भी प्रवेश करेगा।"

14. उक्त निर्णय का अवलोकन इस विशेष मामले को आच्छादित करने के लिए पर्याप्त है। यहां, याचिकाकर्ता का जमानत आवेदन उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था। यह स्पष्ट है कि अवैध गिरफ्तारी की शिकायत न तो सत्र न्यायाधीश के समक्ष और न ही उच्च न्यायालय के समक्ष उठाई गई थी। यदि यह रिट याचिका स्वीकार की जाती है तो उसके जो परिणाम होंगे, वे हमारे द्वारा विचार किए गए हैं। याचिकाकर्ता को स्वतंत्र करके इस याचिका को स्वीकार करने का परिणाम एक अन्य पीठ द्वारा पारित पूर्व आदेश को निरस्त करने के समान होगा, जिसके माध्यम से याचिकाकर्ता की जमानत को गुण-दोष के आधार पर खारिज किया गया था। इसका मतलब होगा कि याचिकाकर्ता की हिरासत, जिसे पहले एक अन्य पीठ द्वारा विधिक माना गया था, इस पीठ द्वारा यह मानते हुए समीक्षा की जाएगी कि याचिकाकर्ता की हिरासत शुरू से ही अवैध थी। विहान (उपरोक्त) और ऊपर संदर्भित अन्य निर्णयों में जो धारित किया गया है, उसकी व्याख्या को इतना आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। रिट याचिका को स्वीकार करने का अर्थ अपर जिला न्यायालय, फास्ट ट्रैक को अपने पूर्व जमानत अस्वीकृति के आदेश की समीक्षा करने का निर्देश देना भी होगा। विलय का सिद्धांत, जैसा कि शंकर रामचंद्र (उपरोक्त) में धारित किया गया है, यहां भी लागू होता है। सत्र न्यायाधीश द्वारा खारिज की गई जमानत को उच्च न्यायालय द्वारा भी खारिज किया गया था। रिट याचिका को स्वीकार करने कर अर्थ अपर जिला न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट को दिनांक 29.04.2025 के आवेदन पर विचार करने और अप्रत्यक्ष रूप से उच्च न्यायालय द्वारा खारिज किए गए जमानत आवेदन पर पुनर्विचार करने के लिए कहना होगा।

15. इसके अतिरिक्त, याचिका सकल विलंब और लापरवाही से ग्रस्त है, जो अस्पष्टीकृत रहती है। **ईस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड बनाम दुगल कुमार12** में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा कि संवैधानिक उपचारों को तुरंत और तत्परतापूर्वक मांगा जाना चाहिए। वर्तमान याचिका को विलंबित से योजित करना, याचिकाकर्ता के सद्भाव पर गंभीर संदेह डालता है और मंच-खरीदारी के एक छिपे हुए उद्देश्य को इंगित करता है। प्रासंगिक अंश नीचे स्पष्ट किया गया है:

"यह सुस्थापित है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन, एक उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जारी करने के लिए उच्च न्यायालय की शक्ति विवेकाधीन है। एक रिट न्यायालय द्वारा राहत से इनकार करने के आधारों में से एक यह है कि याचिकाकर्ता विलंब और लापरवाही का दोषी है। यह अनिवार्य है, जहां याचिकाकर्ता संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन असाधारण उपाय का आह्वान करता है, कि वह जल्द से जल्द उचित रूप से संभव

अवसर पर न्यायालय में आए। एक रिट याचिका दायर करने में अत्यधिक विलंब वास्तव में आवेदक के पक्ष में विवेकाधिकार प्रयोग करने से इनकार करने के लिए एक पर्याप्त आधार है।"

(महत्व प्रदत्त)

16. यह न्यायालय इस विचारित मत का है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन असाधारण रिट क्षेत्राधिकार का आह्वान दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन प्रदान किए गए वैधानिक उपचारों को दरकिनार करने के लिए नहीं किया जा सकता है। न्यायिक आदेश, एक बार पारित होने पर, पवित्रता प्राप्त कर लेते हैं और संपार्श्विक कार्यवाही द्वारा हल्के में निरस्त नहीं किए जा सकते हैं। ऐसी याचिकाओं को सुनना, मुकदमेबाजी के द्वार खोलेगा और न्यायिक निर्णयों की अखंडता को गंभीर रूप से खराब करेगा। **भारत संघ व अन्य बनाम किर्लोस्कर न्यूमेटिक कंपनी लिमिटेड13** में यही धारित किया गया था, "**अनुच्छेद 226/227 द्वारा प्रदत्त शक्ति को विधि को प्रभावी करने, विधि के शासन को लागू करने और यह सुनिश्चित करने के लिए डिज़ाइन किया गया है कि राज्य के विभिन्न प्राधिकरण और अंग विधि के अनुसार कार्य करें। इसका आह्वान अधिकारियों को विधि के विपरीत कार्य करने का निर्देश देने के लिए नहीं किया जा सकता है**।"

17. रिट याचिका की अंतिम प्रार्थना–अपर सत्र न्यायाधीश को आवेदन दिनांक 29.04.2025 के निस्तारण के लिए परमादेश की रिट की मांग करना मजबूत विधिक आधार पर आधारित नहीं है। यह अनिवार्य रूप से न्यायिक रिमांड और पहले से पारित जमानत अस्वीकृति आदेशों को अधिरोहित या अप्रत्यक्ष रूप से अमान्य करने का लक्ष्य रखता है। ऐसा विधिक रूप से अस्वीकार्य है और न्यायिक आदेशों की पदानुक्रम और अंतिमता को नष्ट करने के समान है।

18. उपरोक्त चर्चा के प्रकाश में, यह न्यायालय रिट याचिका में कोई योग्यता नहीं पाता है। तदनुसार, वह **निरस्त** की जाती है।

(2025) 5 ILRA 210

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांकित: इलाहाबाद 23.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति मदन पाल सिंह

आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-16327 वर्ष 2024

कमलवीर सिंह **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और 5 अन्य **...प्रतिवादीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
अभिषेक कुमार मिश्रा, चंद्रकेश मिश्रा, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:
राजीव लोचन शुक्ला, सरकारी अधिवक्ता

आपराधिक विधि-भारतीय संविधान, 1950-अनुच्छेद-226-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 2(डब्लूए),-भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 34, 120-बी, 302, 307-उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (निवारण) अधिनियम, 1986-धारा 2(बी), 2(बी)(1) से (XXV), 2(सी), 3(1)-उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (निवारण) नियम, 2021-नियम 5, 5(1), 5(2), 5(3) (ए),(बी),(सी),(डी),(ई), 16, 17, 18 एवं 24-राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980-धारा 3(2)-रिट याचिका-गैंगस्टर अधिनियम के अधीन कार्यवाही को चुनौती-गैंगस्टर अधिनियम के अधीन प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई-गैंगस्टर नियमों के अनुसार अनिवार्य प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों के गैर-अनुपालन के लिए प्रश्नगत-याचिकाकर्ता जेल में-यह आधार उठाया गया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट नियम 5(3)(ए) का पालन किए बिना दर्ज की गई थी, जो गैंग-चार्ट तैयारी से पहले अधिकारियों के बीच "समुचित चर्चा" को अनिवार्य बनाता है-*सन्नी मिश्रा, अब्दुल लतीफ, और राम मनोहर लोहिया* पूर्व निर्णयों पर भरोसा किया गया-याचिकाकर्ता ने गैंग चार्ट अनुमोदन प्रक्रिया में अनियमितताओं की ओर इशारा किया और दावा किया कि आधार मामलों में पीड़ितों के पास गैंगस्टर अधिनियम की कार्यवाही में कोई अधिकार नहीं है-न्यायालय ने देखा कि-राज्य द्वारा उद्धृत निर्णय वर्तमान संदर्भ में लागू नहीं पाए गए, पीड़ितों को गैंगस्टर अधिनियम के अधीन रिट याचिका का विरोध करने का कोई अधिकार नहीं है, गैंग-चार्ट तैयारी से पहले सक्षम अधिकारियों के बीच अनिवार्य "समुचित चर्चा" स्पष्ट रूप से अनुपस्थित थी, जो विवेक के प्रयोग की कमी को दर्शाती है, गैंगस्टर अधिनियम के अधीन प्रथम सूचना रिपोर्ट यांत्रिक तरीके से दर्ज की गई प्रतीत होती है,

अनुवादित

जिसमें याचिकाकर्ता को उसके कारावास के बाद भी फरार बताने जैसी स्पष्ट असंगतियां हैं-न्यायालय ने निर्णीत किया कि, किसी को गैंगस्टर ब्रांड करने के लिए सावधानीपूर्वक प्रक्रियात्मक अनुपालन की आवश्यकता होती है, विशेष रूप से जब व्यक्ति पहले से ही आधार मामलों में विचारण का सामना कर रहा हो, याचिकाकर्ता को गैंगस्टर अधिनियम के अधीन झूठा फंसाया गया था-परिणामस्वरूप, आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट, आरोप-पत्र और गैंग-चार्ट खंडित किए जाते हैं। (प्रस्तर-7, 17, 19, 20, 21)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-11)

रिट याचिका स्वीकार की गई।(ई-11)

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची</u>:

1. सुधा सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य-(2021) 4 SCC 781,
2. दक्षाबेन बनाम गुजरात राज्य व अन्य-2022 Live Law (SC) 642,
3. जगजीत सिंह व अन्य बनाम आशीष मिश्रा @ मोनू व अन्य-2022 Live Law SC 376,
4. जेबा रिजवान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य-AIR (2022) 4 All LJ 175,
5. आपराधिक अपील संख्या 46 वर्ष 2009 (पप्पू @ धनी राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)-2024 0 Supreme (All) 258,
6. आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-32226 वर्ष 2015 (शहाब @ शहाबुद्दीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य),
7. आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-9428 वर्ष 2024 (राजीव कुमार @ राजू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 2 अन्य),
8. आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-12808 वर्ष 2023 (राहुल सक्सेना उर्फ भोला/भोलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य),
9. मोहम्मद रहीम अली @ अब्दुर रहीम बनाम असम राज्य, 2024 SCC OnLine SC 1695,
10. मोहम्मद वाजिद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2023 SCC OnLine SC 951,
11. जय किशन व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य-(2025) 3 SCR 65,
12. राम मनोहर लोहिया बनाम बिहार राज्य व अन्य-AIR 1966 Supreme Court 740,
13. सन्नी मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य-2024 (1) ADJ 231 (DB),
14. अब्दुल लतीफ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य-(2024) 128 ACC 876

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

एवं

माननीय न्यायमूर्ति मदन पाल सिंह द्वारा उद्घोषित)

1. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (निवारण) अधिनियम, 1986 (*इसके बाद "गैंगस्टर अधिनियम, 1986" के रूप में संदर्भित*) की धारा 3(1) के अधीन दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 22.11.2023 को चुनौती दी गई है, जिसने मुकदमा अपराध संख्या-861 वर्ष 2023 को जन्म दिया था।

2. संक्षिप्त तथ्य, जो प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से पहले हुए थे, निम्नानुसार हैं:
(i) 10.08.2023 को, एक अनुज चौधरी की हत्या कर दी गई और उसी दिन एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई, जिससे मुकदमा अपराध संख्या-598 वर्ष 2023 उत्पन्न हुआ। यह भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 307/34 के अधीन दर्ज की गई थी। चार अभियुक्त व्यक्तियों अर्थात् अमित कुमार, पुष्पेंद्र, अनिकेत और प्रभाकर को प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित किया गया था। यह भी आरोप लगाया गया कि कुछ अन्य व्यक्तियों की संलिप्तता थी, जिनके बारे में प्रथम सूचनाकर्ता, संदीप सिंह को पता नहीं था।

(ii) 01.11.2023 को, षड्यंत्र का कोण सामने लाया गया और अन्वेषण के दौरान भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी जोड़ी गई। कुछ आग्नेयास्त्र की बरामदगी पर याचिकाकर्ता को उसकी षड्यंत्रकारी भूमिका के लिए नामित किया गया। 07.11.2023 को, शस्त्र अधिनियम की धारा 7/25 के अधीन मुकदमा अपराध संख्या-818 वर्ष 2023 दर्ज किया गया और उसके बाद गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के अधीन वर्तमान मामला गैंगस्टर अधिनियम, 1986 की धारा 3(1) के अधीन दर्ज कराया गया। पुलिस ने सार्वजनिक व्यवस्था के भंग को रोकने के उद्देश्य से राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 की धारा 3(2) के अधीन भी याचिकाकर्ता को हिरासत में लिया था। निरुद्ध करने का आदेश 03.12.2023 को पारित किया गया था।

3. वर्तमान प्रकरण में, हम गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के अधीन 22.11.2023 को दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट से संबंधित हैं। प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के बाद, वर्तमान रिट याचिका इस आधार पर योजित की गई थी कि उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (निवारण) नियम, 2021 (*इसके बाद "गैंगस्टर नियम, 2021" के रूप में संदर्भित*) के अधीन अधिकारियों द्वारा यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि आवेदक के विरुद्ध वास्तव में गैंगस्टर अधिनियम, 1986 की धारा 2(बी) और (सी) के अधीन एक गैंगस्टर के रूप में कार्यवाही की जानी थी, के लिए जो प्रयास करना आवश्यक था, वह नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जब गैंगस्टर अधिनियम, 1986 अधिनियमित किया गया था, तो सदैव यह आशंका रही कि अधिकारी प्रश्नगत अधिनियम का दुरुपयोग कर रहे थे और जब आधार मामलों में, जिनके आधार पर गैंगस्टर अधिनियम, 1986 लागू किया जा रहा था, अभियुक्त को जमानत मिल जाती थी तो अभियुक्त को सदैव गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के अधीन फंसाया जा रहा था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि जब गैंगस्टर अधिनियम, 1986 अधिनियमित किया गया था तो सदैव यह

भय था कि बिना प्रथम दृष्टया यह निष्कर्ष निकाले कि व्यक्ति एक गैंगस्टर था, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जा रही थी। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि उच्च न्यायालय ने **आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-6249 वर्ष 2003, अमरनाथ दुबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य** में पारित अपने आदेश दिनांक 14.10.2003 व 12.11.2003 के द्वारा राज्य को गैंग चार्ट बनाने और अन्वेषण को सुव्यवस्थित करने के लिए उचित उपाय करने का निर्देश दिया था जिससे किसी भी अभियुक्त को अनावश्यक रूप से परेशान न किया जाए। उन्होंने पुलिस महानिदेशक के दिनांक 24.10.2003 और 20.11.2003 के दो संचारों की ओर इशारा किया, जो गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के अधीन प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने को सुव्यवस्थित करने की दिशा में थे। उसके बाद, उसी रिट याचिका में, उत्तर प्रदेश राज्य के प्रमुख सचिव ने 02.01.2004 को गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के अधीन अपराधों के संबंध में गैंग चार्ट की तैयारी के संबंध में कुछ निर्देश जारी किए। उसके बाद, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि राज्य ने अंततः गैंगस्टर नियम, 2021 लागू किए और उन्होंने विशेष रूप से नियम 5, 16, 17, 18 और 24 का संदर्भ दिया और इसलिए वे यहां नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं:

*"**5. सामान्य नियम**–(1) इस अधिनियम के अधीन कार्यवाही शुरू करने के लिए, संबंधित थाना प्रभारी/थाना प्रमुख अधिकारी/निरीक्षक गिरोह की आपराधिक गतिविधियों का विवरण देते हुए एक गैंग-चार्ट तैयार करेगा।*
(2) गैंग-चार्ट को अपर पुलिस अधीक्षक की स्पष्ट अनुशंसा के बाद जिला पुलिस प्रमुख के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा, जिसमें उक्त गिरोह के सभी व्यक्तियों के संबंध में विस्तृत गतिविधियों का उल्लेख होगा।
(3) गैंग-चार्टों के संबंध में निम्नलिखित प्रावधानों का पालन किया जाएगा:–

ए. गैंग-चार्ट को संक्षेप में अनुमोदित नहीं किया जाएगा बल्कि पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक की संयुक्त बैठक में समुचित चर्चा के बाद अनुमोदित किया जाएगा।
बी. एक व्यक्ति का कोई गिरोह नहीं हो सकता है लेकिन ज्ञात व अन्य अज्ञात व्यक्तियों का एक गिरोह हो सकता है और उस रूप में गैंग-चार्ट को इन नियमों के अनुसार अनुमोदित किया जा सकता है।
सी. गैंग-चार्ट में उन मामलों का उल्लेख नहीं किया जाएगा, जिनमें विशेष न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया है या जिनमें अन्वेषण के बाद अंतिम रिपोर्ट दायर की गई है। हालांकि, आधार प्रकरण का अन्वेषण पूरा किए बिना गैंग-चार्ट को अनुमोदित नहीं किया जाएगा।
डी. गैंग-चार्ट में उन मामलों का उल्लेख नहीं किया जाएगा, जिनके आधार पर इस अधिनियम के अधीन पहले ही एक बार कार्रवाई की जा चुकी है।
ई. फॉर्म संख्या 4 में दिए गए आपराधिक इतिहास की एक अलग सूची गैंग-चार्ट के साथ संलग्न की जाएगी, जिसमें उस गिरोह की सभी आपराधिक गतिविधियों का विवरण दिया जाएगा और सभी आपराधिक मामलों का उल्लेख किया जाएगा, भले ही उन मामलों में दोषमुक्त कर दिया गया हो या साक्ष्य के अभाव में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई हो।
उपरोक्त के साथ, थाने में रखे गए गैंग रजिस्टर की प्रमाणित प्रति भी गैंग-चार्ट के साथ संलग्न की जाएगी। उपरोक्त के अतिरिक्त, गैंग-चार्ट में उल्लिखित अपराध और गिरोह के सदस्यों की जानकारी को अंतर-संचालनीय

आपराधिक न्याय प्रणाली (आईसीजेएस) पोर्टल और अपराध और आपराधिक ट्रैकिंग नेटवर्क सिस्टम (सीसीटीएनएस) पर भी अपडेट किया जाएगा।

***गैंग-चार्ट का अग्रेषण**–गैंग-चार्ट के अग्रेषण, निम्नलिखित तरीके से किया जाएगा:*
(1) अपर पुलिस अधीक्षक द्वारा गैंग-चार्ट का अग्रेषण:अपर पुलिस अधीक्षक प्रकरण में न केवल त्वरित अग्रेषण कार्रवाई करेगा बल्कि वह गैंग-चार्ट और सभी संलग्न फॉर्मों का विधिवत अवलोकन करेगा; और जब वह संतुष्ट हो जाए कि प्रकरण को आगे बढ़ाने का एक न्यायसंगत और संतोषजनक आधार है, तभी वह पुलिस अधीक्षक/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को गैंग-चार्ट पर नीचे दी गई अनुशंसा के साथ पत्र अग्रेषित करेगा।

"गैंग-चार्ट और संलग्न साक्ष्य का गहनता से अध्ययन किया। उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (निवारण) अधिनियम, 1986 के अधीन कार्रवाई का आधार विद्यमान है। तदनुसार, अनुशंसा के साथ अग्रेषित।"

(2) जिला पुलिस प्रभारी द्वारा गैंग-चार्ट का अग्रेषण:जब गैंग-चार्ट सभी फॉर्मों के साथ अपर पुलिस अधीक्षक की स्पष्ट अनुशंसा के साथ वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक द्वारा प्राप्त किया जाता है, तो वह भी सभी तथ्यों का गहनता से विश्लेषण करेगा और जब यह पुष्टि हो जाए कि अधिनियम की सभी औपचारिकताएं पूरी हो गई हैं और प्रकरण में कार्रवाई करने का विधिक आधार है, तो उस गैंग-चार्ट को पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट को यह कहते हुए अग्रेषित करना चाहिए: "मैंने गैंग-चार्ट और संलग्न फॉर्मों का विधिवत अवलोकन किया है और मैं पूरी तरह से संतुष्ट हूं कि प्रकरण में उल्लिखित सभी विवरण सही हैं और उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (निवारण) अधिनियम, 1986 के अधीन कार्रवाई करने का संतोषजनक आधार है। तदनुसार, अनुमोदित।"

(3) पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट का संकल्प: जब गैंग-चार्ट सभी फॉर्मों के साथ पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट को भेजा जाता है, तो सभी तथ्यों का गहनता से अवलोकन पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट द्वारा भी किया जाएगा और जब वह संतुष्ट हो जाए कि प्रकरण में कार्रवाई का आधार विद्यमान है, तो वह गैंग-चार्ट को यह कहते हुए अनुमोदित करेगा: "गैंग-चार्ट के साथ संलग्न साक्ष्य के प्रकाश में गैंग-चार्ट और संलग्न फॉर्मों का विधिवत अवलोकन किया, उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (निवारण) अधिनियम, 1986 के अधीन कार्रवाई करने के लिए संतोषजनक आधार विद्यमान हैं। गैंग-चार्ट तदनुसार अनुमोदित है।"
यह उल्लेखनीय है कि ऊपर लिखे गए शब्द केवल उदाहरणात्मक हैं। उन्हें शब्दशः लिखने की कोई बाध्यता नहीं है लेकिन यह आवश्यक है कि अनुमोदन का अर्थ ऊपर लिखी गई अनुशंसाओं के समान होना चाहिए, और अनुमोदन के नोट से यह भी स्पष्ट होना चाहिए।

***17. स्वतंत्र विवेक का उपयोग**–(1) सक्षम अधिकारी गैंग-चार्ट को अग्रेषित करते समय अपने स्वयं के स्वतंत्र विवेक का प्रयोग करने के लिए बाध्य होगा।*

(2) पहले से मुद्रित रबर सील गैंग-चार्ट पर सक्षम अधिकारी द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए जाने चाहिए; अन्यथा यह इस तथ्य के समान होगा कि सक्षम अधिकारी ने अपने मुक्त विवेक का प्रयोग नहीं किया है।

***18. गैंग चार्ट का प्रारूप**–गैंग चार्ट केवल इन नियमों के फॉर्म नंबर–1 में दिए गए तरीके से भेजा जाएगा।*

***24. शीघ्र अन्वेषण**–(1) अधिनियम के अधीन किसी भी अपराध का अन्वेषण, जहां तक संभव हो, छह महीने के भीतर पूरी किया जाएगा।*
(2) अपरिहार्य परिस्थितियों में, जिला पुलिस प्रभारी की अनुमति के बाद, अधिकतम तीन महीने का विस्तार प्रदान किया जा सकता है।
(3) किसी भी स्थिति में, अन्वेषण को एक वर्ष से अधिक के लिए विस्तारित नहीं किया जा सकता है।"

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उसके बाद इस न्यायालय के कुछ निर्णयों का संदर्भ दिया, जिनमे गैंग चार्ट तैयार होने से पहले नियमों के कार्यान्वयन के संबंध में असंतुष्टि व्यक्त की थी। वे थे **सन्नी मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य**, **2024 (1) ADJ 231 (DB)** और **अब्दुल लतीफ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, (2024) 128 ACC 876**। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **अब्दुल लतीफ (*उपरोक्त*)** के निर्णय का संदर्भ देते हुए प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय ने पहले भी विभिन्न रिट याचिकाओं में इस तथ्य को नोट किया था कि गैंग चार्ट की तैयारी से पहले सक्षम अधिकारी अपने स्वतंत्र विवेक का प्रयोग नहीं कर रहे थे। उन निर्णयों और **अब्दुल लतीफ (*उपरोक्त*)** का संदर्भ देते हुए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि बाद में पुलिस महानिदेशक द्वारा दिनांक 19.01.2024 और 21.01.2024 को शासनादेश जारी किए गए और उन्होंने कहा कि उन दो शासनादेशों द्वारा राज्य सरकार का फिर से यह प्रयास था कि गैंगस्टर नियम, 2021 के नियम 5(3)(ए) और नियम 16 एवं 17 के प्रावधानों का पालन किया जाए। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इसलिए प्रस्तुत किया कि जब राज्य को यह राय बनानी थी कि एक गिरोह संचालित हो रहा था और इसलिए गैंगस्टरों के नामों वाला एक गैंग चार्ट तैयार किया जाना था तो उसे प्रथम दृष्टया यह निष्कर्ष निकालना था कि जिन व्यक्तियों के समूह को गिरोह के रूप में संदर्भित किया जाना था वे

(i) या तो सामूहिक रूप से या अकेले कार्य कर रहे थे,
(ii) हिंसा या धमकी या हिंसा के प्रदर्शन या धमकी या जबरदस्ती या अन्यथा द्वारा,
(iii) गिरोह के सदस्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से स्वयं के लिए या दूसरों के लिए सार्वजनिक व्यवस्था को भंग करने या कोई अनुचित लौकिक आर्थिक भौतिक या अन्य लाभ प्राप्त करने का उद्देश्य रखते थे और
(iv) सार्वजनिक व्यवस्था को बाधित करने और अनुचित आर्थिक भौतिक या अन्य लाभ प्राप्त करने के लिए वे गैंगस्टर अधिनियम, 1986 की धारा 2(बी) (I) से (XXV) में गिनाई गई असामाजिक गतिविधियों में लिप्त थे।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दोहराया कि चूंकि गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के अधिनियमित होने के बाद गैंग चार्ट की तैयारी बहुत मनमाने ढंग से तैयार की जा रही थी, गैंगस्टर नियम, 2021 तैयार

किए गए और यह स्पष्ट रूप से कहा गया कि गैंग चार्ट गैंगस्टर नियम, 2021 के नियम 5(1) के अधीन संबंधित थाना प्रभारी/थाना प्रमुख अधिकारी/निरीक्षक द्वारा गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के अधीन कार्यवाही शुरू करने के उद्देश्य से तैयार किए जाने के बाद, इसे अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक की स्पष्ट अनुशंसा के बाद जिला पुलिस प्रमुख के समक्ष प्रस्तुत किया जाना था, जिसमें गिरोह के सभी व्यक्तियों के संबंध में विस्तृत गतिविधियों का उल्लेख हो। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि उसके बाद गैंगस्टर नियम, 2021 के नियम 5(3) (ए),(बी),(सी),(डी) और (ई) का पालन किया जाना था। उन्होंने विशेष रूप से गैंगस्टर नियम, 2021 के नियम 5(3)(ए) पर भरोसा किया और कहा कि गैंग चार्ट पुलिस द्वारा गैंगस्टर नियम, 2021 के नियम 5(1) और 5(2) के अधीन तैयार किए जाने के बाद गैंग चार्ट को अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक की अनुशंसा के बाद जिला पुलिस प्रमुख के समक्ष प्रस्तुत किया जाना था और फिर गैंग चार्ट को (i) समुचित चर्चा के बाद, (ii) पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक की संयुक्त बैठक में अनुमोदित किया जाना था।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य पर बहुत बल दिया कि एक व्यक्ति, जो पहले से ही आधार प्रकरण दर्ज होने के कारण पीड़ित था, उसे आगे अनावश्यक पीड़ा से रोका जाना था और, इसलिए, गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के अधीन प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से पहले और पुलिस द्वारा तैयार गैंग चार्ट के अनुमोदन से पहले (i) समुचित चर्चा होनी थी, (ii) पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक की संयुक्त बैठक में और उसके बाद व्यक्तियों के समूह को जिन्हें गैंगस्टर माना जाना था और जो, पुलिस के अनुसार, एक गिरोह के रूप में संचालित हो रहे थे, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करके बुक किया जाना था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि समुचित चर्चा कोई औपचारिकता मात्र नहीं थी बल्कि विचारों का एक पूर्ण आदान-प्रदान होना था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने "समुचित चर्चा" शब्द के अर्थ पर भरोसा किया जैसा कि एडवांस्ड लॉ लेक्सिकन डिक्शनरी में दिया गया था, जो था "*एक बैठक से पहले किसी विषय पर सामान्य विचार, जिसमें, जहां तक संभव हो, सभी व्यक्तियों को अपने विचार व्यक्त करने की अनुमति दी जा सकती है*"। इसी तरह, उन्होंने ब्लैक लॉ डिक्शनरी का संदर्भ दिया जिसमें "discussion" को "*किसी चीज पर विचारों के आदान-प्रदान का कार्य; एक बहस*" के रूप में समझाया गया है।

7. वर्तमान प्रकरण में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता को मुकदमा अपराध संख्या-598 वर्ष 2003 के संबंध में, 01.11.2023 को गिरफ्तार किया गया था और वह भी एक षड्यंत्रकारी भूमिका में। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इसलिए प्रस्तुत किया कि यदि गैंगस्टर नियम, 2021 के नियम 5(3)(ए) में नामित अधिकारियों की संयुक्त बैठक में समुचित चर्चा हुई होती, तो उन्होंने निश्चित रूप से देखा होता कि याचिकाकर्ता 01.11.2023 से पहले से ही जेल में था और गैंगस्टर अधिनियम, 1986 की धारा 2(बी) (I) से (XXV) के अधीन परिकल्पित किसी भी कार्य में लिप्त होने का बिल्कुल भी प्रश्न नहीं था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि भले ही याचिकाकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 307/34 और 120-बी के अधीन अपराध में फंसाया गया था, संयुक्त बैठक में यह निष्कर्ष निकाला जाना था कि याचिकाकर्ता ने अपने कृत्यों से या तो अकेले या सामूहिक रूप से, हिंसा या धमकी या हिंसा के प्रदर्शन या धमकी या जबरदस्ती या अन्यथा द्वारा सार्वजनिक व्यवस्था को भंग करने या अपने लिए

कोई अनुचित लौकिक आर्थिक भौतिक या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से गैंगस्टर अधिनियम, 1986 की धारा 2(बी) (I) से (XXV) के अधीन नामित असामाजिक गतिविधियों में भाग लिया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि याचिकाकर्ता सार्वजनिक व्यवस्था को बाधित कर रहा था, इसके संबंध में एक निष्कर्ष होना था। **राम मनोहर लोहिया बनाम बिहार राज्य व अन्य**, **AIR 1966 Supreme Court 740** में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि सार्वजनिक व्यवस्था भंग को सामान्य सार्वजनिक शांति भंग से विभेद किया जाना था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि प्रत्येक अवैध कार्य जो एक व्यक्ति करता है और जो गैंगस्टर अधिनियम, 1986 की धारा 2(बी) (I) से (XXV) के अधीन दी गई सूची में पाया जाता है, निश्चित रूप से सार्वजनिक शांति में किसी प्रकार का उपद्रव पैदा करेगा लेकिन क्या यह सार्वजनिक व्यवस्था को भंग करने में परिणत होगा, वास्तव में देखा जाना था और यह समुचित चर्चा और विचार-विमर्श द्वारा किया जा सकता था जैसा कि गैंगस्टर नियम, 2021 के नियम 5(3)(ए) में परिकल्पित है। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यदि याचिकाकर्ता द्वारा उसके हिंसा या धमकी या हिंसा के प्रदर्शन के कृत्यों द्वारा कोई अनुचित लौकिक आर्थिक भौतिक या अन्य लाभ प्राप्त किया गया था, तो इसके संबंध में भी गैंगस्टर नियम, 2021 के नियम 5(3)(ए) के अधीन नामित अधिकारियों द्वारा लिखित में एक निष्कर्ष होना चाहिए था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि गैंगस्टर नियम, 2021 के नियम 16 और 17 निश्चित रूप से कहते हैं कि सब कुछ विवेक के उचित प्रयोग के बाद किया जाना था।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे **जय किशन व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, (2025) 3 SCR 65** में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया और विशेष रूप से प्रस्तर 22 से 27 का संदर्भ दिया और इसलिए वे यहां नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं:

"22. हालांकि, विवादास्पद प्रश्न का उत्तर अधिनियम के उद्देश्य और आशय के अनुरूप उपरोक्त परिभाषाओं को दी गई व्याख्या में निहित होगा। इसकी जांच प्रथम सूचना रिपोर्ट के सापेक्ष की जानी होगी।

23. अपीलकर्ताओं के विरुद्ध अधिनियम को लागू करने के लिए प्रथम सूचना रिपोर्ट में उद्धृत मामलों की जांच प्रथम दृष्टया यह प्रकट करती है कि वे मुख्य रूप से कुछ संपत्ति और मौद्रिक लेनदेन से संबंधित हैं और/या उससे उत्पन्न होते हैं। उक्त लेनदेन मुख्य रूप से सिविल प्रकृति के हैं। कोई संदेह नहीं है कि तीन मामलों में भारतीय दंड संहिता की विभिन्न धाराओं का जोड़ना अधिनियम की धारा 2(बी) में निर्दिष्ट अपराधों के दायरे में आ सकता है। हालांकि, निस्संदेह, भारतीय दंड संहिता की कुछ धाराओं का केवल आह्वान न्यायालय को, एक तरह से कहें तो, पर्दा उठाने से रोक नहीं सकता और न ही रोकेगा, यह समझने के लिए कि वास्तव में उस सामग्री के नीचे क्या निहित है, जिसे अधिनियम को लागू करने का आधार बनाने की मांग की जाती है। ***मोहम्मद वाजिद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2023 SCC OnLine SC 951*** *में, इस न्यायालय ने कहा:*

'34. इस स्तर पर, हम कुछ महत्वपूर्ण कहना चाहेंगे। जब भी कोई अभियुक्त न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता (दंप्रसं) की धारा 482 की अंतर्निहित शक्तियों या संविधान के अनुच्छेद 226 के असाधारण क्षेत्राधिकार का आह्वान करते हुए मूल रूप से इस आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट या आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए आता है कि ऐसी कार्यवाही स्पष्ट रूप से तुच्छ या कष्टप्रद है या प्रतिशोध लेने के छिपे हुए उद्देश्य से स्थापित की गई है, तो ऐसी परिस्थितियों में न्यायालय का कर्तव्य है कि वह प्रथम सूचना रिपोर्ट को सावधानी से और थोड़ा अधिक बारीकी से देखे। हम ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि एक बार जब परिवादकर्ता व्यक्तिगत प्रतिशोध लेने आदि के छिपे हुए उद्देश्य से अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने का निर्णय लेता है, तो वह यह सुनिश्चित करेगा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट/परिवाद सभी आवश्यक आरोपों के साथ बहुत अच्छी तरह से तैयार की जाए। परिवादकर्ता यह सुनिश्चित करेगा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट/परिवाद में किए गए कथन ऐसे हों कि वे कथित अपराध का गठन करने के लिए आवश्यक तत्वों को प्रकट करें। इसलिए, न्यायालय के लिए यह पर्याप्त नहीं होगा कि वह केवल यह पता लगाने के उद्देश्य से प्रथम सूचना रिपोर्ट/ परिवाद में किए गए कथनों को देखे कि क्या कथित अपराध का गठन करने के लिए आवश्यक तत्व प्रकट किए गए हैं या नहीं। तुच्छ या कष्टप्रद कार्यवाही में, न्यायालय का कर्तव्य है कि वह कथनों के अतिरिक्त प्रकरण के रिकॉर्ड से उभरती कई अन्य सहवर्ती परिस्थितियों को देखे और, यदि आवश्यक हो, तो उचित सावधानी और सतर्कता के साथ पंक्तियों के बीच पढ़ने की कोशिश करे। न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 या संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय केवल प्रकरण के चरण तक सीमित रहने की आवश्यकता नहीं है बल्कि प्रकरण की शुरुआत/ पंजीकरण की ओर ले जाने वाली समग्र परिस्थितियों के साथ-साथ अन्वेषण के दौरान एकत्र की गई सामग्री को ध्यान में रखने के लिए सशक्त है। उदाहरण के लिए विचाराधीन मामला लें। कई प्रथम सूचना रिपोर्ट समयान्तराल में दर्ज की गई हैं। ऐसी परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में है कि कई प्रथम सूचना रिपोर्टों का पंजीकरण महत्व रखता है, जिससे आरोप के अनुसार निजी या व्यक्तिगत द्वेष से प्रतिशोध लेने का मुद्दा आकर्षित होता है।'

(महत्व प्रदत्त)

24. पर्दा उठाने के लिए हमारा उपरोक्त संदर्भ ***मोहम्मद वाजिद*** *(उपरोक्त) में संदर्भित 'पंक्तियों के बीच पढ़ें' दृष्टिकोण में प्रतिध्वनि पाता है। अंततः, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन गारंटीकृत जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार को केवल इस कारण से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि किसी व्यक्ति के विरुद्ध आपराधिक प्रकरण दर्ज किए गए हैं। जब अधिनियम को लागू करने की बात आती है तो संबंधित अधिकारियों को कोई निरंकुश विवेक देना स्पष्ट रूप से अविवेकपूर्ण होगा। जितना अधिक कठोर या दंडात्मक प्रावधान होगा, उसे सख्ती से समझने के लिए उतना ही अधिक बल और आवश्यकता होगी।* ***मोहम्मद रहीम अली @ अब्दुर रहीम बनाम असम राज्य, 2024 SCC OnLine SC 1695*** *में, यह कहा गया था:*

'45. बहस बहुत पहले तय हो चुकी है कि दंडात्मक कानूनों को सख्ती से समझा जाना चाहिए [तोलाराम रेलुमल बनाम बॉम्बे राज्य (1954) 1 SCC 961 : (1955) 1 SCR 158 प्रस्तर 8 पर; कृषि उत्पादन मंडी समिति बनाम पिलीभीत पंतनगर बीज लिमिटेड (2004) 1 SCC 391 प्रस्तर 57-58 पर; गोविंद इम्पेक्स प्राइवेट

लिमिटेड बनाम उपयुक्त अधिकारी, आयकर विभाग (2011) 1 SCC 529 प्रस्तर 11 पर, और; आयुक्त सीमा शुल्क (आयात), मुंबई बनाम दिलीप कुमार एंड कंपनी (2018) 9 SCC 1 प्रस्तर 24 पर]। समान रूप से, 'यदि किसी नागरिक के सामान्य अधिकार के अपवाद में विशेष प्रावधान किए जाते हैं, तो हमारी राय में, कानून को सख्त व्याख्या प्राप्त होनी चाहिए। ...' ...'

(महत्व प्रदत्त)

25. अनुपालन और सख्त पालन का अर्थ है कि अधिनियम का सहारा लेने को उचित ठहराने के लिए आधार स्थापित करने के दृष्टिकोण से आरोप लगाकर केवल एक धोखा पर्याप्त नहीं होगा। कथित अपराध(अपराधों) के कारित होने की संभावना को मापने के लिए सामग्री(सामग्रियां) उपलब्ध होनी चाहिए। आवश्यक रूप से, यह केवल अनुमानित होने से अधिक स्तर का होना होगा। हमने प्रथम सूचना रिपोर्ट-मुकदमा अपराध 92 वर्ष 2023 का अवलोकन किया है, जिसके अंग्रेजी अनुवाद के कुछ अंश निम्नानुसार हैं:
'...अपना प्लॉट बेचने का भ्रम देते हुए, विश्वासघात करते हुए, पैसे और जमीन को उगाही करने के लिए, अवैध पैसा जमा करते हुए, अनुचित साधनों के माध्यम से अनुचित वित्तीय शारीरिक लाभ प्राप्त करने के लिए, असामाजिक गतिविधियों के माध्यम से पैसा कमाते हुए जिससे वे स्वयं का और अपने परिवारों का भरण-पोषण करते हैं। आम जनता में उनका डर और आतंक है। उनके डर और आतंक के कारण, जनता का कोई भी व्यक्ति उनके विरुद्ध गवाही देने और मामला दर्ज करने के लिए तैयार नहीं होता है... गिरोह के नेता और गिरोह के सदस्यों ने असामाजिक गतिविधियां की हैं। यह गिरोह का नेता और उसके सक्रिय सदस्य असामाजिक गतिविधियां करने में शामिल हैं। इसलिए, उपरोक्त अभियुक्तों का आम जनता के बीच मुक्त रहना उचित नहीं है। उनके द्वारा किए गए अपराधों को ध्यान में रखते हुए...' (अपठनीय)

26. जबकि तीन प्रकरण प्रथम सूचना रिपोर्ट-मुकदमा अपराध 92 वर्ष 2023 में संदर्भ पाते हैं, उपरोक्त अंश पर एक नज़र एक निश्चित अस्पष्टता प्रदर्शित करेगी। हमारी विचारित राय में, वही अधिनियम का सहारा लेने के लिए सीमा आवश्यकता को पूरा नहीं करेगा। स्पष्ट रूप से, मामलों में आरोप अभी तक एक सक्षम न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से निर्णीत नहीं किए गए हैं। हम यह जोड़ने में जल्दी कर सकते हैं कि एक मिनट के लिए भी हमें यह समझने में गलतफहमी नहीं होनी चाहिए कि लंबित मामलों के आधार पर अधिनियम का आह्वान नहीं किया जा सकता है। बेशक, यह किया जा सकता है। हालांकि, उन व्यक्ति(व्यक्तियों) के विरुद्ध मामला(प्रकरण) जिनके संबंध में अधिनियम का आह्वान किया जाना है, साधारण नहीं हो सकता है-यह गंभीर होना चाहिए। अंतर्निहित प्रकरण(मामलों) के लिए आवश्यक गंभीरता, हमारे विचार में, न्यायिक रूप से संकीर्ण नहीं होनी चाहिए क्योंकि बहुत कुछ प्रत्येक प्रकरण की विशिष्ट विशेषताओं पर निर्भर करेगा। हालांकि स्थिति बहुत अलग होगी, यदि अंतर्निहित प्रकरण(मामलों) में लगाए गए आरोप मुकदमे में सिद्ध हो गए थे-यह अधिनियम के अधीन कार्रवाई को बनाए रखने और उचित ठहराने का एक अच्छा आधार हो सकता था। उस परिदृश्य में, हम सामान्य रूप से किसी भी अंतरोध से परहेज करते। वर्तमान प्रकरण में, तीन मामलों के लिए, चूंकि मुकदमा अभी शुरू नहीं हुआ है/जारी है/समाप्त नहीं हुआ है, वर्तमान के लिए, केवल संकेत और आरोपों की खुलापन बना हुआ है। दूसरे शब्दों में, प्रेजेंटी में, अंतर्निहित प्रकरण 'हिंसा, या धमकी या हिंसा का प्रदर्शन,

या धमकी, या जबरदस्ती या अन्यथा सार्वजनिक व्यवस्था को बाधित करने या किसी भी अनुचित लौकिक, आर्थिक, भौतिक या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से' के जाल में आते नहीं दिखते हैं, जैसा कि अधिनियम की धारा 2(बी) के अधीन अनिवार्य है। इस प्रकार, स्थिति स्पष्ट रूप से अपीलकर्ताओं के लाभ के लिए काम करेगी। चूंकि प्रथम सूचना रिपोर्ट में संदर्भित प्रकरण तीन हैं, हमें ***श्रद्धा गुप्ता*** *(उपरोक्त) पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।*

27. प्रकरण को एक अलग दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। तीन मामलों में परिवादकर्ता(परिवादकर्ताओं)/सूचनाकर्ता(सूचनाकर्ताओं) ने आपराधिक कानून के अधीन अपने उपचारों का सहारा लिया है। वास्तव में, एक चौथा मामला, जैसा कि प्रतिवादी-5 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा सूचित किया गया है, अपीलकर्ताओं के विरुद्ध भी दर्ज किया गया है। यह मानते हुए कि तीन (या चार, प्रथम सूचना रिपोर्ट में संदर्भित नहीं किए गए प्रकरण सहित) मामलों में सभी आरोप सही हैं, उक्त मामलों के पंजीकरण के बाद, अपीलकर्ताओं द्वारा उक्त कथित धमकियों को लागू करने/उस पर कार्य करने का कोई उदाहरण नहीं है। परिवादकर्ता(परिवादकर्ताओं)/सूचनाकर्ता(सूचनाकर्ताओं) ने भी, जहां आवश्यक हो, सिविल कार्यवाही का सहारा लिया है। उपरोक्त से उभरने वाली समग्र तस्वीर में, राज्य द्वारा अधिनियम का सहारा लेना समय से पहले और अनावश्यक लगता है।"

9. वर्तमान प्रकरण में, प्रथम सूचना रिपोर्ट ही इस तथ्य के आधार पर दर्ज की गई थी कि याचिकाकर्ता अपने गिरोह में अन्य गैंगस्टरों के साथ चोरी जैसे अपराधों में लिप्त था और परिणामस्वरूप पैसा कमा रहा था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि इस तरह का एक निरा आरोप वास्तव में पुलिस की ओर से एक मनमाना कार्य था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि जब याचिकाकर्ता ने इस रिट याचिका के प्रस्तर 16 में कहा था कि गैंगस्टर नियम, 2021 के नियम 5(3)(ए) के कोई प्रावधानों का पालन नहीं किया गया था, तो उत्तर में, एक बहुत ही सामान्य उत्तर दिया गया था। संदर्भ के लिए रिट याचिका के प्रस्तर 16 और प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर 21, जो रिट याचिका के प्रस्तर 16 का उत्तर था, को यहां नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है:

"(रिट याचिका का प्रस्तर 16)

16- यह कि उत्तर प्रदेश गिरोह बन्द एवं समाज विरोधी किया-कलाप (निवारण) नियमावली 2021 के नियम 5 (i) (ii) (iii) का अनुपालन नहीं किया गया है। इस सन्दर्भ में यहा यह विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है कि नियमावली के नियम 3 में यह स्पष्ट रूप से वर्णित/उपबन्धित है कि गिरोहचार्ट संक्षिप्त रूप में नहीं बल्कि पुलिस आयुक्त/ जिला मजिस्ट्रेट/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक की संयुक्त बैठक में सम्यक रूप से विचार-विमर्श के पश्चात् अनुमोदित किया जावेगा, परन्तु याची के प्रकरण में जिला मजिस्ट्रेट/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक की संयुक्त बैठक नहीं हुई है, यह तथ्य प्रस्तावना संस्तुति व अनुमोदन के परिशीलन से बली प्रकार सिद्ध व प्रमाणित होता है।"

"(प्रति-शपथपत्र का प्रस्तर 21)

21- यह कि याचिका का प्रस्तर सं०-16 में वर्णित कथन असत्य एवं निराधार है, स्वीकार नहीं है, इसके उत्तर में यह कहना है कि वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक मुरादाबाद द्वारा पुलिस अधीक्षक (नगर), जनपद मुरादाबाद क्षेत्राधिकारी कार्यालय/नोडल अधिकारी, जनपद मुरादाबाद एवं प्रभारी निरीक्षक, थाना सिविल लाइन्स, मुरादाबाद की आख्या व संलग्न साक्ष्य/प्रपत्र का गहन अध्ययन व परिशीलन कर उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोध किया-कलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 के अधीन की गयी कार्यवाही की संस्तुति के आधार पर गिरोह चार्ट डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, मुरादाबाद द्वारा अनुमोदित किया गया है। अतः उत्तर प्रदेश गिरोहबंद एवं समाज विरोधी क्रियाकलाप नियमावली, 2021के नियम-5 का पूर्णतः अनुपालन किया गया है।"

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि इस तथ्य के बावजूद कि कोई लापरवाही नहीं होनी चाहिए थी और सब कुछ, गैंगस्टर नियम, 2021 के नियम 17 के अनुसार, विवेक के पूर्ण प्रयोग के बाद किया जाना था, प्रतिवादीगण अर्थात् राज्य अधिकारियों ने प्रति-शपथपत्र दाखिल करते समय प्रस्तर 28 में कहा था कि याचिकाकर्ता उन गतिविधियों में लिप्त था, जो भारतीय दंड संहिता के अध्याय XII और XVII में पाई जाती थीं। इसके अतिरिक्त, प्रस्तर 28 में यह कहा गया था और इस पर बहुत बल दिया गया था कि याचिकाकर्ता की तलाश की जा रही थी और वह फरार था और अन्वेषण में सहयोग नहीं कर रहा था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर 28 पर भरोसा किया है, वह यहां नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है:

"28- यह कि याचिका का प्रस्तर सं.-25 में वर्णित कथन याची ने मात्र अपने बचाव में किया है, अस्वीकार है। इसके उत्तर में यह कहना है कि याची व अन्य सहअभियुक्तगण का एक संगठित गिरोह है, जिसका वह सक्रिय सदस्य है, जो अपने तथा अपने साथियों के आर्थिक व भौतिक लाभ पूर्ति के उद्देश्य से भारतीय दण्ड विधान के अध्याय 12 व 17 में वर्णित अपराध कारित करने का अभ्यस्त है तथा याची के विरूद्ध गैंगस्टर एक्ट की कार्यवाही किये जाने के प्रथम दृष्टया साक्ष्य पाये जाने पर गैंगस्टर एक्ट में आरोपित किया गया है। याची व अन्य सहअभियुक्तगण द्वारा कारित घटना को देखते हुए थाना क्षेत्र व अन्य थाना क्षेत्र में बय व आतंक का माहौल व्याप्त हो गया है जिसके कारण जनता का कोई गवाह इनके विरूद्ध गवाही व प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत कराने का साहस नहीं कर पाता है जिसका समाज में स्वच्छंद विचरण करना जनहित में नहीं है।

इसके अतिरिक्त यह कहना है कि प्रश्नगत अभियोग की विवेचना में याची द्वारा सहयोग किये जाने हेतु उसकी तलाश की जा रही है, परन्तु याची द्वारा विवेचना में सहयोग नहीं किया जा रहा है और वह फरार चल रहा है। प्रश्नगत अभियोग की विवेचना प्रचलित है और साक्ष्य संकलन कार्यवाही की जा रही है तथा आरोप पत्र साक्ष्य संकलन के अभाव में अभी तक प्रेषित नहीं गया है।"

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 307/34 और 120-बी के अधीन मुकदमा अपराध संख्या-598 वर्ष 2023 के संबंध में 01.11.2023 से जेल में था और इसलिए प्रतिवादीगण के लिए यह कहना कि वह फरार था और वह अन्वेषण में सहयोग नहीं कर रहा था, एक निंदनीय था और इसके लिए उन्होंने प्रस्तुत किया कि न केवल प्रथम सूचना रिपोर्ट को खंडित किया जाए बल्कि प्रति-शपथपत्र के शपथकर्ताओं को भी दंडित किया जाए और उन्हें सबक सिखाया जाए।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उसके बाद प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता एक शांति प्रिय कानून का पालन करने वाला व्यक्ति था और वह जूनियर हाई-स्कूल, महालकपुर विद्यालय, मुरादाबाद में एक शिक्षक था। वह निश्चित रूप से एक गैंगस्टर नहीं था और प्रभाकर सिंह के साथ उसका कोई संबंध नहीं था, जो कथित रूप से गिरोह का नेता था। वास्तव में, उसका नाम उस प्रथम सूचना रिपोर्ट में भी नहीं था, जिससे मुकदमा अपराध संख्या-558 वर्ष 2023 उत्पन्न हुआ था। इसलिए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से पहले एक गैंग-चार्ट होना था, जिसके लिए एक पूर्व संयुक्त बैठक होनी चाहिए थी। वर्तमान प्रकरण में चूंकि न तो कोई संयुक्त बैठक हुई थी और न ही नियमों के अनुसार गैंग-चार्ट तैयार किया गया था, इसलिए प्रथम सूचना रिपोर्ट ही एक व्यर्थ कागज था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जब गैंग-चार्ट को संयुक्त बैठक में बिना पूर्व अनुमोदन की बनाया गया था, तो गैंग-चार्ट का अनुमोदन भी एक व्यर्थ कागज था। चूंकि जिला मजिस्ट्रेट, मुरादाबाद और वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, मुरादाबाद ने बिना किसी तिथि के अपने अनुमोदन पर हस्ताक्षर किए थे और पुलिस अधीक्षक ने 19.11.2023 को गैंग-चार्ट को मंजूरी दी थी, जबकि नोडल अधिकारी ने 17.11.2023 को गैंग-चार्ट को मंजूरी दी थी, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इसलिए कहा कि न तो कोई पूर्व चर्चा थी और न ही गैंगस्टर नियम, 2021 के नियम 16 और 17 के अनुसार गैंग-चार्ट तैयार किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि **आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-12808 वर्ष 2023 (राहुल सक्सेना उर्फ भोला/भोलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व 3 अन्य)** में दिनांक 28.08.2023 को पारित इस न्यायालय का निर्णय, याचिकाकर्ता के प्रकरण में लागू नहीं था क्योंकि इसमें केवल यह कहा गया था कि याचिकाकर्ता को संयुक्त बैठक की किसी नोटिस की कोई आवश्यकता नहीं थी। उन्होंने प्रस्तुत किया कि निश्चित रूप से याचिकाकर्ता को कोई नोटिस अनिवार्य नहीं था लेकिन जो अनिवार्य था, वह यह था कि एक संयुक्त बैठक, जो गैंग-चार्ट की तैयारी से पहले होनी चाहिए थी और वर्तमान प्रकरण में, प्रतिवादीगण इस पक्ष के साथ नहीं आए थे कि गैंग-चार्ट से पहले "समुचित चर्चा" हुई थी।

13. इसी तरह, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 9428 वर्ष 2024 (राजीव कुमार @ राजू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व 2 अन्य)** में दिनांक 07.06.2024 को पारित इस न्यायालय के निर्णय की ओर भी न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया था और प्रस्तुत किया था कि निर्णय में कहा गया था कि यदि हस्ताक्षर करने वाले अधिकारियों के हस्ताक्षरों के अधीन गैंग-चार्ट में तिथियाँ उल्लिखित नहीं थीं, तो इसका मतलब यह नहीं था कि गैंग-चार्ट की तैयारी से पूर्व एक संयुक्त बैठक नहीं हुई थी। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि यह निर्णय याचिकाकर्ता के प्रकरण में लागू नहीं होता था क्योंकि इसमें केवल गैंग-चार्ट की मंजूरी पर हस्ताक्षरों का उल्लेख किया गया था। गैंग-चार्ट की तैयारी से पहले संयुक्त बैठक का कोई उल्लेख नहीं था।

14. इस तथ्य से अवगत कराए जाने पर कि श्री कृष्ण कांत पांडे, जो आधार मामलों में पीड़ित के लिए अधिवक्ता थे, रिट याचिका का विरोध कर रहे थे, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान प्रकरण में, कोई पीड़ित प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए आगे नहीं आया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 32226 वर्ष 2015 (शहाब @ शहाबुद्दीन**

बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में दिनांक 13.07.2016 को पारित इस न्यायालय के आदेश पर भरोसा करते हुए और विशेष रूप से निम्नलिखित पर:

"उपरोक्त निर्णय विधि इस जमानत आवेदन के तथ्यों पर लागू नहीं होता है। मैं विचारित मत का हूं कि श्रीमती रहीमुन्निशा, जिनके बेटे और भतीजे की कथित रूप से आवेदक व अन्य लोगों द्वारा हत्या की गई थी, उत्तर प्रदेश गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2/3 के अधीन इस प्रकरण के पीड़ित की श्रेणी में नहीं आती हैं और इसलिए श्रीमती रहीमुन्निशा के विद्वान अधिवक्ता, श्री दीपक दुबे, के पास इस जमानत आवेदन में सुने जाने का कोई अधिकार नहीं है।"

प्रस्तुत किया कि पीड़ित के पास याचिका का विरोध करने का कोई अधिकार नहीं था।

15. इसी तरह, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **आपराधिक अपील संख्या 46 वर्ष 2009 (पप्पू @ धनी राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य), 2024 0 Supreme (All) 258** में पारित इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर 26 पर भरोसा करते हुए प्रस्तुत किया कि गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के अधीन आधार प्रकरण में पीड़ित गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के अधीन प्रथम सूचना रिपोर्ट में पीड़ित नहीं था। उन्होंने उस निर्णय के प्रस्तर 26 पर भरोसा किया और वह यहां नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है:

"*26. आपराधिक न्यायशास्त्र ने विकसित किया है कि पीड़ित को न केवल मुकदमे के विभिन्न चरणों में बल्कि जमानत के निस्तारण के चरण में भी सुने जाने का उचित अवसर दिया जा रहा है। लेकिन यहां कहानी थोड़ी अलग है। विचाराधीन मामला उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (निवारण) अधिनियम, 1986 की धारा 3(1) के अधीन है, और भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य विशेष अधिनियम के अधीन नहीं है और उक्त प्रकरण का परिवादकर्ता थाना-फतेहपुर चौरासी, जिला-उन्नाव का एसओ है। इसलिए पूर्ववर्ती अपराध अर्थात् मुकदमा संख्या 90 वर्ष 1998 के पीड़ित के अधिवक्ता वर्तमान प्रकरण से संबंधित "पीड़ित" की श्रेणी में नहीं आते हैं, इस प्रकार, वर्तमान अभियोजन केवल गिरोह चार्ट के आधार पर अपीलकर्ता के विरुद्ध शुरू किया गया है, जो विभिन्न प्रकृति के अपीलकर्ता के आपराधिक इतिहास को दर्ज करता है।*"

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **AIR (2022) 4 All LJ 175 (जेबा रिजवान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)** पर भी भरोसा करते हुए प्रस्तुत किया है कि वास्तव में गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के अधीन प्रकरण में कोई पीड़ित नहीं है, जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(डब्लूए) के अधीन परिभाषित किया गया है।

16. श्री कृष्ण कांत पांडे न्यायालय में उपस्थित हुए और, इस तथ्य के बाद भी कि वे आधार मामलों में एक पीड़ित के लिए उपस्थित हो रहे थे, हमने उन्हें न्यायालय की सहायता करने की अनुमति दी। उन्होंने तर्क दिया है कि पीड़ित के पास प्रकरण में उपस्थित होने का अधिकार था और उस प्रकरण के लिए, उन्होंने **(2021) 4 SCC 781 (सुधा सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य)** में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया। उन्होंने **2022 Live Law (SC) 642 (दक्षाबेन बनाम गुजरात राज्य व अन्य)** में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा किया। इसी तरह, उन्होंने **2022 Live Law SC 376 (जगजीत सिंह व अन्य बनाम आशीष**

मिश्रा @ मोनू व अन्य) में उच्चतम न्यायालय के एक अन्य निर्णय पर भरोसा किया है। विचाराधीन निर्णय से उन्होंने इसके प्रस्तर 4 पर भरोसा किया और वह यहां नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है:

"4. 03.10.2021 को, आशीष मिश्रा @ मोनू अर्थात् प्रतिवादी-अभियुक्त द्वारा एक वार्षिक दंगल (कुश्ती) प्रतियोगिता आयोजित की जा रही थी। कार्यक्रम में श्री अजय मिश्रा के साथ-साथ श्री केशव प्रसाद मौर्य, उत्तर प्रदेश राज्य के उप मुख्यमंत्री, उपस्थित होने वाले थे, जिनके लिए महाराजा अग्रसेन इंटर कॉलेज, टिकोनिया के खेल के मैदान में एक हेलीपैड बनाया गया था। 03.10.2021 की सुबह हेलीपैड के पास किसानों की भीड़ इकट्ठा होने लगी। इस प्रकार मुख्य अतिथि का मार्ग सड़क से ले जाने के लिए बदल दिया गया। लेकिन बदला हुआ सड़क मार्ग भी महाराजा अग्रसेन इंटर कॉलेज के सामने से गुजर रहा था, जहां विरोध करने वाले किसान बड़ी संख्या में इकट्ठा हो रहे थे। इसने अधिकारियों को दंगल स्थल तक पहुंचने के लिए एक और वैकल्पिक रास्ते का सहारा लेने के लिए प्रेरित किया।"

17. हालांकि उन निर्णयों से, जिन पर श्री कृष्ण कांत पांडे ने भरोसा किया, हम इस विचार के हैं कि पीड़ित के पास गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के अधीन याचिका का विरोध करने का कोई अधिकार नहीं था, हम उनकी प्रस्तुतियों को नोट कर रहे हैं। श्री कृष्ण कांत पांडे ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता ऐसा व्यक्ति नहीं था, जिसे प्रथम सूचना रिपोर्ट रद्द करने के बाद मुक्त किया जा सके। उन्होंने प्रस्तुत किया कि वह एक खतरनाक अपराधी था और इसलिए, गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के अधीन प्रथम सूचना रिपोर्ट को खंडित नहीं किया जाए। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि वह सार्वजनिक शांति के लिए एक खतरा था और उन्होंने प्रस्तुत किया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार ही वह निश्चित रूप से गैंगस्टर अधिनियम, 1986 की धारा 2(बी) (I) से (XXV) के अधीन गिनाए गए विभिन्न अपराधों में लिप्त होकर अपने लिए अनुचित लौकिक आर्थिक भौतिक या अन्य लाभ प्राप्त कर रहा था। श्री पांडे, हालांकि, उन्हें दिए गए विभिन्न अवसरों के बाद भी, न्यायालय को यह नहीं दिखा सके कि क्या गैंग-चार्ट की तैयारी से पहले कोई समुचित चर्चा हुई थी और क्या गैंग-चार्ट गैंगस्टर नियम, 2021 के नियम 16 के अनुसार तैयार किया गया था।

18. श्री अमित सिन्हा, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने अपनी प्रस्तुतियां कीं और प्रस्तुत किया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करना राज्य द्वारा किए गए उचित प्रयास का परिणाम था। वास्तव में, प्रथम सूचना रिपोर्ट के बाद अन्वेषण होना था और पुलिस द्वारा आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के बाद, विचारण प्रारंभ होगा और उसके बाद ही याचिकाकर्ता को सजा दी जाएगी। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि प्रकरण में एक आरोप-पत्र भी अग्रेषित किया गया था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि यह निवारक निरोध के अधीन मामला नहीं था और याचिकाकर्ता का एक पूर्ण विचारण अभी भी इंतजार कर रहा था।

19. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, हम इस विचार के हैं कि गैंग-चार्ट की तैयारी से पहले "समुचित चर्चा" होनी चाहिए थी। गैंगस्टर अधिनियम, 1986 उन अपराधियों से निपटने के लिए अधिनियमित किया गया था, जो एक गिरोह बनाकर अपराध करते हैं या उन लोगों के संबंध में जो एक गिरोह की अवैध गतिविधियों में सहायता या उकसाते हैं, जो गैंगस्टर अधिनियम, 1986 की धारा 2(बी) (I) से (XXV) के अधीन उल्लिखित अपराधों में लिप्त होता है। न केवल यह, यदि कोई व्यक्ति एक गैंगस्टर था, तो यह निष्कर्ष निकालना था कि वह या तो सामूहिक रूप से या अकेले हिंसा या धमकी या हिंसा के प्रदर्शन

या धमकी या जबरदस्ती द्वारा सार्वजनिक व्यवस्था को भंग कर रहा था या अपने लिए या गिरोह के लिए कोई अनुचित लौकिक आर्थिक भौतिक या अन्य लाभ प्राप्त कर रहा था। वर्तमान प्रकरण में कथित गैंगस्टर अधिनियम के अनुसार ही पहले से ही अन्य अपराधों में एक अपराधी था और उन अपराधों के लिए, वह पहले से ही विचारण का सामना कर रहा था। एक व्यक्ति को गैंगस्टर के रूप में ब्रांड करने और उस संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए, गैंगस्टर अधिनियम, 1986 और गैंगस्टर नियम, 2021 ने कुछ सावधानी के उपचार प्रदान किए थे और उनमें से मुख्य यह था कि गैंग-चार्ट तैयार किए जाने से पहले गैंगस्टर नियम, 2021 के नियम 5(3)(ए) के अनुसार अधिकारियों के बीच एक निश्चित "समुचित चर्चा" होनी थी। इसके अतिरिक्त, नियमों और अधिनियम के अनुसार गैंग-चार्ट को उसके बाद तैयार किया जाना था और गैंगस्टर नियम, 2021 के नियम 16 के अनुसार विवेक के पूर्ण प्रयोग के बाद अधिकारियों द्वारा अनुमोदित किया जाना था। इसके अतिरिक्त, यह भी देखा जाना था कि केवल इसलिए कि एक व्यक्ति, जो आधार मामलों में एक अभियुक्त था, को जमानत मिल गई थी, गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के अधीन आगे निहितार्थ से परेशान नहीं किया गया था और इस उद्देश्य के लिए अधिनियम और नियमों के अधीन एक पूर्ण मशीनरी प्रदान की गई थी और उन मशीनरियों में से मुख्य अधिकारियों के बीच एक "समुचित चर्चा" थी।

20. वर्तमान प्रकरण में, हम पाते हैं कि "समुचित चर्चा" बिल्कुल भी नहीं हुई थी। वास्तव में प्रति-शपथपत्र दाखिल करते समय भी, यह विवेक के प्रयोग के बिना किया गया था। प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर 21 में हालांकि यह कहा गया था कि गैंग-चार्ट की मंजूरी थी लेकिन समुचित चर्चा के बारे में कुछ नहीं कहा गया था, जो गैंग-चार्ट की तैयारी से पहले होनी थी। इसके अतिरिक्त, हम पाते हैं कि प्रथम सूचना रिपोर्ट सबसे सामान्य तरीके से दर्ज की गई थी। आधार प्रकरण में हत्या के प्रकरण में याचिकाकर्ता की षड्यंत्रकारी भूमिका का उल्लेख किया गया था लेकिन गैंगस्टर अधिनियम के वर्तमान प्रकरण में प्रथम सूचना रिपोर्ट में कहा गया था कि वह "चोरी आदि" में शामिल था। इसके अतिरिक्त, हम पाते हैं कि हालांकि याचिकाकर्ता 01.11.2023 से जेल में था लेकिन प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर 28 में यह कहा गया था कि याचिकाकर्ता फरार था और वह अन्वेषण में भाग नहीं ले रहा था, इस तथ्य के बाद भी कि वह पहले से ही आधार प्रकरण में जेल में था। यह सब निश्चित रूप से यह दिखाता है कि याचिकाकर्ता को गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के अधीन झूठा फंसाया जा रहा था। गैंगस्टर नियम, 2021 के नियम 5(3)(ए) के अनुसार निश्चित रूप से कोई "समुचित चर्चा" नहीं थी और गैंग-चार्ट भी विवेक के उचित प्रयोग के बाद तैयार नहीं किया गया था।

21. उपरोक्त कारणों के लिए, हम इस विचार के हैं कि दिनांक 22.11.2023 की प्रथम सूचना रिपोर्ट, जिससे मुकदमा अपराध संख्या-861 वर्ष 2023 उतपान हुआ, जो गैंगस्टर अधिनियम, 1986 की धारा 3(1) के अधीन दर्ज की गई थी, खंडित किए जाने योग्य है। इसके अतिरिक्त, चूंकि रिट याचिका में ही सभी परिणामी आदेशों आदि को खंडित करने के संबंध में प्रार्थना की गई थी, हम इस विचार के हैं कि उचित अन्वेषण के बाद पुलिस द्वारा अग्रेषित आरोप-पत्र को भी खंडित किया जाए। इसके अतिरिक्त, हम इस विचार के हैं कि गैंग-चार्ट भी, जो बिना किसी समुचित चर्चा और बिना विवेक के प्रयोग के तैयार किया गया था, खंडित किए जाने योग्य है और इसलिए, गैंग-चार्ट, जो प्रथम सूचना रिपोर्ट का आधार बनाया गया है, को भी निरस्त किया जाता है।

22. रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

(2025) 5 ILRA 224

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 21016 वर्ष 2024

मोहम्मद जुबैर **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य **...प्रतिवादीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
देवांग सावला, राजर्षि गुप्ता, तन्मय साध

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
कपिल त्यागी

अनुवादित

आपराधिक विधि-भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 19(1)(ए), 19(2), 21 एवं 226-भारतीय न्याय संहिता (भा.न्या.सं.)-धारा 132, 132(1), 221, 152, 191(2), 193(3), 196, 221, 228, 298, 299, 302, 351, 351(2), 353 एवं 356(3)-सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000-धारा 66-रिट याचिका-प्र.सू.रि. को खंडित करने की मांग-आरोप है कि याचिकाकर्ता के ट्वीट, जिसमें एक वीडियो शामिल है, ने हिंसा को उकसाया और डासना देवी मंदिर पर हमले का कारण बना-याचिका में कहा गया है कि प्र.सू.रि. विधि का दुरुपयोग है, जिसका उद्देश्य असहमति को दबाना है, यह दावा करते हुए कि ट्वीट अनुच्छेद 19(1)(ए) के अधीन संरक्षित हैं और विद्रोह या अलगाववाद को भड़काने का कोई आशय नहीं था-धारा 152 भा.न्या.सं. उचित अन्वेषण के बिना जोड़ी गई-राज्य के अधिवक्ता ने याचिका का विरोध किया, यह तर्क देते हुए कि याचिकाकर्ता के प्रभावशाली ट्वीट्स ने विध्वंसक गतिविधियों को उकसाया और राष्ट्रीय अखंडता को खतरे में डाला, जिससे अनुच्छेद 19(2) के अधीन प्रतिबंध लागू होते हैं-राज्य का आग्रह है कि प्र.सू.रि. में गंभीर आरोप शामिल हैं और इसे आंशिक रूप से खंडित नहीं किया जा सकता-न्यायालय ने पाया कि-(i) भारत विविध धर्मों, जनजातियों और जातियों वाला देश है, और याचिकाकर्ता द्वारा किए गए ट्वीट, यदि समाज के किसी वर्ग द्वारा गलत समझे जाते हैं, तो संभावित रूप से सार्वजनिक सद्भाव को प्रभावित कर सकते हैं,-(ii) "भीड़ भरे थिएटर में आग का परीक्षण" वर्तमान मामले में लागू नहीं होता,- (iii) जबकि धारा 152 भा.न्या.सं. राजद्रोह गतिविधि के विरुद्ध राज्य के लिए एक सुरक्षा उपाय के रूप में कार्य करती है, क्या याचिकाकर्ता के बयानों ने अलगाव, सशस्त्र विद्रोह को उत्तेजित किया

या अलगाववादी भावनाओं को प्रोत्साहित किया, यह अन्वेषण के माध्यम से निर्धारित किया जाने वाला मामला है,- (iv) अन्वेषण एजेंसियां आरोपों की अन्वेषण करने के लिए सबसे उपयुक्त हैं और सच्चाई अभी सामने आनी बाकी है,-(v) पहले दी गई अंतरिम सुरक्षा का याचिकाकर्ता द्वारा दुरुपयोग नहीं किया गया-न्यायालय ने माना-एक झूठा आरोप अनुच्छेद 21 के अधीन गारंटीकृत अधिकारों को प्रभावित कर सकता है, इसलिए, इस स्तर पर हस्तक्षेप करने से परहेज करता है-वर्तमान मामले में अन्वेषण जारी रखने का निर्देश जारी किया गया, इस सुरक्षा के साथ कि अन्वेषण की समाप्ति तक, पूर्ण सहयोग के अधीन, प्र.सू.रि. के अनुसरण में याचिकाकर्ता को गिरफ्तार या किसी भी तरीके से परेशान नहीं किया जाएगा-रिट याचिका को आगे के निर्देशों के साथ निस्तारित किया गया कि याचिकाकर्ता अन्वेषण के लिए उपलब्ध रहेगा और देश नहीं छोड़ेगा। (प्रस्तर-44, 45, 46, 49, 50, 52, 53, 55)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-11)

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची</u>:

1. तेजेंदर पाल सिंह @ टिम्मा बनाम राजस्थान राज्य (एस.बी. आपराधिक प्रकीर्ण (याचिका) संख्या-5005/2024, 16.12.2024 को निर्णीत),
2. जावेद अहमद हज्जाम बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य-(2024) 4 SCC 156,
3. मोहम्मद वाजिद व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य-2023 SCC OnLine SC 951,
4. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 Supp (1) SCC 335,
5. लवली सलहोत्रा बनाम दिल्ली एनसीटी राज्य व अन्य-(2018) 12 SCC 391,
6. रामजी लाल मोदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य-AIR 1957 SC 620,
7. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम ललई सिंह यादव-(1976) 4 SCC 213,
8. अनुराधा भसीन बनाम भारत संघ व अन्य, (2020) 3 SCC 637,
9. कौशल किशोर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य: (2023) 4 SCC 1,
10. 63 L. Ed. 470: चार्ल्स टी. शेंक बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका,
11. 63 L. Ed. 1173 (जैकब एब्राम्स बनाम संयुक्त राज्य),
12. 23 L. Ed. 2d 430 (क्लेरेंस ब्रांडेनबर्ग बनाम ओहियो राज्य),
13. तहसीन एस. पूनावाला बनाम भारत संघ व अन्य-(2018) 9 SCC 501,
14. अनुराधा भसीन बनाम भारत संघ व अन्य-(2020) 3 SCC 637,
15. आमिष देवगन बनाम भारत संघ व अन्य: (2021) 1 SCC 1,
16. दिनेशभाई चंदूभाई पटेल बनाम गुजरात राज्य व अन्य-(2018) 3 SCC 104,
17. राफिक अहमदभाई पालीवाला बनाम गुजरात राज्य व अन्य-(2019) 5 SCC 464,

18. सोमजीत मल्लिक बनाम झारखंड राज्य व अन्य-(2024) 10 SCC 527,

19. विनोद रघुवंशी बनाम अजय अरोड़ा व अन्य-(2013) 10 SCC 581,

20. सतविंदर कौर बनाम दिल्ली NCT की राज्य सरकार-(1999) 8 SCC 728,

21. नीहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य, (2021) SCC OnLine SC 315,

21. आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 7463 वर्ष 2024 (शोभित नेहरा व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 2 अन्य),

22. हेमा मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, (2014) 4 SCC 453

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा द्वारा उद्घोषित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री तन्मय साध की सहायता से श्री दिलीप कुमार, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री पंकज सक्सेना की सहायता से श्री मनीष गोयल, विद्वान अपर महाधिवक्ता, श्री ए.के.संड, विद्वान शासकीय अधिवक्ता को सुना। सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री कपिल त्यागी को श्री अधित्य श्रीनिवासन के साथ सुना गया, जो वीडियो कॉन्फ्रेंस के माध्यम से उपस्थित हुए।

2. इस रिट याचिका को इस प्रार्थना के साथ योजित किया गया है कि याचिकाकर्ता-मोहम्मद जुबैर के विरुद्ध मुकदमा अपराध संख्या-992 वर्ष 2024, धारा-196, 228, 299, 356(3), 351(2) व 152 भारतीय न्याय संहिता, 2023 तथा धारा-66 सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम को उत्पन्न करने वाली प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 7.10.2024 को खंडित किया जाए।

3. प्र.सू.रि. दर्ज होने के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 3.10.2024 को, याचिकाकर्ता ने रात 9.30 बजे कुछ संदेश ट्वीट किए थे। इसके बाद 4.10.2024 को उन्होंने फिर से 11 बजकर 08 मिनट पर ट्वीट किया और इसके बाद 5.10.2024 को उन्होंने फिर से दोपहर 12.38 बजे ऐसा किया। इसके बाद और ट्वीट्स के परिणामस्वरूप, विशेष रूप से जो 3.10.2024 को किया गया था, 4.10.2024 की रात को डासना देवी मंदिर में, कुछ व्यक्तियों ने एक मंदिर पर हमला किया। प्र.सू.रि. 7.10.2024 को दोपहर 2.19 बजे दर्ज की गई थी। प्र.सू.रि. में आरोप लगाया गया कि औल्ट न्यूज के सह-संस्थापक मोहम्मद जुबैर ने 3.10.2024 को रात 9.30 बजे ट्वीट किया था और यती नरसिंहानंद गिरि का एक वीडियो भी अपलोड किया था और ट्वीट के कारण, कुछ व्यक्ति भड़क गए थे। प्र.सू.रि. में यह कहा गया है कि उपरोक्त ट्वीट्स के अतिरिक्त, उसमें कुछ पुरानी घटनाओं का भी उल्लेख किया गया था। प्र.सू.रि. में कहा गया था कि यती नरसिंहानंद गिरि पर आरोपी द्वारा कुछ राजनीतिक नेताओं का अपमान करने का भी आरोप लगाया गया था। यह कहा गया था कि उस सूची में, डॉ. उदिता त्यागी (प्रथम सूचनादाता) का नाम शामिल किया गया था। प्रथम सूचनादाता ने इसके बाद कहा कि उन ट्वीट्स के बाद, उन्हें जानलेवा संदेश मिल रहे थे, जिसके बारे में उन्होंने पहले भी रिपोर्ट की थी। इसके बाद यह कहा गया कि मोहम्मद जुबैर 4.10.2024 को संदेशों की ट्वीटिंग के बाद नहीं रुके। उन्होंने इसके बाद

फिर से 5.10.2024 को सुबह 11.08 बजे ट्वीट किया। और फिर उन्होंने उसी दिन अर्थात 5.10.2024 को दोपहर 12.38 बजे फिर से ट्वीट किया। प्र.सू.रि. में, यह कहा गया है कि आरोपी की पोस्ट, घटनाओं की पूर्ण क्रम थी, जो यती नरसिंहानंद गिरि के पुराने भाषणों को भी दिखा रहा था। प्र.सू.रि. के साथ, पोस्ट का लिंक भी संलग्न किया गया था और एक लिखित अनुरोध किया गया था कि उन लिंक्स को देखा जाए और उन टिप्पणियों को देखा जाए, जो आम जनता द्वारा की गई थीं, जिन्हे भड़काया जा रहा था। इसके बाद प्र.सू.रि. में उल्लेख किया गया था कि 4.10.2024 को, कुछ व्यक्तियों ने मंदिर पर हमला किया था। यह कहा गया है कि पहले भी याचिकाकर्ता ने नूपुर शर्मा के बारे में ट्वीट किया था और आम जनता को भड़काने की कोशिश की थी और उस भड़काव के कारण आठ लोगों की जान चली गई थी। प्र.सू.रि. में यह कहा गया था कि 4.10.2024 को, यती नरसिंहानंद गिरि और प्रथम सूचनादाता स्वयं मंदिर में मौजूद थे लेकिन वे बाल-बाल बच गए थे। अंत में, यह कहा गया कि याचिकाकर्ता एक विशेष समुदाय के विरुद्ध लोगों के एक निश्चित समूह को भड़का रहे थे।

4. प्रारंभ में प्र.सू.रि. भा.न्या.सं. की धारा 196, 228, 299, 356(3) और 351(2) के अधीन दर्ज की गई थी लेकिन बाद में कुछ अन्वेषण के बाद, भा.न्या.सं. की धारा 152 और सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 66 के अधीन अपराध भी जोड़े गए। फिर याचिकाकर्ता ने तदनुसार रिट याचिका में संशोधन किया।

5. जब 18.11.2024 को वाद को सुना गया, तो राज्य ने न्यायालय से एक संक्षिप्त प्रति-शपथपत्र दाखिल करने के लिए समय देने का अनुरोध किया जिससे राज्य उन सभी ट्वीट्स को अभिलेख पर ला सके, जो रिट याचिका के साथ दाखिल नहीं किए गए थे। इसके बाद 20.12.2024 को, अन्वेषण अधिकारी ने एक संक्षिप्त प्रति-शपथपत्र दाखिल किया और कुछ ट्वीट्स को अभिलेख पर लाया और संक्षिप्त प्रति-शपथपत्र के माध्यम से न्यायालय को यह भी सूचित किया कि ट्वीट्स को कितनी बार फिर से पोस्ट किया गया था।

6. श्री दिलीप कुमार, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी श्री तन्मय साध और श्री राजर्षि गुप्ता, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सहायता की, ने प्रस्तुत किया कि धारा 196, 228, 299, 356(3), 351(2) और 152 भा.न्या.सं. और सू.प्रौ. अधिनियम की धारा 66 के अधीन कोई मामला नहीं बनता है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि प्र.सू.रि. दर्ज करना विधि की प्रक्रिया का गंभीर दुरुपयोग था और यह याचिकाकर्ता को परेशान करने और एक तथ्य-परीक्षक और देश के एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में अपनी भूमिका निभाने से डराने के एकमात्र उद्देश्य से योजित किया गया था।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने भा.न्या.सं. की धारा 152 की व्याख्या के संबंध में कहा कि भा.न्या.सं. की धारा 152 का स्पष्टीकरण हालांकि यह प्रावधानित करता है कि यदि कोई व्यक्ति सरकार के कार्यों की अस्वीकृति के उद्देश्यों के लिए टिप्पणी करता है, या सरकार के प्रशासनिक या अन्य कार्यों पर अस्वीकृति से टिप्पणी करता है, जिससे धारा 152 में संदर्भित गतिविधियों को उत्तेजित किए बिना या उत्तेजित

करने का प्रयास किए बिना विधिक साधनों द्वारा उनमें परिवर्तन प्राप्त किया जा सके, तो इस धारा के अधीन कोई अपराध नहीं होगा।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने, धारा 152 भा.न्या.सं. के सापेक्ष प्र.सू.रि. को रद्द करने के लिए मामला बनाने के लिए, राजस्थान उच्च न्यायालय **तेजेंदर पाल सिंह @ टिम्मा बनाम राजस्थान राज्य (एस.बी. आपराधिक प्रकीर्ण (याचिका) संख्या-5005/2024, 16.12.2024 को निर्णीत)** में निर्णय पर बलपूर्वक भरोसा किया और प्रस्तुत किया कि यदि प्र.सू.रि. में संदर्भित ट्वीट्स को पढ़ा जाए, जो रिट याचिका में और राज्य द्वारा 20.12.2024 को दाखिल संक्षिप्त प्रति-शपथपत्र में पुनः प्रस्तुत किए गए हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वे ट्वीट भा.न्या.सं. की धारा 152 के अधीन दंडनीय किसी भी अपराध का गठन नहीं करेंगे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि ट्वीट्स (याचिकाकर्ता के आरोपित कृत्य) को अलगाव या सशस्त्र विद्रोह को उत्तेजित करने या उत्तेजित करने का प्रयास करने के समान नहीं कहा जा सकता है। उन्हें निश्चित रूप से विध्वंसक गतिविधियों को उत्तेजित करने वाला नहीं कहा जा सकता था। निश्चित रूप से वे अलगाववादी गतिविधियों को प्रोत्साहित नहीं कर रहे थे या भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता को खतरे में नहीं डाल रहे थे। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि यदि ट्वीट्स को देखा जाए, तो वे केवल कुछ भाषणों का पुनरुत्पादन थे, जो यती नरसिंहानंद गिरि ने विभिन्न तिथियों पर विभिन्न स्थानों पर दिए थे और यह कि याचिकाकर्ता, यती नरसिंहानंद के विरुद्ध कार्रवाई करने में राज्य अधिकारियों की निष्क्रियता से असंतुष्ट थे। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि 3.10.2024 को, पुलिस ने स्वयं यती नरसिंहानंद गिरि के विरुद्ध एक प्र.सू.रि. दर्ज की थी और प्र.सू.रि. उस बयान के संबंध में थी, जो उन्होंने 29.9.2024 को दिया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने एक और प्र.सू.रि. का भी उल्लेख किया है, जो 5.10.2024 को 100-150 अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध दर्ज की गई थी, जिन्होंने यती नरसिंहानंद द्वारा दी गई टिप्पणियों के कारण डासना मंदिर पर हमला किया था और यदि उस प्र.सू.रि. को देखा जाए, तो उन्होंने प्रस्तुत किया, यह स्पष्ट था कि यती नरसिंहानंद द्वारा 29.9.2024 को दिए गए गैर-जिम्मेदाराना बयानों के कारण डासना मंदिर पर हमला हुआ था। अन्यथा भी, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यदि याचिकाकर्ता द्वारा ट्वीट किए गए ट्वीट्स को देखा जाए, तो वे भा.न्या.सं. की धारा 152 के अधीन किसी भी अपराध का गठन नहीं करते हैं।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि भा.न्या.सं. की धारा 152 की सामग्री को देखते हुए यह अत्यंत स्पष्ट हो जाता है कि भा.न्या.सं. की धारा 152 मुख्य रूप से देश को किसी भी अलगाववादी के हमलों से बचाने के उद्देश्य से है, जो अपने कृत्यों से एक सशस्त्र विद्रोह ला सकता है। भा.न्या.सं. की धारा 152 के अधीन पाया जाने वाला अपराध किसी भी व्यक्ति के सापेक्ष रोके जाने की आवश्यकता है, जो अलगाववाद की भावना लाने की कोशिश कर रहा हो और इस प्रकार देश की संप्रभुता, एकता और अखंडता को खतरे में डालने की कोशिश कर रहा हो। इस प्रकार यह किसी भी व्यक्ति के सभी कृत्यों को अपराध घोषित करता है जो या तो अलगाव या सशस्त्र विद्रोह को उत्तेजित करने या उत्तेजित करने का प्रयास कर रहा हो। यह उन व्यक्तियों के कृत्यों को भी अपराध घोषित करता है, जो अलगाववाद की भावना को

प्रोत्साहित करने और भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता को खतरे में डालने और इस प्रकार देश की स्थिरता को खतरे में डालने की कोशिश कर रहे हों।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि निश्चित रूप से यदि कोई व्यक्ति भा.न्या.सं. की धारा 152 के अधीन दंडनीय अपराध में लिप्त होता है, तो वह बहुत गंभीर काम करता है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि इसलिए दी गई सजा भी गंभीर है, जिसके द्वारा आजीवन कारावास भी संभव है। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि आशय (*mens rea*) की एक उच्च सीमा यह सुनिश्चित करती है कि केवल दुर्भावनापूर्ण कार्रवाई के साथ जानबूझकर की गई कार्रवाई ही भा.न्या.सं. की धारा 152 के अधीन प्रदान किए गए अपराध के दायरे में आएगी। उन्होंने प्रस्तुत किया कि धारा 152 के अधीन अपराध इस प्रकार ऐसा होगा, जो जानबूझकर या सोच-समझकर किया जाएगा। उन्होंने प्रस्तुत किया कि जानबूझकर किए गए कृत्य बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा या संकेतों और दृश्य प्रतिनिधित्व द्वारा जानबूझकर किए जाएंगे।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि भा.न्या.सं. की धारा 152 जिसका भा.दं.सं. में कोई समानांतर नहीं था, ऐसी धारा है, जिसे राष्ट्रीय अखंडता बनाए रखने और अलगाववाद के किसी भी हमले को हतोत्साहित करने के आशय से लाया गया है।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि हालांकि इस धारा का उपयोग व्यक्तिगत विवाद निपटाने के लिए नहीं किया जा सकता है। इसलिए, यह राष्ट्रीय सुरक्षा की रक्षा के लिए है और राजनीतिक असहमति/आलोचना आदि को दबाने के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। इसलिए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान भा.न्या.सं. की धारा 152 के स्पष्टीकरण की ओर आकर्षित किया, जो निम्नानुसार है:-

"सरकार के प्रयासों, या प्रशासनिक या अन्य कार्यों की अस्वीकृति व्यक्त करने वाली टिप्पणियां, जिससे इस धारा में संदर्भित गतिविधियों को उत्तेजित किए बिना या उत्तेजित करने का प्रयास किए बिना विधिक साधनों द्वारा उनमें परिवर्तन प्राप्त किया जा सके।"

13. भा.न्या.सं. की धारा 152 के अधीन अपराध करने के आशय को देखने की आवश्यकता पर विस्तार से चर्चा करने के बाद, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि न्यायालयों के लिए यह देखना भी महत्वपूर्ण था कि जब आरोपी, जिस पर भा.न्या.सं. की धारा 152 के अधीन अपराध करने का आरोप लगाया गया था, क्या वह उसे करने में सक्षम था या नहीं। उन्होंने प्रस्तुत किया कि 142.86 करोड़ से अधिक की आबादी वाला भारत जैसा देश क्या किसी व्यक्ति द्वारा अलगाव या सशस्त्र विद्रोह को उत्तेजित करने की कोशिश करने के एकल और छिटपुट कृत्य से प्रभावित होगा। यह भी देखना होगा कि क्या वह व्यक्ति अलगाववादी गतिविधियों की भावनाओं को इस हद तक प्रोत्साहित करने में सक्षम था कि पूरी आबादी उत्तेजित हो जाए और इससे देश की संप्रभुता, एकता और अखंडता प्रभावित हो।

14. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि यदि कोई संक्षिप्त प्रति-शपथपत्र दिनांकित 20.12.2024 के प्रस्तर 6 में किए गए अभिकथनों को पढ़ता है, तो याचिकाकर्ता के ट्वीट्स की दर्शक संख्या निम्नानुसार थी:

क्रम संख्या	पोस्ट की तिथि/समय	दर्शकों की संख्या
1.	03.10.2024/ 22:40	143.6के
2.	04.10.2024/10:36	536.7के
3.	04.10.2024/10:44	25.4के
4.	04.10.2024/11:21	8520
5.	04.10.2024/12:14	168.8के
6.	04.10.2024/15:16	145.6के
7.	04.10.2024/19:51	38.8के (पुनः पोस्ट किए गए ट्वीट्स)
8.	05.10.2024/00:21	49.1के
9.	05.10.2024/11:08	181.2के (पुनः पोस्ट किए गए ट्वीट्स)
10.	05.10.2024/12:38	45.9के (पुनः पोस्ट किए गए ट्वीट्स)
11.	06.10.2024/12:48	81.5के (पुनः पोस्ट किए गए ट्वीट्स)
12.	06.10.2024/12:59	419.8के (पुनः पोस्ट किए गए ट्वीट्स)

15. इस प्रकार, पोस्ट की अधिकतम पहुंच 536.7 हजार दर्शकों तक प्रतीत होती है और, इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि यदि इतनी कम संख्या में अनुयायियों वाला कोई व्यक्ति ट्वीट कर रहा था तो यह किसी भी तरह से नहीं कहा जा सकता था कि उसका अलगाव/सशस्त्र विद्रोह को उत्तेजित करने का कोई आशय हो सकता है। वह अलगाववाद की भावना को भी प्रोत्साहित नहीं कर सकते थे और इस प्रकार देश की संप्रभुता, एकता और अखंडता को खतरे में नहीं डाल सकते थे।

16. इसके बाद याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **(2024) 4 SCC 156 : जावेद अहमद हज्जाम बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य** में सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया और प्रस्तुत किया कि एक अपराधी के कृत्यों का निर्णय, इस बात को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए कि जिस देश में वह अपराध करने की कोशिश कर रहा था, उसकी संरचना क्या थी। उन्होंने प्रस्तुत किया कि हमारा देश 75 से अधिक वर्षों से एक लोकतांत्रिक देश रहा है और हमारे लोग लोकतांत्रिक मूल्यों के महत्व को जानते हैं। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि यह निष्कर्ष निकालना संभव नहीं था कि याचिकाकर्ता द्वारा किए गए ट्वीट्स हमारे देश में असामंजस्य को बढ़ावा देंगे या किसी भी तरह से देश को कमबल करेंगे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि परीक्षण उचित संख्या में महत्वपूर्ण लोगों पर उच्चारणों का एक सामान्य प्रभाव है। केवल इसलिए कि कुछ लोग

याचिकाकर्ता के कृत्यों के कारण घृणा या दुर्भावना विकसित करेंगे, निश्चित रूप से उन्हें धारा 152 भा.न्या.सं. के अधीन अपराध के लिए उत्तरदायी नहीं बनाएगा। यह कहना पर्याप्त नहीं होगा कि याचिकाकर्ता ने पूरे देश में या उसके एक हिस्से में भी अलगाव या सशस्त्र विद्रोह को उत्तेजित करने या उत्तेजित करने का प्रयास किया था। यह भी नहीं कहा जा सकता था कि उन्होंने विध्वंसक गतिविधियों को उत्तेजित किया था या अलगाववाद की भावनाओं को प्रोत्साहित किया था और इस प्रकार देश की संप्रभुता, एकता और अखंडता को खतरे में डाला था।

17. इस प्रकार, वास्तव में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय को चार व्यापक बिंदुओं पर समझाने की कोशिश की है:-

I. अपराध गंभीर होने के कारण, आशय/*mens rea* को व्यापक रूप से देखा जाना चाहिए और इसकी सीमा को समझने के लिए बहुत उच्च मानकों को अपनाया जाना चाहिए।

II. जो व्यक्ति बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा या संकेतों द्वारा या आभासी प्रतिनिधित्व द्वारा या इलेक्ट्रॉनिक संचार द्वारा या वित्तीय साधनों के उपयोग द्वारा या अन्यथा जानबूझकर या सोच समझकर अलगाव या सशस्त्र विद्रोह को उत्तेजित करने या भड़काने का प्रयास करता है, वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो अलगाववाद की भावनाओं को प्रभावी ढंग से प्रोत्साहित कर सके और इस प्रकार देश की संप्रभुता, एकता और अखंडता को खतरे में डाल सके।

III. जिन लोगों के बीच वह अलगाव या सशस्त्र विद्रोह या विध्वंसक गतिविधियों को उत्तेजित करने के लिए अपने विचारों को फैलाने की कोशिश करता है और इस प्रकार अलगाववाद की भावनाओं को प्रोत्साहित करने और अंततः देश की संप्रभुता, एकता और अखंडता को खतरे में डालने की कोशिश करता है, वे ऐसे लोग होने चाहिए जो वास्तव में उन प्रयासों/कृत्यों से प्रभावित हों।

IV. यदि स्वीकृति का आशय था तो धारा 152 भा.न्या.सं.S के अधीन कोई अपराध नहीं बनता था।

18. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि यदि कोई व्यक्ति, जो किसी महत्व का नहीं था, बार-बार ऐसी गतिविधियों कर रहा था तो भी इसका मतलब यह नहीं होगा कि वह भा.न्या.सं. की धारा 152 के अधीन अपराधी था।

19. **मोहम्मद वाजिद व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2023 SCC ऑनलाइन SC 951** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि जब प्रथम सूचना रिपोर्ट या आपराधिक कार्यवाही को खंडित करने की बात आती है, तो आपराधिक पूर्ववृत्त आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की राहत से इनकार करने के लिए एकमात्र विचार नहीं हो सकता है। एक आरोपी को न्यायालय के समक्ष यह कहने का वैध अधिकार है कि चाहे उसके पूर्ववृत्त कितने भी खराब हों, यदि प्रथम

सूचना रिपोर्ट किसी भी अपराध के घटित होने का खुलासा करने में विफल रहती है या उसका मामला **हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 Supp (1) SCC 335** में निर्धारित मापदंडों के भीतर आता है, तो प्र.सू.रि. को अनिवार्य रूप से रद्द करने की आवश्यकता है। उपरोक्त निर्णय में दिए गए मापदंडों को यहां निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया जाए, प्रथम दृष्टया किसी भी अपराध का गठन नहीं करते हैं या आरोपी के विरुद्ध मामला स्थापित नहीं करते हैं।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोप व अन्य सामग्री, यदि कोई हो, जो प्र.सू.रि. के साथ है, संहिता की धारा 156(1) के अधीन पुलिस अधिकारियों द्वारा अन्वेषण को उचित ठहराने वाले संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, सिवाय संहिता की धारा 155(2) के दायरे में एक मजिस्ट्रेट के आदेश के अधीन।

(3) जहां प्र.सू.रि. या परिवाद में किए गए निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी भी अपराध के घटित होने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के विरुद्ध मामला नहीं बनाते हैं।

(4) जहां, प्र.सू.रि. में आरोप संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते हैं बल्कि केवल एक गैर-संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, संहिता की धारा 155(2) के अधीन परिकल्पित मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना एक पुलिस अधिकारी द्वारा अन्वेषण की अनुमति नहीं है।

(5) जहां प्र.सू.रि. या परिवाद में किए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं जिसके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस न्यायसंगत निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि आरोपी के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके अधीन आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है) के किसी भी प्रावधान में कार्यवाही की स्थापना और निरंतरता के लिए एक स्पष्ट विधिक रोक अंकित है और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में एक विशिष्ट प्रावधान है, जो पीड़ित पक्ष की परिवाद के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां एक आपराधिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावना से भरी हुई है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण ढंग से आरोपी पर बदला लेने के उद्देश्य से और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे नुकसान पहुंचाने के दृष्टिकोण से स्थापित की गई है।"

20. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) पर भरोसा किया और प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को ट्वीट करने के लिए भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता थी और देश में कोई भी विधि उन्हें अपने भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का प्रयोग करने से नहीं रोक सकता था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि हालांकि ऐसे प्रतिबंध थे, जो लागू किए जा सकते थे लेकिन वे याचिकाकर्ता को अपने विचारों को व्यक्त करने से नहीं रोक सकते थे।

21. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अंत में बलपूर्वक प्रस्तुत किया कि भले ही 3.10.2024 से 6.10.2024 तक किए गए ट्वीट्स को देखा जाए, यह स्पष्ट हो जाता है कि अलगाव या सशस्त्र विद्रोह को उत्तेजित करने का कोई प्रयास नहीं था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि विध्वंसक गतिविधियों को उत्तेजित करने का भी कोई प्रयास नहीं था और अलगाववादी गतिविधियों की भावनाओं को प्रोत्साहित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया था और कार्य भी ऐसे नहीं थे, जिन्हें भारत की संप्रभुता या एकता और अखंडता को खतरे में डालने के प्रयास के रूप में वर्गीकृत किया जा सके। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय को विभिन्न ट्वीट्स को दिखाया है और प्रस्तुत किया है कि प्रारंभ में ट्वीट्स इस प्रभाव के थे कि यती नरसिंहानंद के कुछ घृणास्पद भाषण, जिन्होंने एक विशेष धर्म को लक्षित किया था, को उजागर किया जा रहा था और प्रशासन और सरकार के उपायों की अस्वीकृति व्यक्त की गई थी कि इस पर कार्रवाई की जाए। फिर, उन्होंने यती नरसिंहानंद गिरि के भाषण को ट्वीट किया था और उनके वीडियो को पुनः प्रस्तुत किया था जिसमें उन्होंने राजनीति में महिलाओं के बारे में घिनौनी टिप्पणी की थी। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता के अनुयायियों ने केवल याचिकाकर्ता द्वारा किए गए कार्यों की निरंतरता में अन्य ट्वीट्स किए थे और वे सभी राज्य से उन ट्वीट्स पर कार्रवाई करने के लिए कह रहे थे और, इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि वास्तव में याचिकाकर्ता और उनके अनुयायियों का एकमात्र प्रयास यह देखना था कि यती नरसिंहानंद को दंडित किया जाए और इसके लिए उन्होंने प्रशासन द्वारा उठाए गए उपायों की अपनी अस्वीकृति व्यक्त की थी।

22. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि भले ही पुलिस ने यती नरसिंहानंद गिरि के विरुद्ध कार्रवाई की थी, लेकिन वे केवल उन अपराधों के लिए आरोप पत्र प्रस्तुत कर रहे थे, जो बहुत मामूली थे। उन्होंने आगे कहा कि यती नरसिंहानंद गिरि जिस तरह के बयान दे रहे थे, उसके लिए राज्य की ओर से बहुत अधिक कड़ी कार्रवाई की आवश्यकता थी और राज्य द्वारा ऐसा नहीं किया जा रहा था, याचिकाकर्ता को राज्य द्वारा उठाए गए उपायों की अस्वीकृति व्यक्त करने वाली टिप्पणी करने का पूरा अधिकार था।

23. इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि प्र.सू.रि. प्रारंभ में भा.न्या.सं. की धारा 196, 228, 299, 356(3) और 351 के अधीन दर्ज की गई थी। उन्होंने प्रस्तुत किया कि पुलिस अधिकारियों ने बिना किसी कारण के, इसके बाद, धाराओं की सूची में भा.न्या.सं. की धारा 152 जोड़ दी थी। अन्वेषण एजेंसियों ने उस तिथि तक मुश्किल ही से कोई अन्वेषण किया था, जब भा.न्या.सं. की धारा 152 जोड़ी गई थी और मूल प्र.सू.रि. की सामग्री के आधार पर, धारा 152 भा.न्या.सं. बाद में जोड़ी गई थी। उस तिथि तक मुश्किल

ही से कोई अन्वेषण किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि यहां तक कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा दाखिल प्रति-शपथपत्र व अन्य शपथपत्रों को पढ़ने से भी यह नहीं पता चलता है कि भा.न्या.सं. की धारा 152 जोड़ने के लिए राज्य के पास कोई अतिरिक्त सामग्री थी। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि भले ही धारा 152 भा.न्या.सं. बाद में जोड़ी गई थी, अन्वेषण केवल मूल प्र.सू.रि. की सामग्री के सापेक्ष ही हुई थी और इस प्रकार याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने बहुत स्पष्ट रूप से कहा कि ऐसा कुछ भी नया नहीं था, जो अन्वेषण एजेंसियों के कब्जे में आया था, जिसने उन्हें प्र.सू.रि. में भा.न्या.सं. की धारा 152 जोड़ने के लिए प्रेरित किया। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि जब न्यायालय यह निर्णय दे रहा था कि प्र.सू.रि. को रद्द किया जाना है या नहीं तो न्यायालय के लिए यह हमेशा उपलब्ध था कि वह या तो पूरी प्र.सू.रि. को रद्द कर दे या उसे आंशिक रूप से रद्द कर दे। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **(2018) 12 SCC 391 : लवली सलहोत्रा बनाम दिल्ली एनसीटी राज्य व अन्य** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया और प्रस्तुत किया कि उस मामले में प्र.सू.रि. को कुछ याचिकाकर्ताओं-आरोपियों के सापेक्ष रद्द कर दिया गया था व अन्य याचिकाकर्ताओं-आरोपियों के संबंध में इसे रद्द नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उसी सिद्धांत को लागू करते हुए यदि प्र.सू.रि. में कुछ अपराध नहीं स्थापित हो रहे थे तो उन्हें रद्द किया जा सकता था और जो प्र.सू.रि. के सरल पठन से बन रहे थे, उनका अन्वेषण किया जा सकता था।

24. राज्य के लिए विद्वान अपर महाधिवक्ता ने रिट याचिका का बलपूर्वक विरोध किया है और उन्होंने प्रस्तुत किया है कि 3.10.2024, 4.10.2024, 5.10.2024 और 5.10.2024 को किए गए ट्वीट्स का सरल पठन, जो याचिकाकर्ता द्वारा पोस्ट किए गए थे और इसके बाद उनके अनुयायियों/आम जनता द्वारा फिर से पोस्ट किए गए थे, यह संकेत देगा कि याचिकाकर्ता हर संभव तरीके से अलगाव और सशस्त्र विद्रोह को उत्तेजित करने की कोशिश कर रहे थे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि ट्वीट्स द्वारा, वह विध्वंसक गतिविधियों को उत्तेजित करने की भी कोशिश कर रहे थे और इसलिए अलगाववाद की भावना को प्रोत्साहित कर रहे थे और इन सब का अंतिम परिणाम यह था कि वह देश की संप्रभुता, एकता और अखंडता को खतरे में डाल रहे थे।

25. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि जानबूझकर याचिकाकर्ता झूठे बयान दे रहे थे कि यती नरसिंहानंद गिरि के विरुद्ध दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्टों के सापेक्ष कोई कार्रवाई नहीं की जा रही थी।

26. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि 4.10.2024 को जो विरोध प्रदर्शन हुआ था, वह उस भाषण का परिणाम नहीं था जो यती नरसिंहानंद गिरि ने 29.9.2024 को दिया था, बल्कि उन ट्वीट्स का प्रत्यक्ष परिणाम था, जो याचिकाकर्ता ने 4.10.2024 को किए थे।

27. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने कहा कि याचिकाकर्ता के ट्वीट्स की दर्शक संख्या लगभग 5 लाख थी और उन्हें लगभग 15 लाख लोग फॉलो कर रहे थे।

28. विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता औल्ट न्यूज के सह-संस्थापक और निदेशक थे, जो एक ऐसी एजेंसी थी जो तथ्यों की अन्वेषण करती है और याचिकाकर्ता गलत तरीके से यह कह रहे थे कि महामंडलेश्वर यती नरसिंहानंद गिरि के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की गई थी, इस तथ्य के बाद भी कि उनके विरुद्ध सभी संभव कार्रवाई की गई थी।

29. विद्वान अपर महाधिवक्ता, श्री मनीष गोयल ने यह भी प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता एक ऐसे व्यक्ति थे, जो पत्रकारिता के पेशे में थे और वह अपने प्लेटफॉर्म औल्ट न्यूज के माध्यम से हमेशा किसी भी राजनीतिक या सार्वजनिक व्यक्ति द्वारा उल्लिखित किसी भी तथ्य की सत्यता का पता लगाने की कोशिश कर रहे थे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि यती नरसिंहानंद के कृत्यों के विरुद्ध, 5.10.2024 को भा.न्या.सं. की धारा 302 के अधीन एक प्र.सू.रि. दर्ज की गई थी। इसके अतिरिक्त भा.न्या.सं. की धारा 298, 353, 191(2), 193(3), 132, 132(1) और 221 के अधीन भानु प्रकाश द्वारा 100-150 अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध यती नरसिंहानंद गिरि के विरुद्ध आपत्तिजनक बयान देने के लिए नारेबाजी करने के अपराध के लिए, एक और प्र.सू.रि. दर्ज की गई थी। विद्वान अपर महाधिवक्ता ने फिर न्यायालय का ध्यान दिनांक 5.10.2024 की प्र.सू.रि. दर्ज करने की ओर आकर्षित किया जो 18 नामित व्यक्तियों और 60-70 अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध इस तथ्य के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए दर्ज की गई थी कि यती नरसिंहानंद गिरि ने कुछ आपत्तिजनक बयान दिए थे। विद्वान अपर महाधिवक्ता ने यह भी कहा कि विशेष रूप से यती नरसिंहानंद के विरुद्ध 3.10.2024 को त्रिवेंद्र सिंह द्वारा आपत्तिजनक बयान देने के लिए प्र.सू.रि. दर्ज की गई थीं और वास्तव में उन्होंने कहा कि उनके विरुद्ध 24 मामले लंबित थे और 24 मामलों में से, पुलिस ने 21 मामलों में अपने आरोप पत्र प्रस्तुत किए थे और दो मामलों में अंतिम रिपोर्ट और एक मामले में संभवतः, उन्होंने प्रस्तुत किया, अन्वेषण अभी भी चल रहा था। विद्वान अपर महाधिवक्ता ने इसलिए, प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता, इस तथ्य के बाद भी कि वह एक प्रसिद्ध तथ्य परीक्षक थे, उन्हें इस तथ्य का पता नहीं था कि यती नरसिंहानंद के विरुद्ध भी प्र.सू.रि. दर्ज की गई थीं।

30. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने **रामजी लाल मोदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, AIR 1957 SC 620** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए, प्रस्तुत किया कि हालांकि याचिकाकर्ता को भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार था लेकिन उन्हें इसे राज्य द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों तक सीमित रखना था और उन्होंने प्रस्तुत किया कि प्रतिबंध ऐसे थे, जो यदि याचिकाकर्ता द्वारा ठीक से पालन किए जाते, तो वह निश्चित रूप से वे ट्वीट नहीं करते, जो उन्होंने किए थे। इसके अतिरिक्त, राज्य के लिए विद्वान अधिवक्ता ने **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम ललई सिंह यादव, (1976) 4 SCC 213** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया और प्रस्तुत किया कि भाषण की स्वतंत्रता कुछ ऐसी है जिसका प्रयोग भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(2) द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों को ध्यान में रखते हुए किया जाना था। इसी तरह, उन्होंने प्रस्तुत किया कि **अनुराधा भसीन बनाम भारत संघ व अन्य, (2020) 3 SCC 637** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसी प्रकार का विचार लिया गया था। अपनी बात को सिद्ध करने के लिए, उन्होंने विशेष रूप से निर्णय के प्रस्तर 37, 38, 50, 139 और 140 पर भरोसा किया और उन्हें यहां निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"37. अनुच्छेद 19(1) के अधीन प्रदान किए गए अधिकार में कुछ अपवाद हैं, जो राज्य को उचित मामलों में उचित प्रतिबंध लगाने का अधिकार देते हैं। संविधान के अनुच्छेद 19(2) के अवयव निम्न है:

ए. कार्रवाई विधि द्वारा स्वीकृत होनी चाहिए;

बी. प्रस्तावित कार्रवाई एक उचित प्रतिबंध होना चाहिए;

सी. ऐसा प्रतिबंध भारत की संप्रभुता और अखंडता के हितों में, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, सार्वजनिक व्यवस्था, शिष्टाचार या नैतिकता या न्यायालय की अवमानना, मानहानि या अपराध के लिए उकसावे के संबंध में होना चाहिए।

38. सबसे पहले, प्रतिबंध का लगाया जाना 'उचित' शब्द द्वारा योग्य है और संप्रभुता, अखंडता, सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, सार्वजनिक व्यवस्था, शिष्टाचार या नैतिकता या न्यायालय की अवमानना, मानहानि या अपराध के लिए उकसावे जैसी स्थितियों तक सीमित है। प्रतिबंध की उचितता का उपयोग गुणात्मक, मात्रात्मक और सापेक्ष अर्थ में किया जाता है।

50. वियतनाम युद्ध के दौरान, अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय को ब्रांडेनबर्ग बनाम ओहियो, 395 US 444 (1969) के प्रकरण पर विचार करना पड़ा, जिसमें न्यायालय ने डेनिस (उपरोक्त) को खारिज कर दिया और निर्णीत किया कि राज्य गैरविधिक आचरण की वकालत को दंडित नहीं कर सकता है, जब तक कि इसका उद्देश्य उकसाना न हो और 'आसन्न अवैध कार्रवाई' को उकसाने की संभावना न हो।

139. हालांकि, प्रतिवादियों ने प्रस्तुत किया कि यह न्यायालय अपील में नहीं बैठ सकता है या कार्यपालिका द्वारा पारित आदेशों की समीक्षा नहीं कर सकता है, विशेष रूप से वे जो विधि और व्यवस्था की स्थिति से संबंधित हैं, विधि और व्यवस्था के मुद्दों के संबंध में न्यायिक समीक्षा का दायरा इस न्यायालय द्वारा तय किया गया है। कर्नाटक राज्य बनाम डॉ. प्रवीण भाई थोगाडिया, (2004) 4 SCC 684 में, इस न्यायालय ने विशेष रूप से धारा 144, दं.प्र.सं. के संदर्भ में निम्नानुसार टिप्पणी की:

"6. न्यायालयों को आम तौर पर विधि और व्यवस्था से संबंधित मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, जो मुख्य रूप से संबंधित प्रशासनिक अधिकारियों का क्षेत्र है। वे अपने विशेष ज्ञान के भीतर विशिष्ट प्रयोजनों और आवश्यकताओं के आधार पर स्थिति का आकलन करने और संभालने के लिए सबसे अच्छे हैं। ..... *इसलिए, जब भी विधि और व्यवस्था के प्रभारी संबंधित अधिकारी यह पाते हैं कि किसी व्यक्ति के भाषण या कार्य सांप्रदायिक विरोध और घृणा को ट्रिगर करने की संभावना रखते हैं, जिसके परिणामस्वरूप विखंडनकारी प्रवृतियां पैर जमा रही हैं, जो सांप्रदायिक सद्भाव को कमबल और प्रभावित कर रही हैं, तो ऐसी अनहोनी घटनाओं को प्रभावी ढंग से टालने के लिए निषेधात्मक आदेश अनिवार्य रूप से पारित किए जाने की आवश्यकता है*।

7... यदि उन्हें लगता है कि बैठक या सभा में किसी भी व्यक्ति की उपस्थिति या भागीदारी कुछ स्पष्ट या गुप्त कारणों के साथ-साथ अन्य स्थानों पर ऐसे प्रतिभागियों से जुड़ी ऐसी घटनाओं के पिछले ट्रैक अभिलेख के लिए आपत्तिजनक होगी, तो आवश्यक निषेधात्मक आदेश पारित किए जा सकते हैं। ऐसे मामलों में आवश्यक त्वरित निर्णय और तेज़ और प्रभावी कार्रवाई उचित या अनुमति नहीं दे सकती है कि अधिकारी पूर्व अवसर या पक्ष और विपक्ष पर विचार करें। तुरंत हस्तक्षेप करने की आसन्न आवश्यकता, संवेदनशीलता और विनाशकारी रूप से खतरनाक परिणामों को देखते हुए यदि तुरंत रोका नहीं गया तो यह परिणाम हो सकता है, इसे नजरंदाज नहीं किया जा सकता है। *अभिव्यक्ति और भाषण की स्वतंत्रता के मूल्यवान और पोषित अधिकार को कभी-कभी लोकतांत्रिक जीवन के मूल को संरक्षित करने के लिए सामाजिक हितों, प्रयोजनों और आवश्यकताओं के लिए उचित अधीनता के अधीन होना पड़ सकता है - सार्वजनिक व्यवस्था और विधि के शासन का संरक्षण।* ऐसी किसी गंभीर स्थिति में कम से कम निषेधात्मक कार्रवाई करने की आवश्यकता और प्रयोजन के बारे में निर्णय उन लोगों के विवेक पर छोड़ दिया जाना चाहिए, जिन्हें विधि और व्यवस्था बनाए रखने का कर्तव्य सौंपा गया है, और न्यायालयों का हस्तक्षेप जब तक कि संबंधित अधिकारी द्वारा बाहरी विचारों के लिए ऐसी व्यापक शक्तियों के दुरुपयोग या प्रयोग का कोई ठोस मामला न हो या यह दिखाया गया हो कि ऐसा अधिकारी सत्ता में बैठे लोगों के आदेश पर काम कर रहा था, और हस्तक्षेप एक अपील का निर्णय करने के रूप में निश्चित रूप से और मामले के रूप में, विधि और विधायी आशय के उद्देश्य को ही विफल कर देगा..." (महत्व प्रदत्त)

140. यह सत्य है कि हम अपील में नहीं बैठते हैं, हालांकि, न्यायिक समीक्षा की शक्ति के अस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता है। हम इस राय के हैं कि मजिस्ट्रेट और राज्य के लिए सार्वजनिक शांति और विधि और व्यवस्था के लिए संभावित खतरे के बारे में एक सूचित निर्णय लेना है। सार्वजनिक शांति और शांति या विधि और व्यवस्था के खतरे का आकलन करने के लिए राज्य सबसे अच्छी स्थिति में है। हालांकि, विधि उन्हें इस शक्ति का आह्वान करने के लिए गंभीर तथ्यों को बताना आवश्यक करता है। यह न्यायिक अन्वेषण और इस बात का सत्यापन संभव करेगा कि क्या इस शक्ति के आह्वान को उचित ठहराने के लिए पर्याप्त तथ्य हैं।"

31. इसके अतिरिक्त, **कौशल किशोर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, (2023) 4 SCC 1** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए प्रस्तुत किया कि निर्णय के प्रस्तर 251 में यह टिप्पणी की गई थी कि भारत के प्रत्येक नागरिक को भाषण में सचेत रूप से संयमित होना चाहिए और अनुच्छेद 19(1)(ए) के अधीन भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का प्रयोग केवल उसी अर्थ में करना चाहिए, जिसमें इसे संविधान के निर्माताओं द्वारा सोचा गया था। चूंकि, विद्वान अपर महाधिवक्ता ने निर्णय के प्रस्तर 251, 252 और 253 पर बहुत अधिक भरोसा किया, वह यहां निम्नानुसार प्रस्तुत किए जा रहे हैं:-

"251. भारत के प्रत्येक नागरिक को भाषण में सचेत रूप से संयमित होना चाहिए, और अनुच्छेद 19(1)(ए) के अधीन भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का प्रयोग केवल उसी अर्थ में करना चाहिए, जैसा संविधान के निर्माताओं द्वारा इसका प्रयोग किया जाना था। यह अनुच्छेद 19(1)(ए) की वास्तविक अवयव है, जो नागरिकों को ऐसे बयान देने की बेलगाम स्वतंत्रता नहीं देती है, जो विषैले, अपमानजनक, अनुचित हों,

जिनका कोई उद्धारकर्ता उद्देश्य न हो और जो किसी भी तरह से विचारों का संचार न हों। अनुच्छेद 19(1)(ए) एक बहुमुखी अधिकार प्रदान करता है, जो राज्य द्वारा हस्तक्षेप से भाषण और अभिव्यक्ति की कई प्रजातियों की रक्षा करता है। हालांकि, इसमे कोई पहेली नहीं है कि मानवाधिकार आधारित लोकतंत्र में भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार, एक नागरिक द्वारा दिए गए बयानों की रक्षा नहीं करता है, जो एक साथी नागरिक की गरिमा पर हमला करते हैं। बंधुत्व और समानता जो हमारी संवैधानिक संस्कृति के आधार पर हैं और जिस पर अधिकारों की महान संरचना बनाई गई है, ऐसे अधिकारों को इस तरह से नियोजित करने की अनुमति नहीं देते हैं कि दूसरे के अधिकारों पर हमला किया जाए।

252. श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 17 की कविता 15 वर्णन करती है कि भाषण का अनुशासन या "वाङ्मय तपस" क्या है:

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।

शब्द जो संकट का कारण नहीं बनते हैं, सच्चे हैं, आक्रामक नहीं हैं, सुखद और लाभकारी हैं, भाषण के अनुशासन में शामिल कहे जाते हैं, और वैदिक शास्त्रों के नियमित पाठ के समान हैं।

253. ऊपर प्रस्तुत की गई चर्चा संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) के अवयव पर और उपरोक्त अनुच्छेद के अधीन गारंटीकृत मुक्त भाषण के अधिकार से संबंधित अन्य प्रासंगिक मुद्दों पर कुछ विचारों को फिर से जगाने के दृष्टिकोण से थी। हालांकि, जहां तक प्रश्न 1 के पर्याप्त विश्लेषण का संबंध है, मैं सम्मानपूर्वक माननीय न्यायमूर्ति रामसुब्रमण्यम द्वारा प्रस्तावित तर्क और निष्कर्षों से सहमत हूं।"

32. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने इसके बाद प्रस्तुत किया कि निश्चित रूप से संविधान के अनुच्छेद 19(2) के अनुसार देश की संप्रभुता और अखंडता की रक्षा के लिए संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार के प्रयोग पर एक उचित प्रतिबंध है। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि जो उचित प्रतिबंध याचिकाकर्ता को प्रयोग करना चाहिए था वह ऐसा प्रयोग नहीं किया गया और, इसलिए, रिट याचिका निरस्त की जाए।

33. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने इसलिए प्रस्तुत किया कि यदि प्रथम सूचना रिपोर्ट का अवलोकन किया जाए, तो निश्चित रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि याचिकाकर्ता का आशय/आपराधिक मंशा थी और इसलिए अन्वेषण आवश्यक था। साथ ही, उन्होंने प्रस्तुत किया कि क्या याचिकाकर्ता प्रभावशाली व्यक्ति था और अपने ट्वीट्स द्वारा एक बड़े समुदाय को प्रभावित कर सकता था, इसका निर्णय इस न्यायालय द्वारा नहीं किया जाना था और इसे अन्वेषण एजेंसियों द्वारा देखा जाना था। अन्वेषण एजेंसियां सभी ट्वीट्स/री-ट्वीट्स को देखने के बाद और यह कि ट्वीट्स ने सामान्य रूप से जनसंख्या को कैसे प्रभावित किया था, इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगी कि क्या याचिकाकर्ता प्रभावी रूप से देश की संप्रभुता, अखंडता और एकता को खतरे में

डाल सकता है। साथ ही, उन्होंने प्रस्तुत किया कि जिन लोगों के बीच याचिकाकर्ता द्वारा अलगाव या सशस्त्र विद्रोह को उत्तेजित करने के लिए अपने विचारों को फैलाने का प्रयास किया गया था, उनकी क्षमता प्रभावी होगी या नहीं, यह केवल पूर्ण रूप से अन्वेषण के बाद ही जाना जा सकता था और इसलिए उन्होंने प्रस्तुत किया कि रिट याचिका पर विचार नहीं की जाए। उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता चाहे कितना भी खुद को कुछ भी नहीं कहे, वह निश्चित रूप से पत्रकारिता की दुनिया में कोई था और उसके लेखों और ट्वीट्स या कथनों से जो कुछ भी निकला, उसने न केवल देश के एक वर्ग के लोगों को प्रभावित किया बल्कि उन सभी को प्रभावित किया, जो उसके लेख, ट्वीट्स या कथनों के संपर्क में आए।

34. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने आगे भीड़ भरे थिएटर में आग की अमेरिकी सिद्धांत परीक्षा पर भरोसा किया और **63 L.Ed. 470 : चार्ल्स टी. शेंक बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका** पर भरोसा किया और प्रस्तुत किया कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की कोई भी सुरक्षा एक व्यक्ति को थिएटर में झूठा चिल्लाने से नहीं बचाएगी, जब थिएटर में कोई आग नहीं थी और वह इस प्रकार घबराहट पैदा कर रहा था। इस संदर्भ में उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि अनजाने में या लापरवाही से या किसी विशेष वर्ग की धार्मिक भावनाओं को आहत करने के किसी जानबूझकर या दुर्भावनापूर्ण आशय के बिना धर्म के प्रति अपमान, किसी भी परिस्थिति में उन बयानों के निर्माता को संरक्षित नहीं करेगा।

35. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने आगे **63 L. Ed. 1173 (जैकब एब्राम्स बनाम संयुक्त राज्य)** पर भरोसा किया और प्रस्तुत किया कि जब कोई देश उथल-पुथल की स्थिति से गुजर रहा हो तो किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति द्वारा दिया गया कोई भी बयान असंतोष, राजद्रोह, दंगे और परिणामस्वरूप, एक क्रांति का कारण बनता है। वे प्रस्तुत करते हैं कि तब उस बयान को अपराध माना जाएगा और उस बयान देने वाले को निश्चित रूप से धारा 152 भा.न्या.सं. के प्रावधानों द्वारा दंडित किया जाना चाहिए। इस संबंध में, विद्वान अपर महाधिवक्ता ने **23 L. Ed. 2d 430 (क्लेरेंस ब्रांडेनबर्ग बनाम ओहियो राज्य)** पर भी भरोसा किया। उन्होंने **तहसीन एस. पूनावाला बनाम भारत संघ व अन्य, (2018) 9 SCC 501** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा किया और प्रस्तुत किया कि भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सहित सभी विधिक सिद्धांतों का प्रयोग संयम के साथ किया जाना चाहिए और देश की संप्रभुता, एकता और अखंडता और राज्य की सुरक्षा आदि के हित की रक्षा की जानी चाहिए।

36. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने **अनुराधा भसीन बनाम भारत संघ व अन्य, (2020) 3 SCC 637** के निर्णय पर भी भरोसा किया और प्रस्तुत किया कि यह देखना था कि क्या स्वतंत्रता और भाषण का अधिकार सार्वजनिक शांति, प्रशांति, विधि और व्यवस्था के लिए खतरा था। इसे केवल राज्य द्वारा देखा जा सकता था और ऐसी परिस्थिति में न्यायालय को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अभियुक्त-याचिकाकर्ता लगातार ट्वीट कर रहा था और इसलिए जिन ट्वीट्स के लिए वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, उन्हें राज्य/अन्वेषण एजेंसी द्वारा देखा जाएगा और इस न्यायालय द्वारा कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। विद्वान अपर महाधिवक्ता ने आगे **अमीश देवगन बनाम भारत संघ व अन्य, (2021) 1 SCC**

1 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया और प्रस्तुत किया कि घृणास्पद भाषणों को सहन नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि वे कभी-कभी बिना किसी कारण के अनुपात से बाहर हो सकते हैं। इस कारण से, विद्वान अधिवक्ता ने निर्णय के प्रस्तर 98 और 108 पर भरोसा किया, जो यहां पुनः प्रस्तुत किए जा रहे हैं:-

"98. धारा 153A(1)(बी) के संदर्भ में हम मानेंगे कि सार्वजनिक शांति, तीन साल तक की कैद के रूप में सजा के रूप में परिणाम की प्रकृति को देखते हुए, सीमित अर्थ में सार्वजनिक व्यवस्था और सुरक्षा के समानार्थी के रूप में पढ़ी जानी चाहिए न कि सामान्य विधि और व्यवस्था के मुद्दे, जो बड़े पैमाने पर सार्वजनिक हित को खतरे में नहीं डालते हैं। इसे व्यापक अर्थ नहीं दिया जा सकता है जिससे यह उचितता की आवश्यकता का उल्लंघन करे जो एक संवैधानिक जनादेश है। धारा 153-A(1) के खंड (b) को, इसलिए, संवैधानिक जनादेश को संतुष्ट करने के लिए तदनुसार पढ़ा जाना चाहिए। हम खंड (b) में "सार्वजनिक शांति" शब्दों की व्याख्या *ordre publique* एक फ्रांसीसी शब्द के रूप में करेंगे जिसका अर्थ है विद्रोह, दंगा, उथल-पुथल या हिंसा के अपराधों की अनुपस्थिति और इसमें वे सभी कार्य भी शामिल होंगे जो राज्य की सुरक्षा को खतरे में डालेंगे, लेकिन वे कार्य नहीं जो केवल शांति को भंग करते हैं, और विधि और व्यवस्था के तीसरे और व्यापक वृत्त द्वारा कवर किए जाते हैं। सार्वजनिक व्यवस्था में स्थानीय महत्व के कार्य भी शामिल हैं जो सार्वजनिक व्यवस्था को नष्ट करने या धमकाने वाले विभिन्न प्रकार के आचरण को शामिल करते हैं। अनुच्छेद 19 के खंड (2) में सार्वजनिक व्यवस्था या वैधानिक प्रावधान विशेष क्षेत्र की जनसंख्या के संदर्भ में बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समूहों के बीच कोई अंतर नहीं करते हैं, हालांकि जैसा कि हमने ऊपर नोट किया है यह कुछ प्रासंगिकता का हो सकता है। जब हम स्थानीय महत्व के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं, तो एक अनुक्रम के रूप में हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समूहों का, एक दिए गए मामले में, स्थानीय क्षेत्र का संदर्भ हो सकता है।

108. प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या करने के बाद, हम इस तथ्य से सचेत हैं कि हमने "सार्वजनिक व्यवस्था के हित" के सिद्धांत को प्राथमिकता दी है और "आसन्न अवैध कार्रवाई" सिद्धांत पर भरोसा करके, लक्षित और गैर-लक्षित दोनों समूहों पर प्रचार के रूप में "घृणा" भाषण के दीर्घकालिक प्रभाव को उचित महत्व नहीं दिया है। यह गरिमा की अवधारणा को कमबल करने के लिए नहीं है, जो मौलिक आधार है जिस पर नागरिकों को अपने बीच और राज्य के साथ बातचीत करनी चाहिए। यह संविधान पीठ के निर्णयों सहित पिछले उच्चारणों का विचारित दृष्टिकोण है जिससे हम बंधे हैं। इसके अतिरिक्त, "घृणा भाषण" जो "स्पष्ट और वर्तमान खतरे" या "आसन्न अवैध कार्रवाई" के मानदंडों को पूरा करता है, उसका आवश्यक रूप से दीर्घकालिक नकारात्मक प्रभाव होगा। अंत में, हम दंडात्मक या आपराधिक कार्रवाई से निपट रहे हैं और इसलिए व्यक्त करने और बोलने के अधिकार को प्रतिशोधात्मक आपराधिक कार्यवाही के साथ संतुलित करना है। हमें दुरुपयोग को रोकना और दुरुपयोग की अन्वेषण करनी है। यह सिद्धांत किसी भी तरह से इस स्थिति को कमबल नहीं करता है कि हमें नस्ल, धर्म, जाति, पंथ या क्षेत्रीय आधार पर भेदभाव के प्रसार के किसी भी प्रयास की निंदा और अन्वेषण करनी चाहिए। हमें घृणास्पद और अनुचित व्यवहार को प्रतिबंधित करके सामाजिक सद्भाव और सहिष्णुता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से कार्य करना चाहिए। यह आत्म-संयम, संस्थागत अन्वेषण और सुधार, साथ ही आत्म-

नियमन या वैधानिक नियमों के तंत्र के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है, यदि लागू हो। यह केवल दंडात्मक धमकी नहीं है जो हमें समूहों के बीच समानता प्राप्त करने और सुनिश्चित करने में मदद कर सकती है। सभी जातियों, पंथों, धर्मों और क्षेत्रों के नागरिकों की गरिमा की रक्षा गैर-लक्षित समूहों और यहां तक कि लक्षित समूहों से संबंधित साथी नागरिकों द्वारा सबसे अच्छी तरह से की जाती है। जैसा कि पहले कहा गया है, बहुलवाद के लिए प्रतिबद्ध एक राजनीति में, घृणा भाषण लोकतंत्र में किसी भी वैध तरीके से योगदान नहीं कर सकता है और वास्तव में, समानता के अधिकार को अस्वीकार करता है।"

37. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जब संपूर्ण प्रथम सूचना रिपोर्ट को समग्रता में देखा जाता है तो निश्चित रूप से याचिकाकर्ता के विरुद्ध धारा 196, 228, 299, 356(3), 351(2) और 152 भा.न्या.सं. के अधीन एक मामला बनता है, जिसके संबंध में अन्वेषण अनिवार्य था और करना था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि सर्वोच्च न्यायालय के **दिनेशभाई चंदूभाई पटेल बनाम गुजरात राज्य व अन्य : (2018) 3 SCC 104; रफीक अहमदभाई पालीवाला बनाम गुजरात राज्य व अन्य : (2019) 5 SCC 464** और **सोमजीत मल्लिक बनाम झारखंड राज्य व अन्य : (2024) 10 SCC 527** के निर्णयों के अनुसार प्रथम सूचना रिपोर्ट को आंशिक रूप से रद्द नहीं किया जा सकता था। यदि कुछ धाराओं के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट का अन्वेषण किया जा रहा था तो अन्य धाराओं के संबंध में भी अन्वेषण होना था। अन्वेषण समग्र रूप से किया जाना था।

38. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के **दिनेशभाई चंदूभाई पटेल (उपरोक्त)** के निर्णय के प्रस्तर 25 से 35 पर बहुत बल दिया और, इसलिए, वे यहां निम्नानुसार प्रस्तुत किए जा रहे हैं:-

"25. जब प्र.सू.रि. के पंजीकरण को चुनौती दी जाती है और संविधान के अनुच्छेद 226 या संहिता की धारा 482 के अधीन आरोपी द्वारा इसे रद्द करने की मांग की जाती है और उच्च न्यायालय की शक्तियां क्या हैं और उच्च न्यायालय को ऐसे प्रश्न से कैसे निपटना चाहिए, इस सवाल पर विधि काफी अच्छी तरह से स्थापित है।

26. इस न्यायालय को *पश्चिम बंगाल राज्य बनाम स्वपन कुमार गुहा [पश्चिम बंगाल राज्य बनाम स्वपन कुमार गुहा,* (1982) 1 SCC 561 : 1982 SCC (Cri) 283 : AIR 1982 SC 949] में इस मुद्दे से निपटने का अवसर मिला। वाई.वी. चंद्रचूड़, विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति ने तीन-न्यायमूर्तियों की पीठ के लिए बोलते हुए निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किया: (SCC पृष्ठ 576-77 और 598, प्रस्तर 21 और 66)

"21. ... संहिता की धारा 157 के अधीन अन्वेषण शुरू करने की पूर्व शर्त यह है कि प्र.सू.रि. को प्रथम दृष्टया यह प्रकट करना चाहिए कि एक संज्ञेय अपराध किया गया है। यह सोचना गलत है कि पुलिस के पास संहिता की धारा 157 के अधीन अन्वेषण शुरू करने का असीमित विवेकाधिकार है। उनका अन्वेषण का अधिकार संज्ञेय अपराध के घटित होने का संदेह करने के कारण की मौजूदगी पर आधारित है और वे, उचित रूप से, तब तक

संदेह नहीं कर सकते जब तक कि प्र.सू.रि., प्रथम दृष्टया, ऐसे अपराध के घटित होने का खुलासा न करे। यदि वह शर्त पूरी हो जाती है, तो अन्वेषण जारी रहना चाहिए। ... तब न्यायालय के पास अन्वेषण को रोकने की कोई शक्ति नहीं है, क्योंकि ऐसा करना संज्ञेय अपराधों की अन्वेषण करने के लिए पुलिस की वैध शक्ति का उल्लंघन करना होगा।

66. क्या कोई अपराध दर्शाया गया है या नहीं यह आवश्यक रूप से प्रत्येक विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करना चाहिए। ... यदि प्रासंगिक सामग्रियों पर विचार करने पर, न्यायालय संतुष्ट है कि एक अपराध दर्शाया गया है, तो न्यायालय आम तौर पर अपराध के अन्वेषण में हस्तक्षेप नहीं करेगा और आम तौर पर अपराध को साबित करने के लिए सामग्री एकत्र करने के लिए अपराध के अन्वेषण को पूरा होने देगा।"

27. उपरोक्त विधि के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, जिसका इस न्यायालय द्वारा बाद के वर्षों में लगातार पालन किया गया और आक्षेपित निर्णय को देखने पर, हम यह टिप्पणी करने के लिए बाध्य हैं कि उच्च न्यायालय ने बिना किसी उचित कारण के उपरोक्त प्रश्न की विवेचना करने के लिए 89 पृष्ठों का निर्णय (पेपर बुक देखें) दिया और फिर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि विवादित प्र.सू.रि. का कुछ हिस्सा विधि में दूषित है क्योंकि यह किसी भी आरोपी व्यक्ति के विरुद्ध किसी संज्ञेय अपराध नहीं दर्शाता है जबकि प्र.सू.रि. का केवल एक हिस्सा ही ठीक है, जो आरोपी व्यक्तियों के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला दर्शाता है और इसलिए इसे विधि के अनुसार उस सीमा तक आगे के अन्वेषण की आवश्यकता है।

28. ऐसा करने में, उच्च न्यायालय ने, हमारे विचार में, वस्तुतः मामले से उत्पन्न सभी मुद्दों का निर्णय किया जैसे कि एक अन्वेषण अधिकारी या/और अपीलीय अधिकारी निर्णय करता है, थोड़ा यह महसूस करते हुए कि वह इस स्तर पर संहिता की धारा 482 के अधीन अपने अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहा था।

29. उच्च न्यायालय, हमारे विचार में, अपने क्षेत्राधिकार की सीमा को देखने में विफल रहा, जो उसके पास आरोपी व्यक्तियों द्वारा कई संज्ञेय अपराधों के घटित होने की परिवाद करने वाली किसी भी प्र.सू.रि. की वैधता का परीक्षण करते समय प्रयोग करने के लिए है। यह परीक्षण करने के लिए कि क्या प्र.सू.रि. की तथ्यात्मक सामग्री किसी प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध का खुलासा करती है या नहीं, उच्च न्यायालय एक अन्वेषण एजेंसी की तरह कार्य नहीं कर सकता है और न ही अपीलीय न्यायालय की तरह शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। प्रश्न, हमारी राय में, प्र.सू.रि. की सामग्री और प्रथम दृष्टया सामग्री, यदि कोई हो, जिसे किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, को ध्यान में रखते हुए परीक्षण की आवश्यकता थी।

30. इस स्तर पर, उच्च न्यायालय साक्ष्य की विवेचना नहीं कर सकता था और न ही प्र.सू.रि. की सामग्री और भरोसा की गई सामग्री से अपने स्वयं के निष्कर्ष निकाल सकता था। वह भी, जब भरोसा की गई सामग्री परिवादकर्ताओं द्वारा विवादित थी और इसके विपरीत। ऐसी स्थिति में, ऐसे स्तर पर अन्वेषण अधिकारी का

काम अन्वेषण करना और फिर न्यायालय का काम प्रश्नों का परीक्षण करना हो जाता है, जब आरोप पत्र ऐसी सामग्री के साथ दाखिल किया जाता है कि ऐसी सामग्री पर कितना और किस हद तक भरोसा किया जा सकता है।

31. हमारी विचारित राय में, एक बार जब न्यायालय यह पाता है कि प्र.सू.रि. प्रथम दृष्टया किसी संज्ञेय अपराध के घटित होने का खुलासा करती है, तो उसे अपना हाथ रोकना चाहिए और अन्वेषण मशीनरी को संहिता में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार अपराध को उजागर करने के लिए अन्वेषण शुरू करने की अनुमति देनी चाहिए।

32. यह तथ्य कि इस मामले में उच्च न्यायालय मामले के हर पहलू के संबंध में सूक्ष्मतम विवरण में गया और प्र.सू.रि. को आंशिक रूप से रद्द करने के लिए 89 पृष्ठों का निर्णय समर्पित किया, हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचाता है कि उच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 482 के अधीन अपने अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय अपनी शक्तियों को पार कर लिया था। हम उच्च न्यायालय के ऐसे दृष्टिकोण से सहमत नहीं हो सकते।

33. उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियां, जो स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं हैं क्योंकि वे इसकी प्रकृति में अंतर्निहित हैं, को किसी भी सीमा तक नहीं बढ़ाया जा सकता है और न ही ऐसी शक्तियों को संहिता में परिभाषित उच्च न्यायालय की अपीलीय शक्तियों के समान किया जा सकता है। इस न्यायालय द्वारा अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते समय निर्धारित मापदंडों को हमेशा ध्यान में रखा जाना चाहिए अन्यथा यह मामले का निर्णय करते समय अधिकार क्षेत्रीय त्रुटि करने का कारण बनेगा। यह यहां ऐसा ही मामला है।

34. ऊपर उल्लिखित तीन परिवादों और प्र.सू.रि. के अवलोकन पर, हम विचारित राय के हैं कि परिवाद और प्र.सू.रि., आरोपी व्यक्तियों के विरुद्ध परिवादकर्ताओं द्वारा आरोपित विभिन्न संज्ञेय अपराधों के प्रथम दृष्टया घटित होने का खुलासा करते हैं और, इसलिए, उच्च न्यायालय को आरोपी व्यक्तियों द्वारा योजित आवेदन को आंशिक रूप से खारिज करने के बजाय पूरे आवेदन को खारिज करना चाहिए था जिससे विवादित पूरी प्र.सू.रि. को बरकरार रखा जा सके।

35. आरोपी व्यक्तियों के लिए विद्वान अधिवक्ता ने तर्कों के समाप्त होने के बाद संक्षिप्त नोट दाखिल किया और अपने तर्कों के समर्थन में *जेटकिंग इन्फोट्रेन लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [जेटकिंग इन्फोट्रेन लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*, (2015) 11 SCC 730 : (2015) 4 SCC (Cri) 542] और *हर्षेंद्र कुमार डी. बनाम रेबतिलता कोली [हर्षेंद्र कुमार डी. बनाम रेबतिलता कोली*, (2011) 3 SCC 351 : (2011) 1 SCC (Civ) 717 : (2011) 1 SCC (Cri) 1139] में इस न्यायालय के दो निर्णयों पर भरोसा किया। हमने दोनों निर्णयों को देखा है। हमारे विचार में, दोनों निर्णय तथ्यों पर भिन्न हैं, जबकि जिस निर्णय पर हमने भरोसा किया है, वह इस बिंदु पर अधिक सुसंगत है। इसका कारण यह है कि पहले स्थान पर, आरोपी व्यक्तियों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए दो निर्णय ऐसे मामले थे, जहां परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन न्यायालय में परिवाद योजित की गई थी व अन्य मामले में भा.दं.सं. की कुछ धाराओं के अधीन। यह

इस परिवाद को संहिता की धारा 482 के अधीन अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का आह्वान करके रद्द करने की मांग की गई थी। यह यहां मामला नहीं है। दूसरा, निर्णय इसलिए संबंधित मामलों में शामिल तथ्यों पर निर्भर था।

39. इसी तरह, विद्वान अपर महाधिवक्ता ने विशेष रूप से **रफ़ीक़ अहमदभाई पालीवाला (उपरोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर 8 से 13 पर भरोसा किया और इसलिए वह यहां निम्नानुसार प्रस्तुत किए जा रहे हैं:-

"**8. हमारे विचार में, उच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 482 के अधीन प्रतिवादी 2 से 17 द्वारा योजित याचिका पर विचार करने में गलती की और इसे आंशिक रूप से स्वीकार करने में और गलती की।**

9. यह विवाद में नहीं है कि परिवादकर्ता द्वारा दर्ज प्र.सू.रि. के आधार पर अन्वेषण अधिकारी (अन्वेषण अधिकारी) द्वारा कोई उचित अन्वेषण नहीं किया जा सका और इससे पहले कि इसे उसके तार्किक निष्कर्ष पर लाया जा सके, आक्षेपित आदेश *[यूसुफ फरीदमिया अजमेरवाला बनाम गुजरात राज्य,* 2017 SCC OnLine Guj 2471] ने हस्तक्षेप किया जिसके परिणामस्वरूप संज्ञेय अपराधों के संबंध में प्र.सू.रि. को ही रद्द कर दिया गया, जो उस एक शेष की तुलना में अधिक गंभीर प्रकृति के थे, जो विचारण के लिए बच गया।

10. उच्च न्यायालय, हमारे विचार में, ऐसे प्रारंभिक चरण में प्र.सू.रि. को रद्द करने के बजाय अन्वेषण अधिकारी को प्र.सू.रि. के आधार पर उचित अन्वेषण करने का निर्देश देना चाहिए था और फिर तदनुसार अन्वेषण में एकत्र की गई सामग्री के आधार पर उचित आरोप पत्र दाखिल करना चाहिए था। हालांकि, ऐसा नहीं किया गया। यह और भी क्योंकि, हम पाते हैं कि प्र.सू.रि. ने संबंधित अपराधों के घटित होने के प्रथम दृष्टया आरोपों का खुलासा किया था।

11. इसलिए, हम उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं कर सकते, जब यह अन्वेषण अधिकारी को इसके आरोपों में उचित अन्वेषण करने की अनुमति दिए बिना अधिक गंभीर अपराधों (धारा 392, 395 और 397 भा.दं.सं.) के संबंध में प्र.सू.रि. को आंशिक रूप से रद्द करने के लिए आगे बढ़ा।

12. उपरोक्त चर्चा के प्रकाश में, अपील सफल होती है और तदनुसार स्वीकार की जाती है। आक्षेपित आदेश [यूसुफ फरीदमिया अजमेरवाला बनाम गुजरात राज्य, 2017 SCC OnLine Guj 2471] को रद्द किया जाता है।

13. हालांकि, हमें सूचित किया गया है कि उच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों [यूसुफ फरीदमिया अजमेरवाला बनाम गुजरात राज्य, 2017 SCC OnLine Guj 2471] के अनुसरण में, छोटे अपराधों के संबंध में आरोप पत्र दाखिल किया गया है, जो प्र.सू.रि. को रद्द करने के बाद बच गए। जो भी हो, अन्वेषण अधिकारी अब दर्ज की गई मूल प्र.सू.रि. में किए गए आरोपों में पूर्ण और उचित अन्वेषण करेगा और अन्वेषण के निष्कर्ष के बाद किसी भी अन्य अपराध के संबंध में अतिरिक्त आरोप पत्र दाखिल करेगा, यदि बनता पाया जाता है।"

40. इसके अतिरिक्त, उन्होंने **सोमजीत मल्लिक (उपरोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर 15 से 22 पर भरोसा किया और वे यहां निम्नानुसार प्रस्तुत किए जा रहे हैं:-

"15. इससे पहले कि हम आक्षेपित आदेश की शुद्धता का परीक्षण करने के लिए आगे बढ़ें, हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि यह तय करने के चरण में कि क्या एक आपराधिक कार्यवाही या प्र.सू.रि., जैसा भी हो, को शुरुआत में रद्द किया जाना है या नहीं, प्र.सू.रि. या पुलिस रिपोर्ट या परिवाद में आरोपों को, अन्वेषण या पूछताछ के दौरान एकत्र की गई सामग्री सहित, जैसा भी हो, उनके अंकित मूल्य पर लिया जाना है, जिससे यह निर्धारित किया जा सके कि क्या आरोपी के विरुद्ध अन्वेषण या कार्यवाही के लिए प्रथम दृष्टया मामला बनता है, जैसा भी हो। इस स्तर पर आरोपों की शुद्धता का परीक्षण नहीं किया जाना है।

16. एक अपराध करने के लिए, जब तक कि दंड क़ानून अन्यथा प्रदान नहीं करता है, *mens rea* आवश्यक सामग्रियों में से एक है। *mens rea* का अस्तित्व एक तथ्य का प्रश्न है, जिसे विवादित कृत्य के साथ-साथ आसपास की परिस्थितियों और आरोपी के आचरण से अनुमान लगाया जा सकता है। एक परिणाम के रूप में, जब कोई पक्ष आरोप लगाता है कि आरोपी ने, किराए पर ट्रक का कब्जा लेने के बाद भी, महीनों तक किराए के शुल्क का भुगतान करने में विफल रहा है, जबकि इसके भुगतान के लिए झूठे वादे कर रहा है, एक प्रथम दृष्टया मामला, जो आरोपी की ओर से बेईमान आशय को दर्शाता है, बनाया जाता है जिसके लिए अन्वेषण की आवश्यकता हो सकती है। ऐसी परिस्थितियों में, यदि प्र.सू.रि. को शुरुआत में ही रद्द कर दिया जाता है, तो यह एक ऐसे कृत्य से कम कुछ नहीं होगा, जो एक वैध अन्वेषण को विफल करता है।

17. यह तय विधि है कि प्र.सू.रि. सभी आरोपों का विश्वकोश नहीं है। इसलिए, यह परीक्षण करने के लिए कि क्या प्र.सू.रि. एक संज्ञेय अपराध के घटित होने का खुलासा करती है, जिसे देखा जाना है वह आरोपों में कोई चूक नहीं है बल्कि उसमें निहित आरोपों का गुरुत्व है जिससे यह पता लगाया जा सके कि, प्रथम दृष्टया, कुछ संज्ञेय अपराध किया गया है या नहीं। इस स्तर पर, न्यायालय को यह पता लगाने की आवश्यकता नहीं है कि कौन सा विशिष्ट अपराध किया गया है।

18. यह केवल अन्वेषण के बाद, आरोप तैयार करने के समय, जब अन्वेषण के दौरान एकत्र की गई सामग्री न्यायालय के समक्ष होती है, तो न्यायालय को एक राय बनानी होती है कि किस अपराध के घटित होने के लिए आरोपी पर मुकदमा चलाया जाना चाहिए। इससे पहले, यदि संतुष्ट हो, तो न्यायालय आरोपी को दोषमुक्त भी कर सकता है। इस प्रकार, जब प्र.सू.रि. आरोपी की ओर से एक बेईमान आचरण का आरोप लगाती है जो, यदि सामग्री द्वारा समर्थित है, तो एक संज्ञेय अपराध के घटित होने का खुलासा करेगी, प्र.सू.रि. को रद्द करके अन्वेषण को विफल नहीं किया जाना चाहिए।

19. कोई संदेह नहीं, प्र.सू.रि. को रद्द करने के लिए एक याचिका धारा 173(2)दं.प्र.सं. के अधीन पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने पर निष्फल नहीं हो जाती है, लेकिन जब पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत की गई हो, विशेष रूप से जब

अन्वेषण पर कोई रोक न हो, तो न्यायालय को यह निर्णय लेने से पहले कि प्र.सू.रि. और परिणामी कार्यवाही को रद्द किया जाना चाहिए या नहीं, पुलिस रिपोर्ट के समर्थन में प्रस्तुत सामग्री पर अपना दिमाग लगाना चाहिए। और भी, जब प्र.सू.रि. एक ऐसे कृत्य का आरोप लगाती है जो आरोपी के एक बेईमान आचरण को दर्शाता है।

20. वर्तमान मामले में, प्र.सू.रि. दर्शाती है कि आरोपी ने 14-7-2014 से 31-3-2016 तक की अवधि के लिए मूल परिवादकर्ता के ट्रक/ट्रेलर को 33,000 रुपये के मासिक किराए पर लिया था लेकिन, पहले महीने के किराए के भुगतान के बाद, झूठे आश्वासन के बाद भी किराए का भुगतान नहीं किया गया। यह आरोप कि किराए का भुगतान नहीं किया गया था, सामान्य तौर पर, आरोपी द्वारा वाहन का कब्जा बनाए रखने को पूर्वानुमानित करेगा। ऐसी परिस्थितियों में उस ट्रक का क्या हुआ यह अन्वेषण का विषय बन जाता है। यदि इसे आरोपी द्वारा बेईमानी से निपटाया गया था, तो यह विश्वास के आपराधिक उल्लंघन का मामला बना सकता है। इसलिए, अन्वेषण के दौरान एकत्र की गई सामग्री को देखे बिना शुरुआत में प्र.सू.रि. को रद्द करने का कोई औचित्य नहीं था।

21. हमारे विचार में, उच्च न्यायालय को प्र.सू.रि., संज्ञान आदेश और उसके अनुसरण में कार्यवाही को रद्द करने के लिए प्रार्थना पर निर्णय लेने से पहले अन्वेषण के दौरान एकत्र की गई सामग्री पर विचार करना चाहिए था।

22. पुलिस रिपोर्ट को देखने और यह समझने के लिए कि पुलिस द्वारा किस प्रकार की अन्वेषण की गई थी, 19-7-2024 को हमने राज्य से आरोप पत्र को अभिलेख पर रखने की आवश्यकता की। हालांकि, दुर्भाग्य से, हालांकि राज्य ने अपना शपथपत्र दाखिल किया, आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया। राज्य द्वारा दाखिल शपथपत्र केवल इंगित करता है कि वे ट्रक/ट्रेलर का पता लगाने में सक्षम नहीं थे। इन परिस्थितियों में, हमारे पास कोई विकल्प नहीं है लेकिन मामले को उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित करना है, जिससे अन्वेषण एजेंसी द्वारा अन्वेषण के दौरान एकत्र की गई सामग्री पर विचार करने के बाद विधि के अनुसार रद्द करने की याचिका का फिर से निर्णय लिया जा सके।"

41. उन्होंने प्रस्तुत किया, **विनोद रघुवंशी बनाम अजय अरोड़ा व अन्य, (2013) 10 SCC 581** पर भरोसा करते हुए कि यदि आरोपों में कुछ सार है तो शुरुआत में अन्वेषण को बंद नहीं किया जाना चाहिए। इसी तरह, उन्होंने **सतविंदर कौर बनाम दिल्ली एनसीटी की राज्य सरकार, (1999) 8 SCC 728** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया और प्रस्तुत किया कि विधिक स्थिति अच्छी तरह से तय है कि यदि कोई अपराध प्रकट होता है, तो न्यायालय आम तौर पर मामले की अन्वेषण में हस्तक्षेप नहीं करेगा। राज्य के लिए विद्वान अधिवक्ता ने आगे **नीहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य, (2021) SCC OnLine SC 315** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया और प्रस्तुत किया कि वर्तमान प्रकरण में निश्चित रूप से एक अन्वेषण आवश्यक था, जिसे इस न्यायालय द्वारा रोका या प्रतिबंधित नहीं किया जाना चाहिए। उन्होंने प्रस्तुत किया कि जहां किया गया अपराध विभिन्न आरोपों की गहराई में दफन है और जो

केवल एक पूर्ण अन्वेषण के बाद सतह पर आएगा, तो उन मामलों में उच्च न्यायालय को एक धुंध को साफ करने के लिए अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करना चाहिए, जो अभ्यास केवल अन्वेषण एजेंसी द्वारा किया जा सकता है।

42. सूचनादाता के लिए विद्वान अधिवक्ता, श्री कपिल त्यागी और श्री अधित्य श्रीनिवासन, सूचनादाता के लिए विद्वान अधिवक्ता ने भी विद्वान अपर महाधिवक्ता के तर्कों को अपनाया और आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता एक व्यस्त व्यक्ति थे, जो हर समय सरकार के कामकाज के तरीके में गलतियां खोजने की कोशिश कर रहे थे और इस प्रकार सरकार के कामकाज को ही परेशान कर रहे थे और वास्तव में अलगाव और विद्रोह को उत्तेजित कर रहे थे और अलगाववादी गतिविधियों में भी लिप्त थे और, इसलिए, देश की संप्रभुता, एकता और अखंडता को खतरे में डाल रहे थे। वह विध्वंसक गतिविधियों को उत्तेजित करने का भी प्रयास कर रहे थे।

43. पक्षों के लिए विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, यह न्यायालय, किए गए ट्वीट्स को देखने के बाद, इस राय का है कि स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता यती नरसिंहानंद द्वारा दिए गए विभिन्न भाषणों से व्यथित थे। ट्वीट्स से ऐसा प्रतीत हुआ कि याचिकाकर्ता को इस तथ्य की जानकारी थी कि पुलिस यती नरसिंहानंद के विरुद्ध प्र.सू.रि. दर्ज कर रही थी। इसके अतिरिक्त, ट्वीट्स के अवलोकन से, हमें यह भावना मिलती है कि याचिकाकर्ता को आशंका थी कि यती नरसिंहानंद गिरि द्वारा किए गए अपराध पुलिस द्वारा रिपोर्ट किए गए अपराधों से कहीं अधिक गंभीर थे।

44. हालांकि, न्यायालय यह पाता है कि याचिकाकर्ता जो एक ऐसी एजेंसी के मालिक थे, जो "तथ्य अन्वेषण" में लगी हुई थी, निश्चित रूप से एक प्रभावशाली व्यक्ति थे और जो ट्वीट्स उन्होंने किए, यदि वे लोगों के एक निश्चित वर्ग द्वारा गलत समझे गए, तो यह निश्चित रूप से देश के काफी बड़ी संख्या में लोगों को प्रभावित कर सकता था। इसके अतिरिक्त, न्यायालय इस राय का है कि न्यायालय के पास निश्चित रूप से ऐसा कोई पैमाना नहीं है, जिससे वह यह पता लगा सके कि याचिकाकर्ता के उच्चारणों और ट्वीट्स का देश की आबादी पर कितना प्रभाव होगा।

45. भारत एक ऐसा देश है, जिसमें विभिन्न धर्मों, जनजातियों और जातियों की विविधता है और वे सभी एक साथ विलीन हो गए हैं और बहुत शांतिपूर्वक एक साथ रह रहे हैं। क्या याचिकाकर्ता द्वारा संयम का प्रयोग किया जा रहा था, यह कुछ ऐसा होगा, जिसे अन्वेषण एजेंसियों द्वारा देखना होगा।

46. न्यायालय यह पाता है कि "भीड़ भरे थिएटर में आग का परीक्षण" वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा। इसके अतिरिक्त, न्यायालय इस राय का है कि याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए बयान हालांकि स्पष्ट रूप से ऐसे थे कि वे किसी भी तरह से अभिव्यक्ति और भाषण की स्वतंत्रता का उल्लंघन नहीं कर रहे थे लेकिन राज्य के पास क्या इनपुट थे, यह कोई नहीं जानता है और क्या कोई अपराध स्थापित हो रहा था, केवल एक अन्वेषण ही प्रकट कर सकता है। यदि किसी व्यक्ति को लगा कि पुलिस कार्रवाई नहीं कर रही थी और प्रशासन द्वारा उठाए गए उपायों की अस्वीकृति व्यक्त कर रहा था तो निश्चित रूप से वह वही व्यक्त कर सकता था लेकिन

क्या वे अभिव्यक्तियां अलगाव या सशस्त्र विद्रोह को उत्तेजित कर रही थीं या अलगाववादी गतिविधियों की भावनाओं को प्रोत्साहित कर सकती थीं और परिणामस्वरूप देश की संप्रभुता या एकता को खतरे में डाल सकती थीं, इसे केवल अन्वेषण एजेंसियों द्वारा ही देखा और आंका जा सकता था। निश्चित रूप से भा.न्या.सं. की धारा 152 के प्रावधान किसी भी व्यक्ति की किसी भी प्रकार की राजद्रोह गतिविधि के विरुद्ध राज्य के लिए एक ढाल हैं। क्या इसका उपयोग राज्य के कामकाज के तरीके पर टिप्पणी करने वाले किसी की आवाज को दबाने के लिए किया जा रहा था, यह फिर से अन्वेषण का विषय होगा।

47. भले ही याचिकाकर्ता यती नरसिंहानंद गिरि के भाषण का छोटा संस्करण ट्वीट कर रहे थे, वह निश्चित रूप से उनके भाषण का सार व्यक्त करने की कोशिश कर रहे थे और उनके विरुद्ध राज्य की कार्रवाई चाहते थे। इस प्रक्रिया में क्या अलगाव या सशस्त्र विद्रोह पैदा किया जा सकता है, यह इस न्यायालय को निर्णीत नहीं करना है। अन्वेषण एजेंसियां आधुनिक तकनीकों के साथ इन दिनों लगाए गए आरोपों को देखने के लिए बेहतर ढंग से सुसज्जित होंगी।

48. इसके अतिरिक्त हम इस राय के हैं कि प्र.सू.रि. को पढ़ने से, यह नहीं कहा जा सकता है कि भा.न्या.सं., 2023 की धारा 196, 228, 299, 356(3), 351(2) के अधीन अपराध नहीं बनते हैं। इस प्रकार, यह परीक्षण व्यर्थ का प्रयास होगा कि **दिनेशभाई चंदूभाई पटेल (उपरोक्त), रफ़ीक़ अहमदभाई पालीवाला (उपरोक्त) और सोमजीत मल्लिक (उपरोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को देखते हुए भा.न्या.सं. की धारा 152 के अधीन कोई अपराध बना था भी या नहीं।

49. इस प्रकार, चूंकि वर्तमान मामले में हम पाते हैं कि वास्तव में अन्वेषण की आवश्यकता थी और प्रथम सूचना रिपोर्ट के सरल पठन ने निश्चित रूप से दिखाया कि काफी हद तक अपराध बनाए जा सकते थे, हम मामले में हस्तक्षेप करने से परहेज करते हैं और इसे अन्वेषण एजेंसी की सूझबूझ पर छोड़ते हैं कि वह उचित निष्कर्ष पर पहुंचे। निश्चित रूप से, सच्चाई अभी सामने आनी बाकी थी और वह केवल एक निष्पक्ष अन्वेषण के बाद ही होगा।

50. हम यह भी जानते हैं कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में किए गए आरोप अन्वेषण एजेंसी द्वारा झूठे पाए जा सकते हैं। इस मामले में अन्वेषण व्यक्तिपरक और वस्तुनिष्ठ दोनों तरह से की जानी है। बहुत सारे मनोवैज्ञानिक कोणों को देखना होगा। इतना ही नहीं, देश की समाजशास्त्रीय संरचना को भी देखना होगा। हम निश्चित रूप से इस राय के हैं कि एक झूठा आरोप भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन एक व्यक्ति को गारंटीकृत अधिकारों को प्रभावित कर सकता है। इस स्तर पर **आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 7463 वर्ष 2024 (शोभित नेहरा व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 2 अन्य)** में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांक 10.07.2024 का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा और इस पर भरोसा करते हुए, विशेष रूप से प्रस्तर संख्या 43 पर, हम इस राय के हैं कि भले ही अन्वेषण जारी रह सकता है, याचिकाकर्ता को मुकदमा अपराध संख्या 992 वर्ष 2024, धारा 196, 228, 299, 356(3), 351(2), 152 भारतीय न्याय संहिता, 2023 और धारा 66 सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000, पुलिस स्टेशन-कवि नगर, गाजियाबाद की प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक

07.10.2024 के अनुसरण में गिरफ्तार या किसी भी तरीके से परेशान नहीं किया जाएगा। निश्चित रूप से केवल एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करना, तत्काल गिरफ्तारी का कारण नहीं बनेगा।

51. हम इस तथ्य से भी अवगत हैं कि उच्च न्यायालय के पास भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन न्याय के किसी भी हनन को रोकने के लिए व्यापक शक्तियां हैं और इसलिए हम यह सुनिश्चित करने के लिए यह आदेश पारित कर रहे हैं कि यदि अन्वेषण के बाद याचिकाकर्ता निर्दोष पाया जाता है, तो उसके साथ कोई अन्याय न हो। धारा 152 भा.न्या.सं. के अधीन दर्शाये गए आरोप, प्रारंभ में ही, निश्चित रूप से यदि किसी लोकप्रिय व्यक्ति के विरुद्ध किए जाते हैं तो प्रथम सूचना रिपोर्ट के सरल पठन पर एक अपराध का गठन कर सकते हैं। हालांकि, ऐसे मामले भी होंगे जहां अन्वेषण के बाद यह पाया जा सकता है कि अपराध बिल्कुल भी नहीं बने थे और, इसलिए, **हेमा मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, (2014) 4 SCC 453** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए हम याचिकाकर्ता को सुरक्षा भी देते हैं। यहां, **शोभित नेहरा (उपरोक्त)** में इस न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर संख्या 43 को उद्धृत करना भी प्रासंगिक होगा और वह, इसलिए, यहां निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा रहा है:

"43. उपरोक्त प्रस्तर से यह स्पष्ट है कि उस मामले में, जहां तथ्य धुंधले हैं और अन्वेषण अभी शुरू हुआ है, उच्च न्यायालय को अन्वेषण को आगे बढ़ने की अनुमति देनी चाहिए। यदि उच्च न्यायालय आगे की अन्वेषण को रोकता है तो उसे कारण बताने चाहिए। हम अन्वेषण को नहीं रोक रहे हैं लेकिन अभिलेख पर मौजूद सामग्री से ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान मामले में याचिकाकर्ताओं का आरोप झूठा पाया जा सकता है, इसलिए, प्र.सू.रि. में उनके विरुद्ध किए गए आरोपों में वैधानिक अन्वेषण की अवधि के दौरान उनकी स्वतंत्रता के अधिकार की रक्षा करने की आवश्यकता है। इस मामले में अन्वेषण को रोका जा सकता है, लेकिन यह द्रुत अन्वेषण के रास्ते में आएगा, जो आपराधिक न्याय प्रशासन की आवश्यकता है, जैसा उच्चतम न्यायालय द्वारा उपरोक्त प्रस्तर में निर्धारित किया गया है। हम अन्वेषण की कार्यवाही में कोई देरी नहीं करना चाहते हैं, लेकिन ऊपर दिए गए कारणों के लिए याचिकाकर्ताओं को पुलिस द्वारा उनके विरुद्ध अन्वेषण पूरा होने तक गिरफ्तारी से बचाने का आशय रखते हैं।"

52. इस प्रकार हमने, हालांकि वर्तमान मामले में हस्तक्षेप करने से परहेज किया है, याचिकाकर्ता को यह प्रावधानित करके सुरक्षा देते हैं कि अन्वेषण समाप्त होने तक उन्हें गिरफ्तार नहीं किया जाएगा। यह इस शर्त के अधीन होगा कि याचिकाकर्ता अन्वेषण में सहयोग करेंगे।

53. उपरोक्त राहत देने का एक और कारण है। गिरफ्तारी पर रोक के संबंध में अंतरिम आदेश दिसंबर 2024 के महीने में दिया गया था और याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के अनुसार, स्वतंत्रता का कभी दुरुपयोग नहीं किया गया और याचिकाकर्ता ने हमेशा जांच में भाग लिया। इस तथ्य से राज्य ने भी इनकार नहीं किया है।

54. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, रिट याचिका तदनुसार निस्तारित की जाती है।

55. यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि जब तक अन्वेषण चल रहा है, याचिकाकर्ता देश नहीं छोड़ेंगे।

(2025) 5 ILRA 244

अपीलीय अधिकार क्षेत्र

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 30.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरिंदम सिन्हा

प्रथम अपील त्रुटिपूर्ण संख्या-530 वर्ष 2025

सविता देवी @ पिंकी गौतम @ शिवांगी शिशोदिया **...अपीलकर्ता**

बनाम

जितेंद्र गौतम **...प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
अरुण कुमार त्रिपाठी

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
आकाश चंद्र मौर्य

दीवानी कानून-हिंदू विवाह अधिनियम, 1955-धारा 5, 5(i), 11 एवं 24-पत्नी द्वारा योजित अपील-पारिवारिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध, जिसके द्वारा पारिवारिक न्यायालय ने वाद लंबित रहने तक भरण-पोषण के लिए उसके आवेदन को खारिज कर दिया-वैवाहिक विवाद-पति ने हि.वि.अधिनियम की धारा 5(i) के उल्लंघन का हवाला देते हुए विवाह को शून्य घोषित करने के लिए याचिका दायर की,-याचिका के लंबित रहने की अवधि में भरण-पोषण के लिए आवेदन-खारिज कर दिया गया-पिछले विवाह के संबंध में न्यायालय से तथ्य छिपाने के आधार पर-अपील-न्यायालय ने पाया कि-पति ₹65,000/माह कमाता है और एक व्यवसाय का मालिक है,-पत्नी के रोजगार या वित्तीय स्वतंत्रता को साबित करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई साक्ष्य नहीं है-न्यायालय ने माना कि, अवर न्यायालय को धारा 24 पर जोर देना चाहिए था और वित्तीय आवश्यकता पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए था, विवाह की वैधता पर नहीं-इसलिए, पति को निर्देश जारी किया गया कि वह पत्नी को वाद लंबित रहने तक भरण-पोषण के रूप में रु. 15,000/माह निर्धारित समय के भीतर बकाया के साथ भुगतान करे और पारिवारिक न्यायालय को वैवाहिक कार्यवाही में तेजी लानी चाहिए, अपीलकर्ता की ओर से कोई स्थगन नहीं होना चाहिए-अपील तदनुसार निपटाई गई। (प्रस्तर-6, 7, 8, 9)

अपील निस्तारित की गई। (ई-11)

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची</u>:

अनुवादित

सुखदेव सिंह बनाम सुखबीर कौर-AIR 2025 SC 951

(माननीय न्यायमूर्ति अरिंदम सिन्हा द्वारा उद्घोषित)

1. यह अपील, पत्नी द्वारा, दिनांक 3 मई, 2025 के पारिवारिक न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध योजित की गई है, जिसमें हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 24 के अधीन वाद लंबित रहने तक भरण-पोषण और कार्यवाही के खर्चों के लिए उसके आवेदन को खारिज कर दिया गया था। प्रतिवादी-पति ने पारिवारिक न्यायालय में विवाह को शून्य घोषित करने के लिए इस आधार पर याचिका दायर की थी कि यह धारा 5 में खंड (i) का उल्लंघन करता है। पति की याचिका लंबित रहने की अवधि में अपीलकर्ता ने भरण-पोषण के लिए आवेदन योजित किया था।

2. पारिवारिक न्यायालय ने पक्षों को सुनने और रिकॉर्ड पर अभिलेखों को देखने के बाद पाया कि अपीलकर्ता पिछले विवाह संबंध के छुपाने की दोषी है, जिससे संदेह पैदा हुआ, जिसके कारण धारा 24 के अधीन भरण-पोषण की राशि देना उचित नहीं था। विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि अपीलकर्ता का पिछला विवाह 15 अप्रैल, 2024 को समाप्त हुआ था।

3. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित श्री अरुण कुमार त्रिपाठी, विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया हैं कि अपीलकर्ता और पति के बीच लंबा जुड़ाव था। पति अपने मुवक्किल के बारे में सब कुछ जानने के बारे में अनभिज्ञता का दिखावा नहीं कर सकता। लंबे संबंध के बाद, विवाह 10 फरवरी, 2021 को झांसी में हिंदू रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों के अनुसार संपन्न हुआ। विवाह के बाद, उनकी मुवक्किला कानपुर नगर में प्रतिवादी के साथ रहने आई, जहां प्रतिवादी पुलिस में काम करता है, उनकी मुवक्किला के अनुसार, रु.65,000/- प्रति माह कमाता है। उसकी अपनी भवन निर्माण सामग्री आपूर्ति की दुकान भी है। इस प्रकार, रु.20,000/- प्रति माह भरण-पोषण की उनकी मुवक्किला को आवश्यकता है और वह पाने की अधिकारणी है।

4. प्रतिवादी की ओर से उपस्थित श्री आकाश चंद्र मौर्य, विद्वान अधिवक्ता ने अपील का विरोध किया हैं। वह **सुखदेव सिंह बनाम सुखबीर कौर, AIR 2025 SC 951** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय दिनांक 12 फरवरी, 2025 पर भरोसा करते हैं। वह प्रस्तुत करते हैं, निर्णय द्वारा विधि की उदघोषणा यह थी कि भरण-पोषण के लिए निर्देश न्यायालय के विवेकाधिकार में है और पक्ष का आचरण एक प्रासंगिक कारक है।

5. धारा 11 शून्य विवाहों का प्रावधान करती है। प्रतिवादी द्वारा शून्य विवाह का आग्रह करने के लिए लिया गया आधार, धारा 5 के अधीन खंड (i) का उल्लंघन है। वह खंड नीचे प्रस्तुत किया गया है।

"5. एक हिंदू विवाह के लिए शर्तें,-- किन्हीं दो हिंदुओं के बीच एक विवाह संपन्न हो सकता है, यदि निम्नलिखित शर्तें पूरी होती हैं, अर्थात्:--

(i) विवाह के समय किसी भी पक्ष का कोई जीवित पति या पत्नी नहीं है;"

6. इस प्रकार इसमें कोई विवाद नहीं है कि पक्षों के बीच विवाह 10 फरवरी, 2021 को संपन्न हुआ था। अपील का निर्णय करने के उद्देश्य से, हमारे लिए अपीलकर्ता के इस आरोप के संबंध में अन्य तथ्यों पर निष्कर्ष निकालना आवश्यक नहीं है कि उसका अपने प्रथम पति से पृथक्करण था और प्रतिवादी के साथ उसके जुड़ाव और विवाह से पहले अलगाव की पुष्टि करने वाला समझौता था। ऐसा इसलिए है क्योंकि धारा 24 एक पति या पत्नी को वाद लंबित रहने तक भरण-पोषण और कार्यवाही के खर्च प्राप्त करने का प्रावधान करती है। धारा नीचे प्रस्तुत की गई है।

"24. वाद लंबित रहने तक भरण-पोषण और कार्यवाही के खर्च.-

जहां इस अधिनियम के अधीन किसी भी कार्यवाही में न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि ***पत्नी*** *या पति, जैसा भी मामला हो, के पास उसके या* ***उसकी देख-भाल और कार्यवाही के आवश्यक खर्चों के लिए पर्याप्त स्वतंत्र आय नहीं है****, तो यह, पत्नी या पति के आवेदन पर, प्रतिवादी को याचिकाकर्ता को कार्यवाही के खर्चों का भुगतान करने का आदेश दे सकता है, और कार्यवाही के दौरान मासिक ऐसी राशि जो, याचिकाकर्ता की अपनी आय और प्रतिवादी की आय को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय को उचित लग सकती है: बशर्ते कि कार्यवाही के खर्चों के भुगतान और कार्यवाही के दौरान ऐसी मासिक राशि के लिए आवेदन, जहां तक संभव हो, पत्नी या पति पर, जैसा भी मामला हो, नोटिस की सेवा की तारीख से साठ दिनों के भीतर निपटाया जाएगा।"*

(महत्व प्रदत्त)

जो महत्वपूर्ण है, वह यह है कि न्यायालय यह पता लगाए कि क्या वाद लंबित रहने तक भरण-पोषण और खर्च की मांग करने वाले पक्ष को इसकी आवश्यकता है, जैसा कि वैवाहिक विवाद में दूसरे पक्ष द्वारा भुगतान किया जाना है, जिसका निर्णय लंबित है।

7. पारिवारिक न्यायालय, अपीलकर्ता द्वारा उसकी तत्कालीन, बताए गए, मौजूदा वैवाहिक स्थिति के साथ-साथ यह कि वह आयकर विभाग में काम करती थी, के छिपाव के बारे में आश्वस्त प्रतीत होता है। अपीलकर्ता के इस तर्क के विरुद्ध कोई निष्कर्ष प्रतीत नहीं होता है कि पक्ष एक साथ थे और शादी की। वास्तव में, विद्वान न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय में दर्ज किया है कि विवाह झांसी में हुआ और विवाह के बाद, अपीलकर्ता प्रतिवादी के साथ रहने के लिए कानपुर नगर चली गई। पूछताछ पर श्री त्रिपाठी ने प्रस्तुत किया, उनकी मुवक्किला वर्तमान में वाद शीर्षक में दिए गए पते पर झांसी में रह रही है।

8. ऐसा हो सकता है कि अपीलकर्ता ने प्रतिवादी को अपने बारे में छिपाया और गुमराह किया हो। यह भी हो सकता है कि प्रतिवादी विवाह को शून्य घोषित करने वाली डिक्री प्राप्त करने के लिए, वैवाहिक कार्यवाही में सफल हो सकता है। हालांकि, पारिवारिक न्यायालय के समक्ष रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं थी यह दिखाने के लिए कि अपीलकर्ता के पास अपनी देख-भाल करने के लिए कोई साधन था। प्रतिवादी ने अपीलकर्ता के काम करने को दिखाने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया, आयकर विभाग तो छोड़िए। जैसा कि पूर्वोक्त है,

विद्वान न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय में दर्ज किया कि अपीलकर्ता, विवाह के बाद, प्रतिवादी के साथ रहने के लिए कानपुर नगर आई।

9. हम संतुष्ट हैं कि वाद लंबित रहने तक भरण-पोषण और कार्यवाही के खर्चों के लिए निर्देश होना चाहिए था। आक्षेपित निर्णय को अपास्त किया जाता है। पूर्वोक्त को देखते हुए, हम प्रतिवादी को अपीलकर्ता को वाद लंबित रहने तक भरण-पोषण और वैवाहिक कार्यवाही का बचाव करने के लिए उसके खर्चों के रूप में रु.15,000/- प्रति माह की समेकित राशि का भुगतान करने का निर्देश देना उचित समझते हैं। प्रतिवादी आवेदन की तिथि अर्थात 15 अप्रैल, 2025 से भुगतान करेगा। वर्तमान सहित बकाया 14 जून, 2025 तक भुगतान किया जाना है और बाद का मासिक भरण-पोषण अगले महीने की 7 तारीख के भीतर। श्री मौर्य ने प्रस्तुत किया, वैवाहिक कार्यवाही में तेजी लाने के लिए निर्देश दिया जाए। हम पारिवारिक न्यायालय से ऐसी तेजी लाने का अनुरोध करते हैं। अपीलकर्ता को स्थगन की मांग करते हुए नहीं देखा जाना चाहिए।

10. हम रजिस्ट्री/विभाग द्वारा आक्षेपित निर्णय का अंग्रेजी अनुवाद, रातोंरात, किए जाने पर अपनी सराहना दर्ज करते हैं।

11. अपील उपरोक्त सीमा तक स्वीकार की जाती है और **निस्तारित** की जाती है।

अनवादित

(2025) 5 ILRA 247

मूल अधिकार क्षेत्र

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.05.2025

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति अरुण भंसाली

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र

वाणिज्यिक अपील संख्या-8 वर्ष 2025

मे. साह एजेंसीज प्राइवेट लिमिटेड व अन्य **...अपीलकर्तागण**

बनाम

सिन्नी फाउंडेशन ट्रस्ट व अन्य **...प्रतिवादीगण**

अपीलकर्ताओं के लिए अधिवक्ता:
श्री अनुपम कुलश्रेष्ठ, श्री अर्पित अग्रवाल

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:
श्री आनंद कुमार सिंह, श्री आशीष कुमार सिंह

दीवानी विधि-वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 धारा 12ए-स्थायी निषेधात्मक व्यादेश की डिक्री के लिए वाद संस्थित किया गया-प्रत्यर्थीगण को ट्रेडमार्क 'सिन्नी' का उपयोग, बिक्री, याचना आदि करने से या किसी अन्य तरीके से व्यवहार या उपयोग करने से रोकना-और उन्हें संपत्ति और व्यापार में स्टॉक का निस्तारण या लेन-देन करने से भी रोकना-अनिवार्य व्यादेश की डिक्री की भी मांग की गई थी, जिसमें प्रतिवादियों को आक्षेपित और उल्लंघनकारी ट्रेडमार्क वाली सभी तैयार और अधूरी सामग्री वादियों को सौंपने का निर्देश दिया गया था-स्थायी निषेधात्मक व्यादेश की तर्ज पर अस्थायी व्यादेश की मांग करते हुए एक आवेदन दायर किया गया था-मध्यस्थता की आवश्यकता से छूट/मुक्ति का अनुरोध करने वाला एक आवेदन-आदेश तीन भागों में आक्षेपित-पहला भाग पूर्व-संस्थान मध्यस्थता की वैधानिक आवश्यकता से मुक्ति देता है-दूसरा भाग वादी प्रतिवादियों के पक्ष में पूर्व पक्षीय अंतरिम व्यादेश प्रदान करता है-तीसरा भाग कुछ जांच करने के लिए अमीन आयुक्त और अधिवक्ता आयुक्त की नियुक्ति से संबंधित है-पूर्व-संस्थान मध्यस्थता की अनिवार्य आवश्यकताओं से मुक्ति देते समय कोई तर्क नहीं दिया गया था-धारा 12ए के अधीन आवेदन की सामग्री अस्थायी व्यादेश देते समय दिए गए तर्क के विपरीत है आक्षेपित आदेश खंडित किया गया।

अपील स्वीकृत। (ई-9)

उद्धृत निर्णयों की सूची:

1. पाटिल ऑटोमेशन प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम राखेजा इंजीनियर्स प्राइवेट लिमिटेड: AIR 2022 सुप्रीम कोर्ट 3848
2. श्रीमती चित्रा अग्रवाल बनाम जगदीश सरण गोयल: 1995 (1) ARC 80;
3. गुजरात बॉटलिंग को. लिमिटेड एवं अन्य बनाम कोका कोला को. एवं अन्य: (1995) 5 SCC 545
4. यामिनी मनोहर बनाम टी.के.डी. कीर्ति: (2024) 5 SCC 815
5. धनबाद फ्यूल्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ एवं अन्य: 2025 SCC OnLine SC 1129

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र द्वारा उद्घोषित)

1. प्रत्यर्थी-अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता, श्री अनुपम कुलश्रेष्ठ, वादी-प्रतिवादियों के लिए विद्वान अधिवक्ता, श्री आशीष कुमार सिंह को सुना गया और रिकॉर्ड को देखा गया।

चुनौती

2. वर्तमान अपील, मूल वाद संख्या-10 वर्ष 2025 के प्रतिवादियों द्वारा वाणिज्यिक न्यायालय, वाराणसी के पीठासीन अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.04.2025 को चुनौती देते हुए योजित की गई है। आक्षेपित आदेश तीन भागों में है; पहला भाग वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 12ए के अधीन विचारित पूर्व-संस्थान मध्यस्थता की वैधानिक आवश्यकता से मुक्ति प्रदान करता है; दूसरा भाग वादी-प्रतिवादियों के पक्ष में पूर्व-पक्षीय अंतरिम व्यादेश प्रदान करता है और तीसरा भाग कुछ जांच करने के लिए अमीन आयुक्त और अधिवक्ता आयुक्त की नियुक्ति से संबंधित है।

संक्षेप में तथ्य

3. उपरोक्त वाद स्थायी निषेधात्मक व्यादेश की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए संस्थित किया गया था, जिसमें प्रतिवादियों, उनके असाइनी, एजेंटों, प्रतिनिधियों, वितरकों, वारिसों, उत्तराधिकारियों, स्टॉकिस्टों और उनकी ओर से और उनकी ओर से कार्य करने वाले अन्य लोगों को ट्रेडमार्क 'सिन्नी' का उपयोग, बिक्री, याचना, निर्यात, प्रदर्शन, विज्ञापन आदि करने से या किसी अन्य तरीके से समान शब्दों/चिह्नों का व्यवहार या उपयोग करने से रोका जाए और उन्हें संपत्ति और व्यापार में स्टॉक का निस्तारण या व्यवहार करने से भी रोका जाए। अनिवार्य व्यादेश की डिक्री की भी मांग की गई थी, जिसमें प्रतिवादियों को आक्षेपित और उल्लंघनकारी ट्रेडमार्क वाली सभी तैयार और अधूरी सामग्री, जिसमें इसके ब्लॉक, लेबल, डिस्प्ले बोर्ड, साइनबोर्ड, व्यापार साहित्य और माल आदि शामिल हैं, वादियों को सौंपने का निर्देश दिया गया था। लेखांकन की आगे की डिक्री की भी मांग की गई थी।

4. वाद के साथ, स्थायी निषेधात्मक व्यादेश की तर्ज पर अस्थायी व्यादेश की मांग करते हुए एक आवेदन आदेश XXXIX नियम 1 और 2 सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में 'सि.प्र.सं.') सपठित धारा 151 के अधीन दायर किया गया था। चूंकि अधिनियम पूर्व-संस्थान मध्यस्थता और समझौते का प्रावधान करता है, इसलिए वादियों ने, तात्कालिकता का हवाला देते हुए, उक्त आवश्यकता से छूट/मुक्ति का अनुरोध करते हुए धारा 12ए के अधीन एक आवेदन भी दायर किया।

<u>अपीलकर्ताओं की ओर से प्रस्तुत तर्क</u>

5. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अधिनियम की धारा 12ए के अधीन आवश्यकताओं की छूट मामले के तथ्यों में उचित नहीं थी और पूर्व-पक्षीय व्यादेश का अनुदान भी प्रत्यर्थी-अपीलकर्ताओं के हित के लिए गंभीर रूप से पूर्वाग्रहपूर्ण है, विशेष रूप से इस तथ्य को देखते हुए कि वे समय-समय पर उनके पक्ष में जारी वैध लाइसेंसों के अनुसार अपना व्यवसाय चला रहे हैं। शपथ पत्र के संलग्नक-6 व 7 पर भरोसा किया गया है और यह तर्क दिया गया है कि लाइसेंस 27.07.2011 को दिया गया था, जो 26.07.2014 तक प्रभावी था, और उनके नाम पर जारी किए गए अन्य लाइसेंसों ने उनकी वैधता की अवधि 01.12.2015, 30.10.2017 और, अंत में, 27.07.2034 तक दर्शाई। इसलिए तर्क यह है कि व्यादेश आवेदन पर कोई भी आदेश पारित करने से पहले, प्रत्यर्थी-अपीलकर्ताओं को नोटिस जारी किया जाना चाहिए था और यह ऐसा मामला नहीं था, जहां रिकॉर्ड से तात्कालिकता परिलक्षित होती हो।

6. आगे के तर्क नई दिल्ली में समान ट्रेडमार्क और व्यवसाय के संबंध में लंबित और तय की गई विभिन्न कार्यवाहियों के संबंध में किए गए हैं, कुछ जिला न्यायाधीश के समक्ष और कुछ दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष और एक अन्य सिविल जज, वाराणसी के समक्ष, जिससे संबंधित रिकॉर्ड संलग्न किया गया है और यह तर्क दिया गया है कि चूंकि वादी-प्रतिवादियों द्वारा वर्तमान कार्यवाही में व्यादेश प्राप्त करते समय उक्त कार्यवाही और उनके परिणामों को छिपाया गया था, इसलिए आक्षेपित आदेश को खंडित किया जाना चाहिए। व्यादेश मामले के संबंध में गुणागुण पर विभिन्न अन्य तर्क भी श्री कुलश्रेष्ठ द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं और अपने तर्कों के समर्थन में, **पाटिल ऑटोमेशन प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम राखेजा इंजीनियर्स प्राइवेट लिमिटेड: AIR 2022 सुप्रीम कोर्ट 3848** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया है। तर्क यह है कि यदि अधिनियम की धारा 12ए के आदेश का उल्लंघन किया जाता है, तो इसके परिणामस्वरूप वादपत्र की अस्वीकृति होगी और ऐसी शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा *स्वप्रेरणा* से भी किया जा सकता है।

<u>प्रतिवादियों की ओर से प्रस्तुत तर्क</u>

7. इसके विपरीत, श्री आशीष कुमार सिंह ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ताओं ने अंतरिम व्यादेश आदेश को उन्मोचित करने के लिए पहले से ही आदेश XXXIX नियम 4 सि.प्र.सं. के अधीन एक आवेदन दायर किया है और वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा पर्याप्त सुनवाई की गई है लेकिन अंतिम आदेश पारित नहीं किया जा सका क्योंकि कुछ प्रतिवादी कार्यवाही में स्थगन की मांग कर रहे हैं और, अब, आगे के आदेश पारित करने के लिए 20.05.2025 निर्धारित किया गया है। श्री सिंह ने आगे प्रस्तुत किया कि जहां तक वाराणसी या नई दिल्ली में

न्यायालयों द्वारा लंबित या तय की गई कार्यवाही का संबंध है, जिसमें दिल्ली के माननीय उच्च न्यायालय भी शामिल हैं, उनमें से कुछ आपस में पक्षकार नहीं थे और, अन्यथा भी, उनमें शामिल मुद्दे इन कार्यवाहियों से भिन्न थे। ट्रस्टीशिप के संबंध में विवाद, ट्रस्टियों की स्थिति में परिवर्तन, प्रत्यर्थी-अपीलकर्ताओं के पक्ष में जारी लाइसेंसों की वैधता और कई अन्य मुद्दे हमारे समक्ष उठाए जाने की कोशिश की गई थी जिससे व्यादेश के अनुदान को उचित ठहराया जा सके।

8. जब व्यादेश आदेश की संक्षिप्त प्रकृति का सामना किया गया, तो यह तर्क दिया गया कि हालांकि व्यादेश देने वाला आदेश, रिकॉर्ड पर सामग्री से बहुत अधिक नहीं निपटता है, फिर भी, अपीलकर्ताओं का कोई मामला नहीं है और व्यादेश आवेदन के साथ दाखिल दस्तावेजों के आधार पर प्रथम दृष्टया मामले के अस्तित्व पर निष्कर्ष, वादी-प्रतिवादियों के पक्ष में दर्ज किया गया है, आक्षेपित आदेश को केवल इस आधार पर खंडित नहीं किया जा सकता है। यह आगे तर्क दिया गया है कि जब अपीलकर्ता, स्वयं को लाइसेंसधारी होने का दावा करते हुए, अन्य व्यक्तियों को लाइसेंस जारी करना शुरू कर दिया, जिसके बारे में उनके पास कोई तथ्यात्मक या कानूनी अधिकार नहीं था, तो वाद दायर किया गया और व्यादेश का दावा किया गया जो सही तरीके से दिया गया है। अपने तर्कों के समर्थन में, निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया गया है:-

(ए). श्रीमती चित्रा अग्रवाल बनाम जगदीश सरण गोयल: 1995 (1) ARC 80;
(बी). गुजरात बॉटलिंग को. लिमिटेड और अन्य बनाम कोका कोला को. और अन्य: (1995) 5 SCC 545।

असंशोधित

चर्चा और निष्कर्ष

9. पक्षों के लिए विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, सबसे पहले, हम अधिनियम की धारा 12ए के प्रासंगिक भाग का संदर्भ देना उचित समझते हैं, जो निम्नानुसार है:-

"12A. पूर्व-संस्थान मध्यस्थता और समझौता-- (1) एक वाद, जो इस अधिनियम के अधीन किसी तात्कालिक अंतरिम राहत का विचार नहीं करता है, तब तक संस्थित नहीं किया जाएगा जब तक कि वादी केंद्र सरकार द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा निर्धारित तरीके और प्रक्रिया के अनुसार पूर्व-संस्थान मध्यस्थता के उपाय को समाप्त नहीं कर देता।
....."

10. पूर्वोद्धृत प्रावधान का एक सरल अवलोकन यह दर्शाता है कि कोई भी वाणिज्यिक वाद तब तक संस्थित नहीं किया जाएगा जब तक कि वादी नियमों द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार पूर्व-संस्थान मध्यस्थता के उपाय को समाप्त नहीं कर देता; हालांकि, प्रावधान में ही कहे गए रोक में एक अंतर्निहित अपवाद है, अर्थात् यह कहना कि, यदि वाद में कोई तात्कालिक अंतरिम राहत का विचार किया जाता है, तो वादी को पूर्व-संस्थान मध्यस्थता के उपाय को समाप्त करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।

11. चूंकि पूर्व-संस्थान मध्यस्थता की आवश्यकताओं से छूट देने वाला आदेश हमारे समक्ष चुनौती के अधीन है, इसलिए हम मामले के इस पहलू से पहले निपटना उचित समझते हैं।

12. रिकॉर्ड यह दर्शाता है कि विवादित वाद, धारा 12ए के अधीन आवेदन के साथ, 05.04.2025 को संस्थित किया गया था। धारा 12ए के अधीन आवेदन के 3, 4, 5 और 6 प्रस्तर में, निम्नलिखित दावे किए गए थे:-

"3- यह कि वादियों को 27-03-2025 को पता लगा है कि कई करोड़ों के मूल्य का उल्लंघनकारी माल पहले से ही निर्मित किया जा चुका है और बाजार में बेचा, वितरित या भेजा जा रहा है। ऐसा अनधिकृत और भ्रामक उपयोग न केवल भारी मौद्रिक नुकसान का कारण बन रहा है बल्कि वादियों के ट्रेडमार्क/व्यापार नाम सिन्नी से जुड़ी सद्भावना और प्रतिष्ठा को भी नुकसान पहुंचा रहा है।

4- यह कि वादियों को अपूरणीय हानि और चोट से बचने के लिए इन नकली वस्तुओं के आगे प्रसार और बिक्री को रोकने के लिए एक तात्कालिक और तत्पर आवश्यकता है। राहत देने में कोई भी देरी उल्लंघनकारी स्टॉक के प्रसार का परिणाम हो सकती है और वादियों को उपायहीन बना सकती है।

5. यह कि वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 12ए(1) के प्रावधान के अनुसार, पूर्व-संस्थान मध्यस्थता की आवश्यकता लागू नहीं होती है, जहां वाद तात्कालिक अंतरिम राहत का विचार करता है। वर्तमान मामला स्पष्ट रूप से ऐसी छूट के लिए योग्य है, क्योंकि वादी एक साथ तदर्थ अंतरिम व्यादेश, न्यायालय अमीन की नियुक्ति, और उल्लंघनकारी वस्तुओं को जब्त और मुहरबंद करने के लिए अधिवक्ता आयुक्त के लिए आवेदन दाखिल कर रहे हैं।

6. यह कि उपरोक्त को देखते हुए, वादी वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 12ए के संदर्भ में पूर्व-मुकदमा मध्यस्थता की अनिवार्य आवश्यकता से छूट के लिए अत्यंत सम्मानपूर्वक प्रार्थना करते हैं।"

13. अधिनियम की धारा 12ए के अधीन आवेदन की उपरोक्त सामग्री से, यह परिलक्षित होता है कि वादियों ने प्रतिवादियों के कथित अवैध कृत्यों का पता लगना 27.03.2025 को बताया था, अर्थात् वाद संस्थित करने से लगभग एक सप्ताह पहले। वाणिज्यिक न्यायालय ने, धारा 12ए के अधीन आवेदन को अनुमति देते समय, उक्त आवेदन के एक भी दावे का उल्लेख नहीं किया और इसे 05.04.2025 को ही संक्षिप्त रूप से स्वीकार किया, निम्नलिखित शब्दों में:-

"मामले के तथ्यों व परिस्थितियों में प्रार्थना-पत्र स्वीकार किये जाने का आधार पर्याप्त है। अतः प्रार्थना-पत्र 8ग अन्तर्गत धारा 12ए वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम 2015 सपठित धारा 151 सिविल प्रक्रिया संहिता स्वीकार किया जाता है। वादी को अन्तर्गत धारा 12ए वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम 2015 के अनुपालन से उनमुक्त किया जाता है तथा वाद अग्रसारित करने की अनुमति प्रदान की जाती है। **पत्रावली लंच बाद पेश हो**।" '

अनुवादित

14. किसी तात्कालिक अंतरिम राहत का विचार' करने वाले वाणिज्यिक वादों में अधिनियम की धारा 12ए के अधीन पूर्व-मुकदमा मध्यस्थता की आवश्यकता के संबंध में विधि **यामिनी मनोहर बनाम टी.के.डी. कीर्ति: (2024) 5 SCC 815** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया है, जिसमें निम्नानुसार निर्धारित किया गया है:-

"10. हम इस राय के हैं कि जब सीसी अधिनियम के अधीन वादपत्र दायर किया जाता है, एक तात्कालिक अंतरिम राहत के लिए प्रार्थना के साथ, वाणिज्यिक न्यायालय को वाद की प्रकृति और विषय-वस्तु, वाद कारण, और अंतरिम राहत के लिए प्रार्थना की जांच करनी चाहिए। तात्कालिक अंतरिम राहत के लिए प्रार्थना सीसी अधिनियम की धारा 12ए से बाहर निकलने और उसे पार करने के लिए एक छद्मवेश या मुखौटा नहीं होनी चाहिए। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर वादी के दृष्टिकोण से समग्र रूप से विचार किया जाना चाहिए। तदर्थ चरण में अंतरिम राहत का अनुदान न होना, जब वादपत्र पंजीकरण/प्रवेश और परीक्षा के लिए लिया जाता है, संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अधीन वाणिज्यिक वाद की खारिजी को उचित नहीं ठहराएगा; कभी-कभी, नोटिस जारी करने के बाद अंतरिम राहत दी जाती है। न ही संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अधीन वाद को खारिज किया जा सकता है, क्योंकि अंतरिम राहत, तर्कों के बाद, गुणागुण पर और तीन सिद्धांतों की परीक्षा पर अस्वीकार की जाती है, अर्थात्: (i) प्रथम दृष्टया मामला, (ii) अपूरणीय नुकसान और चोट, और (iii) सुविधा का संतुलन। यह तथ्य कि न्यायालय ने नोटिस जारी किया और/या अंतरिम स्थगन दिया, यह संकेत कर सकता है कि न्यायालय वादपत्र का मनोरंजन करने के लिए इच्छुक है।

11. ऐसा कहने के बाद, इस सिद्धांत से सहमत होना मुश्किल है कि वादी के पास तात्कालिक अंतरिम राहत के लिए प्रार्थना करके सीसी अधिनियम की धारा 12ए को महत्वहीन करने का पूर्ण विकल्प और अधिकार है। पूर्व-मुकदमा मध्यस्थता के वैधानिक आदेश को बायपास करने के लिए छलावरण और छद्मवेश की जांच की जानी चाहिए, जब धोखा और झूठ स्पष्ट या स्थापित हो। यह प्रस्ताव कि वाणिज्यिक न्यायालयों की एक भूमिका है, यद्यपि एक सीमित, को स्वीकार किया जाना चाहिए, अन्यथा यह केवल वादी पर निर्भर होगा कि वह तय करे कि सीसी अधिनियम की धारा 12ए के अधीन प्रक्रिया का सहारा लेना है या नहीं। यदि सीसी अधिनियम की धारा 12ए के अधीन पूर्व-संस्थान मध्यस्थता अनिवार्य है, जैसा कि पाटिल ऑटोमेशन में इस न्यायालय द्वारा आयोजित किया गया है, तो "पूर्ण और निरंकुश अधिकार" दृष्टिकोण उचित नहीं है।

12. सीसी अधिनियम की धारा 12ए(1) में "किसी तात्कालिक अंतरिम राहत का विचार" शब्द, वाद के संदर्भ में, न्यायालय को संतुष्ट होने की शक्ति प्रदान करने के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। वे सुझाव देते हैं कि वाद को "विचार" करना चाहिए, जिसका अर्थ है कि वादपत्र, दस्तावेज और तथ्य एक तात्कालिक अंतरिम राहत की आवश्यकता को दिखाना और संकेत देना चाहिए। यह वह सटीक और सीमित अभ्यास है जो वाणिज्यिक न्यायालय करेंगे, जिसके समोच्च पूर्व प्रस्तर में समझाए गए हैं। यह जांच में रखने और यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त होगा कि सीसी अधिनियम की धारा 12ए के अधिनियमन के पीछे विधायी उद्देश्य/इरादा विफल नहीं होता है।"

15. उपरोक्त विधि के संदर्भ में, वाणिज्यिक न्यायालय को इस हद तक प्रयास करना आवश्यक है कि वाद में वादपत्र, दस्तावेज और तथ्य एक तात्कालिक अंतरिम राहत की आवश्यकता को दिखाना और संकेत देना चाहिए, जो एक भूमिका रखते हैं और वादी के पास इस संबंध में पूर्ण और निरंकुश अधिकार नहीं है। उक्त टिप्पणियों को धनबाद फ्यूल्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य: 2025 SCC OnLine SC 1129 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदित किया गया है।

16. अधिनियम की धारा 12ए के अधीन आवेदन पर पारित आदेश का एक सरल रूप यह प्रकट करेगा कि उपरोक्त निर्णयों के संदर्भ में आवश्यक प्रयास, स्पष्ट रूप से वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा नहीं किया गया है।

17. वाणिज्यिक न्यायालय ने, धारा 12ए के अधीन छूट देने के बाद, मामले को उसी दिन लंच के बाद पोस्ट करने का निर्देश दिया और जब लंच के बाद व्यादेश आवेदन लिया गया, तो व्यादेश के अनुदान के लिए दर्ज किया गया कारण अन्य बातों के साथ निम्नलिखित है:-

"वादीगण के तरफ से जो अभिलेख दाखिल किये गये हैं उससे स्पष्ट होता है कि वादीगण सिन्नी फाउन्डेशन ट्रस्ट के ट्रस्टी हैं तथा उन्हे यह वाद दायर करने का अधिकार प्राप्त है। वादीगण की तरफ से प्रतिवादीगण को सिन्नी ट्रेडमार्क के अतिलंघन करने से रोकने हेतु कई पत्र पुलिस आयुक्त वाराणसी को प्रेषित किये गये हैं साथ ही साथ वर्ष 2021 में सुमीत अग्रवाल, श्रीमती मंजू अग्रवाल, प्रशान्त अग्रवाल, दीपक कुमार साह एवं शषी कुमार साह के विरुद्ध कापी राइट एक्ट 1957 की धारा 63 व 65 के अधीन प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत कराई गयी है।"

17. व्यादेश आदेश के पूर्वोद्धृत भाग से पता चलता है कि वाणिज्यिक न्यायालय ने स्वयं पुलिस अधिकारियों के समक्ष कुछ आवेदन दायर करने के साथ-साथ वर्ष 2021 में अपीलकर्ताओं और अन्य के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के संबंध में वादियों के तर्क को नोट किया था। सुनवाई के दौरान वादी-प्रतिवादियों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा व्यादेश आवेदन का हिस्सा बनने वाले कागजातों का एक बंडल भी हमारे समक्ष रखा गया था। उक्त दस्तावेजों में अपीलकर्ताओं और अन्य के विरुद्ध वादी-प्रत्यर्थी संख्या 1-ट्रस्ट के ट्रस्टी द्वारा दिनांक 10.06.2021 को दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट की एक प्रति शामिल है। प्र.सू.रि. में वही आरोप शामिल हैं, जो वर्तमान वाद में अपीलकर्ताओं के विरुद्ध लगाए गए हैं अर्थात् संबंधित ट्रेडमार्क/लेबल आदि के कथित अनधिकृत उपयोग और उस आधार पर अपीलकर्ताओं द्वारा की जा रही व्यावसायिक गतिविधियों के संबंध में।

18. इसलिए यह रिकॉर्ड से साथ-साथ वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश से स्पष्ट है कि पक्षों के बीच विवाद, स्वीकृत रूप से, कम से कम 2021 से अस्तित्व में था और इसे अंतरिम व्यादेश के अनुदान का आधार बनाया गया है। ऐसी तथ्य स्थिति में, जब हम धारा 12ए के अधीन विचारित अनिवार्य वैधानिक आवश्यकताओं की छूट देने वाले आदेश की जांच करते हैं, तो हम वाणिज्यिक न्यायालय के दृष्टिकोण में पूर्ण

विरोधाभास पाते हैं, अर्थात् यह कहना कि एक बार जब वाणिज्यिक न्यायालय ने वर्ष 2021 में प्रतिवादियों के विरुद्ध वादियों द्वारा आपराधिक कार्रवाई का सहारा लेने के बारे में टिप्पणी की और इसे व्यादेश के अनुदान के आधार के रूप में लिया, तो इस बारे में कोई उचित कारण नहीं दिखता है कि न्यायालय को अधिनियम की धारा 12ए के अधीन आवेदन के तीसरे प्रस्तर में किए गए दावे से क्यों प्रभावित किया गया जिसमें वादियों ने 27.03.2025 को अधिकारों के कथित उल्लंघन की कथित खोज की थी।

19. जहां तक आक्षेपित आदेश के अधीन अमित आयुक्त/अधिवक्ता आयुक्त की नियुक्ति का संबंध है, उक्त आदेश भी अजीब टिप्पणियां दर्ज करता है। वाणिज्यिक न्यायालय ने अमीन आयुक्त को एक बिल्कुल अस्पष्ट निर्देश जारी किया है, जिसमें उसे 'सिन्नी' ट्रेडमार्क के संबंध में उसके द्वारा पाए गए जो भी उत्पादन और भाग के बारे में एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए कहा गया है, जिसमें आवश्यकता के अनुसार पुलिस सहायता लेने की आगे की स्वतंत्रता दी गई है। इसके अतिरिक्त, किसी विशेष अधिवक्ता का नाम निर्दिष्ट किए बिना, एक अधिवक्ता आयुक्त को वाराणसी के बाहर के क्षेत्रों के संबंध में समान रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए एक और अस्पष्ट निर्देश जारी किया गया है।

20. प्रतिवादियों के लिए विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान दिनांक 12.05.2025 के एक बाद के आदेश की ओर आकर्षित किया है, जिसमें वाणिज्यिक न्यायालय ने टिप्पणी की है कि जिस अधिवक्ता को पहले अधिवक्ता आयुक्त के रूप में नियुक्त किया गया था, वह मामले में रुचि नहीं ले रहा था और, इसलिए, उसे जारी किया गया परवाना वापस ले लिया गया/वापस बुला लिया गया और किसी अन्य अधिवक्ता को ऐसा परवाना जारी करने का निर्देश दिया गया। दिनांक 12.05.2025 का आदेश अमीन/अधिवक्ता आयुक्त की नियुक्ति करने वाले प्रारंभिक आदेश की अग्रगामिता में होने के कारण कोई महत्व नहीं रखता है और, इसलिए, वही अधिवक्ता आयुक्त की नियुक्ति/परिवर्तन को उचित ठहराने के लिए प्रतिवादियों की सहायता के लिए नहीं आएगा।

21. मामले को एक अलग कोण से भी देखा जा सकता है। आक्षेपित आदेश से यह परिलक्षित होता है कि हालांकि वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा पूर्व-लंच सत्र में छूट देते समय तात्कालिकता मान ली गई थी या पाई गई थी और कोई कारण बताए बिना, लंच के बाद के सत्र में अंतरिम व्यादेश देते समय धारा 12ए के अधीन आवेदन में लिए गए रुख के विपरीत एक अलग तर्क दिया गया था। स्थिति अलग हो सकती थी, यदि यह एक ऐसा मामला होता जहां धारा 12ए के अधीन आवेदन और व्यादेश की मांग करने वाले आवेदन का निस्तारण रिकॉर्ड पर सामग्री के आधार पर अलग-अलग तिथियों पर किया गया होता, हालांकि, वाद संस्थित होने के दिन तीन आवेदनों पर निर्णय और ऊपर बताए गए तरीके से, वाणिज्यिक न्यायालय की ओर से अनुचित जल्दबाजी को दर्शाता है।

22. एक बार जब यह न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि, वर्तमान मामले में, अधिनियम की धारा 12ए के आदेश और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि का पालन नहीं किया गया है, तो संक्षिप्त रूप से

अंतरिम व्यादेश देने वाला आक्षेपित आदेश के साथ-साथ अमीन आयुक्त/अधिवक्ता आयुक्त की नियुक्ति के संबंध में निर्देश स्वचालित रूप से *अस्तित्वहीन* हो जाते हैं।

23. प्रतिवादियों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत **श्रीमती चित्रा अग्रवाल** (उपरोक्त) और **गुजरात बॉटलिंग कं. लिमिटेड** (उपरोक्त) में निर्णय इस बिंदु पर हैं कि केवल इसलिए कि व्यादेश आदेश संक्षिप्त है या विस्तृत कारण नहीं बताता है, इसे केवल इस आधार पर हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है और यह कि अपीलीय न्यायालय हमेशा अंतरिम व्यादेश आवेदन पर पारित आदेश की प्रकृति से स्वतंत्र मामले के गुणागुण की जांच करने के लिए सशक्त है।

24. उक्त निर्णय वर्तमान मामले में सीधे लागू नहीं हैं, क्योंकि इस स्तर पर, हम अस्थायी व्यादेश मामले के गुणागुण के बारे में अधिक चिंतित नहीं हैं, क्योंकि दोनों पक्ष इस बारे में विरोध में हैं। हम जिस पहलू से चिंतित हैं, वह यह है कि क्या, मामले के तथ्यों में और यहां तक कि वादी-प्रतिवादियों द्वारा किए गए दावों के अनुसार भी, यह बिल्कुल एक उपयुक्त मामला था जहां अधिनियम की धारा 12ए के अधीन निहित वैधानिक आवश्यकताओं की छूट को उचित ठहराया जा सकता था और जब धारा 12ए के अधीन आवेदन की अनुमति देने वाला आदेश निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं करता है, तो क्या उस दिन या बाद में पारित सभी परिणामी आदेश बने रहेंगे या नहीं।

<u>निष्कर्ष</u>:

25. एक बार जब हम संतुष्ट हो गए हैं कि वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा पूर्व-संस्थान मध्यस्थता की अनिवार्य आवश्यकताओं से मुक्ति देते समय कोई तर्क नहीं दिया गया था, बल्कि धारा 12ए के अधीन आवेदन की सामग्री अस्थायी व्यादेश देते समय दिए गए तर्क के विपरीत है, तो स्थिति हमें केवल एक निष्कर्ष की ओर ले जाती है कि मामला पूर्व-संस्थान मध्यस्थता की आवश्यकताओं की छूट पर विचार करने के चरण में वाणिज्यिक न्यायालय में वापस जाना चाहिए।

26. चूंकि सभी पक्ष वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए हैं और व्यादेश के मामले के साथ-साथ तात्कालिकता के अस्तित्व/अनस्तित्व पर बहस कर रहे हैं, इसलिए हम व्यादेश के दावे के गुणागुण के संबंध में कोई टिप्पणी नहीं करना उचित समझते हैं, अन्यथा हमारी टिप्पणियां, जिस भी तरीके से की गई हैं, वाद में आगे की कार्यवाही और उसके परिणाम को प्रभावित करेंगी।

27. परिणामस्वरूप, अपील **स्वीकार** की जाती है। मूल वाद संख्या 10 वर्ष 2025 में वाणिज्यिक न्यायालय, वाराणसी के पीठासीन अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.04.2025 को ***पूर्णतः* अपास्त** किया जाता है। प्रकरण वाणिज्यिक न्यायालय, वाराणसी में प्रतिप्रेषित किया जाता है जिससे दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के बाद अधिनियम की धारा 12ए के अधीन आवेदन का निर्णय लिया जाए और अपने क्षेत्राधिकार के अनुसार प्रकरण का निस्तारण किया जाए।

(2025) 5 ILRA 254

मूल अधिकार क्षेत्र

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 26.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल

रिट कर संख्या-501 वर्ष 2023

ट्रेंडशिप्स ऑनलाइन सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड **...याचिकाकर्ता**

बनाम

आयुक्त वाणिज्यिक कर उत्तर प्रदेश लखनऊ व अन्य **...प्रतिवादीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
पूजा तलवार

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मु.स्था.अधि.

अनुवादित

(ए) कराधान कानून-जीएसटी-इनपुट टैक्स क्रेडिट-उत्तर प्रदेश वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम, 2017 /केंद्रीय वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम, 2017-धारा 16(2)(सी), 41, 43ए एवं 74-इनपुट टैक्स क्रेडिट (आईटीसी) के लिए पात्रता और शर्त-"ऐसी आपूर्ति के संबंध में लगाया गया कर वास्तव में सरकार को भुगतान किया गया है"-क्रेता डीलर पर सबूत का भार-धारा 16(2)(सी) के अधीन आईटीसी की पात्रता आपूर्तिकर्ता द्वारा कर की वास्तविक जमा के अधीन है-केवल कर चालान का उत्पादन और बैंकिंग चैनल के माध्यम से भुगतान पर्याप्त नहीं-लेनदेन की वास्तविकता और माल की वास्तविक आवाजाही को सिद्ध करने का भार क्रेता डीलर पर है-आपूर्तिकर्ता द्वारा कर की जमा सिद्ध करने में विफलता क्रेता को आईटीसी का दावा करने से अयोग्य ठहराती है-धारा 74 तंत्र गलत तरीके से लाभ उठाए गए आईटीसी को वसूल करने के लिए संचालित होता है-फर्जी/धोखाधड़ी वाले आईटीसी दावों को रोकने के लिए जीएसटी के अधीन निवारक योजना पर जोर दिया गया-धारा 16(2)(सी) का अनुपालन अनिवार्य है-डीलर का भार राजस्व पर स्थानांतरित नहीं हो सकता-आईटीसी दावा अस्थिर है, जहां आपूर्तिकर्ता कर जमा करने में विफल रहता है और क्रेता वास्तविक लेनदेन और धारा 16(2)(सी) के अधीन अनिवार्य रूप से कर की जमा सिद्ध करने में विफल रहता है। (प्रस्तर 9, 11, 16, 19 से 21, 24, 28 से 31)

याचिकाकर्ता, उत्तर प्रदेश जीएसटी अधिनियम के अधीन एक पंजीकृत डीलर-आपूर्तिकर्ता श्री राधेय इंटरनेशनल से फिल्टर पेपर की खरीद पर 2017-18 के लिए आईटीसी का दावा किया-आपूर्तिकर्ता का पंजीकरण बाद में

रद्द कर दिया गया-कर अदत्त रहा-कर अधिकारियों ने धारा 74 नोटिस के माध्यम से रिवर्सल की मांग की-अपीलीय अधिकारी ने मांग को बनाए रखा। (प्रस्तर 1 से 3, 27 से 31)

निर्णीत:-याचिकाकर्ता यह स्थापित करने में विफल रहा कि आपूर्तिकर्ता ने धारा 16(2)(सी) की आवश्यकता के अनुसार सरकार के पास कर जमा किया। केवल कर चालान का उत्पादन और बैंकिंग चैनल के माध्यम से भुगतान पर्याप्त नहीं है। वास्तविक लेनदेन, माल की भौतिक आवाजाही, और कर जमा को स्थापित करने के लिए सबूत का भार क्रेता डीलर पर है। अधिकारियों ने धारा 74 के अधीन आईटीसी को सही तरीके से रिवर्स कर दिया। कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है। अंतरिम आदेश उन्मोचित किया गया। (प्रस्तर-19 से 21, 28 से 31, 33 से 36)

याचिका निरस्त। (ई-7)

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची</u>:

1. मे. सॉल्वी एंटरप्राइजेज बनाम अपर आयुक्त ग्रेड II व अन्य, रिट कर संख्या 1287 वर्ष 2024
2. सनक्राफ्ट एनर्जी प्राइवेट लिमिटेड व अन्य बनाम सहायक आयुक्त, राज्य कर, MAT 1218 वर्ष 2023
3. रिमझिम इस्पात लिमिटेड बनाम भारत संघ व अन्य, रिट कर संख्या 1611 वर्ष 2022
4. अजनारा रियलटेक लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2025 NTN (Vol. 87) 521
5. केंद्रीय उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क एवं सेवा कर आयुक्त बनाम जूही अलॉयज लिमिटेड, 2014 (302) ELT 487
6. मे. डी. वाई. बीथेल एंटरप्राइजेज बनाम राज्य कर अधिकारी, डब्लू.पी. (MD) संख्या 2127 वर्ष 2021
7. पिनस्टार ऑटोमोटिव इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम अपर आयुक्त, डब्लू.पी. संख्या 8493 वर्ष 2023 एवं डब्लूएमपी संख्या 8686 वर्ष 2023
8. मे. एलजीडब्लू इंडस्ट्रीज लिमिटेड व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य, डब्लूपीए संख्या 23512 वर्ष 2019
9. मे. ब्राइट स्टार प्लास्टिक इंडस्ट्रीज बनाम बिक्री कर के अपर आयुक्त, डब्लू.पी.(सी) संख्या 15265 वर्ष 2021
10. भाग्यनगर कॉपर प्राइवेट लिमिटेड बनाम सीबीआईसी, 2022 UPTC (Vol. 110) 261
11. मे. चोकसी एक्सपोर्ट्स बनाम भारत संघ, 2023 UPTC 428।
12. कर्नाटक राज्य बनाम मे. ईकॉम गिल कॉफी ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड, सिविल अपील संख्या 230 वर्ष 2023,
13. मे. शिव ट्रेडिंग बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट कर संख्या 1421 वर्ष 2022

(माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल द्वारा उद्घोषित)

1. इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता, उत्तर प्रदेश वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम, 2017 (*इसके बाद "उत्तर प्रदेश जीएसटी, 2017" के रूप में संदर्भित*) के अधीन एक पंजीकृत डीलर है। यह उत्तर प्रदेश सरकार को मृदा स्वास्थ्य गार्ड की तैयारी के लिए मृदा परीक्षण सेवाएं प्रदान करने में लगा हुआ है।

2. याचिकाकर्ता ने मृदा परीक्षण के लिए आवश्यक व्हाट-मैन फिल्टर पेपर की खरीद, श्री राधेय इंटरनेशनल, दिल्ली से की, जो बिक्री के समय, एक पंजीकृत डीलर भी था। याचिकाकर्ता के अनुसार, मार्च से अप्रैल, 2018 तक की गई संपूर्ण खरीद का भुगतान बैंकिंग चैनल के माध्यम से किया गया था। खरीदा गया माल, कर चालान के सापेक्ष था और इसे याचिकाकर्ता द्वारा प्रश्नगत अवधि के लिए अपने जीएसटीआर-3बी रिटर्न में घोषित किया गया था। आउटपुट कर दायित्व पर इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा किया गया था और इनपुट टैक्स क्रेडिट के लिए, क्रेडिट का लाभ उठाया गया था।

3. सहायक आयुक्त, राज्य कर, ब्लॉक-3, झांसी द्वारा 2017 के अधिनियम की धारा 74(1) के अधीन वित्तीय वर्ष 2017-18 के लिए दिनांक 06.09.2021 को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। 05.10.2021 को एक उत्तर प्रस्तुत किया गया था, इसके बाद, 17.12.2021 को धारा 74(9) के अधीन कर/ब्याज और जुर्माने की मांग करते हुए एक आदेश पारित किया गया था। याचिकाकर्ता द्वारा अपर आयुक्त, ग्रेड-II (अपील) द्वितीय, वाणिज्यिक कर, झांसी के समक्ष आदेश ले विरुद्ध अपील की गई, जिन्होंने 20.12.2022 को इसे निरस्त कर दिया था। इसलिए, यह रिट याचिका।

4. सुश्री पूजा तलवार, याचिकाकर्ता की अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जब लेनदेन हुआ था और माल आपूर्तिकर्ता फर्म, श्री राधेय इंटरनेशनल से खरीदा गया था, जो अधिनियम के अधीन एक पंजीकृत फर्म थी, सभी भुगतान आरटीजीएस के माध्यम से किए गए थे और इस प्रकार खरीदा गया फिल्टर पेपर याचिकाकर्ता की खुद की कार में लाया गया था और बाहरी परिवहन की कोई मदद नहीं ली गई थी। श्री राधेय इंटरनेशनल का पंजीकरण 11.09.2019 को रद्द कर दिया गया था, जबकि लेनदेन मार्च और अप्रैल, 2018 के बीच हुआ था। उनके अनुसार, आईटीसी का दावा करने के लिए आवश्यक अभिलेख प्रदान किए गए थे, जिसके अनुसरण में लाभ दिया गया था और याचिकाकर्ता द्वारा लाभ उठाए गए आईटीसी को निरस्त करने का कोई कारण नहीं था। यह आपूर्तिकर्ता फर्म की गलती है, जिसने इस प्रकार गणना किए गए कर को जमा नहीं किया था और प्राप्तकर्ता फर्म की नहीं।

5. उन्होंने इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 24.03.2025 को **निर्णीत मे. सॉल्वी एंटरप्राइजेज बनाम अपर आयुक्त ग्रेड II व अन्य, रिट कर संख्या-1287 वर्ष 2024** और दिनांक 02.08.2023 को कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा निर्णीत **सनक्राफ्ट एनर्जी प्राइवेट लिमिटेड व अन्य बनाम सहायक आयुक्त, राज्य कर, एमएटी-1218 वर्ष 2023** के निर्णयों पर भरोसा किया है। उन्होंने **रिमझिम इस्पात लिमिटेड बनाम भारत संघ व अन्य, रिट कर संख्या-1611 वर्ष 2022** में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिनांक 30.01.2023 को पारित एक अंतरिम आदेश पर भी भरोसा किया है, जिसमें निर्धारिती को जारी एक कारण बताओ नोटिस

को इस आधार पर स्थगित कर दिया गया था कि केंद्रीय वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम, 2017 (*इसके बाद "केंद्रीय अधिनियम, 2017" के रूप में संदर्भित*) की धारा 16(2)(सी) की *संवैधानिकता* चुनौती के अधीन थी।

6. **अजनारा रियलटेक लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व 3 अन्य, 2025 NTN (Vol. 87) 521** और **केंद्रीय उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क एवं सेवा कर आयुक्त बनाम जूही अलॉयज लिमिटेड, 2014 (302) ELT 487** में इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय; दिनांक 24.02.2021 को निर्णीत **मे. डी. वाई. बीथेल एंटरप्राइजेज बनाम राज्य कर अधिकारी, डब्लू.पी. (एमडी) संख्या-2127 वर्ष 2021** और दिनांक 20.03.2023 को निर्णीत **पिनस्टार ऑटोमोटिव इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम अपर आयुक्त, डब्लू.पी. संख्या-8493 वर्ष 2023 और डब्लूएमपी संख्या-8686 वर्ष 2023** में मद्रास उच्च न्यायालय का निर्णय; दिनांक 13.12.2021 को निर्णीत **मे. एलजीडब्लू इंडस्ट्रीज लिमिटेड व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य, डब्लूपीए संख्या-23512 वर्ष 2019** में कलकत्ता उच्च न्यायालय का निर्णय; दिनांक 04.10.2021 को निर्णीत **मे. ब्राइट स्टार प्लास्टिक इंडस्ट्रीज बनाम अपर आयुक्त, बिक्री कर, डब्लू.पी.(सी) संख्या-15265 वर्ष 2021** में उड़ीसा उच्च न्यायालय का निर्णय; **भाग्यनगर कॉपर प्राइवेट लिमिटेड बनाम सीबीआईसी, 2022 UPTC (Vol. 110) 261** में तेलंगाना उच्च न्यायालय का निर्णय और **मे. चोकसी एक्सपोर्ट्स बनाम भारत संघ, 2023 UPTC 428** में गुजरात उच्च न्यायालय के निर्णयों पर भी भरोसा किया गया है।

7. श्री अरविंद कुमार मिश्रा, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि केंद्रीय अधिनियम, 2017 की धारा 16(2)(सी) स्पष्ट रूप से प्रावधानित करती है कि धारा 41 के प्रावधानों के अधीन, ऐसी आपूर्ति के संबंध में लगाया गया कर वास्तव में सरकार को नकद में या इनपुट टैक्स क्रेडिट के उपयोग के माध्यम से भुगतान किया गया है, तभी आईटीसी का लाभ उठाया जा सकता है। उनके अनुसार, याचिकाकर्ता धारा 74 के अधीन नोटिस जारी करने के अनुसरण में अधिकारियों के समक्ष कोई प्रमाण नहीं रख सका कि लेनदेन सद्भावनापूर्ण था और कर चालान के साथ माल का परिवहन और आपूर्तिकर्ता फर्म द्वारा कर जमा किया गया था। उनके अनुसार, निर्धारण अधिकारी ने याचिकाकर्ता के तर्क को सही तरीके से खारिज कर दिया था और ब्याज और जुर्माने के साथ करों के भुगतान के लिए आदेश दिया था। **कर्नाटक राज्य बनाम मे. ईकॉम गिल कॉफी ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड, सिविल अपील संख्या 230 वर्ष 2023** में दिनांक 13.03.2023 को प्रदत्त शीर्ष न्यायालय के निर्णय के साथ-साथ **मे. शिव ट्रेडिंग बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 2 अन्य, रिट कर संख्या 1421 वर्ष 2022** में दिनांक 28.11.2023 को प्रदत्त समन्वय पीठ के निर्णय पर भरोसा किया गया है।

8. मैंने पक्षों के लिए संबंधित अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री को देखा है।

9. विचार के लिए संक्षिप्त बिंदु यह है कि क्या याचिकाकर्ता वर्ष 2018 में आपूर्तिकर्ता, श्री राधेय इंटरनेशनल, दिल्ली और याचिकाकर्ता के बीच हुए कथित लेनदेन के लिए इनपुट टैक्स क्रेडिट के लिए अधिकारी है।

10. पात्रता, शर्त और इनपुट टैक्स क्रेडिट के लाभ के प्रश्न में जाने से पहले, मामले की बेहतर विवेचना के लिए धारा 16 और धारा 41 के असंशोधित प्रावधानों पर विचार आवश्यक है, जिन्हें यहां नीचे दिया गया है:-

"16. इनपुट टैक्स क्रेडिट लेने के लिए पात्रता और शर्तें

(1) प्रत्येक पंजीकृत व्यक्ति, ऐसी शर्तों और प्रतिबंधों के अधीन जो निर्धारित किए जा सकते हैं और धारा 49 में निर्दिष्ट तरीके से, माल या सेवाओं या दोनों की किसी भी आपूर्ति पर लगाए गए इनपुट कर की क्रेडिट लेने का अधिकारी होगा, जो उसे उसके व्यवसाय के दौरान या उसकी आगे बढ़ने में उपयोग किए जाते हैं या उपयोग किए जाने का इरादा है और कहा गया राशि ऐसे व्यक्ति के इलेक्ट्रॉनिक क्रेडिट लेजर में जमा की जाएगी।

(2) इस धारा में निहित किसी भी बात के बाद भी, कोई भी पंजीकृत व्यक्ति माल या सेवाओं या दोनों की किसी भी आपूर्ति के संबंध में किसी भी इनपुट कर की क्रेडिट का अधिकारी नहीं होगा, जब तक कि, –
(ए) वह इस अधिनियम के अधीन पंजीकृत एक आपूर्तिकर्ता द्वारा जारी कर चालान या डेबिट नोट, या ऐसे अन्य कर भुगतान अभिलेखों के कब्जे में है, जो निर्धारित किए जा सकते हैं;

[(एए) खंड (ए) में संदर्भित चालान या डेबिट नोट का विवरण आपूर्तिकर्ता द्वारा बाहरी आपूर्ति के बयान में प्रस्तुत किया गया है और ऐसे विवरण को धारा 37 के अधीन निर्दिष्ट तरीके से ऐसे चालान या डेबिट नोट के प्राप्तकर्ता को सूचित किया गया है;]

(बी) उसने माल या सेवाएं या दोनों प्राप्त किए हैं।
[स्पष्टीकरण: इस खंड के उद्देश्यों के लिए, यह माना जाएगा कि पंजीकृत व्यक्ति ने माल या, जैसा भी हो, सेवाएं प्राप्त की हैं –

(i) जहां माल आपूर्तिकर्ता द्वारा ऐसे पंजीकृत व्यक्ति के निर्देश पर एक प्राप्तकर्ता या किसी अन्य व्यक्ति को दिया जाता है, चाहे एक एजेंट के रूप में या अन्यथा कार्य करते हुए, माल की आवाजाही से पहले या दौरान, या तो माल के शीर्षक के अभिलेखों के हस्तांतरण के माध्यम से या अन्यथा;

(ii) जहां सेवाएं आपूर्तिकर्ता द्वारा ऐसे पंजीकृत व्यक्ति के निर्देश पर और उसके खाते पर किसी व्यक्ति को प्रदान की जाती हैं।];
[(बीए) धारा 38 के अधीन ऐसे पंजीकृत व्यक्ति को सूचित की गई कहा गई आपूर्ति के संबंध में इनपुट टैक्स क्रेडिट का विवरण प्रतिबंधित नहीं किया गया है;]

(सी) [धारा 41 [***]] के प्रावधानों के अधीन, ऐसी आपूर्ति के संबंध में लगाया गया कर वास्तव में सरकार को भुगतान किया गया है, या तो नकद में या कहा गई आपूर्ति के संबंध में स्वीकार्य इनपुट टैक्स क्रेडिट के उपयोग के माध्यम से; और

(डी) उसने धारा 39 के अधीन रिटर्न प्रस्तुत किया है:

बशर्ते कि जहां एक चालान के सापेक्ष माल लॉट या किश्तों में प्राप्त होता है, पंजीकृत व्यक्ति अंतिम लॉट या किश्त की प्राप्ति पर क्रेडिट लेने का अधिकारी होगा:

आगे यह भी कि जहां एक प्राप्तकर्ता माल या सेवाओं या दोनों के आपूर्तिकर्ता को, उन आपूर्तियों के अतिरिक्त जिन पर कर रिवर्स चार्ज आधार पर देय है, आपूर्तिकर्ता द्वारा चालान जारी करने की तिथि से एक सौ अस्सी दिनों की अवधि के भीतर कर के साथ देय आपूर्ति के मूल्य की राशि का भुगतान करने में विफल रहता है, तो प्राप्तकर्ता द्वारा लाभ उठाए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट के बराबर राशि [धारा 50 के अधीन देय ब्याज के साथ उसके द्वारा भुगतान की जाएगी], ऐसे तरीके से जो निर्धारित किया जा सकता है::

अग्रेतर यह भी कि प्राप्तकर्ता माल या सेवाओं या दोनों की आपूर्ति के मूल्य की राशि के साथ उस पर देय कर के साथ [आपूर्तिकर्ता को] उसके द्वारा किए गए भुगतान पर इनपुट कर की क्रेडिट का लाभ उठाने का अधिकारी होगा।

*(3) ********

*(4) *******

41. इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा और उसकी अनंतिम स्वीकृति

(1) प्रत्येक पंजीकृत व्यक्ति, ऐसी शर्तों और प्रतिबंधों के अधीन जो निर्धारित किए जा सकते हैं, अपने रिटर्न में स्व-मूल्यांकित, पात्र इनपुट कर की क्रेडिट लेने का अधिकारी होगा और ऐसी राशि अनंतिम आधार पर उसके इलेक्ट्रॉनिक क्रेडिट लेजर में जमा की जाएगी।

(2) उप-धारा (1) में संदर्भित क्रेडिट का उपयोग केवल उक्त उप-धारा में संदर्भित रिटर्न के अनुसार स्व-मूल्यांकित आउटपुट कर के भुगतान के लिए किया जाएगा।"

11. धारा 16 की उप-धारा (2) एक *नॉन ऑब्सटेंट* खंड है, जो प्रावधानित करती है कि धारा 16 में निहित किसी भी बात के बाद भी, कोई भी पंजीकृत डीलर माल या सेवाओं या दोनों की किसी भी आपूर्ति के संबंध में किसी भी इनपुट कर की क्रेडिट का अधिकारी नहीं होगा, जब तक कि,–(ए) वह अधिनियम के अधीन पंजीकृत आपूर्तिकर्ता द्वारा जारी कर चालान या डेबिट नोट, या ऐसे अन्य कर भुगतान अभिलेखों के कब्जे में है जो

अनवीक्षित

निर्धारित किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, (बी) उसने माल या सेवाएं या दोनों प्राप्त किए हैं और (सी) धारा 41 या 43ए के प्रावधानों के अधीन, ऐसी आपूर्ति के संबंध में लगाया गया कर वास्तव में सरकार को भुगतान किया गया है, या तो नकद में या कहा गई आपूर्ति के संबंध में स्वीकार्य इनपुट टैक्स क्रेडिट के उपयोग के माध्यम से। अंत में, (डी) उसने धारा 39 के अधीन रिटर्न प्रस्तुत किया है।

12. धारा 16(2) में संशोधन किया गया था और उप-धारा (2)(सी) को इस हद तक संशोधित किया गया था कि "या धारा 43ए" शब्दों को वित्त अधिनियम, 2022 द्वारा दिनांक 01.10.2022 से हटा दिया गया था। इसके अतिरिक्त, धारा 41 जो पहले "इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा और उसकी अनंतिम स्वीकृति" से संबंधित थी, को भी वित्त अधिनियम, 2022 द्वारा दिनांक 01.10.2022 से "इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ उठाना" के साथ प्रतिस्थापित किया गया था।

13. धारा 41 का संशोधित प्रावधान और धारा 43ए जिसे हटा दिया गया था, यहां नीचे दिए गए हैं:-

***"41. इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ उठाना**–(1) प्रत्येक पंजीकृत व्यक्ति, ऐसी शर्तों और प्रतिबंधों के अधीन जो निर्धारित किए जा सकते हैं, अपने रिटर्न में स्व-मूल्यांकित, पात्र इनपुट कर की क्रेडिट का लाभ उठाने का अधिकारी होगा और ऐसी राशि उसके इलेक्ट्रॉनिक क्रेडिट लेजर में जमा की जाएगी।*

(2) माल या सेवाओं या दोनों की ऐसी आपूर्तियों के संबंध में एक पंजीकृत व्यक्ति द्वारा उप-धारा (1) के अधीन लाभ उठाए गए इनपुट कर की क्रेडिट, जिसका देय कर आपूर्तिकर्ता द्वारा भुगतान नहीं किया गया है, को लागू ब्याज के साथ, कहा गया व्यक्ति द्वारा ऐसे तरीके से निरस्त कर दिया जाएगा, जो निर्धारित किया जा सकता है:

बशर्ते कि जहां कहा गया आपूर्तिकर्ता उपरोक्त आपूर्तियों के संबंध में देय कर का भुगतान करता है, कहा गया पंजीकृत व्यक्ति उसके द्वारा निरस्त कर दी गई क्रेडिट की राशि को ऐसे तरीके से फिर से लाभ उठा सकता है, जो निर्धारित किया जा सकता है।]

"43ए. रिटर्न प्रस्तुत करने और इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ उठाने की प्रक्रिया

(1) धारा 16 की उप-धारा (2), धारा 37 या धारा 38 में निहित किसी भी बात के बाद भी, प्रत्येक पंजीकृत व्यक्ति धारा 39 की उप-धारा (1) के अधीन प्रस्तुत रिटर्न में आपूर्तिकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत आपूर्तियों के विवरण को सत्यापित, मान्य, संशोधित या हटाएगा।

(2) धारा 41, धारा 42 या धारा 43 में निहित किसी भी बात के बाद भी, प्राप्तकर्ता द्वारा इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ उठाने और उसके सत्यापन की प्रक्रिया ऐसी होगी जो निर्धारित की जा सकती है।

(3) प्राप्तकर्ता द्वारा इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ उठाने के उद्देश्यों के लिए आपूर्तिकर्ता द्वारा सामान्य पोर्टल पर बाहरी आपूर्तियों का विवरण प्रस्तुत करने की प्रक्रिया ऐसी होगी जो निर्धारित की जा सकती है।

(4) उप-धारा (3) के अधीन प्रस्तुत नहीं की गई बाहरी आपूर्तियों के संबंध में इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ उठाने की प्रक्रिया ऐसी होगी, जो निर्धारित की जा सकती है और ऐसी प्रक्रिया में इनपुट टैक्स क्रेडिट की अधिकतम राशि शामिल हो सकती है, जो इस प्रकार लाभ उठाई जा सकती है, जो उक्त उप-धारा के अधीन आपूर्तिकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत विवरण के आधार पर उपलब्ध इनपुट टैक्स क्रेडिट के बीस प्रतिशत से अधिक नहीं होगी।

(5) बाहरी आपूर्तियों में निर्दिष्ट कर की राशि जिसके लिए विवरण आपूर्तिकर्ता द्वारा उप-धारा (3) के अधीन प्रस्तुत किया गया है, उसके द्वारा अधिनियम के प्रावधानों के अधीन देय कर माना जाएगा।

(6) एक आपूर्ति के आपूर्तिकर्ता और प्राप्तकर्ता कर का भुगतान करने या इनपुट टैक्स क्रेडिट का भुगतान करने के लिए संयुक्त रूप से और अलग-अलग उत्तरदायी होंगे, जैसा भी हो, बाहरी आपूर्तियों के संबंध में जिसके लिए विवरण उप-धारा (3) या उप-धारा (4) के अधीन प्रस्तुत किए गए हैं लेकिन उसका रिटर्न प्रस्तुत नहीं किया गया है।

(7) उप-धारा (6) के उद्देश्यों के लिए, वसूली ऐसे तरीके से की जाएगी, जो निर्धारित की जा सकती है और ऐसी प्रक्रिया कर या इनपुट टैक्स क्रेडिट की एक राशि की गैर-वसूली के लिए प्रदान कर सकती है, जो गलत तरीके से लाभ उठाई गई है, जो एक हजार रुपये से अधिक नहीं है।

(8) बाहरी आपूर्तियों के संबंध में कर राशि की प्रक्रिया, सुरक्षा उपाय और सीमा, जिसका विवरण उप-धारा (3) के अधीन एक पंजीकृत व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है;-

(i) पंजीकरण लेने के छह महीने के भीतर;

(ii) जिसने कर के भुगतान में चूक की है और जहां ऐसी चूक ऐसी चूक की गई राशि के भुगतान की नियत तिथि से दो महीने से अधिक समय तक जारी रही है,
ऐसा होगा जो निर्धारित किया जा सकता है।"

14. हालांकि, वर्तमान मामले में, विवाद उस लेनदेन से संबंधित है जो वर्ष 2018 में हुआ था और केवल वे प्रावधान, जो उस समय लागू थे, विचार के लिए प्रासंगिक हैं, लेकिन मामले की बेहतर विवेचना के लिए संशोधन के बाद के प्रावधानों पर एक संक्षिप्त विचार भी आवश्यक है।

15. इस प्रकार, केंद्रीय अधिनियम और राज्य अधिनियम, 2017 के अधीन इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ उठाने की योजना अधिनियम के अध्याय V के अधीन प्रदान की गई है और धारा 16 इनपुट टैक्स क्रेडिट लेने के लिए पात्रता और शर्त निर्धारित करती है। जबकि धारा 16 की उप-धारा (1) प्रावधानित करती है कि प्रत्येक पंजीकृत व्यक्ति शर्तों और प्रतिबंधों के अधीन, जो निर्धारित किए जा सकते हैं, माल या सेवाओं या दोनों की किसी भी आपूर्ति पर लगाए गए इनपुट कर की क्रेडिट लेने का अधिकारी होगा, जो उसे उसके व्यवसाय के दौरान या उसकी आगे बढ़ने में उपयोग किए जाते हैं या उपयोग किए जाने का इरादा है। उक्त राशि ऐसे व्यक्ति के इलेक्ट्रॉनिक क्रेडिट लेजर में जमा की जाएगी।

16. हालांकि, उप-धारा (2) शक्ति को प्रतिबंधित करती है और इनपुट टैक्स क्रेडिट लेने के लिए पात्रता और शर्त निर्धारित करती है। उप-धारा (2)(सी) स्पष्ट रूप से निर्धारित करती है कि धारा 41 या 43ए (जो संशोधन से पहले था) के प्रावधानों के अधीन, ऐसी आपूर्ति के संबंध में लगाया गया कर वास्तव में आपूर्तिकर्ता द्वारा सरकार को भुगतान किया गया है। यह शर्त स्पष्ट रूप से आपूर्तिकर्ता द्वारा जमा के अधीन इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ लेने की शक्ति को प्रतिबंधित करती है।

17. धारा 16 की योजना को 2017 के अधिनियम की धारा 41 के साथ सुसंगति में पढ़ा जाना चाहिए, जो संशोधन से पहले इनपुट टैक्स क्रेडिट के दावे और उसकी अनंतिम स्वीकृति के लिए प्रावधानित करती थी। इसने प्रदान किया कि शर्त और प्रतिबंध के अधीन जो निर्धारित किए जा सकते हैं, प्रत्येक पंजीकृत व्यक्ति पात्र इनपुट कर की क्रेडिट लेने का अधिकारी था, जिसका अर्थ है कि इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ उठाना शर्तों और प्रतिबंधों के अधीन था, जो धारा 16 के अधीन प्रदान किए गए थे।

18. वित्त अधिनियम 2022 से पहले, जिसके द्वारा धारा 43ए को विलोपित कर दिया गया था, रिटर्न प्रस्तुत करने और इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ उठाने की प्रक्रिया के लिए प्रदान किया गया था। यह भी एक *नॉन ऑब्सटेंट* खंड से शुरू होता है और प्रावधानित करता है कि प्रत्येक पंजीकृत व्यक्ति धारा 39 की उप-धारा (1) के अधीन प्रस्तुत रिटर्न में आपूर्तिकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत आपूर्तियों के विवरण को सत्यापित, मान्य, संशोधित या हटाएगा। इस प्रकार, आईटीसी का लाभ प्राप्त करने की आवश्यकता को धारा 16 के प्रकाश में धारा 41 के असंशोधित प्रावधान और धारा 43ए के प्रावधानों के साथ पढ़ा जाना है, इसे विलोपित किए जाने से पहले।

19. वर्तमान प्रकरण में, याचिकाकर्ता वर्ष 2018 में श्री राधेय इंटरनेशनल द्वारा की गई आपूर्ति के आधार पर आईटीसी का दावा कर रहा है। स्वीकृत रूप से, आपूर्तिकर्ता द्वारा केवल कर चालान जारी किया गया था। कथित रूप से लगाया गया कर आपूर्तिकर्ता द्वारा कभी भी जमा नहीं किया गया था और धारा 16(2)(सी) का कोई अनुपालन नहीं किया गया था। आईटीसी की पात्रता और लाभ उठाना आपूर्तिकर्ता द्वारा कर की जमा के अधीन है, जो उप-धारा (2)(सी) के पठन से स्पष्ट है।

20. प्रावधान सरल और स्पष्ट है, और आपूर्तिकर्ता द्वारा सरकार को कर के वास्तविक भुगतान के संबंध में कोई अस्पष्टता नहीं है। एक बार जब आपूर्तिकर्ता ने धारा 16 की उप-धारा (2)(सी) के अधीन अनिवार्य कर को जमा नहीं किया है, तो याचिकाकर्ता क्रेता लाभ का दावा नहीं कर सकता है।

21. **मे. सॉल्वी एंटरप्राइजेज (उपरोक्त)** में, समन्वय पीठ ने अधिनियम की धारा 16 और 74 पर विचार करते समय इस आधार पर आईटीसी का लाभ देते समय उप-धारा (2)(सी) के प्रावधान को नोट नहीं किया था कि विक्रेता डीलर का पंजीकरण बाद की तिथि को रद्द कर दिया गया था, जब लेनदेन स्वीकृत रूप से हुआ था।

22. निर्णय के पठन से, ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 16 की उप-धारा (2)(सी) के प्रावधानों को प्रकरण में उपस्थित राज्य अधिवक्ता द्वारा न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया गया था।

23. हालांकि, **मे. शिव ट्रेडिंग (उपरोक्त)** में, समन्वय पीठ ने समान बिन्दु पर विचार करते समय आईटीसी का लाभ देने से इनकार कर दिया था और **मे. ईकॉम गिल कॉफी ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में प्रस्तुत माननीय शीर्ष न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया था और निम्नानुसार धारित किया था:-

*"9. अधिकारियों ने स्पष्ट रूप से इस तथ्य को दर्ज किया है कि याचिकाकर्ता माल की वास्तविक आवाजाही दिखाने में विफल रहा और इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा उद्धृत निर्णय, जैसा कि पूर्ववर्ती प्रस्तरों में संदर्भित किया गया है, याचिकाकर्ता के लिए सहायक नहीं हैं। याचिकाकर्ता **मे. ईकॉम गिल कॉफी ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड** (उपरोक्त) में शीर्ष न्यायालय के निर्णयों से विभेद नहीं कर सका।*

*10. शीर्ष न्यायालय ने **मे. ईकॉम गिल कॉफी ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड** (उपरोक्त) में निम्नानुसार निर्णीत किया है:-*

9.1 अतः, धारा 70 के प्रावधान, ऊपर उद्धृत, अपने सरल शब्दों में स्पष्ट रूप से निर्धारित करते हैं कि यह सिद्ध करने का भार कि आईटीसी दावा सही है, ऐसे आईटीसी का दावा करने वाले क्रेता डीलर पर है। यह सिद्ध करने का भार कि आईटीसी दावा सही है, पूरी तरह से निर्धारिती पर है, जिसे उक्त भार का निर्वहन करना है। केवल इसलिए कि ऐसे आईटीसी का दावा करने वाला डीलर दावा करता है कि वह एक सद्भावी क्रेता है, पर्याप्त और समुचित नहीं है। आईटीसी की शुद्धता को सिद्ध करने का भार ऐसे आईटीसी का दावा करने वाले डीलर पर रहता है। ऐसा सबूत का भार राजस्व पर स्थानांतरित नहीं हो सकता है। चालानों का केवल उत्पादन या चेक द्वारा किया गया भुगतान पर्याप्त नहीं है और केवीएटी अधिनियम, 2003 की धारा 70 के अधीन डाले गए सबूत के भार को निर्वहन करना नहीं कहा जा सकता है। आईटीसी का दावा करने वाले डीलर को संदेह से परे वास्तविक लेनदेन सिद्ध करना होगा, जो विक्रेता डीलर का नाम और पता, माल वितरित करने

वाले वाहन का विवरण, माल भाड़ा शुल्क का भुगतान, माल की डिलीवरी लेने की स्वीकृति, कर चालान और भुगतान विवरण आदि प्रस्तुत करके सिद्ध किया जा सकता है। उपरोक्त जानकारी कर चालान, भुगतान के विवरण आदि के अतिरिक्त होगी। वास्तव में, यदि कोई डीलर खरीद पर इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा करता है, तो ऐसे डीलर/क्रेता को ऊपर संदर्भित विवरण प्रस्तुत करके माल की वास्तविक भौतिक आवाजाही, लेनदेन की वास्तविकता को सिद्ध और स्थापित करना होगा और केवल कर चालानों का उत्पादन आईटीसी का दावा करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। वास्तव में, लेनदेन की वास्तविकता को सिद्ध किया जाना है क्योंकि केवीएटी अधिनियम, 2003 की धारा 70 के अनुसार लेनदेन की वास्तविकता को सिद्ध करने का भार क्रेता डीलर पर होगा। पुनरावृत्ति की कीमत पर, यह देखा और निर्णीत किया गया कि चालानों का केवल उत्पादन और/या चेक द्वारा भुगतान पर्याप्त नहीं है और अधिनियम, 2003 की धारा 70 के अनुसार भार को सिद्ध करना नहीं कहा जा सकता है।

11. इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय ने मे. मलिक ट्रेडर्स (उपरोक्त) में निम्नानुसार निर्णीत किया है:-

17. पटना उच्च न्यायालय ने मे. आस्था एंटरप्राइजेज (उपरोक्त) के प्रकरण में निम्नानुसार धारित किया है:-

"9. .... यह निर्णीत किया गया था कि जो डीलर इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा करता है, उसे संदेह से परे, विक्रेता डीलर का नाम और पता, माल वितरित करने वाले वाहन का विवरण, माल भाड़ा शुल्क का भुगतान, माल की डिलीवरी लेने की स्वीकृति, कर चालान और भुगतान विवरण आदि प्रस्तुत करके वास्तविक लेनदेन सिद्ध करना होगा। यह भी निर्णीत किया गया था कि खरीद पर इनपुट टैक्स क्रेडिट के दावे को बनाए रखने के लिए, क्रेता डीलर को ऊपर संदर्भित विवरण प्रस्तुत करके माल की वास्तविक भौतिक आवाजाही और लेनदेन की वास्तविकता को सिद्ध और स्थापित करना होगा और केवल कर चालानों का उत्पादन आईटीसी का दावा करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा।"

18. इसी तरह, इस न्यायालय ने आयुक्त वाणिज्यिक कर बनाम मे. रामवे फूड्स लिमिटेड (उपरोक्त) में निर्णीत किया है कि लाभ का दावा करने की प्राथमिक जिम्मेदारी डीलर पर है कि वह माल की वास्तविक भौतिक आवाजाही, लेनदेन की वास्तविकता आदि को सिद्ध और स्थापित करे और यदि डीलर माल की वास्तविक भौतिक आवाजाही को सिद्ध करने में विफल रहता है, तो लाभ नहीं दिया जा सकता है।

19. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा मे. एलजीडब्लू इंडस्ट्रीज लिमिटेड व अन्य (उपरोक्त) और संचिता कुंडू व अन्य (उपरोक्त) में कलकत्ता उच्च न्यायालय का भरोसा किया गया निर्णय याचिकाकर्ता के लिए कोई सहायता नहीं है क्योंकि हाल ही में माननीय शीर्ष न्यायालय ने मे. ईकॉम गिल कॉफी ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) में विशेष रूप से निर्णीत किया है कि वास्तविक लेनदेन और माल की भौतिक आवाजाही को संदेह से परे सिद्ध और स्थापित करने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा दायित्व को निर्वहन किया जाना है। लेकिन वर्तमान प्रकरण में,

याचिकाकर्ता माल की वास्तविक भौतिक आवाजाही और लेनदेन की वास्तविकता को सिद्ध और स्थापित करने में विफल रहा है, जैसे कि कार्यवाही सही तरीके से शुरू की गई है।

20. इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आशीष ट्रेडिंग कंपनी (उपरोक्त) में इस न्यायालय का भरोसा किया गया प्रकरण भी याचिकाकर्ता के लिए कोई सहायता नहीं है क्योंकि उस मामले में प्रस्तर 14 में, न्यायालय ने तथ्य का निष्कर्ष दर्ज किया है कि प्रथम अपीलीय अधिकारी का आदेश संक्षिप्त है क्योंकि कोई विवरण प्रदान नहीं किया गया था। लेकिन वर्तमान मामले के तथ्य भिन्न हैं जैसा कि पिछले प्रस्तरों में कहा गया है और ईकॉम गिल कॉफी ट्रेडिविंग प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) में शीर्ष न्यायालय का हालिया निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों में पूरी तरह से लागू है।

21. ऊपर बताए गए तथ्यों को देखते हुए, इस न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेशों में कोई हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। रिट याचिका विफल होती है और तदनुसार निरस्त की जाती है।

12. अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता संदेह से परे वास्तविक लेनदेन, माल की वास्तविक भौतिक आवाजाही के साथ-साथ लेनदेन की वास्तविकता को सिद्ध और स्थापित करने के लिए अपने दायित्व को निर्वहन करने में विफल रहा और इस प्रकार, जीएसटी अधिनियम की धारा 74 के अधीन याचिकाकर्ता के सापेक्ष कार्यवाही सही तरीके से शुरू की गई है।"

24. माननीय शीर्ष न्यायालय ने **मे. ईकॉम गिल कॉफी ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त)** में कर्नाटक मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2003 की धारा 70 के प्रावधानों पर विचार करते समय आईटीसी का लाभ देने पर विचार करने का अवसर मिला था और निम्नानुसार निर्णीत किया था:-

"9.1 इस प्रकार, धारा 70 के प्रावधान, ऊपर उद्धृत, अपने सरल शब्दों में स्पष्ट रूप से निर्धारित करते हैं कि यह सिद्ध करने का भार कि आईटीसी दावा सही है, ऐसे आईटीसी का दावा करने वाले क्रेता डीलर पर है। यह सिद्ध करने का भार कि आईटीसी दावा सही है, पूरी तरह से निर्धारिती पर है जिसे उक्त भार को निर्वहन करना है। केवल इसलिए कि ऐसे आईटीसी का दावा करने वाला डीलर दावा करता है कि वह एक सद्भावी क्रेता है, पर्याप्त और समुचित नहीं है। आईटीसी की शुद्धता को सिद्ध करने का भार ऐसे आईटीसी का दावा करने वाले डीलर पर रहता है। ऐसा सबूत का भार राजस्व पर स्थानांतरित नहीं हो सकता है। चालानों का केवल उत्पादन या चेक द्वारा किया गया भुगतान पर्याप्त नहीं है और केवीएटी अधिनियम, 2003 की धारा 70 के अधीन डाले गए सबूत के भार को निर्वहन करना नहीं कहा जा सकता है। आईटीसी का दावा करने वाले डीलर को संदेह से परे वास्तविक लेनदेन सिद्ध करना होगा जो विक्रेता डीलर का नाम और पता, माल वितरित करने वाले वाहन का विवरण, माल भाड़ा शुल्क का भुगतान, माल की डिलीवरी लेने की स्वीकृति, कर चालान और भुगतान विवरण आदि प्रस्तुत करके सिद्ध किया जा सकता है। उपरोक्त जानकारी कर चालान, भुगतान के विवरण आदि के अतिरिक्त होगी। वास्तव में, यदि कोई डीलर खरीद पर इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा करता है,

तो ऐसे डीलर/क्रेता को ऊपर संदर्भित विवरण प्रस्तुत करके माल की वास्तविक भौतिक आवाजाही, लेनदेन की वास्तविकता को सिद्ध और स्थापित करना होगा और केवल कर चालानों का उत्पादन आईटीसी का दावा करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। वास्तव में, लेनदेन की वास्तविकता को सिद्ध किया जाना है क्योंकि केवीएटी अधिनियम, 2003 की धारा 70 के अनुसार लेनदेन की वास्तविकता को सिद्ध करने का भार क्रय करने वाले डीलर पर होगा। पुनरावृत्ति की कीमत पर, यह देखा गया और माना गया कि चालानों का केवल उत्पादन और/या चेक द्वारा भुगतान पर्याप्त नहीं है और अधिनियम, 2003 की धारा 70 के अनुसार भार को सिद्ध करना नहीं कहा जा सकता है।"

25. 2017 के अधिनियम की धारा 74 [वित्तीय वर्ष 2023-24 तक की अवधि से संबंधित] कर के निर्धारण के लिए प्रावधानित करती है, जो भुगतान नहीं किया गया या कम भुगतान किया गया या गलती से वापस किया गया या इनपुट टैक्स क्रेडिट जो धोखाधड़ी या किसी जानबूझकर गलत बयान या तथ्य के दमन के कारण गलत तरीके से लाभ उठाया या उपयोग किया गया। प्रासंगिक प्रावधान यहां नीचे दिया गया है:-

"74. कर का निर्धारण [,वित्तीय वर्ष 2023-24 तक की अवधि से संबंधित,] जो भुगतान नहीं किया गया या कम भुगतान किया गया या गलती से वापस किया गया या इनपुट टैक्स क्रेडिट जो धोखाधड़ी या किसी जानबूझकर-गलत बयान या तथ्यों के दमन के कारण गलत तरीके से लाभ उठाया या उपयोग किया गया

(1) जहां उचित अधिकारी को ऐसा प्रतीत होता है कि कोई कर भुगतान नहीं किया गया है या कम भुगतान किया गया है या गलती से वापस किया गया है या जहां इनपुट टैक्स क्रेडिट धोखाधड़ी, या किसी जानबूझकर-गलत बयान या कर से बचने के लिए तथ्यों के दमन के कारण गलत तरीके से लाभ उठाया या उपयोग किया गया है, तो वह कर के साथ प्रभार्य व्यक्ति पर नोटिस जारी करेगा, जो इस प्रकार भुगतान नहीं किया गया है या जो इस प्रकार कम भुगतान किया गया है या जिसे गलती से वापसी की गई है, या जिसने इनपुट टैक्स क्रेडिट का गलत तरीके से लाभ उठाया या उपयोग किया है, उससे यह कहने के लिए कह रहा है कि उसे नोटिस में निर्दिष्ट राशि के साथ धारा 50 के अधीन उस पर देय ब्याज और नोटिस में निर्दिष्ट कर के बराबर जुर्माना क्यों नहीं भुगतान करना चाहिए।

(2) उचित अधिकारी उप-धारा (10) में आदेश जारी करने के लिए निर्दिष्ट समय सीमा से कम से कम छह महीने पहले उप-धारा (1) के अधीन नोटिस जारी करेगा।

(3) जहां उप-धारा (1) के अधीन किसी अवधि के लिए नोटिस जारी किया गया है, तो उचित अधिकारी कर के साथ प्रभार्य व्यक्ति पर एक बयान जारी कर सकता है, जिसमें उप-धारा (1) के अधीन कवर की गई अवधियों के अतिरिक्त ऐसी अवधियों के लिए कर का भुगतान नहीं किया गया या कम भुगतान किया गया या गलती से वापस किया गया या इनपुट टैक्स क्रेडिट गलत तरीके से लाभ उठाया या उपयोग किया गया का विवरण शामिल है।

(4) उप-धारा (3) के अधीन बयान की सेवा को धारा 73 की उप-धारा (1) के अधीन नोटिस की सेवा माना जाएगा, इस शर्त के अधीन कि उक्त बयान में भरोसा किए गए आधार, धोखाधड़ी के आधार को छोड़कर, या किसी जानबूझकर-गलत बयान या कर से बचने के लिए तथ्यों के दमन, उप-धारा (1) के अधीन कवर की गई अवधियों के अतिरिक्त अवधियों के लिए, वही हैं जो पहले नोटिस में उल्लिखित हैं।

(5) कर के साथ प्रभार्य व्यक्ति उप-धारा (1) के अधीन नोटिस की सेवा से पहले, धारा 50 के अधीन देय ब्याज के साथ कर की राशि और ऐसे कर के पंद्रह प्रतिशत के बराबर जुर्माना का भुगतान कर सकता है, अपने स्वयं के ऐसे कर के निर्धारण के आधार पर या उचित अधिकारी द्वारा निर्धारित कर और उचित अधिकारी को लिखित रूप में ऐसे भुगतान की सूचना दे सकता है।

(6) उचित अधिकारी, ऐसी जानकारी की प्राप्ति पर, इस प्रकार भुगतान किए गए कर या इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के प्रावधानों के अधीन देय किसी जुर्माने के संबंध में उप-धारा (1) के अधीन कोई नोटिस जारी नहीं करेगा।

(7) जहां उचित अधिकारी की राय है कि उप-धारा (5) के अधीन भुगतान की गई राशि वास्तव में देय राशि से कम है, तो वह उप-धारा (1) में प्रदान की गई नोटिस जारी करने के लिए आगे बढ़ेगा, ऐसी राशि के संबंध में जो वास्तव में देय राशि से कम है।

(8) जहां उप-धारा (1) के अधीन कर के साथ प्रभार्य कोई व्यक्ति नोटिस जारी होने के तीस दिनों के भीतर धारा 50 के अधीन देय ब्याज के साथ उक्त कर और ऐसे कर के पच्चीस प्रतिशत के बराबर जुर्माना का भुगतान करता है, तो उक्त नोटिस के संबंध में सभी कार्यवाही समाप्त मानी जाएगी।

(9) उचित अधिकारी, कर के साथ प्रभार्य व्यक्ति द्वारा किए गए प्रत्यावेदन, यदि कोई हो, पर विचार करने के बाद, ऐसे व्यक्ति से देय कर, ब्याज और जुर्माने की राशि निर्धारित करेगा और एक आदेश जारी करेगा।

(10) उचित अधिकारी उस वित्तीय वर्ष के लिए वार्षिक रिटर्न प्रस्तुत करने की नियत तिथि से पांच वर्ष की अवधि के भीतर उप-धारा (9) के अधीन आदेश जारी करेगा जिससे कर का भुगतान नहीं किया गया या कम भुगतान किया गया या इनपुट टैक्स क्रेडिट गलत तरीके से लाभ उठाया या उपयोग किया गया से संबंधित है या गलत वापसी की तिथि से पांच वर्ष के भीतर।

(11) जहां उप-धारा (9) के अधीन जारी आदेश के साथ सेवित कोई व्यक्ति आदेश के संचार के तीस दिनों के भीतर धारा 50 के अधीन उस पर देय ब्याज के साथ कर और ऐसे कर के पचास प्रतिशत के बराबर जुर्माना का भुगतान करता है, तो उक्त नोटिस के संबंध में सभी कार्यवाही समाप्त मानी जाएगी।

अनुवादित

[(12) इस धारा के प्रावधान वित्तीय वर्ष 2023-24 तक की अवधि से संबंधित कर के निर्धारण के लिए लागू होंगे।]

स्पष्टीकरण 1: धारा 73 और इस धारा के उद्देश्यों के लिए, –

(i) अभिव्यक्ति "उक्त नोटिस के संबंध में सभी कार्यवाही" में धारा 132 के अधीन कार्यवाही शामिल नहीं होगी;

(ii) जहां समान कार्यवाही के अधीन नोटिस कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी मुख्य व्यक्ति और कुछ अन्य व्यक्तियों को जारी किया जाता है, और मुख्य व्यक्ति के सापेक्ष ऐसी कार्यवाही धारा 73 या धारा 74 के अधीन समाप्त हो गई है, तो [धारा 122 और 125] के अधीन जुर्माना देने के लिए उत्तरदायी सभी व्यक्तियों के सापेक्ष कार्यवाही समाप्त मानी जाती है।
[***]"

26. इस प्रकार, धारा 74 के पठन से, यह स्पष्ट है कि जहां अधिकारी यह पाते हैं कि कोई कर भुगतान नहीं किया गया है या गलती से वापस किया गया है या इनपुट टैक्स क्रेडिट को कारण या धोखाधड़ी या जानबूझकर गलत बयान से गलत तरीके से लाभ उठाया या उपयोग किया गया है, कार्यवाही शुरू की जाती है।

27. वर्तमान मामले में, धारा 74(1) के अधीन नोटिस, कर लगाने वाले अधिकारियों द्वारा जारी किया गया था, जब यह पाया गया था कि आपूर्तिकर्ता, श्री राधेय इंटरनेशनल का पंजीकरण रद्द कर दिया गया था और उसके द्वारा कोई कर जमा नहीं किया गया था, जबकि आपूर्तिकर्ता और क्रेता के बीच कथित लेनदेन पर आईटीसी का दावा किया गया था।

28. याचिकाकर्ता कर चालान के अतिरिक्त कारण बताओ नोटिस के अनुसरण में कर लगाने वाले अधिकारियों के समक्ष कोई अभिलेख नहीं प्रस्तुत कर सका, जो यह प्रदर्शित करे कि आपूर्तिकर्ता ने माल की आपूर्ति की थी और धारा 16(2)(सी) के अधीन अनिवार्य रूप से सरकार के पास कर जमा किया था।

29. धारा 74 के अधीन शुरू की गई कार्यवाही को अधिनियम की धारा 16(2) के साथ सुसंगति में पढ़ा जाना है। इनपुट टैक्स क्रेडिट के लिए पात्रता और शर्त के लिए पूरी योजना विधायिका द्वारा धारा 16 के अधीन प्रदान की गई है। हालांकि, विभिन्न जांच और संतुलन डाले गए हैं और आईटीसी का लाभ उठाने के लिए प्रक्रिया भी निर्धारित की गई है जो धारा 41 और पहले हटाई गई धारा 43ए के अधीन हैं। धारा 74 एक तंत्र है, जहां कोई भी इनपुट टैक्स क्रेडिट जो गलत तरीके से लाभ उठाया गया है, सरकार द्वारा ब्याज और जुर्माने के साथ वापस लिया जा सकता है।

30. अधिनियम के अधीन योजना धोखाधड़ी वाले लेनदेन और आईटीसी के फर्जी दावों को रोकने के लिए प्रदान की गई है। आईटीसी का लाभ उठाने से पहले पक्षों के बीच हुए लेनदेन को मिलाने के लिए विभिन्न प्रावधानों के माध्यम से सुरक्षा उपाय लागू किए गए हैं। इन सुरक्षा उपायों के होने के बाद भी, ऐसे मामले हैं जहां आईटीसी को गलत बयान या तथ्यों के दमन द्वारा धोखाधड़ी से प्राप्त किया जाता है।

31. यह उन प्रकरणों में से एक है, जहां आपूर्तिकर्ता फर्म का पंजीकरण रद्द कर दिया गया था और जांच पर, यह पाया गया कि आपूर्तिकर्ता द्वारा सरकार के पास कोई कर जमा नहीं किया गया था, जैसा कि धारा 16 की उप-धारा (2)(सी) के अधीन आवश्यक था, इससे पहले कि आईटीसी का दावा किया जाए। याचिकाकर्ता कर लगाने वाले अधिकारियों के समक्ष या इस न्यायालय के समक्ष यह प्रदर्शित नहीं कर सका कि कर चालान जारी करने के अनुसरण में वास्तव में आपूर्तिकर्ता द्वारा कर जमा किया गया था।

32. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा विभिन्न निर्णयों पर किया गया भरोसा, उसके मामले की मदद नहीं करता है क्योंकि अधिनियम की धारा 16(2)(सी) के अनिवार्य प्रावधान पर कोई विचार नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त, न्यायालय के समक्ष रखे गए कई निर्णयों में, प्रकरण को अधिकारियों को नए सिरे से विचार के लिए प्रतिप्रेषित किया गया है। **रिमझिम इस्पात लिमिटेड (उपरोक्त)** में, उसमें याचिकाकर्ता को जारी कारण बताओ नोटिस को केवल स्थगित कर दिया गया था, जबकि चुनौती धारा 16(2)(सी) की *संवैधानिकता* को थी, जो अभी भी प्रवत्त है।

33. दोनों कर अधिरोपित करने वाले अधिकारियों द्वारा तथ्य का निष्कर्ष दर्ज किया गया है, जिसमें इस न्यायालय के हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है।

34. प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, मैं पाता हूं कि आक्षेपित आदेशों में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

35. रिट याचिका विफल होती है और निरस्त की जाती है।

36. पूर्व में पारित अंतरिम आदेश उन्मोचित किया जाता है।

(2025) 5 ILRA 265

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार

रिट टैक्स संख्या-1828 वर्ष 2025

मेसर्स सैनी ज़र्दा स्टोर **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य **...प्रतिवादीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री शुभम अग्रवाल

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मु.स्था.अधि.

अनुवादित

याचिकाकर्ता, एक स्वामित्व फर्म, वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम, 2017 के अंतर्गत व्यापार के कारोबार में संलग्न है-निर्धारण अधिकारी का आदेश-जीएसटी अधिनियम की धारा 74 के अधीन-पूर्णतः एकपक्षीय-न तो कथित कारण बताओ नोटिस कभी याचिकाकर्ता की जानकारी में लाया गया था और न ही याचिकाकर्ता पर भौतिक रूप से कभी तामील की गई-एकपक्षीय आदेश में कर के दायित्व के अधीन पक्ष को कम से कम अपना बचाव प्रस्तुत करने का अवसर चाहिए-निर्धारण अधिकारी द्वारा पारित आदेश को जीएसटी अधिनियम, 2017 की धारा 74 के अर्थ के भीतर नोटिस माना जाएगा जिससे याचिकाकर्ता अपनी आपत्ति दाखिल कर सके।

रिट याचिका निस्तारित। (ई-9)

<u>उद्धृत निर्णयों की सूची</u>:

1. श्याम रोशन ट्रांसपोर्ट बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य-रिट टैक्स संख्या 1756 वर्ष 2024 दिनांक 21.10.2024 को निर्णीत

2. अतुल अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य-रिट टैक्स संख्या 1585 वर्ष 2024 दिनांक 18.10.2024 को निर्णीत

3. मेसर्स आकृति फूड इंडस्ट्री एलएलपी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट टैक्स संख्या 2070 वर्ष 2024 दिनांक 3.12.2024 को निर्णीत

4. मेसर्स साईं धाम रेजीडेंसी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट टैक्स संख्या- 1175 वर्ष 2024 दिनांक 28 अगस्त, 2024 को निर्णीत

(माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार द्वारा उद्घोषित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय के असाधारण अधिकार क्षेत्र का आह्वान करते हुए, याचिकाकर्ता, एक स्वामित्व संस्था, जो वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम, 2017 के अंतर्गत व्यापार के कारोबार में संलग्न है, वह अपर आयुक्त ग्रेड II, प्रथम अपीलीय अधिकारी द्वारा अपील में पारित आदेश दिनांक 22 अगस्त, 2024 को चुनौती देना चाहती है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क यह है कि निर्धारण अधिकारी का आदेश, जो जीएसटी अधिनियम की धारा 74 के अधीन शक्ति के कथित प्रयोग में संबंधित वित्तीय वर्ष के लिए बिक्री पर कर के दायित्व के साथ ब्याज और जुर्माने के साथ याचिकाकर्ता को उत्तरदायी ठहराता है, पूर्णतः एकपक्षीय है क्योंकि न तो कथित कारण बताओ नोटिस कभी याचिकाकर्ता की जानकारी में लाया गया था, और न ही उसकी तामील याचिकाकर्ता पर भौतिक रूप से कभी की गई थी। याचिकाकर्ता को अपनी पीठ पीछे चलाई गई कार्यवाही की जानकारी तब हुई जब आदेश डैशबोर्ड पर "अतिरिक्त नोटिस और आदेश देखें" टैब के साथ अपलोड किया गया। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता नोटिस जीएसटी डीआरसी-01 को देखने में विफल रहा, इसलिए वह कोई उत्तर नहीं दे सका।

4. यह भी दावा किया गया है कि दिनांक 6 अक्टूबर, 2021 का आदेश भी ई-मेल पर याचिकाकर्ता को संप्रेषित नहीं किया गया था। अग्रेतर यह भी प्रस्तुत किया गया है कि जैसे ही याचिकाकर्ता को मार्च, 2024 में निर्धारण अधिकारी के आदेश की जानकारी हुई, याचिकाकर्ता ने तुरंत प्रथम अपीलीय अधिकारी के समक्ष वैधानिक अपील की, हालांकि, उसे समय-सीमा से बाधित होने के आधार पर निरस्त कर दिया गया। इस प्रकार, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दो तरह के तर्क प्रस्तुत किए गए हैं:

i. नोटिस/ कारण बताओ नोटिस की तामील के अभाव में, याचिकाकर्ता को अपना बचाव प्रस्तुत करने के अवसर से वंचित कर दिया गया, जिससे वह जीएसटी के अधीन व्यापार और बिक्री के संबंध में कर के दायित्व न होने को उचित ठहरा सके; और

ii. विलंब के आधार पर अपील को अस्वीकार कर दिया गया, जो जानकारी के अभाव में था, और याचिकाकर्ता उपचारहीन हो गया है।

5. श्री शुभम अग्रवाल, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि निर्धारण अधिकारी द्वारा आदेश पारित करते समय पक्ष को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया और केवल एनए (लागू नहीं) का आवेदन दर्ज किया गया। यह प्रस्तुत किया गया है कि कारण बताओ नोटिस का गैर-अनुपालन, केवल उत्तर प्रस्तुत करने के अवसर को समाप्त कर सकता था लेकिन फिर भी कारण बताओ नोटिस अतिरिक्त नोटिस के रूप में उपलब्ध नहीं था।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि जीएसटी पोर्टल पर 'नोटिस और आदेश देखें' टैब पर उपलब्ध न होने के कारण कारण बताओ नोटिस प्रभावी न होने के बिन्दु का विवाद और फिर जीएसटी अधिनियम के अधीन कर के दायित्व के मामले में पक्ष को रक्षाहीन बना देना, अब *रेस इंटीग्रा* (निर्णयाधीन) नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि इस न्यायालय की खंडपीठ ने ओला फ्लीट टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य (रिट टैक्स संख्या-855 वर्ष 2024, दिनांक 22.07.2024 को निर्णीत) में इस पक्ष पर विचार किया है और यह निर्णीत किया है कि याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत तर्क को खारिज करने के लिए कोई सामग्री मौजूद नहीं थी कि कर का दायित्व अधिरोपित करने वाला आक्षेपित आदेश 'नोटिस और आदेश देखें' टैब के अधीन प्रतिबिंबित नहीं हो रहा था और इसलिए कारण बताओ नोटिस के उत्तर में दिखाए जा सकने वाले रिटर्न के विभिन्न अभिलेखों की गैर-विचार/विचार के रूप में एक वैध विवाद बना रहा।

7. खंडपीठ का विचार था कि एकपक्षीय आदेश में कर के दायित्व के अधीन पक्ष को कम से कम कागजात जमा करके अपना बचाव प्रस्तुत करने का अवसर चाहिए, जो निर्धारण अधिकारी को कर दायित्व से छूट के दावे को बनाए रखने के लिए प्रेरित कर सकता था। खंडपीठ ने तदनुसार, मामले को लंबित रखने के बजाय, इसे इस निर्देश के साथ निस्तारित किया कि आक्षेपित आदेश को याचिकाकर्ता को अपना उत्तर प्रस्तुत करने में सक्षम बनाने के लिए नोटिस के रूप में लिया जा सकता है और उसके बाद निर्धारण अधिकारी को एक नया आदेश पारित करना होगा।

8. उपरोक्त ओला फ्लीट टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) में खंडपीठ के निर्णय का अनुसरण **श्याम रोशन ट्रांसपोर्ट बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व 2 अन्य**, (रिट टैक्स संख्या-1756 वर्ष 2024) दिनांक 21.10.2024 को निर्णीत में एक अन्य खंडपीठ द्वारा किया गया और पुनः **अतुल अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व 2 अन्य** (रिट टैक्स संख्या-1585 वर्ष 2024 दिनांक 18.10.2024 को निर्णीत) में खंडपीठ द्वारा किया गया।

अनपेक्षित

9. न्यायालय के समक्ष उद्धृत खंडपीठों द्वारा लिया गया दृष्टिकोण इस सिद्धांत पर बिल्कुल सही है कि किसी को भी बिना सुने निंदित नहीं किया जाना चाहिए और विधायिका ने नोटिस/ कारण बताओ नोटिस के प्रावधान को शामिल करते हुए ऐसा ही इरादा किया था।

10. हाल ही में, **मेसर्स आकृति फूड इंडस्ट्री LLP बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व 3 अन्य**, रिट टैक्स संख्या 2070 वर्ष 2024 दिनांक 3.12.2024 को निर्णीत में, न्यायालय ने समान आदेश को रद्द कर दिया है। तदनुसार, मुझे भी आदेश बने रहने योग्य नहीं लगता हैं और प्रतिउत्तर आमंत्रित करके इस याचिका को लंबित रखना आवश्यक नहीं समझता।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **मेसर्स साईं धाम रेजीडेंसी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य,** रिट टैक्स संख्या-1175 वर्ष 2024 दिनांक 28 अगस्त, 2024 को निर्णीत में इस न्यायालय की खंडपीठ के आदेश पर भरोसा किया है। मेसर्स साईं धाम रेजीडेंसी के प्रस्तर-3 व 4 के माध्यम से न्यायालय ने इस प्रकार निर्णीत किया है:

"3. रिकॉर्ड पर स्वीकृत उपरोक्त स्थिति को देखते हुए, केवल एक ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि याचिकाकर्ता को कभी भी व्यक्तिगत सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया।

4. इस प्रकार, नोटिस की तामील पर, याचिकाकर्ता को केवल अपना उत्तर दाखिल करने के लिए बुलाया गया था। परिणामस्वरूप, उस कारण बताओ नोटिस की गैर-अनुपालना से केवल लिखित उत्तर प्रस्तुत करने के अवसर का समापन हो सकता था। हालांकि अधिनियम की धारा 75 के स्पष्ट प्रावधान के आधार पर, उस स्थिति में भी याचिकाकर्ता ने मौखिक सुनवाई में भाग लेने और उस स्तर पर ही यह स्थापित करने का अपना अधिकार नहीं खोया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध जो प्रतिकूल निष्कर्ष निकाले जाने का प्रस्ताव है, उन्हें छोड़ा जा सकता है।"

12. यह एक स्थापित कानूनी सिद्धांत है, जो इस न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला में विकसित किया गया है कि कर विधि के अधीन निहित प्रावधानों की बहुत सख्ती से व्याख्या की जानी चाहिए, इसलिए अंतिम आदेश पारित करने से पहले मौखिक सुनवाई के अवसर जैसी किसी विशेष पूर्व-आवश्यकता के लिए प्रावधान करने वाले प्रावधानों का अधिकारी द्वारा अनुपालन किया जाना चाहिए। अधिकारी यह नहीं मान सकता कि व्यक्तिगत सुनवाई के लिए प्रावधान एक औपचारिकता मात्र है और नोटिस के लिए प्रतिनिधित्व आवश्यकता को पूरा करेगा। **कमिश्नर ऑफ कस्टम्स (इम्पोर्ट), मुंबई बनाम दिलीप कुमार और कंपनी व अन्य (2018) 9 SCC 1** में जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर 24 के माध्यम से बहुत स्पष्ट रूप से इस प्रकार टिप्पणी की है:

"24. दंडात्मक विधियों और कराधान विधियों की व्याख्या करते समय, न्यायालय को व्याख्या के सख्त नियम लागू करने होते हैं। दंडात्मक विधि जो किसी व्यक्ति को जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित करता है, उसकी सख्त व्याख्या की जानी चाहिए अन्यथा कई निर्दोष विवेकाधिकार निर्णय के पीड़ित हो सकते हैं। जहां तक कराधान विधियों का संबंध है, संविधान का अनुच्छेद 265 राज्य को विधि के अधिकार के बिना नागरिकों से कर वसूलने से रोकता है। यह स्वयंसिद्ध है कि कराधान विधि की सख्ती से व्याख्या की जानी चाहिए क्योंकि राज्य विधि के अधिकार के बिना अपनी इच्छा और कल्पना से नागरिकों पर बोझ नहीं डाल सकता। दूसरे शब्दों में, जब सक्षम विधायिका कुछ परिस्थितियों में कुछ व्यक्तियों/कुछ वस्तुओं पर कर लगाने का अधिदेश देती है, तो इसे उनको शामिल करने के लिए विस्तारित/व्याख्यायित नहीं किया जा सकता, जो विधायिका द्वारा इरादा नहीं किया गया था।"

13. उपरोक्त को देखते हुए, मैं निर्देशित करता हूं कि निर्धारण अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 6 अक्टूबर, 2021 को जीएसटी अधिनियम, 2017 की धारा 74 के अर्थ के भीतर नोटिस माना जाएगा जिससे याचिकाकर्ता अपनी आपत्तियां दाखिल कर सके और निर्धारण अधिकारी/सक्षम अधिकारी के समक्ष अपने अभिलेख विचार के लिए रख सके।

14. याचिकाकर्ता आज से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर अभिलेख के साथ अपना उत्तर प्रस्तुत करेगा और उसके बाद निर्धारण अधिकारी/सक्षम अधिकारी दाखिल की गई आपत्तियों और अभिलेखों पर उचित विचार करेगा और सुनवाई का अवसर भी देगा और इस प्रकार अगले चार सप्ताह की अवधि के भीतर नए सिरे से निर्णय लेगा।

15. इन उपरोक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ यह याचिका निस्तारित की जाती है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 268

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 30.05.2025

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या-1199 वर्ष 2025

वीरेंद्र कुमार त्रिपाठी **...याचिकाकर्ता**

बनाम

अमित दुआ व अन्य **...प्रतिवादीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
अनिल बाबू, अश्विनी मिश्रा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मानस भार्गव

अनुवादित

सिविल विधि-उ.प्र. शहरी परिसर किरायेदारी विनियमन अधिनियम, 2021-धारा 9 व 10-किराया नियंत्रण-याचिकाकर्ता किरायेदार था, स्टील फर्नीचर की दुकान चला रहा था-मालिक ने घर प्रतिवादियों को बेच दिया-प्रतिवादियों ने संशोधित किराए पर ₹45,000 प्रति माह पर किराया समझौते के निष्पादन के लिए नोटिस जारी किया, कोई समझौता हस्ताक्षरित नहीं हुआ-प्रतिवादियों ने अधिनियम, 2021 की धारा 10 के अधीन मामला दायर किया, किराया ₹25,000 प्रति माह तय किया गया-याचिकाकर्ता की किराया अपील खारिज कर दी गई, पूर्व आदेश की पुष्टि की गई-आक्षेपित आदेश-अधिनियम, 2021 की धारा 9(5) व 10 के प्रावधान के पाठ से यह स्पष्ट है कि किराया समझौते के अभाव में, संशोधित किराए पर कोई विवाद धारा 10 के अनुसार तय किया जाएगा, आसपास के क्षेत्र में प्रचलित बाजार किराए को ध्यान में रखते हुए-अधिनियम, 2021 से पहले कोई किरायेदारी समझौता नहीं था, और नोटिस प्राप्त करने के बाद कोई हस्ताक्षरित नहीं किया गया-किराया प्राधिकरण ने उसी इलाके के किराया समझौते पर विचार किया जो ₹60,000/माह था-किराया प्राधिकरण ने प्रचलित बाजार दरों के आधार पर ₹25,000 प्रति माह पर किराया तय किया, जिसे किराया न्यायाधिकरण द्वारा पुष्ट किया गया-इस प्रकार, किराया प्राधिकरण और किराया न्यायाधिकरण ने अधिनियम, 2021 की धारा 9(5) के प्रावधान सपठित धारा 10 के अनुसार सही तरीके से किराया तय किया। (प्रस्तर 4, 13 से 15)

याचिका निरस्त (ई-13)

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा उद्घोषित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री अनिल बाबू की सहायता से श्री शशि नंदन, वरिष्ठ अधिवक्ता और प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता, श्री मानस भार्गव की सहायता से श्री अतुल दयाल, वरिष्ठ अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान याचिका, किराया न्यायाधिकरण/ए.डी.जे., न्यायालय संख्या 17, कानपुर नगर द्वारा किराया अपील संख्या-34/2024 में पारित आदेश दिनांक 08.08.2024 व ए.डी.एम.(न्यायिक) द्वारा वाद संख्या-1616/2022 में पारित आदेश दिनांक 31.01.2023 और ए.डी.एम.(न्यायिक) द्वारा निष्पादन वाद संख्या-7221/2024 में पारित निष्पादन आदेश दिनांक 17.12.2024 को निरस्त करने की प्रार्थना के साथ योजित की गई है।

3. चूंकि केवल विधि का प्रश्न अर्थात् उ.प्र. अधिनियम संख्या-16 वर्ष 2021 (इसके बाद, 'अधिनियम, 2021' के रूप में संदर्भित) की धारा 9 व 10 की व्याख्या निहित है, इसलिए पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की सहमति से, प्रति शपथपत्र मांगे बिना ही प्रवेश स्तर पर याचिका का निर्णय किया जा रहा है।

4. मामले के संक्षिप्त निर्विवाद तथ्य यह हैं कि, याचिकाकर्ता, श्री पुरुषोत्तम लाल अरोड़ा का किरायेदार था, जो मकान संख्या 124/239 सी ब्लॉक गोविंद नगर, कानपुर नगर के मालिक थे और याचिकाकर्ता अभी भी उस मकान में स्टील फर्नीचर की दुकान चला रहा है। श्री पुरुषोत्तम लाल अरोड़ा ने दिनांक 05.03.2022 के विक्रय विलेख द्वारा उक्त मकान प्रतिवादियों को बेच दिया। विचाराधीन मकान खरीदने के बाद, प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता को संशोधित किराए @ रु.45,000/- प्रति माह पर किराया समझौते के निष्पादन के लिए दिनांक 01.06.2022 का नोटिस भेजा, लेकिन कोई किराया समझौता हस्ताक्षरित नहीं हो सका। इस स्तर पर, प्रतिवादियों ने अधिनियम, 2021 की धारा 10 के अधीन आवेदन दायर किया, जिसे प्रकीर्ण वाद संख्या-1616 वर्ष 2022 के रूप में पंजीकृत किया गया। उक्त वाद को आदेश दिनांक 31.01.2023 के द्वारा किराया @ रु.25,000/- प्रति माह तय करते हुए स्वीकार किया गया। उक्त आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने किराया अपील 34 वर्ष 2023 योजित की, जिसे आदेश दिनांक 08.08.2024 के द्वारा निरस्त कर दिया गया और प्रकीर्ण वाद संख्या-1616 वर्ष 2022 में किराया प्राधिकरण द्वारा आदेश पारित दिनांक 31.01.2023 की पुष्टि की गई। इसलिए, वर्तमान याचिका।

5. याचिकाकर्ता के लिए उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री शशि नंदन ने प्रस्तुत किया कि अधिनियम, 2021 की धारा 9 व 10 किराए के संशोधन का प्रावधान करती है। अधिनियम 2021 की धारा 9 स्पष्ट रूप से किराए को संशोधित करने का सूत्र प्रदान करती है और अधिनियम, 2021 की धारा 9(3) के अनुसार, जहां परिसर 15.07.1972 से पहले किराए पर दिए गए हैं, इसे 15.07.1972 को किराए पर दिया गया माना जाएगा और यदि परिसर 15.07.1972 को या उसके बाद किराए पर दिया गया है, तो किराए के संशोधन की तिथि किरायेदारी की शुरुआत की तिथि के एक साल बाद होगी। यह भी प्रावधान करता है कि आवासीय आवास के

मामले में, किराए में @ 5 प्रतिशत प्रति वर्ष और गैर आवासीय परिसर के मामले में @ 7 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि की जाएगी।

6. वर्तमान मामले में, भवन गैर आवासीय है, इसलिए किराए में @ 7 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि की जानी है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि किराया प्राधिकरण ने, अधिनियम, 2021 की धारा 10 के संदर्भ में किराया निर्धारित करते समय धारा 9 के प्रावधान की अनदेखी की है और केवल आसपास के क्षेत्र में बाजार किराए पर विचार करते हुए किराया तय किया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अधिनियम, 2021 की धारा 9(5) के अनुसार, इस अधिनियम के प्रारंभ होने से पहले की गई किरायेदारी के मामले में, मकान मालिक किरायेदार को लिखित नोटिस द्वारा, बढ़े हुए किराए की मांग करेगा और अधिनियम, 2021 की धारा 9(3) के अधीन निर्धारित किराए में इस प्रकार की गई वृद्धि नोटिस की तामील के 30 दिनों के भीतर देय होगी। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अधिनियम, 2021 की धारा 10 के अधीन किराए को संशोधित करते समय, धारा 9(3) और 9(5) को ध्यान में रखा जाना चाहिए। उन्होंने अंत में प्रस्तुत किया कि अधिनियम, 2021 की धारा 10 के अधीन किराया निर्धारित करते समय, धारा 9(3) का अनुपालन अनिवार्य है, इसलिए, अधिनियम, 2021 की धारा 9(3) पर विचार किए बिना, अधिनियम, 2021 की धारा 10 के अधीन पारित कोई भी आदेश निरस्त किए जाने योग्य है।

7. इसके विपरीत, प्रतिवादियों के लिए उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री अतुल दयाल ने प्रस्तुत किया कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि अधिनियम, 2021 की धारा 9 किराए के संशोधन के लिए प्रावधान करती है, लेकिन वह केवल पक्षों के बीच किराया समझौते के मामले में लागू होगी। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अधिनियम, 2021 की धारा 9(3) के अनुसार, अधिनियम, 2021 के प्रारंभ होने से पहले पक्षों के बीच किसी समझौते के मामले में, किराए को अधिनियम, 2021 की धारा 9(3) के संदर्भ में संशोधित किया जाएगा। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि यदि अधिनियम, 2021 के प्रारंभ होने से पहले कोई किरायेदारी समझौता नहीं है और नोटिस भेजने के बाद, यदि किरायेदार और मकान मालिक किरायेदारी समझौते को निष्पादित करने में विफल रहते हैं, तो किराया अधिनियम, 2021 की धारा 10 के अनुसार तय किया जाएगा और अधिनियम, 2021 की धारा 9 लागू नहीं होगी। वर्तमान मामले में, यह निर्विवाद है कि पक्षों के बीच कोई किराया समझौता नहीं है और विचाराधीन मकान खरीदने के बाद, प्रतिवादी-मकान मालिक ने याचिकाकर्ता को किराए की वृद्धि के लिए किरायेदारी समझौते को निष्पादित करने के लिए नोटिस दिया है, लेकिन वह हस्ताक्षरित नहीं हो सका क्योंकि किरायेदार ने दिनांक 01.06.2022 के नोटिस के अनुसरण में किराया समझौते को निष्पादित करने के लिए कोई इच्छा नहीं दिखाई। इसलिए, किराया प्राधिकरण ने अधिनियम, 2021 की धारा 9(5) सपठित अधिनियम, 2021 की धारा 10 के संदर्भ में सही तरीके से किराया तय किया है और किराया प्राधिकरण के आदेश में कोई खामी या अवैधता नहीं है।

8. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

9. वर्तमान विवाद के लिए, अधिनियम, 2021 की धारा 9 और 10 प्रासंगिक हैं और वह नीचे उद्धृत की जा रही हैं:

*"**9. किराए का संशोधन**-(1) मकान मालिक और किरायेदार के बीच किराए का संशोधन किरायेदारी समझौते की शर्तों के अनुसार होगा।*

(2) जहां, किरायेदारी की शुरुआत के बाद, मकान मालिक ने काम शुरू होने से पहले किरायेदार के साथ लिखित रूप में एक समझौता किया है और किरायेदार द्वारा कब्जे में लिए गए परिसर में सुधार, परिवर्धन या संरचनात्मक परिवर्तन करने के लिए व्यय किया है, जिसमें धारा 15 के अधीन किए जाने के लिए आवश्यक मरम्मत शामिल नहीं है, मकान मालिक परिसर के किराए को मकान मालिक और किरायेदार के बीच सहमत राशि से बढ़ा सकता है, और किराए में इस तरह की वृद्धि ऐसे काम के पूरा होने के एक महीने बाद से प्रभावी होगी।

(3) किसी भी लिखित समझौते के अधीन, जहां परिसर इस अधिनियम के प्रारंभ होने से पहले किराए पर दिए गए हैं, उसका किराया इस अधिनियम के प्रारंभ होने से दो साल की अवधि के लिए, नीचे दिए गए सूत्र के अनुसार संशोधित किए जाने के लिए उत्तरदायी होगा-

(ए) जहां परिसर 15.07.1972 से पहले किराए पर दिए गए हैं, इसे 15.07.1972 को किराए पर दिया गया माना जाएगा;

(बी) जहां परिसर 15.07.1972 को या उसके बाद किराए पर दिए गए हैं, किराए के संशोधन की तिथि किरायेदारी की शुरुआत की तिथि के एक साल बाद होगी।

उपरोक्त मामलों में देय किराए की दर आवासीय आवास के मामले में 5% प्रति वर्ष की दर से और गैर-आवासीय परिसर के मामले में 7% प्रति वर्ष की दर से बढ़ाए जाने के लिए उत्तरदायी होगी, और किराए में वृद्धि की दर को वार्षिक आधार पर संयोजित किया जाएगा। इस प्रकार प्राप्त किराए की राशि को फिर से इस अधिनियम के प्रारंभ होने तक इसी तरह से उक्त दरों प्रति वर्ष पर बढ़ाया जाएगा।

उपरोक्त उल्लिखित होने के कुछ बाद भी, यदि 15.07.1972 के बाद किरायेदारी की निरंतरता के दौरान परिसर का किराया संशोधित किया गया था, तो उपरोक्त में उल्लिखित किराए के संशोधन का सूत्र ऐसे किराए के संशोधन की तिथि से लागू होगा:
परंतु उपरोक्त उल्लिखित कुछ होने के बाद भी, उक्त प्रावधान में दर्शाए गए सूत्र के अनुसार देय संशोधित किराया, इस अधिनियम के प्रारंभ होने की तिथि से निम्नानुसार देय होगा:

अनुवादित

(i) पहले वर्ष में, इस प्रकार गणना किए गए किराए का आधा; और

(ii) दूसरे वर्ष में, इस प्रकार गणना किए गए किराए की पूरी राशि।

(4) धारा 3 की उप-धारा (1) में निहित किसी भी बात के बाद भी जिसमें किसी भी उल्लिखित परिसर को किरायेदार को किराए पर दिया गया है, ऐसे परिसर का मकान मालिक भी खंड (3) के प्रावधानों के अनुसार किराए के संशोधन का अधिकारी होगा और इस अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधान ऐसे मामलों पर लागू होंगे।
(5) इस अधिनियम के प्रारंभ होने से पहले की गई किरायेदारी के मामले में मकान मालिक, किरायेदार को लिखित नोटिस द्वारा, उप-धारा (3) के अधीन निर्दिष्ट बढ़े हुए किराए की दर की मांग करेगा और इस प्रकार बढ़ाए गए किराए की दर नोटिस की तामील के 30 दिनों के भीतर देय होगी। ऐसी स्थिति में किरायेदारी समझौते को संशोधित माना जाएगा और बढ़ी हुई किराए की दर धारा 8 के अधीन देय किराया होगी:

परंतु यदि इस अधिनियम के प्रारंभ होने से पहले कोई किरायेदारी समझौता नहीं था, तो मकान मालिक और किरायेदार बढ़े हुए किराए की दर के लिए किरायेदारी समझौते को निष्पादित करने के लिए पारस्परिक रूप से सहमत हो सकते हैं, ऐसा करने में विफल रहने पर किराया प्राधिकरण धारा 10 के प्रावधानों के अधीन बढ़े हुए किराए को निर्धारित करेगा।

(6) इस अधिनियम के प्रारंभ होने से पहले की अवधि के लिए उक्त बढ़े हुए किराए का कोई बकाया देय या वसूली योग्य नहीं होगा।

10. विवाद की स्थिति में संशोधित किराया, किराया प्राधिकरण द्वारा निर्धारित किया जाएगा-*(1) किराए के संशोधन के संबंध में मकान मालिक और किरायेदार के बीच किसी विवाद के मामले में, किराया प्राधिकरण, मकान मालिक या किरायेदार द्वारा किए गए आवेदन पर, संशोधित किराया और किरायेदार द्वारा देय अन्य शुल्क निर्धारित कर सकता है और वह तिथि भी तय कर सकता है, जिससे ऐसा संशोधित किराया देय हो जाता है।*

(2) संशोधित किए जाने वाले किराए को निर्धारित करने में, किराया प्राधिकरण किराए पर दिए गए आसपास के क्षेत्रों में प्रचलित बाजार किराए द्वारा निर्देशित हो सकता है।

(3) एक बार इस धारा के अधीन निर्धारण हो जाने के बाद, उक्त निर्धारण के एक साल बाद तक नए निर्धारण के लिए कोई आवेदन नहीं होगा।
(4) किराया प्राधिकरण किराए के संशोधन के लिए कार्यवाही के दौरान अनंतिम किराया निर्धारित कर सकता है जो अंतिम निर्धारण के अधीन होगा।

अनुवादित

10. इसमें कोई संदेह नहीं है कि लिखित समझौते के मामले में, किराए को अधिनियम, 2021 की धारा 9(3) के सख्त अनुसार संशोधित किया जाना है, जो आवासीय आवास के मामले में 5 प्रतिशत प्रति वर्ष और गैर आवासीय आवास के मामले में 7 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि प्रदान करती है। अधिनियम, 2021 की धारा 9(5) प्रावधान करती है कि अधिनियम, 2021 के प्रारंभ होने से पहले की गई किरायेदारी के मामले में, मकान मालिक किरायेदार को लिखित नोटिस द्वारा अधिनियम, 2021 की धारा 9(3) के अधीन निर्दिष्ट किराए की वृद्धि की मांग करेगा, लेकिन अधिनियम, 2021 की धारा 9(5) का प्रावधान स्पष्ट रूप से प्रावधान करता है कि यदि अधिनियम, 2021 के प्रारंभ होने से पहले कोई किरायेदारी समझौता नहीं था और नोटिस के बाद, किरायेदार और मकान मालिक कोई किरायेदारी समझौता निष्पादित करने में विफल रहते हैं, तो किराया प्राधिकरण अधिनियम, 2021 की धारा 10 के प्रावधान के अधीन बढ़े हुए किराए को निर्धारित करेगा।

11. इसलिए, अधिनियम, 2021 की धारा 9 और 10 के अवलोकन से जो विधिक स्थिति उभरती है वह यह है कि, पक्षों के बीच किरायेदारी समझौते के मामले में, किराए को धारा 9(3) के संदर्भ में संशोधित किया जाएगा अर्थात् आवासीय संपत्ति के मामले में वृद्धि @ 5 प्रतिशत प्रति वर्ष होगी और गैर-आवासीय संपत्ति के लिए, यह @ 7 प्रतिशत प्रति वर्ष होगी।

12. इसके अतिरिक्त, अधिनियम, 2021 की धारा 9(5) के संदर्भ में मकान मालिक और किरायेदार के बीच किरायेदारी समझौते के मामले में, मकान मालिक किरायेदार को लिखित नोटिस द्वारा, अधिनियम, 2021 की धारा 9(3) के संदर्भ में बढ़े हुए किराए की मांग करेगा, जो नोटिस की तिथि से 30 दिनों के भीतर देय होगा। इसके अतिरिक्त, किरायेदारी समझौते को संशोधित माना जाएगा और बढ़ा हुआ किराया अधिनियम, 2021 की धारा 8 के अधीन देय होगा।

13. अधिनियम, 2021 की धारा 9(5) का प्रावधानित करती है कि यदि इस अधिनियम के प्रारंभ होने से पहले कोई किरायेदारी समझौता नहीं है, तो मकान मालिक और किरायेदार बढ़े हुए किराए के लिए किरायेदारी समझौते को निष्पादित करने के लिए पारस्परिक रूप से सहमत हो सकते हैं और यदि वे ऐसा करने में विफल रहते हैं, तो किराया प्राधिकरण, अधिनियम, 2021 की धारा 10 के अनुसार ही बढ़ा हुआ किराया निर्धारित करेगा। अधिनियम, 2021 की धारा 10 विवाद के मामले में किराए के संशोधन के लिए प्रक्रिया प्रदान करती है। अधिनियम, 2021 की धारा 9(5) और 10 के प्रावधान के संयुक्त पाठ से, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि किराया समझौते की अनुपस्थिति के मामले में, यदि संशोधित किराए के बारे में कोई विवाद उत्पन्न होता है, तो वह अधिनियम, 2021 की धारा 10 के संदर्भ में ही तय किया जाएगा और आसपास के क्षेत्र में किराए पर दिए गए प्रचलित बाजार को ध्यान में रखते हुए किराए को संशोधित किया जाएगा।

14. जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, यह निर्विवाद है कि अधिनियम, 2021 के प्रारंभ होने से पहले कोई किरायेदारी समझौता नहीं है और इसके अतिरिक्त, दिनांक 01.06.2022 के नोटिस प्राप्त करने के बाद, कोई किरायेदारी समझौता हस्ताक्षरित नहीं हो सका। इसलिए, धारा 9(5) के प्रावधान के आलोक में, बढ़े हुए

किराए को अधिनियम, 2021 की धारा 10 के अनुसार तय किया जाना है। अधिनियम, 2021 की धारा 10 प्रावधान करती है कि किराया निर्धारित करते समय, किराया प्राधिकरण किराए पर दिए गए आसपास के क्षेत्रों में प्रचलित बाजार किराए की गणना कर सकता है। किराए के मामले का निर्णय करते समय, किराया प्राधिकरण ने उसी इलाके के दिनांक 10.08.2021 के किराया समझौते पर विचार किया है, जो रु.60,000/- प्रति माह था। किराया प्राधिकरण ने आसपास के क्षेत्रों में प्रचलित बाजार दर पर विचार किया है और तदनुसार किराया @ 25,000/- प्रति माह तय किया है, जिसे किराया न्यायाधिकरण द्वारा भी पुष्ट किया गया है।

15. इसलिए, यह न्यायालय इस विचार का है कि किराया न्यायाधिकरण और किराया प्राधिकरण ने अधिनियम, 2021 की धारा 9(5) के प्रावधान के साथ पठित अधिनियम, 2021 की धारा 10 के अनुसार सही तरीके से किराया तय किया है।

16. तदनुसार, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मुझे दिनांक 31.03.2023, 08.08.2024 और 17.12.2024 के आदेश में कोई कमी या अवैधता नहीं मिलती है।

17. याचिका में योग्यता का अभाव है और इसे **निरस्त** किया जाता है।

18. व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 273

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक : लखनऊ 29.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 16 वर्ष 2016

बलराम चारी दुबे ...आवेदक

बनाम

राज्य उत्तर प्रदेश ...प्रतिवादी

आवेदक के अधिवक्ता : महेन्द्र प्रताप सिंह

प्रतिवादी के अधिवक्ता : शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376, 323, 504 एवं 506 - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3(2)(V) - लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा 4 - प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार, अभियुक्त द्वारा सूचनाकर्ता की पुत्री के साथ बलात्कार किया गया - आवेदक को विवेचक नियुक्त किया गया, जिसने जांच संपादित की तथा आरोपपत्र प्रस्तुत किया - विचारण के दौरान अभियोजन के सभी साक्षियों (पी.डब्ल्यू.-1 से पी.डब्ल्यू.-5) का परीक्षण किया गया और उन्होंने अभियोजन के मामले का समर्थन किया - यह आरोप लगाया गया कि आवेदक ने पीड़िता का धारा 164 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत बयान अंकित नहीं कराया तथा चिकित्सक का बयान भी अंकित नहीं किया - विचारण न्यायालय ने इस कथित जानबूझकर की गई लापरवाही को ध्यान में रखते हुए आवेदक के विरुद्ध प्रतिकूल टिप्पणियां कीं - आवेदक ने न्यायालय के समक्ष कहा कि पीड़िता अस्वस्थ थी और उसका बयान अंकित न किए जाने का अनुरोध किया गया था - यद्यपि पीड़िता ने बाद में विचारण न्यायालय के समक्ष इसका खंडन किया, तथापि ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि उसने कभी मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदक के विरुद्ध कोई शिकायत की हो - विचारण न्यायालय ने सामान्य प्रक्रिया में आवेदक तथा पीड़िता के बयान अंकित किए, किंतु यह निष्कर्ष निकालते हुए कि आवेदक ने जानबूझकर लापरवाही की है, उसे सुनवाई का अवसर दिया जाना आवश्यक था - विचारण न्यायालय द्वारा जांच में 'जानबूझकर लापरवाही' स्थापित किए बिना, स्थापित विधि की उपेक्षा करते हुए तथा अधिनियम, 1989 के उद्देश्य को विफल करते हुए, आवेदक के विरुद्ध प्रतिकूल टिप्पणियां की गईं। (अनुच्छेद 3, 4, 5, 7, 8, 21, 27, 28)

आवेदन स्वीकृत किया जाता है। (E-13)

<u>उद्धृत वादों की सूची :</u>

1. **राज्य उत्तर प्रदेश बनाम मोहम्मद नईम, ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 703, (पैरा 10)**
2. **नीरज गर्ग बनाम सरिता रानी एवं अन्य, (2021) 9 एस.सी.सी. 92, (पैरा 9 से 18)**
3. **राज्य उड़ीसा एवं अन्य बनाम मोहम्मद इलियास, (2006) 1 एस.सी.सी. 275 में प्रतिवेदित, (पैरा 9 से 11)**
4. **आनंदा पांगला बनाम टी.आर. जगन्नाथ, 2003 क्रि.एल.जे. 3215 में प्रतिवेदित, (पैरा 6)**
5. **राम पाल बनाम राज्य राजस्थान, 1998 क्रि.एल.जे. 3261 में प्रतिवेदित, (पैरा 8, 9)**
6. **अनुजाराम परही बनाम राज्य उड़ीसा, 1989 क्रि.एल.जे. 447 में प्रतिवेदित, (पैरा 3)**

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह द्वारा निर्णय पारित)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री महेन्द्र प्रताप सिंह तथा राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री निर्मल कुमार पाण्डेय को सुना गया।

2. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत प्रस्तुत यह वर्तमान आवेदन, विद्वान विशेष न्यायाधीश, एस.सी./एस.टी. अधिनियम, बाराबंकी द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 9472 सन् 2014, जो वाद अपराध संख्या 143 सन् 2014 से उत्पन्न है, धारा 376/323/504/506 भारतीय दण्ड संहिता, धारा 3(2)(V) एस.सी./एस.टी. अधिनियम तथा लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 4, थाना-जैदपुर, जनपद-बाराबंकी के अंतर्गत पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 27.10.2015 में जारी किए गए आक्षेपित निर्देश को चुनौती देते हुए दायर किया गया है, जिसके द्वारा विद्वान विचारण न्यायालय ने मामले की जांच में लापरवाही किए जाने के आधार पर आवेदक के विरुद्ध एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत कार्यवाही किए जाने हेतु राज्य प्राधिकारियों को निर्देशित किया है।

3. मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि यह है कि प्रथम सूचनाकर्ता सीताराम पुत्र राम सनेही, निवासी अकबर धनैठी, थाना-जैदपुर, जनपद-बाराबंकी ने अभियुक्त तुफैल पुत्र मोहम्मद हनीफ के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई, जिसमें यह आरोप लगाया गया कि दिनांक 03.04.2014 को अभियुक्त तुफैल ने उसकी पुत्री कु. रेनू के साथ बलात्कार किया तथा उक्त तहरीर के आधार पर उपर्युक्त आरोपों के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट वाद अपराध संख्या 143 सन् 2014 के रूप में पंजीकृत की गई।

4. प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के उपरान्त, वर्तमान आवेदक को विवेचक के रूप में नियुक्त किया गया, जिसने जांच संपादित की तथा साक्ष्य संकलित करने के पश्चात अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आरोपपत्र प्रस्तुत किया।

5. आरोपपत्र प्रस्तुत किए जाने के पश्चात, विद्वान मजिस्ट्रेट ने मामले को सत्र न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत किया और विचारण प्रारंभ हुआ, जिसमें साक्षियों पी.डब्ल्यू.-1, सीता राम, पी.डब्ल्यू.-2, डॉ. शुष्मा वर्मा, पी.डब्ल्यू.-3, पीड़िता कु. रेनू, पी.डब्ल्यू.-4, वर्तमान आवेदक एवं पी.डब्ल्यू.-5, कांस्टेबल प्रिया कुमार तिवारी का परीक्षण किया गया और सभी अभियोजन साक्षियों ने लगातार अभियोजन की स्थिति का समर्थन किया।

6. पीड़िता द्वारा अपना बयान देने के समय, यह उल्लेख किया गया कि "सी०ओ० साहब ने उसके माता पिता को बुलाया था और एक कागज पर हस्ताक्षर करा लिया था और कागज संख्या अ-8 प्रदर्श क-6 वही कागज है जिस पर सी०ओ०साहब ने उसका हस्ताक्षर बनवाया था।".

7. आरोप यह लगाया गया कि पीड़िता का धारा 164 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत बयान मजिस्ट्रेट के समक्ष अंकित नहीं कराया गया तथा चिकित्सक का बयान भी विवेचक/आवेदक द्वारा अंकित नहीं किया गया।

8. विद्वान विचारण न्यायालय ने उपर्युक्त को जानबूझकर की गई लापरवाही मानते हुए आवेदक के विरुद्ध प्रतिकूल टिप्पणियां की हैं। इससे पीड़ित होकर, वर्तमान आवेदन आक्षेपित निर्णय एवं आदेश दिनांक 27.10.2015 में उक्त प्रतिकूल टिप्पणी के उस भाग को चुनौती देते हुए दायर किया गया है। प्रतिकूल टिप्पणी शब्दशः इस प्रकार है :-

विवेचक बी०सी० दूबे अपर पुलिस अधीक्षक हरदोई के विरूद्ध धारा 4 अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के अन्तर्गत आपराधिक वाद पंजीकृत करने एवं उन्हें अभियोजित करने के लिए निर्णय की प्रति गृह सचिव उत्तर प्रदेश को भेजी जाय तथा इस निर्णय की प्रति विवेचक की सर्विस बुक पर रखने के लिए पुलिस महानिदेशक को भेजी जाय।

9. आवेदक के **विद्वान** अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि **विद्वान** विचारण न्यायालय ने सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना ही जांच संपादित करने में लापरवाही के लिए आवेदक को उत्तरदायी ठहरा दिया है तथा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (आगे “अधिनियम, 1989” के रूप में संदर्भित) की धारा 4 के प्रावधान के अंतर्गत उसके विरुद्ध कार्रवाई की संस्तुति कर दी है। अधिनियम, 1989 की धारा 4 निम्नानुसार है :-

4. कर्तव्यों की उपेक्षा के लिए दण्ड.- (1) जो कोई लोक सेवक होते हुए, परंतु अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य न होते हुए, इस अधिनियम तथा इसके अधीन बनाए गए नियमों के अंतर्गत उसके द्वारा किए जाने हेतु अपेक्षित कर्तव्यों की जानबूझकर उपेक्षा करता है, वह ऐसे कारावास से दण्डनीय होगा जिसकी अवधि छह माह से कम नहीं होगी, किंतु जो एक वर्ष तक बढ़ाई जा सकेगी।

(2) उप-धारा (1) में उल्लिखित लोक सेवक के कर्तव्यों में निम्नलिखित सम्मिलित होंगे-

(a) पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी द्वारा मौखिक रूप से दी गई सूचना को लिखित रूप में अभिलिखित किए जाने के पश्चात्, सूचना दाता के हस्ताक्षर लेने से पूर्व, उक्त सूचना को सूचना दाता को पढ़कर सुनाना;

(b) इस अधिनियम तथा अन्य सुसंगत प्रावधानों के अंतर्गत किसी शिकायत या प्रथम सूचना रिपोर्ट को पंजीकृत करना तथा उसे इस अधिनियम की उपयुक्त धाराओं के अंतर्गत पंजीकृत करना;

(c) अभिलिखित की गई उक्त सूचना की एक प्रति तत्क्षण सूचना दाता को प्रदान करना;

(d) पीड़ितों या साक्षियों के कथन को अभिलिखित करना;

(e) तहकीकात का संचालन करना तथा साठ दिनों की अवधि के भीतर विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय में आरोपपत्र प्रस्तुत करना, तथा यदि कोई विलंब हो तो उसके कारणों को लिखित रूप में स्पष्ट करना;

(f) किसी भी दस्तावेज़ या इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख को सही ढंग से तैयार करना, संरचित करना तथा उसका अनुवाद करना;

(g) इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों में निर्दिष्ट किसी अन्य कर्तव्य का पालन करना:
यह प्रावधान है कि इस संबंध में लोक सेवक के विरुद्ध आरोप प्रशासनिक जांच की सिफारिश पर ही दर्ज किए जाएंगे।

(3) उप-धारा (2) में उल्लिखित किसी भी कर्तव्य की उपेक्षा के संबंध में लोक सेवक के विरुद्ध संज्ञान विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय द्वारा लिया जाएगा और ऐसे लोक सेवक के विरुद्ध दंडात्मक कार्यवाही के लिए निर्देश दिए जाएंगे।

10. वह प्रस्तुत करते हैं कि आवेदक ने जांच संपन्न करने में कोई दोष नहीं किया है, बल्कि उसने जांच पूर्ण करने के पश्चात् अभियुक्त के विरुद्ध आरोपपत्र निष्पक्ष एवं उचित ढंग से प्रस्तुत किया, और उसकी ओर से कोई जानबूझकर लापरवाही नहीं हुई। वह आगे प्रस्तुत करते हैं कि आवेदक को **विद्वान** विचारण न्यायालय द्वारा सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया, जो 27-10-2015 के निर्णय एवं आदेश को अवैध बनाता है। अपने तर्कों को जोड़ते हुए वह प्रस्तुत करते हैं कि आवेदक का आचरण एवं व्यवहार सदैव शीलपूर्ण और निर्विवाद रहा है, अतः यह प्रस्तुति है कि 27-10-2015 के निर्णय एवं आदेश में विरोधात्मक टिप्पणियों के संबंध में उसे रद्द किया जाए।

अनुवादित

11. दूसरी ओर, राज्य की ओर से प्रस्तुत **विद्वान** अपर शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि तहकीकात पूर्ण करने के पश्चात् आरोपपत्र आवेदक द्वारा प्रस्तुत किया गया और आवेदक ने विचारण न्यायालय में भी हाजिरी दी तथा अपना बयान दर्ज कराया। तथापि, प्रतिशपथ पत्र के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि आवेदक द्वारा याचिका में किए गए दावे का राज्य द्वारा कोई खंडन नहीं किया गया, बल्कि कुछ हद तक उन्हें राज्य द्वारा स्वीकार किया गया है।

12. पक्षों के **विद्वान** अधिवक्ताओं को सुनने के उपरांत और अभिलेखों के अवलोकन के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि आक्षेपित 27-10-2015 के निर्णय एवं आदेश में यह प्रत्यक्ष है कि **विद्वान** विचारण न्यायालय ने पीड़िता/साक्षी-1 का कथन अभिलेखित किया, जिसमें उसने बताया कि आवेदक/जांच अधिकारी ने उसके पिता को बुलाया और हस्ताक्षर करवा लिए तथा यह सुनिश्चित किया कि प्रदर्श क -8 एवं क -6 समान पत्र हैं, जिस पर उसने हस्ताक्षर किए। विचारण के दौरान आवेदक का कथन भी अभिलेखित किया गया, तथापि, आदेश में प्रतिकूल टिप्पणियाँ करने से पूर्व उसे सुनवाई का कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला में यह स्थापित है कि न्यायालयों को सार्वजनिक अधिकारियों के विरुद्ध प्रतिकूल टिप्पणियाँ करने से परहेज करना चाहिए यदि ऐसी टिप्पणियाँ निर्णय/आदेश के निर्णयाधिकार हेतु आवश्यक नहीं हों और सुनवाई का अवसर न दिया गया हो।

13. अधिनियम, 1989 की धारा 4 के प्रावधान से यह स्पष्ट है कि लापरवाही जानबूझकर होनी चाहिए और इसलिए, वह प्राधिकरण, जो उक्त प्रावधान को लागू करते हुए कार्यवाही कर रहा है, पर यह आवश्यक है कि वह यह निष्कर्ष निकाले कि ऐसे लोक सेवक द्वारा अपेक्षित कर्तव्यों का संपादन जानबूझकर लापरवाही के साथ किया गया है। "जानबूझकर लापरवाही" का अर्थ है कोई भी कृत्य जो इरादे और ज्ञान के साथ किया गया हो।

14. इस संबंध में, मैं माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय, **AIR 1964 SC 703, राज्य उत्तर प्रदेश बनाम मोहम्मद नैम** का उल्लेख कर सकता हूँ, और उक्त निर्णय का अनुच्छेद संख्या 10 इस प्रकार है :-

10) अंतिम प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान मामला एक असाधारण प्रकृति का मामला है जिसमें **विद्वान** न्यायाधीश को धारा 561-A सीआरपीसी के अंतर्गत अपनी अंतर्निहित अधिकारक्षमता का प्रयोग करना चाहिए था, राज्य सरकार द्वारा आक्षेपित टिप्पणियों के संबंध में? यदि न्याय प्रशासन में एक प्रमुख सिद्धांत है, तो वह यह है कि न्यायाधीशों और मजिस्ट्रेटों की उचित स्वतंत्रता और निर्भीकता बनाए रखी जानी चाहिए और उन्हें अपने कर्तव्य स्वतंत्र और निर्भीक ढंग से, किसी के भी अनुचित हस्तक्षेप के बिना, निष्पादित करने की अनुमति दी जानी चाहिए, यहाँ तक कि इस न्यायालय द्वारा भी। इसी समय, यह समान रूप से आवश्यक है कि ... कि अपने विचार व्यक्त करते समय न्यायाधीशों और मजिस्ट्रेटों को न्याय, निष्पक्षता और संयम के विचारों से मार्गदर्शन प्राप्त करना आवश्यक है। यह दुर्लभ नहीं है कि व्यापक सामान्यीकरण उन्हीं उद्देश्यों को विफल कर देते हैं, जिनके लिए उन्हें किया गया होता है। न्यायिक रूप से यह मान्यता प्राप्त है कि उन व्यक्तियों या

प्राधिकरणों के विरुद्ध निंदा-सूचक टिप्पणियाँ करने के मामले में, जिनका आचरण न्यायालयों में विचाराधीन मामलों में विचारणाधीन होता है, निम्नलिखित बातों का विचार करना प्रासंगिक है-

(क) क्या उस पक्ष, जिसका आचरण प्रश्न में है, न्यायालय के समक्ष उपस्थित है या उसे स्वयं को स्पष्ट करने या बचाव करने का अवसर प्राप्त है;

(ख) क्या अभिलेख में ऐसा साक्ष्य है जो उस आचरण पर टिप्पणी को न्यायसंगत ठहराता हो; और

(ग) क्या मामले के निर्णय के लिए, उसके अविभाज्य अंग के रूप में, उस आचरण पर टिप्पणी करना आवश्यक है।

यह भी मान्यता प्राप्त है कि न्यायिक निर्णयों का स्वरूप न्यायिक होना चाहिए, और सामान्यतः उन्हें संयम, मध्यमार्गिता और संकोच से विचलित नहीं होना चाहिए।

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि अपने विचार व्यक्त करते समय न्यायाधीशों और मजिस्ट्रेटों को न्याय, निष्पक्षता और संयम के विचारों द्वारा मार्गदर्शित होना चाहिए, और बार-बार की जाने वाली व्यापक टिप्पणियाँ उनके किए जाने के उद्देश्य को विफल कर सकती हैं।

16. उक्त निर्णय एवं आदेश में तीन मार्गदर्शक सिद्धांत प्रकट होते हैं-

(I) उस पक्ष, जिसका आचरण प्रश्न में है, को स्वयं को स्पष्ट करने या बचाव करने का अवसर प्रदान किया गया हो; (II) अभिलेख में ऐसा साक्ष्य हो जो उस आचरण पर की गई टिप्पणियों को न्यायसंगत ठहराता हो; और (III) क्या यह किसी मामले के निर्णय के लिए आवश्यक है।

17. उन्होंने पुनः एक निर्णय पर भरोसा जताया है, जो **(2021) 9 SCC 92, नीरज गर्ग बनाम सरिता रानी एवं अन्य** में प्रकाशित है, और उन्होंने उक्त निर्णय के अनुच्छेद संख्या 9 से 18 पर भरोसा जताया है, जो निम्नलिखित रूप में उद्धृत हैं :-

9. अधिवक्ता के विरुद्ध की गई आपत्तिजनक टिप्पणियों के संबंध में यह तर्क दृढ़ करने हेतु कि वे अनुचित हैं और अपेक्षित मानदंडों पर खरी नहीं उतरतीं, **विद्वान** वरिष्ठ अधिवक्ता ने **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद नैम** का हवाला दिया है, जिसमें एस.के.दास, जे. ने उन परीक्षणों को निर्धारित किया है, जिन्हें उस व्यक्ति के विरुद्ध की गई निंदा-सूचक टिप्पणियों को हटाए जाने के प्रश्न से निपटते समय लागू किया जाना चाहिए, जिनका आचरण विधि न्यायालय के समक्ष विचाराधीन होता है। वे परीक्षण निम्नलिखित हैं: (AIR पृष्ठ 707, अनुच्छेद 10)

10. ... (a) (क) क्या वह पक्ष, जिसका आचरण प्रश्न में है, न्यायालय के समक्ष उपस्थित है या उसे स्वयं को स्पष्ट करने या अपना बचाव करने का अवसर प्राप्त है;

(ख) क्या अभिलेख पर ऐसा साक्ष्य विद्यमान है जो उस आचरण के संबंध में की गई टिप्पणियों को न्यायसंगत ठहराता हो;

(c) (ग) क्या मामले के निर्णय के लिए, उसके अभिन्न अंग के रूप में, उस आचरण पर प्रतिकूल टिप्पणी करना आवश्यक है।

10. **आलोक कुमार रॉय बनाम एस.एन. सरमा** में, पाँच न्यायाधीशों की पीठ के लिए सी.के. वांचू, न्यायमूर्ति द्वारा लिखित मत में, इस न्यायालय ने इस बात पर बल दिया है कि यद्यपि आलोचना उचित हो, तथापि प्रयुक्त भाषा अत्यंत संयमपूर्ण होनी चाहिए। अधिवक्ता के आचरण की निंदा करने हेतु कटाक्षपूर्ण भाषा का प्रयोग न तो शालीनता, न मध्यमार्गिता और न ही संयम का द्योतक होगा।

11. इस न्यायालय का **ए.एम. माथुर बनाम प्रमोद कुमार गुप्ता** में दिया गया निर्णय, जिसे न्यायमूर्ति के. जगन्नाथ शेट्टी, द्वारा प्रतिपादित किया गया, कटुता के आभास तक से बचने की आवश्यकता पर विस्तार से प्रकाश डालता है। न्यायालय ने यह अभिमत व्यक्त किया कि: (SCC पृष्ठ 538-39, अनुच्छेद 13)

"13. संयम का कर्तव्य, अर्थात् कार्यगत विनम्रता, हमारे न्यायाधीशों का निरंतर विषय होना चाहिए। निर्णय-निर्माण में यह गुण न्यायाधीशों द्वारा सम्मान अर्जित करने के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए। इस संदर्भ में न्यायिक संयम को अधिक उपयुक्त रूप से न्यायिक सम्मान कहा जा सकता है, अर्थात् न्यायपालिका द्वारा प्रदर्शित सम्मान।

12. न्यायिक शिष्टाचार के स्थापित मानदंडों के अनुसार न्यायिक आदेशों में अप्रिय टिप्पणियों से बचने के महत्व को भी *अबानी कांता रे बनाम उड़ीसा राज्य* में माननीय जे.एस. वर्मा, न्यायमूर्ति द्वारा निम्नलिखित शब्दों में संक्षेप में रेखांकित किया गया है : (SCC पृष्ठ 178, अनुच्छेद 15)

"15.... किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध उग्र भाषा का प्रयोग करना अथवा अपमानजनक टिप्पणियाँ करना, जब तक कि वह वाद के निर्णय के लिए आवश्यक न हो, न्यायिक आचरण के अनुरूप नहीं है। न्यायिक आदेशों में लिखे गए शब्द स्थायी अभिलेख का हिस्सा होते हैं, जिससे यह और अधिक आवश्यक हो जाता है कि लिखित आदेश पारित करते समय न्यायिक शक्ति के प्रयोग में आत्मसंयम का पालन किया जाए।

13. उपर्युक्त रूप से प्रतिपादित सिद्धांतों को इस न्यायालय द्वारा अनुमोदन सहित उद्धृत किया गया है तथा अनेक पश्चातवर्ती निर्णयों में लागू किया गया है, जिनमें तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिया गया निर्णय

सम्या सेट बनाम शंभू सरकार भी सम्मिलित है। इस प्रकरण में, न्यायालय की ओर से निर्णय लिखते हुए सी.के.(?) ठक्कर, जे. ने यह मत व्यक्त किया कि अभिलेखित प्रतिकूल टिप्पणियाँ न तो न्यायालय के समक्ष उठे विवाद के निर्णय के लिए आवश्यक थीं और न ही वे निर्णय का अभिन्न अंग थीं, और तदनुसार उन टिप्पणियों को विलोपित किए जाने का निर्देश दिया।

14. मोहम्मद नईम के प्रकरण में प्रतिकूल टिप्पणियाँ अंकित किए जाने के संबंध में चार-न्यायाधीशों की पीठ की ओर से एस.के. दास, न्यायमूर्ति द्वारा प्रतिपादित विधिक प्रतिपादन को वर्ष 1964 से अब तक निर्णयों की एक श्रृंखला में अनुमोदित किया गया है। उक्त प्रतिपादन का उल्लेख श्रीलंका के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ए.एन. परेरा बनाम डी.एल.एच. परेरा के प्रकरण में भी किया गया, जहाँ पीठ की ओर से निर्णय व्यक्त करते हुए अब्दुल कादिर, न्यायमूर्ति ने इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित परीक्षणों को अनुमोदित किया और यह निष्कर्ष निकाला कि उस प्रकरण में याचिकाकर्ता के विरुद्ध की गई न्यायाधीश की टिप्पणियाँ उन प्रत्येक परीक्षणों के अनुसार पूर्णतः अनुचित थीं।

15. यद्यपि न्याय के प्रशासन के क्षेत्र में यह अत्यंत मौलिक महत्व का विषय है कि न्यायाधीशों को अपने कर्तव्यों का निर्वहन स्वतंत्र रूप से, निडर होकर तथा किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप के बिना करने दिया जाए, तथापि यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि न्यायाधीश संयम का पालन करें और अधिवक्ता के आचरण के संबंध में ऐसी अनावश्यक टिप्पणियों से बचें, जिनका न्यायालय के समक्ष लंबित विवाद के निस्तारण से कोई संबंध न हो।

16. उच्च न्यायालय के निर्णयों में अंकित आपत्तिजनक टिप्पणियों का अवलोकन करने के पश्चात्, हमें यह प्रतीत होता है कि उन्हें टाला जा सकता था, क्योंकि वे विवादों के निर्णय के लिए आवश्यक नहीं थीं। इसके अतिरिक्त, वे माननीय न्यायाधीश की व्यक्तिगत धारणा पर आधारित प्रतीत होती हैं। यह भी स्पष्ट है कि प्रतिकूल टिप्पणियाँ अंकित करने से पूर्व माननीय न्यायाधीश ने अपीलकर्ता को अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का कोई अवसर नहीं दिया। इस प्रकार अंकित की गई टिप्पणियों ने अपीलकर्ता की व्यावसायिक ईमानदारी पर आक्षेप किया है। अधिवक्ता को सुने जाने का अवसर प्रदान किए बिना की गई ऐसी निंदा, *ऑडी आल्टेरम पार्टेम* के सिद्धांतों का निषेध है। ऐसे मामलों में अपेक्षित संयम और गंभीरता की आवश्यक मात्रा भी उक्त आपत्तिजनक टिप्पणियों में अनुपस्थित पाई जाती है।

17. अपीलकर्ता के विरुद्ध अंकित की गई टिप्पणियों का स्वर न केवल उसके पेशेवर सहकर्मियों के मध्य उसकी प्रतिष्ठा को धूमिल करेगा, बल्कि उसके व्यावसायिक करियर पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। यदि ये टिप्पणियाँ न्यायालय के निर्णयों में अपरिवर्तित बनी रहती हैं, तो यह ऐसा बोझ होगा जिसे अपीलकर्ता को अपने संपूर्ण जीवन भर वहन करना पड़ेगा। उसे इस प्रकार पीड़ित होने देने को, हमारे मत में, पूर्वाग्रहपूर्ण एवं अन्यायपूर्ण माना जाएगा।

18. उपर्युक्त के दृष्टिगत, हम इस सुविचारित मत के हैं कि माननीय न्यायाधीश द्वारा अपीलकर्ता के विरुद्ध जिस प्रकार आपत्तिजनक टिप्पणियाँ अंकित की गईं, वे इस रूप में अंकित नहीं की जानी चाहिए थीं। अपीलकर्ता, जिसके व्यावसायिक आचरण पर प्रश्न उठाया गया था, को अपने आचरण का स्पष्टीकरण देने अथवा अपना बचाव प्रस्तुत करने का कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया। ये टिप्पणियाँ न्यायालय के निर्णय के लिए भी आवश्यक नहीं थीं। तदनुसार यह माना जाता है कि अपीलकर्ता की प्रतिष्ठा अथवा बार के सदस्य के रूप में उसके कार्य को भविष्य में किसी भी प्रकार की क्षति से बचाने के लिए उक्त आपत्तिजनक टिप्पणियों को वापस लिया जाना चाहिए। अतः, इस निर्णय के पैरा 4, 5, 6 एवं 7 में उद्धृत टिप्पणियों को विलोपित किए जाने का आदेश दिया जाता है। परिणामस्वरूप, इन अपीलों का निस्तारण इस आदेश के साथ किया जाता है।

18. लोक प्राधिकारी के विरुद्ध अंकित की गई टिप्पणियाँ न केवल उसकी छवि को धूमिल करेंगी, बल्कि उसके व्यावसायिक करियर पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालेंगी; अतः, सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना, तथा उचित सावधानी और संयम के अभाव में की गई ऐसी टिप्पणियाँ अत्यंत पूर्वाग्रहपूर्ण एवं अन्यायपूर्ण होंगी।

19. *स्टेट ऑफ ओडिशा एवं अन्य बनाम मोहम्मद इलियास*, जो (2006) 1 एस.सी.सी. 275 में प्रतिवेदित है, के प्रकरण में यह प्रतिपादित किया गया है कि अधिनियम, 1989 की धारा 4 के अंतर्गत प्रदत्त 'जानबूझकर उपेक्षा' के अर्थ एवं आशय के संबंध में यह स्पष्ट है कि प्रथम शर्त यह है कि अधिनियम, 1989 के अंतर्गत कोई कर्तव्य आरोपित किया गया हो, जिसका पालन किया जाना अपेक्षित हो, और तभी यह परखा जा सकता है कि ऐसे लोक अधिकारी की ओर से कोई आशयपूर्ण अथवा जानबूझकर की गई उपेक्षा है या नहीं। संदर्भ की सुविधा हेतु, निर्णय के पैरा संख्या 9, 10 एवं 11 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है :-

9. इस चरण पर "विलफुल" शब्द के वास्तविक आशय पर विचार किया जाना वांछनीय है। किसी कृत्य को "विलफुल" तब कहा जाता है, जब वह आशयपूर्ण, सचेत तथा जानबूझकर किया गया हो। (देखें : राकाप्रल्ली राजा राम गोपालू राव बनाम नुरागुनी गोविन्द सेखरराव्य)

10. "विलफुल" अभिव्यक्ति आकस्मिक, दुर्घटनावश, सद्भावनापूर्ण अथवा अनिच्छित कृत्यों या वास्तविक असमर्थता को अपवर्जित करती है। यह ध्यान देने योग्य है कि "विलफुल" कृत्य में आकस्मिक, अनैच्छिक अथवा लापरवाहीपूर्ण कृत्य सम्मिलित नहीं होते। वह कृत्य आशयपूर्ण, जानबूझकर, सुविचारित तथा विधिक परिणामों के पूर्ण ज्ञान के साथ सचेत रूप से किया गया होना चाहिए। "विलफुल" अभिव्यक्ति का अर्थ दुष्ट उद्देश्य से, कुटिल आशय के साथ किया गया कृत्य है।

11. "विलफुल" शब्द कानून के प्रत्येक शाखा में सामान्यत: प्रयुक्त होता है, और यद्यपि कुछ कानूनी शाखाओं में इसका विशेष अर्थ हो सकता है, सामान्यतः, न्यायालयों में प्रयुक्त होने पर इसका अर्थ किसी प्रकार की निंदा योग्य बात नहीं है, बल्कि केवल यह है कि जिसके कृत्य या चूक के लिए यह शब्द प्रयुक्त किया गया है, वह स्वतंत्र एजेंट है, और जो कुछ किया गया है, वह उसकी इच्छा की स्वतःस्फूर्त क्रिया से उत्पन्न हुआ है। इसका

तात्पर्य केवल इतना है कि वह जानता है कि वह क्या कर रहा है, और वह जो कर रहा है उसे करने का इरादा रखता है, तथा वह स्वतंत्र एजेंट है। (बाउएन, एल.जे. *यूंग और हार्स्टन का अनुबंध, रेज़.* में) यह आवश्यकतः निंदा योग्य नहीं होता, यद्यपि यह शब्द आमतौर पर अच्छे आचरण के बजाय बुरे आचरण के लिए अधिक प्रयुक्त होता है। (देखें: *व्हीलर बनाम न्यू मर्टन बोर्ड मिल्स*)। जो कुछ भी आशयपूर्वक किया जाता है, वह विलफुल होता है। (डे, जे. *गैफोर्ड बनाम चौलर* में) जैसा कि रसेल, सी.जे. ने *आर. बनाम ए सीनियर्स* में कहा, "विलफुल" का अर्थ जानबूझकर और इरादतन किया गया होता है।

20. जब यह न्यायालय इस मामले की परीक्षा उपर्युक्त मानक के आधार पर करता है, तो इस प्रकरण के तथ्य से स्पष्ट है कि यह मामला नहीं है कि वर्तमान याचिकाकर्ता, जो जांच अधिकारी हैं, ने कोई जानबूझकर उपेक्षा की हो, क्योंकि उन्होंने जांच संचालित की, पीड़िता का बयान दर्ज किया और प्रतिवादी के विरुद्ध आरोपपत्र प्रस्तुत किया। आरोपपत्र प्रस्तुत करने और जांच संचालित करने में कुछ कमियाँ हो सकती हैं, किंतु यह निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए पर्याप्त नहीं है कि यह किसी प्रकार के ज्ञान या इरादे के साथ किया गया था, क्योंकि अंततः आरोपपत्र प्रस्तुत किया गया है और इसलिए प्रतिवादी को कोई लाभ नहीं पहुँचता। इसके अतिरिक्त, पीड़िता स्वयं ने कहा है कि प्रदर्श क -6 उस पर हस्ताक्षरित है, जो प्रारंभिक रूप से यह दर्शाता है कि प्रदर्श क -6 में उल्लिखित बयान पीड़िता का ही है, जब तक कि इसके विपरीत प्रमाणित न हो, यद्यपि आक्षेपित निर्णय और आदेश में ऐसी कोई चर्चा या निष्कर्ष नहीं है, जो यह प्रमाणित करता हो कि पीड़िता इसे साबित करने में सफल रही कि यह बयान पीड़िता का नहीं है।

21. यह भी दृष्टिगोचर होता है कि याचिकाकर्ता, बी.सी. दुबे, जो जांच अधिकारी हैं, स्वयं न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए और अपनी गवाही दी, जिसमें उन्होंने बताया कि पीड़िता अस्वस्थ थी और उसने अनुरोध किया था कि उसका धारा 164, दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान दर्ज न किया जाए। यद्यपि, जब बयान माननीय न्यायालय में प्रस्तुत किया गया, तो पीड़िता ने इस तथ्य से इंकार किया, फिर भी ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि पीड़िता ने कभी याचिकाकर्ता/जांच अधिकारी के विरुद्ध धारा 164 के तहत अपना बयान मजिस्ट्रेट के समक्ष दर्ज न कराने के लिए कोई शिकायत की हो।

22. मैं *आनंद पंगला बनाम टी.आर. जगन्नाथ*, जो 2003 सीआर.एल.जे.3215 में प्रतिवेदित है, के प्रकरण में प्रतिपादित कानून का भी उल्लेख कर सकता हूँ, जिसमें पैरा संख्या 6 में कर्नाटका उच्च न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि यदि अधिनियम, 1989 की धारा 4 के अंतर्गत जांच अधिकारी के विरुद्ध कार्रवाई करनी है, तो यह आवश्यक है कि तथ्यात्मक विवरणों का उचित और आवश्यक विवरण प्रस्तुत किया जाए, जिससे यह स्पष्ट हो कि उक्त जांच अधिकारी ने अपराध की उचित जांच न करके अपने कर्तव्यों की 'जानबूझकर उपेक्षा' की है। उक्त निर्णय का पैरा संख्या 6 इस प्रकार है :-

6. याचिकाकर्ता का तर्क है कि प्रतिवादियों ने क्रि. पि. संख्याएँ 2312 और 2313 वर्ष 2002 में उचित तरीके से जांच नहीं की है। पर्याप्त साक्ष्य मौजूद हैं जो यह दर्शाते हैं कि प्रतिवादी ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित

जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(व) के अंतर्गत दंडनीय अपराध किया है, और जानबूझकर उक्त अपराध को शामिल नहीं किया गया। इस संबंध में, एक निजी शिकायत दायर की गई है। क्रि. पि. संख्यांक 2312/2002 में याचिकाकर्ता, जिन्हें एस.सी. सं. 500/1999 में C.W. 2 के रूप में उद्धृत किया गया है, का बयान और निजी शिकायत में किए गए विवरणों को ध्यानपूर्वक देखने के पश्चात्, इनमें ऐसा कोई तथ्य नहीं प्रकट होता जो अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(व) के प्रावधानों को लागू करने योग्य हो। एस.सी. सं. 50/1999 में प्राथमिकी और C.Ws. 1 एवं 2, जो कि याचिकाकर्ता हैं, के बयानों में कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि मृतक की हत्या इस कारण की गई कि वह अनुसूचित जाति से संबंधित थी। याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत उद्देश्य केवल यह दर्शाता है कि हत्या लाभ के लिए की गई थी। मृतक द्वारा पहने गए स्वर्ण आभूषणों को एस.सी. सं. 50/1999 में प्रतिवादियों द्वारा लूटने का आरोप है। निस्संदेह, अभियोजन ने उक्त वस्तुओं की खोज प्रतिवादियों की स्वेच्छा से होने के तथ्य को प्रस्तुत किया है, ऐसे में यह याचिकाकर्ताओं की ओर से अत्यंत अनुचित और असंगत है कि यह तर्क दिया जाए कि इस संबंध में पुलिस अधिकारियों ने अपराध किया। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 की धारा 4 के प्रावधान उन लोक सेवकों पर आपराधिक दायित्व लगाते हैं, जो अधिनियम के तहत उन्हें निर्वाह करने के लिए आवश्यक अपने कर्तव्यों की जानबूझकर उपेक्षा करते हैं, और इसके लिए उन्हें कम से कम छह महीने की अवधि तक और अधिकतम एक वर्ष तक की कारावास की सजा के योग्य ठहराया गया है। जांच अधिकारियों के विरुद्ध अधिनियम की धारा 4 को लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि तथ्यों का उचित और आवश्यक विवरण प्रस्तुत किया जाए, जिससे यह स्पष्ट हो कि उन्होंने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 की संबंधित धाराओं द्वारा निर्धारित अपराध की उचित जांच न करके अपने कर्तव्यों की जानबूझकर उपेक्षा की है। जांच अधिकारियों की ओर से किन तरीकों से कार्रवाई न करने में विफलता हुई, इसे स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए। अधिनियम की धारा 4 के प्रावधान के संदर्भ में, यदि एस.सी. सं. 50/1999 में निजी शिकायत में किए गए विवरणों को पढ़ा जाए, तो इससे यह संकेत नहीं मिलता कि पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध पी.सी.आर. सं. 251/2000 में कार्यवाही करने के लिए धारा 4 के तत्वों को दर्शाने वाला आवश्यक तथ्य प्रस्तुत किया गया हो। अतः, मैं पाता हूँ कि सत्र न्यायाधीश द्वारा क्रि. पि. सं. 2312 और 2313/2002 में प्रतिवादियों के विरुद्ध आदेश को रद्द करना न्यायसंगत था। उक्त आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है।

23. इसी प्रकार, *राम पाल बनाम राजस्थान राज्य*, जो 1998 सीआर.एल.जे. 3261 में प्रतिवेदित है, के प्रकरण में यह प्रतिपादित किया गया कि धारा 4 का उद्देश्य स्पष्ट है कि इस धारा के अंतर्गत दंडनीय अपराध केवल उन कर्तव्यों के संबंध में किए गए होने चाहिए, जिन्हें अधिनियम, 1989 के तहत पूरा किया जाना आवश्यक है, और यदि ऐसा नहीं है, तो अधिनियम, 1989 की धारा 4 का प्रावधान लागू नहीं होगा। उक्त निर्णय के अनुच्छेद संख्या 8 एवं 9 को यहाँ उद्धृत किया जाता है :-

8. प्रथम प्रश्न यह निर्धारित करना है कि क्या अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 की धारा 4 के अंतर्गत कोई अपराध हुआ है।

धारा 4 इस प्रकार है :-

कर्तव्यों की उपेक्षा के लिए दंड - जो कोई भी लोक सेवक होने के बावजूद, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य न होने पर, इस अधिनियम के अंतर्गत अपने द्वारा निभाए जाने वाले कर्तव्यों की जानबूझकर उपेक्षा करता है, वह कम से कम छह माह की अवधि तक और अधिकतम एक वर्ष तक की कारावास की सजा के योग्य होगा।

धारा 4 का केवल पठनीय अध्ययन यह दर्शाता है कि इस धारा के अंतर्गत दंडनीय अपराध केवल उन कर्तव्यों के संबंध में किए गए होने चाहिए, जिन्हें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 के अंतर्गत पूरा किया जाना आवश्यक है। यदि कोई कर्तव्य किसी अन्य अधिनियम (जिसमें दंड प्रक्रिया संहिता भी शामिल है) के अंतर्गत निभाया जाना है, तो अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 की धारा 4 के प्रावधान लागू नहीं होंगे।

मौलिक प्रश्न यह है कि क्या जांच अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 के अंतर्गत संचालित की गई थी और क्या अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करना अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 के अंतर्गत निर्धारित किसी कर्तव्य के संबंध में था। यदि उत्तर सकारात्मक है, तो कहा जाएगा कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 की धारा 4 के अंतर्गत अपराध किया गया हो सकता है। परंतु, यदि उत्तर नकारात्मक है, तो यह कहा जाना होगा कि यदि कोई लोक सेवक किसी अन्य कानून द्वारा निर्धारित अपने कर्तव्यों की जानबूझकर उपेक्षा करता है, तो अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 की धारा 4 के अंतर्गत कोई अपराध नहीं हुआ माना जाएगा।

वर्तमान प्रकरण में, शिकायत को धारा 156(3), दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत जांच के लिए पुलिस को भेजा गया। इस मामले में पुलिस ने दंड प्रक्रिया संहिता द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रयोग में यह प्रकरण दर्ज किया। जांच याचिकाकर्ता द्वारा धारा 157 एवं दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अन्य प्रावधानों के अंतर्गत संचालित की गई, और अंतिम रिपोर्ट, जिसे याचिकाकर्ता ने प्रस्तुत किया, धारा 173, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 द्वारा निर्धारित कर्तव्य के निर्वाह में थी। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 किसी प्रकरण की जांच के लिए कोई विशेष प्रक्रिया प्रदान नहीं करता है, और इसलिए, धारा 4(2) के दृष्टिगत, अपराधों की जांच, पड़ताल, परीक्षण या अन्य प्रकार से निपटान दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुसार किया जाना आवश्यक है, सिवाय इसके कि दंड प्रक्रिया संहिता में सम्मिलित सामान्य प्रावधानों को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 में सम्मिलित किसी विशेष प्रावधान द्वारा अधिगृहीत किया गया हो।

इस कानूनी स्थिति के दृष्टिगत, धारा 173, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के तहत अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करना उस कर्तव्य के निर्वाह के रूप में किया गया कार्य नहीं माना जा सकता जो अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 द्वारा या इसके अंतर्गत निर्धारित किया गया हो। अतः, मुझे

यह निष्कर्ष निकालने में कोई संकोच नहीं कि अगर किसी जांच अधिकारी द्वारा जांच के संचालन में कोई कर्तव्य की उपेक्षा की जाती है, जबकि वह दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 द्वारा प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करते हुए कार्य करता है, तब भी अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 की धारा 4 लागू नहीं होगी, जब तक यह स्थापित न किया जा सके कि कर्तव्य की जानबूझकर उपेक्षा जांच अधिकारी द्वारा उसी कर्तव्य के संबंध में की गई थी, जिसे अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 के तहत निर्धारित किया गया हो।

माननीय न्यायिक मजिस्ट्रेट ने ऐसा प्रतीत नहीं होता कि उन्होंने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 की धारा 4 के प्रावधानों पर विचार किया हो। यह इंगित करना अनुचित नहीं होगा कि किसी कथित अपराध के लिए अभियोजन और दंड अत्यंत गंभीर मामला है, और संविधान के भाग III में कुछ महत्वपूर्ण संवैधानिक सुरक्षा उपाय प्रदान किए गए हैं। संविधान के अनुच्छेद 20 की उपधारा (1) यह प्रावधान करती है कि किसी भी व्यक्ति को केवल उस समय लागू कानून का उल्लंघन करने के लिए दोषी नहीं ठहराया जाएगा जब अपराध किया गया हो, और उस समय लागू कानून के तहत दी जा सकने वाली सजा से अधिक दंड नहीं लगाया जाएगा।

ताकि संविधान के अनुच्छेद 20(1) द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार का उल्लंघन न हो, यह आवश्यक है कि वे प्राधिकरण, जो किसी व्यक्ति के विरुद्ध किसी अपराध के किए जाने पर कोई कार्रवाई आरंभ करने का विचार करते हैं, यह सुनिश्चित करें कि जिसके संबंध में किसी व्यक्ति के विरुद्ध कार्रवाई करनी है, वह कथित अपराध वर्तमान में लागू किसी भी कानून के अंतर्गत अपराध है या नहीं। अतः यह आवश्यक है कि उस कृत्य को अपराध घोषित करने वाले कानून के प्रावधानों को ध्यानपूर्वक पढ़ा और व्याख्यायित किया जाए, इससे पहले कि किसी के विरुद्ध संज्ञान लिया जाए और प्रक्रिया जारी की जाए।

उपर्युक्त कारणों के दृष्टिगत, वर्तमान प्रकरण में यह कहा नहीं जा सकता कि याचिकाकर्ता तथा चुरू के पुलिस अधीक्षक ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 की धारा 4 के अंतर्गत कोई अपराध किया है, क्योंकि धारा 173, दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करना दंड प्रक्रिया संहिता द्वारा निर्धारित कर्तव्य के निर्वाह में किया गया था, न कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 के किसी प्रावधान के अनुसार।

धारा 4 का केवल पठनीय अध्ययन यह दर्शाता है कि धारा 4 के अंतर्गत अपराध किए जाने से पूर्व यह प्रदर्शित किया जाना आवश्यक है कि किसी लोक सेवक ने अपने कर्तव्यों की जानबूझकर उपेक्षा की है। एक सद्भावनापूर्ण कार्य, भले ही वह त्रुटिपूर्ण हो, उसे कर्तव्य की जानबूझकर उपेक्षा के रूप में नहीं माना जा सकता। 16 मार्च, 1996 के अपने आदेश में माननीय न्यायिक मजिस्ट्रेट ने स्वयं यह अवलोकन किया है :-

इसके अलावा जिलपज पुलिस अपधाक, चुरू कोर जमह पावली आदोर्थ मेजी तो श्र.पी. चुरू ने भी पावली पर उपलब्ध पमग्री पर विचार नहीं करे थ्पों की अनदेखी की है जोएक उच्चापधकारी की जीन-मूझ कर की गपी लारवाही है जो लोक सेवक के कत70य पालन के दौरान किए 'ए की परिधि में नहीं आता है। इस प्रकरण में लिया जा सकने वाला सबसे उदार दृष्टिकोण यह है कि माननीय न्यायिक मजिस्ट्रेट का यह मत था कि चुरू के पुलिस अधीक्षक ने अपने कर्तव्य का निर्वाह करने में उपेक्षा की, किंतु केवल उपेक्षा ही अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार रोकथाम) अधिनियम, 1989 की धारा 4 के अंतर्गत दंडनीय नहीं है।

इस न्यायालय ने अनेक प्रकरणों में यह अवलोकन किया है कि किसी व्यक्ति के विरुद्ध यह आरोप लगाकर प्रक्रिया जारी करना कि उसने अपराध किया है, अत्यंत गंभीर मामला है। इससे उस व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता, जो संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त है, प्रभावित होती है। अतः, प्रक्रिया जारी करने से पूर्व यह जांच करना आवश्यक है कि क्या न्यायालय के अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों द्वारा अपराध के तत्व प्रारंभिक रूप से स्थापित होते हैं या नहीं।

धारा 173, दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत याचिकाकर्ता रामपाल द्वारा अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत किया जाना स्पष्ट रूप से एक ऐसा कार्य था, जो दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अंतर्गत जांच संचालित करते हुए, एक जांच अधिकारी के रूप में उसके लोक कर्तव्यों के निर्वहन में किया गया था। किसी भी दृष्टि से यह नहीं कहा जा सकता कि अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करना उसके लोक कर्तव्य का हिस्सा नहीं था। इन परिस्थितियों में, प्रथमदृष्टया, याचिकाकर्ता तथा चुरू के पुलिस अधीक्षक–दोनों–धारा 197, दंड प्रक्रिया संहिता के संरक्षण के पात्र थे और विधिवत स्वीकृति के बिना उनके विरुद्ध किसी अपराध का संज्ञान नहीं लिया जा सकता था। माननीय न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा यह दृष्टिकोण अपनाया जाना कि याचिकाकर्ता धारा 197, दंड प्रक्रिया संहिता के संरक्षण का पात्र नहीं है, त्रुटिपूर्ण है और बनाए नहीं रखा जा सकता।

जहाँ तक चुरू के पुलिस अधीक्षक की भूमिका का संबंध है, वर्तमान प्रकरण में यह विचार करना आवश्यक है कि क्या चुरू के पुलिस अधीक्षक पर धारा 173, दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत रिपोर्ट प्रस्तुत करने के संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता के तहत कोई कर्तव्य निर्वाह करने का दायित्व था। धारा 156, दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत, मामले की जांच करने की शक्तियाँ पुलिस थाना प्रभारी को प्रदान की गई हैं।

धारा 157, दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत, पुलिस थाना प्रभारी स्वयं जांच के लिए घटनास्थल पर जा सकता है अथवा वह अपने किसी अधीनस्थ अधिकारी को, जो राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निर्धारित रैंक से नीचे का न हो, जांच के लिए नियुक्त कर सकता है। धारा 173, दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत, जांच पूर्ण होने के पश्चात रिपोर्ट उस मजिस्ट्रेट को प्रेषित की जानी होती है, जो अपराध का संज्ञान लेने के लिए सक्षम हो, और यह रिपोर्ट पुलिस थाना प्रभारी द्वारा प्रस्तुत की जाती है। ये प्रावधान स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि जहाँ तक धारा 173, दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत रिपोर्ट प्रस्तुत करने का संबंध है, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 द्वारा जो भी कर्तव्य निर्धारित किए गए हैं, वे पुलिस थाना प्रभारी के लिए निर्धारित किए गए हैं। पुलिस अधीक्षक अथवा अन्य वरिष्ठ अधिकारियों पर कोई कर्तव्य निर्वाह करने का दायित्व नहीं होता, जब

तक कि वे स्वयं उस प्रकरण में पुलिस थाना प्रभारी की शक्तियों का प्रयोग न करें, चाहे वे पुलिस थाना प्रभारी के रूप में कार्य कर रहे हों अथवा धारा 36, दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत। पुलिस अधीक्षक के अधीनस्थ अधिकारी द्वारा तैयार की गई अंतिम रिपोर्ट का अवलोकन, एक प्रशासनिक वरिष्ठ अधिकारी की हैसियत से किया गया था, न कि पुलिस थाना प्रभारी के रूप में। माननीय न्यायिक मजिस्ट्रेट ने 16 मार्च, 1996 के आक्षेपित आदेश पारित करने से पूर्व इस संबंध में विधिक प्रावधानों पर विचार किया हुआ प्रतीत नहीं होता।

24. यह भी उल्लेखनीय है कि *अनुजराम परही बनाम उड़ीसा राज्य*, जो 1989 सीआर.एल.जे.447 में प्रतिवेदित है, के प्रकरण में यह प्रतिपादित किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत निहित शक्तियों का प्रयोग माननीय विचारण न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के विलोपन के लिए किया जा सकता है, विशेष रूप से तब, जब ऐसी टिप्पणियाँ वाद के निर्णय के लिए आवश्यक न हों। उपर्युक्त निर्णय का अनुच्छेद संख्या 3 नीचे उद्धृत किया जा रहा है :-

3. उच्चतम न्यायालय द्वारा *उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद नईम*, ए.आई.आर. 1964 सर्वोच्च न्यायालय 703 : (1964 (1) क्रि.एल.जे. 549) के प्रकरण में निर्णय दिए जाने से पूर्व, अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय से आपत्तिजनक विषयवस्तु को विलोपित करने के संबंध में उच्च न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र को लेकर मतभेद विद्यमान था। एक मत यह था कि उच्च न्यायालय को उस अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय से, जिसे पुनरीक्षण में उसके समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया हो, किसी भी अंश को विलोपित करने का अधिकार-क्षेत्र प्राप्त नहीं है। दूसरा मत यह था कि उच्च न्यायालय के पास अपनी अंतर्निहित शक्ति के अंतर्गत यह अधिकार है कि वह नियमित अपील में या अन्यथा, स्वयं द्वारा दिए गए अथवा किसी अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय में निहित ऐसे अंशों को विलोपित कर सके, जो या तो अप्रासंगिक हों या अग्राह्य हों अथवा जो न्यायालय के समक्ष उपस्थित किसी व्यक्ति के चरित्र पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हों। तथापि, उपर्युक्त संदर्भित उच्चतम न्यायालय के निर्णय के आलोक में यह विवाद अब *रेस इंटीग्रा* नहीं रह गया है। उक्त प्रकरण में उच्चतम न्यायालय द्वारा प्राधिकृत रूप से यह प्रतिपादित किया गया है कि उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित अधिकारिता के प्रयोग में, स्वयं द्वारा अथवा किसी अधीनस्थ न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों को विलोपित कर सकता है, यदि न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने अथवा अन्यथा न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ऐसा करना आवश्यक हो, भले ही वह विषय उसके समक्ष नियमित अपील या पुनरीक्षण में प्रस्तुत न किया गया हो। ऐसा कहते हुए, उच्चतम न्यायालय ने सावधानी का एक शब्द भी कहा है कि टिप्पणियों के विलोपन की शक्ति असाधारण प्रकृति की है और इसका प्रयोग अत्यंत सावधानी और सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए। निःसंदेह, न्याय के समुचित प्रशासन के हित में न्यायालयों को अपने कार्य स्वतंत्र रूप से और निर्भीक होकर करने दिया जाना चाहिए तथा वाद से प्रासंगिक होने पर किसी साक्षी के कथन पर टिप्पणी करने की भी अनुमति होनी चाहिए, और इस संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा अनुचित हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। परंतु जहाँ विचाराधीन टिप्पणी के लिए न तो कोई आधार हो और न ही वाद के न्यायोचित निर्णय के लिए ऐसी टिप्पणी करना न्यायालय के लिए आवश्यक हो, तथा ऐसी टिप्पणी उस व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हो, जिसके विरुद्ध वह की गई है, वहाँ न्यायालयों को ऐसी टिप्पणी करने से परहेज करना चाहिए। यह सदैव एक स्थापित

सिद्धांत है कि साक्ष्यों का मूल्यांकन करते समय और तथ्यात्मक प्रश्नों पर निष्कर्ष पर पहुँचते हुए, न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि वह कठोर न हो और अत्यधिक संयम तथा संतुलन का प्रयोग करे। न्याय के प्रशासन के हित में यह नहीं है कि न्यायालय व्यापक आक्षेप लगाए या उग्र भाषा का प्रयोग करे, जो अनुचित रूप से कठोर हो, विशेषकर तब जब जिस व्यक्ति की निंदा की गई है उसे अपना स्पष्टीकरण देने या अपना बचाव करने का शायद ही कोई अवसर प्राप्त हुआ हो। यदि किसी साक्षी का आचरण न्यायाधीश को संदिग्ध प्रतीत होता है अथवा अन्यथा पूर्णतः निष्कलंक न हो, तो न्यायाधीश को प्रश्न पूछकर उसके साक्ष्य की परीक्षा करने का अधिकार और कर्तव्य दोनों प्राप्त हैं। परंतु, न्यायालय तब ही साक्ष्य पर प्रतिकूल टिप्पणी करने के लिए न्यायसंगत है जब वह उस विशेष तथ्य को स्थापित कर ले जो ऐसी आलोचना को न्यायोचित ठहराता हो, और टिप्पणियाँ केवल अटकलों पर आधारित नहीं होनी चाहिए। उच्चतम न्यायालय ने *डॉ. रघुबीर सारण बनाम बिहार राज्य*, ए.आई.आर. 1964 सर्वोच्च न्यायालय 1 : (1964 (1) क्रि.एल.जे. 11) के प्रकरण में यह प्रतिपादित किया है कि यदि किसी व्यक्ति पर, जिसे अपने बचाव में सुनवाई का अवसर नहीं मिला हो, अनुचित हमला किया गया है और टिप्पणी अप्रासंगिक और पृथक की जा सकने योग्य है, तो उसे विलोपित कर दिया जाना चाहिए। अन्य उच्चतम न्यायालय के प्रकरण में, जिसका पहले उल्लेख किया गया था, *ए.आई.आर. 1964 सर्वोच्च न्यायालय 703 : (1964 (1) क्रि.एल.जे. 549)* में यह प्रतिपादित किया गया कि विलोपन की शक्ति का प्रयोग उस निर्णय के अंशों को हटाने के लिए किया जा सकता है, जो भले ही साक्ष्यों पर आधारित हों, किसी व्यक्ति के चरित्र को हानि पहुँचाते हों, किसी विवादास्पद मुद्दे से पूरी तरह अप्रासंगिक हों, और जिन्हें न्यायालय ने अनावश्यक रूप से निर्णय में सम्मिलित किया हो। इस संदर्भ में, लाहौर उच्च न्यायालय की विशेष पीठ ने *फिलिप विलियम रावनशॉ हार्डलेस बनाम ग्लेडिस इसाबेल हार्डलेस*, ए.आई.आर. 1940 लाहौर 82, के प्रकरण में यह अवलोकन किया कि ऐसी टिप्पणी, जो न्यायालय द्वारा प्राप्त निष्कर्ष के लिए आवश्यक न हो, या न्यायालय की तर्क प्रक्रिया के लिए भी आवश्यक न हो, और जो पक्षकार की आजीविका या भविष्य के पेशेवर करियर पर गंभीर प्रभाव डालने की संभावना रखती हो, उसे निर्णय से विलोपित किया जाना चाहिए। वास्तव में, इस न्यायालय के एक हालिया प्रकरण *श्री निरंजन पटनायक बनाम श्री सशिभूषण कार*, जो (1986) 61 cut LT 523 : (1986 क्रि.एल.जे. 911) (एस.सी.) में प्रतिवेदित है, में उच्चतम न्यायालय ने किसी साक्षी के विरुद्ध की गई कुछ टिप्पणियों पर विचार करते हुए यह अवलोकन किया:-

" यदि न्याय प्रशासन में एक मुख्य और अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्धांत है, तो वह यह है: न्यायाधीशों और मजिस्ट्रेटों की उचित स्वतंत्रता और स्वायत्तता सुनिश्चित की जानी चाहिए और उन्हें अपने कार्य स्वतंत्र रूप से, निर्भीक होकर और किसी के अनुचित हस्तक्षेप के बिना संपन्न करने दिया जाना चाहिए। साथ ही यह भी आवश्यक है कि अपने मत व्यक्त करते समय न्यायाधीश और मजिस्ट्रेट न्याय, निष्पक्षता और संयम के विचारों द्वारा निर्देशित हों। यह अप्रत्याशित नहीं है कि व्यापक सामान्यीकरण स्वयं उस उद्देश्य को विफल कर देते हैं जिसके लिए उन्हें किया गया है। न्यायिक रूप से यह मान्यता प्राप्त है कि न्यायालयों द्वारा निर्णय किए जाने वाले प्रकरणों में, जब किसी व्यक्ति या प्राधिकरण के विरुद्ध उनके आचरण पर आधारित निंदात्मक टिप्पणियाँ की जाती हैं, तो निम्नलिखित विचार करना प्रासंगिक होता है:

(a) क्या उस पक्ष, जिसका आचरण प्रश्न में है, न्यायालय के समक्ष उपस्थित है या उसे अपना स्पष्टीकरण देने अथवा अपनी रक्षा करने का अवसर प्राप्त है;

(b) क्या उनके आचरण पर कोई ऐसा साक्ष्य उपलब्ध है जो प्रकरण के निर्णय को न्यायोचित ठहराने के लिए आवश्यक हो और जिसके आधार पर उस आचरण पर टिप्पणी करना न्यायालय के निर्णय का अभिन्न हिस्सा हो।

यह भी मान्यता प्राप्त है कि न्यायिक निर्णयों का स्वरूप न्यायिक होना चाहिए और सामान्यतः इन्हें संयम, संतुलन और परहेज़ से विचलित नहीं होना चाहिए।

(हेडनोट से उद्धृत)

उपर्युक्त विधिक सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए और आक्षेपित निर्णय की परीक्षा करने पर, मैं केवल यह ही कह सकता हूँ कि माननीय सत्र न्यायाधीश द्वारा पी.डब्ल्यू. 6, अर्थात् चिकित्सक के विरुद्ध की गई टिप्पणी पूर्णतः अनुचित थी और यह वाद के न्यायसंगत निर्णय के लिए बिल्कुल भी आवश्यक नहीं थी। इस दृष्टिकोण से, यह वह उपयुक्त प्रकरण है जहाँ इस न्यायालय को सत्र परीक्षण संख्या 19/1985 के निर्णय से उस भाग को विलोपित करना चाहिए। मैं तदनुसार निर्देश देता हूँ कि सत्र परीक्षण संख्या 19/1985 में माननीय सत्र न्यायाधीश के निर्णय के अनुच्छेद 17 के अंतिम वाक्य को विलोपित किया जाए।

इसलिए यह आवेदन स्वीकार किया जाता है। याचिका स्वीकार की गई।

25. अब, विषय का संक्षिप्त रूप से विश्लेषण करते हुए, यह स्पष्ट होता है कि पीड़िता तथा जांच अधिकारी/याचिकाकर्ता के कथन माननीय विचारण न्यायालय द्वारा आपराधिक प्रकरण का निर्णय करने के लिए दर्ज किए गए हैं। परंतु, प्रश्न यह उठता है कि क्या प्रतिकूल टिप्पणियाँ करने से पूर्व, स्थापित विधिक सिद्धांत के अनुसार, प्राकृतिक न्याय का मूलभूत सिद्धांत अपनाया गया या नहीं। टिप्पणियों की समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि उन टिप्पणियों से याचिकाकर्ता को पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा है और स्थापित सिद्धांत यह है कि यदि न्यायालय कुछ प्रतिकूल टिप्पणियाँ कर रहा है, जो निर्णय और आदेश के घोषणा के लिए आवश्यक हैं, और सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना की जाती हैं, तो वह विधि की दृष्टि में खड़ी नहीं होतीं।

26. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, माननीय उच्चतम न्यायालय ने *नीरज गर्ग* (सुप्रा) और *मोहम्मद नईम* (सुप्रा) के प्रकरणों में स्पष्ट रूप से कहा है कि अनियंत्रित, व्यापक और बार-बार की जाने वाली टिप्पणियाँ उस उद्देश्य को विफल कर देंगी, यदि उन्हें स्थापित विधिक सिद्धांतों के अनुसार निर्देशित न किया गया हो। वास्तव में, ऐसी प्रतिकूल टिप्पणियाँ करने से पूर्व, व्यक्ति को अपना स्पष्टीकरण देने या अपनी रक्षा करने का अवसर अवश्य प्रदान किया जाना चाहिए।

27. जहाँ तक वर्तमान मामले का संबंध है, दिनांक 27-10-2015 के विवादित निर्णय और आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि आवेदक को सुनवाई का अवसर प्रदान नहीं किया गया है। विद्वान ट्रायल कोर्ट ने अत्यंत

जल्दबाजी में (sweeping manner), आवेदक के विरुद्ध आपराधिक मामला दर्ज करने और अधिनियम, 1989 की धारा 4 के तहत मुकदमा चलाने के निर्देश के रूप में प्रतिकूल टिप्पणी की है, जो प्रत्यक्ष रूप से आवेदक के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगी। वास्तव में, आवेदक और पीड़िता के बयान विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा विचारण प्रक्रिया (trial proceeding) के सामान्य क्रम में दर्ज किए गए हैं। लेकिन, जैसे ही न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि जाँच अधिकारी द्वारा 1989 के अधिनियम के तहत सौंपे गए कर्तव्यों के संबंध में कोई जानबूझकर लापरवाही (wilful negligence) की गई है, तो आवेदक से स्पष्टीकरण मांगते हुए उसे सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए था। किंतु, 27-10-2015 के विवादित निर्णय और आदेश से यह प्रकट होता है कि आवेदक को सुनवाई का ऐसा कोई अवसर नहीं दिया गया था।

28. अतः, मेरा यह सुविचारित मत है कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने आक्षेपित निर्णय और आदेश में आवेदक के विरुद्ध प्रतिकूल टिप्पणी/निर्देश देते समय, 'मोहम्मद नईम (उपरोक्त)' और 'नीरज गर्ग (उपरोक्त)' के मामलों में स्थापित कानून के सिद्धांतों की अनदेखी की है। इसके अतिरिक्त, अधिनियम, 1989 की धारा 4 को लागू करने का उद्देश्य भी विफल हो गया है, क्योंकि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने यह निष्कर्ष निकाले बिना ही प्रतिकूल टिप्पणी कर दी है कि जाँच प्रक्रिया में कोई 'जानबूझकर की गई लापरवाही' (wilful negligence) हुई है।

29. उपरोक्त दलीलों और चर्चाओं के आलोक में, यह न्यायालय वर्तमान आवेदन में गुण पाता है और इस प्रकार, धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता (Cr.P.C.) के तहत प्रस्तुत आवेदन को एतद्द्वारा स्वीकार किया जाता है।

30. परिणामस्वरूप, दिनांक 27-10-2015 के निर्णय और आदेश में की गई प्रतिकूल टिप्पणियाँ, जिन्हें इस आदेश के पैराग्राफ संख्या 8 में उद्धृत किया गया है, एतद्द्वारा निरस्त (set aside) की जाती हैं।

31. तदनुसार परिणामी कार्यवाही सुनिश्चित की जाए।

32. पत्रावली दाखिल दफ्तर हो।

(2025) 5 ILRA 286

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार पचौरी

आवेदन अंतर्गत धारा 528 बीएनएसएस संख्या 2582/2025

राघवेन्द्र सिंह **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

आवेदक के अधिवक्ता: रवीश कुमार सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता , विपिन कुमार यादव

व्यक्तिगत प्रतिवादी संख्या 2, आवेदक की पत्नी है। पक्षों के बीच विभिन्न वैवाहिक विवाद लंबित हैं। चिकित्सीय रिपोर्ट के अनुसार, घायल व्यक्ति/प्रथम सूचना दाता के शरीर पर पाँच चोटें पाई गई हैं। अंतरनिहित शक्ति (Inherent Power) का उपयोग केवल अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाना चाहिए। मामले से संबंधित तथ्यों और परिस्थितियों की सटीक समीक्षा करना पूर्णतः अनिवार्य है।

आवेदन खारिज किया जाता है। (E-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. राज्य हरियाणा एवं अन्य बनाम भजन लाल, 1992 सप्लीमेंट (1) SCC 335
2. कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय बनाम राज्य हरियाणा, (1977) 4 SCC 451
3. बी. एस. जोशी बनाम राज्य हरियाणा, (2003) 4 SCC 675
4. धनलक्ष्मी बनाम आर. प्रसन्न कुमार, 1990 सप्लीमेंट SCC 686
5. गणेश नारायण हegde बनाम एस. बंगारप्पा, (1995) 4 SCC 41
6. ज़ांडू फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम मोहम्मद शरफ़ुल फ़क़े, (2005) 1 SCC 122
7. राज्य पश्चिम बंगाल बनाम स्वप्न कुमार गूरुा, (1982) 1 SCC 561
8. पेप्सी फ़ूड्स लिमिटेड बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट, (1998) 5 SCC 749

9. जी. सागर सूरी बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, (2000) 2 SCC 636 और अजय मित्रा बनाम राज्य मध्य प्रदेश, (2003) 3 SCC 11
10. धनलक्ष्मी बनाम आर. प्रसन्न कुमार, 1990 सप्लीमेंट SCC 686
11. राज्य बिहार बनाम पी. पी. शर्मा, 1992 सप्लीमेंट (1) SCC 222
12. रुपन दीओल बाजाज बनाम कन्वर पाल सिंह गिल, (1995) 6 SCC 194
13. राज्य केरल बनाम ओ. सी. कुट्टन, (1999) 2 SCC 651
14. राज्य उत्तर प्रदेश बनाम ओ. पी. शर्मा, (1996) 7 SCC 705
15. रश्मि कुमार बनाम महेश कुमार भाड़ा, (1997) 2 SCC 397
16. सतविंदर कौर बनाम राज्य (एन.सी.टी. दिल्ली), (1999) 8 SCC 728
17. राजेश बाजाज बनाम राज्य (एन.सी.टी. दिल्ली), (1999) 3 SCC 259
18. राज्य कर्नाटक बनाम एम. देवेंद्रप्पा, (2002) 3 SCC 89
19. सनापरेड्डी महीधर शेषगिरी एवं अन्य बनाम राज्य आंध्र प्रदेश एवं अन्य, (2007) 13 SCC 165

(माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार पचौरी)

1. भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 (जिसे आगे "बी.एन.एस.एस." कहा गया है) की धारा 528 के अंतर्गत प्रस्तुत यह आवेदन, आपराधिक वाद संख्या 5371 वर्ष 2024 (राज्य बनाम राघवेंद्र सिंह) से संबंधित समस्त कार्यवाही को निरस्त किए जाने हेतु दाखिल किया गया है, जो कि केस क्राइम संख्या 145 वर्ष 2024 से उत्पन्न है। उक्त वाद भारतीय न्याय संहिता (बी.एन.एस.) की धाराएँ 115(2), 351(3), 352, 110, 117(2) (जो कि भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 323, 506, 504, 308, 325 के समतुल्य हैं) के अंतर्गत, थाना सिविल लाइन्स, जनपद इटावा में पंजीकृत है। साथ ही, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, इटावा के न्यायालय में लंबित दिनांक 22.10.2024 का संज्ञान/समन आदेश भी निरस्त किए जाने का निवेदन किया गया है।

2. वाद के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि दिनांक 05.07.2024 को आवेदक तथा दो अन्य अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई है। इसमें आरोप लगाया गया है कि प्रथम सूचक का विवाह वर्तमान आवेदक के साथ दिनांक 11.03.2018 को संपन्न हुआ था, किंतु कुछ वैवाहिक विवादों के कारण प्रथम सूचक अपने मायके में निवास कर रही है। दिनांक 04.07.2024 को वह भरण-पोषण एवं घरेलू हिंसा से संबंधित एक वाद में पैरवी करने हेतु दीवानी न्यायालय गई थी। उसी समय वर्तमान आवेदक द्वारा प्रथम सूचक को समस्त वादों को वापस लेने की धमकी दी गई। उसी दिन लगभग अपराह्न 2.00 बजे आवेदक तथा दो अन्य अज्ञात व्यक्ति आए और प्रथम सूचक के साथ गाली-गलौज की तथा उसके बाल खींचे और उसके साथ मारपीट की। उक्त मारपीट के कारण प्रथम सूचक गंभीर रूप से घायल हो गई तथा उसके शरीर के समस्त भागों, जिसमें

सिर भी सम्मिलित है, पर चोटें आईं। उसके चिल्लाने पर आवेदक एवं अन्य सह-अभियुक्तगण कार द्वारा घटना स्थल से फरार हो गए।

2(i) दिनांक 05.07.20224 को रात्रि 23.11 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज किए जाने के पश्चात, प्रथम सूचक का चिकित्सकीय परीक्षण दिनांक 04.07.2024 को अपराह्न 2.44 बजे (घटना के 45 मिनट के भीतर) कराया गया, जिसमें पाई गई चोटें निम्नलिखित हैं :

(क) बाएँ पेराइटल क्षेत्र में 6.9 सेमी x 0.8 सेमी का कटा हुआ घाव, जिसके किनारे स्पष्ट हैं तथा ताज़ा रक्तस्राव विद्यमान है।

(ख) हायॉइड अस्थि के ऊपर अग्र भाग में 7.8 सेमी x 1.9 सेमी का घर्षित कुचलाव, रक्तस्राव नहीं है, रंग लाल है तथा गर्दन का एक्स-रे कराने की सलाह दी गई है।

(ग) बाएँ निचले पीठ भाग पर 4.8 सेमी x 3.9 सेमी का घर्षण, रक्तस्राव नहीं है।

(घ) दाएँ कुहनी के अग्र भाग में, दाएँ घुटने के जोड़ से 5.8 सेमी x 2.1 सेमी का घर्षण, रक्तस्राव नहीं है, रंग लाल है।

(ङ) दाहिनी ओर छाती पर 4.2 सेमी x 3.6 सेमी का कुचलाव, श्वास में कठिनाई के साथ, रंग लालिमा लिए हुए है। छाती का एक्स-रे कराने की सलाह दी गई है।

2(ii) जांच पूर्ण किए जाने के पश्चात आवेदक के विरुद्ध आरोपपत्र प्रस्तुत किया गया, तथा विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 22.10.2024 को भारतीय न्याय संहिता (बी.एन.एस.) की धाराएँ 115(2), 351(3), 352, 110, 117(2) (जो कि भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 323, 504, 506, 308, 325 के समतुल्य हैं) के अंतर्गत आवेदक के विरुद्ध संज्ञान लिया गया।

3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का प्रस्तुतिकरण है कि विपक्षी पक्ष संख्या 2 ने स्वयं आवेदक तथा आवेदक की माता को वैवाहिक घर से बेदखल कर दिया था। इस संबंध में प्रथम सूचक के विरुद्ध संरक्षण महिला घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 की धारा 12(1) के अंतर्गत शिकायत संख्या 47/12 वर्ष 2022 (सोनकली बनाम सुप्रिया एवं अन्य) दाखिल की गई है। प्रथम सूचक द्वारा दिनांक 07.11.2024 को आवेदक के विरुद्ध केस क्राइम संख्या 312 वर्ष 2024, भारतीय न्याय संहिता (बी.एन.एस.) की धाराएँ 85, 115(2), 351(2) (जो कि भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 498-ए, 323, 506 के समतुल्य हैं) तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा ¾ के अंतर्गत दर्ज कराया गया है। इसके अतिरिक्त, प्रथम सूचक द्वारा आवेदक के विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अंतर्गत भरण-पोषण वाद संख्या 31 वर्ष 2023 (सुप्रिया यादव बनाम राघवेंद्र सिंह) तथा संरक्षण महिला घरेलू

अनुवादित

हिंसा अधिनियम की धारा 12 के अंतर्गत शिकायत वाद संख्या 13 वर्ष 2023 भी दाखिल किया गया है। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि भारतीय न्याय संहिता की धाराएँ 110 एवं 117 (जो कि भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 308, 325 के समतुल्य हैं) के अंतर्गत दंडनीय अपराध जांच के दौरान जोड़े गए हैं। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक को आरोपित अपराध में झूठा फँसाया गया है तथा निष्पक्ष जांच किए बिना ही प्रथम सूचक के पिता के प्रभाव में आरोपपत्र प्रस्तुत किया गया है, जो कि शिक्षक संघ के अध्यक्ष हैं तथा पूर्व विधायक, भरथना, जनपद इटावा के निकट हैं।

4. विद्वान अपर सरकारी अधिवक्ता तथा निजी विपक्षी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने इस आवेदन की प्रार्थना का जोरदार विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि आक्षेपित आदेश में कोई भी अवैधता नहीं है।

5. प्रकरण के तथ्यों पर विचार करने से पूर्व, उच्च न्यायालय की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत निहित अंतर्निहित शक्तियों से संबंधित विधि की स्थिति पर विचार करना उपयुक्त होगा।

6. राज्य हरियाणा एवं अन्य बनाम भजन लाल, 1992 सप्लीमेंट (1) एस.सी.सी. 335 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग की रूपरेखा पर विचार किया है तथा उदाहरण स्वरूप कुछ श्रेणियों के मामलों का उल्लेख किया है, जिनमें संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत असाधारण शक्ति अथवा संहिता की धारा 482 के अंतर्गत अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग, किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने अथवा अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने हेतु किया जा सकता है। यह भी अवलोकन किया गया कि ऐसी किसी भी शक्ति के प्रयोग के लिए कोई सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित तथा कठोर दिशानिर्देश अथवा कोई निश्चित सूत्र निर्धारित करना संभव नहीं हो सकता है। उक्त संदर्भ में निम्नलिखित उदाहरणों का उल्लेख करना उपयोगी होगा; (एस.सी.सी. पृष्ठ 378-79, पैरा 102)

"(1) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट अथवा शिकायत में किए गए आरोप, यदि उन्हें उनके प्रथम दृष्टया रूप में स्वीकार भी कर लिया जाए और संपूर्णतः सत्य मान लिया जाए, तब भी वे किसी अपराध का प्रथम दृष्टया गठन नहीं करते हों अथवा अभियुक्त के विरुद्ध कोई मामला स्थापित नहीं करते हों।

(2) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट तथा उसके साथ संलग्न अन्य सामग्री, यदि कोई हो, से कोई संज्ञेय अपराध प्रकट नहीं होता है, जिससे संहिता की धारा 156(1) के अंतर्गत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराया जा सके, सिवाय इसके कि संहिता की धारा 155(2) के अंतर्गत मजिस्ट्रेट के आदेश के अधीन।

(3) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट अथवा शिकायत में किए गए अविवादित आरोप तथा उनके समर्थन में संकलित साक्ष्य किसी भी अपराध के किए जाने का खुलासा नहीं करते हों और अभियुक्त के विरुद्ध कोई मामला स्थापित नहीं करते हों।

(4) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट में किए गए आरोप केवल गैर-संज्ञेय अपराध का गठन करते हों और संज्ञेय अपराध नहीं बनाते, तो पुलिस अधिकारी द्वारा संहिता की धारा 155(2) के अंतर्गत मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना कोई जांच करने की अनुमति नहीं होती।

(5) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट अथवा शिकायत में किए गए आरोप इतने अव्यवहारिक और स्वाभाविक रूप से असंभव हों कि उनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी यह न्यायपूर्ण निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के पर्याप्त आधार हैं।

(6) जहाँ संहिता अथवा संबंधित अधिनियम की किसी भी प्रावधान में स्पष्ट कानूनी प्रतिबंध निहित हो, जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही आरंभ की गई है, कार्यवाही की स्थापना और निरंतरता पर, और/अथवा जहाँ संहिता अथवा संबंधित अधिनियम में कोई विशिष्ट प्रावधान हो, जो पीड़ित पक्ष की शिकायत के त्वरित और प्रभावकारी निवारण की सुविधा प्रदान करता हो।

(7) जहाँ कोई आपराधिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्व्यवहारपूर्ण (माला फाइड) हो और/अथवा जहाँ कार्यवाही किसी गुप्त उद्देश्य से, अभियुक्त से प्रतिशोध लेने या व्यक्तिगत दुश्मनी के चलते दुर्भावनापूर्ण रूप से प्रारंभ की गई हो।

7. अंतर्निहित शक्तियाँ उच्च न्यायालय को अपनी मनमर्जी या तर्कहीन इच्छानुसार कार्य करने का स्वैच्छिक अधिकार नहीं देतीं। उक्त वैधानिक शक्ति का प्रयोग संयमपूर्वक, सतर्कतापूर्वक और अत्यंत दुर्लभ मामलों में ही किया जाना चाहिए। [संदर्भ: कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय बनाम हरियाणा राज्य, (1977) 4 SCC 451]। अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग केवल न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाना चाहिए। अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग में, संबंधित मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की उचित जांच करना अनिवार्य है। [संदर्भ: बी. एस. जोशी बनाम हरियाणा राज्य, (2003) 4 SCC 675]। अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग न्याय की नैतिक आवश्यकता (ex debito justitiae) के तहत वास्तविक और सार्थक न्याय देने के लिए किया जाता है, जिसके प्रशासन के लिए ही न्यायालय मौजूद हैं। जहाँ भी उस अधिकार का दुरुपयोग कर अन्याय उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता है, न्यायालय के पास उस दुरुपयोग को रोकने का अधिकार है। हालाँकि, इस चरण में यह आवश्यक नहीं है कि परीक्षण से पूर्व मामले का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाए ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि मामला दोषसिद्धि या बरी में समाप्त होगा या नहीं। [संदर्भ: धनलक्ष्मी बनाम आर. प्रसन्न कुमार, 1990 सप्लीमेंट SCC 686, गणेश नारायण हेगड़े बनाम एस. बंगारप्पा, (1995) 4 SCC 41 एवं ज़ांडू फार्मास्यूटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम मोहम्मद शरफुल फक़े, (2005) 1 SCC 122]।

8. आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग अत्यंत संयम और सतर्कता के साथ, और केवल अत्यंत दुर्लभ मामलों में ही किया जाना चाहिए। न्यायालय तब तक FIR/शिकायत में किए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता अथवा अन्यथा की जाँच में संलग्न नहीं हो सकता, जब तक कि आरोप इतने

स्पष्ट रूप से अव्यवहारिक और स्वाभाविक रूप से असंभव न हों कि कोई विवेकशील व्यक्ति कभी ऐसा निष्कर्ष पर पहुँच सके। न्यायिक समीक्षा की शक्ति विवेकाधिकारपूर्ण है, तथापि इसका प्रयोग न्याय के अन्यायपूर्ण निष्पादन को रोकने, कुछ गंभीर त्रुटियों को सुधारने और न्याय के प्रशासन की प्रतिष्ठा को शुद्ध एवं निर्मल बनाए रखने के लिए किया जाना चाहिए। हालाँकि, न्यायालय की शक्ति पर कोई सीमा नहीं है, परन्तु जितनी अधिक शक्ति होगी, इन्हें प्रयोग करते समय उतनी ही अधिक सावधानी और सतर्कता बरती जानी चाहिए। [संदर्भ: पश्चिम बंगाल राज्य बनाम स्वप्न कुमार गुहा, (1982) 1 SCC 561, पेप्सी फूड्स लिमिटेड बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट, (1998) 5 SCC 749, जी. सागर सूरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2000) 2 SCC 636 एवं अजय मित्र बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2003) 3 SCC 11]

9. शिकायत/प्रथम सूचना रिपोर्ट को संपूर्ण रूप से पढ़ा जाना चाहिए। यदि यह प्रतीत होता है कि शिकायतकर्ता की शपथ पर या FIR में प्रकट हुआ है कि अपराध या अपराधों के तत्व प्रकट हैं और ऐसा कोई सामग्री नहीं है जिससे यह सिद्ध हो कि शिकायत/ प्रथम सूचना रिपोर्ट मालाफाइड, तुच्छ या परेशान करने वाला है, तो ऐसी स्थिति में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप के लिए कोई औचित्य नहीं होगा। जब किसी पुलिस थाना में सूचना दर्ज कराई जाती है और कोई अपराध पंजीकृत होता है, तब सूचक की माला फाइड होने की संभावना गौण महत्व की होती है। अभियुक्त के भाग्य का निर्धारण जांच के दौरान संकलित सामग्री और न्यायालय में प्रस्तुत साक्ष्यों द्वारा किया जाता है। सूचक के विरुद्ध माला फाइड के आरोपों का कोई महत्व नहीं होता और वे स्वयं कार्यवाही को रद्द करने का आधार नहीं बन सकते। [संदर्भ: धनलक्ष्मी बनाम आर. प्रसन्न कुमार, 1990 सप्लीमेंट SCC 686, बिहार राज्य बनाम पी. पी. शर्मा, 1992 सप्लीमेंट (1) SCC 222, रुपन देओल बाजाज बनाम कंवर पाल सिंह गिल, (1995) 6 SCC 194, केरल राज्य बनाम ओ.सी. कुट्टन, (1999) 2 SCC 651, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम ओ. पी. शर्मा, (1996) 7 SCC 705, रश्मि कुमार बनाम महेश कुमार भाड़ा, (1997) 2 SCC 397, सतविंदर कौर बनाम राज्य (दिल्ली एन.सी.टी. सरकार), (1999) 8 SCC 728, राजेश बाजाज बनाम दिल्ली एन.सी.टी. राज्य, (1999) 3 SCC 259 एवं कर्नाटक राज्य बनाम एम. देवेंद्रप्पा, (2002) 3 SCC 89]

10. सणपारेड्डी महीधर शेषागिरी एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2007) 13 SCC 165 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन किया है: (SCC, पृष्ठ 180, पैरा 31)

"31. उपर्युक्त निर्णयों के सावधानीपूर्वक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उच्च न्यायालय को आपराधिक मामलों की जांच और/अथवा परीक्षण में हस्तक्षेप करने में अत्यंत सतर्क और धीमा रहना चाहिए तथा जांच और/अथवा अभियोजन को अवरुद्ध नहीं करना चाहिए, सिवाय इसके कि यह संदेह से परे सुनिश्चित हो जाए कि प्राथमिकी में किसी अपराध का उल्लेख नहीं है, या प्राथमिकी में किए गए आरोप किसी संज्ञेय अपराध का निर्माण नहीं करते, या अभियोजन कानून द्वारा प्रतिबंधित है, अथवा उच्च न्यायालय यह सुनिश्चित हो कि न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने हेतु हस्तक्षेप आवश्यक है। ऐसे मामलों में विचार करते समय उच्च न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि किसी व्यक्ति के विरुद्ध अपराध करने के आरोप के आधार पर प्रारंभ किए

गए कानूनी प्रक्रिया के आरंभिक चरण में न्यायिक हस्तक्षेप, व्यापक जनहित और सामाजिक हित के लिए अत्यंत हानिकारक है। जनता और समाज को यह वैध अपेक्षा होती है कि जो व्यक्ति अपराध करता है, वह चाहे किसी व्यक्ति के विरुद्ध हो या समाज के विरुद्ध, उसे शीघ्रता से परीक्षण के लिए लाया जाए और दोषी पाए जाने पर उचित दंड प्रदान किया जाए। अतः, जब प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत को रद्द करने, प्राथमिकी या शिकायत में किए गए आरोपों की जांच से संबंधित सक्षम प्राधिकारी को रोकने, अथवा मामले के परीक्षण को अवरुद्ध करने हेतु दाखिल याचिका पर निर्णय लिया जाता है, तब उच्च न्यायालय को अत्यंत सावधान और सतर्क रहना चाहिए। यदि प्राथमिकी या शिकायत में किए गए आरोप किसी अपराध के किए जाने का खुलासा करते हैं, तो उच्च न्यायालय को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और जांच एजेंसी को बिना किसी बाधा के जांच पूरी करने देना चाहिए तथा ऐसे आदेश देने से भी परहेज करना चाहिए जो परीक्षण में बाधा डाल सकें। उच्च न्यायालय को प्राथमिकी या शिकायतकर्ता के विरुद्ध दुर्भावना (malus animus) में प्रवेश नहीं करना चाहिए। उच्च न्यायालय को यह भी टालना चाहिए कि वह प्राथमिकी या शिकायत की जांच के कारण आवेदक को संभावित उत्पीड़न के काल्पनिक परिदृश्य में प्रवेश कराए। ऐसा करना न्याय के अन्यायपूर्ण निष्पादन का कारण बनेगा और अपराध करने वाले अभियुक्तों को उसी प्रकार का अपराध दोहराने के लिए प्रोत्साहित करेगा। हालाँकि, यदि उच्च न्यायालय यह सुनिश्चित हो जाए कि शिकायत किसी अपराध के किए जाने का खुलासा नहीं करती है, या अभियोजन समय सीमा द्वारा प्रतिबंधित है, या आपराधिक वाद की कार्यवाही न्याय विफलता का कारण बनेगी, तो तब उच्च न्यायालय धारा 482, दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग कर सकती है।

11. संपूर्ण रिकॉर्ड में उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने के पश्चात, निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट रूप से प्रकट हुए हैं:

(i) निजी विपक्षी पक्ष संख्या 2, आवेदक की पत्नी है और उन्होंने दिनांक 11.03.2018 को विवाह संपन्न किया।

(ii) पक्षों के बीच विभिन्न वैवाहिक विवाद लंबित हैं और चिकित्सीय रिपोर्ट के अनुसार, घायल व्यक्ति/प्रथम सूचक के शरीर पर पाँच चोटें पाई गई हैं।

12. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के दृष्टिगत तथा धारा 482, दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत उच्च न्यायालय द्वारा अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप से संबंधित स्थापित विधि की स्थिति को ध्यान में रखते हुए, मामले की मेरिट में प्रवेश किए बिना वर्तमान आवेदन कोई मेरिट नहीं रखता और इसे खारिज किया जाना यथोचित है। अतः यह आवेदन इसी प्रकार खारिज किया जाता है।

13. यह स्पष्ट किया जाता है कि वर्तमान आवेदन के निर्णय के लिए दिए गए कारण, मामले की मेरिट को प्रभावित नहीं करेंगे।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 291

मूल अधिकारिता – आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 29.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 4623 सन् 2025

राहुल गांधी ... आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... विपक्षी पक्षकारगण

आवेदक के अधिवक्ता: मोहम्मद यासिर अब्बासी, मोहम्मद समर अंसारी, प्रांशु अग्रवाल

विपक्षी पक्षकारों के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि – भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धारा 500 – सम्मन आदेश – विखण्डन – विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा यह पाया कि आवेदक का कथन प्रथम दृष्टया भारतीय सेना एवं उसके कार्मिकों को मानहानिकारक था और उनमें तथा उनके परिवारों में मनोबल भंग करने वाला था – चूँकि कथन आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में नहीं किया गया था, अतः धारा 197 Cr.P.C. लागू नहीं होती – परिवादी, जो BRO के सेवानिवृत्त निदेशक हैं, ने मानहानि का आरोप लगाया – पर्याप्त आधार पाते हुए न्यायालय ने आवेदक को सम्मन किया – आक्षेपित आदेश के विरुद्ध आवेदक ने तर्क दिया कि कथित मानहानिकारक कथन भारतीय सेना के विरुद्ध किया गया, न कि परिवादी के व्यक्तिगत विरुद्ध – चूँकि परिवादी भारतीय सेना के अधिकारी नहीं हैं और आवेदक ने उन्हें व्यक्तिगत रूप से लक्षित नहीं किया, इसलिए वे धारा 199 Cr.P.C. के अंतर्गत व्यथित व्यक्ति नहीं हो सकते, अतः उन्हें परिवाद दायर करने का अधिकार नहीं – आपत्ति अस्वीकृत – विचारण न्यायालय ने परिवाद, धारा 200 Cr.P.C. के अंतर्गत परिवादी के कथन एवं धारा 202 Cr.P.C. के अंतर्गत साक्षियों के कथनों पर विचार करने के उपरान्त आवेदक की टिप्पणियों को मानहानिकारक पाया – दिल्ली रेस क्लब (अधोलिखित) में अभिनिर्धारित किए अनुसार, जब तक स्पष्ट अवैधता न हो, तब तक हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है, और उच्च न्यायालय विचारण न्यायालय के मत के स्थान पर अपना मत नहीं रख सकता – आवेदक ने कथित मानहानिकारक कथन मीडियाकर्मियों को संबोधित करते समय किया, जिसे समाचार-पत्रों में प्रकाशित किए जाने का आशय था – सम्मन आदेश के विखण्डन हेतु कोई प्रकरण नहीं बनता। (पैरा 9, 10, 19, 32)

आवेदन निरस्त। (E-13)

उद्धृत वादों की सूची:

1. जी. नरसिम्हन बनाम टी.वी. चोक्कप्पा: (1972) 2 SCC 680
2. पेट्रीशिया मुखिम बनाम मेघालय राज्य एवं अन्य: (2021) 15 SCC 35
3. दिल्ली रेस क्लब (1940) लि. बनाम उ.प्र. राज्य: (2024) 10 SCC 690 (पैरा 12 से 17, 32 से 34)
4. भूषण कुमार एवं अन्य बनाम राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) एवं अन्य: (2012) 5 SCC 424
5. पेप्सी फूड्स लि. एवं अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट एवं अन्य: (1998) 5 SCC 749
6. इमरान प्रतापगढ़ी बनाम गुजरात राज्य: 2025 SCC OnLine SC 678
7. परसा राजा मानिक्यला राव बनाम आंध्र प्रदेश राज्य: (2003) 12 SCC 306 (पैरा 9)
8. जावेद अहमद हाजम बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य: (2024) 4 SCC 156 (पैरा 11)
9. कौशल किशोर बनाम उ.प्र. राज्य: (2023) 4 SCC 1 (पैरा 198)
10. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल: 1992 Supp (1) SCC 335 (पैरा 102)
11. आईवेको मैगिरस ब्रान्डशुट्ज़टेक्निक GmbH बनाम निर्मल किशोर भारतीया: (2024) 2 SCC 86 (पैरा 59 से 63)
12. नवल किशोर शर्मा बनाम उ.प्र. राज्य: 2022 SCC OnLine All 677 (पैरा 20, 21, 23)
13. धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लि. बनाम महाराष्ट्र राज्य: (2009) 2 SCC 370
14. संजय कुमार राय बनाम उ.प्र. राज्य: (2022) 15 SCC 720
15. आकांक्षा अरोरा बनाम तनय माबेन: 2024 SCC OnLine SC 3688
16. कैसर जहाँ बनाम पुलिस अधीक्षक, जिला सुल्तानपुर: 2024 SCC OnLine All 6758 (पैरा 10 से 15)

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा उद्घोषित)

1. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री प्रांशु अग्रवाल और श्री मोहम्मद यासिर अब्बासी, विपक्षी संख्या 1 - उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री विनोद कुमार शाही, विद्वान शासकीय अधिवक्ता डॉ. वी.के. सिंह, विद्वान सहायक शासकीय अधिवक्ता-I श्री अनुराग वर्मा और विद्वान राज्य अधिवक्ता श्री शिवेन्द्र शिवम सिंह राठौर को सुना।

2. धारा 482 दं0प्र0सं0 के अधीन यह तत्कालीन आवेदन प्रकीर्ण मुकदमा संख्या 109161/2023, थाना सुशांत गोल्फ सिटी, जिला लखनउ, शीर्षक "उदय शंकर श्रीवास्तव बनाम राहुल गांधी" में विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या 27, लखनऊ द्वारा दिनांक 11.02.2025 को पारित आदेश की वैधता को चुनौती देते हुए संस्थित किया गया है, जिसमें आवेदक को दंड संहिता की धारा 500 के अधीन अपराध का सामना

करने के लिए समन किया गया है। आवेदक ने उक्त परिवाद मुकदमे की समस्त कार्यवाही को निरस्त किए जाने की भी मांग की है।

3. विपक्षी संख्या 2 ने आवेदक के विरुद्ध उक्त परिवाद संस्थित किया है जिसमें यह कथन किया गया है कि परिवादी एक वरिष्ठ नागरिक है, जो बॉर्डर रोड्स ऑर्गनाइजेशन में निदेशक के पद से सेवानिवृत्त हुए हैं, जो पद भारतीय सेना में कर्नल के पद के समकक्ष है। परिवादी को भारतीय सेना के साहस और शौर्य के प्रति अपार सम्मान है और भारतीय सेना के विरुद्ध भारतीय सेना को निराश करने और उसकी उपलब्धियों को अपमानजनक तरीके से प्रस्तुत करने के उद्देश्य से की गई कोई भी अपमानजनक टिप्पणी, भारतीय सेना के साथ-साथ संपूर्ण राष्ट्र का अपमान है, जिससे परिवादी को ठेस पहुंची है। आवेदक, जो भारतीय संसद के सदस्य का पद कई बार धारण कर चुके हैं, ने दिनांक 16.12.2022 को अपनी 'भारत जोड़ो यात्रा' के दौरान मीडिया कर्मियों और जनता की एक बड़ी सभा की उपस्थिति में दिनांक 09.12.2022 को अरुणाचल प्रदेश में भारत की सीमा पर भारतीय सेना और चीनी सेना के बीच हुई झड़प के संबंध में यह कहा कि *"लोग भारत जोड़ो यात्रा के बारे में पूछेंगे, यहां और वहां, अशोक गहलोत और सचिन पायलट और न जाने क्या। लेकिन वे चीन द्वारा भारतीय क्षेत्र के 2000 वर्ग किलोमीटर पर कब्जा करने, 20 भारतीय सैनिकों को मारने और अरुणाचल प्रदेश में हमारे सैनिकों को पीटने के बारे में एक भी सवाल नहीं पूछेंगे। लेकिन भारतीय प्रेस इनसे इस बारे में कोई सवाल नहीं पूछती। क्या यह सच नहीं है? राष्ट्र यह सब देख रहा है। यह दिखावा मत करो कि लोग नहीं जानते।"*

4. इस संबंध में एक समाचार पोर्टल - opindia.com पर "चीनी सैनिक अरुणाचल प्रदेश में भारतीय सेना के सैनिकों को पीट रहे हैं': तवांग झड़प पर राहुल गांधी" शीर्षक के अधीन एक समाचार प्रकाशित किया गया जिसमें यह प्रकाशित किया गया कि दिनांक 16 दिसंबर 2022 को कांग्रेस नेता राहुल गांधी ने कहा कि चीनी सैनिक वास्तविक नियंत्रण रेखा (एलएसी) पर भारतीय सेना के सैनिकों को पीट रहे हैं ।

5. परिवादी ने कहा कि आवेदक द्वारा दिया गया उक्त कथन असत्य और आधारहीन है और यह भारतीय सेना को निराश करने और भारतीय सेना पर भारतीय जनता के विश्वास को क्षति पहुंचाने की दुर्भावनापूर्ण मंशा से दिया गया था, जबकि सत्यता यह है कि दिनांक 09.12.2022 को अरुणाचल प्रदेश के यांग्सी क्षेत्र में हुई झड़प में, भारतीय सेना ने चीनी सेना को अपने द्वारा संरक्षित क्षेत्र में प्रवेश करने से सफलतापूर्वक रोका और उन्हें बुरी तरह खदेड़ दिया। परिवादी ने आगे कहा कि दिनांक 12.12.2022 को भारतीय सेना द्वारा जारी आधिकारिक बयान में यह कहा गया था कि:-

"9 दिसंबर 2022 को, पीपुल्स लिबरेशन आर्मी (पीएलए) के सैनिकों ने तवांग सेक्टर में एलएसी से संपर्क किया जिसका हमारे सैनिकों द्वारा दृढ़ और संकल्पबद्ध तरीके से विरोध किया गया। इस आमना-सामने की स्थिति से दोनों पक्षों के कुछ कर्मियों को मामूली चोटें आईं।"

6. परिवाद में यह कहा गया है कि आवेदक ने बार-बार अत्यंत अपमानजनक तरीके से कहा कि चीनी सेना हमारे सैनिकों को अरुणाचल प्रदेश में पीट रही है और भारतीय प्रेस इस संबंध में कोई सवाल नहीं पूछेगी और, तत्पश्चात, आवेदक ने बहुत चालाक और शरारतपूर्ण मुस्कान के साथ कहा कि यह सच है। परिवादी ने आगे कहा कि आवेदक द्वारा दिया गया उक्त आधारहीन और अपमानजनक कथन परिवादी को अत्यधिक ठेस पहुंचाने वाला है। यह कथन आवेदक द्वारा जानबूझकर और शरारतपूर्ण तरीके से राष्ट्रीय अखंडता और भारतीय सेना की एकता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की साजिश के अधीन दिया गया है और इससे परिवादी को ठेस पहुंची है। आवेदक के उक्त कथन को समाचार पत्रों द्वारा व्यापक रूप से प्रकाशित किया गया।

7. धारा 200 दं0प्र0सं0 के अधीन अभिलिखित कथन में, परिवादी ने कहा कि आवेदक द्वारा दिया गया उक्त कथन असत्य है और इससे परिवादी को आघात पहुंचा है। यह कथन भारतीय सेना को निराश करने के प्रयास के रूप में दिया गया था। सेना से संबंधित परिवादी के कुछ साथियों ने उन्हें बताया कि वे भी इस कथन से आहत महसूस कर रहे हैं।

8. धारा 202 दं0प्र0सं0 के अधीन अरुण कुमार गुप्ता, शिशिर बीर प्रसाद और मोहम्मद अशफाक खान के कथन अभिलिखित किए गए हैं और उन सभी ने कहा है कि आवेदक के उक्त कथन ने साक्षियों के साथ-साथ कई राष्ट्रवादियों/देशभक्तों को अत्यधिक मानसिक पीड़ा पहुंचाई है। परिवादी इस कथन से अत्यधिक आहत हुए। इस कथन का परिवादी, साक्षियों और भारत के सभी नागरिकों के मनोबल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा जिसके कारण कुछ व्यक्तियों ने परिवादी का मजाक भी उड़ाया क्योंकि वह एक पूर्व सैनिक (बॉर्डर रोड्स ऑर्गनाइजेशन के पूर्व अधिकारी) हैं।

9. उक्त कथन को दृष्टिगत रखते हुए, अवर न्यायालय ने दिनांक 11.02.2025 को आदेश पारित किया जिसमें यह कहा गया कि प्रथम दृष्ट्या आवेदक का कथन भारतीय सेना और उससे जुड़े व्यक्तियों तथा उनके परिवार के सदस्यों को निराश करने वाला प्रतीत होता है। यह कथन आवेदक द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में नहीं दिया गया था और, इसलिए, यह धारा 197 दं0प्र0सं0 की परिधि के अंतर्गत नहीं आता है। चूंकि परिवादी बॉर्डर रोड्स ऑर्गनाइजेशन में निदेशक के पद से सेवानिवृत्त हुए हैं, जो भारतीय सेना में कर्नल के पद के समकक्ष है, और आवेदक के कथन ने भारतीय सेना और उससे जुड़े व्यक्तियों की मानहानि की है, प्रथम दृष्ट्या यह प्रतीत होता है कि मानहानि के अपराध के लिए आवेदक के विचारण का मामला बनता है। तदनुसार, अवर न्यायालय ने आवेदक को धारा 500 भा0द0सं0 के अधीन दंडनीय अपराध का सामना करने के लिए समन किया।

10. दिनांक 11.04.2025 के उक्त आदेश की वैधता को चुनौती देते हुए, आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री प्रांशु अग्रवाल ने प्रस्तुत किया है कि परिवाद के अनुसार भी, आवेदक ने भारतीय सेना के विरुद्ध मानहानिकारक कथन दिया है जबकि परिवादी भारतीय सेना के अधिकारी नहीं हैं और आवेदक ने परिवादी को

बदनाम करने वाला कोई कथन नहीं दिया है। इसलिए, परिवादी पीड़ित व्यक्ति नहीं है और धारा 199 दं0प्र0सं0 के अधीन निहित प्रावधानों के अनुसार परिवाद संस्थित करने का उसे कोई अधिकार नहीं है।

11. धारा 199 दं0प्र0सं0 निम्नलिखित प्रावधान करती है: -

"199. मानहानि के लिए अभियोजन:–(1) *कोई भी न्यायालय भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अध्याय XXI के अधीन दंडनीय अपराध का संज्ञान, अपराध से पीड़ित किसी व्यक्ति द्वारा की गई परिवाद के अतिरिक्त नहीं लेगा:*

परंतु जहां ऐसा व्यक्ति अठारह वर्ष से कम आयु का है, या मूर्ख या पागल है, या बीमारी या दुर्बलता के कारण परिवाद करने में असमर्थ है, या एक महिला है जो स्थानीय रीति-रिवाजों और शिष्टाचार के अनुसार, सार्वजनिक रूप से उपस्थित होने के लिए बाध्य नहीं की जानी चाहिए, कोई अन्य व्यक्ति, न्यायालय की अनुमति से, उसकी ओर से परिवाद कर सकता है।

(2) इस संहिता में निहित किसी बात के होते हुए भी, जब भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अध्याय XXI के अधीन आने वाला कोई अपराध किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध किया गया हो, जो ऐसे किए जाने के समय, भारत के राष्ट्रपति, भारत के उप-राष्ट्रपति, किसी राज्य का राज्यपाल, किसी संघ राज्यक्षेत्र का प्रशासक या संघ या किसी राज्य या किसी संघ राज्यक्षेत्र का मंत्री, या संघ या किसी राज्य के कार्यों के संबंध में नियोजित कोई अन्य लोक सेवक है, उसके लोक कार्यों के निर्वहन में उसके आचरण के संबंध में, सेशन न्यायालय ऐसे अपराध का संज्ञान, मामले को उसके पास प्रतिबद्ध किए बिना, लोक अभियोजक द्वारा लिखित रूप में की गई परिवाद पर ले सकता है।

(3) उप-धारा (2) में निर्दिष्ट प्रत्येक परिवाद में उन तथ्यों को प्रस्तुत किया जाएगा जो कथित अपराध का गठन करते हैं, ऐसे अपराध की प्रकृति और ऐसे अन्य विवरण जो अभियुक्त को उसके द्वारा किए गए कथित अपराध की सूचना देने के लिए युक्तिसंगत रूप से पर्याप्त हैं।

(4) उप-धारा (2) के अधीन लोक अभियोजक द्वारा कोई परिवाद पूर्व मंजूरी के बिना नहीं की जाएगी–

(क) राज्य सरकार की, उस व्यक्ति के मामले में जो उस राज्य का राज्यपाल है या रहा है या उस सरकार का मंत्री है;

(ख) राज्य सरकार की, राज्य के कार्यों के संबंध में नियोजित किसी अन्य लोक सेवक के मामले में;

(ग) केंद्र सरकार की, किसी अन्य मामले में।

(5) सेशन न्यायालय उप-धारा (2) के अधीन किसी अपराध का संज्ञान तब तक नहीं लेगा जब तक कि परिवाद उस तारीख से छह महीने के भीतर नहीं की जाती है जिस दिन अपराध किया गया था।

(6) इस धारा की कोई बात उस व्यक्ति के अधिकार को प्रभावित नहीं करेगी जिसके विरुद्ध अपराध किया गया है, उस अपराध के संबंध में अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष परिवाद करने या ऐसी परिवाद पर संज्ञान लेने के लिए ऐसे मजिस्ट्रेट की शक्ति को प्रभावित नहीं करेगी।"

12. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता ने **जी. नरसिंहमन बनाम टी.वी. चोककप्पा: (1972) 2 एससीसी 680** के मामले में दिए गए अधिनिर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें निर्धारण के लिए मुख्य प्रश्न यह था कि क्या प्रत्यर्थी को दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 198 के अर्थ के भीतर परिवाद को बनाए रखने का अधिकार रखने वाला पीड़ित व्यक्ति कहा जा सकता है, जिसमें निम्नलिखित प्रावधान किया गया था:-

"198. कोई भी न्यायालय दंड संहिता के अध्याय XIX या अध्याय XXI के अधीन या उसी संहिता की धारा 493 से 496 (दोनों सहित) के अधीन आने वाले अपराध का संज्ञान, ऐसे अपराध से पीड़ित किसी व्यक्ति द्वारा की गई परिवाद के अतिरिक्त नहीं लेगा:

परंतु, जहां ऐसा पीड़ित व्यक्ति एक महिला है जो देश के रीति-रिवाजों और शिष्टाचार के अनुसार, सार्वजनिक रूप से उपस्थित होने के लिए बाध्य नहीं की जानी चाहिए, या जहां ऐसा व्यक्ति अठारह वर्ष से कम आयु का है या मूर्ख या पागल है, या बीमारी या दुर्बलता के कारण परिवाद करने में असमर्थ है, कोई अन्य व्यक्ति, न्यायालय की अनुमति से, उसकी ओर से परिवाद कर सकता है:
आगे परंतु कि जहां उक्त संहिता की धारा 494 के अधीन अपराध से पीड़ित पति बांग्लादेश की किसी भी सशस्त्र बल में ऐसी परिस्थितियों में सेवारत है जो कमांडिंग अधिकारी द्वारा प्रमाणित की गई हैं कि वह व्यक्तिगत रूप से परिवाद करने में सक्षम होने के लिए छुट्टी प्राप्त करने से वंचित है, धारा 199B की उप-धारा (1) के प्रावधानों के अनुसार पति द्वारा प्राधिकृत कोई अन्य व्यक्ति, न्यायालय की अनुमति से, उसकी ओर से परिवाद कर सकता है।"

13. धारा 198 दं0प्र0सं0, 1898 में धारा 199 दं0प्र0सं0, 1973 की उप-धारा (6) में निहित प्रावधान के समान कोई प्रावधान नहीं था, जो यह प्रावधान करता है कि धारा 199 में कुछ भी उस व्यक्ति के अधिकार को प्रभावित नहीं करेगा जिसके विरुद्ध अपराध किया गया है, उस अपराध के संबंध में परिवाद करने के। इससे विधायिका का आशय स्पष्ट होता है कि धारा 199 के प्रावधान उन व्यक्तियों के अधिकारों को नियंत्रित करते हैं जो उस व्यक्ति के अतिरिक्त हैं जिसके विरुद्ध अपराध किया गया है। धारा 199 दं0प्र0सं0, 1973 माननीय उच्चतम न्यायालय के **जी. नरसिंहमन** (उपरोक्त) के विचाराधीन नहीं थी और, इसलिए, उस अधिनिर्णय का अनुपात वर्तमान मामले के निर्णय के लिए सुसंगत नहीं है ।

14. धारा 199 (1) दं0प्र0सं0 में आने वाला वाक्यांश *"अपराध से पीड़ित कोई व्यक्ति"* स्पष्ट रूप से उस व्यक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को संदर्भित करता है जिसके विरुद्ध अपराध किया गया है। धारा स्वयं अपराध से पीड़ित किसी व्यक्ति द्वारा परिवाद संस्थित करने की परिकल्पना करती है, यद्यपि अपराध उसके विरुद्ध नहीं किया गया है। परिवादी ने कहा है कि वह एक वरिष्ठ नागरिक है, जो बॉर्डर रोड्स ऑर्गनाइजेशन में निदेशक के पद से सेवानिवृत्त हुए हैं, जो पद भारतीय सेना में कर्नल के पद के समकक्ष है। परिवादी को भारतीय सेना के प्रति अपार सम्मान है और भारतीय सेना के विरुद्ध भारतीय सेना को निराश करने और उसकी उपलब्धियों को अपमानजनक तरीके से प्रस्तुत करने के उद्देश्य से की गई अपमानजनक टिप्पणी, भारतीय सेना के साथ-साथ संपूर्ण राष्ट्र का अपमान है, जिससे परिवादी को ठेस पहुंची है। मैं इस विचार का हूं कि परिवाद में किए गए उक्त कथन यह संकेत करते हैं कि आवेदक अपराध से पीड़ित व्यक्ति है और वह धारा 199 दं0प्र0सं0 में निहित प्रावधान के अनुसार परिवाद संस्थित कर सकता है। तदनुसार, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता की प्रथम आपत्ति खारिज की जाती है।

15. श्री प्रांशु अग्रवाल ने आगे प्रस्तुत किया है कि परिवाद में यह कहा गया है कि आवेदक के कथन के परिणामस्वरूप परिवादी को गंभीर आघात पहुंचा जिसके कारण उनका कोमल हृदय टूट गया, वह अवसाद से पीड़ित हुए जिसके कारण उन्हें कई अवसरों पर आत्मघाती विचार आए। श्री अग्रवाल ने **पैट्रीसिया मुखीम बनाम मेघालय राज्य एवं अन्य**: (2021) 15 एससीसी 35 के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें दिनांक 04.07.2020 को पुलिस के सहायक महानिरीक्षक द्वारा एक प्रेस विज्ञप्ति जारी की गई थी जिसमें एक दिन पूर्व की घटना का संदर्भ था। घटना के कारण लबन पुलिस स्टेशन में धारा 326/307/506/34 भा0द0सं0 के अधीन अपराध पंजीकृत हुआ था। प्रेस विज्ञप्ति में यह उल्लेख किया गया था कि लगभग 12.30 बजे, लगभग 25 अज्ञात लड़कों ने ब्लॉक 4, लॉसोहतुन में बास्केटबॉल खेल रहे युवकों पर लोहे की छड़ों और लाठियों से हमला किया था। कुछ व्यक्तियों को घटना में चोटें आई थीं। घायलों को चिकित्सा सहायता के लिए वुडलैंड अस्पताल ले जाया गया था। यह प्रेस विज्ञप्ति में कहा गया था कि कुछ संदिग्धों को पहले ही गिरफ्तार कर लिया गया था और पूछताछ जारी थी। जनता से अपील की गई थी कि वे विवेचना दल को अपराध के अपराधियों की पहचान करने में सहायता करें। एक चेतावनी दी गई थी कि कोई भी सांप्रदायिक शांति और सद्भाव का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। उसी दिन, अपीलकर्ता ने फेसबुक पर एक पोस्ट अपलोड की, जो निम्नानुसार पढ़ी जाती है:

"कॉनराड संगमा सीएम मेघालय, कल लॉसोहतुन में क्या हुआ जहां बास्केटबॉल खेल रहे कुछ गैर-आदिवासी युवकों पर घातक हथियारों से हमला किया गया और वे अब अस्पताल में हैं, एक सरकार और कार्यात्मक पुलिस बल वाले राज्य में अस्वीकार्य है। कथित तौर पर मास्क लगाए आदिवासी लड़कों द्वारा हमलावरों को तुरंत बुक किया जाना चाहिए। मेघालय में गैर-आदिवासियों पर यह निरंतर हमला जिनके पूर्वज दशकों से यहां रह रहे हैं, कुछ ब्रिटिश काल से यहां आए हैं, कम से कम निंदनीय है। तथ्य यह है कि 1979 से ऐसे हमलावरों और परेशानी पैदा करने वालों को कभी गिरफ्तार नहीं किया गया और यदि गिरफ्तार किया गया तो विधि के अनुसार कभी दंडित नहीं किया गया, यह सुझाव देता है कि मेघालय लंबे समय से एक विफल राज्य रहा है।

हम आपकी सरकार और वर्तमान डीजीपी, आर. चंद्रनाथन के अधीन पुलिस बल से अनुरोध करते हैं कि इस मामले को उस गंभीरता के साथ लें जिसके वह योग्य है। हमें जनता को दिखाएं कि हमारे पास एक पुलिस बल है जिस पर हम भरोसा कर सकते हैं।

और क्षेत्र के दोरबार श्नोंग के बारे में क्या? क्या उनकी आंखें और कान जमीन पर नहीं हैं? क्या वे अपने अधिकार क्षेत्र में आपराधिक तत्वों को नहीं जानते हैं? क्या उन्हें नेतृत्व नहीं करना चाहिए और उन हत्यारे तत्वों की पहचान नहीं करनी चाहिए? यह समय है समुदाय के हितों, जाति और पंथ से ऊपर उठने और न्याय के लिए पुकारने का।

हम आशा करते हैं कि यह पुलिस फाइलों में खोया हुआ एक और मामला नहीं होगा। हम कार्रवाई चाहते हैं। आपराधिक तत्वों का कोई समुदाय नहीं होता। उनके साथ देश के विधि के अनुसार निपटा जाना चाहिए।

हमारे गैर-आदिवासी भाइयों को अपने ही राज्य में निरंतर भय में क्यों रहना चाहिए? जो यहां जन्मे और पले-बढ़े हैं, उन्हें मेघालय को अपना राज्य कहने का उतना ही अधिकार है जितना कि स्वदेशी आदिवासी को। बिल्कुल।"

16. उक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि के संदर्भ में, यह धारित किया गया कि कथित आपराधिक भाषण में प्रयुक्त शब्दों के प्रभाव को युक्तिसंगत, मजबूत दिमाग वाले, दृढ़ और साहसी व्यक्तियों के मानकों से आंका जाना चाहिए, न कि कमजोर और डगमगाने वाले दिमाग के लोगों के, न ही उन लोगों के जो प्रत्येक विरोधी दृष्टिकोण में खतरा देखते हैं। एक सामान्य युक्तिसंगत व्यक्ति का मानक लागू किया जाना चाहिए।

17. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि अवर न्यायालय ने समस्त तथ्यों और सामग्री की परीक्षा नहीं की है कि क्या मानहानि के अपराध के लिए आवेदक के विचारण का मामला बनता है और उसने यांत्रिक तरीके से आवेदक को विचारण का सामना करने के लिए समन किया है। उन्होंने **दिल्ली रेस क्लब (1940) लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** (2024) 10 एससीसी 690 के मामले में दिए गए अधिनिर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें यह धारित किया गया था:-

***"12.** यह अब अच्छी तरह से स्थापित है कि **प्रक्रिया जारी करने के चरण में न्यायालय का यह कर्तव्य नहीं है कि वह यह पता लगाए कि अभियुक्त को अंततः दोषसिद्ध किया जाएगा या बरी किया जाएगा। इस चरण में मामले की योग्यता पर विचार का उद्देश्य केवल यह निर्धारित करना हो सकता है कि आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार हैं या नहीं। कुछ आधारों का मात्र अस्तित्व जो यह निर्णय लेने में सामग्री होंगे कि अभियुक्त को दोषसिद्ध किया जाना चाहिए या बरी किया जाना चाहिए, सामान्यतः यह संकेत नहीं देता है कि मामला आवश्यक रूप से विफल होना चाहिए।** दूसरी ओर, ऐसे आधार पूर्ण और उचित जांच के बाद सत्य की खोज करने के लिए आगे बढ़ने की आवश्यकता को संकेत कर सकते हैं।*

***13.** यदि, हालांकि, परिवाद या उसके समर्थन में दिए गए साक्ष्य का एक सामान्य अवलोकन दिखाता है कि कथित अपराधों के आवश्यक घटक अनुपस्थित हैं या विवाद केवल सिविल प्रकृति का है या साक्ष्य में ऐसी*

स्पष्ट असंगतियां हैं कि आगे बढ़ना समय की बर्बादी होगी, तो निश्चित रूप से, परिवाद को उसी चरण में खारिज करने के लिए उत्तरदायी है।

***14.** जिस चीज को मजिस्ट्रेट को प्रक्रिया जारी करने के चरण में निर्धारित करना है, वह विवादित आधारों पर साक्ष्य के व्यक्तिगत मदों की शुद्धता या संभाव्यता या असंभाव्यता नहीं है, बल्कि इस धारणा पर प्रथम दृष्ट्या मामले का अस्तित्व या अन्यथा है कि जो कहा गया है वह सत्य हो सकता है जब तक कि अभियोजन के आरोप इतने काल्पनिक न हों कि उन्हें युक्तिसंगत रूप से सत्य नहीं माना जा सकता। [देखें: डी.एन. भट्टाचारजी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1972) 3 एससीसी 414]*

15.** इसके अलावा यह भी अच्छी तरह से स्थापित है कि **प्रक्रिया जारी करने के चरण में एक मजिस्ट्रेट मुख्य रूप से परिवाद में किए गए आरोपों या उसके समर्थन में दिए गए साक्ष्य से संबंधित है और उसे केवल प्रथम दृष्ट्या संतुष्ट होना है कि अभियुक्त के विरुद्ध आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार हैं। यह मजिस्ट्रेट का क्षेत्र नहीं है कि वह मामले की योग्यता या दोष की विस्तृत चर्चा में प्रवेश करे न ही उच्च न्यायालय इस मामले में अपनी अंतर्निहित अधिकारिता में जा सकता है जिसका उपयोग संयम से किया जाना है। धारा 202 दं0प्र0सं0 के अधीन जांच का दायरा अत्यंत सीमित है – केवल परिवाद में किए गए आरोपों की सत्यता या असत्यता का पता लगाना – (i) परिवादी द्वारा न्यायालय के समक्ष रखी गई सामग्री पर, (ii) यह पता लगाने के सीमित उद्देश्य के लिए कि क्या प्रक्रिया जारी करने के लिए प्रथम दृष्ट्या मामला बना है, और (iii) केवल परिवादी के दृष्टिकोण से प्रश्न का निर्णय करने के लिए बिना किसी भी रक्षा पर ध्यान दिए जो अभियुक्त के पास हो सकती है।

16.** वास्तव में धारा 202 दं0प्र0सं0 के अधीन कार्यवाही में, अभियुक्त को बिल्कुल कोई अधिकार नहीं है और उसे इस प्रश्न पर सुना जाने का अधिकार नहीं है कि उसके विरुद्ध प्रक्रिया जारी की जानी चाहिए या नहीं। यह सच है कि यह निर्णय लेने में कि क्या प्रक्रिया जारी की जानी चाहिए, मजिस्ट्रेट परिवाद पर या परिवादी द्वारा आरोपों के समर्थन में दिए गए साक्ष्य में प्रकट होने वाली अंतर्निहित असंभावनाओं को ध्यान में रख सकता है लेकिन अभियुक्त की दोषसिद्धि की संभाव्यता और उसके विरुद्ध प्रथम दृष्ट्या मामले की स्थापना के बीच सीमांकन की एक बहुत पतली रेखा प्रतीत होती है। **इस संबंध में मजिस्ट्रेट को दी गई विवेकाधिकार का न्यायिक रूप से प्रयोग किया जाना है। एक बार जब मजिस्ट्रेट ने अपने विवेकाधिकार का प्रयोग कर लिया है, तो यह उच्च न्यायालय या यहां तक कि उच्चतम न्यायालय के लिए भी नहीं है कि वह मजिस्ट्रेट के विवेकाधिकार के लिए अपने स्वयं के विवेकाधिकार को प्रतिस्थापित करे या यह पता लगाने के लिए मामले की योग्यता की जांच करे कि परिवाद में आरोप, यदि सिद्ध होते हैं, तो अंततः अभियुक्त की दोषसिद्धि में समाप्त होंगे या नहीं।

***17.** ये विचार धारा 202 दं0प्र0सं0 के अधीन जांच के दायरे और क्षेत्र के लिए पूरी तरह से विदेशी हैं जो धारा 204 के अधीन आदेश में परिणत होती है। [देखें: नागववा बनाम वीरांना शिवलिंगप्पा कोनजलजी (1976) 3 एससीसी 736] यह निस्संदेह सच है कि इसी निर्णय में इस न्यायालय ने कुछ उदाहरणों को सूचीबद्ध किया है*

अनधिकृत

कि कब मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त के विरुद्ध प्रक्रिया जारी करने के आदेश को निरस्त या अपास्त किया जा सकता है। ये उदाहरण निम्नानुसार हैं:

"5. ... (1) जहां परिवाद में किए गए आरोप या उसके समर्थन में अभिलिखित साक्षियों के कथन, उनके चेहरे के मूल्य पर लिए गए और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किए गए, अभियुक्त के विरुद्ध बिल्कुल कोई मामला नहीं बनाते हैं या परिवाद अभियुक्त के विरुद्ध कथित अपराध के आवश्यक घटकों को प्रकट नहीं करता है;

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और अन्य सामग्री, यदि कोई हो, प्रथम सूचना रिपोर्ट के साथ संलग्न हो, संज्ञेय अपराध को प्रकट नहीं करती है, धारा 156(1) संहिता के अधीन पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराती है, सिवाय धारा 155(2) संहिता की परिधि के भीतर मजिस्ट्रेट के आदेश के अधीन।

(3) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद में किए गए अविवादित आरोप और उसके समर्थन में एकत्रित साक्ष्य किसी अपराध के किए जाने को प्रकट नहीं करते हैं और अभियुक्त के विरुद्ध मामला नहीं बनाते हैं।

(4) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोप संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते हैं बल्कि केवल गैर-संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, कोई जांच धारा 155(2) संहिता के अधीन परिकल्पित मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा अनुमत नहीं है।

***32.** ऊपर दिए गए फैसले से विधि का जो सिद्धांत सामने आता है, वह यह है कि समन जारी करना एक गंभीर मामला है और इसलिए इसे बिना सोचे-समझे नहीं किया जाना चाहिए और यह तभी किया जाना चाहिए जब जांच के दौरान इकट्ठा किए गए साक्ष्यों के आधार पर संबंधित व्यक्ति के विरुद्ध मामले में आगे बढ़ने का संतोषजनक आधार हो।*

33. *ऊपर बताई गई परिस्थितियों में, अगला सवाल जिस पर विचार करना है, वह यह है कि क्या सेक्शन 482 दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति का इस्तेमाल करके मजिस्ट्रेट द्वारा जारी किए गए समन में दखल दिया जा सकता है।*

भूषण कुमार बनाम स्टेट (एनसीटी ऑफ़ दिल्ली) और पेप्सी फूड्स के फैसलों में, इस कोर्ट ने माना कि आरोपी को समन करने वाले आदेश को रद्द करने के लिए सेक्शन 482 दं0प्र0सं0 के तहत दायर याचिका सुनवाई योग्य है। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि एक बार जब यह मान लिया जाता है कि समन जारी करने की शक्ति का इस्तेमाल करने के लिए ज़रूरी शर्त "आगे बढ़ने के आधार पर" व्यक्तिपरक संतुष्टि है, तो मजिस्ट्रेट द्वारा जारी किए गए समन की वैधता पर विचार करने की शक्ति का इस्तेमाल करते समय, निश्चित रूप से यह कोर्ट का कर्तव्य है कि वह इस सवाल पर विचार करे कि क्या माननीय मजिस्ट्रेट ने आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार के अस्तित्व के बारे में राय बनाने के लिए अपने दिमाग का इस्तेमाल किया था और उस संबंध में संबंधित अपराध के लिए मुकदमे का सामना करने के लिए समन जारी किया था।

असंशोधित

इस संदर्भ में, हम यह कहना उचित समझते हैं कि किसी को यह समझना चाहिए कि सेक्शन 190 दं0प्र0सं0 के तहत दी गई शक्ति के तहत "संज्ञान लेना" और सेक्शन 204 दं0प्र0सं0 के तहत दी गई शक्ति के तहत "प्रक्रिया जारी करना" अलग-अलग और भिन्न हैं।
[देखें सुनील भारती मित्तल बनाम सीबीआई (2015) 4 एससीसी 609 का फैसला]

***34.** सुनील भारती मित्तल के मामले में, इस कोर्ट ने "आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार" वाक्यांश की व्याख्या की और कहा कि सेक्शन 204 दं0प्र0सं0 के तहत आगे बढ़ने से पहले संबंधित आरोपी के खिलाफ पर्याप्त सबूत होने चाहिए। ऐसा कहा गया था: "*

*"53. हालांकि, सेक्शन 204 में इस्तेमाल किए गए शब्द "आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार" बहुत महत्वपूर्ण हैं। ये शब्द साफ तौर पर बताते हैं कि सोच-समझकर ही यह राय बनानी चाहिए कि आरोपी के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है और ऐसी राय बनने की बात ऑर्डर में ही बताई जानी चाहिए। **अगर ऑर्डर में यह निष्कर्ष निकालते समय कोई कारण नहीं बताया जाता कि आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है, तो आदेश को रद्द किया जा सकता है, हालांकि आदेश में विस्तृत कारण देना ज़रूरी नहीं है। इसलिए, अगर दिया गया कारण साफ तौर पर गलत निकलता है, तो आदेश विधि की नज़र में गलत होगा।"***

18. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता ने **भूषण कुमार एवं 1 अन्य बनाम राज्य (दिल्ली की एन सी टी) एवं 1 अन्य** (2012) 5 एससीसी 424 और **पेप्सी फूड्स लिमिटेड एवं 1 अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य** (1998) 5 एससीसी 749 के मामलों में दिए गए अधिनिर्णयों पर भी भरोसा किया है, लेकिन इन अधिनिर्णयों पर **दिल्ली रेस क्लब** (उपरोक्त) में विचार किया गया है और, इसलिए, अधिनिर्णयों की संख्या को अनावश्यक रूप से बढ़ाने के लिए इन अधिनिर्णयों को उद्धृत करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

19. अवर न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 11.02.2025 के आक्षेपित समन आदेश के अवलोकन से यह प्रकट होता है कि अवर न्यायालय ने परिवाद में किए गए कथनों, धारा 200 दं0प्र0सं0 के अधीन अभिलिखित परिवादी के कथन और धारा 202 दं0प्र0सं0 के अधीन अभिलिखित साक्षियों के कथनों पर विचार किया है और न्यायिक मस्तिष्क के विवेकपूर्ण प्रयोग के बाद, अवर न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि आवेदक के कथन ने भारतीय सेना और उससे जुड़े व्यक्तियों की मानहानि की है और प्रथम दृष्ट्या यह प्रतीत होता है कि मानहानि के अपराध के लिए आवेदक के विचारण का मामला बनता है। अवर न्यायालय ने इस संतुष्टि को उचित तरीके से और **दिल्ली रेस क्लब (1940) लिमिटेड** (उपरोक्त) में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार अभिलिखित किया है, यह न्यायालय अवर न्यायालय द्वारा की गई किसी अवैधता के अभाव में समन आदेश में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है ताकि अवर न्यायालय की राय को अपनी राय से प्रतिस्थापित किया जा सके ।

20. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता ने **इमरान प्रत्यपगढ़ी बनाम गुजरात राज्य** 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 678 के मामले में दिए गए अधिनिर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें मुद्दा निम्नलिखित कविता से उत्पन्न हुआ जो एक वीडियो क्लिप की पृष्ठभूमि में सुनाई गई थी जिसे अपीलकर्ता - राज्यसभा के सदस्य, ने अपने X खाते पर पोस्ट किया था:-

"ए ख़ून के प्यासों बात सुनो
ग़र हक़ की लड़ाई ज़ुल्म सही
हम ज़ुल्म से इश्क़ निभा देंगे
ग़र शम-ए-गिरिया आतिश है
हर राह वो शम्मा जला देंगे
ग़र लाश हमारे अपनों की
ख़तरा है तुम्हारी मसनद का
उस रब की क़सम हंसते हंसते
कितनी लाशें दफ़ना देंगे
ए ख़ून के प्यासों बात सुनो"

अपीलकर्ता ने आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करने के लिए याचिका संस्थित की और उन्होंने कहा कि प्रश्नगत कविता फैज अहमद फैज या हबीब जालिब को श्रेय दी जाती है, लेकिन वह निर्णायक रूप से इसकी लेखकता का पता नहीं लगा सके। उन्होंने आगे कहा कि कविता का एक सामान्य पठन यह संकेत देता है कि यह प्रेम और अहिंसा का संदेश है। उस मामले के तथ्यों की जांच करने के बाद, माननीय उच्चतम न्यायालय ने धारित किया कि वीडियो पोस्ट करने से कोई अपराध नहीं बनता। उक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने आगे धारित किया कि:-

"जब बीएनएस की धारा 196 के अधीन दंडनीय अपराध का आरोप लगाया जाता है, तो बोले गए या लिखित शब्दों के प्रभाव पर युक्तिसंगत, मजबूत दिमाग वाले, दृढ़ और साहसी व्यक्तियों के मानकों के आधार पर विचार किया जाना होगा न कि कमजोर और डगमगाने वाले दिमाग के लोगों के मानकों के आधार पर। बोले गए या लिखित शब्दों के प्रभाव का आकलन उन लोगों के मानकों के आधार पर नहीं किया जा सकता है जो हमेशा असुरक्षा की भावना रखते हैं या उन लोगों के जो हमेशा आलोचना को अपनी शक्ति या स्थिति के लिए खतरे के रूप में देखते हैं।"

उक्त अधिनिर्णय मामले की विशिष्ट तथ्यात्मक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए दिया गया था और बीएनएस की धारा 196 में निहित वैधानिक प्रावधान। इस मामले में धारा 500 भा0द0सं0 या धारा 199 दं0प्र0सं0 पर चर्चा नहीं की गई थी और यह वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा।

21. परसा राजा माणिक्याला राव बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य (2003) 12 एससीसी 306 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने पूर्व उदाहरण के विधि के सुस्थापित सिद्धांत को दोहराया कि: -

***"9.** प्रत्येक मामला, विशेष रूप से एक आपराधिक मामला, अपने स्वयं के तथ्यों पर निर्भर करता है और एक मामले और दूसरे के बीच निकट समानता समान उपचार को उचित ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि एक महत्वपूर्ण विवरण पूरे पहलू को बदल सकता है। ऐसे मामलों का निर्णय करने में, किसी को (जैसा कि कॉर्डोजो ने कहा है) एक मामले के रंग को दूसरे मामले के रंग से मिलाकर मामलों का निर्णय लेने के प्रलोभन से बचना चाहिए। इसलिए, यह निर्णय लेने के लिए कि एक मामला रेखा के किस ओर आता है, दूसरे मामले से व्यापक समानता बिल्कुल भी निर्णायक नहीं है। अवर न्यायालय द्वारा उनके मामले को ए-1 के मामले से अलग तरीके से निपटाने के लिए पहुंचा गया अस्पष्ट और गुप्त निष्कर्ष, इसके बावजूद कि साक्ष्य उनके विरुद्ध भी ए-1 के विरुद्ध जितना ठोस था, एक न्यायिक दृष्टिकोण और निर्धारण का अभाव है और, इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा साक्ष्य की स्वतंत्र रूप से और ऐसे निर्धारण को नियंत्रित करने वाले विधि के प्रासंगिक और मार्गदर्शक सिद्धांतों के प्रकाश में वस्तुनिष्ठ सराहना के बाद हस्तक्षेप करना सही था।"*

22. इसलिए, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत किए गए अनेक पूर्व उदाहरण, जो उन मामलों की विशिष्ट तथ्यात्मक पृष्ठभूमि को देखते हुए निर्णीत किए गए थे जो किसी भी तरह से वर्तमान मामले के तथ्यों के समान नहीं है, वर्तमान मामले के निर्णय के लिए सुसंगत नहीं हैं।

23. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता ने **जावेद अहमद हजाम बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य**: (2024) 4 एससीसी 156 के मामले में दिए गए अधिनिर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें अपीलकर्ता ने अपनी व्हाट्सएप स्टेटस पर पोस्ट किया था कि "5 अगस्त - जम्मू और कश्मीर के लिए एक काला दिन"। यह वह दिन है जिस दिन भारत के संविधान के अनुच्छेद 370 को निरस्त किया गया था। इसके अलावा, अपीलकर्ता ने पोस्ट किया था कि "अनुच्छेद 370 को निरस्त कर दिया गया, हम खुश नहीं हैं"। माननीय उच्चतम न्यायालय ने धारित किया कि:-

"11.** ... एक सामान्य पठन पर, अपीलकर्ता का इरादा भारत के संविधान के अनुच्छेद 370 के निरस्तीकरण की कार्रवाई की आलोचना करना था। उन्होंने निरस्तीकरण के उक्त कार्य पर नाखुशी व्यक्त की है। उक्त शब्द किसी धर्म, नस्ल, जन्म स्थान, निवास, भाषा, जाति या समुदाय का संदर्भ नहीं देते हैं। यह अपीलकर्ता द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 370 को निरस्त करने के निर्णय और उस निर्णय के आधार पर उठाए गए आगे के कदमों के विरुद्ध एक सरल विरोध है। **भारत का संविधान, अनुच्छेद 19(1)(ए) के अधीन, भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की गारंटी देता है। उक्त गारंटी के अधीन, प्रत्येक नागरिक को अनुच्छेद 370 के निरस्तीकरण की कार्रवाई की आलोचना करने या, इस मामले के लिए, राज्य के प्रत्येक निर्णय की आलोचना करने का अधिकार है। उसे यह कहने का अधिकार है कि वह राज्य के किसी भी निर्णय से नाखुश है।"

24. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता ने ***कौशल किशोर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य***: (2023) 4 एससीसी 1 के मामले में दिए गए अधिनिर्णय पर भी भरोसा किया है, जिसमें माननीय न्यायालय ने धारित किया कि:-

*"**198.** अनुच्छेद 19(1)(ए) एक माध्यम के रूप में कार्य करता है जिसके माध्यम से असहमति व्यक्त की जा सकती है। असहमति, असहमत होने और विभिन्न और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण अपनाने का अधिकार इस देश के प्रत्येक नागरिक में निहित है। वास्तव में, असहमति का अधिकार एक जीवंत लोकतंत्र का सार है, क्योंकि केवल तभी जब असहमति हो तो विभिन्न विचार उभर सकते हैं जो सरकार को अपनी नीतियों में सुधार या नवाचार करने में मदद या सहायता कर सकते हैं ताकि इसका शासन देश के लोगों पर सकारात्मक प्रभाव डाले जो अंततः स्थिरता, शांति और विकास की ओर ले जाएगा जो अच्छे शासन के सहवर्ती हैं।"*

25. निस्संदेह, भारत के संविधान का अनुच्छेद 19(1)(ए) भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की गारंटी देता है, यह स्वतंत्रता युक्तिसंगत प्रतिबंधों के अधीन है और इसमें ऐसे कथन देने की स्वतंत्रता शामिल नहीं है जो किसी व्यक्ति या भारतीय सेना के लिए मानहानिकारक हों। इसलिए, **जावेद अहमद हजाम** (उपरोक्त) और **कौशल किशोर** (उपरोक्त) में निर्धारित अनुपात वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा।

26. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता ने **हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल**: 1992 सप्प (1) एससीसी 335 के मामले में दिए गए अधिनिर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने धारा 482 दं0प्र0सं0 के अधीन हस्तक्षेप के दायरे को निम्नलिखित अनुच्छेद में संक्षेपित किया था:-

*"**102.** अध्याय XIV के अधीन संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या और इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 226 के अधीन असाधारण शक्ति या संहिता की धारा 482 के अधीन अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में निर्धारित विधि के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में जिन्हें हमने उपरोक्त निकाला और पुनः प्रस्तुत किया है, हम उदाहरण के माध्यम से मामलों की निम्नलिखित श्रेणियां देते हैं जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, यद्यपि सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से चैनलयुक्त और अनम्य दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित करना और असंख्य प्रकार के मामलों की विस्तृत सूची देना संभव नहीं हो सकता है जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।*

(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद में किए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके चेहरे के मूल्य पर लिया जाए और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया जाए, प्रथम दृष्ट्या किसी अपराध का गठन नहीं करते हैं या अभियुक्त के विरुद्ध मामला नहीं बनाते हैं।

अनुवादित

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और अन्य सामग्री, यदि कोई हो, प्रथम सूचना रिपोर्ट के साथ संलग्न हो, संज्ञेय अपराध को प्रकट नहीं करती है, धारा 156(1) संहिता के अधीन पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराती है, सिवाय धारा 155(2) संहिता की परिधि के भीतर मजिस्ट्रेट के आदेश के अधीन।

(3) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद में किए गए अविवादित आरोप और उसके समर्थन में एकत्रित साक्ष्य किसी अपराध के किए जाने को प्रकट नहीं करते हैं और अभियुक्त के विरुद्ध मामला नहीं बनाते हैं।

(4) जहां, प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोप संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते हैं बल्कि केवल गैर-संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, धारा 155(2) संहिता के अधीन परिकल्पित मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा कोई जांच अनुमत नहीं है।

(5) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद में किए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं कि कोई भी विवेकपूर्ण व्यक्ति कभी भी इस न्यायसंगत निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि अभियुक्त के विरुद्ध आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता के किसी भी प्रावधान या संबंधित अधिनियम (जिसके अधीन आपराधिक कार्यवाही संस्थित की गई है) में कार्यवाही के संस्थान और जारी रखने के लिए एक स्पष्ट कानूनी रोक उत्कीर्ण है और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में एक विशिष्ट प्रावधान है, जो पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां एक आपराधिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्वक अभियुक्त पर बदला लेने के गुप्त उद्देश्य से और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने के दृष्टिकोण से संस्थित की गई है।"

27. मेरी सुविचारित राय में, अवर न्यायालय ने मामले के सभी प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और स्वयं को संतुष्ट करने के बाद कि आवेदक के विचारण के लिए प्रथम दृष्ट्या मामला बनता है, धारा 500 भा0द0सं0 के अधीन अपराध के लिए विचारण का सामना करने के लिए आवेदक को समन करने का निर्णय सही ढंग से किया है। वर्तमान मामला **भजन लाल** (उपरोक्त) में उल्लिखित किसी भी श्रेणी में नहीं आता है और वर्तमान मामले में समन आदेश और कार्यवाही को निरस्त करने का कोई मामला नहीं बनता है।

28. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 16.12.2022 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा जारी "प्रेस ब्रीफिंग की मुख्य बातें" का संदर्भ दिया, जिसकी एक प्रति आवेदन के अनुलग्नक संख्या 8 के रूप में संलग्न की गई है और उन्होंने न्यायालय का ध्यान आवेदक द्वारा दिए गए उत्तर की ओर आकर्षित किया जब उनसे इस बिंदु पर टिप्पणी मांगी गई थी कि उनकी पार्टी संसद में भारत और चीन के बीच के मुद्दे को उठा

रही है, सरकार का कहना है कि कोई भी भारतीय क्षेत्र का एक इंच भी नहीं ले सकता है, लेकिन ऐसी घटनाएं हो रही हैं। हालांकि, यह सामग्री आक्षेपित समन आदेश को पारित करते समय अवर न्यायालय के समक्ष उपलब्ध नहीं थी।

29. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता ने स्वयं **इवेको मैगिरस ब्रांड्सचुट्ज़टेक्निक जीएमबीएच बनाम निर्मल किशोर भारतीय:** (2024) 2 एससीसी 86 के मामले में दिए गए अधिनिर्णय का हवाला दिया है, जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए हैं:-

*"**59.** इस प्रकार, जब एक मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान लेते हुए इस प्रथम दृष्ट्या संतुष्टि के आधार पर धारा 200 के अधीन आगे बढ़ता है कि एक आपराधिक अपराध बनता है, तो उसे परिवाद में लगाए गए आरोपों, परिवाद के समर्थन में परिवादी द्वारा दिए गए कथनों, आरोपों के समर्थन में दस्तावेजी साक्ष्य, यदि कोई हो, जो उसके द्वारा प्रस्तुत किया गया है, के साथ-साथ परिवाद में आरोपों के समर्थन में परिवादी द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले किसी भी साक्षी के कथनों को देखकर स्वयं को संतुष्ट करना आवश्यक है। यद्यपि हम यहां धारा 202 से संबंधित नहीं हैं, यदि उसके अधीन जांच या विवेचना की जाती है, तो यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि धारा 204 के अधीन प्रक्रिया जारी करने से पहले मजिस्ट्रेट द्वारा रिपोर्टों को भी देखा जाना चाहिए। हालांकि, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि **जिस चरण में मजिस्ट्रेट अभियुक्त को समन करने का आदेश पारित करने का निर्णय लेता है, उपरोक्त संदर्भित प्रकृति की परीक्षा यह राय बनाने के लिए अभिप्रेत नहीं होनी चाहिए कि क्या सामग्री "दोषसिद्धि" के लिए पर्याप्त है; इसके बजाय, उसे यह राय बनाने की आवश्यकता है कि क्या सामग्री "आगे बढ़ने" के लिए पर्याप्त है जैसा कि प्रासंगिक अध्याय का शीर्षक संकेत करेगा। चूंकि अभियुक्त उस चरण में क्षेत्र में प्रवेश नहीं करता है, अभियुक्त द्वारा प्रक्रिया जारी करने को विफल करने के लिए रक्षा उठाने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है।** फिर भी, तथ्य यह है कि अभियुक्त मजिस्ट्रेट के समक्ष नहीं है, इसका मतलब यह नहीं है कि मजिस्ट्रेट को अपना न्यायिक मस्तिष्क लागू करने की आवश्यकता नहीं है। लागू विधि में कुछ भी मजिस्ट्रेट को विधि के अन्य प्रावधानों पर अपना न्यायिक मस्तिष्क लागू करने और यह पता लगाने से नहीं रोकता है कि क्या, प्रथम दृष्ट्या, एक "अपराध", जैसा कि धारा 2(n) दं0प्र0सं0 में परिभाषित है, बनता है। ऐसी राय बनाए बिना, धारा 204 में "आगे बढ़ने" का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है।*

***60.** विधि द्वारा मजिस्ट्रेट पर एक आवश्यकता के रूप में जो लगाया गया है वह यह है कि वह केवल उन सामग्रियों पर विचार करने के लिए बाध्य है जो धारा 200 और 202 के साथ-साथ किसी संविधि के किसी भी लागू प्रावधान के संदर्भ में उसके समक्ष लाई जाती हैं, और विधि द्वारा उस पर एक प्रतिबंध के रूप में जो लगाया गया है वह यह है कि उसे कानूनी प्रक्रिया द्वारा अनुमत तरीके से अभिलेख पर नहीं लाई गई किसी भी सामग्री पर विचार करने से रोका जाता है। उपरोक्त प्रस्ताव के एक तार्किक परिणाम के रूप में, जो अनुसरण करता है वह यह है कि मजिस्ट्रेट यह निर्णय लेते समय कि क्या प्रक्रिया जारी की जाए, उसके समक्ष सामग्री को देखते हुए एक दृष्टिकोण बनाने का अधिकार है। यदि, हालांकि, ऐसी सामग्री स्वयं किसी भी अपवाद के अधीन पूर्ण रक्षा को प्रकट करती है, तो मजिस्ट्रेट को न्यायिक मस्तिष्क के प्रयोग पर ऐसे अपवाद का लाभ*

देने से कुछ भी नहीं रोकता है ताकि एक तुच्छ परिवाद को अनावश्यक विचारण को ट्रिगर करने से रोका जा सके।

***61.** चूंकि अभियोजन की शुरुआत एक गंभीर मामला है, हम यह कहने के इच्छुक हैं कि यह मजिस्ट्रेट का कर्तव्य होगा कि वह असत्य और तुच्छ परिवादों को मूल्यवान न्यायिक समय खाने से रोके। यदि परिवाद खारिज करने की गारंटी देता है, तो मजिस्ट्रेट को वैधानिक रूप से अपने संक्षिप्त कारणों को अभिलिखित करने का आदेश दिया जाता है। इसके विपरीत, यदि ऐसी सामग्री से एक "अपराध" किए जाने का न्यायिक मस्तिष्क के प्रयोग पर प्रथम दृष्ट्या संतोष प्राप्त होता है और आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार होने पर, मजिस्ट्रेट प्रक्रिया जारी करने से किसी अन्य बंधन के अधीन नहीं है। प्रथम दृष्ट्या मामला बनने पर और भले ही दोनों पक्षों पर बहुत कुछ कहा जा सकता है, मजिस्ट्रेट के पास विचारण के लिए अभियुक्त को प्रतिबद्ध करने के अलावा कोई विकल्प नहीं होगा, जैसा कि चंद्र देव सिंह 1963 एससीसी ऑनलाइन एससी 4 में धारित किया गया है। प्रक्रिया जारी करने के चरण में कारणों को अभिलिखित करने की आवश्यकता वैधानिक आदेश नहीं है; इसलिए, मजिस्ट्रेट को प्रक्रिया जारी करने के लिए कारणों को अभिलिखित करने की आवश्यकता नहीं है। यह भी इस न्यायालय द्वारा जगदीश राम बनाम राजस्थान राज्य (2004) 4 एससीसी 432 में घोषित विधि है। चूंकि यह वैधानिक आदेश नहीं है कि कारणों को अभिलिखित किया जाना चाहिए इस राय के गठन के समर्थन में कि आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है जबकि परिवाद की खारिजी को संक्षिप्त कारणों द्वारा समर्थित किया जाना है, संतुष्टि की डिग्री दोनों स्थितियों में आवश्यक रूप से भिन्न होनी चाहिए। जबकि पूर्व में यह संलिप्तता की संभाव्यता के आधार पर एक प्रथम दृष्ट्या संतुष्टि है, बाद में संतुष्टि की एक उच्च डिग्री की आवश्यकता होगी कि मजिस्ट्रेट को आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार की अनुपस्थिति के कारण परिवाद की खारिजी की गारंटी देने वाले परिवाद के अपने अंतिम और निर्णायक दृष्टिकोण को व्यक्त करना होगा।*

***62.** मानहानि के परिवाद के संदर्भ में, जिस चरण में मजिस्ट्रेट प्रक्रिया जारी करने के लिए आगे बढ़ता है, उसे परिवाद में लगाए गए आरोपों (धारा 200/धारा 202 में संदर्भित प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त) और अन्य सामग्री के आधार पर अपनी राय बनानी होती है कि क्या "आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार" मौजूद है जो "दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त आधार" से अलग है, जिसे विचारण में निर्धारण के लिए छोड़ दिया जाना है न कि उस चरण में जब प्रक्रिया जारी की जाती है। यद्यपि कानून में कुछ भी नहीं है जो स्पष्ट शब्दों में मजिस्ट्रेट को यह विचार करने के लिए आदेश देता है कि क्या धारा 499 भा0द0सं0 के किसी भी अपवाद को आकर्षित किया गया है, कोई रोक भी नहीं है। आखिरकार, जो "अपवादित" है वह प्रावधान की शर्तों पर मानहानि की राशि नहीं हो सकता है। हम महसूस करते हैं कि अक्सर यह राय बनाना मुश्किल होगा कि उस समय एक अपवाद आकर्षित होता है क्योंकि न तो मानहानि के लिए एक परिवाद (जो आपराधिक न्यायालयों में एक नियमित घटना नहीं है) सामग्री के साथ तैयार किए जाने की संभावना है, न ही कथनों को शपथ पर दिए जाने और साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने की संभावना है, जो दहलीज पर अभियुक्त को एक निकास मार्ग प्रदान करता है। हालांकि, हम यह दोहराने के लिए जल्दबाजी करते हैं कि यह कानून नहीं है कि मजिस्ट्रेट किसी भी तरह से यह विचार करने से रोका गया है कि क्या किसी दिए गए मामले में किसी भी अपवाद को आकर्षित किया गया*

है; मजिस्ट्रेट ऐसा विचार करने से किसी भी बंधन के अधीन नहीं है, विशेष रूप से क्योंकि कोई व्यक्ति जो कानूनी रूप से प्रशिक्षित है, यह अपेक्षा की जाती है कि प्रक्रिया जारी करते समय उसे स्पष्ट विचार होगा कि मानहानि क्या है। यदि, असंभावित घटना में, परिवाद की सामग्री और शपथ पर सहायक कथनों के साथ-साथ विवेचना/जांच की रिपोर्ट धारा 499 भा0द0सं0 के किसी भी अपवाद के अधीन एक पूर्ण रक्षा को प्रकट करती हैं, मजिस्ट्रेट, न्यायिक मस्तिष्क के उचित प्रयोग पर, ऐसे आधार पर परिवाद को खारिज करने के लिए न्यायसंगत होगा और यदि ऐसी खारिजी को कारणों का समर्थन प्राप्त है तो यह अधिकार क्षेत्र से अधिक का कार्य नहीं होगा।

63. *धारा 482 दं0प्र0सं0 के अधीन उच्च न्यायालयों द्वारा अधिकारिता के प्रयोग के पहलू की ओर ध्यान देते हुए, एक मामले में जहां अभियुक्त द्वारा किसी भी अपवाद के आधार पर मानहानि के अपराध के नहीं किए जाने का दावा किया जाता है और निरस्तीकरण के लिए प्रार्थना की जाती है, कानून अच्छी तरह से स्थापित प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय आगे नहीं जा सकते हैं और जांच के दायरे को बढ़ा सकते हैं यदि अभियुक्त उन सामग्रियों पर भरोसा करना चाहता है जो मजिस्ट्रेट के समक्ष नहीं थीं। यह इस सरल प्रस्ताव पर आधारित है कि जो मजिस्ट्रेट नहीं कर सकता था, वह उच्च न्यायालय नहीं कर सकते हैं। हम धारा 482 दं0प्र0सं0 द्वारा बचाई गई उच्च न्यायालयों की शक्तियों को कमजोर करने के लिए समझे जाने की उम्मीद नहीं कर सकते हैं; ऐसी शक्तियां हमेशा एक्स डेबिटो जस्टीसिये (न्याय के ऋण से बाहर) अर्थात वास्तविक और ठोस न्याय करने के लिए प्रयोग करने के लिए उपलब्ध हैं जिसके लिए केवल उच्च न्यायालय मौजूद हैं। हालांकि, धारा 482 दं0प्र0सं0 के अधीन अधिकारिता के प्रयोग में उच्च न्यायालयों द्वारा एक प्रथम सूचना रिपोर्ट या पुलिस रिपोर्ट से उत्पन्न आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करने के लिए निर्धारित परीक्षण धारा 204 को धारा 200 के साथ पढ़े जाने के अधीन जारी की गई प्रक्रिया को निरस्त करने के लिए निर्धारित परीक्षणों से काफी अलग नहीं होने के कारण, उचित संतुष्टि दर्ज करने पर उच्च न्यायालय हस्तक्षेप करने के लिए सशक्त हैं यदि परिवाद, शपथ पर परिवादी और साक्षी के कथनों के पदार्थ, यदि कोई हो, और दस्तावेजी साक्ष्य जैसा कि प्रस्तुत किया गया है, को पढ़ने पर, कोई अपराध नहीं बनता है और यदि कार्यवाही को जारी रखने की अनुमति दी जाती है तो यह कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। यह भी अनुमत नहीं होगा, यदि किसी दिए गए मामले का न्याय भारी रूप से ऐसा नहीं मांगता है।"*

30. दिनांक 16.12.2022 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा जारी "प्रेस ब्रीफिंग की मुख्य बातें" दिनांक 11.02.2025 के आक्षेपित समन आदेश को पारित करते समय अवर न्यायालय के समक्ष नहीं थीं और आवेदक को अपनी रक्षा में अवर न्यायालय के समक्ष उन्हीं को रखने का अवसर होगा। हालांकि, यह न्यायालय **इवेको मैगिरस ब्रांड्सचुट्ज़टेक्निक जीएमबीएच** (उपरोक्त) में निर्धारित कानून के अनुसार समन आदेश की शुद्धता की जांच करते समय आवेदक की रक्षा पर विचार नहीं कर सकता है।

31. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा **नवल किशोर शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य:** 2022 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 677 में दिए गए अधिनिर्णय पर भी भरोसा किया है, जिसमें यह धारित किया गया था:-

*"**20**. उपरोक्त अधिनिर्णयों से यह स्पष्ट है कि समाचार पत्र की रिपोर्ट अपने आप में इसकी सामग्री का साक्ष्य गठित नहीं करती है। रिपोर्टें केवल अफवाह साक्ष्य हैं। उन्हें या तो उस रिपोर्टर के उत्पादन द्वारा सिद्ध किया जाना है जिसने उक्त कथनों को सुना और रिपोर्टिंग के लिए भेजा या ऐसे रिपोर्टर द्वारा भेजी गई रिपोर्ट के उत्पादन और समाचार पत्र के संपादक या इसके प्रकाशक के उत्पादन द्वारा उक्त रिपोर्ट को सिद्ध करना है। यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा धारित किया गया है कि समाचार पत्र की रिपोर्टें सबसे अच्छी द्वितीयक साक्ष्य हैं और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के अधीन इसकी सामग्री के उचित प्रमाण के बिना साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि समाचार पत्र की रिपोर्ट एक "कानूनी साक्ष्य" नहीं है जिसे परिवादी के समर्थन में जांच की जा सकती है।*

***21.** यह सुस्थापित कानून है कि किसी व्यक्ति के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के समर्थन में कानूनी साक्ष्य होना चाहिए। वर्तमान मामले में एकमात्र साक्ष्य जिस पर भरोसा किया गया है वह समाचार पत्र की रिपोर्टिंग है और कुछ नहीं। उपरोक्त कथित के लिए और स्थापित कानूनी स्थिति के अनुसार, एक समाचार पत्र की रिपोर्ट एक "कानूनी साक्ष्य" नहीं है।*

हालांकि, इस न्यायालय ने आगे धारित किया कि:-

***"23.** एक प्रेस कॉन्फ्रेंस देना और/या प्रेस को साक्षात्कार देना चुनावों में एक सामान्य सार्वजनिक बैठक को संबोधित करने से पूरी तरह से अलग कार्य है। **एक प्रेस कॉन्फ्रेंस आयोजित करने वाला और प्रेस को साक्षात्कार देने वाला व्यक्ति उपस्थित व्यक्तियों को एक स्पष्ट आशय और संदेश देता है कि उसका भाषण या व्याख्यान या उत्तर समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में प्रकाशित किए जाएं।** चुनावों में चुनावों में प्रचार के उद्देश्यों के लिए एक सामान्य सार्वजनिक बैठक को संबोधित करना एक अलग आशय और उद्देश्य के साथ पूरी तरह से अलग कार्य है। यह उस राजनीतिक पार्टी का समर्थन करने के लिए उनमें एक विचार पैदा करने के लिए स्थान पर मौजूद सभा को संबोधित करना है।*

32. वर्तमान मामले में, कथित आपत्तिजनक कथन आवेदक द्वारा मीडिया संवाददाताओं को संबोधित करते समय दिया गया था। यह एक मीडिया व्यक्ति द्वारा पूछे गए कुछ सवाल के जवाब में था, कि आवेदक ने यह कहा है कि *"लोग भारत जोड़ो यात्रा के बारे में पूछेंगे, यहां और वहां, अशोक गहलोत और सचिन पायलट और न जाने क्या। लेकिन वे चीन द्वारा भारतीय क्षेत्र के 2000 वर्ग किलोमीटर पर कब्जा करने, 20 भारतीय सैनिकों को मारने और अरुणाचल प्रदेश में हमारे सैनिकों को पीटने के बारे में एक भी सवाल नहीं पूछेंगे। लेकिन भारतीय प्रेस इनसे इस बारे में कोई सवाल नहीं पूछती। क्या यह सच नहीं है? राष्ट्र यह सब देख रहा है। यह दिखावा मत करो कि लोग नहीं जानते।"* आवेदक मीडिया संवाददाताओं से बात करते समय उपस्थित व्यक्तियों

को एक स्पष्ट आशय और संदेश दे रहे थे कि उनका कथन समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में प्रकाशित किया जाए। इसलिए, **नवल किशोर शर्मा** (उपरोक्त) में निर्धारित कानून के अनुसार भी, मामले के तथ्य समन आदेश और कार्यवाही को निरस्त करने का मामला नहीं बनाते हैं।

33. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुतियों के समापन के बाद, विद्वान अपर महाधिवक्ता ने धारा 482 दं0प्र0सं0 के अधीन आवेदन की पोषणीयता के विरुद्ध एक प्रारंभिक आपत्ति उठाई कि आवेदक को दिनांक 11.04.2025 के समन आदेश के विरुद्ध धारा 397 दं0प्र0सं0 के अधीन एक वैधानिक उपचार प्राप्त है और, इसलिए, धारा 482 दं0प्र0सं0 के अधीन आवेदन पोषणीय नहीं है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि पहले, आवेदक ने एक अन्य समन आदेश के विरुद्ध धारा 482 संख्या 2860/2025 के अधीन एक आवेदन संस्थित किया था, जिस आवेदन को इस न्यायालय द्वारा दिनांक 04.04.2025 के आदेश के माध्यम से यह धारित करते हुए खारिज कर दिया गया था कि चूंकि याचिकाकर्ता को धारा 397/399 दं0प्र0सं0 के अधीन पुनरीक्षण संस्थित करने का वैधानिक उपचार प्राप्त है, यह धारा 482 दं0प्र0सं0 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग की गारंटी देने वाला उचित मामला नहीं है।

34. उक्त आपत्ति का उत्तर देते हुए, आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने धारा 482 दं0प्र0सं0 संख्या 2860/2025 के अधीन एक आवेदन में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 04.04.2025 के आदेश को S.L.P. (क्रि०) सं. 006196/2025 संस्थित करके चुनौती दी है और माननीय उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 25.04.2025 को निम्नलिखित अंतरिम आदेश पारित किया है:-

"1. नोटिस जारी किया जाए, आठ सप्ताह में वापसी योग्य।

2. अगली सुनवाई की तारीख तक, एसीजेएम-III, लखनऊ, उत्तर प्रदेश के न्यायालय के समक्ष लंबित परिवाद मुकदमा संख्या 126818/2022 की कार्यवाही पर रोक रहेगी।"

35. धारा 482 दं0प्र0सं0 के अधीन याचिका की पोषणीयता के बिंदु पर आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता ने **धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य**: (2009) 2 एससीसी 370, **संजय कुमार राय बनाम. उत्तर प्रदेश राज्य**.: (2022) 15 एससीसी 720 और **आकांक्षा अरोड़ा बनाम तनय माबेन,** 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3688 के मामलों में दिए गए अधिनिर्णयों पर भरोसा किया है।

36. विद्वान सहायक शासकीय अधिवक्ता ने **कैसर जहां बनाम एस.पी., जिला सुल्तानपुर:** 2024 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 6758 के मामले में इस न्यायालय के अधिनिर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें इस न्यायालय ने धारित किया कि:-

*"**10.** माननीय उच्चतम न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ जिसने विपिन साहनी [विपिन साहनी बनाम सीबीआई, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 511] का निर्णय किया, मोहित [(2013) 7 एससीसी 789] में पहले के दो न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय पर भरोसा करने के बाद, प्रभु चावला [प्रभु चावला बनाम राजस्थान राज्य, (2016) 16 एससीसी 30] में तीन न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय को ध्यान में नहीं रखा, जो दो न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय पर प्रबल होगा। इस प्रकार अब जो कानून मौजूद है वह यह है कि इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं हैं और एक पुनरीक्षण संस्थित करने के उपचार की उपलब्धता इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के आह्वान के विरुद्ध एक पूर्ण रोक नहीं बनाएगी। हालांकि, अंतर्निहित शक्ति केवल ऐसे आदेश करने के लिए आह्वान की जा सकती है जो इस संहिता के अधीन किसी आदेश को प्रभाव देने के लिए आवश्यक हो सकते हैं, या किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए।*

***11**. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता सहमत हैं कि आवेदक के पास बीएनएसएस की धारा 438 के अधीन एक पुनरीक्षण संस्थित करने का विकल्प है, लेकिन वह जोर देते हैं कि जब आवेदक के पास दो उपचार उपलब्ध हैं, तो उसे उसके लिए उपलब्ध दो उपचारों में से किसी एक को चुनने का विवेकाधिकार है।*

***12.** यद्यपि बीएनएसएस की धारा 438 के अधीन एक वैधानिक उपचार की उपलब्धता इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग के विरुद्ध एक पूर्ण रोक नहीं हो सकती है, यह निश्चित रूप से एक कारक है जिसे इस न्यायालय द्वारा यह पता लगाने के लिए ध्यान में रखा जाना है कि क्या इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करना आवश्यक है। अंतर्निहित शक्ति को ऐसे आदेश करने के लिए आह्वान किया जा सकता है जो किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हो सकते हैं।*

***13.** चुनौती के अधीन आदेश एक सेशन न्यायालय द्वारा पारित किया गया है और, इसलिए, पुनरीक्षण इसी न्यायालय के समक्ष होगा। पुनरीक्षण के साथ-साथ बीएनएसएस की धारा 528 के अधीन आवेदन, दोनों इस न्यायालय की एकल न्यायाधीश पीठों को सौंपे जाते हैं। दोनों कार्यवाहियों में जांच और हस्तक्षेप का दायरा भी समान होगा। इसलिए, बीएनएसएस की धारा 528 के अधीन एक आवेदन और बीएनएसएस की धारा 438 के अधीन एक पुनरीक्षण की कार्यक्षमता समान होगी। दोनों कार्यवाहियों में एकमात्र अंतर यह होगा कि बीएनएसएस की धारा 528 के अधीन आवेदन आज न्यायाधीश 'ए' के समक्ष रखा गया है और बीएनएसएस की धारा 438 के अधीन पुनरीक्षण किसी अन्य दिन न्यायाधीश 'बी' के समक्ष रखा जाएगा।*

***14.** भारत संघ बनाम सिप्ला लिमिटेड, (2017) 5 एससीसी 262 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने धारित किया कि न्यायालय को मुकदमेबाजी और मुकदमेबाज के संबंध में एक कार्यात्मक परीक्षण अपनाने की आवश्यकता है। जो देखा जाना है वह यह है कि क्या एक न्यायालय और दूसरे के बीच कार्यवाही में कोई कार्यात्मक समानता है या क्या एक मुकदमेबाज की ओर से किसी प्रकार की छल है। यह यह कार्यात्मक परीक्षण*

है जो निर्धारित करेगा कि क्या एक मुकदमेबाज फोरम शॉपिंग में लिप्त है या नहीं। उपरोक्त कथित तथ्य स्पष्ट रूप से स्थापित करते हैं कि यह फोरम शॉपिंग का एक विशिष्ट उदाहरण है, जिस अभ्यास को हमेशा न्यायालयों द्वारा निंदा की गई है।

***15.** मामले के उक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, यह न्यायालय सुविचारित राय का है कि जब आवेदक के लिए इसी न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण संस्थित करने का एक वैधानिक उपचार उपलब्ध है जो पुनरीक्षण भी इस न्यायालय की एक माननीय एकल न्यायाधीश पीठ के समक्ष रखा जाएगा, यद्यपि बीएनएसएस की धारा 528 के अधीन आवेदन पोषणीय होगा, यह न्यायालय के लिए उचित नहीं होगा कि वह अपनी अंतर्निहित शक्तियों को आह्वान करने के अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करे जब याचिकाकर्ता को बीएनएसएस की धारा 438 के अधीन एक वैधानिक उपचार उपलब्ध है, जो उपचार इसी न्यायालय के समक्ष है। उक्त कारणों से, यह न्यायालय पाता है कि यद्यपि बीएनएसएस की धारा 528 के अधीन आवेदन पोषणीय होगा, यह मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए मनोरंजन योग्य नहीं होगा।"*

37. कैसर जहां (उपरोक्त) में, इस न्यायालय ने धारित किया है कि इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को आह्वान करने वाला संस्थित आवेदन पोषणीय होगा, लेकिन चूंकि आवेदक के पास इसी न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण संस्थित करने का एक वैधानिक उपचार था, जो पुनरीक्षण भी इस न्यायालय की एक अन्य माननीय एकल न्यायाधीश पीठ के समक्ष रखा जाएगा, यह न्यायालय के लिए उचित नहीं होगा कि वह अपनी अंतर्निहित शक्तियों को आह्वान करने के अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करे जब याचिकाकर्ता को बीएनएसएस की धारा 438 के अधीन एक वैधानिक उपचार उपलब्ध है, जो उपचार इसी न्यायालय के समक्ष है। इसलिए, मैं धारा 482 दं0प्र0सं0 के अधीन आवेदन की पोषणीयता के विरुद्ध प्रारंभिक आपत्ति को खारिज करता हूं और इसे पोषणीय धारित करता हूं।

38. विद्वान सहायक शासकीय अधिवक्ता ने बताया है कि दिनांक 25.04.2025 को माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष हुई कार्यवाही की रिपोर्ट लाइव लॉ पोर्टल पर की गई है, जिसने प्रकाशित किया है कि कार्यवाही पर रोक लगाते हुए भी, माननीय उच्चतम न्यायालय ने मौखिक रूप से आवेदक को चेतावनी दी कि यदि उन्होंने भविष्य में ऐसी कोई टिप्पणी की, तो उनके विरुद्ध स्वप्रेरणा से कार्रवाई की जाएगी। माननीय उच्चतम न्यायालय ने विनायक दामोदर सावरकर के विरुद्ध आवेदक के कथन पर आपत्ति जताई कि वह अंग्रेजों के सेवक थे और न्यायालय ने आवेदकों का प्रतिनिधित्व करने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता से पूछा कि "उन्हें स्वतंत्रता सेनानियों के बारे में गैर-जिम्मेदार बयान न देने दें। आपने कानून का एक अच्छा बिंदु रखा है और रोक के हकदार हैं। हम यह जानते हैं। लेकिन यह वह तरीका नहीं है जिससे आप हमारे स्वतंत्रता सेनानियों के साथ व्यवहार करते हैं।" माननीय उच्चतम न्यायालय ने आवेदक के विरुद्ध कार्यवाही पर रोक लगा दी है लेकिन उन्हें गैर-जिम्मेदार बयान देने से रोका है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने अवलोकन किया कि कोई भी आगे का बयान और माननीय उच्चतम न्यायालय स्वप्रेरणा से कार्रवाई करेगा और मंजूरी का कोई सवाल नहीं। माननीय उच्चतम न्यायालय आवेदक को स्वतंत्रता सेनानियों के बारे में कुछ भी बोलने की अनुमति नहीं देगा।

पोर्टल ने रिपोर्ट किया है कि आवेदक का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने एक मौखिक वचन दिया कि आवेदक भविष्य में ऐसे बयान नहीं देगा।

39. उक्त आपत्ति का उत्तर देते हुए, आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह अवलोकन माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिनांक 25.04.2025 को किया गया था जबकि प्रश्नगत कथन पहले ही सितंबर, 2024 में दिया जा चुका था।

40. आवेदक ने 24 मामलों के अपने आपराधिक इतिहास को प्रकट करते हुए एक पूरक शपथपत्र संस्थित किया है। एक मामले में, उन्हें धारा 499, 500 भा0द0सं0 के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया है और दिनांक 04.08.2023 को एसएलपी (क्रि.) No. 8644/2023 में उनके पक्ष में एक रोक आदेश पारित किया गया है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने **एसएलपी (क्रि.) सं. 8644/2023** में दिनांक 04.08.2023 को पारित अंतरिम आदेश में अवलोकन किया है कि:-

"8. निस्संदेह अपीलकर्ता के कथित कथन अच्छे स्वाद में नहीं हैं। सार्वजनिक जीवन में एक व्यक्ति से सार्वजनिक भाषण देते समय संयम की एक डिग्री का प्रयोग करने की अपेक्षा की जाती है। हालांकि, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा उपरोक्त अवमानना कार्यवाही में यहां अपीलकर्ता के शपथपत्र को स्वीकार करते समय अवलोकन किया गया है, यहां अपीलकर्ता को सार्वजनिक भाषण देते समय अधिक सावधान रहना चाहिए था। हो सकता है, यदि अवमानना कार्यवाही में शीर्ष न्यायालय का अधिनिर्णय अपीलकर्ता द्वारा दिए गए भाषण से पहले आया होता, तो अपीलकर्ता अधिक सावधान होता और कथित टिप्पणियां करते समय संयम की एक डिग्री का प्रयोग करता, जो विचारण न्यायाधीश द्वारा अपमानजनक पाई गई।"

41. इस चरण में, समन आदेश की वैधता की जांच करते समय, इस न्यायालय को प्रतिद्वंद्वी दावों की योग्यता में जाने की आवश्यकता नहीं है और यह अभ्यास अवर न्यायालय द्वारा पक्षों द्वारा अपने संबंधित दावे/रक्षा के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त करने के बाद किया जाना होगा।

42. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, मैं सुविचारित राय का हूं कि अवर न्यायालय ने मामले के सभी प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और स्वयं को संतुष्ट करने के बाद कि आवेदक के विचारण के लिए प्रथम दृष्ट्या मामला बनता है, धारा 500 भा0द0सं0 के अधीन अपराध के लिए विचारण का सामना करने के लिए आवेदक को समन करने का निर्णय सही ढंग से किया है। अवर न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 11.02.2025 का आक्षेपित समन आदेश अपनी अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की गारंटी देने वाली किसी अवैधता से ग्रस्त नहीं है।

43. धारा 482 दं0प्र0सं0 के अधीन आवेदन योग्यता से रहित है और इसे ***निरस्त*** किया जाता है।

(2025) 5 ILRA 309

मूल अधिकारिता – आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 30.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 4655 सन् 2025

रोहित राजपूत ... आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... विपक्षी पक्षकारगण

आवेदक के अधिवक्ता: धीरेन्द्र प्रताप सिंह

विपक्षी पक्षकारों के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि – भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धाराएँ 406, 506 एवं 420 – परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 – धारा 138 – FIR में आरोप लगाया गया है कि आवेदक ने अपने भाई एवं साले के साथ मिलकर सूचनादाता से शासकीय नौकरी दिलाने के बहाने ₹9 लाख लिए, फर्जी नियुक्ति पत्र सौंपा – जब धोखाधड़ी उजागर हुई, तो वापसी के लिए दिया गया चेक अनादृत हो गया – आरोपी व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया – विवेचना अधिकारी ने पुलिस अधीक्षक के निर्देश पर विचारण न्यायालय से FSL परीक्षण हेतु पेन-ड्राइव एवं चेक वापस करने का अनुरोध किया – अनुपूरक आरोप-पत्र में उल्लेख है कि पेन-ड्राइव एवं चेक FSL को भेजे गए और प्राप्त होकर केस डायरी से संलग्न किए गए – विवेचना बंद कर दी गई – विचारण न्यायालय ने संज्ञान लेकर आरोपी व्यक्तियों को सम्मन किया – आवेदन स्वीकृत किया गया, पूर्व विवेचना अधिकारी के विरुद्ध लापरवाहीपूर्ण विवेचना के लिए विभागीय कार्रवाई का निर्देश दिया गया – आवेदक ने तर्क दिया कि आरोप-पत्र प्रस्तुत होने एवं विवेचना बंद होने के उपरान्त विवेचना अधिकारी को आगे की विवेचना के लिए पेन-ड्राइव एवं चेक वापस माँगने का कोई अधिकार नहीं था – विनुभाई हरिभाई मालविया (अधोलिखित) में उच्चतम न्यायालय द्वारा और जितेन्द्र सिंह (अधोलिखित) में उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के आलोक में, विचारण न्यायालय ने न्यायोचित निर्णय सुनिश्चित करने हेतु FSL को पेन-ड्राइव एवं चेकों की जाँच का निर्देश देने में अधिकारिता का सम्यक् प्रयोग किया – आवेदन में कोई गुण-दोष नहीं, निरस्त। (पैरा 3, 4 से 6, 8, 9, 18)

आवेदन निरस्त। (E-13)

उद्धृत वादों की सूची:

अनुवादित

1. अमृतभाई शम्भूभाई पटेल बनाम सुमनभाई कांतिभाई पटेल: (2017) 4 SCC 177 (पैरा 49)
2. अतुल राव बनाम कर्नाटक राज्य: (2018) 14 SCC 298
3. विनुभाई हरिभाई मालविया बनाम गुजरात राज्य: (2019) 17 SCC 1 (पैरा 42)
4. जितेन्द्र सिंह @ बब्लू बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य: 2023 (4) ACR 3507
5. उड़ीसा राज्य बनाम नलिनीकांत मुदुली: (2004) 7 SCC 19 (पैरा 6)
6. जितेन्द्र सिंह बनाम उ.प्र. राज्य: 2023 SCC OnLine All 2328 = 2023 (4) ACR 3525 (पैरा 32)

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा उद्घोषित)

1. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री धीरेन्द्र प्रताप सिंह और प्रतिवादी संख्या 1-उत्तर प्रदेश राज्य के लिए विद्वान सहायक सरकारी अधिवक्ता-I श्री अनुराग वर्मा को सुना गया।

2. धारा 528 बी.एन.एस.एस. के अधीन प्रस्तुत वर्तमान याचिका के माध्यम से, आवेदक ने विद्वान चतुर्थ अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट/विशेष न्यायाधीश एमपी/एमएलए, रायबरेली द्वारा वारंट या समन आपराधिक वाद संख्या 12609/2024 में, जो अपराध संख्या 415/2023, धारा 406, 506, 420 आई.पी.सी. और परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन, थाना खिरोन, जिला रायबरेली से उत्पन्न हुआ है, में दिनांक 17.04.2025 को पारित आदेश की वैधता को चुनौती दी है, जिसके द्वारा विचारण न्यायालय ने पेन-ड्राइव और चेकों को फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला द्वारा परीक्षित कराने और उसकी रिपोर्ट प्रस्तुत करने हेतु विवेचना अधिकारी को वापस करने का आदेश दिया है।

3. उपर्युक्त मामला दिनांक 23.09.2023 को आवेदक और उसके भाई राहुल राजपूत और उसके बहनोई कृष्ण कुमार लोधी के विरुद्ध दर्ज प्राथमिकी के आधार पर संस्थित किया गया है, जिसमें कहा गया है कि अभियुक्त व्यक्तियों ने सूचनादाता से उसके भाई को सरकारी सेवा में नियोजित कराने हेतु रु. 9 लाख निकलवाए थे और उन्होंने फर्टिलाइजर कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया का एक कूटरचित ज्वाइनिंग लेटर सौंपा था। अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा की गई धोखाधड़ी के बारे में जानने पर, सूचनादाता ने अपने धन की वापसी की मांग की। उन्होंने एक चेक दिया जो बैंक द्वारा अदत्त वापस कर दिया गया।

4. विवेचना के पश्चात्, विवेचना अधिकारी ने अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध धारा 420, 406, 506 आई.पी.सी. और एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराधों हेतु दिनांक 12.07.2024 को आरोप-पत्र प्रस्तुत किया। दिनांक 14.07.2024 को, विवेचना अधिकारी ने पूरक आरोप-पत्र प्रस्तुत किया जिसमें कहा गया कि सूचनादाता और सह-अभियुक्त राहुल लोधी के बीच वार्तालापों वाली पेन-ड्राइव और प्रश्नगत चेकों को फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला को भेजा गया था। वे वापस प्राप्त हो गए हैं और उन्हें केस डायरी के साथ संलग्न किया जा रहा है। विवेचना बंद हो गई है।

5. विचारण न्यायालय ने दिनांक 26.07.2024 को अपराध का संज्ञान लिया और अभियुक्त व्यक्तियों को विचारण का सामना करने हेतु समन किया गया।

6. दिनांक 17.04.2025 को, विवेचना अधिकारी ने विचारण न्यायालय को एक आवेदन दिया जिसमें कहा गया कि पुलिस अधीक्षक ने उसे वर्तमान मामले से संबंधित पेन-ड्राइव और चेकों को फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला को उनके संबंध में रिपोर्ट प्राप्त करने हेतु प्रस्तुत करने का निर्देश दिया था। तदनुसार, विवेचना अधिकारी ने न्यायालय से पेन-ड्राइव और चेकों को, जो केस डायरी का भाग हैं, फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला, लखनऊ को अग्रेषित किए जाने और उनके संबंध में रिपोर्ट प्राप्त करने हेतु उपलब्ध कराने का अनुरोध किया।

7. विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश दिनांक 17.04.2025 के माध्यम से आवेदन को स्वीकार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि पेन-ड्राइव और चेक महत्वपूर्ण अभियोजन साक्ष्य हैं और वे फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला द्वारा डॉकेट में कुछ कमियों के कारण वापस किए गए थे। विवेचना अधिकारी ने पेन-ड्राइव और चेकों को पुनः फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला को नहीं भेजा, जो तत्कालीन विवेचना अधिकारी की ओर से लापरवाही को दर्शाता है। पेन-ड्राइव में परिवादी और अभियुक्त के बीच वार्तालापों की रिकॉर्डिंग है, जो साक्ष्य का एक महत्वपूर्ण अंश है और मामले के न्यायपूर्ण निर्णय के लिए इसकी फोरेंसिक जांच आवश्यक है। विवेचना अधिकारी ने अभियुक्त व्यक्तियों को अनुचित लाभ देने के लिए फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला द्वारा उसकी जांच कराने में विफलता प्रदर्शित की है।

8. विचारण न्यायालय ने आवेदन को स्वीकार किया, पेन-ड्राइव और चेकों को फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला द्वारा परीक्षित किए जाने और उसकी रिपोर्ट प्रस्तुत करने हेतु विवेचना अधिकारी को वापस करने का आदेश दिया। विचारण न्यायालय ने आगे मामले की विवेचना में लापरवाही के लिए तत्कालीन विवेचना अधिकारी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही संस्थित करने का आदेश दिया।

9. उपर्युक्त आदेश की वैधता पर आक्रमण करते हुए, आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आरोप-पत्र प्रस्तुत करने और विवेचना बंद होने के पश्चात्, विवेचना अधिकारी को आगे विवेचना करने हेतु पेन-ड्राइव और चेकों की वापसी की मांग करने का कोई प्राधिकार नहीं था। उन्होंने **अमृतभाई शंभुभाई पटेल बनाम सुमनभाई कांतिभाई पटेल**: (2017) 4 एस.सी.सी. 177 और **अथुल राव बनाम कर्नाटक राज्य**: (2018) 14 एस.सी.सी. 298 के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों पर निर्भरता व्यक्त की है।

10. उपर्युक्त प्रस्तुतियों के उत्तर में, विद्वान सहायक सरकारी अधिवक्ता-I श्री अनुराग वर्मा ने प्रस्तुत किया है कि आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत मामलों को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **वीनुभाई हरिभाई मालविया बनाम गुजरात राज्य**: (2019) 17 एस.सी.सी. 1 के मामले में अपने बाद के निर्णय में अपास्त कर दिया गया है। श्री वर्मा ने इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा **जितेन्द्र सिंह @ बब्लू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य**: 2023 (4) ए.सी.आर. 3507 में प्रदत्त निर्णय पर भी निर्भरता व्यक्त की है।

11. अमृतभाई शंभुभाई पटेल बनाम सुमनभाई कांतिभाई पटेल: (2017) 4 एस.सी.सी. 177 में, माननीय उच्चतम न्यायालय के दो माननीय न्यायमूर्तियों की पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि:-

*"**49.** संहिता की धारा 173(8) के दायरे और आशय पर इस न्यायालय के उद्घोषणाओं और उसकी सुसंगत व्याख्या की प्रवृत्ति के समग्र सर्वेक्षण पर, हम इस प्रकार यह अभिनिर्धारित करने के लिए इच्छुक हैं कि यद्यपि संबंधित विवेचना अभिकरण को आगे विवेचना करने की शक्ति प्रदान की गई है, वांछनीय रूप से उस न्यायालय को सूचित करने के पश्चात् जिसके समक्ष उसने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी और उसकी स्वीकृति प्राप्त करने के पश्चात्, ऐसी कोई शक्ति विद्वान मजिस्ट्रेट के लिए उपलब्ध नहीं है जब पूर्व रिपोर्ट के आधार पर संज्ञान लिया जा चुका हो, प्रक्रिया जारी की जा चुकी हो और अभियुक्त उसके उत्तर में उपस्थित हो चुका हो। उस अवस्था पर, न तो विद्वान मजिस्ट्रेट स्वप्रेरणा से और न ही परिवादी/सूचनादाता द्वारा दाखिल आवेदन पर आगे विवेचना का निर्देश दे सकता है। ऐसा मार्ग केवल विवेचना अभिकरण के अनुरोध पर खुला होगा और वह भी, ऐसी परिस्थितियों में जो केवल निष्पक्ष विवेचना और विचारण को सुरक्षित करने के लिए भौतिक साक्ष्य के पता लगने पर आगे विवेचना को वारंट करती हैं, जो हाथ में चल रहे न्याय-निर्णयन का जीवन उद्देश्य है।"*

12. उपर्युक्त सिद्धांत का अनुसरण माननीय उच्चतम न्यायालय के दो माननीय न्यायमूर्तियों की एक अन्य पीठ द्वारा **अथुल राव बनाम कर्नाटक राज्य:** (2018) 14 एस.सी.सी. 298 में किया गया।

13. तथापि, **वीनुभाई हरिभाई मालविया बनाम गुजरात राज्य**: (2019) 17 एस.सी.सी. 1 में, माननीय उच्चतम न्यायालय के तीन माननीय न्यायमूर्तियों की पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि:-

*"**42.** इन निर्णयों में न्यायालय द्वारा कोई सुकारण नहीं दिया गया है कि प्रक्रिया जारी होने पर और अभियुक्त के मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होने पर मजिस्ट्रेट की आगे विवेचना का आदेश देने की शक्तियां अचानक समाप्त क्यों हो जाएंगी, जबकि साथ ही साथ, पुलिस की अपराध की आगे विवेचना करने की शक्ति उस अवस्था तक बनी रहती है जब तक विचारण प्रारंभ नहीं हो जाता। ऐसा दृष्टिकोण इस न्यायालय के पूर्व के निर्णयों, विशेष रूप से, साकिरी [साकिरी वासु बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2008) 2 एस.सी.सी. 409], समाज परिवर्तन समुदाय [समाज परिवर्तन समुदाय बनाम कर्नाटक राज्य, (2012) 7 एस.सी.सी. 407], विनय त्यागी [विनय त्यागी बनाम इरशाद अली, (2013) 5 एस.सी.सी. 762], और हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 92]; **हरदीप सिंह ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि आपराधिक विचारण संज्ञान लेने के पश्चात् प्रारंभ नहीं होता है, बल्कि केवल आरोप विरचित होने के पश्चात् होता है, के अनुरूप नहीं होगा।** इस न्यायालय के हाल के निर्णयों में जिसे कोई महत्व नहीं दिया गया है वह संविधान का अनुच्छेद 21 है और यह तथ्य कि अनुच्छेद निष्पक्ष और न्यायपूर्ण विवेचना से कम की मांग नहीं करता है। **यह कहना कि निष्पक्ष और न्यायपूर्ण विवेचना इस निष्कर्ष की ओर ले जाएगी कि पुलिस के पास शक्ति बनी रहती है, निश्चय ही, धारा 173(8) के अधीन मजिस्ट्रेट की सहमति के अधीन, आरोप विरचित होने तक किसी अपराध की आगे विवेचना करने की, लेकिन मजिस्ट्रेट का पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार पूर्व-विचारण कार्यवाहियों के मध्य***

में अचानक समाप्त हो जाता है, न्याय का उपहास होगा, क्योंकि कुछ मामलों में आगे विवेचना की आवश्यकता हो सकती है ताकि एक निर्दोष व्यक्ति को गलत तरीके से अभियुक्त के रूप में अभिहित न किया जाए या कि एक प्रथमदृष्ट्या अपराधी व्यक्ति को इस प्रकार छोड़ न दिया जाए। मजिस्ट्रेट की शक्तियों के ऐसे संकीर्ण और प्रतिबंधात्मक दृष्टिकोण का कोई वारंट नहीं है, विशेष रूप से जब ऐसी शक्तियां धारा 156(3) को धारा 156(1), धारा 2(h) और धारा 173(8) सी.आर.पी.सी. के साथ पठित से पता लगाने योग्य हैं, जैसा कि ऊपर ध्यान दिया गया है, और एक आपराधिक मामले की प्रगति के सभी अवस्थाओं पर उपलब्ध होंगी इससे पहले कि विचारण वास्तव में प्रारंभ हो। *यह न्याय के हित में भी होगा कि यह शक्ति मजिस्ट्रेट द्वारा स्वयं स्वप्रेरणा से प्रयोग की जाए, प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करते हुए।* ***आगे विवेचना का आदेश दिया जाना चाहिए या नहीं यह विद्वान मजिस्ट्रेट के विवेकाधिकार में है जो ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों पर और विधि के अनुसार करेंगे।*** *यदि, उदाहरण के लिए, नए तथ्य प्रकाश में आते हैं जो कुछ व्यक्तियों को दोषी या निर्दोष ठहराने की ओर ले जाएंगे, आपराधिक मामले में सत्य पर पहुंचना और पर्याप्त न्याय करना आपराधिक कार्यवाही को समाप्त करने में आगे विलंब से बचने से अधिक महत्वपूर्ण हैं, जैसा कि हसनभाई वलीभाई कुरैशी [हसनभाई वलीभाई कुरैशी बनाम गुजरात राज्य, (2004) 5 एस.सी.सी. 347] में अभिनिर्धारित किया गया था। इसलिए,* ***जहां तक अमृतभाई शंभुभाई पटेल, अथुल राव और बिकाश रंजन राउत के निर्णयों ने विपरीत अभिनिर्धारित किया है, वे अपास्त किए जाते हैं।*** *कहने की आवश्यकता नहीं है, रणधीर सिंह राणा बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) [रणधीर सिंह राणा बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1997) 1 एस.सी.सी. 361] और रीता नाग बनाम पश्चिम बंगाल राज्य [रीता नाग बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2009) 9 एस.सी.सी. 129] भी अपास्त किए जाते हैं।"*

14. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता ने माननीय उच्चतम न्यायालय के दो निर्णयों का उद्धरण दिया है, जिन दोनों को **वीनुभाई हरिभाई मालविया बनाम गुजरात राज्य**: (2019) 17 एस.सी.सी. 1 में दिनांक 16.10.2019 को निर्णीत मामले में स्पष्ट रूप से अपास्त किया गया है।

15. उड़ीसा राज्य बनाम नलिनीकांत मुदुली: (2004) 7 एस.सी.सी. 19 में, समान स्थिति का सामना करते हुए, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अवलोकन किया कि:-

"6*. यह आश्चर्यजनक है कि एक निर्णय जिसे इस न्यायालय द्वारा लगभग एक चौथाई शताब्दी पहले अपास्त किया जा चुका था, बार द्वारा उद्धृत किया गया और न्यायालय ने इस स्थिति का संज्ञान नहीं लिया और उक्त अपास्त निर्णय पर निर्भरता रखते हुए मामले का निस्तारण किया। ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि उच्च न्यायालय के निर्णय को उलटने वाले इस न्यायालय के निर्णय को विद्वान एकल न्यायाधीश के ध्यान में लाया गया था जो मामले से निपट रहे थे।* ***यह एक अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि अभियुक्त के लिए विद्वान अधिवक्ता, जिसे निर्णय का ज्ञान होना अपेक्षित है, ने इस पहलू को विद्वान एकल न्यायाधीश के ध्यान में नहीं लाया। बार के सदस्य न्यायालय के अधिकारी हैं। उनका न्यायालय की सहायता करने और उसे गुमराह न करने का परम कर्तव्य है। किसी न्यायालय के निर्णय का उद्धरण देना जिसे उसी उच्च न्यायालय या इस***

न्यायालय की बृहत्तर पीठ द्वारा अपास्त किया जा चुका है, इस तथ्य को प्रकट किए बिना कि इसे अपास्त किया जा चुका है, गंभीर चिंता का विषय है। ... हम पेशेवर आचरण के गिरते मानकों पर केवल अपनी पीड़ा व्यक्त कर सकते हैं..."

16. वर्तमान समय में, जब निर्णय ऑनलाइन पोर्टलों पर उपलब्ध हैं, यह जांच करना कि क्या कोई निर्णय अपास्त किया गया है, पूर्व के समय की तुलना में बहुत आसान है जब निर्णय केवल पुस्तक के रूप में प्रकाशित पत्रिकाओं में उपलब्ध थे और किसी व्यक्ति द्वारा पूर्व निर्णय को अपास्त करने वाले बाद के निर्णय को छूट जाने की संभावना थी। आजकल, ऑनलाइन पोर्टल विशेष रूप से यह उजागर करते हैं कि कोई विशेष निर्णय अपास्त किया गया है और, इन परिस्थितियों में, अपास्त निर्णय का उद्धरण देना और भी अधिक चिंता का विषय है। आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता को भविष्य में सावधान रहने और इस आचरण को दोहराने से परहेज करने की चेतावनी दी जाती है।

17. श्री अनुराग वर्मा ने इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा **जितेन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**: 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन ऑल 2328 = 2023 (4) ए.सी.आर. 3525 में प्रदत्त निर्णय पर भी निर्भरता व्यक्त की है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि:-

"32. ...यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि पुलिस को विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष आरोप-पत्र/रिपोर्ट प्रस्तुत करने के पश्चात् भी और मजिस्ट्रेट द्वारा रिपोर्ट/आरोप-पत्र का संज्ञान लेने के पश्चात् भी मामले की आगे विवेचना करने का अधिकार है। संहिता की धारा 173(8) के अधीन शक्ति के प्रयोग में, यह वैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त है कि आगे विवेचना प्रारंभ करने से पहले, विवेचना अभिकरण को संबंधित मजिस्ट्रेट की अनुमति लेनी चाहिए, ऐसी कोई वैधानिक आवश्यकता नहीं है। आगे विवेचना पुनर्विवेचना/नवीन विवेचना या ताजा विवेचना से बहुत भिन्न है। आगे विवेचना उस विवेचना की निरंतरता है, जो पहले ही की जा चुकी है और नए तथ्यों या उन तथ्यों की खोज पर जो विवेचना के दौरान छूट गए थे। जबकि ताजा, नवीन या पुनर्विवेचना के मामले में, पहले ही की गई विवेचना को मिटाना आवश्यक है और विवेचना को उसके प्रारंभ से शुरू करना आवश्यक है। आगे विवेचना संबंधित मजिस्ट्रेट से किसी अनुमति के बिना भी की जा सकती है। तथापि, ताजा, नवीन या पुनर्विवेचना सक्षम न्यायालय के विशिष्ट आदेशों के बिना नहीं की जा सकती।"

18. वीनुभाई हरिभाई मालविया (उपर्युक्त) में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा और **जितेन्द्र सिंह** (उपर्युक्त) में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा स्पष्ट की गई विधि को ध्यान में रखते हुए, मैं इस सुविचारित मत का हूं कि विचारण न्यायालय ने प्रश्नगत पेन-ड्राइव और चेकों की फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला, लखनऊ द्वारा परीक्षा का आदेश देने में अपने क्षेत्राधिकार के भीतर अच्छी तरह से कार्य किया है ताकि यह मामले में न्यायपूर्ण निर्णय पर पहुंचने में सक्षम हो सके।

19. इस न्यायालय की धारा 582 बी.एन.एस.एस. के अधीन अंतर्निहित शक्तियां ऐसे आदेश पारित करने के लिए प्रयोग की जाने के लिए हैं जो किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हों। विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 17.04.2025 में कोई हस्तक्षेप न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित नहीं करेगा, बल्कि यह न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने में अनावश्यक बाधा उत्पन्न करेगा।

20. आक्षेपित आदेश इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप को वारंट करने वाली किसी अवैधता से ग्रस्त नहीं है।

21. धारा 582 बी.एन.एस.एस. के अधीन आवेदन योग्यता से रहित है और तदनुसार इसे ***निरस्त*** किया जाता है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 314

मूल अधिकारिता – आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 12.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 26740 सन् 2024

इमरान खान एवं अन्य ... आवेदकगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... विपक्षी पक्षकारगण

आवेदकगण के अधिवक्ता: श्री दीवान सैफुल्ला खान, श्री राजीव लोचन शुक्ला

विपक्षी पक्षकारों के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि – दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएँ 155(2) एवं 482 – लोक जुआ अधिनियम, 1867 – धाराएँ 3 एवं 4 – भारत का संविधान, 1950 – अनुच्छेद 19(1)(g) – Cr.P.C. की धारा 482 के अंतर्गत आवेदन – आरोप-पत्र एवं सम्मन आदेश के विखण्डन हेतु – FIR – लोक जुआ अधिनियम की धाराओं 3/4 के अंतर्गत आरोप-पत्र – सम्मन आदेश – आवेदकों ने तर्क दिया कि अपराध असंज्ञेय हैं – और मजिस्ट्रेट की अनुमति के बिना विवेचना धारा 155(2) Cr.P.C. का उल्लंघन है – केशवलाल ठाकुर बनाम बिहार राज्य का उल्लेख किया – न्यायालय ने पाया कि समस्त कार्यवाही आद्यंत शून्य है – लोक जुआ अधिनियम पुराना पड़ चुका है – डिजिटल प्लेटफार्म, सीमापार लेन-देन के लिए प्रावधानों का अभाव है – नगण्य दण्ड बड़े पैमाने पर होने वाले संव्यवहारों को रोकने में असमर्थ हैं – विश्व के अन्य देश (यूके, यूएस, ऑस्ट्रेलिया) आधुनिक विनियामक ढाँचे प्रस्तुत करते हैं – भारत में फैंटेसी खेल विधिक ग्रे ज़ोन में हैं – GST परिषद ने ऑनलाइन दाँव पर 28% कर आरोपित किया है – केन्द्रीय विधायन की अत्यंत आवश्यकता है – न्यायालय ने स्वप्रेरणा से संज्ञान लिया – उत्तर प्रदेश सरकार को निर्देश दिया गया कि वह प्रोफेसर के.वी.एस. राजू की अध्यक्षता में उच्चाधिकार प्राप्त समिति गठित करे – अधिदेश: ऑनलाइन सट्टेबाजी एवं गेमिंग के विनियमन हेतु व्यापक विधि का मसौदा तैयार करना – न्याय को प्रौद्योगिकी के साथ विकसित होना होगा – प्रक्रियागत चूकें संवैधानिक सुरक्षाओं को निरस्त नहीं कर सकती – तदनुसार, आवेदन निस्तारित किया गया – आक्षेपित आरोप-पत्र के साथ-साथ सम्मन आदेश भी एतद्द्वारा विखण्डित किया जाता है, पुलिस को विद्यमान विधि के प्रावधानों का अनुपालन करने के उपरान्त नई विवेचना प्रारंभ करने की स्वतंत्रता के साथ। (पैरा 15, 16, 20, 21, 22, 24, 25)

आवेदन निस्तारित। (E-11)

उद्धृत वादों की सूची:

केशवलाल ठाकुर बनाम बिहार राज्य – (1996) 11 SCC 557

(माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा उद्घोषित)

1.आवेदकों के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री राजीव लोचन शुक्ला तथा राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए-। श्री एच.पी. सिंह को सुना गया और अभिलेख पर उपलब्ध समस्त सामग्री का अवलोकन किया गया।

2.प्रस्तुत आवेदन दिनांक 27.12.2022 के आरोप पत्र को रद्द करने की प्रार्थना के साथ प्राथमिकृत की गई है जो प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 69/2022 से उत्पन्न हुआ है, धारा 3/4 सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 के अधीन, थाना मंटोला, जिला आगरा में पंजीकृत, तथा दिनांक 23.05.2023 के आक्षेपित समन आदेश को भी रद्द करने की प्रार्थना की गई है, जो न्यायिक मजिस्ट्रेट-।, आगरा द्वारा पारित किया गया था, जिसके द्वारा आवेदकों को समन किया गया है।

3.अभियोजन पक्ष का मामला यहां उल्लिखित तथ्यों से उत्पन्न होता है कि दिनांक 13 जून, 2022 को उप-निरीक्षक विकास कुमार, कांस्टेबल संख्या 4691 शुभम के साथ, थाने में रखी गई रोजनामचे में प्रविष्टि करने के बाद रात्रि 8:25 बजे थाने से प्रस्थान किए। उन्हें संदिग्ध वाहनों और व्यक्तियों की जांच के लिए डिवीजन चौकी क्षेत्र में गश्त करने का कार्यभार सौंपा गया था। जैसे ही वे महावीर नाले पर पहुंचे, उन्हें एक मुखबिर से विशिष्ट सूचना प्राप्त हुई कि इमरान और इरफान, हारून के पुत्र, निवासी 19/158, टीला अजमेरी खान, थाना मंटोला, जिला आगरा, अपने निवास से ऑनलाइन सट्टेबाजी का धंधा चला रहे हैं। यह भी सूचित किया गया कि कई अन्य व्यक्ति कथित तौर पर उनके साथ संलग्न हैं।

3.1. यह भी सूचित किया गया कि उनके विरुद्ध पहले से ही अनेक मामले पंजीकृत हैं, लेकिन उन्हें कानून का कोई भय नहीं है। ये व्यक्ति ऑनलाइन सट्टेबाजी के माध्यम से लाखों और करोड़ों रुपये कमाते हैं, जिससे आगरा क्षेत्र के स्थानीय लोग अपनी कमाई जुए में गंवा देते हैं और घरेलू स्थिति बिगड़ती जाती है।

3.2. कांस्टेबल शुभम को मुखबिर के साथ सूचना की पुष्टि करने और स्थान का नक्शा तैयार करने के लिए भेजा गया। थोड़ी देर बाद, कांस्टेबल शुभम ने सूचना दी कि 19/158, टीला अजमेरी खान, थाना मंटोला, जिला आगरा के मकान के अंदर वास्तव में कई व्यक्ति ऑनलाइन सट्टेबाजी की गतिविधियां संचालित कर रहे हैं। उन्होंने घटनास्थल का हाथ से बनाया हुआ नक्शा भी प्रस्तुत किया, और मुखबिर स्थान छोड़कर चला गया।

3.3. यह सूचना थाना प्रभारी को दी गई। उप-निरीक्षक-वादी-ने वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों से तलाशी के लिए लिखित अनुमति प्राप्त की। तत्पश्चात, कांस्टेबल शुभम और अन्य पुलिस कर्मियों के साथ, विवेचना अधिकारी ने छापा मारा।

3.4. पुलिस दल ने निकटवर्ती निवासियों को तलाशी के उद्देश्य के बारे में समझाया और उनसे साक्षी के रूप में कार्य करने का अनुरोध किया। हालांकि, व्यक्तिगत चिंताओं या शामिल होने की अनिच्छा के कारण, किसी ने भी गवाही देने के लिए सहमति नहीं दी और अपना नाम या पता बताए बिना चले गए।

3.5. पुलिस दल मकान संख्या 19/158, टीला अजमेरी खान, थाना मंटोला, जिला आगरा के आसपास पहुंचा। उस समय, दो व्यक्ति मकान से बाहर निकले। उनमें से एक के हाथ में एक बड़ा मोबाइल उपकरण था। जैसे ही उन्होंने पुलिस अधिकारियों को देखा, और बचने के लिए, विपरीत दिशा में तेजी से भागने लगे। पुलिस ने गली में उनका पीछा किया। पीछा करने के दौरान, उनमें से एक ने बड़ा मोबाइल उपकरण गिरा दिया। जांच करने पर, यह एक टूटी हुई स्क्रीन वाली काली सैमसंग टैबलेट पाई गई।

3.6. दोनों व्यक्ति अंधेरे का लाभ उठाकर भाग गए। जब पुलिस ने आसपास के लोगों से उनके बारे में पूछा, तो उन्होंने गोपनीय रूप से बताया कि भागने वाले दोनों वास्तव में इमरान और इरफान, हारून के पुत्र, निवासी 19/158, टीला अजमेरी खान, थाना मंटोला, जिला आगरा थे।

3.7. घटनास्थल से बरामद की गई टैबलेट को स्थल पर ही एक सफेद कपड़े में सील कर दिया गया, विधिवत मुहरबंद किया गया, और एक नमूना सील तैयार की गई। पुलिस ने मामला पंजीकृत किया, और विवेचना के पश्चात, सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 की धारा 3/4 के अधीन आवेदकों के विरुद्ध आरोप पत्र दायर किया गया।

4.आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री राजीव लोचन शुक्ला ने न्यायालय का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया कि आरोप पत्र सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 की धारा 3/4 के अधीन दायर किया गया है जिसमें प्रथम अपराध के मामले में अधिकतम सजा पांच सौ रुपये से अनधिक और दो सौ रुपये से कम नहीं जुर्माना और तीन महीने से अनधिक की अवधि के लिए कठोर कारावास है, और किसी भी पश्चातवर्ती अपराध के मामले में दो हजार रुपये से अनधिक और पांच सौ रुपये से कम नहीं जुर्माना और बारह महीने से अनधिक और तीन महीने से कम नहीं की अवधि के लिए कठोर कारावास है। इसलिए, अपराध असंज्ञेय हैं और संबंधित मजिस्ट्रेट की लिखित अनुमति के बिना विवेचना नहीं की जा सकती।

5.श्री शुक्ला ने आगे प्रस्तुत किया कि दं.प्र.सं. की धारा 155(2) अनिवार्य करती है कि कोई भी पुलिस अधिकारी किसी असंज्ञेय मामले की विवेचना बिना ऐसे मजिस्ट्रेट के आदेश के नहीं करेगा जिसे ऐसे मामले का विचारण करने या मामले को विचारण के लिए प्रतिबद्ध करने की शक्ति है। और जैसा कि प्रस्तुत मामले में पुलिस ने विवेचना आरंभ करने के लिए विद्वान मजिस्ट्रेट से अनुमति नहीं ली, इस प्रकार, प्रथम सूचना रिपोर्ट के पंजीकरण के तुरंत बाद आरंभ की गई समस्त कार्यवाही *आदि से शून्य* हो जाती है और *केशव लाल ठाकुर बनाम बिहार राज्य (1996) 11 एससीसी 557* पर निर्भरता रखी, जिसका प्रासंगिक अनुच्छेद नीचे उद्धृत किया गया है:

अनुवादित

"3. हमें इस प्रश्न में जाने की आवश्यकता नहीं है कि क्या प्रस्तुत मामले के तथ्यों में उच्च न्यायालय का उपर्युक्त विचार उचित है या नहीं क्योंकि आक्षेपित कार्यवाही को रद्द किया जाना है क्योंकि न तो पुलिस विचाराधीन अपराध की विवेचना करने की हकदार थी और न ही मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ऐसी विवेचना की समाप्ति पर प्रस्तुत रिपोर्ट पर संज्ञान लेने की हकदार थी। पुलिस के अपने ही प्रदर्शन पर, अधिनियम की धारा 31 के अधीन अपराध असंज्ञेय है और इसलिए पुलिस दं.प्र.सं. की धारा 154 के अधीन ऐसे अपराध के लिए मामला पंजीकृत नहीं कर सकती थी। निस्संदेह, पुलिस दं.प्र.सं. की धारा 155(2) के अधीन सक्षम मजिस्ट्रेट के आदेश के अनुसरण में किसी असंज्ञेय अपराध की विवेचना करने की हकदार है लेकिन, अंगीकृत रूप से, प्रस्तुत मामले में ऐसा कोई आदेश पारित नहीं किया गया था। इसका अनिवार्य रूप से अर्थ यह है कि न तो पुलिस विचाराधीन अपराध की विवेचना कर सकती थी और न ही ऐसी रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकती थी जिस पर संज्ञान लेने का प्रश्न उत्पन्न हो सकता था। इस बिंदु पर, यह उल्लेख किया जा सकता है कि दं.प्र.सं. की धारा 2(घ) की व्याख्या के संदर्भ में, जो 'परिवाद' को परिभाषित करती है, पुलिस विवेचना के पश्चात, किसी असंज्ञेय अपराध से संबंधित रिपोर्ट प्रस्तुत करने की हकदार है जिस स्थिति में ऐसी रिपोर्ट को संबंधित पुलिस अधिकारी के 'परिवाद' के रूप में माना जाना है, लेकिन वह व्याख्या यहां अभियोजन पक्ष के लिए उपलब्ध नहीं होगी क्योंकि वह ऐसे मामले से संबंधित है जहां पुलिस संज्ञेय अपराध की विवेचना आरंभ करती है - वर्तमान मामले के विपरीत - लेकिन अंततः पाती है कि केवल असंज्ञेय अपराध बनता है।"

6.दूसरी ओर, विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने आवेदन का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि आवेदकों के विरुद्ध जुआ खेलने के गंभीर आरोप हैं और आवेदक अभ्यस्त अपराधी हैं। प्रक्रियात्मक अनियमितता मूल विधि को अधिभूत नहीं कर सकती, और इसलिए, उक्त अनियमितता को अपराधों की गंभीरता के दृष्टिगत नजरअंदाज किया जाएगा। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि आवेदक संख्या 1, इमरान खान के विरुद्ध 20 मामलों का आपराधिक इतिहास है, और आवेदक संख्या 2, इरफान खान उर्फ हाजी भोला के विरुद्ध 08 मामले पंजीकृत किए गए हैं।

7.आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के लिए विद्वान शासकीय अधिवक्ता को सुनने के पश्चात और प्रथम सूचना रिपोर्ट, आरोप पत्र और आक्षेपित समन आदेश के अवलोकन पर, यह अंगीकृत स्थिति है कि आरोप पत्र जुआ अधिनियम, 1867 की धारा 3/4 के अधीन दायर किया गया है और सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 की धारा 3/4 के अधीन राज्य संशोधनों के साथ पठित अधिकतम दंड पश्चातवर्ती अपराध के लिए भी दो हजार रुपये से अनधिक और पांच सौ रुपये से कम नहीं जुर्माना और बारह महीने से अनधिक और तीन महीने से कम नहीं की अवधि के लिए कठोर कारावास है, इसका अर्थ है कि अपराध संज्ञेय हैं।

8.स्पष्टता के लिए, सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 की धाराएं 3 और 4 यहां नीचे पुनरुत्पादित की गई हैं:

*"3. **जुआघर का स्वामित्व या रखरखाव, या प्रभारी होने के लिए दंड।**—जो कोई भी, किसी घर, दीवार से घिरे परिवेश, कमरे या स्थान का स्वामी या अधिभोगी होते हुए, या उसका उपयोग करते हुए, जो इस अधिनियम*

की सीमा के भीतर स्थित है, उसे सामान्य जुआघर के रूप में खोलता है, रखता है या उपयोग करता है; और जो कोई भी, उपर्युक्त ऐसे किसी घर, दीवार से घिरे परिवेश, कमरे या स्थान का स्वामी या अधिभोगी होते हुए, जानबूझकर या इच्छापूर्वक उसे किसी अन्य व्यक्ति द्वारा सामान्य जुआघर के रूप में खोला, अधिभोगित, उपयोग या रखा जाने की अनुमति देता है; और जो कोई भी उपर्युक्त किसी घर, दीवार से घिरे परिवेश, कमरे या स्थान की देखभाल या प्रबंधन करता है, या किसी भी तरीके से उपर्युक्त उद्देश्य के लिए खोले, अधिभोगित, उपयोग या रखे गए ऐसे घर, दीवार से घिरे परिवेश, कमरे या स्थान के व्यवसाय के संचालन में सहायता करता है; और जो कोई भी ऐसे घर, दीवार से घिरे परिवेश, कमरे या स्थान पर आने वाले व्यक्तियों के साथ जुआ खेलने के उद्देश्य से धन अग्रिम या प्रदान करता है; दो सौ रुपये से अनधिक जुर्माने, या भारतीय दंड संहिता (1860 के 45) में परिभाषित किसी भी प्रकार के[1] कारावास के, तीन महीने से अनधिक किसी भी अवधि के लिए दायी होगा।

***4.जुआघर में पाए जाने के लिए दंड**।—जो कोई भी ऐसे किसी घर, दीवार से घिरे परिवेश, कमरे या स्थान में पत्तों, पासों, काउंटरों, धन या जुए के अन्य उपकरणों के साथ खेलते या जुआ खेलते हुए पाया जाता है, या जुए के उद्देश्य से वहां उपस्थित पाया जाता है, चाहे किसी धन, दांव, हिस्सेदारी या अन्यथा के लिए खेल रहा हो, एक सौ रुपये से अनधिक जुर्माने, या भारतीय दंड संहिता (1860 के 45) में परिभाषित किसी भी प्रकार के[1] कारावास के, एक महीने से अनधिक किसी भी अवधि के लिए[2] दायी होगा, और किसी सामान्य जुआघर में जुआ या खेल के दौरान पाया गया कोई भी व्यक्ति यह माना जाएगा, जब तक कि विपरीत साबित न हो, कि वह जुए के उद्देश्य से वहां था।"*

9.1952 में, धारा 3 में शब्द "दो सौ रुपये" के स्थान पर यू.पी. अधिनियम 34/1952 द्वारा "पांच सौ रुपये" शब्द प्रतिस्थापित किए गए और यू.पी. अधिनियम 21/1961 द्वारा धारा 3 के अंतिम अनुच्छेद को प्रतिस्थापित किया गया - "दायी होगा - प्रथम अपराध के मामले में पांच सौ रुपये से अनधिक और दो सौ रुपये से कम नहीं जुर्माना और तीन महीने से अनधिक की अवधि के लिए कठोर कारावास; और किसी भी पश्चातवर्ती अपराध के मामले में दो हजार रुपये से अनधिक और पांच सौ रुपये से कम नहीं जुर्माना और बारह महीने से अनधिक और तीन महीने से कम नहीं की अवधि के लिए कठोर कारावास"।

10. अधिनियम की धारा 4 में, शब्द "एक सौ रुपये" के स्थान पर यू.पी. अधिनियम 34/1952 द्वारा दिनांक 5.12.1952 से प्रभावी "तीन सौ रुपये" शब्द प्रतिस्थापित किए गए और "जुर्माने के दायी होगा" से शुरू होने वाले और "एक महीने से अनधिक" पर समाप्त होने वाले शब्द हटा दिए गए और प्रतिस्थापित किए गए- "दायी होगा-प्रथम अपराध के मामले में तीन सौ रुपये से अनधिक और एक सौ रुपये से कम नहीं जुर्माना या एक महीने से अनधिक किसी भी अवधि के लिए कठोर कारावास, और किसी भी पश्चातवर्ती अपराध के मामले में पांच सौ रुपये से अनधिक और दो सौ रुपये से कम नहीं जुर्माना और छह महीने से अनधिक या एक महीने से कम नहीं की अवधि के लिए कठोर कारावास"।

11 अंततः, उत्तर प्रदेश राज्य ने वर्ष 1961 में यू.पी. अधिनियम 21/1961 के माध्यम से राज्य संशोधन लाकर सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 की संगत धाराओं में सजा बढ़ा दी थी, जिसके द्वारा दंड तदनुसार बढ़ाया गया; प्रथम अपराध के लिए, अपराधी को एक सौ और तीन सौ रुपये के बीच जुर्माना देना पड़ सकता है और एक महीने तक कठोर कारावास अधिनिर्णय किया जा सकता है। किसी भी बाद के अपराधों के लिए, अधिकतम जुर्माना दो हजार रुपये होगा, और अपराधी को बारह महीने तक कठोर कारावास अधिनिर्णय किया जा सकता है।

12 सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867, भारत में ब्रिटिश सरकार द्वारा जुआ गतिविधियों को विनियमित करने और सार्वजनिक जुआघरों को दबाने के लिए अधिनियमित एक औपनिवेशिक युग का कानून है। अपने अधिनियमन के समय, अधिनियम ने पारंपरिक जुआ - ताश के खेल, पासों पर सट्टेबाजी और भौतिक जुआघरों में आयोजित समान रूपों को संबोधित किया। धाराओं 3 और 4 के अधीन, इसने सामान्य जुआघर का संचालन या उस पर जाना अपराधीकृत किया। अधिनियम के अधीन अधिरोपित अधिकतम दंड ₹500 का जुर्माना या तीन महीने तक का कारावास था - वर्ष 1867 में एक महत्वपूर्ण निवारक, लेकिन आज नगण्य।

13 सार्वजनिक जुआ अधिनियम एक पूर्व-डिजिटल कानून है। इसमें डिजिटल प्लेटफार्मों, सर्वरों, या सीमा-पार लेनदेन का कोई उल्लेख नहीं है। इसका प्रवर्तन भौतिक जुआघरों तक सीमित है और मोबाइल फोन, कंप्यूटर, या अपतटीय सर्वरों के माध्यम से एक्सेस किए गए आभासी जुआ वातावरणों पर इसका कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है।

14 ऑनलाइन जुआ के युग में अधिनियम ने अपना प्रभाव और प्रासंगिकता खो दी है क्योंकि ऑनलाइन जुआ की कोई परिभाषा या विनियमन नहीं है। नगण्य दंड- अधिकतम दो हजार जुर्माना और बारह महीने तक का कारावास, वह भी पश्चातवर्ती अपराध के लिए- बड़े पैमाने के अवैध संचालन को निवारित नहीं करते। फैंटसी खेल, पोकर और ई-स्पोर्ट्स की कानूनी स्थिति पर स्पष्टता का अभाव है। अधिकार क्षेत्र के मुद्दे भी उत्पन्न होते हैं, क्योंकि ऑनलाइन प्लेटफार्म राज्य, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं के पार संचालित होते हैं।

15. जुए को नियंत्रित करने वाले कानूनी ढांचे में विश्वव्यापी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है, विशेष रूप से डिजिटल प्लेटफार्मों के तीव्र विस्तार के प्रत्युत्तर में। यूके जुआ अधिनियम 2005, जो तर्क के अनुसार, ऑफलाइन और ऑनलाइन दोनों जुआ गतिविधियों को विनियमित करने के लिए एक आधुनिक और अनुकूलनीय दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है। यह विधान लाइसेंसिंग आवश्यकताओं, आयु सत्यापन प्रोटोकॉल, जिम्मेदार विज्ञापन मानकों और धन-शोधन निवारण उपायों सहित प्रावधानों की एक विस्तृत श्रृंखला को समाहित करता है।

15.1 अधिनियम की एक केंद्रीय विशेषता यूके जुआ आयोग की स्थापना है, जो जुआ संचालकों की निगरानी करने वाले विनियामक प्राधिकरण के रूप में कार्य करता है। इस ढांचे के अधीन, ऑनलाइन कैसीनो और

सट्टेबाजी प्लेटफार्म कानूनी हैं, बशर्ते वे उपयुक्त लाइसेंस प्राप्त करें। अधिनियम उपभोक्ता संरक्षण पर भी प्रबल जोर देता है, जिम्मेदार जुआ को बढ़ावा देने के लिए स्व-बहिष्करण कार्यक्रमों जैसे उपकरण प्रदान करता है।

15.2 2023 में, यूके सरकार ने खिलाड़ी सुरक्षा को बढ़ाने के उद्देश्य से आगे के सुधारों का प्रस्ताव रखा, जिसमें ऑनलाइन जुआरियों के लिए वहन योग्यता जांच और ऑनलाइन स्लॉट मशीनों के लिए सख्त विनियम शामिल हैं, जो डिजिटल युग में विनियामक आवश्यकताओं की गतिशील प्रकृति को दर्शाते हैं।

16. अन्य देशों ने विभिन्न दृष्टिकोण अपनाए हैं। उदाहरण के लिए, ऑस्ट्रेलिया संवादात्मक जुआ अधिनियम 2001 के अधीन ऑनलाइन जुआ को विनियमित करता है, जो कुछ प्रकार की ऑनलाइन सट्टेबाजी की अनुमति देता है जबकि अन्य को प्रतिबंधित करता है। इसके विपरीत, संयुक्त राज्य अमेरिका एक खंडित मॉडल अपनाता है, जहां ऑनलाइन जुए की वैधता राज्य स्तर पर निर्धारित की जाती है - न्यू जर्सी और पेंसिल्वेनिया जैसे राज्यों ने ऑनलाइन कैसीनो को पूरी तरह से वैध और विनियमित किया है। इस बीच, सिंगापुर और दक्षिण कोरिया जैसे देश सख्त नियंत्रण लागू करते हैं, केवल सीमित और अत्यधिक विनियमित डिजिटल सट्टेबाजी के रूपों की अनुमति देते हैं।

17. ड्रीम11, एमपीएल और माई11सर्कल जैसे फैंटसी खेल प्लेटफार्मों के उदय ने भारतीय डिजिटल गेमिंग परिदृश्य को नया आकार दिया है। क्षेत्र की तीव्र वृद्धि और संबद्ध कानूनी अस्पष्टताओं के प्रत्युत्तर में, नीति आयोग, भारत सरकार के प्रमुख नीति थिंक टैंक, ने दिसंबर 2020 में "भारत में ऑनलाइन फैंटसी स्पोर्ट्स प्लेटफार्मों के समान राष्ट्रीय स्तर के विनियमन के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत" शीर्षक वाला एक नीति पत्र जारी किया। जबकि दस्तावेज़ तेजी से विकसित हो रहे उद्योग को स्वीकार करने और औपचारिक बनाने में एक महत्वपूर्ण कदम था।

18. भारत में "सट्टेबाजी और जुआ" संविधान के अधीन "राज्य विषय" के रूप में शासित हैं, जिसका अर्थ है कि राज्य विधानमंडलों को भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की राज्य सूची की प्रविष्टि 34 के अधीन सट्टेबाजी और जुए से संबंधित मामलों पर कानून बनाने की विशेष शक्ति है। इसलिए, तैयार किए गए दिशानिर्देश राज्य स्तर पर बाध्यकारी नहीं हैं। भारत में फैंटसी खेल एक कानूनी धूसर क्षेत्र में हैं, कौशल के खेल (अनुमत) और संयोग के खेल (सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 के अधीन प्रतिबंधित) के बीच की रेखा पर। अनेक उच्च न्यायालय निर्णय - विशेष रूप से पंजाब और हरियाणा, राजस्थान और बॉम्बे में - ने फैंटसी खेलों को कौशल के खेल के रूप में मान्यता दी है, इस प्रकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन प्लेटफार्मों को वैध बनाया है - किसी भी पेशे का अभ्यास करने का अधिकार।

19. जीएसटी परिषद ने अपनी 50वीं बैठक में ऑनलाइन गेमिंग, कैसीनो और घुड़दौड़ में दांव के पूर्ण अंकित मूल्य पर 28% कर लगाया है जो कर राजस्व बढ़ाने और इसमें कराधान ढांचे को मानकीकृत करने के उद्देश्य से एक महत्वपूर्ण नीति परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करता है।

20. अन्य प्रमुख चिंताएं भी हैं, जिन्हें भारत में वर्तमान विद्यमान ढांचे द्वारा नजरअंदाज किया गया है, जैसे:

20.1 ऑनलाइन गेमिंग प्लेटफार्म मनोवैज्ञानिक रूप से हेरफेर करने वाले एल्गोरिदम ["हेरफेर करने वाले एल्गोरिदम" कंप्यूटर एल्गोरिदम को संदर्भित करते हैं - जो अक्सर ऑनलाइन प्लेटफार्मों, ऐप्स या डिजिटल सेवाओं में उपयोग किए जाते हैं जो संज्ञानात्मक पूर्वाग्रहों या मनोवैज्ञानिक कमजोरियों का शोषण करके उपयोगकर्ता निर्णय लेने को प्रभावित करते हैं, अक्सर गैर-पारदर्शी या दबावपूर्ण तरीके से, निष्पक्षता, स्वायत्तता, गैर-जवाबदेही और उपभोक्ता संरक्षण के बारे में चिंताएं उठाते हैं।], पुरस्कार प्रणालियों और सूचनाओं का उपयोग करके दीर्घकालिक उपयोग को प्रोत्साहित करते हैं। इससे गेमिंग व्यसन, चिंता, अवसाद और सामाजिक अलगाव में वृद्धि हुई है, विशेष रूप से किशोरों और युवा वयस्कों में।

20.2 छात्र ऑनलाइन गेमिंग से तेजी से विचलित हो रहे हैं, अक्सर अपने शैक्षणिक प्रदर्शन और पारिवारिक संबंधों की कीमत पर। नींद चक्र में व्यवधान, अनुशासन की कमी और सामाजिक वापसी सामान्य परिणाम हैं।

20.3 वास्तविक-धन गेमिंग के माध्यम से *"आसान पैसा"* का भ्रम निम्न और मध्यम आय वाले परिवारों से कई लोगों को आकर्षित करता है। एक बार फंसने के बाद, उपयोगकर्ता विशाल वित्तीय हानि उठा सकते हैं, जो ऋण, चोरी या यहां तक कि आत्मघाती प्रवृत्तियों की ओर ले जाता है।

20.4 ऑनलाइन गेमिंग को साइबर अपराध से जोड़ा गया है, जिसमें डेटा चोरी, धोखाधड़ी और यहां तक कि ब्लैकमेल शामिल है। अवैध सट्टेबाजी गिरोह अक्सर वैध गेमिंग प्लेटफार्मों के आवरण में संचालित होते हैं।

20.5 डिजिटल भुगतान तक आसान पहुंच - क्रेडिट कार्ड, यूपीआई और मोबाइल वॉलेट के माध्यम से - गेमिंग ऐप्स पर बड़ी रकम खर्च करना सहज बनाता है। ये प्लेटफार्म डोपामाइन-संचालित पुरस्कार तंत्र का शोषण करते हैं, उपयोगकर्ताओं को ऋण और बाध्यकारी जुए के दुष्चक्र में धकेलते हैं।

20.6 कई ऑनलाइन सट्टेबाजी संचालन भारत के अधिकार क्षेत्र के बाहर कार्य करते हैं, विदेशों में स्थित सर्वरों और अनियमित चैनलों के माध्यम से लेनदेन के साथ। यह कानून प्रवर्तन के लिए चुनौतियां खड़ी करता है और धन-शोधन, वित्तीय धोखाधड़ी और आतंक वित्तपोषण के जोखिम को बढ़ाता है।

21. इसलिए, ऑनलाइन गेमिंग के मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और राष्ट्रीय सुरक्षा निहितार्थों को संबोधित करने के लिए आधुनिक, प्रौद्योगिकी-संवेदनशील विधान अत्यावश्यक रूप से आवश्यक है। व्यापक सुधार में केंद्रीकृत विनियमन, आयु प्रतिबंध, वित्तीय नियंत्रण, प्लेटफार्म उत्तरदायित्व और भारत के युवाओं और समाज की भलाई की रक्षा के लिए सार्वजनिक जागरूकता अभियान शामिल होने चाहिए।

22. उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियां इसे न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक होने पर हस्तक्षेप करने का अधिकार देती हैं। यह सुनिश्चित करती है कि प्रक्रियात्मक कानूनों के कठोर अनुप्रयोग से कोई अन्याय न हो। यह इस सिद्धांत को सुदृढ़ करता है कि प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं के कारण न्याय पराजित नहीं होता।

23. इस प्रकार, जब तक एक सुदृढ़ विधायी ढांचा गेमिंग की डिजिटल प्रकृति को मान्यता देते हुए और स्पष्ट विनियामक सुरक्षा उपायों को लागू करते हुए अधिनियमित नहीं किया जाता, विद्यमान कानून में आवश्यक संशोधन लाकर उत्तर प्रदेश में संचालन की मुद्रास्फीति और पैमाने के अनुरूप जुर्माने और कारावास की अवधि को संशोधित किया जा सकता है, जिससे अपराध असंज्ञेय बन जाए।

24. उपर्युक्त चर्चाओं के आधार पर, यह उच्च समय है कि ऑनलाइन सट्टेबाजी और गेमिंग में परिवर्तनकारी परिवर्तनों को पूरा करने के लिए एक विधायी ढांचा अधिनियमित किया जाए। यहां उठाए गए गंभीर मुद्दे के प्रकाश में, यह न्यायालय, अपने रिट अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए और उच्च न्यायालय में निहित प्राधिकार का प्रयोग करते हुए, स्वतः संज्ञान लेता है और एतदद्वारा राज्य सरकार को निर्देशित करता है कि वह एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति का गठन करे, जिसमें प्रोफेसर के.वी. राजू, उत्तर प्रदेश सरकार के आर्थिक सलाहकार, इसके अध्यक्ष के रूप में हों, सभी प्रासंगिक कारकों की जांच करने के लिए, विशेष रूप से ऑनलाइन सट्टेबाजी और गेमिंग से संबंधित परिवर्तित सामाजिक-तकनीकी से उत्पन्न विधायी आवश्यकता को व्यापक रूप से पूरा करने के लिए ऊपर उल्लिखित कारकों को। समिति में सदस्य सचिव के रूप में प्रमुख सचिव, राज्य कर के अलावा, सदस्यों के रूप में अन्य विशेषज्ञ शामिल हो सकते हैं। उनके सामूहिक इनपुट का उपयोग ऑनलाइन गेमिंग और सार्वजनिक सट्टेबाजी को विनियमित और निगरानी करने के लिए एक व्यापक और सुसंरचित विधायी ढांचा विकसित करने के लिए किया जाना चाहिए।

25. जहां तक प्रस्तुत मामले के गुणावगुण का संबंध है, मुझे आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता के तर्क में बल प्रतीत होता है कि विवेचना दं.प्र.सं. की धारा 155(2) द्वारा वर्जित की गई है, इसलिए, पुलिस द्वारा किया गया समस्त अभ्यास विधि में दोषपूर्ण है, इस प्रकार, दिनांक 27.12.2022 का आक्षेपित आरोप पत्र जो अपराध संख्या 69/2022 से उत्पन्न हुआ है, सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 की धारा 3/4 के अधीन, थाना मंटोला, जिला आगरा में पंजीकृत, तथा दिनांक 23.05.2023 का आक्षेपित समन आदेश, जो न्यायिक मजिस्ट्रेट-I, आगरा द्वारा पारित किया गया था, एतददवारा रद्द किए जाते हैं और पुलिस को विधि के विद्यमान प्रावधानों का अनुपालन करने के पश्चात नई विवेचना आरंभ करने की स्वतंत्रता के साथ।

26. तदनुसार, प्रस्तुत आवेदन **स्वीकार किया जाता है।**

27. रजिस्ट्रार (अनुपालन) को निर्देशित किया जाता है कि वह इस आदेश की एक प्रति अविलंब उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव को अनुपालन के लिए प्रेषित करें।

(2025) 5 ILRA 321

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार

आवेदन धारा 528 बी.एन.एस.एस. के तहत संख्या-30850 वर्ष 2024

साथ

आवेदन धारा 528 बी.एन.एस.एस. के तहत संख्या-30822 वर्ष 2024

मोहनीश जैन और अन्य **... आवेदकगण**

बनाम

उत्तर प्रदेश और अन्य राज्य **... प्रतिपक्षी**

आवेदकों के अधिवक्ता: बलबीर सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिपक्षी पक्षों के अधिवक्ता: अभिनव जायवाल, शासकीय अधिवक्ता, रवि आनंद अग्रवाल, श्रेया गुप्ता

आपराधिक कानून - भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 - धारा 528 - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 - धारा 7, 8, 9, 138, 141 और 142 - भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 - धारा 2, 2(a), 4, 11, 18, 19 और 22 - दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 - धारा 14 - आवेदन - समन आदेश को बुलाने और आपराधिक पुनरीक्षण को खारिज करने को चुनौती देना - पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत, 1881 - अपर्याप्त धन के कारण चार चेकों का अनादर, - शिकायत मामला - समन आदेश - आपराधिक पुनरीक्षण - खारिज - याचिका ली गई कि शिकायत फर्म से प्राधिकरण के बिना एक भागीदार द्वारा दायर की गई थी, जो वास्तविक भुगतानकर्ता था, - और फर्म प्राधिकरण की अनुपस्थिति भारतीय भागीदारी अधिनियम की धारा 19 और 22 का उल्लंघन करती है - इसके अतिरिक्त, उनका तर्क है कि एन.सी.एल.टी. के आदेश के कारण दिवाला और दिवालियापन संहिता की धारा 14 के तहत कार्यवाही पर रोक लगा दी गई है अधिस्थगन के तहत - वे पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 का अनुपालन न करने का भी दावा करते हैं - अदालत ने पाया कि, पुनरीक्षण अदालत पर्याप्त रूप से कानूनी आपत्तियों पर विचार करने में विफल रही, जिससे उसका आदेश कानूनी रूप से अस्थिर हो गया - हालांकि, निर्णय अंततः पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत की स्थिरता की पुष्टि करता है - अदालत ने माना कि, (i) एक भागीदार, फर्म के एजेंट के रूप में कार्य कर रहा है, फर्म के नाम पर चेक जारी किए जाने पर कार्यवाही शुरू करने का निहित अधिकार रखता है - (ii) कॉर्पोरेट निकाय के निदेशक होने के नाते आवेदक आई.बी.सी. की धारा 14 के तहत किसी भी सुरक्षा के हकदार नहीं हैं और उन्हें धारा 138 पराक्रम्य

अनुवादित

लिखत अधिनियम के तहत कार्यवाही को रोकने का कोई अधिकार नहीं है, - पी. मोहनराज सहित आधिकारिक फैसलों पर निर्भर करता है, अजय कुमार गोयनका और राकेश भनोट ने अदालत ने दोहराया कि धारा 139 के तहत विवादित तथ्यों और अनुमानों पर मुकदमे में निर्णय लिया जाना चाहिए - धारा 482 द०प्र०स० के तहत समय से पहले रद्द करने के खिलाफ चेतावनी दी गई - तदनुसार, विचारण न्यायालय द्वारा कोई क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि नहीं की गई थी - परिणामस्वरूप, दोनों आवेदनों को खारिज कर दिया जाता है। (प्रस्तर- 9, 10, 11)

आवेदन खारिज कर दिया गया। (ई-11)

<u>उद्धृत निर्णयज विधियों की सूची:</u>

1. आपराधिक पुनरीक्षण मामला संख्या-628 वर्ष 2023 (पवन कुमार जैन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य,
2. पोरबंदर कमर्शियल एंड कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड बनाम भांजी लावजी ए.आई.आर.1984 (गुजरात) 106,
3. गोविंद राम चन्नी बनाम लता और अन्य 2009 एस.सी.सी. ऑनलाइन कर 39
4. सुरेश शर्मा बनाम न्यू कोल्वेल इंडस्ट्रीज और अन्य: सीआरएल अपील संख्या-745 वर्ष 2007 दिनांक 23.01.2009 नई दिल्ली में दिल्ली उच्च न्यायालय,
5. पीके सेल्वराज बनाम उमादेवी सुंदरम मनु - (तमिलनाडु)/5198/2021 एमएडी उच्च न्यायालय,
6. सुशील कुमार बनाम आईबीएम प्राइवेट लिमिटेड - सीआरएल एमसी 122/2010 दिल्ली उच्च न्यायालय,
7. रघु लक्ष्मीनारायण बनाम फाइन ट्यूब्स, (2007) 5 एस.सी.सी. 103 (उच्चतम न्यायालय)
8. रवींद्र नाथबाजपे बनाम मैंगलोर स्पेशल इकोनॉमिक जोन प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 806 (उच्चतम न्यायालय),
9. अशोक शेवकरमानी और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य- 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 958,
10 भूपेश राठोड वर्सस दया शंकर प्रसाद चौरसिया &एएमपी; एएनआर। (2022) 2 एस.सी.सी. 355,
11. विष्णु मित्तल बनाम मेसर्स शक्ति ट्रेडर्स कंपनी, एसएलपी सीआरएल संख्या-1104 वर्ष 2022 17.03.2025 को निर्णय लिया गया
12. ए.के. रवि नेदुंगडी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 6 आवेदन धारा 482 संख्या-72 वर्ष 2020 के तहत 13.10.2020 को निर्णय दिया गया (इलाहाबाद उच्च न्यायालय),
13. मद्रास उच्च न्यायालय रंगबाश्याम बनाम बनाम राजेश्वरी - सीआरएल ओपी संख्या-13147 वर्ष 2015
14. प्रेम राज बनाम पूनम्मा मेनन और अन्य- (2024) 6 एस.सी.सी. 143, ,
15. अल्केमिस्ट एसेट रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड बनाम मेसर्स होटल गौड़वन प्राइवेट लिमिटेड: (2018) 16 एस.सी.सी. 94.

16. पी. मोहनराज और अन्य बनाम मैसर्स शाह ब्रदर्स इस्पात प्राइवेट लिमिटेड 2021 (0) उच्चतम (एस.सी.) 115,

17- अजय कुमार राधेश्याम गोएंका (2023) 10 एस.सी. 545,

18. राकेश भनोट बनाम मैसर्स गुरदास एग्रो: आपराधिक अपील संख्या-1607 वर्ष 2025 का निर्णय 01.04.2025 को हुआ,

19. रतीश बाबू उन्नीकृष्णन बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार) और अन्य : 2022 (0) उच्चतम (एस.सी.) 366,

20. आईसीडीएस लिमिटेड बनाम बीना शबीर (2002) सप्प 1 एस.सी.आर. 488,

21. मैसर्स एमएमटीसी लिमिटेड बनाम मेडचल केमिकल्स एंड फार्मा (पी) लिमिटेड (2002) 1 एस.सी.सी. 234,

22. अभिषेक जैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2023 (0) सर्वोच्च (इला) 1581,

23. मैसर्स सम्राट शिपिंग कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम डॉली जॉर्ज जेटी 1999 (10) एस.सी. 381,

24. राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लिमिटेड बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) और आदि (2008) 16 एस.सी.आर. 83,

25. आशुतोष, अशोक, परसरामपुरिया और अन्य। बनाम घरकुल इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड और अन्यए.आई.आर.2021 एस.सी. 4898।

26. सी.आई.टी. बनाम आर.एम. चिदंबरम पिल्लई और अन्य1977 (1) एस.सी.सी. 431

27. मुंशी राम बनाम नगर समिति 1979 (3) एस.सी.सी. 83,

28. एन खदरवाली साहेब और अन्य बनाम एन. गुडू साहिब और अन्य (2003) 3 उच्चतम न्यायालय के मामले 229,

29. बनाम सुब्रमण्यम बनाम राजेश रघुवेंद्र राव (2009) 5 एस.सी.सी. 608,

30. तन्ना और मोदी बनाम सी.आई.टी. मुंबई (2007) 7 एस.सी.सी. 434।

31. सांगानेर दाल और आटा चक्की बनाम एफसीआई और अन्य (1992)1 एस.सी.सी. 145,

32. मैसर्स सम्राट शिपिंग कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम डॉली जॉर्ज जेटी 1999 (10) एस.सी. 381,

33. हर। राज्य सहकारी आपूर्ति और विपणन संघ लिमिटेड बनाम जयम टेक्सटाइल्स और अन्य। (2014) 4 एस.सी.सी. 704,

34. पद्मावती फाइनेंस बनाम मोहम्मद यूसुफ अली: आपराधिक अपील संख्या-3608 वर्ष 2009 का निर्णय 05.07.2023 को हुआ।

35. मैसर्स नरेश पॉटरीज बनाम मेसर्स आरती इंडस्ट्रीज और अन्य। एसएलपी (आपराधिक) संख्या-8659 वर्ष 2023 02.01.2025 को तय किया गया।

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार द्वारा पारित)

1. मोहनीश जैन, पवन कुमार जैन द्वारा दायर किए गए प्रमुख आवेदन और सिद्धार्थ जैन द्वारा संबंधित आवेदन के माध्यम से वर्तमान कार्यवाही में आक्षेपित किया गया है, जो अतिरिक्त दीवानी न्यायाधीश (कनिष्ठ संभाग), न्यायालय संख्या-4, आगरा की अदालत द्वारा शिकायत मामले संख्या-18168 वर्ष 2023 में पारित किया गया है, जिसके तहत दोनों आवेदनों में आवेदकों को परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत समन किया गया है, 1881 और दिनांक 24.07.2024 को अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-17, आगरा द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण मामले संख्या-628 वर्ष 2023 (पवन कुमार जैन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में पारित आदेश जिससे दिनांक 21.07.2023 के समन आदेश के खिलाफ प्रमुख आवेदन में आवेदकों द्वारा दायर किए गए पुनरीक्षण को खारिज कर दिया गया है।

2. पक्षों के अधिवक्ता द्वारा एक संयुक्त बयान दिया गया है कि वे कोई अतिरिक्त हलफनामा दायर करने का प्रस्ताव नहीं करते हैं और आवेदन अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजों के आधार पर तय किया जाना चाहिए। पक्षगण की सहमति से आवेदनों पर नए सिरे से फैसला किया जा रहा है।

3. मोटे तौर पर, तथ्य यह है कि प्रतिपक्षी संख्या-2, रोहित अग्रवाल, खुद को मैसर्स मेटल प्रोडक्ट्स नाम की एक फर्म का भागीदार होने का दावा करता है, जो बेयर/इंसुलेटेड कॉपर और एल्युमीनियम वायर के निर्माण और आपूर्ति में लगी हुई है। प्रतिपक्षी संख्या-2 के अनुसार, उसने मैसर्स कोटसंस प्राइवेट लिमिटेड को नंगे/इंसुलेटेड तांबे और एल्यूमीनियम तार की आपूर्ति की थी, जो कंपनी अधिनियम के तहत पंजीकृत कंपनी है। आरोप यह है कि नंगे/एल्यूमीनियम तार की खरीद के कारण अर्जित दायित्व के निर्वहन के लिए, चार चेक संख्या-598081, कंपनी कोटसंस प्राइवेट लिमिटेड की ओर से 50,00,000/- रुपये की 598082, 598083 और 598084 दिनांक 01.12.2022 को एक निदेशक, सिद्धार्थ जैन द्वारा निकाली गई थी, जो संबंधित आवेदन में आवेदक हैं। कहा जाता है कि उक्त चेक 22.02.2023 को आहिति/धारक के बैंक में प्रस्तुत किए गए थे, जो अपर्याप्त धनराशि के कारण 23.02.2023 को अस्वीकार कर दिए गए थे। 20.03.2023 को कंपनी, कोटसंस प्राइवेट लिमिटेड के साथ-साथ निदेशक अर्थात् मोहनीश जैन, पवन कुमार जैन (प्रमुख आवेदन में आवेदक) और सिद्धार्थ जैन (संबंधित आवेदन में आवेदक) को वैधानिक नोटिस जारी किए गए थे, जो कहा गया है कि कंपनी के साथ-साथ दोनों आवेदनों में आवेदकों को भी 22.03.2023 को निदेशक के रूप में सेवा दी गई है। वैधानिक नोटिस की तामील के बावजूद, जब उक्त भुगतान 21.04.2023 को नहीं किया गया था, तो पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत दर्ज की गई। इसके कारण शिकायत मामले संख्या-18163 वर्ष 2023 में अतिरिक्त दीवानी न्यायाधीश (कनिष्ठ संभाग), न्यायालयसंख्या-4, आगरा द्वारा पारित दिनांक 21.07.2023 का आदेश जारी किया गया।

4. अतिरिक्त दीवानी न्यायाधीश (कनिष्ठ संभाग), न्यायालय संख्या-4, आगरा के न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 21.07.2023 के समन आदेश को खारिज करते हुए, आवेदकों द्वारा प्रमुख आवेदन (पवन कुमार जैन

और मोहनीश जैन) में आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-628 वर्ष 2023 दायर किया गया, जिसे अतिरिक्त दीवानी न्यायाधीश न्यायालय संख्या-17, आगरा की अदालत द्वारा 24.07.2024 को खारिज कर दिया गया।

5. अभिलेख के अनुसार, संबंधित आवेदन में आवेदक ने पुनरीक्षण को दायर की नहीं दी है और उसने बी.एन.एस.एस.संख्या-30822 वर्ष 2023 की धारा 528 के तहत प्रस्तुत आवेदन दायर किया है।

6. इस न्यायालय द्वारा प्रमुख और संबंधित आवेदनों पर विचार किया गया, जिसमें 05.02.2025 को अंतरिम आदेश दिया गया था, क्योंकि अग्रणी और संबंधित आवेदनों में अंतरिम आदेश शब्दशः समान हैं, इस प्रकार, संक्षिप्तता के लिए, बी.एन.एस.एस.संख्या-30850 वर्ष 2024 की धारा 528 के तहत आवेदन में पारित दिनांक 05.02.2025 के आदेश को यहां उद्धृत किया जा रहा है।

"1. श्री गोपाल स्वरूप चारचतुर्वेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री बलबीर सिंह, आवेदकों के अधिवक्ता और श्री सुनील कुमार कुशवाहा, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता

2. प्रस्तुत आवेदन दायर किया गया है, जिसमें आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-628 वर्ष 2023 (पवन कुमार जैन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित आक्षेपित आदेश को रद्द करने के साथ-साथ धारा 138 पराक्रम्य लिखत अधिनियम के तहत अनुपालन मामले संख्या-18168 वर्ष 2023 (रोहित अग्रवाल बनाम कोटसंस प्राइवेट लिमिटेड और अन्य) पी.एस. हरिपर्वत आगरा, जिला आगरा, जिसमें संज्ञान आदेश दिनांक 21.7.2023 शामिल है, की पूरी कार्यवाही को रद्द करने की मांग की गई है।

3. आवेदकों के अधिवक्ता का तर्क यह है कि विचाराधीन चेक साझेदारी फर्म मेसर्स मेटल प्रोडक्ट्स के पक्ष में जारी किया गया था, लेकिन फर्म की ओर से बिना किसी प्राधिकरण के उसके एक भागीदार द्वारा आक्षेपित शिकायत दर्ज की गई है। वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया जाता है कि साझेदारी फर्म की स्थिति संबंधित स्वामित्व से अलग है क्योंकि संबंधित स्वामित्व के पक्ष में जारी किए गए चेक के बाउंस होने पर, इसका मालिक शिकायत दर्ज कर सकता है, लेकिन साझेदारी फर्म के मामले में, साझेदारी फर्म द्वारा अपने भागीदार के माध्यम से धारा 138 पराक्रम्य लिखत अधिनियम के तहत शिकायत दर्ज की जा सकती है और भागीदार धारा 138 पराक्रम्य लिखत के तहत शिकायत भी दर्ज कर सकता है। साझेदारी फर्म के पक्ष में जारी किए गए चेक के बाउंस पर कार्य करें, लेकिन फर्म की ओर से प्राधिकरण होना चाहिए। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि विचाराधीन चेक फर्म के पक्ष में जारी किया गया था, इसलिए, फर्म आदाता है और भागीदार को भुगतानकर्ता के रूप में नहीं माना जा सकता है और उसे फर्म की ओर से प्राधिकरण के बाद ही नियत समय में धारक के रूप में माना जा सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, वरिष्ठ अधिवक्ता ने **भूपेश राठौड़ बनाम दयाशंकर प्रसाद चौरसिया और एक अन्य (2022) 2 एस.सी.सी. 355** के मामले में शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

4. मामले पर विचार करने की आवश्यकता है।

5. प्रतिपक्षी संख्या-2 को नोटिस जारी करें।

6. आवेदकों के अधिवक्ता को प्रतिपक्षी संख्या-2 पर व्यक्तिगत सेवा करने की भी अनुमति है।

7. 3.3.2025 से शुरू होने वाले सप्ताह में ताजा के रूप में सूची।

8. सूचीबद्ध होने की अगली तारीख तक, उपरोक्त मामले में आवेदकों के खिलाफ कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी।

7. प्रतिपक्षी संख्या-2-शिकायतकर्ता पर नोटिस जारी करने के बाद, प्रतिपक्षी संख्या-2-शिकायतकर्ता अपने अधिवक्ता के माध्यम से पेश हुआ और 04.04.2025 को बार में एक बयान दिया कि वह आवेदनों पर कोई जवाब दाखिल करने का प्रस्ताव नहीं करती है। अभिलेख के अनुसार, आवेदकों द्वारा 28.04.2025 के प्रमुख आवेदन में एक पूरक हलफनामा दायर किया गया और उसके बाद 01.05.2025 को, प्रमुख आवेदन में निम्नलिखित आदेश पारित किए गए।

"श्री गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री सुरुची कासलीवाल मुल्तानी और श्री बलबीर सिंह, अग्रणी और जुड़े आवेदनों में आवेदक के अधिवक्ता और श्री एसके सिंह, राज्य के अपर शासकीय अधिवक्ता के साथ-साथ सुश्री श्रेया गुप्ता, प्रतिपक्षी संख्या-2 की अधिवक्ता को सुना।

न्यायालय को अवगत कराया गया है कि दिनांक 29.04.2025 को एक पूरक हलफनामा दायर किया गया है जो आवेदकों की ओर से अभिलेख पर उपलब्ध है, लेकिन सुश्री श्रेया गुप्ता ने प्रस्तुत किया कि वह इस पर कोई जवाब दाखिल करने का प्रस्ताव नहीं करती हैं। दलीलें समाप्त हो गईं और निर्णय सुरक्षित रहा।

(आवेदकों के अग्रणी तर्क और जुड़े अनुप्रयोग)

8. श्री गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता, सुरुचि कासलीवाल मुल्तानी और श्री बलबीर सिंह की सहायता से प्रस्तुत किया है कि आवेदकों को तलब करने का दिनांक 21.07.2023 का आदेश एक पल के लिए भी कायम नहीं रह सकता है क्योंकि यह दुर्बलता और अवैधता से ग्रस्त है। उक्त सबमिशन को विस्तार से बताते हुए, सबसे पहले, यह प्रस्तुत किया जाता है कि शिकायत स्वयं सुनवाई योग्य नहीं थी, खासकर जब इसे धातु उत्पादों के भागीदारों में से एक द्वारा दायर किया गया था, न कि फर्म द्वारा और चूंकि चेक मेटल प्रोडक्ट्स के एक साझेदारी फर्म होने के पक्ष में खींचा गया था, इस प्रकार, प्रतिपक्षी संख्या-2-शिकायतकर्ता नियत समय में न तो आहिति था और न ही भुगतानकर्ता या धारक था। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि पराक्रम्य लिखत

अधिनियम की धारा 138 के तहत, यह केवल भुगतानकर्ता या चेक के नियत समय में धारक है जो वैधानिक मांग नोटिस जारी करने और शिकायत दर्ज करने के लिए सक्षम है।

9. संक्षेप में, यह प्रस्तुत किया जाता है कि प्रतिपक्षी संख्या-2-शिकायतकर्ता केवल एक साझेदारी फर्म का भागीदार होने के नाते, कानून के तहत या तो मांग नोटिस जारी करने या पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत दर्ज करने का कोई अधिकार नहीं था। दूसरे, यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 को एक साझेदारी फर्म के भागीदार के रूप में स्वीकार किए बिना भी शिकायत दर्ज की जा सकती थी, लेकिन ऐसा था साझेदारी फर्म का कोई प्राधिकरण नहीं है ताकि उसे पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत कार्यवाही दर्ज करने के लिए अधिकृत किया जा सके। तीसरा, भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 की धारा 19 और 22 के तहत निहित रोक एक भागीदार द्वारा आपराधिक कार्यवाही दर्ज करने के रास्ते में आएगी, खासकर जब कोई निहित प्राधिकारी नहीं था इसलिए शिकायतकर्ता को कार्यवाही दर्ज करने के लिए एक भागीदार के रूप में नियुक्त किया गया था। चौथा, दिवाला और दिवालियापन संहिता, 2016 की धारा 14 की रोक विशेष रूप से तब लागू होगी जब जिस कंपनी के आवेदक निदेशक थे, वह आईबी-761 (एनडी/2022) भारतीय स्टेट बैंक बनाम मैसर्स कोटसंस प्राइवेट लिमिटेड की कार्यवाही में राष्ट्रीय कंपनी कानून न्यायाधिकरण, नई दिल्ली (III) के दिनांक 09.06.2023 के आदेश के तहत मुद्रा व्यवस्था के तहत थी। पांचवां, हालांकि चेक कंपनी कोटसंस प्राइवेट लिमिटेड की ओर से आवेदक द्वारा निदेशक, सिद्धार्थ जैन की क्षमता में संबंधित आवेदन में जारी किया गया है, लेकिन शिकायत में पुनरावृत्ति के संबंध में पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 के प्रावधानों का लगभग कोई अनुपालन नहीं किया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति जो किए गए अपराधों के समय कंपनी का प्रभारी था और कंपनी के प्रति जिम्मेदार था। जहां तक अग्रणी आवेदन में अन्य आवेदक मोहनीश जैन और पवन कुमार जैन का संबंध है, चूंकि शिकायत में उक्त कथनों की कमी है, इसलिए कार्यवाही को खारिज कर दिया जाना चाहिए था और आवेदकों को तलब करने का कोई सवाल ही नहीं था।

10. सातवां, यह तर्क दिया गया है कि हालांकि समन आदेश के खिलाफ प्रमुख आवेदन में आवेदकों द्वारा दायर किए गए संशोधन में, कई कानूनी आधार लिए गए थे जो मामले की जड़ तक जाते हैं, लेकिन पुनरीक्षण अदालत ने इस तथ्य से संबंधित किसी भी आधार पर विचार नहीं किया है कि प्रतिपक्षी संख्या-2-शिकायतकर्ता के पास आपराधिक कार्यवाही दर्ज करने का अधिकार था। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया जाता है कि पुनरीक्षण आदेश अवैध है क्योंकि यह आवेदकों द्वारा लिए गए कानूनी आधारों पर विचार करने के लिए छोड़ देता है।

11. उपरोक्त प्रस्तुतियों के समर्थन के लिए, निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया गया है **(1) पोरबंदर कमर्शियल एंड कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड बनाम भांजी लवजी ए.आई.आर.1984 (गुजरात) 106, (2) गोविंद राम चनानी बनाम लता और अन्य 2009 एस.सी.सी. ऑनलाइन कर 39, (3) सुरेश शर्मा बनाम न्यू कोल्वेल इंडस्ट्रीज और अन्य: सीआरएल अपील संख्या-745 वर्ष 2007 दिनांक 23.01.2009 नई दिल्ली में दिल्ली उच्च न्यायालय, (4) पी.के. सेल्वराज बनाम उमादेवी सुंदरम मनु (तमिलनाडु)/5198/2021 एमएडी उच्च न्यायालय, (5) सुशील कुमार बनाम आईबीएम प्राइवेट लिमिटेड सीआरएल एमसी 122/2010 दिल्ली उच्च न्यायालय, (6)(2007) 5**

एस.सी.सी. 103 (सर्वोच्च न्यायालय) रघु लक्ष्मीनारायण बनाम फाइन ट्यूब, (7) रवींद्र नाथबाजपे बनाम मैंगलोर विशेष आर्थिक क्षेत्र प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 806 (सर्वोच्च न्यायालय), (8) 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 958 अशोक शेवकरमानी और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य, (9) भूपेश राठौड़ बनाम दया शंकर प्रसाद चौरसिया और अन्य (2022) 2 एस.सी.सी. 355, (10) विष्णु मित्तल बनाम मैसर्स शक्ति ट्रेडर्स कंपनी, एसएलपी सीआरएल संख्या-1104 वर्ष 2022 17.03.2025 को निर्णय लिया गया (11) एके रवि नेदुंगडी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, धारा 482 संख्या-72 वर्ष 2020 के तहत आवेदन 13.10.2020 (इलाहाबाद उच्च न्यायालय), (12) सीआरएल ओपी संख्या-13147 वर्ष 2015 मद्रास उच्च न्यायालय रंगबाश्याम बनाम वी. राजेश्वरी, (13)(2024) 6 एस.सी.सी. 143, प्रेम राज बनाम पूनम्मा मेनन और अन्य, (14) अल्केमिस्ट एसेट रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड बनाम मेसर्स होटल गौड़वन प्राइवेट लिमिटेड: (2018) 16 एस.सी.सी. 94।

<u>प्रतिपक्षी संख्या-2-शिकायतकर्ता के अधिवक्ता का तर्क</u>

12. आवेदकों के अधिवक्ता सुश्री श्रेया गुप्ता की ओर से की गई दलीलों का विरोध करते हुए, जो प्रतिपक्षी संख्या-2-शिकायतकर्ता की ओर से पेश होती हैं, ने प्रस्तुत किया है कि पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत आवेदकों को तलब करने के आदेश के साथ-साथ पुनरीक्षण को खारिज करने के आदेश में किसी भी अवैधता की आवश्यकता नहीं है और किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। निवेदन यह है कि शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी पक्ष के पास आपराधिक कार्यवाही दर्ज करने की क्षमता और अधिकार था क्योंकि वह साझेदारी फर्म के भागीदारों में से एक था और फर्म का एजेंट होने के नाते उसे शिकायत दर्ज करने का अधिकार था। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि भले ही यह मान लिया जाए कि शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 के पास भागीदार होने के नाते उसके पक्ष में कोई प्राधिकरण नहीं था, तो शिकायत को पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है क्योंकि प्राधिकरण पेश करने का अवसर बाद के चरण में दिया जा सकता है क्योंकि यह एक इलाज योग्य दोष है। इसके बाद यह तर्क दिया जाता है कि साझेदारी फर्म, मेटल प्रोडक्ट्स के अन्य भागीदारों में से कोई भी यह बताने के लिए आगे नहीं आया है कि उन्होंने शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 को शिकायत दर्ज करने के लिए अधिकृत नहीं किया है, इस प्रकार, आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा उठाया गया तर्क अनावश्यक है। यह भी तर्क दिया जाता है कि प्रतिपक्षी संख्या-2-शिकायतकर्ता, जिसने साझेदारी फर्म के एजेंट के रूप में काम किया था, उसके पास शिकायत/कार्यवाही दर्ज करने का एक निहित अधिकार था। यह भी तर्क दिया जाता है कि साझेदारी भागीदारों का एक संघ है और भागीदारों के अधिकार और देनदारियां समान और एक हैं और राजस्व और संसाधनों को बढ़ाने के लिए फर्म के लाभ के लिए, पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत आपराधिक कार्यवाही दर्ज करते समय किसी भी भागीदार द्वारा देय और देय राशि को भी प्राप्त किया जा सकता है। निवेदन यह भी है कि शिकायत में विशिष्ट पुनरावृत्ति शामिल हैं पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 की आवश्यकता के अनुसार और आवेदक निदेशक होने के नाते, वास्तव में, आचरण, मामलों और व्यवसाय के लिए कंपनी के प्रभारी थे और उनके प्रति जिम्मेदार थे। जहां तक आई.बी.सी. की धारा 14 की रोक का सवाल है, यह प्रस्तुत किया जाता है कि उक्त प्रावधान के तहत संरक्षण केवल कॉर्पोरेट देनदार यानी कंपनी कोटसंस प्राइवेट लिमिटेड के मामले में आकर्षित होता है, न कि निदेशकों के खिलाफ। अंत में, यह प्रस्तुत किया

जाता है कि यह न्यायालय इस स्तर पर हस्तक्षेप नहीं कर सकता है, खासकर जब केवल समन जारी किए गए हैं, वह भी वर्तमान कार्यवाही में क्योंकि कानून अच्छी तरह से स्पष्ट है कि समन चरण में वर्तमान कार्यवाही में जांच को दबाया नहीं जा सकता है। निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया गया है-

(1) पी. मोहनराज और अन्य बनाम मैसर्स शाह ब्रदर्स इस्पात प्राइवेट लिमिटेड 2021 (0) उच्चतम (एस.सी.) 115, (2) अजय कुमार राधेश्याम गोयनका (2023) 10 एस.सी.सी. 545, (3) राकेश भनोट बनाम मैसर्स गुरदास एग्रो: आपराधिक अपील संख्या-1607 वर्ष 2025 01.04.2025 को निर्णयित, (4) रतीश बाबू उन्नीकृष्णन बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार) और अन्य। : 2022 (0) उच्चतम (एस.सी.) 366, (5) आईसीडीएस लिमिटेड बनाम बीना शबीर (2002) सप्प 1 एस.सी.आर. 488, (6) मैसर्स एमएमटीसी लिमिटेड बनाम मेडचल केमिकल्स एंड फार्मा (पी) लिमिटेड (2002) 1 एस.सी.सी. 234, (7) अभिषेक जैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2023 (0) उच्चतम (इला) 1581, (8) भूपेश राठौड़ बनाम दयाशंकर प्रसाद चौरसिया और अन्य; (2022) 2 एस.सी.सी. 355, (9) मैसर्स सम्राट शिपिंग कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम डॉली जॉर्ज जेटी 1999 (10) एस.सी. 381, (10) राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लिमिटेड बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) और आदि (2008) 16 एस.सी.आर. 83, (11) आशुतोष अशोक परसरामपुरिया और अन्य बनाम घरकुल इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड और अन्य ए.आई.आर.2021 एस.सी. 4898।

<u>वैधानिक प्रावधान:</u>

<u>साझेदारी अधिनियम, 1932</u>

2. परिभाषाएँ।–इस अधिनियम में, जब तक कि विषय या संदर्भ में कुछ भी प्रतिकूल न हो,-

(ए) "एक फर्म का कार्य" सभी भागीदारों, या फर्म के किसी भी भागीदार या एजेंट द्वारा कोई भी कार्य या चूक है जो फर्म द्वारा या उसके खिलाफ लागू करने योग्य अधिकार को जन्म देता है;

4. **"साझेदारी", "भागीदार", "फर्म" और "फर्म का नाम" की परिभाषा** "साझेदारी" उन व्यक्तियों के बीच का संबंध है जो सभी या उनमें से किसी के द्वारा किए गए व्यवसाय के मुनाफे को साझा करने के लिए सहमत हुए हैं।

जिन व्यक्तियों ने एक दूसरे के साथ साझेदारी में प्रवेश किया है, उन्हें व्यक्तिगत रूप से "भागीदार" और सामूहिक रूप से "एक फर्म" कहा जाता है, और जिस नाम के तहत उनका व्यवसाय किया जाता है उसे "फर्म नाम" कहा जाता है।

11. साझेदारों के बीच अनुबंध द्वारा भागीदारों के अधिकारों और कर्तव्यों का निर्धारण व्यापार के संयम में समझौते।- (1) इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, एक फर्म के भागीदारों के पारस्परिक अधिकारों और कर्तव्यों को भागीदारों के बीच अनुबंध द्वारा निर्धारित किया जा सकता है, और इस तरह के अनुबंध को व्यक्त किया जा सकता है या व्यवहार के एक प्रविधि द्वारा निहित किया जा सकता है।

इस तरह के अनुबंध को सभी भागीदारों की सहमति से भिन्न किया जा सकता है, और इस तरह की सहमति व्यक्त की जा सकती है या व्यवहार के एक प्रविधि द्वारा निहित हो सकती है।

(2) भारतीय अनुबंध अधिनियम, 1872 (9 वर्ष 1872) की धारा 27 में निहित किसी भी बात के बावजूद, ऐसे अनुबंध प्रदान कर सकते हैं कि एक भागीदार फर्म के अलावा किसी भी व्यवसाय को नहीं करेगा, जबकि वह एक भागीदार है।

12. व्यवसाय का संचालन.–साझेदार के बीच अनुबंध के अधीन–

(ए) प्रत्येक भागीदार को व्यवसाय के संचालन में भाग लेने का अधिकार है;

(बी) प्रत्येक भागीदार व्यवसाय के संचालन में अपने कर्तव्यों को लगन से पूरा करने के लिए बाध्य है;

(ग) व्यवसाय से जुड़े सामान्य मामलों के रूप में उत्पन्न होने वाले किसी भी अंतर का निर्णय अधिकांश भागीदारों द्वारा किया जा सकता है, और प्रत्येक भागीदार को मामले का निर्णय लेने से पहले अपनी राय व्यक्त करने का अधिकार होगा, लेकिन सभी भागीदारों की सहमति के बिना व्यवसाय की प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है; तथा

(घ) प्रत्येक भागीदार को फर्म की किसी भी पुस्तक तक पहुंच रखने और उसका निरीक्षण करने और उसकी प्रतिलिपि बनाने का अधिकार है।

18. फर्म का एजेंट बनने के लिए भागीदार।- इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, एक भागीदार फर्म के व्यवसाय के प्रयोजनों के लिए फर्म का एजेंट है।

19. फर्म के एजेंट के रूप में भागीदार का निहित अधिकार-

(1) धारा 22 के प्रावधानों के अधीन, एक भागीदार का कार्य जो सामान्य तरीके से, फर्म द्वारा किए जाने वाले व्यवसाय को आगे बढ़ाने के लिए किया जाता है, फर्म को बांधता है। इस धारा द्वारा प्रदत्त फर्म को बांधने के लिए एक भागीदार के अधिकार को उसका "निहित अधिकार" कहा जाता है।

(2) इसके विपरीत व्यापार के किसी भी उपयोग या रिवाज के अभाव में, एक भागीदार का निहित अधिकार उसे सशक्त नहीं करता है-

(ए) फर्म के व्यवसाय से संबंधित विवाद को मध्यस्थता के लिए प्रस्तुत करना,

(बी) फर्म की ओर से अपने नाम पर एक बैंकिंग खाता खोलना,

(सी) फर्म द्वारा किसी भी दावे या दावे के हिस्से से समझौता करना या त्यागना,

(डी) फर्म की ओर से दायर किए गए वाद या कार्यवाही को वापस लेना,

(ई) फर्म के खिलाफ किसी मुकदमे या कार्यवाही में किसी भी दायित्व को स्वीकार करना,

(एफ़) फर्म की ओर से अचल संपत्ति का अधिग्रहण करना,

(जी) फर्म से संबंधित अचल संपत्ति का हस्तांतरण, या
(एच) फर्म की ओर से साझेदारी में प्रवेश करें।

22. फर्म को बांधने के लिए कार्य करने का तरीका- किसी फर्म को बांधने के लिए, फर्म की ओर से किसी भागीदार या अन्य व्यक्ति द्वारा किए गए या निष्पादित किए गए कार्य या लिखत को फर्म के नाम पर या किसी अन्य तरीके से फर्म को बांधने के इरादे को व्यक्त या अभिप्रेत करते हुए निष्पादित किया जाएगा।

<u>परक्राम्य साधन अधिनियम, 1881</u>

"7. "आहरणकर्ता" (Drawer) "आहिती" (Drawee)– विनिमय-पत्र या चेक का निर्माता "आहरणकर्ता" कहलाता है; तथा वह व्यक्ति जिसे उसके द्वारा भुगतान करने का निर्देश दिया गया है, "आहिती" कहलाता है।

"आवश्यकता की दशा में आहिती" (Drawee in case of need)– जब किसी विनिमय-पत्र में या उस पर किए गए किसी पृष्ठांकन में, आहिती के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति का नाम इस उद्देश्य से दिया गया हो कि आवश्यकता पड़ने पर उसका आश्रय लिया जाए, तो ऐसा व्यक्ति "आवश्यकता की दशा में आहिती" कहलाता है।

"स्वीकर्ता" (Acceptor)– जब किसी विनिमय-पत्र का आहिती उस पत्र पर, अथवा यदि उसके एक से अधिक भाग हों तो उनमें से किसी एक भाग पर, अपनी स्वीकृति के रूप में हस्ताक्षर कर देता है तथा उसे परिदत्त कर देता है, या ऐसे हस्ताक्षर किए जाने की सूचना धारक को अथवा उसकी ओर से किसी व्यक्ति को दे देता है, तब वह "स्वीकर्ता" कहलाता है।

"मानार्थ स्वीकर्ता" (Acceptor for honour)– जब किसी विनिमय-पत्र को अस्वीकृति के कारण, स्वीकृति के लिए अथवा बेहतर प्रतिभूति के लिए, टिप्पणीबद्ध (noted) या विरोधित (protested) किया गया हो, और कोई व्यक्ति आहरणकर्ता अथवा किसी पृष्ठांकक के सम्मान (honour) की रक्षा हेतु विरोध के उपरांत (supra protest) उसे स्वीकार कर ले, तो ऐसा व्यक्ति "मानार्थ स्वीकर्ता" कहलाता है।

"देयग्राही" (Payee)– वह व्यक्ति जिसका नाम लिखत में उल्लिखित है तथा जिसे या जिसके आदेशानुसार उस लिखत द्वारा धनराशि देय है, "देयग्राही" कहलाता है।

8. "धारक" (Holder)।– प्रतिज्ञा-पत्र, विनिमय-पत्र या चेक का "धारक" वह व्यक्ति है जो अपने नाम से उसके कब्जे का अधिकारी हो तथा उसके पक्षकारों से उस पर देय राशि प्राप्त करने या उसकी वसूली करने का अधिकार रखता हो। जहाँ प्रतिज्ञा-पत्र, विनिमय-पत्र या चेक खो गया हो या नष्ट हो गया हो, वहाँ उसका धारक वह व्यक्ति होगा जो ऐसे खोने या नष्ट होने के समय उक्त अधिकार रखता था।

9. "सम्यक् अनुक्रम में धारक" (Holder in due course)।– "सम्यक् अनुक्रम में धारक" से अभिप्राय ऐसे व्यक्ति से है जो प्रतिफल (consideration) के बदले किसी प्रतिज्ञा-पत्र, विनिमय-पत्र या चेक का, यदि वह वाहक को देय (payable to bearer) हो, कब्जाधारी बन गया हो, अथवा यदि वह आदेशानुसार देय (payable to order) हो, तो उसका देयग्राही (payee) या पृष्ठांकिती (indorsee) बन गया हो, और यह सब उस लिखत में उल्लिखित राशि के देय होने से पूर्व हुआ हो तथा उसके पास यह विश्वास करने का पर्याप्त कारण न हो कि उस व्यक्ति के अधिकार में, जिससे उसने अपना अधिकार प्राप्त किया है, कोई दोष विद्यमान था।

138. खाते में धनराशि की अपर्याप्तता आदि के कारण चेक का अनादरण –
जहाँ किसी व्यक्ति द्वारा अपने बैंक में संधारित खाते पर किसी अन्य व्यक्ति को उस खाते से किसी ऋण या अन्य दायित्व के पूर्ण अथवा आंशिक निर्वहन हेतु किसी धनराशि के भुगतान के लिए आहरित कोई चेक बैंक द्वारा बिना भुगतान के लौटा दिया जाता है, चाहे इस कारण कि उस खाते में उपलब्ध जमा राशि चेक का सम्मान (honour) करने के लिए अपर्याप्त है, अथवा इस कारण कि वह उस राशि से अधिक है जिसके भुगतान की व्यवस्था उस बैंक के साथ किए गए किसी करार के अधीन उस खाते से की गई थी, तो ऐसा व्यक्ति इस अधिनियम के अन्य किसी उपबंध पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, अपराध का दोषी माना जाएगा और उसे ऐसे कारावास से, जिसकी अवधि 2 वर्ष तक बढ़ाई जा सकती है, या ऐसे जुर्माने से, जो चेक की राशि के 2 गुने तक हो सकता है, अथवा दोनों से दण्डित किया जाएगा:
परन्तु यह कि इस धारा में निहित कोई बात तब तक लागू नहीं होगी जब तक–

(क) चेक को उसके आहरण की तिथि से 6 माह की अवधि के भीतर अथवा उसकी वैधता की अवधि के भीतर, जो भी पहले हो, बैंक में प्रस्तुत न किया गया हो;

(ख) देयग्राही (payee) अथवा चेक का सम्यक् अनुक्रम में धारक (holder in due course), यथास्थिति, चेक के अनादरित होकर लौटाए जाने के संबंध में बैंक से सूचना प्राप्त होने की तिथि से 30 दिनों के भीतर, चेक के आहरणकर्ता (drawer) को लिखित सूचना देकर उक्त धनराशि के भुगतान की मांग न करे; तथा

(ग) ऐसे चेक का आहरणकर्ता उक्त सूचना प्राप्त होने की तिथि से 15 दिनों के भीतर उक्त धनराशि का भुगतान देयग्राही को अथवा, यथास्थिति, चेक के सम्यक् अनुक्रम में धारक को करने में असफल रहे।

स्पष्टीकरण।– इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "ऋण या अन्य दायित्व" से अभिप्राय ऐसा ऋण या अन्य दायित्व है जो विधि द्वारा प्रवर्तनीय (legally enforceable) हो।

142. अपराधों का संज्ञान -

(1)दंड प्रक्रिया संहिता, 1973(2 वर्ष 1974) में निहित किसी भी बात के होते हुए, -

(क) कोई भी न्यायालय धारा 138 के अधीन दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान नहीं लेगा, सिवाय लिखित रूप में, आदाता द्वारा की गई शिकायत को छोड़कर, या, यथास्थिति, धारक द्वारा चेक के नियत समय में;

(ख) ऐसी शिकायत उस तारीख से एक महीने के भीतर की जाती है जिस पर धारा 138 के परंतुक के खंड (ग) के तहत कार्रवाई का कारण उत्पन्न होता है:

बशर्ते कि किसी शिकायत का संज्ञान न्यायालय द्वारा निर्धारित अवधि के बाद लिया जा सकता है, यदि शिकायतकर्ता न्यायालय को संतुष्ट करता है कि उसके पास ऐसी अवधि के भीतर शिकायत न करने का पर्याप्त कारण है;

(ग) मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट से कम कोई न्यायालय धारा 138 के अधीन दंडनीय किसी अपराध का विचारण नहीं करेगा।

(2) धारा 138 के अधीन अपराध की जांच और विचारण केवल उस न्यायालय द्वारा किया जाएगा जिसके स्थानीय अधिकार क्षेत्र में, -

(ए) यदि चेक एक खाते के माध्यम से संग्रह के लिए वितरित किया जाता है, तो बैंक की शाखा जहां आदाता या धारक, यथास्थिति, खाता रखता है, स्थित है; या

(ख) यदि चेक नियत समय में आदाता या धारक द्वारा भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जाता है, अन्यथा एक खाते के माध्यम से, आहिति बैंक की शाखा जहां आहर्ता खाता रखता है, स्थित है।

स्पष्टीकरण- खंड (क) के प्रयोजनों के लिए, जहां एक चेक नियत समय में आदाता या धारक के बैंक की किसी शाखा में संग्रह के लिए वितरित किया जाता है, तो, चेक को बैंक की उस शाखा में वितरित किया गया माना जाएगा जिसमें आदाता या धारक नियत समय में, जैसा भी मामला हो, खाता बनाए रखता है।

<u>विश्लेषण:</u>

13. मैंने पक्षों के अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख को ध्यान से देखा है।

14. बार में किए गए तर्कों की वैयक्तिकता पर जांच शुरू करने से पहले भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 के विभिन्न प्रावधानों और उक्त विषय पर कानून के आयात और प्रभाव पर चर्चा करना उचित होगा।

15. धारा 18 के साथ शुरू करने के लिए यह प्रदान करता है कि भागीदार फर्म के व्यवसाय के प्रयोजनों के लिए फर्म का एजेंट है।

16. धारा 2 (ए) फर्म के एक अधिनियम को परिभाषित करती है जिसका अर्थ है सभी भागीदारों, या फर्म के किसी भी भागीदार या एजेंट द्वारा कोई भी कार्य या चूक जो फर्म द्वारा या उसके खिलाफ लागू करने योग्य अधिकार को जन्म देता है। धारा 19 आगे एक फर्म के एजेंट के रूप में एक भागीदार के निहित अधिकार का प्रावधान करती है, जिसके अनुसार अधिनियम की धारा 22 के तहत प्रावधानों के अधीन, एक भागीदार का कार्य जो सामान्य तरीके से, फर्म द्वारा किए जाने वाले व्यवसाय को आगे बढ़ाने के लिए किया जाता है, फर्म को बाध्य करता है। उक्त धारा द्वारा प्रदत्त फर्म को बांधने के लिए एक भागीदार के अधिकार को एक निहित प्राधिकरण कहा जाता है। धारा 19 की उप-धारा (2) में विभिन्न अधिनियमों का उल्लेख किया गया है, कि इसके विपरीत व्यापार के किसी भी उपयोग या रीति-रिवाज के अभाव में भागीदार का निहित प्राधिकारी उसे सशक्त नहीं बनाता है- (ए) फर्म के व्यवसाय से संबंधित विवाद को मध्यस्थ को प्रस्तुत करना, बी) फर्म की ओर से अपने नाम पर एक बैंक खाता खोलना; ग) फर्म द्वारा किसी भी दावे या दावे के हिस्से से समझौता करना या त्यागना; (घ) फर्म की ओर से दायर एक मुकदमा या कार्यवाही वापस लेना; ई) फर्म के खिलाफ मुकदमे या कार्यवाही में किसी भी दायित्व को स्वीकार करना; (च) फर्म की ओर से अचल संपत्ति का अधिग्रहण करना, छ) फर्म से संबंधित अचल संपत्ति का हस्तांतरण, (ज) फर्म की ओर से साझेदारी में प्रवेश करना। इसके अलावा, धारा 22 में प्रावधान है कि किसी फर्म को बांधने के लिए, फर्म की ओर से किसी भागीदार या अन्य व्यक्ति द्वारा किए गए या निष्पादित किए गए कार्य या उपकरण को फर्म के नाम पर या किसी भी तरीके से फर्म को बांधने के इरादे को व्यक्त या अभिप्रेत करते हुए किया जाएगा या निष्पादित किया जाएगा।

17. तथ्य की बात के रूप में, धारा 4 "साझेदारी" "भागीदार" "साझेदारी फर्म" और फर्म के नाम की परिभाषा से संबंधित है, जिसके अनुसार साझेदारी उन व्यक्तियों के बीच एक संबंध है जो सभी या उनमें से किसी के द्वारा किए गए व्यवसाय के मुनाफे को साझा करने के लिए सहमत हुए हैं।

18. धारा 11 भागीदारों के बीच अनुबंध द्वारा भागीदारों के अधिकारों और कर्तव्यों के निर्धारण से संबंधित है, जिसमें अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, फर्म के भागीदारों के पारस्परिक अधिकारों और कर्तव्यों को भागीदारों के बीच आचरण द्वारा निर्धारित किया जाना है और इस तरह के अनुबंध को व्यक्त किया जा सकता है या व्यवहार के दौरान निहित किया जा सकता है और इस तरह के अनुबंध की सहमति से भिन्न हो सकते हैं सभी भागीदारों और इस तरह की सहमति व्यक्त की जा सकती है या व्यवहार के एक प्रविधि द्वारा निहित हो सकती है।

19. यह सवाल कि साझेदारी एक कानूनी व्यक्ति है या नहीं, कानून की अदालतों के समक्ष कई बार विचार का विषय रहा है। **सी.आई.टी. बनाम आर.एम. चिदंबरम पिल्लई और अन्य 1977 (1) एस.सी.सी. 431** में निम्नलिखित देखा गया: -

"17. इस आधार से आवश्यक निष्कर्ष कि एक साझेदारी केवल अलग-अलग व्यक्तियों का एक समूह है और अपने आप में एक कानूनी व्यक्ति नहीं है, आगे के निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि फर्म से एक भागीदार को भुगतान किया जाने के लिए निर्धारित वेतन वास्तव में फर्म के मुनाफे के विभाजन का एक तरीका है, कोई भी व्यक्ति कानून में अपना सेवक नहीं है क्योंकि सेवा का अनुबंध दो अलग-अलग व्यक्तियों को दर्शाता है।

20. **मुंशी राम बनाम नगर समिति 1979 (3) एस.सी.सी. 83 में**, यह निम्नानुसार देखा गया था-

17. भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 की धारा 4 में परिभाषित "साझेदारी", उन व्यक्तियों के बीच संबंध है जो सभी के लाभ के लिए सभी या उनमें से किसी के द्वारा किए गए व्यवसाय के मुनाफे को साझा करने के लिए सहमत हुए हैं। यह धारा आगे यह स्पष्ट करती है कि एक फर्म या साझेदारी भागीदारों से अलग और अलग कानूनी इकाई नहीं है। फर्म केवल उन व्यक्तियों का एक संक्षिप्त विवरण है जो फर्म की रचना करते हैं। "साझेदारी" की परिभाषा में महत्वपूर्ण शब्द वे हैं जिन्हें रेखांकित किया गया है। उनके पास ऊपर पूछे गए प्रश्न की कुंजी है। वे दिखाते हैं कि व्यवसाय सभी या किसी भी भागीदार द्वारा किया जाता है।

21. एन **खादरवली साहब और अन्य बनाम एन. गुडू साहिब और अन्य (2003) 3 उच्चतम न्यायालय के मामले 229 में**, यह निम्नानुसार देखा गया था।

एक साझेदारी फर्म एक स्वतंत्र कानूनी इकाई नहीं है, साझेदार साझेदारी फर्म की संपत्ति के वास्तविक मालिक हैं। वास्तव में फर्म का नाम केवल सुविधा के लिए साझेदारी को दिया गया एक व्यापक नाम है। साझेदारी की संपत्ति फर्म के भागीदारों की है और उनके स्वामित्व में है। जब तक साझेदारी जारी रहती है, तब तक प्रत्येक भागीदार साझेदारी फर्म की सभी संपत्तियों में रुचि रखता है क्योंकि प्रत्येक भागीदार साझेदारी में अपने हिस्से की सीमा तक संपत्ति का मालिक है।

इसके अलावा, **वी. सुब्रमण्यम बनाम राजेश रघुवेंद्र राव (2009) 5 एस.सी.सी. 608 में**, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया-

"11. यह उल्लेख किया जा सकता है कि एक साझेदारी फर्म, भारतीय कंपनी अधिनियम के तहत पंजीकृत कंपनी के विपरीत, एक अलग कानूनी इकाई नहीं है, और केवल अपने भागीदारों का एक संग्रह है। यहां तक कि एक फर्म के पंजीकरण का मतलब यह नहीं है कि यह एक कंपनी की तरह एक अलग कानूनी इकाई बन जाती है। इसलिए एक फर्म के साझेदार फर्म की संपत्ति के सह-मालिक होते हैं, एक कंपनी के शेयरधारकों के विपरीत जो कंपनी की संपत्ति के सह-मालिक नहीं हैं।

22. **तन्ना और मोदी बनाम सी.आई.टी. मुंबई (2007) 7 एस.सी.सी. 434 में**:

"19. साझेदारी अधिनियम के तहत, एक भागीदार एक फर्म का प्रतिनिधित्व करता है। उसके पास धारा 19 के संदर्भ में एक निहित अधिकार है और इस प्रकार, फर्म के एक भागीदार द्वारा फर्म के संबंध में की गई कोई भी कार्रवाई, जब तक कि अन्यथा निर्दिष्ट न हो, फर्म को ही बाध्य करती है।

23. **अभिषेक जैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2023 (0) सर्वोच्च (इला) 1581** में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने उक्त कानून का पालन किया है। एक बार जब उक्त विषय पर कानून को क्रिस्टलीकृत कर दिया जाता है कि एक साझेदारी फर्म एक कानूनी इकाई नहीं है जो अपने साथी से अलग और अलग है और केवल फर्म की रचना करने वाले व्यक्तियों का संक्षिप्त विवरण है, तो जो प्रश्न उठता है वह इस तथ्य के चेहरे पर एक भागीदार के निहित अधिकार का होगा कि वह फर्म का एजेंट है।

24. भारतीय भागीदारी अधिनियम की धारा 19 के अवलोकन से कुछ कार्यों को करने के लिए एक निहित प्राधिकारी के संबंध में पता चलेगा, कुछ अपवाद हैं जिनके अनुसार इसके विपरीत व्यापार के किसी भी उपयोग या रिवाज के अभाव में, भागीदार को कार्य करने का अधिकार नहीं है, इसके उदाहरण धारा 19 की उप-धारा (2) के (ए) से (एच) हैं।

25. भारतीय भागीदारी अधिनियम की धारा 19 के साथ धारा 22 का एक संयुक्त पठन, यह दिखाएगा कि फर्म निहित प्राधिकरण के आधार पर भागीदार के कार्य से बाध्य होगी। प्रावधानों को करीब से पढ़ने से किसी भी तरह से यह संकेत नहीं मिलता है कि फर्म को बांधने के लिए भागीदार के साथ हर स्तर और समय पर एक स्पष्ट प्राधिकरण होना चाहिए, इसलिए "निहित प्राधिकरण" शब्द को भारतीय भागीदारी अधिनियम की धारा 19 और 22 में नियोजित नहीं किया गया होगा। यह सामान्य ज्ञान की बात है कि दो प्रकार के अधिकारी व्यक्त या निहित हैं। प्राधिकार व्यक्त करने में कोई कठिनाई नहीं है और जहां तक निहित प्राधिकार का संबंध है, इसे साबित किया जाना है। कुछ मामलों में भी, अन्य भागीदारों के माध्यम से साझेदारी फर्म के पास उस भागीदार की कार्रवाई या आचरण की पुष्टि करने का विकल्प उपलब्ध होता है जिसने फर्म को बांधने के लिए एक कार्य किया था। जो अधिक महत्वपूर्ण है वह "फर्म के नाम पर या किसी अन्य तरीके से फर्म को बांधने के इरादे को व्यक्त करना या इंगित करना" शब्द का उपयोग करना है, जिसका अर्थ है कि एक भागीदार फर्म के नाम पर या किसी भी तरह से फर्म को बांधने के इरादे को व्यक्त या इंगित कर सकता है। इस प्रकार, जो समझ में आता है वह यह है कि एक भागीदार एक भागीदार के रूप में अपने नाम पर एक कार्य कर सकता है, लेकिन उसके बाद, यदि कोई निहित प्राधिकरण है या यहां तक कि जब उक्त अधिनियम की पुष्टि की जाती है तो यह एक कानूनी कार्य बन जाता है न कि एक अधिनियम जो साझेदारी अधिनियम के तहत निषिद्ध है।

26. **सांगानेर दाल और आटा चक्की बनाम एफसीआई और अन्य (1992)1 एस.सी.सी. 145** में, एक सवाल विचार के लिए आया कि क्या भागीदार में से एक द्वारा किया गया अनुबंध वैध होगा और भागीदारों के लिए बाध्यकारी होगा, जहां मध्यस्थता के लिए विवाद को संदर्भित करने के लिए एक खंड था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा।

"3. उच्च न्यायालय ने पाया कि सत्य नारायण ने साझेदारी फर्म की ओर से व्यवसाय करने की शक्ति निहित की है और निहित प्राधिकरण सभी भागीदारों को बाध्य करता है। साझेदारी अधिनियम की धारा 18 में कहा गया है कि "अधिनियम के प्रावधानों के अधीन एक भागीदार फर्म के व्यवसाय के प्रयोजनों के लिए फर्म का एजेंट है"। धारा 19(1) में कहा गया है कि "धारा 22 के प्रावधानों के अधीन भागीदारों का कार्य जो सामान्य तरीके से फर्म द्वारा किए जाने वाले व्यवसाय को आगे बढ़ाने के लिए किया जाता है, फर्म को बांधता है। इस प्रकार, सत्य नारायण ने अनुबंध की दर पर दाल वर्ष 1000 क्विंटल की आपूर्ति करने के लिए निगम के साथ अनुबंध करने का अधिकार निहित किया है जो अपीलकर्ता के व्यवसाय का सामान्य तरीका है। लेकिन यह स्थापित कानून है कि धारा 18 और 19(1) का संचालन धारा 19 की उप-धारा (2) में निहित अपवादों के अधीन है। धारा 19(2)(ए) प्रदान करती है कि इसके विपरीत व्यापार के किसी भी उपयोग या रिवाज के अभाव में, एक भागीदार का निहित अधिकार उसे फर्म के व्यवसाय से संबंधित विवाद को मध्यस्थता में प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं देता है। सत्य नारायण के पास फर्म की ओर से व्यापार करने की शक्ति है और इसके प्रयोग में उन्होंने दाल की आपूर्ति के लिए व्यापार के सामान्य प्रविधि के दौरान निगम के साथ अनुबंध किया। महत्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या एक वैध अनुबंध जिसे कानून के अनुसार अस्वीकार नहीं किया गया था, अन्य भागीदारों को बांधता है? हमारा जवाब हां है। यह विवाद में नहीं है कि अनुबंध एक मध्यस्थता खंड को लागू करता है और उसके संदर्भ में विवाद को मध्यस्थता के लिए भेजा जाना है। इसलिए, मध्यस्थता अधिनियम की धारा 20 के तहत अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा किया गया संदर्भ पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के भीतर और अनुबंध के संदर्भ में है। साझेदारों का यह मामला नहीं है कि फर्म दाल की आपूर्ति का कारोबार नहीं कर रही है और सत्य नारायण, जैसा कि निचली अदालत ने पाया है, फर्म की ओर से व्यापार करने के लिए अधिकृत था।

27. इस प्रकार, यह बहुत अच्छी तरह से कहा जा सकता है कि एक भागीदार फर्म के नाम पर या किसी भी तरह से व्यक्त या निहित रूप से एक फर्म के भागीदार की क्षमता में स्वयं एक कार्य कर सकता है और यह हमेशा अन्य भागीदारों द्वारा अनुसमर्थन या निहित अधिकार के अधीन होता है।

28. आवेदकों के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता की आपत्ति यह है कि एक फर्म के भागीदार के रूप में शिकायतकर्ता को पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत वैधानिक मांग नोटिस जारी करने या आपराधिक कार्यवाही दर्ज करने का कोई अधिकार नहीं है। हालांकि, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षी संख्या-2 भागीदार होने के नाते आपराधिक कार्यवाही दर्ज करने का पूरा अधिकार है। यह विवाद में नहीं है कि प्रतिपक्षी संख्या-2-शिकायतकर्ता साझेदारी फर्म, मेटल प्रोडक्ट्स का भागीदार है। धारा 7 आहरणकर्ता और आहिति को परिभाषित करती है जिसके अनुसार विनिमय के बिल या चेक के निर्माता को आहरणकर्ता कहा जाता है और जिस व्यक्ति को भुगतान करने के लिए निर्देशित किया जाता है उसे आहिति कहा जाता है। इतना आदाता का अर्थ है उस व्यक्ति का नाम उस साधन में जिसे या जिसके आदेश पर, धन का भुगतान करने के लिए निर्देशित साधन द्वारा किया जाता है। धारा 8 धारक को एक वचन पत्र, विनिमय बिल या चेक के धारक के रूप में परिभाषित करती है, जिसका अर्थ है कि कोई भी व्यक्ति जो अपने नाम पर उसके कब्जे का हकदार है और उससे संबंधित पक्षों से देय राशि प्राप्त करने या वसूल करने के लिए। पराक्रम्य लिखत अधिनियम की

धारा 9 के अनुसार, धारक का अर्थ है एक व्यक्ति जो प्रतिफल के लिए वचन पत्र, चेक के विनिमय बिल का खरीदार बन जाता है यदि वाहक को देय हो।

29. पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के परंतुक के उप-खंड (बी) और (सी) केवल चेक के नियत समय में भुगतानकर्ता या धारक को नोटिस देकर राशि के भुगतान की मांग करने का अधिकार देता है। इसी तरह, पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 142 की धारा 142 के उप-खंड (ए) में गैर-बाध्यकारी खंड के साथ शुरू होता है कि कोई भी अदालत पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध का संज्ञान नहीं लेगी, सिवाय इसके कि आदाता द्वारा लिखित रूप में की गई शिकायत को छोड़कर या मामला हो सकता है या चेक के उचित समय में धारक हो सकता है।

30. इस तथ्य पर बहुत जोर दिया गया है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 न तो आहिति है और न ही भुगतानकर्ता या धारक नियत समय में क्योंकि वह फर्म के भागीदारों में से एक है।

31. पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 और 142 सपठित धारा 7, 8 और 9 में परिभाषित नियत समय में आदाता, धारक और धारक शब्दों को उनकी शाब्दिक व्याख्याएं दी जानी हैं और उन्हें इस तरह से नहीं पढ़ा जा सकता है ताकि अन्य प्रावधानों को निरर्थक बनाया जा सके।

32. पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 और धारा 142 में "भुगतानकर्ता और धारक" शब्द को नियोजित करने का मूल उद्देश्य एक अजनबी द्वारा शुरू की जाने वाली आपराधिक कार्यवाही से बचना था, जो चेक के अनादर से संबंधित नहीं था ताकि पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के प्रावधानों को लागू किया जा सके। शब्द "भुगतानकर्ता" अपने आप में महत्वपूर्ण है जो इस बात को योग्य बनाता है कि एक व्यक्ति जिसे या जिसके आदेश पर साधन द्वारा धन का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है।

33. यहां, प्रस्तुत मामले में, चेक मेटल प्रोडक्ट्स के नाम से खींचा गया था जो एक साझेदारी फर्म है और एक बार जब भागीदार फर्म के एजेंट के रूप में कार्य करता है तो स्पष्ट रूप से वह आपराधिक कार्यवाही दर्ज करने के लिए सक्षम और अधिकृत है। सवाल अलग होता, अगर यह एक ऐसी कंपनी होती जहां अलग-अलग मापदंड अपनाए जाने थे। यह मुद्दा कि क्या किसी फर्म का भागीदार पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत कार्यवाही शुरू कर सकता है, अभिषेक जैन (उपरोक्त) में विचार के लिए आया, जिसमें यह निम्नानुसार देखा गया था।

"16. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई उपरोक्त टिप्पणियों से, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यदि चेक किसी फर्म के नाम पर जारी किया जाता है, चाहे वह स्वामित्व या साझेदारी फर्म हो, मालिक या भागीदार, जैसा भी मामला हो, नियत समय में धारक बन जाता है और वह अपने नाम पर मुकदमा कर सकता है और उसके लिए व्यापारिक नाम पर मुकदमा करना आवश्यक नहीं है, हालांकि अन्य लोग ट्रेडिंग नाम पर ऐसी फर्म पर मुकदमा

कर सकते हैं। इसलिए, प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा दायर तत्काल शिकायत, जिसमें खुद को उक्त फर्म का मालिक होने का दावा किया गया है, जिसके नाम पर आवेदक द्वारा उक्त चेक जारी किया गया है, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, शिकायत सुनवाई योग्य है। यहां तक कि अगर आवेदक के तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है कि उक्त राज राजेश्वरी एंटरप्राइजेज एक साझेदारी है और एक स्वामित्व फर्म नहीं है, तो यह आवेदक की मदद नहीं करेगा क्योंकि यहां तक कि साझेदारी फर्म की भी एक अलग कानूनी पहचान नहीं है और वह एक न्यायिक व्यक्ति नहीं है। इसलिए, पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 142 (1) के अर्थ के भीतर चेक के नियत समय में फर्म का एक भागीदार भी धारक बन जाता है। इस प्रकार, किसी फर्म के साझेदार की ओर से भी अपने नाम पर शिकायत दर्ज की जा सकती है। अन्यथा, प्रस्तुत मामले में भी, आवेदक इस बात पर विवाद नहीं करता है कि चेक उक्त राज राजेश्वरी एंटरप्राइजेज के नाम पर जारी किया गया था और उक्त चेक का अनादर कर दिया गया था और प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा मांग नोटिस जारी किया गया था, वह उक्त नोटिस का पालन करने में विफल रहा है। इसलिए, पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 139 के तहत अनुमान को देखते हुए और शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार, इस न्यायालय को धारा 482 द०प्र०स० के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए प्रस्तुत मामले में हस्तक्षेप करने का कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है।

34. जहां तक पोरबंदर कमर्शियल कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड (उपरोक्त) में गुजरात उच्च न्यायालय के निर्णय पर आवेदकों के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा रखी गई निर्भरता का संबंध है, यह स्पष्ट रूप से अलग है, खासकर जब उक्त मामले में, दो फर्मों में भागीदारों में से एक गारंटी समझौते के लिए फर्म की ओर से हस्ताक्षरकर्ता बन गया था, जब निष्पादन के साथ आगे बढ़ना शुरू हुआ, तो उक्त फर्म के अन्य भागीदारों ने आपत्ति जताई थी कि वे भागीदारों में से एक द्वारा निष्पादित जमानतदारियों से बंधे नहीं हैं। गुजरात उच्च कर्ट ने साझेदारी अधिनियम की धारा 19 के तहत निहित प्रावधानों की व्याख्या करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि विचाराधीन फर्म जमानतदारों के साथ काम नहीं कर रही थी, इस प्रकार, कोई निहित सहमति नहीं थी और इसे साझेदारी अधिनियम की धारा 22 सपठित धारा 19 की उप-धारा (2) के तहत प्रतिबंधित कर दिया गया था।

35. यहां, प्रस्तुत मामले में, एक ठोस अंतर है कि कोई दायित्व या कोई भी कार्य जो धारा 19 की उप-धारा (2) के तहत निषिद्ध है, भागीदारों में से एक द्वारा नहीं किया जा रहा है, बल्कि इसके विपरीत, उस धन को प्राप्त करने के लिए जो चेक के अनादर का विषय था, शिकायत दर्ज की जा रही है। यह कहने के लिए कम है कि अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो दूरस्थ रूप से यह सुझाव दे सके कि कोई निहित प्राधिकरण नहीं है या फर्म के अन्य भागीदारों द्वारा कोई आपत्ति उठाई गई है कि वे शिकायत दर्ज करने या जारी रखने में रुचि नहीं रखते हैं।

36. जहां तक गोविंद राम चनानी (उपरोक्त) के मामले में फैसले का संबंध है, वह मामला था, जिसमें शिकायतकर्ता भागीदार नहीं था और इस तथ्य के संबंध में भी एक बादल था कि विचाराधीन फर्म एक साझेदारी

फर्म या एकमात्र स्वामित्व फर्म थी, उक्त मामले में न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि शिकायतकर्ता एक रैंक बाहरी व्यक्ति और एक अजनबी था जिसके पास कोई प्राधिकरण नहीं था।

37. आवेदकों के वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री सुरेश शर्मा (उपरोक्त) द्वारा उद्धृत निर्णय के संबंध में , उक्त निर्णय भी लागू नहीं होगा, खासकर जब यह मामला था जिसमें शिकायत को संज्ञान लेने के बाद खारिज कर दिया गया था। उक्त मामले में, भागीदारी अधिनियम के उपबंधों के आयात और प्रभाव पर विचार नहीं किया गया है। हालांकि, प्रस्तुत मामले में, जिस स्तर पर चुनौती उठाई गई है, वह समन का है।

38. इसी तरह, पीके सेल्वराज (उपरोक्त) और सुशील कुमार (उपरोक्त) के मामले में निर्धारित प्रस्ताव के लिए कोई झगड़ा नहीं है, जो यह अनिवार्य करता है कि आदाता या भुगतानकर्ता/धारक या धारक द्वारा उचित समय पर शिकायत दर्ज की जानी है।

39. जहां तक मामले के दूसरे पहलू के रूप में शिकायतकर्ता के पास कोई प्राधिकरण उपलब्ध नहीं था और शिकायत को सम्मन के चरण में खारिज कर दिया जाना चाहिए था, उक्त प्रश्न दोष की प्रकृति पर निर्भर करता है कि क्या यह इलाज योग्य है या नहीं, जो इलाज योग्य है या नहीं। **मैसर्स समाट शिपिंग कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम डॉली जॉर्ज जेटी 1999 (10) एस.सी. 381** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय जिसमें इसे निम्नानुसार माना गया था।

"2. अपीलकर्ता-कंपनी ने परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध के लिए मजिस्ट्रेट अदालत के समक्ष शिकायत दर्ज की है। मजिस्ट्रेट ने शिकायत को इस आधार पर खारिज कर दिया कि याचिकाकर्ता-कंपनी के निदेशक मंडल का कोई संकल्प नहीं था जो मजिस्ट्रेट अदालत के समक्ष कंपनी का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति को अधिकृत करता था। हालांकि अपीलकर्ता ने सत्र न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण की दायर की दी जो निरर्थक हो गई और उसने धारा 482 द०प्र०स० को लागू करते हुए उच्च न्यायालय का रुख किया। एकल न्यायाधीश ने अपीलकर्ता की याचिका को इस तथ्य के बावजूद खारिज कर दिया कि अपीलकर्ता ने यह दिखाने के लिए संकल्प की एक प्रति प्रस्तुत की कि कंपनी ने विशेष व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष शिकायत पेश करने के लिए अधिकृत किया था। उच्च न्यायालय ने याचिका को खारिज करते हुए इस प्रकार कहा:

पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख को देखने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि इस न्यायालय के अभिलेख पर दायर किया गया संकल्प पृष्ठ 13 पर किसी भी व्यक्ति द्वारा प्रमाणित नहीं किया गया है। यदि यह अप्रमाणित प्रति है, तो इसे सही और सच्ची प्रति के रूप में कितनी दूर ले जाया जा सकता है। लेकिन कोई भी इसकी शुद्धता के बारे में जिम्मेदारी लेने के लिए इच्छुक नहीं है। यह गंभीर संदेह का विषय है कि इस तरह के प्रस्ताव को याचिकाकर्ता के लाभ के लिए आकर्षित करना चाहिए, क्योंकि यह एक सिविल सूट नहीं है। यह एक आपराधिक मुकदमा है। मुकदमा चलाने का प्राधिकार, मंजूरी की प्रकृति का होने के कारण, निदेशक मंडल को किसी भी व्यक्ति को एलडी की प्रस्तुति में किसी भी अपराध के लिए मुकदमा चलाने के लिए अधिकृत

करने से पहले प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर अपना दिमाग लगाना चाहिए। यह कम से कम वर्तमान उद्देश्य के लिए बोधगम्य प्रतीत होता है क्योंकि इस न्यायालय में पहली बार दायर की गई बातों को स्वीकार करते हुए अतिरिक्त साक्ष्य लेने की अनुमति मांगने के लिए किसी भी न्यायालय के समक्ष कोई आवेदन दायर नहीं किया गया है।

3. दोनों पक्षों को सुनने के बाद हमें अपने सामने चुनौती दिए गए आदेशों का समर्थन करना मुश्किल लगता है। एक कंपनी केवल मानव एजेंसी के माध्यम से शिकायत दर्ज कर सकती है। कंपनी की ओर से शिकायत पेश करने वाले व्यक्ति ने दावा किया कि वह कंपनी का अधिकृत प्रतिनिधि है। प्रथम दृष्टया, निचली अदालत को इसे उस समय स्वीकार कर लेना चाहिए था जब शिकायत पेश की गई थी। यदि यह साक्ष्य का मामला है जब अभियुक्त ने शिकायत प्रस्तुत करने के लिए उक्त व्यक्ति के अधिकार पर विवाद किया था, तो शिकायतकर्ता को इसे साबित करने का अवसर दिया जाना चाहिए था, लेकिन वह अवसर केवल तभी दिया जाना चाहिए जब मुकदमा शुरू हो। इस आधार पर दहलीज पर शिकायत को खारिज करना कि व्यक्ति ने संकल्प की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत नहीं की है, बहुत जल्दबाजी में की गई कार्रवाई प्रतीत होती है। इसलिए, हम आक्षेपित आदेशों को रद्द करते हैं और विचारण न्यायालय को मुकदमे को आगे बढ़ाने और कानून के अनुसार इसका निपटारा करने का निर्देश देते हैं। पक्षकारों को 31.01.2000 को निचली अदालत के समक्ष पेश होने का निर्देश दिया जाता है।

40. इसके अलावा, उक्त मुद्दा मेसर्स **एमएमटीसी लिमिटेड बनाम मेडचल केमिकल्स एंड फार्मा (पी) लिमिटेड (2002) 1 एस.सी.सी. 234** में विचार के लिए आया, जिसमें इसे निम्नानुसार अवधारित किया गया था।

11. इस न्यायालय ने, जहां तक विश्व मित्तर बनाम ओपी पोद्दार [(1983) 4 एस.सी.सी. 701: 1984 एस.सी.सी. (क्रिल०) 29] के मामले में माना है कि यह स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति संज्ञान लेने के हकदार मजिस्ट्रेट के समक्ष अपराध का गठन करने वाले तथ्यों की शिकायत दर्ज करके आपराधिक कानून को गति में स्थापित कर सकता है। यह माना गया है कि कोई भी अदालत केवल इस आधार पर संज्ञान लेने से इनकार नहीं कर सकती है कि शिकायतकर्ता शिकायत दर्ज करने के लिए सक्षम नहीं था। यह माना गया है कि यदि कोई विशेष क़ानून अपराधों को निर्धारित करता है और क़ानून के तहत ऐसे अपराधों का संज्ञान लेने के लिए कोई विशेष प्रावधान करता है, तो मजिस्ट्रेट से अपराध का संज्ञान लेने का अनुरोध करने वाले शिकायतकर्ता को क़ानून द्वारा निर्धारित पात्रता मानदंड को पूरा करना होगा। प्रस्तुत मामले में, धारा 142 द्वारा निर्धारित एकमात्र पात्रता मानदंड यह है कि शिकायत प्राप्तकर्ता या धारक द्वारा नियत समय में होनी चाहिए। यह मानदंड संतुष्ट है क्योंकि शिकायत अपीलकर्ता कंपनी के नाम पर और उसकी ओर से है।

*12. **एसोसिएटेड सीमेंट कंपनी लिमिटेड बनाम केशवानंद [(1998) 1 एस.सी.सी. 687: 1998 एस.सी.सी. (क्रिल०) 475]** के मामले में इस न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि शिकायतकर्ता को एक शारीरिक व्यक्ति होना चाहिए जो अदालत में शारीरिक रूप से उपस्थित होने में सक्षम हो। यह माना गया है कि यदि कोई शिकायत किसी निराकार व्यक्ति (जैसे कंपनी या निगम) के नाम पर की जाती है, तो यह आवश्यक है कि एक प्राकृतिक*

व्यक्ति अदालत में ऐसे न्यायिक व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करे। यह माना जाता है कि अदालत सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए प्राकृतिक व्यक्ति को शिकायतकर्ता मानती है। यह माना जाता है कि जब शिकायतकर्ता एक कॉर्पोरेट निकाय होता है तो यह कानूनी शिकायतकर्ता होता है, और उसे आवश्यक रूप से अदालत की कार्यवाही में पूर्व का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक व्यक्ति को वास्तविक शिकायतकर्ता के रूप में संबद्ध करना चाहिए। यह भी माना गया है कि कोई भी मजिस्ट्रेट इस बात पर जोर नहीं देगा कि वह व्यक्ति, जिसका बयान पहली बार में शपथ पर लिया गया था, कार्यवाही के अंत तक कंपनी का प्रतिनिधित्व करना जारी रख सकता है। यह माना गया है कि ऐसे अवसर हो सकते हैं जब अलग-अलग व्यक्ति कंपनी का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। यह माना गया है कि यह कानूनी शिकायतकर्ता कंपनी के लिए खुला है कि वह अदालत में कंपनी का प्रतिनिधित्व करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को भेजने के लिए अदालत की अनुमति ले सकती है। इस प्रकार, यह मानते हुए भी, कि शुरू में कोई अधिकार नहीं था, फिर भी कंपनी किसी भी स्तर पर उस दोष को ठीक कर सकती है। बाद के चरण में कंपनी एक ऐसे व्यक्ति को भेज सकती है जो कंपनी का प्रतिनिधित्व करने में सक्षम हो। इस प्रकार शिकायतों को इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता था।

41. भूपेश राठौड़ (उपरोक्त) में, यह देखा गया था कि शिकायत को इस तथ्य के कारण सीमा पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि उसने प्रस्तर-19 से 22 में प्राधिकरण के तथ्य का खुलासा नहीं किया था, यह निम्नानुसार देखा गया था।

"19. उपरोक्त सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में हमें प्रतिपक्षी की इस दलील से निपटना होगा कि शिकायत सक्षम शिकायतकर्ता द्वारा दायर नहीं की गई थी क्योंकि यह मामला है कि ऋण कंपनी द्वारा दिया गया था। शिकायत दर्ज करने की कोशिश करने वाली कॉर्पोरेट इकाई के संबंध में शासी सिद्धांत क्या होंगे, एसोसिएटेड सीमेंट कंपनी लिमिटेड बनाम केशवानंद 2 में इस न्यायालय के फैसले में एक स्पष्टीकरण पाया जा सकता है। यदि कंपनी के नाम पर कोई शिकायत की गई थी, तो यह आवश्यक है कि एक प्राकृतिक व्यक्ति अदालत में ऐसे न्यायिक व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करे और अदालत सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए प्राकृतिक व्यक्ति को देखे। इस संदर्भ में यह टिप्पणी की गई थी कि निकाय कॉर्पोरेट एक कानूनी शिकायतकर्ता है, जबकि मनुष्य अदालत की कार्यवाही में पूर्व का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक वास्तविक शिकायतकर्ता है। इस प्रकार, कोई भी मजिस्ट्रेट इस बात पर जोर नहीं दे सकता है कि जिस व्यक्ति का बयान केवल शपथ पर लिया गया था, वह कार्यवाही के अंत तक कंपनी का प्रतिनिधित्व करना जारी रख सकता है। इतना ही नहीं, भले ही शुरू में कोई अधिकार न हो, कंपनी किसी भी स्तर पर एक सक्षम व्यक्ति को भेजकर उस दोष को ठीक कर सकती है। उपरोक्त निर्णय को इस न्यायालय के बाद के निर्णय में भी नोट किया गया था।

20. हम पाते हैं कि उपरोक्त उद्धृत न्यायिक उदाहरणों का उल्लंघन नीचे के न्यायालयों द्वारा किया गया है। उच्च न्यायालय ने शिकायतकर्ता की पहचान की अस्पष्टता और कंपनी द्वारा दिए जा सकने वाले ऋण की वैधता के साथ इसके संबंध पर भी चर्चा शुरू की, कुछ ऐसा जिसमें जाने की आवश्यकता नहीं थी।

21. यदि हम उस शिकायत के प्रारूप को देखें जिसे हमने ऊपर निकाला है, तो यह बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रबंध निदेशक ने कंपनी की ओर से शिकायत दर्ज की है। एक प्रारूप हो सकता है जहां कंपनी के नाम का वर्णन पहले किया जाता है, प्रबंध निदेशक के माध्यम से मुकदमा दायर किया जाता है, लेकिन केवल इसलिए कोई मूलभूत दोष नहीं हो सकता है क्योंकि प्रबंध निदेशक का नाम पहले बताया गया है और उसके बाद कंपनी में अवधारित पद है।

22. यह भी ध्यान रखना प्रासंगिक है कि शिकायत के साथ बोर्ड के संकल्प की एक प्रति दायर की गई थी। कंपनी द्वारा विचारण न्यायालय में एक हलफनामा अभिलेख पर लाया गया था, जिसमें प्रबंध निदेशक के पक्ष में प्राधिकार के तथ्य की पुष्टि की गई थी। एक प्रबंधक या एक प्रबंध निदेशक आमतौर पर बहुत ही नामकरण से अपने दिन-प्रतिदिन के प्रबंधन के लिए मामलों कंपनी के प्रभारी व्यक्ति के रूप में लिया जा सकता है और गतिविधि के भीतर निश्चित रूप से सुनवाई को गति में स्थापित करने के लिए नागरिक कानून या आपराधिक कानून के तहत अदालत से संपर्क करने के कार्य को बुला रहा होगा। शिकायत का निवारण करने के लिए केवल इसलिए कि शिकायत का मुख्य भाग करता है प्राधिकरण के बारे में विस्तार से नहीं बताएं। कंपनी होने के नाते कृत्रिम व्यक्ति को एक व्यक्ति/अधिकारी के माध्यम से कार्य करना पड़ता था, जिसमें तार्किक रूप से अध्यक्ष या प्रबंध निदेशक शामिल होते थे। केवल प्राधिकरण के अस्तित्व की पुष्टि की जा सकती है।

42. फिर भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **हरियाणा राज्य सहकारी आपूर्ति और विपणन संघ लिटेड बनाम जयम टेक्सटाइल्स और अन्य (2014) 4 एस.सी.सी. 704** में निम्नानुसार अवलोकन किया।

*"6. पक्षों के अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख पर सामग्री का अवलोकन करने के बाद, हम पाते हैं कि अपीलकर्ता फेडरेशन के निदेशक मंडल द्वारा स्वीकृत प्राधिकरण को नीचे की अदालतों के समक्ष नहीं रखा गया था। लेकिन, हम देख सकते हैं कि अपीलकर्ता फेडरेशन द्वारा न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष एक विशिष्ट कथन किया गया था कि उक्त जनरल पावर ऑफ अटॉर्नी सीसी संख्या-1409 वर्ष 1995 से जुड़े मामले में दायर की गई थी, जिसे प्रतिपक्षियों द्वारा न तो अस्वीकार किया गया है और न ही विवादित किया गया है। किसी भी मामले में, हमारी राय में, यदि नीचे की अदालतें संतुष्ट नहीं थीं, तो अपीलकर्ता फेडरेशन को प्राधिकरण वाले दस्तावेज़ को अभिलेख पर रखने और कानून के अनुसार इसे साबित करने का अवसर दिया जाना चाहिए था। ऐसा इसलिए है क्योंकि प्रक्रियात्मक दोष और अनियमितताएं, जो इलाज योग्य हैं, को मूल अधिकारों को हराने या अन्याय का कारण बनने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। प्रक्रिया, न्याय के लिए एक दासी, को कभी भी किसी भी दमनकारी या दंडात्मक उपयोग द्वारा न्याय से इनकार करने या अन्याय को बनाए रखने का एक उपकरण नहीं बनाया जाना चाहिए। (देखें **उदय शंकर त्रियार बनाम राम कलेवर प्रसाद सिंह [(2006) 1 एस.सी.सी. 75]**।*

43. शिकायत दर्ज करने वाले व्यक्ति को एक फर्म द्वारा गैर-प्राधिकरण का मुद्दा और इसके प्रभाव को पद्मवती फाइननेस बनाम मोहम्मद योसुफ अली: आपराधिक अपील संख्या-3608 वर्ष 2009 में 05.07.2023 को निर्णय दिया गया, जिसमें यह निम्नानुसार देखा गया।

"7. शिकायतकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि शिकायतकर्ता साझेदारी फर्म है। शिकायतकर्ता फर्म के भागीदारों में से एक है, जिसने अधिनियम की धारा 138 और 142 के तहत आरोपी के खिलाफ शिकायत दर्ज करने की अनुमति दी है। इसलिए विचारण न्यायालय ने आरोपी को इस आधार पर बरी करना उचित नहीं है कि शिकायतकर्ता उस फर्म द्वारा अधिकृत नहीं था, जिसने अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत दर्ज की थी।

24. मुकदमे के दौरान भी, अभियुक्त ने यह साबित करने के लिए किसी भी प्रकार का सबूत पेश नहीं किया था कि फर्म अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध के लिए उस पर मुकदमा चलाने का इरादा नहीं कर रही है और फर्म का उस पर मुकदमा चलाने का कोई इरादा नहीं है। इस मामले को ध्यान में रखते हुए, फर्म का प्रतिनिधित्व करने वाला शिकायतकर्ता अधिनियम की धारा 138 के प्रावधानों को लागू करके आरोपी से फर्म को देय राशि की बरामदगी के लिए फर्म की ओर से शिकायत दर्ज करने के लिए सक्षम है।

44. मामले के तथ्यों में उपरोक्त उल्लिखित निर्णयों में निर्धारित कानून के सिद्धांतों को लागू करते हुए, एक अनूठा निष्कर्ष निकाला गया है कि भले ही शिकायतकर्ता के पास कोई प्राधिकरण नहीं था, फिर भी शिकायत को सीमा पर खारिज नहीं किया जा सकता है क्योंकि यदि आवश्यक हो तो प्राधिकरण का उत्पादन करने का अवसर दिया जाना है। एक बार स्थिति ऐसी होने के बाद, आवेदकों के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता के तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

45. अगला मुद्दा यह है कि क्या आवेदक के खिलाफ प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा दर्ज की गई शिकायत पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 के तहत अनिवार्य आवश्यकता की पुष्टि करती है। उक्त मुद्दे के समाधान के लिए, शिकायत के प्रस्तर-1 में किए गए प्रासंगिक दावों को उद्धृत करना उचित होगा।

"(1) यह कि प्रार्थी परिवादी मैसर्स मैटल प्रोडक्ट्स /, सी-33, फाउण्ड्री नगर, थाना एत्माउद्दौला, आगरा का पार्टनर है, जो कि बेयर इनसुलेटेड कॉपर एवं एल्युमिनियम वायर के उत्पादनकर्त /ा एवं आपूर्तिकर्ता है। विपक्षीगण अभियुक्तगण नं० /2, 3, व 4 कोट्सन्स प्राइवेट लि० विपक्षी नं०)1) के मैनेजिंग डायरेक्टर एवं डायरेक्टर्स हैं तथा कम्पनी के लेन प्रतिदिन के कार्यों के लिए उत्तरदायी व जिम्मेदार-देन व व्यापार तथा दिन- हैं।"

46. शिकायत के प्रस्तर-1 के लिए एक विहंगम पठन से पता चलता है कि यह कहा गया है कि यहां आवेदक कंपनी के निदेशक हैं और वे वित्तीय और व्यावसायिक लेनदेन सहित कंपनी के दिन-प्रतिदिन के मामलों के लिए जवाबदेह और जिम्मेदार हैं।

47. आवेदकों के अधिवक्ता का कहना है कि उपरोक्त पुनरावृत्ति पर्याप्त नहीं है ताकि आवेदकों को अपराध के कमीशन के लिए जिम्मेदार बनाया जा सके, खासकर जब कथन धारा 141 की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं हैं। अशोक शेवकरमानी (उपरोक्त) में निर्णय पर भरोसा किया गया है, जिसमें निम्नलिखित देखा गया था।

"5. हमने शिकायत के समर्थन में शिकायत और हलफनामे का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया है। शिकायत के प्रस्तर-4 में, यह कहा गया है कि आरोपी संख्या-1 वह कंपनी है जिसके खाते पर दो चेक जारी किए गए थे और आरोपी संख्या-2 आरोपी संख्या-1 का प्रबंध निदेशक है। वर्तमान अपीलकर्ताओं को आरोपी संख्या-1 - कंपनी के निदेशक के रूप में वर्णित किया गया है। चेक पर आरोपी संख्या-2 के हस्ताक्षर थे जो आरोपी संख्या-1 कंपनी के प्रबंध निदेशक हैं। प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता के मामले के अनुसार भी एकमात्र ठोस कथन शिकायत के प्रस्तर-7 में पाए जाते हैं जो इस प्रकार पढ़ते हैं:

7. अभियुक्त 2 से 7 आरोपी संख्या-1 कंपनी के व्यावसायिक लेनदेन से पूरी तरह अवगत हैं। वे सभी आरोपी संख्या-1 कंपनी के लेनदेन के लिए संयुक्त रूप से और अलग-अलग उत्तरदायी हैं। सभी अभियुक्तों को खाते में शेष राशि के बिना उपरोक्त चेक जारी करने के बारे में पूरी तरह से जानकारी है। वे इस बात से भी पूरी तरह वाकिफ हैं कि चेक अनादर हो जाएंगे। यह स्पष्ट रूप से स्थापित करता है कि शिकायतकर्ता को धोखा देने और धोखा देने के इरादे से सभी अभियुक्तों ने चेक जारी किए हैं और शिकायतकर्ता को चेक प्रस्तुत करने का निर्देश दिया है। इसलिए, आरोपियों ने उपरोक्त चेक पूरी तरह से जानते हुए जारी किए हैं, कि उनके खाते में कोई धनराशि नहीं है। नोटिस मिलने के बाद 15 दिन के भीतर आरोपी के पास चेक की राशि नहीं है। चेक कानूनी रूप से लागू करने योग्य ऋण और शिकायतकर्ता के दायित्व के लिए जारी किए जाते हैं। इसलिए, उन्होंने एक अपराध किया है, जो पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत दंडनीय है।

8. अब हम प्रस्तर-7 में किए गए कथनों पर आते हैं। सबसे पहले, यह कहा जाता है कि सभी निदेशक आरोपी संख्या-1 कंपनी के लेनदेन के लिए उत्तरदायी थे। दूसरे, यह कहा गया है कि सभी अभियुक्त शिकायत के चेक जारी करने के विषय के बारे में पूरी तरह से जानते थे, और वे यह भी जानते थे कि चेक का अनादर किया जाएगा। इसके अलावा, यह आरोप लगाया गया है कि सभी आरोपियों को पता था कि आरोपी संख्या-1 - कंपनी के खाते में कोई धन नहीं था।

9. पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 की उप-धारा 1 में शिकायतकर्ता को यह कहने की आवश्यकता थी कि अपराध के कमीशन के समय वर्तमान अपीलकर्ता कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए कंपनी के प्रभारी थे, और कंपनी के प्रति जिम्मेदार थे। प्रस्तुत मामले में, दूसरे प्रतिपक्षी ने जो आरोप लगाया है, वह यह

है कि अपीलकर्ता कंपनी के लेनदेन के लिए उत्तरदायी थे और वे चेक जारी करने और चेक के अनादर के बारे में पूरी तरह से जानते थे।

10. इसलिए, भले ही हम शिकायत में दलीलों के बारे में व्यापक और उदार दृष्टिकोण अपनाने का निर्णय लेते हैं, हम यह निष्कर्ष निकालने में असमर्थ हैं कि धारा 141 पराक्रम्य लिखत अधिनियम की उप-धारा 1 की आवश्यकताओं का अनुपालन दूसरे प्रतिपक्षी द्वारा किया गया था। पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 की उप-धारा (1) द्वारा आवश्यक सबसे महत्वपूर्ण कथन यह है कि निदेशक कंपनी के संचालन के प्रभारी थे, और जिम्मेदार थे। अपीलकर्ता न तो चेक पर हस्ताक्षरकर्ता हैं और न ही पूर्णकालिक निदेशक हैं। "एस.पी. मणि और मोहन डायरी बनाम डॉ. स्नेहलता एलंगोवन"1 के मामले में निर्णय का कोई आवेदन नहीं होगा क्योंकि प्रस्तुत मामले में, वैधानिक नोटिस आरोपी को नहीं दिया गया था। जाहिर है, उच्च न्यायालय ने शिकायत में उपरोक्त दो स्पष्ट कमियों का उल्लेख नहीं किया है।

17. शिकायतों में दिए गए कथन जो इन तीन अपीलों की विषय वस्तु हैं, समान हैं। हम प्रस्तर-1 में तीन शिकायतों (शिकायत मामले संख्या-74 वर्ष 2011 में) में किए गए कथनों का उल्लेख कर रहे हैं:

"1) यह प्रस्तुत किया जाता है कि शिकायतकर्ता श्री चक्र कॉटन ट्रेडर्स का मालिक है, जो कॉटन में व्यवसाय कर रहा है, बेयरिंग डोर संख्या-3/917-I, श्री चक्रा निलयम, वाईएमआर कॉलोनी, प्रोद्दातुर टाउन-516360, कडप्पा डिस्ट्रिक्ट, आंध्र प्रदेश का निवासी है।

आरोपी संख्या-1 प्राइवेट लिमिटेड संबंधित कंपनी है और कंपनी अधिनियम के तहत पंजीकृत है। आरोपी संख्या-2 आरोपी संख्या-1 का अध्यक्ष है। आरोपी संख्या-3 आरोपी संख्या-2 का प्रबंध निदेशक है, आरोपी संख्या-4 से 7 आरोपी संख्या-1 कंपनी के निदेशक हैं और आरोपी संख्या-2 से 7 कंपनी का प्रबंधन कर रहे हैं और कंपनी के दिन-प्रतिदिन के मामलों में व्यस्त हैं और सभी कंपनी का प्रबंधन कर रहे हैं और कंपनी के प्रभारी भी हैं और सभी आरोपी संख्या-1 कंपनी के कृत्यों के लिए संयुक्त रूप से और अलग-अलग उत्तरदायी हैं।

21. धारा 141 सामान्य नियम का अपवाद है कि जब दंडात्मक प्रावधान की बात आती है तो कोई प्रतिनिधिक दायित्व नहीं हो सकता है। प्रतिनिधिक दायित्व तब आकर्षित होता है जब धारा 141 की उप-धारा 1 की सामग्री संतुष्ट हो जाती है। धारा में प्रावधान है कि प्रत्येक व्यक्ति जो उस समय अपराध किया गया था, कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए कंपनी का प्रभारी था, और कंपनी के साथ-साथ कंपनी को पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध का दोषी माना जाएगा

22. धारा 141 की उप-धारा 1 के आलोक में, हमने इन तीन अपीलों की शिकायत विषय वस्तु में किए गए कथनों का अवलोकन किया है। शिकायतों के प्रस्तर-1 में आरोप यह है कि अपीलकर्ता कंपनी का प्रबंधन कर रहे हैं और कंपनी के दिन-प्रतिदिन के मामलों में व्यस्त हैं। यह भी कहा गया है कि वे कंपनी के प्रभारी भी हैं

और आरोपी संख्या-1 कंपनी के कृत्यों के लिए संयुक्त रूप से और अलग-अलग उत्तरदायी हैं। पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 की उप-धारा 1 की आवश्यकता कुछ अलग और उच्चतर है। प्रत्येक व्यक्ति जिसे धारा 141 पराक्रम्य लिखत अधिनियम की उप-धारा 1 के आधार पर शामिल करने की मांग की जाती है, वह एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो अपराध किए जाने के समय कंपनी का प्रभारी था और कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए जिम्मेदार था। केवल इसलिए कि कोई कंपनी के मामलों का प्रबंधन कर रहा है, वह कंपनी के व्यवसाय के संचालन या कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए जिम्मेदार व्यक्ति का प्रभारी नहीं बनता है। उदाहरण के लिए, किसी दिए गए मामले में, किसी कंपनी का प्रबंधक कंपनी के व्यवसाय का प्रबंधन कर सकता है। केवल इस आधार पर कि वह कंपनी के व्यवसाय का प्रबंधन कर रहा है, उसे पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 की उप-धारा 1 के आधार पर शामिल नहीं किया जा सकता है।

48. उक्त मामले में एकमात्र दावा यह था कि सभी आरोपी कंपनी के लेन-देन के लिए संयुक्त रूप से और गंभीर रूप से उत्तरदायी थे और सभी आरोपी खाते में शेष राशि के बिना उपरोक्त चेक जारी करने के बारे में पूरी तरह से जानते हैं और वे चेक के अनादर होने के बारे में भी पूरी तरह से जानते हैं। वास्तव में, उक्त कथन पूरी तरह से अपर्याप्त हैं और धारा 141 के अनुरूप नहीं हैं और आगे उक्त मामले में अपीलकर्ता न तो चेक का हस्ताक्षरकर्ता था और न ही पूर्णकालिक निदेशक।

49. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय के प्रस्तर-17 में इस तथ्य पर भी ध्यान दिया था कि अभियुक्त के खिलाफ शिकायत में इतना दावा किया गया था कि आरोपी संख्या-2 से 7 कंपनी का प्रबंधन कर रहे थे और कंपनी के दिन-प्रतिदिन के मामलों में व्यस्त थे और सभी कंपनी का प्रबंधन कर रहे हैं और कंपनी के प्रभार भी हैं और कृत्यों के लिए संयुक्त रूप से और गंभीर रूप से उत्तरदायी हैं। यह आवश्यकता भी अपर्याप्त है।

50. प्रस्तुत मामले में, आवेदकों के खिलाफ विशिष्ट पुनरावृत्ति है जो पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 के तहत आवश्यकता के अनुसार है।

51. पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 के तहत अनिवार्य आवश्यकता के बारे में मुद्दा **आशुतोष अशोक परसरामपुरिया (उपरोक्त) में विचार के लिए आया**, जिसमें निम्नलिखित को निम्नानुसार देखा गया था।

"25. हम इस मामले में उन निदेशकों के साथ चिंतित हैं जो चेक पर हस्ताक्षरकर्ता नहीं हैं। जहां तक उन निदेशकों का संबंध है जो चेक पर हस्ताक्षरकर्ता नहीं हैं या जो प्रबंध निदेशक या संयुक्त प्रबंध निदेशक नहीं हैं, पूर्वोक्त निर्णय में निकाले गए निष्कर्षों से यह स्पष्ट है कि पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 सपठित धारा 138 के तहत दायर शिकायत में यह कहना आवश्यक है कि प्रासंगिक समय पर जब अपराध किया गया था, निदेशक कंपनी के व्यवसाय के संचालन के प्रभारी थे और जिम्मेदार थे।

26. यह कथन महत्व रखता है क्योंकि यह बुनियादी और आवश्यक कथन है जो मजिस्ट्रेट को निदेशक के खिलाफ प्रक्रिया जारी करने के लिए राजी करता है। यही कारण है कि इस न्यायालय ने एसएमएस फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड (उपरोक्त) में कहा कि शिकायत में कथन की आवश्यकता के प्रश्न पर पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 और 141 में निहित प्रावधानों के आधार पर विचार किया जाना चाहिए, जिसे धारा 200 से 204 द०प्र०स० में संदर्भित मजिस्ट्रेट की शक्तियों के आलोक में पढ़ा जाता है, जो कानून के अनुसार कार्रवाई करने के लिए मजिस्ट्रेट के विवेक को मान्यता देता है। इस प्रकार, यह जरूरी है कि यदि यह मूल कथन गायब है, तो मजिस्ट्रेट प्रक्रिया जारी नहीं करने में कानूनी रूप से उचित है।

27. मामले में, शिकायत को समग्र रूप से पढ़ते हुए, यह स्पष्ट है कि शिकायत में आरोप हैं कि जिस समय कंपनी द्वारा चेक जारी किए गए थे और बैंक द्वारा अनादर किए गए थे, अपीलकर्ता कंपनी के निदेशक थे और इसके व्यवसाय के लिए जिम्मेदार थे और सभी अपीलकर्ता कंपनी के व्यवसाय में शामिल थे और सभी अपीलकर्ता कंपनी के व्यवसाय के लिए जिम्मेदार थे अतिथि। शिकायत को पढ़ते समय विभाजित करना उचित नहीं हो सकता है ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि समग्र रूप से आरोप पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। शिकायत विशेष रूप से उस समय को संदर्भित करती है जब चेक जारी किए गए थे, उनकी प्रस्तुति, अनादर और अनादर की सूचना के बावजूद भुगतान करने में विफलता। दी गई परिस्थितियों में, हमें अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क को खारिज करने में कोई संकोच नहीं है।

28. निर्विवाद रूप से, 2 जून 2012 को 10,00,000/- रुपये (दस लाख रुपये मात्र) का चेक प्रस्तुत करने पर, खाते में "अपर्याप्त धन" के कारण चेक का अनादर कर दिया गया था और उचित अनुपालन करने के बाद, शिकायत दर्ज की गई थी और शिकायतकर्ता का बयान दर्ज करने के बाद, विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा कार्यवाही शुरू की गई थी और धारा 482 द०प्र०स० के तहत दायर याचिका को खारिज करने में उच्च न्यायालय द्वारा कोई त्रुटि नहीं की गई है। आक्षेपित निर्णय।

29. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता का यह प्रस्तुत करना कि वे कंपनी रजिस्ट्रार द्वारा जारी फॉर्म संख्या-32 द्वारा अभिलेख पर रखे गए दस्तावेजी साक्ष्य के आलोक में गैर-कार्यकारी निदेशक हैं, दोनों अपीलकर्ताओं को कंपनी के निदेशक के रूप में दिखाया गया है, अभी भी अपीलकर्ताओं के लिए मुकदमे के दौरान औचित्य साबित करने के लिए खुला है।

52. महत्वपूर्ण बात यह है कि इस स्तर पर क्या आवश्यक है एक तथ्य यह है कि अभियुक्त को दोषी ठहराने से पहले इस तथ्य का एक विशिष्ट पुनरावृत्ति होना चाहिए कि आरोपी प्रभारी थे और कंपनी के साथ-साथ कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए जिम्मेदार थे, उस समय जब अपराध किया गया था। यहां, प्रस्तुत मामले में, उक्त आवश्यकता पूरी हो गई है।

53. ए.के. रवि नेदुंगडी (उपरोक्त) में निर्णय पर इस प्रकार रखी गई निर्भरता का संबंध है, यह आवेदकों को कोई सहायता और सहायता नहीं है, खासकर जब आवेदक कंपनी के अंशकालिक गैर-कार्यकारी निदेशक हैं/थे। हालांकि, प्रस्तुत मामले में, पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 के अनुरूप एक विशिष्ट कथन है और आवेदक अंशकालिक गैर-कार्यकारी निदेशक नहीं हैं। जहां तक रवींद्र नाथबाजपे (उपरोक्त) में निर्णय पर रखी गई निर्भरता का संबंध है, यह आवेदकों के लिए किसी भी तरह की सहायता नहीं करेगा, खासकर जब यहां, प्रस्तुत मामले में, पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 के अनुसार शिकायत में विशिष्ट पुनरावृत्ति है। प्रेम राज (उपरोक्त) में निर्णय पर भी भरोसा रखा गया हैहालांकि, उक्त मामला लागू नहीं होता है क्योंकि इसमें शामिल प्रश्न अभियुक्त के पक्ष में दीवानी कार्यवाही का फैसला होने के बाद आपराधिक कार्यवाही जारी रखने के संबंध में था। रघु लक्ष्मीनारायण (उपरोक्त) के मामले में निर्णय के संबंध में, कानून के इस प्रस्ताव से कोई विवाद नहीं है कि साझेदारी या एकल स्वामित्व अलग-अलग हैं और उनकी स्थिति और प्रवृत्ति भी अलग है।

54. अगला मुद्दा जो भी विचार के लिए आता है, वह पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत शुरू की गई और लंबित कार्यवाही पर 09.06.2024 को एन.सी.एल.टी., दिल्ली द्वारा आई.बी.सी. संहिता की धारा 14 के तहत अधिस्थगन लगाने का प्रभाव है। आवेदकों के वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, एक बार रोक लगाने के बाद, कॉर्पोरेट देनदार और उसके निदेशकों के खिलाफ लंबित सभी आपराधिक कार्यवाही पर रोक लगा दी जाएगी, जिसका अर्थ है कि पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत कोई आपराधिक कार्यवाही जारी नहीं रह सकती है।

55. क्या आई.बी.सी. संहिता की धारा 14 का संरक्षण कंपनी के निदेशकों के लिए आकर्षित होता है, यह मुद्दा अब पी. मोहनराज (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के रूप में एकीकृत नहीं है, जिसमें निम्नलिखित देखा गया था।

77. जहां तक कॉर्पोरेट देनदार के प्रबंधन या नियंत्रण में निदेशकों/व्यक्तियों का संबंध है, उनके खिलाफ धारा 138/141 की कार्यवाही कॉर्पोरेट देनदार के बिना शुरू या जारी नहीं रखी जा सकती है - अनीता हाडा (उपरोक्त) देखें। ऐसा इसलिए है क्योंकि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 कंपनी के साथ-साथ कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए कंपनी के प्रभारी और जिम्मेदार व्यक्तियों की बात करती है। इसलिए, अनीता हाड़ा (उपरोक्त) में न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया: -

51. हम पहले ही राय दे चुके हैं कि श्योरतन अग्रवाल [(1984) 4 एस.सी.सी. 352: 1984 एस.सी.सी. (क्रिल०) 620] में निर्णय सीवी पारेख [(1970) 3 एस.सी.सी. 491: 1971 एस.सी.सी. (क्रिल०) 97] में निर्धारित अनुपात के विपरीत है, जो एक बड़ी पीठ द्वारा है और इसलिए, एक बाध्यकारी मिसाल है। उपरोक्त अनुपात पर, अनिल हाड़ा [(2000) 1 एस.सी.सी. 1: 2001 एस.सी.सी. (क्रिल०) 174] में निर्णय को सही कानून निर्धारित नहीं करने के रूप में माना जाना चाहिए, जहां तक यह कहा गया है कि निदेशक या किसी अन्य अधिकारी पर कंपनी के अभियोग के बिना मुकदमा चलाया जा सकता है। इस बात पर जोर देने की जरूरत नहीं है कि मामला एक

अलग पायदान पर खड़ा होगा जहां कुछ कानूनी बाधा है और लेक्स नॉन कॉगिट एड इम्पॉसिबिलिया का सिद्धांत आकर्षित हो जाता है।

xxx xxx xxx

56. हमने उपरोक्त अंशों का उल्लेख केवल इस बात पर प्रकाश डालने के लिए किया है कि विधायी मंशा के संबंध में प्रावधानों का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए क्योंकि यह दंडात्मक प्रावधानों से संबंधित है और व्यक्तियों के अधिकारों को प्रभावित करने वाला जुर्माना नहीं लगाया जाना चाहिए, चाहे वह न्यायिक संस्थाएं हों या व्यक्तियां, जब तक कि उन्हें आरोपी के रूप में तैयार नहीं किया जाता है। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि सजा की शक्ति विधायिका में निहित है और यह अधिनियम की धारा 141 में पूर्ण है जो स्पष्ट रूप से कंपनी द्वारा अपराध करने की बात करती है। प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने जोरदार आग्रह किया है कि धारा में "साथ ही" शब्द का उपयोग अत्यधिक महत्व रखता है और, इसके जाल में, यह कंपनी के साथ-साथ निदेशक और/या अन्य अधिकारियों को भी लाता है जो कंपनी के कार्यों के लिए जिम्मेदार हैं और इसलिए, निदेशकों या अन्य अधिकारियों के खिलाफ अभियोजन तर्कसंगत है, भले ही कंपनी को आरोपी के रूप में पेश नहीं किया गया हो। "साथ ही" शब्दों को संदर्भ में समझना होगा।

xxx xxx xxx

"58. सख्त निर्माण के सिद्धांत को लागू करते हुए, हमारी सुविचारित राय है कि कंपनी द्वारा अपराध करना दूसरों के प्रतिनिधिक दायित्व को आकर्षित करने के लिए एक स्पष्ट शर्त मिसाल है। इस प्रकार, धारा में दिखाई देने वाले शब्द "साथ ही कंपनी" यह पूरी तरह से स्पष्ट रूप से स्पष्ट करते हैं कि जब कंपनी पर मुकदमा चलाया जा सकता है, तो केवल अन्य श्रेणियों में उल्लिखित व्यक्ति ही याचिका में कथनों और उसके सबूत के अधीन अपराध के लिए परोक्ष रूप से उत्तरदायी हो सकते हैं। कोई भी इस तथ्य से बेखबर नहीं हो सकता कि कंपनी एक न्यायिक व्यक्ति है और इसकी अपनी सम्मान है। यदि इसके खिलाफ कोई खोज दर्ज की जाती है, तो यह इसकी प्रतिष्ठा में एक अवतलता पैदा करेगा। ऐसी स्थितियां हो सकती हैं जब किसी निदेशक को दोषी ठहराए जाने पर कॉर्पोरेट प्रतिष्ठा प्रभावित होती है।

59. हमारे पूर्वोक्त विश्लेषण को देखते हुए, हम इस अप्रतिरोध्य निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अधिनियम की धारा 141 के तहत अभियोजन को बनाए रखने के लिए, एक कंपनी को एक आरोपी के रूप में पेश करना अनिवार्य है। अपराधियों की अन्य श्रेणियों को केवल प्रतिनिधिक दायित्व की कसौटी पर ड्रैग-नेट में लाया जा सकता है क्योंकि यह प्रावधान में ही निर्धारित किया गया है। हम ऐसा सीवी पारेख [(1970) 3 एस.सी.सी. 491: 1971 एस.सी.सी. (क्रिल०) 97] में निर्धारित अनुपात के आधार पर कहते हैं, जो कि तीन-न्यायाधीशों की पीठ का निर्णय है। इस प्रकार, श्योरतन अग्रवाल [(1984) 4 एस.सी.सी. 352: 1984 एस.सी.सी. (क्रिल०) 620] में व्यक्त विचार कानून को सही ढंग से निर्धारित नहीं करता है और तदनुसार, इसे खारिज कर दिया जाता है। अनिल हाड़ा [(2000) 1 एस.सी.सी. 1: 2001 एस.सी.सी. (क्रिल०) 174] में निर्णय को प्रस्तर-51 में बताए गए क्वालीफायर के साथ खारिज कर दिया जाता है। मोदी डिस्टिलरी [(1987)3 एस.सी.सी. 684: 1987 एस.सी.सी.

(क्रिल०) 632] में निर्णय को अपने स्वयं के तथ्यों तक ही सीमित माना जाना चाहिए जैसा कि हमारे द्वारा ऊपर समझाया गया है।

चूंकि कॉर्पोरेट देनदार को आई.बी.सी. की धारा 14 में निहित अधिस्थगन प्रावधान द्वारा कवर किया जाएगा, जिसके द्वारा कॉर्पोरेट देनदार के खिलाफ धारा 138/141 की कार्यवाही जारी रखना और कॉर्पोरेट दिवाला समाधान प्रक्रिया के दौरान उक्त देनदार के खिलाफ धारा 138/141 की कार्यवाही शुरू करना प्रतिबंधित है, इसलिए अनीता हाड़ा (उपरोक्त) में प्रस्तर-51 और 59 में जो कहा गया है वह तब लागू होगा। आई.बी.सी. की धारा 14 में निहित कानूनी बाधा कॉर्पोरेट देनदार के खिलाफ इस तरह की कार्यवाही को जारी रखना या स्थापित करना असंभव बना देगी। इस प्रकार, अधिस्थगन की अवधि के लिए, चूंकि कोई धारा 138/141 कार्यवाही जारी नहीं रह सकती है या सांविधिक रोक के कारण कॉर्पोरेट देनदार के खिलाफ शुरू नहीं की जा सकती है, इसलिए परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 141(1) और (2) में उल्लिखित व्यक्तियों के खिलाफ ऐसी कार्यवाही शुरू या जारी रखी जा सकती है। यह मामला होने के नाते, यह स्पष्ट है कि आई.बी.सी. की धारा 14 में निहित अधिस्थगन प्रावधान केवल कॉर्पोरेट देनदार पर लागू होगा, धारा 141 में उल्लिखित प्राकृतिक व्यक्ति परक्राम्य लिखत अधिनियम के अध्याय XVII के तहत वैधानिक रूप से उत्तरदायी बने रहेंगे।

56. **अजय कुमार राधेश्याम गोयनका (उपरोक्त)** में, निम्नलिखित देखा गया था: -

70. इस प्रकार, मेरा विचार है कि आई.बी.सी. के प्रावधानों के संचालन से, धारा 138 के तहत प्राकृतिक व्यक्तियों के खिलाफ शुरू किया गया आपराधिक अभियोजन पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 सपठित धारा 200 द०प्र०स० समाप्त नहीं होगा।

71. जेआईके इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम अमरलाल बनाम जुमानी के मामले में, इस न्यायालय ने माना कि कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 391 के तहत एक योजना की मंजूरी शिकायतकर्ता की सहमति के बिना पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध का कोई स्वचालित शमन नहीं होगा। न तो धारा 14 और न ही धारा 31 आई.बी.सी. ऐसा परिणाम दे सकती है। धारा 31 आई.बी.सी. द्वारा परिकल्पित बाध्यकारी प्रभाव कॉर्पोरेट देनदार की संपत्ति और प्रबंधन के संबंध में है। समाधान योजना का कोई भी खंड, भले ही निर्णायक प्राधिकरण अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा स्वीकार किया गया हो, द०प्र०स० के कानून प्रावधानों के अनुसार उसके समक्ष कार्यवाही का संचालन और निपटान करने के लिए आपराधिक अदालत की शक्ति और अधिकार क्षेत्र को छीन नहीं सकता है।

72. यह सच है कि धारा 238 आई.बी.सी. के आधार पर, द०प्र०स० के प्रावधानों का प्रभाव होगा, इसके बावजूद कि तत्समय लागू किसी अन्य कानून में निहित है या ऐसे किसी भी कानून के आधार पर प्रभावी होने वाले किसी भी साधन में निहित है। लेकिन, आई.बी.सी. का कोई भी प्रावधान निदेशकों और अधिकारियों के खिलाफ शुरू किए गए आपराधिक अभियोजन को जारी रखने से नहीं रोकता है

अनुवादित

73. यह भी उतना ही सच है कि एक बार जब कॉर्पोरेट देनदार समाधान प्रक्रिया के तहत आता है, तो इसके पूर्व प्रबंध निदेशक कंपनी का प्रतिनिधित्व करना जारी नहीं रख सकते हैं। धारा 305(2) द०प्र०स० में कहा गया है कि जहां एक निगम आरोपी व्यक्ति है या जांच या मुकदमे में आरोपी व्यक्तियों में से एक है, वह जांच या मुकदमे के उद्देश्य के लिए एक प्रतिनिधि नियुक्त कर सकता है और इस तरह की नियुक्ति निगम की मुहर के तहत होने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए, यह केवल समाधान पेशेवर है जो आई.बी.सी. के तहत कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान आरोपी कंपनी का प्रतिनिधित्व कर सकता है। कार्यवाही समाप्त होने के बाद, या तो कॉर्पोरेट इकाई को भंग किया जा सकता है या इसे एक नए प्रबंधन द्वारा लिया जा सकता है जिसमें कंपनी का अस्तित्व बना रहेगा। जब कोई नया प्रबंधन कार्यभार संभालता है, तो उसे कंपनी का प्रतिनिधित्व करने की व्यवस्था करनी होगी। यदि समाधान प्रक्रिया के परिणामस्वरूप कंपनी को भंग कर दिया जाता है, तो स्पष्ट रूप से इसके खिलाफ कार्यवाही समाप्त करनी होगी। लेकिन फिर भी, इसके पूर्व निदेशक स्थिति का लाभ उठाने में सक्षम नहीं हो सकते हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि अनीता हाडा में इस न्यायालय ने अनिल हाड़ा बनाम इंडियन ऐक्रेलिक लिमिटेड में अपने फैसले को खारिज करते हुए भी, जहां तक कि अनिल हाडा कहते हैं कि निदेशक या किसी अन्य अधिकारी पर कंपनी के अभियोग के बिना मुकदमा चलाया जा सकता है, यह मानने के लिए आगे बढ़े कि मामला एक अलग स्तर पर खड़ा होगा जहां कुछ कानूनी बाधा है क्योंकि लेक्स नॉन कॉगिट एड इम्पॉसिबिलिया के सिद्धांत को प्राप्त होता है आकर्षित। यह विशेष रूप से देखा गया कि अनिल हाड़ा में निर्णय को क्वालीफायर के साथ खारिज कर दिया गया है जैसा कि प्रस्तर-51 में कहा गया है।
उसी पर विचार करते हुए, अजीत बाल्से में इस न्यायालय के निर्णय का अनुपात, जिस पर अपीलीय की ओर से मजबूत भरोसा रखा गया है, का कोई फायदा नहीं है।

74. पूर्वोक्त से जो निष्कर्ष निकलता है वह यह है कि आई.बी.सी. के तहत समाधान योजना के अनुमोदन के बाद पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत कॉर्पोरेट देनदार पर मुकदमा चलाने में कठिनाई के लिए, हमें प्राकृतिक व्यक्तियों यानी कॉर्पोरेट देनदार के चेक/निदेशकों के हस्ताक्षरकर्ताओं को अभियोजन से बचने की आवश्यकता नहीं है। कोई व्यक्ति इस तरह की विशिष्ट याचिका पर प्राकृतिक व्यक्तियों को दायित्व से बचने की अनुमति कैसे दे सकता है? ऐसी स्थिति में लैटिन मैक्सिम लेक्स नॉन कॉगिट एड इम्पॉसिबिलिया आकर्षित होता है, जिसका अर्थ है कि कानून किसी व्यक्ति को ऐसा करने के लिए मजबूर नहीं करता है जो वह संभव नहीं कर सकता व्यक्ति। ब्रूम के कानूनी सूक्तियों में कहावत के समर्थन में कई उदाहरणात्मक मामले शामिल हैं। इस कहावत को इस न्यायालय द्वारा राजस्थान राज्य बनाम शमशेर सिंह में अनुमोदन के साथ संदर्भित किया गया है।

75. इस प्रकार, जहां पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत कार्यवाही पहले ही शुरू हो चुकी थी और लंबित रहने के दौरान योजना को मंजूरी दे दी जाती है या कंपनी भंग हो जाती है, निदेशक और अन्य आरोपी इसके विघटन का हवाला देकर अपने दायित्व से बच नहीं सकते हैं। जो भंग किया गया है वह केवल कंपनी है, पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 के तहत कवर किए गए अभियुक्त की व्यक्तिगत दंडात्मक देयता नहीं है।

उन्हें अनीता हाड़ा [अनीता हाडा बनाम गॉडफादर ट्रेवल्स एंड टूर्स (प्रा) लिमिटेड, (2012) 5 एस.सी.सी. 661: (2012) 3 एस.सी.सी. (सीआईवी) 350: (2012) 3 एस.सी.सी. (क्रिल०) 241] में निर्धारित कानून के मद्देनजर अभियोजन का सामना करना जारी रखना होगा। जहां कंपनी समाधान प्रक्रिया के अंत में भी बनी रहती है, इसका एकमात्र परिणाम यह होता है कि पूर्व निदेशक अब इसका प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते हैं।

80. यह तर्क कि धारा 31 आई.बी.सी. के आधार पर ऋण समाप्त हो गया था, पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत कार्यवाही निदेशक/हस्ताक्षरकर्ता के संबंध में जारी नहीं रह सकती है, इस न्यायालय द्वारा सौंपे गए तर्क की रेखा के विपरीत चलेगी कि मुख्य देनदार का "अनैच्छिक अधिनियम" गारंटरों को दोषमुक्त नहीं करेगा।

81. ललित कुमार जैन बनाम भारत संघ [ललित कुमार जैन बनाम भारत संघ, (2021) 9 एस.सी.सी. 321: (2021) 4 एस.सी.सी. (सीआईवी) 527] में इस न्यायालय ने माना है कि समाधान योजना का अनुमोदन अपने आप में गारंटरों के दायित्व के निर्वहन के रूप में काम नहीं करता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि:

(ए) मुख्य देनदार का एक स्वैच्छिक कार्य जिसके परिणामस्वरूप प्रतिभूति का नुकसान होता है, एक गारंटर को उसके दायित्व से मुक्त नहीं करेगा।

(बी) एक निर्वहन जो मुख्य देनदार दिवालियापन में कानून के संचालन द्वारा सुरक्षित कर सकता है (या किसी कंपनी के मामले में परिसमापन कार्यवाही में) उसकी देयता की जमानत को मुक्त नहीं करता है।

82. धारा 138/141 की कार्यवाही के मामले में हस्ताक्षरकर्ता/निदेशक पर भी यही सिद्धांत लागू होता है। हस्ताक्षरकर्ता/निदेशक आई.बी.सी. के तहत कानून के संचालन द्वारा कॉर्पोरेट देनदार द्वारा प्राप्त निर्वहन का लाभ नहीं उठा सकता है।

98. पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अनुसार, जब चेक का अनादर किया गया था और चेक राशि की मांग करने वाला एक वैधानिक नोटिस जारी किया गया था, तो आरोपी को उक्त नोटिस प्राप्त होने की तारीख से 15 दिनों के भीतर चेक राशि का भुगतान करना होगा। जैसे ही उक्त 15 दिन समाप्त हो जाते हैं, कार्रवाई का कारण उत्पन्न होता है। दूसरे शब्दों में, पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध पूर्ण है। एक बार किए गए अपराध के लिए कार्रवाई का कारण सामने आने के बाद, शिकायतकर्ता को पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत दंडात्मक कार्रवाई करने के लिए एक महीने के भीतर आपराधिक अदालत का दरवाजा खटखटाना होगा। इसे स्पष्ट रूप से रखने के लिए, शिकायतकर्ता कानूनी रूप से लागू करने योग्य ऋण की बरामदगी के लिए नहीं, बल्कि वैधानिक नोटिस प्राप्त होने के बावजूद चेक राशि का भुगतान नहीं करके अभियुक्त द्वारा पहले से किए गए अपराध के लिए पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत दंडात्मक कार्रवाई करने के लिए आपराधिक अदालत का दरवाजा खटखटाता है। आपराधिक अदालत के

समक्ष एकमात्र सवाल यह है कि क्या आरोपी द्वारा अपने दायित्व के निर्वहन के लिए जारी किया गया चेक अनादर किया गया था और मांग नोटिस की तामील के बावजूद, क्या उसने राशि का भुगतान नहीं किया था। आई.बी.सी. और पराक्रम्य लिखत अधिनियम के किसी भी प्रावधान में पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत दंडात्मक कार्रवाई की मांग करने के लिए आपराधिक अदालत का दरवाजा खटखटाने से कोई रोक नहीं है।

57. फिर भी राकेश भनोट (उपरोक्त) में, आई.बी.सी. की धारा 14 और 96 और पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के के संबंध में मुद्दे पर विचार किया गया और इसे निम्नानुसार अवधारित किया गया।

10.1. उपरोक्त प्रावधानों से, यह स्पष्ट है कि "कॉर्पोरेट व्यक्ति" शब्द में कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 2(20) के तहत परिभाषित एक कंपनी और एक सीमित देयता भागीदारी शामिल है। हालांकि, निदेशकों और भागीदारों के लिए उपलब्ध सुरक्षा में एक सूक्ष्म अंतर है। साझेदारी फर्म के मामले में, अंतरिम अधिस्थगन न केवल फर्म, बल्कि भागीदारों की भी सुरक्षा करता है। लेकिन किसी कंपनी के मामले में, ऐसी सुरक्षा केवल कंपनी के लिए उपलब्ध है, उसके निदेशकों को नहीं।

इसके अलावा, अंतरिम अधिस्थगन का उद्देश्य धारा 14 के तहत निर्दिष्ट अधिस्थगन से अलग नहीं हो सकता है। धारा 14 से यह भी स्पष्ट है कि अधिस्थगन की अवधि के दौरान कानूनी कार्रवाई से सुरक्षा जमानतदार या दूसरे शब्दों में, व्यक्तिगत गारंटर को उपलब्ध नहीं है। धारा 96 की उप-धारा (1) में "सभी ऋण" और "किसी भी ऋण के संबंध में" शब्दों का उपयोग बिना किसी उद्देश्य के नहीं है, क्योंकि अधिस्थगन का उद्देश्य ऋण की बरामदगी के लिए केवल नागरिक दावे के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करना है। इसलिए, धारा 14 या 96 के तहत निर्धारित अधिस्थगन की ऐसी अवधि केवल नागरिक दावों के खिलाफ सुरक्षा के लिए लागू होने के लिए सीमित है जो बरामदगी के लिए निर्देशित हैं और आपराधिक कार्रवाई से नहीं।

(B) परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881

"138. खाते में निधियों की अपर्याप्तता आदि के लिए चेक का अनादर- जहां किसी व्यक्ति द्वारा किसी बैंकर के पास उसके द्वारा बनाए गए खाते पर किसी अन्य व्यक्ति को किसी भी राशि के भुगतान के लिए उस खाते में से किसी अन्य व्यक्ति को किसी भी राशि के भुगतान के लिए, पूरे या आंशिक रूप से, किसी ऋण या अन्य देयता के निर्वहन के लिए, बैंक द्वारा अवैतनिक रूप से वापस कर दिया जाता है, या तो उस खाते के क्रेडिट में खड़ी राशि के कारण चेक का सम्मान करने के लिए अपर्याप्त है या यह उस बैंक के साथ किए गए समझौते द्वारा उस खाते से भुगतान की जाने वाली राशि से अधिक है, ऐसे व्यक्ति को अपराध किया माना जाएगा और करेगा, इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, कारावास से दंडित किया जा सकता है [एक अवधि जिसे दो वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है], या जुर्माने से, जो चेक की राशि के दोगुने तक बढ़ सकता है, या दोनों के साथ:

बशर्ते कि इस धारा में निहित कुछ भी तब तक लागू नहीं होगा जब तक-

(ए) चेक उस तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर बैंक को प्रस्तुत किया गया है जिस दिन इसे आहरित किया गया है या इसकी वैधता की अवधि के भीतर, जो भी पहले हो;

(ख) आदाता या धारक चेक के नियत समय में, जैसा भी मामला हो, नोटिस देकर उक्त राशि के भुगतान की मांग करता है; चेक के आहर्ता को, चेक की वापसी के संबंध में बैंक से उसके द्वारा सूचना प्राप्त होने के [तीस दिनों के भीतर] भुगतान न किए गए के रूप में; तथा

(ग) इस तरह के चेक का आहर्ता, उक्त नोटिस की प्राप्ति के पंद्रह दिनों के भीतर, चेक के नियत समय में प्राप्तकर्ता को या धारक को, जैसा भी मामला हो, उक्त राशि का भुगतान करने में विफल रहता है।
स्पष्टीकरण- इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "अन्य देयता का ऋण" का अर्थ कानूनी रूप से प्रवर्तनीय ऋण या अन्य देयता है।

141. कंपनियों द्वारा अपराध-

(1) यदि धारा 138 के तहत अपराध करने वाला व्यक्ति एक कंपनी है, तो प्रत्येक व्यक्ति, जो अपराध किए गए समय कंपनी के साथ-साथ कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए कंपनी का प्रभारी था, और उसके प्रति जिम्मेदार था, को अपराध का दोषी माना जाएगा और उसके खिलाफ कार्रवाई की जाएगी और तदनुसार दंडित किया जाएगा:
बशर्ते कि इस उपधारा में निहित कुछ भी किसी व्यक्ति को दंड के लिए उत्तरदायी नहीं बनाएगा यदि वह यह साबित करता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था, या उसने इस तरह के अपराध के कमीशन को रोकने के लिए सभी उचित परिश्रम का प्रयोग किया था:
[बशर्ते कि जहां कोई व्यक्ति किसी कंपनी के निदेशक के रूप में नामित किया जाता है, क्योंकि वह केंद्र सरकार या राज्य सरकार या केंद्र सरकार या राज्य सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण वाले वित्तीय निगम में कोई पद या रोजगार धारण करता है, जैसा भी मामला हो, वह इस अध्याय के तहत अभियोजन के लिए उत्तरदायी नहीं होगा। (2) उपधारा (1) में निहित किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किसी कंपनी द्वारा किया गया है और यह सिद्ध हो गया है कि अपराध किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या कंपनी के अन्य अधिकारी, ऐसे निदेशक की सहमति या मिलीभगत से किया गया है, या उसकी ओर से किसी उपेक्षा के कारण है, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी को भी उस अपराध का दोषी माना जाएगा और उसके खिलाफ कार्यवाही की जाएगी और तदनुसार दंडित किया जाएगा।
स्पष्टीकरण.–इस धारा के प्रयोजनों के लिए, –

(ए) "कंपनी" का अर्थ है कोई भी निकाय कॉर्पोरेट और इसमें एक फर्म या व्यक्तियों का अन्य संघ शामिल है; तथा

(बी) "निदेशक", एक फर्म के संबंध में, फर्म में एक भागीदार का अर्थ है।

10.2. उपरोक्त प्रावधान विशेष रूप से चेक अनादर के मामलों से संबंधित हैं, और इस तरह के अपमान के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों पर आपराधिक मुकदमा चलाया जा सकता है और पराक्रम्य लिखत अधिनियम, 1881 के तहत निर्दिष्ट शर्तों के अनुसार दंडात्मक कार्रवाई की जा सकती है।

11. माना जाता है कि प्रतिपक्षियों/शिकायतकर्ताओं के कहने पर पराक्रम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138/141 के तहत अपराध के लिए अपीलकर्ता/याचिकाकर्ता मुकदमे का सामना कर रहे हैं। ऐसा होने पर, उन्होंने आई.बी.सी. के तहत व्यक्तिगत दिवालिया कार्यवाही शुरू की और धारा 96 आई.बी.सी. के तहत प्रदान की गई अंतरिम स्थगन का जिक्र करते हुए विचारण न्यायालय के समक्ष धारा 138 की कार्यवाही से छूट मांगी। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि आवेदन स्वीकार किए जाने पर, आई.बी.सी. के तहत अधिस्थगन प्रावधान केवल कॉर्पोरेट देनदार, यानी कंपनी को सुरक्षा प्रदान करते हैं, और विशिष्ट बहिष्करण द्वारा व्यक्तिगत गारंटरों को या किसी भी व्यक्ति को नागरिक दायित्व के खिलाफ सुरक्षा प्रदान नहीं करते हैं, जिस पर आपराधिक कार्य करने के लिए मुकदमा चलाया जाता है।

12. दिवाला और दिवालियापन संहिता (आई.बी.सी.) के पीछे विधायी इरादा कॉर्पोरेट देनदारों के वित्तीय संकट के समाधान के लिए एक संरचित ढांचा प्रदान करना, उनके पुनर्वास की सुविधा प्रदान करना और परिसंपत्ति मूल्य को अधिकतम करना सुनिश्चित करना है। धारा 94 या 95 के तहत आवेदन आई.बी.सी. के अध्याय III के अंतर्गत आएगा। धारा 94 के तहत एक आवेदन, जब किसी देनदार द्वारा किसी कंपनी के व्यक्तिगत गारंटर की क्षमता में उसे दिवालिया घोषित करने के लिए लिया जाता है, तो उसे धारा 97 से 119 में प्रक्रियाओं का पालन करके निपटाया जाना है। धारा 94 के तहत दायर आवेदन की जांच समाधान पेशेवर द्वारा की जाती है और धारा 99 के तहत विचार के अनुसार एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है जिसमें आवेदन के अनुमोदन या अस्वीकृति की सिफारिश की जाती है। अंतरिम स्थगन जो आवेदन की प्रस्तुति पर शुरू होता है, धारा 100 के तहत निर्णायक प्राधिकारी के एक आदेश द्वारा आवेदन के प्रवेश पर समाप्त हो जाएगा। प्रवेश पर, धारा 101 के तहत अधिस्थगन लागू हो जाता है। धारा 96 के तहत अंतरिम अधिस्थगन और धारा 101 आई.बी.सी. के तहत अधिस्थगन को कॉर्पोरेट देनदार को सांस लेने की जगह प्रदान करने के लिए डिज़ाइन किया गया है, जिससे उन्हें लेनदार कार्यों के तत्काल खतरे के बिना अपने वित्तीय मामलों को पुनर्गठित करने की अनुमति मिलती है। हालांकि, इस अधिस्थगन का उद्देश्य व्यक्तियों को कॉर्पोरेट ऋण पुनर्गठन के दायरे से बाहर उनके कार्यों से उत्पन्न होने वाली व्यक्तिगत आपराधिक देनदारियों से बचाना नहीं है। संबंधित अपीलकर्ता/याचिकाकर्ता, जिन्होंने धारा 94 आई.बी.सी. के तहत व्यक्तिगत गारंटर के रूप में दिवालिया आवेदन दायर किए हैं, पराक्रम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत अभियोजन से बचने के लिए इस सुरक्षा का विस्तार नहीं कर सकते हैं। भ०द०वि० की धारा 94 के तहत आवेदन दायर करने पर, एक अधिस्थगन लागू होता है, जिसे देनदारों को उनके ऋणों से संबंधित किसी भी कानूनी कार्रवाई से बचाने के लिए डिज़ाइन किया गया है। विशेष रूप से, धारा 96 आई.बी.सी. में प्रावधान है कि किसी भी ऋण से संबंधित देनदार के खिलाफ लंबित किसी भी कानूनी कार्यवाही पर रोक लगा दी गई मानी जाएगी। "कोई भी कानूनी कार्रवाई या कार्यवाही" शब्द का अर्थ "हर कानूनी

कार्रवाई या कार्यवाही" नहीं है। उपखंड 96 (बी)(i) और (ii) में, "कानूनी कार्रवाई या कार्यवाही" शब्द के बाद "किसी भी ऋण के संबंध में" शब्द आता है। शब्द "कानूनी कार्रवाई या कार्यवाही" को इस तरह की कानूनी कार्रवाई या ऋण की बरामदगी से संबंधित कार्यवाही को शामिल करने के लिए समझा जाना चाहिए, जो नोसिचर ए सोसियस के सिद्धांतों को लागू करके है। धारा 96 के तहत विचार किए गए अंतरिम अधिस्थगन का उद्देश्य अधिनियम के उद्देश्य से प्राप्त किया जाना है, जो ऋण की बरामदगी से असंबंधित कार्यवाही को रोकना नहीं है। दंडात्मक कार्रवाइयों के खिलाफ सुरक्षा उपलब्ध नहीं है, जिसका उद्देश्य किसी भी ऋण की बरामदगी नहीं करना है। यह अधिस्थगन एक महत्वपूर्ण तंत्र के रूप में कार्य करता है, जो देनदार को लेनदार कार्यों के तत्काल खतरे के बिना अपने वित्तीय मामलों को पुनर्गठित करने की अनुमति देता है। इस प्रावधान की स्पष्ट और स्पष्ट भाषा दिवाला प्रक्रिया के दौरान देनदारों के लिए एक सुरक्षा कवच प्रदान करने के विधायी इरादे को दर्शाती है।

13. दूसरी ओर, पराक्रम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत कार्यवाही, संबंधित अपीलकर्ताओं/याचिकाकर्ताओं द्वारा उनकी व्यक्तिगत क्षमता में जारी किए गए चेकों के अनादर से संबंधित है। ये कार्यवाही कॉर्पोरेट दिवाला कार्यवाही से अलग हैं और इसका उद्देश्य व्यक्तियों को उनके व्यक्तिगत कार्यों के लिए जवाबदेह ठहराकर वाणिज्यिक लेनदेन की अखंडता को बनाए रखना है। आई.बी.सी. के तहत कार्यवाही के दायरे और प्रकृति के परिणामस्वरूप पुनर्गठन या परिसमापन की प्रक्रिया के माध्यम से वास्तविक ऋण को समाप्त किया जा सकता है। लेकिन इस तरह की शमनता इसके निदेशकों को आपराधिक दायित्व से मुक्त नहीं करेगी। पराक्रम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 141 कंपनी के साथ कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए मामलों के प्रभारी और जिम्मेदार व्यक्तियों के अभियोजन को सक्षम बनाती है। पराक्रम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत निदेशकों के खिलाफ वैधानिक दायित्व व्यक्तिगत है और इसलिए, कॉर्पोरेट देनदार पर लागू किसी भी अधिस्थगन के बावजूद, प्राकृतिक व्यक्तियों को बाध्य करना जारी रखता है। धारा 31 आई.बी.सी. के तहत समाधान योजना की स्वीकृति या उसके कार्यान्वयन का पराक्रम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत अभियोजन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसी तरह, धारा 100 के तहत समाधान पेशेवर द्वारा रिपोर्ट की स्वीकृति और धारा 101 के तहत स्थगन, जो धारा 96 को दोहराती है, किसी भी आपराधिक कार्रवाई को जारी रखने से नहीं रोकेगी। पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत अभियोजन के लिए कार्रवाई का कारण भुगतान की मांग करने वाले नोटिस की प्राप्ति की तारीख से 15 दिनों के भीतर चेक के अनादर और अनादर के कारण अवैतनिक राशि का भुगतान करने में विफलता पर शुरू होता है। यहां यह उल्लेख करना उचित है कि अभियोजन केवल उस राशि के संबंध में हो सकता है जो चेक के अनादर द्वारा भुगतान नहीं की गई है, भले ही वास्तविक ऋण कुछ भी हो। दीवानी मुकदमा शुरू करके और परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत अभियोजन शुरू करके अनादर किए गए चेक के आधार पर मुकदमा करने के अधिकार के बीच का अंतर महत्वपूर्ण है। पूर्व के मामले में, अंतरिम अधिस्थगन संचालित हो सकता है, लेकिन बाद के मामले में नहीं।

17. पूर्वगामी चर्चा के लिए, हमारी राय है कि अधिस्थगन का उद्देश्य या उस उद्देश्य के लिए, देनदार को धारा 94 के तहत न्यायाधिकरण से संपर्क करने में सक्षम बनाने वाला प्रावधान आपराधिक अभियोजन को रोकना नहीं है, बल्कि किसी भी ऋण की बरामदगी के लिए किसी भी नागरिक कार्रवाई को स्थगित करना है। धारा 138 का

निवारक प्रभाव व्यापारिक सौदों में चेक जैसे परक्राम्य साधनों के उपयोग में विश्वास बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है। चेक का अनादर करने के लिए आपराधिक दायित्व यह सुनिश्चित करता है कि वाणिज्यिक लेनदेन में संलग्न व्यक्तियों को उनके कार्यों के लिए जवाबदेह ठहराया जाता है, हालांकि पराक्रम्य लिखत अधिनियम, 1881 में अन्य शर्तों की संतुष्टि के अधीन। इसलिए, संबंधित अपीलकर्ताओं/ याचिकाकर्ताओं को अधिस्थगन लागू करके धारा 138 के तहत अभियोजन से बचने की अनुमति देना पराक्रम्य लिखत अधिनियम, 1881 के उद्देश्य को कमजोर करेगा, जो वाणिज्यिक लेनदेन की अखंडता और विश्वसनीयता को बनाए रखना है और दिवाला कार्यवाही और इसके परिणाम की परवाह किए बिना व्यक्तिगत जिम्मेदारी बनी रहती है।

19. पूर्वगामी चर्चा के लिए, धारा 96 आई.बी.सी. के तहत अंतरिम स्थगन पर भरोसा करते हुए, पराक्रम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत अभियोजन पर रोक लगाने के लिए अपीलकर्ताओं/याचिकाकर्ताओं की प्रार्थना पर विचार नहीं किया जा सकता है। इसलिए, विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों/आदेशों में विचारण न्यायालय के आदेशों की पुष्टि की गई है, जिन्होंने धारा 138 की कार्यवाही पर रोक लगाने से इनकार कर दिया था, हमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है।

58. जहां तक विष्णु मित्तल (उपरोक्त) में निर्णय का संबंध है, यह आवेदकों को कोई सहायता या सहायता नहीं है, खासकर जब उक्त मामले में चेक 25.07.2018 को निकाला गया था, 07.07.2018 को अस्वीकार कर दिया गया था, 06.08.2018 को नोटिस जारी किया गया था, सितंबर, 2018 में शिकायत दर्ज की गई थी, आई.बी.सी. की धारा 14 के तहत स्थगन 25.07.2018 को लगाया गया था। न्यायालय ने कहा कि दिनांक 06.08.2018 को वैधानिक नोटिस जारी करने से पहले, 25.07.2018 को स्थगन लगाया गया है, इस प्रकार, कार्यवाही आगे नहीं बढ़ सकती है। हालाँकि, प्रस्तुत मामले में, चेक 01.12.2022 को निकाले गए थे, इसे 22.02.2023 को प्रस्तुत किया गया था, 23.02.2023 को अनादर किया गया था, 20.03.2023 को नोटिस जारी किए गए थे, आवेदकों को 22.03.2023 को तामील किए गए थे और शिकायत 21.04.2023 को दर्ज की गई थी, लेकिन 09.06.2023 को आईबीसी की धारा 14 के तहत स्थगन लगा दिया गया था। यहां तक कि अन्यथा पी. मोहनराज (उपरोक्त), अजय कुमार राधेश्याम गोयनका (उपरोक्त) और राकेश भनोट (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आधिकारिक निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, कॉर्पोरेट निकाय के निदेशक होने के नाते आवेदक आई.बी.सी. की धारा 14 के तहत किसी भी सुरक्षा के हकदार नहीं हैं और उन्हें पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत कार्यवाही को रोकने का कोई अधिकार नहीं है।

59. पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 से उत्पन्न होने वाली कार्यवाही में धारा 482 द०प्र०स०/यू/यू/एस. 528 बी.एन.एस.एस. के तहत अधिकार क्षेत्र के आह्वान की सीमा और दायरा, जिसमें समन आदेश को चुनौती दी गई है, रतीश बाबू उन्नीकृष्णन (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया था, जिसमें निम्नलिखित देखा गया था।

12. किसी भी दर पर, जब भी तथ्यों पर विवाद होता है, तो सबूतों को तौलकर सच्चाई को सामने आने दिया जाना चाहिए। इस पहलू पर, हम ***राजेशभाई मुलजीभाई पटेल बनाम गुजरात राज्य, (2020) 3 एस.सी.सी. 794***

में अनुपात का उल्लेख करके लाभान्वित हो सकते हैं, जहां न्यायमूर्ति आर. भानुमति द्वारा निम्नलिखित प्रासंगिक राय दी गई थी: -

"22. ..... जब तथ्यों के विवादित प्रश्न शामिल होते हैं, जिन्हें पक्षों द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत करने के बाद निर्णय लेने की आवश्यकता होती है, तो पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत को उच्च न्यायालय द्वारा धारा 482 द०प्र०स० का सहारा लेकर रद्द नहीं किया जाना चाहिए था। हालांकि, न्यायालय के पास पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत परिसीमा आदि जैसे कानूनी मुद्दों पर दायर आपराधिक शिकायत को रद्द करने की शक्ति है। योगेशभाई के खिलाफ पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत दायर आपराधिक शिकायत को केवल इस आधार पर रद्द नहीं किया जाना चाहिए था कि अपीलकर्ता 3 और प्रतिपक्षी 2 के बीच परस्पर विवाद हैं। पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 139 के तहत उठाए गए वैधानिक अनुमान को ध्यान में रखे बिना, उच्च न्यायालय ने हमारे विचार में, पराक्रम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत दायर सीसी संख्या-367 वर्ष 2016 में आपराधिक शिकायत को रद्द करने में गंभीर गलती की।

13. रद्द करने की कार्यवाही में अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, आइए अब हम इस मामले में सामग्री की ओर मुड़ें। शिकायत और मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को ध्यान से पढ़ने पर, जो स्पष्ट है वह यह है कि एक संभावित दृष्टिकोण लिया जाता है कि आहरित चेक शेयरों की खरीद के लिए ऋण के निर्वहन में थे। किसी भी मामले में, जब कानूनी अनुमान होता है, तो रद्द करने वाली अदालत के लिए यह विवेकपूर्ण नहीं होगा कि वह कथित तथ्यों पर विस्तृत जांच करे, पहले विचारण न्यायालय को पक्षगण के सबूतों का मूल्यांकन करने की अनुमति दिए बिना। रद्द करने वाली अदालत को गेहूं को भूसी से अलग करने का बोझ अपने ऊपर नहीं लेना चाहिए जहां तथ्यों का विरोध किया जाता है। इसे अलग तरह से कहने के लिए, रद्द करने की कार्यवाही को तथ्यात्मक विवाद के गुणों में एक अभियान नहीं बनना चाहिए, ताकि शिकायतकर्ता या बचाव पक्ष को निर्णायक रूप से सही ठहराया जा सके।

60. फिर भी हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मेसर्स नरेश पॉटरीज बनाम मेसर्स आरती इंडस्ट्रीज और एक अन्य एसएलपी (आपराधिक) संख्या-8659 वर्ष 2023** में 02.01.2025 को निर्णय दिया, जिसे निम्नानुसार देखा गया। इसके अलावा, इस न्यायालय ने बारम्बार आगाह किया है कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्तियां धारा 482 द०प्र०स० के तहत हैं जिनका बहुत संयम से और सावधानी के साथ प्रयोग किया जाना चाहिए और आगे यह भी कि अंतर्निहित शक्तियों का उपयोग अवर न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप करने या निष्पक्ष जांच या अभियोजन को बाधित करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए।

61. यहां तक कि कानून के चारों कोनों से मामले का संचयी विश्लेषण करते हुए, इस न्यायालय की दृढ़ राय है कि अवर न्यायालय ने वर्तमान कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के लिए कोई क्षेत्राधिकार संबंधी दुर्बलता नहीं की है।

62. परिणामस्वरूप, दोनों आवेदन **खारिज** किए जाते हैं। अंतरिम आदेश, यदि कोई हो, को **रद्द/अपास्त** किया जाता है।

(2025) 5 ILRA 352

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति श्री डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव

विशेष अपील संख्या 69 वर्ष 2025

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...अपीलकर्ता**

बनाम

दिनेश कुमार **...प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता : जे.एन. मौर्या, सुधांशु श्रीवास्तव

प्रतिवादी के अधिवक्ता: सिद्धार्थ खरे

ए. सेवा विधि - चयन - समीक्षा अधिकारी का पद - महत्वपूर्ण सूचना को छिपाना - आपराधिक मामले का खुलासा न करना कब नज़रअंदाज़ किया जा सकता है - याचिकाकर्ता ग्रामीण पृष्ठभूमि से है - प्रभाव - अभिनिर्धारित किया गया कि ऐसे मामलों पर विचार करते समय ग्रामीण गाँवों में प्रचलित वातावरण को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। हमारे गाँवों में मामूली दीवानी मामलों को आपराधिक रंग दे दिया जाता है और अक्सर आरोपी व्यक्तियों को इस बात की जानकारी तक नहीं होती कि कोई आपराधिक कार्यवाही चल रही थी - आगे निर्धारित किया गया कि हम यह समझने में विफल हैं कि कोई व्यक्ति स्वयं को अपनी नौकरी से वंचित करने का प्रयास क्यों करेगा और वह जानकारी क्यों नहीं देगा जो उसके पास थी। (पैरा 8)

विशेष अपील खारिज। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. अवतार सिंह बनाम यूनियन ऑफ इंडिया व अन्य; (2016) 8 एस.सी.सी 471
2. रिट ए संख्या 16791 वर्ष 2023; सत्येंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, निर्णय दिनांक 09.01.2024
3. राजस्थान राज्य विद्युत प्रसारण निगम लिमिटेड बनाम अनिल कंवरिया; (2021) 10 एस.सी.सी 136
4. रविंद्र कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य; (2024) 5 एस.सी.सी 264

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा द्वारा निर्णय दिया गया)

1. लोक सेवा आयोग द्वारा जारी दिनांक 5.3.2021 के विज्ञापन के उत्तर में, याचिकाकर्ता, जो कि एक अनुसूचित जाति का अभ्यर्थी था, ने लोक सेवा आयोग के केंद्रीय सचिवालय/राजस्व परिषद/मुख्य निर्वाचन अधिकारी के कार्यालय में समीक्षा अधिकारी/सहायक समीक्षा अधिकारी के पद पर नियुक्त होने के लिए आवेदन किया था। इसके जवाब में, याचिकाकर्ता को अनुक्रमांक (रोल नंबर) 217801 आवंटित किया गया। चयन प्रक्रिया में भाग लेने के बाद, चयन का अंतिम परिणाम दिनांक 20.1.2023 की एक प्रेस विज्ञप्ति द्वारा प्रकाशित किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता को सहायक समीक्षा अधिकारी के रूप में चयनित दिखाया गया था और उसका नाम चयनित अभ्यर्थियों की सूची के क्रम संख्या 99 पर दर्शाया गया था। 19.5.2023 को, याचिकाकर्ता को एक घोषणा/सत्यापन प्रपत्र भरने और मुख्य चिकित्सा अधिकारी, संत रविदास नगर द्वारा चिकित्सकीय परीक्षण कराने की आवश्यकता थी। इसके जवाब में, याचिकाकर्ता ने 31.5.2023 को निर्धारित प्रारूप पर अपना सत्यापन प्रपत्र प्रस्तुत किया। 2.6.2023 को उसका चिकित्सकीय परीक्षण भी किया गया। अपना सत्यापन प्रपत्र भरने के बाद, जिसमें याचिकाकर्ता ने दर्शाया था कि उसके विरुद्ध कोई आपराधिक कार्यवाही नहीं की गई है, उसे जल्द ही अपनी गलती का एहसास हुआ और इसलिए 17.7.2023 को एक हलफनामे के माध्यम से संबंधित अधिकारियों को सूचित किया कि उसके विरुद्ध पुलिस द्वारा वाद अपराध संख्या 198/2019 के रूप में एक आपराधिक मामला दर्ज किया गया था और उसके बाद संबंधित न्यायालय के समक्ष आपराधिक वाद संख्या 271/2020 के रूप में विचारण चल रहा था। उसने एक वाद अपराध संख्या 215/2018 का विवरण भी दिया था जिसमें याचिकाकर्ता के विरुद्ध कभी आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया था। 17.7.2023 को हलफनामा दाखिल करने से पहले, 13.7.2023 को याचिकाकर्ता का परिणाम पहले ही घोषित किया जा चुका था। जब अंतिम नियुक्ति आदेश जारी नहीं किया जा रहा था, तो याचिकाकर्ता ने विभिन्न प्रत्यावेदन दाखिल किए और उसने यह भी पाया कि 4.7.2023 को जिला मजिस्ट्रेट ने 24.4.1958 के शासकीय आदेश के अनुसार अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी कि याचिकाकर्ता को नियुक्ति पत्र जारी किया जाए जो आपराधिक वाद संख्या 271/2020 के निर्णय के अधीन होगा। हालाँकि, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा की गई सिफारिश के बावजूद, 11.12.2023 को राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता को नियुक्ति देने से इनकार करते हुए एक आदेश पारित किया। इससे व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या रिट-ए 817 वर्ष 2024 दाखिल की थी। जब 26.2.2024 को रिट याचिका दायर की गई, तो इस न्यायालय ने विद्वान स्थायी अधिवक्ता को विशेष रूप से दिनांक 17.7.2023 के हलफनामे को दाखिल करने के संबंध में निर्देश प्राप्त करने का निर्देश दिया था, जिसे याचिकाकर्ता के अनुसार उसने स्वयं दाखिल किया था। याचिकाकर्ता से दिनांक 17.7.2023 के हलफनामे को दाखिल करने का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए एक शपथ पत्र दाखिल करने की भी अपेक्षा की गई थी। रिट याचिका पर अंततः इस न्यायालय द्वारा 5.11.2024 को सुनवाई की गई और निर्णय दिया गया, जिसके द्वारा उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ के संयुक्त सचिव, सचिवालय प्रशासन अनुभाग-5 (स्थापना) के आदेश दिनांक 11.12.2023 को रद्द कर दिया गया और याचिकाकर्ता को नियुक्ति पत्र दिए जाने का निर्देश दिया गया। इससे व्यथित होकर, उत्तर प्रदेश राज्य ने वर्तमान विशेष अपील दायर की है।

2. मुख्य रूप से, अपर महाधिवक्ता श्री अजीत सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता, जिन्हें अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुधांशु श्रीवास्तव द्वारा सहायता प्रदान की गई, ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा आपराधिक मामले के लंबित होने की सूचना को छिपाने का तथ्य ही इस बात का सूचक है कि याचिकाकर्ता साफ़ नियत के साथ नहीं आया था और इसलिए, उसे सहायक समीक्षा अधिकारी के रूप में सेवा में नहीं रखा जा सकता था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि **अवतार सिंह बनाम यूनियन ऑफ इंडिया व अन्य, (2016) 8 एस.सी.सी 471** में दिए गए दिशा-निर्देशों के अनुसार, निम्नलिखित बिंदुओं पर गौर किया जाना आवश्यक था :-

"क) संबंधित सार्वजनिक नियोक्ता को अपने नामित अधिकारियों के माध्यम से प्रत्येक मामले की गहनता से जांच करनी चाहिए–विशेष रूप से पुलिस बल में भर्ती के मामले में, जिनका कर्तव्य व्यवस्था बनाए रखना और अराजकता से निपटना है, क्योंकि जनता का विश्वास जगाने की उनकी क्षमता समाज की सुरक्षा के लिए एक मजबूत आधार है। [देखें राज कुमार (उपरोक्त)]

ख) ऐसे मामले में भी जहाँ कर्मचारी ने समाप्त हो चुके आपराधिक मामले की घोषणा सच्चाई और सटीकता से की है, नियोक्ता के पास अभी भी पूर्ववृत्त पर विचार करने का अधिकार है, और उसे उम्मीदवार को नियुक्त करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है। आपराधिक मामले में बरी होने मात्र से उम्मीदवार स्वतः ही पद पर नियुक्ति का हकदार नहीं हो जाता। नियोक्ता के लिए यह अभी भी खुला रहेगा कि वह पूर्ववृत्त पर विचार करे और यह जांच करे कि संबंधित उम्मीदवार पद पर नियुक्ति के लिए उपयुक्त और फिट है या नहीं।

ग) गिरफ्तारी, अभियोजन, दोषसिद्धि आदि से संबंधित सत्यापन प्रपत्र में महत्वपूर्ण जानकारी छिपाना और गलत बयान देना, कर्मचारी के चरित्र, आचरण और पूर्ववृत्त पर स्पष्ट प्रभाव डालता है। यदि यह पाया जाता है कि कर्मचारी ने अपनी फिटनेस या पद की उपयुक्तता पर प्रभाव डालने वाले मामलों के संबंध में जानकारी छिपाई है या गलत जानकारी दी है, तो उसे सेवा से बर्खास्त किया जा सकता है।

घ) युवाओं के बारे में सामान्यीकरण, करियर की संभावनाएं और उम्मीदवारों की उम्र को आधार बनाकर अपराधी के आचरण को माफ करने जैसी बातें न्यायिक निर्णय में शामिल नहीं होनी चाहिए और इनसे बचा जाना चाहिए।

ङ) न्यायालय को यह जांच करनी चाहिए कि संबंधित प्राधिकरण, जिसकी कार्रवाई को चुनौती दी जा रही है, ने दुर्भावनापूर्ण तरीके से कार्य तो नहीं किया है।

च) क्या प्राधिकरण के निर्णय में पक्षपात का कोई तत्व है?

छ) क्या संबंधित प्राधिकरण द्वारा अपनाई गई जांच प्रक्रिया निष्पक्ष और उचित थी?"

3. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, उपरोक्त सिद्धांत जिन्हें यह तय करते समय लागू किया जाना था कि क्या किसी अभ्यर्थी को आपराधिक मामलों का खुलासा न करने के बावजूद नियुक्त किया जाना चाहिए, उन पर **सत्येंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य (रिट-ए संख्या 16791 वर्ष 2023, निर्णय दिनांक 9.1.2024)** के निर्णय में आगे विचार किया गया था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उच्चतम न्यायालय के एक अन्य निर्णय **राजस्थान राज्य विद्युत प्रसारण निगम लिमिटेड बनाम अनिल कंवरिया: (2021) 10 एससीसी 136** पर भी भरोसा जताया और उस निर्णय के पैराग्राफ 14 पर विशेष बल दिया, जिसे यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है: -

"इस मुद्दे/प्रश्न पर एक अन्य दृष्टिकोण से, यानी नियोक्ता के नजरिए से विचार किया जा सकता है। सवाल यह नहीं है कि क्या कोई कर्मचारी मामूली प्रकृति के विवाद में शामिल था और क्या उसे बाद में बरी कर दिया गया था या नहीं। सवाल उस कर्मचारी की विश्वसनीयता और/या भरोसेमंदता का है जिसने रोजगार के प्रारंभिक चरण में, यानी घोषणा/सत्यापन प्रस्तुत करते समय और/या किसी पद के लिए आवेदन करते समय गलत घोषणा की और/या आपराधिक मामले में शामिल होने के महत्वपूर्ण तथ्य का खुलासा नहीं किया और/या उसे छिपाया। यदि सही तथ्यों का खुलासा किया गया होता, तो नियोक्ता शायद उसे नियुक्त नहीं करता। तब सवाल 'विश्वास' का होता है। इसलिए, ऐसी स्थिति में जहाँ नियोक्ता को लगता है कि एक कर्मचारी जिसने प्रारंभिक चरण में ही गलत बयान दिया है और/या महत्वपूर्ण तथ्यों का खुलासा नहीं किया है और/या महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाया है, और इसलिए उसे सेवा में जारी नहीं रखा जा सकता क्योंकि भविष्य में भी ऐसे कर्मचारी पर भरोसा नहीं किया जा सकता, तो नियोक्ता को ऐसे कर्मचारी को सेवा में बनाए रखने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता। ऐसे कर्मचारी को सेवा में रखने या न रखने का विकल्प/अधिकार हमेशा नियोक्ता को दिया जाना चाहिए। दोहराव की कीमत पर, यह देखा गया है और जैसा कि ऊपर निर्णयों की श्रृंखला में भी उल्लेख किया गया है, ऐसा कर्मचारी अधिकार के रूप में नियुक्ति और/या सेवा में बने रहने का दावा नहीं कर सकता।"

4. उपरोक्त पैराग्राफ को उद्धृत करते हुए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि जब एक विशेष अभ्यर्थी ने आपराधिक मामलों के लंबित होने या उन आपराधिक मामलों के बारे में खुलासा नहीं किया जो पहले ही तय हो चुके थे, तो सवाल ऐसे कर्मचारी की विश्वसनीयता या भरोसेमंदता का था जिसने अपने रोजगार के बिल्कुल प्रारंभिक चरण में ही गलत घोषणा की थी। इसलिए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी पर अपीलकर्ता का कर्मचारी बनने के लिए भरोसा नहीं किया जा सकता था।

5. हालांकि, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे ने **अवतार सिंह (उपरोक्त)** के निर्णय पर भरोसा करते हुए प्रस्तुत किया कि वर्तमान मामले में, न्यायालय को वास्तव में यह देखना होगा कि नियोक्ताओं से किस तरह की जानकारी छिपाई गई थी। उन्होंने तर्क दिया कि "महत्वपूर्ण जानकारी" को छिपाने का अर्थ यह माना जाएगा कि हर एक जानकारी को छिपाना "महत्वपूर्ण" नहीं माना जाएगा। ऐसी जानकारियाँ जो अत्यंत तकनीकी हैं या मामूली प्रकृति की हैं, यदि उनका खुलासा नहीं किया जाता है तो वह महत्वपूर्ण जानकारी को

छिपाने की श्रेणी में नहीं आएगा। चूँकि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **अवतार सिंह (उपरोक्त)** के निर्णय के पैराग्राफ 35 से 38 पर भरोसा किया है, उन्हें यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"35. "महत्वपूर्ण" जानकारी को छिपाने का अर्थ यह है कि जो छिपाया गया है वह "महत्वपूर्ण" होना चाहिए, न कि हर तकनीकी या मामूली बात। उम्मीदवारी रद्द करने या कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त करने की शक्तियों का प्रयोग करते समय नियोक्ता को नियमों/निर्देशों, यदि कोई हों, पर उचित विचार करते हुए कार्य करना चाहिए। यद्यपि वह व्यक्ति जिसने महत्वपूर्ण जानकारी छिपाई है, नियुक्ति या सेवा में बने रहने के निर्बाध अधिकार का दावा नहीं कर सकता, परंतु उसे यह अधिकार है कि उसके साथ मनमाना व्यवहार न किया जाए और शक्ति का प्रयोग मामलों के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए निष्पक्षता और उचित तरीके से किया जाना चाहिए।

36.कौन सा मापदंड लागू किया जाना है, यह पद की प्रकृति पर निर्भर करता है; उच्च पदों के लिए न केवल वर्दीधारी सेवाओं में, बल्कि सभी सेवाओं में अधिक कठोर मानदंड अपनाए जाएंगे। निचले पदों के लिए जो संवेदनशील नहीं हैं, संबंधित अधिकारियों द्वारा पद/कर्तव्यों की प्रकृति/सेवाओं को ध्यान में रखते हुए कर्तव्यों की प्रकृति और उपयुक्तता पर जानकारी छिपाने के प्रभाव पर विचार किया जाना चाहिए, और विभिन्न पहलुओं पर उचित विचार करने के बाद ही शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।"

37."मैकार्थीवाद" संवैधानिक लक्ष्य के विपरीत है; उपयुक्त मामलों में युवा अपराधियों को सुधार का अवसर दिया जाना चाहिए। सुधारात्मक सिद्धांत के परस्पर प्रभाव को पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है और न ही इसे सामान्य रूप से लागू किया जा सकता है, लेकिन उम्मीदवारी रद्द करने या किसी कर्मचारी को सेवा से मुक्त करने की शक्ति का प्रयोग करते समय इसे ध्यान में रखे जाने वाले कारकों में से एक माना जाना चाहिए।

38.हमने विभिन्न निर्णयों पर गौर किया है और यथासंभव उनकी व्याख्या करने तथा उनमें सामंजस्य बिठाने का प्रयास किया है। उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हम अपने निष्कर्ष का सारांश इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं:

38.1 किसी अभ्यर्थी द्वारा नियोक्ता को दोषसिद्धि, दोषमुक्ति या गिरफ्तारी, या आपराधिक मामले के लंबित होने के संबंध में दी गई जानकारी, चाहे सेवा में प्रवेश करने से पहले हो या बाद में, सत्य होनी चाहिए और आवश्यक जानकारी को छिपाया नहीं जाना चाहिए और न ही गलत उल्लेख किया जाना चाहिए।

38.2 गलत जानकारी देने के कारण सेवाओं की समाप्ति या उम्मीदवारी रद्द करने का आदेश पारित करते समय, नियोक्ता ऐसी जानकारी देते समय मामले की विशेष परिस्थितियों (यदि कोई हो) पर ध्यान दे सकता है।

38.3 निर्णय लेते समय नियोक्ता कर्मचारी पर लागू होने वाले सरकारी आदेशों/निर्देशों/नियमों को ध्यान में रखेगा।

38.4 ऐसे मामले में जहाँ आपराधिक मामले में शामिल होने की जानकारी छिपाई गई हो या गलत जानकारी दी गई हो, और आवेदन/सत्यापन प्रपत्र भरने से पहले ही दोषसिद्धि या दोषमुक्ति दर्ज की जा चुकी हो और ऐसा तथ्य बाद में नियोक्ता के संज्ञान में आता है, तो मामले के अनुसार उपयुक्त निम्नलिखित में से कोई भी रास्ता अपनाया जा सकता है: -

38.4.1 मामूली प्रकृति के मामले में जिसमें दोषसिद्धि दर्ज की गई थी, जैसे कम उम्र में नारे लगाना या किसी छोटे अपराध के लिए, जिसे यदि प्रकट किया जाता तो वह व्यक्ति को संबंधित पद के लिए अयोग्य नहीं बनाता, नियोक्ता अपने विवेक से, ऐसी चूक को क्षमा करते हुए तथ्य को छिपाने या गलत जानकारी को नज़रअंदाज़ कर सकता है।

38.4.2 जहाँ ऐसे मामले में दोषसिद्धि दर्ज की गई है जो मामूली प्रकृति का नहीं है, नियोक्ता उम्मीदवार की उम्मीदवारी रद्द कर सकता है या कर्मचारी की सेवाएं समाप्त कर सकता है।

38.4.3 यदि नैतिक अधमता या जघन्य/गंभीर प्रकृति के अपराध वाले मामले में तकनीकी आधार पर दोषमुक्ति पहले ही दर्ज की जा चुकी है और यह पूरी तरह से दोषमुक्त होने का मामला नहीं है, या उचित संदेह का लाभ दिया गया है, तो नियोक्ता पूर्ववृत्त के संबंध में उपलब्ध सभी प्रासंगिक तथ्यों पर विचार कर सकता है, और कर्मचारी को सेवा में बनाए रखने के संबंध में उचित निर्णय ले सकता है।

38.5 ऐसे मामले में जहाँ कर्मचारी ने समाप्त हो चुके आपराधिक मामले की सत्यतापूर्वक घोषणा की है, नियोक्ता के पास अभी भी पूर्ववृत्त पर विचार करने का अधिकार है, और उसे उम्मीदवार को नियुक्त करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है।

38.6 उस मामले में जब चरित्र सत्यापन प्रपत्र में मामूली प्रकृति के आपराधिक मामले के लंबित होने के संबंध में तथ्य की सत्यतापूर्वक घोषणा की गई है, नियोक्ता मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, अपने विवेक से, ऐसे मामले के निर्णय के अधीन उम्मीदवार को नियुक्त कर सकता है।

38.7 एक से अधिक लंबित मामलों के संबंध में जानबूझकर तथ्य छिपाने के मामले में, ऐसी गलत जानकारी अपने आप में महत्वपूर्ण हो जाएगी और नियोक्ता उम्मीदवारी रद्द करने या सेवाओं को समाप्त करने का उचित आदेश पारित कर सकता है, क्योंकि ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति उचित नहीं हो सकती जिसके विरुद्ध कई आपराधिक मामले लंबित हों।

38.8 यदि आपराधिक मामला लंबित था लेकिन फॉर्म भरते समय अभ्यर्थी को इसकी जानकारी नहीं थी, तो भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है और नियुक्ति प्राधिकारी अपराध की गंभीरता पर विचार करने के बाद निर्णय लेगा।

38.9 यदि कर्मचारी सेवा में स्थायी हो चुका है, तो सत्यापन प्रपत्र में जानकारी छिपाने या गलत जानकारी देने के आधार पर सेवा समाप्ति/हटाने या बर्खास्तगी का आदेश पारित करने से पहले विभागीय जांच करना आवश्यक होगा।

38.10 तथ्य छिपाने या गलत जानकारी का निर्धारण करने के लिए साक्ष्यांकन/सत्यापन प्रपत्र (attestation/verification form) विशिष्ट होना चाहिए, न कि अस्पष्ट। केवल वही जानकारी प्रकट करना आवश्यक है जिसका विशेष रूप से उल्लेख किया जाना अपेक्षित था। यदि ऐसी जानकारी, जो माँगी नहीं गई थी लेकिन प्रासंगिक है, नियोक्ता के संज्ञान में आती है, तो फिटनेस (उपयुक्तता) के प्रश्न पर विचार करते समय उस पर निष्पक्ष रूप से गौर किया जा सकता है। हालाँकि, ऐसे मामलों में उस तथ्य को छिपाने या गलत जानकारी देने के आधार पर कार्रवाई नहीं की जा सकती जो पूछा ही नहीं गया था।

38.11 किसी व्यक्ति को 'तथ्य छिपाने' या 'झूठा सुझाव देने' का दोषी ठहराए जाने से पहले, उस तथ्य की जानकारी का श्रेय उसे दिया जाना आवश्यक है (अर्थात यह सिद्ध होना चाहिए कि उसे उस तथ्य का ज्ञान था)।"

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस निर्णय का उल्लेख करते हुए, उच्चतम न्यायालय के एक अन्य निर्णय **रविंद्र कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य : (2024) 5 एसीसी 264** का भी हवाला दिया और तर्क दिया कि किसी भी और हर जानकारी का खुलासा न करना अयोग्यता नहीं माना जाएगा, क्योंकि ऐसा करना हमारे देश की जमीनी हकीकतों से पूरी तरह अनभिज्ञ होने के समान होगा। उन्होंने प्रस्तुत किया कि प्रत्येक मामला प्रचलित तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा और न्यायालय को एक समग्र दृष्टिकोण अपनाना होगा और हर मामले को व्यक्तिगत और निष्पक्ष रूप से देखना होगा। चूंकि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस निर्णय के पैराग्राफ 34 पर भरोसा किया है, इसे यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है: -

"मामले के तथ्यों और ऊपर निर्धारित विशेष परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में, उस दुर्भाग्यपूर्ण आपराधिक मामले (जिसका अंत भी दोषमुक्ति में हुआ) का खुलासा न करना, पूरी व्यवस्था में कहाँ ठहरता है? हमारी राय में, मामले के विशिष्ट तथ्यों को देखते हुए, हम नहीं मानते कि इसे अपीलकर्ता के लिए घातक माना जा सकता है। हर एक गैर-खुलासे को अयोग्यता के रूप में व्यापक रूप से चित्रित करना अन्यायपूर्ण होगा और यह इस महान, विशाल और विविध देश में मौजूद जमीनी हकीकतों से पूरी तरह बेखबर होने के समान होगा। प्रत्येक मामला वहां प्रचलित तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, और न्यायालय को उपलब्ध मिसालों को

मार्गदर्शक मानते हुए, वस्तुनिष्ठ मानदंडों के आधार पर एक समग्र दृष्टिकोण अपनाना होगा। यह कभी भी ऐसी स्थिति नहीं हो सकती जहाँ 'एक ही नियम सब पर लागू' हो जाए।"

7. याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि वर्तमान मामले में, वाद अपराध संख्या 215/2018 कभी आगे नहीं बढ़ा क्योंकि जांच के बाद याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया था। हालाँकि, वाद अपराध संख्या 198/2019, जिसका विचारण आपराधिक वाद संख्या 205/2020 के रूप में आईपीसी की धारा 147, 323, 504, 506 और 325 के तहत किया गया था, वास्तव में पूर्णतः दीवानी प्रकृति का मामला था और इसे केवल आपराधिक रंग दिया गया था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि यदि प्राथमिकी में किए गए कथनों को भी देखा जाए, तो वे संकेत देते हैं कि यह किसी सीमा की दीवार को नुकसान पहुँचाने के संबंध में था और उसमें अभियुक्तों पर शिकायतकर्ताओं को पीटने तथा उन्हें गाली देने का आरोप लगाया गया था। इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि इस बात की पूरी संभावना है कि याचिकाकर्ता, जो एक आम आदमी था और देश के कानूनों से बहुत अधिक वाकिफ नहीं था, उसने सोचा हो कि यह केवल एक दीवानी मामला था जो चल रहा था। अपने तर्क को पुष्ट करने के लिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि चूँकि मामला शुरुआत में बहुत ही मामूली धाराओं यानी आईपीसी की धारा 147, 323, 504, 506 के तहत था और जांच के बाद ही धारा 325 आईपीसी जोड़ी गई थी, याचिकाकर्ता वास्तव में कभी जेल में नहीं रहा और उसे गिरफ्तार किए बिना ही जमानत पर रिहा कर दिया गया था। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने कहा कि हमारे देश के गांवों में छोटी-मोटी झड़पें होती रहती हैं और हालांकि उन्हें आपराधिक रंग दे दिया जाता है, लेकिन वे ऐसी प्रकृति की होती हैं कि पक्षकारों को यही विश्वास रहता है कि वे केवल दीवानी मामले थे। याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि 19.2.2024 को एक समझौता भी हुआ था और याचिकाकर्ता वास्तव में इस गलतफहमी में रहा होगा कि समझौते के कारण एक दीवानी मामला समाप्त हो जाएगा। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि यदि आपराधिक मामला संख्या 271/2020 के निर्णय को भी देखा जाए, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि याचिकाकर्ता और अन्य सह-अभियुक्तों के विरुद्ध बिल्कुल भी साक्ष्य नहीं थे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि गवाह पी.डब्ल्यू-1 ने, हालांकि अपनी मुख्य परीक्षा में प्राथमिकी के संस्करण का समर्थन किया था, लेकिन विचारण (trial) के दौरान उसने स्पष्ट रूप से कहा कि केवल मौखिक कहासुनी हुई थी और उसके बाद अंधेरे में जब एक जंगली जानवर उस स्थान से गुजरा जहाँ अभियुक्त और शिकायतकर्ता एकत्र हुए थे, तो वहाँ थोड़ा भ्रम पैदा हो गया और इस कारण पी.डब्ल्यू-1 गिर गया था और उसे सिर में चोट लग गई थी। इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता का मामला पूरी तरह से **अवतार सिंह (उपरोक्त)** के निर्णय के पैराग्राफ 38.4.1 के अंतर्गत आता है, क्योंकि जिस घटना के कारण आपराधिक वाद शुरू हुआ था, उसे वास्तव में विशुद्ध रूप से दीवानी प्रकृति का समझा गया था। उन्होंने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता ने वास्तव में सोचा था कि मामले में समझौता भी हो गया था और समझौता केवल दीवानी मामलों में ही होता है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने यह भी कहा कि चूंकि अभियोजन/शिकायतकर्ता मामले की बहुत आक्रामक तरीके से पैरवी नहीं कर रहे थे, इसलिए याचिकाकर्ता, जो कि एक ग्रामीण निवासी है और अनुसूचित जाति से संबंधित है, इस धारणा में था कि वास्तव में कोई दीवानी मुकदमा चल रहा था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **रविंद्र सिंह (उपरोक्त)** के निर्णय पर और

अधिक भरोसा करते हुए प्रस्तुत किया कि चूंकि याचिकाकर्ता ग्रामीण पृष्ठभूमि से था, इसलिए उससे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती थी कि वह उस मामले का हर विवरण दे जिसे वह वास्तव में दीवानी प्रकृति का समझता था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि इस तथ्य के अलावा कि याचिकाकर्ता हमेशा इस धारणा में था कि यह एक दीवानी मामला था, घटना बहुत ही मामूली प्रकृति की थी। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने यह भी कहा कि जब गांव के कुछ लोगों से परामर्श करने के बाद याचिकाकर्ता को एहसास हुआ कि वास्तव में इस मामले को आपराधिक मामले के रूप में घोषित किया जाना चाहिए था, तब उसने 17.7.2023 को एक हलफनामा दायर कर यह घोषणा की थी कि उसे कुछ आपराधिक मामलों में फंसाया गया था। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि हलफनामा दाखिल करने के संबंध में भी कोई इनकार नहीं किया गया था और आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले उस पर कभी विचार ही नहीं किया गया।

8. अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अजीत कुमार सिंह, जिन्हें श्री सुधांशु श्रीवास्तव द्वारा सहायता प्रदान की गई, तथा प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे को सुनने के बाद, हमारा यह सुविचारित मत है कि याचिकाकर्ता, जो अनुसूचित जाति का अभ्यर्थी था और ग्रामीण पृष्ठभूमि से संबंध रखता था, हालांकि एक आपराधिक मामले में शामिल था, परंतु मामले की प्रकृति को देखते हुए इस बात की पूरी संभावना थी कि याचिकाकर्ता ने सोचा हो कि वह केवल एक दीवानी मामले में शामिल था। हमारा यह भी मत है कि ऐसे मामलों पर विचार करते समय ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित वातावरण को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। हमारे गांवों में छोटे दीवानी मामलों को आपराधिक रंग दे दिया जाता है और अक्सर आरोपी व्यक्तियों को इस तथ्य का ज्ञान भी नहीं होता कि कोई आपराधिक कार्यवाही चल रही थी। अक्सर ऐसा होता है कि जब किसी विशेष मामले में कई सह-अभियुक्त होते हैं, तो मामले की देखरेख केवल एक सह-अभियुक्त द्वारा की जाती है। वर्तमान मामले में, कुल सात सह-अभियुक्त थे और इस बात की पूरी संभावना थी कि सह-अभियुक्तों में से कोई एक मामले की देखरेख कर रहा था। रिकॉर्ड से हमें यह भी ज्ञात होता है कि याचिकाकर्ता ने नियोक्ताओं को आपराधिक वाद के लंबित होने की सूचना दे दी थी और अपीलकर्ताओं द्वारा इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है। हम यह समझने में असमर्थ हैं कि कोई व्यक्ति स्वयं को अपनी नौकरी से वंचित करने का प्रयास क्यों करेगा और वह जानकारी क्यों नहीं देगा जो उसके पास थी। वर्तमान मामले में, सत्यापन प्रपत्र में एक मामूली प्रकृति की जानकारी नहीं दी गई थी, हालांकि बाद में वह जानकारी उपलब्ध करा दी गई थी।

9. अतः, उपरोक्त कथनों के आलोक में, हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से सम्मानपूर्वक सहमत हैं। हम इस विशेष अपील में हस्तक्षेप करने से परहेज करते हैं और तदनुसार, यह विशेष अपील खारिज की जाती है।

(2025) 5 ILRA 359

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव

विशेष अपील संख्या 167 वर्ष 2024

के साथ

विशेष अपील संख्या 200 वर्ष 2024

देवेन्द्र सिंह — अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य — प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: सिद्धार्थ खरे

प्रतिवादी के अधिवक्ता: मुख्य स्थायी अधिवक्ता, योगेश कुमार सक्सेना

A. सेवा विधि - समाप्ति - सहायक अध्यापक का पद - समाप्ति आदेश इसलिए पारित किया गया क्योंकि नियुक्ति अतिरिक्त पद पर की गई थी - उच्च न्यायालय ने समाप्ति पर रोक लगा दी और इस दौरान मौजूदा पद पर आमेलन कर लिया गया - पूर्व नियुक्ति में अनियमितता, आमेलन को किस हद तक प्रभावित करती है - अभिनिर्धारित, अपीलकर्ताओं को मौजूदा रिक्तियों पर आमेलित कर लिए जाने के बाद, उनकी नियुक्तियों में प्रारंभ में यदि कोई अनियमितता थी, तो उसे ठीक मान लिया जाएगा - *मनसाराम और मद्रास एल्युमीनियम कंपनी लिमिटेड के मामलों* पर भरोसा किया गया। (पैरा 14)

विशेष अपील स्वीकार की गई। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. राधेश्याम यादव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2024 एससीसी आनलाइन एससी
2. विनोद कुमार और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य; (2024) 9 एससीसी 327
3. जग्गो बनाम भारत संघ और अन्य; 2024 एससीसी आनलाइन एससी 3826

अनुवादित

4. रिट याचिका संख्या 655 (एस/एस) वर्ष 2014; अभिषेक त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, सचिव एवं अन्य के माध्यम से, निर्णय दिनांक 17.12.2015

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा द्वारा सुनाया गया।)

1. दोनों विशेष अपीलों का निर्णय एक साथ किया जा रहा है क्योंकि इनमें विधि का एक समान प्रश्न समाहित है। विशेष अपील संख्या 200 वर्ष 2024 में अपीलकर्ता-जुझार सिंह को पी.एन.वी. इंटर कॉलेज, चिल्ली (मुस्करा), हमीरपुर नामक संस्था में 31.8.1987 को सीटी श्रेणी में सहायक अध्यापक के पद पर तदर्थ आधार पर नियुक्त किया गया था। उनकी तदर्थ आधार पर नियुक्ति को 11.9.1987 को अनुमोदित भी कर दिया गया था। इसी प्रकार, विशेष अपील संख्या 167 वर्ष 2024 में अपीलकर्ता-देवेन्द्र सिंह को 26.2.1989 को सीटी श्रेणी में सहायक अध्यापक के पद पर तदर्थ आधार पर नियुक्त किया गया था। उनकी नियुक्ति को भी 25/26.7.1989 को अनुमोदित किया गया था। हालाँकि, दोनों अपीलकर्ताओं की सेवाएँ जिला विद्यालय निरीक्षक, हमीरपुर द्वारा 17.10.1989 को इस आरोप में समाप्त कर दी गई थीं कि अपीलकर्ताओं की नियुक्ति स्वीकृत पदों की संख्या से अधिक पदों पर की गई थी। इससे व्यथित होकर, दोनों अपीलकर्ताओं ने संयुक्त रूप से एक रिट याचिका संख्या 19879 वर्ष 1989 (जुझार सिंह एवं अन्य बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, हमीरपुर एवं अन्य) दायर की। 4.12.1989 को, उच्च न्यायालय ने रिट याचिका संख्या 19879 वर्ष 1989 में एक अंतरिम आदेश पारित किया जिसके द्वारा 17.10.1989 के आदेश को स्थगित रखा गया। तत्पश्चात 4.12.1989 को दिए गए अंतरिम आदेश के अनुपालन में, अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता कार्य करते रहे और उन्हें अपना वेतन भी मिलता रहा। 31.3.2006 को ऐसा हुआ कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ताओं को मौलिक रूप से रिक्त पदों पर आमेलित कर लिया गया। 31.3.2006 का आदेश यहाँ नीचे दिया जा रहा है:-

"कार्यालय जिला विद्यालय निरीक्षक हमीरपुर

आदेश संख्या:- 96/2005-06 दिनांक 31.03.06

समायोजन आदेश

उप शिक्षा निदेशक झाँसी मण्डल झाँसी के पत्रांक/मा०/10227-29/91-92 दिनांकित 05-02-1992 एवं पत्रांक/मा०/10550-51/93-94 दिनांकित 28-01-1994 में निहित निर्देशानुसार पी०एन०वी० इण्टर कॉलेज, चिल्ली (मुस्करा) हमीरपुर में स्वीकृत संख्या से अधिक सहायक अध्यापक (सी०टी०) की नियुक्ति मानक के आधार पर तत्कालीन जिला विद्यालय निरीक्षक हमीरपुर द्वारा की गई थी। ये नियुक्तियाँ अनियमित होने के कारण निरस्त कर दी गई थीं, लेकिन माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 27-10-89 के अनुपालन में विद्यालय में कार्यरत हैं।

अतः प्रबन्धक, पी०एन०वी० इण्टर कॉलेज चिल्ली (मुस्करा) हमीरपुर के पत्रांक/197/पीएश/2005-06 दिनांक 09-01-2006 के संदर्भ में पी०एन०वी० इ०का० चिल्ली (मुस्करा) हमीरपुर के श्री रामाधार सहायक अध्यापक के सेवानिवृत्त के फलस्वरूप रिक्त पद पर श्री जुझार सिंह सहायक अध्यापक एवं श्री सूरज प्रसाद सिंह सहायक अध्यापक के सेवानिवृत्त से रिक्त पद पर श्री देवेन्द्र सिंह सहायक अध्यापक माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद के आदेश पर समायोजित किया जाता है। यदि इस सम्बन्ध में संस्थाधिकारी/कर्मचारी द्वारा कोई गलत तथ्य अथवा सूचना दी गयी है तो यह आदेश निरस्त कर दिया जायेगा।

(अखिलेश पाण्डेय)
जिला विद्यालय निरीक्षक
हमीरपुर।

पृष्ठांकन संख्या:- मा०/3641-43 /2005-06 तद्दिनांक।
प्रतिलिपि:- निम्नलिखित को सूचनार्थ एवं आवश्यक कार्यवाही हेतु सादर प्रेषित।
1- संयुक्त शिक्षा निदेशक, झाँसी मण्डल झाँसी।
2- सहायक वित्त एवं लेखाधिकारी (मा० शि०) कार्या० जिला विद्यालय निरीक्षक हमीरपुर।
3- प्रबन्धक/प्रधानाचार्य, पी०एन०वी० इ० का० चिल्ली (मुस्करा) हमीरपुर।

(अखिलेश पाण्डेय)
जिला विद्यालय निरीक्षक
हमीरपुर।।"

2. वस्तुस्थिति स्पष्ट करने के लिए यह ध्यान दिया जा सकता है कि रिट याचिका संख्या 19879 वर्ष 1989 को 17.10.2001 को निष्प्रभावी होने के कारण खारिज कर दिया गया था। 17.10.2001 के आदेश को यहाँ निम्नानुसार दिया किया जा रहा है:-

"कार्यालय ने समय बीत जाने के कारण इस रिट याचिका को सेवा संबंधी मामलों के उस समूह में रखा है, जिसमें यह माना गया है कि समय बीतने के कारण यह याचिका निष्प्रभावी हो गई है। मामला जो भी हो, चूंकि याचिकाकर्ता की ओर से इस याचिका पर बल देने के लिए कोई उपस्थित नहीं हुआ है, अतः इसे तदनुसार खारिज किया जाता है।"

3. इस आदेश की जानकारी अपीलकर्ता-याचिकाकर्ताओं को नहीं थी। हालाँकि, जब याचिकाकर्ताओं को 17.10.2001 के आदेश का पता चला, तो उन्होंने उस आदेश को वापस लेने (रिकॉल) के लिए एक आवेदन दायर किया। जब 8.3.2010 को मामले की सुनवाई हुई, तो 17.10.2001 के आदेश को वापस ले लिया गया और उसी दिन याचिका को दबाव न देने के आधार पर खारिज कर दिया गया। उच्च न्यायालय द्वारा 8.3.2010 को पारित आदेश, जिसके द्वारा रिट याचिका संख्या 19879 वर्ष 1989 को दबाव न देने के कारण खारिज किया गया था, के बावजूद याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता कार्य करते रहे और उन्हें 31.3.2006 के आदेश के बल पर नियमित मासिक वेतन का भुगतान किया जाता रहा। काफी समय बीतने के बाद, अर्थात 1.6.2017 को, जिला विद्यालय

निरीक्षक द्वारा कॉलेज के प्रबंधन/प्रधानाचार्य को यह स्पष्ट करने के लिए नोटिस दिया गया कि वे किस आधार पर याचिकाकर्ताओं को वेतन दे रहे थे। उनसे वह 8.3.2010 का आदेश भी उपलब्ध कराने को कहा गया जिसके द्वारा रिट याचिका संख्या 19879 वर्ष 1989 को दबाव न देने के कारण खारिज किया गया था। प्रबंध समिति/प्रधानाचार्य द्वारा भेजे गए इस नोटिस को याचिकाकर्ताओं ने संयुक्त रूप से रिट याचिका संख्या 34860 वर्ष 2017 में चुनौती दी और उस रिट याचिका में 4.8.2017 को, इस न्यायालय ने एक आदेश पारित किया जिसके द्वारा 1.6.2017 के आदेश पर रोक लगा दी गई। 4.8.2017 के अंतरिम आदेश को यहाँ निम्नानुसार दिया किया जा रहा है:-

"याचिकाकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया है कि वे क्रमशः 1987 और 1989 से कार्य कर रहे हैं। पूर्व में, उन्होंने एक रिट याचिका दायर की थी और उसमें एक अंतरिम आदेश प्रदान किया गया था। जब वे कार्यरत थे, जिला विद्यालय निरीक्षक ने 31.3.2006 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ताओं की सेवाओं को नियमित कर दिया था। दोनों याचिकाकर्ता कार्यरत हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि इसी बीच याचिकाकर्ताओं ने रिट याचिका वापस ले ली है। परिणामस्वरूप, आक्षेपित आदेश पारित कर दिए गए हैं और याचिकाकर्ताओं का वेतन रोक दिया गया है।

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि याचिकाकर्ता 25 वर्षों से अधिक समय से कार्य कर रहे हैं और उनके कार्य तथा आचरण के संबंध में कोई शिकायत नहीं है, और तकनीकी आधार पर प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ताओं का वेतन रोक दिया है।

मामला विचारणीय है।

राज्य के अधिकारियों की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता उपस्थित हैं।

प्रतिवादी संख्या 4 को नोटिस जारी करें जो शीघ्र ही प्रतिदेय हो।

प्रति-शपथ पत्र 6 सप्ताह के भीतर दाखिल किया जाए। उसके पश्चात एक सप्ताह के भीतर प्रत्युत्तर-शपथ पत्र, यदि कोई हो, दाखिल किया जा सकता है।

उक्त अवधि की समाप्ति के बाद सूचीबद्ध करें।

सूचीबद्ध करने की अगली तिथि तक 1.6.2017 और 6.6.2017 के आक्षेपित आदेशों का प्रभाव और क्रियान्वयन स्थगित रहेगा। यह भी प्रावधान किया जाता है कि याचिकाकर्ताओं को उनके वेतन का भुगतान किया जाएगा।"

4. इसके पश्चात याचिकाकर्ता-अपीलकर्ताओं का यह तर्क है कि जब शिक्षा विभाग ने याचिकाकर्ताओं से अपनी रिट याचिका संख्या 34860 वर्ष 2017 वापस लेने के लिए कहा ताकि उनके नियमितीकरण के मामले पर विचार किया जा सके, तो उन्होंने 29.8.2022 को रिट याचिका वापस ले ली। इसके पश्चात 7.9.2022 को, जिला विद्यालय निरीक्षक, हमीरपुर ने संस्थान के प्रबंधन को पत्र लिखकर याचिकाकर्ताओं की सेवाओं के नियमितीकरण हेतु प्रस्ताव भेजने के लिए कहा, क्योंकि रिट याचिका संख्या 34860 वर्ष 2017 वापस ले ली गई थी। उन कारणों से जो प्रबंध समिति ही बेहतर जानती है, जिला विद्यालय निरीक्षक के 7.9.2022 के संचार/निर्देश को रिट याचिका संख्या **रिट-ए 18341 वर्ष 2022** दायर करके चुनौती दी गई। यह रिट याचिका 14.11.2022 को इस निर्देश के साथ निस्तारित कर दी गई कि संयुक्त शिक्षा निदेशक, झाँसी 1.6.2017 के

नोटिस के संदर्भ में कार्यवाही पर विचार करें। इससे पहले कि संयुक्त शिक्षा निदेशक द्वारा कोई निर्णय लिया जाता, प्रबंध समिति ने याचिकाकर्ता-अपीलकर्ताओं को उपस्थिति पंजिका पर हस्ताक्षर करने से रोकने का निर्णय लिया और इसके पश्चात याचिकाकर्ताओं को संस्थान में कार्य करने से रोक दिया गया। परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता-अपीलकर्ताओं ने रिट-ए संख्या 34990 वर्ष 2023 दायर की, जिसमें 24.2.2023 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया जिसके द्वारा प्रबंधन को याचिकाकर्ता-अपीलकर्ताओं को संबंधित संस्थान में कार्य करने की अनुमति देने का निर्देश दिया गया। 2.6.2023 को, संयुक्त शिक्षा निदेशक ने रिट-ए संख्या 18314 वर्ष 2022 में उच्च न्यायालय के 14.11.2022 के आदेश के अनुपालन में मामले का निर्णय किया और यह निष्कर्ष निकाला कि चूंकि याचिकाकर्ता जुझार सिंह की वर्ष 1987 में और देवेन्द्र सिंह की वर्ष 1989 में नियुक्ति बिना किसी पद के रिक्त हुए सीटी श्रेणी में की गई थी, इसलिए उनकी नियुक्तियों को अनियमित माना जाना चाहिए और उन्हें कोई नियमितीकरण भी नहीं दिया जाना चाहिए। इसी बीच, जुझार सिंह 21.3.2023 को सेवा से सेवानिवृत्त हो गए। इसलिए, अपीलकर्ता-जुझार सिंह ने अलग से रिट-ए संख्या 11163 वर्ष 2023 दायर की और देवेन्द्र सिंह ने एक अलग रिट याचिका, रिट-ए संख्या 11129 वर्ष 2023 दायर की। ये दोनों रिट याचिकाएं एक-दूसरे से संबद्ध थीं और उन्हें एक साथ सुना गया और जब 16.12.2023 के एक साझा आदेश द्वारा रिट याचिकाएं खारिज कर दी गईं, तो अलग-अलग विशेष अपीलें दायर की गईं। देवेन्द्र सिंह की विशेष अपील को विशेष अपील संख्या 167 वर्ष 2024 और जुझार सिंह की अपील को विशेष अपील संख्या 200 वर्ष 2024 के रूप में अंकित किया गया।

5. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस तथ्य पर विचार नहीं किया कि पदों की अनुपलब्धता से संबंधित विवाद जिला विद्यालय निरीक्षक, हमीरपुर द्वारा 31.3.2006 को आदेश पारित किए जाने के साथ ही समाप्त हो गया था। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यही वह त्रुटि थी जो संयुक्त शिक्षा निदेशक ने भी 2.6.2023 के अपने आदेश में की थी, जिसमें उन्होंने 31.3.2006 के आदेश पर उसके सही परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया था। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि जब रिट याचिका संख्या 19879 वर्ष 1989 में पारित आदेशों से स्वतंत्र होकर 31.3.2006 का आदेश पारित कर दिया गया था, तो इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता था कि रिट याचिका संख्या 19879 वर्ष 1989 प्रारंभ में 17.10.2001 को अनुपस्थिति के कारण खारिज कर दी गई थी और तत्पश्चात 8.3.2010 को बहाल होने के बाद उसे दबाव न देने के कारण खारिज कर दिया गया था। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने 31.3.2006 के आदेश का संदर्भ दिया, जिसे इस आदेश में पहले भी उद्धृत किया जा चुका है। उस आदेश का संदर्भ देते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि भले ही 31.3.2006 के आदेश में यह कहा गया था कि अपीलकर्ता 27.10.1989 के आदेश के कारण कार्य कर रहे थे, लेकिन 31.3.2006 का आदेश पारित करने का वास्तविक कारण यह था कि प्रबंध समिति ने जिला विद्यालय निरीक्षक से अपीलकर्ताओं को उन पदों पर समायोजित करने का अनुरोध किया था जो दो सहायक अध्यापकों, श्री रामाधार और श्री सूरज प्रसाद सिंह की सेवानिवृत्ति के कारण रिक्त हुए थे। उन्होंने तर्क दिया कि श्री रामाधार द्वारा रिक्त किए गए पद पर अपीलकर्ता-जुझार सिंह को आमेलित किया गया था और श्री सूरज प्रसाद सिंह द्वारा रिक्त किए गए पद पर अपीलकर्ता-देवेन्द्र सिंह को आमेलित किया गया था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि यदि आदेश में यह उल्लेख किया

गया था कि आमेलन उच्च न्यायालय के किसी आदेश के कारण किया जा रहा था, तो उस कथन का कोई आधार नहीं था।

6. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम, 1982 में 6.4.1981 को सम्मिलित की गई धारा 33-ए (1-बी) स्पष्ट रूप से इस प्रभाव की थी कि यदि कोई शिक्षक 12.6.1985 के बाद और 13.5.1989 से पहले, उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग (कठिनाइयों का निवारण) आदेश, 1981 के पैराग्राफ 2 के अनुसार सीटी श्रेणी में एक मौलिक रिक्ति के विरुद्ध तदर्थ आधार पर सीधे नियुक्त किया गया था और उसके पास उसके अधीन निर्धारित सभी योग्यताएं थीं, तो उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग और चयन बोर्ड (संशोधन) अधिनियम, 1991 के प्रारंभ होने की तिथि से उस शिक्षक को मौलिक क्षमता में नियुक्त माना जाएगा, बशर्ते कि वह शिक्षक तदर्थ नियुक्ति की तिथि से संशोधन अधिनियम के प्रारंभ होने की तिथि तक संस्थान में निरंतर सेवा कर रहा हो।

7. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि, इसलिए, नियमित होने के लिए आवश्यक अनिवार्य आवश्यकताएं इस मामले में निश्चित रूप से मौजूद थीं। अपीलकर्ताओं की तदर्थ नियुक्तियाँ कठिनाइयों का निवारण आदेश, 1981 के तहत की गई थीं; याचिकाकर्ता अपनी सभी शैक्षिक योग्यताएँ रखते थे और उन्होंने संस्थान में अपनी सेवानिवृत्ति की तिथि तक अध्यापन कार्य जारी रखा था, न कि केवल 6.4.1991 तक। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि भले ही प्रारंभ में कोई अनियमितता थी जिसे बाद में सचेत रूप से सुधार लिया गया था, तो कई वर्षों के बीत जाने के बाद उस प्रारंभिक अनियमितता को अपीलकर्ताओं के विरुद्ध कार्रवाई करने का आधार नहीं बनाया जा सकता था। वर्तमान मामले में, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि अपीलकर्ता जुझार सिंह की नियुक्ति 31.8.1987 को हुई थी जबकि देवेन्द्र सिंह की नियुक्ति 26.2.1989 को हुई थी। अपनी भूल का एहसास होने पर, प्रबंध समिति और राज्य प्राधिकारियों ने भी इन दोनों शिक्षकों को 23.1.2006 को मौलिक रिक्तियों पर आमेलित कर लिया था।

8. **मनसाराम बनाम एस.पी. पाठक एवं अन्य (1984) 1 एससीसी 125** और **मद्रास एल्युमिनियम कंपनी लिमिटेड बनाम तमिलनाडु इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड एवं एक अन्य (2023) 8 एससीसी 240** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा करते हुए, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यदि प्रारंभ में कोई गलती हुई थी, तो उसके संबंध में एक उचित समय के भीतर कार्रवाई की जानी चाहिए थी, विशेषकर जब कोई समय-सीमा निर्धारित न हो। हालाँकि, 'उचित समय' क्या होगा, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, चूक की प्रकृति, हुई क्षति और क्या किसी तीसरे पक्ष के अधिकार सृजित हुए थे, इस पर निर्भर करेगा। इन दो निर्णयों का हवाला देते हुए, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि भले ही जुझार सिंह और देवेन्द्र सिंह नामक दो शिक्षकों की नियुक्तियाँ क्रमशः वर्ष 1987 और 1989 में अनियमित रूप से की गई थीं, शिक्षा विभाग द्वारा 31.3.2006 को सचेत रूप से उस गलती को सुधार लिया गया था और अब शिक्षा विभाग या संस्थान की प्रबंध समिति को यह कहने का कोई अधिकार नहीं है कि प्रारंभिक नियुक्तियाँ बिना किसी रिक्ति के की गई थीं और इसलिए, नियमितीकरण नहीं किया जा सकता था।

9. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **राधे श्याम यादव एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 10** में सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय का हवाला दिया और तर्क दिया कि यह स्वीकार्य है कि अपीलकर्ताओं की नियुक्ति उन पदों पर की गई थी जो रिक्त नहीं थे। ऐसा उनकी किसी गलती के कारण नहीं हुआ था। साथ ही, प्रारंभिक नियुक्तियों को निश्चित रूप से 11.9.1987 और 25/26.7.1989 को अनुमोदित किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने, इसलिए, प्रस्तुत किया कि निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ताओं को उनकी किसी गलती के बिना दंड भुगतना होगा।

10. **राधे श्याम यादव (उपरोक्त)** के निर्णय में तीन याचिकाकर्ताओं, लाल चंद्र खरवार, राधे श्याम यादव और रविंद्र नाथ यादव को वर्ष 1999 में एक जूनियर हाई स्कूल में सहायक अध्यापक के रूप में नियुक्त किया गया था। हालाँकि, अक्टूबर 2005 के महीने में उनका वेतन रोक दिया गया था। इस बात पर विवाद था कि क्या याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति रिक्त पदों पर हुई थी और क्या धोखाधड़ी से रिक्तियां दिखाकर याचिकाकर्ताओं को नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ताओं ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय का रुख किया था, जहाँ (विद्वान एकल न्यायाधीश) ने 10.9.2013 को रिट याचिका खारिज कर दी थी और उनकी विशेष अपील भी 15.9.2021 को खारिज कर दी गई थी। हालाँकि, सर्वोच्च न्यायालय ने विद्वान एकल न्यायाधीश और विशेष अपीलीय न्यायालय के निर्णय को यह कहते हुए उलट दिया कि याचिकाकर्ताओं का निश्चित रूप से कोई दोष नहीं था और राज्य इतने लंबे समय तक काम लेने के बाद याचिकाकर्ताओं/अपीलकर्ताओं का वेतन नहीं रोक सकता था। **राधे श्याम यादव (उपरोक्त)** के इसी निर्णय पर भरोसा करते हुए, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि इस मामले में भी अपीलकर्ताओं की नियुक्ति उचित प्रक्रिया के बाद हुई थी और उनकी नियुक्तियों को अनुमोदित भी किया गया था, और तत्पश्चात यह महसूस करने पर कि उन्हें गैर-मौजूद पदों पर नियुक्त किया गया था, रिक्तियां होने पर अपीलकर्ताओं को 31.3.2006 को आमेलित भी कर लिया गया था। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि 31.3.2006 के इस आदेश को राज्य या प्रबंध समिति द्वारा कभी चुनौती नहीं दी गई थी और यह माना जाएगा कि अपीलकर्ता मौलिक रिक्तियों पर बने हुए थे, जो कि 1982 के अधिनियम की धारा 33-ए (1-बी) की प्राथमिक आवश्यकता थी।

11. इसके पश्चात अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **विनोद कुमार एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य (2024) 9 एससीसी 327** में सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय का संदर्भ देते हुए प्रस्तुत किया कि नियमित कर्मचारियों के रूप में अपीलकर्ताओं की निरंतर सेवा और इस तथ्य को देखते हुए कि अपीलकर्ता स्थायी पदों के समान कर्तव्यों का पालन कर रहे थे, उन्हें नियमित किया जाना चाहिए था। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **विनोद कुमार (उपरोक्त)** के इस निर्णय पर भरोसा करते हुए प्रस्तुत किया कि किसी भी अनियमित नियुक्ति, जो कि अवैध नियुक्ति नहीं है, पर नियमितीकरण के लिए विचार किया जाना चाहिए। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने इस निर्णय के पैराग्राफ संख्या 7 और 8 पर भरोसा किया और इसलिए उन्हें यहाँ निम्नानुसार दिया किया जा रहा है:-

"7. कर्नाटक राज्य बनाम उमा देवी: (2006) 4 एससीसी 1 के मामले में आए निर्णय में भी "अनियमित" और "अवैध" नियुक्तियों के बीच अंतर स्पष्ट किया गया था, जिसमें इस बात के महत्व पर जोर दिया गया था कि कुछ नियुक्तियों पर विचार किया जाना चाहिए, भले ही वे कड़ाई से निर्धारित नियमों और प्रक्रिया के अनुसार न की गई हों; उन्हें अवैध रूप से की गई नियुक्तियां नहीं कहा जा सकता यदि उनमें नियमित नियुक्तियों की प्रक्रियाओं का पालन किया गया हो, जैसे कि वर्तमान मामले की तरह लिखित परीक्षा या साक्षात्कार का आयोजन। उमा देवी (उपरोक्त) मामले के पैराग्राफ 53 को यहाँ दिया किया जा रहा है:

"53. एक पहलू को स्पष्ट करने की आवश्यकता है। ऐसे मामले हो सकते हैं जहाँ विधिवत योग्य व्यक्तियों की विधिवत स्वीकृत रिक्त पदों पर 'अनियमित नियुक्तियाँ' (अवैध नियुक्तियाँ नहीं) की गई हों–जैसा कि मैसूर राज्य बनाम एस.वी. नारायणप्पा [(1967) 1 एससीआर 128], आर.एन. नंजुनदप्पा बनाम टी. थिमैया: (1972) 1 एससीसी 409 और बी.एन. नागराजन बनाम कर्नाटक राज्य [(1979) 4 एससीसी 507] में समझाया गया है और ऊपर पैरा 15 में संदर्भित है–और कर्मचारी न्यायालयों या न्यायाधिकरणों के आदेशों के हस्तक्षेप के बिना दस वर्ष या उससे अधिक समय से कार्य करना जारी रखे हुए हों। ऐसे कर्मचारियों की सेवाओं के नियमितीकरण के प्रश्न पर ऊपर संदर्भित मामलों में और इस निर्णय के आलोक में इस न्यायालय द्वारा तय किए गए सिद्धांतों के आधार पर गुण-दोष पर विचार करना पड़ सकता है। उस संदर्भ में, भारत संघ, राज्य सरकारों और उनके अंगों को एकमुश्त उपाय के रूप में ऐसे अनियमित रूप से नियुक्त व्यक्तियों की सेवाओं को नियमित करने के लिए कदम उठाने चाहिए, जिन्होंने विधिवत स्वीकृत पदों पर दस वर्ष या उससे अधिक समय तक कार्य किया है, लेकिन न्यायालयों या न्यायाधिकरणों के आदेशों के संरक्षण में नहीं; और उन्हें आगे यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उन रिक्त स्वीकृत पदों को भरने के लिए नियमित भर्तियाँ की जाएँ जिन्हें भरा जाना आवश्यक है, जहाँ अभी अस्थायी कर्मचारी या दैनिक वेतनभोगी कार्यरत हैं। यह प्रक्रिया इस तिथि से छह महीने के भीतर शुरू की जानी चाहिए। हम यह भी स्पष्ट करते हैं कि यदि कोई नियमितीकरण पहले ही किया जा चुका है, जो न्यायाधीन नहीं है, तो उसे इस निर्णय के आधार पर पुन: खोलने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन भविष्य में संवैधानिक आवश्यकता की उपेक्षा कर संवैधानिक योजना के अनुसार विधिवत नियुक्त न होने वालों को नियमित करने या स्थायी करने की प्रक्रिया नहीं होनी चाहिए।"

(मूल में ज़ोर दिया गया)

8. ऊपर दर्ज किए गए कारणों के आलोक में, यह न्यायालय अपीलकर्ताओं के तर्कों में सार पाता है और यह धारित करता है कि समय के साथ विकसित हुई उनकी सेवा शर्तें, उन्हें अस्थायी से नियमित श्रेणी में पुनर्वर्गीकृत करने का अधिकार प्रदान करती हैं। उनकी भूमिकाओं की वास्तविक प्रकृति और स्थायी कर्मचारियों के समान उनकी निरंतर सेवा को मान्यता न देना साम्या, निष्पक्षता और रोजगार नियमों के पीछे निहित मंशा के प्रतिकूल है।"

12. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने इसके पश्चात **जग्गो बनाम भारत संघ एवं अन्य 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3826** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए प्रस्तुत किया कि नियमितीकरण

के प्रयोजनों के लिए लंबी और निरंतर सेवा, कार्य की प्रकृति और इस तथ्य पर विचार किया जाना चाहिए था कि नौकरी में कोई अवैध प्रवेश नहीं हुआ था। चूंकि, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने निर्णय के पैराग्राफ संख्या 10 और 20 पर भरोसा किया है, इसलिए उन्हें यहाँ निम्नानुसार दिया किया जा रहा है :-

"10. प्रस्तुत तर्कों और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, हम पाते हैं कि 10 वर्षों से काफी अधिक अवधि तक की अपीलकर्ताओं की लंबी और निर्बाध सेवा को केवल उनकी प्रारंभिक नियुक्तियों को अंशकालिक या संविदात्मक बताकर दरकिनार नहीं किया जा सकता है। उनके रोजगार के सार पर उनके निरंतर योगदान, उनके कार्य की अभिन्न प्रकृति और इस तथ्य के आलोक में विचार किया जाना चाहिए कि कोई भी साक्ष्य यह सुझाव नहीं देता है कि उनका प्रवेश किसी अवैध या गुप्त मार्ग से हुआ था।

.....

20. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि उमा देवी (उपरोक्त) मामले में दिए गए निर्णय का उद्देश्य उन कर्मचारियों को दंडित करना नहीं है जिन्होंने राज्य या उसके अंगों के निरंतर और आवश्यक कार्यों को पूरा करते हुए लंबी सेवा प्रदान की है। उक्त निर्णय का उद्देश्य पिछले दरवाजे से प्रवेश और उन अवैध नियुक्तियों को रोकना था जो संवैधानिक आवश्यकताओं की अवहेलना करती हैं। हालाँकि, जहाँ नियुक्तियाँ अवैध नहीं बल्कि संभवतः 'अनियमित' थीं, और जहाँ कर्मचारियों ने एक लंबी अवधि तक स्वीकृत कार्यों के परिप्रेक्ष्य में निरंतर सेवा की थी, वहाँ एक निष्पक्ष और मानवीय समाधान की आवश्यकता सर्वोपरि हो जाती है। नियमित आधार पर अनिवार्य रूप से आवश्यक कार्यों को निष्पादित करते हुए लंबी, निरंतर और बेदाग सेवा, समय के साथ उस स्थिति को, जो शुरू में तदर्थ या अस्थायी थी, एक ऐसे परिदृश्य में बदल सकती है जो निष्पक्ष नियमितीकरण की मांग करता है। इस न्यायालय के एक हालिया निर्णय 'विनोद कुमार एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य [2024] 1 एस.सी.आर. 1230' में यह धारित किया गया था कि प्रक्रियात्मक औपचारिकताओं का उपयोग किसी ऐसे कर्मचारी की सेवा के नियमितीकरण से इनकार करने के लिए नहीं किया जा सकता है जिसकी नियुक्ति को 'अस्थायी' कहा गया था, लेकिन जिसने एक लंबी अवधि तक नियमित कर्मचारी की क्षमता में वही कर्तव्य निभाए हैं जो एक नियमित कर्मचारी द्वारा निभाए जाते हैं। इस निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे दिए किए गए हैं:"

"6. उच्च न्यायालय द्वारा उमा देवी (उपरोक्त) के निर्णय का अनुप्रयोग वर्तमान तथ्यों पर सटीक रूप से फिट नहीं बैठता है, क्योंकि जिन विशिष्ट परिस्थितियों में अपीलकर्ताओं को नियोजित किया गया था और उन्होंने अपनी सेवा जारी रखी है, वे भिन्न हैं। शुरुआत में प्रक्रियात्मक औपचारिकताओं पर निर्भरता का उपयोग उन मौलिक अधिकारों को स्थायी रूप से नकारने के लिए नहीं किया जा सकता है जो निरंतर सेवा के माध्यम से एक लंबी अवधि में अर्जित हुए हैं। उनकी पदोन्नति रिक्तियों के लिए एक विशिष्ट अधिसूचना और उसके बाद एक परिपत्र पर आधारित थी, जिसके बाद लिखित परीक्षा और साक्षात्कार वाली चयन प्रक्रिया अपनाई गई थी, जो उनके मामले को उमा देवी (उपरोक्त) मामले में चर्चा की गई 'पिछले दरवाजे से प्रवेश' वाली नियुक्तियों से अलग करती है।

7. उमा देवी (उपरोक्त) के मामले में आए निर्णय ने 'अनियमित' और 'अवैध' नियुक्तियों के बीच भी अंतर स्पष्ट किया था, जिसमें इस बात के महत्व पर जोर दिया गया था कि कुछ नियुक्तियों पर विचार किया जाना चाहिए, भले ही वे कड़ाई से निर्धारित नियमों और प्रक्रिया के अनुसार न की गई हों; उन्हें अवैध रूप से की गई नियुक्तियां नहीं कहा जा सकता यदि उनमें नियमित नियुक्तियों की प्रक्रियाओं का पालन किया गया हो, जैसे कि वर्तमान मामले की तरह लिखित परीक्षा या साक्षात्कार का आयोजन..."

13. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने इन दोनों विशेष अपीलों के विरोध में **अभिषेक त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, सचिव माध्यमिक शिक्षा, लखनऊ एवं अन्य (रिट याचिका संख्या 655 (एस/एस) वर्ष 2014)** दिनांक 17.12.2015 के निर्णय पर भरोसा किया है और यह तर्क दिया है कि नियमों के विरुद्ध की गई किसी भी नियुक्ति को नियमितीकरण के योग्य नियुक्ति नहीं माना जा सकता। उन्होंने इस तथ्य पर भी अत्यधिक बल दिया है कि जब प्रारंभिक नियुक्ति की गई थी, तब वह नियमित रिक्ति पर नहीं की गई थी।

14. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री देवेश विक्रम को सुनने के पश्चात, न्यायालय का यह मत है कि दोनों विशेष अपीलें स्वीकार किए जाने योग्य हैं। अपीलकर्ताओं की 31.8.1987 और 26.2.1989 को नियुक्ति के बाद, उनकी नियुक्तियों को 11.9.1987 और 25/26.7.1989 को अनुमोदित भी किया गया था। 17.10.1989 को उनकी सेवाएँ समाप्त किए जाने के बाद, उन्होंने रिट याचिका संख्या 19879 वर्ष 1989 के माध्यम से उच्च न्यायालय का रुख किया था, जिसमें 4.12.1989 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था और 17.10.1989 के समाप्ति आदेश को स्थगित रखा गया था। इसके पश्चात 17.10.2001 को रिट याचिका को निष्प्रभावी हो जाने के कारण खारिज कर दिया गया था। याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर एक आवेदन पर, उक्त आदेश को 8.3.2010 को वापस ले लिया गया और उसी दिन, इसे 'दबाव न देने' के कारण खारिज कर दिया गया। हालाँकि, इस बीच की अवधि के दौरान, 31.3.2006 के एक आदेश के माध्यम से अपीलकर्ताओं को दो मौजूदा रिक्तियों पर आमेलित कर लिया गया था। अपीलकर्ताओं के मौजूदा रिक्तियों पर आमेलित होने के बाद, उनकी नियुक्तियों में शुरू में रही कोई भी अनियमितता, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों, यानी **मनसाराम (उपरोक्त) और मद्रास एल्युमिनियम कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त)** के अनुसार, सुधर गई मानी जाएगी। इन निर्णयों के अनुसार निश्चित रूप से यदि कोई कार्रवाई की जानी थी, तो वह उचित समय के भीतर की जानी चाहिए थी और ऐसा न किए जाने के कारण, अपीलकर्ताओं को अब दंडित नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त, न्यायालय का यह मत है कि सर्वोच्च न्यायालय के **'राधे श्याम यादव' (उपरोक्त)** के निर्णय के अनुसार, अपीलकर्ता निश्चित रूप से निर्दोष थे। सर्वोच्च न्यायालय के **'विनोद कुमार' (उपरोक्त) और 'जग्गो' (उपरोक्त)** के निर्णयों के अनुसार हम पाते हैं कि निश्चित रूप से जब अपीलकर्ताओं की नियुक्तियों में कोई अनियमितता थी, तो उस अनियमितता को दूर कर दिया गया था और नियुक्तियों को नियमित कर दिया गया था।

15. अंतिम विश्लेषण में, हमारा यह मत है कि रिट याचिकाओं को स्वीकार किया जाना चाहिए था। संयुक्त शिक्षा निदेशक के आदेश, जो इस तथ्य पर आधारित थे कि प्रारंभिक नियुक्ति गलत तरीके से की गई थी, त्रुटिपूर्ण ढंग से पारित किए गए थे।

16. ऊपर बताए गए सभी कारणों से, हमारा यह सुविचारित मत है कि यदि प्रारंभिक नियुक्ति में कोई अनियमितता थी, तो उसे राज्य द्वारा ही समाप्त कर दिया गया था और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ता नियमितीकरण से संबंधित प्रासंगिक प्रावधानों के दायरे में नहीं आते थे। अपीलकर्ताओं के नियमित रिक्तियों पर आमेलित होने के बाद, यह माना जाना चाहिए था कि वे सदैव नियमित रिक्तियों पर कार्य कर रहे थे और चूंकि वे अपनी सेवानिवृत्ति की तिथि तक निरंतर अध्यापन कार्य कर रहे थे, इसलिए यह माना जा सकता है कि वे सदैव निरंतर सेवा में थे।

17. अतः, उपर्युक्त कारणों से, विशेष अपील संख्या 167 वर्ष 2024 और विशेष अपील संख्या 200 वर्ष 2024 स्वीकार की जाती हैं। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट-ए संख्या 11129 वर्ष 2023 और रिट-ए संख्या 11163 वर्ष 2023 में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 16.12.2023 को निरस्त किया जाता है। रिट याचिकाएँ स्वीकार की जाती हैं और संयुक्त शिक्षा निदेशक, झाँसी मंडल, झाँसी द्वारा पारित आदेश दिनांक 2.6.2023 को भी रद्द किया जाता है। अपीलकर्ताओं को नियमित माना जाए और उन्हें सभी परिणामी लाभ प्रदान किए जाएं।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 367

अपीलीय क्षेत्राधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 08.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि

विशेष अपील संख्या-259 वर्ष 2024

सम्बद्ध

इससे जुड़े अन्य मामले: शिवम पांडे और अन्य ... अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... उत्तरदाताओं

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: सीमांत सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: अर्चना सिंह, मुख्य स्थायी अधिवक्ता

A. सेवा कानून - उत्तर प्रदेश लोक सेवा (आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लिए आरक्षण) अधिनियम, 2020 - धारा 1(1), 3(3) और 4 - कार्यालय ज्ञापन दिनांक 18.02.2019 और 13.08.2019 - आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लिए आरक्षण - सहायक शिक्षकों के 69,000 पदों के लिए विज्ञापन 17.05.2020 को जारी किया गया था - अधिनियम वर्ष 2020 से पता चलता है कि यह 01.02.2019 को लागू होना है - हालांकि, माननीय एकल न्यायाधीश ने कहा कि अधिनियम वर्ष 2020 31.8.2020 को अधिनियमित किया गया था, इसलिए यह तथ्य कि इसे 18.2.2019 से प्रभावी बनाया गया है, अपीलकर्ता के लिए कोई मदद नहीं करेगा - वैधता को चुनौती दी गई - अवधारित की गई, उपयुक्त विधायिका हमेशा पूर्वव्यापी प्रभाव से कानून पेश कर सकती है - यह स्वीकार करना मुश्किल होगा कि ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण 31.8.2020 से शुरू होगा, न कि 18.2.2019 से जब ई.डब्ल्यू.एस. के लिए राज्य द्वारा कार्यालय ज्ञापन जारी किया गया था सेंट के रोजगार में आरक्षण (प्रस्तर-36 और 37)

ख. भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 162 - कार्यकारी शक्ति, उसकी सीमा - यह विधायी शक्ति के साथ सापेक्षता है - अवधारित, राज्य की कार्यकारी शक्तियां अपनी विधायी शक्ति के साथ सह-व्यापक हैं - एक बार वर्ष 103वें संविधान संशोधन के आधार पर राज्य को ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण का प्रावधान उपलब्ध कराया गया था, तो राज्य के लिए कानून बनाकर या कार्यकारी निर्देश जारी करके ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण को लागू करने

के लिए खुला था - राज्य सरकार थी दिनांक 18.2.2019 को कार्यालय ज्ञापन जारी करके राज्य के सार्वजनिक नियोजन में ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण प्रदान करने में सक्षम है। (प्रस्तर-37 और 40)

सी. राहत प्रदान करना - भर्ती की प्रक्रिया पहले ही समाप्त हो चुकी थी - चयनित उम्मीदवारों में से किसी को भी पार्टी प्रतिपक्षी के रूप में शामिल नहीं किया गया है - निर्देश जारी करने के लिए अदालत की क्षमता, जिसका कार्यान्वयन केवल असंभव होगा - अवधारित किया गया, यदि 10% ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण को बढ़ाने की आवश्यकता होती है, तो ई.डब्ल्यू.एस. श्रेणी से संबंधित उम्मीदवारों के लिए एक मेरिट सूची तैयार करने के लिए एक निर्देश जारी करना होगा - यह विवेक का विवेकपूर्ण प्रयोग नहीं होगा यह न्यायालय इस स्तर पर प्रश्नाधीन भर्ती में 10% ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण का विस्तार करने के लिए कोई निर्देश जारी करेगा, क्योंकि इस तरह के निर्देश का कार्यान्वयन केवल असंभव होगा। अन्यथा यह तय हो गया है कि प्रभावित व्यक्तियों की अभियोग के बिना या उनकी नियुक्ति के लिए कोई चुनौती दिए बिना कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है जिसका प्रभाव चयनित उम्मीदवारों को हटाने का हो। (प्रस्तर-47)

विशेष अपील का निपटारा किया गया। (ई-1)

उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची:

1. महेंद्र पाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2023 (3) ए.डी.जे. 496
2. राघवेंद्र प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2020 (4) ए.डी.जे. 490 (एलबी)
3. देवेश शर्मा बनाम यू.ओ.आई. और अन्य; (2023) 18 एस.सी.सी. 339
4. नवीन कुमार और अन्य बनाम यू.ओ.आई. और अन्य; 2024 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 2360
5. मेडिकल सुपरस्पेशियलिटी के इच्छुक और निवासी बनाम यू.ओ.आई. के सहयोगी; (2019) 8 एस.सी.सी. 607: 2019 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1055

(माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा और
माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि द्वारा प्रदत्त)

1. विशेष अपीलों का यह समूह 29.02.2024 को रिट याचिकाओं के एक समूह में एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए एक समग्र निर्णय से उद्भूत है, जिसके तहत सहायक शिक्षकों के 69,000 पदों के लिए की गई भर्ती के संबंध में आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (संक्षेप में 'ई.डब्ल्यू.एस.' के लिए) को आरक्षण से इनकार कर दिया जाता है। एकल न्यायाधीश ने यह व्यवस्था दी है कि ई.डब्ल्यू.एस. श्रेणी में आरक्षण लागू करने से पहले भर्ती शुरू हो गई है। इस प्रकार व्यथित होकर, रिट याचिकाकर्ता विशेष अपीलों के प्रस्तुत बैच में हमारे सामने हैं।

अनुवादित

2. विशेष अपीलों के प्रस्तुत बैच में अपीलकर्ताओं की ओर से प्रस्तुतियों का नेतृत्व करने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे और श्री जी.के. सिंह ने प्रस्तुत किया कि ई.डब्ल्यू.एस. के लिए आरक्षण 12.01.2019 को वर्ष 103वें संविधान संशोधन के माध्यम से पेश किया गया था। इसके बाद राज्य विधानमंडल ने इस तरह के आरक्षण को प्रभावी बनाने के लिए उत्तर प्रदेश लोक सेवा (आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लिए आरक्षण) अधिनियम, 2020 उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-10 वर्ष 2020 को अधिनियमित किया। अधिनियम को अधिनियम की धारा 1 (1) के तहत पूर्वव्यापी आवेदन दिया गया था, जिसे इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है:"

1. (1) इस अधिनियम को उत्तर प्रदेश लोक सेवा (आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लिए आरक्षण) अधिनियम, 2020 कहा जा सकता है।

(2) यह 01 फरवरी, 2019 को लागू माना जाएगा।

3. उपरोक्त अधिनियम की धारा 3(3) और (4) भी प्रासंगिक हैं और इसे इसके नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"(3) कार्मिक अनुभाग-2 वाइड संख्या-1/2019/4/1/2002/केए-2/19टी द्वारा जारी कार्यालय ज्ञापन। सी.II, दिनांक 18.02.2019 को इस धारा के तहत जारी किया गया माना जाएगा।

(4) उपधारा (1) के तहत आरक्षण लागू करने के लिए, रोस्टर अधिसूचना ओएम संख्या-5/2019/4/1/2002/केए-2/2019टी द्वारा जारी किया गया है। सी.-आई, दिनांक 13 अगस्त, 2019 को राज्य सरकार द्वारा जारी किया गया है, जो समाप्त होने तक लगातार लागू किया जाएगा।

4. उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-10 वर्ष 2020 के अधिनियमित होने से पहले भी उत्तर प्रदेश राज्य ने 18.2.2019 को कार्यालय ज्ञापन जारी किया, जिसमें सार्वजनिक रोजगार में आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को आरक्षण प्रदान किया गया था। इस उद्देश्य के लिए राज्य की कार्यकारी शक्ति का उपयोग किया गया था। अधिनियम वर्ष 2020 की धारा 13 में बचत खंड शामिल है जो वर्तमान उद्देश्यों के लिए प्रासंगिक है और इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"13. इस अधिनियम के उपबंध उन मामलों पर लागू नहीं होंगे जिनमें इस अधिनियम के प्रारंभ से पहले चयन प्रक्रिया शुरू की गई है और ऐसे मामलों को कानून और सरकारी आदेश के प्रावधानों के अनुसार निपटाया जाएगा जैसा कि वे प्रारंभ से पहले खड़े थे। स्पष्टीकरण: इस खंड के प्रयोजनों के लिए चयन प्रक्रिया शुरू की गई मानी जाएगी, जहां प्रासंगिक सेवा नियमों के तहत, भर्ती निम्नलिखित के आधार पर की जानी है-

(i) केवल लिखित परीक्षा या साक्षात्कार, लिखित परीक्षा या साक्षात्कार, जैसा भी मामला हो, शुरू हो गया है, या

(ii) लिखित परीक्षा और साक्षात्कार दोनों के लिए लिखित परीक्षा शुरू हो गई है। (2) इस अधिनियम के उपबंध उत्तर प्रदेश में सरकारी कर्मचारी की मृत्यु पर आश्रित की भर्ती नियम, 1974 के अधीन की जाने वाली नियुक्ति पर लागू नहीं होंगे।

5. याचिकाकर्ताओं के अनुसार, सहायक शिक्षक के पद के लिए भर्ती की प्रक्रिया 17.5.2020 को प्रतिवादियों द्वारा प्रकाशित विज्ञापन के अनुसार शुरू हुई थी, जब तक कि 18.2.2019 के कार्यालय ज्ञापन के माध्यम से उत्तर प्रदेश राज्य में ई.डब्ल्यू.एस. श्रेणी के तहत सार्वजनिक रोजगार में आरक्षण पहले से ही लागू किया जा चुका था। इसलिए, याचिकाकर्ताओं का कहना है कि बुनियादी संस्थानों में सहायक शिक्षकों के 69,000 पदों पर नियुक्ति के लिए शुरू की गई भर्ती प्रक्रिया में ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण का लाभ बढ़ाया जाना चाहिए था।

6. उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड (इसके बाद 'बुनियादी संस्थानों' के रूप में संदर्भित) के शैक्षणिक संस्थानों में सहायक शिक्षक के पद पर नियुक्ति उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा (शिक्षक सेवा) नियम, 1981 द्वारा विनियमित है। इन नियमों में समय-समय पर संशोधन किया गया। वर्तमान उद्देश्यों के लिए, नियम वर्ष 1981 में किए गए 22वें संशोधन और 23वें संशोधन का उल्लेख करना पर्याप्त होगा। नियम 14(1) वर्ष 1981 के नियम 15.3.2018 को अधिसूचित 22 वें संशोधन द्वारा संशोधित किए गए हैं, जिन्हें निम्नानुसार पढ़ा गया है:

"14(1)(ए) रिक्तियों का निर्धारण। नियुक्ति के संबंध में, नियम 5 के खंड (ए) के तहत नर्सरी स्कूलों की मालकिन और जूनियर बेसिक स्कूलों के सहायक मास्टर या सहायक मालकिन के पद पर सीधी भर्ती करके, नियुक्ति प्राधिकारी रिक्तियों की संख्या-के साथ-साथ अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों से संबंधित उम्मीदवारों के लिए आरक्षित की जाने वाली रिक्तियों की संख्या का निर्धारण करेगा। पिछड़ा वर्ग, और नियम 9 के तहत अन्य श्रेणियां और राज्य के साथ-साथ संबंधित जिले में पर्याप्त प्रसार वाले कम से कम दो प्रमुख दैनिक समाचार पत्रों में प्रकाशित की जाती हैं, जिसमें निर्धारित प्रशिक्षण योग्यता रखने वाले उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित किए जाते हैं और सरकार या भारत सरकार द्वारा अवधारित और सरकार द्वारा अवधारित सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा उत्तीर्ण की जाती है।

7. नियम 14(1) को 24.1.2019 को अधिसूचित वर्ष 23वें संशोधन के आधार पर संशोधित किया गया था, जो इस प्रकार है:

14. चयन की प्रक्रिया--(1) रिक्तियों का निर्धारण। नियुक्ति के संबंध में, नियम 5 के खंड (ए) के तहत जूनियर बेसिक स्कूलों के सहायक मास्टर के पद पर सीधी भर्ती करके, नियुक्ति प्राधिकारी रिक्तियों की संख्या-के साथ-साथ नियम 9 के तहत अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गों और अन्य श्रेणियों से संबंधित

उम्मीदवारों के लिए आरक्षित की जाने वाली रिक्तियों की संख्या का निर्धारण करेगा और सचिव को अग्रेषित करेगा, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड, प्रयागराज। आरक्षण के अनुसार संकलित रिक्तियों की जानकारी सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड, प्रयागराज द्वारा परीक्षा निकाय को प्रदान की जाएगी। अधिसूचित रिक्तियों के लिए एक सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा सरकार द्वारा अधिकृत परीक्षा आयोजित की जाएगी और परिणाम, आरक्षण के अनुसार, सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड, प्रयागराज को प्रदान किया जाएगा। इसके बाद, सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड, प्रयागराज द्वारा भर्ती के लिए एक विज्ञापन कम से कम दो प्रमुख दैनिक समाचार पत्रों में प्रकाशित किया जाएगा, जिसमें निर्धारित शैक्षिक और प्रशिक्षण योग्यता रखने वाले उम्मीदवारों से ऑनलाइन आवेदन आमंत्रित किए जाएंगे, जो सरकार या भारत सरकार द्वारा अवधारित की गई और सरकार द्वारा अवधारित सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा उत्तीर्ण की गई हो। जिसमें प्रत्याशियों द्वारा कैडरवार जिला विकल्प भरा जाएगा।

8. नियम 1981 के नियम 14, जैसा कि 22वें संशोधन नियमों द्वारा संशोधित किया गया है, सहायक शिक्षक के पद पर उन व्यक्तियों से नियुक्ति की आवश्यकता है जिनके पास सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा (इसके बाद 'ए.टी.आर.ई.' के रूप में संदर्भित) उत्तीर्ण करने सहित अपेक्षित योग्यता है।

9. 1.12.2018 को एक सरकारी आदेश जारी किया गया था, जिसमें 5 सभी को रखने की प्रक्रिया शुरू की गई थी। शिवम पांडे और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के खिलाफ बेसिक संस्थानों में सहायक शिक्षकों के 69,000 पदों के लिए 371 ए.टी.आर.ई. परीक्षा। 1.12.2018 का सरकारी आदेश इस प्रकार है:

*"*संख्या-202056/68-4-2018*
प्रेषक,

डॉ० प्रभात कुमार,
अपर मुख्य सचिव,
उ०प्र० शासना

सेवा में,

निदेशक,
सचिव,

राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं परीक्षा नियामक प्राधिकारी,
प्रशिक्षण परिषद, उ०प्र०, लखनऊ उ०प्र०, इलाहाबाद।
बेसिक शिक्षा अनुभाग-4 लखनऊ, दिनांक 01 दिसम्बर, 2018

अनधिकृत

विषयः "सहायक अध्यापक भर्ती परीक्षा 2019" के आयोजन हेतु गाइड लाइन्स/दिशा निर्देश।

महोदय,

उपर्युक्त विषयक सचिव, परीक्षा नियामक प्राधिकारी के पत्र संख्या गोष०स०अ०५००-10/21556- 59/2018-10 दिनांक 01 दिसम्बर, 2018 का संदर्भ ग्रहण करें, जिसके द्वारा "सहायक अध्यापक भर्ती परीक्षा-2019 के संबंध में मार्गदर्शी सिद्धान्त गाइड लाइन्स, प्रक्रिया और समय सारिणी के संबंध में शासनादेश निर्गत किये जाने का अनुरोध किया गया है।

2- इस सम्बन्ध में मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है कि शासन द्वारा सम्यक् विचारोपरान्त उ०प्र० बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में "सहायक अध्यापक भर्ती परीक्षा 2019" आयोजित किये जाने हेतु मार्गदर्शी सिद्धान्त, गाइड लाइन्स, प्रक्रिया और समय सारिणी संलग्न कर निर्गत किया जाता है।

3- "सहायक अध्यापक भर्ती परीक्षा 2019" उ०प्र० बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में सहायक अध्यापक के कुल 69000 रिक्त पदों पर भर्ती के लिये आयोजित की जायेगी। यह परीक्षा मात्र इसी भर्ती के लिये ही मान्य होगी।

भवदीय,
ह० अपठनीय
(डा० प्रगति कुमार)
अपर मुख्य सचिव

अनुवादित

संख्या एवं दिनांक तदैव-
प्रतिलिपि निम्नलिखित को सूचनार्थ एवं आवश्यक कार्यवाही हेतु
प्रेषितः-
1- समस्त मण्डलायुक्त, उत्तर प्रदेश।
2- समस्त जिलाधिकारी, उत्तर प्रदेश।
3- राज्य परियोजना निदेशक, सभी के लिए शिक्षा परियोजना परिषद उ०प्र०।
4- निदेशक, माध्यमिक/बेसिक शिक्षा/साक्षरता एवं प्रा० शिक्षा उ०प्र०।
5- अपर शिक्षा निदेशक, बेसिक/माध्यमिक शिक्षा उ०प्र० इलाहाबाद।
6- सचिव, बेसिक शिक्षा परिषद उ०प्र० इलाहाबाद।
7- समस्त मण्डलीय संयुक्त शिक्षा निदेशक उ०प्र०।
8- समस्त प्राचार्य, जिला एवं प्रशिक्षण संस्थान, उ०प्र०।
9- शिक्षा अनुभाग-5

11- गार्ड फाइल ।

आज्ञा से,
ह० अपठनीय
(चन्द्रशेखर)
विशेष सचिव।"

10. ए.टी.आर.ई. में उपस्थित होने की पात्रता 1.12.2018 के सरकारी आदेश के संलग्न है। ऐसी परीक्षा में उपस्थित होने के लिए आयु और न्यूनतम योग्यता निर्दिष्ट की गई है। इस सरकारी आदेश में उन उम्मीदवारों के लिए आयु में छूट का भी प्रावधान किया गया है, जो आरक्षित श्रेणियों से संबंधित हैं। खंड 7(2) में विनिर्दिष्ट किया गया है कि ए.टी.आर.ई. परीक्षा उत्तीर्ण करने से सहायक अध्यापक के पद के लिए नियुक्ति का कोई अधिकार सृजित नहीं होगा क्योंकि ए.टी.आर.ई. केवल एक अर्हक परीक्षा है। जिस तरह से इस तरह की परीक्षा आयोजित की जानी थी, उसे 1.12.2018 के सरकारी आदेश के संलग्नक में निर्दिष्ट किया गया था। तथापि, अभिलेखों में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह पता चले कि 69,000 पदों की रिक्ति के संदर्भ में ऊर्ध्वाधर या क्षैतिज आरक्षण पर काम किया गया था। तदनुसार, ए.टी.आर.ई. का आयोजन 6.1.2019 को किया गया था और इसका परिणाम भी 12.5.2020 को घोषित किया गया था। इसके बाद समय-समय पर संशोधित नियम, 1981 के प्रावधानों के अनुसार, 69000 सहायक शिक्षकों के पद पर नियुक्ति की प्रक्रिया शुरू करते हुए 16.5.2020 को एक नया सरकारी आदेश जारी किया गया। 16.5.2020 का सरकारी आदेश इस प्रकार है:

"कार्यालय सचिव
उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद, प्रयागराज
पत्रांक बे०शि०प०/778/2020-21 दिनांक: 16.05.2020
विज्ञप्ति

शासनादेश संख्या-344/68-5-2020 दिनांक 13.05.2020 के अनुक्रम में उ०प्र० बेसिक शिक्षा परिषत द्वारा संचालित परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में 69000 सहायक अध्यापकों ही भर्ती के लिए आयोजित सहायक अध्यापक भर्ती परीक्षा-2019 में उत्तीर्ण 146060 अभ्यर्थियों में से जनपदवार निर्धारित पदों की संख्या (जो घट बढ़ सकती है) पर चयन/नियुक्ति हेतु उ०प्र० बेसिक शिक्षा अध्यापकक्त सेवा नियमावली-1981 (अद्यतन संशोधित) में उल्लिखित प्राविधानों तथा वांछित शैक्षिक/प्रशिक्षण अर्हताधारी अभ्यर्थियों से जनपद आवंटन हेतु ऑनलाइन आवेदन पत्र आमंत्रित किये जाते है।

ऑनलाइन ई-आवेदन पत्र का प्रारूप, आवश्यक दिशा निर्देश एवं जनपदवार रिक्तियों का विवरण वेवसाइट https://upbasiceduboard.gov.in/ पर दिनांक 18.05.2020 के अपरान्ह से दिनांक 06.06.2020 सायं 6 बजे तक उपलब्ध रहेगा। अभ्यर्थी द्वारा दिनांक 18.05.2020 के अपरान्ह से दिनांक 26.05.2020 की रात्रि 12 बजे तक निर्धारित वेबसाइट पर ऑनलाइन आवेदन पत्र भरा जा सकेगा। अभ्यर्थी को 69000 सहायक अध्यापकों की

भर्ती हेतु आयोजित भर्ती परीक्षा के लिये निर्गत किया गया अनुक्रमांक, जन्मतिथि तथा मोबाइल संख्या को निर्धारित वेबसाइट पर भरना होगा, जिसके उपरान्त आयर्थी के उक्त मोबाइल पर ओ०टी०पी० (वन टाइम पासवर्ड) प्राप्त होगा, जिसे भरने पर ही वह आवेदन पत्र में वांछित प्रविष्टियों को पूर्ण कर सकेगा। विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सहायक अध्यापक पद पर नियुक्ति हेतु अभ्यर्थी को भर्ती परीक्षा हेतु भरे गये आवेदन पत्र की प्रविष्टियां प्रदर्शित हो आयेगी जिसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकेगा। उक्त के अतिरिक्त कतिपय अन्य वांछित प्रविष्टियों को अभ्यर्थियों द्वारा भरते हुए आवेदन पत्र को पूर्ण करना होगा। एक बार आवेदन पत्र पूर्ण करने के उपरान्त उसमें किसी प्रकार का संशोधन नहीं किया जा सकेगा।

उपर्युक्त सहायक अध्यापक भर्ती परीक्षा-2019 में उत्तीर्ण अभ्यर्थियों द्वारा मात्र एक ऑनलाइन आवेदन पत्र भरा जायेंगा जिसमें अभ्यर्थी द्वारा प्रदेश के समस्त 75 जनपदों का विकल्प अपनी इच्छानुसार वरीयताक्रम में भरा जाना अनिवार्य होगा तथा वह अपने गुणांक/भारांक एवं वरीयता तथा जनपद हेतु निर्धारित वर्गवार/श्रेणीवार रिक्तियों के अनुरूप आवंटित जनपद में दिनांक 03.06.2020 से 06.06.2020 के मध्य आयोजित काउन्सलिंग में प्रतिभाग कर सकेगा। काउन्सलिंग में प्रतिभाग करने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि वह नियुक्ति हेतु पात्र है। वांछित अनिवार्य शैक्षिक/प्रशिक्षण योग्यताओं/वर्ग-श्रेणी के सत्यापनोपरान्त अर्ह पाये जाने पर अभ्यर्थी को उनके आवंटित जनपद में नियुक्ति प्रदान की जायेगी। सरकारी/अर्द्धसरकारी/बेसिक शिक्षा परिषद के अधीन पूर्व से कार्यरत अभ्यर्थियों को काउन्सिलिंग के समय सक्षम प्राधिकारी से एन०ओ०सी० प्राप्त कर प्रस्तुत करना अनिवार्य होगा।

अभ्यर्थी को नियुक्ति हेतु आयोजित काउन्सिलिंग में अपने समस्त शैक्षिक/अन्य मूल अभिलेखों, उसकी दो सेट एक प्रमाणित छायाप्रति, चार पासपोर्ट साइज फोटोग्राफ तथा "सचिव उ०प्र० बेसिक शिक्षा परिषद प्रयागराज" के पदनाम से निर्धारित आवेदन शुल्क (सामान्य/ओ०बी०सी० हेतु रू० 500, अनुसूचित जाति/जनजाति हेतु रू० 200, विकलांगों हेतु निःशुल्क का बैंकड्राफ्ट लेकर प्रतिभाग करना होगा। नियुक्त होने वाले अध्यापक/अध्यापिकाओं का अन्तर्जनपदीय स्थानान्तरण नहीं किया जायेगा। अभ्यर्थियों से यह अपेक्षा की आती है कि संदर्भगत प्रक्रिया के सम्बन्ध में आवश्यक विभागीय निर्देश एवं अन्य जानकारी हेतु वेबसाइट https://upbasiceduboard.gov.in/ का निर्धारित तिथियों के मध्य अवलोकन करते रहे।

परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में सहायक अध्यापक के पदों पर चयन/नियुक्ति बेसिक अध्यापक सेवा नियमावली-1981 (अद्यतन यथा संशोधित) तथा विद्यालयों में पदस्थापन की कार्यवाही अध्यापक तैनाती नियमावली 2008 (अद्यतन यथा संशोधित) के अनुसार की जायेगी।"

सचिव

उ०प्र० बेसिक शिक्षा परिषद, प्रयागराज"

11. चूँकि नियमावली, 1981 के अंतर्गत सहायक अध्यापक का संवर्ग जिला स्तरीय संवर्ग है, जिसे ग्रामीण क्षेत्र एवं नगरीय क्षेत्र में उपविभाजित किया गया है, अतः विभिन्न जिलों में पदों की श्रेणी के संदर्भ में पदों को

विनिर्दिष्ट किया गया तथा उनके लिए आवेदन आमंत्रित किए गए। विज्ञापन 17.5.2020 को प्रकाशित किया गया था। ऑनलाइन आवेदन 18.5.2020 से भरे जा सकते हैं और इस तरह के आवेदन को भरने की अंतिम तिथि 26.5.2020 दोपहर 12.00 बजे थी। दिनांक 16.5.2020 के सरकारी आदेश के साथ संलग्न निर्देशों में प्रावधान किया गया था कि उम्मीदवार को ए.टी.आर.ई. परीक्षा का अपना पंजीकरण संख्या-और रोल संख्या-भरना था, जिसके बाद खंड 1 से 12 में दी गई जानकारी को स्वतः भरा जाना था और वरीयता आदि से संबंधित केवल शेष खंडों को ऑनलाइन भरना था। इस मोड़ पर, हम यह भी नोट कर सकते हैं कि 17.5.2020 को शुरू में प्रकाशित विज्ञापन में, पात्रता तिथि को एआरटीई के आयोजन की तारीख के रूप में निर्दिष्ट किया गया था। इस संबंध में विज्ञापन का खंड 1(6) पुन प्रस्तुत किया गया है:

"(VI) अर्हता तिथि अभ्यर्थी के समस्त शैक्षिक अंक पत्र/प्रमाण पत्र तथा अन्य अभिलेखों का निर्धारण सहायक भर्ती परीक्षा हेतु प्रकाशित विज्ञापन की तिथि से होगा।"

12. हालांकि, उपरोक्त खंड को बाद में भर्ती के लिए जारी किए गए संशोधित दिशानिर्देशों में संशोधित किया गया था। सहायक अध्यापक के पदों पर नियुक्ति गुणवत्ता अंकों के आधार पर की जानी थी, जिसमें ए.टी.आर.ई. में प्राप्त अंकों को 60 प्रतिशत वेटेज दिया जाना था, जबकि उच्च स्कूल, इंटरमीडिएट, स्नातक और प्रशिक्षण के लिए 10-10 प्रतिशत वेटेज दिया जाना था।

13. चूंकि 17.5.2020 को जारी विज्ञापन के अनुसार कोई परीक्षा आयोजित नहीं की जानी थी और चयन केवल गुणवत्ता अंक अंकों के आधार पर किया जाना था, इसलिए उम्मीदवारों द्वारा किए गए ऑनलाइन आवेदनों पर कार्रवाई की गई और अंततः परिणाम 1.6.2020 को घोषित किए गए।

14. ई.डब्ल्यू.एस. कोटे के लिए आरक्षण की मांग करने वाली पहली रिट याचिका शिवम पांडे द्वारा दायर की गई थी, जो रिट ए संख्या-4063 वर्ष 2020 थी। इसके बाद वर्ष 2024 तक समय-समय पर रिट याचिकाएं भी दायर की गईं। सभी रिट याचिकाओं पर आक्षेपित निर्णय द्वारा निर्णय लिया गया है।

15. विशेष अपीलों के वर्तमान समूह में शामिल सीमित मुद्दा सहायक शिक्षकों के 69,000 पदों की भर्ती में ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण की प्रयोज्यता के संबंध में है। चयन/नियुक्ति आदि के लिए मानदंड से संबंधित अन्य पहलुओं को यहां रोकने की आवश्यकता नहीं है। 11.10.2020 को 31,277 उम्मीदवारों को नियुक्तियों की पेशकश की गई थी, 30.11.2020 को 36,590 उम्मीदवारों को नियुक्तियों की पेशकश की गई थी। चयनित उम्मीदवारों की अंतिम सूची 5.1.2022 को प्रकाशित की गई थी, जिसमें 6,800 आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवार शामिल थे।

16. महेंद्र पाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में इस न्यायालय की लखनऊ पीठ के समक्ष 5.1.2022 की चयन सूची को चुनौती दी गई, जिसका निर्णय एकल न्यायाधीश द्वारा 2023 (3) ए.डी.जे.

496 में रिपोर्ट किए गए निर्णय के माध्यम से किया गया है। एकल न्यायाधीश के समक्ष विवाद ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण से संबंधित नहीं था। एकल न्यायाधीश का निर्णय विशेष अपील संख्या-172 वर्ष 2023 में अन्य संबंधित मामलों के साथ सुरक्षित रखा गया है। प्रवर सूची को पुन तैयार करने के लिए खंडपीठ द्वारा निदेश जारी किया जाता है। खंड पीठ के इस फैसले पर रवि कुमार सक्सेना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, एस.एल.पी. डायरी संख्या-38554 वर्ष 2024 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है और खंड पीठ के फैसले के अनुसार सूची को फिर से तैयार करने के निर्देश को स्थगित रखा गया है।

17. इस स्तर पर, हम यह भी ध्यान दे सकते हैं कि **राघवेंद्र प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2020 (4) ए.डी.जे. 490 (एलबी**) में लखनऊ पीठ द्वारा पहले रिट याचिकाओं का एक और गुच्छा तय किया गया था, जिसमें ए.टी.आर.ई. उत्तीर्ण करने के लिए न्यूनतम अंक निर्दिष्ट करने वाले सरकारी आदेश दिनांक 7.1.2019 पर हमला किया गया था। यह तर्क दिया गया था कि ए.टी.आर.ई. पहले ही 6.1.2019 को आयोजित किया गया था और इसलिए, न्यूनतम अंकों का कोई भी बाद का नुस्खा अनुमेय था। इस याचिका को खंडपीठ ने खारिज कर दिया था जिसमें भर्ती प्रक्रिया शुरू करने के संबंध में भी टिप्पणी की गई थी। इस निर्णय के प्रस्तर-65 और 66 पर अपीलकर्ताओं द्वारा भरोसा किया जाता है, जिन्हें यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"(65) वर्ष 1981 के नियमों के अवलोकन से, जैसा कि संशोधित किया गया है, यह स्पष्ट करता है कि ए.टी.आर.ई. केवल एक योग्यता परीक्षा है और भर्ती प्रक्रिया का हिस्सा नहीं है। आनंद कुमार यादव (उपरोक्त) का लाभ शिक्षा मित्रों को भर्ती की प्रक्रिया के दौरान ही उपलब्ध होगा, जो निर्धारित अर्हक अंक प्राप्त करके ए.टी.आर.ई. उत्तीर्ण होने के बाद शुरू होगी और जब तक वे ऐसा नहीं करते हैं, तब तक वे इस तरह के वेटेज के लिए दावा नहीं कर सकते हैं। 1.12.2018 को जारी दूसरे ए.टी.आर.ई.-2019 के संचालन के लिए वैधानिक दिशानिर्देश यह स्पष्ट करते हैं कि ए.टी.आर.ई. केवल एक न्यूनतम योग्यता है और ए.टी.आर.ई. उत्तीर्ण करके, कोई भी उम्मीदवार सहायक शिक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए दावा नहीं करेगा। (66) ए.टी.आर.ई. - 2019 अवधारित करने की कवायद केवल आवेदन करने में सक्षम होने और भर्ती के लिए विचार करने के लिए पात्रता प्राप्त करने के लिए है, एक ऐसा चरण जो अभी तक शुरू नहीं किया गया है क्योंकि ए.टी.आर.ई. - 2019 के परिणाम की घोषणा के बाद, न्यूनतम अंकों के आधार पर, जैसा कि सरकारी आदेश दिनांक 7.1.2019 में उल्लिखित है, का परिणाम घोषित किया जाएगा।

18. राघवेंद्र प्रताप सिंह (उपरोक्त) में लखनऊ बेंच की खंडपीठ के फैसले की पुष्टि उच्चतम न्यायालय ने इसके खिलाफ दायर एस.एल.पी. को खारिज करते हुए की है।

19. एकल न्यायाधीश ने अपीलकर्ताओं के दावे पर विचार करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भर्ती प्रक्रिया 17.5.2020 को विज्ञापन जारी करने के साथ शुरू हो गई थी। हालांकि, ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण के लाभ को इस आधार पर वंचित कर दिया गया है कि उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-10 वर्ष 2020 बाद में 31.8.2020 को अधिनियमित किया गया। एकल न्यायाधीश ने यह भी राय दी है कि तथ्य यह है कि उत्तर प्रदेश अधिनियम

संख्या-10 वर्ष 2020 को 18.2.2019 से प्रभावी बनाया गया है, अपीलकर्ताओं के लिए कोई मदद नहीं करेगा क्योंकि इसने केवल 18.2.2019 को जारी अधिसूचना के अनुसार पहले से की गई कार्रवाई की रक्षा की है। इसलिए, एकल न्यायाधीश ने रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया है, जिसमें कहा गया है कि राज्य ई.डब्ल्यू.एस. कोटा के तहत आरक्षण प्रदान करने के लिए बाध्य नहीं है क्योंकि भर्ती की प्रक्रिया 17.5.2020 को पहले ही शुरू हो चुकी थी; जबकि यूपी एक्ट संख्या-10 ईयर 2020 को बाद की तारीख में लागू किया गया।

20. अपीलकर्ताओं के वरिष्ठ अधिवक्ताओं का तर्क है कि एकल न्यायाधीश ने यह मानने में गलती की है कि ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण को यूपी अधिनियम संख्या-10 वर्ष 2020 के तहत 31.08.2020 से लागू किया जा सकता है। यह दावा किया जाता है कि ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण के प्रावधान को 103वें संविधान संशोधन के अनुसार दिनांक 81.2.2019 के कार्यालय ज्ञापन के माध्यम से पहले ही लागू किया गया था और चूंकि अधिनियम को पूर्वव्यापी प्रभाव दिया गया था, इसलिए एकल न्यायाधीश द्वारा ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण को विचाराधीन भर्ती में लागू नहीं होने की व्याख्या वैधानिक योजना की सही व्याख्या पर आधारित नहीं है।

21. वरिष्ठ अधिवक्ता आगे तर्क देते हैं कि शिवम पांडे और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के खिलाफ 375 भर्तियां 17.5.2020 को प्रकाशित विज्ञापन के माध्यम से की गई हैं, जब तक ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण पहले ही शुरू किया जा चुका था। आगे यह तर्क दिया गया है कि राज्य ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण प्रदान करने के लिए एक सकारात्मक दायित्व के अधीन था और चूंकि इस तरह के आरक्षण से इनकार कर दिया गया है, इसलिए याचिकाकर्ता राज्य को संबंधित भर्ती में ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण का विस्तार करने के लिए अनिवार्य रिट जारी करने के हकदार हैं।

22. प्रतिवादियों की ओर से, श्री कुशमोंडेय शाही ने प्रस्तुत किया कि भर्ती नियमों को 22वें संशोधन नियम वर्ष 2018 के माध्यम से संशोधित किया गया है, जिसमें नियम 2(w)(x) जोड़ा गया है, जिसे इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"(w) "सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा" से बुनियादी शिक्षा परिषद द्वारा संचालित जूनियर बेसिक स्कूलों में किसी व्यक्ति की भर्ती के लिए सरकार द्वारा अवधारित लिखित परीक्षा अभिप्रेत है;

(x) "सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा के अर्हक अंक" से ऐसे न्यूनतम अंक अभिप्रेत हैं जो सरकार द्वारा समय-समय पर निर्धारित किए जाएं।

23. इसके बाद यह आग्रह किया जाता है कि 17 मई, 2020 को 69000 पदों पर नियुक्ति के लिए जारी किया गया विज्ञापन 1.12.2018 के सरकारी आदेश के तहत शुरू की गई भर्ती प्रक्रिया के क्रम में है, जिसमें 69000 पदों को भरने के लिए सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा आयोजित की गई थी। यह प्रस्तुत किया जाता है कि सहायक शिक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए विज्ञापन भी 69000 पदों के संबंध में है। श्री शाही नियम वर्ष 1981 में

किए गए 23 वें संशोधन पर भी भरोसा करते हैं, जिसे 1.1.2018 से प्रभावी बनाया गया है। उन्होंने कहा कि भर्ती की शुरुआत को 1.12.2018 के रूप में माना जाना चाहिए जब ए.टी.आर.ई. परीक्षा शुरू की गई थी।

24. नियम 14(1) पर यह प्रस्तुत करने के लिए भरोसा किया जाता है कि चयन की प्रक्रिया सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा के आयोजन के बाद रिक्ति के निर्धारण के साथ शुरू होती है और केवल तथ्य यह है कि 17.5.2020 को भर्ती के लिए एक बाद का विज्ञापन जारी किया गया था, इसका मतलब यह नहीं होगा कि भर्ती केवल 17.5.2020 के विज्ञापन जारी करने के साथ शुरू होती है।

25. श्री शाही, कार्यालय द्वारा दिनांक 17.5.2020 के विज्ञापन के साथ जारी किए गए निर्देशों पर भी भरोसा करते हैं ताकि यह दिखाया जा सके कि उम्मीदवारों को उम्मीदवार के मोबाइल संख्या-के साथ ए.टी.आर.ई. परीक्षा की पंजीकरण संख्या-और रोल संख्या-भरना आवश्यक था और ए.टी.आर.ई. परीक्षा में प्रस्तुत विवरण पर संबंधित पद के लिए भर्ती के लिए भरोसा किया जाता है। दिनांक 17.5.2020 के विज्ञापन के साथ जारी किए गए निर्देशों के खंड 2 और 3 को इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"2. तदपश्चात् सहायक अध्यापक भर्ती 2019 लिखित परीक्षा हेतु निर्गत अनुक्रमांक, जन्मतिथि एवं मोबाइल नं० (जो सहायक अध्यापक भर्ती लिखित परीक्षा 2019 ऑनलाइन आवेदन में अंकित किया गया हो) पर प्राप्त OTP की सहायता से लॉगिन करेगें।

3. लॉगिन होने के पश्चात् अभ्यर्थी को ऑनलाइन आवेदन के फार्म में क्रम सं० 1 से 13 तक सहायक अध्यापक भर्ती लिखित परीक्षा 2019 हेतु आनलाइन आवेदन में अंकित प्रविष्टियाँ, अभ्यर्थी की फोटो सहित प्रदर्शित होगी। प्रदर्शित प्रविष्टियों में अभ्यर्थी द्वारा किसी भी प्रकार का संशोधन किया जाना सम्भव नहीं होगा।"

26. श्री शाही ने बुनियादी शिक्षा परिषद के सचिव द्वारा दायर पूरक जवाबी हलफनामे पर भी भरोसा किया, जिसमें हलफनामे के प्रस्तर-4 और 5 में निम्नलिखित दावे किए गए हैं। पृष्ठ 7 पर ऐसे शपथ-पत्र के साथ एक चार्ट भी संलग्न किया गया है, जिसे इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"4. चयन सूची के अनुसार अनारक्षित श्रेणी के कुल 34589 उम्मीदवारों की नियुक्ति की गई थी और 18598 अन्य पिछड़ा वर्ग के उम्मीदवारों की नियुक्ति की गई थी। यहां यह बताना प्रासंगिक है कि कुल 15623 उम्मीदवार अनुसूचित जाति के हैं और 190 उम्मीदवार अनुसूचित जनजाति वर्ग के हैं। नियुक्तियों के विवरण का विवरण इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-1 के रूप में दाखिल किया जा रहा है।

5. 17.05.2020 को विज्ञापित 69000 रिक्तियों में से सभी पदों को भर दिया गया है और किसी भी श्रेणी में कोई पद रिक्त नहीं है। पिछले प्रस्तर-में बताए गए तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर वर्तमान पूरक जवाबी हलफनामे को कृपया अभिलेखों पर लिया जा सकता है।

क्र० सं०
श्रेणी एवं आरक्षणवार पद
अनारक्षित (34589 पद)
चयनित अभ्यर्थी का विवरण

01. 20301 सामान्य श्रेणी 12630 अन्य पिछड़ा वर्ग 1637 अनुसूचित जाति 21 अनुसूचित जनजाति उपरोक्त अभ्यर्थी अनारक्षित के पद के सापेक्ष चयनित हुए है।

02.अन्य पिछड़ा वर्ग (18598 पद)

03.18598
अनुसूचित जाति (14459 पद)

04.15623 1164 अनुसूचित जनजाति के रिक्त पदों को अनुसूचित जाति के अभ्यर्थियों द्वारा भरा गया।
अनुसूचित जनजाति (1354 पद)

27. इस तरह के हलफनामे के आधार पर, श्री शाही प्रस्तुत करते हैं कि सभी 69000 रिक्तियों को भर दिया गया है और चूंकि चयनित उम्मीदवारों में से किसी को भी एक पार्टी के रूप में पेश नहीं किया गया है, और न ही किसी की नियुक्ति को चुनौती दी गई है, इस तरह, भले ही अपीलकर्ताओं के दावे को योग्यता के आधार पर स्वीकार किया जाता है, फिर भी उन्हें कोई राहत नहीं दी जा सकती है।

28. श्री शाही का यह भी तर्क है कि अपीलों के इस समूह में इस न्यायालय के समक्ष अधिकांश अपीलकर्ताओं के पास बीएड योग्यता है और एन.सी.टी.ई. दिशानिर्देशों के संदर्भ में अपेक्षित योग्यता नहीं है। **देवेश शर्मा बनाम भारत संघ और अन्य, (2023) 18 एस.सी.सी. 339 और नवीन कुमार और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, 2024 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 2360** में उच्चतम न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया जाता है कि ऐसे उम्मीदवार अन्यथा नियुक्ति के लिए अयोग्य हैं।

29. इस तरह की दलील के जवाब में, अपीलकर्ताओं की ओर से पेश श्री खरे ने तर्क दिया कि शिवम पांडे की रिट याचिका वर्ष 2020 में ही दायर की गई थी और अपीलकर्ताओं की ओर से इस न्यायालय में जाने में कोई देरी नहीं हुई थी। उन्होंने आगे कहा कि बाद में कोई भी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है, जो 103वें संविधान संशोधन के अनुसार ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण प्रदान करने के लिए अपीलकर्ताओं के दावे पर विचार करने से इनकार करने के लिए कोई वैध आधार नहीं बनेगी। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि इक्विटी न्यायालय द्वारा समायोजित की जा सकती है और ऐसी परिस्थितियों में, यदि रिक्तियां उपलब्ध नहीं हैं, तो ई.डब्ल्यू.एस. श्रेणी

के उम्मीदवारों को अविज्ञापित रिक्ति के खिलाफ समायोजित करने के लिए एक निर्देश जारी किया जा सकता है।

30. हमने वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे को, जिनकी सहायता अधिवक्ता श्री उमंग श्रीवास्तव ने की; वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.के. ओझा को, जिनकी सहायता अधिवक्ता श्री नवीन कुमार शर्मा एवं श्री अग्निहोत्री कुमार त्रिपाठी ने की; अपीलकर्ताओं की ओर से अधिवक्ता श्री सीमांत सिंह को; प्रतिवादियों की ओर से अधिवक्ता श्री कुशमोंदेय शाही को; राज्य की ओर से स्थायी अधिवक्ता को सुना तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

31. ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण को संविधान में 103वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2019 के माध्यम से पेश किया गया, जिसे इसके बाद निकाला गया है: -

"संविधान (एक सौ तीसरा संशोधन) अधिनियम, 2019 [12 जनवरी, 2019] भारत के संविधान में संशोधन करने के लिए एक अधिनियम। भारत गणराज्य के उनसठवें वर्ष में संसद द्वारा अधिनियमित किया जाए जो इस प्रकार है - 1 भारत गणराज्य के उनसठवें वर्ष में संसद द्वारा अधिनियमित किया जाए। (1) इस अधिनियम का नाम संविधान (एक सौ तिहाई संशोधन) अधिनियम, 2019 कहा जाए। (2) यह उस तारीख से प्रवृत्त होगा जिसे केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे।

2. संविधान के अनुच्छेद 15 में, खंड (5) के पश्चात्, निम्नलिखित खंड अंतस्थापित किया जाएगा, अर्थात् :- '(6) इस अनुच्छेद या अनुच्छेद 19 के खंड (1) के उपखंड (छ) या अनुच्छेद 29 के खंड (2) में दी कोई बात राज्य को यह करने से विकृत नहीं करेगी-

(क) खंड (4) और (5) में उल्लिखित वर्गों के अलावा नागरिकों के किसी भी आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों की उन्नति के लिए कोई विशेष उपबंध; तथा

(ख) खंड (4) और (5) में उल्लिखित वर्गों के अलावा नागरिकों के किसी आथक रूप से कमजोर वर्गों की उन्नति के लिए कोई विशेष उपबंध, जहां तक ऐसे विशेष उपबंध अनुच्छेद 30 के खंड (1) में निर्दिष्ट अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के अलावा निजी शैक्षणिक संस्थाओं, चाहे वे राज्य द्वारा सहायता प्राप्त हों या गैर-सहायता प्राप्त हों, सहित शैक्षणिक संस्थाओं में उनके प्रवेश से संबंधित हैं, जो आरक्षण के मामले में मौजूदा आरक्षण के अतिरिक्त होगा और अधिकतम दस प्रतिशत के अध्यधीन होगा। प्रत्येक श्रेणी में कुल सीटों की। स्पष्टीकरण- -इस अनुच्छेद और अनुच्छेद 16 के प्रयोजनों के लिए,

"आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग" ऐसे होंगे जिन्हें राज्य द्वारा पारिवारिक आय और आर्थिक नुकसान के अन्य संकेतकों के आधार पर समय-समय पर अधिसूचित किया जा सकता है। 3. संविधान के अनुच्छेद 16 में, खंड (5) के पश्चात्, निम्नलिखित खंड अंतस्थापित किया जाएगा, अर्थात्: -

"(6) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को खंड (4) में उल्लिखित वर्गों के अतिरिक्त और अधिकतम दस प्रतिशत के अध्यधीन किसी अन्य नागरिकों के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के पक्ष में नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए कोई उपबंध करने से विबाधा नहीं करेगी। प्रत्येक श्रेणी में पदों की।

32. भारत के संविधान के अनुच्छेद 15 में किए गए 103वें संशोधन ने राज्यों को ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण प्रदान करने की अनुमति दी। अनुच्छेद 15 के खंड 5 के स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट किया गया है कि ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण ऐसा होगा जिसे राज्य द्वारा समय-समय पर पारिवारिक आय और आर्थिक नुकसान के अन्य संकेतकों के आधार पर अधिसूचित किया जा सकता है। इस शक्ति के अनुसरण में राज्य ने दिनांक 18.2.2019 को कार्यालय ज्ञापन जारी किया है, जिसमें उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा सार्वजनिक रोजगार में ई.डब्ल्यू.एस. श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया गया है।

33. बार में प्रस्तुत प्रस्तुतियों के संदर्भ में अपीलों के इस समूह में हमारे विचार के लिए निम्नलिखित प्रश्न उठते हैं: (i) उत्तर प्रदेश राज्य में ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण की शुरुआत की तारीख क्या है यानी यह 18.2.2019 या 31.8.2020 है? (ii) ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण लागू होने के प्रयोजनार्थ भर्ती शुरू होने की तारीख क्या है? (iii) क्या अपीलकर्ता किसी राहत के हकदार हैं

34. एकल न्यायाधीश ने माना है कि प्रस्तुत मामले के तथ्यों में ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण लागू नहीं होगा, क्योंकि उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-10 वर्ष 2020 को केवल 31 अगस्त, 2020 को अधिसूचित किया गया था; जबकि भर्ती इससे पहले शुरू हुई थी। यह भी माना गया है कि राज्य सरकार द्वारा 18.2.2019 और 13.8.2019 को जारी किए गए परिपत्र का राज्य में ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण शुरू करने का प्रभाव नहीं होगा, जब इस उद्देश्य के लिए ऐसा कोई वैधानिक प्रावधान मौजूद नहीं है।

35. उत्तर प्रदेश राज्य ने पहली बार 18.2.2019 को इस उद्देश्य के लिए कार्यालय ज्ञापन जारी किया और बाद में पूर्वव्यापी प्रभाव से इस उद्देश्य के लिए कानून पेश किया, जो स्पष्ट रूप से दिनांक 18.2.2019 के कार्यालय ज्ञापन की रक्षा करता है। उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा अपनी कार्यकारी शक्ति का प्रयोग करके ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण शुरू करने और फिर इसे विधायी कवर के साथ तैयार करने के लिए किए गए उपाय स्पष्ट रूप से कानून की नजर में एक अनुमेय पाठ्यक्रम है।

36. उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-10 वर्ष 2020 को 103वें संविधान संशोधन के अनुसार आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए आरक्षण को प्रभावी बनाने के लिए राज्य विधानमंडल द्वारा अधिनियमित किया गया।

इस फैसले के प्रस्तर-3 में धारा 1(1) पहले ही निकाली जा चुकी है, जो स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि अधिनियम 1 फरवरी, 2019 को लागू होना है। धारा 3(3) और (4) भी ऊपर निकाली गई है जो स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि दिनांक 18.2.2019 के कार्यालय ज्ञापन को अधिनियम के तहत जारी किया गया माना जाएगा। बाद में दिनांक 13 अगस्त, 2019 को कार्यालय ज्ञापन भी उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-10 वर्ष 2020 के तहत जारी किया गया माना जाता है। एक बार जब यह स्थिति हो जाती है, तो इस न्यायालय के लिए यह स्वीकार करना मुश्किल होगा कि ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण 31.8.2020 से शुरू होगा, न कि 18.2.2019 से, जब राज्य के रोजगार में ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण प्रदान करने के लिए राज्य द्वारा कार्यालय ज्ञापन जारी किया गया था।

37. कानून अच्छी तरह से स्थापित है कि उपयुक्त विधायिका हमेशा पूर्वव्यापी प्रभाव से कानून पेश कर सकती है। हम यह भी नोट कर सकते हैं कि 103वें संविधान संशोधन द्वारा राज्यों के लिए ई.डब्ल्यू.एस. उम्मीदवारों को आरक्षण प्रदान करने के लिए सक्षम प्रावधान किया गया था। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि राज्य की कार्यकारी शक्तियां अपनी विधायी शक्ति के साथ सह-व्यापक हैं। एक बार जब वर्ष 103वें संविधान संशोधन के आधार पर राज्य को ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण का प्रावधान उपलब्ध कराया गया था, तो राज्य के लिए कानून बनाकर या कार्यकारी निर्देश जारी करके ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण को लागू करने के लिए खुला था।

38. भारत के संविधान का अनुच्छेद 162 राज्य की कार्यपालिका शक्ति की सीमा का उपबंध करता है। भारत के संविधान का अनुच्छेद 162 इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया जाता है - "इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी राज्य की कार्यपालिका शक्ति उन विषयों तक विस्तारित होगी जिनके संबंध में राज्य के विधान-मंडल में 5 सभी हैं। 379 शिवम पांडे और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य कानून बनाने की शक्ति: परन्तु किसी ऐसे मामले में जिसके संबंध में किसी राज्य के विधानमंडल और संसद को कानून बनाने की शक्ति है, राज्य की कार्यपालिका शक्ति संविधान द्वारा या संसद द्वारा संघ या उसके प्राधिकारियों को बनाए गए किसी कानून द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदत्त कार्यपालिका शक्ति के अधीन होगी और उसके द्वारा सीमित होगी।

39. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मेडिकल सुपरस्पेशियलिटी संगठन बनाम भारत संघ, (2019) 8 एस.सी.सी. 607: 2019 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1055** पृष्ठ 622 पर इस पहलू पर कानून को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया गया है: - "राज्य सरकार का कार्यकारी अधिकार राज्य विधानमंडल की विधायी शक्ति के साथ सह-व्यापक है। किसी भी कानून के अभाव में भी, राज्य सरकार के पास संविधान के अनुच्छेद 162 के तहत उन मामलों पर कार्यकारी आदेश जारी करने की क्षमता है, जिन पर राज्य विधानमंडल के पास कानून बनाने की शक्ति है।

40. इस प्रकार इस न्यायालय के लिए यह कहना मुश्किल होगा कि राज्य सरकार दिनांक 18.2.2019 को कार्यालय ज्ञापन जारी करके राज्य के सार्वजनिक रोजगार में ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण प्रदान करने के लिए सक्षम नहीं थी या इस तारीख यानी 18.2.2019 को राज्य के रोजगार में ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण के कार्यान्वयन की तारीख नहीं माना जाएगा और यह केवल 31.8.2020 से लागू होगा जब उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-10 वर्ष

2020 लागू हो गया। इस हद तक, हम इस पहलू पर एकल न्यायाधीश के दृष्टिकोण का अनुमोदन नहीं कर सकते हैं। इस संबंध में एकल न्यायाधीश का निष्कर्ष परिणामस्वरूप उलट जाता है।

41. पूर्वोक्त निष्कर्ष की अगली कड़ी के रूप में, हमें यह जांचने की आवश्यकता है कि प्रस्तुत मामले के तथ्यों में भर्ती शुरू होने की तारीख क्या है। हालांकि एकल न्यायाधीश ने इसे 17.5.2020 माना है, लेकिन राज्य/परिषद का तर्क है कि यह 1.12.2018 होना चाहिए जब ए.टी.आर.ई. परीक्षा अधिसूचित की गई थी।

42. प्रतिवादियों की ओर से यह कहते हुए बहुत तर्क दिया गया है कि 1 दिसंबर, 2018 की अधिसूचना के माध्यम से ए.टी.आर.ई. की शुरुआत यहां भर्ती शुरू होने की तारीख होगी। प्रतिपक्षी यह प्रस्तुत करने के लिए जारी किए गए विभिन्न निर्देशों का सहारा लेते हैं कि ए.टी.आर.ई. के लिए आवेदन करते समय उम्मीदवारों द्वारा भरे गए विवरण, जिसमें पंजीकरण संख्या, नामांकन संख्या-और मोबाइल संख्या-शामिल हैं, 17 मई, 2020 के विज्ञापन के अनुसार चयन/नियुक्ति के लिए उम्मीदवारों की उम्मीदवारी पर विचार करने के लिए स्वचालित रूप से भरोसा किया जाता है और इसलिए, भर्ती की शुरुआत ए.टी.आर.ई. के प्रारंभ की तारीख होगी। इस तरह के प्रस्ताव के समर्थन में नियम 2(w) और 2(x) वर्ष 1981 के नियमों पर भी भरोसा किया गया है।

43. हालांकि इस पहलू पर श्री शाही की प्रस्तुति आकर्षक लग सकती है, लेकिन हम इसे इस साधारण कारण से स्वीकार करने के लिए राजी नहीं हैं कि यह नियम 14 है जो लागू भर्ती नियम वर्ष 1981 के तहत चयन की प्रक्रिया प्रदान करता है। नियम 14(1) दो भागों में है। पहला भाग रिक्ति के निर्धारण और ए.टी.आर.ई. के धारण से संबंधित है। "इसके बाद" अभिव्यक्ति के साथ शुरू होने वाले दूसरे भाग में दो प्रमुख दैनिक समाचार पत्रों में प्रकाशित होने वाले भर्ती के लिए विज्ञापन का प्रावधान है। परिणामी विज्ञापन केवल 17.5.2020 को जारी किया गया है।

44. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि विज्ञापन जारी करने की तारीख भर्ती शुरू होने की तारीख है जब तक कि नियमों में अन्यथा प्रदान नहीं किया गया हो। नियमों के नियम 14(1) में निहित स्पष्ट भाषा को देखते हुए, हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई संकोच नहीं है कि भर्ती की शुरुआत दिनांक 17.5.2020 के विज्ञापन जारी करके की गई है। इस पहलू पर हम जो दृष्टिकोण रखते हैं, वह इस न्यायालय की लखनऊ पीठ द्वारा राघवेंद्र प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) में लिए गए पहले के दृष्टिकोण के अनुरूप है। उक्त निर्णय के प्रस्तर-65 और 66 को पहले ही ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। हालांकि निर्णय एक अलग मुद्दे के संदर्भ में था, फिर भी प्रस्तर-65 में खंड पीठ द्वारा की गई टिप्पणियां वर्तमान उद्देश्यों के लिए प्रासंगिक हैं जिनके साथ हम पूर्ण रूप से सहमत हैं। इस मामले को देखते हुए, हम मानते हैं कि विचाराधीन भर्ती दिनांक 17.5.2020 को विज्ञापन जारी करने के साथ शुरू हो गई है। इस प्रकार हम मामले के पहलू पर एकल न्यायाधीश के दृष्टिकोण से सम्मानजनक सहमति में हैं।

45. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि बुनियादी संस्थानों में सहायक शिक्षक के 69000 पदों पर नियुक्ति के लिए विज्ञापन जारी करते समय राज्य द्वारा ई.डब्ल्यू.एस. श्रेणी के लिए आरक्षण का विस्तार किया जाना आवश्यक था।

46. उपरोक्त दो मुद्दों पर हमारे निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद हमें इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि इस मामले के अजीबोगरीब तथ्यों में अपीलकर्ताओं को क्या राहत दी जा सकती है।

47. बेशक, भर्ती की प्रक्रिया न केवल शुरू हुई है, बल्कि पहले ही समाप्त हो चुकी है। बोर्ड के सचिव ने अपना व्यक्तिगत हलफनामा दाखिल कर स्पष्ट रूप से कहा है कि सभी नियुक्तियां सहायक शिक्षकों की 69000 विज्ञापित रिक्तियों पर की जाती हैं। चयनित उम्मीदवारों में से किसी को भी वर्तमान समूह में पार्टी प्रतिपक्षी के रूप में शामिल नहीं किया गया है। पहले से किए गए चयनों में से कोई भी चुनौती के अधीन नहीं है। यदि 10% ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण को बढ़ाने की आवश्यकता होती है, तो ई.डब्ल्यू.एस. श्रेणी से संबंधित उम्मीदवारों के लिए एक मेरिट सूची तैयार करने के लिए एक निर्देश जारी करना होगा। अभिलेखों में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह पता चले हो कि परीक्षा फॉर्म में किसी भी उम्मीदवार को अपनी ई.डब्ल्यू.एस. स्थिति का विवरण प्रस्तुत करना आवश्यक था। इसलिए, यह पता लगाना कठिन होगा कि वे कौन व्यक्ति हैं, जो वास्तव में ई.डब्ल्यू.एस. श्रेणी में आएंगे। इस संबंध में विवरण के अभाव में, ई.डब्ल्यू.एस. श्रेणी से संबंधित उम्मीदवार की कोई भी मेरिट सूची तैयार करना और भी मुश्किल होगा। यहां तक कि अगर इस तरह के विवरण उपलब्ध कराए जाते हैं, तो इस तरह के आरक्षण के कार्यान्वयन के लिए अनारक्षित श्रेणी से संबंधित 10% उम्मीदवारों को बाहर करने की आवश्यकता होगी ताकि इन व्यक्तियों को समायोजित किया जा सके। चयनित व्यक्ति पहले से ही पिछले कई वर्षों से काम कर रहे हैं और उनकी नियुक्ति को कोई चुनौती नहीं दी गई है। ऐसी परिस्थितियों में, इस न्यायालय के लिए इस स्तर पर प्रश्नगत भर्ती में 10% ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण का विस्तार करने के लिए कोई निर्देश जारी करना विवेकपूर्ण प्रयोग नहीं होगा, क्योंकि इस तरह के निर्देश का कार्यान्वयन केवल असंभव होगा। अन्यथा यह तय हो गया है कि प्रभावित व्यक्तियों की अभियोग के बिना या उनकी नियुक्ति के लिए कोई चुनौती दिए बिना कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है जिसका प्रभाव चयनित उम्मीदवारों को हटाने का हो। हमें अन्यथा सूचित किया जाता है कि अधिकांश अपीलकर्ता ऐसे व्यक्ति हैं जिनके पास बीएड की डिग्री है और देवेश शर्मा (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आधार पर नियुक्ति के लिए अयोग्य हैं। उपर्युक्त परिस्थितियों के दृष्टिगत, यद्यपि हम यह मानते हैं कि 69,000 सहायक अध्यापकों की भर्ती में आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग ई.डब्ल्यू.एस. के लिए आरक्षण का विस्तार किया जाना अपेक्षित था, तथापि, जैसा कि ऊपर उल्लेखित पश्चातवर्ती घटनाक्रमों के कारण, हम अपीलकर्ताओं को कोई भी राहत प्रदान किए जाने के लिए प्रेरित नहीं हैं। श्री खरे की इस दलील को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता कि अविज्ञापित रिक्ति के लिए ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण का विस्तार करने का निर्देश जारी किया जाए। यह भर्ती नियमों के विपरीत होगा और अन्य पात्र उम्मीदवारों के अधिकारों को प्रभावित कर सकता है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 16 की भावना के अनुरूप नहीं होगा।

48. मामले के अजीबोगरीब तथ्यों में, जहां प्रतिवादियों द्वारा न तो ई.डब्ल्यू.एस. उम्मीदवारों का विवरण प्राप्त किया गया है, न ही ऐसे विवरण उपलब्ध हैं और सभी रिक्तियां अन्यथा भरी गई हैं, अविज्ञापित रिक्तियों के लिए ई.डब्ल्यू.एस. उम्मीदवारों को आरक्षण देने के लिए ऐसा कोई सर्वव्यापी निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है। हालांकि अलग-अलग कारणों से, हम अंततः एकल न्यायाधीश के समान निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि रिट याचिकाओं को **खारिज** करने की आवश्यकता है।

(**2025**) **5 ILRA 381**

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह

रिट ए संख्या 362 वर्ष 2005

राम कृष्ण मिश्रा **याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: पंकज वर्मा, अभिषेक द्विवेदी, सी.एल. यादव, छोटे लाल यादव, दिनेश कुमार त्रिपाठी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: मुख्य स्थायी अधिवक्ता, अजय कुमार सिंह राज, एम.ए. सिद्दीकी

क. सेवा विधि - सेवा समाप्ति - कदाचार का आरोप - नियमित जांच का अभाव - प्रभाव- सेवा को कदाचार के आधार पर समाप्त किया गया था, लेकिन इसके लिए न तो कोई नियमित जांच की गई और न ही उसे सुनवाई का अवसर प्रदान किया गया - अनुमेयता - *'बृजेश कुमार'* के मामले पर भरोसा किया गया - निर्धारित किया गया कि, यदि कोई दंड आदेश दोषपूर्ण है या कुछ आरोपों पर आधारित है, तो कानून की उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना किसी कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त नहीं किया जा सकता है, इसलिए, आक्षेपित दंड आदेशों को कानून की दृष्टि में बरकरार नहीं रखा जा सकता - उच्च न्यायालय ने मामले को पुनर्विचार हेतु वापस भेजने से इनकार कर दिया क्योंकि याचिकाकर्ता सेवानिवृत्त हो चुका था और ऐसा कोई नियम नहीं है जो प्रतिवादी को सेवानिवृत्ति के बाद कार्यवाही आगे बढ़ाने का अधिकार देता हो। (पैरा 16, 20 **और** 21**)**

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>

1. डॉ. विजयाकुमारन सी.पी.वी. बनाम सेंट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ केरल और अन्य, (2020) 12 एस.सी.सी. 426
2. सिविल अपील संख्या शून्य, 2024 (एस.एल.पी. (सी) संख्या 10546/2019 से उत्पन्न), यू.पी. स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन और अन्य बनाम बृजेश कुमार और अन्य, निर्णय तिथि 28.08.2024

3. दीप्ति प्रकाश बनर्जी बनाम सत्येंद्र नाथ बोस नेशनल सेंटर फॉर बेसिक साइंसेज, कलकत्ता और अन्य; (1999) 3 एस.सी.सी. 60

4. इंद्र पाल गुप्ता बनाम प्रबंध समिति, मॉडल इंटर कॉलेज, थोरा; (1984) 3 एस.सी.सी. 384

5. डी.के. यादव बनाम जे.एम.ए. इंडस्ट्रीज लिमिटेड; (1993) 3 एस.सी.सी. 259

6. एस.बी.आई. और अन्य बनाम पलक मोदी और अन्य; (2013) 3 एस.सी.सी. 607

7. शस्य सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन इलाहाबाद 106

8. रिट ए संख्या 31358 वर्ष 2021; डॉ. प्रभांशु श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, निर्णय तिथि 14.11.2024

9. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम कौशल किशोर शुक्ला; (1991) 1 एस.सी.सी. 691

10. मोहम्मद निहाल सिद्दीकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; (2007) 1 यू.पी.एल.बी.ई.सी. 769

11. राजस्थान राज्य और अन्य बनाम दया लाल और अन्य; (2011) 2 एस.सी.सी. 429;

12. श्रीमती आमीना बनाम नगर पालिका परिषद, प्रतापगढ़ और अन्य; 2012 (30) एल.सी.डी. 1671

13. भागीरथी जेना बनाम निदेशक मंडल, ओ.एस.एफ.सी. और अन्य; (1999) 3 एस.सी.सी. 666 और देव प्रकाश

14.तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड, लखनऊ और अन्य; (2014) 7 एस.सी.सी. 260

(माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह द्वारा दिया गया)

1. यह रिट याचिका निम्नलिखित राहतों की मांग करते हुए दायर की गई है:-

"1) उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिसके द्वारा विपक्षी संख्या 4 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 31.03.2005 और 7.9.2001 को रद्द किया जा सके, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 10-क और 10-ख के रूप में संलग्न हैं।

"11) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिसके द्वारा विपक्षी पक्षकारों को यह आदेश दिया जाए कि वे याचिकाकर्ता को उसके पद पर कार्य करने दें और उसे प्रत्येक माह नियमित रूप से वेतन का भुगतान करें जब भी वह देय हो।

1I1) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिसके द्वारा विपक्षी पक्षकारों को यह आदेश दिया जाए कि वे याचिकाकर्ता के वेतन के बकाये की संपूर्ण लंबित राशि का भुगतान करें या भुगतान करवाएं।"

2. वर्तमान याचिका को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता ने पात्र होने के नाते, तत्कालीन नियुक्ति प्राधिकारी, उप-प्रभागीय मजिस्ट्रेट, कादीपुर, जनपद सुल्तानपुर द्वारा उचित प्रक्रिया का पालन करने के पश्चात जारी आदेश दिनांक 14.09.1982 के माध्यम से नगर पंचायत, दोस्तपुर, जनपद सुल्तानपुर में कर संग्रहकर्ता के पद पर नियुक्ति प्राप्त की थी। इसके अनुपालन में, याचिकाकर्ता को 15.09.1982 को कर संग्रहकर्ता के पद का कार्यभार सौंप दिया गया था। याचिकाकर्ता ने वर्ष 1999 तक कार्य करना जारी रखा। यह कहा गया है कि जब विपक्षी संख्या 6 को नगर पंचायत, दोस्तपुर का अध्यक्ष चुना गया, तो उसने याचिकाकर्ता को प्रताड़ित करना शुरू कर दिया और विपक्षी संख्या 5 ने विपक्षी संख्या 6 के साथ मिलीभगत करके याचिकाकर्ता से रसीद बुक और प्रासंगिक दस्तावेज ले लिए तथा याचिकाकर्ता को 09.08.1999 से उपस्थिति पंजिका पर हस्ताक्षर करने से रोक दिया। विपक्षी संख्या 5 के उक्त कृत्य के बावजूद, याचिकाकर्ता कार्यालय में निरंतर उपस्थित रहा। सितंबर 1999 में, नगर पंचायत, दोस्तपुर के सभी कर्मचारियों को चुनाव ड्यूटी के लिए भेजा गया था और याचिकाकर्ता को भी प्राथमिक विद्यालय-1, कटसकी कादीपुर, जनपद सुल्तानपुर में चुनाव ड्यूटी पर भेजा गया था, जहाँ उसने 29.09.1999 से 30.09.1999 तक और 02.10.1999 से 30.10.1999 तक अपने कर्तव्यों का पालन किया और इस संबंध में मतदान केंद्र के पीठासीन अधिकारी द्वारा 30.10.1999 को एक प्रमाण पत्र भी जारी किया गया है। यह भी आरोप है कि चुनाव ड्यूटी पूरी होने के बाद भी न तो याचिकाकर्ता को काम करने दिया गया और न ही उसे उपस्थिति पंजिका पर हस्ताक्षर करने की अनुमति दी गई, हालांकि याचिकाकर्ता ने विपक्षी संख्या 4 से 6 के समक्ष मौखिक और लिखित रूप में अपना पक्ष मजबूती से रखा था। याचिकाकर्ता ने विपक्षी संख्या 3 से भी संपर्क किया था, लेकिन कुछ नहीं किया गया।

3. 21.12.1999 को विपक्षी संख्या 5 द्वारा एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया जिसमें याचिकाकर्ता से तीन दिनों के भीतर अपना जवाब दाखिल करने की अपेक्षा की गई थी, जिसका जवाब उसने 10.10.2000 को प्रस्तुत किया। उसके बाद भी, न तो याचिकाकर्ता को काम करने दिया गया और न ही उसे उपस्थिति पंजिका पर हस्ताक्षर करने की अनुमति दी गई, हालांकि वह प्रत्येक दिन कार्यालय में उपस्थित रहता था। जब कुछ नहीं किया गया, तो याचिकाकर्ता ने विपक्षी पक्षकारों को याचिकाकर्ता को उसके पद पर कार्य करने देने, प्रत्येक माह नियमित रूप से वेतन का भुगतान करने और वेतन के बकाया की लंबित राशि का भुगतान करने के निर्देश की मांग के साथ वर्तमान रिट याचिका दायर की। इस न्यायालय ने दिनांक 19.01.2005 के आदेश द्वारा अध्यक्ष, नगर पंचायत, दोस्तपुर को एक तर्कसंगत और सुस्पष्ट आदेश पारित करके याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन पर विचार करने और निर्णय लेने का निर्देश दिया। इस न्यायालय के आदेश के अनुपालन में, विपक्षी संख्या 6 ने दिनांक 31.03.2005 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन पर विचार किया और उसे खारिज कर दिया। यह ध्यान देने योग्य है कि पहली बार विपक्षियों ने 10.01.2006 को प्रति-शपथ पत्र दाखिल करके आक्षेपित आदेश दिनांक 07.09.2001 को रिकॉर्ड पर प्रस्तुत किया, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता की सेवाएँ समाप्त कर दी गई थीं, साथ ही दिनांक 31.03.2005 का आदेश भी प्रस्तुत किया गया, जिसके द्वारा इस न्यायालय द्वारा 19.01.2005 को पारित आदेश के अनुपालन में याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन को खारिज कर दिया गया था। इसके पश्चात, याचिकाकर्ता ने दिनांक 07.09.2001 और 31.03.2005 के आदेशों को चुनौती देते हुए एक

संशोधन आवेदन (सी.एम. आवेदन संख्या 18 वर्ष 2023) प्रस्तुत किया, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 19.07.2023 के आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया।

<u>याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की ओर से प्रस्तुत तर्क</u>

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक द्विवेदी ने तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता को नगर पंचायत, दोस्तपुर, जनपद सुल्तानपुर में कर संग्रहकर्ता के पद पर आदेश दिनांक 14.09.1982 के माध्यम से नियुक्त किया गया था और उसने 15.09.1982 को उक्त पद पर कार्यभार ग्रहण किया था। याचिकाकर्ता की नियुक्ति नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा उचित प्रक्रिया का पालन करने के पश्चात की गई थी। याचिकाकर्ता को 09.08.1999 को उपस्थिति पंजिका पर हस्ताक्षर करने से रोक दिया गया था, यद्यपि वह कार्यालय में उपस्थित रहता था। याचिकाकर्ता को 21.12.1999 को एक नोटिस जारी किया गया था, जिसमें यह उल्लेख किया गया था कि वह ड्यूटी से अनुपस्थित था और उसके द्वारा कुछ धनराशि भी जमा नहीं की गई थी, तथा उसे ड्यूटी पर उपस्थित होने का निर्देश दिया गया था। याचिकाकर्ता ने उक्त नोटिस दिनांक 21.12.1999 का जवाब दिनांक 10.10.2000 को प्रस्तुत किया था, जो 10.01.2006 को दाखिल किए गए प्रति-शपथ पत्र के अनुलग्नक सी.ए.-7 के रूप में संलग्न है। याचिकाकर्ता ने अपने जवाब में कहा था कि वह अधिकारी के समक्ष उपस्थित हुआ था और अपना कार्यभार ग्रहण करने का पत्र प्रस्तुत किया था, लेकिन उसे सेवा में शामिल होने की अनुमति नहीं दी जा रही थी। उसने आगे सभी आरोपों से इनकार किया।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान वेतन बिल की ओर आकर्षित किया है, जिसे विपक्षी संख्या 4 और 5 द्वारा दाखिल दिनांक 29.01.2024 के प्रति-शपथ पत्र में अनुलग्नक सी.ए.-12 के रूप में संलग्न किया गया है, और तर्क दिया कि वेतन बिल स्वयं यह दर्शाता है कि याचिकाकर्ता क्रम संख्या 4 पर 325/- रुपये के वेतनमान में है, यानी कर संग्रहकर्ता, और वह एक स्थायी पद पर कार्यरत था। यह वेतन बिल सक्षम प्राधिकारी, यानी अधिशासी अधिकारी, टाउन एरिया, दोस्तपुर, जनपद सुल्तानपुर द्वारा पारित किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया कि रिट याचिका में प्रति-शपथ पत्र मांगा गया था और 10.01.2006 के प्रति-शपथ पत्र के साथ पहली बार सेवा समाप्ति आदेश दिनांक 07.09.2001 को अनुलग्नक सी.ए.-4 के रूप में संलग्न किया गया। याचिकाकर्ता को कभी भी कोई लिखित सेवा समाप्ति आदेश तामील नहीं कराया गया था। इसलिए, याचिकाकर्ता ने सेवा समाप्ति आदेश दिनांक 07.09.2001 और आदेश दिनांक 31.03.2005, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन को खारिज कर दिया गया था, को चुनौती देते हुए एक संशोधन आवेदन दायर किया। तर्क यह है कि अनुलग्नक-10-क के रूप में संलग्न आक्षेपित आदेश दिनांक 31.03.2005 स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध 10,000/- रुपये की धनराशि के गबन का आरोप लगाया गया है और रिकॉर्ड यह दर्शाता है कि इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए कभी भी कोई विभागीय कार्यवाही शुरू नहीं की गई कि क्या याचिकाकर्ता इस तरह के कदाचार के लिए जिम्मेदार था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि सेवा समाप्ति आदेश यह भी दर्शाता है कि यह याचिकाकर्ता की पीठ पीछे पारित किया गया एक साधारण आदेश है और इसे याचिकाकर्ता को कभी सूचित नहीं किया गया था, न ही इस पर ऐसा कोई पृष्ठांकन है कि उक्त सेवा समाप्ति आदेश याचिकाकर्ता को कभी तामील कराया गया था। इसके अतिरिक्त,

सेवा समाप्ति आदेश में कोई पत्र संख्या नहीं है और ऐसा प्रतीत होता है कि अध्यक्ष, नगर पंचायत, दोस्तपुर, जनपद सुल्तानपुर ने निर्धारित प्रक्रिया अपनाए बिना मनमाने ढंग से यह आदेश पारित किया है और याचिकाकर्ता के एक मूल्यवान नागरिक अधिकार को अत्यंत मनमाने और अवैध तरीके से छीन लिया गया है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि विभाग द्वारा जारी दिनांक 26.11.1999 और 21.12.1999 के नोटिस यह दर्शाते हैं कि याचिकाकर्ता को ड्यूटी से अनुपस्थित दिखाया गया है, लेकिन साथ ही उस पर वित्तीय अनियमितता का आरोप भी लगाया गया है। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि जब विपक्षी पक्षगण इस मामले के साथ सामने आए कि याचिकाकर्ता न केवल ड्यूटी से अनुपस्थित था, बल्कि वह कुछ राशि के गबन में भी शामिल था, तो यह विपक्षी पार्टियों के लिए अनिवार्य था कि वे याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभागीय जांच की कार्यवाही करतीं, लेकिन ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं अपनाई गई। विपक्षी पक्षकारों याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई विभागीय कार्यवाही शुरू किए बिना उसकी सेवाएँ समाप्त नहीं कर सकती थीं। तर्क यह है कि आक्षेपित आदेश यह दर्शाता है कि याचिकाकर्ता पर 10,000/- रुपये के गबन का आरोप लगाया गया है, इसलिए सेवा समाप्ति का कारण स्पष्ट रूप से दोषपूर्ण है और एक बार जब याचिकाकर्ता पर कलंक लगा दिया गया, तो विभाग द्वारा इसके लिए निर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हुए इसकी जांच की जानी चाहिए थी। इसी प्रकार, सेवा समाप्ति आदेश दिनांक 07.09.2001 भी एक दिखावटी दस्तावेज़ है क्योंकि यह यह संकेत नहीं देता कि इसे याचिकाकर्ता को संबोधित किया गया था या यह याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त किया गया था। इसके अतिरिक्त, आक्षेपित सेवा समाप्ति आदेश में कोई पत्र संख्या भी नहीं है, इसलिए यह एक मनमाना आदेश प्रतीत होता है।

7. अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा जताया है:-

*1. **डॉ. विजयाकुमारन सी.पी.वी. बनाम केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय और अन्य**, (2020) 12 एस.सी.सी. 426;*

*2. सिविल अपील संख्या शून्य वर्ष 2024 (एस.एल.पी. (सी) संख्या 10546/2019 से उत्पन्न), **यू.पी. स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन और अन्य बनाम बृजेश कुमार और अन्य, निर्णय तिथि 28.08.2024;***

*3. **दीप्ति प्रकाश बनर्जी बनाम सत्येंद्र नाथ बोस नेशनल सेंटर फॉर बेसिक साइंसेज, कलकत्ता और अन्य**, (1999) 3 एस.सी.सी. 60;*

*4. **इंद्र पाल गुप्ता बनाम प्रबंध समिति, मॉडल इंटर कॉलेज, थोरा**, (1984) 3 एस.सी.सी. 384;*

*5. **डी.के. यादव बनाम जे.एम.ए. इंडस्ट्रीज लिमिटेड**, (1993) 3 एस.सी.सी. 259;*

*6. **भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम पलक मोदी और अन्य**, (2013) 3 एस.सी.सी. 607;*

*7. **शस्य सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन इलाहाबाद 106;*

*8. **रिट-ए संख्या 31358 वर्ष 2021, डॉ. प्रभांशु श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, निर्णय तिथि 14.11.2024***

<u>विपक्षी संख्या 4 और 5 के अधिवक्ता की ओर से प्रस्तुत तर्क</u>

8. दूसरी ओर, विपक्षी संख्या 4 और 5 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अजय कुमार सिंह राज ने 29.01.2024 को दाखिल प्रति-शपथ पत्र के पैराग्राफ 4 और 5 में यह पक्ष लिया है कि राज्य सरकार द्वारा लिपिक/कर संग्रहकर्ता का केवल एक पद, चौकीदार-सह-चपरासी के 4 पद और सफाई कर्मचारी के 5 पद ही स्वीकृत हैं। वर्ष 1974 में मोहिउद्दीन अंसारी को लिपिक के पद पर नियुक्त किया गया था, जो नियमित रूप से कार्य कर रहे थे और उन्होंने 30.04.2014 को लिपिक के पद पर अपनी अधिवर्षता आयु (रिटायरमेंट) प्राप्त की। इसमें आगे यह उल्लेख किया गया है कि लिपिक/कर संग्रहकर्ता का पद रिक्त नहीं था। उप-जिलाधिकारी, तहसील कादीपुर ने याचिकाकर्ता को अस्थायी रूप से नियुक्त किया था और वह अपनी पिछली सेवाओं के दौरान कई बार ड्यूटी से अनुपस्थित रहा था। याचिकाकर्ता 09.08.1999 से ड्यूटी से अनुपस्थित था और उसे 24.10.1999 तथा 26.11.1999 को नोटिस जारी किया गया था, लेकिन वह उपस्थित नहीं हुआ। इसके बाद, याचिकाकर्ता को 21.12.1999 को पुनः नोटिस जारी किया गया। हालांकि, याचिकाकर्ता ने 10.10.2000 को अपना विलंबित जवाब प्रस्तुत किया और ड्यूटी पर कार्यभार ग्रहण नहीं किया। उसने 10,000/- रुपये की राशि भी जमा नहीं की। 12.08.2001 को दैनिक समाचार पत्र "आज" में नोटिस प्रकाशित किया गया था और याचिकाकर्ता को कार्यालय में उपस्थित होने के लिए पंद्रह दिनों का समय दिया गया था, लेकिन उसने ड्यूटी जॉइन नहीं की। रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री पर विचार करने के पश्चात, अध्यक्ष, नगर पंचायत, दोस्तपुर, जनपद सुल्तानपुर ने 07.09.2001 को आक्षेपित आदेश पारित किया, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता की सेवाएँ समाप्त कर दी गईं। आगे यह तर्क दिया गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता 09.08.1999 से अनुपस्थित था, इसलिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा उचित प्रक्रिया का पालन करने के पश्चात 07.09.2001 के आदेश के माध्यम से उसकी सेवाओं को समाप्त करने का अंतिम निर्णय लिया गया था, अतः इसमें कोई अवैधता या त्रुटि नहीं है।

9. अपने तर्क के समर्थन में, विपक्षी संख्या 4 और 5 के अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा जताया है:-

1. ***उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम कौशल किशोर शुक्ला,*** *(1991) 1 एस.सी.सी. 691;*

2. ***मोहम्मद निहाल सिद्दीकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य,*** *(2007) 1 यू.पी.एल.बी.ई.सी. 769*

3. ***राजस्थान राज्य और अन्य बनाम दया लाल और अन्य,*** *(2011) 2 एस.सी.सी. 429;*

10. प्रत्युत्तर में, याचिकाकर्ता ने 14.02.2025 को दाखिल प्रत्युत्तर शपथ-पत्र के पैराग्राफ-6 में यह पक्ष लिया है कि याचिकाकर्ता को 14.09.1982 को टाउन एरिया, दोस्तपुर में 117-224/- रुपये के वेतनमान में कर संग्रहकर्ता के पद पर नियुक्त किया गया था। नियुक्ति के पश्चात, जिलाधिकारी के कार्यालय से अनुमोदन मांगा गया था और उसके बाद ही याचिकाकर्ता की नियुक्ति हुई थी। मोहिउद्दीन अंसारी नामक एक व्यक्ति को वर्ष 1974 में लिपिक के पद पर नियुक्त किया गया था और वह कर संग्रहकर्ता नहीं थे। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे न्यायालय का ध्यान 29.01.2024 को दाखिल प्रति-शपथ पत्र के साथ संलग्न वेतन विवरण (सी.ए.-12) की ओर आकर्षित किया है, जो

यह दर्शाता है कि क्रम संख्या 3 पर मोहिउद्दीन अंसारी 381/- रुपये के वेतनमान में लिपिक का पद धारित कर रहे हैं, जबकि याचिकाकर्ता 325/- रुपये के वेतनमान में कर संग्रहकर्ता का पद धारित कर रहा है जो कि एक भिन्न वेतनमान है। उन्होंने आगे यह निवेदित किया कि याचिकाकर्ता वर्ष 1982 से 09.08.1999 तक कर संग्रहकर्ता के पद पर कार्यरत रहा और उसे कर संग्रहकर्ता के लिए स्वीकार्य सभी भत्तों और आनुषंगिक सेवा लाभों का भुगतान किया गया। अतः, उन्होंने यह तर्क दिया कि विपक्षी संख्या 4 और 5 के अधिवक्ता का कथन अभिलेखों के विपरीत है क्योंकि याचिकाकर्ता के वेतन विवरण को देखने से यह स्पष्ट है कि कर संग्रहकर्ता का पद मोहिउद्दीन अंसारी द्वारा नहीं भरा गया था बल्कि वह एक लिपिक थे और याचिकाकर्ता कर संग्रहकर्ता के स्थायी पद पर कार्यरत था।

<u>विद्वान स्थायी अधिवक्ता की ओर से प्रस्तुत तर्क</u>

11. विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री सुधीर सिंह ने विपक्षी संख्या 4 और 5 के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों को अपनाया है और यह निवेदित किया है कि चूंकि आक्षेपित आदेश उचित प्रक्रिया का पालन करने के पश्चात और अभिलेख पर उपलब्ध समस्त सामग्री पर विचार करने के बाद पारित किए गए हैं, इसलिए इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक द्विवेदी, राज्य-विपक्षीगणों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री सुधीर सिंह और विपक्षी संख्या 4 एवं 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री अजय कुमार सिंह राज को सुना गया।

<u>विश्लेषण</u>

13. अभिलेखों और दोनों आक्षेपित आदेशों के अवलोकन के पश्चात, यह प्रथम दृष्टया स्पष्ट है कि 31.03.2005 का आक्षेपित आदेश दोषपूर्ण प्रकृति का है। दिनांक 31.03.2005 के आदेश में इस विवरण का उल्लेख किया गया है कि याचिकाकर्ता ने 10,000/- रुपये का गबन किया और उसे जमा नहीं किया, तथापि, विपक्षी पार्टियों ने याचिकाकर्ता को कोई आरोप-पत्र जारी नहीं किया। यहाँ तक कि यदि याचिकाकर्ता ड्यूटी से अनुपस्थित भी था, तो यह स्थापित विधि है कि यदि कोई दोषी कर्मचारी कार्यालय में उपस्थित नहीं होता है, तो एकपक्षीय कार्यवाही संचालित की जा सकती है ***(श्रीमती आमिना बनाम नगर पालिका परिषद, प्रतापगढ़ व अन्य, 2012 (30) एल.सी.डी. 1671)***, परंतु वर्तमान मामले में, ऐसी कोई कार्यवाही नहीं की गई और 07.09.2001 का साधारण सेवा समाप्ति आदेश याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति में पारित कर दिया गया। स्पष्ट रूप से, याचिकाकर्ता के विरुद्ध दो आरोप उल्लिखित किए गए थे; पहला, उसे 10,000/- रुपये के गबन के लिए उत्तरदायी ठहराया गया है और दूसरा आरोप यह है कि वह 09.08.1999 से ड्यूटी से अनुपस्थित था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि नियुक्ति प्राधिकारी याचिकाकर्ता के कदाचार से प्रभावित था और इसी कारण उसने याचिकाकर्ता की सेवाएँ समाप्त कर दीं। यदि याचिकाकर्ता द्वारा कोई कदाचार किया गया था, तो निश्चित रूप से विपक्षी पार्टियों के लिए यह आवश्यक था कि वे उचित प्रक्रिया का पालन करते हुए इसकी जांच करें, परंतु वर्तमान मामले में, ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं अपनाई गई, जो दिनांक 07.09.2001 और 31.03.2005 के आक्षेपित आदेशों को देखने से स्पष्ट है।

14. विपक्षी संख्या 4 और 5 के अधिवक्ता का यह तर्क कि याचिकाकर्ता स्थायी पद पर कार्यरत नहीं था, टिकने योग्य नहीं है क्योंकि 29.01.2024 के प्रति-शपथ पत्र के साथ संलग्न वेतन विवरण (सी.ए.-12) स्वयं यह दर्शाता है कि याचिकाकर्ता क्रम संख्या 4 पर 325/- रुपये के वेतनमान में है, अर्थात वह कर संग्रहकर्ता के मूल पद पर कार्यरत था। वेतन सक्षम प्राधिकारी, अर्थात अधिशासी अधिकारी, टाउन एरिया, दोस्तपुर, जनपद सुल्तानपुर द्वारा पारित किया गया था, जबकि मोहिउद्दीन अंसारी 381/- रुपये के वेतनमान में लिपिक के पद पर कार्यरत थे, अतः विपक्षी संख्या 4 और 5 के अधिवक्ता द्वारा लिया गया पक्ष अभिलेखों के आधार पर स्वीकार्य नहीं है। सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी नियुक्ति पत्र, जो प्रति-शपथ पत्र के साथ संलग्न है, भी इस तथ्य का सूचक है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति कर संग्रहकर्ता के पद पर की गई थी। याचिकाकर्ता ने 1982 से 09.08.1999 तक, अर्थात सत्रह वर्षों से अधिक समय तक अपनी सेवा जारी रखी और एक नियमित कर्मचारी के रूप में सभी आनुषंगिक लाभ प्राप्त कर रहा था। दिनांक 07.09.2001 का आक्षेपित सेवा समाप्ति आदेश आगे यह बताता है कि याचिकाकर्ता के पद को विज्ञापन के माध्यम से आवेदन आमंत्रित करके भरा जाएगा, इस प्रकार यह विपक्षी संख्या 4 और 5 की स्वीकारोक्ति है कि उनके कार्यालय में कर संग्रहकर्ता का पद मौजूद है।

15. यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि याचिकाकर्ता ने 21.12.1999 के नोटिस का जवाब 10.10.2000 को दिया था, जिसे विपक्षीगणों ने स्वीकार किया है। अपने उत्तर में याचिकाकर्ता ने कहा था कि वह कार्यभार ग्रहण करने के लिए कई तिथियों पर कार्यालय में उपस्थित हुआ था, लेकिन उसे कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति नहीं दी गई। उक्त पत्र नगर पंचायत, दोस्तपुर के कार्यालय में प्राप्त भी हुआ था, किंतु नगर पंचायत उस पर मौन रही। यह विपक्षीगणों का दायित्व था कि वे 10.10.2000 के उक्त उत्तर के संबंध में तत्काल निर्णय लें और यदि कोई गबन हुआ था या वह ड्यूटी से अनुपस्थित था, तो वे याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही आगे बढ़ा सकते थे, किंतु 07.09.2001 को एक साधारण आदेश के माध्यम से आक्षेपित आदेश पारित कर दिया गया, जो यह दर्शाता है कि नियुक्ति प्राधिकारी याचिकाकर्ता के दो आधारों पर कदाचार से प्रभावित था; पहला ड्यूटी से अनुपस्थिति और दूसरा 10,000/- रुपये का गबन। गबन के संबंध में कदाचार एक गंभीर आरोप है जिसकी विभाग द्वारा निश्चित रूप से जांच की जानी चाहिए थी और इसके लिए आरोप-पत्र जारी किया जाना चाहिए था, परंतु यह स्वीकार्य तथ्य है कि दंड अधिरोपित करने हेतु उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना ही याचिकाकर्ता के विरुद्ध एक साधारण सेवा समाप्ति आदेश पारित कर दिया गया, जो पिछले सत्रह वर्षों से अधिक समय से पद पर कार्यरत था। यदि यह पाया जाता है कि सेवा समाप्ति का आधार दोषपूर्ण है, तो निश्चित रूप से न्यायालय इसका अनावरण करेगा। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के दिनांक 10.10.2000 के उत्तर को देखने से यह स्पष्ट है कि नगर पंचायत, दोस्तपुर इस मामले पर सुप्त अवस्था में थी और दंड देने हेतु उचित प्रक्रिया अपनाए बिना ही याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति में 07.09.2001 का सेवा समाप्ति आदेश पारित कर दिया गया। दिनांक 31.03.2005 का आक्षेपित आदेश याचिकाकर्ता के विरुद्ध ड्यूटी से अनुपस्थिति के साथ-साथ 10,000/- रुपये के गबन के आरोप को भी दर्शाता है, किंतु नगर पंचायत, दोस्तपुर ने उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना एक साधारण आदेश पारित करके याचिकाकर्ता की सेवाएँ समाप्त करने में अवैध तरीके से कार्य किया।

16. ***बृजेश कुमार और अन्य (उपरोक्त)*** के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने इसी प्रकार के मुद्दे पर विचार करते हुए यह निर्धारित किया है कि यदि किसी कर्मचारी की सेवा समाप्ति कदाचार के आधार पर की जाती है, तो वह केवल नियमित जांच करने या उसे सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात ही की जानी चाहिए, जिसके अभाव में यह दोषपूर्ण प्रकृति का माना जाएगा। प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत है:-

"19. प्रतिवादी की सेवाएँ केवल कथित कदाचार के आधार पर समाप्त की गई हैं, लेकिन इसके लिए न तो कोई नियमित जाँच की गई और न ही उसे सुनवाई का कोई अवसर दिया गया। सेवा समाप्ति का आदेश किसी ऐसी रिपोर्ट के आधार पर पारित किया गया है जो संभवतः प्रतिवादी को उपलब्ध तक नहीं कराई गई थी। प्रतिवादी को कोई कारण बताओ नोटिस जारी किया गया भी प्रतीत नहीं होता है। इसलिए, उसकी सेवाओं की समाप्ति का आदेश, भले ही वह संविदा के आधार पर हो, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किए बिना कथित कदाचार के कारण पारित किया गया है। सेवा समाप्ति का आदेश स्पष्ट रूप से दोषपूर्ण प्रकृति का है जिसे नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किए बिना पारित नहीं किया जा सकता था।"

17. ***डॉ. विजयकुमारन सी.पी.वी. (उपरोक्त)*** के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने उस मामले के तथ्यों पर विचार करने के पश्चात सेवा समाप्ति के आदेश को इस आधार पर रद्द कर दिया था कि आक्षेपित सेवा समाप्ति अवैध है, क्योंकि यह उस मामले के अपीलकर्ता को सेवा नियमों के अनुसार नियमित जांच के अधीन किए बिना ही पारित की गई थी। वर्तमान मामले में भी स्थिति वही है।

18. इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने ***शस्य सिंह (उपरोक्त)*** के मामले में विचाराधीन मुद्दे पर विचार करते हुए निम्नानुसार निर्णय दिया है:-

"10. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पुरुषोतम लाल ढींगरा बनाम भारत संघ (1958 ए.आई.आर. 36, 1958 एस.सी.आर. 828) के मामले में यह निर्धारित किया है कि यदि आदेश के नागरिक परिणाम निकलते हों, तो किसी कर्मचारी को सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना दोषपूर्ण सेवा समाप्ति आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने गुजरात उच्च न्यायालय बनाम जयश्री चमनलाल बुद्धभट्ट, 2013 (16) एस.सी.सी. 59 के मामले में यह विचार व्यक्त किया है कि एक बार जब संबंधित पदाधिकारी के विरुद्ध कोई आरोप लगाया जाता है, जिससे उस पर कलंक लगता है, तो न्यूनतम आवश्यकता यह है कि संबंधित व्यक्ति को उसके विरुद्ध आरोपित विषय की सूचना दी जाए और उसे सुनवाई का उचित अवसर प्रदान किया जाए। सर्वोच्च न्यायालय ने एस.बी.आई. बनाम पलक मोदी, 2013 (3) एस.सी.सी. 607 के मामले में साधारण सेवा समाप्ति या दंडात्मक सेवा समाप्ति के मुद्दे पर विचार किया है। इसमें उल्लेख किया गया है कि यदि कदाचार या दुराचरण ही सक्षम प्राधिकारी द्वारा किसी पदाधिकारी की सेवाएँ समाप्त करने के अंतिम निर्णय का आधार है, भले ही वह आदेश प्रत्यक्ष रूप से दोषपूर्ण न हो, तो न्यायालय उस पर्दे को हटाकर यह घोषित कर सकता है कि साधारण सेवा समाप्ति की आड़ में नियोक्ता ने कर्मचारी को कदाचार के लिए दंडित किया है।"

.....

13. जो भी हो, चूंकि नियुक्ति प्राधिकारी याचिकाकर्ता के आचरण से संतुष्ट नहीं हैं जैसा कि आक्षेपित आदेशों और निर्देश पत्र में परिलक्षित हो रहा है, और इस आशय का विवरण भी आक्षेपित आदेश में दिया गया है, इसलिए, यदि आवश्यक हो तो याचिकाकर्ता के विरुद्ध कानून के अनुसार एक उचित विभागीय जांच संचालित और संपन्न की जानी चाहिए थी और याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद ही कोई उचित आदेश पारित किया

जा सकता है। कोई भी उचित आदेश केवल अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा स्वतंत्र रूप से पारित किया जा सकता है और ऐसा आदेश वरिष्ठ प्राधिकारी द्वारा पारित निर्देश के अनुपालन में पारित नहीं किया जाना चाहिए।"

19. ***दया लाल*** (उपरोक्त) के मामले में, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि उक्त मामला सहायता प्राप्त छात्रावासों में संविदा के आधार पर कार्यरत कर्मचारियों से संबंधित है। इसी प्रकार, ***कौशल किशोर शुक्ला*** (उपरोक्त) के मामले में, यह देखा जाना चाहिए कि प्रतिकूल प्रविष्टि और प्रारंभिक जाँच पर विचार करने के बाद उपयुक्तता के आकलन पर तदर्थ या अस्थायी सरकारी कर्मचारी की सेवा समाप्ति को वैध माना गया है और उसे दंडात्मक नहीं माना गया है। उसी प्रकार, ***मोहम्मद निहाल सिद्दीकी*** (उपरोक्त) एक ऐसा मामला है जहाँ नियुक्ति पत्र की शर्तों के अनुसार अस्थायी कर्मचारी की सेवा समाप्त की गई थी, इसलिए इसमें कोई कलंक नहीं लगा था, जिसके लिए सुनवाई का अवसर आवश्यक हो। इस प्रकार, विपक्षी संख्या 4 और 5 के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए उपरोक्त तीन निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होते हैं। वर्तमान मामले में, यह देखा जाना प्रासंगिक है कि याचिकाकर्त्ता को उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद और संबंधित प्राधिकारी द्वारा विधिवत अनुमोदित होने के बाद कर संग्रहकर्त्ता के पद पर नियुक्त किया गया था और वह सत्रह वर्षों से अधिक समय से कार्यरत था।

निष्कर्ष:

20. चूंकि यह एक सुस्थापित विधि है कि यदि कोई दंड आदेश दोषपूर्ण हो या किसी आरोप पर आधारित हो, तो कानून की उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना किसी कर्मचारी की सेवाएँ समाप्त नहीं की जा सकतीं, इसलिए विवादित दंड आदेश कानून की दृष्टि में बनाए रखने योग्य नहीं हैं और वे निरस्त किए जाने योग्य हैं।

21. याचिकाकर्त्ता इस समय लगभग 70 वर्ष के हैं और उन्होंने दस वर्ष पूर्व ही सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली थी। विपक्षी संख्या 4 और 5 के विद्वान अधिवक्ता किसी ऐसे नियम को बताने में असमर्थ हैं जो विपक्षीगण को सेवानिवृत्ति के बाद याचिकाकर्त्ता के विरुद्ध कार्यवाही करने का अधिकार देता हो। अतः, ***भगिरथी जेना बनाम निदेशक मंडल, ओ.एस.एफ.सी. व अन्य*** (1999) 3 एस.सी.सी. 666 और ***देव प्रकाश तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड, लखनऊ व अन्य*** (2014) 7 एस.सी.सी. 260 के मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि को देखते हुए, मामले को नई जाँच के लिए वापस भेजना उचित नहीं होगा।

22. तदनुसार रिट याचिका स्वीकार की जाती है और नगर पंचायत, दोस्तपुर, जनपद सुल्तानपुर के अध्यक्ष द्वारा पारित दिनांक 07.09.2001 और 31.03.2005 के आक्षेपित आदेशों, जो रिट याचिका के संलग्नक संख्या 10-अ और 10-ब के रूप में संलग्न हैं, को निरस्त करते हुए उत्प्रेषण रिट जारी की जाती है। याचिकाकर्ता कानून के अनुसार स्वीकार्य 30% पिछला वेतन और सेवानिवृत्ति लाभ प्राप्त करने का पात्र है।

23. चूंकि याचिकाकर्ता वर्ष 2005 से मुकदमेबाजी कर रहा है और सेवानिवृत्त हो चुका है, अतः न्याय के हित में यह उचित होगा कि विपक्षीगण को याचिकाकर्ता को 30% पिछला वेतन और सेवानिवृत्ति लाभों के भुगतान की प्रक्रिया, इस आदेश की प्रमाणित प्रति संबंधित प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किए जाने की तिथि से सकारात्मक रूप से तीन माह की अवधि के भीतर पूर्ण करने का निर्देश दिया जाए।

(2025) 5 ILRA 389

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि

विशेष अपील संख्या: 607/2024 अन्य संबद्ध मामलों के साथ

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य **.....अपीलकर्ता**

बनाम

चंद्र मोहन यादव **.....प्रतिवादी**

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: अंकित गौर, कुणाल रवि सिंह

प्रतिवादी के अधिवक्ता: भगवान दत्त पाण्डेय

ए. सेवा विधि - उत्तर प्रदेश पालिका (केन्द्रीयित) सेवा नियमावली, 1966 - नियम 21 और 21-क(1) - पेंशन, उसका निर्धारण - नियमितीकरण से पूर्व की गई पिछली सेवाओं को जोड़ने का दावा - स्वीकार्यता - राज्य द्वारा नियमितीकरण में किया गया विलंब - प्रभाव - यह निर्धारित किया गया कि नियम 21-क(1) के आधार पर, उनकी सेवाएँ नियमावली, 1966 में नियम 21-क(1) के सम्मिलित होने के तुरंत बाद नियमितीकरण के लिए विचार किए जाने योग्य थीं। केवल इसलिए कि राज्य ने पर्याप्त समय तक उनके नियमितीकरण पर विचार नहीं किया, राज्य को अब यह तर्क देने का वैध आधार नहीं मिल जाता कि चूंकि सेवा में उनका प्रवेश 1.4.2005 के बाद का है, इसलिए वे पुरानी पेंशन योजना के लाभ के हकदार नहीं होंगे - नियमितीकरण के दावे पर विचार करने में राज्य द्वारा किया गया कोई भी विलंब, रिट याचिकाकर्ताओं को पेंशन के लाभ से वंचित करने का आधार नहीं हो सकता। (पैरा 16 और 23)

विशेष अपील निस्तारित। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य; (2019) 10 एस.सी.सी. 516
2. उदय प्रताप ठाकुर व अन्य बनाम बिहार राज्य व अन्य; 2023 (0) सुप्रीम (एस.सी. 429)

(माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्रा

एवं

माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि द्वारा प्रदत्त)

1. ये अपीलें विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट याचिकाओं के एक समूह में दिए गए उन निर्णयों से उत्पन्न हुई हैं, जिनमें प्रतिवादियों/रिट याचिकाकर्ताओं को उनकी पेंशन निर्धारित करने के प्रयोजन हेतु नियमितीकरण से पूर्व की गई उनकी पिछली सेवाओं को जोड़ते हुए, उत्तर प्रदेश पालिका (केन्द्रीयित) सेवा सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1981 के तहत सेवानिवृत्ति लाभों का हकदार माना गया है। इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए, विद्वान एकल न्यायाधीश ने **प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य**, **(2019)** 10 एस.सी.सी. 516 के साथ-साथ **उदय प्रताप ठाकुर और अन्य बनाम बिहार राज्य व अन्य, 2023 (0) सुप्रीम (एस.सी. 429)** के निर्णयों पर भरोसा किया है।

2. सभी मामलों में उत्पन्न विवाद कमोबेश एक समान हैं। तद्नुसार हमने श्री चंद्र मोहन यादव के मामले को मुख्य मामले के रूप में लिया है। श्री यादव को वर्ष 1987 में नगर निगम में संविदा के आधार पर कनिष्ठ अभियंता (जनपद) के रूप में नियुक्त किया गया था। तत्पश्चात, 07.03.1995 के शासनादेश के अनुपालन में उन्हें तदर्थ नियुक्ति दी गई। उनकी सेवाओं को 26.02.2008 को नियमित किया गया। इसके बाद, वह 31.07.2022 को सेवा से सेवानिवृत्त हुए। हालांकि, श्री यादव को पेंशन संबंधी लाभ प्रदान नहीं किए गए, जिसके कारण उन्होंने इस न्यायालय में रिट ए संख्या 6344/2023 दाखिल की, जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 30.05.2023 के निर्णय और आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया है।

3. नगर निगम उत्तर प्रदेश नगरपालिका अधिनियम, 1916 के प्रावधानों के तहत गठित एक वैधानिक निकाय है। ऐसे स्थानीय निकाय में नियुक्त व्यक्तियों की सेवा शर्तें उत्तर प्रदेश पालिका (केन्द्रीयित) सेवा नियमावली, 1966 (इसके बाद '1966 की नियमावली' के रूप में संदर्भित) द्वारा शासित होती हैं। 1966 की नियमावली का नियम 21, नियम 19 के तहत तैयार की गई सूची से मौलिक रिक्तियों के होने पर नियुक्ति और नियम 20 के अनुसार पदोन्नति द्वारा नियुक्ति का प्रावधान करता है। नियम 19 सीधी भर्ती को विनियमित करता है जबकि नियम 20 पदोन्नति से संबंधित है। 1966 की नियमावली का नियम 31 तदर्थ और अस्थायी स्थानापन्न नियुक्तियों की परिकल्पना करता है जो इस प्रकार है:

*"31. **तदर्थ और अस्थायी स्थानापन्न नियुक्तियाँ** - नियम 21 में किसी भी बात के होते हुए भी, राज्य सरकार मौलिक रूप से या अस्थायी रूप से रिक्त होने वाले पदों के लिए तदर्थ नियुक्तियाँ या अस्थायी स्थानापन्न व्यवस्थाएँ भी कर सकती है।"*

4. 1966 की नियमावली में दिनांक 10.04.2003 की अधिसूचना के माध्यम से तदर्थ नियुक्तियों के नियमितीकरण का एक प्रावधान जोड़ा गया था, जिसे नियम 21-क के नाम से जाना जाता है। वर्तमान उद्देश्यों के लिए नियम 21-क(1) प्रासंगिक है और इसे नीचे उद्धृत किया गया है:

*"**21-क. तदर्थ नियुक्तियों का नियमितीकरण**–(1) कोई भी व्यक्ति जो– (i) 30 जून, 1998 से पूर्व तदर्थ आधार पर सीधे नियुक्त किया गया था और इन नियमों के प्रारंभ होने की तिथि पर उस रूप में सेवा में निरंतर बना हुआ है;*

(ii) ऐसी तदर्थ नियुक्ति के समय नियमित नियुक्ति के लिए नियम 12 के तहत निर्धारित आवश्यक योग्यताएं रखता था; और

(iii) उसने तीन वर्ष की निरंतर सेवा पूरी कर ली है या जैसी भी स्थिति हो, पूरी करने के बाद, उसके सेवा रिकॉर्ड और उपयुक्तता के आधार पर उपलब्ध स्थायी या अस्थायी रिक्ति में नियुक्ति के लिए तब विचार किया जाएगा, जब इन नियमों में निहित प्रावधानों के अनुसार ऐसी रिक्ति में कोई नियमित नियुक्ति की जानी हो।"

5. श्री यादव के मामले के साथ-साथ अन्य सभी मामलों में भी, रिट याचिकाकर्ताओं को प्रारंभ में अस्थायी आधार पर नियुक्त किया गया था। कई वर्षों तक इस रूप में कार्य करने के पश्चात, उन्हें वर्ष 1995 में तदर्थ नियुक्ति प्रदान की गई। राज्य द्वारा 07.03.1995 को जारी एक शासनादेश के अनुपालन में सभी रिट याचिकाकर्ताओं को तदर्थ नियुक्ति का प्रस्ताव दिया गया था। तदर्थ नियुक्ति जारी करने की शर्त यह थी कि उन सभी व्यक्तियों ने 01.10.1994 से पूर्व तीन या अधिक वर्षों तक (प्रति वर्ष 240 दिन) कार्य किया हो और वे 07.03.1995 को सेवा में रहे हों। इसके अतिरिक्त, ऐसे व्यक्तियों के पास पद के लिए आवश्यक योग्यताएं होना अनिवार्य था।

तदर्थ नियुक्तियों के नियमितीकरण का प्रावधान करने के लिए 10.04.2003 को 1966 की नियमावली में संशोधन किया गया था। नियमितीकरण की शर्त यह थी कि ऐसे व्यक्ति को 30.06.1998 को या उससे पूर्व तदर्थ आधार पर नियुक्त किया गया हो और वह इन नियमों के प्रारंभ होने की तिथि पर सेवा में निरंतर बना हुआ हो; तदर्थ नियुक्ति के समय नियमित नियुक्ति के लिए निर्धारित आवश्यक योग्यताएं रखता हो; और उसने तीन वर्ष की निरंतर सेवा पूरी कर ली हो। इन नियमों में निहित प्रावधानों के अनुसार कोई भी नियमित नियुक्ति किए जाने से पूर्व, ऐसे तदर्थ नियुक्त व्यक्तियों की सेवाओं पर नियमितीकरण के लिए विचार किया जाना आवश्यक था।

6. यह स्वीकार किया गया है कि सभी प्रतिवादीगण उसी तिथि को सेवा में नियमित होने के हकदार थे, जिस दिन यह प्रावधान लागू किया गया था, अर्थात 10.04.2003 को।

7. हम यह भी संज्ञान में ले सकते हैं कि कुछ व्यक्ति, जिन्होंने 1994 से पहले तीन वर्ष से अधिक की सेवा पूरी कर ली थी और जो तदर्थ आधार पर नियुक्त होने के हकदार थे, उन्हें बाद में 07.03.1995 से तदर्थ नियुक्तियां प्रदान की गईं। अतः, यह स्पष्ट है कि सभी रिट याचिकाकर्ता नियम 21-क(1) के तहत 10.04.2003 को नियमित होने के हकदार थे।

8. यह निर्विवाद है कि रिट याचिकाकर्ताओं को 01.04.2005 के बाद अलग-अलग तिथियों पर नियमित किया गया है। राज्य की ओर से ऐसा कोई उचित स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया है कि नियम 21-क(1) के तहत उनके नियमितीकरण के दावे पर या तो 10.04.2003 को या उसके तुरंत बाद विचार क्यों नहीं किया गया।

9. नियम 21-क(1)(iii) में प्रयुक्त शब्दावली स्पष्ट रूप से यह आदेश देती है कि नियमितीकरण हेतु ऐसा विचार, उस रिक्ति के विरुद्ध किसी भी नियमित नियुक्ति से **पूर्व** किया जाना चाहिए। यद्यपि इस संबंध में कोई विशिष्ट अभिवचन उपलब्ध नहीं हैं, फिर भी हमें यह सूचित किया गया है कि नियमित नियुक्तियाँ वर्ष 2004-05 आदि में की गई थीं।

10. अपर महाधिवक्ता श्री एम.सी. चतुर्वेदी, अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री रामानंद पांडेय एवं स्थायी अधिवक्ता श्री अंकित गौड़ ने विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय को मुख्य रूप से इस आधार पर चुनौती दी है कि चूंकि उन्हें (रिट याचिकाकर्ताओं को) 1.4.2005 के पश्चात सेवा में नियमित किया गया था, और तब तक नई पेंशन योजना लागू हो चुकी थी, अतः उन्हें पुरानी पेंशन योजना का लाभ प्रदान करना अनुज्ञेय नहीं है।

11. यह तर्क भी दिया गया है कि तदर्थ आधार पर की गई पिछली सेवाओं को पुरानी पेंशन योजना का लाभ देने के लिए नहीं जोड़ा जाना चाहिए था, क्योंकि सेवा में प्रवेश की तिथि वही मानी जाएगी जो उनके मौलिक नियुक्ति की तिथि है या वह तिथि जब रिट याचिकाकर्ताओं की सेवाओं को नियमित किया गया था।

12. प्रतिवादियों/रिट याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री भगवान दत्त पांडेय और श्री राम कुमार सिन्हा ने यह तर्क दिया है कि राज्य ने नियम 21-क(1) के तहत 10.4.2003 से रिट याचिकाकर्ताओं के नियमितीकरण के दावे पर विचार न करके मनमाना कार्य किया है। केवल राज्य की ओर से नियमितीकरण पर विचार करने में हुई किसी भी देरी के लिए रिट याचिकाकर्ताओं का उत्पीड़न नहीं किया जा सकता। राज्य की शिथिलता के कारण उनके पेंशन प्राप्त करने के अधिकार को नकारा नहीं जा सकता।

13. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और पत्रावली पर उपलब्ध सामग्रियों का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया है। ऊपर बताए गए तथ्य निर्विवाद हैं। 1966 की नियमावली के नियम 2(xi) के तहत 'सेवा के सदस्य' को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया गया है:

"सेवा के सदस्य का अर्थ है वह व्यक्ति जो नियमावली के तहत केन्द्रीयित सेवा के संवर्ग में किसी पद के विरुद्ध आमेलित किया गया हो या नियुक्त किया गया हो।"

14. नियम 2(xvii) 'मौलिक नियुक्ति' को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित करता है:

*"**मौलिक नियुक्ति** का तात्पर्य ऐसी नियुक्ति से है, जो तदर्थ नियुक्ति न हो और इन नियमावलियों के अनुसार चयन के पश्चात की गई हो।"*

15. उपर्युक्त प्रावधानों को एक साथ पढ़ने से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि किसी कर्मचारी की मौलिक नियुक्ति उसी तिथि से मानी जाएगी जिस दिन उसे सेवा में प्रवेश दिया गया था। नियम 21-क(1) नियमितीकरण का प्रावधान करता है और एक बार जब कोई व्यक्ति इसके अंतर्गत नियमित हो जाता है, तो वह सेवा का सदस्य बन जाता है। ऐसी परिस्थितियों में, हमें श्री एम.सी. चतुर्वेदी के इस तर्क में दम दिखाई देता है कि रिट याचिकाकर्ताओं को पेंशन के भुगतान के प्रयोजन हेतु सेवा में प्रवेश की तिथि उनके नियमितीकरण की तिथि ही होगी।

16. हालाँकि, यहाँ एक और पक्ष है जिसे ओझल नहीं किया जा सकता। सभी रिट याचिकाकर्ताओं को प्रारंभ में 1980 के दशक के उत्तरार्ध में अस्थायी आधार पर नियुक्त किया गया था और उन्हें 07.03.1995 से तदर्थ नियुक्तियाँ प्रदान की गई थीं। वे पद पर नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यता रखते थे। नियम 21-क(1) के आधार पर, वर्ष 1966 की नियमावली में नियम 21-क(1) के जुड़ते ही उनकी सेवाओं पर नियमितीकरण हेतु विचार किया जाना अनिवार्य था। मात्र इसलिए कि राज्य ने पर्याप्त लंबे समय तक उनके नियमितीकरण पर विचार नहीं किया, इसे राज्य के पक्ष में यह तर्क देने का वैध आधार नहीं माना जा सकता कि चूँकि उनकी सेवा में (नियमित रूप से) प्रवेश 01.04.2005 के बाद हुआ है, इसलिए वे पुरानी पेंशन योजना के लाभ के पात्र नहीं होंगे।

17. लगभग समान तथ्यों और परिस्थितियों में, एक बद्री नारायण अग्निहोत्री तथा दो अन्य व्यक्तियों ने इस न्यायालय में रिट याचिका ए संख्या 11333 वर्ष 2021 दाखिल की थी। उनकी रिट याचिका स्वीकार कर ली गई थी। राज्य ने इसके विरुद्ध विशेष अपील संख्या 375 वर्ष 2022 दायर की, जिसमें इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने समान दृष्टिकोण अपनाया और पेंशन की पात्रता के प्रयोजन हेतु, नियुक्ति की तिथि को उस तिथि से जोड़ा जब रिट याचिकाकर्ता ने नियमितीकरण हेतु पात्रता प्राप्त कर ली थी।

18. इस संबंध में खंडपीठ द्वारा की गई टिप्पणी इस प्रकार है:

"यद्यपि, हम यह पाते हैं कि रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी को 25.08.1989 को सीधे तदर्थ आधार पर नियुक्त किया गया था, अर्थात नियम 21-क (i) में उल्लिखित 30 जून, 1998 से पूर्व की तिथि पर, और वह नियमावली, 2003 के प्रारंभ होने की तिथि पर इस रूप में सेवा में निरंतर बना हुआ था। वह नियमित नियुक्ति हेतु नियम 12 के अंतर्गत निर्धारित आवश्यक योग्यताएं रखता था और उसने तीन वर्ष की निरंतर सेवा भी पूर्ण कर ली थी, अतः वह स्थायी या अस्थायी रिक्ति में नियुक्ति हेतु विचार किए जाने के योग्य था। इस प्रकार, वह जुलाई, 2001 से 'सेवा के सदस्य' के रूप में आमेलित होने का पात्र था और मामले के इस परिप्रेक्ष्य में, वह पुरानी पेंशन योजना का हकदार होगा। राज्य सरकार ने रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी की सेवाओं को वर्ष 2008 में जाकर नियमित किया, जबकि

वह वर्ष 2001 में ही इसके लिए पात्र हो गया था। हमारी राय में, रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी को केवल सरकार के ढुलमुल रवैये के कारण सेवा के सदस्य के रूप में अपने आमेलन से वंचित नहीं किया जा सकता था।"

19. खंडपीठ के उक्त निर्णय को राज्य द्वारा विशेष अनुमति याचिका (सिविल) डायरी संख्या 29048 वर्ष 2022 दायर करके चुनौती दी गई थी, जिसे माननीय उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 21.11.2022 के निम्नलिखित आदेश द्वारा खारिज कर दिया था:

"विलंब क्षमा किया जाता है। प्रत्यर्थी संख्या 1 - कर्मचारी ने 25.08.1989 को नगर निगम, कानपुर में तदर्थ आधार पर राजस्व निरीक्षक के रूप में सेवा प्रारंभ की थी। उत्तर प्रदेश पालिका (केन्द्रीयित) सेवा (इक्कीसवां संशोधन) नियमावली, 2003 का नियम 21-क यह इंगित करता है कि ऐसे तदर्थ कर्मचारी जिन्होंने 3 वर्ष की निरंतर सेवा पूर्ण कर ली है, उन्हें इन नियमों के प्रावधानों के अनुसार किसी भी नियमित नियुक्ति से पूर्व, उपलब्ध स्थायी या अस्थायी रिक्ति में उनके सेवा अभिलेख और उपयुक्तता के आधार पर नियुक्ति हेतु विचार किए जाने का अधिकार प्रदान किया गया है।

प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि चूंकि उन्हें 25.08.1989 को राजस्व अधिकारी के रूप में तदर्थ आधार पर नियुक्त किया गया था और अगस्त 1992 के महीने में 3 वर्ष की सेवा पूर्ण करने पर, वह उपलब्ध स्थायी/अस्थायी रिक्ति में नियुक्ति हेतु विचार किए जाने के पात्र हो गए थे और उनकी उपयुक्तता पर उनके सेवा अभिलेख के आधार पर विचार किया जाना था।"

01.04.2005 से नई पेंशन योजना लागू होने के बहुत पहले ही, नियम 21-क (iii) के अनुसार नियमित रोजगार चाहने वाले कर्मचारी के पक्ष में अधिकार पुष्ट हो चुके थे। याचिकाकर्ता (राज्य) का यह मामला कभी नहीं था कि 05.02.2008 को अधिकारियों द्वारा पारित नियमित नियुक्ति के आदेश से पूर्व ऐसी कोई स्थायी या अस्थायी रिक्ति उपलब्ध नहीं थी, जिसके विरुद्ध नियमित नियुक्ति हेतु उनके नाम पर विचार किया जा सकता था।

"पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं को काफी समय तक सुनने के पश्चात, हमें उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश (आदेशों) में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखता। तदनुसार, विशेष अनुमति याचिकाएं खारिज की जाती हैं। लंबित अंतरवर्ती आवेदन, यदि कोई हो, निस्तारित माना जाए।"

(हमारे द्वारा बल दिया गया)

20. उपर्युक्त मामले में राज्य द्वारा दायर पुनर्विचार याचिका भी माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिनांक 22.11.2023 को निम्नलिखित आदेश के माध्यम से खारिज कर दी गई है:

"पुनर्विचार याचिकाओं की मौखिक सुनवाई की प्रार्थना अस्वीकार की जाती है।

वर्तमान पुनर्विचार याचिकाएं दायर करने में 223 दिनों का विलंब हुआ है, जिसका संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। इसके अतिरिक्त, पुनर्विचार याचिकाओं और संलग्न दस्तावेजों का अवलोकन करने के पश्चात, हमें दिनांक 21.11.2022 के आदेश पर पुनर्विचार करने का कोई ठोस आधार या कारण नहीं मिला है।

तदनुसार, पुनर्विचार याचिकाएं विलंब के आधार पर और साथ ही गुण-दोष के आधार पर खारिज की जाती हैं। लंबित आवेदन, यदि कोई हों, निस्तारित माने जाएंगे।"

21. उपरोक्त के समान ही तर्क इस न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ द्वारा विशेष अपील संख्या 21 वर्ष 2022 में अपनाया गया है। खंडपीठ का यह विचार था कि एक बार जब वर्ष 2001 में नियमितीकरण नियमावली अधिसूचित कर दी गई थी और रिट याचिकाकर्ता उसके अनुसार नियमित होने का पात्र था, तो नियमितीकरण का आदेश पारित करने में होने वाला कोई भी विलंब पेंशन के भुगतान के प्रयोजन हेतु संबंधित कर्मचारी के लिए हानिकारक नहीं होगा। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 43 से 47 इस प्रकार हैं:

"43. दिनांक 20.12.2001 की अधिसूचना को तत्काल प्रभाव से लागू किया जाना अपेक्षित था और प्रतिवादी/याचिकाकर्ता के नियमितीकरण के दावे पर विचार करने को इतने लंबे समय तक स्थगित नहीं किया जाना चाहिए था, विशेषकर स्वयं नियम में निहित स्पष्ट प्रावधान को देखते हुए। 20.12.2001 को अधिसूचित संशोधित नियमों के नियम 2(iii) भी नियम बनाने वाले प्राधिकारी के विशिष्ट मंतव्य को इंगित करते हैं कि ऐसी नियुक्तियों पर विचार सेवा नियमों के अनुसार किसी भी नियमित नियुक्ति किए जाने से पहले किया जाना चाहिए। नियम 2(iii) में प्रयुक्त भाषा प्रासंगिक है और उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"2(iii). कोई भी व्यक्ति जिसने – तीन वर्ष की निरंतर सेवा पूर्ण कर ली है या, जैसा भी मामला हो, पूर्ण कर लेने के बाद – उपलब्ध स्थायी या अस्थायी रिक्ति में उसके सेवा अभिलेख और उपयुक्तता के आधार पर नियमित नियुक्ति हेतु विचार किया जाएगा, और यह विचार ***संबंधित सेवा नियमों या आदेशों के अनुसार ऐसी रिक्ति में किसी भी नियमित नियुक्ति किए जाने से पहले किया जाएगा।"***

44. यह तथ्य कि उपरोक्त नियम प्रासंगिक सेवा नियमों के अनुसार किसी भी नियमित नियुक्ति किए जाने से पूर्व, स्थायी या अस्थायी रिक्ति के विरुद्ध नियमितीकरण पर विचार करने की अपेक्षा करता है, अत्यंत महत्वपूर्ण है और इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। नियम बनाने वाला प्राधिकारी इस बात से अवगत था कि इस उद्देश्य के लिए नियम के अस्तित्व में होने के बावजूद, नियमितीकरण के दावे पर विचार न करना तदर्थ कर्मचारी की वरिष्ठता आदि के निर्धारण के मामले में प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। इसलिए, नियमों के तहत ऐसे नियमितीकरण के लिए एक विशिष्ट प्रावधान किया गया था कि प्रासंगिक सेवा नियमों के अनुसार ऐसी रिक्ति में किसी भी नियमित नियुक्ति से पहले इस पर विचार किया जाए। नियमितीकरण के नियमों के अनुसार समय पर विचार न करना, तदर्थ कर्मचारियों को केवल संबंधित विभाग द्वारा ऐसे दावों की प्रक्रिया में प्रशासनिक सुस्ती के कारण सेवा और सेवानिवृत्ति लाभों से वंचित कर सकता है।

45. 20.12.2001 के बाद प्रतिवादी/याचिकाकर्ता के नियमितीकरण के दावे पर विचार न करने के लिए कोई अन्य वैध कारण प्रकट नहीं किए गए हैं, विशेष रूप से तब जब उनकी सेवाओं को नियमित करने के लिए इस न्यायालय का दिनांक 21.02.1997 का आदेश पहले से मौजूद था। जवाबी हलफनामे में नियमितीकरण के लिए विलंबित विचार को न्यायसंगत ठहराने हेतु लिया गया एकमात्र तर्क यह है कि राज्य सरकार ने ऐसे दावे पर केवल 07.09.2018 के आदेश के माध्यम से विचार करने का निर्देश दिया था। अपीलकर्ता (राज्य) के इस तर्क को, जो नियमितीकरण के दावे पर विचार करने में हुए विलंब की व्याख्या करता है, केवल खारिज किए जाने के उद्देश्य से ही संज्ञान में लिया गया है।

46. 20.12.2001 को अधिसूचित नियमितीकरण नियमावली लोक सेवा आयोग के कार्यक्षेत्र में आने वाले पदों पर 30.06.1998 से पूर्व की गई सभी तदर्थ नियुक्तियों पर लागू थी, जिसमें लघु सिंचाई विभाग भी शामिल था। नियमितीकरण के नियमों को प्रभावी करने के लिए किसी अतिरिक्त प्रशासनिक या सरकारी आदेश के जारी होने की कोई विशिष्ट आवश्यकता नहीं

थी। लघु सिंचाई विभाग में अवर अभियंता का पद स्पष्ट रूप से 20.12.2001 की अधिसूचना के दायरे में था और 07.09.2018 के सरकारी आदेश में निहित निर्देश जारी करना अनिवार्य नहीं था; वह अधिक से अधिक अधिकारियों को 20.12.2001 की अधिसूचना के अनुसार कार्य करने की याद दिलाने मात्र के लिए था। प्रभु नाथ सिंह, शैलेंद्र प्रताप सिंह आदि जैसे कई अन्य व्यक्तियों की सेवाओं को 07.09.2018 से बहुत पहले ही नियमित कर दिया गया था। यह तर्क कि ऐसा न्यायालय के आदेश के अनुपालन में किया गया था, विश्वसनीय नहीं लगता क्योंकि याचिकाकर्ता के पक्ष में भी 1997 से ही नियमितीकरण पर विचार करने हेतु न्यायालय का निर्देश अस्तित्व में था। अधिकारियों को न्यायालय के आदेशों के तहत नियमितीकरण के मामले में मनमाने चयन की अनुमति नहीं दी जा सकती। अत:, राज्य के प्राधिकारी 20.12.2001 की अधिसूचना जारी होने के तुरंत बाद और संशोधित नियम 2 (iii) के आधार पर संबंधित सेवा नियमों के अनुसार कोई भी नियमित नियुक्ति करने से पहले याचिकाकर्ता के नियमितीकरण पर विचार करने से इनकार करने के लिए न्यायसंगत नहीं हैं।

47. 20.12.2001 को अधिसूचित नियमितीकरण नियमावली के ऐसे मंतव्य को देखते हुए, सक्षम न्यायालय के आदेश के बावजूद एक उचित अवधि के भीतर याचिकाकर्ता के नियमितीकरण के दावे पर विचार न करने की अपीलकर्ता अधिकारियों की कार्रवाई को स्वीकार नहीं किया जा सकता।"

22. खंडपीठ के उक्त निर्णय को भी राज्य द्वारा विशेष अनुमति याचिका दायर करके चुनौती दी गई थी, जिसे खारिज कर दिया गया है। इसके विरुद्ध दायर पुनर्विचार याचिका भी अस्वीकार कर दी गई है।

23. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, हमारा यह सुविचारित मत है कि सभी रिट याचिकाकर्ताओं के नियमितीकरण के दावे पर 10.04.2003 को लागू किए गए नियम 21-क(1) के अनुसार विचार किया जाना आवश्यक था। उनके नियमितीकरण के दावे पर विचार करने में राज्य द्वारा किए गए किसी भी विलंब को रिट याचिकाकर्ताओं को पेंशन के लाभ से वंचित करने का आधार नहीं बनाया जा सकता। 10.04.2003 को पुरानी पेंशन योजना प्रभावी थी। नियमितीकरण हेतु प्रतिवादियों/रिट याचिकाकर्ताओं की पात्रता भी निर्विवाद है। उपरोक्त दो मामलों में समन्वय खंडपीठों द्वारा अपनाए गए तर्कों का अनुसरण करते हुए, जो विशेष अनुमति याचिकाओं और पुनर्विचार याचिकाओं के खारिज होने के साथ अंतिम रूप प्राप्त कर चुके हैं, हम यह निर्णय देते हैं कि सभी रिट याचिकाकर्ता 10.04.2003 को उनकी सेवा में प्रवेश की तिथि मानते हुए पुरानी पेंशन योजना के लाभ के हकदार होंगे। अपीलकर्ता-राज्य, प्रतिवादियों/रिट याचिकाकर्ताओं की पेंशन की गणना उनकी मौलिक नियुक्ति 10.04.2003 को मानते हुए करेगा।

24. विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा वर्ष 1995 से पेंशन प्रदान करने का जो निर्देश दिया गया था, उसे बरकरार नहीं रखा जा सकता और तदनुसार उसमें संशोधन किया जाता है। उपरोक्त निर्धारण के अनुसार पेंशन संबंधी लाभ सभी रिट याचिकाकर्ताओं को इस आदेश की प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर प्रदान किए जाएंगे। कुछ व्यक्ति जो पहले से ही पेंशन प्राप्त कर रहे हैं, वे उपरोक्त निर्देश के संदर्भ में अपनी पेंशन के पुनर्निर्धारण के हकदार होंगे। हालांकि, उनसे कोई वसूली नहीं की जाएगी।

25. उपरोक्त के आलोक में, ये अपीलें निस्तारित की जाती हैं।

(2025) 5 ILRA 396

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि

विशेष अपील संख्या - 727 वर्ष 2024

सम्बद्ध

विशेष अपील संख्या - 726 वर्ष 2024

मायाशंकर **... अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **... प्रतिपक्षीगण**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: कैलाश सिंह कुशवाहा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: आशुतोष मणि त्रिपाठी, सीएससी, रोहित सिंह, विजय कुमार ओझा

A. सेवा कानून - उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा (सेवा चयन बोर्ड) अधिनियम, 1982 - अधिनियम वर्ष 1982 के तहत बनाए गए नियम - नियम 11 - प्रिंसिपल का पद - स्थानांतरण के माध्यम से नियुक्ति की शक्ति, की सीमा - रिक्ति उत्पन्न होने के बाद मांग भेजी गई थी - हालांकि, स्थानांतरण के माध्यम से नियुक्ति की गई थी - अनुमति - अवधारित किया गया, एक बार निरीक्षक को सीधी भर्ती के लिए मांग भेजी गई थी, प्रबंधन द्वारा, अधिनियम वर्ष 1982 के तहत बनाए गए नियमों के नियम 11 के अनुसार, इस तरह की रिक्ति के खिलाफ एक शिक्षक का स्थानांतरण अस्वीकार्य था - प्रशांत कुमार कटियार का मामला इस तरह के पद पर आधारित था। (प्रस्तर-16) बी. सेवा कानून - उत्तर प्रदेश शिक्षा सेवा चयन आयोग अधिनियम, 2023 - धारा 31(2) - प्रिंसिपल का पद - नियुक्ति के लिए मांग पहले ही भेजी जा चुकी थी - अधिनियम वर्ष 2023 के तहत इस तरह की मांग कितनी दूर तक बचाई जाती है - अवधारित, रिक्तियों का निर्धारण और आयोग को इसकी सूचना वस्तुतः इन संस्थानों में भर्ती की प्रक्रिया शुरू करती है। इसलिए, बोर्ड को मांग भेजना अधिनियम वर्ष 2023 के तहत बचाया जाता रहेगा और एकमात्र बदलाव यह होगा कि अब नियुक्ति बोर्ड के स्थान पर आयोग द्वारा की जाएगी। (प्रस्तर-34)

विशेष अपील की अनुमति दी गई। (ई-1)

अनुवादित

<u>उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची</u>:

1. प्रशांत कुमार कटियार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2013 (1) एडीजे 523 2. हरि पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2016) 6 इला एलजे 203

(माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा द्वारा उद्घोषित)

1. ये अपीलें एकल न्यायाधीश के दिनांक 13.8.2024 के निर्णय और आदेश से उद्भूत हैं, जिसके तहत अपीलकर्ता द्वारा दायर दो रिट याचिकाओं पर निर्णय लिया जाता है। एकल न्यायाधीश ने दोनों रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया है और पूर्व में दिए गए अंतरिम आदेश को रद्द कर दिया है।

2. प्रस्तुत अपील दायर करने का कारण बनने वाला विवाद एक सीमित तथ्यात्मक परिदृश्य में निहित है। यहां अपीलकर्ता को भारत सेवक समाज इंटर कॉलेज, हथियार, वाराणसी (इसके बाद 'संस्थान' के रूप में संदर्भित) में व्याख्याता के रूप में नियुक्त किया गया था। उन्हें 30 मार्च, 2018 को संस्थान के कार्यवाहक प्राचार्य के रूप में नियुक्त किया गया था। उनके हस्ताक्षर भी जिला निरीक्षक 5 सभी द्वारा सत्यापित किए गए थे। 11.4.2018 को मायाशंकर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के 397 स्कूल संस्थान की प्रबंध समिति द्वारा 7.7.2018 को प्राचार्य के पद पर की जाने वाली ठोस नियुक्ति के लिए एक मांग भेजी गई थी। हालांकि मांग को ठोस नियुक्ति के लिए भेजा गया था, लेकिन कोई विज्ञापन जारी नहीं किया गया था। यह इस स्तर पर है कि प्रतिपक्षी नित्यानंद मिश्रा के स्थानांतरण के लिए प्रक्रिया शुरू की गई थी, जो राज कुमार उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, कुबेरनाथ, कुशीनगर के प्रधानाचार्य के रूप में काम कर रहे थे। स्थानांतरण के ऐसे उद्देश्यों के लिए संयुक्त शिक्षा निदेशक द्वारा 30.12.2022 को सिफारिश की गई थी। बाद में शैक्षिक अधिकारियों द्वारा प्रतिपक्षी के पक्ष में दो बाद के आदेश पारित किए गए हैं। पहला आदेश वर्ष 16.5.2023 है, जिसके तहत अतिरिक्त शिक्षा निदेशक माध्यमिक ने अपीलकर्ता द्वारा किए गए अभ्यावेदन का निपटारा किया, जिसमें संयुक्त शिक्षा निदेशक द्वारा वर्तमान संस्थान में प्रतिपक्षी के स्थानांतरण की सिफारिश करने वाले प्रस्ताव पर आपत्ति जताई गई थी। इस आदेश द्वारा अतिरिक्त शिक्षा निदेशक ने 30.12.2022 की पिछली सिफारिश की पुष्टि की है। स्थानांतरण का एक बाद का आदेश दिनांक 28.6.2024 को अतिरिक्त शिक्षा निदेशक द्वारा पारित किया गया है, जिसके तहत प्रतिपक्षी को संबंधित संस्थान में स्थानांतरित कर दिया गया है। ये दोनों आदेश एकल न्यायाधीश के समक्ष चुनौती का विषय थे।

3. पहली रिट याचिका यानी रिट संख्या 5106 वर्ष 2023 में संयुक्त शिक्षा निदेशक की 30.12.2022 की सिफारिश को खारिज कर दिया गया था। इस रिट याचिका पर विचार किया गया और 22.5.2023 को एक विस्तृत अंतरिम आदेश पारित किया गया, जिसे इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री कैलाश सिंह कुशवाहा, राज्य प्रतिवादियों के स्थायी अधिवक्ता, प्रबंधन समिति के अधिवक्ता रमेश चंद्र द्विवेदी और प्रतिपक्षी संख्या के अधिवक्ता श्री आशुतोष मणि त्रिपाठी को सुना।

6. प्रस्तुत मामले में विवाद 6 वें प्रतिपक्षी के पक्ष में उस संस्थान के प्रिंसिपल के रूप में स्थानांतरित करने की सिफारिश के कारण उत्पन्न हुआ है जहां याचिकाकर्ता वर्तमान में कार्यवाहक प्रिंसिपल के रूप में काम कर रहा है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा पहले की तारीख में प्रस्तुत किया गया था कि चूंकि वह 2018 से संस्थान में कार्यवाहक प्रिंसिपल के रूप में काम कर रहा था और सीधे चयन करने के लिए बोर्ड को पद की मांग की गई है, इसलिए वह संस्थान के वरिष्ठतम शिक्षक के रूप में भाग लेने का अवसर खो देगा क्योंकि पद पर एक नियमित प्रिंसिपल द्वारा कब्जा कर लिया जाता है। स्थानांतरण के माध्यम से हो सकता है। उन्होंने तर्क दिया था कि जिला विद्यालय निरीक्षक के पास हरिपाल सिंह बनाम हरिपाल सिंह बनाम इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय के आलोक में बोर्ड को पहले से ही अग्रेषित की गई मांग को रद्द करने का कोई अवसर नहीं था। उत्तर प्रदेश राज्य और 10 अन्य, 2016 एडीजे 622 उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने अतिरिक्त शिक्षा निदेशक को दिनांक 19.04.2023 के आदेश के माध्यम से उनके समक्ष लंबित मामले में अंतिम आदेश पारित करने का निर्देश दिया था। अब आदेश 16.05.2023 को पारित किया गया है जिसे उनकी ओर से दायर संक्षिप्त जवाबी हलफनामे के माध्यम से अभिलेखों में लाया गया है। जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा 16.05.2023 को पारित आदेश में यह आधार लिया गया है कि 11.01.2023 को सचिव, उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, प्रयागराज ने राज्य के सभी जिला 398 भारतीय कानून की रिपोर्ट इलाहाबाद श्रृंखला के स्कूलों के निरीक्षक को निर्देश जारी किए थे कि "चूंकि चयन और नियुक्ति के मामले में समय लिया जा रहा था, इसलिए, 11.01.2023 से 16.01.2023 की अवधि के बीच आठ बिंदुओं पर ऑनलाइन भेजी गई मांग का उचित सत्यापन किया जाएगा, जिसमें से एक बिंदु यह था कि क्या मांग किसी संस्थान से भेजी गई थी या नहीं और क्या भेजी गई मांग किसी अनियमितता से ग्रस्त है और क्या वह पद जिसके संबंध में मांग भेजी गई है और स्थानांतरण का दावा किया जा रहा है, वह पहले ही हो चुका है भरा हुआ है या नहीं," स्कूल के जिला निरीक्षक ने 16.01.2023 को संस्थान से भेजे गए प्रिंसिपल के पद की मांग को इस तथ्य के कारण खारिज कर दिया कि स्थानांतरण पर विचार किया जा रहा था। प्रथम दृष्टया मेरे विचार से जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा पहले से ही मांगे गए पद को अस्वीकार करने की कोई मांग नहीं की गई थी और न ही सचिव, उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, प्रयागराज द्वारा जारी किए गए निर्देशों को इस प्रकार से समझा जा सकता है कि जिला विद्यालय निरीक्षक को मांग रद्द करने का अधिकार दिया जा सके। स्कूल के जिला निरीक्षक द्वारा यह सत्यापित करने के लिए जो कुछ भी किया जाना आवश्यक था वह यह सत्यापित करने के लिए कि क्या ऐसी कोई मांग व्यक्तिगत रूप से भेजी गई थी या नहीं। इसके अलावा, मुझे लगता है कि याचिकाकर्ता की संस्था में प्रिंसिपल के पद के लिए मांग को खारिज करने में कोई अनियमितता नहीं बताई गई है। यह आगे भी पता चलता है कि छठे प्रतिपक्षी के आवेदन को केवल नवंबर 2022 के महीने में ऑफ़लाइन स्थानांतरित कर दिया गया था, जब विचाराधीन पद की मांग पहले ही की जा चुकी थी और जिला स्कूल निरीक्षक द्वारा दिनांक 23.04.2022 को पारित एक आदेश को छोड़कर इसे रद्द करने का कोई आदेश नहीं था कि पद पहले से ही मांग की जा चुकी थी, दूसरी बार मांग बनाए रखने योग्य नहीं थी। मामले पर विचार करने की आवश्यकता है। सभी प्रतिवादियों को जवाबी हलफनामा दाखिल करने के लिए चार सप्ताह

का समय दिया गया है। प्रत्युत्तर हलफनामा, यदि कोई हो, उसके बाद दो सप्ताह के भीतर दायर किया जा सकता है। 28.07.2023 को सूचीबद्ध करें। इस बीच, इस न्यायालय के अगले आदेश तक, यह प्रावधान किया जाता है कि उस संस्था के प्रिंसिपल का पद जहां याचिकाकर्ता कार्यवाहक प्रिंसिपल के रूप में काम कर रहा है, बोर्ड द्वारा नियमित चयन के तरीके को छोड़कर किसी भी हस्तांतरण द्वारा नहीं भरा जाएगा। इस बीच, याचिकाकर्ता 16.05.2023 को अतिरिक्त शिक्षा निदेशक द्वारा पारित आदेश को चुनौती देने के लिए आवश्यक संशोधन आवेदन भी दायर कर सकता है।

4. दी गई स्वतंत्रता के संदर्भ में रिट याचिका संख्या 5106 वर्ष 2023 में संशोधन किया गया है ताकि दिनांक 16.5.2023 के आदेश को चुनौती दी जा सके और 16.1.2023 की सिफारिश/आदेश को भी चुनौती दी जा सके, जिसके तहत प्रबंधन समिति द्वारा 7.7.2018 को भेजी गई मांग को शिक्षा अधिकारियों द्वारा रद्द कर दिया गया है। रिट याचिका संख्या 5106 वर्ष 2023 लंबित थी, जिसमें अंतरिम आदेश तब जारी था जब बाद का आदेश वर्ष 28.6.2024 पारित किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिपक्षी को संबंधित संस्था में स्थानांतरित कर दिया गया है। यह आदेश रिट-ए संख्या 10109 वर्ष 2024 में चुनौती का विषय है। दोनों रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया गया है।

5. इस प्रकार व्यथित अपीलकर्ता इस न्यायालय के समक्ष एकल न्यायाधीश के फैसले को चुनौती दे रहा है।

6. श्री अशोक खरे, वरिष्ठ अधिवक्ता, अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री केएस कुशवाहा की सहायता से निम्नानुसार प्रस्तुत करते हैं:

*(i) एक बार जब 7.7.2018 को प्रिंसिपल के पद पर की जाने वाली मूल नियुक्ति की मांग की गई है, तो **प्रशांत कुमार कटियार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2013 (1) एडीजे 523** के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले को देखते हुए संयुक्त शिक्षा निदेशक द्वारा दिनांक 30.12.2022 को स्थानांतरण का संकल्प अनुमेय था, जिसका पालन हरि पाल के मामले में एक खंडपीठ द्वारा किया गया है।*

(ii) दिनांक 16.1.2023 की रिपोर्ट/आदेश कानून में गलत है, क्योंकि मांग को इस आधार पर शून्य कर दिया गया है कि स्थानांतरण के लिए सिफारिश की गई है। निवेदन यह है कि जब स्थानांतरण स्वयं अनुमेय था, तो स्थानांतरण के लिए ऐसी सिफारिश मांग को रद्द करने का आधार नहीं बन सकती थी।

(iii) उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 (इसके बाद अधिनियम वर्ष 1921 के रूप में संदर्भित) के अध्याय III के तहत बनाए गए विनियमों के विनियम 55 से 58 के अनुसार स्थानांतरण की प्रक्रिया शुरू की गई थी। भर्ती की प्रक्रिया उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा (सेवा चयन बोर्ड) अधिनियम, 1982 (इसके बाद 'अधिनियम वर्ष 1982' के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों के साथ-साथ उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत शुरू की गई थी। हालांकि अधिनियम वर्ष 1982 को उत्तर प्रदेश शिक्षा सेवा चयन आयोग अधिनियम, 2023

अनुवादित

(इसके बाद 'अधिनियम वर्ष 2023' के रूप में संदर्भित) द्वारा निरस्त और प्रतिस्थापित किया गया था, फिर भी पिछले अधिनियमों वर्ष 1982 के तहत की गई कार्रवाइयों को अधिनियम की धारा 31(2) के आधार पर स्पष्ट रूप से बचाया जाएगा। यह भी आग्रह किया जाता है कि अधिनियम वर्ष 2023 के तहत बनाए गए नियम, विशेष रूप से नियम 28 निदेशक को अधिनियम वर्ष 1982 के तहत पहले से ही मांगे गए पद पर स्थानांतरण की सिफारिश करने का कोई अधिकार नहीं देंगे। इसलिए, यह प्रस्तुत किया जाता है कि आक्षेपित आदेश कानून में खराब हैं।

7. दूसरी ओर, प्रतिपक्षी के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.के. ओझा ने प्रस्तुत किया कि मांग हालांकि 16.1.2023 को रद्द नहीं की जा सकती थी, फिर भी अधिनियम वर्ष 2023 की शुरुआत के साथ इस तरह की मांग ने अपना प्रभाव खो दिया। अधिनियम वर्ष 2023 के प्रावधानों को न्यायालय के समक्ष उजागर किया गया है ताकि यह तर्क दिया जा सके कि अधिनियम वर्ष 2023 के तहत सीधी भर्ती की एक अलग प्रक्रिया को स्वीकार किया जाता है और इसलिए, आवश्यक निहितार्थ से अधिनियम वर्ष 1982 के तहत शुरू की गई भर्ती की प्रक्रिया अपनी प्रभावकारिता खो देगी। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह विशेष रूप से अधिनियम वर्ष 1982 के तहत बनाए गए नियमों के नियम 11 के तहत भेजी गई मांग के संदर्भ में है। श्री ओझा अधिनियम वर्ष 2023 के तहत बनाए गए नियमों के नियम 28(5) पर भारी भरोसा करते हैं कि हस्तांतरण के उचित आदेश पारित करने के लिए निदेशक के साथ नए अधिनियमन के तहत शक्ति को मान्यता दी गई है और चूंकि बाद के आदेश वर्ष 28.6.2024 को जारी करते समय ऐसी शक्ति का प्रयोग किया गया है, इसलिए अधिनियम वर्ष 1982 के तहत भेजी गई पिछली मांग पर आदेश वर्ष 28.6.2024 पर सवाल उठाने के लिए भरोसा नहीं किया जा सकता है। वह इस तरह के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए एकल न्यायाधीश द्वारा सौंपे गए तर्क का भी समर्थन करता है। यह भी आग्रह किया जाता है कि चूंकि मांग 2018 में भेजी गई थी और भर्ती का वर्ष बदल गया है, इसलिए, पिछली मांग ने अन्यथा अपनी प्रासंगिकता खो दी है।

8. राज्य के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अधिनियम वर्ष 2023 स्पष्ट रूप से पिछले अधिनियम वर्ष 1982 के तहत की गई कार्रवाई की रक्षा करता है और इसलिए, यह तथ्य कि बाद के अधिनियम ने अधिनियम वर्ष 1982 को निरस्त करके हस्तक्षेप किया है, उत्तर प्रदेश सामान्य खंड अधिनियम, 1904 की धारा 6 के संदर्भ में बहने वाले परिणामों को मिटाया नहीं जा सकता है।

9. हमने पक्षगण के अधिवक्ता को सुना है और अभिलेखों पर रखी गई सामग्री का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया है।

10. बहुत सीमा पर हम ध्यान दे सकते हैं कि संस्थान में मूल रिक्ति 1.4.2018 को उत्पन्न हुई है। यह रिक्ति प्रकृति में वास्तविक थी और इसे सीधी भर्ती द्वारा भरा जाना आवश्यक था। प्रबंधन समिति द्वारा 7.7.2018 को मांग पत्र भेजकर भर्ती की प्रक्रिया शुरू की गई थी। इस समय अधिनियम वर्ष 1982 के तहत सीधी भर्ती की योजना के साथ-साथ उसके तहत बनाए गए नियमों का उल्लेख करना उचित होगा। अधिनियम वर्ष 1982

की धारा 10 में वह प्रक्रिया प्रदान की गई थी जिसके द्वारा किसी संस्थान में सीधी भर्ती की जानी थी। प्रबंधन से अपेक्षा की जाती थी कि वह भर्ती के वर्ष के दौरान मौजूदा या रिक्त होने वाली रिक्ति का निर्धारण करे और रिक्ति को बोर्ड को इस तरह से और ऐसे अधिकारी या प्राधिकारी को सूचित करे, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है। संस्था के प्रमुख के अलावा अन्य मामलों में प्रबंधन को उस सामाजिक श्रेणी के संदर्भ में रिक्तियों को निर्दिष्ट करना भी आवश्यक था जिससे वह संबंधित है। सीधी भर्ती द्वारा चयन की प्रक्रिया धारा की उप-धारा 2 के आधार पर निर्धारित की जानी थी।

10. अधिनियम वर्ष 1982 के अनुसार अधिनियम वर्ष 1982 के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए नियम बनाए गए हैं। रिक्ति का निर्धारण और अधिसूचना एक ऐसा पहलू है जिसे नियम द्वारा निपटाया जाना था।

11. नियम 11(1) में प्रावधान किया गया है कि शिक्षक के पद पर सीधी भर्ती के प्रयोजनों के लिए प्रबंधन को धारा 10 की उपधारा 1 के अनुसार रिक्तियों की संख्या निर्धारित करनी थी और निरीक्षक के माध्यम से बोर्ड को रिक्तियों को नियम के तहत प्रदान किए गए तरीके से सूचित करना था।

11. रिक्तियों को अधिसूचित करने के विशिष्ट तरीके को नियमों के तहत निर्दिष्ट किया गया है। नियम 11 के उप-नियम 3 और 4 भी प्रासंगिक हैं और इसके बाद पुन: प्रस्तुत किए गए हैं: -

"(3). यदि, उप-नियम (2) के तहत रिक्तियों को अधिसूचित किए जाने के बाद, शिक्षक के पद में कोई रिक्ति होती है, तो प्रबंधन, इसके घटित होने के पंद्रह दिनों के भीतर, उक्त उप-नियम के अनुसार निरीक्षक को सूचित करेगा और निरीक्षक उसके द्वारा इसकी प्राप्ति के दस दिनों के भीतर इसे बोर्ड को भेजेगा।

(4). जहां, भर्ती के किसी भी वर्ष के लिए, प्रबंधन उप-नियम (2) में निर्दिष्ट तिथि तक रिक्तियों को अधिसूचित नहीं करता है या उक्त उप-नियम के अनुसार उन्हें अधिसूचित करने में विफल रहता है, वहां निरीक्षक अपने कार्यालय के अभिलेखों के आधार पर, धारा 10 की उप-धारा (1) के अनुसार ऐसी संस्था में रिक्तियों का निर्धारण करेगा और उन्हें बोर्ड को उस तरीके से और तारीख तक सूचित करेगा जो उप-नियम ने कहा। इस उप-भूमिका के तहत बोर्ड में रिक्तियों को ऐसी संस्था के प्रबंधन द्वारा अधिसूचित माना जाएगा।

11. अधिनियम वर्ष 1982 मुख्य रूप से मान्यता प्राप्त संस्थानों में नियुक्ति करने के प्रयोजनों के लिए पेश किया गया था। शिक्षकों आदि की सेवा की शर्तों को अन्यथा अधिनियम वर्ष 1921 के प्रावधानों द्वारा विनियमित किया जाना था, जिसके तहत संस्थान को ही मान्यता दी गई थी। अधिनियम वर्ष 1982 की धारा 32 में स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया है कि अधिनियम वर्ष 1982 के प्रावधान अधिनियम वर्ष 1921 के प्रावधानों के साथ किसी भी असंगति के संबंध में प्रबल होंगे।

12. यह अच्छी तरह से माना जाता है कि स्थानांतरण सेवा की एक अनिवार्यता है। एक संस्था के शिक्षक को किस हद तक और किस तरह से दूसरे संस्थान में स्थानांतरित किया जा सकता है, यह अधिनियम वर्ष 1921 के अध्याय III के तहत बनाए गए विनियमों के नियम 55 से 58 द्वारा निपटाया गया एक तात्कालिकता है। इन विनियमों में समय-समय पर संशोधन किया गया है। ऐसा अंतिम संशोधन 7.7.2023 को किया गया है। स्थानांतरण की योजना लागू की गई है। मायाशंकर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य अधिसूचना दिनांक 7.7.2023, विनियम 55 से 58 में निहित प्रासंगिक होगी और इसके बाद पुन: प्रस्तुत की जाएगी: -

"55-(1) अल्पसंख्यक संस्थाओं से भिन्न अशासकीय सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों में किसी अध्यापक के आनलाइन स्थानान्तरण के प्रयोजन के लिए प्रबन्धतन्त्र विद्यमान रिक्तियों की संख्या और संस्था के प्रधान के पद से भिन्न पद की स्थिति में, उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 के अनुसार अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के अभ्यर्थियों के लिए आरक्षित की जाने वाली रिक्तियों की संख्या भी अवधारित करेगा और रिक्तियों की सूचना वेबसाइट पर अपलोड किए जाने हेतु जिला विद्यालय निरीक्षक को उपलब्ध करायेगा।

(2) जिला विद्यालय निरीक्षक ऐसी रिक्तियों का सत्यापन करेगा और संस्था में पंजीकृत छात्र संख्या के आधार पर पद भरे जाने के औचित्य को देखते हुए जनशक्ति के अन्तर्गत मान्य रिक्तियों की सूचना वेबसाइट पर अपलोड करायेगा। प्रतिबन्ध यह है कि चयनबोर्ड के माध्यम से सीधी भर्ती के अन्तर्गत अधियाचित पदों को उक्त वेबसाइट पर अपलोड नहीं किया जा सकेगा।

(3) किसी अल्प संख्यक संस्था से भिन्न किसी संस्था का कोई स्थायी अध्यापक, जिसके अन्तर्गत सम्बद्ध प्राइमरी अनुभाग में कार्यरत अध्यापक भी सम्मिलित है, जो किसी दूसरी संस्था में स्थानान्तरण चाहता है, वेबसाइट पर प्रदर्शित रिक्ति के प्रति ऐसी शर्तों के अधीन आनलाइन आवेदन करेगा, जैसा कि राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर अपने आदेश द्वारा निर्गत किया जाये।
प्रतिबन्ध यह है कि 08 महत्वाकांक्षी जनपद (सौनभद्र, चन्दौली, बहराइच, श्रावस्ती, बलरामपुर, फतेहपुर, चित्रकूट सिद्धार्थनगर) का कोई अध्यापक अन्य जनपद में स्थानान्तरण हेतु आवेदन नहीं करेगा, किन्तु पारस्परिक स्थानान्तरण की स्थिति में अन्य जनपद में स्थानान्तरण आवेदन कर सकेगा।

(4) उक्त आनलाइन आवेदन-पत्र की प्रिन्ट आउट अध्यापक के मामले में संस्था प्रधान को तथा संस्था प्रधान के मामले में प्रबन्धक को प्रस्तुत करेगा।

56- जहाँ आवेदन पत्र संस्था के प्रधान को प्रस्तुत किया गया है, वहाँ वह उसे परीक्षणोपरान्त अपनी संस्तुति के साथ निर्धारित अवधि के अन्तर्गत आनलाइन अग्रसारित करेगा तथा आनलाइन आवेदन पत्र की हार्डकापी संस्था प्रबन्धक को प्रस्तुत करेगा।

57- (1) संस्था का प्रबन्धक मामले को प्रबन्धतन्त्र के समक्ष रखेगा और प्रबन्धतंत्र विचारोपरान्त अपनी अनापत्ति एवं संकल्प-पत्र जारी करेगा।
(2) प्रबन्ध समिति की अनापत्ति/संकल्प-पत्र प्राप्त होने पर प्रबन्धक आवेदन पत्र को आनलाइन अग्रसारित करेगा तथा संकल्प-पत्र/अनापत्ति प्रमाण-पत्र को अपलोड करेगा।

(3) प्रतिबन्ध यह है कि किसी शैक्षिक सत्र में कार्यरत प्रवक्ता, सहायक अध्यापक एवं सम्बद्ध प्राइमरी अनुभाग में पृथक-पृथक कार्यरत कुल पदों के सापेक्ष 20 प्रतिशत से अधिक अध्यापकों के आवेदन पत्र स्थानान्तरण हेतु अग्रसारित नहीं किए जा सकेंगे। संस्था प्रधान के मामले में 20 प्रतिशत की व्यवस्था प्रभावी नहीं होगी।

(4) प्रबन्धक उक्त आनलाइन आवेदन पत्र की हार्डकापी, प्रबन्धतन्त्र के संकल्प की प्रति जिसमें प्रबन्धतन्त्र की सहमति इंगित की गयी हो, सेवा-पुस्तिका, चरित्रपंजी एवं अन्य अभिलेख जो आवेदक द्वारा आनलाइन आवेदन-पत्र में इंगित किया गया है, की तीन-तीन प्रतियों में सम्बन्धित जिले के जिला विद्यालय निरीक्षक को हार्डकापी भेजेगा।

58- निरीक्षक विनियम 57 के अधीन प्राप्त आवेदन पत्र को इस प्रयोजन के लिए रखे गये रजिस्टर में दर्ज करायेगा तथा आवेदक द्वारा आनलाइन प्रस्तुत आवेदन पत्र में उल्लिखित सूचनाओं का सत्यापन/परीक्षण करते हुए वेबसाइट पर आनलाइन सम्बन्धित संयुक्त शिक्षा निदेशक को अग्रसारित करेगा तथा आवेदन पत्र की दो प्रतियाँ समस्त संलग्नकों सहित सम्बन्धित संयुक्त शिक्षा निदेशक को प्रेषित करेगा।"

13. विनियमन 58, जैसा कि यह 7.7.2023 को अपने संशोधन से पहले था और 30.12.2022 को संयुक्त शिक्षा निदेशक द्वारा संकल्प पारित करने की तारीख पर लागू था, उसे भी इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"58-निरीक्षक विनियम 57 के अधीन प्राप्त आवेदन पत्र को इस प्रयोजन के लिए रखे गये रजिस्टर में दर्ज करायेगा और उसे जहाँ वह संस्था जिसमें स्थानान्तरण चाहा गया हो उसकी अधिकारिता के भीतर स्थित हो, वहाँ वह संस्था में पद रिक्त होने एवं अधियाचित न होने की पुष्टि करने के पश्चात निर्धारित वेब साइट पर आन लाइन मण्डलीय संयुक्त निदेशक को अग्रसारित करेगा तथा हार्ड कापी भी भेजेगा।"

14. अधिनियम वर्ष 1982 के लागू प्रावधानों के साथ-साथ एक संस्थान से दूसरे संस्थान में शिक्षक के स्थानांतरण से संबंधित प्रावधान प्रशांत कुमार कटियार (उपरोक्त) में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष विचार के लिए आए। पद को भरने के लिए मांग भेजे जाने के बाद किस हद तक स्थानांतरण की अनुमति होगी, यह निर्णय पूर्ण पीठ के समक्ष निर्धारित किया जाएगा। पूर्ण पीठ ने अधिनियम की योजना को ध्यान में रखते हुए निर्णय के प्रस्तर-38 से 41 में निम्नानुसार निर्णय लिया: -

"38. हमारी राय में यदि प्रबंधन ने रिक्ति का निर्धारण किया है या स्कूल के जिला निरीक्षक ने नियम 11 (4) के अनुसार ऐसा किया है, तो उस स्थिति में इस तरह के निर्धारण और सूचना में परिवर्तन को केवल नियम 11 के उप-नियम (3) द्वारा प्रदान की गई सीमा तक नियंत्रित किया जाता है, जो प्रबंधन और निरीक्षक को ऐसी अधिसूचना के बाद होने वाली किसी भी नई रिक्ति को सूचित करने के लिए अधिकृत करता है। इसलिए प्रबंधन या स्कूल के जिला निरीक्षक को नियमों के तहत निर्णय को उलटने का अधिकार नहीं दिया गया है और यह केवल इसमें वृद्धि कर सकता है, बशर्ते कि नियम के उप-नियम (3) के तहत विचार किया गया हो

11. हालांकि यह किसी भी अंकगणितीय या गणनात्मक त्रुटियों को ठीक करने की शक्ति को दूर नहीं करता है जो इस तरह के डी-टर्मिनेशन में घुस सकते हैं।

39. हमारे विचार से, प्रबंधन और स्कूल के जिला निरीक्षक के कार्य को इस प्रक्रिया का पालन करना होगा और यह तुच्छ कानून है कि यदि किसी क़ानून को किसी विशेष तरीके से करने की आवश्यकता होती है तो इसे अकेले ही किया जाना चाहिए और अन्यथा नहीं। अधिनियम और नियमों के अंतर्गत प्रक्रिया अनिवार्य है और इसे केवल उसी तरीके से किया जाना चाहिए। के. पूनम बनाम के मामले में डिवीजन बेंच के फैसले के प्रस्तर-20 और 23 का संदर्भ दिया जाना चाहिए। उत्तर प्रदेश राज्य, 2008 (1) एडीजे 273 (डीबी) और उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड बनाम उत्तर प्रदेश के मामले में निर्णय के प्रस्तर-24 के अनुसार: उत्तर प्रदेश राज्य, 2011 (3) एडीजे 340। भर्ती के वर्ष के दौरान किसी भी नई घटना के कारण रिक्तियों को जोड़कर निर्धारण में सीमित परिवर्तन का प्रावधान करके नियम सचेत रूप से तैयार किए गए हैं। इस प्रकार निहित रूप से अधिनियम और नियमों के तहत अधिसूचना के प्रयोजन के लिए पहले से निर्धारित और बोर्ड को सूचित की गई रिक्तियों को बदलने के लिए कोई शक्ति प्रदान नहीं की गई है। इसलिए बोर्ड को भेजे जाने के बाद रिक्तियों को भरने की मांग अपरिवर्तनीय हो जाती है क्योंकि बोर्ड आरक्षण नियमों के अनुसार रिक्ति को प्रकाशित करके नियम 12 के तहत विज्ञापन के साथ आगे बढ़ता है और विषयवार और समूह-वार रिक्तियों के अनुसार जिसके लिए नियुक्तियां की जानी हैं, उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित करते हुए संस्थान की अपनी वरीयता देते हुए जो विकल्प उम्मीदवार द्वारा इंगित किया जाना है। इस स्तर पर, विज्ञापन के बाद की प्रक्रिया को और अधिक लाभ देकर परेशान करना चयन की पूरी प्रक्रिया को बाधित करना होगा और यदि ऐसी रियायत दी जाती है, तो प्रबंधन प्रेरित जोड़तोड़ में लिप्त हो सकता है जो असामान्य नहीं हैं और मुकदमेबाजी में समाप्त होने वाले अवांछित विवादों को जन्म देते हैं।

40. हम रिक्तियों के निर्धारण के सत्यापन के अपने कर्तव्य का पालन करते समय स्कूल के जिला निरीक्षक के लिए भी सावधानी बरतना चाहते हैं। ऐसे मामले हो सकते हैं जहां प्रबंधन जानबूझकर कुछ उम्मीदवार/शिक्षक को लाभ देने के नाम पर एक आवश्यकता को संशोधित करता है जो पदोन्नति की मांग करने के इच्छुक हो सकते हैं लेकिन अन्यथा भर्ती के वर्ष के भीतर पात्र नहीं हैं। प्रबंधन ऐसी जानकारी रोक सकता है और यह इस स्तर पर है कि जिला स्कूल निरीक्षक को उप-नियम (4) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करना होगा। प्रबंधन कभी-कभी जिला स्कूल निरीक्षक के साथ सहयोग नहीं कर सकता है और इसलिए जिला स्कूल निरीक्षक को

अपने कार्यालय में उपलब्ध अभिलेखों के अनुसार रिक्ति का निर्धारण करना होता है और बोर्ड को सूचित करना होता है। इसलिए यह जिम्मेदारी जिला विद्यालय निरीक्षक पर निर्भर करती है कि वह भर्ती के वर्ष के दौरान ही प्रबंधन को स्पष्ट सूचना देकर इस कार्य को आगे बढ़ाए। स्कूल के जिला निरीक्षक को किसी भी अतिरिक्त रिक्ति के बारे में पता चलने पर, यदि कोई उत्पन्न होती है या प्रबंधन ने ऐसी जानकारी को रोक दिया है, तो वह ऐसी स्थितियों में प्रबंधन को कोई अनुचित लाभ लेने से रोकने के लिए बाध्य है। भर्ती के वर्ष के दौरान हुई रिक्ति को अनिवार्य रूप से सूचित किया जाना चाहिए जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है क्योंकि बोर्ड के माध्यम से कोई भी चयन आयोजित नहीं किया जा सकता है।

41. एक बार जब यह माना जाता है कि प्रबंधन और स्कूलों के जिला निरीक्षक को किसी भी परिवर्तन को फिर से शुरू करने के लिए दृढ़ संकल्प के बाद, और बोर्ड को सूचित करने की शक्ति छीन ली जाती है, तो प्रबंधन को भर्ती के किसी अन्य तरीके को अपनाने का अधिकार नहीं दिया जा सकता है।

15. प्रशांत कुमार कटियार (उपरोक्त) में निर्णय की व्याख्या बाद में कुछ एकल न्यायाधीशों द्वारा तब तक लागू करने के लिए की गई जब तक कि विज्ञापन जारी नहीं किया जाता है। एकल न्यायाधीशों ने यह विचार व्यक्त किया कि विज्ञापन जारी करने के साथ चयन की प्रक्रिया शुरू होने के बाद पूर्ण पीठ के निर्णय के संदर्भ में स्थानांतरण करने पर प्रतिबंध लगाया जाएगा। हरिपाल सिंह (उपरोक्त) मामले में लखनऊ बेंच की खंडपीठ ने इस विचार को उलट दिया। प्रस्तर-15 और 16 में हरि पाल सिंह (उपरोक्त) के निर्णय से प्रासंगिक अंश इसके बाद पुन: प्रस्तुत किए जाते हैं: -

"15. प्रशांत कुमार कटियार (2013 (3) एएलजे 658) (उपरोक्त) के मामले में पूर्ण पीठ के अनुपात पर विचार करने पर, हम जो पाते हैं वह यह है कि आक्षेपित निर्णय में एकल न्यायाधीश ने उक्त निर्णय के प्रस्तर-36, 37 और 38 को निकाला है और उसके बाद, यह निर्णय के प्रस्तर-- 43 को पार कर जाता है और फिर आशा सिंह बनाम आशा के मामलों में निर्णयों के साथ इसे समेट लिया है। उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [2007(3) यूपीएलबीईसी 2497] और श्रीमती अमिता सिन्हा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [2008(4) ईएससी 2799] (2009(1) एएलजे 611) यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि स्थानांतरण के माध्यम से नियुक्ति केवल विज्ञापन के चरण तक कानूनी रूप से अनुमेय होगी।

16. हम एकल न्यायाधीश द्वारा व्यक्त उक्त दृष्टिकोण को स्वीकार करने में असमर्थ हैं, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि एकल न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रत्यक्ष भर्ती की प्रक्रिया विज्ञापन जारी किए जाने से प्रारंभ होती है और ऐसी स्थिति में, उससे पूर्व स्थानांतरण के माध्यम से नियुक्ति की प्रक्रिया अपनाना अनुमन्य होगा। तथापि, *प्रशांत कुमार कटियार* प्रकरण (2013 (3) ए.एल.जे. 658) (उपर्युक्त) में पूर्ण पीठ द्वारा अनुच्छेद 38, 39, 40 एवं 41 में प्रतिपादित विधिक सिद्धांत (ratio) के अनुसार यह स्पष्ट रूप से निष्कर्ष निकाला गया है कि प्रबंधन अथवा जिला विद्यालय निरीक्षक अथवा वह कोई भी प्राधिकरण जिसे स्थानांतरण को प्रभावी बनाने का अधिकार प्राप्त है, 1998 के नियमों के नियम 11 के अंतर्गत निर्धारण एवं अधिसूचना

की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाने के पश्चात् भर्ती की किसी अन्य विधि को अपनाने की कार्यवाही नहीं कर सकता। यह भी घोषित किया गया है कि इस प्रकार किए गए किसी भी निर्धारण में परिवर्तन करना अनुमन्य नहीं है तथा उसे प्रत्यावर्तित नहीं किया जा सकता। निर्णय के प्रस्तर-39 में इसे दोहराया गया है। इतना ही नहीं, प्रस्तर-40 में, पूर्ण पीठ समिति और स्कूल के जिला निरीक्षक को रिक्तियों के निर्धारण और सूचना के लिए नियम 11 के अनुसार अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए भी बाध्य करती है। इसलिए पूर्वोक्त नियमों सपठित पूर्ण पीठ का अनुपात स्पष्ट रूप से इस आशय का है कि प्राधिकारियों, जो भर्ती के वर्ष में होने वाली रिक्तियों को भरने के लिए बाध्य हैं, को रिक्ति के निर्धारण और अधिसूचित करने का अपना कार्य अनिवार्य रूप से करना होगा। इसलिए प्रबंधन या स्कूल के जिला निरीक्षक द्वारा 1998 के नियम 11 के अनुसार कार्य करने में विफलता - नियमों से किसी भी व्यक्ति के पक्ष में स्थानांतरण की मांग करने का अधिकार उत्पन्न नहीं होगा या यहां तक कि प्रबंधन समिति में भी सीधी भर्ती के लिए चयन बोर्ड को रिक्तियों के निर्धारण या सूचना देने के नियम 11 के उद्देश्य को विफल करने का अधिकार नहीं होगा। प्रबंधन समिति को निस्संदेह भर्ती के तरीके का चयन करने का अधिकार है, जब इसे सीधे भरना होता है, यदि उसके पास स्थानांतरण की मांग करने वाले उम्मीदवार से विकल्प होता है। तथापि, किसी विशेष पद्धति को अपनाने के लिए प्रबंधन समिति का यह सचेत निर्णय 1998 के नियमों के नियम 11 के अंतर्गत प्रदान की गई समय-सीमा के भीतर लिया जाना है। यदि प्रबंधन समिति को समय-सारणी का उल्लंघन करने की अनुमति दी जाती है, तो वह प्रबंधन समिति को किसी भी समय अपनी भर्ती के तरीके को निर्धारित करने के लिए चुनने की स्वतंत्र अनुमति देगी जो नियमों का उद्देश्य नहीं है। उस मामले के लिए, नियम 11 के उप-नियम (4) के तहत, स्कूल के जिला निरीक्षक भी समिति के साथ-साथ स्कूल के जिला निरीक्षक के लिए नियम 11 में प्रदान की गई समय अनुसूची के विनिर्देशों के अनुसार निर्णय लेने के लिए बाध्य हैं। इस अनुपालन का पालन भर्ती के वर्ष को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए और भर्ती के वर्ष के पहले दिन के रूप में उम्मीदवार की योग्यता सहित उसकी योग्यता को भी ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए, जो कि प्रश्न में वर्ष के 1 जुलाई को होगा। हालांकि, उनकी ओर से कोई भी विफलता हस्तांतरण के माध्यम से नियुक्ति के तरीके को अपनाने के लिए प्रबंधन के अधिकार को किसी भी स्तर तक विस्तारित नहीं करेगी। यह वह पहलू है जिस पर पूर्ण पीठ द्वारा यहां उल्लिखित प्रस्तर-में जोर दिया गया है और जिस पर आक्षेपित निर्णय में एकल न्यायाधीश द्वारा ध्यान नहीं दिया गया है। नतीजतन, हमारी राय है कि एकल न्यायाधीश ने पूर्ण पीठ के अनुपात की सही ढंग से सराहना नहीं की है और इसलिए एक गलत निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि स्थानांतरण के माध्यम से नियुक्ति करने के लिए विज्ञापन के चरण के लिए विकल्प खुला है। इसलिए आक्षेपित निर्णय को उस सीमा तक कायम नहीं रखा जा सकता है।

16. इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा प्रशांत कुमार कटियार (उपरोक्त) में कानून की स्थिति को देखते हुए, जैसा कि हरि पाल सिंह (उपरोक्त) में स्पष्ट किया गया है, यह पूरी तरह से स्पष्ट हो गया कि एक बार अधिनियम वर्ष 1982 के तहत बनाए गए नियमों के नियम 11 के अनुसार, प्रबंधन द्वारा निरीक्षक को सीधी भर्ती के लिए मांग भेजी गई थी, तो ऐसी रिक्ति के खिलाफ एक शिक्षक का स्थानांतरण अस्वीकार्य था।

17. विनियमन 58, जैसा कि 7.7.2023 को अपने संशोधन से पहले था, ने भी स्पष्ट शब्दों में प्रदान किया था कि स्थानांतरण के लिए आवेदन पर केवल तभी विचार किया जा सकता है जब मांग नहीं भेजी गई हो। इस प्रकार इस मामले के इस पहलू पर किसी भी भ्रम की कोई गुंजाइश नहीं थी।

18. उपरोक्त चर्चाओं के आलोक में, हम पाते हैं कि 7.7.2018 को संस्थान में प्रिंसिपल के पद के खिलाफ सीधी नियुक्ति के लिए पहले ही मांग भेजी गई थी, इसलिए संयुक्त शिक्षा निदेशक के लिए यह खुला नहीं था कि उन्होंने प्रतिपक्षी को संबंधित संस्थान में स्थानांतरित करने के लिए कोई सिफारिश की हो। इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि अधिकारियों ने वैधानिक 5 सभी को गलत समझा। श्री मायाशंकर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 405 योजना के मामले में यह निर्णय गलती से इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि केवल इसलिए कि स्थानांतरण की सिफारिश की गई थी, इसलिए सीधी नियुक्ति की मांग स्वयं अमान्य हो गई थी। यह गलत व्याख्या 16.1.2023 को शैक्षिक अधिकारियों द्वारा पारित आदेश से स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है, जिसे इसके बाद उद्धृत किया गया है:-

"<u>अद्धतन स्थिति</u>
डीआईओएस द्वारा अंतिम अस्वीकृत:
कारण- अधियाचित संस्था का पद स्थानान्तरण से भर जाना अथवा शासन द्वारा स्थानान्तरण प्रस्तावित हो जाने के कारण
अस्वीकृति तिथि 16.1.2023"

अनुवादित

19. ऊपर की गई हमारी चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, हमें यह मानने में कोई कठिनाई नहीं है कि 30.12.2022 को संयुक्त शिक्षा निदेशक द्वारा प्रतिपक्षी के पक्ष में की गई सिफारिश के साथ-साथ 16.1.2023 को लिए गए अधिकारियों का निर्णय, जिसमें सीधी भर्ती के लिए 7.7.2018 को भेजी गई मांग को अमान्य माना जाता है, अस्थिर है। एकल न्यायाधीश द्वारा लिया गया विपरीत दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से वैधानिक योजना के गलत निर्माण पर आधारित है और इसलिए, इसे अनुमोदित नहीं किया जा सकता है।

20. हालाँकि, अधिनियम वर्ष 1982 के निरसन के साथ-साथ नए अधिनियम वर्ष 2023 की शुरूआत के साथ स्थिति में बदलाव आया है। इसलिए, हमें इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि पिछली व्यवस्था के तहत पहले भेजी गई मांग के साथ-साथ प्रतिपक्षी को संबंधित संस्था में स्थानांतरित करने में अधिकारियों की कार्रवाई का क्या प्रभाव होगा।

21. जहां तक अधिनियम वर्ष 2023 का संबंध है, यह हस्तांतरण का कोई संदर्भ नहीं देता है। अधिनियम वर्ष 2023 भी एक अधिनियम है जो माध्यमिक शिक्षा सहित विभिन्न संस्थानों में नियुक्तियों का प्रावधान करता है। यह अधिनियम वर्ष 2023 प्रस्तुत मामले के तथ्यों में लागू होता है। अधिनियम वर्ष 2023 की धारा 10

रिक्तियों के निर्धारण, मांग और चयन प्रक्रिया का प्रावधान करती है। अधिनियम वर्ष 2023 की धारा 10 को इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"10. रिक्तियों का निर्धारण, मांग, और चयन प्रक्रिया (1) सीधी भर्ती द्वारा एक शिक्षक या प्रशिक्षक की नियुक्ति करने के प्रयोजन के लिए, नियुक्ति प्राधिकारी या प्रबंधन या प्राधिकृत अधिकारी भर्ती के वर्ष के दौरान मौजूदा या रिक्त होने की संभावना रिक्तियों की संख्या का निर्धारण करेगा और, संस्था के प्रमुख के पद के अलावा किसी अन्य पद के मामले में, उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 4 वर्ष 1994) के अनुसार अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और नागरिकों के अन्य पिछड़े वर्गों से संबंधित उम्मीदवारों और उत्तर प्रदेश लोक सेवा (आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम के अनुसार आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों से संबंधित व्यक्तियों के लिए आरक्षित की जाने वाली रिक्तियों की संख्या भी निर्धारित करना, 2020 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 10 वर्ष 2020) और सरकार द्वारा समय-समय पर जारी किए गए अन्य निर्देश, और रिक्तियों को आयोग को इस तरह से और ऐसे अधिकारी या प्राधिकरण के माध्यम से अधिसूचित किया जा सकता है, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है। आयोग पात्रता का निर्णय करेगा और तदनुसार प्राप्त रिक्तियों को निर्धारित तरीके से विज्ञापित करेगा। (2) शिक्षकों या अनुदेशकों के पदों पर सीधी भर्ती के लिए उम्मीदवारों के चयन की प्रक्रिया ऐसी होगी जो विहित की जाए। (3) शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए धामक और भाषाई अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं में नियुक्ति के संबंध में, उस धर्म विशेष और भाषा (धर्मशास्त्र और संस्कृति का ज्ञान रखने वाले) के शिक्षाविदों को विशेषज्ञों के रूप में अनिवार्य रूप से आमंत्रित करके चयन की प्रक्रिया पूरी की जाएगी।

22. अधिनियम वर्ष 2023 के तहत अन्य दो प्रावधान हैं जिन पर प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर विचार करने की आवश्यकता है। पहला अधिनियम वर्ष 2023 की धारा 30 है जो अधिनियम वर्ष 2023 के प्रावधानों पर अधिनियम वर्ष 1921 के अधिभावी प्रभाव का प्रावधान करती है। यह प्रावधान अधिनियम वर्ष 1982 के पिछले हिस्से की धारा 32 के तहत निहित प्रावधानों के समान है। धारा 31 निरसन और बचत का प्रावधान करती है। धारा 31 की उप-धारा 1 में कुछ अन्य अधिनियमों के अलावा अधिनियम वर्ष 1982 को निरसित करने का प्रावधान है, जिनसे हम वर्तमान में चिंतित नहीं हैं। धारा 31 की उपधारा 2 और 3 प्रासंगिक हैं और इसके बाद पुन: प्रस्तुत किए गए हैं: -

"(2) इस तरह के निरसन के बावजूद, उपधारा (1) में निर्दिष्ट अधिनियमों के तहत की गई कोई बात या की गई कोई कार्रवाई इस अधिनियम के तहत की गई या की गई कोई कार्रवाई को इस अधिनियम के तहत किया या लिया गया माना जाएगा, जैसे कि इस अधिनियम के उपबंध सभी भौतिक समय में लागू थे। (3) इस अधिनियम में अन्यथा उपबंधित के अलावा, उपधारा (1) में निर्दिष्ट अधिनियमों के निरसन का उपबंधों के प्रवर्तन के संबंध में उत्तर प्रदेश सामान्य खंड अधिनियम, 1904 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1 वर्ष 1904) की धारा 6 के सामान्य अनुप्रयोग पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

23. उपरोक्त प्रावधानों से निकलने वाले निहितार्थों पर चर्चा करने से पहले हम अधिनियम वर्ष 2023 के तहत बनाए गए नियम वर्ष 2023 के एक प्रावधान का उल्लेख करना चाहेंगे। नियम वर्ष 2023 का नियम 28 अध्याय V में आता है जो भर्ती की प्रक्रिया से संबंधित है। नियम 28 रिक्तियों के निर्धारण और अधिसूचना पर विचार करता है। यद्यपि हम मुख्य रूप से नियम 28 के उप-नियम 5 से संबंधित हैं, लेकिन चूंकि इस तरह के नियम के अन्य प्रावधानों की भी प्रासंगिकता हो सकती है, इसलिए, हम नियम 28 को पूरी तरह से पुन: प्रस्तुत करना उचित समझते हैं: -

"28. रिक्तियों का अवधारण और अधिसूचित किया जाना:

(1) नियुक्ति प्राधिकारी अथवा प्रबन्धतंत्र अथवा प्राधिकृत अधिकारी, सीधी भर्ती के प्रयोजन से अधिनियम की धारा 10 की उपधारा (1) के अनुसार रिक्तियों की संख्या का अवधारण करेगा और रिक्तियों को, यथास्थिति, निदेशक (उच्च शिक्षा) या निदेशक (माध्यमिक शिक्षा) या निदेशक (बेसिक शिक्षा) या निदेशक (प्रशिक्षण एवं सेवायोजन) या महानिदेशक, अटल आवासीय विद्यालय के माध्यम से आयोग को यहां दी गयी रीति से अधिसूचित करेगा

(2) सीधी भर्ती द्वारा भरे जाने वाले प्रत्येक श्रेणी के पद के लिए भर्ती के वर्ष के अन्तिम दिनांक को सेवानिवृत्ति के कारण होने वाली सम्भावित रिक्तियों को सम्मिलित करते हुए नियुक्ति प्राधिकारी अथवा प्रबन्धतंत्र अथवा प्राधिकृत अधिकारी द्वारा रिक्तियों का विवरण भर्ती के वर्ष की 15 जुलाई तक उपनियम (1) के अधीन प्राधिकृत अधिकारी को भेजा जायेगा और प्राधिकृत अधिकारी अपने कार्यालय के अभिलेखों से सत्यापन करने के पश्चात प्रत्येक श्रेणी के पदों की रिक्तियों के बारे में विषयवार एवं आरक्षण श्रेणीवार रिक्तियों का समेकित विवरण तैयार करेगा। इस प्रकार तैयार किया गया समेकित विवरण प्राधिकृत अधिकारी द्वारा उसी भर्ती वर्ष के 31 जुलाई तक आयोग को भेजा जायेगा।
परन्तु यह कि यदि राज्य सरकार का समाधान हो जाये कि ऐसा करना समीचीन है तो वह लिखित आदेश द्वारा किसी विशेष भर्ती के वर्ष के संबंध में आयोग को रिक्तियाँ अधिसूचित किये जाने के लिए कोई अन्य दिनांक नियत कर सकती है।

(3) यदि, उप-नियम (2) के अधीन रिक्तियों के अधिसूचित किये जाने के पश्चात अध्यापक अथवा अनुदेशक के किसी पद पर कोई रिक्ति होती है, तो नियुक्ति प्राधिकारी अथवा प्रबन्धतंत्र अथवा प्राधिकृत अधिकारी इसके होने के पन्द्रह दिन के भीतर उक्त उपनियम के अनुसार प्राधिकृत अधिकारी को अधिसूचित करेगा और प्राधिकृत अधिकारी उसे प्राप्त करने के दस दिन के भीतर आयोग को भेज देगा।

(4) जहाँ, भर्ती के किसी वर्ष के लिए नियुक्ति प्राधिकारी अथवा प्रबन्धतंत्र अथवा प्राधिकृत अधिकारी, उप नियम (2) में विनिर्दिष्ट दिनांक तक रिक्तियां अधिसूचित नहीं करता या उक्त उपनियम के अनुसार उन्हें अधिसूचित करने में असफल रहता है तो प्राधिकृत अधिकारी अपने कार्यालय के अभिलेख के आधार पर अधिनियम की

धारा 10 की उपधारा (1) के अनुसार ऐसी संस्था में रिक्तियों को अवधारित करेगा और उक्त उपनियम में निर्दिष्ट रीति से और दिनांक तक आयोग को अधिसूचित करेगा। स्पष्टीकरण-इस उपनियम के अधीन आयोग को अधिसूचित की गई ऐसी रिक्तियां संस्था के नियुक्ति प्राधिकारी अथवा प्रबन्धतंत्र अथवा प्राधिकृत अधिकारी द्वारा अधिसूचित की गयी समझी जायेगी।

(5) अधिसूचित रिक्तियों के पदों को एकल स्थानान्तरण द्वारा नहीं भरा जायेगा, परन्तु यह कि विशेष परिस्थितियों में यदि एकल स्थानान्तरण आवश्यक हो तो यथा संभव शीघ्र, उक्त प्रक्रिया को आयोग के संज्ञान में लाया जाना आवश्यक होगा और एकल स्थानान्तरण के फलस्वरूप रिक्त पद निदेशक द्वारा अधिसूचित पदों में सम्मिलित माना जायेगा और यह रिक्ति भी उसी चयन प्रक्रिया से आच्छादित रहेगी। चयन प्रक्रिया प्रारम्भहोने के बाद किसी भी दशा में एकल स्थानान्तरण नही किया जायेगा।"

24. एकल न्यायाधीश ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए नियम 28 के उप-नियम 5 पर ध्यान दिया है कि विशेष परिस्थितियों में स्थानांतरण की अनुमति है और एक बार जब निदेशक ने प्रतिपक्षी को संबंधित संस्था में स्थानांतरित करने का आदेश पारित कर दिया है, तो इसे 1982 के शासन के तहत प्रबंध समिति द्वारा भेजी गई पिछली मांग के कारण अमान्य नहीं किया जा सकता है।

25. हम ध्यान दे सकते हैं कि याचिकाकर्ता द्वारा निर्णय वर्ष 16.1.2023 को चुनौती देने में उठाए गए मुद्दे को अमान्य घोषित करने के लिए एकल न्यायाधीश द्वारा विज्ञापित नहीं किया गया है। इस संबंध में न्यायालय का न तो कोई विचार है और न ही कोई निष्कर्ष है। हम पहले ही मान चुके हैं कि मांग को अमान्य मानने वाले शैक्षिक अधिकारियों का निर्णय अस्वीकार्य था और वैधानिक योजनाओं के विपरीत था। इसलिए, हमें प्रस्तुत मामले के तथ्यों में इस तरह के निर्धारण से आने वाले परिणामों की जांच करने की आवश्यकता है। अधिनियम वर्ष 1982 के तहत की गई मांग को स्थायी माना जाता है और मुद्दा यह है कि क्या विचाराधीन पद पर स्थानांतरण करने की अनुमति थी?

26. अधिनियम वर्ष 2023 की धारा 31(2) में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि अधिनियम वर्ष 1982 के निरसन के बावजूद, अधिनियम वर्ष 1982 के तहत की गई कोई भी कार्रवाई या की गई कोई भी कार्रवाई अधिनियम वर्ष 2023 के तहत की गई या की गई मानी जाएगी, इसे सभी भौतिक समय पर लागू माना जाएगा। प्रस्तुत मामले के तथ्यों में इस प्रावधान का महत्वपूर्ण महत्व है।

27. अधिनियम वर्ष 1982 के साथ-साथ अधिनियम वर्ष 2023 का मूल उद्देश्य और उद्देश्य शैक्षणिक संस्थानों में निष्पक्ष और पारदर्शी वास्तविक नियुक्ति करना है। दो अधिनियमों में किया गया बुनियादी परिवर्तन चयन करने में अपनाई जाने वाली कार्यप्रणाली के संबंध में है। पिछले अधिनियम में बोर्ड के विपरीत, अब यह आयोग है जिसे नियुक्तियां करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है।

28. जहां तक एक शिक्षक के एक संस्थान से दूसरे संस्थान में स्थानांतरण का संबंध है, इस आपात स्थिति को न तो अधिनियम वर्ष 1982 के तहत विशेष रूप से निपटाया जाता है और न ही अधिनियम वर्ष 2023 के तहत निपटाया जाता है। अधिनियम वर्ष 1982 के संदर्भ में प्रशांत कुमार कटियार में पूर्ण पीठ द्वारा स्थानांतरण की शक्ति के प्रयोग का विश्लेषण किया गया है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि नियमित भर्ती की प्रक्रिया में कोई बाधा न हो। चूंकि अधिनियम वर्ष 1982 के साथ-साथ अधिनियम वर्ष 2023 के तहत नियुक्ति प्रक्रिया की शुरुआत नियुक्ति के लिए मांग करना है, और संदर्भ वर्ष 1982 अधिनियम में पूर्ण पीठ ने निष्कर्ष निकाला है कि एक बार प्रबंधन द्वारा इस तरह की मांग भेजी जाती है तो स्थानांतरण के माध्यम से पद को भरने की शक्ति अनुमेय नहीं होगी। अंतर्निहित उद्देश्य केवल यह था कि अधिनियम वर्ष 1982 के तहत की जाने वाली आवश्यक भर्ती प्रबंधन द्वारा किए गए हस्तांतरण के कारण हस्तक्षेप नहीं की जाती है। यह अनिवार्यता अधिनियम वर्ष 2023 के तहत बदली हुई वैधानिक योजना में भी बनी हुई है। रिक्तियों के निर्धारण और अधिसूचना के पहलू को 2023 के नियमों के नियम 28 में निपटाया गया है। नियुक्ति प्राधिकारी या प्रबंधन को अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा 1 के अनुसार रिक्तियों की संख्या निर्धारित करनी है; निदेशक या अन्य प्राधिकारियों के माध्यम से, जैसा भी मामला हो, रिक्तियों को आयोग को निर्धारित तरीके से सूचित करना। नियम 28 का उप-नियम-2 नियम 11(3) के समान है, जिसके अनुसार उत्पन्न होने वाली रिक्तियों का पता लगाया जाना है और प्राधिकृत अधिकारी, कार्यालय से अभिलेखों के सत्यापन के बाद, विषय-वार और श्रेणी-वार रिक्तियों की एक समेकित सूची तैयार करना है। नियम 28 का उप-नियम 3 नियम 11(3) के समान है। नियम 28(4) भी अधिनियम वर्ष 1982 के तहत बनाए गए नियमों के नियम 11(4) के समान है।

29. नियम 28 का उप-नियम 5 कुछ हद तक अलग है, क्योंकि यह एक अलग आकस्मिकता से संबंधित है। इस उप-नियम में प्रावधान है कि अधिसूचित रिक्तियों के पदों को एकल स्थानांतरण द्वारा नहीं भरा जाएगा। इसका परंतुक अपवाद की प्रकृति में है जो निर्दिष्ट करता है कि विशेष परिस्थितियों में, यदि एक एकल स्थानांतरण आवश्यक है, तो इसे जल्द से जल्द आयोग के ध्यान में लाया जाएगा, और एकल स्थानांतरण के परिणामस्वरूप रिक्त पद को निदेशक द्वारा अधिसूचित पदों में शामिल माना जाएगा, और यह रिक्ति भी उसी चयन प्रक्रिया द्वारा आच्छादित की जाएगी। परंतुक की अंतिम पंक्ति में यह विचार किया गया है कि चयन प्रक्रिया शुरू होने के बाद किसी भी परिस्थिति में कोई भी स्थानांतरण नहीं किया जाएगा। उप-नियम 5 में अंतिम वाक्य केवल उप-नियम 5 के पहले वाक्य का उदाहरण देता है कि एक भी पद स्थानांतरण द्वारा नहीं भरा जाएगा।

30. नियम 28 के उप-नियम 5 पर एकल न्यायाधीश द्वारा यह मानने के लिए भरोसा किया गया है कि कुछ परिस्थितियों में स्थानांतरण निदेशक द्वारा अनुमेय होगा।

31. स्थानांतरित प्रिंसिपल की ओर से उपस्थित श्री ओझा ने यह भी प्रस्तुत किया कि चयन प्रक्रिया शुरू होने तक बदले हुए परिदृश्य में स्थानांतरण की अनुमति होगी। श्री ओझा का निवेदन यह भी है कि चयन प्रक्रिया

आमतौर पर विज्ञापन जारी करने के साथ शुरू होती है और चूंकि ऐसी कोई अनिवार्यता उत्पन्न नहीं हुई है, इसलिए निदेशक द्वारा शक्ति का प्रयोग वैध होगा और इसके लिए किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

32. हम इस तरह के सबमिशन को स्वीकार करने के इच्छुक नहीं हैं, क्योंकि नियम 28(5) का उद्देश्य शिक्षक के स्थानांतरण की अनिवार्यता को विनियमित करना नहीं है। बल्कि, यह केवल उस प्रक्रिया का पालन करने का प्रावधान करता है जहां इस तरह का हस्तांतरण प्रभावित होता है। हम इस तरह के दृष्टिकोण को अपनाने के इच्छुक हैं, क्योंकि नियम 28 रिक्तियों के निर्धारण और अधिसूचना को नियंत्रित करता है एकल स्थानांतरण के परिणामस्वरूप उत्पन्न रिक्त पद को निदेशक को अधिसूचित की गई रिक्तियों में सम्मिलित माना जाएगा तथा उसे उसी चयन प्रक्रिया के माध्यम से भरा जाएगा। उपनियम 5 में प्रावधान है कि अधिसूचित रिक्तियों के पदों को एक बार स्थानांतरण द्वारा नहीं भरा जाएगा। एक बार जब हम यह मान लेते हैं कि अधिनियम वर्ष 1982 के तहत रिक्ति की अधिसूचना अधिनियम वर्ष 2023 की धारा 31(2) के आधार पर जारी रहेगी, तो ऐसी अधिसूचित रिक्ति पर स्थानांतरण अनुमेय होगा। इस प्रावधान को उस परंतुक के साथ पढ़ा जाना चाहिए जिसके अनुसार विशेष परिस्थितियों में जहां एक ही स्थानांतरण आवश्यक है, तो परिणामी रिक्ति को यथाशीघ्र आयोग के ध्यान में लाया जाएगा, और रिक्त पद को परिणामस्वरूप लाया जाएगा। स्थानांतरण को निदेशक को अधिसूचित रिक्तियों में शामिल माना जाएगा और उसी चयन प्रक्रिया द्वारा भरा जाएगा। इसलिए, उपनियम 5 का उद्देश्य विशेष आकस्मिकता यानी स्थानांतरण के कारण रिक्ति के सृजन से निपटना है। किस तरीके से हस्तांतरण किया जाना है, अन्यथा नियम 28 में निर्दिष्ट नहीं है।

33. नियम 28 के उप-नियम 5, हमारे सुविचारित विचार में, अधिनियम वर्ष 1921 के अध्याय III के तहत बनाए गए नियमों के नियम 55 से 58 के संयोजन में पढ़ा जाना चाहिए। विनियम 58, जैसा कि संशोधित किया गया है, स्पष्ट रूप से प्रदान करता है कि अधिसूचित रिक्ति के लिए स्थानांतरण अनुमेय होगा। प्रशांत कुमार कटियार (उपरोक्त) में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले के कारण अन्यथा यह स्थिति है। इसलिए, विनियम 55 से 58 उस तात्कालिकता को नियंत्रित करेगा जिसके साथ हम वर्तमान में चिंतित हैं यानी एक शिक्षक का स्थानांतरण। नियम 28(5) सपठित नियम वर्ष 2023 का नियम 58 यह भी स्पष्ट करता है कि अधिसूचित रिक्तियों के लिए स्थानांतरण की अनुमति नहीं होगी। यह व्याख्या वैधानिक योजना के अनुरूप होगी, क्योंकि रिक्ति अधिसूचित होने के बाद भर्ती की प्रक्रिया में कोई भी भार नहीं डाला जाना चाहिए। इसलिए, हमारा विचार है कि नियम 28(5) अपने आप में निदेशक के लिए अध्याय III के तहत बनाए गए विनियमों के नियम 58 के तहत निहित प्रावधानों से स्वतंत्र हस्तांतरण का आदेश पारित करने का सक्षम प्रावधान नहीं है।

34. एकमात्र मुद्दा अधिनियम वर्ष 2023 की धारा 31(2) के आयात के संबंध में शेष है। धारा 31(2) में प्रावधान है कि अधिनियम वर्ष 1982 के तहत की गई कोई भी कार्रवाई या की गई कोई भी कार्रवाई अधिनियम वर्ष 2023 के तहत की गई मानी जाएगी। एकमात्र आकस्मिकता जिसमें इस तरह की कार्रवाई को बचाया नहीं जा सकेगा, वह वह होगी जहां अधिनियम वर्ष 2023 अधिनियम वर्ष 1982 के तहत विचार किए गए पाठ्यक्रम के साथ असंगत पाठ्यक्रम प्रदान करता है। रिक्तियों का निर्धारण और आयोग को इसकी सूचना वस्तुतः इन

संस्थानों में भर्ती की प्रक्रिया शुरू करती है। इसलिए, बोर्ड को मांग भेजना अधिनियम वर्ष 2023 के तहत बचाया जाता रहेगा और एकमात्र बदलाव यह होगा कि अब नियुक्ति बोर्ड के स्थान पर आयोग द्वारा की जाएगी। यदि कोई विपरीत व्याख्या अपनाई जाती है, तो इसके परिणामस्वरूप अवांछित परिणाम होंगे और ठोस नियुक्ति करने के उद्देश्य में बाधा उत्पन्न होगी। हम यह भी ध्यान दे सकते हैं कि ऐसे संस्थानों में सीधी भर्ती पहले अधिनियम वर्ष 1982 द्वारा विनियमित थी और अब इसे अधिनियम वर्ष 2023 के तहत किया जाना है। नियुक्ति चाहे बोर्ड द्वारा की गई हो या आयोग द्वारा की गई हो, वर्तमान उद्देश्यों के लिए सामग्री नहीं है। हालांकि, एक बार रिक्ति प्रबंधन द्वारा अधिसूचित की जाती है, तो पद भरने के लिए या तो अधिनियम वर्ष 1982 के तहत होना चाहिए या अधिनियम वर्ष 2023 के तहत होना चाहिए। ऐसी रिक्तियों को स्थानांतरण के माध्यम से भरने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

35. ऊपर किए गए कारणों और चर्चाओं के लिए, ये विशेष अपीलें सफल होती हैं और अनुमति दी जाती हैं। एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 13.8.2024 को पारित निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया जाता है। अपीलकर्ता द्वारा दायर रिट याचिकाएं भी सफल होती हैं और उन्हें अनुमति दी जाती है। निदेशक द्वारा दिनांक 30.12.2022, दिनांक 16.5.2023 और दिनांक 28.6.2024 को पारित आदेश रद्द कर दिए जाते हैं। लागतों के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 409

मूल अधिकारिता

दीवानी पक्ष

दिनांक : इलाहाबाद 13.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

रिट - ए संख्या - 790 सन् 2020

राजन **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य दो **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :- सिकन्दर ख़ान, सुधांशु प्रताप सिंह

प्रतिवादी के अधिवक्ता :- सी.एस.सी., जगन्नाथ मौर्य, मुकेश कुमार कुशवाहा

क. सेवा कानून - उत्तर प्रदेश मृतक आश्रितों की नियुक्ति नियमावली, 1974 - नियम 2(क) - अनुकम्पा नियुक्ति - याचिकाकर्ता के पिता मस्टर रोल कर्मचारी थे - पुत्र का अधिकार - निर्णय : मस्टर रोल कर्मचारी, दैनिक वेतनभोगी अथवा कार्यचार्ज कर्मचारी के समान स्थिति में होता है और नियम 2(क), नियमावली 1974 के अर्थ में 'राज्य कर्मचारी' नहीं है - अतः मस्टर रोल कर्मचारी के पुत्र को प्रतिवादी निगम में अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति का अधिकार नहीं है - पवन कुमार यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य प्रकरण पर भरोसा किया गया - उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता के देयकों एवं अन्य अधिकारों के संबंध में अभ्यावेदन निस्तारित करने का निर्देश दिया। (अनुच्छेद 7, 8 तथा 12)

याचिका निस्तारित। (ई-1)

<u>उल्लेखित वादों की सूची</u> :

1. रिट सिविल संख्या 21057 सन् 2010; उत्तर प्रदेश राज्य सेतु निगम लिमिटेड एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सेतु निगम संयुक्त कर्मचारी संघ एवं अन्य।
2. पवन कुमार यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; (2010) 8 ए.डी.जे. 664 (इलाहाबाद)।

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा दिया गया)

1. विद्वान अधिवक्ता श्री सुधांशु प्रताप सिंह, याचिकाकर्ता की ओर से; राज्य-प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता; तथा प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री जे.एन. मौर्य को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता का दावा है कि उसे प्रतिवादी निगम में अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति का अधिकार है। याचिकाकर्ता के पिता प्रतिवादी निगम में मस्टर रोल कर्मचारी के रूप में कार्यरत थे, जिनका सेवा काल के दौरान देहान्त हो गया।

3. याचिकाकर्ता के पिता की मस्टर रोल कर्मचारी के रूप में स्थिति का उल्लेख इस न्यायालय द्वारा **रिट सी संख्या 21057 सन् 2010 (उत्तर प्रदेश राज्य सेतु निगम लिमिटेड एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सेतु निगम संयुक्त कर्मचारी संघ एवं अन्य)** तथा उससे संबंधित याचिका में भी किया गया था। याचिकाकर्ता के पिता उक्त याचिकाओं के पक्षकार थे।

4. प्रतिवादियों द्वारा याचिकाकर्ता के पिता की मस्टर रोल कर्मचारी के रूप में स्थिति संबंधी जो विशिष्ट दलीलें दी गई हैं, उन्हें प्रत्युत्तर हलफनामे या अभिलेखों में अस्वीकार नहीं किया गया है।

5. इस परिप्रेक्ष्य में न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि याचिकाकर्ता के पिता, जिनका 06.06.2016 को निधन हुआ, मस्टर रोल कर्मचारी थे।

6. मस्टर रोल कर्मचारियों के आश्रितों को अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति का अधिकार है या नहीं, इस प्रश्न पर विचार माननीय पूर्णपीठ द्वारा ***पवन कुमार यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य*** **(2010) 8 ए.डी.जे. 664 (इलाहाबाद)** में किया गया, जिसमें निम्नलिखित प्रतिपादन किया गया–

"1. कोई दैनिक वेतनभोगी अथवा कार्यचार्ज कर्मचारी, जो उत्तर प्रदेश शासन के कार्यों से सम्बद्ध है, किन्तु किसी स्थायी या अस्थायी पद पर नियुक्त नहीं है और किसी नियमित रिक्ति पर नियुक्त नहीं किया गया है, भले ही उसने तीन वर्ष से अधिक कार्य किया हो, 'राज्य कर्मचारी' नहीं माना जाएगा, जैसा कि नियम 2(क) उत्तर प्रदेश मृतक आश्रितों की नियुक्ति नियमावली, 1974 में परिभाषित है, और इस प्रकार उसकी मृत्यु पर उसके आश्रितों को इन नियमों के अधीन अनुकम्पा नियुक्ति का अधिकार प्राप्त नहीं होगा।"

7. मस्टर रोल कर्मचारी, दैनिक वेतनभोगी अथवा कार्यचार्ज कर्मचारी के समान स्थिति में होता है, और वह भी नियम 2(क) उत्तर प्रदेश मृतक आश्रित नियुक्ति नियमावली, 1974 के अर्थ में 'राज्य कर्मचारी' नहीं है।

8. ***पवन कुमार यादव*** **(उपर्युक्त)** में प्रतिपादित विधि मस्टर रोल कर्मचारियों पर भी समान रूप से लागू होगी। अतः याचिकाकर्ता, जो एक मस्टर रोल कर्मचारी का पुत्र है, को प्रतिवादी निगम में अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति का अधिकार नहीं है।

9. अतः याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अनुकम्पा नियुक्ति प्रदान करने के संबंध में किया गया निवेदन अस्वीकार किया जाता है।

10. आदेश लिखाए जाने के पश्चात्, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुधांशु प्रताप सिंह ने निवेदन किया कि याचिकाकर्ता के दिवंगत पिता के कुछ देयक एवं अधिकार अभी तक भुगतान नहीं किए गए हैं, जिन्हें याचिकाकर्ता एवं अन्य विधिक वारिसों को प्रदान किया जाए।

11. प्रतिवादी निगम के विद्वान अधिवक्ता श्री जे.एन. मौर्य ने निष्पक्षतापूर्वक यह प्रस्तुत किया कि यदि याचिकाकर्ता का ऐसा कोई दावा है तो उसे प्रतिवादियों द्वारा यथोचित अवधि में विचारित किया जाएगा।

12. उपर्युक्त परिस्थितियों में, यह याचिका निम्नलिखित निर्देशों के साथ निस्तारित की जाती है–

(i) याचिकाकर्ता अपने तथा अन्य विधिक वारिसों के देयकों के संबंध में प्रतिवादी संख्या 3 के समक्ष आवेदन प्रस्तुत करेगा।

(ii) प्रतिवादी संख्या 3 उक्त आवेदन का निस्तारण इस आदेश की प्रमाणित प्रति एवं आवेदन की नई प्रति प्राप्त होने की तिथि से चार माह की अवधि के भीतर करेगा।

(2025) 5 ILRA 411

मूल अधिकारिता – सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह

रिट-A संख्या 3653 सन् 2001

राजेन्द्र प्रसाद त्रिपाठी ... याचिकाकर्ता

बनाम

हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड ... प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: सम्पूर्णानन्द शुक्ला, अभिनव नाथ त्रिपाठी, अमरेन्द्र नाथ त्रिपाठी, अनुराग त्यागी, डी.के. श्रीवास्तव, एस.के. त्रिपाठी, सुबोध कुमार वर्मा, विशाल सिंह

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता: पी.के. सिन्हा

भारत का संविधान, अनुच्छेद 226 – हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड के प्रमाणित स्थायी आदेश, खण्ड 3, 19(ii), 26, 27 – अनधिकृत अनुपस्थिति के लिए सेवा-समाप्ति – याचिकाकर्ता, एक स्थायी श्रमिक (क्लर्क-कम-टाइपिस्ट), ने दिनांक 26/28.02.1991 के सेवा-समाप्ति आदेश को चुनौती दी, जो 01.10.1990 से अनधिकृत अनुपस्थिति के कारण स्थायी आदेशों के खण्ड 19(ii) के अंतर्गत रोस्टर से हटाए जाने पर आधारित था, तथा पुनर्स्थापना की माँग की। याचिकाकर्ता ने बीमारी का दावा करते हुए डाक-प्रमाण पत्र (रजिस्टर्ड नहीं) से अनेक पत्र भेजे और तर्क दिया कि सेवा-समाप्ति के लिए खण्ड 19(ii) के स्थान पर खण्ड 26 एवं 27 के अंतर्गत अनुशासनिक जाँच अपेक्षित थी, तथा चन्दू लाल बनाम पैन अमेरिकन वर्ल्ड एयरवेज का उल्लेख करते हुए खण्ड 19(ii) को स्थायी श्रमिकों पर अनुपयोज्य बताया। प्रत्यर्थी ने प्रतिवाद किया कि खण्ड 19(ii) समस्त श्रमिकों पर लागू होता है, कारण बताओ नोटिस जारी किए गए एवं प्राप्त हुए, तथा वर्ष 2001 में संस्थित रिट याचिका, स्कूटर्स इण्डिया बनाम विजय ई.वी.एस. एल्ड्रेड के अनुसार विलम्ब के कारण वर्जित है। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि खण्ड 19(ii) खण्ड 3 के अंतर्गत श्रमिक के रूप में याचिकाकर्ता पर लागू होता है, तथा प्रबंधन ने कारण बताओ नोटिस जारी करके नैसर्गिक न्याय का अनुपालन किया, जैसा कि बकिंघम एण्ड कार्नेटिक कम्पनी बनाम वेंकटैया में अभिनिर्धारित है। गैर-रजिस्टर्ड डाक प्रमाणपत्रों पर याचिकाकर्ता की निर्भरता में शिव कुमार बनाम हरियाणा राज्य के अनुसार साक्ष्य मूल्य का अभाव था। रिट याचिका दायर करने में 10 वर्ष की देरी अस्पष्टीकृत है, जिससे वह विलम्ब के कारण वर्जित हो गई। नेशनल इंजीनियरिंग इण्डस्ट्रीज बनाम हनुमान के अनुसार सेवा-समाप्ति को परित्याग माना गया, न कि छँटनी, अतः अनुशासनिक जाँच अपेक्षित नहीं थी। रिट याचिका निरस्त। (पैरा 10 से 24)

अनुवादित

रिट याचिका निरस्त।

उद्धृत वादों की सूची:

1. चन्दू लाल बनाम मेसर्स पैन अमेरिकन वर्ल्ड एयरवेज इन्क. का प्रबंधन: (1985) 2 SCC 727
2. जय शंकर बनाम राजस्थान राज्य: AIR 1966 SC 492
3. देवकीनन्दन प्रसाद बनाम बिहार राज्य एवं अन्य: (1971) 2 SCC 30
4. असम राज्य एवं अन्य बनाम अक्षय कुमार देब: (1975) 4 SCC 339
5. उ.प्र. राज्य एवं अन्य बनाम यमुना प्रसाद राय: 2006 SCC OnLine All 18
6. नेशनल इंजीनियरिंग इण्डस्ट्रीज लिमिटेड, जयपुर बनाम हनुमान: AIR 1968 SC 33
7. बकिंघम एण्ड कार्नेटिक कम्पनी लिमिटेड बनाम वेंकटैया एवं अन्य: AIR 1964 SC 1272
8. भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड बनाम श्रम न्यायालय, उ.प्र., मेरठ एवं अन्य: (1999) 3 UPLBEC 2098
9. हिन्दुस्तान पेपर कार्पोरेशन बनाम पूर्णेन्दु चक्रवर्ती एवं अन्य: (1996) 11 SCC 404
10. स्कूटर्स इण्डिया एवं अन्य बनाम विजय ई.वी.एस. एल्ड्रेड: (1998) 6 SCC 549
11. डी.के. यादव बनाम जे.एम.ए. इण्डस्ट्रीज लिमिटेड: (1993) 3 SCC 259
12. राजेश कुमार बनाम हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड: 1993 SCC OnLine All 883
13. शिव कुमार एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य: (1994) 4 SCC 445

(माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह द्वारा उद्घोषित)

1. यह रिट याचिका निम्नलिखित अनुतोष मांगते हुए प्रस्तुत की गई है:-

"1. अतः यह अत्यंत सविनय प्रार्थना की जाती है कि माननीय न्यायालय कृपया प्रमाणपत्र के स्वरूप में एक रिट जारी करने की कृपा करें जिसके द्वारा रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 12 के रूप में संलग्न दिनांक 26/28.02.1991 के आदेश को निरस्त किया जाए।

2. अतः यह अत्यंत सविनय प्रार्थना की जाती है कि माननीय न्यायालय कृपया परमादेश के स्वरूप में एक रिट जारी करने की कृपा करें जिसके द्वारा विपक्षी पक्षकारों को याचिकाकर्ता को लिपिक-सह-टंकक के रूप में शामिल होने की अनुमति देने का निर्देश दिया जाए और आगे माननीय न्यायालय कृपया कोई अन्य रिट जारी करने की कृपा करें जो यह माननीय न्यायालय मामलों की परिस्थितियों में उचित और समुचित समझे।"

2. वर्तमान रिट याचिका को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को दिनांक 06.07.1982 को लिपिक-सह-टंकक के पद पर नियुक्त किया गया था और तत्पश्चात दिनांक 26.05.1983 को उसकी सेवाएं स्थायी कर दी गई थीं। याचिकाकर्ता अक्टूबर, 1990 के महीने में बीमार पड़ गया और उसने अंडर पोस्टल सर्टिफिकेट (पंजीकृत नहीं) के माध्यम से विपक्षी संख्या 2 को कई पत्र भेजे जिसमें उन्हें सूचित किया गया कि वह बीमारी से पीड़ित है, इसलिए उसे अवकाश प्रदान किया जाना चाहिए। यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने आवश्यक जानकारी के लिए दिनांक 10.12.1990, 16.06.1992, 26.04.1994, 28.01.1997, 02.01.1999 और 12.06.2001 को अंडर पोस्टल सर्टिफिकेट (पंजीकृत नहीं) के माध्यम से कई पत्र भेजे। याचिकाकर्ता अनुपस्थित रहा क्योंकि वह बीमार था और उसने मुख्य चिकित्सा अधिकारी, कानपुर द्वारा जारी दिनांक 04.02.2000 का स्वास्थ्य प्रमाणपत्र भी प्रस्तुत किया और वही भी अंडर पोस्टल सर्टिफिकेट (पंजीकृत नहीं) के माध्यम से भेजा गया। यह आगे कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 12.06.2001 को अपनी सेवा में शामिल होने के लिए एक अभ्यावेदन दिया था। जब कुछ नहीं किया गया, तो याचिकाकर्ता ने दिनांक 25.07.2001 को वर्तमान याचिका प्रस्तुत की। तत्पश्चात, संशोधन के माध्यम से, दिनांक 26/28.02.1991 के आक्षेपित समाप्ति आदेश को चुनौती दी गई है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड के प्रमाणित स्थायी आदेशों (संक्षेप में "स्थायी आदेश") के खंड-19(ii) को खंड-26 के साथ पढ़ने के परिप्रेक्ष्य में उत्तरदायी विपक्षी को प्रक्रिया का पालन करना होगा और प्रमुख दंड के लिए दंड केवल विस्तृत जांच करके उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद ही पारित किया जा सकता था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि वर्तमान मामले में, नियमित कार्यवाही शुरू किए बिना, स्थायी आदेशों के खंड-19(ii) के परिप्रेक्ष्य में संगठन के रोल से याचिकाकर्ता का नाम काट दिया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि स्थायी आदेशों का खंड-3 यह दर्शाता है कि कंपनियों के कर्मचारियों को छह श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है और याचिकाकर्ता एक स्थायी कर्मचारी है। स्थायी आदेशों का खंड-19(i) यह दर्शाता है कि किसी स्थायी कर्मचारी की सेवा किसी भी पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को तीन महीने का लिखित नोटिस देकर या नोटिस के बदले समतुल्य वेतन/मजदूरी का भुगतान करके समाप्त की जा सकती है, जबकि स्थायी आदेशों का खंड-19(ii) यह दर्शाता है कि यदि कोई कर्मचारी 10 दिनों से अधिक समय तक अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहता है और मूल रूप से प्रदान किए गए या बाद में विस्तारित अवकाश की अवधि से अधिक समय तक अनुपस्थित रहता है, तो उसे अपनी नियुक्ति पर अपना अधिकार खो दिया हुआ माना जाएगा, जब तक कि वह वापस नहीं आता।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि प्रबंधन ने याचिकाकर्ता के संबंध में स्थायी आदेशों के खंड-19(ii) का गलत तरीके से सहारा लिया है क्योंकि उक्त प्रावधान कर्मचारी से संबंधित है, जबकि याचिकाकर्ता एक स्थायी कर्मचारी है, इसलिए उपरोक्त खंड याचिकाकर्ता के मामले में लागू नहीं होगा। अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर निर्भरता रखी है:-

1. चांदू लाल बनाम एम/एस पैन अमेरिकन वर्ल्ड एयरवेज इन्कॉर्पोरेशन, (1985) 2 एससीसी 727;

2. जय शंकर बनाम राजस्थान राज्य, (1966) 1 एससीआर 825:एआईआर 1966 एससी 492;

3. देवकीनंदन प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य, (1971) 2 एससीसी 30;

4. असम राज्य और अन्य बनाम अक्षय कुमार देब, (1975) 4 एससीसी 339; और

5. विशेष अपील संख्या 18/2006, उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम यमुना प्रसाद राय, दिनांक 12.01.2006 को निर्णीत।

5. दूसरी ओर, श्री पी.के. सिन्हा, विपक्षी पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रारंभिक आपत्ति ली है कि रिट याचिका अत्यधिक विलंब से बाधित है क्योंकि आक्षेपित आदेश दिनांक 26/28.02.1991 को जारी किया गया था, जबकि रिट याचिका दिनांक 25.07.2001 को अर्थात दस वर्षों से अधिक समय के बाद बिना किसी प्रशंसनीय स्पष्टीकरण के प्रस्तुत की गई है। याचिकाकर्ता द्वारा जो भी कारण दिए गए हैं, वे इस कारण से पूर्णतः अपोषणीय हैं कि याचिकाकर्ता ने अंडर पोस्टल सर्टिफिकेट की कई रसीदें संलग्न की हैं, जो पूर्णतः बेकार के कागज हैं। याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में कहीं भी यह नहीं कहा है कि उत्तरदायी विपक्षी को कोई पंजीकृत अभ्यावेदन/दस्तावेज भेजा गया था या उत्तरदायी विपक्षी के कार्यालय में उचित तरीके से कोई आवेदन प्रस्तुत किया गया था। अंडर पोस्टल सर्टिफिकेट की रसीद का प्रमाण एक ऐसा दस्तावेज है जिस पर भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि इसका कोई साक्ष्य मूल्य नहीं है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि रिट याचिका के अनुलग्नक-3 के रूप में संलग्न स्वीकृत पत्र विभाग के अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है। यह भी अकल्पनीय है कि कथित स्वीकृत पत्र याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 04.0.1990 को अंडर पोस्टल सर्टिफिकेट द्वारा किस उद्देश्य से भेजा गया था। उक्त पत्र में सक्षम प्राधिकारी के किसी हस्ताक्षर का संकेत नहीं है और न ही श्री एच.एस. नारंग और श्री के.एल. नागर, प्रबंधक (भंडार) के कोई हस्ताक्षर हैं जहां याचिकाकर्ता कार्य कर रहा था। यह प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने सक्षम प्राधिकारी के किसी हस्ताक्षर के बिना प्रपत्र बना लिया। श्री के.एल. नागर, प्रबंधक (भंडार) ने पत्र संख्या C/417/वाणिज्यिक भंडार/90 दिनांक 2.10.1990 के माध्यम से संकेत किया है कि श्री आर.पी. त्रिपाठी (याचिकाकर्ता) 01.10.1990 से अनुपस्थित है और उसने आज तक कर्तव्य पर रिपोर्ट नहीं किया है और न ही विभाग द्वारा कोई जानकारी प्राप्त हुई है। श्री के.एल. नागर, प्रबंधक (भंडार) की रिपोर्ट के आधार पर, श्री एच.एस. नारंग ने दिनांक 22.10.1990 को मुख्य प्रबंधक (पी एंड ए) को पत्र लिखा कि याचिकाकर्ता बिना किसी सूचना के 01.10.1990 से कर्तव्य से अनुपस्थित है, इस प्रकार याचिकाकर्ता ने पद पर अपना अधिकार खो दिया है और उसकी सेवाओं को समाप्त करने के लिए अविलंब कार्रवाई की जाए।

6. विपक्षी पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि चूंकि याचिकाकर्ता कर्तव्य से अनुपस्थित था, मामला इकाई के महाप्रबंधक के स्तर तक गया। महाप्रबंधक के कार्यालय की नोट शीट यह दर्शाती है कि याचिकाकर्ता ने कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया और न ही दिनांक 01.10.1990 से उसकी अनुपस्थिति के लिए कोई सूचना भेजी गई थी। याचिकाकर्ता ने किसी भी तरीके से अवकाश के लिए कोई आवेदन नहीं दिया। याचिकाकर्ता को प्रबंधक (कार्मिक) द्वारा दिनांक 25.10.1990 के तार के माध्यम से सूचित किया गया कि वह अनधिकृत रूप से अनुपस्थित है और उसकी सेवाएं समाप्त कर दी जाएंगी। मुख्य प्रबंधक (पी एंड ए) ने दिनांक 03.11.1990 को याचिकाकर्ता को आठ दिनों के भीतर कारण बताने के लिए नोटिस भेजा कि वह कर्तव्य से

क्यों अनुपस्थित है और यदि उसका स्पष्टीकरण संतोषजनक नहीं पाया जाता है, तो उसका नाम संगठन के रोल से काट दिया जाएगा। पुनः, याचिकाकर्ता को दिनांक 21.11.1990 के पत्र के माध्यम से पंजीकृत डाक द्वारा आवश्यक कार्रवाई के लिए और स्पष्टीकरण मांगने के लिए संप्रेषित किया गया, जो याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त किया गया और याचिकाकर्ता की पावती की प्रति प्रत्युत्तर शपथपत्र के अनुलग्नक-6 के रूप में प्रस्तुत की गई है। दिनांक 21.11.1990 के पत्र को प्राप्त करने के बावजूद, याचिकाकर्ता ने कभी भी कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया। तत्पश्चात, याचिकाकर्ता को दिनांक 01.12.1990 के पत्र के माध्यम से पंजीकृत डाक द्वारा संप्रेषित किया गया कि उसने दिनांक 01.10.1990 से कर्तव्य से अपनी अनधिकृत अनुपस्थिति के परिप्रेक्ष्य में अपना अधिकार खो दिया है। सभी संप्रेषण याचिकाकर्ता के आधिकारिक आवासीय पते पर भेजे गए थे, जो विभाग के स्थापना अनुभाग में उपलब्ध था। याचिकाकर्ता को पुनः दिनांक 20.12.1990 के पत्र के माध्यम से संप्रेषित किया गया। हालांकि, दिनांक 01.12.1990 का पत्र जो याचिकाकर्ता को संप्रेषित किया गया था, इस पृष्ठांकन के साथ वापस आया कि याचिकाकर्ता ने घर छोड़ दिया है और कहीं और चला गया है। जब याचिकाकर्ता ने प्रतिक्रिया नहीं दी, तो अंततः दिनांक 26/28.02.1991 को डाक पृष्ठांकन के साथ संगठन के रोल से याचिकाकर्ता का नाम काट दिया गया।

7. विपक्षी पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि उत्तरदायी विपक्षी ने स्थायी आदेशों के खंड-19(ii) के प्रावधानों का सहारा लेकर संगठन के रोल से याचिकाकर्ता का नाम काट दिया है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि स्थायी आदेशों के खंड-3 में, यह प्रावधान है कि कर्मचारियों की छह श्रेणियां हैं और स्वीकार्य रूप से याचिकाकर्ता एक कर्मचारी था। यह प्रस्तुत किया गया है कि स्थायी आदेशों के खंड-19(ii) के प्रावधानों पर इस न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में चर्चा की गई है और उन्हें बरकरार रखा गया है और यदि कोई कर्मचारी दस दिनों से अधिक समय तक अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहता है, तो न्यूनतम आवश्यकता कारण बताओ नोटिस देने की है, जिसका वर्तमान मामले में प्रबंधन द्वारा पालन किया गया और कारण बताओ नोटिस जारी करने के बाद, याचिकाकर्ता का नाम संगठन के रोल से काट दिया गया। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि प्रबंधन के पास दो प्रक्रियाओं का विकल्प था अर्थात या तो प्रबंधन खंड-26 और 27 के अंतर्गत परिकल्पित प्रक्रिया का पालन करके आरोपपत्र जारी कर सकता था या स्थायी आदेशों के खंड-19(ii) के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस दिया गया था, जिसके लिए वह उपस्थित नहीं हुआ, इसलिए स्थायी आदेशों के खंड-19(ii) के प्रावधानों को लागू करके, उसका नाम संगठन के रोल से काट दिया गया। अपने तर्क के समर्थन में, विपक्षी पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर निर्भरता रखी है:-

1. **नेशनल इंजीनियरिंग इंडस्ट्रीज लिमिटेड, जयपुर बनाम हनुमान**, एआईआर 1968 एससी 33;
2. **बकिंघम एंड कार्नेटिक कंपनी लिमिटेड बनाम वेंकटय्या और अन्य**, एआईआर 1964 एससी 1272;
3. **भारत हेवी इलेक्ट्रिकल लिमिटेड बनाम श्रम न्यायालय, उत्तर प्रदेश मेरठ और अन्य**, (1999)3 यू पी एल बी ई सी 2098;
4. **हिन्दुस्तान पेपर कॉर्पोरेशन बनाम पूर्णेंदु चक्रबर्ती और अन्य,** (1996) 11 एससीसी 404; और

5. **स्कूटर्स इंडिया और अन्य बनाम विजय ई.वी. एल्ड्रेड,** (1998) 6 एससीसी 549।

8. श्री अमरेन्द्र नाथ त्रिपाठी, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री पी.के. सिन्हा, हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि प्रबंधन ने स्थायी आदेशों के खंड-19(ii) के प्रावधानों को अपनाया है, जो इस कारण से लागू नहीं है कि याचिकाकर्ता एक स्थायी कर्मचारी है, इसलिए स्थायी आदेशों के खंड-26 को खंड-27 के साथ पढ़ते हुए सहारा लिया जा सकता था और उसमें उल्लिखित प्रक्रिया का पालन करने के बाद दंड दिया जा सकता था। सुविधा के लिए, स्थायी आदेशों के खंड-19 को नीचे उद्धृत किया गया है:-

"19. रोजगार की समाप्ति:

(i) किसी स्थायी कर्मचारी की सेवा किसी भी पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को तीन महीने का लिखित नोटिस देकर या नोटिस के बदले समतुल्य वेतन/मजदूरी का भुगतान करके समाप्त की जा सकती है।

(ii) यदि कोई कर्मचारी 10 दिनों से अधिक समय तक अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहता है और मूल रूप से प्रदान किए गए या बाद में विस्तारित अवकाश की अवधि से अधिक समय तक अनुपस्थित रहता है, तो उसे अपनी नियुक्ति पर अपना अधिकार खो दिया हुआ माना जाएगा, जब तक कि वह वापस नहीं आता;

(क) अपना अधिकार खोने की तारीख से आठ दिनों के भीतर और
(ख) प्रबंधक को अपनी अनधिकृत अनुपस्थिति के कारणों की संतोषजनक व्याख्या करता है।

यदि कोई कर्मचारी अपनी नियुक्ति पर अपना अधिकार खो देता है, तो वह "बदली सूची" में रखे जाने का हकदार होगा।

(iii) यदि कोई कर्मचारी कंपनी द्वारा समाप्ति की नोटिस अवधि की समाप्ति से पहले छोड़ देता है तो उसे केवल उस अवधि के लिए भुगतान किया जाएगा जब वह वास्तव में काम करता है। यदि कोई कर्मचारी त्यागपत्र देने के अपने इरादे की नोटिस देने के बाद काम के लिए रिपोर्ट नहीं करता है, या कुछ दिनों के लिए कर्तव्य पर रिपोर्ट करता है और पूरी नोटिस अवधि की सेवा किए बिना दूर रहता है, तो उसे बिना नोटिस छोड़ने वाले कर्मचारी के रूप में माना जाएगा और नोटिस की अविस्तारित अवधि के लिए उसके वेतन/मजदूरी के समतुल्य राशि उसके अंतिम बकाया से वसूल की जाएगी।

(iv) यदि कोई कर्मचारी त्यागपत्र देने के अपने इरादे की नोटिस देता है, तो प्रबंधक/प्रबंधन त्यागपत्र को स्वीकार कर सकता है और उसे एक बार में या नोटिस अवधि की समाप्ति की तारीख से पहले किसी भी समय मुक्त

अनुपस्थित

कर सकता है, इस स्थिति में उसे केवल उस अवधि के लिए भुगतान किया जाएगा जब वह वास्तव में काम करता है।

(v) परिवीक्षाधीन, अस्थायी, स्थानापन्न और आकस्मिक कर्मचारियों की सेवाएं बिना किसी नोटिस या उसके बदले में मुआवजे के भुगतान के समाप्त की जा सकती हैं, लेकिन अस्थायी और परिवीक्षाधीन कर्मचारियों की सेवाएं दंड के रूप में तब तक समाप्त नहीं की जाएंगी जब तक कि उन्हें इन स्थायी आदेशों के खंड 29 में निर्धारित तरीके से उन पर लगाए गए आरोपों की व्याख्या करने का अवसर नहीं दिया गया हो।"

10. स्थायी आदेशों के खंड 26 और 27 वर्तमान मामले में लागू नहीं होंगे क्योंकि प्रबंधन ने स्थायी आदेशों के खंड-19(ii) के प्रावधानों का सहारा लिया था क्योंकि उक्त प्रावधान कर्मचारियों पर लागू होता है। याचिकाकर्ता स्थायी आदेशों के खंड-3 के अनुसार एक कर्मचारी है, जिसमें कर्मचारियों की छह श्रेणियां शामिल हैं। स्थायी आदेशों का खंड-19(ii) यह नहीं दर्शाता है कि यह खंड-3 की छह श्रेणियों में से किसी भी श्रेणी से संबंधित कर्मचारी पर लागू होगा।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने ***चांदू लाल*** (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय पर विशेष रूप से उक्त निर्णय के पैरा-8 पर निर्भरता रखी है, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:-

"8. श्रम न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमत होना कठिन है कि जब विश्वास की हानि के आधार पर सेवा समाप्त की जाती है तो आदेश कलंक के साथ नहीं होता है और समाप्ति से पहले कानून द्वारा परिकल्पित कार्यवाही की आवश्यकता नहीं होती है। किसी कर्मचारी में विश्वास की कमी उसके चरित्र में प्रतिकूल पहलू की ओर इंगित करती है क्योंकि आरोप का सही अर्थ यह है कि कर्मचारी आचरण के अपेक्षित मानक के अनुसार व्यवहार करने में विफल रहा है जिसने विश्वास की हानि से जुड़ी स्थिति को जन्म दिया है। किसी भी दृष्टिकोण से यह कर्मचारी की ओर से कर्तव्य में चूक है और इसलिए, प्रबंधन द्वारा लिया गया यह रुख कि विश्वास की हानि के लिए समाप्ति कलंक के बराबर नहीं है, को खारिज किया जाना चाहिए। हमारी राय में इस पहलू का निपटारा करने के लिए पूर्व निर्णयों या पाठ्य राय के संदर्भ द्वारा हमारे निष्कर्ष का समर्थन करना आवश्यक नहीं है क्योंकि मामले का सामान्य ज्ञान मूल्यांकन पर्याप्त है। औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 2 (oo) में 'छंटनी' को परिभाषित किया गया है और इसमें अनुशासनात्मक कार्रवाई के रूप में दंड के रूप में दिए गए नियोक्ता द्वारा सेवा की समाप्ति को शामिल नहीं किया गया है। यदि तत्काल मामले में समाप्ति को अपीलकर्ता से कलंक जुड़ने वाले आचरण पर आधारित माना जाता है, तो दंड के उपाय के रूप में समाप्ति को लागू करने के लिए पूर्व शर्त के रूप में अनुशासनात्मक कार्यवाही आवश्यक थी। स्वीकार्य रूप से यह नहीं किया गया है। इसलिए, समाप्ति का आदेश कानून में दोषपूर्ण है और पोषणीय नहीं हो सकता।"

12. उपरोक्त निर्णय में, विषय वस्तु कर्मचारी से जुड़े कलंक के संबंध में विश्वास की हानि है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि विश्वास की हानि के आधार पर सेवाएं समाप्त की गई थीं और नियोक्ता

द्वारा सेवा की समाप्ति दंड थी और यह पाया गया कि अपीलकर्ता से कलंक जोड़ने की निश्चित रूप से अनुशासनात्मक कार्यवाही अपनाकर जांच की जानी थी। उपरोक्त मामले का अनुपात वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता है क्योंकि प्रबंधन ने स्थायी आदेशों के खंड-19(ii) के प्रावधानों का सहारा लिया है और याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी करके न्यूनतम अवसर प्रदान किया गया था।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने ***अक्षय कुमार देब*** (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के पैराग्राफ 13, 17 और 20 पर भी निर्भरता रखी है और प्रस्तुत किया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 (2) के परिप्रेक्ष्य में, याचिकाकर्ता सुने जाने का हकदार है। उक्त मामले में, कर्मचारी/कर्मचारी ने कर्तव्य के लिए रिपोर्ट किया और सिविल सर्जन द्वारा जारी स्वास्थ्य का चिकित्सा प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया, लेकिन उसे कर्तव्य सौंपा नहीं गया। वह 13 सितंबर, 1956 तक कार्यालय में उपस्थित होता रहा जब उसे सूचित किया गया कि सरकार के दिनांक 28 अगस्त, 1956 के आदेश का संचालन निलंबित कर दिया गया है। वर्तमान मामले में, यह अभिलेख पर अंगीकृत है कि याचिकाकर्ता अनधिकृत रूप से अनुपस्थित था और उसने प्रबंधन को रिपोर्ट नहीं किया। इसलिए, प्रबंधन ने स्थायी आदेशों के खंड-19(ii) के परिप्रेक्ष्य में उसके खिलाफ कार्यवाही की, जो एक वैधानिक आवश्यकता है और उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद, याचिकाकर्ता का नाम संगठन के रोल से काट दिया गया।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने ***देवकीनंदन प्रसाद*** (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के पैराग्राफ-24 पर भी निर्भरता रखी है और प्रस्तुत किया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 के परिप्रेक्ष्य में, याचिकाकर्ता सुने जाने का हकदार है। पैराग्राफ-24 स्वयं यह बताता है कि कर्मचारी को कोई कारण बताओ नोटिस नहीं दिया गया था, जबकि वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया है और तत्पश्चात कई अनुस्मारक जारी किए गए हैं और तत्पश्चात प्रबंधन ने स्थायी आदेशों के खंड-19(ii) के अंतर्गत परिकल्पित प्रक्रिया का पालन करके, याचिकाकर्ता का नाम संगठन के रोल से काट दिया। इसलिए, उपरोक्त निर्णय भी वर्तमान मामले में लागू नहीं है।

15. नेशनल इंजीनियरिंग इंडस्ट्रीज लिमिटेड, जयपुर (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि प्रबंधन के लिए उपलब्ध दो प्रक्रियाओं में से, कर्मचारी के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए उसके द्वारा एक का सहारा लिया जा सकता है। उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 13 को यहां निकाला गया है:-

"13. हालांकि, यह तर्क दिया गया है कि स्थायी आदेशों में एक अन्य प्रावधान के अस्तित्व से कुछ अंतर होता है। स्थायी आदेशों के परिशिष्ट 'डी' में प्रमुख दुराचारों में से एक "दस लगातार दिनों से अधिक की अनुमति के बिना अनुपस्थिति" है। हमारी राय में यह एक वैकल्पिक प्रावधान है और इस मामले में अपीलकर्ता किसी भी एक प्रावधान का सहारा लेने के लिए स्वतंत्र था, जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता कि किसी विशेष प्रावधान का सहारा लेना दुर्भावनापूर्ण था। यह यहां प्रत्यर्थी का मामला नहीं है। परिस्थितियों में धारा जी में पूर्व स्थायी

आदेश को पूर्ण बल और प्रभाव में माना जाना चाहिए और हनुमान प्रत्यर्थी की सेवा स्वतः समाप्त हो गई जब वह अपने अवकाश की समाप्ति के 8 दिनों के भीतर उपस्थित नहीं हुआ जो 9 अप्रैल, 1965 को था।"

16. ***बकिंघम एंड कार्नेटिक कंपनी लिमिटेड*** (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि जहां पक्षकार सेवा की शर्तों और दशाओं पर सहमत होते हैं और उन्हें प्रमाणित स्थायी आदेशों में शामिल किया जाता है, सामान्य कानून के सिद्धांत या न्याय संगतता के विचार प्रासंगिक नहीं होंगे। उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ-5 को नीचे निकाला गया है:-

"5. अपीलकर्ता के लिए श्री शास्त्री का तर्क है कि वेंकटय्या का मामला स्थायी आदेश 8(ii) के प्रावधानों के अंतर्गत पूरी तरह से आता है और उच्च न्यायालय यह मानने में त्रुटि में था कि वेंकटय्या की अनुपस्थिति को माफ करने से इनकार करने का अपीलकर्ता का निर्णय या तो अनुचित या अनुपयुक्त था, या यह अधिनियम की धारा 73 के प्रावधानों का उल्लंघन करता था। आइए आगे बढ़ने से पहले पहले स्थायी आदेश संख्या 8(ii) की जांच करें। उक्त स्थायी आदेश इस प्रकार है:

"बिना अवकाश के अनुपस्थित: कोई भी कर्मचारी जो बिना अवकाश के लगातार आठ कार्य दिवसों तक अनुपस्थित रहता है, उसे बिना नोटिस के कंपनी की सेवा छोड़ दिया हुआ माना जाएगा जिससे उसका सेवा अनुबंध समाप्त हो जाएगा। यदि वह प्रबंधन को संतोषजनक स्पष्टीकरण देता है, तो अनुपस्थिति को बिना वेतन या महंगाई भत्ते के अवकाश में परिवर्तित कर दिया जाएगा। इस तरीके से कंपनी की सेवा छोड़ने वाले किसी भी कर्मचारी का मिलों में पुनः रोजगार के लिए कोई दावा नहीं होगा।

लेकिन यदि अनुपस्थिति प्रबंधन के संतोष के अनुसार बीमारी के कारण सिद्ध होती है, तो ऐसी अनुपस्थिति को चिकित्सा अवकाश में परिवर्तित कर दिया जाएगा जितनी अवधि के लिए कर्मचारी अनुमत भत्तों के साथ पात्र है।"

यह स्थायी आदेश प्रमाणित स्थायी आदेशों का एक भाग है जिन्हें 1957 में पक्षकारों के बीच एक मध्यस्थता अधिनिर्णय द्वारा संशोधित किया गया था। प्रासंगिक खंड का स्पष्ट अर्थ है कि यदि कोई कर्मचारी इसके पहले भाग की हानि के अंतर्गत आता है, तो यह अनुसरण करता है कि चूककर्ता कर्मचारी ने अपना सेवा अनुबंध समाप्त कर दिया है। खंड (ii) में पहला प्रावधान इस आधार पर आगे बढ़ता है कि बिना अवकाश के लगातार आठ दिनों की अनुपस्थिति इस निष्कर्ष की ओर ले जाएगी कि अनुपस्थित कर्मचारी ने अपना सेवा अनुबंध समाप्त करने का इरादा किया था। प्रमाणित स्थायी आदेश सेवा की प्रासंगिक शर्तों और दशाओं को वैधानिक रूप में दर्शाते हैं और वे पक्षकारों पर कम से कम उतने ही बाध्यकारी हैं, यदि अधिक नहीं, तो सेवा की समान शर्तों और दशाओं को शामिल करने वाले निजी अनुबंधों के समान। यह सच है कि सामान्य कानून के अंतर्गत यह निष्कर्ष कि किसी कर्मचारी ने सेवा को त्याग दिया है या छोड़ दिया है, आसानी से नहीं निकाला जाता है जब तक कि अनुपस्थिति की लंबाई और अन्य आसपास की परिस्थितियों से उस प्रभाव का निष्कर्ष वैध रूप से नहीं निकाला जा सकता है और यह माना जा सकता है कि कर्मचारी ने सेवा को त्यागने का इरादा किया था। सेवा का त्याग या छोड़ना हमेशा इरादे का सवाल है, और सामान्य रूप से, ऐसा इरादा किसी कर्मचारी को उस संबंध में पर्याप्त साक्ष्य के बिना जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। लेकिन जहां पक्षकार सेवा की शर्तों और

दशाओं पर सहमत होते हैं और उन्हें प्रमाणित स्थायी आदेशों में शामिल किया जाता है, सामान्य कानून के सिद्धांत या न्याय संगतता के विचार प्रासंगिक नहीं होंगे। तब यह प्रासंगिक शर्त की व्याख्या करने का मामला है। इसलिए, स्थायी आदेश 8(ii) का पहला भाग अनिवार्य रूप से इस निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि यदि कोई कर्मचारी बिना अवकाश के लगातार आठ दिनों तक अनुपस्थित रहता है, तो उसे अपना सेवा अनुबंध समाप्त कर दिया हुआ माना जाता है और इस प्रकार उसने अपना रोजगार छोड़ दिया या त्याग दिया है।"

17. ***भारत हेवी इलेक्ट्रिकल लिमिटेड*** (उपरोक्त) के मामले में, इस न्यायालय ने माना है कि 'त्याग' के मामले 'सेवा की समाप्ति' के मामलों से भिन्न हैं क्योंकि त्याग के मामले में यह कर्मचारी की स्वेच्छा है, जबकि समाप्ति के मामले में, यह नियोक्ता की इच्छा है जो कर्मचारी पर थोपी जाती है। वर्तमान मामला "त्याग" की शब्दावली में उपयुक्त है और इसे समाप्ति के रूप में नहीं माना जा सकता है। उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ-10, 12 और 13 को नीचे निकाला गया है:-

"10. सर्वोच्च न्यायालय ने बकिंघम मामले में पहली बार समान स्थायी आदेश से निपटा, जहां न्यायालय ने देखा, प्रासंगिक खंड का स्पष्ट अर्थ है कि यदि कोई कर्मचारी इसके पहले भाग की हानि के अंतर्गत आता है, तो यह अनुसरण करता है कि चूककर्ता कर्मचारी ने अपना सेवा अनुबंध समाप्त कर दिया है। खंड (ii) में पहला प्रावधान इस आधार पर आगे बढ़ता है कि बिना अवकाश के लगातार आठ दिनों की अनुपस्थिति इस निष्कर्ष की ओर ले जाएगी कि अनुपस्थित कर्मचारी ने अपना सेवा अनुबंध समाप्त करने का इरादा किया था। यह सच है कि सामान्य कानून के अंतर्गत यह निष्कर्ष कि किसी कर्मचारी ने सेवा को त्याग दिया है या छोड़ दिया है, आसानी से नहीं निकाला जाता है। सेवा का त्याग या छोड़ना हमेशा इरादे का सवाल है, और सामान्य रूप से ऐसा इरादा किसी कर्मचारी को उस संबंध में पर्याप्त साक्ष्य के बिना जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। लेकिन जहां पक्षकार सेवा की शर्तों और दशाओं पर सहमत होते हैं और उन्हें प्रमाणित स्थायी आदेशों में शामिल किया जाता है, सामान्य कानून के सिद्धांत या न्याय संगतता के विचार प्रासंगिक नहीं होंगे। तब यह प्रासंगिक शर्त की व्याख्या करने का मामला है। इसलिए, स्थायी आदेश 8 (ii) का पहला भाग अनिवार्य रूप से इस निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि यदि कोई कर्मचारी बिना अवकाश के लगातार आठ दिनों तक अनुपस्थित रहता है, तो उसे अपना सेवा अनुबंध समाप्त कर दिया हुआ माना जाता है और इस प्रकार उसने अपना रोजगार छोड़ दिया या त्याग दिया है।

12. त्याग का क्या प्रभाव है? इसका क्या अर्थ है? ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी त्याग को इस प्रकार परिभाषित करती है; सभी अधिकार, शीर्षक, दावे और कब्जे का स्वैच्छिक परित्याग, इसे पुनः प्राप्त न करने के इरादे के साथ। यह आगे कहती है कि सार्वजनिक कार्यालय का त्याग त्यागपत्र की एक प्रजाति है, लेकिन त्यागपत्र से भिन्न है क्योंकि त्यागपत्र एक औपचारिक परित्याग है, जबकि त्याग गैर-उपयोग के माध्यम से स्वैच्छिक परित्याग है। त्याग एक कर्मचारी द्वारा एक प्रकार की स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति है। यह धारा 2 (oo) के उप-खंड (a) के अपवाद के अंतर्गत आता है और छंटनी नहीं है। इस न्यायालय के एक अन्य एकल न्यायाधीश ने भी इसी तरह का विचार लिया है।

नियोक्ता पक्ष से कोई सकारात्मक कार्रवाई की आवश्यकता नहीं है

13. आइए इसे अलग कोण से देखें। छंटनी के लिए नियोक्ता की ओर से कुछ सकारात्मक कार्रवाई की आवश्यकता होती है। लेकिन यदि नियोक्ता द्वारा कुछ भी नहीं किया जाना है और स्थायी आदेश के अनुसरण में सेवाएं स्वतः समाप्त हो जाती हैं या कर्मचारी द्वारा कार्रवाई की गई मानी जाती है, तो कोई छंटनी नहीं हो सकती है। सर्वोच्च न्यायालय ने बकिंघम मामले में, यह विचार करते हुए कि क्या कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम की धारा 73 का कोई उल्लंघन था, माना, जहां कर्मचारी की सेवाओं की समाप्ति किसी अनुबंध या स्थायी आदेश से स्वतः अनुसरण करती है, निर्दिष्ट अवधि के लिए बिना अवकाश के कर्मचारी की अनुपस्थिति के कारण, ऐसी समाप्ति नियोक्ता की ओर से किसी सकारात्मक कार्य या आदेश का परिणाम नहीं है, और इसलिए, ऐसी समाप्ति पर धारा 73(1) में निहित निषेध लागू नहीं होगा।"

18. ***हिन्दुस्तान पेपर कॉर्पोरेशन*** (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के पैराग्राफ-12 में माना है कि उक्त खंड के अंतर्गत कार्रवाई करने से पहले, प्रस्तावित कार्रवाई के विरुद्ध कारण बताने का अवसर कर्मचारी को दिया जाना चाहिए और यदि कर्मचारी द्वारा बताया गया कारण अच्छा और स्वीकार्य है, तो यह अनुसरण करता है कि उक्त खंड के अनुसार कोई कार्रवाई नहीं की जानी है। इस प्रकार, कानून को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 1964 से ***बकिंघम एंड कार्नेटिक कंपनी लिमिटेड*** (उपरोक्त) के मामले से निपटाया गया है, जिसमें यह प्रावधान है कि अधिकार की हानि के मामले में, यह इस प्रभाव से जमा हो गया है कि हालांकि न्याय संगतता के सिद्धांत विशिष्ट प्रमाणित स्थायी आदेश के मामले में लागू नहीं होते हैं जहां पक्षकारों ने अंतिम बिंदु तक अनुबंध की शर्तों पर सहमति व्यक्त की है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन आवश्यक है। इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्थापित कानून के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान मामले में, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुपालन की ओर कर्मचारी को कम से कम एक नोटिस दिया जाना चाहिए, हालांकि कोई नियमित अनुशासनात्मक जांच की आवश्यकता नहीं हो सकती है, भले ही वही सेवा नियमों में प्रदान किया गया हो, जिस प्रक्रिया को वर्तमान मामले में अपनाया और पालन किया गया है। उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ-11 और 12 को नीचे निकाला गया है:-

"11. अपीलकर्ता-निगम के लिए उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री पी.पी. राव ने निष्पक्ष रूप से, हमारे विचार में सही ढंग से, स्वीकार किया कि नियम, अर्थात् नियम 23 (iv)(ई) को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को पढ़कर व्याख्या किया जाना चाहिए, अन्यथा इसे शाब्दिक रूप से पढ़ने से, यह मनमाना और अनुचित प्राधिकार का निहितार्थ होगा और निरस्त किए जाने योग्य होगा। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, यदि केवल पहले प्रत्यर्थी ने कारण बताओ नोटिस का ठीक से जवाब दिया होता तो निगम ने निगम के साथ पहले प्रत्यर्थी की नियुक्ति के अधिकार को काटने का चरम कदम नहीं उठाया होता।

12. हम मानते हैं कि अपीलकर्ता-निगम की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई इस स्वीकृति के परिप्रेक्ष्य में कि उक्त नियम को पढ़ा जाना चाहिए और प्रभावी किया जाना चाहिए, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के

अनुपालन के अधीन, यह नहीं कहा जा सकता कि नियम मनमाना या अनुचित या संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन में है। दूसरे शब्दों में, उक्त खंड के अंतर्गत कार्रवाई करने से पहले, प्रस्तावित कार्रवाई के विरुद्ध कारण बताने का अवसर कर्मचारी को दिया जाना चाहिए और यदि कर्मचारी द्वारा बताया गया कारण अच्छा और स्वीकार्य है, तो यह अनुसरण करता है कि उक्त खंड के अनुसार कोई कार्रवाई या तो अनुचित है या संविधान के अनुच्छेद 16 का उल्लंघन करती है।"

19. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रश्नगत मुद्दे पर कानून स्थापित करते हुए, ***डी.के. यादव बनाम जे.एम.ए. इंडस्ट्रीज लिमिटेड***, (1993) 3 एससीसी 259 के मामले में दिए गए निर्णय और समान प्रकृति के अन्य मामलों पर भी विचार किया है और देखा है कि अपीलकर्ता-निगम कारण बताओ देने का सहारा लेकर और किसी कर्मचारी का नाम काटने के लिए आदेश पारित करने में सही था और यह भी देखा कि इसके लिए कोई अनुशासनात्मक जांच की आवश्यकता नहीं थी।

20. प्राकृतिक न्याय के न्यूनतम सिद्धांतों का पालन करने के मुद्दे पर इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 883 (एसएस)/1993, राजेश कुमार बनाम हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड, दिनांक 06.04.1993 को निर्णीत, में विचार किया गया था, जिसमें यह माना गया था कि अधिकार की हानि के संबंध में हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड के स्थायी आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करने वाले, मनमाने और भेदभावपूर्ण हैं और भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 23 द्वारा प्रभावित हैं। विद्वान एकल न्यायाधीश के उक्त निर्णय को विशेष अपील संख्या 87/1993 के माध्यम से चुनौती दी गई थी और इस न्यायालय ने यह देखते हुए विशेष अपील को स्वीकार कर लिया कि स्थायी आदेशों को कानून की नजर में बुरा नहीं कहा जा सकता है और इसकी प्रयोज्यता बनाते समय, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए। उपरोक्त विशेष अपील में पारित निर्णय का प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत किया गया है:-

"उपरोक्त स्थायी आदेश, इसलिए, कानून में बुरे नहीं कहे जा सकते हैं लेकिन इसकी प्रयोज्यता बनाते समय, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए।

प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि प्रत्यर्थी को जारी किया गया नोटिस आदेश से प्रवाहित नहीं होता है, जो केवल उपरोक्त पैरा को उद्धृत करता है और प्रत्यर्थी की सेवाओं को समाप्त करता है। इस संबंध में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दर्ज निष्कर्ष किसी हस्तक्षेप की मांग नहीं करता है।

दावे के गुणों पर, हम यह भी अभिलेख पर रख सकते हैं कि प्रत्यर्थी, जो एक महीने से कम समय के लिए अनुपस्थित रहा और 1975 से उद्योग में सेवारत रहा है और इस न्यायालय के अंतरिम आदेश द्वारा जारी रखने की अनुमति भी दी गई है, सेवानिवृत्ति की आयु तक पहुंचने की संभावना है और इसलिए भी हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते हैं।

प्रमाणित स्थायी आदेशों के पैरा 21(ii) के संबंध में उपरोक्त निष्कर्ष के अधीन, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय के शेष भाग को बरकरार रखा जाता है। विशेष अपील में कोई बल नहीं है, जिसे इसके द्वारा खारिज किया जाता है।"

21. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने विभिन्न मामले कानूनों पर निर्भरता रखते हुए यह उचित ठहराने की कोशिश की कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 10.12.1990, 16.06.1992, 26.04.1994, 28.01.1997, 02.01.1999 और 12.06.2001 को अंडर पोस्टल सर्टिफिकेट (पंजीकृत नहीं) के माध्यम से विभिन्न अभ्यावेदन भेजे थे ताकि सक्षम प्राधिकारी को कर्तव्य से उसकी अनुपस्थिति के लिए अपना पक्ष रखा जा सके। याचिकाकर्ता के इस दृष्टिकोण की सराहना नहीं की जा सकती क्योंकि न तो उत्तरदायी विपक्षी को पंजीकृत दस्तावेज भेजा गया था और न ही उत्तरदायी विपक्षी के कार्यालय में उचित तरीके से कोई आवेदन प्रस्तुत किया गया था। अंडर पोस्टल सर्टिफिकेट की रसीद का प्रमाण एक ऐसा दस्तावेज है जिस पर भरोसा नहीं किया जा सकता और ऐसे दस्तावेज पर कोई निर्भरता नहीं रखी जा सकती क्योंकि इसका कोई साक्ष्य मूल्य नहीं है जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***शिव कुमार और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य***, (1994) 4 एससीसी 445 के मामले में माना है।

22. ***शिव कुमार और अन्य*** (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के पैराग्राफ-6 में इसके समक्ष प्रस्तुत डाक प्रमाणपत्र पर स्पष्ट रूप से अविश्वास किया है और पाया है कि किसी भी समय ऐसी डाक मुहरें प्राप्त करना कठिन नहीं है। इस प्रकार डाक प्रमाणपत्र चिकित्सा प्रमाणपत्र भेजने का विश्वसनीय साधन नहीं है, विशेष रूप से जब उनमें से कोई भी विभाग द्वारा प्राप्त नहीं किया गया है। उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ-6 को नीचे निकाला गया है:-

"6. हमने हमारे समक्ष प्रस्तुत प्रमाणपत्रों के आधार पर हाथ में विवाद का निर्णय करना सुरक्षित महसूस नहीं किया है, क्योंकि किसी भी समय ऐसी डाक मुहरें प्राप्त करना कठिन नहीं है। हमारे मन को आश्वस्त करने के लिए कि नोटिस वास्तव में संबंधित कर्मचारियों को भेजे गए थे, हमने उस आवेदन का अवलोकन किया जो प्रबंधन द्वारा अनुमति मांगने के लिए प्रस्तुत किया गया था। हमने ऐसा इसलिए किया क्योंकि नियम 76ए (2) की आवश्यकता है कि आवेदन तीन प्रतियों में किया जाएगा और इसकी प्रतियां नियोक्ता द्वारा संबंधित कर्मचारियों को दी जाएंगी और "उस प्रभाव का प्रमाण नियोक्ता द्वारा आवेदन के साथ भी प्रस्तुत किया जाएगा।" लेकिन आवेदन (अनुलग्नक ए) में "संबंधित कर्मचारियों को सेवा के प्रमाण" के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया है। प्रत्युत्तर शपथपत्र में यह कथन कि सेवा का प्रमाण निर्दिष्ट प्राधिकारी को प्रस्तुत किया गया था, इस संबंध में हमारे मन को संतुष्ट नहीं किया है।"

23. जहां तक रिट याचिका प्रस्तुत करने में विलंब के प्रश्न का संबंध है, यह अंगीकृत स्थिति है कि रिट याचिका दिनांक 25.07.2001 को प्रस्तुत की गई थी, जबकि आक्षेपित समाप्ति आदेश दिनांक 26/28.02.1991 को पारित किया गया था, इस प्रकार रिट याचिका अत्यधिक विलंबित है और विलंब से ग्रस्त है। याचिकाकर्ता की ओर से रिट याचिका प्रस्तुत करने में इतने लंबे और अनुचित विलंब के लिए कोई प्रशंसनीय स्पष्टीकरण सामने नहीं आया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्कूटर्स इंडिया और अन्य (उपरोक्त) के मामले में रिट याचिका प्रस्तुत करने में विलंब के मुद्दे पर विचार किया है और तथ्यों के विवादित प्रश्नों से जुड़ी सेवा की समाप्ति से संबंधित औद्योगिक विवाद के निर्णय के लिए रिट याचिका को सीधे स्वीकार करने पर विचार किया है। उपरोक्त

मामले में विलंब के प्रश्न पर विचार किया गया है और रिट याचिका प्रस्तुत करने में छह साल के विलंब को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निंदनीय माना गया है। उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ-2 को नीचे निकाला गया है:-

"2. उपरोक्त तथ्य अकेले यह संकेत करने के लिए पर्याप्त हैं कि उच्च न्यायालय के लिए तथ्यों के विवादित प्रश्नों से जुड़ी सेवा की समाप्ति से संबंधित औद्योगिक विवाद के निर्णय के लिए रिट याचिका को सीधे स्वीकार करने का कोई अवसर नहीं था जिसके लिए कर्मचारी के लिए औद्योगिक कानूनों के अंतर्गत उपाय उपलब्ध था। इसके अलावा, रिट याचिका उस तारीख से 6 साल से अधिक समय के बाद प्रस्तुत की गई थी जिस पर कार्रवाई का कारण उत्पन्न हुआ कहा जाता है और विलंब के लिए कोई सुसंगत स्पष्टीकरण नहीं होने के कारण, रिट याचिका को केवल विलंब के आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए था। उच्च न्यायालय के लिए स्थायी आदेशों के खंड 9.3.12 को अमान्य मानना भी असाधारण है। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने सही ढंग से उच्च न्यायालय के आदेश के इस भाग का समर्थन करने का कोई प्रयास नहीं किया। इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में कि हम उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त कर रहे हैं, हमें इस पहलू पर विस्तार से विचार करने की आवश्यकता नहीं है।"

24. तथ्यों और कानून के आधार पर निष्कर्षों को दर्ज करने के बाद, यह न्यायालय आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए गुण-दोष के आधार पर कोई अच्छा आधार नहीं पाता है क्योंकि वही स्थायी आदेशों में परिकल्पित उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद पारित किया गया है। याचिकाकर्ता दस वर्षों से अधिक समय तक मामले पर सोता रहा, इसलिए, रिट याचिका विलंब के आधार पर भी खारिज किए जाने योग्य है।

25. तदनुसार रिट याचिका ***निरस्त*** की जाती है।

26. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 5 ILRA 422

मूल अधिकारिता – सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 19.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान

रिट-A संख्या 4265 सन् 2024

सम्बद्ध रिट-A संख्या 6945 सन् 2024

नरेन्द्र सिंह ... **याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... **प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: मृदुला सक्सेना, मनीष मिश्रा, सर्वेश कुमार सक्सेना

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता: मुख्य स्थायी अधिवक्ता

विभागीय जाँच – प्रारम्भ – सिविल सेवा विनियम, विनियम 351-A – परिसीमा अवधि – आरोप-पत्र जारी करने में विलम्ब – अभिनिर्धारित: किसी सेवानिवृत्त कर्मचारी के विरुद्ध विभागीय जाँच केवल जाँच प्राधिकृत करने वाले आदेश से नहीं, अपितु आरोप-पत्र जारी होने पर प्रारम्भ होती है। CSR के विनियम 351-A के अंतर्गत कार्यवाही केवल सेवानिवृत्ति के चार वर्षों के भीतर के कदाचार या जाँच प्रारम्भ के लिए ही वैध है। आरोप-पत्र जारी करने में अत्यधिक एवं अस्पष्टीकृत विलम्ब से जाँच दूषित हो जाती है। दिनांक 19.01.2016 के जाँच आदेश एवं दिनांक 16.07.2024 के आरोप-पत्र को, जो वर्ष 2010-11 की घटना के लिए सेवानिवृत्ति के नौ वर्षों से अधिक समय बाद जारी किए गए, अवैध एवं मनमाना पाते हुए विखण्डित किया गया। याचिकाकर्ता दो माह के भीतर अनुपालन न होने पर 10% अर्थदण्ड सहित 7% ब्याज के साथ समस्त सेवानिवृत्ति परिलाभ प्राप्त करने का अधिकारी था।

उद्धृत वादों की सूची:

1. भारत संघ बनाम के.वी. जंकीरामन: [(1991) 4 SCC 109]
2. UCO बैंक बनाम राजिन्दर लाल कपूर: [(2007) 6 SCC 694]; कोल इण्डिया लिमिटेड बनाम सरोज मिश्रा: [(2007) 9 SCC 625]; UCO बैंक बनाम एम.बी. मोटवानी: [2023 AIR (SC) 5628]; स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया बनाम नवीन कुमार सिन्हा: [2024 LawSuit (SC) 1018]
3. म.प्र. राज्य बनाम बनी सिंह: [1990 AIR (SC) 1308]

4. उमेश कुमार सिन्हा बनाम उ.प्र. राज्य: [2021 (6) AllLJ 778]; अमरेश श्रीवास्तव बनाम म.प्र. राज्य: [2025 4 JT 174]

5. उ.प्र. पावर कार्पोरेशन लि. बनाम अनिल कुमार शर्मा: [विशेष अपील त्रुटिपूर्ण संख्या 646, 2021]

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान द्वारा उद्घोषित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मनीष मिश्रा एवं श्री सर्वेश कुमार सक्सेना तथा राज्य-प्रत्यर्थीगण के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री पंकज पटेल को सुना गया।

2. उपर्युक्त दोनों रिट याचिकाएं एक ही याचिकाकर्ता द्वारा प्राथमिकृत की गई हैं, अतः पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की सहमति से दोनों रिट याचिकाओं को संबद्ध किया गया है एवं एक सामान्य निर्णय द्वारा निर्णीत की जा रही हैं।

3. दोनों रिट याचिकाओं में पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा किए गए तर्कों एवं उनमें आदान-प्रदान किए गए आवेदन पत्रों के आधार पर रिट याचिकाओं में सम्मिलित प्रश्न यह है कि क्या विभागीय जांच उस तिथि से संस्थित मानी जाएगी जब विभागीय जांच के प्रारंभ करने का आदेश जारी किया जाता है अथवा उस तिथि से जब आरोप-पत्र आरोपी कर्मचारी को बचाव उत्तर मांगते हुए जारी किया जाता है।

4. प्रथम रिट याचिका अर्थात रिट-ए संख्या 4265/2024 में याचिकाकर्ता ने दिनांक 19.01.2016 को स्थानीय निकाय निदेशालय, लखनऊ के निदेशक द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी है जिसके द्वारा याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्ति के लगभग दस माह पश्चात वर्ष 2010-11 में किए गए कुछ कार्य के लिए, जो कथित रूप से उनके द्वारा किया गया था, लघु आरोपों पर विभागीय जांच आरंभ की गई; यद्यपि आक्षेपित आदेश दिनांक 19.01.2016 के तत्काल पश्चात कोई आरोप-पत्र जारी नहीं किया गया। आक्षेपित आदेश दिनांक 19.01.2016 नागरिक सेवा नियमावली (इसके पश्चात सीएसआर के रूप में संदर्भित) के विनियम 351-क के तहत जारी किया गया था। सीएसआर के विनियम 351-क का प्रावधान वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा क्योंकि ऐसी विभागीय जांच सेवानिवृत्त कर्मचारी के विरुद्ध संस्थित की जा सकती थी यदि कथित दुराचरण सेवानिवृत्त कर्मचारी द्वारा उसकी सेवानिवृत्ति से चार वर्ष के भीतर अथवा विभागीय जांच आरंभ करने वाले आदेश से चार वर्ष के भीतर किया गया हो किन्तु वर्तमान मामले में आरोप वर्ष 2010-11 से संबंधित हैं, याचिकाकर्ता दिनांक 31.03.2015 को सेवा से सेवानिवृत्त हुआ एवं विभागीय जांच आरंभ करने का आदेश दिनांक 19.01.2016 को जारी किया गया।

5. प्रथम रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा दिनांक 02.08.2024 के आदेश द्वारा विशिष्ट प्रश्न उठाया गया था कि क्या याचिकाकर्ता को कोई आरोप-पत्र जारी किया गया था, यदि हां, तो आरोप-पत्र की प्रति अभिलेख

पर लाते हुए एवं विभागीय जांच का परिणाम, यदि कोई हो, संक्षिप्त प्रति-शपथ-पत्र प्रस्तुत किया जाए; तत्पश्चात वर्ष 2010-11 की कथित घटना से संबंधित विभागीय जांच संचालित करने हेतु दिनांक 16.07.2024 के एक आरोप-पत्र की प्रति याचिकाकर्ता को दी गई। दिनांक 16.07.2024 के आरोप-पत्र को चुनौती देते हुए याचिकाकर्ता ने द्वितीय रिट याचिका अर्थात रिट-ए संख्या 6945/2024 प्रस्तुत की।

6. याचिकाकर्ता से संबंधित संक्षिप्त सूचना यह है कि याचिकाकर्ता को प्रारंभ में दिनांक 07.01.1987 को कनिष्ठ अभियंता (सिविल) के रूप में नियुक्त किया गया था एवं उ.प्र. पालिका (केंद्रीकृत सेवा) नियमावली, 1966 के नियम 31 के तहत दिनांक 07.03.1995 से तदर्थ कर्मचारी का दर्जा प्रदान किया गया। चूंकि याचिकाकर्ता को कोई नियमितीकरण एवं कोई सेवानिवृत्ति लाभ नहीं दिया गया है, अतः उन्होंने विभाग को अभ्यावेदन द्वारा अपनी शिकायत व्यक्त की एवं उत्तर में विभाग ने इस आधार पर अपनी कार्रवाई को न्यायोचित ठहराया है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही लंबित है।

7. श्री मिश्रा ने प्रस्तुत किया है कि रिट याचिकाओं के संबंधित पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत शपथ-पत्रों के अनुसार यह अंगीकृत स्थिति है कि याचिकाकर्ता दिनांक 31.03.2015 को नगर पंचायत की सेवा से सेवानिवृत्त हुआ एवं उसकी सेवाएं उ.प्र. पालिका (केंद्रीकृत सेवा) नियमावली, 1966 द्वारा आच्छादित हैं। यह भी एक अंगीकृत तथ्य है कि याचिकाकर्ता को आरोप-पत्र उसकी सेवानिवृत्ति के 9 वर्ष एवं 5 माह पश्चात अर्थात 16.07.2024 को जारी किया गया।

8. श्री मिश्रा ने आगे प्रस्तुत किया है कि नगर पंचायत, शोहरतगढ़, सिद्धार्थनगर में किया गया कार्य जिसके लिए सेवानिवृत्त व्यक्ति (याचिकाकर्ता) के विरुद्ध विलंबित रूप से कथित आरोप-पत्र जारी किया गया है, वर्ष 2010-11 का था एवं याचिकाकर्ता के विरुद्ध जारी आरोप-पत्र उक्त नगर पंचायत के अध्यक्ष के विरुद्ध भी कुछ समान आरोपों के साथ वर्ष 2015 में ही जारी किया गया था। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति से पूर्व उनसे दिनांक 23.03.2015 को स्पष्टीकरण मांगा गया था एवं उत्तर प्रस्तुत करने के लिए 15 दिन का समय दिया गया था, किन्तु उत्तर प्रस्तुत करने से पूर्व ही याचिकाकर्ता दिनांक 31.03.2015 को सेवा से सेवानिवृत्त हो गया। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता को न तो निलंबित किया गया था एवं न ही उसकी सेवा में रहते हुए कोई आरोप-पत्र जारी किया गया था।

9. श्री मिश्रा ने प्रस्तुत किया है कि प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 19.01.2016 को सीएसआर के विनियम 351-क के तहत याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही आरंभ करने की अनुमति ली, किन्तु तत्पश्चात आठ वर्ष व्यतीत हो गए, याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई कार्यवाही संस्थित नहीं की गई। अंततः जब याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष याचिका प्रस्तुत की तो लगभग नौ वर्ष एवं पांच माह के अत्यधिक अस्पष्ट विलंब के साथ आरोप-पत्र जारी किया गया है एवं स्थापित विधि के अनुसार सेवानिवृत्त कर्मचारी के विरुद्ध कार्यवाही ऐसे विलंबित चरण पर संस्थित नहीं की जा सकती, तब भी जब संबंधित प्राधिकारी ने सीएसआर के विनियम 351-क के तहत कार्यवाही की अनुमति ली हो।

असंवीक्षित

10. चूंकि याचिकाकर्ता को उसकी सेवानिवृत्ति पर अथवा उससे पूर्व आरोप-पत्र जारी नहीं किया गया था एवं तत्पश्चात, वर्ष 2010 में किए गए कथित दुराचरण के लिए याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही संस्थित करने हेतु सीएसआर के विनियम 351-क के तहत अनुमति लेने की तिथि से चार वर्ष पहले ही व्यतीत हो चुके हैं, अतः किसी भी रीति से विभाग द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध संस्थित की गई कार्यवाही विधिक रूप से पोषणीय नहीं है।

11. श्री मिश्रा ने शीर्ष न्यायालय के निर्णयों **यूनियन ऑफ इंडिया बनाम के.वी. जानकीरामन, (1991) 4 एससीसी 109, यूसीओ बैंक बनाम राजिंदर लाल कपूर, (2007) 6 एससीसी 694, कोल इंडिया लिमिटेड बनाम सरोज मिश्रा, (2007) 9 एससीसी 625, यूसीओ बैंक एवं अन्य बनाम एम.बी. मोटवानी (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से एवं अन्य, 2023 एआईआर (एससी) 5628 एवं स्टेट बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य बनाम नवीन कुमार सिन्हा, 2024, लॉसूट (एससी) 1018** का संदर्भ देते हुए प्रस्तुत किया है कि विभागीय कार्यवाही केवल तभी संस्थित मानी जाएगी जब आरोप-पत्र जारी किया जाता है।

12. श्री मिश्रा ने शीर्ष न्यायालय के निर्णयों **मध्य प्रदेश राज्य बनाम बानी सिंह, 1990 एआईआर (एससी) 1308, उमेश कुमार सिन्हा बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य, 2021 (6) ऑलएलजे 778 एवं अमरेश श्रीवास्तव बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2025 4 जेटी 174/2025 लॉसूट (एससी) 434** का भी संदर्भ दिया है एवं प्रस्तुत किया है कि आरोपी कर्मचारी के विरुद्ध कार्यवाही आरंभ करने में कोई विलंब नहीं होना चाहिए।

13. अपने इस तर्क के समर्थन में कि सीएसआर के विनियम 351-क के तहत प्रदान की गई मंजूरी वैध होगी यदि कथित दुराचरण कर्मचारी की सेवानिवृत्ति की तिथि से चार वर्ष के भीतर हुआ हो, उन्होंने इस न्यायालय के निर्णयों **उ.प्र. पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड एवं 4 अन्य बनाम अनिल कुमार शर्मा एवं अन्य, विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 646/2021 एवं सुनील कुमार कुशल बनाम राज्य शहरी विकास प्राधिकरण एवं अन्य, रिट-ए संख्या 43796/2007** पर निर्भरता रखी है।

14. *इसके विपरीत,* श्री पंकज पटेल ने प्रस्तुत किया है कि चूंकि सक्षम प्राधिकारी द्वारा दिनांक 19.01.2016 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभागीय जांच आरंभ करने का निर्णय लिया गया था, अतः सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए विभागीय जांच का आरंभ दिनांक 19.01.2016 से माना जाएगा, न कि उस तिथि से जब आरोप-पत्र दिनांक 16.07.2024 को जारी किया गया। उन्होंने शीर्ष न्यायालय के निर्णयों **दिल्ली डेवलपमेंट अथॉरिटी बनाम एच.सी. खुराना, (1993) 3 एससीसी 196 एवं यूनियन ऑफ इंडिया बनाम केवल कुमार, (1993) 3 एससीसी 204** पर निर्भरता रखी है। **एच.सी. खुराना** (उपरोक्त) में श्री पटेल ने पैरा-9 का संदर्भ दिया है, जबकि **केवल कुमार** (उपरोक्त) में उन्होंने पैरा 2 से 8 का संदर्भ दिया है।

15. श्री पटेल को **एच.सी. खुराना** (उपरोक्त) के पैरा-9 के विषय में सामना करना पड़ा जिसमें शीर्ष न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि "हमें कोई संदेह नहीं है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही आरंभ करने का निर्णय आरोप-पत्र जारी करने के पश्चात नहीं हो सकता, क्योंकि आरोप-पत्र जारी करना अनुशासनात्मक कार्यवाही आरंभ

करने के निर्णय का परिणाम है। आरोप-पत्र तैयार करना आरोपों की जांच हेतु उठाया गया प्रथम कदम है,...";, श्री पटेल शीर्ष न्यायालय के उपरोक्त अभिनिर्धारण का खंडन नहीं कर सके।

16. इसके अतिरिक्त, श्री पटेल, **केवल कुमार** (उपरोक्त) के पैरा 2 से 8 से यह प्रदर्शित नहीं कर सके कि विभागीय जांच उस तिथि से संस्थित मानी जाएगी जब विभागीय जांच आरंभ करने का आदेश जारी किया जाता है। वास्तव में, **केवल कुमार** (उपरोक्त) में तथ्य एवं परिस्थितियां पूर्णतः भिन्न हैं जिसमें केवल कुमार के विरुद्ध सीबीआई द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत की गई थी एवं प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के आधार पर उनकी पदोन्नति इत्यादि को सीलबंद लिफाफे में रखा गया था।

17. श्री पंकज पटेल को इस बिंदु पर भी सामना करना पड़ा कि क्या सीएसआर के विनियम 351-क का प्रावधान वर्तमान मामले में सही रूप से लागू किया गया है क्योंकि कथित घटना वर्ष 2010-11 में घटित हुई किन्तु विभागीय जांच आरंभ करने का आदेश दिनांक 19.01.2016 को अर्थात लगभग पांच वर्ष पश्चात जारी किया गया जबकि सीएसआर के विनियम 351-क के तहत मंजूरी किसी ऐसी घटना के संबंध में मांगी जा सकती थी जो ऐसी कार्यवाही संस्थित करने से चार वर्ष से अधिक पूर्व घटित नहीं हुई हो, श्री पटेल दिनांक 19.01.2016 के आक्षेपित आदेश का बचाव नहीं कर सके। यहां तक कि चार वर्ष की अवधि पहले ही समाप्त हो चुकी थी जब याचिकाकर्ता दिनांक 31.03.2015 को सेवानिवृत्त हुआ।

18. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने एवं अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने के पश्चात, मैं इस सुविचारित मत का हूं कि सीएसआर के विनियम 351-क के प्रावधानों का आह्वान करते हुए विभागीय कार्यवाही किसी ऐसी घटना के संबंध में होनी चाहिए जो ऐसी कार्यवाही संस्थित करने से चार वर्ष से अधिक पूर्व घटित नहीं हुई हो। स्वीकार्य रूप से, याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति के समय अथवा सेवानिवृत्ति से पूर्व उनके विरुद्ध कोई विभागीय जांच संस्थित नहीं की गई थी एवं उन्हें निलंबन के अधीन नहीं रखा गया था। वास्तव में, याचिकाकर्ता दिनांक 31.03.2015 को निष्कलंक सेवा अभिलेखों के साथ सेवानिवृत्त हुआ। यदि वर्ष 2010-11 से संबंधित कोई घटना थी तो याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभागीय जांच वर्ष 2015 से पूर्व उनके विरुद्ध आरोप-पत्र जारी करते हुए संस्थित की जा सकती थी किन्तु वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता के विरुद्ध दिनांक 19.01.2016 के आदेश के अनुसरण में संस्थित की गई विभागीय जांच एवं दिनांक 16.07.2024 को जारी आरोप-पत्र स्पष्ट रूप से अवैध, स्वेच्छाचारी, अनुचित, अनावश्यक एवं सीएसआर के विनियम 351-क के प्रावधानों के विपरीत है।

19. शीर्ष न्यायालय ने **के.वी. जानकीरामन** (उपरोक्त) में अभिनिर्धारित किया है कि "यह केवल तभी है जब अनुशासनात्मक कार्यवाही में आरोप-ज्ञापन अथवा आपराधिक अभियोजन में आरोप-पत्र कर्मचारी को जारी किया जाता है कि यह कहा जा सकता है कि कर्मचारी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही/आपराधिक अभियोजन आरंभ किया गया है।" इसके अतिरिक्त, शीर्ष न्यायालय ने **राजिंदर लाल कपूर** (उपरोक्त) में अभिनिर्धारित किया है कि किसी कर्मचारी के विरुद्ध कोई कार्यवाही केवल तभी लंबित मानी जाएगी जब आरोप-पत्र जारी किया जाता है। इसके अतिरिक्त, शीर्ष न्यायालय ने **सरोज मिश्रा** (उपरोक्त) में उपरोक्त विधिक स्थिति को पुनः दोहराया है। शीर्ष न्यायालय ने **एम.बी. मोटवानी (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से** (उपरोक्त) में विधि की उपरोक्त स्थिति को दोहराते हुए अभिनिर्धारित किया है कि विभागीय कार्यवाही केवल कारण बताओ सूचना जारी करने मात्र से संस्थित नहीं होती, बल्कि यह केवल तभी संस्थित होती है जब आरोप-पत्र जारी किया जाता है क्योंकि वह सक्षम प्राधिकारी द्वारा किसी

कर्मचारी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों पर मन के प्रयोग की तिथि है। हाल ही में, शीर्ष न्यायालय ने **नवीन कुमार सिन्हा** (उपरोक्त) में विधि की उपरोक्त स्थिति को पुनः दोहराया है एवं अभिनिर्धारित किया है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही केवल तभी संस्थित की जा सकती है जब आरोप-ज्ञापन जारी किया गया हो। यदि वर्ष 2010-11 की कथित घटना के लिए याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभागीय जांच संचालित करने की कोई आवश्यकता थी तो तत्काल विभागीय जांच संचालित की जा सकती थी किन्तु वही पांच वर्ष पश्चात दिनांक 19.01.2016 के आदेश द्वारा आरंभ की गई है एवं आरोपपत्र दिनांक 16.07.2024 को अर्थात कथित घटना से लगभग तेरह वर्ष पश्चात जारी किया गया है। विभागीय कार्यवाही आरंभ करने में उपरोक्त अत्यधिक विलंब को शीर्ष न्यायालय द्वारा **बानी सिंह** (उपरोक्त) में पैरा-4 के माध्यम से यह अभिनिर्धारित करते हुए अस्वीकृत एवं अनुमोदित नहीं किया गया है कि; "आरोप-ज्ञापन जारी करने में अत्यधिक विलंब के लिए कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं है एवं हम यह भी मानते हैं कि इस स्तर पर विभागीय जांच को आगे बढ़ने की अनुमति देना अनुचित होगा।" शीर्ष न्यायालय के **बानी सिंह** (उपरोक्त) के निर्णय का शीर्ष न्यायालय एवं इस न्यायालय द्वारा अनेक मामलों में निरंतर अनुसरण किया गया है। चूंकि विभागीय जांच उस तिथि से संस्थित मानी जाती है जब आरोप-पत्र जारी किया जाता है, अतः वर्तमान मामले में विभागीय जांच आरंभ करने में अत्यधिक विलंब विभागीय जांच संचालित करने के संपूर्ण उद्देश्य को दूषित कर देगा।

20. अतः, उपर्युक्त विचार किए गए विषयों एवं पक्षकारों द्वारा उद्धृत विधि के मामलों को दृष्टिगत रखते हुए, यह पूर्णतः स्पष्ट है कि विभागीय जांच उस तिथि से संस्थित मानी जाएगी जब आरोपी कर्मचारी को बचाव उत्तर मांगते हुए आरोप-पत्र जारी किया जाता है। वर्तमान मामले में, सीएसआर के विनियम 351-क के तहत चार वर्ष की सीमा का सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुपालन नहीं किया गया है क्योंकि विभागीय जांच दिनांक 16.07.2024 को संस्थित की गई है जब याचिकाकर्ता को आरोप-पत्र जारी किया गया है अर्थात प्रश्नगत घटना से लगभग तेरह वर्ष पश्चात, जो विधि के अधीन अनुज्ञेय नहीं है। केवल उपर्युक्त ही नहीं, विभागीय जांच आरंभ करने का दिनांक 19.01.2016 का आदेश भी कथित घटना की तिथि से चार वर्ष की अवधि से परे है जो वर्ष 2010-11 की है, अतः रिट-ए संख्या 4265/2024 में चुनौती के अधीन दिनांक 19.01.2016 का आक्षेपित आदेश एवं रिट-ए संख्या 6945/2024 में चुनौती के अधीन दिनांक 16.07.2024 का आरोप-पत्र विधि की दृष्टि में शून्य हैं, अतः वे अपास्त/निरस्त किए जाने योग्य हैं।

21. तदनुसार, दोनों रिट याचिकाएं **स्वीकार** की जाती हैं। उत्प्रेषण की प्रकृति की रिट जारी की जाती है जो दिनांक 19.01.2016 के आदेश एवं दिनांक 16.07.2024 के आरोप-पत्र को निरस्त करती है।

22. परमादेश की प्रकृति की रिट जारी की जाती है जो प्रत्यर्थीगण को निर्देशित करती है कि वे याचिकाकर्ता को पेंशन की बकाया राशि सहित सभी परिणामी सेवा लाभ, सभी सेवानिवृत्ति देय राशियां, यदि वे अभी तक नहीं दी गई हैं, इस आदेश की प्रमाणित प्रति की प्राप्ति की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर उन देय राशियों के उपचित होने की तिथि से वास्तविक भुगतान की तिथि तक 7% प्रतिवर्ष की दर से ब्याज के साथ भुगतान करें, जिसमें असफल रहने पर याचिकाकर्ता विलंबित भुगतान पर 10% प्रतिवर्ष की दर से ब्याज का हकदार होगा।

23. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 5 ILRA 427

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर

रिट ए संख्या-4492 वर्ष 2023

सम्बद्ध

रिट ए संख्या-2273 वर्ष 2023

प्रो. आनंद सुब्रमण्यम **... याचिकाकर्ता**

बनाम

भारत संघ और अन्य **... प्रतिपक्षीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री अवनीश त्रिपाठी

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता: ए.एस.जी.आई., श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव, श्री जतिन कुमार मिश्रा, श्री रोहन गुप्ता, श्री मनीष गोयल (वरिष्ठ अधिवक्ता)

सेवा कानून - अनुशासनात्मक कार्यवाही - आई.आई.टी. कानपुर संविधि, क़ानून 13(9)(बी) - प्रोफेसर द्वारा कदाचार - अनुसूचित जाति श्रेणी से संबंधित एक सहकर्मी के खिलाफ अपमानजनक टिप्पणी करने और नियुक्ति पर सवाल उठाते हुए अनधिकृत संकाय बैठक बुलाने का आरोप - जांच की गई, आरोप साबित पाए गए - बोर्ड ऑफ गवर्नर्स ने दो साल के लिए संचयी प्रभाव के बिना दो वेतन वृद्धि रोकने और तीन साल के लिए प्रशासनिक जिम्मेदारियों को संभालने से प्रतिबंधित करने का जुर्माना लगाया - वैधता।

अवधारित: स्थापित आरोप अनुशासन से अपमानित और गठित सेवा कदाचार; क़ानून 13(9)(बी)(ii) के तहत वृद्धि रोकने का जुर्माना अनुमेय है। हालांकि, तीन साल की अवधि के लिए प्रशासनिक जिम्मेदारियों को संभालने से मना करना क़ानून 13(9)(बी) के तहत गणना किए गए दंडों में से एक नहीं है। उक्त सजा आई.आई.टी. के अधिकार से बाहर है, स्पष्ट रूप से अवैध है, और इसे रद्द कर दिया जाता है। संचयी प्रभाव के बिना दो वेतन वृद्धि रोकने का जुर्माना बरकरार रहेगा।

रिट याचिका को आंशिक रूप से अनुमति दी गई।

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा पारित)

अनुवादित

1. यह निर्णय रिट-ए संख्या-4492 वर्ष 2023 और संबंधित रिट-ए संख्या-2273 वर्ष 2023 का फैसला करेगा। रिट-ए संख्या-4492 वर्ष 2023 को प्रमुख मामले के रूप में माना जाएगा। फिर भी, तथ्यों और सामग्री, जहां भी आवश्यक हो, संबंधित रिट याचिका में भी ध्यान दिया जाएगा।

2. आनंद सुब्रमण्यम, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर में सामग्री विज्ञान और इंजीनियरिंग विभाग में प्रोफेसर एक सम्मानित व्यक्ति हैं, जो अनुग्रह से गिर गए हैं। उनके खिलाफ कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 (संक्षेप में, 'पी.ओ.एस.एच. अधिनियम') के तहत कार्रवाई की गई है, अपने एक विद्वान के यौन उत्पीड़न के आरोप में दोषी ठहराया गया है और भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स द्वारा 'अनिवार्य सेवानिवृत्ति' के साथ दंडित किया गया है। आई.आई.टी. ने दिनांक 22.02.2023 के संकल्प के माध्यम से प्रस्ताव जारी किया है। उक्त प्रस्ताव को आई.आई.टी. के निदेशक द्वारा दिनांक 01.03.2023 के आदेश द्वारा अधिसूचित किया गया था।

3. प्रमुख रिट याचिका में, याचिकाकर्ता ने आई.आई.टी. के निदेशक द्वारा पारित 01.03.2023 के आदेश के साथ-साथ उक्त संस्थान के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स के दिनांक 22.02.2023 के संकल्प को भी चुनौती दी है। उन्होंने आगे प्रार्थना की है, सार रूप में, दो राहतों के माध्यम से कि उन्हें सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का निर्णय किसी भी तरह से प्रभावी नहीं किया जाए। याचिकाकर्ता द्वारा संबंधित रिट याचिका ऐसे समय में दायर की गई थी जब पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत कार्यवाही समाप्त नहीं हुई थी। इसलिए, उक्त याचिका अंतःक्षेपण को बाधित करती है, लेकिन फिर भी निर्णायक है, जैसे कि आई.आई.टी. की आंतरिक शिकायत समिति (संक्षेप में, 'आई.सी.सी.') द्वारा प्रस्तुत 30.09.2022 की जांच रिपोर्ट, आई.आई.टी. के निदेशक द्वारा जारी दिनांक 01.11.2022 का ज्ञापन, जिसमें याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट और 22.12.2022 के ज्ञापन के खिलाफ अपना प्रतिनिधित्व प्रस्तुत करने के लिए कहा गया है, आई.आई.टी. के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स द्वारा भी जारी किया गया है, जिसमें याचिकाकर्ता को सेवा से अनिवार्य सेवानिवृत्ति की प्रस्तावित सजा के खिलाफ कारण बताओ की आवश्यकता है। इस याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा एक और गंभीर चुनौती है और वह है भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर (कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न की शिकायतों की जांच) नियम, 2021 (संक्षेप में, 'आई.आई.टी. के नियम'), उक्त नियमों पर सवाल उठाते हुए पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के अधिकार क्षेत्र से बाहर है। यह आई.आई.टी. के नियमों की वैधता के लिए यह चुनौती है जिसने संबंधित रिट याचिका को जीवंत और जीवित रखा है, भले ही कोई याचिकाकर्ता के खिलाफ पारित अनिवार्य सेवानिवृत्ति के अंतिम प्रस्ताव/आदेशों में विलय किए गए अन्य अंतरिम आदेशों/निर्धारणों को मानता हो।

4. याचिकाकर्ता के खिलाफ इस मामले में शिकायतकर्ता आई.आई.टी. का पी.एच.डी. स्कॉलर है, जिसके शोध का याचिकाकर्ता मार्गदर्शन कर रहा था। पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत कार्यवाही पी.एच.डी. विद्वान द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ रखी गई शिकायत पर शुरू हुई, जिसे रिट याचिका के प्रतिपक्षी संख्या-7 के रूप में पेश किया गया है, जिसे गुमनाम रूप से 'शिकायतकर्ता, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर के निदेशक के माध्यम से सेवा प्रदान की जाएगी' के रूप में वर्णित किया गया है। यह शिकायत, जो दिनांक 24.06.2022 की है,

शिकायतकर्ता द्वारा पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत आई.आई.टी. के लिए गठित पीठासीन अधिकारी, आई.सी.सी. को प्रस्तुत की गई थी। याचिकाकर्ता, जैसा कि वह कहते हैं, आई.सी.सी. के पीठासीन अधिकारी से 30.06.2022 को एक ईमेल प्राप्त हुआ, जिसमें 24.06.2022 की शिकायत की एक प्रति और 30.06.2022 को एक नोटिस शामिल था, जिसमें उसे 15.07.2022 को आई.सी.सी. के सामने पेश होने की आवश्यकता थी।

5. यह याचिकाकर्ता का मामला है कि नोटिस में उस नियम या क़ानून का उल्लेख नहीं किया गया था, जिसके संदर्भ में इसे जारी किया गया था, और इसके कारण याचिकाकर्ता ने आई.सी.सी. के पीठासीन अधिकारी को दिनांक 06.07.2022 का एक पत्र संबोधित किया। जवाब में, आई.सी.सी. के पीठासीन अधिकारी ने याचिकाकर्ता को 12.07.2022 को समन जारी किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ उनके खिलाफ मामले में कार्रवाई करने के लिए आई.सी.सी. के अधिकार का संकेत दिया गया था। समन में यह संकेत दिया गया था कि दिनांक 30.06.2022 का नोटिस आई.आई.टी. के नियमों के नियम 18 के तहत जारी किया गया था। समन में आगे कहा गया था कि याचिकाकर्ता को 15.07.2022 को सुबह 16:00 बजे आई.सी.सी. के समक्ष 'FB212' के रूप में वर्णित स्थान पर व्यक्तिगत रूप से शिकायत के जवाब के साथ उपस्थित होने के लिए कहा गया था। याचिकाकर्ता 15.07.2022 को आई.सी.सी. के समक्ष पेश हुआ और दो छोटे प्रस्तर-का जवाब दिया: पहले में, उसने समन स्वीकार किया, और दूसरे में, उसने शिकायत में आरोपों से इनकार किया। उन्होंने कहा कि शिकायत झूठी और प्रेरित थी।

6. आई.सी.सी. ने 15.07.2022 को शिकायत की जांच शुरू की। याचिकाकर्ता का कहना है कि 15.07.2022 को हुई सुनवाई के दौरान, उन्होंने उस दिन के एक पत्र द्वारा आई.सी.सी. से अनुरोध किया था कि वह उनका बचाव करने के लिए कानूनी रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति को नियुक्त करने की अनुमति दे, क्योंकि आई.सी.सी. के सदस्यों में से एक अधिवक्ता था। याचिकाकर्ता का मामला है कि सुनवाई के दौरान उन्हें सूचित किया गया कि उन्हें शिकायत से संबंधित किसी भी मामले पर परामर्श करने की अनुमति नहीं है। यह भी कहा जाता है कि शिकायतकर्ता को एक अलग कमरे में बैठने के लिए कहा गया था और उससे लिखित में सवाल पूछे जा सकते थे। याचिकाकर्ता के अनुसार, 15.07.2022 को सुनवाई समाप्त होने पर, आई.सी.सी. ने इस बहाने दैनिक आदेश-पत्र की एक प्रति प्रदान करने से इनकार कर दिया कि यह एक गोपनीय दस्तावेज था। पूर्वोक्त सुनवाई के समापन के तुरंत बाद, याचिकाकर्ता ने आई.सी.सी. को एक पत्र भेजा, जिसमें कार्यवाही में अवैधता को अभिलेख में लाया गया। उनका कहना है कि उसी दिन, 15.07.2022 को, याचिकाकर्ता को आई.आई.टी. के निदेशक से जवाब मिला, जिसमें उन्हें सूचित किया गया कि जांच आई.आई.टी. के नियमों के अनुसार की जाएगी, क्योंकि आई.आई.टी. केंद्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1965 (संक्षेप में, 'सी.सी.एस. नियम') द्वारा शासित नहीं था। निदेशक का यह जवाब याचिकाकर्ता के दिनांक 15.07.2022 के पत्र के जवाब में आया, जिसका पहले ही उल्लेख किया गया है, जहां उनके द्वारा निम्नलिखित शब्दों में स्पष्टीकरण मांगा गया था:

"4) यह तत्काल स्पष्ट करने का अनुरोध है कि क्या

(ए) नए अधिसूचित आई.आई.टी. के आईसीएसएच नियमों के तहत उस कर्मचारी पर तुरंत सजा लगाई जाएगी, जिसके खिलाफ आई.सी.सी. द्वारा नए अधिसूचित भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर (कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न की शिकायतों की जांच) नियम, 2021 के तहत जांच की जाती है

या

(ख) आई.सी.सी. द्वारा की गई जांच के बाद, आई.सी.सी. की रिपोर्ट को सी.सी.एस. (सी.सी.ए.) नियम, 1965 के नियम 14(2) के तहत विचार करने और निर्णय लेने के लिए अनुशासन प्राधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा कि क्या कर्मचारी के विरुद्ध कदाचार या कदाचार के किसी आरोप की सच्चाई की जांच करने के लिए आधार हैं और यदि अनुशासनिक प्राधिकारी यह निर्णय लेता है कि जांच की आवश्यकता है, सी.सी.एस. (सी.सी.ए.) नियम, 1965 के नियम 14 में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार कदाचार या कदाचार के आरोपों की जांच करने के लिए।

7. याचिकाकर्ता का दावा है कि किसी कर्मचारी या शिक्षक के खिलाफ घरेलू जांच करने के तरीके के संबंध में आई.आई.टी. के क़ानून चुप हैं, और इसलिए, यह सी.सी.एस. नियमों का नियम 14 है जो लागू होगा। यह भी उनका मामला है कि आई.आई.टी. के कर्मचारियों के खिलाफ कदाचार के मामलों में, घरेलू जांच हमेशा सी.सी.एस. नियमों के अनुसार की जाती रही है, और इस कार्रवाई को न्यायालयों द्वारा बरकरार रखा गया है। याचिकाकर्ता विशेष रूप से अनुरोध करता है कि सी.सी.एस. नियमों के नियम 14 के उप-नियम (2) के प्रावधान के मद्देनजर, यौन उत्पीड़न की शिकायतों की जांच करने की प्रक्रिया प्रदान की गई है। इसलिए, आई.आई.टी. के लिए पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत जांच करने के लिए आई.आई.टी. के नियम बनाने का कोई अवसर या आवश्यकता नहीं थी। यदि भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान अभी भी यौन उत्पीड़न की शिकायतों की जांच करने के लिए अपने स्वयं के नियम बनाना चाहता है, तो यह नियम बनाने के लिए आवश्यक था कि वह जांच किस तरीके से की जाएगी, न कि केवल नियम 30 में जो कहा गया है, वह यह बताने के लिए कि *शिकायत की जांच समिति द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार की जाएगी।*

8. 16.07.2022 को, याचिकाकर्ता को आई.सी.सी. के पीठासीन अधिकारी से एक ईमेल प्राप्त हुआ, जिसमें शिकायत दर्ज करते समय शिकायतकर्ता द्वारा प्रदान किए गए गवाहों की एक सूची शामिल थी। यह कहा गया था कि इस सूची को उस समय शिकायत के साथ संलग्न नहीं किया जा सका जब इसकी एक प्रति 30.06.2022 को निरीक्षण के कारण याचिकाकर्ता को भेजी गई थी। याचिकाकर्ता को गवाहों की सूची और दस्तावेजी सबूतों के साथ छह प्रतियों में अपना विस्तृत जवाब प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था, जिस पर वह भरोसा करने की कोशिश कर सकता है, सुनवाई की अगली निर्धारित तारीख 18 जुलाई को शाम 4:00 बजे निर्धारित की गई थी। याचिकाकर्ता ने आई.आई.टी. के निदेशक को दिनांक 18.07.2022 को एक पत्र संबोधित करते हुए कहा कि उसके खिलाफ शिकायत को पहली बार में अनुशासनात्मक प्राधिकरण के समक्ष रखा जाए ताकि वह प्राधिकरण शिकायत पर एक राय बना सके और यदि आवश्यक हो, तो सी.सी.एस. नियमों के नियम 14 के तहत परिकल्पित तरीके से जांच का आदेश दे सके। याचिकाकर्ता ने अपने पत्र में कहा कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा

जांच करना उचित पाया जाता है, तो याचिकाकर्ता को निर्धारित प्रारूप में एक उचित आरोप-पत्र जारी किया जाना चाहिए ताकि वह ठीक से बचाव कर सके। याचिकाकर्ता के इस अनुरोध को भी निदेशक ने उसी दिन, 18 जुलाई, 2022 को तुरंत खारिज कर दिया था।

9. आई.सी.सी. के समक्ष नियमित सुनवाई 27.07.2022 को शुरू हुई, जहां याचिकाकर्ता ने ऐसी मौलिक प्रक्रियाओं के उल्लंघन का आरोप लगाया, जो उनके अनुसार, प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन करती है और इसके परिणामस्वरूप उनके मामले पर गंभीर पूर्वाग्रह होता है। याचिकाकर्ता के अनुसार, उन्हें शिकायतकर्ता से जिरह करने के लिए कहा गया था, जो सीडब्ल्यू-1 के रूप में अपने स्वयं के गवाह के रूप में पेश हुई थी, बिना उसकी मुख्य परीक्षा दर्ज किए बिना। आई.सी.सी. ने जिरह के हिस्से के रूप में याचिकाकर्ता द्वारा शिकायतकर्ता से पूछे गए कई सवालों को अस्वीकार कर दिया। उनका कहना है कि आई.सी.सी. ने खुद शिकायतकर्ता के लिए जवाब दिया, कई सवालों के जवाब पूरे किए और सुधार किए। आई.सी.सी. ने यह सुनिश्चित नहीं किया कि शिकायतकर्ता ने कुछ सवालों के जवाब दिए जिन्हें उसे रखने की अनुमति दी गई थी। आई.सी.सी. ने शिकायतकर्ता द्वारा 27.07.2022 को दिए गए अतिरिक्त दस्तावेजों और नए गवाहों की एक सूची को भी आसानी से स्वीकार कर लिया, जिन्हें शिकायत के साथ कभी भी उद्धृत नहीं किया गया था, जांच शुरू होने से पहले इन दस्तावेजों को जमा नहीं करने या गवाहों का हवाला दिए बिना। याचिकाकर्ता का यह भी मामला है कि आई.सी.सी. ने शिकायतकर्ता को एक दस्तावेज तैयार करने में मदद करने के लिए प्रयोगशाला पर छापा मारा, जहां याचिकाकर्ता ने काम किया और तीन तारीखों पर अवैध तलाशी और जब्ती की। याचिकाकर्ता को अवसर से वंचित करते हुए कार्यवाही एकपक्षीय आयोजित की गई, जब वह बाध्यकारी परिस्थितियों के कारण उपस्थित नहीं हो सका।

10. यह भी कहा जाता है कि याचिकाकर्ता को शिकायतकर्ता के गवाहों में से एक, अर्थात् सीडब्ल्यू-3 से पूछताछ करने के अवसर से वंचित कर दिया गया था। याचिकाकर्ता द्वारा आई.सी.सी. को शिकायतकर्ता के गवाहों से पहले, उनके दौरान और बाद में कई प्रश्न पूछने का आरोप लगाया गया है, जिसका उद्देश्य स्पष्टीकरण मांगना है, लेकिन वास्तव में, उनके बयानों में विसंगतियों को सुलझाना और याचिकाकर्ता के खिलाफ अतिरिक्त सामग्री और आरोप लाना, जैसा कि वह इसका वर्णन करना चाहता है। याचिकाकर्ता द्वारा यह भी दलील दी गई है कि 01.08.2022 को, सीडब्लू-1 की गवाही समाप्त होने के बाद, आई.सी.सी. ने याचिकाकर्ता को 04.08.2022 को जिरह के लिए अपना बयान प्रस्तुत करने का निर्देश दिया। उनका कहना है कि यह अपनाने की सबसे विषम प्रक्रिया थी, क्योंकि याचिकाकर्ता के बयान का चरण अभी तक नहीं पहुंचा था, शिकायतकर्ता का मामला अभी शुरू हुआ है। यह भी कहा गया है कि 28.07.2022 को नियमित सुनवाई शुरू होने के बाद, याचिकाकर्ता को दैनिक आदेश-पत्र और गवाहों के बयानों की प्रतियां प्रदान नहीं की गईं। बार-बार अनुरोध करने के बाद, आई.सी.सी. ने दिनांक 05.08.2022 की दैनिक आदेश-पत्रक और उस तारीख को दर्ज किए गए बयान की एक-एक प्रति प्रदान की, लेकिन पिछले दिनों के आदेश-पत्रक और दर्ज किए गए बयानों की प्रतियां प्रदान नहीं की गईं। तीन सप्ताह की अनुचित और अविवेकपूर्ण देरी के बाद 16.08.2022 को उनकी आपूर्ति की गई थी, जैसा कि याचिकाकर्ता इसे कॉल करने का विकल्प चुनता है। फिर से, निर्धारित सुनवाई की तारीखों में से एक पर, यानी 23.08.2022 को, याचिकाकर्ता अचानक बीमार हो गया। उन्होंने आई.सी.सी. को अपनी बीमारी के बारे में

सूचित किया और 23.08.2022 को सुबह 8.35 बजे भेजे गए ईमेल द्वारा स्थगन का अनुरोध किया। स्थगन के अनुरोध को खारिज कर दिया गया और 23.08.2022 को एकपक्षीय सबूतों पर सुनवाई की गई। आई.सी.सी. ने 23.08.2022 को याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति में और शिकायतकर्ता के मामले को बंद करने से पहले बचाव पक्ष के साक्ष्य की सुनवाई शुरू की।

11. यह याचिकाकर्ता का मामला भी है कि जब उसने अपने बचाव में प्रस्तुत किए जाने वाले दस्तावेजों की सूची प्रस्तुत की, तो आई.सी.सी. ने मौखिक रूप से उसे उन दस्तावेजों में से प्रत्येक की प्रासंगिकता को इंगित करने का निर्देश दिया। यह उक्त कारण से है कि याचिकाकर्ता ने आई.सी.सी. को दिनांक 27.08.2022 को एक पत्र प्रस्तुत किया, जिसमें दस्तावेजों की प्रासंगिकता का संकेत दिया गया था। याचिकाकर्ता ने यह भी शिकायत की है कि आई.सी.सी. बार-बार अनुरोध और अनुस्मारक के बावजूद याचिकाकर्ता द्वारा मांगे गए दस्तावेजों को तलब करने में विफल रही और उनसे परहेज किया।

12. प्रार्थना पर सुनवाई की अंतिम तिथि यानी 14.09.2022 को ही विचार किया गया था और उस दिन, आई.सी.सी. ने याचिकाकर्ता द्वारा पेश किए जाने वाले 11 दस्तावेजों में से 10 को तलब करने से इनकार कर दिया। इसके बाद जांच को एकमात्र दस्तावेज पेश किए बिना बंद कर दिया गया, जिसे आई.सी.सी. ने याचिकाकर्ता की ओर से अनुमति दी थी, जिससे उसका बचाव पंगु हो गया, जैसा कि याचिकाकर्ता का कहना है। यह तब याचिकाकर्ता का मामला है कि 24 गवाहों में से, जिन्हें उसकी ओर से आर.डब्ल्यू.-1 से आर.डब्ल्यू.-24 के रूप में पेश किया गया था, उन्हें सबूत पेश करने की अनुमति नहीं थी। आई.सी.सी. ने याचिकाकर्ता को अपने गवाहों से मुख्य परीक्षा करने की अनुमति नहीं दी। इसके बजाय, आई.सी.सी. ने सभी 24 गवाहों से खुद जांच की, उन बयानों को उनके मुख्य परीक्षण के रूप में दर्ज किया। इसके बाद याचिकाकर्ता के गवाहों से न केवल शिकायतकर्ता द्वारा, बल्कि आई.सी.सी. द्वारा भी जिरह की गई। इसलिए, याचिकाकर्ता का मामला है कि आई.सी.सी. ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए कार्यवाही की, उसे निष्पक्ष सुनवाई से वंचित कर दिया, और जांच के संचालन में पूर्वाग्रह और दुर्भावनापूर्ण काम किया। उन्होंने शिकायतकर्ता को अनुचित लाभ देने के लिए मनमाने तरीके से जांच की और याचिकाकर्ता के बचाव पर पूरी तरह से पूर्वाग्रह रखा। उसी शैली के उल्लंघन के कई और विवरण हैं, जहां याचिकाकर्ता प्राकृतिक न्याय को एक कारण कहता है, जिसके परिणामस्वरूप उसके प्रति पूर्वाग्रह होता है। इस फैसले में बाद में इन पर ध्यान दिया जाएगा।

13. याचिकाकर्ता ने विशेष रूप से एक मामले की दलील दी है कि आई.आई.टी. के पास धारा 11(1) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत आई.आई.टी. के नियम बनाने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। याचिकाकर्ता के अनुसार, पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत शिकायत की जांच नियोक्ता पर लागू सेवा नियमों के प्रावधानों के अनुसार की जा सकती है, और जहां ऐसा कोई नियम नहीं बनाया गया है, इसे निर्धारित तरीके से किया जाना है। पी.ओ.एस.एच. अधिनियम की धारा 2(के) के तहत 'निर्धारित तरीके' को अंतिम उल्लिखित अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों द्वारा निर्धारित करने के लिए परिभाषित किया गया है। पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत नियम बनाने की शक्ति केंद्र सरकार में निहित है, जो उस सरकार द्वारा

आधिकारिक राजपत्र में एक अधिसूचना द्वारा की जानी है। केंद्र सरकार ने धारा 29 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत नियम बनाए हैं, अर्थात कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) नियम, 2013 (संक्षेप में, 'पी.ओ.एस.एच. नियम')। इसलिए, पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत शिकायत की जांच या तो नियोक्ता की स्थापना पर लागू सेवा नियमों के अनुसार की जा सकती है, और जहां ऐसे कोई नियम मौजूद नहीं हैं, पी.ओ.एस.एच. नियमों के अनुसार। उक्त संविधि के तहत शिकायत की जांच करने के लिए पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत नियम बनाने के लिए नियोक्ता के पास कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। इसलिए, याचिकाकर्ता की ओर से यह आग्रह किया जाता है कि याचिकाकर्ता के मामले में आई.आई.टी. के नियमों के अनुसार की गई जांच, जो आई.आई.टी. द्वारा पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत की गई है, अंतिम बार उल्लिखित अधिनियम के अधिकार क्षेत्र से बाहर है, जिससे कार्यवाही शून्य हो जाती है।

14. याचिकाकर्ता ने 26.09.2022 को अपने बचाव का लिखित संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता को 01.11.2022 को एक ज्ञापन प्राप्त हुआ, जिसमें आई.आई.टी. के निदेशक ने आई.सी.सी. की 30.09.2022 की रिपोर्ट की एक प्रति अग्रेषित की। याचिकाकर्ता को उक्त रिपोर्ट के खिलाफ अपना अभ्यावेदन, यदि कोई हो, 16.11.2022 तक प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था। याचिकाकर्ता ने आई.सी.सी. की रिपोर्ट के खिलाफ 16.11.2022 को एक विस्तृत अभ्यावेदन प्रस्तुत किया, जिसके बाद 30.11.2022 को एक और पत्र जारी किया गया। इसके बाद उन्हें आई.आई.टी. के निदेशक से 22.12.2022 को एक ज्ञापन प्राप्त हुआ, जिसमें कहा गया था कि आई.आई.टी. के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स ने 11.12.2022 को अवधारित अपनी 251वीं बैठक में जांच रिपोर्ट और याचिकाकर्ता के 04.11.2022, 08.11.2022 और 16.11.2022 के अभ्यावेदन के साथ-साथ दिनांक 30.11.2022 को एक अन्य अभ्यावेदन पर सावधानीपूर्वक विचार किया था, और उचित विचार-विमर्श के बाद, सर्वसम्मति से अभ्यावेदनों को अस्वीकार करने और आई.सी.सी. द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट को स्वीकार करने का निर्णय लिया।

15. दिनांक 22.12.2022 के ज्ञापन में यह भी देखा गया था कि याचिकाकर्ता को पहले उसकी देखरेख में काम करने वाली एक अन्य छात्रा का यौन उत्पीड़न करने का दोषी ठहराया गया था, जहां बोर्ड ऑफ गवर्नर्स ने 03.09.2021 को आयोजित अपनी 242वीं बैठक में तीन साल के लिए संचयी प्रभाव से वेतन वृद्धि रोकने का जुर्माना लगाने का संकल्प लिया था और सजा का उक्त आदेश अभी भी लागू था। संदर्भ के तहत ज्ञापन में कहा गया है कि याचिकाकर्ता के पिछले कदाचार के साथ-साथ अब उत्पन्न हो रहे कदाचार को देखते हुए, बोर्ड व्यापक विचार-विमर्श के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि वह आई.आई.टी. की सेवा में बने रहने के लिए उपयुक्त व्यक्ति नहीं था। इसलिए, बोर्ड ने आई.आई.टी. के क़ानून के क़ानून 13(9)(बी)(बी)(वी) के संदर्भ में अनिवार्य सेवानिवृत्ति का जुर्माना देने का प्रस्ताव दिया था। तदनुसार, बोर्ड ने याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी करने का निर्देश दिया था, जिसमें 15 दिनों के भीतर उनका स्पष्टीकरण/प्रतिनिधित्व मांगा गया था कि प्रस्तावित जुर्माना क्यों नहीं दिया जाए। इस मामले को याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन, यदि कोई हो, के

साथ अंतिम निर्णय के लिए बोर्ड के समक्ष आने का निर्देश दिया गया था। इसलिए, याचिकाकर्ता को उसे दिए जाने वाले प्रस्तावित जुर्माने के खिलाफ एक अभ्यावेदन प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था।

16. याचिकाकर्ता ने 30.09.2022 की जांच रिपोर्ट, आई.आई.टी. के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स के 27.10.2022 के संकल्प, 01.11.2022 के ज्ञापन, 11.12.2022 के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स के संकल्प और 22.12.2022 के ज्ञापन को चुनौती देते हुए रिट-ए संख्या-121 वर्ष 2023 की स्थापना की। उपरोक्त रिट याचिका को 01.02.2023 को एक नई याचिका दायर करने की स्वतंत्रता के साथ वापस लिए जाने के रूप में खारिज कर दिया गया था। इसके बाद याचिकाकर्ता ने 22.12.2022 के ज्ञापन के खिलाफ चार संख्या-के अभ्यावेदन प्रस्तुत किए, जिसमें उसे प्रस्तावित दंड के खिलाफ कारण बताओ नोटिस जारी किया गया। ये चार अभ्यावेदन 4, 5, 6 और 7 जनवरी, 2023 को दिनांकित थे। दिनांक 22.12.2022 के कारण बताओ के खिलाफ इन अभ्यावेदनों के अलावा, याचिकाकर्ता ने 29.01.2023 को आई.आई.टी. के नियमों के नियम 45 के तहत अपील दायर की, जिसमें आई.सी.सी. द्वारा प्रस्तुत 30.09.2022 की जांच रिपोर्ट को चुनौती दी गई। इस अपील में, रिपोर्ट पर क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटियों के साथ-साथ निष्कर्षों के गुण-दोष पर सवाल उठाया गया था।

17. बोर्ड ऑफ गवर्नर्स ने दिनांक 22.02.2023 के अपने संकल्प द्वारा, जो काफी वाक्पटु है, पहले भाग में नियम 45 के तहत याचिकाकर्ता की अपील को खारिज कर दिया, और दूसरे में, उनके अभ्यावेदन - सभी चार को कारण बताओ नोटिस दिनांक 22.12.2022 के खिलाफ खारिज कर दिया, और याचिकाकर्ता को सेवा से अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश के साथ दंडित किया। बोर्ड ऑफ गवर्नर्स के दिनांक 22.02.2023 के संकल्प के अनुसार, आई.आई.टी. के निदेशक ने 01.03.2023 को एक कार्यालय आदेश जारी किया, जिसमें बोर्ड के निर्णय को औपचारिक रूप से अधिसूचित किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता को निदेशक के आदेश की तारीख से अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सजा दी गई।

18. आई.आई.टी. के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स के दिनांक 22.02.2023 के संकल्प और निदेशक के 01.03.2023 के आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत प्रस्तुत याचिका दायर की है।

19. प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6 की ओर से एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, और दूसरा, प्रतिपक्षी संख्या-7 की ओर से। प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6 की ओर से प्रतिपक्षी की ओर से जवाब में याचिकाकर्ता द्वारा एक प्रत्युत्तर दायर किया गया है और प्रतिपक्षी संख्या-7 की ओर से जवाबी हलफनामे के लिए अलग से एक प्रत्युत्तर दायर किया गया है। इसके अलावा, 09.11.2023, 22.11.2023 और 28.07.2024 के पूरक जवाबी हलफनामे हैं, जो सभी प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6 की ओर से दायर किए गए हैं।

20. प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6 की ओर से दायर जवाबी हलफनामे में, यह दलील दी गई है कि पी.ओ.एस.एच. नियमों को आई.आई.टी. के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स द्वारा प्रौद्योगिकी संस्थान अधिनियम, 1961 की धारा 13(1) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए अनुमोदित किया गया है (संक्षेप में, 'अधिनियम वर्ष 1961')।

पी.ओ.एस.एच. अधिनियम की धारा 11(1) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए इन नियमों की आवश्यकता थी। प्रतिपक्षियों के अनुसार, सी.सी.एस. नियम आई.आई.टी. पर लागू नहीं होते हैं, न ही अधिनियम वर्ष 1961 या आई.आई.टी. के क़ानून के तहत कोई प्रावधान है, जो यौन उत्पीड़न की शिकायत की जांच करने की प्रक्रिया और तरीके का प्रावधान करता है। फिर यह दिखाने के लिए दलीलें दी जाती हैं कि आई.आई.टी. के के नियमों और जांच की संवेदनशील प्रकृति के अनुरूप विभिन्न चरणों में प्राकृतिक न्याय का पालन किया गया है, जहां यौन उत्पीड़न की शिकायत करने वाली महिला के अधिकार शामिल थे। इस बात पर जोर दिया जाता है कि आई.आई.टी. के नियमों के तहत जांच करने की प्रक्रिया लचीली है। यह दलील दी गई है कि याचिकाकर्ता, तकनीकी आपत्तियां उठाकर, कार्यवाही को टालना चाहता था और पी.ओ.एस.एच. अधिनियम की धारा 11 (4) द्वारा अनिवार्य जांच को पूरा करने के लिए 90 दिनों की समय सीमा का उल्लंघन करना चाहता था।

21. आई.सी.सी. के खिलाफ पक्षपात के आरोपों को भी यह कहते हुए खारिज कर दिया गया है कि यह एक बहु-सदस्यीय निकाय है, जो विभिन्न विभागों से अपने सदस्यों को आकर्षित करता है। याचिकाकर्ता के आचरण को दोषी पाया गया और सबूतों पर विचार करने पर आई.सी.सी. ने उसका बचाव निराधार पाया। याचिकाकर्ता को उचित अवसर मिलने के बाद आई.सी.सी. के निष्कर्षों को आई.आई.टी. के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। याचिकाकर्ता को दी जाने वाली सजा की मात्रा के सवाल पर भी आक्षेपित आदेश पारित होने से पहले बोर्ड ऑफ गवर्नर्स द्वारा सावधानीपूर्वक विचार किया गया था।

22. आई.आई.टी. के नियमों के नियम 45 के तहत याचिकाकर्ता की अपील पर विधिवत विचार किया गया और उसका निपटारा किया गया। इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि आई.सी.सी. के निष्कर्षों से अनुशासनात्मक प्राधिकरण, यानी बोर्ड ऑफ गवर्नर्स को अपील करना, आई.आई.टी. के नियमों की एक अनूठी विशेषता है, जिसमें पी.ओ.एस.एच. अधिनियम या सी.सी.एस. नियमों के तहत बनाए गए पी.ओ.एस.एच. नियमों में कोई समान प्रावधान नहीं है। इसलिए, याचिकाकर्ता को पी.ओ.एस.एच. नियमों के तहत खुद का बचाव करने के मामले में सभी सुरक्षा प्राप्त थी, जिसका उसने लाभ उठाया था। एक से अधिक बार यह दलील दी गई थी कि सी.सी.एस. नियम आई.आई.टी. पर बिल्कुल भी लागू नहीं होते हैं और आई.आई.टी. के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स को अधिनियम वर्ष 1961 की धारा 13(1) के तहत संस्थान के उचित और सुचारू कामकाज के लिए नियम बनाने का अधिकार दिया गया है।

3. यहां यह दर्ज किया जाना चाहिए कि रिट-ए संख्या-4878 वर्ष 2021 से उत्पन्न स्पष्टीकरण मामले से, जो यौन उत्पीड़न के संबंध में याचिकाकर्ता के खिलाफ पहले की कार्यवाही से संबंधित है, निर्णय के बाद एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 25.04.2023 का एक आदेश पारित किया गया था। एकल न्यायाधीश के आदेश दिनांक 25.05.2023, जो पूर्वोक्त रिट याचिका में स्पष्टीकरण आवेदन पर पारित किया गया था, को विशेष अपील संख्या-338 वर्ष 2023 में चुनौती दी गई थी, जहां खंडपीठ ने एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया था। याचिकाकर्ता ने अपील संख्या-14058 वर्ष 2023 के लिए विशेष अनुमति के लिए एक याचिका द्वारा सर्वोच्च न्यायालय का रुख किया, जिसमें माननीय न्यायमूर्ति ने नोटिस जारी किया और आदेश

दिया कि सुनवाई की अगली तारीख तक, याचिकाकर्ता को उसके कब्जे में आवासीय परिसर से बेदखल नहीं किया जाएगा। बाद में, विशेष अनुमति याचिका संख्या-14058 वर्ष 2023 की सुनवाई करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 11.09.2023 को निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:

"पक्षों के अधिवक्ता को सुनने के बाद, हम पाते हैं कि रिट आवेदन संख्या-4878 वर्ष 2021 में पारित 25.04.2023 के अंतरिम आदेश को विशेष अपील संख्या-338 वर्ष 2023 में चुनौती दी गई थी, जिसमें उक्त अपील की अनुमति देते हुए दिनांक 25.05.2023 का आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। खंडपीठ ने संशोधन आवेदन - I.A. No 7 वर्ष 2023 पर पारित एकल न्यायाधीश के दिनांक 25.04.2023 के आदेश को रद्द कर दिया।

सुनवाई के दौरान, हमारे सामने यह स्वीकार किया जाता है कि वर्तमान विशेष अनुमति याचिका एक अंतरिम कार्यवाही से उत्पन्न हो रही है, हालांकि, इस न्यायालय द्वारा 10.07.2023 को पारित अंतरिम आदेश को बनाए रखते हुए, रिट न्यायालय से रिट याचिका संख्या-4492 वर्ष 2023 को अपनी योग्यता के आधार पर तय करने का अनुरोध किया जा सकता है, जो 25.05.2023 के आक्षेपित आदेश और 25.04.2023 को एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में की गई टिप्पणियों से प्रभावित नहीं है।

हम पक्षगण द्वारा संयुक्त रूप से की गई प्रस्तुतियों में सार पाते हैं। तदनुसार, हम इस विशेष अनुमति याचिका की सुनवाई स्थगित करते हैं और उच्च न्यायालय से अनुरोध करते हैं कि वह रिट याचिका संख्या-4492 वर्ष 2023 पर यथाशीघ्र निर्णय ले, दिनांक 25.05.2023 के आक्षेपित आदेश और एकल न्यायाधीश द्वारा पारित 25.04.2023 के आदेश में की गई टिप्पणियों से प्रभावित न हो। हम आगे उच्च न्यायालय से अनुरोध करते हैं कि जहां तक संभव हो, इस आदेश की एक प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर उक्त रिट याचिका पर निर्णय लिया जाए।

फरवरी, 2024 के महीने में इस विशेष अनुमति याचिका को फिर से सूचीबद्ध करें।

24. इस न्यायालय को ध्यान देना चाहिए कि जहां तक इस याचिका का संबंध है, प्रस्तुत मामले की कार्यवाही को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस स्पष्टीकरण के साथ तेज किया गया है कि हम रिट-ए संख्या-4878 वर्ष 2021 और विशेष अपील संख्या-338 वर्ष 2023 में एकल न्यायाधीश और खंडपीठ द्वारा पारित आदेशों को ध्यान में नहीं रखेंगे। इसलिए, हमने इस मामले में तदनुसार कार्रवाई की है।

25. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री अवनीश त्रिपाठी, श्री मनीष गोयल, वरिष्ठ अधिवक्ता, प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6 की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता श्री रोहन गुप्ता और प्रतिपक्षी संख्या-7 की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव से सुना।

26. इस न्यायालय को टिप्पणी करनी चाहिए कि इस मामले में सुनवाई मिनट के विवरण में भाग गया और समय के अधिकांश समय, दोनों पक्षों के अधिवक्ता के लिए और आई.सी.सी. और अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा निपटाए गए आरोप के खिलाफ पक्षों के सबूत का मूल्यांकन करने के क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए इस

न्यायालय को आकर्षित करने का प्रयास किया. एक रिट याचिका में हमारी सीमाओं को ध्यान में रखते हुए, हम अपने आप को प्रथम अपीलीय न्यायालय की शक्तियों का अहंकार नहीं कर सकते, जैसे कि यह था।

27. मोटे तौर पर, हमारे सामने कई मुखर प्रचार के बीच दो मुद्दे हैं, जिनकी वर्तमान रिट याचिका में वैध रूप से जांच की जा सकती है। पहला यह है कि क्या आई.आई.टी. को पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत आई.आई.टी. के नियम बनाने का अधिकार दिया गया था? इस मुद्दे का एक परिणाम यह है यदि आई.आई.टी. के पास पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत नियम बनाने की शक्तियां नहीं होतीं, तो क्या उन नियमों के तहत परिणामी जांच को दूषित किया जाएगा? दूसरा महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि क्या की गई जांच प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और कदाचार की जांच करने की हितकारी प्रक्रिया का उल्लंघन थी, जिसमें एक बड़ा जुर्माना लगाया गया था?

28. जहां तक पहले मुद्दे का सवाल है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि यहां जांच पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत की गई है। पी.ओ.एस.एच. अधिनियम की धारा 11 में लिखा है:

11. शिकायत की जांच- *(1) धारा 10 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, आंतरिक समिति या स्थानीय समिति, जैसा भी मामला हो, जहां प्रतिपक्षी कर्मचारी है, प्रतिपक्षी पर लागू सेवा नियमों के उपबंधों के अनुसार शिकायत की जांच करने के लिए आगे बढ़ेगी और जहां ऐसे कोई नियम मौजूद नहीं हैं, इस तरह से जो निर्धारित किया जा सकता है या घरेलू कामगार के मामले में, स्थानीय समिति, यदि प्रथम दृष्टया मामला मौजूद है, तो भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860) की धारा 509 और उक्त संहिता के किसी भी अन्य प्रासंगिक प्रावधानों के तहत मामला दर्ज करने के लिए सात दिनों की अवधि के भीतर पुलिस को शिकायत अग्रेषित करेगी, जहां लागू हो: बशर्ते कि जहां पीड़ित महिला आंतरिक समिति या स्थानीय समिति को सूचित करती है, जैसा भी मामला हो, कि धारा 10 की उपधारा (2) के तहत किए गए समझौते के किसी भी नियम या शर्त का प्रतिपक्षी द्वारा अनुपालन नहीं किया गया है, आंतरिक समिति या स्थानीय समिति शिकायत की जांच करने के लिए आगे बढ़ेगी या, जैसा भी मामला हो, शिकायत को पुलिस को अग्रेषित करें:*

परन्तु यह भी कि जहां दोनों पक्ष कर्मचारी हैं, पक्षकारों को, जांच के दौरान, सुनवाई का अवसर दिया जाएगा और निष्कर्षों की एक प्रति दोनों पक्षों को उपलब्ध कराई जाएगी ताकि वे समिति के समक्ष निष्कर्षों के विरुद्ध अभ्यावेदन कर सकें।

(2) भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860) की धारा 509 में किसी बात के होते हुए भी, जब प्रतिपक्षी को अपराध का दोषी ठहराया जाता है, तो न्यायालय धारा 15 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, प्रतिपक्षी द्वारा पीड़ित महिला को ऐसी रकम के भुगतान का आदेश दे सकता है, जो वह उचित समझे।

(3) उपधारा (1) के अधीन जांच करने के प्रयोजन के लिए, आंतरिक समिति या स्थानीय समिति, जैसा भी मामला हो, को वही शक्तियां होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (5 वर्ष 1908) के अधीन दीवानी न्यायालय में निहित हैं, जब निम्नलिखित विषयों के संबंध में वाद का विचारण किया जाता है, अर्थात्-

(क) किसी व्यक्ति को बुलाना और उसकी उपस्थिति को लागू करना और शपथ पर उसकी जांच करना;

(बी) दस्तावेजों की खोज और उत्पादन की आवश्यकता है; तथा

(ग) कोई अन्य मामला जो विहित किया जा सकता है।

(4) उपधारा (1) के तहत जांच नब्बे दिनों की अवधि के भीतर पूरी की जाएगी।

29. धारा 11(1) पहले मुद्दे के लिए प्रासंगिक है। क़ानून को पढ़ने से पता चलेगा कि एक आई.सी.सी., जहां प्रतिपक्षी (अपराधी) एक कर्मचारी है, नियोक्ता की स्थापना पर लागू सेवा नियमों के अनुसार शिकायत की जांच करने के लिए बाध्य है और आकस्मिकता में, जहां ऐसे कोई नियम मौजूद नहीं हैं, आंतरिक समिति को निर्धारित तरीके से आगे बढ़ना चाहिए। धारा 2(k) निम्नलिखित शब्दों में "निर्धारित"' को परिभाषित करती है:

"2. परिभाषाएँ–इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो,-

(ट) "विहित" का अर्थ है इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित;

30. पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत नियम बनाने की शक्ति उसकी धारा 29 के तहत प्रदान की गई है। पी.ओ.एस.एच. अधिनियम की धारा 29 में लिखा है:

"29. नियम बनाने की समुचित सरकार की शक्ति--(1) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना सकेगी।

(2) विशेष रूप से और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध कर सकेंगे, अर्थात्-

(क) धारा 4 की उपधारा (4) के अधीन सदस्यों को भुगतान की जाने वाली फीस या भत्ते;

(ख) धारा 7 की उपधारा (1) के खंड (ग) के अधीन सदस्यों का नामांकन;

(ग) धारा 7 की उपधारा (4) के अधीन अध्यक्ष और सदस्यों को भुगतान की जाने वाली फीस या भत्ते;

(घ) वह व्यक्ति जो धारा 9 की उपधारा (2) के अधीन शिकायत कर सकेगा;

(ङ) धारा 11 की उप-धारा (1) के अधीन जांच का तरीका क्या है;

(च) धारा 11 की उपधारा (2) के खंड (ग) के अधीन जांच करने की शक्तियां क्या हैं;

(छ) धारा 12 की उपधारा (1) के खंड (ग) के अधीन संस्तुत की जाने वाली राहत क्या है;

(ज) धारा 13 की उपधारा (3) के खंड (i) के अधीन क्या कार्रवाई की जाएगी;

(य) धारा 14 की उप-धारा (1) और (2) के तहत की जाने वाली कार्रवाई का तरीका;

(ञ) धारा 17 के अंतर्गत किस प्रकार की कार्रवाई की जाएगी;

(ट) धारा 18 की उपधारा (1) के अधीन अपील की रीति;

(ठ) धारा 19 के खंड (ग) के अंतर्गत आंतरिक समिति के सदस्यों के लिए कार्यशालाओं, जागरूकता कार्यक्रमों और अभिविन्यास कार्यक्रमों के आयोजन का तरीका क्या है; तथा

(ङ) धारा 21 की उपधारा (1) के अधीन आंतरिक समिति और स्थानीय समिति द्वारा वार्षिक प्रतिवेदन तैयार करने का प्रपत्र और समय।

(3) इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाए गए प्रत्येक नियम को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष, सत्र चालू रहते हुए, कुल तीस दिनों की अवधि के लिए, जो एक सत्र में या दो या अधिक क्रमागत सत्रों में शामिल किया जा सकेगा, और यदि, सत्र के तुरंत बाद या पूर्वोक्त उत्तरोत्तर सत्रों के बाद सत्र की समाप्ति से पहले, दोनों सदन नियम में कोई संशोधन करने के लिए सहमत होते हैं या दोनों सदन इस बात पर सहमत होते हैं कि नियम नहीं बनाया जाना चाहिए, उसके बाद नियम केवल ऐसे संशोधित रूप में प्रभावी होगा या इसका कोई प्रभाव नहीं होगा, जैसा भी मामला हो; इसलिए, हालांकि, इस तरह का कोई भी संशोधन या विलोपन उस नियम के तहत पहले की गई किसी भी चीज की वैधता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना होगा।

(4) राज्य सरकार द्वारा धारा 8 की उपधारा (4) के अधीन बनाया गया कोई नियम, उसके बनने के पश्चात् यथाशीघ्र, राज्य विधान-मंडल के प्रत्येक सदन के समक्ष, जहां वह दो सदन से है, या जहां ऐसी विधायिका में एक सदन है, उस सदन के समक्ष रखा जाएगा।

31. आई.आई.टी. के नियमों की प्रयोज्यता पर याचिकाकर्ता की प्रस्तुति सबसे पहले इस आधार पर आधारित है कि प्रतिपक्षी की स्थापना पर सेवा नियम लागू होते हैं और ये सी.सी.एस. नियम हैं। दूसरी ओर, प्रतिपक्षी आई.आई.टी. के अधिवक्ता ने आग्रह किया है कि सी.सी.एस. नियम आई.आई.टी. पर लागू नहीं होते हैं, क्योंकि आई.आई.टी. अधिनियम वर्ष 1961 द्वारा शासित है, इसके अलावा आई.आई.टी. के वैधानिक अधिकारियों द्वारा बनाए गए नियमों और विनियमों के अलावा। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अपनी दलीलों के दौरान कहा कि विभिन्न कर्मचारियों के खिलाफ पहले हुई पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत कई जांच सी.सी.एस. नियमों के प्रावधानों के अनुसार की गई थीं। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने बताया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत पहले की गई जांच सी.सी.एस. नियमों के अनुसार की गई थी। यह आग्रह किया जाता है कि ये लागू हों क्योंकि भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही अवधारित करने को नियंत्रित करने वाले कोई सेवा नियम नहीं बनाए गए हैं।

32. आगे प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि सी.सी.एस. नियम पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत जांच करने पर लागू होंगे, इसलिए उन नियमों के नियम 14 के तहत प्रक्रिया की औपचारिकता का पालन किया जाना चाहिए। इस बात पर भी जोर दिया जाता है कि सी.सी.एस. नियमों के तहत, एक आरोप पत्र जारी किया जाना चाहिए, जिसमें एक अपराधी के खिलाफ आरोपों को एक निश्चित लेख में कम किया जा सके, साथ ही कदाचार के आरोप भी लगाए जाएं। प्रत्येक आरोप के समर्थन में दस्तावेजों और गवाहों की सूची भी अपराधी को प्रदान की जानी चाहिए। इस मामले में, इस तरह का कुछ भी नहीं किया गया है और शिकायत में आरोप, जो इंटरलैपिंग और अस्पष्ट हैं, आई.सी.सी. द्वारा एक प्रक्रिया का पालन करते हुए निर्धारित किए गए हैं जो कानून द्वारा अधिकृत नहीं है। इससे याचिकाकर्ता के प्रति भी पूर्वाग्रह पैदा हुआ है। जहां तक याचिकाकर्ता के सबमिशन के

इस हिस्से का सवाल है, हमें डर है कि इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इसका कारण यह है कि आई.आई.टी. अधिनियम वर्ष 1961 के तहत कार्य करता है और सी.सी.एस. नियम, जो एक सरकारी कर्मचारी पर लागू होते हैं, जैसा कि नियम 2 (एच) के तहत परिभाषित किया गया है, प्रोप्रियो शक्ति लागू नहीं होगी। सी.सी.एस. नियमों का नियम 2(एच) पढ़ता है:

"2. व्याख्या.- *इन नियमों में, जब तक कि संदर्भ में अन्यथा आवश्यकता न हो, -*

(ज) "सरकारी कर्मचारी" का अर्थ है एक व्यक्ति जो -

(I) किसी सेवा का सदस्य है या संघ के अधीन सिविल पद धारण करता है, और इसमें विदेश सेवा पर कोई ऐसा व्यक्ति शामिल है या जिसकी सेवाएं अस्थायी रूप से राज्य सरकार, या स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के निपटान में रखी गई हैं;

ii) किसी सेवा का सदस्य है या राज्य सरकार के अधीन सिविल पद धारण करता है और जिसकी सेवाएं अस्थायी रूप से केंद्र सरकार के निपटान में रखी गई हैं;

iii) किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी की सेवा में है और जिसकी सेवाएं अस्थायी रूप से केंद्र सरकार के निपटान में रखी गई हैं;"

33. याचिकाकर्ता, जो अधिनियम वर्ष 1961 द्वारा शासित आई.आई.टी. का कर्मचारी है, सी.सी.एस. नियमों के अर्थ के भीतर एक सरकारी कर्मचारी नहीं है। केवल इसलिए कि अतीत में या रुक-रुक कर ऐसे उदाहरण सामने आए हैं जहां आई.आई.टी. ने अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के लिए सी.सी.एस. नियमों के प्रावधानों का पालन किया है या लागू किया है, या उस मामले के लिए, यहां तक कि पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत जांच भी सी.सी.एस. नियमों को आई.आई.टी. पर लागू नहीं करेगी या अपने कर्मचारियों को यह दावा करने का अधिकार नहीं देगी कि ये लागू होते हैं।

34. प्रतिपक्षी-आई.आई.टी. के वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा है कि पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत पहले की गई जांच में, जो याचिकाकर्ता के खिलाफ की गई थी, हालांकि सी.सी.एस. नियमों के तहत की गई थी, उन नियमों का सहारा ऐसे समय में लिया गया था जब आई.आई.टी. के नियम नहीं बनाए गए थे और लागू नहीं किए गए थे। हम पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत या अन्यथा सी.सी.एस. नियमों के अनुसार जांच करने में आई.आई.टी. द्वारा अब तक अपनाई गई कार्रवाई का किसी भी तरह से समर्थन या समर्थन नहीं करना चाहते हैं। हम उस मुद्दे पर बिल्कुल भी टिप्पणी नहीं करना चाहते क्योंकि ऐसा करना आवश्यक नहीं है। हमारी राय में, जो कुछ भी प्रासंगिक है, वह यह है कि सी.सी.एस. नियम आई.आई.टी. या पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत अवधारित अनुशासनात्मक कार्यवाही पर लागू नहीं होते हैं। अधिनियम वर्ष 1961 एक स्व-निहित अधिनियम है जो आई.आई.टी. सहित प्रौद्योगिकी संस्थानों की स्थापना के लिए प्रदान करता है। अधिनियम वर्ष 1961 की धारा 13(1) गवर्नर्स को अवशिष्ट शक्तियां प्रदान करती है, जैसा कि उक्त अधिनियम की धारा 3(ए) के तहत परिभाषित किया गया है, आई.आई.टी. की सभी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए, अन्यथा अधिनियम वर्ष 1961 द्वारा प्रदान नहीं किया गया है। बोर्ड ऑफ गवर्नर्स के पास क़ानून और अध्यादेश बनाने की शक्ति भी

है। जाहिर है, उनके पास नियम बनाने की शक्ति भी है। नियम बनाने की शक्ति में अपने कर्मचारियों के लिए सेवा नियम बनाने की शक्ति शामिल है।

35. निम्नलिखित इसका उपयुक्त **विधिक हिन्दी अनुवाद** है:

यहाँ जो तथ्य विवादित नहीं है, वह यह है कि भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई.आई.टी.), अथवा यूँ कहें कि आई.आई.टी. के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स ने अपने शिक्षकों एवं कर्मचारियों के लिए कोई सेवा नियम न तो बनाए हैं और न ही अधिनियमित किए हैं। अतीत में उन्होंने अनुशासनात्मक जाँचों अथवा कार्यस्थल पर महिलाओं के प्रति यौन उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध एवं प्रतितोष) अधिनियम (PoSH Act) के अंतर्गत की जाने वाली जाँचों का संचालन केंद्रीय सिविल सेवा (सीसीएस) नियमों के प्रावधानों का सहारा लेकर किया है। संभव है कि अतीत में अपनाई गई इस कार्यप्रणाली को न्यायालयों द्वारा न तो अस्वीकार्य माना गया हो और न ही अवैध घोषित किया गया हो; तथापि, केवल इसी कारण से सीसीएस नियम स्वतः (proprio vigore) आई.आई.टी. पर लागू नहीं हो जाते, जैसा कि पूर्व में भी कहा जा चुका है। साथ ही, तथ्य यह है कि आई.आई.टी. द्वारा कोई सेवा नियम नहीं बनाया गया है या बनाया गया है, जिसके अनुसार कर्मचारियों और शिक्षकों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है। इस संबंध में जो प्रश्न विचारणीय है वह यह है कि यदि आई.आई.टी. द्वारा अधिनियम या संविधियों के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए बनाए गए सेवा नियमों के अभाव में, जो आम तौर पर अनुशासनात्मक कार्यवाही अवधारित करने का प्रावधान करता है, तो क्या आई.आई.टी. विशेष रूप से पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत जांच के संचालन के लिए नियम बना सकता है? हमें ऐसा नहीं लगता। हालांकि यह सच है कि आई.आई.टी. के पास अवशिष्ट शक्तियों सहित सभी शक्तियां हैं, जो उन्हें अधिनियम वर्ष 1961 की धारा 13(1) के तहत अपने कर्मचारियों और शिक्षकों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही अवधारित करने के लिए नियम बनाने में सक्षम बनाती हैं, उक्त शक्ति केवल पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत जांच करने के उद्देश्य से नियम बनाने के लिए उपलब्ध नहीं होगी।

36. यह बिल्कुल अलग बात है कि यदि आई.आई.टी., अधिनियम के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, सेवा नियम, या विशेष रूप से अपने शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही के संचालन से संबंधित नियम बनाता है, और उन नियमों के हिस्से के रूप में, यौन उत्पीड़न आदि के आरोपों की जांच के लिए भी प्रावधान करता है, तो ऐसे नियमों के अनुसार पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत जांच की जा सकती है। लेकिन, जब तक अपने कर्मचारियों और शिक्षकों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने का प्रावधान करने वाले आई.आई.टी. पर सामान्यत विधिवत रूप से लागू नियम लागू नहीं होते हैं, तब तक उनके पास केवल पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के अंतर्गत जांच करने के लिए नियम बनाने की कोई शक्ति नहीं होगी। यह अनूठा निष्कर्ष है जिसे पी.ओ.एस.एच. अधिनियम की धारा 11 को पढ़ने से निकाला जा सकता है। धारा 11(1) में परिकल्पना की गई है कि किसी कर्मचारी के खिलाफ शिकायत की जांच करने वाली एक आंतरिक समिति, जिसे वहां प्रतिपक्षी कहा जाता है, उस कर्मचारी या प्रतिपक्षी पर लागू सेवा नियमों के प्रावधानों के अनुसार जांच कर सकती है, और फिर प्रदान करता है कि यदि ऐसे कोई नियम मौजूद नहीं हैं, तो इस तरह से जो निर्धारित किया जा सकता है। पी.ओ.एस.एच. अधिनियम एक विशेष अधिनियम है और हालांकि इसे अन्य

कानूनों पर अधिभावी प्रभाव नहीं दिया गया है, फिर भी यह एक विशेष क़ानून है। यह एक विशेष उद्देश्य को पूरा करता है और समाज में एक उभरती हुई शरारत को कम करने के लिए डिज़ाइन किया गया है। यह एक कानून है, जो मुख्य रूप से बहुप्रसिद्ध **विशाखा और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, (1997) 6 एस.सी.सी. 241** में न्यायिक हस्तक्षेप द्वारा पेश किया गया है। पी.ओ.एस.एच. अधिनियम को लागू करने की पृष्ठभूमि में एक कालानुक्रमिक और खोजपूर्ण परिप्रेक्ष्य को छोड़ते हुए, यह कहने के लिए पर्याप्त है कि इसे कार्यस्थल में महिलाओं के लिए सुरक्षा और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए अधिनियमित किया गया था, जो एक घटना, आवश्यकता और आवश्यकता थी, जो सभी प्रकार के व्यवसायों, नौकरियों और कॉलिंग में शामिल होने के लिए अधिक महिलाओं के आने का नतीजा था। और पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करें।

37. अब, पी.ओ.एस.एच. अधिनियम की धारा 28 प्रदान करती है:

"28. किसी अन्य विधि का अवहेलना न करने वाला कार्य *- इस अधिनियम के उपबंध तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंधों के अतिरिक्त होंगे न कि अवहेलना।*

38. धारा 28 का मतलब यह है कि जहां महिलाओं के हितों की रक्षा के लिए कोई अन्य क़ानून या प्रावधान किया जाता है, वह क़ानून पी.ओ.एस.एच. अधिनियम द्वारा क्षेत्र से बाहर नहीं किया जाएगा। लेकिन, इसका अर्थ यह नहीं है कि पी.ओ.एस.एच. अधिनियम द्वारा किसी विशेष तरीके से किए जाने वाले किसी भी कार्य को किसी अन्य तरीके से किया जा सकता है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, पी.ओ.एस.एच. अधिनियम की धारा 11(1) में एक प्रतिष्ठान के लिए दो स्थितियों की परिकल्पना की गई है, जहां काम करने वाले कर्मचारी को एक सह-कर्मचारी द्वारा यौन उत्पीड़न आदि के लिए शिकायत की जाती है। पहला वह है जहां प्रतिष्ठान द्वारा अपनी वैधानिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए अनुशासनात्मक कार्यवाही को नियंत्रित करने वाले सेवा नियम पहले से मौजूद हैं, और दूसरा, जहां ऐसे कोई सेवा नियम मौजूद नहीं हैं। यदि प्रतिष्ठान में आम तौर पर अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित कोई सेवा नियम मौजूद नहीं है, तो नियोक्ता के पास इस उद्देश्य के लिए नियम बनाने के लिए पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा। बाद के प्रकार के मामले में जो नियम आकर्षित होंगे, वे निर्धारित तरीके से बनाए गए नियम होंगे। ये नियम केंद्र सरकार द्वारा पी.ओ.एस.एच. अधिनियम की धारा 29 के अनुसार बनाए गए हैं। पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत पी.ओ.एस.एच. नियम पहले से ही बनाए गए हैं। चूंकि हम पहले ही अभिलेख पर मौजूद सामग्री और पक्षकारों के रुख के आधार पर यह कह चुके हैं कि अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के मामले में आई.आई.टी. द्वारा बनाए गए कोई सेवा नियम आम तौर पर उनके कर्मचारियों और शिक्षकों पर लागू नहीं होते हैं, इसलिए आई.आई.टी. के पास पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत शिकायतों से निपटने के लिए नियम बनाने की क्षमता नहीं होगी। प्रतिष्ठान में मौजूदा सेवा नियमों के अभाव में यह शक्ति केंद्र सरकार में निहित होगी और उनके द्वारा बनाए गए नियम ही लागू होंगे।

39. श्री मनीष गोयल द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि आई.आई.टी. के नियम आई.आई.टी. द्वारा पी.ओ.एस.एच. अधिनियम और पी.ओ.एस.एच. नियमों की सहायता से बनाए गए हैं; उनके विपरीत नहीं। ये आई.आई.टी. के संगठनात्मक ढांचे के अनुरूप अपनाए गए और संशोधित किए गए नियम हैं। आई.आई.टी. के नियमों को अधिसूचित किया गया और याचिकाकर्ता सहित किसी की आपत्ति के बिना दिनांक 01.12.2023 की अधिसूचना के माध्यम से सभी संबंधित लोगों को परिचालित किया गया। यह भी आग्रह किया जाता है कि नियमों के तहत की गई जांच, जैसा कि यहां विचाराधीन है, याचिकाकर्ता के लिए कोई पूर्वाग्रह नहीं पैदा करती है, यदि कोई पी.ओ.एस.एच. नियमों के तहत परिकल्पित प्रक्रिया और आई.आई.टी. के नियमों के तहत तुलना करता है। जहां तक इन प्रस्तुतियों के पहले भाग की बात है, हमें नहीं लगता कि आई.आई.टी. के नियम, जो पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत पूछताछ करने के तरीके के लिए प्रदान करने के उद्देश्य से बनाए गए हैं, को अधिनियम की धारा 11 की उप-धारा (1) के तहत परिकल्पित "प्रतिपक्षी पर लागू सेवा नियम" के रूप में माना जा सकता है। अंतिम उल्लेख किया गया है। "सेवा नियम" शब्द व्यापक आयात और सामान्य अर्थ के शब्द हैं, जो किसी प्रतिष्ठान में सेवा शर्तों या सेवा से संबंधित मामलों को नियंत्रित करने वाले नियमों के संदर्भ को दर्शाते हैं। इसका मतलब केवल पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत शिकायतों की जांच के उद्देश्य से नियोक्ता द्वारा बनाए गए नियमों से नहीं माना जा सकता है। धारा 11 की उप-धारा (2) में होने वाले "प्रतिपक्षियों पर लागू सेवा नियम" शब्दों को पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत शिकायतों की जांच के लिए अनिवार्य रूप से बनाए गए नियमों के रूप में भी लागू करना, क़ानून के स्पष्ट इरादे के लिए हिंसा करना होगा।

40. इसलिए, यह सुझाव देना कि अधिनियम वर्ष 1961 की धारा 13(1) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए आई.आई.टी. द्वारा बनाए जाने वाले पी.ओ.एस.एच. नियमों को "प्रतिपक्षी पर लागू सेवा नियम" के रूप में माना जाना चाहिए, जैसा कि पी.ओ.एस.एच. अधिनियम की धारा 11 की उप-धारा (1) के तहत परिकल्पित है, एक प्रस्ताव को स्वीकार करना मुश्किल है। हालांकि यह सच है कि यदि प्रतिष्ठान पर लागू होने वाले मौजूदा सेवा नियम थे, जो आम तौर पर इस मामले में आई.आई.टी. के कर्मचारियों और शिक्षकों के सेवा मामलों से निपटते थे, तो पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत शिकायत को उन नियमों के तहत बहुत अच्छी तरह से निपटाया जा सकता था। लेकिन, यह स्पष्ट रूप से किसी भी अन्य प्रतिष्ठान या नियोक्ता की तरह, विशेष रूप से नियम बनाने की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत नियम बनाना है, जो आम तौर पर सेवा नियमों के रूप में योग्य नहीं हैं। पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत नियम, जहां किसी प्रतिष्ठान के कर्मचारियों की सेवा शर्तों पर आम तौर पर लागू होने वाले कोई मौजूदा सेवा नियम नहीं हैं, केवल केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित तरीके से ही बनाए जा सकते हैं। इसलिए, अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि आई.आई.टी. द्वारा बनाए गए आई.आई.टी. के नियम पी.ओ.एस.एच. अधिनियम की धारा 11(1) के प्रावधानों के अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं।

41. जहां तक आई.आई.टी. के नियमों के मुद्दे को अधिसूचित किया जा रहा है और याचिकाकर्ता सहित किसी भी तरफ से बिना किसी आपत्ति के दिनांक 01.12.2023 की अधिसूचना के माध्यम से सभी संबंधित लोगों को परिचालित किया जा रहा है, इस मामले में कोई सहमति या समर्थन नहीं हो सकता है। यदि नियम पी.ओ.एस.एच.

अधिनियम की धारा 11(1) के तहत बनाने के लिए IIT की क्षमता से परे हैं, जैसा कि पहले से ही अवधारित किया जा चुका है, तो याचिकाकर्ता सहित कर्मचारियों द्वारा विरोध न करना या यहां तक कि उनकी स्वीकृति व्यक्त करना नियमों को मान्य नहीं कर सकता है या उन्हें जीवन भर नहीं सकता है। आखिरकार, किसी अधिनियम के तहत नियम बनाने की शक्ति विधायी क्षमता का मामला है और यदि नियम बनाने वाले प्राधिकरण को नियम बनाने की शक्ति नहीं दी गई है, तो प्रतिपक्षियों को स्वीकृति, स्वीकृति या एस्टोपेल का कोई लाभ नहीं होगा।

42. जहां तक श्री गोयल द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों के अंतिम भाग का संबंध है, पहली बार यह टिप्पणी की जानी चाहिए कि यह कानून का एक हितकारी सिद्धांत है कि जहां एक क़ानून एक विशेष कार्य को एक विशेष तरीके से करने के लिए निर्धारित करता है, उसे अकेले ही किया जाना चाहिए या बिल्कुल नहीं। यहां जांच यौन उत्पीड़न से उत्पन्न कदाचार के आरोप पर नहीं है, जो आमतौर पर आई.आई.टी. पर लागू सेवा नियमों, यदि कोई हो, के तहत है। यह पी.ओ.एस.एच. अधिनियम, एक विशेष संविधि के तहत एक जांच है। वह क़ानून धारा 11(1) और इसके विभिन्न अन्य प्रावधानों के तहत एक विशेष तरीके से जांच करने का निर्देश देता है। मामले के विश्लेषण पर हमने पाया है कि प्रस्तुत मामले में, आई.आई.टी. के लिए यह आवश्यक था कि वह पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत बनाए गए पी.ओ.एस.एच. नियमों के तहत परिकल्पित प्रक्रिया का पालन करे। इसलिए, जांच निर्धारित तरीके से की जानी थी, यानी पी.ओ.एस.एच. नियमों के तहत और किसी अन्य तरीके से नहीं। इसलिए, विशेष संविधि और इसके उपबंधों की पृष्ठभूमि में, जिस तरह से वे आई.आई.टी. पर लागू होते हैं, पूर्वाग्रह का प्रश्न बहुत प्रासंगिक नहीं हो सकता है। आखिरकार, पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत आई.आई.टी. अंतिम रूप से उल्लिखित अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों का पालन करने के लिए बाध्य हैं, यदि वे याचिकाकर्ता की तरह किसी कर्मचारी या शिक्षक को उक्त अधिनियम के प्रावधानों के तहत दोषी ठहराते हैं। वे कार्यवाही में किसी अन्य प्रकार के नियमों का पालन या लागू नहीं कर सकते थे।

43. यह मानते हुए कि पूर्वाग्रह का प्रश्न अभी भी प्रासंगिक है, हम उक्त मुद्दे की जांच करने के लिए आगे बढ़ते हैं। अपने इस निवेदन के समर्थन में, श्री गोयल ने आग्रह किया है कि लागू सेवा नियमों की अति-तकनीकी व्याख्या के आधार पर यौन कदाचार की जांच की कार्यवाही को अमान्य करने से बचा जाना चाहिए। इस बिंदु पर अपनी प्रस्तुति की सहायता में, श्री गोयल ने **भारत संघ और अन्य बनाम मुद्रिका सिंह, (2022) 16 एस.सी.सी. 456** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। उन्होंने विशेष रूप से रिपोर्ट के प्रस्तर-38, 39, 41, 42, 44 और 45 की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें लिखा है:

38. तदनुसार, सेना अधिनियम, 1950 के दायरे और वैधानिक उद्देश्य के विश्लेषण पर, एस.एन. मुखर्जी [एस.एन. मुखर्जी बनाम भारत संघ, (1990) 4 एस.सी.सी. 594: 1990 एस.सी.सी. (क्रिल०) 669: 1991 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 242] में संविधान पीठ ने निष्कर्ष निकाला कि कारण प्रस्तुत करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

39. एस.एन. मुखर्जी बनाम भारत संघ, (1990) 4 एस.सी.सी. 594: 1990 एस.सी.सी. (क्रिल०) 669: 1991 एस.सी.सी. (एलएंडएस) 242] और सोमदत्त दत्ता [सोमदत्त दत्ता बनाम भारत संघ, 1968 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 73 : ए.आई.आर.1969 एस.सी. 414] में संविधान पीठ द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों का पालन करने के बाद, दिनेश कुमार में यह न्यायालय [भारत संघ बनाम दिनेश कुमार, (2010) 3 एस.सी.सी. 161: (2010) 1 एस.सी.सी. (एलएंडएस) 1135] बी.एस.एफ. नियम, 1969 के नियम 149 के संदर्भ में, अवधारित किया गया: (दिनेश कुमार मामला [भारत संघ बनाम दिनेश कुमार, (2010) 3 एस.सी.सी. 161: (2010) 1 एस.सी.सी. (एलएंडएस) 1135], एस.सी.सी. पीपी 168-69, प्रस्तर-23)

*"23 [सं. : प्रस्तर-23 को आधिकारिक शुद्धिपत्र संख्या-F.3/Ed.B.J./46/2010 दिनांक 7-4-2010 के माध्यम से ठीक किया गया। इस पृष्ठभूमि में, यह स्पष्ट है कि एस.एस.एफ.सी. और अपीलीय प्राधिकरण के प्रावधान समान हैं, विशेष रूप से अधिनियम के नियम 149 और धारा 117(2) के मामले में, उन प्रावधानों के साथ जिन पर उपरोक्त दोनों प्राधिकरणों में विचार किया गया था। इसलिए, इस निष्कर्ष से कोई बच नहीं सकता है कि जैसा कि संविधान पीठ द्वारा अवधारित किया गया है, नियम 149 के तहत एस.एस.एफ.सी. द्वारा या अधिनियम की धारा 117(2) के तहत अपीलीय प्राधिकारी द्वारा कारण दिए जाने की आवश्यकता नहीं होगी। यह स्थिति एस.एस.एफ.सी. के मामले में और भी अधिक प्राप्त होती है, विशेष रूप से, क्योंकि विधायिका ने नियम 149 में संशोधन नहीं करने का फैसला किया है, हालांकि इसने विशेष रूप से 9-7-2003 से नियम 99 में संशोधन किया है। यह बताया गया था कि इसके बावजूद, दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा निर्मल लाकड़ा बनाम भारत संघ [**निर्मल लाकड़ा बनाम भारत संघ, 2002 एस.सी.सी. ऑनलाइन डेल 1134: (2003) 102 डीएलटी 415**] में कुछ अन्य दृष्टिकोण लिया गया था। हालांकि, इसे हमें हिरासत में लेने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि नियम 149 उस मामले में विचार के लिए नहीं आता था। अन्यथा भी, हम एस.एन. मुखर्जी बनाम भारत संघ [एस.एन. मुखर्जी बनाम भारत संघ, (1990) 4 एस.सी.सी. 594: 1990 एस.सी.सी. (क्रिल०) 669: 1991 एस.सी.सी. (एलएंडएस) 242] में संविधान पीठ द्वारा घोषित कानून से बाध्य होंगे। (महत्व सन्निविष्ट)*

41. उपरोक्त परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय उन दोनों आधारों पर गलती कर रहा था जिन्होंने अपने अंतिम निर्णय में वजन किया है। अतिरिक्त आर.ओ.ई. की मांग करके घटना की तारीख के संबंध में स्पष्टीकरण मांगने में कमांडेंट की ओर से अधिकार क्षेत्र की कोई त्रुटि नहीं थी। जैसा कि हमने उल्लेख किया है, प्रतिपक्षी पूर्वाग्रह से ग्रस्त नहीं था क्योंकि वह अपने खिलाफ आरोपों को उन घटनाओं से संबंधित समझता था जो रात को हुई थीं जब वह 16-4-2006 और 17-4-2006 के बीच, और विशेष रूप से शुरुआती घंटों में वर्ष 17-4-2006 में ड्यूटी पर था।

*42. दूसरे पहलू पर, उच्च न्यायालय का निर्णय दिनेश कुमार [**भारत संघ बनाम दिनेश कुमार, (2010) 3 एस.सी.सी. 161: (2010) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 1135**] में इस न्यायालय के फैसले पर ध्यान देने में विफल रहा है [जो बदले में **एस.एन. मुखर्जी बनाम भारत संघ, (1990) 4 एस.सी.सी. 594: 1990 एस.सी.सी. (क्रिल०) 669: 1991 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 242**]। प्रतिपक्षी के खिलाफ आरोप को अभिलेख पर मौजूद*

सबूतों से विधिवत प्रमाणित पाया गया था। धारा 117 के तहत प्रतिपक्षी की वैधानिक याचिका से निपटने के दौरान, बी.एस.एफ. के महानिदेशक ने सजा की मात्रा कम कर दी। उन्हें बी.एस.एफ. अधिनियम, 1968 की धारा 48 के प्रावधानों के अनुसार ऐसा करने का अधिकार दिया गया था।

44. इससे पहले कि हम अपना विश्लेषण समाप्त करें, हम लागू सेवा नियमों की हाइपरटेक्निकल व्याख्याओं पर, यौन कदाचार की जांच की कार्यवाही के अमान्य होने की बढ़ती प्रवृत्ति को भी उजागर करना चाहेंगे। उदाहरण के लिए, कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 यौन प्रकृति के कई कदाचार को दंडित करता है और सभी सार्वजनिक और निजी संगठनों को निवारण के लिए पर्याप्त तंत्र बनाने के लिए एक जनादेश लगाता है। हालांकि, परिवर्तनकारी कानून का अस्तित्व यौन उत्पीड़न से पीड़ित व्यक्तियों की सहायता के लिए नहीं आ सकता है यदि अपीलीय तंत्र प्रक्रिया को सजा में बदल देता है। यह महत्वपूर्ण है कि अदालतें यौन उत्पीड़न के खिलाफ अधिकार की भावना को बनाए रखें, जो संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत सभी व्यक्तियों के जीवन के अधिकार और गरिमा के अधिकार के एक हिस्से के रूप में निहित है। कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न में फंसने वाली शक्ति की गतिशीलता से सावधान रहना भी महत्वपूर्ण है। यौन उत्पीड़न से पीड़ित एक अधीनस्थ को कई विचारों और निवारकों का सामना करना पड़ता है जब वे अपने वरिष्ठ के यौन दुराचार की रिपोर्ट करने पर विचार करते हैं।

45. प्रस्तुत मामले में, शिकायतकर्ता एक कांस्टेबल था जो प्रतिपक्षी के खिलाफ शिकायत कर रहा था जो हेड कांस्टेबल था - उसका वरिष्ठ। मामले के गुण-दोष पर टिप्पणी किए बिना, यह स्पष्ट है कि घटना की तारीख के संबंध में विसंगति मामूली प्रकृति की थी क्योंकि घटना आधी रात के तुरंत बाद और अगले दिन हुई थी। इस तरह के एक तुच्छ पहलू को स्मारकीय प्रासंगिकता का मानना, जबकि प्रतिपक्षी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही की संपूर्णता को अमान्य करना और उसे उसके पद पर बहाल करना शिकायतकर्ता के उपाय को शून्य कर देता है। इस तरह की कानूनी कार्यवाही का इतिहास एक प्रमुख कारक है जो यौन उत्पीड़न से पीड़ित व्यक्तियों के लिए नागरिक और आपराधिक तंत्र द्वारा उत्पन्न निवारण में योगदान देता है। इस मामले में उच्च न्यायालय ने न केवल कमांडेंट के अधिकार क्षेत्र की व्याख्या और बी.एस.एफ. अधिनियम, 1968 और उसके नियमों के तहत कारण प्रस्तुत करने के लिए एस.एस.एफ.सी. के दायित्व की व्याख्या में गलत था, बल्कि कार्यवाही की गंभीरता के प्रति एक कठोर रवैया भी प्रदर्शित किया। हम अदालतों से अनुरोध करते हैं कि वे कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न की रोकथाम को नियंत्रित करने वाले सेवा नियमों और वैधानिक नियमों की व्याख्या इस तरह से करें जिससे सभी पक्षों को प्रक्रियात्मक और ठोस न्याय मिले।

44. मुद्रिका सिंह(उपरोक्त) में शामिल मुद्दे को जन्म देने वाले तथ्यों को माननीय न्यायमूर्ति के फैसले की रिपोर्ट में इनके संक्षिप्त विवरण से सबसे अच्छा दोहराया जा सकता है। ये हैं:

1. भारत संघ और सीमा सुरक्षा बल ("बी.एस.एफ.") के अधिकारी कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ के दिनांक 18-12-2018 के एक फैसले के खिलाफ अपील कर रहे हैं [भारत संघ बनाम मुद्रिका सिंह, 2018

एस.सी.सी. ऑनलाइन कैल 16862] जिसने प्रतिपक्षी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही को रद्द कर दिया और उसे बी.एस.एफ. में अपने प्रारंभिक पद पर बहाल कर दिया।

2. अप्रैल 2006 में, कथित कदाचार के समय, प्रतिपक्षी बी.एस.एफ. में एक हेड कांस्टेबल था और उसे बहत्तरवीं बटालियन में तैनात किया गया था। 2-5-2006 को, कमांडेंट ने डिप्टी कमांडेंट को सीमा सुरक्षा बल अधिनियम, 1968 ("बी.एस.एफ. अधिनियम, 1968") की धारा 24(ए) के तहत "अपमानजनक आचरण" का गठन करने वाले अपराध के लिए प्रतिपक्षी के खिलाफ साक्ष्य का अभिलेख ("आर.ओ.ई.") तैयार करने का निर्देश दिया। विशिष्ट आरोप, जैसा कि आदेश में निर्धारित किया गया है, इस प्रकार था:
एक अप्राकृतिक प्रकार का शर्मनाक आचरण
इसमें उन्होंने 16-4-2006 को 0200 बजे से 0600 बजे के बीच बीओपी साहब खान के अधीन नाका ड्यूटी के दौरान यौन संबंध दर्ज कराए। [एक्सवाईजेड] एसएएम (ई) बटालियन के कॉन्स्ट [xyz]। "

3. विचाराधीन घटना का आरोप है कि यह घटना 16-4-2006 और 17-4-2006 की रात को हुई थी। शिकायतकर्ता, बी.एस.एफ. में एक कांस्टेबल, 0200 से 0600 बजे के बीच नाका ड्यूटी पर था, जब प्रतिपक्षी पर उस पर यौन उत्पीड़न का कार्य करने का आरोप लगाया गया था। शिकायतकर्ता ने 19-4-2006 को एक लिखित शिकायत प्रस्तुत की। बी.एस.एफ. अधिनियम, 1968 के तहत, इस तरह के आचरण पर धारा 24 (ए) के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है, जो इस प्रकार है:

"24. अपमानजनक आचरण के कुछ रूप.– इस अधिनियम के अधीन कोई भी व्यक्ति जो निम्नलिखित में से कोई भी अपराध करता है, अर्थात्-
(ए) क्रूर, अशोभनीय या अप्राकृतिक प्रकार के किसी भी अपमानजनक आचरण का दोषी है; या
*(बी) - (सी) ****
सुरक्षा बल न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध होने पर, उस अवधि के लिए कारावास की सजा भुगतने के लिए उत्तरदायी होगा जिसे सात वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है या इतनी कम सजा हो सकती है जैसा कि इस अधिनियम में उल्लिखित है।

4. आर.ओ.ई. को डिप्टी कमांडेंट द्वारा तैयार किया गया था और कमांडेंट को प्रस्तुत किया गया था। 10-6-2006 को, कमांडेंट ने नोट किया कि आर.ओ.ई. की कार्यवाही की जांच पर, यह पाया गया कि घटना जिस तारीख को हुई थी, उसके संबंध में गवाहों के बयानों में एक असंगति थी। इसलिए, 10-6-2006 को, कमांडेंट ने एक अतिरिक्त आर.ओ.ई. तैयार करने का आह्वान किया। अतिरिक्त आर.ओ.ई. की प्राप्ति के बाद, कमांडेंट ने प्रतिपक्षी पर मुकदमा चलाने के लिए एक सारांश सुरक्षा बल न्यायालय ("एस.एस.एफ.सी.") बुलाने का आदेश जारी किया। अतिरिक्त आर.ओ.ई. की मांग करने वाले कमांडेंट के निर्देश के अनुसार दर्ज किए गए साक्ष्य के दौरान, शिकायतकर्ता ने कहा कि घटना 17-4-2006 को हुई थी। प्रतिपक्षी को 3-8-2006 को आर.ओ.ई., अतिरिक्त आर.ओ.ई. और आरोप पत्र की प्रतियां प्रदान की गई थीं।

अनुवादित

5. 7-8-2006 को, एस.एस.एफ.सी. ने बी.एस.एफ. अधिनियम, 1968 की धारा 24 (ए) के तहत आरोप की जांच के लिए नारायणपुर, मालदा (पश्चिम बंगाल) में बी.एस.एफ. की 72वीं बटालियन के मुख्यालय में बुलाई थी। प्रतिपक्षी ने आरोप के लिए दोषी नहीं होने का अनुरोध किया। अभियोजन पक्ष के चार गवाहों से पूछताछ की गई और प्रतिपक्षी को उनसे जिरह करने और बचाव पक्ष के गवाहों को बुलाने का अवसर दिया गया। एस.एस.एफ.सी. ने प्रतिपक्षी को आरोप का दोषी पाया और सजा के रूप में उसे कांस्टेबल के पद पर पदावनत कर दिया।

*6. 6-9-2006 को, प्रतिपक्षी ने धारा 117 [**"117. सुरक्षा बल न्यायालय के आदेश, निष्कर्ष या दण्ड के विरुद्ध उपाय**-(1) इस अधिनियम के अधीन कोई भी व्यक्ति, जो किसी सुरक्षा बल न्यायालय द्वारा पारित किसी आदेश से स्वयं को व्यथित समझता है, ऐसे सुरक्षा बल न्यायालय के किसी निष्कर्ष या दण्ड की पुष्टि करने के लिए सशक्त अधिकारी या प्राधिकारी के समक्ष याचिका प्रस्तुत कर सकेगा और पुष्टिकर्ता प्राधिकारी ऐसे कदम उठा सकेगा जो शुद्धता के संबंध में स्वयं को संतुष्ट करने के लिए आवश्यक समझे जाएं, पारित आदेश की वैधता या औचित्य या किसी भी कार्यवाही की नियमितता के रूप में जिससे आदेश संबंधित है।*

(2) कोई भी व्यक्ति जो इस अधिनियम के अधीन है, जो किसी सुरक्षा बल न्यायालय के किसी निष्कर्ष या दण्ड से, जिसकी पुष्टि की गई है, स्वयं को व्यथित समझता है, वह केन्द्रीय सरकार, महानिदेशक, या ऐसे निष्कर्ष या दण्ड की पुष्टि करने वाले के कमान में श्रेष्ठ किसी विहित अधिकारी को याचिका प्रस्तुत कर सकेगा, और केन्द्रीय सरकार, महानिदेशक, या विहित अधिकारी, जैसा भी मामला हो, उस पर ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जो वह उचित समझे। (ख) एसएसएफ द्वारा 7-8-2006 को दर्ज दोषसिद्धि को चुनौती देने के लिए सीमा सुरक्षा बल (बी.एस.एफ.) के महानिदेशक के समक्ष सीमा सुरक्षा बल अधिनियम, 1968 के मामले में एक अन्य याचिका दायर की गई है। सांविधिक याचिका पर अपीलीय प्राधिकारी-बी.एस.एफ. के महानिदेशक द्वारा सुनवाई की गई थी और दिनांक 18-10-2006 के एक आदेश द्वारा इसका निपटारा किया गया था। जबकि प्रतिपक्षी के खिलाफ आरोप स्थापित पाया गया था, कांस्टेबल के पद में कमी की सजा को इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए बदल दिया गया था कि प्रतिपक्षी के पास 22 साल से अधिक की बेदाग सेवा थी और उसके क्रेडिट में 21 पुरस्कार थे। प्रतिपक्षी को सूचित किया गया था कि बी.एस.एफ. के महानिदेशक ने कांस्टेबल के पद में कटौती की सजा को निम्नलिखित के साथ प्रतिस्थापित करके बदल दिया था:

"(i) 'पदोन्नति के उद्देश्य से 5 साल की सेवाओं को जब्त करने के लिए';
(ii) पेंशन के प्रयोजन के लिए 7 वर्ष की पिछली सेवा को जब्त करना; तथा
(iii) 'कड़ी फटकार लगाना'।

7. प्रतिपक्षी ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कलकत्ता उच्च न्यायालय का रुख किया। उच्च न्यायालय के एक एकल न्यायाधीश ने दिनांक 7-5-2009 के एक आदेश [मुद्रिका सिंह बनाम भारत संघ, 2009 एस.सी.सी. ऑनलाइन कैल 1079] द्वारा सजा के आदेश को इस आधार पर रद्द कर दिया कि:

(i) मूल आर.ओ.ई. आरोप को साबित करने के लिए अपर्याप्त था; तथा
(ii) अतिरिक्त आर.ओ.ई. तैयार करने के लिए कमांडेंट का आदेश अधिकार क्षेत्र से बाहर था।

8. एकल न्यायाधीश के निर्णय [मुद्रिका सिंह बनाम भारत संघ, 2009 एस.सी.सी. ऑनलाइन कैल 1079] को 18-12-2018 को उच्च न्यायालय की खंडपीठ के आक्षेपित निर्णय द्वारा बरकरार रखा गया है [भारत संघ बनाम मुद्रिका सिंह, 2018 एस.सी.सी. ऑनलाइन कैल 16862] इस आधार पर कि:

(i) कमांडेंट के पास सीमा सुरक्षा बल नियम, 1969 (बी.एस.एफ. नियम, 1969) के नियम 51 के तहत अतिरिक्त आर.ओ.ई. तैयार करने का निदेश देने का अधिकार क्षेत्र नहीं था, जैसा कि यह संगत समय पर था; तथा
(ii) एस.एस.एफ.सी. या अपीलीय प्राधिकारी - बी.एस.एफ. के महानिदेशक - द्वारा प्रतिपक्षी को दोषी ठहराने के लिए कोई कारण प्रस्तुत नहीं किया गया था।

45. पक्षगण की प्रस्तुतियों पर, माननीय न्यायमूर्ति के समक्ष विचार के लिए उठे वाले प्रश्नों का विवरण रिपोर्ट में इस प्रकार दिया गया है:

12. अनिवार्य रूप से, इसके मूल में, प्रस्तुत मामले में विवाद दो पहलुओं पर बदल जाता है: पहला, क्या 2011 में नियम 51 के संशोधन से पहले कमांडेंट के पास अतिरिक्त आर.ओ.ई. तैयार करने का निर्देश देने का अधिकार क्षेत्र था; और दूसरी बात, क्या एस.एस.एफ.सी. द्वारा दर्ज किए गए अपराध की खोज कारणों के अभाव में खराब हो जाती है। अब, इससे पहले कि हम उपरोक्त दो पहलुओं में से पहले का विश्लेषण करें, उन परिस्थितियों को समझना आवश्यक हो जाता है जिनमें कमांडेंट ने सहायक कमांडेंट को 10-6-2006 को एक अतिरिक्त आर.ओ.ई. तैयार करने का निर्देश दिया था।

46. इसमें शामिल प्रश्नों का उत्तर देते हुए, माननीय न्यायमूर्ति की राय थी कि बी.एस.एफ. नियम, 1969 के नियम 51 में संशोधन प्रकृति में स्पष्टीकरण था और कमांडेंट के पास हमेशा असंशोधित बी.एस.एफ. नियम, 1969 के तहत एक अतिरिक्त आर.ओ.ई. या साक्ष्य के सार तैयार करने का निर्देश देने की शक्ति थी। इस शक्ति का अनुमान माननीय न्यायमूर्ति द्वारा लगाया गया था कि बी.एस.एफ. नियम, 1969 के नियम 6 सपठित नियम 48 और 51 में निहित है क्योंकि ये संशोधन से पहले खड़े थे। अपराध के बाद किए गए सीमा सुरक्षा बल नियम, 1969 में किए गए संशोधन को स्पष्टीकरण देने वाला माना गया था और इसलिए यह भूतलक्षी प्रभाव से देखा गया था।

47. जहां तक अन्य मुद्दा है, जो मुद्रिका सिंह में माननीय न्यायमूर्ति के विचार के लिए आया था, धारणा यह थी कि लगातार अधिकार से और इसमें शामिल क़ानून की शर्तों पर, एक सारांश सुरक्षा बल न्यायालय को दी गई सजा के लिए कारण बताने की आवश्यकता नहीं थी, हालांकि एक सामान्य सुरक्षा बल न्यायालय और एक

क्षुद्र सुरक्षा बल न्यायालय इतने बाध्य थे। यह उक्त निष्कर्षों के आधार पर है कि माननीय न्यायमूर्ति की टिप्पणियां, विशेष रूप से रिपोर्ट के प्रस्तर-44 और 45 में, आधारित हैं। साथ ही, प्रस्तर-44 और 45 की टिप्पणियों को इस तथ्य की पृष्ठभूमि में समझा जाना चाहिए कि आर.ओ.ई. के बीच जो विसंगति थी, शुरू में तैयार की गई थी, और जो अतिरिक्त आर.ओ.ई. के रूप में किया गया था, वह अकेले घटना की तारीख थी। यह विसंगति यह थी कि यह घटना 16 अप्रैल, 2006 या 17 तारीख को हुई थी। यह 16/17 अप्रैल के बीच की रात में हुआ था। आर.ओ.ई. में, घटना की तारीख के संबंध में गवाहों के बयान में एक विसंगति थी, जिसके कारण कमांडेंट को एक अतिरिक्त आर.ओ.ई. का निर्देश देना पड़ा। अतिरिक्त आर.ओ.ई. ने इस तथ्य को स्पष्ट किया कि यह घटना 16/17 अप्रैल, 2006 की रात में हुई थी, या अधिक विशिष्ट रूप से, जैसा कि प्रतीत होता है, 17 अप्रैल की तड़के हुई थी। माननीय न्यायमूर्ति ने देखा कि यह एक ऐसी स्थिति थी, जिसकी पुष्टि आरोपी कर्मचारी ने अपने साक्ष्य में की थी, लेकिन उच्च न्यायालय ने घटना की तारीख के बारे में पहले दर्ज किए गए सबूतों में विसंगत संस्करण को एक दूषित कारक पाया था। माननीय न्यायमूर्ति ने इसे घटना की तारीख के बारे में एक मामूली विसंगति माना "क्योंकि घटना आधी रात के तुरंत बाद और अगले दिन हुई", माननीय न्यायमूर्ति के शब्दों को उधार लेने के लिए। उस संदर्भ में यह टिप्पणी की गई थी कि यह छोटी सी विसंगति इतनी महत्वपूर्ण नहीं थी कि पूरी कार्यवाही को अमान्य कर दे। कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए नियमों के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के बारे में अन्य टिप्पणी मुद्रिका सिंह में मौजूद इन विशेष विशेषताओं की पृष्ठभूमि में आई थी। यहां शायद ही ऐसा हो। यहां मामला एक अति-तकनीकी आपत्ति पर आधारित नहीं है, जो साक्ष्य में एक मामूली विसंगति या एक आवश्यकता पर जोर देने से उत्पन्न होता है, जैसे कि मुद्रिका सिंह में, उस निर्णय के लिए कारण लिखने के लिए जो कानून वारंट नहीं करता था। यहाँ मुद्दा एक महत्वपूर्ण है; और, अर्थात्, जिन नियमों के अनुसार यौन उत्पीड़न के मामले में जांच की गई थी, उन्हें कानून के तहत सक्षम प्राधिकारी द्वारा निर्धारित तरीके से नहीं बनाया जा रहा था।

48. अब, यह जांचने के लिए कि क्या आई.आई.टी. के नियम, जिसके अनुसार जांच की गई थी, किसी भी तरह से, पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत निर्धारित तरीके से बनाए गए नियमों से अलग हैं, यानी केंद्र सरकार द्वारा बनाए गए पी.ओ.एस.एच. नियम; और, यदि दोनों नियम अलग-अलग हैं, तो क्या जांच करने के लिए आई.आई.टी. के के नियमों का पालन करना याचिकाकर्ता को पूर्वाग्रह देगा? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए, किसी को एक तरफ पी.ओ.एस.एच. अधिनियम और पी.ओ.एस.एच. नियमों के प्रावधानों को देखना होगा, जो एक तरफ नियमों के तहत सापेक्ष प्रावधान के खिलाफ है और यह पता लगाना होगा कि क्या ऐसे मतभेद हैं जो याचिकाकर्ता को उसके बचाव के मामले में पूर्वाग्रह दे सकते हैं। पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के प्रावधानों और उसके तहत बनाए गए पी.ओ.एस.एच. नियमों और आई.आई.टी. द्वारा बनाए गए आई.आई.टी. के नियमों की तुलना को सारणीबद्ध रूप में इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

क्रम संख्या ।	व्यक्तियों	पी.ओ.एस.एच. अधिनियम और पी.ओ.एस.एच.	आई.आई.टी. के नियम

		नियम	
1.	शक्ति का स्रोत	पी.ओ.एस.एच. अधिनियम की धारा 29 के तहत पी.ओ.एस.एच. नियम अधिनियमित किए गए	IITK नियम अधिनियम वर्ष 1961 की धारा 13(1) के तहत अधिनियमित किए गए हैं जिन्हें पी.ओ.एस.एच. अधिनियम की धारा 11(1) के साथ पढ़ा जाता है।
2.	आई.सी.सी. का गठन	आंतरिक शिकायत समिति का गठन पी.ओ.एस.एच. अधिनियम की धारा 4 के अनुसार आई.सी.सी. के पी.ओ.एस.एच. अधिनियम संविधान की धारा 4 द्वारा निर्दिष्ट किया गया है: 1. पीठासीन अधिकारी (वरिष्ठ स्तर पर महिला) 2. महिलाओं के लिए प्रतिबद्ध कर्मचारियों में से कम से कम दो सदस्य नहीं/सामाजिक कार्य में अनुभव/कानूनी ज्ञान रखते हैं। गैर-सरकारी संगठन या संघ में से एक सदस्य जो महिलाओं के हितों के लिए प्रतिबद्ध हो या यौन उत्पीड़न से संबंधित मुद्दों से परिचित व्यक्ति। उपरोक्त के रूप में नामित व्यक्तियों में से आधे महिलाएं हैं	आंतरिक शिकायत समिति का गठन आई.आई.टी. के नियमों के नियम 4 द्वारा निर्धारित किया गया है: 1. पीठासीन अधिकारी, संस्थान की एक वरिष्ठ महिला प्रोफेसर होने के लिए; 2. संस्थान के शैक्षणिक कर्मचारियों में से एक व्यक्ति; 3. संस्थान के गैर-शैक्षणिक कर्मचारियों में से एक व्यक्ति; 4. संस्थान के अकादमिक/गैर-शैक्षणिक कर्मचारियों में से दो व्यक्ति जो महिलाओं के लिए प्रतिबद्ध हैं/सामाजिक कार्य में अनुभव/कानूनी ज्ञान रखते हैं; तथा 5. महिलाओं के लिए प्रतिबद्ध गैर-सरकारी संगठनों या संघों में से एक व्यक्ति या यौन उत्पीड़न से संबंधित मुद्दों से परिचित व्यक्ति। इस प्रकार नामित किए जाने वाले कुल सदस्यों में से कम से कम आधी महिलाएं होंगी।
3.	पूछताछ का तरीका	प्रारंभिक जांच का कोई प्रावधान नहीं	नियम 16 में प्रारंभिक जांच और शिकायत की संक्षिप्त अस्वीकृति की परिकल्पना की गई है
4 (ए)	नियमित जांच के दौरान	नियम 7. शिकायत की जांच का तरीका- (1) धारा 11 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, शिकायत दर्ज करते समय, शिकायतकर्ता	नियम 18. शिकायत प्राप्त होने पर, समिति जहां तक संभव हो, सात कार्य दिवसों के भीतर, गवाहों के नाम और

अनुवादित

	पक्षकारों के मामले का विवरण	शिकायत समिति को सहायक दस्तावेजों और गवाहों के नाम और पते के साथ शिकायत की छह प्रतियां प्रस्तुत करेगा। (2) शिकायत प्राप्त होने पर, शिकायत समिति उप-नियम (1) के तहत पीड़ित महिला से प्राप्त प्रतियों में से एक प्रति सात कार्य दिवसों की अवधि के भीतर प्रतिपक्षी को भेजेगी। (3) प्रतिपक्षी उप-नियम (1) के अधीन विनिर्दिष्ट दस्तावेजों की प्राप्ति की तारीख से दस कार्य दिवसों से अनधिक दस कार्य दिवसों की अवधि के भीतर अपने दस्तावेजों की सूची और गवाहों के नाम और पते के साथ शिकायत पर अपना उत्तर दाखिल करेगा।	पते और शिकायत के साथ प्राप्त सहायक दस्तावेजों के साथ शिकायत की एक प्रति प्रतिपक्षी को भेजेगी। साथ ही, समिति प्रतिपक्षी को व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने और समिति के समक्ष दस कार्य दिवसों से अधिक की अवधि के भीतर अपना जवाब दाखिल करने के लिए समन करेगी। समन नोटिस में जांच की कार्यवाही की तारीख, समय और स्थान शामिल होगा। सुनवाई में उपस्थित होने के लिए शिकायतकर्ता को भी समन नोटिस जारी किया जाएगा। 19. प्रतिपक्षी उपरोक्त के रूप में नोटिस के अनुपालन में, शिकायत के लिए अपना जवाब छह प्रतियों में प्रस्तुत करेगा, जिसमें गवाहों की अपनी सूची स्पष्ट शब्दों में उसके बचाव के लिए उनकी प्रासंगिकता, उनके पते और सहायक दस्तावेज समिति को दिए जाएंगे। 20. पीठासीन अधिकारी शिकायतकर्ता को गवाहों की सूची और सहायक दस्तावेजों के साथ प्रतिपक्षी द्वारा दायर उत्तर की एक प्रति उपलब्ध कराएगा। 21. इसके बाद पीड़ित महिला को अपना प्रत्युत्तर, यदि कोई हो, प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाएगी
4 (ख)	नियमित जांच करने की प्रक्रिया	नियम 7. शिकायत की जांच की रीति - (4) शिकायत समिति प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार शिकायत की जांच करेगी। (5) शिकायत समिति को यह अधिकार होगा कि वह जांच की कार्यवाही को समाप्त कर	नियम 22. दोनों पक्षों, यानी पीड़ित महिला और प्रतिपक्षी को अपने मामले को प्रस्तुत करने और बचाव करने का उचित अवसर दिया जाएगा। 23. सुनवाई की पहली तारीख के बाद, जहां तक संभव हो, बाद की सुनवाई दिन-

अनुवादित

		सके या शिकायत पर एकपक्षीय विनिश्चय दे सके, यदि शिकायतकर्ता या प्रतिपक्षी पर्याप्त कारण के बिना अध्यक्ष या पीठासीन अधिकारी द्वारा बुलाई गई लगातार तीन सुनवाइयों के लिए स्वयं को उपस्थित करने में विफल रहता है, जैसा भी मामला हो: परन्तु ऐसा समाप्ति या एकपक्षीय आदेश लिखित रूप में सूचना दिए बिना पारित नहीं किया जा सकेगा, पंद्रह दिन पहले, संबंधित पक्ष को। (6) पक्षकारों को शिकायत समिति के समक्ष कार्यवाही के किसी भी चरण में अपने मामले में उनका प्रतिनिधित्व करने के लिए किसी विधिक व्यवसायी को लाने की अनुमति नहीं दी जाएगी। (7) जांच करते समय, पीठासीन अधिकारी या अध्यक्ष सहित शिकायत समिति के कम से कम तीन सदस्य, जैसा भी मामला हो, उपस्थित होंगे।	प्रतिदिन के आधार पर की जाएगी। यदि प्रतिपक्षी या शिकायतकर्ता वैध आधार या पर्याप्त कारण के बिना, समिति या पीठासीन अधिकारी के समक्ष सुनवाई की किसी भी तारीख को उपस्थित होने में विफल रहता है, तो समिति को एकपक्षीय कार्यवाही करने और शिकायत पर एकपक्षीय निर्णय देने का अधिकार होगा। बशर्ते कि इस तरह की समाप्ति या एकपक्षीय आदेश संबंधित पक्ष को कम से कम तीन दिन पहले लिखित रूप में नोटिस दिए बिना पारित नहीं किया जा सकता है। 24. समिति किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में उपस्थित होने के लिए स्वत: संज्ञान ले सकती है/बुला सकती है, यदि उसकी राय में, यह न्याय के हित में होगा। 25. समिति को प्रतिपक्षी, पीड़ित महिला और/या किसी गवाह को पूरक गवाही और/या स्पष्टीकरण के लिए जितनी बार आवश्यक समझे, बुलाने का अधिकार होगा। 26. समिति के पास शिकायत की विषय वस्तु से संबंधित या संबंधित किसी भी आधिकारिक पत्र या दस्तावेजों को प्रस्तुत करने की शक्ति होगी, जो उसकी राय में जांच में सहायता कर सकता है। 27. जांच की कार्यवाही के दौरान पीड़ित महिला के पिछले यौन इतिहास की जांच नहीं की जाएगी और ऐसी किसी भी जानकारी को यौन उत्पीड़न

अनधिकृत

			की शिकायत के प्रयोजनों के लिए अप्रासंगिक माना जाएगा। 28. सभी जांच कार्यवाहियों के लिए पीठासीन अधिकारी सहित कम से कम चार सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक होगी। 29. सभी जांच कार्यवाहियों को समिति द्वारा लिखित रूप में दर्ज किया जाएगा।
5.	जांच बंद होने के बाद साक्ष्य की सुनवाई	पी.ओ.एस.एच. अधिनियम या पी.ओ.एस.एच. नियमों में आई.सी.सी. के समाप्त होने से पहले सुनवाई के बाद साक्ष्य प्राप्त करने का कोई प्रावधान नहीं है।	नियम 35. समिति या संस्थान को किसी भी नए तथ्य या साक्ष्य का संज्ञान लेने से नहीं रोका जा सकता है जो जांच कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान या संस्थान के उपयुक्त प्राधिकारियों को निष्कर्ष/रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद भी उसके समक्ष लाया जा सकता है। हालांकि, ऐसे मामले में, समिति को निदेशक को अपनी पूरक रिपोर्ट प्रस्तुत करने की आवश्यकता होगी।
6.	यौन उत्पीड़न के लिए कार्रवाई करने का तरीका टी	नियम 9. उन मामलों को छोड़कर जहां सेवा नियम मौजूद हैं, जहां शिकायत समिति इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि प्रतिपक्षी के खिलाफ आरोप साबित हो गया है, वह नियोक्ता या जिला अधिकारी, जैसा भी मामला हो, को लिखित माफी, चेतावनी, फटकार या निंदा, पदोन्नति रोकने, वेतन वृद्धि या वेतन वृद्धि को रोकने सहित कोई भी कार्रवाई करने की सिफारिश करेगी। प्रतिपक्षी को सेवा से समाप्त करना या परामर्श सत्र से गुजरना या सामुदायिक सेवा करना।	नियम 39. समिति जांच पूरी होने के बाद निदेशक को यथाशीघ्र एक विस्तृत और तर्कसंगत रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी, लेकिन जांच पूरी होने के दस दिनों के भीतर अपनी सिफारिशों के साथ। a. यदि समिति यह निष्कर्ष निकालती है कि प्रतिपक्षी के खिलाफ आरोप साबित हो गए हैं, तो वह संस्थान के संविधियों के अनुसार उचित दंड देने के लिए निदेशक को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी। जन्म। यदि समिति यह निष्कर्ष निकालती है कि प्रतिपक्षी के विरुद्ध आरोप दुर्भावनापूर्ण हैं या झूठे हैं या पीड़ित महिला की ओर से

अनुवादित

			जाली/भ्रामक दस्तावेज प्रस्तुत किए गए हैं, तो वह पीड़ित महिला की ओर से ऐसे कृत्य अथवा मिथ्याकरण के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए निदेशक को सिफारिश कर सकती है। 40. संस्थान के अधिकारी सिफारिशों की प्राप्ति के 60 दिनों के भीतर उन पर कार्रवाई करेंगे और की गई कार्रवाई के बारे में समिति को सूचित करेंगे।

5.	मोहक गुण	नियम 11. धारा 18 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, धारा 13 की उपधारा (2) के अधीन या धारा 13 की उपधारा (3) के खंड (i) या खंड (ii) या धारा 14 की उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन या धारा 17 की उपधारा (2) या ऐसी सिफारिशों का कार्यान्वयन न करने या ऐसी सिफारिशों का कार्यान्वयन न करने से व्यथित कोई भी व्यक्ति औद्योगिक नियोजन (स्थायी आदेश) की धारा 2 के खंड (क) के अधीन अधिसूचित अपीलीय प्राधिकारी को अपील कर सकता है अधिनियम, 1946 (20 वर्ष 1946)।	नियम 45. यदि पीड़ित महिला/शिकायतकर्ता या प्रतिपक्षी समिति के निष्कर्षों से संतुष्ट नहीं है, तो वह सभी आवश्यक दस्तावेजों के साथ बोर्ड ऑफ गवर्नर्स के समक्ष अपील कर सकता है। बशर्ते कि समिति की सिफारिशों/निष्कर्षों/निर्णय के नब्बे दिनों की अवधि के भीतर अपील दायर की जानी चाहिए।

49. याचिकाकर्ता के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि यदि जांच आई.आई.टी. के नियमों के बजाय पी.ओ.एस.एच. नियमों के तहत की गई होती, तो क्या इससे परिणाम पर कोई फर्क पड़ता? नियमों के दो सेटों के तहत व्यापक मतभेदों के अलावा, जो याचिकाकर्ता को पूर्वाग्रह नहीं दे सकते हैं, आई.आई.टी. के नियमों के तहत प्रमुख विशेषताएं हैं, जो अनिवार्य रूप से याचिकाकर्ता के पूर्वाग्रह के लिए काम करेंगी। इन नियमों में सबसे महत्वपूर्ण है, आई.आई.टी. के नियमों का नियम 23, जब पी.ओ.एस.एच. नियमों के नियम 7 के साथ तुलना की जाती है। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि आई.आई.टी. के नियमों के तहत पूर्वाग्रह के प्रश्न को पी.ओ.एस.एच. नियमों में समान सामग्री प्रावधानों की तुलना के आधार पर आंका जा रहा है।

50. आई.आई.टी. के नियमों के नियम 23 में प्रावधान है कि सुनवाई की पहली तारीख के बाद, समिति के समक्ष बाद की सुनवाई जहां तक संभव हो, दिन-प्रतिदिन के आधार पर आगे बढ़ेगी। त्वरित जांच, अपने आप

में, अपराधी पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती है, न ही हम यह कहने का इरादा रखते हैं कि जब हम ध्यान देते हैं कि पी.ओ.एस.एच. नियमों के नियम 7 के उप-नियम (5) के तहत, जहां तक संभव हो, दिन-प्रतिदिन के आधार पर जांच करने का कोई प्रावधान नहीं है। पूर्वाग्रह का बिंदु, जो आई.आई.टी. के नियमों के तहत अवधारित जांच के मामले में आता है, वह यह है कि नियम 23 में प्रावधान है कि यदि प्रतिपक्षी या शिकायतकर्ता समिति के समक्ष सुनवाई की किसी भी तारीख को उपस्थित होने के लिए वैध आधार या पर्याप्त कारण के बिना विफल रहते हैं, तो समिति को एकपक्षीय कार्यवाही करने और शिकायत पर एकपक्षीय निर्णय देने का अधिकार होगा। इसके विपरीत, पी.ओ.एस.एच. नियमों के नियम 7 के उप-नियम (5) के तहत, यह प्रावधान किया गया है कि यदि शिकायतकर्ता या प्रतिपक्षी शिकायत समिति के समक्ष लगातार तीन सुनवाई के लिए उपस्थित होने के पर्याप्त कारण के बिना, तो समिति एकपक्षीय निर्णय दे सकती है। जबकि आई.आई.टी. के नियमों के नियम 23 के तहत, एकपक्षीय कार्यवाही करने और एकपक्षीय निर्णय देने की शक्ति समिति को अनुपस्थित पक्ष को कम से कम तीन दिन पहले लिखित रूप में नोटिस देकर दी जाती है, पी.ओ.एस.एच. नियमों के नियम 7 के उप-नियम (5) के परंतुक के अनुसार शिकायत समिति को चूक में पक्ष को 15 दिन पहले लिखित रूप में नोटिस देने की आवश्यकता होती है।

51. हमारी राय में, यदि शिकायतकर्ता और अपराधी को आई.आई.टी. के नियमों के नियम 23 के तहत एक ही स्थान पर रखा जाता है, तो एक ही दिन की अनुपस्थिति के संबंध में, एकपक्षीय निर्णय या तीन दिनों की नोटिस अवधि को आमंत्रित करने के लिए आवेदन करना एक भ्रामक परीक्षण होगा। यह निर्धारित करने के लिए सही परीक्षण यह है कि क्या आई.आई.टी. के नियमों के तहत प्रक्रिया, जब पी.ओ.एस.एच. नियमों के तहत समान प्रावधानों के साथ तुलना की जाती है, तो अधिक कठोर, उदार या समान है। हम पाते हैं कि आई.आई.टी. के नियमों के नियम 23 के तहत प्रक्रिया इसके परंतुक के साथ, निश्चित रूप से एक प्रक्रिया को प्रतिपादित करती है, जो पी.ओ.एस.एच. नियमों के नियम 7 के उप-नियम (5) की तुलना में कहीं अधिक कठोर है। जबकि आई.आई.टी. के नियम समिति को एकपक्षीय निर्णय के साथ अपराधी द्वारा एक दिन की चूक को दंडित करने का अधिकार देते हैं, पी.ओ.एस.एच. नियमों के नियम 7 के उप-नियम (5) लगातार तीन सुनवाई में चूक के बाद समिति को इस शक्ति के साथ निवेश करता है। इसी तरह, आई.आई.टी. के नियमों के तहत समिति द्वारा अपराधी को तीन दिन का नोटिस देकर एक निर्णय दिया जा सकता है, जबकि पी.ओ.एस.एच. नियमों के मामले में, शिकायत समिति द्वारा एकपक्षीय निर्णय दिए जाने से पहले अपराधी को 15 दिन पहले एक नोटिस देना होगा। दंडनीय चूक के मामले में समय की अवधि में यह उल्लेखनीय अंतर और चूक को भुनाने के लिए सांस लेने का समय, निश्चित रूप से आई.आई.टी. के नियमों के तहत प्रक्रिया को पी.ओ.एस.एच. नियमों के तहत परिकल्पित प्रक्रिया की तुलना में याचिकाकर्ता के हित के लिए कहीं अधिक पूर्वाग्रहपूर्ण बनाता है।

52. आई.आई.टी. के नियमों में अगला प्रावधान, जो याचिकाकर्ता या किसी अन्य अपराधी के लिए पूर्वाग्रह के प्रश्न के लिए महत्वपूर्ण हो सकता है, नियम 35 है। यह शिकायत समिति को किसी भी नए तथ्य या साक्ष्य का संज्ञान लेने में सक्षम बनाता है, जिसे जांच के लंबित रहने के दौरान या आई.आई.टी. के उपयुक्त प्राधिकारी को निष्कर्ष/रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद भी उसके ध्यान में लाया जा सकता है। इस प्रकार के मामले में निष्कर्ष

या रिपोर्ट को निदेशक को पूरक रिपोर्ट के रूप में लेना होता है। इसके विपरीत, पी.ओ.एस.एच. नियमों के तहत ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो जांच समाप्त होने के बाद शिकायत समिति को किसी भी साक्ष्य को सुनने का अधिकार दे सकता है। आई.आई.टी. के नियमों के माध्यम से आई.आई.टी. द्वारा शिकायत समिति को दी गई शक्तियां सबसे असामान्य हैं और इसमें बहुत कठोर प्रकृति के प्रावधान हैं, जो याचिकाकर्ता जैसे अपराधी के लिए पूरी तरह से पूर्वाग्रह पैदा कर सकते हैं।

53. नियम 35 के प्रावधान, वास्तव में, किसी भी घरेलू जांच के आयोजन को नियंत्रित करने वाले हितकारी सिद्धांतों के मूल सिद्धांतों के खिलाफ हैं। नियम आई.सी.सी. को नए तथ्यों या सबूतों पर ध्यान देने में सक्षम बनाता है, जो शिकायतकर्ता द्वारा दर्ज की गई शिकायत या उसके साक्ष्य में जगह नहीं पा सकते हैं। यह किसी भी तरफ से आ सकता है और आई.सी.सी. को इसका संज्ञान लेने का अधिकार होगा। इसी प्रकार, सभी साक्ष्य समाप्त हो जाने और आई.आई.टी. के उपयुक्त प्राधिकारी को प्रस्तुत की गई जांच रिपोर्ट के बाद आई.सी.सी. को नए तथ्यों और साक्ष्यों पर ध्यान देने का अधिकार है। ऐसे मामलों में, उन्हें एक पूरक रिपोर्ट प्रस्तुत करने का अधिकार है। किसी भी अनुशासनात्मक कार्यवाही में एक विवेचनाधिकारी या जांच समिति की भूमिका, जो पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत जांच के समान है, एक जांचकर्ता की भूमिका से अलग है। एक अन्वेषक, आखिरकार, निष्कर्ष नहीं देता है, लेकिन केवल अदालत या न्यायाधिकरण के लिए सबूतों के साथ एक रिपोर्ट प्रस्तुत करता है, यह तय करने के लिए कि आरोपी के खिलाफ आरोप स्थापित किया गया है या नहीं। चूंकि अन्वेषक के निष्कर्ष केवल उस रिपोर्ट की प्रकृति में होते हैं जिस पर विचारण की प्रक्रिया शुरू होती है, इसलिए उन्हें अपनी रिपोर्ट देने के बाद और पूरक रिपोर्ट दाखिल करके आगे की जांच करने की स्वतंत्रता है। वहां भी, रिपोर्ट आने के बाद उन्हें जांच को आगे बढ़ाने के लिए न्यायालय की अनुमति लेनी पड़ती है। यहां, शिकायत समिति एक ऐसा निकाय है जिसे शिकायत में लगाए गए आरोपों पर निष्कर्ष दर्ज करने का अधिकार है।

54. आरोपों को जोड़ने के लिए, नए तथ्यों के आधार पर एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद, आई.आई.टी. के नियमों के तहत शिकायत समिति के नोटिस में आना और आगे के सबूतों की सुनवाई वास्तव में अपराधी के अधिकार को गंभीरता से पूर्वाग्रह देती है, जो आरोपों की बहुलता और निरंतरता के संपर्क में है, जहां खतरा कभी समाप्त नहीं होता है। यही कारण है कि हम सोचते हैं कि आई.आई.टी. के नियमों के नियम 35 के प्रावधान बहुत कठोर हैं और याचिकाकर्ता जैसे अपराधी को गंभीर रूप से पूर्वाग्रह देते हैं, यदि पी.ओ.एस.एच. नियमों के तहत प्रक्रिया के साथ तुलना की जाती है, जहां शिकायत समिति के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है। याचिकाकर्ता को पी.ओ.एस.एच. नियमों के अनुसार, आई.आई.टी. के नियमों के अनुसार, पी.ओ.एस.एच. नियमों के तहत पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत जांच का सामना करते समय निश्चित और कठोर पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ेगा।

55. आई.आई.टी. के नियमों के नियम 45 के तहत एक अपील की प्रक्रिया भी पी.ओ.एस.एच. नियमों के नियम 11 के तहत प्रक्रिया के साथ पूरी तरह से भिन्न है। शिकायतकर्ता या प्रतिपक्षी, जो कोई भी आई.आई.टी. के नियमों के तहत समिति के निष्कर्षों से संतुष्ट नहीं है, वह आवश्यक दस्तावेजों के साथ बोर्ड ऑफ गवर्नर्स में

अपील कर सकता है। समिति की सिफारिशों/निष्कर्षों या रिपोर्ट के 90 दिनों की समयावधि के भीतर अपील को दायर की दी जानी चाहिए। इसके विपरीत, आई.आई.टी. के नियमों के तहत अपील योग्य बनाई गई है, जहां तक अपराधी का संबंध है, पी.ओ.एस.एच. अधिनियम की धारा 13 की उप-धारा (3) के खंड (i) या (ii) के तहत; यह अपने आप में याचिकाकर्ता या किसी अपराधी के प्रति बहुत अधिक पूर्वाग्रह नहीं रखता है, क्योंकि आई.आई.टी. के नियमों के तहत, जांच समिति के निष्कर्षों को आई.आई.टी. के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स में अपील करने योग्य बना दिया गया है। वास्तव में, एक अपराधी को पूर्वाग्रह से ग्रस्त करता है और आई.आई.टी. के नियमों के तहत याचिकाकर्ता को पूर्वाग्रह से ग्रस्त करता है, यह तथ्य है कि जबकि विवेचनाधिकारी के निष्कर्षों से अपील का मंच एक घरेलू निकाय के समक्ष है, बोर्ड ऑफ गवर्नर्स होने के नाते, अपने स्वयं के नुकसान और नुकसान के साथ, अपील सुनने और निर्णय लेने के हकदार निकाय के रूप में कानून में प्रशिक्षण की कमी से उत्पन्न होता है, कुछ आंतरिक पूर्वाग्रहों आदि की संभावना पी.ओ.एस.एच. नियमों के तहत अपील की सुनवाई के लिए पी.ओ.एस.एच. नियमों के नियम 11 के तहत औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946 की धारा 2 के खंड (ए) के तहत अधिसूचित अपीलीय प्राधिकरण है, जो न्यायाधिकरण या न्यायालय है, एक स्वतंत्र प्राधिकरण है, जो प्रतिष्ठान का हिस्सा नहीं है।

56. पी.ओ.एस.एच. नियमों और आई.आई.टी. के नियमों की तुलना पर हमने अब तक जिस पूर्वाग्रह का परीक्षण किया है, उसके अलावा, एक तरफ अपील के अधिकार का प्रयोग और दूसरी तरफ आई.सी.सी. की सिफारिशों पर निर्णय भी आई.आई.टी. के नियमों के प्रावधानों के भीतर एक तेज असंगति को सामने लाता है। आई.सी.सी. नियम 39 के तहत अपनी सिफारिशों के साथ जांच पूरी होने के 10 दिन के भीतर निदेशक को विस्तृत और तर्कपूर्ण रिपोर्ट सौंपने के लिए बाध्य है। यदि आई.सी.सी. यह निष्कर्ष निकालती है कि अपराधी के खिलाफ आरोप साबित हो जाते हैं, तो आई.आई.टी. के कानूनों के अनुसार उचित सजा देने की सिफारिश करते हुए निदेशक को रिपोर्ट दी जाएगी। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान के प्राधिकारियों को भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान नियमावली के नियम 40 के अनुसार यह आदेश दिया गया है कि वे प्राप्त होने के 60 दिनों के भीतर आई.सी.सी. की सिफारिशों पर कार्रवाई करें और समिति को की गई कार्रवाई के बारे में सूचित करें।

57. अब, समिति द्वारा अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने की तारीख से, यह मानते हुए कि यह अपराधी को तुरंत प्रदान किया जाता है, उसे 90 दिनों के भीतर अपील करने का अधिकार है, लेकिन आई.आई.टी. के अधिकारियों को नियम 40 द्वारा समिति की रिपोर्ट प्राप्त होने के 60 दिनों के भीतर निर्णय लेने का आदेश दिया गया है। यह लगभग नियम 45 के प्रावधान के तहत आई.सी.सी. के निष्कर्षों के खिलाफ अपील करने के लिए अपराधी को दी गई सीमा की अवधि को 90 दिनों से घटाकर 60 दिनों से कम कर देता है क्योंकि आई.आई.टी. के नियमों के नियम 40 के कारण। यह असंगति, जो आई.आई.टी. के नियमों के नियम 40 और 45 के प्रावधानों के बीच परस्पर क्रिया के लिए आंतरिक है, अपील के अपने अधिकार का प्रयोग करने में अपराधी - याचिकाकर्ता जैसा कोई व्यक्ति, को पूर्वाग्रह से ग्रस्त करती है।

58. कोई पूर्वाग्रह के मुद्दे पर अंतिम विवरण पर अधिक ध्यान नहीं देगा, लेकिन अन्य वास्तव में गंभीर पूर्वाग्रह का कारण बनते हैं। फिर भी, याचिकाकर्ता के लिए ठोस पूर्वाग्रह होने के कारण, यदि जांच आई.आई.टी. के नियमों के अनुसार आगे बढ़ती है, तो पी.ओ.एस.एच. नियमों के अनुसार जांच होने पर उसे क्या सामना करना पड़ेगा, इसके विपरीत आई.आई.टी. के नियमों को पूर्वाग्रह की कसौटी पर भी अमान्य ठहराना होगा।

59. हम पहले ही मान चुके हैं कि आई.आई.टी. के नियम पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत तैयार करने के लिए आई.आई.टी. के अधिकार क्षेत्र में नहीं हैं। पूर्वाग्रह का तत्व आई.आई.टी. के नियमों के विभिन्न प्रावधानों में स्पष्ट है, जब पी.ओ.एस.एच. नियमों के साथ तुलना की जाती है, तो प्रतिपक्षी के मामले को स्वीकार करना बहुत मुश्किल है कि आई.आई.टी. के नियमों के अनुसार यहां जांच करने से कोई ठोस अंतर नहीं होता है या याचिकाकर्ता के लिए इस तरह के पूर्वाग्रह का कारण नहीं बनता है, क्योंकि जांच के निष्कर्षों और इस आधार पर की गई कार्रवाई में हस्तक्षेप की आवश्यकता हो सकती है कि यह सब इस आधार पर किया गया था आई.आई.टी. के नियम, जो वास्तव में पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत आई.आई.टी. द्वारा बनाए जाने के लिए प्राधिकृत नहीं हैं। पहले प्रश्न का उत्तर यह होगा कि आई.आई.टी. को पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत आई.आई.टी. के नियम बनाने का अधिकार नहीं है। उक्त प्रश्न के परिणाम का उत्तर यह होगा कि आई.आई.टी. के नियमों के तहत की गई जांच, जिसे आई.आई.टी. के पास पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत करने का अधिकार नहीं था, को रद्द कर दिया जाएगा।

60. यह हमें दूसरे प्रश्न पर ले जाता है कि क्या की गई जांच प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और कदाचार की जांच करने की हितकारी प्रक्रिया का उल्लंघन थी, जिसमें एक बड़ा जुर्माना लगाना शामिल था।

61. प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के सवाल पर, इस न्यायालय को पक्षकारों की ओर से पेश होने वाले वकीलों द्वारा बहुत विस्तार से संबोधित किया गया था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आई.आई.टी. के नियमों के नियम 23, जिसके तहत समिति आगे बढ़ी, सुनवाई की पहली तारीख के बाद, जहां तक संभव हो, दिन-प्रतिदिन के आधार पर सुनवाई का प्रावधान करता है, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि इसका मतलब रोलर कोस्टर की सवारी नहीं है, जहां अपराधी अपने खिलाफ लाए गए सबूतों को नहीं समझ सकता है और खुद को जिरह या अपने बचाव के लिए तैयार नहीं कर सकता है। याचिकाकर्ता ने आई.आई.टी. के आई.सी.सी. के समक्ष उस स्थिति का सामना किया। सुनवाई की पहली तारीख, जो 18.07.2022 को निर्धारित की गई थी, या प्रारंभिक जांच के बाद, जैसा कि इसे कहा जाता था, आई.सी.सी. ने नियमित सुनवाई की अगली तारीख 21.07.2022 और फिर 27.07.2022 को तय की। इसके बाद, वे 28.07.2022 को सुनवाई का समय निर्धारित करते हुए लुभावने गति से आगे बढ़े।

29.07.2022, 30.07.2022, 01.08.2022,
04.08.2022, 05.08.2022, 06.08.2022, 08.08.2022, 10.08.2022, 16.08.2022,
17.08.2022, 18.08.2022, 19.08.2022, 22.08.2022, 23.08.2022, 25.08.2022,

26.08.2022, 29.08.2022, 30.08.2022, 01.09.2022, 02.09.2022, 03.09.2022, 05.09.2022, 06.09.2022, 07.09.2022, 08.09.2022, 12.09.2022, 14.09.2022 और 21.09.2022 को समापन। जल्दी और जल्दबाजी; प्रेषण और लापरवाह गति के बीच में हमेशा अंतर होता है।

62. आई.सी.सी. इस तथ्य से बेखबर था कि याचिकाकर्ता को खुद का बचाव करना था, जो शिकायतकर्ता के गवाहों को समझने और उनसे जिरह करने के लिए खुद को तैयार करने की धारणा रखता है। वह किसी भी तरह से जिरह की कला में प्रशिक्षित अधिवक्ता नहीं है। बल्कि, वह इसमें नौसिखिया था। प्रभावी ढंग से अपना बचाव करने के लिए, उसे घर वापस परामर्श की आवश्यकता होगी। बदले में, उन्हें सुनना और उनके अभिलेख किए गए बयान के माध्यम से जाना शामिल होगा, जिसके लिए खुद को तैयार करने के लिए दो या तीन दिनों के समय की आवश्यकता होगी, जो किसी विशेष दिन पर जांच किए गए गवाहों की संख्या-पर निर्भर करता है। याचिकाकर्ता को नेतृत्व किए गए दस्तावेजी साक्ष्यों का भी विश्लेषण करना होगा। जिस ख़तरनाक गति से आई.सी.सी. चला गया, उसने स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता के लिए उसके प्रभावी बचाव के मामले में सब कुछ विफल कर दिया।

63. इसमें जोड़ने के लिए अप्रिय जल्दबाजी के स्पष्ट संकेत हैं, जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को सुनवाई के अवसर से इनकार कर दिया गया। हम देखते हैं कि 30.07.2022 को, याचिकाकर्ता के अनुरोध पर जांच से पहले की सुनवाई 01.08.2022 तक के लिए स्थगित कर दी गई थी, जब उसे अपनी मां को अस्पताल ले जाने की आवश्यकता थी। 08.08.2022 को, याचिकाकर्ता को अपनी मां को फिर से अस्पताल ले जाना पड़ा और इसलिए, 10.08.2022 तक स्थगन की मांग की। इस अनुरोध को आई.सी.सी. ने खारिज कर दिया और याचिकाकर्ता की पीठ पीछे सीडब्ल्यू-3 और 4 के सबूत दर्ज किए गए। 23.08.2022 को, याचिकाकर्ता को अस्वस्थ कर दिया गया था क्योंकि वह बुखार और दस्त से पीड़ित था। याचिकाकर्ता ने दो दिन के स्थगन की मांग की थी। जिरह के लिए मौजूद सीडब्ल्यू-3 ने आगे उपस्थित होने में असमर्थता व्यक्त की क्योंकि उसने कहा कि वह पहले ही दो बार जिरह के लिए उपस्थित हो चुकी है। आई.सी.सी. ने टिप्पणी की कि याचिकाकर्ता उससे जिरह करने में विफल रही है। बचाव पक्ष के साक्ष्य दर्ज करने के लिए मामले को 25.08.2022 तक के लिए स्थगित कर दिया गया। गवाह, जो जिरह के लिए महत्वपूर्ण था, स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता की स्पष्ट अस्वस्थता और उसके द्वारा मांगे गए अल्प स्थगन के बावजूद, उसे फिर से वापस नहीं बुलाया गया था। इस संबंध में, रिट याचिका के प्रस्तर-96, 97, 98 और 99 में याचिकाकर्ता के दावों का संदर्भ दिया जा सकता है, जहां यह कहा गया है:

"96. कि याचिकाकर्ता ने आपत्ति जताई थी कि आई.सी.सी. ने 08.08.2022, 10.08.2022 और 05.09.2022 को बिना किसी कारण या औचित्य के एकपक्षीय जांच की थी। आई.सी.सी. ने उसी के जवाब में राय दी थी कि याचिकाकर्ता 10-8-2022 को सुनवाई के लिए उपस्थित हुआ था और उसे 6-8-2022 और 8-8-2022 को हुई पिछली दो सुनवाइयों की कार्यवाही के बारे में सूचित किया गया था। उन्होंने इसके लिए दैनिक आदेश पत्रक की प्रति मांगी और आई.सी.सी. ने उन्हें सूचित किया कि यह उन्हें उस दिन (10-8-2022) की सुनवाई के अंत में

सीडब्ल्यू-3 और सीडब्ल्यू-4 के बयानों की प्रतियों के साथ प्रदान किया जाएगा। यह भी तर्क दिया गया है कि 5-8-2022 (शुक्रवार) को हुई सुनवाई के दौरान, जांच की अगली सुनवाई 6-8-2022 (शनिवार) को दोपहर 3:30 बजे शिकायतकर्ता के शेष गवाहों के बयान के लिए निर्धारित की गई थी। हालांकि, याचिकाकर्ता ने स्थगन का अनुरोध किया।

97. इस संबंध में यह प्रस्तुत किया जाता है कि आई.सी.सी. ने 06.08.2022 को रात 11:30 बजे यानी काफी पहले ही 08.08.2022 को निर्धारित सुनवाई को स्थगित करने के लिए याचिकाकर्ता के अनुरोध को प्राप्त करने की बात स्वीकार की है। आई.सी.सी. ने यह भी स्वीकार किया है कि वास्तविक आधार पर याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति के बारे में अग्रिम जानकारी होने के बावजूद 08.08.2022 को एकपक्षीय सुनवाई आयोजित की गई थी।

98. कि कथित आई.सी.सी. सदस्यों द्वारा सभी संबंधित पक्षों की सुविधा के अनुसार कार्यवाही को शेड्यूल करने/फिर से निर्धारित करने में आने वाली कठिनाइयों और परिस्थितियों" का कोई विवरण नहीं दिया गया है। किसी भी वैध कारण के अभाव में, यह माना जाना चाहिए कि आई.सी.सी. ने याचिकाकर्ता के खिलाफ अपने अत्यधिक पूर्वाग्रह के कारण ही कार्यवाही को आगे बढ़ाया। याचिकाकर्ता की पीठ के पीछे शिकायतकर्ता के गवाहों की जांच को भी दर्ज करने का कोई औचित्य नहीं है।

99. आई.सी.सी. का यह तर्क कि याचिकाकर्ता को केवल इसलिए कोई नुकसान नहीं हुआ क्योंकि याचिकाकर्ता को उनके बयानों की प्रतियां और उनसे जिरह करने का अवसर प्रदान किया गया था, तर्कसंगत नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ता को उनके बयानों की सच्ची और वफादार रिकॉर्डिंग सुनिश्चित करने और उनके आचरण को देखने के लिए उनकी मुख्य परीक्षण की रिकॉर्डिंग के दौरान उपस्थित होने का अधिकार था।

64. आई.आई.टी. (प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6) की ओर से दायर जवाबी हलफनामे के प्रस्तर-87 में, रिट याचिका के प्रस्तर-96, 97 और 98 का उत्तर इस प्रकार दिया गया है:

"87 - कि रिट याचिका के प्रस्तर-96, 97 और 98 की सामग्री को स्वीकार नहीं किया जाता है जैसा कि कहा गया है और इसलिए अस्वीकार कर दिया जाता है। इसके अलावा, उसके जवाब में यह प्रस्तुत किया जाता है कि यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि यह नियमित सुनवाई का एक चरण था और अपराधी/याचिकाकर्ता द्वारा मांगे गए स्थगन के कारण कार्यवाही पूरी होने में देरी होती। संभवत: इसी वजह से आई.सी.सी. ने सुनवाई को उदारतापूर्वक स्थगित करने में सावधानी बरती थी। हालांकि, सुनवाई से पहले याचिकाकर्ता को प्रत्येक सुनवाई का नोटिस दिया गया था। यदि याचिकाकर्ता किसी भी कारण से कार्यवाही से दूर रहने का विकल्प चुनता है, तो आई.सी.सी. से याचिकाकर्ता की सुविधानुसार अपनी बैठक को फिर से निर्धारित करने की उम्मीद नहीं की जा सकती है। इस प्रकार, सुनवाई अपने निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार अवधारित की गई थी और यह याचिकाकर्ता था जिसने अपनी इच्छा से कार्यवाही से दूर रहने का विकल्प चुना था।

65. जवाबी हलफनामे के प्रस्तर-87 को पढ़ने से यह स्पष्ट होगा कि आई.आई.टी. द्वारा उनके लिए ऐसी अप्रिय जल्दबाजी में होने का कोई ठोस कारण नहीं दिया गया है जो स्वाभाविक रूप से याचिकाकर्ता के निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार को कम कर देगा। इस संबंध में **ऑरेलियानो फर्नांडीस बनाम गोवा राज्य और अन्य, (2024)1 एस.सी.सी. 632** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है। ऑरेलियानो फर्नांडीस (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियाँ प्रासंगिक हैं:

"(डी) बवंडर कार्यवाही

70. अभिलेख की जांच करने पर, यह सामने आता है कि जिस बिंदु पर समिति एक त्रुटि में गिर गई थी, वह तब थी जब उसने पहली कुछ सुनवाई के बाद पूरी कार्यवाही को तेजी से आगे बढ़ाने का प्रयास किया और अपीलकर्ता को उक्त कार्यवाही में प्रभावी ढंग से भाग लेने के लिए उचित समय देने से इनकार कर दिया। उल्लेखनीय है कि समिति की कार्यवाहियां 16-4-2009 को शुरू हुई थीं और 5-6-2009 को समाप्त हुई थीं। इस अवधि के दौरान, समिति द्वारा 18 बैठकें अवधारित की गईं। समिति की बैठकें अवधारित करने की तारीखों का माह-वार विवरण निम्नलिखित है:

(i) अप्रैल, 2009 - 16, 27 और 29 तारीख को
(ii) मई 2009 - 6, 12, 13, 14, 19, 20, 22, 23, 25, 27, 28 और 29 तारीख को
(iii) जून, 2009 - 3, 4 और 5 तारीख को

71. यह भी उल्लेखनीय है कि जांच के समापन के लिए सी.सी.एस. (सी.सी.ए.) नियमों के तहत निर्धारित समय अवधि आमतौर पर नियुक्ति के आदेश की प्राप्ति की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर होती है। लेकिन, यहां, पूरी प्रक्रिया को 39 दिनों में समाप्त कर दिया गया था। इससे पता चलता है कि समिति को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने की जल्दबाजी थी। कार्यवाही को समाप्त करने के लिए अत्यधिक चिंता का एक ऐसा स्पष्ट उदाहरण दिनांक 5-5-2009 के पत्र से स्पष्ट होता है, जिसे समिति द्वारा अपीलकर्ता को संबोधित किया गया था, जिसमें उसे सूचित किया गया था कि उसका उत्तर दाखिल करने और आगे के बयान दर्ज करने की अगली तारीख 12-6-2009 थी। आश्चर्यजनक रूप से, अगले ही दिन, समिति ने एक और पत्र जारी किया जिसमें उक्त तिथियों को आगे बढ़ाते हुए दावा किया गया था कि पिछले पत्र में एक त्रुटि आ गई थी और अपीलकर्ता को सूचित किया गया था कि उसका उत्तर दाखिल करने की तारीख को "12-5-2009" के रूप में पढ़ा जाना चाहिए और आगे के बयान दर्ज करने की तारीख को "14-5-2009" के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। इस प्रकार तारीखों को पूरे एक महीने पीछे ले जाया जाता है। समिति द्वारा दिखाए गए जल्दबाजी और हड़बड़ी का एक और गंभीर उदाहरण इस तथ्य से प्राप्त किया जा सकता है कि 20-5-2009 को, समिति ने अपीलकर्ता को 20-5-2009 को खुद को पेश करने का अंतिम अवसर दिया था, न केवल अपना बयान पूरा करने के लिए, बल्कि शिकायतकर्ताओं और अन्य गवाहों से भी जिरह करने के लिए। इसके साथ ही, समिति ने अपीलकर्ता को छह और बयान भेजे और उसे 48 घंटे के भीतर यानी 22-5-2009 तक अपना जवाब प्रस्तुत करने का निर्देश दिया।

असंवादित

72. यहां तक कि अगर इस न्यायालय को प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुति को स्वीकार करना था कि अपीलकर्ता किसी तरह कार्यवाही को लम्बा करने के लिए कमजोर बहाने की पेशकश कर रहा था और उसके द्वारा लिया गया स्वास्थ्य आधार वास्तविक नहीं था, तो यह समिति के दृष्टिकोण की व्याख्या नहीं करता है जो इस तथ्य से अच्छी तरह वाकिफ था कि 20-5-2009 को अपीलकर्ता को कम से कम छह और बयान सौंपे गए थे। यहां तक कि अगर वह स्वस्थ और हार्दिक होता, तब भी उसे अतिरिक्त बयानों का जवाब देने के लिए एक उचित समय की आवश्यकता होती और साथ ही, शिकायतकर्ताओं से जिरह करने और अपने बयान को पूरा करने के लिए खुद को तैयार करना होता। इसे समिति द्वारा केवल एक अनुचित निर्देश कहा जा सकता है।

73. जांच को बंद करने के लिए समिति द्वारा प्रदर्शित अनुचित जल्दबाजी, अपीलकर्ता के निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार में कटौती को उचित नहीं ठहरा सकती है। जिस तरह से समिति ने जांच कार्यवाही करने का कार्य किया, उसके कारण प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के एक महत्वपूर्ण पहलू से उचित प्रक्रिया से गंभीर रूप से समझौता किया गया था। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जब वर्तमान अपील की कार्यवाही, विषय-वस्तु हुई थी, तो पी.ओ.एस.एच. अधिनियम क्षितिज पर कहीं नहीं था और क्षेत्र पर ***विशाखा [विशाखा बनाम राजस्थान राज्य, (1997) 6 एस.सी.सी. 241: 1997 एस.सी.सी. (क्रिल०) 932]*** *दिशानिर्देशों का कब्जा था। उक्त दिशा-निर्देशों में प्रक्रियात्मक अनुपालन करने में प्राकृतिक न्याय और निष्पक्ष खेल के सिद्धांतों के अनुप्रयोग को भी बाहर नहीं किया गया है। इस पहलू पर दिशानिर्देशों में चुप्पी समिति को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को दरकिनार करने और अपीलकर्ता को निष्पक्ष सुनवाई देने के उचित अवसर को कम करने के लिए एक संभाल नहीं दे सकती थी। इस न्यायालय ने बार-बार कहा है कि जब नियम मौन होते हैं, तब भी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को उनमें पढ़ा जाना चाहिए।*

74. पीड़ितों/शिकायतकर्ताओं के प्रति निष्पक्ष होने और शिकायतों को शीघ्रता से समाप्त करने की अपनी गहरी चिंता में, समिति ने अपीलकर्ता के साथ घोर अन्याय किया है। इसने इस प्रमुख सिद्धांत को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए, बल्कि स्पष्ट रूप से किया जाना चाहिए। ऑडी अल्टरम पार्टम के सिद्धांतों को इस लापरवाह तरीके से हवाओं में नहीं फेंका जा सकता था।

66. ऑरेलियानो फर्नांडीस के मामले की तरह, आई.सी.सी. भी कम जल्दी में नहीं थी, याचिकाकर्ता को प्रभावी ढंग से अपना बचाव करने के लिए उचित समय से वंचित कर रही थी, जिसके बारे में हम पहले ही टिप्पणी कर चुके हैं। इसलिए, हम मानते हैं कि याचिकाकर्ता को इस मामले में आई.सी.सी. द्वारा अपनाई गई कार्यवाही के जल्दबाजी के कारण सुनवाई के उचित अवसर से वंचित कर दिया गया था और जिस तरह से यह उनके बारे में चला गया था, इसका विवरण यहां पहले दिया गया था।

67. हम पूर्वाग्रह है कि प्रचार किया गया है कि की बात की जांच करने का इरादा नहीं है, आई.सी.सी. सदस्यों के आचरण से अनुमानित, के रूप में यह आवश्यक और न ही वांछनीय हो सकता है. हालाँकि, यह सवाल कि

क्या याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही का संचालन, जिस तरह से यह किया गया था, कानून में दुर्भावना के अनुमान को जन्म देता है, प्रबल है।

68. कानून में दुर्भावना क्या है, सुश्री **X बनाम रजिस्ट्रार जनरल, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय और अन्य, (2022) 14 एस.सी.सी. 187** में सर्वोच्च न्यायालय के विचार के लिए आया। सुश्री एक्स (उपरोक्त) में, यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा देखा गया था:

*"60. हम **कलाभारती विज्ञापन बनाम हेमंत विमलनाथ नारीचनिया [कलाभारती विज्ञापन बनाम हेमंत विमलनाथ नारीचानिया, (2010) 9 एस.सी.सी. 437: (2010) 3 एस.सी.सी. (सीआईवी) 808]** में इस न्यायालय द्वारा की गई निम्नलिखित टिप्पणियों का लाभ उठा सकते हैं: (एस.सी.सी. पीपी 448-49, प्रस्तर-25-26)*

"25. राज्य दुर्भावना या द्वेष के बिना निष्पक्ष रूप से कार्य करने के लिए बाध्य है - वास्तव में या कानून में। "कानूनी द्वेष" या "कानून में दुर्भावना" का अर्थ है वैध बहाने के बिना किया गया कुछ। यह उचित या संभावित कारण के बिना गलत तरीके से और जानबूझकर किया गया कार्य है, और जरूरी नहीं कि बुरा भावना और द्वेष से किया गया कार्य हो। यह दूसरों के अधिकारों की अवहेलना में एक जानबूझकर किया गया कार्य है। जहां राज्य के प्रति दुर्भावना का आरोप लगाया जाता है, वहां यह कभी भी राज्य की ओर से व्यक्तिगत दुर्भावना या द्वेष का मामला नहीं हो सकता है। यह एक ऐसा कार्य है जिसे तिरछी या अप्रत्यक्ष वस्तु के साथ लिया जाता है। इसका अर्थ है "उन उद्देश्यों के लिए वैधानिक शक्ति का प्रयोग जिनके लिए यह कानून में अभिप्रेत है"। इसका अर्थ है दूसरे के पूर्वाग्रह के लिए कानून का सचेत उल्लंघन, दूसरों के अधिकारों की अवहेलना करने के लिए प्राधिकरण की ओर से एक भ्रष्ट झुकाव, जो इरादा उसके हानिकारक कृत्यों से प्रकट होता है। (एडीएम, जबलपुर बनाम शिवाकांत शुक्ला [एडीएम, जबलपुर बनाम शिवाकांत शुक्ला, (1976)2 एस.सी.सी. 521] ,एस.आर. वेंकटरमन बनाम भारत संघ [एस.आर. वेंकटरमन बनाम भारत संघ, (1979)2 एस.सी.सी. 491: 1979 एस.सी.सी. (एलएंडएस) 216], एपी राज्य बनाम गोवर्धनलाल पिट्टी [एपी राज्य बनाम गोवर्धनलाल पिट्टी, (2003)4 एस.सी.सी. 739] , बीपीएल लिमिटेड बनाम एसपी गुरुराजा [बीपीएल लिमिटेड बनाम एसपी गुरुराजा, (2003)8 एस.सी.सी. 567] और डब्ल्यूबी एसईबी वी। दिलीप कुमार रे [डब्ल्यूबी एसईबी बनाम दिलीप कुमार रे, (2007) 14 एस.सी.सी. 568: (2009) एस.सी.सी. (एल एंड एस) 860] ।

26. अनधिकृत प्रयोजन के लिए आदेश पारित करना कानून में दुर्भावना है। (वीडियो पंजाब एसईबी लिमिटेड बनाम ज़ोरा सिंह [पंजाब एसईबी लिमिटेड बनाम ज़ोरा सिंह, (2005) 6 एस.सी.सी. 776] और भारत संघ बनाम वी. रामकृष्णन [भारत संघ बनाम वी. रामकृष्णन, (2005) 8 एस.सी.सी. 394: 2005 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 1150]

61. यह तुच्छ है कि राज्य दुर्भावना या द्वेष के बिना निष्पक्ष रूप से कार्य करने के लिए बाध्य है - वास्तव में या कानून में। "कानूनी द्वेष" या "कानून में दुर्भावना" का अर्थ है वैध बहाने के बिना किया गया कुछ। यह

उचित या संभावित कारण के बिना गलत तरीके से और जानबूझकर किया गया कार्य है, और जरूरी नहीं कि बुरा भावना और द्वेष से किया गया कार्य हो। जहां राज्य के प्रति दुर्भावना का आरोप लगाया जाता है, वहां यह कभी भी राज्य की ओर से द्वेष या द्वेष का मामला नहीं हो सकता है। इसका मतलब होगा "उन उद्देश्यों के लिए वैधानिक शक्ति का प्रयोग जिनके लिए यह कानून में है"। इसका अर्थ है दूसरे के पूर्वाग्रह के लिए कानून का जानबूझकर उल्लंघन, दूसरों के अधिकारों की अवहेलना करने के लिए प्राधिकरण की ओर से एक भ्रष्ट झुकाव।

69. आई.सी.सी. की कार्यवाही में भाग लेने की जल्दबाजी, कार्यवाही की सांस लेने वाली गति के लिए उचित कारण के बिना, याचिकाकर्ता के बचाव के अवसर को बाधित कर दिया। यह आई.सी.सी. के सदस्यों द्वारा याचिकाकर्ता के प्रभावी ढंग से बचाव के अधिकार की अवहेलना करते हुए जानबूझकर किया गया एक कार्य था। हो सकता है कि उन्होंने याचिकाकर्ता के खिलाफ पूर्वाग्रह न रखा हो, लेकिन कार्यवाही में उनकी सचेत कार्रवाई, जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को निष्पक्ष सुनवाई से इनकार कर दिया गया, निश्चित रूप से कानून में दुर्भावना से उनके कार्यों को खराब कर देगा, यदि और कुछ नहीं।

70. यह जांच में उन प्रक्रियात्मक खामियों के अध्याय को बंद नहीं करता है, जहां प्राकृतिक न्याय या निष्पक्ष सुनवाई का अवसर एक दुर्घटना थी।

71. गवाहों के साक्ष्य सुनने में आई.सी.सी. द्वारा वास्तव में एक विचित्र प्रक्रिया अपनाई गई थी। शिकायतकर्ता के लिए पहले गवाह के बयान के बाद, यानी स्वयं शिकायतकर्ता ने दस अन्य गवाहों का हवाला दिया, जिनमें से किसी को भी अगला नहीं बुलाया गया। ऐसा नहीं है कि शिकायतकर्ता के अन्य गवाहों को पेश नहीं करने के लिए चुना गया था। आई.सी.सी. के समक्ष जांच अभी भी शिकायतकर्ता के साक्ष्य को सुन रही थी, जब तुरंत, पहले गवाह की गवाही के निष्कर्ष के बाद, शिकायतकर्ता, याचिकाकर्ता को अपने बचाव में गवाही देने और जिरह का सामना करने का निर्देश दिया गया था। बचाव पक्ष के साक्ष्य अभी तक शुरू नहीं हुए थे, लेकिन याचिकाकर्ता को बुलाया गया था। अब, हालांकि यह न्यायालय समझता है कि आई.सी.सी. पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत किसी मामले की आवश्यकता और संवेदनशीलता के अनुरूप अपनी प्रक्रिया तैयार कर सकता है, गवाहों की जांच का क्रम, अपराधी को अपना बचाव करने का उचित अवसर देने के लिए, यह आवश्यक है कि शिकायतकर्ता, जो आरोप लाता है, अपराधी को बचाव करने के लिए बुलाए जाने से पहले मामले को साबित करने के लिए पहली बार में अपने सभी सबूत पेश करे। आखिरकार, पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत एक मामले में भी अपराधी की सुनवाई शिकायतकर्ता द्वारा लाए गए आरोपों पर बचाव करती है और उसके सबूतों से साबित होती है। इसलिए, प्रक्रिया की निष्पक्षता के लिए यह आवश्यक होगा कि शिकायतकर्ता के साक्ष्य को पहले बचाव पक्ष से पहले पूरी तरह से सुना जाए या अपराधी को आरोपों का खंडन करने के लिए सबूत पेश करने के लिए कहा जाए। यह एक बेतरतीब प्रक्रिया नहीं हो सकती है, जहां शिकायतकर्ता की जांच की जाती है और शिकायतकर्ता के साक्ष्य को पूरी तरह से पेश किए जाने से पहले, अपराधी को उसके खिलाफ एक मामले

के जवाब में गवाही देने के लिए कहा जाता है कि उसने पूरी तरह से नहीं सुना है, शिकायतकर्ता ने अपने सभी सबूतों से साबित किया है कि वह पेश करेगी।

72. इस मामले में, शिकायतकर्ता के साक्ष्य के निष्कर्ष पर, यानी 29.07.2022 को उसकी जिरह के बाद, कार्यवाही 30.07.2022 तक स्थगित कर दी गई। 30.07.2022 को, याचिकाकर्ता के अनुरोध पर कार्यवाही 01.08.2022 तक स्थगित कर दी गई। 01.08.2022 को, याचिकाकर्ता को 29.07.2022 को दायर किए गए कुछ अतिरिक्त दस्तावेजों के संबंध में शिकायतकर्ता से संक्षेप में जिरह करने की अनुमति दी गई थी। इसके बाद आई.सी.सी. ने शिकायतकर्ता से पूछताछ की, ताकि उसकी शिकायत के बारे में मामलों को स्पष्ट किया जा सके, जिसे प्राथमिक उद्देश्य दिखाया गया है, जिसके लिए कार्यवाही 01.08.2022 के लिए निर्धारित की गई थी। महत्वपूर्ण निर्देश इस दिन आया, जब 01.08.2022 को कार्यवाही के अंत में, जांच 04.08.2022 तक के लिए स्थगित कर दी गई, जिसमें याचिकाकर्ता को अपने बचाव में गवाही देने और जिरह का सामना करने का निर्देश दिया गया, यानी निर्धारित अगली तारीख पर। यह दिनांक 01.08.2022 के आदेश-पत्र और 29.07.2022 के पहले के आदेश-पत्र के अवलोकन से स्पष्ट है, जिसे हमने देखा है।

73. कार्यवाही शुरू होने से पहले 04.08.2022 को, याचिकाकर्ता ने आई.सी.सी. के समक्ष एक आवेदन दायर किया, जिसमें उनके द्वारा दिए गए निर्देश को वापस लेने की मांग करते हुए कहा गया था कि याचिकाकर्ता को इस स्तर पर गवाही देने की आवश्यकता प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और आई.आई.टी. के नियमों के नियम 30 का उल्लंघन करेगी। इस आवेदन को आई.सी.सी. ने खारिज कर दिया और याचिकाकर्ता ने अपने पक्ष में गवाही देने के अवसर से इनकार कर दिया। इसके बाद शिकायतकर्ता के साक्ष्य को फिर से दर्ज करने के लिए कार्यवाही 05.08.2022 तक स्थगित कर दी गई, यानी उसके अन्य गवाहों की। 04.08.2022 को आई.सी.सी. के समक्ष अवधारित जांच के आदेश-पत्र में लिखा है:

"1. प्रतिपक्षी ने 4 अगस्त 2022 को एक आवेदन (आर-7) दायर किया है, जिसमें आई.सी.सी. के समक्ष हस्ताक्षर किए जाने के लिए लिखित रूप में अपना बयान प्रस्तुत करने के लिए अंतिम तिथि (1 अगस्त 2022) को दिए गए निर्देश का विरोध किया गया है। प्रतिपक्षी ने कहा है कि उसे गवाही देने और जिरह से गुजरने के लिए कहना पूरी तरह से प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करेगा और उसके मामले को बर्बाद कर देगा। उन्होंने आई.सी.सी. से अपनी गवाही/जिरह के लिए 1 अगस्त 2022 के अपने आदेश को वापस लेने का अनुरोध किया है। प्रतिपक्षी ने अनिवार्य गवाही और उससे जिरह करने के लिए आई.सी.सी. की शक्तियों के बारे में संदेह जताया है।

2. आई.सी.सी. ने उक्त आवेदन पर विचार-विमर्श किया है और उसका विचार है कि प्रतिपक्षी शिकायत के संबंध में जिरह / पूछताछ के लिए खुद को प्रस्तुत करने में रुचि नहीं रखता है। इसलिए, इसलिए, उनके गवाही देने का अवसर बंद हो गया है।

3. मामला अब 5 अगस्त 2022 को शिकायतकर्ता के गवाहों के बयान के लिए पोस्ट किया गया है।

4. शिकायतकर्ता और प्रतिपक्षी 5 अगस्त 2022 को दोपहर 2.30 बजे बैठक कक्ष, पीबीसीईसी, आई.आई.टी. के में समिति के समक्ष उपस्थित होंगे। आयोजन स्थल में किसी भी बदलाव के बारे में पक्षगण को पहले से सूचित किया जाएगा।

74. आई.सी.सी. द्वारा उपरोक्त निर्देश और उनके द्वारा अपनाई गई कार्रवाई न केवल अजीब थी, बल्कि स्पष्ट रूप से अवैध थी क्योंकि ये उचित प्रक्रिया के दांतों में निहित हैं जो चीजों के उचित क्रम में जांच से पहले प्राकृतिक न्याय और निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करती है। हम ऐसा इसलिए कहते हैं, क्योंकि, जैसा कि दिनांक 29.07.2022, 01.08.2022 और 04.08.2022 के आदेश इंगित करेंगे, यह स्पष्ट है कि हालांकि शिकायतकर्ता की अपनी गवाही 29.07.2022 को प्रभावी ढंग से समाप्त हो गई थी, जिसमें 01.08.2022 को निपटाए गए सभी अतिरिक्त मामले थे, शिकायतकर्ता का साक्ष्य किसी भी तरह से खत्म नहीं हुआ था। उसका मामला अभी भी चल रहा था और उसकी ओर से सबूतों की सुनवाई बाकी थी। इसलिए, शिकायतकर्ता के स्वयं के साक्ष्य समाप्त होने के तुरंत बाद याचिकाकर्ता को अपने बचाव में गवाही देने के लिए मजबूर करने वाला एक निर्देश, याचिकाकर्ता को उन सभी सबूतों का जवाब देने के अवसर से वंचित करने के बराबर है जो उसके खिलाफ सामने आएंगे, जब शिकायतकर्ता के बाकी गवाहों से पूछताछ की गई थी। तार्किक और कानूनी रूप से भी, एक अपराधी को शिकायतकर्ता के सभी सबूतों को सुनने के बाद उसके खिलाफ सबूतों का जवाब देने के लिए कहा जाता है; सिर्फ शिकायतकर्ता की अपनी गवाही सुनने के बाद नहीं। आखिरकार, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, अपराधी को शिकायतकर्ता की पूरी गवाही का जवाब देने का अधिकार है; अकेले शिकायतकर्ता की व्यक्तिगत गवाही नहीं। आई.सी.सी. द्वारा 01.08.2022 को दिया गया निर्देश, याचिकाकर्ता के गवाह के रूप में पेश होने के अवसर को रोक देता है क्योंकि शिकायतकर्ता के पूरे सबूत को सुनने के बाद उसे गवाही देने के लिए कहा गया था, याचिकाकर्ता के सुनने के अधिकार के साथ-साथ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का भी स्पष्ट रूप से उल्लंघन करता है। हम तदनुसार धारण करते हैं।

75. सुनवाई के दौरान, याचिकाकर्ता की ओर से यह दावा किया गया था कि उसके आठ दस्तावेजों में से सात, जिन पर वह भरोसा करना चाहता था और उन्हें सम्मन करने की मांग करता था, उन्हें अनुमति नहीं दी गई थी, उन्हें अवसर देने से इनकार कर दिया गया था, इनमें से एक दस्तावेज को तलब करने का आदेश दिया गया था। प्रतिपक्षियों के वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस बात पर जोर दिया कि दस्तावेज बिल्कुल भी प्रासंगिक नहीं थे और इसलिए, खारिज कर दिए गए। रिट याचिका के प्रस्तर-108 और 149 के अवलोकन पर, आई.आई.टी. की ओर से दायर जवाबी हलफनामे के प्रस्तर-88 और 96 में इसका जवाब, इसके अलावा दिनांक 14.09.2022 के आदेश-पत्र के अवलोकन के अलावा, हम जो पाते हैं वह यह है कि याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किए गए दस्तावेजी साक्ष्य की जांच इसे अभिलेख करने या इसकी प्रासंगिकता की कसौटी पर बहुत सख्ती से बुलाने के लिए स्वीकार करने के चरण में की गई थी। इसके विपरीत, अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि शिकायतकर्ता के दस्तावेजी साक्ष्य को उदारतापूर्वक स्वीकार किया गया था। इस न्यायालय को यह टिप्पणी करनी चाहिए कि आई.सी.सी. द्वारा 14.09.2022 को पारित आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि उन्होंने याचिकाकर्ता द्वारा पेश किए जाने या मांगे जाने वाले आठ दस्तावेजों में से सात को स्वीकार करने से इनकार

करते समय अपना दिमाग लगाया, लेकिन उस तरह की जांच आवश्यक नहीं थी। एक घरेलू जांच एक समान मामला होना चाहिए और सबूतों के सख्त नियम या दस्तावेजों की औपचारिक स्वीकृति नहीं है, जिस तरह से यह कानून की अदालत में है।

76. इसमें जोड़ने के लिए यह तथ्य है कि जबकि अकेले एक दस्तावेज, जिसे दस्तावेज़ संख्या-8 के रूप में वर्णित किया गया है, आई.सी.सी. द्वारा याचिकाकर्ता के लिए 14.09.2022 को तलब किया गया था, लेकिन उस दिन बचाव पक्ष के साक्ष्य को बंद कर दिया गया था। इसलिए, एकमात्र दस्तावेज, जिसे आई.सी.सी. ने प्रासंगिक पाया, वास्तव में भी तलब नहीं किया गया था। कार्यवाही इस धारणा को धोखा देती है कि शिकायतकर्ता के लिए लगभग सभी दस्तावेजी साक्ष्य उसके पूछने के लिए स्वीकार कर लिए गए थे, याचिकाकर्ता को अभिलेख पर अपने कुछ दस्तावेजों को पेश करने में कठिनाई हुई, जिन्हें वह बुलाना चाहता था। ऐसा नहीं है कि याचिकाकर्ता के दस्तावेजी साक्ष्य को अभिलेख करने के लिए बिल्कुल भी स्वीकार नहीं किया गया था। 29.07.2022 को एक सूची के साथ उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों को आर.डी.ई.-2 से आर.डी.ई.-32 के रूप में चिह्नित किया गया और अभिलेख पर स्वीकार किया गया। हालांकि, समिति द्वारा बुलाए गए दस्तावेजों की तलाशी ली गई और आठ दस्तावेजों में से सात की सीमा तक अभिलेख से बाहर रखा गया। इस दृष्टिकोण का प्रभाव, जहां याचिकाकर्ता जांच के दौरान मांगे गए या बुलाए गए आठ दस्तावेजों में से एक को भी अभिलेख पर पेश करने में सक्षम नहीं था, जबकि शिकायतकर्ता के लिए अच्छी संख्या में दस्तावेजों को बुलाया गया, उन पर विचार किया गया और कुछ को तलाशी भी ली गई और अभिलेख पर लाया गया, जिससे जांच कुछ हद तक एकतरफा प्रतीत होती है, जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को अवसर से वंचित किया गया। ऐसे अन्य मुद्दे भी हैं, जो यह धारणा पैदा करते हैं कि जांच एकतरफा थी और प्राकृतिक न्याय की हानि हुई थी।

77. याचिकाकर्ता ने कई गवाहों का हवाला दिया, और उनमें से आर.डब्ल्यू.-12 और आर.डब्ल्यू.-23 थे। आर.डब्ल्यू.-12 गौरव मिश्रा और आर.डब्ल्यू.-23 डॉ. फैसल थे। याचिकाकर्ता का मामला यह है कि ये गवाह आई.सी.सी. के समक्ष अपने लिखित बयानों के साथ पेश हुए और शिकायतकर्ता द्वारा जिरह के लिए खुद को पेश किया और समिति के सवालों को प्रस्तुत किया, लेकिन उनके लिखित बयानों को आई.सी.सी. ने स्वीकार नहीं किया। याचिकाकर्ता का मामला स्पष्ट रूप से यह है कि आई.सी.सी. ने इन दो गवाहों के लिखित बयानों को छोड़कर, याचिकाकर्ता के बचाव और एक प्रभावी सुनवाई के अधिकार को बाधित किया।

78. दिनांक 01.09.2022 के आदेश-पत्र के अवलोकन से पता चलता है कि आई.सी.सी. ने अपने आदेश में कहा है कि शिकायतकर्ता द्वारा आर.डब्ल्यू.-12 की जांच और जिरह की गई थी। इसके बाद यह टिप्पणी की जाती है कि इस गवाह ने उस पर 22 पृष्ठों के नोट्स लिखे थे, जिसमें उसने कहा था कि वह 20 अगस्त, 2022 के बाद 2-3 दिनों से तैयारी कर रहा था, जब उसे याचिकाकर्ता द्वारा सूचित किया गया था कि उसे आई.सी.सी. के समक्ष गवाही देनी पड़ सकती है। आई.सी.सी. ने टिप्पणी की है कि गवाह ने जो नोट पेश किए हैं, वे वैध बयान नहीं हैं और उन्हें अभिलेख पर नहीं लिया जा सकता है। हम देखते हैं कि एक लिखित बयान के माध्यम

से आई.सी.सी. के समक्ष गवाही देने की प्रथा, एक मुख्य परीक्षा के बदले में एक गवाह के हाथ में, अन्य गवाहों के मामले में आसानी से स्वीकार कर लिया गया था। आर.डब्ल्यू.-13 के मामले में, याचिकाकर्ता की ओर से गवाह के रूप में पेश हुईं दीपा आनंद ने भी लिखित बयान के रूप में अपनी गवाही पेश की, जिसे अभिलेख पर स्वीकार कर लिया गया। आदेश 1 सितंबर, 2022 से पता चलता है कि लिखित बयान मुख्य मुख्य परीक्षण के रूप में कार्य करता है, क्योंकि बाद की कार्यवाही केवल आई.सी.सी. द्वारा गवाह की परीक्षा और शिकायतकर्ता द्वारा जिरह के बारे में थी। ऐसी परिस्थितियों में, आर.डब्ल्यू.-12 के लिखित बयान को इस आधार पर बाहर करना कि यह लंबा था या इसे 'नोट्स' के रूप में डब करना, वास्तव में याचिकाकर्ता के लिए एक गवाह को प्रभावी ढंग से गवाही देने में बाधा डालता है। समकालीन समय में, एक लिखित बयान दीवानी न्यायालयों में भी स्वीकार्य है, जो हलफनामे पर दायर किया गया है। यह मुख्य परीक्षा अवधारित करने का आदर्श तरीका नहीं हो सकता है, लेकिन फिर भी, आई.सी.सी. जैसे घरेलू मंच पर ठोस सबूत पेश करने का एक व्यावहारिक तरीका है। यह याचिकाकर्ता के बचाव के अधिकार के लिए बहुत मायने रखता यदि आई.सी.सी. ने अन्य गवाहों की तरह आर.डब्ल्यू.-12 के लिखित बयान को स्वीकार कर लिया होता।

79. इसी तरह, आर.डब्ल्यू.-23 के मामले में, डॉ. फैसल के मामले में, उनके लिखित बयान को आई.सी.सी. द्वारा 12.09.2022 को बाहर रखा गया था। जिस तरह से और किसी भी कारण से इसे बाहर रखा गया था, उसे आई.सी.सी. द्वारा दर्ज 12.09.2022 के आदेश-पत्र की सामग्री के पुनरुत्पादन पर सबसे अच्छी तरह से समझा जा सकता है, जिसमें लिखा था:

"1. आर.डब्ल्यू.-23 ने आज अपनी निरंतर परीक्षा के लिए ज़ूम के माध्यम से खुद को प्रस्तुत किया।

2. उन्होंने सुनवाई शुरू होने से ठीक पहले अपने लिखित बयान की एक प्रति डाक से भेज दी है। यह देखा गया है कि 8-9-2022 को जब उन्होंने खुद को गवाह के रूप में पेश किया तो उनसे विशेष रूप से पूछा गया कि क्या उनके पास प्रस्तुत करने के लिए लिखित रूप में कुछ है और उन्होंने कहा कि उनके पास ऐसा कोई लिखित बयान नहीं है। इस स्तर पर जब उसकी परीक्षा समाप्त होने वाली होती है तो लिखित बयान एक बाद का विचार प्रतीत होता है और इसलिए इसे अभिलेख पर नहीं लिया जा सकता है।

3. आई.सी.सी. ने कुछ बिंदुओं पर आर.डब्ल्यू.-23 की संक्षेप में जांच की और उसके बाद शिकायतकर्ता ने उससे जिरह की। उक्त परीक्षा/जिरह को लिखित रूप में कर दिया गया और उसके डिजिटल हस्ताक्षर के लिए ज़ूम चैट के माध्यम से आर.डब्ल्यू.-23 को भेज दिया गया। इसकी प्रतियां दोनों पक्षों को उपलब्ध कराई गईं।

80. यह गवाह वीडियो कांफ्रेंसिंग के माध्यम से पेश हुआ और आई.सी.सी. को सुनवाई से पहले अपने लिखित बयान की एक प्रति मेल कर दी थी। आई.सी.सी. ने पूर्व दृष्टया इस आधार पर उनका लिखित बयान अभिलेख पर लेने से इनकार कर दिया कि 08.09.2022 को जब वह गवाह के रूप में पेश हुए, तो उनसे पूछा गया कि क्या उन्हें लिखित में कुछ कहना है, जिस पर उन्होंने कहा कि उनके पास लिखित बयान नहीं है। आई.सी.सी.

ने यह राय दी थी कि इस स्तर पर, जब उनकी परीक्षा समाप्त होने वाली थी, तो उनका लिखित बयान एक बाद का विचार प्रतीत होता था और इसलिए, बाहर रखा जाना उचित था। यह वास्तव में एक अजीब रास्ता था। आई.सी.सी. द्वारा उनकी मुख्य परीक्षा के बदले दो गवाहों के लिखित बयानों को स्वीकार करने से इनकार करने के प्रभाव के परिणामस्वरूप निश्चित रूप से याचिकाकर्ता को प्रभावी ढंग से अपना बचाव करने का अवसर देने से इनकार कर दिया गया। ऐसा कोई सांसारिक कारण नहीं है कि आई.सी.सी. ने आर.डब्ल्यू.-23 द्वारा लिखित बयान से इनकार कर दिया, जब उनके अभ्यास से, उन्होंने इसे अन्य गवाहों से स्वीकार कर लिया।

81. प्राकृतिक न्याय का अगला उल्लंघन, जो याचिकाकर्ता द्वारा आरोप लगाया गया है, उस तरीके के कारण है जिसमें आई.सी.सी. द्वारा साक्ष्य सुने गए थे। उनकी शिकायत का जोर यह है कि उन्हें अपने 24 गवाहों में से 23 के साक्ष्य पेश करने की अनुमति नहीं दी गई थी। इसके बजाय, याचिकाकर्ता के अनुसार, आई.सी.सी. ने याचिकाकर्ता को सबूत पेश करने की अनुमति दिए बिना, अपने गवाहों से खुद पूछताछ की। इसके बाद शिकायतकर्ता ने इन गवाहों से जिरह की और फिर आई.सी.सी. ने उनसे जिरह की। यह भी कहा जाता है कि गवाहों से चुनिंदा सवाल पूछे गए थे, ताकि यह दिखाया जा सके कि गवाह या तो अप्रासंगिक थे या पढ़ाए गए थे। एक आरोप यह भी है कि गवाहों को अवमानना कार्रवाई की धमकी दी गई थी, डराया गया था और दुर्व्यवहार किया गया था, ताकि उन्हें सच्चाई से पेश होने और गवाही देने से रोका जा सके। ये आरोप रिट याचिका के प्रस्तर-28 में शामिल हैं। रिट याचिका के प्रस्तर-28 का उत्तर आई.आई.टी. की ओर से दायर जवाबी हलफनामे के प्रस्तर-39 में पाया जाता है। प्रस्तर-28 में किसी भी दावे का उत्तर गंजे इनकार के अलावा, उनके सार के लिए नहीं दिया गया है। इसके बजाय, आई.आई.टी. के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स को आई.सी.सी. की टिप्पणियों का संदर्भ दिया गया है।

82. दिनांक 22.12.2022 के ज्ञापन के खिलाफ याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन के जवाब में, यह कहा गया है कि आई.सी.सी. की इन टिप्पणियों को 22.02.2023 को आई.आई.टी. के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स के समक्ष रखा गया था और बोर्ड की राय थी कि आरोप पूरी तरह से गलत हैं। इस प्रस्तर में यह दलील दी गई है कि आई.सी.सी. की टिप्पणियों के साथ कार्यवृत्त की एक प्रति याचिकाकर्ता को दिनांक 01.03.2023 के आक्षेपित आदेश के साथ सौंपी गई थी। ये रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-31 के रूप में अभिलेख पर हैं। आई.सी.सी. की टिप्पणियां रिट याचिका के पृष्ठ 529 से 542 पर उपलब्ध हैं।

83. हमने उन टिप्पणियों पर गौर किया है और इस संबंध में श्री त्रिपाठी और श्री गोयल द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर भी विचार किया है। रिट याचिका पेपर बुक के पृष्ठ 529 पर एक दस्तावेज है, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए बिंदुओं पर आई.सी.सी. की प्रतिक्रिया आई.आई.टी. के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स द्वारा जारी 22.12.2022 के नोटिस पर दिए गए उनके उत्तर के प्रस्तर-7.1 के माध्यम से है। रिट याचिका पेपर बुक के पृष्ठ संख्या-537 पर, विचाराधीन बिंदु से संबंधित दो प्रश्न और उनके उत्तर इस प्रकार हैं:
उन्होंने कहा, 'आई.सी.सी. ने मुझे अपने गवाहों से परीक्षा कराने की अनुमति नहीं दी और इसके बजाय आई.सी.सी. ने खुद उनकी परीक्षा के साथ-साथ जिरह भी की।

आई.सी.सी. की प्रतिक्रिया: आई.सी.सी. ने भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर (कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न की शिकायतों की जांच) नियम, 2021 के अनुसार जांच की। यह सुनिश्चित करने के लिए कि गवाह स्वतंत्र और निष्पक्ष तरीके से गवाही दे सकते हैं, न तो शिकायतकर्ता और न ही प्रतिपक्षी को अपने स्वयं के गवाहों की जांच या जिरह करने की अनुमति थी।

xxvi) आई.सी.सी. ने एक प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की तरह प्रतिपक्षी के गवाहों से जिरह की थी, जिससे निष्पक्ष और निष्पक्ष तरीके से जांच करने के अपने कर्तव्य का त्याग किया गया था।

आई.सी.सी. का जवाब: आई.सी.सी. इस बात से असहमत है। यह जांच भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर (कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न की शिकायतों की जांच) नियम, 2021 के अनुसार की गई थी। इन नियमों में न तो शिकायतकर्ता के लिए एक प्रस्तोता अधिकारी और न ही प्रतिपक्षी के लिए एक बचाव सहायक का उल्लेख किया गया है।

84. बिंदु पर पक्षगण की दलीलों और आई.सी.सी. के समक्ष कार्यवाही के संबंध में स्वीकार की गई स्थिति के अवलोकन पर, यह विवाद में नहीं है कि आई.सी.सी. ने याचिकाकर्ता को अपने स्वयं के गवाहों के साक्ष्य का नेतृत्व करने की अनुमति नहीं दी थी, या जैसा कि इसे कहा जाता है, मुख्य परीक्षा अवधारित करने के लिए. इसके बजाय, आई.सी.सी. ने गवाहों से पूछताछ की, जिन्हें जवाब देना था। इस तरह के साक्ष्य को याचिकाकर्ता की मुख्य परीक्षा के रूप में माना जाता था। ऐसा भी प्रतीत होता है कि आई.सी.सी. ने इन गवाहों से कुछ और पूछताछ की, जिसे उनकी जिरह कहा गया है। यह प्रक्रिया पूरी तरह से दिमाग चकरा देने वाली प्रतीत होती है। आई.सी.सी. के समक्ष कार्यवाही संवेदनशील हो सकती है, कथित उल्लंघन की प्रकृति और पीड़ित की भेद्यता को ध्यान में रखते हुए, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि आई.सी.सी. के समक्ष कार्यवाही एक तथ्य-खोज जांच है। आखिरकार, ये एक विभागीय जांच के समान कार्यवाही हैं और आई.सी.सी. के निष्कर्षों के आधार पर, अपराधी के लिए दंडात्मक परिणाम हो सकते हैं, जिसमें एक बड़ा जुर्माना लगाना भी शामिल है, जैसा कि वास्तव में इस मामले में हुआ है।

85. एक घरेलू जांच में हितकारी प्रक्रिया, जो एक अपराधी के अपराध या निर्दोषता को निर्धारित करने के लिए बैठती है, जिसमें एक अपराधी शामिल होगा, जिस पर पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत कदाचार का आरोप लगाया गया है, प्रक्रियात्मक निष्पक्षता का एक न्यूनतम अनुमान लगाता है। इसके लिए शिकायतकर्ता के गवाहों की विवेचनाधिकारी के समक्ष प्रमुख साक्ष्यों द्वारा जांच की जानी होगी, जिसे मुख्य परीक्षा कहा जा सकता है। मौखिक बयान के लिए, बदले में एक लिखित बयान देने की प्रथा, आई.सी.सी. द्वारा स्वीकार्य प्रतीत होती है और इसमें कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता है। इसके बाद गवाहों को अपराधी से जिरह के लिए पेश करना होता है। इसी तरह, अपराधी को अपने बचाव में गवाह पेश करने का अधिकार है, लेकिन सवाल यह है कि अपराधी द्वारा पेश किया गया गवाह गवाही कैसे देगा या उसके सबूत दर्ज कराएगा। यह एक पक्ष के लिए सबूत दर्ज करने में सबसे हितकारी प्रक्रियाओं में से एक है कि गवाह के साक्ष्य, यदि मौखिक रूप से दर्ज किया गया है, या जिसे मुख्य परीक्षण कहा जाता है, तो उस पक्ष का नेतृत्व किया जाना चाहिए जो उसे या उसके

प्रतिनिधि को पेश करता है, यदि कार्यवाही में अनुमति दी जाती है। अपराधी सहित एक पक्ष पर कानूनी रूप से स्वीकृत प्रतिबंध, अपने स्वयं के गवाहों से प्रमुख प्रश्न पूछने पर एक है। इस प्रतिबंध को छोड़कर, एक पक्ष को अपने गवाह के साक्ष्य का नेतृत्व करने का अधिकार है, जो तथ्यों के बारे में गैर-विचारोत्तेजक या गैर-प्रमुख प्रश्नों के साथ है जिसे वह अपने बचाव के लिए प्रासंगिक मानता है। यदि किसी अपराधी को अपने स्वयं के गवाह से सवाल पूछने की अनुमति नहीं है, जबकि गवाह की गवाही उसके मुख्य परीक्षा के माध्यम से दर्ज की जा रही है, तो यह निश्चित रूप से अपराधी के बचाव की हानि होगी।

86. मुख्य परीक्षण, अपने सार में, एक पक्ष का ठोस सबूत है, जिसे पक्ष स्वयं या उसके अधिकृत एजेंट, एक अधिवक्ता या रक्षा प्रतिनिधि कहते हैं, न्यायालय या जांच न्यायाधिकरण के समक्ष नेतृत्व करता है, जैसा भी मामला हो। विवेचनाधिकारी या एक समिति द्वारा प्रश्न और इन सवालों के याचिकाकर्ता के गवाहों के जवाब कभी भी याचिकाकर्ता के ठोस साक्ष्य या मुख्य परीक्षण का गठन नहीं कर सकते हैं।

87. गवाह द्वारा एक लिखित बयान, यदि आई.सी.सी. के समक्ष एक मौखिक बयान के बदले में दायर किया जाता है, तो निश्चित रूप से, अपराधी द्वारा अनुचित प्रक्रिया के रूप में आपत्ति नहीं की जा सकती है। यहां मामला बिल्कुल अलग है। यह एक स्वीकृत स्थिति है कि याचिकाकर्ता, जो आई.सी.सी. के समक्ष जांच का सामना कर रहा था, को अपने स्वयं के गवाहों के सबूत पेश करने की अनुमति नहीं थी, जिन्होंने मौखिक गवाही दी थी। इसके बजाय, यह आई.सी.सी. था जिसने गवाहों से सवाल पूछे और उनके जवाबों पर याचिकाकर्ता के लिए मुख्य परीक्षा के रूप में विचार किया गया। इस गवाही पर शिकायतकर्ता ने गवाहों से जिरह की। इसलिए, याचिकाकर्ता को कभी भी सबूत पेश करने का अवसर नहीं मिला। आई.सी.सी. ने याचिकाकर्ता के गवाहों से जो सुना, वह इन गवाहों की गवाही या सबूत नहीं था, बल्कि आई.सी.सी. द्वारा उनसे पूछे गए सवालों के जवाब का एक अभिलेख था। आई.सी.सी. इस कार्यवाही में पक्षकार नहीं है। उनकी भूमिका कितनी भी निष्पक्ष क्यों न हो, बचाव का अधिकार यहां याचिकाकर्ता के अपराधी का है, और यह उसका अधिकार है कि वह अपने स्वयं के साक्ष्य का नेतृत्व करे। उन्हें इस अधिकार से पूरी तरह वंचित कर दिया गया है, जो हमें लगता है कि निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार से घोर इनकार है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का एक बड़ा उल्लंघन है।

88. आई.सी.सी. द्वारा इस कार्रवाई को अपनाने के लिए दिया गया औचित्य यह है कि वे चाहते थे कि गवाह स्वतंत्र और निष्पक्ष तरीके से गवाही दें और इसलिए, न तो शिकायतकर्ता और न ही याचिकाकर्ता को अपने स्वयं के गवाहों की जांच या जिरह करने की अनुमति थी। कम से कम कहने के लिए, आई.सी.सी. का यह रुख पूरी तरह से विकृत है।

89. श्री गोयल ने आई.सी.सी. द्वारा इस प्रविधि को अपनाने की अनिवार्यता पर जोर दिया क्योंकि इसे 'द्रुतशीतन प्रभाव' के रूप में मान्यता प्राप्त है, जो उस पर पक्ष के अत्यधिक प्रभाव के कारण गवाह की सत्यता और उसके साक्ष्य में सच बोलने की क्षमता को बाधित करता है। अपने तर्क के समर्थन में, श्री गोयल ने **शफीन जहां बनाम अशोकन केएम और अन्य, (2018) 16 एस.सी.सी. 368** में उच्चतम न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

श्री गोयल ने शफीन जहां (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय के लॉर्डशिप की निम्नलिखित टिप्पणियों की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है:

"89. ऐसे मामलों में राज्य द्वारा हस्तक्षेप का स्वतंत्रता के प्रयोग पर गंभीर रूप से भयावह प्रभाव पड़ता है। दूसरों को प्रतिशोध के डर से अपनी स्वतंत्रता का प्रयोग करने के लिए मना किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप पसंद का स्वतंत्र अभ्यास हो सकता है। दूसरों पर द्रुतशीतन प्रभाव उन्हें अपनी स्वतंत्रता का दावा करने से रोकने के लिए एक हानिकारक प्रवृत्ति है। राज्य शक्ति के कठोर प्रयोग से जुड़े सार्वजनिक तमाशे उसी परिवेश में अन्य लोगों द्वारा स्वतंत्रता के प्रयोग को रोकते हैं। स्वतंत्रता और स्वतंत्रता के लिए कुछ भी विनाशकारी नहीं हो सकता है। डर स्वतंत्रता को चुप करा देता है।

90. शफीन जहां में उच्चतम न्यायालय की उक्त टिप्पणियों को डीवाई चंद्रचूड़ (उस समय मुख्य न्यायाधीश के रूप में) के सहमति वाले फैसले में जगह मिलती है। यह टिप्पणी एक वयस्क की अपने धर्म और एक साथी को चुनने की स्वतंत्रता के बारे में एक बहुत ही अलग संदर्भ में आई थी, जो राज्य के अधिकार के खिलाफ थी, न्यायाधीशों द्वारा अपने पैरेंस पैट्रिया अधिकार क्षेत्र के तहत उन स्वतंत्रताओं में हस्तक्षेप करने में प्रयोग किया गया था, जैसा कि उच्च न्यायालय ने किया था। यहां उत्पन्न होने वाले तथ्यों या बिंदुओं पर इसका शायद ही कोई अनुप्रयोग हो। एक शिक्षक के अपने छात्रों पर 'द्रुतशीतन प्रभाव' को एक 'विश्वास करने वाली दुनिया' में ले जाने के लिए अनुपात से बाहर नहीं उड़ाया जा सकता है, जहां शिक्षक को किसी ऐसे व्यक्ति के रूप में माना जाता है, जो सुनवाई के दौरान अपनी उपस्थिति से, वयस्क और परिपक्व वर्षों के छात्रों को, शिक्षक के लिए गवाह के रूप में पेश होने पर, जांच समिति के समक्ष झूठ बोलने के लिए मजबूर कर देगा। इस तरह की आशंका का कोई आधार नहीं है।

91. इसके साथ यह तथ्य भी जोड़ा जा सकता है कि यहां शिक्षक एक संकटग्रस्त व्यक्ति है, जो विशेष रूप से गठित घरेलू न्यायाधिकरण के समक्ष पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत आरोपों का सामना कर रहा है। इन परिस्थितियों में, यह अनुमान लगाने का कोई कारण नहीं है कि याचिकाकर्ता ने अपने बचाव में जिन गवाहों का हवाला दिया है, अगर उन्हें अपने साक्ष्य का नेतृत्व करने की अनुमति दी जाती है, तो वे उन पर अपने प्रभाव के कारण झूठ बोलेंगे, या जैसा कि श्री गोयल कहते हैं, 'द्रुतशीतन प्रभाव' होगा।

92. यह मानते हुए कि याचिकाकर्ता का अपने छात्रों पर कुछ प्रभाव होगा, और, निश्चित रूप से याचिकाकर्ता की तरह एक पक्ष द्वारा उद्धृत एक गवाह, उस पक्ष के लिए ट्रिब्यूनल या न्यायालय के समक्ष बोलने के किसी प्रकार के आश्वासन पर उस पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, अपने स्वयं के गवाह के वास्तविक साक्ष्य या मुख्य परीक्षण का नेतृत्व करने के लिए पक्ष के अधिकार से वंचित नहीं हो सकता है। गवाह के पक्ष के लिए बोलने की मात्र संभावना, जो उसे पक्ष की उपस्थिति में असत्य रूप से गवाह के रूप में पेश करता है, जब वह पक्ष गवाह की मुख्य परीक्षण का नेतृत्व करता है, जांच समिति के समक्ष अपने स्वयं के गवाहों की जांच करने के पक्ष के अधिकार को मिटा नहीं सकता है।

93. गवाह की गवाही की सच्चाई या झूठ को हमेशा जिरह के तंत्र के माध्यम से परखना होगा, जिसे गवाह ने अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान जो कुछ भी कहा है, उसमें अलंकरण और झूठ को बाहर लाने के लिए नियोजित किया जा सकता है। आखिरकार, यह जिरह के कार्यालय के सबसे महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक है। आई.सी.सी. ने इस मामले में जो किया है वह यह है कि याचिकाकर्ता के गवाहों को उन सभी झूठों से मुक्त करने की आड़ में जो वे उसकी उपस्थिति में कह सकते हैं और उसके 'द्रुतशीतन प्रभाव' प्रभाव के कारण, उन्होंने याचिकाकर्ता की मुख्य परीक्षा को पूरी तरह से समाप्त कर दिया है और इसे एक जांचकर्ता से पूछताछ द्वारा प्रतिस्थापित किया है। यह घरेलू मंच द्वारा किसी भी प्रकार की जांच करने के लिए निष्पक्ष प्रक्रिया की बुनियादी बातों पर प्रहार करता है, जिससे एक बड़ा जुर्माना लगाया जाता है, जैसा कि यहां मामले में है। समिति द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया के परिणामस्वरूप न केवल याचिकाकर्ता को प्राकृतिक न्याय से वंचित किया गया है, बल्कि यह स्पष्ट रूप से मनमाना है। यह संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है।

94. अगला सबमिशन, जो याचिकाकर्ता की ओर से आग्रह किया गया है, यह है कि प्रतिपक्षियों द्वारा उसे एक बचाव सहायक से इनकार करने के परिणामस्वरूप प्रभावी सुनवाई के उसके अधिकार का उल्लंघन हुआ और अंततः प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ। यह आग्रह किया जाता है कि आई.सी.सी. में नौ सदस्य शामिल थे, जिनमें से एक अधिवक्ता था। आई.सी.सी. के इस संविधान के बावजूद, याचिकाकर्ता को रक्षा सहायक की सेवाओं से वंचित कर दिया गया था। उन्होंने कहा कि हालांकि उन्होंने एक रक्षा सहायक की सेवाएं मांगी थीं, जो एक अधिवक्ता थे, लेकिन बाद में उन्होंने एक गैर-कानूनी रक्षा सहायक द्वारा प्रतिनिधित्व करने की अपनी इच्छा का संकेत दिया था, जो केंद्र या राज्य सरकार या एक स्वायत्त निकाय का सेवारत या सेवानिवृत्त कर्मचारी हो सकता है। याचिकाकर्ता के अनुसार, यह अनुरोध दो बार किया गया था और दोनों मौकों पर अस्वीकार कर दिया गया था।

95. प्रतिपक्षियों की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता ने जोर देकर कहा कि इस कारण से रक्षा सहायक की सेवाएं प्रदान करने का कोई सवाल ही नहीं है कि एक कानूनी व्यवसायी को आई.आई.टी. के नियमों के नियम 31 के आधार पर पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत जांच में रक्षा सहायक के रूप में कार्य करने से मना किया जाता है। पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत जांच के मामले में ध्यान देने वाली सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पी.ओ.एस.एच. नियमों के तहत भी, नियम 7(6) के आधार पर, दोनों पक्षों को आई.सी.सी. के समक्ष कार्यवाही के किसी भी चरण में अपने मामले में प्रतिनिधित्व करने के लिए किसी भी कानूनी व्यवसायी को लाने की अनुमति नहीं है। इसलिए, जहां तक याचिकाकर्ता के अधिवक्ता या कानूनी रूप से प्रशिक्षित रक्षा प्रतिनिधि द्वारा प्रतिनिधित्व करने के अनुरोध का संबंध है, प्रतिपक्षियों द्वारा इसे सही ढंग से अस्वीकार कर दिया गया था। आई.आई.टी. के निदेशक की ओर से याचिकाकर्ता को संबोधित दिनांक 23.08.2022 के पत्र के अवलोकन से पता चलता है कि बचाव प्रतिनिधि के लिए याचिकाकर्ता के अनुरोध को इस पत्र/ज्ञापन द्वारा निम्नलिखित शब्दों में ठुकरा दिया गया था:

"ऐसे में आपको रक्षा सहायक के रूप में एक कानूनी व्यवसायी की अनुमति देने का सवाल ही नहीं उठता। इसके अलावा, चूंकि इस मामले में कोई प्रस्तुतकर्ता अधिकारी नियुक्त नहीं किया गया है, इसलिए एक गैर-कानूनी व्यवसायी को भी अपने रक्षा सहायक के रूप में अनुमति देने का कोई अवसर नहीं है। इसके अलावा, इस संबंध में एईटी या उसके तहत बनाए गए नियमों में कोई समर्थकारी प्रावधान नहीं है।

96. इसी तरह का एक अनुरोध, जो बहुत बाद में आई.आई.टी. के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स के अध्यक्ष से किया गया था, को खारिज कर दिया गया था और निदेशक द्वारा दिनांक 02.09.2022 के एक ज्ञापन के माध्यम से याचिकाकर्ता को फिर से अस्वीकृति के बारे में सूचित किया गया था। यहां भी, एक गैर-कानूनी रक्षा सहायक की सेवाओं से इनकार कर दिया गया था। हमें डर है कि गैर-कानूनी रक्षा सहायक की सेवाओं से इनकार करने के लिए प्रतिपक्षियों द्वारा अपनाया गया तर्क स्वीकार नहीं किया जा सकता है। निदेशक वर्ष 23 अगस्त, 2022 के पत्र में इनकार करने के कारण हैं और निर्णय का समर्थन करने के लिए दो औचित्य प्रदान किए गए हैं। पहला यह है कि चूंकि प्रतिष्ठान की ओर से कोई प्रेजेंटिंग ऑफिसर नहीं था, इसलिए रक्षा प्रतिनिधि की नियुक्ति के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया था। दूसरा यह है कि इस संबंध में पी.ओ.एस.एच. अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत कोई समर्थकारी प्रावधान नहीं है। दिए गए कारणों में से पहला शायद भगत **राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य, (1983) 2 एस.सी.सी. 442** में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणी से प्रेरित है, जहां यह देखा गया है:

"5. .....

जांच के लिए निर्धारित प्रक्रिया अनुशासनात्मक कार्यवाही का सामना कर रहे एक अपराधी सरकारी कर्मचारी को अपना बचाव करने का उचित अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से तैयार की गई थी। और निर्णयों के एक श्रृंखला द्वारा, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि अपराधी को अनुशासनात्मक प्राधिकरण की ओर से जांच किए गए गवाहों से जिरह करने का अधिकार है और अपने स्वयं के साक्ष्य का नेतृत्व करने और मामले का अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर है। यह प्राकृतिक न्याय का न्यूनतम सिद्धांत है जिसे अनुशासनात्मक कार्यवाही के बारे में सूचित करना चाहिए। सटीक रूप से कहें तो, 1965 के नियमों में निहित प्रावधान इसके लिए पर्याप्त प्रावधान करते हैं। सवाल यह है कि क्या इसका काफी हद तक अनुपालन किया गया है, और जब हम पर्याप्त अनुपालन कहते हैं, तो हमारा मतलब है कि यह मान लेना बहुत अधिक है कि वन रक्षक के स्तर का एक सरकारी कर्मचारी 1965 के नियमों में निहित अनुशासनात्मक कार्यवाही को नियंत्रित करने वाले सभी जटिल नियमों से पूरी तरह अवगत होगा कि उसे नियमों द्वारा विचार किए गए उचित चरण में उचित सहायता के लिए अनुमति लेनी चाहिए। वास्तव में, न्याय और निष्पक्षता की मांग है कि जहां एक अनुशासनात्मक कार्यवाही में विभाग का प्रतिनिधित्व एक प्रस्तुतकर्ता अधिकारी द्वारा किया जाता है, तो यह अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए आवश्यक होगा कि वह एक प्रस्तुतकर्ता की नियुक्ति करते समय उसकी ओर से एक साथ उपस्थित हो ताकि अपराधी को नियुक्ति के तथ्य के बारे में सूचित किया जा सके और जांच शुरू होने से पहले किसी अन्य सरकारी कर्मचारी की मदद लेने का अधिकार हो। किसी भी दर पर, विवेचनाधिकारी को कम से कम अपराधी अधिकारी से पूछताछ करनी चाहिए कि क्या वह अपने बचाव के लिए विभाग के किसी को शामिल करना चाहता है और जब अपराधी सेवा के निचले स्तर से संबंधित एक सरकारी कर्मचारी है, तो उसे आगे सूचित किया

जाएगा कि वह प्रासंगिक नियमों के तहत विभाग से संबंधित किसी अन्य सरकारी कर्मचारी की सहायता लेने का हकदार है। यदि अपराधी सरकारी कर्मचारी को यह जानकारी देने के बाद, वह अभी भी सहायता प्राप्त किए बिना जांच के साथ आगे बढ़ने का विकल्प चुनता है, तो कोई कह सकता है कि नियमों का पर्याप्त अनुपालन है। लेकिन इस तरह की जानकारी के अभाव में, यदि जांच आगे बढ़ती है, जैसा कि इस मामले में हुआ है, तो निश्चित रूप से एक बहुत ही महत्वपूर्ण सवाल उठता है कि क्या अपीलकर्ता अपराधी सरकारी कर्मचारी को अपना बचाव करने का उचित अवसर दिया गया था और यदि उत्तर नकारात्मक है, तो अगला सवाल यह है कि क्या जांच खराब हो गई है? इस संबंध में, हम ***सीएल सुब्रमण्यम बनाम सीमा शुल्क कलेक्टर, कोचीन [(1972)3 एस.सी.सी. 542: (1972)3 एस.सी.आर. 485: 1972 लैब आईसी 1049: (1973)26 एफएलआर 170: (1973)2 एसएलआर 415]*** *में इस न्यायालय के एक निर्णय का उल्लेख करना चाहेंगे, जिसमें यह माना गया था कि यह तथ्य कि अपीलकर्ता के खिलाफ मामला एक प्रशिक्षित अभियोजक द्वारा संभाला जा रहा था, अपीलकर्ता को एक प्रशिक्षित अभियोजक द्वारा संभाला जा रहा था, अपने आप में अपीलकर्ता को एक कानूनी व्यवसायी उसका बचाव करने के लिए ऐसा न हो कि उसके खिलाफ तराजू का वजन हो। यह वह मामला था जिसमें अनुशासनात्मक प्राधिकरण का प्रतिनिधित्व एक प्रशिक्षित अभियोजक द्वारा किया गया था और सवाल यह था कि क्या अपराधी अधिकारी एक कानूनी व्यवसायी की सहायता का हकदार था? और उत्तर हां में था। यहां स्थिति थोड़ी अलग है। विभाग का प्रतिनिधित्व एक प्रस्तुतकर्ता अधिकारी, सह-अपराधी द्वारा किया गया था, अपीलकर्ता के एक वरिष्ठ अधिकारी का प्रतिनिधित्व उसकी पसंद के एक अधिकारी द्वारा समान रूप से किया गया था और इस वन रक्षक को खुद की देखभाल करनी थी। ऐसी स्थिति में, इस न्यायालय द्वारा बंदरगाह के* ***न्यासी बोर्ड बनाम दिलीपकुमार राघवेंद्रनाथ नाडकर्णी [(1983)1 एस.सी.सी. 124: 1983 एस.सी.सी. (एल&एस)61 : (1983)1 एलएलजे1]*** *में लिया गया दृष्टिकोण स्थिति को नियंत्रित करेगा। इस न्यायालय ने निम्नानुसार कहा: [एस.सी.सी. प्रस्तर-12, पृष्ठ 132: एस.सी.सी. (एलएंडएस) पृष्ठ 69]*

"हमारे विचार में हम कार्रवाई में निष्पक्ष होने के लिए अपने आगे के मार्च में एक चरण में पहुंच गए हैं कि जहां एक घरेलू न्यायाधिकरण के समक्ष एक जांच में अपराधी अधिकारी को कानूनी रूप से प्रशिक्षित दिमाग के खिलाफ खड़ा किया जाता है, अगर वह एक कानूनी व्यवसायी के माध्यम से पेश होने की अनुमति मांगता है तो इस अनुरोध को स्वीकार करने से इनकार करना खुद का बचाव करने के लिए एक उचित अनुरोध को अस्वीकार करने के बराबर होगा और प्राकृतिक न्याय के आवश्यक सिद्धांतों का उल्लंघन होगा।

नियम 15 के उप-नियम (5) में निहित प्रावधान से इसके वास्तविक निर्माण पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जहां विभाग का प्रतिनिधित्व एक प्रस्तुतकर्ता अधिकारी द्वारा किया जाता है, यह अपराधी अधिकारी का कर्तव्य होगा, विशेष रूप से जहां वह एक चतुर्थ श्रेणी का सरकारी कर्मचारी है जिसके शैक्षिक उपकरण ऐसे हैं जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वह जांच करने के लिए निर्धारित तकनीकी नियमों से अवगत नहीं हो सकता है, कि वह अपनी पसंद के किसी अन्य सरकारी कर्मचारी द्वारा बचाव करने का हकदार है। यदि सरकारी कर्मचारी ने अवसर का लाभ उठाने से इनकार कर दिया, तो जांच आगे बढ़ी। लेकिन अगर अपराधी अधिकारी को उसके अधिकार के बारे में सूचित नहीं किया जाता है और जांच के समग्र दृष्टिकोण से पता चलता है कि

अपराधी सरकारी कर्मचारी प्रस्तुतकर्ता अधिकारी द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए अनुशासनात्मक प्राधिकारी की तुलना में तुलनात्मक नुकसान में था और जैसा कि प्रस्तुत मामले में, एक वरिष्ठ अधिकारी, सह-अपराधी का प्रतिनिधित्व भी उसकी पसंद के एक अधिकारी द्वारा किया जाता है, सेवा के निचले स्तर से संबंधित ऐसे सरकारी कर्मचारी की सहायता करने के लिए किसी की अनुपस्थिति, जब तक कि यह न दिखाया जाए कि उसे कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ था, जांच को खराब कर देगा।

97. न्यायालय की समझ के अनुसार, भगत राम (उपरोक्त) किसी भी कर्मचारी या अधिकारी के अधिकार को बंद नहीं करता है, जो विभागीय कार्यवाही का सामना कर रहा है, जहां उसके खिलाफ कदाचार का आरोप ऐसा है जिससे एक बड़ा जुर्माना लगाया जा सकता है। बल्कि, यह एक नियम पेश करता है कि यदि प्रतिष्ठान का प्रतिनिधित्व एक प्रस्तोता अधिकारी द्वारा किया जाता है, तो यह अनुशासनात्मक प्राधिकरण के लिए आवश्यक होगा कि वह अपराधी को रक्षा प्रतिनिधि द्वारा प्रतिनिधित्व करने के अपने अधिकार के बारे में सूचित करे। इसमें किसी भी कीमत पर यह नहीं कहा गया है कि यदि अपराधी स्वयं एक सामान्य रक्षा सहायक की सेवाओं की मांग करता है, तो विभागीय जांच में उन्हें अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए। पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत एक शिकायत की जांच कर रही आई.सी.सी. एक विभागीय जांच के समान है, जिसके निष्कर्षों पर एक बड़ा जुर्माना लगाया जा सकता है। एक प्रभावी रक्षा के अधिकार के लिए एक रक्षा प्रतिनिधि की सहायता की आवश्यकता होगी, एक आम आदमी हो सकता है, केंद्र या राज्य सरकार का एक अधिकारी, या एक निगम हो सकता है, जिसे विभागीय जांच को संभालने का कुछ अनुभव है।

98. भगत राम की टिप्पणी, जिसमें कहा गया है कि एक चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी को अपनी शिक्षा बहुत अधिक नहीं मानते हुए अपना बचाव करने में विशेष नुकसान होगा, यह मानते हुए कि एक उच्च पदस्थ अधिकारी या एक अच्छी तरह से शिक्षित कर्मचारी, विभागीय जांच का सामना करते समय, हमेशा प्रभावी ढंग से अपना बचाव करने में सक्षम होगा। बेशक, अगर वह अपना बचाव करने का चुनाव करता है, तो इसका कोई अपवाद नहीं हो सकता है। लेकिन, इस मामले में एक प्रोफेसर की तरह एक उच्च शिक्षित अधिकारी, केवल इसलिए कि वह अच्छी तरह से शिक्षित है और अपने अधिकारों, प्रक्रिया और नियमों को समझ सकता है, केवल इसलिए आई.सी.सी. के समक्ष प्रतिनिधित्व करने के लिए अयोग्य नहीं हो जाता है। कारण दो गुना हैं। सबसे पहले, एक उच्च निपुण व्यक्ति, जो कानून से संबंधित नहीं है, या विभागीय पूछताछ से निपटने के लिए उजागर नहीं है, किसी भी नौसिखिए की तरह असहाय हो सकता है, जिसे पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत जांच का सामना करना पड़ रहा है। यह प्रतिपक्षियों का मामला नहीं है कि याचिकाकर्ता को स्वयं अतीत में विभागीय जांच का बचाव करने का पर्याप्त अनुभव था, ताकि उसे प्रभावी ढंग से अपना बचाव करने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण से लैस किया जा सके। वह वास्तव में नौकरी में नौसिखिया था। दूसरे, यहां तक कि एक कर्मचारी, जो दूसरों के लिए विभागीय पूछताछ को संभालने के लिए पर्याप्त रूप से परिचित है, अगर खुद पर आरोप लगाया जाता है, तो प्रभावी रूप से बचाव करने में सक्षम नहीं हो सकता है। इसका कारण यह है कि एक बार जब किसी व्यक्ति को कटघरे में डाल दिया जाता है और उसका अपना हित दांव पर लगा होता है, तो आवश्यक निष्पक्षता और वैराग्य उसकी भय, आशंका आदि की भावनाओं के साथ खो सकता है, जिससे वह बेहतर हो सकता है।

विभागीय जांच में एक निष्पक्ष प्रक्रिया, जिसके बारे में पहले ही कहा जा चुका है, पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत आई.सी.सी. द्वारा जांच के लिए संबंधित कर्मचारी का बचाव करने के लिए एक सामान्य रक्षा प्रतिनिधि की समर्पित और प्रशिक्षित सहायता की आवश्यकता हो सकती है। यहां ठीक यही मामला है, और याचिकाकर्ता को खुद का बचाव करने में इन दोनों अक्षमताओं के साथ अभिलेख से जो हम देख सकते हैं, उससे पीड़ित है।

99. एक गैर-कानूनी रक्षा सहायक द्वारा याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व को अस्वीकार करने का दूसरा आधार यह तथ्य है कि प्रतिपक्षियों के अनुसार, इस संबंध में पी.ओ.एस.एच. अधिनियम या नियमों के तहत कोई सक्षम प्रावधान नहीं है। पी.ओ.एस.एच. नियमों का नियम 7(6) किसी भी पक्ष को आई.सी.सी. के समक्ष किसी भी स्तर पर अपने मामले में प्रतिनिधित्व करने के लिए किसी भी कानूनी व्यवसायी को लाने से रोकता है। आई.आई.टी. के के नियमों में भी इसी तरह का प्रतिबंध है। किसी भी नियम में ऐसा कुछ भी नहीं कहा गया है कि अपराधी, या जैसा कि कहा जाता है, जांच में प्रतिपक्षी का प्रतिनिधित्व एक सामान्य बचाव सहायक द्वारा नहीं किया जा सकता है। यह कानून का एक हितकारी सिद्धांत है कि जो कुछ भी निषिद्ध नहीं है उसकी अनुमति है। एक सामान्य रक्षा प्रतिनिधि को लाने के लिए नियमों या अधिनियम में एक सक्षम प्रावधान, आई.सी.सी. के समक्ष पी.ओ.एस.एच. अधिनियम के तहत जांच का सामना कर रहे व्यक्ति को रक्षा प्रतिनिधि की सेवाओं का विस्तार करने के लिए बिल्कुल भी आवश्यक नहीं है।

100. एक उपयुक्त रक्षा सहायक के माध्यम से प्रतिनिधित्व करने के लिए एक अपराधी के अधिकार के बारे में - कानूनी रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति या अधिवक्ता नहीं - **बलवान सिंह बनाम भारत संघ और अन्य, 2013 एस.सी.सी. ऑनलाइन डेल 3165** में दिल्ली उच्च न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियों पर ध्यान दिया जा सकता है:

"*18. इस मामले में, ऐसा नहीं है, यह तर्क है कि याचिकाकर्ता द्वारा रक्षा सहायक के रूप में नियुक्ति के लिए अपनी पसंद के रूप में नामित व्यक्ति रक्षा सहायक के रूप में नियुक्ति के लिए उपलब्ध नहीं थे। 16 सितम्बर, 2005 के परिपत्र में ही उन्हें उनकी पसंद का रक्षा सहायक देने से मना करने के लिए आश्रय लिया गया है। यह निश्चित रूप से प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन था। बचाव सहायक से इनकार करना और याचिकाकर्ता के बचाव सहायक की अनुपस्थिति में जांच की कार्यवाही का संचालन प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन था और टिकाऊ नहीं है।*

19. जहां तक एक रक्षा सहायक की नियुक्ति का संबंध है, यह बार-बार माना गया है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही में अपराधी को जांच शुरू होने से पहले किसी अन्य सरकारी कर्मचारी की मदद लेने के अपने अधिकार के बारे में सूचित किया जाना आवश्यक है और एक को नियुक्त करने का एक उचित और उचित अवसर दिया जाना चाहिए। इस संबंध में हमारा ध्यान ***(1983) 2 एस.सी.सी. 442: ए.आई.आर.1983 एस.सी. 454 भगत राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य*** *जिसमें सर्वोच्च है। न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दिया है:*

"वास्तव में, न्याय और निष्पक्षता की मांग है कि जहां एक अनुशासनात्मक कार्यवाही में विभाग का प्रतिनिधित्व एक प्रस्तुतकर्ता अधिकारी द्वारा किया जाता है, तो यह अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए आवश्यक होगा कि वह एक प्रस्तुतकर्ता की नियुक्ति करते समय उसकी ओर से एक साथ उपस्थित हो ताकि अपराधी को नियुक्ति के तथ्य के बारे में सूचित किया जा सके और जांच शुरू होने से पहले किसी अन्य सरकारी कर्मचारी की मदद लेने का अधिकार हो। किसी भी दर पर, विवेचनाधिकारी को कम से कम अपराधी अधिकारी से पूछताछ करनी चाहिए कि क्या वह अपने बचाव के लिए विभाग के किसी को भी शामिल करना चाहता है और जब अपराधी सेवा के निचले स्तर से संबंधित सरकारी कर्मचारी है, तो उसे आगे सूचित किया जाएगा कि वह प्रासंगिक नियमों के तहत विभाग से संबंधित किसी अन्य सरकारी कर्मचारी की सहायता लेने का हकदार है। यदि अपराधी सरकारी कर्मचारी को यह जानकारी दिए जाने के बाद, वह अभी भी सहायता प्राप्त किए बिना जांच के साथ आगे बढ़ने का विकल्प चुनता है, तो कोई कह सकता है कि नियमों का पर्याप्त अनुपालन है।

20. प्रस्तुत मामले में, प्रतिपक्षियों ने यह नहीं कहा कि जिस व्यक्ति का नाम याचिकाकर्ता द्वारा रक्षा सहायक के लिए अपनी पसंद के रूप में दिया गया था, वह सीआरपीएफ के कर्मी नहीं थे। प्रतिपक्षी, विवेचनाधिकारी श्री अवधेश कुमार डिप्टी कमांडेंट के रैंक के थे, जांच की प्रकृति को देखते हुए, यह निश्चित रूप से मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उचित नहीं होगा और याचिकाकर्ता को खुद का प्रतिनिधित्व करने के अवसर से वंचित कर दिया गया है।

21. याचिकाकर्ता केवल एक रक्षा सहायक की तलाश कर रहा था जो उससे वरिष्ठ था और उसे विभागीय जांच कार्यवाही का ज्ञान था। इसलिए उन्होंने इस तरह की आवश्यकता के आधार पर पांच नाम दिए थे। याचिकाकर्ता का ऐसा अनुरोध एक उचित अनुरोध था।

22. रक्षा सहायता की शर्त को लागू करना एक ही रैंक का होना चाहिए, अनुचित माना गया है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है। इस प्रकार, प्रतिपक्षियों ने याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक पूछताछ में खुद का बचाव करने के लिए एक उचित और उचित अवसर से वंचित कर दिया है, जिससे कार्यवाही को खराब किया जा सके और इस तरह की कार्यवाही के आधार पर सभी आदेशों को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन और अवैध माना जा सके। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हम पाते हैं कि विवेचनाधिकारी के निष्कर्ष जो बिना किसी सबूत के आधारित हैं और विकृत हैं।

101. श्यामवीर सिंह त्यागी बनाम भारत संघ और अन्य, 2024 एस.सी.सी. ऑनलाइन डेल 5512 **में दिल्ली उच्च न्यायालय की पीठ के फैसले के बाद इसी सिद्धांत का पालन किया गया**, जहां यह टिप्पणी की गई है:

"17. इसके अलावा, हमारी सुविचारित राय है कि 16.09.2005 को जारी किए गए दिशानिर्देशों के बावजूद, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के लिए आवश्यक है कि एक दोषी कर्मचारी को जांच में रक्षा सहायक की मदद लेने के अपने अधिकार के बारे में सूचित किया जाए। यह आवश्यकता वर्तमान जैसे मामलों में अधिक होगी,

जहां बल कर्मियों को दूर-आहरणकर्ता की बटालियनों में सेवा करते हुए पूछताछ का सामना करना पड़ता है, जहां उनके पास कानूनी सहायता तक आसान पहुंच नहीं है। इस संबंध में, बलवान सिंह (उपरोक्त) में समन्वय पीठ के निर्णय से निम्नलिखित उद्धरण को नोट करना उचित हो सकता है, जैसा कि उसके प्रस्तर-19 में निहित है।

"19. जहां तक एक रक्षा सहायक की नियुक्ति का संबंध है, यह बार-बार माना गया है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही में अपराधी को जांच शुरू होने से पहले किसी अन्य सरकारी कर्मचारी की सहायता लेने के अपने अधिकार के बारे में सूचित किया जाना आवश्यक है और एक को नियुक्त करने का एक उचित और उचित अवसर दिया जाना चाहिए।

102. इसलिए, इस न्यायालय की स्पष्ट राय है कि आई.सी.सी. के समक्ष जांच में उसका बचाव करने के लिए याचिकाकर्ता को अपनी पसंद के एक बचाव प्रतिनिधि की सेवाओं से इनकार करने में, प्रतिपक्षियों ने जांच के परिणाम को दूषित करते हुए, उसे सुनवाई के एक प्रभावी अवसर से वंचित कर दिया।

103. अन्य बिंदु भी हैं, जैसे कि जांच बंद होने के बाद शिकायतकर्ता के लिए थोड़ी देरी के साथ प्रस्तुत बचाव की स्वीकृति और जांच बंद होने के बाद शिकायतकर्ता के लिए एक दस्तावेज की स्वीकृति, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के घोर उल्लंघन के अपने मामले के समर्थन में आग्रह किया गया था, लेकिन हम उन मुद्दों पर आगे जाने के लिए आवश्यक नहीं समझते हैं, चूंकि हमारी स्पष्ट राय है कि वास्तव में, इंगित बिंदुओं पर, याचिकाकर्ता को निष्पक्ष और प्रभावी सुनवाई के अधिकार से वंचित करके प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन किया गया था। अधिकार का उल्लंघन इतना अच्छा था कि निष्कर्ष अप्रतिरोध्य है कि इससे इस अर्थ में पूर्वाग्रह पैदा हुआ कि यदि सुनवाई के अवसर को बढ़ाने में वे खामियां नहीं होतीं, तो आई.सी.सी. अलग तरह से निष्कर्ष निकाल सकती थी। यहां तक कि अगर आई.सी.सी. ने प्रभावी सुनवाई से इनकार करने के कारण उत्पन्न कमजोरियों का मूल्यांकन नहीं किया था, अगर सुनवाई हमारे द्वारा इंगित किए गए सभी दोषों से मुक्त तरीके से की गई थी, तो आई.आई.टी. के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स ने अभिलेख पर आने वाली सामग्री पर अलग निष्कर्ष निकाला होगा। इसलिए, निर्णय के प्रस्तर-35 में विचार के लिए तैयार किए गए दूसरे प्रश्न का उत्तर सकारात्मक में दिया गया है।

104. इस मामले से अलग होने से पहले, हमें यह टिप्पणी करनी आवश्यक प्रतीत होती है कि यद्यपि यह सत्य है कि पोश अधिनियम के अंतर्गत आने वाले मामलों में उस विषय से जुड़ी संवेदनशीलता को ध्यान में रखा जाना चाहिए तथा पीड़िता के हितों को पूर्णतः सुरक्षित रखा जाना चाहिए, ताकि पोश अधिनियम (महिलाओं के प्रति यौन उत्पीड़न निवारण, प्रतिषेध एवं प्रतितोष अधिनियम) के रूप में अधिनियमित इस नवीन विधि के व्यापक उद्देश्य की प्रभावी पूर्ति हो सके, तथापि इसके आधार पर उस व्यक्ति को, जिस पर इसके उल्लंघन का आरोप लगाया गया है, ऐसी प्रक्रिया द्वारा दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता जो विधि-सम्मत न हो अथवा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के प्रतिकूल हो। इसी कारण से हमारा मत है कि यह मामला पुनः आईआईटी को

भेजा जाना चाहिए ताकि आंतरिक शिकायत समिति द्वारा पोश नियमों के अनुरूप तथा इस निर्णय में प्रदत्त मार्गदर्शन को ध्यान में रखते हुए नए सिरे से (दे नोवो) जांच की जाए।

105. परिणाम में, दोनों रिट याचिकाएं सफल होती हैं और उन्हें **अनुमति** दी जाती है। आई.आई.टी. के नियमों को पी.ओ.एस.एच. अधिनियम की धारा 11(1) के अधिकार क्षेत्र से बाहर घोषित किया गया है। आई.सी.सी. द्वारा दिनांक 30.09.2022 को प्रस्तुत की गई आक्षेपित रिपोर्ट, आई.आई.टी. के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स की दिनांक 27.10.2022 और 11.12.2022 की बैठकों का कार्यवृत्त, जहां तक ये याचिकाकर्ता से संबंधित हैं, निदेशक, आई.आई.टी. द्वारा जारी दिनांक 01.03.2023 का आक्षेपित कार्यालय आदेश और आई.आई.टी. के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स का संकल्प दिनांक 22.02.2023, एतद्द्वारा **रद्द/अपास्त** किया जाता है। याचिकाकर्ता को तुरंत सेवा में बहाल किया जाएगा और इस आदेश की तारीख से उसके वर्तमान वेतन का भुगतान किया जाएगा। प्रतिपक्षियों को शिकायत और याचिकाकर्ता के जवाब के आधार पर आई.सी.सी. के माध्यम से जांच आगे बढ़ाने की स्वतंत्रता होगी, जिससे जांच नए सिरे से होगी, पक्षों को इस फैसले में मार्गदर्शन को ध्यान में रखते हुए नए सिरे से सबूत पेश करने का अवसर मिलेगा। जांच पी.ओ.एस.एच. नियमों के अनुसार की जाएगी। जांच के लंबित रहने के दौरान, प्रतिपक्षियों के लिए यह विकल्प खुला होगा कि वे याचिकाकर्ता से काम लें या नहीं, जैसा कि वे उचित समझते हैं, लेकिन उसके वर्तमान वेतन और भत्तों के लिए उसके अधिकार को प्रभावित किए बिना। वेतन के बकाया का प्रश्न प्रतिवादियों द्वारा पुनः संचालित की जाने वाली कार्यवाही के अंतिम परिणाम के अधीन रहेगा।

106. लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 472

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 30.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान,

रिट-ए संख्या 5698 वर्ष 2025

डॉ. अमोद कुमार सचान **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: गौरव मेहरोत्रा, हर्ष वर्धन मेहरोत्रा, ऋतिक सिंह

प्रतिवादी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, शुभम त्रिपाठी**

सेवा विधि - विभागीय कार्यवाही - विधिक सहायता का अधिकार - अभिलेखों की आपूर्ति -याचिकाकर्ता, एक विश्वविद्यालय कर्मचारी, निलम्बित किया गया तथा विभागीय जांच का सामना कर रहा है - उसे विधिक सहायता देने से इनकार किया गया और 5133 पन्नों के प्रासंगिक अभिलेखों की फोटोकॉपी उपलब्ध नहीं कराई गई, केवल निरीक्षण की अनुमति दी गई - जांच समिति में उच्च न्यायालय के एक सेवानिवृत्त न्यायमूर्ति सम्मिलित थे - याचिकाकर्ता के प्रारम्भिक/अस्थायी प्रत्युत्तर को ही अंतिम मानते हुए कार्यवाही पूर्ण कर दी गई।

निर्णय: जब जांच अधिकारी कानूनी रूप से प्रशिक्षित हो, तो कानूनी सहायता से वंचित करना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है [जे.के. अग्रवाल; बॉर्ड ऑफ ट्रस्टीज ऑफ द पोर्ट ऑफ बॉम्बे; रमेश चंद्र]। संबंधित दस्तावेजों की प्रतियों से वंचित करना भी अन्यायपूर्ण है [सरोज कुमार सिन्हा]। अनुशासनात्मक कार्यवाही पुनः चालू की गई; प्राधिकरणों को निर्देशित किया गया कि वे प्रतियाँ प्रदान करें, कानूनी सहायता की अनुमति दें और याचिकाकर्ता के सेवा समाप्ति से पहले कार्यवाही को पूर्ण करें।

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की गई।

उद्धृत मामलों की सूची:

1. बॉर्ड ऑफ ट्रस्टीज ऑफ द पोर्ट ऑफ बॉम्बे बनाम दिलीप कुमार राघवेंद्र नाथ नाडकर्णी एवं अन्य, (1983) 1 SCC 124

2. जे.के. अग्रवाल बनाम हरियाणा सीड्स डेवलपमेंट कॉरपोरेशन लिमिटेड एवं अन्य, (1991) 2 SCC 283

3. रमेश चंद्र बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय एवं अन्य, (2015) 5 SCC 549

4. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा, (2010) 2 SCC 772

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान द्वारा प्रतिपादित)

1. श्री गौरव मेहरोत्रा, अधिवक्ता को सुन लिया गया, जिनका सहायता याचिकाकर्ता की ओर से श्रीमती रितिका सिंह, अधिवक्ता कर रही थीं। राज्य-पक्ष प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से श्री प्रदीप कुमार सिंह, अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता और प्रतिवादी संख्या 2, 3, 4, 5 एवं 6 की ओर से श्री असीत चतुर्वेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता कि सहायता श्री शुभम त्रिपाठी, अधिवक्ता कर रहे थे।

2. श्री शुभम त्रिपाठी ने संक्षिप्त प्रत्ययिक हलफनामा दाखिल किया है और श्रीमती रितिका सिंह ने अनुपूरक हलफनामा दाखिल किया है, जिन्हें अभिलेख में सम्मिलित किया गया।

3. इस रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित राहतों की प्रार्थना की है:-

(I) प्रतिवादी संख्या 5 के आक्षेपित निर्णय दिनांक 30.03.2025 एवं 03.05.2025 को, जिसकी प्रतियाँ इस रिट याचिका में अनुलग्नक संख्या 2 एवं 3 के रूप में सम्मिलित हैं, रद्द करने के लिए सर्टियोरारी के प्रकार का रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की।

(II) याचिकाकर्ता के विरुद्ध लंबित अनुशासनात्मक कार्यवाही में कानूनी सहायता प्रदान करने की अनुमति देने के लिए प्रतिवादियों को आदेशित करने के प्रकार का मंडेमस संबंधी रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की।

(III) दिनांक 02.09.2024 के चार्जशीट में आरोपित विषयों से संबंधित प्रासंगिक दस्तावेजों की प्रतियाँ याचिकाकर्ता को प्रदान करने के लिए, उक्त दस्तावेज़ देने से पूर्व याचिकाकर्ता द्वारा व्यय वहन करने की शर्त के साथ, प्रतिवादियों को आदेशित करने के प्रकार का मंडेमस संबंधी रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की।

(IV) प्रतिवादी संख्या 6 द्वारा जारी आक्षेपित निलंबन आदेश दिनांक 05.09.2024, जिसकी प्रति इस रिट याचिका में अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में सम्मिलित है, को रद्द करने के लिए सर्टियोरारी के प्रकार का रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की।

(V) प्रतिवादी संख्या 5 के आक्षेपित निर्णय दिनांक 30.03.2025, जिसकी प्रति इस रिट याचिका में अनुलग्नक संख्या 2 के रूप में सम्मिलित है, को रद्द करने के लिए सर्टियोरारी के प्रकार का रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की।

अनुवादित

4. आक्षेपित निर्णय दिनांक 30.03.2025 एवं 03.05.2025 के माध्यम से, याचिकाकर्ता को कानूनी सहायता प्रदान करने और याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई प्रासंगिक दस्तावेजों की प्रतियाँ, जो कुल 5133 पृष्ठों तक हैं, प्रदान करने से वंचित किया गया है।

5. याचिकाकर्ता की प्रार्थना संख्या II के समर्थन में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान उच्चतम न्यायालय के निर्णयों की ओर आकर्षित किया, जैसे: जे.के. अग्रवाल बनाम हरियाणा सीड्स डेवलपमेंट कॉरपोरेशन लिमिटेड एवं अन्य, (1991) 2 SCC 283; बॉर्ड ऑफ ट्रस्टीज ऑफ द पोर्ट ऑफ बॉम्बे बनाम दिलीप कुमार राघवेंद्र नाथ नाडकर्णी एवं अन्य, (1983) 1 SCC 124; तथा रमेश चंद्र बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय एवं अन्य, (2015) 5 SCC 549। रमेश चंद्र (सुप्रा) के मामले में, उपरोक्त निर्णयों पर पैराग्राफ 68 एवं 69 में विचार किया गया और इस संबंध में अवलोकन पैराग्राफ 67, 68, 69 एवं 70 में दिए गए हैं, जो निम्नलिखित हैं:-

67. इस मामले में जांच अधिकारी एक सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं, जो व्यापक कानूनी प्रवीणता और अनुभव वाले व्यक्ति हैं। प्रस्तुतकर्ता अधिकारी भी ऐसा व्यक्ति होगा जिसे जांच अधिकारी के समक्ष मामले प्रस्तुत करने का पर्याप्त अनुभव है। इस पृष्ठभूमि में, यह भी विचार किया जाना आवश्यक है कि क्या किसी दुराचारी कर्मचारी द्वारा कानूनी रूप से प्रशिक्षित और योग्य अधिवक्ता के माध्यम से प्रतिनिधित्व करने की अनुमति प्राप्त करने का आवेदन स्वीकार किया जाना चाहिए या नहीं।

68. बॉम्बे पोर्ट बनाम दिलीपकुमार राघवेंद्रनाथ नाडकर्णी [(1983) 1 SCC 124 : 1983 SCC (L&S) 61] के मामले में, इस न्यायालय ने अवलोकन किया: (SCC पृष्ठ 129-30 एवं 132, पैराग्राफ 10 एवं 12)

10. "अब यदि ऐसे जांच के लिए निर्धारित नियम दुराचारी कर्मचारी के द्वारा कानूनी प्रतिनिधि के माध्यम से प्रतिनिधित्व करने के अधिकार पर कोई रोक नहीं लगाते, तो यह मामले का निर्णय जांच अधिकारी के विवेकाधिकार में होगा कि आरोपों की प्रकृति, साक्ष्यों का प्रकार और जांच के दौरान उत्पन्न होने वाले जटिल या सरल मुद्दों को देखते हुए, दुराचारी कर्मचारी को अपनी रक्षा का उचित अवसर प्रदान करने के लिए कानूनी प्रतिनिधि के माध्यम से उपस्थित होने की अनुमति दी जानी चाहिए या नहीं।"

12. हमारे दृष्टिकोण में, हमने निष्पक्ष कार्रवाई की दिशा में एक ऐसे चरण पर पहुँच गए हैं कि जहाँ किसी घरेलू न्यायाधिकरण के समक्ष जांच में दुराचारी अधिकारी को कानूनी रूप से प्रशिक्षित बुद्धि के विरुद्ध रखा गया है, यदि वह कानूनी प्रतिनिधि के माध्यम से उपस्थित होने की अनुमति चाहता है, तो इस अनुरोध को अस्वीकार करना स्वयं की रक्षा का उचित अवसर देने से इंकार करने के समान होगा और प्राकृतिक न्याय के मौलिक सिद्धांतों का उल्लंघन होगा।

69. जे.के. अग्रवाल बनाम हरियाणा सीड्स डेवलपमेंट कॉरपोरेशन लिमिटेड [(1991) 2 SCC 283 : 1991 SCC (L&S) 483 : (1991) 16 ATC 480] के मामले में, इस न्यायालय ने कहा कि जांच कार्यवाही में कानूनी प्रतिनिधि की सहायता से वंचित करना अन्यायपूर्ण होगा। इस न्यायालय ने निम्नलिखित रूप से निर्णय दिया: (SCC पृष्ठ 286-87, पैराग्राफ 8)

8. ऐसा प्रतीत होता है कि जांच में, प्रतिवादी निगम का प्रतिनिधित्व उसके पर्सनेल और प्रशासन प्रबंधक द्वारा किया गया, जिसे कानूनी क्षेत्र का ज्ञानी व्यक्ति बताया गया है। नियम स्वयं यह स्वीकार करता है कि जहाँ आरोप इतने गंभीर हों कि सेवा से बर्खास्तगी तक का परिणाम हो, वहाँ जांच प्राधिकारी अधिवक्ता की सेवाओं की अनुमति दे सकता है। इस नियम में विवेकाधिकार निहित है। इस विवेकाधिकार के प्रयोग के मामले में एक प्रासंगिक कारक यह है कि क्या संघर्ष असमान होने की संभावना है, जिससे न्याय में विफलता या अन्याय होगा और अपीलकर्ता को वास्तविक और उचित रक्षा का अवसर प्राप्त नहीं होगा, क्योंकि वह ऐसे प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के सामने रखा गया है जो कानून में प्रशिक्षित है। कानूनी सलाहकार और अधिवक्ता को इस प्रयोजन के लिए कुछ उदारतापूर्वक समझा जाता है और इसमें वह व्यक्ति शामिल माना जाना चाहिए जो तथ्यों और कानून पर सहायता या सलाह देता हो, जिसे कानूनी सलाहकार की स्थिति में माना जाएगा। अंतिम विश्लेषण में, निर्णय को प्रत्येक मामले की विशिष्ट परिस्थितियों और न्याय की विशेष आवश्यकताओं के आधार पर लिया जाना चाहिए। अतः यह विस्तृत प्रश्न कि घरेलू जांच में प्रतिकूल निर्णय के परिणामस्वरूप गंभीर नागरिक और वित्तीय परिणाम उत्पन्न होने की संभावना हो सकती है, और ऐसे व्यक्ति को, जिसे इन परिणामों का सामना करना पड़ सकता है, अपनी रक्षा का उचित अवसर देने के दृष्टिकोण से, उसकी इच्छा पर कानूनी प्रतिनिधि के माध्यम से उपस्थित होने की अनुमति दी जानी चाहिए, इस पर विचार करना अनावश्यक है, जिसे बॉम्बे पोर्ट बनाम दिलीपकुमार राघवेंद्रनाथ नाडकर्णी [(1983) 1 SCC 124 : 1983 SCC (L&S) 61] में खुला रखा गया था। तथापि, उस मामले में यह निर्णय लिया गया था: (SCC पृष्ठ 132, पैराग्राफ 12)

12. हमारे दृष्टिकोण में, निष्पक्ष कार्रवाई की दिशा में हम उस चरण पर पहुँच गए हैं कि जहाँ किसी घरेलू न्यायाधिकरण के समक्ष जांच में दुराचारी अधिकारी को कानूनी रूप से प्रशिक्षित बुद्धि के विरुद्ध रखा गया है, यदि वह कानूनी प्रतिनिधि के माध्यम से उपस्थित होने की अनुमति चाहता है, तो इस अनुरोध को अस्वीकार करना स्वयं की रक्षा का उचित अवसर देने से इंकार करने के समान होगा और प्राकृतिक न्याय के मौलिक सिद्धांतों का उल्लंघन होगा।

70. इस न्यायालय द्वारा स्थापित कानून के दृष्टिगत, हमारा यह दृष्टिकोण है कि यदि कोई व्यक्ति जो वर्तमान या पूर्व कानूनी प्रतिनिधि है, जिसमें सेवानिवृत्त माननीय न्यायाधीश भी शामिल हैं, किसी कर्मचारी के विरुद्ध शुरू की गई जांच में जांच अधिकारी के रूप में नियुक्त किया जाता है, तो आरोपित कर्मचारी को कानूनी प्रतिनिधि की सहायता से वंचित करना अन्यायपूर्ण होगा।

6. प्रार्थना संख्या III के समर्थन में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता का तर्क अनेक न्यायनिर्णयों की श्रृंखला द्वारा पुष्ट है, जिनमें से एक (2010) 2 SCC 772 में उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम सरोज कुमार सिंह का मामला है, जिसमें भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि किसी कर्मचारी को जो अनुशासनात्मक जांच का सामना कर रहा है, उसे सभी प्रासंगिक कथन, दस्तावेज और अन्य सामग्री प्राप्त करने का अधिकार है, ताकि वह अनुशासनात्मक जांच में अपनी रक्षा का उचित अवसर प्राप्त कर सके।

7. श्री गौरव मेहरोत्रा ने प्रस्तुत किया कि सर्वोच्च न्यायालय ने रि: सरोज कुमार सिन्हा (सुप्रा) में समान मुद्दों पर अनेक निर्णयों पर विचार किया है।

8. श्री गौरव मेहरोत्रा ने रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 21 पर भरोसा व्यक्त किया, जो कि दिनांक 10.02.2024 की चार्जशीट संख्या KGMU/VC/93/2024 दिनांक 02.09.2024 के संदर्भ में याचिकाकर्ता की प्रारंभिक प्रतिक्रिया है। उक्त प्रारंभिक प्रतिक्रिया में, याचिकाकर्ता ने उन दस्तावेजों की प्रासंगिकता को पूर्ण रूप से दर्शाया है। उक्त प्रतिक्रिया में, याचिकाकर्ता ने बताया है कि उन दस्तावेजों की संख्या 5133 पृष्ठों की है और उनकी प्रतियां याचिकाकर्ता के व्यय पर प्रदान की जा सकती हैं, तथा प्रतियाँ प्रदान करने में अधिकतम 48 घंटे का समय लगेगा। याचिकाकर्ता ने न्याय के हित में और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पालन को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से यह प्रार्थना की है कि उसे उन दस्तावेजों की प्रतियाँ प्रदान की जाएँ, ताकि याचिकाकर्ता अपनी उचित रक्षा और पूर्ण प्रतिक्रिया प्रस्तुत कर सके।

9. श्री गौरव मेहरोत्रा ने यह भी प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने किंग जॉर्ज मेडिकल यूनिवर्सिटी एक्ट, 2002 (जिसे इसके पश्चात यूनिवर्सिटी एक्ट, 2002 कहा जाएगा) की धारा 53 के अंतर्गत 05.10.2024 के निलंबन आदेश के विरुद्ध एक संदर्भ दायर किया था, जिस पर अब तक कोई निर्णय नहीं लिया गया है। किन्तु याचिकाकर्ता ने 23.05.2025 की प्रस्तुति (अनुलग्नक संख्या SA-1) के माध्यम से यह कहा कि उक्त संदर्भ गलत सलाह पर दायर किया गया था, क्योंकि निलंबन आदेश के विरुद्ध कोई संदर्भ नहीं दायर किया जाना चाहिए। उन्होंने न्यायालय को अवगत कराया कि 23.05.2025 की उक्त प्रस्तुति पर भी कोई निर्णय नहीं लिया गया है।

10. इसके विपरीत, श्री असीत चतुर्वेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान अनुलग्नक संख्या CA-5 की ओर आकृष्ट किया, जो कि दिनांक 26.05.2025 का एक पत्र है, जिसे श्रीमती अर्चना गहरवार, सदस्य सचिव, अनुशासनात्मक समिति द्वारा कुलपति को संबोधित करते हुए प्रेषित किया गया है। उक्त पत्र में यह अवगत कराया गया है कि अनुशासनात्मक समिति की कार्यवाही दिनांक 24.05.2025 को पूर्ण कर ली गई है तथा जांच रिपोर्ट तैयार कर ली गई है, जिसे आगामी बैठक में कार्यकारी परिषद के समक्ष प्रस्तुत किया जाना है। इस पत्र में यह भी इंगित किया गया है कि जांच रिपोर्ट एक गोपनीय दस्तावेज होने के कारण सीलबंद लिफाफे में रखी गई है, जिसे माननीय कार्यकारी परिषद की बैठक में खोला जाना है। अतः श्री असीत चतुर्वेदी,

वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि चूँकि विभागीय कार्यवाही पहले ही पूर्ण हो चुकी है, इसलिए रिट याचिका में की गई प्रार्थनाएँ निष्फल हो गई हैं, और इस कारण रिट याचिका को निरस्त किया जाना चाहिए।

11. श्री चतुर्वेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी अवगत कराया है कि जिन दस्तावेजों पर विभाग ने भरोसा किया है, उनकी प्रतियाँ याचिकाकर्ता को पहले ही उपलब्ध करा दी गई हैं तथा जिन दस्तावेजों की माँग की गई है, वे अत्यधिक विस्तृत हैं जिनमें कुल 5133 पृष्ठ सम्मिलित हैं। अतः याचिकाकर्ता को अपनी प्रतिरक्षा प्रस्तुत करने हेतु उन दस्तावेजों का निरीक्षण करने की अनुमति प्रदान की गई है।

12. श्री चतुर्वेदी ने आगे यह भी प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता द्वारा आरोप-पत्र के संबंध में अपना प्रतिरक्षा-उत्तर पहले ही दिनांक 01.02.2025 को प्रस्तुत कर दिया गया था तथा उक्त प्रतिरक्षा-उत्तर पर विचार करते हुए अनुशासनात्मक कार्यवाही दिनांक 24.05.2025 को पूर्ण कर ली गई है।

13. जब श्री चतुर्वेदी से यह प्रश्न किया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा आरोप-पत्र के संबंध में दिनांक 10.02.2025 को प्रस्तुत की गई अस्थायी (टेंटेटिव) प्रतिरक्षा-उत्तर को अंतिम प्रतिरक्षा-उत्तर के रूप में क्यों माना गया, जबकि याचिकाकर्ता ने स्पष्ट रूप से यह अनुरोध किया था कि वह मांगे गए दस्तावेजों की छायाप्रतियां प्राप्त होने के उपरांत ही अपना समुचित एवं पूर्ण प्रतिरक्षा-उत्तर प्रस्तुत करेगा, जो कि याचिकाकर्ता को उपलब्ध नहीं कराई गईं, तब श्री चतुर्वेदी ने यह कहा कि याचिकाकर्ता अनुशासनात्मक कार्यवाही को अनावश्यक रूप से लंबित रखने की रणनीति अपना रहा था, ताकि विशेष रूप से दिनांक 15.07.2025 को उसकी सेवानिवृत्ति से पूर्व अनुशासनात्मक कार्यवाही को शीघ्रता से संपन्न न किया जा सके।

14. श्री चतुर्वेदी ने यह प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति की तिथि 15.07.2025 है और यदि अनुशासनात्मक कार्यवाही 15.07.2025 को या उससे पूर्व संपन्न नहीं की जाती है, तो जाँच प्रतिवेदन के आधार पर याचिकाकर्ता को कोई दंड अधिरोपित नहीं किया जा सकता। इस आशय का उल्लेख संक्षिप्त प्रत्युत्तर शपथपत्र के अनुच्छेद-11 में किया गया है।

15. इस पर श्री गौरव मेहरोत्रा ने स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया कि यद्यपि के.जी.एम.यू. की कार्यकारिणी परिषद, जो कि याचिकाकर्ता की अनुशासनात्मक प्राधिकारी है, द्वारा अभी तक कोई अंतिम निर्णय नहीं लिया गया है और स्वीकार्य रूप से जाँच प्रतिवेदन भी अभी तक तैयार कर उसके समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है, तथापि संक्षिप्त प्रत्युत्तर शपथपत्र के अनुच्छेद-11 में शपथकर्ता द्वारा पहले से ही यह मनोभाव प्रकट कर दिया गया है कि याचिकाकर्ता को दंडित किया जाएगा। श्री मेहरोत्रा ने यह भी प्रस्तुत किया कि यदि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत की गई प्रतिरक्षा/बचाव-प्रतिक्रिया अनुशासनात्मक प्राधिकारी को संतोषजनक प्रतीत होती है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी याचिकाकर्ता को आरोपों से दोषमुक्त भी कर सकता है।

16. इस पर जब माननीय न्यायालय द्वारा श्री चतुर्वेदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, से यह और पूछा गया कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा *जे.के. अग्रवाल* (उपर्युक्त), *बंबई बंदरगाह के न्यासी बोर्ड* (उपर्युक्त) तथा *रमेश चंद्र* (उपर्युक्त) मामलों में प्रतिपादित विधि के आलोक में, जबकि जाँच समिति में एक सेवानिवृत्त माननीय उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सदस्य के रूप में सम्मिलित हैं, याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक कार्यवाही में विधिक सहायता प्रदान किए जाने की अनुमति क्यों नहीं दी गई, तो इस संबंध में उनके द्वारा कोई उचित अथवा संतोषजनक उत्तर प्रस्तुत नहीं किया जा सका। **तथापि**, उन्होंने यह प्रस्तुत किया कि इस संबंध में जाँच समिति द्वारा दिनांक **30.03.2025** को निर्णय लिया जा चुका है। विधिक सहायता प्रदान न किए जाने के लिए दर्शाया गया कारण यह है कि बचाव के समर्थन में विधि व्यवसायी उपलब्ध कराना अनिवार्य नहीं है, विशेष रूप से तब जब प्रस्तुतिकरण अधिकारी (Presenting Officer) स्वयं एक डॉक्टर है और माननीय न्यायाधीश समिति के केवल एक सदस्य मात्र हैं। उक्त निर्णय, जैसा कि स्वयं आदेश दिनांक **30.03.2025** में इंगित है, अधिवक्ता द्वारा दी गई विधिक राय के आधार पर लिया गया है।

17. समस्त पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा अभिलेख पर उपलब्ध समस्त सामग्री का अवलोकन करने के उपरान्त, यह स्पष्ट है कि जाँच समिति में एक सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सदस्य के रूप में सम्मिलित हैं। अतः, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा *जे.के. अग्रवाल* (उपर्युक्त), *बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज़ ऑफ द पोर्ट ऑफ बॉम्बे* (उपर्युक्त) तथा *रमेश चंद्र* (उपर्युक्त) प्रकरणों में प्रतिपादित विधि-सिद्धांतों के आलोक में, याची को अनुशासनात्मक कार्यवाही में विधिक सहायता प्रदान किया जाना उसका विधिक अधिकार है।

18. चूंकि यह स्वीकृत तथ्य है कि याचिकाकर्ता को मांगे गए दस्तावेजों की छायाप्रतियाँ प्रदान नहीं की गई हैं और उसे केवल उन दस्तावेजों का निरीक्षण करने की अनुमति दी गई है, जिनकी संख्या **5133 पृष्ठों** में है, जिसे कोई सामान्य व्यक्ति याद नहीं रख सकता। याचिकाकर्ता ने अपनी प्रस्तुति में स्पष्ट रूप से उन दस्तावेजों की प्रासंगिकता दर्शाई है ताकि वह अपनी उचित रक्षा और पूर्ण उत्तर प्रस्तुत कर सके। अतः सक्षम प्राधिकारी की उक्त निष्क्रियता **सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न मामलों में प्रतिपादित सिद्धांतों का उल्लंघन** है, जिनमें *सरोज कुमार सिन्हा* (सुप्रा) का मामला भी शामिल है। याचिकाकर्ता बिना मांगे गए दस्तावेजों के अपनी समुचित रक्षा और पूर्ण उत्तर प्रस्तुत नहीं कर सकता था। अतः उक्त निष्क्रियता **प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का भी उल्लंघन है**।

19. विशेष रूप से यह उल्लेखनीय है कि याचिकाकर्ता की अस्थायी प्रतिरक्षा-उत्तर पर विचार करते हुए अनुशासनात्मक कार्यवाही दिनांक **24.05.2025** को पूर्ण की गई है, और ऐसी जाँच रिपोर्ट अभी तक विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी परिषद के समक्ष प्रस्तुत नहीं की गई है तथा अनुशासनात्मक प्राधिकारी/कार्यकारिणी परिषद द्वारा कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया है। अतः, निर्विवाद रूप से, अनुशासनात्मक कार्यवाही अभी तक **पूर्ण नहीं हुई है**, क्योंकि अनुशासनात्मक कार्यवाही तब पूर्ण मानी जाएगी जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी अर्थात् विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी परिषद द्वारा अंतिम आदेश पारित किया जाए।

20. चूंकि आक्षेपित निलंबन के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने **यूनिवर्सिटी एक्ट, 2002** की धारा 53 के अंतर्गत **माननीय उत्तर प्रदेश राज्यपाल** के समक्ष एक संदर्भ दायर किया है और याचिकाकर्ता ने दिनांक **23.05.2025** की प्रस्तुति के माध्यम से उक्त संदर्भ वापस लेने का आवेदन भी प्रस्तुत किया है, जिस पर अब तक कोई आदेश पारित नहीं हुआ है, अतः इस चरण में **निलंबन आदेश संबंधी प्रार्थना पर विचार नहीं किया जा सकता**।

21. उपरोक्त विचारों के आलोक में, आक्षेपित निर्णय दिनांक 30.03.2025 (अनुलग्नक संख्या 2) को विशेष रूप से उस निर्णय के सन्दर्भ में रद्द/खारिज किया जाता है, जिसके अंतर्गत याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक कार्यवाही में विधिक सहायता प्राप्त करने तथा मांगे गए दस्तावेजों की प्रतियाँ प्रदान करने से इनकार किया गया था, यह कहते हुए कि याचिकाकर्ता को उन दस्तावेजों का निरीक्षण करने का अवसर दिया गया है। आगे, चूंकि अनुशासनात्मक प्राधिकारी अर्थात् कार्यकारी परिषद द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही में कोई अंतिम निर्णय नहीं लिया गया है, जिसे दिनांक 24.05.2025 को पूर्ण बताया गया है, अतः न्याय के हित में उक्त जाँच कार्यवाही को पुनः शुरू/पुनर्स्थापित किया जाता है।

22. सक्षम प्राधिकारी को निर्देश दिया जाता है कि याचिकाकर्ता को आरोप-पत्र दिनांक 02.09.2024 में उल्लिखित आरोपों से संबंधित प्रासंगिक/मांगे गए दस्तावेजों की छायाप्रतियाँ, जिनकी लागत याचिकाकर्ता वहन करेगा, इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से **सात दिन के भीतर** प्रदान करें।

23. सक्षम प्राधिकारी को यह भी निर्देश दिया जाता है कि याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक कार्यवाही में विधिक सहायता प्रदान करने की अनुमति दी जाए। याचिकाकर्ता को निर्देशित किया जाता है कि मांगे गए दस्तावेजों की छायाप्रतियाँ प्राप्त होने की तिथि से सात दिन के भीतर अपना पूर्ण प्रतिरक्षा उत्तर प्रस्तुत करें। इसके पश्चात्, अनुशासनात्मक कार्यवाही कानूनी रूप से पूरी तरह आयोजित की जाए और याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करते हुए पंद्रह दिन के भीतर निष्पन्न की जाए। इसके बाद, उक्त जाँच प्रतिवेदन को यथासंभव शीघ्र कार्यकारिणी परिषद के समक्ष प्रस्तुत किया जाए और कार्यकारिणी परिषद द्वारा कानून के अनुरूप **यथाशीघ्र** अंतिम निर्णय लिया जाए। विश्वविद्यालय के सक्षम प्राधिकारी का प्रयास यह होना चाहिए कि अनुशासनात्मक कार्यवाही को **15.07.2025**, अर्थात् याचिकाकर्ता की सेवा-समाप्ति की तिथि तक, पूर्ण किया जाए और अंतिम आदेश पारित किया जाए।

24. यह कहना अनावश्यक है कि याचिकाकर्ता को कार्यवाही में सहयोग करना होगा और कोई अनावश्यक स्थगन नहीं लेना चाहिए। यदि याचिकाकर्ता द्वारा उक्त जाँच में सहयोग नहीं किया जाता है, तो सक्षम प्राधिकारी समय सीमा के भीतर कार्यवाही को पूर्ण कर सकता है और अंतिम निर्णय ले सकता है।

25. उपरोक्त निर्देशों के आलोक में यह रिट याचिका **आंशिक रूप से स्वीकृत** की जाती है।

26. **लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।**

(2025) 5 ILRA 478

मूल अधिकारिता

दीवानी पक्ष

दिनांक : इलाहाबाद 20.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार,

वाद :- याचिका - ए संख्या 5819 सन् 2025

हरीशंकर **...याचिकाकर्ता**

बनाम

जिला न्यायाधीश, कौशाम्बी एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :- प्रेरणा सुरोलिया, रवि कांत सुरोलिया

प्रतिवादी के अधिवक्ता :- आशीष मिश्रा

क. सेवा विधि - उत्तर प्रदेश जिला न्यायालय सेवा नियमावली, 2013 - नियम 7(2), 23(7)(i) एवं (ii) - दंड - दो वार्षिक वृद्धि रोके जाने का दंड - अनुशासनात्मक कार्यवाही - जाँच अधिकारी के निष्कर्ष से असहमति होने पर अनुशासनिक प्राधिकारी ने उसी आरोप पर पुनः-जाँच का आदेश दिया - अनुमति - अनुशासनिक प्राधिकारी की योग्यता पर प्रश्न - निर्णय: अनुशासनिक प्राधिकारी को यह अधिकार प्राप्त है कि यदि वह जाँच अधिकारी द्वारा प्रतिपादित निष्कर्षों से असहमत हो, तो अपनी संतुष्टि दर्ज करते हुए पुनः-जाँच का आदेश दे सकता है। पुनः-जाँच उसी आरोप पर की जा सकती है, क्योंकि अनुशासनिक प्राधिकारी को जाँच अधिकारी द्वारा किए गए निष्कर्षों के संबंध में असहमति दर्ज करनी होती है। (अनुच्छेद 7 एवं 9)

ख. कार्यप्रणाली और प्रक्रिया - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - याचिका - स्वीकार्यता - वैकल्पिक उपाय - निर्णय: याचिकाकर्ता के पास दंड देने वाले प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध नियम 9 के अनुसार प्रशासकीय न्यायमूर्ति के समक्ष वैधानिक अपील का वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है। उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता को यह विकल्प खुला रखा कि यदि उसे उचित लगे तो वह अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील दायर कर सकता है। (अनुच्छेद 12 एवं 14)

याचिका निस्तारित। (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता की विद्वान वकील सुश्री प्रेरणा सुरोलिया और विरोधी प्रतिवादियों की विद्वान वकील सुश्री बुशरा मरियम को सुना गया।

2. संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने 7 अगस्त, 2024 को कौशांबी के जिला न्यायाधीश द्वारा लिए गए फैसले पर सवाल उठाया है, जिसमें जांच अधिकारी द्वारा दिए गए निष्कर्षों से असहमत होने पर आरोपों की फिर से जांच का आदेश दिया गया था।

3. याचिकाकर्ता ने 7 अगस्त, 2024 के आदेश के परिणामस्वरूप बाद की जांच रिपोर्ट और कौशांबी के जिला न्यायाधीश/अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा लिए गए अंतिम फैसले को भी चुनौती दी है, जिसमें संचयी प्रभावों के रूप में दो वार्षिक वेतन वृद्धि के रूप में दंड लगाया गया है।

4. याचिकाकर्ता की विद्वान वकील सुश्री सुरोलिया द्वारा दी गई दलील यह है कि जिला न्यायाधीश, यानी अनुशासनात्मक प्राधिकारी को फिर से जांच का आदेश देने से पहले पहली जांच की रिपोर्ट को रद्द करना आवश्यक था, क्योंकि उन्हीं आरोपों पर जांच को फिर से नहीं खोला जा सकता था और इसलिए सुश्री सुरोलिया के अनुसार, पूरी प्रक्रिया और परिणामी कार्रवाई मनमानी से ग्रस्त है, क्योंकि अपनाई गई प्रक्रिया दोषपूर्ण होने के कारण, अनुशासनात्मक प्राधिकारी का विवादित निर्णय अस्थिर हो जाता है।

5. इसके विपरीत, प्रतिवादियों की विद्वान वकील सुश्री बुशरा मरियम का कहना है कि उत्तर प्रदेश जिला न्यायालय सेवा नियम, 2013 के नियम 7(2) में निहित लिखित प्रावधानों के अनुसार, अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच रिपोर्ट से अपनी असहमति व्यक्त करने और निश्चित रूप से, कारण दर्ज करने पर उन्हीं आरोपों की फिर से जांच का आदेश देने के अपने अधिकार क्षेत्र में है।

6. सुश्री मरियम के अनुसार, जिला न्यायाधीश ने पुनः-जांच का आदेश देने हेतु अपनी असंतुष्टि के कारणों को ठोस एवं युक्तिसंगत रूप में अभिलेखित किया है। इसके अतिरिक्त, सुश्री मरियम यह भी प्रस्तुत करती हैं कि याचिकाकर्ता के पास संबंधित नियमों के अधीन प्रशासकीय न्यायमूर्ति के समक्ष विभागीय अपील दाख़िल करने का एक वैकल्पिक एवं प्रभावी उपाय उपलब्ध है, अतः इस चरण पर इस न्यायालय को आदेशों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

7. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलें सुनने और अभिलेखों का अवलोकन करने के पश्चात्, मैं यह पाता हूँ कि प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों में बल है कि अनुशासनिक प्राधिकारी को यह अधिकार प्राप्त है कि यदि उसे जांच अधिकारी द्वारा प्रतिपादित निष्कर्षों से असहमति हो, तो वह अपनी संतुष्टि दर्ज करते हुए पुनः-जांच का आदेश दे सकता है। नियम 23(7)(i) एवं (ii), नियमावली 2013 का प्रासंगिक अंश निम्नलिखित है:

(i) अनुशासनिक प्राधिकारी, अपने लिखित रूप में अभिलेखित कारणों के आधार पर, प्रकरण को पुनः-जाँच हेतु उसी या किसी अन्य जाँच अधिकारी को भेज सकता है, जिसकी सूचना अभियुक्त कर्मचारी को दी जाएगी। इस स्थिति में, जाँच अधिकारी अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा निर्देशित स्तर से आगे की जाँच नियम 23(5) के प्रावधानों के अनुसार करेगा।

(ii) यदि अनुशासनिक प्राधिकारी किसी आरोप पर जाँच अधिकारी के निष्कर्ष से असहमत होता है, तो वह अपने असहमति के कारणों को अभिलेखित करते हुए उस आरोप पर अपना निष्कर्ष दर्ज करेगा।

8. 7 अगस्त, 2024 के जिला न्यायाधीश, कौशांबी के आदेश की जांच करने पर, जिसमें ऊपर बताए गए प्रावधानों का इस्तेमाल करके उन्हीं आरोपों पर फिर से जांच का निर्देश दिया गया है, मुझे पता चलता है कि जिला न्यायाधीश, कौशांबी ने जांच अधिकारी के सामने दर्ज मौखिक सबूतों पर चर्चा की है और यह निष्कर्ष निकाला है कि सबूत उन निष्कर्षों से अलग बात कहते हैं जो सामने आए हैं। मेरी राय में, यह फिर से जांच का आदेश देने के लिए काफी कारण है।

9. जहां तक सुश्री सुरोलिया की दूसरी दलील का सवाल है कि उन्हीं आरोपों पर जांच का आदेश नहीं दिया जा सकता, मुझे लगता है कि नियम बिल्कुल साफ हैं कि उन्हीं आरोपों पर फिर से जांच का आदेश दिया जा सकता है क्योंकि अनुशासनात्मक प्राधिकारी को जांच अधिकारी के जांच किए गए आरोपों पर निष्कर्षों पर असहमति दर्ज करनी होती है।

10. जहां तक याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा दी गई दलील का सवाल है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा उन्हीं आरोपों पर फिर से जांच का आदेश देने से पहले जांच रिपोर्ट को रद्द करना ज़रूरी है, मैं इस तर्क को सिर्फ़ इस कारण से खारिज करता हूँ कि नियम जांच रिपोर्ट को रद्द करने का प्रावधान नहीं करते हैं। यह सिर्फ़ जांच अधिकारी द्वारा दिए गए निष्कर्षों से असहमति जताने का प्रावधान करता है। इसके अलावा, कोर्ट की राय में, जांच अधिकारी की रिपोर्ट तब तक कानूनी दर्जा हासिल नहीं करती जब तक उस पर कार्रवाई नहीं की जाती। जांच रिपोर्ट पर कार्रवाई होने और अनुशासनात्मक कार्रवाई होने के बाद ही यह सवाल उठता है कि क्या जांच रिपोर्ट गलत निष्कर्षों के कारण कानून में खराब है या किसी प्रक्रियात्मक कमी का संकेत देती है।

11. इसलिए, इन परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी को मामले को फिर से जांच के लिए भेजकर जांच अधिकारी की रिपोर्ट को रद्द करना ज़रूरी है। नियमों के तहत यह पर्याप्त है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी कारणों के साथ असहमति व्यक्त करके फिर से जांच का आदेश दे।

12. इसके अलावा, मुझे लगता है कि याचिकाकर्ता के पास नियम, 2013 के नियम 9 के अनुसार, दंड देने वाले प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के खिलाफ प्रशासनिक न्यायाधीश के समक्ष वैधानिक अपील का एक वैकल्पिक प्रभावी उपाय है।

13. इसलिए, इन परिस्थितियों में, मैं याचिकाकर्ता के लिए यह उचित समझता हूं कि उसे वैधानिक अपील के उपाय का सहारा लेने के लिए कहा जाए, साथ ही याचिकाकर्ता को यह छूट दी जाए कि वह अपने सभी तर्क जो यहां दिए जा रहे हैं, अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष भी उठा सके और आगे यह भी कहा कि इस न्यायालय द्वारा की गई कोई भी टिप्पणी केवल इस याचिका के निपटारे तक ही सीमित मानी जाएगी।

14. उपरोक्त के मद्देनजर, जबकि मैं जांच रिपोर्ट और दंड देने वाले प्राधिकारी द्वारा लिए गए निर्णय के मामले में हस्तक्षेप करने से इनकार करता हूं, मैं याचिकाकर्ता को यह छूट देता हूं कि यदि वह चाहे तो अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील कर सकता है।

15. उपरोक्त टिप्पणियों के अधीन, यह याचिका रिकॉर्ड में दर्ज की जाती है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 480

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार

रिट-ए संख्या 6131 वर्ष 2025

शैलेन्द्र कुमार राय **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: सिद्धार्थ खरे

प्रतिवादी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, घनश्याम यादव

सेवा कानून - निलंबन - यौन उत्पीड़न की शिकायत - प्रारंभिक रूप से मामला पाए जाने पर - आंतरिक शिकायत समिति का गठन - प्रक्रिया संबंधी अनियमितताएँ - अपील का उपाय - वैधता।

निर्णय: निलंबन कोई दंड नहीं बल्कि स्वतंत्र और निष्पक्ष जांच सुनिश्चित करने का उपाय है - याचिकाकर्ता के विरुद्ध 'बॉडी शेमिंग' के आरोप, यदि प्रमाणित होते हैं, तो अधिनियम 2013 की धारा 2(एन) के अंतर्गत यौन उत्पीड़न का गठन कर सकते हैं - आंतरिक समिति ने याचिकाकर्ता को दोषी पाया; अतः प्रारंभिक रूप से निलंबन के लिए मामला निर्मित हुआ - समिति के अनुचित गठन के संबंध में धारा 4 और धारा 11 के अनुपालन न होने से संबंधित आपत्तियाँ कानूनी/तथ्यगत मुद्दे हैं, जिन्हें धारा 18 के तहत सांविधिक अपील में उठाया जा सकता है - न्यायालय योग्यता पर अंतिम राय देने से परहेज करता है - याचिकाकर्ता को निर्देश दिया जाता है कि वह चार सप्ताह के भीतर अपील प्रस्तुत करे, जिसे अपीलीय प्राधिकरण दो माह के भीतर निपटाए - तब तक कोई अंतिम अनुशासनात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी, निलंबन अपील के परिणाम तक प्रभावी रहेगा और पालन-पोषण भत्ता जारी रहेगा।

रिट याचिका निर्देशों के साथ निस्तारित कि जाती है।

उल्लिखित मामलों की सूची:

1. भारत संघ बनाम अशोक कुमार अग्रवाल, (2013) 16 SCC 147
2. सी.बी. बोबी बनाम केरल राज्य, 2025 SCC OnLine Ker 211

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार द्वारा)

1. याचिकाकर्ता के पक्ष में श्री अशोक खरे, वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री सिद्धार्थ खरे, अधिवक्ता कर रहे हैं, तथा प्रतिवादी पक्ष के लिए श्री शंभवी नंदा, अधिवक्ता, जो श्री घनश्याम यादव, अधिवक्ता के संक्षिप्त प्रतिनिधि हैं, और "विद्वान स्थायी अधिवक्ता" की उपस्थिति में सुनवाई की गई।

2. याचिकाकर्ता, जो कुशीनगर में जिला कार्यक्रम अधिकारी के पद पर तैनात और कार्यरत हैं, ने इस न्यायालय की अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण और न्यायसंगत क्षेत्राधिकार का सहारा लेते हुए उत्तर प्रदेश के मुख्य सचिव, बाल विकास एवं पोषण द्वारा उनके खिलाफ पारित निलंबन आदेश को चुनौती दी है। इस चुनौती के मूल कारण मुख्यतः निम्नलिखित तीन हैं:

(i) याचिकाकर्ता द्वारा पीड़िता महिला से बोले गए शब्द उसके कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के रूप में नहीं माने जा सकते, विशेषकर तब जब उक्त महिला का अपना बयान आंतरिक शिकायत समिति के समक्ष दर्ज है।
(ii) आंतरिक शिकायत समिति का गठन उस तरह से नहीं किया गया था, जैसा कि महिलाओं के कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न (निवारण, निषेध एवं प्रतिकार) अधिनियम, 2013 (संक्षेप में 'अधिनियम, 2013') की धारा 4 के तहत अनिवार्य रूप से आवश्यक था।
(iii) याचिकाकर्ता को शिकायतकर्ता से जिरह करने का अवसर नहीं दिया गया और इसके अतिरिक्त समिति द्वारा दिए गए निष्कर्षों के विरुद्ध अभ्यावेदन प्रस्तुत करने का अवसर भी प्राप्त नहीं हुआ, जबकि दण्ड तथा अपील संबंधी नियमों तथा कर्मचारी पर लागू प्रावधानों के अनुरूप अनुसरण की जाने वाली विस्तृत प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था, जैसा कि अधिनियम, 2013 की धारा 11 के अधीन अपेक्षित है।

3. उपरोक्त तर्कों के समर्थन में, माननीय वरिष्ठ अधिवक्ता ने आंतरिक समिति की रिपोर्ट के निष्कर्ष भाग की ओर न्यायालय का ध्यान आकृष्ट किया, जिसमें यह प्रतिवेदित किया गया है कि किसी महिला को अपने घर तथा स्टेडियम में सायंकालीन सैर के लिए बुलाना, उसके शारीरिक संरचना पर टिप्पणी करना, तथा उसके साथ स्कूटी की सवारी करने का अनुरोध करना–ये सभी तथ्य यह सिद्ध करते हैं कि delinquent (दोषी) कर्मचारी उसे उत्पीड़ित करने का प्रयास कर रहा था। इसके अतिरिक्त, यह तथ्य वीरेंद्र नाथ वर्मा, सेवानिवृत्त लिपिक, के लिखित बयान तथा सीसीटीवी की रिकॉर्डिंग से भी और अधिक सिद्ध हुआ। अतिरिक्त रूप से, यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि सीसीटीवी फुटेज / रिकॉर्डिंग के साथ छेड़छाड़ नहीं की गई थी।

4. श्री खरे के अनुसार, निष्कर्ष भाग में व्यक्त किया गया संपूर्ण कथन मात्र एक संदेह था, क्योंकि ऐसा कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध नहीं था जिससे यह स्थापित हो सके कि याचिकाकर्ता ने किसी भी समय पीड़ित महिला का यौन उत्पीड़न करने का प्रयास किया हो, जिससे कि अधिनियम, 2013 के अंतर्गत किसी प्रकार की कार्रवाई किए जाने का आधार बन सके। श्री खरे ने आंतरिक शिकायत समिति द्वारा अभिलिखित पीड़ित महिला के कथन की ओर भी न्यायालय का ध्यान आकृष्ट किया, जिसमें उसने यह कहा था कि दोषी कर्मचारी ने उसके

मोटी होने पर टिप्पणी की थी तथा उसे कई बार उसके साथ सायंकालीन भ्रमण पर चलने का सुझाव दिया था और उसके साथ भोजन करने के लिए भी आमंत्रित किया था। श्री खरे ने यह प्रस्तुत किया कि मात्र यह कथन कि याचिकाकर्ता ने पीड़ित महिला को उसके साथ सायंकालीन अथवा प्रातःकालीन भ्रमण पर चलने का सुझाव दिया, अथवा उसे भोजन के लिए आमंत्रित किया, अथवा उसे अपने साथ पीछे बैठकर स्कूटी चलाने का सुझाव दिया, किसी भी प्रकार से अधिनियम के अर्थ में यौन उत्पीड़न का कोई तत्व स्थापित करने का संकेत नहीं देता है। श्री खरे ने अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत निहित प्रावधानों की ओर भी न्यायालय का ध्यान आकृष्ट किया, जिसके अनुसार आंतरिक शिकायत समिति में कम से कम एक सदस्य किसी ऐसे गैर-सरकारी संगठन या संघ से होना आवश्यक था, जो महिलाओं के हितों के प्रति प्रतिबद्ध हो अथवा यौन उत्पीड़न से संबंधित विषयों से परिचित व्यक्ति हो। उनके अनुसार, जिस समिति का गठन किया गया और जिसने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, उसमें अध्यक्ष सहित केवल सरकारी अधिकारी ही सम्मिलित थे, जिनकी संख्या कुल पाँच थी। धारा 4 का प्रासंगिक प्रावधान निम्नानुसार पुनरुत्पादित किया जा रहा है:

4. (1)

(2) आंतरिक समिति का गठन नियोक्ता द्वारा नामित निम्नलिखित सदस्यों से किया जाएगा, अर्थात्:

(a) एक अध्यक्ष, जो कार्यस्थल पर कार्यरत कर्मचारियों में से वरिष्ठ स्तर पर कार्यरत एक महिला होगी।

परंतु यह कि यदि वरिष्ठ स्तर की कोई महिला कर्मचारी उपलब्ध न हो, तो अध्यक्ष को उप-धारा (1) में उल्लिखित कार्यस्थल के अन्य कार्यालयों अथवा प्रशासनिक इकाइयों से नामित किया जाएगा।

यह भी उपबंधित किया जाता है कि यदि उक्त कार्यस्थल के अन्य कार्यालयों अथवा प्रशासनिक इकाइयों में वरिष्ठ स्तर की कोई महिला कर्मचारी उपलब्ध न हो, तो अध्यक्ष को उसी नियोक्ता के किसी अन्य कार्यस्थल अथवा किसी अन्य विभाग या संगठन से नामित किया जाएगा।

(b) कर्मचारियों में से कम से कम दो सदस्य, जो अधिमानतः महिलाओं के हितों के प्रति प्रतिबद्ध हों अथवा जिन्हें सामाजिक कार्य का अनुभव हो या जिन्हें विधिक ज्ञान प्राप्त हो।

(c) गैर-सरकारी संगठनों या संघों में से एक सदस्य, जो महिलाओं के हितों के प्रति प्रतिबद्ध हो अथवा यौन उत्पीड़न से संबंधित विषयों से परिचित कोई व्यक्ति हो।

परंतु यह कि इस प्रकार नामित कुल सदस्यों में से कम से कम आधे सदस्य महिलाएँ होंगी।

(ज़ोर दिया गया)

5. श्री खरे ने उक्त अधिनियम की धारा 11 की ओर भी न्यायालय का ध्यान आकृष्ट किया, जो उनके अनुसार आंतरिक शिकायत समिति के लिए यह अनिवार्य बनाती है कि वह संबंधित प्रतिवादी कर्मचारी पर लागू सेवा नियमों के प्रावधानों के अनुसार शिकायत की जांच करने की कार्यवाही करे। श्री खरे ने यह प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता एक सरकारी कर्मचारी होने के कारण उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 द्वारा शासित है, जिसमें प्रमुख दंड के मामलों में जांच किए जाने हेतु नियम 7 के अंतर्गत एक विस्तृत प्रक्रिया निर्धारित की गई है। जबकि वर्तमान मामले में न तो आंतरिक शिकायत समिति द्वारा याचिकाकर्ता को कोई आरोप पत्र जारी किया गया और न ही कथित पीड़ित महिला द्वारा की गई, यदि कोई, शिकायत की प्रति

उपलब्ध कराई गई, तथा न ही कथनों को अभिलिखित किए जाने के लिए निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया। अधिनियम, 2013 की धारा 11 को निम्नानुसार पुनरुत्पादित किया जा रहा है:

11. Inquiry into complaint.- (1) धारा 10 के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, आंतरिक समिति अथवा स्थानीय समिति, जैसा भी मामला हो, जहाँ प्रतिवादी एक कर्मचारी हो, वहाँ प्रतिवादी पर लागू सेवा नियमों के प्रावधानों के अनुसार शिकायत की जांच करने की कार्यवाही करेगी; और जहाँ ऐसे कोई नियम अस्तित्व में न हों, वहाँ ऐसी जांच उस प्रकार की जाएगी जैसा कि विहित किया जाए; अथवा घरेलू कामगार के मामले में, यदि प्रथमदृष्टया मामला विद्यमान हो, तो स्थानीय समिति शिकायत को सात दिनों की अवधि के भीतर भारतीय दंड संहिता, 1860 (45 का 1860) की धारा 509 तथा जहाँ लागू हो, उक्त संहिता के अन्य प्रासंगिक प्रावधानों के अंतर्गत मामला पंजीकृत कराने हेतु पुलिस को अग्रसारित करेगी।

परंतु यह कि जहाँ पीड़ित महिला आंतरिक समिति अथवा स्थानीय समिति, जैसा भी मामला हो, को यह सूचित करती है कि धारा 10 की उप-धारा (2) के अंतर्गत किए गए समझौते की किसी भी शर्त अथवा नियम का प्रतिवादी द्वारा अनुपालन नहीं किया गया है, तो आंतरिक समिति अथवा स्थानीय समिति शिकायत की जांच करने की कार्यवाही करेगी अथवा, जैसा भी मामला हो, शिकायत को पुलिस को अग्रसारित करेगी:

यह भी उपबंधित किया जाता है कि जहाँ दोनों पक्ष कर्मचारी हों, वहाँ जांच की कार्यवाही के दौरान दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाएगा तथा निष्कर्षों की एक प्रति दोनों पक्षों को उपलब्ध कराई जाएगी, जिससे वे समिति के समक्ष उक्त निष्कर्षों के विरुद्ध अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत कर सकें।

(ज़ोर दिया गया)

6. उपरोक्त प्रावधानों के दृष्टिगत, श्री खरे ने यह भी तर्क प्रस्तुत किया कि चूंकि याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट उपलब्ध नहीं कराई गई थी, इसलिए उसे समिति के समक्ष निष्कर्षों के विरुद्ध अभ्यावेदन प्रस्तुत करने का कोई अवसर प्राप्त नहीं हुआ।

7. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त तर्कों का उत्तर देते हुए, श्री शंभवी नंदन, अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि जहाँ तक पहला तर्क है, याचिकाकर्ता द्वारा पीड़ित महिला पर किए गए टिप्पणियाँ शरीर पर टिप्पणी (बॉडी शेमिंग) के रूप में आती हैं, और यदि याचिकाकर्ता ने ऐसी महिला को प्रातः एवं सायंकालीन भ्रमण पर चलने का सुझाव दिया, साथ ही भोजन की पेशकश की और उसके स्कूटी पर पीछे बैठने के लिए भी कहा, तो यदि सभी को मिलाकर देखा जाए, तो यह अधिनियम, 2013 की धारा 2(न) के अर्थ में कार्यस्थल पर महिला के यौन उत्पीड़न के अंतर्गत आएगा। उनके अनुसार, यदि टिप्पणियाँ शरीर पर टिप्पणी के रूप में आती हैं, तो यह यौन रूप से रंगित टिप्पणियाँ मानी जाएंगी और अवांछित शारीरिक टिप्पणियाँ कभी-कभी यौन रूप से रंगित टिप्पणियाँ भी हो सकती हैं। धारा 2(न) की परिभाषा निम्नानुसार पुनरुत्पादित की जा रही है:

यौन उत्पीड़न में निम्नलिखित किसी एक या एक से अधिक अवांछित कृत्यों या व्यवहारों (चाहे प्रत्यक्ष रूप से हो या संकेत रूप में) शामिल होते हैं, अर्थात्:-

(i) शारीरिक संपर्क और आगे बढ़ना; या

(ii) यौन सुविधाओं की मांग या अनुरोध; अथवा

(iii) पोर्नोग्राफी बनाना; अथवा

(iv) पोर्नोग्राफी दिखाना; अथवा

(v) यौन प्रकृति के किसी अन्य अवांछित शारीरिक, मौखिक या अलौकिक व्यवहार;

(ज़ोर दिया गया)

8. दूसरे तर्क का उत्तर देते हुए, श्री शंभवी नंदन ने यह प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को न केवल आंतरिक शिकायत समिति द्वारा सुना गया था, बल्कि उसका कथन भी अभिलिखित किया गया था। अतः याचिकाकर्ता यह तर्क नहीं प्रस्तुत कर सकता कि उसे आंतरिक शिकायत समिति के समक्ष शिकायत के मामले में अपना पक्ष रखने का कोई अवसर नहीं मिला या कि वह अपनी रक्षा प्रस्तुत नहीं कर सका। यह प्रस्तुत किया गया कि यदि याचिकाकर्ता पीड़ित महिला से प्रत्यक्ष परीक्षण (क्रॉस-एग्ज़ामिनेशन) करना चाहता था, तो उसे यह आवेदन स्वयं आंतरिक शिकायत समिति के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए था। अतः जब रिपोर्ट प्रतिवादियों को प्रस्तुत कर दी गई थी ताकि वे पीड़ित महिला के प्रति याचिकाकर्ता द्वारा किए गए यौन उत्पीड़न के आरोपों पर आदेश पारित कर सकें, और अब याचिकाकर्ता ने यह सभी दलीलें प्रस्तुत करते हुए न्यायालय का रुख किया है, तो ऐसी दलीलों को स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। उन्होंने न्यायालय का ध्यान याचिकाकर्ता शैलेन्द्र कुमार राय के आंतरिक शिकायत समिति के समक्ष अभिलिखित कथन की ओर भी आकृष्ट किया।

9. आंतरिक शिकायत समिति के गठन के संबंध में तर्क का उत्तर देते हुए, श्री शंभवी नंदन ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को यह आधार स्वयं आंतरिक समिति के समक्ष उठाना चाहिए था, यह आपत्ति करते हुए कि समिति का उचित गठन न होने के कारण मामला नहीं सुना जा सकता। श्री शंभवी नंदन ने यह प्रस्तुत किया कि धारा 4 की उप-धारा 2 के उपबंध के अनुसार, कुल सदस्यों में से आधे सदस्य महिलाओं के होने आवश्यक हैं और अधिनियम के समग्र उद्देश्य को देखते हुए, जिसका लक्ष्य कार्यस्थल पर महिलाओं के लिए सुरक्षात्मक वातावरण सुनिश्चित करना है, उप-धारा 2 के खंड 6 को निर्देशात्मक (डायरेक्टरी) के रूप में लिया जाना चाहिए, न कि अनिवार्य के रूप में। उनके अनुसार, यह संभव है कि कुछ स्थानों पर ऐसे संगठन मौजूद न हों और महिलाओं या यौन उत्पीड़न के मामलों से परिचित व्यक्ति को पाया न जा सके। उन्होंने यह प्रस्तुत किया कि आवश्यक यह है कि समिति में पर्याप्त महिला प्रतिनिधित्व हो जैसा कि निर्धारित किया गया है, और इस भाग को अनिवार्य माना जाना चाहिए।

10. आंतरिक शिकायत समिति द्वारा याचिकाकर्ता को रिपोर्ट न उपलब्ध कराए जाने के बिंदु पर, श्री शंभवी नंदन ने यह प्रस्तुत किया कि शिकायत की प्रति स्वयं प्रस्तुत की गई है, जिससे स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट की प्रति उपलब्ध कराई गई थी। अतः याचिकाकर्ता को यह अवसर लेना चाहिए था कि वह उप-धारा 11 के दूसरे उपबंध के अनुसार समिति के समक्ष निष्कर्षों के विरुद्ध अभ्यावेदन प्रस्तुत करता। उन्होंने यह भी तर्क प्रस्तुत किया कि यदि याचिकाकर्ता समिति के पास गया होता और समिति ने समय सीमा या

अन्य कारणों से उसके अभ्यावेदन को अस्वीकार कर दिया होता, तब याचिकाकर्ता यह दलील प्रस्तुत कर सकता था कि आंतरिक शिकायत समिति ने उसके अभ्यावेदन में उठाए गए मुद्दों पर ध्यान नहीं दिया।

11. उपरोक्त तर्क के अतिरिक्त, श्री शंभवी नंदन ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को आंतरिक शिकायत समिति की उप-धारा 2 के अंतर्गत की गई सिफारिशों के विरुद्ध पीड़ित व्यक्ति के रूप में अपील दाखिल करने का अतिरिक्त अवसर प्राप्त है। उन्होंने अधिनियम, 2013 की धारा 18 प्रस्तुत की, जो निम्नानुसार पुनरुत्पादित की जा रही है:

"18. अपील (1) कोई भी व्यक्ति, जो धारा 13 की उप-धारा (2) के अंतर्गत या धारा 13 की उप-धारा (3) के खंड (i) या खंड (ii) के अंतर्गत की गई सिफारिशों या धारा 14 की उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के अंतर्गत की गई सिफारिशों, या धारा 17 के अंतर्गत की गई सिफारिशों से, या ऐसी सिफारिशों के अनुपालन न होने से पीड़ित हो, वह संबंधित व्यक्ति पर लागू सेवा नियमों के प्रावधानों के अनुसार न्यायालय या न्यायाधिकरण में अपील प्रस्तुत कर सकता है; और जहाँ ऐसे सेवा नियम मौजूद न हों, वहाँ वर्तमान में लागू किसी अन्य कानून में निहित प्रावधानों के नुकसान के बिना, पीड़ित व्यक्ति उस प्रकार से अपील प्रस्तुत कर सकता है जैसा कि विनियमन द्वारा निर्धारित किया जा सके।

(2) उप-धारा (1) के अंतर्गत अपील सिफारिश की तिथि से नब्बे (90) दिनों की अवधि के भीतर प्रस्तुत की जाएगी।

12. श्री शंभवी नंदन ने न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता के विरुद्ध, मेहरा कुशवाहा द्वारा दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट की प्रति प्रस्तुत की, जो कि केस क्राइम नंबर 0368/2024 के संबंध में पूर्व आईपीसी की धाराओं 506, 504, 354(अ) के अंतर्गत दर्ज की गई थी। इस रिपोर्ट में उसने आरोप लगाया कि जिला कार्यक्रम अधिकारी ने उसे अपने पास बैठाया और अभद्र बातें शुरू कीं, फिर उसके शारीरिक अंगों को छूना शुरू किया और उसे अपने कमरे में जाकर यौन संबंध बनाने का सुझाव भी दिया। जब उसने आपत्ति जताई, तो उसने अश्लील भाषा का प्रयोग करते हुए उसका गाली-गलौज किया और उसे नौकरी से निकालने की धमकी भी दी। श्री शंभवी नंदन ने तर्क प्रस्तुत किया कि विभाग में याचिकाकर्ता का आचरण ऐसा रहा है कि कई महिला कर्मचारी उसके साथ कार्य करते समय कार्यस्थल पर असहज महसूस कर रही हैं।

13. उपरोक्त तर्कों का उत्तर देते हुए, श्री खरे ने यह प्रस्तुत किया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में किए गए आरोपों को अभी तक मुकदमे में प्रमाणित नहीं किया गया है, क्योंकि ये आरोप किसी अन्य महिला से संबंधित थे और वर्तमान मामले से इनका कोई संबंध नहीं है। श्री खरे ने यह तर्क भी प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता यदि अपीलीय प्राधिकारी के पास भी जाता है, तो चूंकि प्रतिवादियों को उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियम, 1999 के नियम 7 के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करना आवश्यक था, इसलिए याचिकाकर्ता को निलंबित करने का कोई कारण या अवसर प्रतिवादियों के पास नहीं था।

14. सम्माननीय पक्षकारों के अधिवक्ताओं की दलीलों को सुनने और अभिलेखों की पड़ताल करने के उपरांत, इस न्यायालय को यह परीक्षण करना आवश्यक है कि क्या याचिकाकर्ता के विरुद्ध निलंबन लगाने के लिए कोई प्रथमदृष्टया मामला उत्पन्न हुआ था और क्या यह निलंबन किसी प्रकार से याचिकाकर्ता के संबंधित प्राधिकारी के समक्ष जाने के अधिकारों को प्रभावित करेगा। सेवा न्यायशास्त्र में यह सुव्यवस्थित सिद्धांत स्थापित है कि निलंबन कोई दंड नहीं है।
किसी कर्मचारी को नियोक्ता द्वारा केवल इस उद्देश्य से निलंबित किया जाता है कि वह किसी भी प्रकार से जांच को प्रभावित न कर सके, अर्थात वह साक्ष्यों में हस्तक्षेप न कर सके, या उन मामलों में जहाँ नियोक्ता यह आवश्यक पाता है कि कर्मचारी को निलंबित किया जाए ताकि अनुशासनात्मक कार्यवाही का निर्बाध निपटान सुनिश्चित किया जा सके।

15. संघीय सरकार बनाम अशोक कुमार अग्रवाल (2013) 16 सुप्रीम कोर्ट केस 147 के मामले में, पैराग्राफ 19 के माध्यम से न्यायालय ने इस प्रकार कहा है:

"19. निलंबन के दौरान, नियोक्ता और कर्मचारी के बीच अधीनस्थ और नियोक्ता का संबंध जारी रहता है। तथापि, कर्मचारी को अपने औपचारिक कर्तव्यों का निर्वहन करने से वर्जित किया जाता है। अतः निलंबन आदेश सेवा समाप्त नहीं करता। निलंबन का अर्थ है किसी कर्तव्य या विशेषाधिकार से अस्थायी रूप से वंचित करना या कार्यालय में कार्य करने से अस्थायी रूप से वंचित करना। कुछ मामलों में, विभागीय कार्यवाही में बरी किए जाने या दंडात्मक न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किए जाने के पश्चात भी निलंबन कलंक का कारण बन सकता है, किन्तु इसे सख्त कानूनी अर्थ में किसी भी दृष्टि से दंड नहीं माना जा सकता।

16. स्वाभाविक है कि यदि कोई कर्मचारी विभाग में किसी पद पर नियमित रूप से कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा है, तो यौन उत्पीड़न की शिकायतों के मामलों में, जहाँ प्राधिकारी द्वारा अंतिम निर्णय अभी तक नहीं लिया गया है, प्राधिकारी उस कर्मचारी को निलंबित कर सकता है। पहला, यह विभाग में कार्यरत महिलाओं के बीच विश्वास निर्माण के उपाय के रूप में किया जा सकता है; और दूसरा, यह सुनिश्चित करने के लिए कि उक्त अधिकारी अपनी पदवी का दुरुपयोग करके अन्य कार्यरत महिलाओं या पीड़ित महिला पर दबाव न डाल सके, भले ही अंतिम कार्रवाई पर विचार अभी लंबित हो। कार्यस्थल पर पीड़ित महिला द्वारा याचिकाकर्ता पर लगाए गए "बॉडी शेमिंग" के मौखिक टिप्पणियों के संदर्भ और परिस्थितियों के दृष्टिगत, यह यौन उत्पीड़न का गठन कर सकता है। तथापि, यदि इस संबंध में अंतिम दृष्टिकोण व्यक्त किया जाता है, तो यह याचिकाकर्ता के प्रति प्रतिकूल हो सकता है और अनुशासनात्मक प्राधिकारी को अंतिम कार्रवाई में प्रभावित कर सकता है। अतः मैं "बॉडी शेमिंग" के कृत्य के संबंध में किसी अंतिम दृष्टिकोण को व्यक्त करने से परहेज़ करता हूँ। किन्तु चूंकि याचिकाकर्ता को आंतरिक शिकायत समिति द्वारा अभियुक्त ठहराया गया है, प्रथमदृष्टया यह मामला उत्पन्न होता है कि विभाग याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक कार्यवाही में अंतिम निर्णय तक निलंबित रखने के लिए न्यायसंगत है।

C.B. बॉबी बनाम केरल राज्य 2025 SCC OnLine Ker 211 के मामले में, उच्च न्यायालय ने यह दृष्टिकोण व्यक्त किया कि हमारे समाज में बॉडी शेमिंग स्वीकार्य नहीं है। पैराग्राफ 10 के माध्यम से न्यायालय ने इस प्रकार अवलोकन किया:

10. निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व, मुझे यह कहना अनिवार्य है कि हमारे समाज में बॉडी शेमिंग स्वीकार्य नहीं है। किसी व्यक्ति के शरीर के संबंध में जैसे कि बहुत मोटा, बहुत दुबला, बहुत छोटा, बहुत लंबा, बहुत गहरा, बहुत काला आदि टिप्पणियों से बचना चाहिए। यह भावना है कि हम सभी किसी न किसी रूप में "अत्यधिक कुछ" हैं, और हम सभी 'पर्याप्त नहीं' हैं। यही जीवन है। हमारे शरीर बदलेंगे, हमारे मन बदलेंगे और हमारे हृदय बदलेंगे। किसी पर भी टिप्पणी करते समय, चाहे वह पुरुष हो या महिला, सभी को सतर्क रहना चाहिए। मैं इसे यहीं समाप्त करता हूँ।

17. आंतरिक शिकायत समिति के गठन के प्रावधानों के पालन न किए जाने या धारा 11 के अंतर्गत निर्देशित प्रक्रिया का पालन न किए जाने से संबंधित अन्य तर्कों की ओर आते हुए, मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इस पहलू की जांच अपीलीय प्राधिकारी द्वारा धारा 18 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए की जा सकती है, यदि याचिकाकर्ता अपील प्रस्तुत करता है। यद्यपि आंतरिक शिकायत समिति का गठन एक कानूनी प्रश्न है, किन्तु अन्य तथ्यात्मक मुद्दे भी इसमें सम्मिलित हैं, जैसे कि दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में याचिकाकर्ता को विभागीय दंड और अपील नियमों के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना दंडात्मक अंतिम कार्रवाई के दायरे में लाया जा सकता है या नहीं। और यह सभी मुद्दे स्वयं अपीलीय प्राधिकारी द्वारा जांचे जा सकते हैं, जिसमें आंतरिक शिकायत समिति द्वारा की गई सिफारिशों की वैधता पर विचार भी शामिल होगा।

18. ऐसी परिस्थितियों में, जहाँ मैं निलंबन के मामले में कोई अनुकंपा प्रदान करने से इंकार करता हूँ, मैं इस याचिका को इस स्तर पर निस्तारित करता हूँ और याचिकाकर्ता को आज की तिथि से चार सप्ताह के भीतर अपील प्रस्तुत करने का निर्देश देता हूँ। और यदि ऐसी कोई अपील प्रस्तुत की जाती है, तो अपीलीय प्राधिकारी द्वारा इसे तर्कसंगत और स्पष्टीकरणपूर्ण आदेश के माध्यम से अगले दो महीनों की अवधि में निस्तारित किया जाएगा। इसके अतिरिक्त यह प्रावधान है कि अपीलीय प्राधिकारी याचिकाकर्ता द्वारा अपील में उठाए गए सभी कानूनी पहलुओं पर विचार करेगा।

19. यह भी प्रावधान है कि अपील के अंतिम निर्णय तक, आंतरिक शिकायत समिति द्वारा की गई सिफारिशों के आधार पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी और याचिकाकर्ता का निलंबन भी अपील के अंतिम परिणाम के अनुसार रहेगा। तथापि, याचिकाकर्ता को निलंबन की अवधि तक नियमित रूप से भरण-पोषण भत्ता प्रदान किया जाएगा।

(2025) 5 ILRA 486

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान

रिट-ए संख्या 6157 वर्ष 2024

तथा अन्य संबद्ध वाद

शशांक सचान **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: पवन कुमार पांडेय, अजय कुमार

प्रतिवादी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, रण विजय सिंह, सर्वेश कुमार दुबे

सेवा विधि - प्रतिनियुक्ति - मूल विभाग में प्रतिनियोजन वापसी -समग्र शिक्षा अभियान के अंतर्गत जिला समन्वयक - बेसिक शिक्षा विभाग से प्रतिनियुक्ति पर तैनाती - नियुक्ति का स्वरूप स्पष्ट किया गया - शासनादेश दिनांक 26.05.2003 में अधिकतम प्रतिनियुक्ति अवधि तीन वर्ष निर्धारित, जिसे पाँच वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है - अवधि पूर्ण होने पर मूल विभाग में वापसी अनिवार्य - प्रतिनियुक्त कर्मचारी को उधार लिए गए विभाग में बने रहने का कोई अविच्छेद्य अधिकार नहीं - नियुक्ति रद्द नहीं की गई, केवल मूल संवर्ग में प्रतिनियोजन वापसी की गई - प्राकृतिक न्याय का कोई उल्लंघन नहीं - अनुच्छेद 21-ए (शिक्षा का अधिकार) के तहत शिक्षकों का मूल दायित्व है कि वे शिक्षण कार्य में लौटें - प्रतिनियोजन वापसी आदेश यथावत् रखा गया।

निर्णीत: प्रतिनियुक्ति का स्वरूप स्वभावतः अस्थायी होता है; उधार लिए गए विभाग में बने रहने का कोई निहित अथवा अर्जित अधिकार उत्पन्न नहीं होता। याचिकाकर्ता, जो सहायक अध्यापक होकर जिला समन्वयक पद पर प्रतिनियुक्ति पर कार्यरत थे, चार-पाँच वर्ष से अधिक अवधि पूर्ण कर चुके थे। शासनादेश दिनांक 26.05.2003 के आलोक में उनकी मूल विभाग में प्रतिनियोजन वापसी वैध, न्यायोचित तथा प्राकृतिक न्याय के विपरीत नहीं है। "प्रतिनियुक्ति पर नियुक्ति" एवं "प्रतिनियुक्ति पर स्थानांतरण" के बीच का अंतर स्पष्ट किया गया। याचिकाकर्ता अपने आप में जारी रहने का कोई अधिकार दावा नहीं कर सकते। रिट याचिकाएँ खारिज; अंतरिम आदेश निरस्त।

उद्धृत वादों की सूची:

1. अशोक कुमार रतिलाल पटेल बनाम संघ शासन, (2012) 7 SCC 757
2. कुनाल नंदा बनाम संघ शासन, (2000) 5 SCC 362
3. महेश चंद्र गौतम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2005 SCC OnLine All 563
4. दिनेश कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2024 SCC OnLine All 2326
5. डी.के. यादव बनाम जे.एम.ए. इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड, (1993) 3 SCC 259

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान द्वारा प्रदत्त)

1. ये रिट याचिकाओं का एक समूह है, जिसमें याचिकाकर्ताओं की ओर से श्री शरद पाठक एवं श्री पवन कुमार पांडेय ने बहस की है; राज्य-प्रतिवादियों की ओर से श्री प्रदीप कुमार सिंह, वरिष्ठ अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता उपस्थित हुए हैं; तथा प्रतिवादी संख्या-2 की ओर से श्री संजय बसीन, वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री सर्वेश दुबे एवं शोभित मोहन शुक्ला ने की है, उपस्थित हुए हैं।

2. उपर्युक्त रिट याचिकाओं के समूह में सभी याचिकाकर्ताओं की शिकायत समान है, अतः पक्षकारों के अधिवक्ताओं की सहमति से सभी रिट याचिकाओं को एक साथ जोड़ा गया है और इन्हें एक ही सामान्य निर्णय द्वारा निस्तारित किया जा रहा है। तथापि, अग्रणी रिट याचिका रिट-ए संख्या 6157 वर्ष 2024 (शशांक सचान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) होगी, इसलिए वाद के तथ्य उक्त अग्रणी रिट याचिका से लिए गए हैं।

3. उपर्युक्त रिट याचिकाओं के याचिकाकर्ताओं ने आक्षेपित प्रतिनियोजन-वापसी आदेश को चुनौती दी है, जिसके द्वारा उन्हें उनके मूल विभाग में वापस भेज दिया गया है, तथा उन्होंने इसके परिणामस्वरूप पारित मुक्तिकरण आदेशों को भी चुनौती दी है। उल्लेखनीय है कि प्रवेश की प्रथम तिथि पर इस न्यायालय द्वारा अंतरिम आदेश प्रदान किया गया था।

4. इन रिट याचिकाओं के समूह में यह प्रश्न उभरकर सामने आता है कि क्या प्रतिनियुक्त कर्मचारियों को उधार लिए गए विभाग में बनाए रखे जाने का कोई अविच्छेद्य अधिकार प्राप्त है, जबकि उन्हें पूर्णतया ज्ञात है कि उनकी तैनाती उक्त विभाग में प्रतिनियुक्ति के आधार पर की गई है; उनका वेतन आदि उनके मूल विभाग से ही दिया जा रहा है और उनका लियन भी उनके मूल विभाग में ही सुरक्षित है। इन रिट याचिकाओं में यह प्रश्न भी विचारणीय है कि क्या प्रतिनियुक्त कर्मचारियों को उनके मूल विभाग में स्थायी रूप से बनाए रखा जा सकता है।

5. वर्तमान मामले के संक्षिप्त तथ्य एवं परिस्थितियाँ यह हैं कि याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति वर्ष 2007 से (यथास्थिति) बेसिक शिक्षा विभाग में सहायक अध्यापक के पद पर की गई थी। नियुक्ति के उपरान्त

याचिकाकर्ताओं ने बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा संचालित एवं नियंत्रणाधीन विभिन्न विद्यालयों में सहायक अध्यापक के रूप में अपने-अपने दायित्वों का निर्वहन करना प्रारम्भ कर दिया। दिनांक 21.12.2019 को जिला समन्वयकों के चयन एवं नियुक्ति हेतु आधिकारिक वेबसाइट पर एक विज्ञापन प्रकाशित किया गया। इसके उपरान्त, दिनांक 30.12.2019 को राज्य परियोजना निदेशक, लखनऊ, उत्तर प्रदेश द्वारा सभी जिला बेसिक शिक्षा अधिकारियों को एक पत्र निर्गत किया गया, जिसमें यह उल्लेख किया गया कि उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित विद्यालयों में कार्यरत सहायक अध्यापकों में से चयन के माध्यम से जिला समन्वयकों की नियुक्ति की जाएगी।

6. दिनांक 23.01.2020 को राज्य परियोजना निदेशक ने उत्तर प्रदेश राज्य के सभी जिला बेसिक शिक्षा अधिकारियों को पत्र लिखकर जिला समन्वयक के पद हेतु ऑनलाइन परीक्षा के लिए पात्रता मानदंड निर्धारित किए, तथा परीक्षा की तिथि 27.01.2020 निश्चित की और उस परीक्षा में सम्मिलित होने वाले सहायक अध्यापकों को 27.01.2020 का अवकाश-कर्तव्य (ड्यूटी लीव) प्रदान किया। उक्त पत्र में स्पष्ट रूप से दर्शाया गया था कि ये नियुक्तियाँ प्रतिनियुक्ति के आधार पर की जाएँगी। अतः यह स्पष्ट है कि परीक्षा की तिथि से पूर्व सभी प्रतिभागियों को यह अवगत करा दिया गया था कि यदि वे चयनित होकर जिला समन्वयक के रूप में नियुक्त होते हैं, तो उनकी नियुक्ति प्रतिनियुक्ति आधार पर ही होगी।

7. पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा यह अवगत कराया गया है कि उपर्युक्त चयन प्रक्रिया के अनुपालन में 5000 से अधिक अभ्यर्थियों ने ऑनलाइन परीक्षा में भाग लिया और वर्तमान रिट याचिकाओं के याचिकाकर्ता सफल घोषित हुए। राज्य परियोजना निदेशक ने दिनांक 19.03.2020 को चयनित अभ्यर्थियों को उनके संबंधित जनपदों में जिला समन्वयक के पद पर कार्यभार ग्रहण करने हेतु पत्र जारी किया। उक्त पत्र दिनांक 19.03.2020 में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि यह नियुक्ति पूर्णतया प्रतिनियुक्ति के आधार पर होगी; नियुक्त व्यक्तियों को उनका वेतन आदि उनके मूल विभाग से ही प्राप्त होगा तथा उनका लियन भी उनके मूल विभाग में ही सुरक्षित रहेगा। अतः यह स्पष्ट है कि जिला समन्वयक के पद पर कार्यभार ग्रहण करने से पूर्व चयनित अभ्यर्थियों/ नियुक्त व्यक्तियों को नियुक्ति के स्वरूप के विषय में अवगत करा दिया गया था, और उपर्युक्त जानकारी होने के उपरान्त ही याचिकाकर्ताओं ने विभिन्न जनपदों में जिला समन्वयक के रूप में अपना कार्यभार ग्रहण किया।

8. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि नियुक्ति पत्र में प्रतिनियुक्ति की अवधि निर्दिष्ट नहीं की गई थी। इसके अतिरिक्त, अब तक जिला समन्वयक के पद पर कोई नवीन भर्ती नहीं की गई है, हालांकि अब विभिन्न जनपदों में जिला समन्वयक के पद को आउटसोर्सिंग के माध्यम से भरने का निर्णय लिया गया है। आक्षेपित आदेश दिनांक 01.07.2024 राज्य परियोजना निदेशक द्वारा जारी किया गया, जिसमें याचिकाकर्ताओं को उनके मूल विभाग में प्रतिनियोजित किया गया। यह आदेश शासनादेश क्रमांक 1/1/95[1]-का-4-2003 दिनांक 26.05.2003 के आलोक में जारी किया गया, जिसमें यह संकेत किया गया कि याचिकाकर्ताओं की प्रतिनियुक्ति अवधि 04 वर्षों से अधिक पूर्ण हो चुकी है, अतः उन्हें उनके मूल विभाग में

प्रतिनियोजित किया जाता है। आक्षेपित आदेश दिनांक 01.07.2024 के पालन में जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा दिनांक 02.07.2024 को मुक्तिकरण आदेश जारी किया गया। उल्लेखनीय है कि उक्त दोनों आक्षेपित आदेशों को इस न्यायालय ने दिनांक 08.08.2024 के आदेश के माध्यम से स्थगित कर दिया था और अंतरिम आदेश अब भी प्रचलित है।

9. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दिनांक 26.05.2003 का शासनादेश राज्य सरकार के कर्मचारियों से संबंधित है, जबकि वर्तमान याचिकाकर्ता समग्र शिक्षा अभियान नामक एक परियोजना के अंतर्गत अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं। अतः उपरोक्त शासनादेश याचिकाकर्ताओं पर लागू नहीं होगा।

10. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि सभी जिला समन्वयकों को उनके मूल विभाग में प्रतिनियोजित नहीं किया गया है, बल्कि बिना किसी ठोस कारण के केवल याचिकाकर्ताओं को ही चयनात्मक नीति (पिक एंड चूज़) अपनाकर उनके मूल विभाग में प्रतिनियोजित किया गया है।

11. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने सुप्रीम कोर्ट के निर्णय **अशोक कुमार रतिलाल पटेल बनाम संघ शासन एवं अन्य** (2012) 7 SCC 757 पर निर्भरता जताते हुए प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति चयन के माध्यम से प्रतिनियुक्ति पर की गई है, अतः उनकी नियुक्ति में केवल अनुपयुक्तता या असंतोषजनक कार्य के आधार पर हस्तक्षेप किया जा सकता है। हालांकि, आक्षेपित आदेश में याचिकाकर्ताओं की अनुपयुक्तता या असंतोषजनक कार्य के संबंध में कुछ भी उल्लेख नहीं है, बल्कि उन्हें दिनांक 26.05.2003 के शासनादेश के अनुपालन में प्रतिनियोजित किया गया है।

12. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने कहा कि सुप्रीम कोर्ट ने **अशोक कुमार रतिलाल पटेल (सुप्रा)** मामले में पैरा-14 के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि 'प्रतिनियुक्ति पर नियुक्ति' और 'प्रतिनियुक्ति पर स्थानांतरण' में अंतर है। जिन कर्मचारियों का प्रतिनियुक्ति पर स्थानांतरण किया गया है, उन्हें उधार लिए गए विभाग में बनाए रखने का कोई अधिकार नहीं है, जबकि जिनकी प्रतिनियुक्ति पर नियुक्ति हुई है, उनकी नियुक्ति केवल अनुपयुक्तता या असंतोषजनक कार्य के आधार पर ही रद्द की जा सकती है।

13. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता से यह स्पष्ट प्रश्न पूछने पर कि याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति रद्द की गई है या उन्हें उनके मूल विभाग में प्रतिनियोजित किया गया है, उन्होंने कहा कि याचिकाकर्ताओं को उनके मूल विभाग में प्रतिनियोजित किया गया है। इसके उपरांत याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता से पुनः यह पूछा गया कि सुप्रीम कोर्ट द्वारा **अशोक कुमार रतिलाल पटेल (सुप्रा)** मामले में जारी दिशा-निर्देश वर्तमान मामले पर कैसे लागू होते हैं, क्योंकि उक्त मामले में प्रतिनियुक्त चयनित कर्मचारियों की नियुक्ति रद्द की गई थी, जबकि वर्तमान याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति रद्द नहीं हुई है, बल्कि उन्हें उनके मूल विभाग में प्रतिनियोजित किया गया है। इस स्पष्ट प्रश्न का याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा सही तरीके से कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सका। और जब याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता से यह स्पष्ट प्रश्न पूछा गया कि क्या याचिकाकर्ताओं को उनके

मूल विभाग में प्रतिनियोजित करना उनकी नियुक्ति रद्द करने के रूप में माना जाएगा, जबकि उन्हें यह पूर्णतया ज्ञात था कि जिला समन्वयक के रूप में उनकी नियुक्ति प्रतिनियुक्ति आधार पर होगी; उनका वेतन आदि उनके मूल विभाग से दिया जाएगा और उनका लियन उनके मूल विभाग में ही सुरक्षित रहेगा, तो याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता इस स्पष्ट प्रश्न का सही तरीके से उत्तर देने में असमर्थ रहे।

14. इसके विपरीत, श्री संजय बसीन, वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री सर्वेश दुबे और श्री शोभित मोहन शुक्ला ने की, तथा संबंधित जिला बेसिक शिक्षा अधिकारियों के अधिवक्ताओं ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता प्रतिनियुक्त कर्मचारियों के रूप में उधार लिए गए विभाग में स्थायी रूप से बने रहने का कोई अविच्छेद्य अधिकार नहीं रखते, जबकि उन्हें उनका वेतन आदि उनके मूल विभाग से प्राप्त हो रहा है और उनका लियन उनके स्थायी विभाग में सुरक्षित है। उन्होंने आगे यह भी प्रस्तुत किया कि प्रतिनियुक्ति पर नियुक्ति की एक समाप्ति अवश्य होनी चाहिए और भले ही उनकी नियुक्ति पत्र में कोई निश्चित अवधि निर्दिष्ट न की गई हो, तब भी उन्हें उधार लिए गए विभाग या मूल विभाग के सक्षम प्राधिकारी द्वारा उनके मूल विभाग में प्रतिनियोजित किया जा सकता है। दिनांक 26.05.2003 का शासनादेश वर्तमान याचिकाकर्ताओं पर लागू होगा क्योंकि यह सभी सरकारी कर्मचारियों पर लागू है, जिनमें बेसिक शिक्षा विभाग के सहायक अध्यापक याचिकाकर्ता भी सम्मिलित हैं। दिनांक 26.05.2003 के शासनादेश के अनुसार, प्रतिनियुक्त कर्मचारियों को उधार लिए गए विभाग में अधिकतम तीन वर्षों तक रखा जा सकता है और तीन वर्ष की अवधि पूर्ण होने के उपरांत उन्हें उनके मूल विभाग में प्रतिनियोजित किया जा सकता है। यह शासनादेश आगे यह भी निर्धारित करता है कि किसी भी परिस्थितियों में पांच वर्ष की अवधि पूर्ण होने के पश्चात प्रतिनियुक्त कर्मचारियों को उनके मूल विभाग में प्रतिनियोजित किया जाना अनिवार्य है और इस शासनादेश के निर्देशों का कड़ाई से पालन किया जाएगा। अधिकांश याचिकाकर्ताओं ने मार्च 2020 में प्रतिनियुक्ति पद यानी जिला समन्वयक के रूप में अपना कार्यभार ग्रहण किया था, अतः आज की तिथि तक उन्होंने जिला समन्वयक के रूप में पांच वर्ष से अधिक सेवा पूर्ण कर ली है। कुछ याचिकाकर्ता अभी पांच वर्ष की अवधि पूर्ण कर रहे होंगे, लेकिन निर्विवाद रूप से सभी याचिकाकर्ताओं ने प्रतिनियुक्ति पद पर तीन वर्ष से अधिक सेवा पूरी कर ली है।

15. अतः, प्रतिवादी पक्षों के अधिवक्ताओं ने दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत किया कि रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं को जिला समन्वयक के पद पर कार्यरत रहने की अनुमति देने और दिनांक 01.07.2024 एवं 02.07.2024 (परिशिष्ट संख्याएँ 1 और 2) के आक्षेपित आदेशों के पालन में उन्हें मुक्त न करने का निर्देश देने की प्रार्थना, उक्त आदेशों को रद्द करने के लिए, व्यर्थ एवं भ्रामक है। उन्होंने आगे यह भी प्रस्तुत किया कि प्रतिनियुक्ति से संबंधित कानून स्पष्ट है कि प्रतिनियुक्त कर्मचारियों को उधार लिए गए विभाग में स्थायी रूप से बनाए रखने का कोई अविच्छेद्य अधिकार नहीं होता और सुप्रीम कोर्ट का निर्णय **अशोक कुमार रतिलाल पटेल (सुप्रा)** वर्तमान मामले में लागू नहीं होता। उक्त प्रस्तुतिकरण का समर्थन करते हुए, प्रतिवादी पक्षों के अधिवक्ताओं ने सुप्रीम कोर्ट के निर्णय **कुनाल नंदा बनाम संघ शासन एवं अन्य** (2000) 5 SCC 362, इस न्यायालय के निर्णय **महेश चंद्र गौतम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** 2005 SCC OnLine All 563, तथा सुप्रीम कोर्ट के निर्णय **दिनेश कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** 2024 SCC OnLine All 2326 पर निर्भरता जताई।

16. उक्त प्रतिवादी पक्षों के अधिवक्ताओं की दलीलों का विरोध करते हुए, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं ने सुप्रीम कोर्ट के निर्णय **डी.के. यादव बनाम जे.एम.ए. इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड** (1993) 3 SCC 259 का हवाला दिया, विशेष रूप से पैरा-9 का संदर्भ देते हुए, जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने यह स्पष्ट किया कि किसी भी व्यक्ति के अधिकार को प्रभावित करने वाला कोई निर्णय तब तक नहीं लिया जाना चाहिए जब तक उसे मामले की जानकारी न दी जाए और उसे अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर न दिया गया हो। कोई भी आदेश, जिसमें दीवानी प्रभाव हों, उसे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप ही पारित किया जाना चाहिए।

17. प्रतिवादी पक्षों के अधिवक्ताओं ने प्रस्तुत किया कि सुप्रीम कोर्ट का उपरोक्त निर्णय **डी.के. यादव (सुप्रा)** वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा क्योंकि याचिकाकर्ता अपनी नियुक्ति के स्वभाव के बारे में पूर्णतया अवगत थे, जैसा कि ऊपर प्रस्तुत किया गया है। अतः वर्तमान मामले में प्राकृतिक न्याय के आधार पर दलील स्वीकार नहीं की जा सकती। उन्होंने यह भी कहा कि **अशोक कुमार रतिलाल पटेल (सुप्रा)** का निर्णय भी वर्तमान मामले के तथ्यों का समर्थन नहीं करता, बल्कि यह मामला भी प्रतिवादी पक्षों की दलीलों का समर्थन करता है। अतः प्रतिवादी पक्षों के अधिवक्ताओं ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान रिट याचिका और इसके संबंधित रिट याचिकाओं के समूह को लागत सहित खारिज किया जाए।

18. पक्षकारों के अधिवक्ताओं की दलीलों को सुनने के उपरांत और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने के बाद, मैं भी यह निश्चित मत रखता हूँ कि प्रतिनियुक्त कर्मचारियों को उधार लिए गए विभाग में बनाए रखने का कोई अविच्छेद्य अधिकार नहीं है क्योंकि उनका लियन उनके मूल विभाग में सुरक्षित है। वर्तमान मामले में तो यह कहने की आवश्यकता भी नहीं कि लियन मूल विभाग में सुरक्षित है; याचिकाकर्ताओं को उनका वेतन उनके मूल विभाग से ही प्राप्त होता है और उनका लियन उनके मूल विभाग में ही संरक्षित रखा गया है।

19. चूँकि दिनांक 26.05.2003 का शासनादेश उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव द्वारा राज्य के सभी संबंधित प्रधान सचिव/सचिवों को प्रेषित किया गया था, जिसमें यह संकेत दिया गया कि प्रतिनियुक्त कर्मचारियों को उधार लिए गए विभाग में अधिकतम तीन वर्षों तक बनाए रखा जा सकता है, इसके पश्चात उन्हें प्रतिनियोजित किया जा सकता है और प्रतिनियुक्ति के रूप में पांच वर्षों की अवधि पूर्ण होने के उपरांत किसी भी परिस्थितियों में उन्हें उनके मूल विभाग में प्रतिनियोजित किया जाना अनिवार्य है। अतः आक्षेपित आदेश पूर्णतः न्यायोचित है, क्योंकि यह स्थापित कानून के अनुपात में है और दिनांक 26.05.2003 के शासनादेश के अनुरूप है, जो वर्तमान मामले में अत्यंत लागू होता है क्योंकि याचिकाकर्ता मूलतः बेसिक शिक्षा विभाग में सहायक अध्यापक के रूप में सेवाएँ दे रहे हैं।

20. यहाँ यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि संविधान (छियासीवां संशोधन) अधिनियम, 2002 के अनुपालन में दिनांक 01.04.2010 को संविधान भारत के अध्याय-III, जो मौलिक अधिकारों को परिभाषित करता है, में

शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 21-ए) सम्मिलित किया गया। भारत के संविधान का अनुच्छेद 21-ए इस प्रकार है:

'अनुच्छेद 21-ए: शिक्षा का अधिकार - राज्य सभी छह से चौदह वर्ष आयु के बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा, जिस प्रकार राज्य कानून द्वारा निर्धारित करेगा।

21. अतः अनुच्छेद 21-ए के तहत नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा 6 से 14 वर्ष आयु के बच्चों को प्रदान की जाएगी। याचिकाकर्ताओं की प्रारंभिक नियुक्ति बेसिक शिक्षा विभाग में सहायक अध्यापक के रूप में हुई थी, अतः उनका मुख्य कर्तव्य 6 से 14 वर्ष आयु के बच्चों को शिक्षा प्रदान करना है। याचिकाकर्ताओं को उनके मूल विभाग में प्रतिनियोजित करना उद्देश्यपूर्ण प्रतीत होता है, क्योंकि यदि याचिकाकर्ताओं को उनके मूल विभाग यानी बेसिक शिक्षा विभाग में प्रतिनियोजित किया जाता है, तो वे 6 से 14 वर्ष आयु के विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करेंगे। याचिकाकर्ता यह दावा नहीं कर सकते कि वे उन बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के बजाय केवल समन्वयक का कर्तव्य निभाएँ, जिसका 6 से 14 वर्ष आयु के बच्चों को शिक्षा प्रदान करने से कोई सम्बन्ध नहीं है। कोई भी कर्मचारी अपने मूल कर्तव्य और जिम्मेदारी से इनकार नहीं कर सकता, जिसके लिए उसे प्रारंभ में नियुक्त किया गया था। और भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि जब प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बच्चों का मौलिक अधिकार, अर्थात् शिक्षा का अधिकार (Right to Education) सुनिश्चित है, तो याचिकाकर्ताओं द्वारा उधार लिए गए विभाग में बने रहने और मूल विभाग यानी बेसिक शिक्षा विभाग में प्रतिनियोजित न किए जाने की मांग, संविधान के अनुच्छेद 21-ए का उल्लंघन करती है।

22. कानून में यह स्थापित है कि यदि किसी व्यक्ति/कर्मचारी के प्रति कोई कृत्य, अकर्मण्यता या उपेक्षा उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन करती है, तो उसे विधि की दृष्टि में प्रारंभ से शून्य और अवैध घोषित किया जाएगा। अतः याचिकाकर्ताओं की शिकायत भ्रामक प्रतीत होती है और यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 21-ए का उल्लंघन करती है।

23. अब, मैं उन न्यायालयीन निर्णयों पर विचार करना चाहूँगा जिनका हवाला पक्षकारों के अधिवक्ताओं ने दिया है। **अशोक कुमार रतिलाल पटेल (सुप्रा)** मामले के पैरा-8, 12, 13, 14, 17 और 18 निम्नानुसार हैं:

8. उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय ने दिनांक 5 मार्च, 2010 के पत्र के माध्यम से दूसरे प्रतिवादी को सूचित किया कि उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा प्रतिनियुक्ति की स्वीकृति प्रदान की गई है और साथ ही यह जानकारी दी कि अपीलकर्ता को 17 मार्च, 2010 को मुक्त किया जाएगा। दूसरे प्रतिवादी को आगे यह भी सूचित किया गया कि अपीलकर्ता का वर्तमान मूल वेतन 19,100 रुपये है, जो वेतनमान 16,400-450-20,900-500-22,400 के अनुसार है और बहुत शीघ्र ही इसे 6वीं वेतन आयोग के अनुसार संशोधित किया जाएगा तथा संशोधित वेतनबैंड + शैक्षणिक ग्रेड वेतन 37,400-67,000+10,000 रुपये में निर्धारित किया

जाएगा। उक्त पत्र प्राप्त होने पर दूसरे प्रतिवादी ने दिनांक 11 मार्च, 2010 का आक्षेपित पत्र जारी किया और अपीलकर्ता की नियुक्ति का प्रस्ताव वापस ले लिया, यह तर्क देते हुए कि नियमों के तहत उच्च पद से निम्न पद पर प्रतिनियुक्ति अनुमत नहीं है।

12. दूसरी ओर, प्रतिवादियों के अनुसार, उन्होंने यह महसूस किया कि अपीलकर्ता को उसके मूल विभाग का वेतन नहीं दिया जा सकता क्योंकि वह उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय में निदेशक के रूप में उच्च वेतन प्राप्त कर रहा था, अतः प्रतिनियुक्ति का प्रस्ताव वापस ले लिया गया। इसके अलावा यह भी तर्क दिया गया कि उच्च वेतनमान प्राप्त करने वाले व्यक्ति को निम्न वेतनमान वाले पद पर प्रतिनियुक्त नहीं किया जा सकता और अपीलकर्ता को निदेशक, एआईसीटीई के पद पर अपनी पात्रता का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है।

13. सामान्यतः प्रतिनियुक्ति के माध्यम से स्थानांतरण समकक्ष पद के खिलाफ किया जाता है, एक कैडर से दूसरे कैडर में, एक विभाग से दूसरे विभाग में, एक संगठन से दूसरे संगठन में, या एक सरकार से दूसरी सरकार में; ऐसे मामलों में प्रतिनियुक्त कर्मचारी को उस पद में कोई कानूनी अधिकार नहीं होता। ऐसे प्रतिनियुक्त कर्मचारी को उस पद में स्थायी रूप से नियुक्त करने का कोई अधिकार नहीं होता, जिस पद पर उसे प्रतिनियुक्त किया गया है। इस प्रकार की प्रतिनियुक्ति भर्ती का रूप नहीं लेती, क्योंकि इसमें वास्तविक अर्थ और महत्व में कोई नई भर्ती नहीं होती, क्योंकि व्यक्ति मूल सेवा का सदस्य बना रहता है।

14. हालांकि, उपर्युक्त सिद्धांत प्रतिनियुक्ति के माध्यम से नियुक्ति (भर्ती) के मामले में लागू नहीं किया जा सकता। ऐसे मामले में, राज्य की सेवाओं या किसी संगठन या संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में राज्य में प्रतिनियुक्ति के माध्यम से नियुक्ति के लिए, अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 16 का पालन किया जाना आवश्यक है। किसी भी व्यक्ति के साथ भेदभाव नहीं किया जा सकता और नियुक्ति प्राधिकारी के लिए यह खुला नहीं है कि वह मनमाने ढंग से कार्य करे या अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता कोई आदेश पारित करे। प्रतिनियुक्ति के लिए आवेदन करने वाले व्यक्ति को निष्पक्ष और समान व्यवहार का अविच्छेद्य अधिकार प्राप्त है और एक बार ऐसा व्यक्ति चयनित हो जाता है और उसे प्रतिनियुक्ति के लिए नियुक्ति पत्र प्रदान किया जाता है, तो इसे केवल अनुपयुक्तता या असंतोषजनक कार्य के आधार पर ही रद्द किया जा सकता है।

17. उपरोक्त उल्लिखित सिद्धांतों के आधार पर, हमें यह कहना अनिवार्य है कि उच्च न्यायालय "प्रतिनियुक्ति पर स्थानांतरण" और "प्रतिनियुक्ति पर नियुक्ति" के बीच का अंतर समझने में विफल रहा और यह त्रुटिपूर्ण निर्णय लिया कि अपीलकर्ता को निदेशक के पद पर अपने अधिकार का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है। चूंकि अपीलकर्ता को उचित चयन प्रक्रिया के बाद चयनित किया गया और उसे प्रतिनियुक्ति के माध्यम से नियुक्ति पत्र प्रदान किया गया, तथा प्रतिवादियों द्वारा कोई वैध कारण नहीं दर्शाया गया, इसलिए हम यह मानते हैं कि अपीलकर्ता को उक्त पद पर कार्यभार ग्रहण करने का अधिकार है और प्रतिवादियों को उसकी कार्यभार ग्रहण करने को स्वीकार करना अनिवार्य था।

18. उपरोक्त कारणों के आधार पर, दिनांक 11 मार्च, 2010 के अपीलकर्ता की नियुक्ति वापस लेने के आक्षेपित आदेश और गुजरात उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता और इन्हें तदनुसार रद्द किया जाता है। चूंकि निदेशक का पद रिक्त है, इस न्यायालय के दिनांक 9 मई, 2011 के अंतरिम आदेश के अनुरूप, हम दूसरे प्रतिवादी को निर्देशित करते हैं कि वह अपीलकर्ता की प्रतिनियुक्ति के माध्यम से एक वर्ष की अवधि के लिए कार्यभार ग्रहण स्वीकार करे, जो उसके कार्यभार ग्रहण करने की तिथि से गिना जाएगा और प्रतिनियुक्ति की अन्य शर्तें समान रहेंगी। उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय को निर्देशित किया जाता है कि वह अपीलकर्ता को मुक्त करे तथा अपीलकर्ता द्वारा रिपोर्टिंग की तिथि से एक सप्ताह के भीतर दूसरे प्रतिवादी को अपीलकर्ता के कार्यभार ग्रहण को स्वीकार करने का निर्देश भी दिया जाता है।
(प्रमुखता से दर्शाई गई है)

24. **पैरा-6**, **कुनाल नंदा (सुप्रा)** मामले का निम्नानुसार है:
कानूनी प्रस्तुतियों पर भी कोई योग्यता नहीं पाई जाती। यह स्पष्ट रूप से स्थापित है कि जब तक प्रतिनियुक्त कर्मचारी का किसी विभाग में स्थायी रूप से अवशोषित होने का दावा किसी वैधानिक नियम, विनियमन या आदेश पर आधारित न हो, जिसे कानून का बल प्राप्त हो, प्रतिनियुक्त कर्मचारी ऐसे अवशोषण के दावे को नहीं कर सकता और सफल नहीं हो सकता। प्रतिनियुक्ति के मूल सिद्धांत के अनुसार संबंधित व्यक्ति को किसी भी समय उसके मूल विभाग में प्रतिनियोजित किया जा सकता है ताकि वह वहां अपने स्थायी पद पर सेवा दे सके, चाहे यह आदेश किसी भी विभाग द्वारा दिया गया हो। ऐसे व्यक्ति को लंबी अवधि तक प्रतिनियुक्ति पर रहने या उस विभाग में स्थायी रूप से नियुक्त होने का कोई अविच्छेद्य अधिकार प्राप्त नहीं है, जहां वह प्रतिनियुक्ति पर गया था। **रमेश्वर प्रसाद बनाम एम.डी., उत्तर प्रदेश राज्यकीय निर्माण निगम लिमिटेड एवं अन्य [1999 (8) SCC 381]** में दिए गए निर्णय का संदर्भ उपयुक्त नहीं है, क्योंकि उस मामले में विचारणीय विषय अवशोषण के लिए वैधानिक नियमों और उन नियमों की सीमा के संदर्भ में था। यह दावा कि किसी को अवशोषण के लिए स्नातक होने की आवश्यकता नहीं है और सेवा उम्मीदवार होने के नाते 10 वर्षों की सेवा पूरी करने पर वह स्नातक होने की शर्त से मुक्त है, केवल खारिज किया जाना चाहिए। प्रतिवादी विभाग का यह दृष्टिकोण कि प्रतिनियुक्त कर्मचारी का अवशोषण सीधे कोटे के खिलाफ होने पर, प्रत्यक्ष भर्ती के लिए निर्धारित मूल शैक्षणिक योग्यता यानी स्नातक होना आवश्यक और अनिवार्य है, तथा ऐसे व्यक्ति के दावे की तुलना उस व्यक्ति के प्रचार के आधार पर किए जाने वाले दावे से नहीं की जा सकती, जो पहले से ही उस विभाग में सेवा में है, न्यायोचित और समर्थनीय है। हम इस दावे में कोई दोष नहीं पाते।
(प्रमुखता से प्रदर्शित की गई है)

25. **पैरा-6 और 8**, **महेश चंद्र गौतम (सुप्रा)** मामले के निम्नलिखित हैं:
6. मेरी दृष्टि में, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं द्वारा उठाए गए तर्क स्वीकार्य नहीं हैं। यह नियोक्ता का विशेष अधिकार है कि वह अपने कर्मचारियों को, जिन्हें प्रतिनियुक्ति पर भेजा गया है, वापस बुला सके। प्रतिनियुक्ति पर भेजे गए कर्मचारी, और वर्तमान मामले में याचिकाकर्ताओं को, प्रतिनियुक्ति पद पर कोई अधिकार या पट्टा (लीयन) नहीं है। भले ही अवधि को कम कर दिया गया हो, याचिकाकर्ताओं का उस पद पर

कोई अधिकार या दावा नहीं है और वे इस न्यायालय के समक्ष यह प्रस्तुत नहीं कर सकते कि उन्हें मूल प्रतिनियुक्ति अवधि तक उस पद पर बने रहने का अधिकार है। **हरी ओम त्रिपाठी बनाम निदेशक, राज्य नगर विकास प्राधिकरण** मामले में इस न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि प्रतिनियुक्ति पर भेजे गए कर्मचारी को निर्धारित अवधि समाप्त होने से पहले उसके मूल विभाग में वापस भेजा जा सकता है, क्योंकि कर्मचारी प्रतिनियुक्ति पद पर किसी भी अधिकार का दावा नहीं कर सकता।

8. **कुनाल नंदा बनाम भारत संघ** मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि प्रतिनियुक्त कर्मचारी को किसी भी समय और किसी भी परिस्थिति में उसके मूल विभाग में वापस भेजा जा सकता है, चाहे वह आदेश उधार लेने वाले विभाग के द्वारा दिया गया हो या मूल विभाग के द्वारा। सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि प्रतिनियुक्ति पर नियुक्त व्यक्ति को उधार लिए गए विभाग में बने रहने या वहाँ स्थायी रूप से नियुक्त होने का कोई अविच्छेद्य अधिकार प्राप्त नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार कहा-

कानूनी प्रस्तुतियों पर भी कोई योग्यता नहीं पाई जाती। यह स्पष्ट रूप से स्थापित है कि जब तक प्रतिनियुक्त कर्मचारी का उस विभाग में स्थायी रूप से अवशोषित होने का दावा किसी वैधानिक नियम, विनियम या आदेश पर आधारित न हो, जिसे कानून का बल प्राप्त हो, प्रतिनियुक्त कर्मचारी ऐसे अवशोषण का दावा नहीं कर सकता और उसमें सफल नहीं हो सकता। प्रतिनियुक्ति के मूल सिद्धांत के अनुसार संबंधित व्यक्ति को किसी भी समय उसके मूल विभाग में प्रतिनियोजित किया जा सकता है ताकि वह वहां अपने स्थायी पद पर सेवा दे सके। ऐसे व्यक्ति को लंबी अवधि तक प्रतिनियुक्ति पर रहने या उस विभाग में स्थायी रूप से नियुक्त होने का कोई अविच्छेद्य अधिकार प्राप्त नहीं है, जहां वह प्रतिनियुक्ति पर गया था।
(प्रमुखता से प्रदर्शित की गई है)

26. इस न्यायालय ने **दिनेश कुमार सिंह (सुप्रा)** मामले में उपरोक्त स्थापित कानूनी सिद्धांत का पालन किया है।

27. विशेष रूप से, उपरोक्त चर्चा किए गए **डी.के. यादव (सुप्रा)** के पैरा-9 का वर्तमान मामले में कोई प्रासंगिकता नहीं है। जहां तक **अशोक कुमार रतीलाल पटेल (सुप्रा)** मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का संबंध है, ध्यान देने योग्य है कि प्रतिनियुक्ति कर्मचारी को उच्च पद से निम्न पद पर प्रतिनियुक्ति के लिए चयनित किया गया था, अतः ऐसी नियुक्ति को सक्षम प्राधिकारी द्वारा वापस/रद्द किया गया। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि प्रतिनियुक्ति के लिए आवेदन करने वाले व्यक्ति को निष्पक्ष और समान व्यवहार का अविच्छेद्य अधिकार प्राप्त है, और एक बार ऐसा व्यक्ति चयनित हो जाता है और उसे प्रतिनियुक्ति के लिए नियुक्ति पत्र प्रदान किया जाता है, तो इसे केवल अनुपयुक्तता या असंतोषजनक कार्य के आधार पर ही रद्द किया जा सकता है। वर्तमान मामले के तथ्य और परिस्थितियाँ पूरी तरह भिन्न हैं क्योंकि याचिकाकर्ताओं को निम्न वेतनमान और भत्ते वाले प्रतिनियुक्ति पद, अर्थात जिला समन्वयक के पद पर नियुक्त नहीं किया गया, बल्कि उन्हें अतिरिक्त प्रोत्साहन प्राप्त हो रहा है और उनका वेतन आदि उनके मूल विभाग द्वारा भुगतान किया जा रहा

है। उनकी नियुक्ति रद्द नहीं की गई, बल्कि उन्हें उनके मूल विभाग में प्रतिनियोजित किया गया है। अतः उपरोक्त निर्णय के पैरा-13 में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश लागू होते हैं, जिसमें प्रतिनियुक्ति के कानून के सामान्य सिद्धांतों को परिभाषित किया गया है। इसलिए, वर्तमान मामले में याचिकाकर्ताओं को **अशोक कुमार रतीलाल पटेल (सुप्रा)** के निर्णय से कोई लाभ प्राप्त नहीं हो सकता।

28. संक्षेप में, प्रतिनियुक्त कर्मचारियों को अपने उधार लेने वाले विभाग में बने रहने का कोई अविच्छेद्य अधिकार प्राप्त नहीं है और उन्हें अपने मूल विभाग में प्रतिनियोजित किया जाना चाहिए, जहाँ उनका लीयन सुरक्षित है। प्रतिनियुक्ति की नियुक्ति स्थायी प्रकृति की नहीं होती, इसलिए प्रतिनियुक्त कर्मचारियों को या तो ऐसी नियुक्ति की शर्तों और नियमों के अनुसार, या सरकार के आदेश या किसी परिपत्र आदि में निर्धारित दिशानिर्देशों के अनुसार, या उनके नियुक्ति पत्र में निर्धारित अवधि से पहले भी, यदि मूल विभाग या उधार लेने वाले विभाग का सक्षम प्राधिकारी उचित कानूनी प्रक्रिया का पालन करते हुए ऐसा करना चाहता है, तब प्रतिनियोजित किया जा सकता है।

29. उपर्युक्त सभी विचारों और उद्धृत मामलों के प्रकाश में, मुझे आक्षेपित प्रतिनियुक्ति आदेश दिनांक 01.07.2024 और रिलीविंग आदेश दिनांक 02.07.2024 तथा अन्य समान आदेशों में कोई अवैधता या दोष नहीं दिखाई देता, जिनके विरुद्ध इस रिट याचिकाओं के समूह में चुनौती दी गई थी। अतः इस रिट याचिकाओं के समूह को भ्रामक और निराधार होने के कारण खारिज किया जाता है। इस समूह में दिए गए अंतरिम आदेश यथास्थिति रद्द किए जाते हैं। याचिकाकर्ताओं को निर्देश दिया जाता है कि वे अपने प्रतिनियोजन आदेशों के अनुसार अपने मूल विभाग में अपनी ज्वॉइनिंग प्रस्तुत करें।

30. अतः, इस रिट याचिकाओं के समूह की सभी याचिकाएँ खारिज की जाती हैं।

31. व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 5 ILRA 495

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल साइड

दिनांक: इलाहाबाद 20.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार,

वाद :- रिट - ए नंबर - 6705 सन 2025

संतोष कुमार पाल ..... **याचिकाकर्ता**

बनाम

यूनियन ऑफ इंडिया और 5 अन्य ..... **प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :-
मलिक जुनैद अहमद

प्रतिवादी के अधिवक्ता :-
ए.एस.जी.आई., सौमित्र सिंह

अनुवादित

ट्रांसफर - रिटेंशन पॉलिसी - दौरे पड़ना बीमारी - बिना कारण बताया आदेश - वैधता। याचिकाकर्ता, एक CRPF कांस्टेबल, ने प्रयागराज में दौरे पड़ने की बीमारी का इलाज चल रहा होने के बावजूद, बदले हुए ट्रांसफर आदेश को चुनौती दी। रिटेंशन पॉलिसी (DG CRPF सर्कुलर 27.09.2022, क्लॉज 7) वास्तविक मेडिकल कारणों पर छूट देती है। अधिकारियों ने, स्टेशन मणिपुर से विशाखापत्तनम बदलते समय, मेडिकल दस्तावेजों या कारणों पर विचार नहीं किया, और बिना कारण बताया आदेश पारित किया। कोर्ट ने कहा कि ट्रांसफर सेवा का एक हिस्सा होने के नाते आमतौर पर नियोक्ता के अधिकार क्षेत्र में होता है, फिर भी एक बार रिटेंशन पॉलिसी मौजूद होने पर, अधिकारी इसके तहत मेडिकल दावों पर विचार करने के लिए बाध्य हैं। पॉलिसी में बताई गई बीमारियाँ उदाहरण के तौर पर हैं, पूरी सूची नहीं हैं। "दौरे पड़ने की बीमारी" सूचीबद्ध बीमारियों के बराबर या उससे ज़्यादा गंभीर है। विचार न करने से ट्रांसफर आदेश अमान्य हो जाता है। मामले को अधिकारी के पास वापस भेजा गया ताकि याचिकाकर्ता के मेडिकल मामले पर फिर से विचार किया जा सके; इस बीच, 07.05.2025 का विवादित ट्रांसफर आदेश रद्द कर दिया गया।

उद्धृत मामलों की सूची:

1. U.O.I. बनाम S.L. अब्बास, (1993) 4 SCC 357
2. श्रीमती शिल्पी बोस और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, AIR 1991 SC 532
3. जितेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, विशेष अपील संख्या 564/2024 (इलाहाबाद उच्च न्यायालय)

4. ए.एल. कालरा बनाम प्रोजेक्ट एंड इक्विपमेंट कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड, (1984) 3 SCC 316 (जितेंद्र सिंह के माध्यम से संदर्भित)

(माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार, द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मलिक जुनैद अहमद और प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री सौमित्र सिंह को सुना गया।

2. इस न्यायालय के दिनांक 16.5.2025 के पिछले आदेश के अनुपालन में, प्रतिवादी के विद्वान वकील ने मामले में निर्देश प्राप्त कर लिए हैं और उन्हें अभिलेख पर ले लिया गया है, जिसकी एक प्रति याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को भी दी गई है।

3. दोनों विद्वान अधिवक्ता सहमत हैं कि प्रतिवादियों द्वारा निर्देश में लिए गए रुख पर विचार करते हुए मामले का निपटारा किया जा सकता है।

4. इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता, जो केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल में कांस्टेबल (GD) के रूप में कार्यरत है और वर्तमान में प्रयागराज में बल के ग्रुप सेंटर में तैनात है, उसे 07 मई, 2025 को जारी किए गए संशोधित स्थानांतरण आदेश से पीड़ित है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने स्थानांतरण के आदेश को चुनौती देने के लिए दो तर्क दिए हैं:

(i) हालांकि याचिकाकर्ता ने प्रयागराज में तीन साल की सेवा पूरी कर ली थी और 2024-25 के लिए प्रस्तावित ट्रांसफर की लिस्ट में था, लेकिन क्योंकि वह "सीज़र डिसऑर्डर" नामक बीमारी से गंभीर रूप से पीड़ित था और स्वरूप रानी नेहरू अस्पताल प्रयागराज में इलाज करवा रहा था, इसलिए उसे इलाज करवाने और बीमारी से ठीक होने के लिए प्रयागराज में ही रहने की अनुमति दी जानी चाहिए थी और याचिकाकर्ता को 27 सितंबर, 2022 को सेंट्रल रिजर्व पुलिस फोर्स के डायरेक्टर जनरल द्वारा जारी सर्कुलर लेटर के क्लॉज़ 7 में बताई गई विशेष श्रेणी/रिटेंशन पॉलिसी के अनुसार प्रयागराज में रहने की अनुमति दी गई थी। हालांकि, अब जब अस्पताल में मेडिकल ऑफिसर द्वारा दिए गए आश्वासन के अनुसार इलाज लगभग अंतिम चरण में है, तो उसे उसी रिटेंशन पॉलिसी के तहत एक और साल 2025-26 तक जारी रखना चाहिए था।

(ii) याचिकाकर्ता का अनुरोध के बावजूद प्रयागराज से मणिपुर स्थानांतरण कर दिया गया और प्रत्यावेदन देने पर, प्रयागराज में उसे बनाए रखने पर विचार करने के बजाय, विवादित आदेश के तहत उसका स्टेशन मणिपुर से तिरुवनंतपुरम बदल दिया गया, जो उसके अनुसार न केवल पॉलिसी के खिलाफ है, बल्कि तथ्यों और

प्रत्यावेदन में बताए गए कारणों पर भी विचार नहीं किया गया है। प्रत्यावेदन की कॉपी भी याचिका के परिशिष्ट 6 के रूप में अभिलेख पर लाई गई है।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों का जवाब देते हुए, प्रतिवादी के अधिवक्ता ने स्थानांतरण के आदेश का बचाव करने के लिए निर्देशों के पैराग्राफ 2, 3 और 5 पेश किए हैं। निर्देशों के पैराग्राफ 2, 3, 4 और 5 नीचे दिए गए हैं:-

"2. कानून में यह एक तय सिद्धांत है कि 'ट्रांसफर सेवा का एक हिस्सा है, प्रशासनिक आधार पर और जनहित में की गई सेवा का एक ज़रूरी हिस्सा है' और इस तरह, याचिकाकर्ता का अनुरोध/प्रार्थना माननीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा UOI बनाम S.L. अब्बास ((1993) 4 SCC 357) और श्रीमती शिल्पी बोस और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य (AIR 1991 SC 532) में पारित आदेशों के उल्लंघन में है, जिसमें माननीय न्यायालय ने कहा है कि यह नियोक्ता/प्रशासन के विशेष अधिकार क्षेत्र में है कि वह यह तय करे कि किसी विशेष कर्मचारी की सेवा किस स्थान पर और कितने समय के लिए आवश्यक है"। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'कर्मचारी को किसी विशेष स्थान पर पोस्टिंग पाने या किसी विशेष समय के लिए किसी विशेष स्थान पर सेवा करने का कोई निहित अधिकार नहीं है'।

3. बल का एक बड़ा हिस्सा जम्मू और कश्मीर (J&K), वामपंथी उग्रवाद (LWE) क्षेत्र और उत्तर पूर्वी राज्यों (NES) में तैनात है और प्रत्येक बल कर्मी GOI/MHA और बल मुख्यालय द्वारा समय-समय पर जारी किए गए दिशानिर्देशों के अनुसार सभी प्रकार के इलाकों में ईमानदारी और निष्ठा से सेवा करने के लिए कर्तव्यबद्ध है। इस प्रकार, एक अधिकारी/कर्मचारी/कर्मी को किसी भी समय किसी भी यूनिट या कार्यालय में तैनात किया जा सकता है और किसी अधिकारी को हमेशा उसकी पसंद/वरीयता के स्थान पर तैनात करना प्रशासनिक या व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है। बल का सदस्य होने के नाते, याचिकाकर्ता भी पूरे देश में सेवा करने के लिए बाध्य है।

4. CRPF के महानिदेशक, नई दिल्ली के साथ व्यक्तिगत मुलाकात के दौरान, उनकी मेडिकल स्थिति को ध्यान में रखते हुए, GC CRPF प्रयागराज से 143 Bn में पहले किया गया ट्रांसफर रद्द कर दिया गया है और उन्हें 198 Bn, CRPF विशाखापत्तनम, आंध्र प्रदेश में तैनात किया गया है, क्योंकि वहां बहुत अच्छी मेडिकल सुविधाएं हैं।

5. इसके अलावा, GC CRPF प्रयागराज में 359 कर्मियों में से 79 कर्मी कम मेडिकल श्रेणी के हैं और उनमें से अधिकांश उत्तर प्रदेश के मूल निवासी हैं, जिन्हें उनके सामान्य 03 साल का कार्यकाल पूरा होने पर ट्रांसफर पर रिलीव किया जाना है, ताकि बहुत कठिन क्षेत्र में तैनात लोगों को इस अपेक्षाकृत आसान क्षेत्र में सेवा करने का अवसर मिल सके। यदि याचिकाकर्ता को एक और साल दिया जाता है अगर ग्रुप सेंटर प्रयागराज में सर्विस एक्सटेंशन दिया जाता है, तो दूसरे कर्मचारी भी किसी न किसी कारण से इसी तरह के एक्सटेंशन की मांग कर

सकते हैं। विभाग ज़्यादा लो मेडिकल कैटेगरी वाले कर्मचारियों को, जो उत्तर प्रदेश के निवासी हैं और उत्तर प्रदेश में सर्विस कर रहे हैं, सर्विस में बनाए रखने की स्थिति में नहीं है। इसका उन दूसरे ज़रूरतमंद कर्मचारियों पर बुरा असर पड़ेगा जो उत्तर प्रदेश के निवासी हैं लेकिन अभी मुश्किल इलाकों में सर्विस कर रहे हैं।

7. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने न्यायालय के सामने आगे यह कहा है कि याचिकाकर्ता जिस बीमारी से पीड़ित है, उसके अलावा कोई और कारण नहीं है कि याचिकाकर्ता स्थानांतरण स्वीकार न करे और याचिकाकर्ता यह अंडरटेकिंग देने के लिए तैयार है कि अगर उसे प्रयागराज में एक और साल के लिए रखा जाता है, तो वह अपना इलाज पूरा कर लेगा या अगर पूरा नहीं भी होता है, तो वह अगले साल यानी 2026-27 में खुशी-खुशी स्थानांतरण का आदेश स्वीकार कर लेगा।

8. दोनों पक्षों अधिवक्तताओ की बात सुनने और अभिलेख देखने के बाद, मुझे इस मामले में सिर्फ एक ही सवाल उठता हुआ दिख रहा है, कि क्या याचिकाकर्ता को प्रयागराज में एक और साल के लिए रखा जा सकता था, जैसा कि उसने दावा किया है कि इलाज लगभग आखिरी स्टेज पर है, खासकर जब वह यह अंडरटेकिंग देने के लिए तैयार है कि वह अगले साल स्थानांतरण स्वीकार कर लेगा।

9. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्तताओ द्वारा दिए गए तर्कों को समझने के लिए, मैं डायरेक्टर जनरल द्वारा जारी सर्कुलर लेटर में दिए गए संबंधित प्रावधानों की जांच करता हूँ। संबंधित क्लॉज़ 7 नीचे दिया गया है:

"7. **स्पेशल कैटेगरी/रिटेंशन**

*कोई भी अधिकारी/कर्मचारी/व्यक्ति स्पेशल कैटेगरी/रिटेंशन के लिए आवेदन कर सकता है। इन दोनों कैटेगरी के तहत केवल **असाधारण और वास्तविक मामलों** पर ही विचार किया जाएगा। यदि किसी अधिकारी/कर्मचारी/व्यक्ति को लगता है कि उसके मामले पर स्पेशल या रिटेंशन के तहत अलग से विचार किया जाना चाहिए, तो उसे इस कैटेगरी के तहत विचार करने के मुख्य आधार के रूप में आवश्यक दस्तावेजों के साथ आवेदन करना होगा। केवल इन कैटेगरी के तहत आवेदन करने से इन कैटेगरी के तहत पोस्टिंग का कोई अधिकार नहीं बनता है। यूनिट/सेक्टर/डायरेक्टोरेट स्तर पर अधिकारियों का बोर्ड उनके मामलों की जांच करेगा और केवल उपयुक्त मामलों को ही अंतिम रूप से अनुमति दी जाएगी। यदि उपयुक्त पाया जाता है, तो अनुरोध, इलाज की सुविधाओं, परिवार को रखने के प्रावधान, उपलब्ध रिक्तियों और अन्य प्रशासनिक/परिचालनात्मक बाधाओं आदि को ध्यान में रखते हुए, उसे एक उपयुक्त स्थान पर पोस्ट किया जा सकता है, जो दी गई प्राथमिकताओं से अलग भी हो सकता है। इस कैटेगरी के तहत जिन मामलों पर विचार किया जा सकता है, वे इस प्रकार हो सकते हैं:*

*(1) **मेडिकल कारणों से***

मेडिकल कारणों (जिसमें पति/पत्नी और बच्चे शामिल हैं) से निम्नलिखित बीमारियों से पीड़ित अधिकारियों/कर्मचारियों/कर्मियों की पोस्टिंग पर अनुरोध के आधार पर या इलाज की सुविधाओं की उपलब्धता के अनुसार विचार किया जा सकता है, बशर्ते रिक्ति उपलब्ध हो। उनकी पोस्टिंग पर मेडिकल ऑफिसर/कम्पोजिट

हॉस्पिटल द्वारा प्रमाणित स्वास्थ्य की स्थिति या हाल के मेडिकल दस्तावेजों के अनुसार विचार किया जा सकता है:-

1) बांझपन	2) कैंसर	3) लकवा	4) किडनी फेलियर
5) कोरोनरी आर्टरी रोग, थैलेसीमिया,	6) पार्किंसन रोग	7) मोटर न्यूरॉन रोग	

10. ऊपर बताए गए प्रावधानों को पढ़ने से यह साफ़ पता चलता है कि प्रतिवादी ने रिटेंशन पॉलिसी बनाई है, जिसे खास और असली मामलों में लागू किया जाएगा। रिटेंशन पॉलिसी में आगे कहा गया है कि सिर्फ़ इसलिए कि किसी कर्मचारी ने उस कैटेगरी में आने के लिए आवेदन किया है, उसे असली मामला नहीं माना जाएगा और हर मामले की जाँच करके यह तय किया जाएगा कि वह उपयुक्त है या नहीं। उपयुक्तता कई बातों पर निर्भर करेगी जैसे इलाज की सुविधा, मेडिकल अस्पतालों, डॉक्टरों की उपलब्धता और अन्य खास मामले जो स्थानांतरण किए गए स्टेशन पर इलाज कराने के लिए ज़रूरी हो सकते हैं, उस स्टेशन की तुलना में जहाँ कर्मचारी अभी तैनात है। पॉलिसी में आगे कुछ मेडिकल कारण बताए गए हैं जैसे बांझपन, कैंसर, लकवा, किडनी फेलियर, कोरोनरी आर्टरी डिजीज, थैलेसीमिया, पार्किंसन रोग, मोटर-न्यूरॉन रोग। प्रावधानों में कुछ ऑटिस्टिक बच्चे का भी ज़िक्र है, जो किसी कर्मचारी का हो सकता है, जिसके लिए विचार किए जाने का आरोप है।

11. यह सवाल कि कौन सी बीमारी असाधारण श्रेणी में आएगी और 'वास्तविक मामले' शब्द और अभिव्यक्ति निश्चित रूप से किसी विशेष मामले के तथ्यों पर निर्भर करेंगे। याचिकाकर्ता का दावा है कि वह "दौरे की बीमारी" से पीड़ित है और इस संबंध में मेडिकल कागजात परिशिष्ट 1 के रूप में अभिलेख पर लाए गए हैं, साथ ही दिमाग की सीटी स्कैन रिपोर्ट भी है। पहली नज़र में, कागजात और निदान से संबंधित दस्तावेजों जैसे दिमाग के सीटी स्कैन आदि और मेडिकल पर्चे, अस्पतालों से प्राप्त कागजात और प्रयागराज के कंपोजिट अस्पताल, यानी स्वरूप रानी नेहरू अस्पताल प्रयागराज में चल रहे इलाज को देखते हुए, मेरी राय में यह 'वास्तविक मामलों' की श्रेणी में आएगा। हालांकि इलाज से संबंधित ये विवरण याचिकाकर्ता द्वारा 8.4.2025 को प्रयागराज से मणिपुर में उसके शुरुआती ट्रांसफर के खिलाफ दिए गए प्रतिनिधित्व में मौजूद थे, लेकिन संबंधित अधिकारी ने उन पर बिल्कुल भी चर्चा नहीं की, न ही मेडिकल कागजात का उल्लेख किया और बस यांत्रिक रूप से स्टेशन का स्थान मणिपुर से विशाखापत्तनम बदल दिया। यदि आदेश का परीक्षण केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल के महानिदेशक द्वारा जारी सर्कुलर पत्र के तहत निर्धारित ट्रांसफर नीति के आधार पर किया जाता है, तो कोई भी इस आदेश को परीक्षण में पास होता हुआ नहीं पाएगा, क्योंकि यूनिट/सेक्टर/निदेशालय स्तर पर अधिकारियों के बोर्ड पर प्रत्येक व्यक्तिगत मामले की जांच करने का दायित्व था, जब विशेष श्रेणी/रिटेंशन नीति

के तहत बनाए रखने के लिए आवेदन दायर किया गया था और फिर भी बिल्कुल बिना कारण बताए आदेश पारित किया गया है। इलाज के संबंध में अनुरोध पर विचार, जिसके तहत व्यक्तिगत कर्मचारी का इलाज चल रहा है, उस स्टेशन पर उपलब्ध सुविधाएं जहां उसे ट्रांसफर किया जा रहा है और दूरी, बटालियन के स्थान से अस्पताल तक सुविधा की उपलब्धता, बीमारी की प्रकृति और समय-समय पर आवश्यक चिकित्सा ध्यान की आपात स्थिति को देखते हुए, इन सभी पहलुओं पर तुलनात्मक रूप से चर्चा की जानी चाहिए ताकि यह पता चल सके कि संबंधित मामला असाधारण और वास्तविक मामलों की श्रेणी में आता है या नहीं। इस प्रकार, न केवल दिमाग का इस्तेमाल करना होगा, बल्कि प्रस्तावित ट्रांसफर या स्टेशन में बदलाव से राहत के लिए प्रार्थना करने वाले व्यक्ति द्वारा दायर किए गए कागजात पर उचित रूप से दिमाग का इस्तेमाल करना होगा। यदि किसी प्रतिनिधित्व पर पारित आदेश बिना कारण बताए है, तो यह अपने आप में ऐसे आदेश को रद्द करने के लिए पर्याप्त आधार होगा।

12. यहां उन मेडिकल आधारों का ज़िक्र करना सही रहेगा, जिनकी संख्या 7 है। मेरी राय में, बताई गई बीमारी एक पूरी लिस्ट नहीं हो सकती। "सीज़र डिसऑर्डर" से पीड़ित व्यक्ति, पार्किंसन रोग से पीड़ित व्यक्ति की तुलना में ज़्यादा बीमार होता है और इसलिए, अथॉरिटी मेडिकल आधारों पर किए गए अनुरोध पर विचार करते समय खुद को पॉलिसी के तहत दी गई श्रेणियों तक ही सख्ती से सीमित नहीं रखेगी, बल्कि निश्चित रूप से उस बीमारी की जांच करेगी और उस पर चर्चा करेगी जिसके लिए एक स्टेशन पर बने रहने का अनुरोध किया गया है और यदि बीमारी पॉलिसी के तहत मेडिकल आधारों के रूप में बताई गई बीमारियों से ज़्यादा गंभीर पाई जाती है या उनके बराबर भी है, तो अथॉरिटी ऐसे मामलों को वास्तविक और असाधारण मामले मानने के अपने कर्तव्य से पीछे नहीं हटेगी ताकि ऐसे कर्मचारी को बने रहने की पॉलिसी का लाभ दिया जा सके।

13. निर्देशों के प्रासंगिक हिस्से में प्रतिवादी द्वारा लिए गए रुख पर आते हुए, जिसे ऊपर आदेश में दोहराया गया है, कोर्ट को कानूनी सिद्धांतों के बारे में कोई विवाद नहीं दिखता कि नियोक्ता इस बात पर विचार करने के लिए सबसे अच्छी स्थिति में है कि उसके कर्मचारी को स्टेशन पर रखा जाना है या प्रशासनिक आवश्यकता या सार्वजनिक हित में स्थानांतरित किया जाना है। कोर्ट को इस सिद्धांत के संबंध में भी कोई विवाद नहीं दिखता कि स्थानांतरण सेवा का एक हिस्सा होने के कारण, एक कर्मचारी को सामान्य मेडिकल कारणों या अन्य पारिवारिक कारणों से भी किसी विशेष स्टेशन पर बने रहने का अटूट अधिकार नहीं हो सकता। देश की आर्म्ड फोर्सेज, जिसमें बॉर्डर सिक्योरिटी फोर्स और सेंट्रल रिजर्व पुलिस फोर्स भी शामिल हैं, में स्थानांतरण के मामले में भी कोई झगड़ा नहीं है, जिसमें किसी जवान को मुश्किल जगह पर भी पोस्ट किया जा सकता है और ट्रांसफर और पोस्टिंग के मामले में प्राथमिकता देने का कोई विकल्प नहीं हो सकता है, और इस सिद्धांत पर भी कोई झगड़ा नहीं है कि जब कोई मेडिकल कारणों से ट्रांसफर पर सवाल उठाता है तो हर किसी को एक जैसा नहीं माना जा सकता है, लेकिन मुझे यहां लगता है कि डिपार्टमेंट ने खुद ही एक रिटेंशन पॉलिसी बनाकर सामान्य नियम का अपवाद बनाया है और इसलिए, हर स्थानांतरण आदेश में जहां जवान या कर्मचारी मेडिकल कारणों से रोके जाने का अनुरोध करता है, तो ऐसे मामलों से जुड़े अधिकारी कानून के अनुसार अनुरोध पर विचार करने

और मेडिकल कारणों और मेडिकल कागजात पर चर्चा करने के लिए बाध्य हैं ताकि यह पता लगाया जा सके कि मामला रिटेंशन पॉलिसी के अनुसार असली और असाधारण कैटेगरी के मामलों में आता है या नहीं।

14. यह सच है कि ट्रांसफर पॉलिसी को आमतौर पर कोर्ट द्वारा लागू नहीं किया जाता है, लेकिन यह भी सच है कि अगर एम्प्लॉयर खास परिस्थितियों का फायदा देते हुए ट्रांसफर पॉलिसी बनाता है, तो उसे अपनी पॉलिसी का सम्मान करना चाहिए क्योंकि यह सिर्फ कागज़ का टुकड़ा नहीं होना चाहिए। अधिकारियों से उम्मीद की जाती है कि वे जितना हो सके इसका पालन करें।

15. हाल ही में, **जितेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (स्पेशल अपील नंबर 564 ऑफ 2024)** के मामले में इस कोर्ट ने अपने फैसले में कहा है कि जब सरकार ने सरकारी आदेश के ज़रिए ट्रांसफर पॉलिसी बनाई है, तो वह उसका पालन करने के लिए बाध्य है, हालांकि, कुछ खास परिस्थितियां हो सकती हैं जहां कारणों को रिकॉर्ड करके कर्मचारी यह स्टैंड ले सकता है कि ट्रांसफर पॉलिसी बनाई तो गई है, लेकिन सार्वजनिक हित या प्रशासनिक ज़रूरत के कारण इसके प्रावधानों को लागू नहीं किया जा सकता। फैसले का संबंधित हिस्सा नीचे दिया गया है:-

"6. माननीय सिंगल जज ने कानून में भी गलती की जब उन्होंने आदेश में यह कहा कि स्थानांतरण पॉलिसी सिर्फ निर्देश देने वाली प्रकृति की है और, इसलिए, यह उन अधिकारियों पर लागू नहीं होती थी जो रिट याचिका में चुनौती दिए गए आदेश को पारित कर रहे थे। हमारा विचार है कि जब राज्य का कोई सरकारी आदेश/ट्रांसफर पॉलिसी होती है, तो कर्मचारी को यह वैध उम्मीद होती है कि सरकारी आदेश से मिलने वाले फायदे उस कर्मचारी पर लागू होंगे। निश्चित रूप से ए.एल. कालरा (उपरोक्त) में दिए गए कानून के अनुसार, एक सरकारी आदेश उस अथॉरिटी पर बाध्यकारी होता है जिसने इसे जारी किया था और जो इसका फायदा उठा रही थी।"

16. इसलिए, इस मामले के दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, कोर्ट ने इस मामले को प्राधिकारी के पास वापस भेजना उचित समझा है ताकि याचिकाकर्ता के मेडिकल पेपर्स का फिर से मूल्यांकन किया जा सके रिटेंशन पॉलिसी के तहत लाभ के लिए उसकी प्रार्थना के मामले में। प्राधिकारी को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता की सहानुभूति वाली प्रार्थना पर विचार करे कि उसे उसके मौजूदा पुलिस स्टेशन में एक और साल के लिए रखा जाए, अगर वह सक्षम प्रतिवादी के सामने यह वादा करता है कि उसे प्रयागराज में ही एक और साल यानी 2025-26 तक रखा जाएगा।

17. इस प्रकार, यह रिट याचिका उपरोक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ निस्तारित की जाती है। इन परिस्थितियों में, 7.5.2025 का आदेश जिसमें याचिकाकर्ता का स्थानांतरण प्रयागराज से विशाखापत्तनम किया गया था, जो याचिका के साथ परिशिष्ट 7 के रूप में संलग्न है, उसे रद्द किया जाता है।

18. तदनुसार, याचिका का निस्तारण किया जाता है।

(2025) 5 ILRA 500

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल साइड

तारीख: इलाहाबाद 23.05.2025

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

सामने

रिट ए नंबर 7118 सन 2022

अन्य संबंधित मामलों के साथ

नेहा शर्मा और अन्य **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ता:
श्री आलोक मिश्रा, श्री दुर्वेश कुमार

उत्तरदाताओं के लिए अधिवक्ता:
श्री राजेश्वर त्रिपाठी, सी.एस.सी., श्री-अवधेश सी. श्रीवास्तव, अतिरिक्त. सी.एस.सी., ब्रिजेश नारायण, मेवा लाल गुप्ता, बृजेन्द्रमणि, रवि प्रकाश सिंह, आर.एस. उमराव, स्थायी वकील

A. प्रैक्टिस और प्रक्रिया - रिट याचिका - ज़रूरी पार्टियों को शामिल न करना - अगर चुने गए उम्मीदवारों में से किसी को भी, जिन पर असर पड़ने की संभावना है, प्रतिनिधि के तौर पर भी शामिल नहीं किया जाता है, तो रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है। (पैरा 7)

B. सेवा कानून - आरक्षण - क्षैतिज आरक्षण - महिला उम्मीदवार - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 15(3), 16(1) और 16(6) - यू.पी. पब्लिक सर्विसेज (महिलाओं के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1993 - धारा 3(3) - इस मामले में, याचिकाकर्ताओं का पहला समूह आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग (EWS) की महिलाएं थीं, जिन्होंने दावा किया कि महिलाओं के लिए 20% क्षैतिज आरक्षण EWS कोटे के भीतर स्वतंत्र रूप से लागू किया जाना चाहिए, जिसमें 902 सीटें (विज्ञापित कुल 9027 सीटों का 10%) शामिल थीं, जिससे उन्हें EWS श्रेणी के तहत महिलाओं के लिए आरक्षित 181 सीटों (902 का 20%) का अधिकार मिलता है - राज्य ने स्वीकार किया कि ओपन कैटेगरी के तहत महिलाओं के लिए 722 सीटें और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग (EWS) के तहत महिलाओं के लिए 181 सीटें एक साथ मिला दी गईं, और कुल 903 सीटें महिलाओं को आवंटित की गईं। इस आधार पर, राज्य ने दावा किया कि दोनों श्रेणियों में महिलाओं का पूरा आरक्षण पूरा हो गया है। हालांकि, राज्य ऐसा कोई प्रावधान, आदेश, या सरकारी आदेश (G.O.) नहीं दिखा सका जो इस तरह के विलय की अनुमति देता हो। फैसला: महिलाओं का आरक्षण प्रत्येक श्रेणी में स्वतंत्र रूप से और अलग

अनुवादित

से लागू किया जाना चाहिए। इस गैरकानूनी विलय के कारण, EWS कोटे में केवल 34 महिलाओं को ही वास्तव में फायदा हुआ, बजाय उनके लिए आरक्षित 181 सीटों के। कोर्ट ने फैसला सुनाया कि याचिकाकर्ताओं के पहले समूह द्वारा उठाई गई शिकायत में बल है। (पैरा 3, 4)

अनुमत। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा दिया गया)

1. वर्तमान वाद में दो वर्ग के याचिकाकर्ता सम्मिलित हैं, जिन्होंने उप-निरीक्षक (सिविल पुलिस) / प्लाटून कमांडर पी.ए.सी. / एफ.एस.एस.ओ. अग्निशमन सेवा के चयन हेतु आयोजित भर्ती में भाग लिया तथा चयन न हो सकने के कारण असफल रहे। दूसरी ओर, चयनित अभ्यर्थियों को प्रशिक्षण उपरान्त उनके संबंधित स्थानों पर नियुक्ति/तैनाती प्रदान कर दी गई है। यह उल्लेखनीय है कि वर्तमान रिट याचिकाओं के समूह में बीते तीन वर्षों से वाद लंबित रहने के बावजूद संभावित रूप से प्रभावित चयनित अभ्यर्थियों में से किसी को भी प्रतिवादी पक्षकार के रूप में शामिल नहीं किया गया है।

2. पहले वर्ग के याचिकाकर्ता महिला अभ्यर्थी हैं, जो आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग **(EWS)** से संबंधित हैं तथा यह दावा कर रही हैं कि कुल विज्ञापित 9027 पदों में से EWS के लिए निर्धारित 10 प्रतिशत ऊर्ध्वाधर आरक्षण (902 पद) में महिलाओं हेतु 20 प्रतिशत क्षैतिज आरक्षण को स्वतंत्र और पूर्ण रूप से (181 सीटें) लागू किया जाना चाहिए था।

प्रथम वर्ग से संबंधित याचिकाओं का विवरण निम्न प्रकार है :-

"रिट-ए संख्या 7118/2022 (नेहा शर्मा एवं 53 अन्य)
रिट-ए नंबर 10654/2022 (अंजलि सिंह एवं एक अन्य)
रिट-ए नंबर 11002/2022 (ऋचा सिंह)
रिट-ए नंबर 11279/2022 (कि. हिमांशी चौधरी)
रिट-ए संख्या 18753/2022 (साधना सारस्वत एवं एक अन्य)"

3. राज्य द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि सामान्य वर्ग (Open Category) में महिला क्षैतिज आरक्षण हेतु निर्धारित सीटें (722) तथा आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग **(EWS Category)** में महिला क्षैतिज आरक्षण हेतु निर्धारित सीटें (181) – दोनों को एक-साथ जोड़ दिया गया तथा कुल **903** सीटें महिलाओं को आवंटित की गईं। अतः राज्य ने यह दावा किया कि उपर्युक्त दोनों श्रेणियों में महिलाओं हेतु समस्त आरक्षण का अनुपालन कर दिया गया।

4. वाद-विवाद के दौरान प्रतिवादी राज्य यह प्रदर्शित करने में असफल रहा कि किसी भी प्रावधान, आदेश अथवा शासनादेश के अनुसार सामान्य वर्ग तथा EWS वर्ग में महिला आरक्षण को स्वतंत्र एवं पृथक-पृथक लागू

किए जाने के स्थान पर दोनों के महिला आरक्षण को आपस में जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार के क्लब किए जाने की स्थिति ने वर्तमान मामले में यह परिणाम उत्पन्न किया कि 181 आरक्षित सीटों के स्थान पर केवल 34 महिलाओं को ही EWS कोटे में क्षैतिज आरक्षण का लाभ प्राप्त हो सका। अतः प्रथम श्रेणी की याचिकाकर्त्रियों की शिकायत युक्तियुक्त एवं सारगर्भित है। अन्य श्रेणियों में महिला आरक्षण का प्रावधान सही प्रकार से प्रदान किया गया है। राज्य द्वारा प्रस्तुत एक चार्ट नीचे उद्धृत है, जो संपूर्ण स्थिति को अत्यंत स्पष्ट कर देगा :-

SI (सिविल पुलिस)/प्लाटून कमांडर PAC/FSSO फायर सर्विस की वैकेंसी की स्थिति

S. No.	. कैटेगरी	सब इंस्पेक्टर सिविल पुलिस	प्लाटून कमांडर PAC	FSSO फायर सर्विस	कुल		हॉरिजॉन्टल आरक्षण वैकेंसी		
							DEF (2%)	Ex-SM (5%)	महिला (20%)
1	OC	3613	194	11	3818	4770	95	238	903
2	EWS	902	48	2	952				
3	OBC	2437	131	6	2574		50	129	487
4	SC	1895	101	4	2000		40	100	379
5	ST	180	10	0	190		4	9	36
कुल		**9027**	**484**	**23**	**9534**		**189**	**476**	**1805**

सब इंस्पेक्टर (सिविल पुलिस) की वैकेंसी की स्थिति

S. No.	. कैटेगरी	सब इंस्पेक्टर सिविल पुलिस		हॉरिजॉन्टल आरक्षण वैकेंसी	
			DEF (2%)	Ex-SM (5%)	महिला (20%)
1	OC	3613	90	225	903
2	EWS	902			
3	OBC	2437	48	122	487

4	SC	1895	38	95	379
5	ST	180	4	9	36
कुल		**9027**	**180**	**451**	**1805**

5. उपरोक्त परिस्थितियों में, याचियों (प्रथम श्रेणी) की ओर से सी/श्री आलोक मिश्रा एवं दुर्वेश कुमार, अधिवक्ता ने अपने समर्थन में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है – **इंद्रा साहनी और अन्य बनाम यूनियन ऑफ़ इंडिया और अन्य, AIR 1993 SC 477, राजेश कुमार दरिया बनाम राजस्थान पब्लिक सर्विस कमीशन और अन्य, (2007) 8 SCC 785, तथा अनिल कुमार गुप्ता और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (1995) 5 SCC 173**

6. दूसरे समूह के याचियों में पूर्व सैनिक सम्मिलित हैं, जो आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग (EWS) से संबंधित हैं। उनके अनुसार उक्त श्रेणी में आरक्षण का भी समुचित रूप से अनुपालन नहीं किया गया है। वर्तमान याचिकाओं के संदर्भ में राज्य ने अब तक कोई विशिष्ट पक्ष प्रस्तुत नहीं किया है। इस वर्ग की याचिकाओं का विवरण निम्नवत् है :-

रिट - ए नंबर 7119/2022 (रवि शंकर त्रिपाठी)
रिट - ए नंबर 7072/2022 (विनीत कौशिक)
रिट - ए नंबर 8243/2022 (युवराज उपाध्याय)
रिट - ए नंबर 12550/2022 (राजीव मिश्रा)

7. न्यायालय यह भी उल्लेख करना आवश्यक समझता है कि यदि चयनित अभ्यर्थियों को, कम से कम प्रतिनिधि क्षमता में भी, पक्षकार नहीं बनाया जाता है तो याचिका स्वयं अवैध अथवा ग्राह्य न होने की स्थिति में आ सकती है। **प्रबोध वर्मा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (1984) 4 SCC 251** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया है कि–

"प्रथम दोष आवश्यक पक्षकारों को न सम्मिलित करने का था। संघ की याचिका में केवल राज्य उत्तर प्रदेश एवं उसके संबंधित अधिकारियों को प्रतिवादी बनाया गया, किन्तु वे अभ्यर्थी जो इस विवाद से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित थे अर्थात् रिजर्व पूल शिक्षक, उन्हें पक्षकार नहीं बनाया गया – यहाँ तक कि उनकी संख्या अधिक होने के कारण प्रतिनिधि क्षमता में भी कुछ व्यक्तियों को सम्मिलित नहीं किया गया। फलतः प्रकरण का निर्णय उनके अनुपस्थित रहने पर ही हो गया। उच्च न्यायालय को अनुच्छेद 226 के अंतर्गत दाखिल याचिका का निर्णय उन व्यक्तियों की अनुपस्थिति में नहीं करना चाहिए जो इसके निर्णय से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होने वाले हों। ऐसी स्थिति में कम से कम प्रतिनिधि क्षमता में भी उन्हें प्रतिवादी के रूप में सम्मिलित किया जाना आवश्यक है। और यदि याचीगण ऐसा करने से इन्कार करें तो याचिका को आवश्यक पक्षकारों के अभाव में खारिज कर दिया

जाना चाहिए।" साथ ही निम्न निर्णयों का भी अवलोकन किया जाना समीचीन होगा – ऑल इंडिया एससी एंड एसटी एम्प्लॉइज़ एसोसिएशन एंड अन्य बनाम ए. आर्थर जीन एंड अन्य, **(2001) 6 SCC 380** तथा इंदु शेखर सिंह एंड अन्य बनाम स्टेट ऑफ़ यू.पी. एंड अन्य, 2006(5) स्केल 107।

8. पंजाब और हरियाणा हाई कोर्ट ने हाल ही में एक फैसले में सुनायना डेलू बनाम पंजाब राज्य और अन्य, 2025:PHHC:001998 में हॉरिजॉन्टल आरक्षण में सीटों के आवंटन पर विचार किया है और निम्नलिखित फैसला दिया है:

"7 दूसरा प्रश्न लंबवत (Vertical) आरक्षण और क्षैतिज (Horizontal) आरक्षण के स्वरूप के बीच के अंतर से संबंधित है। अनुच्छेद 16(4) के तहत अनुसूचित जातियों (SC), अनुसूचित जनजातियों (ST) और अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) के पक्ष में सामाजिक आरक्षण **लंबवत आरक्षण** कहलाते हैं। वहीं विशेष रूप से विकलांग, महिलाओं आदि के पक्ष में अनुच्छेद 16(1) या 15(3) के तहत आरक्षण **क्षैतिज (विशेष) आरक्षण** कहलाता है। जब किसी पिछड़े वर्ग के पक्ष में अनुच्छेद 16(4) के तहत लंबवत आरक्षण दिया जाता है, तो उस वर्ग के उम्मीदवार गैर-संरक्षित पदों के लिए भी प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं। यदि उन्हें अपनी योग्यता के आधार पर गैर-संरक्षित पदों पर नियुक्त किया जाता है, तो उनकी संख्या संबंधित आरक्षण कोटा में नहीं जोड़ी जाएगी। अतः यदि अनुसूचित जाति (SC) के इतने उम्मीदवार अपनी योग्यता के आधार पर खुले प्रतियोगिता (Open Competition) के माध्यम से चयनित होते हैं कि वह आरक्षित प्रतिशत के बराबर या उससे अधिक हो, तो यह नहीं कहा जा सकता कि SC के लिए आरक्षण कोटा भर गया है। पूरा आरक्षण कोटा बरकरार रहेगा और ओपन प्रतियोगिता से चयनित उम्मीदवारों के अतिरिक्त उपलब्ध होगा।

[संदर्भ: इंदिरा साहनी (सुप्रा), आर.के. सभरवाल बनाम पंजाब राज्य (1995 (2) एससीसी 745), भारत संघ बनाम वीरपाल सिंह चौहान (1995 (6) एससीसी 684), रितेश आर. साह बनाम डॉ. वाई.एल. यामुल (1996 (3) एससीसी 253) लेकिन यह सिद्धांत लंबवत (सामाजिक) आरक्षण पर लागू होता है, क्षैतिज (विशेष) आरक्षण पर नहीं। यदि अनुसूचित जातियों के लिए सामाजिक आरक्षण में महिलाओं के लिए विशेष आरक्षण दिया गया है, तो उचित प्रक्रिया यह है कि पहले अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित कोटा को योग्यता के क्रम में भरें और फिर यह देखें कि उनमें कितनी महिलाएं विशेष आरक्षण समूह (SC-Women) की हैं। यदि सूची में महिलाओं की संख्या विशेष आरक्षण कोटे के बराबर या अधिक है, तो विशेष आरक्षण को भरने के लिए कोई और चयन आवश्यक नहीं है। केवल यदि कोई कमी रह जाए, तो आवश्यक संख्या में अनुसूचित जाति की महिलाओं को सूची में शामिल किया जाएगा, और सूची के निचले क्रम के उम्मीदवारों की संख्या घटाकर समायोजन किया जाएगा। इस प्रकार, **क्षैतिज (विशेष) आरक्षण और लंबवत (सामाजिक) आरक्षण** में यह अंतर है। अतः यदि लंबवत आरक्षण के तहत चयनित महिलाओं को उनकी योग्यता के आधार पर चुना गया है, तो उन्हें क्षैतिज महिला आरक्षण के खिलाफ गिना जाएगा। आइए एक उदाहरण से समझाते हैं:

8. यदि 19 पद SC के लिए आरक्षित हैं, जिनमें से 4 पद महिलाओं के लिए हैं, तो पहले 19 SC उम्मीदवारों को योग्यता के क्रम में सूचीबद्ध किया जाएगा। यदि सूची में 4 SC महिलाएं हैं, तो किसी और SC महिला

को शामिल करने की आवश्यकता नहीं है। यदि सूची में केवल 2 SC महिलाएं हैं, तो योग्यता के क्रम में अगली 2 SC महिलाओं को सूची में शामिल किया जाएगा और सूची के निचले क्रम के दो उम्मीदवारों को हटा दिया जाएगा। जिससे अंतिम सूची में 19 SC उम्मीदवारों में 4 महिलाएं हों। यदि सूची में 4 से अधिक SC महिलाएं हैं, जो अपनी योग्यता के आधार पर चयनित हुई हैं, तो सभी उन्हें सूची में बनाए रखा जाएगा। किसी को हटाने का प्रश्न नहीं उठेगा।

9. इस मामले में, सामान्य श्रेणी (ओपन प्रतियोगिता) में चयनित उम्मीदवारों की संख्या 59 थी, जिनमें से 11 महिलाओं के लिए आरक्षित थे। जब पहले 59 उम्मीदवारों को 261 सफल उम्मीदवारों में से योग्यता के क्रम में लिया गया, तो सूची में 11 महिलाएं थीं, जो सामान्य श्रेणी के लिए आरक्षित संख्या के बराबर थी। महिलाओं: अतः महिलाओं के लिए विशेष आरक्षण के अंतर्गत और किसी चयन की आवश्यकता नहीं थी। परंतु राजस्थान लोक सेवा आयोग (RPSC) ने केवल पहले 48 उम्मीदवारों को मेरिट क्रम में चयनित किया (जिसमें 11 महिलाएँ शामिल थीं) और उसके बाद 11 पदों को सामान्य श्रेणी में महिलाओं के लिए भरा। परिणामस्वरूप, 59 सामान्य श्रेणी के उम्मीदवारों में से 22 महिलाएँ चयनित हुईं, जिसमें से 11 महिलाएँ अपनी योग्यता के आधार पर चयनित हुईं (चयन सूची में Sl. Nos. 2, 3, 4, 5, 9, 19, 21, 25, 31, 35 एवं 41) और अन्य 11 महिलाएँ (Sl. Nos. 54, 61, 62, 63, 66, 74, 75, 77, 78, 79 एवं 80) सामान्य श्रेणी की महिला आरक्षण कोटे के अंतर्गत चयनित हुईं। यह स्पष्ट रूप से **अनुमत नहीं है।** RPSC द्वारा किया गया चयन प्रक्रिया महिलाओं के 20% आरक्षण को **ऊर्ध्वाधर (vertical) आरक्षण** के रूप में मानने के समान है, जबकि इसे **आड़ी (horizontal) आरक्षण** के रूप में लागू किया जाना चाहिए था।

10. इसी तरह, हम पाते हैं कि OBC के लिए 24 पदों के संबंध में, RPSC द्वारा मेरिट के आधार पर OBC उम्मीदवारों में से 19 उम्मीदवारों का चयन किया गया, जिसमें 3 महिला उम्मीदवार शामिल थीं। इसके बाद, 'OBC महिला' श्रेणी के तहत 5 और महिलाओं का चयन किया गया, जबकि कमी को पूरा करने के लिए केवल 2 महिलाओं को ही शामिल किया जाना चाहिए था। इस प्रकार, सिलेक्शन लिस्ट में पाए गए 24 OBC उम्मीदवारों में कुल 8 महिला उम्मीदवार थीं। सही तरीका यह था कि मेरिट के अनुसार 24 OBC उम्मीदवारों की लिस्ट बनाई जाती और फिर उनमें से महिला उम्मीदवारों की संख्या पता लगाई जाती, और महिलाओं के लिए 5 का कोटा पूरा करने के लिए केवल कमी को ही भरा जाता।''

9. सौरव यादव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2021) 4 SCC 542 के संदर्भ में सुप्रीम कोर्ट ने निम्नलिखित धारणा व्यक्त की है:-

59. वर्टिकल आरक्षण (उर्ध्वाधर आरक्षण) की विशेषताएँ:

(i) इन्हें ओपन कैटेगरी या अन्य किसी श्रेणी के उम्मीदवारों द्वारा नहीं भरा जा सकता; यह केवल संबंधित सामाजिक श्रेणी (SC/ST/OBC) के उम्मीदवारों द्वारा ही भरा जाना चाहिए।

(ii) आरक्षित श्रेणी से ओपन कैटेगरी में "माइग्रेशन" (संपादन) संभव है, बशर्ते उम्मीदवार का प्रदर्शन मेरिट के आधार पर अच्छा हो।

(iii) यदि कोई उम्मीदवार आरक्षित श्रेणी से ओपन कैटेगरी में माइग्रेट करता है, तो आरक्षित श्रेणी में खाली हुई सीट उसी सामाजिक श्रेणी के अगले उम्मीदवार द्वारा भरी जानी चाहिए।

(iv) यदि आरक्षित श्रेणी की सीटों को उम्मीदवारों की कमी के कारण भरा नहीं जा सकता, तो ऐसी सीटों को 'कैरी फॉरवर्ड' किया जाना चाहिए या नियमों के अनुसार उचित प्रावधान किया जाना चाहिए।

60. हॉरिजॉन्टल आरक्षण (क्षैतिज आरक्षण) की स्थिति:
हॉरिजॉन्टल आरक्षण अपने स्वभाव से अटल नहीं हैं। ये आरक्षण अन्य आरक्षणों के साथ 'इंटरलॉक' होते हैं।

इस प्रकार, इन्हें वर्टिकल (सामाजिक) आरक्षण के साथ-साथ समकालीन रूप से गणना करना आवश्यक है।

21. जस्टिस ललित के निर्णय के पैराग्राफ 11 में स्पष्ट रूप से बताए गए विभिन्न चरणों का पालन करके इन्हें लागू किया जाना चाहिए। हॉरिजॉन्टल आरक्षण को कैरी फॉरवर्ड नहीं किया जा सकता। हॉरिजॉन्टल आरक्षण को भरने के लिए पहला नियम समायोजन (adjustment) का है, यानी यह देखना कि क्या मेरिट के आधार पर कोई हॉरिजॉन्टल श्रेणी का उम्मीदवार ओपन कैटेगरी में समायोजित है, और फिर उसी सामाजिक/आरक्षित श्रेणी में हॉरिजॉन्टल क्वोटा के अनुसार समायोजन किया जाता है।

61. ओपन कैटेगरी कोई 'कोटा' नहीं है, बल्कि यह सभी महिलाओं और पुरुषों के लिए समान रूप से उपलब्ध है। इसी तरह, जैसा कि राजेश कुमार दरिया 22 में कहा गया है, पुरुषों के लिए कोई कोटा नहीं है। अगर हम दूसरे दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं [जैसा कि इलाहाबाद हाई कोर्ट ने अजय कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य23 और मध्य प्रदेश हाई कोर्ट ने मध्य प्रदेश राज्य और अन्य बनाम उदय सिसोदे और अन्य24 में कहा है, जिसका जिक्र जस्टिस ललित के फैसले के पैराग्राफ 20 में किया गया है], तो इसका नतीजा यह होगा कि महिलाओं उम्मीदवारों की संख्या, उनके प्रदर्शन की परवाह किए बिना, उनकी सामाजिक आरक्षण श्रेणियों तक सीमित हो जाएगी और इसलिए, यह तर्क और योग्यता के खिलाफ होगा। इसलिए, दूसरा दृष्टिकोण शायद अनजाने में समर्थन करता है - लेकिन निश्चित रूप से चयन सूची में महिलाओं की संख्या को नियम द्वारा सुनिश्चित कुल संख्यात्मक कोटे तक सीमित कर देता है।"

10. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, राज्य ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का पालन नहीं किया है और महिलाओं के लिए आरक्षण को ओपन कैटेगरी और EWS में गलत तरीके से सम्मिलित किया है। अतः निम्नलिखित निर्देश जारी किए जाते हैं:-

(i) संबंधित उत्तरदाता EWS (महिला) उम्मीदवारों के लिए अलग मेरिट सूची तैयार करेंगे, जिसमें २०% हॉरिज़ॉन्टल आरक्षण लागू किया जाएगा।

(ii) इसके पश्चात, संभावित रूप से प्रभावित चयनित उम्मीदवारों की सूची तैयार की जाए।

(iii) इसके बाद, यदि कोई रिक्त सीटें हों, तो उन्हें उपरोक्त तैयार सूची के अनुसार मेरिट के आधार पर EWS (महिला) उम्मीदवारों को समायोजित किया जाए, जो पहले से चयनित ९०३ महिलाओं का हिस्सा नहीं हैं। हालांकि, पहले से चयनित किसी भी उम्मीदवार को हटाया नहीं जाएगा।

(iv) आगामी चयन प्रक्रियाओं में, राज्य सभी आरक्षणों को सही और कानूनी तरीके से लागू करेगा, जिसमें हॉरिज़ॉन्टल आरक्षण भी शामिल है।

(v) दूसरे सेट के याचिकाकर्ता ४ संख्या में हैं और चूँकि रिक्त सीटों की संख्या रिकॉर्ड में नहीं है, अतः उन्हें कोई राहत नहीं दी जा सकती।

11. सभी रिट याचिकाएँ **निस्तारित की जाती** हैं।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 505

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल साइड

तारीख: इलाहाबाद 30.05.2025

के सामने

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

रिट ए नंबर 14182 सन 2024

विवेक यादव ..... **याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ..... **प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
विनय कुमार सिंह

प्रतिवादी के अधिवक्ता
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

अनुवादित

सेवा कानून - भर्ती - चरित्र सत्यापन - आपराधिक मामला - आवेदन के बाद FIR दर्ज - उम्मीदवार द्वारा खुलासा - समझौते पर बाद में रद्द करना -कलेक्टर की राय यांत्रिक - पूर्ववृत्त का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करने का कर्तव्य - दिनांक 28.04.1958 के सरकारी आदेश का दायरा - केवल FIR/चार्जशीट के आधार पर उपयुक्तता को यांत्रिक रूप से अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए -रिक्ति की अनुपलब्धता बाधा नहीं - अतिरिक्त पद के विरुद्ध नियुक्ति द्वारा राहत। निर्णय: जहां याचिकाकर्ता ने अपने खिलाफ FIR दर्ज होने से पहले पुलिस भर्ती के लिए आवेदन किया था, और उसके बाद सत्यापन के चरण में लंबित मामले का पूरा और सद्भावनापूर्ण खुलासा किया, वहां सरकारी आदेश दिनांक 28.04.1958 के तहत अनिवार्य रूप से पूर्ववृत्त पर समग्र विचार किए बिना, केवल ऐसी FIR/चार्जशीट के आधार पर उम्मीदवारी को अस्वीकार करना मनमाना और अमान्य है। कलेक्टर की यांत्रिक प्रतिकूल रायनियुक्ति से इनकार करने का आधार नहीं बन सकती। समझौते पर कार्यवाही रद्द करना अपने आप में अयोग्यता नहीं है। समय बीतने या बीच में हुई भर्तियों के कारण पद की अनुपलब्बता अर्जित अधिकार को खत्म नहीं कर सकती; नियुक्ति अतिरिक्त पद के विरुद्ध भी की जा सकती है। रिट याचिका स्वीकृत; अस्वीकृति आदेश रद्द; पुनर्विचार और नियुक्ति के लिए परमादेश जारी।

रिट याचिका स्वीकृत।

चर्चा किए गए केस लॉ:

1. राम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2011) 14 SCC 709

2. अवतार सिंह बनाम भारत संघ (2016) 8 SCC 471

3. जान्हवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2024:AHC:190814-DB

4. स्मिता श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (जान्हवी में उद्धृत)

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

1. यह रिट याचिका पुलिस उपायुक्त, मुख्यालय, वाराणसी के दिनांक 20.07.2024 के एक आदेश के खिलाफ दायर की गई है, जिसमें याचिकाकर्ता के पुलिस कांस्टेबल के पद पर नियुक्ति के दावे को अस्वीकार कर दिया गया है, जबकि उसका चयन पुलिस कांस्टेबल और कांस्टेबल पीएसी (पुरुष) सीधी भर्ती, 2015 में हो गया था, लेकिन एक आपराधिक मामले में शामिल होने के कारण उसे अयोग्य घोषित कर दिया गया।

2. उत्तर प्रदेश पुलिस भर्ती और प्रोन्नति बोर्ड, लखनऊ द्वारा दिनांक 29.12.2015 को विज्ञापन संख्या PRB-1 (82)/2015 जारी किया गया था, जिसमें पुलिस कांस्टेबल के पदों के लिए विज्ञापन दिया गया था, जिसे पुलिस कांस्टेबल और कांस्टेबल पीएसी (पुरुष) सीधी भर्ती, 2015 (संक्षेप में, 'विज्ञापन') कहा जाता है। याचिकाकर्ता, योग्य होने के कारण, उसने दिनांक 30.01.2026 के आवेदन के माध्यम से अपनी उम्मीदवारी पर विचार करने के लिए आवेदन किया। उसे रोल नंबर 00126183 आवंटित किया गया। उसने चयन परीक्षा दी और 410.73 अंक प्राप्त करके सफल घोषित किया गया। याचिकाकर्ता द्वारा आवेदन करने के बाद, एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना हुई, जिसमें उसके परिवार के कुछ सदस्यों पर 07.05.2016 को गांव इस्माइलियान, थाना चोलापुर, जिला वाराणसी में लगभग 9.45 बजे क्रूरतापूर्वक हमला किया गया। मामले की सूचना तुरंत पुलिस को दी गई, लेकिन प्रथम सूचना रिपोर्ट (FIR) उसी दिन यानी 07.05.2016 को रात 11.00 बजे आठ लोगों के खिलाफ दर्ज की गई, जिनके नाम हैं, विष्णु पुत्र राम प्रवेश सिंह, अनूप सिंह पुत्र राम आसरे सिंह, प्यारे लाल यादव, सुरेंद्र यादव, सुरेश यादव, सभी पुत्र सिराहू यादव, राम प्रवेश सिंह पुत्र मार्कंडेय सिंह, टुन्नू सिंह पुत्र नागेंद्र प्रताप सिंह और तूफानी पुत्र छकौरी यादव। उपरोक्त FIR को केस क्राइम नंबर 185/2016 के रूप में, सेक्शन 147, 148, 149, 307, 308, 323, 506 IPC और सेक्शन 7 क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट एक्ट, पी.एस. चोलापुर, जिला वाराणसी के तहत रजिस्टर किया गया था। FIR में शिकायतकर्ता पंचू यादव थे, जो स्वर्गीय नग्गू यादव के बेटे और याचिकाकर्ता के दादा के चचेरे भाई थे। FIR में बताई गई घटना आरोपियों द्वारा किए गए हमले की थी, जो सभी घातक हथियारों से लैस थे, जिसमें आग्नेयास्त्र भी शामिल थे।

3. याचिकाकर्ता के परिवार द्वारा दर्ज की गई FIR 07.05.2016 को दर्ज होने के बाद, उसी दिन की घटना के संबंध में, अगले दिन, आरोपी के परिवार के सदस्यों में से एक व्यक्ति, यानी राम दुलार यादव पुत्र सिराहू यादव, जो आरोपी प्यारे लाल यादव, सुरेंद्र यादव और सुरेश यादव का भाई है, ने उसी घटना दिनांक 07.05.2016 के संबंध में एक FIR दर्ज कराई, जिसमें घटना का समय सुबह 9.30 बजे बताया गया। उसने

नामजद आरोपियों और अज्ञात लोगों द्वारा हमले का आरोप लगाया, जिसमें याचिकाकर्ता का नाम भी हमलावरों में शामिल था और उसे विनोद यादव बताया गया, जो याचिकाकर्ता विवेक यादव का उपनाम है। यह आखिरी FIR 08.05.2016 को रात 9.30 बजे दर्ज की गई, जो याचिकाकर्ता के परिवार द्वारा दर्ज की गई FIR के पंजीकरण के लगभग एक दिन बाद थी। यह FIR अपराध संख्या 186/2016 के तहत धारा 147, 148, 149, 452, 323, 427, 307, 324, 308, 336, 504, 506 IPC और धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, थाना चोलापुर, जिला वाराणसी के तहत पंजीकृत की गई थी।

4. याचिकाकर्ता का कहना है कि उसके परिवार के खिलाफ दर्ज की गई FIR जवाबी कार्रवाई का एक उपाय था, जिसका अंतिम उद्देश्य याचिकाकर्ता के दादा के भाई को अपराध संख्या 185/2016 के तहत लाए गए आपराधिक मामले में समझौता करने के लिए मजबूर करना था। पुलिस ने दोनों मामलों की जांच की और दोनों अपराधों में चार्जशीट दाखिल की। याचिकाकर्ता केस क्राइम नंबर 186 ऑफ 2016 में आरोपी है। उस केस में, जांच के बाद पुलिस ने सेक्शन 147, 148, 149, 323, 427, 504, 506 IPC और सेक्शन 7 क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट एक्ट के तहत चालान पेश किया, लेकिन सेक्शन 307, 324, 308 और 336 IPC के तहत नहीं। पार्टियों ने जांच के दौरान समझौता कर लिया था, लेकिन इससे पुलिस ने उनमें से किसी को भी आरोपित अपराधों से बरी नहीं किया।

5. इसलिए, केस क्राइम नंबर 185 ऑफ़ 2016 के आरोपी, जिसके खिलाफ सेक्शन 147, 148, 149, 323, 506 IPC और सेक्शन 7 क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट एक्ट के तहत दंडनीय अपराधों के लिए चार्जशीट दायर की गई थी, ने इस कोर्ट के सामने एप्लीकेशन अंतर्गत धारा 482 नंबर 39570 ऑफ़ 2016 के ज़रिए इसे चुनौती दी। इसी तरह, याचिकाकर्ता और उसके परिवार, जिन पर चार्ज शीट दायर की गई थी, ने एप्लीकेशन अंतर्गत धारा 482 नंबर 39567 ऑफ़ 2016 के ज़रिए इस पर सवाल उठाया। इन आवेदनों की सुनवाई पर, पक्षों के विद्वान अधिवक्ता ने बताया कि याचिकाकर्ता के मामले में अभियोजन दुर्भावनापूर्ण तरीके से शुरू किया गया था, जबकि दूसरी तरफ से लाए गए एप्लीकेशन अंतर्गत धारा 482 में, समझौते की बात न्यायालय के संज्ञान में लाई गई। दोनों मामलों में, इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से समझौते को मैजिस्ट्रेट के पास सत्यापन के लिए भेजने का इरादा रखते हुए, क्लर्कियल गलती से, एक आदेश पारित किया जिसमें चार्जशीट को रद्द करने से इनकार कर दिया गया और दोनों मामलों में आवेदकों को 30 दिनों के भीतर मैजिस्ट्रेट के सामने सरेंडर करने और जमानत के लिए आवेदन करने को कहा गया। 30 दिनों की अवधि के लिए जबरदस्ती की कार्रवाई से सुरक्षा दी गई। मामले में निर्देश और आदेशों का यह हिस्सा एक क्लर्कियल गलती का परिणाम था। इसलिए, दोनों मामलों में सुधार आवेदन दायर किए गए, जिन्हें 07.07.2017 के आदेशों द्वारा स्वीकार कर लिया गया, दोनों मामलों में 20.06.2016 के आदेशों को वापस ले लिया गया और इसे संशोधित आदेश से बदल दिया गया, जिसमें मैजिस्ट्रेट को छह सप्ताह की अवधि के भीतर समझौते का सत्यापन करने का निर्देश दिया गया। समझौता सत्यापित होने के बाद, जब एप्लीकेशन अंतर्गत धारा 482 नंबर 39567 ऑफ़ 2016, और निश्चित रूप से संबंधित मामला, इस कोर्ट के सामने आया, तो याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही को निम्नलिखित आदेशों के अनुसार 20.09.2021 के फैसले और आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया:

"*मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, पक्षों के वकीलों द्वारा दी गई दलीलों और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री को देखते हुए, यह कोर्ट इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि पक्षों के बीच विवाद पूरी तरह से निजी विवाद है और समाज के खिलाफ अपराध नहीं है। इसके अलावा, पक्षों ने पहले ही अपने विवाद में समझौता कर लिया है। नतीजतन, ऊपर बताए गए मामले की कार्यवाही को लंबा खींचने से कोई फायदा नहीं होगा। पक्षों द्वारा किए गए समझौते को देखते हुए, आरोपी आवेदकों को दोषी ठहराए जाने की संभावना बहुत कम और न के बराबर है। ऐसे में कार्यवाही जारी रखने से ही पक्षों के साथ अन्याय होगा। ट्रायल से केवल न्यायिक समय की बर्बादी होगी, खासकर जब मुकदमों की बाढ़ अदालतों को मामलों के एक अकल्पनीय सैलाब में डुबो देती है। उपरोक्त को देखते हुए, वर्तमान आवेदन सफल होता है और स्वीकार किए जाने योग्य है। आपराधिक मामला संख्या 5670/2016, (राज्य बनाम कमलेश यादव और अन्य), धारा 147, 148, 149, 323, 427, 504, 506 I.P.C. और धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, पुलिस स्टेशन- चोलापुर, जिला- वाराणसी जो केस अपराध संख्या 0186/2016, धारा 147, 148, 149, 452, 323, 427, 307, 324, 308, 336, 504, 506 I.P.C. और धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, पुलिस स्टेशन- चोलापुर, जिला वाराणसी के तहत अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-I, वाराणसी की अदालत में लंबित है, की पूरी कार्यवाही रद्द की जाती है।*"

6. यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ याचिकाकर्ता ने प्रतिवादियों से अपने खिलाफ चल रहे आपराधिक मामले की जानकारी छिपाई हो। उसने यह जानकारी तब दी जब उसके खिलाफ FIR दर्ज हुई थी। जब याचिकाकर्ता ने कांस्टेबल के पद के लिए आवेदन किया था, यानी 30.01.2026 को, तब उसके खिलाफ कोई FIR नहीं थी। FIR 08.05.2016 को दर्ज की गई थी, जो एक ऐसी घटना से संबंधित थी जो कथित तौर पर 07.05.2016 को हुई थी, जिसमें उसके परिवार के कुछ सदस्य शामिल थे। चयन होने पर, याचिकाकर्ता को 21.05.2018 को उसके मेडिकल परीक्षण, दस्तावेज़ सत्यापन और चरित्र सत्यापन के लिए एक कॉल लेटर जारी किया गया था। इस समय तक, FIR दर्ज हो चुकी थी और इसलिए याचिकाकर्ता ने 11.06.2018 के नोटरीकृत हलफनामे के माध्यम से अपने चरित्र सत्यापन के समय यह तथ्य बताया। याचिकाकर्ता का अपने खिलाफ दर्ज मामले के बारे में पूरी और सीधी जानकारी देने का आचरण बिल्कुल सही है। इसलिए, यह किसी भी तरह से ऐसा मामला नहीं है, जहाँ यह कहा जा सके कि याचिकाकर्ता ने अपने खिलाफ दर्ज FIR के बारे में कोई जानकारी छिपाई या रोकी।

7. ऐसा लगता है कि प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता की नियुक्ति के मामले को खारिज करने में, अन्य बातों के अलावा, इस तथ्य को ध्यान में रखा है कि कलेक्टर ने, जब याचिकाकर्ता की सरकारी सेवा में नियुक्ति के लिए उपयुक्तता के बारे में राय देने के लिए कहा गया, तो उन्होंने अपने पत्र दिनांक 06.11.2018 के माध्यम से याचिकाकर्ता के पक्ष में राय नहीं दी। सरकारी सेवा में नियुक्ति के लिए उम्मीदवार की उपयुक्तता के मामले में कलेक्टर की राय की प्रासंगिकता का उल्लेख किया जाना चाहिए। उत्तर प्रदेश राज्य में, 28.04.1958 का एक सरकारी आदेश अभी भी लागू है, जो राज्य के तहत रोजगार चाहने वाले उम्मीदवार के आपराधिक इतिहास की जांच के लिए बहुत विस्तृत प्रावधान करता है। 28.04.1958 के सरकारी आदेश का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

"3. (a) उत्तर प्रदेश सरकार के तहत किसी भी सेवा में हर सीधे भर्ती होने वाले व्यक्ति को ये देना होगा:

(i) उस एजुकेशनल इंस्टिट्यूशन के हेड से कैरेक्टर और कंडक्ट का सर्टिफिकेट जहाँ उसने आखिरी बार पढ़ाई की थी (अगर वह ऐसे किसी इंस्टिट्यूशन में गया था)।

(ii) दो लोगों से कैरेक्टर सर्टिफिकेट। अपॉइंटिंग अथॉरिटी उन लोगों के बारे में ज़रूरतें बताएगी जिनसे वह ये सर्टिफिकेट चाहती है।

b) शक के मामलों में, अपॉइंटिंग अथॉरिटी या तो और रेफरेंस मांग सकती है, या मामला संबंधित डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को भेज सकती है। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट तब ज़रूरी लगने पर और पूछताछ कर सकता है। नोट (a) सिर्फ़ सज़ा का मतलब यह नहीं है कि अच्छे कैरेक्टर का सर्टिफिकेट देने से मना कर दिया जाए। सज़ा के हालात को ध्यान में रखा जाना चाहिए और अगर उनमें नैतिक बुराई या हिंसा के अपराधों से जुड़ाव या ऐसे आंदोलन से जुड़ाव शामिल है जिसका मकसद आज़ाद भारत में कानून द्वारा स्थापित सरकार को हिंसक तरीकों से उखाड़ फेंकना है, तो सिर्फ़ सज़ा को अयोग्यता नहीं माना जाना चाहिए। (किसी व्यक्ति को बचपन में मिली सज़ा ज़रूरी नहीं कि सरकारी नौकरी में आने में रुकावट बने। जिन हालात में उसे सज़ा हुई थी, साथ ही जिन हालात में वह अभी है, उन सभी पर विचार किया जाना चाहिए। अगर उसने समझदारी और विवेक की उम्र पाने पर खुद को पूरी तरह सुधार लिया है, तो बचपन में मिली सिर्फ़ सज़ा सरकारी नौकरी में आने में रुकावट नहीं बननी चाहिए)।

(b) हालाँकि किसी भी व्यक्ति को सिर्फ़ उसके राजनीतिक विचारों के कारण अपॉइंटमेंट के लिए अयोग्य नहीं माना जाना चाहिए, लेकिन इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि ऐसे लोगों को नौकरी पर न रखा जाए जो बेवफ़ा हो सकते हैं और अपनी अपॉइंटमेंट के कारण उन पर रखे गए भरोसे का गलत इस्तेमाल कर सकते हैं। आम तौर पर, जो लोग तोड़फोड़ वाली गतिविधियों में सक्रिय रूप से शामिल हैं, जिनमें किसी भी ऐसे संगठन के सदस्य शामिल हैं जिसका घोषित मकसद हिंसक तरीकों से समाज की मौजूदा व्यवस्था को बदलना है, उन्हें सरकार के तहत अपॉइंटमेंट के लिए अयोग्य माना जाना चाहिए। 21 साल की उम्र पाने के बाद और पूछताछ की तारीख के तीन साल के अंदर किसी भी समय ऐसी गतिविधियों में हिस्सा लेना इस बात का सबूत माना जाएगा कि वह व्यक्ति अभी भी ऐसी गतिविधियों में सक्रिय रूप से शामिल है, जब तक कि इस बीच बदलाव का पक्का सबूत न हो। रवैया।

(c) केंद्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा बर्खास्त किए गए व्यक्तियों को भी इस सरकार के तहत किसी भी सेवा में नियुक्ति के लिए अयोग्य माना जाएगा।

2(d) उत्तर प्रदेश सरकार के तहत राज्य सेवाओं में सीधे भर्ती होने वालों के मामले में इसमें उम्मीदवारों से पैराग्राफ 3 (a) में बताए गए सर्टिफिकेट जमा करने की आवश्यकता शामिल है। नियुक्ति करने वाला अधिकारी

सभी मामलों को एक साथ पुलिस उप महानिरीक्षक, खुफिया विभाग और जिला मजिस्ट्रेट (गृह जिले और उन जिलों के जहां उम्मीदवार जांच की तारीख से पांच साल के भीतर एक साल से ज़्यादा समय तक रहा है) को भेजेगा, जिसमें उम्मीदवार के बारे में पूरी जानकारी दी जाएगी। जिला मजिस्ट्रेट उम्मीदवारों के संबंध में रिपोर्ट पुलिस अधीक्षक से प्राप्त करेंगे जो जिला पुलिस रिकॉर्ड और स्थानीय खुफिया इकाई के रिकॉर्ड से सलाह लेंगे। जिला पुलिस या जिला खुफिया इकाई मौके पर कोई जांच नहीं करेगी, बल्कि अपने रिकॉर्ड से रिपोर्ट करेगी कि क्या उम्मीदवार के खिलाफ कुछ है, लेकिन अगर किसी खास मामले में जिला मजिस्ट्रेट नियुक्ति करने वाले अधिकारी के कहने पर मौके पर जांच करने के लिए कहते हैं तो स्थानीय पुलिस या स्थानीय खुफिया इकाइयां ऐसा करेंगी और परिणाम उन्हें रिपोर्ट करेंगी। जिला मजिस्ट्रेट फिर नियुक्ति करने वाले अधिकारी को अपने विचार रिपोर्ट करेंगे। जहां जिला पुलिस या स्थानीय खुफिया इकाइयां किसी उम्मीदवार के बारे में प्रतिकूल रिपोर्ट करती हैं वहां जिला मजिस्ट्रेट अपनी रिपोर्ट भेजने से पहले उम्मीदवार को सुनवाई का मौका दे सकते हैं।

(e) सीधे भर्ती होने वालों के मामले में (जो राज्य सेवा अधिकारी के पद से नीचे के रैंक के हैं):

(i) पुलिस (पुलिस अधिकारियों के मंत्रालयिक कर्मचारियों सहित)।

(ii) सचिवालय।

(iii) सरकारी कारखानों में कार्यरत कर्मचारी,

(iv) पावर हाउस और बांध।

पैराग्राफ 3 (a) में बताए गए सर्टिफिकेट जमा करने की आवश्यकता के अलावा, नियुक्ति करने वाले अधिकारी सभी मामलों को एक साथ उप महानिरीक्षक, सी.आई.डी. और जिला पुलिस अधीक्षक (गृह जिले और उन जिलों के जहां उम्मीदवार जांच की तारीख से पांच साल के भीतर एक साल से ज़्यादा समय तक रहा है) को भेजेंगे, जिसमें उम्मीदवार के बारे में पूरी जानकारी दी जाएगी। पुलिस अधीक्षक अपनी रिपोर्ट सीधे नियुक्ति करने वाले अधिकारी को भेजेंगे यदि उम्मीदवार के खिलाफ कुछ भी प्रतिकूल नहीं है। जिन मामलों में रिपोर्ट अनुकूल नहीं होती है, पुलिस अधीक्षक उसे जिला मजिस्ट्रेट को भेजेंगे जो संबंधित उम्मीदवार को बुलाकर उसकी बात सुनेंगे और फिर अपनी राय बनाएंगे। सभी ज़रूरी कागज़ात (पुलिस अधीक्षक की रिपोर्ट, उम्मीदवार का बयान और जिला मजिस्ट्रेट का निष्कर्ष) उसके बाद नियुक्ति अधिकारी को भेजे जाएंगे।

4. यह देखा जाएगा कि पैराग्राफ 3 (c) और 3 (d) में बताई गई सेवाओं के अलावा अन्य सेवाओं में सीधे भर्ती के मामलों में, सत्यापन नियमित रूप से ज़रूरी नहीं होगा, सिवाय संदेह के मामलों के, जब पैराग्राफ 3 (b) में बताई गई प्रक्रिया का पालन किया जाएगा।

5. पैराग्राफ 3 (c) और 3 (d) में बताई गई सेवाओं के लिए उम्मीदवार के मामले में (i) यदि जांच के समय उम्मीदवार उत्तर प्रदेश के बाहर किसी इलाके में रह रहा है या यदि वह जांच की तारीख से पांच साल के भीतर किसी भी समय एक साल या उससे ज़्यादा समय के लिए ऐसे इलाके में रहा है, तो यह उप महानिरीक्षक,

सी.आई.डी. का कर्तव्य होगा कि वह अपनी सत्यापन रिपोर्ट बनाने से पहले संबंधित राज्य के सी.आई.डी. से भी सलाह ले, जिस राज्य में वह इलाका स्थित है।

(ii) यदि उम्मीदवार विभाजन से पहले अब पाकिस्तान में आने वाले क्षेत्र में रह रहा था, तो उप महानिरीक्षक, सी.आई.डी. ऊपर बताए गए सामान्य पूछताछ के अलावा गृह मंत्रालय, भारत सरकार के खुफिया ब्यूरो के निदेशक को भी एक संदर्भ भेजेंगे।

6. यह भी देखा गया है कि जहां जिला मजिस्ट्रेटों को सत्यापन फॉर्म भेजने होते हैं, वे कभी-कभी फॉर्म पर खुद हस्ताक्षर नहीं करते हैं, सरकार इसे बहुत ज़रूरी मानती है कि ऐसे सभी मामलों में सत्यापन फॉर्म पर हमेशा जिला मजिस्ट्रेटों द्वारा ही हस्ताक्षर किए जाने चाहिए।

8. 28.04.1958 का सरकारी आदेश दिखाता है कि इस आदेश का मकसद यह वेरिफाई करना है कि कोई व्यक्ति, जिसे सरकारी नौकरी के लिए चुना गया है और नियुक्त करने का प्रस्ताव है, क्या सच में आपराधिक पृष्ठभूमि वाला व्यक्ति है, जो सरकार के तहत नियुक्ति के लिए अयोग्य है। इस बात पर ज़ोर देना ज़रूरी है कि किसी व्यक्ति का चरित्र, उसके आपराधिक रिकॉर्ड के कारण सरकार के तहत किसी पद पर नियुक्ति के लिए अयोग्य होना, सिर्फ़ उस व्यक्ति के खिलाफ़ FIR दर्ज होने से निकाला गया कोई गणितीय निष्कर्ष नहीं है। इसी वजह से सरकारी नौकरी के लिए किसी व्यक्ति की योग्यता का आकलन करने का काम ज़िला मजिस्ट्रेट को सौंपा गया है, जिन्हें इस मुद्दे पर अपनी राय देनी होती है, पुलिस, अपराध जांच विभाग (CID) या स्थानीय खुफिया इकाई से मिली रिपोर्टों पर विचार करते हुए, जो भी उम्मीदवार के पिछले रिकॉर्ड पर रिपोर्ट करते हैं। कलेक्टर को किसी व्यक्ति की योग्यता पर अपनी राय देने से पहले पूरे हालात और उसके बारे में उपलब्ध रिपोर्टों पर सोचना होगा।

9. अगर कोई ऐसा मामला है जहाँ किसी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ़ जिसका कोई आपराधिक रिकॉर्ड नहीं है, अचानक किसी कथित अपराध के सिलसिले में पुलिस में रिपोर्ट की जाती है, जिसमें अपने आप में कोई नैतिक पतन शामिल नहीं है या संबंधित व्यक्ति की भूमिका सिर्फ़ शक के आधार पर मामूली दिखती है, तो कलेक्टर को उसकी योग्यता का आकलन करने के लिए तथ्यों की जांच करनी चाहिए, जिसमें उसके खिलाफ़ मामला और सबूत शामिल हैं, जब तक वह अपनी राय नहीं देता। उसे पोस्ट ऑफिस की तरह काम नहीं करना चाहिए, जहाँ सिर्फ़ पुलिस स्टेशन और S.P. की रिपोर्ट पर कि FIR दर्ज हो गई है, कलेक्टर उम्मीदवार को अयोग्य घोषित कर दे।

10. यहाँ, हालाँकि कलेक्टर की राय कोर्ट के सामने नहीं रखी गई है, लेकिन विवादित आदेश को देखने से यह पता नहीं चलता या ज़ाहिर नहीं होता कि कलेक्टर ने सच में उम्मीदवार की योग्यता के बारे में सोच-समझकर राय दी थी। विवादित आदेश में भी इस मुद्दे पर चर्चा नहीं की गई है, जिससे इस नतीजे को बल

मिलता है कि कलेक्टर की राय में पुलिस में नियुक्ति के लिए उम्मीदवार की योग्यता का पूरा मूल्यांकन नहीं किया गया है।

11. याचिकाकर्ता के खिलाफ मामले को देखें तो पता चलता है कि यह मुख्य रूप से याचिकाकर्ता के दादा के भाई और किसी तीसरे पक्ष के बीच विवाद था, जो याचिकाकर्ता के रिश्तेदार के घर में घुस गए और 07.05.2016 की सुबह उन्हें पीटा। याचिकाकर्ता के परिवार के सदस्यों ने अपराधियों की रिपोर्ट पुलिस में की और उसी दिन शाम 11 बजे उनकी FIR दर्ज की गई। याचिकाकर्ता के खिलाफ दर्ज FIR में उसे परिवार के अन्य सदस्यों के साथ अपराध में शामिल बताया गया है, लेकिन इसे लगभग 24 घंटे की देरी से दर्ज किया गया था। याचिकाकर्ता के परिवार को परेशान करने के लिए जानबूझकर झूठा फंसाने की संभावना ही इसका कारण हो सकती है। यह तथ्य कि याचिकाकर्ता पहले ही सरकारी नौकरी के लिए चुना जा चुका था, उसे परिवार के अन्य लोगों के साथ मामले में फंसाने के लिए एक आदर्श उम्मीदवार बनाता था, ताकि हिसाब बराबर किया जा सके और याचिकाकर्ता के दादा के भाई को अपराध संख्या 186/2016 के पहले मुखबिर और उसके परिवार के अन्य सदस्यों के खिलाफ लाए गए मामले की कार्यवाही से पीछे हटने के लिए मजबूर किया जा सके।

12. न्यायालय इस बात से आंखें नहीं मूंद सकता कि इस राज्य में यह लगभग एक बीमारी बन गई है कि एक काबिल नौजवान जिसका एकेडमिक रिकॉर्ड अच्छा है, जैसे ही वह सरकारी नौकरी में सेलेक्ट होता है, उसके खिलाफ अचानक FIR दर्ज हो जाती है या उसका नाम किसी मौजूदा FIR से जोड़ दिया जाता है, जिसमें उसके परिवार या दोस्त शामिल होते हैं। यह अक्सर उसके परिवार वालों या पड़ोसियों या दोस्तों की वजह से होता है, जाहिर तौर पर जलन की वजह से। हमारे देश में सरकारी नौकरी अभी भी एक बहुत ही प्रतिष्ठित पद है। यह निश्चित रूप से जलन, नफरत, यहां तक कि गुस्सा जैसी नकारात्मक भावनाओं को जन्म देता है, कभी-कभी पड़ोसियों और सेलेक्ट हुए नौजवान के परिवार के सदस्यों के बीच। यह खासकर पुलिस सेवा के निचले पदों पर नियुक्ति के मामले में होता है। फंसाने का लगभग सही समय, जैसा कि इस मामले में और कई अन्य मामलों में हुआ है, निश्चित रूप से सेलेक्ट हुए व्यक्ति के पिछले रिकॉर्ड की बहुत सावधानी से जांच की जानी चाहिए ताकि यह पता चल सके कि क्या वास्तव में उसके खिलाफ कोई असली अपराध दर्ज किया गया है, या यह सिर्फ उसे उसकी कड़ी मेहनत से मिली सरकारी नौकरी से वंचित करने का एक तरीका है।

13. इस मामले में, विवादित आदेश या राज्य की ओर से दायर जवाब को पढ़ने से यह नहीं पता चलता कि किसी तरह का कोई सावधानीपूर्वक विचार किया गया था। हम दुख के साथ देखते हैं कि इस संबंध में हम जो कुछ भी कहते हैं, वह नौकरशाही की असंवेदनशीलता की मोटी दीवार को भेद नहीं पाता है। जैसे ही किसी सरकारी नौकरी के लिए चुने गए उम्मीदवार के खिलाफ अपराध दर्ज होता है और यह सरकार के संज्ञान में आता है, अधिकारी बिना किसी झिझक के, यांत्रिक रूप से उम्मीदवार को उसकी कड़ी मेहनत से मिली सरकारी नौकरी से हटाने के लिए कार्रवाई करते हैं। वे कभी भी इस बात पर विचार नहीं करते कि उनसे क्या उम्मीद की जाती है, यानी यह पता लगाना कि क्या सेलेक्ट हुआ व्यक्ति सरकारी सेवा में नियुक्ति के लिए उपयुक्त

है। जिला मजिस्ट्रेट लगभग कभी भी 28.04.1958 के सरकारी आदेश की भावना के अनुसार उम्मीदवार के मामले की जांच नहीं करते हैं। यहां भी वही हुआ है।

14. हमें यह बताना ज़रूरी है कि ज़्यादातर मामलों में, जहाँ उम्मीदवार अपने खिलाफ दर्ज मामूली अपराध की भी जानकारी नहीं देते, इसका कारण सरकारी अधिकारियों के इस असंवेदनशील रवैये का डर है, जिन्हें चुने हुए उम्मीदवारों को नियुक्ति देने का काम सौंपा गया है। जो उम्मीदवार मैकेनिकल रिजेक्शन के डर से जानकारी नहीं देते, उन पर दोगुना आरोप लगता है कि वे अयोग्य हैं - एक तो अपराध/दर्ज अपराध के लिए, और दूसरा, अपने पिछले रिकॉर्ड को जानबूझकर छिपाने के कारण। हमें छिपाने के मुद्दे पर ज़्यादा बात करने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि यह यहाँ शामिल नहीं है। हमने इसका ज़िक्र सरकारी अधिकारियों के योग्यता जाँचने के असंवेदनशील तरीके के बुरे प्रभावों को उजागर करने के लिए किया है। वे भले लोगों को झूठा बना देते हैं।

15. यहाँ, याचिकाकर्ता ने अपने खिलाफ दर्ज FIR का खुलासा किया है, जैसा कि पहले ही बताया गया है, बहुत ही ईमानदारी और सीधे तरीके से। उन्होंने इसे दर्ज होने के बाद जल्द से जल्द बताया। जब उन्होंने आवेदन किया था, तब यह मौजूद नहीं था। चयन के बाद, जब उन्हें चरित्र सत्यापन आदि के लिए बुलाया गया, तो उन्होंने हलफनामे पर इसका खुलासा किया। याचिकाकर्ता के खिलाफ दर्ज अपराध जवाबी कार्रवाई और दुर्भावनापूर्ण फंसाने का संकेत देता है क्योंकि याचिकाकर्ता के परिवार के खिलाफ मामले के मुखबिर ने, जिसमें वह भी शामिल है, पुलिस को उस घटना के बारे में बताया था जो उसी दिन पहले हुई थी, जिसमें याचिकाकर्ता का परिवार हमले का शिकार हुआ था। यह प्रतिवादियों का मामला नहीं है, और न ही यह विवादित आदेश में शामिल है कि FIR से पहले, जिससे अपराध संख्या 186/2016, धारा 147, 148, 149, 452, 323, 427, 307, 324, 308, 336, 504, 506 IPC और धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, पी.एस. चोलापुर, जिला वाराणसी के तहत मामला दर्ज हुआ, याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई अन्य मामला दर्ज था, या उसके आपराधिक पिछले रिकॉर्ड को दिखाने के लिए कोई अन्य सामग्री थी। अपराध की जांच के बाद, पुलिस ने याचिकाकर्ता और उसके परिवार के खिलाफ सेक्शन 147, 148, 149, 323, 427, 504, 506 IPC और सेक्शन 7 क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट एक्ट के तहत दंडनीय अपराधों के लिए चार्जशीट दायर की। पुलिस को खुद याचिकाकर्ता या उसके परिवार के खिलाफ सेक्शन 307, 324, 308 और 336 IPC के तहत दंडनीय अपराध साफ तौर पर नहीं मिले। FIR में लगाए गए सभी आरोपों को देखते हुए, जो मारपीट के अपराधों के बारे में हैं, और जो याचिकाकर्ता के परिवार द्वारा क्राइम नंबर 186/2016 के मुखबिर के खिलाफ मारपीट के मामले में तुरंत FIR दर्ज कराने के बाद लगाए गए थे, उनसे याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई गंभीर आरोप वाला मामला नहीं बनता है, जिसमें नैतिक पतन शामिल हो। जिन अपराधों के लिए याचिकाकर्ता पर चार्जशीट दायर की गई थी, उन्हें परिस्थितियों के साथ मिलाकर देखने पर, पहली नज़र में याचिकाकर्ता कोई अपराधी या खतरनाक व्यक्ति नहीं लगता है, जो सरकारी नौकरी के लिए अयोग्य हो। फिर भी, इस संबंध में 28.04.1958 के सरकारी आदेश में बताए गए मापदंडों पर संबंधित अधिकारियों द्वारा प्रासंगिक सामग्री के आधार पर राय बनानी होगी; न कि इस न्यायालय के द्वारा।

16. इस मामले में, जिस आदेश पर सवाल उठाया गया है, उसमें मुख्य रूप से याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को अयोग्य मानकर खारिज कर दिया गया है, क्योंकि उसके खिलाफ एक FIR दर्ज थी जिसके कारण कोर्ट में चार्जशीट दायर की गई थी और यह भी कि हालांकि चार्जशीट रद्द कर दी गई थी, लेकिन यह पार्टियों के बीच समझौते का नतीजा था। आखिर FIR कोई फैसला नहीं है, जो किसी व्यक्ति को दोषी ठहराता हो, और न ही कोर्ट में दायर की गई पुलिस रिपोर्ट ऐसा करती है। यह अलग बात है कि अगर किसी व्यक्ति के खिलाफ कई FIR दर्ज हैं, तो उसके आपराधिक झुकाव का एक वैध अनुमान लगाया जा सकता है, लेकिन सिर्फ एक FIR दर्ज होने और पुलिस द्वारा चार्जशीट दायर करने से, अपने आप एक सम्मानित व्यक्ति का अच्छा नाम खराब नहीं हो जाएगा। इसी कारण से, जैसा कि पहले ही जोर दिया गया है, नियुक्ति करने के लिए अधिकृत अधिकारियों को सार्वजनिक रोजगार देने से इनकार करने का फैसला लेने से पहले, मामले की पूरी परिस्थितियों, आरोपों की प्रकृति, उम्मीदवार पर लगाए गए अपराध की प्रकृति, साथ ही उसकी प्रतिष्ठा और पृष्ठभूमि, सभी पर बहुत सावधानी से विचार करना चाहिए।

17. **राम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2011) 14 SCC 709** में, जो पुलिस सेवा से संबंधित एक मामला था, जिसमें एक ऐसे उम्मीदवार को रोजगार देने से इनकार कर दिया गया था, जिसके खिलाफ एक आपराधिक मामला था, जिसमें उसे बरी कर दिया गया था, सुप्रीम कोर्ट ने यह फैसला सुनाया:

"9. हमने 28-4-1958 के सरकारी आदेश को ध्यान से पढ़ा है, जिसका विषय है "सरकारी कर्मचारियों की पहली नियुक्ति से पहले उनके चरित्र और पिछले रिकॉर्ड का सत्यापन" और सरकारी आदेश में कहा गया है कि राज्यपाल ने पिछले सभी आदेशों को रद्द करते हुए निम्नलिखित निर्देश जारी किए हैं:

राज्य सरकार के तहत नियुक्ति के लिए उम्मीदवार के चरित्र के संबंध में नियम इस प्रकार रहेंगे:

"सीधी नियुक्ति के लिए उम्मीदवार का चरित्र ऐसा होना चाहिए कि वह उस सेवा या पद पर नियुक्ति के लिए सभी तरह से उपयुक्त हो, जिस पर उसे नियुक्त किया जाना है। इस बात से संतुष्ट होना नियुक्ति प्राधिकारी का कर्तव्य होगा।"

10. गवर्नर द्वारा जारी किए गए उपरोक्त निर्देशों से यह साफ हो जाएगा कि सरकारी कर्मचारियों की पहली नियुक्ति से पहले उनके चरित्र और पिछले रिकॉर्ड के वेरिफिकेशन का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सीधी भर्ती के लिए सरकारी कर्मचारी का चरित्र ऐसा हो कि वह जिस सेवा या पद पर नियुक्त होने वाला है, उसके लिए सभी तरह से उपयुक्त हो और यह नियुक्त करने वाले अधिकारी का कर्तव्य होगा कि वह इस बात से संतुष्ट हो जाए।

11. इस मामले के तथ्यों में, हम पाते हैं कि हालांकि धारा 324/323/504 IPC के तहत आपराधिक मामला संख्या 275/2001 अपीलकर्ता के खिलाफ जसवंत नगर पुलिस स्टेशन, जिला इटावा में दर्ज किया गया था, यह

माना जाता है कि अपीलकर्ता को अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, इटावा द्वारा 18-7-2002 के आदेश से बरी कर दिया गया था।

12. अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के 18-7-2002 के आदेश को पढ़ने से पता चलता है कि अदालत के सामने जांच किए गए एकमात्र गवाह, PW 1, श्री अखिलेश कुमार ने अदालत के सामने बयान दिया था कि 2-12-2000 को शाम 4.00 बजे बच्चे झगड़ रहे थे और उस समय अपीलकर्ता, शैलेंद्र और अजय कुमार अन्य पड़ोसियों के साथ वहां पहुंचे थे और भीड़ में से किसी ने गाली-गलौज की और झगड़े में अखिलेश कुमार घायल हो गए जब वह गिरे और उनका सिर एक ईंट के चबूतरे से टकरा गया और उन्हें आरोपी व्यक्तियों ने किसी तेज हथियार से नहीं मारा था। अपीलकर्ता के खिलाफ किसी अन्य गवाह की अनुपस्थिति में, अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अपीलकर्ता को धारा 323/34/504 IPC के तहत आरोपों से बरी कर दिया। इन तथ्यों पर, नियुक्त करने वाले अधिकारी के लिए यह मानना बिल्कुल भी संभव नहीं था कि अपीलकर्ता पुलिस कांस्टेबल के पद पर नियुक्ति के लिए उपयुक्त नहीं था।

13. अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट का 18-7-2002 का आदेश जसवंत नगर पुलिस स्टेशन की 15-1-2007 की रिपोर्ट के साथ वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को भेजा गया था। पुलिस, गाजियाबाद, लेकिन सीनियर सुपरिटेंडेंट ऑफ पुलिस, गाजियाबाद के 8-8-2007 के आदेश से ऐसा लगता है कि उन्होंने इस सवाल पर विचार नहीं किया है कि क्या अपीलकर्ता सेवा में नियुक्ति के लिए या कांस्टेबल के पद के लिए उपयुक्त था, जिस पर उसे नियुक्त किया गया था, और उन्होंने केवल यह माना है कि अपीलकर्ता का चयन अवैध और अनियमित था क्योंकि उसने वेरिफिकेशन रोल के प्रो फॉर्मा में अपने हलफनामे में यह जानकारी नहीं दी थी कि उसके खिलाफ एक आपराधिक मामला दर्ज किया गया है।

14. जैसा कि 28-4-1958 के सरकारी आदेश में दिए गए निर्देशों में कहा गया है, यह सीनियर सुपरिटेंडेंट ऑफ पुलिस, गाजियाबाद का कर्तव्य था, जो नियुक्ति प्राधिकारी थे, कि वे इस बात से संतुष्ट हों कि क्या अपीलकर्ता दबाए गए तथ्यों की प्रकृति और आपराधिक मामले की प्रकृति के संदर्भ में कांस्टेबल के पद पर नियुक्ति के लिए उपयुक्त था। यह विचार करने के बजाय कि क्या अपीलकर्ता पुरुष कांस्टेबल के पद पर नियुक्ति के लिए उपयुक्त था, नियुक्ति प्राधिकारी ने यांत्रिक रूप से यह मान लिया है कि उसका चयन अनियमित और अवैध था क्योंकि अपीलकर्ता ने भर्ती के समय तथ्यों को गलत बताते हुए एक हलफनामा दिया था।

18. अवतार सिंह बनाम यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य, (2016) 8 SCC 471 में, जो रोज़गार से जुड़े मामलों को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों को बताता है, जहाँ किसी आपराधिक मामले में पृष्ठभूमि में कोई बात शामिल है, यह माना गया है:

"**38.** हमने विभिन्न फैसलों पर ध्यान दिया है और जहाँ तक संभव हो, उन्हें समझाने और उनमें सामंजस्य बिठाने की कोशिश की है। उपरोक्त चर्चा को देखते हुए, हम अपने निष्कर्षों को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं:

38.1. किसी उम्मीदवार द्वारा नियोक्ता को दोषसिद्धि, बरी होने या गिरफ्तारी, या किसी आपराधिक मामले के लंबित होने के बारे में दी गई जानकारी, चाहे सेवा में आने से पहले या बाद में, सच होनी चाहिए और आवश्यक जानकारी को छिपाया नहीं जाना चाहिए या गलत नहीं बताया जाना चाहिए।

38.2. गलत जानकारी देने के लिए सेवा समाप्त करने या उम्मीदवारी रद्द करने का आदेश देते समय, नियोक्ता ऐसी जानकारी देते समय मामले की विशेष परिस्थितियों पर ध्यान दे सकता है, यदि कोई हो।

38.3. नियोक्ता निर्णय लेते समय कर्मचारी पर लागू सरकारी आदेशों/निर्देशों/नियमों पर विचार करेगा।

38.4. यदि किसी आपराधिक मामले में शामिल होने की जानकारी छिपाई गई है या गलत जानकारी दी गई है, जहाँ आवेदन/सत्यापन फॉर्म भरने से पहले ही दोषसिद्धि या बरी होने का फैसला हो चुका था और यह तथ्य बाद में नियोक्ता को पता चलता है, तो मामले के अनुसार निम्नलिखित में से कोई भी उपाय अपनाया जा सकता है:

38.4.1. ऐसे मामले में जो मामूली प्रकृति का है जिसमें दोषसिद्धि हुई थी, जैसे कि कम उम्र में नारे लगाना या किसी छोटे-मोटे अपराध के लिए, जिसे अगर बताया जाता तो संबंधित व्यक्ति उस पद के लिए अयोग्य नहीं होता, तो नियोक्ता अपने विवेक से, इस तरह की तथ्य को छिपाने या गलत जानकारी को गलती माफ करके नजरअंदाज कर सकता है।

38.4.2. जहाँ ऐसे मामले में दोषसिद्धि हुई है जो मामूली प्रकृति का नहीं है, तो नियोक्ता उम्मीदवारी रद्द कर सकता है या कर्मचारी की सेवा समाप्त कर सकता है।

38.4.3. यदि किसी ऐसे मामले में बरी होने का फैसला पहले ही हो चुका है जिसमें नैतिक पतन या जघन्य/गंभीर प्रकृति का अपराध शामिल है, तकनीकी आधार पर और यह पूरी तरह से बरी होने का मामला नहीं है, या उचित संदेह का लाभ दिया गया है, तो नियोक्ता सभी उपलब्ध प्रासंगिक तथ्यों पर विचार कर सकता है जैसे कि पिछली बातों पर विचार कर सकता है, और कर्मचारी को नौकरी पर रखने के बारे में उचित फैसला ले सकता है।

38.5. ऐसे मामले में जहां कर्मचारी ने पूरे हो चुके आपराधिक मामले के बारे में सच-सच बताया है, तब भी नियोक्ता को पिछली बातों पर विचार करने का अधिकार है, और उसे उम्मीदवार को नियुक्त करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता।

38.6. ऐसे मामले में जब चरित्र सत्यापन फॉर्म में मामूली प्रकृति के आपराधिक मामले के लंबित होने के संबंध में तथ्य को सच्चाई से घोषित किया गया हो, तो नियोक्ता, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, अपने विवेक से, ऐसे मामले के निर्णय के अधीन उम्मीदवार को नियुक्त कर सकता है।

38.7. कई लंबित मामलों के संबंध में जानबूझकर तथ्य छिपाने के मामले में, ऐसी झूठी जानकारी अपने आप में महत्वपूर्ण मानी जाएगी और एक नियोक्ता उम्मीदवारी रद्द करने या सेवाओं को समाप्त करने का उचित आदेश पारित कर सकता है क्योंकि जिस व्यक्ति के खिलाफ कई आपराधिक मामले लंबित थे, उसकी नियुक्ति उचित नहीं हो सकती है।

38.8. यदि आपराधिक मामला लंबित था लेकिन फॉर्म भरते समय उम्मीदवार को इसकी जानकारी नहीं थी, तब भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है और नियुक्ति प्राधिकारी अपराध की गंभीरता पर विचार करने के बाद निर्णय लेगा।

38.9. यदि कर्मचारी सेवा में स्थायी हो गया है, तो सत्यापन फॉर्म में तथ्य छिपाने या झूठी जानकारी देने के आधार पर सेवा समाप्ति/हटाने या बर्खास्तगी का आदेश पारित करने से पहले विभागीय जांच करना आवश्यक होगा।

38.10. तथ्य छिपाने या झूठी जानकारी निर्धारित करने के लिए सत्यापन/सत्यापन फॉर्म विशिष्ट होना चाहिए, अस्पष्ट नहीं। केवल वही जानकारी जिसका विशेष रूप से उल्लेख करना आवश्यक था, उसे ही प्रकट करना होगा। यदि मांगी गई जानकारी नहीं है लेकिन प्रासंगिक है और नियोक्ता को इसकी जानकारी मिलती है, तो फिटनेस के प्रश्न पर विचार करते समय इसे वस्तुनिष्ठ तरीके से माना जा सकता है। हालांकि, ऐसे मामलों में, ऐसे तथ्य के बारे में तथ्य छिपाने या झूठी जानकारी देने के आधार पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है जिसके बारे में पूछा भी नहीं गया था।

38.11. किसी व्यक्ति को तथ्य छिपाने या झूठी जानकारी देने का दोषी ठहराए जाने से पहले, तथ्य की जानकारी उसे अवश्य होनी चाहिए।

19. पैराग्राफ नंबर 38.4.2, 38.4.3, 38.4.4, 38.4.5 और 38.4.6 में बताए गए सिद्धांतों को देखने से यहां शामिल मुद्दों पर खास असर पड़ेगा। **अवतार सिंह** *(सुप्रा)* में दिए गए मार्गदर्शन के लिए भी आपराधिक मामले पर ध्यान से विचार करने की ज़रूरत है और जहां उम्मीदवार, भले ही नैतिक पतन से जुड़े अपराध में या किसी जघन्य या गंभीर अपराध में आरोपी हो, लेकिन तकनीकी आधार पर बरी हो गया हो, जैसा कि पूरी तरह बरी होने से अलग है, तो नियोक्ता उम्मीदवार के पिछले रिकॉर्ड के बारे में सभी प्रासंगिक तथ्यों पर विचार कर सकता है और इस मामले में उचित निर्णय

ले सकता है। पैराग्राफ नंबर 38.4.3 से पता चलता है कि गंभीर अपराधों के मामले में भी, जहां संदेह के फैसले से बरी किया जाता है, ऐसा नहीं है कि नियोक्ता को हमेशा उम्मीदवार को अस्वीकार करना होगा। निर्णय पर पहुंचने से पहले उम्मीदवार के पिछले रिकॉर्ड और अन्य प्रासंगिक तथ्यों पर विचार किया जाना चाहिए।

20. एक और बात जिस पर ध्यान देने की ज़रूरत है, वह है विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी वकील का यह तर्क कि यह चयन वर्ष 2015 का है और अब हम वर्ष 2025 में हैं। कई चयन हो चुके हैं और संबंधित भर्ती वर्ष का कोई पद अब उपलब्ध नहीं है। याचिकाकर्ता भी निश्चित आयु से अधिक (ओवरएज) हो गया होगा।

21. उम्र के बारे में आखिरी तर्क को केवल खारिज करने के लिए कहा गया है। याचिकाकर्ता, वर्ष 2024 में यह याचिका दायर करते समय 27 वर्ष का था। इसलिए, अगर उसे नियुक्ति दी जाती है, तो उसकी उम्र के बारे में कोई कठिनाई नहीं होगी। भर्ती के बारे में दूसरा मुद्दा, जो बहुत पहले हुआ था और संबंधित वर्ष के कोई पद अब उपलब्ध नहीं हैं, इस न्यायालय की एक बेंच के सामने **जान्हवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2024:AHC:190814-DB** के बिना रिपोर्ट किए गए फैसले में विचार के लिए आया था। डिवीजन बेंच को इसी तरह की आपत्ति का सामना करना पड़ा, जिसे उनके लॉर्डशिप ने **जान्हवी** *(सुप्रा)* में निम्नलिखित शब्दों में दर्ज किया है:

"7. हमें सिर्फ़ यह देखना है कि इस देरी के स्टेज पर याचिकाकर्ता को क्या राहत दी जा सकती है। इस संबंध में, हमने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की बात सुनी है; आयोग के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की; विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी वकील की और, हाई कोर्ट के विद्वान अधिवक्ता की। UPPSC अपनी गलती मानता है, फिर भी कमीशन के विद्वान वरिष्ठ वकील का कहना है कि UPPSC इस स्टेज पर लाचार है। न सिर्फ़ UPPCS (J) 2018 के लिए चयन प्रक्रिया पूरी होने के बाद सिफारिशें की गईं, बल्कि 2020 और 2022 में दो और परीक्षाएं भी आयोजित की गई हैं। किसी भी मामले में, UPPSC राज्य सरकार द्वारा किए गए अनुरोध पर कार्य करता है। वह अनुरोध समाप्त हो जाने के कारण, कमीशन के पास अधिकार नहीं है और वह इस स्थिति में नहीं है कि अंतिम परिणाम पर फिर से विचार करे ताकि आज याचिकाकर्ता के पक्ष में कोई सिफारिश की जा सके।"

22. यहाँ, एक बात यह है कि सिफारिशें पहले ही की जा चुकी हैं और नियुक्ति प्राधिकारी के पास हैं, जिसे नियुक्ति प्राधिकारी ने गलती से खारिज कर दिया है। पोस्ट उपलब्ध न होने और बीच में भर्ती परीक्षाएं होने के बारे में दूसरे मुद्दे का जवाब **जाह्नवी** में इस तरह दिया गया:

"19. जैसा कि सुप्रीम कोर्ट ने स्मिता श्रीवास्तव (ऊपर) में देखा है, याचिकाकर्ता को क्षतिपूर्ति राहत का हकदार पाया गया है। यहां, हम इस बात का ध्यान रखते हैं कि UPPCS (J) में नियुक्ति के लिए अधिकतम आयु 35 वर्ष है। हम इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि UPPCS (J) 2018 में चयन 2020 में कभी पूरा हुआ था। चुने गए अंतिम उम्मीदवार को "मास्टर फेक 011549" (आज आयोग द्वारा दायर हलफनामे के पैराग्राफ 4 में) बताया गया है। उसने 2-3 साल से ज़्यादा काम भी किया होगा। वह भी किसी भी हद तक दोषी नहीं था। इसलिए, समानता यह कहती है कि ऐसा कोई निर्देश जारी नहीं किया जाना चाहिए जिससे याचिकाकर्ता को समायोजित करने के लिए उसकी सेवा समाप्त हो जाए।

20. आज की तारीख में, याचिकाकर्ता की उम्र सिर्फ़ 33 साल है। आज से उसके पास अभी भी 27 साल की सक्रिय सेवा होगी। हम पाते हैं कि याचिकाकर्ता UPPCS (J) 2018 में नियुक्ति की राहत का पूरी तरह हकदार है। उचित सत्यापन के अधीन, याचिकाकर्ता को UPPCS (J), 2018 में एक उपलब्ध खाली पद पर काल्पनिक सुरक्षा और वेतन के बकाया को छोड़कर सभी परिणामी लाभों के साथ नियुक्ति दी जाए। यदि किसी कारण से इसकी आवश्यकता होती है, तो एक अतिरिक्त पद बनाया जा सकता है। याचिकाकर्ता को उसके बैच (2018) की वरिष्ठता स्थिति पर रखा जाए जैसा कि उसने प्राप्त अंकों के आधार पर अर्जित किया होगा।"

23. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि **जान्हवी** का मामला एक ऐसा मामला था, जो स्पष्ट रूप से गलत तरीके से कम अंक दिए जाने के कारण नियुक्ति से बाहर किए जाने से संबंधित था, लेकिन यह उठाए गए आपत्ति का जवाब देने के लिए प्रासंगिक है, क्योंकि **जान्हवी** के मामले में भी, राहत के अधिकार का विरोध बीते हुए समय और इस बीच लगातार भर्ती होने के कारण किया गया था। यह निश्चित रूप से राहत देने से इनकार करने का आधार नहीं है।

24. सभी परिस्थितियों को देखते हुए, हमारी राय है कि याचिकाकर्ता के उम्मीदवार की उम्मीदवारी को खारिज करने वाला विवादास्पद आदेश सही नहीं ठहराया जा सकता है और उसके मामले पर इस फैसले में दिए गए मार्गदर्शन को ध्यान में रखते हुए, पूरी तरह से फिर से विचार किया जाना चाहिए।

25. नतीजतन, यह रिट याचिका सफल होती है और **स्वीकार** की जाती है। डिप्टी कमिश्नर ऑफ पुलिस, हेडक्वार्टर, कमिश्नरेट ऑफ पुलिस, वाराणसी द्वारा पारित दिनांक 20.07.2024 का आक्षेपित आदेश इसके द्वारा **रद्द** किया जाता है। कमिश्नर ऑफ पुलिस, कमिश्नरेट, वाराणसी, डिप्टी कमिश्नर ऑफ पुलिस, हेडक्वार्टर, कमिश्नरेट, वाराणसी, एडिशनल सेक्रेटरी (भर्ती), यू.पी. पुलिस भर्ती और प्रोन्नति बोर्ड, लखनऊ को यह सुनिश्चित करने के लिए एक परमादेश जारी किया जाता है कि वे आपस में मिलकर याचिकाकर्ता के मामले पर पुलिस कांस्टेबल के पद पर नियुक्ति के लिए 2015 की भर्ती के तहत कानून के अनुसार और इस फैसले में दिए गए निर्देशों को ध्यान में रखते हुए विचार करें। संबंधित भर्ती वर्ष से पद की अनुपलब्धता याचिकाकर्ता की नियुक्ति में बाधा नहीं होगी। यदि आवश्यक हो, तो याचिकाकर्ता की नियुक्ति पर एक सुपरन्यूमेरी पद के विरुद्ध विचार किया जाएगा। आवश्यक आदेश 3 प्रतिवादियों में से पहले प्रतिवादी द्वारा इस फैसले की प्रति प्राप्त होने की तारीख से छह सप्ताह की अवधि के भीतर पारित किए जाएंगे।

26. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

27. इस आदेश की एक प्रति रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा कमिश्नर ऑफ पुलिस, कमिश्नरेट, वाराणसी, डिप्टी कमिश्नर ऑफ पुलिस, हेडक्वार्टर, कमिश्नरेट, वाराणसी, एडिशनल सेक्रेटरी (भर्ती), यू.पी. पुलिस भर्ती और प्रोन्नति बोर्ड, लखनऊ को भेजी जाए।

(2025) 5 ILRA 518

मूल अधिकारिता

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

रिट - ए संख्या 17495 सन् 2024

विनोद कुमार मिश्र ... **याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... **प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता - सिद्धार्थ खरे

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता - अमित वर्मा, अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता (सी.एस.सी.), सत्यम सिंह

सेवा कानून - अनुशासनात्मक कार्यवाही - बिना अनुमति अनुपस्थिति - सहकारी बैंक का कर्मचारी - झूठे एनडीपीएस मामले में ट्रायल के दौरान जेल में कैद - बरी होना।

फैसला: जहाँ कोई कर्मचारी कथित अनाधिकृत अनुपस्थिति की अवधि के दौरान लगातार न्यायिक हिरासत में था, वहाँ कदाचार का आरोप नहीं टिक सकता। कर्मचारी की जानकारी में होने के बावजूद, हिरासत की बात को नज़रअंदाज़ करते हुए उसके आवासीय पते पर नोटिस भेजना कोई वैध सेवा नहीं है और यह पूरी कार्यवाही को अमान्य कर देता है। इसके अलावा, आपराधिक मामले में सम्मानजनक बरी होने के बावजूद, ऐसी अनुपस्थिति के लिए सेवा से बर्खास्त करना अनुचित, मनमाना और संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन है। बर्खास्तगी का आदेश रद्द किया गया। याचिकाकर्ता को निरंतरता और वरिष्ठता के साथ बहाल करने का निर्देश दिया गया; उसे बहाली तक हिरासत की अवधि के लिए 50% पिछले वेतन का हकदार माना गया।

रिट याचिका स्वीकार की गई।

चर्चा किए गए केस कानून:

कृष्णाकांत बी. परमार बनाम यू.ओ.आई. और अन्य, (2012) 3 SCC 178।

<u>माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर</u> <u>द्वारा दिया गया</u>

1. यह रिट याचिका सचिव/मुख्य कार्यकारी अधिकारी, आगरा जिला सहकारी बैंक लिमिटेड, महात्मा गांधी मार्ग, आगरा के दिनांक 28.12.2023 के आदेश के खिलाफ निर्देशित है, जिसमें अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के बाद याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था।

2. आगरा जिला सहकारी बैंक लिमिटेड, महात्मा गांधी मार्ग, आगरा (संक्षेप में, 'बैंक') उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1965 (संक्षेप में, 'अधिनियम') और इसके नियमों के तहत पंजीकृत एक सहकारी समिति है। बैंक के कर्मचारियों की सेवा की शर्तें उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियम, 1975 (संक्षेप में, '1975 के विनियम') के प्रावधानों द्वारा शासित होती हैं। याचिकाकर्ता को 27.01.1996 को सहयोगी के पद पर नियुक्त किया गया था। तब से, वह लगातार बैंक की सेवा में बने हुए हैं। 28 अप्रैल, 2015 को, याचिकाकर्ता को क्लर्क-सह-कैशियर के रूप में पदोन्नत किया गया था। उनका कहना है कि उनका काम और आचरण संतोषजनक और बेदाग रहा है। 5 सितंबर, 2021 को, जब याचिकाकर्ता हिमाचल प्रदेश राज्य के कुल्लू में यात्रा कर रहा था, तो उसे नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो (संक्षेप में, 'एनसीबी') द्वारा नारकोटिक ड्रग्स एंड साइकोट्रोपिक सब्सटेंस एक्ट, 1985 (संक्षेप में, 'एनडीपीएस एक्ट') की धारा 8, 20 और 29 के तहत एक आपराधिक मामले में फंसाया गया था। उसे गिरफ्तार कर लिया गया और सुनवाई लंबित रहने तक न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया।

3. याचिकाकर्ता के खिलाफ एनडीपीएस अधिनियम की धारा 20 और 29 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए 2021 के अपराध संख्या 58 के रूप में मामला दर्ज किया गया था। विशेष न्यायाधीश-I, कुल्लू, हिमाचल प्रदेश द्वारा 2022 के वाद नंबर 14 (24) के माध्यम से उन पर मुकदमा चलाया गया और 28.06.2024 के फैसले और आदेश द्वारा बरी कर दिया गया। वह 05.09.2021 से 28.06.2024 तक हिमाचल प्रदेश के कुल्लू में कैद रहे। विशेष न्यायाधीश-I, कुल्लू ने याचिकाकर्ता को बरी करते हुए एक निष्कर्ष दर्ज किया कि अभियोजन पक्ष याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप स्थापित करने में पूरी तरह से विफल रहा है, और 'अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में अत्यधिक विसंगत साक्ष्य' के आधार पर अपराध की खोज को वापस करना अत्यधिक असुरक्षित होगा। याचिकाकर्ता को जेल में रहने के दौरान दिल का दौरा पड़ा और उसे डॉ. राजेंद्र प्रसाद राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय और चिकित्सालय, जिला टांडा में भर्ती कराया गया। अभी भी जेल में रहते हुए, याचिकाकर्ता को बैंक द्वारा सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था, जिसके बारे में उसे उसके परिवार के सदस्यों के माध्यम से उसके आवास पर गुप्त रूप से सूचित किया गया था। हालांकि, आदेश दिए जाने के समय याचिकाकर्ता को उसकी चिकित्सा स्थिति के कारण जानकारी नहीं दी गई थी। जेल से रिहा होने पर याचिकाकर्ता ने बर्खास्तगी के आदेश के संबंध में पूछताछ की। उन्होंने सेवा से बर्खास्तगी के आदेश को चुनौती देते हुए वर्तमान रिट याचिका दायर की है।

4. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि जब वह जेल में था, तो बैंक के अधिकारियों ने उसकी अनुपस्थिति को अनधिकृत मानते हुए दिनांक 28.09.2021 और 06.12.2021 को नोटिस जारी किए। बाद में, ड्यूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति के आधार पर, याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई और बैंक के उप

महाप्रबंधक (प्रशासन) ने जांच अधिकारी नियुक्त किया। जांच अधिकारी ने दिनांक 14.02.2022, 08.03.2022, 15.03.2022 और 18.06.2022 को नोटिस जारी किए, जिसमें याचिकाकर्ता को विभागीय जांच में भाग लेने की आवश्यकता थी। ऐसा प्रतीत होता है कि 21.12.2021 को बैंक की प्रबंधन समिति द्वारा संकल्प संख्या 9 और एक जांच अधिकारी द्वारा नामित एक जांच अधिकारी के माध्यम से उनके खिलाफ विभागीय कार्यवाही शुरू करने का निर्णय लिया गया था।

5. अन्वेषण अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता को दिनांक 18.06.2022 का आरोपपत्र निर्गत किया गया, जिसमें उसे उत्तर प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया। अन्वेषण अधिकारी ने दिनांक 14.02.2022, 08.03.2022 तथा 15.03.2022 के नोटिस जारी कर याचिकाकर्ता को विभागीय जांच में सम्मिलित होने का निर्देश दिया, किन्तु याचिकाकर्ता उपस्थित नहीं हुआ। अन्वेषण अधिकारी ने अपनी जांच प्रतिवेदन दिनांक 18.06.2022 को प्रस्तुत किया। प्रबन्ध समिति ने अपने प्रस्ताव संख्या 15 दिनांक 17.01.2023 द्वारा याचिकाकर्ता की अनधिकृत अनुपस्थिति के संबंध में समाचार प्रकाशित करने का निर्णय लिया। फलस्वरूप, दिनांक 18.05.2023 को समाचार पत्र 'हिन्दुस्तान' में एक प्रेस विज्ञप्ति प्रकाशित की गई, जिसमें याचिकाकर्ता को उपस्थित होने का निर्देश दिया गया, किन्तु वह उपस्थित नहीं हुआ। तत्पश्चात्, प्रबन्ध समिति ने प्रस्ताव संख्या 9 दिनांक 07.07.2023 द्वारा याचिकाकर्ता की सेवाएँ समाप्त करने का निर्णय लिया तथा 1975 के विनियमों के अनुसार प्रमुख दण्ड के पूर्व अनुमोदन हेतु अभिलेख उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड (संक्षेप में 'बोर्ड') को प्रेषित किए। बोर्ड ने अपने आदेश दिनांक 22.12.2023 द्वारा अनुमोदन प्रदान किया। तत्पश्चात्, याचिकाकर्ता को सेवा से पृथक करने का आरोपित आदेश दिनांक 28.12.2023 को पारित किया गया, जिसके संबंध में प्रतिवादीगण का कथन है कि उक्त आदेश पूर्ण अवसर प्रदान किए जाने के उपरांत पारित किया गया।

6. दिनांक 28.12.2023 के आक्षेपित आदेश से व्यथित होकर, वर्तमान रिट याचिका संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर की गई है।

7. इस न्यायालय द्वारा दिनांक 11.11.2024 के आदेश के माध्यम से प्रस्ताव का नोटिस जारी किया गया था। अनुपालन में, प्रतिवादी संख्या 3 की ओर से श्री सत्यम सिंह, विद्वान अधिवक्ता द्वारा एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया था और प्रतिवादी संख्या 4, बोर्ड की ओर से श्री अमित वर्मा, एडवोकेट द्वारा एक अन्य जवाबी हलफनामा दायर किया गया था।

8. दिनांक 10.12.2024 को जब यह याचिका विचारार्थ प्रस्तुत हुई, तब पक्षकारों द्वारा प्रत्युत्तर-हलफनामे विनिमयित हो चुके थे। याचिका को सुनवाई हेतु स्वीकृत किया गया और तत्क्षण सुनवाई प्रारंभ हुई। निर्णय सुरक्षित रखा गया।

9. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे को सुना गया; प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री सत्यम सिंह के पक्ष में उपस्थित अधिवक्ता सुश्री शिवांगी सिंह को तथा प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से माननीय स्थायी अधिवक्ता श्री शरद चन्द्र उपाध्याय को सुना गया।

10. यह ऐसा प्रकरण है जिसमें याचिकाकर्ता को अपने विरुद्ध आरोपों का प्रत्युत्तर देने का तनिक भी अवसर प्रदान नहीं किया गया। अवसर प्रदान किया जाना तभी प्रभावी माना जाता है जब कार्यवाही के विभिन्न चरणों पर दिया गया अवसर कर्मचारी के संज्ञान में आए तथा उस समय की उसकी परिस्थितियों के अनुसार वह स्वयं का प्रतिरक्षण करने की स्थिति में हो। यदि किसी अनुशासनात्मक कार्यवाही में आरोपों का उत्तर देने अथवा कार्यवाही प्रारंभ करने से पूर्व सूचना अथवा नोटिस जारी किया जाए, किन्तु वह किसी कारणवश कर्मचारी तक संप्रेषित न हो सके, तो ऐसा नोटिस या सूचना वैध अवसर नहीं मानी जा सकती। यहां तक कि यदि उक्त सूचना या नोटिस कर्मचारी को प्राप्त भी हो जाए, परन्तु वह अपनी परिस्थितियोंवश उपस्थित होकर उत्तर देने की स्थिति में न हो, तब भी यह नहीं कहा जा सकता कि उसे यथार्थ अवसर प्रदान किया गया है।

11. यदि किसी रोगग्रस्त व्यक्ति का उदाहरण लिया जाए, जो चिकित्सालय में भर्ती होकर कोमा की अवस्था में है, तो क्या यह कहा जा सकता है कि उसके विरुद्ध प्रस्तावित विभागीय जांच हेतु कारण बताओ नोटिस या आरोपपत्र की सेवा उसे अवसर प्रदान करना है? उपर्युक्त उदाहरण में, भले ही नोटिस शारीरिक रूप से रोगी के शय्या के समीप पहुंचा दिया गया हो, वह उसके संज्ञान में नहीं है। अतः इसे अवसर नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार, यदि किसी कर्मचारी को उसके निवास पर कारण बताओ नोटिस या आरोपपत्र का उत्तर देने हेतु नोटिस प्रेषित किया गया हो, परन्तु वह व्यक्ति किसी असामाजिक तत्वों द्वारा अपहृत कर बंधक बना लिया गया हो, तो क्या यह कहा जा सकता है कि उसे कार्यवाही की सूचना प्राप्त हुई है? इसका उत्तर निश्चय ही नकारात्मक है।

12. उपर्युक्त चरम उदाहरणों से इतर, वर्तमान वाद में स्थिति उनसे भिन्न नहीं है, सिवाय एक पहलू के। यह तथ्य कि आरोप का विषयवस्तु प्रत्यक्षतः याचिकाकर्ता की विचाराधीन अवस्था में कारावास से संबद्ध है, एक ऐसी आकस्मिक परिस्थिति उत्पन्न करता है, जिसमें याचिकाकर्ता को उसके संबंधियों के माध्यम से अथवा समाचार पत्रों में प्रकाशन द्वारा प्रेषित नोटिसों की विधिवत सेवा प्राप्त मानी नहीं जा सकती। भले ही यह कहा जाए कि याचिकाकर्ता के संबंधियों द्वारा कारागार में उससे भेंट के माध्यम से नोटिसों की सेवा अप्रत्यक्ष रूप से संपन्न हुई हो, तथापि कारागार में बंद व्यक्ति में यह सामर्थ्य नहीं होती कि वह अग्रिम जांच चरण में नोटिसों का उत्तर देकर, अथवा आरोपपत्र के प्रत्युत्तर में साक्ष्य प्रस्तुत कर, अपना प्रतिरक्षण कर सके। संभवतः, याचिकाकर्ता के लिए, कारागार में रहते हुए, इन कृत्यों का संपादन असंभव था, भले ही यह मान भी लिया जाए कि उसे अपने गृह पर निवासरत संबंधियों के माध्यम से कार्यवाही की सूचना प्राप्त थी। याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप, जैसा कि वे विवादित आदेश से प्रकट होते हैं, दो हैं, अर्थात् –

आरोप सं0 -1 – आप दिनांक 06.09.2021 से बिना किसी सूचना के बैंक से पलायित चल रहे हैं एवं बैंक मुख्यालय के पत्रांक 2362-64/प्रशासन /2021-22 दिनांक 28.09.2021 व पत्रांक 3330-32/प्रशासन /2021-22 दिनांक 06.12.2021 के द्वारा आपको शाखा–फतेहपुर सीकरी पर योगदान करने हेतु निर्देशित किये जाने पर भी आपके द्वारा शाखा पर योगदान नहीं किया गया जो उत्तर प्रदेश सहकारीकर्मचारी सेवा विनियमावली, 1975 के प्रविधानों का उल्लंघन है।

आरोप सं0 -2 – मुख्यालय के आदेश पत्रांक 3708-11/सचिव कक्ष /2021-22, दिनांक 23.12.2021 के क्रम में आपको कार्यालय पत्रांक 4248-49/प्रशासन /2021-22 दिनांक 14.02.2022, 4603-04/प्रशासन /2021-22 दिनांक 08.03.2022 एवं 4759-61/प्रशासन /2021-22 दिनांक 15.03.2022 जारी किये गये जिनमें क्रमशः आपको दिनांक 24.02.2022, 14.03.2022 तथा 25.03.2022 को पूर्वाह्न 11:00 बजे बैंक मुख्यालय पर उपस्थित होकर अपना पक्ष प्रस्तुत करने हेतु निर्देशित किया गया, परन्तु आप उपरोक्त तिथियों में कार्यालय में उपस्थित नहीं हुए।

13. याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि प्रथम आरोप में यह आरोपित किया गया है कि याचिकाकर्ता दिनांक 06.09.2021 से शाखा फतेहपुर सीकरी से बिना अनुमति के अपने कर्तव्यों से अनुपस्थित रहा तथा दिनांक 06.12.2021 के निर्देशों के बावजूद उसने कार्यभार ग्रहण नहीं किया। दूसरा आरोप यह है कि दिनांक 14.02.2022, 08.03.2022 तथा 15.03.2022 को जारी नोटिसों के बावजूद, जिनमें याचिकाकर्ता को क्रमशः दिनांक 24.02.2022, 14.03.2022 तथा 25.03.2022 को अपने कार्य पर उपस्थित होने हेतु निर्देशित किया गया था, उसने कार्यभार ग्रहण नहीं किया। दिनांक 28.09.2021, 06.12.2021 तथा उपर्युक्त बाद की तिथियों 14.02.2022, 08.03.2022 एवं 15.03.2022 के नोटिसों का अवलोकन करने पर यह भी स्पष्ट होता है कि ये सभी नोटिस याचिकाकर्ता के निम्नलिखित आवासीय पते पर प्रेषित किए गए थे: श्री विनोद कुमार मिश्र, लि0/कैशियर, आगरा जिला सहकारी बैंक लिमिटेड, शाखा फतेहपुर सीकरी, पता - ई-165, बेलनगंज, कछौंदा बाजार, आगरा।

14. याचिकाकर्ता, इस दौरान हिमाचल प्रदेश राज्य की एक जेल में कैद था, एनसीबी द्वारा उसके खिलाफ लाए गए एनडीपीएस अधिनियम के तहत आपराधिक मामले में मुकदमे का सामना कर रहा था। यह समझने में विफल रहता है कि याचिकाकर्ता को उसके आवासीय पते पर नोटिस देना कोई अच्छी सेवा कैसे होगी। रिट याचिका के पैराग्राफ नंबर 21 में, इस आशय का एक विशिष्ट मामला है कि याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी का तथ्य याचिकाकर्ता के ज्ञान में था (प्रतिवादी के लिए एक स्पष्ट गलत संदर्भ) और आगे यह दावा किया गया है कि याचिकाकर्ता के परिवार के सदस्यों द्वारा बैंक के अधिकारियों को इस तथ्य की सूचना विधिवत दी गई थी। रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 21 का जवाब देते हुए, जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ नंबर 10 के माध्यम से, जहां रिट याचिका के पैराग्राफ नंबर 18 से 32 का जवाब दिया गया है, इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है कि प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता के परिवार के सदस्यों द्वारा सूचित किया गया था कि उसे गिरफ्तार कर लिया गया है, इससे इनकार नहीं किया गया है। इसलिए, रिट याचिका के पैराग्राफ नंबर 21 में किए गए दावे,

जवाब न देने के कारण सही माने जाते हैं। यदि प्रतिवादियों को इस तथ्य के बारे में पता था कि याचिकाकर्ता को गिरफ्तार कर लिया गया था, तो उसकी गिरफ्तारी की परिस्थितियों और कैद के स्थान का पता लगाना उनका कर्तव्य था। कार्यवाही के पूर्व-जांच चरण में याचिकाकर्ता को जो नोटिस भेजे गए थे, या जो उसे ड्यूटी में शामिल होने के लिए कह रहे थे या उनके द्वारा उनके आवासीय पते पर भेजे गए आरोप पत्र, सभी याचिकाकर्ता को जेल के जेलर के माध्यम से दिए जाने चाहिए थे, जहां वह कैद था। इसके बाद उसे जेल अधिकारियों की अनुमति से अवसर दिया जाना चाहिए था, यदि उनके नियमों की अनुमति होती है और ऐसी अनुमति देने के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जाता है। यदि नहीं, तो याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही को उचित समय के लिए स्थगित कर दिया जाना चाहिए था। याचिकाकर्ता के खिलाफ विभागीय कार्यवाही, जिसमें सभी सूचना देना, चार्जशीट देना और कारण बताओ नोटिस देना शामिल है, ऐसा लगता है कि इस बात को नज़रअंदाज़ करते हुए की गई कि याचिकाकर्ता ट्रायल के दौरान हिमाचल प्रदेश की जेल में कैद था।

15. इसलिए, याचिकाकर्ता पर जांच में शामिल होने और अपना बचाव करने के लिए नोटिस का जवाब न देने का आरोप लगाना, मामले को देखने का एक ऐसा तरीका है जो साफ तौर पर गलत है।

16. उल्लेखित तथ्यों के अतिरिक्त, आरोपों के गुण-दोष के आधार पर भी, याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाये गये दोनों आरोपों का संपूर्ण स्वरूप उसके *06.09.2021 से लेकर उसके विरुद्ध हुई विभागीय जाँच के निष्कर्ष तक के अनधिकृत अनुपस्थिति* से सम्बन्धित है, जिसकी रिपोर्ट को बैंक की प्रबन्ध समिति की बैठक दिनांक 17.01.2023 में प्रथम बार विचारार्थ लिया गया। याचिकाकर्ता को 28.06.2024 को कारागार से रिहा किया गया। बर्खास्तगी का आदेश 28.12.2023 को पारित किया गया था।आरोप-पत्र में निहित आरोप, जिनमें याचिकाकर्ता को अनधिकृत अनुपस्थित बताया गया है, उस स्थिति में जब न्यायिक अभिलेख यह प्रदर्शित करते हैं कि वह 06.09.2021 से लेकर 28.06.2024 तक, अर्थात् अपने अभियुक्त-निर्वासन तक, विचाराधीन मुकदमे में *न्यायिक अभिरक्षा* में था, अनधिकृत अनुपस्थिति वाले आरोप की *मूल नींव को ही ध्वस्त कर देते हैं*। जाँच अधिकारी तथा अनुशासनाधिकारी द्वारा पूरे अनुपस्थिति काल के दौरान याचिकाकर्ता के न्यायिक अभिरक्षा में होने के तथ्य की उपेक्षा करते हुए यह मान लेना कि वह ड्यूटी पर उपस्थित हो सकता था, जाँच अधिकारी तथा अनुशासनाधिकारी–दोनों के निष्कर्षों को *विकृत* बनाता है।

17. इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है कि याचिकाकर्ता जेल में था और बाद में बरी कर दिया गया था। आपराधिक आरोपों पर मुकदमे की घटना अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसके संबंध में याचिकाकर्ता ने 06.09.2021 से 28.06.2024 तक जेल में समय बिताया। यह केवल मुकदमे की घटना नहीं है जो उनके पक्ष में बरी होने के फैसले में समाप्त हुई, बल्कि विद्वान विशेष न्यायाधीश के निष्कर्षों ने उन्हें बरी कर दिया। माननीय विशेष न्यायाधीश के प्रासंगिक निष्कर्ष, जो उनके 28.06.2024 के निर्णय में, वाद संख्या 14 (24) सन् 2022, एन.सी.बी. बनाम प्रशांत कुमार @ पंकज एवं अन्य में उल्लिखित हैं, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ये इस प्रकार हैं:
"अंतिम विश्लेषण में, एकमात्र निष्कर्ष जो मौजूदा मामले में निकाला जा सकता है, वह यह है कि अभियोजन पक्ष आरोपी के खिलाफ आरोप स्थापित करने में पूरी तरह से विफल रहा है, जैसा कि आरोपपत्र में दर्शाया गया

है, और अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में अत्यधिक विसंगत सबूतों के आधार पर अभियुक्त के खिलाफ अपराध के निष्कर्षों को वापस करना बेहद असुरक्षित होगा।"

18. याचिकाकर्ता का जेल में बिताया गया समय साफ़ तौर पर NCB की करतूत थी, जिसने उस पर पूरी तरह से झूठे और मनगढ़ंत आरोप लगाए थे। अभियोजन पक्ष के मामले को माननीय विशेष न्यायाधीश ने उस पूरी अवमानना के साथ खारिज कर दिया, जिसके वह हकदार था। याचिकाकर्ता पर ऐसे आरोपों में मुकदमा चलाया गया, जो पूरी तरह से मनगढ़ंत पाए गए और साबित नहीं हुए, जिसमें याचिकाकर्ता के साथ कानून के हाथों अन्याय का तत्व शामिल है। ऐसी परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को किसी अन्य आरोप के बजाय, केवल अनधिकृत अनुपस्थिति के आरोप में, उस अवधि के लिए सेवा से बर्खास्त करने की सज़ा देना, जब वह इन आरोपों के कारण जेल में था, न केवल प्रतिवादियों की ओर से एक अत्यंत विकृत और असंवेदनशील दृष्टिकोण का प्रकटीकरण है, बल्कि उसके नियोक्ता, बैंक द्वारा याचिकाकर्ता के साथ किए गए सबसे अनुचित और मनमाने व्यवहार का एक उदाहरण भी है। यह तथ्य कि विवादित आदेश में याचिकाकर्ता के जेल में रहने की बात पर ध्यान नहीं दिया गया, जबकि उसे उस मामले में सम्मानपूर्वक बरी कर दिया गया था, नियोक्ता के एक प्रेरित दृष्टिकोण को दर्शाता है, जिससे वास्तव में, दुर्भावना का निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए। यह तथ्य कि याचिकाकर्ता आपराधिक आरोपों का सामना कर रहा था और हिमाचल प्रदेश में जेल में बंद था, इसे ऐसा तथ्य नहीं माना जा सकता जो नियोक्ता की जानकारी में नहीं था। वास्तव में, प्रतिवादियों ने कभी नहीं कहा कि यह उनकी जानकारी में नहीं था। उन्होंने इसे नज़रअंदाज़ करना चुना, जबकि इस तथ्य का उल्लेख रिट याचिका में किया गया था और परिवार के सदस्यों द्वारा उनके संज्ञान में लाया गया था। यह तथ्य कि याचिकाकर्ता संबंधित अवधि के दौरान जेल में था, इस तथ्य की अनदेखी स्पष्ट रूप से जानबूझकर की गई है, जो प्रतिवादियों की ओर से दुर्भावना को दर्शाती है।

19. ऐसे हालात में, जो यहाँ के हालात से कहीं ज़्यादा अच्छे थे, सर्वोच्च न्यायालय के जजों ने **कृष्णाकांत बी. परमार बनाम भारत संघ और अन्य, (2012) 3 एससीसी 178** मामले में एक ऐसे कर्मचारी का मामला देखा, जिसे लगातार तीन बार ड्यूटी से बिना बताए गैर-हाज़िर रहने के लिए सज़ा दी गई थी, और उसे ड्यूटी के प्रति समर्पण न रखने और सरकारी कर्मचारी के लिए अशोभनीय व्यवहार करने का दोषी ठहराया गया था। उस मामले में कर्मचारी का बचाव यह था कि जिस समय के लिए उस पर ड्यूटी से बिना बताए गैर-हाज़िर रहने का आरोप लगाया गया था, उस दौरान उसे प्रतिष्ठान के एक विशेष अधिकारी द्वारा उपस्थिति पंजिका पर हस्ताक्षर करने और अपने दायित्वों का निर्वहन करने से रोका गया था । उसने इसके बारे में सबूत पेश किए, जिन पर जांच अधिकारी, अनुशासनात्मक प्राधिकरण या अपीलीय प्राधिकरण ने विचार नहीं किया। बिना बताए गैर-हाज़िर रहने के आरोप पर, कोर्ट ने कहा कि आरोप तब तक साबित नहीं माना जा सकता, जब तक यह साबित न हो जाए कि गैर-हाज़िरी जानबूझकर थी या मजबूर करने वाली परिस्थितियों का नतीजा नहीं थी। **कृष्णाकांत बी. परमार (ऊपर)** मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने यह फैसला सुनाया: "16. अपीलकर्ता के अनधिकृत अनुपस्थिति के मामले में अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने आरोप लगाया कि वह कर्तव्य के प्रति समर्पण बनाए रखने में विफल रहा और उसका व्यवहार सरकारी कर्मचारी के लिए अशोभनीय था। यह सवाल कि क्या "ड्यूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति" कर्तव्य के प्रति समर्पण में विफलता या सरकारी कर्मचारी के लिए अशोभनीय व्यवहार के बराबर है, इस सवाल का फैसला किए बिना तय नहीं किया जा सकता कि अनुपस्थिति जानबूझकर थी या मजबूर करने वाली परिस्थितियों के कारण थी।

17. अगर गैर-हाज़िरी ऐसी मजबूर करने वाली परिस्थितियों के कारण है जिनमें रिपोर्ट करना या ड्यूटी करना संभव नहीं था, तो ऐसी गैर-हाज़िरी को जानबूझकर की गई गैर-हाज़िरी नहीं माना जा सकता। बिना किसी आवेदन या पहले से इजाज़त के ड्यूटी से गैर-हाज़िर रहना अनाधिकृत गैर-हाज़िरी हो सकती है, लेकिन इसका मतलब हमेशा जानबूझकर की गई गैर-हाज़िरी नहीं होता। ऐसी कई स्थितियाँ हो सकती हैं जिनके कारण कोई कर्मचारी ड्यूटी से गैर-हाज़िर रह सकता है, जिसमें उसके नियंत्रण से बाहर की मजबूर करने वाली परिस्थितियाँ शामिल हैं जैसे बीमारी, दुर्घटना, अस्पताल में भर्ती होना, वगैरह, लेकिन ऐसे मामले में कर्मचारी को ड्यूटी के प्रति लापरवाही या सरकारी कर्मचारी के तौर पर गलत व्यवहार का दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

18. किसी विभागीय कार्यवाही में, यदि कर्तव्य से अनधिकृत अनुपस्थिति का आरोप लगाया जाता है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए यह सिद्ध करना आवश्यक होता है कि अनुपस्थिति स्वेच्छिक थी; ऐसे निष्कर्ष के अभाव में, अनुपस्थिति को कदाचार नहीं माना जाएगा।

19. इस मामले में जांच अधिकारी ने सबूतों को देखने के बाद यह तो माना कि अपीलकर्ता बिना इजाज़त के ड्यूटी से गैर-हाज़िर था, लेकिन यह साबित नहीं कर पाया कि यह गैर-हाज़िरी जानबूझकर थी; अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी भी इस बात को समझने में नाकाम रहे और गलत तरीके से अपीलकर्ता को दोषी ठहराया।

21. वर्तमान मामले में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी यह सिद्ध करने में असफल रहा कि कर्तव्य से अनुपस्थिति स्वेच्छिक थी; न ही जाँच अधिकारी और न ही अपीलीय प्राधिकारी द्वारा ऐसा कोई निष्कर्ष दिया गया है। यद्यपि अपीलकर्ता ने यह विशिष्ट प्रतिरक्षा ली थी कि उसे ड्यूटी पर उपस्थित होने से श्री पी. वेंकटेश्वरलु, डी.सी.आई.ओ., पालनपुर द्वारा रोका गया, जिन्होंने उसे उपस्थिति पंजिका पर हस्ताक्षर करने से भी रोका, और इस प्रतिरक्षा के समर्थन में 11 प्रतिरक्षा प्रदर्श अभिलेख पर लाए, जिनमें 3-10-1995 का उसका पत्र, जो श्री के.पी. जैन, जे.डी., एस.आई.बी., अहमदाबाद को संबोधित था, 29-9-1995 के टेलीफोन कॉल्स के एसटीडी/पीसीओ कार्यालय से प्राप्त रसीदें आदि सम्मिलित हैं, किंतु ऐसी प्रतिरक्षा और साक्ष्यों की उपेक्षा की गई, और अप्रासंगिक तथ्यों तथा अनुमान के आधार पर जाँच अधिकारी ने अपीलकर्ता को दोषी ठहराया।

20 कृष्णकांत बी. परमार मामले में, माननीय न्यायाधीशों ने अनुशासनात्मक प्राधिकरण, अपीलीय प्राधिकरण, केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए आदेशों को रद्द कर दिया और याचिकाकर्ता को बहाल कर दिया। हालांकि, उन्होंने टिप्पणी की कि इस मामले को आगे की कार्रवाई के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी को वापस नहीं भेजा जा रहा है, यह ध्यान में रखते हुए कि आरोपी अधिकारी को 1996 में शुरू हुई कार्यवाही के बाद से बहुत कुछ झेलना पड़ा है। अब, **कृष्णाकांत बी. परमार** एक ऐसा मामला था जहाँ जाँच प्रक्रिया में गलतियाँ करके या गलत तरीका अपनाकर की गई थी, जहाँ जाँच अधिकारी और अनुशासनात्मक प्राधिकारी याचिकाकर्ता के ड्यूटी से अनुपस्थिति के बारे में सबूतों पर विचार करने और यह पता लगाने में विफल रहे कि अनुपस्थिति जानबूझकर थी या नहीं। अगर कर्मचारी के लिए हालात बहुत मुश्किल नहीं होते, तो शायद मामले को दोबारा सोचने के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी को भेजना पड़ता, जिसे न्यायाधीशों ने ध्यान में रखकर कर्मचारी के खिलाफ सभी कार्रवाई खत्म कर दी।

21. यह मामला ऐसा है, जो रिकॉर्ड पर मौजूद तथ्यों के आधार पर, जिन्हें प्रतिवादियों ने स्वीकार किया है, यह दिखाता है कि तय समय के लिए ड्यूटी से बिना इजाज़त गैर-हाज़िर रहने और फिर ड्यूटी पर वापस आने के लिए जारी किए गए नोटिस का जवाब न देने का एकमात्र आरोप, याचिकाकर्ता के इस अकाट्य बचाव से झूठा साबित होता है कि जिस समय के लिए उस पर बिना इजाज़त गैर-हाज़िर रहने का आरोप लगाया गया था, उस दौरान वह एक झूठे आरोप में न्यायिक हिरासत में था। ट्रायल के बाद उसे सम्मानपूर्वक बरी कर दिया गया, जिसमें अभियोजन पक्ष को पूरी तरह से फर्जी पाया गया। इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को जानबूझकर और बिना इजाज़त गैर-हाज़िर रहने और सूचना मिलने के बावजूद ड्यूटी पर रिपोर्ट न करने के आरोप में सज़ा देना, किसी भी तरह से जांच के लायक आरोप नहीं माना जा सकता। याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए थी। इस कोर्ट में प्रतिवादियों द्वारा दायर जवाब में ऐसा कोई मामला नहीं है, जो याचिकाकर्ता के हिस्से पर किसी भी दोषी आचरण को दिखाए, जिसके लिए अभी भी विभागीय जांच की जांच की आवश्यकता हो सकती है, शायद, कम या अलग आरोप पर। हमारा मानना है कि याचिकाकर्ता ने काफी कुछ सहा है और जेल में रहने के कारण बिना इजाज़त गैर-हाज़िर रहने से उत्पन्न होने वाली आगे की विभागीय कार्यवाही की अनिश्चितताओं के सामने उसे उजागर करना पूरी तरह से मनमाना और संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के तहत उसके अधिकारों का उल्लंघन होगा।

22. इस मामले में एक और सवाल जिस पर विचार करने की ज़रूरत है, वह यह है कि जिस समय तक याचिकाकर्ता नौकरी से बाहर रहा है, क्या उसे पूरा वेतन मिलना चाहिए, या उसका कुछ हिस्सा, या बिल्कुल भी नहीं। याचिकाकर्ता ने, किसी भी कारण से, 06.09.2021 से 28.06.2024 तक प्रतिवादियों की सेवा नहीं की है। और न ही वह इस दौरान जेल में होने के कारण उनकी सेवा कर सकता था, हालांकि इसमें उसकी कोई गलती नहीं थी, जैसा कि अब माननीय विशेष न्यायाधीश के फैसले से साबित हो गया है। सभी परिस्थितियों को देखते हुए, यह उचित होगा कि उसे उस अवधि के लिए 50% वेतन दिया जाए, जिसके लिए वह जेल में रहने और फिर नौकरी से निकाले जाने के कारण ड्यूटी से अनुपस्थित था।

23. **उपर्युक्त परिस्थितियों में, यह रिट याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। बैंक के सचिव/मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 28.12.2023 का विवादित आदेश रद्द किया जाता है। याचिकाकर्ता को तत्क्षण सेवा में बहाल किया जाएगा, सेवा की निरंतरता और वरिष्ठता के परिणामस्वरूप लाभों सहित। उसे उसकी वर्तमान वेतनराशि तत्क्षण भुगतान की जाएगी। याचिकाकर्ता उस तिथि से, जब से उसकी वेतन-भत्तियाँ अदा नहीं की गई हैं, सेवा में पुनर्बहाली तक, अपनी वेतन-भत्तियों के 50% प्राप्त करने का अधिकारी होगा।**

24. लागत के रूप में कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

25. **रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा इस निर्णय की एक प्रति सचिव/मुख्य कार्यकारी अधिकारी, आगरा जिला सहकारी बैंक लिमिटेड, महात्मा गांधी मार्ग, आगरा; अध्यक्ष, आगरा जिला सहकारी बैंक लिमिटेड, महात्मा गांधी मार्ग, आगरा; तथा सचिव, उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड, लखनऊ को प्रेषित की जाएगी।**

(2025) 5 ILRA 525

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

याचिका - ए संख्या 46867 सन् 2014

सुरेश चन्द्र शुक्ला ... **याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... **प्रतिवादीगण**

उपस्थिति :-

याचिकाकर्ता की ओर से : श्री श्रीनाथ द्विवेदी, अधिवक्ता

प्रतिवादीगण की ओर से : श्री हर्ष वर्धन गुप्ता, अधिवक्ता - प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3 के लिए, श्री शरद चन्द्र उपाध्याय, स्थायी अधिवक्ता - प्रतिवादी संख्या 1 के लिए

सेवा कानून - पेंशन - यू.पी. नगर पालिका गैर-केंद्रीकृत सेवाएँ सेवानिवृत्ति लाभ विनियम, 1984 - यू.पी. पेंशन के लिए अर्हक सेवा और सत्यापन अधिनियम, 2021 - पेंशन के लिए अर्हक सेवा की ओर दैनिक वेतन भोगी के रूप में दी गई सेवा की गणना। याचिकाकर्ता, जिसे 1985 में नगर निगम में दैनिक वेतन भोगी के रूप में नियुक्त किया गया था, को 1986 में अवैध रूप से बर्खास्त कर दिया गया था। श्रम न्यायालय के फैसले से बर्खास्तगी रद्द कर दी गई और उसकी सेवाओं को निरंतर मानने का निर्देश दिया गया। उसे बहाल किया गया, बाद में 2006 में नियमित किया गया, और 2019 में सेवानिवृत्त हो गया। उसका यह दावा कि 1985 से पूरी सेवा को वरिष्ठता, पेंशन और सेवानिवृत्ति लाभों के लिए गिना जाए, खारिज कर दिया गया। निर्णय: सेवानिवृत्ति के बाद एकमात्र मुद्दा यह है कि क्या याचिकाकर्ता द्वारा दैनिक वेतन भोगी के रूप में दी गई पूरी सेवा को उसकी पेंशन की गणना के लिए उसके खाते में जोड़ा जाना है या उस अवधि को केवल उसकी अर्हक सेवा के लिए गिना जाना है ताकि उसे पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति के बाद के लाभ मिल सकें। न्यायालय ने कहा कि नियमित स्थापना के बाहर दी गई सेवा को केवल उसी हद तक महत्व दिया जा सकता है जिससे याचिकाकर्ता को पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति के बाद के लाभ मिल सकें। इसे उसकी नियमित सेवा में पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति के बाद के हक की गणना के लिए नहीं जोड़ा जा सकता है। प्रतिवादियों को निर्देश देते हुए परमादेश जारी किया गया कि वे याचिकाकर्ता की 19.02.1985 से 26.01.2006 तक की दैनिक वेतन भोगी सेवा को अर्हक सेवा के उद्देश्य से गिनें, हालांकि उन सेवाओं को पेंशन या अन्य सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों के

अनुवादित

लिए हक की मात्रा निर्धारित करने के लिए नहीं गिना जाएगा; 6% ब्याज के साथ बकाया तीन महीने के भीतर भुगतान करने का निर्देश दिया गया। (पैरा 15, 16)

अनुमति दी गई। (ई-5)

माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर,

1. यह रिट याचिका अपर नगर आयुक्त, नगर निगम, इलाहाबाद (अब प्रयागराज) द्वारा दिनांक 28.07.2014 को पारित उस आदेश के विरुद्ध दायर की गई है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता का यह दावा अस्वीकार कर दिया गया कि 19.02.1985 से निरंतर दैनिक वेतनभोगी के रूप में की गई उसकी सेवा को द्वितीय श्रेणी लिपिक के रूप में पेंशन तथा अन्य सेवानिवृत्ति लाभों के लिए अर्ह सेवा के रूप में गणना की जाए। याचिकाकर्ता ने यह प्रार्थना की है कि एक परमादेश जारी कर प्रतिवादियों को यह निर्देश दिया जाए कि वे उसकी वरिष्ठता द्वितीय श्रेणी लिपिक के पद पर इस प्रकार निर्धारित करें कि 19.12.1985 से 26.01.2006 तक की उसकी सेवा अवधि – अर्थात नियमितीकरण से पूर्व की अवधि – को भी सम्मिलित किया जाए।

2. याचिकाकर्ता की नियुक्ति नगर निगम, प्रयागराज में श्रेणी-III कर्मचारी के रूप में दैनिक वेतन पर 19.12.1985 से प्रभावी की गई थी। याचिकाकर्ता के अनुसार, उसने अपने वरिष्ठ अधिकारियों की पूर्ण संतुष्टि तथा निष्ठा के साथ अपने कर्तव्यों का पालन किया। उसके उपर कोई कारण बताओ नोटिस जारी किए बिना ही 10.12.1986 के आदेश द्वारा उसकी सेवाएँ समाप्त कर दी गईं। उसे न तो कोई आरोपपत्र दिया गया और न ही छँटनी मुआवज़ा प्रदान किया गया। याचिकाकर्ता तथा अन्य कर्मचारी, जिनकी सेवाएँ इसी प्रकार समाप्त की गई थीं, ने औद्योगिक विवाद अधिनियम के अंतर्गत दावा प्रस्तुत किया, जिसे श्रम न्यायालय को संदर्भित किया गया। श्रम न्यायालय ने अपने दिनांक 08.12.1989 के निर्णय द्वारा यह पाया कि याचिकाकर्ता की सेवाओं की समाप्ति, अन्य समान स्थिति वाले कर्मचारियों की भाँति, अवैध थी, और उसे निरस्त कर दिया। यह निर्देश दिया कि याचिकाकर्ता को बकाया वेतन तथा अन्य सभी आनुषंगिक लाभों सहित पुनः सेवा में बहाल किया जाए। निर्णय में यह भी निर्देशित किया गया कि याचिकाकर्ता की सेवा सतत मानी जाएगी तथा इसमें कोई अवकाश (ब्रेक) नहीं माना जाएगा।श्रम न्यायालय का यह निर्णय अंतिम रूप से प्रभावी हो गया क्योंकि प्रतिवादियों द्वारा इसके विरुद्ध कोई चुनौती प्रस्तुत नहीं की गई।

3. निर्णय के अनुपालन में, याचिकाकर्ता को 27.11.1993 को दैनिक वेतनभोगी के रूप में कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति दी गई। उसे 10.12.1986 से 26.11.1993 तक का वेतन/वेतनभत्ता दिया गया, अर्थात सेवा में उस अवकाश की अवधि के लिए, जो अवैध सेवा समाप्ति के कारण हुआ था और जिसे श्रम न्यायालय ने निरस्त कर दिया था। याचिकाकर्ता को 27.01.2006 से श्रेणी-III कर्मचारी के रूप में सेवा में नियमित किया गया। याचिकाकर्ता का नियमितीकरण नियमों के अनुसार गठित चयन समिति द्वारा चयन के बाद किया गया। उसे दिनांक 07.07.2008 के आदेश द्वारा द्वितीय श्रेणी लिपिक के रूप में सेवा में पुष्टि दी गई। पुष्टि भी चयन

समिति द्वारा परीक्षण के बाद की गई। याचिकाकर्ता की 19.02.1985 से 26.11.1993 तक की सेवाओं को वरिष्ठता और पदोन्नति के साथ-साथ उन अन्य परिणामी लाभों के लिए नहीं गिना गया, जिनका उसे सेवा की अवधि के आधार पर अधिकार था। तदनुसार, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय में सिविल विविध रिट याचिका संख्या 54282 सन् 2000 दाखिल की, जिसमें यह निर्देश देने की प्रार्थना की गई कि नगर निगम के विद्युत विभाग में उसकी सेवाओं का नियमितीकरण 19.02.1985 की उसकी नियुक्ति तिथि से लिपिक के रूप में किया जाए और सभी परिणामी लाभों सहित उसका वेतन दिया जाए। इस न्यायालय ने, दिनांक 15.12.2004 के आदेश द्वारा यह निर्णय दिया कि श्रम न्यायालय के निर्णय के परिप्रेक्ष्य में, याचिकाकर्ता परिणामी लाभों सहित पिछला वेतन पाने तथा दैनिक वेतनभोगियों की सूची में अपनी वरिष्ठता निर्धारण का हकदार है, जो उसकी प्रारम्भिक नियुक्ति की तिथि अर्थात् 19.02.1985 से प्रभावी होगी। हालाँकि, यह मत व्यक्त किया गया कि चूंकि वे व्यक्ति, जिन पर वरिष्ठता से संबंधित राहत का प्रभाव पड़ सकता था, पक्षकार नहीं बनाए गए थे, इसलिए न्यायालय इस संबंध में कोई निर्देश देने के पक्ष में नहीं था।तदनुसार, रिट याचिका निम्नलिखित आदेशों के अनुसार स्वीकृत की गई:

इसलिए, रिट याचिका इस हद तक मंज़ूर की जाती है कि प्रतिवादी सभी पक्षों से आपत्तियां आमंत्रित करने वाला नोटिस प्रकाशित करने के बाद, उनकी वरिष्ठता को फ़िर से तय करेंगे। यह आदेश उन लोगों के नियमितीकरण पर कोई असर नहीं डालेगा, जो पहले ही नियमित हो चुके हैं। उनकी वरिष्ठता उसी के अनुसार तय की जाएगी। याचिकाकर्ता को पिछले वेतन का भुगतान किया जाएगा। इस आदेश के मिलने की तारीख से तीन महीने के भीतर आदेश का पालन किया जाएगा।

4. दैनिक वेतनभोगियों की वरिष्ठता सूची प्रकाशित की गई, जिसमें याचिकाकर्ता का नाम क्रम संख्या 16 पर दर्शाया गया, तथा उसकी नियुक्ति की तिथि 27.11.1993 प्रदर्शित की गई। याचिकाकर्ता का कथन है कि वर्ष 1988-89 की दैनिक वेतनभोगियों की वरिष्ठता सूची का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता को यद्यपि श्रम न्यायालय के दिनांक 08.12.1989 के आदेश के अनुपालन में सेवा में पुनः लिया गया था, जिसमें यह निर्देश दिया गया था कि उसकी सेवाओं को निरंतर माना जाएगा, परंतु वस्तुतः उस भाग को प्रभावी नहीं किया गया।उसकी सेवाओं का नियमितीकरण 27.01.2006 को किया गया, श्रम न्यायालय के दिनांक 08.12.1989 के पुरस्कार तथा इस न्यायालय द्वारा सिविल विविध रिट याचिका संख्या 54282 सन् 2000 में पारित दिनांक 15.12.2004 के आदेशों पर विचार किए बिना।

5. याचिकाकर्ता ने 13.09.2013 को नगर आयुक्त, नगर निगम, प्रयागराज को एक आवेदन दिया, जिसमें वरिष्ठता तय करने और अन्य संबंधित लाभों के लिए 19.02.1985 से 26.01.2006 तक की अपनी सेवा अवधि को शामिल करने का दावा किया। साल 2013-14 में एक अस्थायी वरिष्ठता सूची प्रकाशित की गई थी, जिसमें याचिकाकर्ता का नाम क्रम संख्या 26 पर था। नगर निगम की ओर से एक सेक्शन ऑफिसर द्वारा जारी ज्ञापन दिनांक 15.01.2014 के ज़रिए उक्त लिस्ट पर आपत्तियां मंगाई गईं। याचिकाकर्ता ने अपने आपत्ति पत्र दिनांक 18.01.2014 के ज़रिए आपत्ति जताई, जिसमें यह तर्क दिया गया कि लेबर कोर्ट के फैसले और इस कोर्ट के

आदेश को उसकी वरिष्ठता तय करने के मामले में लागू नहीं किया गया है, क्योंकि 19.02.1985 से उसकी सेवाओं को गिना नहीं गया है। एक अंतिम वरिष्ठता सूची प्रकाशित की गई, जिसमें याचिकाकर्ता की 19.02.1985 से 26.01.2006 तक की सेवाओं को ध्यान में नहीं रखा गया। याचिकाकर्ता का कहना है कि अगर उसकी सेवाओं को 19.02.1985 से गिना जाता, तो वह वरिष्ठता सूची में क्रम संख्या 4 पर होता। याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को अपर नगर आयुक्त, नगर निगम, प्रयागराज ने दिनांक 28.07.2014 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया था, जिसमें इस संबंध में नगर आयुक्त का निर्णय बताया गया था।

6. आदेश में, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता का प्रतिवेदन अस्वीकृत किया गया, यह कहा गया है कि इस न्यायालय द्वारा 19.02.1985 से वरिष्ठता निर्धारित करने का निर्देश दैनिक वेतनभोगी लिपिकों की वरिष्ठता सूची के संबंध में था, जबकि याचिकाकर्ता ने 19.02.1985 से नियमित द्वितीय श्रेणी लिपिक के रूप में वरिष्ठता का दावा किया है।

7. 28.07.2014 के आदेश से नाराज़ होकर, यह रिट याचिका दायर की गई है।

8. 08.09.2014 को प्रस्ताव की सूचना जारी किया गया। समय के साथ, पक्षकारों ने अपने-अपने हलफनामे अदला-बदली किए। याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत संशोधन प्रार्थना-पत्र, जिसे 13.03.2014 को स्वीकृत किया गया, के माध्यम से कुछ तथ्यों, आधारों तथा प्रार्थनाओं को जोड़ा गया है, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता 31.12.2019 को सेवा से सेवानिवृत्त हो चुका है। अब संशोधन के माध्यम से जो मामला अधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है, वह यह है कि 19.02.1985 से 31.12.2019 तक अर्थात लगभग 35 वर्षों की उसकी सेवा, जिसमें उसकी दैनिक वेतनभोगी के रूप में की गई सेवा भी सम्मिलित है, को पेंशन तथा अन्य सेवानोपरांत लाभों के लिए पात्रता निर्धारित करने हेतु गणना में लिया जाए। इस संबंध में एक राहत भी संशोधन द्वारा जोड़ी गई है।

9. पक्षों द्वारा हलफनामे दाखिल करने के बाद, याचिका को 07.11.2024 को सुनवाई के लिए स्वीकार किया गया, और सुनवाई तुरंत शुरू हुई। फैसला सुरक्षित रख लिया गया।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री श्रीनाथ द्विवेदी, प्रतिवादी संख्या 2 और 3 की ओर से पेश होने वाले विद्वान वकील श्री हर्ष वर्धन गुप्ता और राज्य-प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से विद्वान स्थायी वकील श्री शरद चंद्र उपाध्याय को सुना गया।

11. अब जबकि याचिकाकर्ता सेवा से सेवानिवृत्त हो चुका है, नियमित द्वितीय श्रेणी लिपिकों के पदक्रम में उसकी वरिष्ठता निर्धारित करने का प्रश्न अब शेष नहीं रह गया है। वास्तव में अब विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या याचिकाकर्ता 19.02.1985 से 26.01.2006 तक की सेवा अवधि – जब तक कि उसे नियमों के अनुसार

चयन के पश्चात सेवा में नियमित नहीं किया गया था – को पेंशन एवं अन्य सेवानोपरांत लाभों के लिए गणनीय सेवा के रूप में गिनने का अधिकारी है या नहीं।

12. यद्यपि दोनों पक्षों द्वारा यह विस्तृत रूप से प्रतिवाद किया गया कि *उत्तर प्रदेश पेंशन हेतु अर्हक सेवाएं तथा प्रमाणीकरण अधिनियम, 2021(संक्षेप में '2021 का अधिनियम')* क्या *माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा* **प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2019) 10 एससीसी 516)** *में प्रतिपादित विधिक सिद्धांतों को निष्प्रभावी करता है,* तथापि हमारा मत है कि **प्रेम सिंह (उपर्युक्त)** में प्रतिपादित सिद्धांत *नगर पालिका की अविकेन्द्रीकृत सेवाओं में कार्यरत दैनिक वेतनभोगियों, जैसे कि याचिकाकर्ता,* पर समान रूप से लागू होंगे। उत्तर प्रदेश राज्य में नगर पालिका में काम करने वाले ऐसे कर्मचारी का, जो केंद्रीकृत सेवा से संबंधित नहीं है, रिटायरमेंट के बाद के लाभ पाने का अधिकार उत्तर प्रदेश नगर पालिका गैर-केंद्रीकृत सेवा रिटायरमेंट लाभ विनियम, 1984 (संक्षेप में '1984 के नियम') द्वारा नियंत्रित होता है।

13. मुझे **राम सेवक यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2024 (2) एडीजे 604 : 2024:एएचसी:17407)** के मामले में इस बिंदु पर विचार करने का मौका मिला, जहाँ यह फैसला दिया गया था:

15. अब, 1984 के नियम के नियम 2(एम) में 'योग्यता सेवा' की परिभाषा लगभग वैसी ही है जैसी 1961 के नियमों के नियम 3(8) में थी, जिसे सुप्रीम कोर्ट ने **प्रेम सिंह** मामले में यह मानने के लिए पढ़ा था कि कार्य-चार्ज प्रतिष्ठान में दी गई सेवाओं को पेंशन देने के उद्देश्य से आखिरी बताए गए नियमों के तहत 'योग्यता सेवा' माना जाएगा। **प्रेम सिंह** में, 1961 के नियमों के नियम 3(8) के तहत कार्य-चार्ज प्रतिष्ठान में लगातार सेवा को 'योग्यता सेवा' के रूप में गिनने के सिद्धांत को किसी भी तरह की लगातार सेवा पर लागू किया गया है, जैसे कि दैनिक मजदूरी या एड-हॉक आधार पर दी गई सेवाएं, जिसके बाद उसी पद पर और उसी क्षमता में नियमितीकरण किया गया हो। इन सिद्धांतों को खास तौर पर उन मामलों में अपनाया गया है, जहां दैनिक मजदूरी या तदर्थ आधार पर या कार्य-चार्ज प्रतिष्ठान में लंबे समय तक सेवा के बाद नियमितीकरण किया गया हो। इस बिंदु पर बहुत अधिक उदाहरणों का हवाला दिए बिना, इस न्यायालय के **कल्लू अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2022 (4) एडब्ल्यूसी 3840** के फैसले का उल्लेख करना ही काफी होगा, यह मामला एक विकास प्राधिकरण के कर्मचारी से संबंधित था, जिसने लंबे समय तक दैनिक मजदूरी पर काम किया था और फिर उसे सेवा में नियमित किया गया था। **कल्लू अली (उपरोक्त)** में यह मुद्दा पेंशन के हक के लिए उसकी योग्यता सेवा के संदर्भ में उठा था। **कल्लू अली** में इस बिंदु पर कई उदाहरणों की समीक्षा के बाद, यह माना गया:

"28. उपर्युक्त उद्धृत प्राधिकारों तथा इस न्यायालय के निर्णयों से यह विधिसिद्ध सिद्धांत प्रतिपादित होता है कि यदि किसी कर्मचारी ने किसी ऐसे पद पर, जिसकी आवश्यकता थी, अस्थायी रूप से अथवा दैनिक वेतन भोगी के रूप में अथवा तदर्थ आधार पर कार्य किया हो, और तत्पश्चात् उसकी सेवाएँ उसी पद पर अथवा समान पद पर नियमित कर दी गई हों, तो नियमितीकरण से पूर्व व्यतीत की गई सेवा अवधि को पेंशन योग्य सेवा

में सम्मिलित किया जाना चाहिए। न्यायालयों ने नियोक्ता के उस आचरण का अनुमोदन नहीं किया है जिसके अंतर्गत किसी ऐसे कर्मचारी को, जिसने लम्बी अवधि तक निरंतर सेवा प्रदान की हो और जिसके परिणामस्वरूप उसकी सेवाएँ नियमित हुई हों, पेंशन से वंचित किया जाए, विशेषतः तब जब संबंधित संस्था पेंशन योग्य सेवा प्रदान करती हो। राज्य सरकार को एक आदर्श नियोक्ता माना गया है तथा राज्य के कल्याणकारी राज्य होने के नाते, न्यायालयों ने इस पर गम्भीर चिन्ता व्यक्त की है कि यदि कोई कर्मचारी, जिसने अपना समस्त जीवन ऐसी संस्था की सेवा में व्यतीत किया हो, उसे अधिवर्षता की आयु प्राप्त कर सेवानिवृत्त होने पर पेंशन से वंचित कर दिया जाए।"

16. **कल्लू अली** में उल्लिखित निर्णयों की श्रृंखला तथा उस सिद्धांत का विभिन्न वर्गों के कर्मचारियों तक विस्तार, जिन्होंने नियमित स्थापना के बाहर कार्य किया और तत्पश्चात् नियमितीकरण प्राप्त किया, तथा जिनकी सेवाएँ नियमों के परे दी गईं थीं, उन्हें उनकी अर्हक सेवा की गणना के उद्देश्य से, पेंशन आदि का अधिकार प्रदान करने हेतु, जोड़ा गया – ये सभी **प्रेम सिंह** में प्रतिपादित सिद्धांत पर आधारित हैं। इस न्यायालय के मत में, निर्णयों की यह श्रृंखला राज्य सरकार की उन संस्थाओं के कर्मचारियों के मामलों में कुछ कठिनाई उत्पन्न करेगी, जिन पर 2021 का अधिनियम लागू होता है और जो, जैसा कि पूर्व में कहा गया है, वस्तुतः **प्रेम सिंह** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को उलट देता है। हालाँकि, यह स्थिति उन संस्थाओं के विषय में नहीं होगी, जिन पर 2021 का अधिनियम लागू नहीं होता। यह पहले ही देखा जा चुका है कि इस वाद में इस विषय पर कोई विवाद नहीं है कि 2021 का अधिनियम प्रतिवादियों पर लागू नहीं होता। अतः, जो परिणाम निकलता है वह यह है कि **प्रेम सिंह** में प्रतिपादित विधि प्रतिवादियों की संस्था के कर्मचारियों के अधिकारों को नियंत्रित करेगी। वे निर्णय जिन्होंने प्रेम सिंह में प्रतिपादित सिद्धांत का अनुसरण किया और उसे उन वर्गों के कर्मचारियों तक विस्तारित किया, जिन्होंने नियमों के परे कार्य किया और तत्पश्चात् नियमितीकरण प्राप्त किया, उनकी अर्हक सेवा की गणना के उद्देश्य से, पेंशन के अधिकार के लिए, वे निर्णय याचिकाकर्ता के मामले पर पूर्णतः लागू होंगे।

17. अतः, इस न्यायालय के मतानुसार, याचिकाकर्ता अपनी तदर्थ आधार पर प्रदत्त सेवाओं की गणना, दिनांक 02.09.1988 से लेकर अपनी सेवा में नियमितीकरण की तिथि 26.03.2006 तक, अपने सेवानोत्तर लाभों के निर्धारण हेतु कराने का अधिकारी है। प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता की पेंशन, भविष्य निधि (ग्रेच्युटी) तथा अन्य सेवानोत्तर लाभों के निर्धारण के उद्देश्य से नियमितीकरण से पूर्व तदर्थ आधार पर की गई सेवा अवधि को ध्यान में न रखकर स्पष्ट त्रुटि की है। इन लाभों का निर्धारण समस्त सेवा अवधि को ध्यान में रखते हुए किया जाना अपेक्षित है, जिसमें नियमितीकरण से पूर्व तदर्थ आधार पर की गई सेवा अवधि भी सम्मिलित है।

14. वर्तमान वाद और **राम सेवक यादव** (उपर्युक्त) के वाद में एकमात्र अंतर यह है कि **राम सेवक यादव** के मामले में कर्मचारी को तदर्थ कर्मचारी के रूप में दीर्घ अवधि तक, दिनांक 02.09.1988 से लेकर उसकी सेवा में नियमितीकरण की तिथि 02.03.2006 तक, रखा गया था, जबकि वर्तमान वाद में याचिकाकर्ता को दैनिक वेतनभोगी के रूप में दिनांक 19.02.1983 से लेकर 26.01.2006 तक, जब उसे नियमित किया गया, बनाए

रखा गया। नियमित स्थापना के बाहर किसी कर्मचारी को निरंतर रूप से दीर्घ अवधि तक बनाए रखना, और तत्पश्चात् उसकी सेवाओं का नियमितीकरण एवं नियमित स्थापना में समावेशन, यही वह प्रमुख तत्व है जिस पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **प्रेम सिंह** के निर्णय में प्रतिपादित सिद्धांत आधारित है, जो कर्मचारी को अपनी नियमित स्थापना से बाहर दी गई सेवाओं को सेवानोत्तर लाभों की पात्रता के लिए गणनीय मानने का अधिकार प्रदान करता है। ऐसी स्थिति में यह महत्वहीन हो जाता है कि नियमित स्थापना के बाहर दी गई सेवाएँ तदर्थ, दैनिक वेतनभोगी, कार्यभारित अथवा किसी अन्य प्रकार की रही हों।

15. अब विचार के लिए केवल यह प्रश्न शेष है कि क्या याचिकाकर्ता द्वारा दैनिक वेतनभोगी के रूप में की गई संपूर्ण सेवा को उसकी पेंशन की गणना में जोड़ा जाए, या वह अवधि केवल पेंशन एवं अन्य सेवानोत्तर लाभों की पात्रता हेतु अर्हक सेवा के रूप में ही मानी जाए। इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर यह है कि नियमित स्थापना के बाहर की गई सेवा को केवल पेंशन एवं अन्य सेवानोत्तर लाभों की पात्रता तक ही महत्व दिया जा सकता है; इसे नियमित सेवा में जोड़कर पेंशन या अन्य लाभों की गणना के लिए नहीं लिया जा सकता। इस संदर्भ में, ***उदय प्रताप ठाकुर बनाम बिहार राज्य एवं अन्य*** **(2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 527)** तथा संबद्ध वादों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि ने इस स्थिति को पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है। ***उदय प्रताप ठाकुर*** *(उपर्युक्त)* में यह कहा गया था कि–

23. अब जहाँ तक अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा *प्रेम सिंह (उपर्युक्त)* के वाद में इस न्यायालय के निर्णय पर रखे गए निर्भरता का प्रश्न है, तो उक्त निर्णय पर किया गया यह निर्भरता पूर्णतः अनुचित है। उक्त वाद में यह न्यायालय *उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961* के नियम 3(8) की वैधता पर विचार कर रहा था, जिसके अंतर्गत कार्यभारित रूप में प्रदत्त संपूर्ण सेवा अवधि को पेंशन हेतु अर्हक सेवा के रूप में नहीं गिना जाना था। इस पर इस न्यायालय ने यह अभिमत व्यक्त किया और प्रतिपादित किया कि यदि किसी कर्मचारी ने सरकारी संस्था/विभाग में अनेक वर्षों तक कार्यभारित रूप में सेवा की है, तो केवल इस आधार पर कि उसने पेंशन हेतु आवश्यक अर्हक सेवा पूरी नहीं की है, उसे पेंशन से वंचित करना अन्यायपूर्ण, मनमाना तथा अवैध होगा। अतः इस न्यायालय ने यह अभिमत दिया और निर्णय किया कि कार्यभारित रूप में प्रदत्त सेवाओं को अर्हक सेवा के रूप में माना/गिना जाएगा। तथापि, इस न्यायालय ने यह नहीं कहा अथवा प्रतिपादित किया कि कार्यभारित रूप में दी गई संपूर्ण सेवा अवधि को पेंशन अथवा पेंशन की मात्रा निर्धारण हेतु गणना में लिया जाएगा।

16 परिणामस्वरूप, यह रिट याचिका **सफल** होती है और **स्वीकृत** की जाती है। प्रतिवादियों के विरुद्ध एक *मैंडमस* जारी किया जाता है, जिसके द्वारा उन्हें यह सुनिश्चित करने का आदेश दिया जाता है कि वे आपस में समन्वय कर, याचिकाकर्ता को उसकी सेवानिवृत्ति पेंशन और अन्य सेवानोत्तर लाभों का अनुमोदन एवं भुगतान करें, 19.02.1985 से 26.11.2006 तक दैनिक वेतनभोगी के रूप में की गई सेवाओं को केवल अर्हक सेवा के रूप में ध्यान में रखते हुए, यद्यपि उन सेवाओं को पेंशन या अन्य सेवानोत्तर लाभों की राशि निर्धारण हेतु नहीं जोड़ा जाएगा। पेंशन के सभी बकाया और अन्य देय सेवानोत्तर लाभों का निर्धारण इस आदेश की प्रति प्राप्त

होने की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर किया जाएगा और नियमित पेंशन का भुगतान किया जाएगा। पेंशन के बकाया पर, याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति की तिथि से भुगतान की तिथि तक, 6% वार्षिक साधारण ब्याज देय होगा। अन्य सेवानोत्तर लाभों पर भी यही ब्याज दर लागू होगी, जो सेवानिवृत्ति की तिथि से भुगतान तक देय होगी।

17. व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

18. निबंधक (अनुपालन) को निर्देशित किया जाता है कि वह इस आदेश की प्रति नगर आयुक्त, नगर निगम, प्रयागराज तथा अतिरिक्त नगर आयुक्त, नगर निगम, प्रयागराज – दोनों को, विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद के माध्यम से प्रेषित करें।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 531

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट ए संख्या 49169 वर्ष 2010

श्रीमती कृष्णा कांत गुप्ता **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...विपक्षीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
अशोक के. जायसवाल, अशोक खरे, शेष कुमार श्रीवास्तव

विपक्षीगण के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता, एस.के. वर्मा

अनुवादित

क. सेवा कानून - सेवा न्यायशास्त्र - अनुशासनात्मक कार्यवाही - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999, नियम 7(3) - लंबी अवधि तक अनधिकृत अनुपस्थिति - सेवा न्यायशास्त्र में "पूर्वाग्रह का परीक्षण" का सिद्धांत - भले ही वृहत शास्ति देने के लिए निर्धारित प्रक्रिया का सख्ती से पालन न किया गया हो, दोषी को यह दिखाना होगा कि उसे कैसे पूर्वाग्रह हुआ है - दंड आदेश तब तक दूषित नहीं होता जब तक कि दोषी यह न दिखाए कि उसे अपना बचाव उचित और प्रभावी ढंग से करने में पूर्वाग्रह हुआ है, और यदि कोई पूर्वाग्रह स्थापित नहीं होता है, तो कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है। (पैरा 11)

ख. याचिकाकर्ता, एक सहायक अध्यापक, 5 वर्ष की अवधि के लिए लंबी अनधिकृत अनुपस्थिति के लिए आरोप-पत्रित किया गया, बिना किसी सूचना या अवकाश के आवेदन के - जाँच में याचिकाकर्ता अपनी अनुपस्थिति का स्पष्टीकरण देने वाला कोई भी दस्तावेज प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं था - बर्खास्तगी का वृहत दंड पारित किया गया - याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि कोई जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई थी - राज्य ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता ने समाचार पत्र में प्रकाशन के बावजूद आरोप-पत्र या कारण बताओ नोटिस का कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया, और अनुपस्थिति के लिए कोई स्पष्टीकरण प्रदान नहीं किया गया था। अभिनिर्धारितः भले ही निर्धारित प्रक्रिया का सख्ती से पालन नहीं किया गया हो, दोषी को यह दिखाना होगा कि उसे किस प्रकार पूर्वाग्रह हुआ है। यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ मौखिक साक्ष्य की आवश्यकता थी, एकमात्र आवश्यकता यह थी कि याचिकाकर्ता को अपनी 1220 दिनों की अनुपस्थिति के लिए अपना स्पष्टीकरण और कारण प्रस्तुत

करने थे - याचिकाकर्ता ने आरोप से इनकार नहीं किया; प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पर्याप्त अनुपालन किया गया था क्योंकि उसे अपना उत्तर प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया था, हालाँकि, समाचार पत्र में प्रकाशन के बावजूद कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया गया - याचिकाकर्ता ने अपनी 1220 दिनों की अनुपस्थिति से अस्पष्ट रूप से भी इनकार नहीं किया, छुट्टी की स्वीकृति या छुट्टी के लिए आवेदन या चिकित्सा प्रमाण पत्र जैसा कोई भी दस्तावेज रिकॉर्ड पर नहीं रखा गया था, इसलिए, उसे कोई पूर्वाग्रह कारित नहीं हुआ - आरोपों की प्रकृति को देखते हुए दंड अनुपातहीन नहीं है। (पैरा 12, 13)

खारिज किया गया। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शेष कुमार श्रीवास्तव और राज्य के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री लाल मणि को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता, जो एक सहायक अध्यापक हैं, को एक आरोप-पत्र दिया गया था कि 01.07.2004 से 18.05.2009 तक, यानी 5 वर्षों की अवधि में, वह बिना किसी सूचना या अवकाश के आवेदन के 1220 दिनों तक अनुपस्थित रहीं। एक जांच की गई और चूंकि याचिकाकर्ता अपनी अनुपस्थिति का स्पष्टीकरण देने वाला कोई भी दस्तावेज प्रस्तुत करने में असमर्थ थीं, इसलिए जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, जालौन द्वारा 02.06.2010 के आदेश के माध्यम से सेवामुक्ति का एक बड़ा दंड पारित किया गया, जिसे वर्तमान मामले में चुनौती दी गई है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने पुरजोर तर्क दिया है कि उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के नियम 7(3) के प्रावधानों के अनुसार बड़ी शास्ति देने के लिए निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ता को कोई जांच रिपोर्ट नहीं सौंपी गई थी। कोई मौखिक साक्ष्य दर्ज नहीं किया गया था और याचिकाकर्ता को किसी भी गवाह से जिरह करने का कोई अवसर नहीं दिया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने **सत्येंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3325** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित एक हालिया निर्णय का उल्लेख किया और इसके संबंधित पैराग्राफ संख्या 17 और 18 को नीचे उद्धृत किया गया है:-

"17. इस प्रकार, एकतरफा जांच में भी, आरोपों को सिद्ध करने के लिए गवाहों के साक्ष्य दर्ज करना अनिवार्य है। 1999 के नियमों और 'रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक और अन्य' (2009) 2 एससीसी 570 तथा 'निर्मला जे. झाला बनाम गुजरात राज्य और अन्य' (2013) 4 एससीसी 301 के मामलों में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून की कसौटी पर वर्तमान मामले के तथ्यों को परखने के बाद, हम इस दृढ़ मत के हैं कि अपीलकर्ता के विरुद्ध बड़ी शास्ति के दंडनीय आरोपों से संबंधित आयोजित जांच कार्यवाही पूरी तरह से

दूषित और कानून की नजर में शून्य थी, क्योंकि आरोपों के समर्थन में विभाग द्वारा कोई भी मौखिक साक्ष्य दर्ज नहीं किया गया था।

18. परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय ने न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए सुविचारित निर्णय में हस्तक्षेप करते हुए कानून की गंभीर त्रुटि की, जिसके द्वारा न्यायाधिकरण ने अपीलकर्ता पर दंड लगाने वाले आदेश को रद्द कर दिया था।"

4. इसके विपरीत, राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता उक्त 5 वर्षों की अवधि में 1220 दिनों तक बिना किसी सूचना, अनुमति या अवकाश की स्वीकृति के अनुपस्थित रहा, यहां तक कि उसके बाद भी याचिकाकर्ता अनुपस्थित रहा और चूंकि किसी मौखिक साक्ष्य की कोई आवश्यकता नहीं थी, साथ ही याचिकाकर्ता ऐसा कोई दस्तावेज प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा कि अवकाश स्वीकृत किया गया था, इसलिए उक्त नियमों में निर्धारित प्रक्रिया का पर्याप्त अनुपालन करने के बाद ही बड़ी शास्ति दी गई थी।

5. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता को 27.10.2010 को एक आरोप-पत्र जारी किया गया था, जिसमें विशेष रूप से यह उल्लेख किया गया था कि वह 01.07.2004 से 18.05.2009 के बीच लगभग 1220 दिनों तक बिना किसी अनुमति या अवकाश की स्वीकृति के अनुपस्थित रही। आरोप-पत्र में उल्लिखित अनुपस्थिति की अवधि और दिनों का विवरण नीचे दिया गया है:-

अनुपस्थित तिथि	दिनांक की संख्या
1- 01.07.2004 से 13.12.2004 तक	184
2- 01.01.2005 से 24.04.2005 तक	114
3- 09.11.2005 से 31.12.2005 तक	53
4- 01.01.2006 से 31.12.2006 तक	365
5- 01.01.2007 से 01.07.2007 तक	182
6- 02.07.2008 से 18.05.2009 तक	322

6. याचिकाकर्ता ने आरोप-पत्र का कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया है, हालांकि याचिकाकर्ता का यह मामला है कि आरोप-पत्र कभी तामील ही नहीं किया गया था। किसी भी स्पष्टीकरण के अभाव में, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, जालौन को एक जांच रिपोर्ट सौंपी गई, जिन्होंने जांच रिपोर्ट के साथ याचिकाकर्ता को एक नोटिस जारी किया, जिसमें आरोप सिद्ध पाए गए थे।

7. याचिकाकर्ता ने कारण बताओ नोटिस का कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया, बावजूद इसके कि नोटिस समाचार पत्र में प्रकाशित किया गया था, और इसलिए, चूंकि याचिकाकर्ता द्वारा अपनी 1220 दिनों की अनुपस्थिति को स्पष्ट करने के लिए कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया, अतः एक बड़ा दंड दिया गया।

8. यह एक ऐसा मामला हो सकता है जहाँ उपरोक्त संदर्भित नियमों में निर्धारित प्रक्रिया का सख्ती से पालन नहीं किया गया था कि जांच रिपोर्ट की प्रतिलिपि प्रस्तुत नहीं की गई थी, हालाँकि याचिकाकर्ता को अपना जवाब प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया था और एक समाचार पत्र में प्रकाशन भी किया गया था।

9. यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ मौखिक साक्ष्य की आवश्यकता थी। एकमात्र आवश्यकता यह थी कि याचिकाकर्ता को 5 वर्षों की अवधि में 1220 दिनों की अपनी अनुपस्थिति के लिए स्पष्टीकरण और कारण प्रस्तुत करना था। ऐसी कोई सामग्री नहीं है कि याचिकाकर्ता ने आरोपों से इनकार किया हो। रिट याचिका भी इतनी लंबी अनुपस्थिति के किसी भी स्पष्टीकरण पर मौन है।

10. उपर्युक्त परिस्थितियों में, न्यायालय ने **भारत संघ और अन्य बनाम दिलीप पॉल, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1423** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित एक निर्णय का संज्ञान लिया है, जिसमें सेवा न्यायशास्त्र में 'पूर्वाग्रह के परीक्षण' के सिद्धांत पर विचार किया गया था।

11. न्यायालय का यह विचार है कि ऐसे मामलों में, भले ही बड़ी शास्ति देने के लिए निर्धारित प्रक्रिया का सख्ती से पालन न किया गया हो, दोषी कर्मचारी को यह दिखाना होगा कि उसे किस हद तक पूर्वाग्रह हुआ है, जैसे कि क्या उसे लंबी अनुपस्थिति के लिए स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने से वंचित रखा गया था। **'भारत संघ और अन्य' (उपरोक्त)** के प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 59 और 60 को नीचे उद्धृत किया गया है:-

"i) सेवा न्यायशास्त्र में 'पूर्वाग्रह के परीक्षण' का सिद्धांत

59. 'पूर्वाग्रह का परीक्षण' कानून का एक सुस्थापित सिद्धांत है जिसे तब लागू किया जा सकता है जब किसी प्रक्रियात्मक अनियमितता या 'ऑडी अल्टरम पार्टेम' (दूसरे पक्ष को भी सुनें) के नियम के उल्लंघन का आरोप लगाया जाता है। इस न्यायालय ने *'स्टेट बैंक ऑफ पटियाला बनाम एस.के. शर्मा'* (1996) 3 एससीसी 364 में यह माना था कि परीक्षण यह पता लगाने के लिए है कि क्या ऐसी प्रक्रिया या कार्यवाही के उल्लंघन के परिणामस्वरूप कोई पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ है या निष्पक्ष सुनवाई का नुकसान हुआ है। प्रासंगिक टिप्पणियाँ नीचे उद्धृत हैं:-

"11. ... क्या इसका अर्थ यह है कि विनियमों का कोई भी और प्रत्येक उल्लंघन जांच और दंड को शून्य बना देता है, या क्या दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 99 और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 के अंतर्निहित सिद्धांत अनुशासनात्मक कार्यवाही के मामले में भी लागू होते हैं। हमारी राय में, ऐसे मामलों में परीक्षण 'पूर्वाग्रह' का होना चाहिए, जैसा कि इस निर्णय में बाद में समझाया जाएगा। लेकिन यह कथन एक शर्त के अधीन है। विनियमों में कुछ सारवान प्रावधान हो सकते हैं, उदाहरण के लिए, किसी विशेष कर्मचारी/अधिकारी पर एक विशेष दंड लगाने के लिए सक्षम प्राधिकारी कौन है। ऐसे प्रावधानों का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए। लेकिन प्रक्रियात्मक प्रावधानों की एक बड़ी संख्या ऐसी हो सकती है जो अलग आधार

पर खड़ी होती है। हमें यह शीघ्रता से जोड़ना चाहिए कि प्रक्रियात्मक प्रावधानों के बीच भी, कुछ ऐसे प्रावधान हो सकते हैं जो मूलभूत प्रकृति के होते हैं, जिनके मामले में 'पर्याप्त अनुपालन' का सिद्धांत लागू नहीं हो सकता है। उदाहरण के लिए, एक ऐसा मामला लें जहाँ कोई नियम स्पष्ट रूप से प्रावधान करता है कि दोषी अधिकारी/कर्मचारी को दूसरी तरफ से साक्ष्य बंद होने के बाद अपने मामले के समर्थन में साक्ष्य/सामग्री प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाएगा। यदि अनुरोध के बावजूद ऐसा कोई अवसर बिल्कुल भी नहीं दिया जाता है, तो यह कहना कठिन होगा कि जांच दूषित नहीं है। लेकिन कई प्रक्रियात्मक प्रावधानों के संबंध में, मामले की परिस्थिति के अनुसार 'पर्याप्त अनुपालन' के सिद्धांत या 'पूर्वाग्रह के परीक्षण' को लागू करना संभव होगा। स्थिति को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया जा सकता है: (1) वे विनियम जो सारवान प्रकृति के हैं, उनका पालन किया जाना आवश्यक है और ऐसे प्रावधानों के मामले में, 'पर्याप्त अनुपालन' का सिद्धांत उपलब्ध नहीं होगा। (2) प्रक्रियात्मक प्रावधानों के बीच भी, कुछ ऐसे प्रावधान हो सकते हैं जो मूलभूत प्रकृति के हैं जिनका पालन किया जाना आवश्यक है और जिनके मामले में, 'पर्याप्त अनुपालन' का सिद्धांत उपलब्ध नहीं हो सकता है। (3) मूलभूत प्रकृति के अलावा अन्य प्रक्रियात्मक प्रावधानों के संबंध में, 'पर्याप्त अनुपालन' का सिद्धांत उपलब्ध होगा। ऐसे मामलों में, इस आधार पर की गई शिकायत/आपत्ति को 'पूर्वाग्रह' की कसौटी पर परखा जाना चाहिए, जैसा कि इस निर्णय में बाद में समझाया गया है। दूसरे शब्दों में, परीक्षण यह है: सभी पहलुओं पर विचार करने के बाद, क्या दोषी अधिकारी/कर्मचारी को निष्पक्ष सुनवाई का अवसर मिला था या नहीं। हम स्पष्ट कर सकते हैं कि कौन सा प्रावधान उपरोक्त श्रेणियों में से किसमें आता है, यह प्रत्येक मामले में प्रासंगिक प्रावधान की प्रकृति और चरित्र को ध्यान में रखते हुए तय किया जाने वाला विषय है।

Xxxxxxxxxxxx

28. ...हमारी विनम्र राय में, अनुशासनात्मक आदेशों और जांचों के संबंध में निर्णित मामलों से उभरने वाले सिद्धांतों को निम्नलिखित शब्दों में कहा जा सकता है: प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत, 'ऑडी अल्टरम पार्टेम' (सुनवाई का अवसर) के उल्लंघन और उक्त सिद्धांत के किसी एक पहलू के उल्लंघन के बीच अंतर किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, अंतर 'कोई नोटिस नहीं'/'कोई सुनवाई नहीं' और 'पर्याप्त सुनवाई नहीं' के बीच है, या इसे दूसरे शब्दों में कहें तो, 'कोई अवसर नहीं' और 'कोई पर्याप्त अवसर नहीं' के बीच है। उदाहरण के लिए – एक ऐसा मामला लें जहाँ व्यक्ति को उसकी बात सुने बिना ही सेवा से बर्खास्त कर दिया गया हो (जैसा कि 'रिज बनाम बाल्डविन' [1964] ए.सी. 40 : [1963] 2 इलाहाबाद ईआर 66 : [1963] 2 डब्ल्यूएलआर 935 में हुआ था)। यह पहली श्रेणी में आने वाला मामला होगा और बर्खास्तगी का आदेश अमान्य – या यदि कोई उस अभिव्यक्ति का उपयोग करना चाहे तो शून्य (void) होगा (केल्विन बनाम कार [1980] ए.सी. 574 : [1979] 2 इलाहाबाद ईआर 440 : [1979] 2 डब्ल्यूएलआर 755, पीसी)। लेकिन जहाँ किसी व्यक्ति को सेवा से बर्खास्त किया जाता है, मान लीजिए, उसे जांच अधिकारी की रिपोर्ट की प्रतिलिपि दिए बिना (मैनेजिंग डायरेक्टर, ईसीआईएल बनाम बी. करुणाकर [(1993) 4 एससीसी 727 : 1993 एससीसी (एल&एस) 1184 : (1993) 25 एटीसी 704]) या उसे किसी गवाह से जिरह करने का उचित अवसर दिए बिना (के.एल. त्रिपाठी [(1984) 1 एससीसी 43 : 1984 एससीसी (एल&एस) 62]), तो यह बाद वाली श्रेणी में आने वाला मामला होगा – प्राकृतिक न्याय के उक्त नियम के एक पहलू का उल्लंघन – ऐसी स्थिति में, आदेश की वैधता को 'पूर्वाग्रह' की कसौटी

पर परखा जाना चाहिए, अर्थात्, कुल मिलाकर, संबंधित व्यक्ति को निष्पक्ष सुनवाई का अवसर मिला था या नहीं। उपर्युक्त निर्णयों के प्रकाश में यह कहना सही नहीं होगा कि प्राकृतिक न्याय के किसी पहलू या ऐसे पहलू को शामिल करने वाले किसी नियम के किसी भी और प्रत्येक उल्लंघन के लिए, पारित आदेश पूरी तरह से शून्य है और उसे बिना किसी अतिरिक्त जांच के रद्द कर दिया जाना चाहिए। हमारी राय में, बी. करुणाकर [(1993) 4 एससीसी 727 : 1993 एससीसी (एल&एस) 1184 : (1993) 25 एटीसी 704] में अपनाए गए दृष्टिकोण और परीक्षण को उन सभी मामलों पर लागू होना चाहिए जहाँ शिकायत यह नहीं है कि कोई सुनवाई ही नहीं हुई (कोई नोटिस नहीं, कोई अवसर नहीं और कोई सुनवाई नहीं), बल्कि शिकायत एक उचित सुनवाई (अर्थात, पर्याप्त या पूर्ण सुनवाई) न मिलने या जांच को नियंत्रित करने वाले किसी प्रक्रियात्मक नियम या आवश्यकता के उल्लंघन की है; ऐसी शिकायतों की जांच उपर्युक्त 'पूर्वाग्रह' की कसौटी पर की जानी चाहिए।

Xxxxxxxxxxxxx

33. हम उपर्युक्त चर्चा से उभरने वाले सिद्धांतों का सारांश दे सकते हैं। (ये किसी भी तरह से संपूर्ण होने का इरादा नहीं रखते हैं और इन्हें अनुशासनात्मक जांच और नियोक्ता द्वारा कर्मचारी पर लगाए गए दंड के आदेशों के संदर्भ को ध्यान में रखते हुए विकसित किया गया है):

(1) अनुशासनात्मक/विभागीय जांच के परिणामस्वरूप किसी कर्मचारी पर दंड अधिरोपित करने वाला आदेश, यदि ऐसी जांचों को शासित करने वाले नियमों/विनियमों/सांविधिक प्रावधानों के उल्लंघन में पारित किया गया है, तो उसे स्वतः रद्द नहीं किया जाना चाहिए। न्यायालय या न्यायाधिकरण को यह जांच करनी चाहिए कि क्या (क) उल्लंघन किया गया प्रावधान सारवान प्रकृति का है या (ख) क्या यह प्रकृति में प्रक्रियात्मक है।

(2) एक सारवान प्रावधान का सामान्यतः पालन किया जाना चाहिए जैसा कि इसमें पहले समझाया गया है और ऐसे मामले में 'पर्याप्त अनुपालन' का सिद्धांत या 'पूर्वाग्रह का परीक्षण' लागू नहीं होगा।

(3) प्रक्रियात्मक प्रावधान के उल्लंघन के मामले में, स्थिति यह है: प्रक्रियात्मक प्रावधान आम तौर पर दोषी अधिकारी/कर्मचारी को उचित और पर्याप्त अवसर प्रदान करने के लिए होते हैं। सामान्य तौर पर कहें तो, इन्हें उनके हित में ही बनाया गया है। किसी भी और प्रत्येक प्रक्रियात्मक प्रावधान के उल्लंघन को स्वतः ही आयोजित जांच या पारित आदेश को दूषित करने वाला नहीं कहा जा सकता है। 'कोई नोटिस नहीं', 'कोई अवसर नहीं' और 'कोई सुनवाई नहीं' वाली श्रेणियों में आने वाले मामलों को छोड़कर, प्रक्रियात्मक प्रावधान के उल्लंघन की शिकायत की जांच 'पूर्वाग्रह' के दृष्टिकोण से की जानी चाहिए, अर्थात्, क्या ऐसे उल्लंघन ने दोषी अधिकारी/कर्मचारी को अपना बचाव उचित और प्रभावी ढंग से करने में पूर्वाग्रहित किया है। यदि यह पाया जाता है कि उसे इस प्रकार पूर्वाग्रहित किया गया है, तो उस पूर्वाग्रह को ठीक करने और उसका उपचार करने के लिए उचित आदेश दिए जाने चाहिए, जिसमें जांच और/या दंड के आदेश को रद्द करना भी शामिल है। यदि यह सिद्ध नहीं होता है कि इसके परिणामस्वरूप कोई पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ है, तो यह स्पष्ट है कि हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में, यह याद रखा जाना चाहिए कि कुछ ऐसे प्रक्रियात्मक प्रावधान हो

सकते हैं जो मूलभूत चरित्र के होते हैं, जिनका उल्लंघन अपने आप में पूर्वाग्रह का प्रमाण है। ऐसे मामलों में न्यायालय पूर्वाग्रह के प्रमाण पर जोर नहीं दे सकता है। जैसा कि निर्णय के मुख्य भाग में समझाया गया है, एक ऐसा मामला लें जहाँ कोई नियम स्पष्ट रूप से प्रावधान करता है कि नियोक्ता/सरकार के साक्ष्य समाप्त होने के बाद, कर्मचारी को अपने साक्ष्य में बचाव प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाएगा, और किसी मामले में, जाँच अधिकारी दोषी अधिकारी/कर्मचारी द्वारा मांगे जाने के बावजूद वह अवसर नहीं देता है। पूर्वाग्रह स्वतः स्पष्ट है। ऐसे मामले में पूर्वाग्रह का कोई प्रमाण मांगे जाने की आवश्यकता नहीं है। दोहराने के लिए, परीक्षण पूर्वाग्रह का ही है, अर्थात, क्या व्यक्ति को सभी पहलुओं पर विचार करते हुए निष्पक्ष सुनवाई मिली है। अब, इस पहलू को 'निर्देशात्मक' और 'अनिवार्य' प्रावधानों के दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है, यदि कोई ऐसा करने का इच्छुक हो। नीचे बिंदु (4) के अंतर्गत कथित सिद्धांत, उसी पहलू को देखने का एक और तरीका है जिसे यहाँ निपटाया गया है, न कि कोई अलग या विशिष्ट सिद्धांत।

(4)(क) ऐसे प्रक्रियात्मक प्रावधान के मामले में जो अनिवार्य चरित्र का नहीं है, उल्लंघन की शिकायत की जांच 'पर्याप्त अनुपालन' के दृष्टिकोण से की जानी चाहिए। चाहे जो भी हो, ऐसे प्रावधान के उल्लंघन में पारित आदेश को केवल तभी रद्द किया जा सकता है जहाँ इस तरह के उल्लंघन ने दोषी कर्मचारी को पूर्वाग्रहित किया हो।
(ख) एक ऐसे प्रक्रियात्मक प्रावधान के उल्लंघन के मामले में, जो अनिवार्य प्रकृति का है, यह पता लगाया जाना चाहिए कि क्या यह प्रावधान उस व्यक्ति के हित में तैयार किया गया है जिसके विरुद्ध कार्यवाही की जा रही है, या यह सार्वजनिक हित में है। यदि यह पूर्वोक्त (व्यक्ति के हित में) पाया जाता है, तो यह देखा जाना चाहिए कि क्या दोषी अधिकारी ने उक्त आवश्यकता का त्याग कर दिया है, चाहे स्पष्ट रूप से या अपने आचरण द्वारा। यदि यह पाया जाता है कि उसने इसका त्याग कर दिया है, तो उक्त उल्लंघन के आधार पर दंड के आदेश को रद्द नहीं किया जा सकता है। दूसरी ओर, यदि यह पाया जाता है कि दोषी अधिकारी/कर्मचारी ने इसका त्याग नहीं किया है या यह कि प्रावधान उसके द्वारा त्यागा नहीं जा सकता था, तो न्यायालय या न्यायाधिकरण को 'बी. करुणाकर' [(1993) 4 एससीसी 727 : 1993 एससीसी (एल&एस) 1184 : (1993) 25 एटीसी 704] में संविधान पीठ द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए उचित निर्देश (दंड के आदेश को रद्द करना सहित) देने चाहिए। अंतिम परीक्षण हमेशा एक ही है, अर्थात्, 'पूर्वाग्रह का परीक्षण' या 'निष्पक्ष सुनवाई का परीक्षण', जैसा भी इसे कहा जाए।

(5) जहाँ जाँच किसी भी नियमों/विनियमों/सांविधिक प्रावधानों द्वारा शासित नहीं होती है और एकमात्र दायित्व 'प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों' का पालन करना है – या, उस मामले के लिए, जहाँ कहीं भी ऐसे सिद्धांतों को आदेश/कार्रवाई की प्रकृति और प्रभाव द्वारा निहित माना जाता है – वहाँ न्यायालय या न्यायाधिकरण को 'प्राकृतिक न्याय के पूर्ण उल्लंघन' (सुनवाई का अधिकार) और उक्त नियम के किसी एक पहलू के उल्लंघन के बीच अंतर करना चाहिए, जैसा कि निर्णय के मुख्य भाग में समझाया गया है। दूसरे शब्दों में, 'कोई अवसर नहीं' और 'कोई पर्याप्त अवसर नहीं' के बीच, अर्थात् 'कोई नोटिस नहीं'/'कोई सुनवाई नहीं' और 'निष्पक्ष सुनवाई नहीं' के बीच अंतर किया जाना चाहिए। (क) पूर्वोक्त मामले में, पारित आदेश निस्संदेह अमान्य होगा (यदि कोई चाहे तो इसे 'शून्य' या 'शून्यता' कह सकता है)। ऐसे मामलों में, सामान्यतः, संबंधित प्राधिकारी को कानून

के अनुसार, अर्थात उक्त नियम (दूसरे पक्ष को भी सुनो) का पालन करते हुए नए सिरे से कार्यवाही करने की स्वतंत्रता दी जाएगी। (ख) लेकिन बाद वाले मामले में, (प्राकृतिक न्याय के नियम यानी ऑडी अल्टरम पार्टम के एक पहलू के) उल्लंघन के प्रभाव की जांच 'पूर्वाग्रह' के दृष्टिकोण से की जानी चाहिए; दूसरे शब्दों में, न्यायालय या न्यायाधिकरण को यह देखना है कि क्या परिस्थितियों की समग्रता में, दोषी अधिकारी/कर्मचारी को निष्पक्ष सुनवाई मिली या नहीं, और दिए जाने वाले आदेश उक्त प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करेंगे। [यह स्पष्ट किया जाता है कि यह सिद्धांत (संख्या 5) पक्षपात के विरुद्ध नियम के मामले में लागू नहीं होता है, जिसके लिए परीक्षण कहीं और निर्धारित किए गए हैं।]

(6) ऑडी अल्टरम पार्टम (प्राकृतिक न्याय का प्राथमिक सिद्धांत) के नियम को लागू करते समय, न्यायालय/न्यायाधिकरण/प्राधिकारी को हमेशा उक्त नियम के अंतर्निहित अंतिम और सर्वोपरि उद्देश्य को ध्यान में रखना चाहिए, अर्थात्, एक निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करना और यह सुनिश्चित करना कि न्याय की विफलता न हो। यही वह उद्देश्य है जो उन्हें उनके सामने आने वाली विभिन्न स्थितियों में नियम को लागू करने में मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिए।

(7) ऐसी स्थितियां हो सकती हैं जहां राज्य के हित या सार्वजनिक हित में ऑडी अल्टरम पार्टम (दूसरे पक्ष को भी सुनो) के नियम को सीमित करने की आवश्यकता हो। ऐसी स्थितियों में, न्यायालय को सार्वजनिक/राज्य के हित और प्राकृतिक न्याय की आवश्यकता के बीच संतुलन बनाना पड़ सकता है और एक उचित निर्णय पर पहुंचना पड़ सकता है।"

(जोर दिया गया)

60. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरेंद्र अरोड़ा, (2001) 6 एससीसी 392 के मामले में, इस न्यायालय ने 'पूर्वाग्रह के परीक्षण' की प्रयोज्यता को उन प्रक्रियात्मक प्रावधानों तक भी विस्तारित कर दिया, जो प्रकृति में मूलभूत हैं, जिसके लिए निम्नलिखित प्रासंगिक टिप्पणियाँ नीचे पुनरुत्पादित की जा रही हैं:–

"13. मामले की जांच दूसरे दृष्टिकोण से भी की जा सकती है। ऐसे मामले हो सकते हैं जहाँ सांविधिक प्रावधानों, नियमों और विनियमों का उल्लंघन हुआ हो। क्या यह कहा जा सकता है कि ऐसा प्रत्येक उल्लंघन परिणामी कार्रवाई को शून्य और/या अमान्य बना देगा? कानून में कुछ सारवान प्रावधान हो सकते हैं, उदाहरण के लिए, किसी विशेष कर्मचारी पर विशेष दंड लगाने के लिए सक्षम प्राधिकारी कौन है। ऐसे प्रावधानों का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए क्योंकि इन मामलों में 'पर्याप्त अनुपालन' का सिद्धांत उपलब्ध नहीं हो सकता है। उदाहरण के लिए, जहाँ कोई नियम विशेष रूप से यह प्रावधान करता है कि दूसरे पक्ष के साक्ष्य समाप्त होने के बाद दोषी अधिकारी को अपने मामले के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाएगा, और यदि ऐसा कोई अवसर नहीं दिया जाता है, तो यह कहना संभव नहीं होगा कि जाँच दूषित नहीं हुई थी। <u>लेकिन कई प्रक्रियात्मक प्रावधानों के संबंध में, मामले के अनुसार 'पर्याप्त अनुपालन' के सिद्धांत या 'पूर्वाग्रह के परीक्षण' को लागू करना संभव होगा। यहाँ तक कि प्रक्रियात्मक प्रावधानों के भीतर भी, कुछ ऐसे प्रावधान हो सकते हैं</u>

अनुवादित

जो मूलभूत प्रकृति के हों, जिनका पालन किया जाना आवश्यक है और जिनके मामले में 'पर्याप्त अनुपालन' का सिद्धांत उपलब्ध नहीं हो सकता है, लेकिन पूर्वाग्रह का प्रश्न महत्वपूर्ण हो सकता है। मूलभूत प्रकृति के अलावा अन्य प्रक्रियात्मक प्रावधानों के संबंध में, 'पर्याप्त अनुपालन' का सिद्धांत उपलब्ध होगा और ऐसे मामलों में इस आधार पर की गई आपत्तियों को 'पूर्वाग्रह' की कसौटी पर परखा जाना चाहिए। परीक्षण यह होगा कि क्या दोषी अधिकारी को निष्पक्ष सुनवाई मिली या नहीं। ..."

(जोर दिया गया)"

12. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, न्यायालय इस बात का संज्ञान लेता है कि रिट याचिका में, याचिकाकर्ता ने अपने 1220 दिनों के अनुपस्थिति होने से अस्पष्ट रूप से भी इनकार नहीं किया है। छुट्टी की स्वीकृति या छुट्टी के लिए आवेदन या चिकित्सा प्रमाण पत्र जैसा कोई भी दस्तावेज रिकॉर्ड पर नहीं रखा गया था, इसलिए, न्यायालय का यह विचार है कि चूंकि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पर्याप्त अनुपालन किया गया था कि उसे अपना उत्तर प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया था, हालाँकि, समाचार पत्र में प्रकाशन के बावजूद कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया गया, वह उपस्थित नहीं हुई, इसलिए, न्यायालय इस बात का संज्ञान लेता है कि यदि इस मामले को उस चरण से जांच आयोजित करने के लिए वापस भी भेजा जाता है जहाँ प्रक्रिया का सख्ती से पालन नहीं किया गया था, तो इसका कोई प्रभाव नहीं होगा क्योंकि याचिकाकर्ता के पास अपनी 1220 दिनों की लंबी अनुपस्थिति के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं है, इसलिए, उसे कोई पूर्वाग्रह कारित नहीं हुआ है। याचिकाकर्ता का मामला 'पूर्वाग्रह के परीक्षण' में विफल रहा है। यह न्याय के हित में भी नहीं होगा क्योंकि वर्तमान मामले में, रिट याचिका में, याचिकाकर्ता ने आरोप से इनकार करने का एक बयान तक नहीं दिया है। रिकॉर्ड पर ऐसा कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया जो उसके बचाव का समर्थन कर सके या आरोपों का खंडन कर सके।

13. उपर्युक्त परिस्थितियों में, चूंकि न्यायालय का यह विचार है कि 2004 से 2009 के बीच 1220 दिनों की अनुपस्थिति का बिल्कुल भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, इसलिए, उस दंड में हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है जो आरोपों की प्रकृति को देखते हुए अनुपातहीन नहीं है, तदनुसार यह रिट याचिका **खारिज** की जाती है।

(2025) 5 ILRA 537

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 30.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय

रिट बी संख्या 371 वर्ष 2025

अलख प्रसाद उर्फ अलख देव और अन्य **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:
नारायण दत्त शुक्ला, रितुवेंद्र सिंह नागवंशी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मुरली धर मिश्रा, सचिंदा नंद तिवारी, अनुज श्रीवास्तव, मुख्य स्थायी अधिवक्ता

अनुवादित

दीवानी विधि - यू.पी. जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 – धाराएँ 5, 12, 11(1) और 48 – यू.पी. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 – धारा 157-ए – चकबंदी अधिकारियों का क्षेत्राधिकार – आबादी भूमि पर स्वामित्व – पुनरीक्षण शक्ति का विस्तार - भूखंड संख्या 17, जो रघूनी के नाम दर्ज था, को यू.पी. जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत हस्तांतरित करने की अनुमति दी गई थी। रघूनी ने याचिकाकर्ताओं के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किया। धारा 12 के अंतर्गत अपने नाम दर्ज कराने हेतु याचिकाकर्ताओं के आवेदन को चकबंदी अधिकारी द्वारा यह निर्देश देते हुए खारिज कर दिया गया कि भूखंड को आबादी श्रेणी 6(2) के रूप में दर्ज किया जाए। अपील पर, चकबंदी बंदोबस्त अधिकारी ने याचिकाकर्ताओं के दावे को स्वीकार कर लिया, लेकिन धारा 48 के अंतर्गत पुनरीक्षण में, उप संचालक चकबंदी ने यह मानते हुए कि विक्रय विलेख यू.पी. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 157-ए से बाधित होने के कारण शून्य है, अपीलीय आदेश को निरस्त कर दिया और चकबंदी अधिकारी के आदेश को बहाल कर दिया। अभिनिर्धारितः चकबंदी अधिकारियों के पास आबादी भूमि के स्वामित्व का निर्णय लेने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। उनका क्षेत्राधिकार राजस्व अभिलेखों में भूमि की प्रकृति को "आबादी" के रूप में दर्ज करने तक सीमित है; स्वामित्व के प्रश्नों को सक्षम दीवानी न्यायालय पर छोड़ दिया जाना चाहिए। उप संचालक चकबंदी ने विक्रय विलेख की वैधता और याचिकाकर्ताओं के स्वामित्व का न्यायनिर्णयन करते हुए अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण किया, क्योंकि चकबंदी न्यायालय आबादी भूमि के बारे में स्वामित्व का निर्णय नहीं ले सकता है। न्यायालय ने विक्रय विलेख और स्वामित्व पर निष्कर्ष दर्ज करने वाले पुनरीक्षण आदेश को निरस्त कर दिया। भूखंड को

आबादी श्रेणी 6(2) घोषित करने वाले चकबंदी अधिकारी के आदेश की पुष्टि की गई। पक्षकारों को स्वामित्व के न्यायनिर्णयन के लिए दीवानी न्यायालय जाने की स्वतंत्रता दी गई। रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की गई।

स्वीकार की गई। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.सी. सिंह, जिनकी सहायता विद्वान अधिवक्ता श्री नारायण दत्त शुक्ला द्वारा की गई; निजी प्रतिवादियों के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री मुरली धर मिश्रा, जिनकी सहायता विद्वान अधिवक्ता श्री सचिदानंद तिवारी द्वारा की गई; तथा राज्य प्रतिवादियों के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री तरुण गौड़ को सुना गया।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि ग्राम जब्ही मलकी मुस्तकिल, टप्पा- बाक जोगनी, तहसील- तमकुहीराज, जिला कुशीनगर में स्थित भूखंड संख्या 17, रकबा 10 डिसमिल, श्री रघुनी पुत्र पलख के नाम दर्ज था। श्री रघुनी ने उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 (जिसे इसके बाद यू.पी.सी.एच. अधिनियम के रूप में संदर्भित किया गया है) की धारा 5 के तहत बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) के समक्ष भूखंड संख्या 17, रकबा 10 डिसमिल के हस्तांतरण की अनुमति चाहने हेतु एक आवेदन किया। बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) ने दिनांक 12.03.1981 के आदेश के माध्यम से श्री रघुनी को संपत्ति हस्तांतरित करने की अनुमति प्रदान की। बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) द्वारा 12.03.1981 को दी गई अनुमति के आधार पर, श्री रघुनी ने 29.07.1981 को अलख प्रसाद, जनक प्रसाद और नगीना प्रसाद के पक्ष में एक पंजीकृत विक्रय विलेख निष्पादित किया, जो कि वर्तमान याचिका के याचिकाकर्ता हैं। याचिकाकर्ता अलख प्रसाद, जनक प्रसाद और नगीना प्रसाद ने 29.07.1981 के पंजीकृत विक्रय विलेख के आधार पर उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 12 के तहत अपने नाम दर्ज कराने हेतु आवेदन किया। उपर्युक्त कार्यवाही में, प्रतिवादी संख्या 4/नरसिंह की ओर से प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अधिकार का दावा करते हुए एक आपत्ति दाखिल की गई। चकबंदी अधिकारी ने दिनांक 26.06.1982 के आदेश के माध्यम से उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 12 के तहत याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर आवेदन और प्रतिवादी संख्या 4/नरसिंह द्वारा दायर आपत्ति, दोनों को खारिज कर दिया और निर्देश दिया कि प्रश्नगत भूखंड को आबादी श्रेणी 6 (2) के रूप में दर्ज किया जाना चाहिए। याचिकाकर्ताओं ने चकबंदी अधिकारी के दिनांक 26.06.1982 के आदेश को उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 11(1) के तहत अपील के माध्यम से चुनौती दी, जिसे अपील संख्या 2305, अलख प्रसाद व अन्य बनाम रघुनी व अन्य के रूप में पंजीकृत किया गया। प्रतिवादी संख्या 4/नरसिंह ने भी बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) के समक्ष अपील दायर की, जिसे अपील संख्या 2550 नरसिंह बनाम गाँव सभा के रूप में पंजीकृत किया गया। दोनों अपीलों को समेकित किया गया और एक साथ सुना गया। बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) ने दिनांक 25.10.1982 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर अपील को स्वीकार कर लिया और प्रतिवादी संख्या 4/नरसिंह द्वारा

दायर अपील को खारिज कर दिया। दिनांक 21.10.1982 के अपीलीय आदेश के विरुद्ध, प्रतिवादी संख्या 4 ने अपील संख्या 2305 और अपील संख्या 2550 में पारित दिनांक 21.10.1982 के अपीलीय आदेश के विरुद्ध उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 48 के तहत पुनरीक्षण दायर किया। उपर्युक्त पुनरीक्षण को वाद संख्या 0883 वर्ष 2018 के रूप में पंजीकृत किया गया। उप संचालक चकबंदी ने दिनांक 07.01.2025 के आदेश के माध्यम से प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा दायर पुनरीक्षण को स्वीकार कर लिया, दिनांक 21.10.1982 के अपीलीय आदेश को निरस्त कर दिया और चकबंदी अधिकारी के दिनांक 26.06.1982 के आदेश को बरकरार रखा, जिसके द्वारा प्रश्नगत भूखंड को आबादी श्रेणी 6 (2) के रूप में दर्ज करने का आदेश दिया गया था। अतः निम्नलिखित अनुतोष हेतु यह रिट याचिका दायर की गई है:-

"एक रिट, आदेश या निर्देश उत्प्रेषण की प्रकृति में जारी करें, जिसके द्वारा रिकॉर्ड मंगाया जाए और उप संचालक चकबंदी, कुशीनगर द्वारा वाद संख्या 0883 वर्ष 2018, कंप्यूटरीकृत संख्या 20185405440000000883 में पारित दिनांक 07.01.2025 के आदेश और चकबंदी अधिकारी, तरया सुजान, जिला कुशीनगर द्वारा दिनांक 26.06.1982 को पारित आदेश को निरस्त किया जाए।"

3. इस न्यायालय ने 13.02.2025 को मामले पर सुनवाई की और वादग्रस्त संपत्ति के कब्जे, स्वरूप और प्रकृति के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने के लिए अंतरिम संरक्षण प्रदान किया।

4. दिनांक 13.02.2025 के आदेश के अनुपालन में, पक्षकारों ने अपने शपथ-पत्रों का आदान-प्रदान कर लिया है।

5. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ताओं ने 29.07.1981 के पंजीकृत विक्रय विलेख के आधार पर अपना नाम दर्ज कराने के लिए उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 12 के तहत सही ढंग से आवेदन किया था, लेकिन चकबंदी अधिकारी ने अवैध रूप से याचिकाकर्ताओं के दावे को खारिज कर दिया और निर्देश दिया कि प्रश्नगत भूखंड को आबादी श्रेणी 6 (2) के रूप में दर्ज किया जाए। उन्होंने तर्क दिया कि याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर अपील को बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) द्वारा सही ढंग से स्वीकार किया गया था, ताकि प्रश्नगत भूखंड के दर्ज खातेदार द्वारा निष्पादित पंजीकृत विक्रय विलेख के आधार पर याचिकाकर्ताओं का नाम दर्ज किया जा सके। उन्होंने आगे तर्क दिया कि पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, अपीलीय आदेश को अवैध रूप से निरस्त कर दिया गया है और चकबंदी अधिकारी के आदेश को बरकरार रखा गया है। उन्होंने तर्क दिया कि 29.07.1981 को रघुनी द्वारा याचिकाकर्ताओं के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित करने के बाद, रघुनी ने प्रश्नगत भूखंड के संबंध में अपना अधिकार खो दिया था, इसलिए रघुनी किसी भी कार्यवाही में प्रश्नगत भूखंड के संबंध में समझौता नहीं कर सकता था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि विशेषज्ञ राय प्राप्त करने में, चकबंदी अधिकारियों ने अनिवार्य प्रावधानों का उल्लंघन किया है, इसलिए विशेषज्ञ राय पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता। उन्होंने तर्क दिया कि प्रतिवादी संख्या 4 की ओर से दायर दीवानी वाद सुनवाई योग्य नहीं था क्योंकि प्रतिवादी संख्या 4 का नाम प्रश्नगत भूखंड पर दर्ज नहीं था। उन्होंने

अनुवादित

आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ता दीवानी वाद में पक्षकार नहीं थे, इसलिए, यदि कोई डिक्री पारित हुई है, तो वह याचिकाकर्ताओं पर बाध्यकारी नहीं होगी। उन्होंने तर्क दिया कि प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा दायर दीवानी वाद में समझौता होने का अभिकथन किया गया था, लेकिन प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा दायर वाद की संपूर्ण कार्यवाही दूषित है क्योंकि दीवानी न्यायालय के समक्ष दीवानी वाद विचारणीय नहीं था। उन्होंने तर्क दिया कि चकबंदी अधिकारी के पास भूमिधरी भूमि को आबादी के रूप में दर्ज करने की शक्ति नहीं है। उन्होंने तर्क दिया कि प्रतिवादी संख्या 4 प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अधिकार का दावा कर रहा था, जिसे कानून के अनुसार सिद्ध नहीं किया गया है, इसलिए, निजी प्रतिवादियों के पक्ष में कोई अधिकार उत्पन्न नहीं होगा। उन्होंने तर्क दिया कि पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (जिसे इसके बाद यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम के रूप में संदर्भित किया गया है) की धारा 157-ए के तहत निहित प्रावधानों के संबंध में दर्ज निष्कर्ष पूरी तरह से अवैध है। उन्होंने तर्क दिया कि उप संचालक चकबंदी द्वारा पारित आक्षेपित पुनरीक्षण आदेश निरस्त किए जाने योग्य है और बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) के आदेश को बरकरार रखा जाना चाहिए। उन्होंने अपने तर्क के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों का हवाला दिया:-

(i) 2017 (1) जेसीएलआर 743 (इला.) सत्य प्रकाश गोयल बनाम श्रीमती कविता जैन

(ii) सिविल अपील संख्या 2639 वर्ष 1982 अशर्फी लाल बनाम श्रीमती कोइली (मृतक) उनके विधिक वारिसों द्वारा

(iii) सिविल अपील संख्या 2771 वर्ष 1981 श्रीमती इसाबेला जॉनसन बनाम एम.ए. सुसाई (मृतक) उनके विधिक वारिसों द्वारा

(iv) 1993 (2) एससीसी 458 हीरालाल मूलचंद दोशी बनाम बारोट रमन लाल रणछोड़दास (मृतक) उनके विधिक वारिसों द्वारा

(v) 2022 एआईआर सुप्रीम कोर्ट 3967 एस. कुलदीप सिंह और अन्य बनाम एस. पृथपाल सिंह

(vi) 2018 एससीसी ऑनलाइन एससी 2170 झारखंड राज्य आवास बोर्ड बनाम दीदार सिंह और अन्य

(vii) 2017 (3) एससीसी 740 मोहम्मद अंसारी बनाम भारत संघ और अन्य

6. दूसरी ओर, निजी प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री मुरली धर मिश्रा ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत विक्रय विलेख , यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 157-ए से बाधित है। उन्होंने तर्क दिया कि दीवानी न्यायालय को विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 38 के तहत निषेधाज्ञा प्रदान करने का क्षेत्राधिकार प्राप्त है, इसलिए, प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा दायर दीवानी वाद दीवानी न्यायालय के समक्ष विचारणीय था। उन्होंने तर्क दिया कि दीवानी वाद में प्रश्नगत भूखंड के संबंध में समझौता हो गया है, इसलिए, प्रश्नगत भूखंड के संबंध में याचिकाकर्ताओं का कोई अधिकार और हक नहीं है। उन्होंने तर्क दिया कि चकबंदी अधिकारियों के पास भूखंड को आबादी घोषित करने की शक्ति है और प्रश्नगत भूखंड को आबादी के रूप में दर्ज करने के चकबंदी अधिकारी के आदेश में कोई अवैधता नहीं है। उन्होंने तर्क दिया कि स्वयं रघुनी द्वारा विक्रय विलेख के निष्पादन से इनकार कर दिया गया है, इसलिए, याचिकाकर्ताओं के पक्ष में कोई अधिकार उत्पन्न नहीं होगा। उन्होंने आगे तर्क दिया कि विक्रय विलेख की मूल प्रति किसी भी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं की गई थी,

इसलिए, कथित विक्रय विलेख के आधार पर याचिकाकर्ताओं का नाम प्रश्नगत भूखंड पर दर्ज नहीं किया जा सकता है। उन्होंने तर्क दिया कि प्रश्नगत भूमि आबादी है और दर्ज खातेदार रघुनी द्वारा प्रतिवादी संख्या 4 के कब्जे से इनकार नहीं किया गया है, इसलिए, चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित और उप संचालक चकबंदी द्वारा बरकरार रखे गए आदेश में कोई अवैधता नहीं है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि निजी प्रतिवादी प्रश्नगत भूखंड पर लंबे समय से काबिज हैं और निजी प्रतिवादियों द्वारा निर्माण भी किया गया है, इसलिए, आक्षेपित आदेश के विरुद्ध हस्तक्षेप निजी प्रतिवादियों को अपूरणीय क्षति पहुँचाएगा। उन्होंने आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रतिवादी संख्या 4 के साथ-साथ रघुनी को पक्षकार बनाकर दीवानी वाद संख्या 923 वर्ष 1981 में दिनांक 27.08.1981 को पारित निर्णय और डिक्री को निरस्त करने के लिए दायर दीवानी वाद संख्या 1186 वर्ष 1981 को दिनांक 15.01.1982 के आदेश द्वारा पैरवी न करने के कारण खारिज कर दिया गया था, इसलिए, समझौते के आधार पर पारित दीवानी वाद की डिक्री अंतिम हो चुकी है। उन्होंने तर्क दिया कि याचिकाकर्ताओं ने उस वाद की खारिज होने की तथ्य को छिपाया है, जिसे उन्होंने दीवानी वाद संख्या 923 वर्ष 1981 में पारित निर्णय और डिक्री को शून्य घोषित कराने के लिए दायर किया था, इसलिए, याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता है। उन्होंने अपने तर्क के समर्थन में इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णय का हवाला दिया:-

(i) एआईआर 1973 सुप्रीम कोर्ट 2451 गोरख नाथ दूबे बनाम हरि नारायण सिंह और अन्य
(ii) एससीसी (2018) 330 झारखंड राज्य आवास बोर्ड बनाम दिलदार सिंह

7. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

8. इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि 10 डिसमिल क्षेत्रफल वाला भूखंड संख्या 17, श्री पलक के पुत्र श्री रघुनी के नाम पर दर्ज था। इस तथ्य पर भी कोई विवाद नहीं है कि आधार वर्ष की प्रविष्टि के विरुद्ध, याचिकाकर्ताओं की ओर से आपत्तियाँ दायर की गई थीं, जिसमें श्री रघुनी द्वारा याचिकाकर्ताओं के पक्ष में निष्पादित कथित 29.07.1981 के विक्रय विलेख के आधार पर उनके नाम दर्ज करने की मांग की गई थी और प्रतिवादी संख्या 4 ने प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अधिकार का दावा किया था। इस तथ्य पर भी कोई विवाद नहीं है कि चकबंदी अधिकारी ने याचिकाकर्ताओं के दावे को खारिज कर दिया था और निर्देश दिया था कि प्रश्नगत भूखंड को आबादी श्रेणी 6 (2) के भूखंड के रूप में दर्ज किया जाना चाहिए, लेकिन अपील में, चकबंदी अधिकारी के आदेश को निरस्त कर दिया गया था और पंजीकृत विक्रय विलेख के आधार पर याचिकाकर्ताओं को प्रश्नगत भूखंड पर दर्ज करने का आदेश दिया गया था। इस तथ्य पर भी कोई विवाद नहीं है कि पुनरीक्षण में, अपीलीय आदेश को निरस्त कर दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप प्रश्नगत भूखंड को आबादी श्रेणी 6 (2) के भूखंड के रूप में दर्ज करने के लिए चकबंदी अधिकारी के आदेश को बरकरार रखा गया। इस तथ्य पर भी कोई विवाद नहीं है कि प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा प्रश्नगत भूखंड के संबंध में श्री रघुनी को एकमात्र प्रतिवादी

बनाकर निषेधाज्ञा के लिए दायर दीवानी वाद संख्या 923 वर्ष 1981 को दिनांक 27.08.1981/10.09.1981 के निर्णय और डिक्री द्वारा समझौते के आधार पर डिक्री किया गया था।

9. मामले में शामिल विवाद को समझने के लिए, चकबंदी अधिकारी के समक्ष तैयार किए गए मुद्दों का अवलोकन प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार हैं:-

"वाद प्रतिवादी के आधार पर निम्न वाद बिन्दु बनाए गएः-
1. क्या अलख प्रसाद आदि विवादग्रस्त भूमि के बैनामा के आधार पर भूमिधर एवं अधिपत्यभोगी हैं?
2. क्या नरसिंह पुत्र ठग विवादग्रस्त भूमि की भूमिधर एवं अधिपत्यभोगी हैं?
3. क्या विवादग्रस्त भूमि मौके पर आबादी है?
4. क्या कथित बैनामा अलख प्रसाद आदि गलत व फर्जी है?
5. भूतपूर्व कब्जे का प्रभाव?"

10. चकबंदी अधिकारी के समक्ष तैयार किए गए मुद्दों के अवलोकन से पता चलता है कि विक्रय विलेख के आधार पर याचिकाकर्ताओं के दावे, प्रतिकूल कब्जे के आधार पर प्रतिवादी संख्या 4 के दावे, और साथ ही प्रश्नगत भूखंड की प्रकृति के संबंध में सभी प्रासंगिक मुद्दे चकबंदी अधिकारी के समक्ष तैयार किए गए थे।

11. चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेश के क्रियात्मक खंड का अवलोकन भी प्रासंगिक होगा जो इस प्रकार हैं:-

<u>"प्रतिलिपि आदेश च०अ० दि० 26.6.82 की छायाप्रति</u>

राम प्रगट त्रिपाठी चकबन्दी अधिकारी 10 तरया सुज़ान वाद सं० 1913 से 1915 अंतर्गत धारा 9 क (2) उ०प्र० जो० चकबन्दी अधिनियम बावत ग्राम जबकि मलही मुस्तकिल तप्पा बांक जोगिनी परगना सिधुआ जोबना तहसील पडरौना जिला देवरिया।

1- नर सिंह पुत्र ठग निवासी ग्राम-वादी प्रथम पक्ष
1/1.....
2- अलख प्रसाद व नागीक प्रसाद पुत्रगण-वादी द्वितीय पक्ष
दल्ली नि0 ग्राम जवही दयाल

बनाम

रघुनी पुत्र फलक निवासी ग्राम वर्तमान कर्त. 0 ग0 - प्रतिपक्षी
स्टेशन निकट

<u>आदेश</u>

उपरोक्त विवेचक एवं निष्कर्षों के आधार पर ग्राम जवही मलही मुस्तकिल के खाता सं० 78 की भूमि सं० 17/0.10 से रघुनी पुत्र पलक का नाम काटकर आबादी वर्ग 6(2) अंकित किया जाता है। नरसिंह पुत्र ठग का

नाम अंकित करने की एवं अलख प्रसाद, जनक प्रसाद, नगीना प्रसाद पुत्रगण दल्ली का बैनामा के आधार पर नाम अंकित करने की कार्यवाही खारिज की जाती है।

यह आदेश वाद सं० 1913 से 1915 पर लागू रहेगा। आदेश सुनाया गया। पत्रावली बाद अमदरामद व पू० दाखिल दफ्तर हो।

हस्ता०अ०
26/6/82
चकबन्दी अधिकारी
तरया सुजान"

12. चकबंदी अधिकारी ने याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ प्रतिवादी संख्या 4 की आपत्तियों का निस्तारण करते हुए यह निर्देश दिया कि प्रश्नगत भूखंड को आबादी श्रेणी 6-2 के भूखंड के रूप में दर्ज किया जाए और याचिकाकर्ताओं- अलख प्रसाद व अन्य तथा प्रतिवादी संख्या 4 नाम दर्ज करने के दावे को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

13. बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी ने अपील का निर्णय लेते हुए यह माना है कि पंजीकृत विक्रय विलेख के आधार पर याचिकाकर्ताओं के दावे को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है और याचिकाकर्ता प्रश्नगत भूखंड पर दर्ज किए जाने के हकदार हैं; हालाँकि, प्रश्नगत भूखंड को 29.07.1981 के पंजीकृत विक्रय विलेख के आधार पर याचिकाकर्ताओं- अलख प्रसाद व अन्य की 'शामिल जोत आबादी' के रूप में दर्ज किया जाए।

14. उप संचालक चकबंदी ने बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी के आदेश को निरस्त करने के बाद, चकबंदी अधिकारी द्वारा निर्धारित अनुसार भूखंड को आबादी श्रेणी 6-(2) के भूखंड के रूप में दर्ज करने के लिए चकबंदी अधिकारी के आदेश को बरकरार रखा है। प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा यू.पी.सी.एच.अधिनियम की धारा 48 के तहत दायर पुनरीक्षण में उप संचालक चकबंदी ने यह भी माना है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत विक्रय विलेख यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 157-ए से बाधित है, जो पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का उचित प्रयोग नहीं है।

15. जहाँ तक आबादी भूमि के संबंध में चकबंदी न्यायालय के क्षेत्राधिकार का प्रश्न है, इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णय अवलोकन के लिए प्रासंगिक होंगे, जो इस प्रकार हैं:-

“(i) 2004 (97) आरडी 705 जय नारायण और अन्य बनाम उप संचालक चकबंदी और अन्य
(ii) 2004 (96) आरडी 303 राम प्रसाद बनाम उप संचालक चकबंदी और अन्य
(iii) 2003 (95) आरडी 611 प्रभु नाथ बनाम उप संचालक चकबंदी
(iv) 1987 आरडी 85 चकत और अन्य बनाम बाबू राम और अन्य
(v) 1979 आरडी 78 कमला शंकर और अन्य बनाम उप संचालक चकबंदी और अन्य
(vi) 1974 आरडी 5 (डीबी) त्रिलोकी नाथ बनाम राम गोपाल और अन्य”

16. इस न्यायालय ने **कमला शंकर (उपरोक्त)** के मामले में यह माना है कि चकबंदी अधिकारियों के पास आबादी भूमि के संबंध में स्वामित्व तय करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। **कमला शंकर (उपरोक्त)** में दिए गए निर्णय के प्रासंगिक पैरा का अवलोकन करना आवश्यक होगा जो इस प्रकार है:-

"पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, मैं इस राय का हूँ कि याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया तर्क सुविचारित है। त्रिलोकी नाथ बनाम राम गोपाल(1) में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने यह माना कि यदि चकबंदी अधिकारी यह पाते हैं कि कोई विशेष जोत कृषि, बागवानी, या पशुपालन आदि से असंबंधित उद्देश्यों के लिए उपयोग की जा रही है, जैसा कि यू.पी. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम के तहत 'भूमि' की परिभाषा में परिकल्पित है, तो उन्हें ऐसी भूमि के संबंध में स्वामित्व के प्रश्न का निर्णय लेने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है।

यह तर्क कि चकबंदी अधिकारियों के पास राजस्व अभिलेखों को ठीक करने का कम से कम क्षेत्राधिकार है, उसे भी खारिज कर दिया गया और यह माना गया कि यह केवल उस मामले में अधिकार रखने वाले उपयुक्त न्यायालय द्वारा भूमि के स्वामित्व का निर्णय लिए जाने के बाद ही उचित रूप से किया जा सकता है। त्रिलोकी नाथ के मामले में जो निर्धारित किया गया है, उसे देखते हुए मैं इस राय का हूँ कि चकबंदी अधिकारियों के पास केवल यह क्षेत्राधिकार था कि वे सी.एच. फॉर्म संख्या 2-ए के संबंधित कॉलम में यह प्रविष्टि करें कि भूमि स्थल पर आबादी है। उन्हें याचिकाकर्ताओं के नामों को उन कागजों से हटाने का निर्देश देने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था जो उन्हें भूमिधर के रूप में दर्शाते थे।

प्रतिवादी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह आग्रह किया गया था कि यदि याचिकाकर्ताओं के पक्ष में भूमिधर के रूप में प्रविष्टि को जारी रहने दिया जाता है, तो यह हो सकता है कि बाद की कार्यवाहियों में यू.पी. जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 प्रतिवादी संख्या 4 के दावे को वर्जित कर दे। हालाँकि, मैं इस तर्क से सहमत होने में असमर्थ हूँ। स्पष्ट रूप से, जब चकबंदी अधिकारी इस आधार पर प्रविष्टि को जारी रहने देते हैं कि उनके पास स्वामित्व के प्रश्न पर निर्णय लेने का क्षेत्राधिकार नहीं है, तो कल्पना के किसी भी आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि चकबंदी अधिकारियों द्वारा स्वामित्व के संबंध में कोई निर्णय लिया गया है। इसलिए, बाद की कार्यवाहियों में यू.पी. जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 द्वारा किसी भी पक्ष के दावे के वर्जित होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। मुझे सूचित किया गया है कि विवादित भूखंड पर खड़े निर्माणों को गिराने के लिए एक दीवानी वाद पहले से ही लंबित है। यह वाद याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रतिवादी संख्या 4 के विरुद्ध दायर किया गया है। इसलिए, ग्राम अभिलेखों में प्रविष्टियों को दीवानी न्यायालय द्वारा पक्षकारों के अधिकारों का अंतिम रूप से न्यायनिर्णयन किए जाने के बाद ही सुधारा जा सकता है।

आदेश

6. परिणामस्वरूप, याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। याचिकाकर्ताओं के नाम हटाने का निर्देश देने वाले चकबंदी अधिकारियों के आदेशों को निरस्त किया जाता है। जब तक कि सक्षम न्यायालय द्वारा पक्षकारों के अधिकारों का निर्धारण नहीं कर लिया जाता, तब तक याचिकाकर्ता आधार वर्ष की भाँति भूमिधर के रूप में दर्ज बने रहेंगे। हालाँकि, चकबंदी अधिकारी उपयुक्त कॉलम में इस आशय की प्रविष्टि करेंगे कि विवादित भूखंड स्थल पर आबादी है। मामले की परिस्थितियों को देखते हुए, वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

17. जहाँ तक कृषि भूमि के संबंध में दीवानी वाद की पोषणीयता का प्रश्न है, कानून यह भली-भांति स्थापित है कि कृषि भूमि के संबंध में ऐसा दीवानी वाद, जो वादी के नाम पर दर्ज नहीं है, पोषणीय नहीं हो सकता है।

18. वर्तमान मामले में, प्रतिवादी संख्या 4, नरसिंह द्वारा रघूनी को एकमात्र प्रतिवादी बनाते हुए स्थायी निषेधाज्ञा के लिए दायर दीवानी वाद संख्या 923 सन् 1981 को 18.08.1981/10.09.1981 के निर्णय और डिक्री के माध्यम से समझौते के आधार पर डिक्री किया गया था, लेकिन याचिकाकर्ता उपर्युक्त दीवानी वाद में पक्षकार नहीं थे, इस प्रकार, दीवानी वाद में पारित समझौता डिक्री वास्तव में पोषणीय नहीं थी, क्योंकि वादी/नरसिंह उस समय प्रश्नगत भूखंड पर दर्ज नहीं था। विवादित भूखंड के संबंध में पहली बार न्यायनिर्णयन चकबंदी न्यायालय द्वारा 26.06.1982 के आदेश के माध्यम से किया गया था, जिसमें प्रश्नगत भूखंड को आबादी घोषित किया गया था।

19. यू.पी. जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 48 के तहत उप संचालक चकबंदी द्वारा पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए याचिकाकर्ताओं के विक्रय विलेख को शून्य घोषित करने का निष्कर्ष अवैध है, क्योंकि चकबंदी न्यायालय आबादी भूमि के बारे में स्वामित्व का निर्णय नहीं ले सकता है। चकबंदी अधिकारी ने सही ढंग से यह माना था कि प्रश्नगत भूखंड को आबादी श्रेणी 6 (2) के भूखंड के रूप में दर्ज किया जाना चाहिए और विक्रय विलेख के आधार पर याचिकाकर्ताओं के दावे के साथ-साथ प्रतिकूल कब्जे के आधार पर प्रतिवादी संख्या 4/नरसिंह के दावे को खारिज कर दिया था। अपीलीय न्यायालय ने चकबंदी अधिकारी के आदेश को निरस्त कर दिया है और यह माना है कि प्रश्नगत भूखंड को याचिकाकर्ताओं की 'शामिल जोत आबादी' के रूप में दर्ज किया जाना चाहिए। पुनरीक्षण न्यायालय ने 26.06.1982 को चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेश के आधार पर उस भूखंड के स्वामित्व का निर्णय लेते हुए अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण किया है, जो आबादी है।

20. मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित 07.01.2025 के आक्षेपित पुनरीक्षण आदेश का वह भाग, जिसके तहत प्रश्नगत भूखंड के स्वामित्व के संबंध में निष्कर्ष दर्ज किया गया है, कानून की दृष्टि में टिकाऊ नहीं है और उसे एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है। पुनरीक्षण आदेश का वह भाग जिसके द्वारा 21.10.1982 के अपीलीय आदेश को निरस्त किया गया है, उसे एतद्द्वारा बरकरार रखा जाता है। चकबंदी अधिकारी द्वारा 26.06.1982 को पारित आदेश, जिसके तहत प्रश्नगत भूखंड को आबादी श्रेणी 6 (2) के भूखंड के रूप में घोषित किया गया था, को एतद्द्वारा पुष्टि प्रदान की जाती है। पक्षकारों को कानून के अनुसार विवादित भूमि के स्वामित्व के संबंध में विवाद के न्यायनिर्णयन लिए दीवानी न्यायालय जाने की स्वतंत्रता होगी।

21. रिट याचिका आंशिक रूप से **स्वीकार** की जाती है।

22. वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

(2025) 5 ILRA 544

मूल अधिकारिता – सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 22.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

रिट-B संख्या 453 सन् 2025

शम्भू प्रसाद पाण्डेय एवं अन्य ... याचिकाकर्तागण

बनाम

उपनिदेशक, चकबन्दी, अयोध्या एवं अन्य ... प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: गंगा प्रसाद मिश्रा, अभिनव मिश्रा, हेमन्त त्रि., हेमन्त त्रिपाठी

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता: मुख्य स्थायी अधिवक्ता, अम्बिकेश सिंह, मोहन सिंह, स्वाति सिंह

अनुवादित

सिविल विधि – उ.प्र. चकबन्दी अधिनियम, 1953 – उ.प्र. चकबन्दी नियमावली, 1954, नियम 25-A – उ.प्र. ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 – सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 – धारा 54 – पंजीकरण अधिनियम, 1908 – धारा 17 –

विचारणीय प्रश्न:

A. क्या ACO, वर्ष 1954 की नियमावली के नियम 25-A के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए, 'विक्रय' की श्रेणी में आने वाली स्थावर सम्पत्ति में अधिकारों का अन्तरण करने के लिए सशक्त था/है?

B. क्या ACO, वर्ष 1954 की नियमावली के नियम 25-A के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए, समझौते या सुलह द्वारा ऐसे व्यक्ति के पक्ष में नए अधिकार सृजित कर सकता था, जिसका विवादित भूमि में कोई अधिकार/हित नहीं था?

C. क्या वर्ष 1954 की नियमावली के नियम 25-A, सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम 1882 (संक्षेप में "1882 का अधिनियम") की धारा 54 एवं पंजीकरण अधिनियम, 1908 (संक्षेप में "1908 का अधिनियम") की दृष्टि से अवैध अन्तरण को सरकारी कोष में राजस्व जमा करके वैध किया जा सकता था?

D. क्या प्रत्यर्थी क्रमांक 2/चन्द्र प्रकाश सिंह, 1950 के अधिनियम की धारा 164 के लाभ के अधिकारी हैं?

अभिनिर्धारित – 1882 के अधिनियम की धारा 54 से स्पष्ट है कि एक सौ रुपये से अधिक मूल्य की स्थावर सम्पत्ति का अन्तरण केवल 1908 के अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत दस्तावेज/लिखत द्वारा ही किया जा सकता

है। यदि किसी व्यक्ति को विधि के अंतर्गत कोई अधिकार प्राप्त नहीं था, तो ऐसा कोई अधिकार समझौते द्वारा मान्यता नहीं पा सकता और न ही समझौते या सुलह के माध्यम से नया अधिकार सृजित किया जा सकता है। वर्ष 1954 की नियमावली का नियम 25-A यह इंगित करता है कि काश्तकाराधारकों से संबंधित ऐसे विवाद, जो पहले से विद्यमान अधिकारों – अर्थात 1950 के अधिनियम या विधि के किसी अन्य प्रावधान के अंतर्गत उपलब्ध अधिकारों – से संबंधित हों, को ACO द्वारा नियम 25-A के अंतर्गत विधिसम्मत करार या समझौते से मान्यता दी जा सकती है और ACO इस नियम के अंतर्गत करार या समझौते या सुलह के माध्यम से नए अधिकार प्रदान करने के लिए सशक्त नहीं था/है। (पैरा 17, 19, 22)

B. विवाद गाटा संख्या 748 से संबंधित है, जो मूलतः राम नयन पाण्डेय के नाम से अभिलिखित था; दिनांक 09.12.1983 को सहायक चकबन्दी अधिकारी (ACO) ने, उ.प्र. चकबन्दी नियमावली, 1954 के नियम 25-A के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए, राम नयन पाण्डेय द्वारा प्रत्यर्थी क्रमांक 2, चन्द्र प्रकाश सिंह के पक्ष में किए गए कथित मौखिक अन्तरण को मान्यता दी और उन्हें भूमि पर पूर्ण अधिकार प्राप्त के रूप में अभिलिखित किया, जबकि वे न तो सह-काश्तकाराधारक थे, न परिवार के सदस्य, और न ही उ.प्र. ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 के अंतर्गत कोई वैधानिक अधिकार रखते थे; राम नयन पाण्डेय के उत्तराधिकारियों, अर्थात याचिकाकर्ताओं, ने उक्त आदेश को चुनौती दी। चकबन्दी अधिकारी ने दिनांक 26.02.2024 के आदेश से पुनः मौखिक अन्तरण को, चन्द्र प्रकाश सिंह को बाज़ार मूल्य पर राजस्व जमा करने का निर्देश देकर, वैध ठहराया, जिसे निपटान अधिकारी, चकबन्दी (SOC) ने दिनांक 03.03.2025 को अपास्त किया, किन्तु पुनरीक्षण में उपनिदेशक, चकबन्दी (DDC) ने दिनांक 30.04.2025 के आक्षेपित आदेश से CO का आदेश पुनर्स्थापित किया, जिससे वर्तमान रिट याचिका DDC के आदेश के विखण्डन एवं बेदखली से संरक्षण की माँग करते हुए संस्थित की गई।

अभिनिर्धारित: ACO, गाटा संख्या 748 की विवादित भूमि के राम नयन पाण्डेय द्वारा प्रत्यर्थी क्रमांक 2/चन्द्र प्रकाश सिंह के पक्ष में किए गए कथित मौखिक अन्तरण को मान्यता देने के लिए सशक्त नहीं था। दिनांक 09.12.1983 के आदेश द्वारा विवादित भूमि गाटा संख्या 748 के संबंध में नए अधिकार सृजित करने में ACO ने अपनी अधिकारिता का अतिक्रमण किया और विधि में भूल की। ACO इस नियम के अंतर्गत करार, समझौते या सुलह के माध्यम से नए अधिकार प्रदान करने के लिए सशक्त नहीं था/है। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी क्रमांक 2/चन्द्र प्रकाश सिंह 1950 के अधिनियम की धारा 164 के अंतर्गत उपलब्ध लाभ के अधिकारी नहीं हैं, क्योंकि अभिलेख पर प्रत्यर्थी क्रमांक 2/चन्द्र प्रकाश सिंह द्वारा ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया जो 1950 के अधिनियम की धारा 164 को आकर्षित करने हेतु अनिवार्य तत्वों को सकारात्मक रूप से स्थापित करे। ACO द्वारा स्थावर सम्पत्ति के अन्तरण को सरकारी कोष में सम्पत्ति के बाज़ार मूल्य पर निश्चित राशि/राजस्व जमा करवाकर वैध करने का निर्देश किसी भी प्राधिकार के बिना है। जो अन्तरण प्रारंभ में वैध नहीं था, उसे सरकारी कोष में निश्चित राशि जमा करने के माध्यम से वैध नहीं किया जा सकता। दिनांक 30.04.2025 का आदेश (अनुलग्नक संख्या 1) एतद्द्वारा अपास्त/विखण्डित किया जाता है और SOC द्वारा दिनांक 03.03.2025 को पारित आदेश पुनर्स्थापित किया जाता है। (पैरा 23, 24, 26)

स्वीकृत। (E-5)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया द्वारा उद्घोषित)

1. श्री हेमंत त्रिपाठी, अधिवक्ता एवं श्री हरि ओम पाण्डेय, अधिवक्ता द्वारा याचिकाकर्ताओं की ओर से दाखिल वकालतनामा अभिलेख पर लिया गया।

2. श्री आर.एस. पाण्डेय, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को सुना, जिन्हें श्री हेमंत त्रिपाठी और श्री हरि ओम पाण्डेय, विद्वान अधिवक्ताओं ने याचिकाकर्ताओं की ओर से सहायता की, श्री हेमंत कुमार पाण्डेय, विद्वान स्थायी अधिवक्ता को राज्य/प्रत्यर्थी संख्या 1 और 3 की ओर से सुना, श्री मोहन सिंह, विद्वान अधिवक्ता को प्रत्यर्थी संख्या 4/गांव सभा की ओर से सुना और श्री राकेश डी. कुमार, अधिवक्ता को सुना, जो श्री अम्बिकेश सिंह, अधिवक्ता और सुश्री स्वाति सिंह, अधिवक्ता की ओर से उपस्थित हुए, जिन्होंने प्रत्यर्थी संख्या 2/चन्द्र प्रकाश सिंह के लिए प्रतिवाद दाखिल किया था।

3. पक्षकारों की सहमति से, याचिका का निस्तारण स्वीकृति के चरण में ही किया जा रहा है।

4. वर्तमान याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित मुख्य अनुतोष मांगा है:-

"(i) प्रत्यर्थी संख्या 1 (उप निदेशक चकबंदी, अयोध्या) द्वारा दिनांक 30.04.2025 को उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 48 के अंतर्गत निगरानी संख्या 3024/202554042300000106, चन्द्र प्रकाश सिंह बनाम संभू प्रसाद एवं अन्य, ग्राम सरेठी, परगना हवेली अवध, तहसील सदर, जिला अयोध्या में पारित आक्षेपित आदेश को निरस्त करने के लिए परमादेश की प्रकृति का रिट जारी किया जाए, जो इस याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में निहित है।

(ii) न्याय के हित में प्रत्यर्थियों को निर्देशित करने वाला परमादेश की प्रकृति का रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए कि वे याचिकाकर्ताओं को विवादग्रस्त भूमि से बेदखल न करें।"

5. याचिकाकर्ताओं ने प्रत्यर्थी संख्या 1/उप निदेशक चकबंदी, अयोध्या (संक्षेप में "डी.डी.सी.") द्वारा उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 (संक्षेप में "1953 का अधिनियम") की धारा 48(1) के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए निगरानी संख्या 3024/202554042300000106, (चन्द्र प्रकाश सिंह बनाम संभू प्रसाद एवं अन्य) में दिनांक 30.04.2025 को पारित आदेश को चुनौती दी है।

6. याचिका के निस्तारण के प्रयोजन के लिए प्रासंगिक तथ्य निम्नलिखित हैं:-

अनुवादित

i) विवाद गाटा संख्या 748, क्षेत्रफल 3 बीघा 17 दुर, खाता संख्या 56 में अंकित, ग्राम - सरेठी, परगना - हवेली औध, तहसील - सदर, जिला - फैजाबाद (अब अयोध्या) (संक्षेप में 'विवादग्रस्त भूमि') से संबंधित है।

ii) सहायक चकबंदी अधिकारी (संक्षेप में ए.सी.ओ.) ने उ.प्र. जोत चकबंदी नियमावली, 1954 (संक्षेप में "1954 के नियम") के नियम 25-ए के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए दिनांक 09.12.1983 को पारित आदेश द्वारा अभिलिखित काश्तकारी धारक राम नायन पाण्डेय के कथन के आधार पर प्रत्यर्थी संख्या 2 अर्थात् चन्द्र प्रकाश सिंह पुत्र चतुर्भुज सिंह को विवादग्रस्त भूमि प्रदान की, जिसमें यह कहा गया था कि विवादग्रस्त भूमि चन्द्र प्रकाश सिंह को बेची/हस्तांतरित की गई है, और ए.सी.ओ. के दिनांक 09.12.2023 के आदेश के अनुसार, निजी-प्रत्यर्थी संख्या 2 अर्थात् चन्द्र प्रकाश सिंह को विवादग्रस्त भूमि अर्थात् गाटा संख्या 748, जिसका विवरण ऊपर दिया गया है, पर पूर्ण अधिकार प्राप्त थे।

iii) इस चरण में यह इंगित करना उचित होगा कि जब ए.सी.ओ. द्वारा 1954 के नियमों के नियम 25-ए के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए दिनांक 09.12.1983 का आदेश पारित किया गया था, तब प्रत्यर्थी संख्या 2 अर्थात् चन्द्र प्रकाश सिंह के पास विवादग्रस्त भूमि अर्थात् गाटा संख्या 748 पर उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (संक्षेप में "1950 का अधिनियम") अर्थात् विधि द्वारा मान्यता प्राप्त कोई अधिकार नहीं थे, क्योंकि वह विवादग्रस्त भूमि अर्थात् गाटा संख्या 748 का सह-काश्तकारी धारक नहीं था, न ही वह राम नायन पाण्डेय के परिवार का हिस्सा था, न ही वह राम नायन पाण्डेय से संबंधित वंशावली का हिस्सा था और न ही राम नायन पाण्डेय और प्रत्यर्थी संख्या 2/चन्द्र प्रकाश सिंह के बीच विवादग्रस्त भूमि से संबंधित कोई विवाद था।

iv) दिनांक 09.12.1983 के आदेश के बारे में जानकारी होने पर, राम नायन पाण्डेय के विधिक उत्तराधिकारियों/पुत्रों, जो इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता अर्थात् संभू प्रसाद पाण्डेय और राकेश कुमार पाण्डेय हैं, ने 1953 के अधिनियम की धारा 11(1) के अंतर्गत अपील दायर की (शंभू प्रसाद एवं अन्य बनाम चन्द्र प्रकाश एवं अन्य) । यह अपील संख्या 1434/1511/1465/1337 बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, फैजाबाद (अब अयोध्या) (संक्षेप में "एस.ओ.सी.") द्वारा दिनांक 24.12.2016 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई।

v) एस.ओ.सी. द्वारा दिनांक 24.12.2016 को पारित आदेश को 1953 के अधिनियम की धारा 48 के अंतर्गत निगरानी संख्या 968/2017530423000053 (शंभू प्रसाद एवं अन्य बनाम चन्द्र प्रकाश एवं अन्य) में डी.डी.सी. द्वारा दिनांक 18.02.2019 को पारित आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया। दिनांक 18.02.2019 के आदेश का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:-

"प्रस्तुत किये गये तर्कों के आलोक में अपीलीय न्यायालय की पत्रावली के सम्यक परिशीलन से स्पष्ट है कि निगरानीकर्ता की ओर से अपीलीय न्यायालय के समक्ष स०च०अ० के आदेश दिनांक 09.12.83 वाद संख्या 2552 अन्तर्गत धारा-9 क (2) जोत चकबन्दी अधिनियम के विरुद्ध कालबाधित अपील दिनांक 09.07.2014

को प्रस्तुत किया था। वाद भूमि उसके पिता रामनयन पुत्र रामगोपाल द्वारा बैनामा से क्रय की गयी भूमि है। बैनामें के आधार पर परगनाधिकारी के आदेश दिनांक 27.11.73 द्वारा उनके पिता का माम याद भूमि पर अंकित हुआ था। सहायक चकबन्दी अधिकारी के आदेश दिनांक 09.12.83 से रामनयन पुत्र रामगोपाल के स्थान पर चन्द्रप्रकाश सिंह पुत्र चतुर्भुज सिंह का नाम फर्जी रूप से अंकित कर दिया गया है। अपील पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्यों के अवलोकन से स्पष्ट है कि निगरानीकर्तागण के पिता रामनयन द्वारा वाद भूमि को वासुदेव पुत्र रामसमुझ से दिनांक 14.09.73 को जरिये पंजीकृत बैनामा क्रय किया गया है और इसी बैनामें के आधार पर गाटा संख्या 748/3-0-17 के 1/2 भाग पर रामनयन पुत्र रामगोपाल का का नाम परगनाधिकारी के आदेश दिनांक 27.11 1973 द्वारा अंकित हुआ है। खतौनी 1384 ता० 89 फसली के खाता संख्या 76 गाटा संख्या 748/3-0-17 पर स०च०अ० वाद संख्या 2552 आदेश दिनांक 09.12.83 के द्वारा खाता संख्या 76 में माता प्रसाद के पिता का नाम नगेसर दर्ज हो तथा रामनयन पुत्र रामगोपाल के स्थान पर चन्द्रप्रकाश सिंह पुत्र चतुर्भुज सिंह सही दर्ज कियान जाय। खाते का विभाजन प्रत्येक का 1/2 भाग किया जाय, की अमलदरामद अंकित है। इस प्रकार स्पष्ट है कि निगरानीकर्ता के पिता रामनयन पुत्र रामगोपाल के बैनामें की भूमि पर सहीं नाम के आधार पर चन्द्रप्रकाश सिंह पुत्र चतुर्भुज सिंह का नाम स०च०अ० के आदेश से अंकित किया गया है किन्तु जब बैनामें में रामनयन पुत्र रामगोपाल दर्ज है तो सही नाम चन्द्रप्रकाश सिंह पुत्र चतुर्भुज सिंह कैसे हो सकता है और बैनामें की भूमि पर किस आधार पर चन्द्रप्रकाश का नाम किस आधार पर अंकित किया गया है इसपर कोई विचार नहीं किया गया है। मात्र शपथपत्र में कहे गये कथनो के आधार पर अपीलकर्तागण को बालिग कहते हुए अपील को मियाद के बिन्दु पर निरस्त कर दिया गया है।

उत्तर प्रदेश जोत चकबन्दी अधिनियम किसी भी दृष्टि से सहायक चकबन्दी अधिकारी को यह अधिकार नहीं प्रदान करता कि बिना विक्रय विलेख निष्पादित किये एक जीवित व्यक्ति का नाम निरस्त करके एक अजनबी जीवित व्यक्ति का नाम अंकित कर दिया जाय। रजिस्ट्रेशन अधिनियम के अन्तर्गत ऐसी सम्पति के अन्तरण के लिए विक्रय विलेख निष्पादित किया जाना आवश्यक है क्योंकि इसमें राज्य सरकार के राजस्व की हानि होती है। यदि किसी प्राधिकारी में कोई अधिकार निहित नहीं है और बिना अधिकार के वह कोई कार्य करता है तो ऐसा कार्य अथवा आदेश प्रारम्भ से ही शून्य होता है और इसमें अवधि की सीमा प्रभावी नहीं होती है। यदि कोई आदेश प्रारम्भ से ही शून्य हैतो समय सीमा इसमें किसी प्रकार बाधक नहीं बन सकती। इस दृष्टि से सहायक चकबन्दी अधिकारी ने कदाचित अवैध अन्तरण करते हुए राज्य सरकार की राजस्व की हानिकारित करके एक अधिकार रहित आदेश पारित किया है जिसकी उपेक्षा अवधि के बिन्दु पर नहीं की जा सकती।

विचारोपरान्त मैं इस मत का हूँ कि निगरानी स्वीकार करके अपीलीय न्यायालय का आदेश निरस्त करके प्रकरण पुनः अपीलीय न्यायालय को गुणदोष पर निस्तारण हेतु प्रेषित कर दिया जाय जहाँ पर इस बिन्दु पर विचार किया जाय कि सहायक चकबन्दी अधिकारी द्वारा पारित आदेश से कहीं अवैध अन्तरण तो नहीं किया गया है और राज्य सरकार के राजस्व की हानि हुयी है। तदुनदुसार निम्न आदेश पारित किया जाता है।

<u>आदेश</u>

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह निगरानी स्वीकार की जाती है। बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी द्वारा पारित आदेश दिनांक 24.12.2016 निरस्त किया जाता है तथा ऊपर दिये गये निर्देश के परिप्रेक्ष्य में अपील गुणदोष पर पुनः निस्तारण हेतु बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी अयोध्या के न्यायालय पर प्रतिप्रेषित की जाती है। पक्ष बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी अयोध्या के न्यायालय पर अग्रेतर कार्यवाही हेतु दिनांक 06.03.2019 को उपस्थित हो। इस न्यायालय की पत्रावली अग्रेतर कार्यवाही के उपरान्त राजस्व अभिलेखालय में संचित हो।"

vi) डी.डी.सी. के दिनांक 18.02.2019 के आदेश, जिसका ऊपर संदर्भ दिया गया है, के अनुसार एस.ओ.सी. ने अपील संख्या 1400 के रूप में पंजीकृत अपील का निस्तारण दिनांक 29.02.2020 के आदेश द्वारा किया। दिनांक 29.02.2020 के आदेश का क्रियाशील भाग इस प्रकार है:-

"अतः आदेश हुआ कि प्रश्नगत अपील स्वीकार की जाती है। सहायक चकबन्दी अधिकारी का आदेश दिनांक- 09.12.1983 निरस्त किया जाता है। पत्रावली अवर न्यायालय को इस निर्देश के साथ प्रतिप्राषत की है कि अवैध हस्तान्तरण के संबंध में विवेचन करते हुए पक्षों से साक्ष्य लेने के उपरान्त गुण-दोष के आधार पर आदेश पारित चकबन्दी अधिकारी नंदर के न्यायालय पर दिनांक- 13.03.2020 को उपस्थित की पत्रावली बाद आवश्यक पूर्ति दाखिल-दफ्तर हो।"

vii) डी.डी.सी. ने निगरानी संख्या 1995/20215304230000001 (चन्द्र प्रकाश सिंह बनाम शंभू प्रसाद पाण्डेय एवं अन्य) में अपने दिनांक 03.04.2024 के आदेश द्वारा एस.ओ.सी. के दिनांक 29.02.2020 के आदेश की पुष्टि की।

viii) चकबंदी अधिकारी, सदर अयोध्या (संक्षेप में "सी.ओ.") ने उक्त निगरानी के लंबित रहते हुए, 1953 के अधिनियम की धारा 9ए(2) की शक्ति का प्रयोग करते हुए, मामला संख्या 477/2024/2021550423010015 (शंभू प्रसाद पाडेनी एवं अन्य बनाम चन्द्र प्रकाश सिंह एवं अन्य) में दिनांक 26.02.2024 को पारित आदेश द्वारा विवादग्रस्त भूमि अर्थात् गाटा संख्या 748 से संबंधित पक्षकारों के बीच विवाद का निस्तारण किया। आदेश का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:-

"वादी शम्भू प्रसाद पाण्डेय आदि द्वारा सहायक चकबन्दी अधिकारी के उपरोक्त आदेश के विरूद्ध अपील प्रस्तुत की गयी। जिसे स्वीकार करते हुए यह वाद पत्रावली प्रत्यावर्तित की गयी, अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश के क्रम में प्रकरण में एक मात्र विधिक बिन्दु कि क्या सहायक चकबन्दी अधिकारी द्वारा वाद सं0 2552/09.12.1983 में रामनयन के स्थान पर चन्द्रप्रकाश का नाम समझौते के आधार पर दर्ज किया जाना अवैध हस्तान्तरण की श्रेणी में आता है। यदि हां तो प्रभाव? निर्मित करते हुए निस्तारण किया जाना है।

Xxxxxxx

अनुवादित

प्रकरण माननीय उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका सं० 1384/ए-227/2023 शम्भू प्रसाद पाण्डेय एवं अन्य बनाम चकबन्दी अधिकारी सदर एवं अन्य में पारित आदेश दिनांक 23.03.2023 एवं अवमानना याचिका सं० 4398/2023 शम्भू प्रसाद पाण्डेय एवं अन्य बनाम राकेश खन्ना चकबन्दी अधिकारी सदर अयोध्या एवं अन्य में पारित आदेश दिनांक 13.12.2023 एंव 18.01.2024 से आच्छादित है। मैने पत्रावली पर उपलब्ध समस्त अभिलेखीय साक्ष्यों का गहन अवलोंकन किया एवं उभयपक्ष के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों का सम्यक अनुशीलन किया। सहायक चकबन्दी अधिकारी द्वारा आदेश पारित किये जाने के उपरान्त चकबन्दी प्रक्रिया के दौरान निर्मित होने वाली खतौनियों तथा पुनरीक्षित खतौनी आकार पत्र 11, प्रारम्भिक खतौनी आकार पत्र 23 भाग 1 एवं चकबन्दी खतौनी आकार पत्र 45 में चन्द्रप्रकाश का खाता निर्मित हुआ है। रामनयन से नामान्तरण के माध्यम से प्राप्त होने वाली आराजी के स्थान पर चकबन्दी प्रक्रिया के दौरान चन्द्रप्रकाश को अन्य गाटों पर दो चक प्रस्तावित किये गये है। जिन पर उसे नाप कर कब्जा व दखल भी दिया गया है। यह प्रक्रिया जोत चकबन्दी अधिनियम 1953 की धारा 30 का प्रभाव रखती है। रामनयन द्वारा चकबन्दी के दौरान या उसके उपरान्त स्वयं की मृत्यु तक किसी प्रकार की आपत्ति न करना उनका समझौते से सहमत होना सिद्ध करता है। परन्तु चन्द्रप्रकाश आदि द्वारा इस सम्बन्ध में किसी प्रकार के बैनामा आदि को प्रस्तुत न करना यह सिद्ध करता है कि रामनयन व चन्द्रप्रकाश की संलिप्तता एवं इन दोनों की तत्कालीन सहायक चकबन्दी अधिकारी से दूरदूभिसन्धि के माध्यम से प्रश्नगत आदेश दिनांक 09.12.1983 पारित किया गया है। जिससे निश्चित रूप से राज्य सरकार के राजस्व की हानी हुई लालच मानव स्वभाव की मूल प्रकृति है। महाभारत काल से ही सारी लड़ाई की जड़, जर एवं जमीन को माना गया है। सम्भवतः सहायक चकबन्दी अधिकारी द्वारा दिये गये लालच में ही रामनयन व चन्द्रप्रकाश आबद्ध हो गये। लालच मानव स्वभाव की मूल प्रकृति है। महाभारत काल से ही सारी लड़ाई की जड़, जर एवं जमीन को माना गया है। सम्भवतः सहायक चकबन्दी अधिकारी द्वारा दिये गये लालच में ही रामनयन व चन्द्रप्रकाश आबद्ध हो गये। मैं वादी के विद्धान अधिवक्ता के इस तर्क से सहमत हूँ कि प्रकरण 40 वर्षों में जमीदारी विनाश अधिनियम की धारा 164 के अन्तर्गत परिपक्व हो गया है। सहायक चकबन्दी अधिकारी के अवैध कृत्य का दण्ड किसी कृषक को दिये जाने का कोई औचित्य नहीं बनता है। अतः ग्राम सरेठी की प्रश्नगत आराजी गाटा सं० 167/0.254 हे० एवं 461 /0.108 हे० कुल 2 किता क्षेत्रफल 0.362 हे० पर चन्द्रप्रकाश सिंह पुत्र चर्तुभुज सिंह निवासी सरेठी का नाम इस प्रतिबन्ध के साथ यथावत अंकित रखा जाता है, कि वह (चन्द्रप्रकाश) इस आदेश की प्रति प्राप्त कर वर्तमान बाजार मूल्य पर प्रश्नगत आराजी के बैनामा में होने वाले समस्त राजस्व का निर्धारण करवाते हुए उसे नियमानुसार राज्य सरकार के खाते में जमा कराकर रसीद की प्रति दिनांक 12.3.2024 के पूर्व इस न्यायालय में संचित करना सुनिश्चित करेंगें अन्यथा की स्थिति में यह आदेश स्वतः निष्प्रभावी होगा।

बाद अग्रेतर कार्यवाही पत्रावली संचित अभिलेखागार हो।"

ix) दिनांक 26.02.2024 के आदेश को चुनौती देते हुए, यहाँ याचिकाकर्ता, 1953 के अधिनियम की धारा 11(1) के अनुसार अपीलीय प्राधिकारी/एस.ओ.सी. के समक्ष गए। एस.ओ.सी. ने अंततः अपील संख्या 0786/2024, कम्प्यूटरीकृत मामला संख्या 202454042300000786 (संभू प्रसाद पाण्डेय एवं अन्य बनाम चन्द्र प्रकाश सिंह एवं अन्य) के रूप में पंजीकृत इस अपील का निस्तारण दिनांक 03.03.2025 के आदेश द्वारा किया। एस.ओ.सी.

ने दिनांक 03.03.2025 के आदेश में सी.ओ. द्वारा दिनांक 26.02.2024 को पारित आदेश को निरस्त कर दिया। एस.ओ.सी. ने दिनांक 03.03.2025 के आदेश में निम्नलिखित अवलोकन किया:-

"उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों को सुना तथा पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्यों, अवर न्यायालय की पत्रावली तथा उभयपक्षों द्वारा प्रस्तुत की गई विधि व्यवस्थाओं का भलीभांति अवलोकन किया। अवलोकन से स्पष्ट है कि प्रकरण का संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार है-

आधारवर्ष खतौनी खाता सं0-76 में दर्ज गाटा सं0-784/3-0-17 माता प्रसाद पुत्र जगेसर व राम नयन पुत्र राम गोपाल ग्रामवासी के नाम दर्ज रहा। दौरान चकबन्दी जोत चकबन्दी आकारपत्र-4 में खाते का विभाजन माता प्रसाद ½ व राम नयन 1/2 बताया गया। तदुपदुरान्त सहायक चकबन्दी अधिकारी द्वारा दिनांक-09.12.1983 को आदेश पारित किया गया। शम्भू प्रसाद पाण्डेय आदि द्वारा अधोहस्ताक्षरी के न्यायालय पर सहायक चकबन्दी अधिकारी के वाद सं0- 2552 आदेश दिनांक-09.12.1983 के विरूद्ध कालबाधित रूप से अपील प्रस्तुत की गयी थी, जो अधोहस्ताक्षरी के पूर्वाधिकारी द्वारा दिनांक24.12.2016 को मियाद के बिन्दु पर निरस्त कर दी गयी। अपीलीय न्यायालय के आदेश दिनांक-24.12.2016 के विरूद्ध उप संचालक चकबन्दी, अयोध्या के न्यायालय पर धारा-48 उत्तर प्रदेश जोत चकबन्दी अधिनियम के अन्तर्गत निगरानी प्रस्तुत की गयी, जो उप संचालक चकबन्दी, अयोध्या द्वारा आदेश दिनांक-18.02.2016 के द्वारा स्वीकार करते हुए अपीलीय न्यायालय का आदेश दिनांक-24.12.2016 निरस्त करके गुण-दोष पर पुनः निस्तारण हेतु अपीलीय न्यायालय पर प्रतिप्रेषित की गयी थी। उप संचालक चकबन्दी के आदेश दिनांक-18.02.20016 के अनुपालन में अधोहस्ताक्षरी के पूर्वाधिकारी द्वारा उभयपक्षों को सुनकर दिनांक-29.02.2020 को आदेश किया कि सहायक चकबन्दी अधिकारी का आदेश दिनांक-09.12.1986 निरस्त करके वाद पत्रावली अवर न्यायालय को पक्षों से साक्ष्य लेने के उपरान्त गुण-दोष पर निस्तारण हेतु प्रत्यावर्तित कर दी गयी। जिसके क्रम में चकबन्दी अधिकारी द्वारा दिनांक26.02.2024 को आदेश पारित किया गया है। चकबन्दी अधिकारी के आदेश दिनांक-26.02.2024 के विरूद्ध शम्भू प्रसाद पाण्डेय आदि द्वारा यह अपील प्रस्तुत की गयी है।

पत्रावली का अवलोकन किया गया, पत्रावली में बैनामा दिनांक-14.09.1973 की छायाप्रति संलग्न है, जिसके अवलोकन से स्पष्ट है कि बासदेव सिंह सुत श्री राम समुझ सिंह द्वारा गाटा सं0-784/3-0-17 में अपने अंश 1/2 का विक्रय राम नैन सुत श्री राम गोपाल साकिन सरेठी, पोस्ट-दर्शन नगर, परगना-हवेली अवध, तहसील व जिला-फैजाबाद को कर दिया।

नकल खतौनी सन् 1381 ता 1383, नकल छायाप्रति खतौनी सन् 1384 ता 1389, जोत चकबन्दी आकारपत्र-2 क, नकल छायाप्रति जोत चकबन्दी आकारपत्र-4 भाग-1, नकल गोशवारा चकबन्दी मौजा सरेठी, परगना-हवेली अवध, तहसील व जिला- फैजाबाद जोत चकबन्दी आकारपत्र-23 भाग-1, जोत चकबन्दी आकारपत्र-41, जोत चकबन्दी आकारपत्र-45 की छायाप्रति संलग्न की गयी है। नकल खतौनी सन् 1381 ता 1383 फसली के अवलोकन से स्पष्ट है कि खाता सं0-56 की गाटा सं0-784/3-0-17 वासदेव सिंह पुत्र राम समुझ सिंह, विजय

बहादुरदु सिंह पुत्र रामदत्त सिंह के नाम दर्ज रहा। इसी खाते पर एस 0 डी0 ओ 0 के वाद सं0-164, 75, 378 में पारित आदेश दिनांक09.11.1973 की अमलदरामद अंकित है, जिसके द्वारा विवादित भूमि के ½ अंश से विजय बहादुरदु सिंह का नाम खारिज होकर जरिये बैनामा माता प्रसादपुत्र नगेसर के नाम अंकित किया गया है। इसी खाते पर एस 0 डी 0 ओ 0 सदर के वाद सं 0-189, 93, 390 में पारित आदेश दिनांक -27.11.1973 की अमलदरामद अंकित है , जिसके द्वारा विवादित भूमि के 1/2 अंश से वासदेव सिंह का नाम खारिज करके राम नयन पुत्र राम गोपाल साकिनदेह का नाम बैनामे के आधार पर दर्ज किया गया है। खतौनी सन् 1384 ता 1389 फसली के खाता सं 0-76 में गाटा सं 0-748/3-0-17 पर उपरोक्त नामान्तरण आदेशों के क्रम में क्रेतागण माता प्रसाद पुत्र जगेसर व राम नयन पुत्र राम गोपाल ग्रामवासी के नाम संयुक्त रूप से दर्ज हुआ। इसी खाते पर सहायक चकबन्दी अधिकारी के वाद सं 0-2552 निर्णय दिनांक -09.12.1983 द्वारा खाता सं 0-76 में माता प्रसाद के पिता का नाम नगेसर दर्ज होने तथा राम नयन पुत्र राम गोपाल के स्थान पर चन्द्र प्रकाश सिंह पुत्र चतुर्भुज सिंह सही दर्ज होने तथा खाते का विभाजन 1/2 प्रत्येक किए जाने की अमलदरामद अंकित हैं। पत्रावली में संलग्न जोत चकबन्दी आकारपत्र-4-भाग-1 से स्पष्ट है कि दौरान चकबन्दी खाता सं0-76 में माता प्रसाद पुत्र जगेसर ग्रामवासी व राम नयन पुत्र राम गोपाल ग्रामवासी का नाम दर्ज है।

सत्यापन खतौनी के समय खाते का विभाजन माता प्रसाद 1/2 व राम नयन 1/2 बताया गया। इस प्रकार सहायक चकबन्दी अधिकारी के वाद सं 0-252 सरकार बनाम माता प्रसाद आदि से संबंधित बंटवारे का तनाजा जोत चकबन्दी आकारपत्र में खाता सं 0-76 में अंकित गाटा सं 0-748/3-0-17 में खातेदार माता प्रसाद का 1/2 अंश व राम नयन का 1/2 अंश निर्धारित किए जाने के संबंध में था, जिसका निर्णय सहायक चकबन्दी अधिकारी ने दिनांक -09.12.1983 को किया गया है। सहायक चकबन्दी अधिकारी के वाद सं 0-2552 आदेश दिनांक -09.12.1983 के द्वारा माता प्रसाद के पिता का नाम नगेसर दर्ज किया गया है तथा राम नयन पुत्र राम गोपाल के स्थान पर चन्द्र प्रकाश सिंह पुत्र चतुर्भुज सिंह सही दर्ज किया गया तथा खाते का विभाजन प्रत्येक 1/2 भाग किया गया।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आधारवर्ष खतौनी के खाता सं 0-76 में अपीलकर्ता के पिता का नाम दर्ज था एवं यह भी स्पष्ट है कि अपीलकर्ता के पिता का उक्त गाटा में अंश 1/2 भाग रहा। सहायक चकबन्दी अधिकारी की मूल पत्रावली विनिष्ट की जा चुकी है।

सहायक चकबन्दी अधिकारी के आदेश को अपीलीय न्यायालय के आदेश दिनांक-29.02.2020 द्वारा निरस्त किया जा चुका है। आदेश दिनांक-29.02.2020 द्वारा पत्रावली चकबन्दी अधिकारी को इस निर्देश के साथ प्रत्यावर्तित किया गया कि अवैध हस्तानान्तरण के संबंध में विवेचन करते हुए पक्षों से साक्ष्य लेने के उपरान्त गुण-दोष पर निस्तारण करें। अवर न्यायालय को यह देखना था कि राम नयन पुत्र राम गोपाल के स्थन पर चन्द्र प्रकाश सिंह पुत्र चतुर्भुज सिंह का नाम दर्ज किस आधार पर किया गया या किया जाएगा।

चकबन्दी अधिकारी के आदेश दिनांक -26.02.2024 में उल्लिखित है कि "राम नयन से नामान्तरण के माध्यम से प्राप्त होने वाली आराजी के स्थान पर चकबन्दी प्रक्रिया के दौरान चन्द्रप्रकाश को अन्य गाटों पर दो चक प्रस्तावित किये गये है। जिन पर उसे नाप कर कब्जा व दखल भी दिया गया है। यह प्रक्रिया जोत चकबन्दी अधिनियम 1953 की धारा-30 का प्रभाव रखती है। रामनयन द्वारा चकबन्दी के दौरान या उसके उपरान्त स्वयं की मृत्यु तक किसी प्रकार की आपत्ति न करना समझौते से सहमत होना सिद्ध करता है। परन्तु चन्द्र प्रकाश आदि द्वारा इस सम्बन्ध में किसी प्रकार के बैनामा आदि को प्रस्तुत न करना यह सिद्ध करता है कि राम नयन व चन्द्र प्रकाश की संलिप्तता एवं इन दोनों की तत्कालीन सहायक चकबन्दी अधिकारी से दुरदुभिसन्ध के माध्यम से प्रश्नगत आदेश दिनांक-09.12.1983 पारित किया गया है। जिससे निश्चित रूप से राज्य सरकार के राजस्व की हानि हुई। लालच मानव स्वभाव की मूल प्रकृति है। महाभारत काल से ही सारी लड़ाई की जड़, जर एवं जमीन को माना गया है। संभवतः सहायक चकबन्दी अधिकारी द्वारा दिए गए लालच में ही राम नयन व चन्द्र प्रकाश आबद्ध हो गये। मैंवादी के विद्वान अधिवक्ता के तर्क से सहमत हूं कि प्रकरण प्रकरण 40 वर्षों में जमीदारी विनाश अधिनियम की धारा-164 के अन्तर्गत परिपक्व हो गया है। सहायक चकबन्दी अधिकारी के अवैध कृत्य का दण्ड किसी कृषक को दिए जाने का कोई औचित्य नहीं बनता है। अतः ग्राम सरेठी की प्रश्नगत आराजी गाटा सं0-167/0.254 हे0, 461/0.108 हे0 कुल दो किता क्षेत्रफल 0.362 हे0 चन्द्र प्रकाश सिंह पुत्र चतुर्भुज सिंह निवासी सरेठी का नाम इस प्रतिबन्ध के साथ यथावत अंकित रखा जाता है, कि वह (चन्द्र प्रकाश सिंह) आदेश की प्रति प्राप्त कर वर्तमान बाजार मूल्य पर प्रश्नगत आराजी के बैनामा में होने वाले समस्त राजस्व का निर्धारण करवाते हुए उसे नियमानुसार राज्य सरकार के खाते मंे जमा कराकर रसीद की प्रति दिनांक-12.03.2024 के पूर्व उनके न्यायालय में संचित करना सुनिश्चित करेंगे अन्यथा की स्थिति में यह आदेश स्वतः निष्प्रभावी होगा।"

चकबन्दी अधिकारी के आदेश दिनांक -26.02.2024 के अनुपालन में चन्द्र प्रकाश सिंह द्वारा 2,24,880 रू 0 दिनांक -06 मार्च , 2024 को भारतीय स्टेट बैंक के माध्यम से स्टाम्प एवं रजिस्ट्रेशन विभाग के पक्ष में जमा किए गए, जिसकी रसीद अवर न्यायालय की पत्रावली में संलग्न है।

इस प्रकार अवर न्यायालय ने विवादित आराजी पर चन्द्र प्रकाश सिंह पुत्र चतुर्भुज सिंह का नाम इस प्रतिबन्ध के साथ यथावत रखा कि वर्तमान बाजार मूल्य पर प्रश्नगत आराजी के बैनामा में होने वाले समस्त राजस्व का निर्धारण करवाते हुए उसे नियमानुसार राज्य सरकार के खाते में जमा कराकर रसीद उनके न्यायालय पर संचित करें।

किसी भी भूमि का स्थानान्तरण बिना पंजीकृत बैनामा के नहीं किया जा सकता। अवर न्यायालय द्वारा बिना बैनामा स्थानान्तरण स्वीकार किया गया, किन्तु इसे मात्र राजस्व क्षति के रूप में ही देखा गया। जबकि बिना बैनामा किसी की भूमि अपने नाम दर्ज करा लेना सवर्था गलत है। रजिस्ट्री का शुल्क सरकारी कोष में जमा करने संबंधी अवर न्यायालय का आदेश बिना क्षेत्राधिकार का है। किसी भूमि के स्थानान्तरण में राजस्व क्षति का आकलन एवं इसकी पूर्ति के संबंध में आदेश देने का क्षेत्राधिकार चकबन्दी न्यायालयों को प्राप्त नहीं है। अब

अनुवादित

देखना यह है कि राम नयन द्वारा चन्द्र प्रकाश सिंह के पक्ष में किए गए भूमि स्थानान्तरण के संबंध मंे क्या राम नयन की सहमति थी। पत्रावली पर सहमति के बावत् कोई साक्ष्य नहीं है। सहमति होने पर भी किसी भी भूमि का स्थानान्तरण किसी के पक्ष में नहीं किया जा सकता। इस प्रकार सहायक चकबन्दी अधिकारी द्वारा दिनांक -09.12.1983 को चन्द्र प्रकाश सिंह के पक्ष में अवैध हस्तान्तरण किया गया था। चकबन्दी अधिकारी ने अपने आदेश दिनांक -26.02.2024 के द्वारा उक्त हस्तानान्तरण को सही साबित किया गया है। जबकि सहमति के आधार पर चकबन्दी न्यायालयों को किसी के पक्ष में भूमि स्थानान्तरित करने का क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि सहायक चकबन्दी अधिकारी का आदेश दिनांक09.12.1983 विपक्षी ने छल-छद्म से प्राप्त किया था एवं अवर न्यायालय का आदेश दिनांक-26.02.2024 क्षेत्राधिकार से बाहर एवं गलत तथ्य व विवेचन के आधार पर पारित है, जिसे निरस्त कर आधारवर्ष के इन्द्राज को राम नयन पुत्र राम गोपाल मृतक बादहू वारिसान के नाम दर्ज करना उचित है। उपरिवर्णित तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत अपील स्वीकार किए जाने योग्य है।

आदेश

अतः आदेश हुआ कि प्रस्तुत अपील स्वीकार की जाती है। चकबन्दी अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक-26.02.2024 निरस्त किया जाता है। आधारवर्ष खतौनी खाता सं0-76 में दर्ज गाटा सं0-748/3-0-17 का इन्द्राज राम नयन पुत्र राम गोपाल ग्रामवासी का नाम पूर्ववत 1/2 अंश पर दर्ज किया जाता है। पत्रावली बाद आवश्यक कार्यवाही दाखिल-दफ्तर हो।"

x) सी.ओ. ने दिनांक 26.02.2024 के आदेश में अवलोकन किया कि

"रामनयन द्वारा चकबन्दी के दौरान या उसके उपरान्त स्वयं की मृत्यु तक किसी प्रकार की आपत्ति न करना उनका समझौतेे से सहमत होना सिद्ध करता है। परन्तु चन्द्रप्रकाश आदि द्वारा इस सम्बन्ध में किसी प्रकार के बैनामा आदि को प्रस्तुत न करना यह सिद्ध करता है कि रामनयन व चन्द्रप्रकाश की संलिप्तता एवं इन दोनों की तत्कालीन सहायक चकबन्दी अधिकारी से दूरदूभिसन्धि के माध्यम से प्रश्नगत आदेश दिनांक 09.12.1983 पारित किया गया है।" आदेश का यह भाग प्रतिबिंबित करता है कि सी.ओ. का यह मत था कि ए.सी.ओ. ने दिनांक 09.12.1983 का आदेश राम नायन पाण्डेय और चन्द्र प्रकाश सिंह की मिलीभगत से पारित किया। इसके बावजूद, सी.ओ. ने राम नायन पाण्डेय द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 2/चन्द्र प्रकाश सिंह के पक्ष में स्वीकृत मौखिक हस्तांतरण अर्थात् विवादग्रस्त भूमि को मान्य करने के प्रयोजन के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2/चन्द्र प्रकाश सिंह को विवादग्रस्त भूमि अर्थात् गाटा संख्या 748 के बाजार मूल्य पर राजस्व जमा करने का निर्देश दिया।

xi) व्यथित होकर, प्रत्यर्थी संख्या 2 ने पुनरीक्षण प्राधिकारी/डी.डी.सी. के समक्ष पुनरीक्षण दायर किया। यह पुनरीक्षण संख्या 3024/202554042300000106 के रूप में पंजीकृत हुआ, जिसका विवरण इस निर्णय के पैरा

अनुवादित

5 में दिया गया है, डी.डी.सी. द्वारा दिनांक 30.04.2025 के आदेश द्वारा स्वीकार किया गया। उसी का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:-

"इस प्रकार स्पष्ट है कि रामनयन द्वारा अपने जीवनकाल में चन्द्रप्रकाश सिंह का नाम गाटा संख्या 748 पर अंकित होने के सम्बन्ध में कोई आपत्ति, अपील व निगरानी प्रस्तुत न करना यह साबित करता है कि रामनयन पुत्र रामगोपाल द्वारा गाटा संख्या 748 में अपने अंश की भूमि की धनराशि लेकर स 0 च 0 अ 0 के समक्ष समझौते चन्द्रप्रकाश पुत्र चतुर्भज सिंह का नाम स्वयं अंकित कराया गया है। उक्त अवैध अन्तरण से राज्य सरकार के राजस्व की हानि कारित हुई थी। चकबन्दी अधिकारी द्वारा दिनांक 26.02.2024 को आदेश पारित करते हुये चन्द्रप्रकाश सिंह को वर्तमान बाजार मूल्य पर प्रश्नगत आराजी के बैनामा में होने वाले समस्त राजस्व का निर्धारण करवाते उसे नियमानुसार राज्य सरकार के खाते में जमा कराकर रशीद की प्रति दिनांक 12.03.2024 के पूर्व न्यायालय में दाखिल करने का निर्देश दिया गया। चन्द्रपकाश पुत्र चतुर्भज सिंह द्वारा वर्तमान बाजार मूल्य पर प्रश्नगत आराजी के बैनामा में होने वाले समस्त राजस्व का निर्धारण करवाते हुये सम्पूर्ण धनराशि दो लाख चैबीस हजार आठ सौ अस्सी रुपया (2,24,880/-रुपये) दिनांक 06.03.2024 को भारतीय स्टेट बैक अयोध्या की मुख्य शाखा मे चालान संख्या सी-602960 द्वारा जमा करा दिया गया है।

अपीलीय न्यायालय द्वारा दिनांक 03.03.2025 को आदेश पारित करते हुये अपील स्वीकार करके चकबन्दी अधिकारी के आदेश दिनांक 26.02.2024 को मात्र इस आधार पर निरस्त कर दिया गया है कि सहायक चकबन्दी अधिकारी का आदेश दिनांक 09.12.83 छल छदम से प्राप्त किया गया था एवं अवर न्यायालय का आदेश दिनांक 26.02.2024 क्षेत्राधिकार से बाहर एवं गलत तथ्य व विवेचन के आधार पर पारित है। मै अपीलीय न्यायालय के इस मत से सहमत नही हूँ। सहायक चकबन्दी अधिकारी के समक्ष समझौता के द्वारा अपना नाम खारिज कराकर अन्य व्यक्ति का नाम अंकित कराना, अपने नाम ग्राम में अन्य भूमि के सम्बन्ध में चकबन्दी क्रियाओ की पूर्ण जानकारी होने के उपरान्त भी गाटा संख्या 748 के मूल्यांकन हेतु अथवा गाटा संख्या 748 पर अंकित चन्द्रप्रकाश का नाम निरस्त कराने हेतु अपने जीवनकाल में रामनयन द्वारा कोई आपत्ति अपील व निगरानी प्रस्तुत न करना ही इस तथ्य को साबित करता है कि रामनयन द्वारा चन्द्रप्रकाश सिंह से गाटा संख्या -748 में अपने अंश की सम्पूर्ण धनराशि लेकर स 0 च 0 अ 0 के समक्ष समझौते से अपने के स्थान पर चन्द्रप्रकाश सिंह पुत्र चतुर्भुज सिंह का नाम अंकित कराया गया और ग्राम में वर्ष 1991 में चकबन्दी समाप्ति तक एवं उसके उपरान्त अपने जीवनकाल में उक्त आदेश को राजस्व न्यायालय में भी कोई चुनौती नही दी गयी है। अवैध अन्तरण से राजस्व की जो हानि हुई थी, उक्त धनराशि को वर्तमान बाजार मूल्य के आधार पर राज्य सरकार के खाते में जमा करा दिया गया है।

विपक्षीगण की ओर से प्रस्तुत विधि व्यवस्थाओ का अवलोकन किया गया, उक्त विधि व्यवस्थाये पूर्ण रुप से समादरणीय है, किन्तु प्रश्नगत प्रकरण की प्रकृति भिन्न होने के कारण इस वाद में लागू नही होती है।

विचारोपरान्त मैं इस मत का हूँ कि चकबन्दी अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.02.2024 यथावत रखे जाने एवं बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी द्वारा पारित आदेश दिनांक 03.03.2025 निरस्त किये जाने एवं तदनुसार निगरानी स्वीकार किये जाने योग्य है।

आदेश

उपरोक्त विवेचन के आधार पर निगरानी स्वीकार की जाती है। बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी द्वारा पारित आदेश दिनांक 03.03.2025 निरस्त किया जाता है। चकबन्दी अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.02.2024 यथावत किया जाता है। बाद पूर्ति कार्यवाही पत्रावली राजस्व अभिलेखागार में संचित हो।"

xii) दिनांक 30.04.2025 के आक्षेपित आदेश के अवलोकन से स्पष्ट है कि डी.डी.सी. ने सी.ओ. द्वारा दिनांक 26.02.2024 को पारित आदेश को बरकरार रखा।

6. दिनांक 30.04.2025 के आदेश को चुनौती देते हुए, श्री आर.एस. पाण्डेय, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि ए.सी.ओ. ने 1954 के नियमों के नियम 25-ए के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए दिनांक 09.12.1983 के आदेश द्वारा राम नायन पाण्डेय (याचिकाकर्ताओं के हितपूर्ववर्ती) के अचल संपत्ति अर्थात् गाटा संख्या 748 (विवादग्रस्त भूमि) में अधिकार प्रत्यर्थी संख्या 2/चन्द्र प्रकाश सिंह को प्रदान किए, जिसके पास उक्त गाटा पर कोई वैधानिक अधिकार नहीं था, और अधिकार केवल राम नायन पाण्डेय के कथन पर प्रदान किए गए और ऐसा करते हुए ए.सी.ओ. ने अवैधता की क्योंकि यह 1954 के नियमों के नियम 25-ए के अंतर्गत अनुमत नहीं था/है और इस अवैधता को जारी रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

7. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि सुलह के माध्यम से ए.सी.ओ. पक्षकारों के बीच विवाद को सुलझाने के लिए सशक्त है। तत्काल मामले में, राम नायन पाण्डेय (हस्तांतरणकर्ता) और चन्द्र प्रकाश सिंह (हस्तांतरणी) के बीच कोई विवाद नहीं था और इस प्रकार, दिनांक 09.12.1983 का आदेश, जिसके द्वारा अचल संपत्ति में अधिकार/हित हस्तांतरित किए गए थे, 1954 के नियमों के नियम 25-ए के दायरे पर विचार करने के बाद इस संबंध में स्थापित सिद्धांतों के विपरीत है।

8. उन्होंने यह भी कहा कि 1950 के अधिनियम या कानून के किसी अन्य प्रावधान के अंतर्गत पहले से विद्यमान भूमि/अचल संपत्ति में अधिकार 1954 के नियमों के नियम 25-ए के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए वैध समझौते के माध्यम से प्रदान/हस्तांतरित किए जा सकते हैं और 1954 के नियमों के नियम 25-ए के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए नए अधिकार ए.सी.ओ. द्वारा प्रदान नहीं किए जा सकते।

9. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि सी.ओ. का दिनांक 26.02.2024 का आदेश, जिसे एस.ओ.सी. द्वारा दिनांक 03.03.2025 के आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया था, और डी.डी.सी. का दिनांक 30.04.2025 का आदेश कानून के विपरीत हैं और ऐसा होने के कारण इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने योग्य हैं।

10. वर्तमान याचिका का विरोध करते हुए, श्री राकेश डी. कुमार, प्रत्यर्थी संख्या 2/चन्द्र प्रकाश सिंह के लिए विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित प्रस्तुत किया:-

i) ए.सी.ओ. द्वारा दिनांक 09.08.1983 को पारित आदेश न्यायोचित था क्योंकि यह अभिलिखित काश्तकारी धारक राम नायन पाण्डेय के कथन पर आधारित था और इस प्रकार किया गया हस्तांतरण कानून के अंतर्गत अनुमत था। हालांकि, एस.ओ.सी. द्वारा दिनांक 18.02.2016 को पारित आदेश द्वारा इसे निरस्त कर दिया गया। तदुपरांत, सी.ओ. ने मामले के सभी पहलुओं को ध्यान में रखा जिसमें राजस्व अभिलेखों अर्थात् प्रारंभिक खतौनी, संशोधित खतौनी, आकार पत्र, फॉर्म सीएच-11, फॉर्म सीएच-23 भाग I, फॉर्म सीएच-45 आदि में प्रविष्टियां और साथ ही इन प्रविष्टियों की अवधि अर्थात् लगभग 40 वर्ष और 1950 के अधिनियम की धारा 164 शामिल हैं और तदुपरांत अचल संपत्ति अर्थात् विवादग्रस्त भूमि (गाटा संख्या 748) में अधिकार/हित के हस्तांतरण को मान्य करने के लिए सी.ओ. ने प्रत्यर्थी संख्या 2/चन्द्र प्रकाश सिंह को विवादग्रस्त भूमि के बाजार मूल्य के अनुसार सरकारी खजाने में राजस्व जमा करने का निर्देश दिया। मामले के विशिष्ट तथ्यों में सी.ओ. द्वारा दिनांक 26.02.2024 के आदेश में लिया गया यह दृष्टिकोण न्यायोचित और उचित था/है और सी.ओ. के इस आदेश को दिनांक 30.04.2025 के आक्षेपित आदेश द्वारा बरकरार रखा गया है, जो इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने योग्य नहीं है।

ii) **राधे श्याम एवं अन्य बनाम चब्बी नाथ एवं अन्य (2015) 5 एस.सी.सी. 583** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के दृष्टिगत परमादेश की रिट की प्रार्थना के लिए वर्तमान याचिका पोषणीय नहीं है।

iii) प्रार्थना संख्या 2 को रिट क्षेत्राधिकार में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

iv) याचिकाकर्ताओं का मामला 1954 के नियमों के नियम 25-ए के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए आदेश पारित करने के लिए पालन की जाने वाली प्रक्रिया पर आधारित नहीं था।

v) याचिकाकर्ताओं द्वारा धोखाधड़ी और मिलीभगत सिद्ध नहीं की गई है।

vi) 1950 के अधिनियम की धारा (धाराओं) 104, 209, 210, 341 के अंतर्गत प्रत्यर्थी संख्या 2/चन्द्र प्रकाश सिंह के अधिकार।
vii) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (संक्षेप में "1872 का अधिनियम") की धारा 140 के अनुसार, यह उपधारणा है कि 1954 के नियमों के नियम 25-ए के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया था।

11. उपर्युक्त पर विचार किया गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया।

अनुवादित

12. यह तर्क कि परमादेश की रिट की मांग करने वाली वर्तमान याचिका पोषणीय नहीं है, पूर्णतः भ्रामक है। इसे इस कारण से अस्वीकार किया जाता है कि इस न्यायालय ने **रिट - बी संख्या - 229/2023 (दिनेश चंद्र उर्फ दिनेश चंद्र तिवारी एवं अन्य बनाम निदेशक चकबंदी, सुल्तानपुर एवं अन्य)** और अन्य संबद्ध याचिकाओं में दिनांक 03.05.2023 को पारित आदेश द्वारा, **राधे श्याम (उपर्युक्त) और किरण देवी बनाम बिहार राज्य सुन्नी वक्फ बोर्ड एवं अन्य, (2021) एआईआर (एस.सी.) 1775** के मामले में पारित निर्णय (निर्णयों) सहित विभिन्न उद्घोषणाओं पर विचार करने के बाद, साथ ही 1953 के अधिनियम पर विचार करने के बाद यह निर्धारित किया कि याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत पोषणीय होगी।

13. प्रार्थना संख्या 2 के संबंध में श्री राकेश डी कुमार, अधिवक्ता का तर्क भी इसके द्वारा अस्वीकृत किया जाता है। यह इस कारण से है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए, यह न्यायालय वादी (वादियों) के हित की रक्षा कर सकता है।

14. निर्विवाद तथ्य यह है कि ए.सी.ओ. द्वारा दिनांक 09.12.1983 को पारित आदेश से संबंधित अभिलेख 10.05.1995 को नष्ट कर दिए गए थे।

15. धोखाधड़ी और मिलीभगत से संबंधित तर्क के संबंध में, यह इंगित किया जाना है कि मामले के सभी पहलुओं पर विचार करने के बाद सी.ओ. ने स्वयं दिनांक 26.02.2024 के आदेश में यह अवलोकन किया है कि दिनांक 09.12.1983 का आदेश ए.सी.ओ. द्वारा राम नायन पाण्डेय और चन्द्र प्रकाश सिंह (प्रत्यर्थी संख्या 2) की मिलीभगत से पारित किया गया था।

16. प्रत्यर्थी संख्या 2/चन्द्र प्रकाश सिंह के लिए विद्वान अधिवक्ता का प्रस्तुतीकरण, जो 1954 के नियम के नियम 25-ए और 1872 के अधिनियम की धारा 140 पर आधारित है, प्रारंभिक आदेश दिनांक 09.12.1983 का समर्थन करने के लिए, जो संक्षेप में इस आशय का है कि 1954 के नियमों के नियम 25-ए के अनुसार उचित प्रक्रिया का पालन किया गया था, प्रत्यर्थी संख्या 2/चन्द्र प्रकाश सिंह की सहायता नहीं करेगा। यह इस कारण से है कि इस मामले में शामिल मुद्दा ए.सी.ओ. द्वारा पालन की जाने वाली प्रक्रिया से संबंधित नहीं है और इस न्यायालय को निम्नलिखित मुद्दों पर विचार करना है:-

क. क्या ए.सी.ओ. 1954 के नियमों के नियम 25-ए के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए 'बिक्री' की राशि वाली अचल संपत्ति में अधिकार हस्तांतरित करने के लिए सशक्त था/है?
ख. क्या 1954 के नियम के नियम 25-ए के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए ए.सी.ओ. द्वारा समझौते या सुलह के माध्यम से एक ऐसे व्यक्ति के पक्ष में नए अधिकार सृजित किए जा सकते थे जिसके पास विवादग्रस्त भूमि में कोई अधिकार/हित नहीं था?

ग. क्या एक ऐसा हस्तांतरण जो 1954 के नियम के नियम 25-ए, संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम 1882 (संक्षेप में "1882 का अधिनियम") की धारा 54 और पंजीकरण अधिनियम, 1908 (संक्षेप में "1908 का अधिनियम") के अनुसार वैध हस्तांतरण नहीं था, सरकारी खजाने में राजस्व जमा करके मान्य किया जा सकता था?

घ. क्या प्रत्यर्थी संख्या 2/चन्द्र प्रकाश सिंह 1950 के अधिनियम की धारा 164 के लाभ के हकदार हैं?

17. उपर्युक्त मुद्दे पर मामले में निष्कर्ष निकालने के लिए यह न्यायालय **शिव प्रसाद बनाम उप निदेशक चकबंदी, गाजीपुर एवं अन्य, 2006 एस.सी.सी. ऑनलाइन इलाहाबाद 1485 : आई.एल.आर. (2006) 3 इलाहाबाद 986** में प्रतिवेदित निर्णय का संदर्भ देना उचित समझता है, जिसमें इस न्यायालय ने 1954 के नियमों के नियम 25-ए सहित प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों को ध्यान में रखा और तदुपरांत निम्नलिखित अवलोकन किया:-

"7. आरोपों और पक्षकारों के तर्कों के आधार पर, विचार के लिए उत्पन्न होने वाला पहला प्रश्न यह है कि क्या उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम के अंतर्गत धारा 9-ए(2)/धारा 11/धारा 12/धारा 21/धारा 48 से उत्पन्न कार्यवाही में किसी भी चरण में सी.पी.सी. के अंतर्गत परिकल्पित रूप में पक्षकारों के बीच समझौता किया जा सकता था, दूसरा, क्या विधि के सृजन वाली भूमि में पक्षकारों के शीर्षक का निर्धारण विशिष्ट शीर्षक के लिए या संयुक्त जोत में हिस्से के निर्धारण के लिए समझौते के आधार पर किया जा सकता है और, तीसरा, क्या किसी व्यक्ति को उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही में या उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के अंतर्गत किसी अन्य कार्यवाही में समझौते के आधार पर कानून में कोई शीर्षक के बिना भूमिधर, सिरदार या असामी घोषित किया जा सकता है।

8 इस प्रश्न में प्रवेश करने से पहले, मैं उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम के कुछ प्रावधानों की ओर ध्यान कर्षित करना आवश्यक समझता हूं। उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 3(4-सी) जोत को परिभाषित करती है, वही नीचे पुनरुत्पादित किया जा रहा है:–

"3(4-सी) 'जोत' का अर्थ एक काश्तकारी धारक द्वारा अकेले या अन्य काश्तकारी धारकों के साथ संयुक्त रूप से धारित एक काश्तकारी के अंतर्गत भूमि का एक पार्सल या पार्सल से है।"

धारा 3(11) काश्तकारी धारक को परिभाषित करती है जो इस प्रकार है:–
"3(11) 'काश्तकारी धारक' का अर्थ (हस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर या गैर-हस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर) से है, और इसमें शामिल हैं–

(क) एक असामी,

(बी) एक सरकारी पट्टाधारी या सरकारी अनुदानग्रहीता, या

(सी) एक सहकारी कृषि समाज जो ऐसी शर्तों को संतुष्ट करता है जो निर्धारित की जा सकती हैं।"

9. धारा 3(12) में परिभाषा यह भी स्पष्ट करती है कि "इस अधिनियम में परिभाषित नहीं किए गए शब्द और अभिव्यक्तियां लेकिन उ.प्र. भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 में (उपयोग या) परिभाषित, लेकिन उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 में (उपयोग या) का वही अर्थ होगा जो उन्हें उस अधिनियम में सौंपा गया है जिसमें वे (उपयोग या) परिभाषित हैं।"

10. उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम के अंतर्गत, निर्धारित प्रक्रिया यह है कि स्थल सत्यापन के बाद, जैसा कि अधिनियम और नियमों के अंतर्गत आवश्यक है, चकबंदी अधिकारी नक्शे और भूमि अभिलेख के सत्यापन पर धारा 8-ए के अंतर्गत सिद्धांतों का विवरण के साथ-साथ उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 8 के अंतर्गत विवरण तैयार करेगा, तदुपरांत, अभिलेख प्रकाशित किया जाएगा और क्षेत्र से क्षेत्र पोर्टल के दौरान अधिकार के अभिलेख के परीक्षण और सत्यापन के दौरान खोजी गई गलतियों (उत्तराधिकार के निर्विवाद मामलों) और विवादों को दर्शाने वाला विवरण गांव में प्रकाशित किया जाएगा। उस पर कोई भी आपत्ति उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत अभिलेख के प्रकाशन पर सहायक चकबंदी अधिकारी के समक्ष दायर की जाएगी जो अभिलेख में या उससे प्रस्तुत अर्क में या सिद्धांतों के विवरण में, या विभाजन की आवश्यकता में प्रविष्टियों की शुद्धता और प्रकृति पर विवाद करेगी। सहायक चकबंदी अधिकारी के चरण में, जिस एकमात्र प्रावधान के अंतर्गत समझौता, सुलह के माध्यम से, किया जा सकता है, वह उ.प्र. जोत चकबंदी नियमों का नियम 25-ए है जो नीचे पुनरुत्पादित किया जा रहा है:–

"25-ए. धाराएं 9-ए, 9-बी और 9-सी।–(1) सहायक चकबंदी अधिकारी, जहां तक संभव हो, धारा 9-ए की उप-धारा (1) के खंड (i) और धारा 9-बी की उप-धारा (1) में संदर्भित मामलों के संबंध में एक काश्तकारी धारक द्वारा दायर सभी आपत्तियों से गांव में ही निपटेगा। धारा 9-ए की उप-धारा (1) के अनुसार सुलह के आधार पर विवाद का निर्णय करने में, वह गांव की चकबंदी समिति के कम से कम दो सदस्यों की उपस्थिति में सुलह की शर्तों को दर्ज करेगा। इन शर्तों को तब संबंधित पक्षकारों को पढ़कर सुनाया जाएगा और उनके हस्ताक्षर या अंगूठे के निशान प्राप्त किए जाएंगे। उपस्थित चकबंदी समिति के सदस्य भी अभिलेख में की जाने वाली सटीक प्रविष्टियों को निर्दिष्ट करते हुए सुलह की शर्तों पर हस्ताक्षर करेंगे। सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेशों के क्रियाशील भाग का विवरण मिसिबंद रजिस्टर में नोट किया जाएगा। सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा कोई एकपक्षीय आदेश या चूक में आदेश पारित नहीं किया जाएगा।

(2) सभी मामलों में जिनमें सहायक चकबंदी अधिकारी धारा 9-ए की उप-धारा (2), या धारा 9-बी की उप-धारा (1) के प्रावधानों के अंतर्गत चकबंदी अधिकारी को निपटान के लिए एक रिपोर्ट भेजता है, वह चकबंदी अधिकारी द्वारा मामलों के निपटान के लिए एक तारीख और स्थान निर्धारित कर सकता है और उसके समक्ष उपस्थित

पक्षकारों को वही सूचित कर सकता है और इस प्रकार उपस्थित नहीं होने वाले पक्षकारों को सी.एच. फॉर्म 6-ए में नोटिस जारी कर सकता है। ऐसे मामलों में सहायक चकबंदी अधिकारी की रिपोर्ट स्पष्ट रूप से पक्षकारों के बीच विवाद के बिंदुओं और उन्हें सुलझाने के लिए उसके द्वारा किए गए प्रयासों को सामने लाती है।"

11. उपरोक्त नियम अर्थात् उ.प्र. जोत चकबंदी नियमों के नियम 25-ए का सार, पुनरावृत्ति के जोखिम पर, यह है कि सहायक चकबंदी अधिकारी के चरण में धारा 9-ए की उप-धारा (1) और धारा 9-बी की उप-धारा (1) के अनुसार सुलह हो सकती है और सहायक चकबंदी अधिकारी चकबंदी समिति के दो सदस्यों की उपस्थिति में सुलह की शर्तों को दर्ज करेगा। शर्तों को तब संबंधित पक्षकारों को पढ़कर सुनाया जाएगा और उनके हस्ताक्षर और अंगूठे के निशान प्राप्त किए जाएंगे। चकबंदी समिति के सदस्य भी सुलह की शर्तों पर हस्ताक्षर करेंगे और तब सहायक चकबंदी अधिकारी सुलह की शर्तों के अनुसार विवाद का निर्णय करते हुए आदेश पारित करेगा। सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेश के क्रियाशील भाग का विवरण, नियम में आगे परिकल्पित है, मिसिबंद रजिस्टर में नोट किया जाएगा। सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा कोई एकपक्षीय आदेश या चूक में आदेश पारित नहीं किया जाएगा। सहायक चकबंदी अधिकारी से प्राप्त सभी विवादित मामले चकबंदी अधिकारी के कार्यालय में मिसिबंद रजिस्टर में दर्ज किए जाएंगे और चकबंदी अधिकारी पक्षकारों को सुनेगा, विवाद के बिंदुओं पर मुद्दे तैयार करेगा और साक्ष्य लेगा और फिर विवाद का निर्णय करेगा। विभाजन के मामले में यदि कोई आपत्ति दायर की जाती है, तो चकबंदी अधिकारी विभाजन के साथ आगे बढ़ेगा, केवल कारणों को लिखित रूप में दर्ज करने के बाद यदि वह इसे बेहतर चकबंदी के हित में मानता है।

12. उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम या उसके अंतर्गत तैयार किए गए नियमों के अंतर्गत कोई प्रावधान नहीं है जिसके द्वारा सी.पी.सी. के आदेश XXIII, नियम 3 के प्रावधानों को चकबंदी कार्यवाही पर लागू किया गया है। उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम को अधिनियमित करते समय विधायिका का आशय कृषि भूमि का विकास था जैसा कि अधिनियम की प्रस्तावना से स्पष्ट है।

13. <u>जैसा कि ऊपर कहा गया है, सुलह के लिए उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम और उसके अंतर्गत तैयार किए गए नियमों के अंतर्गत एकमात्र प्रावधान नियम 25-ए है। उ.प्र. जोत चकबंदी नियमों का नियम 25-ए, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, प्रावधान करता है कि एक व्यक्ति सुलह में अपने अधिकारों को निपटा सकता है यदि उसके अधिकार किसी विधि द्वारा मान्यता प्राप्त हैं। एक व्यक्ति उ.प्र. चकबंदी जोत नियमों के नियम 25-ए के अंतर्गत सुलह कार्यवाही में कोई अधिकार निपटाया या घोषित नहीं करवा सकता यदि उसके अधिकार विधि द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं हैं। उ.प्र. जोत चकबंदी नियमों के नियम 25-ए को तैयार करते समय विधायिका का आशय स्पष्ट रूप से यह है कि पक्षकारों को उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के अंतर्गत सृजित उनके वैध अधिकारों से संबंधित टालने योग्य और अनावश्यक मुकदमेबाजी में नहीं खींचा जाए और राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टियों के सुधार के लिए। उ.प्र. जोत चकबंदी नियमों के नियम 25-ए को अधिनियमित करते समय विधायिका का आशय स्पष्ट है और एक व्यक्ति उ.प्र. जोत चकबंदी नियमों के नियम 25-ए के अंतर्गत कोई अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता जो जमींदारी के उन्मूलन पर उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि*

सुधार अधिनियम के अंतर्गत या उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के किसी अन्य बाद के संशोधन के अंतर्गत विधि द्वारा कभी सृजित और मान्यता प्राप्त नहीं था। एक काश्तकारी धारक सुलह के माध्यम से सह-काश्तकारी का अपना वैध अधिकार प्राप्त कर सकता है यदि भूमि सामान्य पूर्वजों द्वारा या संयुक्त रूप से अधिग्रहित की गई थी। इसी प्रकार, यदि कई काश्तकारी धारकों के संयुक्त नाम में कोई प्रविष्टि गलत तरीके से दर्ज की गई है, तो पक्षकार उ.प्र. जोत चकबंदी नियमों के नियम 25-ए के अंतर्गत सुलह द्वारा प्रविष्टि को सुधार सकते हैं, मामले/अधिकारों को पारस्परिक विभाजन द्वारा या पहले से हो चुके और पहले से ही पक्षकारों द्वारा कार्यान्वित पारिवारिक निपटान को मान्यता देकर तदनुसार प्रविष्टि को सुधारने के लिए निपटा सकते हैं। लेकिन एक काश्तकारी धारक उ.प्र. जोत चकबंदी नियमों की धारा 25-ए के अंतर्गत कार्यवाही में कोई विशिष्ट अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता जब तक कि ऐसे नियम विधि द्वारा मान्यता प्राप्त न हों।

14. *1976 (2) आर.डी. 69, काले बनाम उप संचालक चकबंदी में, उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्धारित किया गया है कि पक्षकारों द्वारा कार्यान्वित पारिवारिक व्यवस्थाओं को चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा मान्यता दी जा सकती है क्योंकि पारिवारिक व्यवस्था उसके अंतर्गत लाभ लेने वाले पक्षकारों के विरुद्ध एस्टॉपेल के रूप में काम करती है।*

15. उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम के अंतर्गत चकबंदी कार्यवाही के किसी भी चरण में धारा 9-ए, 9-बी, 11, 20, 21 या उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 48 के अंतर्गत समझौते का कोई प्रावधान नहीं है। यद्यपि उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के अंतर्गत, उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 341 के आधार पर सी.पी.सी. के प्रावधान लागू किए गए हैं और उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम से उत्पन्न वादों में उपयुक्त मामलों में, एक समझौता किया जा सकता है।

16. उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम के अंतर्गत, सी.पी.सी. के प्रावधान उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 341 की तरह लागू नहीं किए गए हैं और इस प्रकार उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम के अंतर्गत समझौते का कोई प्रावधान नहीं है, लेकिन न्याय के हित को सुरक्षित करने और मुकदमेबाजी को कम करने के लिए, विधि द्वारा मान्यता प्राप्त अधिकारों को सहायक चकबंदी अधिकारी के अलावा किसी भी चकबंदी प्राधिकारी के समक्ष पारस्परिक समझौते द्वारा निपटाया जा सकता है। सी.पी.सी. के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया चकबंदी कार्यवाही पर लागू नहीं है, लेकिन यदि कोई समझौता किया गया था जो उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकारों के विपरीत नहीं था, तो ऐसे समझौते में जिसमें राज्य सहित सभी पक्षकार शामिल हुए, को चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा वैध रूप से भरोसा किया जा सकता है। इस प्रकार, एक काश्तकारी धारक जिसके पास विधि के अंतर्गत कोई अधिकार नहीं था, वह समझौते या निपटान के माध्यम से कोई अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता था।

17. सी.पी.सी. का आदेश XXIII, नियम 3 नीचे पुनरुत्पादित किया जा रहा है:–

"3. वाद का समझौता।– जहां न्यायालय को यह संतुष्टि हो जाती है कि एक वाद पूर्ण या आंशिक रूप से किसी वैध समझौते या समझौते (लिखित में और पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित) द्वारा समायोजित किया गया है, या जहां प्रतिवादी वाद के विषय-वस्तु के संपूर्ण या किसी भाग के संबंध में वादी को संतुष्ट करता है, तो न्यायालय ऐसे समझौते, समझौते या संतुष्टि को दर्ज करने का आदेश देगा और तदनुसार (जहां तक यह वाद के पक्षकारों से संबंधित है, चाहे समझौते, समझौते या संतुष्टि की विषय-वस्तु वाद की विषय-वस्तु के समान हो या नहीं) एक डिक्री पारित करेगा।

(बशर्ते कि जहां एक पक्षकार द्वारा यह आरोपित किया जाता है और दूसरे द्वारा अस्वीकार किया जाता है कि एक समायोजन या संतुष्टि पर पहुंचा गया है, न्यायालय प्रश्न का निर्णय करेगा; लेकिन प्रश्न का निर्णय करने के प्रयोजन के लिए कोई स्थगन प्रदान नहीं किया जाएगा, जब तक कि न्यायालय, दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए, ऐसा स्थगन प्रदान करना उचित न समझे।)

स्पष्टीकरण– एक समझौता या समझौता जो भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (1872 का 9) के अंतर्गत शून्य या शून्यकरणीय है, इस नियम के अर्थ में वैध नहीं माना जाएगा।)"

18. चूंकि भूमि में काश्तकारी धारक का अधिकार उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के अंतर्गत विधि का सृजन है और इन अधिकारों की घोषणा या अधिनिर्णय उस क्षेत्र के लिए चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा किया जाता है जहां उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अधिसूचना जारी की जाती है. केवल ऐसे वैधानिक अधिकार जो पहले से ही किसी व्यक्ति के पक्ष में विद्यमान हैं, को चकबंदी कार्यवाही में वैध समझौते या समझौते द्वारा मान्यता दी जा सकती है। एक अधिकार जो उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के प्रावधानों या कानून के किसी अन्य प्रावधान के अंतर्गत किसी व्यक्ति को प्राप्त नहीं होता है, को चकबंदी कार्यवाही में किसी समझौते या समझौते द्वारा मान्यता नहीं दी जा सकती। इस प्रकार, यह निर्धारित किया जाता है कि यदि किसी व्यक्ति के पास विधि के अंतर्गत कोई अधिकार नहीं था तो ऐसे किसी अधिकार को समझौते द्वारा मान्यता या स्वीकार नहीं किया जा सकता था या समझौते या सुलह के माध्यम से एक नया अधिकार सृजित नहीं किया जा सकता था।

19, एआईआर 1961 एस.सी. 1790, राणा शिव अंबर सिंह बनाम इलाहाबाद बैंक लिमिटेड, इलाहाबाद में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून से यह स्पष्ट है कि सभी संपदाओं में भूमिधारी अधिकार जो राज्य में निहित हैं, उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के अंतर्गत एक नया वैधानिक अधिकार है। निर्णय का प्रासंगिक भाग नीचे पुनरुत्पादित किया जा रहा है:–

"(7)..... हमारी राय है कि सर और खुदकाश्त भूमि में और ग्रोव भूमि में स्वामित्व अधिकार राज्य में निहित हो गए हैं और मध्यस्थ को धारा 18 द्वारा जो प्रदान किया गया है वह एक बिल्कुल नया अधिकार है जो उसके पास कभी नहीं था और इसलिए 1914 में गिरवी नहीं रखा जा सकता था।"

20. ऊपर की गई चर्चाओं के मद्देनजर, क्योंकि वर्तमान मामले में पक्षकारों के बीच ऐसी कोई पारिवारिक व्यवस्था नहीं है जिस पर कार्य किया गया हो जिसमें पक्षकारों ने याचिकाकर्ताओं द्वारा दावा किए अनुसार लाभ

लिया हो, उप संचालक चकबंदी ने समझौते और चकबंदी अधिकारी और सहायक बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी द्वारा पारित आदेशों को सही तरीके से निरस्त कर दिया। उप संचालक चकबंदी द्वारा दर्ज निष्कर्ष इस निर्धारण में अभिलेख के सामने स्पष्ट कानून की किसी त्रुटि से ग्रस्त नहीं है कि याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किया गया समझौता वैध नहीं था। आक्षेपित आदेश कानून के अनुसार सही तरीके से पारित किया गया था। ऊपर तैयार किए गए प्रश्नों का तदनुसार निर्णय किया जाता है।"

18. पुनरावृत्ति की कीमत पर, **शिव प्रसाद** (उपर्युक्त) के मामले में पारित निर्णय के पैरा 18 को यहां निकाला गया है:-

"18. चूंकि भूमि में काश्तकारी धारक का अधिकार उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के अंतर्गत विधि का सृजन है और इन अधिकारों की घोषणा या अधिनिर्णय उस क्षेत्र के लिए चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा किया जाता है जहां उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अधिसूचना जारी की जाती है, केवल ऐसे वैधानिक अधिकार जो पहले से ही किसी व्यक्ति के पक्ष में विद्यमान हैं, को चकबंदी कार्यवाही में वैध समझौते या समझौते द्वारा मान्यता दी जा सकती है। एक अधिकार जो उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के प्रावधानों या कानून के किसी अन्य प्रावधान के अंतर्गत किसी व्यक्ति को प्राप्त नहीं होता है, को चकबंदी कार्यवाही में किसी समझौते या समझौते द्वारा मान्यता नहीं दी जा सकती। इस प्रकार, यह निर्धारित किया जाता है कि यदि किसी व्यक्ति के पास विधि के अंतर्गत कोई अधिकार नहीं था तो ऐसे किसी अधिकार को समझौते द्वारा मान्यता या स्वीकार नहीं किया जा सकता था या समझौते या सुलह के माध्यम से एक नया अधिकार सृजित नहीं किया जा सकता था।"

19. उपरोक्त संदर्भित निर्णय के साथ-साथ 1954 के नियम का नियम 25-ए इंगित करता है कि पहले से विद्यमान अधिकारों अर्थात् 1950 के अधिनियम या कानून के किसी अन्य प्रावधान के अंतर्गत उपलब्ध अधिकारों से संबंधित काश्तकारी धारक (धारकों) से संबंधित विवाद (विवादों) को 1954 के नियम के नियम 25-ए के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए ए.सी.ओ. द्वारा वैध समझौते या समझौते या सुलह द्वारा मान्यता दी जा सकती है और ए.सी.ओ. इस नियम के अंतर्गत समझौते या समझौते या सुलह के माध्यम से नए अधिकार प्रदान करने के लिए सशक्त नहीं था/है।

20. इसलिए, ए.सी.ओ. राम नायन पाण्डेय द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 2/चन्द्र प्रकाश सिंह के पक्ष में की गई विवादग्रस्त भूमि अर्थात् गाटा संख्या 748 के कथित मौखिक हस्तांतरण को मान्यता देने के लिए सशक्त नहीं था। विवादग्रस्त भूमि अर्थात् गाटा संख्या 748 से संबंधित नए अधिकार सृजित करने में दिनांक 09.12.1983 के आदेश द्वारा ए.सी.ओ. ने अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण किया और कानून में त्रुटि की।

21. इसके अतिरिक्त, यह न्यायालय 1882 के अधिनियम की धारा 54 का संदर्भ देना भी उचित समझता है, जो निम्नलिखित है:-

"54. "विक्रय" परिभाषित

विक्रय" भुगतान की गई या वादा की गई या आंशिक-भुगतान की गई और आंशिक-वादा की गई कीमत के बदले में स्वामित्व का हस्तांतरण है।

***विक्रय कैसे किया जाता है**: ऐसा हस्तांतरण, एक सौ रुपये और उससे अधिक मूल्य की मूर्त अचल संपत्ति के मामले में, या प्रत्यावर्तन या अन्य अमूर्त चीज के मामले में, केवल एक पंजीकृत लिखत द्वारा किया जा सकता है।*

एक सौ रुपये से कम मूल्य की मूर्त अचल संपत्ति के मामले में, ऐसा हस्तांतरण या तो एक पंजीकृत लिखत द्वारा या संपत्ति की सुपुर्दगी द्वारा किया जा सकता है।

मूर्त अचल संपत्ति की सुपुर्दगी तब होती है जब विक्रेता क्रेता को, या उसके द्वारा निर्देशित ऐसे व्यक्ति को, संपत्ति के कब्जे में रखता है।

***विक्रय के लिए संविदा**: अचल संपत्ति के विक्रय के लिए एक संविदा एक संविदा है कि ऐसी संपत्ति का विक्रय पक्षकारों के बीच तय की गई शर्तों पर होगा।*

यह, अपने आप में, ऐसी संपत्ति में कोई हित या भार सृजित नहीं करता है।

<u>उत्तर प्रदेश राज्य संशोधन</u>

***1882 के अधिनियम 4 की धारा 54 का संशोधन**- उत्तर प्रदेश राज्य में इसके लागू होने में, धारा 54 में, -*

(क) दूसरे पैराग्राफ में "एक सौ रुपये और उससे अधिक मूल्य के" शब्दों को छोड़ दिया जाएगा;

(ख) तीसरे और चौथे पैराग्राफ को छोड़ दिया जाएगा;

(ग) अंतिम पैराग्राफ के बाद, निम्नलिखित पैराग्राफ डाला जाएगा, अर्थात्:

"ऐसी संविदा केवल एक पंजीकृत लिखत द्वारा की जा सकती है। (उ.प्र. अधिनियम 57/1976, धारा 30 दिनांक 1-1-1977 से प्रभावी)"।

22. 1882 के अधिनियम की धारा 54 से यह स्पष्ट है कि एक सौ रुपये से अधिक मूल्य की अचल संपत्ति को केवल 1908 के अधिनियम के अनुसार पंजीकृत विलेख/लिखत द्वारा ही हस्तांतरित किया जा सकता है। मामले के इस पहलू पर, **इरशाद अहमद बनाम उप संचालक चकबंदी, सिद्धार्थ नगर, 2016 एस.सी.सी. ऑनलाइन इलाहाबाद 3702; (2016) 133 आर.डी. 661** मे प्रतिवेदित मामले में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के निम्नलिखित पैरा का संदर्भ देना उचित होगा।

"11. अब प्रश्न यह उठता है कि क्या दिनांक 07.07.1989 के समझौते, जिसके द्वारा पोलावदी ने रफीउल्ला के पक्ष में अपना 1/10 हिस्सा त्याग दिया था, को अनिवार्य रूप से पंजीकृत किया जाना आवश्यक था और इसके पंजीकरण की अनुपस्थिति में, इसे लागू नहीं किया जा सकता। प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि समझौता विवाद की विषय-वस्तु के संबंध में था, इसलिए पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17

(2) (vi) के मद्देनजर, दिनांक 07.07.1989 के समझौते को पंजीकरण की आवश्यकता नहीं थी जैसा कि सोम देव बनाम रति राम, (2006) 10 एस.सी.सी. 788 और के. रघुनंदन बनाम अली हुसैन साबिर, (2008) 13 एस.सी.सी. 102 में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया है।

12. विवाद की सराहना करने के लिए, पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 नीचे उद्धृत की गई है:-

17. ऐसे दस्तावेज जिनका पंजीकरण अनिवार्य है.--(1) निम्नलिखित दस्तावेजों को पंजीकृत किया जाएगा, यदि वे जिस संपत्ति से संबंधित हैं वह एक ऐसे जिले में स्थित है जिसमें, और यदि वे उस तारीख को या उसके बाद निष्पादित किए गए हैं जिस पर, अधिनियम XVI/1864, या भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1866 (20/1866), या भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1871 (8/1871), या भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1877 (3/1877), या यह अधिनियम आया या आता है, अर्थात्–

(1) अचल संपत्ति के दान के लिखत;

(2) अन्य गैर-वसीयतनामा लिखत जो अचल संपत्ति में एक सौ रुपये और उससे अधिक मूल्य के किसी भी अधिकार, शीर्षक या हित को, चाहे वह वर्तमान में हो या भविष्य में, चाहे निहित हो या आकस्मिक, सृजित करने, घोषित करने, सौंपने, सीमित करने या विलुप्त करने के लिए आशयित हों या काम करती हों;

(3) गैर-वसीयतनामा लिखत जो ऐसे किसी अधिकार, शीर्षक या हित के सृजन, घोषणा, समनुदेशन, सीमा या विलुप्ति के खाते पर किसी प्रतिफल की प्राप्ति या भुगतान को स्वीकार करते हैं; और

(4) अचल संपत्ति के पट्टे जो वर्ष-दर-वर्ष के लिए हैं, या एक वर्ष से अधिक की किसी अवधि के लिए हैं, या वार्षिक किराया आरक्षित करते हैं;

(5) गैर-वसीयतनामा लिखत जो किसी न्यायालय के किसी डिक्री या आदेश या किसी अधिनिर्णय को हस्तांतरित या समनुदेशित करते हैं जब ऐसी डिक्री या आदेश या अधिनिर्णय अचल संपत्ति में एक सौ रुपये और उससे अधिक मूल्य के किसी भी अधिकार, शीर्षक या हित को, चाहे वर्तमान में हो या भविष्य में, चाहे निहित हो या आकस्मिक, सृजित करने, घोषित करने, सौंपने, सीमित करने या विलुप्त करने के लिए आशयित हो या काम करती हो:

बशर्ते कि राज्य सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा, किसी जिले या जिले के हिस्से में निष्पादित किसी भी पट्टे को इस उप-धारा के संचालन से छूट दे सकती है, जिसके द्वारा दी गई शर्तें पांच वर्ष से अधिक नहीं हैं और जिसके द्वारा आरक्षित वार्षिक किराया पचास रुपये से अधिक नहीं है।

(1-ए) प्रतिफल के लिए किसी अचल संपत्ति को हस्तांतरित करने के लिए संविदाओं वाले दस्तावेज संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) की धारा 53-ए के प्रयोजन के लिए पंजीकृत किए जाएंगे, यदि वे पंजीकरण और अन्य संबंधित कानून (संशोधन) अधिनियम, 2001 के प्रारंभ होने पर या उसके बाद निष्पादित किए गए हैं और, यदि ऐसे दस्तावेज ऐसे प्रारंभ होने पर या उसके बाद पंजीकृत नहीं किए जाते हैं, तो उक्त धारा 53-ए के प्रयोजनों के लिए उनका कोई प्रभाव नहीं होगा।

(2) उप-धारा (1) के खंड (b) और (c) में कुछ भी निम्नलिखित पर लागू नहीं होता है–

(i) कोई भी समझौता-विलेख; या

(ii) एक संयुक्त स्टॉक कंपनी में शेयरों से संबंधित कोई भी लिखत, इस तथ्य के बावजूद कि ऐसी कंपनी की संपत्ति पूर्ण या आंशिक रूप से अचल संपत्ति से बनी है; या

(iii) किसी भी ऐसी कंपनी द्वारा जारी किया गया कोई डिबेंचर और अचल संपत्ति में किसी अधिकार, शीर्षक या हित को सृजित, घोषित, समनुदेशित, सीमित या विलुप्त नहीं करता है, सिवाय इसके कि यह धारक को एक पंजीकृत लिखत द्वारा प्रदत्त सुरक्षा का हकदार बनाता है जिसके द्वारा कंपनी ने ऐसे डिबेंचर के धारकों के लाभ के लिए न्यासियों को अपनी अचल संपत्ति के संपूर्ण या हिस्से या उसमें किसी हित को गिरवी रखा, हस्तांतरित या अन्यथा हस्तांतरित किया है; या

(iv) किसी भी ऐसी कंपनी द्वारा जारी किए गए किसी डिबेंचर पर कोई पृष्ठांकन या हस्तांतरण; या

(v) उप-धारा (1-ए) में निर्दिष्ट दस्तावेजों के अलावा कोई अन्य दस्तावेज जो स्वयं अचल संपत्ति में एक सौ रुपये और उससे अधिक मूल्य के किसी अधिकार, शीर्षक या हित को सृजित, घोषित, समनुदेशित, सीमित या विलुप्त नहीं करता है, लेकिन केवल एक अन्य दस्तावेज प्राप्त करने का अधिकार सृजित करता है जो, निष्पादित होने पर, ऐसे किसी अधिकार, शीर्षक या हित को सृजित, घोषित, समनुदेशित, सीमित या विलुप्त करेगा; या

(vi) न्यायालय की कोई डिक्री या आदेश, एक डिक्री या आदेश को छोड़कर जो समझौते पर किए जाने के लिए व्यक्त किया गया है और अचल संपत्ति से युक्त है जो वाद या कार्यवाही की विषय-वस्तु के अलावा है; या

(vii) सरकार द्वारा अचल संपत्ति का कोई अनुदान; या

(viii) राजस्व अधिकारी द्वारा किया गया विभाजन का कोई लिखत; या

(ix) भूमि सुधार अधिनियम, 1871 (26/1871), या भूमि सुधार ऋण अधिनियम, 1883 (19/1883) के अंतर्गत प्रदत्त ऋण प्रदान करने वाला कोई आदेश या संपार्श्विक सुरक्षा का लिखत; या

(x) कृषक ऋण अधिनियम, 1884 (12/1884) के अंतर्गत ऋण प्रदान करने वाला कोई आदेश, या उस अधिनियम के अंतर्गत दिए गए ऋण की चुकौती सुरक्षित करने वाला लिखत; या

(x-a) धर्मार्थ बंदोबस्ती अधिनियम, 1890 (6/1890) के अंतर्गत किया गया कोई आदेश, जो धर्मार्थ बंदोबस्ती के खजांची में किसी संपत्ति को निहित करता है या किसी ऐसे खजांची को किसी संपत्ति से वंचित करता है; या

(xi) गिरवी-विलेख पर कोई पृष्ठांकन जो संपूर्ण या गिरवी-धन के किसी भाग के भुगतान को स्वीकार करता है, और गिरवी के अंतर्गत देय धन के भुगतान के लिए कोई अन्य रसीद जब रसीद गिरवी को विलुप्त करने के लिए आशयित नहीं है; या

(xii) नागरिक या राजस्व अधिकारी द्वारा सार्वजनिक नीलामी द्वारा बेची गई किसी संपत्ति के क्रेता को प्रदान किया गया विक्रय का कोई प्रमाण पत्र।

स्पष्टीकरण.--अचल संपत्ति के विक्रय के लिए संविदा को प्रभावित करने वाला या संचालित करने वाला कोई दस्तावेज केवल इस तथ्य के कारण पंजीकरण की आवश्यकता के लिए या कभी आवश्यक होने के लिए नहीं समझा जाएगा कि ऐसे दस्तावेज में किसी बयाना धन के भुगतान या क्रय-धन के संपूर्ण या किसी भाग की एक उद्धरण शामिल है।

(3) पुत्र को गोद लेने के लिए प्राधिकार, 1 जनवरी, 1872 के बाद निष्पादित, और वसीयत द्वारा प्रदत्त नहीं, भी पंजीकृत किए जाएंगे।

13. भूप सिंह बनाम राम सिंह मेजर, एआईआर 1996 एस.सी. 196 में उच्चतम न्यायालय के समक्ष धारा 17 (2) (vi) पर विचार किया गया, जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि यह कहने की आवश्यकता है कि धारा 17 की उप-धारा (1) यह अनिवार्य करती है कि खंड (a) से (e) में गणित लिखतों को अनिवार्य रूप से पंजीकृत किया जाएगा यदि वे जिस संपत्ति से संबंधित हैं वह अचल संपत्ति है, जिसका मूल्य रु. 100 या उससे अधिक है। जब दस्तावेज अचल संपत्ति में किसी अधिकार, शीर्षक या हित को, चाहे वर्तमान में हो या भविष्य में, चाहे निहित हो या आकस्मिक, सृजित करने, घोषित करने, सौंपने, सीमित करने या विलुप्त करने के लिए आशयित है या काम करता है, तो इसे अनिवार्य रूप से पंजीकृत किया जाना है। अधिनियम 'लिखत' को परिभाषित नहीं करता है। भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 2(14), 'लिखत' को प्रत्येक दस्तावेज के रूप में परिभाषित करती है जिसके द्वारा कोई अधिकार या दायित्व सृजित, हस्तांतरित, सीमित, विस्तारित, विलुप्त या दर्ज किया जाता है या आशयित है। अधिनियम की धारा 17 की उप-धारा (2) केवल उप-धारा (1) के खंड (b) और (c) द्वारा कवर किए गए लिखतों पर अपवाद लगाती है। हम उप-धारा (2) के खंड (vi) से संबंधित हैं। खंड (vi) न्यायालय की किसी डिक्री या आदेश से संबंधित है, एक डिक्री या आदेश को छोड़कर जो समझौते पर किए जाने के लिए व्यक्त किया गया है और अचल संपत्ति से युक्त है जो वाद या कार्यवाही की विषय-वस्तु के अलावा है। खंड (v) प्रासंगिक है जो इसके विपरीत इस प्रकार है:

"कोई भी दस्तावेज जो स्वयं अचल संपत्ति में एक सौ रुपये और उससे अधिक मूल्य के किसी अधिकार, शीर्षक या हित को सृजित, घोषित, समनुदेशित, सीमित या विलुप्त नहीं करता है, लेकिन केवल एक अन्य लिखत प्राप्त करने का अधिकार सृजित करता है जो, निष्पादित होने पर, ऐसे किसी अधिकार, शीर्षक या हित को सृजित, घोषित, समनुदेशित, सीमित या विलुप्त करेगा;"।

स्पष्टीकरण यह स्पष्ट करता है कि अचल संपत्ति के विक्रय के लिए एक संविदा जिसमें किसी बयाना धन के भुगतान या क्रय-मूल्य के संपूर्ण या किसी भाग का उल्लेख है, को पंजीकरण की आवश्यकता के रूप में या कभी आवश्यक होने के रूप में नहीं समझा जाएगा।

दूसरे शब्दों में, न्यायालय को यह पूछताछ करनी चाहिए कि क्या किसी दस्तावेज ने संपत्ति में अधिकार, शीर्षक और हित की वर्तमान हस्तांतरण के असशर्त और बिना शर्त शब्दों को दर्ज किया है और समान की आवश्यक शर्तों को शामिल किया है; यदि दस्तावेज, एक समझौता ज्ञापन सहित, एक के अधिकारों को विलुप्त करता है और अचल संपत्ति के संबंध में दूसरे के पक्ष में वर्तमान में अधिकार, शीर्षक या हित प्रदान करने का प्रयास करता है जिसका मूल्य रु. 100 और उससे अधिक है, तो दस्तावेज या अभिलेख या समझौता ज्ञापन अनिवार्य रूप से पंजीकृत किया जाएगा।

14. सोम देव बनाम रति राम, (2006) 10 एस.सी.सी. 788 में, यह निर्धारित किया गया है कि यह वास्तव में स्वीकृति पर एक डिक्री थी और स्वीकृति शिव राम द्वारा सृजित के रूप में वादियों द्वारा स्थापित पूर्व-विद्यमान

अधिकार की थी। डिक्री ने स्वयं अचल संपत्ति में कोई अधिकार सृजित नहीं किया। इसने केवल उस वाद में वादियों द्वारा स्थापित अधिकार को मान्यता दी जो उस वाद में शामिल संपत्ति के संबंध में था।
यह कहना पर्याप्त है कि धारा 17(2) के खंड (vi) के सादे पठन पर न्यायालय की सभी डिक्री और आदेश जिनमें समझौता डिक्री शामिल है, उन संपत्तियों के संबंध में अपवाद के अधीन हैं जो वाद की विषय-वस्तु के बाहर हैं, इस आधार पर पंजीकरण की आवश्यकता नहीं है कि वे अधिनियम की धारा 17(1)(b) और (c) से प्रभावित हैं। लेकिन साथ ही, धारा 17(1) के खंड (a), (d) और (e) के संबंध में कोई छूट या बहिष्करण नहीं है ताकि यदि कोई डिक्री अचल संपत्ति का दान लाती है, या अचल संपत्ति का वर्ष-दर-वर्ष पट्टा या एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए या प्रारंभिक किराया आरक्षित करती है या न्यायालय की डिक्री या आदेश या अचल संपत्ति में और में अधिकार सृजित करने, घोषित करने, समनुदेशित करने, सीमित करने या विलुप्त करने वाले किसी अधिनिर्णय का हस्तांतरण, तो उसे पंजीकृत किया जाना आवश्यक है।

15. के. रघुनंदन बनाम अली हुसैन साबिर, (2008) 13 एस.सी.सी. 102 में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि एक विधि का निर्माण उसके प्रयोजन और उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। अधिनियम की धारा 17 की उप-धारा (1) दस्तावेजों के पंजीकरण को अनिवार्य बनाती है। अधिनियम की धारा 17 की उप-धारा (2) केवल उप-धारा (1) के खंड (b) और (c) के लागू होने को छोड़ती है, न कि धारा 17 की उप-धारा (1) के खंड (e) को। यदि किसी समझौता डिक्री द्वारा कोई अधिकार सृजित किया जाता है या विलुप्त किया जाता है, तो यदि समझौता डिक्री अचल संपत्ति से युक्त है जो वाद या कार्यवाही की विषय-वस्तु नहीं थी, तो इसे अनिवार्य रूप से पंजीकृत किया जाना चाहिए। खंड (vi) अपवाद का अपवाद है। यदि धारा 17 की उप-धारा (2) के खंड (vi) का उत्तरार्ध लागू होता है, तो इसका पहला भाग लागू नहीं होगा।

16. फूल पत्ती बनाम राम सिंह, (2009) 13 एस.सी.सी. 22 में उच्चतम न्यायालय ने पाया कि भूप सिंह के मामले और के. रघुनंदन के मामले (उपर्युक्त) में इस न्यायालय के निर्णयों में कोई असंगति है, और मामले को एक बड़ी पीठ द्वारा विचार के लिए संदर्भित किया। हालांकि फूल पत्ती बनाम राम सिंह, (2015) 3 एस.सी.सी. 465 में बड़ी पीठ को भूप सिंह के मामले और के. रघुनंदन के मामले में निर्णयों के बीच कोई असंगति नहीं मिली और मामले को फिर से खंडपीठ को भेज दिया। फूल पत्ती बनाम राम सिंह, (2015) 3 एस.सी.सी. 164 में खंडपीठ ने यह निर्धारित किया कि पारिवारिक निपटान पैतृक के साथ-साथ स्व-अर्जित संपत्ति से संबंधित हो सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह केवल पैतृक संपत्ति से संबंधित था न कि स्व-अर्जित संपत्ति से (इसलिए हिब्बा का संदर्भ)। 32 कनाल भूमि से संबंधित डिक्री को अनिवार्य पंजीकरण की आवश्यकता नहीं थी, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है। हालांकि, भगवाना की स्व-अर्जित संपत्ति अर्थात् 20 कनाल, इसलिए, भूप सिंह के मामले में निर्धारित कानून के मद्देनजर भगवाना द्वारा राम सिंह के पक्ष में 20 कनाल भूमि का दान, पहले वाद में डिक्री के बावजूद, अनिवार्य पंजीकरण की आवश्यकता है क्योंकि इसने, पहली बार, राम सिंह के पक्ष में रु. 100 से अधिक मूल्य की अचल संपत्ति में अधिकार, शीर्षक या हित सृजित किया।

17. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, यह निर्धारित किया जाता है कि दिनांक 07.07.1989 के समझौते ने रफीउल्ला के पक्ष में रु. 100/- से अधिक मूल्य की अचल संपत्ति में पहली बार अधिकार सृजित किया क्योंकि उसका उस पर कोई पूर्ववर्ती अधिकार नहीं था, इसलिए इसे अनिवार्य रूप से पंजीकृत किया जाना आवश्यक था। पंजीकरण की अनुपस्थिति में, चकबंदी अधिकारी का दिनांक 07.07.1989 का आदेश अवैध था और निरस्त किए जाने योग्य था।

18. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, रिट याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। चकबंदी अधिकारी के दिनांक 07.07.1989, बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी के दिनांक 23.06.2004 और उप संचालक चकबंदी के दिनांक 05.07.2016 के आदेश निरस्त किए जाते हैं। मामले को चकबंदी अधिकारी को वापस भेजा जाता है, जो इस मामले को पोलावदी के उत्तराधिकार से संबंधित मामलों के साथ समेकित करेगा और कानून के अनुसार योग्यता पर निर्णय करेगा।"

23. 1950 के अधिनियम की धारा 164 के अनुसार उपलब्ध लाभ के संबंध में, जो कहती है कि *"किसी भूमिधर द्वारा किसी जोत या उसके हिस्से का कोई भी हस्तांतरण जिसके द्वारा कब्जा हस्तांतरणी को ऋण के माध्यम से या भविष्य में अग्रिम या विद्यमान या भविष्य के ऋण के माध्यम से धन के किसी भुगतान को सुरक्षित करने के प्रयोजन के लिए या किसी ऐसे व्यवहार के निष्पादन के लिए जो धन संबंधी दायित्व को जन्म दे सकता है, स्थानांतरित किया जाता है, हस्तांतरण के दस्तावेज या इस समय लागू किसी कानून में निहित किसी भी बात के बावजूद, सभी समय और सभी प्रयोजनों के लिए हस्तांतरणी को विक्रय माना जाएगा और ऐसे प्रत्येक विक्रय पर धारा 154 और 163 के प्रावधान लागू होंगे।",* यह न्यायालय का विचार है कि प्रत्यर्थी संख्या 2/चन्द्र प्रकाश सिंह 1950 के अधिनियम की धारा 164 के अंतर्गत उपलब्ध लाभ के हकदार नहीं हैं क्योंकि प्रत्यर्थी संख्या 2/चन्द्र प्रकाश सिंह द्वारा 1950 के अधिनियम की धारा 164 को आकर्षित करने के लिए आवश्यक तत्वों को सकारात्मक रूप से स्थापित करने के लिए अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं रखा गया था/है। इस संबंध में **श्रीमती भगवतिया बनाम उप संचालक चकबंदी, देवरिया एवं अन्य, 1981 (2) आर.डी. 60; इंद्र प्रसाद एवं अन्य बनाम राजस्व मंडल, उ.प्र. एवं अन्य, 1984 आर.डी. 37; ठाकुर दास बनाम उप संचालक चकबंदी एवं अन्य, 1986 आर.डी. 35; सति प्रसाद एवं अन्य बनाम उप संचालक चकबंदी, कानपुर एवं अन्य, 1993 आर.डी. 13, रामानंद बनाम उप संचालक चकबंदी, बस्ती, 1993 आर.डी. 91 (एच.सी.); श्रीमती रमा देवी बनाम दिलीप सिंह, (2008) 104 आर.डी. 538, फग्गल बनाम उ.प्र. राज्य, 2008 (105) आर.डी. 496 और कमता बनाम राजस्व मंडल, 2018 एस.सी.सी. ऑनलाइन इलाहाबाद 8881** के मामलों में पारित निर्णय (निर्णयों) का संदर्भ दिया जा सकता है।

24. सरकारी खजाने में संपत्ति के बाजार मूल्य पर कुछ राशि/राजस्व जमा करके ए.सी.ओ. द्वारा अचल संपत्ति के हस्तांतरण को मान्य करने का निर्देश बिना किसी प्राधिकार के है। इसके अतिरिक्त, यह न्यायालय इस दृढ़ विचार का है कि जो हस्तांतरण प्रारंभ में वैध नहीं था, उसे सरकारी खजाने में कुछ राशि जमा करने के माध्यम से मान्य नहीं किया जा सकता।

25. उपरोक्त कारणों से, यह न्यायालय पाता है कि आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप आवश्यक है।

26. तदनुसार, दिनांक 30.04.2025 के आदेश (अनुलग्नक संख्या 1) को इसके द्वारा निरस्त/रद्द किया जाता है और एस.ओ.सी. द्वारा दिनांक 03.03.2025 को पारित आदेश को बहाल किया जाता है।

27. प्रार्थना संख्या 2 के संबंध में, यह प्रदान किया जाता है कि कब्जे से संबंधित मुद्दे जिनमें 1950 के अधिनियम की धारा (धाराओं) 209 और 210 पर आधारित मुद्दे शामिल हैं, सक्षम प्राधिकारी/न्यायालय द्वारा, कानून के अनुसार निर्णित किए जाएंगे, और मामले के इस पहलू पर निर्णय तक पक्षकारों को आज विद्यमान यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया जाता है।

28. उपरोक्त इस कारण से है कि विवादग्रस्त भूमि अर्थात् गाटा संख्या 748 पर वास्तविक भौतिक कब्जे को स्थापित करने के लिए राजस्व रसीदों की प्रतियां और खसरा की प्रतियां अभिलेख पर नहीं रखी गई हैं।

29. उपरोक्त के साथ, याचिका ***आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।***

30. इस चरण में, श्री राकेश डी. कुमार, अधिवक्ता, ने विशेष अनुमति याचिका दायर करने के उद्देश्य से इस निर्णय के क्रियान्वयन और संचालन पर कुछ समय के लिए रोक लगाने का निवेदन किया। निवेदित प्रार्थना इस कारण से अस्वीकृत की जाती है कि इस आदेश द्वारा पक्षकारों को सक्षम प्राधिकारी/न्यायालय द्वारा कब्जे से संबंधित मुद्दों पर निर्णय तक यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया गया है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 564

मूल अधिकारिता – सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 29.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

रिट-C संख्या 4987 सन् 2025

शीतला प्रसाद ... याचिकाकर्ता

बनाम

अमृत लाल एवं अन्य ... प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: शरद पाठक, लाल्टा प्रसाद मिश्रा, मनोज कुमार द्विवेदी

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता: दिनेश कुमार ओझा, अनुपम मेहरोत्रा

अनुवादित

सिविल विधि – उ.प्र. नगरपालिका अधिनियम, 1916 – निर्वाचन याचिकाएँ – धाराएँ 12-A से 12-H, 12-E(2), 13-A से 13-K, 19, 20 – आदेश 6 नियम 17 CPC – याचिकाकर्ता ने नगर पंचायत के अध्यक्ष पद के निर्वाचन में भाग लिया। मतगणना के उपरान्त याचिकाकर्ता को निर्वाचित घोषित किया गया। विपक्षी पक्षकार क्रमांक 1 ने दिनांक 29.05.2023 को निर्वाचन याचिका दायर की। याचिकाकर्ता ने दिनांक 18.01.2024 को लिखित कथन दाखिल किया। दिनांक 14.02.2024 को आदेश 6 नियम 17 CPC के अंतर्गत संशोधन आवेदन दायर किया गया – जिला न्यायाधीश ने संशोधन आवेदन स्वीकृत किया। निर्वाचन याचिका में याचिकाकर्ता का निर्वाचन अपास्त किया गया और क्रम संख्या 2 के प्रतियोगी को निर्वाचित घोषित किया गया।

अभिनिर्धारित: यद्यपि दिनांक 08.07.2024 को पारित संशोधन आदेश को चुनौती देने में विलम्ब था, तथापि न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विलम्ब घातक नहीं होगा, क्योंकि प्रथमतः किसी प्रतिशपथ-पत्र के अभाव में चुनौती का खण्डन नहीं किया गया और द्वितीयतः, समस्त अंतरिम आदेश, अंतिम आदेश दिनांक 21.05.2025 में विलीन हो गए, जिसे पूर्व के आदेश दिनांक 08.07.2024 के साथ चुनौती दी जा रही थी। संशोधन आवेदन ने निर्वाचन याचिका की प्रकृति में आमूल परिवर्तन किया; प्रारंभिक निर्वाचन याचिका में ऐसा कोई अभिवचन न होने के कारण, संशोधन – वह भी याचिका दायर करने की परिसीमा समाप्त हो जाने के पश्चात – स्वीकृत नहीं किया जा सकता था। धारा 20 के अनुसार निर्वाचन याचिका, निर्वाचन अधिकारी द्वारा चुनाव परिणाम घोषित किए जाने के 30 दिनों के भीतर प्रस्तुत की जा सकती है। आक्षेपित आदेश दिनांक 21.05.2025 प्रक्रियागत त्रुटि से भी ग्रस्त है, क्योंकि संशोधन के उपरान्त उस आशय का विशिष्ट विषय-निर्धारण किया जाना चाहिए था, जो विद्यमान नहीं है; निर्वाचक नामावली में याचिकाकर्ता के नाम सम्मिलित किए जाने के

संबंध में विशिष्ट विषय-निर्धारण और पक्षकारों को साक्ष्य देने का अवसर दिए जाने के उपरान्त ही परीक्षण हो सकता था, जो नहीं किया गया। (पैरा 30, 31, 32, 33)

स्वीकृत। (E-5)

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया द्वारा उद्घोषित)

1. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता डॉ. एल.पी. मिश्रा को सुना, जिन्हें सुश्री अनुपमा अग्निहोत्री, सुश्री आरती बाली, श्री शिवांग द्विवेदी, श्री सौरभ पाठक और श्री शरद पाठक, विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा सहायता प्रदान की गई, तथा प्रत्यर्थी के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री अनुपम मेहरोत्रा, श्री बालकेश्वर श्रीवास्तव और श्री ऋषि राज मिश्रा को सुना।

2. वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता द्वारा अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, प्रतापगढ़ द्वारा चुनाव याचिका संख्या 02/2023 में दिनांक 21.05.2025 को पारित आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता का चुनाव रद्द कर दिया गया था और क्रम संख्या 2 के प्रत्याशी को निर्वाचित घोषित किया गया था।
वर्तमान याचिका अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, प्रतापगढ़ द्वारा दिनांक 08.07.2024 को पारित आदेश को भी चुनौती देती है, जिसके द्वारा संशोधन आवेदन स्वीकार किया गया था।

3. चुनाव याचिका के याचिकाकर्ता के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता अर्थात् श्री अनुपम मेहरोत्रा, श्री बालकेश्वर श्रीवास्तव और श्री ऋषि राज मिश्रा, जो यहां प्रत्यर्थी हैं, उपस्थित होते हैं और यह कथन करते हैं कि वे प्रति-शपथपत्र दाखिल नहीं करना चाहते हैं और वर्तमान याचिका का निर्णय प्रस्तुत किए गए तर्कों के आधार पर किया जा सकता है।

4. वर्तमान याचिका पर विस्तार से सुनवाई की गई।

5. याचिकाकर्ता के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता डॉ. एल.पी. मिश्रा का तर्क है कि याचिकाकर्ता ने नगर पंचायत कोहडौर, परगना और तहसील पट्टी, जिला प्रतापगढ़ के अध्यक्ष के चुनाव में भाग लिया, जो 04.05.2023 को हुआ था और 13.05.2023 को हुई मतगणना के बाद, याचिकाकर्ता को 2584 मत प्राप्त हुए और उसे निर्वाचित घोषित किया गया। विपक्षी पक्षकार संख्या 1 को 1957 मत प्राप्त हुए और इस प्रकार, 627 मतों का अंतर था। यह कहा गया है कि विपक्षी पक्षकार संख्या 1 ने चुनाव याचिका संख्या 2/2023 दायर की। उक्त याचिका 29.05.2023 को दायर की गई थी और अनुलग्नक-3 में निहित है। यह कहा गया है कि एक अन्य उम्मीदवार, यहां विपक्षी पक्षकार संख्या 3, द्वारा 12.01.2024 को लिखित कथन दाखिल किया गया था, और

याचिकाकर्ता ने भी 18.01.2024 (अनुलग्नक-5) को चुनाव याचिका में लगाए गए आरोपों का खंडन करते हुए एक लिखित कथन दाखिल किया था।

6. यह कहा गया है कि लिखित कथन दाखिल किए जाने के बाद, सी.पी.सी. के आदेश 6 नियम 17 के तहत 14.02.2024 (अनुलग्नक-6) को एक संशोधन आवेदन दाखिल किया गया था, जिस पर 20.02.2024 (अनुलग्नक-7) को आपत्तियां भी दाखिल की गई थीं। जिला न्यायाधीश, प्रतापगढ़ ने दिनांक 08.07.2024 (अनुलग्नक-8) के एक आदेश द्वारा संशोधन आवेदन को स्वीकार कर लिया और तत्पश्चात्, विपक्षी पक्षकार संख्या 1 द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा दाखिल लिखित कथन के उत्तर में 04.03.2024 को एक आवेदन भी दाखिल किया गया था। पैरा 13 में यह अभिकथित किया गया है कि यद्यपि, संशोधन आवेदन को अवैध रूप से स्वीकार किया गया था, तथापि, याचिकाकर्ता उक्त आदेश को चुनौती नहीं दे सका क्योंकि विचारण शीघ्रता से चल रहा था। तथापि, यह तर्क दिया गया है कि संशोधन आवेदन को स्वीकार नहीं किया जा सकता था क्योंकि उक्त संशोधन का प्रभाव यह था कि चुनाव याचिका की प्रकृति बदल गई थी और अन्यथा कालबाधित आधार को स्वीकार किया गया था। यह आगे अभिकथित किया गया है कि संशोधन आवेदन स्वीकार किए जाने के बाद, विपक्षी पक्षकार संख्या 1 द्वारा 18.04.2023 और 19.04.2023 को दस्तावेज दाखिल किए गए थे और विपक्षी पक्षकार संख्या 1 ने स्वयं को पी.डब्ल्यू.-1 के रूप में और एक श्री पवन कुमार को पी.डब्ल्यू.-2 के रूप में परीक्षित किया था। यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने भी स्वयं को डी.डब्ल्यू.-1 के रूप में और एक श्री कृष्ण लाल सोनी को डी.डब्ल्यू.-2 के रूप में परीक्षित किया था।

7. यह कहा गया है कि तत्पश्चात् जिला न्यायाधीश ने चुनाव याचिका का निर्णय करते समय छह मुद्दे तैयार किए, जो निम्नानुसार हैं:

"1- क्या याची चुनाव याचिका में वर्णित तथ्यों पर, पुनर्मतदान के आधार पर निर्वाचित अध्यक्ष घोषित होने का अधिकारी है?

2- क्या वर्ष 2023 में नगरीय पंचायत चुनाव के अन्तर्गत नगर पंचायत कोहडौर का अध्यक्ष पद, अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित था?

3- क्या प्रत्यर्थी संख्या-1 शीतला प्रसाद का निर्वाचन वैध था?

4- क्या याचिका अवधि में दायर है?

5- क्या मतगणना विनिर्दिष्ट चुनाव प्रक्रिया/प्रावधानों के तहत करायी गयी थी?

6- अन्य अनुतोष?"

और तत्पश्चात् एक अन्य मुद्दा अर्थात् मुद्दा संख्या 7 तैयार किया, जो निम्नानुसार है:

"7- क्या वर्तमान चुनाव याचिका धारा-80 सी.पी.सी. के प्रावधान से बाधित है?"

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि मुद्दा संख्या 3 को छोड़कर सभी मुद्दों पर याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्कर्ष दिए गए थे, तथापि, मुद्दा संख्या 3 का निर्णय याचिकाकर्ता के विरुद्ध किया गया और केवल उसी के आधार पर, याचिकाकर्ता का चुनाव रद्द कर दिया गया। उनका तर्क है कि मुद्दा संख्या 3 के

सामान्य पठन पर, यह स्पष्ट है कि वही एक सामान्य मुद्दा था जिसका आशय यह था कि क्या विपक्षी पक्षकार संख्या 1 शीतला प्रसाद का चुनाव वैध था? तथापि, उक्त मुद्दे की आड़ में, उन अभिवचनों पर व्यापक रूप से विचार किया गया जो प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा संशोधन के माध्यम से किए गए थे और कोई विशिष्ट मुद्दा तैयार किए बिना, उसका निर्णय याचिकाकर्ता के विरुद्ध किया गया।

9. उक्त तर्कों की पृष्ठभूमि में, यह ध्यान देना आवश्यक है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा प्रारंभ में विभिन्न आधारों पर दायर की गई चुनाव याचिका में, तथापि, एक संशोधन आवेदन के माध्यम से, यह अभिकथन करते हुए विशिष्ट संशोधन मांगा गया था कि याचिकाकर्ता का नाम मुंबई (महाराष्ट्र) में तैयार की गई निर्वाचक सूची में बांद्रा पूर्व की सूची में क्रम संख्या 126 पर दिखाई दिया और चूंकि याचिकाकर्ता का नाम उक्त मतदाता सूची में उल्लिखित था, इसलिए याचिकाकर्ता का चुनाव स्वतः शून्य हो गया था। यह तर्क दिया गया है कि उक्त संशोधन आवेदन के उत्तर में, यह कहा गया था कि पहले याचिकाकर्ता मुंबई में निवास करता था, तथापि, प्रतापगढ़ में स्थानांतरित होने के बाद, एक आवेदन के माध्यम से उसके नाम को हटाने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था। आपत्ति में यह भी अभिकथित किया गया था कि उक्त संशोधन के कारण चुनाव याचिका का पूरा स्वरूप बदल जाता है।

10. यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि मुद्दा संख्या 3 पर निष्कर्ष दर्ज करते समय, विचारण न्यायालय ने दर्ज किया है कि याचिकाकर्ता का नाम जवाहर नगर, बांद्रा पूर्व, मुंबई (महाराष्ट्र) की निर्वाचक सूची में मतदाता सूची संख्या 115 की क्रम संख्या 1216 पर दिखाई दिया। विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ता के इस आशय के निवेदन पर भी विचार किया कि उसकी जानकारी के अनुसार, उसका नाम पहले ही महाराष्ट्र की निर्वाचक सूची से काट दिया गया था और किसी भी मामले में, इसका उत्तर प्रदेश राज्य में हुए चुनावों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। उन्होंने याचिकाकर्ता के इस आशय के कथन को भी दर्ज किया कि वह निश्चितता के साथ नहीं कह सकता कि उसका नाम महाराष्ट्र की निर्वाचक सूची से हटा दिया गया है। तत्पश्चात्, विचारण न्यायालय ने उ.प्र. नगरपालिका अधिनियम की धारा 12-ई(2) के आदेश पर विचार करते हुए, यह अभिनिर्धारित किया कि मतदाता का नाम किसी अन्य नगरपालिका, छावनी आदि में शामिल नहीं किया जा सकता है, और चूंकि याचिकाकर्ता इस भार का निर्वहन करने में विफल रहा है कि उसका नाम काट दिया गया था और यह भी कि कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया था कि प्रासंगिक तिथि या स्वीकृति के पृष्ठांकन वाला आवेदन दाखिल किया गया था, इसलिए, याचिकाकर्ता का नाम निर्वाचक सूची में गलत तरीके से शामिल किया गया था और विधि के अनुसार शामिल नहीं किया गया था और इस प्रकार, याचिकाकर्ता का चुनाव वैध नहीं था।

11. इसके प्रकाश में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता डॉ. एल.पी. मिश्रा दृढ़ता से तर्क देते हैं कि उ.प्र. नगरपालिका अधिनियम (जिसे इसके बाद 'अधिनियम' कहा गया है) में निहित प्रावधानों के अनुसार, निर्वाचक नामावली धारा 12-ए से 12-एच के आदेश के अनुसार तैयार की जानी है और चुनावों का संचालन अधिनियम की धारा 13-ए से 13-के के तहत विहित है। उनका तर्क है कि चुनाव की प्रक्रिया धारा 13-ए के तहत निहित विहितियों के अनुसार निर्धारित की गई है और उससे पूर्व, निर्वाचक नामावली में प्रविष्टि शामिल करने का

तरीका स्वयं निर्दिष्ट करता है कि निर्वाचक सूची में त्रुटियां होने की स्थिति में, अपील सहित सुधार की एक विधि विहित है। वह आगे तर्क देते हैं कि अधिनियम के आदेश के अनुसार चुनाव याचिकाएं केवल धारा 19 के आदेश के अनुसार ही दायर की जा सकती हैं, जो निम्नानुसार है:

*"**19. याचिका द्वारा नगरपालिका चुनाव पर प्रश्न उठाने की शक्ति।** - (1) किसी व्यक्ति के नगरपालिका के सदस्य के रूप में चुनाव पर निम्नलिखित आधार पर चुनाव याचिका द्वारा प्रश्न उठाया जा सकता है, -*

(क) कि ऐसे व्यक्ति ने चुनाव के दौरान या चुनाव कार्यवाही के संबंध में धारा 28 में परिभाषित भ्रष्ट आचरण किया;

(ख) कि ऐसे व्यक्ति को एक या अधिक मतों की अनुचित अस्वीकृति या स्वीकृति के कारण निर्वाचित घोषित किया गया था, या किसी अन्य कारण से वैध मतों के बहुमत द्वारा विधिवत निर्वाचित नहीं हुआ था;

(ग) कि ऐसा व्यक्ति चुनाव के लिए उम्मीदवार के रूप में नामांकित होने के लिए योग्य नहीं था या याचिकाकर्ता का नामांकन पत्र अनुचित रूप से अस्वीकार कर दिया गया था।

(2) किसी व्यक्ति के नगरपालिका के सदस्य के रूप में चुनाव पर प्रश्न नहीं उठाया जाएगा, -

(क) इस आधार पर कि मतदान के लिए योग्य किसी व्यक्ति का नाम निर्वाचक नामावली या नामावलियों से छूट गया है, या मतदान के लिए योग्य नहीं किसी व्यक्ति का नाम निर्वाचक नामावली में सम्मिलित किया गया है;

(ख) इस अधिनियम या किसी नियम के साथ किसी गैर-अनुपालन के आधार पर, या उसके द्वारा अपेक्षित प्रपत्रों में किसी गलती के आधार पर, या इस अधिनियम या किसी नियमों को लागू करने के लिए प्रभारी अधिकारी या अधिकारियों की ओर से किसी त्रुटि, अनियमितता या औपचारिकता के आधार पर, जब तक कि ऐसी गैर-अनुपालन, गलती, त्रुटि, अनियमितता या औपचारिकता ने चुनाव के परिणाम को भौतिक रूप से प्रभावित नहीं किया हो।"

12. वह विशेष रूप से धारा 19(2) की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करते हैं और तर्क देते हैं कि चुनाव को चुनौती नहीं दी जा सकती है और धारा 19(2)(क) में एक विशिष्ट प्रतिबंध निहित है।

13. वह आगे तर्क देते हैं कि जिला न्यायाधीश ने अधिनियम की धारा 1(2) के आदेश की अवहेलना करने में त्रुटि की है, जिसमें यह निर्दिष्ट है कि अधिनियम पूरे उत्तर प्रदेश में लागू होता है और इस प्रकार, यदि तर्क के लिए, धारा 12-ई(2) को ध्यान में रखा जाए, तो भी उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि स्वीकार्यतः

याचिकाकर्ता का नाम मुंबई, महाराष्ट्र में निर्वाचक नामावली में दिखाई दिया था न कि उत्तर प्रदेश राज्य में किसी स्थान पर। धारा 12-ई को उद्धृत करना आवश्यक है जो निम्नानुसार है:

"12-ई. केवल एक वार्ड में पंजीकरण। *- (1) कोई भी व्यक्ति एक से अधिक वार्ड के लिए निर्वाचक नामावली में या एक ही वार्ड के लिए निर्वाचक नामावली में एक से अधिक बार पंजीकृत होने का हकदार नहीं होगा।*

(2) कोई भी व्यक्ति किसी वार्ड के लिए निर्वाचक नामावली में पंजीकृत होने का हकदार नहीं होगा, यदि उसका नाम किसी शहर, अन्य नगरपालिका क्षेत्र, छावनी या ग्राम पंचायत के क्षेत्र से संबंधित किसी निर्वाचक नामावली में दर्ज है, जब तक कि वह यह नहीं दिखाता कि उसका नाम ऐसी निर्वाचक नामावली से काट दिया गया है।"

14. वह आगे तर्क देते हैं कि किसी भी मामले में यह सुस्थापित है कि चुनाव याचिका में ऐसे आधारों को शामिल करने के लिए संशोधन की अनुमति नहीं दी जा सकती है जो चुनाव याचिका को कालबाधित बनाते हैं क्योंकि अधिनियम की धारा 20 के तहत चुनाव याचिका दायर करने के लिए 30 दिनों का समय निर्धारित है।

15. ऊपर दर्ज अपने तर्कों के समर्थन में, **इंद्रजीत बरुआ एवं अन्य बनाम भारत निर्वाचन आयोग एवं अन्य; (1985) 4 एससीसी 722** के मामले में उच्चतम न्यायालय के अधिनिर्णय पर निर्भरता रखी गई है, जिसमें पैरा 12 पर जोर दिया गया है, जो निम्नानुसार है:

"12. *पक्षकारों और निर्वाचन आयोग द्वारा प्रस्तुत सामग्री से, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि निर्वाचन आयोग ने अधिनियम की धारा 16 की आवश्यकताओं के विपरीत निर्देश नहीं दिए और निर्वाचन आयोग के नियंत्रण से परे कारणों से 1979 की निर्वाचक नामावलियों का संशोधन नहीं किया जा सका। जैसा कि हमने 28 सितंबर, 1984 के अपने आदेश में बताया है, 1977 की निर्वाचक नामावली के बारे में कोई विवाद नहीं था और न ही ऐसी नामावलियों के आधार पर राज्य विधानमंडल के 1978 के चुनाव के खिलाफ कोई चुनौती दी गई थी। स्वीकार्यतः, 1979 की नामावलियां 1977 की नामावलियों के गहन संशोधन का परिणाम थीं। यह स्थिति होने के कारण और धारा 21 की उप-धारा (2) के परंतुक के दृष्टिगत, जिसे हमने ऊपर उद्धृत किया है, 1979 की निर्वाचक नामावलियां वैध रूप से अस्तित्व में थीं और प्रभावी रहीं, भले ही संशोधन के लिए उप-धारा (2) में विचारित प्रक्रिया न तो की गई थी और न ही पूरी हुई थी। इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय लक्ष्मी चरण सेन बनाम ए.के.एम. हसन उज्जामान; (1985) 4 एससीसी 689] द्वारा यह संकेत दिया गया है कि निर्वाचक नामावली की तैयारी और संशोधन एक निरंतर प्रक्रिया है जो किसी विशेष चुनाव से जुड़ी नहीं है, लेकिन जब कोई चुनाव होना है, तो निर्वाचक नामावली जो चुनाव की अधिसूचना के समय मौजूद है, ऐसे चुनाव के आयोजन के लिए आधार बनेगी। यही कारण है कि धारा 23 की उप-धारा (3) चुनाव के लिए नामांकन की अंतिम तिथि के बाद और चुनाव की समाप्ति तक निर्वाचक नामावली में किसी भी संशोधन को निलंबित करने का प्रावधान करती है। इसलिए, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि 1979 की निर्वाचक नामावलियां अवैध नहीं थीं और 1983 में चुनाव आयोजित करने के लिए आधार प्रदान कर सकती थीं। क्या निर्वाचक नामावलियों की*

तैयारी और प्रकाशन संविधान के अनुच्छेद 329(ख) के अर्थ के भीतर चुनाव प्रक्रिया का एक हिस्सा है, यह विचार किया जाने वाला अगला पहलू है। एन.पी. पोन्नुस्वामी बनाम रिटर्निंग अधिकारी, नमक्कल निर्वाचन क्षेत्र [(1952) 1 एससीसी 94 : एआईआर 1952 एससी 64 : 1952 एससीआर 218 : (1951-52) 1 ईएलआर 133] में इस न्यायालय को 'चुनाव' शब्द के आयाम का निर्णय करना था। संविधान पीठ के लिए बोलते हुए फजल अली, न्यायमूर्ति ने संकेत दिया:

"मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि संविधान के भाग XV में 'चुनाव' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया गया है, अर्थात्, किसी उम्मीदवार को विधानमंडल में वापस करने के लिए पूरी प्रक्रिया से गुजरना। अनुच्छेद 324 में 'चुनावों के संचालन' अभिव्यक्ति का उपयोग विशेष रूप से व्यापक अर्थ की ओर इशारा करता है, और वह अर्थ भाग XV में आने वाले अन्य प्रावधानों में भी सुसंगत रूप से पढ़ा जा सकता है, जिसमें अनुच्छेद 329(ख) भी शामिल है। जब भी हम लोकतांत्रिक देश में चुनावों की बात करते हैं तो 'चुनाव' शब्द इस व्यापक अर्थ को वहन करता है, इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि इस विषय पर अधिकांश पुस्तकों में और इस मामले से संबंधित कई मामलों में, एक प्रश्न उठाया गया है कि चुनाव कब शुरू होता है। इस विषय को हॉल्सबरी के लॉज ऑफ इंग्लैंड में 'चुनाव की शुरुआत' शीर्षक के तहत काफी संक्षिप्त रूप से निपटाया गया है:

हालांकि प्रत्येक चुनाव में पहला औपचारिक कदम रिट जारी करना है, चुनाव को कुछ उद्देश्यों के लिए पहले की तारीख में शुरू माना जाता है। यह प्रत्येक मामले में तथ्य का प्रश्न है कि चुनाव कब इस तरह से शुरू होता है कि संबंधित पक्षों को चुनाव कानून के उल्लंघन के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सके, परीक्षण यह है कि क्या प्रतियोगिता 'उचित रूप से आसन्न' है। न तो रिट का निर्गम और न ही चुनाव की अधिसूचना का प्रकाशन उस तारीख को निर्धारित करने के रूप में देखा जा सकता है जब इस दृष्टिकोण से चुनाव शुरू होता है। और न ही, नामांकन दिवस कोई मानदंड प्रदान करता है। चुनाव आमतौर पर कम से कम रिट जारी होने से पहले शुरू हो जाएगा। चुनाव कब शुरू होता है, इस प्रश्न को इस बात से सावधानीपूर्वक अलग किया जाना चाहिए कि किसी चुनाव का 'संचालन और प्रबंधन' कब शुरू हुआ कहा जा सकता है। फिर, यह प्रश्न कि कोई विशेष व्यक्ति कब उम्मीदवार बनना शुरू करता है, प्रत्येक मामले में विचार किया जाने वाला प्रश्न है।

इस अनुच्छेद में चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि 'चुनाव' शब्द का उपयोग उचित रूप से पूरी प्रक्रिया के संदर्भ में किया जा सकता है और किया गया है जिसमें कई चरण होते हैं और कई कदम शामिल होते हैं, जिनमें से कुछ का प्रक्रिया के परिणाम पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है।"

हम यह मानने को तैयार नहीं हैं कि निर्वाचक नामावली की तैयारी भी चुनाव की एक प्रक्रिया है। हमें लक्ष्मी चरण सेन मामले [एआईआर 1957 एससी 304 : 1957 एससीआर 68 : (1956) 12 ईएलआर 443] में चंद्रचूड़, मुख्य न्यायाधीश की टिप्पणियों से अपने विचार के लिए समर्थन मिलता है कि "उस दृष्टिकोण के अनुरूप, यह मानना कठिन हो सकता है कि निर्वाचक नामावली की तैयारी और संशोधन, अनुच्छेद 329(ख) के अर्थ के भीतर 'चुनाव' का एक हिस्सा है।" एक उपयुक्त मामले में निर्वाचक नामावली को कानून की आवश्यकताओं का पालन

न करने के लिए चुनौती दी जा सकती है, जो पोन्नुस्वामी मामले [(1985) 4 एससीसी 689] में संकेतित नियम के अधीन है। लेकिन किसी उम्मीदवार के चुनाव को निर्वाचक नामावली के दोषपूर्ण होने के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है। विधानमंडल के चुनाव आयोजित करना और उन्हें कानून के अनुसार आयोजित करना दोनों सर्वोपरि महत्व के मामले हैं। ऐसे चुनाव संविधान और अधिनियम में विचारित समयबद्ध कार्यक्रम के अनुसार भी आयोजित किए जाने हैं। 1950 के अधिनियम की धारा 22(2) में जोड़ा गया परंतुक उन स्थितियों में निर्वाचक नामावलियों को कवर का विस्तार करने का इरादा रखता है जो अन्यथा कार्यक्रम के सुचारू संचालन में हस्तक्षेप कर सकते थे। ये वे कारण हैं जिनके लिए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि 1979 की निर्वाचक नामावली दूषित नहीं हुई थी और अवैध के रूप में आक्रमण के लिए खुली नहीं थी।"

16. वह इसके बाद उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ के एस.एम. बनर्जी बनाम श्री कृष्ण अग्रवाल; एआईआर 1960 एससी 368 के मामले में अधिनिर्णय पर निर्भरता रखते हैं और पैरा 11 पर निर्भरता रखते हैं, जो निम्नानुसार है:

***"11.** दूसरा मामला चार न्यायाधीशों का निर्णय है और यह अभिवचनों के संशोधन के मामले में चुनाव न्यायाधिकरण की शक्तियों को परिभाषित करता है। यह निर्णय भी 1956 के अधिनियम 27 द्वारा संशोधित किए जाने से पहले 1951 के अधिनियम 43 के प्रासंगिक प्रावधानों पर निर्भर करता है। संशोधन से पहले अधिनियम की धारा 83(3) संशोधित अधिनियम की धारा 90(5) से मेल खाती है। अन्य संबंधों में, जहां तक यह उठाए गए प्रश्न के लिए महत्वपूर्ण है, अन्य प्रासंगिक धाराओं में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। इस मामले में, अपील में प्रत्यर्थी ने उ.प्र. विधान सभा के लिए अपीलकर्ताओं के चुनाव को इस आधार पर चुनौती देते हुए एक चुनाव याचिका दायर की कि उन्होंने भ्रष्ट आचरण किया था, भौतिक आरोप, (i) कि अपीलकर्ता "अपने चुनाव को आगे बढ़ाने में कुछ सरकारी सेवकों का समर्थन सूचीबद्ध कर सकते थे", और (ii) कि अपीलकर्ता 1 ने अपने चुनाव उद्देश्यों के लिए निर्धारित संख्या से अधिक दो व्यक्तियों को नियोजित किया था। याचिका के साथ भ्रष्ट आचरणों के विवरणों की कोई सूची संलग्न नहीं थी। चुनाव याचिका दायर करने के लिए निर्धारित सीमा अवधि के बहुत बाद, प्रत्यर्थी ने अपीलकर्ताओं के लिए काम करने वाले कुछ गांव के मुखियाओं (मुखियाओं) के नाम जोड़कर और बाद में उनके मतदान एजेंट बनने के आधार पर अपनी याचिका में संशोधन के लिए आवेदन किया। चुनाव न्यायाधिकरण ने इस आधार पर संशोधन की अनुमति दी कि संशोधन द्वारा पेश किए जाने वाले आरोप पहले से किए गए आरोप के मात्र विवरण थे। यह अभिनिर्धारित करते हुए कि अपीलकर्ताओं द्वारा भ्रष्ट आचरण किया गया था, इसने अधिनियम की धारा 100(2)(ख) के तहत उनके चुनाव को शून्य घोषित कर दिया। अपीलकर्ताओं ने उस आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय में अपील प्राथमिकृत की और तर्क दिया कि चुनाव न्यायाधिकरण के पास अधिनियम की धारा 83(3) या सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 17 के तहत संशोधन की अनुमति देने की कोई शक्ति नहीं थी। उस संदर्भ में, इस न्यायालय ने चुनाव विवाद में अभिवचनों में संशोधन करने के लिए चुनाव न्यायाधिकरण की शक्ति के दायरे पर विस्तार से विचार किया और पृष्ठ 392 पर अपने विचारों को निम्नलिखित दो प्रस्तावों में संक्षेपित किया:*

"(1) धारा 83(3) के तहत न्यायाधिकरण के पास अवैध या भ्रष्ट आचरणों के संबंध में विवरणों में संशोधन की अनुमति देने की शक्ति है, बशर्ते कि याचिका स्वयं आधारों या आरोपों को निर्दिष्ट करती हो, और यह शक्ति नए उदाहरणों को देने की अनुमति देने तक विस्तारित होती है।

(2) न्यायाधिकरण के पास आदेश 6 नियम 17 के तहत याचिका के संशोधन का आदेश देने की शक्ति है, लेकिन उस शक्ति का प्रयोग नए आधारों या आरोपों को उठाने की अनुमति देने के लिए या इसके चरित्र को इस हद तक बदलने के लिए नहीं किया जा सकता है कि इसे सारतः एक नई याचिका बना दे, यदि उन आरोपों पर एक नई याचिका तब वर्जित होगी।"

उन प्रस्तावों के आधार पर इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मूल रूप से प्रस्तुत याचिका में यह आरोप नहीं लगाया गया था कि अपीलकर्ताओं ने भ्रष्ट आचरण किया था और इसलिए, संशोधन द्वारा पेश किए जाने वाले आरोप, अर्थात्, कि दो गांव के मुखियाओं ने अपीलकर्ताओं के लिए काम किया और बाद में उनके मतदान एजेंट बन गए, मूल रूप से तैयार की गई याचिका के चरित्र को इतनी मौलिक रूप से बदल दिया कि इसे व्यावहारिक रूप से एक नई याचिका बना दिया, और इसलिए यह न्यायाधिकरण की शक्ति के भीतर नहीं था कि वह उस प्रकार के संशोधनों की अनुमति दे। यदि न्यायाधिकरण के पास सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 17 के तहत एक नए आरोप को उठाने वाले संशोधन की अनुमति देने की शक्ति थी, तो न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उसने परिस्थितियों में प्रश्नगत संशोधन की अनुमति देने में एक स्वस्थ और न्यायिक विवेक का प्रयोग नहीं किया। यह ध्यान दिया जा सकता है कि उस मामले में प्रश्न अधिनियम की धारा 83, उप-धाराएं (2) और (3) की व्याख्या पर निर्भर था। यद्यपि उस मामले में यह न्यायालय सीमा अवधि से परे याचिका में संशोधन करने के लिए चुनाव न्यायाधिकरण की शक्तियों से संबंधित था, न्यायालय की चर्चा एक व्यापक क्षेत्र को कवर करती थी, संभवतः, क्योंकि न्यायालय भ्रम को रोकने और प्रक्रिया को स्थिर करने के दृष्टिकोण से अभिवचनों में संशोधन करने के लिए चुनाव न्यायाधिकरणों की शक्ति को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों को निपटाने का इरादा रखता था। इस न्यायालय ने इस तर्क को खारिज कर दिया कि सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 6 नियम 17, चुनाव याचिकाओं पर लागू नहीं होता है। पृष्ठ 389 पर यह टिप्पणी की गई थी:

"इसलिए हम इस राय में हैं कि न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 17 का आवेदन धारा 83(3) द्वारा बाहर नहीं किया गया है।"

उस मामले में अपीलकर्ता के लिए यह तर्क दिया गया था कि यदि अधिनियम की धारा 83(3) ने न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 17 के आवेदन को बाहर नहीं किया, तो भी उस नियम के तहत शक्ति का प्रयोग, फिर भी, चुनाव याचिका की प्रस्तुति के लिए धारा 81 द्वारा निर्धारित शर्तों के अधीन होना चाहिए, कि उन शर्तों में से एक यह थी कि इसे उसके लिए अनुमत समय के भीतर प्रस्तुत किया जाना चाहिए, और तदनुसार, कोई भी संशोधन की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जिसका प्रभाव उस

प्रावधान को विफल करना होगा। अंग्रेजी निर्णयों पर विचार करने के बाद जो कि हमारे अधिनियमों के साथ समान सामग्री के वैधानिक प्रावधानों पर हैं, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि चुनाव न्यायाधिकरण के पास अधिनियम की धारा 81 द्वारा निर्धारित सीमा के समय से परे एक नया आधार उठाने की अनुमति देने की कोई शक्ति नहीं थी। श्री ए.वी. विश्वनाथ शास्त्री ने तर्क दिया कि विद्वान न्यायाधीशों ने, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 17 के तहत अभिवचनों में संशोधन करने के लिए चुनाव न्यायाधिकरण की शक्ति को सही ढंग से स्वीकार करते हुए, जिस तरह से उन्होंने उस शक्ति को सीमित किया, उसमें गलत किया, और यह कि उन्होंने उस शक्ति को सीमित करने में जो कारण दिया, वह समान रूप से एक वाद में अभिवचनों पर लागू होता है, क्योंकि, यह कहा जाता है, भारतीय सीमा अधिनियम के तहत, सीमा की निर्धारित अवधि से परे दायर किया गया प्रत्येक वाद खारिज कर दिया जाएगा, हालांकि सीमा को बचाव के रूप में स्थापित नहीं किया गया है। इस तर्क में निस्संदेह कुछ बल है, लेकिन यह तर्क संभवतः विद्वान न्यायाधीशों के समक्ष रखा गया था और पृष्ठ 392 पर बताए गए निम्नलिखित आधार पर नकारात्मक रूप से दिया गया था:

"न्यायाधिकरण ने आदेश 6 नियम 17 के तहत संशोधनों के संदर्भ में स्थापित सिद्धांत पर निर्भर करके इस कठिनाई को पार करने की कोशिश की कि जिस दावे को उठाने की मांग की गई है, उस पर एक वाद आवेदन की तारीख पर वर्जित होगा, यह तय करने में एक भौतिक तत्व होगा कि क्या इसे अनुमति दी जानी चाहिए या नहीं, लेकिन यह न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को प्रभावित नहीं करेगा कि वह चरण दास बनाम अमीर खान [(1920) एलआर 47आईए 255] में निर्धारित असाधारण परिस्थितियों में इसे प्रदान करे। लेकिन यह धारा 90(2) द्वारा लगाए गए प्रतिबंध की अनदेखी करना है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत न्यायालय की प्रक्रिया, जिसमें आदेश 6 नियम 17 शामिल है, अधिनियम और नियमों के प्रावधानों के अधीन लागू होनी है, और न्यायाधिकरण को निर्धारित सीमा अवधि को बढ़ाने की कोई शक्ति प्रदान नहीं की गई है, धारा 81 और नियम 119 द्वारा सीमित समय से परे एक नए आधार को उठाने की अनुमति देने वाले संशोधन का आदेश उन प्रावधानों का उल्लंघन करना होगा और परिणामस्वरूप, धारा 90(2) द्वारा प्रदत्त प्राधिकार के दायरे से परे है।"

यह अनुच्छेद संकेत करता है कि विद्वान न्यायाधीश अब प्रस्तुत किए गए तर्क के बारे में जागरूक थे और, उनके द्वारा उल्लिखित कारण के लिए, अर्थात्, एक सिविल वाद के विपरीत जिसमें न्यायालय उचित मामले में सीमा अवधि को बढ़ा सकता है, न्यायाधिकरण के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है, तर्क को खारिज कर दिया। हम इस निर्णय से बाध्य हैं।"

17. वह इसके बाद उच्चतम न्यायालय के ***येश्वंत देवराव देशमुख बनाम वालचंद रामचंद कोठाई; 1950 एससीसी 766:1950 एससीसी ऑनलाइन एससी 44*** के मामले में अधिनिर्णय पर निर्भरता रखते हैं, जिसमें पैरा 16 पर जोर दिया गया है, जो निम्नानुसार है:

*"**16.** इस प्रकार सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 48 के तहत अपने रास्ते में आने वाली कठिनाई को पार करने के बाद, उसे अगला सीमा अधिनियम के तहत आपत्ति का सामना करना होगा। अपीलकर्ता की ओर से, यह तर्क दिया गया था कि सीमा अधिनियम की धारा 18 तथ्यों पर लागू होती है और आवेदन करने का अधिकार अपीलकर्ता को तब प्राप्त हुआ जब निर्णय-देनदार द्वारा धोखाधड़ी 1946 में उसे ज्ञात हुई। अवर न्यायालयों में सीमा अधिनियम की धारा 18 पर कोई निर्भरता नहीं रखी गई थी और इस न्यायालय में अपील के आधारों में इसका कोई संदर्भ नहीं पाया जाता है। हालांकि इसका उल्लेख पहली बार अपीलकर्ता के मामले के बयान में किया गया है। यदि साबित और स्थापित तथ्य धारा 18 के अर्थ के भीतर धोखाधड़ी का मामला बनाने के लिए पर्याप्त हैं, तो यह आपत्ति गंभीर नहीं हो सकती है, क्योंकि धारा की प्रयोज्यता का प्रश्न केवल कानून का प्रश्न होगा और ऐसा प्रश्न मामले के किसी भी चरण में और अपील के अंतिम न्यायालय में भी उठाया जा सकता है। कनेक्टिकट फायर इंश्योरेंस कंपनी बनाम कावानाघ [कनेक्टिकट फायर इंश्योरेंस कंपनी बनाम कावानाघ, 1892 एसी 473 (PC)] में लॉर्ड वाटसन की निम्नलिखित टिप्पणियां प्रासंगिक हैं। उन्होंने कहा: (एसी पृ. 480)*

"... जब किसी दस्तावेज की व्याख्या पर, या तो स्वीकृत या विवाद से परे साबित तथ्यों पर, अंतिम उपाय के न्यायालय में पहली बार कानून का प्रश्न उठाया जाता है, तो न केवल सक्षम है बल्कि न्याय के हित में, याचना का मनोरंजन करने के लिए समीचीन है। उस पाठ्यक्रम को अपनाने की समीचीनता पर संदेह किया जा सकता है, जब याचना का निपटान तथ्य के अच्छे प्रश्नों का निर्णय किए बिना नहीं किया जा सकता है, जिस पर विचार करने में अंतिम समीक्षा का न्यायालय अवर न्यायालयों की तुलना में बहुत कम लाभप्रद स्थिति में रखा गया है।"

18. वह उच्चतम न्यायालय के **मेसर्स त्रिलोकचंद मोतीचंद एवं अन्य बनाम एच.बी. मुंशी, बिक्री कर आयुक्त, बंबई एवं अन्य; एआईआर 1970 एससी 898** के मामले में अधिनिर्णय पर भी निर्भरता रखते हैं और पैराग्राफ 6 और 39 पर जोर देते हैं, जो निम्नानुसार हैं:

*"**6.** फिर यह न्यायालय अनुच्छेद 32 के तहत कार्य करने से परहेज करता है यदि पक्षकार पहले ही अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय को स्थानांतरित कर चुका है। यह उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के बीच एक सौजन्य का गठन करता है। इसी तरह, जब कोई पक्षकार पहले ही समान शिकायत और समान राहत के लिए उच्च न्यायालय को स्थानांतरित कर चुका था और विफल रहा था, तो यह न्यायालय इस बात पर जोर देता है कि इसके समक्ष एक अपील लाई जाए और ताजा कार्यवाही शुरू करने की अनुमति नहीं देता है। इस संबंध में न्यायिक निर्णय का सिद्धांत लागू किया गया है, हालांकि अभिव्यक्ति कुछ अनुचित और दुर्भाग्यपूर्ण है। नियम का कारण निस्संदेह सार्वजनिक नीति है जिसे कोक ने "इंटरेस्ट रेइपब्लिके रेस ज्यूडिकेटास नॉन रेसिंडी" के रूप में संक्षेपित किया, लेकिन प्रेरक कारक किसी अन्य न्यायालय में एक अन्य समानांतर अधिकार क्षेत्र का अस्तित्व है और वह न्यायालय स्थानांतरित किया गया है, यह न्यायालय समीक्षा के लिए इस न्यायालय के समक्ष अपना निर्णय लाने पर जोर देता है। फिर यह न्यायालय उन मामलों के बीच अंतर करता है जिनमें गुण-दोष पर एक बोलने वाला आदेश पारित किया गया है। जहां आदेश बोल रहा नहीं है या मामले का निपटान*

दहलीज पर किसी अन्य आधार पर किया गया है, यह न्यायालय एक उपयुक्त मामले में अपने समक्ष आवेदन का मनोरंजन करता है। एक और संयम जो यह न्यायालय अपने ऊपर रखता है वह यह है कि यह अपील में एक नया आधार लेने की अनुमति नहीं देता है। इसी तरह, यह न्यायालय कार्रवाई करने से परहेज करता है जब एक बेहतर उपाय अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय को स्थानांतरित करना है जो अनुच्छेद 32 के तहत इस न्यायालय से अधिक व्यापक रूप से विवाद में जा सकता है।

39. *अगला और अधिक मौलिक प्रश्न यह है कि क्या परिस्थितियों में न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत रिट याचिका में राहत देनी चाहिए। ऐसी याचिका के लिए कोई सीमा अवधि निर्धारित नहीं है। मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए इस न्यायालय को स्थानांतरित करने का अधिकार अनुच्छेद 32 द्वारा गारंटीकृत है। अनुच्छेद 32 के तहत रिट यदि मौलिक अधिकार के उल्लंघन की स्थापना होती है तो स्वाभाविक रूप से जारी की जाती है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के प्रावधानों जैसे वादों पर लागू तकनीकी नियम अनुच्छेद 32 के तहत कार्यवाही पर लागू नहीं होते हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि अनुच्छेद 32 के तहत राहत देने में न्यायालय को प्रक्रिया, साक्ष्य, सीमा, न्यायिक निर्णय और इसी तरह के सभी कानूनों की अनदेखी करनी चाहिए और उन्हें पैर तले रौंदना चाहिए। अनुच्छेद 145(1)(ग) के तहत अनुच्छेद 32 के तहत कार्यवाही में अभ्यास और प्रक्रिया को विनियमित करने के लिए नियम बनाए जा सकते हैं। ऐसे नियमों की अनुपस्थिति में न्यायालय प्रक्रिया के किसी भी उचित नियम को अपना सकता है। इस प्रकार एक याचिकाकर्ता को भ्रामक और गलत कथनों वाली याचिका पर अपने मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए अनुच्छेद 32 के तहत इस न्यायालय को स्थानांतरित करने का कोई अधिकार नहीं है और यदि वह ऐसी याचिका दायर करता है तो न्यायालय इसे खारिज कर देगा, देखें इंडियन शुगर्स एंड रिफाइनरीज लिमिटेड बनाम भारत संघ, 1968 एससीसी ऑनलाइन एससी 158। सार्वजनिक नीति के आधार पर यह असहनीय होगा यदि न्यायालय को ऐसी याचिका का मनोरंजन करना होगा। इसी तरह न्यायालय ने दरयाओ बनाम उ.प्र. राज्य [1961 एससीसी ऑनलाइन एससी 21 : (1962) 1 एससीआर 574] में अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 32 के तहत रिट याचिका पर न्यायिक निर्णय के सामान्य सिद्धांत लागू होते हैं। इसी तरह, इस न्यायालय ने इस आधार पर असंख्य रिट याचिकाओं को संक्षेप में खारिज कर दिया है कि यह अनुचित विलंब के बाद प्रस्तुत की गई थी।"*

19. इसके प्रकाश में, यह तर्क दिया गया है कि वर्तमान याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है और आक्षेपित आदेश रद्द किए जाने योग्य है।

20. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुपम मेहरोत्रा व्यापक रूप से पैरा 13 और 14 में निहित अभिवचनों की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करते हैं, जो निम्नानुसार हैं:

"13. कि संशोधन के लिए आवेदन को अवैध रूप से अनुमति दी गई थी लेकिन याचिकाकर्ता उक्त आदेश को उस समय चुनौती नहीं दे सका क्योंकि विचारण शीघ्रता से चल रहा था लेकिन चूंकि चुनाव याचिका की प्रकृति

को बदलते हुए संशोधन के लिए आवेदन को अनुमति नहीं दी जा सकती थी, इसलिए, याचिकाकर्ता अब इस माननीय न्यायालय के समक्ष उक्त आदेश को चुनौती दे रहा है।

14. कि तथापि संशोधन के लिए आवेदन को अनुमति देने के बाद, विपक्षी पक्षकार संख्या 1 द्वारा 18.04.2023 और 19.04.2023 को दस्तावेज दाखिल किए गए थे। विपक्षी पक्षकार संख्या 1 ने स्वयं को पी.डब्ल्यू.-1 के रूप में और श्री पवन कुमार को पी.डब्ल्यू.-2 के रूप में परीक्षित किया। विपक्षी पक्षकार संख्या 1 के साक्ष्य की सही प्रति जो पी.डब्ल्यू.-1 के रूप में दर्ज की गई है, इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 10 के रूप में संलग्न है और पवन कुमार के साक्ष्य की सही प्रति जो पी.डब्ल्यू.-2 के रूप में दर्ज की गई है, इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 11 के रूप में संलग्न है।
और तर्क देते हैं कि उक्त अभिवचन संशोधन आवेदन पर पारित आदेश को चुनौती देने का आधार नहीं हो सकते हैं।

21. वह आगे संशोधन आवेदन की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करते हैं जिसके द्वारा विशेष रूप से यह अभिकथित किया गया था कि याचिकाकर्ता का नाम मुंबई में निर्वाचक नामावली में शामिल किया गया था और याचिकाकर्ता द्वारा उक्त संशोधन आवेदन के उत्तर में दाखिल उत्तर की ओर भी मेरा ध्यान आकर्षित करते हैं और तर्क देते हैं कि एकमात्र आधार यह लिया गया था कि उसने मुंबई में निर्वाचक नामावली में अपने नाम को काटने के लिए कदम उठाए थे। इस प्रकार, वह तर्क देते हैं कि कोई विशिष्ट इनकार नहीं किया गया था।

22. वह आगे याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा स्वयं दाखिल शपथपत्र की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करते हैं और यह प्रदर्शित करते हैं कि याचिकाकर्ता द्वारा विशेष रूप से शपथपूर्वक यह कहा गया था कि उसका नाम काट दिया गया था और यदि उसका नाम दिखाई भी दिया, तो दोष कर्मचारियों का था जिन्होंने आवेदन होने के बावजूद नाम नहीं काटा था। इस प्रकार, वह तर्क देते हैं कि याचिकाकर्ता संशोधन आवेदन पर पारित आदेश को चुनौती देने में विफल रहा है, अब ऐसी याचिका दायर करके उसी को चुनौती नहीं दे सकता है जो विलंब से पीड़ित है जहां तक यह दिनांक 08.07.2024 के आदेश की चुनौती से संबंधित है।

23. वह आगे तर्क देते हैं कि किसी विशिष्ट अभिवचन की अनुपस्थिति में, उन बिंदुओं को नहीं उठाया जा सकता है जैसा कि तर्क दिया जा रहा है। वह व्यापक रूप से उच्चतम न्यायालय के ***केदार शशिकांत देशपांडे बनाम भोर नगरपालिका परिषद एवं अन्य; (2011) 2 एससीसी 654*** के मामले में अधिनिर्णय पर निर्भरता रखते हैं, जिसमें पैरा 28 पर जोर दिया गया है, जो निम्नानुसार है:

***"28**. क्या अतिरिक्त कलेक्टर को प्रत्यर्थियों द्वारा दायर अयोग्यता याचिका का मनोरंजन और निर्णय करने का अधिकार क्षेत्र था, यह अनिवार्य रूप से तथ्य का प्रश्न है। यह ध्यान देना उचित है कि महाराष्ट्र भूमि राजस्व संहिता, 1966 की धारा 13(3) अतिरिक्त कलेक्टर के पक्ष में वैधानिक प्रत्यायोजन का विचार करती है। क्या महाराष्ट्र भूमि राजस्व संहिता की धारा 13(3) के अनुसार अतिरिक्त कलेक्टर के पक्ष में वैधानिक*

प्रत्यायोजन था, यह तथ्य का प्रश्न है। इसलिए, अपीलकर्ताओं को इस न्यायालय के समक्ष पहली बार यह बिंदु तर्क करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि अतिरिक्त कलेक्टर को प्रत्यर्थियों द्वारा दायर अयोग्यता याचिका का मनोरंजन करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। अन्यथा भी, अभिलेख निश्चित रूप से दर्शाता है कि अपीलकर्ताओं ने अतिरिक्त कलेक्टर के अधिकार क्षेत्र को प्रस्तुत किया था और बिना किसी आरक्षण के अतिरिक्त कलेक्टर के समक्ष कार्यवाही में भाग लिया था। इसलिए, अतिरिक्त कलेक्टर के समक्ष हारने के बाद, वे पलट नहीं सकते और संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत दायर अपीलों में पहली बार अतिरिक्त कलेक्टर के अधिकार क्षेत्र को चुनौती नहीं दे सकते।"

24. उक्त बिंदु पर इस आशय पर जोर दिया गया है कि एक बार जब याचिकाकर्ता ने अधिकार क्षेत्र को प्रस्तुत कर दिया, संशोधन के बाद भी, वह उसी को उत्तेजित नहीं कर सकता था।

25. वह आगे ***एच.एम. सीरवाई द्वारा भारत के संवैधानिक कानून पर टिप्पणी; चौथे संस्करण (खंड 2)*** पर व्यापक रूप से निर्भरता रखते हैं और तर्क देते हैं कि याचिका प्रस्तुत करने में अनुचित आचरण इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि याचिकाकर्ता मैले हाथों से आया है और न्यायालय को उसे राहत से इनकार करना चाहिए।

26. वह **फर्कुहार्सन बनाम मॉर्गन; (1894) 1 क्यू.बी. 552** के मामले में अधिनिर्णय के संदर्भ में उसी टिप्पणी में की गई टिप्पणियों की ओर भी मेरा ध्यान आकर्षित करते हैं, जिसमें अधिकार क्षेत्र की स्पष्ट कमी अर्थात् कार्यवाही के चेहरे पर प्रकट होने वाली अधिकार क्षेत्र की कमी, और अधिकार क्षेत्र की गुप्त कमी अर्थात्, कार्यवाही के दौरान प्रकट होने वाली अधिकार क्षेत्र की कमी के बीच एक अंतर किया गया था।

27 वह आगे तर्क देते हैं कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता डॉ. एल.पी. मिश्रा इस तर्क में गलत हैं कि याचिकाकर्ता के नाम के मुंबई में निर्वाचक सूची में शामिल होने के आधार पर अधिनियम की धारा 19(1)(ग) के सरल पठन पर चुनौती का आधार नहीं हो सकता है जो स्वयं यह विहित करती है कि चुनाव याचिका उस व्यक्ति के खिलाफ दायर की जा सकती है जो चुनाव के लिए उम्मीदवार के रूप में नामांकित होने के लिए योग्य नहीं था। इस प्रकार, वह तर्क देते हैं कि अधिनियम की धारा 12-ई द्वारा बनाई गई रोक को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता का नाम निर्वाचक नामावलियों की सूची में शामिल नहीं किया जा सकता था और इस प्रकार, चुनाव याचिका चलेगी।

28. अधिनियम की धारा 1(2) के आधार पर निवेदन का खंडन करते हुए, यह तर्क दिया गया है कि अधिनियम की धारा 12-ई और धारा 1(2) के संयुक्त पठन पर, यह स्पष्ट है कि यदि नाम किसी अन्य शहर, नगरपालिका क्षेत्र या छावनी क्षेत्र में किसी अन्य निर्वाचक नामावली में शामिल है तो निर्वाचक नामावली में पंजीकरण वर्जित है और इस प्रकार, उनके अनुसार, उत्तर प्रदेश राज्य में चुनाव चाहने वाले व्यक्ति के लिए, उसका नाम पूरे

भारत में कहीं भी किसी निर्वाचक नामावली में नहीं दिखना चाहिए। इस प्रकार, वह तर्क देते हैं कि रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

29. पहले निवेदन पर विचार करते हुए कि क्या संशोधित याचिका का निर्णय उस तरीके से किया जाएगा जिस तरह से इसका निर्णय किया गया है?

30. संशोधन आदेश को चुनौती देने के लिए लिए गए आधार की परवाह किए बिना, तथ्य यह है कि प्रत्यर्थियों ने विशेष रूप से कहा है कि वे प्रति-शपथपत्र दाखिल नहीं करना चाहते हैं और इस प्रकार, रिट याचिका में किए गए अभिकथन अविवादित हैं; यद्यपि दिनांक 08.07.2024 को पारित संशोधन के आदेश को चुनौती देने में विलंब है, विलंब घातक नहीं होगा, क्योंकि पहले किसी भी प्रति-शपथपत्र की अनुपस्थिति में चुनौती का कोई खंडन नहीं है और दूसरे, सभी अंतरिम आदेश अंतिम आदेश अर्थात् दिनांक 21.05.2025 के आदेश में विलीन हो गए हैं, जिसे पूर्व के दिनांक 08.07.2024 के आदेश के साथ चुनौती दी जा रही है।

31. संशोधन आवेदन को अनुमति नहीं दी जा सकती थी क्योंकि संशोधन चुनाव याचिका की तारीख से संबंधित है, जो तथ्य दिनांक 08.07.2024 के आदेश में भी उलटा नहीं था। उक्त संशोधन ने चुनाव याचिका की प्रकृति को भी काफी बदल दिया; प्रारंभिक चुनाव याचिका में ऐसा कोई अभिवचन नहीं होने के कारण, संशोधन की अनुमति नहीं दी जा सकती थी वह भी याचिका दायर करने की सीमाओं के समाप्त होने के बाद।

32. याचिका और संशोधन आवेदन पर आपत्तियों में अनुचित अभिवचन पर आधारित श्री अनुपम मेहरोत्रा का तर्क स्व-आघातक है क्योंकि सभी तर्क प्रति-शपथपत्र दाखिल किए बिना उठाए गए हैं और इस प्रकार, किसी भी अभिवचन की अनुपस्थिति में, उन्हें भी उत्तेजित नहीं किया जा सकता है।

33. आक्षेपित आदेश दिनांक 21.05.2025 आगे प्रक्रियात्मक त्रुटि से पीड़ित है, जहां तक संशोधन के बाद, इस आशय का एक विशिष्ट मुद्दा तैयार किया जाना चाहिए था, जो अस्तित्वहीन है; याचिकाकर्ता के नाम के निर्वाचक नामावली में समावेश के संबंध में विशिष्ट मुद्दे का परीक्षण केवल इस आशय का विशिष्ट मुद्दा तैयार करने के बाद और पक्षकारों को साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देने के बाद ही किया जा सकता था, जो नहीं किया गया है।

34. इस प्रकार, केवल इन दो आधारों पर, वर्तमान याचिका **स्वीकार किए जाने योग्य है और तदनुसार आदेश दिया जाता है**।

35. दिनांक 08.07.2024 और 21.04.2025 के आदेश एतद्द्वारा निरस्त किए जाते हैं।

(2025) 5 ILRA 576

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

रिट सी संख्या 5205 सन् 2025

मेसर्स गणपति क्लासिक **...याचिकाकर्ता**

बनाम

भारत संघ एवं अन्य **....प्रत्यर्थी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: अभिनव जायसवाल, उदित चन्द्र

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता: ए.एस.जी.आई., जे.एन. मौर्य, रवि प्रकाश सिंह, सौम्या चतुर्वेदी

क. सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - याचिकाकर्ता ने प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा बिना सुनवाई का अवसर प्रदान किए अथवा निरीक्षण से सम्बन्धित दस्तावेज़ उपलब्ध कराए, दिनांक 12.08.2024 के वसूली आदेश तथा तत्परिणामी दिनांक 17.12.2024 के वसूली नोटिस को चुनौती दी - ऑडी ऑल्टेरम पार्टेम सिद्धान्त का उल्लंघन - आक्षेपित आदेश निरस्त - प्राधिकारियों को निर्देशित किया गया कि वे सुसंगत दस्तावेज़ उपलब्ध कराएं, सुनवाई का अवसर प्रदान करें तथा आठ सप्ताह के भीतर नया सुविचारित आदेश पारित करें। (पैरा 1 से 8)

रिट याचिका का निस्तारण किया जाता है।

(E-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. ए.के. क्रैपाक बनाम भारत संघ, (1970) AIR (SC) 150।
2. उड़ीसा राज्य बनाम डॉ. बिनापानी देई, (1967) AIR (SC) 1269।
3. स्वदेशी कॉटन मिल्स बनाम भारत संघ, (1981) (SC) 51 Comp Cas 210।

4. मेसर्स धरमपाल सत्यपाल लिमिटेड बनाम उप आयुक्त, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, गुवाहाटी (SC): (2015) 8 SCC 519।

5. मेसर्स खण्डेलवाल ब्रदर्स बनाम संयुक्त मुख्य नियंत्रक, विस्फोटक, आगरा (इलाहाबाद) (2024) 167 ALR 465।

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ
एवं
माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री उदित चन्द्र तथा प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री सौम्या चतुर्वेदी को सुना गया।

2. यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक रिट याचिका है जिसमें रिट याचिकाकर्ता द्वारा निम्नलिखित प्रार्थनाएं की गई हैं: -

"(i). प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा जारी दिनांक 12.08.2024 के आक्षेपित वसूली आदेश तथा दिनांक 17.12.2024 की परिणामी वसूली सूचना को निरस्त करते हुए उत्प्रेषण लेख की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश जारी किया जाए (इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 एवं 2)।

(ii). प्रत्यर्थीगण को अभिलेख मंगाने का निर्देश देते हुए परमादेश रिट जारी की जाए।

(iii). कोई अन्य उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए, जो यह माननीय न्यायालय उचित एवं समुचित समझे।

(iv). याचिकाकर्ता के पक्ष में रिट याचिका का व्यय अधिनिर्णीत किया जाए।"

3. पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट है कि दिनांक 12 अगस्त, 2024 का आक्षेपित आदेश याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना पारित किया गया था। यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि याचिकाकर्ता ने सुनवाई के अवसर की मांग की थी और अन्य बातों के साथ-साथ निरीक्षण प्रतिवेदन तथा विश्लेषण प्रतिवेदन के संबंध में अनेक दस्तावेजों की भी मांग की थी, परन्तु न तो ये दस्तावेज याचिकाकर्ता को उपलब्ध कराए गए और न ही याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किया गया।

अनुवादित

4. अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने शीर्ष न्यायालय के निम्नलिखित मामलों में पारित निर्णयों पर भरोसा किया है: **ए.के. क्रेपाक बनाम भारत संघ, (एस.सी.) 1970 एआईआर सुप्रीम कोर्ट 150; उड़ीसा राज्य बनाम डॉ. बिनापाणि देई, (एस.सी.) : 1967 एआईआर सुप्रीम कोर्ट 1269; स्वदेशी कॉटन मिल्स बनाम भारत संघ (एस.सी.) 1981 (51) कंप कास 210; मेसर्स धर्मपाल सत्यपाल लिमिटेड बनाम केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के उप आयुक्त, गुवाहाटी (एस.सी.) : 2015 (8) एससीसी 519** के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा **मेसर्स खंडेलवाल ब्रदर बनाम विस्फोटकों के संयुक्त मुख्य नियंत्रक, आगरा, (इलाहाबाद) 2024 (167) एएलआर 465** के मामले में पारित निर्णय पर भी भरोसा किया है।

5. कोई भी **मेसर्स खंडेलवाल ब्रदर** (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भरोसा कर सकता है जिसमें समन्वय पीठ ने निम्नलिखित रूप से अभिनिर्धारित किया है:-

"8. हमारे विचार में, राज्य द्वारा तथा/अथवा राज्य की ओर से कार्य करने वाले इसके माध्यमों द्वारा लिए गए अर्ध न्यायिक निर्णय में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत (audi alteram partem) आधारभूत रहे हैं। एक ऐसी स्थिति में जहां प्रभावित पक्षकारों को सुनवाई का अवसर प्रदान नहीं किया जाता है, वहां स्पष्ट रूप से प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होता है तथा उस पक्षकार को पूर्वाग्रह होता है जिसे सुना नहीं गया है। वर्तमान मामले में, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को प्रत्यक्ष रूप से पूर्वाग्रह हुआ है, तथा तदनुसार हम इस मत के हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा की गई कार्यवाही सही नहीं है। माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों तथा इस उच्च न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला ने यह अभिनिर्धारित किया है कि भले ही विधि/नियम में सुनवाई का विशिष्ट अवसर प्रदान किए जाने का प्रावधान नहीं है, जब किसी पक्षकार को प्रभावित करने वाले सिविल परिणाम होते हैं, तो सही दृष्टिकोण यह है कि उसे सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाए।"

6. उसी के आलोक में, दिनांक 12 अगस्त, 2024 के आक्षेपित आदेश को निरस्त एवं अपास्त किया जाता है तथा प्राधिकारियों को यह निर्देश दिया जाता है कि वे उन दस्तावेजों को उपलब्ध कराएं जिन पर वे भरोसा कर रहे हैं, याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करें, तथा तत्पश्चात, दिनांक से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर सकारण आदेश पारित करें।

7. हम यह स्पष्ट करते हैं कि एक बार जब निर्भरित दस्तावेज याचिकाकर्ता को उपलब्ध करा दिए जाते हैं, तो वह व्यक्तिगत सुनवाई की तिथि पर कोई स्थगन नहीं मांगेगा।

8. उपरोक्त निर्देशों के साथ, रिट याचिका का निस्तारण किया जाता है।

(2025) 5 ILRA 578

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 16.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

रिट सी संख्या-7005 वर्ष 2023

अन्य सम्बद्ध वाद

अब्बास अंसारी ... **याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... **प्रतिपक्षीगण**

अनुवादित

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

शोभित मोहन शुक्ला, अभिषेक खरे, मनोज कुमार चौरसिया, मुदित अग्रवाल, मो० असलम खान, नितेश कुमार मिश्रा, वत्सला सिंह, विवेक सिंह

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, ए.एस.जी.आई., दिलिप कुमार पांडे, गौरव मेहरोत्रा, हर्ष वर्धन मेहरोत्रा, मारिया फातिमा, नमित शर्मा, संतोष कुमार त्रिपाठी, शैलेन्द्र सिंह चौहान

दीवानी कानून - उत्तर प्रदेश काश्तकारी अधिनियम, 1939 - प्रयोज्यता - कार्यक्षेत्र - कृषि किरायेदारी और संबंधित मामलों के संबंध में आगरा और अवध क्षेत्रों पर लागू अधिनियम, 1939 - अधिनियम, 1939 को केवल उन क्षेत्रों में निरस्त किया गया जहां उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (ग्रामीण क्षेत्र) और उत्तर प्रदेश शहरी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम 1956 के तहत जमींदारी को समाप्त कर दिया गया था। (शहरी क्षेत्र) – क्षेत्रों में। ग्रामीण या शहरी, जहां जमींदारी को समाप्त नहीं किया गया था (गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) भूमि), अधिनियम, 1939 लागू है - अधिनियम, 1939 में कुछ भी इसके संचालन को केवल इसलिए बाहर नहीं करता है क्योंकि भूमि एक नगर पालिका, नगर क्षेत्र या छावनी के भीतर आती है, और यदि ऐसी भूमि "भूमि" [एस. 3(10)], "होल्डिंग/जोत" [एस.3(7)] की परिभाषाओं का जवाब देती है या इसमें "सुधार" शामिल है [एस. 3(8)], अधिनियम, 1939 इसे नियंत्रित करता है - गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) के खतौनी और खेवाट्स; भूमि उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 और भूमि अभिलेख मैनुअल के तहत तैयार की जाती है, लेकिन किरायेदारी/कार्यकाल के अधिकार अधिनियम, 1939 के तहत निर्धारित किए जाते हैं - प्रस्तुत मामले में, प्लॉट संख्या-93, जियामौ, लखनऊ, हालांकि 1912

से नगरपालिका सीमा के भीतर है, दशकों से गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) के रूप में माना जाता रहा है। 1359 फ़सली के बाद से भूमि, खतौनी तैयार की गई, प्रविष्टियों को कभी चुनौती नहीं दी गई। अपेक्षित दलीलों और सबूतों के अभाव में, रिट क्षेत्राधिकार में न्यायालय यह निष्कर्ष दर्ज नहीं कर सकता है कि विचाराधीन भूमि अधिनियम, 1939 के तहत "भूमि" या "जोत" नहीं रह गई है, केवल इसलिए कि यह प्रासंगिक फ़सली में नगरपालिका सीमा का हिस्सा थी। (प्रस्तर-25 - 53)

बी. उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 - धारा 230 - निरसन - संहिता, 2006 की धारा 230 इसकी पहली अनुसूची में निर्दिष्ट अधिनियमों को निरस्त करती है जिसमें जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, 1950, शहरी जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, 1956 और अधिनियम, 1901 शामिल हैं - धारा 230(2)© के तहत बचत, ऐसे अधिनियमों का निरसन किसी अन्य अधिनियम को प्रभावित नहीं करेगा जिसमें इस तरह के अधिनियमन को लागू किया गया है या संदर्भित किया गया है। अधिनियम, 1901 को अधिनियम, 1939 में लागू और संदर्भित किया गया है, संहिता, 2006 की धारा 230 द्वारा अधिनियम, 1901 का निरसन धारा 230(2)© के तहत बचत को देखते हुए इसकी प्रयोज्यता को प्रभावित नहीं करता है - अधिनियम, 1901 की धारा 32 के तहत बनाए जाने वाले रजिस्टर और अधिनियम के तहत किए जाने वाले सुधार अधिनियम, 1939 के तहत किए जाएंगे, (ख) माननीय उच्चतम न्यायालय ने 1901 के तहत 1901 के तहत जारी की गई है क्योंकि अधिनियम, 1939 - संहिता, 2006 में ऐसा कोई उपबंध नहीं है। भूमि इसलिए अधिनियम, 1939 गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) पर लागू होता है। भूमि अधिनियम, 1901 उक्त अधिनियम, 1939 के गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) पर लागू होने के संदर्भ में भी लागू है। भूमि - संहिता की धारा 2 के अनुसार, अध्याय VIII और IX को छोड़कर, शेष प्रावधान गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) सहित पूरे राज्य पर लागू होते हैं। भूमि - अभिलेखों में त्रुटियों या चूक के सुधार से संबंधित संहिता, 2006 की धारा 38 गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) क्षेत्र पर भी लागू होगी। पुराने अभिलेख और मौजूदा अभिलेख के संबंध में अभिलेख के सुधार के लिए अभ्यास अभी भी संहिता, 2006 की धारा 38 के तहत किया जा सकता है - केवल इसलिए कि 14.08.2020 और 22.03.2021 के आदेश अधिनियम, 1901 को संदर्भित करते हैं, उन्हें अमान्य नहीं करेंगे (प्रस्तर-54 -58)

सी. उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 - धारा 33(2)(बी), 38, 39 और 40-ए - यूपी राजस्व संहिता, 2006 - धारा 38 और 39 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 35 - भूमि अभिलेख के सुधार के लिए कार्यवाही का दायरा - उत्परिवर्तन प्रविष्टियां - चाहे स्वामित्व / हक्के मिल्कियत प्रदान करें, कब्जे का अधिकार दें, या उसे समाप्त करें - अवधारित, राजस्व प्रविष्टियां स्वयं स्वामित्व / हक्के मिल्कियत तय नहीं करती हैं, न ही भूमि के संबंध में किसी व्यक्ति को स्वामित्व / हक्के मिल्कियत प्रदान करना या वंचित करना - अधिनियम, 1901 की धारा 33(2)(बी) या संहिता, 2006 की धारा 38 के तहत सुधार उत्तराधिकार या हस्तांतरण पर आधारित नहीं है और स्पष्ट प्रावधानों द्वारा स्वामित्व / हक्के मिल्कियत से जुड़े विवाद का निर्णय करने के लिए प्राधिकरण को सशक्त नहीं करता है - राजस्व अभिलेख में भूमि का उत्परिवर्तन स्वामित्व / हक्के मिल्कियत नहीं बनाता है या समाप्त नहीं करता है और न ही स्वामित्व / हक्के मिल्कियत पर अनुमानित

मूल्य है - राजस्व अभिलेख स्वामित्व / हक्के मिल्कियत के दस्तावेज नहीं - भले ही प्रविष्टियां हों अधिकारों के अभिलेख में साक्ष्य मूल्य होता है, यह अपने आप में स्वामित्व / हक्के मिल्कियत प्रदान नहीं करेगा और शुद्धता की धारणा खंडन योग्य है - राजस्व अभिलेख में उत्परिवर्तन प्रविष्टि केवल राजकोषीय उद्देश्य के लिए है (प्रस्तर-59 - 62)

(घ) उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 - धारा 39(2) - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 - धारा 38 - निकासी संपत्ति का प्रशासन अधिनियम, 1954 - धारा 12 - *भूमि अभिलेखों के सुधार की स्वत: संज्ञान लेने की शक्ति-* गांव सभा के अधिवक्ता द्वारा आवेदन पर कार्रवाई की अनुरक्षणीयता - आयोजित, उप-एस। अधिनियम, 1901 की धारा 39 की धारा (2) और संहिता, 2006 की धारा 38 में यह स्पष्ट किया गया है कि राजस्व प्राधिकरण के संज्ञान में आने वाली अपेक्षित सूचना पर सुधार की ऐसी शक्ति का प्रयोग स्वत: संज्ञान लिया जा सकता है - उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा प्राप्त सूचना पर्याप्त आधार थी - गांव सभा की अनुपस्थिति प्रासंगिक नहीं है, इसे ठीक किया जा सकता है, पुराने अभिलेखों को शामिल करना, या उन्हें ठीक करना आवश्यक था, विशेष रूप से, जब पुराने गांव नगरपालिका की सीमा के भीतर मौजूद हैं, भले ही गांव सभा न हो; (प्रस्तर-63)

ई.पी. भू-राजस्व अधिनियम, 1901 - धारा 33(2)(ए), (बी), 33(3), 39 और 227(5ए) - यूपी राजस्व संहिता, 2006 - धारा 38(2), (3) - खतौनी में उत्परिवर्तन / प्रविष्टियां - सक्षम प्राधिकारी के आदेश की आवश्यकता - अवधारित: कलेक्टर या तहसीलदार या कानून के आदेश के बिना खतौनी में कोई परिवर्तन दर्ज नहीं किया जा सकता है - यहां तक कि संहिता के तहत, 2006 सक्षम प्राधिकारी के आदेश के बिना खतौनी में कोई दाखिल खारिज या परिवर्तन दर्ज नहीं किया जा सकता है - *यदि खतौनी में नाम दर्ज करने के लिए सक्षम प्राधिकारी का कोई आदेश नहीं है, तो ऐसी कोई भी प्रविष्टि कानूनी आधार के बिना होगी।* (प्रस्तर-64)

उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 - धारा 33 और 39 - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 - धारा 38 और 39 - अधिकारों के अभिलेख में लंबे समय से चली आ रही प्रविष्टियां - उसका सुधार - अवधारित : यहां तक कि लंबे समय से चली आ रही प्रविष्टियां, यदि धोखाधड़ी, जाली, बिना किसी आधार के या सक्षम राजस्व प्राधिकरण के आदेश के बिना, निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना ठीक की जा सकती हैं। निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना या सक्षम प्राधिकारी के आदेश के बिना किए गए, राजस्व अभिलेख में जारी रहने की अवधि के बावजूद ठीक किए जाने के लिए उत्तरदायी हैं - ऐसी त्रुटियों को भी स्वत: संज्ञान लिया जा सकता है यदि प्राधिकरण को इसकी जानकारी आती है - हालांकि, इस तरह के सुधार को अभिलेख किए गए व्यक्ति को नोटिस/सुनवाई के अवसर के बिना नहीं किया जा सकता है, जिसका नाम रद्द करने का प्रस्ताव है - केवल ऐसी प्रविष्टियों को कानूनी रूप से और सही ढंग से दर्ज किया गया है सक्षम प्राधिकारी को वास्तविक कहा जा सकता है और शुद्धता का खंडन योग्य अनुमान लगाया जा सकता है - राजस्व अभिलेख में प्रवेश का कानूनी आधार होना चाहिए और गलत प्रविष्टि के आधार पर किसी भी स्वामित्व / हक्के मिल्कियत का दावा नहीं किया जा सकता है, चाहे वह कितना भी लंबे समय से क्यों न हो - (प्रस्तर-65 - 69)

जी. उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 - धारा 33 और 39 - उत्तर प्रदेश शहरी नियोजन और विकास अधिनियम, 1973 - धारा 15(9) - रिट याचिका की रखरखाव - उत्परिवर्तन आदेश/राजस्व अभिलेख में सुधार - अपील/पुनरीक्षण/वापस बुलाने के वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता - अवधारित, रिट न्यायालय आमतौर पर एक उत्परिवर्तन आदेश या असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर राजस्व अभिलेख और प्रविष्टियों को सही करने वाले आदेश को चुनौती देने वाली रिट याचिका पर विचार नहीं करता है, वह भी उन व्यक्तियों के इशारे पर जो राजस्व अभिलेख में दर्ज थे या पहले से ही दर्ज हैं। (प्रस्तर-70)

उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 - धारा 33, 34 और 39 - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 - धारा 37 और 38 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - राजस्व अभिलेख में प्रविष्टियों का सुधार - दिनांक 14.08.2020 और 22.03.2021 के आदेश - प्रभाव - अनुच्छेद 226 के तहत हस्तक्षेप का दायरा - खतौनी वर्ष 1369 और 1380 फ़सली में कृष्ण कुमार कालरा और अन्य के पक्ष में प्रविष्टियां बिना आधार के और उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा सही ढंग से रद्द कर दी गईं - प्रवेश वर्ष 1362 की बहाली कस्टोडियन के कब्जे में भूमि को खाली संपत्ति के रूप में दिखाना फ़सली केवल अभिलेखों का सुधार था और यह किसी भी व्यक्ति के अधिकार पर निर्णय लेने या अधिकारों के किसी भी व्यक्ति को बेचने के बराबर नहीं था - अधिनियम, 1901 की धारा 33/39 या संहिता, 2006 की धारा 38 के तहत ऐसे आदेशों को स्वामित्व / हक्के मिल्कियत प्रदान करने या बुझाने के रूप में नहीं माना जा सकता है; वे वापस बुलाने, अपील करने या संशोधन करने के लिए उत्तरदायी हैं - याचिकाकर्ताओं के पास वैध बिक्री प्रमाण पत्र या स्वामित्व / मिल्कियत विलेख हैं जो उचित कार्यवाही में अपने अधिकारों का दावा करने के लिए स्वतंत्र हैं, लेकिन दस्तावेजों के स्वामित्व / हक्के मिल्कियत और सत्यता के ऐसे जटिल प्रश्नों को रिट क्षेत्राधिकार में तय नहीं किया जा सकता है - केवल नामों को हटाने से वैध स्वामित्व / हक्के मिल्कियत या कब्जे को प्रभावित नहीं किया जाता है, यदि कोई हो, याचिकाकर्ताओं की संख्या - धारा 34(5) के तहत उन व्यक्तियों को सुनवाई से इनकार करना जिन्होंने उत्तराधिकार/हस्तांतरण की सूचना नहीं दी थी, उचित ठहराया गया था - धोखाधड़ी के आरोपों पर रिट कार्यवाही में निर्णय नहीं लिया जा सकता है - अनुच्छेद 226 के तहत कोई हस्तक्षेप वारंट नहीं किया गया है, लेकिन याचिकाकर्ताओं को वापस बुलाने/अपील/पुनरीक्षण करने या नियमित कार्यवाही शुरू करने की स्वतंत्रता दी गई है - आक्षेपित आदेशों को निर्णायक स्वामित्व / हक्के मिल्कियत के रूप में नहीं माना जाना चाहिए, संपत्ति के कब्जे या निकासी प्रकृति का अधिकार। (प्रस्तर-71 - 108)

I. शहरी नियोजन और विकास अधिनियम, 1973- धारा 15(9) - उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 - धारा 33 और 39 - उत्तर प्रदेशराजस्व संहिता, 2006 - संबंधित प्रावधान - भारत का संविधान, अनुच्छेद 226 - कारण बताओ नोटिस - वैधता - धारित, धारा 15(9) के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए क्षेत्राधिकार संबंधी पूर्वापेक्षाएं हैं कि अनुमति ठोस गलत बयानी या कपटपूर्ण बयान या सूचना द्वारा प्राप्त की गई थी - धोखाधड़ी और गलत बयानी निश्चित कानूनी अर्थ वाले शब्द हैं और आकस्मिक रूप से उपयोग नहीं किए जाने चाहिए - प्रस्तुत मामले में, लखनऊ विकास प्राधिकरण द्वारा जारी दिनांक 18.11.2020 के आक्षेपित नोटिस पूरी तरह से उप-मंडल मजिस्ट्रेट की दिनांक 16.09.2020 की रिपोर्ट और अधिनियम, 1901 की धारा 33/39 के तहत

पारित आदेश दिनांक 14.08.2020 पर आधारित थे - उप मंडल मजिस्ट्रेट के पास मालिकाना हक तय करने या भूमि को खाली संपत्ति के रूप में घोषित करने की कोई शक्ति नहीं है, न ही यह कोई निष्कर्ष था कि याचिकाकर्ताओं द्वारा भरोसा किए गए बिक्री विलेख और बिक्री प्रमाण पत्र जाली या मनगढ़ंत थे - जब तक कि बिक्री प्रमाण पत्र की सत्यता की जांच नहीं की जाती है धारा 15(9) के तहत कोई कार्रवाई शुरू नहीं की जा सकती है - कानून और तथ्य की गलत धारणा पर आधारित नोटिस क्षेत्राधिकार संबंधी पूर्वापेक्षाओं को पूरा नहीं करते हैं और रद्द किए जाने के लिए उत्तरदायी हैं - तदनुसार, दिनांक 18.11.2020 को कारण बताओ नोटिस रद्द कर दिया गया - हालांकि, प्राधिकरण को, यदि ऐसा कारण उत्पन्न होता है, नए सिरे से कानून के अनुसार आगे बढ़ने की स्वतंत्रता सुरक्षित है।

(प्रस्तर-119 - 129)

अनुमति है। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय द्वारा पारित)

1. इन सभी रिट याचिकाओं को एक साथ मिला दिया गया है और एक साथ सुना गया है।

2. रिट सी संख्या-661 वर्ष 2021 (फ़राज़ हुसैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य), रिट सी संख्या-684 वर्ष 2021 (अस्मा हुसैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) और रिट सी संख्या-687 वर्ष 2021 (नदीम-उर-रहमान और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य), उप मंडल मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश दिनांक 14.08.2020, लखनऊ, जिला लखनऊ ने उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 (इसके बाद 'अधिनियम, 1901' के रूप में संदर्भित) की धारा 39 सपठित धारा 33 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए लखनऊ जिले के तहसील सदर गांव जियामऊ में स्थित गाता संख्या-93 से संबंधित 'अधिकारों के अभिलेख' (खतौनी) में प्रविष्टियों को सही किया है। इसके अलावा, उत्तर प्रदेश शहरी नियोजन और विकास अधिनियम, 1973 (इसके बाद 'अधिनियम, 1973' के रूप में संदर्भित) की धारा 15(9) के तहत उपाध्यक्ष, लखनऊ विकास प्राधिकरण द्वारा जारी किए गए नोटिसों को भी चुनौती दी गई है।

3. रिट सी संख्या-7005 वर्ष 2023 (अब्बास अंसारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में, ऊपर उल्लिखित दिनांक 14.08.2020 के आदेश के अलावा, दिनांक 22.03.2021 के एक आदेश को भी चुनौती दी गई है जो दिनांक 14.08.2020 के आदेश में लिए गए निर्णय को दोहराता है। इसके अलावा, इस रिट याचिका के याचिकाकर्ता ने प्रतिपक्षी पक्षों को परमादेश जारी करने के लिए प्रार्थना की है कि वे उनके कब्जे में हस्तक्षेप न करें। इस याचिका में प्रतिपक्षी संख्या-6 उसका भाई है, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसे याचिकाकर्ताओं के समान अधिकार हैं।

तथ्य

4. आगे बढ़ने से पहले, हमें आक्षेपित आदेशों की ओर ले जाने वाली तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर चर्चा करने की आवश्यकता है।

5. यह कहा जाता है कि 17.07.2020 को सचिव, लखनऊ विकास प्राधिकरण ने जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ को कुछ तथ्यों के बारे में लिखा, जो उन्हें गाटा संख्या-93 के संबंध में जानकारी में आया, जिसके बाद, जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ ने मकान संख्या-21/14ए/1, 21/14बी, 21/216ए के मालिकों के बारे में एक रिपोर्ट मांगी। 28.07.2020 को, गांव सभा के पैनल में एक कथित अधिवक्ता ने उपरोक्त गाटा के संबंध में मनगढ़ंत प्रविष्टियों के संबंध में एक शिकायत दर्ज की, जो उनके अनुसार, निकासी संपत्ति थी।
28.07.2020 को सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट ने तहसीलदार से रिपोर्ट मांगी और उसी दिन तहसीलदार ने उनके समक्ष एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया था कि संपत्ति को 1362 फ़सली में खाली संपत्ति के रूप में दर्ज किया गया था, लेकिन, बिना किसी आधार के और सक्षम प्राधिकारी के किसी आदेश के बिना इसे 1369 फ़सली में लक्ष्मी नारायण के नाम पर दर्ज किया गया और इसी तरह सक्षम के किसी भी आधार या आदेश के बिना 1380 के फ़सली में यह कृष्ण कुमार कालरा के नाम पर दर्ज किया गया था, जिन्होंने कई व्यक्तियों को संपत्ति हस्तांतरित की थी, जो अंततः दर्ज किए जाने के लिए आए थे, इसलिए, प्रविष्टियों को सुधार की आवश्यकता है, क्योंकि जाहिर है, वे बिना किसी आधार के थे और 'फ़र्ज़ी' थे।
06.08.2020 को उप संभागीय मजिस्ट्रेट ने तहसीलदार की रिपोर्ट के आधार पर मामला दर्ज करने और कार्यवाही में अगली तारीख 10.08.2020 तय करते हुए संबंधित को नोटिस जारी करने का निर्देश दिया। ये कार्यवाही स्पष्ट रूप से अधिनियम, 1901 की धारा 39 सपठित धारा 33 के तहत उनकी शक्तियों का प्रयोग करते हुए दर्ज की गई थी।
10.08.2020 को, समाचार पत्रों में अगली तारीख 13.08.2020 तय करते हुए नोटिस के प्रकाशन के लिए एक आदेश पारित किया गया था और 14.08.2020 को कार्यवाही में आदेश सुरक्षित रखा गया था और उसी दिन दिनांक 14.08.2020 का आक्षेपित आदेश पारित किया गया था। यह आदेश गांव सभा के कथित अधिवक्ता को सुनने के बाद पारित किया गया था, कोई और नहीं।

6. आक्षेपित आदेश दिनांक 14.08.2020 के माध्यम से उपजिलाधिकारी, लखनऊ, जनपद लखनऊ द्वारा ग्राम जियामऊ, तहसील सदर, जनपद लखनऊ स्थित गाटा/प्लॉट संख्या 93 (5 बीघा, 3 बिस्वा, 10 बिस्वांसी) से संबंधित अभिलेखों में यह कहते हुए संशोधन किया गया है कि उक्त गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) भूमि परित्यक्त संपत्ति (इवैक्यूई प्रॉपर्टी) थी, जिसका उल्लेख खतौनी वर्ष 1362 फसली (1955) में अंकित है। इस संपत्ति का उल्लेख क्रम संख्या में किया गया था। निकासी संपत्तियों से संबंधित रजिस्टर संख्या-10 का आर.एच.जेड.-1/1 जिसे राजस्व बोर्ड, उत्तर प्रदेश द्वारा एक निकासी संपत्ति के रूप में बनाए रखा जाता है। इसलिए, 1369 में फ़सली में लक्ष्मी नारायण, 1380 में कृष्ण कुमार कालरा और 9 अन्य व्यक्तियों, जिन्हें कथित रूप से इसे स्थानांतरित कर दिया गया था, अहसान एहतेसम, असलम एहतेसम, सैयद अता करीम, कृष्ण कुमार कालरा, श्रीमती नसीमा कमल, श्रीमती मल्का बेगम, श्रीमती पस्मीन सोम सिद्दीकी, श्रीमती वजीदा

बेगम और हिलाल अहमद के पक्ष में बाद में प्रविष्टियां बिना किसी आधार के/सक्षम प्राधिकारी के किसी आदेश के बिना, अवैध और 'फ़र्ज़ी' थे।

7. तदनुसार, कृष्ण कुमार कालरा के नाम के अलावा, उक्त भूखंड/गाटा के संबंध में दर्ज किए गए सभी 9 (नौ) व्यक्तियों के नाम भी हटा दिए गए हैं और प्रविष्टि वर्ष 1362 फ़सली (1955) को बहाल कर दिया गया है, जिसमें मो. वसीम को इस समर्थन के साथ दर्ज किया गया था कि संपत्ति कस्टोडियन इवैक्यूई संपत्ति के कब्जे में थी।

8. अब, इस संबंध में याचिकाकर्ताओं का मामला यह है कि भूमि का उपरोक्त भूखंड, जिस पर डालीबाग, लखनऊ में एक बंगला संख्या-7 मौजूद था, बैरिस्टर वसीम के स्वामित्व में था जो पाकिस्तान चले गए थे। दिनांक 31.07.1950 को निकासी संपत्ति अधिनियम, 1950 (इसके बाद 'अधिनियम, 1950' के रूप में संदर्भित) की धारा 7 के तहत एक अधिसूचना द्वारा उक्त संपत्ति को 'निर्वासित संपत्ति' घोषित किया गया था। धारा 7 के अंतर्गत उपर्युक्त घोषणा के परिणामस्वरूप उक्त संपत्ति अभिरक्षक (कस्टोडियन) में निहित हो गई, इसी कारण खतौनी वर्ष 1362 फसली (1955) में परित्यक्त संपत्तियों के अभिरक्षक (कस्टोडियन) के कब्जे के संबंध में अभिलेखीय टिप्पणी/प्रविष्टि अंकित की गई थी।

9. 1947 में हुए विभाजन के परिणामस्वरूप भारत और पाकिस्तान के बीच क्रॉस-माइग्रेशन हुआ, इसलिए, विस्थापित व्यक्तियों के पुनर्वास के लिए एक और अधिनियम, अर्थात् विस्थापित व्यक्ति (मुआवजा और पुनर्वास) अधिनियम, 1954 (इसके बाद 'अधिनियम, 1954' के रूप में संदर्भित) ऐसे व्यक्तियों को मुआवजे और पुनर्वास अनुदान के भुगतान और उससे जुड़े मामलों के लिए प्रख्यापित किया गया था।

10. याचिकाकर्ताओं के अनुसार, उपरोक्त गाटा संख्या-93 को केंद्र सरकार द्वारा अधिनियम, 1954 की धारा 12 के तहत इस संबंध में दिनांक 26.11.1957 को एक अधिसूचना प्रकाशित करके ऐसे व्यक्तियों को मुआवजे के भुगतान सहित विस्थापित व्यक्तियों की राहत और पुनर्वास से जुड़े उद्देश्य के लिए अधिग्रहित किया गया था, जैसा कि दावा किया गया है, बिक्री-प्रमाण पत्र और कुछ निर्णयों और डिक्री में उल्लेख किया गया है जो अभिलेख पर हैं।

11. उनके अनुसार, अधिनियम, 1954 की धारा 12(1) के तहत 26.11.1957 को ऐसी अधिसूचना के प्रकाशन पर, निर्वासित संपत्ति में किसी भी निर्वासित व्यक्ति का अधिकार, स्वामित्व / हक्के मिल्कियत और हित समाप्त हो गया और निकासी संपत्ति पूरी तरह से केंद्र सरकार में निहित हो गई, जो सभी ऋणों से मुक्त हो गई। यह एक खाली संपत्ति नहीं रह गई, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली के उपराज्यपाल और अन्य बनाम मतवाल चंद (मृत) के मामले में कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से अवधारित किया है।

12. यह भी उनका मामला है कि उक्त भूमि अधिनियम, 1954 की धारा 14 के तहत निर्दिष्ट मुआवजा पूल का हिस्सा बन गई। विस्थापित व्यक्तियों के पुनर्वास और मुआवजे के बाद, चूंकि भूमि का उक्त भूखंड अभी भी अप्रयुक्त था, इसलिए, इसे नीलामी के लिए रखा गया और कृष्ण कुमार कालरा, हिलाल अहमद, अता करीम, राज कुमारी चोपड़ा आदि जैसे व्यक्तियों के साथ निपटाया गया, हालांकि वे विस्थापित व्यक्ति नहीं थे और अधिनियम 1954 की धारा 20 के तहत ऐसा करने की अनुमति थी।

13. उनके अनुसार, यह इन परिस्थितियों में है कि उपरोक्त प्लॉट 93, उसके कुछ हिस्सों की नीलामी की गई और विभिन्न व्यक्तियों को बेच दी गई और उन्हें बिक्री-प्रमाण पत्र जारी किए गए। इन नीलामी खरीदारों के माध्यम से, याचिकाकर्ताओं ने प्लॉट संख्या-93 के कुछ हिस्सों के संबंध में स्वामित्व और कब्जा हासिल करने का दावा किया है।

14. इसी संदर्भ में, हम यह बता सकते हैं कि रिट सी संख्या-684 वर्ष 2021 (अस्मा हुसैन) के याचिकाकर्ता ने एक हिलाल अहमद के माध्यम से दावा किया है, जिसने उपरोक्त नीलामी बिक्री में उक्त भूमि का हिस्सा खरीदा था, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, 05.07.1973 को अवधारित किया गया था, जो कि बिक्री-प्रमाण पत्र जारी करने की तारीख भी है, हालांकि इसे बाद में 25.06.1979 को पंजीकृत किया गया है। उक्त याचिकाकर्ता का दावा है कि उसने 4900 वर्ग फुट जमीन खरीदी है जिसे हिलाल अहमद के पक्ष में तय किया गया था। अस्मा हुसैन के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था और 24.06.1983 को हिलाल अहमद द्वारा पंजीकृत किया गया था। वह कहती हैं कि इसके बाद उन्होंने अधिनियम, 1973 की धारा 15 के तहत मानचित्र की अनुमति/मंजूरी के लिए आवेदन किया, जिसे 22.07.1996 को मंजूरी दी गई थी। इसके बाद उसने उस पर एक घर बनाया और उसमें रह रही है। हिलाल अहमद एक ऐसा व्यक्ति है जिसका नाम दिनांक 14.08.2020 के आदेश में उल्लेख किया गया है और वास्तव में उसका नाम गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) से हटा दिया गया है। खतौनी और संपत्ति के एक निकासी संपत्ति होने के संबंध में पहले की प्रविष्टि को बहाल कर दिया गया है, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है। तथ्य यह है कि हिलाल अहमद को गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) में दर्ज किया गया था। खतौनी विवाद में नहीं है, लेकिन हमें यह नहीं बताया गया है कि उक्त हिलाल अहमद को पहली बार गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) खतौनी में कब और किस आधार पर और किस श्रेणी के तहत दर्ज किया गया। वह यह भी दावा करती है कि वह हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर के रूप में अधिकारों के अभिलेख में दर्ज है और खतौनी वर्ष 1402 फ़सली (1996) की फोटोकॉपी संलग्न की है।

15. रिट सी संख्या-661 वर्ष 2021 - फ़राज़ हुसैन ने राजकुमारी चोपड़ा के माध्यम से विचाराधीन भूमि/भवन में स्वामित्व / हक्के मिल्कियत/अधिकारों का दावा किया है, जिसके पक्ष में उपरोक्त संपत्ति की नीलामी इसी तरह 06.09.1974 को की गई थी। बिक्री-प्रमाण पत्र दिनांक 06.09.1976 है और इसे 16.11.1976 को पंजीकृत किया गया था। उक्त राज कुमारी चोपड़ा ने 09.06.1980 को 4000 वर्ग फुट भूमि के भूखंड 10 सी (II) के संबंध में फ़राज़ हुसैन (याचिकाकर्ता) और इरफान हुसैन (चाचा) के पिता अल्ताफ हुसैन के पक्ष में एक विक्रय

विलेख निष्पादित किया। कहा जाता है कि 05.02.2004 को इरफान हुसैन ने अपने हिस्से की 600 वर्ग फुट जमीन अपने भाई अल्ताफ हुसैन यानी याचिकाकर्ता के पिता को बेच दी थी। इससे पहले 20.12.2003 को यह कहा जाता है कि भवन के निर्माण के लिए एक नक्शा स्वीकृत किया गया था और अंततः याचिकाकर्ता के पिता (फ़राज़ हुसैन) ने प्लॉट संख्या-10 सी पर एक बहुमंजिला अपार्टमेंट का निर्माण किया और एक फ्लैट में याचिकाकर्ता रहता है। उनकी रिट याचिका के प्रस्तर-18 में उक्त अपार्टमेंट के अन्य फ्लैट मालिकों के बारे में भी उल्लेख किया गया है।

16. अब, फ़राज़ हुसैन के हित में मूल पूर्ववर्ती राज कुमारी चोपड़ा को कभी भी राजस्व अभिलेख में दर्ज नहीं किया गया था। उनके नाम का उल्लेख आक्षेपित आदेश में भी नहीं है और न ही इस रिट याचिका में दायर जवाबी हलफनामे के प्रस्तर-20 में निहित चार्ट में है, जिसमें उपरोक्त प्लॉट संख्या-93 के संबंध में लगभग 9 दर्ज व्यक्तियों और उससे नक्काशीदार उप-भूखंडों में उल्लेख किया गया है, जिनका नाम काट दिया गया है। इस मामले को देखते हुए, फ़राज़ हुसैन का मामला अन्य मामलों से थोड़ा अलग है क्योंकि 14.08.2020 के आदेश में राजकुमारी चोपड़ा के नाम का भी उल्लेख नहीं है। इसलिए उन्होंने उक्त आदेश को चुनौती क्यों दी है? फ़राज़ हुसैन ने 14.08.2020 के आदेश के आधार पर नक्शे को रद्द करने के लिए दिनांक 18.11.2020 को नोटिस जारी करने के कारण पूर्वाग्रह का दावा किया है, यही कारण है कि उन्होंने उक्त आदेश को भी चुनौती दी है और साथ ही, उनके अनुसार, उक्त आदेश भूमि के प्रति उनके स्वामित्व को प्रभावित करता है/पूर्वाग्रह करता है।

17. रिट सी संख्या-687 वर्ष 2021 (नदीम-उर-रहमान और नौशाद आलम) के याचिकाकर्ता अता करीम के माध्यम से दावा करते हैं, हालांकि सीधे तौर पर नहीं बल्कि अता करीम के हित में उत्तराधिकारियों की एक पंक्ति के माध्यम से। ऐसा कहा जाता है कि 05.07.1973 को प्लॉट संख्या-93 का हिस्सा अता करीम के पक्ष में नीलाम किया गया था। उनके पक्ष में बिक्री प्रमाण पत्र दिनांक 05.07.1973 है लेकिन यह 25.06.1979 को पंजीकृत किया गया था। अप्रैल 1984 में अता करीम की मृत्यु हो गई, उनके पीछे दो बेटे और दो बेटियां, एस.एस.अहमद रिज़वी, मसूद अहमद रिज़वी (बेटे), रेहाना मरकाडा और रईस फातिमा (बेटियां) थीं। रईस फातिमा ने अपने भतीजे इरफान अहमद को अपना हिस्सा गिफ्ट किया। एसएस अहमद रिज़वी और इरफान अहमद ने 4900 वर्ग फुट भूमि के संबंध में याचिकाकर्ताओं के पक्ष में एक बिक्री-विलेख निष्पादित किया। याचिकाकर्ताओं ने 29.06.2004 को एक भवन के निर्माण के लिए मानचित्र की मंजूरी के लिए आवेदन किया, जिसे अनुमति दी गई और उसके बाद उन्होंने एक बहुमंजिला इमारत का निर्माण किया, जिसमें याचिकाकर्ता भी रहते हैं। अन्य फ्लैट मालिकों के नामों का उल्लेख उनकी रिट याचिका के प्रस्तर-17 में किया गया है। अता करीम उन व्यक्तियों में से एक हैं, जिनका नाम दिनांक 14.08.2020 के आदेश में उल्लेख किया गया है और जिनका नाम खतौनी से हटा दिया गया है, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है। यहां फिर से हमें उस वर्ष/फ़सली के बारे में नहीं बताया गया है जिसमें अता करीम पहली बार गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) में दर्ज किया गया था। खतौनी और उसका आधार और न ही वह श्रेणी जिसके तहत उसे शुरू में दर्ज किया गया हो सकता है।

18. रिट सी संख्या-7005 वर्ष 2003 - अब्बास अंसारी के याचिकाकर्ता के संबंध में, वह कृष्ण कुमार कालरा के माध्यम से दावा करता है, जिसके पक्ष में, एक बिक्री-प्रमाण पत्र कथित तौर पर 30.12.1969 को जारी किया गया था और 07.02.1970 को पंजीकृत किया गया था, हालांकि, सीधे नहीं, बल्कि, ब्याज में उनके उत्तराधिकारियों की एक लंबी श्रृंखला के माध्यम से; उक्त बिक्री-प्रमाण पत्र में कृष्ण कुमार कालरा द्वारा खरीदी गई भूमि के क्षेत्र का उल्लेख नहीं है, हालांकि इसमें उनके पक्ष में नीलाम की गई भूमि की सीमाओं का उल्लेख है। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, श्री कालरा को 1380 फ़सली (1973) में श्रेणी 5(क) के तहत गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) खतौनी में दर्ज किया गया था, यानी बिना स्वामित्व / हक्के मिल्कियत के अवैध कब्जा। ऐसा कहा जाता है कि कृष्ण कुमार कालरा ने अधिनियम, 1954 के तहत अवधारित नीलामी-बिक्री में प्लॉट संख्या-93 एम (0.713 हेक्टेयर) के तीन बीघा खरीदने के बाद, उसके विभिन्न हिस्सों को अलग-अलग व्यक्तियों को बेच दिया और 19.05.1995 को लगभग 11992.61 वर्ग फुट मोहम्मद अहमद की पत्नी शकीला बेगम को बेच दिया गया। उक्त शकीला बेगम ने 05.02.2001 को डॉ. शाहिद हुसैन के पक्ष में उपरोक्त भूखंड के संबंध में एक पंजीकृत विक्रय विलेख निष्पादित किया। डॉ. शाहिद हुसैन ने याचिकाकर्ता के दादा और प्रतिपक्षी संख्या-6 मोहम्मद शुभन उल्लाह अंसारी के पक्ष में 09.03.2004 को एक पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित किया। मोहम्मद शुभान उल्लान अंसारी ने अपनी पत्नी राबिया बेगम के पक्ष में एक मौखिक उपहार (हिबा) दिया। यह कहा जाता है कि राबिया बेगम ने याचिकाकर्ता और प्रतिपक्षी संख्या-6 के पक्ष में एक पंजीकृत वसीयत निष्पादित की, जिसमें उक्त संपत्ति उसके पोते को वसीयत की गई। न तो शकीला बेगम और न ही मोहम्मद शुभानुल्लाह अंसारी और राबिया बेगम सहित किसी अन्य उत्तराधिकारी को राजस्व अभिलेख में दर्ज किया गया था।

19. अब्बास अंसारी के हित में पूर्ववर्ती द्वारा खरीदी गई भूमि पर मौजूद भवन/फ्लैट, जो कथित रूप से राबिया बेगम का था, को लखनऊ विकास प्राधिकरण द्वारा पारित दिनांक 11.08.2020 के एक आदेश के अनुसरण में उनकी रिट याचिका दायर करने से पहले ही 27.08.2020 को ध्वस्त कर दिया गया था, लेकिन उनकी याचिका में इस कार्रवाई के संबंध में कोई राहत नहीं मांगी गई है।हालांकि, इमारत के विध्वंस के संबंध में याचिका के प्रस्तर-42 में एक सरसरी संदर्भ दिया गया है। हम इस संबंध में पहले ही दिनांक 15/16.01.2025 और 04.02.2025 के आदेश पारित कर चुके हैं।

20. दिनांक 14.08.2020 का आदेश पारित होने के बाद, उप मंडल मजिस्ट्रेट, लखनऊ ने तुरंत सचिव, लखनऊ विकास प्राधिकरण के साथ-साथ जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ को भी अपने आदेश की सूचना दी, जिसके कारण अधिनियम, 1973 की धारा 15(9) के तहत तीन रिट याचिकाओं यानी रिट सी संख्या-661 वर्ष 2021 के याचिकाकर्ताओं को नोटिस जारी किए गए।रिट सी संख्या-684 वर्ष 2021 और रिट सी संख्या-687 वर्ष 2021, यह बताते हुए कि उपरोक्त भूमि पर मौजूद भवनों के संबंध में उनका नक्शा, जिसे अधिनियम, 1973 की धारा 15(1) के तहत स्वीकृत/अनुमति दी गई थी, को रद्द क्यों नहीं किया जाए क्योंकि उन्होंने मानचित्र की मंजूरी के लिए आवेदन करते समय गलत बयान दिया था और प्रश्नगत भूमि के अपने स्वामित्व / हक्के मिल्कियत के बारे में तथ्यों को गलत तरीके से प्रस्तुत किया था। उपरोक्त सभी तीन रिट याचिकाओं में उक्त नोटिस

18.11.2020 को जारी किए गए थे। हमें रिट सी संख्या-7005 वर्ष 2023 के याचिकाकर्ता - अब्बास अंसारी या उसके भाई को ऐसा कोई नोटिस जारी करने की जानकारी नहीं है।

<u>विश्लेषण और निष्कर्ष</u>

21. हमने श्री एम.ए. खान, वरिष्ठ अधिवक्ता, मो. रिट में याचिकाकर्ता के लिए असलम खान - सी नं. - 7005 वर्ष 2023, श्री जे.एन. माथुर, अन्य याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं के लिए श्री राजेश चंद्र मिश्रा, श्री मुदित अग्रवाल और सुश्री ऐश्वर्या माथुर द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री शशि प्रकाश सिंह, भारत के अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल श्री दीपांशु दास, भारत संघ के अधिवक्ता श्री अजय कुमार मिश्रा, श्री कुलदीप पति त्रिपाठी द्वारा सहायता प्राप्त महाधिवक्ता, अतिरिक्त महाधिवक्ता, श्री सुधांशु श्रीवास्तव, श्री ईशान मेहता, उत्तर प्रदेश राज्य के अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री शैलेंद्र कुमार सिंह, मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री तुषार वर्मा, अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री विवेक कुमार शुक्ला, उत्तर प्रदेश राज्य के अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री गौरव मेहरोत्रा, रिट-सी संख्या-7005 वर्ष 2023 में प्रतिपक्षी संख्या-6 के अधिवक्ता, लखनऊ विकास प्राधिकरण के अधिवक्ता श्री रत्नेश चंद्र और नगर निगम के अधिवक्ता श्री एस.एस.चौहान भी उपस्थित थे।

22. हमारे विचार के लिए उत्पन्न हुए विभिन्न मुद्दों पर चर्चा और निर्णय लेते समय प्रतिद्वंद्वी दलों के विवाद पर विचार किया जाएगा।

23. भूमि वाली भूमि संख्या-93, जो इन रिट याचिकाओं की विषय वस्तु है, आक्षेपित आदेश के अनुसार, एक 'गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी)' भूमि है। जिस खतौनी को ठीक किया गया है, उसे गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) भी कहा जाता है।

24. गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) का अर्थ समझने के लिए भूमि या गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) खतौनी में हमें यह बताने की आवश्यकता है कि आगरा और अवध क्षेत्र में राजस्व संग्रह के लिए एक जमींदारी प्रणाली प्रचलित थी, जिसे संयुक्त प्रांत काश्तकारी अधिनियम, 1939 (इसके बाद अधिनियम, 1939 के रूप में संदर्भित) नामक एक अधिनियम द्वारा शासित किया गया था। यह अधिनियम, 1939 उपरोक्त क्षेत्र में कृषि किरायेदारों और उससे जुड़े मामलों से संबंधित है। उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (इसके बाद 'जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, 1950' के रूप में संदर्भित) द्वारा कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में जमींदारी को समाप्त कर दिया गया। इसी तरह, कुछ शहरी क्षेत्रों में जमींदारी को शहरी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1956 (इसके बाद 'शहरी जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, 1956' के रूप में संदर्भित) द्वारा समाप्त कर दिया गया था। इन दोनों अधिनियमों ने अधिनियम, 1939 को निरस्त कर दिया, लेकिन केवल उन क्षेत्रों के संबंध में जहां उन्हें लागू किया गया था। ग्रामीण या शहरी क्षेत्र, जिनमें जमींदारी को समाप्त नहीं किया गया था, गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) के रूप में जाना जाता है। (खतौनी) के संबंध में भूमि और खतौनी के रूप में गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) के रूप में जाना जाता है।

असंवीक्षित

ये भूमि अधिनियम, 1939 द्वारा शासित हैं। इस प्रकार, जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, 1950 और शहरी जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, 1956 के प्रख्यापन के बाद भी, अधिनियम, 1939 गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) पर लागू होता रहा। भूमि। जिस भूमि के संबंध में ज़मीनीदारी को जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, 1950 या शहरी जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, 1956 द्वारा समाप्त कर दिया गया था, उसे जेड.ए. भूमि के रूप में जाना जाता है और वे इन अधिनियमों द्वारा शासित होते हैं।

<u>अधिनियम 1939 की प्रयोज्यता, अधिनियम 1901 और सहायक मुद्दे</u>

25. दिनांक 14.08.2020 और 22.03.2021 के आदेशों को चुनौती देने के संदर्भ में, बहस के दौरान जो मुद्दे उठे, उनमें से एक यह था कि क्या अधिनियम, 1939 और अधिनियम, 1901 विचाराधीन भूमि यानी प्लॉट संख्या-93 (गैर-जेड.ए. भूमि) पर लागू होंगे, जो एक शहरी क्षेत्र में आती है यानी एक नगर पालिका या नगर निगम में जिस पर भवन मौजूद हैं और क्या खतौनी तैयार करने की आवश्यकता है इसके संबंध में और क्या याचिकाकर्ताओं को उसमें अपना नाम बदलने की कोई आवश्यकता थी।

26. याचिकाकर्ताओं की ओर से श्री माथुर द्वारा यह तर्क दिया गया था कि प्लॉट संख्या-93 पर इमारतें मौजूद हैं, जिनमें से एक को ध्वस्त कर दिया गया है, इसलिए, विचाराधीन भूमि अधिनियम, 1939 की धारा 3(10) के लिए संदर्भित भूमि नहीं है और न ही उक्त अधिनियम की धारा 3(7) के तहत 'होल्डिंग/जोत' है, इसके परिणामस्वरूप इसके संबंध में कोई खेवट या खतौनी तैयार करने की आवश्यकता नहीं थी/नहीं है, इस प्रकार, आक्षेपित आदेश द्वारा खतौनी तैयार करने और अभिलेखों में सुधार करने की पूरी प्रक्रिया गैर-अनुमानित है। अधिनियम, 1959 के तहत नगर निगम को कर देय हैं जहां उनके ग्राहक दर्ज किए गए थे और वास्तव में याचिकाकर्ताओं को राजस्व अभिलेख में अपना नाम बदलने की कोई आवश्यकता नहीं थी, जिसे आक्षेपित आदेशों द्वारा अनावश्यक रूप से ठीक किया गया है।

27. अब्बास अंसारी के मामले में एक सरसरी संदर्भ के अलावा किसी भी रिट याचिका में इन दलीलों को विशेष रूप से नहीं लिया गया है कि भूमि नगर निगम, लखनऊ का हिस्सा है, ऐसे मामलों में अकेले इसका अधिकार क्षेत्र था।

28. हम यह बता सकते हैं कि याचिकाकर्ताओं में से एक अस्मा हुसैन ने दावा किया है कि उसने खतौनी में अपना नाम दर्ज करवाया है और 1462 फ़सली (1955) से संबंधित उसकी फोटोकॉपी संलग्न की है और यह विवाद में नहीं है कि हिलाल अहमद, अता करीम और कृष्ण कुमार कालरा ने अन्य याचिकाकर्ताओं के हित में कथित पूर्ववर्तियों को गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) में दर्ज किया गया था। खतौनी विचाराधीन भूमि से संबंधित है। ये तथ्य स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ताओं के दावे को झुठलाते हैं जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

29. इसके अलावा, गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) के लिए कोई चुनौती नहीं है। खतौनी जो 1359 फ़सली से 1472 फ़सली तक इसी भूमि के संबंध में तैयार की गई है और जिसमें अधिकांश याचिकाकर्ताओं के हित में पूर्ववर्ती दर्ज किए गए थे, इसलिए याचिकाकर्ताओं में से एक अस्मा हुसैन भी थी, जैसा कि उनके द्वारा दावा किया गया था।

30. किसी भी रिट याचिका में कोई दलील नहीं दी गई है कि विचाराधीन भूमि के संबंध में जमींदारी को समाप्त नहीं किया गया था।

31. उक्त अधिनियम, 1939 की धारा 3(10)' **भूमि'** को परिभाषित करती हैजिसका अर्थ उस भूमि से है जो फसल उगाने के लिए या उपवन-भूमि या चारागाह के रूप में दी जाती है या अवधारित की जाती है। इसमें सिंघाड़ा या अन्य उपज उगाने के उद्देश्य से उपयोग की जाने वाली पानी से ढकी भूमि शामिल है, लेकिन इसमें इमारतों के अलावा इमारतों या उससे जुड़े अन्य लोगों द्वारा कब्जा की जा रही भूमि शामिल नहीं है। **'सुधार'** को धारा 3(8) में परिभाषित किया गया है जो निम्नानुसार है:

"(8) "सुधार" का अर्थ है किरायेदार की होल्डिंग/जोत के संदर्भ में:

(i) किरायेदार द्वारा अपने स्वयं के व्यवसाय के लिए होल्डिंग/जोत पर बनाया गया एक आवास-घर या एक मवेशी शेड या एक भंडार-घर या कृषि उद्देश्यों के लिए कोई अन्य निर्माण जो उसके द्वारा अपनी जोत पर बनाया या स्थापित किया गया है;

(ii) कोई भी कार्य जो होल्डिंग/जोत के मूल्य में ठोस रूप से जोड़ता है और उस उद्देश्य के अनुरूप है, जिसके लिए इसे दिया गया था, और जो, यदि होल्डिंग/जोत पर निष्पादित नहीं किया जाता है, तो या तो सीधे इसके लाभ के लिए निष्पादित किया जाता है या निष्पादन के बाद सीधे इसके लिए फायदेमंद होता है; और, इस खंड के पूर्वगामी प्रावधानों के अधीन, इसमें शामिल हैं -

(क) कृषि प्रयोजनों के लिए जल की आपूर्ति अथवा वितरण के लिए कुओं, जल चैनलों और अन्य कार्यों का ब्यौरा क्या है;
(ख) भूमि के जल निकासी के लिए या बाढ़ से भूमि की सुरक्षा के लिए, या जल से कटाव या अन्य क्षति से कार्य करना;
(ग) भूमि को पुनः प्राप्त करना, समाशोधन करना, घेरना या समतल करना;
(घ) होल्डिंग/जोत के प्रस्तुत आसपास के क्षेत्र में गांव की साइट के अलावा अन्य रूप से, सुविधाजनक या लाभदायक उपयोग या जोत के कब्जे के लिए आवश्यक भवनों का निर्माण;
(ङ) कृषि प्रयोजनों के लिए जल के भंडारण के लिए तालाबों या अन्य कार्यों का निर्माण क्या है;

(च) पूर्वगामी कार्यों में से किसी का नवीनीकरण या पुनर्निर्माण, या उसमें ऐसे परिवर्तन, या उसमें परिवर्धन, जो केवल मरम्मत की प्रकृति के नहीं हैं: बशर्ते कि ऐसे जल चैनल, तटबंध, बाड़े, अस्थायी कुएं, या अन्य कार्य खेती के सामान्य प्रविधि में किरायेदारों द्वारा किए जाते हैं, उन्हें सुधार नहीं माना जाएगा।

32. इमारतों को छोड़कर जो 'सुधार' हैं, अन्य भवनों को धारा 3(10) के तहत 'भूमि' की परिभाषा में शामिल नहीं किया गया है। धारा 3(8) में यथा परिभाषित सुधार भूमि की ऐसी परिभाषा में शामिल हैं।

33. अधिनियम, 1939 की धारा 3(7) 'होल्डिंग/जोत' को एक पट्टे, सगाई या अनुदान के तहत अवधारित भूमि के पार्सल या पार्सल के रूप में परिभाषित करती है, या इस तरह के पट्टे की अनुपस्थिति में, एक कार्यकाल के तहत सगाई या अनुदान और एक ठेकेदार के मामले में ठेका क्षेत्र शामिल है।

34. धारा 21, किरायेदारों की सात श्रेणियों का उल्लेख करती है। धारा 22 से 31 में बताया गया है कि उसमें निर्दिष्ट किरायेदारों का क्या अर्थ है।

35. क्या प्रश्नगत भूमि जिसमें भूखंड संख्या-93 अधिनियम, 1939 की धारा 3(10) के तहत संदर्भित 'भूमि' थी या वर्ष 1369 फ़सली (1962) और 1380 फ़सली (1973) में धारा 3(7) के तहत एक होल्डिंग/जोत थी या नहीं, जैसा कि, अनिवार्य रूप से, इन फसलों में है कि प्रतिपक्षियों के अनुसार लक्ष्मी नारायण और कृष्ण कुमार कालरा से संबंधित अभिलेख में त्रुटि होने का आरोप लगाया गया है, यह विशुद्ध रूप से कानूनी प्रश्न नहीं है। इसमें भूमि की प्रकृति और 'उपयोग' के बारे में एक तथ्यात्मक जांच शामिल होगी, जिसके लिए इसे प्रासंगिक वर्षों में रखा जा रहा था और इसमें उन और पहले के वर्षों से संबंधित प्रासंगिक अभिलेखों की जांच शामिल हो सकती है।

36. भूमि की प्रकृति या उपयोग के बारे में ऐसे मुद्दे जिसके लिए इसे 1359 फ़सली (1952), 1362 फ़सली (1955) के साथ-साथ 1369 (1962) और 1380 फ़सली (1973) में रखा जा रहा था, जब लक्ष्मी नारायण और कृष्ण कुमार कालरा को अधिनियम की धारा 32 सपठित भूमि अभिलेख मैनुअल के प्रस्तर-124 ए की श्रेणी 5(क) के तहत पहली बार दर्ज किया गया था, 1901 या उसके बाद, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत संक्षिप्त कार्यवाही में अधिनिर्णय नहीं किया जा सकता है। बाद के वर्षों की प्रविष्टियों में सुधार या फ़सली (1472 फ़सली तक) केवल गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) में सुधार के परिणामस्वरूप है। खतौनी वर्ष 1369 फ़सली और 1380 फ़सली और प्रवेश वर्ष 1362 फ़सली की बहाली जिसमें यह टिप्पणी थी कि संपत्ति कस्टोडियन निकासी संपत्तियों के कब्जे में थी।

37. न तो याचिकाकर्ताओं और न ही प्रतिपक्षी पक्षों ने फ़सली का खुलासा किया है जब हिलाल अहमद और अता करीम पहली बार दर्ज किए गए थे। जब इन व्यक्तियों को दर्ज किया गया था तो फ़सली के संबंध में

भूमि उपयोग को देखना होगा, लेकिन हमें इन तथ्यों के बारे में सहायक साक्ष्य के साथ सूचित नहीं किया गया है।

38. जब हम धारा 3(10) का अध्ययन करते हैं, जैसा कि पहले ही देखा गया है, तो यह इमारतों के अलावा इमारतों या उससे जुड़े अन्य लोगों द्वारा कब्जा किए जा रहे समय के लिए भूमि को शामिल नहीं करता है जो सुधार हैं। अधिनियम, 1939 की धारा 3(8) में पहले ही ध्यान दिए गए सुधार को परिभाषित किया गया है। किसी भी रिट याचिका में इस बात के समर्थन के साथ कोई आधार नहीं रखा गया है कि भूमि अधिनियम, 1939 की धारा 3(10) के अर्थ के भीतर या धारा 3(7) के तहत धारण नहीं है, यदि हां, कब, और न ही इसके संबंध में खेवटों या खतौनियों को बनाए रखने के लिए कानून में बिल्कुल कोई आवश्यकता नहीं थी। चीजों की प्रकृति में इस तरह के मुद्दे के लिए साक्ष्य की आवश्यकता होती है जो कि वर्ष 1359 फ़सली और उसके बाद, विशेष रूप से 1369 फ़सली, 1380 फ़सली, से संबंधित है।

39. वास्तव में, याची अब्बास अंसारी द्वारा संलग्न विक्रय विलेख दिनांक 02.03.1997 की प्रति, जो प्लॉट संख्या 93 से संबंधित है तथा जिसके संबंध में यह कहा गया है कि वह ठाकुरदास के पुत्र कृष्ण कुमार कालरा द्वारा श्रीमती शकीला बेगम के पक्ष में निष्पादित की गई थी, में यह उल्लिखित है कि "मोहम्मद वसीम ग्राम जियामऊ, तहसील लखनऊ स्थित तथा नगर निगम की सीमा के अंतर्गत आने वाले शहरी कृषि खसरा संख्या 93, रकबा 8 बिस्वा, 16 बिस्वांसी, 4 कचवांसी के स्वामी थे। उक्त विक्रय विलेख में आगे यह भी उल्लेखित है कि संबंधित भूखण्ड 'गड्ढे' के आकार में स्थित है तथा उसका उपयोग कृषि प्रयोजनों के लिए किया जाता है, इत्यादि।

40. 1359, 1362, 1369 और 1380 फ़सली में भूखंड की प्रकृति के संबंध में कोई निर्विवाद प्रमाण नहीं है। इस पर केवल मोहम्मद वसीम के बंगले का अस्तित्व ही है। इसे अधिनियम, 1939 के तहत 'भूमि' या 'होल्डिंग/जोत' की परिभाषा के दायरे से बाहर नहीं ले जाएगा यदि यह एक सुधार था, विशेष रूप से ऊपर उल्लिखित 02.03.1997 के बिक्री-विलेख में पुनरावृत्ति को ध्यान में रखते हुए।

41. दिनांक 09.03.2004 के बिक्री-विलेख, जिसकी प्रति याचिकाकर्ता - अब्बास अंसारी द्वारा अपने प्रत्युत्तर हलफनामे के साथ संलग्न की गई है, जिसे डॉ. शहीद हुसैन द्वारा निष्पादित किया गया था, जिन्होंने इसे शकीला बेगम से खरीदा था, शुभानुल्लाह अंसारी के पक्ष में कहा गया है कि भूमि आवासीय है और पूरी तरह से अविकसित है और इसमें 12 से 14 फीट गहरी खाई है। हम रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग में इन मुद्दों की सत्यता का निर्धारण नहीं कर सकते हैं।

42. शहरी नियोजन और विकास अधिनियम, 1973 के तहत घोषित भूमि विकास क्षेत्र का हिस्सा कब बन गई, यदि कोई हो, के बारे में दलीलों में कुछ भी नहीं कहा गया है।

43. दिनांक 11.09.1974 को एक अधिसूचना हमारे समक्ष रखी गई थी, जिसके अनुसार 'लखनऊ विकास क्षेत्र' में नगर निगम की सीमाएं शामिल थीं और चारों दिशाओं में इसके चारों ओर 8 किमी का क्षेत्र भी शामिल था।

44. अधिनियम, 1973 के तहत विकास क्षेत्र की घोषणा का अर्थ केवल यह है कि क्षेत्र को विकसित करने की आवश्यकता है या प्रस्तावित है। इसका मतलब यह नहीं है कि इसे पहले ही विकसित किया जा चुका है। यह अधिनियम, 1974 और दिनांक 11.09.1974 की अधिसूचना से ही स्पष्ट है।

45. 5 बीघा, 3 बिस्वा और 10 बिस्वांसी के भूखंड संख्या-95 के भूमि उपयोग, वह भी 1362 के बाद से इन कार्यवाहियों में निर्णय/निर्धारण नहीं किया जा सकता है जो संक्षिप्त प्रकृति के हैं।

46. हमें यह दोहराना होगा कि यहां दी गई कवायद केवल अभिलेख के सुधार से संबंधित नहीं है वर्ष 1427 फ़सली (2020) या उससे ठीक पहले, वास्तव में, इसकी उत्पत्ति 1362 फ़सली, 1369 फ़सली और 1380 फ़सली (1973) से संबंधित अभिलेख में निहित है। बाकी परिणामी है। बीच में 47 साल की समयावधि होती है। हम नहीं जानते कि अधिनियम, 1939 की धारा 3(7) और धारा 3(10) में संदर्भित भूमि/जोत की प्रकृति कब किसी अन्य भूमि में बदल गई, यदि यह बिल्कुल भी बदल गई; क्या भवन आदि धारा 3(8) के संदर्भ में सुधार थे या अधिनियम, 1939 की धारा 3(1) द्वारा बाहर रखे गए भवन थे।

47. इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्लॉट संख्या-93 गांव जियामऊ में स्थित है। यह अब एक क्षेत्र का हिस्सा है जिसे डालीबाग के रूप में जाना जाता है और नगर निगम, लखनऊ के राम मनोहर रॉय वार्ड के भीतर आता है। नगर निगम के अधिवक्ता श्री एस.एस. चौहान ने हमारे सामने दिनांक 09.03.1912 की एक अधिसूचना के साथ-साथ इसके साथ संलग्न अनुसूची भी रखी, जिसमें लखनऊ नगर पालिका की सीमाओं को रेखांकित किया गया था और ग्राम जियामऊ का उल्लेख उसमें मिलता है, जिसका अर्थ है कि कम से कम 9 मार्च, 1912 के बाद से जियामऊ गांव लखनऊ नगर पालिका का हिस्सा बन गया। उस समय नगर पालिकाओं को समय-समय पर संशोधित संयुक्त प्रांत नगरपालिका अधिनियम, 1900 के रूप में जाना जाने वाला एक अधिनियम द्वारा शासित किया गया था। 24.06.1916 को उत्तर प्रदेश नगरपालिका अधिनियम, 1916 प्रकाशित किया गया। जियामऊ अधिनियम, 1916 के लागू होने से पहले लखनऊ नगर पालिका का हिस्सा था और उसके बाद भी ऐसा ही रहा। वास्तव में, आज भी यह लखनऊ नगर निगम का हिस्सा है और इस संदर्भ में हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि अंतत नगर निगम अधिनियम, 1959 अधिनियमित किया गया जो उसी वर्ष लागू हुआ। नगर निगम के अधिवक्ता श्री चौहान ने हमारे समक्ष दिनांक 11.02.1959 की एक अधिसूचना प्रस्तुत की है, जिसमें एक नक्शे के साथ अधिनियम, 1959 के तहत गठित नगर निगम, लखनऊ की सीमाओं का वर्णन किया गया है। लखनऊ शहर की सीमाओं का सीमांकन किया गया है और इसके भीतर आने वाले क्षेत्र को नगर निगम, लखनऊ की सीमा का गठन किया गया है। इसके साथ एक नक्शा संलग्न है। दिनांक 03.10.1974 की एक अधिसूचना भी हमारे सामने रखी गई थी, जो अभिलेख में है, जिसके अनुसार राम मनोहर राय रोड वार्ट संख्या-2, हजरतगंज का हिस्सा था।

भारत के संविधान के भाग IX में नगरपालिकाओं के साथ-साथ नगर निगम अधिनियम, 1959 से संबंधित मामले में याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा इस संबंध में भरोसा किया गया था।

48. हालांकि, अधिनियम, 1939 में ऐसा कुछ भी नहीं है जो किसी क्षेत्र या भूमि पर इसके आवेदन को केवल इसलिए बाहर करता है क्योंकि यह एक नगरपालिका, नगर क्षेत्र या छावनी बोर्ड के भीतर है। ऐसे क्षेत्र के भीतर अधिनियम, 1939 में परिभाषित भूमि या जोत हो सकती है।

49. जैसा कि पहले ही कहा गया है, 1359 फ़सली के बाद से तैयार की गई किसी भी खतौनी को किसी भी कार्यवाही में या इन कार्यवाहियों में इस आधार पर चुनौती देने के लिए नहीं रखा गया है कि ये खतौनी तैयार होने के लिए उत्तरदायी नहीं थे क्योंकि भूमि गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) भूमि नहीं थी। वास्तव में, यह खेवट हैं जो गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) भूमि और फिर खतौनियों के संबंध में तैयार किए जाते हैं, लेकिन फिर भी इसके संबंध में कोई चुनौती नहीं है।

50. गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) भूमि के संबंध में खेवट और खतौनी का रखरखाव किया जाता है, जैसा कि उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 और उत्तर प्रदेश भूमि अभिलेख मैनुअल से स्पष्ट होगा, जिन्हें पहले ही संदर्भित किया जा चुका है। इस संबंध में हम भूमि अभिलेख नियमावली के प्रस्तर-174 का उल्लेख कर सकते हैं जो गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) भूमि के संबंध में खेवटों की तैयारी को संदर्भित करता है और साथ ही उक्त मैनुअल के प्रस्तर-618-3(ए) में उल्लिखित खतौनी को भी संदर्भित करता है। प्रस्तर-123 (i), 441, 618-3 (A)(F)(5) के अनुसार खतौनी केवल खेवटों के लिए तैयार किया जाएगा। उत्तर प्रदेश भूमि अभिलेख नियमावली के प्रस्तर-254 में उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 के संदर्भ में जेड.ए. और गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) भूमि के संबंध में उत्परिवर्तन रिपोर्ट तैयार करने का उल्लेख है। उक्त मैनुअल के प्रस्तर-585 (5) में खेवटों के परीक्षण और खतौनियों की तुलना उस क्षेत्र में इरेटा सूची के साथ करने का उल्लेख है, जिस पर उत्तर प्रदेश जमींदारी और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 लागू नहीं होता है, इसलिए, यह गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) भूमि के संबंध में खेवट आदि की तैयारी को संदर्भित करता है, जैसे कि जहां अधिनियम, 1939 लागू होता है, वहां भी खेवट और खतौनी तैयार करने पड़ते हैं। उत्तर प्रदेश भूमि अभिलेख नियमावली के प्रस्तर-124ए से पता चलता है कि भूमि की श्रेणी 6-ए ग्रोव भूमि है, श्रेणी 9 (ii) स्थलों, सड़कों, रेलवे, भवनों और गैर-कृषि उपयोगों के लिए रखी गई भूमि को संदर्भित करती है। अधिनियम, 1901 की धारा 32 में प्रावधान है कि अधिकारों के अभिलेख में उन सभी व्यक्तियों का एक रजिस्टर होगा जो खेती करते हैं या अन्यथा कब्जा करते हैं और धारा 55 द्वारा अपेक्षित विवरणों को निर्दिष्ट करते हैं। गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) के संबंध में खेवट और खतौनी तैयार करने से संबंधित विभिन्न प्रक्रियाएं हैं। भूमि यानी भूमि जिस पर अधिनियम, 1939, जैसे कि भूमि अभिलेख मैनुअल में विस्तृत पर लागू होता है। इस प्रश्न पर कि अधिनियम, 1939 विचाराधीन संपत्ति पर लागू होता है या नहीं, इस पर पहले ही विचार किया जा चुका है।

51. प्रासंगिक रूप से अधिनियम, 1939 केवल गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) भूमि के संबंध में किरायेदारी/कार्यकाल निर्धारित करता है। खतौनी सहित भूमि अभिलेख अधिनियम, 1939 के अंतर्गत तैयार नहीं किए जाते हैं। उत्तर प्रदेश का प्रत्येक जिला एक राजस्व जिला है। ऐसे जिलों में भूमि अभिलेखों का रखरखाव अधिनियम, 1901 के अनुसार और उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 के तहत किया जाता है, जिसे उत्तर प्रदेश भूमि अभिलेख मैनुअल सपठित किया जाता है। अधिनियम, 1939 के तहत भूमि के वर्गों का निर्धारण या जोत की व्यवस्था नहीं की जाती है। यह अधिनियम, 1901 की धारा 243(1)(बी) के तहत तैयार यूपी भूमि अभिलेख मैनुअल के तहत किया जाता है। गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) की व्यवस्था भूमि या जोत या उनका वर्गीकरण उक्त मैनुअल के प्रस्तर-124क के अनुसार है। उत्तर प्रदेश भूमि अभिलेख नियमावली उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 234(3) के प्रख्यापन के बाद भी लागू है।

52. विचाराधीन भूमि को पिछले कई दशकों से गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) भूमि के रूप में माना जाता रहा है, खतौनी को भी गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) खतौनी के रूप में तैयार किया गया है, जिनमें से किसी को भी याचिकाकर्ताओं द्वारा पहले या इन कार्यवाही में चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए, इस न्यायालय के लिए यह मुश्किल है, बल्कि इसके लिए यह असंभव है, रिट क्षेत्राधिकार की बाधाओं और इसके समक्ष सारांश कार्यवाही को देखते हुए, इस तरह के किसी भी निष्कर्ष को दर्ज करने के लिए कि क्या इसके संबंध में खतौनी या खेवट तैयार करने की आवश्यकता थी, अपेक्षित दलीलों और सबूतों के अभाव में, विशेष रूप से, इन मुद्दों के जेड.ए. और गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) भूमि के अभिलेख के रखरखाव पर दूरगामी परिणाम हो सकते हैं।

53. यह मुद्दा सुनवाई के दौरान सामने आया, लेकिन, इस संबंध में किसी भी पक्ष द्वारा अपेक्षित दलीलें और सबूत अनुपस्थित हैं। इसलिए, हम खुद को ऐसी कोई राय दर्ज करने में असमर्थ पाते हैं कि विचाराधीन भूमि केवल इसलिए कि यह संबंधित फ़सली में नगरपालिका सीमा का एक हिस्सा थी, यह अधिनियम, 1939 में निर्दिष्ट भूमि या जोत नहीं रह गई या अधिनियम, 1939 लागू नहीं था।

<u>संहिता, 2006 की धारा 230 द्वारा अधिनियम, 1901 का निरसन, अधिनियम, 1939 और संहिता, 2006 की धारा 38 के आवेदन के संदर्भ में इसकी बचत</u>

54. याचिकाकर्ताओं की ओर से श्री माथुर और श्री खान द्वारा उठाया गया एक अन्य मुद्दा यह था कि क्या अधिनियम, 1901 जिसके तहत आक्षेपित आदेश 14.08.2020 और 22.03.2021 पारित किए गए हैं, उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलेख के सुधार की शक्ति का प्रयोग करने के लिए उपलब्ध था, क्योंकि इसे संहिता की धारा 230 द्वारा निरस्त कर दिया गया था, 2006 से शुरू हुआ जो 11.02.2016 को लागू हुआ।

55. संहिता, 2006 की धारा 230 इसकी पहली अनुसूची में निर्दिष्ट अधिनियमों को निरस्त करती है जिसमें जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, 1950, शहरी जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, 1956 और अधिनियम, 1901 शामिल हैं। धारा 230 की उपधारा 2 में यह प्रावधान है कि उपधारा (1) में निहित किसी बात के होते हुए भी,

ऐसे अधिनियमों का निरसन अन्य बातों के साथ-साथ प्रभावित नहीं करेगा - **'(ग) कोई अन्य अधिनियम जिसमें इस तरह के अधिनियमन को शामिल किया गया है या संदर्भित किया गया है'।** अधिनियम, 1901 को लागू किया गया है और अधिनियम, 1939 में संदर्भित किया गया है जब रजिस्टरों के रखरखाव और अभिलेखों में प्रविष्टियों को दर्ज करने का उल्लेख किया गया है। अधिनियम, 1939 में अधिनियम, 1901 का बार-बार संदर्भ मिलता है अर्थात धारा 3(15) धारा 3(16), धारा 256 (2) और धारा 24 में अभिलेखों के संशोधन पर प्रविष्टि से अनुमान के संबंध में, जनवरी, 1902 की तारीख का उल्लेख किया गया है, वह तारीख है जिस दिन अधिनियम, 1901 लागू हुआ जैसा कि धारा 1 (3) में उल्लेख किया गया है। गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) के प्रयोजनों के लिए; अधिनियम, 1901 वह अधिनियमन था जिसके तहत राजस्व अभिलेख बनाए रखे गए थे, उसमें सुधार किए गए थे। इस संबंध में कोई अन्य अधिनियमन नहीं था। अधिनियम, 1939 की धारा 3(16) संयुक्त प्रांत भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 32 के प्रावधानों के तहत बनाए गए रजिस्टर में दर्ज "अभिलेख" को परिभाषित करती है। इस प्रकार, इसका अर्थ यह है कि, अधिनियम, 1901 के अनुसार अधिनियम, 1939 लागू होने वाले क्षेत्रों के संबंध में रजिस्टरों को बनाए रखा जाना था, जो अधिनियम, 1939 की धारा 3(15) से भी स्पष्ट है। अधिनियम, 1901 के तहत ऐसे अभिलेखों में एक फोर्टियोरी सुधार भी किया जाएगा क्योंकि अधिनियम, 1939 में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है और यह अधिनियम, 1901 के निरसन से प्रभावित नहीं होगा।

56. संहिता, 2006 गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) पर लागू होने वाले अधिनियम, 1939 को निरसित नहीं करती है। इसलिए, अधिनियम, 1939 ऐसी भूमि पर लागू होता रहता है, और संहिता, 2006 की धारा 230 (2) ग को ध्यान में रखते हुए, अधिनियम 1901 गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) भूमि पर उक्त अधिनियम, 1939 के आवेदन के संदर्भ में भी लागू होता है।

57. प्लॉट संख्या-93 पर अधिनियम, 1939 की प्रयोज्यता के मुद्दे पर पहले ही चर्चा की जा चुकी है। अधिनियम, 1939 की धारा 3(10) में बहिष्कृत भवनों को इस संदर्भ में अधिनियम, 1939 और परिणामस्वरूप अधिनियम, 1901 की प्रयोज्यता से बाहर रखा जाएगा, लेकिन, जैसा कि पहले कहा गया है, हमारे पास यह तय करने के लिए आवश्यक दलीलें और सामग्री नहीं है कि 1359 फ़सली, 1362 फ़सली में कौन सी इमारतें मौजूद थीं, यदि कोई हो, 1369 फ़सली या 1380 फ़सली और यदि प्लॉट संख्या-93 का हिस्सा बनने वाली भूमि पर कोई भवन आया है, तो उक्त भवन किस तारीख को बने, उक्त इमारतों की प्रकृति क्या थी, वे 'सुधार' की परिभाषा के दायरे में कितनी दूर तक शामिल थे जो अधिनियम की धारा 3(8) सपठित धारा 3(10) में शामिल हैं, 1939, गाटा संख्या-93 वाली भूमि की प्रकृति क्या थी, कृषि उपयोग से इसका उपयोग कब बदल गया, यदि वास्तव में, जब क्षेत्र वास्तव में विकसित किया गया था, जैसा कि पहले ही चर्चा की गई थी, इसलिए, अधिनियम 1901 की गैर-प्रयोज्यता का यह मुद्दा उक्त मुद्दे के साथ जुड़ा हुआ है।

58. इसके अलावा, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 2 के अनुसार, अध्याय VIII और IX को छोड़कर, संहिता, 2006 के शेष प्रावधानों को पूरे उत्तर प्रदेश राज्य पर लागू किया गया है। संहिता, 2006 के अध्याय

VIII और IX के आवेदन को उन क्षेत्रों तक सीमित कर दिया गया है जहां जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, 1950 और शहरी जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, 1956 लागू थे। संहिता, 2006 का अध्याय VIII और IX क्रमशः 'ग्राम पंचायत या अन्य स्थानीय प्राधिकरण द्वारा भूमि और अन्य संपत्तियों का प्रबंधन' और 'कार्यकाल' से संबंधित है, जिसका अर्थ है कि ये अध्याय केवल उन क्षेत्रों पर लागू होते हैं जहां ज़ेडए अधिनियम, 1950 और शहरी ज़ेडए अधिनियम, 1956 द्वारा जमींदारी को समाप्त कर दिया गया था और अन्य क्षेत्रों पर नहीं, बल्कि संहिता के शेष प्रावधान पर लागू होते हैं।वर्ष 2006 की अधिसूचना गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) सहित पूरे उत्तर प्रदेश राज्य पर लागू होती है। भूमि (जहां जमींदारी को समाप्त नहीं किया गया था), इसलिए, संहिता, 2006 की धारा 38, जो अभिलेखों में त्रुटियों या चूक के सुधार से संबंधित है, गैर-जेड.ए. (ग़ैर जमींदारी उन्मूलन खतौनी) पर लागू होगी। क्षेत्र भी। इस प्रकार, पुराने अभिलेख और मौजूदा अभिलेख के संबंध में अभिलेख के सुधार की कवायद अभी भी संहिता, 2006 की धारा 38 के तहत की जा सकती है, इस तरह, केवल इस मामले में यानी अधिनियम 1901 के कथित निरसन पर, हम आक्षेपित आदेशों को अमान्य नहीं करेंगे। श्री गौरव मेहरोत्रा का यह तर्क कि निरस्त प्रावधान के तहत आदेश पारित करना उस मामले से अलग है जहां गलत प्रावधान के तहत आदेश पारित किया जाता है, इस मामले के तथ्यों में स्वीकार्य नहीं है।

<u>भूमि अभिलेखों के सुधार के लिए कार्यवाही का दायरा और स्वामित्व, कब्जे के अधिकार आदि के प्रश्नों पर इसका प्रभाव।</u>

59. जहां तक याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता के तर्क का संबंध है कि आक्षेपित आदेशों ने भूमि/भवन के लिए उनके स्वामित्व / हक्के मिल्कियत को वास्तव में तय किया है और रद्द कर दिया है, राजस्व प्रविष्टियां स्वयं स्वामित्व / हक्के मिल्कियत तय नहीं करती हैं, विशेष रूप से प्रविष्टियां या सुधार जो अधिनियम, 1901 की धारा 33(2)(बी) के संदर्भ में हैं जो उत्तराधिकार या हस्तांतरण पर आधारित नहीं हैं जैसा कि उक्त उप-धारा के प्रावधान से स्पष्ट है जिसके अनुसार ऐसे परिवर्तन नहीं होंगे स्वामित्व / हक्के मिल्कियत के प्रश्न से जुड़े विवाद पर निर्णय के रूप में माना जाता है। यहां लगाए गए सुधार धारा 33(2) के खंड (बी) के संदर्भ में हैं। इसी तरह धारा 39 की उप-धारा (2) का परंतुक भी है। इसी तरह संहिता, 2006 की धारा 38 का स्पष्टीकरण यह स्पष्ट करता है कि धारा 38 के तहत सुधार करने की शक्ति अधिकार को स्वामित्व / हक्के मिल्कियत के प्रश्नों से जुड़े विवाद पर निर्णय लेने का अधिकार नहीं देती है। इस संदर्भ में अधिनियम, 1901 की धारा 40क और संहिता, 2006 की धारा 39 भी प्रासंगिक हैं। इसलिए, उपरोक्त प्रावधान के तहत अभिलेख के सुधार के लिए ऐसी कोई भी कवायद, जैसा कि इस मामले में किया गया है, अपने आप में किसी भी व्यक्ति को प्रश्न में भूमि के संबंध में स्वामित्व से वंचित नहीं कर सकता है।

60. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भीमाबाई महादेव कांबेकर (मृतका) अपने विधिक प्रतिनिधि के माध्यम से बनाम आर्थर इम्पोर्ट एण्ड एक्सपोर्ट कम्पनी तथा अन्य के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्ववर्ती निर्णयों, अर्थात् स्वर्णी (श्रीमती) बनाम इन्दर कौर (श्रीमती) तथा अन्य, बलवंत सिंह तथा अन्य बनाम दौलत सिंह (मृत) उनके विधिक उत्तराधिकारियों के माध्यम से तथा अन्य, तथा नरसम्मा बनाम कर्नाटक राज्य तथा

अन्य का संदर्भ लेते हुए, इस विषय में विधि की स्थिति को संक्षेप एवं स्पष्ट रूप से निम्नवत् प्रतिपादित किया है–

"5. किसी भी भूमि से संबंधित राजस्व अभिलेख में उत्परिवर्तन के प्रश्न पर कानून और पक्षों के अधिकारों का निर्णय लेते समय इसका कानूनी मूल्य क्या है, इस न्यायालय के निर्णयों की एक श्रृंखला द्वारा काफी अच्छी तरह से तय किया गया है।

6. इस न्यायालय ने लगातार माना है कि राजस्व अभिलेख में भूमि का उत्परिवर्तन ऐसी भूमि पर स्वामित्व / हक्के मिल्कियत का निर्माण या समाप्ति नहीं करता है और न ही स्वामित्व / हक्के मिल्कियत पर इसका कोई अनुमानित मूल्य है।

बैंगलोर शहर के निगम बनाम एम. पपैया और अन्य 6 के मामले में, यह माना गया है कि "यह दृढ़ता से स्थापित है कि राजस्व अभिलेख स्वामित्व / हक्के मिल्कियत के दस्तावेज नहीं हैं....."

हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम श्री केशव राम और अन्य 7 के मामले में, यह माना गया था कि "राजस्व पत्रों में किसी भी तरह की कल्पना से प्रविष्टि स्वामित्व / हक्के मिल्कियत की घोषणा का आधार नहीं बन सकती है.....

भारतसंघ और अन्य बनाम वासवी को-ऑप में। हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड और अन्य 8, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पहले के उदाहरणों का उल्लेख करते हुए कहा कि भले ही अधिकारों के अभिलेख में प्रविष्टियों का साक्ष्य मूल्य हो, लेकिन वह स्वयं कोई स्वामित्व / हक्के मिल्कियत प्रदान नहीं करेगा और वादी को उन प्रविष्टियों से स्वतंत्र यह दिखाना होगा कि विचाराधीन संपत्ति पर उसका स्वामित्व था।

नारायण प्रसाद अग्रवाल (डी) के मामले में एलआरएस बनाम स्टेट ऑफ एमपी के मामले में यह माना गया था कि अधिकार का अभिलेख स्वामित्व / हक्के मिल्कियत का दस्तावेज नहीं है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के संदर्भ में इसमें की गई प्रविष्टियां हालांकि साक्ष्य के एक प्रासंगिक टुकड़े के रूप में स्वीकार्य हैं और हालांकि इसमें शुद्धता का अनुमान भी लगाया जा सकता है, लेकिन यह किसी भी संदेह या विवाद से परे है कि इस तरह की धारणा खंडन योग्य है।

हरीश चंद्रा बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में इस न्यायालय की एक खंडपीठनेसर्वोच्च न्यायालय की मिसालों का हवाला देते हुए कहा है कि "राजस्व अभिलेख स्वामित्व / हक्के मिल्कियत प्रदान नहीं करते हैं और भले ही अधिकारों के राजस्व अभिलेख में प्रविष्टियां मूल्य रखती हैं, जो अपने आप में उसी के आधार पर दावा करने वाले व्यक्ति को कोई स्वामित्व / हक्के मिल्कियत प्रदान नहीं करेगी"। हम इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा व्यक्त की गई राय से सहमत हैं।

रमेश दत्त और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य मामले में यह व्यवस्था दी गई थी कि राजस्व प्रविष्टि से अधिकार नहीं बनता है; उसके अभाव से उसे समाप्त नहीं किया जा सकता है।

61. इस संदर्भ में, हम रिट सी संख्या-7005 वर्ष 2023 में राज्य की ओर से दायर 19.02.2025 के पूरक जवाबी हलफनामे के प्रस्तर-7 का फलदायी रूप से उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें यह निम्नानुसार कहा गया है:

"7. यह कि दाखिल खारिज प्रविष्टि व्यक्तियों के पक्ष में कोई अधिकार, स्वामित्व / हक्के मिल्कियत या हित प्रदान नहीं करती है और राजस्व अभिलेख में दाखिल खारिज प्रविष्टि केवल राजकोषीय उद्देश्य के लिए है।

62. इस प्रकार, इस संबंध में कानूनी स्थिति को राज्य द्वारा भी स्वीकार किया गया है कि उत्परिवर्तन प्रविष्टियां स्वयं व्यक्ति के पक्ष में कोई अधिकार स्वामित्व / हक्के मिल्कियत या हित प्रदान नहीं करती हैं, और राजस्व अभिलेख में उत्परिवर्तन प्रविष्टि केवल राजकोषीय उद्देश्य के लिए है। सुनवाई के दौरान भी राज्य की ओर से महाधिवक्ता ने यही तर्क दिया था।

<u>भूमि अभिलेख को सही करने के लिए स्वत: अधिकार</u>

63. याचिकाकर्ताओं द्वारा यह प्रस्तुत किया गया था कि केंद्र सरकार जिसमें अधिनियम, 1954 की धारा 12 के तहत निहित भूखंड संख्या-93 वाली भूमि ने कोई विवाद नहीं उठाया, लेकिन गांव सभा के अधिवक्ता के पैनल में एक अधिवक्ता के आवेदन पर, आक्षेपित कार्रवाई की गई है, हालांकि कोई गांव सभा जियामऊ मौजूद नहीं है। यह एक ऐसा कारक नहीं है जो अपने आप में आक्षेपित कार्रवाई को अमान्य कर देगा, यदि अभिलेखों को अन्यथा सही किया जाना था, जैसा कि, अधिनियम, 1901 की धारा 39 की उप-धारा (2) और संहिता, 2006 की धारा 38 में निहित एक समान प्रावधान, यह स्पष्ट करता है कि राजस्व प्राधिकरण के ज्ञान में आने वाली अपेक्षित जानकारी पर सुधार की ऐसी शक्ति का प्रयोग स्वत: संज्ञान लिया जा सकता है, जैसा कि इस मामले में, जहां उप विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 28.07.2020 के पत्र के माध्यम से सूचना प्राप्त हुई थी। तथ्य यह है कि कोई गांव सभा नहीं है, यह भी बहुत प्रासंगिक नहीं है, अगर अभिलेख को ठीक किया जा सकता है, जिसमें पुराने अभिलेख भी शामिल हैं, या उन्हें ठीक करने की आवश्यकता थी, खासकर जब पुराने गांव नगरपालिका की सीमा के भीतर मौजूद हैं, भले ही गांव सभा न हो।

<u>केवल सक्षम प्राधिकारी के आदेश के तहत अधिकारों के अभिलेख में प्रविष्टियां</u>

64. इसके अलावा, धारा 33 की उपधारा (3) को ध्यान में रखते हुए, उपधारा (2)(ए) और (बी) में निर्दिष्ट कोई परिवर्तन या लेनदेन कलेक्टर या तहसीलदार या कानूनगो के आदेश के बिना खतौनी में दर्ज नहीं किया जा सकता है। यहां तक कि संहिता, 2006 के अनुसार भी किसी सक्षम प्राधिकारी के आदेश के बिना खतौनी में कोई दाखिल खारिज या परिवर्तन दर्ज नहीं किया जा सकता है। अधिनियम, 1901 की धारा 33 सपठित धारा 39 के तहत सुधार करने की शक्ति अब अधिनियम, 1901 की धारा 227(5क) और संहिता, 2006 की धारा 38(2) और (3) के अनुसार उप-विभागीय मजिस्ट्रेट में निहित है। यदि खतौनी में नाम दर्ज करने के लिए सक्षम प्राधिकारी का कोई आदेश नहीं है तो ऐसी कोई भी प्रविष्टि बिना किसी कानूनी आधार के होगी।

<u>अधिकारों के अभिलेख में लंबे समय से चली आ रही प्रविष्टियों का सुधार</u>

65. इसके बाद कुछ याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित श्री खान द्वारा यह तर्क दिया गया था कि लंबे समय से चली आ रही प्रविष्टियों को उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा ठीक नहीं किया जा सकता था। हम अलग होने की भीख माँगते हैं। यहां तक कि लंबे समय से चली आ रही प्रविष्टियां, यदि वे धोखाधड़ी, जाली, बिना किसी

आधार के या सक्षम राजस्व प्राधिकरण के किसी भी आदेश के बिना, गुप्त रूप से की जाती हैं, तो निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना, स्पष्ट और स्पष्ट त्रुटि से पीड़ित, 12 को ठीक किया जा सकता है। बेशक, यह उस व्यक्ति को नोटिस/सुनवाई के अवसर के बिना नहीं किया जा सकता है जिसका नाम अभिलेख से हटाया जा रहा है, लेकिन ऐसा अवसर एक अभिलेख किए गए व्यक्ति को दिया जाना आवश्यक है जिसका नाम रद्द करने का प्रस्ताव है। यह मामूली बात है कि राजस्व अभिलेख में कोई भी प्रविष्टि सक्षम राजस्व अधिकारी द्वारा पारित आदेश के आधार पर होनी चाहिए, न कि अन्यथा। इसके लिए एक कानूनी आधार होना चाहिए।

66. केवल वही प्रविष्टियाँ, जो राजस्व अभिलेखों में सक्षम प्राधिकारी के आदेश के अनुपालन में विहित विधिक प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए विधिपूर्वक एवं सही रूप से दर्ज की गई हों, वास्तविक एवं प्रामाणिक प्रविष्टियाँ मानी जा सकती हैं। ऐसी प्रविष्टियों के संबंध में ही शुद्धता की उपधारणा लागू होती है, यद्यपि उक्त उपधारणा खण्डनीय है।

67. विक्रम सिंह जूनियर उच्च स्कूल बनाम जिला मजिस्ट्रेट और अन्य के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि राजस्व अभिलेख में एक प्रविष्टि का कानूनी आधार होना चाहिए और यह कि गलत प्रविष्टि के आधार पर किसी भी स्वामित्व / हक्के मिल्कियत का दावा नहीं किया जा सकता है जो अभिलेख को सही करने के लिए राजस्व अधिकारी या चकबंदी अधिकारी की लापरवाही या विफलता के माध्यम से किसी भी व्यक्ति के पक्ष में जारी रह सकता है।

68. लखन बनाम राजस्व बोर्ड के मामले में इस न्यायालय के एक एकल न्यायाधीश ने माना कि, मंगरू और अन्य बनामराम सुमेर और जगदेव बनाम सांत्वना के उप निदेशक में निर्धारित कानून, जिसने राजस्व प्रविष्टियों को एक पवित्र आसन पर रखा था, यदि वे लंबे समय तक वैध कब्जे और अच्छे स्वामित्व / हक्के मिल्कियत के एक अभेद्य सबूत के रूप में हैं,श्रीराम और अन्य बनाम डीडीसी इलाहाबाद कैंप फतेहपुर और अन्य में इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय को देखते हुए अब यह अच्छा कानून नहीं है। एकल न्यायाधीश ने आगे कहा और कानून को स्पष्ट किया कि 'राजस्व अभिलेख में लंबे समय से चली आ रही प्रविष्टियां, जिनके बारे में कोई वैध कानूनी आधार नहीं है, उन्हें जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है क्योंकि ऐसी प्रविष्टियां केवल लंबे समय तक जारी रखने से स्वामित्व / हक्के मिल्कियत प्रदान नहीं कर सकती हैं। यदि निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना और सक्षम प्राधिकारी के आदेश के बिना राजस्व अभिलेखों में कोई प्रविष्टि की गई है, तो स्पष्ट रूप से यह गुप्त रूप से की गई प्रविष्टि है और इसे कपटपूर्ण प्रविष्टि भी कहा जा सकता है। किसी भी मामले में यह निश्चित रूप से एक प्रविष्टि है जो बिना किसी आधार के है और स्पष्ट रूप से गलत और गलत है, इसलिए, इसे ठीक किया जा सकता है, भले ही यह राजस्व अभिलेख में बनी हुई हो। हम एकल न्यायाधीश द्वारा कानून की घोषणा से सम्मानपूर्वक सहमत हैं। इसके विपरीत याचिकाकर्ताओं के तर्क को खारिज किया जाता है।

69. इस तरह की त्रुटियों को स्वत: संज्ञान में भी ठीक किया जा सकता है, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, यदि संबंधित प्राधिकारी को यह पता चलता है कि क्या अभिलेख की अपनी जांच या प्रासंगिक तथ्यों को किसी तीसरे पक्ष द्वारा उसके ज्ञान में लाया जा रहा है, बशर्ते कि ऊपर उल्लिखित प्रकार की त्रुटियां हों।

<u>दिनांक 14.08.2020 और 22.03.2021 के आदेशों को चुनौती देने वाली</u>
<u>इन रिट याचिकाओं की विचारणीयता</u>

70. जहां तक इन रिट याचिकाओं की पोषणीयता के संबंध में महाधिवक्ता की आपत्ति का संबंध है, क्योंकि आक्षेपित आदेशों ने स्वामित्व / हक्के मिल्कियत तय नहीं किया था, और ऐसे आदेशों के खिलाफ अपील/पुनरीक्षण का एक उपाय था, जिसका लाभ याचिकाकर्ताओं द्वारा हमेशा उठाया जा सकता है या वे आक्षेपित आदेशों को वापस लेने की मांग कर सकते हैं, एक रिट न्यायालय आमतौर पर एक उत्परिवर्तन आदेश या राजस्व अभिलेख और प्रविष्टियों को सही करने वाले आदेश को चुनौती देने वाली रिट याचिका पर विचार नहीं करता है, सिवाय इसके कि असाधारण परिस्थितियों में, वह भी उन व्यक्तियों के इशारे पर जो राजस्व अभिलेख में दर्ज थे या पहले से ही दर्ज हैं। हमने इन रिट याचिकाओं को सुनने का कारण यह है कि यहां आक्षेपित आदेशों के आधार पर, कम से कम तीन रिट याचिकाओं में, विकास प्राधिकरण द्वारा अधिनियम 1973 की धारा 15(9) के तहत कारण बताओ नोटिस जारी किए गए हैं, जिसमें याचिकाकर्ताओं की ओर से धोखाधड़ी और गलत बयानी का आरोप लगाया गया है। वह भी, जब भवनों का निर्माण पहले ही किया जा चुका है और इस तरह के नोटिस पूरी तरह से हमारे सामने आक्षेपित दिनांक 14.08.2020 और 22.03.2021 के आदेशों में परिणत होने वाली कवायद पर आधारित हैं, जो अधिनियम 1901 की धारा 33 सपठित 39 के तहत कार्यवाही में पारित किए गए हैं और इन नोटिसों की वैधता को राजस्व न्यायालयों द्वारा नहीं देखा जा सकता है। दूसरा कारण अधिनियम, 1939, अधिनियम 1901 की प्रयोज्यता से संबंधित मुद्दा, विचाराधीन भूमि के संबंध में खतौनी तैयार करने की आवश्यकता, आदि और यह दलील थी कि याचिकाकर्ताओं को कोई नोटिस या सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था और यह भी कि पूरी कवायद जल्दबाजी और दुर्भावनापूर्ण तरीके से आठ दिनों में आयोजित और पूरी की गई थी और यह याचिकाकर्ताओं के स्वामित्व / हक्के मिल्कियत को नकारने के समान थी इसे एक निकासी संपत्ति मानकर। हालाँकि, हम इस मुद्दे को आगे के प्रस्तर में संबोधित करने का प्रस्ताव करते हैं।

<u>आक्षेपित आदेश दिनांक 14.08.2020, 22.03.2021 और</u>
<u>भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत हस्तक्षेप</u>

71. अब हम दिनांक 14.08.2020 और 22.03.2021 के आदेशों द्वारा किए गए सुधार पर चर्चा कर सकते हैं, जो आक्षेपित हैं। इन मामलों में लक्ष्मी नारायण और कृष्ण कुमार कालरा को भू-अभिलेख नियमावली के प्रस्तर-124ए की श्रेणी 5(क) या 5(ए) के तहत खतौनी वर्ष 1369 फ़सली और 1380 फ़सली में दर्ज किया गया था। श्रेणी 5(क) बिना स्वामित्व / हक्के मिल्कियत के भूमि के कब्जाधारियों को संदर्भित करता है जब खसरा के कॉलम 5 के संबंध में पहले से ही कोई भी दर्ज नहीं है। 5(ए) 2 प्रस्तर-124 ए के नोट में यह भी उल्लेख किया गया है कि जहां जमींदार किरायेदारी में प्रवेश या किरायेदार के रूप में ऐसे व्यक्ति की मान्यता से इनकार

करता है, उन्हें (5-ए) के रूप में दर्ज किया जाएगा। भूमि अभिलेख नियमावली के प्रस्तर-124ए के खंड 5 के तहत गैर-अधिभोग किरायेदारों के पास हस्तांतरणीय अधिकार नहीं हैं।
हम यह बता सकते हैं कि आक्षेपित आदेश में श्रेणी 5(I) का गलत उल्लेख किया गया है, क्योंकि हमारे सामने पेश किए गए अभिलेख में निहित खतौनी की फोटोकॉपी में, लक्ष्मी नारायण और कृष्ण कुमार कालरा का उल्लेख श्रेणी 5(क) के रूप में किया गया है।

72. खतौनी वर्ष 1362 फ़सली और 1380 फ़सली या किसी अन्य फ़सली में कृष्ण कुमार कालरा आदि के नाम दर्ज करने के लिए कोई आदेश नहीं है, इसलिए, आक्षेपित आदेशों में यह कहा गया है कि प्रविष्टियां बिना किसी आधार के हैं।

73. यह उल्लेख करना उचित है कि कृष्ण कुमार कालरा का नाम 30.12.1969 के बिक्री प्रमाण पत्र के आधार पर खतौनी में दर्ज नहीं किया गया था, जिस पर याचिकाकर्ताओं द्वारा भारी भरोसा रखा गया था।

74. हमारे सामने इस बात का कोई सबूत नहीं है कि हिलाल अहमद या अता करीम को क्रमशः 05.07.1973 और 06.07.1976 के बिक्री प्रमाण पत्र के आधार पर दर्ज किया गया था और न ही हम यह जानते हैं कि उन्हें किस श्रेणी के तहत दर्ज किया गया था। जैसा कि पहले कहा गया है, किसी भी पक्ष ने हमें यह नहीं बताया है कि अता करीम और हिलाल अहमद को पहली बार राजस्व अभिलेख में कब और किस श्रेणी में दर्ज किया गया था?

75. दिलचस्प बात यह है कि याचिकाकर्ता द्वारा जिन बिक्री-प्रमाणपत्रों पर भरोसा किया जा रहा है, उनमें राजस्व अभिलेख में दाखिल खारिज के लिए तहसीलदार को एक समर्थन शामिल है। यदि हां, तो कृष्ण कुमार कालरा को वैध किरायेदार या मालिकाना हक धारक के रूप में क्यों दर्ज नहीं किया गया, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर नहीं दिया गया है। वास्तव में, याचिकाकर्ताओं द्वारा भरोसा किए गए दस्तावेजों में उक्त समर्थन, अपने आप में इस तर्क को झुठलाता है कि खतौनी को बनाए रखने की आवश्यकता नहीं थी और नामों को दर्ज करने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि भूमि एक नगरपालिका का हिस्सा थी।

76. याचिकाकर्ताओं का अपना मामला है कि प्लॉट संख्या-93 को अधिनियम, 1950 के तहत एक खाली संपत्ति घोषित किया गया था और उसके बाद यह अधिनियम, 1954 के तहत मुआवजा पूल का हिस्सा बन गया, जिसके परिणामस्वरूप यह एक निकासी संपत्ति नहीं रह गई और एक संपत्ति बन गई जो केंद्र सरकार में निहित थी और उसके बाद उन्हें अलग-अलग तिथियों के आधार पर याचिकाकर्ताओं के हित में पूर्ववर्ती सहित विभिन्न व्यक्तियों के पक्ष में निपटाया गया नीलामी बिक्री पर। यदि याचिकाकर्ताओं के इस रुख को इसके अंकित मूल्य पर लिया जाता है, तो यह समझ से परे है कि कृष्ण कुमार कालरा का नाम 1380 फ़सली में श्रेणी 5(क) के तहत उपरोक्त भूमि के संबंध में दर्ज क्यों किया गया, यानी बिना स्वामित्व / हक्के मिल्कियत के अवैध कब्जा। अभिलेखों को सही करने के लिए कोई प्रयास क्यों नहीं किया गया? उसने बिक्री प्रमाण पत्र के आधार पर अपना

नाम दर्ज क्यों नहीं कराया? कृष्ण कुमार कालरा ने इसे ठीक करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया, हालांकि श्री कालरा की मृत्यु 2018 में बहुत बाद में हुई थी।

77. उप मंडल मजिस्ट्रेट के अनुसार, अभिलेख पर किसी सक्षम प्राधिकारी का कोई आदेश नहीं है जिसके तहत विचारगत नाम दर्ज किए गए थे, जो अनिवार्य था। जहां तक अता करीम और हिलाल अहमद का संबंध है, हम नहीं जानते कि उन्हें कब और किस श्रेणी में दर्ज किया गया था? क्या उन्हें बिक्री प्रमाण पत्र के आधार पर दर्ज किया गया था? क्या किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा उनके नाम दर्ज करने के लिए कोई आदेश पारित किया गया था। यह ज्ञात नहीं है कि ये प्रविष्टियां किस आधार पर की गई थीं। ऐसी कोई दलील या सबूत दायर नहीं किया गया है। ऐसा लगता है कि उप-विभागीय मजिस्ट्रेट ने वर्ष 1369 फ़सली और 1380 फ़सली में प्रवेश वर्ष 1362 फ़सली की बहाली के परिणामस्वरूप, अभिलेखों के सुधार के परिणामस्वरूप उनके नाम हटा दिए हैं।

78. याचिकाकर्ताओं ने कोई भी आदेश अभिलेख पर नहीं लाया है जो एक सक्षम राजस्व प्राधिकरण द्वारा अता करीम या हिलाल अहमद या कृष्ण कुमार कालरा का नाम हस्तांतरणीय अधिकारों या किरायेदारों की किसी अन्य श्रेणी के साथ भूमिधर के रूप में दर्ज करने के लिए पारित किया गया हो और न ही ऐसा कोई खतौनी संलग्न है। अस्मा हुसैन ने खतौनी वर्ष 1402 फ़सली की फोटोकॉपी (प्रमाणित प्रति नहीं) संलग्न की है, लेकिन इसमें यह उल्लेख नहीं है कि उसका नाम किस आधार पर दर्ज किया गया है यानी क्या कोई आदेश पारित किया गया था और न ही उसने ऐसा कोई आदेश संलग्न किया है।

79. यह समझ से परे है कि क्यों, राज कुमारी चोपड़ा जिनके माध्यम से कुछ याचिकाकर्ता दावा करते हैं; यदि उसके पास वैध बिक्री प्रमाण पत्र था, तो उसने अपना नाम राजस्व अभिलेखों में दर्ज नहीं कराया जबकि अन्य को दर्ज किया गया था। हम और नहीं कहते हैं।

80. क्या विचाराधीन भूमि के संबंध में राजस्व अभिलेख बनाए रखने की आवश्यकता थी, यह एक ऐसा मुद्दा है जिसे पहले ही निपटाया जा चुका है।

81. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, 1950 की धारा 229-बी के तहत लक्ष्मी नारायण द्वारा नगर निगम के खिलाफ दायर एक मुकदमे में न्यायिक आयुक्त मॉल लखनऊ द्वारा केस संख्या-51/162/83 वर्ष 1971 में पारित एक निर्णय और आदेश पर बहुत जोर दिया गया था, जिसमें यह कहा गया है कि कृष्ण कुमार कालरा भी एक पक्षकार थे, कलेक्टर भी ऐसा ही था। 19.05.1973 को अतिरिक्त आयुक्त, लखनऊ डिवीजन, लखनऊ द्वारा जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, 1950 की धारा 229-डी के तहत लक्ष्मी नारायण द्वारा दायर की गई अपील संख्या-133 पर पारित एक निर्णय पर भी भरोसा किया गया था, जो यहां ऊपर उल्लिखित 12.11.1971 के निर्णय से उत्पन्न हुआ था, जैसा कि इन निर्णयों में याचिकाकर्ताओं के अनुसार, जमींदारी उन्मूलन अधिनियम 1950 के तहत अधिसूचनाएं, अधिनियम 1954 के तहत घोषणाओं के साथ-साथ उनके द्वारा भरोसा किए गए बिक्री प्रमाणपत्रों का भी उल्लेख किया गया है। हालांकि, उसके अवलोकन पर हम

पाते हैं कि जमींदारी उन्मूलन अधिनियम 1950 की धारा 229-बी के तहत मुकदमे को इस आधार पर सुनवाई योग्य नहीं मानते हुए खारिज कर दिया गया था कि संपत्ति खाली की गई संपत्ति थी, जिसका अर्थ है कि इसे सिविल या राजस्व अदालतों के समक्ष खाली संपत्ति के संबंध में ऐसे मुकदमों की रखरखाव के संबंध में अधिनियम, 1950 की धारा 45 और 46 में निहित रोक को ध्यान में रखते हुए खारिज कर दिया गया था। इसलिए, यह अत्यधिक बहस का विषय है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा स्वामित्व / हक्के मिल्कियत का दावा करने के लिए इन निर्णयों पर कितनी हद तक भरोसा किया जा सकता है, वह भी रिट क्षेत्राधिकार में। अधिनियम, 1954 की धारा 12 के तहत घोषणा के बाद संपत्ति एक खाली संपत्ति नहीं रह गई, इस पर भी इन सारांश कार्यवाही में निर्णय नहीं लिया जा सकता है, क्योंकि उक्त घोषणा अभिलेख में नहीं है। यहां संदर्भित वाद, यदि कोई हो, तो वह सुनवाई योग्य नहीं था और उसमें तैयार किए गए प्राथमिक प्रश्न का निर्णय तदनुसार लिया गया था क्योंकि संपत्ति को उस तारीख को खाली संपत्ति माना गया था जिस दिन लक्ष्मी नारायण उसके संबंध में अधिकारों का दावा कर रहे थे। हम और नहीं कहते हैं, क्योंकि किसी भी मामले में, हम विचाराधीन भूमि के संबंध में स्वामित्व / हक्के मिल्कियत तय नहीं कर रहे हैं और न ही ऊपर उल्लिखित ऐसे दस्तावेजों की सत्यता और वास्तव में, हम भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत संक्षेप में कार्यवाही नहीं कर सकते हैं। हम मुख्य रूप से राजस्व अभिलेख के सुधार के लिए यहां की गई कार्यवाही के दायरे से चिंतित हैं, अधिकारों पर इसका प्रभाव, यदि कोई याचिकाकर्ता है, और राजस्व अभिलेख के इस तरह के सुधार के आधार पर की गई किसी भी परिणामी कार्रवाई की वैधता से संबंधित हैं।

82. उप-मंडल मजिस्ट्रेट ने कृष्ण कुमार कालरा और अन्य नौ व्यक्तियों के पक्ष में प्रविष्टियों को बिना किसी आधार के पाए जाने के बाद, उनके नाम रद्द करने का आदेश दिया है और परिणामस्वरूप, किसी और ने उनके नामों के दाखिल खारिज का दावा नहीं किया था और न ही अधिनियम की धारा 34(5) के तहत रिपोर्ट प्रस्तुत की थी।1901 चाहे उत्तराधिकार या हस्तांतरण के आधार पर, इसलिए, उन्होंने पहले की प्रविष्टि वर्ष 1362 फ़सली को बहाल किया है, जिसके द्वारा संपत्ति को कस्टोडियन के कब्जे में एक निकासी संपत्ति के रूप में दर्ज किया गया था, यानी 1362 फास्ली में। ऐसा करने में, अधिनियम, 1901 की धारा 33/39 के तहत या संहिता, 2006 की धारा 38 के तहत सुधार कार्यवाही के दायरे को ध्यान में रखते हुए, जैसा कि पहले चर्चा की गई है, उनके आदेशों को केंद्र या राज्य सरकार सहित उक्त संपत्ति के संबंध में किसी भी व्यक्ति के स्वामित्व / हक्के मिल्कियत का निर्णय/निर्णय लेने के रूप में नहीं माना जा सकता है और न ही यह कि संपत्ति खाली की गई संपत्ति है। वास्तव में, उत्तर प्रदेश राज्य भी ऐसा नहीं मानता है, जैसा कि तब तक उनके पूरक जवाबी हलफनामे के प्रस्तर-7 में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है, जिसका उद्धरण पहले ही उद्धृत किया जा चुका है। इस प्रकार, आक्षेपित आदेशों को याचिकाकर्ताओं को किसी भी स्वामित्व / हक्के मिल्कियत से वंचित करने के रूप में नहीं माना जा सकता है यदि उनके पास एक है और न ही उन्हें उनके बेदखली का आधार बनाया जा सकता है, यदि वे सही कब्जे में हैं।

83. उप-विभागीय मजिस्ट्रेट ने केवल एक स्पष्ट त्रुटि के आधार पर राजस्व अभिलेख को सही किया है, जैसा कि उनके द्वारा माना गया है। यदि व्यथित हैं और यदि वे ऐसा चुनते हैं, तो याचिकाकर्ताओं द्वारा ऐसे आदेशों

को वापस लेने की मांग की जा सकती है या उन्हें अपील या पुनरीक्षण में चुनौती दी जा सकती है क्योंकि मामला यहां उठाई गई सभी दलीलों को उठा सकता है।

84. वास्तव में, एक अहसान एहतेशम, जिसे अस्मा हुसैन के अनुसार दर्ज किया गया था, ने राजस्व बोर्ड के समक्ष संशोधन में उक्त आदेश को चुनौती दी, जिसे स्वीकार कर लिया गया था और एक अंतरिम आदेश भी दिया गया था, लेकिन अंततः इसे खारिज कर दिया गया था, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका ***संख्या-20098 (एमएस) वर्ष 2020 (श्रीमती एन मैरी कालरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)*** में पारित निर्णय दिनांक 09.11.2020 में सूचित किया गया थाएन मैरी कालरा द्वारा दायर याचिका में एक मृत व्यक्ति के खिलाफ पारित दिनांक 14.08.2020 के आदेश पर सवाल उठाया गया था और उन्होंने उक्त आदेश को एकल न्यायाधीश की पीठ के समक्ष चुनौती दी है, जैसा कि सूचित किया गया है।

85. जहां तक रिट सी संख्या-684 वर्ष 2021 की याचिकाकर्ता अस्मा हुसैन का संबंध है, उसने हिलाल अहमद से विचाराधीन भूमि का हिस्सा खरीदने का दावा किया है, जिसे पहले विचाराधीन भूमि के संबंध में दर्ज किया गया था और 24.06.1983 को बिक्री-विलेख के माध्यम से भूमि की खरीद के बाद उसका नाम राजस्व अभिलेख में बदल दिया गया था, और इस संबंध में, वह आरए -2 के रूप में संलग्न एक खतौनी के अर्क पर निर्भर करती है, जिसमें उसे हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर के रूप में दर्ज किया गया है। उन्होंने यह भी कहा है कि अहसान एहतेशाम नाम के एक व्यक्ति ने हिलाल अहमद से प्लॉट संख्या-93 का हिस्सा भी खरीदा था और उसका नाम राजस्व अभिलेख में भी दर्ज था और इस संबंध में दाखिल खारिज ऑर्डर को आरए-8 के रूप में संलग्न किया गया है। 10.02.2025. हालांकि, खतौनी की फोटोकॉपी संलग्न करते समय उन्होंने किसी भी सक्षम प्राधिकारी के किसी भी आदेश को संलग्न नहीं किया है, जिसके द्वारा उसका नाम अभिलेख में दर्ज करने का आदेश दिया गया था, जो अनिवार्य है। अहसान एहतेशाम हमारे सामने याचिकाकर्ता नहीं हैं। दिलचस्प बात यह है कि उन्होंने रिट याचिका के साथ खतौनी वर्ष 1362 फ़सली की प्रति दाखिल नहीं की। यदि उसने ऐसा किया होता तो राज्य इसकी सत्यता के बारे में प्रतिक्रिया देता। उन्होंने इसे 10.02.2025 को दायर अपने प्रत्युत्तर हलफनामे के साथ अनुलग्नक आरए-2 के रूप में दायर किया है। यह प्रमाणित प्रति नहीं है। संलग्न खतौनी की प्रति में उसका नाम दर्ज करने के लिए किसी आदेश को पारित करने का उल्लेख नहीं है, न ही ऐसा कोई आदेश उसके द्वारा संलग्न किया गया है। हम यह बता सकते हैं कि अस्मा हुसैन याचिकाकर्ता का उल्लेख आक्षेपित आदेश में नहीं किया गया है, जैसा कि विचाराधीन भूमि के संबंध में दर्ज किया गया है, हालांकि हित में उनके पूर्ववर्ती हिलाल अहमद का उल्लेख किया गया है। अस्मा हुसैन द्वारा अनुलग्नक आरए-2 के रूप में संलग्न खतौनी की फोटोकॉपी में किसी भी राजस्व प्राधिकरण के आदेश का उल्लेख नहीं है जिसके द्वारा उक्त दाखिल खारिज करने का निर्देश दिया गया था और न ही ऐसा कोई आदेश दायर किया गया है। इन परिस्थितियों में, यदि याचिकाकर्ता, अस्मा हुसैन चुनती है तो वह कानून के अनुसार आक्षेपित आदेशों को वापस लेने की भी मांग कर सकती है, जो यदि दायर की जाती है, तो उक्त उद्देश्य के लिए निर्धारित सीमा, यदि कोई हो, के आधार पर खारिज नहीं किया जाएगा, लेकिन, विचार किया जाएगा और गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया जाएगा या यदि वह चुनती है तो वह अपील या संशोधन में आदेशों को चुनौती दे सकती है, जैसा भी मामला

हो, जिसे परिसीमा के आधार पर भी खारिज नहीं किया जाएगा, बल्कि, कानून के अनुसार विचार किया जाएगा और निर्णय लिया जाएगा।

86. इस तरह की कार्यवाही के दायरे और प्रभाव के संबंध में हमारे द्वारा पहले से ही जो कुछ भी अवधारित किया गया है, उसे देखते हुए, उसके अधिकार, यदि उसके पास एक वैध स्वामित्व / हक्के मिल्कियत है और वह सही कब्जे में है, तो केवल दिनांक 14.08.2020 और 22.03.2021 के आदेशों के कारण हस्तक्षेपित नहीं किया जा सकता है।

87. कानून में, अधिनियम, 1901 की धारा 33/39 के तहत या संहिता, 2006 की धारा 38 के तहत ऐसे आदेशों को ऐसी भूमि के संबंध में किसी भी अधिकार, स्वामित्व / हक्के मिल्कियत या हित के किसी भी व्यक्ति को प्रदान करने या विभाजित करने के रूप में नहीं माना जा सकता है, यदि यह वैध दस्तावेजों या वैध कानूनी आधार पर आधारित है। जैसा कि रमेश दत्ता (उपरोक्त) के मामले में भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है, इस तरह की प्रविष्टि से स्वामित्व / हक्के मिल्कियत नहीं बनता है; उसके अभाव से इसे समाप्त नहीं किया जा सकता है। इस तरह के आदेश को किसी भी व्यक्ति के पक्ष में जारी किए गए बिक्री-प्रमाण पत्र को रद्द करने के रूप में भी नहीं माना जा सकता है, यदि वे वास्तविक हैं और कानून के अनुसार वैध नीलामी पर आधारित हैं।

88. इस संबंध में, श्री एम.ए. खान का तर्क कि उप-विभागीय मजिस्ट्रेट ने वास्तव में बिक्री प्रमाण पत्र को रद्द कर दिया है जो वह नहीं कर सकता था, तथ्यों और कानून की गलत धारणा पर आधारित एक तर्क है।

89. जहां तक रिट सी संख्या-661 वर्ष 2021 के याचिकाकर्ता का संबंध है, वह एक राज कुमारी चोपड़ा के माध्यम से दावा कर रहा है, उसे कभी भी प्लॉट संख्या-93 से संबंधित राजस्व अभिलेख में दर्ज नहीं किया गया था और न ही उसका नाम दिनांक 14.08.2020 और 22.03.2021 के आक्षेपित आदेश में शामिल है, इसलिए, यदि रिट सी संख्या-661 वर्ष 2021 का याचिकाकर्ता किसी भी अधिकार का दावा करता है, कुछ वैध स्वामित्व / हक्के मिल्कियत-विलेखों/दस्तावेजों के आधार पर ऐसी भूमि में स्वामित्व या हित, फिर, यह भी केवल 14.08.2020 और 22.03.2021 के आक्षेपित आदेशों से प्रभावित नहीं होगा और न ही यदि वह कब्जे में है तो ये आदेश उस पर प्रतिकूल प्रभाव डालेंगे। वह अधिनियम, 1901 की धारा 34(1) के तहत एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए भी स्वतंत्र है, साथ ही आक्षेपित आदेशों को वापस लेने या अपील या पुनरीक्षण का उपाय प्राप्त करने की मांग करती है, यदि ऐसा हो।

90. ये आदेश अपील या संशोधन के माध्यम से वापस लेने या चुनौती देने योग्य हैं जहां तथ्यात्मक मुद्दों को दूर किया जा सकता है, एक प्रक्रिया जिसे रिट क्षेत्राधिकार में नहीं किया जा सकता है।

91. कोई भी व्यक्ति जिसके पास वैध दस्तावेजों या किसी वैध कानूनी आधार के आधार पर स्वामित्व / हक्के मिल्कियत है, वह 14.08.2020 और 22.03.2021 के आक्षेपित आदेशों से प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं होगा। यदि कोई व्यक्ति ऐसे किसी व्यक्ति के स्वामित्व / हक्के मिल्कियत को चुनौती देना चाहता है, तो वह कानून के अनुसार ऐसा कर सकता है। हमारा आदेश भी इस संबंध में आड़े नहीं आएगा।

92. जहां तक याचिकाकर्ताओं द्वारा सुनवाई के अधिकार और इसके इनकार का संबंध है, हम इस संबंध में अधिनियम, 1901 की धारा 34(1) का उल्लेख कर सकते हैं जो इस प्रकार है:

"34(1) उत्तराधिकार या हस्तांतरण के अलावा उत्तराधिकार या हस्तांतरण द्वारा किसी भी भूमि का कब्जा प्राप्त करने वाला प्रत्येक व्यक्ति, जो पहले से ही धारा 33-ए के तहत दर्ज किया गया है, इस तरह के उत्तराधिकार या हस्तांतरण की सूचना तहसील के तहसीलदार को देगा जिसमें भूमि स्थित है।
इसी प्रकार का प्रावधान उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 33(1) और 34(1) में निहित है, जिसमें उत्तराधिकार या हस्तांतरण के आधार पर कब्जा प्राप्त करने वाले व्यक्ति द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है।

93. याचिकाकर्ताओं ने अधिनियम, 1901 की धारा 34(5) के तहत कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं की और न ही राजस्व अभिलेख में अपना नाम दर्ज कराया, सिवाय एक यानी अस्मा हुसैन, जैसा कि दावा किया गया है, जिसके मामले पर पहले ही चर्चा की जा चुकी है। उसके मामले में भी अभिलेख पर कोई आदेश नहीं है जो उसका नाम दर्ज करने के लिए पारित किया गया हो।

94. जहां तक अन्य याचिकाकर्ताओं का संबंध है, उन्हें अभिलेख नहीं किया जा रहा है और उन्होंने धारा 34 के तहत रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की है, उन्हें सुनने की कानूनी आवश्यकता अत्यधिक संदिग्ध है। इस संदर्भ में हम अधिनियम, 1901 की धारा 34(5) का उल्लेख कर सकते हैं जो इस प्रकार है:

"(5) कोई भी राजस्व न्यायालय इस प्रकार सफल होने वाले या अन्यथा कब्जा प्राप्त करने वाले व्यक्ति द्वारा किसी वाद या आवेदन पर तब तक विचार नहीं करेगा जब तक कि ऐसे व्यक्ति ने इस धारा द्वारा अपेक्षित रिपोर्ट नहीं कर दी है।
ख़ुलासा: - इस धारा के प्रयोजनों के लिए, 'हस्तांतरण' शब्द में शामिल हैं - (i) एक पारिवारिक समझौता जिसके द्वारा उस परिवार के एक या अधिक सदस्यों के नाम पर अधिकारों के अभिलेख में दर्ज होल्डिंग/जोत या होल्डिंग/जोत का हिस्सा किसी अन्य या अन्य सदस्यों से संबंधित घोषित किया जाता है; या (ii) उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 161 के तहत जोत या उसके हिस्से का आदान-प्रदान।

95. इसी तर्ज पर संहिता, 2006 की धारा 37 है जो इस प्रकार है:

अनधिकृत

"37. कतिपय वादों के विरुद्ध रोक - उत्तराधिकार या अंतरण द्वारा किसी भूमि का कब्जा प्राप्त करने वाले किसी व्यक्ति के कहने पर कोई वाद या अन्य कार्यवाही किसी राजस्व न्यायालय में तब तक नहीं होगी, जब तक कि वह धारा 33 या धारा 34, जैसा भी मामला हो, के अधीन कोई रिपोर्ट नहीं कर लेता।

96. इस संदर्भ में हम बता सकते हैं कि कृष्ण कुमार कालरा की मृत्यु हो चुकी है। उनकी पत्नी एन मैरी कालरा ने 14.08.2020 के आदेश को चुनौती देते हुए एक रिट याचिका दायर की और इस आधार पर सफल रही कि आदेश (योग्यता के आधार पर नहीं), (वरन) एक मृत व्यक्ति के खिलाफ पारित किया गया था। रिमांड के बाद, उसने उप मंडल मजिस्ट्रेट की कार्यवाही में भाग नहीं लिया, जिसके परिणामस्वरूप 22.03.2021 का आदेश आया, जिसे उसने चुनौती नहीं देने का फैसला किया है। रिट याचिका में हलफनामे में उनके बेटे अनिल कालरा ने शपथ ली थी। उन्होंने उक्त आदेश को चुनौती नहीं दी है और न ही कृष्ण कुमार कालरा के किसी अन्य कानूनी उत्तराधिकारी को चुनौती दी है।

97. अब्बास अंसारी, जो प्लॉट संख्या-93 के एक हिस्से के संबंध में कृष्ण कुमार कालरा के हित में उत्तराधिकारी होने का दावा करते हैं, ने अपनी रिट याचिका दायर करके दिनांक 14.08.2020 और 22.03.2021 के आदेश को चुनौती दी, लेकिन केवल वर्ष 2023 में यानी कार्रवाई के कारण के लगभग 3 वर्षों के बाद, यदि कोई हो, जो अपने आप में काफी पेचीदा है। उनके भाई जो प्रतिपक्षी संख्या-6 हैं, ने भी उक्त आदेशों को चुनौती देते हुए रिट याचिका दायर करने की जहमत नहीं उठाई। हिलाल अहमद और अता करीम ने अपनी संपत्ति बेच दी थी। उनके उत्तराधिकारियों ने अधिनियम, 1901 की धारा 34(1) के तहत या संहिता, 2006 के तहत संबंधित प्रावधानों के तहत कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं की।

98. यदि याचिकाकर्तागण 1901 के अधिनियम की धारा 34(1) के अधीन कोई प्रतिवेदन प्रस्तुत करना चाहते हैं तथा दिनांक 14.08.2020 एवं 22.03.2021 के आदेशों को, हमारे समक्ष उठाए गए आधारों अथवा ऐसे अन्य आधारों पर, जिनकी विधि द्वारा अनुमति हो, वापस लिए जाने (रिकॉल किए जाने) की प्रार्थना करना चाहते हैं, तो वे ऐसा करने के लिए स्वतंत्र होंगे। ऐसी स्थिति में उपजिलाधिकारी उनके आवेदन/दावे पर परिसीमा के आधार पर उसे निरस्त किए बिना, वस्तुनिष्ठ, स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं गुण-दोष के आधार पर विचार करने हेतु बाध्य होंगे। याचिकाकर्तागण, यथास्थिति, अपील अथवा पुनरीक्षण के उपाय का भी अवलम्बन कर सकते हैं, जो विधि के अनुसार उपलब्ध वैधानिक उपचार हैं।

99. जहां तक इस दलील का संबंध है कि राजस्व अभिलेख में उनके नाम दर्ज करने की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि भूमि पर इमारतें बन गई थीं जो अब एक नगर पालिका का हिस्सा थी, हम पहले ही इस मुद्दे से निपट चुके हैं और याचिकाकर्ता इस आधार पर भी आक्षेपित आदेशों को वापस लेने की मांग कर सकते हैं, जहां कानूनी प्रावधानों के आलोक में तथ्यात्मक जांच की जा सकती है, जैसा कि पहले ही चर्चा की जा चुकी है।

100. हम पहले ही मान चुके हैं कि इस तरह के आदेश याचिकाकर्ताओं को प्रश्न में संपत्ति में किसी भी अधिकार स्वामित्व / हक्के मिल्कियत या हित के विनिवेश नहीं कर सकते हैं, यदि उनके पास वैध है। केवल तथ्य यह है कि कुछ याचिकाकर्ताओं के हित में पूर्ववर्तियों का नाम हटा दिया गया है, उनके नुकसान के लिए अपने आप में नहीं होगा, यदि उनके पास वैध दस्तावेजों के आधार पर एक वैध स्वामित्व / हक्के मिल्कियत है और ऐसे वैध स्वामित्व / हक्के मिल्कियत के आधार पर कब्जे में हैं। यदि वे कब्जे में नहीं हैं, तो कानून के अनुसार कब्जे का दावा करने का विकल्प उनके लिए खुला है।

101. यदि याचिकाकर्ता ऐसा चुनते हैं, तो वे अपने अधिकारों का दावा कर सकते हैं, इस संदर्भ में अधिनियम, 1950 और अधिनियम, 1954 के तहत अधिसूचनाओं और घोषणाओं के साथ-साथ बिक्री-प्रमाण पत्र स्थापित कर सकते हैं और साबित कर सकते हैं, या तो उप-विभागीय मजिस्ट्रेट के समक्ष अपने आदेशों को वापस लेने की मांग करके या सक्षम न्यायालय के समक्ष नियमित कार्यवाही में, यदि आवश्यक हो, के रूप में, उनके द्वारा भरोसा किए गए दस्तावेजों की सत्यता और अधिनियम, 1954 की धारा 12 के तहत घोषणा के रूप में उन पर आधारित तथ्य के प्रश्नों आदि के लिए तथ्यात्मक जांच और साक्ष्य जोड़ने की आवश्यकता हो सकती है जिसके लिए रिट क्षेत्राधिकार उपयुक्त नहीं है।

102. महाधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया था कि याचिकाकर्ताओं द्वारा विचाराधीन भूमि के संबंध में स्वामित्व का दावा करने के लिए जिन दस्तावेजों पर भरोसा किया जा रहा है, वे जाली और मनगढ़ंत हैं और उनमें से एक के खिलाफ जो अब्बास अंसारी हैं, आपराधिक कार्यवाही भी शुरू की गई है। इस संबंध में, याचिकाकर्ताओं में से एक अब्बास अंसारी के खिलाफ आरोप-पत्र दायर करने से दस्तावेज धोखाधड़ी या जाली साबित नहीं होंगे। धोखाधड़ी और जालसाजी तथ्य के प्रश्न हैं जिन पर सुनवाई के अधिकार के बाद निर्णय लिया जाना चाहिए और साबित किया जाना चाहिए, जब तक कि निश्चित रूप से, दस्तावेज इतने स्पष्ट रूप से अस्वीकार्य न हों ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि वे वास्तविक दस्तावेज नहीं हैं, जिसके बारे में हमारे सामने कोई सामग्री नहीं रखी गई है। क्या कृष्ण कुमार कालरा के पक्ष में जारी किया गया बिक्री प्रमाण पत्र जाली था या कपटपूर्ण था, यह 14 अगस्त 2020 के आक्षेपित आदेशों में दर्ज नहीं किया गया है और न ही बाद के आदेश दिनांक 22.03.2021 और न ही अन्य बिक्री-प्रमाणपत्रों या कर्मों के संबंध में ऐसा कोई निष्कर्ष दर्ज किया गया है, इसलिए, जब उप विभागीय मजिस्ट्रेट ने स्वयं ऐसी कोई खोज दर्ज नहीं की है, यह मानते हुए कि वह सुधार कार्यवाही की बाधाओं के भीतर ऐसा कर सकते हैं, यह किसी का भी अनुमान है कि हम भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत ऐसा कहां तक कर सकते हैं। हम इन कार्यवाहियों में याचिकाकर्ताओं द्वारा भरोसा किए जा रहे दस्तावेजों की वास्तविकता या अन्यथा पर विचार नहीं कर सकते हैं और न ही निर्णय ले सकते हैं और न ही हम उनकी सत्यता की पुष्टि कर सकते हैं जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है।

103. बिक्री प्रमाण पत्र, जो दायर किए गए हैं, उनकी सत्यता की पुष्टि इस न्यायालय द्वारा रिट क्षेत्राधिकार में नहीं की जा सकती है, जिसका अर्थ यह नहीं है कि याचिकाकर्ता उक्त बिक्री प्रमाणपत्रों और यहां उठाई गई दलीलों के आधार पर अधिकारों और हितों का दावा नहीं कर सकते हैं, बल्कि, केवल यह कहने के लिए कि ऐसे

दस्तावेजों के आधार पर स्वामित्व / हक्के मिल्कियत, अधिकारों और हितों के ऐसे जटिल प्रश्नों का निर्णय भारत के संविधान के 226 के तहत नहीं किया जा सकता है।

104. तथ्य यह है कि अधिनियम, 1950 और अधिनियम, 1954 को अधिनियम, 2005 द्वारा निरस्त कर दिया गया था और इस निरसन अधिनियम वर्ष 2005 को 2017 में निरस्त कर दिया गया था, इसका कोई विशेष महत्व नहीं है क्योंकि इसे कानूनी भाषा में 'स्प्रिंग क्लीनिंग' कहा जाता है, जैसा कि जेठानंद बेताब बनाम दिल्ली राज्य में रिपोर्ट किए गए मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया था।

105. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हमें रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए दिनांक 14.08.2020 और 22.03.2021 के इन आदेशों में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखता है। याचिकाकर्ता ऊपर उल्लिखित उपायों का लाभ उठाने के लिए स्वतंत्र हैं।

106. उपर्युक्त समस्त कारणों से हम इस तर्क पर विचार करना आवश्यक नहीं समझते कि आक्षेपित आदेश ग्राम सभा के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन पर अत्यन्त शीघ्रता एवं हड़बड़ी में पारित किए गए थे, विशेषकर तब जबकि किसी प्रकार की व्यक्तिगत दुर्भावना का आरोप नहीं लगाया गया है, न ही आदेश पारित करने वाले अधिकारी को नामजद पक्षकार बनाया गया है। इसके अतिरिक्त, हम पूर्व में ही याचिकाकर्ताओं को उक्त आदेशों को वापस लिए जाने (रिकॉल) हेतु आवेदन प्रस्तुत करने अथवा उनके विरुद्ध अपील या पुनरीक्षण के माध्यम से चुनौती देने की स्वतंत्रता प्रदान कर चुके हैं।

107. हालांकि, हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि यदि केवल दिनांक 14.08.2020 और 22.03.2021 के पूर्वोक्त आदेशों के आधार पर किसी अन्य मूर्ति के तहत कोई अन्य कार्रवाई की गई है, जिसमें उन्हें बिना किसी स्वतंत्र विचार के प्लॉट संख्या-93 के संबंध में अधिकार, स्वामित्व / हक्के मिल्कियत और हित का निर्णय लिया गया है, तो इस हद तक ऐसी कार्रवाई, कानून की नजर में अमान्य होगी।

108. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, लेकिन, स्वामित्व / हक्के मिल्कियत, कब्जे के अधिकार आदि से जुड़े प्रश्नों पर दिनांक 14.08.2020 और 22.03.2021 के आदेशों के प्रभाव और याचिकाकर्ताओं को दी गई स्वतंत्रता के संबंध में हमारे द्वारा जो कुछ भी कहा गया है, उसके अधीन, हम भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने विवेकाधीन और असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए ऊपर उल्लिखित आदेशों में हस्तक्षेप करने के इच्छुक नहीं हैं। हालांकि, हम एक बार फिर यह स्पष्ट करते हैं कि उक्त आदेश अपने आप में प्लॉट संख्या-93 के मालिक, कब्जे के अधिकार से जुड़े किसी भी प्रश्न पर निर्णय लेने के बराबर नहीं होंगे और न ही यह कि संपत्ति एक खाली संपत्ति है/थी। उक्त भूखंड या उसके किसी भी हिस्से के संबंध में स्वामित्व या कब्जे का दावा करने वाला कोई भी व्यक्ति कानून के अनुसार सक्षम न्यायालय या फोरम के समक्ष नियमित कार्यवाही शुरू करके ऐसा कर सकता है, जिसमें ऐसे मुद्दों पर विचार किया जा सकता है और निर्णय लिया जा सकता है। इस आशय का समर्थन उक्त भूखंड से संबंधित संबंधित खेवटों और खतौनियों में किया जाएगा। कोई

भी आपराधिक कार्यवाही जो किसी भी याचिकाकर्ता के खिलाफ उनके द्वारा भरोसा किए जा रहे दस्तावेजों आदि के संबंध में शुरू की गई हो, इस निर्णय से अप्रभावित रहेगी।

<u>अब्बास अंसारी के मामले में राहत संख्या-IV</u>

109. अब्बास अंसारी की रिट याचिका में प्रतिपक्षी पक्षों को बेदखल न करने और विचाराधीन संपत्ति पर उसके शांतिपूर्ण कब्जे और कब्जे में हस्तक्षेप न करने के निर्देश के रूप में भी राहत मांगी गई है। इस संदर्भ में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि न तो अब्बास अंसारी और न ही उनके भाई उमर अंसारी, जो अपनी रिट याचिका में प्रतिपक्षी संख्या-6 हैं, राजस्व अभिलेख में दर्ज नहीं हैं। याचिकाकर्ता - अब्बास अंसारी द्वारा दायर पूरी रिट याचिका में एक भी दलील नहीं है जो हमें प्रथम दृष्टया यह राय देने के लिए राजी कर सके कि 14.08.2020 के आक्षेपित आदेश के पारित होने की तारीख को या रिट याचिका दायर करने की तारीख को उनके पास भूमि/घर था।

110. उक्त याचिकाकर्ता द्वारा कोई दस्तावेज दायर नहीं किया गया है जो यह दिखा सके कि उसका नाम नगरपालिका अभिलेख (यदि राजस्व अभिलेख नहीं है) में विचाराधीन भवन के संबंध में बदल दिया गया है और उसने अपने नाम पर करों का भुगतान किया हो सकता है। यह दिखाने के लिए कोई बिजली बिल या कोई अन्य दस्तावेज नहीं है कि उक्त भूमि/भवन पर उसका कब्जा है या उसका भाई कब्जे में था।

111. बेशक, वह दावा करता है कि उसकी दादी राबिया बेगम के पास स्वामित्व / हक्के मिल्कियत था और वह भी कब्जे में थी और वह नगरपालिका अभिलेख में दर्ज थी और नगरपालिका करों का भुगतान कर रही थी, लेकिन, अभिलेख पर इस संबंध में एकमात्र नगरपालिका कर रसीद वर्ष 2014 है। 2018 में उनकी मृत्यु हो गई। यह दावा किया जाता है कि इसके बाद भी नगरपालिका करों का भुगतान किया गया है, लेकिन कोई रसीद संलग्न नहीं की गई है।

112. यह सच है कि अब्बास अंसारी ने उस पर मौजूद भूमि/भवन के संबंध में स्वामित्व का दावा किया है, जिसे पंजीकृत उपहार-विलेख के आधार पर 27.08.2020 को ध्वस्त कर दिया गया है, लेकिन, जहां तक भूमि/भवन पर उनके कब्जे का संबंध है, अपेक्षित दलीलें और दस्तावेज अनुपस्थित हैं। 11.02.2025 को उनके द्वारा दायर प्रत्युत्तर हलफनामे में हमने कुछ प्रश्न पूछे थे और 15/16.01.2025 और 04.02.2025 को कुछ आदेश पारित किए थे, बिना किसी सबूत के कब्जे में होने का एक सरसरी दावा किया गया है।

113. उनकी याचिका के प्रस्तर-42 में विध्वंस होने का एक सरसरी संदर्भ है। सुनवाई के दौरान, हमें सूचित किया गया कि इस तरह का विध्वंस 11.08.2020 के एक आदेश के अनुसरण में 27.08.2020 को हुआ था। हैरानी की बात यह है कि इस कार्रवाई को इस रिट याचिका में चुनौती नहीं दी गई थी, जो दिनांक 11.08.2020 के आदेश पारित होने के तीन साल बाद यानी 11.08.2023 को दायर की गई थी। यहां तक कि अब्बास अंसारी के भाई उमर अंसारी, जो भी इसी तरह के अधिकारों का दावा करते हैं, ने भी ऐसी कोई याचिका दायर नहीं की

है। यदि अब्बास अंसारी या उनके भाई और/या उनके कब्जे में भूमि/भवन जो कुछ भी मौजूद था और उक्त भूमि/भवन को ध्वस्त किया जा रहा था, तो, भले ही वे वर्ष 2020 में किसी कारण से इसे चुनौती नहीं दे सके, यह मानते हुए, कि उन्होंने 11.08.2023 को यह याचिका दायर करते समय ऐसा क्यों नहीं किया, इसका कोई कारण नहीं है। इस संबंध में कोई राहत नहीं मांगी गई है और न ही इस बारे में कोई दलील दी गई है कि विध्वंस कब हुआ, क्या उन्हें कोई नोटिस जारी किया गया था या नहीं, जिससे यह गंभीर संदेह पैदा होता है कि क्या वे वास्तव में कब्जे में थे या नहीं, विशेष रूप से रिट याचिका में किसी भी दलील के अभाव में और हाउस टैक्स असेसमेंट के रूप में दस्तावेजी सबूत की अनुपस्थिति में, नगरपालिका कर, बिजली बिल, आदि। इस बात से कोई राहत नहीं मांगी गई है कि उन्हें वापस कब्जे में रखा जाए।

114. रिट याचिका में संशोधन हेतु एक प्रार्थना-पत्र दिनांक 04.02.2025 को प्रस्तुत किया गया था, जिसे उसी दिन विचारार्थ लिया गया, जिसमें प्रथम बार विध्वंस की कार्रवाई को, जो वास्तव में अगस्त, 2020 में सम्पन्न हुई थी, लगभग साढ़े चार वर्ष के उपरांत, यदि कोई कारण-कार्रवाई उत्पन्न हुई हो, तो उसे चुनौती दी गई थी। श्री एम.ए. खान, वरिष्ठ अधिवक्ता, जो अब्बास अंसारी की ओर से उपस्थित थे, ने उक्त प्रार्थना-पत्र को यह स्वतंत्रता लेते हुए वापस ले लिया कि वे उक्त कार्रवाई को चुनौती देने हेतु एक नवीन रिट याचिका दायर कर सकेंगे। हमें यह सूचित नहीं किया गया है कि हमारे निर्णय को सुरक्षित रखने तक ऐसी कोई रिट याचिका वास्तव में दायर की गई है।

115. इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि लखनऊ विकास प्राधिकरण की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने सुनवाई के दौरान हमें सूचित किया कि याचिकाकर्ता द्वारा दावा की गई भूमि का कुल क्षेत्रफल 1114.49 वर्ग मीटर है तथा उसमें स्थित भवन 800 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में विद्यमान था। उक्त भवन को ध्वस्त कर दिया गया है तथा राज्य प्राधिकरणों द्वारा उस स्थान पर प्रधानमंत्री आवास योजना के अंतर्गत एक अन्य भवन का निर्माण कर दिया गया है, जिस पर उनका कब्जा है। नवीन निर्मित भवन के फोटोग्राफ भी अभिलेख पर संलग्न किए गए हैं। यद्यपि लखनऊ विकास प्राधिकरण के अधिवक्ता का यह कथन है कि उक्त भवन का निर्माण पूर्ण हो चुका है, तथापि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अब्बास अंसारी के पक्ष में एक अंतरिम आदेश पारित है, जिसके अनुसार आगे कोई निर्माण कार्य नहीं किया जाएगा। हम इस पर अधिक टिप्पणी नहीं करते, क्योंकि विध्वंस अथवा नए भवन का निर्माण इस रिट याचिका का विषय-वस्तु नहीं है।

116. हमारे पास ऐसा पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं है, जिसके आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकें कि क्या याचिकाकर्ता दिनांक 27.08.2020 को भवन के विध्वंस के पश्चात भी उस भूमि के किसी भाग पर, जिस पर वह अपना अधिकार दावा करता है, अभी भी कब्जे में है, और यदि हाँ, तो किस भाग पर; अथवा क्या वह ऐसे विध्वंस से पूर्व या याचिका दाखिल करने से पहले किसी भी समय उस पर कब्जे में था। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, विध्वंस के संबंध में कोई राहत याचिका में प्रार्थित नहीं की गई है।

117. इसी संदर्भ में, हम यह बता सकते हैं कि कृष्ण कुमार कालरा की पत्नी श्रीमती एन मैरी कालरा ने भी 14.08.2020 के आदेश संख्या-20098 (एम.एस.) वर्ष 2020 को चुनौती देते हुए एक रिट याचिका दायर की थी, जिसे एकल न्यायाधीश ने 09.11.2020 को अनुमति दी थी क्योंकि यह एक मृत व्यक्ति के खिलाफ पारित किया गया था और मामले को वापस भेज दिया गया था। एकल न्यायाधीश ने इसमें शामिल मुद्दों के गुण-दोष पर विचार नहीं किया। रिमांड के बाद, कार्यवाही नए सिरे से अवधारित की गई, लेकिन, श्रीमती एन मैरी कालरा ने कभी भी उक्त कार्यवाही में भाग नहीं लिया और अंततः 14.08.2020 के पहले के आदेश को उप मंडल मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 22.03.2021 के अपने आदेश के माध्यम से दोहराया गया, जिसे श्रीमती एन मैरी कालरा ने चुनौती नहीं दी है। याचिकाकर्ता - अब्बास अंसारी और उनके भाई उमर अंसारी इस तथ्य के बावजूद कि वे उक्त संपत्ति के संबंध में एक पंजीकृत उपहार-विलेख होने का दावा करते हैं, चुप और बेकार रहे जो कि पेचीदा है। दिनांक 22.03.2021 के आदेश के पारित होने के दो साल से अधिक समय के बाद ही अब्बास अंसारी ने अपने भाई को प्रतिपक्षी संख्या-6 के रूप में शामिल करते हुए अपनी रिट याचिका दायर की, हालांकि दोनों एक ही उपहार विलेख के माध्यम से दावा करते हैं।

118. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हम श्री अब्बास अंसारी द्वारा प्रार्थना की गई राहत संख्या-IV प्रदान करने में असमर्थ हैं। हम यह स्पष्ट करते हैं कि इस याचिकाकर्ता के कब्जे के सवाल पर हमारी कोई भी टिप्पणी उसके रास्ते में नहीं आएगी यदि वह इसे अलग से दावा करता है क्योंकि ये टिप्पणियां केवल इन कार्यवाहियों के संदर्भ में हैं।

<u>कारण बताओ नोटिस दिनांक 18.11.2020 और</u>

<u>भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत हस्तक्षेप</u>

119. अब लखनऊ विकास प्राधिकरण द्वारा 1973 में शहरी नियोजन और विकास की धारा 15(9) के तहत जारी दिनांक 18.11.2020 के कारण बताओ नोटिस की वैधता पर आते हैं, उसी के अवलोकन पर, हम उसमें एक पुनरावृत्ति पाते हैं कि पहले संदर्भित तीन रिट याचिकाओं के याचिकाकर्ताओं द्वारा स्वीकृत किए जाने के लिए एक नक्शा प्रस्तुत किया गया था (रिट सी संख्या-681 वर्ष 2021, रिट सी संख्या-684 वर्ष 2021 और रिट सी संख्या-687 वर्ष 2021) के साथ उन बिक्री विलेखों को संलग्न करते हैं जिनके द्वारा उन्होंने प्रश्न में भूमि के संबंध में स्वामित्व प्राप्त करने का दावा किया था और उक्त मानचित्र को नियमों के अनुसार और देय शुल्क के भुगतान पर मंजूरी दी गई थी। तदनुसार, परमिट के माध्यम से नक्शे जारी किए गए थे। इसके बाद नोटिस में कहा गया है कि जिला मजिस्ट्रेट ने 16.09.2020 के पत्र के माध्यम से एक जांच के बारे में सूचित किया, जो उप मंडल मजिस्ट्रेट, सदर के माध्यम से की गई थी। उप संभागीय मजिस्ट्रेट, सदर ने भी दिनांक 16.09.2020 के अपने पत्र के माध्यम से प्राधिकरण को सूचित किया कि गांव जियामऊ परगना, तहसील और जिला लखनऊ में स्थित उपरोक्त प्लॉट संख्या-93 राजस्व बोर्ड के रजिस्टर संख्या-10 में निकासी संपत्ति के रूप में पंजीकृत है। तदनुसार, एक निष्कर्ष निकाला गया था कि जिला मजिस्ट्रेट और उप विभागीय मजिस्ट्रेट, सदर के पत्र के अनुसार याचिकाकर्ताओं के पास उस भूमि के संबंध में स्वामित्व नहीं था, जिसके लिए उन्होंने नक्शा स्वीकृत करवाया था, इसलिए, प्राधिकरण को ऐसा प्रतीत हुआ कि याचिकाकर्ताओं ने धोखाधड़ी से और गलत

बयानी के आधार पर नक्शा स्वीकृत करवाया था। नोटिस तब मंजूरी की शर्त संख्या एक और उसमें पुनरावृत्ति का उल्लेख करते हैं कि मंजूरी की शर्तों के उल्लंघन की स्थिति में, यह स्वचालित रूप से रद्द हो जाएगा। तदनुसार, नोटिस में कहा गया है कि मंजूरी को रद्द करना आवश्यक हो गया है और एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया है, जिसमें याचिकाकर्ताओं से कहा गया है कि वे अपना पक्ष में पेश करें कि उनके पक्ष में स्वीकृत नक्शे को रद्द क्यों नहीं किया जाए। इन नोटिसों को याचिकाकर्ताओं ने चुनौती दी है।

120. इन तीन रिट याचिकाओं में अंतरिम आदेश काम कर रहे हैं जिनके कारण उक्त नोटिसों पर कार्रवाई नहीं की गई है।

121. अधिनियम, 1973 की धारा 15(9) जिसके तहत नोटिस जारी किए गए हैं, निम्नानुसार हैं:
"(9) यदि उपधारा (3) के तहत अनुमति दिए जाने के बाद किसी भी समय, उपाध्यक्ष संतुष्ट है कि ऐसी अनुमति किसी भी ठोस गलत बयानी या किसी कपटपूर्ण बयान या प्रस्तुत की गई जानकारी के परिणामस्वरूप दी गई थी, तो वह लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से ऐसी अनुमति को रद्द कर सकता है और उसके तहत किया गया कोई भी कार्य ऐसी अनुमति के बिना किया गया माना जाएगा)। बशर्ते कि संबंधित व्यक्ति या निकाय को सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना अनुमति रद्द नहीं की जाएगी।

122. यहां ऊपर उद्धृत धारा 15 की उप-धारा (9) को पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि उक्त प्रावधान के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए कुछ पूर्वापेक्षाएं हैं, अर्थात्, धारा 15 की उप-धारा (3) के तहत दी गई अनुमति प्राप्त करने के लिए ठोस गलत बयानी या कोई कपटपूर्ण बयान या जानकारी प्रस्तुत की जानी चाहिए। धोखाधड़ी और गलत बयानी ऐसे शब्द हैं जिनका कानूनी भाषा में एक निश्चित अर्थ है। ये ऐसे शब्द नहीं हैं जिनका उपयोग लापरवाही से किया जाना चाहिए। गलत बयानी के अर्थ को समझने के लिए, हम भारतीय अनुबंध अधिनियम, 1872 की धारा 18 का मार्गदर्शन ले सकते हैं। एस.पी. चेंगलवर्या नायडू (मृत) बनाम जगन्नाथ (मृत) एलआर और अन्य में धोखाधड़ी को दूसरेका अनुचित लाभ उठाकर कुछ हासिल करने के डिजाइन के साथ जानबूझकर धोखे के कार्य के रूप में समझाया गया था। यह दूसरे के नुकसान से लाभ उठाने के लिए एक धोखा है। यह लाभ पाने के उद्देश्य से धोखा है।

123. आक्षेपित कारण बताओ नोटिसों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उक्त नोटिस उन प्रतिवेदनों दिनांक 16.09.2020, जिनका उनमें उल्लेख किया गया है, से निकाले गए निष्कर्ष के आधार पर जारी किए गए हैं कि याचिकाकर्ताओं के पास विवादित भूमि के संबंध में स्वामित्व अधिकार नहीं था, किन्तु उन्होंने मिथ्या अभ्यावेदन प्रस्तुत कर तथा कपटपूर्ण सूचना या कथन देकर यह दर्शाया कि उनके पास उक्त भूमि का स्वामित्व अधिकार है, और इस प्रकार उन्होंने धारा 15 की उपधारा (3) के अधीन अनुमति प्राप्त कर ली। यह विवाद में नहीं है कि ऐसी अनुमति मांगते समय, जो दिनांक 14.08.2020 और 22.03.2021 के आक्षेपित आदेश पारित होने से पहले थी, याचिकाकर्ताओं ने उन बिक्री विलेखों को संलग्न किया था जिनके द्वारा उन्होंने भूमि/भवन खरीदा था, जिन्हें किसी भी न्यायालय द्वारा रद्द नहीं किया गया है और न ही यह किसी का मामला है कि

वे जाली या मनगढ़ंत हैं। कम से कम किसी न्यायालय आदि द्वारा ऐसा नहीं किया गया है। कारण बताओ नोटिस में संदर्भित दिनांक 16.09.2020 के पत्र में केवल यह दोहराया गया है कि उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा जांच में विचाराधीन भूमि/संपत्ति को एक खाली संपत्ति के रूप में पाया गया है, जो कि 14.08.2020 के आदेश के परिणामस्वरूप किए गए अभ्यास के संदर्भ के अलावा और कुछ नहीं है, जिसके कानूनी महत्व पर हम पहले ही विचार कर चुके हैं। कारण बताओ नोटिस में धारा 15 की उप-धारा (9) को आकर्षित करने के लिए किए गए किसी भी कपटपूर्ण बयान या प्रस्तुत की गई जानकारी या ठोस गलत बयानी के बारे में कोई स्वतंत्र विचार नहीं किया गया है, इसके संदर्भ में उपाध्यक्ष, लखनऊ विकास प्राधिकरण द्वारा किए गए निष्कर्ष के बारे में क्या कहा जाए। कारण बताओ नोटिस पूरी तरह से उप-मंडल मजिस्ट्रेट द्वारा की गई कवायद पर आधारित है, जिसकी परिणति दिनांक 14.08.2020 के आदेश में हुई है। हम यह देखने के लिए बाध्य हैं कि कारण बताओ नोटिस एक गलत तथ्यात्मक और कानूनी आधार पर आगे बढ़ता है कि अधिनियम 1901 की धारा 33 सपठित 39 या राजस्व अभिलेख में सुधार के लिए यूपी राजस्व संहिता, 2006 के संबंधित प्रावधानों के तहत कार्यवाही में, उप-विभागीय मजिस्ट्रेट के पास किसी भी भूमि या संपत्ति के संबंध में स्वामित्व / हक्के मिल्कियत के प्रश्न पर निर्णय लेने या इसे एक निकासी संपत्ति के रूप में घोषित करने की शक्तियां हैं। दिनांक 14.08.2020 के आदेश में याचिकाकर्ताओं द्वारा स्वामित्व के अपने दावे के समर्थन में बिक्री प्रमाण पत्र और बिक्री विलेखों पर भरोसा किए जाने पर कोई विचार नहीं किया गया है, यह निष्कर्ष तो बिल्कुल भी नहीं है कि उक्त दस्तावेज जाली और मनगढ़ंत हैं। दिनांक 14.08.2020 के आदेश में राजस्व अभिलेख में प्रविष्टियों को केवल 'फ़र्ज़ी' के रूप में संदर्भित किया गया है क्योंकि कृष्ण कुमार कालरा और 9 अन्य व्यक्तियों के नाम दर्ज करने के लिए कोई आदेश नहीं दिया गया था और 1362 फ़सली में इसे कस्टोडियन इवैक्यूई संपत्ति के कब्जे के रूप में दर्ज किया गया था, लेकिन याचिकाकर्ताओं का दावा है कि इन व्यक्तियों के पास उनके पक्ष में बिक्री प्रमाण पत्र थे, जिसके आधार पर बिक्री-विलेख, आदि को उनके द्वारा निष्पादित किया गया था, एक ऐसा पहलू जिस पर उप मंडल मजिस्ट्रेट द्वारा विचार नहीं किया गया है।

124. जब तक याचिकाकर्ताओं द्वारा भरोसा किए गए बिक्री-प्रमाण पत्र की सत्यता की जांच नहीं की जाती है और यह साबित नहीं हो जाता है कि इस तरह के बिक्री-प्रमाण पत्र या तो मनगढ़ंत, जाली या अन्यथा कानून को खारिज कर रहे हैं और जब तक कि विक्रय-विलेखों आदि में समाप्त होने वाले बाद के लेनदेन को स्पष्ट रूप से अवैध, कपटपूर्ण या गलत बयानी के आधार पर नहीं माना जाता है, अधिनियम की धारा 15(9) के तहत एक कार्रवाई, 1973 की शुरुआत नहीं की जा सकी। उप मंडल मजिस्ट्रेट ने यह मानते हुए ऐसा कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है, और चूंकि आक्षेपित नोटिस केवल उनके द्वारा किए गए अभ्यास और उनके निर्णय पर आधारित हैं, इसलिए, परिणामस्वरूप नोटिस तथ्यों और कानून में खराब हैं।

125. अधिनियम 1901 की धारा 33 सपठित 39 आदि के तहत कार्यवाही के दायरे के संदर्भ में पहले से की गई चर्चा को 14.08.2020 के आदेश या उक्त प्रावधानों के तहत पारित किसी अन्य रिपोर्ट या आदेश के रूप में विचार करते हुए, प्रश्न में संपत्ति के संबंध में स्वामित्व / हक्के मिल्कियत के प्रश्न पर निर्णय के रूप में

नहीं माना जा सकता है, इसलिए, आक्षेपित कारण बताओ नोटिसों का तथ्यात्मक और कानूनी आधार इस विषय पर ऐसी कार्यवाही और कानून के दायरे के बारे में एक गलत धारणा है।

126. धारा 15(9) के तहत कार्यवाही केवल तभी शुरू की जा सकती है जब क्षेत्राधिकार संबंधी पूर्वापेक्षाएं जो कि ठोस गलत बयानी या प्रस्तुत की गई हैं, प्रथम दृष्टया, जो आक्षेपित कारण बताओ नोटिस में वांछित हैं।

127. हमने पहले ही उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा पारित जांच/निर्णय/आदेश के दायरे को स्पष्ट कर दिया है, जिसे दिनांक 16.09.2020 के पत्र में संदर्भित किया गया है, इसलिए, यहां पहले से ही जो कहा जा चुका है, उसे ध्यान में रखते हुए हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि धारा 15(9) के तहत नोटिस पूरी तरह से और पूरी तरह से दिनांक 14.08.2020 के आदेश और दिनांक 16.09.2020 के पत्र पर आधारित हैं।ऊपर उल्लिखित क्षेत्राधिकार संबंधी पूर्वापेक्षाओं को पूरा नहीं करते हैं और इन नोटिसों को रद्द किया जा सकता है।

128. हम तदनुसार रिट सी संख्या-661 वर्ष 2021, रिट सी संख्या-684 वर्ष 2021 और रिट सी संख्या-687 वर्ष 2021 में दिनांक 18.11.2020 के इन नोटिसों को **रद्द/अपास्त** करते हैं। हालांकि, यह प्राधिकरण के लिए यहां ऊपर की गई चर्चा के आलोक में याचिकाकर्ताओं के खिलाफ, यदि उनके खिलाफ कार्रवाई करने का कोई कारण है, नए सिरे से कार्रवाई करने का विकल्प खुला होगा।

129. प्राधिकरण के अधिवक्ता श्री रत्नेश चंद्र द्वारा एक आपत्ति उठाई गई थी कि ये केवल नोटिस हैं, इसलिए, याचिकाकर्ता को इसका जवाब देने के लिए कहा जाना चाहिए और उनके द्वारा जो भी दलीलें उठाई जाएंगी, उन पर उपाध्यक्ष, लखनऊ विकास प्राधिकरण द्वारा विचार किया जाएगा। हम उन कारणों से इस सबमिशन से सहमत नहीं हैं जो पहले की गई चर्चा से स्पष्ट हैं। जब क्षेत्राधिकार संबंधी पूर्वापेक्षाएँ स्वयं संतुष्ट नहीं हैं, तो हमें याचिकाकर्ताओं को अधिनियम 1973 की धारा 15(9) के तहत उन्हें जारी किए गए स्पष्ट रूप से अवैध नोटिसों के आधार पर कार्यवाही क्यों करनी चाहिए। इसलिए, हम इस सबमिशन को अस्वीकार करते हैं, जो दी गई स्वतंत्रता के अधीन है।

130. रिट सी संख्या 684 वर्ष 2021, रिट सी संख्या 661 वर्ष 2021 तथा रिट सी संख्या 687 वर्ष 2021 को उपर्युक्त वर्णित शर्तों के अनुसार **आंशिक रूप से स्वीकृत** किया जाता है। रिट सी संख्या-7005 वर्ष 2023 का **निस्तारण** उपर्युक्त की गई चर्चा के अनुसार किया जाता है।

(2025) 5 ILRA 608

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 19.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट सी संख्या 1000151 वर्ष 2001

मोहम्मद रफीक एवं अन्य **...याचिकाकर्तागण**

बनाम

अपर आयुक्त (प्रशासन) गोण्डा एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता:
एच.डी. श्रीवास्तव, ज्ञान सिंह चौहान, प्रमोद कुमार सिंह, आर.बी. सिंह

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता, आर.एन. गुप्ता

(ए) राजस्व विधि- भूमि विवाद - निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार- उत्तर प्रदेश ज़मींदारी विनाश एवं भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 - धारा 167/168 - उत्तर प्रदेश ज़मींदारी विनाश एवं भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 के तहत भूमि का राज्य में निहित होना - विखंडन प्रावधानों से प्रभावित बताई गई भूमि के खरीदारों पर नोटिस की तामीली के प्रमाण के बिना पारित एकपक्षीय आदेशों की वैधता – अधिकारों को प्रभावित करने वाला कोई भी आदेश नोटिस की उचित तामीली के प्रमाण के बिना पारित नहीं किया जा सकता – तामीली पर निष्कर्ष का अभाव आदेश को अवैध और एकपक्षीय बनाता है – नोटिस की तामीली पर निष्कर्ष दर्ज करने में विफलता कार्यवाही को दूषित करती है – प्रति-शपथ पत्र दाखिल न करने के माध्यम से की गई स्वीकारोक्ति याचिकाकर्ता के दावे को मजबूत करती है – उचित नोटिस की तामीली पर निष्कर्ष दर्ज किए बिना पारित आदेश अवैध है और एकपक्षीय के रूप में रद्द किए जाने योग्य है। (पैरा - 7 से 10)

याचिकाकर्ताओं, जो कि भूमिहीन मजदूर हैं, ने भूमि खरीदी थी - यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 167/168 के तहत भूमि को राज्य में निहित करने के आदेश, नोटिस की तामीली के प्रमाण के बिना एकपक्षीय रूप से पारित किए गए थे - प्रतिवादियों द्वारा कोई खंडन दाखिल नहीं किया गया - जिसके परिणामस्वरूप एक एकपक्षीय आदेश पारित हुआ जिसकी पुष्टि पुनरीक्षण में भी कर दी गई - अतः यह याचिका। (पैरा - 3 से 4, 8 से 9)

अनुवादित

अभिनिर्धारित: नीचे के दोनों अधिकारियों ने याचिकाकर्ताओं पर नोटिस की तामीली के संबंध में कोई निष्कर्ष दर्ज न करके गलती की है, और इस अखंडित कथन के आलोक में कि कोई नोटिस प्राप्त नहीं हुआ था, दिनांक 31.03.1997 और 04.01.2001 के आक्षेपित आदेश अवैध और प्रकृति में एकपक्षीय थे, और इस प्रकार रद्द किए जाने योग्य थे। प्रतिवादी संख्या 2 को छह महीने के भीतर नोटिस की तामीली के कारणों सहित एक नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया। (पैरा - 8 से 12)

याचिका स्वीकार। (E-7)

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ताओं की विद्वान अधिवक्ता सुश्री मंजू देवी और राज्य-प्रतिवादी की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 31.3.1997 और प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा पारित आदेश दिनांक 4.1.2001 को चुनौती दे रहे हैं।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ताओं ने भूमिहीन मजदूर होने के नाते, दर्ज खातेदार से पूर्ण प्रतिफल का भुगतान करने के बाद भूमि खरीदी थी। प्रतिवादी संख्या 4 ने एक आवेदन प्रस्तुत किया जिसे प्रतिवादी संख्या 2 ने याचिकाकर्ताओं को नोटिस तामील किए बिना स्वीकार कर लिया। प्रतिवादी संख्या 2 ने एकपक्षीय आदेश दिनांक 17.12.1997 के माध्यम से याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत दावे को खारिज कर दिया, जिसके विरुद्ध याचिकाकर्ताओं द्वारा एक निगरानी दायर की गई थी, जिसे प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा खारिज कर दिया गया है। रिट याचिका दायर करने के समय, याचिकाकर्ताओं को एक अंतरिम आदेश प्रदान किया गया था कि इस बीच याचिकाकर्ताओं को विवादित संपत्ति से बेदखल नहीं किया जाएगा।

4. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि आक्षेपित आदेश में जैसा आरोप लगाया गया है, वह नोटिस याचिकाकर्ताओं पर कभी तामील नहीं किया गया था। नोटिस पर लगा अंगूठे का निशान किसी अन्य व्यक्ति का है और याचिकाकर्ताओं से संबंधित नहीं है, इसलिए याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि आदेश प्रकृति में एकपक्षीय है। अगला तर्क यह है कि निगरानी में, रिकॉर्ड का अवलोकन किए बिना, विद्वान अपर आयुक्त ने प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश की पुष्टि कर दी है। अंतिम तर्क यह है कि अपर आयुक्त ने याचिकाकर्ताओं के इस पक्ष को नोट किया है कि नोटिस पर लगा अंगूठे का निशान याचिकाकर्ताओं का नहीं है, लेकिन उप-जिलाधिकारी या अपर आयुक्त द्वारा इस पर कोई निष्कर्ष नहीं दिया गया है।

5. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता का तर्क है कि आक्षेपित आदेश किसी भी दोष या अवैधता से ग्रस्त नहीं है और यह एक न्यायोचित और वैध आदेश है।

6. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए तर्कों को सुना है और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का अवलोकन किया है।

7. उप-जिलाधिकारी के आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने आदेश में उल्लेख किया है कि नोटिस पर याचिकाकर्ताओं के अंगूठे के निशान नहीं हैं, जैसा कि उनके द्वारा आरोप लगाया गया है, लेकिन इस संबंध में कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है कि वे किस आधार पर इस नतीजे पर पहुँचे कि नोटिस पर लगा अंगूठे का निशान याचिकाकर्ताओं का ही है। अपर आयुक्त ने भी प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दर्ज निष्कर्ष की पुष्टि की और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि याचिकाकर्ताओं पर नोटिस तामील किया गया था।

8. न्यायालय की राय में, दोनों निचली अदालतों ने याचिकाकर्ताओं पर नोटिस की तामीली के संबंध में कोई निष्कर्ष दर्ज न करके गलती की है। रिट याचिका के पैराग्राफ-4 में विशेष रूप से कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं को अपने दावे का विरोध करने के लिए कोई नोटिस प्राप्त नहीं हुआ था, लेकिन प्रतिवादी संख्या 2 ने सामग्री के साथ-साथ कानून के प्रावधानों पर विचार किए बिना आदेश दिया कि याचिकाकर्ताओं द्वारा खरीदी गई भूमि उत्तर प्रदेश ज़मींदारी विनाश एवं भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 की धारा 167/168 के तहत विखंडन द्वारा बाधित है और आदेश दिया कि उक्त भूमि राज्य के पक्ष में निहित कर दी जाए।

9. चूंकि रिट याचिका के पैराग्राफ-4 में दिए गए बयान का खंडन करते हुए कोई प्रति-शपथ पत्र दाखिल नहीं किया गया है, इसका अर्थ यह है कि प्रतिवादियों द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि आदेश पारित करने से पूर्व याचिकाकर्ताओं को न तो कोई नोटिस जारी किया गया था और न ही उन्हें तामील किया गया था।

10. उपरोक्त के आलोक में, न्यायालय की राय में आदेश में ऐसा कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं है कि याचिकाकर्ताओं पर नोटिस कैसे तामील किया गया था, आदेश अवैध और प्रकृति में एकपक्षीय होने के कारण इस न्यायालय द्वारा रद्द किए जाने योग्य हैं।

11. तदनुसार, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 31.3.1997 और प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा पारित आदेश दिनांक 4.1.2001 को रद्द किया जाता है। रिट याचिका सफल होती है और **स्वीकार** की जाती है।

12. प्रतिवादी संख्या 2 को निर्देशित किया जाता है कि वह इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से छह महीने की अवधि के भीतर याचिकाकर्ताओं पर नोटिस की तामीली के कारणों को दर्ज करते हुए एक नया आदेश पारित करें।

(2025) 5 ILRA 610

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 30.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह

रिट सी संख्या 1000337 वर्ष 2015

मोहम्मद मुस्तकीम **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: सतीश कुमार शर्मा, मंजूषा, मोहन सिंह, रूपेश कुमार गुप्ता **प्रतिवादियों के अधिवक्ता:** मुख्य स्थाई अधिवक्ता, निशांत शुक्ला

(ए) प्रशासनिक कानून - उचित दर दुकान अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) - अनुज्ञप्ति का निरस्तीकरण और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत - आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 - उत्तर प्रदेश अनुसूचित आवश्यक वस्तु वितरण आदेश, 2004 - धारा 28(3) - नियंत्रण आदेश, 2016 - शासनादेश दिनांक 29.07.2004 - 'ऑडी अल्टरम पार्टम' (दूसरे पक्ष को भी सुनो) का सिद्धांत - उचित दर दुकान की अनुज्ञप्ति अनुच्छेद 19(1)(g) के तहत कोई मौलिक अधिकार नहीं है - राज्य और अनुज्ञप्तिधारी (लाइसेंसधारी) के बीच का संबंध 'प्रधान' और 'एजेंट' का है - निरस्तीकरण के लिए की जाने वाली जांच संक्षिप्त प्रकृति की होती है और इसमें नैसर्गिक न्याय के व्यापक सिद्धांतों के पालन की आवश्यकता होती है, न कि किसी विस्तृत और पूर्ण विकसित जांच की, जैसी कि किसी विभागीय जांच में आवश्यक होती है - प्रधान के रूप में राज्य एजेंसी अनुबंध को समाप्त कर सकता है, बशर्ते कि वह निर्णय मनमाना न हो। (पैरा - 22, 28, 31, 44 से 47, 52, 53, 58)

एक उचित दर दुकान के अनुज्ञप्तिधारी की अनुज्ञप्ति को शुरू में उप-जिला मजिस्ट्रेट द्वारा रद्द कर दिया गया था - जिसे बाद में अपील पर एकपक्षीय (ex parte) होने के कारण रद्द कर दिया गया था - प्रतिप्रेषण (remand) के बाद, अनुज्ञप्ति को फिर से रद्द कर दिया गया - जिसके बाद की गई अपील खारिज कर दी गई - जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान रिट याचिका दायर की गई। **(पैरा - 2 से 14)**

निर्धारित: याचिकाकर्ता को पर्याप्त अवसर प्रदान किया गया था, और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का कोई उल्लंघन नहीं हुआ था। जांच संक्षिप्त प्रकृति की थी और इसमें विभागीय शैली की पूर्ण विकसित सुनवाई की आवश्यकता नहीं थी। याचिकाकर्ता केवल एक अनुज्ञप्तिधारी था और उसके पास कोई मौलिक अधिकार नहीं था। न्यायालय को उप-जिला मजिस्ट्रेट और अपीलीय प्राधिकारी के आदेशों में हस्तक्षेप करने का कोई कारण

नहीं मिला। राज्य, प्रधान होने के नाते, अनुबंध को समाप्त करने का अधिकार रखता है। **(पैरा - 49, 52, 53, 58, 59)**

याचिका खारिज की जाती है। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. नूर जहाँ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट याचिका संख्या 31272 (एम/एस) वर्ष 2017
2. प्रेम नारायण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट-सी संख्या 61612 वर्ष 2013
3. शत्रुघ्न लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट-सी संख्या 18768 वर्ष 2020
4. रजनीश कुमार त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, सी.एम.डब्ल्यू.पी. संख्या 30912 वर्ष 2009
5. जगन्नाथ उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट-सी संख्या 18135 वर्ष 2021
6. राम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, (2023) 16, एससीसी 691
7. श्रीमती मीना देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट-सी संख्या 58035 वर्ष 2017
8. शंकर प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1852
9. पूरन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2010 2 यूपीएलबीईसी 947
10. ए. एस. मोटर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ, (2013) 10 एससीसी 114

(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह द्वारा पारित)

1. वर्तमान विवाद वर्ष 2007 में उत्पन्न हुआ था और इसकी पृष्ठभूमि काफी उतार-चढ़ाव भरी रही है।

2. याचिकाकर्ता को 19.11.2005 को ग्राम पंचायत दिलावरपुर, तहसील मोहम्मदी, जिला खीरी में एक उचित दर की दुकान के माध्यम से आवश्यक वस्तुओं के वितरण के लिए लाइसेंस प्रदान किया गया था।

3. दिनांक 15.10.2007 को, उप-जिला मजिस्ट्रेट, मोहम्मदी खीरी ने आवश्यक वस्तुओं के वितरण के संबंध में कुछ विसंगतियों को देखते हुए याचिकाकर्ता का लाइसेंस निलंबित कर दिया और उसे एक सप्ताह के भीतर कारण बताने का निर्देश दिया कि उसके विरुद्ध आगे की कार्यवाही क्यों न की जाए।

4. निलंबन आदेश सह कारण बताओ नोटिस के अनुसार, यह आरोप लगाया गया था कि याचिकाकर्ता ने अक्टूबर 2007 के महीने के लिए खाद्यान्न और आवश्यक वस्तुओं का निर्धारित कोटा 26.09.2007 को ही उठा लिया था। हालांकि, यह आरोप लगाया गया कि नियुक्त पर्यवेक्षण अधिकारी ने 07.10.2007 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और सूचित किया कि उन्होंने याचिकाकर्ता की उचित दर की दुकान का दौरा किया था, जहाँ

न तो याचिकाकर्ता उपलब्ध था और न ही वितरण के लिए अनाज और आवश्यक वस्तुओं का आवश्यक स्टॉक मौजूद था।

5. उक्त रिपोर्ट पर कार्रवाई करते हुए, वितरण निरीक्षक मोहम्मदी के माध्यम से मामले की जांच की गई, जिन्होंने 11.10.2007 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और पुष्टि की कि याचिकाकर्ता के पास अक्टूबर 2007 के महीने के लिए अनाज और आवश्यक वस्तुओं के वितरण हेतु आवश्यक स्टॉक नहीं था। रिपोर्ट में यह भी बताया गया कि याचिकाकर्ता को आवश्यक दस्तावेज पेश करने के लिए कहा गया था, जिन्हें प्रस्तुत नहीं किया जा सका। कुछ लाभार्थियों के बयान लिए गए, जिनमें बी.पी.एल. (गरीबी रेखा से नीचे) कार्ड धारक और 13 अंत्योदय कार्ड धारक शामिल थे, जिनके कार्डों पर अनाज और आवश्यक वस्तुओं के वितरण या उसकी प्राप्ति के संबंध में कोई प्रविष्टि (इंडोर्समेंट) अंकित नहीं थी। कुछ कार्ड धारकों ने बयान दिया कि उन्हें आवश्यक वस्तुएं प्राप्त हुई थीं, लेकिन उनके राशन कार्डों पर भी आवश्यक प्रविष्टि नहीं थी, और कुछ अन्य कार्ड धारक ऐसे थे जिन्होंने कहा कि उन्हें अनाज और आवश्यक वस्तुएं प्राप्त नहीं हुई हैं।

6. उप-जिला मजिस्ट्रेट, खीरी ने इस तथ्य पर ध्यान देते हुए कि 15.10.2007 के कारण बताओ सह निलंबन नोटिस के अनुपालन में याचिकाकर्ता ने न तो कोई जवाब दिया और न ही कोई साक्ष्य या स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया, इसलिए दिनांक 17.11.2007 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता का लाइसेंस रद्द कर दिया।

7. एक महत्वपूर्ण घटना तब घटी जब उप-जिला मजिस्ट्रेट, मोहम्मदी खीरी ने 22.01.2008 को श्रीमती अनवारी के पक्ष में नया आवंटन कर दिया (जिन्हें सर्वोच्च न्यायालय के हस्तक्षेप के बाद इस याचिका में निजी प्रतिवादी संख्या-4 के रूप में पक्षकार बनाया गया था)।

8. इसी बीच, 17.11.2007 के आदेश से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने 'उत्तर प्रदेश अनुसूचित आवश्यक वस्तु वितरण आदेश 2004' की धारा 28(3) के तहत आयुक्त, लखनऊ मंडल के समक्ष एक अपील दायर की। यह अपील 16.12.2013 को इस आधार पर स्वीकार कर ली गई कि 17.11.2007 का आदेश एकपक्षीय था और याचिकाकर्ता को उचित अवसर दिए बिना पारित किया गया था। साथ ही यह निर्देश दिया गया कि याचिकाकर्ता एक महीने के भीतर अपना जवाब प्रस्तुत करेगा और उसके पश्चात संबंधित उप-जिला मजिस्ट्रेट मामले का नए सिरे से निस्तारण करेंगे।

9. उपरोक्त रिमांड आदेश के अनुपालन में, याचिकाकर्ता ने अपना जवाब प्रस्तुत किया, हालांकि, उप-जिला मजिस्ट्रेट मोहम्मदी ने जवाब पर विचार करने के बाद एक बार फिर पूर्व के निर्णय से अलग होने का कोई कारण नहीं पाया तथा 17.02.2014 के आदेश में उल्लिखित कारणों के आधार पर, उन्होंने याचिकाकर्ता का लाइसेंस और याचिकाकर्ता एवं राज्य के बीच हुए अनुबंध को रद्द कर दिया तथा जमानत राशि भी जब्त कर ली।

10. 17.02.2014 के आदेश से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने पुनः एक अपील दायर की। जबकि अपर आयुक्त (प्रशासन), लखनऊ मंडल ने इस अपील को स्वीकार तो कर लिया, लेकिन याचिकाकर्ता के अंतरिम राहत के अनुरोध को स्वीकार नहीं किया। इस चरण पर, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या 4248 (एम/एस) / 2014 (मुस्तकीम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य) के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसमें इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने 31.07.2014 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता को सीमित संरक्षण प्रदान किया कि उसकी अपील के निस्तारण तक या छह महीने की अवधि तक, जो भी पहले हो, उप-जिला मजिस्ट्रेट के 17.02.2014 के आदेश के क्रियान्वयन को स्थगित रखा जाएगा और उसकी आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति नहीं रोकी जाएगी।

11. उच्च न्यायालय द्वारा उक्त आदेश पारित किए जाने के बाद, उप-जिला मजिस्ट्रेट मोहम्मदी ने इसका संज्ञान लेते हुए 19.08.2014 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता को कोटा उठाने की अनुमति दे दी। इसमें यह भी उल्लेख किया गया कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का उचित सम्मान करना और उसका अनुपालन करना आवश्यक था, और चूँकि दो लाइसेंसधारी एक साथ अस्तित्व में नहीं रह सकते, इसलिए दूसरी लाइसेंसधारी श्रीमती अनवारी को कोटा उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती, अतः उनकी आपूर्ति रोक दी गई।

12. इस स्तर पर, श्रीमती अनवारी, जिन्हें 01.02.2008 को नवीन आवंटन प्रदान किया गया था और जिन्हें रिट याचिका संख्या 4248 (एम/एस) / 2014 में पक्षकार नहीं बनाया गया था, उन्होंने पुनरवलोकन याचिका संख्या 631 / 2014 (संदर्भ: 4248 (एम/एस) / 2014) प्रस्तुत की। संबंधित न्यायालय ने श्रीमती अनवारी के तर्कों का संज्ञान लेते हुए समीक्षा याचिका को विचारार्थ स्वीकार किया और यह पाया कि 31.07.2014 का आदेश किसी भ्रमवश पारित हो गया था। न्यायालय ने वर्तमान याचिकाकर्ता (मोहम्मद मुस्तकीम) को दो सप्ताह के भीतर समीक्षा याचिका पर अपना प्रति-शपथ पत्र दाखिल करने की अनुमति दी। अंतरिम आदेश के रूप में, न्यायालय द्वारा यह आदेश दिया गया कि समीक्षा याचिका के निस्तारण तक 31.07.2014 का आदेश स्थगित रहेगा, और यदि 31.07.2014 के आदेश के अनुपालन में उप-जिला मजिस्ट्रेट ने मुस्तकीम को आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति बहाल करने का कोई आदेश पारित किया है, तो वह आदेश भी स्थगित रहेगा।

13. उक्त आदेश के परिणामस्वरूप, उप-जिला मजिस्ट्रेट, मोहम्मदी खीरी ने 05.09.2014 को एक नवीन आदेश पारित किया, जिसके द्वारा अपने पूर्व के 19.08.2014 के आदेश पर रोक लगा दी और मुस्तकीम की आपूर्ति बंद करके श्रीमती अनवारी के पक्ष में आपूर्ति बहाल कर दी।

14. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, निरस्तीकरण के आदेश दिनांक 17.02.2014 के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अपील पर पुनः गुण-दोष के आधार पर विचार किया गया और 31.01.2015 के आदेश द्वारा उसे खारिज कर दिया गया। याचिकाकर्ता ने 17.11.2007 के आदेश और 31.01.2015 के आदेश से व्यथित होकर वर्तमान रिट याचिका दायर की है।

15. इस स्तर पर, यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि वर्तमान याचिका में भी याचिकाकर्ता ने श्रीमती अनवारी को पक्षकार के रूप में सम्मिलित नहीं किया था। तथापि, श्रीमती अनवारी के अधिवक्ता को भी सुना गया जिन्होंने हस्तक्षेप की मांग की थी, किंतु न्यायालय ने इसे स्वीकार नहीं किया और अंततः 21.01.2021 के निर्णय एवं आदेश द्वारा रिट याचिका स्वीकार कर ली गई तथा अनुज्ञप्ति निरस्तीकरण के आदेश को निरस्त कर दिया गया। उसी आदेश द्वारा अनुज्ञप्ति बहाल कर दी गई और यह टिप्पणी की गई कि सृजित किया गया कोई भी तृतीय पक्ष अधिकार, याचिकाकर्ता अर्थात् मोहम्मद मुस्तकीम के आवंटन की बहाली और आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति के मार्ग में बाधा नहीं बनेगा। उच्च न्यायालय द्वारा पारित 21.01.2021 के आदेश के अनुपालन में, उप-जिला मजिस्ट्रेट ने 11.02.2021 के अपने आदेश द्वारा याचिकाकर्ता की अनुज्ञप्ति बहाल कर दी और साथ ही श्रीमती अनवारी की अनुज्ञप्ति निरस्त कर दी।

16. अब उपरोक्त स्थिति में, श्रीमती अनवारी, जिनकी अनुज्ञप्ति निरस्त कर दी गई थी, के लिए मामले को आगे बढ़ाने का समय था और उन्होंने उच्च न्यायालय के 21.01.2021 के निर्णय के विरुद्ध माननीय उच्चतम न्यायालय की शरण ली। उच्चतम न्यायालय ने 05.04.2021 के आदेश द्वारा अंतरिम उपाय के रूप में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के क्रियान्वयन पर रोक लगा दी। उप-जिला मजिस्ट्रेट, मोहम्मदी खीरी ने उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित आदेश का पुनः संज्ञान लेते हुए श्रीमती अनवारी की अनुज्ञप्ति और आपूर्ति पुनः बहाल कर दी तथा वर्तमान याचिकाकर्ता के संबंध में इसे रोक दिया।

17. श्रीमती अनवारी की अपील पर विचार करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 26.11.2024 के निर्णय एवं आदेश द्वारा इसे स्वीकार कर लिया और उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 21.01.2021 के आदेश को निरस्त करने के पश्चात मामले को इस विशिष्ट निर्देश के साथ उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित (रिमांड) कर दिया कि रिट याचिका पुनर्जीवित मानी जाएगी। श्रीमती अनवारी को रिट याचिका में प्रतिवादी संख्या-4 के रूप में पक्षकार बनाया जाएगा और उन्हें चार सप्ताह के भीतर अपना प्रति-शपथ पत्र दाखिल करने की स्वतंत्रता होगी। उच्च न्यायालय से यह अनुरोध किया गया कि वह पक्षों को अपना-अपना पक्ष रखने के लिए सुनवाई का पर्याप्त अवसर प्रदान करे, जिसके पश्चात रिट याचिका पर विचार किया जाएगा और अधिमानतः चार माह की अवधि के भीतर विधि के अनुसार इसका निस्तारण किया जाएगा। न्यायालय ने यह भी टिप्पणी की कि श्रीमती अनवारी के पक्ष में उचित दर की दुकान चलाने के लिए जारी अनुज्ञप्ति जारी रहेगी, किंतु यह रिट याचिका के परिणाम के अधीन होगी। उच्चतम न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि गुण-दोष के आधार पर सभी तर्क पक्षों द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष उठाए जाने के लिए खुले रखे गए हैं।

18. उपरोक्त पृष्ठभूमि में ही यह मामला इस न्यायालय के समक्ष रखा गया और दिनांक 03.04.2025, 11.04.2025 तथा 07.05.2025 के आदेशों द्वारा पक्षों के अधिवक्ताओं को यहाँ प्रतिवादी संख्या-4 (श्रीमती अनवारी) को पक्षकार बनाने, उन्हें नोटिस तामील करने की प्रक्रियात्मक आवश्यकता का अनुपालन करने के लिए निर्देशित किया गया और उन्हें अपना पक्ष प्रस्तुत करने हेतु समय प्रदान किया गया, ताकि इस मामले की अंतिम सुनवाई की जा सके।

19. न्यायालय ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सतीश कुमार शर्मा, राज्य के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री राहुल शुक्ला और निजी प्रतिवादी संख्या-4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री श्रेयश अग्रवाल को सुना, जिन्होंने अपना पक्ष अभिलेख पर रखते हुए प्रति-शपथ पत्र भी दाखिल किया, जिस पर इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया है।

20. श्री शर्मा ने अपने तर्कों को तीन मुख्य स्तंभों पर आधारित किया है:-

(i) याचिकाकर्ता को अपना पक्ष रखने और यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया कि अनुज्ञप्ति का निरस्तीकरण विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण था। याचिकाकर्ता ने एक विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किया था, किंतु उस पर उचित रूप से संज्ञान नहीं लिया गया, बल्कि इसके विपरीत यह त्रुटिपूर्ण टिप्पणी की गई कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज उपयुक्त नहीं थे। साक्ष्य का संपूर्ण भार याचिकाकर्ता पर डाल दिया गया, जबकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों का खंडन करने हेतु उसके बचाव पक्ष पर विचार किया जाना चाहिए था, जो नहीं किया गया; इसके परिणामस्वरूप पूर्णतः न्याय की विफलता हुई है।

(ii) याचिकाकर्ता को अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों का प्रतिकार करने में कठिनाई हुई, क्योंकि राज्य द्वारा बनाया गया संपूर्ण मामला एक निरीक्षण आख्या (रिपोर्ट) पर आधारित था, जो याचिकाकर्ता को कभी उपलब्ध ही नहीं कराई गई। इसकी अनुपस्थिति में याचिकाकर्ता पर्याप्त उत्तर देने में असमर्थ रहा, क्योंकि उसे इस बात का कोई आभास नहीं था कि उसे किस आरोप का सामना करना है, यह भी न्याय की विफलता का कारण बना है और स्वतः ही नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

(iii) यह भी तर्क दिया गया है कि राज्य द्वारा प्रारंभ में बनाए गए मामले और आरोपों में विचलन किया गया है; क्योंकि ऐसे नए आधार लिए गए जिनके संबंध में याचिकाकर्ता को उत्तर देने का अवसर दिया जाना चाहिए था। ऐसा अवसर प्रदान किए बिना, अधिकारियों द्वारा उक्त नए आधारों पर भरोसा करना नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन है। याचिकाकर्ता को उन कार्ड धारकों से जिरह करने का पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया, जिनके बयान कथित तौर पर अधिकारियों द्वारा दर्ज किए गए थे। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता ने उन्हीं व्यक्तियों के शपथ पत्र प्रस्तुत किए थे जिन्होंने कथित रूप से अधिकारियों को बयान दिए थे। उक्त व्यक्तियों द्वारा दिए गए शपथ पत्रों में यह कहा गया था कि वे सभी अनपढ़ थे। उनके बयान उन्हें उनके अर्थ और अंतर्वस्तु की जानकारी दिए बिना लिए गए थे तथा साथ ही यह भी कहा गया कि याचिकाकर्ता एक कर्तव्यनिष्ठ अनुज्ञप्तिधारी था और उन्हें उसके विरुद्ध कोई शिकायत नहीं थी और उसके शपथ पत्रों पर भी विचार नहीं किया गया, जिससे प्रतिवादी अधिकारियों द्वारा अपनाई गई निर्णय लेने की प्रक्रिया दूषित हो गई है। अतः उपरोक्त सभी कारणों से, आक्षेपित आदेश दोषपूर्ण है और रिट याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है।

21. अपने दलीलों के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **नूर जहाँ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट याचिका संख्या 31272 (एम/एस) / 2017, निर्णय तिथि 11.12.2014, प्रेम नारायण बनाम उत्तर**

प्रदेश राज्य व अन्य, रिट-सी संख्या 61612 / 2013, निर्णय तिथि 11.12.2014, शत्रोहन लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट-सी संख्या 18768 / 2020, निर्णय तिथि 02.04.2024, रजनीश कुमार त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, सिविल विविध रिट याचिका संख्या 30912 / 2009, निर्णय तिथि 19.01.2001 और जगन्नाथ उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट-सी संख्या 18135 / 2021, निर्णय तिथि 14.02.2022 में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है।

22. राज्य की ओर से विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री शुक्ला ने तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता मात्र एक अनुज्ञप्तिधारी है और उसके पास खाद्यान्न एवं आवश्यक वस्तुओं के वितरण का व्यवसाय करने का कोई मौलिक अधिकार नहीं है। यह तर्क दिया गया है कि राज्य और अनुज्ञप्ति धारक के बीच का संबंध एक प्रधान और एक अभिकर्ता का है। राज्य ने समय-समय पर खाद्यान्न और आवश्यक वस्तुओं के वितरण को विनियमित करने के लिए शासनादेश जारी किए हैं और किसी दोषी अनुज्ञप्तिधारी के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए राज्य को उसे पर्याप्त अवसर प्रदान करके नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन करना होता है और एक बार जब ऐसा कर दिया जाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि अधिकारियों द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के विरुद्ध है या कानून की दृष्टि में दोषपूर्ण है।

23. यह भी तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता की अनुज्ञप्ति का निरस्तीकरण 17.11.2007 को किया गया था और लगभग 18 वर्ष बीत चुके हैं और पिछले 18 वर्षों से, यह प्रतिवादी संख्या-4 है जो आवश्यक वस्तुओं और खाद्यान्नों का वितरण कर रही है और फिर भी एक अनुज्ञप्तिधारी के पास कोई निहित अधिकार नहीं होता है बल्कि उसका बने रहने का अधिकार प्रधान के विश्वास और प्रसन्नता के अधीन होता है और इस मामले में एक बार जब प्रधान ने कुछ विसंगतियां पाईं और उसने कार्रवाई करने की प्रक्रिया शुरू की जो कानून के अनुसार की गई थी, तो ऐसी परिस्थितियों में न तो नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन का तर्क लिया जा सकता है और इसके अतिरिक्त मुख्य रूप से निर्णय लेने की प्रक्रिया इस न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा के दायरे में है न कि स्वयं निर्णय का गुण-दोष। अतः, उपरोक्त कारण से, रिट याचिका खारिज होने योग्य है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने **राम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2023) 16, एससीसी 691** में उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया है।

24. प्रतिवादी संख्या-4 के विद्वान अधिवक्ता, श्री श्रेयश अग्रवाल ने वही तर्क प्रस्तुत किए हैं जो राज्य की ओर से श्री शुक्ला द्वारा दिए गए थे, अतः संक्षेप हेतु उन्हें यहाँ दोहराया नहीं जा रहा है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने **श्रीमती मीना देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट-सी संख्या 58035 वर्ष 2017, निर्णय तिथि 30.07.2018** में इस न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया है।

25. न्यायालय ने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का भी अवलोकन किया है।

26. संबंधित पक्षों के तर्कों के आलोक में, इस न्यायालय को यह परीक्षण करने की आवश्यकता है कि क्या याचिकाकर्ता को सुनवाई के अवसर से वंचित किया गया है अथवा नहीं। एक सहायक मुद्दा जिसका आगे परीक्षण आवश्यक है, वह यह है कि क्या जिरह करने का अवसर प्रदान न करना या निरीक्षण आख्या उपलब्ध न कराना भी याचिकाकर्ता को कार्यवाही का विरोध करने के अवसर से वंचित करने के समान होगा और क्या इस पहलू को अपने आप में एक ऐसी बाधा माना जा सकता है जो निर्णय लेने की प्रक्रिया को दूषित कर सकती है।

27. जहाँ याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या-4 दोनों ही अनुज्ञप्तिधारी हैं। खाद्यान्न और आवश्यक वस्तुओं के वितरण के लिए अनुज्ञप्ति के माध्यम से प्रदत्त अधिकार का विस्तार क्या है और क्या ऐसे अधिकार को बाद के आवंटी के अधिकारों के विरुद्ध चुनौती दी जा सकती है।

28. प्रारंभ में, यह देखा जा सकता है कि श्रीमती मीना देवी (उपरोक्त) में श्री श्रेयश अग्रवाल द्वारा उद्धृत निर्णय के अवलोकन से यह प्रकट होगा कि इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने इस न्यायालय के साथ-साथ उच्चतम न्यायालय के कई निर्णयों का संज्ञान लेने के पश्चात यह उल्लेख किया था कि अनाज और आवश्यक वस्तुओं के वितरण के लिए प्रदत्त अनुज्ञप्ति का विशेषाधिकार मात्र एक अधिकार है जिसे वितरण में अनियमितताओं की स्थिति में प्रधान द्वारा वापस लिया जा सकता है। इसमें यह भी उल्लेख है कि ऐसे विशेषाधिकार को वापस लेने या किसी वैध कारण से अनुज्ञप्ति रद्द करने के लिए सूचित किया जाना चाहिए और अनुज्ञप्तिधारी को सुनवाई का कुछ अवसर प्रदान किया जाना आवश्यक है। तथापि, ऐसे अनुज्ञप्तिधारी के पास कोई मौलिक अधिकार या कोई संवैधानिक अधिकार नहीं है और एक बार जब उपरोक्त दोनों शर्तों का पालन और अनुपालन कर लिया जाता है, तो रिट न्यायालय को ऐसे आदेशों में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं होती है, विशेष रूप से जहाँ अनुज्ञप्तिधारी ने पहले ही अपील के वैधानिक अधिकार का लाभ उठा लिया हो।

29. इस स्तर पर यह दर्ज करना उचित होगा कि उन मामलों में जहाँ आवश्यक वस्तुओं के वितरण के लिए अनुज्ञप्ति रद्द की गई थी, वहाँ आयोजित जांच में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत की प्रयोज्यता के विस्तार के संबंध में दो प्रकार के मतों के बीच एक विभाजन था। एक मत में परिकल्पित पूर्ण जांच का समर्थन किया गया था जिसमें नोटिस तामील करना, आरोप-पत्र के साथ-साथ अनुज्ञप्तिधारी को सुनवाई की तिथि की सूचना देना सम्मिलित है। दूसरा मत यह था कि एक अनुज्ञप्तिधारी विस्तृत जांच का अधिकारी नहीं था क्योंकि वह केवल एक अनुज्ञप्तिधारी था और एक अनुज्ञप्तिधारी के पास अनुज्ञप्ति को जारी रखने का कोई मौलिक अधिकार नहीं होता है।

30. इस न्यायालय के संबंधित विद्वान एकल न्यायाधीशों द्वारा दिए गए मतों के इन दो समूहों के मध्य इस विवाद को रिट याचिका संख्या 32679 (एम/एस) / 2019, **शंकर प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2021**

एससीसी ऑनलाइन ऑल 1852 में पारित आदेश दिनांक 29.11.2019 के माध्यम से एक वृहद पीठ को संदर्भित किया गया था।

31. वृहद पीठ (जिसमें न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह एक सदस्य के रूप में सम्मिलित थे) को उपरोक्त मुद्दे पर विचार करने का अवसर प्राप्त हुआ और अधिनियम की संपूर्ण योजना, जो आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 से प्रारंभ हुई थी, इस संबंध में प्रभावी कई शासनादेशों, जिनमें अनाज और आवश्यक वस्तुओं के वितरण को विनियमित और पर्यवेक्षित करने के लिए समय-समय पर जारी शासनादेश शामिल हैं, का संज्ञान लेने तथा नैसर्गिक न्याय की प्रयोज्यता के दायरे और सीमा को देखते हुए, न्यायालय ने अनुच्छेद 42 से 47 में निम्नानुसार निर्धारित किया है:-

"42. सरकार द्वारा समय-समय पर किए गए प्रयास स्पष्ट रूप से एक स्वीकृत प्रक्रिया और पद्धति स्थापित करने के लिए हैं, जिसके अनुसार उचित दर की दुकान के निलंबन/निरस्तीकरण से संबंधित जांच को आगे बढ़ाया जाना है। उपरोक्त संदर्भ में, यह प्रतीत होता है कि पूरन सिंह (उपरोक्त) में पूर्ण पीठ ने स्पष्ट रूप से यह निर्धारित किया है कि उचित दर की दुकान के लाइसेंस भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 (1)(g) के तहत संरक्षित व्यवसाय करने के अधिकार के समान नहीं हैं, और जुलाई 2004 के शासनादेश के प्रावधानों का संज्ञान लेते हुए, जहाँ कारण बताओ नोटिस जारी करने के संबंध में विस्तार से बताया गया है, जिसमें प्रारंभिक जांच में सामने आई सामग्री और निष्कर्ष अवश्य शामिल होने चाहिए ताकि लाइसेंसधारी अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों को जान सके और पर्याप्त विशिष्टता के साथ उनका उत्तर दे सके। यह एक माह की अवधि के भीतर जांच के समापन की भी परिकल्पना करता है और सक्षम प्राधिकारी के लिए यह अनिवार्य है कि वह एक सकारण आदेश द्वारा अपना निर्णय दे। इसी संदर्भ में पूर्ण पीठ ने विशेष रूप से जुलाई 2004 के शासनादेश के खंड 4 और 5 के संबंध में 'पूर्ण विकसित जांच' शब्द का प्रयोग किया था।

43. सुनवाई का अवसर प्रदान करने और निष्पक्ष एवं न्यायपूर्ण जांच आयोजित करने की प्रक्रिया 29 जुलाई, 2004 के शासनादेश के प्रावधानों में ही अंतर्निहित है। जैसा कि ऊपर संज्ञान लिया गया है, अक्टूबर 2014 और दिसंबर 2015 के शासनादेशों के आगमन के साथ, यह स्थिति को और स्पष्ट करता है कि लाइसेंसधारी को उन उल्लंघनों और अनियमितताओं से अवगत कराया जाना चाहिए जो पाई गई हैं, जिनके आधार पर लाइसेंसधारी के विरुद्ध निलंबन या निरस्तीकरण की कार्यवाही प्रस्तावित है, ताकि वह पर्याप्त विशिष्टता के साथ अपना उत्तर प्रस्तुत कर सके, जिसे एक सकारण आदेश द्वारा निर्णीत किया जाना चाहिए और आयोजित जांच में पारदर्शिता एवं निष्पक्षता लाने के लिए कार्यवाही की आदेश-पत्र का भी निष्ठापूर्वक रख-रखाव किया जाना चाहिए।

44. नैसर्गिक न्याय के नियम कठोर या अपरिवर्तनीय नियम नहीं हैं और उन्हें किसी सीधे-सादे फार्मूले के रूप में लागू नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि ये ऐसे नियम हैं जो किसी स्थिति की आवश्यकताओं के अनुरूप लचीले होते हैं। उच्चतम न्यायालय ने ए.एस. मोटर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ व अन्य, (2013) 10 एससीसी

114 के पैराग्राफ 7 और 8 में अनुबंध के निरस्तीकरण बनाम नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के संदर्भ में निम्नानुसार निर्धारित किया है:-

7. अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया कि पक्षों के मध्य अनुबंध की समाप्ति न केवल इसलिए कानूनी रूप से दोषपूर्ण थी क्योंकि अपीलकर्ता को निष्पक्ष सुनवाई की आवश्यकता वाले नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन नहीं किया गया था, बल्कि इसलिए भी क्योंकि प्रतिवादी प्राधिकरण के पास यह मानने का कोई वास्तविक आधार नहीं था कि अपीलकर्ता ने अनुबंध के उन नियमों और शर्तों का कोई उल्लंघन किया है जो इसकी समाप्ति को न्यायोचित ठहराते हों। हमें इनमें से किसी भी तर्क में कोई सार नहीं मिला। इसके कारण स्पष्ट हैं।"

8. अब तक यह पर्याप्त रूप से स्थापित हो चुका है कि नैसर्गिक न्याय के नियम कठोर, अपरिवर्तनीय या संहिताबद्ध नियम नहीं हैं जिन्हें किसी सीधे-सादे ढांचे में रखा जा सके, न ही इन्हें इस प्रकार विकसित किया गया है कि ये सार्वभौमिक रूप से सभी प्रकार के घरेलू अधिकरणों और जांचों पर लागू हों। प्रत्येक मामले में जहाँ नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन का आरोप लगाया जाता है, वहाँ न्यायालय सार रूप में यह देखते हैं कि क्या प्रभावित पक्ष को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का उचित अवसर दिया गया था और क्या प्रशासनिक प्राधिकारी ने निष्पक्ष, तटस्थ और तर्कसंगत रूप से कार्य किया था। 'ऑडी आल्टरम पार्टम' (दूसरे पक्ष को भी सुनो) का सिद्धांत इस प्रकार मनमानेपन और निष्पक्षता के अभाव पर प्रहार करने के उद्देश्य से है। अतः इस विषय पर न्यायिक घोषणाओं ने यह स्वीकार किया है कि नैसर्गिक न्याय की माँगें अलग-अलग स्थितियों में भिन्न हो सकती हैं, जो न केवल प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करती हैं, बल्कि अधिकरण की शक्तियों और संरचना तथा उन नियमों और विनियमों पर भी निर्भर करती हैं जिनके अंतर्गत वह कार्य करता है। नैसर्गिक न्याय के नियमों के उल्लंघन पर आधारित शिकायत का परीक्षण करने वाले न्यायालय को यह देखने का अधिकार है कि क्या पीड़ित पक्ष को वास्तव में ऐसे उल्लंघन के कारण कोई क्षति (prejudice) हुई है। उस सीमा तक, पूर्व के इस विचार से बदलाव आया है कि नियमों का तकनीकी उल्लंघन भी कार्यवाही को दूषित करने के लिए पर्याप्त है। इस विषय पर न्यायिक घोषणाओं की भरमार है। हम इस विषय पर केवल कुछ ही निर्णयों का उल्लेख कर सकते हैं जो हमारे विचार में पर्याप्त होंगे।"

45. इस स्तर पर, यह संज्ञान लेना प्रासंगिक होगा कि नियंत्रण आदेश 2016 के प्रख्यापन के पश्चात, मामला उक्त नियंत्रण आदेश द्वारा शासित होता है जो पक्षों, अर्थात अनुज्ञप्तिधारी और राज्य सरकार के बीच हस्ताक्षरित अनुबंध पर भी ध्यान देता है। यह अनुबंध एक वैधानिक अनुबंध की प्रकृति का है और यह अभिकरण (एजेंसी) के अनुबंध के अतिरिक्त कुछ नहीं है, जहाँ अनुज्ञप्तिधारी राज्य की ओर से खाद्यान्न वितरण की गतिविधियाँ संचालित करता है और बदले में कमीशन का हकदार होता है; और यह स्पष्ट रूप से कानून में ज्ञात अभिकरण (एजेंसी) का एक अनुबंध है।

46. अनुज्ञप्तिधारी और राज्य के बीच एक अनुबंध करने की आवश्यकता वितरण आदेश 2004 में भी प्रदान की गई है। इस प्रकार, एक अनुज्ञप्तिधारी की स्थिति राज्य के एक अभिकर्ता (एजेंट) की ही बनी रहती है, जिसे वितरण आदेश 2004 और अब नियंत्रण आदेश 2016 के नियमों के अनुसार उसे सौंपे गए कार्यों का निर्वहन करने के लिए नियुक्त किया जाता है और वह उक्त नियंत्रण आदेश तथा अनुबंध की शर्तों द्वारा शासित होता है। तदनुसार, यह नहीं कहा जा सकता कि निलंबन या निरस्तीकरण के लिए अनुज्ञप्तिधारी के विरुद्ध की जाने वाली आवश्यक जांच किसी सरकारी सेवक के विरुद्ध होने वाली अनुशासनात्मक जांच के समान है। न तो अनुबंध और न ही वितरण आदेश 2004 या नियंत्रण आदेश 2016 किसी विस्तृत जांच की परिकल्पना करते हैं, और न ही अनुज्ञप्तिधारी द्वारा ऐसी किसी जांच की मांग की जा सकती है।

47. अतः, हम संदर्भ (रेफरेंस) का उत्तर निम्नानुसार देते हैं:-

(i) यह निर्धारित किया जाता है कि आवश्यक वस्तुओं के वितरण के संबंध में अनुज्ञप्तिधारी द्वारा की गई अनियमितताओं के लिए उसके विरुद्ध आयोजित की जाने वाली जांच के मानक नैसर्गिक न्याय के व्यापक सिद्धांतों पर आधारित हैं, जहाँ सक्षम प्राधिकारी अनुज्ञप्तिधारी को एक कारण बताओ नोटिस प्रदान करेगा, जिसमें अनुज्ञप्तिधारी द्वारा किए गए उल्लंघनों और अनियमितताओं का पर्याप्त विशिष्टता के साथ उल्लेख होगा ताकि वह उनका उत्तर देने में सक्षम हो सके; और सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात, सक्षम प्राधिकारी द्वारा एक तर्कसंगत और सकारण आदेश के माध्यम से निर्णय लिया जा सकता है। परिकल्पित जांच प्रकृति में संक्षिप्त है और इसमें विभागीय जांच के समान विस्तृत सुनवाई की आवश्यकता नहीं है;

(ii) यह निर्धारित किया जाता है कि इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा पूरन सिंह (उपरोक्त) के निर्णय में प्रयुक्त पूर्ण विकसित जांच शब्द को जुलाई 2004 के शासनादेश के पैरा 4 और 5 तथा उसमें वर्णित योजना के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए, जो केवल नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के पालन की अपेक्षा करती है और किसी सरकारी सेवक के विरुद्ध अनुशासनात्मक जांच में आवश्यक विभिन्न चरणों और कदमों वाली विस्तृत जांच का प्रावधान नहीं करती है।

32. वृहद पीठ द्वारा निर्धारित उपरोक्त प्रस्तावों पर विचार करने के पश्चात, यह प्रकट होगा कि अनुज्ञप्तिधारी द्वारा की गई कथित अनियमितताओं के लिए उसके विरुद्ध कार्यवाही शुरू की जा सकती है और ऐसी जांच नैसर्गिक न्याय के व्यापक सिद्धांतों पर की जानी चाहिए, जहाँ प्राधिकारी के लिए यह आवश्यक है कि वह अनुज्ञप्तिधारी को एक कारण बताओ नोटिस जारी करे, जिसमें उसके विरुद्ध प्राप्त आधारों और शिकायतों का पर्याप्त विशिष्टता के साथ उल्लेख हो ताकि वह यह अच्छी तरह जानते हुए उत्तर दे सके कि उसे किस मामले का सामना करना है। परिकल्पित जांच संक्षिप्त प्रकृति की है और इसमें विस्तृत जांच की आवश्यकता नहीं है।
33. इसी संदर्भ में, यह न्यायालय पाता है कि वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के विरुद्ध निरस्तीकरण का आदेश दो चरणों में पारित किया गया था; (i) निरस्तीकरण आदेश 17.11.2007 को पारित हुआ था, तथापि, 16.12.2013 के आदेश द्वारा अपील में उसे इस निष्कर्ष के साथ निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता को

उचित अवसर प्रदान नहीं किया गया था और वह व्यावहारिक रूप से एकपक्षीय था, अतः अपील स्वीकार होने के पश्चात (ii) इसके बाद याचिकाकर्ता ने अपना विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किया और उस पर सम्यक विचार किया गया तथा 17.02.2014 को अनुज्ञप्ति पुनः निरस्त कर दी गई और याचिकाकर्ता एवं राज्य के बीच हुआ अनुबंध भी रद्द कर दिया गया। याचिकाकर्ता ने 17.02.2014 के आदेश के विरुद्ध अपने अपील के अधिकार का उपयोग किया, जिसे 31.01.2015 को 17.02.2014 के आदेश की पुष्टि करते हुए खारिज कर दिया गया।

34. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि उन्हें निरीक्षण आख्या की प्रति उपलब्ध नहीं कराई गई थी और वह कार्यवाही का विरोध करने में असमर्थ थे क्योंकि उन्हें उस मामले की जानकारी नहीं थी जिसका उन्हें सामना करना था; यह तर्क इस न्यायालय को इसलिए प्रभावित नहीं करता क्योंकि रिट याचिका में या प्रत्युत्तर-शपथ पत्र में भी विशेष रूप से यह दलील नहीं दी गई है कि जांच आख्या की प्रति प्राप्त न होने के कारण याचिकाकर्ता को कोई क्षति हुई है। अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं लाई गई है जो यह दर्शाती हो कि किसी भी समय, अर्थात 15.10.2007 को कारण बताओ नोटिस जारी होने से लेकर 31.01.2015 को अपीलीय प्राधिकारी द्वारा आदेश पारित होने तक, अर्थात लगभग 8 वर्षों के दौरान, याचिकाकर्ता ने ऐसा कोई दस्तावेज प्राप्त करने के लिए किसी भी प्राधिकारी के समक्ष कोई प्रयास किया हो या कोई आवेदन दिया हो।

35. यह ध्यान देने योग्य है कि यह रिट याचिका मुकदमेबाजी के दूसरे दौर से उत्पन्न हुई है। पहले दौर में, जैसा कि पूर्ववर्ती पैराग्राफ में उल्लेख किया गया है, निरस्तीकरण के आदेश को इसलिए रद्द कर दिया गया था क्योंकि वह एकपक्षीय पाया गया था और याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था। एक बार जब याचिकाकर्ता ने अपना विस्तृत उत्तर प्रस्तुत कर दिया, जिसका संज्ञान लिया गया और निरस्तीकरण का आदेश पारित किया गया जिसकी पुष्टि अपील में भी हुई; अब इस स्तर पर, याचिकाकर्ता के लिए यह तर्क देना संभव नहीं है कि निरीक्षण आख्या के अभाव में वह कार्यवाही का विरोध करने से वंचित और अक्षम रहा, विशेष रूप से तब जब याचिकाकर्ता यह स्थापित नहीं कर सका कि उसने उक्त दस्तावेज प्राप्त करने का कोई प्रयास किया था, और न ही इस रिट याचिका में या अपील में भी इस आशय का कोई आधार लिया गया था। अतः इस तर्क को अस्वीकार किया जाता है।

36. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि उन्हें उन व्यक्तियों से जिरह करने का अवसर नहीं दिया गया जिन्होंने कथित तौर पर प्राधिकारी को याचिकाकर्ता के विरुद्ध बयान दिया था; यह तर्क भी महत्वहीन हो जाता है क्योंकि याचिकाकर्ता यह प्रदर्शित नहीं कर सका कि उसने संबंधित उप-जिला मजिस्ट्रेट या किसी भी प्राधिकारी के समक्ष ऐसा कोई आवेदन दिया था या कोई अनुरोध किया था कि वह किसी ऐसे गवाह से जिरह करना चाहता है जिसने कथित तौर पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध बयान दिया था।

37. यह भी नहीं बताया जा सका कि वह क्या विसंगति थी और उस विसंगति की गंभीरता क्या थी, जिसके कारण याचिकाकर्ता के लिए ऐसे शिकायतकर्ता से जिरह करना आवश्यक हो गया था। यह संज्ञान लेना प्रासंगिक होगा कि जब वर्ष 2007 में अनुज्ञप्ति का निरस्तीकरण हुआ था, उस प्रासंगिक समय पर शासनादेश 2004

प्रभावी था। दिनांक 29.07.2004 के शासनादेश में उचित दर की दुकान की अनुज्ञप्ति के निलंबन और निरस्तीकरण से संबंधित प्रक्रिया प्रदान की गई थी और इसके प्रासंगिक खंड 2 से 7 महत्वपूर्ण हैं, जो इस प्रकार हैं:-

"2. उक्त पृष्ठभूमि में मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों की उचित दर की दुकानों के निलम्बन / निरस्तीकरण के सम्बन्ध में निम्न प्रक्रिया का पालन किया जाए।

पद्ध उचित दर की दुकान का निलम्बन मात्र किसी व्यक्ति की शिकायत के आधार पर नहीं किया जाये। यदि किसी दुकानदान के विरूद्ध किसी स्रोत से शिकायत प्राप्त होती है तो पहले उसकी प्रारम्भिक जॉच करायी जाये। यदि प्रारम्भिक जॉच में दुकानदार के विरूद्ध ऐसी गम्भीर अनियमितताएं प्रथम दृष्टया सिद्ध हो रहीं हों जिनके आधार पर दुकानदार की दुकान निरस्त होने की सम्भावना हो तभी दुकान को निलम्बित किया जाये और साथ ही साथ दुकानदार को कारण बताओ नोटिस जारी किया जाये कि उसकी दुकान क्यों न निरस्त कर दी जाये। यदि प्रारम्भिक जॉच में पाया जाये कि अनियमितता इतनी गम्भीर नहीं है कि दुकान के निरस्तीकरण की सम्भावना हो तो केवल कारण बताओ नोटिस जारी किया जाये। निलम्बन आदेश / कारण बताओ नोटिस एक "स्पीकिंग आर्डर" होना चाहिए तथा उसमें प्रारम्भिक जॉच में पायी गयी उन सभी अनियमितताओं का विवरण होना चाहिए जिनका उत्तर दुकानदान से अपेक्षित हो।

पपद्ध (क) खाद्य विभाग के अधिकारियों / जिला प्रशासन के अधिकारियों / अन्य प्राधिकृत व्यक्तियों द्वारा उचित दर की दुकान के आकस्मिक निरीक्षण के दौरान यदि पाया जाता है कि दुकानदार द्वारा कोई गम्भीर अनियमितता की गयी है तो भी दुकान को नियुक्ति अधिकारी द्वारा अपने विवेक का प्रयोग करते हुए निलम्बित किया जा सकता है।

(ख) खाद्य विभाग के अधिकारियों / जिला प्रशासन के अधिकारियों /अन्य प्राधिकृत व्यक्तियों द्वारा यदि दुकानदार कोई अनियमित कार्य, वितरण में गड़बड़ी या अनुसूचित वस्तुओं की कालाबाजारी करते हुए पकड़ा जाता है तो भी नियुक्ति अधिकारी द्वारा अपने विवेक का प्रयोग करते हुए दुकान को निलम्बित किया जा सकता है।

उक्त परिस्थितियों में दुकान के निलम्बन की स्थिति में भी "स्पीकिंग आर्डर" से निलम्बन आदेश जारी किया जायेगा जिसमें सभी अनियमितताओं का उल्लेख होगा तथा दुकानदार को कारण बताओ नोटिस जारी किया जायेग कि क्यों न उसकी दुकान निरस्त कर दी जाये।

3. उक्त प्रकार से यदि उचित दर की कोई दुकान निलम्बित की जाती है तो उसका सम्बद्धीकरण गांव / शहर की (जैसी भी स्थिति हो) सबसे निकट की उचित दर की दुकान से किया जायेगा। किसी भी एक दुकान से अधिकतम एक ही निलम्बित दुकान का सम्बद्धीकरण किया जा सकता है और किसी भी परिस्थिति में एक दुकान से एक से अधिक निलम्बित दुकान का सम्बद्धीकरण नहीं किया जायेगा।

अनुपस्थित

4. निलम्बित की गयी दुकान के विरूद्ध जाँच की कार्यवाही अधिकतम एक माह में अनिवार्य रूप से पूरी की जायेगी तथा जॉच में सम्बन्धित दुकानदार को सुनवाई का पूरा मौका दिया जायेगा। सम्बन्धित दुकानदार का यह दायित्व होगा कि वह जॉच में अपना पूरा सहयोग दे ताकि जॉच का कार्य जल्दी से जल्दी पूरा किया जा सके तथा नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा प्रकरण में गुण-दोष के आधार पर अन्तिम निर्णय लिया जा सके। यदि दुकानदार द्वारा जॉच में सहयोग नही दिया जा रहा हो और जॉच में विलम्ब करने का प्रयास किया जा रहा हो तो दुकानदार को इस आशय का भी नोटिस जारी किया जायेगा और अपना पक्ष रखने का अन्तिम अवसर प्रदान किया जायेगा।

5. जॉच की कार्यवाही अधिकतम एक माह में पूर्ण करके नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा प्रकरण में अन्तिम निर्णय लिया जायेगा और गुण-दोष के आधार पर एक "स्पीकिंग आर्डर" जारी किया जायेगा। इस आदेश में यह स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए कि सम्बन्धित दुकानदार को सुनवाई का अवसर दिया गया और उसे सुना गया। यदि दुकानदार ने जॉच में सहयोग नहीं किया हो और सुनवाई के अवसर का जानबूझकर उपयोग न किया हो तो अन्तिम आदेश में इस बात का भी पूरा उल्लेख होना चाहिए कि दुकानदार को अवसर प्रदान किया गया तथा अन्तिम नोटिस दिया गया परन्तु उसने जानबूझकर अवसर का उपयोग किया और जॉच में सहयोग नहीं किया।

6. जॉच की कार्यवाही के उपरान्त दुकानदार के दोष की गम्भीरता देखते हुए उसे दण्ड दिया जाये। यदि दण्ड स्वरूप दुकानदार की निलम्बित दुकान निरस्त की जाती है जो निरस्तीकरण आदेश की तिथि से अधिकतम एक माह के अन्तर्गत नये उचित दर के दुकानदार की नियुक्ति अनिवार्य रूप से हो जानी चाहिए ताकि दुकान की सम्बद्धता जल्दी से जल्दी समाप्त हो सके।

7. नियुक्ति प्राधिकारी उपरोक्त आदेशों का कड़ाई से पालन करेंगे और कार्यवाही के लिए ऊपर दी गयी समय सारिणी को सुनिश्चित करेंगे। समय सारिणी के अनुसार जॉच की कार्यवाही एक माह में तथा दुकान के निरस्तीकरण की स्थिति में एक और माह नयी नियुक्ति के लिए निर्धारित है। अतः निलम्बित / निरस्त दुकान का किसी अन्य दुकान से सम्बद्धीकरण अधिकतम दो माह के लिए होगा।"

38. इसे शंकर प्रसाद (उपरोक्त) में वृहद पीठ द्वारा भी संज्ञान में लिया गया था और पैराग्राफ 31 से 35 में, इसे निम्नानुसार दर्ज किया गया था:-

"31. जुलाई 2004 के शासनादेश के अवलोकन से यह संकेत मिलता है कि उचित दर दुकान की अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) का निलंबन मात्र किसी व्यक्ति की शिकायत पर नहीं किया जाएगा, बल्कि यह प्रावधान करता है कि यदि किसी भी स्रोत से कोई शिकायत प्राप्त होती है, तो पहले एक प्रारंभिक जांच आयोजित की जाए। यदि प्रारंभिक जांच के दौरान कुछ गंभीर उल्लंघन और अनियमितताएं सामने आती हैं, जो प्रथम दृष्टया ऐसे आधारों को जन्म दे सकती हैं जिनसे स्थापित होने पर अनुज्ञप्ति निरस्त की जा सकती हो, तो अनुज्ञप्ति को निलंबित किया जा सकता है और साथ ही उचित दर दुकान के स्वामी को कारण बताओ नोटिस जारी किया जाएगा कि

उसकी अनुज्ञप्ति क्यों न निरस्त कर दी जाए। यदि प्रारंभिक जांच में उल्लंघन गंभीर नहीं पाए जाते हैं, तो केवल कारण बताओ नोटिस जारी किया जा सकता है। तथापि, निलंबन आदेश/कारण बताओ नोटिस एक सकारण आदेश के साथ पारित किया जाना चाहिए और उसमें उन सभी अनियमितताओं और उल्लघनों का उल्लेख और संदर्भ होना चाहिए जो प्रारंभिक जांच में पाए गए हैं, ताकि उचित दर दुकान का स्वामी विशिष्टता के साथ उनका उत्तर देने में सक्षम हो सके।

32. जुलाई 2004 के शासनादेश का खंड 4 यह भी प्रावधान करता है कि निलंबित उचित दर की दुकान के संबंध में जांच, संबंधित अनुज्ञप्तिधारी को सुनवाई का पूर्ण अवसर प्रदान करने के पश्चात एक माह की अवधि के भीतर पूरी की जानी चाहिए। यह इस बात की भी परिकल्पना करता है कि शीघ्र सुनवाई और जांच के समापन में सहयोग करना अनुज्ञप्तिधारी की जिम्मेदारी है और यदि अनुज्ञप्तिधारी सहयोग नहीं करता है या विलंब करने का प्रयास करता है, तो उसे अंतिम अवसर के रूप में अपना उत्तर प्रस्तुत करने की आवश्यकता के साथ इस आशय का नोटिस भी जारी किया जा सकता है। सक्षम प्राधिकारी के लिए यह आवश्यक है कि वह एक माह की अवधि के भीतर जांच समाप्त करे और सकारण आदेश द्वारा अपना निर्णय दे।

33. इस स्तर पर, यह संज्ञान लेना प्रासंगिक होगा कि जुलाई 2004 का उपरोक्त शासनादेश इस न्यायालय की एक पूर्ण पीठ के समक्ष पूरन सिंह व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य (2010) 2 यूपीएलबीईसी 947 में विचारार्थ आया था। पूर्ण पीठ को अपने समक्ष इन प्रश्नों का उत्तर देना था: (i) क्या उचित दर अनुबंध के निलंबन से पहले उचित दर दुकान के एजेंट को सुनवाई का अवसर देना अनिवार्य है, जिसके उल्लंघन में निलंबन आदेश रद्द किए जाने योग्य हो? (ii) क्या 2007 (1) एएलजे 407 प्रमोद कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य और 2008 (4) एएलजे 10 हरपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य में खंडपीठ के निर्णय सही कानून प्रतिपादित करते हैं कि अवसर अनिवार्य है, या गोपी के मामले में खंडपीठ सही कानून प्रतिपादित करती है।

34. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, पूर्ण पीठ ने वितरण आदेश 2004 और साथ ही 29 जुलाई 2004 के शासनादेश का संज्ञान लिया और उक्त निर्णय के पैरा 50 में, उसने प्रश्न का उत्तर 'नकारात्मक' में दिया जैसा कि इस राय के पूर्व भाग में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है।

35. पूर्ण पीठ के निर्णय के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अनुज्ञप्तिधारी के निलंबन का आदेश पारित करने से पहले सुनवाई का अवसर देना अनिवार्य नहीं है, और न ही इसका उल्लंघन केवल इस आधार पर निलंबन आदेश की वैधता को प्रभावित करता है कि इसे सुनवाई का अवसर दिए बिना पारित किया गया है। इसमें यह भी निर्धारित किया गया कि प्रमोद कुमार (उपरोक्त) और हरपाल (उपरोक्त) के खंडपीठ के निर्णय सही कानून प्रतिपादित नहीं करते हैं।"

39. अतः उपरोक्त से यह प्रकट होगा कि याचिकाकर्ता के पास अधिकार के तौर पर शिकायतकर्ता से जिरह करने का कोई अधिकार नहीं था, तथापि, वर्तमान मामले में ऐसी कोई सामग्री नहीं है जो यह दर्शाती हो कि

याचिकाकर्ता ने प्राधिकारी के समक्ष ऐसा कोई दावा किया था और इसके अभाव में याचिकाकर्ता द्वारा इस मुद्दे को उठाया जाना स्वीकार्य नहीं है, विशेष रूप से जहाँ जांच के दायरे को संक्षिप्त प्रकृति का माना गया है और जैसा कि शंकर प्रसाद (उपरोक्त) में वृहद पीठ द्वारा स्पष्ट किया गया है; अतः याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाया गया यह तर्क कि जिरह का अवसर प्रदान नहीं किया गया, विफल हो जाता है।

40. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का अन्य तर्क कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत सामग्री, उत्तर और दस्तावेजों का उप-जिला मजिस्ट्रेट के साथ-साथ अपीलीय प्राधिकारी द्वारा संज्ञान नहीं लिया गया और उन पर पर्याप्त रूप से विचार नहीं किया गया, इसे भी इस न्यायालय का समर्थन प्राप्त नहीं होता है।

41. अभिलेख यह संकेत देते हैं कि याचिकाकर्ता ने अपने उत्तर के साथ उन व्यक्तियों के कुछ शपथ-पत्र प्रस्तुत किए थे जिनके बयान कथित तौर पर अधिकारियों द्वारा निरस्तीकरण के अपने निर्णय का आधार बनाने के लिए दर्ज किए गए थे। याचिकाकर्ता द्वारा इसे अपने दिनांक 27.04.2015 के प्रत्युत्तर-शपथ पत्र के साथ अभिलेख पर लाया गया है। उपरोक्त दस्तावेजों, जो कि अनुलग्नक संख्या आर.ए.5 हैं, के अवलोकन से यह प्रकट होगा कि सभी शपथ-पत्र एक ही दिन तैयार किए गए थे और शपथ लेने वाले व्यक्तियों ने व्यावहारिक रूप से एक ही दावा और एक ही भाषा का उपयोग किया है, और संभवतः इन सभी व्यक्तियों की अंतरात्मा भी एक ही विशेष तिथि, अर्थात् 02.01.2008 को जागृत हुई थी।

42. याचिकाकर्ता ने अपने प्रत्युत्तर-शपथ पत्र के साथ रिट याचिका में अनुलग्नक संख्या आर.ए.3 के रूप में उसे जारी किए गए कार्ड की प्रतियां भी अभिलेख पर प्रस्तुत की हैं। इससे यह प्रकट होगा कि उक्त कार्ड 31.12.2007 तक वैध था। उक्त कार्ड के अवलोकन से यह संकेत मिलता है कि सितंबर 2007 के माह के लिए स्टॉक उठा लिया गया था। यह यह भी दर्शाता है कि अक्टूबर 2007 के लिए वितरित किए जाने वाले खाद्यान्न और आवश्यक वस्तुओं को याचिकाकर्ता द्वारा 26.09.2007 को उठा लिया गया था। इसमें उल्लेख है कि बीपीएल गेहूं 21 क्विंटल, बीपीएल चावल 52.50 क्विंटल, चीनी 10 क्विंटल और इसके अलावा 14.50 क्विंटल गेहूं तथा 36.25 क्विंटल चावल उठाया गया था।

43. इसके विपरीत, अन्य दस्तावेज जो प्रस्तुत किए गए हैं वे अगस्त 2014 से संबंधित हैं, लेकिन फिर भी इस तथ्य को स्पष्ट रूप से स्थापित नहीं किया जा सका कि जब आवश्यक कोटा, जिसे अक्टूबर 2007 के माह में वितरित किया जाना था और जिसे 26.09.2007 को उठा लिया गया था, वह उचित दर की दुकान के परिसर में क्यों नहीं पाया गया। जिन शपथ-पत्रों पर याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किया गया है, वे भी एक अलग ही तस्वीर पेश करते हैं; क्योंकि वे सभी लगभग समान भाषा में एक ही दिन दाखिल किए गए थे और उन सभी व्यक्तियों ने शपथ-पत्र पर कहा है कि उन्हें अनुज्ञप्तिधारी (लाइसेंसधारी) के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है। कुछ ने कहा कि उन्होंने अक्टूबर 2007 के माह का अपना मासिक कोटा नहीं लिया है और कुछ ने कहा है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप झूठे हैं, लेकिन जो बात इस न्यायालय के समक्ष स्पष्ट या प्रदर्शित नहीं की जा सकी, वह यह थी कि याचिकाकर्ता को जारी कारण बताओ नोटिस में स्पष्ट कथन थे कि याचिकाकर्ता

द्वारा 26.09.2007 को जो स्टॉक उठाया गया था, जिसे अक्टूबर 2007 के माह में वितरित किया जाना था, तो किन परिस्थितियों में, जब निरीक्षण किया गया, वह स्टॉक उचित दर की दुकान पर नहीं पाया गया।

44. इसे दुकान/गोदाम में स्टॉक की भौतिक उपस्थिति द्वारा आसानी से पुष्ट किया जा सकता था और उक्त स्टॉक के कार्ड धारकों, यानी लाभार्थियों को वितरण के संबंध में भी संकेत दिया जा सकता था। जब भी किसी कार्ड धारक को अनाज और आवश्यक वस्तुएं दी जाती हैं, तो उसके कार्ड पर एक प्रविष्टि की जाती है। कार्ड पर किसी स्पष्ट कथन और प्रविष्टि के अभाव में तथा स्टॉक की अनुपस्थिति के संबंध में कोई स्पष्टीकरण न देने पर यह नहीं कहा जा सकता कि अधिकारियों द्वारा दस्तावेजों पर उचित रूप से विचार नहीं किया गया या उन्हें गलत तरीके से खारिज कर दिया गया।

45. यह निर्विवाद है कि याचिकाकर्ता ने 26.09.2007 को स्टॉक उठा लिया था और उक्त वस्तुओं को अक्टूबर 2007 में लाभार्थियों को वितरित किया जाना था। ऐसी परिस्थितियों में, यह आरोप कि उक्त स्टॉक वहाँ मौजूद नहीं था, स्पष्ट रूप से स्थापित किया जा सकता था लेकिन ऐसा नहीं किया गया। संबंधित प्राधिकारी ने इस तथ्य का संज्ञान लिया है कि याचिकाकर्ता द्वारा स्पष्टीकरण में प्रस्तुत किए गए दस्तावेज पुख्ता नहीं थे; क्योंकि जो कुछ कार्ड प्रस्तुत किए गए थे उनमें वर्ष के बिना केवल सितंबर/अक्टूबर माह का उल्लेख था। सतर्कता/प्रशासनिक समिति के सदस्यों के हस्ताक्षर भी मौजूद नहीं थे। याचिकाकर्ता द्वारा प्राधिकारी के समक्ष ग्राम प्रधान के जो कथित हस्ताक्षर बताए गए थे, उन पर भी कोई तारीख अंकित नहीं थी।

46. यह भी देखा गया कि याचिकाकर्ता से अक्टूबर 2007 के माह का स्टॉक रजिस्टर प्रस्तुत करने की अपेक्षा की गई थी जो नहीं किया गया। यह भी देखा गया कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत राशन कार्डों की फोटोकॉपी से यह संकेत नहीं मिलता था कि उक्त लाभार्थियों को कितनी मात्रा दी गई थी। मिट्टी के तेल के वितरण संबंधी विवरण का भी उल्लेख नहीं था। उपरोक्त बातों का संज्ञान लेते हुए ही यह निष्कर्ष दर्ज किया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज उसके विरुद्ध लगाए गए आरोप की प्रकृति के संदर्भ में विश्वास पैदा नहीं करते हैं और इन्हीं कारणों से अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) रद्द कर दी गई थी।

47. उपरोक्त पर विचार करते हुए यह न्यायालय संतुष्ट है कि अधिकारियों ने याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत सामग्री के आधार पर एक दृष्टिकोण अपनाया है और निर्णय लेते समय उसके द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों का भी संज्ञान लिया गया था।

48. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता यह प्रदर्शित नहीं कर सके कि उनके द्वारा कौन सा विशिष्ट दस्तावेज दाखिल किया गया था जिसे नजरअंदाज कर दिया गया, या यदि ऐसा कोई दस्तावेज उनके द्वारा प्रस्तुत किया गया होता और उसका संज्ञान लिया गया होता, तो वह मामले के पूरे स्वरूप को बदल सकता था और उसका परिणाम याचिकाकर्ता के पक्ष में निकलता।

49. इस न्यायालय ने दिनांक 31.01.2015 के अपीलीय आदेश का भी संज्ञान लिया है, जिसमें यह भी उल्लेख है कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत सभी दस्तावेजों पर ध्यान दिया गया था और उसे सुनवाई का उचित अवसर प्रदान किया गया था; और अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करने के पश्चात ही, दिनांक 31.01.2015 का आक्षेपित आदेश पारित किया गया था।

50. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता इस न्यायालय के समक्ष यह प्रदर्शित नहीं कर सके कि कारण बताओ नोटिस जारी होने और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा 16.12.2013 को प्रतिप्रेषण का पहला आदेश पारित किए जाने के पश्चात, वह कौन सा नया आधार था जिसके आधार पर याचिकाकर्ता को दोषी ठहराया गया है। किसी भी सामग्री के अभाव में, यह नहीं कहा जा सकता कि अधिकारियों ने कोई ऐसा नया आधार लिया है जिसके लिए याचिकाकर्ता को खंडन करने हेतु और अधिक नया अवसर दिया जाना चाहिए था।

51. उपरोक्त के आलोक में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिस वृहद पीठ (Larger Bench) के निर्णय पर भरोसा किया गया है, वह याचिकाकर्ता की कोई सहायता नहीं करता है।

52. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने 'नूर जहाँ' (उपरोक्त) के मामलों पर भरोसा किया है और वर्तमान मामले में उनकी कोई प्रासंगिकता नहीं हो सकती है, क्योंकि वे सभी इस आधार पर आधारित हैं कि अनुज्ञप्तिधारी (लाइसेंस धारक) के संबंध में जांच विस्तृत तरीके से की जानी चाहिए; और ये सभी निर्णय 'शंकर प्रसाद' (उपरोक्त) में वृहद पीठ के निर्णय की तिथि से पूर्व के हैं, जिसमें मतभेदों का संज्ञान लेते हुए वृहद पीठ ने यह निर्धारित किया था कि **'पूरन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2010 2 यूपीएलबीईसी 947'** के पूर्ण पीठ के निर्णय में प्रयुक्त पूर्ण विकसित जांच शब्द को शासनादेश के पैराग्राफ 4 और 5 के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए, और उसमें वर्णित योजना केवल यह इंगित करती है कि इसमें नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के पालन की आवश्यकता है और यह विभिन्न चरणों और कदमों वाली किसी विस्तृत जांच प्रक्रिया का प्रावधान नहीं करती है, जैसा कि एक सरकारी सेवक के विरुद्ध अनुशासनात्मक जांच में आवश्यक होता है।

53. इस न्यायालय का यह मत है कि याचिकाकर्ता को पर्याप्त अवसर प्रदान किया गया था और यह नहीं कहा जा सकता कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का कोई उल्लंघन हुआ था, विशेष रूप से तब जब जांच संक्षिप्त तरीके से आयोजित की जानी हो, जैसा कि 'शंकर प्रसाद' (उपरोक्त) में वृहद पीठ द्वारा निर्धारित किया गया है। अतः, उपरोक्त कारणों से, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क, जहाँ तक वे नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन से संबंधित हैं, मान्य नहीं किए जा सकते और तदनुसार उन्हें खारिज किया जाता है।

54. अब पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा उठाए गए अन्य मुद्दे पर आते हैं, जो एक अनुज्ञप्तिधारी के अधिकार बनाम रिट याचिका में कार्यवाही का विरोध करने के अधिकार के संबंध में है।

55. अनुज्ञप्ति शब्द को न तो आवश्यक वस्तु अधिनियम में परिभाषित किया गया है और न ही सरकारी नियंत्रण आदेश या राज्य द्वारा समय-समय पर जारी किए गए शासनादेशों में। 'अनुज्ञप्ति' शब्द को भारतीय सुखाचार अधिनियम, 1882 में परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है:-

"52. 'अनुज्ञप्ति' (लाइसेंस) की परिभाषा–जहाँ एक व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को, या अन्य व्यक्तियों की एक निश्चित संख्या को, अनुदानकर्ता की अचल संपत्ति में या उसके ऊपर, कुछ ऐसा करने या करना जारी रखने का अधिकार देता है, जो ऐसे अधिकार के अभाव में गैर-कानूनी होता, और ऐसा अधिकार संपत्ति में कोई सुखाचार या हित नहीं होता, तो उस अधिकार को अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) कहा जाता है।"

56. उच्चतम न्यायालय को **'ए.एस. मोटर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ (2013) 10 एससीसी 114'** के मामले में अनुबंध के निरस्तीकरण बनाम नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन से संबंधित एक मुद्दे पर विचार करने का अवसर मिला था और उसने निम्नानुसार निर्धारित किया है:-

"7. अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया था कि पक्षों के बीच अनुबंध की समाप्ति कानूनी रूप से न केवल इसलिए गलत थी क्योंकि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों, जिसके तहत अपीलकर्ता को निष्पक्ष सुनवाई का अवसर मिलना आवश्यक था, का पालन नहीं किया गया था, बल्कि इसलिए भी क्योंकि प्रतिवादी प्राधिकरण के पास यह मानने का कोई वास्तविक आधार नहीं था कि अपीलकर्ता ने अनुबंध के नियमों और शर्तों का ऐसा कोई उल्लंघन किया है जिससे उसकी समाप्ति आवश्यक हो जाए। हमें इन दोनों तर्कों में से किसी में भी कोई गुण नहीं मिले। इसके कारण स्पष्ट हैं।"

"8. नैसर्गिक न्याय के नियम, जैसा कि अब काफी अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है, कठोर, अपरिवर्तनीय या संहिताबद्ध नियम नहीं हैं जिन्हें किसी निश्चित खांचे में डाला जा सके, और न ही उन्हें इस प्रकार विकसित किया गया है कि वे सभी प्रकार के घरेलू न्यायाधिकरणों और जांचों पर सार्वभौमिक रूप से लागू हों। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आरोप वाले हर मामले में न्यायालय मूल रूप से यह देखता है कि क्या प्रभावित पक्ष को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का उचित अवसर दिया गया था और क्या प्रशासनिक प्राधिकारी ने निष्पक्ष, तटस्थ और तर्कसंगत रूप से कार्य किया था। इस प्रकार, 'ऑडी अल्टरम पार्टम' (दूसरे पक्ष को भी सुनो) का सिद्धांत मनमानेपन और निष्पक्षता के अभाव पर प्रहार करने के उद्देश्य से है। अतः इस विषय पर न्यायिक घोषणाओं ने यह स्वीकार किया है कि नैसर्गिक न्याय की मांगें अलग-अलग स्थितियों में भिन्न हो सकती हैं, जो न केवल प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करती हैं, बल्कि न्यायाधिकरण की शक्तियों और संरचना तथा उन नियमों और विनियमों पर भी निर्भर करती हैं जिनके तहत वह कार्य करता है। नैसर्गिक न्याय के नियमों के उल्लंघन पर आधारित शिकायत की जांच करने वाला न्यायालय यह देखने का हकदार है कि क्या पीड़ित पक्ष को वास्तव में ऐसे उल्लंघन के कारण कोई क्षति हुई है। उस सीमा तक, पिछले विचार से एक बदलाव आया है कि नियमों का तकनीकी उल्लंघन भी कार्यवाही को दूषित करने के लिए पर्याप्त

है। इस विषय पर न्यायिक घोषणाएं अनगिनत हैं। हम इस विषय पर केवल कुछ ही निर्णयों का उल्लेख कर सकते हैं जो हमारी राय में पर्याप्त होंगे।"

57. इस पहलू को 'शंकर प्रसाद' (उपरोक्त) में वृहद पीठ द्वारा भी संज्ञान में लिया गया था और विशेष रूप से पैराग्राफ 45 और 46 में, जिन्हें ऊपर पैराग्राफ 29 में पहले ही उद्धृत किया जा चुका है।

58. उपरोक्त के आलोक में, यह नहीं कहा जा सकता कि प्रतिवादी राज्य के पास अनुबंध को समाप्त करने का अधिकार नहीं था। राज्य और अनुज्ञप्तिधारी के बीच किया गया अनुबंध 'समापनीय प्रकृति' का होता है। ऐसे मामले में जहाँ राज्य अनुबंध करने वाले पक्षों में से एक है, वहाँ यह अंतर्निहित है कि राज्य को अनुबंध के प्रावधानों और खंडों का सख्ती से पालन करना चाहिए। तथापि, यह राज्य को अनुबंध रद्द करने की उसकी शक्ति से वंचित नहीं करता है। निरस्तीकरण के मामले में, ऊपर की गई चर्चाओं और 'शंकर प्रसाद' (उपरोक्त) में वृहद पीठ द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के आलोक में, अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए यह न्यायालय मुख्य रूप से निर्णय की योग्यता से सरोकार नहीं रखता, बल्कि 'निर्णय लेने की प्रक्रिया' को प्राथमिकता दी जाती है। राज्य 'प्रधान' है और अनुज्ञप्तिधारी उसका 'एजेंट' है। प्रधान होने के नाते राज्य को अनुबंध समाप्त करने का अधिकार है, बेशक इस शर्त के साथ कि उसका निर्णय मनमाना न हो। हालांकि, यदि निर्णय नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करते हुए लिया गया है और एक राय बनाई गई है, तो केवल इसलिए कि कोई दूसरी राय संभव हो सकती है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए यह न्यायालय कोई अलग दृष्टिकोण नहीं अपनाएगा, जब तक कि वह निर्णय विकृत न हो।

59. उपरोक्त कारणों से और यह देखते हुए कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के संबंध में जो आधार उठाए गए हैं, उन्हें इस न्यायालय को अधिकारियों द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से अलग दृष्टिकोण अपनाने के लिए मनाने हेतु पर्याप्त रूप से प्रदर्शित नहीं किया जा सका; इसके साथ ही इस तथ्य को भी देखते हुए कि प्रतिवादी संख्या 4 के पक्ष में जारी लाइसेंस 01.02.2008 से निरस्त है और 17 वर्षों से अधिक का समय बीत चुका है, अतः यह न्यायालय वर्तमान परिस्थितियों में, संबंधित उप-जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दिनांक 17.02.2014 के आदेश और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 31.01.2015 के आदेश में हस्तक्षेप करने की कोई गुंजाइश नहीं पाता है।

60. परिणामस्वरूप, याचिका **खारिज** की जाती है और वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया गया है ।

(2025) 5 ILRA 626

मूल क्षेत्राधिकार

अपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 528 बी.एन.एस.एस. संख्या 5944 वर्ष 2025

श्रीमती रवीना मीणा **...आवेदिका**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...विपक्षीगण**

आवेदिका के अधिवक्ता:
विनय कुमार

विपक्षीगण के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 - धारा 173(4) – बी.एन.एस.एस. की धारा 173(4) के तहत आवेदन प्रस्तुत – आक्षेपित आदेश – आवेदन को परिवाद वाद के रूप में आगे बढ़ाने का निर्देश। वे मामले जहाँ मजिस्ट्रेट संज्ञान लेता है और सम्मन जारी करने को स्थगित करता है, वे मामले होते हैं जहाँ मजिस्ट्रेट को अभी "आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार के अस्तित्व" का निर्धारण करना होता है। परिवाद को प्रथम दृष्टया पढ़ने पर यदि स्पष्ट रूप से पुलिस अन्वेषण की आवश्यकता का संकेत मिलता है, तो धारा 156(3) में प्रदत्त विवेकाधिकार को केवल मजिस्ट्रेट के पुलिस को अन्वेषण का आदेश देने के कर्तव्य के रूप में पढ़ा जा सकता है। यदि मामले में अन्वेषण की आवश्यकता नहीं है, तो उस स्थिति में मजिस्ट्रेट/सक्षम क्षेत्राधिकार वाला न्यायालय धारा 173(4) बी.एन.एस.एस. के तहत आवेदन को 'परिवाद वाद' के रूप में मान सकता है – आक्षेपित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं।

आवेदन खारिज। (E-9)

उद्धृत मामलों की सूचीः-

1. ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज एम्प्लॉइज यूनियन बनाम भारत संघ, 1996 (4) क्राइम्स 189 (सुप्रीम कोर्ट)
2. हरि सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2006 क्रिमिनल लॉ जर्नल 3283

अनुवादित

3. ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार एवं अन्य, 2014 (2) एससीसी 1

4. अनिल कुमार बनाम एम.के. अयप्पा, (2013) 10 एससीसी 705

5. विश्वनाथ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2020) ILR 2 All 889

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान द्वारा पारित)

1. आवेदिका के विद्वान अधिवक्ता श्री विनय कुमार, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अमित सिंह चौहान को सुना गया तथा रिकॉर्ड का अवलोकन किया गया।

2. आवेदिका द्वारा बी.एन.एस.एस. की धारा 528 के तहत यह आवेदन मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फिरोजाबाद के न्यायालय में लंबित विविध वाद संख्या 3148 वर्ष 2024 (श्रीमती रवीना मीणा बनाम मुरारीलाल मीणा एवं अन्य), अन्तर्गत धारा 173(4) बी.एन.एस.एस. 2023, थाना टूंडला, जिला फिरोजाबाद में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फिरोजाबाद द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 15.01.2025 को रद्द करने हेतु दायर किया गया है, जिसके द्वारा आवेदिका द्वारा धारा 173(4) बी.एन.एस.एस. के तहत दायर आवेदन को परिवाद के रूप में माना गया है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि दिनांक 06.12.2024 को लगभग शाम 4 बजे, आवेदिका किसी काम से बाजार जा रही थी, तभी बाजार में उसे मुरारीलाल मीणा और सुबह सिंह मीणा मिले, जिन्होंने उसकी ओर अश्लील इशारे किए और गंदी टिप्पणियाँ कीं। आवेदिका ने घर आकर पूरी घटना अपने पति और परिवार के अन्य सदस्यों को बताई। जब उसका पति अभियुक्तों से शिकायत करने गया, तो उन लोगों ने उसे गालियां दीं और उसके साथ मारपीट की। मुरारीलाल ने आवेदिका को पीछे से पकड़ लिया और उसके साथ अश्लील कृत्य किए। उनकी चीखें सुनकर कुछ राहगीर आए और उन्हें बचाया। अभियुक्तों ने उसे धमकी दी कि वे उसके पति को झूठे मामले में फंसा देंगे और उन्हें जान से मारने की धमकी भी दी। आवेदिका के पति ने घटना की शिकायत अपने विभाग के उच्चाधिकारियों से की लेकिन कुछ नहीं हुआ। दिनांक 07.12.2024 को आवेदिका भी घटना की शिकायत करने थाने गई थी लेकिन कोई कार्रवाई नहीं की गई।

4. आवेदिका के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदिका द्वारा इस आरोप के साथ एक आवेदन दायर किया गया था कि दिनांक 06.12.2024 को लगभग शाम 4 बजे जब वह बाजार जा रही थी, तब मुरारीलाल मीणा और सुबह सिंह मीणा ने गंदे इशारे किए और उसके साथ छेड़खानी की। आवेदिका ने घटना के बारे में अपने पति को बताया। जब उसके पति ने मुरारीलाल मीणा और सुबह सिंह मीणा से घटना के बारे में पूछा, तो उन्होंने उसे गालियां दीं और उसके साथ मारपीट की। इसलिए, दिनांक 07.12.2024 को प्राथमिकी दर्ज कराने के लिए पुलिस अधिकारियों को एक आवेदन दिया गया था। हालांकि, जब कुछ नहीं किया गया, तो वर्तमान आवेदन धारा 173(4) बी.एन.एस.एस. के तहत दायर किया गया। उन्होंने आगे तर्क दिया कि आवेदिका द्वारा

दायर आवेदन के अवलोकन से स्पष्ट रूप से संज्ञेय अपराध का होना प्रकट होता है। अतः, उन्होंने प्रस्तुत किया कि एक बार जब आवेदिका द्वारा धारा 156(3) बी.एन.एस.एस. के तहत दायर आवेदन में संज्ञेय अपराध का होना प्रकट हो गया था, तो मजिस्ट्रेट ने आवेदन को परिवाद वाद के रूप में आगे बढ़ाने का निर्देश देकर कानूनी त्रुटि की है। आवेदिका के विद्वान अधिवक्ता ने अत्यंत बल देते हुए तर्क दिया है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग किए बिना यांत्रिक तरीके से आक्षेपित आदेश पारित किया है।

5. दूसरी ओर, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेशों का समर्थन किया है और बताया कि आवेदिका की शिकायत अवर न्यायालय द्वारा अनसुनी नहीं छोड़ी गई है। मजिस्ट्रेट ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के पूरे दायरे को ध्यान में रखते हुए आवेदिका द्वारा धारा 173(4) बी.एन.एस.एस. के तहत दायर आवेदन को परिवाद वाद के रूप में मानने का सही निष्कर्ष निकाला है। आवेदिका के पास अभी भी अवर न्यायालय के समक्ष अपना मामला साबित करने का अवसर रहेगा।

6. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा किए गए प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार किया गया तथा वर्तमान आवेदन के रिकॉर्ड का अवलोकन किया गया।

7. बी.एन.एस.एस. की धारा 173(4) इस प्रकार है:-

"173 (4) बी.एन.एस.एस.: कोई भी व्यक्ति जो पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी द्वारा उप-धारा (1) में संदर्भित जानकारी दर्ज करने से इनकार करने के कारण व्यथित है, वह ऐसी जानकारी का सार लिखित रूप में और डाक द्वारा संबंधित पुलिस अधीक्षक को भेज सकता है, जो यदि संतुष्ट हो जाता है कि ऐसी जानकारी संज्ञेय अपराध के होने का खुलासा करती है, तो वह या तो स्वयं मामले की जांच करेगा या अपने अधीनस्थ किसी पुलिस अधिकारी द्वारा इस संहिता द्वारा प्रदान की गई रीति से जांच करने का निर्देश देगा, और ऐसे अधिकारी के पास उस अपराध के संबंध में पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी की सभी शक्तियां होंगी; ऐसा न होने पर ऐसा व्यथित व्यक्ति मजिस्ट्रेट के पास आवेदन कर सकता है।"

8. ऑल इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज एम्प्लॉइज यूनियन बनाम भारत संघ, 1996 (4) क्राइम्स 189 (सुप्रीम कोर्ट) के मामले में, शीर्ष अदालत ने पैराग्राफ 4 में निर्धारित किया है:-

"4. जब पुलिस को सूचना दी जाती है लेकिन उस संबंध में कोई कार्रवाई नहीं की जाती है, तो शिकायतकर्ता को दं.प्र.सं. की धारा 190 के साथ पठित धारा 200 के तहत अधिकार दिया गया है कि वह अपराध का संज्ञान लेने के लिए अधिकार क्षेत्र रखने वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत प्रस्तुत करे और मजिस्ट्रेट के लिए संहिता के अध्याय XV में दिए गए प्रावधान के अनुसार शिकायत की जांच करना आवश्यक है। यदि मजिस्ट्रेट साक्ष्य दर्ज करने के बाद प्रथम दृष्टया मामला पाता है, तो अभियुक्त को सम्मन जारी करने के बजाय, वह संबंधित पुलिस को संहिता के अध्याय XII के तहत अपराध की जांच करने और रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश देने के

लिए सशक्त है। यदि वह पाता है कि शिकायत आगे की कार्रवाई के लिए किसी अपराध का खुलासा नहीं करती है, तो वह संहिता की धारा 203 के तहत शिकायत को खारिज करने के लिए सशक्त है। यदि वह पाता है कि दर्ज की गई शिकायत/साक्ष्य प्रथम दृष्टया अपराध का खुलासा करते हैं, तो वह अपराध का संज्ञान लेने के लिए सशक्त है और अभियुक्त को सम्मन जारी करेगा।"

9. इसी प्रकार, शीर्ष अदालत ने *पुनः* ***हरि सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2006 क्रिमिनल लॉ जर्नल 3283*** के मामले में पैराग्राफ 4 में निर्धारित किया है:-

*"4. जब पुलिस को सूचना दी जाती है, लेकिन उस संबंध में कोई कार्रवाई नहीं की जाती है, तो शिकायतकर्ता दं.प्र.सं. की धारा 190 के साथ पठित धारा 200 के तहत अपराध का संज्ञान लेने के लिए अधिकार क्षेत्र रखने वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत प्रस्तुत कर सकता है और मजिस्ट्रेट के लिए संहिता के अध्याय XV में दिए गए प्रावधान के अनुसार शिकायत की जांच करना आवश्यक है। यदि मजिस्ट्रेट साक्ष्य दर्ज करने के बाद प्रथम दृष्टया मामला पाता है, तो अभियुक्त को सम्मन जारी करने के बजाय, वह संबंधित पुलिस को संहिता के अध्याय XII के तहत अपराध की जांच करने और रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश देने के लिए सशक्त है। यदि वह पाता है कि शिकायत आगे की कार्रवाई के लिए किसी अपराध का खुलासा नहीं करती है, तो वह संहिता की धारा 203 के तहत शिकायत को खारिज करने के लिए सशक्त है। यदि वह पाता है कि दर्ज की गई शिकायत/साक्ष्य प्रथम दृष्टया अपराध का खुलासा करते हैं, तो वह अपराध का संज्ञान लेने के लिए सशक्त है और अभियुक्त को सम्मन जारी करेगा। इन पहलुओं को इस न्यायालय द्वारा 'ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज एम्प्लॉइज यूनियन (पंजी.) अपने अध्यक्ष के माध्यम से बनाम भारत संघ एवं अन्य MANU/SC/1769/1996 : (1996) 11 एससीसी **582'** में रेखांकित किया गया है। विशेष रूप से यह देखा गया था कि ऐसे मामलों में रिट याचिका स्वीकार नहीं की जानी चाहिए। उपरोक्त स्थिति को हाल ही में 'गंगाधर जनार्दन म्हात्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य MANU/SC/0830/2004 : (2004) CriLJ 4623' और 'मीनू कुमारी एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य (2006) MANU/SC/8098/2006: CriLJ 2468' में भी रेखांकित किया गया था।"*

10. 'ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार एवं अन्य', 2014 (2) एससीसी 1 के मामले में, विशेष रूप से पैराग्राफ 111 में, शीर्ष अदालत ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

"111) उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हम यह निर्धारित करते हैं:

i) यदि सूचना किसी संज्ञेय अपराध के होने का खुलासा करती है, तो संहिता की धारा 154 के तहत प्राथमिकी का पंजीकरण अनिवार्य है और ऐसी स्थिति में कोई प्रारंभिक जांच स्वीकार्य नहीं है।

ii) यदि प्राप्त सूचना किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करती है, लेकिन जांच की आवश्यकता का संकेत देती है, तो केवल यह पता लगाने के लिए प्रारंभिक जांच की जा सकती है कि संज्ञेय अपराध प्रकट हुआ है या नहीं।

iii) यदि जांच में संज्ञेय अपराध होने का खुलासा होता है, तो प्राथमिकी अनिवार्य रूप से दर्ज की जानी चाहिए। जिन मामलों में प्रारंभिक जांच शिकायत को बंद करने के साथ समाप्त होती है, ऐसी समाप्ति की प्रविष्टि की एक प्रति तत्काल और एक सप्ताह से बाद में नहीं, प्रथम सूचना देने वाले को दी जानी चाहिए। इसमें शिकायत को बंद करने और आगे न बढ़ने के संक्षिप्त कारणों का खुलासा अवश्य होना चाहिए।

iv) यदि संज्ञेय अपराध प्रकट होता है, तो पुलिस अधिकारी अपराध दर्ज करने के अपने कर्तव्य से बच नहीं सकता है। उन दोषी अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई की जानी चाहिए जो प्राथमिकी दर्ज नहीं करते हैं, यदि उनके द्वारा प्राप्त सूचना में संज्ञेय अपराध का खुलासा होता है।

v) प्रारंभिक जांच का दायरा प्राप्त जानकारी की सत्यता या अन्यथा की पुष्टि करना नहीं है, बल्कि केवल यह पता लगाना है कि क्या जानकारी किसी संज्ञेय अपराध को प्रकट करती है।

vi) प्रारंभिक जांच किस प्रकार की और किन मामलों में की जानी है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। जिन श्रेणियों के मामलों में प्रारंभिक जांच की जा सकती है, वे इस प्रकार हैं:

a) वैवाहिक विवाद/पारिवारिक विवाद
b) व्यावसायिक अपराध
c) चिकित्सा लापरवाही के मामले
d) भ्रष्टाचार के मामले
e) ऐसे मामले जहाँ आपराधिक अभियोजन शुरू करने में असामान्य देरी हुई है, उदाहरण के लिए, देरी के कारणों को संतोषजनक ढंग से स्पष्ट किए बिना मामला दर्ज कराने में 3 महीने से अधिक की देरी।
उपरोक्त केवल उदाहरण हैं और उन सभी शर्तों के लिए संपूर्ण नहीं हैं जिनमें प्रारंभिक जांच की आवश्यकता हो सकती है।

vii) अभियुक्त और शिकायतकर्ता के अधिकारों को सुनिश्चित और संरक्षित करते हुए, प्रारंभिक जांच समयबद्ध होनी चाहिए और किसी भी स्थिति में यह 7 दिनों से अधिक नहीं होनी चाहिए। ऐसी देरी का तथ्य और उसके कारण जनरल डायरी प्रविष्टि में प्रतिबिंबित होने चाहिए।

viii) चूँकि जनरल डायरी/स्टेशन डायरी/डेली डायरी एक पुलिस स्टेशन में प्राप्त सभी सूचनाओं का रिकॉर्ड है, हम निर्देश देते हैं कि संज्ञेय अपराधों से संबंधित सभी जानकारी, चाहे उसका परिणाम प्राथमिकी के पंजीकरण में हो

या जांच की ओर ले जाए, उक्त डायरी में अनिवार्य रूप से और सूक्ष्मता से प्रतिबिंबित होनी चाहिए और प्रारंभिक जांच करने का निर्णय भी ऊपर बताए अनुसार प्रतिबिंबित होना चाहिए।"

11. यह स्पष्ट है कि धारा 156(3) के तहत निर्देश केवल मजिस्ट्रेट द्वारा न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग करने के बाद ही जारी किया जाना चाहिए। जब मजिस्ट्रेट संज्ञान नहीं लेता है और सम्मन जारी करने को स्थगित करना आवश्यक नहीं समझता है तथा तुरंत आगे बढ़ने के लिए मामला बना हुआ पाता है, तब उक्त प्रावधान के तहत निर्देश जारी किया जाता है। दूसरे शब्दों में, जहाँ उपलब्ध जानकारी की विश्वसनीयता के कारण, या न्याय के हित को देखते हुए सीधे जांच का निर्देश देना उचित समझा जाता है, वहां ऐसा निर्देश जारी किया जाता है।

12. वे मामले जहाँ मजिस्ट्रेट संज्ञान लेता है और सम्मन जारी करने को स्थगित करता है, वे मामले होते हैं जहाँ मजिस्ट्रेट को अभी "आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार के अस्तित्व" का निर्धारण करना होता है। ***'ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य' (2014) 2 एससीसी 1*** के पैरा 120.6 के अंतर्गत आने वाले मामलों की श्रेणियाँ धारा 202 के अंतर्गत आ सकती हैं।

13. संहिता की योजना से उपलब्ध इन व्यापक दिशानिर्देशों के अधीन, मजिस्ट्रेट द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग मामले-दर-मामले न्याय के हित द्वारा निर्देशित होता है।

14. ***अनिल कुमार बनाम एम.के. अयप्पा, (2013) 10 एससीसी 705*** में यह निर्धारित किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत जांच के लिए मजिस्ट्रेट का निर्देश यांत्रिक तरीके से नहीं दिया जा सकता है। उपरोक्त मामले में निम्नानुसार टिप्पणी की गई है:-

"11. "दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) का दायरा इस न्यायालय के समक्ष कई मामलों में विचार के लिए आया। इस न्यायालय ने मकसूद सैयद मामले [मकसूद सैयद बनाम गुजरात राज्य, (2008) 5 एससीसी 668 : (2008) 2 एससीसी (Cri) 692] में धारा 156(3) के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से पहले मजिस्ट्रेट द्वारा न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग करने की आवश्यकता का परीक्षण किया और निर्धारित किया कि जहाँ धारा 156(3) या धारा 200 दं.प्र.सं. के संदर्भ में दायर शिकायत पर अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जाता है, वहां मजिस्ट्रेट के लिए अपना न्यायिक मस्तिष्क लगाना आवश्यक है; ऐसे मामले में, विशेष न्यायाधीश/मजिस्ट्रेट एक वैध मंजूरी आदेश के बिना किसी लोक सेवक के विरुद्ध धारा 156(3) के तहत मामला संदर्भित नहीं कर सकते। मजिस्ट्रेट द्वारा न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग आदेश में प्रतिबिंबित होना चाहिए। केवल यह कथन कि उन्होंने शिकायत, दस्तावेजों का अवलोकन किया है और शिकायतकर्ता को सुना है, जैसा कि आदेश में प्रतिबिंबित होता है, पर्याप्त नहीं होगा। शिकायत, दस्तावेजों को देखने और शिकायतकर्ता को सुनने के बाद, मजिस्ट्रेट को धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत जांच का आदेश देने के लिए किस बात ने प्रभावित किया, यह आदेश में

प्रतिबिंबित होना चाहिए, हालांकि उनके विचारों की विस्तृत अभिव्यक्ति न तो आवश्यक है और न ही वांछित है।"

15. दं.प्र.सं. के प्रासंगिक प्रावधानों और विभिन्न घोषणाओं पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय ने **'विश्वनाथ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 4 अन्य', (2020) ILR 2 All 889** के मामले में निम्नानुसार निर्धारित किया है:-

"55. इस प्रकार, दंड प्रक्रिया संहिता की संपूर्ण योजना में, जैसा कि 1951 से 2019 तक की शीर्ष अदालत की घोषणाओं में स्पष्ट किया गया है, यह स्पष्ट है कि यदि किसी व्यक्ति को यह शिकायत है कि उसकी प्राथमिकी पुलिस द्वारा दर्ज नहीं की गई है, तो उसका पहला उपचार धारा 154(3) दं.प्र.सं. के तहत पुलिस अधीक्षक या धारा 36 दं.प्र.सं. में संदर्भित अन्य पुलिस अधिकारी से संपर्क करना है। यदि उसकी शिकायतें अभी भी बनी रहती हैं, तो वह धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत मजिस्ट्रेट से संपर्क कर सकता है। उसके पास धारा 200 दं.प्र.सं. के तहत आपराधिक परिवाद दायर करने का एक और उपचार है। परिवाद प्राप्त होने पर, हालांकि, मजिस्ट्रेट के पास कई मार्ग खुले होते हैं:

(i) वह तुरंत अपराध का संज्ञान ले सकता है और धारा 200 के तहत उपस्थित शिकायतकर्ता और गवाहों के बयान दर्ज करने के लिए आगे बढ़ सकता है, और तदनुसार अध्याय XV और अध्याय XVI के तहत कार्यवाही कर सकता है।

(ii) यदि वह उचित समझे, तो वह सम्मन जारी करने को स्थगित कर सकता है और या तो स्वयं मामले की जांच कर सकता है या पुलिस अधिकारी द्वारा जांच किए जाने का निर्देश दे सकता है या ऐसी अन्य प्रक्रिया अपना सकता है जिसे वह उचित समझे, ताकि यह तय किया जा सके कि आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं। यदि उसकी राय में आगे बढ़ने का पर्याप्त आधार है, तो वह सम्मन जारी कर सकता है; या यदि आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो परिवाद को खारिज कर सकता है।

(iii) मजिस्ट्रेट के पास उपलब्ध एक और मार्ग यह है कि अपराध का संज्ञान लेने और धारा 200 या धारा 202 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के बजाय, वह धारा 156(3) के तहत पुलिस द्वारा जांच किए जाने का आदेश दे सकता है।

(iv) पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर, मजिस्ट्रेट धारा 190(1)(b) के तहत अपराध का संज्ञान ले सकता है और सीधे अभियुक्त को सम्मन जारी कर सकता है। मजिस्ट्रेट इस संबंध में अपनी शक्ति का प्रयोग पुलिस द्वारा अपनी रिपोर्ट में व्यक्त किए गए विचार के बावजूद कर सकता है कि अपराध बनता है या नहीं। ऐसा इसलिए है क्योंकि मजिस्ट्रेट पुलिस अधिकारी की इस राय से बाध्य नहीं है कि अपराध बनता है या नहीं।

56. इस प्रकार, संहिता के अध्याय XIV की धारा 190 के साथ पठित अध्याय XII में धारा 156(3) के तहत मजिस्ट्रेट की शक्ति से संबंधित उपरोक्त चर्चा में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है कि दंड प्रक्रिया संहिता में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो धारा 156(3) दं.प्र.सं. के आवेदन पर विचार करते समय मजिस्ट्रेट की संहिता की धारा 2(g) के तहत परिभाषित "जांच" करने या संहिता की धारा 2(h) के तहत परिभाषित "अन्वेषण" का आदेश देने की शक्ति को कम करता है या उस पर कोई रोक लगाता है, अर्थात् संहिता के अध्याय XII या अध्याय XIV के तहत उसे दी गई शक्ति का प्रयोग करते हुए स्वयं को उसमें लगाए गए आपराधिक अपराध के आरोपों की सत्यता के बारे में संतुष्ट करने के लिए।

57. अपनी विवेकाधीन शक्ति में, मजिस्ट्रेट के लिए यह खुला है कि वह पुलिस को धारा 154 दं.प्र.सं. के तहत आपराधिक मामला दर्ज करने और अन्वेषण करने का निर्देश दे। साथ ही, मजिस्ट्रेट के लिए यह भी खुला है, जहाँ मामले के तथ्य और न्याय की आवश्यकता ऐसी मांग करती है, कि वह मामले को परिवाद मानकर उसका संज्ञान ले और धारा 200 और 202 दं.प्र.सं. के तहत "जांच" के लिए आगे बढ़े।

58. यह नहीं कहा जा सकता और न ही यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि प्रत्येक मामले में, अपने स्वतंत्र न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग किए बिना, मजिस्ट्रेट केवल "पंजीकृत करने और अन्वेषण करने" का निर्देश जारी करेगा, अर्थात् धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत दायर आवेदन पर प्राथमिकी दर्ज करने का। आपराधिक अपराध(ओं) के होने की रिपोर्ट की प्रारंभिक जांच करने की शक्ति, जो दंड प्रक्रिया संहिता की योजना के भीतर मजिस्ट्रेट को प्रदान की गई है, उसे ललिता कुमारी MANU/SC/1166/2013MANU/SC/1166/2013 : (2014) 2 एससीसी 1 के मामले में शीर्ष अदालत द्वारा की गई किसी भी टिप्पणी से कम नहीं किया गया है।

59. हालांकि, यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत अपनी विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करते समय, मजिस्ट्रेट को विवेकाधीन क्षेत्राधिकार वाली किसी भी अन्य अदालत की तरह निष्पक्ष और सचेत रूप से कार्य करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उसे प्रदान किए गए विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायिक विवेकाधिकार की सीमाओं के भीतर किया जाए। पूरा जोर निष्पक्ष और न्यायपूर्ण तरीके से, कड़ाई से कानून के अनुसार कार्य करने पर है, ताकि मामले की सच्चाई का पता लगाया जा सके जो उसके सामने आएगा।

60. एक मजिस्ट्रेट ही वह सक्षम प्राधिकारी है जो किसी अपराध का संज्ञान ले सकता है और यह तय करना उसका कर्तव्य है कि उत्पादित रिकॉर्ड और दस्तावेजों के आधार पर अपराध बनता है या नहीं और यदि बनता है, तो कानून का कौन सा मार्ग अपनाया जाना चाहिए। विनुभाई (उपरोक्त) के कथन पर जोर दिया गया है, जिसमें कहा गया है कि "यह मजिस्ट्रेट का न्यायिक अंतःकरण है जिसे कानून के सिद्धांतों के अनुरूप उचित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए जांच एजेंसी द्वारा उसके समक्ष रखे गए रिकॉर्ड और दस्तावेजों के संदर्भ में संतुष्ट होना चाहिए।" इस स्तर पर विनुभाई की रिपोर्ट के पैरा '17' को नोट करना अनुचित नहीं होगा:

"17. यह स्पष्ट है कि एक निष्पक्ष विचारण तभी शुरू होना चाहिए जब अन्वेषण स्वयं निष्पक्ष और न्यायपूर्ण हो। सभी अन्वेषण और जांच का अंतिम लक्ष्य, चाहे वह पुलिस द्वारा हो या मजिस्ट्रेट द्वारा, यह सुनिश्चित करना है कि जिन्होंने वास्तव में अपराध किया है उन्हें सही ढंग से बुक किया जाए, और जो नहीं हैं/उन्हें विचारण के लिए आरोपी न बनाया जाए। यह न्यूनतम प्रक्रियात्मक आवश्यकता है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 की मौलिक आवश्यकता है, इसमें कोई संदेह नहीं किया जा सकता है। यह दं.प्र.सं. पर अनुच्छेद 21 की सर्वव्यापी उपस्थिति है जिसे दं.प्र.सं. के सभी प्रावधानों की व्याख्या को सूचित करना चाहिए, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अनुच्छेद 21 का अक्षरशः और भावना दोनों में पालन किया जाए।"

(बल दिया गया)

61. उपरोक्त कानूनी सिद्धांतों को लागू करते हुए, वर्तमान मामले के तथ्यों में, यह न्यायालय पाता है कि धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत आवेदन कथित घटना के दो महीने की अवधि के बाद दायर किया गया था और संबंधित अदालत द्वारा यह नोट किया गया था कि चिकित्सा परीक्षा आदि द्वारा अभियोजन के पक्ष में कुछ भी पता नहीं लगाया जा सका। उसके सामने परिस्थितियों में, अदालत ने उन साक्ष्यों को खोजना उचित, न्यायसंगत और उपयुक्त समझा जो आवेदिका को अच्छी तरह से ज्ञात हैं और उसके कब्जे में हैं ताकि आवेदन में लगाए गए आरोपों की सच्चाई का पता लगाया जा सके।

62. आवेदन की सामग्री और अवर न्यायालय के आदेश का अवलोकन करने के बाद, यह नहीं कहा जा सकता कि संबंधित अदालत ने धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार के प्रयोग में कोई अवैधता की है या उसने किसी भी तरह से अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया है या ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया है जो कानून में उसे निहित नहीं है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि अवर न्यायालय के उस निर्णय के कारण आवेदिका के साथ कोई मौलिक अन्याय हुआ है, जिसमें धारा 156(3) दं.प्र.सं. के आवेदन को प्राथमिकी दर्ज करने और धारा 154 के तहत अन्वेषण करने का निर्देश देने के बजाय, यह तय करने के उद्देश्य से परिवाद के रूप में मानने का निर्णय लिया गया है कि आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं।"

16. सभी चर्चाओं से यह कहा जा सकता है कि ऐसे मामलों में, जहाँ न केवल मजिस्ट्रेट परिवाद के प्रथम दृष्टया पढ़ने पर कथित संज्ञेय अपराध का होना पाता है, बल्कि मजिस्ट्रेट के संज्ञान में ऐसे तथ्य भी लाए जाते हैं जो स्पष्ट रूप से पुलिस अन्वेषण की आवश्यकता का संकेत देते हैं, वहाँ धारा 156(3) में प्रदत्त विवेकाधिकार को केवल मजिस्ट्रेट के पुलिस को अन्वेषण का आदेश देने के कर्तव्य के रूप में ही पढ़ा जा सकता है। ऐसे मामलों में जहाँ अभियुक्त या अन्य व्यक्तियों के भौतिक कब्जे में दस्तावेजी या अन्य साक्ष्य होने का आरोप है, जिनका अन्वेषण और पुनःप्राप्ति करने के लिए पुलिस अपनी शक्तियों का उपयोग करते हुए सर्वोत्तम स्थिति में होगी, वहाँ मामला अन्वेषण के लिए पुलिस को भेजा जाना चाहिए।

17. यह सच है कि "कर सकता है" शब्द का प्रयोग यह दर्शाता है कि मजिस्ट्रेट के पास पुलिस को अन्वेषण का निर्देश देने या मामले को परिवाद वाद के रूप में आगे बढ़ाने का विवेकाधिकार है। लेकिन इस विवेकाधिकार का प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं किया जा सकता है और यह न्यायिक तर्क द्वारा निर्देशित होना चाहिए।

18. इस न्यायालय का यह मत है कि यदि मामले में अन्वेषण की आवश्यकता नहीं है, तो उस स्थिति में मजिस्ट्रेट/सक्षम क्षेत्राधिकार वाला न्यायालय धारा 173(4) बी.एन.एस.एस. के तहत आवेदन को 'परिवाद वाद' के रूप में मान सकता है।

19. उपरोक्त तथ्यों और कानून के उपरोक्त प्रस्ताव के आलोक में, इस न्यायालय का मत है कि आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या अनियमितता नहीं है और संबंधित पुलिस स्टेशन से रिपोर्ट या अन्य रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद मजिस्ट्रेट का यह मत है कि पुलिस द्वारा किसी अन्वेषण की आवश्यकता नहीं है और उन्होंने वर्तमान मामले को परिवाद वाद के रूप में मानने का सही निर्देश दिया है।

20. उपरोक्त तथ्यों के आलोक में, इस न्यायालय का मत है कि आक्षेपित आदेशों में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। वर्तमान आवेदन में गुण-दोष का अभाव है और यह खारिज किए जाने योग्य है।

21. तदनुसार इसे ***खारिज*** किया जाता है।

22. न्यायालय सुश्री श्रेया शुक्ला, रिसर्च एसोसिएट द्वारा किए गए कठिन परिश्रम की सराहना करना चाहेगा, जिन्होंने विवरणों पर ध्यान दिया और इस मामले में कानूनी सहायता प्रदान करने के अपने कार्य में इसे प्रदर्शित किया।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 633

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 528 बी.एन.एस.एस. संख्या 11862/2025

इमरान खान उर्फ अशोक रत्न **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...विपक्षीगण**

आवेदक के अधिवक्ता:
सैयद इकबाल अहमद, शारिक अहमद

विपक्षीगण के अधिवक्ता:
मनीष कुमार त्रिपाठी, शासकीय अधिवक्ता

अनुवादित

फौजदारी कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 एवं 164 - विपक्षी संख्या 2 के धारा 161 और 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज बयान - दहेज की मांग के लिए पति के विरुद्ध क्रूरता और उत्पीड़न के साथ-साथ पत्नी की इच्छा के विरुद्ध उसके साथ अप्राकृतिक दैहिक संभोग करने का विशिष्ट आरोप - धारा 498ए भारतीय दंड संहिताके तहत अपराध गठित करने के लिए दहेज की विशिष्ट मांग आवश्यक नहीं है - पति द्वारा की गई क्रूरता स्वयं में धारा 498ए भा.दं.स. के तत्वों को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त है - धारा 161 और 164 दंड प्रक्रिया संहिता के बयानों के अवलोकन से, आरोप पत्र में उल्लिखित अपराध बनते हैं - (कार्यवाही) रद्द करने का कोई आधार नहीं।

आवेदन खारिज। (E-9)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. शिवेंद्र प्रताप सिंह ठाकुर उर्फ बंटी बनाम छत्तीसगढ़ राज्य एवं अन्य, आपराधिक अपील संख्या 2588/2024
2. मनीष साहू बनाम मध्य प्रदेश राज्य, विविध आपराधिक मामला संख्या 8388/2023
3. शशांक हर्ष बनाम मध्य प्रदेश राज्य, थाना प्रभारी, विविध आपराधिक मामला संख्या 40044/2023

4. नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत संघ, सचिव विधि एवं न्याय मंत्रालय के माध्यम से, 2018 (10) एससीसी 1

5. हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम राजेश कुमार, आपराधिक अपील संख्या 2097/2014

6. खानु बनाम एम्परर, 1924 एससीसी ऑनलाइन Sind JC 49

7. खांडू बनाम एम्परर, 1933 एससीसी ऑनलाइन Lah 601

8. अलुरी वेंकट रमण बनाम अलुरी तिरुपति राव एवं अन्य, एस.एल.पी. (आपराधिक) संख्या 9243/2024

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा पारित)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री शारिक अहमद, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री मनीष कुमार त्रिपाठी एवं राज्य के विद्वान ए.जी.ए. श्री रमेश कुमार को सुना गया।

2. वर्तमान आवेदन आपराधिक वाद संख्या 525 वर्ष 2023 (राज्य बनाम इमरान खान उर्फ अशोक रत्न), जो मुकमदा अपराध संख्या 41 वर्ष 2023, धारा 498-ए, 323, 504, 506, 377 भा.दं.सं. एवं 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम, थाना-शिवकुटी, जनपद-प्रयागराज से उद्भूत है और विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रयागराज, अलीगढ़ के न्यायालय में लंबित है, की संपूर्ण कार्यवाही को निरस्त करने हेतु दायर किया गया है जिसमें दिनांक 28.06.2023 का आरोप पत्र और दिनांक 10.08.2023 का सम्मन/संज्ञान आदेश भी सम्मिलित है।

3. विवाद को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि विपक्षी संख्या 2 ने दिनांक 23.02.2023 को आवेदक के विरुद्ध मुकदमा अपराध संख्या 41 वर्ष 2023, अंतर्गत धारा 498-ए, 323, 504, 506, 377 भा.दं.सं. एवं 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम में एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई है। पुलिस ने विवेचना के उपरांत, दिनांक 28.06.2023 को आवेदक के विरुद्ध धारा 498-ए, 323, 504, 506, 377 भा.दं.सं. एवं 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया, जिस पर विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 10.08.2023 को संज्ञान भी लिया जा चुका है, जो वर्तमान मामले में चुनौती के अधीन है।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आक्षेपित कार्यवाही निम्नलिखित आधारों पर द्वेषपूर्ण और अवैध है:

i. यद्यपि प्राथमिकी में उल्लिखित घटना की अंतिम तिथि वर्ष 2019 की है, परंतु प्राथमिकी 23.02.2023 को दर्ज की गई थी, जो कि काफी विलंब के बाद है। अपने तर्क के समर्थन में, आवेदक के अधिवक्ता ने **शिवेंद्र प्रताप सिंह ठाकुर उर्फ बंटी बनाम छत्तीसगढ़ राज्य एवं अन्य (आपराधिक अपील संख्या 2588 वर्ष 2024)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने इस आधार

पर कार्यवाही रद्द कर दी थी कि प्राथमिकी बिना किसी स्पष्टीकरण के 39 दिनों के विलंब के बाद दर्ज की गई थी, और स्वयं प्राथमिकी में अपराध कारित होने की तिथि या समय का उल्लेख नहीं है।

ii. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि धारा 377 भा.दं.सं. के तहत कोई अपराध नहीं बनता है क्योंकि आवेदक और विपक्षी संख्या 1 पति-पत्नी हैं। अपने तर्क के समर्थन में आवेदक के अधिवक्ता ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के **मनीष साहू बनाम मध्य प्रदेश राज्य (विविध आपराधिक मामला संख्या 8388 वर्ष 2023)** के साथ-साथ **शशांक हर्ष बनाम मध्य प्रदेश राज्य (विविध आपराधिक मामला संख्या 40044 वर्ष 2023)** के निर्णयों पर भरोसा किया है, जिसमें मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की एकल न्यायाधीश पीठ ने यह टिप्पणी की थी कि जब पत्नी अपने पति के साथ रह रही हो और उनके विवाह के अस्तित्व के दौरान, यदि अप्राकृतिक यौन संबंध बनाने का आरोप है, तो धारा 377 भा.दं.सं. के तहत अपराध तब तक नहीं माना जाएगा जब तक कि पत्नी 18 वर्ष से कम आयु की न हो।

iii. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि विपक्षी संख्या 2 ने अपनी चिकित्सीय जांच कराने से इनकार कर दिया, जो उनके मामले के लिए घातक होगा। इस दलील के समर्थन में, आवेदक के अधिवक्ता ने माननीय उच्चतम न्यायालय के **हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम राजेश कुमार (आपराधिक अपील संख्या 2097 वर्ष 2014)** के निर्णय पर भी भरोसा किया है, जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि को उलट दिया गया था और उच्चतम न्यायालय ने भी इस आधार पर इसकी पुष्टि की थी कि यदि अभियोक्त्री ने कभी भी चिकित्सा कर्मचारियों के साथ सहयोग नहीं किया, तो यह घटना के उसके विवरण की आपराधिकता पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा।

iv. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि सभी स्वतंत्र गवाहों ने विपक्षी संख्या 2 के उस विवरण का समर्थन नहीं किया है, जैसा कि उनकी प्राथमिकी में उल्लिखित है, और धारा 161 एवं 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज उनके बयानों से दहेज की मांग का कोई अपराध नहीं बनता है।

v. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि पुलिस विभाग द्वारा आवेदक और विपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध दर्ज प्राथमिकी के अनुसरण में की गई जांच के दौरान, विपक्षी संख्या 2 ने स्वयं कहा था कि वह आवेदक के पूर्व विवाह से अवगत थी और आवेदक के तलाक के पश्चात, उसने स्वेच्छा से आवेदक से विवाह किया था।

5. इसके विपरीत, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के उपरोक्त तर्कों का पुरजोर विरोध किया और प्रस्तुत किया कि इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि विपक्षी संख्या 2 के साथ विवाह के समय, आवेदक का अपनी पूर्व पत्नी के साथ कानूनी रूप से तलाक हो चुका था। पुलिस विभाग द्वारा आवेदक के विरुद्ध दर्ज कराई गई एफ.आई.आर. के अनुपालन में जाँच के दौरान जो हलफनामा दिया गया था, वह आवेदक के दबाव में दिया गया था क्योंकि वह (विपक्षी संख्या 2) अपना विवाह बचाना चाहती थी। विपक्षी

संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया कि एफ.आई.आर. के अवलोकन मात्र से और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 और 164 के तहत दर्ज बयानों से, प्रथम दृष्टया आवेदक के विरुद्ध अपराध बनता है, जो विचारण के लिए पर्याप्त है। अतः, (मामले को) रद्द करने का कोई आधार नहीं बनता है।

6. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने भी आवेदक की प्रार्थना का विरोध किया और विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों को अपनाया।

7. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों को सुनने और रिकॉर्ड के अवलोकन के पश्चात, निर्धारण के लिए जो कानूनी प्रश्न उत्पन्न होता है, वह यह है कि क्या पति द्वारा अपनी पत्नी की इच्छा के विरुद्ध किया गया दैहिक संभोग, भारतीय दंड संहिता की धारा 377 के तहत अपराध की श्रेणी में आएगा। इस प्रश्न के निर्धारण के लिए, भारतीय दंड संहिता की धारा 377 का उल्लेख करना उचित होगा, जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

*"**धारा 377. अप्राकृतिक अपराध-** जो कोई किसी पुरुष, स्त्री या जीवजन्तु के साथ प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध स्वेच्छया दैहिक संभोग करेगा, वह [आजीवन कारावास] से, या दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।*
***स्पष्टीकरण-** इस धारा में वर्णित अपराध के लिए आवश्यक दैहिक संभोग गठित करने के लिए प्रविष्टि (penetration) पर्याप्त है।"*

8. यद्यपि, धारा 377 भा.दं.सं. के अवलोकन मात्र से ऐसा प्रतीत होता है कि पुरुष, स्त्री या जीवजन्तु के साथ दैहिक संभोग स्वयं में एक अपराध होगा, किंतु इस धारा की वैधता पर उच्चतम न्यायालय द्वारा **'नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत संघ, सचिव विधि एवं न्याय मंत्रालय के माध्यम से' (2018 (10) एससीसी 1)** के मामले में विचार किया गया था, जिसमें शीर्ष अदालत ने यह टिप्पणी की थी कि दो वयस्कों के बीच सहमति से बना यौन संबंध धारा 377 भा.दं.सं. के तहत अपराध नहीं होगा, और उस सीमा तक, धारा 377 भा.दं.सं. को भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 19 और 21 के विरुद्ध घोषित किया गया था। हालांकि, शीर्ष अदालत ने आगे यह भी कहा कि दो वयस्कों के बीच बिना सहमति के, या किसी जीवजन्तु अथवा नाबालिग के साथ किया गया दैहिक संभोग अभी भी धारा 377 भा.दं.सं. के तहत अपराध बना रहेगा। धारा 377 भा.दं.सं. में दो शब्द महत्वपूर्ण हैं। एक है 'कार्नल' (दैहिक) और दूसरा है 'प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध' (अप्राकृतिक)।

9. 'ब्लैक लॉ डिक्शनरी' के अनुसार 'कार्नल' शब्द का अर्थ है "शरीर का साधन, शरीर से संबंधित, मांसल या यौन" और 'न्यू इंटरनेशनल वेबस्टर्स कॉम्प्रिहेंसिव डिक्शनरी' के अनुसार 'कार्नल' शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है: "(i) मांसल प्रकृति या शारीरिक इच्छाओं से संबंधित; (ii) कामुक, यौन; (iii) मांस या शरीर से संबंधित; आध्यात्मिक नहीं; अतः सांसारिक।"

10. अतः, 'कार्नल' (दैहिक) की परिभाषा के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि यह उस संभोग से भिन्न है जो केवल 'पेनाइल-वेजाइनल' संभोग से संबंधित होता है। 'अप्राकृतिक' या 'प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध' शब्दों को भारतीय दंड संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है।

11. 'खानु बनाम एम्परर' (1924 एससीसी ऑनलाइन Sind JC 49) और साथ ही **'खांडू बनाम एम्परर' (1933 एससीसी ऑनलाइन Lah 601)** के मामलों में अदालतों ने 'कार्नल' (दैहिक) शब्द की व्याख्या उन कृत्यों के संदर्भ में की थी जो 'पेनाइल-वेजाइनल' (लिंग-योनि) संभोग के दायरे से बाहर आते हैं और जिनका उद्देश्य प्रजनन (procreation) नहीं था।

12. पूर्व में, यह माना जाता था कि केवल प्रजनन के लिए किया गया यौन संभोग ही प्राकृतिक है और अन्य सभी संभोग अप्राकृतिक या प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध हैं, लेकिन बाद में, भारत सहित पूरे विश्व में यह स्वीकार किया गया कि प्राकृतिक यौन संबंध की उपरोक्त परिभाषा अब वैध परिभाषा नहीं रह गई है। **'नवतेज सिंह जौहर' (उपरोक्त)** के मामले में, शीर्ष अदालत ने यह टिप्पणी की थी कि LGBTQIA+ समुदाय के सदस्यों के बीच दैहिक यौन संबंध, भले ही वे अल्पसंख्यक हों, यौन संबंध का एक प्राकृतिक अभिविन्यास है।

13. भारतीय दंड संहिता की धारा 375 में संशोधन से पहले, केवल किसी पुरुष द्वारा किसी महिला की इच्छा के विरुद्ध किया गया यौन संभोग ही बलात्कार के रूप में अपराध था, सिवाय उन मामलों के जहाँ महिला उस पुरुष की पत्नी हो और 15 वर्ष से अधिक आयु की हो। वर्ष 2013 के संशोधन से पूर्व विद्यमान धारा 375 भा.दं.सं. को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"6. भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के तहत दी गई "बलात्कार" की संशोधन-पूर्व परिभाषा इस प्रकार है:–

375. बलात्कार– कोई पुरुष 'बलात्कार' करता है, यह तब कहा जाता है जब वह (इसके पश्चात दिए गए अपवाद को छोड़कर) किसी महिला के साथ निम्नलिखित छह विवरणों में से किसी भी परिस्थिति में यौन संभोग करता है:–

पहला– उसकी इच्छा के विरुद्ध।

दूसरा– उसकी सहमति के बिना।

तीसरा– उसकी सहमति से, जब उसकी सहमति उसे या किसी ऐसे व्यक्ति को जिसमें वह रुचि रखती है, मृत्यु या उपहति (hurt) के भय में डालकर प्राप्त की गई हो।

चौथा– उसकी सहमति से, जब वह पुरुष यह जानता हो कि वह उसका पति नहीं है, और उसकी सहमति इसलिए दी गई है क्योंकि वह विश्वास करती है कि वह कोई अन्य पुरुष है जिससे वह विवाहित है या होने का विश्वास करती है।

पांचवां– उसकी सहमति से जब, ऐसी सहमति देने के समय, मन की अस्वस्थता या मत्तता के कारण या उस पुरुष द्वारा व्यक्तिगत रूप से या किसी अन्य के माध्यम से किसी नशीले या अस्वास्थ्यकर पदार्थ के दिए जाने के कारण, वह उस प्रकृति और परिणामों को समझने में असमर्थ हो जिसके लिए वह सहमति दे रही है।

छठा– उसकी सहमति के साथ या बिना, जब उसकी आयु सोलह वर्ष से कम हो।
स्पष्टीकरण– बलात्कार के अपराध के लिए आवश्यक यौन संभोग गठित करने के लिए प्रविष्टि पर्याप्त है।
अपवाद– किसी पुरुष द्वारा अपनी ही पत्नी के साथ यौन संभोग, यदि पत्नी पंद्रह वर्ष से कम आयु की न हो, बलात्कार नहीं है।"

14. अधिनियम संख्या 13, वर्ष 2013 द्वारा भारतीय दंड संहिता में 'बलात्कार' की परिभाषा में संशोधन के बाद, कई (अन्य) यौन कृत्यों को भी बलात्कार की परिभाषा में शामिल किया गया। संशोधित धारा 375 भा.दं.सं. के अनुसार बलात्कार की संशोधित परिभाषा को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"7. 'बलात्कार' की परिभाषा को 2013 के अधिनियम संख्या 13 द्वारा संशोधित किया गया था और भा.दं.सं. की धारा 375 के तहत परिभाषित 'बलात्कार' की संशोधित परिभाषा इस प्रकार है:–
375. बलात्कार– कोई पुरुष 'बलात्कार' करता है, यह तब कहा जाता है यदि वह–
(क) किसी महिला की योनि, मुख, मूत्रमार्ग (urethra) या गुदा (anus) में अपने लिंग को किसी भी सीमा तक प्रविष्ट करता है, या उसे अपने साथ या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए विवश करता है; अथवा
(ख) लिंग के अतिरिक्त, किसी भी वस्तु या शरीर के किसी भाग को किसी भी सीमा तक महिला की योनि, मूत्रमार्ग या गुदा में प्रविष्ट करता है, या उसे अपने साथ या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए विवश करता है; अथवा
(ग) महिला के शरीर के किसी भाग के साथ इस प्रकार हेर-फेर करता है जिससे उस महिला की योनि, मूत्रमार्ग, गुदा या शरीर के किसी भी भाग में प्रविष्टि हो जाए या उसे अपने साथ या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए विवश करता है; अथवा
(घ) महिला की योनि, गुदा, मूत्रमार्ग पर अपना मुख लगाता है या उसे अपने साथ या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए विवश करता है,
निम्नलिखित सात विवरणों में से किसी भी परिस्थिति के अंतर्गत:–
पहला– उसकी इच्छा के विरुद्ध।
दूसरा– उसकी सहमति के बिना।
तीसरा– उसकी सहमति से, जब उसकी सहमति उसे या किसी ऐसे व्यक्ति को जिसमें वह रुचि रखती है, मृत्यु या उपहति (hurt) के भय में डालकर प्राप्त की गई हो।
चौथा– उसकी सहमति से, जब वह पुरुष यह जानता हो कि वह उसका पति नहीं है, और उसकी सहमति इसलिए दी गई है क्योंकि वह विश्वास करती है कि वह कोई अन्य पुरुष है जिससे वह विवाहित है या होने का विश्वास करती है।
पांचवां– उसकी सहमति से जब, ऐसी सहमति देने के समय, मन की अस्वस्थता या मत्तता के कारण या उस पुरुष द्वारा व्यक्तिगत रूप से या किसी अन्य के माध्यम से किसी नशीले या अस्वास्थ्यकर पदार्थ के दिए जाने के कारण, वह उस प्रकृति और परिणामों को समझने में असमर्थ हो जिसके लिए वह सहमति दे रही है।
छठा– उसकी सहमति के साथ या बिना, जब उसकी आयु अठारह वर्ष से कम हो।

अनुवादित

सातवां– जब वह सहमति व्यक्त करने में असमर्थ हो।

स्पष्टीकरण 1– इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "योनि" के अंतर्गत 'लेबिया मेजोरा' भी शामिल होगा।

स्पष्टीकरण 2– सहमति का अर्थ एक स्पष्ट स्वैच्छिक समझौता है जब महिला शब्दों, इशारों या मौखिक या गैर-मौखिक संचार के किसी भी रूप द्वारा, विशिष्ट यौन कृत्य में भाग लेने की इच्छा व्यक्त करती है:

परंतु यह कि ऐसी महिला, जो प्रविष्टि के कृत्य का शारीरिक रूप से विरोध नहीं करती है, केवल उस तथ्य के कारण यौन गतिविधि के लिए सहमति देने वाली नहीं मानी जाएगी।

अपवाद 1– चिकित्सीय प्रक्रिया या हस्तक्षेप (medical procedure or intervention) बलात्कार की श्रेणी में नहीं आएगा।

अपवाद 2– किसी पुरुष द्वारा अपनी ही पत्नी के साथ यौन संभोग या यौन कृत्य, यदि पत्नी पंद्रह वर्ष से कम आयु की न हो, बलात्कार नहीं है।"

15. बलात्कार की संशोधित परिभाषा के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि पूर्व में जिस यौन कृत्य को धारा 377 भा.दं.सं. के अनुसार अप्राकृतिक माना जाता था, उसे भी बलात्कार की परिभाषा में शामिल कर लिया गया है, यदि वह किसी पुरुष द्वारा महिला की इच्छा के विरुद्ध किया जाता है। इसलिए, संशोधित परिभाषा के अनुसार, यदि किसी महिला की योनि में लिंग प्रविष्टि होती है या लिंग के अलावा किसी वस्तु या शरीर के अंग को योनि या गुदा में डाला जाता है, साथ ही महिला की योनि, गुदा और मूत्रमार्ग पर मुख लगाया जाता है, तो वह बलात्कार की परिभाषा के अंतर्गत आएगा, यदि वह उसकी सहमति के बिना किया गया है। लेकिन अपवाद (ii) बलात्कार का अपराध नहीं बनाता है यदि उपरोक्त में से कोई भी यौन कृत्य एक पुरुष द्वारा अपनी पत्नी के साथ किया जाता है, यदि वह 18 वर्ष से अधिक आयु की है।

16. मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर ने **'मनीष साहू' (उपरोक्त)** के मामले में यह टिप्पणी की है कि एक पुरुष द्वारा अपनी पत्नी के साथ किया गया अप्राकृतिक यौन कृत्य, बलात्कार की संशोधित परिभाषा के अपवाद (ii) को देखते हुए, बलात्कार की परिभाषा के दायरे में नहीं आता है। इसलिए, यदि वही कृत्य अपनी पत्नी के साथ किया जाता है, तो वह धारा 377 भा.दं.सं. के तहत भी अपराध नहीं होगा। **मनीष साहू के मामले (उपरोक्त)** के पैराग्राफ संख्या 17 और 18 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"17. इस प्रकार, किसी कृत्य को भा.दं.सं. की धारा 377 के दायरे से बाहर रखने के लिए दोनों पक्षों की सहमति आवश्यक है। हालांकि, इस न्यायालय ने भा.दं.सं. की धारा 375 के तहत परिभाषित "बलात्कार" की संशोधित परिभाषा पर विचार करने के बाद पहले ही यह निष्कर्ष निकाला है कि यदि एक पत्नी एक वैध विवाह के अस्तित्व के दौरान अपने पति के साथ रह रही है, तो एक पुरुष द्वारा अपनी पत्नी (जिसकी आयु पंद्रह वर्ष से कम न हो) के साथ किया गया कोई भी यौन संभोग या यौन कृत्य बलात्कार नहीं होगा। इसलिए, भा.दं.सं. की धारा 375 के तहत "बलात्कार" की संशोधित परिभाषा को देखते हुए, जिसमें महिला की गुदा में लिंग की प्रविष्टि को भी "बलात्कार" की परिभाषा में शामिल किया गया है और पति द्वारा अपनी पत्नी (जिसकी आयु पंद्रह वर्ष से कम न हो) के साथ किया गया कोई भी यौन संभोग या यौन कृत्य बलात्कार नहीं है, तो इन परिस्थितियों

में, अप्राकृतिक कृत्य के लिए पत्नी की सहमति का अभाव अपना महत्व खो देता है। वैवाहिक बलात्कार को अब तक मान्यता नहीं दी गई है।

18. इन परिस्थितियों में, इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि एफ.आई.आर. में लगाए गए आरोपों से भा.दं.सं. की धारा 377 के तहत अपराध नहीं बनेगा। मेरे इस विचार की पुष्टि इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा 'उमंग सिंघार बनाम मध्य प्रदेश राज्य, थाना प्रभारी के माध्यम से' (2023 एससीसी ऑनलाइन MP 3221) के मामले में पारित निर्णय से होती है।"

17. इस मुद्दे पर मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की एकल न्यायाधीश पीठ ने **'शशांक हर्ष' (उपरोक्त)** के मामले में पुनः विचार किया था, जिसमें मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की एकल न्यायाधीश पीठ ने टिप्पणी की कि एक पुरुष द्वारा अपनी पत्नी (जो 18 वर्ष से ऊपर है) के साथ किया गया अप्राकृतिक यौन संबंध अब धारा 375 भा.दं.सं. के अनुसार बलात्कार नहीं है, इसलिए, वही कृत्य धारा 377 भा.दं.सं. के तहत अपराध नहीं हो सकता क्योंकि धारा 375 भा.दं.सं. और धारा 377 भा.दं.सं. के तहत अपराध के संबंध में विसंगति है, अतः बाद वाला अधिनियम (later enactment), जो 2013 में अधिनियमित किया गया था, धारा 377 भा.दं.सं. की परिभाषा पर प्रभावी होगा। उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 15 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"15. उपरोक्त चर्चाओं के आलोक में, इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि वर्तमान मामले में चूंकि प्रतिवादी संख्या 2/पत्नी अपने विवाह के अस्तित्व के दौरान अपने पति के साथ रह रही थी और भा.दं.सं. की धारा 375 के तहत "बलात्कार" की संशोधित परिभाषा के अनुसार, जिसमें महिला के मुख में लिंग की प्रविष्टि को भी "बलात्कार" की परिभाषा में शामिल किया गया है और पति द्वारा अपनी पत्नी (जिसकी आयु पंद्रह वर्ष से कम न हो) के साथ किया गया कोई भी यौन संभोग या कृत्य बलात्कार नहीं है, इसलिए सहमति अप्रासंगिक है। इन परिस्थितियों में एफ.आई.आर. में लगाए गए आरोप याचिकाकर्ता संख्या 1 के विरुद्ध भा.दं.सं. की धारा 377 के तहत अपराध गठित नहीं करते हैं। तदनुसार, याचिकाकर्ता संख्या 1 को भा.दं.सं. की धारा 377 के तहत अपराध से दोषमुक्त किया जाता है।"

18. मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों में पुरुष द्वारा अपनी पत्नी के साथ उसकी सहमति के बिना भी किए गए अप्राकृतिक यौन संबंध को धारा 377 भा.दं.सं. के तहत अपराध न घोषित करने का एकमात्र तर्क यह है कि इसे धारा 375 भा.दं.सं. के तहत बलात्कार के रूप में दंडनीय नहीं माना गया है।

19. यह न्यायालय सम्मानपूर्वक मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के उपरोक्त तर्क से असहमत है क्योंकि एक पत्नी भले ही 18 वर्ष से अधिक आयु की हो, लेकिन एक व्यक्तिगत पहचान के रूप में उसके पास यौन अभिविन्यास का विकल्प है जिसे संरक्षित किया जाना चाहिए, और केवल इसलिए कि वह किसी पुरुष की पत्नी है, अप्राकृतिक यौन संबंध के विरुद्ध सहमति न देने का उसका मौलिक अधिकार छीना नहीं जा सकता। एक महिला, पत्नी होने के बावजूद, विशेष यौन अभिविन्यास और गरिमा का व्यक्तिगत अधिकार रखती है।

20. शीर्ष अदालत ने **'नवतेज सिंह जौहर' (उपरोक्त)** के मामले में यह टिप्पणी की है कि गरिमा को मानवीय व्यक्तित्व का एक अविभाज्य पहलू माना जाता है और यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार का एक महत्वपूर्ण पक्ष भी है। नवतेज सिंह जौहर (उपरोक्त) के पैराग्राफ संख्या 139 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"139. गरिमा का मौलिक विचार मानवीय व्यक्तित्व के एक अविभाज्य पहलू के रूप में माना जाता है। गरिमा को संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार के एक महत्वपूर्ण पहलू के रूप में विधिवत मान्यता दी गई है। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में, गरिमा के साथ जीने के अधिकार को वर्ष 1948 में मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा की शुरुआत के साथ ही एक मानवाधिकार के रूप में पहचान लिया गया था। हमारे देश के संवैधानिक न्यायालयों ने जब भी अवसर आया है, प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा के अधिकार को सुनिश्चित करने और उसे बनाए रखने के कार्य को अत्यंत गंभीरता से निभाया है, क्योंकि गरिमा के साथ जीने के अधिकार के बिना, अन्य सभी मौलिक अधिकार अपना पूर्ण अर्थ प्राप्त नहीं कर सकते हैं।"

21. 'के. एस. पुट्टस्वामी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य' (2017 (10) एससीसी 1) के मामले में, शीर्ष अदालत की नौ-न्यायाधीशों की पीठ ने बहुत स्पष्ट रूप से देखा कि निजता, व्यक्ति के अपने व्यक्तित्व पर नियंत्रण रखने के अधिकार का सहवर्ती है। इसका उद्भव इस धारणा में मिलता है कि कुछ अधिकार ऐसे हैं जो मनुष्य के लिए प्राकृतिक या अंतर्निहित हैं। वे वर्ग या स्तर, लिंग या अभिविन्यास के बावजूद व्यक्ति में समान रूप से विद्यमान हैं। आगे यह टिप्पणी की गई कि निजता एक ऐसा अधिकार है जो व्यक्ति के आंतरिक क्षेत्र को राज्य और गैर-राज्य अभिनेताओं के हस्तक्षेप से बचाता है और व्यक्ति को स्वायत्त जीवन विकल्प चुनने की अनुमति देता है। साथ ही यह भी कहा गया कि निजता, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की गारंटी के हिस्से के रूप में एक संवैधानिक रूप से संरक्षित अधिकार है। **के. एस. पुट्टस्वामी** के मामले (उपरोक्त) के पैराग्राफ संख्या 42, 320, 322 और 323 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"42. निजता, व्यक्ति के अपने व्यक्तित्व पर नियंत्रण रखने के अधिकार का एक सहवर्ती है। इसका उद्भव इस धारणा में है कि कुछ अधिकार ऐसे हैं जो मनुष्य के लिए प्राकृतिक या अंतर्निहित हैं। प्राकृतिक अधिकार अहस्तांतरणीय होते हैं क्योंकि वे मानवीय व्यक्तित्व से अविभाज्य हैं। प्राकृतिक अधिकारों के अस्तित्व के बिना जीवन में मानवीय तत्व की कल्पना करना असंभव है। 1690 में, जॉन लॉक ने अपने 'सेकंड ट्रीटीज़ ऑफ गवर्नमेंट' में टिप्पणी की थी कि व्यक्तियों का जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति मौलिक प्राकृतिक कानून के मामले में एक निजी क्षेत्र है। निजी क्षेत्र का विचार बाहरी हस्तक्षेप से अवरोध पैदा करना था। 1765 में, विलियम ब्लैकस्टोन ने 'कमेंट्रीज़ ऑन द लॉज़ ऑफ इंग्लैंड' में "प्राकृतिक स्वतंत्रता" की बात की थी। उनके विचार में, ऐसे पूर्ण अधिकार थे जो प्रकृति के अपरिवर्तनीय नियमों द्वारा व्यक्ति में निहित थे। इन पूर्ण अधिकारों को व्यक्तिगत सुरक्षा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और संपत्ति के अधिकारों में विभाजित किया गया था। व्यक्तिगत सुरक्षा

के अधिकार में किसी व्यक्ति द्वारा जीवन, अंगों, शरीर, स्वास्थ्य और प्रतिष्ठा का कानूनी और निर्बाध आनंद शामिल था।

320. अब हम यह जांचने के लिए आगे बढ़ते हैं कि क्या ये घटक वर्तमान मामले में आवश्यक मापदंडों को पूरा करते हैं।

322. अपनी पिछली चर्चा में, हमने पहले ही ऊपर बताया है कि आधार अधिनियम राज्य के वैध उद्देश्य को पूरा करता है। वास्तव में, यह इस घटक का उत्तर भी प्रदान करता है। उक्त चर्चा में कुछ परिवर्धन इस प्रकार हैं।

323. यह सामान्य ज्ञान की बात है कि पिछले कुछ दशकों में समय-समय पर क्रमिक सरकारों द्वारा समाज के हाशिए पर रहने वाले वर्गों के लिए विभिन्न कल्याणकारी योजनाएं चलाई गई हैं। इनमें राशन की दुकानों के माध्यम से उचित लागत पर राशन देना (भोजन के अधिकार को ध्यान में रखते हुए), बीपीएल कार्ड जारी करके गरीबी रेखा से नीचे के लोगों को कुछ लाभ प्रदान करना, न्यूनतम लागत पर एलपीजी कनेक्शन और एलपीजी सिलेंडर देना, पात्र व्यक्तियों को वृद्धावस्था और अन्य प्रकार की पेंशन, छात्रवृति, और महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005 (मनरेगा) योजना के तहत बेरोजगारों को रोजगार देना शामिल है। न केवल भारत में बल्कि दुनिया भर के कई अन्य देशों में सामाजिक-आर्थिक अधिकारों का उदय हुआ है। इस प्रकार, एक ओर नागरिक और राजनीतिक अधिकारों की मान्यता है और दूसरी ओर सामाजिक-आर्थिक अधिकारों का उदय हुआ है। नागरिक और राजनीतिक अधिकार समीक्षा के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक अधिकार समीक्षा के बीच की सीमाएं तेजी से समाप्त हो रही हैं। भारत में निर्मित यह अधिकार न्यायशास्त्र इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण है।"

22. शीर्ष अदालत ने **'नवतेज सिंह जौहर' (उपरोक्त)** के मामले में पैराग्राफ संख्या 418 में प्राकृतिक और अप्राकृतिक संभोग पर भी विचार किया और उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"418. यदि 'प्राकृतिक' और 'अप्राकृतिक' जैसे अनिश्चित शब्दों के बीच किसी सुबोध अंतर को खोजना कठिन है, तो यह कहना और भी अधिक समस्यात्मक है कि उन व्यक्तियों के बीच का वर्गीकरण जो कथित तौर पर 'प्राकृतिक' संभोग में संलग्न होते हैं और वे जो 'प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध दैहिक संभोग' में संलग्न होते हैं, कानूनी रूप से वैध हो सकता है।"

23. शीर्ष अदालत ने **'नवतेज सिंह जौहर' (उपरोक्त)** के मामले में वर्ष 2013 में भा.दं.सं. की धारा 375 के तहत बलात्कार की परिभाषा में किए गए संशोधन पर विचार किया। उस निर्णय में, शीर्ष अदालत LGBTQIA+ समुदाय के व्यक्ति के साथ सहमति से किए गए दैहिक संभोग के संबंध में धारा 377 भा.दं.सं. की वैधता पर विचार कर रही थी और विस्तृत चर्चा के बाद यह टिप्पणी की कि यद्यपि मौखिक यौन संबंध या गुदा मैथुन

जैसे दैहिक संभोग समाज के एक बड़े हिस्से के लिए अप्राकृतिक हो सकते हैं, लेकिन फिर भी, यह LGBTQIA+ समुदाय के अल्पसंख्यक समूह का एक प्राकृतिक अभिविन्यास है। इसलिए, यदि संभोग स्वैच्छिक है तो वह अपराध नहीं हो सकता, लेकिन आगे यह भी कहा गया कि यदि दैहिक संभोग गैर-सहमति आधारित है, तो वह अभी भी धारा 377 भा.दं.सं. के तहत अपराध है।

24. शीर्ष अदालत ने यह भी कहा कि धारा 377 भा.दं.सं., धारा 375 भा.दं.सं. के विपरीत, एक लिंग-तटस्थ प्रावधान है क्योंकि इसमें 'जो कोई' शब्द का प्रयोग किया गया है और अंततः, शीर्ष अदालत ने यह टिप्पणी की कि दो वयस्कों के बीच सहमति से की गई यौन गतिविधि के लिए सजा, चाहे वे समलैंगिक, विषमलिंगी या लेस्बियन हों, संवैधानिक नहीं मानी जा सकती। हालांकि, यदि व्यक्तियों के बीच दैहिक संभोग का कोई भी कृत्य उनमें से किसी एक की सहमति के बिना किया जाता है, तो वह धारा 377 भा.दं.सं. के तहत दंडनीय होगा। **'नवतेज सिंह जौहर' (उपरोक्त)** के निर्णय के पैराग्राफ संख्या 267 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"267. इस प्रकार विश्लेषण करने पर, धारा 377 भा.दं.सं., जहाँ तक यह दो वयस्कों के बीच किसी भी सहमतिपूर्ण यौन गतिविधि को दंडित करती है, चाहे वह समलैंगिक (पुरुष और पुरुष), विषमलिंगी (पुरुष और महिला) और लेस्बियन (महिला और महिला) हों, संवैधानिक नहीं मानी जा सकती। हालांकि, यदि कोई भी, जिससे हमारा तात्पर्य पुरुष और महिला दोनों से है, किसी जानवर के साथ किसी भी प्रकार की यौन गतिविधि में संलग्न होता है, तो धारा 377 भा.दं.सं. का उक्त पहलू संवैधानिक है और यह धारा 377 भा.दं.सं. के तहत एक दंडात्मक अपराध बना रहेगा। व्यक्तियों के बीच धारा 377 भा.दं.सं. के तहत वर्णित विवरण का कोई भी कृत्य जो उनमें से किसी एक की सहमति के बिना किया जाता है, धारा 377 भा.दं.सं. के तहत दंडात्मक दायित्व को आमंत्रित करेगा।"

25. उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर, यह स्पष्ट है कि लिंग-योनि संभोग के अतिरिक्त अन्य दैहिक संभोग महिलाओं के बहुमत के लिए यौन संबंध का एक प्राकृतिक अभिविन्यास नहीं है, इसलिए पति द्वारा अपनी पत्नी के साथ भी उसकी सहमति के बिना ऐसा नहीं किया जा सकता है। अतः, यह न्यायालय यह निर्धारित करता है कि एक पुरुष द्वारा अपनी ही पत्नी के साथ उसकी सहमति के बिना किया गया अप्राकृतिक यौन संभोग, भले ही वह 18 वर्ष से अधिक आयु की हो, धारा 377 भा.दं.सं. के तहत दंडनीय होगा, यद्यपि वह धारा 375 भा.दं.सं. के अनुसार बलात्कार नहीं हो सकता है।

26. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि आवेदक के विरुद्ध धारा 377 भा.दं.सं. के तहत कोई अपराध नहीं बनता है, गलत है क्योंकि आवेदक द्वारा विपक्षी संख्या 2 के साथ किया गया अप्राकृतिक संभोग उसकी इच्छा के विरुद्ध था।

27. धारा 161 और 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज विपक्षी संख्या 2 के बयानों के अवलोकन से, पति के विरुद्ध दहेज की मांग के लिए क्रूरता और उत्पीड़न के साथ-साथ अपनी पत्नी की इच्छा के विरुद्ध उसके

साथ अप्राकृतिक दैहिक यौन संबंध बनाने का विशिष्ट आरोप है। अतः, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि धारा 498ए और 377 भा.दं.सं. तथा धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत कोई अपराध नहीं बनता है, गलत है। जहाँ तक आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के अन्य तर्क का प्रश्न है कि विपक्षी संख्या 2 आवेदक के पिछले विवाह के बारे में जानती थी, तो वह वर्तमान विवाद के लिए प्रासंगिक नहीं है और तथ्य का विवादास्पद प्रश्न होने के नाते इसका निर्णय विचारण के दौरान किया जा सकता है, किंतु यह आक्षेपित कार्यवाही को रद्द करने का आधार नहीं हो सकता।

28. जहाँ तक आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क का संबंध है कि एफ.आई.आर. दर्ज करने में देरी हुई है, वह भी गलत है क्योंकि एफ.आई.आर. और बयानों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि आवेदक की ओर से विपक्षी संख्या 2 का निरंतर उत्पीड़न किया जा रहा था। अतः, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया **'शिवेंद्र प्रताप सिंह ठाकुर' (उपरोक्त)** के मामले का निर्णय वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है।

29. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का एक अन्य तर्क यह है कि चूंकि विपक्षी संख्या 2 ने अपनी चिकित्सा परीक्षा कराने से इनकार कर दिया है, इसलिए विवादित कार्यवाही रद्द होने योग्य है, यह भी गलत है, क्योंकि आवेदक द्वारा विपक्षी संख्या 2 के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध अप्राकृतिक संभोग किया गया था, और कुछ दिनों बाद एफ.आई.आर. दर्ज की गई थी। केस डायरी में अन्य सामग्री मौजूद है, जो विपक्षी संख्या 2 के आरोप की पुष्टि करती है। अतः, यदि विपक्षी संख्या 2 की चिकित्सा परीक्षा नहीं भी की गई थी, तो उसे विवादित कार्यवाही को रद्द करने का आधार नहीं बनाया जा सकता।

30. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि स्वतंत्र गवाह ने एफ.आई.आर. में वर्णित विपक्षी संख्या 2 के संस्करण का समर्थन नहीं किया और धारा 161 एवं 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज विपक्षी संख्या 2 के बयान में दहेज की कोई विशिष्ट मांग नहीं है, यह भी गलत है क्योंकि शीर्ष अदालत ने **'अलुरी वेंकट रमण बनाम अलुरी तिरुपति राव एवं अन्य' (एसएलपी (आपराधिक) संख्या 9243 of 2024)** के मामले में यह टिप्पणी की है कि धारा 498ए भा.दं.सं. के अपराध को आकर्षित करने के लिए दहेज की विशिष्ट मांग आवश्यक नहीं है, और पति द्वारा की गई क्रूरता स्वयं में धारा 498ए भा.दं.सं. के तत्वों को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त है। अन्यथा भी, धारा 161 और 164 दंड प्रक्रिया संहिता के बयानों के अवलोकन से, आरोप पत्र में उल्लिखित अपराध बनते हैं। अतः, **'हिमाचल प्रदेश राज्य' (उपरोक्त)** के मामले का निर्णय वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है।

31. उपरोक्त के आलोक में, इस न्यायालय का यह मत है कि रद्द करने का कोई आधार नहीं बनता है, अतः वर्तमान आवेदन को **अस्वीकार** किया जाता है।

32. हालांकि, आवेदक अवरल न्यायालय के समक्ष जमानत के लिए आवेदन करने हेतु स्वतंत्र है।

(2025) 5 ILRA 642

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव

बी.एन.एस.एस. की धारा 528 के तहत आवेदन संख्या 14125 वर्ष 2025

राजकुमार **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...विपक्षीगण**

आवेदक के अधिवक्ता:
जय किशन, विपिन कुमार

विपक्षीगण के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

सिविल कानून - आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 - धारा 11 - आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 11 के अनुसरण में अभियोजन की शायद ही कोई स्वीकृति उपलब्ध है – संपूर्ण कार्यवाही अधिनियम की धारा 11 के तहत विशेष रूप से परिभाषित सख्त प्रावधानों की अनदेखी करके संचालित की गई है – यह अनुमेय नहीं है – अनुचित – कार्यवाही रद्द की जाती है।

आवेदन स्वीकार। (E-9)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 17455 वर्ष 2012 (मनोज महतो बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)

2. वसंती दुबे बनाम मध्य प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या 166 वर्ष 2012 [विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 1548 वर्ष 2011 से उत्पन्न], निर्णय दिनांक 17 जनवरी, 2012

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव द्वारा पारित)

अनुवादित

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री जय किशन राजपूत और राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री ज्ञान प्रकाश को सुना गया।

2. मामले की शुरुआत विपक्षी संख्या 2 की ओर से आवेदक के विरुद्ध दिनांक 12.08.2021 को प्राथमिकी दर्ज कराने के साथ हुई थी, जो एक उचित दर विक्रेता (कोटेदार) रहा है, जिसमें आवश्यक वस्तुओं के वितरण में अनियमितता का विवरण दिया गया था; विवेचना पूरी होने के बाद, संबंधित विवेचना अधिकारी ने जिला मजिस्ट्रेट, कासगंज द्वारा जारी विशिष्ट आदेश दिनांक 06.10.2022 के क्रम में, विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कासगंज की न्यायालय में वाद संख्या 9794/2024 (राज्य बनाम राजकुमार) में दिनांक 17.12.2022 को अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिस पर विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कासगंज ने दिनांक 16.11.2024 को दं.प्र.सं. की धारा 190(1)(बी) के तहत अपराध का संज्ञान लिया, जिसे बी.एन.एस.एस. की धारा 528 के तहत आवेदन संख्या 9092/2025 के माध्यम से इस विशिष्ट आधार पर चुनौती दी गई थी कि दिनांक 16.11.2024 का आदेश कानून की दृष्टि में बरकरार रहने योग्य नहीं था, क्योंकि यह आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 11 का पूर्ण उल्लंघन है, क्योंकि जिला मजिस्ट्रेट या ऐसे अन्य अधिकारी जिसे राज्य सरकार द्वारा सामान्य या विशेष आदेश द्वारा सशक्त किया गया हो, उनके आदेश या अधिकार के तहत कोई पूर्व अनुमोदन/मंजूरी नहीं ली गई थी और इस प्रकार जिला मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना आवेदक के विरुद्ध पारित संज्ञान और समन आदेश कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है, क्योंकि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 11 के तहत पारित आदेश आवेदक के पक्ष में था।

3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों के आधार पर और **दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 17455/2012 (मनोज महतो बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)** में दिनांक 05.03.2020 को पारित निर्णय के आलोक में, आदेश दिनांक 21.03.2025 के माध्यम से विविध वाद संख्या 01/2023 (सुनील कुमार बनाम राज कुमार), जो मुकदमा अपराध संख्या 440/2021, अंतर्गत धारा 3/7 आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955, थाना कासगंज, जिला कासगंज से उत्पन्न है, में पारित समन आदेश दिनांक 16.11.2024 को रद्द करते हुए बी.एन.एस.एस. की धारा 528 के तहत पूर्ववर्ती आवेदन संख्या 9092/2025 को स्वीकार कर लिया गया है, लेकिन साथ ही, विद्वान संबंधित न्यायालय को अधिनियम 1955 की धारा 11 के उचित अनुपालन में, यदि कानून के अनुसार आवश्यक हो, तो आवेदक के विरुद्ध संज्ञान लेने की छूट प्रदान की गई थी; दिनांक 21.03.2025 के आदेश को पारित करते समय किए गए निर्धारण और निष्कर्ष का अंश नीचे पुनरुत्पादित किया गया है:-

"6. चूंकि, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कानूनी मुद्दों पर बहस की है, इसलिए प्रतिवादी संख्या 2 को नोटिस जारी करने की प्रक्रिया को एतद्द्वारा समाप्त किया जाता है।

7. आगे बढ़ने से पहले, आवश्यक वस्तु अधिनियम (उत्तर प्रदेश राज्य संशोधन 1955) की धारा 11 का त्वरित संदर्भ इस प्रकार है:-

"11. अपराधों का संज्ञान– कोई भी न्यायालय इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान, उन तथ्यों जिनसे ऐसा अपराध गठित होता है, की लिखित रिपोर्ट के सिवाय नहीं करेगा, जो किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया गया हो जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 में परिभाषित लोक सेवक है, 1[या कोई व्यथित व्यक्ति या कोई मान्यता प्राप्त उपभोक्ता संघ, चाहे ऐसा व्यक्ति उस संघ का सदस्य हो या नहीं]। 1[स्पष्टीकरण।– इस धारा और धारा 12AA के प्रयोजनों के लिए, "मान्यता प्राप्त उपभोक्ता संघ" से तात्पर्य कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन पंजीकृत एक स्वैच्छिक उपभोक्ता संघ है।] उत्तर प्रदेश राज्य संशोधन: धारा 11 में, शब्द "किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जो भारतीय दंड संहिता की धारा 21 में परिभाषित लोक सेवक है" के स्थान पर, शब्द "जिला मजिस्ट्रेट के आदेश द्वारा, या उनके प्राधिकार के अधीन या ऐसे अन्य अधिकारी द्वारा जिसे राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में सामान्य या विशेष आदेश द्वारा सशक्त किया गया हो" प्रतिस्थापित किए जाएं [देखें उत्तर प्रदेश अधिनियम 9, 1974, धारा 7 (दिनांक 24-4-1974 से प्रभावी)]।"

8. इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा मनोज महतो (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय को ध्यान में रखते हुए और रिकॉर्ड के अवलोकन से, यह पूरी तरह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में अधिनियम 1955 की धारा 11 का अनुपालन नहीं किया गया है, क्योंकि यह अच्छी तरह स्थापित है कि संज्ञान लेने के लिए जिला मजिस्ट्रेट का आदेश या उनके द्वारा प्राधिकरण अनिवार्य है, जो वर्तमान मामले में अनुपस्थित है। यह संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध में संज्ञान लेने की प्रक्रिया को दूषित करता है। यह कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। तदनुसार, यह आवेदन स्वीकार किया जाना है।

9. प्रस्तुत आवेदन एतद्द्वारा स्वीकार किया जाता है। विविध वाद संख्या 1/2023 (सुनील कुमार बनाम राजकुमार) (मुकदमा अपराध संख्या 440/2021 से उत्पन्न), अंतर्गत आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7, थाना कासगंज, जिला कासगंज में पारित आक्षेपित समन आदेश दिनांक 16.11.2024 को एतद्द्वारा रद्द किया जाता है।

10. उपरोक्त आदेश विद्वान संबंधित न्यायालय को आवेदक के विरुद्ध संज्ञान लेने से नहीं रोकेगा, यदि, कानून के अनुसार, अधिनियम 1955 की धारा 11 के उचित अनुपालन में यह आवश्यक हो।"

4. इस न्यायालय द्वारा आदेश दिनांक 21.03.2025 को पारित किए जाने के बाद, विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कासगंज ने आदेश दिनांक 02.04.2025 पारित किया, जिसके माध्यम से दिनांक 21.03.2025 के निर्णय के पैरा-10 में दी गई छूट का उपयोग किया गया और यह मानते हुए 'अग्रिम अन्वेषण' का निर्देश दिया कि यह छूट अभियोजन स्वीकृति (sanction) के बाद संज्ञान लेने के लिए दी गई है; साथ ही संबंधित विवेचना अधिकारी को स्वीकृति प्राप्त करने का निर्देश दिया और मामले को 01.07.2025 के लिए सूचीबद्ध कर दिया।

5. बी.एन.एस.एस. की धारा 528 के तहत यह प्रस्तुत आवेदन, विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कासगंज द्वारा वाद संख्या 9794/2024 (राज्य बनाम राजकुमार), आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3/7, थाना कासगंज, जिला कासगंज में पारित आदेश दिनांक 02.04.2025 को चुनौती देने के लिए प्रस्तुत किया गया है।

6. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कासगंज संबंधित विवेचना अधिकारी को आवेदक के विरुद्ध अभियोजन के लिए स्वीकृति प्राप्त करने हेतु बाध्य करने के लिए सशक्त नहीं थे, क्योंकि सक्षम प्राधिकारी, यानी जिला मजिस्ट्रेट, कासगंज ने तत्कालीन विवेचना अधिकारी द्वारा की गई जाँच पर पहले ही अपनी संतुष्टि व्यक्त कर दी थी, उस जाँच के माध्यम से कुछ ऐसे साक्ष्य सामने रखे गए थे, जो सीधे संकेत देते हैं कि आवेदक के विरुद्ध आगे की किसी कार्यवाही की आवश्यकता नहीं है और इस प्रकार संबंधित विवेचना अधिकारी द्वारा तैयार की गई 'अंतिम रिपोर्ट' को जिला मजिस्ट्रेट, कासगंज द्वारा दिनांक 06.10.2022 को आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 11 के तहत विधिवत अनुमोदित किया जा चुका था।

7. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह दलील दी गई कि विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कासगंज ने दो बार रिकॉर्ड पर स्पष्ट रूप से कानूनी अवैधता की है; पहली बार तब, जब सक्षम प्राधिकारी, जिला मजिस्ट्रेट, कासगंज, के उचित अनुमोदन के साथ अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, तब संबंधित अदालत के पास आदेश दिनांक 16.11.2024 के माध्यम से दं.प्र.सं. की धारा 190(1)(बी) के अनुसरण में आगे बढ़ने का कोई अवसर नहीं था, और उसके बाद दिनांक 02.04.2025 को आदेश पारित करते समय, दं.प्र.सं. की धारा 173(8) के अनुसरण में अग्रिम अन्वेषण के लिए एक अवैध निर्देश पारित किया गया।

8. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि संबंधित विद्वान न्यायालय ने दिनांक 16.11.2024 को आदेश पारित करते समय दं.प्र.सं. की धारा 190(1)(b) के प्रावधानों को अपनाया, जिसे इस न्यायालय द्वारा पहले ही रद्द कर दिया गया है। अब पुनः दिनांक 02.04.2025 को आदेश पारित करते समय दं.प्र.सं. की धारा 173(8) के प्रावधानों का सहारा लिया गया है, जिसे वर्तमान आवेदन में चुनौती दी गई है; इस मामले में आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 11 के विशिष्ट प्रावधान निरर्थक होते जा रहे हैं और अभियोजन, जो पूरी तरह से आवश्यक वस्तु अधिनियम में निहित प्रावधानों द्वारा शासित होता है, क्योंकि आवेदक पर आरोप धारा 3/7 के तहत हैं, को अवैध रूप से अनदेखा किया गया है।

9. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों की पुष्टि के लिए, उन्होंने **वसंती दुबे बनाम मध्य प्रदेश राज्य**, **17 जनवरी, 2012 को निर्णीत, आपराधिक अपील संख्या 166/2012, (विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 1548 वर्ष 2011 से उत्पन्न)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भरोसा किया, जिसके पैरा-16 का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत है:

"16. जब वर्तमान मामले के तथ्यों को उपरोक्त कानूनी स्थिति की कसौटी पर परखा जाता है, तो हम पाते हैं कि विशेष न्यायाधीश ने दं.प्र.सं. में वर्णित प्रक्रिया का पालन करने के बजाय, विशेष पुलिस स्थापना (लोकायुक्त कार्यालय) द्वारा दी गई क्लोजर रिपोर्ट को खारिज करने पर जोर दिया और इस प्रक्रिया में लगातार न केवल एक बार, बल्कि दो बार कानून और अधिकार क्षेत्र की गलती की। पहली बार जब विशेष न्यायाधीश के आदेश को उच्च न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया और विशेष न्यायाधीश को या तो धारा 190(सी) के तहत संज्ञान लेने या अग्रिम अन्वेषण का आदेश देने की छूट दी गई, क्योंकि उन्होंने पुलिस को सीधे आरोपी-याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल करने का निर्देश देकर अधिकार क्षेत्र की गलती की थी, तब विशेष न्यायाधीश ने संज्ञान लेना उचित नहीं समझा, बल्कि लोकायुक्त पुलिस द्वारा अग्रिम अन्वेषण का आदेश दिया और जब लोकायुक्त कार्यालय की विशेष पुलिस स्थापना द्वारा मामले की पुन: विवेचना की गई, तो विशेष न्यायाधीश ने जांच एजेंसी के इस निष्कर्ष के बावजूद कि मामले में आगे बढ़ने के लिए कोई सामग्री नहीं मिली है, क्लोजर रिपोर्ट को स्वीकार करने से इनकार कर दिया और इस बार उन्होंने आगे महसूस किया कि वह मामले में आगे नहीं बढ़ सकते क्योंकि अभियोजन के लिए कोई स्वीकृति नहीं थी, जिसे विशेष न्यायाधीश ने स्पष्ट रूप से नोटिस किया क्योंकि वह स्वीकृति के अभाव में, जो कि एक वैधानिक आवश्यकता थी, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7, 13(1)(d) के तहत सीधे संज्ञान लेने की स्थिति में नहीं थे। इसके बावजूद, उन्होंने क्लोजर रिपोर्ट को स्वीकार करने से इनकार कर दिया, लेकिन अपीलकर्ता के अभियोजन के लिए स्वीकृति प्राप्त करने का निर्देश दर्ज किया और उसके बाद दूसरी बार शिकायत के पुन: अन्वेषण का आदेश दिया, जिससे एक विचित्र और विषम स्थिति पैदा हो गई, जो कार्यवाही शुरू करने के लिए आवश्यक शर्तों से संबंधित अध्याय के तहत दं.प्र.सं. के प्रावधानों के अनुरूप नहीं है।"

10. इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने हालांकि इस आवेदन में की गई प्रार्थना का पुरजोर विरोध किया और आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के रुख का खंडन करते हुए प्रस्तुत किया कि संबंधित विद्वान न्यायालय ने इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांक 21.03.2025 के अनुसरण में कार्यवाही की है, जिसमें छूट प्रदान की गई थी और उसी का उपयोग करते हुए संबंधित विवेचना अधिकारी को दं.प्र.सं. की धारा 173(8) के तहत मामले की अग्रिम अन्वेषण का निर्देश दिया गया है और इस प्रकार, इस आवेदन में आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है और यह दंड प्रक्रिया संहिता के तहत उपलब्ध प्रक्रिया के पूर्णतः अनुरूप है।

11. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत परस्पर दलीलों को सुनने के पश्चात, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा संबंधित विद्वान न्यायालय द्वारा दिनांक 02.04.2025 को पारित नए आदेश के संबंध में उठाए गए तर्कों, जिसने वर्तमान आवेदन को प्रभावित किया है, उनकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि इस न्यायालय द्वारा दिनांक 21.03.2025 को निर्णय और आदेश पारित करते समय शायद ही कोई ऐसी छूट दी गई थी जिसे दंड प्रक्रिया संहिता की कार्यवाही का सहारा लेकर 'विशेष अधिनियम' के तहत उपलब्ध कार्यवाहियों से विचलन माना जा सके, चूंकि आवेदक को उन आरोपों के अनुसरण में फंसाया गया है जिनमें दंड का प्रावधान विशेष अधिनियम के तहत है और विशिष्ट प्रक्रियाएं भी उसी में परिभाषित हैं, अतः संबंधित विद्वान न्यायालय

द्वारा आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 11 के तहत स्पष्ट रूप से परिभाषित सख्त प्रावधानों की अनदेखी करना कानून की दृष्टि में अनुमेय नहीं है और अनुचित प्रतीत होता है।

12. विद्वान ए.जी.ए. द्वारा उठाए गए तर्क, विशेष रूप से इस न्यायालय द्वारा दी गई छूट का उपयोग करने के संबंध में, कानून की दृष्टि में मान्य नहीं है क्योंकि 'अभियोजन स्वीकृति के उपरांत' या 'अग्रिम अन्वेषण' का निर्देश कभी नहीं दिया गया था, बल्कि संबंधित विद्वान न्यायालय को केवल इस बात की छूट दी गई थी कि यदि आवश्यक हो, तो आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 11 के सख्त अनुपालन में अपराध का नया संज्ञान लिया जा सकता है।

13. संबंधित विद्वान न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 21.03.2025 द्वारा दी गई छूट के अनुरूप नहीं है; आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 11 के अनुसरण में अभियोजन के विशिष्ट आदेशों के अभाव में, जो कि विद्वान संबंधित न्यायालय के समक्ष उपलब्ध नहीं थे, यह आदेश आवेदक को दोषमुक्त/बरी करने की प्रकृति का होना चाहिए था। अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कासगंज के न्यायालय ने निर्णय और आदेश दिनांक 21.03.2025 के पैरा-10 में उपलब्ध छूट का उपयोग दंड प्रक्रिया संहिता में उपलब्ध प्रावधानों को लागू करके किया, जो तब लागू नहीं होंगे जब आवेदक को आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3/7 के अनुसरण में फंसाया गया हो, जो एक 'विशेष अधिनियम' है जिसका पालन किया जाना अनिवार्य है, जिसमें विशिष्ट प्रावधान उपलब्ध हैं और मामले को उन्हीं के अनुसार निपटाया जाना चाहिए।

14. उपरोक्त टिप्पणियों और माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा **वसंती दुबे (उपरोक्त)** के मामले में दिए गए सिद्धांत के आलोक में, अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कासगंज द्वारा पारित आदेश दिनांक 02.04.2025 को एतद्द्वारा **अपास्त** किया जाता है; एक बार जब यह पूरी तरह से सिद्ध हो जाता है कि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 11 के अनुसरण में अभियोजन की कोई स्वीकृति उपलब्ध नहीं है, तो मामले को वापस संबंधित विद्वान न्यायालय भेजने का कोई औचित्य नहीं रह जाता है, अतः मुकदमा अपराध संख्या 440/2021 से उत्पन्न संपूर्ण कार्यवाही, जो वाद संख्या 9794/2024 (राज्य बनाम राजकुमार) के रूप में संस्थित है, को एतद्द्वारा **रद्द** और अपास्त किया जाता है।

15. बी.एन.एस.एस. की धारा 528 के तहत प्रस्तुत आवेदन तद्नुसार **स्वीकार** किया जाता है।

(2025) 5 ILRA 647

मूल क्षेत्राधिकार

अपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 19916 वर्ष 2024

के साथ संबद्ध

धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 32200 वर्ष 2024

दुर्गा यादव **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...विपक्षीगण**

आवेदक के अधिवक्ता:
अभिषेक कुमार यादव

विपक्षीगण के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

अनुवादित

अपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 154 एवं 482 - उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म परिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 - धारा 2, 3, 3(1), 4, 5, 5(1), 7, 10 एवं 11; भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 - धारा 170, 173, 175 एवं 528; भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 419, 420 एवं 508; भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 25 एवं 25(1); उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म परिवर्तन प्रतिषेध (संशोधन) अधिनियम, 2024 - धारा 4 - दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत आवेदन - संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही को चुनौती - गोपनीय सूचना के आधार पर, यह आरोप लगाते हुए कि कुछ व्यक्ति धन और चिकित्सा उपचार का प्रलोभन देकर लोगों को ईसाई धर्म में परिवर्तित करने के लिए प्रेरित कर रहे थे - पुलिस ने छापा मारा - तलाशी और जब्ती की कार्यवाही - थाना प्रभारी ने प्राथमिकी दर्ज की - कई व्यक्तियों को पकड़ा गया, और धर्म परिवर्तन से संबंधित सामग्री जब्त की गई - बयान दर्ज किए गए - आरोप पत्र -आवेदकों ने यह तर्क दिया कि थाना प्रभारी अधिनियम द्वारा परिभाषित "व्यथित व्यक्ति" नहीं है, जो इस शब्द को केवल पीड़ितों या उनके करीबी रिश्तेदारों तक सीमित करता है, और इस प्रकार प्राथमिकी और उसके बाद की कार्यवाही प्रारंभतः शून्य है - न्यायालय के समक्ष मुख्य मुद्दा यह है कि “क्या अधिनियम की धारा 4 में प्रयुक्त शब्द 'कोई भी व्यथित व्यक्ति' को देखते हुए, थाना प्रभारी द्वारा उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म परिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 के तहत दर्ज प्राथमिकी वैध है?” - न्यायालय ने पाया कि, अधिनियम में 2024 का संशोधन और बी.एन.एस.एस. 2023 के

प्रासंगिक प्रावधान सूचना देने वालों के दायरे को और स्पष्ट और विस्तृत करते हैं। सोद्देश्य व्याख्या को लागू करते हुए और अनुच्छेद 25 के तहत संवैधानिक सुरक्षा उपायों पर विचार करते हुए, न्यायालय ने निर्धारित किया कि: (i) "व्यथित व्यक्ति" शब्द में थाना प्रभारी शामिल है, विशेष रूप से जबरदस्ती या धोखाधड़ी से जुड़े सामूहिक धर्म परिवर्तन के मामलों में। (ii) प्राथमिकी में संज्ञेय अपराध प्रकट हुए हैं और 'भजन लाल' के दिशानिर्देशों के तहत इसे रद्द करने की आवश्यकता नहीं है- तदनुसार, आवेदन खारिज किया जाता है - आवेदकों को विचारण के दौरान सभी बचाव पक्ष के तर्क उठाने की स्वतंत्रता के साथ, और चूंकि आज तक आवेदक को पुलिस द्वारा गिरफ्तार नहीं किया गया है, इसलिए उसे तब तक हिरासत में नहीं लिया जाएगा जब तक कि वह कार्यवाही में सहयोग करने में विफल न हो। (पैरा - 10, 11, 13, 17, 18, 19, 20, 21)

आवेदन खारिज। (E-11)

उद्धृत मामलों की सूची

1. चेयरमैन, इंदौर विकास प्राधिकरण बनाम प्योर इंडस्ट्रियल कोक एंड केमिकल्स लिमिटेड एवं अन्य - 2007 (8) एससीसी 705
2. भारत संघ बनाम अशोक कुमार शर्मा एवं अन्य - एआईआर (2020) एससी 5274
3. भगवान श्री रजनीश बनाम बिहार राज्य - 1986 पीएलजेआर 1038
4. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल - 1952 सप्लीमेंट (1) एससीसी 335
5. रमेश चंद्र गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य - 2022 लाइवलॉ (एससी) 993
6. जोस पापाचेन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य - आपराधिक अपील संख्या 877 वर्ष 2023
7. बशीर बनाम केरल राज्य - (2004) 3 एससीसी 609
8. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल एवं अन्य - 1992 सप्लीमेंट (1) एससीसी 335

(माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा पारित)

1. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता, विद्वान अपर महाधिवक्ता, जिन्हें राज्य-प्रतिवादी के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा सहायता प्रदान की गई, को सुना गया तथा रिकॉर्ड का अवलोकन किया गया।

2. वर्तमान कार्यवाही में, आवेदक ने मुकदमा अपराध संख्या 335 वर्ष 2023, उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म परिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 की धारा 3 और 5(1) के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 419, 420, 508 के तहत पुलिस थाना- केराकत, जिला जौनपुर, से उद्भूत आपराधिक कार्यवाही और विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-III, जौनपुर द्वारा पारित आक्षेपित संज्ञान आदेश दिनांक 6.1.2024 को चुनौती दी है।

2.1 अभियोजन पक्ष का मामला इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि ग्राम विक्रमपुर स्थित चर्च में गोपनीय सूचना प्राप्त हुई थी कि कुछ पुरुष और महिलाएं स्थानीय और दूर-दराज के क्षेत्रों के निर्दोष लोगों को धन और चिकित्सा उपचार का प्रलोभन देकर धर्म परिवर्तन के लिए लुभा रहे हैं। थाना प्रभारी, उनकी टीम और मुखबिर विक्रमपुर चर्च की ओर बढ़े। जैसे ही वे चर्च पहुंचे, कुछ लोग मंच के पास बैठे थे, जबकि अन्य सामने बैठे थे। माइक्रोफोन के पास खड़ा एक व्यक्ति धन और मुफ्त चिकित्सा उपचार का लालच देकर निर्दोष दर्शकों को प्रभु यीशु का धर्म अपनाने के लिए राजी कर रहा था।

2.2 जैसे ही पुलिस ने चर्च में प्रवेश किया, मंच के सामने बैठे लोग पुलिस को देखकर भागने लगे। पुलिस ने मौके पर तीन पुरुषों और एक महिला को पकड़ लिया, जबकि माइक्रोफोन पर बोल रहा व्यक्ति भाग निकला।

2.3 पकड़े गए व्यक्तियों से पूछताछ और उनकी तलाशी लेने पर, उन्होंने अपनी पहचान इस प्रकार बताई: (i) गोविंद लाल, पुत्र लाल बहादुर, निवासी सिहौली, केराकत थाना, जौनपुर जिला, (ii) जितेंद्र कुमार, पुत्र लोटू राम, निवासी विक्रमपुर, केराकत थाना, जौनपुर जिला, (iii) सुरेंद्र गौतम, पुत्र (स्वर्गीय) जयराम गौतम, निवासी प्यारेपुर, सराय ख्वाजा थाना, जौनपुर जिला, और (iv) श्रीमती उषा देवी, पत्नी श्रवण कुमार, निवासी विक्रमपुर, केराकत थाना, जौनपुर जिला।

2.4 परिसर की तलाशी ली गई, धर्म परिवर्तन से संबंधित विभिन्न सामग्रियां बरामद की गईं, जिनमें शामिल हैं: नौ बड़ी बाइबिल, एक छोटी बाइबिल, बाइबिल का एक "गुटका" (पवित्र ग्रंथ), विभिन्न बीमारियों, उनके उपचार और ठीक होने के फीडबैक का रिकॉर्ड रखने वाली एक डायरी, प्रभु यीशु के प्रचार के लिए नब्बे सफेद पोस्टर, "सत्संग प्रार्थना" के लिए एक सौ अड़तीस गुलाबी पैम्फलेट, "जन्म, जीवन, मृत्यु- आगे क्या" शीर्षक वाले दो सौ तिरानबे पैम्फलेट, "विश्वास के पांच कदम" पर छत्तीस पैम्फलेट, "ईश्वर को कैसे खोजें" शीर्षक वाले चौदह पैम्फलेट, नाम लिखे हुए चौबीस सफेद लिफाफे, बत्तीस सादे सफेद लिफाफे, एक ढोलक, एक हारमोनियम, दो माइक्रोफोन स्टैंड, छह माइक्रोफोन केबल, चार माइक्रोफोन, एक साउंड मिक्सर मशीन, एक सेल्फी स्टैंड, एक स्टील स्पीच स्टैंड, ग्लास रैक के साथ एक ग्लास स्पीच स्टैंड, एक पेन ड्राइव, एक मोबाइल कनेक्टर केबल, एक कैमकोर्डर माइक्रोफोन और दो साउंड मशीन कनेक्टर।

2.5 जब्त की गई धर्म परिवर्तन सामग्री और भागे हुए वक्ता के बारे में पूछे जाने पर, हिरासत में लिए गए चारों व्यक्तियों ने अलग-अलग और सामूहिक रूप से खुलासा किया कि जो व्यक्ति भागा था वह श्रवण कुमार, पुत्र लोटू राम, निवासी विक्रमपुर गाँव था। वह उषा देवी का पति और गोविंद लाल का भाई है। श्रवण कुमार इस चर्च का पादरी भी है।

2.6 उन्होंने आगे स्वीकार किया कि वे, अन्य लोगों के साथ मिलकर, धन और मुफ्त चिकित्सा सहायता की पेशकश करके स्थानीय और दूर-दराज के लोगों को ईसाई धर्म में परिवर्तित करने के लिए राजी करने में शामिल थे। उन्होंने यह भी बताया कि उनका नेता दुर्गा यादव, पुत्र संपत यादव, निवासी भुल्लन डीह, चंदवक थाना,

जौनपुर जिला है, जो भुल्लन डीह चर्च का पादरी भी है, और उन्हें निर्दोष लोगों को परिवर्तित करने का निर्देश देता था और धन एवं धर्म परिवर्तन से संबंधित सामग्री प्रदान करता था।

2.7 उपरोक्त आरोपों के आधार पर, सार्वजनिक व्यवस्था और स्वास्थ्य बनाए रखने के हित में थाना प्रभारी द्वारा आक्षेपित प्राथमिकी दर्ज की गई थी, और जांच के दौरान पीड़ितों– तूफानी राम, लालमन चौहान, निर्मला देवी, अमित कुमार विश्वकर्मा, महेंद्र सरोज, संध्या देवी, चंद्रवती देवी, गौतम यादव, सुभाष सिंह, बलवंत राजभर, रोशन खैरवार के बयान दर्ज किए गए हैं, और तदनुसार, आवेदक दुर्गा यादव और अन्य सह-अभियुक्तों के खिलाफ आरोप पत्र (charge sheet) दाखिल किया गया था।

3. तत्काल संदर्भ के लिए, पीड़ितों में से एक–गौतम यादव, पुत्र श्री संग्राम यादव, निवासी ग्राम महादेव, थाना केराकत, जिला जौनपुर–के बयान को नीचे पुनरुत्पादित किया गया है:

"मैंने देखा है कि मेरे गाँव और आसपास के गाँवों के लोगों के साथ-साथ अन्य थाना क्षेत्रों के लोगों को पैसे, दवाओं, इलाज और अन्य लाभों का लालच दिया जा रहा है। उन्हें आपदाओं और महामारियों से सुरक्षा के नाम पर डराया भी जा रहा है, और ईसा मसीह में विश्वास करने और ईसाई धर्म अपनाने के लिए लुभाया जा रहा है।

यह कार्य विक्रमपुर, थाना केराकत, जिला जौनपुर के निवासी लोटूराम के पुत्र पादरी श्रवण कुमार द्वारा अपनी टीम के अन्य सदस्यों और ठुन्थी, थाना चंदवक, जिला जौनपुर के निवासी कैलाश चंद्र राम के पुत्र जितेंद्र राम और उनके सहयोगी अजय भारद्वाज, पुत्र कटवारू भारद्वाज, निवासी कछवन, थाना चंदवक, जिला जौनपुर के साथ मिलकर किया जा रहा है।

वे केराकत और चंदवक थाना क्षेत्रों के अंतर्गत आने वाले अपने और पड़ोसी गाँवों के लोगों का धर्म परिवर्तन कराने में लगे हुए हैं। श्रवण कुमार और जितेंद्र राम ने विक्रमपुर और ठुन्थी गाँवों में चर्च भी बनाए हैं, जहाँ वे प्रार्थना और चंगाई की आड़ में धर्म परिवर्तन कराते हैं। वे विभिन्न पुस्तकें और पैम्फलेट भी वितरित करते हैं। इन व्यक्तियों ने, जिनमें श्रवण कुमार, जितेंद्र राम और अन्य शामिल हैं, सामूहिक रूप से मुझे प्रलोभन और भय के माध्यम से ईसाई धर्म अपनाने के लिए परेशान किया और दबाव डाला, जिससे मैं बहुत डर गया। धर्म परिवर्तन के लिए उपयोग की जाने वाली सभी सामग्री भुल्लनडीह, थाना चंदवक के दुर्गा यादव द्वारा प्रदान की जाती है। धर्म परिवर्तन उसी के निर्देशों पर संचालित किए जाते हैं।"

4. न्यायालय के समक्ष मुख्य मुद्दा यह है कि क्या थाना प्रभारी द्वारा आक्षेपित प्राथमिकी का पंजीकरण, उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म परिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 की धारा 4 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "कोई भी व्यथित व्यक्ति" के संदर्भ में, पूरी आपराधिक कार्यवाही को प्रारंभतः शून्य बना देता है।

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक सिंह यादव ने अन्य बातों के साथ-साथ कहा कि आवेदक के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही विचारणीय नहीं है क्योंकि आक्षेपित प्राथमिकी का पंजीकरण अधिनियम 2021 की

धारा 4 के प्रतिकूल है। थाना प्रभारी, थाना केराकत कोई "व्यथित व्यक्ति" नहीं है जो उसे प्राथमिकी दर्ज करने में सक्षम बनाता हो। "व्यथित व्यक्ति" केवल पीड़ित, उसके माता-पिता, भाई, बहन या कोई अन्य व्यक्ति हो सकता है जो उससे जन्म, विवाह या गोद लेने से संबंधित हो, वही ऐसे धर्म परिवर्तन की प्राथमिकी दर्ज करा सकता है जो अधिनियम 2021 की धारा 3 के प्रावधानों का उल्लंघन करता हो। अधिनियम 2021 की धारा 4 को नीचे पुनरुत्पादित किया गया है:

"4. प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए सक्षम व्यक्ति*- कोई भी व्यथित व्यक्ति, उसके माता-पिता, भाई, बहन, या कोई अन्य व्यक्ति जो उससे रक्त, विवाह या गोद लेने से संबंधित है, ऐसे धर्म परिवर्तन की प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करा सकता है जो धारा 3 के प्रावधानों का उल्लंघन करता है।"*

5.1 उन्होंने आगे तर्क दिया कि अधिनियम 2021 की धारा 3 के साधारण पठन से, आवेदक के विरुद्ध अधिनियम की धारा 5(i) के तहत कोई अपराध नहीं बनता है। शिकायतकर्ता अधिनियम 2021 की धारा 4 के अर्थ के भीतर व्यथित व्यक्ति नहीं है। दिनांक 06.08.2024 की राजपत्र अधिसूचना द्वारा लाया गया संशोधन, जिसका शीर्षक 'उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म परिवर्तन प्रतिषेध (संशोधन) अधिनियम, 2024' है, दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में आवेदक पर लागू नहीं होगा। अधिनियम 2021 की धारा 4 के तहत अभिव्यक्ति "कोई भी व्यथित व्यक्ति" बाद में गिनाए गए विशिष्ट संबंधों–अर्थात व्यक्ति के माता-पिता, भाई-बहन, या विवाह या गोद लेने के रक्त संबंधियों–द्वारा योग्य और सीमित है। कोई भी व्याख्या जो इस वैधानिक दायरे से परे शब्द का विस्तार करती है, वह विधायी मंशा को निरर्थक बना देगी। पीड़ित के बयान के परीक्षण पर आवेदक के विरुद्ध धारा 419, 420, 508 आईपीसी के साथ पठित अधिनियम 2021 की धारा 3 और 5(i) के तत्व नहीं बनते हैं। उन्होंने चेयरमैन, इंदौर विकास प्राधिकरण बनाम प्योर इंडस्ट्रियल कोक एंड केमिकल्स लिमिटेड एवं अन्य; भारत संघ बनाम अशोक कुमार शर्मा एवं अन्य; भगवान श्री रजनीश बनाम बिहार राज्य; हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल; रमेश चंद्र गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; जोस पापाचेन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; बशीर बनाम केरल राज्य के निर्णयों पर भरोसा किया।

6. इस सीमित मुद्दे पर, ए.सी.एस. (गृह) उत्तर प्रदेश, लखनऊ को एक शपथ पत्र दाखिल करने का निर्देश दिया गया था जिसमें यह स्पष्ट किया जाए कि अधिनियम 2021 की धारा 4 के अर्थ के भीतर प्राथमिकी दर्ज करने के लिए किसे "व्यथित व्यक्ति" माना जाएगा।

7. इसके उत्तर में, ए.सी.एस. (गृह) ने एक शपथ पत्र दाखिल किया जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया कि, (i) अधिनियम 2021 की धारा 2 के परिभाषा खंड में "कोई भी व्यथित व्यक्ति" शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है, इसलिए इसे बी.एन.एस.एस. 2023 के अध्याय XIII के प्रावधानों के साथ-साथ अधिनियम 2021 की धारा 7 के साथ सामंजस्यपूर्ण रूप से पढ़ा जाएगा, (ii) अधिनियम 2021 का वांछित उद्देश्य विफल हो जाएगा यदि स्थानीय थाना प्रभारी -जो क्षेत्र की कानून-व्यवस्था बनाए रखने के लिए जिम्मेदार है–को प्राथमिकी दर्ज करने की शक्ति से वंचित कर दिया जाता है, और यह अधिनियम एक मृत पत्र बन जाएगा, (iii) "कोई भी

व्यथित व्यक्ति" शब्द व्यापक अर्थ वाली एक अभिव्यक्ति है और इसका अर्थ किसी भी ऐसे "सूचना देने वाले" को कवर करने के लिए लगाया जाना चाहिए, जिसके पास संज्ञेय अपराध होने की सूचना हो, (iv) गैर-कानूनी सामूहिक धर्म परिवर्तन के मामले में, यदि धारा 4 की व्याख्या के लिए कठोर अर्थ निकाला जाता है तो अधिनियम 2021 का उद्देश्य विफल हो जाएगा, (v) आवेदक का मामला बी.एन.एस.एस. 2023 के अध्याय XXXVII में निहित किसी भी प्रावधान की श्रेणी में नहीं आता है, और (vi) गैर-कानूनी धार्मिक धर्म परिवर्तन की संवेदनशीलता और गंभीरता तथा समाज पर इसके प्रभाव को ध्यान में रखते हुए, राज्य सरकार 'उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म परिवर्तन प्रतिषेध (संशोधन) अधिनियम, 2024' लेकर आई है। स्पष्टता के लिए, प्रतिस्थापित धारा 4 को नीचे पुनरुत्पादित किया गया है:

"4. अधिनियम के उल्लंघन से संबंधित सूचना किसी भी व्यक्ति द्वारा दी जा सकती है और ऐसी सूचना देने का तरीका वही होगा जो बी.एन.एस.एस. 2023 (2023 का अधिनियम संख्या 46) के अध्याय XIII में दिया गया है।"

8. इसके अतिरिक्त, विद्वान अपर महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अधिनियम 2021 को लागू करने का उद्देश्य मिथ्या निरूपण, बल, अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती, प्रलोभन या किसी कपटपूर्ण साधन से या विवाह द्वारा एक धर्म से दूसरे धर्म में गैर-कानूनी धर्म परिवर्तन का प्रतिषेध करना और उससे जुड़े मामलों के लिए है। भारत का संविधान प्रत्येक व्यक्ति को सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के अधीन अपने धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने का मौलिक अधिकार प्रदान करता है। उन्होंने आगे कहा कि आवेदक मुख्य संसाधन व्यक्ति था और जिसके आदेश, नियंत्रण और संसाधनों के तहत, निर्दोष ग्रामीणों को धन का लालच दिया गया और धर्म परिवर्तन के लिए मुफ्त चिकित्सा उपचार का प्रलोभन दिया गया तथा उन्हें बीमारियों और महामारियों से सुरक्षा के नाम पर डराया जा रहा था, और उन्हें ईसा मसीह में विश्वास करने और ईसाई धर्म अपनाने के लिए लुभाया जा रहा था।

9. भारत का संवैधानिक ढांचा भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार की गारंटी देता है। यह अनुच्छेद प्रत्येक व्यक्ति को सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के अधीन स्वतंत्र रूप से धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने का मौलिक अधिकार प्रदान करता है। अनुच्छेद 25 में "स्वतंत्र रूप से" शब्द का प्रयोग धार्मिक विश्वास और अभिव्यक्ति की स्वैच्छिक प्रकृति को रेखांकित करता है। हालाँकि, संविधान जबरन या कपटपूर्ण धर्म परिवर्तन का समर्थन नहीं करता है, और न ही यह धार्मिक प्रचार की आड़ में दमनकारी या भ्रामक प्रथाओं को सुरक्षा प्रदान करता है।

10. अनुच्छेद 25(1) अंतःकरण की स्वतंत्रता और धर्म को स्वतंत्र रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने के अधिकार की गारंटी देता है। हालाँकि, यह अधिकार स्पष्ट रूप से सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के अधीन है, जो जबरदस्ती, मिथ्या निरूपण या अनुचित प्रभाव के माध्यम से प्राप्त किए गए धार्मिक धर्म परिवर्तन को विनियमित करने के लिए एक संवैधानिक आधार प्रदान करता है। ये सीमाएं यह सुनिश्चित करने

के लिए आवश्यक हैं कि धार्मिक स्वतंत्रता का प्रयोग सामाजिक ताने-बाने को बाधित न करे या व्यक्तिगत और सामुदायिक कल्याण को खतरे में न डाले।

10.1 यह धारणा कि एक धर्म स्वाभाविक रूप से दूसरे से श्रेष्ठ है, स्पष्ट रूप से एक धर्म की दूसरे पर नैतिक और आध्यात्मिक श्रेष्ठता को मानती है। ऐसी धारणा मौलिक रूप से धर्मनिरपेक्षता के विचार के विपरीत है। भारतीय धर्मनिरपेक्षता सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान के सिद्धांत में निहित है। राज्य न तो किसी धर्म के साथ अपनी पहचान जोड़ता है और न ही किसी का पक्ष लेता है, बल्कि इसके बजाय उसे सभी धर्मों और आस्थाओं से एक सैद्धांतिक समान दूरी बनाए रखनी चाहिए।

10.2 इन संवैधानिक सुरक्षा उपायों के आलोक में, 'उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म परिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021' अधिनियमित किया गया है, जिसका उद्देश्य संविधान के अनुच्छेद 25 के अनुरूप सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिक अखंडता और स्वास्थ्य को बनाए रखना है। अधिनियम का प्राथमिक उद्देश्य एक धर्म से दूसरे धर्म में उन धर्म परिवर्तनों को प्रतिबंधित करना है जो मिथ्या निरूपण, बल, अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती, प्रलोभन, कपटपूर्ण साधनों या केवल गैर-कानूनी धर्म परिवर्तन के उद्देश्य से किए गए विवाह के माध्यम से किए जाते हैं। ऐसे तरीकों को लक्षित करके, कानून उस शोषण और हेरफेर को रोकने का प्रयास करता है जिसका कानून-व्यवस्था के व्यवधान के अलावा सामाजिक सद्भाव पर व्यापक अस्थिरकारी प्रभाव पड़ सकता है।

11. इस प्रकार, व्यक्ति की धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार और सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता एवं स्वास्थ्य को बनाए रखने के राज्य के कर्तव्य के बीच संतुलन बनाकर संवैधानिक भावना के साथ तालमेल बिठाने के लिए संशोधन अधिनियम, 2024 द्वारा अधिनियम 2021 की धारा 4 को प्रतिस्थापित किया गया है। यह स्पष्ट करता है कि अवैध धर्म परिवर्तन न केवल किसी व्यक्ति और उनके रिश्तेदारों के विरुद्ध अपराध है, बल्कि राज्य के विरुद्ध भी है–विशेष रूप से समाज के सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित वर्ग के सामूहिक धर्म परिवर्तन के मामलों में–जब ऐसे धर्म परिवर्तन मिथ्या निरूपण, बल, अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती, प्रलोभन, कपटपूर्ण साधनों के माध्यम से किए जाते हैं, तब सामाजिक ताने-बाने, व्यक्तियों या सांप्रदायिक कल्याण के लिए खतरा और भी गंभीर हो जाता है। ऐसी परिस्थितियों में, राज्य एक मूक दर्शक बना नहीं रह सकता।

12. पूर्वगामी विचार-विमर्श के आधार पर, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म परिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 की धारा 4 को बी.एन.एस.एस. 2023 की धारा 173 (दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 154) के साथ सामंजस्यपूर्ण रूप से समझा जाएगा, ताकि अवैध धार्मिक धर्म परिवर्तन को रोकने और दंडित करने के विधायी उद्देश्य को प्रभावी बनाया जा सके। सोद्देश्य व्याख्या के सिद्धांत को लागू करते हुए, अधिनियम 2021 की असंशोधित धारा 4 के तहत अपरिभाषित शब्द *"कोई भी व्यथित व्यक्ति"* की व्याख्या अलगाव में नहीं की जा सकती है। वैधानिक संदर्भ और अधिनियम की मंशा को देखते हुए, इस अभिव्यक्ति की व्याख्या व्यापक रूप से की जानी चाहिए जिसमें थाना प्रभारी शामिल हो, जो सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए कानूनी रूप से अनिवार्य है और संज्ञेय अपराधों के लिए प्राथमिकी दर्ज करने हेतु बी.एन.एस.एस. 2023 की धारा 173 के तहत सक्षम है।

13. अधिनियम की धारा 4 में "कर सकता है" (may) शब्द का प्रयोग अनिवार्य दायित्व थोपने के बजाय विवेकाधीन शक्ति प्रदान करने के विधायी इरादे का सूचक है। वैधानिक व्याख्या का यह एक सुस्थापित सिद्धांत है कि विधायिका द्वारा

प्रयुक्त शब्द "कर सकता है" आमतौर पर अनुमति का संकेत देता है और विवेकाधिकार प्रदान करता है, जब तक कि संदर्भ या कानून का उद्देश्य एक अलग व्याख्या के लिए बाध्य न करे। अधिनियम 2021 की धारा 4 के संदर्भ में, जो किसी भी व्यथित व्यक्ति, उनके रिश्तेदारों, या रक्त, विवाह या गोद लेने से संबंधित किसी अन्य व्यक्ति को शिकायत दर्ज करने में सक्षम बनाती है, "कर सकता है" का उपयोग बताता है कि ऐसे व्यक्ति सशक्त हैं और साथ ही यह "कोई भी व्यथित व्यक्ति" अभिव्यक्ति को एक अलग वर्ग के रूप में रखता है, जो अधिनियम के दायित्व के तहत कानूनी कार्यवाही शुरू करने के लिए सशक्त हैं। विशेष रूप से, अवैध सामूहिक धर्म परिवर्तन के मामलों में, अधिनियम के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए मिथ्या निरूपण, जबरदस्ती या धोखाधड़ी द्वारा अवैध धर्म परिवर्तन को रोकना राज्य का वैधानिक कर्तव्य है। इसलिए, "कोई भी व्यथित व्यक्ति" अभिव्यक्ति की संकीर्ण व्याख्या अधिनियम को निष्प्रभावी बना देगी।

14. इसके अतिरिक्त, अधिनियम की धारा 7, जब बी.एन.एस.एस. 2023 के अध्याय XIII में निहित प्रावधानों के साथ पढ़ी जाती है, तो पुलिस अधिकारियों को अधिनियम के तहत अपराधों को दर्ज करने, जांच करने और कार्रवाई करने में सक्षम बनाकर इस व्याख्या को पुष्ट करती है। इसके अलावा, बी.एन.एस.एस. 2023 की धारा 170, जो सार्वजनिक शांति बनाए रखने के लिए निवारक उपायों की अनुमति देती है, अधिनियम 2021 की धारा 4 के किसी भी संकीर्ण पठन को अधिक्रमित करती है और धार्मिक रूप से संवेदनशील मामलों में पुलिस के निवारक और सुरक्षात्मक कार्य को रेखांकित करती है। अवैध सामूहिक धर्म परिवर्तन के मामलों में, पुलिस को कानूनी कार्रवाई शुरू करने से बाहर रखना प्रवर्तन को पंगु बना देगा, जिससे इसके प्रभावी प्रावधान–धारा 3(1), 5, 10, और 11–निष्प्रभावी हो जाएंगे।

15. इसके अतिरिक्त, अधिनियम 2021 की पूर्व-संशोधित धारा 4 के तहत वाक्यांश *"कोई भी व्यथित व्यक्ति"* परिभाषित नहीं है, और सोद्देश्य व्याख्या के सिद्धांत को लागू करते हुए, इसे इस तरह से पढ़ा जाएगा जो अंतःकरण की स्वतंत्रता की रक्षा करने और अवैध धर्म परिवर्तन प्रथाओं के माध्यम से इसके उल्लंघन को रोकने के अधिनियम के उद्देश्य को प्रभावी बनाता है।

16. वैधानिक व्याख्या अक्सर न केवल विधायिका द्वारा उपयोग किए गए शब्दों पर, बल्कि उनके वाक्य-विन्यास–जिसमें विराम चिह्न भी शामिल हैं–पर निर्भर करती है। कोमा (अल्पविराम ',') का स्थान, हालांकि प्रतीत होता है कि मामूली है, बाद के कानूनी अधिकारों और देनदारियों को गहराई से प्रभावित कर सकता है। उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म परिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 की धारा 4 इसका एक शास्त्रीय उदाहरण है। यह प्रावधान कुछ व्यक्तियों को अवैध धार्मिक धर्म परिवर्तन से संबंधित शिकायतें दर्ज करने की अनुमति देता है, और "कोई भी व्यथित व्यक्ति" के बाद कोमा लगाने से व्याख्यात्मक अनिश्चितता पैदा हुई है। यह कोमा "कोई भी व्यथित व्यक्ति" को शिकायतकर्ताओं के एक अलग वर्ग के रूप में अलग करता है, जो धारा में सूचीबद्ध परिवार के सदस्यों और अन्य लोगों से भिन्न है। यहाँ महत्वपूर्ण विराम चिह्न "व्यथित व्यक्ति" के बाद लगा कोमा है।

17. जहाँ अस्पष्टता उत्पन्न होती है, वहाँ संदर्भ, विधायी मंशा और वैधानिक व्याख्या के स्थापित सिद्धांतों पर भरोसा किया जाता है। "कोई भी व्यथित व्यक्ति" के बाद कोमा एक जानबूझकर किए गए अलगाव का सुझाव देता है–जो इस संभावना की ओर इशारा करता है कि "कोई भी व्यथित व्यक्ति" स्वतंत्र रूप से खड़ा है, जो पारिवारिक

संबंधों से सीमित नहीं है। अधिनियम 2021 का प्राथमिक उद्देश्य जबरदस्ती या ओछे माध्यमों–जैसे मिथ्या निरूपण, बल, अनुचित प्रभाव, प्रलोभन, या कपटपूर्ण साधनों–से होने वाले धार्मिक धर्म परिवर्तनों को रोकना है। "कोई भी व्यथित व्यक्ति" की व्यापक व्याख्या कानूनी कार्यवाही शुरू करने वाले व्यक्तियों की श्रेणी का विस्तार करके इस उद्देश्य को पूरा करती है। अधिनियम 2021 की धारा 4 में "कोई भी व्यथित व्यक्ति" के बाद कोमा का स्थान उस व्याख्या का समर्थन करता है जो व्यथित व्यक्ति को रिश्तेदारों और अन्य लोगों की सूची से अलग करती है।

18. संशोधित अधिनियम, 2024 की धारा 4, जो स्पष्ट रूप से स्पष्ट करती है और "किसी भी व्यक्ति" को भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 के अध्याय XIII के अनुसार सूचना देने की अनुमति देती है, सूचना देने वालों के दायरे को विस्तृत करने और प्रक्रियात्मक पहुंच को और स्पष्ट करने की विधायी मंशा की पुष्टि करती है। इस प्रतिस्थापन को प्रकृति में स्पष्टीकरण के रूप में पढ़ा जाना चाहिए, जो इस सिद्धांत के अनुरूप है कि प्रक्रियात्मक संशोधन लंबित कार्यवाहियों पर लागू होते हैं और बी.एन.एस.एस. 2023 की धारा 173 और 175 के साथ सामंजस्यपूर्ण व्याख्या का समर्थन करते हैं। यह इस बात को पुष्ट करता है कि पुलिस, या अधिनियम 2021 के तहत संज्ञेय अपराध होने की जानकारी रखने वाला कोई भी व्यक्ति कार्यवाही शुरू करने के लिए सशक्त है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि यह कानून निष्प्रभावी न हो जाए।

19. इस प्रकार, भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 के उल्लंघन में अवैध धर्म परिवर्तन से व्यथित "कोई भी व्यक्ति", उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म परिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 (संशोधित अधिनियम, 2024) के प्रावधानों के अनुसार, इसके उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्राथमिकी दर्ज कराने हेतु पुलिस के समक्ष शिकायत करने का हकदार है।

20. वर्तमान मामले पर लौटते हुए, प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों और अन्य पीड़ितों के अलावा पीड़ित गौतम यादव के बयान के अवलोकन से, स्पष्ट रूप से एक संज्ञेय अपराध बनता है जो मामले के पंजीकरण और उस पर अन्वेषण को उचित ठहराता है, और इसलिए, यह मामला **'हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल एवं अन्य'** में प्रतिपादित मामलों की किसी भी श्रेणी में नहीं आता है, जिसमें प्राथमिकी और उससे उत्पन्न कार्यवाही को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय की असाधारण या अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग की आवश्यकता हो।

20.1 यह आगे स्पष्ट किया जाता है कि इस आदेश में निहित अभिव्यक्ति का मामले के गुण-दोष पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, हालांकि, आवेदक के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष उचित स्तर पर सभी आधार उठाना खुला रहेगा।

21. तदनुसार, आवेदन एतद्द्वारा ***खारिज*** किया जाता है। चूंकि आवेदक को पुलिस द्वारा गिरफ्तार नहीं किया गया है, इसलिए यह स्पष्ट किया जाता है कि आवेदकों को न्यायिक हिरासत में नहीं लिया जाएगा, जो उन नियमों और शर्तों के अधीन होगा जो विचारण न्यायालय द्वारा तय की जा सकती हैं। यदि आवेदक विचारण में सहयोग नहीं करता है, तो विचारण न्यायालय कानून के अनुसार आगे बढ़ सकती है।

(2025) 5 ILRA 654

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार

अपराधिक अपील संख्या 1326 वर्ष 2004

शिव नारायण एवं अन्य **...अपीलकर्तागण**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...विपक्षी/प्रतिवादी**

अपीलकर्तागण के अधिवक्ता:
एस.सी. मिश्रा, अनिल कुमार

विपक्षी के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

(A) अपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 304(ii)

गैर-इरादतन हत्या (हत्या की श्रेणी में न आने वाला आपराधिक मानव वध) - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 304(ii) - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 374(2) - स्वतंत्र गवाह द्वारा अभियोजन का पूरी तरह समर्थन न करना – संपूर्ण अभियोजन मामले को खारिज करने का आधार नहीं है। यदि विश्वसनीय हो, तो दोषसिद्धि 'रिश्तेदार गवाह' के आधार पर हो सकती है। प्राथमिकी तथ्यों का 'विश्वकोश' नहीं है। प्राथमिकी केवल पुष्टिकारक होती है, ठोस साक्ष्य नहीं। पी.डब्ल्यू.1 का साक्ष्य विश्वसनीय माना गया, जिसकी पुष्टि चिकित्सीय और पोस्टमार्टम साक्ष्य से हुई। 'रिश्तेदार गवाह' स्वचालित रूप से 'हितबद्ध गवाह' नहीं होता। यदि संबंधित गवाह की गवाही सत्य पाई जाती है और चिकित्सीय साक्ष्य तथा पुष्टिकारक तथ्यों द्वारा समर्थित होती है, तो उसके आधार पर दोषसिद्धि कायम रखी जा सकती है। (पैरा 2 से 20)

प्राथमिकी दिनांक 22.12.1999 को दर्ज – जिसमें पुरानी रंजिश के कारण अपीलकर्ताओं द्वारा शिकायतकर्ता के पिता पर लाठियों से घातक हमले का आरोप – पीड़ित के सिर में चोटें आईं – 24.12.1999 को मृत्यु हुई – मामला आईपीसी की धारा 308 से धारा 304 में परिवर्तित किया गया। (पैरा - 6, 7, 8)

अनुवादित

अभिनिर्धारित: यह तर्क कि स्वतंत्र गवाह ने घटना का समर्थन नहीं किया, पूरी तरह से गलत और विचारणीय नहीं है क्योंकि घटना पी.डब्ल्यू.1 द्वारा साबित की गई है, और घटना का समय एवं स्थान पी.डब्ल्यू.4 द्वारा साबित किया गया है। विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में कोई अवैधता, त्रुटि या विपरीतता नहीं है जिसके लिए हस्तक्षेप की आवश्यकता हो – दोषसिद्धि और सजा बरकरार रखी गई। (पैरा - 19, 20)

अपील खारिज। (E-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. अमीश देवगन बनाम भारत संघ, (2021) 1 एससीसी 1
2. कार्तिक मल्हार बनाम बिहार राज्य, (1996) 1 एससीसी 614
3. बबन शंकर दफाल एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2025 एससीसी ऑनलाइन 137
4. कारुलाल एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2021) 13 एससीसी 391

(माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल कुमार और विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता (इसके बाद ए.जी.ए. के रूप में संदर्भित) को सुना गया।

2. दंड प्रक्रिया संहिता (इसके बाद दं.प्र.सं. के रूप में संदर्भित) की धारा 374(2) के तहत यह आपराधिक अपील, अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट संख्या 4, हरदोई द्वारा सत्र विचारण संख्या 300/2000; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम शिव नारायण (अब मृतक) एवं अन्य, जो थाना कछौना, जिला हरदोई में दर्ज मुकदमा अपराध संख्या 232/99, भारतीय दंड संहिता (इसके बाद आई.पी.सी. के रूप में संदर्भित) की धारा 304 के अंतर्गत उत्पन्न हुआ है, में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 21.05.2004 के माध्यम से दी गई दोषसिद्धि और सजा को रद्द करने के लिए दायर की गई है, जिसके माध्यम से अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया है और आई.पी.सी. की धारा 304(ii) के तहत प्रत्येक को 5 वर्ष के कठोर कारावास और प्रत्येक को 3000 रुपये के जुर्माने की सजा दी गई है, तथा जुर्माना अदा न करने की स्थिति में प्रत्येक को एक वर्ष के अतिरिक्त साधारण कारावास की सजा दी गई है।

3. यह अपील शिव नारायण पुत्र गिरधारी लाल, संतोष और विनोद (दोनों शिव नारायण के पुत्र) द्वारा दायर की गई है। अपीलकर्ता संख्या 1- शिव नारायण पुत्र गिरधारी लाल की अपील के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई, इसलिए उनकी ओर से अपील उपशमित कर दी गई।

4. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अपीलकर्ताओं को इस मामले में झूठा फंसाया गया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि पी.डब्ल्यू. 4 राकेश उर्फ कालिया, जो एक स्वतंत्र गवाह था, उसने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है, इसलिए अपीलकर्ताओं को दोषी नहीं ठहराया जा सकता था और सजा नहीं दी जा सकती थी, लेकिन इस पर विचार किए बिना ही अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया और सजा दी गई। अतः, यह रद्द किए जाने योग्य है।

5. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. ने अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों का पुरजोर विरोध किया। उन्होंने प्रस्तुत किया कि पी.डब्ल्यू. 1, जो घटना का प्रत्यक्षदर्शी था, उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी। उसने घटना को साबित किया है। घटना के स्थान और समय को पी.डब्ल्यू. 4 द्वारा भी साबित किया गया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि मृतक के सिर में चोट लगी थी, जिसके कारण उसकी मृत्यु हुई, जिसे अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में उपस्थित डॉक्टर ने साबित किया है। इस प्रकार, केवल इसलिए कि पी.डब्ल्यू. 4 प्रत्यक्षदर्शी नहीं था, यह नहीं कहा जा सकता कि घटना साबित नहीं हुई है और दोषसिद्धि एवं सजा रद्द किए जाने योग्य है। यह अपील गलत और निराधार आधारों पर दायर की गई है, जो खारिज किए जाने योग्य है।

6. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि दिनांक 22.12.1999 को रात्रि 00:15 बजे पुलिस स्टेशन कछौना, जिला हरदोई में एक लिखित शिकायत के आधार पर प्राथमिकी दर्ज की गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि पिछले साल जुलाई के महीने में, शिकायतकर्ता यानी पी.डब्ल्यू. 1- श्यामा कुमार पुत्र श्री सोनेलाल और शिव नारायण के पुत्रों संतोष और विनोद के बीच झगड़ा हुआ था, जिसमें उसे चोट लगी थी, जिसके कारण उसने थाना कछौना में रिपोर्ट दर्ज कराई थी, इसी वजह से आरोपी रंजिश रख रहे थे। 19.12.1999 को शिकायतकर्ता की शादी के लिए कुछ लोग आए थे और शिव नारायण/अपीलकर्ता संख्या 1 ने उनसे कहा कि लड़का शराबी और गुंडा है और उससे शादी करना उचित नहीं है। जब यह बात उसके पिता सोनेलाल को पता चली, तो उन्होंने शिव नारायण से पूछा कि वह ऐसा क्यों कहता है, जिसके कारण 21.12.1999 को रात करीब 8 बजे, जब उनके पिता साँवल के दरवाजे पर आग तापने के बाद वापस अपने घर आ रहे थे, तब आरोपियों ने, जिनके पास लाठियाँ थीं, उनसे शिकायतकर्ता के पिता को पीटा।

7. घायल का चिकित्सीय परीक्षण दिनांक 22.12.1999 को दोपहर 01:00 बजे प्रभारी चिकित्सा अधिकारी, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, जिला हरदोई द्वारा डॉ. आर. बी. लाल के माध्यम से किया गया। उन्हें सिर के पिछले हिस्से पर बाएं भौंह के मध्य छोर से 9.5 सेमी ऊपर 3 सेमी × 1/2 सेमी का एक गहरा फटा हुआ घाव मिला। चेतना की स्थिति बदली हुई थी। रक्तचाप/नाड़ी की गति सामान्य थी। डॉक्टर की राय के अनुसार, चोट किसी कठोर और कुंद वस्तु के कारण लगी थी और इसे निगरानी में रखा गया था। उन्होंने आगे की जांच और उपचार के लिए उन्हें जिला अस्पताल, हरदोई रेफर कर दिया। यह भी दर्ज किया गया कि चोट की प्रकृति ताज़ा है। जिला अस्पताल हरदोई से उन्हें बलरामपुर अस्पताल, जिला लखनऊ रेफर कर दिया गया।

8. उपरोक्त घटना में लगी चोटों के कारण सोनेलाल की 24.12.1999 को बलरामपुर अस्पताल, लखनऊ में मृत्यु हो गई। उनका पंचायतनामा और पोस्टमार्टम 24.12.1999 की शाम को किया गया, जो डॉ. आर.सी. प्रसाद द्वारा किया गया था। उन्हें सिर के ऊपरी हिस्से पर 8 सेमी x 12 सेमी का नील मिला और खोलने पर चोट के नीचे एकिमोसा (आंतरिक रक्तस्राव) मौजूद था और उसे खोलने पर जमा हुआ खून मिला। उनकी मृत्यु 'मृत्यु-पूर्व' चोट के कारण हुई थी। इसे देखते हुए, मामले को आई.पी.सी. की धारा 308 से धारा 304/34 में परिवर्तित कर दिया गया और जांच स्वयं थाना प्रभारी श्री सफरुद्दीन खान द्वारा की गई। जांच के बाद आरोप पत्र दाखिल किया गया। सिविल जज, जूनियर डिवीजन, हरदोई/न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा 20.04.2000 को पारित आदेश के माध्यम से मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया। सत्र न्यायालय द्वारा 05.05.2003 को आई.पी.सी. की धारा 304/34 के तहत आरोप तय किए गए। अभियुक्तों ने आरोपों से इनकार किया और विचारण की प्रार्थना की।

9. दस्तावेजी साक्ष्यों में, लिखित रिपोर्ट को पेपर संख्या क-1, चिकित्सीय परीक्षण रिपोर्ट को क-2, चिक रिपोर्ट को क-3, जी.डी. की कार्बन कॉपी को क-4, जी.डी. में परिवर्तन की कार्बन कॉपी को क-5, पोस्टमार्टम रिपोर्ट को क-6, धारा परिवर्तन के संबंध में सूचना को क-7, आरोप पत्र को क-8, नजरी नक्शा को क-9, पंचायतनामा को क-10, चालान लाश को क-11, शव की फोटो को क-12, मुख्य चिकित्सा अधिकारी लखनऊ के पत्र को क-13 और सील के नमूने को पेपर संख्या क-14 के रूप में रिकॉर्ड पर रखा गया। मौखिक साक्ष्य के रूप में शिकायतकर्ता श्यामा कुमार को पी.डब्ल्यू. 1, राम रतन को पी.डब्ल्यू. 2, डॉ. आर.बी. लाल को पी.डब्ल्यू. 3, राकेश उर्फ कालिया को पी.डब्ल्यू. 4, रमेश चंद्र श्रीवास्तव को पी.डब्ल्यू. 5, डॉ. आर.सी. प्रसाद को पी.डब्ल्यू. 6 और सफरुद्दीन खान को पी.डब्ल्यू. 7 के रूप में दर्ज किया गया। इसके बाद, अभियुक्तों के बयान दं.प्र.सं. की धारा 313 के तहत दर्ज किए गए। सभी अभियुक्तों ने एक स्वर में आरोपों से इनकार किया और कहा कि उन्हें रंजिश के कारण झूठा फंसाया गया है, लेकिन उन्होंने अपने बचाव में कोई साक्ष्य पेश नहीं किया।

10. विद्वान विचारण न्यायालय ने सहायक शासकीय अधिवक्ता (फौजदारी) और बचाव पक्ष के अधिवक्ता को सुनने के बाद विचारण का निर्णय लिया और अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराते हुए उपरोक्त सजा सुनाई। अतः यह अपील दायर की गई है।

11. पी.डब्ल्यू. 1- शिकायतकर्ता ने बताया कि अभियुक्त संतोष और विनोद, शिव नारायण के पुत्र हैं और वे उसी गाँव में रहते हैं। दिनांक 21/22-12-99 को रात करीब आठ बजे, वह अपने पिता को रात के खाने के लिए बुलाने गया था, जो सामल प्रधान के घर के दरवाजे के पास बैठकर आग ताप रहे थे और जब वह अपने पिता के पीछे-पीछे चुन्ना के दरवाजे के पास जा रहा था, तब अभियुक्त हाथों में लाठी लेकर आए और उसके पिता को पीटना शुरू कर दिया। उसने आगे बताया कि उसके और उसके पिता के पास टॉर्च थी। शोर सुनकर कल्लू, राकेश और गाँव के अन्य लोग आ गए और उनके ललकारने पर अभियुक्त अपने घर वापस चले गए। उसके पिता को चोटें आईं और वे बेहोश हो गए। वह अपने पिता को घर ले गया और फिर बैलगाड़ी से थाना कछौना ले गया। उसने बाहर बैठकर शिकायत लिखी और मुंशी जी को दी, जिस पर प्राथमिकी दर्ज की गई। इसके बाद

पुलिस उसके पिता को अस्पताल ले गई, जहाँ उनका चिकित्सीय परीक्षण हुआ। हालांकि, उनकी स्थिति खराब होने के कारण डॉक्टर ने उन्हें जिला अस्पताल हरदोई रेफर कर दिया, जहाँ उनकी हालत गंभीर होने के कारण उन्हें बलरामपुर अस्पताल लखनऊ रेफर कर दिया गया, जहाँ उनकी मृत्यु हो गई। उसने आगे बताया कि उक्त घटना से पहले जुलाई के महीने में उसके और संतोष तथा विनोद के बीच झगड़ा हुआ था, जिसमें उसे चोटें आई थीं, जिसके कारण थाना कछौना में प्राथमिकी दर्ज की गई थी, इसलिए संतोष और विनोद उससे रंजिश रखते थे। इसी कारण, जब कुछ लोग उसकी शादी के लिए आए, तो अभियुक्त शिव नारायण ने उनसे कहा कि लड़का शराबी और गुंडा है और वह कोई काम नहीं करता है। जब यह बात उसके पिता के संज्ञान में आई, तो उन्होंने शिव नारायण से पूछा कि वह ऐसा क्यों कहता है। इसी रंजिश के कारण अभियुक्तों ने उसके पिता को पीटा। उसके साक्ष्य पर इस आधार पर सवाल उठाए गए कि ये आरोप प्राथमिकी में नहीं दिखाए गए हैं। हालांकि, विद्वान विचारण न्यायालय ने साक्ष्यों और इस तथ्य पर विचार करने के बाद कि जिरह में उससे कुछ भी प्रतिकूल नहीं निकाला जा सका, यह माना कि घटना रात करीब आठ बजे की थी, जब मृतक को उसके बेटे ने भोजन के लिए उस स्थान से बुलाया था जहाँ वह आग ताप रहा था और जब वह मुन्ना के घर के सामने पहुँचा, तब घटना घटी। आमतौर पर उस समय गाँव के लोग सोने के लिए नहीं जाते हैं, इसलिए उनके घरों के सामने की लाइटें बंद नहीं की गई थीं। चूँकि अभियुक्त शिकायतकर्ता के परिचित थे, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वह उन्हें पहचान नहीं सकता था। इस प्रकार, उसने घटना को साबित किया।

12. यह स्थापित कानून है कि प्राथमिकी कोई ऐसा 'विश्वकोश' नहीं है जिसमें अपराध से संबंधित सभी तथ्यों और विवरणों का खुलासा होना चाहिए। प्रथम सूचना रिपोर्ट को साक्ष्य का एक ठोस हिस्सा भी नहीं माना जाता है और इसका उपयोग केवल न्यायालय में सूचनाकर्ता के साक्ष्य की पुष्टि और निर्माण करने के लिए किया जा सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **अमीश देवगन बनाम भारत संघ; (2021) 1 एसीसी 1** के मामले में यह निर्धारित किया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट का अर्थ ऐसा विस्तृत दस्तावेज़ होना नहीं है जिसमें सभी जटिल और सूक्ष्म विवरणों का कालानुक्रमिक विवरण हो।

13. पी.डब्ल्यू. 4- राकेश उर्फ कालिया, हालांकि घटना को साबित नहीं कर सका क्योंकि उसने इसे देखा नहीं था, लेकिन उसने घटना के समय और स्थान को साबित किया है क्योंकि उसने बताया कि शोर सुनने के बाद वह मुन्ना के घर के पास पहुँचा और सोनेलाल को घायल अवस्था में देखा। इस प्रकार, उसने घटना के समय और स्थान को साबित किया है और उसके साक्ष्य पर विचार करते हुए, विद्वान विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि उसने घटना को तो साबित नहीं किया है, लेकिन उसने समय और स्थान का समर्थन किया है क्योंकि वह शोर सुनकर मौके पर पहुँचा था। यह न्यायालय विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं पाता है क्योंकि घटना पी.डब्ल्यू. 1 द्वारा साबित की गई है और पी.डब्ल्यू. 4 ने भी समय और स्थान को प्रमाणित किया है, क्योंकि जब शोर सुनकर वह मुन्ना के दरवाजे के सामने पहुँचा, तब उसने सोनेलाल को घायल अवस्था में देखा था। अतः, उसने न केवल घटना के समय और स्थान को साबित किया, बल्कि यह भी कि मृतक सोनेलाल वहां घायल अवस्था में पड़ा था, जो पी.डब्ल्यू.

1 के साक्ष्य का समर्थन करता है। इसलिए, केवल इसलिए कि पी.डब्ल्यू. 1 मृतक का पुत्र और रिश्तेदार है, उसके साक्ष्य को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि वह एक 'हितबद्ध गवाह' है।

14. माननीय शीर्ष अदालत ने **कार्तिक मल्हार बनाम बिहार राज्य; (1996) 1 एससीसी 614** में यह टिप्पणी की कि एक 'रिश्तेदार गवाह' और 'हितबद्ध गवाह' के बीच अंतर होता है। एक रिश्तेदार एक 'स्वाभाविक गवाह' होता है। माननीय शीर्ष अदालत का यह मत है कि एक करीबी रिश्तेदार, जो एक स्वाभाविक गवाह है, उसे हितबद्ध गवाह नहीं माना जा सकता। 'हितबद्ध' शब्द यह मानता है कि गवाह का किसी द्वेष या अन्य कारण से अभियुक्त को किसी न किसी तरह दोषी ठहराने में कोई प्रत्यक्ष स्वार्थ होना चाहिए।

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बबन शंकर दफाल एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य; 2025 एससीसी ऑनलाइन 137** के मामले में यह टिप्पणी की है कि कानून कहीं भी यह नहीं कहता कि हितबद्ध गवाह के साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज कर दिया जाना चाहिए। कानून केवल यह अपेक्षा करता है कि उनके साक्ष्य की सावधानी और सतर्कता के साथ जांच की जानी चाहिए। इस न्यायालय द्वारा निर्णयों की एक लंबी श्रृंखला में यह माना गया है कि केवल इसलिए कि कोई गवाह रिश्तेदार है, उनकी गवाही को अकेले उस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है।

16. माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने **कारुलाल एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य; (2021) 13 एससीसी 391** के मामले में यह निर्धारित किया है कि रिश्तेदार गवाह की गवाही, यदि विश्वसनीय पाई जाती है, तो वह दोषसिद्धि का आधार बन सकती है।

17. पी.डब्ल्यू. 2 पंचायतनामा का गवाह है। पी.डब्ल्यू. 3 डॉ. आर. बी. लाल हैं, जिन्होंने 22.12.1999 को उनके द्वारा किए गए चिकित्सीय परीक्षण और उस समय मृतक की चोट और स्थिति को साबित किया है। पी.डब्ल्यू. 5- रमेश चंद्र श्रीवास्तव ने प्राथमिकी दर्ज करने, मामले को आईपीसी की धारा 308 से धारा 304 में बदलने और उसके समर्थन में दस्तावेजों को साबित किया है। पी.डब्ल्यू. 6- डॉ. आर.सी. प्रसाद ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट और उसमें दिखाई गई चोटों को साबित किया है। पी.डब्ल्यू. 6 के साक्ष्य पर इस आधार पर सवाल उठाए गए थे कि डॉक्टर ने अपनी मेडिकल रिपोर्ट दिनांक 22.12.1999 में 'फटा हुआ घाव' दिखाया था, जबकि पोस्टमार्टम में 'नील का निशान' पाया गया था। लेकिन विद्वान विचारण न्यायालय ने इसे उसी स्थान पर पाया जहाँ चिकित्सा अधिकारी ने फटा हुआ घाव पाया था और पी.डब्ल्यू. 6 ने उसे खोलने पर जमा हुआ खून भी पाया था। इस प्रकार, यह केवल राय का मामला है और यह इस तथ्य के कारण हो सकता है कि 22.12.1999 को चिकित्सीय परीक्षण के समय वह एक ताज़ा चोट थी और पोस्टमार्टम 24.12.1999 को उनकी मृत्यु के बाद किया गया था, जिस अवधि के दौरान यह नहीं कहा जा सकता कि चोट की स्थिति वैसी ही रहेगी और संभव है कि वह सूख गई हो। यह न्यायालय विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं पाता है।

18. पी.डब्ल्यू. 7- सफ़रुद्दीन, जिन्होंने सोनेलाल की मृत्यु के बाद मामले को आई.पी.सी. की धारा 308 से धारा 304 में परिवर्तित किए जाने के बाद मामले की जाँच की थी, उन्होंने धारा परिवर्तन, गवाहों के बयान, पंचायतनामा और 31.12.1999 को अभियुक्तों की गिरफ्तारी तथा मामले में कानून के अनुसार जाँच के बाद आरोप पत्र दाखिल किए जाने को साबित किया।

19. उपरोक्त के आलोक में और मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि स्वतंत्र गवाह पी.डब्ल्यू. 4- राकेश @ कालिया ने घटना को साबित नहीं किया है, इसलिए अपीलकर्ताओं को दोषी नहीं ठहराया जा सकता था, पूरी तरह से गलत और विचारणीय नहीं है; क्योंकि घटना पी.डब्ल्यू. 1 द्वारा साबित की गई है और घटना के समय एवं स्थान को पी.डब्ल्यू. 4 द्वारा भी साबित किया गया है। उसके साक्ष्य से यह भी सिद्ध होता है कि उस समय और स्थान पर मृतक घायल था और घायल अवस्था में पड़ा था, जिसके कारण बाद में उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार, उसने पी.डब्ल्यू. 1 के साक्ष्य का समर्थन किया। विद्वान विचारण न्यायालय ने कानून के अनुसार रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों और सामग्रियों पर विचार करने के बाद निष्कर्ष दर्ज किया है। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में कोई अवैधता, त्रुटि या विपरीतता नहीं है, जिसके लिए इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता हो। दोषसिद्धि और दी गई सजा भी उस आरोप के अनुरूप है, जिसे पुख्ता साक्ष्यों द्वारा साबित किया गया है। यह अपील गलत और निराधार आधारों पर दायर की गई है।

20. तदनुसार, विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश को बरकरार रखते हुए अपील **खारिज** की जाती है।

21. अनुपालन हेतु इस आदेश की एक प्रति रिकॉर्ड के साथ तत्काल संबंधित न्यायालय को वापस भेजी जाए।

अनुपालित

(2025) 5 ILRA 659

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला

माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि

आपराधिक अपील संख्या 1585 वर्ष 1983

कल्लू **...अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...प्रत्यर्थी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

के.एन. द्विवेदी, कौस्तुभ तिवारी, श्रीनाथ, श्री नाथ द्विवेदी

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:

अपर शासकीय अधिवक्ता

अनुवादित

(A) आपराधिक कानून - परिस्थितिजन्य साक्ष्य- नाबालिग बच्चे का फिरौती के लिए अपहरण और हत्या - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 302, 364 और 201 - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धाराएँ 8, 27, 118 - साक्ष्य की पुन: सूक्ष्म जांच और पुनर्मूल्यांकन - 'अंतिम बार देखे जाने' का साक्ष्य - अभियुक्त की निशानदेही पर शव और कपड़ों की बरामदगी - बाल गवाह की सक्षमता और विश्वसनीयता से संबंधित कानून की व्याख्या - गुमशुदगी की रिपोर्ट और एफ.आई.आर. को तत्काल दर्ज करना विश्वसनीयता बढ़ाता है - जब परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण हो तो 'हेतु' अनिवार्य नहीं है - सक्षम बाल गवाह की गवाही दोषसिद्धि का एकमात्र आधार बन सकती है - परिस्थितिजन्य साक्ष्य ने अपीलकर्ता के दोष की ओर इशारा करने वाली श्रृंखला स्थापित की - दोषसिद्धि परिस्थितिजन्य साक्ष्य की पूर्ण श्रृंखला पर आधारित हो सकती है जो केवल दोष के निष्कर्ष की ओर ले जाती है - जहाँ नाबालिग बच्चे को अंतिम बार अभियुक्त के साथ देखा गया था, जो फरार हो गया था, और उसकी निशानदेही पर शव/कपड़े बरामद हुए, वहां दोषसिद्धि कायम रखने योग्य है, भले ही हेतु का प्रमाण न हो, यदि परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण है और साक्ष्य विश्वास जगाता है। (पैरा-3, 35 से 40, 45, 46)

अपीलकर्ता, जो शिकायतकर्ता (पीडब्ल्यू-1) का नौकर था, ने 8 वर्षीय लड़के को पुराने लॉटरी टिकट देने के बहाने बहला-फुसलाकर अगवा किया - लड़के को अंतिम बार अभियुक्त के साथ नहर की ओर जाते देखा गया -

उसी रात गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज की गई - अभियुक्त फरार हो गया - अगले दिन दो अन्य लोगों के साथ गिरफ्तार किया गया - उसकी निशानदेही पर झाड़ियों से कपड़े और तालाब से शव बरामद किया गया - पोस्टमार्टम से पता चला कि मृत्यु गला घोंटने और डूबने के कारण हुई - पहचान के अभाव में दो सह-अभियुक्तों को बरी कर दिया गया। (पैरा 4 से 14, 19, 23, 25, 33 से 34)

निर्धारित:- अभियोजन पक्ष ने परिस्थितियों की पूर्ण श्रृंखला सिद्ध की। 'अंतिम बार देखे जाने' का साक्ष्य, अभियुक्त की निशानदेही पर शव और कपड़ों की बरामदगी, पश्चातवर्ती आचरण और विश्वसनीय बाल गवाह ने दोष के अलावा कोई अन्य परिकल्पना नहीं छोड़ी। पहचान की कमी के कारण सह-अभियुक्तों को बरी कर दिया गया। अपीलकर्ता (कल्लू) की धारा 302, 364 और 201 आईपीसी के तहत दोषसिद्धि को बरकरार रखा गया। **(पैरा- 35, 39, 40)**

अपील खारिज। (E-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एससीसी 116
2. जय प्रकाश सिंह बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (2012) 4 एससीसी 379
3. दत्तू रामराव साखरे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1997) 5 एससीसी 341
4. मध्य प्रदेश राज्य बनाम बलवीर सिंह, 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 390
5. ए.एन. वेंकटेश बनाम कर्नाटक राज्य, (2005) 7 एससीसी 714
6. राज्य (एन.सी.टी. दिल्ली) बनाम नवजोत संधू @ अफसान गुरु, (2005) 11 एससीसी 600
7. सिद्धार्थ वशिष्ठ @ मनु शर्मा बनाम राज्य (एन.सी.टी. दिल्ली), एआईआर 2010 एससी 2352
8. अशोक बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2015 (4) एससीसी 393

(माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि द्वारा पारित)

1. श्री श्रीनाथ द्विवेदी, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और श्री राहुल अस्थाना, राज्य के विद्वान ए.जी.ए.-I को सुना गया तथा रिकॉर्ड का अवलोकन किया गया।

2. उपरोक्त अपील, पंचम अपर सत्र न्यायाधीश, कानपुर द्वारा सत्र विचारण संख्या 391/1982 में पारित दोषसिद्धि के निर्णय और सजा के आदेश दिनांक 01.06.1983 के विरुद्ध दायर की गई है, जिसमें विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलकर्ता को धारा 302 आई.पी.सी. के तहत आजीवन कारावास, धारा 364 आई.पी.सी.

के तहत सात वर्ष के सश्रम कारावास और धारा 201 आई.पी.सी. के तहत पांच वर्ष के सश्रम कारावास की सजा से दंडित किया है।

3. विचारण न्यायालय का रिकॉर्ड प्राप्त हो गया है और पेपर बुक तैयार है। पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की सहायता से संपूर्ण साक्ष्य का पुन: सूक्ष्म परीक्षण और पुनर्मूल्यांकन किया गया है।

4. **अभियोजन पक्ष की कहानी** यह है कि श्री बसंत लाल गुप्ता मकान नंबर 69/196 भूसा टोली, कानपुर में रह रहे थे। उनके पिता श्री अन्नी लाल गुप्ता मकान नंबर 61/196 हुलागंज में रहते थे। बसंत लाल गुप्ता का एक बेटा सुधीर कुमार गुप्ता उर्फ 'डेनी', एक बेटी कुमारी कल्पना गुप्ता (आयु लगभग 12 वर्ष) और एक अन्य छोटी बेटी थी। दिनांक 23.07.1982 को शाम लगभग 5:00 या 5:30 बजे, कल्पना गुप्ता उर्फ 'डेज़ी' और सुधीर कुमार गुप्ता उर्फ 'डेनी' अपने दादा के घर खेलने गए थे। उनके जाने के बाद, बसंत लाल गुप्ता, उनकी पत्नी और छोटी बेटी शाम की सैर पर चले गए। बसंत लाल गुप्ता के पास कल्लू (अभियुक्त) नाम का एक नौकर था। कल्लू घर पर ही रुका था, और जब ये सभी लोग घर से निकले, तो बसंत लाल गुप्ता के जाने के बाद वह भी घर से निकल गया। रात लगभग 9:00 बजे, बसंत लाल का छोटा भाई कमल अपने पिता के घर से आया और पूछा कि क्या 'डेनी' वापस आ गया है, क्योंकि वह अपने निवास पर उपलब्ध नहीं था। बसंत लाल गुप्ता भी अपने बेटे की तलाश में घर से निकले और जब वह भी उसे नहीं ढूंढ पाए, तो उन्होंने रात 10:00 बजे पुलिस स्टेशन जाकर सुधीर कुमार गुप्ता उर्फ 'डेनी' की गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज कराई।

5. दिनांक 23.07.1982 को पीडब्ल्यू-1, बसंत लाल गुप्ता (पिता) ने पुलिस को लिखित सूचना दी थी कि उनका 8 वर्षीय बच्चा सुधीर कुमार गुप्ता उर्फ 'डेनी' रात 8 बजे से अपने निवास से लापता है। गुमशुदगी की रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"दिनाँक 23-7-82

सेवा में,
श्रीमान थानाध्यक्ष
हरबंश मोहाल
कानपुर
मान्यवर महोदय,

निवेदन है कि हमारा लडका सुधीर कुमार गुप्ता उम्र 8 वर्ष रात्रि 8 बजे हूलागंज गुडमण्डी से कही लापता हो गया है। कृपया इसकी रिपोर्ट लिख ले तथा उचित व्यवस्था करें।

भवदीय
वसंत लाल गुप्ता
69/115 भूसा टोली
कानपुर

<u>तफसील लड़का</u>

उम्र 8 वर्ष

कद नाटा

रंग सांवला

कपडे पहने हुये हरा पैन्ट सफेद बुशर्ट छपी हुई ए०आई / सी०ओ० पी०एस० हरवंश मो० कृपया बाद तलाश रिपोर्ट दे।"

6. दिनांक 23.07.1982 को 22:00 बजे (रात 10 बजे), पुलिस थाना हरबंश मोहाल, जिला कानपुर की पुलिस ने थाने की सामान्य दैनिकी (जी.डी.) में गुमशुदगी की रिपोर्ट की प्रविष्टि जी.डी. संख्या 40, दिनांक 23.07.1982, समय 22:00 बजे के रूप में दर्ज की। जी.डी. प्रविष्टि का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

भइस समय बसंतलाल गुप्ता 69/115 भूसा टोली कानपुर ने हाजिर थाना आकर एक तहरीर दाखिल किया बावत गुम हो जाने लड़का सुधीर कुमार नकल तहरीर सेवा में थानाध्यक्ष हरबंश मोहाल थाना कानपुर मान्यवर निवेदन है कि हमारा लड़का सुधीर कुमार गुप्ता उम्र 8 वर्ष रात्रि 8 बजे हूलागंज गुड़मंडी से कहीं लापता हो गया है। कृपया इसकी रिपोर्ट लिख ले तथा उचित व्यवस्था करें। भवदीय बसंतलाल गुप्ता 69/115 भूसा टोली कानपुर तफसील लड़का 8 वर्ष कद नाटा रंग सांवला कपड़ा पहने हरा पैन्ट सफेद बुशर्ट छपी हुयी बसंतलाल। एवं बावत तलाश लडका प्रा० सम्बन्धित रवाना किया जावेगा।

लेखक

बादाम सिंह का०पु०

ता० 23-7-82

अनुवादित

7. दिनांक 24.07.1982 को सुबह लगभग 7:30 बजे, उप-निरीक्षक प्रेम कुमार मिश्रा, पीडब्ल्यू-9 ने गुमशुदगी की रिपोर्ट के आधार पर पूछताछ/जांच शुरू की। पुलिस और साथ ही लापता नाबालिग लड़के सुधीर कुमार गुप्ता उर्फ 'डेनी' के परिवार के सदस्य बच्चे की तलाश कर रहे थे।

8. अभियुक्त-अपीलकर्ता, कल्लू, पीडब्ल्यू-1 के घर और दुकान पर सेवा/काम कर रहा था। फलस्वरूप, वे उस रात और अगले दिन सुबह से शाम तक कल्लू के निवास पर गए। हालाँकि, कल्लू के पिता ने बताया कि अभियुक्त (कल्लू/अपीलकर्ता) फिल्म देखने गया था, लेकिन 23 जुलाई, 1982 की शाम से वापस नहीं आया था। पुलिस और अपहृत बच्चे के परिवार ने कल्लू की तलाश शुरू कर दी। तब पुलिस को सूचना मिली कि यदि वे मुखबिर के साथ जाएंगे तो कल्लू और अन्य को गिरफ्तार किया जा सकता है। इसके बाद, अपीलकर्ता कल्लू को दो अन्य व्यक्तियों, प्रदीप और पंकज के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। दिनांक 24.07.1982 को शाम लगभग 5:45 बजे, अपीलकर्ता कल्लू और दो अन्य सह-अभियुक्तों की निशानदेही पर, अपहृत बच्चे सुधीर कुमार गुप्ता उर्फ 'डेनी' के कपड़े झाड़ियों से बरामद किए गए। बसंत लाल गुप्ता (पीडब्ल्यू-1), अशोक कुमार (पीडब्ल्यू-7) और पुट्टन लाल की उपस्थिति में, उप-निरीक्षक प्रेम कुमार मिश्रा (पीडब्ल्यू-9) द्वारा कपड़ों और

चप्पल की बरामदगी का मेमो (फरद) तैयार किया गया और विचारण के दौरान इसे सिद्ध किया गया तथा इसे प्रदर्श क-2 के रूप में प्रदर्शित किया गया। अपीलकर्ता-कल्लू और अन्य की निशानदेही पर कपड़ों और चप्पलों की बरामदगी के बाद, नाबालिग बच्चे का शव एक तालाब से बरामद किया गया। शव की बरामदगी के मेमो का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"अतः उपरोक्त बयानों के आधार पर उपरोक्त तीनों गिरफतार शुदा मुल्जिमान को आगे करके मय गवाहान ठीक उसी स्थान पर पहुंचे जहां पर उपरोक्त सुधीर कुमार गुप्ता की लाश को गडा होना बताया गया उपरोक्त कल्लू, प्रदीप, पंकज ने गवाहान उपरोक्त के समक्ष तलइया के पूर्वी दिशा के किनारे से तीन कदम पानी के अन्दर घुसकर 3 फिट गहराई से कुछ मिटटी बगैगर हटाकर एक बच्चे की लाश बरामद की और उसे लाकर जैसे ही पानी के बाहर रखा कि उस मृतक के पिता श्री बसंत लाल गुप्ता व सगे सम्बन्धी जो मौजूद थे लिपट कर रोने लगे और यह बताया कि यह वही बच्चा सुधीर कुमार गुप्ता उर्फ डेनी है जो दि० 23-7-82 को रात्रि के समय गुम हो गया था मृतक के पिता व सगे सम्बंधियों को काफी समझाने बुझाने व दिलाशा देने के बाद उपरोक्त शव को कब्जा पुलिस में लिया गया लाश का पंचायतनामा बाद फर्द मुरत्तवी लिया जा रहा है फर्द मौके पर मुरत्तब करके बाद सुनाने मजबून अलामात गवाहान बनवाये जा रहे है।

ह० अशोक कुमार *ह0अप0*

ह० बसंतलाल गुप्ता *एस0आई0*

हव पुत्तन लाल गुप्ता *24-7-82*

समय 6.45 पी.एम."

9. सुधीर कुमार गुप्ता उर्फ 'डेनी' का शव बरामद होने के बाद, पीडब्ल्यू-9 उप-निरीक्षक प्रेम कुमार मिश्रा ने शाम 6:45 बजे मृतक सुधीर कुमार गुप्ता उर्फ 'डेनी' के शव का बरामदगी मेमो (फरद) तैयार किया। बरामदगी मेमो को पीडब्ल्यू-9 द्वारा सिद्ध भी किया गया और इसे प्रदर्श क-3 के रूप में प्रदर्शित किया गया।

10. पीडब्ल्यू-9 ने यह भी गवाही दी है कि उसने बसंत लाल गुप्ता (पीडब्ल्यू-1) और कुमारी कल्पना (पीडब्ल्यू-3) के बयान दर्ज किए। उसने बताया कि उसने थाना प्रभारी के निर्देश पर **पंचायतनामा** भी तैयार किया और शव को पोस्टमार्टम के लिए भी भेजा। दिनांक 25.07.1982 को लगभग 8 वर्ष की आयु के मृतक के शव का पोस्टमार्टम किया गया और मृत्यु की अवधि लगभग 1.5 (डेढ़) दिन बताई गई है तथा मृत्यु का कारण गला घोंटने के साथ डूबने के परिणामस्वरूप श्वासावरोध बताया गया है।

11. पीडब्ल्यू-10, थाना प्रभारी ने न्यायालय के समक्ष गवाही दी कि मृतक सुधीर कुमार गुप्ता उर्फ 'डेनी' का शव बरामद होने के बाद, गुमशुदगी की रिपोर्ट को अपराध संख्या 265/1982, धारा 365, 302, 201 सहपठित धारा 34 आईपीसी के तहत परिवर्तित कर दिया गया और उसके बाद जांच पीडब्ल्यू-10 (प्रभारी अधिकारी) श्री सतीश चंद्र सेठ को सौंप दी गई। पीडब्ल्यू-10 ने मामले की जांच के बाद तीन अभियुक्तों, यथा–कल्लू, प्रदीप कुमार और पंकज गुप्ता के विरुद्ध आरोप पत्र (चार्जशीट) दाखिल किया और आरोप पत्र पर संबंधित न्यायिक

मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 190(1)(बी) सीआरपीसी के तहत संज्ञान लिया गया। धारा 207 सीआरपीसी के प्रावधानों के अनुपालन के बाद, मामले को धारा 209 सीआरपीसी के तहत सत्र न्यायालय, कानपुर को सुपुर्द कर दिया गया और सत्र परीक्षण में मामले को सत्र परीक्षण संख्या 391/1982 के रूप में अंकित किया गया। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कानपुर की अदालत ने कल्लू, प्रदीप कुमार और पंकज गुप्ता के विरुद्ध धारा 364, 302 और 201 आईपीसी के तहत आरोप तय किए। अभियुक्तों ने दोष स्वीकार नहीं किया, इसलिए विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष को अपने गवाह पेश करने का निर्देश दिया।

12. अभियोजन पक्ष ने अपने गवाहों को पेश किया है, जिनमें पीडब्ल्यू-1 बसंत लाल गुप्ता (मृतक के पिता), पीडब्ल्यू-2 रज्जी लाल, पीडब्ल्यू-3 कुमारी कल्पना गुप्ता (आयु लगभग 11 वर्ष), पीडब्ल्यू-4 रमेश चंद्र गुप्ता, पीडब्ल्यू-5 हेड कांस्टेबल प्रताप सिंह, पीडब्ल्यू-6 हीरा लाल गुप्ता, पीडब्ल्यू-7 अशोक कुमार, पीडब्ल्यू-8 डॉ. के.के. ओमर, पीडब्ल्यू-9 उप-निरीक्षक प्रेम कुमार मिश्रा और पीडब्ल्यू-10 सतीश चंद्र सेठ (निरीक्षक) शामिल हैं।

13. **पीडब्ल्यू-1 बसंत** लाल को विचारण न्यायालय के समक्ष अभियोजन गवाह के रूप में पेश किया गया था, जिन्होंने अपनी मुख्य-परीक्षा में गवाही दी कि अभियुक्त कल्लू कथित घटना से चार वर्ष पूर्व से बसंत लाल की दुकान और घर पर सेवा/काम कर रहा है और कल्लू का घर उनके निवास से लगभग 1.5 फर्लांग की दूरी पर स्थित है। अभियुक्त-अपीलकर्ता कल्लू के पिता की दुकान भी पीडब्ल्यू-1 के पिता के घर के निचले हिस्से में है। पीडब्ल्यू-1 ने न्यायालय के समक्ष गवाही दी कि वह और उनकी पत्नी टहलने गए थे और उस समय उनकी बेटी, उनका बेटा और कल्लू-अपीलकर्ता उनके पिता के आवास पर थे और जब वे टहलकर वापस आए, तो उन्हें अपना बेटा नहीं मिला, इसलिए वे कल्लू के निवास पर अपने बेटे की तलाश करने गए और कल्लू के पिता ने सूचित किया कि कल्लू फिल्म देखने गया है लेकिन वह 23 जुलाई 1982 की शाम से वापस नहीं आया है। सुबह लगभग 6.30 बजे, बेटी कुमारी कल्पना (पीडब्ल्यू-3) ने भी सूचित किया कि मृतक कल्लू के साथ गया था। पीडब्ल्यू-1 की **मुख्य-परीक्षा** का प्रासंगिक हिस्सा यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"(2) घटना के चार साल पहले से कल्लू मुलजिम हाजिर अदालत मेरे यहां काम करता था यह हमारे घर का कामकाज तथा दुकान का मसाला बनाने का काम करता था। कल्लू का मकान मेरे मकान से आधा फर्लांग दूर पर है। कल्लू के पिता की दुकान मेरे पिता के मकान के नीचे है। मुलजिम पंकज व प्रदीप हाजिर अदालत को जानता हूँ। ये तीनों आपस में दोस्त है। प्रदीप व पंकज के मकानात भी हमारे मकान से करीब आधा पौन फर्लांग दूर है।

(3) आज से दस साढे दस माह के पहले का वाक्या है पांच साढे पांच का समय था मैं अपने घर में था। मेर तीनों बच्चे मेरी पत्नी तथा कल्लू घर में थे। कल्पना व सुधीर हूलागंज मेरे पिता के मकान पर खेलने कूदने चले गए। हम लोग यानी मैं मेरी पत्नी व छोटी लडकी घूमने निकल गए। जब तक हम लोग घर पर थे कल्लू घर पर रहा जब हम लोग चले गए तब यह भी निकल गया। रात के साढे आठ बजे हम लोग घूम फिर कर वापस आए उस बीच मेरा छोटा भाई कमल पिता जी के मकान से आया उस समय करीब नौ बजा था और

पूंछा कि "डैनी यहां तो नही आया काफी देर से मिल नहीं रहा है।" इसके यह कहने पर मैं व कमल उसे ढूढने निकल गया। आस पास देखकर पौने दस बजे घर वापस आया। सब लोगो ने कहा कि थाने पर रिपोर्ट कर दो। तब मैंने घर पर बैठकर अपने हाथ से रिपोर्ट लिखी जो इक्ज क 1 है। मेरे हाथ की लिखी व दस्तखती है उसे थाने मे ले जाकर लगभग दस बजे दाखिल किया रात में। सब लोगों ने और हम व कमल ने भी कहा कि कल्लू के घर चल कर देख ले। हम कमल, राम प्रकाश, सुरेशचंद्र गुप्ता कल्लू के घर गए। वहां कल्लू नहीं मिला उसके पिता रामलाल मिले। उन्होंने बताया कि " कल्लू पिक्चर देखने कह कर गया है" हम लोग ढूंढ ढाड़ कर ढाई बजे राम वापस घर आए। सबेरे छः साढे छः बजे मेरी लडकी कल्पना ने बताया कि कल्लू पिता जी के घर के नीचे लाटरी की दुकान के पास खडा होकर इशारा से डेनी को बुला रहा था इस पर डेनी नीचे चला गया। कल्लू ने डेनी को लाटरी के पुराने टिकट दिए और कुछ बाते करता रहा इसके बाद वह डेनी को कैनाल रोड की तरफ ले गया। इसके बाद डेनी फिर वापस नहीं आया। इस सूचना पर मैं फिर अपने भाईयों के साथ कल्लू के घर गया कल्लू के पिता राम लाल ने बताया कि वह रात से पिक्चर देखकर वापस ही नहीं आया। फिर मुझे पर शंका होने लगी और हम लोग घर चले आए हम लोगों के घर आने के पांच सात मिनट बाद ही पुलिस वाले आ गए मैंने शंका के बारे में पलिस वालो को बताया कि मुझे कल्लू व उसके साथ घूमने वाले पंकज व प्रदीप पर शंका है पुलिस वालों ने कहा कि हम तो देखेगे ही आप भी इन लोगो के घर पर में इधर उधर देखे दिए जब भी कोई सूचना इसके या लडके के बारे में मिले तो हमें सूचित करते रहिए। यह भी कहा कि यदि कोई सूचना न भी मिल तो भी दोपहर बाद मुझे अपनी पूरी रिपोर्ट दीजिए।"

(4) पुलिस जब मुझे हिदायत देकर चली गई तब मैं बच्चे को इधर उधर ढूंढता रहा। मुलजिमान के घर में भी इधर उधर दूढता रहा। मुलजिमान भी घर पर नहीं मिले तथा मेरा बच्चा डेनी ही मिला। फिर दोपहर बाद तीन सवा तीन बजे चौकी हूलागंज गया वहां पर दरोगा जी को तलाश किया। वहां मालूम हुवा कि दरोगा जी सुन्दर टाकीज गए है। हमारे साथ हमारे भाई पुत्तन लाल सुन्दर टाकीज 3-3-30 बज गए। वहां मिश्रा जी दरोगा मिले। उनको मैंने बताया कि मुलजिमान तथा मेरा लडका नहीं मिला। सुन्दर टाकीज पर ही अशोक कुमार आ गए थोडी देर बाद सेठ साहब इन्सपेक्टर आ गए उनकी जीप पर एक मुखबिर भी था। सेठ साहब ने मिश्रा दरोगा जी से कहा कि इस मुखबिर के साथ सर्किट हाउस जाजमऊ की तरफ चले जाइए उधर ही मुलजिमान के मिलने की सम्भावना है। जीप पर मैं, अशोक कुमार, पुत्तन तथा मिश्रा दरोगा दो तीन सिपाही व मुखबिर बैठकर सर्किट हाउस के पास पुलिया के पहले ही मुखबिर ने गाडी रूकवा दी वहीं पर कल्लू, पंकज व पदीप मुलजिमान खडे थे। हम लोग जीप से उतरे हम लोगों को उत्तरते देख तीन मुलजिमान भागे परन्तु हम लोगों ने दौडा कर इन तीनों को पकड़ लिया। दरोगा जी ने तीनों से नाम पते पूछे। मुझसे पूछा तो मैंने कहा कि यही तीनों है। दरोगा जी ने इन तीनो से डेनी के बिषय में पूछाँ तब कल्लू ने मेरा पैर पकडते हुए कहा कि प्रदीप व पंकज़ के कहने पर पन्द्रह हजार रूपया फिरौती के उददेश्य से डेनी का अपहरण कर लिया है। पूछने पर कल्लू ने यह भी बताया कि डैनी की लाश चांदमारी क्षेत्र में एक तालाब में डाल दी है। कपडे जयपुरिया पार्क के सामने एक झाडी में रख दिए है तथा यह भी बताया कि डैनी को रखने की जगह न मिलने के कारण हम लोगों ने उसकी हत्या की है। उसने कहा कि लाश व कपडे हम बरामद करवा देगें। वहां से हम लोग जयपुरिया पार्क गए वहां पर मुलजिमान के कहने से जीन जयपुरिया पार्क के सामने रूक गई सभी लोग नीचे उत्तरे मुलजिमान से कहा गया कि कपडे

मृतक के निकालिए। इस पर तीनों एक दूसरे से कहने लगे कि तुमने रखा है तुमने रखा है। तीनो मुलजिमान झाडी में घुसा कर कल्लू अभियुक्त एक पोटली लेकर बाहर निकला। उसमें तीन चीजे निकली एक पैन्ट, एक बुशर्ट व एक चप्पल निकली। वे इक्ज-1 टू है से तीनो मेरे बच्चे की थी। कपडा के निकलने के बाद वहीं उनकी फर्द लिखी गई जो फर्द इक्ज क 2 है इस पर मेरे भी दस्तखत है। मेरा लडका यही तीनों चीजे पहिने मेरे पिता जी के घर गया था। कपडो को वही पर सील मुहर किया गया। इसके बाद हम सब लोग थाने गए।

(5) जहां से कपडे बरामद हुए थे वहां से थाना केवल आधा फर्लांग है। थाने पर कपडे आदि जमा करवाए गए और थाने से कुछ कागजात लेकर चांदमारी वाले क्षेत्र पर हम लोग गए वहां एक तालाब के पास तीनों मुलजिमान के कहने से जीप रोकी गई। सब लोग जीप से उत्तरे। वहां तीनों एक तालाब में घुसे और कल्लू ने लडके का हाथ पकडा और कहा कि भैय्या तुम दोनों भी आओ उस पर इन दोनों में भी लडके का पैर पकडा तथा तीनों ने मिलकर लाश बाहर निकाली। मैंने लाश को पहिचाना फिर फद्र लिखी गई हमारे दस्तखत तथा पुत्तन व अशोक के दस्तखत बनवाए गए फर्द इक्ज क-3 है। मौके पर पंचायतनामा लिखा गया तथा लाश सील हुई तथा पोस्टमार्टम को भिजवाई गई।"

14. पीडब्ल्यू-1 ने यह भी गवाही दी कि जब उनका बेटा वापस नहीं आया, तो उन्हें अभियुक्त कल्लू पर आशंका हुई। पीडब्ल्यू-1 ने अपनी प्रति-परीक्षा में यह भी गवाही दी कि अपीलकर्ता उनका नौकर था और यह भी बताया कि अभियुक्त कल्लू और अन्य की निशानदेही पर कपड़ों के साथ-साथ शव की बरामदगी उनके सामने की गई थी।

15. अभियोजन पक्ष ने **पीडब्ल्यू-2, रज्जी लाल** को भी पेश किया, जिसने अपनी **मुख्य-परीक्षा** में गवाही दी कि अपीलकर्ता कल्लू ने सुधीर (नाबालिग बच्चे) को बुलाया और कल्लू उस नाबालिग बच्चे के साथ नहर की ओर गया था। उसकी मुख्य-परीक्षा का प्रासंगिक हिस्सा नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"(2) आज से दस ग्यारह माह की बात है। ईद का त्यौहार था। शाम के सात साढे सात बजे का समय था मैं अपनी उपरोक्त दुकान पर बैठा था। मैने अपनी से देखा कि कल्लू लाटरी गोयल वाले की दुकान पर खडा सुधीर उर्फ डैनी को बुला रहा है। सुधीर अपने बाबा अन्नी लाल के मकान के छजजे पर खड़ा था। सुधीर उतर कर नीचे कल्लू के पास आया। ये दोनों आपस में बातचीत करते हुए दस मिनट रूके फिर कल्लू सुधीर को लेकर नहर किनारे की तरफ चला गया।"

16. पीडब्ल्यू-2 ने अपने बयान में यह भी गवाही दी कि उसने कथित घटना के अगले दिन पीडब्ल्यू-1 को सूचित किया था कि अपीलकर्ता कल्लू उसके बेटे को बहला-फुसलाकर ले गया था।

17. अभियोजन पक्ष ने **पीडब्ल्यू-3, कुमारी कल्पना** को भी पेश किया, जिसकी आयु लगभग 11 वर्ष थी। चूंकि पीडब्ल्यू-3 एक नाबालिग थी, इसलिए पीठासीन अधिकारी ने नाबालिग बच्चे का बयान दर्ज करने के लिए

मानक प्रक्रिया का पालन किया। पीठासीन अधिकारी ने बाल गवाह से कुछ नैतिक प्रश्न पूछे और जब पीठासीन अधिकारी ने पाया कि वह अपना बयान देने के लिए योग्य है, तब उसका बयान दर्ज किया गया। न्यायालय द्वारा 11 वर्षीय गवाह से प्रश्न पूछकर बयान दर्ज किया गया, जिसमें पीडब्ल्यू-3 ने गवाही दी कि अपीलकर्ता कल्लू ने उसके भाई "डेनी" (लगभग 8 वर्ष की आयु का नाबालिग बच्चा) को बुलाया और उसे लॉटरी के कुछ पुराने टिकट दिए, और दोनों नहर की ओर चले गए। पीडब्ल्यू-3 ने न्यायालय के समक्ष आगे गवाही दी कि वह और उसका भाई अपने दादा के निवास पर आए थे। उसने गवाही दी कि उसने अपना घर शाम लगभग 7:30 बजे छोड़ा था। उस समय उसके पिता, माँ, छोटी बहन और कल्लू (नौकर) उनके निवास पर मौजूद थे। शाम 7:30 बजे के बाद, कल्लू भी उसके दादा के निवास के बाहर आया। उसका भाई उसके दादा के घर की पहली मंजिल की बालकनी में खड़ा था और अपीलकर्ता कल्लू ने उसके भाई को बुलाया और लॉटरी के पुराने टिकट देकर उसे बहला-फुसलाकर ले गया। अगली सुबह, उसने अपने पिता (पीडब्ल्यू-1) को पूरी घटना की जानकारी दी। पीडब्ल्यू-3 की **मुख्य-परीक्षा** का प्रासंगिक हिस्सा नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"मेरा नाम कुमारी कल्पना गुप्ता उर्फ डेजी मेरे पिता का नाम पुत्री बसन्त लाल मेरी आयु 11 साल व्यवसाय विद्यार्थी मेरा घर स्थान दाना खोरी थाना हरवंश मुहाल जिला कानपुर में है।
मैं स्थान में रहता हूँ।
मैंने गवाह से बात की, वह सवालों और जवाबों को ठीक से समझती है। वह शपथ की पवित्रता को समझती है, जबकि वह कहती है, "
गलत कसम खाने से पाप पडता है।
मेरे द्वारा गवाह को दिलाई गई शपथ।
प्रश्न- आज से कितने दिन पहले की बात है
उत्तर- करीब 10-1/2 माह पहिले की बात है।
प्रश्न- डैनी तुम्हारा कौन था
उत्तर- मेरा भाई था।
प्रश्न- कितना बजा था।
उत्तर - शाम के 4-1/2 बजे थे।
जवाब कहानी के रूप में लिखे जा सकते हैं।

मैं अपने बाबा के यहां गई थी। मेरे साथ मेरा भाई सुधीर उर्फ डैनी भी था। अपने घर से 7-1/2 बजे चली थी। जब घर से चली थी तो घर में मेरे पिता जी, मां, छोटी बहिन व कल्लू नौकर थे। कल्लू घरेलू नौकर था। 7-1/2 बजे दादी के मैं कमरे में बैठी थी। यह कमरा बीच खण्ड में है। उस कमरे का दरवाजा सडक की ओर खुलता है। कमरे में मैं टी०वी० देख रही थी। डैनी को टी०वी० अच्छा नहीं लगा रहा था तो वह छज्जे पर चला गया। मैं कमरे से जब कल्लू की आवाज 'डैनी' करके सुनी तो मैं भी छज्जे पर चली गई। डैनी कल्लूकी ओर देखने लगा। कल्लू ने इशारा करके सुधीर को बुलाया तो सुधीर कल्लू के पास नीचे चला गया। कल्लू ने गोयल लाट्री सेण्टर के काउण्टर के बाहर से इशारा किया था। कल्लू ने सुधीर को कुछ लाट्री के पुराने टिकट दिये फिर

अनुवादित

उसे नहर के तरफ ले गया। उसके बाद मैं अन्दर को चली गई। जब काफी देर हो गई तो मुझे घबराहट होने लगी तो कमल चाचा जी को बताया कि सुधीर नीचे गया हुआ था अभी आया नहीं। फिर कमल चाचा उसे ढूंढने चले गये 10-1/2 बजे रात के करीब में अपने घर चली आयी। घर में जब गई तो मम्मी पापा घर पर नहीं थे। मेरी छोटी बहिन सो रही थी। मैं भी सो गई। सुबह उठकर देखा कि सभी लोग सुधीर को ढूंढ रहे है तब पापा ने मुझसे पूछा तो सब बात उन्हें बताई।"

18. लगभग 11 वर्ष की आयु वाली इस नाबालिग गवाह से बचाव पक्ष द्वारा प्रति-परीक्षा की गई। अपनी प्रति-परीक्षा में उसने गवाही दी कि उसके भाई सुधीर कुमार गुप्ता उर्फ 'डेनी' को अभियुक्त कल्लू द्वारा बहला-फुसलाकर ले जाया गया था।

19. अभियोजन पक्ष ने **पीडब्ल्यू-4, रमेश चंद्र गुप्ता** को पेश किया, जिसने न्यायालय के समक्ष गवाही दी कि रात लगभग 8:00 बजे, सुधीर कुमार गुप्ता उर्फ 'डेनी' अभियुक्त प्रदीप द्वारा चलाई जा रही साइकिल की रॉड पर बैठा था, जबकि अपीलकर्ता कल्लू कैरियर पर बैठा था। उनसे लगभग पांच से छह कदम पीछे, अभियुक्त पंकज दूसरी साइकिल चला रहा था। पीडब्ल्यू-4 की **मुख्य-परीक्षा** का प्रासंगिक हिस्सा नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"(2) आज से करीब 9-10 माह पहिले की बात है। मैं अपने दोस्त से मिलने के लिए रियो रेस्टोरेन्ट हीर पैलेस के सामने खडा था। कुल्फी खा रहा था। सडक के तरफ मुह किए अपने दोस्त कौसिक का इन्तजार कर रहा था। उस समय लगभग 8 बजे रात का समय था। मैंने देखा कि नहर के तरफ से आगे डण्डे पर सुधीर बैठा था उस साइकिल को प्रदीप चला रहा था। उसी साइकिलके पीछे कैरियर पर कल्लू बैठा था। साइकिल के 5, 6 कदम पीछे एक साइकिल पर पंकज जा रहे थे। यह सब लोग सुन्दर टाकीज के तरफ जा रहे थे।"

20. अपनी प्रति-परीक्षा में उसने गवाही दी कि उसे घटना के बारे में 26.07.1982 को एक समाचार पत्र के माध्यम से पता चला, तत्पश्चात, 27.07.1982 को उसने पीडब्ल्यू-1 को सूचित किया कि उसने अभियुक्त व्यक्तियों को नाबालिग बच्चे के साथ साइकिल से जाते हुए देखा था। पुलिस ने 10-11 दिनों के बाद उसका बयान दर्ज किया।

21. अभियोजन पक्ष ने **पीडब्ल्यू-5, प्रताप सिंह (हेड कांस्टेबल 164)** को भी पेश किया, जिसने गुमशुदगी की रिपोर्ट के साथ-साथ अभियुक्तों की गिरफ्तारी और बरामदगी के संबंध में सामान्य दैनिकी (जी.डी. प्रविष्टि) को सिद्ध किया है।

22. अभियोजन पक्ष ने **पीडब्ल्यू-6, हीरा लाल गुप्ता** को भी पेश किया है, जिसने अपनी मुख्य-परीक्षा में गवाही दी कि उसने कथित घटना की तिथि को कल्लू को दो अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों के साथ देखा था।

23. **पीडब्ल्यू-7 अशोक कुमार** ने विचारण न्यायालय के समक्ष अपने बयान में गवाही दी कि वह तीनों अभियुक्तों को जानता था। उसने आगे गवाही दी कि पहले, लगभग 4:00 बजे, वह चौकी प्रभारी श्री मिश्रा से मिला, जो वहां अकेले और काफी परेशान थे; जब पीडब्ल्यू-7 ने इस बारे में पूछताछ की, तो तत्पश्चात उसे 'डेनी' नामक लड़के के अपहरण के बारे में सूचित किया गया। उसी समय, मुखबिर बसंत लाल, पुट्टन के साथ वहां पहुँचा। उप-निरीक्षक ने उसे बताया कि उक्त लापता लड़का बसंत लाल का बेटा था। उसी समय, निरीक्षक सेठ भी कुछ पुलिस कर्मियों और एक अज्ञात व्यक्ति के साथ उसी स्थान पर पहुँचे। निरीक्षक ने उप-निरीक्षक मिश्रा को इन व्यक्तियों के साथ सर्किट हाउस की ओर जाने का निर्देश दिया। इसके बाद, पीडब्ल्यू-7, उप-निरीक्षक मिश्रा, अज्ञात व्यक्ति, मुखबिर और पुट्टन के साथ जीप से सर्किट हाउस की ओर गए। अज्ञात व्यक्ति (मुखबिर) के निर्देश पर जीप रोकी गई। जब जीप रुकी, तो उन्होंने वहां अभियुक्त कल्लू, प्रदीप और पंकज को देखा; इसके बाद अभियुक्तों ने भागने का प्रयास किया लेकिन पुलिस ने उन्हें घेर लिया और पकड़ लिया। उप-निरीक्षक मिश्रा ने इन व्यक्तियों के नाम पूछे। सूचनाकर्ता पीडब्ल्यू-1 ने उनकी पहचान की पुष्टि की। इसके बाद, अभियुक्त कल्लू ने सूचनाकर्ता बसंत लाल के पैर छुए और रोने लगा तथा आगे स्वीकार किया कि उसने फिरौती के लिए डेनी का अपहरण किया था। उसने तब बयान दिया कि उनके द्वारा डेनी की हत्या कर दी गई है और संकेत दिया कि शव और कपड़े बरामद हो जाएंगे। अभियुक्त ने आगे स्पष्ट किया कि कपड़े जयपुरिया पार्क की झाड़ियों से बरामद होंगे और शव चांदमारी क्षेत्र से बरामद होगा। इसके पश्चात इन तीनों अभियुक्तों ने पुलिस का साथ दिया और उन्होंने जयपुरिया पार्क की झाड़ियों से कपड़े और चांदमारी क्षेत्र के तालाब से शव बरामद कराया। उनकी मुख्य-परीक्षा का प्रासंगिक हिस्सा यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"तीनों मुलजिमान हाजिर अदालत को पहले से जानता हूँ ये लोग हमारे पडोसी थे। सुन्दर टाकीज पर चार बजे दिन मुझे चौकी इन्चार्ज श्री मिश्रा जी मिले उस समय वे अकेले थे। मैंने उन्हें कुछ परेशान दिखाई दिए मैंने पूछा क्यों परेशान हो। उन्होनें कहा कि एक लडका डैनी का अपहरण हो गया है उसी समय बसन्तलाल गुप्ता व पुत्तन आ गए। दरोगा जी ने बताया कि इन्ही का बच्चा था। इसी बीच इन्स्पेक्टर सेठ आ गए और उनके साथ कुछ सिपाही तथा एक अनजान आदमी भी था। सेठ जी ने मिश्रा जी से कहा कि आप इस आदमी के साथ सर्किट हाउस की तरफ चले जाये फिर मैं मिश्रा जी व आदमी तथा बसन्त लाल व पुत्तन सब जीप से पुल के उपर से होते हुए सर्किट हाउस की तरफ चले। हम लोग जीप से सर्किट हाउस के आगे पहुंचे पुल के पास उस अनजान आदमी के कहने से जीप रूकी। जीप के रूकने पर कल्लू प्रदीप पंकज तीनों नजर आए जीप रूकते ही ये तीनों भागने की कोशिश करने लगे। हम लोगों ने घेर कर कुछ दूर पर तीनों को पकड़ लिया। मिश्राजी ने इन तीनों का नाम पूंछा तथा बसन्त लाल गुप्ता से पूंछा कि क्या ये वहीं लोग है इस पर बसन्त लाल ने कहा कि हां यही है। उसके बाद कल्लू बसन्त लाल का पैर पकड कर रोने लगा और कहा कि डैनी को फिरौती के लिए पकड़ कर लाए थे गल्ती हो गई माफ किया जावे। उसने कहा कि हमने उसे मार दिया है और कपडे व लाश बरामद करा देगें। जयपुरिया पार्क के सामने इमली के पेड के पास झाडियां है वहां से कपडे बरामद करने को बताया और लाश को चांदमारी क्षेत्र में बताया।

(2) इसके बाद तीनों मुलजिमान जीप पर बैठ कर जयपुरिया पार्क के पास आए । वहां पर कल्लू ने जीप रोकने को कहा उतने क बाद तीनो मुलजिमान झाडी में घुसे तथा कल्लू ने पोटली निकालकर दी उसमें से एक हाफ पैन्ट एक बुशर्ट तथा एक चप्पल निकली ये सामान आज अदालत में है जो इक्ज 1 ता ।।। है। इस सामान की लिखा पढी हुई फर्द इक्ज क-2 है इस पर मेरे भी हस्ताक्षर है। इसके बाद हम लोग थाने वापस आए फिर थाने से चांदमारी क्षेत्र गए तीनों मुलजिमान के बताने के अनुसार वहां गए। चांदमारी क्षेत्र में तालाब के किनारे मुलजिमान के कहने से गाडी रोक दी और तीनो तालाब में घुसे लाश गडी हुई थी कल्लू ने पैर पकड़ कर निकाला पंकज व प्रदीप ने मदद की। लाश निकाल कर बाहर रखी गई तथा लिखा पढी की गई फर्द इक्ज क 3 है इस पर मेरे हस्ताक्षर है। बच्चे के शरीर पर सैन्डो बनियाइन थी जो आज अदालत में है यह इक्ज IV है।"

24. पीडब्ल्यू-7 ने अपनी प्रति-परीक्षा में भी अपनी मुख्य-परीक्षा के बयान का समर्थन किया।

25. अभियोजन पक्ष ने **पीडब्ल्यू-8, डॉ. के.के. ओमर** को पेश किया, जिन्होंने अपने बयान में पोस्टमार्टम रिपोर्ट की अंतर्वस्तु की पुष्टि की। उन्होंने गवाही दी कि मृतक की आयु लगभग 8 वर्ष थी और शव लगभग डेढ़ दिन पुराना था। 'रिगर मॉर्टिस' (Rigor mortis - मृत्यु उपरांत शरीर का अकड़ना) समाप्त हो चुका था और अपघटन की शुरुआत होने ही वाली थी। शव पर गर्दन के पास 6.4 इंच का एक नीला निशान था और मृत्यु का कारण गला घोंटने (strangulation) के परिणामस्वरूप श्वासावरोध पाया गया था। पोस्टमार्टम रिपोर्ट को पीडब्ल्यू-8 द्वारा सिद्ध किया गया और इसे प्रदर्श क-7 के रूप में प्रदर्शित किया गया। **मुख्य-परीक्षा** का प्रासंगिक हिस्सा यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"उस दिन सुधीर कुमार पुत्र बसन्त लाल के सील्ड शव का मौतोपरान्त परीक्षण मैंने 2-15 पी०एम० पर किया था। मृतक की उम्र लगभग 8 साल की थी। उसके मरे लगभग 1-1/2 दिन हो चुका था। मौत की अकड़न पास ऑफ हो गई थी। डिकम्पोजिशन शुरू हो गया था। उसके शरीर पर निम्नलिखित चोटे पायी। (1) निलगू निशान दाहिने कान के नीचे गर्दन में 6" x 4" का। और कोई जाहिरा चोट नहीं था। मृतक की मृत्यु गला दबाने तथा सांस के घुटन के कारण हुआ था। पोस्टमार्टम रिपोर्ट इक्ज क 9 मेरे हाथ की लिखी व दस्तखती है वरवक्त मुआइना तैयार किया गया था।"

26. अभियोजन पक्ष ने **पीडब्ल्यू-9, उप-निरीक्षक प्रेम मिश्रा** को भी पेश किया, जिन्होंने गुमशुदगी की रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद मामले की पूछताछ/जाँच की थी। अपने बयान में, उन्होंने गवाही दी कि घटना के एक दिन बाद यानी 24.07.1982 को, उन्होंने सुबह 7:30 बजे पूछताछ/जाँच शुरू की। उन्होंने सूचनाकर्ता बसंत लाल (पीडब्ल्यू-1) और कुमारी कल्पना (पीडब्ल्यू-3) के बयान दर्ज किए। उसके बाद, लगभग 4:00 बजे, वह सुंदर टॉकीज के पास खड़े होकर अशोक कुमार से बात कर रहे थे, तभी बसंत लाल (पीडब्ल्यू-1) और पुट्टन वहां आए और उन्हें सूचित किया कि अभियुक्त कल्लू, प्रदीप और पंकज अपने निवास पर मौजूद नहीं हैं। उसी समय, निरीक्षक श्री एस.सी. सेठ एक पुलिस जीप में एक अज्ञात व्यक्ति के साथ वहां पहुंचे। निरीक्षक ने उन्हें उस अज्ञात व्यक्ति के साथ सर्किट हाउस की ओर जाने का निर्देश दिया और बताया कि अभियुक्त कल्लू, प्रदीप

और पंकज वहां मौजूद हैं। वह पुलिस कर्मियों, सूचनाकर्ता, पुट्टन और अशोक के साथ मुखबिर को लेकर जीप से गए। मुखबिर जीप की अगली सीट पर बैठा था। जैसे ही वे सर्किट हाउस की ओर जाने वाली पुलिया (छोटे पुल) के पास पहुंचे, उन्होंने अभियुक्त कल्लू, प्रदीप और पंकज को पुलिया पर बैठे हुए पाया। अभियुक्त कल्लू ने भागने का प्रयास किया, लेकिन पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया। अभियुक्त कल्लू ने सूचनाकर्ता बसंत लाल गुप्ता के पैर छुए और रोने लगा तथा माफी मांगने लगा। उसने पीडब्ल्यू-1 को बताया कि डेनी के कपड़े और शव बरामद हो जाएंगे, और दावा किया कि कपड़े जयपुरिया पार्क में और शव चांदमारी क्षेत्र में स्थित एक तालाब में मिलेगा। बाद में, ये वस्तुएं बरामद की गईं और पीडब्ल्यू-1, बसंत लाल (मृतक के पिता) द्वारा उनकी पहचान की गई। पीडब्ल्यू-9, उप-निरीक्षक की मुख्य-परीक्षा का प्रासंगिक हिस्सा नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"जुलाई सन 1982 में चौकी हरवंश मुहाल थाना हरवंश मुहाल में सब इन्स्पेक्टर के पद पर तैनात था इस मुकदमा की तफतीश मुझे मिली। मैंने दिनांक 24-7-82 को समय करीब साढे सात बजे शुरू की। नकल रपट केस डायरी में दर्ज की। वादी बसन्त लाल का बयान लिया फिर कुमारी कल्पना उर्फ डेजी का बयान लिया। फिर करीब चार बजे शाम को मैं सुन्दर टाकीज पर खडा अशोक कुमार से बात कर रहा था उसी समय बसन्त लाल व पुत्तन वहां पर आए उनका अशोक से परिचय कराया उन्होंने बताया कि कल्लू, प्रदीप व पंकज अपने घर पर मौजूद नहीं है। उसी बीच इन्स्पेक्टर श्री सेठ जीप से आ गए उनके साथ एक व्यक्ति और था श्री सेठ ने मुझसे कहा कि जीप में बैठकर इसके साथ सर्किट हाउस की तरफ जाओं क्योंकि कल्लू, पंकज व प्रदीप मौजूद है। इस पर मैं बहमराह कर्मचारीगण बसन्त कुमार गुप्ता व पुत्तन लाल व अशोक को भी बैठा लिया। मुखबिर को आगे जीप में विठाकर रवाना हुए। सर्किट हाउस के आगे जाजमऊ रोड पर पुलिया के पहिले करीब तीस कदम पर जीप रोंक दिया जीप को देखकर पुलिया पर बैठे कल्लू, पंकज व प्रदीप जो जीप देखकर भागे उन्हें हम लोगों ने घेर कर व दौड़ाकर पकड लिया। पकडे जाने पर कल्लू, बसन्त लाल गुप्ता के पैरो पर गिर कर रोने लगा तथा माफी माँगने लगा और कहा कि कपड़े व लाश सुधीर की बरामद करवा दूंगा उसने कपडो को जयपुरिया पार्क के पास झाडी के अन्दर से बरामद कराने को कहा व लाश को चादमारी तालाब के अन्दर से बरामद करवाने को कहा आपोज्ड। हम सब लोग जीप पर जयपुरिया पार्क के पास आए। अभियुक्त कल्लू, पंकज व प्रदीप तीनों ने आगे आगे चलकर झाडी के अन्दर से कल्लू ने कपडों को निकाल कर दिया और पंकज व प्रदीप ने सहयोग किया। कपडो को देखकर बसन्त लाल गुप्ता ने अपने लडके सुधीर के कपडे होना शिनाख्त किया। मौके पर कपडो की फर्द तैयार की जो इक्ज क-2 है। यह मेरे हाथ की लिखी व दस्तखती है। तीनों मुलजिमान व उक्त बरामद शुदा कपडे मेरे जिल्द सामने है। इसके बाद थाने आए वहां से जिल्द पंचायतनामा व जरूरी कागजात लेकर व हेडमुहर्रिर को हिदायत किया कि इन्स्पेक्टर साहब जैसे ही आए उन्हें चांदमारी क्षेत्र भेज दे। थाने से हम लोग यानी बसन्त लाल पुत्तन, अशोक तथा तीनों अभियुक्त चांदमारी मैदान चकेरी गए। वहां ये तीनों अभियुक्त तालाब में करीब तीन फिट गहराई से लाश को निकाला। श्री बसन्त लाल गुप्ता ने सुधीर की लाश की शिनाख्त की। लाश की बरामदगी की फर्द मौके पर मैंने अपने हाथ से तैयार किया इस पर गवाहों के भी दस्तखत लिए फर्द इक्ज क-3 है। अंधेरा होने लगा था पेट्रोमेक्स की व्यवस्था की उसी समय इन्स्पेक्टर साहब आ गए उनके निर्देशन में मैंने पंचायतनामा इक्ज क 11 मुरत्तिब किया चालान लाश बनाया। यह इक्ज क 12 है। शव का फोटो बनाया जो इक्ज क 13 हैं आर० आई महोदय को चिटठी लिखी जो इक्ज क 14 है।

सी०एम०ओ० को पोस्टमार्टम हेतु पत्र लिखा जो इक्ज क 15 है। मौके पर शव को सर्व मुहर किया तथा नमूना सील तैयार किया जो इक्ज क 16 है इसके बाद इन्स्पेक्टर महोदय ने तफतीश अपने हाथ में ले ली।"

27. पीडब्ल्यू-9 ने अपनी प्रति-परीक्षा में भी प्राथमिकी के कथानक का समर्थन किया और अभियुक्त-अपीलकर्ता की गिरफ्तारी तथा मृतक नाबालिग लड़के के कपड़ों और शव के बरामदगी मेमो (फरद) को सिद्ध किया।

28. अभियोजन पक्ष ने **पीडब्ल्यू-10 (सतीश चंद्र सेठ)**, थाना प्रभारी, थाना हरबंश मोहाल, जिला कानपुर को भी पेश किया, जिन्होंने मृतक का शव बरामद होने के बाद मामले की जांच की थी। अपनी मुख्य-परीक्षा में, पीडब्ल्यू-10 ने गवाही दी कि शव की बरामदगी के बाद, गुमशुदगी की रिपोर्ट को प्रथम सूचना रिपोर्ट में परिवर्तित कर दिया गया था, जिसे अपराध संख्या 265/1982, धारा 365, 302, 201 और 34 आई.पी.सी. के तहत पंजीकृत किया गया, जिसमें अभियुक्त कल्लू, प्रदीप और पंकज को नामजद किया गया। पीडब्ल्यू-10 ने यह भी गवाही दी कि उप-निरीक्षक प्रेम कुमार मिश्रा ने इससे पहले जांच की थी। उन्होंने आगे गवाह अशोक कुमार (पीडब्ल्यू-7) का बयान दर्ज किया, जिनकी उपस्थिति में मृतक सुधीर के शव और कपड़ों का बरामदगी मेमो तैयार किया गया था। गवाह अशोक कुमार की उपस्थिति में एक स्थलाकृतिक रिपोर्ट भी तैयार की गई थी। पीडब्ल्यू-10 ने यह भी गवाही दी कि उन्होंने बसंत लाल और पुट्टन के बयान दर्ज किए, क्योंकि गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज होने के बाद उनके बयान पीडब्ल्यू-9 द्वारा भी दर्ज किए गए थे। पीडब्ल्यू-10 की **मुख्य-परीक्षा** का प्रासंगिक हिस्सा नीचे उद्धृत किया जा रहा है:–

"(1) वर्ष 1982 के जुलाई माह में भी मैं थाना हरवंश मुहाल में प्रभारी निरीक्षक के पद पर था। दिनांक 24-7-82 को थाना हरवंश मुहाल के रोजनामचा आम की रपट नं० 36 समय 20-30 बजे गुमशुदा बच्चा सुधीर कुमार उर्फ डैनी की लाश बरामदगी के बाद अपराध संख्या 265 पर अन्तर्गत धारा 365/302/ 201 सपठित धारा 34 आई०पी०सी० का तरमीम किया गया। जिसमें अभियुक्त कल्लू, प्रदीप पंकज थे।

(2) इस अभियोग की विवेचना सब इन्स्पेक्टर श्री पी०के० मिश्रा से ली दिनांक 25/7/82 से अपनी कार्यवाही प्रारम्भ की। दिनांक-25/7/82 को फर्द बरामदगी मृतक सुधीर के कपडे व लाश के गवाह अशोक कुमार निवासी कछियाना मोहाल का बयान लिया। इसी गवाह की निशादेही पर जिस स्थान से कपडा व लाश बरामद हुए थे अलग अलग नक्शा नजरी बनाया जो मेरे लेख व हस्ताक्षर में है ये कमशः इक्ज क-8 व इक्ज क 9 है। इसमें खसरे दर्ज है।

(3) इसके बाद गवाहान अन्य के बयान लिए। दिनांक 26-7-82 को पुनः बसन्त लाल व पुत्तन लाल से मजीद पुछतांछ की। उनके बयानाम मुरत्तिब किए। दिनांक 27-7-82 को कास्टेवल रघुवीर सिंह व कान्स्टेवल निगम लाल जो लाल का पोस्टमार्टम कराने ले गए थे उनके बयानात लिए।

(4) दिनांक 3-8-82 को रज्जी लाल गुप्ता कमल कुमार आदि, के बयानात अंकित किए तथा रज्जी लाल गुप्ता की निशादेही पर जहाँ से सुधीर कुमार उर्फ डैनी के अपहरण करके ले जाया गया था उसका नक्शा नजरी बनाया ।

(5) दिनांक 8-8-82 को गवाह रमेश चंद्र गुप्ता तथा हीरा लाल गुप्ता के बयानात लिए। बाद तकमीला तफतीश अभियुक्तों के खिलाफ चार्जशीट इक्ट क 10 है यह मेरी दस्तखती है।"

29. पीडब्ल्यू-10, सतीश चंद्र सेठ ने अपनी प्रति-परीक्षा में गवाही दी कि जांच के बाद उन्होंने अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया।

30. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियुक्तों के बयान धारा 313 सीआरपीसी के तहत दर्ज किए, जिसमें उन्होंने आरोपों से इनकार किया।

31. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि विवेचना अधिकारी द्वारा गवाहों के बयान दर्ज करने में देरी की गई थी। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि विवेचना में विसंगतियां हैं। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है, लेकिन अभियोजन पक्ष द्वारा अभियुक्त द्वारा ऐसी घटना कारित करने का कोई हेतुक नहीं बताया गया है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों में विरोधाभास है और उन्होंने अभियोजन के मामले का संदेह से परे समर्थन नहीं किया है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह दलील दी कि समान साक्ष्य के आधार पर दो अभियुक्तों को बरी कर दिया गया, जबकि विचारण न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता-अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए एक बाल गवाह (पीडब्ल्यू-3) की गवाही पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

32. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. ने तर्क दिया कि अभियुक्त कल्लू को मृतक नाबालिग लड़के के साथ अंतिम बार देखा गया था और पीडब्ल्यू-2, पीडब्ल्यू-3, पीडब्ल्यू-4 एवं पीडब्ल्यू-6 ने भी गवाही दी है कि अभियुक्त कल्लू को मृतक नाबालिग सुधीर के साथ देखा गया था, और उसके बाद, अभियुक्त-अपीलकर्ता कल्लू की निशानदेही पर मृतक के कपड़ों के साथ-साथ शव भी बरामद किया गया था। पीडब्ल्यू-7, अशोक कुमार ने अपने बयान में यह भी गवाही दी कि गिरफ्तारी के समय, अभियुक्त-अपीलकर्ता कल्लू ने स्वीकार किया था कि उसने फिरौती के लिए नाबालिग लड़के को बहलाया/अपहरण किया था, लेकिन बाद में उसकी हत्या कर दी। विद्वान ए.जी.ए. ने यह भी प्रस्तुत किया कि पीडब्ल्यू-4, रमेश चंद्र गुप्ता ने अपनी प्रति-परीक्षा में गवाही दी थी कि उसने अभियुक्त पंकज और प्रदीप की पहचान नहीं की थी। वह घटना से पहले अभियुक्त पंकज और प्रदीप के नाम नहीं जानता था। उसने समाचार पत्र में अभियुक्त पंकज और प्रदीप की तस्वीरें देखी थीं, लेकिन पंकज और प्रदीप की पहचान के लिए कोई पहचान परेड आयोजित नहीं की गई थी, जबकि अपीलकर्ता-अभियुक्त कल्लू के विरुद्ध संपूर्ण साक्ष्य अक्षुण्ण हैं। अपीलकर्ता का मामला अन्य अभियुक्तों से भिन्न है।

33. विद्वान ए.जी.ए. ने तर्क दिया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता पीडब्ल्यू-1, बसंत लाल का नौकर था और इसी कारण नाबालिग बच्चा अभियुक्त-अपीलकर्ता के साथ चला गया था। अभियुक्त-अपीलकर्ता ने फिरौती के लिए उसे बहलाया/अपहरण किया, लेकिन मृतक के परिवार के सदस्यों ने तुरंत लापता लड़के की तलाश शुरू कर दी। इसलिए, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने लड़के की हत्या कर दी। अपनी गिरफ्तारी के बाद, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने तीन फीट गहरे तालाब में घुसकर मृतक का शव बरामद करवाया। यह बरामदगी साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अनुसार की गई थी।

34. विद्वान ए.जी.ए. ने यह भी प्रस्तुत किया है कि स्वतंत्र गवाह अशोक कुमार (पीडब्ल्यू-7) ने मृतक के शव और कपड़ों, दोनों के बरामदगी मेमो (फरद) को सिद्ध किया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि मृतक के पिता ने अपने नाबालिग बच्चे के लापता होने के संबंध में पुलिस को तत्काल सूचित किया था। पुलिस ने उसी दिन सामान्य दैनिकी (जी.डी.) प्रविष्टि में गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज की और पूछताछ/जांच शुरू कर दी। अभियुक्त-अपीलकर्ता अपने निवास पर नहीं मिला। अभियुक्त-अपीलकर्ता के बाद के आचरण से पता चला कि वह अपने निवास से फरार हो गया था, जब पीडब्ल्यू-1 और परिवार के अन्य सदस्य अभियुक्त कल्लू के घर गए थे। इसके बाद, पुलिस ने अपीलकर्ता कल्लू की तलाश की और बाद में उसे गिरफ्तार कर लिया गया। मृतक का शव और कपड़े अपीलकर्ता द्वारा दो अन्य अभियुक्तों के साथ बरामद कराए गए थे। नाबालिग बच्चे को अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा बहलाया/अपहरण किया गया था; जबकि अन्य दो अभियुक्तों को अपीलकर्ता कल्लू के साथ गिरफ्तार किया गया था, लेकिन जांच के दौरान गवाहों द्वारा उनकी पहचान नहीं की गई थी, इसलिए उन सह-अभियुक्तों के विरुद्ध मामला संदेह से परे सिद्ध नहीं हुआ। अभियुक्त-अपीलकर्ता कल्लू पीडब्ल्यू-1, बसंत लाल का नौकर था और इसी कारण लड़का अभियुक्त-अपीलकर्ता कल्लू के साथ चला गया था। अभियुक्त कल्लू को हमेशा नाबालिग लड़के के साथ देखा जाता था। जांच से पता चला कि अभियुक्त कल्लू ने फिरौती के लिए नाबालिग बच्चे का अपहरण किया था, लेकिन मृतक नाबालिग के परिवार के सदस्यों ने तुरंत तलाश शुरू कर दी थी, इसलिए अभियुक्त कल्लू ने नाबालिग बच्चे की हत्या कर दी और नाबालिग बच्चे के शव और कपड़ों को अभियुक्त कल्लू द्वारा बरामद किया गया, इसलिए अपीलकर्ता कल्लू का मामला अन्य सह-अभियुक्तों प्रदीप और पंकज के मामले से भिन्न है।

35. संपूर्ण रिकॉर्ड, गवाहों के बयानों और दस्तावेजी साक्ष्यों का अवलोकन करने के बाद, यह स्पष्ट है कि अभियोजन पक्ष का मामला निर्विवाद रूप से परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है। पूरी तरह से ऐसे साक्ष्यों पर निर्भर मामलों को नियंत्रित करने वाले कानूनी सिद्धांतों को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एससीसी 116** के ऐतिहासिक निर्णय में स्पष्ट रूप से स्थापित किया गया है, जिसमें शीर्ष अदालत ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

"*152. उच्च न्यायालय द्वारा भरोसा किए गए मामलों पर चर्चा करने से पहले, हम उन मामलों की प्रकृति, चरित्र और आवश्यक साक्ष्यों पर कुछ निर्णयों को उद्धृत करना चाहेंगे जो पूरी तरह से परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित होते हैं। इस न्यायालय का सबसे मौलिक और बुनियादी निर्णय हनुमंत बनाम मध्य प्रदेश राज्य*

[(1952) 2 एससीसी 71:AIR 1952 SC 343: 1952 SCR 1091: 1953 Cri LJ 129] है। इस मामले का इस न्यायालय द्वारा आज तक के बाद के बड़ी संख्या में निर्णयों में समान रूप से पालन और प्रयोग किया गया है, उदाहरण के तौर पर, तुफैल (उर्फ) सिम्मी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1969) 3 SCC 198: 1970 SCC (Cri) 55] और रामगोपाल बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1972) 4 SCC 625: AIR 1972 SC 656) के मामले। हनुमंत मामले [(1952) 2 SCC 71: AIR 1952 SC 343: 1952 SCR 1091: 1953 Cri LJ 129) में न्यायमूर्ति महाजन ने जो प्रतिपादित किया है, उसे उद्धृत करना उपयोगी हो सकता है:

'यह याद रखना उचित है कि जिन मामलों में साक्ष्य परिस्थितिजन्य प्रकृति के होते हैं, उनमें वे परिस्थितियाँ जिनसे दोषसिद्धि का निष्कर्ष निकाला जाना है, प्रथमतया पूरी तरह से स्थापित होनी चाहिए, और इस प्रकार स्थापित सभी तथ्य केवल अभियुक्त के दोषी होने की परिकल्पना (hypothesis) के साथ सुसंगत होने चाहिए। पुनः, परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए, और वे ऐसी होनी चाहिए जो सिद्ध की जाने वाली परिकल्पना के अलावा अन्य हर परिकल्पना को अपवर्जित (exclude) करती हों। दूसरे शब्दों में, साक्ष्य की श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषता के साथ सुसंगत निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न रहे और यह दिखाया जाना चाहिए कि सभी मानवीय संभावनाओं के भीतर यह कार्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया होगा।'

153. इस निर्णय के सूक्ष्म विश्लेषण से पता चलता है कि किसी अभियुक्त के विरुद्ध मामले को पूरी तरह से स्थापित मानने से पहले निम्नलिखित शर्तों का पूरा होना आवश्यक है:

(1) वे परिस्थितियाँ जिनसे दोषसिद्धि का निष्कर्ष निकाला जाना है, पूरी तरह से स्थापित होनी चाहिए। यहाँ यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय ने संकेत दिया है कि संबंधित परिस्थितियाँ 'स्थापित होनी ही चाहिए' न कि 'हो सकती हैं' 'सिद्ध हो सकता है' और 'सिद्ध होना ही चाहिए' के बीच न केवल व्याकरणिक बल्कि कानूनी अंतर भी है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा शिवाजी सहाबराव बोबड़े बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1973) 2 SCC 793 : 1973 SCC (Cri) 1033 : 1973 Crl LJ 1783] में धारित किया गया था, जहाँ यह टिप्पणी की गई थी [SCC para 19, p. 807: SCC (Cri) p. 1047]:

'निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि किसी न्यायालय द्वारा दोषी ठहराए जाने से पहले अभियुक्त का दोषी होना 'अनिवार्य' होना चाहिए, न कि केवल 'हो सकता है'; और 'हो सकता है' तथा 'होना ही चाहिए' के बीच की मानसिक दूरी लंबी है जो अस्पष्ट अनुमानों को पक्के निष्कर्षों से अलग करती है।'"

(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के दोष की परिकल्पना के साथ सुसंगत होने चाहिए, अर्थात उन्हें अभियुक्त के दोषी होने के अलावा किसी अन्य परिकल्पना पर स्पष्ट नहीं किया जाना चाहिए,

(3) परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए,

(4) उन्हें सिद्ध की जाने वाली परिकल्पना के अलावा हर संभावित परिकल्पना को अपवर्जित करना चाहिए, और

(5) साक्ष्य की श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषता के साथ सुसंगत निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न रहे और यह दर्शाया जाना चाहिए कि सभी मानवीय संभावनाओं में यह कार्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया होगा।

154. यदि हम ऐसा कह सकें, तो ये पाँच स्वर्ण सिद्धांत परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामले की सिद्धि के 'पंचशील' का गठन करते हैं।"

36. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, इस मामले में नाबालिग बच्चे के लापता होने के संबंध में पुलिस को **तत्काल सूचना** दी गई थी। सर्वोच्च न्यायालय ने **जय प्रकाश सिंह बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2012) 4 एससीसी 37**9 में तत्काल एफ.आई.आर. के महत्व पर प्रकाश डालते हुए निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"12. आपराधिक मामले में प्रथम सूचना रिपोर्ट साक्ष्य का एक महत्वपूर्ण और मूल्यवान हिस्सा है, हालांकि यह साक्ष्य का एक ठोस हिस्सा नहीं हो सकता है। किसी अपराध के कारित होने के संबंध में एफ.आई.आर. को तत्काल दर्ज करने पर जोर देने का उद्देश्य उन परिस्थितियों के बारे में शीघ्र जानकारी प्राप्त करना है जिनमें अपराध किया गया था, वास्तविक दोषियों के नाम और उनके द्वारा निभाई गई भूमिका के साथ-साथ घटनास्थल पर मौजूद चश्मदीद गवाहों के नाम प्राप्त करना है। यदि एफ.आई.आर. दर्ज करने में देरी होती है, तो यह अपनी स्वाभाविकता का लाभ खो देती है, और इसमें व्यापक विचार-विमर्श/परामर्श के परिणामस्वरूप रंजित विवरण, अतिरंजित वृत्तांत या मनगढ़ंत कहानी के शामिल होने का खतरा पैदा हो जाता है। ***निस्संदेह, एफ.आई.आर. दर्ज करने में तत्परता सूचनाकर्ता के वृत्तांत की सत्यता के संबंध में एक आश्वासन है। तत्काल दर्ज की गई एफ.आई.आर. वास्तव में क्या हुआ था और संबंधित अपराध के लिए कौन जिम्मेदार था, इसका प्रत्यक्ष विवरण दर्शाती है।*** *(संदर्भ: थुलिया काली बनाम तमिलनाडु राज्य, AIR 1973 SC 501; पंजाब राज्य बनाम सुरजा राम, AIR 1995 SC 2413; गिरीश यादव एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1996) 8 एससीसी 186; और तकदीर समसुद्दीन शेख बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य, AIR 2012 SC 37।)"*

37. नाबालिग बच्चे को अंतिम बार अभियुक्त-कल्लू के साथ कुमारी कल्पना उर्फ डेज़ी (पीडब्ल्यू-3) द्वारा देखा गया था, जिसकी आयु घटना के समय लगभग 11 वर्ष थी। यह तर्क दिया गया था कि वह एक बाल गवाह थी, इसलिए उसकी गवाही पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। इस संबंध में, साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 118 प्रासंगिक है और इसे यहाँ नीचे उद्धृत किया गया है:

"धारा 118*- कौन गवाही दे सकता है—सब व्यक्ति गवाही देने के लिए सक्षम होंगे, जब तक कि न्यायालय का यह विचार न हो कि वे उन प्रश्नों को समझने से, जो उनसे किए गए हैं, या उन प्रश्नों के तर्कसंगत उत्तर देने*

से, कम उम्र, अत्यधिक बुढ़ापे, बीमारी, चाहे शरीर की हो या मन की, या इसी प्रकार के किसी अन्य कारण से निवारित हैं।"

38. **साक्ष्य अधिनियम की धारा 118** किसी बच्चे के गवाह के रूप में अक्षम माने जाने के लिए न्यूनतम आयु निर्दिष्ट नहीं करती है, बल्कि यह प्रावधान करती है कि वह व्यक्ति जो उससे पूछे गए प्रश्नों को समझने में सक्षम है और उन प्रश्नों के तर्कसंगत उत्तर देने में समर्थ है, गवाही दे सकता है। माननीय शीर्ष अदालत ने **दत्तू रामराव साखरे बनाम महाराष्ट्र राज्य (1997) 5 एससीसी 341** में यह धारित किया है कि जब तक एक बाल गवाह बयान देने के लिए सक्षम पाया जाता है, यानी वह उससे पूछे गए प्रश्नों को समझने में समर्थ है और तर्कसंगत उत्तर देने में सक्षम है, तो ऐसे गवाह की गवाही को साक्ष्य अधिनियम की धारा 118 के तहत साक्ष्य के रूप में माना जा सकता है, चाहे उनकी कम उम्र हो या शपथ का अभाव हो। केवल एक अतिरिक्त कारक जिस पर विचार किया जाना है, वह यह है कि गवाह विश्वसनीय पाया जाना चाहिए, उसका आचरण किसी भी अन्य सक्षम गवाह जैसा होना चाहिए, और उसे सिखाए-पढ़ाए जाने की कोई संभावना नहीं होनी चाहिए। दत्तू रामराव साखरे (उपरोक्त) के निर्णय पर **मध्य प्रदेश राज्य बनाम बलवीर सिंह, 2025 एससीसी OnLine SC 390** में विचार किया गया है, जिसमें शीर्ष अदालत ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

"58. हम अपने निष्कर्षों को निम्नानुसार संक्षिप्त करते हैं:

(I) साक्ष्य अधिनियम किसी गवाह के लिए किसी न्यूनतम आयु का निर्धारण नहीं करता है, और इस प्रकार एक बाल गवाह एक सक्षम गवाह है और उसके साक्ष्य को सीधे तौर पर खारिज नहीं किया जा सकता है।

(II) साक्ष्य अधिनियम की धारा 118 के अनुसार, बाल गवाह का साक्ष्य दर्ज करने से पहले, विचारण न्यायालय द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए प्रारंभिक परीक्षा आयोजित की जानी चाहिए कि क्या बाल गवाह साक्ष्य देने की पवित्रता और उससे पूछे जा रहे प्रश्नों के महत्व को समझने में सक्षम है।

(III) बाल गवाह का साक्ष्य दर्ज करने से पहले, विचारण न्यायालय को अपना यह मत और संतुष्टि दर्ज करनी चाहिए कि बाल गवाह सत्य बोलने के कर्तव्य को समझता है और उसे स्पष्ट रूप से बताना चाहिए कि वह ऐसा मत क्यों रखता है।

(IV) प्रारंभिक परीक्षा के दौरान बच्चे से पूछे गए प्रश्न, बच्चे का आचरण और प्रश्नों का सुसंगत और तर्कसंगत उत्तर देने की उसकी क्षमता को विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किया जाना चाहिए। विचारण न्यायालय द्वारा गठित राय की सत्यता की जांच अपीलीय न्यायालय द्वारा या तो विचारण न्यायालय द्वारा आयोजित प्रारंभिक परीक्षा की सूक्ष्म जांच करके, या बाल गवाह की गवाही या विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए बयान और प्रति-परीक्षा के दौरान बच्चे के आचरण से की जा सकती है।

(V) एक बाल गवाह जो बयान देने के लिए सक्षम पाया जाता है, यानी उससे पूछे गए प्रश्नों को समझने में समर्थ है और सुसंगत एवं तर्कसंगत उत्तर देने में सक्षम है, उसकी गवाही साक्ष्य में स्वीकार्य होगी।

(VI) विचारण न्यायालय को बयान और प्रति-परीक्षा के दौरान बाल गवाह के आचरण को भी दर्ज करना चाहिए और यह भी कि क्या उस बाल गवाह का साक्ष्य उसकी स्वैच्छिक अभिव्यक्ति है और दूसरों के प्रभाव का परिणाम नहीं है।

(VII) ऐसी कोई आवश्यकता या शर्त नहीं है कि बाल गवाह के साक्ष्य पर विचार करने से पहले उसकी पुष्टि अनिवार्य हो। एक बाल गवाह जो किसी अन्य सक्षम गवाह जैसा आचरण प्रदर्शित करता है और जिसका साक्ष्य विश्वास जगाता है, उस पर बिना किसी पुष्टि की आवश्यकता के भरोसा किया जा सकता है और वह दोषसिद्धि का एकमात्र आधार बन सकता है। यदि बच्चे का साक्ष्य बिना किसी सुधार या बढ़ा-चढ़ाकर बताए अपराध की प्रासंगिक घटनाओं की व्याख्या करता है, तो उसे किसी भी प्रकार की पुष्टि की आवश्यकता नहीं है।

(VIII) न्यायालयों द्वारा सावधानी और विवेक के उपाय के रूप में बाल गवाह के साक्ष्य की पुष्टि पर तब जोर दिया जा सकता है जब बच्चे का साक्ष्य या तो सिखाया-पढ़ाया गया पाया जाए या उसमें महत्वपूर्ण विसंगतियां या विरोधाभास हों। ऐसी पुष्टि कब वांछनीय या आवश्यक होगी, इसके लिए कोई कठोर नियम नहीं है और यह प्रत्येक मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

(IX) बाल गवाहों को खतरनाक गवाह माना जाता है क्योंकि वे कोमल स्वभाव के होते हैं और आसानी से प्रभावित, आकारित और ढाले जा सकते हैं, इसलिए न्यायालयों को सिखाए जाने की संभावना को खारिज करना चाहिए। यदि न्यायालय सूक्ष्म जांच के बाद पाते हैं कि न तो कोई ट्यूटरिंग है और न ही अभियोजन पक्ष द्वारा बाल गवाह का उपयोग किसी गुप्त उद्देश्य के लिए करने का कोई प्रयास किया गया है, तो न्यायालयों को अभियुक्त के दोष या निर्दोषता का निर्धारण करने में ऐसे गवाह की विश्वास जगाने वाली गवाही पर भरोसा करना चाहिए। अभियुक्त द्वारा इस संबंध में किसी भी आरोप के अभाव में, बच्चा सिखाया गया है या नहीं, इसका निष्कर्ष उसके बयान की अंतर्वस्तु से निकाला जा सकता है।

(X) बाल गवाह के साक्ष्य को 'सिखाया गया' तब माना जाता है जब उनकी गवाही किसी और के कहने पर आकारित या प्रभावित हो या अन्यथा मनगढ़ंत हो। जहाँ किसी गवाह को सिखाया गया हो, वहां उनकी गवाही में संभवतः दो व्यापक प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं: (i) सुधार या (ii) गढ़ना ।

(i) गवाही में सुधार, जिसके द्वारा तथ्यों को बदल दिया गया है या नए विवरण जोड़ दिए गए हैं जो पहले नहीं बताए गए घटनाक्रम के संस्करण के साथ असंगत हैं, उन्हें सबसे पहले गवाह का सामना उसके पिछले बयान के उस हिस्से से कराकर समाप्त किया जाना चाहिए जिसमें सुधार वाला हिस्सा छूटा हुआ है या उसका खंडन करता है, उसे गवाह के संज्ञान में लाकर और गवाह को उस चूक या विरोधाभास को स्वीकार करने या इनकार

करने का अवसर देकर किया जाना चाहिए। यदि ऐसी चूक या विरोधाभास स्वीकार कर लिया जाता है, तो विरोधाभास को सिद्ध करने की कोई और आवश्यकता नहीं है। यदि गवाह चूक या विरोधाभास से इनकार करता है, तो उसे संबंधित गवाह के पुलिस बयान के उस हिस्से को सिद्ध करके विवेचना अधिकारी के बयान में सिद्ध करना होगा। उसके बाद ही, सुधार को साक्ष्य से खारिज किया जा सकता है या साक्ष्य अधिनियम की धारा 11 के संदर्भ में ऐसी चूक या विरोधाभास पर साक्ष्य के रूप में भरोसा किया जा सकता है।

(ii) जबकि एक बाल गवाह का साक्ष्य जिसे पूर्णतः बनावटी या सिखाया-पढ़ाया गया होने का आरोप लगाया गया है, तो ऐसे साक्ष्य को अविश्वसनीय मानकर केवल तभी खारिज किया जा सकता है जब निम्नलिखित दो कारकों की उपस्थिति स्थापित हो जाए जो इस प्रकार हैं: -

- संबंधित बाल गवाह को सिखाने-पढ़ाने का अवसर: जिसके द्वारा कुछ ऐसे आधारभूत तथ्य स्थापित किए जाने चाहिए जो इस संभावना का सुझाव देते हों या प्रदर्शित करते हों कि गवाह की गवाही का एक हिस्सा सिखाया-पढ़ाया गया हो सकता है। यह या तो ऐसे गवाह का बयान दर्ज करने में देरी दिखाकर, या ऐसे गवाह की उपस्थिति संदिग्ध होने के कारण, या झूठी गवाही देने के लिए ऐसे गवाह के किसी हेतु का आरोप लगाकर, या ऐसे गवाह के सिखाने-पढ़ाने का शिकार होने की संवेदनशीलता के माध्यम से किया जा सकता है। हालांकि, केवल यह कोरा दावा कि संबंधित गवाह के सिखाए-पढ़ाए जाने की संभावना है, पर्याप्त नहीं है।
-
- सिखाने-पढ़ाने की उचित संभावना: जिसमें स्थापित किए गए सिखाने-पढ़ाने की संभावना का सुझाव देने वाले आधारभूत तथ्यों को आगे और सिद्ध किया जाना चाहिए या पुख्ता तौर पर पुष्ट किया जाना चाहिए। यह झूठी गवाही देने के एक मजबूत और स्पष्ट हेतु को सिद्ध करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करके, या यह स्थापित करके कि बयान दर्ज करने में देरी न केवल अस्पष्ट है बल्कि किसी अनुचित व्यवहार का संकेत और सुझाव देती है, या यह साबित करके कि गवाह सिखाने-पढ़ाने का शिकार हुआ और किसी अन्य से प्रभावित था, किया जा सकता है; चाहे ऐसे गवाह की विस्तार से प्रति-परीक्षा करके जिससे या तो महत्वपूर्ण विसंगतियां या विरोधाभास उत्पन्न हों, या ऐसे गवाह के संदिग्ध आचरण को उजागर किया जाए जो निष्फल पुनरावृत्ति और आत्मविश्वास की कमी वाली गवाही से भरा हो, या रिकॉर्ड पर मौजूद अन्य सामग्री और संबंधित परिस्थितियों के साथ गवाह के वृत्तांत की ऐसी असंगति के माध्यम से जो उनकी उपस्थिति को अप्राकृतिक बताकर नकार दे।
-

(XI) केवल इसलिए कि एक बाल गवाह को उस बात के कुछ हिस्सों को दोहराते हुए पाया जाता है जो किसी ने उसे कहने के लिए कहा था, उसकी गवाही को 'सिखाया गया' मानकर खारिज करने का कोई कारण नहीं है, यदि यह पाया जाता है कि बाल गवाह द्वारा सार रूप में जो बयान दिया जा रहा है वह कुछ ऐसा है जिसे उसने वास्तव में देखा था। एक बाल गवाह जिसने लंबी प्रति-परीक्षा का सामना किया है और अभियुक्त को अपराध के कर्ता के रूप में विस्तार से आरोपित करने वाले परिदृश्य का वर्णन करने में सक्षम है, तो मामूली विसंगतियां या सिखाए गए बयान के कुछ हिस्से जो शामिल हो गए हैं, वे अपने आप में ऐसे बाल गवाह की विश्वसनीयता को प्रभावित नहीं करेंगे।

(XII) एक बाल गवाह के बयान का हिस्सा, भले ही वह सिखाया गया हो, उस पर भरोसा किया जा सकता है, यदि सिखाए गए हिस्से को बिना सिखाए गए हिस्से से अलग किया जा सकता हो, बशर्ते ऐसा शेष बिना सिखाया गया या अदूषित हिस्सा विश्वास जगाता हो।
बाल गवाह के साक्ष्य के बिना सिखाए गए हिस्से पर विश्वास किया जा सकता है और उसे पुष्टि के उद्देश्य से ध्यान में रखा जा सकता है, जैसा कि एक पक्षद्रोही गवाह के मामले में होता है।"

39. वर्तमान मामले में, पीडब्ल्यू-3 (बाल गवाह) के बयान/गवाही दर्ज करने से पहले, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने उससे कुछ नैतिक प्रश्न पूछे थे और जब उन्होंने पाया कि वह अपना बयान देने के लिए योग्य है, तब उसका बयान दर्ज किया गया था। उसने गवाही दी कि उसका भाई उसके दादा के घर की पहली मंजिल की बालकनी पर खड़ा था, जब अपीलकर्ता कल्लू ने उसके भाई को बुलाया और लॉटरी के पुराने टिकट देकर उसे बहला-फुसलाकर ले गया। अपनी प्रति-परीक्षा में, यह गवाह अपने बयान/गवाही पर अडिग रही है। पीडब्ल्यू-2, रज्जी लाल ने भी पीडब्ल्यू-3 के बयान/गवाही का समर्थन किया है। इसलिए, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अपीलकर्ता को दोषी ठहराने में पीडब्ल्यू-3 के बयान/गवाही पर सही रूप से भरोसा किया है।

40. बच्चे के लापता होने के तुरंत बाद, पीडब्ल्यू-1 सहित परिवार के सदस्य शाम/रात में और फिर सुबह कल्लू के निवास पर गए, लेकिन अभियुक्त कल्लू अपने निवास पर नहीं था और उसने पुलिस से बचने का प्रयास किया। उसे गिरफ्तार किया गया और उसके बाद, उसकी निशानदेही पर मृतक के शव के साथ-साथ कपड़े भी बरामद किए गए। इस प्रकार, अभियुक्त का घटना के बाद का आचरण और अभियुक्त की निशानदेही पर मृतक के शव और कपड़ों की बरामदगी को साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 और धारा 27 के आलोक में देखा जाना चाहिए, जो हमारे उद्देश्यों के लिए प्रासंगिक हैं और जिन्हें यहाँ नीचे उद्धृत किया गया है:

"धारा 8: हेतु, तैयारी और पूर्व का या पश्चातवर्ती आचरण–कोई भी तथ्य जो किसी विवाद्य तथ्य (fact in issue) या सुसंगत तथ्य के लिए हेतु (motive) या तैयारी दर्शाता है या गठित करता है, सुसंगत है। किसी भी वाद या कार्यवाही के किसी भी पक्षकार, या किसी पक्षकार के किसी अभिकर्ता (agent) का, ऐसे वाद या कार्यवाही के संदर्भ में, या उसमें किसी विवाद्य तथ्य या उससे सुसंगत तथ्य के संदर्भ में आचरण, और किसी ऐसे व्यक्ति का आचरण जिसके विरुद्ध कोई अपराध किसी कार्यवाही का विषय है, सुसंगत है, यदि ऐसा आचरण किसी विवाद्य तथ्य या सुसंगत तथ्य से प्रभावित होता है या उसे प्रभावित करता है, चाहे वह उससे पूर्व का हो या पश्चातवर्ती।

स्पष्टीकरण 1. – इस धारा में 'आचरण' शब्द के अंतर्गत कथन नहीं आते, जब तक कि वे कथन उन कार्यों के साथ न हों और उनकी व्याख्या न करते हों जो स्वयं कथन से भिन्न हैं; किंतु यह स्पष्टीकरण इस अधिनियम की किसी अन्य धारा के अधीन कथनों की सुसंगतता पर प्रभाव नहीं डालेगा।
स्पष्टीकरण 2. – जब किसी व्यक्ति का आचरण सुसंगत होता है, तब उससे या उसकी उपस्थिति और श्रवण-गोचरता (hearing) में किया गया कोई भी कथन, जो ऐसे आचरण को प्रभावित करता है, सुसंगत है।"

"27: **अभियुक्त से प्राप्त जानकारी में से कितनी सिद्ध की जा सकती है**–परंतु यह कि, जब किसी पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप किसी तथ्य का पता चलने के बारे में गवाही दी जाती है, तब ऐसी जानकारी में से उतनी, चाहे वह संस्वीकृति की कोटि में आती हो या नहीं, जितनी स्पष्ट रूप से इस प्रकार ज्ञात तथ्य से संबंधित है, सिद्ध की जा सकती है।"

41. **ए.एन. वेंकटेश बनाम कर्नाटक राज्य, (2005) 7 एससीसी 714** में, शीर्ष अदालत ने पैराग्राफ संख्या 9 में निम्नानुसार धारित किया है:

"9. साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के आधार पर, अभियुक्त व्यक्ति का आचरण सुसंगत है, यदि ऐसा आचरण किसी विवाद्य तथ्य या सुसंगत तथ्य को प्रभावित करता है या उससे प्रभावित होता है। **इस परिस्थिति का साक्ष्य, साधारणतः, कि अभियुक्त ने पुलिस अधिकारी को वह स्थान बताया जहाँ अपहृत लड़के का शव पाया गया था और उनके बताने पर शव को खोदकर निकाला गया था, धारा 8 के तहत आचरण के रूप में स्वीकार्य होगा, चाहे अभियुक्त द्वारा ऐसे आचरण के समवर्ती या पूर्ववर्ती दिया गया कथन धारा 27 के दायरे में आता हो या नहीं, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा प्रकाश चंद बनाम राज्य (AIR 1979 SC 400) में धारित किया गया है। भले ही हम यह मानें कि अभियुक्त-अपीलकर्ताओं द्वारा किया गया प्रकटीकरण कथन (Ex. P14 और P15) साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत स्वीकार्य नहीं है, फिर भी यह धारा 8 के तहत सुसंगत है।** विवेचना अधिकारी और पीडब्ल्यू-1, 2, 7 और पीडब्ल्यू-4, जो घटनास्थल के 'मज़हर' (पंचनामा) के गवाह हैं, उनका यह साक्ष्य कि अभियुक्त उन्हें उस स्थान पर ले गए थे और उस जगह की पहचान की थी जहाँ शव दफनाया गया था, अभियुक्त के आचरण के रूप में धारा 8 के तहत साक्ष्य का एक स्वीकार्य हिस्सा है। ए-1 और ए-2 की उस स्थान पर उपस्थिति जहाँ फिरौती की मांग पूरी की जानी थी और पुलिस दल को देखते ही उनके भागने की क्रिया एक सुसंगत परिस्थिति है और साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के तहत स्वीकार्य है।"

(बल दिया गया)

42. **राज्य (एन.सी.टी. दिल्ली) बनाम नवजोत संधू उर्फ अफसान गुरु, (2005) 11 एससीसी 600** में, शीर्ष अदालत ने निम्नानुसार धारित किया है:

"आगे बढ़ने से पहले, हम साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 का उल्लेख कर सकते हैं। धारा 8, जहाँ तक यह हमारे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है, एक अभियुक्त व्यक्ति के आचरण को सुसंगत बनाती है, यदि ऐसा आचरण किसी विवाद्य तथ्य या सुसंगत तथ्य को प्रभावित करता है या उससे प्रभावित होता है। यह या तो पूर्व का आचरण हो सकता है या पश्चातवर्ती। इस धारा के दो स्पष्टीकरण हैं, जो 'आचरण' शब्द के दायरे की व्याख्या करते हैं। वे हैं:

स्पष्टीकरण 1: इस धारा में 'आचरण' शब्द के अंतर्गत कथन नहीं आते, जब तक कि वे कथन उन कार्यों के साथ न हों और उनकी व्याख्या न करते हों जो स्वयं कथन से भिन्न हैं; किंतु यह स्पष्टीकरण इस अधिनियम की किसी अन्य धारा के अधीन कथनों की सुसंगतता पर प्रभाव नहीं डालेगा।

स्पष्टीकरण 2: जब किसी व्यक्ति का आचरण सुसंगत होता है, तब उससे या उसकी उपस्थिति और श्रवण-गोचरता में किया गया कोई भी कथन, जो ऐसे आचरण को प्रभावित करता है, सुसंगत है।
आचरण, स्वीकार्य होने के लिए ऐसा होना चाहिए जिसका किसी विवाद्य तथ्य या सुसंगत तथ्य के साथ निकट का संबंध हो। स्पष्टीकरण 1 यह स्पष्ट करता है कि कार्यों से भिन्न केवल कथन 'आचरण' गठित नहीं करते जब तक कि वे कथन "उन कार्यों के साथ न हों और उनकी व्याख्या न करते हों जो कथन से भिन्न हैं"। कार्यों के साथ होने वाले ऐसे कथनों को 'रेज़ गेस्टे' का साक्ष्य माना जाता है। धारा 8 के साथ संलग्न दो दृष्टांत विशेष उल्लेख के पात्र हैं।

(f) प्रश्न यह है कि क्या A ने B को लूटा। यह तथ्य कि B के लूटे जाने के बाद, A की उपस्थिति में C ने कहा– "पुलिस उस व्यक्ति को खोजने आ रही है जिसने B को लूटा है", और इसके तुरंत बाद A भाग गया, सुसंगत हैं।

(i) A पर एक अपराध का आरोप है।

<u>यह तथ्य कि कथित अपराध होने के बाद वह फरार हो गया, या उसके पास वह संपत्ति या उस संपत्ति का लाभ था जो अपराध द्वारा प्राप्त की गई थी, या उसने उन चीजों को छिपाने का प्रयास किया जिनका उपयोग अपराध करने में किया गया था या किया जा सकता था, सुसंगत हैं।</u>

हम प्रकाश चंद के मामले (उपरोक्त) में अभियुक्त के उस आचरण, जो धारा 8 के तहत स्वीकार्य है, और जांच के दौरान पुलिस अधिकारी को दिए गए उस कथन, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 से वर्जित है, के बीच स्पष्ट किए गए अंतर को पहले ही देख चुके हैं। इस परिस्थिति का साक्ष्य, साधारणतः, कि अभियुक्त ने पुलिस अधिकारी को वह स्थान बताया जहाँ चोरी का सामान या अपराध में प्रयुक्त हथियार छिपाए गए थे, धारा 8 के तहत 'आचरण' के रूप में स्वीकार्य होगा, चाहे अभियुक्त द्वारा ऐसे आचरण के समवर्ती या पूर्ववर्ती दिया गया कथन धारा 27 के दायरे में आता हो या नहीं, जैसा कि प्रकाश चंद के मामले में बताया गया है। ओम प्रकाश के मामले (उपरोक्त) [AIR 1972 SC 975] में, इस न्यायालय ने धारित किया कि:
"धारा (27) के तहत जानकारी की स्वीकार्यता के अलावा भी, विवेचना अधिकारी और पंचों (Panchas) का यह साक्ष्य कि अभियुक्त उन्हें पीडब्ल्यू-11 (जिससे उसने हथियार खरीदा था) के पास ले गया था और उसकी पहचान की थी, और जैसा कि स्वयं पीडब्ल्यू-11 द्वारा पुष्ट किया गया है, अभियुक्त के 'आचरण' के रूप में धारा 8 के तहत स्वीकार्य होगा।"

(विशेष बल दिया गया)

43. **सिद्धार्थ वशिष्ठ उर्फ मनु शर्मा बनाम राज्य (एन.सी.टी. दिल्ली), AIR 2010 SC 2352** में, शीर्ष अदालत ने यह धारित किया है कि अभियुक्त का वह आचरण, जहाँ अभियुक्त हत्या करने के बाद अपने घर से फरार हो गया था, ऐसे मामलों में अभियुक्त का आचरण साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के तहत अत्यंत सुसंगत है और उसके द्वारा कपड़ों एवं शव का प्रकटीकरण और बरामदगी साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत सुसंगत है।

44. **अशोक बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2015 (4) एससीसी 393 में, शीर्ष अदालत** ने यह टिप्पणी की है कि 'अंतिम बार साथ देखे जाने' का तथ्य अपने आप में निर्णायक प्रमाण नहीं है, लेकिन घटना से जुड़ी अन्य परिस्थितियों के साथ, जैसे अभियुक्त और मृतक के बीच संबंध, उनके बीच शत्रुता, वैमनस्य का पिछला इतिहास, अभियुक्त से हथियार की बरामदगी आदि, और मृतक की मृत्यु के संबंध में स्पष्टीकरण न देना, दोष के अनुमान की ओर ले जा सकता है।

45. वर्तमान मामले में, उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि अभियुक्त को **मृतक-अपीलकर्ता के साथ अंतिम बार देखा गया** था, जो मृतक के घर में नौकर था; मृतक लड़का लापता हो गया और अभियुक्त-अपीलकर्ता **फरार** था। मृतक के लापता होने के संबंध में **तत्काल सूचना** दी गई थी। अभियुक्त-अपीलकर्ता, कल्लू को गिरफ्तार किया गया और उसके बाद, अभियुक्त पुलिस के साथ तालाब के पास गया और **अपीलकर्ता ने स्वयं तालाब से शव और झाड़ियों से कपड़े बरामद किए।** इस प्रकार, घटना के बाद अपीलकर्ता का **फरार** होने वाला पश्चातवर्ती आचरण **साक्ष्य अधिनियम की धारा 8** के तहत सुसंगत हो जाता है, जिसे अभियुक्त-अपीलकर्ता की निशानदेही पर मृतक के शव और कपड़ों की बाद में हुई बरामदगी से समर्थन मिलता है, जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 और धारा 8 के तहत साक्ष्य का एक स्वीकार्य हिस्सा है।

46. जहाँ तक हेतु का संबंध है, अभियुक्त ने फिरौती के लिए नाबालिग बच्चे को बहला-फुसलाकर अगवा किया था, लेकिन नाबालिग बच्चे की तत्काल तलाश ने अभियुक्त-अपीलकर्ता को फिरौती मांगने का अवसर नहीं दिया। परिणामस्वरूप, अपहरण के अपराध से बचने के लिए, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने नाबालिग बच्चे की हत्या कर दी, लेकिन अगले दिन जब उसे शाम को गिरफ्तार किया गया, तो उसने स्वीकार किया कि उसने फिरौती के लिए नाबालिग बच्चे को बहला-फुसलाकर अगवा किया था, लेकिन बाद में उसने नाबालिग बच्चे की हत्या कर दी और फिर उसने गवाह के सामने पुलिस को सूचित किया कि मृतक के कपड़े और शव बरामद किए जा सकते हैं। अभियुक्त कल्लू का मामला अभियुक्त प्रदीप और पंकज के मामले से भिन्न है क्योंकि अपीलकर्ता कल्लू ही वह व्यक्ति था जिसने नाबालिग को बहला-फुसलाकर अगवा किया था और मृतक के शव और कपड़ों की बरामदगी के समय अन्य सह-अभियुक्त उसके साथ थे। अपीलकर्ता के विरुद्ध मामला संदेह से परे था, इसलिए केवल अपीलकर्ता को ही दोषी ठहराया गया।

47. अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों, अपीलकर्ता के पश्चातवर्ती आचरण और उसकी निशानदेही पर बाद में हुई शव और कपड़ों की बरामदगी से यह स्पष्ट है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला पूर्ण है। इसलिए,

हमें विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष में कोई त्रुटि नहीं मिली है। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त अपीलकर्ता कल्लू की दोषसिद्धि साक्ष्य के अनुरूप है और विचारण न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

48. उपरोक्त के आलोक में, हम अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराने में विद्वान विचारण न्यायालय के निष्कर्षों से सहमत हैं।

49. अपील गुणों से रहित होने के कारण **खारिज** की जाती है। दोषसिद्धि के विवादित निर्णय और दंडादेश की पुष्टि की जाती है। चूंकि अभियुक्त-अपीलकर्ता फरार है, इसलिए उसके जमानत बांड रद्द किए जाते हैं और प्रतिभुओं को मुक्त किया जाता है। उसे सजा काटने के लिए तत्काल हिरासत में लिया जाएगा। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट और वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक अभियुक्त-अपीलकर्ता की गिरफ्तारी सुनिश्चित करेंगे।

50. विचारण न्यायालय का रिकॉर्ड तत्काल संबंधित न्यायालय को भेज दिया जाए।

51. रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा अनुपालन हेतु इस आदेश से सभी संबंधितों को अवगत कराया जाए।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 679

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला

आपराधिक अपील संख्या 5215 वर्ष 2003

आसिफ अली **...अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...प्रत्यर्थी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

अराफ खान

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, सतीश त्रिवेदी

अनुवादित

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 148, 149, 302 और 307 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 और 164 - हत्या - पीडब्ल्यू-2, घायल चश्मदीद गवाह न तो घायल था और न ही चश्मदीद गवाह था - पीडब्ल्यू-2 के चेहरे के दाहिने हिस्से पर चोटें इस घटना में कभी नहीं लग सकती थीं, जिसकी भीषणता प्राथमिकी से ही स्पष्ट थी - जब चार गोलियां सामने से चलाई गईं और उनमें से चार पीछे से बाहर निकल गईं, तो तार्किक निष्कर्ष यह था कि पीडब्ल्यू-2 को मृतक के शरीर से बाहर निकलने वाली गोलियों में से किसी एक से घायल होना चाहिए था - पीडब्ल्यू-2 लगातार अपना बयान बदलता रहा - उसने बयान दिया कि घटना के तुरंत बाद वह मोटरसाइकिल से कूद गया, गन्ने के खेत में भागा, फिर पीडब्ल्यू-1 के साथ पुलिस स्टेशन पहुँचा - बाद में बयान दिया कि प्राथमिकी दर्ज नहीं की गई थी, फिर वह मृतक के मामा के पास गया और उनके साथ पुलिस स्टेशन गया जहाँ प्राथमिकी दर्ज की गई - आगे बयान दिया कि उसने शव को पुल से नदी में फेंकते हुए देखा था - यह एक असंभाव्य कहानी है, क्योंकि उसने केवल शव के निस्तारण के तरीके के बारे में सुना था लेकिन वास्तव में शव का निस्तारण कभी नहीं देखा था, वह घटना शुरू होते ही घटनास्थल से गायब हो गया था - प्राथमिकी काफी देर से दर्ज की गई जैसा कि पीडब्ल्यू-1 और पीडब्ल्यू-2 के बयानों में उल्लेख किया गया है, जिसमें उन्होंने बताया कि पुलिस कर्मियों, प्रथम सूचनाकर्ता और गांव के बुजुर्गों के बीच काफी विचार-विमर्श के बाद प्राथमिकी दर्ज की गई थी - अन्य गवाह कभी गवाह के कटघरे में नहीं आए - जब उस साक्ष्य के आधार पर चार अभियुक्त व्यक्तियों को बरी कर दिया गया, तो उसी साक्ष्य के आधार पर

अन्य दो को दोषी ठहराना संभव नहीं हो सकता था - हमलावरों के जीप पर आने की पूरी कहानी को अविश्वासपूर्ण माना गया। (पैरा 29)

अपील स्वीकार की गई। (E-13)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. वादीवेलु थेवर बनाम मद्रास राज्य, एआईआर 1957 एससी 614 में रिपोर्टेड, (पैराग्राफ 11)
2. महेन्द्र सिंह एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2022) 7 एससीसी 157 में रिपोर्टेड
3. राजेश यादव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2022) 12 एससीसी 200 में रिपोर्टेड
4. बलराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 1468 में रिपोर्टेड, (पैराग्राफ 15 से 18)
5. जोधराज एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य, (2020) 14 एससीसी 205 में रिपोर्टेड, (पैराग्राफ 8, 9)
6. बासावेनी रवि एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2012) 12 एससीसी 466 में रिपोर्टेड, (पैराग्राफ 9)
7. थान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2020) 112 एसीसी 717 में रिपोर्टेड, (पैराग्राफ 30 से 34)
8. जावेद शौकत अली कुरैशी बनाम गुजरात राज्य, (2023) 9 एससीसी 164 में रिपोर्टेड, (पैराग्राफ 15)

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा एवं माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला द्वारा पारित किया गया)।

1. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी.पी. श्रीवास्तव, जिन्हें श्री अराफ खान, विद्वान अधिवक्ता द्वारा सहायता प्रदान की गई; राज्य की ओर से श्री अमित सिन्हा, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता तथा सूचनाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सतीश त्रिवेदी, जिन्हें श्री अजय कुमार पांडेय, विद्वान अधिवक्ता द्वारा सहायता प्रदान की गई, को सुना गया।

2. जब 24.09.1997 को कथित तौर पर सुबह 09:00 बजे एक अशरफ नामक व्यक्ति की हत्या कर दी गई थी, तब उसके मामा अफजल द्वारा 24.09.1997 को थाना - सिंभावली, गढ़मुक्तेश्वर, जिला - गाजियाबाद में एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी।

3. प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार, घटना सुबह 09:00 बजे हुई थी और प्रथम सूचना रिपोर्ट सुबह 10:15 बजे दर्ज की गई थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने पर विवेचना शुरू हुई और इसके पश्चात प्राथमिकी में नामित अभियुक्तों, अर्थात् जमालुद्दीन के पुत्र कमल, भूरे के पुत्रों कामिल और खुर्शीद, शकूर के पुत्र नौफिल, जो कथित तौर पर एक जीप पर सवार थे, और मंजूर के पुत्रों अफसर और आसिफ, जिन्हें मामले में अभियुक्त बनाया गया था और जो मोटरसाइकिल पर सवार थे, ने अलग-अलग तिथियों पर आत्मसमर्पण किया और उन्हें गिरफ्तार

कर लिया गया। जब विवेचना शुरू हुई, तो प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लिखित चश्मदीद गवाहों के कुछ बयान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए। कुछ गवाहों के बयान संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के तहत भी दर्ज किए गए। विवेचना के दौरान पुलिस ने 24.09.1997 को ही घटनास्थल से 315 बोर के चार खाली कारतूस बरामद किए थे। बरामदगी मेमो को प्रदर्श क-6 के रूप में अंकित किया गया था। प्रारंभ में, जब सभी अभियुक्त आत्मसमर्पण नहीं कर रहे थे, तब पुलिस ने दंडात्मक उपायों द्वारा उनकी तलाश की और उन्हें गिरफ्तार किया।

4. अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि जब मृतक अशरफ, जिसके साथ पीडब्ल्यू-1 मुस्लिम मौजूद था, गांव सिंभावली में मोटरसाइकिल पर जा रहा था, तब चार व्यक्तियों - कमल, कामिल, खुर्शीद और नौफिल - को ले जा रही एक जीप इन दोनों अर्थात् अशरफ और पीडब्ल्यू-2 मुस्लिम के सामने आ गई। जीप द्वारा रास्ता रोके जाने के कारण मोटरसाइकिल धीमी हो गई और इसी बीच अशरफ और आसिफ को ले जा रही एक अन्य मोटरसाइकिल पीछे से आई और उसके बाद उन छह अभियुक्तों ने, जो हमलावर भी थे और देशी पिस्तौल लिए हुए थे, मृतक अशरफ पर गोलियां चला दीं। अभियोजन का आगे का मामला यह है कि इसके पश्चात पीडब्ल्यू-2 मुस्लिम मोटरसाइकिल से कूद गया और अशरफ के मामा अफजल को सूचित करने के लिए भागा, जिसके बाद अफजल ने थाने जाकर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई। मामला रिपोर्ट होने पर पुलिस ने 25.09.1997 को मृतक का पोस्टमार्टम कराया। विवेचना समाप्त होने के बाद पुलिस ने अपना आरोप पत्र प्रस्तुत कर दिया।

5. विवेचना पूरी होने पर जब पुलिस द्वारा आरोप पत्र दाखिल किया गया, तो 13वें अपर सत्र न्यायाधीश, गाजियाबाद के न्यायालय ने 20.01.1999 को अभियुक्तों - कामिल, अफसर अली, नौफिल, आसिफ अली और खुर्शीद के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148 और 307 के तहत आरोप विरचित किए। इन धाराओं के साथ-साथ आई.पी.सी. की धारा 302/149 के तहत भी आरोप विरचित किए गए। अभियुक्त कमल के विरुद्ध आरोप अलग से विरचित किए गए थे। जब अभियुक्तों ने आरोपों से इनकार किया, तो विचारण शुरू हुआ।

6. अभियोजन पक्ष की ओर से कुल ग्यारह गवाह पेश किए गए। न्यायालय की सहायता के लिए एक न्यायालय गवाह विजेंद्र सिंह, जो सी.बी.सी.आई.डी. के विवेचना अधिकारी थे, को पेश किया गया और बचाव पक्ष की ओर से पांच गवाह पेश किए गए।

7. पीडब्ल्यू-1 अफजल, मृतक अशरफ का मामा है। उसने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा कि घटना 24.09.1997 को हुई थी और आगे बताया कि उसका भांजा अशरफ (मृतक), ग्राम जसौरी, थाना- मुंडाली, जिला- मेरठ का निवासी था, लेकिन वह अधिकांश समय पीडब्ल्यू-1 के साथ ही रहता था। उसने बताया कि 24.09.1997 को अशरफ उसके साथ था और सुबह वह अपने चचेरे भाई मुस्लिम, पुत्र मुनाफ, के साथ अपनी यामहा मोटरसाइकिल नंबर DBX 4218 पर बाहर निकला था। वे ग्राम सैना की ओर जा रहे थे। इसी बीच, सिंभावली मिल हरौड़ा रोड पर विनोद सिनेमा हॉल के पास, जमालुद्दीन का पुत्र कमल, भूरे के पुत्र कामिल और खुर्शीद, तथा शकूर का पुत्र नौफिल अपनी जीप से आए और मृतक अशरफ का रास्ता रोक लिया। उसने मुख्य परीक्षा में आगे बताया

कि उन चारों के हाथों में देशी पिस्तौलें थीं। उसने यह भी बताया कि उसी क्षण मंजूर के पुत्र अफसर और आसिफ भी अपनी मोटरसाइकिल पर आए, उनके हाथों में भी देशी पिस्तौलें थीं और उसके बाद अन्य सभी अभियुक्तों ने मृतक अशरफ को मारने की नीयत से अपनी देशी पिस्तौल से गोलियां चलाईं, जिससे गोली लगने के कारण अशरफ की मौके पर ही मौत हो गई और वह मोटरसाइकिल से नीचे गिर गया। पीछे बैठा सवार मुस्लिम भी अशरफ पर चलाई गई गोली से घायल हो गया था। हालांकि, मुस्लिम मोटरसाइकिल से कूद गया और भाग गया। उसने बताया कि घटना सुबह 09:00 बजे हुई थी और अभियुक्तों ने मृतक के शव को उठाकर उसी की मोटरसाइकिल पर रख लिया। जब शव को ले जाया जा रहा था, तब अभियुक्तों की जीप मोटरसाइकिल के पीछे-पीछे चल रही थी और उसके बाद गंगा नहर के बीच में बने पुल से शव को नीचे फेंक दिया गया। उसने आगे बताया कि संबंधित समय पर पीडब्ल्यू-3 गुलाम रब्बानी पुत्र अली हसन, निवासी मुरादपुर और इरशाद पुत्र महफूज, निवासी ग्राम सैना भी मौके पर मौजूद थे और उन्होंने पूरी घटना देखी थी। उसने यह भी बताया कि पूरी घटना की जानकारी उसे घायल मुस्लिम पीडब्ल्यू -2 ने दी थी। उसने बताया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट पीडब्ल्यू-1 के बोलने पर गुफरान अली द्वारा लिखी गई थी। उसने कहा कि मृतक और कमल के बीच दुश्मनी थी, इसलिए उसकी हत्या की गई। कमल की ओर से की गई प्रतिपरीक्षा में, पीडब्ल्यू-1 ने कहा कि हालांकि सीआईडी के निरीक्षक ने उससे संपर्क किया था, लेकिन उन्होंने उसका कोई साक्ष्य दर्ज नहीं किया था। उसने आगे बताया कि मुस्लिम पीडब्ल्यू -2 उसे एफआईआर दर्ज कराने के लिए उसके घर से ले गया था। उसने बताया कि मुस्लिम सुबह 09:00 से 09:15 बजे के बीच उसके घर पहुंचा था और जब वह प्रथम सूचनाकर्ता के घर आया, तो उसके साथ मुजफ्फर नाम का एक अन्य व्यक्ति भी था। इसके बाद उसने बताया कि वह उसी मोटरसाइकिल पर मुस्लिम के साथ थाने गया था। आगे की प्रतिपरीक्षा में उसने बताया कि वह शिक्षित है और उसने हाईस्कूल की परीक्षा पास की है, लेकिन हत्या के कारण वह बहुत तनाव में था, इसलिए उसने स्वयं एफआईआर नहीं लिखी, बल्कि उसने बोलकर इसे लिखवाया। जब वह थाने गया तो उसके साथ मुस्लिम और गुफरान थे। उसने बताया कि जब उसे घटना की सूचना मिली तो वह थाने पहुंचा और घटना स्थल पर नहीं गया। उसने आगे बताया कि मुस्लिम के शरीर पर भी चलाई गई गोलियों के निशान थे। उसने बताया कि वास्तव में एक गोली उसे लगी थी। इसके बाद उसने बताया कि मुस्लिम का चिकित्सीय परीक्षण उसी दिन दोपहर 03:00 बजे किया गया था। वहां भी वह उसके साथ गया था। थाने और सरकारी अस्पताल के बीच की दूरी लगभग 200 गज थी और यदि कोई व्यक्ति थाने से सरकारी अस्पताल पैदल जाए तो यह दूरी पांच मिनट में तय की जा सकती थी। उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में बताया कि मुस्लिम ने उसे जीप के नंबर के बारे में जानकारी नहीं दी थी। उसने केवल इतना बताया था कि जीप का रंग नीला था। जब वह घटना स्थल पर पहुंचा, तो चश्मदीद गवाह रब्बानी और इरशाद वहां पहले से मौजूद थे। इसके बाद उसने घटना का कारण बताते हुए कहा कि अशरफ और कमल एक-दूसरे के दुश्मन थे क्योंकि अशरफ प्रथम सूचनाकर्ता के साथ रह रहा था और कमल तथा प्रथम सूचनाकर्ता के संबंध कभी अच्छे नहीं रहे। उसने यह भी बताया कि कमल ने पहले भी प्रथम सूचनाकर्ता पर गोली चलाई थी, हालांकि सौभाग्य से कोई घायल नहीं हुआ। उसने बताया कि पंचनामा उसकी उपस्थिति में किया गया था। उस समय उसके अलावा इरफान, जय प्रकाश त्यागी, मोमिन प्रधान, इस्लाम भी मौजूद थे और पंचनामा शाम 06:00 बजे भरा गया था। उसने आगे बताया कि वह मोटरसाइकिल नहीं मिली जिस पर मृतक गया था। वह कहां गई, उसे नहीं पता। यह पूछे जाने पर कि क्या अशरफ अपराधी था, उसने

बताया कि उसके खिलाफ दो या तीन मामले चल रहे थे और उनमें से एक हत्या का मामला भी था। अन्य अभियुक्तों द्वारा की गई प्रतिपरीक्षाएं भी लगभग इन्हीं तर्कों पर आधारित थीं।

8. घायल चश्मदीद गवाह पीडब्ल्यू-2 मुस्लिम ने अपनी मुख्य परीक्षा में पुनः पूरी घटना का वही विवरण दिया जैसा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में दर्ज किया गया था। प्रतिपरीक्षा में उसने बताया कि जब घटना हुई, तो वह मोटरसाइकिल से कूद गया और गन्ने के खेत में चला गया और उसके बाद वह गन्ने के खेत से बाहर आकर मुख्य सड़क पर पहुँचा। मुख्य सड़क पर स्थित थाने पहुँचने पर उसने दरोगा जी को घटना की जानकारी दी। प्रतिपरीक्षा में आगे उससे सी.बी.सी.आई.डी. के समक्ष दिए गए बयानों के संबंध में कुछ प्रश्न पूछे गए। इस तथ्य के बावजूद कि उसने न्यायालय में कहा था कि मोटरसाइकिल से कूदने के बाद वह गन्ने के खेत से होते हुए मुख्य सड़क पर पहुँचा था जहाँ थाना स्थित था और उसने घटना के संबंध में सूचना दर्ज कराने का प्रयास किया था, जब उससे एक विशिष्ट प्रश्न पूछा गया कि क्या उसने सी.बी.सी.आई.डी. के समक्ष ऐसा कोई तथ्य बताया था, तो उसने इनकार किया कि उसने सी.बी.सी.आई.डी. के सामने ऐसी कोई बात कही थी। तत्पश्चात, न्यायालय में जब उसकी प्रतिपरीक्षा जारी थी, उसने बताया कि घटना के बाद वह थाने गया और वहां से अपने मामा के घर गया। उसने बताया कि उसे लगी चोटों से खून नहीं निकल रहा था। उसने आगे प्रतिपरीक्षा में कहा कि उसने अपने मामा से नहर पर चलने को कहा और उसके बाद वे सीधे नहर पर पहुँच गए। उसने बताया कि जब वे नहर पहुँचे तो उन्हें कोई शव नहीं मिला। उसने आगे बताया कि गुलाम रब्बानी और इरशाद उससे पहले ही नहर पर पहुँच चुके थे। उसने बताया कि नहर से शव दोपहर करीब 02:30 बजे निकाला गया। उसने यह भी बताया कि शव निकाले जाने के बाद वह अस्पताल गया था। जब वह अपने चिकित्सीय परीक्षण के लिए गया तो उसके साथ एक पुलिस कांस्टेबल था। उसने आगे बताया कि पुलिस निरीक्षक ने मामा अफजल से रिपोर्ट दर्ज कराने को कहा था। उसने यह भी बताया कि मामा और कुछ अन्य बुजुर्गों ने पुलिस निरीक्षक के साथ उचित परामर्श किया और उसके बाद ही उन्होंने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई। उसने बताया कि जब तक प्राथमिकी दर्ज हुई, तब तक उसने अपना चिकित्सीय परीक्षण करा लिया था। उसने न्यायालय में यह भी बताया कि प्रथम सूचनाकर्ता, स्वयं उसके और अभियुक्तों के बीच पुरानी रंजिश थी और उनके बीच कई मामले चल रहे थे। उसने पहले ही बताया था कि घटना से पूर्व 14.11.1994 को अभियुक्त आसिफ, उसके पिता मंजूर और अभियुक्त नौफिल के भतीजे मुंकद और राकिब पर जान से मारने की नीयत से हमला किया गया था और उस मामले में पीडब्ल्यू-2 के पिता, उसके चाचा अबरार, मुंकद, इरशाद, अशरफ और अनीस को अभियुक्त बनाया गया था। उसने आगे बताया कि 19.01.1998 को अभियुक्त खुर्शीद और कामिल के पिता, जिनका नाम भूरे था, की भी हत्या कर दी गई थी और उसी दिन उसी घटना में नौफिल के पिता शकूर घायल हो गए थे और उन घटनाओं से संबंधित आपराधिक मामले चल रहे थे। उसने अपने पिता और चाचा आदि के विरुद्ध चल रहे घर में अनधिकार प्रवेश के मामले की भी जानकारी दी। उसने यह भी बताया कि 06.12.1998 को डॉ. राजेंद्र हरिजन की हत्या कर दी गई थी और उस मामले में वह स्वयं और नसीम अभियुक्त बनाए गए थे। पुनः 11.10.2000 को हुई प्रतिपरीक्षा में पीडब्ल्यू-2 ने बताया कि प्राथमिकी दर्ज होने से पहले प्रथम सूचनाकर्ता अफजल और गांव के अन्य बुजुर्गों के बीच पूरी तरह से विचार-विमर्श हुआ था और परामर्श के समय पीडब्ल्यू-2 भी वहां मौजूद था और उसके बाद ही प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी। उसने बताया कि मोटरसाइकिल से कूदकर

गन्ने के खेत में जाने के बाद वह गन्ने की फसल के पीछे छिप गया था और उसने वहीं से अभियुक्तों को देखा था। उसने बताया कि पुलिस ने घटना के लगभग 10-15 दिन बाद उसका बयान लिया था। 03.11.2000 को पीडब्ल्यू-2 को अभियोजन द्वारा परीक्षण के बाद अपना बयान देने के लिए पुनः बुलाया गया, अभियुक्तों ने भी उससे प्रतिपरीक्षा की। जब उसे दोबारा बुलाया गया, तो उसके सामने वे बयान रखे गए जो उसने सी.बी.सी.आई.डी. के सामने दर्ज कराए थे, और उसने सी.बी.सी.आई.डी. के समक्ष वे बयान देने से इनकार कर दिया। दोबारा बुलाए जाने के बाद अपनी पूरी प्रतिपरीक्षा के दौरान उसने कहा कि उसने कमल का नाम अभियुक्त के रूप में लिया था। विरोधाभासी बयान देने की बात सामने आने पर इस अभियोजन गवाह ने कहा कि इस समय वह सच बोल रहा है और अन्य अवसरों पर वह झूठ बोल रहा था क्योंकि अभियुक्तों द्वारा उसे समय-समय पर डराया-धमकाया जा रहा था। उसने कहा कि सी.बी.सी.आई.डी. के सामने भी उसने सही तथ्य नहीं बताए थे क्योंकि सी.बी.सी.आई.डी. इंस्पेक्टर उसे गाली दे रहा था। उसने इसके बाद स्पष्ट रूप से कहा कि 01.09.2000 को अपना बयान देने से पहले अभियुक्त कामिल ने उसे सच बोलने पर गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी थी। उसने सी.बी.सी.आई.डी. इंस्पेक्टर द्वारा दोबारा बुलाए जाने पर प्रतिपरीक्षा में फिर से कहा कि उसे कोई गोली नहीं लगी थी, बल्कि वह 'बारूद' के कारण घायल हुआ था।

9. पीडब्ल्यू-3, गुलाम रब्बानी, अन्य चश्मदीद गवाह है। उसने बताया कि घटना 24.09.1997 की थी और सुबह 09:00 बजे हुई थी। उसने भी मामले की पुष्टि करने का प्रयास किया जैसा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में बताया गया था और कहा कि पहले अभियुक्त कमल, कामिल, खुर्शीद और नौफिल के साथ जीप आई थी। उसने आगे बताया कि उसके बाद मोटरसाइकिल आई जिस पर अफसर और आसिफ सवार थे। उसने कहा कि सभी छह अभियुक्तों ने योजनाबद्ध तरीके से मृतक अशरफ पर गोलियां चलाईं और उन सभी छह अभियुक्तों के हाथों में देशी पिस्तौलें थीं। अशरफ को गोलियां लगीं और वह वहीं गिर पड़ा और उसकी मृत्यु हो गई। उसने बताया कि पीडब्ल्यू-2, मुस्लिम भी गोलियों से घायल हो गया था। उसने आगे बताया कि अफसर ने आसिफ से मृतक की मोटरसाइकिल पर शव लादने को कहा और गंगा नहर में शव को ठिकाने लगाने की योजना बनाई। उसने अपनी मुख्य परीक्षा में यह भी बताया कि उसने अभियुक्तों से शव को नष्ट न करने के लिए कहा था, लेकिन वे मृतक की मोटरसाइकिल पर शव ले गए और उसके बाद उसे गंगा नहर में फेंक दिया। अपनी प्रतिपरीक्षा में उसने बताया कि घटना की तारीख को वह अपने कृषि खेतों को देखने गया था और उसके बाद उस पुल पर गया था जहाँ से शव फेंका गया था और उसने उसी तारीख को कुछ "खल" (पशु आहार) खरीदी थी। हालांकि, उसने बताया कि उसे याद नहीं है कि उसने कहाँ से और किस दुकान से खल खरीदी थी। फिर भी, उसने बताया कि उसने लगभग 15 किलोग्राम वजन की खल खरीदी थी। इसके बाद वह अपने कृषि क्षेत्र में रहा और उसके बाद वह अपने गांव वापस आ गया और फिर दोपहर करीब 02:00 बजे खल खरीदने दुकान पर गया और खल खरीदकर दोपहर करीब 03:00 बजे वापस आ गया। इसके बाद उसने चश्मदीद गवाह के तौर पर विवरण देने का प्रयास किया और कहा कि उसने हमलावरों को ले जा रही जीप और मोटरसाइकिल को देखा था। उसने यह भी बताया कि छह गोलियां चलाई गई थीं। उसने आगे बताया कि वह शाम को करीब 4:00 से 5:00 बजे के बीच उस पुल पर अफजल से मिला था जहाँ से कथित तौर पर शव फेंका गया था। इसके पश्चात, यह पूछे

जाने पर कि खल खरीदने के बाद उसने क्या किया था, उसने बताया कि दोपहर करीब 12:00 बजे वह अपने गन्ने के खेत में गया था और वहां लेट गया था।

10. पीडब्ल्यू-4, डॉ. आर.एन. मिश्रा, वे चिकित्सक थे जिन्होंने मृतक का पोस्टमार्टम किया था। उन्होंने बताया कि शरीर पर चार प्रवेश घाव और चार निकास घाव थे और मृतक के पेट में 100 ग्राम अपचित भोजन पाया गया था। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि सभी प्रवेश और निकास घाव गोलियों के कारण हुए थे। उन्होंने यह भी कहा कि शव को देखकर ऐसा नहीं लगता था कि उसे किसी जल निकाय से बाहर निकाला गया है।

11. पीडब्ल्यू-5, विजय पाल सिंह, वह उप-निरीक्षक थे जिनके मार्गदर्शन में पंचायतनामा की कार्यवाही की गई थी।

12. पीडब्ल्यू-6, डॉ. सुनील कुमार गुप्ता, ने पीडब्ल्यू-2 की चोटों का परीक्षण किया था और बताया था कि चोटें 2 मिमी x 1 मिमी की थीं, संख्या में कई थीं, और गाल के दाहिने हिस्से तथा गर्दन पर 18 सेमी x 8 सेमी के दायरे में फैली हुई थीं।

13-17. पीडब्ल्यू-7, के.डी. सिंह, थानाध्यक्ष, प्रथम विवेचना अधिकारी थे। पीडब्ल्यू-8, महेंद्र पाल सिंह, द्वितीय विवेचना अधिकारी थे और पीडब्ल्यू-9, वी.के. सिंह, तृतीय विवेचना अधिकारी थे। इन सभी ने अपने मुख्य बयान दर्ज कराए और उनसे प्रतिपरीक्षा भी की गई। पीडब्ल्यू-10, यदुराज सिंह भी विवेचनाधिकारियों में से एक थे। पीडब्ल्यू-11, राजकुमार, चिक लेखक थे और उन्होंने प्रथम सूचना रिपोर्ट को सिद्ध किया।

18. सी.बी.सी.आई.डी. के विवेचना अधिकारी विजेंद्र सिंह को न्यायालय गवाह के रूप में बुलाया गया था। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि उन्होंने घायल मुस्लिम का बयान तब लिया था जब वह किसी अन्य अपराध के सिलसिले में जेल में था। उन्होंने बताया कि मुस्लिम ने निश्चित रूप से अपना बयान दर्ज कराया था कि पूरी घटना गाँव की विभिन्न रंजिशों के कारण हुई थी और अफसर, वासिल (इरशाद अली के पुत्र) तथा सलीम (खुर्शीद के पुत्र) ने अपराध किया था। उन्होंने विभिन्न गवाहों के बयानों का रिकॉर्ड भी दिया और यह भी बताया कि जिस जीप की संलिप्तता का आरोप लगाया गया था, वह 23.09.1997 से 28.09.1997 तक वर्कशॉप में थी। इसके पश्चात बचाव पक्ष की ओर से पाँच गवाह पेश किए गए।

19. डीडब्ल्यू-1, अख्तर हुसैन ने स्पष्ट रूप से उस तथ्य का वर्णन किया कि जीप की मरम्मत किस प्रकार की जा रही थी।

20. डीडब्ल्यू-2, श्री पाल सिंह ने भी स्पष्ट रूप से इस तथ्य के बारे में बताया कि उन्होंने घटनास्थल पर केवल मोटरसाइकिलें ही देखी थीं।

21. डीडब्ल्यू-3, सुनील कुमार ने पुनः इस तथ्य के बारे में बताया कि उन्होंने भी घटनास्थल पर केवल मोटरसाइकिलें ही देखी थीं।

22. डीडब्ल्यू-4, दिलावर ने भी केवल मोटरसाइकिल के बारे में ही बयान दिया।

23. इसी प्रकार, तरीकत, डीडब्ल्यू-5 ने अभियुक्तों के पक्ष में अपना बयान दिया।

24. इसके पश्चात अभियुक्तों ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत अपने बयान दर्ज कराए और अपराध करने से इनकार किया।

25. प्रस्तुत किए गए सभी साक्ष्यों के आधार पर, अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 12, गाजियाबाद ने सत्र विचारण संख्या 458/1998 में यह पाया कि अफसर और आसिफ अपनी मोटरसाइकिल पर घटनास्थल पहुँचे थे और अपराध किया था, उन्होंने अन्य अभियुक्तों - कामिल, नौफिल, खुर्शीद और कमल को दोषमुक्त कर दिया। विचारण के दौरान अफसर की मृत्यु हो गई थी। जब अपीलकर्ता-आसिफ को आई.पी.सी. की धारा 302/201 के तहत दोषी ठहराया गया, तो उसने यह वर्तमान दाण्डिक अपील दायर की।

26. श्री वी.पी. श्रीवास्तव, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिन्हें अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अराफ खान द्वारा सहायता प्रदान की गई, ने निम्नलिखित दलीलें पेश की हैं:

(i) यह अत्यंत संदेहास्पद था कि घायल चश्मदीद गवाह, पीडब्ल्यू-2, घटनास्थल पर मौजूद भी था या नहीं। उन्होंने न्यायालय का ध्यान पीडब्ल्यू-2 की चिकित्सीय परीक्षण रिपोर्ट की ओर आकर्षित किया और बताया कि उसे जो चोटें आई थीं, वे 2 मिमी x 1 मिमी के आकार की थीं और वे 18 सेमी x 8 सेमी के क्षेत्र के भीतर थीं। उन्होंने तर्क दिया कि पीडब्ल्यू-2, जो मोटरसाइकिल पर पीछे बैठा सवार था, उसके दाहिने हिस्से पर ऐसी चोटें आना बिल्कुल भी संभव नहीं था। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि मृतक अशरफ के शरीर पर सामने की ओर से चार प्रवेश घाव थे और वे चारों गोलियां जो सामने से शरीर में घुसी थीं, पीछे से बाहर निकल गईं; ऐसे में यह तर्कसंगत नहीं लगता कि एक भी गोली पीछे बैठे सवार को नहीं लगी।

अतः उन्होंने यह प्रस्तुत किया कि यह तथ्य अत्यंत संदेहास्पद हो जाता है कि पीडब्ल्यू-2 घटनास्थल पर मौजूद था। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि जिस प्रकार पीडब्ल्यू-2 इस बहाने अपने बयान बदल रहा था कि उसे अभियुक्तों द्वारा धमकाया जा रहा है, वह भी यह दर्शाता है कि वास्तव में पीडब्ल्यू-2 स्वयं अपने दर्ज कराए जा रहे बयानों के प्रति निश्चित नहीं था, और जब उसने पाया कि उसके बयानों में परस्पर विरोधाभास है, तो वह यह कहने लगता था कि उसे अभियुक्तों द्वारा धमकाया जा रहा है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पीडब्ल्यू-2 वास्तव में इस हद तक चला गया कि उसने यह भी कह दिया कि सी.बी.सी.आई.डी. के निरीक्षक ने उसे इस कदर गाली दी थी कि वह उन्हें भी उचित उत्तर नहीं दे सका। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि पीडब्ल्यू-2 ने बहुत स्पष्ट रूप से कहा था कि घटना ग्रामीणों के बीच कुछ आंतरिक

प्रतिद्वंद्विता के कारण हुई थी और उसने उन व्यक्तियों के नाम भी लिए थे। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि पीडब्ल्यू-2 का यह बयान कि घटना ग्रामीणों की आंतरिक रंजिश के कारण हुई थी, सी.बी.सी.आई.डी. निरीक्षक के समक्ष दर्ज कराए गए उसके बयान से स्पष्ट था, और इस बयान को सीडब्ल्यू-1 द्वारा भी सिद्ध किया गया था, जिसमें उसने निम्नानुसार कहा था:

"मैंने मजूरूब मुस्लिम का बयान दि. 28.2.98 को जिला कारागार गा. बाद में लिया था। गवाह से मेरे द्वारा सत्यता घटना की बावत पूछने पर उसने मुझे बताया था कि इस घटना की प्रष्ठ भूमि में हमारे गांव की रंजिश है और मारने में हमारे गांव के अफसर, वासिल S/o इसाद अली व सालिम S/o खुरशैद थे गोलिया वासिल व सालिम ने चलाई थी। मोटर साइकिल अफसर चला रहा था मैंने थाने मे सबसे पहले यही बात बताई थी।"

(ii) अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यदि प्रथम सूचना रिपोर्ट को देखा जाए, तो उसमें यह कहा गया है कि पीडब्ल्यू-1 ने पीडब्ल्यू-2 (मुस्लिम) द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर प्राथमिकी दर्ज कराई थी, और प्राथमिकी में उसने यह भी कहा था कि पीडब्ल्यू-2 ने उसे सूचित किया था कि अभियुक्तों ने अशरफ की हत्या करने के बाद उसके शव को अशरफ की ही मोटरसाइकिल पर लाद लिया था और शव को पुल से नदी में फेंक दिया था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि यदि इस गवाह (पीडब्ल्यू-2) के बयान को देखा जाए, तो यह अत्यंत संदेहास्पद हो जाता है कि उसने शव को नदी तक ले जाते और वहां से फेंकते हुए देखा होगा। पीडब्ल्यू-2 के बयान से अधिक से अधिक यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उसने अभियुक्तों को यह कहते सुना था कि वे उसे नदी ले जाएंगे। वास्तव में, पीडब्ल्यू-2 ने न्यायालय के समक्ष अपने बयान में कहा था कि जब घटना हुई, तो वह मोटरसाइकिल से कूद गया था और भागकर गन्ने के खेत में चला गया था, और वहां से वह मुख्य सड़क पर स्थित थाने गया था, और जब उसकी प्राथमिकी दर्ज नहीं की गई, तो वह अफजल के घर गया और उसके बाद वह अफजल के साथ प्राथमिकी दर्ज कराने गया। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि पीडब्ल्यू-2 के अन्य बयानों को देखते हुए यह बयान भी विश्वसनीय नहीं है, जिसमें उसने कहा था कि प्राथमिकी उसके चोटों के परीक्षण से ठीक पहले दर्ज की गई थी और वह भी तब, जब पुलिस, कुछ बुजुर्ग व्यक्तियों और अफजल ने इस मामले पर गहन चर्चा की थी और उसके बाद ही प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी। अतः वह यह तर्क देते हैं कि वास्तव में प्राथमिकी सुबह 10:15 बजे दर्ज नहीं की गई थी, जैसा कि प्राथमिकी में बताया गया है, बल्कि पुलिस, प्रथम सूचनाकर्ता अफजल और गांव के कुछ अन्य बुजुर्गों के बीच पूरी तरह से विचार-विमर्श होने के बाद दोपहर करीब 02:30 बजे काफी देरी से दर्ज की गई थी। यह तथ्य कि प्रथम सूचना रिपोर्ट उचित विचार-विमर्श के बाद दर्ज की गई थी, न कि केवल पीडब्ल्यू-2 द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर, पेपर बुक के पृष्ठ संख्या 40 पर दर्ज पीडब्ल्यू-2 के बयान से स्पष्ट हो जाता है, जिसे यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"इन्सपेक्टर साहब ने इस मुकदमें की रिपोर्ट लिखाने के लिये मुझसे नही कहा था अफजाल से कहा था। फिर अफजाल, मेरे गाँव के ताउ चाचा व इन्सपेक्टर साहब रिपोर्ट लिखाने की बावत मशविरा करने बैठ गये थे। मुझे यह ध्यान नहीं कि अफजाल क्गैरा ने गुलाम में रब्बानी व इरशाद से पूछकर गवाही में नाम लिखाये थे। वैसे

गुलाम रब्बानी व इरशाद गवाह नहर पर समय मौजूद थे जब इन्सपेक्टर साहब अफजाल वगैरा के मशविरे से रिपोर्ट लिखा रहे थे।"

यह तथ्य कि प्रथम सूचना रिपोर्ट उचित परामर्श के बाद दर्ज की गई थी, पेपर बुक के पृष्ठ संख्या 43 पर पीडब्ल्यू-2 के बयान से भी स्पष्ट है। संबंधित अंश को यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"रिपोर्ट लिखाने से पहले मेरे ताऊ चाचा जो नहर पर आ गये थे उन्होने अफजाल से मशविरा किया था उस वक्त में भी मौजूद था। 10 बजे के बाद मैं पहले थाने गया फिर अस्पताल डाक्टरी कराने गया। मैं थाने से सीधे अस्पताल चला गया था। बीच में कही नही रूका था। मेरे ताऊ चाचा किस सवारी से आये थे मैने नही देखा"

इसके अतिरिक्त, वह बयान जो इस बात को और भी स्पष्ट कर देता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट एक उचित विचार-विमर्श का परिणाम थी, उसे यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"जब हम नहर के पुल पर रिपोर्ट लिखाने के लिये मशविरा कर रहे थे तो उस वक्त वहाँ पुलिस मौजूद थी। जब अफजाल के साथ मशविरा कर रहे थे तो कितने पुलिस वाले मौजूद थे मुझे ध्यान नही है। रिपोर्ट में अफजाल ने क्या लिखाया है मुझे पढकर नही सुनाई थी। मैं अपना नाम लिख लेता हूँ।"

(iii) अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का आगे यह कहना है कि पीडब्ल्यू-2 एक गवाह के रूप में पूर्णतः अविश्वसनीय गवाह था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **वादीवेलु थेवर बनाम स्टेट ऑफ मद्रास (AIR 1957 एससी 614)** में उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा करते हुए प्रस्तुत किया कि एक गवाह या तो: (i) पूर्णतः विश्वसनीय, (ii) पूर्णतः अविश्वसनीय या (iii) न तो पूर्णतः विश्वसनीय और न ही पूर्णतः अविश्वसनीय हो सकता है। चूंकि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त निर्णय के पैराग्राफ 11 के प्रासंगिक अंश पर भरोसा किया है, इसलिए उसे यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"यदि न्यायालय द्वारा ऐसी गवाही को पूरी तरह से विश्वसनीय पाया जाता है, तो ऐसे प्रमाण के आधार पर अभियुक्त व्यक्ति की दोषसिद्धि में कोई कानूनी बाधा नहीं है। जिस प्रकार किसी अभियुक्त का दोष एक अकेले गवाह की गवाही से सिद्ध किया जा सकता है, उसी प्रकार एक अभियुक्त की निर्दोषता भी एक अकेले गवाह की गवाही पर स्थापित की जा सकती है, भले ही अभियोजन पक्ष के मामले की सच्चाई की पुष्टि करने के लिए बड़ी संख्या में गवाह सामने आ रहे हों। अतः, हमारी राय में, यह कानून का एक सुदृढ़ और सुस्थापित नियम है कि न्यायालय का सरोकार किसी तथ्य को सिद्ध या अस्वीद्ध करने के लिए आवश्यक साक्ष्य की गुणवत्ता से है, न कि उसकी संख्या से। सामान्य तौर पर, इस संदर्भ में मौखिक गवाही को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है, अर्थात्:

(1) पूर्णतः विश्वसनीय।
(2) पूर्णतः अविश्वसनीय।

(3) न तो पूर्णतः विश्वसनीय और न ही पूर्णतः अविश्वसनीय।"

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उच्चतम न्यायालय के एक अन्य निर्णय **महेन्द्र सिंह एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(2022) 7 एससीसी 157]** पर भी भरोसा किया। जिन प्रासंगिक पैराग्राफों पर अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने भरोसा किया है, उन्हें यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"वादीवेलु थेवर के प्रसिद्ध निर्णय में इस न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियों को संदर्भित करना उचित होगा: (AIR पृ. 619, पैरा 11-12)

11. ... अतः, हमारी राय में, यह कानून का एक सुदृढ़ और सुस्थापित नियम है कि न्यायालय का सरोकार किसी तथ्य को सिद्ध या अस्वीद्ध करने के लिए आवश्यक साक्ष्य की गुणवत्ता से है, न कि उसकी संख्या से। सामान्य तौर पर, इस संदर्भ में मौखिक गवाही को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है, अर्थात्:

(1) पूर्णतः विश्वसनीय।
(2) पूर्णतः अविश्वसनीय।
(3) न तो पूर्णतः विश्वसनीय और न ही पूर्णतः अविश्वसनीय।

12. प्रमाण की पहली श्रेणी में, न्यायालय को किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए – वह एक अकेले गवाह की गवाही के आधार पर दोषसिद्ध कर सकता है या दोषमुक्त कर सकता है, यदि उसे दोषरहित या स्वार्थपरता, अक्षमता या सिखाए-पढ़ाए जाने के संदेह से परे पाया जाता है। दूसरी श्रेणी में, न्यायालय को निष्कर्ष पर पहुँचने में समान रूप से कोई कठिनाई नहीं होती है। केवल मामलों की तीसरी श्रेणी में ही न्यायालय को सतर्क रहने की आवश्यकता होती है और उसे प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य विश्वसनीय साक्ष्यों के माध्यम से महत्वपूर्ण विवरणों में 'पुष्टि' की तलाश करनी पड़ती है।"

13. इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि इस न्यायालय ने पाया है कि गवाह तीन प्रकार के होते हैं, अर्थात्: (क) पूर्णतः विश्वसनीय; (ख) पूर्णतः अविश्वसनीय; और (ग) न तो पूर्णतः विश्वसनीय और न ही पूर्णतः अविश्वसनीय। जब गवाह 'पूर्णतः विश्वसनीय' होता है, तो न्यायालय को कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए क्योंकि दोषसिद्धि या दोषमुक्ति ऐसे अकेले गवाह की गवाही पर आधारित हो सकती है। इसी प्रकार, यदि न्यायालय पाता है कि गवाह 'पूर्णतः अविश्वसनीय' है, तो कोई कठिनाई नहीं होगी क्योंकि ऐसे गवाह की गवाही पर न तो दोषसिद्धि और न ही दोषमुक्ति आधारित हो सकती है। केवल गवाहों की तीसरी श्रेणी में ही न्यायालय को सतर्क रहना पड़ता है और विश्वसनीय साक्ष्य, चाहे वह प्रत्यक्ष हो या परिस्थितिजन्य, द्वारा महत्वपूर्ण विवरणों में पुष्टि की तलाश करनी पड़ती है।"

असंशोधित

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **राजेश यादव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2022) 12 एससीसी 200]** के मामले पर भी भरोसा किया और यह तर्क दिया कि जब एकमात्र घायल चश्मदीद गवाह पूर्णतः अविश्वसनीय था और जब कोई पुष्टिकारक साक्ष्य मौजूद नहीं था, तब अभियुक्त व्यक्ति (अर्थात अपीलकर्ता) को दोषी ठहराना पूर्णतः असुरक्षित था। उन्होंने इसके पश्चात यह निवेदन किया कि वर्तमान मामले में पीडब्ल्यू-2 एक ऐसा गवाह प्रतीत होता है जो 'पूर्णतः अविश्वसनीय' था।

(iv) अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इसके पश्चात यह तर्क दिया कि पीडब्ल्यू-3, गुलाम रब्बानी को भी एक चश्मदीद गवाह के रूप में दर्शाया गया था, लेकिन उसका बयान भी इस तथ्य के आलोक में पूर्णतः अविश्वसनीय हो गया कि जब वह घटनास्थल पर अपनी उपस्थिति का विवरण दे रहा था, तब वह अविश्वसनीय तथ्यों का वर्णन कर रहा था। उसने बताया कि वह चश्मदीद गवाह था और उसने हमलावरों को शव ले जाते हुए देखा था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यदि ऐसा होता, तो हमलावर स्वयं चश्मदीद गवाह पीडब्ल्यू-3 को भी खत्म कर देते। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता आगे कहते हैं कि पीडब्ल्यू-3 के बयान से यह स्पष्ट है कि उसने घटना को दस फीट की दूरी से देखने का आरोप लगाया था। यदि वास्तव में ऐसा था, तो निश्चित रूप से हमलावर पीडब्ल्यू-3 को भी मार देते क्योंकि वे पीछे किसी निश्चित चश्मदीद गवाह को नहीं छोड़ते। इसके अलावा, पीडब्ल्यू-3 की गवाही इसलिए भी अविश्वसनीय हो जाती है क्योंकि उसने बताया कि घटना के समय और प्रथम सूचनाकर्ता अफजल से मिलने के समय के बीच, वह 'खल' की खरीदारी करने गया था। एक चश्मदीद गवाह द्वारा ऐसा किया जाना अत्यंत असंभाव्य प्रतीत होता है।

(v) अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह तर्क दिया कि जब उन चार अभियुक्तों के विरुद्ध मामला अविश्वसनीय पाया गया, जिन्होंने उसी प्रथम सूचना रिपोर्ट के आधार पर विचारण का सामना किया था जो पीडब्ल्यू-2 (मुस्लिम) द्वारा दी गई जानकारी पर आधारित थी, तो पीडब्ल्यू-2 द्वारा प्रस्तुत किया गया पूरा मामला ही अविश्वसनीय हो जाता है। पीडब्ल्यू-2 एकमात्र घायल चश्मदीद गवाह था, और जब उसे पूर्णतः अविश्वसनीय गवाह मान लिया गया, तो अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी झूठी साबित हो गई। अभियुक्त अपीलकर्ता-तरीकत की दोषमुक्ति के विरुद्ध एक पुनरीक्षण याचिका, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 4066 of 2003, दायर की गई थी, जिसे इस न्यायालय के दिनांक 24.07.2023 के आदेश द्वारा पहले ही खारिज कर दिया गया है।

इस संबंध में अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उच्चतम न्यायालय के **बलराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(2023) एससीसी Online एससी 1468]** के निर्णय पर भी भरोसा किया। चूंकि विद्वान अधिवक्ता ने निर्णय के पैराग्राफ संख्या 15, 16, 17 और 18 पर भरोसा किया है, उन्हें यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:
"15. इसके विपरीत, पीडब्ल्यू-6 (मूलचंद) ने गोली लगने की चोटों का श्रेय तीन व्यक्तियों को दिया है–एक अभियुक्त रामेश्वर को, दूसरा उमा चरण को और तीसरा अपीलकर्ता-बलराम को। इसी समान साक्ष्य के आधार पर, विचारण न्यायालय ने अभियुक्त उमा चरण के संबंध में इन दोनों गवाहों के वृत्तांत पर अविश्वास किया है।

16. हमें विचारण न्यायाधीश द्वारा किए गए उस अंतर को स्वीकार करने में कठिनाई हो रही है, जिसमें उन्होंने अपीलकर्ता-बलराम और रामेश्वर (अब मृतक) के संबंध में पीडब्ल्यू-5 (रामकली) और पीडब्ल्यू-6 (मूलचंद) के साक्ष्य पर विश्वास किया है।

17. जैसा कि ऊपर चर्चा की जा चुकी है, पूर्व रंजिश एक दोधारी तलवार है; एक ओर यह मकसद प्रदान करती है, तो दूसरी ओर, झूठे फंसाने की संभावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता।

18. हमारा मानना है कि जब विचारण न्यायालय ने अभियुक्त उमा चरण के संबंध में पीडब्ल्यू-5 (रामकली) और पीडब्ल्यू-6 (मूलचंद) की गवाही पर अविश्वास किया था, तो वह वर्तमान अपीलकर्ता-बलराम और रामेश्वर (अब मृतक) के मामले पर विचार करते समय एक अलग मानक लागू नहीं कर सकता था।"

इसके अतिरिक्त, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **जोधराज एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य [(2020) 14 एससीसी 205]** में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया। चूंकि विद्वान अधिवक्ता ने निर्णय के पैराग्राफ संख्या 8 और 9 पर भरोसा किया है, उन्हें यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"8. सबसे पहले, यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने उन 14 अभियुक्तों में से पांच को दोषी ठहराया था, जिन पर धारा 148, 302/149, 379 आईपीसी के तहत अपराधों के लिए विचारण चला था। अभियोजन पक्ष ने पीडब्ल्यू-2 और पीडब्ल्यू-3 के बयानों पर बहुत अधिक भरोसा किया, जिन्होंने चश्मदीद गवाह होने का दावा किया था। अभियोजन पक्ष ने तथाकथित मृत्युपूर्व कथन पर भी भरोसा किया था; हालाँकि, मृत्युपूर्व कथन पर विश्वास नहीं किया गया। अपील में, उच्च न्यायालय ने एक अन्य अभियुक्त भंवर लाल को इस आधार पर बरी कर दिया कि पीडब्ल्यू-2 ओम प्रकाश और पीडब्ल्यू-3 राम दयाल के धारा 161 द.प्र.स. के तहत बयान 18 दिनों की अवधि के बाद दर्ज किए गए थे और राम दयाल का बयान अतिरंजित था और परिवार के अधिक से अधिक व्यक्तियों को फँसाने की कोशिश की गई थी। इसलिए, उच्च न्यायालय की राय थी कि पीडब्ल्यू-2 ओम प्रकाश और पीडब्ल्यू-3 राम दयाल के धारा 161 द.प्र.स. के बयानों को दर्ज करने की प्रक्रिया में कोई संदेह नहीं रह जाता कि दोनों गवाहों ने देरी का लाभ उठाया और मृतक हरिराम के शरीर पर लगी तीन चोटों के लिए (जिनमें से एक खरोंच थी), गवाहों ने 14 अभियुक्तों को फँसाने का सहारा लिया। इस प्रकार, गवाहों की ओर से इस दोष के कारण, हमें 'भूसे से अनाज को अलग' (सत्य और असत्य को अलग) करने की आवश्यकता है। इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने अभियुक्त भंवर लाल के संबंध में पीडब्ल्यू-2 और पीडब्ल्यू-3 के बयानों को स्वीकार नहीं किया। हालाँकि, उसी समय, उन्हीं दो गवाहों पीडब्ल्यू-2 और पीडब्ल्यू-3 के बयानों पर भरोसा करते हुए, उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता जोधराज और जगदीश प्रसाद की दोषसिद्धि की पुष्टि कर दी। इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, हमारी राय है कि यदि उपरोक्त आधारों पर पीडब्ल्यू-2 और पीडब्ल्यू-3 के बयान एक अभियुक्त के विरुद्ध विश्वसनीय नहीं हैं और एक अभियुक्त को संदेह का लाभ देकर बरी कर दिया गया है, तो वही लाभ अन्य अभियुक्तों को भी दिया जाना चाहिए था, जब तक कि अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध कुछ अतिरिक्त सामग्री/साक्ष्य मौजूद न हो।"

9. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, पीडब्ल्यू-2 और पीडब्ल्यू-3 के बयानों पर भरोसा करने के अलावा, अपीलकर्ता-अभियुक्तों को फंसाने वाला कोई अन्य साक्ष्य नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में, अभियुक्तों को फंसाने वाले किसी भी अन्य साक्ष्य की अनुपस्थिति में, उच्च न्यायालय ने केवल पीडब्ल्यू-2 और पीडब्ल्यू-3 के बयानों पर भरोसा करते हुए अपीलकर्ता की दोषसिद्धि की पुष्टि करने में गंभीर त्रुटि की है, जिनके बयानों पर उच्च न्यायालय द्वारा स्वयं संदेह व्यक्त किया गया था और एक अभियुक्त के संबंध में उन पर भरोसा नहीं किया गया था; वही तर्क अपीलकर्ताओं के मामले में भी लागू किया जाना चाहिए था जो भंवर लाल को बरी करते समय उच्च न्यायालय के लिए महत्वपूर्ण था। जहाँ तक भंवर लाल की दोषमुक्ति का प्रश्न है, हम उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण (जोधराज बनाम राजस्थान राज्य 2016 एससीसी ऑनलाइन राज 1264) से पूर्णतः सहमत हैं। उच्च न्यायालय द्वारा पीडब्ल्यू-2 और पीडब्ल्यू-3 के बयानों पर विश्वास न करने के ठोस कारण दिए गए हैं।"

इसके अतिरिक्त, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **बासावेनी रवि एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य [(2012) 12 एससीसी 466]** के मामले पर भरोसा किया और विशेष रूप से निर्णय के पैराग्राफ 9 का उल्लेख किया, जिसे यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"9. हमने ए-5 और ए-8 को छोड़कर अन्य सभी अभियुक्तों को बरी करने के संबंध में विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया है। हम कम से कम इतना तो कह ही सकते हैं कि हम विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश से आश्चर्यचकित हैं। हम ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य के उसी एक टुकड़े के आधार पर अन्य सभी अभियुक्तों को बरी करने के बाद, ए-5 और ए-8 को दोषी नहीं ठहराया जा सकता था, भले ही उन पर आईपीसी की धारा 302/34 के तहत आरोप लगाए गए थे।"

साथ ही, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **थान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2020) 112 ACC 717]** के मामले पर भी भरोसा किया। चूंकि विद्वान अधिवक्ता ने निर्णय के पैराग्राफ संख्या 30, 31, 32, 33 और 34 पर भरोसा किया है, पैराग्राफ 30 को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है:

"30. हमें विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता के उपरोक्त तर्क में कोई योग्यता नज़र नहीं आती क्योंकि तथ्य के सभी चार गवाहों ने निरंतर प्रत्येक अभियुक्त को मृतक पर गोली चलाने की भूमिका सौंपी है, और अपीलकर्ता थान सिंह की भूमिका को पूरन की भूमिका से केवल इसलिए अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि उसे मृतक को पकड़ने की भूमिका भी सौंपी गई थी। इसके अतिरिक्त, सह-अभियुक्त पूरन को बरी करते समय और अपीलकर्ता थान सिंह को दोषी ठहराते समय विद्वान विचारण न्यायाधीश के मन में उपरोक्त विचार का कोई महत्व नहीं था, जैसा कि विवादित निर्णय और आदेश के अवलोकन से स्पष्ट है।"

31. "सह-अभियुक्त पूरन को बरी करके विचारण न्यायालय ने स्पष्ट रूप से पूरन के संबंध में चश्मदीद गवाहों की गवाही को विश्वसनीय नहीं पाया, हालाँकि उनके साक्ष्य को इस तरह विभाजित नहीं किया जा सकता था कि कुछ सह-अभियुक्तों को लाभ दिया जाए जबकि अन्य को दोषी ठहराया जाए जो समान आधार पर खड़े थे।"

32. "समान स्थिति का सामना करते हुए, शीर्ष न्यायालय) ने राम लक्ष्मण बनाम राजस्थान राज्य [(2016) 12 एससीसी 398] के मामले में अपने निर्णय के पैरा 6 और 7 में निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

'6. आश्चर्यजनक रूप से, उच्च न्यायालय ने अन्य सह-अभियुक्तों के संबंध में गणेश पर अविश्वास किया और उन्हें दोषमुक्त कर दिया, लेकिन अपीलकर्ताओं के संबंध में उसकी गवाही को यह स्पष्ट करते हुए स्वीकार कर लिया कि "फॉल्सस इन उनो, फॉल्सस इन ओम्निबस" (एक बार झूठा तो हर जगह झूठा) का कानूनी सिद्धांत इस न्यायालय के उगर अहीर बनाम बिहार राज्य के निर्णय के अनुसार बहुत पहले ही अस्वीकृत किया जा चुका है।

7. हमारे सुविचारित मत में, खंडपीठ ने उपरोक्त निर्णय पर भरोसा करने में गंभीर त्रुटि की है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत में आपराधिक कानून का यह एक स्थापित सिद्धांत है कि यदि किसी ऐसे गवाह के बयान में कुछ झूठ पाया जाता है जो अन्यथा सुसंगत और विश्वसनीय है, तो उसकी पूरी गवाही को खारिज नहीं किया जाना चाहिए। लेकिन यह भी समान रूप से स्थापित कानून है कि यदि कोई गवाह अविश्वसनीय और भरोसा न करने योग्य पाया जाता है, तो उसके साक्ष्य को इस प्रकार विभाजित नहीं किया जा सकता कि एक को सजा बरकरार रखी जाए और दूसरे सह-अभियुक्त को लाभ दिया जाए, जबकि वे सभी पहलुओं में समान स्थिति में हों और समानता के पात्र हों।'"

33. "अतः, शीर्ष न्यायालय द्वारा उपरोक्त मामले में प्रतिपादित सिद्धांत के आलोक में और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री पर गहन विचार करने के पश्चात, हम अपीलकर्ता थान सिंह को दोषी ठहराने और सह-अभियुक्त पूरन को बरी करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों से सहमत होने में असमर्थ हैं। विचारण के दौरान अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षित तथ्य के गवाहों का साक्ष्य ऐसा नहीं है जिसे अलग-अलग सह-अभियुक्तों को अलग-अलग उपचार देने के लिए विभाजित किया जा सके।"

34. "चूँकि अपीलकर्ता थान सिंह का मामला बरी किए गए सह-अभियुक्त पूरन के समान ही आधार पर खड़ा है, यदि बेहतर आधार पर नहीं, तो अपीलकर्ता थान सिंह मेरिट के अलावा 'समानता' के आधार पर भी दोषमुक्ति का हकदार था। अतः, पूर्वगामी चर्चा के आलोक में, हमारा मत है कि न तो अपीलकर्ता थान सिंह की दर्ज दोषसिद्धि और न ही उसे सुनाई गई आजीवन कारावास की सजा को बरकरार रखा जा सकता है और इसे रद्द किया जाना उचित है। अपीलकर्ता थान सिंह के संबंध में दाण्डिक अपील संख्या 2004/1986 को स्वीकार किया जाता है और उसे सभी आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है।"

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अंत में उच्चतम न्यायालय के **जावेद शौकत अली कुरैशी बनाम गुजरात राज्य [(2023) 9 एससीसी 164]** के निर्णय पर भरोसा किया और कहा कि पूर्णतः अविश्वसनीय चश्मदीद गवाह के आधार पर अभियुक्त व्यक्तियों को दोषी ठहराना अत्यंत असुरक्षित था। चूँकि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 15 पर भरोसा किया है, इसे यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"15. जब दो अभियुक्तों के विरुद्ध एक जैसी भूमिका बताते हुए चश्मदीद गवाहों के समान या एक जैसे साक्ष्य मौजूद हों, तो न्यायालय एक अभियुक्त को दोषी और दूसरे को बरी नहीं कर सकता। ऐसे मामले में, दोनों अभियुक्तों के मामले 'समानता के सिद्धांत' द्वारा शासित होंगे। इस सिद्धांत का अर्थ है कि आपराधिक न्यायालय को एक जैसे मामलों का निर्णय एक समान करना चाहिए, और ऐसे मामलों में, न्यायालय दो अभियुक्तों के बीच कोई भेद नहीं कर सकता, जो कि भेदभाव की श्रेणी में आएगा।"

27. सूचनाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सतीश त्रिवेदी, जिन्हें श्री अजय कुमार पांडेय, विद्वान अधिवक्ता द्वारा सहायता प्रदान की गई, ने निम्नानुसार तर्क प्रस्तुत किए हैं:

(i) प्रश्नगत घटना 24.09.1997 को सुबह 09:00 बजे हुई थी और उक्त घटना की प्रथम सूचना रिपोर्ट तत्काल 24.09.1997 को सुबह 10:15 बजे थाना सिंभावली, जिला गाजियाबाद में पीडब्ल्यू-1 अफजल द्वारा दर्ज कराई गई थी, जिसमें अपीलकर्ता और 05 अन्य व्यक्तियों को अभियुक्त के रूप में नामित किया गया था।

(ii) चूँकि प्रथम सूचना रिपोर्ट तत्काल और बिना किसी अनुचित विलंब के दर्ज की गई है, अतः इसके 'पूर्व-दिनांकित' होने या किसी भी प्रकार के विचार-विमर्श, चर्चा या षड्यंत्र का परिणाम होने की संभावना पूरी तरह से खारिज हो जाती है।

(iii) स्वीकार्य रूप से, प्रथम सूचनाकर्ता (पीडब्ल्यू-1) घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है और मृतक का मामा है, फिर भी मामले के किसी भी चरण में उसने स्वयं को चश्मदीद गवाह के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, जो वह कर सकता था; लेकिन उसकी भूमिका का केवल प्राथमिकी दर्ज करने तक सीमित रहना यह दर्शाता है कि अभियोजन पक्ष स्पष्ट और निष्पक्ष इरादे के साथ आया है।

(iv) प्रासंगिक रूप से, घायल गवाह मुस्लिम (पीडब्ल्यू-2), पीडब्ल्यू-1 के साथ थाने गया था जहाँ सुबह 10:15 बजे जी.डी. संख्या 14 के माध्यम से प्राथमिकी (दर्ज की गई थी। उसी जी.डी. के अनुसार, पीडब्ल्यू-2 को 'चिठ्ठी मज़ूबी' के साथ कांस्टेबल 369 मेशो पाल सिंह की संगत में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र भेजा गया था। उक्त तथ्य आगे यह दर्शाता है कि प्राथमिकी 'पूर्व-दिनांकित' नहीं थी और यह प्रश्नगत घटना के दौरान उसके घायल होने के तथ्य को भी स्थापित करता है।

(v) जहाँ तक पीडब्ल्यू-2 की गवाही का प्रश्न है, यह प्रस्तुत किया जाता है कि 19.05.2000 को उसकी मुख्य परीक्षा दर्ज होने के बाद, बचाव पक्ष ने उसकी प्रतिपरीक्षा जारी नहीं रखी और यह प्रतिपरीक्षा लगभग 4 महीने बाद 01.09.2000, 07.09.2000 और 11.10.2000 को आयोजित की गई। पीडब्ल्यू-2 की गवाही का यही वह हिस्सा है जिसके आधार पर बचाव पक्ष दावा करता है कि अभियोजन पक्ष का मामला कमजोर हुआ है। हालांकि, 03.11.2000 को अभियोजन पक्ष द्वारा की गई उसकी प्रतिपरीक्षा में पीडब्ल्यू-2 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि

अभियुक्तों ने उसे जान से मारने की धमकी दी थी, जिसके परिणामस्वरूप उसने बचाव पक्ष की प्रतिपरीक्षा के दौरान वे तथ्य कहे थे, और उसने इस मुद्दे पर एक हलफनामा भी दिया था।

(vi) प्रासंगिक रूप से, जांच के दौरान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के तहत दर्ज अपने बयान में पीडब्ल्यू-2 ने अभियोजन पक्ष के मामले का पूरी तरह समर्थन किया है।

(vii) अतः यह स्पष्ट है कि अभियुक्तों ने अभियोजन पक्ष के एक गवाह को डराया, धमकाया और उसके साथ छेड़छाड़ की है, इसलिए बचाव पक्ष उस गवाही के उस हिस्से का कोई लाभ नहीं उठा सकता जिसमें उसने अभियोजन पक्ष के मामले का पूरी तरह समर्थन नहीं किया है।

(viii) यह स्थापित कानून है कि पक्षद्रोही गवाह की गवाही के उस हिस्से पर न्यायालय द्वारा विचार किया जा सकता है जिसमें वह अडिग रहा है और उसने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है; केवल इस आधार पर कि उसकी गवाही का कुछ हिस्सा अभियोजन के मामले का समर्थन नहीं करता, पीडब्ल्यू-2 की पूरी गवाही को सिरे से खारिज नहीं किया जा सकता।

(ix) इसके अलावा, जहाँ किसी गवाह को आंशिक रूप से विश्वसनीय माना जाता है, वहां न्यायालय अन्य साक्ष्यों से पुष्टि) की मांग कर सकता है और वर्तमान मामले में पीडब्ल्यू-2 की गवाही की पुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य, प्राथमिकी और यहाँ तक कि बचाव पक्ष के गवाहों डीडब्ल्यू-2 श्रीपाल और डीडब्ल्यू-3 सुनील कुमार के बयानों से भी होती है।

(x) यह तथ्य कि पीडब्ल्यू-2 को आग्नेयास्त्र से चोट लगी थी और उसे थाने से तत्काल 'चिठ्ठी मज़बी' के साथ भेजा गया था, घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति को स्थापित करता है।

(xi) जहाँ तक चिकित्सीय साक्ष्य का प्रश्न है, यह ध्यान देने योग्य है कि मृतक की मृत्यु-पूर्व की चोटें दर्शाती हैं कि आग्नेयास्त्र के पहले प्रवेश घाव का स्थान छाती का दाहिना ऊपरी हिस्सा है, दूसरा प्रवेश घाव दाहिनी ओर निप्पल के पास स्थित है, तीसरा प्रवेश घाव बाएं निप्पल के ऊपर है और चौथा प्रवेश घाव बाएं कनपटी पर है। अतः आग्नेयास्त्र के ये सभी प्रवेश घाव मृतक के शरीर के या तो बाएं या दाहिने हिस्से पर स्थित हैं।

(xii) अपीलकर्ता और सह-अभियुक्त अफसर एक मोटरसाइकिल पर सवार थे और पीछे से मृतक के पास पहुँचे थे, जबकि अन्य सह-अभियुक्तों ने सामने से मृतक और घायल का सामना किया था। ऐसी स्थिति में, अपीलकर्ता और सह-अभियुक्त द्वारा बगल से मृतक के पास पहुँचते समय गोलियां चलाई गईं, जो मृतक के शरीर के पार्श्व हिस्सों पर आग्नेयास्त्र के घावों की व्याख्या करता है।

अनुमोदित

(xiii) मृतक को अन्य गोलियां भी लगी थीं, जो जीप में सवार सह-अभियुक्तों द्वारा चलाई गई थीं और उनकी दोषमुक्ति को प्रथम सूचनाकर्ता द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 4066/2003 (तरीकत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य) के माध्यम से चुनौती दी गई है।

(xiv) पीडब्ल्यू-2 को मृतक के शरीर से बाहर निकलने वाली गोली (मृत्यु-पूर्व चोट संख्या 2) के परिणामस्वरूप एक 'ग्रेजिंग' (खरोंचती हुई) आग्नेयास्त्र चोट लगी थी। यह चोट मृतक के शरीर के दाहिनी ओर थी और घायल गवाह पीडब्ल्यू-2 के चेहरे और गले के दाहिने हिस्से पर स्थित थी।

(xv) जहाँ अपराध दिन-दहाड़े और अत्यंत दुस्साहसिक तरीके से किया गया हो, जिसमें मृतक को घातक गोली मारने के बाद उसके शव को नहर में फेंक दिया गया हो, वहाँ अभियोजन पक्ष के गवाहों के पास अपीलकर्ता और सह-अभियुक्तों को झूठा नामित करने का कोई कारण नहीं था। घटना के तरीके से यह भी स्पष्ट है कि इसे कई व्यक्तियों द्वारा देखा गया होगा।

(xvi) यह स्थापित कानून है कि बचाव पक्ष एक लापरवाह या दोषपूर्ण विवेचना के परिणामस्वरूप उत्पन्न कमियों या खामियों का लाभ नहीं उठा सकता।

(xvii) यह स्थापित कानून है कि साक्ष्य की गुणवत्ता महत्वपूर्ण है, न कि साक्ष्य की संख्या।

(xviii) चूँकि पीडब्ल्यू-2 एक घायल गवाह है, उसकी चोटें सिद्ध हो चुकी हैं और उसने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करते हुए आंखों देखा वृत्तांत दिया है, जिसकी पुष्टि अन्य भौतिक साक्ष्यों से भी होती है, तो अभियुक्त की दोषसिद्धि केवल पीडब्ल्यू-2 की एकल गवाही के आधार पर भी सुरक्षित की जा सकती है।

(xix) अपीलकर्ता विवेचना के दौरान अन्य सह-अभियुक्तों के साथ फरार था और उनकी फरारी के दौरान ही सीआरपीसी की धारा 173 (2) के तहत पुलिस रिपोर्ट (चार्जशीट) प्रस्तुत की गई थी। अतः, अपीलकर्ता का फरार होना साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के तहत उसके 'पश्चवर्ती आचरण' को दर्शाने वाला एक सुसंगत तथ्य होगा।

(xx) पीडब्ल्यू-3 पूरी तरह से एक प्राकृतिक गवाह है और उसने प्रश्नगत घटना के क्रम का सही चित्रण किया है। उसकी गवाही की पुष्टि अन्य साक्ष्यों से भी होती है और उसकी गवाही में ऐसा कुछ भी नहीं है जो अभियोजन पक्ष के मामले को कमजोर कर सके। स्पष्ट रूप से अभियुक्तों ने इस गवाह को भी डराया-धमकाया और प्रभावित किया है।

(xxi) पीडब्ल्यू-2 और पीडब्ल्यू-3 की गवाही के संबंध में यह निवेदन है कि मामूली विसंगतियों पर तब तक अत्यधिक जोर नहीं दिया जाना चाहिए जब तक कि ऐसी चूक या विसंगति मामले की जड़ को प्रभावित न

करती हो। अतः मामूली विरोधाभास, असंगतियां या महत्वहीन अलंकरण अभियोजन के मुख्य मामले को प्रभावित नहीं करते हैं।

(xxii) पीडब्ल्यू-2 एक अविश्वसनीय गवाह नहीं है, बल्कि उसका साक्ष्य विश्वसनीय है और यहाँ तक कि बचाव पक्ष के गवाहों के साक्ष्य से भी इसकी पुष्टि होती है।

28. अपने दलीलों के समर्थन में, उन्होंने हमें अभियोजन पक्ष के गवाहों और बचाव पक्ष के गवाहों के साक्ष्यों का अवलोकन कराया और प्रस्तुत किया कि घटना की तिथि, समय और स्थान, मृतक की मृत्यु और प्रश्नगत घटना में पीडब्ल्यू-2 को आई चोट पूरी तरह से सिद्ध है। उन्होंने हमारा ध्यान सीआरपीसी की धारा 164 के तहत पीडब्ल्यू-2 के बयान और 'चिठ्ठी मज़्बी' की ओर आकर्षित किया।

29. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात, हमारा यह मत है कि अपीलकर्ता दोषमुक्त होने का पात्र है। पीडब्ल्यू-2 जिसे एक घायल चश्मदीद गवाह के रूप में दर्शाया गया है, वह न तो घायल था और न ही चश्मदीद गवाह था। हम ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि पीडब्ल्यू-2 के चेहरे के दाहिने हिस्से पर जो चोटें दिखाई गई थीं, वे ऐसी घटना में कभी नहीं लग सकती थीं, जिसकी भीषणता प्राथमिकी से ही स्पष्ट थी। जब सामने से चार गोलियां चलाई गईं और वे चारों पीठ से बाहर निकल गईं, तो एक तार्किक निष्कर्ष यह था कि पीडब्ल्यू-2 को मृतक के शरीर से बाहर निकलने वाली कम से कम एक गोली से तो चोट लगनी ही चाहिए थी। साथ ही, हमारा यह मत है कि पीडब्ल्यू-2 लगातार अपना बयान बदलता रहा था। एक समय पर उसने कहा था कि घटना होने के तुरंत बाद वह मोटरसाइकिल से कूद गया था और गन्ने के खेत से होकर भागा था और उसके बाद मुख्य सड़क पर पहुँचा और फिर पीडब्ल्यू-1 के साथ थाने पहुँचा। बाद में अपने साक्ष्य में उसने कहा कि जब प्राथमिकी दर्ज नहीं हुई, तो वह मृतक के मामा अफजल के पास गया और उनके साथ थाने पहुँचा जहाँ प्राथमिकी दर्ज कराई गई। इसके अलावा, हमारा यह मत है कि उसने कहा था कि उसने शव को पुल से नदी में फेंकते हुए देखा था। हालाँकि, यह भी पूरी तरह से एक असंभाव्य कहानी प्रतीत होती है क्योंकि उसने स्वयं कहा था कि उसने केवल शव के निस्तारण के तरीके के बारे में सुना था, लेकिन उसने वास्तव में शव का वास्तविक निस्तारण कभी नहीं देखा था क्योंकि वह घटना शुरू होने के तुरंत बाद ही मौके से गायब हो गया था। आगे हमारा यह मत है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दिन में काफी देर से दर्ज की गई थी, जैसा कि पीडब्ल्यू-1 और पीडब्ल्यू-2 के बयानों में उल्लेख किया गया है, जहाँ उन्होंने कहा था कि पुलिस कर्मियों, प्रथम सूचनाकर्ता और गाँव के बुजुर्गों के बीच काफी विचार-विमर्श के बाद प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी। साथ ही पीडब्ल्यू-3 बिल्कुल अविश्वसनीय था। प्राथमिकी में उल्लिखित अन्य गवाह कभी गवाह के कटघरे में नहीं आए। इसके अतिरिक्त, हमारा यह मानना है कि जिस साक्ष्य के आधार पर चार अभियुक्तों–कमल, खुर्शीद, कामिल और नौफिल को बरी किया गया था, उसी साक्ष्य के आधार पर अन्य दो को दोषी ठहराना संभव नहीं हो सकता था। हमने पाया कि हमलावरों के जीप पर आने की पूरी कहानी को अविश्वासपूर्ण माना गया था। इसलिए, एक ही कहानी को एक साथ विश्वसनीय और अविश्वसनीय दोनों नहीं माना जा सकता। हमने जो कहा है, उसके आलोक में हमारा यह मत है कि अपील स्वीकार किए जाने योग्य है।

30. अपीलकर्ता को सभी आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। दिनांक 14.10.2003 के निर्णय एवं आदेश को रद्द किया जाता है और उसे अपास्त किया जाता है।

31. तदनुसार, वर्तमान अपील **स्वीकार** की जाती है।

32. अपीलकर्ता - **आसिफ अली**, यदि जेल में है तो उसे मुक्त कर दिया जाए, और यदि वह जमानत पर है, तो उसके जमानत बांड सीआरपीसी की धारा 437ए के अनुपालन के अधीन उन्मोचित माने जाएंगे, बशर्ते वह किसी अन्य मामले में वांछित न हो।

33. इस आदेश की एक प्रति रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा आवश्यक कार्रवाई हेतु संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को भेजी जाए।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 696

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि

विशेष अपील संख्या 117 वर्ष 2025

डॉ. मनोज कुमार रावत **...अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

अलका उपाध्याय, मनीष तिवारी, नवीन कुमार त्रिपाठी, प्रभाकर अवस्थी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

वरुण देव शर्मा, अंकित शुक्ला, अवनीश त्रिपाठी, मुख्य स्थायी अधिवक्ता (C.S.C.), गगन मेहता, पारिजात मिश्रा

अनुवादित

A. सेवा विधि - उत्तर प्रदेश शिक्षा सेवा चयन आयोग अधिनियम, 2023 - उत्तर प्रदेश उच्च शिक्षा अधिनियम, 1980 - धारा 13(4) - निदेशक का अधिकार क्षेत्र - 1980 के पुराने अधिनियम के तहत जारी विज्ञापन के अनुसरण में चयन सूची तैयार की गई थी - नए अधिनियम के लागू होने के बाद उत्पन्न रिक्ति में नियुक्ति के लिए ऐसी सूची से किसी उम्मीदवार का नाम सूचित करने का निदेशक का अधिकार क्षेत्र किस हद तक है? अभिनिर्धारित, पिछले अधिनियम के तहत निदेशक को उपलब्ध शक्ति, विशेष रूप से अधिनियम 1980 की धारा 13(4), उत्तर प्रदेश शिक्षा सेवा चयन आयोग अधिनियम, 2023 के प्रभावी होने के बाद प्रयोग किए जाने के लिए उपलब्ध नहीं होगी। एक बार जब नए अधिनियम में निदेशक के पास ऐसी मूल रिक्ति को भरने की कोई शक्ति नहीं रह जाती है जो बाद में अस्तित्व में आई है, और जिसे पिछले विज्ञापन में चयनित उम्मीदवार से भरा जाना है, तो निदेशक की ऐसी कार्रवाई अधिकार क्षेत्र के बिना मानी जाएगी। (पैरा 15 और 17)

विशेष अपील खारिज। (E-1)

(माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्रा द्वारा पारित)

1. यह अपील विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा 'रिट-ए' संख्या 15433 वर्ष 2024 में पारित आदेश दिनांक 17.02.2025 से उत्पन्न हुई है, जिसके द्वारा निदेशक के आदेश दिनांक 15.01.2024 के अनुपालन में मेरठ कॉलेज, मेरठ में अपीलकर्ता की नियुक्ति/तैनाती को रद्द कर दिया गया है।

2. मामले के निर्विवाद तथ्य, जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा देखे गए हैं, यह हैं कि उत्तर प्रदेश उच्च शिक्षा सेवा आयोग (इसके बाद "आयोग" के रूप में संदर्भित) ने उत्तर प्रदेश राज्य के सहायता प्राप्त स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में प्राचार्य के 219 पदों पर नियुक्ति के लिए विज्ञापन संख्या 49 वर्ष 2019 जारी किया था। इस विज्ञापन में मेरठ कॉलेज, मेरठ में प्राचार्य का पद भी शामिल था। अपीलकर्ता ने चयन कार्यवाही में भाग लिया और अंततः उन्हें प्रतीक्षा सूची में रखा गया। यह ज्ञात हुआ कि एक डॉ. सच्चिदानंद शर्मा को मेरठ कॉलेज, मेरठ में प्राचार्य के रूप में तैनात किया गया था। उन्होंने अपनी तैनाती के अनुपालन में कार्यभार ग्रहण किया और लगभग 1.5 वर्षों तक महाविद्यालय में कार्य किया, जिसके बाद उन्होंने पद छोड़ दिया। इसके बाद मेरठ कॉलेज, मेरठ में प्राचार्य का पद रिक्त हो गया।

3. रिकॉर्ड से पता चलता है कि अपीलकर्ता को हालांकि प्रारंभ में प्रतीक्षा सूची में रखा गया था, लेकिन भर्ती प्रक्रिया में मौजूद रिक्तियों के कारण उन्हें नियुक्ति मिल गई और उन्हें बजरंग पोस्ट-ग्रेजुएट कॉलेज, बलिया में तैनात किया गया। बजरंग पोस्ट-ग्रेजुएट कॉलेज, बलिया में अपीलकर्ता का दिनांक 03.08.2022 का तैनाती आदेश इस पेपर बुक के पृष्ठ 100 पर रिकॉर्ड में है। यह निर्विवाद है कि अपीलकर्ता ने बजरंग पोस्ट-ग्रेजुएट कॉलेज, बलिया में कभी कार्यभार ग्रहण नहीं किया और पक्षकारों के बीच उस कारण को लेकर विवाद है जिसके चलते उन्होंने कार्यभार ग्रहण नहीं किया था। अपीलकर्ता का कहना है कि उन्हें प्रबंध समिति द्वारा नियुक्ति पत्र जारी नहीं किया गया था। दूसरा पक्ष यह है कि अपीलकर्ता कार्यभार ग्रहण करने के लिए प्रबंध समिति के समक्ष कभी उपस्थित ही नहीं हुए। रिकॉर्ड पर ऐसे पत्राचार भी मौजूद हैं जो दिखाते हैं कि अपीलकर्ता ने व्यक्तिगत कठिनाइयों को कारण बताया था, जिसकी वजह से उन्होंने किसी अन्य कॉलेज में अपनी तैनाती का अनुरोध किया था। अपीलकर्ता द्वारा किए गए इसी अनुरोध के आधार पर निदेशक ने दिनांक 15.01.2024 को आदेश पारित कर अपीलकर्ता को मेरठ कॉलेज, मेरठ में तैनात कर दिया। निदेशक के इसी आदेश दिनांक 15.01.2024 के विरुद्ध कॉलेज के कार्यवाहक प्राचार्य द्वारा रिट याचिका दायर की गई थी, जिसमें प्रत्यर्थी के दिनांक 15.01.2024 के तैनाती आदेश को चुनौती दी गई थी।

4. विद्वान एकल न्यायाधीश ने मामले के तथ्यों पर संज्ञान लिया है और इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि डॉ. सच्चिदानंद शर्मा के प्राचार्य पद से इस्तीफा देने के बाद प्रत्यर्थी डॉ. अंजली मित्तल को प्राचार्य पद का कार्यभार सौंपा गया था और वह कॉलेज में वरिष्ठतम शिक्षक होने के नाते पद पर बने रहने की हकदार थीं। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह भी राय दी है कि जिस समय निदेशक द्वारा अपीलकर्ता को बजरंग पोस्ट-ग्रेजुएट कॉलेज, बलिया आवंटित करने का आदेश पारित किया गया था, तब तक नियुक्ति की प्रक्रिया समाप्त हो चुकी थी और निदेशक के लिए आक्षेपित तैनाती आदेश पारित करना अनुमत नहीं था।

5. जब पिछली बार इस मामले की सुनवाई हुई थी, तब यह मुद्दा उठाया गया था कि क्या बजरंग पोस्ट-ग्रेजुएट कॉलेज, बलिया में कार्यभार ग्रहण करने में अपीलकर्ता की ओर से कोई चूक हुई थी या प्रबंध समिति द्वारा उन्हें नियुक्ति पत्र जारी न करने के कारण वह कार्यभार ग्रहण नहीं कर सके थे। इस विवाद को सुलझाने के लिए, हमने संबंधित निदेशक को रिकॉर्ड की जाँच करने और अपना व्यक्तिगत शपथ पत्र दाखिल करने का निर्देश दिया था। निदेशक द्वारा एक शपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसमें पैराग्राफ संख्या 6 और 7 में निम्नानुसार उल्लेख किया गया है:

"6. *यह कि श्री बजरंग पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज दादर आश्रम, सिकंदरपुर बलिया के प्राचार्य द्वारा पत्र संख्या एस.बी.पी.जी./1487/2025 दिनांक 13.03.2025 के माध्यम से दी गई जानकारी के अनुसार, प्राचार्य ने सूचित किया है कि कॉलेज ने आगे की कार्रवाई के लिए 13/08/2022 को अधिकृत नियंत्रक/जिला मजिस्ट्रेट बलिया को फाइल प्रस्तुत की थी। जिला मजिस्ट्रेट बलिया ने कार्यालय पत्र संख्या डिग्री अर्थ-1 (आयोग) / 332-340/2022-23 दिनांक 03/08/2022 में उल्लिखित बिंदु 4(बी) का हवाला देते हुए मौखिक रूप से निर्देशित किया कि जब तक चयनित उम्मीदवार व्यक्तिगत रूप से इस संबंध में अपना आवेदन (नियुक्ति पत्र जारी करने के लिए) प्रस्तुत नहीं करता है और संपर्क स्थापित नहीं करता है, तब तक आगे की कार्रवाई नहीं की जा सकती है, क्योंकि प्राचार्य पद के लिए पहले चयनित उम्मीदवार डॉ. अजय कुमार सिंह ने नियुक्ति पत्र जारी करने और कार्यभार ग्रहण करने के दो अवसर दिए जाने के बाद भी कार्यभार ग्रहण नहीं किया था और उनकी उम्मीदवारी रद्द कर दी गई थी। इस तथ्य को देखते हुए, उम्मीदवार को पहले अपना आवेदन प्रस्तुत करने दें। इसके बाद, उन्होंने डी.आई.ओ.एस. को टिप्पणी के लिए निर्देशित किया। चूंकि चयनित उम्मीदवार ने न तो कॉलेज को कोई आवेदन पत्र प्रस्तुत किया और न ही जिला मजिस्ट्रेट/अधिकृत नियंत्रक/कॉलेज से संपर्क स्थापित किया, इसलिए अधिकृत नियंत्रक/जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नियुक्ति पत्र जारी नहीं किया गया था।"*

"7. *यह कि चयनित प्राचार्य डॉ. मनोज कुमार रावत का संस्तुति पत्र, आवेदन पत्र और प्रमाणन पत्र उच्च शिक्षा निदेशालय के ई-मेल द्वारा 03/08/2022 को कॉलेज भेज दिए गए थे, लेकिन अधिकृत नियंत्रक/प्रबंधक द्वारा नियमों के अनुसार चयनित उम्मीदवार डॉ. मनोज कुमार रावत को नियुक्ति पत्र जारी नहीं किया गया था, जबकि उन्हें नियमों के अनुसार आदेश के 21 दिनों के भीतर नियुक्ति पत्र जारी कर देना चाहिए था।"*

6. ऊपर बताए गए तथ्यों के संदर्भ में ही हमें निदेशक द्वारा अपीलकर्ता को मेरठ कॉलेज, मेरठ में तैनात करने के लिए पारित स्थानांतरण/तैनाती आदेश की वैधता के साथ-साथ, ऐसे आदेश में हस्तक्षेप करने वाले विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय पर न्यायनिर्णयन करने के लिए कहा गया है।

7. हमने अपीलकर्ता की ओर से श्री प्रभाकर अवस्थी और प्रतिवादी-रिट याचिकाकर्ता की ओर से श्री कार्तिकेय सरन द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे, आयोग की ओर से पेश हुए विद्वान अधिवक्ता श्री गगन मेहता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को भी सुना है।

8. श्री अशोक खरे ने तर्क दिया कि निदेशक को 15.01.2024 को वर्तमान अपीलकर्ता के पक्ष में तैनाती का आदेश पारित करने के किसी भी अधिकार क्षेत्र से वंचित कर दिया गया था, क्योंकि यू.पी. उच्च शिक्षा अधिनियम, 1980 को निरस्त कर दिया गया था और धारा 13(4) के तहत निदेशक को पूर्व में उपलब्ध शक्ति अब उनके पास उपलब्ध नहीं थी।

9. हमने मामले के इस पहलू पर पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है, जिसे निर्धारण के लिए सबसे पहले लिया गया है।

10. यह निर्विवाद है कि विज्ञापन संख्या 49 वर्ष 2019 जारी किया गया था, जिसके अनुसरण में यू.पी. उच्च शिक्षा सेवा आयोग द्वारा चयन की कार्यवाही उच्च शिक्षा अधिनियम, 1980 के तहत संचालित की गई थी। संबंधित संस्थान में उम्मीदवारों को तैनात करने में निदेशक के अधिकार क्षेत्र की सीमाओं को समझने के लिए अधिनियम की धारा 13 प्रासंगिक होगी। धारा 13 को नीचे *पुनरुत्पादित किया गया है:*

***"13. (1)** आयोग, धारा 12 की उप-धारा (3) के तहत रिक्तियों की अधिसूचना के बाद जितनी जल्दी हो सके, उम्मीदवारों का साक्षात्कार (लिखित परीक्षा के साथ या बिना) आयोजित करेगा और निदेशक को प्रत्येक विषय में सबसे उपयुक्त पाए गए उम्मीदवारों के नामों की सिफारिश करने वाली एक सूची भेजेगा, जो जहाँ तक व्यावहारिक हो, उस विषय में रिक्तियों की संख्या से पच्चीस प्रतिशत अधिक होगी; ऐसे नामों को साक्षात्कार में दिखाए गए योग्यता क्रम के अनुसार, या यदि परीक्षा आयोजित की जाती है तो परीक्षा और साक्षात्कार के अनुसार व्यवस्थित किया जाएगा।*

(2) आयोग द्वारा भेजी गई सूची आयोग से नई सूची प्राप्त होने तक मान्य होगी।

(3) निदेशक, धारा 12 की उप-धारा (4) के दूसरे परंतुक के तहत उम्मीदवारों द्वारा इंगित वरीयता क्रम, यदि कोई हो, पर निर्धारित तरीके से उचित ध्यान देते हुए, धारा 12 की उप-धारा (2) के तहत सूचित रिक्ति में नियुक्त होने के लिए उप-धारा (1) में संदर्भित सूची से एक उम्मीदवार का नाम प्रबंधन को सूचित करेगा।

(4) जहाँ उप-धारा (2) में संदर्भित सूची की वैधता की अवधि के दौरान मृत्यु, इस्तीफे या अन्यथा के कारण रिक्ति उत्पन्न होती है, और ऐसी रिक्ति को धारा 12 की उप-धारा (3) के तहत आयोग को सूचित नहीं किया गया है, वहाँ निदेशक प्रबंधन को ऐसी रिक्ति में नियुक्ति के लिए उस सूची से एक उम्मीदवार का नाम सूचित कर सकता है।

(5) पूर्वगामी प्रावधानों में किसी भी बात के बावजूद, जहाँ किसी कॉलेज में शिक्षक के किसी पद के उन्मूलन के कारण, ऐसे पद पर मूल रूप से नियुक्त व्यक्ति की सेवा समाप्त कर दी जाती है, वहाँ राज्य सरकार किसी

अनुपालित

अन्य कॉलेज में उपयुक्त रिक्ति में, चाहे वह धारा 12 की उप-धारा (3) के तहत अधिसूचित हो या नहीं, उसकी नियुक्ति के लिए उपयुक्त आदेश दे सकती है, और तदुपरान्त निदेशक प्रबंधन को तदनुसार सूचित करेगा।

(6) निदेशक उप-धारा (3) या उप-धारा (4) या उप-धारा (5) के तहत की गई सूचना की एक प्रति संबंधित उम्मीदवार को भेजेगा।"

11. धारा 13 की उप-धारा (2) यह प्रावधान करती है कि आयोग द्वारा भेजी गई चयन सूची आयोग से नई सूची प्राप्त होने तक मान्य रहेगी। उप-धारा (4) यह प्रावधान करती है कि जहाँ उप-धारा (2) में संदर्भित सूची की वैधता की अवधि के दौरान मृत्यु, इस्तीफे या अन्यथा के कारण रिक्ति उत्पन्न होती है, और ऐसी रिक्ति को धारा 12 की उप-धारा (3) के तहत आयोग को सूचित नहीं किया गया है, वहाँ निदेशक ऐसी रिक्ति में नियुक्ति के लिए उस सूची से किसी उम्मीदवार का नाम प्रबंधन को सूचित कर सकता है।

12. निदेशक का दिनांक 15.01.2024 का आदेश स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 13(4) के संदर्भ में है। इसलिए, हमारे विचारार्थ प्रश्न यह है कि क्या धारा 13(4) के तहत निदेशक को उपलब्ध शक्ति 1980 के अधिनियम के निरसन के बाद भी उक्त अधिकारी के पास उपलब्ध रहेगी। राज्य विधायिका ने 1980 के अधिनियम को निरस्त करते हुए उत्तर प्रदेश शिक्षा सेवा चयन आयोग अधिनियम, 2023 (इसके बाद "अधिनियम 2023" के रूप में संदर्भित) को अधिनियमित किया है। नए अधिनियम के तहत चयन सूची तैयार करने के साथ-साथ चयनित उम्मीदवारों के नाम संबंधित संस्थान में उनकी संबंधित तैनाती के लिए अनुशंसित करने के मामले में योजना कुछ हद तक समान है। अधिनियम 2023 की धारा 11 हमारे उद्देश्यों के लिए प्रासंगिक है और इसे नीचे पुनरुत्पादित किया गया है:

"धारा 11 (1) आयोग, धारा 10 की उप-धारा (1) के तहत रिक्ति अधिसूचित होने के बाद जितनी जल्दी हो सके, जहाँ भी आवश्यक हो, परीक्षा या साक्षात्कार आयोजित करेगा या उम्मीदवारों की परीक्षा और साक्षात्कार आयोजित करेगा और नियुक्ति के लिए सबसे उपयुक्त पाए गए उम्मीदवारों का एक पैनल/सूची तैयार करेगा।
***(2)** उप-धारा (1) में संदर्भित पैनल को निर्धारित तरीके से धारा 10 की उप-धारा (1) में संदर्भित निर्धारित अधिकारी या अधिकृत अधिकारी को अग्रेषित किया जाएगा।*

***(3)** उप-धारा (2) के तहत पैनल प्राप्त होने के बाद, निर्धारित अधिकारी या अधिकृत अधिकारी, निर्धारित तरीके से, धारा 10 की उप-धारा (1) के तहत अधिसूचित रिक्तियों के संबंध में चयनित उम्मीदवारों के नाम नियुक्ति प्राधिकारी को सूचित करेगा।*

***(4)** नियुक्ति प्राधिकारी ऐसी सूचना प्राप्त होने की तारीख से तीस दिनों की अवधि के भीतर, ऐसे चयनित उम्मीदवारों को नियुक्ति पत्र जारी करेगा और चयनित उम्मीदवार को निर्धारित तरीके से कर्तव्यों का पालन करने/कार्यभार ग्रहण करने की सुविधा प्रदान करेगा।*

(5) जहाँ ऐसा चयनित उम्मीदवार नियुक्ति पत्र में अनुमत समय के भीतर या ऐसे विस्तारित समय के भीतर जो नियुक्ति प्राधिकारी इस संबंध में अनुमति दे, संस्थान में शिक्षक या अनुदेशक के पद पर कार्यभार ग्रहण करने में विफल रहता है, या जहाँ ऐसा उम्मीदवार अन्यथा नियुक्ति के लिए उपलब्ध नहीं है, वहाँ अधिकृत अधिकारी, प्रबंधन के अनुरोध पर, निर्धारित तरीके से, उप-धारा (2) के तहत आयोग द्वारा अग्रेषित पैनल/सूची से नया नाम या नाम सूचित करेगा। ऐसी समय सीमा नियुक्ति पत्र जारी करने की तारीख के अधिकतम एक वर्ष बाद तक होगी।

(6) *यदि प्रबंधन/नियुक्ति प्राधिकारी उचित आधारों पर (प्रबंधन/नियुक्ति प्राधिकारी को उपयुक्त कारण का उल्लेख करना होगा) चयनित उम्मीदवार को नियुक्ति पत्र जारी करने में विफल रहता है, तो उप-धारा (1) के तहत उम्मीदवारों की सूची/पैनल से शेष उम्मीदवारों का पैनल संस्थान को केवल एक बार उपलब्ध कराया जाएगा। फिर भी, यदि प्रबंधन/नियुक्ति प्राधिकारी नियुक्ति पत्र जारी करने में विफल रहता है, तो संबंधित पद को निर्धारित पद्धति के अनुसार समाप्त कर दिया जाएगा।"*

13. उपरोक्त प्रावधान स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि जहाँ कोई चयनित उम्मीदवार नियुक्ति पत्र में अनुमत समय के भीतर या ऐसे विस्तारित समय के भीतर, जिसे नियुक्ति प्राधिकारी इस संबंध में अनुमति दे, संस्थान में शिक्षक के पद पर कार्यभार ग्रहण करने में विफल रहता है, या जहाँ ऐसा उम्मीदवार अन्यथा नियुक्ति के लिए उपलब्ध नहीं है, वहाँ अधिकृत अधिकारी, प्रबंधन के अनुरोध पर, निर्धारित तरीके से उप-धारा (2) के तहत आयोग द्वारा अग्रेषित पैनल/सूची से नया नाम या नाम सूचित करेगा।

14. अधिनियम 2023 के तहत योजना का सावधानीपूर्वक परीक्षण करने के बाद, हम पाते हैं कि नए अधिनियम के तहत अधिकृत अधिकारी की शक्ति उप-धारा (5) में निर्दिष्ट उन कदमों तक सीमित है, जो चयनित उम्मीदवार के कार्यभार ग्रहण करने में विफल रहने पर पद भरने के लिए उठाए जाते हैं। उप-धारा (5) के तहत शक्ति में पिछले अधिनियम की धारा 13(4) के संदर्भ में कोई शक्ति शामिल नहीं है। नए अधिनियम में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो अधिकृत अधिकारी को चयन सूची से नाम की सिफारिश करने की अनुमति देती हो, यदि प्राचार्य के पद पर कोई मूल रिक्ति अस्तित्व में आती है।

15. निर्विवाद रूप से डॉ. सच्चिदानंद शर्मा का चयन किया गया था और उन्हें प्राचार्य के रूप में मेरठ कॉलेज, मेरठ में तैनात किया गया था। उन्होंने लगभग 1.5 वर्ष तक कार्य किया, जिसके बाद उन्होंने इस्तीफा दे दिया। डॉ. सच्चिदानंद शर्मा के इस्तीफे के साथ प्राचार्य के पद पर एक मूल रिक्ति अस्तित्व में आ गई थी। चूँकि ऐसी रिक्ति नए अधिनियम के लागू होने के दौरान उत्पन्न हुई है, इसलिए इस पद को भरने का एकमात्र तरीका नई नियुक्ति करने के लिए आयोग को मांग-पत्र भेजना है। पिछले अधिनियम के तहत निदेशक को उपलब्ध शक्ति, विशेष रूप से अधिनियम 1980 की धारा 13(4), नए अधिनियम 2023 के प्रभावी होने के बाद प्रयोग किए जाने के लिए उपलब्ध नहीं होगी।

16. आयोग की ओर से पेश हुए विद्वान अधिवक्ता श्री गगन मेहता ने यह तर्क देने के लिए हमारा ध्यान अधिनियम 2023 की धारा 31(2) की ओर आकर्षित किया है कि 1980 के पिछले अधिनियम के तहत निदेशक की शक्तियाँ सुरक्षित हैं। नए अधिनियम की धारा 31, जो निरसन और व्यावृत्ति का प्रावधान करती है, नीचे पुनरुत्पादित की गई है:

*"**31. (1)** उत्तर प्रदेश उच्च शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1980, उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम, 1982 और उत्तर प्रदेश शिक्षा सेवा चयन आयोग अधिनियम, 2019 को इसके द्वारा निरस्त किया जाता है।*

(2) ऐसे निरसन के बावजूद, उप-धारा (1) में संदर्भित अधिनियमों के तहत किया गया कोई भी कार्य या की गई कोई भी कार्रवाई इस अधिनियम के तहत की गई मानी जाएगी, मानो इस अधिनियम के प्रावधान सभी महत्वपूर्ण समय पर लागू थे।

(3) इस अधिनियम में अन्यथा प्रदान किए गए के सिवाय, उप-धारा (1) में संदर्भित अधिनियमों का निरसन, प्रावधानों के प्रवर्तन के संबंध में उत्तर प्रदेश सामान्य परिभाषा अधिनियम, 1904 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1 वर्ष 1904) की धारा 6 के सामान्य अनुप्रयोग पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा।"

17. उप-धारा (2) के सावधानीपूर्वक पठन से यह प्रकट होता है कि 1980 के अधिनियम के निरसन के बावजूद, उप-धारा (1) में संदर्भित अधिनियमों के तहत किया गया कोई भी कार्य या की गई कोई भी कार्रवाई नए अधिनियम के तहत की गई मानी जाएगी और ऐसे उद्देश्यों के लिए नए अधिनियम को सभी महत्वपूर्ण समय पर प्रभावी माना जाएगा। एक बार जब हम पाते हैं कि नए अधिनियम में निदेशक के पास ऐसी मूल रिक्ति को भरने की कोई शक्ति नहीं है जो बाद में अस्तित्व में आई है, और जिसे पिछले विज्ञापन में चयनित उम्मीदवार से भरा जाना है, तो निदेशक की कार्रवाई अधिकार क्षेत्र के बिना होगी। यह विशेष रूप से इसलिए है क्योंकि पिछले अधिनियम के तहत निदेशक की शक्तियाँ अधिनियम 2023 की धारा 31(2) के आधार पर नए अधिनियम के तहत केवल वहीं तक जारी रहेंगी जहाँ तक कि यह इस अधिनियम (नए अधिनियम) के साथ असंगत न हों। ऐसी शक्ति, जो नए अधिनियम के लागू रहने के दौरान निदेशक को प्रदान नहीं की गई है, उसका प्रयोग पिछले अधिनियम, जो पहले ही निरस्त किया जा चुका है, से उस शक्ति के स्रोत को खोजकर नहीं किया जा सकता है।

18. ऊपर किए गए विचार-विमर्श और चर्चा के आलोक में, हम यह निर्धारित करते हैं कि निदेशक के पास 15.01.2024 को अपीलकर्ता के पक्ष में आदेश पारित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था और इसलिए, ऐसे आदेश को अधिकार क्षेत्र के बिना माना जाता है। यद्यपि एक अलग कारण से, लेकिन हम अंततः निदेशक के आदेश को रद्द करने के लिए विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से अपनी सहमति पाते हैं।

19. परिणामस्वरूप, यह अपील विफल होती है और **खारिज** की जाती है। वादव्यय के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया गया है।

(2025) 5 ILRA 701

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.05.2025

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

के समक्ष

रिट ए संख्या 5151 वर्ष 2023

डॉ. संजय मित्तल **...याचिकाकर्ता**

बनाम

भारत संघ व अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
अवनीश त्रिपाठी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
ए.एस.जी.आई., रोहन गुप्ता, सभाजीत सिंह

सर्विस लॉ - अनुशासनात्मक कार्यवाही -आईआईटी कानपुर के नियम, नियम 13(9)(b) -

प्रोफेसर द्वारा कदाचार - अनुसूचित जाति श्रेणी के सहकर्मी के खिलाफ अपमानजनक टिप्पणी करने और नियुक्ति पर सवाल उठाने के लिए अनधिकृत फैकल्टी मीटिंग बुलाने के आरोप - जांच की गई, आरोप साबित हुए - बोर्ड ऑफ गवर्नर्स ने दो साल के लिए बिना संचयी प्रभाव के दो वेतन वृद्धि रोकने और तीन साल तक प्रशासनिक जिम्मेदारियां संभालने से रोकने की सजा सुनाई - वैधता

फैसला: साबित हुए आरोप अनुशासन के खिलाफ थे और सेवा से जुड़ी गलत हरकत माने गए; स्टैच्यूट 13(9)(बी)(ii) के तहत इंक्रीमेंट रोकने की सज़ा दी जा सकती है। हालाँकि, तीन साल तक प्रशासनिक ज़िम्मेदारियाँ संभालने से रोकना, स्टैच्यूट 13(9)(बी) में बताई गई सज़ाओं में शामिल नहीं है। यह सज़ा आईआईटी के अधिकार क्षेत्र से बाहर है, साफ़ तौर पर गैर-कानूनी है और इसे रद्द किया जाता है। बिना संचयी प्रभाव के दो इंक्रीमेंट रोकने की सज़ा को बरकरार रखा गया।

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की गई।

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा दिया गया)

अनुवादित

1. यह रिट याचिका, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी, कानपुर के डायरेक्टर के 01.08.2022 के उस आदेश के ख़िलाफ़ है, जिसमें याचिकाकर्ता को दो साल की अवधि के लिए दो इंक्रीमेंट (बिना संचयी प्रभाव के) रोकने की सज़ा दी गई थी और यह निर्देश दिया गया था कि वह तीन साल की अवधि तक कोई प्रशासनिक ज़िम्मेदारी नहीं संभालेंगे। याचिकाकर्ता, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी, कानपुर (संक्षेप में 'आईआईटी') के बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स के 23.07.2022 के उस प्रस्ताव को भी चुनौती देता है, जिसमें आईआईटी के डायरेक्टर द्वारा आदेशित सज़ाओं को याचिकाकर्ता पर लागू करने का निर्णय लिया गया था।

2. याचिकाकर्ता आईआईटी के एयरोस्पेस इंजीनियरिंग विभाग में प्रोफ़ेसर हैं। उन्हें आईआईटी के बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स के चेयरमैन की ओर से 25.04.2018 को एक चार्ज-शीट दी गई थी, जिसमें औपचारिक मेमोरेंडम के साथ निम्नलिखित आरोप शामिल थे:

"अनुच्छेद-1

डॉ. संजय मित्तल ने 04.01.2018 को एयरोस्पेस इंजीनियरिंग विभाग में आयोजित एक विभागीय गेट-टुगेदर के दौरान अपमानजनक टिप्पणी की थी। उन्होंने कहा था कि संस्थान में हाल ही में शामिल हुए नए फैकल्टी सदस्यों के कारण विभाग का स्तर गिर रहा है।

चूंकि डॉ. सुब्रह्मण्यम सदेरला पास ही मौजूद थे, इसलिए यह टिप्पणी किसी और के बारे में नहीं, बल्कि डॉ. सुब्रह्मण्यम सदेरला के ही बारे में की गई थी। उन्हें यह भी पता था कि सबके सामने इस तरह की अपमानजनक टिप्पणी करने से विभाग में डॉ. सुब्रह्मण्यम सदेरला के प्रोफेशनल चरित्र और प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंचेगा।

इसलिए डॉ. संजय मित्तल ने कथित तौर पर सार्वजनिक रूप से डॉ. सुब्रह्मण्यम सदेरला को अपमानित करने का प्रयास करके गंभीर कदाचार किया है। तदनुसार, उक्त डॉ. संजय मित्तल पर प्रथम दृष्टया आईआईटी कानपुर संविधियों के क़ानून 13(17) के तहत बनाए गए आचरण नियम (अनुसूची-बी) के नियम 3 (ए) और (बी) का उल्लंघन करने का आरोप है।

अनुच्छेद-2

उक्त डॉ. संजय मित्तल ने दिनांक 09.01.2018 को एक ईमेल के माध्यम से डॉ. सुब्रह्मण्यम सदरेला और डॉ. राघवेंद्र पी. कुकिलया को छोड़कर एयरोस्पेस इंजीनियरिंग विभाग के सभी संकाय सदस्यों की एक बैठक बुलाई, जिसमें उन्हें 10.1.2018 को शाम 4 बजे एई मीटिंग रूम (एनडब्ल्यूटीएफ बिल्डिंग) में एक बैठक में आमंत्रित किया गया, ताकि विभाग में हाल ही में भर्ती में संभावित प्रक्रियात्मक चूक पर चर्चा की जा सके, एचओडी या संस्थान के सक्षम प्राधिकारी से किसी भी अनुमति के बिना। बैठक के दौरान, उन्होंने कथित तौर पर अपने संकाय सहयोगियों के बीच चर्चा का नेतृत्व किया, जिसमें कहा गया था कि डॉ. सुब्रह्मण्यम सदरेला का हाल ही में चयन संस्थान के मानदंडों के अनुरूप नहीं था।

डॉ. संजय मित्तल अच्छी तरह से जानते थे कि डॉ. सुब्रह्मण्यम सदरेला का चयन एससी/एसटी/ओबीसी/पीडब्ल्यूडी उम्मीदवारों के लिए एक विशेष भर्ती अभियान में किया गया था और डॉ. सुब्रह्मण्यम सदरेला अनुसूचित जाति श्रेणी से संबंधित हैं, फिर भी उन्होंने डॉ. सुब्रह्मण्यम सदेरला के चयन के खिलाफ अपने संकाय सहयोगियों के बीच असंतोष पैदा करने, पोषित करने और असंतोष पैदा करने के लिए बैठक बुलाई।

इसलिए, डॉ. संजय मित्तल ने डॉ. सुब्रह्मण्यम सदेरला के चयन के खिलाफ अपने संकाय सहयोगी के बीच असंतोष पैदा करने का प्रयास करके कथित रूप से एक गंभीर कदाचार किया है, यह अच्छी तरह से जानते हुए कि डॉ. सुब्रह्मण्यम सदेरला अनुसूचित जाति श्रेणी से संबंधित हैं और उनके चयन को प्रश्न में बुलाने से डॉ. सुब्रह्मण्यम सदेरला का अत्यधिक अपमान होगा। इसलिए, उक्त डॉ. संजय मित्तल पर आईआईटी कानपुर संविधियों के क़ानून 13 (17) के तहत बनाए गए आचरण नियम (अनुसूची-बी) के नियम 3 (ए) और (बी) का उल्लंघन करने का आरोप लगाया गया है।"

3. चार्जशीट के साथ दो आरोपों के समर्थन में आरोपों का एक अलग और विस्तृत विवरण है, साथ ही उन दस्तावेज़ों और गवाहों की सूची भी है जिनके ज़रिए आरोपों को साबित करने का प्रस्ताव है।

4. याचिकाकर्ता ने 10.05.2018/12.05.2018 को आरोपों का जवाब देते हुए अपना लिखित बयान जमा किया। चार्ज-शीट जारी होने के चरण से पहले इस मामले में बहुत कुछ हुआ था, यानी जब फैक्ट फाइंडिंग कमेटी (संक्षेप में 'एफएफसी') द्वारा प्रारंभिक जांच की गई थी।

5. याचिकाकर्ता के लिखित बयान प्रस्तुत करने के बाद, आईआईटी के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स के अध्यक्ष ने 31 मई, 2018 को माननीय श्री न्यायमूर्ति सईद-उज़-ज़मान सिद्दीकी, जो इस न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश थे, को जांच अधिकारी नियुक्त किया। एक प्रोफेसर, कृपा शंकर को प्रस्तुतकर्ता अधिकारी नियुक्त किया गया और अनुशासनात्मक कार्यवाही जांच अधिकारी के समक्ष संयुक्त रूप से याचिकाकर्ता, प्रोफेसर राजीव शेखर, प्रोफेसर ईशान शर्मा और डॉ. सी.एस. उपाध्याय के विरुद्ध आयोजित करने का निर्देश दिया गया। जांच अधिकारी ने जांच की, जिसके बारे में याचिकाकर्ता का आरोप है कि यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन था, क्योंकि जांच अधिकारी को बचाव का उचित अवसर नहीं दिया गया। याचिकाकर्ता ने एक नए जांच अधिकारी की नियुक्ति का अनुरोध किया है। जांच अधिकारी ने अनुशासनात्मक प्राधिकरण को भेजे बिना ही, उनके बचाव पक्ष के प्रतिनिधि के तौर पर किसी अधिवक्ता को रखने के अनुरोध को खारिज कर दिया। याचिकाकर्ता के इस अनुरोध को भी खारिज कर दिया गया कि आईआईटी के किसी प्रोफेसर को उनके बचाव सहायक के तौर पर नियुक्त किया जाए।

6. याचिकाकर्ता का कहना है कि अपना बचाव पक्ष रखने के बाद, जांच अधिकारी ने आम तौर पर उनसे उन हालात और सबूतों के बारे में कोई सवाल नहीं पूछा जो उनके खिलाफ थे, ताकि उन्हें उन हालात के बारे में सफाई देने का मौका मिल सके जो उनके खिलाफ जा सकते थे।

7. जांच पूरी होने के बाद, जांच अधिकारी ने 17.08.2018 को एक रिपोर्ट सौंपी, जिसमें याचिकाकर्ता और दो अन्य लोगों को दोनों आरोपों के तहत दुर्व्यवहार का दोषी पाया गया। जांच रिपोर्ट 06.09.2018 को आईआईटी के बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स के सामने रखी गई। बोर्ड को याचिकाकर्ता के खिलाफ जाति-आधारित भेदभाव या नफरत के आरोप सही नहीं लगे, लेकिन फिर भी, दुर्व्यवहार के आरोप सही पाए गए।

8. बोर्ड ने अपनी बैठक दिनांक 06.09.2018 को यह संकल्प लिया कि याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट की एक प्रति उपलब्ध कराई जाएगी, जिसमें जांच अधिकारी की टिप्पणियों का प्रासंगिक भाग शामिल होगा और रिपोर्ट में उन टिप्पणियों को हटा दिया जाएगा जो आरोपों से संबंधित नहीं थीं। जांच रिपोर्ट प्राप्त होने पर, याचिकाकर्ता ने जांच रिपोर्ट में निहित निष्कर्षों के विरुद्ध दिनांक 03.10.2018, 06.10.2018 और 19.10.2018 को विस्तृत अभ्यावेदन प्रस्तुत किए, जिन्हें दिनांक 13.09.2018 के ज्ञापन के माध्यम से सूचित किया गया था। याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन, समिति के निष्कर्षों के साथ, बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स के समक्ष पुनः रखे गए, जिनकी विशेष बैठक 17.10.2018 को हुई थी। याचिकाकर्ता के अनुसार, बोर्ड ने एक निर्णय लिया। उन्होंने बिना किसी खुले मन के याचिकाकर्ता की दलीलों को खारिज कर दिया। बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स के 17.10.2018 के प्रस्ताव के आधार पर, उन्होंने याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोपों के दोनों बिंदुओं को सही पाया। बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स के डायरेक्टर और चेयरमैन ने याचिकाकर्ता को 09.11.2018 को एक मेमोरैंडम जारी किया। इसमें कहा गया कि बोर्ड का मानना था कि याचिकाकर्ता और दो अन्य प्रोफ़ेसरों पर लगे आरोप एक ही तरह के थे और उनके खिलाफ सबूतों से यह पक्के तौर पर साबित हो गया कि उन्होंने गलत व्यवहार किया था। उन्होंने आईआईटी के स्टैच्यूट 13 (17) के तहत बनाए गए कंडक्ट रूल्स के नियम 3-ए और 3-बी का उल्लंघन किया था।

9. इसके अलावा यह भी कहा गया कि बोर्ड ने याचिकाकर्ता को स्टैच्यू 13(9)(बी)(बी)(4) के तहत एक साल के लिए निचले पद या ग्रेड पर डिमोट करने की सज़ा देने का फ़ैसला किया था, जिसके बाद याचिकाकर्ता का मौजूदा पद और ग्रेड बहाल कर दिया जाएगा।

10. याचिकाकर्ता से 09.11.2018 के मेमोरैंडम के ज़रिए प्रस्तावित सज़ा के ख़िलाफ़ 27.11.2018 को या उससे पहले कारण बताने को कहा गया था। उसने 09.11.2018 के मेमो के जवाब में बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स को 27.11.2018 को एक प्रतिवेदन (रिप्रेज़ेंटेशन) सौंपा। याचिकाकर्ता का 27.11.2018 का प्रतिवेदन 18.01.2019 को हुई बोर्ड की बैठक में पेश किया गया। बोर्ड के अंतिम प्रस्ताव के अनुसार, 08.03.2019 के कार्यालय आदेश के ज़रिए ये सज़ाएँ दी गईं: दो साल की अवधि के लिए संचयी प्रभाव (क्युमुलेटिव इफ़ेक्ट) के साथ दो वेतन-वृद्धियाँ (इंक्रीमेंट) रोकना और याचिकाकर्ता को तीन साल की अवधि के लिए कोई भी प्रशासनिक ज़िम्मेदारी संभालने से रोकना।

11. 08.03.2019 के आदेश से असंतुष्ट होकर, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय में रिट-ए संख्या 5103/2019 दायर की। उक्त रिट याचिका को 11.05.2022 के आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया गया, जिसमें 08.03.2019 के उस आदेश को रद्द कर दिया गया जिसके तहत याचिकाकर्ता को दंडित किया गया था। साथ ही, आईआईटी के बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स को यह छूट दी गई कि वे जांच रिपोर्ट और उस पर याचिकाकर्ता के पक्ष/आपत्तियों पर विचार करने के चरण से याचिकाकर्ता के खिलाफ नए सिरे से कार्यवाही करें और सेंट्रल सिविल सर्विसेज (क्लासिफिकेशन, कंट्रोल एंड अपील) रूल्स, 1965 (संक्षेप में 'सीसीएस रूल्स') के नियम 15(4) के अनुसार तीन महीने के भीतर तर्कपूर्ण आदेश पारित करें। इस न्यायालय का आदेश 28.06.2022 को हुई आईआईटी के बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स की बैठक में रखा गया और उन्होंने यह निर्णय लिया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ साबित हुए कदाचार को देखते हुए, आईआईटी के स्टैच्यूट्स (नियमों) के स्टैच्यूट 13(9) के तहत हल्की सजा (माइनर पेनल्टी) दी जानी चाहिए। तदनुसार, उन्होंने स्टैच्यूट 13(9)(बी)(बी)(3) के तहत याचिकाकर्ता को दो साल की अवधि के लिए बिना संचयी प्रभाव के दो इंक्रीमेंट रोकने की सजा देने का निर्णय लिया। इसके अलावा, एक और सजा यह दी गई कि याचिकाकर्ता तीन साल की अवधि तक कोई प्रशासनिक जिम्मेदारी नहीं संभालेगा। बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स के 23.07.2022 के प्रस्ताव के अनुसार, आईआईटी के डायरेक्टर द्वारा 01.08.2022 को सजा देने का औपचारिक आदेश पारित किया गया।

12. डायरेक्टर द्वारा 01.08.2022 को पारित आदेश और बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स के 23.07.2022 के प्रस्ताव (अन्य चीज़ों के साथ-साथ) से असंतुष्ट होकर, याचिकाकर्ता ने यह रिट याचिका दायर की है।

13. 19.04.2023 को मोशन का नोटिस जारी किया गया था। बाद में, प्रतिवादी संख्या 2, 3 और 4 की ओर से एक जवाबी हलफनामा और याचिकाकर्ता की ओर से एक प्रत्युत्तर दाखिल किया गया। पक्षों द्वारा दस्तावेजों के आदान-प्रदान के बाद हलफ़नामों के आधार पर रिट याचिका सुनवाई के लिए स्वीकार कर ली गई और सुनवाई तुरंत शुरू हो गई। फ़ैसला सुरक्षित रख लिया गया।

14. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे (जिनकी सहायता श्री अवनीश त्रिपाठी ने की), प्रतिवादी संख्या 2 से 4 की ओर से पेश अधिवक्ता श्री रोहन गुप्ता और भारत सरकार की ओर से पेश सेंट्रल गवर्नमेंट काउंसिल श्री सभाजीत सिंह की बातें सुनी गईं।

15. याचिकाकर्ता की ओर से पेश हुए वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे (जिनकी मदद अधिवक्ता श्री अवनीश त्रिपाठी कर रहे थे) का तर्क है कि आरोप संख्या 1 को देखने से ही पता चलता है कि यह सुनी-सुनाई बातों पर आधारित है। शिकायतकर्ता ने 04.01.2018 को हुई गेट-टुगेदर में वह बातचीत नहीं सुनी थी, और न ही याचिकाकर्ता की वे अपमानजनक टिप्पणियाँ सुनी थीं जिनमें कहा गया था कि संस्थान में हाल ही में शामिल हुए नए फैकल्टी के कारण विभाग का स्तर गिर रहा है। इसके बाद वे कहते हैं कि आरोप संख्या 2 से जुड़ी पूरी कार्यवाही गलतफहमियों पर आधारित है। डॉ. अभिजीत कुशारी (पीडब्लू-8), जो 10.01.2018 को एयरोस्पेस इंजीनियरिंग विभाग के कार्यवाहक प्रमुख थे और संस्थान की ओर से एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी थे, उन्होंने याचिकाकर्ता

पर लगाए गए आरोपों का खंडन किया। संस्थान का कोई अन्य गवाह बैठक में मौजूद नहीं था। यह तर्क दिया गया है कि संस्थान ने आरोप संख्या 2 के आरोपों के समर्थन में ज़रा भी सबूत पेश नहीं किया। श्री खरे ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता पर लगाए गए आरोपों को अगर उनकी असल शक्ल में सच भी मान लिया जाए, तो भी किसी भी तरह से उन्हें कदाचार नहीं माना जा सकता।

16. अगला तर्क यह है कि बोर्ड ने याचिकाकर्ता को तीन साल तक कोई प्रशासनिक ज़िम्मेदारी न देने की सज़ा दी है, जो आईआईटी के कानून के तहत बताई गई, तय की गई या अनुमति प्राप्त सज़ाओं में से नहीं है, और न ही यह कानून के किसी अन्य प्रावधान से जुड़ी है जो लागू हो सकता है। वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता को तीन साल की अवधि के लिए कोई भी प्रशासनिक ज़िम्मेदारी संभालने से रोकने के पीछे असली मकसद उसके करियर और प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचाना था। यह खास तौर पर याचिकाकर्ता के खिलाफ था, जिसे एक आईआईटी का डायरेक्टर चुना और नियुक्त किया गया था, जिसके लिए वह योग्य और उपयुक्त था। यह तर्क दिया गया है कि यह अच्छी तरह जानते हुए कि याचिकाकर्ता अपने पे-स्केल में सबसे ऊपर है और दो इंक्रीमेंट रोकने से उस पर आर्थिक रूप से कोई असर नहीं पड़ेगा, सज़ा लगाने का असली मकसद उसके करियर पर दाग लगाना था। यह भी तर्क दिया गया है कि इस न्यायालय के 11.05.2022 के आदेश (रिट-ए संख्या 5103/2019) का उल्लंघन किया गया है, क्योंकि बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स ने याचिकाकर्ता के पक्ष और जांच अधिकारी के निष्कर्षों पर मुद्दों और सबूतों को ध्यान में रखते हुए विचार नहीं किया। बल्कि, उन्होंने पहले लगाई गई सज़ा को ही बरकरार रखा।

17. दूसरी ओर, आईआईटी की तरफ़ से पेश हुए अधिवक्ता श्री रोहन गुप्ता ने कई शुरुआती आपत्तियाँ उठाई हैं। सबसे मुख्य बात यह है कि चूँकि शिकायतकर्ता डॉ. सुब्रह्मण्यम सडेरला को आईआईटी के तीन फैकल्टी सदस्यों ने परेशान किया है, इसलिए अंतिम सुनवाई से पहले उनकी बात सुनी जानी चाहिए। श्री गुप्ता के अनुसार, डॉ. सडेरला को इस मामले में पक्षकार नहीं बनाया गया है, जिससे ज़रूरी पक्षकार को शामिल न करने के कारण यह रिट याचिका ठीक से तैयार नहीं हो पाई है। जिस आदेश को चुनौती दी गई है, वह 23.07.2023 के बोर्ड के फ़ैसले की जानकारी देने वाला आदेश है और इस फ़ैसले को वैकल्पिक उपाय का इस्तेमाल किए बिना, सात महीने से ज़्यादा की बिना वजह देरी के साथ चुनौती दी गई है।

18. आगे यह तर्क दिया गया है कि पहले रिट याचिका पर सीधे विचार किया गया था, इसका मतलब यह नहीं है कि याचिकाकर्ता अब वैकल्पिक उपाय को नज़रअंदाज़ कर सकता है, क्योंकि, जब रिट-ए संख्या 5103/2019 दायर की गई थी, तो एक आधार प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन था। अब, मामले की दोबारा सुनवाई (रिमांड) के बाद, याचिकाकर्ता का पक्ष सुना गया है और इसलिए, उसे कानूनी वैकल्पिक उपाय का इस्तेमाल करना होगा। मामले के गुण-दोष पर, आईआईटी के अधिवक्ता ने बताया कि एयरोस्पेस इंजीनियरिंग विभाग के असिस्टेंट प्रोफेसर डॉ. सुब्रमण्यम सडेरला से एक शिकायत मिली थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि उन्हें कुछ फैकल्टी सदस्यों, जिनमें याचिकाकर्ता भी शामिल था, द्वारा परेशान किया जा रहा था। शिकायत मिलने पर, 27.01.2018 को एक बाहरी तथ्य-खोज समिति बनाई गई थी। बाहरी तथ्य-खोज समिति ने विभिन्न फैकल्टी सदस्यों से

बातचीत करके मामले की जांच की। उन्होंने 08.03.2019 को अपनी रिपोर्ट सौंपी, जिसमें याचिकाकर्ता के साथ-साथ अन्य फैकल्टी सदस्यों, यानी प्रोफेसर राजीव शेखर, प्रोफेसर ईशान शर्मा और डॉ. सी.एस. उपाध्याय को प्रथम दृष्टया दुर्व्यवहार का दोषी पाया गया। इसके बाद याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई शुरू की गई और एक रिटायर्ड उच्च न्यायालय न्यायमूर्ति को जांच अधिकारी नियुक्त किया गया। याचिकाकर्ता को सुनवाई का पूरा मौका दिया गया और जांच रिपोर्ट सौंपी गई। याचिकाकर्ता को सज़ा देने के लिए बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स द्वारा 23.07.2022 को पारित पुराने प्रस्ताव को रिट-ए संख्या 5103/2019 में चुनौती दी गई थी और उसे रद्द कर दिया गया था। इस आधार पर कि जांच रिपोर्ट और उस रिपोर्ट के खिलाफ याचिकाकर्ता के पक्ष पर विचार नहीं किया गया था और कोई तर्कपूर्ण निर्णय नहीं लिया गया था, पूरे मामले की दोबारा जांच की गई और विवादित आदेश पारित किया गया।

19. मिस्टर रोहन गुप्ता ने इस न्यायालय के सामने सबूतों के ज़रिए यह दिखाने की पूरी कोशिश की है कि याचिकाकर्ता ने अपने साथी डॉ. सुब्रह्मण्यम सदेरला के बारे में क्या कहा था और यह कैसे गलत व्यवहार की श्रेणी में आता है। याचिकाकर्ता से प्रशासनिक ज़िम्मेदारियाँ छीनने की सज़ा के बारे में मिस्टर गुप्ता का कहना है कि यह पूरी तरह से एक प्रशासनिक और एहतियाती कदम है। हालाँकि नियमों में इसका साफ़ तौर पर ज़िक्र नहीं है, लेकिन आईआईटी कैंपस में आम अनुशासन बनाए रखने और किसी अन्य कर्मचारी द्वारा भविष्य में इसी तरह की गलत हरकत को रोकने के लिए यह सज़ा देना ज़रूरी था।

20. हमने दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा दी गई दलीलों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है और रिकॉर्ड का अध्ययन किया है।

21. याचिकाकर्ता को एक चार्ज-शीट दी गई, जिसमें आरोप के दो बिंदु थे; उसने अपने बचाव में लिखित बयान देकर दोनों आरोपों से इनकार किया। प्रतिवादियों ने जांच अधिकारी के सामने दस्तावेज़ी और मौखिक सबूत पेश करके आरोप साबित किए। जांच पूरी होने के बाद, जांच रिपोर्ट की एक कॉपी याचिकाकर्ता को दी गई और उससे जांच अधिकारी के निष्कर्षों के खिलाफ अपना पक्ष रखने को कहा गया, ताकि अनुशासनात्मक प्राधिकरण - यानी आईआईटी के बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स - कोई फैसला ले सकें। अगर बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स ने जांच अधिकारी के निष्कर्षों और उनके खिलाफ याचिकाकर्ता के पक्ष पर ठीक से विचार नहीं किया था, तो इस न्यायालय ने रिट-ए संख्या 5103/2019 में 11.05.2022 को दिए गए फैसले और आदेश के ज़रिए, पहले 08.03.2019 को जारी आदेश को रद्द करके उस कमी को दूर कर दिया। आईआईटी को जांच रिपोर्ट और उसके खिलाफ याचिकाकर्ता के पक्ष वाले चरण से नए सिरे से कार्रवाई करने की छूट दी गई थी। अब, बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स ने मामले पर विचार किया है; उन्होंने जांच अधिकारी के निष्कर्षों और याचिकाकर्ता के पक्ष को देखा है और याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट के निष्कर्षों के खिलाफ अपनी बात रखने का पूरा मौका दिया है, जिस पर उन्होंने विचार किया है। इसलिए, असल में, ऐसी कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता नहीं है जो मामले की जड़ तक जाती हो और बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स द्वारा दर्ज किए गए दोषी होने के निष्कर्ष को गलत ठहराती हो।

अनुवादित

22. इसका मतलब यह नहीं है कि जांच के दौरान प्रक्रिया से जुड़ी कोई गड़बड़ी नहीं हुई। जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को अधिवक्ता के ज़रिए अपना पक्ष रखने की इजाज़त न देकर गलती की, जबकि खुद जांच अधिकारी उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायमूर्ति और कानून की जानकारी रखने वाले व्यक्ति थे। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने **रमेश चंद्र बनाम दिल्ली यूनिवर्सिटी और अन्य, (2015) 5 एससीसी 549** मामले में

"70. सिद्धांत तय किया है। रमेश चंद्र (उपरोक्त) मामले में यह कहा गया है: "70. इस न्यायालय द्वारा तय किए गए कानून को देखते हुए, हमारी राय है कि अगर कोई व्यक्ति जो अधिवक्ता है या रहा है (जिसमें रिटायर हो चुके माननीय न्यायमूर्ति भी शामिल हैं) उसे किसी कर्मचारी के खिलाफ शुरू की गई जांच में जांच अधिकारी के तौर पर नियुक्त किया जाता है, तो आरोपी कर्मचारी को अधिवक्ता की मदद न देना अनुचित होगा।"

23. इस न्यायालय का मानना है कि भले ही जांच कम से कम इस बिंदु पर (और अन्य बिंदुओं पर भी) निष्पक्ष नहीं थी, लेकिन अब जांच की निष्पक्षता की दोबारा जांच नहीं की जा सकती, क्योंकि पिछली रिट याचिका, यानी रिट-ए संख्या 5103/2019 में इसकी जांच या इस पर कोई फैसला नहीं किया गया था; उस याचिका को बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स को मामला वापस भेजने (रीमांड) के आदेश के साथ मंज़ूरी दी गई थी। पिछली रिट याचिका के आदेशों में जांच रिपोर्ट को रद्द नहीं किया गया था और न ही इसे प्रक्रिया के लिहाज़ से अनुचित या किसी भी तरह से दोषपूर्ण माना गया था। मामले को बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स के पास जांच रिपोर्ट और उसके ख़िलाफ़ याचिकाकर्ता के पक्ष (रिप्रेज़ेंटेशन) पर विचार करने के लिए वापस भेजा गया था; न्यायालय का मानना है कि पिछली रिट याचिका में चुनौती दिए गए सज़ा के आदेश को पारित करते समय बोर्ड ने इन पर ठीक से विचार नहीं किया था। इसलिए, इस रिट याचिका में जांच की वैधता पर ज़्यादा विचार नहीं किया जा सकता। पक्षों के बीच यह बहस हुई है कि आरोप इतने अस्पष्ट हैं कि बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स ने बिना किसी ठोस आरोप के ही सज़ा दे दी। हम ऐसा नहीं मानते।

24. बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स ने आरोपों को सही पाया है और यह सवाल कि क्या यह सर्विस से जुड़ी कोई गलत हरकत थी, बहुत अहम नहीं है। यह निश्चित रूप से अनुशासन के मूल सिद्धांतों के खिलाफ था जब याचिकाकर्ता ने आईआईटी के उस फ़ैसले पर सवाल उठाया जिसमें उसने एयरोस्पेस इंजीनियरिंग विभाग में कुछ लोगों को फैकल्टी सदस्य के तौर पर भर्ती किया था। किसी कर्मचारी को चुनने और नियुक्त करने के एम्प्लॉयर के फ़ैसले पर कोई दूसरा कर्मचारी सवाल नहीं उठा सकता। बेशक, किसी एकेडमिक संस्थान में साथी शिक्षक किसी टीचर की काबिलियत पर अपने घरों में बैठकर चर्चा कर सकते हैं, लेकिन आईआईटी या एयरोस्पेस इंजीनियरिंग विभाग के परिसर में आयोजित किसी गेट-टुगेदर में यह चर्चा या आलोचना का विषय नहीं हो सकता। एम्प्लॉयर द्वारा कर्मचारियों के चयन की खूबियों पर चर्चा करने के लिए अन्य फैकल्टी सदस्यों की बैठक निश्चित रूप से नहीं बुलाई जा सकती थी।

25. किसी यूनिवर्सिटी या आईआईटी जैसे एकेडमिक संस्थान में पढ़ाने वाले प्रोफ़ेसर पर भले ही अनुशासन के बहुत कड़े नियम लागू न हों, लेकिन उन्हें उस प्रोटोकॉल का ध्यान रखना होता है जो दूसरों के साथ उनके व्यवहार, बातचीत और आचरण को तय करता है। वे अपने छात्रों के बारे में जो कह सकते हैं, शायद वह अपने साथियों के बारे में नहीं कह सकते; और निश्चित रूप से अपने वरिष्ठ अधिकारियों, एम्प्लॉयर और उनके फैसलों के बारे में तो बिल्कुल नहीं। यहाँ लगाए गए आरोपों का विषय प्रोटोकॉल के उल्लंघन का एक आम उदाहरण है। याचिकाकर्ता के व्यवहार के बारे में प्रतिवादियों द्वारा विचार किए गए सबूतों को देखते हुए - और उन लोगों के व्यवहार पर कोई टिप्पणी न करते हुए जो इस मुकदमे का हिस्सा नहीं हैं - हमारा मानना है कि यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें याचिकाकर्ता ने किसी भी तरह की गलत हरकत न की हो। यह निश्चित रूप से ऐसा मामला नहीं है जिसमें याचिकाकर्ता के खिलाफ साबित हुए दो आरोपों को 'कोई आरोप ही नहीं' कहा जा सके, और इसलिए, उन्हें सर्विस के दौरान गलत आचरण (सर्विस मिसकंडक्ट) के तौर पर दंडनीय न माना जाए।

26. सिर्फ़ एक बात पर विचार करने की ज़रूरत है, और वह है याचिकाकर्ता पर लगाई गई पेनल्टी। लगाई गई दो पेनल्टी ये हैं: दो साल की अवधि के लिए बिना संचयी प्रभाव के दो इंक्रीमेंट रोकना, और दूसरी, याचिकाकर्ता को तीन साल की अवधि के लिए किसी भी प्रशासनिक ज़िम्मेदारी को संभालने से रोकना। आईआईटी के नियमों के नियम 13(9) में यह लिखा है:

"13. स्थायी कर्मचारियों की सेवा की शर्तें और नियम.-
संस्थान के स्थायी कर्मचारी निम्नलिखित नियमों और शर्तों के अधीन होंगे: (9) निदेशक, संस्थान में नियुक्त किसी कर्मचारी को निलंबित कर सकते हैं:

(a) जहाँ उसके खिलाफ़ अनुशासनात्मक कार्रवाई करने पर विचार किया जा रहा हो या वह कार्रवाई लंबित हो, या

(b) जहाँ किसी आपराधिक अपराध के संबंध में उसके खिलाफ़ कोई मामला जांच या मुकदमे के अधीन हो।
बशर्ते कि यदि कोई कर्मचारी 48 घंटे से अधिक समय तक हिरासत में रखा जाता है - चाहे वह किसी आपराधिक अपराध के संबंध में हो या निवारक हिरासत का प्रावधान करने वाले किसी मौजूदा कानून के तहत - तो ऐसे कर्मचारी को उस तारीख से निदेशक द्वारा निलंबित माना जाएगा जिस तारीख को उसे हिरासत में लिया गया था। सस्पेंशन की अवधि के दौरान,
स्टाफ सदस्य निम्नलिखित भुगतान पाने का हकदार होगा, यानी (a) गुज़ारा भत्ता उस राशि के बराबर जो स्टाफ सदस्य को तब मिलती जब वह आधी औसत वेतन या आधी वेतन पर छुट्टी पर होता, और इसके अलावा, महंगाई भत्ता, यदि ऐसी छुट्टी के वेतन के आधार पर देय हो:
बशर्ते कि जहां सस्पेंशन की अवधि छह महीने से अधिक हो, वहां डायरेक्टर को पहले छह महीने की अवधि के बाद की किसी भी अवधि के लिए गुज़ारे भत्ते की राशि में बदलाव करने का अधिकार होगा, जो इस प्रकार है:

(i) गुज़ारे भत्ते की राशि को एक उपयुक्त राशि से बढ़ाया जा सकता है जो पहले छह महीनों की अवधि के दौरान देय गुज़ारे भत्ते के 50% से अधिक न हो, यदि डायरेक्टर की राय में सस्पेंशन की अवधि किन कारणों से लंबी हो गई है। लिखित रूप में दर्ज किया जाना चाहिए, और यह सीधे तौर पर कर्मचारी की वजह से नहीं होना चाहिए;

(ii) अगर डायरेक्टर की राय में, सस्पेंशन की अवधि कर्मचारी की वजह से (जिसे लिखित रूप में दर्ज किया जाएगा) लंबी हो गई है, तो गुज़ारा भत्ता की राशि को उचित मात्रा में कम किया जा सकता है, लेकिन यह कमी पहले छह महीनों के दौरान मिलने वाले गुज़ारा भत्ते के 50% से ज़्यादा नहीं होनी चाहिए;

(iii) महंगाई भत्ते की दर, ऊपर दिए गए सब-क्लॉज़ (i) और (ii) के तहत मिलने वाले गुज़ारा भत्ते की बढ़ी हुई या (जैसा भी मामला हो) कम की गई राशि पर आधारित होगी।

(b) कोई अन्य मुआवज़ा भत्ता जो समय-समय पर उस वेतन के आधार पर मिलता हो जो कर्मचारी को सस्पेंशन की तारीख पर मिल रहा था, बशर्ते ऐसे भत्ते पाने के लिए तय की गई अन्य शर्तें पूरी हों।

हालाँकि, तब तक कोई भुगतान नहीं किया जाएगा जब तक कि कर्मचारी यह प्रमाण-पत्र न दे दे कि वह किसी अन्य नौकरी, व्यवसाय, पेशे या काम-धंधे में नहीं लगा है।

स्टाफ के किसी भी सदस्य पर उचित और ठोस कारणों से तथा आगे बताए गए तरीके से निम्नलिखित दंड लगाए जा सकते हैं:-

(i) निंदा;
(ii) वेतन वृद्धि या पदोन्नति रोकना;
(iii) लापरवाही या आदेशों के उल्लंघन के कारण संस्थान को हुए किसी भी आर्थिक नुकसान की पूरी या आंशिक वसूली,
(iv) निचली सर्विस, ग्रेड या पोस्ट पर या निचले टाइम-स्केल पर, या टाइम-स्केल में निचले स्टेज पर भेजना;
(v) अनिवार्य रिटायरमेंट;
(vi) सर्विस से हटाना, जो संस्थान में भविष्य की नौकरी के लिए अयोग्यता नहीं मानी जाएगी;
(vii) सर्विस से बर्खास्त करना, जो आमतौर पर संस्थान में भविष्य की नौकरी के लिए अयोग्यता मानी जाएगी।

ऊपर (iv) से (vii) में बताई गई कोई भी सज़ा किसी भी स्टाफ़ सदस्य पर तब तक नहीं लगाई जाएगी जब तक कि उसे नियुक्त करने वाले अधिकारी के अधीन कोई अधिकारी ऐसा आदेश न दे, और ऐसा आदेश तभी दिया जाएगा जब जांच पूरी हो चुकी हो और स्टाफ़ सदस्य को उसके ख़िलाफ़ की जाने वाली कार्रवाई के संबंध में अपना पक्ष रखने का उचित मौका दिया गया हो।

किसी भी कर्मचारी पर उपरोक्त (i) से (iii) में निर्दिष्ट दंडों में से कोई भी दंड लगाने का कोई आदेश उस प्राधिकारी द्वारा पारित नहीं किया जाएगा, जो उस प्राधिकारी के अधीन हो जिसके द्वारा उसे नियुक्त किया

गया था, और जब तक संबंधित कर्मचारी को नियुक्ति प्राधिकारी के समक्ष अभ्यावेदन करने का अवसर नहीं दिया गया हो।

उपरोक्त प्रावधानों के बावजूद, निम्नलिखित मामलों में उपरोक्त प्रक्रिया का पालन करना आवश्यक नहीं होगा:

(a) जहां किसी कर्मचारी को आपराधिक आरोप में दोषी ठहराए जाने के आधार पर बर्खास्त या हटाया जाता है या पद में कमी की जाती है;

(b) जहां बर्खास्त या हटाने के लिए अधिकृत प्राधिकारी या उसका पद कम करने का फ़ैसला करने वाली अथॉरिटी को यह यकीन हो जाए कि किसी वजह से (जिसे उस अथॉरिटी को लिखित रूप में दर्ज करना होगा) उस व्यक्ति को कारण बताने का मौका देना उचित रूप से संभव नहीं है; या

(c) जहाँ विज़िटर को यह यकीन हो जाए कि राज्य की सुरक्षा के हित में उस व्यक्ति को ऐसा मौका देना ठीक नहीं है।

अगर कोई सवाल उठता है कि क्या ऊपर दिए गए क्लॉज़ (बी) के तहत किसी व्यक्ति को कारण बताने का मौका देना उचित रूप से संभव है, तो ऐसे व्यक्ति को नौकरी से निकालने, हटाने या उसका पद कम करने (जैसा भी मामला हो) का अधिकार रखने वाली अथॉरिटी का इस पर फ़ैसला अंतिम होगा।"

27. स्टैच्यूट 13(9)(बी) के क्लॉज़ (i) से (vii) को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि आईआईटी के किसी कर्मचारी पर कौन-कौन सी पेनल्टी लगाई जा सकती हैं। आईआईटी के किसी स्टाफ सदस्य को एक निश्चित या अनिश्चित समय के लिए कोई भी प्रशासनिक ज़िम्मेदारी संभालने के अधिकार से वंचित करने की पेनल्टी, स्टैच्यूट 13(9)(बी) के तहत सोची गई पेनल्टी में से एक नहीं है। इसलिए, साफ़ तौर पर, प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता को तीन साल की अवधि के लिए कोई भी प्रशासनिक ज़िम्मेदारी संभालने से रोकने की पेनल्टी देकर कानून की स्पष्ट गलती की है। आईआईटी के अधिवक्ता का यह तर्क पूरी तरह से अस्वीकार्य है कि प्रशासनिक पदों पर नियुक्ति से वंचित करना पूरी तरह से आईआईटी द्वारा उठाया गया एक प्रशासनिक या एहतियाती कदम है, न कि असल में कोई पेनल्टी। विवादित आदेश का लहज़ा दिखाता है कि याचिकाकर्ता को तीन साल की अवधि के लिए प्रशासनिक ज़िम्मेदारी संभालने से वंचित करने की पेनल्टी, जो विवादित आदेश में शामिल है, उन दो पेनल्टी में से एक है। अनुशासनात्मक कार्यवाही के परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता पर यह दंड लगाया गया था। यह आईआईटी द्वारा उठाया गया कोई प्रशासनिक या निवारक कदम नहीं है। कानून के तहत आईआईटी के पास उक्त दंड लगाने का अधिकार या शक्ति नहीं थी, इसलिए हम इसे स्पष्ट रूप से गैर-कानूनी मानते हैं।

28. इस मामले को खत्म करने से पहले, एक और पहलू है जिस पर थोड़ी बात करने की ज़रूरत है। दूसरी सज़ा, जो दी गई है, वह इंक्रीमेंट (वेतन वृद्धि) रोकने की है। स्टैच्यूट 13(9)(बी) साफ़ तौर पर बताता है कि जहाँ क्लॉज़ (iv) से (vii) में बताई गई सज़ाएँ जाँच के बाद और स्टाफ़ मेंबर को अपने ख़िलाफ़ प्रस्तावित

कार्रवाई के बारे में कारण बताने का उचित मौका देने के बाद दी जा सकती हैं, वहीं स्टैच्यूट 13(9)(बी) के क्लॉज़ (i) से (iii) में बताई गई सज़ाएँ अपॉइंटिंग अथॉरिटी के सामने अपना पक्ष रखने का समय देने के बाद दी जा सकती हैं। यहाँ दी गई सज़ा साफ़ तौर पर आईआईटी के स्टैच्यूट 13(9)(बी) के क्लॉज़ (ii) के तहत आती है। इसलिए, याचिकाकर्ता के ख़िलाफ़ की गई जाँच में कोई कमी नहीं निकाली जा सकती, क्योंकि यह सज़ा सिर्फ़ याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस देकर और अपॉइंटिंग अथॉरिटी द्वारा उसके जवाब पर विचार करने के बाद दी जा सकती थी।

29. इस प्रकार, जहाँ तक पहली सज़ा का सवाल है, याचिकाकर्ता प्रक्रियागत अनुचितता के बारे में कोई भी जायज़ आपत्ति नहीं उठा सकता है।

30. परिणाम में, यह रिट याचिका **सफल** होती है और **आंशिक रूप से अनुमति** दी जाती है। आईआईटी के निदेशक द्वारा पारित दिनांक 01.08.2022 का आक्षेपित आदेश और आईआईटी के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स का दिनांक 23.07.2022 का संकल्प, जहां तक याचिकाकर्ता को तीन साल की अवधि के लिए किसी भी प्रशासनिक जिम्मेदारी को संभालने से रोकने का जुर्माना लगाया जाता है, इसे रद्द कर दिया जाता है। याचिकाकर्ता पर किसी भी तरह की प्रशासनिक जिम्मेदारी निभाने पर कोई प्रतिबंध नहीं होगा। संचयी प्रभाव के बिना दो वेतन वृद्धि रोकने का जुर्माना **बरकरार** रखा गया है।

31. खर्च के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 711

मूल अधिकारिता – सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार

रिट-A संख्या 6273 सन् 2025

प्रिन्स यादव **... याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **... प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: अभिषेक सिंह, शशि भूषण राय

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता: मुख्य स्थायी अधिवक्ता

सेवा विधि – अनुकम्पा नियुक्ति – उत्तराधिकार प्रमाण-पत्र – प्रतिस्पर्धी दावों की स्थिति में अपेक्षा – दो विवाहों से उत्पन्न सन्तानों के दावे की वैधता।

अभिनिर्धारित: उत्तराधिकार प्रमाण-पत्र अनुकम्पा नियुक्ति के समस्त प्रकरणों में अनिवार्य रूप से अपेक्षित नहीं है। जहाँ प्रथम एवं द्वितीय पत्नी दोनों के उत्तराधिकारियों द्वारा प्रतिस्पर्धी दावे प्रस्तुत किए जाते हैं, वहाँ शून्य/अवैध विवाह से भी उत्पन्न सन्तानें हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 16 के अंतर्गत वैध मानी जाती हैं और अनुकम्पा नियुक्ति पर विचार किए जाने का समान अधिकार रखती हैं। प्राधिकारी ऐसी सन्तानों को अपवर्जित नहीं कर सकता। याचिकाकर्ता को उत्तराधिकार प्रमाण-पत्र प्राप्त करने का निर्देश देने वाला आक्षेपित आदेश विखण्डित। प्रकरण सक्षम प्राधिकारी को प्रेषित किया गया, जिससे वह उ.प्र. मृत्युपरान्त सेवा नियमावली, 1974 के नियम 17 के अंतर्गत प्रतिस्पर्धी दावों का आकलन करे और सर्वाधिक योग्य आश्रित को नियुक्ति प्रदान करे।

रिट याचिका स्वीकृत।

(माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार द्वारा उद्घोषित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शशि भूषण राय तथा विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्रस्तुत इस याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने दिनांक 03.01.2025 के आदेश को चुनौती दी है जिसके द्वारा उसे अनुकंपा नियुक्ति के लिए वैध दावा स्थापित करने हेतु उत्तराधिकार प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का प्रस्तुतीकरण है कि अनुकंपा नियुक्ति के मामले में उत्तराधिकार प्रमाणपत्र अनिवार्य रूप से अपेक्षित नहीं है जैसा कि इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा ***शकील खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं तीन अन्य रिट ए संख्या 7454/2020*** में दिनांक 12.10.2020 को निस्तारित निर्णय में अभिनिर्धारित किया गया है।

4. उपरोक्त प्रस्तुतीकरणों का उत्तर देते हुए, विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री राहुल मालवीय का प्रस्तुतीकरण है कि यह निर्णय केवल उन मामलों में लागू होगा जहां विवादरहित मामला हो और उन मामलों में नहीं जहां प्रतिस्पर्धी दावे स्थापित किए गए हों। यह तर्क दिया गया है कि वर्तमान मामले में दिनांक 03.01.2025 के पत्र में निहित उल्लेखों से ही यह अत्यंत स्पष्ट है कि मृतक की दो पत्नियां थीं और प्रथम पत्नी के साथ विवाह से उत्पन्न संतानें हैं तथा द्वितीय पत्नी के साथ विवाह से भी संतानें हैं। इन परिस्थितियों में, इसलिए, जब दोनों पत्नियों के उत्तराधिकारियों द्वारा प्रतिस्पर्धी दावे स्थापित किए गए हैं, तो उत्तराधिकार प्रमाणपत्र होना आवश्यक रूप से अपेक्षित होगा क्योंकि यह अनुकंपा नियुक्ति प्रस्तावित किए जाने के लिए उत्तराधिकारियों में से एक के दावे को विधिमान्य करेगा तथा अन्यों के दावों को खारिज करेगा।

5. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात् तथा अभिलेखों का अवलोकन करने के पश्चात् मैं पाता हूं कि दोनों ही संतानें मृतक तथा प्रथम पत्नी गुलाबी देवी और द्वितीय पत्नी सावित्री देवी के मध्य विवाह से उत्पन्न हुई हैं और इसलिए वे अंततः मृतक कर्मचारी की संतानें हैं और इस विधिक स्थिति पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि अवैध विवाह या शून्य विवाह से उत्पन्न संतानें भी उत्तराधिकार का अधिकार रखती हैं। इस पहलू को इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा **शकील खान (उपरोक्त)** के मामले में अपने निर्णय में निम्नलिखित रीति से व्यवहृत किया गया है:

"याचिकाकर्ता प्रथम पत्नी के साथ विवाह से उत्पन्न हुआ था। निर्विवाद रूप से, मृतक की दो पत्नियां थीं। द्वितीय पत्नी के साथ विवाह से उत्पन्न कर्मचारी की संतानें भी सेवा में मृत्यु के अंतर्गत उसी परिवार के सदस्यों के रूप में याचिकाकर्ता के समान आधार पर विचारित किए जाने के दायी हैं, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा भारत संघ बनाम वी.आर. त्रिपाठी (2019) 14 एससीसी 646 में प्रतिपादित विधि के दृष्टिगत। विवाद दोनों पत्नियों की संतानों के मध्य है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने मृतक कर्मचारी के द्वितीय विवाह से उत्पन्न संतानों के अधिकारों पर विचार किया और निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया:

16. मुद्दा मूलतः यह है कि क्या किसी नियोक्ता के लिए, जो संविधान के भाग III के अंतर्गत आता है, अनुकंपा नियुक्ति के लाभ से इनकार करना खुला है जो अन्य वैध संतानों के लिए उपलब्ध है। निःसंदेह,

अनुकंपा नियुक्ति की नीति तैयार करते समय, राज्य उन शर्तों को निर्धारित कर सकता है जिन पर इसे प्रदान किया जा सकता है। तथापि, योजना या नियम बनाते समय, राज्य के लिए ऐसी शर्त निर्धारित करना खुला नहीं है जो संविधान के अनुच्छेद 14 के असंगत हो। अनुकंपा नियुक्ति का उद्देश्य मृतक कर्मचारी के परिवार में निर्धनता और दरिद्रता को रोकना है। परिपत्र का प्रभाव यह है कि मृतक कर्मचारी के द्वितीय विवाह से उत्पन्न संतान जिस निर्धनता का सामना कर सकती है, उसके बावजूद, अनुकंपा नियुक्ति से इनकार किया जाना है जब तक कि द्वितीय विवाह प्रशासन की अनुमति से संविदाबद्ध नहीं किया गया हो। एक बार हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 16 पूर्ववर्ती विवाह विद्यमान रहते हुए किए गए विवाह से उत्पन्न संतान को वैध मानती है, तो राज्य के लिए, अनुच्छेद 14 के संगत, ऐसी संतान को अनुकंपा नियुक्ति का लाभ मांगने से बहिष्कृत करना खुला नहीं होगा। बहिष्करण की ऐसी शर्त मनमानी और विधि से परे है।

17. **यदि संकुचित वर्गीकरण परीक्षण भी अपनाया जाता है, तो रेलवे बोर्ड का परिपत्र वैध संतानों के एक वर्ग के मध्य दो श्रेणियां सृजित करता है। यद्यपि विधि ने द्वितीय विवाह से उत्पन्न संतान को वैध माना है, मृतक कर्मचारी के प्रथम विवाह से उत्पन्न संतान को ही अनुकंपा नियुक्ति के लाभ का हकदार बनाया गया है। अनुकंपा नियुक्ति के प्रदान करने के अंतर्निहित उपकारी उद्देश्य, जो मृतक कर्मचारी के परिवार में निर्धनता और दरिद्रता को रोकना है, यह अपेक्षित करता है कि कोई भी अधिनियम या शर्त जो अधिरोपित की जाती है वह उस उद्देश्य से, जिसे प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है, युक्तियुक्त सम्बद्धता रखती हो या रख सकती हो। विद्वान अपर सॉलिसिटर जनरल ने तर्क दिया है कि बहुविवाह को हतोत्साहित करने की अपनी नीति के भाग के रूप में, राज्य के लिए अनुकंपा नियुक्ति के लाभ को केवल प्रथम विवाह के पति या पत्नी और संतानों तक सीमित करना और पश्चातवर्ती विवाह के पति या पत्नी और संतानों को इससे इनकार करना खुला है। हम यहां द्वितीय विवाह से उत्पन्न संतानों के बहिष्करण से संबंधित हैं। विधि के प्रवर्तन द्वारा वैध माने गए लाभार्थियों के वर्ग को बहिष्कृत करके, अधिरोपित शर्त प्राप्त किए जाने के प्रयास किए गए उद्देश्य के असमानुपातिक है। अनुकंपा नियुक्ति की योजना के प्रयोजन और उद्देश्य को देखते हुए, एक बार जब विधि ने ऐसी संतानों को वैध माना है, तो उन्हें अनुकंपा नियुक्ति के लिए विचारित किए जाने से बहिष्कृत करना अस्वीकार्य होगा। संतानें अपने माता-पिता का चयन नहीं करती हैं। अनुकंपा नियुक्ति से इनकार करना यद्यपि विधि शून्य विवाह की संतान को वैध मानती है, उनकी गरिमा के प्रति गहनतः आक्रामक है और भेदभाव के विरुद्ध संवैधानिक प्रत्याभूति के प्रति आक्रामक है।**

प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 12.6.2020 का आदेश एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है जहां तक यह याचिकाकर्ता को अनुकंपा आधार पर नियुक्ति के उसके दावे के विचारार्थ उत्तराधिकार प्रमाणपत्र प्राप्त करने का निर्देश देता है।" (महत्व सनन्विष्ट)

6. उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर, जिस पर समन्वय पीठ द्वारा विचार किया गया है, उस स्थिति से व्यवहार करता है जहां मृतक कर्मचारी के एक से अधिक उत्तराधिकारियों द्वारा प्रतिस्पर्धी दावे स्थापित किए गए थे और मुद्दा उनके संबंधित दावों की वैधता का था। न्यायालय ने अवलोकन किया कि अनुकंपा नियुक्ति

से किसी संतान को इनकार नहीं किया जा सकता यदि वह शून्य विवाह से भी उत्पन्न हुई हो। उक्त निर्णय का अनुसरण अन्य समन्वय पीठ द्वारा ***प्राची त्रिपाठी बनाम मुख्य सचिव नियुक्ति के माध्यम से उत्तर प्रदेश राज्य एवं दो अन्य रिट ए संख्या 1706/2024*** के मामले में किया गया है।

7. विद्वान स्थायी अधिवक्ता यह विवाद नहीं कर सके कि शून्य विवाह से उत्पन्न संतानों का भी अपने माता-पिता की संपत्ति, उत्तराधिकार या उत्तराधिकारित्व पर वैध दावा है।

8. इन परिस्थितियों में, इसलिए, प्राधिकारी अर्थात् पुलिस अधीक्षक, मिर्जापुर द्वारा दिनांक 03.01.2025 को पारित आदेश अपोषणीय प्रतिपादित होता है तथा आदेश तदनुसार निरस्त किया जाता है।

9. इस मामले में सक्षम प्राधिकारी अर्थात्, पुलिस अधीक्षक, मिर्जापुर को निर्देशित किया जाता है कि वह मृतक कर्मचारी शिव शंकर सिंह के उत्तराधिकारियों द्वारा स्थापित प्रतिस्पर्धी दावों पर उत्तर प्रदेश सेवा में मृत्यु नियमावली, 1974 के नियम 17 के अंतर्गत उन्हें सुनवाई का अवसर देते हुए विचार करे। सक्षम प्राधिकारी प्रतिस्पर्धी दावों का मूल्यांकन और आकलन करेगा तथा सर्वाधिक योग्य और उपयुक्त व्यक्ति को नियुक्ति प्रस्तावित करेगा जो मृतक कर्मचारी शिव शंकर सिंह की मृत्यु के समय उसका आश्रित-उत्तराधिकारी था।

10. इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने से अधिकतम दो माह की अवधि के भीतर तदनुसार उपयुक्त कारण और युक्तियुक्त आदेश पारित किया जाएगा।

11. याचिका इस प्रकार, व्यय के संबंध में कोई आदेश न करते हुए अनुज्ञात की जाती है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 713

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी सराफ

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चंद्र दीक्षित

रिट टैक्स संख्या 1603 वर्ष 2024

मैसर्स पतंजलि आयुर्वेद लिमिटेड ...प्रार्थी

बनाम

भारत संघ और अन्य ...प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अरविंद पी. दातार, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अश्विना शर्मा, श्री निशांत मिश्रा, श्री देवांश श्रीवास्तव, श्री किंजल श्रीवास्तव, सुश्री वेदिका नाथ और श्री यशोनिधि शुक्ला, अधिवक्ता द्वारा सहायता प्रदान;

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता:

श्री एन. वेंकटरमण, भारत के अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल श्री पर्व अग्रवाल, श्री एन.सी. गुप्ता और श्री गौरव महाजन, अधिवक्ता द्वारा सहायता प्रदत्त;

A. आपराधिक कानून - भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226-सी.जी.एस.टी. अधिनियम-धारा 122 और 73/74-याचिकाकर्ता ने एक कारण बताओ नोटिस को चुनौती दी, जिसमें सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 (ii) और (vii) के तहत कथित रूप से नकली चालान जारी करने और माल की वास्तविक आपूर्ति के बिना आई.टी.सी. का लाभ उठाने के लिए 2,735,113,681 रुपये के जुर्माने का प्रस्ताव किया गया था-याचिकाकर्ता के खिलाफ धारा 74 के तहत कर चोरी के सबूतों की कमी के आधार पर कार्यवाही को हटा दिया गया था-याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि धारा 122 प्रकृति में दंडात्मक है और इसकी आवश्यकता है एक आपराधिक मुकदमा विभागीय अधिनिर्णय नहीं है, धारा 122 के तहत कार्यवाही स्वतंत्र है और केवल इसलिए कम करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि धारा 74 के तहत कार्यवाही को हटा दिया गया है क्योंकि धारा 122 के तहत जुर्माना सिविल प्रकृति का है, कर क़ानून में अधिनियम की धारा 132 के तहत आपराधिक अभियोजन से अलग है-कर क़ानून में मेन्स रिया (इरादा/आशय) (इरादा) आवश्यक रूप से कार्यवाही को आपराधिक मुकदमे में परिवर्तित नहीं करता है-इसलिए, रिट याचिका खारिज कर दी गई और धारा 122 के तहत दंड की कार्यवाही जारी रखने की अनुमति दी गई। (प्रस्तर-1 से 56)

रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची:</u>

1. एनसी धोंडियाल बनाम यू.ओ.आई. (2004) ए.आई.आर. एस.सी. 1272
2. रमन्ना दयाराम शेट्टी बनाम आईएए (1979) 3 एस.सी.सी. 489
3. प्रदीप एस. वोडेयार बनाम कर्नाटक राज्य। (2021) 19 एस.सी.सी. 62
4. शिव दत्त राय फतेह चंद और अन्य बनाम यू.ओ.आई. और अन्य (1983) 3 एस.सी.सी. 529
5. गुजरात त्रावणकोर एजेंसी, कोचीन बनाम कॉमर आयकर एर्नाकुलम केरल (1989)3 एस.सी.सी. 52
6. ई.डी. बनाम एम.सी.टी.एम. कॉर्प प्राइवेट लिमिटेड (1996) 2 एस.सी.सी. 471
7. अध्यक्ष, सेबी बनाम श्रीराम म्यूचुअल फंड और अन्य (2006) 5 एस.सी.सी. 361
8. यू.ओ.आई. बनाम धर्मेंद्र टेक्सटाइल प्रोसेसर और अन्य (2008) 13 एस.सी.सी. 369
9. टाटा पावर कंपनी लिमिटेड और अन्य बनाम महाराष्ट्र विद्युत नियामक आयोग एवं अन्य, एमएएनयू/एस.सी./0932/2009
10. स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक बनाम ई.डी. (2006) 4 एस.सी.सी. 278
11. यूपी राज्य बनाम सुखपाल सिंह बल, 7 एस.सी.सी. 615,622
12. असो सीमेंट कंपनी लिमिटेड बनाम वाणिज्यिक कर अधिकारी (1981) 4 एस.सी.सी. 578
13. प्रतिभा प्रोसेसर्स बनाम यू.ओ.आई. (1997) ए.आई.आर. एस.सी. 138
14. नलीनख्या बायसैक बनाम श्याम सुंदर हलदर (1953) ए.आई.आर. एस.सी. 148
15. व्हिटनी बनाम अंतर्देशीय कॉमर। (1926) ए.सी. 37
16. केप ब्रांडी सिंडिकेट बनाम कॉमर। अंतर्देशीय .(1921) 2 KB 403
17. फिल्म प्रदर्शक, गिल्ड बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1987) ए.आई.आर. एपी 110
18. सी.एस.टी. बनाम श्री कृष्ण इंजीनियरिंग। कंपनी (2005) 2 एस.सी.सी. 692
19. तमिलनाडु राज्य बनाम एमके कंडास्वामी (1975) 4 एस.सी.सी. 745
20. शेफ़ील्ड सिटी काउंसिल बनाम यॉर्कशायर वाटर सर्विसेज लिमिटेड (1979) 2 इला ई.आर. 91
21. संजीव कोक एम.एफ.जी. बनाम भारत कोकिंग कोल लिमिटेड (1983) 1 एस.सी.सी. 147
22. मैसर्स हिंदुस्तान हर्बल कॉस्मेटिक्स बनाम यूपी राज्य
23. सी.एस.टी. बनाम सत्यम शिवम पेपर्स (पी) लिमिटेड (2022) 14 एस.सी.सी. 157
24. वीना एस्टेट (पी) लिमिटेड बनाम कॉमर आयकर (2024) 461 आई.टी.आर. 483 बीओएम।
25. चेम्माबचेरी एस्टेट कंपनी बनाम आयकर अधिकारी वार्ड VIII (2) (2020) 268 टैक्समैन 29)

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सर्राफ़ द्वारा उद्घोषित)

क्रम संख्या	सामग्री	पेज नं.
1	मांगी गई राहत	3
2	तथ्यात्मक पृष्ठभूमि	3-10
3	याचिकाकर्ता की दलीलें	10-18
4	प्रतिपक्षीगण के तर्क	18-25
5	मुद्दे	25
6	प्रासंगिक प्रावधान	25-34
7	विश्लेषण	34-71
	'अपराध' और 'दंड' का अर्थ	35-45
	क़ानून की व्याख्या	45-51
	कर चूक के मामलों में जुर्माना	51-61
	याचिकाकर्ता की प्रस्तुतियों से निपटना	61-70
8	निष्कर्ष	70-71

अनुवादित

राहत मांगी गई

1. यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका है जिसमें याचिकाकर्ता ने माल और सेवा कर खुफिया महानिदेशालय (डी.जी.जी.आई.) द्वारा 19 अप्रैल, 2024 को जारी किए गए आक्षेपित कारण बताओ नोटिस संख्या-02/2024-25 को फॉर्म जीएसटी डीआरसी-01 संदर्भ संख्या-डी.जी.जी.आई./आईएनवी/जीएसटी/2179/2020/ जीआरयू/634(एस/एल) को रद्द करते हुए उत्प्रेषण की रिट जारी करने के लिए प्रार्थना की है। सी.बी.आई.सी. डीआईएन-202404डीएनएन40000555ए8बी वाले गाजियाबाद क्षेत्रीय इकाई, (इसके बाद 'प्रतिपक्षी संख्या-2' के रूप में संदर्भित) के अत्यधिक अस्पष्टीकृत जुर्माने की सीमा तक, केंद्रीय माल और सेवा कर, अधिनियम 2017 (इसके बाद 'सी.जी.एस.टी. अधिनियम' के रूप में संदर्भित) और संबंधित राज्य क़ानून अर्थात् उत्तराखंड माल और सेवा कर अधिनियम 2017 की धारा 122 (1), खंड (ii) और (vii) के तहत याचिकाकर्ता फर्म के खिलाफ लगाए जाने का प्रस्ताव है। , हरियाणा माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 और महाराष्ट्र माल और सेवा कर, 2017 को एकीकृत माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 के साथ पठित किया गया है।

तथ्यात्मक पृष्ठभूमि

2. प्रस्तुत याचिका को जन्म देने वाला तथ्यात्मक मैट्रिक्स नीचे चित्रित किया गया है:

क- वर्तमान में मैसर्स पतंजलि आयुर्वेद लिमिटेड (इसके बाद 'याचिकाकर्ता' के रूप में संदर्भित) एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी है जो जूस, कैंडीज, आटा, मसाला, हेयर ऑयल/कंडीशनर, डिटर्जेंट, हैंडवॉश, साबुन, पाचक खाद्य पदार्थ आदि जैसे फास्ट-मूविंग कंज्यूमर गुड्स (एफ.एम.सी.जी.) के निर्माण में लगी हुई है। इसकी तीन विनिर्माण इकाइयां हरिद्वार (उत्तराखंड), सोनीपत (हरियाणा) और अहमदनगर (महाराष्ट्र) में स्थित हैं, जो मांग-सह-कारण बताओ नोटिस में जांच का हिस्सा हैं। इसका मुख्य व्यवसाय हरिद्वार, उत्तराखंड में है। याचिकाकर्ता की तीन इकाइयां सी.जी.एस.टी. अधिनियम और उनके संबंधित राज्य माल और सेवा कर अधिनियमों के तहत एक ही पैन संख्या और अलग-अलग जी.एस.टी.आई.एन. संख्या के साथ तीन अलग-अलग स्थानों पर पंजीकृत हैं। याचिकाकर्ता की तीन इकाइयाँ अप्रैल 2018 से मार्च 2022 की कर अवधि के लिए 19 अप्रैल, 2024 के सामान्य मांग-सह-कारण बताओ नोटिस के तहत आच्छादित की गई हैं।

ख- प्रतिपक्षी अधिकारियों को दिल्ली में स्थित मेसर्स एसजी एग्रो इंडिया इंडस्ट्री के संबंध में जी.एस.टी.आई.एन. संख्या (07ASQPG3746B1ZT) के साथ एक सूचना प्राप्त हुई थी, कि इसकी कुल देनदारी दो करोड़ से अधिक थी और इनपुट टैक्स क्रेडिट (आई.टी.सी.) का उपयोग 99% से अधिक था और बिना किसी आयकर क्रेडेंशियल के अलावा, जी.एस.टी.आई.एन. संख्या (07एम.जी.एन.पी.एस.1227ए1ज़ेड.बी.) के साथ दिल्ली स्थित मैसर्स मैजिक ट्रेडर्स के संबंध में भी सूचना प्राप्त हुई थी कि उसने हाल ही में पंजीकरण कराया था और विभिन्न फर्मों को 50 लाख रुपये से अधिक के ई-वे बिल जारी किए थे।

ग. उपरोक्त जानकारी ने एक संदेह पैदा किया, जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता की उपरोक्त तीन इकाइयों सहित विभिन्न फर्मों/कंपनियों के खिलाफ जांच की गई, जिसके कारण सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74,122 और एकीकृत वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम की धारा 20 के तहत 19 अप्रैल, 2024 को आक्षेपित मांग-सह-कारण बताओ नोटिस जारी किया गया। प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा अप्रैल 2018 से मार्च 2022 तक की कर अवधि के लिए 2017 में दायर किया गया था, जिसमें यह आरोप लगाया गया था कि याचिकाकर्ता, एक मुख्य व्यक्ति के रूप में कार्य करते हुए, माल की वास्तविक आपूर्ति के बिना केवल कागज पर कर चालान के सर्कुलर ट्रेडिंग में लिप्त था।

घ. आक्षेपित कारण बताओ नोटिस के अवलोकन से पता चलता है कि उत्तराखंड, हरियाणा और महाराष्ट्र में स्थित याचिकाकर्ता की तीन इकाइयों को सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 और 122 के तहत नोटिस जारी किए गए थे। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम के दोनों प्रावधानों और 12 मार्च, 2022 के परिपत्र संख्या-169/01/2022-जीएसटी के मद्देनजर प्रतिपक्षी संख्या-2 के समक्ष समान अधिकार क्षेत्र के तहत कारण बताओ नोटिस संचयी रूप से जारी किया गया था, जिसमें केंद्रीय कर आयुक्तालय लखनऊ के अतिरिक्त/संयुक्त आयुक्तों को अधिसूचना संख्या-02/2022-केंद्रीय कर दिनांक 11 मार्च के माध्यम से अखिल भारतीय अधिकार क्षेत्र का अधिकार दिया गया है। मामले पर आगे का निर्णय लेने के लिए 2022 की अनुमति दी गई है। चूंकि यह रिट याचिका याचिकाकर्ता के संबंध में है, इसलिए उक्त कारण बताओ नोटिस का केवल

प्रासंगिक हिस्सा जो 150 से अधिक पृष्ठों का है, जिसमें याचिकाकर्ता पर जुर्माना लगाया गया है, नीचे दिया गया है:

"13. इसलिए, मैसर्स पतंजलि आयुर्वेद लिमिटेड (05AAECP4424C1ZX), पतंजलि फूड एंड हर्बल पार्क प्राइवेट लिमिटेड, लक्सर रोड, पदरथा, हरिद्वार, उत्तराखंड, 249404 एतद्द्वारा अतिरिक्त/संयुक्त आयुक्त, केंद्रीय जीएसटी आयुक्त, आयुक्त कार्यालय, 7-ए अशोक मार्ग, ब्लॉक-ई, हजरतगंज, लखनऊ, उत्तर प्रदेश-226001 को कारण बताना आवश्यक है:

i. आई.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 20 के साथ पठित सी.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 74 (1) के प्रावधान के तहत ₹9,08,15,881/- (नौ करोड़ आठ लाख पंद्रह हजार आठ सौ एकासी रुपये) की राशि की मांग नहीं की जानी चाहिए और इसकी वसूली नहीं की जानी चाहिए, जैसा कि प्रस्तर-11.4.2 में वर्णित है;

ii.आई.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 20 के साथ पठित सी.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 50 (3) के प्रावधान के तहत ब्याज की मांग नहीं की जानी चाहिए और Sl.No में मांगी गई जीएसटी राशि पर उनसे वसूल नहीं किया जाना चाहिए। मैं;

iii.आई.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 20 के साथ पठित सी.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 74 (1) के संदर्भ में उन पर जुर्माना नहीं लगाया जाना चाहिए, जो क्रम संख्या-1 में मांगी गई राशि पर जीएसटी के भुगतान से बचने के इरादे से तथ्यों को जानबूझकर दबाने के लिए है;

iv. उन पर सी.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 122 (1) (ii) के अनुसार आई.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 20 के साथ पठित कर चालान या बिल जारी करने के लिए ₹38,57,21,402/- (आई.जी.एस.टी. ₹38,57,21,402/-) की राशि के अनियमित आई.टी.सी. को पारित करने के लिए जुर्माना नहीं लगाया जाना चाहिए, जैसा कि प्रस्तर-11.4.2 में वर्णित माल की सहवर्ती आपूर्ति के बिना;

v. उन पर सी.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 122 (1) (vii) के अनुसार आई.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 20 के साथ पठित ₹38,57,21,402/- (आई.जी.एस.टी. ₹38,57,21,402/-) की राशि का इनपुट टैक्स क्रेडिट लेने या उपयोग करने के लिए जुर्माना नहीं लगाया जाना चाहिए, जैसा कि प्रस्तर-11.4.2 में वर्णित है;

vi.उन पर Iजी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 20 के साथ पठित Cजी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 122(1)(x) और (xvi) के अनुसार जुर्माना नहीं लगाया जाना चाहिए।

13.1 इसलिए, मैसर्स पतंजलि आयुर्वेद लिमिटेड (06AAECP4424C1ZV), जीटी रोड, यूनिट -6, चावल संयंत्र, 42-43 किमी, बहलगढ़, सोनीपत, हरियाणा, 131001 एतद्द्वारा अतिरिक्त/संयुक्त आयुक्त, केंद्रीय जीएसटी आयुक्त, आयुक्त कार्यालय, 7-ए अशोक मार्ग, ब्लॉक-ई, हजरतगंज, लखनऊ, उत्तर प्रदेश-226001 को कारण बताना आवश्यक है कि क्यों:

i. उन पर सी.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 122(1)(ii) के अनुसार आई.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 20 के साथ पठित कर चालान या बिल जारी करने के लिए ₹88,77,08,723/- (आई.जी.एस.टी. ₹88,77,08,723/-) की राशि का कर चालान या बिल जारी करने के लिए जुर्माना नहीं लगाया जाना चाहिए, जैसा कि प्रस्तर-11.4.3 में वर्णित है:

ii.आई.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 122 (1) (vii) के अनुसार आई.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 20 के साथ पठित ₹86,26,05,155/- (आई.जी.एस.टी. ₹86,26,05,155/) की राशि का इनपुट टैक्स क्रेडिट लेने या उपयोग करने के लिए उन पर जुर्माना नहीं लगाया जाना चाहिए। प्रस्तर-11.4.3 में विस्तृत माल की वास्तविक प्राप्ति के बिना:

iii.उन पर Iजी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 20 के साथ पठित Cजी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 122(1)(x) और (xvi) के अनुसार जुर्माना नहीं लगाया जाना चाहिए।

132 इसलिए, मैसर्स पतंजलि आयुर्वेद लिमिटेड (27AAECP4424C1ZR), जनरल नि. खडका, ताल, नेवासा, अहमदनगर, महाराष्ट्र 414603 इसके द्वारा अतिरिक्त/संयुक्त आयुक्त, केंद्रीय जीएसटी आयुक्तालय, आयुक्त कार्यालय, 7-ए अशोक मार्ग, ब्लॉक-ई को कारण बताना आवश्यक है। हजरतगंज, लखनऊ, उत्तर प्रदेश-226001 क्यों:

i. उन पर सी.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 122(1)(ii) के अनुसार आई.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 20 के साथ पठित कर चालान या बिल जारी करने के लिए ₹11,26,67,999/- (आई.जी.एस.टी. ₹11,26,67,999/-) की राशि के अनियमित आई.टी.सी. को पारित करने के लिए जुर्माना नहीं लगाया जाना चाहिए, जैसा कि प्रस्तर-11.4.4 में वर्णित माल की सहवर्ती आपूर्ति के बिना;

ii. सी.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 122 (1) (vii) के अनुसार आई.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 20 के साथ पठित ₹10,06,89,000/- (आई.जी.एस.टी. ₹10,06,89,000/-) की इनपुट टैक्स क्रेडिट लेने या उपयोग करने के लिए उन पर जुर्माना नहीं लगाया जाना चाहिए, जैसा कि प्रस्तर-11.4.4 में वर्णित माल की वास्तविक प्राप्ति के बिना है;

iii. आई.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 20 के साथ पठित सी.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 122 (1) (x) और (xvi) के संदर्भ में उन पर जुर्माना नहीं लगाया जाना चाहिए।

ई। कारण बताओ नोटिस के संबंध में, याचिकाकर्ता सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 (1), खंड (ii) और (vii) के तहत 2,735,113,681/- रुपये का अत्यधिक जुर्माना लगाने के साथ ही वर्तमान रिट याचिका में व्यथित है।

स्त्री-विषयक। इस न्यायालय ने 18 अक्टूबर, 2024 को सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत कार्यवाही पर अंतरिम रोक लगा दी थी और याचिकाकर्ता को सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के तहत जारी किए गए कारण बताओ नोटिस के संबंध में अपना जवाब दाखिल करने का समय दिया था।

ग्राम। इस बीच, प्रतिपक्षी प्राधिकारी ने 10 जनवरी, 2025 के न्यायिक आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता के खिलाफ मांगों को अलग कर दिया है और सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के तहत कार्यवाही को हटा दिया है। विभाग ने 10 जनवरी, 2025 के न्यायिक आदेश के माध्यम से, शुरुआत में, सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के तहत केवल उत्तराखंड में स्थित याचिकाकर्ता की इकाई के साथ आगे बढ़ने का निर्णय लिया, क्योंकि उसने 47,65,37,283/- रुपये के आई.जी.एस.टी. के कुल अयोग्य आई.टी.सी. का लाभ उठाया था, जिसमें से उसने 38 रुपये का अपात्र आई.टी.सी. पारित किया है। (ख) सरकार ने 57,21,402/- रुपये की आई.टी.सी. का लाभ उठाया है और हरियाणा स्थित अन्य दो फर्मों को दोषमुक्त कर दिया है, जिन्होंने 86,26,05,155/- रुपये के आई.टी.सी. का लाभ उठाया है, जिसके विरुद्ध इसने 88,77,08,723/- रुपये का आई.टी.सी. पारित किया है और महाराष्ट्र ने 10,06,89,000/- रुपये के आई.टी.सी. का लाभ उठाया है, जिसके विरुद्ध उसने 11,26,67,999/- रुपये का आई.टी.सी. पारित किया है। इसलिए, विभाग द्वारा सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत हरियाणा और महाराष्ट्र में स्थित दो संस्थाओं के खिलाफ केवल दंडात्मक कार्रवाई का प्रस्ताव किया गया था।

h. विभाग ने उत्तराखंड में स्थित याचिकाकर्ता की इकाई के लिए सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के तहत कार्यवाही के मुद्दे पर निर्णय लेते समय याचिकाकर्ता की उत्पादवार बहीखातों को ध्यान में रखा है, जिसमें आक्षेपित अवधि के दौरान माल की खरीदी और बेची गई मात्रा का विवरण दिखाया गया है, जिसमें विभाग द्वारा यह देखा गया था कि सभी वस्तुओं के लिए, बेची गई मात्रा हमेशा आपूर्तिकर्ताओं से खरीदी गई मात्रा से अधिक होती थी, जिससे यह अवलोकन किया जाता है कि आक्षेपित माल में प्राप्त सभी आई.टी.सी. याचिकाकर्ता द्वारा आगे बढ़ाए गए थे। सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के तहत जारी कारण बताओ नोटिस के संबंध में विभाग ने उत्तराखंड में स्थित याचिकाकर्ता की इकाई को विभिन्न अन्य आधारों पर दोषमुक्त करने का निर्णय लिया है, जैसे:

i. कारण बताओ नोटिस में विशेष आपूर्तिकर्ताओं की खेप को नकली के रूप में निर्दिष्ट नहीं किया गया था, इसलिए, विशेष स्टॉक की किसी भी भौतिक सत्यापन रिपोर्ट के अभाव में और उक्त अनियमित आई.टी.सी. को किसी विशेष आपूर्तिकर्ता के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है, जिसके अभाव में विभेदक आई.टी.सी. की मांग कानूनी रूप से टिकाऊ नहीं है।

ii. आपूर्तिकर्ताओं से प्राप्त सभी सामानों का लेखा-जोखा याचिकाकर्ता द्वारा किया गया है और जीएसटी के भुगतान में आपूर्ति की गई है, जिससे अनियमित आई.टी.सी. पारित हो गया है और विभाग ने 6 जुलाई, 2022 को एक परिपत्र संख्या-171/03/2022-जीएसटी पर भरोसा किया है, जिसमें यह स्पष्ट किया गया था कि करदाताओं के खिलाफ धारा 74 के तहत कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है, यदि इसने केवल बाहरी आपूर्ति पर अनियमित आई.टी.सी. पारित किया है और सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत केवल जुर्माना, यदि कोई हो, लगाया जा सकता है।

iii. उपलब्ध कच्चे माल के अलावा पैकिंग सामग्री के स्टॉक और स्टॉक की वास्तविक भौतिक मात्रा में कोई कमी और बेमेल नहीं है। इसके अलावा, याचिकाकर्ता के परिसर में पाई गई स्टॉक पैकिंग सामग्री की किसी भी कमी या अधिकता पर कोई प्रतिकूल टिप्पणी नहीं है।

iv.यह एक गैर-मौजूद आपूर्तिकर्ताओं से आपूर्ति प्राप्त करने का मामला नहीं है क्योंकि अगर यह मामला होता, तो विभाग को ऐसी फर्जी फर्मों के पंजीकरण को रद्द कर देना चाहिए था और आई.टी.सी. को तुरंत अवरुद्ध कर देना चाहिए था।

v. कारण बताओ नोटिस में आरटीओ रिकॉर्ड जैसे तीसरे पक्ष के डेटा पर भरोसा किया गया है जो सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 145 के तहत निर्धारित अनिवार्य प्रक्रिया के अनुरूप नहीं है, जिसके लिए उन दस्तावेजों को प्रमाणित करने के लिए एक प्रमाण पत्र की आवश्यकता होती है, जिन पर विभागीय कार्यवाही में भरोसा किया जाना है, जिससे उक्त साक्ष्य अस्वीकार्य हो जाता है।

vi.परिवहन के मुद्दे पर, यह देखा गया कि कानून के तहत यह आवश्यकता नहीं है कि वाहनों को केवल एक निश्चित टोल मार्ग लेना चाहिए और गंतव्य तक पहुंचने के लिए किसी भी मार्ग को चुना जा सकता है।

vii. याचिकाकर्ता द्वारा उन व्यक्तियों की जिरह के अनुरोध पर, जिनकी गवाही पर कारण बताओ नोटिस में भरोसा किया गया था, सभी आपूर्तिकर्ताओं ने हलफनामे पर स्पष्ट रूप से घोषणा की है कि उन्होंने याचिकाकर्ता को वास्तविक व्यावसायिक लेनदेन के आधार पर आपूर्ति की है।

i. 10 जनवरी, 2025 के न्यायनिर्णयन आदेश का प्रासंगिक समापन भाग नीचे दिया गया है:

"6.21 जैसा कि इस आदेश के पहले भाग में पहले ही चर्चा की गई है, तथ्य नोटिसी के पक्ष में जा रहे हैं, जितना कि, कच्चे माल की कमी के बारे में कोई निष्कर्ष नहीं है, पैकिंग सामग्री की उचित खपत दिखाई गई है, सीए ने करों के भुगतान पर माल की आगे की आपूर्ति के संबंध में प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया है, नोटिस प्राप्तकर्ता के पक्ष में एल 1 आपूर्तिकर्ताओं की अनुकूल घोषणा, प्रासंगिक अवधि के दौरान मूल्यवर्धन पर नकद हिस्से में कर का भुगतान और प्राप्त इनपुट और आपूर्ति किए गए इनपुट के बीच मात्रात्मक सह-संबंध, यह दर्शाता है कि आई.टी.सी. को बरकरार नहीं रखा गया है, बल्कि आगे भी पारित किया गया है। इसे ध्यान में रखते हुए, मेरे पास यह कहने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा है कि अधिनियम की धारा 74(1) के तहत मुख्य सूचनाकर्ता के खिलाफ कोई मांग नहीं की जा सकती है। चूंकि कर की मांग टिकाऊ नहीं है, इसलिए ब्याज वसूलने और जुर्माना लगाने का भी प्रश्न नहीं उठता।

****

6.26 तदनुसार, मैं निम्नलिखित आदेश पारित करता हूं:

आदेश

(1) मैं सी.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 74 (1) के प्रावधान के तहत प्रस्तावित 9,08,15,881 रुपये की मांग को मैसर्स पतंजलि आयुर्वेद लिमिटेड, उत्तराखंड के खिलाफ छोड़ देता हूं।

याचिकाकर्ता की दलीलें

3 - याचिकाकर्ता की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अरविंद दातार ने निम्नलिखित दलीलें दी हैं:

a- यह इंगित करने के लिए कई संकेत हैं कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 प्रकृति में आपराधिक है और तदनुसार आपराधिक दायित्व को आकर्षित करती है।

b. सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत अपराधों के लिए दंड में कहा गया है कि एक कर योग्य व्यक्ति जो इसके खंड (i) से (xxi) में उल्लिखित किसी भी अपराध को करता है, वह दस हजार रुपये के दंड या कर चोरी या आई.टी.सी. के बराबर राशि का लाभ उठाया जाएगा या अनियमित रूप से वितरित किया गया या वितरित किया गया, जो भी अधिक हो। यह अनुमान लगाता है कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत दंडात्मक प्रावधान लागू करने से पहले सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 73/74 के तहत कर का निर्धारण किया जाना चाहिए। इसके अलावा, सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 में ही 'कुछ अपराधों के लिए जुर्माना' कहा गया है, जिसका अर्थ है कि कर चोरी का एक विशिष्ट अपराध होना चाहिए जिसके लिए सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 73/74 के तहत कर की मांग की जानी थी। इस संबंध में, एनसी धोंडियाल बनाम भारत संघ और *रमन्ना दयाराम शेट्टी बनाम भारतीय अंतर्राष्ट्रीय विमानपत्तन प्राधिकरण* (1979) 3 एस.सी.सी. 489 में रिपोर्ट की गई है।

अनुवादित

c- सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 को 'कुछ अपराधों के लिए दंड' के रूप में पढ़ा जाता है। सी.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 या किसी अन्य जीएसटी कानून के तहत 'अपराध' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है, इसलिए सामान्य खंड अधिनियम, 1897 पर ध्यान दिया जाना चाहिए। 'अपराध' शब्द को सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 2 (38) के तहत परिभाषित किया गया है, "किसी भी कार्य या चूक को किसी भी कानून द्वारा दंडनीय बनाया गया है"। इसके अलावा, 'अपराध' को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 2(एन) (इसके बाद 'द.प्र.स.' के रूप में संदर्भित) और भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 की धारा 2(क्यू) (इसके बाद 'बी.एन.एस.एस.' के रूप में संदर्भित) के तहत "किसी भी अधिनियम या चूक को किसी भी कानून द्वारा दंडनीय बनाया गया है" के रूप में भी परिभाषित किया गया है। द.प्र.स./बी.एन.एस.एस. की धारा 4 (2) में कहा गया है कि किसी भी अन्य कानून के तहत सभी अपराधों की जांच, जांच, जांच और अन्यथा द.प्र.स. के प्रावधानों के अनुसार निपटा जाएगा, यदि ऐसे अन्य कानूनों में कोई अलग प्रावधान नहीं है। इसलिए, सी.जी.एस.टी. अधिनियम के तहत अपराधों को भी द.प्र.स. की धारा 4(2) द्वारा नियंत्रित किया जाना आवश्यक है। इस संबंध में, प्रदीप ***एस. वोडेयार बनाम कर्नाटक राज्य*** *(*2021) 19 एस.सी.सी. 62 में रिपोर्ट की गई है।

d- केवल तथ्य यह है कि जुर्माने को 'जुर्माना' कहा जाता है, यह वास्तव में यह इंगित नहीं करेगा कि यह एक नागरिक गलती है क्योंकि भ.द.वि. के साथ-साथ द.प्र.स. में भी, दंड शब्द को अक्सर जुर्माने के रूप में परस्पर उपयोग किया गया था जिसे निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट किया जा सकता है:

i. द.प्र.स. की धारा 136 में कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति धारा 135 के तहत किसी आदेश का पालन करने या कारण बताने में विफल रहता है, तो वह भ.द.वि. की धारा 188 के तहत निर्धारित 'दंड' के लिए उत्तरदायी होगा। हालांकि, भ.द.वि. की धारा 188 के तहत जुर्माना लगाया गया है।

ii. द.प्र.स. की धारा 141 भ.द.वि. की धारा 188 के तहत जुर्माने का वर्णन करते समय 'जुर्माना' शब्द का उपयोग करती है।

iii. दंड और जुर्माने का विनिमेय उपयोग भ.द.वि. की धारा 136 और धारा 137 के अवलोकन से भी स्पष्ट है।

iv. यहां तक कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत निर्धारित अधिनियमों के अवलोकन से भी संकेत मिलता है कि उन कार्यों के लिए जुर्माना लगाने की परिकल्पना की गई है जो प्रकृति में आपराधिक हैं; और इसलिए, इस तरह के प्रावधानों के घटक तत्व हुए हैं या नहीं, इस बात के निर्धारण पर पहुंचने के लिए, न्यायिक दिमाग के परीक्षण और उचित अनुप्रयोग की आवश्यकता है। यह निम्नलिखित उप-धाराओं से सबसे अधिक स्पष्ट है जो इंगित करते हैं कि निर्धारित कार्य प्रकृति में आपराधिक हैं। अन्य दंडात्मक कानूनों में भी इसी तरह की धाराओं के साथ तुलना की जाती है, जो आगे इंगित करती है कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत निर्धारित अधिनियम अन्य मूर्तियों के तहत दंडात्मक प्रावधानों के समान हैं, जिसके लिए परीक्षण की आवश्यकता है।

ई- सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 पहले से ही 'मांग और वसूली' शीर्षक के तहत राजस्व के नुकसान की भरपाई के लिए मौजूद है, जिसमें 'जुर्माना' का भी संदर्भ शामिल है, जिस पर उचित अधिकारी द्वारा निर्णय दिया जाता है और कहा जाता है कि देय जुर्माना नोटिस के तहत देय कर के बराबर है। संसद द्वारा सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 तैयार करने का उद्देश्य सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के समान नहीं होता। यह तर्क दिया गया है कि चूंकि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 में संसद द्वारा पहले ही जुर्माना लगाया जा चुका है, इसलिए एक बार फिर जुर्माना लगाने के लिए सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 को क़ानून में लाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। इसलिए, सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 अधिक गंभीर अपराधों के लिए है और आपराधिक कार्यवाही को आकर्षित करती है।

एफ- सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 (कुछ अपराधों के लिए दंड) और 132 (कुछ अपराधों के लिए सजा) के बीच तुलना करने से पता चलेगा कि कई उप-धाराएं समान हैं, जिसका अर्थ है कि धारा 122 के तहत जुर्माना केवल धारा 132 के तहत दोषसिद्धि के बाद ही लगाया जा सकता है। धारा 132(6) के संबंध में, जो अभियोजन से पहले आयुक्त से ली जाने वाली मंजूरी का प्रावधान करता है (जबकि धारा 122 में ऐसा कोई संदर्भ नहीं है कि उक्त प्रावधान के तहत मामले का निर्णय कौन करेगा), यह प्रस्तुत किया जाता है कि धारा 122 में धारा 132(6) जैसे समान प्रावधान की अनुपस्थिति धारा 122 को धारा 134 की उपस्थिति के कारण नागरिक दायित्व में परिवर्तित नहीं करेगी जो एक सुरक्षा जो पूरे अधिनियम पर लागू होती है, और इसलिए, धारा 122 पर भी।

जी- सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 और 132 को एक ही अध्याय में रखा गया है, अर्थात अध्याय XIX: अपराध और दंड'। सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122, 132 और 134 के तहत उल्लिखित अपराधों के लिए कार्यवाही करने से पहले उसी अध्याय में होने का पालन किया जाना चाहिए जिसके लिए आयुक्त से पूर्व मंजूरी की आवश्यकता होती है और यह कहा जाता है कि यह प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट से कम नहीं होने वाले न्यायालय द्वारा विचारणीय होगा। इसलिए, यह प्रस्तुत किया जाता है कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत परिकल्पित जुर्माना केवल निम्नलिखित के अनुसार लगाया जा सकता है सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 134 के तहत एक परीक्षण होगा।

एच- सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के खंड पर नोट्स यह भी स्पष्ट करता है कि यह खंड 'अपराधों' की एक सूची प्रदान करता है और 'अपराधों' शब्द की परिभाषा सामान्य खंड अधिनियम, 1897 और द.प्र.स./बी.एन.एस.एस. में प्रदान की गई है। सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के खंड पर नोट्स यहां नीचे दिए गए हैं:

इसमें कहा गया है, 'यह खंड बिना चालान के माल की आपूर्ति, बिना आपूर्ति के चालान जारी करने आदि जैसे अपराधों की सूची का प्रावधान करता है, जो जुर्माने के लिए उत्तरदायी होगा। इस खंड में निर्दिष्ट अपराधों में

सहायता या उकसाने, समन पर उपस्थित होने में विफल रहने आदि जैसे अपराधों के लिए पच्चीस हजार रुपये का जुर्माना लगाया जाएगा।

आई- 'कर से बचने के लिए जानबूझकर गलत बयान या तथ्यों का दमन' वाक्यांश का उपयोग स्पष्ट रूप से मेन्स रीआ (इरादा/आशय) आवश्यकता के अस्तित्व का संकेत है जिसका अर्थ है कि कार्यवाही को आपराधिक मुकदमे की प्रक्रिया से गुजरना चाहिए। मेन्स रिया (इरादा/आशय) का सिद्धांत आपराधिक अपराध और आपराधिक कानून न्यायशास्त्र में अपरिहार्य स्थापित करने में एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में कार्य करता है। धारा 122 में जानबूझकर गलत बयान का भी इस्तेमाल किया गया है और इसलिए, इस कार्यवाही को आपराधिक मुकदमे से गुजरना पड़ता है। हालांकि धारा 74 में भी मेन्स रिया (इरादा/आशय) की आवश्यकता होती है, लेकिन यह उचित अधिकारी द्वारा तय किया जाता है।

जे- सी.बी.आई.सी. के परिपत्र संख्या-3/3/2017-जीएसटी दिनांक 7 जुलाई, 2017 में, बोर्ड ने सी.जी.एस.टी. अधिनियम की विभिन्न धाराओं के संबंध में निर्णय के लिए उचित अधिकारियों को नियुक्त किया है, लेकिन आपराधिक अदालतों द्वारा अभियोजन के लिए धारा 122 के तहत कार्यवाही को जानबूझकर बाहर रखा है। इसके अलावा, सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 में भी उचित अधिकारी का कोई संदर्भ नहीं है; इसलिए यह निहित है कि इन कार्यवाहियों को आपराधिक अदालतों द्वारा अभियोजन से गुजरना चाहिए।

के- याचिकाकर्ता का तर्क न केवल धारा 122 पर निर्भर करता है, बल्कि इसके मूल और ऑपरेटिव हिस्से पर भी निर्भर करता है। 'सहायता करना और उकसाना' शब्द केवल आपराधिक कानूनों में पाया जाता है। सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 की उप-धारा 3 में स्पष्ट रूप से अपराधों के लिए 'सहायता और उकसाने' शब्द का उपयोग किया गया है, इसलिए, धारा में उपयोग किए गए ये शब्द प्रावधान को आपराधिक प्रकृति के बनाते हैं।

एल- 'दंड' शब्द का उपयोग अपराध के संदर्भ में किया गया है, यहां तक कि भ.द.वि. और द.प्र.स. में भी और यह स्वचालित रूप से इंगित नहीं करता है कि यह नागरिक दायित्व की प्रकृति में है। "कर न्यायशास्त्र" या किसी भी मामले के कानून में ऐसा कुछ भी नहीं है जो विशेष रूप से कानून के शासन के रूप में कहता है, कि 'दंड' आवश्यक रूप से एक नागरिक दायित्व से संबंधित होना चाहिए। दंड का चरित्र, चाहे वह नागरिक हो या आपराधिक, संदर्भ, भाषा, विधायी इरादे और वैधानिक संरचना पर निर्भर करेगा। प्रमानथ अय्यर के लॉ लेक्सिकन के छठे संस्करण में भी जुर्माने को परिभाषित किया गया है, जिसमें कहा गया है कि कराधान के मामलों में जुर्माना सजा हो सकती है क्योंकि यह नागरिक दायित्व या आपराधिक दायित्व को आकर्षित कर सकता है। यह संसद के लिए कारावास या जुर्माना या यहां तक कि दंड के रूप में दंड निर्धारित करने के लिए खुला है, लेकिन क्या इसकी वसूली या तो एक निर्धारित अपराध या अन्य प्रावधानों के उल्लंघन के परिणामस्वरूप है जिन्हें अपराध के रूप में वर्णित नहीं किया गया है। कानून का उल्लंघन न्यायनिर्णयित तंत्र, अर्थात् विभाग और अभियोजन तंत्र, अर्थात् आपराधिक न्यायालयों द्वारा लगाए गए दंड दोनों को आकर्षित कर सकता है। वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दंड का अर्थ है सजा और इस न्यायालय का ध्यान 'दंड' की परिभाषा की ओर

भी आकर्षित किया, जैसा कि कॉर्पस ज्यूरिस सेकंदम (खंड 85, प्रस्तर-580, प्रस्तर-1023) में उद्धृत किया गया है, जिसे यहां नीचे प्रस्तुत किया गया है:

"कर अपराध के लिए लगाया गया जुर्माना एक नागरिक दायित्व है, उपचारात्मक और अपनी प्रकृति में जबरदस्ती है, और आपराधिक या दंडात्मक कानूनों के उल्लंघन के लिए सजा के रूप में प्रदान किए गए अपराध के लिए दंड या जुर्माना या जब्ती से बहुत अलग है।

एम- सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 में 21 प्रकार के अपराधों का उल्लेख किया गया है जो 100% दंड का प्रावधान करते हैं और उनमें से 11 पर धारा 132 के तहत कारावास और जुर्माने के रूप में सजा का प्रावधान है। यह ओवरलैप अप्रासंगिक है, क्योंकि विभाग के पास प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर धारा 122 या 132 के तहत अभियोजन शुरू करने का विकल्प है। सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 132 के तहत कार्यवाही को बाहर करने से यह निष्कर्ष नहीं निकल सकता है कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत कार्यवाही नागरिक दंड से संबंधित है। संसद की मंशा हो सकती थी कि धारा 122 के तहत उल्लिखित कुछ अपराधों में कठोर दंड की आवश्यकता है, और इसलिए, दंड आपराधिक मुकदमे के बाद कारावास का एक पारंपरिक तरीका हो सकता है।

एन- सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के स्पष्टीकरण 1(ii) में प्रावधान है कि यदि धारा 74 के तहत दंड की कार्यवाही 'मुख्य व्यक्ति' के खिलाफ समाप्त हो जाती है, तो धारा 122 के तहत आपराधिक दंड और सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 125 के तहत सामान्य नागरिक दंड भी 'सभी व्यक्तियों' के खिलाफ समाप्त होना चाहिए। इसके अलावा, दीवानी कार्यवाही बंद होने से उसी उल्लंघन के लिए शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही स्वचालित रूप से बंद हो जाती है। धारा 74 का स्पष्टीकरण 1(i) इस सामान्य नियम से प्रस्थान को चिह्नित करता है, जिसमें कहा गया है कि धारा 74 के तहत दंड को बंद करने से धारा 132 के तहत कार्यवाही में कमी नहीं आएगी। हालांकि, धारा 122 के तहत कार्यवाही भले ही आपराधिक हो, सामान्य नियम के अनुरूप समाप्त होगी। धारा 73 और 74 के तहत कार्यवाही सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 और 132 से अलग है और इसलिए, इसे कभी भी एक साथ नहीं जोड़ा जा सकता है।

ओ- अध्याय XIX में अपराध और दंड के रूप में 17 उपबंध हैं और कुछ उपबंधों में एक उचित अधिकारी का उल्लेख है। सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 124 भी एक "आपराधिक" प्रावधान है, क्योंकि यह सजा का प्रावधान करता है और एक निरंतर अपराध को संदर्भित करता है। धारा 126 जुर्माने से संबंधित सामान्य दिशा-निर्देश देती है और इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि विभाग के अधिकारियों द्वारा लगाया गया जुर्माना अनुपातहीन और अनुचित रूप से कठोर न हो। धारा 127 में 'उचित अधिकारियों' को भी संदर्भित किया गया है। केवल धारा 125 'उचित अधिकारी' का उल्लेख नहीं करती है और इसका शीर्षक 'सामान्य दंड' है। यह केवल वहीं लागू होता है जहां अधिनियम में कोई विशिष्ट दंड प्रदान नहीं किया गया है। हालांकि, यह किसी भी "अपराध" से संबंधित नहीं है, लेकिन केवल अधिनियम के तहत "उल्लंघन" को संदर्भित करता है। धारा 122 में

'उचित अधिकारी' के किसी भी संदर्भ का अभाव जानबूझकर किया गया है, क्योंकि "सजा" के रूप में दंड लगाने का काम केवल क्षेत्राधिकार मजिस्ट्रेट द्वारा ही किया जा सकता है। इस प्रकार, धारा 122 और धारा 132 भी 'उचित अधिकारी' का उल्लेख नहीं करती है क्योंकि ये आपराधिक प्रावधान हैं। दूसरी ओर, धारा 129 (माल की जब्ती), धारा 130 (जब्ती) जैसी अन्य धाराएं 'अधिकारी' या 'उचित अधिकारी' को संदर्भित करती हैं।

पी- यह भी आवश्यक है कि शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत के तहत सिविल और आपराधिक क्षेत्राधिकारों को अलग रखा जाए, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 50 में निर्धारित हैं और हमारे संविधान के मूल ढांचे का हिस्सा भी हैं।

क्यू- एक संवैधानिक परंपरा है कि सभी अपराधों की सुनवाई केवल स्थापित आपराधिक न्यायालयों द्वारा की जाती है जो न्यायपालिका का हिस्सा हैं जबकि दंड का अधिनिर्णय अर्ध-न्यायिक कार्यवाही का हिस्सा होगा। इस प्रकार धारा 74 और अन्य प्रावधानों के तहत जुर्माना उपयुक्त अधिकारी द्वारा लगाया जा सकता है। हालांकि, अपराधों के लिए कोई भी जुर्माना केवल आपराधिक अदालतों द्वारा ही लगाया जा सकता है।

आर- अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए, अधिवक्ता ने निम्नलिखित मामलों पर भरोसा किया है:

i. ***शिव दत्त राय फतेह चंद और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य*** (1983) 3 एस.सी.सी. 529 [प्रस्तर-34] में रिपोर्ट किया गया।
ii. ***गुजरात त्रावणकोर एजेंसी, कोचिन बनाम आयकर आयुक्त, केरल, एर्नाकुलम*** (1989) 3 एस.सी.सी. 52 [प्रस्तर-4] में रिपोर्ट किया गया।
iii. ***प्रवर्तन निदेशालय बनाम एम.सी.टी.एम. कॉर्पोरेशन प्राइवेट लिमिटेड।*** (1996) 2 एस.सी.सी. 471 में रिपोर्ट की गई [प्रस्तर-7,8,13]
v. ***अध्यक्ष सेबी बनाम श्रीराम म्यूचुअल फंड और अन्य*** (2006) 5 एस.सी.सी. 361 में रिपोर्ट किया गया। [प्रस्तर-17, 19, 29, 33, 35]।
vi. ***भारत संघ बनाम धर्मेंद्र टेक्सटाइल प्रोसेसर्स एंड अन्य*** (2008) 13 एस.सी.सी. 369 [प्रस्तर-15,17,19] में रिपोर्ट की गई है।
vi. ***टाटा पावर कंपनी लिमिटेड और अन्य बनाम महाराष्ट्र विद्युत नियामक आयोग और अन्य ने*** अनुभाग के शीर्षकों की व्याख्या के संबंध में MANU/SC/0932/2009 [प्रस्तर-122,123] में रिपोर्ट की है।
vii. - ***एन.सी. धौंडियाल बनाम यू.ओ.आई. और अन्य की*** रिपोर्ट एमएएनयू/एस.सी./1027/2003 [प्रस्तर-15]
viii. ***स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक बनाम प्रवर्तन निदेशालय*** (2006) 4 एस.सी.सी. 278 [प्रस्तर-29] में रिपोर्ट किया गया

<u>प्रतिपक्षीगण के तर्क</u>

4. विभाग की ओर से उपस्थित भारत के अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल श्री एन. वेंकटरमन ने निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ की हैं:

क- धारा 122(1) एक कर योग्य व्यक्ति द्वारा किए गए अपराधों के लिए है, और धारा 122(1) में निर्धारित जुर्माना अध्याय XV की मांगों और वसूली यानी धारा 73/74 के तहत निर्धारित दंड से अलग है। सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 धोखाधड़ी, जानबूझकर गलत बयान या तथ्यों को छिपाने के कारण कर के निर्धारण से संबंधित है। दूसरी ओर, धारा 122(1) विभिन्न उल्लंघनों के लिए विशिष्ट अपराधों और दंडों की गणना करती है।

ख- सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत सूचीबद्ध अपराधों के होने के परिणामस्वरूप परिणाम हैं। इसलिए, सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत सूचीबद्ध अपराधों में जरूरी नहीं कि वे मामलों को आच्छादित करें क्योंकि वे सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 73 या 74 के तहत आते हैं।

ग- सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के प्रावधानों के तहत 9,08,15,881/- रुपये की कर मांग जारी की गई थी क्योंकि याचिकाकर्ता ने नोटिस में प्रस्तावित सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 (i) (ii) और (vii) के तहत गलत तरीके से आई.टी.सी. और 2,735,113,681/- रुपये का जुर्माना और जुर्माना लगाया था, जो इस मांग से संबंधित नहीं है, बल्कि माल की किसी भी वास्तविक आपूर्ति के बिना कर चालान जारी करने के लिए है, और माल की वास्तविक प्राप्ति के बिना इनपुट टैक्स क्रेडिट पर कर/उपयोग करने के लिए भी। इसलिए, सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के प्रावधानों के तहत नोटिस में मांगी गई मांग और धारा 122 के प्रावधानों के तहत प्रस्तावित जुर्माना दो अलग-अलग अपराधों के लिए है और परस्पर संबंधित नहीं है।

घ. कराधान मामलों में जुर्माना केवल एक नागरिक दायित्व है और आपराधिक दायित्व नहीं है और केवल धारा के शीर्षक से पूरी धारा को नियंत्रित नहीं किया जा सकता है। सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 राजस्व के नुकसान को रोकने और जुर्माना लगाने का इरादा रखती है, जबकि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 132 में दंड को आपराधिक अपराध के रूप में लागू करने का इरादा है। केवल मेन्स रिया (इरादा/आशय) को जोड़ने से प्रावधान प्रकृति में आपराधिक नहीं हो जाएगा। यदि संसद कर कानून में दंड में मेन्स रिया (इरादा/आशय) को जोड़ने का विकल्प चुनती है, तो यह अभी भी मेन्स रीआ (इरादा/आशय) के साथ पढ़ा जाने वाला एक नागरिक दायित्व होगा। आपराधिक मुकदमे के अभियोजन के लिए, कानून में कोई कमजोर पड़ने की आवश्यकता नहीं है, मेन्स रीआ (इरादा/आशय) अपरिहार्य है। इसलिए, धारा 122 मेन्स रिया (इरादा/आशय) और नॉन-मेन्स रीआ (इरादा/आशय) दोनों के उल्लंघनों की एक टोकरी है।

ई। यह एक चोरी-विरोधी धारा है और इसे एक व्याख्या के लिए नहीं फेका जाना चाहिए ताकि इसे लागू करना और चोरी को बढ़ावा देना मुश्किल हो जाए। इस प्रावधान में 100 प्रतिशत जुर्माने का प्रावधान है क्योंकि इसका उद्देश्य माल की वास्तविक और भौतिक आपूर्ति के बिना नकली चालान बनाकर अवैध व्यापार की प्रथा पर अंकुश लगाना है।

एफ- कर कानून में न्यायशास्त्र कहता है कि जुर्माना और कुछ नहीं बल्कि नागरिक दायित्व है। धारा 121, 122 और 132 समानांतर प्रावधान हैं जो नागरिक दायित्व के बारे में बात करते हैं। धारा 122 में आवश्यक प्रमाण का भार संभाव्यता की प्रधानता है और उचित संदेह से परे नहीं है। जबकि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 132 में आपराधिक अपराध के लिए यह उचित संदेह से परे होना चाहिए। इसलिए, सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत पूरे मामले की बनावट सबूतों के आधार पर एक नागरिक दायित्व साबित कर रही है, जिसका भार संभाव्यता की प्रधानता है। अभियोजन के लिए आपराधिक अदालतों में, आपराधिक अदालत उचित संदेह से परे बेंचमार्क रखेगा। आपराधिक कानून में निर्धारित आपराधिक अपराध में एक आपराधिक अदालत को हमेशा सबूत के सबूत की आवश्यकता होती है जो उचित संदेह से परे अपराध को साबित करता है।

जी- धारा 122 में इक्कीस उपखंड हैं, जिसमें ग्यारह उपखंडों का इरादा है और दस उपखंडों का इरादा नहीं है। यहां तक कि एक नागरिक दायित्व/दंड के लिए भी किसी को मेन्स रिया (इरादा/आशय) की आवश्यकता हो सकती है। लेकिन जिन उप-धाराओं में इरादे/पुरुषों के तत्व शामिल नहीं हैं, उन्हें आपराधिक मकसद नहीं दिया जा सकता है (इसके विपरीत भी लागू नहीं होता है)। धारा 132 मे ग्यारह अपराध शामिल हैं, जिसमें मेन्स रिया (इरादा/आशय) मौजूद है जो आपराधिक कानून के तहत एक स्थायी और अपरिहार्य विशेषता है। जबकि, जब कर कानून के तहत नागरिक दायित्व की बात आती है तो मेन्स रिया की हमेशा आवश्यकता नहीं होती है। नतीजतन, धारा 122 किसी भी असंवैधानिकता से ग्रस्त नहीं है, इसमें मेन्स रिया के बिना दस अपराध और मेन्स रिया (इरादा/आशय) के साथ ग्यारह अपराध हो सकते हैं, यह अभी भी एक नागरिक दायित्व के रूप में दंड के बराबर होगा। इसलिए, धारा 122 और इसकी उप-धाराएं, एक टोकरी है जो गैर-मेंस रीया और मेन्स रिया (इरादा/आशय) अपराधों का मिश्रण है। दंड के लिए कर क़ानून के तहत मेन्स रिया (इरादा/आशय) की अनुमति है, लेकिन यह आपराधिक मुकदमे के लिए अनुमेय है जिसमें सभी उप-खंडों में मेन्स रिया (इरादा/आशय) की आवश्यकता होती है। यह कर लगाने में स्थापित कानून है कि कोई व्यक्ति मेन्स रिया (इरादा/आशय) के साथ नागरिक दायित्व/दंड ले सकता है, इसे अभी भी दंड के रूप में माना जाएगा।

एच- सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 1 के स्पष्टीकरण 74 की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। उक्त प्रावधान धोखाधड़ी या जानबूझकर गलत तरीके से गलत तरीके से लाभ उठाने या तथ्यों को छिपाने या तथ्यों को छिपाने के कारण भुगतान नहीं किए गए या कम भुगतान किए गए या गलत तरीके से वापस किए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट के निर्धारण के लिए है। धारा 74 के स्पष्टीकरण 1 के अनुसार इस प्रकार है:
"स्पष्टीकरण 1.- धारा 73 और इस धारा के प्रयोजनों के लिए,-

(i) अभिव्यक्ति "उक्त नोटिस के संबंध में सभी कार्यवाहियों" में धारा 132 के तहत कार्यवाही शामिल नहीं होगी;

(ii) जहां एक ही कार्यवाही के तहत कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी मुख्य व्यक्ति और कुछ अन्य व्यक्तियों को नोटिस जारी किया जाता है, और मुख्य व्यक्ति के खिलाफ ऐसी कार्यवाही धारा 73 या धारा 74

के तहत समाप्त हो गई है, धारा 122 और 125 के तहत दंड का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी सभी व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही समाप्त मानी जाती है।

स्पष्टीकरण 1 (i) यह स्पष्ट करता है कि अभिव्यक्ति "उक्त नोटिस के संबंध में सभी कार्यवाही" में सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 132 के तहत कार्यवाही शामिल नहीं होगी, केवल इस कारण से कि धारा 132 प्रकृति में आपराधिक है और अपराधों के लिए सजा से संबंधित है। यदि धारा 122 के विधायी इरादे को भी आपराधिक माना गया था, तो स्पष्टीकरण 1 (i) में धारा 122 भी शामिल होती और इसे उक्त प्रावधान में धारा 132 के साथ बेंचमार्क भी किया गया होता।

i. धारा 74 का स्पष्टीकरण 1(i) धारा 122 और धारा 125 के तहत दंड के लिए उत्तरदायी सभी व्यक्तियों के खिलाफ सभी कार्यवाही को बंद करने का मानता है, यदि मुख्य व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 73 या 74 के तहत समाप्त हो जाती है। इसमें, धारा 122 को धारा 125 के साथ बेंचमार्क किया गया है, न कि धारा 132 के साथ, और धारा 125 सामान्य जुर्माने से संबंधित है, जो पच्चीस हजार रुपये तक बढ़ सकता है। धारा 122 का विधायी इरादा एक बार फिर स्पष्ट होता है कि यह नागरिक दायित्व की प्रकृति में केवल एक दंड है और आपराधिक अपराध नहीं है जैसा कि याचिकाकर्ता ने तर्क दिया है। चूंकि, धारा 122 और 125 जुर्माने से संबंधित हैं, इसलिए इन्हें एक साथ बराबर किया गया है। यह कानून का सुस्थापित सिद्धांत है कि दीवानी कार्यवाही/नागरिक दायित्व के बंद होने से आपराधिक कार्यवाही स्वचालित रूप से बंद नहीं होती है और यह इरादा धारा 74 के स्पष्टीकरण 1 के माध्यम से एक बार फिर परिलक्षित होता है, जिसमें यह स्पष्ट रूप से बताता है कि धारा 122 का उद्देश्य नागरिक दायित्व की प्रकृति में केवल एक दंड है। इसके अलावा, सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के स्पष्टीकरण 1 के संबंध में यह प्रस्तुत किया गया है कि ये प्रावधान उन स्थितियों में लागू होंगे जहां मुख्य व्यक्ति जिनसे सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के प्रावधानों के तहत मांग की गई थी, उन्होंने लागू ब्याज और दंड के साथ देय कर जमा कर दिया है, और मुख्य व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही समाप्त हो गई है।

j. याचिकाकर्ता के इस तर्क के संबंध में कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत "उचित अधिकारी" का कोई संदर्भ नहीं है और इसलिए यह इस तथ्य का संकेत है कि प्रावधान केवल आपराधिक प्रकृति का है और धारा 74 के संदर्भ में, उचित अधिकारी करों का भुगतान न करने और इनपुट टैक्स क्रेडिट के गलत लाभ उठाने और इसके उपयोग के लिए कारण बताओ नोटिस जारी करने का हकदार है। इसलिए धारा 74 के तहत सुरक्षा उपलब्ध होने के कारण, नागरिक दायित्व के रूप में धारा 122 के तहत जुर्माना गलत है और इसलिए इसे प्रकृति में केवल आपराधिक माना जाना चाहिए। प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता की धारणा को तथ्यात्मक और कानूनी रूप से गलत बताया है और जिसे एक उदाहरण द्वारा प्रदर्शित किया गया था:

'कर योग्य व्यक्ति 100 करोड़ रुपये के सामान की आपूर्ति करता है और 20 करोड़ रुपये के इनपुट टैक्स क्रेडिट (आई.टी.सी.) के वैध चालान जारी करता है। B माल प्राप्त करता है और पूरे मूल्य और आई.टी.सी. का हिसाब रखता है।

हालांकि, B केवल 50 करोड़ रुपये के सामान का उपयोग करने का विकल्प चुनता है और अवैध रूप से ग्रे मार्केट में 50 करोड़ रुपये की शेष मात्रा को C को हटा देता है और नकदी एकत्र करता है। बी एक अन्य व्यक्ति डी को 50 करोड़ रुपये मूल्य और 10 करोड़ रुपये का आई.टी.सी. के लिए एक नकली चालान भी जारी करता है।

धारा 74 ए पर लागू नहीं होगी, क्योंकि ए ने करों का भुगतान किया है, बी के लिए नहीं जो किसी भी कर का भुगतान नहीं करता है, बल्कि डी पर लागू होता है जिसने गलत तरीके से इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ उठाया था और उपयोग किया था। लेकिन दूसरी ओर, धारा 122 (1) सी को चालान के बिना माल की आपूर्ति करने और डी को नकली चालान जारी करने के लिए बी पर लागू होगी।

लेन-देन में मुख्य व्यक्ति के अलावा अन्य व्यक्ति धारा 74 के तहत किसी भी कार्यवाही द्वारा शासित नहीं होंगे, लेकिन एक बार धारा 74 के तहत कार्यवाही शुरू हो जाने के बाद, धारा 122 के तहत शेष कार्यवाही संबंधित या परिणामी कार्यवाही के रूप में उत्पन्न होगी और इसलिए धारा 122 के तहत 'उचित अधिकारी' को संदर्भित करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। यह समान रूप से उसी कारण से है कि स्पष्टीकरण 1 (ii) धारा 122 के तहत कार्यवाही को एक डीम्ड क्लोजर देता है, यदि धारा 73 और 74 के तहत कार्यवाही मुख्य व्यक्ति के खिलाफ समाप्त हो जाती है।

के- इसके अलावा, याचिकाकर्ता का उपरोक्त तर्क कि चूंकि धारा 122 में एक उचित अधिकारी का कोई संदर्भ नहीं है, इसलिए इसे आपराधिक प्रकृति के रूप में माना जाना चाहिए, निम्नलिखित कारणों से भी विफल होना चाहिए:

(i) धारा 74 का स्पष्टीकरण 1(ii) वैधानिक इरादे को बहुत स्पष्ट करता है कि धारा 73 और 74 के तहत कार्यवाही शुरू करने वाला उचित अधिकारी भी धारा 122 और 125 के तहत कार्यवाही शुरू कर सकता है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि एक बार धारा 73 या 74 के तहत मुख्य व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही समाप्त हो जाने के बाद, धारा 122 या 125 के तहत जुर्माना भरने के लिए उत्तरदायी सभी व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही समाप्त मानी जाती है। नतीजतन, जब भी धारा 122 के साथ धारा 74 को लागू करने की आवश्यकता होती है, तो धारा 74 के तहत उचित अधिकारी कारण बताओ नोटिस जारी कर सकता है और निर्णय भी दे सकता है।

(ii) सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 से 127 विभिन्न प्रकार के दंडों से संबंधित है। ये अनुभाग सामान्य लेआउट अनुभाग हैं कि जुर्माना कब लगाया जा सकता है। इनमें से कुछ धाराओं में उचित अधिकारियों या अधिकारियों का संदर्भ है और इसलिए इसका मतलब यह नहीं हो सकता है कि किसी भी संदर्भ के अभाव में प्रावधान प्रकृति में आपराधिक हो जाएगा। दंड आम तौर पर संपार्श्विक या सह-नोटिस कार्यवाही होती है और इसलिए यह मुख्य निर्णय के साथ खुद को जोड़ती है या हुक करती है और इसलिए एक उचित अधिकारी का

कोई अलग संदर्भ या उल्लेख नहीं है। मुख्य मामले पर निर्णय लेने वाला उचित अधिकारी दंडात्मक परिणामों का भी निर्णय लेगा।

(iii) उपर्युक्त पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, यह मानते हुए भी कि दंड की कार्यवाही अकेले खड़ी है, एक उचित अधिकारी का संदर्भ या गैर-संदर्भ यह निर्णय नहीं कर सकता है कि कोई प्रावधान सिविल दायित्व है या प्रकृति में आपराधिक है। उदाहरण के लिए; धारा 123 सूचना देने में विफल रहने से संबंधित है और जुर्माना एक सौ रुपये प्रतिदिन है और पांच हजार रुपये से अधिक नहीं होगा। धारा 125 के तहत 25 हजार रुपये का सामान्य जुर्माना लगाया जा सकता है। केवल इसलिए कि एक उचित अधिकारी का कोई संदर्भ नहीं है, इसे प्रावधान को आपराधिक प्रकृति के रूप में नहीं माना जा सकता है।

I. अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए, अधिवक्ता ने निम्नलिखित मामलों पर भरोसा किया है:

(i) शिव दत्त राय फतेहचंद (उपरोक्त) [प्रस्तर-30,31]
(ii) गुजरात त्रावणकोर एजेंसी (उपरोक्त) [प्रस्तर-4]
(iii) एम.सी.टी.एम. कार्पोरेशन प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) [प्रस्तर-7,8,12]
(iv) अध्यक्ष सेबी (उपरोक्त) [प्रस्तर-29,33,52]
(v) सेबी बनाम कैबोट इंटरनेशनल कैपिटल कारपोरेशन ने 2004 में एस.सी.सी. ऑनलाइन बॉम 180 [प्रस्तर-47]
(vi) धर्मेन्द्र टेक्सटाइल प्रोसेसर्स (उपरोक्त) [प्रस्तर-18]
(vi) मैसर्स रघुनंदन प्रसाद मोहल लाल, बरेली बनाम बरेली आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण और अन्य में रिपोर्ट 1969 एस.सी.सी. ऑनलाइन सभी 286 [प्रस्तर-9, 10, 11]
(vii) एन.एच.पी.सी. लिमिटेड बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, सचिव और अन्य 2023 में रिपोर्ट किए गए एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1137 [प्रस्तर-35, 36, 37]
(viii) तमिलनाडु राज्य और अन्य बनाम के श्याम सुंदर और अन्य (2011) 8 एस.सी.सी. 737 [प्रस्तर-63, 64]

एम. उपरोक्त के आलोक में, प्रतिपक्षी इस न्यायालय के समक्ष अपनी प्रार्थना दोहराते हैं कि रिट याचिका को पूरी तरह से खारिज किया जाना चाहिए।

<u>मुद्दे</u>

5. दोनों पक्षों द्वारा पेश की गई दलीलों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए निम्नलिखित मुद्दे उठते हैं, जो इस प्रकार हैं:

(I) क्या सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के अंतर्गत उपबंधित दंड उपबंधों पर उचित अधिकारी/न्यायनिर्णयन अधिकारी के पास निर्णय देने की शक्ति है?
(II) क्या सी.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 74 के तहत कार्यवाही को छोड़ने से सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत कार्यवाही में आसानी से कमी आएगी?

<u>प्रासंगिक प्रावधान</u>
6- इससे पहले कि हम दोनों पक्षों द्वारा प्रचारित प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों का आकलन करें, शुरुआत में सी.जी.एस.टी. अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों का उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है। उन्हें नीचे चित्रित किया गया है:

"धारा 2: परिभाषाएँ– *इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो,-*
(107) "कर योग्य व्यक्ति" का अर्थ है वह व्यक्ति जो धारा 22 या धारा 24 के तहत पंजीकृत या पंजीकृत होने के लिए उत्तरदायी है;

धारा 74: धोखाधड़ी *या किसी भी जानबूझकर गलत तरीके से गलत तरीके से लाभ उठाने या तथ्यों को छिपाने के कारण गलत तरीके से भुगतान नहीं किए गए या कम भुगतान किए गए या गलत तरीके से वापस किए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट का निर्धारण।*

(1) जहां यह उचित अधिकारी को प्रतीत होता है कि किसी कर का भुगतान नहीं किया गया है या कम भुगतान किया गया है या गलती से वापस कर दिया गया है या जहां इनपुट टैक्स क्रेडिट गलत तरीके से लाभ उठाया गया है या धोखाधड़ी के कारण उपयोग किया गया है, या कर से बचने के लिए किसी भी जानबूझकर गलत बयान या तथ्यों को दबाया गया है, तो वह उस व्यक्ति को नोटिस देगा जो कर के साथ प्रभार्य है जो इस तरह से भुगतान नहीं किया गया है या जो इतना कम भुगतान किया गया है या जिसके लिए वापसी है गलती से किया गया है, या जिसने गलत तरीके से इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ उठाया है या उसका उपयोग किया है, उसे कारण बताने की आवश्यकता है कि उसे धारा 50 के तहत देय ब्याज और नोटिस में निर्दिष्ट कर के बराबर जुर्माना के साथ नोटिस में निर्दिष्ट राशि का भुगतान क्यों नहीं करना चाहिए।

(2) समुचित अधिकारी आदेश जारी करने के लिए उपधारा (10) में विनिर्दिष्ट समय-सीमा से कम से कम छह माह पहले उप-धारा (1) के अधीन सूचना जारी करेगा।

(3) जहां उपधारा (1) के तहत किसी भी अवधि के लिए एक नोटिस जारी किया गया है, तो उचित अधिकारी कर के साथ प्रभार्य व्यक्ति पर कर का भुगतान नहीं किया गया या कम भुगतान या गलती से वापस किया गया या गलत तरीके से लाभ उठाया या ऐसी अवधि के लिए उपयोग किए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट का विवरण शामिल कर सकता है।

(4) उपधारा (3) के अधीन कथन की सेवा को धारा 73 की उपधारा (1) के अधीन सूचना की तामील के रूप में समझा जाएगा, इस शर्त के अधीन कि उक्त कथन में जिन आधारों पर भरोसा किया गया है, सिवाय धोखाधड़ी के आधार के, या कर से बचने के लिए किसी भी जानबूझकर गलत बयान या तथ्यों का दमन करने के लिए, उपधारा (1) के अधीन आच्छादित किए गए अवधियों के अलावा अन्य अवधियों के लिए वही हैं जो पहले की सूचना में उल्लिखित हैं।

(5) कर के साथ प्रभार्य व्यक्ति, उप-धारा (1) के तहत नोटिस की तामील से पहले, धारा 50 के तहत देय ब्याज और पंद्रह प्रतिशत के बराबर दंड के साथ कर की राशि का भुगतान कर सकता है। इस तरह के कर या कर के अपने स्वयं के निर्धारण के आधार पर इस तरह के कर या कर के रूप में उचित अधिकारी द्वारा पता लगाया गया है और इस तरह के भुगतान के बारे में लिखित रूप में उचित अधिकारी को सूचित करें।

(6) समुचित अधिकारी, ऐसी सूचना प्राप्त होने पर, इस प्रकार भुगतान किए गए कर या इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन संदेय किसी दंड के संबंध में उपधारा (1) के अधीन कोई सूचना नहीं देगा।

(7) जहां उचित अधिकारी की यह राय है कि उपधारा (5) के अधीन भुगतान की गई राशि वास्तव में देय राशि से कम हो जाती है, तो वह ऐसी राशि के संबंध में उपधारा (1) में उपबंधित सूचना जारी करने के लिए आगे बढ़ेगा जो वास्तव में देय राशि से कम है।

(8) जहां उपधारा (1) के तहत कर के साथ प्रभार्य कोई व्यक्ति धारा 50 के तहत देय ब्याज और पच्चीस प्रतिशत के बराबर जुर्माना के साथ उक्त कर का भुगतान करता है। नोटिस जारी होने के तीस दिनों के भीतर इस तरह के कर में, उक्त नोटिस के संबंध में सभी कार्यवाही समाप्त मानी जाएगी।

(9) उचित अधिकारी, कर के साथ प्रभार्य व्यक्ति द्वारा किए गए अभ्यावेदन, यदि कोई हो, पर विचार करने के बाद, ऐसे व्यक्ति से देय कर, ब्याज और दंड की राशि निर्धारित करेगा और एक आदेश जारी करेगा।

(10) उचित अधिकारी उप-धारा (9) के तहत उस वित्तीय वर्ष के लिए वार्षिक रिटर्न प्रस्तुत करने की नियत तारीख से पांच साल की अवधि के भीतर आदेश जारी करेगा, जिसके लिए कर का भुगतान नहीं किया गया है या गलत तरीके से प्राप्त या उपयोग किया गया इनपुट टैक्स क्रेडिट गलत तरीके से प्राप्त या उपयोग किया गया है, या गलत वापसी की तारीख से पांच साल के भीतर या उसके भीतर।

(11) जहां कोई व्यक्ति उपधारा (9) के अधीन जारी किए गए आदेश के साथ सेवा करता है, धारा 50 के अधीन उस पर देय ब्याज और पचास प्रतिशत के बराबर जुर्माना के साथ कर का भुगतान करता है। आदेश के संचार के तीस दिनों के भीतर इस तरह के कर में, उक्त नोटिस के संबंध में सभी कार्यवाही समाप्त मानी जाएगी।

अनुवादित

स्पष्टीकरण 1.–धारा 73 और इस धारा के प्रयोजनों के लिए,-

(i) अभिव्यक्ति "उक्त नोटिस के संबंध में सभी कार्यवाहियों" में धारा 132 के तहत कार्यवाही शामिल नहीं होगी;

(ii) जहां समान कार्यवाही के तहत कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी मुख्य व्यक्ति और कुछ अन्य व्यक्तियों को नोटिस जारी किया जाता है, और मुख्य व्यक्ति के खिलाफ ऐसी कार्यवाही धारा 73 या धारा 74 के तहत समाप्त हो गई है, धारा 122 और 125 के तहत जुर्माना का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी सभी व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही समाप्त मानी जाती है।

स्पष्टीकरण 2.--इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, अभिव्यक्ति "दमन" का अर्थ होगा तथ्यों या जानकारी की गैर-घोषणा जिसे एक कर योग्य व्यक्ति को इस अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत प्रस्तुत विवरण, विवरण, रिपोर्ट या किसी अन्य दस्तावेज में घोषित करना आवश्यक है, या लिखित रूप में मांगे जाने पर कोई जानकारी प्रस्तुत करने में विफलता, उचित अधिकारी द्वारा।

धारा 83. कुछ मामलों में राजस्व की रक्षा के लिए अनंतिम कुर्की :

(1) जहां, अध्याय XII, अध्याय XIV या अध्याय XV के तहत किसी भी कार्यवाही की शुरुआत के बाद, आयुक्त की राय है कि सरकारी राजस्व के हितों की रक्षा के प्रयोजन के लिए ऐसा करना आवश्यक है, वह लिखित रूप में आदेश द्वारा, बैंक खाते सहित किसी भी संपत्ति को अनंतिम रूप से कुर्क कर योग्य व्यक्ति या धारा 122 की उप-धारा (1 ए) में विनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति से संबंधित है, इस तरह से जो निर्धारित किया जा सकता है।

(2) ऐसी प्रत्येक अनंतिम कुर्की उपधारा (1) के अधीन किए गए आदेश की तारीख से एक वर्ष की अवधि की समाप्ति के बाद प्रभावी नहीं होगी।

धारा 122 : कुछ अपराधों के लिए दंड.–(1) जहां एक कर योग्य व्यक्ति जो-

(i) किसी भी चालान के जारी किए बिना किसी भी सामान या सेवाओं या दोनों की आपूर्ति करता है या ऐसी किसी भी आपूर्ति के संबंध में गलत या गलत चालान जारी करता है;

(ii) इस अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रावधानों के उल्लंघन में माल या सेवाओं की आपूर्ति के बिना या दोनों के बिना कोई चालान या बिल जारी करना;

(iii) कर के रूप में कोई राशि एकत्र करता है लेकिन उस तारीख से तीन महीने की अवधि के बाद सरकार को उसका भुगतान करने में विफल रहता है, जिस पर ऐसा भुगतान देय हो जाता है;

(iv) इस अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन करते हुए कोई कर एकत्र करता है लेकिन उस तारीख से तीन महीने की अवधि के बाद सरकार को उसका भुगतान करने में विफल रहता है जिस पर ऐसा भुगतान देय हो जाता है;

(v) धारा 51 की उपधारा (1) के प्रावधानों के अनुसार कर की कटौती करने में विफल रहता है, या एक ऐसी राशि काटता है जो उक्त उप-धारा के तहत कटौती की जाने वाली आवश्यक राशि से कम है, या जहां वह उप-धारा (2) के तहत सरकार को भुगतान करने में विफल रहता है, कर के रूप में काटी गई राशि;

(vi) धारा 52 की उपधारा (1) के प्रावधानों के अनुसार कर एकत्र करने में विफल रहता है, या ऐसी राशि एकत्र करता है जो उक्त उप-धारा के तहत एकत्र की जाने वाली आवश्यक राशि से कम है या जहां वह धारा 52 की उप-धारा (3) के तहत कर के रूप में एकत्र की गई राशि का भुगतान करने में विफल रहता है;

(vii) इस अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रावधानों के उल्लंघन में, माल या सेवाओं की वास्तविक प्राप्ति के बिना या दोनों पूरी तरह से या आंशिक रूप से इनपुट टैक्स क्रेडिट लेता है या उपयोग करता है;

(viii) इस अधिनियम के तहत धोखाधड़ी से कर की वापसी प्राप्त करना;

(ix) धारा 20 या उसके तहत बनाए गए नियमों के उल्लंघन में इनपुट टैक्स क्रेडिट लेता है या वितरित करता है;

(x) वित्तीय अभिलेखों को मिथ्या बनाता है या प्रतिस्थापित करता है या नकली खाते या दस्तावेज प्रस्तुत करता है या इस अधिनियम के तहत देय कर के भुगतान से बचने के इरादे से कोई गलत जानकारी या रिटर्न प्रस्तुत करता है;

(xi) इस अधिनियम के तहत पंजीकृत होने के लिए उत्तरदायी है लेकिन पंजीकरण प्राप्त करने में विफल रहता है;

(xii) पंजीकरण विवरण के संबंध में कोई गलत जानकारी प्रस्तुत करता है, या तो पंजीकरण के लिए आवेदन करते समय, या बाद में;

(xiii) इस अधिनियम के अधीन किसी अधिकारी को उसके कर्तव्यों के निर्वहन में बाधा डालता है या रोकता है;

(xiv) दस्तावेजों के आच्छादित के बिना किसी भी कर योग्य माल का परिवहन करता है जैसा कि इस संबंध में निर्दिष्ट किया जा सकता है;

(xv) इस अधिनियम के तहत कर की अपवंचन के लिए अपने कारोबार को दबाता है;

(xvi) इस अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रावधानों के अनुसार खाता पुस्तकों और अन्य दस्तावेजों को रखने, बनाए रखने या बनाए रखने में विफल रहता है;

(xvii) इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अनुसार किसी अधिकारी द्वारा मांगी गई सूचना या दस्तावेज प्रस्तुत करने में विफल रहता है या इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही के दौरान गलत सूचना या दस्तावेज प्रस्तुत करता है;

(xviii) किसी भी सामान की आपूर्ति, परिवहन या भंडारण करता है, जिसके बारे में उसके विश्वास के कारण हैं कि इस अधिनियम के तहत जब्त किए जाने के लिए उत्तरदायी हैं;

(xix) किसी अन्य पंजीकृत व्यक्ति की पंजीकरण संख्या-का उपयोग करके कोई चालान या दस्तावेज जारी करता है;

(xx) किसी भी भौतिक साक्ष्य या दस्तावेज के साथ छेड़छाड़ करता है, या नष्ट कर देता है;

(xxi) इस अधिनियम के तहत हिरासत में लिए गए, जब्त किए गए या कुर्क किए गए किसी भी सामान का निपटान या छेड़छाड़ करता है,
दस हजार रुपये के जुर्माने या कर की चोरी या धारा 51 के तहत कटौती नहीं की गई कर या कम कटौती या कटौती की गई लेकिन सरकार को भुगतान नहीं की गई या धारा 52 के तहत एकत्र नहीं किए गए कर या कम एकत्र या एकत्र किए गए लेकिन सरकार को भुगतान नहीं किए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा, या अनियमित रूप से भुगतान नहीं किया जाएगा, या धोखाधड़ी से दावा किया गया धनवापसी, जो भी अधिक हो।

(1ए) कोई भी व्यक्ति जो उप-धारा (1) के खंड (i), (ii), (vii) या खंड (ix) के तहत आच्छादित किए गए लेनदेन के लाभ को बरकरार रखता है और जिसके उदाहरण पर ऐसा लेनदेन किया जाता है, वह कर चोरी या इनपुट टैक्स क्रेडिट के बराबर राशि के दंड के लिए उत्तरदायी होगा।

अनुवादित

(2) कोई भी पंजीकृत व्यक्ति जो किसी भी सामान या सेवाओं या दोनों की आपूर्ति करता है जिस पर किसी भी कर का भुगतान नहीं किया गया है या कम भुगतान किया गया है या गलती से वापस कर दिया गया है, या जहां इनपुट टैक्स क्रेडिट गलत तरीके से प्राप्त या उपयोग किया गया है, -

क) किसी भी कारण से, धोखाधड़ी के कारण या किसी भी जानबूझकर गलत बयान या कर से बचने के लिए तथ्यों को छिपाने के अलावा, दस हजार रुपये या दस प्रतिशत के जुर्माने के लिए उत्तरदायी होगा। ऐसे व्यक्ति से देय कर का, जो भी अधिक हो;

(ख) धोखाधड़ी या किसी जानबूझकर गलत कथन या कर अपवंचन के लिए तथ्यों को छिपाने के कारण दस हजार रुपये के बराबर जुर्माना या ऐसे व्यक्ति से देय कर, जो भी अधिक हो, उत्तरदायी होगा।

(3) कोई भी व्यक्ति जो--

(ए) उप-धारा (1) के खंड (i) से (xxi) में निर्दिष्ट किसी भी अपराध में सहायता या उकसाता है;

(ख) किसी भी वस्तु का कब्जा प्राप्त करता है, या किसी भी तरह से परिवहन, हटाने, जमा करने, रखने, छिपाने, आपूर्ति करने या खरीदने या किसी अन्य तरीके से किसी भी सामान से संबंधित है, जिसे वह जानता है या विश्वास करने के कारण है कि इस अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत जब्ती के लिए उत्तरदायी है;

(ग) सेवाओं की किसी भी आपूर्ति को प्राप्त करता है या किसी भी अन्य तरीके से संबंधित है, या किसी अन्य तरीके से सेवाओं की किसी भी आपूर्ति से संबंधित है, जिसे वह जानता है या विश्वास करने के कारण हैं कि वे इस अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करते हैं;

(घ) केंद्रीय कर के अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने में विफल रहता है, जब साक्ष्य देने या जांच में दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए उपस्थित होने के लिए समन जारी किया जाता है;

(ङ) इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अनुसार चालान जारी करने में विफल रहता है या अपने खाते की पुस्तकों में चालान का लेखा-जोखा करने में विफल रहता है,

उस पर जुर्माना लगाया जा सकता है जो पच्चीस हजार रुपये तक हो सकता है।

(1 बी) कोई भी इलेक्ट्रॉनिक कॉमर्स ऑपरेटर जो-

(i) इस तरह की आपूर्ति करने के लिए इस अधिनियम के तहत जारी अधिसूचना द्वारा पंजीकरण से छूट प्राप्त व्यक्ति के अलावा किसी अपंजीकृत व्यक्ति द्वारा इसके माध्यम से वस्तुओं या सेवाओं या दोनों की आपूर्ति की अनुमति देता है;

(ii) किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा इसके माध्यम से वस्तुओं या सेवाओं या दोनों की अंतर-राज्यीय आपूत की अनुमति देता है जो ऐसी अंतर-राज्यीय आपूत करने के लिए पात्र नहीं है; नहीं तो

(iii) इस अधिनियम के तहत पंजीकरण प्राप्त करने से छूट प्राप्त व्यक्ति द्वारा इसके माध्यम से किए गए माल की किसी भी बाहरी आपूर्ति की धारा 52 की उप-धारा (4) के तहत प्रस्तुत किए जाने वाले विवरण में सही विवरण प्रस्तुत करने में विफल रहता है,
दस हजार रुपये का जुर्माना या इसमें शामिल कर की राशि के बराबर राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा, यदि ऐसी आपूर्ति धारा 10 के तहत कर का भुगतान करने वाले व्यक्ति के अलावा किसी अन्य पंजीकृत व्यक्ति द्वारा की गई थी, जो भी अधिक हो।

धारा 124: आंकड़े प्रस्तुत करने में विफलता के लिए जुर्माना *- यदि किसी व्यक्ति को धारा 151 के तहत कोई जानकारी या रिटर्न प्रस्तुत करने की आवश्यकता है, -*

(ए) उचित कारण के बिना ऐसी जानकारी या रिटर्न प्रस्तुत करने में विफल रहता है जैसा कि उस धारा के तहत अपेक्षित हो सकता है, या

(ख) जानबूझकर कोई ऐसी सूचना या विवरणी प्रस्तुत करता है जिसे वह जानता है कि वह गलत है,
वह एक जुर्माने से दंडनीय होगा जो दस हजार रुपये तक हो सकता है और निरंतर अपराध के मामले में एक और जुर्माना जो पहले दिन के बाद प्रत्येक दिन के लिए एक सौ रुपये तक बढ़ाया जा सकता है, जिसके दौरान अपराध पच्चीस हजार रुपये की अधिकतम सीमा के अधीन है।

धारा 125. सामान्य दंड *- कोई भी व्यक्ति, जो इस अधिनियम या इसके तहत बनाए गए किसी भी नियम के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करता है, जिसके लिए इस अधिनियम में अलग से कोई दंड नहीं दिया गया है, उस पर जुर्माना लगाया जाएगा जो पच्चीस हजार रुपये तक बढ़ाया जा सकता है।*

धारा 128: जुर्माना या शुल्क या दोनों को माफ करने की शक्ति--*सरकार, अधिसूचना द्वारा, धारा 122 या धारा 123 या धारा 125 में निर्दिष्ट किसी भी दंड या धारा 47 में निर्दिष्ट किसी विलंब शुल्क को करदाताओं के ऐसे वर्ग के लिए आंशिक या पूर्ण रूप से माफ कर सकती है और ऐसी उपशमनकारी परिस्थितियों में जो परिषद की सिफारिशों पर उसमें विनिर्दिष्ट की जाएं।*

अनधिकृत

धारा 131: अन्य दंडों में हस्तक्षेप न करने के लिए जब्ती या जुर्माना।--- *दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) में निहित उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, इस अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के उपबंधों के तहत कोई जब्ती या जुर्माना नहीं लगाया जाएगा, जिससे प्रभावित व्यक्ति इस अधिनियम के उपबंधों के तहत या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य कानून के तहत उत्तरदायी है।*

धारा १३२ : कतिपय अपराधों के लिए दण्ड।–*(1) जो कोई निम्नलिखित अपराधों में से किसी भी अपराध से उत्पन्न होने वाले लाभों को करता है, या करने और बनाए रखने का कारण बनता है, अर्थात्: -*

(ए) कर चोरी के इरादे से, इस अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रावधानों के उल्लंघन में, किसी भी चालान के जारी किए बिना किसी भी सामान या सेवाओं या दोनों की आपूर्ति करता है;

(ख) इस अधिनियम के उपबंधों या उसके अधीन बनाए गए नियमों का गलत लाभ उठाने या उपयोग करने या कर की वापसी के लिए अग्रणी वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति के बिना कोई चालान या बिल जारी करता है;

(सी) खंड (बी) में निर्दिष्ट चालान या बिल का उपयोग करके इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ उठाता है या किसी भी चालान या बिल के बिना धोखाधड़ी से इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ उठाता है;

(घ) कर के रूप में कोई राशि एकत्र करता है लेकिन उस तारीख से तीन महीने की अवधि के बाद सरकार को उसका भुगतान करने में विफल रहता है, जिस दिन ऐसा भुगतान देय हो जाता है;

(ई) कर से बचता है या धोखाधड़ी से धनवापसी प्राप्त करता है और जहां ऐसा अपराध खंड (ए) से (डी) के तहत आच्छादित नहीं किया जाता है;

(च) वित्तीय अभिलेखों को मिथ्या बनाता है या प्रतिस्थापित करता है या नकली खाते या दस्तावेज प्रस्तुत करता है या इस अधिनियम के तहत देय कर के भुगतान से बचने के इरादे से कोई गलत जानकारी प्रस्तुत करता है;

* * * * *

(ज) किसी भी वस्तु का कब्जा प्राप्त करता है, या किसी भी तरह से परिवहन, हटाने, जमा करने, रखने, छिपाने, आपूर्ति करने या खरीदने या किसी अन्य तरीके से संबंधित है, किसी भी सामान को जो वह जानता है या विश्वास करने के कारण है कि इस अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत जब्ती के लिए उत्तरदायी है;

(i) सेवाओं की आपूर्ति से संबंधित है या किसी अन्य तरीके से सेवाओं की किसी भी आपूर्ति से संबंधित है, जिसे वह जानता है या विश्वास करने के कारण हैं कि वे इस अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करते हैं;

* * * * *

(एल) इस धारा के खंड (ए) से (एफ) और खंड (एच) और (आई) में उल्लिखित किसी भी अपराध को करने का प्रयास, या किसी भी अपराध के कमीशन को बढ़ावा देता है, दंडनीय होगा-

(i) ऐसे मामलों में जहां कर अपवंचन की राशि या गलत तरीके से प्राप्त या उपयोग किए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट की राशि या गलत तरीके से ली गई वापसी की राशि पांच सौ लाख रुपये से अधिक है, एक अवधि के लिए कारावास के साथ जिसे पांच साल तक और जुर्माने के साथ, बढ़ाया जा सकता है;

(ii) ऐसे मामलों में जहां कर की चोरी की गई राशि या गलत तरीके से प्राप्त या उपयोग किए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट की राशि या गलत तरीके से ली गई वापसी की राशि दो सौ लाख रुपये से अधिक है, लेकिन पांच सौ लाख रुपये से अधिक नहीं है, एक अवधि के लिए कारावास के साथ जिसे तीन साल तक और जुर्माने के साथ बढ़ाया जा सकता है;

(iii) खंड (बी) में निर्दिष्ट अपराध के मामले में जहां कर चोरी की राशि या गलत तरीके से प्राप्त या उपयोग किए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट की राशि या गलत तरीके से ली गई वापसी की राशि एक सौ लाख रुपये से अधिक है, लेकिन दो सौ लाख रुपये से अधिक नहीं है, एक अवधि के लिए कारावास के साथ जो एक वर्ष तक और जुर्माने के साथ बढ़ाया जा सकता है;

(iv) ऐसे मामलों में जहां वह खंड (च) में विनिर्दिष्ट अपराध करता है या दुष्कयता करता है, वह उस अवधि के कारावास से दंडनीय होगा जिसे छह महीने तक बढ़ाया जा सकता है या जुर्माना या दोनों से दंडित किया जा सकता है।

(2) जहां इस धारा के अधीन किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध कोई व्यक्ति इस धारा के अधीन किसी अपराध के लिए पुन दोषी ठहराया जाता है, तो वह दूसरे और उसके बाद के प्रत्येक अपराध के लिए कारावास के साथ दंडनीय होगा, जिसे पांच वर्ष तक बढ़ाया जा सकेगा और जुर्माने से दंडनीय होगा।

(3) उपधारा (1) और उपधारा (2) के खंड (i), (ii) और (iii) में निर्दिष्ट कारावास, न्यायालय के निर्णय में दर्ज किए जाने वाले विपरीत के विशेष और पर्याप्त कारणों के अभाव में, कम से कम छह महीने की अवधि के लिए होगा।

(4) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) में किसी बात के होते हुए भी, उपधारा (5) में निर्दिष्ट अपराधों को छोड़कर इस अधिनियम के अधीन सभी अपराध असंज्ञेय और जमानती होंगे।

(5) उपधारा (1) के खंड (क) या खंड (ख) या खंड (ग) या खंड (घ) में विनिर्दिष्ट और उस उपधारा के खंड (i) के अधीन दंडनीय अपराध संज्ञेय और गैर-जमानती होंगे।

(6) किसी व्यक्ति पर आयुक्त की पूर्व स्वीकृति के बिना इस धारा के अधीन किसी अपराध के लिए मुकदमा नहीं चलाया जाएगा।
स्पष्टीकरण--इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "कर" शब्द में इस अधिनियम, राज्य माल और सेवा कर अधिनियम, एकीकृत माल और सेवा कर अधिनियम या संघ राज्य क्षेत्र माल और सेवा कर अधिनियम के प्रावधानों के तहत गलत तरीके से प्राप्त किए गए या गलत तरीके से लिए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट की राशि और माल और सेवा कर (राज्यों को मुआवजा) अधिनियम के तहत लगाए गए उपकर की राशि शामिल होगी।

धारा 134: अपराधों का संज्ञान।*- कोई भी न्यायालय आयुक्त की पूर्व स्वीकृति के बिना इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान नहीं लेगा, और प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट से कम कोई न्यायालय ऐसे किसी अपराध का विचारण नहीं करेगा।*

धारा 138. अपराधों का शमन - *(1) इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, या तो अभियोजन की संस्था से पहले या बाद में, आयुक्त द्वारा, अपराध के अभियुक्त व्यक्ति द्वारा, केन्द्र सरकार या राज्य सरकार को, यथास्थिति, ऐसी शमन राशि का भुगतान करने पर ऐसी रीति से जो विहित की जाए, संयोजित किया जा सकेगा:*

बशर्ते कि इस धारा में निहित कुछ भी इन पर लागू नहीं होगा-

(ए) एक व्यक्ति जिसे धारा 132 की उपधारा (1) के खंड (ए) से (एफ), (एच), (आई) और (एल) में निर्दिष्ट किसी भी अपराध के संबंध में एक बार कंपाउंड करने की अनुमति दी गई है;

(ख) [छोड़ा गया]

(ग) एक व्यक्ति जिस पर धारा 132 की उपधारा (1) के खंड (बी) के तहत अपराध करने का आरोप लगाया गया है;

(घ) एक व्यक्ति जिसे अदालत द्वारा इस अधिनियम के तहत किसी अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है;

(ङ) [छोड़ा गया]

(च) व्यक्तियों या अपराधों का कोई अन्य वर्ग जो विहित किया जा सकता है:
बशर्ते कि इस धारा के प्रावधानों के तहत अनुमत कोई भी शमन किसी अन्य कानून के तहत स्थापित कार्यवाहियों, यदि कोई हो, को प्रभावित नहीं करेगी:
बशर्ते कि ऐसे अपराधों में शामिल कर, ब्याज और जुर्माने का भुगतान करने के बाद ही शमन की अनुमति दी जाएगी।

(2) इस धारा के अधीन अपराधों के शमन के लिए राशि ऐसी होगी जो विहित की जाए, अध्यधीन न्यूनतम राशि पच्चीस प्रतिशत से कम न हो। इसमें शामिल कर की संख्या-और अधिकतम राशि एक सौ प्रतिशत से अधिक न हो। शामिल कर का।

(3) आयुक्त द्वारा अवधारित ऐसी शमन राशि के भुगतान पर, उसी अपराध के संबंध में अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध इस अधिनियम के अधीन आगे कोई कार्यवाही शुरू नहीं की जाएगी और कोई दंडनीय कार्यवाही, यदि उक्त अपराध के संबंध में पहले ही शुरू की गई है, तो समाप्त हो जाएगी।

सी.जी.एस.टी. नियमों का नियम 142। अधिनियम के अधीन देय राशियों की मांग के लिए सूचना और आदेश-
(1) समुचित अधिकारी निम्नलिखित के साथ सेवा करेगा

(ए) धारा 52 या धारा 73 या धारा 74 या धारा 74 ए या धारा 76 या धारा 122 या धारा 123 या धारा 124 या धारा 125 या धारा 127 या धारा 129 या धारा 130 के तहत जारी नोटिस, फॉर्म जीएसटी डीआरसी -01 में इलेक्ट्रॉनिक रूप से उसका सारांश,
***

(5) धारा 52 या धारा 62 या धारा 63 या धारा 64 या धारा 73 या धारा 74 या धारा 74 ए या धारा 75 या धारा 76 या धारा 122 या धारा 123 या धारा 124 या धारा 125 या धारा 127 या धारा 129 या धारा 130 के तहत जारी किए गए आदेश का सारांश फॉर्म जीएसटी डीआरसी-07 में इलेक्ट्रॉनिक रूप से अपलोड किया जाएगा। इसमें कर, ब्याज और दंड की राशि, जैसा भी मामला हो, संबंधित व्यक्ति द्वारा देय निर्दिष्ट करना।

<u>विश्लेषण</u>

7. हमने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री का अवलोकन किया है। याचिकाकर्ता की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अरविंद दातार ने हमारे सामने अपनी दलीलों को सावधानीपूर्वक संबोधित किया है और ए.एस.जी.आई. के श्री वेंकटरमन ने याचिकाकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों को जोरदार ढंग से खारिज कर दिया है।

8. याचिकाकर्ता की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा पेश किए गए तर्क मुख्य रूप से दो स्तंभों पर आधारित हैं। सबसे पहले, वह प्रस्तुत करता है कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत जुर्माना लगाना आपराधिक दायित्व को आकर्षित करता है और नागरिक दायित्व नहीं लगाता है। अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए उन्होंने इसे चित्रित करने के लिए विभिन्न संकेतों की ओर इशारा किया है और दूसरी बात, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि धारा 122 के तहत कार्यवाही एक ही व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही छोड़ने के बाद अपनी अखंडता को बनाए नहीं रख सकती है, यानी धारा 74 के स्पष्टीकरण 1 (ii) के मद्देनजर सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के तहत याचिकाकर्ता।

9. इसके विपरीत, प्रतिपक्षियों की ओर से उपस्थित होने वाला ए.एस.जी.आई. याचिकाकर्ता के उपरोक्त तर्कों को मुख्य रूप से दो बिंदुओं पर खारिज कर देता है। सबसे पहले, सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 नागरिक दायित्व को आकर्षित करती है और आपराधिक नहीं क्योंकि कराधान मामलों में जुर्माना नागरिक दायित्व को समाहित करता है। इसके अलावा, धारा 122 (1) के तहत निर्धारित दंड प्रावधान एक कर योग्य व्यक्ति द्वारा किए गए अपराधों के लिए है और 'अध्याय XV: मांग और वसूली' शीर्षक के तहत निर्धारित दंड से अलग है जिसमें धारा 73/74 शामिल है। माल की वास्तविक आपूर्ति के बिना कर चालान जारी करना और माल की वास्तविक प्राप्ति के बिना इनपुट टैक्स क्रेडिट का उपयोग चूक और कमीशन के विभिन्न कार्य हैं और इसलिए सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 (1) के तहत दंड प्रावधान आकर्षित होंगे। दूसरे, धारा 122 के तहत कार्यवाही में कमी के संबंध में धारा 74 के स्पष्टीकरण (1)(ii) को ध्यान में रखते हुए, यह प्रस्तुत किया जाता है कि एक कर योग्य व्यक्ति धारा 122(1) के तहत दंड के लिए उत्तरदायी है, यदि यह सी.जी.एस.टी. अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करता है। केवल इसलिए कि विभाग द्वारा धारा 74 के तहत कार्यवाही छोड़ने के बाद कोई कर की मांग नहीं की जाती है, यह धारा 122(1) में किसी भी उप-धारा के तहत उसके द्वारा की गई गलतियों के लिए कर योग्य व्यक्ति को दंड से मुक्त नहीं कर सकता है, और इसलिए, धारा 122(1) को बहुत अच्छी तरह से लगाया जा सकता है।

अनुवादित

'अपराध' और 'दंड' का अर्थ

10. समझने के प्रयोजन के लिए, पहले सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 में प्रयुक्त 'अपराध' और 'दंड' शब्दों के अर्थ के संबंध में निपटना आवश्यक है। ब्लैक लॉ डिक्शनरी, पी रामनाथ अय्यर की द लॉ लेक्सिकन में दिए गए 'अपराध' और 'दंड' शब्दों की असंख्य परिभाषाएं नीचे उद्धृत की गई हैं:

'अपराध' की परिभाषा

(i) *ब्लैक लॉ डिक्शनरी* (9वां संस्करण, पृष्ठ 1186) के अनुसार *अपराध की परिभाषा को* शब्दशः निम्नानुसार उद्धृत किया गया है -

"कानून का उल्लंघन; एक अपराध, अक्सर एक नाबालिग।

'अपराध', 'अपराध' और 'आपराधिक अपराध' सभी शब्दों को पर्यायवाची कहा जाता है, और आमतौर पर एक दूसरे के स्थान पर उपयोग किया जाता है। 'अपराध' हर अपराध और दुष्कर्म को समझ सकता है, या एक विशिष्ट अर्थ में 'गुंडागर्दी' के पर्याय के रूप में या 'दुष्कर्म' के साथ उपयोग किया जा सकता है, जैसा कि मामला हो, या कम ग्रेड के अपराध को इंगित करने के रूप में, या एक कार्य जो इंगित नहीं करता है, लेकिन सरसरी तौर पर दंडनीय है या दंड की जब्ती से।

(ii) 'अपराध' शब्द को जैसा कि पी रामनाथ अय्यर के 'द लॉ लेक्सिकॉन' (चौथा संस्करण, पृष्ठ 1316) में परिभाषित किया गया है, शब्दशः इस प्रकार उद्धृत किया गया है:

"अपराध, कानून के खिलाफ किया गया एक कार्य है, या जहां कानून की आवश्यकता होती है, वहां छोड़ दिया जाता है, और इसके द्वारा दंडनीय होता है। (टॉमलिन) 'अपराध' आम तौर पर एक अपराध के बराबर होता है (प्रति कॉलिन्स, डर्बीशायर कंपनी, बनाम डर्बी, 65 एलजेक्यूबी 488)। अपने कानूनी अर्थ में, एक अपराध एक कानून का उल्लंघन है; जनता की सुरक्षा के लिए स्थापित कानूनों का उल्लंघन, जो केवल निजी अधिकारों के उल्लंघन से अलग है; कानून का दंडनीय उल्लंघन, एक अपराध, वह करना जो एक दंडात्मक कानून करने से मना करता है या जो वह आदेश देता है उसे करने के लिए छोड़ देता है।

***

"अपराध: "अपराध" शब्द अपराध का दूसरा नाम है। व्यापक अर्थों में अपराधों में न केवल प्रमुख अपराध (अभियोग योग्य अपराध) शामिल हैं, बल्कि लघु अपराध भी शामिल हैं। उत्तरार्द्ध कई ट्रेडों और विशेष गतिविधियों (तथाकथित "नियामक अपराध") के साथ-साथ अपने दैनिक जीवन में आम लोगों के आचरण को नियंत्रित करता है।

<u>'जुर्माना' की परिभाषा</u>

(iii) ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी *(9 वां संस्करण, पृष्ठ 1247)* में परिभाषित किया गया शब्द 'जुर्माना' नीचे शब्दशः उद्धृत किया गया है:

"एक गलत काम करने वाले को दी गई सजा,कारावास या जुर्माने के रूप में; विशेष रूप से, राज्य के लिए गलत या नागरिक गलत के लिए सजा के रूप में वसूले गए धन की राशि (जैसा कि घायल पक्ष के नुकसान के लिए मुआवजे से अलग) है। हालांकि अपराधों के लिए, कभी-कभी नागरिक गलतियों के लिए दंड भी लगाया जाता है।

(iv) 'जुर्माना' शब्द जैसा कि पी रामनाथ अय्यर के 'द लॉ लेक्सिकॉन' *(चौथा संस्करण, पृष्ठ 1404) में परिभाषित किया गया है, को नीचे* दिए गए अनुसार शब्दशः उद्धृत किया गया है:

"कुछ मामलों में क़ानूनों में 'जुर्माना' शब्द का उपयोग बहुत शिथिल रूप से किया जाता है, और इसके सामान्य अर्थ से बहुत अधिक तनावपूर्ण होने के बिना, पुलिस आवश्यकताओं का उल्लंघन करने वालों के सिर पर कानून द्वारा देखे गए सभी परिणामों को गले लगाने के लिए आयोजित किया जा सकता है।

***

"कानून, नियम या अनुबंध के किसी भी उल्लंघन के लिए लगाई गई सजा, एक बांड में नामित राशि के रूप में बाध्यकारी द्वारा जब्त की जाने वाली राशि के रूप में यदि वह बांड की शर्तों का पालन नहीं करता है; दंडात्मक क़ानून के आधार पर वसूली योग्य धन; एक समझौते या उसमें कुछ शर्तों के उल्लंघन पर भुगतान करने के लिए सहमत राशि।

***

"जुर्माना' शब्द व्यापक महत्व का शब्द है। कभी-कभी, इसका मतलब दीवानी कार्यवाही में भी दंडात्मक उपाय के रूप में राशि की वसूली होती है। एक वसूली जो चरित्र में प्रतिपूरक नहीं है, उसे दंड भी कहा जाता है। जब एक निर्णायक अधिकारी द्वारा जुर्माना लगाया जाता है, तो यह 'न्यायिक कार्यवाहियों' में किया जाता है, न कि एक आपराधिक अदालत में अपराध करने के लिए एक अभियुक्त के अभियोजन के परिणामस्वरूप जुर्माने के रूप में। प्रवर्तन निदेशक बनाम मैसर्स एम.सी.टी.एम. कॉर्प। प्रा.लि., ए.आई.आर. 1996 एस.सी. 1100,1104, [विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम (7 वर्ष 1947), धारा 23(1)(ए)]"

***

"दंड और अभियोजन भेद। अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध के लिए अभियोजन और अध्याय XXI के तहत दंड लगाने की कार्यवाही के बीच एक स्पष्ट अंतर है। दंड की कार्यवाही सख्त अर्थों में आपराधिक कार्यवाही नहीं है। एक आपराधिक आरोप में, जब तक अभियोजन अधिनियम के तहत निर्धारिती द्वारा किए गए अपराध को उचित संदेह से परे साबित नहीं करता है, तब तक अपराधी संदेह के लाभ का हकदार है और इस तरह स्कॉट मुक्त हो जाता है। बरी होने का फैसला कथित बेगुनाही के तकनीकी नियम पर है। जुर्माना लगाने के लिए सबूत का मानक उतना कठोर नहीं है जितना कि किसी अपराध के अभियोजन के लिए। दंड के मामले में परीक्षण परिस्थितियों की समग्रता है। साक्ष्य मौखिक, दस्तावेजी या परिस्थितिजन्य हो सकते हैं।

***

"दंड और सजा: दंड 'अपराधों के संबंध में सजा' का पर्याय है और आपराधिक कृत्य को परिभाषित करने वाले कानून द्वारा तय किया जाता है।

(v) 'जुर्माना' शब्द जैसा कि पी रामनाथ अय्यर के 'द लॉ लेक्सिकॉन' *(6 वां संस्करण, खंड 3, पृष्ठ 4112-4114) में परिभाषित किया गया है, नीचे* दिए गए अनुसार शब्दशः उद्धृत किया गया है:

"कोई क़ानून आपराधिक अपराध बनाता है या नहीं, यह व्याख्या का प्रश्न है, उदाहरण के लिए, यदि "जुर्माना" शब्द "जुर्माना" शब्द से अलग का उपयोग किया जाता है, तो सामान्य नियम यह है कि दंड को एक नागरिक न्यायालय में ऋण के रूप में वसूल किया जाना चाहिए। हैल्सबरी, चौथा संस्करण, खंड 11, प्रस्तर-2, पृष्ठ 12, एफएन 5।

***

"एक दंड एक कानून द्वारा इसके उल्लंघन के लिए दी गई सजा है।

"एक दंड को एक अस्थायी सजा या क़ानून द्वारा लगाए गए धन की राशि के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसे एक निश्चित अपराध के कमीशन के लिए सजा के रूप में भुगतान किया जाना है।

"एक दंड कानून या अनुबंध द्वारा कुछ ऐसा करने या विफल रहने के लिए लगाई गई सजा है जो करना एक पार्टी का कर्तव्य था।

"एक दंड किसी कार्य के गैर-प्रदर्शन, या एक गैरकानूनी कार्य के प्रदर्शन के लिए सजा की प्रकृति में है, और पूर्व मामले में किए जाने वाले कार्य के बदले में खड़ा होता है।

"'दंड' और 'दंड' शब्द सख्ती से और मुख्य रूप से सजा को दर्शाते हैं, चाहे वह शारीरिक हो या आर्थिक, राज्य द्वारा अपने कानूनों के खिलाफ अपराध या अपराध के लिए लगाया और लागू किया गया हो।

***

"जुर्माना' आमतौर पर तब *देय हो जाता है जब यह पाया जाता है कि एक निर्धारिती ने जानबूझकर कर कानून के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन किया है। [एसोसिएटेड सीमेंट कंपनी लिमिटेड बनाम वाणिज्यिक कर अधिकारी, (1981) 4 एस.सी.सी. 578, 600, प्रस्तर-23]"*

"किसी करदाता पर किसी अभद्र आचरण के लिए या किसी विशेष कानून के प्रावधानों के जानबूझकर उल्लंघन के लिए जुर्माना लगाया जाता है। (प्रतिभा प्रोसेसर्स बनाम यू.ओ.आई., ए.आई.आर. 1997 एस.सी. 138)।

"जुर्माना' अनुबंध का उल्लंघन करने वाले पक्ष पर सजा के रूप में लगाया गया दायित्व है। (ख) यदि हां, तो तत्संबंधी ब्यौरा क्या है? खान और भूविज्ञान की संख्या, (2004) 2 एस.सी.सी. 783, 791, प्रस्तर-13।

***

पीठ ने कहा, "करदाता को अपने वैधानिक दायित्व का निर्वहन करने के लिए मजबूर करने के लिए परिस्थितियां पैदा करना 'जुर्माना' नहीं कहा जा सकता। कर संग्रह समाज को सुरक्षा, सुरक्षा और अन्य सुविधाएं प्रदान करने के लिए राज्य का एक अधिनियम है, इसलिए सभी परिस्थितियों में, इसे 'दंड' या 'दंड' नहीं कहा जा सकता है [एस. रेड्डप्पा बनाम यू.ओ.आई., (1998) 232 आई.टी.आर. 62 (कर)]।

"'जुर्माना' एक गलत काम करने वाले को दी जाने वाली सजा है। [अमीन चन्द पयारेलाल बनाम निरीक्षण सहायक। सीआईटी, (2006) 7 एस.सी.सी. 483, 486, प्रस्तर-9]। [आयकर अधिनियम 43 वर्ष 1961), धारा 27(1)(ए)]"

"धारा 288(4) के प्रयोजन के लिए 'जुर्माना' शब्द वास्तविक उल्लंघन के लिए लगाए गए दंड पर विचार करता है और उल्लंघन नहीं माना जाता है।

पीठ ने कहा, "जुर्माना' हमेशा संबंधित व्यक्ति की व्यक्तिगत गलती के कारण लगाया जाता है। यह हमेशा एक अपराधी से संबंधित होता है। यह एक व्यक्तिगत दायित्व है और इसे अपराधी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति पर नहीं लगाया जा सकता है। कर और जुर्माना अलग-अलग अवधारणाएं हैं। [बचन सिंह बनाम सड़क परिवहन अधिकारी, राउरकेला, ए.आई.आर. 2009 ओरी 185, 188, प्रस्तर-9] [उड़ीसा मोटर वाहन कराधान अधिनियम (39 वर्ष 1975), धारा 20]"

***

"दंड" एक फिसलन भरा शब्द है और इसे उस संदर्भ में समझा जाना चाहिए जिसमें इसका उपयोग किसी दिए गए क़ानून में किया जाता है। एक दंड सांविधिक कर्तव्य के उल्लंघन का विषय-वस्तु हो सकता है या यह एक शिकायत का विषय-वस्तु हो सकता है। सामान्य भाषा में, कार्यवाही में सिविल दायित्वों से बचने के लिए दंड शामिल हो सकते हैं जो राज्य के खिलाफ अपराध नहीं हैं। यह अंतर सार्वजनिक राजस्व की रक्षा के उद्देश्य से किसी भी अधिनियम के लिए जिम्मेदार है। इस प्रकार, सभी दंड एक अपराध से नहीं होते हैं जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है, लेकिन सभी अपराधों में दंड होता है। जबकि पहला एक दंड है जो वैधानिक प्रावधानों की अवहेलना से निकलता है, बाद वाला वहां होता है जहां मेन्स रिया (इरादा/आशय) होता है और इसे अधिनिर्णय का विषय बना दिया जाता है। अधिनियम की धारा 10(3) के तहत जुर्माना प्रतिपूरक है। यह अधिनियम के तहत कर का भुगतान न करने के लिए वैधानिक शुल्क के उल्लंघन के लिए लगाया जाता है। [यूपी राज्य बनाम सुखपाल सिंह बल, (2005) 7 एस.सी.सी. 615, 622, प्रस्तर-15] [यूपी मोटर वाहन कराधान अधिनियम (21 वर्ष 1997), धारा 10 (3)]"

11. स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय के फैसले पर याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किया गया है, जिसमें 'अपराधों' को परिभाषित किया गया है, जिसे शब्दशः निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"29. धारा 50 जो जुर्माना लगाने का प्रावधान करती है और अभियोजन का प्रावधान करने वाली धारा 56 दोनों, अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन की बात करते हैं। उल्लंघन मूल तत्व है। उल्लंघन एक व्यक्ति को दंड और अभियोजन दोनों के लिए उत्तरदायी बनाता है। भले ही धारा 56 का शीर्षक अपराधों और अभियोजनों को संदर्भित करता है, लेकिन धारा द्वारा दंडनीय बनाया गया है जो अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन है और अभियोजन दंड के किसी भी पुरस्कार के प्रति प्रतिकूल प्रभाव के बिना है। जुर्माना देना भी उसी उल्लंघन पर आधारित है। धारा 63 मुद्रा, प्रतिभूति या किसी अन्य धन या संपत्ति को जब्त करने की शक्ति प्रदान करती है, जिसके संबंध में अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन हुआ है, निर्णायक प्राधिकारी और अदालत को समान रूप से प्रदान किया गया है, चाहे वह दंड के निर्णय के दौरान हो या अभियोजन के दौरान। जबकि धारा 64(1) उल्लंघन की तैयारी या प्रयास से संबंधित धारा 56 तक ही सीमित है, अभियोजन का प्रावधान, धारा 64 की उप-धारा (2) अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उल्लंघन या उल्लंघन के लिए उकसाने के प्रयास को स्वयं एक उल्लंघन बनाती है, जिसमें अधिनियम के तहत दंड का निर्णय भी शामिल है। कंपनियों द्वारा अपराधों से संबंधित धारा 68, उप-धारा (1) द्वारा एक डीमिंग प्रावधान पेश किया गया है कि वह व्यक्ति जो कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए कंपनी का प्रभारी था और उसके प्रति जिम्मेदार था, उसे भी अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए कंपनी के साथ दोषी माना जाएगा और उसके खिलाफ कार्यवाही की जाएगी और तदनुसार दंडित किया जाएगा। इसमें कोई संदेह नहीं है कि दंड के लिए उत्तरदायी व्यक्ति यह साबित कर सकता है कि उल्लंघन उसकी जानकारी के बिना हुआ था या उसने इस तरह के उल्लंघन को रोकने के लिए सभी उचित परिश्रम का प्रयोग किया था। उप-धारा (2) फिर से केवल अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन की बात करती है और उस उप-धारा में निर्दिष्ट व्यक्तियों को भी उल्लंघन का दोषी माना जाता है और उनके खिलाफ कार्यवाही की जानी चाहिए और तदनुसार दंडित किया जाना चाहिए। अधिनियम में "अपराध" शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है।

संक्षिप्त ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार, इसका अर्थ है, "अपमान का कार्य या उदाहरण"। अपराध का अर्थ है, "एक अवैध कार्य करना" और अवैध साधन, "कानून के विपरीत या निषिद्ध"। न्यू शॉर्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार, एक अपराध "कानून, नियमों, कर्तव्य, औचित्य, शिष्टाचार, एक अवैध कार्य, एक अपराध, पाप, गलत, दुष्कर्म, गलती का उल्लंघन" है। इस प्रकार, एक अपराध का अर्थ केवल कानून के विपरीत या निषिद्ध कार्य करना है। यह केवल अपराध करने तक ही सीमित नहीं है। यह कानून के खिलाफ किया गया या छोड़ दिया गया एक कार्य है जहां कानून की आवश्यकता है और इसके द्वारा दंडनीय है। इसके कानूनी अर्थ में, एक अपराध एक कानून का उल्लंघन है; जनता की सुरक्षा के लिए स्थापित कानूनों का उल्लंघन, जो केवल निजी अधिकारों के उल्लंघन से अलग है; कानून का दंडनीय उल्लंघन, एक अपराध, वह करना जो एक दंडात्मक कानून करने से मना करता है या जो वह आदेश देता है उसे करने के लिए छोड़ देता है (देखें पी. रामनाथ अय्यर की एडवांस्ड लॉ लेक्सिकॉन, तीसरा संस्करण, 2005, पृष्ठ 3302)। डिपो मैनेजर, एपी एसआरटीसी बनाम मो. यूसुफ मिया [(1997) 2 एस.सी.सी. 699: 1997 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 548] ने कहा कि "अपराध" शब्द आम तौर पर एक सार्वजनिक कर्तव्य के उल्लंघन का अर्थ है, जैसा कि आपराधिक कानून के तहत दंडनीय केवल निजी अधिकारों से अलग है। ब्राउन बनाम ऑलवेदर मैकेनिकल कंपनी [(1954) 2 क्यूबी 443: (1953) 1 इला ई.आर. 474: (1953) 2 डब्ल्यू.एल.आर. 402 (डीसी)] में इसका वर्णन इस प्रकार किया गया था: (सभी ई.आर. पी. 476 एबी)

एक क़ानून द्वारा निर्धारित कुछ करने में विफलता को एक अपराध के रूप में वर्णित किया जा सकता है, हालांकि कोई आपराधिक मंजूरी नहीं लगाई जाती है, लेकिन केवल एक आर्थिक मंजूरी जो एक नागरिक ऋण के रूप में वसूली योग्य है।

सामान्य खंड अधिनियम की धारा 3(38) में परिभाषित अभिव्यक्ति "अपराध" का अर्थ है एक कार्य या चूक जिसे किसी भी कानून द्वारा उस समय लागू किया गया है। "दंडनीय" जैसा कि इस न्यायालय ने सुबे सिंह बनाम सूबे सिंह में देखा है। हरियाणा राज्य [(1989) 1 एस.सी.सी. 235: 1989 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 101] को आमतौर पर सजा के योग्य, या सक्षम या उत्तरदायी के रूप में परिभाषित किया गया है। संक्षिप्त ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार, "दंड" का अर्थ है, "किसी अपराध के लिए प्रतिशोध के रूप में दंड देना, किसी को (अपराध) के लिए दंड देना"। न्यू शॉर्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी (खंड 2, तीसरा संस्करण, पुनर्मुद्रण 1993) में, सजा का अर्थ इस प्रकार दिया गया है, "किसी अपराध के लिए प्रतिशोध में दंड का प्रभाव; कानून के आवेदन और प्रवर्तन को सुनिश्चित करने के लिए जुर्माना लगाया जाता है। ब्लैक लॉ डिक्शनरी (8वां संस्करण) के अनुसार यह है:

"एक मंजूरी - जैसे कि जुर्माना, कारावास, या संपत्ति, अधिकार, या विशेषाधिकार की हानि - कानून का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति के खिलाफ मूल्यांकन किया जाता है।

जोविट्स डिक्शनरी ऑफ इंग्लिश लॉ, वॉल्यूम 2, (जॉन बर्क द्वारा दूसरा संस्करण) के अनुसार, सजा कानून का उल्लंघन करने के लिए दंड है। यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि धारा 68, उप-धारा (1) और उप-धारा (2) दोनों में अभिव्यक्ति का उपयोग करती है, जिसके खिलाफ कार्यवाही की जाएगी और तदनुसार दंडित किया जाएगा। धारा 68 के संचालन को केवल अभियोजन तक सीमित रखने और अधिनियम की धारा 50 के तहत दंडात्मक

कार्यवाही से इसके संचालन को बाहर करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि दोनों का आवश्यक घटक अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन है। एक कंपनी दोनों प्रावधानों के तहत कार्रवाई करने के लिए उत्तरदायी है। धारा 68 केवल एक प्रावधान है जो यह दर्शाता है कि किसी कंपनी द्वारा उल्लंघन किए जाने पर इसके अलावा किसके खिलाफ कार्रवाई की जा सकती है या किसी कंपनी द्वारा उल्लंघन में किसे शामिल किया जाना चाहिए या किया जा सकता है। धारा 68 केवल कार्यवाही की प्रकृति और तरीके को स्पष्ट करती है जब अधिनियम के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन किसी कंपनी द्वारा किया जाता है, चाहे वह जुर्माना लगाने के लिए निर्णय के माध्यम से हो या अभियोजन के माध्यम से कारावास और जुर्माना हो सकता है।"
(महत्व सन्निविष्ट)

12. शिव ***दत्त राय फतेह चंद (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय ने*** *दोनों पक्षों की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया 'जुर्माना' को परिभाषित किया है, जिसे शब्दशः नीचे उद्धृत किया गया है:*

"25. .... शब्द "दंड" व्यापक महत्व का शब्द है। कभी-कभी इसका मतलब दीवानी कार्यवाही में भी दंडात्मक उपाय के रूप में राशि की वसूली होती है। एक वसूली जो प्रतिपूरक प्रकृति का नहीं है, उसे दंड के रूप में भी कहा जाता है, भले ही इसे संबंधित व्यक्ति को अपराध का दोषी ठहराने के आदेश के अनुसार वसूल नहीं किया जा रहा हो। (महत्व सन्निविष्ट)

13. उत्तर ***प्रदेश राज्य बनाम सुखपाल सिंह बल*** *ने 7 एस.सी.सी. 615, 622 में 'दंड' शब्द के संबंध में रिपोर्ट किया है कि दंड अपराधों से पहले नहीं होता है, लेकिन अपराध दंड से पहले होता है। निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर यहां नीचे उद्धृत किया गया है:*

"15. उक्त 1997 अधिनियम के प्रावधानों पर लागू होने वाले उपरोक्त निर्णयों के आलोक में, हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 (1) (जी) की धारा 10 (3) को अधिकारातीत के रूप में रद्द करने में गलती की थी। "जुर्माना" एक फिसलन भरा शब्द है और इसे उस संदर्भ में समझा जाना चाहिए जिसमें किसी दिए गए क़ानून में इसका उपयोग किया जाता है। एक दंड सांविधिक कर्तव्य के उल्लंघन का विषय-वस्तु हो सकता है या यह एक शिकायत का विषय-वस्तु हो सकता है। सामान्य भाषा में, कार्यवाही में सिविल दायित्वों से बचने के लिए दंड शामिल हो सकते हैं जो राज्य के खिलाफ अपराध नहीं हैं। यह अंतर सार्वजनिक राजस्व की रक्षा के उद्देश्य से किसी भी अधिनियम के लिए जिम्मेदार है। इस प्रकार, सभी दंड एक अपराध से नहीं होते हैं जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है, लेकिन सभी अपराधों में दंड होता है। जबकि पहला एक दंड है जो वैधानिक प्रावधानों की अवहेलना से निकलता है, बाद वाला वहां होता है जहां मेन्स रिया (इरादा/आशय) होता है और इसे अधिनिर्णय का विषय बना दिया जाता है। हमारे विचार में, अधिनियम की धारा 10(3) के तहत जुर्माना प्रतिपूरक है। यह अधिनियम के तहत कर का भुगतान न करने के लिए वैधानिक शुल्क के उल्लंघन के लिए लगाया जाता है। धारा 10(3) सार्वजनिक राजस्व की रक्षा के लिए अधिनियमित की गई है। इसे कर चोरी के लिए एक निवारक के रूप में अधिनियमित किया गया है। यदि राज्य की सांविधिक देय

राशि का भुगतान किया जाता है, तो भारी जुर्माना लगाने का कोई प्रश्न ही नहीं है। वह सब कुछ जो किसी शक्ति के मुख्य उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है, वह शक्ति के भीतर ही निहित है। जुर्माना लगाने की शक्ति मुख्य शक्ति को सही ठहराने के उद्देश्य से है जो प्रश्न में क़ानून द्वारा प्रदान की जाती है। धारा 10(3) के तहत जुर्माना लगाने के पीछे निरोध मुख्य विषय या उद्देश्य है। (महत्व सन्निविष्ट)

14. कानूनी शब्दकोशों और यहां ऊपर उल्लिखित निर्णयों में विविध परिभाषाओं के सावधानीपूर्वक अवलोकन पर, कोई निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचेगा:

(ए) 'अपराध' शब्द के कई अर्थ हो सकते हैं। इसका उपयोग एक क़ानून में एक अपराध, एक दुष्कर्म, गुंडागर्दी को इंगित करने के लिए किया जा सकता है या कम ग्रेड के अपराध को इंगित करने के लिए किया जा सकता है, या एक कार्य जो इंगित नहीं है, लेकिन संक्षेप में दंडनीय है या दंड लगाने के लिए हो सकता है। कानून के खिलाफ किया गया कोई भी कार्य या कोई चूक जहां कानून के लिए किसी विशेष कार्रवाई की आवश्यकता होती है, एक अपराध के बराबर होगा।

(ख) अपराध जनता की सुरक्षा के लिए स्थापित किसी कानून या कानून के प्रावधान का उल्लंघन है, जो केवल निजी अधिकारों के उल्लंघन से अलग है।

(ग) उच्चतम न्यायालय ने भी अपराध शब्द का व्यापक अर्थ दिया है और स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय के पूर्व के निर्णयों में दी गई परिभाषा की पुष्टि करते हुए कहा है कि अपराध शब्द का अर्थ सामान्यत सार्वजनिक कर्तव्य का उल्लंघन है, जो कि दंड कानून के अंतर्गत दंडनीय निजी अधिकारों से अलग है। इसके अलावा, कुछ करने में विफलता को अपराध के रूप में वर्णित किया जा सकता है, हालांकि कोई आपराधिक मंजूरी नहीं लगाई जाती है, लेकिन केवल एक आर्थिक मंजूरी जो एक नागरिक ऋण के रूप में वसूली योग्य है।

(घ) विधि के शब्दकोशों और उच्चतम न्यायालय के निर्णयों द्वारा दंड शब्द की एक व्यापक परिभाषा भी दी गई है जिसमें यह कहा गया है कि दंड शब्द का प्रयोग कुछ मामलों में संविधियों में बहुत शिथिल रूप से किया जाता है और इसे कानून के उल्लंघन के लिए कानून द्वारा दिए गए सभी परिणामों को स्वीकार करने के लिए माना जा सकता है।

(ई) जुर्माना आमतौर पर एक कर संविधि में देय हो जाता है जब यह पाया जाता है कि एक निर्धारिती ने जानबूझकर कर कानून के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन किया है (एसोसिएटेड सीमेंट कंपनी लिमिटेड बनाम वाणिज्यिक कर अधिकारी, (1981) 4 एस.सी.सी. 578)। इसके अलावा, आमतौर पर किसी निर्धारिती पर कुछ अपमानजनक आचरण के लिए या विशेष क़ानून के प्रावधानों के जानबूझकर उल्लंघन के लिए जुर्माना लगाया जाता है (प्रतिभा प्रोसेसर्स बनाम यू.ओ.आई., ए.आई.आर. 1997 एस.सी. 138)।

(च) "दंड" एक फिसलन भरा शब्द है और इसे उस संदर्भ में समझा जाना चाहिए जिसमें किसी दिए गए क़ानून में इसका उपयोग किया गया है। एक दंड सांविधिक कर्तव्य के उल्लंघन का विषय-वस्तु हो सकता है या यह एक शिकायत का विषय-वस्तु हो सकता है। सामान्य भाषा में, कार्यवाही में सिविल दायित्वों से बचने के लिए दंड शामिल हो सकते हैं जो राज्य के खिलाफ अपराध नहीं हैं। यह अंतर सार्वजनिक राजस्व की रक्षा के उद्देश्य से किसी भी अधिनियम के लिए जिम्मेदार है। इस प्रकार, सभी दंड एक अपराध से नहीं होते हैं जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है, लेकिन सभी अपराधों में दंड होता है। जबकि पहला एक दंड है जो वैधानिक प्रावधानों की अवहेलना से निकलता है, बाद वाला वहां होता है जहां मेन्स रिया (इरादा/आशय) होता है और इसे अधिनिर्णय का विषय बना दिया जाता है।

15. ऊपर बताए गए सिद्धांत स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि 'अपराध' शब्द का अर्थ सभी परिस्थितियों में एक अपराध नहीं है जिसे आपराधिक अदालत द्वारा मुकदमा चलाने की आवश्यकता है। एक नियम/कानून का उल्लंघन जिसमें आपराधिक कार्यवाही शुरू नहीं की जाती है, लेकिन निवारण के उद्देश्य से केवल जुर्माना लगाया जाता है, भी अपराध के बराबर होगा। इसी प्रकार, दंड एक फिसलन भरा शब्द है और इसे उस संदर्भ में समझा जाना चाहिए जिसमें किसी दिए गए कानून में इसका प्रयोग किया गया है। सामान्य भाषा में, कार्यवाही में सिविल दायित्वों से बचने के लिए दंड शामिल हो सकते हैं जो राज्य के खिलाफ अपराध नहीं हैं। हालांकि, कुछ अपराधों के लिए परिस्थितियां होंगी, जुर्माना नहीं लगाया जा सकता है और इसे कैद द्वारा दंडनीय किया जा सकता है। उन मामलों में जुर्माना लगाया जा सकता है जहां किसी कानून का साधारण उल्लंघन होता है या किसी विशेष कार्य को करने के लिए चूक के लिए कोई मेन्स रिया (इरादा/आशय) नहीं होता है। दूसरी ओर, मेन्स रिया (इरादा/आशय) के साथ या उसके बिना कानून के गंभीर उल्लंघन के लिए जुर्माना भी लगाया जा सकता है जो निवारण और सजा के उद्देश्य से अपराध हो सकता है। एक क़ानून उसी अपराध/उल्लंघन के लिए अभियोजन द्वारा आगे की सजा का प्रावधान कर सकता है, यदि विधायिका इसे आवश्यक समझती है।

<u>क़ानून की व्याख्या</u>

16. अब, हम प्रस्तुत मामले में शामिल प्रासंगिक प्रावधानों, विशेष रूप से सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 और 122 की व्याख्या पर चर्चा करेंगे। एक कर क़ानून की व्याख्या करने से पहले, ए.आई.आर. 1953 एस.सी. 148 में रिपोर्ट किए गए नलिनाख्या बायसैक बनाम श्याम सुंदर हलदर में न्यायमूर्ति दास की टिप्पणी को उद्धृत करना आवश्यक है कि एक वैधानिक या संवैधानिक प्रावधान का निर्माण करते समय, न्यायालय को यह नहीं मानना चाहिए कि विधायिका ने या तो गलती की है या कुछ ऐसा छोड़ दिया है जो बहुत आवश्यक था और विधायिका की गलती का कोई अनुमान नहीं होना चाहिए। निर्णय से प्रासंगिक उद्धरण नीचे उद्धृत किया गया है: -

"इसे हमेशा ध्यान में रखा जाना चाहिए, जैसा कि लॉर्ड हैल्सबरी ने आयकर के विशेष प्रयोजनों के लिए आयुक्त बनाम में कहा था। पेम्सेल, कि यह किसी भी न्यायालय के लिए इस धारणा पर आगे बढ़ने के लिए सक्षम नहीं है कि विधायिका ने गलती की है। न्यायालय को इस आधार पर आगे बढ़ना चाहिए कि विधायिका ने जो कहा

है उसका इरादा था। यहां तक कि अगर विधायिका द्वारा उपयोग की जाने वाली वाक्यांशावली में कुछ दोष है, तो न्यायालय नहीं कर सकता है, जैसा कि क्रॉफर्ड बनाम में बताया गया है। स्पूनर, विधानमंडल के दोषपूर्ण वाक्यांशों में सहायता करें या जोड़ें और संशोधित करें या निर्माण द्वारा, अधिनियम में बची हुई कमियों को पूरा करें। यहां तक कि जहां एक कैसस ओमिसस है, यह है, जैसा कि हंसराज गुप्ता बनाम देहरादून मसूरी इलेक्ट्रिक ट्रामवे कंपनी लिमिटेड में जेकिलोवेन के लॉर्ड रसेल ने कहा है, दोष को दूर करने के लिए अदालतों के अलावा अन्य के लिए।

17. एक कर कानून में तीन चरण होते हैं, पहला, उस विषय का पता लगाने के लिए शुल्क लगाने का प्रावधान जिस पर कर लगाया जाना है; दूसरा, कर के आकलन या मात्रा का ठहराव, लगाए जाने वाले ब्याज और जुर्माने के लिए मशीनरी प्रावधान और तीसरा, पिछले चरण में निर्धारित, कर, ब्याज और दंड की वसूली के प्रावधान। व्हिटनी बनाम अंतर्देशीय राजस्व आयुक्तों ने (1926) ए.सी. 37 में इस संबंध में टिप्पणी की है, जिन्हें निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"..... एक क़ानून को व्यावहारिक होने के लिए डिज़ाइन किया गया है, और न्यायालय द्वारा उसकी व्याख्या उस वस्तु को सुरक्षित करने के लिए होनी चाहिए, जब तक कि महत्वपूर्ण चूक या स्पष्ट दिशा उस अंत को अप्राप्य न बना दे। अब, कर लगाने के तीन चरण होते हैं: दायित्व की घोषणा होती है, जो क़ानून का वह भाग है जो यह निर्धारित करता है कि किस संपत्ति के संबंध में कौन से व्यक्ति उत्तरदायी हैं। इसके बाद, मूल्यांकन है। दायित्व मूल्यांकन पर निर्भर नहीं करता है। वह, पूर्व परिकल्पना, पहले ही तय किया जा चुका है। लेकिन मूल्यांकन उस सटीक राशि को निर्दिष्ट करता है जो एक उत्तरदायी व्यक्ति को भुगतान करना होता है। अंत में, वसूली के तरीके आते हैं, अगर कर लगाया गया व्यक्ति स्वेच्छा से भुगतान नहीं करता है।

18. सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 कर चोरी के लिए धोखाधड़ी या जानबूझकर गलत बयान या तथ्यों के छिपाने के कारण गलत तरीके से लाभ उठाया या उपयोग किए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट का भुगतान नहीं करने या कम भुगतान या गलती से वापस किए गए या इनपुट टैक्स क्रेडिट के निर्धारण का प्रावधान करती है। धारा 74 प्रकृति में एक चोरी-विरोधी प्रावधान है क्योंकि इसका उद्देश्य कर चोरी को रोकना है। यह एक ऐसा प्रावधान है जिसमें अपने आप में कर लगाने के क़ानून के दो चरण शामिल हैं। यह इस कारण से एक शुल्क लगाने का प्रावधान है, यह कर के साथ प्रभार्य व्यक्ति पर देयता तय करता है। यह एक मशीनरी प्रावधान है क्योंकि यह कर और जुर्माने के निर्धारण/परिमाणीकरण के लिए प्रदान करता है। इसके अलावा, धारा 74 एक बार में एक प्रभार और कर निर्धारण की वसूली और जुर्माना लगाने के लिए एक मशीनरी प्रावधान है।

19. सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 इक्कीस उपखंडों में उल्लिखित अपराध करने के लिए कर योग्य व्यक्तियों पर दंड का प्रावधान करती है। इसका उद्देश्य करदाताओं को बिना चालान के माल की आपूर्ति करने, नकली चालान जारी करने, संग्रह के बाद सरकार को कर का भुगतान न करने, कर की कटौती न करने या न भेजने के संबंध में गैरकानूनी गतिविधियों में लिप्त होने से हतोत्साहित करना है, गलत इनपुट टैक्स क्रेडिट का

दावा करना, धोखाधड़ी से कर रिफंड प्राप्त करना, अन्य बातों के साथ-साथ है। धारा 122 एक दंडात्मक प्रावधान है जिसका उद्देश्य करों की चोरी को रोकना है।

20. राजकोषीय क़ानूनों का निर्माण करने के लिए, किसी को कानून के पत्र का संबंध रखना चाहिए क्योंकि विषय पर अनुमान और सादृश्य द्वारा कर नहीं लगाया जा सकता है। किसी भी धन के अधिग्रहण के उद्देश्य से कर कानून में इसके लिए विशिष्ट प्रावधान होने चाहिए और इरादे के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए। कुछ भी नहीं पढ़ा जाना चाहिए और कुछ भी निहित नहीं होना चाहिए और किसी को इस्तेमाल की गई भाषा को निष्पक्ष रूप से देखना चाहिए। इसे सख्ती से वैसा ही माना जाना चाहिए जैसा कि यह है। केप ब्रांडी सिंडिकेट बनाम अंतर्देशीय राजस्व आयुक्त (1921) 2 केबी 403 में रिपोर्ट किए गए रॉलेट ने यहां उद्धृत के रूप में देखा है:

'कर अधिनियम में केवल वही देखना होता है जो स्पष्ट रूप से कहा गया है। इरादे के लिए कोई जगह नहीं है। कर के बारे में कोई इक्विटी नहीं है। कर के बारे में कोई अनुमान नहीं है। कुछ भी पढ़ने के लिए नहीं है, कुछ भी निहित नहीं है। कोई भी केवल इस्तेमाल की गई भाषा को निष्पक्ष रूप से देख सकता है।

21. फिल्म प्रदर्शकों में, गिल्ड बनाम आंध्र प्रदेश राज्य ए.आई.आर. 1987 एपी 110 में रिपोर्ट किया गया, एक कर कानून के चार्ज प्रावधान के संबंध में, न्यायालय ने माना कि कर लगाने के क़ानून की व्याख्या के लिए इसकी सख्ती से व्याख्या और निम्नलिखित सिद्धांतों को निर्धारित किया जाना चाहिए:

"9. कर प्रावधान की व्याख्या में उपरोक्त चर्चा के आलोक में, निम्नलिखित सिद्धांत उभरेंगे:
(1) एक कर लगाने वाला क़ानून, यदि वह कोई आरोप लगाने का दावा करता है, तो उसका इरादा स्पष्ट, स्पष्ट और स्पष्ट भाषा में व्यक्त किया जाना चाहिए। न्यायालय को भाषा को देखना होगा। आरोप खोजने के इरादे से शिकार करना अनुमेय है। कर के बारे में कोई समानता नहीं है। कर के बारे में कोई अनुमान नहीं है। कुछ भी पढ़ने के लिए नहीं है और कुछ भी निहित नहीं किया जाना है। चार्जिंग सेक्शन का कोई समान निर्माण लागू नहीं किया जाना है। चार्जिंग सेक्शन को इसके परिणामों की परवाह किए बिना सख्ती से माना जाना चाहिए जो न्यायिक दिमाग को प्रतीत हो सकते हैं। यह दिखाने का भार राज्य पर है कि यह विषय अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत है।

(2) लेकिन मशीनरी को काम करने योग्य बनाने के लिए कर के मूल्यांकन और संग्रह के लिए मशीनरी प्रावधानों का निर्माण करने में, अर्थात, न्यायालय उस निर्माण से बच जाएगा जो इस धारणा के कानून के प्रकट उद्देश्य को दूर करने में विफल रहेगा कि विधायिका केवल एक प्रभावी परिणाम लाने के उद्देश्य से अधिनियमित करेगी। तनावपूर्ण और अप्राकृतिक अर्थ से अस्पष्टताओं का पता लगाना न्यायालय का कार्य नहीं है; करीबी तर्क को अपनाया जाना चाहिए; सामंजस्यपूर्ण निर्माण का पालन किया जाना चाहिए; नियोजित भाषा, उसके संदर्भ से इरादे को इकट्ठा करने और विधायिका के इरादे को प्रभावी बनाने के लिए सभी प्रासंगिक प्रावधानों को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए। टैक्स से बचने के प्रयास को विफल किया जाना चाहिए। (महत्व सन्निविष्ट)

22. सी.एस.टी. बनाम श्री कृष्णा इंजीनियरिंग कंपनी में उच्चतम न्यायालय (2005) 2 एस.सी.सी. 692 में रिपोर्ट किया गया था, जो इस प्रकार है:

"35. एवी फर्नांडीज बनाम केरल राज्य [1957 एस.सी.आर 837: ए.आई.आर. 1957 एस.सी. 657] इस न्यायालय ने राय दी कि, न्यायिक दिमाग को कितनी भी बड़ी कठिनाई क्यों न लगे, (एस.सी.आर पृष्ठ 847) "राजकोषीय क़ानूनों का निर्माण करने और कर के अधीन की देयता का निर्धारण करने में किसी को कानून के सख्त अक्षर का ध्यान रखना चाहिए, न कि केवल क़ानून की भावना या कानून के सार के लिए। यदि राजस्व न्यायालय को संतुष्ट करता है कि मामला कानून के प्रावधानों के भीतर सख्ती से आता है, तो विषय पर कर लगाया जा सकता है।
कुछ साल बाद सी.एस.टी. बनाम मोदी शुगर मिल्स लिमिटेड [(1961) 2 एस.सी.आर 189: ए.आई.आर. 1961 एस.सी. 1047] के मामले में एक अन्य संविधान पीठ ने इस प्रकार टिप्पणी की: (एस.सी.आर पृष्ठ 198)

"एक कर क़ानून की व्याख्या करने में, न्यायसंगत विचार पूरी तरह से जगह से बाहर हैं। न ही किसी भी अनुमान या धारणा पर कर लगाने वाले क़ानून की व्याख्या की जा सकती है। अदालत को क़ानून के शब्दों को पूरी तरह से देखना चाहिए और उनकी व्याख्या करनी चाहिए। इसे स्पष्ट रूप से व्यक्त की गई बातों के आलोक में एक कर लगाने वाले क़ानून की व्याख्या करनी चाहिए; इसका मतलब ऐसा कुछ नहीं हो सकता जो व्यक्त नहीं की गई है; यह क़ानून में प्रावधानों का आयात नहीं कर सकता है ताकि किसी भी अनुमानित कमी को पूरा किया जा सके। (महत्व सन्निविष्ट)

*23. **तमिलनाडु राज्य बनाम एमके कंडास्वामी (1975) 4 एस.सी.सी. 745** में रिपोर्ट की है, में सर्वोच्च न्यायालय ने राय दी जो इस प्रकार है:*

"26. यह याद किया जा सकता है कि धारा 7-ए एक बार में एक चार्जिंग के साथ-साथ एक उपचारात्मक प्रावधान भी है। इसका मुख्य उद्देश्य रिसाव को रोकना और कर की चोरी को रोकना है। इस तरह के प्रावधान की व्याख्या करते समय, एक ऐसा निर्माण जो इसके उद्देश्य को विफल कर देगा और वास्तव में, इसे क़ानून की किताब से मिटा देगा, उसे छोड़ दिया जाना चाहिए। यदि एक से अधिक निर्माण संभव है, तो जो इसकी कार्यशीलता और प्रभावकारिता को बनाए रखता है, उसे उस व्यक्ति के लिए प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो इसे ओटियोज या बाँझ बना देगा। उच्च न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण व्याख्या के इस कार्डिनल सिद्धांत के प्रतिकूल है। (महत्व सन्निविष्ट)

24. शेफ़ील्ड सिटी काउंसिल बनाम यॉर्कशायर वाटर सर्विसेज लिमिटेड में एक कर क़ानून की व्याख्या करते समय न्यायालय (1979)2 में रिपोर्ट किए गए निम्नानुसार आयोजित किए गए हैं:

अनुवादित

"संसद को अपने अधिनियमों को अव्यावहारिक या अव्यावहारिक बनाने का इरादा नहीं रखने के लिए लिया जाता है, इसलिए न्यायालय एक ऐसे निर्माण के पक्ष में खोजने में धीमा होगा जो इन परिणामों की ओर ले जाता है। यह सामान्य कानून विकसित करने में न्यायाधीशों द्वारा अपनाए गए मार्ग का अनुसरण करता है ..... इंग्लैंड का सामान्य कानून हमेशा सख्ती से तार्किक तर्ज पर विकसित नहीं हुआ है, और जहां तर्क एक ऐसे रास्ते की ओर ले जाता है जो व्यावहारिक कठिनाइयों से घिरा हुआ है, अदालतें एक तरफ मुड़ने और व्यावहारिक समाधान की तलाश करने से डरती नहीं हैं जो समाज की जरूरतों को पूरा करेगी।

25. संजीव कोक कंपनी बनाम भारत कोकिंग कोल लिमिटेड में सर्वोच्च न्यायालय 1983 में रिपोर्ट किए गए (1) एस.सी.सी. 147, जिस पर याचिकाकर्ता ने भरोसा किया था, ने माना है कि एक बार जब क़ानून संसद से बाहर निकल जाता है, तो न्यायालय क़ानून की भाषा और अन्य अनुमेय सहायता के माध्यम से संसद का इरादा क्या है, इसकी व्याख्या करने का एकमात्र अधिकार है। निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"25. श्री अशोक सेन ने भारत कोकिंग कोल लिमिटेड की ओर से दायर पहले के हलफनामों की ओर ध्यान आकर्षित किया और कोकिंग कोल माइंस (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम से कुछ कोक ओवन संयंत्रों को बाहर करने के लिए उसमें दिए गए कथित विरोधाभासी कारणों पर गंभीर टिप्पणी की। लेकिन, अंतिम विश्लेषण में, हमें वास्तव में कानून को सही ठहराने और बनाए रखने के लिए प्रतिपक्षियों द्वारा दायर हलफनामों में दिए गए बयानों के खोखलेपन या आत्म-निंदात्मक प्रकृति के बारे में चिंता नहीं करनी चाहिए। अदालत में दायर हलफनामों के गवाह उन पक्षों के लिए बोल सकते हैं जिनकी ओर से वे बयानों की शपथ लेते हैं। वे संसद के लिए नहीं बोलते हैं। कोई भी संसद के लिए नहीं बोल सकता है और संसद कभी भी अदालत के सामने नहीं होती है। संसद द्वारा यह कहने के बाद कि वह क्या कहना चाहती है, केवल न्यायालय ही यह कह सकता है कि संसद का क्या कहना है। और कोई नहीं। एक बार जब कोई क़ानून संसद भवन से बाहर निकल जाता है, तो न्यायालय एकमात्र प्रामाणिक आवाज होती है जो संसद को प्रतिध्वनित (व्याख्या) कर सकती है। यह अदालत क़ानून की भाषा और अन्य अनुमेय सहायता के संदर्भ में करेगी। कार्यकारी सरकार न्यायालय के समक्ष अपनी समझ रख सकती है कि संसद ने क्या कहा है या क्या कहना चाहती है या जो उन्हें लगता है कि संसद का उद्देश्य था और उन सभी तथ्यों और परिस्थितियों के बारे में जो उनके विचार में कानून का कारण बने। जब वे ऐसा करते हैं, तो वे संसद के लिए नहीं बोलते हैं। संसद के किसी भी अधिनियम को कार्यकारी सरकार द्वारा संसदीय इरादे की समझ या गलतफहमी के कारण रद्द नहीं किया जा सकता है या क्योंकि उनके (सरकार के) प्रवक्ता प्रासंगिक परिस्थितियों को सामने नहीं लाते हैं, बल्कि खोखले और आत्म-पराजित हलफनामों में लिप्त होते हैं। वे संसद को बाध्य नहीं कर सकते हैं और न ही कर सकते हैं। कानून की वैधता का आकलन केवल राज्य की ओर से दायर हलफनामों से नहीं किया जाना है, बल्कि उन सभी प्रासंगिक परिस्थितियों से किया जाना है जो अदालत अंततः पा सकती है और विशेष रूप से विधायिका ने स्वयं जो कहा है उससे क्या एकत्र किया जा सकता है। हमने अपने द्वारा पाए गए तथ्यों का उल्लेख किया है और हमें नहीं लगता कि अनुच्छेद 14 द्वारा गारंटीकृत अधिकार का कोई उल्लंघन हुआ है। (महत्व सन्निविष्ट)

26. ऊपर उद्धृत विभिन्न निर्णयों के माध्यम से छानने पर, कोई भी सभी विधियों की व्याख्या के लिए लागू किए जाने वाले मुख्य नियमों को विशेष रूप से कर लगाने वाले क़ानूनों को लिख सकता है:

(ए) एक क़ानून को व्यावहारिक होने के लिए डिज़ाइन किया गया है, और एक न्यायालय द्वारा उसकी व्याख्या उस वस्तु को सुरक्षित करने के लिए होनी चाहिए, जब तक कि महत्वपूर्ण चूक या स्पष्ट दिशा उस अंत को अप्राप्य न बना दे।

(ख) कराधान अधिनियम में किसी को केवल वही देखना होता है जो स्पष्ट रूप से कही गई है। इरादे के लिए कोई जगह नहीं है। कर के बारे में कोई इक्विटी नहीं है। कर के बारे में कोई अनुमान नहीं है। कुछ भी पढ़ने के लिए नहीं है, कुछ भी निहित नहीं है। कोई केवल इस्तेमाल की गई भाषा को निष्पक्ष रूप से देख सकता है। एक कर लगाने वाला क़ानून, यदि यह कोई आरोप लगाने का दावा करता है, तो उसका इरादा स्पष्ट, स्पष्ट और स्पष्ट भाषा में व्यक्त किया जाना चाहिए। चार्जिंग सेक्शन को इसके परिणामों की परवाह किए बिना सख्ती से माना जाना चाहिए जो न्यायिक दिमाग में दिखाई दे सकते हैं।

(ग) हालांकि, मशीनरी को व्यावहारिक बनाने के लिए कर के मूल्यांकन और संग्रह के लिए मशीनरी प्रावधानों का निर्माण करते समय, अर्थात्, न्यायालय को ऐसे निर्माण से बचना चाहिए जो इस धारणा पर विशेष कानून को लागू करने के पीछे विधायिका के उद्देश्य को विफल कर देगा कि यह एक प्रभावी परिणाम लाने के लिए था।

(घ) व्याख्या के सख्त नियमों को लागू करते समय भी, न्यायालय सभी प्रावधानों को एक साथ पढ़कर एक सामंजस्यपूर्ण तरीके से किसी प्रावधान के निर्माण की व्याख्या कर सकता है ताकि नियोजित भाषा, उसके संदर्भ से इरादे को इकट्ठा किया जा सके और विधायिका के इरादे को प्रभावी किया जा सके। टैक्स से बचने के प्रयास को विफल किया जाना है। तमिलनाडु राज्य बनाम एमके कंडास्वामी में सर्वोच्च न्यायालय ने (1975) 4 एस.सी.सी. 745 में स्पष्ट रूप से कहा है कि जहां एक विशेष धारा एक चार्जिंग के साथ-साथ एक उपचारात्मक प्रावधान है, उसका मुख्य उद्देश्य रिसाव को रोकना और कर की चोरी को रोकना है और ऐसी परिस्थितियों में इस तरह के प्रावधान की व्याख्या करना, एक ऐसा निर्माण जो इसके उद्देश्य को विफल कर देगा और, वास्तव में, इसे क़ानून की किताब से मिटा दिया जाना चाहिए, इससे बचा जाना चाहिए।

27. धारा 74 स्पष्ट रूप से कर और जुर्माने के निर्धारण/मात्रा का निर्धारण करने के लिए एक चार्जिंग और मशीनरी प्रावधान है, जबकि धारा 122 करदाताओं को विभिन्न प्रकार की गैरकानूनी गतिविधियों में शामिल होने से हतोत्साहित करने के लिए एक दंडात्मक प्रावधान है, और तदनुसार, करों की चोरी को रोकने के लिए एक दंडात्मक प्रावधान है।

28. विभिन्न निर्णयों और क़ानून की व्याख्या के अवलोकन पर, कोई यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि धारा 74 और 122 दोनों को प्रभार लेने वाली धाराओं की सख्ती से व्याख्या करने की आवश्यकता है और उसमें प्रयुक्त शब्द का स्पष्ट अर्थ न्यायालयों द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए। एक बेतुकी व्याख्या जो चार्जिंग सेक्शन को अव्यावहारिक बनाती है, उससे बचा जाना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि एक व्यक्ति जो कर या दंड के लिए उत्तरदायी नहीं है, उसे करों की चोरी को रोकने के लिए चार्जिंग प्रावधान सरलीकृत में शामिल किया जाना चाहिए। हालांकि, अदालत को एक सामंजस्यपूर्ण निर्माण लाने के लिए क़ानून के सभी प्रावधानों को देखने और एक व्याख्या पर आने की अनुमति है जो क़ानून को व्यावहारिक बना सकती है। एक शब्द के कई अर्थ हो सकते हैं और अदालत उस अर्थ का चयन कर सकती है जो विधायिका के इरादे के विपरीत अर्थ लगाने के बजाय पूरे क़ानून में सामंजस्य स्थापित कर सके। इस स्तर पर, किसी को न्यायमूर्ति ओलिवर वेंडेल होम्स जूनियर के प्रसिद्ध उद्धरण की याद आती है, जिन्होंने ठीक ही कहा था - एक शब्द क्रिस्टल, पारदर्शी और अपरिवर्तित नहीं है; यह एक जीवित विचार की त्वचा है और परिस्थितियों और समय के अनुसार रंग और सामग्री में बहुत भिन्न हो सकता है जिसमें इसका उपयोग किया जाता है।

<u>कर अपराध मामलों में जुर्माना</u>

29. शिव *दत्त राय फतेह चंद (उपरोक्त)* में उच्चतम न्यायालय ने केंद्रीय बिक्री कर अधिनियम की धारा 9(2)(ए) में किए गए एक पूर्वव्यापी संशोधन की क़ानूनी जांच से निपटने के दौरान दोनों पक्षों द्वारा भरोसा किया है, आयकर अधिनियम के तहत दंड कार्यवाही के संबंध में कराधान मामलों के संबंध में कहा है कि यह नागरिक दायित्व को आकर्षित करता है। निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"30. दूसरी ओर, इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने रघुनंदन प्रसाद मोहन लाल बनाम आईटीएटी [ए.आई.आर. 1970 इला 620: (1970) 75 आई.टी.आर. 741: (1970) 1 आईटीजे 195] में कहा है कि संविधान का अनुच्छेद 20 आपराधिक कार्यवाही की प्रकृति में कार्यवाही पर विचार करता है और यह आयकर अधिनियम के तहत दंड कार्यवाही पर लागू नहीं होता है, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने सेंट्रल इंडिया मोटर्स बनाम मध्य प्रदेश मोटर्स सहायक सी.एस.टी. [(1980) 46 एसटीसी 379 (एमपी)] कि अनुच्छेद 20(1) मध्य प्रदेश सामान्य बिक्री कर अधिनियम, 1958 के मामले में निर्णय दिया है जिसके तहत पूर्वव्यापी प्रभाव से किए गए दंड की वसूली के मामले में आकर्षित नहीं होता है।

31. हमारे सामने पूछे गए बिंदुओं पर चिंतित विचार करने के बाद, हम महसूस करते हैं कि अनुच्छेद 20 (1) में प्रयुक्त 'जुर्माना' शब्द को वैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन के लिए विभागीय अधिकारियों द्वारा बिक्री कर कानूनों के तहत लगाए गए 'जुर्माना' के रूप में नहीं माना जा सकता है। बिक्री कर प्राधिकारियों द्वारा लगाया गया जुर्माना केवल एक नागरिक दायित्व है, हालांकि यह दंडात्मक स्वरूप का है। यह ध्यान देना प्रासंगिक हो सकता है कि अधिनियम की धारा 9 की उप-धारा (2-ए) विशेष रूप से कुछ कृत्यों और चूकों को संदर्भित करती है जो ऐसे अपराध हैं जिनके लिए आपराधिक अभियोजन झूठ बोलेगा और अपराधों से संबंधित प्रावधानों को

संशोधन अधिनियम की धारा 9 द्वारा पूर्वव्यापी प्रभाव नहीं दिया गया है। इसलिए संविधान के अनुच्छेद 20 (1) पर आधारित तर्क को खारिज कर दिया जाता है।

(महत्व सन्निविष्ट)

30. सुखपाल सिंह बल (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश मोटर वाहन कराधान अधिनियम, 1997 की धारा 10 (3) के तहत लगाए गए जुर्माने के अधिकारों पर विचार करते हुए, कर क़ानूनों में जुर्माना लगाने के पीछे के उद्देश्य के संबंध में माना है कि दंड प्रावधान सार्वजनिक राजस्व की रक्षा करने और वैधानिक कर कर्तव्यों के उल्लंघन के लिए प्रतिपूरक भूमिका निभाते हुए कर चोरी को रोकने के लिए अधिनियमित किया गया है। निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

*"18. **रहीमभाई करीमभाई नगरीवाला बनाम बीबी पटेल [(1974) 97 आई.टी.आर. 660 (गुजरात)]** के मामले में, आईटी अधिनियम की धारा 271(1)(सी) के तहत जुर्माना, जैसा कि यह प्रासंगिक समय पर था, निर्धारिती पर 13,854 रुपये लगाया गया था, जो कथित रूप से छिपी हुई आय के 100 प्रतिशत के बराबर था। निर्धारिती ने धारा 271(1)(सी) की संवैधानिक वैधता को इस आधार पर चुनौती दी कि यह प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है, क्योंकि इसमें कोई वर्गीकरण नहीं था, हालांकि विभिन्न प्रकार की कर चोरी के बीच अंतर था। यह आग्रह किया गया था कि आय को छिपाने का इतना गंभीर जुर्माना प्रकृति में जब्ती है। यह आग्रह किया गया था कि आईटी अधिनियम की धारा 271(1)(ए)(i) के तहत, रिटर्न दाखिल न करने के लिए जुर्माना धारा 271(1)(सी)(iii) के आक्षेपित प्रावधानों के तहत छिपी हुई आय के लिए दंड के सहसंबंध के मुकाबले कर की चोरी की राशि से संबंधित था, पूरी तरह से मनमाना था क्योंकि जहां तक छिपी हुई आय का संबंध था, छुपी हुई आय के लिए जुर्माना समय पर रिटर्न दाखिल करने के लिए चूक के लिए दंड से अलग स्तर पर आगे बढ़ा। यह भी तर्क दिया गया था कि आक्षेपित जुर्माना अनुपातहीन था क्योंकि लगाए गए जुर्माने और कर चोरी के बीच कोई संबंध नहीं था और इन परिस्थितियों में, यह आग्रह किया गया था कि धारा 271(1)(सी)(iii) संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 (1) (जी) का उल्लंघन करती है। इस चुनौती को गुजरात उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए खारिज कर दिया था कि जो कुछ भी शक्ति के मुख्य उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है, वह शक्ति के भीतर ही निहित है ताकि यह उन मामलों तक विस्तारित हो जो विषय-वस्तु पर विधायी शक्ति की उचित पूर्ति के लिए आवश्यक हैं और इसलिए, जुर्माना लगाने की शक्ति मुख्य शक्ति को सही ठहराने के उद्देश्य से है, जो अधिनियम द्वारा प्रदान किया गया है। इस तरह के दंड को लगाने में विधायिका का उद्देश्य कर चोरी के खिलाफ निवारण प्रदान करना और उस प्रथा पर रोक लगाना है जिसे विधायिका सार्वजनिक हित के खिलाफ मानती है। यह भी देखा गया है कि जबकि अनुच्छेद 14 वर्ग कानून को प्रतिबंधित करता है, यह कानून के प्रयोजनों के लिए उचित वर्गीकरण को मना नहीं करता है। उच्चतम न्यायालय ने कराधान के वर्गीकरण में बहुत व्यापक छूट की अनुमति दी है। आक्षेपित प्रावधान को लागू करने में विधायिका का उद्देश्य जब्ती का प्रावधान करना नहीं है, बल्कि आय को छिपाने के लिए दंड प्रदान करना है और वह भी एक निवारक दंड प्रदान करना।*

*19. हमारे विचार में, **रहीमभाई करीमभाई नारीवाला [(1974) 97 आई.टी.आर. 660 (गुजरात)]** के मामले में गुजरात उच्च न्यायालय का निर्णय प्रस्तुत मामले पर पूरी तरह से लागू होता है। दंड लगाने के पीछे निरोध मुख्य विषय या उद्देश्य है और इसलिए, यह कहना संभव नहीं है कि प्रस्तुत मामले में धारा 10(3) का प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 14 और 19(1)(जी) का उल्लंघन करता है, जैसा कि आक्षेपित निर्णय में कहा गया है।*

(महत्व सन्निविष्ट)

31. गुजरात त्रावणकोर एजेंसी (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय ने आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 271 (1)(ए) के तहत नागरिक दंड लगाने और धारा 276-सी के तहत आपराधिक दंड के बीच अंतर करते हुए दोनों पक्षों द्वारा भरोसा किया है, ने अनिवार्य रूप से कर अपराध मामलों में दंड के संबंध में माना है कि इस तरह का जुर्माना एक नागरिक दायित्व है जो उपचारात्मक और जबरदस्ती चरित्र में है और आपराधिक या दंड में लगाए गए दंड से बहुत अलग है कानून। उच्चतम न्यायालय ने कॉर्पस ज्यूरिस सेकंदम में दी गई जुर्माने की परिभाषा पर बहुत अधिक भरोसा किया है। निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"4. निर्धारिती के अधिवक्ता ने इस सवाल पर हमारे सामने एक विस्तृत तर्क दिया है कि क्या अधिनियम की धारा 271(1)(ए) के तहत लगाए गए दंड में मेन्स रिया (इरादा/आशय) का तत्व शामिल है और अपने इस निवेदन के समर्थन में कि ऐसा होता है, उन्होंने हमारे सामने इस न्यायालय और उच्च न्यायालयों द्वारा तय किए गए कई मामलों को हमारे सामने रखा है ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि धारा 271(1)(ए) के तहत दंड के माध्यम से कार्यवाही अधिनियम प्रकृति में अर्ध-आपराधिक हैं और इसलिए धारा 271(1)(ए) के तहत जुर्माना लगाने से पहले मेन्स रीआ (इरादा/आशय) का तत्व एक अनिवार्य आवश्यकता है। हम उन सभी निर्णयों का उल्लेख करने की आवश्यकता से मुक्त हैं। दरअसल, उनमें से कई पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था और अपील के तहत फैसले में उनका उल्लेख किया गया है। हमारे लिए धारा 271(1)(a) का उल्लेख करना पर्याप्त है, जो प्रदान करता है कि यदि आयकर अधिकारी संतुष्ट है कि कोई व्यक्ति बिना उचित कारण के कुल आय की विवरणी प्रस्तुत करने में विफल रहा है, और धारा 276-C जो प्रदान करता है कि यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर धारा 139(1) के तहत आवश्यक आय की विवरणी नियत समय में प्रस्तुत करने में विफल रहता है, वह एक अवधि के लिए कठोर कारावास से दंडित होगा जिसे एक वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है या जुर्माने से दंडित किया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि पहले मामले में जो इरादा है वह एक नागरिक दायित्व है जबकि बाद में जो लगाया जाता है वह एक आपराधिक सजा है। इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि धारा 276-सी के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, जो चूककर्ता की ओर से जानबूझकर विफलता की बात करता है और दंड की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, जो दंडात्मक है, उस प्रावधान के तहत कोई सजा नहीं दी जा सकती है जब तक कि मेन्स रीआ (इरादा/आशय) का तत्व स्थापित नहीं हो जाता। आपराधिक दायित्व के अधिकांश मामलों में, विधायिका का इरादा यह है कि दंड एक निवारक के रूप में काम करना चाहिए। क़ानून द्वारा एक अपराध का निर्माण इस धारणा पर आगे बढ़ता है कि समाज को चूककर्ता के कार्य या चूक से चोट लगती है और अपराध की पुनरावृत्ति को हतोत्साहित करने के लिए एक निवारक लगाया जाना चाहिए। हालाँकि, धारा 271(1)(a) के तहत कार्यवाही के मामले में, ऐसा लगता है कि विधायिका का इरादा राजस्व के नुकसान

के तथ्य पर जोर देना और इस तरह के नुकसान के लिए एक उपाय प्रदान करना है, हालांकि इसमें कोई संदेह नहीं है कि दंड में जबरदस्ती का एक तत्व मौजूद है। इस संबंध में, जिन शब्दों में जुर्माना मापा जाना है, वे महत्वपूर्ण हैं। जब तक क़ानून की भाषा में मेन्स रिया (इरादा/आशय) के तत्व को स्थापित करने की आवश्यकता को इंगित करने वाला कुछ नहीं है, तब तक यह आम तौर पर यह साबित करने के लिए पर्याप्त है कि क़ानून का पालन करने में चूक हुई है। हमारी राय में, धारा 271(1)(ए) में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसके लिए यह आवश्यक हो कि उस प्रावधान के तहत जुर्माना लगाने से पहले मेन्स रिया (इरादा/आशय) साबित किया जाना चाहिए। हम कॉर्पस ज्यूरिस सेकंदम, वॉल्यूम 85, पृष्ठ 580, प्रस्तर-1023 में दिए गए कथन द्वारा समर्थित हैं:

"कर अपराध के लिए लगाया गया *जुर्माना एक नागरिक दायित्व है, उपचारात्मक और अपनी प्रकृति में जबरदस्ती है, और आपराधिक या दंडात्मक कानूनों के उल्लंघन के लिए सजा के रूप में प्रदान किए गए अपराध के लिए दंड या जुर्माना या जब्ती से बहुत अलग है।*

(महत्व सन्निविष्ट)

32. **एम.सी.टी. एम. कॉर्पियन में सर्वोच्च न्यायालय। (पी) लिमिटेड (उपरोक्त)** में दोनों पक्षों द्वारा भरोसा किया है कि किसी अभियुक्त पर मुकदमा चलाने के लिए आपराधिक कानून में मेन्स रीआ (इरादा/आशय) एक आवश्यक तत्व है जबकि कराधान जैसे दीवानी मामलों में मेन्स रीआ (इरादा/आशय) सिविल दायित्व लगाने के लिए अप्रासंगिक है। न्यायालय ने विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947 की धारा 14बी के तहत लगाई गई नागरिक देनदारियों से निपटते हुए माना है कि जुर्माना लगाने के लिए मेन्स रिया (इरादा/आशय) के पारंपरिक प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है, केवल वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन या अड़ियल करदाताओं का दोषपूर्ण आचरण ऐसे मामलों में दंड को ट्रिगर करने के लिए पर्याप्त है। निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर नीचे शब्दशः उद्धृत किए गए हैं:

"7. "मेन्स री" मन की एक अवस्था है। आपराधिक कानून के तहत, मेन्स रीआ (इरादा/आशय) को "दोषी इरादा" माना जाता है और जब तक यह नहीं पाया जाता है कि 'अभियुक्त' का 'अपराध' करने का दोषी इरादा था, तब तक उसे अपराध करने का 'दोषी' नहीं ठहराया जा सकता है। दंड प्रक्रिया संहिता और सामान्य खंड अधिनियम, 1897 के तहत एक 'अपराध' को किसी भी अधिनियम या चूक के रूप में परिभाषित किया गया है जिसे "किसी भी कानून द्वारा उस समय के लिए दंडनीय बनाया गया है"। फेरा, 1947 की धारा 23(1)(ए) के तहत कार्यवाही प्रकृति और चरित्र में 'निर्णायक' है और "आपराधिक कार्यवाही" नहीं है। प्रवर्तन निदेशालय और अन्य प्रशासनिक प्राधिकरणों के अधिकारियों को अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से केवल 'अधिनिर्णय' करने का अधिकार दिया गया है। वास्तव में उन्हें 'न्यायिक रूप से' कार्य करना होता है और लागू सीमा तक प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन करना होता है, लेकिन वे "आपराधिक न्यायालयों" के 'न्यायाधीश' नहीं हैं जो किसी अपराध को करने के लिए 'अभियुक्त' की कोशिश कर रहे हैं, जैसा कि सामान्य संदर्भ में समझा जाता है। वे अर्ध-न्यायिक कार्य करते हैं और 'अदालतों' के रूप में कार्य नहीं करते हैं, बल्कि केवल 'प्रशासकों' और 'निर्णायकों' के रूप में कार्य करते हैं। उनके समक्ष कार्यवाही में, वे "किसी भी अपराध" (केवल एक अपराध नहीं) के लिए 'एक अभियुक्त'

पर मुकदमा नहीं चलाते हैं, बल्कि अधिनियम के तहत लगाए गए अपने 'दायित्वों' के उल्लंघन के लिए उल्लंघनकर्ता के दायित्व का निर्धारण करते हैं। वे अधिनियम के तहत निर्धारित "नागरिक दायित्वों" के उल्लंघन के लिए 'दंड' लगाते हैं और अपराध करने के लिए कोई 'सजा' नहीं लगाते हैं। अभिव्यक्ति 'जुर्माना' व्यापक महत्व का शब्द है। कभी-कभी, इसका मतलब दीवानी कार्यवाही में भी दंडात्मक उपाय के रूप में राशि की वसूली होती है। एक वसूली जो चरित्र में प्रतिपूरक नहीं है, उसे 'दंड' भी कहा जाता है। जब एक निर्णायक अधिकारी द्वारा जुर्माना लगाया जाता है, तो यह "न्यायिक कार्यवाही" में किया जाता है, न कि एक आपराधिक अदालत में एक 'अपराध' के कमीशन के लिए एक 'अभियुक्त' के 'अभियोजन' के परिणामस्वरूप जुर्माने के रूप में। इसलिए, केवल इसलिए कि धारा 23(1)(a) में 'जुर्माना' खंड मौजूद है, उस धारा के तहत कार्यवाही की प्रकृति को 'अधिनिर्णयन' से 'आपराधिक' अभियोजन में नहीं बदला गया है। अधिनियम के तहत एक निर्णायक प्राधिकारी द्वारा किया गया आदेश दोषसिद्धि का नहीं है, बल्कि अपराधी द्वारा नागरिक दायित्व के उल्लंघन के निर्धारण का है।

8. इस प्रकार यह एक "नागरिक दायित्व" का उल्लंघन है जो धारा 23(1)(a), FERA, 1947 के तहत 'जुर्माना' को आकर्षित करता है और यह निष्कर्ष कि अपराधी ने धारा 10, FERA, 1947 के प्रावधानों का उल्लंघन किया है, जो तुरंत धारा 23 के तहत 'जुर्माना' की वसूली को आकर्षित करेगा, इस तथ्य के बावजूद कि उल्लंघन डिफॉल्टर द्वारा किसी "दोषी इरादे" के साथ किया गया था या नहीं। इसलिए, एक आपराधिक मामले के विपरीत, जहां 'अभियोजन' के लिए यह स्थापित करना आवश्यक है कि 'अभियुक्त' का आवश्यक दोषी इरादा था या दूसरे शब्दों में कथित अपराध करने के लिए अपेक्षित "मेन्स री" था, जिसके साथ उस पर अपनी दोषसिद्धि दर्ज करने से पहले आरोप लगाया गया है, प्रवर्तन निदेशालय की ओर से दायित्व, फेरा की धारा 10 के प्रावधानों के उल्लंघन के मामलों में, जहां यह दिखाया गया है कि अपराधी का "दोषपूर्ण आचरण" उसके द्वारा धारा 10, फेरा, 1947 के प्रावधानों के जानबूझकर उल्लंघन करके स्थापित किया गया था। यह डिफॉल्टर का अपराध ही है जो उसके 'दोषपूर्ण' आचरण को स्थापित करता है, जो "मेन्स रिया (इरादा/आशय)" के अस्तित्व के किसी और सबूत के बिना फेरा, 1947 की धारा 23(1)(ए) के प्रावधानों को आकर्षित करता है। अधिकारियों द्वारा निर्णय लेने और फेरा, 1947 की धारा 23(1)(ए) के तहत जुर्माना लगाने के बाद भी, डिफॉल्टर पर मुकदमा चलाया जा सकता है और दंडित किया जा सकता है, जहां डिफॉल्टर का कार्य भी दंड कानून के तहत अपराध के बराबर है और ऐसे मामले में भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(2) के तहत प्रतिबंध लागू नहीं होगा। अपने आप में जुर्माने का भुगतान करने में विफलता धारा 23-एफ के तहत 'अभियोजन' को आकर्षित करती है और उक्त अपराध के लिए 'अदालत' द्वारा दोषी ठहराए जाने पर कारावास की सजा हो सकती है।

***

12. कॉर्पस ज्यूरिस सेकंदम, वॉल्यूम 85, पृष्ठ 580, प्रस्तर-1023 में, यह इस प्रकार कहा गया है:

"कर अपराध के लिए लगाया गया जुर्माना एक नागरिक दायित्व है, उपचारात्मक और अपनी प्रकृति में जबरदस्ती है, और आपराधिक या दंडात्मक कानूनों के उल्लंघन के लिए सजा के रूप में प्रदान किए गए अपराध के लिए दंड या जुर्माना या जब्ती से बहुत अलग है।

13. हम उपरोक्त दृष्टिकोण से सहमत हैं और हमारी राय में, जो "कर अपराध" पर लागू होता है वह फेरा, 1947 के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए 'दोषपूर्ण' आचरण के लिए समान रूप से अच्छा है। इसलिए, हम मानते हैं कि फेरा, 1947 की धारा 10 के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए फेरा, 1947 की धारा 23(1)(ए) के तहत दंड का भुगतान करने के लिए दोषी ठहराने के लिए मेन्स रिया (इरादा/आशय) (जैसा कि आपराधिक कानून में समझा जाता है) एक आवश्यक घटक नहीं है और धारा 10(1)(ए) द्वारा विचार किए गए वैधानिक दायित्व का उल्लंघन स्थापित होते ही धारा 23(1)(ए) के तहत जुर्माना लगाया जाता है। उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अधिनियम के तहत "दोषपूर्ण आचरण" को "आपराधिक अपराध" के कमीशन के बराबर मानने में गलती की, इस स्थिति को नजरअंदाज करते हुए कि न्यायिक कार्यवाही में "दोषपूर्ण आचरण" केवल अधिनियम के तहत एक नागरिक दायित्व के उल्लंघन के प्रमाण द्वारा स्थापित किया जाता है, जिसके लिए डिफॉल्टर अधिनियम की धारा 23 (1) (ए) के तहत लगाए गए जुर्माने के भुगतान से संशोधन करने के लिए बाध्य है। तथ्य यह है कि क्या उसने किसी भी दोषी इरादे के साथ या बिना उल्लंघन किया है। इसलिए हमारे द्वारा ऊपर तैयार किए गए पहले प्रश्न का हमारा उत्तर नकारात्मक है। (महत्व सन्निविष्ट)

33. सर्वोच्च न्यायालय ने अपने विभिन्न निर्णयों में कैबोट इंटरनेशनल कैपिटल कॉरपोरेशन (उपरोक्त) में बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की पुष्टि की है। बॉम्बे उच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय में व्याख्या के सिद्धांत निर्धारित किए हैं। उक्त निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"47. इस प्रकार, निम्नलिखित निकाले गए सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है:

(ए) मेन्स रीआ (इरादा/आशय) आपराधिक अपराध के लिए एक अनिवार्य या अनिवार्य शर्त है।

(बी) प्रत्येक मामले में मेन्स रीआ (इरादा/आशय) के सीधे सटीक फार्मूले का आंख मूंदकर पालन नहीं किया जा सकता है। किसी विशेष क़ानून की योजना को किसी दिए गए मामले में पतला किया जा सकता है।

(सी) यदि, क़ानून में प्रयुक्त योजना, उद्देश्य और शब्दों से, ऐसा प्रतीत होता है कि दंड लगाने की कार्यवाही प्रकृति में न्यायिक है, आपराधिक या अर्ध-आपराधिक कार्यवाही के विपरीत, निर्धारण अपराधी द्वारा नागरिक दायित्व के उल्लंघन का है। 'जुर्माना' शब्द अपने आप में आपराधिक या अर्ध-आपराधिक कार्यवाही की प्रकृति को समाप्त करने के लिए निर्धारक नहीं होगा। प्रासंगिक विचार प्राधिकरण द्वारा निर्वहन किए जा रहे कार्यों की प्रकृति और उल्लंघनकर्ता के दायित्व और अपराध का निर्धारण है।

(घ) सिविल दायित्वों या देनदारियों के उल्लंघन के लिए दंड लगाने के लिए मेन्स रीआ (इरादा/आशय) आवश्यक तत्व नहीं है।

(ई) एक ही अधिनियम के तहत दो अलग-अलग देनदारियां हो सकती हैं, सिविल और आपराधिक।

*34. इस न्यायालय ने **मैसर्स हिंदुस्तान हर्बल कॉस्मेटिक्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** में माना है कि कुछ मामलों में कर मामलों में दंड के लिए मेन्स रिया (इरादा/आशय) के तत्व की आवश्यकता हो सकती है। निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर यहां नीचे उद्धृत किया गया है:*

"8. निर्णयों के अवलोकन पर, जो सिद्धांत उभरता है वह यह है कि कर की चोरी के लिए मेन्स रिया (इरादा/आशय) की उपस्थिति जुर्माना लगाने के लिए एक अनिवार्य शर्त है। कर चोरी के इरादे को साबित करने के लिए किसी और सामग्री के बिना ई-वे बिल में एक टाइपोग्राफिकल त्रुटि को जुर्माना लगाने का कारण नहीं बनना चाहिए और न ही हो सकता है। मैसर्स वरुण बेवरेजेज लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में 4 अक्षरों (एचआर-73) के ई-वे बिल में टंकण संबंधी त्रुटि थी। प्रस्तुत मामले में, '5332' के बजाय, '3552' को ई-वे बिल में गलत तरीके से दर्ज किया गया था जो स्पष्ट रूप से एक टाइपोग्राफिकल त्रुटि प्रतीत होती है। कुछ मामलों में जहां डीलरों द्वारा चूक बड़ी होती है, यह माना जा सकता है कि कर से बचने का इरादा है लेकिन हर मामले में ऐसा नहीं है। आमतौर पर जब त्रुटि इस विशेष मामले में पाई जाने वाली प्रकृति की एक छोटी सी त्रुटि है, तो मेरा विचार है कि अधिनियम की धारा 129 के तहत जुर्माना लगाना अधिकार क्षेत्र के बिना है और कानून में अवैध है।

*35. **सी.एस.टी. बनाम सत्यम शिवम पेपर्स (प्रा) लिमिटेड में सर्वोच्च न्यायालय(2022) 14 एस.सी.सी. 157** ने तेलंगाना उच्च न्यायालय के फैसले को बरकरार रखा है, जिसमें न्यायालय ने निर्धारिती के पक्ष में फैसला दिया है और इस बात को रेखांकित किया है कि अधिकारियों को केवल प्रक्रियात्मक चूक जैसे कि ई-वे बिल की समाप्ति पर कर की चोरी नहीं करनी चाहिए, खासकर जब वैध कारण प्रदान किए जाते हैं। न्यायालय द्वारा यह निहित है कि तेलंगाना माल और सेवा कर की धारा 129 के तहत कर निर्धारण अधिकारी द्वारा जुर्माना लगाया नहीं जा सकता है। निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं:*

"7. उच्च न्यायालय का विश्लेषण और तर्क हमें सराहना करता है, जब यह देखा गया है कि उच्च न्यायालय ने सावधानीपूर्वक जांच की है और सही ढंग से पाया है कि रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ कर चोरी करने के लिए कोई गलती या इरादा नहीं लगाया जा सकता था। हालाँकि, जैसा कि शुरुआत में टिप्पणी की गई है, इस मामले में उच्च न्यायालय द्वारा दी गई लागत की राशि कम है। याचिकाकर्ता 2 के समग्र आचरण और रिट याचिकाकर्ता द्वारा सामना किए गए संबंधित उत्पीड़न को ध्यान में रखते हुए, हम लागत की मात्रा को बढ़ाना आवश्यक पाते हैं।

8. हमारे द्वारा इन टिप्पणियों को करने पर, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत करने का प्रयास किया है कि इस मामले में कानून के प्रश्न, तेलंगाना माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 की धारा 129 के संचालन और प्रभाव और रिट याचिकाकर्ता द्वारा उल्लंघन के संबंध में, खुले रखे जा सकते हैं। जो प्रस्तुतियाँ की जानी चाहिए हैं, वे इस तथ्य के प्रश्न को भी जन्म नहीं देती हैं कि कानून के प्रश्न के बारे में क्या कहना है। जैसा कि ऊपर देखा गया है, इस मामले के तथ्यों पर, यह सटीक रूप से पाया गया है कि रिट याचिकाकर्ता की ओर

से कर से बचने का कोई इरादा नहीं था और बल्कि, रिट याचिकाकर्ता के नियंत्रण से परे कारणों से विचाराधीन माल को समय के भीतर गंतव्य तक नहीं ले जाया जा सकता था। जब आंदोलन के कारण यातायात रुकावट सहित निर्विवाद तथ्यों को ध्यान में रखा जाता है, तो यातायात को सुचारू रूप से पारित नहीं करने के लिए अकेले राज्य जिम्मेदार होता है।

36. ***वीना एस्टेट (पी) लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त*** [2024] 461 आई.टी.आर. 483 (बॉम्बे) में रिपोर्ट किया गया है, बॉम्बे उच्च न्यायालय ने आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 274 के तहत नोटिस प्रस्तुत करने में प्रक्रियात्मक दोषों से निपटते हुए आयकर अधिनियम, 1961 की आय को छिपाने के लिए निर्धारिती के खिलाफ जुर्माना लगाने में न्यायाधिकरण के दृष्टिकोण को बरकरार रखा है

<u>मेन्स रिया (इरादा/आशय) की उपस्थिति</u>:

37. ***केम्मनचेरी एस्टेट कंपनी बनाम आयकर अधिकारी वार्ड VIII (2)*** **(2020) 268 टैक्समैन 29 (मद्रास)** में रिपोर्ट किया गया है, मद्रास उच्च न्यायालय ने न्यायाधिकरण के निष्कर्षों को बरकरार रखा है जिसमें न्यायाधिकरण ने धारा 271(1)(सी) के तहत निर्धारिती पर गैर-कृषि भूमि को छिपाने और जानबूझकर आय के गलत विवरण प्रस्तुत करने के लिए जुर्माना लगाया है कि बेची गई भूमि एक कृषि भूमि थी। न्यायालय ने माना कि उक्त प्रावधान के तहत न्यायाधिकरण द्वारा जानबूझकर छिपाया गया था और जुर्माना लगाया गया था।

38. कर अपराध के मामलों में दंड से निपटने वाले विभिन्न निर्णयों के अवलोकन पर, कोई इसे निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत कर सकता है:

क- गंभीर जुर्माना लगाने में विधायिका का उद्देश्य कर चोरी के खिलाफ निवारण प्रदान करना और एक ऐसी प्रथा पर रोक लगाना है जिसे विधायिका सार्वजनिक हित के खिलाफ मानती है। दंड के प्रावधान को लागू करने में विधायिका का उद्देश्य आपराधिक कानून के तहत सजा का प्रावधान करना नहीं है, बल्कि आय को छिपाने के लिए दंड का प्रावधान करना है और वह भी निवारक दंड प्रदान करना।

ख- दंड लगाने के पीछे निरोध वस्तु का मुख्य विषय है।

ग- कॉर्पस ज्यूरिस सेकंदम में कहा गया है कि 'कर अपराध के लिए लगाया गया जुर्माना एक नागरिक दायित्व है, उपचारात्मक और अपनी प्रकृति में जबरदस्ती है और आपराधिक और दंडात्मक कानूनों के उल्लंघन के लिए सजा के रूप में प्रदान किए गए अपराध या जुर्माना या जब्ती से बहुत अलग है'।

घ- दंड के संबंध में क़ानून के तहत एक निर्णायक प्राधिकारी द्वारा किया गया आदेश दोषसिद्धि का नहीं है, बल्कि अपराधी द्वारा नागरिक दायित्व के उल्लंघन का निर्धारण है [देखें *एमसीटीएम कॉर्प (P.) लि० उपरोक्त)]*

ई। न्यायिक कार्यवाही में दोषपूर्ण आचरण केवल क़ानून के तहत नागरिक दायित्व के उल्लंघन के प्रमाण द्वारा स्थापित किया जाता है, जिसके लिए चूककर्ता लगाए गए दंड के भुगतान द्वारा संशोधन करने के लिए बाध्य होते हैं।

अनावरित

एफ- *कैबोट इंटरनेशनल कैपिटल कॉर्पोरेशन (उपरोक्त) के अनुसार* निम्नलिखित सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है:

(i) मेन्स रिया (इरादा/आशय) आपराधिक अपराध के लिए एक अनिवार्य या अनिवार्य शर्त है।
(ii) प्रत्येक मामले में मेन्स रिया (इरादा/आशय) के सीधे सटीक फार्मूले का आंख मूंदकर पालन नहीं किया जा सकता है। किसी विशेष क़ानून की योजना को किसी दिए गए मामले में पतला किया जा सकता है।
(iii) यदि, क़ानून में प्रयुक्त योजना, उद्देश्य और शब्दों से, ऐसा प्रतीत होता है कि दंड लगाने की कार्यवाही आपराधिक या अर्ध-आपराधिक कार्यवाही के विपरीत प्रकृति में न्यायिक है, तो निर्धारण अपराधी द्वारा नागरिक दायित्व के उल्लंघन का है। 'जुर्माना' शब्द अपने आप में आपराधिक या अर्ध-आपराधिक कार्यवाही की प्रकृति को समाप्त करने के लिए निर्धारक नहीं होगा। प्रासंगिक विचार प्राधिकरण द्वारा निर्वहन किए जा रहे कार्यों की प्रकृति और उल्लंघनकर्ता के दायित्व और अपराध का निर्धारण है।
(iv) सिविल दायित्वों या देनदारियों के उल्लंघन के लिए जुर्माना लगाने के लिए मेन्स रीआ (इरादा/आशय) एक आवश्यक तत्व नहीं है।
(v) एक ही अधिनियम के अंतर्गत सिविल और आपराधिक दो अलग-अलग देयताएं हो सकती हैं।
जी- सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 129 के संबंध में, मैसर्स हिंदुस्तान हर्बल कॉस्मेटिक्स (उपरोक्त) में इस अदालत ने माना है कि जो सिद्धांत उभरता है वह यह है कि कुछ मामलों में कर चोरी के लिए मेन्स रिया (इरादा/आशय) की उपस्थिति जुर्माना लगाने के लिए एक अनिवार्य शर्त है।

39. उपरोक्त सिद्धांतों के अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कि उन मामलों में जुर्माना लगाया जा सकता है जहां पुरुषों की आवश्यकता है। यह एक विशेष क़ानून की योजना है जो यह निर्धारित करेगी कि जुर्माना लगाने के लिए पुरुषों के लिए कोई आवश्यकता है या नहीं। हालांकि, जब एक कर कानून अभियोजन की बात करता है, तो उन अपराधों के लिए पुरुषों का इरादा या दोषी इरादा एक अनिवार्य शर्त है। जैसा कि *कैबोट इंटरनेशनल कैपिटल कॉर्पोरेशन (उपरोक्त)* में आयोजित किया गया है, यदि क़ानून में उपयोग की जाने वाली योजना, वस्तुओं और शब्दों से, ऐसा प्रतीत होता है कि दंड लगाने की कार्यवाही प्रकृति में न्यायिक है, आपराधिक और अर्ध-आपराधिक कार्यवाही के विपरीत, निर्धारण अपराधी द्वारा नागरिक दायित्व के उल्लंघन का है। दंड शब्द अपने आप में आपराधिक या अर्ध-आपराधिक होने की कार्यवाही की प्रकृति को समाप्त करने के लिए निर्धारक नहीं होगा। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि किसी विशेष क़ानून में कुछ उल्लंघनों के लिए दंड लगाया जा सकता है जिनके लिए मेन्स रिया की आवश्यकता नहीं होती है और उसी क़ानून में उन उल्लंघनों के लिए दंड लगाया जा सकता है जो प्रकृति में कहीं अधिक गंभीर हैं जिसमें मेन्स रिया एक डिसिडेरेटम होगा।

<u>याचिकाकर्ता की प्रस्तुतियों से निपटना</u>

40. 'अपराध' और 'दंड' शब्दों के अर्थ के संबंध में पिछले खंड में जिन सिद्धांतों को ध्यान में रखा गया है, कर लगाने के क़ानून की व्याख्या का तरीका विशेष रूप से अपराध के मामलों में जुर्माना लगाना, मैं याचिकाकर्ता की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता द्वारा उठाए गए अनगिनत विवादों की जांच करने के लिए आगे बढ़ूंगा।

41. मुद्दे (I) पर श्री अरविंद दातार के तर्क का सार यह है कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 122 विशेष रूप से 'अपराधों' से संबंधित है और इसलिए इसे सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 134 के साथ पढ़ा जाना चाहिए। इसलिए, उनका तर्क है कि ऐसे अपराधों के लिए दंड आपराधिक अदालतों द्वारा लगाया जाना चाहिए और उचित अधिकारी द्वारा निर्णय नहीं दिया जा सकता है। अपने तर्कों का समर्थन करने के लिए उन्होंने कहा कि जब तक सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 73 और धारा 74 के तहत कर का निर्धारण नहीं होता है, तब तक सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत कोई दंडात्मक प्रावधान लागू नहीं किया जा सकता है क्योंकि धारा 122 के तहत कोई दंडात्मक कार्रवाई करने से पहले कर चोरी के एक विशिष्ट अपराध की आवश्यकता है। सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 2(107) को पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि कर योग्य व्यक्ति का अर्थ है एक ऐसा व्यक्ति जो सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 22 और धारा 24 के तहत पंजीकृत या पंजीकृत होने के लिए उत्तरदायी है। धारा 22 और धारा 24 के अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कि पंजीकरण के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों में वे व्यक्ति शामिल होंगे जो विशेष रूप से माल की आपूर्ति में हैं, भले ही उन्हें छूट दी गई हो। धारा 24 वास्तव में कुछ मामलों में अनिवार्य पंजीकरण का प्रावधान करती है। तदनुसार, चूंकि याचिकाकर्ता सी.जी.एस.टी. अधिनियम के तहत पंजीकृत है, इसलिए वह कर योग्य व्यक्ति की परिभाषा के अंतर्गत आएगा जैसा कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के शुरुआती वाक्य में उल्लिखित है। यह तर्क कि किसी पर पहले धारा 73/74 के तहत कर लगाया जाना चाहिए और उसके बाद ही जुर्माना लगाया जा सकता है, प्रकृति में भ्रामक है और तदनुसार इसे खारिज कर दिया जाता है। वर्तमान जीएसटी व्यवस्था के तहत, जो व्यक्ति सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 73/74 के तहत कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं हैं, वे धारा 122 (1) की इक्कीस उप-धाराओं और उप-धारा 122 (2) और 122 (3) के तहत वर्णित दंड के लिए उत्तरदायी हो सकते हैं।

42. श्री दातार द्वारा उठाया गया दूसरा तर्क यह है कि, सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 अध्याय XIX के अंतर्गत आती है: 'अपराध और दंड' और धारा 122 के शीर्षक में 'कुछ अपराधों के लिए दंड' लिखा है। उनका तर्क है कि अपराधों की परिभाषा सी.जी.एस.टी. अधिनियम में उपलब्ध नहीं कराई गई है और इसलिए इसे सामान्य खंड अधिनियम, 1897 या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 से आयात किया जाना चाहिए। सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 2(38) और द.प्र.स. की धारा 2 (एन) को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर यह स्पष्ट है कि अपराध कोई भी कार्य या चूक है जिसे कानून द्वारा उस समय लागू किया गया दंडनीय बनाया गया है। सजा को हमेशा आपराधिक मुकदमे के माध्यम से लागू करने की आवश्यकता नहीं होती है और इसे दंड के माध्यम से बहुत अच्छी तरह से लगाया जा सकता है।

43. इसके अलावा, धारा 4 (2) द.प्र.स. में कहा गया है कि किसी भी कानून के तहत सभी अपराधों की जांच, जांच, जांच और अन्यथा निपटा जाएगा, द.प्र.स. के प्रावधानों के अनुसार, यदि अन्य कानूनों में कोई अलग प्रावधान नहीं है। प्रस्तुत मामले में हम पाते हैं कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत उल्लिखित अपराधों के लिए, दंड के रूप में सजा दी गई है। प्रस्तुत मामले में द.प्र.स. की धारा 4(2) लागू नहीं होगी क्योंकि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत अपराधों के लिए जुर्माना लगाने के माध्यम से एक अलग

प्रावधान की परिकल्पना की गई है। इसके अलावा, यदि कोई 'दंड' शब्द को एक स्पष्ट अर्थ देता है, तो यह आम तौर पर एक नागरिक दायित्व को संदर्भित करता है, न कि आपराधिक दायित्व। आयकर अधिनियम, 1961, पूर्ववर्ती केंद्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम, सीमा शुल्क अधिनियम, सभी नागरिक दायित्व लागू करने के लिए दंड शब्द का उपयोग करते हैं। श्री दातार का तर्क कि दंड और जुर्माना का परस्पर उपयोग द.प्र.स. की दो धाराओं, यानी धारा 136 और 141 का संदर्भ देकर किया जाता है, जो भ.द.वि. की धारा 188 के तहत प्रदान किए गए जुर्माने में परिणत होता है, उनके तर्क में सहायता नहीं करता है।

44. श्री दातार द्वारा उठाया गया अगला तर्क यह है कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के तहत जुर्माना भी लगाया जा रहा है और इसलिए उसी उल्लंघन के लिए सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत एक और जुर्माना लगाना विधायिका का इरादा नहीं होता। धारा 74 के अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कि इस धारा के तहत लगाया गया जुर्माना कर का भुगतान न करने के लिए है या जहां कर का भुगतान कम किया गया था या गलती से वापस कर दिया गया था या जहां आई.टी.सी. का गलत तरीके से लाभ उठाया गया है या उपयोग किया गया है। हालांकि, यह जुर्माना सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत परिकल्पित दंडों के विपरीत प्रकृति में बहुत विशिष्ट है, जो कहीं अधिक व्यापक हैं और विभिन्न कार्यों/चूकों के लिए जो उल्लंघन के बराबर हैं, जरूरी नहीं कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के तहत आच्छादित किया गया हो।

45. श्री दातार द्वारा उठाया गया अगला तर्क यह है कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 (कुछ अपराधों के लिए दंड) और धारा 132 (कुछ अपराधों के लिए सजा) से पता चलता है कि कई उप-धाराएं समान हैं और इसलिए यह केवल सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत दोषसिद्धि के माध्यम से किया जा सकता है, जिसे सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 134 के साथ पढ़ा जाता है। इस स्तर पर, कोई सी.जी.एस.टी. अधिनियम की योजना और विशेष रूप से अध्याय XIX को देख सकता है जो 122 से शुरू होता है और धारा 138 के साथ समाप्त होता है। यहां प्रदान की गई विभिन्न धाराओं को एक उद्देश्यपूर्ण अर्थ और व्याख्या देने के लिए यह पाया जाता है कि धारा 122 से धारा 130 विभिन्न उल्लंघनों के लिए दंड लगाने से संबंधित है। इसके बाद, धारा 131 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि द.प्र.स. में निहित प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, इस अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रावधानों के तहत कोई जब्ती या जुर्माना किसी अन्य दंड को लागू करने से नहीं रोका जाएगा, जिसके लिए प्रभावित व्यक्ति इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत या किसी अन्य कानून के तहत उत्तरदायी है। इसके बाद, सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 132 है जो कुछ अपराधों के लिए सजा से संबंधित है। धारा 132 का पालन करने वाली धारा, सभी उन दंडों से संबंधित हैं जो धारा 132 के तहत वर्णित गंभीर अपराधों के लिए हैं। विशेष रूप से, धारा 132 सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के विपरीत केवल नौ अपराधों को सूचीबद्ध करती है, जिसमें इक्कीस अपराधों की गणना की गई है। धारा 132 के तहत इन अपराधों के अवलोकन पर, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि ये अपराध प्रकृति में कहीं अधिक गंभीर हैं और इसलिए विधायिका ने इसके लिए आपराधिक दंड लगाने का विकल्प चुना है। कोई यह भी ध्यान दे सकता है कि इस तरह की कोई भी सजा देने से पहले, धारा 132 (6) में विशेष रूप से कहा

गया है कि किसी व्यक्ति पर आयुक्त की पूर्व मंजूरी के अलावा धारा में प्रदान किए गए किसी भी अपराध के लिए मुकदमा नहीं चलाया जाएगा। कोई भी यह चिह्नित कर सकता है कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 में यह आवश्यकता स्पष्ट रूप से अनुपस्थित है। अध्याय को आगे पढ़ने पर, अपराधों के शमन से संबंधित सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 138 मिलती है, जो उन अपराधों से संबंधित है जिन्हें कंपाउंड किया जा सकता है लेकिन एक परंतुक प्रदान करता है जिसे नीचे चित्रित किया गया है:

"धारा 138 अपराधों का शमन -

(1) इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, अभियोजन की संस्था से पहले या बाद में, आयुक्त द्वारा अपराध के अभियुक्त व्यक्ति द्वारा, केन्द्र सरकार या राज्य सरकार को, यथास्थिति, ऐसी शमन राशि का भुगतान करने पर, जो विहित किया जाए, शमन राशि का संयोजित किया जा सकेगा:

बशर्ते कि इस धारा में निहित कुछ भी इस पर लागू नहीं होगा-

(ए) एक व्यक्ति जिसे धारा 132 की उपधारा (1) के खंड (ए) से (एफ), (एच), (आई) और (एल) में निर्दिष्ट किसी भी अपराध के संबंध में एक बार कंपाउंड करने की अनुमति दी गई है;

(ख) [छोड़ा गया]

(ग) एक व्यक्ति जिस पर धारा 132 की उपधारा (1) के खंड (बी) के तहत अपराध करने का आरोप लगाया गया है;

(घ) एक व्यक्ति जिसे अदालत द्वारा इस अधिनियम के तहत किसी अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है;

(ङ) [छोड़े गए] और

(च) व्यक्तियों या अपराधों का कोई अन्य वर्ग जो विहित किया जा सकता है:

बशर्ते कि इस धारा के प्रावधानों के तहत अनुमत कोई भी शमन किसी अन्य कानून के तहत स्थापित कार्यवाहियों, यदि कोई हो, को प्रभावित नहीं करेगी:

बशर्ते कि ऐसे अपराधों में शामिल कर, ब्याज और जुर्माने का भुगतान करने के बाद ही शमन की अनुमति दी जाएगी।

उपरोक्त परंतुक एक संकेत है कि विधायिका ने कभी भी धारा 122 को आपराधिक मुकदमे के माध्यम से अभियोजन योग्य और दंडनीय अपराध के रूप में मानने का इरादा नहीं किया था।

46. श्री दातार का तर्क कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 134 में यह परिकल्पना की गई है कि कोई भी अदालत आयुक्त की पूर्व मंजूरी के बिना इस अधिनियम के तहत दंडनीय किसी भी अपराध का संज्ञान नहीं लेगी और प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट से कमतर कोई भी अदालत ऐसे किसी भी अपराध की सुनवाई नहीं करेगी, स्पष्ट रूप से धारा 122 को शामिल करेगी क्योंकि अपराध शब्द का उपयोग धारा के शीर्षक के साथ-साथ धारा 122 (3) (क) एक प्रशंसनीय तर्क है जिसे हमें इस कारण से बड़ी विनम्रता के साथ अस्वीकार करना होगा कि धारा 134 में प्रयुक्त शब्द 'इस अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध' हैं। सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के शीर्षक की उचित व्याख्या करने पर यह स्पष्ट है कि उसमें उल्लिखित अपराधों के लिए जुर्माना लगाया

जा रहा है, जबकि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 132 में उसमें उल्लिखित अपराधों के लिए सजा दी जा रही है। इस तथ्य के साथ कि धारा 132 स्पष्ट रूप से बताती है कि आयुक्त की पिछली मंजूरी की आवश्यकता है, जिसे एक बार फिर धारा 134 में दोहराया गया है जो आगे स्पष्ट करता है कि आपराधिक अदालत धारा 132 से 138 के तहत अपराधों की सुनवाई करेगी।

47. श्री दातार ने सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के खंडों पर नोट्स पर भरोसा किया है ताकि यह प्रस्तुत किया जा सके कि खंड पर उक्त नोट्स में 'अपराध' शब्द का उपयोग किया गया है। हालांकि, खंडों पर नोट यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट करते हैं कि धारा 122 के तहत उल्लिखित अपराधों की सूची के लिए, वही केवल दंड के लिए उत्तरदायी होगा। इस तरह के दंड को लागू करने से पहले किए जाने वाले किसी भी परीक्षण के संबंध में खंडों पर टिप्पणियों में एक स्पष्ट चूक है। अध्याय XIX में प्रदान की गई धाराओं को आगे पढ़ने पर सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 128 को देखा जा सकता है जो सरकार को जुर्माना या शुल्क या दोनों को माफ करने की शक्ति प्रदान करता है। यह देखा गया है कि यह प्रावधान जीएसटी परिषद को धारा 122, 123 और 125 में निर्दिष्ट किसी भी दंड या सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 147 में निर्दिष्ट किसी भी विलंब शुल्क को माफ करने की सिफारिश करने का अधिकार देता है और ऐसी सिफारिश पर सरकार अधिसूचना द्वारा इन जुर्माने और विलंब शुल्क को माफ कर सकती है। इसके अलावा, कोई इस निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि उपरोक्त अनुभाग एक ही ब्रैकेट में शामिल हैं और एक ही प्रजाति/जीनस के हैं और प्रकृति में स्पष्ट रूप से नागरिक हैं और इन पर केवल जुर्माना या विलंब शुल्क लगाया जाता है।

48. वास्तव में याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किए गए कॉर्पस ज्यूरिस सेकंदम (खंड 85, पृष्ठ 580, प्रस्तर-1023) *में उद्धृत 'जुर्माना' की परिभाषा* विशेष रूप से बताती है कि कर अपराध के लिए लगाया गया जुर्माना एक नागरिक दायित्व है, उपचारात्मक और प्रकृति में बलपूर्वक है। कर लगाने वाले क़ानून में, किसी को किसी विशेष शब्द का स्पष्ट अर्थ देना होता है और ऊपर उल्लिखित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के एक कैटिना में यह स्पष्ट किया गया है कि उल्लंघन/अपराधों के लिए दंड एक ही उल्लंघन/अपराधों के लिए अभियोजन से अलग है।

49. श्री दातार का तर्क कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 132 के तहत कुछ कार्यवाही/अपराधों को बाहर करने से यह निष्कर्ष नहीं निकल सकता है कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत कार्यवाही केवल इस कारण से नागरिक दायित्व से संबंधित है कि संसद का इरादा हो सकता था कि धारा 122 के तहत उल्लिखित कुछ अपराधों को कठोर सजा की आवश्यकता है, स्वीकार्य नहीं है क्योंकि यह सबमिशन अधिनियम। वास्तव में, धारा 122 से नौ अपराधों को समाप्त करने और अपराधों के लिए सजा शीर्षक के साथ आपराधिक अभियोजन के लिए एक अलग धारा बनाने से यह निष्कर्ष निकलता है कि धारा 122 विभाग द्वारा दंड के माध्यम से नागरिक दायित्व लागू करने से संबंधित है, जबकि चुने गए नौ अपराधों के लिए, आयुक्त की पूर्व स्वीकृति के साथ आपराधिक कार्यवाही सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 132 (6) के तहत विचार की जाती है।

50. इस विशेष मुद्दे पर श्री दातार का अंतिम तर्क यह है कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 पर विभाग द्वारा निर्णय नहीं लिया जा सकता है और इसे अभियोजन से गुजरना पड़ता है क्योंकि यह कहीं भी उचित अधिकारी शब्द को संदर्भित नहीं करता है, और इसलिए, यह निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि धारा 122 को सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 134 के साथ पढ़ा जाना आवश्यक है और इस तरह का जुर्माना केवल आपराधिक मुकदमे के माध्यम से लगाया जा सकता है। उन्होंने सी.बी.आई.सी. परिपत्र संख्या-3/3/2017-जीएसटी दिनांक 7 जुलाई, 2022 का भी उल्लेख किया है, जिसमें बोर्ड ने सी.जी.एस.टी. अधिनियम की विभिन्न धाराओं के संबंध में निर्णय के लिए उचित अधिकारी को नियुक्त किया है, लेकिन आपराधिक अदालतों द्वारा अभियोजन के लिए धारा 122 के तहत कार्यवाही को जानबूझकर बाहर रखा है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि धारा 122 में उचित अधिकारी का कोई संदर्भ नहीं है और इसलिए इसका मतलब है कि ये कार्यवाही केवल एक आपराधिक अदालत में की जा सकती है। इस तर्क को निम्नलिखित आधारों पर खारिज करना होगा:

क- सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के तहत शक्तियों का प्रयोग निस्संदेह एक उचित अधिकारी द्वारा किया जाता है। सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 का स्पष्टीकरण 1(ii) स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि यह उचित अधिकारी है जो धारा 73 और 74 के तहत कार्यवाही शुरू करता है, वह भी वह व्यक्ति है जो धारा 122 और 125 के तहत कार्यवाही शुरू कर रहा है क्योंकि स्पष्टीकरण धारा 122 और 125 के तहत दंड का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही के लिए प्रदान करता है, जब धारा 73 के तहत आरोप लगाए गए मुख्य व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही समाप्त मानी जाती है और 74 निष्कर्ष निकाले गए हैं। यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के स्पष्टीकरण 1 (i) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अभिव्यक्ति "उक्त नोटिस के संबंध में सभी कार्यवाही" में सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 132 के तहत कार्यवाही शामिल नहीं होगी। इस विशेष उप-खंड को शामिल करने की व्याख्या केवल यह अर्थ निकाला जा सकता है कि विधायिका का इरादा आपराधिक कार्यवाही को बाहर करना था जो अपराधों के लिए सजा से संबंधित थी। दूसरी ओर, यह एक संकेत है कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत जुर्माना धारा 74 के तहत जारी नोटिस के संबंध में कार्यवाही के भीतर आएगा, यदि उचित अधिकारी द्वारा ऐसा किया जाए। स्पष्टीकरण का उप-खंड (ii) प्रतिपक्षी के तर्क को और पुष्ट करता है कि मुख्य व्यक्ति के खिलाफ धारा 73 या 74 के तहत कार्यवाही का समापन सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत दंड का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी अन्य सभी व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही का समापन करेगा।

ख- इसके अलावा, सी.जी.एस.टी. अधिनियम की विभिन्न धाराओं और उसके तहत बनाए गए नियमों की जांच करने पर तस्वीर पूरी तरह से पारदर्शी हो जाती है। सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 83 जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि कुछ घटनाओं में राजस्व द्वारा अनंतिम कुर्की की जा सकती है यदि आयुक्त की राय है कि सरकारी राजस्व की रक्षा के उद्देश्य से, वह कर योग्य व्यक्ति या धारा 122 (1 ए) में निर्दिष्ट किसी भी व्यक्ति से संबंधित बैंक खातों सहित किसी भी संपत्ति को लिखित रूप से अस्थायी रूप से कुर्क कर सकता है। धारा 122 (1 ए) में प्रावधान है कि कोई भी व्यक्ति जो उप-धारा (1) के खंड (i), (ii), (vii) या खंड (ix) के तहत आच्छादित किए गए लेनदेन के लाभ को बरकरार रखता है और जिसके उदाहरण पर ऐसा लेनदेन किया

जाता है, वह कर चोरी या इनपुट टैक्स क्रेडिट के बराबर राशि के दंड के लिए उत्तरदायी होगा। उसी के आलोक में, यह स्पष्ट है कि धारा 122 के तहत लगाया गया जुर्माना विभाग द्वारा लगाया जा रहा है क्योंकि इसके लिए अनंतिम कुर्की की जा सकती है जो कि आपराधिक अदालतों द्वारा धारा 122 की सुनवाई करने पर संभव नहीं होता।

सी.जी.एस.टी. नियमों के नियम 142 (1) (ए) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि एक उचित अधिकारी धारा 52/73/74/76/122/123/124/125/127/129/130 के तहत जारी नोटिस के साथ काम करेगा, जो जीएसटी डीआरसी -01 फॉर्म में इलेक्ट्रॉनिक रूप से उसका सारांश है। इसके अलावा, नियम 142(5) में प्रावधान है कि धारा 52/62/63/64/73/76/122/123/124/ 125/127/129/130 के तहत आदेश का सारांश इलेक्ट्रॉनिक रूप से फॉर्म जीएसटी डीआरसी-07 में अपलोड किया जाएगा, जिसमें कर, ब्याज और दंड की राशि, जैसा भी मामला हो, संबंधित व्यक्ति द्वारा देय निर्दिष्ट किया जाएगा। उपरोक्त स्पष्ट रूप से विधायिका के इरादे को इंगित करता है कि उचित अधिकारी को सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत कारण बताओ जारी करने और उसके बाद निर्णय लेने और आदेश पारित करने की आवश्यकता है और आगे कुछ भी संदेह में नहीं रहता है। उपरोक्त मुद्दे के संबंध में श्री दातार द्वारा दिए गए तर्क, हालांकि बहुत ही वाक्पटुता से प्रस्तुत किए गए हैं, जब कोई ऊपर बताए गए अधिनियम की पूरी योजना को देखता है तो इसमें कोई दम नहीं लगता है। उसी के आलोक में, कोई यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि एक उचित अधिकारी/निर्णायक अधिकारी के पास सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत प्रदान किए गए दंड प्रावधान पर निर्णय लेने की शक्ति है।

51. मुद्दे (II) के संदर्भ में, याचिकाकर्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि यदि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के तहत कार्यवाही मुख्य व्यक्ति के खिलाफ छोड़ दी जाती है/समाप्त हो जाती है, तो सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत कार्यवाही भी मुख्य व्यक्ति के खिलाफ समाप्त हो जाएगी। याचिकाकर्ता ने इस तर्क के समर्थन में धारा 1 (ii) से धारा 74 के स्पष्टीकरण पर भरोसा किया था। हालाँकि, 6 जुलाई, 2022 को परिपत्र संख्या-171/03/2022-जी.एस.टी. को पढ़ने से, यह स्पष्ट है कि धारा 73/74 के तहत उल्लंघन आवश्यक रूप से Cजी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत आच्छादित किया गया उल्लंघन नहीं है। धारा 74 के स्पष्टीकरण 1(ii) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जब धारा 73/74 के तहत मुख्य व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही छोड़ दी जाती है तो अन्य व्यक्तियों के खिलाफ धारा 122 के तहत कार्यवाही भी कम हो जाएगी। हालांकि, एक विशेष मामले में जब धारा 73/74 के तहत मुख्य व्यक्ति के खिलाफ और धारा 122 के तहत मुख्य व्यक्ति के खिलाफ भी कारण बताओ नोटिस जारी किया जाता है, तो धारा 73/74 के तहत कार्यवाही को छोड़ने से मुख्य व्यक्ति के खिलाफ धारा 122 के तहत कार्यवाही स्वचालित रूप से नहीं छोड़ी जाएगी क्योंकि कार्यवाही दो अलग-अलग अपराधों के उल्लंघन के संबंध में है। इसे निम्नलिखित उदाहरण के माध्यम से समझाया जा सकता है:

A, B को 18 रुपये के इनपुट टैक्स क्रेडिट के साथ 100 रुपये की राशि के लिए माल बेचता है। हालांकि, 200 रुपये की राशि के लिए कर चालान जारी करता है, जिसमें 36 रुपये का जीएसटी होता है। इसके बाद B उचित कर चालान के साथ 50 रुपये की राशि के लिए C को माल की आपूर्ति करता है। B आगे किसी भी सामान की आपूर्ति के बिना 50 रुपये से D के साथ कर चालान जारी करता है। उक्त चालान में, B जीएसटी के रूप

में 9 रुपये पास करता है। B आगे E को 100 रुपये के सामान की आपूर्ति करता है, लेकिन इसके लिए जी.एस.टी. के साथ 150 रुपये की राशि के लिए टैक्स इनवॉइस जारी करता है।

क- उपरोक्त उदाहरण में, ए जीएसटी के साथ 100 रुपये की राशि के लिए नकली चालान जारी करने के लिए उत्तरदायी होगा। इसलिए, A धारा 122(1)(ii) के तहत उत्तरदायी होगा और B आई.टी.सी. के अनुचित उपयोग के लिए धारा 74 के तहत उत्तरदायी होगा।

ख-बी और सी के बीच लेनदेन के संबंध में, बी या सी द्वारा कोई अपराध नहीं किया गया है क्योंकि कर चालान बी द्वारा सी को आपूर्ति की गई वस्तुओं की मात्रा के लिए है क्योंकि बी ने सी को माल की आपूर्ति की है और उसी राशि के लिए चालान जारी किया है।

ग- जब B माल की किसी भी आपूर्ति के बिना जी.एस.टी. के रूप में D को 9 रुपये के साथ 50 रुपये के नकली चालान जारी करता है, तो B नकली चालान जारी करने के लिए धारा 122 (1) (ii) के तहत उत्तरदायी होगा और D माल प्राप्त किए बिना आई.टी.सी. के अनुचित उपयोग के लिए धारा 74 के तहत उत्तरदायी होगा।

घ. बी और ई के बीच लेनदेन के संबंध में, बी ने माल की आपूर्ति वर्ष 100 की है और आपूर्ति वर्ष 150 को दर्शाता है, इसलिए, बी 50 रुपये के माल की आपूर्ति के बिना नकली चालान जारी करने के लिए उत्तरदायी है और इसलिए धारा 122 (1) (ii) के तहत जुर्माना लगाया जाएगा और ई माल की प्राप्ति के बिना 9 रुपये के आई.टी.सी. के उपयोग के लिए धारा 74 के तहत उत्तरदायी होगा।

52. उपरोक्त उदाहरण के आलोक में, यह स्पष्ट है कि ऐसे परिदृश्य हो सकते हैं जहां सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 73/74 के तहत कार्यवाही मुख्य व्यक्ति के खिलाफ समाप्त हो सकती है, लेकिन मुख्य व्यक्ति द्वारा नकली चालान जारी करने के लिए सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत दंड की कार्यवाही धारा 74 के तहत कार्यवाही से स्वतंत्र हो सकती है, और इसलिए, धारा 122 के तहत वे कार्यवाही धारा 74 के स्पष्टीकरण 1 (ii) के अनुसार कम नहीं होगी।

<u>समाप्ति/निष्कर्ष</u>

53. विस्तृत विश्लेषण के बाद, यह स्पष्ट है कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत कार्यवाही का निर्णय निर्णायक अधिकारी द्वारा किया जाना है और इसके लिए अभियोजन से गुजरने की आवश्यकता नहीं है और सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के तहत कार्यवाही में कमी भी वास्तव में धारा 122 के तहत कार्यवाही को कम नहीं करती है जो पूरी तरह से अलग अपराधों के लिए हैं।

54. उपरोक्त चर्चाओं के आलोक में, कोई भी इस निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 विशेष रूप से उचित अधिकारी द्वारा निर्णय लिए जाने वाले दंड को लागू करने का एक प्रावधान है, जबकि

धारा 132 से 138 के प्रावधान आपराधिक अदालतों द्वारा किए जाने वाले अभियोजन से संबंधित हैं। इसके अलावा, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के तहत मुख्य व्यक्ति पर कार्यवाही का समापन वास्तव में मुख्य व्यक्ति पर लगाए जाने वाले प्रस्तावित सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत कार्यवाही को कम नहीं करेगा। सी.जी.एस.टी. नियमों के साथ पढ़े गए सी.जी.एस.टी. अधिनियम की योजना इस अपरिहार्य निष्कर्ष पर पहुंचती है कि याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए तर्क, हालांकि अभिनव और विचारोत्तेजक हैं, भ्रामक हैं क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा दी गई व्याख्या सी.जी.एस.टी. अधिनियम के उद्देश्य और लक्ष्य को अस्पष्ट कर देगी। उसी के आलोक में, याचिकाकर्ता की दलीलों का समर्थन नहीं किया जा सकता है और तदनुसार, **अस्वीकृत** किया जाता है।

55. रिट याचिका **खारिज** की जाती है। प्रतिपक्षी अधिकारियों को जारी किए गए कारण बताओ नोटिस के अनुरूप सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 के तहत कार्यवाही जारी रखने का निर्देश दिया जाता है।

56. मैं दोनों पक्षों की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों को स्वीकार करना चाहता हूं और दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत तर्कों के नोट्स तैयार करने में मेहनत के लिए मामले में उपस्थित होने वाले जूनियर्स को धन्यवाद देना चाहता हूं। अगर मैं अपने रिसर्च एसोसिएट्स सुश्री सौम्या पटेल और श्री आशुतोष श्रीवास्तव को उनके गहन शोध और सहायता के लिए सराहना नहीं करता तो मैं भी गलत कहूंगा।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 762

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: 12.05.2025 इलाहाबाद

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. गौतम चौधरी

के समक्ष

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 4923 सन् 2025

खार्गेश उर्फ गोलू **...आवेदक (जेल में)**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **...विपक्षीगण**

आवेदक के अधिवक्ता :- श्री प्रशांत यादव, श्री राजीव कुमार

विपक्षी के अधिवक्ता :- शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 323, 363, 376-डी, ए, 506 और 392 - लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012. - धारा 5 (जी)/6 - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3 (2) (5) ए - उच्च न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह है कि सूचनाकर्ता 'एक्स' ने दिनांक 11.08.2023 के उस आदेश को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी, जिसके तहत अभियुक्त/आवेदकगण को जमानत दी गई थी, यह दावा करते हुए कि 'एक्स' को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया और उसे जमानत कार्यवाही में पक्षकार नहीं बनाया गया - सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त आदेश को अपास्त कर दिया और पाया कि दोनों संबंधित अधिनियमों के तहत अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया गया था - अभियुक्त-आवेदकगण के लिए जमानत मांगने के लिए वर्तमान दूसरी जमानत याचिकाएं दायर की गईं - गुण-दोष के अलावा, यह तर्क दिया गया कि सूचनाकर्ता 'एक्स' को व्यक्तिगत रूप से नोटिस दिया गया था। एक जमानत प्रकरण में वह अधिवक्ता के माध्यम से पेश नहीं हुईं, जबकि संबंधित जमानत प्रार्थना पत्र में उनके अधिवक्ता पेश हुए। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439(1ए) और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 15ए(3) के तहत वैधानिक प्रावधानों का उच्च न्यायालय द्वारा अनुपालन किया गया है, लेकिन पीड़िता ने सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष तथ्यों और दस्तावेजों को तोड़-मरोड़ कर पेश किया, गलत तरीके से प्रस्तुत किया और छुपाया तथा आदेश प्राप्त किया, जो न्यायालय की प्रक्रिया का घोर दुरुपयोग है और 'एक्स' के आचरण के कारण अभियुक्त/आवेदक जेल में सड़ रहे हैं। (प्रस्तर 21, 22, 26)

प्रार्थना पत्र स्वीकृत। (ई-13)

उद्धृत प्रकरणों की सूची:

1. अरुणिमा बरुआ बनाम भारत सरकार (2007) 6 एससीसी 120
2. प्रेस्टीज लाइट्स लिमिटेड बनाम एसबीआई (2007) 8 एससीसी 449
3. उद्यमी इवान खादी ग्रामोद्योग कल्याण संस्था और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2008)1 एससीसी 560
4. के.डी. शर्मा बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड एवं अन्य, (2008)12 एससीसी 481
5. दलीप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2010)2 एससीसी 114

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. गौतम चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

1. यह जमानत प्रार्थना पत्र इस न्यायालय के समक्ष दायर द्वितीय जमानत प्रार्थना पत्र हैं, जो आवेदक खर्गेश उर्फ गोलू को विशेष आपराधिक प्रकरण संख्या 214/2021 जो मुकदमा अपराध संख्या 599/2021 से उत्पन्न है, भारतीय दंड संहिता की धारा 323, 363, 376-डी, ए, 506, 392, लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम की धारा 5 (जी)/6 और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (2) (5) ए में जमानत पर रिहा करने के लिए दायर की गई हैं, तथा अभियुक्त-आवेदक करण को मुकदमा अपराध संख्या 599/2021, भारतीय दंड संहिता की धारा 323, 363, 376-डी, ए, 506, 392, 411, लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम की धारा 5 (जी)/6 और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (2) (5) ए पुलिस स्टेशन खोरा, जिला गाजियाबाद के अंतर्गत, जमानत पर रिहा किए जाने हेतु प्रस्तुत की गई है।

2. दिनांक 04.04.2025 के आदेश के माध्यम से, इस न्यायालय ने दोनों जमानत प्रार्थना पत्रों में मुकदमा अपराध के प्रथम सुचनाकर्ता को नोटिस जारी किया था।

3. दिनांक 01.05.2025 की कार्यालय रिपोर्ट से पता चलता है कि प्रथम सुचनाकर्ता को जारी किया गया नोटिस व्यक्तिगत रूप से तामील किया जा चुका है। जिसके अनुसार, विद्वान अधिवक्ता श्री सुशील कुमार का नाम वाद सूची में शामिल किया गया है, जो पुनः पुकार में भी इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुए।

4. हमने आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 4923/2025 में आवेदक खर्गेश उर्फ गोलू के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रशांत यादव और आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 6793/2025 में आवेदक करण के विद्वान अधिवक्ता श्री नरेंद्र कुमार पाठक तथा राज्य के विद्वान ए.जी.ए. श्री चंदन सिंह की दलीलें सुनीं और अभिलेख पर मौजूद सामग्री का अवलोकन किया।

5. आवेदकगण के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि इस न्यायालय ने दिनांक 11.08.2023 को आपराधिक प्रकीर्ण प्रथम जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 44142/2021 (खार्गेश @ गोलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य

और अन्य) तथा आपराधिक प्रकीर्ण प्रथम जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 43380/2021 (करण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित आदेश के माध्यम से अभियुक्त-आवेदकगण को जमानत प्रदान की है। उन्होंने आगे बताया कि इस न्यायालय के उपरोक्त आदेश के विरुद्ध, शिकायतकर्ता-'एक्स' ने सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर की और आपराधिक अपील संख्या 5385/2024 ('एक्स' बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) जो विशेष अनुमति याचिका (फौजदारी) संख्या 5027/2024 से संबंधित है, तथा आपराधिक अपील संख्या 5386/2024 ('एक्स' बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) जो विशेष अनुमति याचिका संख्या 5305/2024 से संबंधित है, क्रमशः दायर कीं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दोनों अपीलों की एक साथ सुनवाई की और दिनांक 13.12.2024 के आदेश द्वारा उन्हें स्वीकार करते हुए इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को अपास्त कर दिया तथा संबंधित प्रतिवादीगण (अपील में) अर्थात् वर्तमान आवेदकगण को 30.12.2024 को या उससे पहले विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करने का निर्देश दिया। जिसके बाद आवेदक विचारण न्यायालय के समक्ष पेश हुए, जो वर्तमान में जेल में बंद हैं।

6. आवेदकगण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष, 'एक्स' के अधिवक्ता ने यह तर्क दिया था कि क्या अपीलकर्ता ('एक्स') को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए था और क्या उसे संबंधित प्रतिवादीगण द्वारा उच्च न्यायालय में दायर जमानत कार्यवाही में पक्षकार बनाया जाना चाहिए था। इसके अलावा, यह तर्क दिया गया था कि 'एक्स' को इस न्यायालय के समक्ष जमानत कार्यवाही में पक्षकार-प्रतिवादी के रूप में शामिल नहीं किया गया है और संबंधित लोक अभियोजक ने पीड़ित ('एक्स') को उक्त कार्यवाही के बारे में सूचित नहीं किया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि अपील को स्वीकार करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 (1ए) और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 15 ए (3) में निहित वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन किया गया है और उच्च न्यायालय ने भी आक्षेपित आदेश में दोनों अधिनियमों की अनिवार्य आवश्यकता पर विचार नहीं किया है और संबंधित प्रतिवादीगण (वर्तमान प्रकरण में आवेदकगण) को बहुत ही लापरवाही और सतही तरीके से जमानत दे दी है और आक्षेपित आदेशों को रद्द कर दिया है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि इस न्यायालय की समवर्ती पीठ ने दिनांक 06.12.2021 के आदेश द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 44142/2021 में शिकायतकर्ता/सूचनादाता को नोटिस जारी किया था, जबकि आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 43380/2021 (करण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में दिनांक 15.11.2021 को पारित आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि श्री दीपक कुमार वर्मा और श्री सिया राम वर्मा, विद्वान अधिवक्ता, सूचनादाता 'एक्स' की ओर से उपस्थित हुए थे और उनके अनुरोध पर, प्रकरण को दिनांक 02.12.2021 को नए सिरे से सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया गया था। अतः यह तर्क दिया जाता है कि सूचनादाता ('एक्स') ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाया और दिनांक 13.12.2024 का आदेश प्राप्त किया। अतः यह तर्क दिया जाता है कि चूंकि सूचनादाता को नोटिस जारी किया गया था और उसकी ओर से विद्वान अधिवक्ता उपस्थित हुए थे, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि दिनांक 11.08.2023 के आदेश को पारित करते समय सूचनादाता की बात नहीं सुनी गई थी। अतः, तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अभियुक्त आवेदकगण को जमानत पर रिहा किया जा सकता है।

7. हालांकि विद्वान ए.जी.ए. ने आवेदकगण की ओर से दायर जमानत प्रार्थना पत्र का विरोध किया है, लेकिन वे आवेदकगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत दलीलों का खंडन नहीं कर सके।

8. अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि एक ही प्रकरण में चार अभियुक्तों ने अलग-अलग जमानत प्रार्थना पत्र दायर कर इस न्यायालय में जमानत मांगी थी। उनका विवरण इस प्रकार है:-

(I) आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 44142/2021 (खार्गेश उर्फ गोलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)

(II) आपराधिक प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र संख्या 43380/2021 (करण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)

(III) आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 44390/2021 (सुमित उर्फ लेफ्टी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)

(IV) आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 43514/2021 (सूरज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)

9. आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 44142/2021 (खार्गेश उर्फ गोलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में, इस न्यायालय की समवर्ती पीठ ने दिनांक 06.12.2021 के आदेश द्वारा शिकायतकर्ता को नोटिस जारी किया था, जिसका जवाब जल्द से जल्द देना था और प्रकरण की सुनवाई 20.12.2021 को नए सिरे से तय की गई थी। दिनांक 06.12.2021 का आदेश नीचे उद्धृत है:-

"शिकायतकर्ता को नोटिस जारी करें, जिसका जवाब जल्द से जल्द देना हो।

एक सप्ताह के भीतर आवश्यक कदम उठाए जाएं।

प्रकरण की सुनवाई 20.12.2021 को नए सिरे से सूचीबद्ध की जाए।"

10. अतः यह बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रकरण के प्रथम सूचनाकर्ता अर्थात् 'एक्स' को आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 44142/2021 (खार्गेश @ गोलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में नोटिस जारी किया गया था।

11. अभिलेख से यह भी पता चलता है कि आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 43380/2021 (करण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में भी सूचनाकर्ता को नोटिस जारी किया गया था और 15.11.2021 को इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने सूचनाकर्ता के अधिवक्ता के अनुरोध पर प्रकरण को 02.12.2021 के लिए नए सिरे से सूचीबद्ध किया था। दिनांक 02.11.2021 का आदेश नीचे उद्धृत है:-

"आवेदक के विद्वान अधिवक्ता, सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता उपस्थित हैं।

सूचनाकर्ता के अधिवक्ता के अनुरोध पर, प्रकरण को 02.12.2021 को नए सिरे से सूचीबद्ध किया जाए।"

12. आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 44390/2021 (सुमित उर्फ लेफ्टी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में, इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 14.12.2021 के आदेश द्वारा 'एक्स' सूचनाकर्ता को नोटिस जारी किया था। दिनांक 14.12.2021 का आदेश नीचे उद्धृत है:-

"गाजियाबाद के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के माध्यम से सूचनाकर्ता को नोटिस जारी किया जाए, जिसका जवाब जल्द से जल्द दिया जाए।

इस प्रकरण को 21.1.2022 को नए सिरे से सूचीबद्ध किया जाए। इस बीच, माननीय ए.जी.ए. प्रति-शपथ पत्र भी दाखिल कर सकते हैं।"

13. फिर, 21.01.2022 को आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 44390/2021 (सुमित उर्फ लेफ्टी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में एक आदेश पारित किया गया, जिसके द्वारा इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

"श्री ऋषि चड्ढा, विद्वान एजीए ने निर्देशों के आधार पर प्रस्तुत किया है कि पुलिस अधिकारियों ने आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 46998/2020 (जुनेद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों का पर्याप्त रूप से अनुपालन किया है, जो 2021 (6) ए.डी.जे. 511 में प्रकाशित है। ***जमानत प्रार्थना पत्र की सूचना पीड़ित को तामील कर दी गई है।*** *हालांकि, पुलिस प्राधिकरण द्वारा फॉर्म ए और फॉर्म बी नहीं भेजे गए हैं। गाजियाबाद जिले की सी.डब्ल्यू.सी. ने कोई निर्देश नहीं भेजे हैं। गाजियाबाद जिले की सी.डब्ल्यू.सी. ने जुनेद (उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों का अनुपालन नहीं किया है और न ही लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012, और लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण नियम, 2020 के सुरक्षात्मक प्रावधानों को लागू किया है। "*

विद्वान ए.जी.ए. ने प्रतिवादी हलफनामा दाखिल करने के लिए चार सप्ताह का समय मांगा और उन्हें यह समय दिया गया।

इस प्रकरण को 28.02.2022 को नए प्रकरणों की सूची में शामिल किया जाए।

14. आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 43514/2021 (सूरज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) के संबंध में, उस प्रकरण में भी दिनांक 28.10.2021 के आदेश के अनुसार प्रकरण के प्रथम सुचनाकर्ता को नोटिस जारी किया गया था, जो नीचे उद्धृत है:-

"सुनवाई की गई।

संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के माध्यम से सुचनाकर्ता को नोटिस जारी किया जाए।

प्रकरण को 23.11.2021 को नए प्रकरणों की सूची में सूचीबद्ध की जाए।"

15. दिनांक 11.04.2022 को आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 44390/2021 (सुमित उर्फ लेफ्टी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित आदेश के अनुसार, इस न्यायालय की समन्वय पीठ

ने उपरोक्त सभी चार जमानत प्रार्थना पत्रों, अर्थात् आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 43380/2021 (करण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य), आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 43514/2021 (सूरज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य), आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 44142/2021 (खर्गेश उर्फ गोलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) को आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 44390/2021 (सुमित उर्फ लेफ्टी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) के साथ जोड़ने का आदेश दिया था। दिनांक 11.04.2022 के आदेश का उद्धरण नीचे दिया गया है:-

"हमने आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री इमरान उल्लाह की ओर से पेश हुए अधिवक्ता श्री फैज़ अहमद और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. की दलीलें सुनी।"

प्रारंभ में ही विद्वान ए.जी.ए. ने प्रस्तुत किया कि सह-आभियुक्तों द्वारा दायर निम्नलिखित जमानत याचिकाएं पहले से ही इस न्यायालय के समक्ष लंबित हैं:

(i) आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 43380/2021, (करण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)

(ii) आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 43514/2021, (सूरज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)

(iii) आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 44142/2021, (खार्गेश उर्फ गोलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)

उपरोक्त के मद्देनजर, उपर्युक्त आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्रों को इस जमानत प्रार्थना पत्र के साथ जोड़ दिया जाए।

संबंधित प्रकरणों के साथ यह प्रकरण 25.4.2022 को नए सिरे से सुनवाई के लिए प्रस्तुत किया जाएगा।"

16. इस न्यायालय ने आपराधिक प्रकीर्ण प्रथम जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 44142/2021 (खार्गेश उर्फ गोलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) का अभिलेख तलब किया है। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद की दिनांक 17.12.2021 की रिपोर्ट से स्पष्ट है कि सूचनाकर्ता को जारी किया गया नोटिस व्यक्तिगत रूप से तामील कराया गया था।

17. आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 43380/2021 (करण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) के संबंध में, श्री दीपक कुमार वर्मा और श्री सिया राम वर्मा, विद्वान अधिवक्ता, ने सूचनाकर्ता को नोटिस तामील करने के बाद सूचनाकर्ता की ओर से उपस्थिति दर्ज कराई है।

18. आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 44390 सन् 2021 (सुमित @ लेफ्टी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में दिनांक 21.01.2022 के आदेश में यह देखा गया है कि जमानत प्रार्थना पत्र की सूचना पीड़ित को दी गई है।

19. आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 43514 सन् 2021 (सूरज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) के संबंध में, प्रकरण के प्रथम सुचनाकर्ता को दिनांक 28.10.2021 के आदेश द्वारा नोटिस भी जारी किया गया था।

20. सभी चार जमानत प्रार्थना पत्रों को 11.08.2023 को सूचीबद्ध किया गया था। आपराधिक प्रकीर्ण प्रथम जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 44142/2021 (खार्गेश @ गोलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य), आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 43380/2021 (करण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) और आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 44390/2021 (सुमित @ लेफ्टी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में सुचनाकर्ता को नोटिस तामील किया गया था, जैसा कि इस न्यायालय ने दिनांक 21.01.2022 के आदेश के माध्यम से कहा है कि जमानत प्रार्थना पत्र का नोटिस पीड़ित को तामील किया जा चुका है।

21. इस न्यायालय के समक्ष प्रकरण यह है कि सूचनाकर्ता 'एक्स' ने आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 44142/2021 (खार्गेश @ गोलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) और आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 43380/2021 (करण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में दिनांक 11.08.2023 को पारित आदेश के विरुद्ध माननीय सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर की थी, जिसके तहत अभियुक्त-आवेदकगण को जमानत पर रिहा कर दिया गया था। शिकायतकर्ता का आधार यह था कि 'एक्स' को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था और आवेदकगण द्वारा दायर जमानत कार्यवाही में उसे पक्षकार बनाया जाना चाहिए था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 11.08.2023 के आदेश को निरस्त करते हुए यह टिप्पणी की थी कि दोनों अधिनियमों की अनिवार्य आवश्यकता पूरी नहीं की गई है।

22. अब अभियुक्त-आवेदक खर्गेश उर्फ गोलू और करण को जमानत पर रिहा करने के लिए वर्तमान/दूसरी जमानत याचिकाएं इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई हैं। गुण-दोष के मुद्दों के अलावा, विद्वान अधिवक्ता ने यह आधार भी रखा है कि 'एक्स' को नोटिस व्यक्तिगत रूप से दिया गया था और वह खर्गेश उर्फ गोलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य की जमानत प्रार्थना पत्र में अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित नहीं हुई थी, जबकि संबंधित जमानत प्रार्थना पत्र करण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में उसके अधिवक्ता उसकी ओर से उपस्थित हुए थे।

23. जैसा कि पिछले प्रस्तर में पहले ही उल्लेख किया गया है, आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 44142/2021 (खार्गेश @ गोलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में 'एक्स' को जारी किया गया नोटिस व्यक्तिगत रूप से तामील किया गया था, जैसा कि संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 17.12.2021 को भेजी गई रिपोर्ट के अवलोकन से स्पष्ट है, जबकि आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 43380/2021 (करण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में सूचनाकर्ता को नोटिस तामील किए जाने के बाद, श्री दीपक कुमार वर्मा और श्री सिया राम वर्मा, विद्वान अधिवक्तागण ने सूचनाकर्ता की ओर से उपस्थिति दर्ज कराई। 'एक्स' केवल एक प्रकरण में अपने अधिवक्ता श्री दीपक कुमार वर्मा और श्री सिया राम वर्मा के माध्यम

से उपस्थित हुई, अर्थात् आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 43380/2021 (करण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में। जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 43380/2021 (करण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) और एक अन्य प्रकरण में, नोटिस की तामील होने के बावजूद उन्होंने पेशी की परवाह नहीं की।

24. जब 11.08.2023 को सूची के संशोधित पठन में प्रकरण की सुनवाई हुई, तो सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता उपस्थित नहीं हुए और दिनांक 11.08.2023 के आदेश द्वारा आवेदकगण सहित सभी चार आरोपियों को जमानत पर रिहा कर दिया गया। हालांकि, पीड़िता ने जमानत प्रार्थना पत्रों की सूचना प्राप्त होने के महत्वपूर्ण तथ्य को छुपाते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष यह आधार उठाया कि उसे सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया और उसने गलत बयानी के आधार पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय से आदेश प्राप्त किया है।

25. उपरोक्त तथ्य के अतिरिक्त, पीड़िता का यह दावा नहीं है कि उसे गाजियाबाद जिले के खोरा पुलिस स्टेशन के प्रकरण संख्या 599/2021 में अभियुक्त की ओर से दायर सभी जमानत प्रार्थना पत्रों की जानकारी नहीं थी, क्योंकि सभी चार जमानत प्रार्थना पत्रों को एक साथ मिलाकर सुनवाई की गई थी। यह उल्लेखनीय है कि यदि अभियुक्त व्यक्तियों (एक ही प्रकरण में) ने अलग-अलग जमानत प्रार्थना पत्र दायर किए हैं और यदि सभी जमानत प्रार्थना पत्रों को एक साथ जोड़कर एक ही दिन सुना जाता है, तो ऐसे प्रकरण में यदि सूचनाकर्ता का अधिवक्ता किसी एक प्रकरण में पेश होता है, तो यह माना जाता है कि वह सूचनाकर्ता की ओर से सभी प्रकरणों में पेश हो रहा है, चाहे उसे कोई निर्देश दिया गया हो या नहीं।

26. इस प्रकार, उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439(1ए) और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 15ए(3) में निहित वैधानिक प्रावधानों का इस न्यायालय द्वारा न केवल अक्षरशः अनुपालन किया गया है, बल्कि पीड़ित ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर पेश किया है, गलत तरीके से प्रस्तुत किया है और छुपाया है तथा दिनांक 13.12.2024 का आदेश प्राप्त किया है, जो न्यायालय की प्रक्रिया का घोर दुरुपयोग है और 'एक्स' के आचरण के कारण अभियुक्त आवेदक 02.01.2025 से जेल में सड़ रहे हैं।

27. आज जब अभियुक्त-अपीलकर्तागण की तत्काल दूसरी जमानत याचिका पर सुनवाई हुई, तो सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुशील कुमार सूची के संशोधित पठन में भी उपस्थित नहीं हुए, हालांकि दोनों जमानत प्रार्थना पत्रों में उनका नाम कॉज लिस्ट में दिखाया गया है।

28. यह सर्वविदित कानून है कि न्याय पाने के लिए न्यायालय में स्वच्छ हृदय और शुद्ध मन से आना चाहिए, और जो व्यक्ति स्वच्छ हृदय और शुद्ध मन से नहीं आता, वह न्यायालय से किसी भी प्रकार की राहत पाने का हकदार नहीं होता। उपरोक्त बातों से स्पष्ट है कि 'एक्स' ने अनुचित लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से सर्वोच्च न्यायालय का रुख किया है और उसने तथ्यों को छिपाया है। इस प्रकार की प्रथा को हमेशा

हतोत्साहित किया जाना चाहिए और इसकी कड़ी निंदा की जाती है। ये लोग न्याय को दूषित करने का प्रयास तो करते हैं, लेकिन उसमें सफल भी होते हैं।

29. **अरुणिमा बरुआ बनाम भारत संघ (2007)6 एससीसी 120** में सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह सर्वविदित कानून है कि न्यायालय को अपने विवेकाधीन अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इनकार करने के लिए महत्वपूर्ण तथ्यों का छिपाव आवश्यक है। महत्वपूर्ण तथ्य का अर्थ है विवाद के निर्धारण के लिए आवश्यक तथ्य। आगे यह भी कहा गया कि न्यायालय के विवेकाधीन अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाले व्यक्ति को गलत इरादे से न्यायालय में आने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

30. **प्रेस्टीज लाइट्स लिमिटेड बनाम स्टेट बैंक ऑफ इंडिया (2007) 8 एससीसी 449** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:

"...यदि आवेदक पूर्ण तथ्य प्रकट नहीं करता है या प्रासंगिक सामग्री छुपाता है या अन्यथा न्यायालय को गुमराह करने का दोषी है, तो न्यायालय प्रकरण का निर्णय किए बिना ही मुकदमे को खारिज कर सकता है। यह नियम व्यापक जनहित में बनाया गया है ताकि बेईमान वादियों को न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने और उसे धोखा देने से रोका जा सके।..."

31. **उद्यमी इवान खादी ग्रामोद्योग कल्याण संस्था और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2008)1 एससीसी 560** में निम्नलिखित टिप्पणी की गई है:

"...उच्च न्यायालय में अपील करने वाले किसी भी व्यक्ति को निष्पक्ष होना चाहिए। उसे न तो कोई महत्वपूर्ण तथ्य छुपाना चाहिए और न ही बार-बार कानूनी कार्यवाही का सहारा लेना चाहिए, जो विधि का दुरुपयोग है।

उपरोक्त कारणों से, इस अपील में कोई दम नहीं है और इसे तदनुसार खर्च सहित खारिज किया जाता है। अधिवक्ता की फीस 50,000 रुपये निर्धारित की गई है।"

32. **के.डी. शर्मा बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड और अन्य (2008)12 एससीसी481** में सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि कोई भी वादी न्यायालयों के साथ "लुका-छिपी" नहीं खेल सकता या "मनमानी" नहीं कर सकता। न्यायालय की याचिका दायर करने के लिए व्यक्ति को स्पष्ट तथ्यों और सच्चाई के साथ उपस्थित होना चाहिए। महत्वपूर्ण तथ्यों को छुपाना या छिपाना वादी के लिए निषिद्ध है, यहाँ तक कि वकालत की तकनीक के रूप में भी नहीं। ऐसे प्रकरणों में न्यायालय नियम निसी का पालन करने के लिए बाध्य है और ऐसे आवेदक पर न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के लिए अवमानना का दंड लगाया जाना आवश्यक है।

दलीप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2010)2 एससीसी 114 प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने बेईमान याचिकाकर्ताओं पर कड़ी फटकार लगाते हुए कहा कि यह अब सर्वविदित है कि जो याचिकाकर्ता न्याय

की धारा को दूषित करने का प्रयास करता है या जो न्याय के पवित्र स्रोत को दूषित हाथों से स्पर्श करता है, वह किसी भी प्रकार की राहत, चाहे अंतरिम हो या अंतिम, का हकदार नहीं है।

33. प्रकरण के तथ्यात्मक पहलुओं और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विचार करने के बाद, मेरा यह सुविचारित मत है कि सूचनाकर्ता "एक्स" ने महत्वपूर्ण तथ्यों और दस्तावेजों को छुपाकर और न्यायालय को गुमराह करके विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया है। न्यायालय में आने के लिए ईमानदारी, निष्पक्षता और मानसिक शुद्धता सर्वोपरि होनी चाहिए; ऐसा न होने पर याचिकाकर्ता को यथाशीघ्र न्यायालय से बाहर कर दिया जाना चाहिए।

34. उपरोक्त चर्चा के आलोक में यह स्पष्ट है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय का दिनांक 13.12.2024 का आदेश गुप्त रूप से और भ्रामक जानकारी के आधार पर प्राप्त किया गया है। तदनुसार, आवेदकगण को जमानत का हकदार पाया जाता है।

35. विशेष आपराधिक मुकदमा संख्या 214/2021 में, जो मुकदमा अपराध संख्या 599/2021 से संबंधित है, धारा 323, 363, 376-डी, ए, 506, 392 भारतीय दंड संहिता, धारा 5 (जी)/6 लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012. और धारा 3 (2) (5) ए के तहत, आवेदक **खर्गेश उर्फ गोलू** को जमानत पर रिहा किया जाए, और मुकदमा अपराध संख्या 599/2021 में, धारा 323, 363, 376-डी, ए, 506, 392, 411 भारतीय दंड संहिता के तहत, अभियुक्त-आवेदक करण को जमानत पर रिहा किया जाए। लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012. की धारा 5 (जी)/6 और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (2) (5) ए के तहत अभियुक्तों को संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के अनुसार समान राशि के निजी मुचलके और दो स्थानीय जमानती प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्तों के अधीन जमानत पर रिहा किया जाए:-

i) अभियुक्त अभियोजन साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेंगे।

ii) अभियुक्त अभियोजन गवाहों को धमकाएंगे या परेशान नहीं करेंगे।

iii) अभियुक्त विचारण न्यायालय द्वारा निर्धारित तिथि पर उपस्थित होंगे।

iv) अभियुक्त उस अपराध के समान कोई अपराध नहीं करेंगे जिसके लिए उन पर आरोप लगाया गया है या जिसके किए जाने का संदेह है।

v) अभियुक्त प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रकरण के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेंगे जिससे वह व्यक्ति न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष तथ्यों का खुलासा करने से हिचक जाए या साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करे।

36. उपरोक्त किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में, विचारण न्यायालय कानून के अनुसार आवेदक की जमानत रद्द करने के लिए स्वतंत्र होगी।

37. जमानत प्रार्थना पत्र स्वीकार किए जाते हैं।

38. प्रकरण को समाप्त करने से पहले, न्यायालय सूचनाकर्ता 'एक्स' के आचरण का गंभीर संज्ञान लेता है, जिसने न केवल न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया है, बल्कि अनुचित लाभ प्राप्त करने और अपनी पसंद का आदेश पाने के लिए देश के सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष भी तथ्यों को गुमराह करने या गलत तरीके से प्रस्तुत करने से भी नहीं हिचकी है। उक्त आचरण के लिए, शिकायतकर्ता पर 10,000 रुपये का जुर्माना लगाया जाता है, जिसे उसे इस आदेश की तिथि से दो महीने के भीतर उच्च न्यायालय विधि सेवा समिति के समक्ष जमा करना होगा। ऐसा करने में विफल रहने पर, गाजियाबाद के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को निर्देश दिया जाता है कि वे प्रथम सूचनाकर्ता से भू-राजस्व के बकाया के रूप में जुर्माने की राशि वसूल करें।

39. गाजियाबाद के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को निर्देश दिया जाता है कि वे यथाशीघ्र अपनी अनुपालन रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

40. इस आदेश की एक प्रति गाजियाबाद के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को अनुपालन हेतु और प्रथम सुचनाकर्ता को इस न्यायालय के रजिस्ट्रार अनुपालन के माध्यम से भेजी जाए।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 770

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: 16.05.2025, लखनऊ

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी,

के समक्ष

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 12043 सन् 2024

अर्जुन उर्फ गोलू **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **...विपक्षीगण**

आवेदक के अधिवक्ता :- ज्ञान सिंह, अवधेश कुमार पाल

विपक्षी के अधिवक्ता:- शासकीय अधिवक्ता, दुर्गेश मिश्रा, सौम्या सिंह

ए. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 363, 366, 376(3) - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 439 - लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012- धारा 5जे(2), 5एल और 6 - किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 - धारा 3(iv) - आवेदक एक 13 वर्षीय लड़की के साथ भाग गया था - पीड़िता ने धारा 161, 164 के तहत अपने बयानों में और अपनी चिकित्सा जांच के दौरान कहा कि वह स्वेच्छा से आवेदक के साथ गई थी, उससे शादी की थी और सहमति से शारीरिक संबंध बनाए थे जिसके परिणामस्वरूप गर्भावस्था हुई - बल प्रयोग या चोट के कोई निशान नहीं पाए गए - आवेदक ने स्कूल रिकॉर्ड के आधार पर किशोरता की घोषणा की मांग की थी, लेकिन विचारण न्यायालय ने प्रार्थना पत्र पर निर्णय नहीं लिया और आवेदक नियमित जेल में ही रहा - अदालत ने इस चूक और विचारण न्यायालय द्वारा आवेदक की शिकायत को पहचानने और उस पर कार्रवाई करने में विफलता पर गंभीर चिंता व्यक्त की। किशोर स्थिति- न्यायालय ने जमानत मंजूर की, विचारण न्यायालय को किशोर स्थिति प्रार्थना पत्र पर शीघ्र निर्णय लेने का निर्देश दिया- (प्रस्तर 1 से 25)

प्रार्थना पत्र स्वीकार किया जाता है। (ई-6)

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी, द्वारा प्रदत्त)

1. सूचनाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री दुर्गेश मिश्रा ने अपनी बीमारी का हवाला देते हुए प्रकरण को स्थगित करने हेतु एक पर्ची भेजी है।

2. प्रकरण की सूची में सूचनाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता के रूप में सुश्री सौम्या सिंह का नाम दर्ज है, लेकिन न तो वे न्यायालय में उपस्थित हैं और न ही उनकी ओर से प्रकरण को स्थगित करने का कोई अनुरोध किया गया है। सूचनाकर्ता या पीड़ित को जमानत प्रार्थना पत्र का विरोध करने का अधिकार है, लेकिन उन्हें जमानत प्रार्थना पत्र की सुनवाई को स्थगित करने का अधिकार नहीं है, विशेष रूप से तब जब शासकीय अधिवक्ता जमानत प्रार्थना पत्र का विरोध करने के लिए उपस्थित हों और विशेष रूप से तब जब आवेदक नाबालिग हो। अतः जमानत प्रार्थना पत्र को स्थगित करने का अनुरोध अस्वीकार किया जाता है।

3. हमने आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता डॉ. ज्ञान सिंह और राज्य की ओर से विद्वान एजीए श्री सत्येंद्र श्रीवास्तव की बात सुनी और अभिलेखों का अवलोकन किया।

4. यह प्रार्थना पत्र मुकदमा अपराध संख्या 52/2024, आईपीसी की धारा 363, 366, 376(3) और लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 5जे(2), 5-एल, 6 के तहत पुलिस स्टेशन आसूपुर देवसरा, जिला प्रतापगढ़ में आवेदक को जमानत पर रिहा करने की मांग करते हुए दायर किया गया है।

5. उपर्युक्त प्रकरण आवेदक, उसकी फूफी और बुआ के खिलाफ 06.03.2024 को दर्ज की गई एफ.आई.आर. के आधार पर पंजीकृत किया गया है, जिसमें कहा गया है कि आवेदक ने 04/05 मार्च, 2024 की रात को सूचनाकर्ता की 13 वर्षीय बेटी को बहला-फुसलाकर अगवा कर लिया था।

6. धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज पीड़िता के बयान में, उसने कहा कि वह आवेदक से प्यार करती है और उससे शादी करना चाहती है। उनके बीच पति-पत्नी जैसे संबंध हैं और वह गर्भवती हो गई है।

7. चिकित्सा-कानूनी जांच के दौरान, पीड़िता ने डॉक्टर के सामने बताया कि उसकी शादी आवेदक से हुई है। चिकित्सा-कानूनी जांच रिपोर्ट में चोट का कोई निशान या बल प्रयोग का कोई संकेत नहीं मिला। मूत्र गर्भावस्था परीक्षण सकारात्मक पाया गया और अल्ट्रासाउंड में एक गर्भाशय दिखाई दिया।

8. धारा 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज पीड़िता के बयान में उसने कहा कि वह अपनी मर्जी से घर से निकली थी, मुंबई गई जहां उसने आवेदक को बुलाया, मंदिर में उससे शादी की और उसके साथ रहने लगी। उसने आगे कहा कि दोनों पक्षों की सहमति से उसके साथ शारीरिक संबंध बने थे और वह दो महीने की गर्भवती थी।

9. जमानत प्रार्थना पत्र के समर्थन में दायर हलफनामे में कहा गया है कि आवेदक 16 वर्षीय लड़का है जिसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और उसे इस प्रकरण में झूठा फंसाया गया है। इसमें आगे कहा गया

है कि 8 अप्रैल 2024 को विचारण न्यायालय में आवेदक को नाबालिग घोषित करने के लिए एक प्रार्थना पत्र दायर किया गया था, जिसमें शैक्षणिक दस्तावेजों के अनुसार आवेदक की जन्मतिथि 18 अप्रैल 2008 बताई गई थी और वह नाबालिग है, लेकिन इस प्रार्थना पत्र पर अभी तक कोई निर्णय नहीं लिया गया है।

10. उपरोक्त तथ्यों और प्रकरण की परिस्थितियों पर विचार करने और पीड़िता के लगातार दिए गए बयानों को ध्यान में रखते हुए, जिसमें उसने आवेदक के खिलाफ कोई आरोप नहीं लगाया है, साथ ही इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आवेदक 16 वर्ष का एक युवक है, मेरा मानना है कि आवेदक अपने पिता द्वारा एक जमानती पेश करने पर उपरोक्त अपराध में जमानत पर रिहा होने का हकदार है।

11. तदनुसार, यह जमानत प्रार्थना पत्र **स्वीकार** की जाती है।

12. आवेदक ***अर्जुन उर्फ गोलू*** को उपरोक्त प्रकरण में अपने पिता श्री विमलेश उर्फ बबलू से व्यक्तिगत मुचलका प्रस्तुत करने पर जमानत पर रिहा किया जाए, जिसमें वह यह सुनिश्चित करेगा कि आवेदक की उचित देखभाल की जाएगी और आवेदक उपरोक्त प्रकरण में कानून की प्रक्रिया से बचने का प्रयास नहीं करेगा।

13. प्रकरण को समाप्त करने से पहले, न्यायालय यह उल्लेख करने के लिए बाध्य है कि आवेदक के विवरण में उसकी आयु 16 वर्ष बताई गई है, जिसके अनुसार वह किशोर न्याय (बालको की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 (जिसे आगे 'किशोर न्याय अधिनियम' कहा जाएगा) में दी गई परिभाषा के अनुसार एक बच्चा है। हालांकि, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य को न्यायालय के समक्ष नहीं लाया। यह जमानत प्रार्थना पत्र 16.11.2024 को दायर की गई थी और 19.11.2024 को इस प्रकरण में निम्नलिखित आदेश पारित किया गया था: -

"1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री ज्ञान सिंह और राज्य के विद्वान एजीए श्री आनंद प्रताप सिंह की बात सुनी गई।

2. विद्वान एजीए ने सूचित किया है कि विपक्षी संख्या 2 को 11.11.2024 को नोटिस तामील कराया जा चुका है, हालांकि कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है।

3. प्रत्युत्तर शपथपत्र /आपत्ति दो सप्ताह के भीतर दाखिल की जाए।

4. प्रकरण को 9.12.2024 से शुरू होने वाले सप्ताह में शीर्ष दस प्रकरणों में सूचीबद्ध किया जाए।"

14. जाहिर तौर पर आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने यह बात प्रस्तुत नहीं की कि आवेदक स्वयं को नाबालिग बता रहा है और न्यायालय ने प्रत्युत्तर शपथपत्र मांगा। राज्य ने 30.11.2024 को प्रत्युत्तर शपथपत्र

दाखिल किया है और उसमें भी इस पहलू का उल्लेख नहीं किया गया है। आज भी, संबंधित पक्षों की ओर से उपस्थित किसी भी विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय को यह नहीं बताया कि प्रार्थना पत्र में उल्लिखित आवेदक की आयु 16 वर्ष है और वह कानून के अनुसार बच्चा है। आदेश सुनाते समय ही न्यायालय ने स्वयं प्रार्थना पत्र में उल्लिखित आवेदक की आयु का पता लगाया।

15. यदि 16 वर्ष की आयु के किसी बच्चे को हिरासत में लिया गया है और वह अन्य विचाराधीन अभियुक्तों और दोषियों के साथ नियमित जेल में सड़ रहा है, तो यह वास्तव में एक बहुत ही चिंताजनक तथ्य है।

16. किशोर न्याय अधिनियम लगभग एक दशक पहले, अन्य बातों के अलावा, बच्चों के सर्वोत्तम हित में प्रकरणों के न्यायनिर्णय और निस्तारण में बाल-हितैषी दृष्टिकोण अपनाने के उद्देश्य से अधिनियमित किया गया था। किशोर न्याय अधिनियम की धारा 2(12) में प्रावधान है कि "बच्चा" से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जिसने अठारह वर्ष की आयु पूर्ण नहीं की है। धारा 2(13) में प्रावधान है कि "कानून से संघर्षरत बच्चा" से तात्पर्य उस बच्चे से है जिस पर अपराध करने का आरोप है या जिसने अपराध किया है और जिसने ऐसे अपराध के घटित होने की तिथि पर अठारह वर्ष की आयु पूर्ण नहीं की है। अधिनियम की धारा 2(15) में प्रावधान है कि "बाल-हितैषी" से तात्पर्य किसी भी ऐसे व्यवहार, आचरण, प्रथा, प्रक्रिया, दृष्टिकोण, वातावरण या व्यवहार से है जो मानवीय, विचारशील और बच्चे के सर्वोत्तम हित में हो।

17. किशोर न्याय अधिनियम की धारा 9 पर विचार करने की आवश्यकता है, जिसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

*"**9. ऐसे मजिस्ट्रेट द्वारा अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया जिसे इस अधिनियम के अधीन सशक्त नहीं किया गया है–***

(1) जब किसी मजिस्ट्रेट को जो इस अधिनियम के अधीन बोर्ड की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सशक्त नहीं है, यह राय हो कि वह व्यक्ति, जिसके बारे में यह अभिकथन किया गया है कि उसने अपराध किया है, और उसके समक्ष लाया गया है, कोई बालक है, तो वह ऐसी राय को अभिलेखबद्ध करेगा और उस बालक को तत्काल ऐसी कार्यवाही के अभिलेख के साथ कार्यवाहियों पर अधिकारिता रखने वाले बोर्ड को भेजेगा।

(2) यदि वह व्यक्ति, जिसके बारे में यह अभिकथन किया गया है कि उसने अपराध किया है, बोर्ड से भिन्न किसी न्यायालय के समक्ष यह दावा करता है कि वह व्यक्ति बालक है या अपराध के किए जाने की तारीख को बालक था, या यदि न्यायालय की स्वयं यह राय हो कि वह व्यक्ति अपराध के किए जाने की तारीख को बालक था, तो उक्त न्यायालय उस व्यक्ति की आयु की अवधारणा करने के लिए ऐसी जांच करेगा, ऐसा

साक्ष्य लेगा जो आवश्यक हो (किन्तु शपथपत्र नहीं) और उस व्यक्ति की यथासंभव निकटतम आयु का कथन करते हुए मामले के निष्कर्ष अभिलेखित करेगा:

परन्तु ऐसा कोई दावा किसी न्यायालय के समक्ष किया जा सकेगा और उसको किसी भी प्रक्रम पर, मामले का अंतिम निपटारा हो जाने के पश्चात् भी, स्वीकार किया जाएगा और उस दावे का अवधारण इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार किया जाएगा, भले ही वह व्यक्ति इस अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख को या उससे पूर्व बालक न रह गया हो।

(3) यदि न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि किसी व्यक्ति ने अपराध किया है और वह ऐसे अपराध के किए जाने की तारीख को बालक था, तो वह उस बालक को बोर्ड के पास, समुचित आदेश पारित करने के लिए भेजेगा और न्यायालय द्वारा पारित दण्डादेश, यदि कोई हो, के बारे में यह समझा जाएगा कि उसका कोई प्रभाव नहीं है।

(4) यदि इस धारा के अधीन किसी व्यक्ति को, जब उस व्यक्ति के बालक होने के दावे की जांच की जा रही है, संरक्षात्मक अभिरक्षा में रखा जाना अपेक्षित है, तो उस व्यक्ति को उस अंतरिम अवधि में सुरक्षित स्थान में रखा जा सकेगा।

(जोर दिया गया)

18. किशोर न्याय अधिनियम का अध्याय IV विधि का उल्लंघन करने वाले बालकों के संबंध में प्रक्रिया निर्धारित करता है और इस अध्याय में आने वाली अधिनियम की धारा 10, 11 और 12 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

***<u>10. विधि का उल्लंघन करने वाले अभिकथित बालक की गिरफ्तारी</u>**– (1) जैसे ही विधि का उल्लंघन करने वाले अभिकथित बालक को पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया जाता है तभी ऐसे बालक को विशेष किशोर पुलिस एकक या अभिहित बाल कल्याण पुलिस अधिकारी के प्रभार के अधीन रखा जाएगा। जो बालक अविलंब, किन्तु उस स्थान से, जहाँ से ऐसे बालक की गिरफ्तारी हुई थी, यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर गिरफ्तारी के चौबीस घंटे के भीतर बोर्ड के समक्ष पेश करेगा :*

परन्तु किसी भी दशा में विधि का उल्लंघन करने वाले अभिकथित बालक को, पुलिस हवालात में नहीं रखा जाएगा या जेल में नहीं डाला जाएगा।

(2) राज्य सरकार, इस अधिनियम के अनुरूप नियम बनाएगी –

(i) उन व्यक्तियों के लिए उपबंध करने के लिए जिनके द्वारा (जिसके अंतर्गत रजिस्ट्रीकृत स्वैच्छिक या गैर-सरकारी संगठन भी है) विधि का उल्लंघन करने वाले अभिकथित किसी बालक को बोर्ड के समक्ष पेश किया जा सकेगा;

(ii) उस रीति का उपबंध करने के लिए जिससे विधि का उल्लंघन करने वाले अभिकथित बालक को, यथास्थिति, किसी संप्रेक्षण गृह या सुरक्षित स्थान में भेजा जा सकेगा,

<u>11. ऐसे व्यक्ति की भूमिका, जिसके प्रभार में विधि का उल्लंघन करने वाला बालक रखा गया है</u>– ऐसे व्यक्ति की, जिसके प्रभार में विधि का उल्लंघन करने वाले बालक को रखा जाता है, जब आदेश प्रवर्तन में हो, उस बालक की जिम्मेदारी इस प्रकार होगी मानो वह व्यक्ति बालक का माता-पिता था और बालक के संरक्षण-पोषण के लिए उत्तरदायी था :

परन्तु तब के सिवाय, जब बोर्ड की यह राय है कि माता-पिता या कोई अन्य व्यक्ति ऐसे बालक का प्रभार लेने के लिए योग्य है, इस बात के होते हुए भी कि उक्त बालक का माता-पिता या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दावा किया गया है, बालक बोर्ड द्वारा कथित अवधि के लिए ऐसे व्यक्ति के प्रभार में बना रहेगा।

<u>12. ऐसे व्यक्ति की जमानत जो दृश्यमान रूप से विधि का उल्लंघन करने वाला अभिकथित बालक है</u>– (1) जब कोई ऐसा व्यक्ति, जो दृश्यमान रूप से एक बालक है और जिसके विरुद्ध किसी जमानतीय या अजमानतीय अपराध किया है, पुलिस द्वारा गिरफ्तार या निरुद्ध किया जाता है या बोर्ड के समक्ष उपसंजात होता है या लाया जाता है, तो, दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, ऐसे व्यक्ति को प्रतिभू सहित या रहित जमानत पर छोड़ दिया जाएगा या उसे किसी परिवीक्षा अधिकारी के पर्यवेक्षणाधीन या किसी उपयुक्त व्यक्ति की देखरेख के अधीन रखा जाएगा :

परन्तु ऐसे व्यक्ति को तब इस प्रकार छोड़ा नहीं जाएगा जब यह विश्वास करने के युक्तियुक्त आधार प्रतीत होते हैं कि उस व्यक्ति को छोड़ देने से यह संभावना है कि उसका संगति किसी ज्ञात अपराधी से होगा या उक्त व्यक्ति नैतिक, शारीरिक या मनोवैज्ञानिक रूप से खतरे में पड़ जाएगा या उस व्यक्ति को छोड़ देने से न्याय का उद्देश्य विफल हो जाएगा, और बोर्ड जमानत देने से इंकार करने के कारणों को और ऐसा विनिश्चय लेने से संबंधित परिस्थितियों को अभिलेखित करेगा।

(2) जब गिरफ्तार किया जाने वाला ऐसे व्यक्ति को पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा उपधारा (1) के अधीन जमानत पर नहीं छोड़ा जाता है तब ऐसे अधिकारी उस व्यक्ति को ऐसी रीति से, जो विहित की जाए, यथास्थिति, संप्रेक्षण गृह या सुरक्षित स्थान में स्थानांतरित किए जाने के तत्काल उपाय करना में केवल तब तक के लिए रखवाएगा जब तक ऐसे व्यक्ति को बोर्ड के समक्ष न लाया जा सके।

(3) जब ऐसा व्यक्ति, बोर्ड द्वारा जमानत पर नहीं छोड़ा जाता है तब वह ऐसे व्यक्ति के बारे में जाँच के लंबित रहने के दौरान ऐसी कलावधि के लिए जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाए, उसे यथास्थिति, संप्रेक्षण गृह या किसी सुरक्षित स्थान में भेजने के लिए आदेश करेगा।

(4) जब विधि का उल्लंघन करने वाला कोई बालक, जमानत के आदेश के सात दिन के भीतर जमानत की शर्तों को पूरा करने में असमर्थ होता है तो ऐसे बालक को जमानत की शर्तों के उपांन्तरण के लिए बोर्ड के समक्ष पेश किया जाएगा।

(जोर दिया गया)

19. किशोर न्याय अधिनियम में निहित वैधानिक प्रावधान का सरसरी तौर पर अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि विधायिका का इरादा यह है कि विधि का उल्लंघन करने वाले बच्चे को एक सामान्य वयस्क आरोपी व्यक्ति की तरह नहीं माना जाएगा और उसके बेहतर भविष्य और कल्याण को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से उसके साथ कहीं अधिक संवेदनशीलता से व्यवहार किया जाएगा।

20. अधिनियम की धारा 9(2) के अनुसार, यदि न्यायालय की राय है कि अपराध के घटित होने की तिथि पर व्यक्ति बच्चा था, तो न्यायालय उसकी आयु निर्धारित करने के लिए जांच करेगा। जब स्वयं अभियुक्त ने 8 अप्रैल 2024 को एक प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया जिसमें उसने कहा कि उसकी जन्मतिथि 18 अप्रैल 2008 है और अपराध के घटित होने की तिथि अर्थात् 5 मार्च 2024 को उसकी आयु 15 वर्ष 10 महीने और 16 दिन थी, और वह अभी भी बच्चा है, तो विचारण न्यायालय को इस प्रार्थना पत्र पर सर्वप्रथम शीघ्रता से निर्णय लेना चाहिए था और आवेदक को वयस्क विचाराधीन अभियुक्तों और दोषियों के साथ जेल में सड़ने के लिए मजबूर नहीं किया जाना चाहिए था। 8 अप्रैल 2024 को आवेदक द्वारा उसे विधि से संघर्षरत किशोर घोषित करने हेतु दिए गए प्रार्थना पत्र पर विचारण न्यायालय द्वारा निर्णय न लेने के कारण आवेदक को एक वर्ष से अधिक समय तक विचाराधीन वयस्क अभियुक्तों और दोषियों के साथ जेल में रहना पड़ा है। यदि विचारण न्यायालय अंततः इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि आवेदक कानून के विरुद्ध संघर्षरत किशोर है, तो विचाराधीन आरोपियों और दोषियों के साथ एक वर्ष से अधिक समय तक नियमित जेल में रहने के कारण आवेदक को हुई क्षति की भरपाई किसी भी प्रकार से नहीं की जा सकती।

21. किशोर न्याय अधिनियम की धारा 11 में यह प्रावधान है कि जिस व्यक्ति के संरक्षण में विधि का उल्लंघन करने वाले किसी बच्चे को रखा जाता है, वह आदेश लागू रहने तक उस बच्चे का अभिभावक और भरण-पोषण का उत्तरदायी होगा। जब आवेदक को जेल में रखा गया था, तब जेल अधिकारियों का यह कर्तव्य था कि वे उसके अभिभावकों के समान उसके हितों का ध्यान रखें और यह सुनिश्चित करने के लिए उचित कदम उठाएं कि किशोर न्याय अधिनियम के प्रावधानों का लाभ आवेदक को मिले।

22. किसी भी स्थिति में, जब यह प्रकरण पहली बार 19.11.2024 को इस न्यायालय की समन्वय पीठ के समक्ष रखा गया था, तब आवेदक के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान ए.जी.ए. का यह कर्तव्य था कि वे इस तथ्य को इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करें कि जमानत प्रार्थना पत्र के साथ संलग्न शैक्षिक प्रमाण पत्र के अनुसार आवेदक एक बच्चा है, लेकिन वे इस कर्तव्य को निभाने में विफल रहे। आज तक किसी भी विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं दिलाया है। यदि न्यायालय ने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं

से उचित सहायता न मिलने के कारण इस बिंदु को नजरअंदाज कर दिया होता, तो आवेदक को कानूनों के तहत उपलब्ध सुरक्षा से वंचित रहना पड़ता।

23. यद्यपि यह सत्य है कि न्यायालय न्याय प्रदान करने की शपथ के अधीन है, यह भी उतना ही सत्य है कि विद्वान अधिवक्ता, जो न्यायालय के उत्तरदायी अधिकारी हैं, न्याय प्रदान करने में न्यायालय की उचित सहायता करने के लिए भी बाध्य हैं। यद्यपि उचित सहायता का अभाव किसी अन्यायपूर्ण आदेश का बहाना नहीं हो सकता, परन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि यदि इस न्यायालय ने अभिलेख में उपलब्ध उपरोक्त सामग्री को अनदेखा कर दिया होता, जिसे प्रकरण में उपस्थित किसी भी विद्वान अधिवक्ता ने इंगित नहीं किया था, तो बच्चे के साथ हो रहा अन्याय जारी रहता।

24. यह निर्देश दिया जाता है कि विशेष न्यायाधीश, लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण न्यायालय, प्रतापगढ़, **मुकदमा** अपराध संख्या 52/2024 से संबंधित प्रकरण संख्या 2083/2024 में दिनांक 08.04.2024 को दायर प्रार्थना पत्र पर, जिसमें आईपीसी की धारा 363, 366, 376(3) और लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम की धारा 5J(2) 5L(6) के तहत आवेदक को किशोर घोषित करने का अनुरोध किया गया है, किसी भी पक्ष को अनावश्यक स्थगन दिए बिना शीघ्रता से निर्णय लें और यदि आवेदक किशोर पाया जाता है, तो उसके साथ किशोर न्याय देखभाल एवं संरक्षण अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार व्यवहार किया जाए।

25. रजिस्ट्रार जनरल को निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश की एक प्रति राज्य के सभी न्यायिक अधिकारियों को सभी जिलों के जिला न्यायाधीशों के माध्यम से प्रसारित करें, ताकि न्यायिक अधिकारियों को उन आपराधिक प्रकरणों से निपटने में अधिक सतर्क रहने के लिए जागरूक किया जा सके जहां अभियुक्त किशोर प्रतीत होता है या वह किशोर होने का दावा करता है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 775

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: 09.05.2025 इलाहाबाद

माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह,

माननीय न्यायमूर्ति संदीप जैन,

के समक्ष

आपराधिक अपील संख्या 12 सन् 2003

संजय सिंह **...अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **... विपक्षी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता :- श्री बी.एन. राय, श्री आदर्श कुमार, श्री धर्मेंद्र कुमार सिंह, सुश्री विजय लक्ष्मी

विपक्षी के अधिवक्ता :- शासकीय अधिवक्ता

अनुवादित

भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376 - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3(2)(v) - बलात्कार और जाति आधारित अपराध - अपीलकर्ता ने भारतीय दंड संहिता की धारा 376 और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3(2)(v) के तहत नाबालिग अनुसूचित जाति की लड़की से बलात्कार के लिए दोषी ठहराए जाने को चुनौती दी, जिसमें उसे क्रमशः 10 वर्ष के कठोर कारावास और 5,000 रुपये का जुर्माना तथा आजीवन कारावास और 5,000 रुपये का जुर्माना सुनाया गया था। अभियोजन पक्ष ने पीड़िता के बयान पर भरोसा किया, जिसकी पुष्टि सूचनाकर्ता (पिता) ने की, जिसमें अरहर के खेत में जबरन बलात्कार का आरोप लगाया गया था। अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि पीड़िता बालिग थी, उसने सहमति दी थी और जाति आधारित कोई मकसद मौजूद नहीं था, उसने चोटों की अनुपस्थिति और नियमित यौन संबंध के चिकित्सीय निष्कर्षों का हवाला दिया। न्यायालय ने पीड़िता की गवाही को, जो त्वरित एफआईआर और सूचनाकर्ता के बयान से समर्थित थी, विश्वसनीय माना और यह भी माना कि चोटों या शुक्राणुओं की अनुपस्थिति बलात्कार को नकारती नहीं है, जैसा कि *राजस्थान राज्य बनाम नूर खान* और *पृथ्वीचंद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य* के प्रकरण में कहा गया है। स्कूल अभिलेख के माध्यम से पीड़िता की उम्र 14 वर्ष 6 महीने होने की पुष्टि हुई, जिससे सहमति का खंडन होता है, जैसा कि *उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मनोज कुमार पांडे* के प्रकरण में कहा गया है। हालांकि, ऐसा कोई सबूत नहीं मिला जिससे यह साबित हो कि बलात्कार पीड़िता की अनुसूचित जाति स्थिति के कारण हुआ था, जिससे धारा 3(2)(v) लागू नहीं होती है, जैसा कि *दिनेश @ बुद्धा बनाम राजस्थान राज्य* के प्रकरण में कहा गया है। धारा 376 आईपीसी के तहत दोषसिद्धि को

बरकरार रखा गया, अपीलकर्ता की उम्र और बीते समय को ध्यान में रखते हुए सजा को घटाकर 7 वर्ष कर दिया गया और जुर्माना बढ़ाकर 1,00,000 रुपये कर दिया गया। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3(2)(v) के तहत दोषसिद्धि अपास्त की गई। अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई। (प्रस्तर 24-40)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई।

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. राजस्थान राज्य बनाम नूर खान, (2000) 3 एसएलटी 389
2. पंजाब राज्य बनाम राम देव सिंह, (2004) 1 एससीसी 421
3. पृथ्वीचंद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (1989) 1 एससीसी 432
4. नारायणम्मा बनाम कर्नाटक राज्य, (1994) 5 एससीसी 728
5. उत्तर प्रदेश राज्य मनोज कुमार पांडे बनाम (2009) 1 एससीसी 72
6. सतपाल सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2010) 8 एससीसी 714
7. दिनेश उर्फ बुद्ध बनाम राजस्थान राज्य, (2006) 3 एससीसी 771
8. मासूमशा हसनशा मुसलमान बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2000) 3 एससीसी 557
9. रामदास और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2007) 2 एससीसी 170
10. नारायण त्रिवेदी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2009 (2) एएलजे 550

(माननीय न्यायमूर्ति संदीप जैन, द्वारा प्रदत्त)

1. हमने अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री धर्मेंद्र कुमार सिंह और राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री वीरेंद्र कुमार पाल की बात सुनी और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

2. यह आपराधिक अपील दोष सिद्ध अपीलकर्ता संजय सिंह द्वारा कानपुर देहात के विशेष न्यायाधीश (अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम) की अदालत द्वारा दिनांक 20.12.2002 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध दायर की गई है। यह निर्णय विशेष सत्र परीक्षण संख्या 98/1998 (राज्य बनाम संजय सिंह), प्रकरण संख्या 315/1997 में भारतीय दंड संहिता की धारा 376 और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3(2)(5) के अंतर्गत पुलिस स्टेशन मंगलपुर, जिला कानपुर देहात में पारित किया गया था। इस निर्णय के तहत अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अंतर्गत दस वर्ष के कठोर कारावास और 5,000 रुपये के जुर्माने तथा अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3(2)(5) के अंतर्गत

आजीवन कारावास और 5,000 रुपये के जुर्माने का दंड दिया गया है। जुर्माना न भरने की स्थिति में, प्रत्येक दोषसिद्धि के अंतर्गत एक वर्ष का अतिरिक्त कारावास भुगतने का दंड दिया गया है। सभी सजाओं को एक साथ चलाने का आदेश दिया गया है।

3. तथ्यात्मक स्थिति यह है कि प्रथम सूचनाकर्ता - 'आर' (पी.डब्ल्यू.-1) ने कानपुर देहात के मंगलपुर पुलिस स्टेशन में दिनांक 11.12.1997 को एक आवेदन (प्रदर्श क-1) दिया था, जिसमें उसने कहा था कि आज दोपहर लगभग 12:00 बजे उसकी बेटी 'के' जिसकी आयु लगभग 14 वर्ष है, अपने घर से गंगा राम उर्फ गंधु के खेत में शौच करने गई थी और शौच करने के बाद जब वह लौट रही थी, तब संजय सिंह ने पीड़िता 'के' का हाथ जबरदस्ती पकड़कर उसे गंगा राम उर्फ गंधु के अरहर के खेत में घसीटा, उसे नीचे पटक दिया, उसका मुंह बांध दिया, उसके अंतर्वस्त्र उतार दिए और उसके बाद उसके साथ दुष्कर्म किया। उसकी बेटी चिल्ला रही थी। उसकी आवाज सुनकर वह और राम पाल तथा उसका भाई राज कुमार, जो उसके साथ आबादी की जमीन में धनिया बो रहा था, वहां पहुंचे और देखा कि संजय सिंह उसकी बेटी के ऊपर लेटा हुआ था और उसके साथ दुष्कर्म कर रहा था। उन्हें देखकर संजय सिंह उत्तर दिशा की ओर भाग गया, जिसका पीछा किया गया लेकिन उसे पकड़ा नहीं जा सका।

4. उपरोक्त तहरीर के आधार पर, प्रथम सूचनाकर्ता 'आर' (परीक्षण में पी.डब्ल्यू.-1 के रूप में जांचा गया) द्वारा लिखित साक्ष्य (प्रदर्श क-1) के तहत, धारा 376 भारतीय दंड संहिता और धारा 3 (2) (12) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम के तहत प्रकरण संख्या 315/1997, दिनांक 11.12.1997 को दोपहर 2 बजे पुलिस स्टेशन मंगलपुर, जिला कानपुर देहात में अभियुक्त संजय सिंह के खिलाफ दर्ज किया गया था और तदनुसार जी.डी. प्रविष्टि संख्या 25 दिनांक 11.12.1997 को दोपहर 2 बजे दर्ज की गई थी। जांच एफ.आई.आर. और जी.डी. प्रविष्टि को श्री ओम प्रकाश शर्मा, सेवानिवृत्त उप पुलिस अधीक्षक (परीक्षण में पी.डब्ल्यू.-5 के रूप में जांचा गया) द्वारा प्रदर्श क-11 और प्रदर्श क-12 के रूप में सिद्ध किया गया है।

5. प्रकरण की जांच श्री ओम प्रकाश शर्मा (पी.डब्ल्यू- 5) को सौंपी गई, जिन्होंने पीड़िता 'के' का अंडरवियर बरामद किया, जिस पर खून और वीर्य के धब्बे पाए गए। अंडरवियर की बरामदगी का मेमो (प्रदर्श क-2) है। घटना के समय अभियुक्त द्वारा पहने गए शॉर्ट्स (नेकर) को भी जब्त कर लिया गया और बरामदगी का मेमो (प्रदर्श क-10) तैयार किया गया।

6. पीड़िता 'के' (पी.डब्ल्यू.-2) की जांच डॉ. द्रौपदी जटारिया (पी.डब्ल्यू-3) ने 12.12.1997 को शाम 5:00 बजे किया। पीड़िता की चिकित्सा जांच रिपोर्ट (प्रदर्श क-5) है, जिसके अनुसार उसके शरीर और गुप्तांगों पर कोई चोट के निशान नहीं पाए गए। हाइमन पुराना फटा हुआ था और योनि में दो उंगलियां आसानी से प्रवेश कर सकती थीं। योनि से मृत या जीवित शुक्राणुओं की उपस्थिति का पता लगाने के लिए स्वाब लिया गया और आयु निर्धारण के लिए पीड़िता की दाहिनी कोहनी, बाईं कलाई और दाहिने घुटने के जोड़ का एक्स-रे कराने की सलाह दी गई।

अनुवादित

7. पीड़िता की पुनः जांच 13.01.1998 को दोपहर 1:15 बजे डॉ. शुभा मिश्रा और एक अन्य चिकित्सक द्वारा संयुक्त रूप से की गई। इस जांच में गुप्तांगों और जांघों के भीतरी भाग पर कोई चोट नहीं पाई गई। हाइमन फटा हुआ पाया गया और उसकी जगह पुराने, ठीक हो चुके दानेदार टैग मौजूद थे। योनि में दो उंगलियां आसानी से प्रवेश कर रही थीं, गर्भाशय सामान्य आकार का था। पीड़िता को मासिक धर्म हो रहा था और गर्भाशय से रक्तस्राव हो रहा था। चिकित्सकों का मानना था कि 'के' यौन संबंध बनाने की आदी थी।

8. पीड़िता 'के' की अनुपूरक रिपोर्ट (प्रदर्श क-6) डॉ. द्रौपदी जटारिया द्वारा 30.12.1997 को तैयार की गई थी, जिसमें वह बलात्कार के संबंध में कोई निश्चित राय नहीं दे सकीं क्योंकि वह यौन संबंध बनाने की आदी थीं। एक्स-रे रिपोर्ट के अनुसार, पीड़िता की आयु लगभग 17 वर्ष आंकी गई थी।

9. पीड़िता के अंतर्वस्त्र और अभियुक्त के शॉर्ट्स (नेकर) को जांच के लिए लखनऊ स्थित फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला भेजा गया, जिसकी रिपोर्ट दिनांक 03.02.1998 को प्रदर्श क-8 के रूप में प्रस्तुत की गई। इसके अनुसार, पीड़िता के अंतर्वस्त्र पर मानव रक्त पाया गया, लेकिन अभियुक्त के शॉर्ट्स (नेकर) और पीड़िता के अंतर्वस्त्र पर वीर्य या शुक्राणु नहीं पाए गए।

10. जांच के बाद, अभियुक्त/अपीलकर्ता संजय सिंह के खिलाफ धारा 376 भारतीय दंड संहिता और धारा 3(2)(12) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम के तहत आरोप पत्र (प्रदर्श क-13) प्रस्तुत किया गया, जिस पर संज्ञान लिया गया और बाद में, अभियुक्त के खिलाफ 10.07.2000 को धारा 376 के साथ धारा 3(2)(5) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम के तहत आरोप तय किए गए, जिसे अभियुक्त ने अस्वीकार कर दिया, दोषी नहीं होने का दावा किया और विचारण की मांग की।

11. अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित गवाहों से पूछताछ की है, जिन्होंने निम्नलिखित दस्तावेजों को प्रमाणित किया है:-

क्रम संख्या :-	गवाहों	प्रमाणित दस्तावेज़
1.	सूचनाकर्ता 'आर' पी.डब्ल्यू.1	तेहरीर प्रदर्श क-1 के रूप में, पीड़िता के अंडरवियर की बरामदगी मेमो प्रदर्शक क-2 के रूप में, पीड़िता का अंडरवियर सामग्री प्रदर्श-1 के रूप में, पीड़िता के हाई स्कूल प्रमाण पत्र की प्रमाणित प्रति प्रदर्श क-3 के रूप में, और पीड़िता की हाई स्कूल मार्कशीट की प्रमाणित प्रति प्रदर्श क-4 के रूप में,

2.	पीड़िता 'के' पी.डब्ल्यू.2	कोई दस्तावेज़ साबित नहीं हुआ.
3.	डॉ. द्रौपदी जटारिया, पी.डब्ल्यू.3	पीड़िता की चिकित्सा जांच रिपोर्ट प्रदर्श क-5 के रूप में और पीड़ित की अनुपूरक चिकित्सा रिपोर्ट प्रदर्श क-6 के रूप में, प्रस्तुत की गई है।
4.	डॉ. आर.एन. त्रिपाठी, रेडियोलॉजिस्ट। पृष्ठ संख्या 4	पीड़ित की एक्स-रे रिपोर्ट प्रदर्श क-7 के रूप में और एक्स-रे प्लेट सामग्री प्रदर्श-2 के रूप में, प्रस्तुत की गई है।
5.	श्री ओम प्रकाश शर्मा, सेवानिवृत्त उप पुलिस अधिकारी (जांच अधिकारी) पी.डब्ल्यू.5	एफ.एस.एल. रिपोर्ट प्रदर्श क-8 के रूप में, साइट प्लान प्रदर्श क-9 के रूप में, अभियुक्त के माल (नेकर) की वसूली का ज्ञापन प्रदर्श का-10 के रूप में, एफ.आई.आर. की जाँच प्रदर्श क-11 के रूप में, एफ.आई.आर. के पंजीकरण की जी.डी. प्रविष्टि प्रदर्श क-12 के रूप में, और आरोपपत्र प्रदर्श क-13 के रूप में,

अनुवादित

12. अभियुक्त संजय सिंह ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत दर्ज अपने बयान में स्वीकार किया है कि वह ठाकुर समुदाय से संबंध रखता है और पीड़िता अनुसूचित जाति (चमार) समुदाय से है, जिसे वह जानता था। अभियुक्त ने अभियोजन पक्ष के बयान का खंडन किया है और कहा है कि उसे शत्रुता के कारण झूठा फंसाया गया है।

13. प्रथम सूचनाकर्ता 'आर' (पी.डब्ल्यू.-1) ने अपने मुख्य परीक्षा में बताया है कि वह चमार जाति से है। अभियुक्त ठाकुर जाति का है और उसी के गाँव का निवासी है। घटना के समय उसकी बेटी 'के' की आयु लगभग 14 वर्ष थी और वह कक्षा 'दसवीं' में पढ़ रही थी। अभियुक्त को पता था कि 'के' चमार जाति की है। 11.12.1997 को दोपहर 12:00 बजे 'के' गंगा राम उर्फ गंधु के लाही खेत में शौच करने गई थी। 'के' की आवाज सुनकर वह, उसका भाई 'आर' और राम पाल खेत की ओर दौड़े। उन्होंने गंधु के अरहर के खेत में देखा कि अभियुक्त संजय सिंह 'के' के साथ दुष्कर्म कर रहा था। उन्हें देखकर 'के' उत्तर दिशा की ओर भाग गया, जिसका पीछा किया गया, लेकिन वह भागने में सफल रहा। अभियुक्त ने 'के' के साथ जबरन दुष्कर्म किया था। उसने स्वयं तहरीर लिखी थी और 'एक्स' के साथ मंगलपुर पुलिस स्टेशन गया था। सूचनाकर्ता ने तहरीर को प्रदर्श क-1 के रूप में प्रमाणित किया है। पीड़िता की जांच 12.12.1997 को की गई थी और उसका एक्स-रे

13.12.1997 को किया गया था। जांच अधिकारी ने पीड़िता 'के' का अंडरवियर कब्जे में लिया था तथा बरामदगी मेमो तैयार किया था, जिस पर उसके हस्ताक्षर हैं, जिसे प्रदर्श क-2 के रूप में प्रमाणित किया गया है। सूचनाकर्ता ने पीड़िता के गहरे हरे रंग के अंडरवियर को प्रदर्श-1 के रूप में न्यायालय में प्रमाणित किया है।

14. सूचनाकर्ता 'आर' ने पीड़िता की हाई स्कूल सर्टिफिकेट और मार्कशीट के आधार पर उसकी जन्मतिथि को प्रमाणित किया है, और हाई स्कूल सर्टिफिकेट की सत्यापित प्रति (प्रदर्श क-3) तथा हाई स्कूल परीक्षा की मार्कशीट (प्रदर्श क-4) को प्रमाणित किया है। सूचनाकर्ता ने आगे बताया है कि उसने पीड़िता की जन्मतिथि 01.06.1983 सही दर्ज कराई थी।

15. सूचनाकर्ता 'आर' (पी.डब्ल्यू-1) ने अपनी प्रतिपरीक्षा में बताया है कि पीड़िता उसकी सबसे बड़ी संतान थी और उसने इस बात से इनकार किया है कि अदालत में प्रतिपरीक्षा के समय उसकी बेटी की उम्र लगभग 19-20 वर्ष थी। सूचनाकर्ता ने प्रतिपरीक्षा में यह भी बताया है कि गंगा राम उर्फ गंधु का अरहर का खेत चक रोड से सटा हुआ है, जो उत्तर-दक्षिण दिशा में जाता है। चक रोड उसके गांव की मुख्य सड़क नहीं है। चक रोड के पश्चिम की ओर गंगा राम उर्फ गंधु का खेत है। घटना के समय गंगा राम के खेत के दक्षिण में बृज मोहन, बाबू लाल, महिपाल और नानकु के घर स्थित थे। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया है कि पीड़िता का अजय पाल के साथ अवैध संबंध था। सूचनाकर्ता ने बताया है कि गंगा राम के खेत में अरहर की फसल खड़ी थी और उसकी दूसरी फसल कट चुकी थी। पीड़िता एक लोटा के साथ गई थी, जिसने दो टुकड़ों में स्कर्ट और ब्लाउज पहना हुआ था, अंडरवियर अलग था। घटना के समय, वह अपने भाई राजकुमार के साथ गंगा राम के खेत से लगभग 100 गज दूर थे। उन्होंने न तो चक रोड से अभियुक्त द्वारा 'के' को हाथ से पकड़कर घसीटते हुए देखा और न ही उसे पटकते हुए। उन्हें चक रोड से खेत तक पहुंचने में लगभग 2-3 मिनट लगे थे। उन्होंने 100 गज की दूरी से अपनी बेटी की आवाज सुनी थी और उस समय उनके भाई और राम पाल वहां मौजूद थे। 'के' की आवाज सुनकर वे तुरंत मौके पर नहीं दौड़े, बल्कि आसानी से पहुंच गए। उन्होंने अभियुक्त को पीड़िता का अंडरवियर उतारते हुए नहीं देखा था। पीड़िता की आवाज सुनने के बाद, उन्हें घटनास्थल तक पहुंचने में लगभग एक-दो मिनट लगे थे। उन्होंने यह नहीं देखा कि अभियुक्त ने अपनी पैंट उतारी थी या नहीं, उन्होंने अभियुक्त को पीड़िता के ऊपर लेटे हुए देखा था। उन्होंने यह भी नहीं देखा कि अभियुक्त ने पीड़िता का मुंह बंद किया था या नहीं, लेकिन जब वे पहुंचे, तो वह भाग गया था। उसने चार-छह गज की दूरी से देखा कि अभियुक्त उसकी बेटी के साथ कुटिल कृत्य कर रहा था। वह अभियुक्त को पकड़ नहीं सका क्योंकि उसकी चप्पल फट गई थी और वह भाग नहीं सका। अभियुक्त बिना पैंट का बटन लगाए, एक हाथ से पैंट पकड़े उत्तर दिशा की ओर भाग गया। उसने अभियुक्त का 4-6-10 गज तक पीछा किया। वह अभियुक्त के पिता के पास शिकायत करने नहीं गया। 4-6-10 गज तक पीछा करने के बाद वह वापस उसी स्थान पर लौट आया, जहाँ उसकी बेटी मौजूद थी। उसकी बेटी के हाथों, चेहरे और पीठ पर मामूली चोट के निशान थे। उसे नहीं पता कि ये चोटें रगड़ से लगी थीं या नहीं। उसे पूरा विश्वास है कि उसकी बेटी के साथ पहली बार कोई कुकर्म हुआ है। सूचनाकर्ता ने इस बात से इनकार किया है कि उसकी बेटी यौन संबंध बनाने की आदी थी और अजय पाल के साथ उसके लंबे समय से संबंध थे। सूचनाकर्ता ने इस बात से भी इनकार किया है कि अजय पाल ने उसके घर

में उसकी बेटी के साथ कुकर्म किया और उसकी माँ ने इसे देखा था। सूचनाकर्ता ने इस बात से भी इनकार किया है कि वह अजय पाल के खिलाफ प्रकरण दर्ज कराना चाहता था, लेकिन उसकी बेटी ने इसका विरोध किया और धमकी दी कि अगर अजय पाल के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज कराई गई तो वह आत्महत्या कर लेगी। सूचनाकर्ता ने इस बात से भी इनकार किया है कि उसके रिश्तेदारों को पीड़ित और अजय पाल के रिश्ते की जानकारी थी। सूचनाकर्ता ने इस बात से भी इनकार किया है कि संजय सिंह के पिता ने उसकी बकरियों और अन्य मवेशियों को गौशाला में बंद करवा दिया था। सूचनाकर्ता ने स्वीकार किया है कि उसे इस घटना के संबंध में *हरिजन कल्याण कार्यालय* से 25,000 रुपये प्राप्त हुए हैं। सूचनाकर्ता ने इस बात से भी इनकार किया है कि उसकी बेटी ने उसे प्रकरण दबाने के लिए दबाव डाला था, लेकिन लालच के कारण उसने रिपोर्ट दर्ज कराई थी।

16. अभियोजन पक्ष ने विचारण न्यायालय में पीड़िता 'के' को पी.डब्ल्यू-2 के रूप में पेश किया, जिसने अपने मुख्य परीक्षा में बताया कि वह चमार जाति की है, जबकि अभियुक्त संजय सिंह ठाकुर जाति का है और उसी के गांव का निवासी है। लगभग चार साल पहले, दोपहर करीब 12 बजे, वह शौच के लिए घर से बाहर गई थी और जब वह घर लौट रही थी, तभी अभियुक्त ने उसे गंगा राम के अरहर के खेत के पास रोक लिया। अभियुक्त उसे जबरदस्ती अरहर के खेत में ले गया और उसे पटक कर उसका मुंह बंद कर दिया और उसके साथ बलात्कार किया। उसने शोर मचाया, तब उसके पिता और चाचा आए, जिसके बाद अभियुक्त भाग गया। उसके पिता उसे अपने घर ले गए और फिर उसे पुलिस स्टेशन ले गए, जहां रिपोर्ट दर्ज कराई गई। वह रात भर पुलिस स्टेशन में रही और अगले दिन कानपुर के उर्सला अस्पताल में उसकी चिकित्सकीय जांच की गई, जहां उसका एक्स-रे भी किया गया। घटना के समय उसने स्कर्ट और अंडरवियर पहना हुआ था। पुलिस ने उसके अंडरवियर को ज़ब्त कर लिया था। घटना के समय उसकी उम्र 14 वर्ष थी, जन्मतिथि 01.06.1983 है और वर्तमान में वह बी.ए. पार्ट-I की पढ़ाई कर रही है। पीड़िता ने अपने उस अंडरवियर की पहचान कर ली है जिसे उसने घटना के समय पहना हुआ था और जिसे पुलिस ने ज़ब्त किया था, जो सबूत (प्रदर्श -1) है।

17. पीड़िता 'के', पी.डब्ल्यू-2, ने अपनी प्रतिपरीक्षा में बताया है कि उसने 1999 में निजी तौर पर हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की थी। उसने सितंबर 1998 में प्राइवेट परीक्षा का फॉर्म भरा था। घटना फॉर्म भरने से लगभग एक साल पहले घटी थी। यह सच है कि उसके पिता ने रिपोर्ट में उसकी उम्र साढ़े चौदह वर्ष बताई थी और इसी वजह से उसने हाई स्कूल परीक्षा के फॉर्म में भी अपनी उम्र 14 वर्ष बताई थी। पीड़िता ने इस बात से इनकार किया है कि घटना के समय उसकी उम्र लगभग 18 वर्ष थी और उसके पिता ने उसकी उम्र गलत बताई थी। वह गंगा राम के खेत में शौच करने गई थी, जो चक रोड से सटा हुआ है। वह चक रोड पर पहुंची ही थी कि संजय उसके पास आया। उसने नहीं देखा कि अभियुक्त संजय किस दिशा से आया था। अभियुक्त संजय ने उससे कुछ नहीं कहा, उसने उसका हाथ पकड़ा और उसे घसीटना शुरू कर दिया। उस समय उसने शोर मचाया और खुद को बचाने की कोशिश भी की। वह शौच करने के लिए मग (*लोटा*) लेकर गई थी, उसने संजय के सिर पर लोटा नहीं मारा था। वह लगातार चिल्ला रही थी और भागने की कोशिश कर रही थी, लेकिन संजय उसे घसीटकर खेत के अंदर ले गया और पटक दिया। उस समय खेत में *अरहर* की फसल खड़ी थी, ज्वार की फसल नहीं थी। जब उसे पटका गया, तो वह चिल्लाई, खुद को छुड़ाने की कोशिश की, अपने पैर भी हिलाए

और संजय के हाथ पर काट भी लिया। उसने दो-चार मिनट तक खुद को छुड़ाने की कोशिश की, लेकिन उसने उसे जाने नहीं दिया। जब तक उसका मुंह बंद था, वह लगातार चिल्लाती रही। एक हाथ से उसका मुंह बंद था और दूसरे हाथ से उसने उसका अंडरवियर उतार दिया। उसने अपने पैर हिलाए, फिर अभियुक्त ने अपनी पैंट उतार दी। उसका अंडरवियर वहीं पड़ा था, उसकी पैंट भी जमीन पर पड़ी थी। बीच-बीच में उसका हाथ उसके मुंह से हट जाता, तो वह फिर चिल्लाती। उसका अंडरवियर और पैंट उतारने की प्रक्रिया में और इस हाथापाई में लगभग पांच मिनट बीत गए और उसने लगभग दो-तीन सेकंड तक उसके साथ बलात्कार किया। गंगा राम के खेत से ग्रामीणों के घर लगभग 40-50 गज की दूरी पर हैं और घटनास्थल से लगभग 100 गज की दूरी पर, दो घरों में लोग अपने परिवार के साथ रहते हैं। घटना के समय दिसंबर का महीना था। सर्दी का मौसम था। उस समय लोग खेतों में काम कर रहे थे और चक रोड पर भी आ-जा रहे थे, लेकिन उसके चिल्लाने पर भी कोई नहीं आया। केवल उसके पिता और चाचा आए और उसी समय अभियुक्त उसके साथ बलात्कार कर रहा था और उन्हें देखकर अपनी पैंट पहनकर भाग गया। अभियुक्त का दो खेतों तक पीछा किया गया लेकिन उसे पकड़ा नहीं जा सका। उसकी अंडरवियर में कोई छेद नहीं था। उसकी पीठ पर मामूली खरोंच आई थी। कोई गंभीर चोट नहीं थी। उसने पुलिस स्टेशन में अपनी चोटें दिखाईं। उसके मुंह में भी चोट थी। वह अजय पाल को जानती है, जो उसी समुदाय का है और उसके घर नहीं आता। लेकिन कभी-कभी उसके माता-पिता उसके घर आते हैं। पीड़िता ने इस बात से इनकार किया है कि इस घटना से पहले उसके अजय पाल के साथ अवैध संबंध थे और उसने उसके साथ यौन संबंध बनाए थे। पीड़िता ने स्पष्ट रूप से कहा है कि अभियुक्त ने उसके साथ पहली बार यौन संबंध बनाए थे और इससे पहले उसने किसी के साथ यौन संबंध नहीं बनाए थे। पीड़िता ने इस बात से इनकार किया है कि उसे अजय पाल के साथ आपत्तिजनक हालत में देखा गया था और यह बात उसके समुदाय और पड़ोस में फैल गई थी, जिसके चलते उसने अजय पाल के खिलाफ शिकायत दर्ज कराने से मना किया था। पीड़िता ने स्वीकार किया है कि इस प्रकरण में शिकायत दर्ज कराने के बाद उसके पिता को 25,000 रुपये मिले थे। पीड़िता ने इस बात से भी इनकार किया है कि घटना से चार-पांच दिन पहले अभियुक्त ने उसके पिता की बकरियों को कांजी हाउस में कैद करा दिया था और इसी वजह से उसके पिता ने अभियुक्त के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई थी।

18. डॉ. द्रौपदी जटारिया, पी.डब्ल्यू-3 ने अपने मुख्य परीक्षा में बताया कि पीड़िता के शरीर और गुप्तांग पर चोट का कोई निशान नहीं था। उसकी वर्जिनिटी टूटी हुई थी और योनि में दो उंगलियां आसानी से जा सकती थीं। उन्होंने शुक्राणुओं की जांच के लिए योनि स्वैब से दो स्लाइड तैयार की थीं और पीड़िता की उम्र निर्धारित करने के लिए एक्स-रे कराने की सलाह दी थी। इस साक्षी ने पीड़िता की चिकित्सा जांच रिपोर्ट (प्रदर्श क-5) को प्रमाणित किया है और पीड़िता की रेडियोलॉजिकल और पैथोलॉजिकल रिपोर्ट के आधार पर पीड़िता की अनुपूरक रिपोर्ट (प्रदर्श क-6) तैयार करके प्रमाणित की है। साक्षी ने बताया कि योनि स्मीयर में कोई जीवित या मृत शुक्राणु नहीं पाए गए और पीड़िता की रेडियोलॉजिकल रिपोर्ट के अनुसार, उसकी उम्र लगभग 17 वर्ष थी। पीड़िता यौन संबंध बनाने की आदी थी, इसलिए वह पीड़िता के साथ बलात्कार के संबंध में कोई निर्णायक राय नहीं दे सकी।

19. अभियोजन पक्ष ने डॉ. आर.एन. त्रिपाठी को पी.डब्ल्यू-4 के रूप में पेश किया है, जिन्होंने 13.12.1997 को कानपुर के यू.एच.एम. अस्पताल में पीड़िता के एक्स-रे परीक्षण का पर्यवेक्षण किया था। इस गवाह ने पीड़िता की एक्स-रे रिपोर्ट (प्रदर्श क-7) और एक्स-रे प्लेट (प्रदर्श -2) को प्रमाणित किया है और कहा है कि हड्डियों के जुड़ाव के आधार पर, उनका अनुमान है कि घटना के समय पीड़िता की आयु लगभग 16-17 वर्ष थी, जिसमें दोनों ओर छह महीने का अंतर हो सकता है।

20. अभियोजन पक्ष ने विचारण न्यायालय में जांच अधिकारी श्री ओम प्रकाश शर्मा को पी.डब्ल्यू-5 के रूप में पेश किया, जिन्होंने घटना स्थल का नक्शा तैयार किया था और उसे प्रदर्श क-9 के रूप में साबित किया था। उन्होंने गवाहों के बयान दर्ज किए, अभियुक्त संजय सिंह को 12.12.1997 को गिरफ्तार किया, पीड़िता और अभियुक्त का चिकित्सकीय परीक्षण कराया, अभियुक्त के शॉर्ट्स (नेकर) जब्त किए और बरामदगी ज्ञापन को प्रदर्श क-10 के रूप में साबित किया। पीड़िता के अंतर्वस्त्र और अभियुक्त के शॉर्ट्स (नेकर) को फोरेंसिक जांच के लिए भेजा गया और फोरेंसिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट को प्रदर्श क-8 के रूप में साबित किया गया। चेक एफ.आई.आर. को प्रदर्श क-11 के रूप में, जी.डी. संख्या 25, दोपहर 2:00 बजे दिनांक 11.12.1997 को प्रदर्श क-12 के रूप में साबित किया गया और जांच के बाद अभियुक्त के खिलाफ आरोपपत्र प्रस्तुत किया गया, जिसे प्रदर्श क-13 के रूप में साबित किया गया है।

21. जांच अधिकारी, पी.डब्ल्यू-5 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में बताया है कि घटना स्थल चक रोड से दिखाई देता है और चक रोड से पांच गज की दूरी पर स्थित है। चक रोड आम आवागमन का मार्ग नहीं है। घटना स्थल से लगभग 60-70 गज की दूरी पर 10-12 मकान हैं, जिनमें लोग रहते हैं। जिस खेत में घटना घटी, उसमें अरहर की फसल खड़ी थी। घटना स्थल पर ईंट-पत्थर नहीं थे। साक्षी ने स्वीकार किया है कि सूचनाकर्ता ने धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपने बयान में बताया था कि चीख-पुकार सुनकर वे पीड़िता के पास दौड़े थे।

22. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया है कि अभियोजन पक्ष की कहानी अविश्वसनीय और भरोसे के लायक नहीं है। विचारण न्यायालय ने पीड़िता की उम्र पर विचार नहीं किया है। पीड़िता बालिग थी और यौन संबंध बनाने की आदी थी, जिसकी पुष्टि उसकी मेडिकल रिपोर्ट से होती है। पीड़िता के शरीर या गुप्तांग पर कोई चोट नहीं पाई गई। यह घटना पीड़िता की सहमति से घटी। सूचनादाता घटना का प्रत्यक्षदर्शी नहीं है। डॉक्टर (पी.डब्ल्यू.-3) ने अपने बयान में यह नहीं कहा है कि पीड़िता का बलात्कार हुआ था। अभिलेख में ऐसा कोई सबूत नहीं है जिससे यह साबित हो सके कि यह घटना केवल इसलिए घटी क्योंकि पीड़िता अनुसूचित जाति समुदाय से संबंधित है, इसलिए अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(v) के तहत अपीलकर्ता की दोषसिद्धि अवैध है और अपास्त किए जाने योग्य है। इन दलीलों के साथ यह प्रार्थना की गई है कि अपील को स्वीकार किया जाए और विचारण न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता के खिलाफ पारित दोषसिद्धि के फैसले और आदेश को अपास्त किया जाए।

23. प्रतिवादी राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष की कहानी पर सही विश्वास किया है। पीड़िता का बयान विश्वसनीय है। पीड़िता एक नाबालिग लड़की है, जिसे जबरन 'अरहर' के खेत में घसीटकर ले जाया गया और फिर अपीलकर्ता ने उसके साथ बलात्कार किया। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि यह सच है कि पीड़िता के शरीर और गुप्तांगों पर कोई चोट नहीं पाई गई है, लेकिन फिर भी पीड़िता के बयान पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। पीड़िता 'चमार' जाति की है और अपीलकर्ता 'ठाकुर' जाति का है, जिसने पीड़िता के अनुसूचित जाति समुदाय से होने की जानकारी होने के बावजूद उसके साथ बलात्कार किया। पीड़िता की सहमति का कोई सबूत अभिलेख पर नहीं है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को दोषी ठहराने में कोई गैरकानूनी या अनियमितता नहीं की है।

24. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण की दलीलें सुनने और अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद, सूचनाकर्ता (पी.डब्ल्यू-1) के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि 11.12.1997 को दोपहर लगभग 12 बजे उनकी नाबालिग बेटी 'के' (पी.डब्ल्यू-2), जिसकी उम्र लगभग 14 वर्ष थी, गंगाराम उर्फ गण्डु के 'अरहर' खेत में शौच करने गई थी। बेटी की चीख सुनकर वह अपने भाई राजकुमार और रामपाल के साथ खेत की ओर दौड़ा और देखा कि अभियुक्त 'के' के साथ बलात्कार कर रहा था। 'के' उन्हें देखकर उत्तर दिशा की ओर भाग गया, उसका पीछा किया गया, लेकिन उसे पकड़ा नहीं जा सका। घटना के बाद, सूचनाकर्ता ने *'तहरीर'* लिखी और पीड़िता के साथ पुलिस स्टेशन जाकर एफआईआर दर्ज कराई। सूचनाकर्ता ने 'तहरीर' को प्रदर्श क-1 के रूप में और पीड़िता के अंडरवियर की बरामदगी मेमो को प्रदर्श क-2 के रूप में तथा पीड़िता के गहरे हरे रंग के अंडरवियर को सामग्री प्रदर्श-1 के रूप में साबित किया है। सूचनाकर्ता ने पीड़िता के हाई स्कूल प्रमाण पत्र और मार्कशीट की सत्यापित प्रतियां (प्रदर्श क-3 और प्रदर्श क-4) प्रस्तुत की हैं, जिनमें पीड़िता की जन्मतिथि 01.06.1983 दर्ज है। प्रतिपरीक्षा के दौरान सूचनाकर्ता ने बताया कि पीड़िता शौच के लिए लोटे के साथ गई थी और उस समय उसने स्कर्ट और ब्लाउज के दो सेट पहने हुए थे, जबकि अंडरवियर अलग था। सूचनाकर्ता ने बताया कि उसने पीड़िता को पकड़कर खेत में घसीटते हुए नहीं देखा था और न ही उसने अपीलकर्ता को पीड़िता को जमीन पर पटकते हुए देखा था। इसके अलावा, उसने यह भी बताया कि उसने अपीलकर्ता को पीड़िता का अंडरवियर उतारते हुए नहीं देखा था। सूचनाकर्ता ने अपीलकर्ता को अपनी पैंट उतारते हुए भी नहीं देखा था, लेकिन उसने अपीलकर्ता को पीड़िता के ऊपर लेटे हुए देखा था। सूचनाकर्ता ने बताया है कि उसने पीड़ित के हाथों, चेहरे और पीठ पर मामूली चोटें देखी थीं, लेकिन पीड़ित की चिकित्सा जांच में ऐसी कोई चोट नहीं पाई गई, जिसे डॉक्टर पी.डब्ल्यू.-3 द्वारा सबूत के तौर पर प्रदर्श क-5 के रूप में प्रस्तुत किया गया है। हालांकि, केवल इसी कारण से अभियोजन पक्ष के प्रकरण पर संदेह नहीं किया जा सकता। पी.डब्ल्यू.2 ने प्रतिपरीक्षा में बताया कि उसकी पीठ पर केवल मामूली खरोंच आई थी। इस दृष्टि से, यह संभव है कि चूंकि 'के' की चोटें बहुत मामूली थीं, इसलिए डॉक्टर की नजर उन पर नहीं पड़ी। सूचनाकर्ता पी.डब्ल्यू.-1 के साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि पीड़ित 'के' पी.डब्ल्यू.-2 की चीख सुनकर वह घटनास्थल पर पहुंचा और उसे देखते ही अभियुक्त भाग गया। सूचनाकर्ता ने अभियुक्त का पीछा किया लेकिन उसे पकड़ नहीं सका। पी.डब्ल्यू.-1 के साक्ष्य से घटनास्थल पर अभियुक्त की उपस्थिति सिद्ध होती है। सूचना देने वाले के अनुसार, यह घटना 11.12.1997 को दोपहर लगभग 12.00 बजे घटी और घटना

की प्रथम सूचना रिपोर्ट 11.12.1997 को दोपहर 2 बजे दर्ज कराई गई, जिससे पता चलता है कि एफआईआर तुरंत दर्ज की गई थी।

25. पीड़िता 'के' (पी.डब्ल्यू.-2) के साक्ष्य से स्पष्ट है कि घटना वाले दिन दोपहर लगभग 12 बजे वह शौच करने गई थी और लौटते समय अभियुक्त ने उसका हाथ पकड़कर उसे अरहर के खेत में घसीटा और जमीन पर पटक दिया, उसका मुंह बंद कर दिया और फिर उसके साथ बलात्कार किया। पीड़िता ने स्पष्ट रूप से बताया है कि उसकी चीख सुनकर उसके पिता और चाचा आए और उन्हें देखकर अभियुक्त भाग गया। उसका पीछा किया गया लेकिन उसे पकड़ा नहीं जा सका। उसके पिता उसे वापस ले आए और फिर उसे पुलिस स्टेशन ले गए, जहां एफआईआर दर्ज की गई। पीड़िता ने बताया है कि घटना के समय उसने स्कर्ट और अंडरवियर पहना हुआ था और पुलिस ने उसका अंडरवियर जब्त कर लिया था। पीड़िता ने अपनी जन्मतिथि 01.06.1983 भी सिद्ध की है और घटना के समय पहने हुए अपने अंडरवियर की पहचान भी की है। पीड़िता से अभियुक्त द्वारा विस्तृत प्रतिपरीक्षा की गई है, लेकिन उससे ऐसा कुछ भी नहीं मिल पाया है जिससे उसकी गवाही को अमान्य ठहराया जा सके। पीड़िता ने प्रतिपरीक्षा के दौरान बताया कि उसे जबरदस्ती घसीटकर *अरहर* के खेत में ले जाया गया था। उसने शोर मचाया और अभियुक्त के चंगुल से भागने की कोशिश की, लेकिन वह खुद को छुड़ा नहीं सकी। अभियुक्त ने उसे ज़मीन पर पटक दिया और उसके साथ बलात्कार किया। पीड़िता ने बताया कि उसकी पीठ पर मामूली खरोंच आई थी, जो गंभीर नहीं थी। प्रतिपरीक्षा के दौरान पीड़िता से पूछा गया कि उसके अजय पाल के साथ अवैध संबंध थे और उसने उसके साथ यौन संबंध बनाए थे, जिसे उसने नकार दिया है।

26. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **राजस्थान राज्य बनाम नूर खान (2000) 3 एसएलटी 389 और पंजाब राज्य बनाम राम देव सिंह (2004) 1 एससीसी 421** के मामलों में यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि पीड़िता यौन संबंध बनाने की आदी थी, तो उसने किसी भी व्यक्ति को बलात्कार करने का लाइसेंस नहीं दिया था और न ही कानूनन दे सकती है। पीड़िता के शरीर पर चोटों का न होना, आरोप की असत्यता या पीड़िता की सहमति का प्रमाण नहीं है। इसी प्रकार, **पृथ्वीचंद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य (1989) 1 एससीसी 432 और नारायणम्मा बनाम कर्नाटक राज्य (1994) 5 एससीसी 728** के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि योनि स्मीयर में शुक्राणु की अनुपस्थिति मात्र से अभियोजन पक्ष के प्रकरण की सत्यता पर संदेह नहीं किया जा सकता।

27. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि भले ही पीड़िता के शरीर या गुप्तांगों पर कोई चोट न पाई जाए, भले ही पीड़िता यौन संबंध बनाने की आदी हो, भले ही योनि परीक्षण में शुक्राणु न पाए जाएं, यदि पीड़िता/अभियोक्ता का बयान विश्वसनीय है, तो केवल उसके बयान के आधार पर ही अभियुक्त को दोषी ठहराया जा सकता है। इस प्रकरण में, विचारण न्यायालय ने पीड़िता 'के' के बयान पर विश्वास किया है, जिसकी पुष्टि उसके पिता/सूचनाकर्ता पी.डब्ल्यू.1 ने आंशिक रूप से की है। भले ही पीड़िता के शरीर या गुप्तांगों पर कोई चोट न पाई गई हो, यह उसके बयान पर अविश्वास का आधार नहीं हो सकता। पीड़िता से

पूछा गया कि उसका अजय पाल के साथ अवैध संबंध था और उसने उसके साथ यौन संबंध बनाए थे, लेकिन पीड़िता ने इससे इनकार किया है।

28. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मनोज कुमार पांडे (2009) 1 एससीसी 72** के प्रकरण में यह अभिनिर्धारित किया है कि पीड़िता की सहमति केवल इस तथ्य के आधार पर नहीं मानी जा सकती कि उसकी आयु 16 वर्ष से अधिक थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **सतपाल सिंह बनाम हरियाणा राज्य (2010) 8 एससीसी 714** के प्रकरण में यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि अभियोजन पक्ष यह सफलतापूर्वक साबित कर दे कि यह सहमति का प्रकरण नहीं था, तो वयस्कता का मुद्दा अप्रासंगिक हो जाता है।

29. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने पुरजोर तर्क दिया है कि घटना के दिन पीड़िता बालिग थी और घटना पीड़िता की सहमति से घटी थी, लेकिन हमें यह कहना होगा कि अभिलेख में ऐसा कोई सबूत नहीं है जिससे यह साबित हो सके कि घटना के दिन पीड़िता बालिग थी। विचारण न्यायालय में पीड़िता के पिता/सूचनादाता (पी.डब्ल्यू.-1) ने पीड़िता का हाई स्कूल प्रमाणपत्र और मार्कशीट पेश की है, जिसके अनुसार उसकी जन्मतिथि 01-06-1983 है और घटना के दिन उसकी उम्र लगभग 14 वर्ष और छह महीने थी। अनुपूरक चिकित्सा रिपोर्ट (प्रदर्श क-6) के अनुसार, घटना के दिन पीड़िता की उम्र लगभग 16-17 वर्ष थी, जो बालिग होने की उम्र से कम है। इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि घटना के दिन पीड़िता बालिग थी।

30. हमारा मत है कि पीड़िता की सहमति का कोई सबूत नहीं है। पीड़िता ने अपनी प्रतिपरीक्षा में विस्तार से बताया है कि उसने अभियुक्त का विरोध किया और उसकी पकड़ से भागने की कोशिश की, लेकिन वह सफल नहीं हो सकी। पीड़िता ने बताया है कि अभियुक्त ने उसका मुंह बंद कर दिया था, इसलिए वह लगातार चिल्ला नहीं सकती थी, लेकिन जब भी अभियुक्त का हाथ उसके मुंह से हटता था, वह चिल्लाती थी और उसकी चीख सुनकर उसके पिता और चाचा मौके पर पहुंच गए थे और उन्हें देखकर अभियुक्त भाग गया था। पी.डब्ल्यू.-2 पीड़िता 'के' का बयान विश्वसनीय है और ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह पता चले कि वह झूठ बोल रही है। इस प्रकरण में प्रथम सूचना रिपोर्ट तुरंत दर्ज की गई है। अभियुक्त ने धारा 313 सीआरपीसी के तहत अपनी जांच में केवल इतना कहा है कि उसे झूठा फंसाया गया है, लेकिन इस संबंध में अभियुक्त द्वारा कोई सबूत पेश नहीं किया गया है जिससे अभियोजन पक्ष की कहानी संदिग्ध हो सके।

31. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष की कहानी पर विश्वास किया है और जहां तक अभियुक्त द्वारा पीड़िता पर किए गए बलात्कार के अपराध का संबंध है, विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से असहमत होने का हमारे पास कोई कारण नहीं है।

32. 26-1-2016 को संशोधन से पहले, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(v) इस प्रकार थी:-

3(2) जो कोई भी, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य न होते हुए,-

"(v) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अंतर्गत किसी व्यक्ति या संपत्ति के विरुद्ध दस वर्ष या उससे अधिक कारावास से दंडनीय कोई अपराध इस आधार पर करता है कि वह व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है या ऐसी संपत्ति उस सदस्य की है, तो उसे आजीवन कारावास और जुर्माने से दंडित किया जाएगा"

33. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **दिनेश उर्फ बुद्ध बनाम राजस्थान राज्य (2006) 3 एससीसी 771** प्रकरण में यह अभिनिर्धारित किया है कि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(v) के लागू होने की अनिवार्य शर्त यह है कि किसी व्यक्ति के अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति का सदस्य होने के आधार पर उसके विरुद्ध अपराध किया गया हो। अभियोजन पक्ष का यह तर्क नहीं है कि पीड़िता के अनुसूचित जाति की सदस्य होने के कारण उसके साथ बलात्कार किया गया था। इस संबंध में साक्ष्य के अभाव में धारा 3(2)(v) लागू नहीं होती।

34. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मासूमशा हसनशा मुसलमान बनाम महाराष्ट्र राज्य (2000) 3 एससीसी 557** प्रकरण में यह अभिनिर्धारित किया है कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(v) के प्रावधान लागू होने के लिए यह अनिवार्य शर्त है कि पीड़ित व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का हो और भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध उसके अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित होने के आधार पर किया गया हो। इन शर्तों के अभाव में अधिनियम की धारा 3(2)(v) के तहत कोई अपराध नहीं बनता है।

35. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **रामदास और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2007) 2 एससीसी 170** के प्रकरण में यह अभिनिर्धारित किया है कि केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है कि अभियुक्त उच्च जाति का हो और पीड़ित अनुसूचित जाति का हो। यह भी सिद्ध करना आवश्यक है कि अपराध पीड़ित के अनुसूचित जाति का होने के कारण किया गया था। एफआईआर में ऐसा कोई आरोप नहीं लगाया गया है कि अपराध पीड़ित के अनुसूचित जाति का होने के कारण किया गया था और न ही अभिलेख में ऐसा कोई साक्ष्य है। इसलिए, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(v) के तहत दोषसिद्धि को बरकरार नहीं रखा जा सकता। केवल पीड़ित का अनुसूचित जाति का होना ही प्रकरण को अधिनियम की धारा 3(2)(v) के दायरे में लाने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है।

36. इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने **नारायण त्रिवेदी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2009 (2) एएलजे 550** के प्रकरण में यह अभिनिर्धारित किया है कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(v) के तहत कोई ठोस अपराध नहीं बनता है। अभियुक्त को अधिनियम की धारा 3(2)(v) के तहत अपराध के लिए सीधे तौर पर दोषी ठहराया और सजा नहीं दी जा सकती। ऐसे मामलों में, जहां भारतीय दंड संहिता के तहत 10 वर्ष या उससे अधिक की कारावास की सजा वाले

अपराध को किसी व्यक्ति या संपत्ति के विरुद्ध इस आधार पर किया जाता है कि वह व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है या ऐसी संपत्ति उस व्यक्ति की है, तो ऐसे प्रकरण में अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता के तहत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(v) के साथ पढ़े जाने पर अपराध के लिए दोषी ठहराया जाएगा और आजीवन कारावास और जुर्माना भी लगाया जाएगा।

37. इस प्रकरण में, विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(v) के तहत मूल अपराध के लिए दोषी ठहराया है, जो कि अवैध है। यह सत्य है कि पीड़िता अनुसूचित जाति 'चमार' समुदाय से है और अभियुक्त उच्च जाति 'ठाकुर' समुदाय से है, और यह भी सत्य है कि घटना से पहले अभियुक्त पीड़िता को जानता था, लेकिन अभिलेख में ऐसा कोई सबूत नहीं है जिससे यह साबित हो सके कि पीड़िता के साथ बलात्कार केवल इसलिए किया गया क्योंकि वह अनुसूचित जाति समुदाय से थी। इस दृष्टि से, विचारण न्यायालय द्वारा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(v) के तहत अभियुक्त को दी गई दोषसिद्धि को बरकरार नहीं रखा जा सकता और इसे अपास्त किया जाना चाहिए।

38. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के तहत दोषी ठहराया है और उसे दस वर्ष के कठोर कारावास के साथ 5,000 रुपये का जुर्माना भी लगाया है, और जुर्माना न भरने पर एक वर्ष का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा, लेकिन यह सजा अत्यधिक प्रतीत होती है। घटना के समय अभियुक्त की आयु लगभग 35 वर्ष थी। घटना को लगभग 27 वर्ष बीत चुके हैं। अभियुक्त की वर्तमान आयु लगभग 62 वर्ष है। फतेहगढ़ केंद्रीय कारागार, जिला फर्रुखाबाद के दिनांक 30-4-2025 के हिरासत प्रमाण पत्र के अनुसार, अभियुक्त 10-1-2003 तक केवल चार महीने और 11 दिन जेल में रहा है, उसके बाद से वह जमानत पर है। अभियुक्त की वर्तमान आयु को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह मत है कि यदि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के तहत बलात्कार के अपराध के लिए अभियुक्त पर लगाई गई सजा उचित नहीं है, तो यदि दस वर्ष के कठोर कारावास की सजा को घटाकर न्यूनतम सात वर्ष कर दिया जाए और पीड़ित को मुआवजा देने के लिए जुर्माना 5,000 रुपये से बढ़ाकर 1,00,000 रुपये कर दिया जाए, तो न्याय का उद्देश्य पूरा होगा।

39. तदनुसार, उपरोक्त शर्तों के अनुसार यह आपराधिक अपील **आंशिक रूप से स्वीकार** की जाती है।

40. अपीलकर्ता संजय सिंह को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के तहत दोषी ठहराया जाना बरकरार रखा जाता है, लेकिन उन पर लगाए गए दस वर्ष के कठोर कारावास की सजा को घटाकर न्यूनतम सात वर्ष कर दिया जाता है। इसके अलावा, विचारण न्यायालय द्वारा लगाया गया जुर्माना 5,000 रुपये से बढ़ाकर 1,00,000 रुपये कर दिया जाता है और जुर्माना अदा न करने की स्थिति में अपीलकर्ता को एक वर्ष का

अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(v) के तहत अपीलकर्ता को दोषी ठहराया जाना अपास्त किया जाता है।

41. अपीलकर्ता जमानत पर है। उसे इस फैसले की तारीख से एक महीने के भीतर शेष सजा काटने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करने का निर्देश दिया जाता है, अन्यथा विचारण न्यायालय उसके खिलाफ कानून के अनुसार कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र होगी। यदि अपीलकर्ता द्वारा जुर्माना जमा किया जाता है, तो वह पीड़ित 'के' को दिया जाएगा।

42. इस निर्णय की एक प्रति सहित विचारण न्यायालय का अभिलेख, अनुपालन हेतु रजिस्ट्रार (अनुपालन) के माध्यम से तत्काल संबंधित विचारण न्यायालय को भेजा जाए। अनुपालन रिपोर्ट भी इस न्यायालय में प्रस्तुत की जाए।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 787

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला

माननीय न्यायमूर्ति जितेंद्र कुमार सिन्हा

आपराधिक अपील संख्या-16 वर्ष 1986

सिया राम और अन्य ... **अपीलकर्ता**

बनाम

राज्य ... **प्रतिपक्षी**

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री पी.एन. मिश्रा, श्री जावेद आलम (ए.सी.)

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: अपर शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - भाग II धारा 302/149, 304 /149, 325/149 और 323/149 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 313 - पक्षद्रोही और घायल गवाहों के साक्ष्य की मूल्यांकन करना - पक्षद्रोही गवाह की गवाही की मूल्यांकन करते समय बारीकी से जांच की आवश्यकता है - धारा 300 भ०द०वि० का अपवाद 4 - बिना किसी पूर्व विचार के अचानक लड़ाई - गैर इरादतन हत्या हत्या नहीं है यदि यह अचानक झगड़े पर क्षणिक आवेग में अचानक लड़ाई में बिना किसी पूर्व विचार के की जाती है और अपराधी द्वारा अनुचित लाभ उठाए बिना या क्रूर या असामान्य तरीके से कार्य किए बिना - धारा भाग II 302/149 भ०द०वि० से धारा 304 /149 भ०द०वि० में दोषसिद्धि का रूपांतरण - अपीलकर्ताओं के साथ-साथ कई अन्य लोगों पर गैरकानूनी रूप से एकत्र होने और श्याम लाल पर हमला करने का आरोप लगाया गया था, जब उन्होंने अपने खेत में आरोपी के बैलों को चराने का विरोध किया था। विचारण न्यायालय ने धारा 302/149 भ०द०वि० के तहत सभी को आजीवन कारावास के अलावा धारा 325/149 भ०द०वि० और 323/149 के तहत दोषी ठहराया। अपील पर, लंबित रहने के दौरान, अधिकांश आरोपियों के लिए अपील समाप्त हो गई और केवल सुखराम और भूपाल के लिए बच गई। अभियोजन पक्ष ने घायल गवाहों की गवाही और चिकित्सा साक्ष्य पर भरोसा किया। बचाव पक्ष ने प्राथमिकी में देरी, गवाहों के बयानों में विरोधाभास और इस घातक वाद के बारे में विशिष्ट सबूतों के अभाव को चुनौती दी।

अवधारित: न्यायालय ने माना कि पक्षद्रोही गवाहों की गवाही की बारीकी से जांच की आवश्यकता है, लेकिन घायल गवाह अ०सा०-1 और अ०सा०-2 विश्वसनीय पाए गए। स्वतंत्र गवाह अ०सा०-5 की उपस्थिति पर

विश्वास नहीं किया गया। चिकित्सा साक्ष्य से मृतक पर दस चोटों का पता चला, जिनमें से केवल दो महत्वपूर्ण हिस्सों पर थे, सिर पर एक घातक लाठी का प्रहार मौत के लिए जिम्मेदार था। अभिलेखों पर मौजूद सबूतों की मूल्यांकन से यह पाया गया कि पांचों घायलों को लगी चोट प्रकृति में साधारण थी, जबकि मृतक श्याम लाल के सिर पर केवल एक घाव और एक चोट पाई गई थी। आरोपी सुखराम को छोड़कर सभी आरोपी लाठी-लट्ठा से लैस थे और सुखराम कांता से लैस थे। मृतक के व्यक्ति पर केवल एक कटा हुआ घाव था जो महत्वपूर्ण भाग पर नहीं था। अभियोजन पक्ष सफलतापूर्वक यह साबित करने में सक्षम नहीं था कि आरोपी का कार्य पूर्व नियोजित था और आरोपी ने अनुचित लाभ उठाया। अचानक हुई मारपीट की वजह से घटना हुई। अभियोजन पक्ष यह साबित नहीं कर पाया कि आरोपी द्वारा किया गया अपराध धारा 302 भ०द०वि० के तहत आता है। आरोपी द्वारा किया गया अपराध धारा 304 भ०द०वि० के भाग II के अंतर्गत आता है। अभियोजन पक्ष यह साबित करने में विफल रहा कि मृतक श्याम लाल की हत्या करने का आरोपी का इरादा था क्योंकि उसके सिर पर केवल एक घाव पाया गया है। बड़ी संख्या में लोगों ने मृतक पर लाठीचार्ज किया और एक लाठी मृतक के सिर पर गिरी जो घातक साबित हुई, इसलिए मौत का कारण बनने की मंशा का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। अभियोजन पक्ष धारा 302/149 भ०द०वि० के तहत जीवित अपीलकर्ताओं सुखराम और भूपाल के खिलाफ अपराध साबित करने में विफल रहा। यह देखते हुए कि घटना 40 साल से अधिक समय पहले हुई थी और अपीलकर्ता पहले ही लगभग दो महीने की कैद काट चुके थे, सजा को घटाकर पहले से ही अवधि में कर दिया गया था और मृतक के उत्तराधिकारियों को 25,000 रुपये का जुर्माना लगाया गया था। धारा 325/149 भ०द०वि० और 323/149 के तहत दोषसिद्धि बरकरार रखी गई, लेकिन सजा को समवर्ती रूप से चलाने के लिए संशोधित किया गया। अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी गई। (प्रस्तर-35, 38, 39)

अनुमति है। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति जितेंद्र कुमार सिन्हा द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ताओं के लिए एमिकस क्यूरी/न्याय मित्र श्री जावेद आलम, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता-I श्री ओ.पी. द्विवेदी को सुना।

2. प्रस्तुत आपराधिक अपील, अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, बदायूँ द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 455 सन् 1983 में पारित दिनांक 21.12.1985 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता संख्या 1 से 15 को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 सहपठित धारा 149 के अंतर्गत दोषसिद्ध करते हुए आजीवन कारावास तथा धारा 325 सहपठित धारा 149 के अंतर्गत प्रत्येक को 3 वर्ष का सश्रम कारावास एवं ₹1000/- का अर्थदण्ड दण्डित किया गया है, तथा अर्थदण्ड अदा न किए जाने की स्थिति में प्रत्येक को अतिरिक्त तीन माह का सश्रम कारावास भुगतने का आदेश दिया गया है। इसके अतिरिक्त, सभी अभियुक्तों को धारा 323 सहपठित धारा 149 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत दोषसिद्ध करते हुए प्रत्येक को 6 माह का सश्रम कारावास दण्डित किया गया है।

3. दिनांक 16.7.2024 के आदेश के माध्यम से, अपीलकर्ता संख्या-1- सिया राम पुत्र दुर्गट, अपीलकर्ता संख्या-3 डोरी पुत्र केशो, अपीलकर्ता संख्या-4 रघू पुत्र रोहन, अपीलकर्ता संख्या-5- धरम पाल पुत्र रोहन, अपीलकर्ता संख्या-6 टोटी पुत्र ख्याली, अपीलकर्ता संख्या-8- रामेश्वर पुत्र भोजी, के संबंध में अपील समाप्त हो गई। अपीलकर्ता संख्या-9- मूल चंद पुत्र भोजी, अपीलकर्ता संख्या-10- मान सिंह पुत्र भोजी, अपीलकर्ता संख्या-11- जानकी पुत्र केवल, अपीलकर्ता संख्या-12 मुंशी पुत्र केवल, अपीलकर्ता संख्या-13- बाबू पुत्र हरि, अपीलकर्ता संख्या-14 राम सिंह पुत्र नेकसू और अपीलकर्ता संख्या-15 मोती पुत्र बेहरी। अब अपील केवल अपीलकर्ता संख्या-2 सुखराम पुत्र सिया राम और अपीलकर्ता संख्या-7- भूपाल पुत्र ख्याली के संबंध में ही बची हुई है।

4. अभियोजन पक्ष की कहानी, संक्षेप में, यह है कि सुचनाकर्ता चेत राम ने 22.3.1982 को थाना को एक रिपोर्ट दी, जिसमें कहा गया था कि वर्ष 21.3.1982 की शाम लगभग 5 बजे उसके भाई श्याम लाल ने आरोपी रामेश्वर के बैलों को गेहूं के खेत में चरते देखा। अपनी फसल को नुकसान होता देख श्याम लाल बैलों को पकड़कर मवेशी कूटने ले जा रहे थे और जब वह ग्राम समाज की जमीन के पास पहुंचे तो आरोपी रामेश्वर ने बैल ले जाने का विरोध किया लेकिन श्याम लाल ने कहा कि बैलों ने उनकी फसल को नष्ट कर दिया है, इसलिए वह बैलों को मुक्त नहीं होने देंगे। इस पर रामेश्वर ने अपने परिवार के सदस्यों को बुलाया और जल्द ही कांता, सिया राम, डोरी, रग्घु, धर्मपाल, टोटी, भूपाल, रामेश्वर, मूल चंद, मान सिंह, जानकी, मुंशी, अनार, बाबू, राम सिंह और मोती के साथ लाठी-लाठियों से लैस होकर सुखराम वहां पहुंच गए। आरोपी सिया राम ने अपने साथियों से सुचनाकर्ता के भाई के साथ मामले को सुलझाने के लिए कहा, जिस पर सुचनाकर्ता के भाई श्याम लाल ने शोर मचाया। उसका शोर सुनकर गवाह महावीर, पुन्नी, चेत राम (सुचनाकर्ता), नत्थू, शिव दयाल, 5 सभी। सिया राम और अन्य बनाम राज्य 789 नत्थू लाल, दाल सिंह, लाल सिंह वहां आए और देखा कि आरोपी श्याम लाल को अपनी लाठियों से पीट रहे थे। जब सुचनाकर्ता और गवाहों ने श्याम लाल का बचाव करने की कोशिश की, तो आरोपियों ने उन्हें पीटा भी था, जिसके परिणामस्वरूप महावीर, चेत राम, पुन्नी, शिव दयाल, नाथू घायल हो गए। घटना की जानकारी देने के बाद सुचनाकर्ता के भाई श्याम लाल की मौके पर ही मौत हो गई।

5. उपरोक्त सूचना के आधार पर प्राथमिकी दर्ज की गई और शव की जांच की गई और उसे शव परीक्षण के लिए भेजा गया।

5.1. प्राथमिकी में यह भी उल्लेख किया गया है कि अभियुक्त पक्ष द्वारा अभियोजन पक्ष के खिलाफ धारा 307 भ०द०वि० के तहत एक मामला दर्ज किया गया था जिसमें अभियोजन पक्ष को बरी कर दिया गया था और इस कारण अभियोजन पक्ष और आरोपी पक्ष के बीच संबंध पक्षद्रोही थे।

6. घटना में घायल चेत राम, पुन्नी, नाथू, शिव दयाल की मेडिको लीगल रिपोर्ट भी तैयार की गई। घायल नाथू पुत्र नारायण, महावीर और चेत राम की एक्स-रे रिपोर्ट भी तैयार की गई थी।

7. विवेचनाधिकारी ने जांच करने के बाद विद्वान मजिस्ट्रेट को आरोप पत्र प्रस्तुत किया, जिन्होंने आरोप पत्र पर संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायालय में सौंप दिया। इस मामले को विचारण के लिए विद्वान प्रथम अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, बदायूं की अदालत में स्थानांतरित कर दिया गया था। निचली अदालत ने आरोपी सिया राम, सुख राम, डोरी, रघु, धरम पाल, टोटी, भूपाल, रामेश्वर, मूलचंद, मान सिंह, जानकी, मुंशी, बाबू, राम सिंह और मोती के खिलाफ धारा 148, 147, 302 सपठित 149, 307 सपठित 149, 325 सपठित 149 और 323 सपठित 149 के तहत आरोप तय किए, जबकि आरोपी सुखराम पर भी धारा 324 भ०द०वि० के तहत आरोप लगाए गए हैं।

8. अभियोजन पक्ष ने आठ गवाहों से पूछताछ की है, अर्थात्, सुचनाकर्ता चेत राम- अ०सा०-1, पुन्नी-अ०सा०-2, डॉ. एम.एल. वर्मा- अ०सा०-3, मानक सिंहअ०सा०-4, दाल सिंह-अ०सा०-5, डॉ. एसआर गुप्ता, अ०सा०-6, जिन्होंने मृतक श्याम लाल, हरीश चंद्र, एस.आई.-अ०सा०-7 और ओम प्रकाश सिंह- अ०सा०-8 को परीक्षित करवाया। अभियोजन पक्ष के साक्ष्य को बंद करने के बाद, सभी आरोपी व्यक्तियों के बयान भी धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए हैं, जिसमें आरोपी अपीलकर्ता संख्या-2 सुखराम और अपीलकर्ता संख्या-7- भूपाल ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयानों में स्वीकार किया है कि अभियोजन पक्ष और पीड़ित के बीच कुछ मुकदमेबाजी हुई थी और घटना उसी के कारण हुई थी, लेकिन उन्होंने मामले में अपनी संलिप्तता से इनकार किया है और उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि उन्होंने अपराध किया है।

9. अभियोजन पक्ष ने दस्तावेजी साक्ष्य भी साबित किए हैं, जैसा कि चोट रिपोर्ट प्रदर्श क-1, का 2, का 3, का 4 और का 5, पूरक रिपोर्ट- प्रदर्श क-6 और का 7, एक्स-रे रिपोर्ट- प्रदर्श क-8 और का 9, पंचायतनामा- प्रदर्श क-10, सूचकांक के साथ नक्शा नज़री- प्रदर्श क-18, खून आलूदा और सादी मिट्टी का बरामदगी फ़र्द प्रदर्श क-। 19, आरोप पत्र 'मूल'- प्रदर्श क-20, प्राथमिकी- प्रदर्श क-21 और लिखित रिपोर्ट- प्रदर्श क-24 प्रस्तुत किया।

10. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्राथमिकी में अत्यधिक देरी हो रही है जिसके लिए अभियोजन पक्ष द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। अधिवक्ता ने आगे कहा कि यह घटना गांव में दिन के उजाले में हुई थी, लेकिन किसी भी महिला को गवाह के रूप में नामित नहीं किया गया है, जिससे अभियोजन पक्ष का मामला अत्यधिक संदिग्ध हो जाता है। इसके अलावा, अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चार घायल गवाह एक ही परिवार से संबंधित हैं और उन्हें लगी सभी चोटें मनगढ़ंत हैं ताकि अभियोजन पक्ष के मामले को रंग दिया जा सके। अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि मृतक डकैतों को कारतूस की आपूर्ति करता था। मृतक के पास एक बंदूक थी जिसे पुलिस ने जब्त कर लिया था और मृतक ने डकैतों को कारतूस की आपूर्ति करना बंद कर दिया है और इस वजह से डकैतों ने मृतक को मार डाला। अधिवक्ता ने आगे कहा कि अपराध में इस्तेमाल किया गया हथियार बरामद नहीं किया गया है।

11. अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि इस मामले में बड़ी संख्या में व्यक्तियों को शामिल किया गया है और अभियोजन पक्ष यह साबित करने में सफल नहीं रहा है कि किस आरोपी ने मृतक को घातक वाद दिया। उन्होंने

आगे प्रस्तुत किया कि गवाहों के बयान में भौतिक विरोधाभास हैं जो मामले की जड़ तक जाते हैं जो अभियोजन पक्ष के संस्करण पर संदेह पैदा करते हैं।

12. दूसरी ओर, अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि घटना में एक व्यक्ति की मौत हो गई है और पांच लोग घायल हुए हैं। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि इतनी बड़ी संख्या में घायल होने वाले व्यक्ति स्वयं अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन करते हैं। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि सुचनाकर्ता द्वारा दिए गए विलंबित प्राथमिकी का स्पष्टीकरण संतोषजनक है क्योंकि घटना के तुरंत बाद रात हो गई थी और थाना तक पहुंचने के लिए किसी भी वाहन की कोई व्यवस्था नहीं की जा सकती थी।

13. अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि माना जाता है कि अभियोजन पक्ष और मृतक के बीच दुश्मनी थी और दुश्मनी के परिणामस्वरूप आरोपी द्वारा किया गया अपराध किया गया है। सभी घायल गवाहों ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है और अ०सा०-5 दल सिंह एक स्वतंत्र गवाह हैं जिन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का भी समर्थन किया है।

14. अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अभियोजन पक्ष जीवित अपीलकर्ताओं सुखराम और भूपाल के खिलाफ अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित करने में सक्षम रहा है और विचारण न्यायालय ने अच्छी तरह से तर्कपूर्ण निर्णय पारित किया है जिसे इस अदालत द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। अंत में, उन्होंने प्रस्तुत किया कि अपील खारिज की जानी चाहिए।

15. इस अदालत को विचारण न्यायालय के अभिलेखों पर उपलब्ध सबूतों की फिर से मूल्यांकन करने का कर्तव्य सौंपा गया है ताकि इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके कि क्या अभियोजन पक्ष जीवित अपीलकर्ताओं भूपाल और सुख राम के खिलाफ उचित संदेह की छाया से परे आरोप लगाने में सक्षम है।

16. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बलजिंदर सिंह @ लड्डू और अन्य बनाम पंजाब राज्य के मामले में, आपराधिक अपील संख्या-1389 वर्ष 2012 ने प्रस्तर-12 और 13 में निम्नानुसार व्यवस्था की है: -

"12. इसके अलावा, यह इंगित करने योग्य है कि अ०सा०-3, अ०सा०-4, और अ०सा०-5 इस मामले में "घायल गवाह" या "घायल चश्मदीद गवाह" हैं। घायल गवाहों द्वारा प्रदान की गई शपथ गवाही आम तौर पर महत्वपूर्ण साक्ष्य वजन रखती है। इस तरह की गवाही को अविश्वसनीय के रूप में खारिज नहीं किया जा सकता है जब तक कि उनकी विश्वसनीयता को कमजोर करने वाले पेलुसिड और पर्याप्त विसंगतियां या विरोधाभास न हों। यदि बयान में कोई अतिशयोक्ति है जो मामले के लिए महत्वहीन है, तो इस तरह की अतिशयोक्ति की अवहेलना की जानी चाहिए; हालाँकि, यह 5 सभी नहीं है। सिया राम और अन्य बनाम राज्य 791 पूरे साक्ष्य को खारिज करने की वारंट करता है। इसलिए, मामले की उत्पत्ति के संबंध में अपीलकर्ताओं द्वारा उठाया गया संदेह निराधार है।

13. उपर्युक्त निष्कर्ष बालू सुदाम खाल्डे और एक अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य 12 में इस न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर-26 के संदर्भ में दृढ़ है। प्रासंगिक गद्यांश निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"26. जब एक घायल चश्मदीद गवाह के साक्ष्य की मूल्यांकन की जानी है, तो न्यायालयों द्वारा प्रतिपादित कम नोट किए गए कानूनी सिद्धांतों को ध्यान में रखना आवश्यक है:

(ए) घटना के समय और स्थान पर एक घायल चश्मदीद गवाह की उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है जब तक कि उसके बयान में भौतिक विरोधाभास न हों।

(बी) जब तक, यह अन्यथा साक्ष्य द्वारा स्थापित नहीं किया जाता है, तब तक यह विश्वास किया जाना चाहिए कि एक घायल गवाह वास्तविक दोषियों को भागने और अभियुक्त को झूठा फंसाने की अनुमति नहीं देगा।

(ग) घायल गवाह के साक्ष्य का अधिक साक्ष्य मूल्य होता है और जब तक बाध्यकारी कारण मौजूद न हों, उनके बयानों को हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए।

(घ) घायल गवाह के साक्ष्य पर प्राकृतिक आचरण में कुछ अलंकरण या मामूली विरोधाभासों के कारण संदेह नहीं किया जा सकता है।

(ई) यदि किसी घायल गवाह के साक्ष्य में कोई अतिशयोक्ति या सारहीन अलंकरण है, तो इस तरह के विरोधाभास, अतिशयोक्ति या अलंकरण को घायल के साक्ष्य से खारिज कर दिया जाना चाहिए, लेकिन पूरे साक्ष्य को नहीं।

(च) अभियोजन पक्ष के संस्करण के व्यापक आधार को ध्यान में रखा जाना चाहिए और समय बीतने के साथ स्मृति के नुकसान के कारण सामान्य रूप से उत्पन्न होने वाली विसंगतियों को छोड़ दिया जाना चाहिए।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नरेश और अन्य, 2011 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 450** के मामले के प्रस्तर-27 में निम्नानुसार टिप्पणी की: -

"27. एक घायल गवाह के साक्ष्य को मुहर लगे गवाह होने के नाते उचित महत्व दिया जाना चाहिए, राज्य बनाम दया चंद प्राथमिकी संख्या-299/10 पीएस नरेला पृष्ठ संख्या-10 वर्ष 16 इस प्रकार, उसकी उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है। उनके बयान को आम तौर पर बहुत विश्वसनीय माना जाता है और यह संभावना नहीं है कि उन्होंने किसी और को झूठा फंसाने के लिए वास्तविक हमलावर को बख्शा हो। एक घायल गवाह की गवाही की अपनी प्रासंगिकता और प्रभावकारिता होती है क्योंकि उसे घटना के समय और स्थान पर चोटें लगी होती हैं और यह उसकी गवाही को समर्थन देता है कि वह घटना के दौरान मौजूद था। इस प्रकार,

अनुवादित

एक घायल गवाह की गवाही को कानून में एक विशेष दर्जा दिया जाता है। गवाह अपने वास्तविक हमलावर को केवल अपराध के कमीशन के लिए किसी तीसरे व्यक्ति को झूठा फंसाने के लिए बिना सजा दिए नहीं जाने देना चाहेगा। इस प्रकार, घायल गवाह के साक्ष्य पर तब तक भरोसा किया जाना चाहिए जब तक कि प्रमुख विरोधाभासों सीआरएल के आधार पर उसके साक्ष्य को अस्वीकार करने का आधार न हो। (जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य, एम बलराजे बनाम महाराष्ट्र राज्य और अब्दुल सईद बनाम मध्य प्रदेश राज्य)

18. महावीर सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या-1141 वर्ष 2007 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर-18 में निम्नानुसार टिप्पणी की है: -

"18. उच्च न्यायालय ने उक्त माधो सिंह (अ०सा०-9) के साक्ष्य को बहुत अधिक महत्व दिया है क्योंकि वह एक स्वतंत्र गवाह है। अभिलेखों के अवलोकन पर, ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त व्यक्ति पहले ही कई मौकों पर पीड़ित परिवार के लिए गवाही दे चुका था, वह भी उसी आरोपी के खिलाफ। यह तथ्य होने के नाते, हितबद्ध गवाह पर न्यायशास्त्र का विश्लेषण करना महत्वपूर्ण है। यह एक स्थापित सिद्धांत है कि हितबद्ध गवाह के साक्ष्य की अत्यंत सावधानी से जांच करने की आवश्यकता है। इस पर केवल तभी भरोसा किया जा सकता है जब साक्ष्य में सच्चाई की रमक हो, ठोस, विश्वसनीय और भरोसेमंद हो। यहां हम संयोग गवाह का भी उल्लेख कर सकते हैं। यह देखा जाना चाहिए कि यद्यपि एक मौका गवाह का सबूत भारत में स्वीकार्य है, फिर भी मौका गवाह को उस विशेष बिंदु पर उपस्थिति को यथोचित रूप से समझाना होगा, खासकर जब उसके बयान को दागी के रूप में हमला किया जा रहा हो।

19. विनोद जसवंतराय व्यास (मृत) बनाम गुजरात राज्य, आपराधिक अपील संख्या-2038 वर्ष 2017 के माध्यम से, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर-44 और 45 में निम्नानुसार अवलोकन किया: -

"44. हम इस प्रस्ताव के प्रति सचेत हैं कि जहां मेडिकल ज्यूरिस्ट की राय और ओकुलर गवाही के बीच विरोधाभास हैं, आम तौर पर, प्रत्यक्षदर्शियों के साक्ष्य को वरीयता दी जानी चाहिए। हालांकि, जहां विरोधाभास इतना प्रमुख है कि यह उन चश्मदीद गवाहों के संस्करण को पूरी तरह से ध्वस्त कर देता है जो रुचि रखते हैं और पक्षपातपूर्ण हैं, ऐसे मामलों में, न्यायालय को चिकित्सा विशेषज्ञ की ठोस राय को नजरअंदाज करते हुए चश्मदीद गवाह के साक्ष्य को स्वीकार करने में सावधानी बरतनी चाहिए।

45. भजन सिंह उर्फ हरभजन सिंह और अन्य बनाम हरियाणा राज्य के मामले में इस न्यायालय के फैसले से हमारा विचार मजबूत होता है जिसमें यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था: -

"38. इस प्रकार, चिकित्सा और चश्मदीद गवाही के बीच विरोधाभास के ऐसे मामले में कानून की स्थिति को 8 (2011) 7 एस.सी.सी. 421 प्रभाव के लिए क्रिस्टलीकृत किया जा सकता है कि हालांकि एक गवाह की ओकुलर गवाही का चिकित्सा साक्ष्य की तुलना में अधिक साक्ष्य मूल्य है, जब चिकित्सा साक्ष्य नेत्र गवाही को असंभव

बनाता है, जो साक्ष्य के मूल्यांकन की प्रक्रिया में एक प्रासंगिक कारक बन जाता है। हालांकि, जहां चिकित्सा साक्ष्य इतनी दूर तक जाते हैं कि यह चश्मदीद गवाही के सच होने की सभी संभावनाओं को पूरी तरह से खारिज कर देता है, चश्मदीद गवाही पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। (महत्त्व सन्निविष्ट)

20. माना जाता है कि अभियोजन पक्ष और अभियुक्त पक्ष के बीच संबंध पक्षद्रोही थे क्योंकि यह अभियुक्त पक्ष द्वारा अभियोजन पक्ष के खिलाफ धारा 307 भ०द०वि० के तहत दर्ज पिछले आपराधिक मामले के कारण प्राथमिकी के संस्करण से स्पष्ट है।

21. यह अच्छी तरह से तय है कि पक्षद्रोही गवाह की गवाही की मूल्यांकन करते समय बारीकी से जांच की आवश्यकता है। यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले **राजू उर्फ बालचंद्रन और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य, (2012) 12 एस.सी.सी. 701** के प्रस्तर-33 से 38 में अवधारित किया गया है, जो निम्नानुसार है: -

"33. फिलहाल, हम गवाहों की चार श्रेणियों से चिंतित हैं: सिया राम और अन्य बनाम राज्य 793 - एक तीसरा पक्ष उदासीन और असंबंधित गवाह (जैसे कि एक दर्शक या राहगीर); एक तीसरे पक्ष के हितबद्ध गवाह (जैसे कि एक जाल गवाह); एक संबंधित और इसलिए एक हितबद्ध गवाह (जैसे पीड़ित की पत्नी) को यह देखने में रुचि है कि आरोपी को दंडित किया जाता है; एक संबंधित और इसलिए एक हितबद्ध गवाह (जैसे पीड़ित की पत्नी या भाई) अभियुक्त को दंडित होते हुए देखने में रुचि रखता है और आरोपी के साथ कुछ दुश्मनी भी रखता है। लेकिन, एक गवाह के वर्गीकरण से अधिक, मुद्दा वास्तव में एक गवाह के साक्ष्य की मूल्यांकन का है। एक अदालत को एक संबंधित और हितबद्ध गवाह के साक्ष्य की जांच करनी चाहिए, जो अभियुक्त को दंडित होते देखने में रुचि रखता है और तीसरे पक्ष के उदासीन और असंबंधित गवाह के साक्ष्य की तुलना में अधिक सावधानी और सतर्कता के साथ आरोपी के साथ कुछ दुश्मनी रखता है। यह सब अपेक्षित और आवश्यक है।

34. प्रस्तुत मामले में, अ०सा०-5 श्रीनिवासन न केवल एक संबंधित और हितबद्ध गवाह है, बल्कि अपीलकर्ताओं के साथ दुश्मनी रखने वाला व्यक्ति भी है। इसलिए, उनके साक्ष्य की बहुत सावधानी और सतर्कता के साथ जांच करने की आवश्यकता है।

35. **दलीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, 1954 एस.सी.आर 145** की मामले में इस न्यायालय ने बिना किसी सामान्यीकरण के कहा कि एक संबंधित गवाह आमतौर पर सच बोलेगा, लेकिन दुश्मनी के मामले में एक निर्दोष व्यक्ति को एक आरोपी के रूप में घसीटने की प्रवृत्ति हो सकती है - प्रत्येक मामले पर अपने स्वयं के तथ्यों पर विचार किया जाना चाहिए। इस न्यायालय का यही कहना था:

"एक गवाह को आम तौर पर स्वतंत्र माना जाता है जब तक कि वह उन स्रोतों से उत्पन्न नहीं होता है जिनके दागी होने की संभावना होती है और आमतौर पर इसका मतलब होता है जब तक कि गवाह के पास आरोपी के

खिलाफ दुश्मनी जैसे कारण न हों, उसे झूठा फंसाने की इच्छा हो। आम तौर पर, एक करीबी रिश्तेदार असली अपराधी को पकड़ने और एक निर्दोष व्यक्ति को झूठा फंसाने वाला आखिरी होता है। यह सच है, जब भावनाएं ऊंची होती हैं और दुश्मनी का व्यक्तिगत कारण होता है, तो एक निर्दोष व्यक्ति को घसीटने की प्रवृत्ति होती है, जिसके खिलाफ एक गवाह को दोषियों के साथ द्वेष होता है, लेकिन इस तरह की आलोचना के लिए नींव रखी जानी चाहिए और रिश्ते का तथ्य नींव होने से दूर अक्सर सच्चाई की एक निश्चित गारंटी होती है। हालांकि, हम किसी व्यापक सामान्यीकरण का प्रयास नहीं कर रहे हैं। प्रत्येक मामले को उसके अपने तथ्यों के आधार पर आंका जाना चाहिए। हमारी टिप्पणियां केवल उस चीज़ का मुकाबला करने के लिए की जाती हैं जो अक्सर हमारे सामने मामलों में विवेक के सामान्य नियम के रूप में सामने रखी जाती हैं। ऐसा कोई सामान्य नियम नहीं है। प्रत्येक मामला अपने स्वयं के तथ्यों तक सीमित होना चाहिए और नियंत्रित होना चाहिए।

36. ऐसे गवाह के साक्ष्य को कैसे देखा जाना चाहिए, इस पर **दरिया सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1964) 3 एस.सी.आर 397** में फिर से विचार किया गया था। इस न्यायालय की राय थी कि एक संबंधित या हितबद्ध गवाह हमलावर के प्रति पक्षद्रोही नहीं हो सकता है, लेकिन यदि वह है, तो उसके साक्ष्य की बहुत सावधानी से जांच की जानी चाहिए और सभी कमजोरियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। यह देखा गया कि जहां गवाह हमलावर के खिलाफ पीड़ित की शत्रुता साझा करता है, यह संभावना नहीं होगी कि वह वास्तविक हमलावर का नाम नहीं लेगा, बल्कि वास्तविक हमलावर को पीड़ित के "दुश्मन" के साथ बदल देगा। इस न्यायालय ने यही कहा:

'इसमें कोई संदेह नहीं है कि हत्या के मामले में जब पीड़ित के करीबी रिश्तेदारों द्वारा सबूत दिए जाते हैं और हत्या पर परिवार के दुश्मन द्वारा हत्या की जाती है, तो आपराधिक अदालतों को पीड़ित के रिश्तेदारों की तरह हितबद्ध गवाहों के सबूतों की बहुत सावधानी से जांच करनी चाहिए। लेकिन एक व्यक्ति पीड़ित में रुचि ले सकता है, उसका रिश्तेदार या अन्यथा होने के नाते, और जरूरी नहीं कि वह आरोपी के प्रति पक्षद्रोही हो। उस मामले में, तथ्य यह है कि गवाह पीड़ित से संबंधित था या उसका दोस्त था, जरूरी नहीं कि उसके साक्ष्य में कोई दुर्बलता हो। लेकिन जहां गवाह पीड़ित का करीबी रिश्तेदार है और उसे अपने हमलावर के प्रति पीड़ित की शत्रुता को साझा करने के लिए दिखाया गया है, तो स्वाभाविक रूप से आपराधिक अदालतों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे ऐसे गवाह द्वारा दिए गए सबूतों की बहुत सावधानी से जांच करें और उस पर कार्रवाई करने का निर्णय लेने से पहले उस साक्ष्य में सभी कमजोरियों की जांच करें..... [I]यह याद रखना प्रासंगिक हो सकता है कि यद्यपि गवाह हमलावर के प्रति पक्षद्रोही है, लेकिन यह संभावना नहीं है कि वह जानबूझकर वास्तविक हमलावर का नाम लेना छोड़ देगा और उसके स्थान पर द्वेष से परिवार के दुश्मन का नाम बदल देगा। पीड़ित को दंडित करने की इच्छा उसके मन में इतनी शक्तिशाली होगी कि वह बिना किसी हिचकिचाहट के असली हमलावर का नाम लेगा और उसके स्थान पर परिवार के दुश्मन को प्रतिस्थापित करने के बारे में नहीं सोचेगा, हालांकि वह हमले से चिंतित नहीं था। यह असंभव नहीं है कि गवाही देने में, ऐसा गवाह वास्तविक हमलावर का नाम ले सकता है और द्वेष और दुश्मनी के कारण अन्य व्यक्तियों को जोड़ सकता है और यह एक ऐसा कारक है जिसे हितबद्ध गवाहों के साक्ष्य की मूल्यांकन करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए।

हालांकि, सिद्धांत रूप में, इस दलील को स्वीकार करना मुश्किल है कि यदि किसी गवाह को मृतक का रिश्तेदार दिखाया जाता है और यह भी दिखाया जाता है कि उसने हमलावर के प्रति पीड़ित की शत्रुता साझा की है, तो उसके साक्ष्य को तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक कि भौतिक विवरण पर इसकी पुष्टि न की जाए।

37. हाल ही में, **वामन बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2011) 7 एस.सी.सी. 295** में इस न्यायालय ने एक संबंधित गवाह के मामले को निपटाया (हालांकि हमलावर के विरोधी गवाह नहीं) और सरवन सिंह बनाम सरवन सिंह का उल्लेख करते हुए और उस पर भरोसा करते हुए **पंजाब राज्य, (1976) 4 एस.सी.सी. 369, बलराजे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 6 एस.सी.सी. 673, प्रहलाद पटेल बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010)6 एस.सी.सी. 673। मध्य प्रदेश राज्य, (2011)4 एस.सी.सी. 262, इसरार बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2011)4 एस.सी.सी. 262। उत्तर प्रदेश राज्य, (2005) 9 एस.सी.सी. 616, एस. सुदर्शन रेड्डी बनाम एस. आन्ध्र प्रदेश राज्य, (2006) 10 एस.सी.सी. 163, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य। नरेश, (2011)4 एस.सी.सी. 324, जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2009)9 एस.सी.सी. 719 और विष्णु बनाम विष्णु के मामले में मामला दर्ज किया गया है। राजस्थान राज्य, (2009)10 एस.सी.सी. 477** में यह अवधारित किया गया था:

"यह स्पष्ट है कि केवल इसलिए कि गवाह शिकायतकर्ता या मृतक से संबंधित हैं, उनके साक्ष्य को बाहर नहीं फेंका जा सकता है। यदि उनके साक्ष्य सुसंगत और सत्य पाए जाते हैं, तो रिश्तेदार होने का तथ्य अपने आप में उनके साक्ष्य को बदनाम नहीं कर सकता है। दूसरे शब्दों में, रिश्ते एक गवाह की विश्वसनीयता को प्रभावित करने के लिए एक कारक नहीं है और अदालतों को थोड़ी सावधानी के साथ उनके सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच करनी होती है।

38. सार यह है कि संबंधित या हितबद्ध गवाह के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए। ऐसे मामले में जहां संबंधित और हितबद्ध गवाह की हमलावर के साथ कुछ दुश्मनी हो सकती है, बार को बढ़ाने की आवश्यकता होगी और गवाह के साक्ष्य की जांच विवेकपूर्ण जांच के मानक को लागू करके की जानी होगी। हालाँकि, यह केवल विवेक का नियम है और कानून का एक नियम नहीं है, जैसा कि दलीप सिंह में अवधारित किया गया है और सरवन सिंह में निम्नलिखित शब्दों में दोहराया गया है:

"एक हितबद्ध गवाह के साक्ष्य में किसी भी दुर्बलता का सामना नहीं किया जाता है, लेकिन अदालतों को विवेक के नियम के रूप में आवश्यकता होती है, न कि कानून के शासन के रूप में, कि ऐसे गवाहों के साक्ष्य की थोड़ी सावधानी से जांच की जानी चाहिए। एक बार जब वह दृष्टिकोण बन जाता है और अदालत संतुष्ट हो जाती है कि हितबद्ध गवाहों के साक्ष्य में सच्चाई का एक रमक है, ऐसे सबूतों पर बिना पुष्टि के भी भरोसा किया जा सकता है।

22. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **हरियाणा राज्य बनाम मो. यूनुस और अन्य, (2024) 3 एस.सी.सी. 180** में निम्नानुसार अवधारित किया गया जो इस प्रकार है: -

"18. हालांकि, अपीलकर्ता - मो. जमील (ए2) और अख्तर हुसैन (ए4) पर अलग-अलग मुकदमा चलाया गया और गवाहों के बयान दो बार दर्ज किए गए, पहला, तीन आरोपियों (मो. यूनुस (ए1), मो. जमील (ए2) और घसिता (ए3)) और दूसरा, अख्तर हुसैन (ए4) के खिलाफ मुकदमे में, तथ्य यह है कि अभियोजन पक्ष के दोनों स्टार गवाह अर्थात् दीनू (अ०सा०-7) और अहमद (अ०सा०-8) को दूसरे मुकदमे में यह स्पष्ट रूप से कहते हुए अविश्वास किया जाता है कि उनके बयान विरोधाभासी हैं, तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर पेश किया गया है और सुधार किए गए हैं। धारा 302 भ०द०वि० के तहत मुकदमे के लिए, यदि किसी गवाह को कथित रूप से तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर पेश करने और विपरीत बयान देने के लिए अविश्वसनीय करार दिया जाता है, तो ऐसे गवाह द्वारा दिए गए बयान के आधार पर दोषसिद्धि करना सुरक्षित नहीं है। जब एक आरोपी व्यक्ति को झूठा फंसाने का प्रयास किया जाता है, तो ऐसे चश्मदीद गवाह द्वारा दिए गए बयान पर मजबूत पुष्टि के बिना भरोसा नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा, पक्षगण के बीच पिछली दुश्मनी साबित करने वाली सामग्री अभिलेखों पर है जैसा कि विचारण न्यायालय के फैसले के प्रस्तर-25 में उल्लेख किया गया है।

23. उपरोक्त की पृष्ठभूमि में, इस अदालत को अभियोजन पक्ष के गवाह के साक्ष्य की मूल्यांकन करनी होगी।

24. अ०सा०-1 चेत राम, जो मामले का सूचनाकर्ता है, ने अपनी मुख्य परीक्षण में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है और कहा है कि अपीलकर्ता सुक्खी (सुख राम) कांता से लैस था और अन्य आरोपी लाठी-लाठियां से लैस थे, घटनास्थल पर इकट्ठे हुए थे और वे श्याम लाल को पीट रहे थे। सुनने पर लाल सिंह और नाथू घटनास्थल पर पहुंचे।

25. यह गवाह एक घायल गवाह है। यह गवाह घटना के अपने वर्णन के संबंध में जिरह में सुसंगत है। बचाव पक्ष इस गवाह की जिरह से कोई ठोस विरोधाभास नहीं निकाल पाया है।

26. इसी तरह, अ०सा०-2 पुन्नी जो घायल गवाह भी है, ने अपनी परीक्षा में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। जिरह में कुछ सुधार हुए हैं लेकिन वे इस तरह के नहीं हैं कि इस गवाह की विश्वसनीयता को कम किया जा सके।

27. अ०सा०-3 डॉ. एम.एल. वर्मा ने गवाहों की चोटों की मेडिकल जांच की है। उन्होंने प्रत्येक गवाह की चोट की रिपोर्ट तैयार की जो प्रदर्श क-1, प्रदर्श क-2, प्रदर्श क-3, प्रदर्श क-4 और प्रदर्श क-हैं। 5.

28. इसी तरह, अ०सा०-5 दल सिंह, जिसे स्वतंत्र गवाह कहा जाता है, ने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि वह और उसका भाई लाल सिंह नत्थू पंडित के खेत से आलू खरीदने गए थे और उन्होंने इस घटना को देखा।

जिरह में इस गवाह ने कहा है कि उसके भाई विजय सिंह की बेटी की शादी तीन सप्ताह बाद होने वाली थी और शादी के उद्देश्य से वह आलू खरीदने गया था।

29. यह बेहद असंभव और अविश्वसनीय है कि एक गांव में रहने वाला व्यक्ति तीन सप्ताह बाद निर्धारित विवाह समारोह के लिए आलू खरीदने जाएगा।

30. आगे इस गवाह ने अपनी जिरह में कहा है कि उसने घटना के संबंध में विवेचनाधिकारी को कुछ गलत बयान दिया था। इस गवाह ने विवेचनाधिकारी के समक्ष दिए गए अपने पहले के बयान में विचारण न्यायालय के समक्ष अपने बयान में कुछ महत्वपूर्ण सुधार किया है। घटनास्थल पर इस गवाह की उपस्थिति संदिग्ध है, इसलिए, अभियोजन पक्ष इस गवाह के साक्ष्य का लाभ नहीं उठा सकता है।

31. अ०सा०-6 डॉ. एस.पी. गुप्ता, जिन्होंने मृतक श्याम लाल का शव परीक्षण किया और शव परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श क-15 तैयार की, जिसके अनुसार मृतक श्याम लाल को दस चोटें आई हैं, जिनमें से चोट संख्या-1 और 7 महत्वपूर्ण भाग पर हैं और अन्य चोटें गैर-महत्वपूर्ण हिस्से पर हैं। मृतक को लगी चोटें इस प्रकार हैं:-

A. सिर के बाईं ओर 1 सेमी मीटर 0.5 सेमी ऊपर 10 सेमी सिर के बाईं ओर एक क्षेत्र में चोट के साथ घाव 14 सेमी x 13 सेमी सिर के बाईं ओर वर्ष 14 सेमी x 13 सेमी। विच्छेदन पर खून का थक्का जमने वाला था।

1. ललाट हड्डी के लाइनर फ्रैक्चर के साथ बाईं पार्श्विका हड्डी का दबी हुई फ्रैक्चर था। B. सामने के पहलू पर नाक के मध्य भाग पर 1.5 सेमी x 1 सेमी का घर्षण संलयन। C. एक क्षेत्र में संलयन YEAR 13 cm x 14 cm बाईं ओर पृष्ठीय पर। D. छोटी उंगली दाहिने हाथ के मध्य फेलिंक्स के पार्श्व पहलू पर 1.5 सेमी x 0.5 सेमी का घाव होता है। भोबिंक्स के तहत मौजूद फ्रैक्चर। E. अनामिका के दाईं ओर के जोड़ पर 1 सेमी x 0.5 सेमी का घर्षण संलयन। F. छाती के बाईं ओर के पीछे 8 सेमी x 1.5 सेमी स्कैपुलर कोण से 2 सेमी नीचे रखा गया संलयन। G. चोट संख्या-6 से 8 सेमी नीचे छाती के बाईं ओर बाईं ओर 11 सेमी x 2 सेमी की दूरी पर संलयन 11 सेमी x 2 सेमी है। H. बाएं छाती के पीछे की ओर 11 सेमी x 2 सेमी की चोट। I. एक क्षेत्र में एकाधिक संलयन वर्ष 18 सेमी x 7 सेमी बाईं ओर के पेट के पीछे पर। J. बाएं हाथ के पार्श्व पहलू पर बाएं कंधे से 4 सेमी नीचे 5 सेमी x 1.5 सेमी। खोलने पर मांसपेशियों में रक्त का थक्का था।

32. अ०सा०-7 हरीश चंद्र उप निरीक्षक और अ०सा०-8 ओम प्रकाश सिंह मामले के विवेचनाधिकारी हैं। अ०सा०-4 माणक सिंह पंचनामा का गवाह है।

33. मृतक श्याम लाल को चोट पहुंचाने के लिए सोलह व्यक्तियों पर आरोप लगाया गया है। अभियोजन पक्ष यह साबित नहीं कर पाया है कि घातक वाद किसने लगा। इसके अलावा, चोट संख्या-1 को छोड़कर, जो सिर

पर घाव है और चोट संख्या-7 जो सिर पर चोट है, महत्वपूर्ण भागों पर कोई अन्य चोट नहीं है। घटना मौके पर ही हुई।

34. धारा 300 भ०द०वि० का अपवाद 4 निम्नानुसार है: -

"अपवाद 4–गैर इरादतन हत्या हत्या नहीं है यदि यह अचानक झगड़े पर क्षणिक आवेग में अचानक लड़ाई में बिना किसी पूर्व विचार के किया जाता है और अपराधी द्वारा अनुचित लाभ उठाए बिना या क्रूर या असामान्य तरीके से कार्य किए बिना किया जाता है।

35. अभिलेखों पर मौजूद साक्ष्यों की मूल्यांकन से यह पाया गया है कि सभी पांच घायलों को लगी चोट प्रकृति में साधारण है, जबकि मृतक श्याम लाल के सिर पर केवल एक घाव और एक चोट पाई गई है। आरोपी सुखराम को छोड़कर सभी आरोपी लाठी-लाठी-लत्ता से लैस थे और सुखराम कांता से लैस थे। मृतक के व्यक्ति पर केवल एक कटा हुआ घाव है जो महत्वपूर्ण भाग पर नहीं है, इसलिए, अभियोजन पक्ष सफलतापूर्वक यह साबित करने में सक्षम नहीं है कि अभियुक्त का कार्य पूर्व नियोजित था और आरोपी ने अनुचित लाभ उठाया था। यह घटना अचानक हुई लड़ाई के कारण हुई, इसलिए अभियोजन पक्ष यह साबित नहीं कर पाया है कि आरोपी द्वारा किया गया अपराध भ०द०वि० की धारा 302 के तहत आता है।

36. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **महेश बाल्मीकि उर्फ मुन्ना बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2000)1 एस.सी.सी. 319** के फैसले के प्रस्तर-9 में निम्नानुसार निर्णय दिया: -

"9. एक झटके के तर्क का समर्थन करते हुए, यह बताया जा सकता है कि ऐसा कोई सिद्धांत नहीं है कि एकल वाद के सभी मामलों में धारा 302 भ०द०वि० लागू नहीं होती है। एक बार भी कुछ मामलों में भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत, कुछ मामलों में भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के तहत और कुछ अन्य मामलों में भारतीय दंड संहिता की धारा 326 के तहत दोषसिद्धि हो सकती है। अपराध की प्रकृति के संबंध में प्रश्न प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में निर्धारित किया जाना चाहिए। चोट की प्रकृति, चाहे वह शरीर के महत्वपूर्ण या गैर-महत्वपूर्ण हिस्से पर हो, इस्तेमाल किया गया हथियार, जिन परिस्थितियों में चोट लगी है और जिस तरह से चोट लगी है, वे सभी प्रासंगिक कारक हैं जो अपराधी के आवश्यक इरादे या ज्ञान और उसके द्वारा किए गए अपराध को निर्धारित करने के लिए जा सकते हैं। इस मामले में, मृतक को खुद को बचाने से अक्षम कर दिया गया था क्योंकि उसे अपीलकर्ता के सहयोगियों द्वारा पकड़ा गया था, जिन्होंने ऊपर बताए गए विवरण का एक भी लेकिन घातक वाद दिया था। ये तथ्य स्पष्ट रूप से स्थापित करते हैं कि अपीलकर्ता का इरादा मृतक को मारने का था। किसी भी घटना में, उसे सुरक्षित रूप से इस ज्ञान के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है कि उसके द्वारा दिया गया चाकू का वाद इतना खतरनाक है कि यह सभी संभावना में मृत्यु या ऐसी शारीरिक चोट का कारण बनना चाहिए जिससे मृत्यु होने की संभावना है।

37. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **स्टालिन बनाम राज्य पुलिस निरीक्षक द्वारा (2020)9 एस.सी.सी. 524**, के निर्णय के प्रस्तर-7 में निम्नानुसार अवधारित किया गया: -

"7. संबंधित पक्षों की ओर से लंबे समय से अधिवक्ता सुने। जैसा कि यहां ऊपर देखा गया है, प्रस्तुत अपील में विचार करने के लिए केवल एक ही पहलू पर विचार किया जाना आवश्यक है कि क्या अपीलकर्ता - आरोपी ने धारा 302 भ०द०वि० या किसी अन्य कम अपराध, विशेष रूप से, धारा 304 भाग II भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध किया है?

7.1 अपीलकर्ता - आरोपी की ओर से यह मामला है कि चूंकि यह एकल चोट का मामला है, इसलिए भ०द०वि० की धारा 302 को आकर्षित नहीं किया जाएगा और मामला धारा 304 भ०द०वि० भाग II के तहत आएगा। उपरोक्त सबमिशन पर विचार करते समय, इस न्यायालय के कुछ निर्णयों को संदर्भित करने की आवश्यकता है कि क्या एकल चोट के मामले में, धारा 302 भ०द०वि० आकर्षित होगी या नहीं:

*7.1.1 **महेश बाल्मीकि बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2000) 1 एस.सी.सी. 319**, में इस न्यायालय ने इस सवाल का फैसला करते हुए कि क्या मृतक की छाती पर चाकू से एक भी वार धारा 302 भ०द०वि० को आकर्षित करेगा, इस प्रकार अवधारित किया गया: (एस.सी.सी. पीपी 32223, प्रस्तर-9)*

"9. ... ऐसा कोई सिद्धांत नहीं है कि एक ही वाद के सभी मामलों में धारा 302 भ०द०वि० लागू नहीं होती है। कुछ मामलों में भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत, कुछ मामलों में भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के तहत और कुछ अन्य मामलों में भ०द०वि० की धारा 326 के तहत दोषसिद्धि हो सकती है। अपराध की प्रकृति के संबंध में प्रश्न प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में निर्धारित किया जाना चाहिए। चोट की प्रकृति, चाहे वह शरीर के महत्वपूर्ण या गैर-महत्वपूर्ण हिस्से पर हो, इस्तेमाल किया गया हथियार, जिन परिस्थितियों में चोट लगी है और जिस तरह से चोट लगी है, वे सभी प्रासंगिक कारक हैं जो अपराधी के आवश्यक इरादे या ज्ञान और उसके द्वारा किए गए अपराध को निर्धारित करने के लिए जा सकते हैं। इस मामले में, मृतक को खुद को बचाने से अक्षम कर दिया गया था क्योंकि उसे अपीलकर्ता के सहयोगियों द्वारा पकड़ा गया था, जिन्होंने ऊपर बताए गए विवरण का एक भी लेकिन घातक वाद दिया था। ये तथ्य स्पष्ट रूप से स्थापित करते हैं कि अपीलकर्ता का इरादा मृतक को मारने का था। किसी भी घटना में, उसे सुरक्षित रूप से इस ज्ञान के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है कि उसके द्वारा दिया गया चाकू का प्रहार इतना खतरनाक था कि यह सभी संभावना में मृत्यु या ऐसी शारीरिक चोट का कारण बनना चाहिए जो मृत्यु का कारण बन सकती है।

*7.1.2 **धीरज भाई गोरखभाई नायक बनाम गुजरात राज्य (2003) 9 एस.सी.सी. 322**, में इस न्यायालय ने धारा 300 भ०द०वि० के अपवाद 4 के अवयवों पर चर्चा करते हुए इस प्रकार अवधारित किया: (एस.सी.सी. पीपी.32728, प्रस्तर-11)*

"11. धारा 300 भ०द०वि० का चौथा अपवाद अचानक लड़ाई में किए गए कृत्यों को आच्छादित करता है। उक्त अपवाद अभियोजन (एसआईसी) के मामले से संबंधित है जो पहले अपवाद द्वारा आच्छादित नहीं किया गया है, जिसके बाद इसका स्थान अधिक उपयुक्त होगा। अपवाद एक ही सिद्धांत पर आधारित है, क्योंकि दोनों में पूर्वचिंतन का अभाव है। लेकिन, जबकि अपवाद 1 के मामले में आत्मनियंत्रण से पूरी तरह वंचित है, अपवाद 4 के मामले में, केवल जुनून की वह गर्मी है जो पुरुषों के शांत विवेक को धुंधला कर देती है और उन्हें उन कार्यों के लिए प्रेरित करती है जो वे अन्यथा नहीं करते। अपवाद 4 में उकसावे की बात है जैसा कि अपवाद 1 में है, लेकिन की गई चोट उस उकसावे का प्रत्यक्ष परिणाम नहीं है। वास्तव में, अपवाद 4 उन मामलों से संबंधित है जिनमें इस बात के बावजूद कि एक वाद मारा गया हो, या विवाद के मूल में कुछ उकसावे दिए गए हों या जिस भी तरह से झगड़ा उत्पन्न हुआ हो, फिर भी दोनों पक्षों का बाद का आचरण उन्हें अपराध के संबंध में एक समान स्तर पर रखता है। "अचानक लड़ाई" का अर्थ है आपसी उकसावे और प्रत्येक पक्ष पर प्रहार। तब की गई हत्या स्पष्ट रूप से एकतरफा उकसावे का पता नहीं लगाया जा सकता है, न ही ऐसे मामलों में पूरा दोष एक तरफ रखा जा सकता है। यदि ऐसा होता, तो अधिक उचित रूप से लागू होने वाला अपवाद अपवाद 1 होता। लड़ने के लिए कोई पूर्व विचार-विमर्श या दृढ़ संकल्प नहीं है। अचानक एक लड़ाई होती है, जिसके लिए कमोबेश दोनों पक्षों को दोषी ठहराया जाता है। हो सकता है कि उनमें से एक ने इसे शुरू किया हो, लेकिन अगर दूसरे ने इसे अपने आचरण से नहीं बढ़ाया होता तो यह वह गंभीर मोड़ नहीं लेता जो उसने किया था। फिर आपसी उकसावे और उत्तेजना होती है, और प्रत्येक सेनानी को दोष देने वाले हिस्से को विभाजित करना मुश्किल होता है। यदि मृत्यु हो जाती है तो अपवाद 4 की मदद ली जा सकती है

(ए) पूर्व-चिंतन के बिना,

(बी) अचानक लड़ाई में,

(ग) अपराधियों द्वारा अनुचित लाभ उठाए बिना या क्रूर या असामान्य तरीके से कार्य किए बिना, और

(घ) लड़ाई मारे गए व्यक्ति के साथ होनी चाहिए। अपवाद के भीतर एक मामला लाने के लिए 4 सभी 5 सभी। सिया राम और अन्य बनाम राज्य 799 सामग्री में उल्लिखित सामग्री का पता लगाया जाना चाहिए। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि धारा 300 भ०द०वि० के अपवाद 4 में होने वाली "लड़ाई" को भ०द०वि० में परिभाषित नहीं किया गया है। लड़ाई करने में दो लगते हैं। क्षणिक आवेग के लिए आवश्यक है कि जुनून को ठंडा करने का समय नहीं होना चाहिए और इस मामले में, पक्षगण ने शुरुआत में मौखिक विवाद के कारण खुद को रोष में डाल दिया था। एक लड़ाई दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच एक लड़ाई है चाहे हथियारों के साथ या बिना। किसी भी सामान्य नियम का उच्चारण करना संभव नहीं है कि अचानक झगड़ा क्या माना जाएगा। यह तथ्य का सवाल है और झगड़ा अचानक हुआ या नहीं, यह आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के सिद्ध तथ्यों पर निर्भर होना चाहिए। अपवाद 4 के आवेदन के लिए, यह दिखाने के लिए पर्याप्त नहीं है कि अचानक झगड़ा हुआ था और कोई पूर्वचिंतन नहीं था। यह आगे दिखाया जाना चाहिए कि अपराधी ने अनुचित लाभ नहीं उठाया

अनुवादित

है या क्रूर या असामान्य तरीके से कार्य नहीं किया है। प्रावधान में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "अनुचित लाभ" का अर्थ है "अनुचित लाभ"।

*"7.1.3 **पुलिचेरला नागराजू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2006) 11 एस.सी.सी. 444**, यह न्यायालय यह तय करते हुए कि क्या कोई मामला धारा 302 भ०द०वि० या 304 भाग I या 304 भाग II के तहत आता है, इस प्रकार अवधारित किया गया: (एस.सी.सी. पीपी 45758, प्रस्तर-29):*

"29. इसलिए, अदालत को इरादे के महत्वपूर्ण प्रश्न पर सावधानी और सतर्कता के साथ निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ना चाहिए, क्योंकि इससे यह तय होगा कि मामला धारा 302 या 304 भाग I या 304 भाग II के अंतर्गत आता है या नहीं। कई छोटे-छोटे या महत्वहीन मामले - फल तोड़ना, मवेशियों का भटकना, बच्चों का झगड़ा, अशिष्ट शब्द का उच्चारण या यहां तक कि एक आपत्तिजनक दृष्टि से, झगड़े और समूह संघर्ष का कारण बन सकते हैं और मौतों का कारण बन सकते हैं। ऐसे मामलों में बदला, लालच, ईर्ष्या या संदेह जैसे सामान्य उद्देश्य पूरी तरह से अनुपस्थित हो सकते हैं। कोई इरादा नहीं हो सकता है। कोई पूर्व-चिंतन नहीं हो सकता है। वास्तव में, आपराधिकता भी नहीं हो सकती है। स्पेक्ट्रम के दूसरे छोर पर, हत्या के मामले हो सकते हैं जहां आरोपी हत्या के लिए दंड से बचने का प्रयास करते हैं, एक ऐसा मामला सामने लाने का प्रयास करते हैं कि मौत का कारण बनने का कोई इरादा नहीं था। यह सुनिश्चित करना अदालतों का काम है कि धारा 302 के तहत दंडनीय हत्या के मामलों को धारा 304 भाग I/II के तहत दंडनीय अपराधों में परिवर्तित नहीं किया जाए, या गैर इरादतन हत्या के मामलों को धारा 302 के तहत दंडनीय हत्या के रूप में माना जाए। मृत्यु का कारण बनने का इरादा आम तौर पर निम्नलिखित में से कुछ या कई के संयोजन से एकत्र किया जा सकता है, अन्य परिस्थितियों के बीच:

(i) प्रयुक्त हथियार की प्रकृति;
(ii) क्या हथियार अभियुक्त द्वारा ले जाया गया था या मौके से उठाया गया था;
(iii) क्या वार शरीर के एक महत्वपूर्ण हिस्से पर लक्षित है;
(iv) चोट पहुंचाने में कितना बल लगाया गया है;
(v) क्या यह कार्य अचानक झगड़े या अचानक लड़ाई के दौरान था या सभी लड़ाई के लिए स्वतंत्र था;
(vi) क्या यह घटना संयोग से हुई है या क्या कोई पूर्व विचार किया गया था;
(vii) क्या पूर्व में कोई शत्रुता थी या क्या मृतक अजनबी था;
(viii) क्या कोई गंभीर और अचानक उकसावे की कार्रवाई हुई थी और यदि हां, तो इस प्रकार के उकसावे का क्या कारण है;
(ix) क्या यह क्षणिक आवेग में था;
(x) क्या चोट पहुंचाने वाले व्यक्ति ने अनुचित लाभ उठाया है अथवा उसने क्रूर और असामान्य तरीके से कार्य किया है;

(xi) क्या अभियुक्त ने एक भी वार किया या कई वार किए। परिस्थितियों की उपरोक्त सूची, निश्चित रूप से, संपूर्ण नहीं है और व्यक्तिगत मामलों के संदर्भ में कई अन्य विशेष परिस्थितियां हो सकती हैं जो इरादे के प्रश्न पर प्रकाश डाल सकती हैं। जैसा भी हो।

7.1.4 ***सिंगापुर में अंजैया बनाम आंध्र प्रदेश (2010) 9 एस.सी.सी. 799*** *की स्थिति में, यह न्यायालय इस प्रश्न का निर्णय करते हुए कि क्या मृतक की खोपड़ी पर क्रॉबर से वार करने से धारा 302 भ०द०वि० आकर्षित होगी, इस प्रकार अवधारित किया गया, (एस.सी.सी. पी. 803, प्रस्तर-16): "*

16. हमारी राय में, चूंकि कोई भी आरोपी के दिमाग में प्रवेश नहीं कर सकता है, इसलिए उसका इरादा इस्तेमाल किए गए हथियार, हमले के लिए चुने गए शरीर के हिस्से और चोटों की प्रकृति से इकट्ठा किया जाना चाहिए। यहां, अपीलकर्ता ने अपराध के हथियार के रूप में एक क्रॉबर को चुना था। उन्होंने चोट के कारण शरीर के एक महत्वपूर्ण हिस्से यानी सिर को चुना है, जिसके कारण खोपड़ी के कई फ्रैक्चर हुए थे। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि अपीलकर्ता ने किस बल के साथ हथियार का इस्तेमाल किया था। इन सभी कारकों का संचयी प्रभाव अप्रतिरोध्य रूप से एक और एकमात्र निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि अपीलकर्ता मृतक की मृत्यु का कारण बनना चाहता था।

7.1.5 ***राजस्थान राज्य बनाम कन्हैया लाल (2019) 5 एस.सी.सी. 639*** *में इस न्यायालय ने प्रस्तर-7.3, 7.4 और 7.5 में निम्नानुसार निर्णय दिया:*

"7.3. ***अरुण राज [अरुण राज बनाम भारत संघ, (2010) 6 एस.सी.सी. 457: (2010) 3 एस.सी.सी. (सीआरआई) 155]*** *में इस न्यायालय ने कहा और माना कि कोई निश्चित नियम नहीं है कि जब भी एक भी वाद लगाया जाता है, तो धारा 302 लागू नहीं होगी। इस न्यायालय द्वारा उपरोक्त निर्णय में यह देखा और माना जाता है कि इस्तेमाल किए गए हथियार की प्रकृति और शरीर का महत्वपूर्ण हिस्सा जहां प्रहार किया गया था, उचित संदेह से परे मृतक की मौत का कारण बनने के आरोपी के इरादे को साबित करता है। इस न्यायालय द्वारा आगे यह देखा और माना जाता है कि एक बार जब ये तत्व साबित हो जाते हैं, तो यह अप्रासंगिक है कि क्या एक ही वाद लगा था या कई वार किए गए थे।*

7.4. ***अशोककुमार मगभाई वंकर [अशोककुमार मगभाई वंकर बनाम गुजरात राज्य, (2011)10 एस.सी.सी. 604 :(2012)1 एस.सी.सी. (क्रि) 397]*** *में, मृतक के सिर पर लकड़ी के मूसल से एक वार के कारण मृत्यु हुई थी। यह पाया गया कि आरोपी ने मूसल का इतनी ताकत से इस्तेमाल किया कि मृतक का सिर टुकड़े-टुकड़े हो गया। इस न्यायालय ने इस बात पर विचार किया कि क्या मामला धारा 302 भ०द०वि० या अपवाद 4 के तहत आएगा। इस न्यायालय द्वारा यह माना जाता है कि मृतक द्वारा लगी चोट, न केवल पीड़ित की मृत्यु का कारण बनने में आरोपी के इरादे को प्रदर्शित करती है, बल्कि उस संबंध में अभियुक्त की जानकारी भी दर्शाती है। इस न्यायालय द्वारा आगे यह देखा गया है कि इस तरह का हमला कोई और नहीं बल्कि पीड़ित की मौत*

का कारण बन सकता है। यह देखा गया है कि कोई भी उचित व्यक्ति, कल्पना के किसी भी खिंचाव के साथ इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि शरीर के इतने महत्वपूर्ण हिस्से पर, इस तरह के हथियार के साथ, इस तरह की चोट मृत्यु का कारण बनेगी।

7.5. इसी तरह का दृष्टिकोण इस न्यायालय द्वारा लीला राम (उपरोक्त) में हाल के निर्णय में लिया गया है और इस मुद्दे पर इस न्यायालय के निर्णयों पर विचार करने के बाद यानी एक झटके के मामले में, चाहे मामला धारा 302 या धारा 304 भाग I या धारा 304 भाग II के तहत आता है, इस न्यायालय ने फैसले को उलट दिया और आरोपी को धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया। उसी निर्णय में, इस न्यायालय ने धारा 300 भ०द०वि० के अपवाद 4 पर भी विचार किया और प्रस्तर-21 में निम्नानुसार देखा: (एस.सी.सी. प्रस्तर-21)"

21. अपवाद 4 के तहत, गैर इरादतन हत्या, हत्या नहीं है यदि उस प्रावधान में निहित शर्तों को पूरा किया जाता है। वे हैं:

(i) कि कार्य बिना किसी पूर्व विचार के किया गया था;
(ii) कि अचानक लड़ाई हुई;
(iii) कार्य अचानक झगड़े पर क्षणिक आवेग में होना चाहिए; तथा
(iv) अपराधी को अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहिए था या क्रूर या असामान्य तरीके से कार्य नहीं करना चाहिए था।

"7.1.6 बाविसेट्टी कामेश्वर राव (उपरोक्त) के मामले में, इस न्यायालय ने प्रस्तर-13 और 14 में निम्नानुसार कहा है:

"13. यह देखा गया है कि जहां हत्या के मामले में केवल एक ही चोट होती है, वहां हमेशा 5 सभी को आगे बढ़ाने की प्रवृत्ति होती है। सिया राम और अन्य बनाम राज्य 801 ने तर्क दिया कि अपराध हमेशा धारा 304 भ०द०वि० भाग II के तहत आच्छादित किया जाएगा। अपराध की प्रकृति जहां एक भी चोट है, केवल एक चोट के आधार पर और इस प्रकार यांत्रिक तरीके से तय नहीं किया जा सकता है। अपराध की प्रकृति निश्चित रूप से अन्य परिचर परिस्थितियों पर निर्भर करेगी जो अदालत को अभियुक्त की ओर से इरादे के बारे में निश्चित रूप से पता लगाने में मदद करेगी। ऐसी परिचर परिस्थितियाँ बहुत अधिक हो सकती हैं, वे

(i) क्या यह अधिनियम पूर्व नियोजित था;
(ii) प्रयुक्त हथियार की प्रकृति;
(iii) अभियुक्त पर हमले की प्रकृति। यह निश्चित रूप से एक विस्तृत सूची नहीं है और प्रत्येक मामले को आवश्यक रूप से उपलब्ध सबूतों पर निर्भर करना पड़ता है। जहां तक पेचकश के उपयोगकर्ता का संबंध है,

अनुवादित

अधिवक्ता ने आग्रह किया कि यह केवल इस समय एक आकस्मिक उपयोग था और इसलिए, मृत्यु का कारण बनने या ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने का कोई इरादा नहीं हो सकता है जो मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त हो। केवल इसलिए कि पेचकश अभियुक्त द्वारा अपने व्यवसाय में उपयोग किया जाने वाला एक सामान्य उपकरण था, ऐसा नहीं हो सकता था कि इसका उपयोगकर्ता अहानिकर होगा।

*14. **कर्नाटक राज्य बनाम कर्नाटक राज्य वेदनायगम [(1995) 1 एस.सी.सी. 326: 1995 एस.सी.सी. (सीआरआई) 231]** इस न्यायालय ने धारा 302 भ०द०वि० के तहत दोषसिद्धि को आमंत्रित करने के लिए एक भी चोट के सामान्य तर्क को पर्याप्त नहीं माना। उस मामले में चोट चाकू से लगी थी। चिकित्सा साक्ष्य ने अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन किया कि चोट प्रकृति के सामान्य पाठ्यक्रम में मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थी। उच्च न्यायालय ने आरोपी को धारा 304 भ०द०वि० भाग II के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया था, इस तथ्य पर भरोसा करते हुए कि केवल एक ही चोट है। हालांकि, चोट की प्रकृति के बारे में एक विस्तृत चर्चा के बाद, अभियुक्त द्वारा उसी और अन्य परिचर परिस्थितियों को लागू करने के लिए चुने गए शरीर के हिस्से और धारा 300 भ०द०वि० के खंड तीसरे पर चर्चा करने के बाद और आगे विरसा सिंह बनाम विरसा सिंह बनाम पंजाब राज्य [ए.आई.आर. 1958 एस.सी. 465] , न्यायालय ने भ०द०वि० की धारा 302 के तहत बरी होने को रद्द कर दिया और उस अपराध के लिए आरोपी को दोषी ठहराया। न्यायालय (वेदनायगम मामले [(1995) 1 एस.सी.सी. 326: 1995 एस.सी.सी. (सीआरआई) 231] में, एस.सी.सी. पृष्ठ 330, प्रस्तर-4) ने विरसा सिंह मामले [ए.आई.आर. 1958 एस.सी. 465] में बोस की टिप्पणी पर भरोसा करते हुए यह सुझाव दिया कि: (विरसा सिंह मामला [ए.आई.आर. 1958 एस.सी. 465], ए.आई.आर. पी. 468, प्रस्तर-16)*

"16. ... न्यायाधीश के प्रति उचित सम्मान के साथ उन्होंने चोट की गंभीरता के साथ आवश्यक इरादे को जोड़ा है, और जैसा कि हमने दिखाया है, यह वह नहीं है जिसकी धारा को आवश्यकता है। दोनों मामले काफी अलग और अलग हैं, हालांकि उनके बारे में सबूत कभी-कभी ओवरलैप हो सकते हैं।
उपरोक्त मामले में आगे की टिप्पणी इस प्रकार थी: (विरसा सिंह मामला [ए.आई.आर. 1958 एस.सी. 465], ए.आई.आर. पी. 468, प्रस्तर-16 और 17)

"16. ... सवाल यह नहीं है कि कैदी का इरादा गंभीर चोट या मामूली चोट पहुंचाने का था, बल्कि सवाल यह है कि क्या वह उस चोट को चोट पहुंचाने का इरादा रखता था जो मौजूद साबित हुई है। यदि वह दिखा सकता है कि उसने ऐसा नहीं किया, या यदि परिस्थितियों की समग्रता इस तरह के अनुमान को सही ठहराती है, तो, निश्चित रूप से, धारा के लिए आवश्यक इरादा साबित नहीं होता है। लेकिन अगर चोट और इस तथ्य से परे कुछ नहीं है कि अपीलकर्ता ने इसे लगाया है, तो एकमात्र संभावित अनुमान यह है कि वह इसे देने का इरादा रखता था। क्या वह इसकी गंभीरता के बारे में जानता था, या गंभीर परिणामों का इरादा रखता था, यह न तो यहां है और न ही वहां है। जहां तक इरादे का सवाल है, सवाल यह नहीं है कि क्या वह हत्या करने का इरादा रखता था, या गंभीरता की एक विशेष डिग्री की चोट पहुंचाने का इरादा रखता था, बल्कि यह है कि क्या वह प्रश्न में चोट पहुंचाने का इरादा रखता था; और एक बार चोट का अस्तित्व साबित हो जाने के बाद, इसे पैदा

करने का इरादा तब तक माना जाएगा जब तक कि सबूत या परिस्थितियां विपरीत निष्कर्ष की गारंटी न दें। लेकिन इरादा है या नहीं, यह तथ्य में से एक है, कानून का नहीं है। क्या घाव गंभीर है या अन्यथा, और यदि गंभीर है, तो कितना गंभीर है, यह एक पूरी तरह से अलग और विशिष्ट प्रश्न है और इसका इस सवाल से कोई लेना-देना नहीं है कि क्या कैदी का इरादा प्रश्न में चोट पहुंचाने का था।

17. ... यह सच है कि किसी दिए गए मामले में जांच को चोट की गंभीरता से जोड़ा जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि यह साबित किया जा सकता है, या यदि परिस्थितियों की समग्रता एक निष्कर्ष को सही ठहराती है, कि कैदी का इरादा केवल एक सतही खरोंच था और दुर्घटना से उसका शिकार ठोकर खा गया और इस्तेमाल की गई तलवार या भाले पर गिर गया, तो निश्चित रूप से अपराध हत्या नहीं है। लेकिन ऐसा इसलिए नहीं है क्योंकि कैदी का इरादा उस चोट को उतनी ही गंभीर नहीं था जितना वह देना चाहता था, बल्कि इसलिए कि वह प्रश्न में चोट पहुंचाने का इरादा नहीं रखता था। ऐसे मामले में उसका इरादा पूरी तरह से अलग चोट पहुंचाना होगा। अंतर कानून का नहीं बल्कि तथ्य का है; ..." (महत्व सन्निविष्ट)"

7.2 उपर्युक्त निर्णयों से, यह उभरता है कि कोई कठोर और तेज़ नियम नहीं है कि एकल चोट के मामले में धारा 302 भ०द०वि० लागू नहीं होगी। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। चोट की प्रकृति, शरीर का वह हिस्सा जहां यह होता है, इस तरह की चोट पहुंचाने में इस्तेमाल किया जाने वाला हथियार इस तथ्य के संकेतक हैं कि आरोपी ने मौत का कारण बनने के इरादे से मृतक की मौत की थी या नहीं। यह सार्वभौमिक अनुप्रयोग के नियम के रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि जब भी एक ही वाद के कारण मृत्यु होती है, तो धारा 302 भ०द०वि० को खारिज कर दिया जाता है। प्रत्येक मामले में तथ्य की स्थिति पर विचार किया जाना चाहिए, विशेष रूप से, ऊपर वर्णित परिस्थितियों के तहत, पहले की घटनाओं का इस मुद्दे पर भी असर पड़ेगा कि क्या जिस कार्य से मृत्यु हुई थी, वह मृत्यु पैदा करने के इरादे से किया गया था या यह ज्ञान था कि इससे मृत्यु होने की संभावना है, लेकिन मृत्यु का कारण बनने के इरादे के बिना। यह परिस्थितियों की समग्रता है जो अपराध की प्रकृति का फैसला करेगी।

38. धारा 300 भ०द०वि० के अपवाद 4 को ध्यान में रखते हुए, अभियुक्त द्वारा किया गया अपराध धारा 304 भ०द०वि० के भाग II के अंतर्गत आता है क्योंकि अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्यों से, अभियोजन पक्ष यह साबित करने में विफल रहा है कि मृतक श्याम लाल की हत्या करने का अभियुक्त की ओर से एक इरादा था क्योंकि उसके सिर पर केवल एक घाव पाया गया है।

39. यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि बड़ी संख्या में व्यक्तियों ने मृतक पर लाठी-डंडों से हमला किया और एक लाठी मृतक के सिर पर गिरी जो घातक साबित हुई, इसलिए मौत का कारण बनने के इरादे का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अभियोजन पक्ष जीवित अपीलकर्ता संख्या-2 सुख राम और अपीलकर्ता संख्या-7 भूपाल के खिलाफ धारा 302 सपठित धारा 149 भ०द०वि० के तहत अपराध साबित करने में विफल रहा है।

40. अपीलकर्ता भूपाल को दो महीने 24 दिन की कैद हुई है जबकि अपीलकर्ता सुखराम को भी 2 महीने 18 दिन की कैद हुई है। अपीलकर्ता सुखराम की उम्र करीब 60 साल है जबकि अपीलकर्ता भूपाल की उम्र करीब 75 साल है।

41. इस तथ्य पर विचार करते हुए कि उक्त घटना 40 वर्ष से अधिक पूर्व की है तथा माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मध्य प्रदेश राज्य बनाम श्यामलाल एवं अन्य, आपराधिक अपील संख्या 1254 सन् 2024 में प्रतिपादित विधि के आलोक में, हम इस मत पर पहुँचे हैं कि निम्नलिखित दण्ड न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति करेगा :-

42. अपीलकर्ता सुखराम और भूपाल को धारा 304 भ०द०वि० भाग II सपठित धारा 149 भ०द०वि० के तहत पहले से ही चली आ रही अवधि की सजा सुनाई जाती है और उन्हें 25,000/- रुपये का जुर्माना भी सुनाया जाता है और इस प्रकार लगाया गया जुर्माना पीड़ित को दिया जाएगा।

43. इस प्रकार, इस अपील को **आंशिक रूप से अनुमति** दी जानी चाहिए। भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अपीलकर्ता को दोषी ठहराने और सजा सुनाने वाले विचारण न्यायालय के दिनांक 21.12.1985 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को **रद्द/अपास्त** किया जाता है और उन्हें धारा 304 भाग II सपठित धारा 149 भ०द०वि०, धारा 325 सपठित 149 भ०द०वि० और धारा 323/149 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया जाता है। उन्हें पहले ही एक साथ गुजरने की अवधि की सजा सुनाई जाती है और प्रत्येक को 25,000 रुपये का जुर्माना देना पड़ता है। मृतक श्याम लाल के कानूनी उत्तराधिकारी/उत्तराधिकारियों को मुआवजे के रूप में पीड़ित को लगाए गए कुल जुर्माने का भुगतान किया जाएगा। जुर्माने का भुगतान नहीं करने पर उन्हें तीन महीने की कैद की सजा भुगतनी होगी। अपीलकर्ताओं को एक महीने के भीतर निचली अदालत के समक्ष जुर्माना जमा करने का निर्देश दिया जाता है।

44. इस आदेश की एक प्रति रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा एक सप्ताह के भीतर अनुपालन के लिए संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को सूचित की जाए।

45. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बदायूं को भी निर्देश दिया जाता है कि वे दो महीने के भीतर इस न्यायालय को अपनी अनुपालन रिपोर्ट भेजें।

46. निचली अदालत के अभिलेखों को तुरंत संबंधित न्यायालय को भेजा जाए।

47. इस न्यायालय के महानिबंधक को इस मामले में प्रभावी सहायता प्रदान करने के लिए श्री जावेद आलम, एमिकस क्यूरी/न्याय मित्र को 15,000/- रुपये का मानदेय देने का भी निर्देश दिया जाता है।

(2025) 5 ILRA 803

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 01.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा

माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-I

आपराधिक अपील संख्या 482/2004

राजेश और अन्य **... अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **... प्रतिवादी**

अपीलकर्तागण की ओर से अधिवक्ता:

आर.पी. सिंह, के.के. सिंह, कैलाश नाथ मिश्रा, एल.के. गुप्ता

प्रतिवादी की ओर से अधिवक्ता:

जी.ए.

ए. आपराधिक विधि - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374(2)-भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 363, 366 और 376- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872-धारा 114-दोषसिद्धि को चुनौती-अपीलकर्तागण को 15 साल की लड़की के साथ बलात्कार के लिए दोषी ठहराया गया-एफआईआर में आरोप लगाया गया है कि आरोपी ने दूसरों की मदद से नाबालिग लड़कियों 'S' को बहलाया और 'A' उन्हें हरियाणा ले गया -पीड़ित 'S' ने सीआरपीसी की धारा 161 और 164 के तहत विस्तृत बयान दिए, दोनों आरोपियों पर जबरन अपहरण करने और बार-बार बलात्कार करने का आरोप लगाते हुएपीड़िता 'ए' मुकदमे के दौरान मुकर गई और बलात्कार से इनकार कर दिया, यह दावा करते हुए कि वह स्वेच्छा से गई थी और आरोपी राजेश से शादी करना चाहती थी, जब अभियोक्ता नाबालिग है तो यौन गतिविधि के लिए कोई भी कथित सहमति विधिक रूप से अप्रासंगिक है-भा0द0सं0 की धारा 376 के तहत दोषसिद्धि शारीरिक चोटों या हाल ही में बलात्कार के चिकित्सा प्रमाण के अभाव में भी टिकाऊ हैपीड़िता का सीआरपीसी की धारा 161 और 164 के तहत लगातार और निर्विवाद बयान, जब भरोसेमंद पाया जाता है, तो पुष्टि के बिना दोषसिद्धि को बनाए रखने के लिए पर्याप्त होता है-एक पीड़ित द्वारा मुकर जाना अभियोजन पक्ष के प्रकरण को खराब नहीं करता है यदि दूसरे पीड़ित की गवाही विश्वसनीय है और परिस्थितियों से पुष्टि की जाती है-18 वर्ष से कम आयु का पीड़ित विधिक रूप से यौन संबंध बनाने के लिए सहमति नहीं दे सकता है, इस प्रकार, भले ही कार्य वास्तव में सहमति से हो, यह भा0द0सं0 की धारा 376 के तहत बलात्कार का गठन करता है-एक गवाह के मुकर जाने का सबूत प्रकरण को ध्वस्त नहीं करता है यदि अभियोजन पक्ष के अन्य गवाह बने रहते हैं सुसंगत और विश्वसनीय-यह पुष्टि करता है कि नाबालिग के

अनुवादित

प्रकरण में सहमति सारहीन है-विश्वसनीय पाए जाने पर अभियोक्ता का साक्ष्य दोषसिद्धि का एकमात्र आधार हो सकता है। (पैरा 1 से 32)

अपील खारिज। (ई-6)

<u>उद्धृत प्रकरण की सूची:</u>

1. महाराष्ट्र राज्य बनाम चंद्रप्रकाश केवलचंद जैन (1990) 1 एससीसी 550
2. जुवरसिंह पुत्र भेराजी और अन्य बनाम म0प्र0 राज्य (1980) पूरक एससीसी 417
3. रफीक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1980) 4 एससीसी 262
4. शेख जहीर बनाम बिहार राज्य (1983) 4 एससीसी 10

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा द्वारा पारित)

1. वर्तमान आपराधिक अपील अपीलकर्ताओं, अर्थात् राजेश एवं रामू द्वारा, दिनांक 22.10.2003 को पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जो विद्वान अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक), न्यायालय संख्या-5, लखनऊ द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 55 सन् 2003 में पारित किया गया था, जिसके द्वारा अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 363, 366 एवं 376 के अंतर्गत दोषसिद्ध ठहराया गया तथा धारा 363 भा.दं.सं. के अंतर्गत पांच वर्ष का कारावास एवं अर्थदंड, धारा 366 भा.दं.सं. के अंतर्गत सात वर्ष का कारावास एवं अर्थदंड तथा धारा 376 भा.दं.सं. के अंतर्गत बारह वर्ष का कारावास एवं अर्थदंड से दंडित किया गया, तथा यह निर्देश दिया गया कि उक्त समस्त सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

2. जब तक अपील सुनवाई के लिए आई, तब तक अपीलकर्ता पहले ही अपनी सजा काट चुके थे और उन्हें रिहा कर दिया गया था। इसलिए इस न्यायालय ने अपीलकर्तागण की ओर से अपील पर बहस करने के लिए एक न्यायमित्र नियुक्त किया।

3. हमने अपीलकर्तागण के लिए विद्वान श्री कैलाश नाथ मिश्रा और राज्य प्रतिवादीगण की ओर से श्री बलराम सिंह यादव को ए.जी.ए.

4. अभियोजन पक्ष की कहानी यह है कि निहाल रैदास के एक श्रीकृष्ण पुत्र ने 15.09.2002 को पुलिस स्टेशन काकोरी से संपर्क किया और कहा कि उसके बहनोई, सुंदरलाल ने अपनी बेटी 'एस' को लगभग 15 साल की उम्र में अपने घर में रहने के लिए भेजा था ताकि वह अपनी पढ़ाई जारी रख सके। 'एस' दसवीं कक्षा में पढ़ रहा था। उसने आनंद की बहन 'ए' के साथ दोस्ती विकसित की, जो 17 साल की थी और पड़ोस में रहती थी। मुख्य आरोपी राजेश सह-आरोपी रामू के साथ आनंद के घर अक्सर आता था, क्योंकि राजेश की बहन की शादी उसी गांव में हरिशंकर से हुई थी। 12-09-2002 को एस और ए रात लगभग 09:00 बजे अपने घरों से निकले

और वे वापस नहीं लौटे। 'एस' और 'ए' की खोज करने के बाद, सूचनाकर्ता श्री कृष्ण को यकीन हो गया कि राजेश पासी और रामू पासी ने हरिशंकर के साथ मिलकर दोनों लड़कियों को अपने घरों को छोड़ने और उनके साथ भागने के लिए फुसलाया था। उन्होंने आगे आरोप लगाया कि 'एस' ने भागते समय सूचनाकर्ता के घर से गहने और नकदी ले ली थी। उन्होंने यह नहीं बताया कि 'एस' ने भागते समय कथित तौर पर कितनी आभूषण और नकदी ले ली।

5. उक्त लिखित तहरीर के आधार पर कांस्टेबल क्लर्क विश्वनाथ सोनकर द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 269 सन् 2002, अंतर्गत धाराएं 363, 366 एवं 376 भारतीय दंड संहिता के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत की गई तथा दिनांक 15.09.2002 को सायं 07:30 बजे जनरल डायरी में प्रविष्टि संख्या 45 अंकित की गई। विवेचना उप निरीक्षक राजीव रंजन श्रीवास्तव को सौंपी गई।

6. विवेचनाधिकारी ने केवल राजेश और रामू के खिलाफ जांच पूरी करने के बाद आरोप पत्र प्रस्तुत किया, और हरिशंकर को दोषमुक्त कर दिया और प्रकरण 10.01.2003 को न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा सत्र न्यायालय में सौंप दिया गया।

7. अभियोजन पक्ष ने कुमारी 'ए' को पी.डब्ल्यू.-1 के रूप में, सूचनाकर्ता श्री कृष्ण को पी.डब्ल्यू.-2 के रूप में, कुमारी 'एस' को पी.डब्ल्यू.-3 के रूप में, एसआई राजीव रंजन श्रीवास्तव को पी.डब्ल्यू.-4 के रूप में, डॉ. भारती शर्मा को पी.डब्ल्यू.-5 के रूप में, विश्वनाथ सोनकर कांस्टेबल क्लर्क को पी.डब्ल्यू.-6 के रूप में, सती राम यादव एस.आई. को पी.डब्ल्यू.-7 के रूप में पेश किया।

8. अभियुक्तों ने भा0द0सं0 की धारा 313 के तहत अपने बयान में किसी भी तरह की संलिप्तता से इनकार किया और आरोप लगाया कि उन्हें दुश्मनी के कारण झूठा फंसाया गया था और मुकदमे का दावा किया गया था, लेकिन उन्होंने अपने बचाव में कोई सबूत पेश नहीं किया।

9. मुकदमे की सुनवाई पूरी होने के बाद और विचारण न्यायालय ने अपीलकर्तागण को पूर्वोक्त के रूप में दोषी ठहराया, यह अपील दायर की गई है और अपीलकर्तागण के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि आरोपी राजेश और रामू की दोषसिद्धि को कायम नहीं रखा जा सकता है क्योंकि अभियोजन पक्ष सभी उचित संदेह से परे उनके अपराध को स्थापित करने में विफल रहा। विचारण न्यायालय के समक्ष पेश किए गए सबूत अपीलकर्तागण को दोषी साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं थे क्योंकि अभियोजन पक्ष के गवाहों ने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया था और उन्हें शत्रुतापूर्ण घोषित कर दिया गया था। इसके अलावा, अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान विरोधाभासी थे और जांच स्वयं पूर्व-चिंतन और दुर्भावनापूर्ण थी। दोषसिद्धि पूरी तरह से पी.डब्ल्यू.-3 कुमारी 'एस' द्वारा उसकी जन्मतिथि 12.04.1988 के बारे में दिए गए मौखिक बयान पर आधारित है।यहां तक कि अगर ऐसी जन्मतिथि को सही माना जाता है, तो अभियोजन पक्ष के गवाह/पीड़ित की आयु 12.09.2002

को 16 वर्ष से अधिक थी और विचारण न्यायालय ने दो वर्ष की छूट अवधि नहीं दी थी जैसा कि विधि के तहत दिया जाना आवश्यक है।

10. इस न्यायालय ने धारा 164 के तहत दो पीड़ितों के बयानों को अभियुक्त की हिरासत से बरामद होने पर मजिस्ट्रेट को दिया है। 'एस' ने कहा कि वह 14 वर्ष की थी और 12.09.2002 को वह खुद को आराम करने के लिए गई थी जब 'ए' को भी उसके द्वारा आते देखा गया था। 'A' एक दोस्त होने के नाते 'S' को थोड़ा आगे चलने के लिए कहा। जैसे ही वे एक पेड़ के नीचे पहुंचे और 'एस' खुद को आराम करने के लिए बैठने ही वाले थे, राजेश और रामू दोनों आरोपी वहां आ गए थे, और राजेश ने अपने दुपट्टा और 'ए' से उसका गला घोंटने की कोशिश की और रामू दोनों ने उसका हाथ पकड़ लिया। तब उन्हें एहसास हुआ कि 'ए' की राजेश और रामू के साथ मिलीभगत है। वह बेहोश हो गई और दिल्ली बस स्टेशन पर ही वापस आ गई। फिर से 'ए' ने उसे अपनी चेतना खो दी। जैसे ही वह आसपास आई, उसने उनसे कहा कि वह अपने पिता के घर जाना चाहती है। हालांकि, 'ए' ने जबरन अपने मुंह पर हाथ रख लिया और वह फिर से होश खो बैठी। वह केवल कैथल में होश में आई जैसा कि 'ए' ने उसे बताया था। वहां राजेश और रामू ने बारी-बारी से उसकी गरिमा का उल्लंघन किया, और जब वह मदद के लिए चिल्लाई, तो 'ए' ने उसे पकड़ लिया और उसे शांत कर दिया। करीब चार दिन बाद रामू का भाई पप्पू और राजेश के पिता भी कैथल पहुंचे और राजेश के पिता और पप्पू ने 'स' को यह लिखने के लिए कहा कि वह उनके साथ अपनी मिठाई लेकर आई थी और न्यायालय मैरिज कर चुकी थी। जब उसने मना कर दिया, तो उसे बताया गया कि वह उनके द्वारा बेच दी जाएगी। यह भी कहा गया कि जब राजेश और रामू ने उसका अपहरण किया तो दोनों के पास बंदूकें थीं। यहां तक कि पप्पू के पास भी बंदूक थी और सभी ने उसे धमकी दी थी। पप्पू ने उसे जबरन एक पत्र लिखवाया कि वह अपने आप भाग गई थी। उन सभी ने उसे यह कहने के लिए मजबूर किया कि यह उसकी अपनी गलती थी न कि राजेश और रामू की। पड़ोसियों को जब पता चला तो राजेश और रामू उस कमरे को बदल दिए जिसमें 'एस' रखा गया था और उसे कुरुक्षेत्र ले गए। उसे लगभग छह दिनों तक कुरुक्षेत्र में रखा गया और रामू ने जबरन सिंदूर और चूड़ियां पहनवाईं। एक दिन उसे भागने का मौका मिला और उसने एक अच्छे आदमी और उसके माता-पिता से मुलाकात की और उन्हें अपनी कहानी के बारे में बताया। उन्होंने 'एस' को उन्हें उस कमरे में ले जाने के लिए कहा जहां उसे बंदी बनाया गया था। जब 'एस' उन्हें कमरे में ले गया, तो उन्होंने कमरे में रामू, राजेश और 'ए' को पाया और उसके साथ आए लोगों ने चुपचाप कमरे का दरवाजा बाहर से बंद कर दिया और 'एस' को रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए पुलिस स्टेशन ले गए। रिपोर्ट दर्ज होने के बाद पुलिस ने आकर राजेश और रामू और 'ए' को गिरफ्तार कर लिया और स्थानीय पुलिस के साथ उसे बचाने आए उसके पिता को भी बुलाया। 'एस' ने मजिस्ट्रेट के सामने यह भी कहा कि वह अपने पिता के साथ अपने घर जाना चाहती थी, और पप्पू और राजेश के पिता ने उसके परिवार को मारने की धमकी दी थी।

11. दूसरी ओर, 'ए' को जब 07.10.2002 को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया, तो उसने शपथ पर कहा कि वह साढ़े सोलह वर्ष की थी और 12.09.2002 को, जब वह खुद को आराम देने के लिए बाहर गई थी, तो वह 'एस' से मिली, जिसने उसे टहलने के लिए कहा। जब 'ए' 'एस' के साथ टहल रहा था, जो पहले से ही दो

लड़कों, राजेश और रामू के साथ मिल चुका था, तो उन्होंने उसका अपहरण कर लिया और उसे किसी दूसरे शहर में ले गए। बाद में, उसे कैथल ले जाया गया जहां उन्होंने एक कमरा किराए पर लिया। जब 'ए' ने रोना शुरू कर दिया कि वह अपने मायके के घर जाना चाहती है, तो राजेश और रामू को 'एस' ने 'ए' के साथ बलात्कार करने के लिए उकसाया। उसके साथ बलात्कार के बाद, 'ए' ने उन्हें बताया कि अगर उन्होंने उसके माता-पिता को बताया होता, तो वे आसानी से उससे उसकी शादी कर देते। राजेश और रामू ने 'एस' के साथ मिलकर उसे बताया कि उनका काम खत्म होने के बाद वे उसे उसके माता-पिता के पास ले जाएंगे। 'एस' ने राजेश और रामू को 'ए' के साथ जो कुछ भी करने के लिए कहा, उन्होंने उसकी बात मानी और उसी के अनुसार व्यवहार किया। बाद में, जब वे उसे उसके माता-पिता के साथ छोड़ने के लिए तैयार थे, तो पुलिस ने आकर उन्हें गिरफ्तार कर लिया। लेकिन 'ए' ने यह भी गवाही दी कि राजेश और रामू ने 'एस' को धमकी दी थी कि अगर वह अपने माता-पिता के पास घर जाती है, तो वे उसे मार देंगे।

12. 12.09.2002 को एक सरकारी अस्पताल में एक महिला डॉक्टर द्वारा 'ए' और 'एस' दोनों की चिकित्सा जांच की गई और उनके शरीर पर चोट का कोई निशान नहीं पाया गया। उनका हाइमन पुराना, फटा हुआ और ठीक हो गया था और फिंगर टेस्ट के आधार पर डॉक्टर की राय थी कि दोनों लड़कियां यौन गतिविधि की आदी हैं और उनके साथ बलात्कार के बारे में कोई राय नहीं दी जा सकती है। उनकी एक्स-रे रिपोर्ट के आधार पर 'एस' और 'ए' दोनों की उम्र करीब 17 साल पाई गई।

13. प्रथम विवेचनाधिकारी उपनिरीक्षक राजीव रंजन श्रीवास्तव का बयान विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया था और उन्होंने गवाही दी थी कि 'एस' और 'ए' दोनों के लापता होने की सूचना प्राप्त होने के बाद, उन्हें बरामद करने के प्रयास किए गए थे। एक सूचनाकर्ता से मिली सूचना के आधार पर वे दुर्गागंज क्रॉसिंग पहुंचे जहां अपहृत दोनों लड़कियां एक होटल में बैठी मिलीं। संपर्क करने पर दोनों लड़कियों ने कहा कि आरोपी पास की एक दुकान से उनके लिए कुछ चीजें खरीदने गए थे। पुलिस टीम ने आरोपियों का इंतजार किया और उनके पहुंचने पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया। बरामद दोनों लड़कियों को मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। उन्होंने सीआरपीसी की धारा 164 के तहत अपने बयान दिए, जिसमें एक-दूसरे को राजेश और रामू के साथ मिलीभगत के रूप में फंसाया गया था। उनके अनुरोध पर उन्हें 07-10-2002 को उनके माता-पिता को सौंप दिया गया और तदनुसार सुपुरदगी नामा तैयार किया गया।

14. सत्र न्यायालय में मुकदमे के बाद दोनों आरोपियों के खिलाफ अवैध संभोग के इरादे से दोनों लड़कियों का अपहरण करने और फिर उन पर बलात्कार करने के संबंध में आरोप तय किया गया।

15. कुमारी 'ए' को पी.डब्ल्यू.-1 के रूप में पेश किया गया था और विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी एग्जामिनेशन-इन-चीफ में, उसने कहा कि वह आरोपी राजेश और रामू दोनों को लंबे समय से जानती थी, और राजेश के साथ उसके भाई और बहन की तरह संबंध थे। 'एस' मूल रूप से मलिहाबाद की रहने वाली थी, लेकिन काकोरी में उसके गांव में उसके रिश्तेदार थे, और वह अपने गांव में रहने आई और 'ए' और 'एस' दोस्त बन

गए। उसने यह भी कहा कि वह राजेश और रामू के साथ खुद चली गई थी और 'एस' भी उनके साथ था। वे कुछ समय के लिए हरियाणा के कुरुक्षेत्र में रहे, जहां राजेश ने किराए पर एक कमरा लिया था। रामू और 'एस' भी उनके साथ रह रहे थे। न तो राजेश और न रामू ने उस समय उसके साथ कोई यौन अपराध किया जब वह उनके साथ गई थी या जब वह उनके साथ रह रही थी। वह साढ़े उन्नीस साल की थी। वह अपने भाई और उसके पिता के बाद वापस लौटी जब वह उसे हरियाणा में पाया। उसने रामू या राजेश से शादी नहीं की। उसने आगे स्वीकार किया कि उसकी चिकित्सकीय जांच की गई थी और उसने मजिस्ट्रेट के समक्ष बयान दिया था। अभियोजन पक्ष के आवेदन पर विचारण न्यायालय द्वारा उसे शत्रुतापूर्ण घोषित कर दिया गया था और जिरह करने की अनुमति दी गई थी। उसने जिरह में कहा कि सीआरपीसी की धारा 164 के तहत उसने पहले मजिस्ट्रेट को जो भी बयान दिया था, वह सब-इंस्पेक्टर के प्रभाव में था। सीआरपीसी की धारा 161 के तहत उसका बयान उसे पढ़कर सुनाया गया, लेकिन उसने ऐसा कोई बयान देने से इनकार कर दिया और उसने कहा कि उसने अपनी इच्छा से अपना घर छोड़ दिया था और उस समय वह साढ़े उन्नीस साल की थी। कुरुक्षेत्र में रहने के दौरान उसने किसी को नहीं बताया था, और उसने अपने परिवार को सूचित नहीं किया था क्योंकि वे उसे डांटा और पीटा करते। इसके अलावा, आरोपी के अधिवक्ता द्वारा जिरह किए जाने पर, उसने कहा कि 'एस' अपनी इच्छा से उनके साथ गई थी और रामू ने 'एस' पर कोई यौन हमला नहीं किया था। पी.डब्ल्यू.-1 ने यह भी कहा कि आरोपी के साथ-साथ 'एस' और 'ए' हरियाणा में हर समय एक साथ थे। रात में वह 'एस' के साथ सोती थी, जबकि रामू और राजेश अलग-अलग सोते थे। उसने यह भी कहा कि वह राजेश से शादी करना चाहती है और 'एस' रामू से शादी करना चाहता है। उसे रामू या राजेश द्वारा उसके साथ किए गए किसी भी यौन अपराध की कोई शिकायत नहीं थी। उसने यह भी कहा कि चूंकि 'एस' के पिता एक होमगार्ड थे, इसलिए विवेचनाधिकारी ने उन्हें आरोपी के खिलाफ बयान देने की धमकी दी थी।

निहाल के पुत्र श्री कृष्ण को पी.डब्ल्यू.-2 के रूप में पेश किया गया था। उन्होंने कहा कि उनके बहनोई सुंदर लाल मलिहाबाद में रहते थे, जिनकी बेटी 'एस' अपनी पढ़ाई जारी रखने के लिए लगभग चार महीने पहले काकोरी में अपने गांव में अपने परिवार के साथ रहने आई थी और वह काकोरी में दसवीं कक्षा की छात्रा थी। उसने एक 'ए' से दोस्ती की जो पड़ोस में रहता था। और 12.09.2002 को रात के लगभग आठ या नौ बजे 'एस' ने परिवार को बताया कि वह खुद को आराम करने के लिए बाहर जा रही है। वह करीब 15 मिनट तक नहीं लौटी और फिर उन्होंने उसकी तलाश शुरू कर दी। सुबह भी जब 'एस' नहीं लौटा तो पी.डब्ल्यू.-2 ने उसके पिता को फोन किया और फिर वे हरि शंकर, रामू और राजेश के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए थाने गए। पी.डब्ल्यू.-2 के मुताबिक, राजेश हरिशंकर के घर जाता था और उसी गांव में रहने वाले आनंद के घर भी जाता था। रामू के साथ भी उसकी दोस्ती थी। उन्होंने कहा कि एफआईआर उनके द्वारा अन्य ग्रामीणों के कहने पर लिखी गई थी और उनका मानना था कि रामू 'एस' को जालंधर ले गया था। 'S' 'A' के साथ 10 दिनों के बाद वापस आ गया। 'एस' ने उसके साथ क्या हुआ, इसके बारे में कुछ नहीं बताया, उसने उसे यह भी नहीं बताया कि क्या दोनों पीड़ित आरोपी के साथ अपने दम पर गए थे। उन्हें सुंदर लाल और आनंद और उप-निरीक्षक द्वारा कुरुक्षेत्र, हरियाणा से घर लाया गया था। कुरुक्षेत्र, हरियाणा में पुलिस का फोन आने के बाद स्थानीय पुलिस ने उसे फोन किया था, परन्तु वह 'एस' लाने नहीं गए थे।

कुमारी 'एस' को पी.डब्ल्यू.-3 के रूप में तैयार किया गया था। उसने कहा कि घटना 11.09.2002 की लगभग 09:00 बजे की थी , और वह उस समय अपने मामा श्री कृष्ण के घर में रह रही थी और हाई स्कूल में काकोरी यूनिक इंटर कॉलेज में पढ़ रही थी और उसकी जन्मतिथि 12.04.1988 थी। 'ए' उसका पड़ोसी और एक दोस्त था, और उस रात जब वह खुद को आराम देने के लिए बाहर गई थी, तो उसके पीछे 'ए' था और उसने पुलिस और मजिस्ट्रेट को दी गई सीआरपीसी की धारा 161 और 164 के तहत अपने बयान को दोहराया।

16. 'एस' के रूप में पी.डब्ल्यू.-3 ने कहा कि रामू और राजेश दोनों ने उसके साथ बलात्कार किया और उसे 15 दिनों तक कैथल में रखा। जब भी उसने यौन उत्पीड़न का विरोध किया, राजेश और रामू और 'ए' सभी ने एक साथ उसके खिलाफ गिरोह बनाया और उसे बेचने की धमकी दी। राजेश के पिता और पप्पू रामू के भाई के कैथल पहुंचने के बाद आरोपी उसे कुरुक्षेत्र हरियाणा ले गए, जहां उसे 5-6 दिनों तक रखा गया। फिर राजेश और रामू दोनों ने उसके साथ बलात्कार किया। इसके बाद, वे सभी गोला कुआं, मलिहाबाद लौट आए, और जब वे गोला कुआं में राजेश और रामू का इंतजार कर रहे थे, तो 'एस' और 'ए' को पुलिस ने कुछ औपचारिकताएं पूरी करके अपनी मेडिकल जांच कराई और उसके बाद 'एस' को उसके पिता को और 'ए' को उसकी मां श्रीमती रघुराई को सौंप दिया। उसने सीआरपीसी की धारा 161 और 164 के तहत अपना बयान खुद दिया और उनके साथ खड़ी रही। 'एस' से न तो राजेश और न रामू ने जिरह की थी, हालांकि उन्हें विचारण न्यायालय ने मौका दिया था।

17. पी.डब्ल्यू.-4 राजीव रंजन श्रीवास्तव, प्रथम विवेचनाधिकारी ने विचारण न्यायालय के समक्ष गवाही दी कि वह 15.09.2002 को काकोरी पुलिस स्टेशन में उप-निरीक्षक के रूप में तैनात थे, केस डायरी में सूचनाकर्ता और गवाहों के बयानों को लिखने के बाद, जिसमें आनंद, सुंदरलाल, संतोष, गीता और संगीता और श्रीमती रघुराई, विजय और मुरली शामिल थे, उन्होंने अपहृत पीड़ितों की भी तलाश की। अंतत 29-09-2002 को मलिहाबाद में बेहटा नाला के निकट पीड़ितों को पाया गया और वसूली ज्ञापन तैयार किया गया। 07.10.2002 को सीआरपीसी की धारा 161 और 164 के तहत उनके बयान दर्ज करने के बाद पीड़ितों 'एस' और 'ए' की चिकित्सा जांच कराई गई, उन्हें उनके अभिभावकों को सौंप दिया गया।

18. जिस समय पीड़ितों को बरामद किया गया, उस समय दोनों आरोपी उनके साथ मौजूद नहीं थे। पी.डब्ल्यू.-4 ने अपनी परीक्षा-इन-चीफ में यह भी कहा कि लड़कियों ने उन्हें बताया था कि आरोपी ने उन्हें आश्वासन दिया था कि वे अपने पैतृक गांव लौटने के बाद अपने परिवार के सदस्यों को पीड़ितों की शादी आरोपी से कराने के लिए मनाने की कोशिश करेंगे। वे न्यायालय में भी शादी करने की योजना बना रहे थे।

19. जबकि लड़कियों को 29.09.2002 की सुबह बरामद किया गया था, आरोपियों को उसी दिन शाम को पकड़ लिया गया था। गिरफ्तारी ज्ञापन तैयार किया गया था, लेकिन कोई स्वतंत्र गवाह नहीं मिल सका।

20. डॉ. भारती शर्मा, चिकित्सा अधिकारी, डफरिन अस्पताल, लखनऊ की जांच पीडब्ल्यू-5 के रूप में की गई और उन्होंने गवाही दी कि 'एस' और 'ए' दोनों यौन गतिविधि के आदी थे और इस बारे में कोई राय नहीं दी जा सकती थी कि उनके साथ बलात्कार किया गया था या नहीं। उन्होंने पीड़ितों की उम्र का पता लगाने के लिए घुटने, कलाई और कोहनी के जोड़ों का एक्स-रे कराने की सलाह दी थी। एक्स-रे किया गया था जिसमें पाया गया था कि दोनों पीड़ितों में एपिफिसिस लाइन या तो फ्यूज हो रही थी या फ्यूज होने की प्रक्रिया में थी। दोनों पीड़ितों की रेडियोलॉजिकल आयु लगभग 17 वर्ष थी। हालांकि, न तो पैथोलॉजिस्ट को और न ही रेडियोलॉजिस्ट को अपनी रिपोर्ट साबित करने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष पेश किया गया।

दूसरे विवेचनाधिकारी सती राम यादव को पी.डब्ल्यू.-7 के रूप में पेश किया गया और उन्होंने कहा कि पहले विवेचनाधिकारी राजीव रंजन श्रीवास्तव द्वारा एकत्र किए गए सबूतों के आधार पर आरोपी राजेश और रामू के खिलाफ भा0द0सं0 की धारा 363, 366 और 376 के तहत न्यायालय में आरोप पत्र दायर किया गया था।

21. सीआरपीसी की धारा 313 के तहत अपने बयानों में , राजेश और रामू दोनों ने पीड़ितों का अपहरण करने से इनकार किया था और कहा था कि प्रकरण फर्जी था और उन्हें साजिश के कारण झूठा फंसाया गया था। हालांकि, उनके द्वारा आगे कुछ नहीं कहा गया कि वे किस तरह की साजिश का जिक्र कर रहे थे। उन्होंने यह समझाने की कोशिश नहीं की कि उन्हें गलत तरीके से क्यों फंसाया गया।

हमने विचारण न्यायाधीश के निर्णय का अध्ययन किया है जिसमें उन्होंने अभियोजन की कहानी और पहले विवेचनाधिकारी राजीव रंजन श्रीवास्तव द्वारा एकत्र किए गए साक्ष्यों का उल्लेख किया है और फिर अभियोजन पक्ष के सभी गवाहों के बयानों पर चर्चा की है और फिर कहा है कि सूचनाकर्ता पीडब्ल्यू-2 श्री कृष्ण ने केवल मुख्य परीक्षा में अपना बयान दिया था लेकिन अभियोजन पक्ष ने उन्हें बाद में पेश नहीं किया और, इसलिए, आरोपी द्वारा उससे जिरह नहीं की जा सकी। इसलिए, आरोपी के खिलाफ उनके बयान को नहीं पढ़ा जा सकता है।

पी.डब्ल्यू.-1 ने शुरू में सीआरपीसी की धारा 161 के तहत अपने बयान में और धारा 164 सीआरपीसी के तहत मजिस्ट्रेट के समक्ष अपने बयान में अभियोजन पक्ष के प्रकरण का समर्थन किया था, लेकिन बाद में उसने इनकार कर दिया और कहा कि उसके पहले के बयान विवेचनाधिकारी के डर से दिए गए थे। जिस समय वह रामू और राजेश और 'एस' के साथ अपने आप भाग गई थी, उस समय वह साढ़े उन्नीस साल की थी, और रामू और राजेश ने उसके साथ कोई यौन उत्पीड़न नहीं किया था। अभियोजन पक्ष ने उसे शत्रुतापूर्ण घोषित कर दिया और फिर सीआरपीसी की धारा 161 और 164 के तहत मजिस्ट्रेट के समक्ष उसके द्वारा दिए गए बयानों के संबंध में उससे जिरह की, लेकिन उसने कोई बयान देने से इनकार कर दिया। आरोपी के बचाव पक्ष के अधिवक्ता ने पी.डब्ल्यू.-1 से भी पूछताछ की और उसने स्वीकार किया कि वह राजेश से शादी करना चाहती थी और उसे रामू या राजेश के खिलाफ कोई शिकायत नहीं थी, जिसने उसके साथ अच्छा व्यवहार किया था।

22. विचारण न्यायाधीश ने कहा है कि पी.डब्ल्यू.-1 कथित पीड़िता ने कहा था कि राजेश के साथ भाई और बहन की तरह उसके अच्छे संबंध थे, उसने यह भी कहा था कि वह उससे शादी करना चाहती है। विचारण न्यायालय ने यह भी कहा कि सीआरपीसी की धारा 161 और 164 के तहत अपने बयान में उसने कहा था कि रामू और राजेश ने 'एस' के साथ मिलीभगत से उसका अपहरण किया था, और उन्होंने 'एस' के उकसावे पर उसके साथ बलात्कार किया था। विचारण न्यायालय ने कहा कि अभियोजन पक्ष का ऐसा गवाह पूरी तरह से अविश्वसनीय था और इसलिए उसने उसके साक्ष्य को खारिज कर दिया।

दूसरी ओर, पी.डब्ल्यू.-3 ने सीआरपीसी की धारा 161 और सीआरपीसी की धारा 164 के तहत दिए गए अपने बयानों का समर्थन किया था और उस पर कायम थी। उसने यह भी कहा था कि न्यायालय के समक्ष अपना बयान देने के समय उसकी उम्र 15 वर्ष थी और उसकी जन्मतिथि 12.04.1988 थी वह हाई स्कूल में काकोरी यूनिक इंटर कॉलेज में पढ़ रही थी जब आरोपी राजेश और रामू ने 'ए' के साथ मिलीभगत से उसका अपहरण कर लिया था। चूंकि अभियुक्तों ने पी.डब्ल्यू.-3 से जिरह नहीं की थी, इसलिए उन्हें ऐसा करने का अवसर दिए जाने के बाद भी, और उसके बाद उन्होंने धारा 311 सीआरपीसी के तहत एक आवेदन दायर किया था, लेकिन 16.10.2002 को उस पर दबाव नहीं डाला था, और उक्त आवेदन को अभियोजन के अभाव में खारिज कर दिया गया था; उसके बयानों को निर्विवाद और विश्वसनीय साक्ष्य कहा जा सकता है।

विचारण न्यायालय ने कोहनी और घुटने के जोड़ की एपिफिसियल रेखाओं के फ्यूज होने और उसकी रेडियोलॉजिकल उम्र लगभग 17 वर्ष होने के संबंध में चिकित्सा अधिकारियों के साक्ष्य पर विचार किया है , लेकिन यह देखा है कि न तो एक्स-रे रिपोर्ट और न ही अल्ट्रासाउंड रिपोर्ट को न्यायालय में उन व्यक्तियों द्वारा साबित किया गया था जिन्होंने उन्हें तैयार किया था। पैथोलॉजिकल परीक्षा रिपोर्ट भी साबित नहीं हुई थी और इसलिए उसने पीडब्ल्यू-3 द्वारा उल्लिखित जन्म तिथि पर भरोसा किया , जिसे उसके स्कूल में दर्ज किया गया था।

23. विचारण न्यायालय ने कहा कि चूंकि पी.डब्ल्यू.-3 'एस' की गवाही सीआरपीसी की धारा 161 और 164 के तहत उसके बयानों के अनुरूप थी और आरोपी ने उन्हें मौका दिए जाने के बावजूद उससे जिरह नहीं की थी, इसलिए यह राय थी कि पी.डब्ल्यू.3, 'एस' एक पूरी तरह से विश्वसनीय गवाह था, और चूंकि उसके अपहरण के समय उसकी आयु केवल 14 वर्ष थी, उसके स्कूल के रिकॉर्ड के अनुसार, आरोपी द्वारा किसी भी यौन गतिविधि के लिए उसके द्वारा दी गई कोई भी सहमति बिल्कुल भी सहमति नहीं होगी क्योंकि वह नाबालिग थी। यदि पीड़िता को दो वर्ष का मार्जिन दिया जाता है, तो भी वह उस अभियुक्त द्वारा अपहरण के समय केवल 16 वर्ष की होगी, जो उसे सितम्बर, 2002 में जबरन हरियाणा ले गया था; और अभियुक्त ने स्वीकार किया था कि उसकी शील भंग की थी, उसके साथ बलात्कार किया था।

24. विचारण न्यायालय उन परिस्थितियों की जांच कर रहा है जहां अपराध के दो कथित पीड़ितों में से एक ने आरोपी के पक्ष में बयान दिया था और उसे मुकर घोषित कर दिया गया था, जबकि दूसरा उसकी वसूली के

समय से लेकर मुकदमे के दौरान और पीड़िता की उम्र को भी देखते हुए अपनी गवाही में सुसंगत रहा था, 'एस' जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा पीडब्ल्यू-3 के रूप में पेश किया गया था, जब उसे गृह गांव से ले जाया गया था; इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि 'एस' नाबालिग होने के कारण, अभियुक्त को धारा 363 और धारा 376 भा0द0सं0 के तहत अपराध का दोषी कहा जा सकता है। विचारण न्यायालय ने इस तथ्य पर भी विचार किया है कि आरोपियों ने धारा 313 के तहत अपने बयानों में कहा था कि उन्हें दुश्मनी के कारण झूठा फंसाया गया था, लेकिन उन्होंने इस बात का कोई विवरण नहीं दिया कि पक्षों के बीच दुश्मनी क्या थी और उन्हें कैसे झूठा फंसाया गया था। उन्होंने पीडब्ल्यू-2, सूचनाकर्ता या पीडब्ल्यू-3, पीड़ित 'एस' से जिरह नहीं की।

विचारण न्यायालय की यह भी राय थी कि पी.डब्ल्यू.-3 पीड़िता 'एस' ने केवल अपने मामा, सूचनाकर्ता श्री कृष्ण पुत्र हरदयाल के उकसावे पर खुद को चरित्र हनन के अधीन नहीं किया होगा।

विचारण न्यायालय ने दोनों अभियुक्तों को यथापूर्वोक्त दोषी पाते हुए उन्हें 12 वर्ष के सश्रम कारावास की सजा सुनाई थी।

25. इस प्रकार, इस तथ्य पर ध्यान देने के बाद कि पीड़ित 'एस' की आयु घटना की तारीख को लगभग 15 वर्ष थी और वह नाबालिग थी, यौन संबंध का कोई सवाल ही नहीं उठता। एक बार जब पीड़िता ने यह कह दिया कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 114A में निहित प्रावधान को ध्यान में रखते हुए, उसकी सहमति के बिना उसके साथ बलात्कार किया गया था, तो यह माना जाएगा कि पीड़िता की कोई सहमति नहीं थी, जो घटना की तारीख को नाबालिग थी और अन्यथा भी नाबालिग थी।

26. **महाराष्ट्र राज्य बनाम चंद्रप्रकाश केवलचंद जैन (1990) 1 एससीसी 550** प्रकरण में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 16 में अपनी याचिका दायर की है, जो निम्नानुसार निर्णय दिया है: -

"16. यौन अपराध के अभियोक्ता को किसी साथी के बराबर नहीं रखा जा सकता है। वह वास्तव में अपराध का शिकार है। साक्ष्य अधिनियम कहीं भी यह नहीं कहता है कि उसके साक्ष्य को तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक कि भौतिक विवरण में इसकी पुष्टि न की जाए। वह निस्संदेह धारा 118 के तहत एक सक्षम गवाह है और उसके साक्ष्य को उतना ही महत्व प्राप्त होना चाहिए जो शारीरिक हिंसा के प्रकरण में घायल होने से जुड़ा होता है। उसके साक्ष्य के मूल्यांकन में उसी तरह की देखभाल और सावधानी होनी चाहिए जैसी कि एक घायल शिकायतकर्ता या गवाह के प्रकरण में होती है और इससे अधिक नहीं। आवश्यक यह है कि न्यायालय को इस तथ्य के प्रति सचेत और सचेत होना चाहिए कि वह एक ऐसे व्यक्ति के साक्ष्य से निपट रहा है जो उसके द्वारा लगाए गए आरोप के परिणाम में रुचि रखता है। यदि न्यायालय इसे ध्यान में रखती है और संतुष्ट महसूस करती है कि वह अभियोक्ता के साक्ष्य पर कार्य कर सकती है, तो साक्ष्य अधिनियम में धारा 114 के उदाहरण (बी) के समान विधि या व्यवहार का कोई नियम शामिल नहीं है , जिसके लिए उसे पुष्टि की तलाश करने की आवश्यकता होती है। यदि किसी कारण से न्यायालय अभियोक्ता की गवाही पर निहित भरोसा करने

में संकोच करती है, तो वह ऐसे सबूतों की तलाश कर सकती है जो किसी साथी के प्रकरण में आवश्यक पुष्टि से कम उसकी गवाही का आश्वासन दे सकें। अभियोक्ता की गवाही को आश्वासन देने के लिए आवश्यक साक्ष्य की प्रकृति आवश्यक रूप से प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होनी चाहिए। लेकिन अगर कोई अभियोक्ता एक वयस्क है और पूरी समझ का है, तो न्यायालय उसके साक्ष्य पर दोषसिद्धि को आधार बनाने की हकदार है, जब तक कि उसे कमजोर और भरोसेमंद नहीं दिखाया जाता है। यदि प्रकरण के रिकॉर्ड पर दिखाई देने वाली परिस्थितियों की समग्रता से पता चलता है कि अभियोक्ता के पास आरोपित व्यक्ति को गलत तरीके से शामिल करने का कोई मजबूत मकसद नहीं है, तो न्यायालय को आमतौर पर उसके साक्ष्य को स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। इसलिए, हमारे मन में कोई संदेह नहीं है कि आमतौर पर एक अभियोक्ता के साक्ष्य को स्वीकार किया जाना चाहिए जिसमें समझ की कमी नहीं है। आवश्यक सबूत की डिग्री एक घायल गवाह की अपेक्षा से अधिक नहीं होनी चाहिए। उपरोक्त कारणों से हमें लगता है कि उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण पर अपवाद सही ढंग से लिया गया है जैसा कि निम्नलिखित गद्यांश में परिलक्षित होता है:

"यह केवल दुर्लभतम प्रकरण में है यदि न्यायालय को पता चलता है कि अभियोक्ता की गवाही इतनी भरोसेमंद, सच्ची और विश्वसनीय है कि अन्य पुष्टि आवश्यक नहीं हो सकती है।

सम्मान के साथ, विधि सही ढंग से नहीं कहा गया है। अगर हम ऐसा कह सकते हैं, तो यह बिल्कुल विपरीत है। आमतौर पर एक अभियोक्ता के साक्ष्य को एक ही वजन ले जाना चाहिए जो एक घायल व्यक्ति से जुड़ा होता है जो हिंसा का शिकार होता है, जब तक कि विशेष परिस्थितियां न हों जो अधिक सावधानी बरतती हैं, जिस प्रकरण में उसकी गवाही पर कार्रवाई करना सुरक्षित होगा यदि उसके आरोप के लिए स्वतंत्र सबूत उधार देने का आश्वासन दिया गया है।

(हमारे द्वारा प्रभाव वर्द्धित)

27. शुरुआत में, हम दोहराव की कीमत पर उल्लेख कर सकते हैं कि दो पीड़ितों में से, पीड़ित 'ए', जिसकी पीडब्ल्यू-1 के रूप में जांच की गई है, मुकर गई है। इसलिए, अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह जोरदार तर्क दिया गया था कि चूंकि उसी घटना के गवाहों में से एक ने अभियोजन पक्ष के प्रकरण का समर्थन नहीं किया है, इसलिए, पीड़ित 'एस' की गवाही पर भरोसा नहीं किया जा सकता है और ऐसा करते समय विद्वान मुकदमे ने विधि की स्पष्ट त्रुटि की है। इस संबंध में, हम यह देखना चाहेंगे कि यह विधि नहीं है कि, यदि कथित घटना के गवाहों में से एक मुकर जाता है, तो यह अभियोजन पक्ष के पूरे प्रकरण को ध्वस्त कर देगा, जबकि अभियोजन पक्ष के अन्य गवाहों की विश्वसनीय गवाही द्वारा समर्थित किया गया था। यह अब पूर्णांक नहीं है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों में से एक की गवाही को किसी अन्य अभियोजन पक्ष के गवाह के बयान की विश्वसनीयता की कसौटी पर नहीं परखा जाना चाहिए। इसलिए, जैसा कि हमने तथ्य के अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही, अर्थात्, पी.डब्ल्यू.-2, सूचनाकर्ता और पी.डब्ल्यू.-3, पीड़ित 'एस', को विश्वसनीय पाया है, हमें केवल इस पर अविश्वास करने के लिए राजी नहीं किया जाता है क्योंकि पीड़ितों में से एक यानी पीड़ित 'ए', पीडब्ल्यू -1 ने अभियोजन पक्ष के प्रकरण का समर्थन नहीं किया है और वह भी इस कारण से जो उसकी

गवाही में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि वह स्वीकार करती है कि वह किसी एक के साथ शादी करना चाहती थी। सह-अभियुक्त, जिसका नाम राजेश।

28. वर्तमान प्रकरण के तथ्यों का समर्थन करते हुए, हम पहले ही देख चुके हैं कि न केवल पीड़िता घटना की तारीख को नाबालिग थी, बल्कि उसने यह भी स्पष्ट रूप से कहा है कि अपीलकर्तागण ने उसकी सहमति के बिना उसके साथ बलात्कार किया है। ऐसा करने का अवसर होने के बावजूद पी.डब्ल्यू.-2, सूचनाकर्ता और पी.डब्ल्यू.-3, पीड़ित 'एस' की कोई जिरह नहीं की गई है, इसलिए, उनके बयान अपीलकर्तागण के खिलाफ पूरी तरह से स्वीकार्य होंगे, यदि वे अन्यथा विश्वसनीय पाए जाते हैं। इस संबंध में, **जुवरसिंह पुत्र भेराजी और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य** में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का उपयोगी रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

29. **रफीक बनाम उत्तर प्रदेश** राज्य माननीय उच्चतम न्यायालय ने पैराग्राफ सं 6 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

"6. इंडो-एंग्लिकन न्यायशास्त्र में आपराधिक विधि की कई "पवित्र गायें" हैं जो अंधविश्वासी जीवित हैं और उनकी फिर से जांच करने की आवश्यकता है। जब बलात्कारी अपने कामुक कामों में रम रहे हैं और मानव जाति का आधा हिस्सा - महिला जाति - अपने असहाय भाग्य का विरोध कर रहा है, **जब कोई भी सम्मानित महिला किसी अन्य पर बलात्कार का आरोप नहीं लगाएगी क्योंकि वह बलिदान देती है जो उसके लिए सबसे प्रिय है, तो हम एक जीवाश्म सूत्र से चिपके नहीं रह सकते हैं और पुष्टि करने वाली गवाही पर जोर नहीं दे सकते हैं, भले ही समग्र रूप से लिया जाए, पीड़िता द्वारा बोला गया प्रकरण संभावित न्यायिक दिमाग पर प्रहार करता है। इस प्रकरण में, गवाही को दो न्यायालयों से स्वीकृति मिली है। जब एक महिला को परेशान किया जाता है तो जो किया जाता है वह केवल शारीरिक चोट नहीं होती है, बल्कि "कुछ मृत्युहीन शर्म की गहरी भावना" होती है।**

एक बलात्कार! एक बलात्कार! ...
हाँ, आपके पास न्याय है;
उसे अपनी खुशी करने के लिए मजबूर किया।
(हमारे द्वारा प्रभाव वर्द्धित)

30. अब अभियोक्ता के व्यक्ति पर किसी भी चोट की अनुपस्थिति और उसके प्रभाव के मुद्दे पर आते हुए, हम **शेख जाकिर बनाम बिहार राज्य** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए एक निर्णय का उल्लेख करना चाहेंगे, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि शिकायतकर्ता के व्यक्ति पर किसी भी चोट की अनुपस्थिति अपने आप में शिकायतकर्ता के बयान को बदनाम नहीं कर सकती है। केवल इसलिए कि शिकायतकर्ता एक असहाय पीड़ित था, जिसे बलपूर्वक गंभीर शारीरिक प्रतिरोध की पेशकश करने से रोका गया

था, उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। इस स्थिति में, मेडिकल रिपोर्ट का गैर-उत्पादन बहुत अधिक परिणाम नहीं होगा यदि रिकॉर्ड पर अन्य सबूत विश्वसनीय हैं।

31. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, हमें आक्षेपित निर्णय में कोई तथ्यात्मक या विधिक कमजोरी नहीं मिलती है, जो किसी भी भौतिक अनियमितता से ग्रस्त नहीं है।

32. अपील, जो गुण-दोष रहित है, **खारिज** की जाती है।

33. चूंकि अपीलकर्तागण ने उन्हें दी गई सजा को पहले ही पूरा कर लिया है और उनके द्वारा लगाया गया जुर्माना पहले ही जमा कर दिया गया है, इसलिए, ऐसी स्थिति में, उन्हें आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है।

34. इस निर्णय की एक प्रति संबंधित विद्वान विचारण न्यायालय को इसकी जानकारी और आवश्यक अनुपालन के लिए विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड के साथ प्रेषित की जाए।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 813

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 09.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

आपराधिक अपील संख्या- 1014/2025

राधे लाल **... अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **... प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
मोहम्मद आलम

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:
जी.ए.

ए. आपराधिक विधि - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374(2)-भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 147 और 323 - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3(1)(X) -बीएनएसएस, 2023-धारा 239 (216 द0प्र0सं0)-अपीलकर्ता ने विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी द्वारा पारित दिनांक 19.11.2024 के आदेश को चुनौती दी-चुनौती विशेष रूप से बीएनएसएस (पूर्व में धारा 216 द0प्र0सं0) के तहत आरोपों में परिवर्तन की मांग करते हुए उनके प्रार्थना पत्र को खारिज करने के खिलाफ थी। एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)(X) के तहत तैयार किया गया- अपीलकर्ता ने एससी/एसटी अधिनियम के तहत आरोपों में बदलाव के लिए एक प्रार्थना पत्र दायर किया क्योंकि वह अनुसूचित जाति से संबंधित है और धारा 3(1)X) जो केवल गैर-एससी/एसटी व्यक्तियों पर लागू होती है, उसके खिलाफ लागू नहीं की जा सकती है-विशेष न्यायाधीश एससी/एसटी ने प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया-अभिनिर्धारित- केवल न्यायालयों के पास बीएनएसएस के तहत आरोपों को बदलने का अधिकार नहीं है-एससी/एसटी अधिनियम के प्रावधानों को एससी/एसटी के खिलाफ लागू नहीं किया जा सकता है। अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों, और न्यायालयों को ऐसी विधिक त्रुटियों को सुधारना चाहिए, भले ही अभियुक्त द्वारा लाया गया हो-विचारण न्यायालय को प्रार्थना पत्र पर स्वत: विचार करने और यदि आश्वस्त हो, तो गलत आरोपों को ठीक करने की स्वतंत्रता है। (पैरा 1 से 26)

अपील खारिज कर दी गई। (ई-6)

अनुवादित

<u>उद्धृत प्रकरण की सूची:</u>

1. अनंत प्रकाश सिन्हा बनाम हरियाणा राज्य (2016) 6 एससीसी 105
2. पी. कार्तिकालक्ष्मी बनाम श्री गणेश और अन्य (2017) 3 एससीसी 347
3. डॉ0 नल्लापारेड्डी श्रीधर रेड्डी बनाम ए.पी. राज्य (2020) 12 एससीसी 467
4. के. रवि बनाम टी.एन. राज्य एवं अन्य. (2024) एससीसी ऑनलाइन एससी 2283
5. भारत पारिख बनाम सीबीआई और अन्य (2008) 10 एससीसी 109
6. रतिलाल भानजी मिठानी बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (1979) एससीसी सीआरआई. 405

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता मोहम्मद आलम और श्री निर्मल कुमार पांडे और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री मयंक सिन्हा को सुना।

2. वर्तमान अपील विशेष न्यायाधीश, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम, लखनऊ द्वारा सत्र वाद संख्या 858 सन् 2015 (*उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राधे लाल एवं एक अन्य*), जो मुकदमा अपराध संख्या 99 सन् 2010 से उत्पन्न है, में दिनांक 19.11.2024 को पारित आदेश के विरुद्ध दायर की गई है। उक्त मुकदमा भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 323 तथा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (आगे 'अधिनियम, 1989' कहा गया है) की धारा 3(1)(X) के अंतर्गत, थाना जी.आर.पी. चारबाग, जनपद लखनऊ से संबंधित है। उक्त आदेश द्वारा अपीलकर्ता की भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 (आगे 'बी.एन.एस.एस.' कहा गया है) की धारा 239 (दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216) के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन को निरस्त कर दिया गया है।

3. अभियोजन पक्ष की कहानी का तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि सूचनाकर्ता अविनाश कुमार गौतम द्वारा 20.3.2010 को पुलिस स्टेशन जीआरपी चारबाग में एक एफआईआर दर्ज की गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि सूचनाकर्ता सीनियर टिकट परीक्षक के रूप में तैनात होने के दौरान, 20.3.2010 को खुले दस्ते की ड्यूटी का नेतृत्व कर रहा था, जो एलकेओ/एसटीएन पर ट्रेन संख्या 2232 से आया था और टिकटों की जांच कर रहा था। लगभग 10:15 बजे ड्यूटी पूरी करने के बाद, वह ट्रेन संख्या 2232 के सामान्य डिब्बे के शौचालय में पेशाब करने के लिए गया और जब वह वापस आ रहा था, तो अपीलकर्ता, अर्थात् राधे लाल, जो अपने पैर फैलाते हुए दरवाजे के पास बैठे थे, ने उन्हें बाहर निकलने के लिए मना कर दिया और उन्हें धक्का दिया और एक बार जब उन्होंने विरोध किया, तो अपीलकर्ता और अधिक नाराज हो गया और उनके साथ हाथापाई की और उन्हें फिर से प्लेटफॉर्म संख्या 3 पर धक्का दे दिया और जब उन्होंने ओएन द्विवेदी को फोन किया, वह खिड़की से स्थिति को सामान्य करने की कोशिश कर रहा था और उसके बाद वह खुद बच गया और अपने मोबाइल पर अपने वरिष्ठ को घटना की सूचना दी और उसे एफआईआर दर्ज करने का निर्देश दिया गया। इसी

बीच सह-आरोपी प्रदीप खन्ना आक्रामक मनोदशा में 60-80 अन्य अज्ञात व्यक्तियों के साथ कमरे में घुस गया और पूछा कि अविनाश गुप्ता कौन है और जैसे ही उसने अपना नाम बताया, प्रदीप खन्ना के उकसाने पर उसे घेर लिया गया और कई लोगों ने उसे पीटना शुरू कर दिया, जिस पर नरेंद्र प्रताप सिंह ने हस्तक्षेप किया, सीनियर टिकट कलेक्टर श्रीमती मीरा मिश्रा, श्रीमती दीपा जोशी, प्रदीप दीक्षित, रजनीश पांडेय, सुनील कुमार बाजपेयी और उन्होंने चीजों को ठंडा रखने की कोशिश की लेकिन भीड़ और आक्रामक हो गई और ऊपर बताए गए व्यक्ति, जो उन्हें बचाने के लिए आए थे, उन्हें भी प्रदीप खन्ना और अज्ञात लोगों ने पीटा था, जो भीड़ के रूप में थे और उन्होंने महिला सहकर्मियों की गरिमा को भी ठेस पहुंचाई। यह भी आरोप लगाया गया है कि सीनियर टिकट परीक्षक जीआरपी कार्यालय में दौड़े और घटना की सूचना दी और उसके बाद, उप निरीक्षक आरपीएफ एक श्री दीक्षित के साथ टिकट कलेक्टर कार्यालय आए और किसी भी तरह वे सूचनाकर्ता को टीसी कार्यालय से बाहर ले गए, इसके बाद भी, लगभग सौ से अधिक व्यक्ति 2 से 3 घंटे तक वहां रहे। परिणामस्वरूप, आवेदक घबरा गया और उसके खिलाफ था और उसके बाद उच्च अधिकारियों को सूचित करते हुए, उसने वर्तमान एफआईआर दर्ज कराई।

4. प्रकरण की विवेचना की गई और 14.7.2010 को आरोप पत्र दायर किया गया और मजिस्ट्रेट ने 7.9.2010 को संज्ञान लिया। अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र धारा 147/323 आईपीसी के तहत दायर किया गया है, जिसे धारा 3 (1) (एक्स) एससी/एसटी अधिनियम के साथ पढ़ा जाता है। यह प्रकरण 30.10.2015 को किया गया था और जिला सत्र न्यायालय, लखनऊ के समक्ष दर्ज किया गया था।

5. यह एक स्वीकृत तथ्य है कि सत्र न्यायालय में प्रकरण को सौंपने के बाद, धारा 323 के साथ पठित धारा 34 आईपीसी और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (1) (एक्स) के तहत, 2015 के सत्र परीक्षण संख्या 0000858 में दिनांक 30.11.2015 के आदेश के माध्यम से, राज्य बनाम राधे लाल और अन्य के तहत आरोप तय किए गए थे। दिनांक 30.11.2015 के आदेश को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"आरोप

मै, एस०ए०एच० रिजवी, विशेष न्यायाधीश, एस०सी० / एस०टी०एक्ट लखनऊ एतद्वारा आप **1. राधे लाल व 2. प्रदीप खन्ना** को निम्नलिखित आरोप से आरोपित करता हूँ:-

1. यह कि दिनांक 20.08.2010 को समय करीब 10.30 बजे दिन स्थान टी०सी० आफिस, प्लेटफार्म नं0 1. रेलवे स्टेशन चारबाग थाना क्षेत्र जी०आर०पी० जिला लखनऊ में आप ने अपने अन्य साथियों के साथ मिलकर सामान्य आशय की पूर्ति में वादी मुकदमा अवनीश कुमार गौतम जो अनुसूचित जाति का सदस्य है, को मारने पीटने के आशय से विधि विरूद्ध मजमा नाजायज कायम किया, इस प्रकार से उसके द्वारा आप लोगो ने एक ऐसा अपराध कारित किया जो कि भा०दं०सं० की धारा 147 के अधीन दंडनीय अपराध है और इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में है।

2. यह कि उपरोक्त दिनांक समय एवं स्थान पर आप लोगो ने अपने सामान्य आशय की पूर्ति में वादी मुकदमा अवनीश कुमार गौतम को अपने अन्य साथियो के साथ मिलकर लात घूसों से मारपीट कर साधारण प्रकृति की चोटे पहुंचायी और इस प्रकार आप लोगो ने उसके द्वारा एक ऐसा अपराध कारित किया जो कि भा०द०सं० की धारा 323 सपठित धारा 34 के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध है और इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में है।

3. यह कि उपरोक्त दिनांक, समय एवं स्थान पर आप लोगो ने वादी मुकदमा अवनीश कुमार गौतम को यह जानते हुए कि वह अनुसूचित जाति का सदस्य है, को विधि विरूद्ध मजमा नाजायज कायम कर मारपीट कर साधारण चोटे पहुंचायी व जाति सूचक शब्दो से अपमानित किया। इस प्रकार से उसके द्वारा आप लोगो ने एक ऐसा अपराध कारित किया जो कि धारा 3 (1) 10 एस०सी० / एस०टी० एक्ट के अधीन दंडनीय अपराध है और इस न्यायालय के प्रसज्ञान में है।

एतद्वारा आपको निर्देशित किया जाता है कि उपरोक्त आरोप हेतु आप लोगो का विचारण इस न्यायालय द्वारा किया जायेगा।"

6. अपीलकर्ता का प्रकरण है कि विवेचनाधिकारी द्वारा दिनांक 15.5.2010 को तैयार किए गए पर्चा संख्या 18 में, आरोपी-अपीलकर्ता का बयान दर्ज किया गया था, लेकिन आरोपी-अपीलकर्ता की जाति का उल्लेख नहीं किया गया है, जबकि आरोपी-अपीलकर्ता ने विवेचनाधिकारी को बताया था कि वह अनुसूचित जाति के उपजाति 'पासी' से संबंधित है और चतुर्थ श्रेणी के रूप में काम कर रहा था, रेल विभाग में।

इसके अलावा, एक बार जब धारा 3(1) (X) एससी/एसटी अधिनियम के तहत आरोप तय किया गया, तो आरोपी-अपीलकर्ता ने 19.1.2024 को धारा 239 बीएनएसएस के तहत एक प्रार्थना पत्र दायर किया, जिसमें यह कहा गया है कि 2.4.2010 को ए.सी.जे.एम. (एन.आर.), लखनऊ के समक्ष जमानत के लिए प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करते समय, उन्होंने अपनी जाति का भी उल्लेख किया है और आगे प्रार्थना पत्र के पैरा 8 में, यह प्रार्थना की गई थी कि आवेदक अनुसूचित जाति से संबंधित है और इसलिए, उसके खिलाफ एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (1) (एक्स) के तहत आरोप तय नहीं किया जा सकता है और इसलिए, उपरोक्त अपराध के आरोपों को बदला जा सकता है/हटाया जा सकता है।

7. धारा 3(1)(X) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम के प्रावधान को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"3 (1) (एक्स)- सार्वजनिक दृष्टि के भीतर किसी भी स्थान पर अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्य को अपमानित करने के इरादे से जानबूझकर अपमान या डराने-धमकाने के इरादे से;

8. उपर्युक्त उपबंध के अवलोकन से यह पता चलता है कि अधिनियम, 1989 की धारा 3 के तहत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के खिलाफ अत्याचार के अपराधों के लिए सजा इन शब्दों से शुरू होती है, 'जो कोई भी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है...' कारावास के लिए दंडनीय होगा जो छह महीने से कम नहीं होगा लेकिन जुर्माने के साथ पांच साल तक बढ़ाया जा सकता है। यह उपबंध अपने आप में स्पष्ट है कि उपर्युक्त उपबंध के तहत यह अपराध उस व्यक्ति के विरुद्ध प्रभार्य होगा जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है।

9. अभियुक्त-अपीलकर्ता ने जाति प्रमाण पत्र की एक प्रति भी संलग्न की है जिसमें उसे अनुसूचित जाति की उपजाति 'पासी' दिखाई गई है।

10. जाहिरा तौर पर, आरोपी अपीलकर्ता का प्रार्थना पत्र खुशी से नहीं लिखा गया है, हालांकि वह एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (1) (एक्स) के तहत उसके खिलाफ आरोप तय करने के आदेश से व्यथित है। प्रार्थना पत्र बीएनएसएस (216 द0प्र0सं0) की धारा 239 के तहत दायर किया गया था। बीएनएसएस की धारा 239 का प्रावधान इस प्रकार है: -

"239. न्यायालय आरोप बदल सकता है। (1) कोई भी न्यायालय निर्णय सुनाए जाने से पहले किसी भी समय किसी भी आरोप को बदल या जोड़ सकता है।

(2) इस तरह के प्रत्येक परिवर्तन या परिवर्धन को पढ़ा जाएगा और अभियुक्त को समझाया जाएगा,

(3) यदि किसी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन ऐसा है कि न्यायालय की राय में, अभियुक्त को अपने बचाव में या प्रकरण के संचालन में अभियोजक को पूर्वाग्रह करने की संभावना नहीं है, तो न्यायालय अपने विवेक से, इस तरह के परिवर्तन या परिवर्धन के बाद कर सकता है, मुकदमे के साथ आगे बढ़ें जैसे कि बदला हुआ या जोड़ा गया शुल्क मूल शुल्क था।

(4) यदि परिवर्तन या जोड़ ऐसा है कि न्यायालय की राय में, अभियुक्त या अभियोजक को पूर्वाग्रही बनाने के लिए मुकदमे के साथ तुरंत कार्यवाही करने की संभावना है, जैसा कि पूर्वोक्त है, तो न्यायालय या तो एक नए परीक्षण का निर्देश दे सकता है या मुकदमे को ऐसी अवधि के लिए स्थगित कर सकता है जो आवश्यक हो।

(5) यदि परिवर्तित या अतिरिक्त प्रभार में उल्लिखित अपराध अभियोजन के लिए एक है, जिसकी पूर्व स्वीकृति आवश्यक है, तो प्रकरण को तब तक आगे नहीं बढ़ाया जाएगा जब तक कि ऐसी मंजूरी प्राप्त नहीं हो जाती, जब तक कि उन्हीं तथ्यों पर अभियोजन के लिए मंजूरी पहले से ही प्राप्त नहीं की गई हो, जिन पर परिवर्तित या अतिरिक्त आरोप स्थापित किया गया है।

अनुवादित

11. निस्संदेह, बीएनएसएस की धारा 239 के तहत प्रावधान प्रदान करता है कि न्यायालय के पास किसी भी आरोप को बदलने या बदलने की विस्तृत और व्यापक शक्ति है, जबकि आरोप तय करना आपराधिक कार्यवाही में बहुत महत्वपूर्ण कदम है क्योंकि यह विशिष्ट अपराध के लिए आरोपी को जानकारी जैसे उद्देश्य को पूरा करता है जिसके लिए उस पर आरोप लगाया गया है ताकि वह आरोप की प्रकृति से अवगत हो सके। इसके अलावा, मुकदमे को आगे बढ़ाने के लिए यह मूल आधार है और इस तरह, अभियुक्त अपने बचाव के साथ आ सकता है और इस प्रकार, इस तरह की प्रक्रिया में, उसे मुकदमे के दौरान उसका बचाव करने का व्यापक और उचित मौका प्रदान किया जाता है।

12. वर्तमान प्रकरण में प्रतिपादित विवादास्पद प्रश्न यह है कि क्या धारा 239 बीएनएसएस (216 द0प्र0सं0) के तहत शक्ति न्यायालय को दी गई एक विशेष शक्ति है या किसी भी पक्ष को अधिकार के प्रकरण के रूप में कोई प्रार्थना पत्र दायर करके जोड़ने या परिवर्तन करने का कोई अधिकार है। धारा 239 बीएनएसएस के नंगे पढ़ने से, यह स्पष्ट है कि प्रावधान 'कोई भी न्यायालय किसी भी आरोप को बदल सकती है या जोड़ सकती है' शब्दों से शुरू होती है, इस प्रकार, यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि किसी भी पक्ष को किसी भी प्रार्थना पत्र को स्थानांतरित करके जोड़ने या परिवर्तन करने का कोई अधिकार नहीं दिया गया है। बार-बार, सर्वोच्च न्यायालय ने इस मुद्दे को विस्तार से बताया है।

13. मैं **अनंत प्रकाश सिन्हा बनाम हरियाणा राज्य (2016) 6 एससीसी 105** में प्रकरण का उल्लेख कर सकता हूं, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि यदि कोई दोष है या कुछ छूट गया है तो न्यायालय आरोप को बदल या बदल सकती है। उपरोक्त निर्णय के प्रासंगिक पैरा 21 और 22 को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"21. वर्तमान में दूसरे पहलू पर। श्री शरण का निवेदन यह है कि विद्वान मजिस्ट्रेट सूचनाकर्ता द्वारा पसंद किए गए प्रार्थना पत्र पर विचार नहीं कर सकते थे, क्योंकि ऐसा प्रार्थना पत्र अक्षम है क्योंकि इसे लोक अभियोजक द्वारा दायर किया जाना है। इस संबंध में, उन्होंने शिव कुमार बनाम हुकम चंद, (1999) 7 एससीसी 467; 1999 (सीआरआई) 1277. उक्त प्रकरण में, अपीलकर्ता की शिकायत यह थी कि उसके द्वारा नियुक्त अधिवक्ता को संबंधित लोक अभियोजक से सहमति प्राप्त करने के बावजूद उच्च न्यायालय द्वारा अभियोजन करने की अनुमति नहीं दी गई थी। अवर न्यायालय ने इस हद तक एक आदेश पारित किया था कि सूचनाकर्ता द्वारा नियुक्त अधिवक्ता लोक अभियोजक की निगरानी, मार्गदर्शन और नियंत्रण में प्रकरण का संचालन करेगा। उन्होंने आगे निर्देश दिया था कि लोक अभियोजक कार्यवाही पर अपने नियंत्रण को बनाए रखेंगे। उक्त आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी और पुनरीक्षण की अनुमति देते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश ने निर्देश दिया था कि शिकायतकर्ता या निजी व्यक्ति द्वारा नियुक्त अधिवक्ता लोक अभियोजक के निर्देशों के तहत कार्य करेगा और न्यायालय की अनुमति से साक्ष्य बंद होने के बाद लिखित दलीलें प्रस्तुत कर सकता है और प्रकरण का प्रभारी लोक अभियोजक अभियोजन का संचालन करेगा। इस न्यायालय ने धारा 301 का उल्लेख

किया। 302 (2), 225 द0प्र0सं0 और विभिन्न अन्य प्रावधानों को इस प्रकार माना जाता है: (शिव कुमार प्रकरण, एससीसी पृष्ठ 472, पैरा 13 और 14)

"13. संहिता की योजना से विधायी इरादा स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि सत्र न्यायालय में अभियोजन लोक अभियोजक के अलावा किसी और द्वारा नहीं किया जा सकता है। विधायिका राज्य को याद दिलाती है कि नीति को सत्र न्यायालय में अभियुक्त के मुकदमे में निष्पक्षता के अनुरूप होना चाहिए। एक लोक अभियोजक से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह किसी न किसी तरह अभियुक्त की दोषसिद्धि में प्रकरण तक पहुंचने की प्यास दिखाए, भले ही प्रकरण में शामिल वास्तविक तथ्य कुछ भी हों। अभियोजन का संचालन करते समय लोक अभियोजक के अपेक्षित रवैये को न केवल न्यायालय और जांच एजेंसियों के प्रति बल्कि अभियुक्त के प्रति भी निष्पक्षता से देखा जाना चाहिए। यदि कोई अभियुक्त मुकदमे के दौरान किसी वैध लाभ का हकदार है, तो लोक अभियोजक को इसे छिपाना या छिपाना नहीं चाहिए। इसके विपरीत, लोक अभियोजक का यह कर्तव्य है कि वह इसे सामने लाए और इसे अभियुक्त को उपलब्ध कराए। भले ही बचाव पक्ष के अधिवक्ता ने इसे नजरअंदाज कर दिया हो, लेकिन लोक अभियोजक के पास अतिरिक्त जिम्मेदारी है कि अगर यह उनके संज्ञान में आता है तो वह इसे न्यायालय के संज्ञान में लाएं। एक निजी अधिवक्ता, अगर अभियोजन का संचालन करने के लिए एक स्वतंत्र हाथ की अनुमति दी जाती है, तो वह प्रकरण को दोषसिद्धि तक लाने पर ध्यान केंद्रित करेगा, भले ही यह दोषी ठहराए जाने के लिए उपयुक्त प्रकरण न हो। यही कारण है कि संसद ने उन पर लगाम लगाई और लोक अभियोजक द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार उनकी भूमिका को सख्ती से अधीन किया।

14. यह केवल एक समग्र पर्यवेक्षण नहीं है जो लोक अभियोजक से ऐसे प्रकरण में प्रदर्शन करने की अपेक्षा की जाती है जब एक निजी तौर पर लगे हुए अधिवक्ता को उसकी ओर से कार्य करने की अनुमति दी जाती है। ऐसी स्थिति में एक निजी अधिवक्ता जो भूमिका निभा सकता है, वह शायद एक न्यायालय में अपने वरिष्ठ के प्रकरण का संचालन करने वाले एक कनिष्ठ अधिवक्ता के साथ तुलनीय है। निजी अधिवक्ता को लोक अभियोजक की ओर से कार्य करना है, हालांकि इस तथ्य के बावजूद कि वह एक निजी पार्टी द्वारा प्रकरण में लगा हुआ है। यदि लोक अभियोजक की भूमिका को केवल पर्यवेक्षी भूमिका तक सीमित करने की अनुमति दी जाती है, तो मुकदमा निजी पक्ष और अभियुक्त के बीच एक लड़ाई बन जाएगा, जो संहिता की धारा 225 में विधायी जनादेश को एक मृत पत्र बना देगा।

22. इस विचार के होने के नाते, इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को बरकरार रखा। शिव कुमार प्रकरण में उक्त निर्णय, हमारी राय में, तथ्यों के आधार पर अलग है। वर्तमान प्रकरण मुकदमे या किसी भी क्षेत्र से संबंधित नहीं है जिसके द्वारा एक निजी अधिवक्ता कार्यवाही का नियंत्रण लेता है। जैसा कि स्पष्ट है, सूचनाकर्ता द्वारा आईपीसी की धारा 406 के तहत आरोप जोड़ने के लिए एक प्रार्थना पत्र दायर किया गया था क्योंकि जहां तक पति के खिलाफ आपराधिक विश्वासघात के आरोप थे। यह एक तरह से आरोप तय करने में दोष के बारे में विद्वान मजिस्ट्रेट के ध्यान में ला रहा था। न्यायालय स्वत: ऐसा कर सकती थी। ऐसी स्थिति में, हम उक्त प्रार्थना पत्र पर विचार करने में विद्वान मजिस्ट्रेट की ओर से कोई दोष नहीं पाते हैं। यह

कहा जा सकता है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने सामग्रियों का उल्लेख किया है और अपनी प्रथम दृष्टया संतुष्टि दर्ज की है। उक्त प्रथम दृष्टया दृष्टिकोण में कोई त्रुटि नहीं है। हमें पुनरीक्षण आदेश में कोई त्रुटि भी नहीं दिखाई देती है जिसके द्वारा पुनरीक्षण न्यायालय ने सास के खिलाफ लगाए गए आरोप को रद्द कर दिया है। तदनुसार, हम पुनरीक्षण में पारित आदेश में हस्तक्षेप करने की अनिच्छा व्यक्त करने में उच्च न्यायालय के आदेश की पुष्टि करते हैं। हम स्पष्ट कर सकते हैं कि पूरी जांच केवल आरोप तय करने के उद्देश्य से है और कुछ नहीं। विद्वान मजिस्ट्रेट मुकदमे को आगे बढ़ाएंगे और रिकॉर्ड पर लाए गए साक्ष्य के अनुसार प्रकरण का फैसला करेंगे और किए गए किसी भी अवलोकन से प्रभावित नहीं होंगे क्योंकि इसे आक्षेपित आदेश की विधिक रक्षात्मकता का परीक्षण करने के उद्देश्य से प्रतिबंधित किया जाना चाहिए।

14. सर्वोच्च न्यायालय ने पी**. कार्तिकलक्ष्मी बनाम श्री गणेश और एक अन्य (2017) 3 एससीसी 347** प्रकरण में निर्णय के पैरा 6, 7 और 8 में निर्णय दिया है, जो इस प्रकार है: -

"6. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, हम प्रतिवादी 1 के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की प्रस्तुति में बल पाते हैं। द0प्र0सं0 की धारा 216 न्यायालय को निर्णय सुनाए जाने से पहले किसी भी समय किसी भी आरोप को बदलने या जोड़ने का अधिकार देती है। अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि न्यायालय में निहित शक्ति न्यायालय के लिए अनन्य है और किसी भी पक्ष को अधिकार के प्रकरण के रूप में कोई प्रार्थना पत्र दायर करके इस तरह के जोड़ या परिवर्तन की मांग करने का कोई अधिकार नहीं है। यह हो सकता है कि यदि आरोप तय करने में कोई चूक हुई हो और यदि अपराध की कोशिश करने वाले न्यायालय के ज्ञान में आता है, तो द0प्र0सं0 की धारा 216 के तहत आरोप को बदलने या जोड़ने की शक्ति हमेशा न्यायालय में निहित होती है और निर्णय सुनाए जाने से पहले किसी भी समय न्यायालय के पास ऐसी शक्ति उपलब्ध होती है। यह न्यायालय के लिए कुछ आकस्मिकताओं के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करने के लिए एक सक्षम प्रावधान है जो उसके ध्यान में आती है या उसके संज्ञान में लाई जाती है। ऐसी स्थिति में, यदि न्यायालय के ज्ञान में आता है कि आरोप को बदलने या जोड़ने की आवश्यकता उत्पन्न हुई है, तो वह स्वयं ऐसा कर सकता है और उस उद्देश्य के लिए कोई आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं है। इस तरह के परिवर्तन या जोड़ के बाद जब अंतिम निर्णय दिया जाता है, तो पार्टियों के लिए विधि के अनुसार अपने उपाय करने के लिए यह खुला होगा।

7. हमें इस संदर्भ में द0प्र0सं0 की धारा 221 और 222 के माध्यम से लिया गया था। इस प्रकरण में शामिल तथ्यों के आलोक में, हम केवल द0प्र0सं0 की धारा 216 से संबंधित हैं। इसलिए, हम प्रकरण में अन्य प्रावधानों के निहितार्थ की जांच करने का प्रस्ताव नहीं करते हैं। हम स्वयं को धारा 216 के आह्वान तक ही सीमित रखना चाहते हैं और उसी के साथ रहना चाहते हैं। हमारे इस निष्कर्ष के आलोक में कि धारा 216 द0प्र0सं0 को लागू करने की शक्ति विशेष रूप से निर्णय सुनाने से पहले किसी भी समय किसी भी आरोप में परिवर्तन या जोड़ने के उद्देश्य से एक सक्षम प्रावधान के रूप में न्यायालय के पास ही सीमित है, हम यह स्पष्ट करते हैं कि कोई भी पक्ष, न तो वास्तविक शिकायतकर्ता और न ही अभियुक्त या उस प्रकरण के लिए अभियोजन

पक्ष को आरोप में कोई अतिरिक्त या परिवर्तन की मांग करने का कोई निहित अधिकार नहीं है। क्योंकि यह द0प्र0सं0 की धारा 216 के तहत प्रदान नहीं किया गया है। यदि पक्षों द्वारा इस तरह के पाठ्यक्रम को अपनाने की अनुमति दी जाती है, तो आपराधिक न्यायालय के लिए अपनी कार्यवाही समाप्त करना असंभव हो जाएगा और त्वरित सुनवाई की अवधारणा खतरे में पड़ जाएगी।

8. ऐसी परिस्थितियों में, जब अपीलकर्ता द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष स्वयं पसंद किया गया प्रार्थना पत्र सुनवाई योग्य नहीं था, तो विचारण न्यायालय पर द0प्र0सं0 की धारा 216 के तहत आदेश पारित करना अनिवार्य नहीं था। इसलिए, उक्त आदेश के द0प्र0सं0 की धारा 397 के तहत पुनरीक्षण योग्य होने का कोई सवाल ही नहीं था। अपीलकर्ता के कहने पर शुरू की गई पूरी कार्यवाही सुनवाई योग्य नहीं थी। चूंकि विधिक मुद्दे को आवश्यक रूप से ठीक किया जाना था, हम विधि को स्पष्ट करने के लिए बाध्य हैं जैसा कि द0प्र0सं0 की धारा 216 के तहत उपलब्ध है। उस हद तक, विधिक स्थिति को स्पष्ट करने के बाद, हम यह स्पष्ट करते हैं कि अपीलकर्ता के कहने पर शुरू की गई पूरी कार्यवाही पूरी तरह से गलत थी और विधि में दूषित थी और विचारण न्यायालय द्वारा इस पर विचार नहीं किया जाना चाहिए था। जैसा कि प्रतिवादी 1 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा ठीक ही बताया गया है, अपीलकर्ता द्वारा अपनाए गए और नीचे की न्यायालय द्वारा मनोरंजन किए गए इस तरह के पाठ्यक्रम ने अनावश्यक रूप से कार्यवाही को आगे बढ़ाने की गुंजाइश प्रदान की है जिसे नीचे की न्यायालय द्वारा अनुमति नहीं दी जानी चाहिए थी।

15. परीक्षण में बहुत स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया है कि आरोप रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री पर आधारित होना चाहिए और यदि बाद के साक्ष्य रिकॉर्ड पर आते हैं, तो आरोप तय होने के बाद, उसे बदला या बदला जा सकता है और वास्तव में न्यायालय की ओर से यह देखना अनिवार्य है कि अभियुक्त के साथ कोई पूर्वाग्रह न हो ताकि उसकी निष्पक्ष सुनवाई हो सके। वास्तव में, यह तुच्छ है कि आरोप तय करने का उद्देश्य या उसके द्वारा किए गए अपराध के संबंध में किसी व्यक्ति के औपचारिक आरोप को जानना और इसके अलावा, बीएनएसएस की धारा 234 के तहत आरोप की सामग्री के प्रावधान भी निर्धारित किए गए हैं, ताकि अभियुक्त अपना बचाव करने के लिए उसके खिलाफ विशिष्ट आरोपों को जान सके। उचित रूप से।

16. इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **2020 (12) एससीसी 467 में प्रतिवेदित डॉ. नल्लापारेड्डी श्रीधर रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य** के प्रकरण में निर्णय के पैरा 16 में निम्नानुसार व्यवस्था दी है: -

"16. धारा 216 अध्याय XVII द0प्र0सं0 में दिखाई देती है। धारा 216 के प्रावधानों के तहत, न्यायालय को फैसला सुनाए जाने से पहले किसी भी समय आरोप में बदलाव या जोड़ने का अधिकार है। जब भी इस तरह का कोई परिवर्तन या जोड़ किया जाता है, तो इसे पढ़कर अभियुक्त को समझाया जाना चाहिए। उप-धारा (1) में "किसी भी शुल्क में जोड़ें" वाक्यांश में एक नया शुल्क जोड़ना शामिल है। यह प्रावधान परीक्षण के दौरान रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री के आधार पर शुल्क में परिवर्तन या वृद्धि को सक्षम बनाता है। धारा 216 में प्रावधान है कि निर्णय सुनाए जाने से पहले किसी भी समय जोड़ या परिवर्तन किया जाना चाहिए। उप-धारा

(3) में प्रावधान है कि यदि किसी आरोप में परिवर्तन या वृद्धि से अभियुक्त के बचाव में, या प्रकरण के संचालन में अभियोजक के प्रति पूर्वाग्रह नहीं होता है, तो न्यायालय मुकदमे को आगे बढ़ा सकती है जैसे कि अतिरिक्त या वैकल्पिक शुल्क मूल आरोप है। उप-धारा (4) एक ऐसी स्थिति पर विचार करती है जहां आरोप को जोड़ने या बदलने से अभियुक्त पूर्वाग्रह पैदा होगा और न्यायालय को या तो एक नए मुकदमे को निर्देशित करने या मुकदमे को ऐसी अवधि के लिए स्थगित करने का अधिकार मिलता है जो अभियुक्त के कारण होने वाले पूर्वाग्रह को कम करने के लिए आवश्यक हो सकता है। द0प्र0सं0 की धारा 217 गवाहों को वापस बुलाने से संबंधित है जब मुकदमा शुरू होने के बाद न्यायालय द्वारा आरोप में बदलाव किया जाता है या जोड़ा जाता है।

17. यह अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा 239 बीएनएसएस किसी भी आरोप को बदलने या बदलने के लिए न्यायालय की एक विशेष शक्ति है और आगे आरोप के जोड़ने या परिवर्तन के संबंध में परीक्षण का एक तरीका भी स्पष्ट किया गया है कि यदि रिकॉर्ड पर कोई सामग्री लाई गई है, तो कथित अपराध के अवयवों के साथ सीधा संबंध या संबंध है, शुल्कों के अतिरिक्त या परिवर्तन के संबंध में विचार किया जा सकता है।

18. **के.रवि बनाम तमिलनाडु राज्य और एक अन्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 2283** प्रकरण में, इसने निर्णय के पैरा 7 में निम्नानुसार व्यवस्था की है: -

"7. घटनाओं के उपरोक्त परिप्रेक्ष्य से, यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि प्रतिवादी संख्या 2 ने सत्र न्यायालय के साथ-साथ मुकदमेबाजी के पहले दौर में खुद को सत्र न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय से बरी करने में विफल रहने के बाद, सत्र न्यायालय द्वारा आरोप तय करने के बाद, द0प्र0सं0 की धारा 216 के तहत सत्र न्यायालय के समक्ष एक और कष्टप्रद प्रार्थना पत्र दायर किया, चार्ज के संशोधन के लिए। सत्र न्यायालय ने उक्त प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया, प्रतिवादी संख्या 2 ने द0प्र0सं0 की धारा 397 और 401 के तहत उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण प्रार्थना पत्र को प्राथमिकता दी। उच्च न्यायालय ने अपने असामान्य आक्षेपित आदेश में। प्रतिवादी संख्या 2 (ए-2) को उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों से मुक्त कर दिया, हालांकि डिस्चार्ज की मांग करने वाले उनके पहले के प्रार्थना पत्र को सत्र न्यायालय ने पहले ही खारिज कर दिया था और उच्च न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की गई थी और उस स्थिति को अंतिम रूप दिया गया था। उच्च न्यायालय यह महसूस करने में पूरी तरह से विफल रहा कि उसके खिलाफ आक्षेपित आदेश सत्र न्यायालय द्वारा पारित आदेश था, जिसमें प्रतिवादी संख्या 2 के प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया गया था, जिसमें द0प्र0सं0 की धारा 216 के तहत उसके खिलाफ लगाए गए आरोप में संशोधन की मांग की गई थी, और उक्त आदेश प्रकृति में एक अंतरिम आदेश था।

19. यह कई शब्दों में कहा गया है कि किसी भी पक्ष द्वारा जोड़ने या परिवर्तन के लिए किसी भी प्रार्थना पत्र को दायर करने का दावा अधिकार के प्रकरण के रूप में नहीं किया जा सकता है क्योंकि इसके लिए न्यायालय में निहित शक्ति अनन्य है।

20. जहां तक वर्तमान प्रकरण का संबंध है, प्रथम दृष्टया, ऐसा लगता है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता के खिलाफ आईपीसी के तहत अन्य अपराधों सहित एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (1) (एक्स) के तहत आरोप तय किए हैं, जबकि अपीलकर्ता स्वयं एससी/एसटी जाति से संबंधित है। एससी/एसटी एक्ट की धारा 3 को पढ़ने पर यह स्पष्ट है कि एससी/एसटी जाति के व्यक्ति पर इसका आरोप नहीं लगाया जा सकता है।

21. वास्तव में, 19.1.2024 को, अपीलकर्ता द्वारा एक प्रार्थना पत्र दायर किया गया था, जिसमें प्रार्थना की गई थी कि एससी/एसटी अधिनियम के तहत उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों को रद्द कर दिया जाना चाहिए। विद्वान विचारण न्यायालय ने प्रार्थना पत्र पर विचार करते हुए, 19.11.2024 को आदेश पारित किया और परिसर में प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया कि चूंकि एससी/एसटी अधिनियम के तहत उनके पूर्ववर्ती द्वारा पहले ही आरोप तय किए जा चुके हैं और, इसलिए, बाद के चरण में, उसके द्वारा इसे बदला/बदला नहीं जा सकता है, जबकि यह भी नोट किया गया है कि अपीलकर्ता अनुसूचित जाति का है। उपर्युक्त निष्कर्ष के समर्थन में, उन्होंने **भारत पारिख बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य 1979 एससीसी (सीआरआई) 405** और **(2008) 10 एससीसी 109 और रतिलाल भानजी मिठानी बनाम राज्य महाराष्ट्र और अन्य** के प्रकरण में निर्धारित विधि पर विचार किया। उपरोक्त प्रकरण में निर्णयों का अनुपात अलग-अलग तथ्यात्मक मैट्रिक्स पर प्रतीत होता है क्योंकि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा जिस अनुपात को ध्यान में रखा गया है, वह यह है कि एक बार आरोप तय हो जाने के बाद आरोपी को द0प्र0सं0 की धारा 216 के तहत आरोपमुक्त नहीं किया जा सकता है। वास्तव में, अपीलकर्ता का प्रार्थना पत्र निर्वहन के संबंध में नहीं था, बल्कि यह एससी/एसटी अधिनियम के तहत विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा लगाए गए आरोपों को छोड़ने/हटाने के लिए था।

22. इसके अलावा, विद्वान विचारण न्यायालय ने अपने दिमाग को इस तरह से लागू किया जैसे कि आरोप तय करने के आदेश को वापस लिया जाना है, जबकि धारा 239 बीएनएसएस (216 द0प्र0सं0) के नंगे पढ़ने से यह स्पष्ट है कि यह आरोपों में परिवर्तन के संबंध में है। उपरोक्त दोनों निर्णय, जिन्हें दिनांक 9.11.2024 के आदेश में उद्धृत किया गया है, अलग-अलग तथ्यात्मक मैट्रिक्स पर प्रतीत होते हैं। इस न्यायालय को इस बात की जानकारी है कि यदि प्रकरण के तथ्यात्मक मैट्रिक्स में थोड़ा अंतर है, तो उक्त निर्णय का अनुपात लागू नहीं होगा। वर्तमान प्रकरण में, मुद्दा आरोपों में परिवर्तन के संबंध में है और यह तुच्छ है कि निर्णय सुनाने से पहले किसी भी स्तर पर आरोपों को बदला जा सकता है।

23. इस स्तर पर, यह सवाल उठता है कि यदि चूक या किसी भी कारण से परिवर्तन की आवश्यकता है और यह संबंधित न्यायालय के संज्ञान में नहीं आता है, जो अपराधों की सुनवाई कर रहा है, तो क्या पक्षों को संबंधित न्यायालय के ज्ञान में इसे लाने का कोई अधिकार नहीं होगा। पी. कार्तिकालक्ष्मी (पूर्वोक्त) में तय विधि यह है कि आरोप को बदलने के लिए न्यायालय की विशेष शक्ति है और किसी भी पक्ष को परिवर्तन/परिवर्तन की मांग करने की कोई शक्ति नहीं है। विधायिका का इरादा स्पष्ट प्रतीत होता है कि आरोपों में परिवर्तन के लिए कोई भी प्रार्थना पत्र दायर करने के लिए किसी भी पक्ष के लिए रास्ता नहीं खोला जा सकता है क्योंकि

इससे मुकदमे की कार्यवाही में देरी हो सकती है, लेकिन क्या केवल इस कारण से, पक्षकार को विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष आरोपों में त्रुटि या चूक लाने के लिए भी रोका जाना चाहिए।

24. यह कहना उचित है कि पी. कार्तिकालक्ष्मी (**पूर्वोक्त**) और अनंत प्रकाश सिन्हा (**पूर्वोक्त**) के प्रकरण में विधि तय हो गया है कि पक्षकारों द्वारा अधिकार के प्रकरण के रूप में आरोप में परिवर्तन के लिए कोई दावा नहीं किया जा सकता है, लेकिन विचारण न्यायालय के समक्ष आरोप तय करने में चूक या त्रुटि लाने के लिए प्रार्थना पत्र को स्थानांतरित करने के लिए कोई प्रतिबंध या बाधा नहीं प्रतीत होती है और इस घटना में, यह ऐसे विचारण न्यायालय के विवेक पर निर्भर होना चाहिए कि वह त्रुटि या चूक, यदि कोई हो, के बारे में जागरूक हो, और यदि आवश्यक हो, तो वह ऐसे आरोपों को बदलने के लिए स्वत: प्रेरणा शक्ति का उपयोग कर सकता है।

25. उपरोक्त प्रस्तुतीकरण और चर्चा को ध्यान में रखते हुए, अस्वीकृति के आदेश को भरत पारिख (**पूर्वोक्त**) और रतिलाल भानजी मिठानी (**पूर्वोक्त**) के प्रकरण में दिए गए निर्णय के अनुपात पर विचार करने की सीमा तक अनुमोदित नहीं किया जा सकता है, लेकिन जहां तक आवेदक द्वारा दायर प्रार्थना पत्र अधिकार के प्रकरण के रूप में आरोपों में परिवर्तन की मांग करता है, इसे विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा सही ढंग से खारिज कर दिया गया है।

26. परिणामस्वरूप, आपराधिक अपील एतद्द्वारा **खारिज** की जाती है।

27. तथापि, विद्वान विचारण न्यायालय, यदि कोई त्रुटि हो, तो उसके संशोधन के उद्देश्य से प्रार्थना पत्र का स्वतः संज्ञान लेते हुए संदर्भ ले सकता है।

28. अंतरिम आदेश रद्द किया जाता है।

29. कार्यालय इस आदेश को संबंधित विचारण न्यायालय को तुरंत सूचित करेगा।

(2025) 5 ILRA 822

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति संदीप जैन

आपराधिक अपील संख्या- 1231/2023

हीरा कोल **... अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य **... प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अनिल कुमार ओझा, श्री संजीव कुमार अस्थाना

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

जी.ए.

अनुवादित

ए. आपराधिक विधि - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374(2)-भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 376(2)(i) और पॉक्सो अधिनियम की धारा 5/6 को चुनौती-दोषसिद्धि-अपीलकर्ता को 6 साल की लड़की पर कथित तौर पर यौन उत्पीड़न करने के लिए दोषी ठहराया गया था-एफआईआर और प्रत्यक्षदर्शी की गवाही में प्रवेश का संकेत देने वाले किसी भी कार्य का उल्लेख नहीं था-द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत पीड़ित के बयान में स्पष्टता और निरंतरता का अभाव था-चिकित्सा साक्ष्य /(पीडब्लू-6) में कोई चोट नहीं थी- एक आकस्मिक गवाह (पीडब्लू-7) की पहचान नहीं कर सका। न्यायालय में पीड़िता-मुकदमे में पीड़िता के संस्करण में सुधार किया गया था और अन्य सबूतों द्वारा इसकी पुष्टि नहीं की गई थी-न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष ने पॉक्सो अधिनियम की धारा 7/9 (एम) के तहत केवल "गंभीर यौन उत्पीड़न" का कार्य साबित किया है, न कि भेदक यौन उत्पीड़न-तदनुसार सजा को पॉक्सो अधिनियम की धारा 10 के तहत आजीवन कारावास से घटाकर 7 साल के कठोर कारावास में कर दिया गया था चूंकि अपीलकर्ता पहले ही 8 साल से अधिक जेल में बिता चुका था, न्यायालय ने जुर्माने के भुगतान के अधीन उसकी तत्काल रिहाई का आदेश दिया। (पैरा 1 से 43)

अपील को आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत प्रकरण की सूची:</u>

मोनू बनाम उ0प्र0 राज्य, तटस्थ उद्धरण संख्या-2025: एएचसी-14721-डीबी

(माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह और माननीय न्यायमूर्ति संदीप जैन द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता अनिल कुमार ओझा, राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री नागेंद्र कुमार श्रीवास्तव को सुना तथा अभिलेख का अवलोकन किया।

2. वर्तमान आपराधिक अपील, श्रीमती निहारिका चौहान, विद्वान अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (पी.ओ.सी.एस.ओ.), सोनभद्र द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय एवं आदेश दिनांक 29.09.2022 से उत्पन्न हुई है, जो विशेष वाद (पी.ओ.सी.एस.ओ. अधिनियम, 2012) संख्या 37 वर्ष 2017 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हीरा कोल) में, मुकदमा अपराध संख्या 121 वर्ष 2017, धारा 376(2)(i) भारतीय दंड संहिता तथा धारा 5(म)/6 बाल लैंगिक अपराधों से संरक्षण अधिनियम, 2012 (आगे 'पी.ओ.सी.एस.ओ. अधिनियम' के रूप में संदर्भित) के अंतर्गत, थाना-घोरावल, जनपद-सोनभद्र से संबंधित है; जिसके द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ता हीरा कोल को दोषसिद्ध ठहराते हुए धारा 6 पी.ओ.सी.एस.ओ. अधिनियम के अंतर्गत आजीवन कारावास तथा ₹50,000/- के अर्थदंड से दंडित किया गया है तथा अर्थदंड के भुगतान में चूक होने पर अपीलकर्ता को अतिरिक्त एक वर्ष का कारावास भुगतना होगा।

3. अभियोजन की कहानी दिनांक 02.07.2017 (मुकदमे में प्रदर्श क1 के रूप में प्रदर्शित) पर सामने आई, जो पहले सूचनाकर्ता-'के' (मुकदमे में पी.डब्ल्यू.-1) द्वारा दर्ज की गई थी, जो पीड़ित 'पी' के नाना हैं। उसमें बताया गया था कि 01.07.2017 को शाम लगभग 6.00 बजे उनकी नानिल पोती 'पी' (मुकदमे में पी.डब्ल्यू.-2) प्लास्टिक के बर्तन में पानी लाने के लिए पास के हैंड-पंप पर गई थी। वहां, वर्तमान अपीलकर्ता पहले से मौजूद था। उसने 'पी' का अंडरवियर उतार दिया और उसके शरीर के अंगों को अनुचित तरीके से रगड़ा ("सहलाने लगा"), जबकि 'पी' हैंडपंप का काम कर रहा था। इसे देखने पर, घटना स्थल पर मौजूद बच्चों और अन्य व्यक्तियों ने शोर मचाया। उस पर, 'K' घटना स्थल तक भाग गया। अपीलकर्ता ने भागने की कोशिश की लेकिन 'के' ने उसे पकड़ लिया। पुलिस को पुलिस हेल्पलाइन संख्या 100 पर सूचना दी गई। एफआईआर अगले दिन, 02.07.2017 को लगभग 3.55 बजे पंजीकृत किया गया था। इसे मुकदमे में प्रदर्श क3 के रूप में प्रदर्शित किया गया है। 'पी' को डॉ. गीता जैसवार (पीडब्ल्यू -6 मुकदमे में) द्वारा दोपहर 01.00 बजे आयोजित मेडिको लीगल एग्जामिनेशन (मुकदमे में प्रदर्श क7 के रूप में प्रदर्शित) के अधीन किया गया था। उन्होंने कहा कि 'पी' पर उनके द्वारा कोई चोट नहीं देखी गई थी। घटना के एक महीने से अधिक समय के बाद, पीड़िता का बयान 18.08.2017 को द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत दर्ज किया गया था। इसे मुकदमे में प्रदर्श क2 के रूप में प्रदर्शित किया गया है। उसमें उसने बताया कि अपीलकर्ता ने उसका अंडरवियर उतार दिया था; उसके लिंग को दिखाया; 'पी' पर "मर्मज्ञ यौन हमला" करने के अपने इरादे को व्यक्त करते हुए शब्द बोले और उसे अपनी गोद

में उठा लिया। आगे पूछताछ करने पर, उसने कहा, अपीलकर्ता ने उस पर अपना लिंग दिखाया था। अपीलकर्ता द्वारा "भेदक यौन हमले" के रूप में किसी भी कार्य के कमीशन को इंगित करने के लिए उस स्तर पर उसके द्वारा कोई अन्य या आगे का बयान नहीं दिया गया था।

4. विवेचना पूरी होने पर, आरोप पत्र 19.08.2017 को प्रस्तुत किया गया। इसे मुकदमे में प्रदर्श क6 के रूप में प्रदर्शित किया गया है। उस पर अपीलकर्ता को मुकदमे के लिए रखा गया था। प्रारंभ में, 05.03.2018 को दो आरोप तय किए गए थे। जिन्हें नीचे पढ़ा गया है:

"प्रथमः- यह कि दिनॉक-01.07.2017 को करीब 18 बजे बहद स्थान-ग्राम पेढ़, थाना - घोरावल, जिला-सोनभद्र में आपने वादी 'K' की 6 वर्षीया अवयस्क नातिन/पीड़िता के साथ अवांछनीय शारीरिक संपर्क और अग्रकियाओं के अग्रसरण में उसकी चड्ढी उतारकर, उसके अंगों को सहलाकर अपने शरीर से सटाकर उसकी लज्जा भंग करने के आशय से आपराधिक बल का प्रयोग कर उसके साथ छेड़छाड़ की। ऐसा करके आपने धारा 354 क भारतीय दंड संहिता के तहत दंडनीय अपराध किया है जो इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में है।

द्वितीयः- यह कि उपरोक्त दिनांक, समय व स्थान पर आपने वादी की 06 वर्षीया अवयस्क नातिन/पीड़िता की चड्ढी उतारकर, उसके अंगों को सहलाकर अपने शरीर से सटाकर उसकी लज्जा भंग करने के आशय से आपराधिक बल का प्रयोग कर उनके साथ छेडछाड़ कर लैंगिक हमला कारित किया। ऐसा करके आपने धारा-7 सहपठित धारा-8 लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध किया है जो इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में है।"

5. दिनांक 03.02.2020 को (परिवर्तित शुल्क के रूप में वर्णन करते हुए), दो अन्य आरोप तय किए गए। वे नीचे के रूप में पढ़ते हैं:

"प्रथम- यह कि दिनॉक 01.07.2017 को समय करीब 06:00 बजे सायं बहद स्थान वादी मुकदमा के मकान के पास स्थित हैण्डपम्प ग्राम पेढ़, अन्तर्गत थाना घोरावल जिला सोनभद्र में जब वादी मुकदमा की नाबालिग नतिनी पीडिता उम्र करीब 06 वर्ष पानी लेने गयी थी तो आप उसे पकड़ कर अपना पेशाब का रास्ता उसके पेशाब के रास्ते पर रगडने लगे थे। आप का यह कृत्य धारा-376 (2) (i) भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध है जो इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में है।

द्वितीय- यह कि उपरोक्त दिनॉक, समय व स्थान पर आपने वादी मुकदमा की नाबालिग नतिनी पीड़िता उम्र करीब 06 वर्ष के साथ प्रवेशन लैंगिक हमला कारित किया। आपका यह कृत्य धारा-5 (m) गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमला के अन्तर्गत परिभाषित है तथा धारा-6 लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 के तहत दण्डनीय अपराध है जो इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में है। "

अनुवादित

6. मुकदमे में, उपरोक्त दस्तावेजी साक्ष्यों के अलावा, अभियोजन पक्ष ने सात गवाहों के मौखिक साक्ष्य का नेतृत्व किया। 'K'-पहले सूचनाकर्ता की जांच पी.डब्लू.1 के रूप में की गई थी। अपनी परीक्षा-इन-चीफ के दौरान, उन्होंने साबित किया, जब वह घटना स्थल पर पहुंचे, तो उन्होंने देखा कि अपीलकर्ता ने 'पी' का अंडरवियर हटा दिया था और उचित रूप से उसे गले लगा लिया था (कपड़े उतारने की उस स्थिति में) और उसके शरीर के अंगों को अनुचित तरीके से रगड़ रहा था। 'के' द्वारा डांटने पर, अपीलकर्ता ने उसे जाने दिया। फिर 'के' ने अपीलकर्ता को पकड़ लिया और पुलिस को बुलाया। उन्होंने इस तथ्य को भी साबित कर दिया कि अगले दिन एफआईआर दर्ज की गई थी। 'पी' की उम्र के बारे में, उन्होंने साबित किया, वह 6-7 साल की उम्र के बीच थी। उन्होंने आगे साबित किया कि अपीलकर्ता को पुलिस ने मौके से गिरफ्तार कर लिया था। उन्होंने आगे साबित किया, वह 'पी' और उनकी पत्नी 'बी' की मदद करने के लिए पहले पहुंचे, बाद में पहुंचे।

7. इसके बाद, पीड़ित 'पी' की जांच पी.डब्ल्यू.-2 के रूप में की गई। अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान, उसने द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत दर्ज किए गए अपने बयान को साबित किया। इसे मुकदमे में प्रदर्श क2 के रूप में प्रदर्शित किया गया है। उसने यह भी साबित कर दिया कि अपीलकर्ता ने उसके अंडरवियर को हटा दिया था और उसके लिंग को उसके निजी हिस्से पर रगड़ा था और उसने उसे अपने पैर ('गोडे') पर बैठाया था। उसने वास्तविक "भेदक यौन हमले" का कोई और या अन्य आरोप नहीं लगाया, जो किया गया या प्रयास किया गया। उसने अपीलकर्ता द्वारा प्रवेश या सम्मिलन के किसी भी कार्य का वर्णन नहीं किया या अपीलकर्ता द्वारा उसके निजी अंग को उसके मुंह से छूने का प्रयास किया। वास्तव में, उसने विशेष रूप से अपने द्वारा किए गए किसी भी अन्य कार्य से इनकार किया।

8. इसके बाद, पीड़ित की नानी, अर्थात् 'बी' की मुकदमे में पीडब्ल्यू-3 के रूप में जांच की गई। उसने 'पी' द्वारा वर्णित घटना को भी साबित किया। उसकी उपस्थिति के रूप में, उसने खुलासा किया, वह अपने पति के साथ पहुंची। उस समय, उसने पाया कि अपीलकर्ता 'पी' को कसकर पकड़ रहा था और उसे अनुचित तरीके से छू रहा था। उस पर, 'के' ने अपीलकर्ता को थप्पड़ मार दिया। वह भाग गया। ग्रामीणों द्वारा किए गए फोन कॉल पर पुलिस पहुंची। इसके बाद, अपीलकर्ता को गिरफ्तार कर लिया गया।

9. इसके बाद, एस.आई. अब्दुल कलाम की पी.डब्ल्यू.-4 के रूप में जांच की गई। उन्होंने प्रारंभिक जीडी प्रविष्टियों और चेक एफआईआर की तैयारी को साबित किया। इसके बाद, आईओ शेष कुमार शर्मा की पी.डब्ल्यू.-5 के रूप में जांच की गई। उन्होंने विवेचना को साबित कर दिया।

10. इसके बाद डॉ. गीता जायसवार की जांच पी.डब्ल्यू.-6 के रूप में की गई। उसने घटना की तारीख को 'पी' की आयु छह वर्ष साबित की। उसने आगे साबित किया कि 'पी' के शरीर पर उसके द्वारा कोई बाहरी या आंतरिक चोट नहीं देखी गई थी। उसने आगे साबित किया कि 'पी' का हाइमन बरकरार था और उसके शरीर पर कोई रक्तस्राव या चोट के निशान नहीं थे। उसने मेडिको लीगल एग्जामिनेशन रिपोर्ट को साबित किया, जिसे प्रदर्श क7 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। अपनी जिरह के दौरान, उसने कहा, हालांकि 'पी' की मां ने (उससे

दावा किया था) कि 'पी' को "भेदक यौन उत्पीड़न" का सामना करना पड़ा था, उक्त गवाह (पी.डब्ल्यू.-6) को इस संबंध में 'पी' पर किसी भी चोट का कोई निशान नहीं मिला।

11. इसके बाद, 'सी' एक मौका गवाह की जांच पीडब्ल्यू -7 के रूप में की गई। उन्होंने दावा किया कि घटना के समय, अपीलकर्ता ने 'पी' को कसकर पकड़ रखा था। इसके बाद वह चला गया। अपनी जिरह के दौरान, वह यह साबित नहीं कर सका कि उसने घटना को देखा था क्योंकि वह 'पी' को पीड़ित के रूप में पहचानने में विफल रहा।

12. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य को बंद करने पर, अपीलकर्ता का बयान द0प्र0सं0 की धारा 313 के तहत दर्ज किया गया था।

13. इसके बाद, एक बचाव पक्ष के गवाह, अर्थात् 'जेड' से डीडब्ल्यू-1 के रूप में पूछताछ की गई। अपनी परीक्षा-इन-चीफ के दौरान, उसने पक्षों के बीच पहले से मौजूद विवादों को साबित करने की कोशिश की। फिर भी उसने अपने और 'के' के बीच बुरे संबंधों को भी स्वीकार किया। अपनी जिरह के दौरान, उसने कहा, उसका घर घटना स्थल से कुछ दूरी पर था और बीच में अन्य घर भी थे।

14. अपीलकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुति यह है कि कोई घटना नहीं हुई थी। दोनों पक्षों के बीच पहले से ही विवाद चल रहा था। केवल अन्य विवादों के कारण, अपीलकर्ता के खिलाफ पूरी तरह से झूठा और दुर्भावनापूर्ण आरोप लगाया गया था। दूसरा, यह प्रस्तुत किया गया है, किसी भी प्रकरण में, "भेदक यौन हमले" का कारण बनने की घटना या वास्तविक प्रयास को स्थापित करने के लिए कोई सबूत नहीं दिया गया था। नेत्र साक्ष्य "यौन हमले" के कमीशन के रूप में भी सुसंगत नहीं है। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि विद्वान अवर न्यायालय ने अपीलकर्ता को धारा 376 (2)(i) भा0द0सं0 के तहत धारा 5 (एम)/6 पी.ओ.सी.एस.ओ अधिनियम के तहत दोषी ठहराने में पूरी तरह से गलती की है, और अपीलकर्ता को आजीवन कारावास की अधिकतम सजा देने में गलती की है। अधिक से अधिक, "यौन उत्पीड़न" का प्रकरण (तथ्यों के आधार पर) आरोप लगाया गया था।

15. दूसरी ओर, विद्वान ए.जी.ए. प्रस्तुत करेगा, यह विधिवत साबित हो गया था कि अपीलकर्ता ने पीड़िता के कपड़े उतार दिए थे, उसके अंडरगारमेंट को हटा दिया था और उसके लिंग सहित उसके निजी अंग को अनुचित तरीके से छुआ था, साथ ही पीड़ित को ऐसे शब्द भी बोले थे जो "भेदक यौन हमले" का कारण बनने का इरादा व्यक्त करते थे। इस हद तक, अभियोजन पक्ष के साक्ष्य पूरी तरह से सुसंगत हैं (उस घटना के रूप में), नीचे दी गई विद्वान न्यायालय ने अपीलकर्ता को धारा 376 (2)(i) भा0द0सं0 के तहत अपराध के लिए सही दोषी ठहराया है। पीड़ित लगभग 5-6 वर्ष की आयु का एक निर्दोष नाबालिग होने के कारण, विद्वान अवर न्यायालय ने अपीलकर्ता को अधिकतम आजीवन कारावास की सजा सुनाई है।

16. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, धारा 375 भा0द0सं0 जैसा कि यह विधि की किताब में खड़ा था, प्रासंगिक समय पर नीचे के रूप में पढ़ा गया:

"375. बलात्कार.- एक आदमी को "बलात्कार" करने के लिए कहा जाता है यदि वह-

(क) किसी भी हद तक, उसके लिंग को किसी भी हद तक, किसी महिला की योनि, मुंह, मूत्रमार्ग या गुदा में प्रवेश करता है या उसे उसके या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए मजबूर करता है; या

(ख) किसी भी हद तक, किसी भी वस्तु या शरीर के किसी हिस्से, जो लिंग नहीं है, किसी महिला की योनि, मूत्रमार्ग या गुदा में सम्मिलित करता है या उसे अपने या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए मजबूर करता है; या

(ग) किसी महिला के शरीर के किसी भी भाग में हेरफेर करता है ताकि ऐसी महिला की योनि, मूत्रमार्ग, गुदा या शरीर के किसी भी हिस्से में प्रवेश हो या उसे अपने या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए मजबूर करता है; या

(घ) किसी महिला की योनि, गुदा, मूत्रमार्ग पर अपना मुंह लगाता है या उसे निम्नलिखित सात विवरणों में से किसी के अंतर्गत आने वाली परिस्थितियों में उसके या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए मजबूर करता है: -

पहला- उसकी इच्छा के विरुद्ध।
दूसरे- उसकी सहमति के बिना।

तीसरे- उसकी सहमति से, जब उसकी सहमति उसे या किसी भी व्यक्ति को जिसमें वह रुचि रखती है, मृत्यु या चोट के डर में डालकर प्राप्त की जाती है।

चौथा- उसकी सहमति से, जब पुरुष जानता है कि वह उसका पति नहीं है और उसकी सहमति दी जाती है क्योंकि वह मानती है कि वह एक और आदमी है जिससे वह है या खुद को विधिक रूप से विवाहित मानती है।

पांचवां- उसकी सहमति से, जब इस तरह की सहमति देते समय, मन की अस्वस्थता या नशे के कारण या उसके द्वारा व्यक्तिगत रूप से या किसी अन्य मूर्खतापूर्ण या अस्वास्थ्यकर पदार्थ के माध्यम से प्रशासन के कारण, वह उस की प्रकृति और परिणामों को समझने में असमर्थ होती है जिसके लिए वह सहमति देती है।

अनुवादित

17. धारा 376 भारतीय दंड संहिता जैसा कि यह विधि की पुस्तक में मौजूद था, प्रासंगिक समय पर नीचे के रूप में पढ़ा गया:

"376. बलात्कार के लिए दंड-(1) जो को, उपधारा (2) में उपबंधित प्रकरण को छोड़कर, बलात्कार करता है, उसे किसी भी विवरण के कठोर कारावास से दंडित किया जाएगा, जो अवधि सात वर्ष से कम नहीं होगी, लेकिन जिसे आजीवन कारावास तक बढ़ाया जा सकेगा, और जुर्माने से भी भागी होगा]।

(2) जो को,-

(क) पुलिस अधिकारी होने के नाते बलात्कार करता है-

(i) उस पुलिस स्टेशन की सीमाओं के भीतर जहां ऐसे पुलिस अधिकारी की नियुक्ति की गई है; या

(ii) किसी भी स्टेशन हाउस के परिसर में; या

(iii) ऐसे पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में या ऐसे पुलिस अधिकारी के अधीनस्थ पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में किसी महिला पर; या

(ख) लोक सेवक होने के नाते ऐसे लोक सेवक की अभिरक्षा में या ऐसे लोक सेवक के अधीनस्थ लोक सेवक की अभिरक्षा में किसी महिला के साथ बलात्कार करता है; या

(ग) केन्द्र अथवा राज्य सरकार द्वारा क्षेत्र में तैनात सशस्त्र बलों का सदस्य होने के नाते ऐसे क्षेत्र में बलात्कार करता है; या

(घ) किसी जेल, रिमांड होम या किसी ऐसे विधि द्वारा या उसके अधीन स्थापित अभिरक्षा के अन्य स्थान के प्रबंधन या कर्मचारियों पर होने के नाते या किसी महिला या बाल संस्था के किसी भी कैदी पर बलात्कार करता है; या

(ङ) किसी अस्पताल के प्रबंधन या कर्मचारियों पर होने के नाते, उस अस्पताल में किसी महिला के साथ बलात्कार करता है; या

(च) महिला का रिश्तेदार, अभिभावक या शिक्षक या महिला के प्रति विश्वास या अधिकार की स्थिति में कोई व्यक्ति होने के नाते, ऐसी महिला के साथ बलात्कार करता है; या

अनुवादित

(छ) सांप्रदायिक या सांप्रदायिक हिंसा के दौरान बलात्कार करता है; या

(ज) किसी महिला को गर्भवती होने के बारे में जानते हुए उसके साथ बलात्कार करता है; या

(झ) सोलह वर्ष से कम आयु की महिला के साथ बलात्कार करता है; या

(ञ) सहमति देने में असमर्थ महिला पर बलात्कार करता है; या

(ट) किसी महिला पर नियंत्रण या प्रभुत्व की स्थिति में होने के कारण, ऐसी महिला के साथ बलात्कार करता है; या

(ठ) मानसिक या शारीरिक विकलांगता से पीड़ित महिला के साथ बलात्कार करता है; या

(ड) बलात्कार करते समय किसी महिला को गंभीर शारीरिक हानि पहुंचाता है या अपंग करता है या विकृत करता है या उसके जीवन को खतरे में डालता है; या

(ढ) एक ही महिला के साथ बार-बार बलात्कार करने पर उस अवधि के लिए कठोर कारावास से दंडित किया जाएगा जो दस वर्ष से कम नहीं होगी, लेकिन जिसे आजीवन कारावास तक बढ़ाया जा सकता है, जिसका अर्थ होगा उस व्यक्ति के प्राकृतिक जीवन के शेष समय के लिए कारावास, और जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा।

18. पॉक्सो अधिनियम की धारा 2 (ए), 2 (बी), 2 (एफ), 2 (आई) और 2 (जे) के रूप में यह तब अस्तित्व में थी, निम्नवत पढ़ें:

(ए) "गंभीर मर्मज्ञ यौन हमला" का वही अर्थ है जो धारा 5 में इसे सौंपा गया है;
(बी) "गंभीर यौन हमले" का वही अर्थ है जो धारा 9 में इसे सौंपा गया है;
(च) "भेदक यौन हमला" का वही अर्थ है जो धारा 3 में इसे सौंपा गया है;
(i) "यौन उत्पीड़न" का वही अर्थ है जो धारा 7 में इसे सौंपा गया है;
(ञ) "यौन उत्पीड़न" का वही अर्थ है जो धारा 11 में इसे सौंपा गया है;

19. पॉक्सो अधिनियम की धारा 3 के तहत परिभाषित पेनेट्रेटिव यौन हमला, नीचे दिया गया है:

"3. मर्मज्ञ यौन हमला- - एक व्यक्ति को "मर्मज्ञ यौन हमला" करने के लिए कहा जाता है यदि-

(क) वह अपने लिंग में, किसी भी हद तक, किसी बच्चे की योनि, मुंह, मूत्रमार्ग या गुदा में प्रवेश करता है या बच्चे को उसके या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए मजबूर करता है; या
(ख) वह किसी भी हद तक, किसी भी वस्तु या शरीर के किसी हिस्से, जो लिंग नहीं है, बच्चे की योनि, मूत्रमार्ग या गुदा में सम्मिलित करता है या बच्चे को उसके या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए मजबूर करता है; या
(ग) वह बच्चे के शरीर के किसी भी भाग में हेरफेर करता है ताकि योनि, मूत्रमार्ग, गुदा या बच्चे के शरीर के किसी भी हिस्से में प्रवेश हो या बच्चे को उसके या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए मजबूर किया जा सके; या
(घ) वह अपने मुंह को बच्चे के लिंग, योनि, गुदा, मूत्रमार्ग पर लगाता है या बच्चे को ऐसे व्यक्ति या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए मजबूर करता है।

(प्रभाव वर्द्धित)

20. स्पष्ट रूप से, पॉक्सो अधिनियम की धारा 375 भा0द0सं0 धारा 5(m) के अनुरूप है, जो पॉक्सो अधिनियम की धारा 5(m) के अनुसार "गंभीर मर्मज्ञ यौन हमले" को परिभाषित करती है:

"5. गंभीर मर्मज्ञ यौन हमला;

(ड) जो कोई भी बारह वर्ष से कम आयु के बच्चे पर भेदक यौन हमला करता है;

21. वहीं, पॉक्सो अधिनियम की धारा 7 के तहत "यौन उत्पीड़न" को परिभाषित किया गया है। यह नीचे लिखा है:

"7. यौन उत्पीड़न- जो कोई भी यौन इरादे से बच्चे की योनि, लिंग, गुदा या स्तन को छूता है या बच्चे को ऐसे व्यक्ति या किसी अन्य व्यक्ति की योनि, लिंग, गुदा या स्तन को छूता है, या यौन इरादे से कोई अन्य कार्य करता है जिसमें बिना प्रवेश के शारीरिक संपर्क शामिल है, उसे यौन हमला कहा जाता है।
(प्रभाव वर्द्धित)

22. समानांतर रूप से, पॉक्सो अधिनियम की धारा 9 (m) नीचे दी गई है:

"9. गंभीर यौन उत्पीड़न-

(ड) जो कोई भी बारह वर्ष से कम आयु के बच्चे पर यौन हमला करता है;

23. वहीं, पॉक्सो एक्ट की धारा 11 के तहत "यौन उत्पीड़न" को परिभाषित किया गया है। यह नीचे लिखा है:

"धारा 11. यौन उत्पीड़न:

एक व्यक्ति को एक बच्चे पर यौन उत्पीड़न करने के लिए कहा जाता है जब ऐसा व्यक्ति यौन इरादे से होता है;--

(i) किसी शब्द का उच्चारण करता है या कोई ध्वनि करता है, या कोई इशारा करता है या किसी वस्तु या शरीर के हिस्से को इस इरादे से प्रदर्शित करता है कि ऐसा शब्द या ध्वनि सुना जाएगा, या ऐसा इशारा या वस्तु या शरीर का हिस्सा बच्चे द्वारा देखा जाएगा; या

(ii) एक बच्चे को अपने शरीर या अपने शरीर के किसी भी हिस्से का प्रदर्शन करता है ताकि यह ऐसे व्यक्ति या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा देखा जाता है; या

(iii) अश्लील उद्देश्यों के लिए किसी भी रूप या मीडिया में किसी बच्चे को कोई वस्तु दिखाता है; या

(iv) बार-बार या लगातार किसी बच्चे का सीधे या इलेक्ट्रॉनिक, डिजिटल या किसी अन्य माध्यम से पीछा करता है या देखता है या संपर्क करता है; या

(v) मीडिया के किसी भी रूप में, बच्चे के शरीर के किसी भी हिस्से या यौन कृत्य में बच्चे की भागीदारी के इलेक्ट्रॉनिक, फिल्म या डिजिटल या किसी अन्य मोड के माध्यम से वास्तविक या मनगढ़ंत चित्रण का उपयोग करने की धमकी देता है; या

(vi) अश्लील उद्देश्यों के लिए एक बच्चे को लुभाता है या इसलिए संतुष्टि देता है।

(प्रभाव वर्द्धित)

24. उपरोक्त हमें इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि पॉक्सो अधिनियम ने विभिन्न प्रकार के यौन अपराधों को परिभाषित किया है और यह उन्हें विचार किए गए सजा के पैमाने पर अलग-अलग ग्रेड देता है। इसे नीचे संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

	धारा	**अपराध**	**सजा**
ए	15	बच्चे से जुड़ी अश्लील सामग्री का भंडारण	ए. भंडारण/कब्जा: पहली सजा- 5,000 रुपये से कम नहीं। बाद में- 10,000 रुपये से कम नहीं। ख. 3 साल तक की कैद का प्रसार/प्रचार/प्रदर्शन/वितरण।

			ग. व्यावसायिक उद्देश्य के लिए ऐसी अश्लील सामग्री का उपयोग करना: पहली सजा- 3 से 5 साल की कैद। बाद में 5 से 7 साल की कैद।
बी	12	यौन उत्पीड़न	3 साल तक की कैद।
सी	8	यौन हमला	3 से 5 साल की कैद।
डी	10	गंभीर यौन हमला	5 से 7 साल की कैद।
ई	14	अश्लील उद्देश्य के लिए बच्चे का उपयोग	पहली सजा: कम से कम 5 साल की कैद। बाद में: कम से कम 7 साल के लिए कारावास।
एफ	4	मर्मज्ञ यौन हमला	क. पीड़ित की उम्र 16 वर्ष या उससे अधिक है: 10 साल से लेकर आजीवन कारावास तक। ख. पीड़ित की उम्र 16 साल से कम है: 20 साल।
जी	6	गंभीर मर्मज्ञ यौन हमला	20 साल के कठोर कारावास से लेकर आजीवन कारावास तक।

25. इस प्रकार, सबसे पहले विधायिका ने बच्चों के खिलाफ किए गए सभी यौन अपराधों को विशेष अपराधों के रूप में माना है, जिसमें सामान्य विधि (भा0द0सं0) के तहत विचार किए गए दंड की तुलना में भारी दंड की आवश्यकता होती है। साथ ही, बच्चों पर किए जाने वाले विभिन्न प्रकार के यौन अपराधों के बीच अंतर किया गया है, ताकि सजा दी जा सके। जब तक कोई अधिक गंभीर अपराध (विचारित सजा के उन्नयन पर) सिद्ध नहीं पाया जाता है, तब तक अधिनियम द्वारा निर्धारित सजा से अधिक भारी सजा नहीं दी जा सकती है।

26. अभियोजन पक्ष द्वारा सिद्ध तथ्यों में, हम ध्यान दें कि घटना "यौन हमले" से जुड़ी है। इस हद तक एफआईआर के एक सादे पढ़ने पर सामने आए आरोपों से पता चला कि अपीलकर्ता ने 'पी' के अंडरवियर को हटा दिया था, उसके शरीर को अपने हाथों से अनुचित तरीके से रगड़ा था ('सहलाने लगा')। द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत उसका बयान दर्ज किए जाने के चरण में, वह भी घटना के डेढ़ महीने से अधिक समय के बाद, उसने बताया कि अपीलकर्ता ने अपना अंडरवियर हटा दिया था, उस पर अपना लिंग दिखाया था और ऐसे शब्द बोले थे जिन्हें 'पी' पर भेदक यौन हमला करने के इरादे से पढ़ा जा सकता है और उसे अपनी गोद में उठा लिया था। फिर भी बाद में, मुकदमे में, 'पी' द्वारा और सुधार की पेशकश की गई थी। उस स्तर पर, हालांकि उसने द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत दर्ज किए गए अपने पहले के बयान के तथ्य को साबित कर दिया, लेकिन अब उसने (पहली बार) वर्णन किया कि अपीलकर्ता ने अपने लिंग को उसके निजी हिस्से पर रगड़ा था और उसके अंडरगारमेंट को उतारने के बाद उसे अपने पैर पर बैठाया था। साथ ही, उसने कहा कि उसके साथ कोई अन्य कृत्य/अपराध नहीं किया गया था।

27. 'पी' के दादा, अर्थात्, 'के' (पीडब्ल्यू-1) ने कहा, उन्होंने इस घटना को देखा क्योंकि वह 'पी' की मदद करने के लिए पहुंचे थे। उसने साबित कर दिया कि उसने अपीलकर्ता को 'पी' के अंडरवियर को उतारते और अपने नंगे हाथों से उसके शरीर के अंगों को छूते देखा था। उसने यह भी साबित कर दिया कि उसने अपीलकर्ता को अनुचित तरीके से 'पी' को कपड़े उतारने की स्थिति में देखा था। फिर भी उसने यह साबित नहीं किया कि अपीलकर्ता ने अपने लिंग को 'पी' के निजी हिस्से पर रगड़ा था या उसने उस पर अपना लिंग दिखाया था या उसने उस पर "भेदक यौन हमला" करने के अपने इरादे को व्यक्त करते हुए कोई शब्द कहा था।

28. इसी तरह के तथ्य 'बी' पीडब्ल्यू-3 द्वारा साबित किए गए थे। साथ ही उसने स्वीकार किया कि वह अपने पति 'के' के वहां पहुंचने के बाद घटनास्थल पर पहुंची थी। इस प्रकार, उसने घटना को नहीं देखा होगा, लेकिन उसने वही सुनाया जो 'के' पति-पी.डब्ल्यू.-1 और पीड़िता 'पी' (पी.डब्ल्यू.-2), उसकी पोती द्वारा साबित किया गया था।

29. 'पी' और 'के' (दोनों चश्मदीद गवाह) के नेत्र साक्ष्य आंशिक रूप से एफआईआर कथन के अनुरूप हैं। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष की कहानी कि अपीलकर्ता ने घटना का कारण बनाया था, जिसमें उसने पहले पीड़ित 'पी' के अंडरवियर को हटा दिया था, उसके बाद, अनुचित तरीके से छुआ और उसे गले लगा लिया, उस नग्न अवस्था में, विधिवत साबित हुआ।

30. के रूप में क्या अपीलकर्ता ने 'पी' पर अपना लिंग दिखाया और उसके निजी हिस्से पर अपने लिंग को रगड़ा और "मर्मज्ञ यौन हमला" करने के लिए अपने इरादे को इंगित करने के लिए कोई शब्द कहा, अभियोजन पक्ष के साक्ष्य असंगत हैं। सबसे पहले, न तो एफआईआर ('के'/एक चश्मदीद गवाह और 'पी' के दादा द्वारा दर्ज कराई गई) न ही उन घटनाओं को साबित करने का प्रयास करती है। उन्होंने पहले ही अपीलकर्ता को अपराध करते हुए देखा था जैसा कि एफआईआर में बताया गया है, फिर भी उन्होंने ऐसे किसी भी तथ्य का आरोप नहीं लगाया जो "पेनिट्रेटिव यौन हमले" के बराबर हो सकता है। उस हद तक, एफआईआर गैर-पुष्टिकारक है। दूसरा, द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत दर्ज किए गए अपने बयान में भी, 'पी' ने अपीलकर्ता पर अपने लिंग को अपने निजी हिस्से पर रगड़ने का कोई आरोप नहीं लगाया। इसके विपरीत, मुकदमे में दिए गए अपने बयान में, उसने कोई बयान नहीं दिया कि अपीलकर्ता ने "मर्मज्ञ यौन हमला" करने के अपने इरादे को व्यक्त करते हुए कोई शब्द बोला। इसके विपरीत, उसने विशेष रूप से "और कुछ नहीं किया" कहा यानी अपीलकर्ता ने आगे कोई कार्य नहीं किया।

31. हम इस बात को ध्यान में रखते हैं कि अभियोजन पक्ष द्वारा सुनाई गई कहानी में 02.07.2017 को दर्ज की जा रही एफआईआर के बिंदु से सुधार हुआ है और अलग-अलग है, यानी 18.08.2017 को दर्ज किए गए बयान के घटना के एक दिन बाद, जो घटना से डेढ़ महीने से अधिक होगा, मुकदमे में दर्ज किए गए बयान तक। अभियोजन पक्ष की कहानी में व्यापक सुधार और विविधताएं की गई। वे 'के' द्वारा पेश किए गए चश्मदीद गवाह के विवरण के माध्यम से साबित नहीं होते हैं और चिकित्सा राय आदि के रूप में किसी भी पुष्टिकारक

साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं होते हैं। स्पष्ट रूप से, "मर्मज्ञ यौन हमले" का कोई सबूत नहीं दिया गया था। इसके अलावा उचित संदेह मौजूद है कि क्या इस तरह के "मर्मज्ञ यौन हमले" को करने का कोई प्रयास किया गया था।

32. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, "मर्मज्ञ यौन हमले" का गठन क्या हो सकता है, वैधानिक परिभाषा क्रिस्टल स्पष्ट है। इसमें लिंग के साथ पीड़ित की योनि या मुंह या मूत्रमार्ग या शरीर के अन्य हिस्से में प्रवेश करना या पीड़ित के शरीर के ऐसे हिस्से को किसी वस्तु या पीड़ित के किसी अन्य शरीर के हिस्से या पीड़ित के शरीर के किसी अन्य हिस्से के साथ डालना या पीड़ित बच्चे के निजी हिस्से में अपराधी के मुंह को लगाना शामिल होगा। अधिनियम के तहत कोई अन्य या आगे का विवरण मौजूद नहीं है क्योंकि न्यायालय को "भेदक यौन हमले" का निर्णय लेने की अनुमति मिल सकती है या प्रयास किया गया था। स्पष्ट रूप से, आपराधिक अपराध के संदर्भ में, केवल "भेदक यौन हमले" की परिभाषा को न्यायालयों द्वारा लागू किया जा सकता है जैसा कि विधि की पुस्तक में मौजूद हो सकता है, यहां पॉक्सो अधिनियम।

33. साथ ही, "यौन उत्पीड़न" को भी धारा पॉक्सो अधिनियम के तहत स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है। इसमें यौन इरादे से बच्चे के निजी अंग को छूना या यौन इरादे से कोई अन्य कार्य करना शामिल हो सकता है जिसमें शारीरिक संपर्क शामिल हो सकता है।

34. सिद्ध तथ्यों के संचयी प्रभाव पर, यह उचित संदेह से परे स्थापित किया गया है कि अपीलकर्ता ने अपने अंडरगारमेंट को हटाने के बाद 'पी' को कसकर पकड़ रखा था और उसे अनुचित तरीके से छुआ था। "यौन इरादा" "प्रवेश के बिना" साबित होने वाले आगे के तथ्यों से स्पष्ट रूप से साबित होता है। जिस हद तक 'पी' की आयु 12 वर्ष से कम थी, वह "गंभीर यौन उत्पीड़न" का कार्य था, जैसा कि धारा 9 (एम) पॉक्सो अधिनियम के तहत परिभाषित किया गया है। इन सिद्ध तथ्यों में, घटना "यौन उत्पीड़न" की सीमा से बहुत आगे निकल गई थी, जैसा कि पॉक्सो अधिनियम की धारा 11 के तहत परिभाषित किया गया है। ऐसा तब हो सकता है जब अपीलकर्ता ने केवल अपने लिंग को चमकाने के साथ या बिना शब्द बोले हों (पॉक्सो अधिनियम की धारा 11 (i) और (ii) के तहत)।

35. अन्य तथ्यों के रूप में क्या अपीलकर्ता ने 'पी' के निजी हिस्से पर अपने लिंग को रगड़ा था या कोई शब्द बोला था, जैसा कि 'पी' पर "भेदक यौन हमला" करने के अपने इरादे को स्थापित कर सकता है, संदेह बना हुआ है, क्योंकि एफआईआर के आरोप इस तरह की घटना की पुष्टि नहीं करते हैं; 'पी' के एक चश्मदीद गवाह और करीबी रिश्तेदार 'के' ने ऐसा आरोप नहीं लगाया और उस प्रकरण में 'पी' का बयान असंगत है और सुधार से ग्रस्त है।

36. हम यह भी ध्यान देते हैं, "मर्मज्ञ यौन हमले" के अलावा जो चश्मदीद साक्ष्य के माध्यम से साबित नहीं हुआ है, वर्तमान प्रकरण में, ऐसी घटना की पुष्टि करने के लिए कोई चिकित्सा प्रमाण भी नहीं है।

37. हम अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश को बनाए रखने में असमर्थ हैं, जिसमें कहा गया है कि अपीलकर्ता ने "मर्मज्ञ यौन उत्पीड़न" किया था। यह जितनी घृणित घटना हो सकती है, नैतिकता और नैतिकता न्यायालय को किसी

भी अपराधी को किसी भी अपराध के लिए दोषी ठहराने के लिए प्रेरित नहीं कर सकती है और इसलिए, वे विचार न्यायालयों को विधि द्वारा निर्धारित लोगों की तुलना में भारी सजा देने की अनुमति नहीं दे सकते हैं। 'पी' की उम्र 12 साल से कम होने के कारण उसे 'गंभीर यौन उत्पीड़न' का सामना करना पड़ा था, लेकिन 'गंभीर यौन हमला' का सामना नहीं करना पड़ा था। इसलिए, पॉक्सो अधिनियम की धारा 10 के तहत अधिकतम सात साल की सजा पर्याप्त होगी।

38. इसी तरह का दृष्टिकोण मो**नू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, तटस्थ उद्धरण संख्या-2025: एएचसी: 14721-डीबी** में एक समन्वय पीठ द्वारा लिया गया था, जिसके हम में से एक (न्ययामूर्ति सौमित्र दयाल सिंह) सदस्य थे।

39. तदनुसार, धारा 376 (2) (i) भारतीय दंड संहिता और धारा 5 (एम)/6 पॉक्सो अधिनियम के तहत अपराध सिद्ध नहीं पाया गया है। साथ ही, ऊपर बताए गए कारणों से, धारा 7 के साथ पठित 9 (एम) पॉक्सो अधिनियम के तहत अपराध सिद्ध पाया जाता है। अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को तदनुसार संशोधित किया गया है।

40. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश को और संशोधित किया जाता है। आजीवन कारावास की सजा के खिलाफ, अपीलकर्ता को धारा 10 पॉक्सो अधिनियम के तहत अधिकतम सात साल की सजा दी जाती है।

41. इस स्तर पर, हम ध्यान देते हैं, हिरासत प्रमाणपत्र के अनुसार अपीलकर्ता 02.05.2025 तक आठ साल, एक महीने और तीस दिनों तक कैद रहा है। इस प्रकार, वह दी गई अधिकतम सजा से अधिक समय तक कैद रहा है। वर्तमान में, हम ध्यान देते हैं कि अपीलकर्ता जेल में है। उन्हें तत्काल रिहा किया जा सकता है। उस विचार को ध्यान में रखते हुए, जुर्माना बनाए रखा जाता है। यदि उपरोक्त अवधि के भीतर जुर्माना जमा नहीं किया जाता है, तो कारावास की सजा एक वर्ष के लिए बढ़ जाएगी। जाहिर है, उस स्थिति में, अपीलकर्ता सजा के लाभ का हकदार होगा।

42. इस हद तक, यह उचित संदेह से परे साबित नहीं किया जा सका कि अपीलकर्ता ने "भेदक यौन हमला" करने का प्रयास किया था, हम इसे पॉक्सो अधिनियम की धारा 18 के तहत अपीलकर्ता को दोषी ठहराने या दंडित करने के लिए एक उपयुक्त प्रकरण नहीं मानते हैं।

43. तदनुसार, अपील को **आंशिक रूप से स्वीकृत** की जाती है।

44. इस आदेश की एक प्रति के साथ विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड को रजिस्ट्रार (अनुपालन) के माध्यम से संबंधित न्यायालय को प्रेषित किया जाए और इस आदेश की एक प्रति संबंधित सीजेएम को भी प्रेषित की जाए।

45. संबंधित सी.जे.एम., इस संबंध में अपनी अनुपालन रिपोर्ट इस न्यायालय को प्रस्तुत करेंगे।

46. इस आदेश की एक प्रति आवश्यक अनुपालन के लिए संबंधित जेल अधिकारियों को भी प्रेषित की जाए।

(2025) 5 ILRA 832

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला

माननीय न्यायमूर्ति जितेन्द्र कुमार सिन्हा

आपराधिक अपील संख्या- 1806/1991

चल्ला @ भगवान दास **... अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **... प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अजय कुमार पांडे, श्री सतीश त्रिवेदी

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

डी.जी.ए.

अनुवादित

आपराधिक विधि - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 313 - जब ऑसिफिकेशन टेस्ट आयोजित किया गया था - अपीलकर्ता की आयु 24.6.2024 को लगभग 55 वर्ष थी- इसलिए, अपीलकर्ता की इस उम्र में पूरी सटीकता के साथ आयु का पता नहीं लगाया जा सकता था - 19.7.1991 को द0प्र0सं0 की धारा 313 के तहत कथन में पहले से ही संदर्भित आयु का उल्लेख करना आवश्यक होगा - किशोर न्याय बोर्ड की रिपोर्ट ने अभियुक्त-अपीलकर्ता को दो साल का लाभ दिया है - और घटना की तारीख को उसे किशोर ठहराया जाता है- और इसे स्वीकार किया जाता है और घटना की तारीख को अपीलकर्ता को किशोर घोषित किया जाता है।

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-9)

<u>उद्धृत प्रकरण की सूची:</u>

1. ऋषिपाल सिंह सोलंकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2022) 8 एससीसी 602
2. पवन कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2023) 15 एससीसी 683

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अजय कुमार पांडे और राज्य प्रतिवादीगण की ओर से उपस्थित विद्वान ए.जी.ए. श्री ओ.पी. द्विवेदी को सुना।

2. वर्तमान अपील अपीलकर्तागण द्वारा दायर की गई है, जिसमें सत्र परीक्षण संख्या 434/1989 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, बरेली द्वारा पारित निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई है, जिसमें अपीलकर्ता को भा0द0सं0 की धारा 302 के तहत आजीवन कारावास का दोषी ठहराया गया था।

3. अभियोजन पक्ष की कहानी संक्षेप में यह है कि शिकायतकर्ता राम कुमार मोहल्ला पंजाबपुरा चेत राम फाटक, बरेली में रह रहा था; शिकायतकर्ता और एक काका 29.4.1989 को रात 8:15 बजे अपने घर के सामने एक खाट पर बैठे थे और एक डिब्बी लाइट थी; राधेश्याम (मृतक) के घर में लालटेन जल रही थी; अभियुक्त-अपीलकर्ता छल्ला और उसके मामा कन्हाई गली से आए; मृतक अपने घर के चबूतरा पर खड़ा था; आरोपी चल्ला ने राधेश्याम को गालियां दीं; मृतक ने आपत्ति की; आरोपी-अपीलकर्ता ने मृतक से कहा कि वह घर का किराया मांगता था और उसे खाली भी कराना चाहता था और वह उसे सबक सिखाएगा; सह-आरोपी कन्हाई ने आरोपी-अपीलकर्ता को उकसाया; सह-आरोपी कन्हाई ने मृतक को पकड़ लिया और आरोपी-छल्ला ने मृतक को चाकू से चोट पहुंचाई; चाकू मृतक के पेट में लगा; मृतक ने अलार्म बजाया; मृतक की पत्नी, सास और बहन उसके बचाव में आई; शिकायतकर्ता राम कुमार और काका भी उसके बचाव में आए; जब उन्होंने आरोपी को पकड़ने की कोशिश की तो वे चाकू लेकर मौके से भाग गए। सूचनाकर्ता राधी श्याम को अस्पताल ले गया जहां उसकी मौत हो गई; सूचनाकर्ता रात लगभग 9:30 बजे पुलिस स्टेशन आया और 29.4.1989 को प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 49 दर्ज कराई।

4. शुरुआत में, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विधि के साथ संघर्ष में एक किशोर के रूप में अपीलकर्ता की अपील पर फैसला करने के लिए एक आवेदन दायर किया गया था। उक्त आवेदन को एक हलफनामे द्वारा समर्थित किया गया था जिसमें उनके दावे के समर्थन में वर्ष 1982 का स्कूल लीविंग सर्टिफिकेट संलग्न किया गया है, जिसमें उनकी जन्मतिथि 4.7.1975 और घटना की तारीख 29.4.1989 को दर्शाई गई है। यह तर्क दिया गया था कि उपरोक्त सामग्री से यह पता चलता है कि अपराध करने की तारीख, यानी 29.4.1989 को, अपीलकर्ता की आयु 18 वर्ष से कम थी और इसलिए, वह किशोर न्याय अधिनियम के प्रावधानों के लाभ का हकदार था।

5. दिनांक 6.3.2024 के एक आदेश द्वारा, किशोर न्याय बोर्ड को प्रमाण पत्र की वास्तविकता का सत्यापन करने के लिए जांच करने का निर्देश दिया गया था।

6. इस न्यायालय के दिनांक 8.2.2018 के आदेश के अनुसार, किशोर न्याय बोर्ड, बरेली ने गवाहों के बयान दर्ज करने और मेडिकल बोर्ड की दिनांक 24.6.2024 की रिपोर्ट सहित रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों पर विचार करने के बाद, जिसके अनुसार अपीलकर्ता की आयु 24.6.2024 को लगभग 55 वर्ष थी और इस स्थिति में आरोपी

घटना की तारीख को लगभग 19 साल 10 महीने और 6 दिन का पाया गया था, लेकिन यह निष्कर्ष निकाला गया था कि प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों पर, विधि की नजर में यह प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता को दो साल का लाभ दिया जाना है। इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया गया कि 29.4.1989 की घटना की तारीख को वह 17 साल 10 महीने और 6 दिन का था और इसलिए, एक किशोर था। इस प्रकार, किशोर न्याय बोर्ड, बरेली ने दिनांक 3.7.2024 की रिपोर्ट के माध्यम से अपीलकर्ता छल्ला @ भगवान दास को घटना की तारीख यानी 29.4.1989 को किशोर माना।

7. हमने 19.7.1991 को धारा 313 द0प्र0सं0 के तहत दर्ज अभियुक्त-अपीलकर्ता के बयान को देखा है, जिसमें उसकी उम्र 18 वर्ष दिखाई गई है, इसलिए, 29.4.1989 की घटना की तारीख के अनुसार उसकी आयु लगभग 16 वर्ष थी।

8. **ऋषिपाल सिंह सोलंकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2022) 8 एससीसी 602** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णयों के श्रृंखला पर विचार करने के बाद किशोरता के दावे के दिशानिर्देश निर्धारित किए हैं और इसे कैसे साबित किया जाना है, और यह निर्धारित किया गया था कि जब आरोपी की ओर से इस दलील के समर्थन में सबूत पेश किए जाते हैं कि वह किशोर था, तो अति-तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाया जाना चाहिए। आगे यह माना गया कि यदि एक ही साक्ष्य पर दो विचार संभव हैं, तो न्यायालय को सीमावर्ती प्रकरण में आरोपी को किशोर ठहराने के पक्ष में झुकना चाहिए और किशोर न्याय बोर्ड द्वारा दर्ज की गई उम्र को व्यक्ति की वास्तविक आयु माना जाना चाहिए। तथापि, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी चेतावनी का एक शब्द जारी किया है कि आयु निर्धारण के लिए अस्थिकरण परीक्षण एकमात्र मानदंड नहीं हो सकता है और किसी व्यक्ति की आयु के संबंध में एक यांत्रिक दृष्टिकोण को केवल रेडियोलॉजिकल परीक्षा द्वारा चिकित्सा राय के आधार पर नहीं अपनाया जा सकता है। **ऋषिपाल (पूर्वोक्त)** के प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 33 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"33. निर्णयों के उपरोक्त कैटेना के संचयी विचार पर जो उभरता है वह इस प्रकार है:

33.1. <u>प्रकरण के अंतिम निस्तारण के बाद भी, आपराधिक कार्यवाही के किसी भी चरण में किशोर का दावा उठाया जा सकता है। किशोर होने का दावा उठाने में देरी इस तरह के दावे को खारिज करने का आधार नहीं हो सकती है। इसे पहली बार इस न्यायालय के समक्ष भी उठाया जा सकता है।</u>

33.2. किशोरता का दावा करने वाला एक आवेदन या तो न्यायालय या जेजे बोर्ड के समक्ष किया जा सकता है।

33.2.1. जब किशोर का मुद्दा न्यायालय के समक्ष उठता है, तो यह जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 9 की उप-धारा (2) और (3) के तहत होगा, लेकिन जब किसी व्यक्ति को समिति या जेजे बोर्ड के समक्ष लाया जाता है, तो जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 लागू होती है।

33.2.2. यदि किशोर होने का दावा करते हुए न्यायालय के समक्ष कोई आवेदन दायर किया जाता है, तो जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 की उप-धारा (2) के प्रावधान को लागू करना होगा या धारा 9 की उप-धारा (2) के साथ पढ़ना होगा ताकि व्यक्ति की आयु को लगभग बताते हुए निष्कर्ष दर्ज करने के उद्देश्य से साक्ष्य की तलाश की जा सके।

33.2.3. जब जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 के तहत किशोर होने का दावा करने वाला आवेदन जेजे बोर्ड के समक्ष किया जाता है, जब अपराध के कथित कमीशन से संबंधित प्रकरण न्यायालय के समक्ष लंबित होता है, तो जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 के तहत विचारित प्रक्रिया लागू होगी। उक्त प्रावधान के तहत यदि जेजे बोर्ड के पास इस बारे में संदेह के लिए उचित आधार हैं कि उसके सामने लाया गया व्यक्ति बच्चा है या नहीं, तो बोर्ड साक्ष्य मांगकर आयु निर्धारण की प्रक्रिया शुरू करेगा और जेजे बोर्ड द्वारा दर्ज की गई आयु उस व्यक्ति की आयु होगी जिसे उसके सामने लाया जाएगा। किशोर न्याय अधिनियम, 2015 के प्रयोजन के लिए, उस व्यक्ति की वास्तविक आयु माना जाए। इसलिए जेजे बोर्ड के समक्ष इस तरह की कार्यवाही में आवश्यक सबूत की डिग्री, जब संबंधित आपराधिक न्यायालय के समक्ष मुकदमा होने पर किशोरता के दावे की मांग करते हुए एक आवेदन दायर किया जाता है, तो उस न्यायालय द्वारा जांच की जाती है जिसके समक्ष अपराध के कमीशन के संबंध में प्रकरण लंबित होता है (जेजे अधिनियम की धारा 9 के अनुसार, 2015).

33.3. <u>कि जब किशोर के लिए दावा उठाया जाता है, तो प्रारंभिक बोझ का निर्वहन करने के लिए न्यायालय को संतुष्ट करने के लिए दावा उठाने वाले व्यक्ति पर बोझ होता है।</u> हालाँकि, जेजे अधिनियम, 2000 या जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 की उप-धारा (2) के तहत बनाए गए जेजे नियम 2007 के नियम 12(3)(ए)(i), (ii), और (iii) में उल्लिखित दस्तावेज न्यायालय की प्रथम दृष्टया संतुष्टि के लिए पर्याप्त होंगे। उपरोक्त दस्तावेजों के आधार पर किशोरता की धारणा उठाई जा सकती है।

33.4. <u>हालांकि उक्त अनुमान किशोरावस्था की उम्र का निर्णायक प्रमाण नहीं है और विपरीत पक्ष द्वारा दिए गए विपरीत साक्ष्य द्वारा इसका खंडन किया जा सकता है।</u>

33.5. कि न्यायालय द्वारा जांच की प्रक्रिया जेजे बोर्ड के समक्ष मांगे गए व्यक्ति की आयु को किशोर घोषित करने के समान नहीं है, जब प्रकरण संबंधित आपराधिक न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए लंबित है। जांच के प्रकरण में, न्यायालय प्रथम दृष्टया निष्कर्ष दर्ज करता है, लेकिन जब 2015 अधिनियम की धारा 94 की उप-धारा (2) के अनुसार आयु का निर्धारण होता है, तो साक्ष्य के आधार पर एक घोषणा की जाती है। <u>साथ ही जेजे बोर्ड द्वारा दर्ज की गई आयु को उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति की वास्तविक आयु माना जाएगा। इस</u>

प्रकार, एक जांच में सबूत का मानक एक कार्यवाही में आवश्यक से अलग है जहां किसी व्यक्ति की उम्र का निर्धारण और घोषणा सबूतों की जांच के आधार पर की जानी है और केवल तभी स्वीकार किया जाता है जब ऐसी स्वीकृति के योग्य हो।

33.6. किसी व्यक्ति की आयु निर्धारित करने के लिए एक अमूर्त सूत्र निर्धारित करना न तो व्यवहार्य है और न ही वांछनीय है। यह रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के आधार पर और प्रत्येक प्रकरण में पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्यों की सराहना पर होना चाहिए।

33.7. इस न्यायालय ने देखा है कि एक अति-तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाया जाना चाहिए जब अभियुक्त की ओर से इस दलील के समर्थन में सबूत पेश किए जाते हैं कि वह एक किशोर था।

33.8. यदि एक ही साक्ष्य पर दो विचार संभव हैं, तो न्यायालय को सीमा रेखा के प्रकरण में अभियुक्त को किशोर ठहराने के पक्ष में झुकना चाहिए। यह सुनिश्चित करने के लिए है कि किशोर न्याय अधिनियम, 2015 का लाभ विधि के उल्लंघन में किशोर पर लागू किया जाए। साथ ही, न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि गंभीर अपराध करने के बाद सजा से बचने के लिए व्यक्तियों द्वारा किशोर न्याय अधिनियम, 2015 का दुरुपयोग न किया जाए।

33.9. जब आयु का निर्धारण स्कूल रिकॉर्ड जैसे साक्ष्य के आधार पर होता है, तो यह आवश्यक है कि इसे भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अनुसार माना जाना चाहिए, क्योंकि आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में बनाए गए किसी भी सार्वजनिक या आधिकारिक दस्तावेज में निजी दस्तावेजों की तुलना में अधिक विश्वसनीयता होगी।

33.10. कोई भी दस्तावेज जो सार्वजनिक दस्तावेजों के अनुरूप है, जैसे मैट्रिक प्रमाण पत्र, न्यायालय या जेजे बोर्ड द्वारा स्वीकार किया जा सकता है, बशर्ते कि इस तरह के सार्वजनिक दस्तावेज भारतीय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार विश्वसनीय और प्रामाणिक हो, अर्थात, धारा 35 और अन्य प्रावधान।

33.11. आयु निर्धारण के लिए ऑसिफिकेशन टेस्ट एकमात्र मानदंड नहीं हो सकता है और किसी व्यक्ति की आयु के संबंध में एक यांत्रिक दृष्टिकोण को केवल रेडियोलॉजिकल परीक्षा द्वारा चिकित्सा राय के आधार पर नहीं अपनाया जा सकता है। इस तरह के सबूत निर्णायक सबूत नहीं हैं, लेकिन जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 (2) में उल्लिखित दस्तावेजों के अभाव में विचार करने के लिए केवल एक बहुत ही उपयोगी मार्गदर्शक कारक है।

(प्रभाव वर्द्धित)

9. **ऋषिपाल (पूर्वोक्त)** के फैसले पर **पवन कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2023) 15 एससीसी 683** के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया और संदर्भित किया गया, जिसमें विधि पर इस आशय की चर्चा की गई थी कि हड्डी के अस्थिभंग परीक्षण पर आधारित चिकित्सा राय पूरी तरह से सटीक नहीं है क्योंकि यह एक सटीक विज्ञान नहीं है, हालांकि, न्यायालय ने पिछले प्रकरण के विधि पर भी ध्यान दिया कि रेडियोलॉजिकल परीक्षा परीक्षण द्वारा निर्धारित आयु सीमा के दोनों ओर दो साल का अंतर छोड़ती है, भले ही कई जोड़ों का ऑसिफिकेशन परीक्षण आयोजित किया गया हो या नहीं और भारत में न्यायालय ने इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है कि तीस वर्ष की आयु के बाद आयु निर्धारण के लिए ऑसिफिकेशन परीक्षण पर भरोसा नहीं किया जा सकता है और यह तुच्छ है कि आयु के निर्धारण के लिए प्रमाण का मानक संभाव्यता की डिग्री है और उचित संदेह से परे प्रमाण नहीं है। हालांकि, यह दोहराया गया कि यदि एक ही सबूत पर दो विचार संभव हैं, तो न्यायालय को सीमावर्ती प्रकरण में आरोपी को किशोर ठहराने के पक्ष में झुकना चाहिए। **पवन कुमार (पूर्वोक्त)** के प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 39, 40 और 41 निम्नानुसार उद्धृत हैं: -

"39. इसके अलावा, यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि बोन ऑसिफिकेशन टेस्ट पर आधारित चिकित्सा राय पूरी तरह से सटीक नहीं है। इस न्यायालय ने विनोद कटारा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2023) 15 एससीसी 210 ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:

64. अस्थि अस्थि-पंजर परीक्षण कोई सटीक विज्ञान नहीं है जो हमें व्यक्ति की सही उम्र प्रदान कर सकता है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, हड्डियों और कंकाल संरचनाओं की वृद्धि दर जैसी व्यक्तिगत विशेषताएं इस पद्धति की सटीकता को प्रभावित कर सकती हैं। इस न्यायालय ने राम सुरेश सिंह बनाम प्रभात सिंह, (2009) 6 एससीसी 681: (2010) 2 एससीसी (सीआरआई) 1194, और ज्योति प्रकाश राय बनाम बिहार राज्य, (2008) 15 एससीसी 223: (2009) 3 एससीसी (सीआरआई) 796, कि ऑसिफिकेशन परीक्षण आयु निर्धारण के लिए निर्णायक नहीं है क्योंकि यह व्यक्ति की सटीक आयु का खुलासा नहीं करता है, लेकिन रेडियोलॉजिकल परीक्षा आयु सीमा के दोनों ओर दो साल का अंतर छोड़ देती है, जैसा कि परीक्षण द्वारा निर्धारित किया गया है, भले ही कई जोड़ों का ऑसिफिकेशन परीक्षण आयोजित किया गया हो। भारत में न्यायालय ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि तीस वर्ष की आयु के बाद आयु निर्धारण के लिए ऑसिफिकेशन टेस्ट पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। यह तुच्छ है कि आयु के निर्धारण के लिए प्रमाण का मानक संभाव्यता की डिग्री है और उचित संदेह से परे प्रमाण नहीं है।

40. किशोरावस्था के प्रकरण में जहां दो विचार संभव हैं, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि एक उदार दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। यह स्थिति इस न्यायालय द्वारा अर्नित दास बनाम बिहार राज्य (2000) 5 एससीसी 488 के प्रकरण में निर्धारित की गई थी। जहां यह अभिनिर्धारित किया गया था कि:

"19..... (ii) इस दलील के समर्थन में अभियुक्त की ओर से पेश किए गए साक्ष्यों की सराहना करते समय एक अतितकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाया जाना चाहिए कि वह एक किशोर था और *यदि एक ही साक्ष्य पर*

दो विचार संभव हो सकते हैं, तो न्यायालय को सीमा रेखा के प्रकरण में अभियुक्त को किशोर ठहराने के पक्ष में झुकना चाहिए; तथा"

41. एक उदार दृष्टिकोण लेने और किशोरता के लाभ का विस्तार करने के बारे में जहां दो विचार उपलब्ध हैं, इस न्यायालय द्वारा कई बाद के फैसलों में दोहराया गया है जैसे कि मुकर्रब और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2017) 2 एससीसी 210, अश्विनी कुमार सक्सेना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2012) 9 एससीसी 7503, तथा ऋषिपाल सिंह सोलंकी 3 पैरा 13 बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2012) 9 एससीसी 7503 के साथ प्रकरण दर्ज किया गया है। उत्तर प्रदेश राज्य (2022) 8 एससीसी 602 जो पैरा 33.8 में निम्नानुसार समाप्त हुआ:

33.8. यदि एक ही साक्ष्य पर दो विचार संभव हैं, तो न्यायालय को सीमा रेखा के प्रकरण में अभियुक्त को किशोर ठहराने के पक्ष में झुकना चाहिए। यह सुनिश्चित करने के लिए है कि किशोर न्याय अधिनियम, 2015 का लाभ विधि के उल्लंघन में किशोर पर लागू किया जाए। साथ ही, न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि गंभीर अपराध करने के बाद सजा से बचने के लिए जेजे अधिनियम, 2015 का दुरुपयोग व्यक्तियों द्वारा नहीं किया जाए।

(प्रभाव वर्द्धित)

10. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि जब ऑसिफिकेशन टेस्ट किया गया था, तो अपीलकर्ता की आयु 24.6.2024 को लगभग 55 वर्ष थी, इसलिए, अपीलकर्ता की इस उम्र में पूरी सटीकता के साथ आयु का पता नहीं लगाया जा सकता था और 19.7.1991 को द0प्र0सं0 की धारा 313 के तहत दर्ज बयान में पहले से ही निर्दिष्ट आयु का उल्लेख करना आवश्यक होगा, जिसमें उसकी आयु 18 वर्ष दिखाई गई थी और घटना दिनांक 29.4.1989 है। इसलिए, रिकॉर्ड पर मौजूद तथ्यों के अनुसार अपीलकर्ता की आयु घटना की तारीख को लगभग 16 वर्ष थी। इसके अलावा, 20.9.1982 को जारी कक्षा-I के स्कूल लीविंग सर्टिफिकेट में उनकी जन्मतिथि 04.7.1975 दर्ज है।

11. इस पृष्ठभूमि में, हमें किशोर न्याय बोर्ड, बरेली की रिपोर्ट को स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं दिखता है, जिसमें उसने आरोपी-अपीलकर्ता को दो साल का लाभ दिया है और घटना की तारीख को उसकी उम्र 17 साल 10 महीने और 6 दिन दर्ज की है, घटना की तारीख को उसे किशोर ठहराया है और तदनुसार इसे स्वीकार कर लिया जाता है और यहां अपीलकर्ता छल्ला @ भगवान दास को घटना की तारीख को किशोर घोषित किया जाता है यानी 29.4.1989।

12. अब, चूंकि अपीलकर्ता घटना की तारीख को विधि के साथ संघर्ष में किशोर था, और वर्तमान में वह 50 वर्ष की आयु पार कर चुका है, और इसके अलावा हमारे सामने अपील का कोई अन्य आधार नहीं उठाया गया है, इसलिए, इस स्तर पर न्यायालय को किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम की धारा 18 और 21 के प्रावधानों को ध्यान में रखना होगा। 2015 और उचित आदेश पारित करने के लिए।

13. किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 18 नीचे दी गई है: -

"18. विधि के साथ संघर्ष में पाए गए बच्चे के संबंध में आदेश।

(1). जहां कोई बोर्ड इस जांच से संतुष्ट हो जाता है कि किसी बच्चे की उम्र पर ध्यान दिए बिना, या गंभीर अपराध किया है, या सोलह वर्ष से कम आयु के बच्चे ने जघन्य अपराध किया है, तो तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में निहित किसी बात के होते हुए भी, और अपराध की प्रकृति के आधार पर, पर्यवेक्षण या हस्तक्षेप की विशिष्ट आवश्यकता, सामाजिक जांच रिपोर्ट में सामने आई परिस्थितियों और बच्चे के पिछले आचरण, बोर्ड कर सकता है, यदि वह उचित समझता है, -

क. ऐसे बच्चे और उसके माता-पिता या अभिभावक को उचित पूछताछ और परामर्श का पालन करके सलाह या चेतावनी के बाद बच्चे को घर जाने की अनुमति दें;

ख. बच्चे को समूह परामर्श और इसी तरह की गतिविधियों में भाग लेने के लिए निर्देशित करना;

(ग) बच्चे को किसी संगठन या संस्था, या बोर्ड द्वारा पहचाने गए किसी निर्दिष्ट व्यक्ति, व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूह की देखरेख में सामुदायिक सेवा करने का आदेश देना;

घ. बच्चे या माता-पिता या बच्चे के अभिभावक को जुर्माना भरने का आदेश दें:
बशर्ते कि, यदि बच्चा काम कर रहा है, तो यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि तत्समय लागू किसी भी श्रम विधि के प्रावधानों का उल्लंघन न हो;

ङ. बच्चे को अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रिहा करने और किसी माता-पिता, अभिभावक या योग्य व्यक्ति की देखरेख में ऐसे माता-पिता, अभिभावक या फिट व्यक्ति पर, जो अच्छे व्यवहार और बच्चे की भलाई के लिए, जैसा कि बोर्ड की आवश्यकता हो, किसी भी अवधि के लिए अच्छे व्यवहार और बच्चे की भलाई के लिए, जैसा कि बोर्ड की आवश्यकता हो, किसी भी बांड को निष्पादित करने के लिए निदेश देना;

च. बच्चे को अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रिहा करने और किसी भी फिट सुविधा की देखभाल और पर्यवेक्षण के तहत रखने का निर्देश देना ताकि किसी भी अवधि के लिए अच्छे व्यवहार और बच्चे की भलाई सुनिश्चित की जा सके जो तीन साल से अधिक नहीं हो;

छ. विशेष गृह में रहने की अवधि के दौरान शिक्षा, कौशल विकास, परामर्श, व्यवहार संशोधन चिकित्सा और मनोरोग सहायता सहित सुधारात्मक सेवाएं प्रदान करने के लिए बच्चे को ऐसी अवधि के लिए, जो तीन वर्ष से अधिक नहीं हो, एक विशेष गृह में भेजने का निर्देश दें:

परन्तु यदि बालक का आचरण और व्यवहार ऐसा रहा है कि, यह बच्चे के हित में नहीं होगा, या किसी विशेष घर में रखे गए अन्य बच्चों के हित में नहीं होगा, तो बोर्ड ऐसे बच्चे को सुरक्षित स्थान पर भेज सकता है।

2. यदि उपधारा (1) के खंड (क) से (छ) के अधीन कोई आदेश पारित किया जाता है, तो बोर्ड इसके अतिरिक्त निम्नलिखित आदेश पारित कर सकेगा-

I. स्कूल जाना; या
ii. एक व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्र में भाग लें; या
iii. एक चिकित्सीय केंद्र में भाग लें; या
iv. बच्चे को किसी निर्दिष्ट स्थान पर आने, बार-बार आने या प्रकट होने से प्रतिबंधित करें; या
v. नशामुक्ति कार्यक्रम से गुजरना।

3. जहां बोर्ड धारा 15 के तहत प्रारंभिक मूल्यांकन के बाद एक आदेश पारित करता है कि एक वयस्क के रूप में उक्त बच्चे के परीक्षण की आवश्यकता है, तो बोर्ड इस तरह के अपराधों की सुनवाई करने के लिए अधिकार क्षेत्र वाले बाल न्यायालय में प्रकरण के परीक्षण के मुकदमे को स्थानांतरित करने का आदेश दे सकता है।

13. अधिनियम की धारा 21 को उद्धृत करना भी प्रासंगिक है।

"21. विधि के साथ संघर्ष में एक बच्चे के खिलाफ पारित किया जा सकता है आदेश:
विधि का उल्लंघन करने वाले किसी भी बच्चे को इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत या भारतीय दंड संहिता (45/1860) या किसी अन्य विधि के प्रावधानों के तहत, किसी भी अपराध के लिए रिहाई की संभावना के बिना मौत या आजीवन कारावास की सजा नहीं दी जाएगी।

14. पूर्वोक्त प्रावधानों के अवलोकन से यह देखा गया है कि विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर को आजीवन कारावास की सजा नहीं दी जा सकती है, और इसके अलावा एक किशोर को एक विशेष गृह में भेजे जाने की अधिकतम अवधि केवल तीन वर्ष है।

15. इसके अलावा, आरोपी अपीलकर्ता संख्या 1 को उसकी उम्र के कारण, आज की स्थिति में विशेष गृह में नहीं भेजा जा सकता है। हालाँकि, जैसा कि रिकॉर्ड से स्पष्ट है कि अपीलकर्ता पहले ही लगभग 6 महीने की कैद काट चुका है।

16. इस मोड़ पर, प्रकरण की तरह इसी तरह की स्थिति से निपटने के दौरान सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को देखना उचित होगा।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 2019 (3) अपराध 60 (एससी) में महेश और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य के प्रकरण में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"5. इस संबंध में विधि की स्थिति कुछ हद तक अस्थिर है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा जितेंद्र सिंह उर्फ बब्बू सिंह और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1 में देखा गया है और निपटाया गया है, जिसमें पैराग्राफ 24 से 27 में चार श्रेणियों के प्रकरण को समाप्त कर दिया गया है, जहां स्पष्ट रूप से इस न्यायालय द्वारा अलग-अलग दृष्टिकोण अपनाए गए थे। निवल परिणाम को उपरोक्त रिपोर्ट के पैराग्राफ 28 में संक्षेपित किया गया है जो उक्त रिपोर्ट के पहले पैराग्राफ में किए गए वर्गीकरण के विवरण की व्याख्या करता है। इसलिए, उक्त रिपोर्ट के पैराग्राफ 28 को एक विशिष्ट नोटिस की आवश्यकता होगी और इसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"28. उपरोक्त चर्चा का सार यह है कि प्रकरण के एक सेट में इस न्यायालय ने किशोर को उसके द्वारा किए गए अपराध का दोषी पाया है, लेकिन जब से इस न्यायालय ने उसे दी गई सजा को रद्द कर दिया है, तब से वह लगभग अदंडित हो गया है। प्रकरण के एक अन्य सेट में, इस न्यायालय ने प्रकरण के तथ्यों पर यह विचार लिया है कि किशोर को हिरासत में कुछ अवधि की सेवा करके उसके द्वारा किए गए अपराध के लिए पर्याप्त रूप से दंडित किया जाता है। प्रकरण के तीसरे सेट में, इस न्यायालय ने किशोर की बेगुनाही या अपराध के साथ-साथ किशोर को दोषी पाए जाने पर दी जाने वाली सजा दोनों पर क्षेत्राधिकार वाले किशोर न्याय बोर्ड द्वारा विचार करने के लिए पूरे प्रकरण को भेज दिया है। प्रकरण के चौथे सेट में, इस न्यायालय ने प्रकरण की गुण-दोष के आधार पर जांच की है और किशोर को अपराध का दोषी पाए जाने के बाद, सजा सुनाने पर प्रकरण को क्षेत्राधिकार वाले किशोर न्याय बोर्ड को भेज दिया है।

6. लगभग दो दशक पहले हुई घटना के संबंध में दोषसिद्धि की वैधता, हमारे विचार में, इन अपीलों में तय की जानी चाहिए और दी गई सजा/सजा सहित पूरी कार्यवाही में केवल इस आधार पर हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए कि आरोपी अपीलकर्ता कथित अपराध के कमीशन की तारीख को किशोर थे। न्यायिक दृष्टिकोण हमेशा यथार्थवादी होना चाहिए और जमीनी वास्तविकताओं से कुछ संबंध होना चाहिए। इसलिए, हम भा0द0सं0 के प्रावधानों के तहत आरोपी अपीलकर्तागण की दोषसिद्धि की शुद्धता की जांच करने के लिए ऊपर उल्लिखित प्रकरण की चार श्रेणियों में इस न्यायालय द्वारा पहले अपनाए गए संभावित दृष्टिकोणों में से एक को अपनाते हैं, जैसा कि ऊपर देखा गया है।

7. इस संबंध में, रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों का अवलोकन करने के बाद हमें विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज की गई और उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई बातों से अलग दृष्टिकोण लेने का कोई आधार नहीं मिलता है। तदनुसार, धारा 323, 324, 325, 427, 455 के साथ पठित धारा 149 भा0द0सं0 के तहत आरोपी अपीलकर्तागण की दोषसिद्धि की पुष्टि की जाएगी।

8. यह हमें दी जाने वाली सजा पर विचार करने के लिए लाएगा। यहां फिर से, जितेंद्र सिंह (पूर्वोक्त) में और अब्दुल रज्जाक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के प्रकरण में इस न्यायालय के बाद के कई फैसलों में नोटिस किए गए प्रकरण की चार श्रेणियों में,

मोहम्मद अली अकाउंट (मो. फिरोज खान उर्फ फिरोज बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, मुमताज उर्फ मुंत्याज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और महेंद्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य के प्रकरण में विभिन्न दृष्टिकोण अपनाए गए हैं। कुछ प्रकरण में, वर्ष 2000 के अधिनियम की धारा 20 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए किशोर न्याय बोर्ड द्वारा दंड के प्रश्न को निर्धारित करने के लिए छोड़ दिया गया है। अन्य प्रकरण में, सजा के मुद्दे को न्यायालय द्वारा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए निपटाया गया है कि जिस तारीख को न्यायालय ने इस मुद्दे पर विचार किया था, किशोरों की उम्र बढ़ गई है।

9. वर्तमान एक ऐसा प्रकरण है जहां आरोपी अपीलकर्ता कथित अपराध करने की तारीख को किशोर होने के बावजूद, आज की स्थिति में, मध्यम आयु वर्ग के व्यक्ति हैं। 2015 की विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 2934 से उत्पन्न आपराधिक अपील में आरोपी अपीलकर्ता - महेश ने लगभग एक वर्ष की अवधि के लिए हिरासत में बिताया था, जबकि 2015 की विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 5370 से उत्पन्न आपराधिक अपील में आरोपी अपीलकर्ता - अर्जुन को लगभग आठ (08) महीने की हिरासत का सामना करना पड़ा था। अधिकतम सजा, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, तीन साल है। समय के लंबे प्रवाह को ध्यान में रखते हुए, हमारा विचार है कि वर्तमान प्रकरण के तथ्यों में, इस कारण के लिए सजा की मात्रा पर निर्णय लेने के लिए किशोर न्याय बोर्ड को प्रकरण की रिमांड पर ले जाना आवश्यक नहीं होगा, भले ही ऐसी रिमांड की गई हो और किशोर न्याय बोर्ड इस निर्णय पर आता है कि हिरासत की अवधि के अलावा आरोपी अपीलकर्तागण को हिरासत की एक और अवधि भुगतने की आवश्यकता है, ऐसी हिरासत केवल एक रिमांड होम या एक संरक्षण गृह में हो सकती है, जहां आरोपी अपीलकर्तागण को उनकी उम्र के कारण नहीं भेजा जा सकता है।

10. इसके विपरीत, हिरासत की अवधि को ध्यान में रखते हुए; आज की तारीख के अनुसार आरोपी अपीलकर्तागण की आयु; घटना की तारीख से समय का प्रवाह और अन्य सभी प्रासंगिक तथ्य और परिस्थितियां हमारा विचार है कि आरोपी अपीलकर्तागण की दोषसिद्धि को बनाए रखते हुए, लगाई गई सजा को गुजरी अवधि में से एक में संशोधित किया जाना चाहिए। हम उसी के अनुसार आदेश देते हैं।

14. उपरोक्त विधिक स्थिति के आलोक में और प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, आज की तारीख में आरोपी अपीलकर्ता की उम्र, घटना की तारीख से समय के प्रवाह को ध्यान में रखते हुए, हमारा विचार है कि आरोपी अपीलकर्ता की दोषसिद्धि को बनाए रखते हुए लगाई गई सजा को पहले से ही गुजरी अवधि में संशोधित किया जाता है।

15. तदनुसार, अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। आरोपी अपीलकर्ता उचित जमानत और बंधपत्र प्रस्तुत करके जमानत का लाभ उठा रहा है, जिसे मुक्त कर दिया गया है।

16. इस निर्णय की एक प्रति के साथ अवर न्यायालय के रिकॉर्ड को अनुपालन और आगे की अग्रिम आवश्यक कार्रवाई के लिए संबंधित जिला न्यायालय को तुरंत वापस प्रेषित की जाए।

(2025) 5 ILRA 841

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला

माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला

आपराधिक अपील संख्या-1846 वर्ष 1983

अत्तर सिंह और अन्य **... अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **... प्रतिपक्षी**

अपीलकर्ताओं के लिए अधिवक्ता: श्री ए.एन.मिश्रा, श्री ए.एन.मुल्ला, श्री आर.आर.सिंह, श्री आदित्य प्रकाश, श्री सौरभ चतुर्वेदी, श्री वी.एस.चौधरी, श्री आई.के.चतुर्वेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: डीजीए, श्री सतीश कुमार त्यागी

प्रत्यक्ष चश्मदीद साक्ष्य के मामले में गुप्त साक्ष्य-मकसद बैकस्टेज ले जाता है - प्रस्तुत मामले में तीन घायल गवाह हैं जिनकी मौके पर उपस्थिति परिवार के सदस्य होने के कारण स्वाभाविक है।

अपील खारिज कर दी गई। (ई-9)

उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची:

1. उपेंद्र प्रधान बनाम उड़ीसा राज्य, 2015 (11) एस.सी.सी. 124
2. बालक सिंह और अन्य बनाम पुन राज्य, ए.आई.आर. 1975 एस.सी. 1962
3. दर्शन सिंह बनाम पुन राज्य, 2010(2) एस.सी.सी. 333
4. कृष्णा मोची और अन्य बनाम बिहार राज्य, (2002) 6 एस.सी.सी. 81
5. मसाल्टी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 202
6. दरिया सिंह बनाम पुन राज्य, ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 328
7. अप्पाभाई और अन्य बनाम गुजरात राज्य, ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 696,
8. आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एस. रायप्पा और अन्य, (2006) 4 एस.सी.सी. 512
9. सतबीर सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2009) 13 एस.सी.सी. 790

10. जयाबालन बनाम यूटी ऑफ पांडिचेरी, 2010(68) ए.सी.सी. 308(एस.सी.)

11. धरणीधर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 7 एस.सी.सी. 759

12. बबन शंकर डफल और अन्य बनाम महाराष्ट्र, 2025 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 137

13. शहाजा @ शहाजन इस्माइल मो. बनाम माह राज्य, (2023) 12 एस.सी.सी. 558

14. पहलवान सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2020(6) एएलजे 166

15. कप्तान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश, 2020(1) एडीजे 106 (डीबी)

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला द्वारा उद्घोषित)

1. जीवित अपीलकर्ताओं की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आई. के. चतुर्वेदी को, जिनकी सहायता श्री आदित्य प्रकाश तथा श्री सौरभ चतुर्वेदी, अधिवक्ता द्वारा की गई; सूचना-दाता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री सतीश कुमार त्यागी को; तथा उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से विद्वान अपर सरकारी अधिवक्ता-I श्री ओ. पी. द्विवेदी को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. भारतीय समयानुसार पारित दिनांक 02.08.1983 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत आपराधिक अपील दायर की गई है। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, गाजियाबाद ने एस.टी. संख्या-73 वर्ष 1982 (राज्य बनाम अत्तर सिंह और अन्य) में अपीलकर्ता बूंदी और खजान सिंह को भ०द०वि० की धारा 148 के तहत 18 महीने की सश्रम कारावास की सजा सुनाई और शेष अपीलकर्ता को सजा सुनाई; अत्तर सिंह, बानी सिंह, ओम प्रकाश, नाथू सिंह पुत्र अफीमी, हरफूल, तेज राम, तोता राम छत्तर, बुद्ध, ओमी, नाथू पुत्र खचेरू, सरनी को भारतीय दंड संहिता की धारा 147 के तहत एक साल की सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई और सभी अपीलकर्ताओं को धारा 302 भ०द०वि० के तहत आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। और आगे सभी अपीलकर्ताओं को धारा 323 भ०द०वि० के तहत 6 महीने की सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई। सभी मामलों में सजा एक साथ चलेगी।

3. दिनांक 20.04.2012 के आदेश के तहत अपीलकर्ता संख्या-10-बूंदी हरपाल सिंह के बेटे और अपीलकर्ता संख्या-11-हरफूल छज्जू के बेटे के संबंध में अपील समाप्त हो गई; दिनांक 21.08.2017 के आदेश के माध्यम से अपीलकर्ता संख्या-1-अत्तर सिंह, जोहरी सिंह के पुत्र, अपीलकर्ता संख्या-5-नाथू खचेरू के पुत्र, अपीलकर्ता संख्या-6-मुरारी के बुद्ध पुत्र के संबंध में अपील समाप्त हो गई; दिनांक 09.09.2021 के आदेश के माध्यम से अपीलकर्ता संख्या-4-नाथू पुत्र अफीमी, अपीलकर्ता संख्या-8-ओमी पुत्र सुखन, अपीलकर्ता संख्या-14-खज़ान पुत्र छाजू सिंह के संबंध में अपील निष्फल हो गई; और दिनांक 03.04.2025 के आदेश के तहत अपीलकर्ता संख्या-12-तेज राम पुत्र फर्टी के संबंध में अपील को निष्फल घोषित कर दिया गया। अब अपील केवल अपीलकर्ता संख्या-2- बानी सिंह पुत्र जौहरी सिंह, अपीलकर्ता संख्या-3-ओम प्रकाश पुत्र जौहरी सिंह, अपीलकर्ता संख्या-7-चित्तर पुत्र मुरारी के, अपीलकर्ता संख्या-9-सेर्नी पुत्र मंगलू, अपीलकर्ता संख्या-13-तोता राम पुत्र प्रताप सिंह के संबंध में ही जीवित है।

4. अभियोजन पक्ष की कहानी संक्षेप में यह है कि आरोपी हरफूल और नाथू पहले सूचनाकर्ता ब्रह्मजीत के रिश्तेदार थे। पहले सूचनाकर्ता के पिता फगना के साथ उनका कुछ विवाद था, जिसके कारण उनके बीच संबंध तनावपूर्ण हो गए थे। 28.10.1981 को रात 8.00 बजे सूचनाकर्ता ब्रह्मजीत, उसके पिता फगना और गवाह राम सिंह, सुखन के पुत्र, चमन लाल, दल चंद, हरि सिंह के पुत्र फगना के चबूतरा पर बैठे थे। जब वे आलू वितरण की बात कर रहे थे तो अतर सिंह, बानी सिंह, ओम प्रकाश, जय सिंह, अफीमी के पुत्र नाथू, हरफूल, तेज राम, तोता, फूल सिंह, बूंदी, छतर, बुध, ओमी, नाथू पुत्र खचेरू, सरनी, खजान, धर्मपाल और जौहरी लाठियों और बल्लम से लैस होकर वहां पहुंचे और उन्हें सलाह दी कि वे देखेंगे कि उन्हें मार्ग से गुजरने से कौन रोकता है और उन पर लाठियों और बल्लम से हमला करने लगे। शिकायतकर्ता के पिता - फगना ने भी अपनी रक्षा में लाठी चलाई, जिसके बाद ऊपर नामित बदमाशों ने फगना को घेर लिया और उस पर लाठियों और बल्लम से हमला किया। वे उसे आरोपी नाथू पुत्र अफीमी के घेर में ले गए और फगना को पीटने के बाद उनकी हत्या कर दी और नाथू पुत्र खाचेरू के घर में फेंक दिया। प्राथमिकी में आरोप लगाया गया था कि बदमाश 'कूमल' या 'नक्काब' या 'सैंध' द्वारा नाथू का घर तोड़ रहे थे। यह रिपोर्ट ब्रह्मजीत ने 29.10.1981 को 2.45 बजे थाना में दर्ज कराई थी। उक्त रिपोर्ट के आधार पर धारा 147, 149, 302/149 भ०द०वि० के तहत अपराध संख्या-756 ए दर्ज किया गया था और उसके बाद विवेचनाधिकारी द्वारा विवेचना शुरू की गई थी और उसके समापन के बाद आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया था। आरोपियों ने उस आरोप के लिए खुद को दोषी नहीं ठहराया, जिसके बारे में उन्होंने दावा किया था कि दुश्मनी के कारण उन्हें झूठा फंसाया गया था।

5. अभियोजन पक्ष ने 7 गवाहों से पूछताछ की है, अर्थात्, अ०सा०-1-डॉ. वी.पी. अग्रवाल, चिकित्सा अधिकारी, जिन्होंने अभियोजन पक्ष की ओर से घायलों की जांच की थी, अ०सा०-2- ब्रह्मजीत, प्रथम सूचनाकर्ता और साथ ही अपराध का शिकार। अ०सा०-3- दल चंद और अ०सा०-4- राम सिंह चश्मदीद गवाह होने के साथ-साथ अपराध के शिकार भी हैं, अ०सा०-5- डॉ. एल.एम. पारीख, अ०सा०-6- उप निरीक्षक दया राम शर्मा, विवेचनाधिकारी, अ०सा०-7-हेड कांस्टेबल अनोखे लाल जो प्रथम सूचना रिपोर्ट के लेखक हैं।

6. अभियोजन पक्ष ने दस्तावेजी साक्ष्य भी प्रस्तुत किए हैं, जिन्हें राम सिंह की प्रदर्श क-1-चोट रिपोर्ट, डल चंद की प्रदर्श क-2-इंजरी रिपोर्ट, प्रदर्श क-3-ब्रह्मजीत की चोट रिपोर्ट, प्रदर्श क-4-चमनलाल की चोट रिपोर्ट, प्रदर्श क-5-प्राथमिकी, प्रदर्श क-6-शव परीक्षण रिपोर्ट, प्रदर्श क-7-पंचायतनामा, प्रदर्श क-10-नक़्शा नज़री इंडेक्स, प्रदर्श क-11-फ़र्द बरामगदी खून आलूद भूसा, अर्थ, प्रदर्श क-12-फ़र्द बरामगदी ऑफ खून अलूद और साड़ी मिट्टी के रूप में चिह्नित किया गया था, एवं प्रदर्श क-13, आरोप पत्र मूल इत्यादि प्रस्तुत किये गए।

7. श्री आई.के. चतुर्वेदी, 5 जीवित अपीलकर्ताओं के वरिष्ठ अधिवक्ता, शुरुआत में, प्रस्तुत करते हैं कि इस मामले पर इस न्यायालय की समन्वय पीठ के समक्ष पूरी तरह से बहस की गई थी, जिसमें हम में से एक (सुश्री नंद प्रभा शुक्ला) सदस्य थीं। दिनांक 19.07.2023 और 20.07.2023 के आदेशों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए, वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस न्यायालय द्वारा उनकी पूरी बहस को पहले ही नोट कर

लिया गया है और वह उसी को दोहराते हैं और इसकी पुष्टि करते हैं। दिनांक 19.07.2023 के आदेश का प्रस्तर-3, और दिनांक 20.07.2023 के आदेश का प्रस्तर-2 निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:-

दिनांक 19.07.2023 के **आदेश का प्रस्तर-3**

"3. श्री आई.के.चतुर्वेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता, निम्नानुसार प्रस्तुत करते हैं:

(i) कि अपीलकर्ता - नाथू के घर में, नकाब को मृतक फगना द्वारा चोरी के लिए किया जा रहा था और इस तरह की कार्रवाई अभियुक्तों - नाथू और अन्य द्वारा की गई थी जिसके परिणामस्वरूप 29.10.1981 को रात लगभग 8 बजे फगना की मृत्यु हो गई। आरोपी - अपीलकर्ता ने तुरंत एक प्राथमिकी रिपोर्ट संख्या-756/1981 दर्ज की, जो लगभग 2 बजे धारा 457, 511 भ०द०वि०, थाना-हापुड़, उप-जिला - हापुड़, जिला गाजियाबाद के तहत दर्ज की गई थी। प्राथमिकी मिलने के बाद विवेचनाधिकारी मौके पर पहुंचे। इसके बाद, मृतक की ओर से, ब्रह्मजीत द्वारा धारा 147, 148, 149, 302 भ०द०वि० के तहत एक क्रॉस प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या-756-ए/1981 दर्ज की गई थी, जिसे उसी थाना-, उप-जिला हापुड़, जिला - गाजियाबाद में दर्ज किया गया था। इस क्रॉस प्राथमिकी के आधार पर, अपीलकर्ताओं पर मुकदमा चलाया गया। 18 अभियुक्तों में से, चार अभियुक्तों, अर्थात् जय सिंह, फूल सिंह, धर्मपाल और जौहरी को विचारण न्यायालय द्वारा बरी कर दिया गया था, लेकिन तथ्यों और सबूतों और आरोपों के एक ही संकलन पर, समान रूप से स्थित व्यक्तियों यानी प्रस्तुत अपीलकर्ता 14 को विचारण न्यायालय द्वारा एस.टी. संख्या-73 वर्ष 1982 (राज्य बनाम अतर सिंह और अन्य) में दिनांक 02.08.1983 के फैसले और आदेश द्वारा दोषी ठहराया गया था जो प्रथम अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा पारित किया गया। 14 दोषी आरोपियों - अपीलकर्ताओं में से 8 की मृत्यु हो गई है, जैसा कि दिनांक 12.07.2023 के आदेश में उल्लेख किया गया है और उन आरोपियों - अपीलकर्ताओं की अपील को समाप्त कर दिया गया है। अब, यह अपील केवल 6 जीवित अभियुक्तों - अपीलकर्ताओं के संबंध में जीवित है, अर्थात्, आरोपी - अपीलकर्ता संख्या-2 - बानी सिंह, आरोपी अपीलकर्ता संख्या-3 - ओम प्रकाश, आरोपी अपीलकर्ता संख्या-7 - छित्तर, आरोपी अपीलकर्ता संख्या-9 सेरनी, आरोपी अपीलकर्ता संख्या-12 तेज राम और आरोपी-अपीलकर्ता संख्या-13 तोता राम आदि। इन सभी अपीलकर्ताओं को "फगना" की कथित हत्या के लिए दोषी ठहराया गया है, जो पहली प्राथमिकी संख्या-756 वर्ष 1981 में आरोपी है। प्रस्तुत अपील के आरोपी अपीलकर्ताओं को क्रॉस केस यानी केस अपराध संख्या-756-ए/1981 से उद्भूत उपरोक्त सत्र परीक्षण में सत्र न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश द्वारा दोषी ठहराया गया है। चूंकि पहली प्राथमिकी संख्या-756/1981 में आरोपी केवल फगना ही था जिसकी मृत्यु हो गई थी, इसलिए प्राथमिकी को बंद कर दिया गया क्योंकि आरोपी की मृत्यु हो चुकी थी।

(ii) उपर्युक्त फगना की मृत्यु के बाद, फगना पक्ष के व्यक्तियों ने बदला लेने के लिए हमला किया जिसमें चार व्यक्ति, नामत राम सिंह, दल सिंह, भ्रमजीत (सूचनाकर्ता) और चमन लाल घायल हो गए और आरोपी पक्ष से खजान सिंह, अतर सिंह, जौहरी और जय सिंह घायल हो गए। इस समय, भ्रमजीत (सूचनाकर्ता) ने उसी दिन

लगभग 02.45 बजे क्रॉस प्राथमिकी संख्या-756/1981 दर्ज की और मुकदमे में अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया है। चार आरोपियों में से घायल आरोपी जौहरी और घायल आरोपी जय सिंह को निचली अदालत ने बरी कर दिया।

(iii) प्राथमिकी संख्या-756/1981 के अनुसार, विवेचनाधिकारी ने आगे बढ़कर 29.10.1981 को नकब के पास नाथू के घर के पीछे से फगना के शव को बरामद किया, जो पेपर बुक के पृष्ठ 3 पर दिखाई देने वाले फ़र्द बरामगदी और पेपर बुक के पृष्ठ 28 पर दिखाई देने वाली पंचनामा से स्पष्ट है।

(iv) उन्होंने नकाब के पास कुछ बर्तन भी बरामद किए और यह भी पाया कि घर में नकाब कृषि भूमि की ओर से बनाया गया था। क्रॉस प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या-756-ए के अनुसार, उन्होंने मृतक फगना के घर के घटनास्थल चबूतरा से पृथ्वी पर पाए गए रक्त के नमूने लिए। वह प्रस्तुत करता है कि फगना के घर का चबूतरा बाद की घटनाओं का स्थान है, जिसके संबंध में भ्रामजीत (सूचनाकर्ता) द्वारा क्रॉस प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या-756-ए दर्ज कराई गई थी। अपने प्रस्तुतियों के समर्थन में उन्होंने पेपर बुक के पृष्ठ 2 से 5 पर दिखाई देने वाली प्रथम सूचना रिपोर्ट और फ़र्द बरामगदी आदि की ओर ध्यान आकर्षित किया। बचाव पक्ष के चार व्यक्तियों को लगी चोटों की भी चिकित्सा अधिकारी द्वारा जांच की गई थी, जो पेपर बुक के पृष्ठ संख्या-14 से 20 पर दिखाई देने के कारण सरल भी पाई गई थी।

(v) क्रॉस केस अपराध संख्या-756-ए के अनुसार विवेचनाधिकारी द्वारा तैयार की गई पंचनामा में यह बताया गया है कि मौत दंगे के कारण हुई थी, लेकिन उन्होंने पहली प्राथमिकी संख्या-756/1981 के अनुसार पाए गए बर्तनों की बरामदगी का उल्लेख किया था। इससे पता चलता है कि फगना की मौत के बाद, बदला लेने के लिए झगड़ा हुआ जिसमें अभियोजन पक्ष की ओर से चार व्यक्ति और बचाव पक्ष के चार व्यक्ति घायल हो गए। पहली प्राथमिकी का सूचनाकर्ता खचेरू के बेटे नाथू के घर में नकाब बनाते समय उपरोक्त फगना की मृत्यु हो गई।

(vi) अतः वास्तविक घटना यह थी कि मृतक फगना, नाथू पुत्र खचेरू के घर में चोरी/आपराधिक अतिचार करने के उद्देश्य से नक़ब लगा रहा था और उसी घटना में उसकी मृत्यु हो गई। यह तथ्य इस साक्ष्य से और अधिक पुष्ट होता है कि जिस पीछे की ओर से नक़ब लगाई गई थी, वह कृषि भूमि थी। जैसा कि विवेचनाधिकारी द्वारा 29.10.1981 के फ़र्द बरामगदी (पेपर बुक के पृष्ठ 5) और मृतकों के विवरण में नोट किया गया था फागना का शव जैसा कि पंचनामा (पेपर बुक के पृष्ठ 28 पर) में उल्लेख किया गया है कि फगना के पैरों पर मिट्टी पाई गई थी। इसलिए, प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या-756-ए के अनुसार अभियोजन पक्ष की कहानी घटना के समय मौके पर मिले सबूतों से पूरी तरह से असंगत है।

vii) अ०सा०-2 के साक्ष्य और पूछताछ रिपोर्ट के साथ पढ़ी गई उसकी जिरह से यह स्पष्ट है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या-756-ए से पहले का समय है और भ्रामजीत द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ता को झूठा फंसाने और

उसके पिता फगना और अभियोजन पक्ष के अन्य व्यक्तियों द्वारा किए गए आपराधिक कृत्य को छिपाने के लिए दर्ज किया गया था। यहां तक कि अ०सा०-2 भी यह नहीं बता सका कि प्राथमिकी पर अंगूठे का निशान उसका है या किसी अन्य व्यक्ति का है।

(viii) अपने साक्ष्य के प्रस्तर-7 में अ०सा०-2 ने कहा है कि पुलिस गांव में लगभग 1 बजे आई थी और जब सुबह 9 बजे थाना लौटी तो थाना में उसे पता चला कि उसके पिता फगना की हत्या आरोपी ने कर दी है। प्रस्तर-2, 3, 8, 10, 11 में दिए गए बयान के साथ अ०सा०-2 सूचनाकर्ता का यह बयान स्वयं यह दर्शाता है कि अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी मनगढ़ंत है।

(ix) अ०सा०-2 (जिरह) के साक्ष्य के प्रस्तर-11 में कहा गया है कि दारोगा जी ने प्राथमिकी दर्ज करने से पहले या बाद में अपना बयान नहीं लिया है। इससे पता चलता है कि धारा 161 भ०द०वि० के तहत विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज किया गया बयान मनगढ़ंत है। अभियोजन पक्ष द्वारा कथित अपराध करने के लिए कोई तत्काल मकसद साबित नहीं किया जा सका।

(x) प्रस्तर-19 में अ०सा०-2 का साक्ष्य कि हाथापाई के दौरान मोमबत्ती जल रही थी और यह अंधेरी रात थी। यह सबूत अ०सा०-3 दल सिंह (प्रस्तर-5) की जिरह के साथ विरोधाभासी है, जहां उन्होंने कहा कि आरोपी ने तुरंत मोमबत्ती बंद कर दी थी और उसके बाद यह ध्यान नहीं दिया जा सका कि किसने किसे पीटा। अ०सा०-3 (प्रस्तर-8) की जिरह से यह स्पष्ट है कि मृतक - फगना एक आदतन चोर था। अ०सा०-3, अ०सा०-4 और अ०सा०-5 के साक्ष्य अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं करते हैं।

दिनांक 20.07.2023 **के आदेश का प्रस्तर-2**

2. श्री आई.के. चतुर्वेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता, निम्नानुसार प्रस्तुत करते हैं: -

(i) चिकित्सा रिपोर्ट के अनुसार, विवेचनाधिकारी द्वारा दो स्थानों से लिए गए खून आलूदा मिट्टी के नमूने एक जैसे पाए गए हैं। अभियोजन पक्ष के अनुसार, एक को मृतक फगना के घर के चबूतरा से ले जाया गया था और दूसरे को उस कमरे से ले जाया गया था जहां फगना का शव मिला था। लेकिन दोनों जगहों की मिट्टी एक जैसी नहीं हो सकती। इससे साबित होता है कि खून से सने मिट्टी के नमूने किसी और जगह के हैं। इसलिए, अभियोजन पक्ष घटना के वास्तविक स्थान को स्थापित करने में पूरी तरह से विफल रहा है। चूंकि घटना का वास्तविक स्थान न तो पता लगाया जा सकता है और न ही अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित किया गया है, इसलिए, अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित पूरी कहानी अविश्वसनीय हो जाती है और अभियुक्त/अपीलकर्ता संदेह के लाभ के हकदार होते हैं।

(ii) अभियुक्त व्यक्ति कभी फरार नहीं हुए बल्कि वे पूरी विवेचना के दौरान विवेचनाधिकारी के समक्ष उपस्थित रहे। इसलिए उनका आचरण दोषपूर्ण नहीं है और यह दर्शाता है कि उन्होंने कथित अपराध के कमीशन/गठन में भाग नहीं लिया है।

(iii) मृतक-फगना के शरीर पर उलटे मार्जिन के साथ कोई कटा हुआ घाव नहीं पाया गया था, जैसा कि शव परीक्षण रिपोर्ट और अ०सा०-5 के साक्ष्य से स्पष्ट है। इसलिए, बल्लम की कोई चोट नहीं आई। इसलिए, अभियोजन पक्ष का यह मामला कि आरोपी ने मृतक-फगना पर बल्लम द्वारा हमला किया था, अविश्वसनीय साबित होता है।

(iv) इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि "कुमाल" अभियुक्त द्वारा बनाया गया था। यहां तक कि आरोपी के पास से किसी भी उपकरण की बरामदगी नहीं हुई है, जिसका इस्तेमाल कथित तौर पर आरोपी ने 'कुमाल' बनाने के लिए किया था। इसलिए झूठे सबूतों के आधार पर मामले को एक अलग रंग देने के लिए आरोपी द्वारा 'कुमाल' बनाने की कहानी गढ़ी गई है।

(v) अभियोक्ता के विरुद्ध अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित किया गया यह उद्देश्य निराधार है कि मार्ग/मार्ग के संबंध में कोई विवाद था। अभियोजन पक्ष के अनुसार, यह विवाद लगभग 20 साल पहले उत्पन्न हुआ था। अभियोजन पक्ष द्वारा किसी भी तात्कालिक कारण के लिए कोई सबूत नहीं दिया गया है। अभियोजन पक्ष द्वारा यह स्थापित करने के लिए कोई सबूत नहीं दिया जा सका कि कोई झगड़ा या मुकदमा घटना की तारीख के करीब या घटना के तत्काल निकटता में हुआ था। इसलिए, अभियोजन पक्ष द्वारा आरोप लगाया गया मकसद पूरी तरह से अस्थापित है। किसी भी मकसद के अभाव में, अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित पूरी कहानी के पास खड़े होने के लिए कोई बल नहीं है।

(vi) अपराध करने में कथित रूप से प्रयुक्त हथियार की कोई बरामदगी नहीं की जा सकी।

(vii) कुल 18 व्यक्तियों को झूठे तरीके से फंसाया गया था और उन्हें इस घटना में आरोपी बनाया गया था। तथ्यों और सबूतों के एक ही सेट पर, उनमें से चार को उम्र के आधार पर बरी कर दिया गया और उन्हें संदेह का लाभ दिया गया। इसलिए, यहां अपीलकर्ताओं को एक ही सबूतों के आधार पर दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

(viii) अ०सा०-4 के साक्ष्य के अनुसार, मृतक-फगना के शरीर को लगभग 90 कदम तक घसीटा गया था। अ०सा०-5 (शव परीक्षण करने वाले डॉक्टर) के साक्ष्य के अनुसार मृतक के शरीर पर घास और साधारण मिट्टी पाई गई। इस बात का कोई विवरण नहीं है कि मृतक ने जो धोती और कुर्ता पहना था, वह शव को लगभग 90 कदम तक खींचने के स्वाभाविक परिणाम के रूप में फटा हुआ पाया गया था। इसलिए, अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी कि झगड़ा उस घर के चबूतरा में हुआ था जिसमें मृतक-फगना को चोटें आई थीं और उसके बाद

उसे 90 सीढ़ियों तक घसीटा गया ताकि उसे उस कमरे में ले जाया जा सके जहां उसका शव पड़ा पाया गया था, किसी भी विश्वसनीय सबूत द्वारा समर्थित नहीं है।

(ix) इसके विपरीत, मृतक-फगना और "कुमाल" के शरीर की उपस्थिति, जैसा कि अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा पाया गया था और यह तथ्य भी कि फगना आदतन चोर था, इस बात में कोई संदेह नहीं छोड़ता है कि फगना ने चोरी के लिए "कुमाल" बनाया है और कुछ बर्तन भी ले गए हैं, जो विवेचनाधिकारी द्वारा बरामद किए गए थे, जैसा कि फ़र्द बरामदगी से स्पष्ट है। कथित तौर पर चबूतरा से शव को खींचते समय 90 सीढ़ियों तक खून के धब्बों के निशान के बारे में कोई सबूत नहीं मिला या अभियोजन पक्ष द्वारा इसका नेतृत्व किया जा सकता है। इसलिए मृतक-फगना के शव को घर के चबूतरा से उस कमरे तक खींचने की पूरी कहानी पूरी तरह से अप्रमाणित है, जहां शव मिला था। अभियोजन पक्ष द्वारा न तो घसीटने के स्थान से रक्त का नमूना लिया गया था और न ही किसी वैज्ञानिक साक्ष्य द्वारा घसीटना स्थापित किया गया था। फगना की मौत रात में घर तोड़ने के कारण हुई थी, जो धारा 104 भ०द०वि० और 105 के प्रावधानों द्वारा पूरी तरह से संरक्षित है।

8. सूचनाकर्ता के अधिवक्ता श्री सतीश कुमार त्यागी ने प्रस्तुत किया कि उनके तर्क को इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 26.07.2023 के अपने आदेश में नोट किया गया है और वह इसे दोहराते हैं और इसकी पुष्टि करते हैं। दिनांक 26.07.2023 के आदेश का प्रस्तर-2 निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:-

"2. शिकायतकर्ता के अधिवक्ता श्री सत्श कुमार त्यागी ने निम्नानुसार प्रस्तुत किया:

(i) दिनांक 29.10.1981 के फ़र्द बरामगदी को प्रदर्शित नहीं किया गया है, जिसमें 'नकब' के पास कुछ वस्तुओं की बरामदगी दिखाई गई है और इसलिए, विवेचनाधिकारी द्वारा तैयार किए गए दिनांक 29.10.1981 के उक्त फ़र्द बरामगदी को अभियुक्त-अपीलकर्ताओं द्वारा पढ़ा और भरोसा नहीं किया जा सकता है।

(ii) अभियुक्त पक्ष के चार व्यक्तियों को मामूली चोटें आईं, जबकि मृतक पक्ष के चार व्यक्तियों को मामूली चोटें आईं और मृतक-फगना की अभियुक्त द्वारा लगी चोटों के कारण मृत्यु हो गई। इस प्रकार, यह निर्विवाद हो जाता है कि यह घटना 29.10.1981 को वर्ष 28.10.1981 की रात को हुई थी और अभियुक्त द्वारा लगी चोटों के कारण, मृतक-फगना की मृत्यु हो गई।

(iii) अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को उचित संदेह से परे स्थापित किया है और इस प्रकार, आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा अभियुक्त की दोषसिद्धि में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

9. श्री द्विवेदी, अपर शासकीय अधिवक्ता ने भी तत्कालीन अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क को दोहराया और फिर से पुष्टि की है, जिसे इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने प्रस्तर-3 में दिनांक 26.07.2023 के आदेश के माध्यम से नोट किया है। प्रस्तर-3 निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"3. श्री ए.एन. मुल्ला, अपर शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि घटना की तारीख और समय को आरोपी-अपीलकर्ताओं द्वारा विवादित नहीं किया जा सकता है। एकमात्र विवाद जो उठाया जा सकता है वह घटना के स्थान के बारे में है। अभियोजन पक्ष ने आरोपी-अपीलकर्ताओं के अपराध को उचित संदेह से परे स्थापित किया है और इस तरह, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को विचारण न्यायालय द्वारा सही तरीके से दोषी ठहराया गया है।

10. न्यायालय द्वारा पूछे गए प्रश्न और शिकायतकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दिए गए उत्तर के साथ-साथ दिनांक 26.07.2023 के आदेश के प्रस्तर-4 और 5 में निहित अपर शासकीय अधिवक्ता को भी निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"4. इस न्यायालय द्वारा शिकायतकर्ता के अधिवक्ता और अपर शासकीय अधिवक्ता से किए गए एक प्रश्न पर उनका ध्यान अ०सा०-2 (प्रस्तर-7, 10 और 19) और अ०सा०-3 (प्रस्तर-5 और 7) के साक्ष्य की ओर आकर्षित करते हुए कहा गया था कि जिस तारीख को घटना हुई थी, वह एक अंधेरी रात थी, जिसमें कृत्रिम प्रकाश का कोई स्रोत नहीं था, सिवाय एक मोमबत्ती को छोड़कर जो 10 मापने वाले प्लेटफॉर्म ('चबूतरा') के पास एक शेल्फ ('आला') में रखी गई थी गज़ X 7 गज़, जिसे आरोपी व्यक्तियों द्वारा आते ही तुरंत उड़ा दिया गया था और उसके बाद, अंधेरी रात में यह ज्ञात नहीं है कि किसने किसे और किस हथियार से पीटा। फिर, सूचनाकर्ता और अन्य कथित चश्मदीद गवाह 18 आरोपी व्यक्तियों को भूमिका/विभिन्न हथियार सौंपते हुए कैसे देख सकते हैं?

5. इस प्रश्न के लिए, शिकायतकर्ता के अधिवक्ता और अपर शासकीय अधिवक्ता ने संयुक्त रूप से प्रस्तुत किया कि चूंकि पक्ष एक-दूसरे से परिचित और संबंधित थे, इसलिए, वे उन्हें आवाज और शरीर की उपस्थिति से पहचान सकते थे। इसलिए, अंधेरी रात और घटनास्थल पर कृत्रिम प्रकाश की अनुपलब्धता अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक नहीं होगी, जहां तक घटना की घटना, आरोपी व्यक्तियों को पहचानने और अन्य गतिविधियों का संबंध है।

11. हालांकि, तीनों अधिवक्ता हमें पेपर बुक में ले गए और रिपोर्ट, नक़्शा नज़री और गवाहों के बयान सहित सभी दस्तावेजों के प्रासंगिक हिस्सों पर ध्यान आकर्षित करके अपनी प्रस्तुतियों को ताज़ा कर दिया।

12. इसके अलावा, वरिष्ठ अधिवक्ता के तर्क का सार यह है कि जब मृतक फगना द्वारा चोरी के लिए नाथू के घर में कूमल बनाया जा रहा था, तो आरोपी पक्ष द्वारा कार्रवाई की गई जिसके परिणामस्वरूप 29.10.1981 को लगभग 8.00 बजे फगना की मृत्यु हो गई और इस संबंध में मृतक की ओर से लगभग 2.00 बजे एक प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या-756/1981 दर्ज की गई थी, धारा 457, 511 भ०द०वि० के तहत जबकि आरोपी की ओर से धारा 147, 148, 149, 302 भ०द०वि० के तहत क्रॉस प्राथमिकी संख्या-756-ए/1981 दर्ज की गई। यह बताया गया कि फगना की मृत्यु के बाद, सूचनाकर्ता पक्ष ने बदला लेने के लिए हमला किया, जिसमें 4 व्यक्ति, अर्थात् राम सिंह, दल सिंह, ब्रह्मजीत (सूचनाकर्ता) और छमन लाल घायल हो गए और आरोपी पक्ष से खजान सिंह, अतर सिंह, जौहरी और जय सिंह घायल हो गए; फगना का शव नाथू के घर से बरामद किया गया और

जो बर्तन ले जाया जा रहा था, वह घर के बाहर कूमल के ठीक पीछे खेत में मिला। फगना के घर का चबूतरा बाद की घटना का स्थान है और यह कहना गलत है कि फगना को चोटें आई थीं और यहां तक कि सूचनाकर्ता पक्ष फगना की उपस्थिति में भी नाथू के घर घसीटा गया था; इससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि खचेरू के पुत्र नाथू के घर में कूमल बनाते समय फगना की मृत्यु हो गई और आरोपी व्यक्तियों की ओर से प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या-756ए/1981 दर्ज की गई। वह प्रस्तुत करता है कि इस तथ्य को चिकित्सा साक्ष्य द्वारा समर्थित किया जाता है क्योंकि फगना के शरीर पर मिट्टी (गीली मिट्टी) और घास पाई गई थी। पेपर बुक के विभिन्न पृष्ठों पर ध्यान आकर्षित करते हुए यह प्रस्तुत किया गया था कि बाद की प्राथमिकी संख्या-756ए/1981 समय से पहले है; आरोपी व्यक्तियों की ओर से इस तरह के अपराध को करने का कोई मकसद नहीं था; दोनों स्थानों से बरामद मिट्टी समान है जो संभव नहीं है और इस तरह की घटना के स्थान का पता नहीं लगाया गया है और स्थापित कानून के अनुसार आरोपी व्यक्तियों को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए; घटना के बाद आरोपी कभी फरार नहीं हुए, जो उनकी सत्यता को भी दर्शाता है कि उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है; इस बात का कोई सबूत नहीं है कि कूमल को आरोपी पक्ष द्वारा गढ़ा गया था, जैसा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोप लगाया गया था; प्रस्तुत मामले में किसी भी हथियार की बरामदगी नहीं हुई थी; 90 सीढ़ियों के पूरे रास्ते में खून के धब्बे नहीं थे क्योंकि आरोप है कि फगना को उसके चबूतरा में पीटा गया और 90 सीढ़ियां घसीटकर नाथू के घर तक ले जाया गया जहां शव मिला था; इस मार्ग से कोई खून आलूदा मिट्टी बरामद नहीं की गई थी क्योंकि इस तरह के शरीर को खींचना साबित नहीं हुआ है और फगना को हुई मृत्यु पूर्व चोटों से इसकी पुष्टि नहीं हुई है। अंत में, यह प्रस्तुत किया गया था कि कुल 18 आरोपी व्यक्ति थे, जबकि एक ही स्थापित तथ्यों के आधार पर, 4 आरोपी व्यक्तियों को उम्र के आधार पर बरी कर दिया गया है और उन्हें लाभ दिया गया है, इसलिए, अन्य आरोपी व्यक्तियों की दोषसिद्धि कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है।

13. अपने तर्क के समर्थन में अपीलकर्ताओं के वरिष्ठ अधिवक्ता ने **उपेंद्र प्रधान बनाम उड़ीसा राज्य, 2015 (11) एस.सी.सी. 124** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है कि कानून और साक्ष्य की मूल्यांकन पर आरोपी व्यक्तियों के पक्ष में दृष्टिकोण स्वीकार किया जाता है क्योंकि यह आरोपी व्यक्तियों का मानव अधिकार है। उन्होंने **बालाका सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1975 एस.सी. 1962** के फैसले पर भरोसा करते हुए तर्क दिया है कि यदि कुछ अभियुक्तों को एक ही तथ्यों के आधार पर बरी कर दिया गया है, तो अभियोजन पक्ष के पूरे संस्करण को खारिज कर दिया जाना चाहिए और इसका लाभ अन्य आरोपी व्यक्तियों को भी दिया जाना चाहिए। यह बचाव के अधिकार का प्रयोग करने का मामला है क्योंकि मृतक फगना चोरी के उद्देश्य से कूमल कर रहा था। उन्होंने **दर्शन सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2010(2) एस.सी.सी. 333,** उक्त निर्णय के प्रस्तर-58 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा किया है: -

"58. निम्नलिखित निर्णयों की जांच पर निम्नलिखित सिद्धांत सामने आते हैं:

(i) आत्म-संरक्षण बुनियादी मानवीय प्रवृत्ति है और सभी सभ्य देशों के आपराधिक न्यायशास्त्र द्वारा विधिवत मान्यता प्राप्त है। सभी स्वतंत्र, लोकतांत्रिक और सभ्य देश कुछ उचित सीमाओं के भीतर निजी रक्षा के अधिकार को मान्यता देते हैं।

(ii) निजी रक्षा का अधिकार केवल उसी के लिए उपलब्ध है जो अचानक आसन्न खतरे को टालने की आवश्यकता का सामना कर रहा है, न कि आत्म-निर्माण की।

(iii) आत्मरक्षा के अधिकार को प्रचालन में लाने के लिए केवल एक उचित आशंका पर्याप्त है। दूसरे शब्दों में, यह आवश्यक नहीं है कि निजी रक्षा के अधिकार को जन्म देने के लिए अपराध का वास्तविक कमीशन होना चाहिए। यह पर्याप्त है यदि अभियुक्त को यह पता चलता है कि इस तरह के अपराध पर विचार किया जाता है और यदि निजी रक्षा के अधिकार का प्रयोग नहीं किया जाता है तो यह किए जाने की संभावना है।

(iv) निजी रक्षा का अधिकार जैसे ही कोई उचित आशंका उत्पन्न होती है, शुरू हो जाता है और यह ऐसी आशंका की अवधि के साथ मेल खाता है।

(v) यह उम्मीद करना अवास्तविक है कि हमले के तहत एक व्यक्ति किसी भी अंकगणितीय सटीकता के साथ अपने बचाव के कदम को कदम से संशोधित करेगा।

(vi) निजी रक्षा में अभियुक्त द्वारा प्रयोग किया जाने वाला बल व्यक्ति या संपत्ति की सुरक्षा के लिए पूरी तरह से अनुपातहीन या आवश्यकता से बहुत अधिक नहीं होना चाहिए।

(vii) यह अच्छी तरह से स्थापित है कि भले ही अभियुक्त आत्मरक्षा की दलील न देता है, यह ऐसी दलील पर विचार करने के लिए खुला है यदि यह अभिलेखों पर सामग्री से उत्पन्न होता है।

(viii) अभियुक्त को उचित संदेह से परे निजी रक्षा के अधिकार के अस्तित्व को साबित करने की आवश्यकता नहीं है।

(ix) दंड संहिता निजी रक्षा का अधिकार तभी प्रदान करती है जब वह विधिविरुद्ध या गलत कार्य अपराध हो।

(x) एक व्यक्ति जो अपने जीवन या अंग को खोने के आसन्न और उचित खतरे में है, आत्मरक्षा के अभ्यास में अपने हमलावर को मौत तक भी कोई नुकसान पहुंचा सकता है, जब हमले का प्रयास किया जाता है या सीधे धमकी दी जाती है।

14. इसके विपरीत, सूचनाकर्ता के अधिवक्ता श्री सतीश कुमार त्यागी ने इस आशय के अपने तर्क को ताजा किया है कि 29.10.981 को बरामद ज्ञापन जिसमें कूमल के पास कुछ वस्तुओं की बरामदगी को दिखाया गया था, प्रस्तुत मामले में प्रदर्शित नहीं किया गया था क्योंकि फ़र्द बरामदगी आरोपी व्यक्तियों संख्या-756/1981 द्वारा दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट में तैयार किया गया था और कानून की आवश्यकता है कि जब तक कि इसे प्रस्तुत मामले में प्रदर्शित नहीं किया जाता है, आरोपी व्यक्तियों द्वारा इस पर ध्यान नहीं दिया जा सकता है और इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई और दोनों पक्षों से चार लोगों को चोटें आईं, स्पष्ट रूप से साबित करता है कि यह घटना वर्ष 28.10.1981 की रात को हुई थी और दो स्थानों से खून आलूदा मिट्टी की बरामदगी को देखते हुए और विवेचनाधिकारी द्वारा विधिवत साबित की गई नक़्शा नज़री में दिखाए गए स्पष्ट रूप से तारीख को साबित करता है, घटना और अभियोजन के समय और स्थान ने उनके मामले को संदेह की छाया से परे साबित कर दिया है।

15. अपर शासकीय अधिवक्ता ने सूचनाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क को अपनाते हुए, हालांकि, प्रस्तुत किया कि घटना की तारीख और समय विवादित नहीं है और अधिक से अधिक घटना के स्थान के बारे में विवाद उठाया जा सकता है, जबकि घायल चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य जिनकी उपस्थिति पर विवाद नहीं किया जा सकता है, स्पष्ट रूप से घटना के स्थान को भी साबित करते हैं और अभियोजन पक्ष के गवाहों की जिरह में भी कुछ भी विपरीत नहीं पाया जा सकता है औपचारिक गवाहों के रूप में; शव परीक्षण रिपोर्ट और चोट रिपोर्ट भी अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन करती है। इसलिए, निवेदन यह है कि दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

16. आगे बढ़ने से पहले, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के विभिन्न प्रासंगिक निर्णयों का उल्लेख करना उचित होगा।

17. **कृष्णा मोची और अन्य बनाम बिहार राज्य, (2002)6 एस.सी.सी. 81 में,** माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक मुकदमे में साक्ष्य की मूल्यांकन करते हुए आपराधिक अदालतों द्वारा अपनाए जाने वाले यथार्थवादी दृष्टिकोण पर जोर दिया, प्रस्तर-32 जिसमें से निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"32. अदालत को सबूतों की मूल्यांकन करते हुए जीवन की इन वास्तविकताओं को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए और हाथीदांत की मीनार में बैठकर अवास्तविक दृष्टिकोण अपनाने का जोखिम नहीं उठाना चाहिए। मुझे लगता है कि हाल के दिनों में किसी आरोपी को आसानी से बरी करने की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। एक छोटे से निर्णय द्वारा मामले में उठाए गए मामूली बिंदुओं के आधार पर बरी करने का आदेश पारित करना बहुत आसान है ताकि निपटान के मानदंड को प्राप्त किया जा सके। प्रत्येक मामले में कुछ विसंगति होना तय है, जिसे अदालत के साथ तब तक नहीं तौलना चाहिए जब तक कि यह अभियोजन पक्ष के मामले को भौतिक रूप से प्रभावित नहीं करता है। यदि इंगित की गई विसंगतियां कंकड़ के दायरे में हैं, तो अदालत को उस पर चलना

चाहिए, लेकिन यदि वे बोल्डर हैं, तो अदालत को उस पर कूदने का प्रयास नहीं करना चाहिए। इन दिनों जब अपराध बड़े पैमाने पर हो रहा है और मानवता पीड़ित है और समाज इससे इतना प्रभावित हो रहा है, अदालतों के कर्तव्य और जिम्मेदारियां बहुत अधिक हो गई हैं। अब "सैकड़ों दोषी व्यक्तियों को बरी कर दिया जाए, लेकिन एक भी निर्दोष को दोषी नहीं ठहराया जाए" कहावत व्यवहार में, दुनिया भर में बदल रही है और अदालतों को यह स्वीकार करने के लिए मजबूर किया गया है कि "समाज गलत दोषसिद्धि से पीड़ित है और यह समान रूप से गलत दोषमुक्ति से पीड़ित है"। मुझे लगता है कि इस न्यायालय ने हाल के दिनों में समय-समय पर इन तथ्यों पर ईमानदारी से ध्यान दिया है .....

(महत्व सन्निविष्ट)

18. **मसल्टी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए.आई.आर.** 1965 एस.सी. 202 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर-14 में निम्नानुसार टिप्पणी की:

"14. लेकिन हमें लगता है कि यह तर्क देना अनुचित होगा कि गवाहों द्वारा दिए गए साक्ष्य को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए कि यह पक्षपातपूर्ण या हितबद्ध गवाहों का सबूत है। ... इस तरह के सबूतों को केवल इस आधार पर यांत्रिक रूप से अस्वीकार करना कि यह पक्षपातपूर्ण है, हमेशा न्याय की विफलता का कारण बनेगा। (महत्व सन्निविष्ट)

19. **दरिया सिंह बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 328** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी विचार लिया है कि संबंधित गवाह का मतलब जरूरी नहीं है कि वह एक हितबद्ध गवाह के बराबर हो। एक गवाह को केवल तभी दिलचस्पी लेने वाला कहा जा सकता है जब वह मुकदमेबाजी के परिणाम से कुछ लाभ प्राप्त करता है; एक दीवानी मामले में एक डिक्री, या एक आपराधिक मुकदमे में दंडित व्यक्ति को देखने में, प्रस्तर-6 जिसमें से निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"*6. सिद्धांत रूप में, हालांकि, इस दलील को स्वीकार करना मुश्किल है कि यदि एक गवाह को मृतक का रिश्तेदार दिखाया जाता है और यह भी दिखाया जाता है कि उसने हमलावर के प्रति पीड़ित की शत्रुता को साझा किया है, तो उसके साक्ष्य को कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है जब तक कि भौतिक विवरण पर इसकी पुष्टि न की जाए।*

20. **अप्पाभाई और अन्य बनाम गुजरात राज्य, ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 696** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर-11 में निम्नानुसार अवलोकन किया:

"11..... अनुभव हमें याद दिलाता है कि सभ्य लोग आम तौर पर असंवेदनशील होते हैं जब उनकी उपस्थिति में भी कोई अपराध किया जाता है। वे पीड़ित और सतर्कता दोनों को वापस ले लेते हैं। वे खुद को अदालत से तब तक दूर रखते हैं जब तक कि यह अपरिहार्य न हो। वे सोचते हैं कि दीवानी विवाद जैसा अपराध दो

व्यक्तियों या पक्षों के बीच है और उन्हें खुद को शामिल नहीं करना चाहिए। आम जनता की इस तरह की उदासीनता वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण है, लेकिन यह हर जगह है चाहे वह गांव की जिंदगी हो, कस्बों में हो या शहरों में। इस बाधा को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है जिसके साथ जांच एजेंसी को अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना पड़ता है। इसलिए, अदालत को स्वतंत्र गवाह की कमी के कारण अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह करने के बजाय अभियोजन पक्ष के संस्करण के व्यापक स्पेक्ट्रम पर विचार करना चाहिए और फिर अभियुक्त द्वारा सुझाई गई संभाव्यता के संबंध में सच्चाई की खोज करनी चाहिए। हालाँकि, न्यायालय को यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी गंभीर अपराध के गवाह सामान्य तरीके से प्रतिक्रिया नहीं कर सकते हैं। न ही वे समान रूप से प्रतिक्रिया करते हैं। एक कायरतापूर्ण अपराध या गंभीर प्रकृति के कार्य में डरावनी गवाह अलग तरह से प्रतिक्रिया कर सकते हैं। सामान्य परिस्थितियों में उनका आचरण सामान्य प्रकार का नहीं हो सकता है। इसलिए, अदालत उनके सबूतों को केवल इसलिए खारिज नहीं कर सकती क्योंकि उन्होंने असामान्य तरीके से व्यवहार या प्रतिक्रिया दी है..... (महत्व सन्निविष्ट)

21. **आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एस. रायप्पा और अन्य, (2006) 4 एस.सी.सी. 512** में भी इसी तरह का दृष्टिकोण लिया गया है, जिसमें यह देखा गया है कि अब यह लगभग एक फैशन है कि जनता विशेष रूप से आपराधिक मामलों में अदालत के समक्ष पेश होने और गवाही देने के लिए अनिच्छुक है और इस कारण से मामलों को वर्षों और वर्षों तक खींचा जाता है, प्रस्तर-6 जिसमें से निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"6.....अब तक, यह कानून का एक अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि एक गवाह की गवाही अन्यथा विश्वास को प्रेरित करती है, इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि वह मृतक का रिश्तेदार होने के नाते एक हितबद्ध गवाह है। एक करीबी रिश्तेदार जो एक बहुत ही स्वाभाविक गवाह है, उसे हितबद्ध गवाह नहीं कहा जा सकता है। रुचि रखने वाला शब्द यह मानता है कि संबंधित व्यक्ति को आरोपी व्यक्ति को किसी न किसी तरह से दुश्मनी या कुछ अन्य कारणों से दोषी ठहराए जाने में कुछ प्रत्यक्ष रुचि होनी चाहिए।
(महत्व सन्निविष्ट)

22. **पुलिचेरला नागराजू @ नागराजा रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य**, **(2006) 11 एस.सी.सी. 444** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर-16 में निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

"16. इस मामले में, हम पाते हैं कि विचारण न्यायालय ने अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के साक्ष्य को केवल इसलिए खारिज कर दिया था क्योंकि वे मृतक के भाई और पिता होने के नाते हितबद्ध गवाह थे। लेकिन यह अच्छी तरह से स्थापित है कि एक गवाह के साक्ष्य को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि वह या तो पक्षपातपूर्ण है या हितबद्ध है या मृतक से निकटता से संबंधित है, यदि यह अन्यथा है, तो भरोसेमंद और विश्वसनीय पाया जाता है। इसके लिए केवल अधिक सावधानी और सावधानी के साथ जांच की आवश्यकता होती है, ताकि न तो दोषी बच सकें और न ही निर्दोष गलत तरीके से दोषी ठहराए जा सकें। यदि इस तरह की सावधानीपूर्वक जांच करने पर, सबूत विश्वसनीय और संभावित पाए जाते हैं, तो इस पर कार्रवाई

की जा सकती है। यदि यह असंभव या संदिग्ध पाया जाता है, तो इसे अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए। जहां गवाह के पास आरोपी को झूठा फंसाने का मकसद है, उसकी गवाही को स्वीकार करने से पहले भौतिक विवरण के संबंध में पुष्टि होनी चाहिए। (महत्व सन्निविष्ट)

23. **सतबीर सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2009)13 एस.सी.सी.790** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर-26 में निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

"26. अब यह कानून का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि केवल इसलिए कि गवाह स्वतंत्र नहीं हैं, अभियोजन पक्ष के मामले को खारिज करने का आधार नहीं हो सकता है। यदि अभियोजन पक्ष के मामले को गवाहों द्वारा समर्थित किया गया है और उनके बयानों को बदनाम करने के लिए कोई ठोस कारण नहीं दिखाया गया है, तो दोषसिद्धि का निर्णय निश्चित रूप से उस पर आधारित हो सकता है..... " (महत्व सन्निविष्ट)

24. **जयाबालन बनाम यूटी ऑफ पांडिचेरी, 2010 (68) ए.सी.सी. 308 (एस.सी.)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर-21 में निम्नानुसार अवधारित किया:

"21. हमारा सुविचारित विचार है कि ऐसे मामलों में जहां अदालत को हितबद्ध गवाहों के साक्ष्य से निपटने के लिए कहा जाता है, ऐसे गवाहों के साक्ष्य की मूल्यांकन करते समय न्यायालय का दृष्टिकोण पांडित्यपूर्ण नहीं होना चाहिए। अदालत को हितबद्ध गवाहों द्वारा दिए गए सबूतों की मूल्यांकन करने और स्वीकार करने में सतर्क रहना चाहिए, लेकिन अदालत को ऐसे सबूतों पर संदेह नहीं करना चाहिए। न्यायालय का प्राथमिक प्रयास निरंतरता की तलाश करना होना चाहिए। एक गवाह के सबूत को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है या केवल इसलिए बाहर नहीं फेंका जा सकता है क्योंकि यह एक ऐसे व्यक्ति के मुंह से आता है जो पीड़ित से निकटता से संबंधित है। (महत्व सन्निविष्ट)

25. **धरणीधर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**, **(2010)7 एस.सी.सी.759** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि ऐसा कोई कठोर और तेज़ नियम नहीं है कि परिवार के सदस्य कभी भी घटना के सच्चे गवाह नहीं हो सकते हैं और वे हमेशा न्यायालय के समक्ष झूठी गवाही देंगे। यह हमेशा किसी दिए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, प्रस्तर-12 और 13 जिसमें से निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"12. ऐसा कोई कठोर नियम नहीं है कि परिवार के सदस्य कभी भी घटना के सच्चे गवाह नहीं हो सकते हैं और वे हमेशा न्यायालय के समक्ष झूठी गवाही देंगे। यह हमेशा किसी दिए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। जयाबालन बनाम के मामले में। यूटी ऑफ पांडिचेरी [(2010)1 एस.सी.सी. 199], इस न्यायालय के पास इस बात पर विचार करने का अवसर था कि क्या हितबद्ध गवाहों के साक्ष्य पर भरोसा किया जा सकता है। न्यायालय ने यह विचार लिया कि हितबद्ध गवाह के साक्ष्य से निपटने के दौरान एक पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण लागू नहीं किया जा सकता है। इस तरह के सबूतों को केवल इसलिए नजरअंदाज नहीं किया जा

सकता है या बाहर नहीं फेंका जा सकता है क्योंकि यह पीड़ित से निकटता से संबंधित व्यक्ति से आता है। न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:

" 23. हमारा सुविचारित विचार है कि ऐसे मामलों में जहां अदालत को हितबद्ध गवाहों के साक्ष्य से निपटने के लिए कहा जाता है, ऐसे गवाहों के साक्ष्य की मूल्यांकन करते समय अदालत का दृष्टिकोण पांडित्यपूर्ण नहीं होना चाहिए। अदालत को हितबद्ध गवाहों द्वारा दिए गए सबूतों की मूल्यांकन करने और स्वीकार करने में सतर्क रहना चाहिए, लेकिन अदालत को ऐसे सबूतों पर संदेह नहीं करना चाहिए। न्यायालय का प्राथमिक प्रयास निरंतरता की तलाश करना होना चाहिए। एक गवाह के सबूत को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है या केवल इसलिए बाहर नहीं फेंका जा सकता है क्योंकि यह एक ऐसे व्यक्ति के मुंह से आता है जो पीड़ित से निकटता से संबंधित है।

.....

*13. इसी तरह का दृष्टिकोण इस न्यायालय द्वारा **राम भरोसे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [ए.आई.आर. 2010 एस.सी. 917]**, में लिया गया था जहां न्यायालय ने कानून के आदेश को कहा कि मृतक का एक करीबी रिश्तेदार, अपने आप में, एक हितबद्ध गवाह नहीं बनता है। एक हितबद्ध गवाह वह है जो प्रतिशोध या दुश्मनी के कारण या विवादों के कारण किसी व्यक्ति की सजा को सुरक्षित करने में रुचि रखता है और केवल उसी इरादे से न्यायालय के समक्ष गवाही देता है न कि न्याय के कारण को आगे बढ़ाने के लिए। एक हितबद्ध गवाह के साक्ष्य की मूल्यांकन से संबंधित कानून अच्छी तरह से तय है, जिसके अनुसार, एक हितबद्ध गवाह के बयान को तिरस्कार में नहीं डाला जा सकता है, लेकिन इसे स्वीकार करने से पहले सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए।*

14. उपरोक्त निर्णयों के आलोक में, यह स्पष्ट है कि अभियोजन पक्ष की कहानी के समर्थन में न्यायालय द्वारा कथित हितबद्ध गवाहों के बयानों पर सुरक्षित रूप से भरोसा किया जा सकता है। लेकिन यह सावधानी से किया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित करने के लिए कि आपराधिक न्याय के प्रशासन को उन व्यक्तियों द्वारा कमजोर नहीं किया जाता है, जो मृतक से निकटता से संबंधित हैं। जब उनके बयानों में अन्य गवाहों, विशेषज्ञ साक्ष्य और मामले की परिस्थितियां स्पष्ट रूप से अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करते हुए सबूतों की श्रृंखला के पूरा होने को दर्शाती हैं, तो हमें कोई कारण नहीं दिखता कि अदालत द्वारा तथाकथित 'हितबद्ध गवाहों' के बयान पर भरोसा क्यों नहीं किया जा सकता है। (महत्व सन्निविष्ट)

26. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **बबन शंकर डफल और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य**, **2025 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 137** में गवाह की गवाही के संबंध में दिए गए एक हालिया फैसले में, जिसे केवल पीड़ित के साथ संबंध के कारण खारिज नहीं किया जाना चाहिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर-27 और 28 में निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

"27. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता के तर्कों में से एक यह है कि घटना के सभी चश्मदीद गवाह मृतक से निकटता से संबंधित थे और विवेक के लिए अभियोजन पक्ष को किसी अन्य स्वतंत्र चश्मदीद गवाह से भी पूछताछ करनी चाहिए थी जो दुर्भाग्यपूर्ण घटना के समय मौजूद थे। विचारण न्यायालय ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया था, लेकिन उच्च न्यायालय ने इस तरह के दृष्टिकोण को सही ढंग से खारिज कर दिया है और कहा है कि केवल इसलिए कि कुछ और स्वतंत्र गवाह भी थे, जो घटनास्थल पर पहुंच गए थे, रिश्तेदारों के साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। कानून में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि हितबद्ध गवाह के साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज कर दिया जाना चाहिए। कानून केवल इस बात की गारंटी देता है कि उनके साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए। इस न्यायालय द्वारा निर्णयों के कैटिना में यह माना गया है कि केवल यदि कोई गवाह एक रिश्तेदार है, तो उसकी गवाही को केवल उस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है।

28. आपराधिक मामलों में, गवाहों की विश्वसनीयता, विशेष रूप से जो पीड़ित के करीबी रिश्तेदार हैं, की अक्सर जांच की जाती है। हालांकि, एक रिश्तेदार होने के नाते स्वचालित रूप से एक गवाह को "रुचि" या पक्षपाती नहीं बनाता है। शब्द "रुचि" उन गवाहों को संदर्भित करता है जिनकी परिणाम में व्यक्तिगत हिस्सेदारी होती है, जैसे बदला लेने की इच्छा या दुश्मनी या व्यक्तिगत लाभ के कारण आरोपी को झूठा फंसाना। दूसरी ओर, एक "संबंधित" गवाह वह होता है जो अपराध स्थल पर स्वाभाविक रूप से मौजूद हो सकता है, और उनकी गवाही को केवल पीड़ित के साथ उनके संबंध के कारण खारिज नहीं किया जाना चाहिए। अदालतों को अपने बयानों की विश्वसनीयता, स्थिरता और सुसंगतता का आकलन करना चाहिए, बजाय उन्हें अविश्वसनीय करार देने के।
(महत्व सन्निविष्ट)

27. **शाहजा @ शाहजान इस्माइल मोहम्मद बनाम महाराष्ट्र राज्य (2023)12 एस.सी.सी. 558** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए एक हालिया फैसले में कहा है कि चश्मदीद साक्ष्य की मूल्यांकन एक कठिन काम है और एक आपराधिक मामले में चश्मदीद साक्ष्य की मूल्यांकन के लिए न्यायिक रूप से विकसित सिद्धांतों को सारांशित किया गया है, प्रस्तर-29 और 30 जिसमें से निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"29. चश्मदीद साक्ष्य की मूल्यांकन एक कठिन काम है। चश्मदीद साक्ष्य की मूल्यांकन के लिए कोई निश्चित या सटीक सूत्र नहीं है। एक आपराधिक मामले में चश्मदीद साक्ष्य की मूल्यांकन के लिए न्यायिक रूप से विकसित सिद्धांतों को निम्नानुसार गिना जा सकता है:

29.1 एक गवाह के साक्ष्य की मूल्यांकन करते समय, दृष्टिकोण यह होना चाहिए कि क्या गवाह के साक्ष्य को समग्र रूप से पढ़ा गया है कि क्या सच्चाई का एक रमक प्रतीत होता है। एक बार जब वह धारणा बन जाती है, तो न्यायालय के लिए निस्संदेह यह आवश्यक है कि वह साक्ष्यों की अधिक विशेष रूप से साक्ष्यों में बताई गई कमियों, कमियों और कमजोरियों को ध्यान में रखते हुए सबूतों की जांच करे और यह पता लगाने के लिए उनका मूल्यांकन करे कि क्या यह गवाह द्वारा दिए गए साक्ष्य के सामान्य कार्यकाल के खिलाफ है और क्या साक्ष्य के पहले के मूल्यांकन को हिला दिया गया है ताकि यह विश्वास के योग्य न हो जाए।

29.2. यदि जिस न्यायालय के समक्ष गवाह गवाही देता है, उसे गवाह द्वारा दिए गए साक्ष्य के सामान्य कार्यकाल के बारे में राय बनाने का अवसर मिला है, तो अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य की मूल्यांकन के लिए उचित वजन देना होगा और जब तक कि कोई कारण वजनदार और दुर्जेय न हो, मामूली भिन्नता या दुर्बलताओं के आधार पर साक्ष्य को तुच्छ विवरण के मामले में अस्वीकार करना उचित नहीं होगा।

29.3 जब चश्मदीद गवाह से विस्तार से जांच की जाती है, तो उसके लिए कुछ विसंगतियां बनाना काफी संभव है। लेकिन अदालतों को यह ध्यान रखना चाहिए कि यह केवल तभी होता है जब किसी गवाह के साक्ष्य में विसंगतियां उसके पक्ष की विश्वसनीयता के साथ इतनी असंगत होती हैं कि अदालत उसके साक्ष्य को खारिज करने में उचित है।

29.4. मामले के मूल को नहीं छूने वाले तुच्छ मामलों पर मामूली विसंगतियां, साक्ष्य से यहां या वहां संदर्भ से बाहर फटे वाक्यों को लेकर हाइपर तकनीकी दृष्टिकोण, मामले की जड़ तक नहीं जाने वाले विवेचनाधिकारी द्वारा की गई कुछ तकनीकी त्रुटि को महत्व देना आमतौर पर साक्ष्य को अस्वीकार करने की अनुमति नहीं देगा।

29.5. किसी घटना के कथन में आने वाली भिन्नताओं पर अपनाया जाने वाला बहुत गंभीर दृष्टिकोण (या तो दो गवाहों के साक्ष्य के बीच या एक ही गवाह के दो बयानों के बीच) न्यायिक जांच के लिए एक अवास्तविक दृष्टिकोण है।

29.6. कुल मिलाकर एक गवाह एक फोटोग्राफिक स्मृति रखने और एक घटना के विवरण को याद करने के लिए उम्मीद नहीं की जा सकती है। ऐसा नहीं है कि मानसिक स्क्रीन पर वीडियो टेप को फिर से चलाया जाता है।

29.7. आमतौर पर ऐसा होता है कि एक गवाह घटनाओं से आगे निकल जाता है। गवाह उस घटना का अनुमान नहीं लगा सकता था जिसमें अक्सर आश्चर्य का तत्व होता है। इसलिए मानसिक संकायों से विवरणों को अवशोषित करने के लिए अभ्यस्त होने की उम्मीद नहीं की जा सकती है।

29.8. अवलोकन की शक्तियाँ हर व्यक्ति में भिन्न होती हैं। जो कोई नोटिस कर सकता है, दूसरा नहीं देख सकता है। एक वस्तु या आंदोलन एक व्यक्ति के दिमाग पर अपनी छवि बना सकता है जबकि यह दूसरे की ओर से किसी का ध्यान नहीं जा सकता है।

29.9. कुल मिलाकर लोग किसी वार्तालाप को सटीक रूप से याद नहीं कर सकते हैं और उनके द्वारा उपयोग किए गए या उनके द्वारा सुने गए शब्दों को पुन: प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं। वे केवल बातचीत के मुख्य उद्देश्य को याद कर सकते हैं। एक गवाह से मानव टेप रिकॉर्डर होने की उम्मीद करना अवास्तविक है।

अनुवादित

29.10. किसी घटना के सटीक समय या किसी घटना की समय अवधि के संबंध में, आमतौर पर, लोग पूछताछ के समय पल के प्रोत्साहन पर अनुमान लगाकर अपना अनुमान लगाते हैं। और कोई भी लोगों से ऐसे मामलों में बहुत सटीक या विश्वसनीय अनुमान लगाने की उम्मीद नहीं कर सकता है। फिर, यह व्यक्तियों की समय-भावना पर निर्भर करता है जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न होता है।

29.11. आमतौर पर एक गवाह से यह उम्मीद नहीं की जा सकती है कि वह तेजी से उत्तराधिकार में या कम समय अवधि में होने वाली घटनाओं के अनुक्रम को सटीक रूप से याद करे। एक गवाह भ्रमित होने के लिए उत्तरदायी है, या बाद में पूछताछ करने पर मिश्रित हो जाता है।

29.12. एक गवाह, हालांकि पूरी तरह से सच्चा है, अदालत के माहौल और अधिवक्ता द्वारा भेदी जिरह से अभिभूत होने और घबराहट से तथ्यों को मिलाने, घटनाओं के अनुक्रम के बारे में भ्रमित होने, या पल की प्रेरणा पर कल्पना से विवरण भरने के लिए उत्तरदायी है। गवाह का अवचेतन मन कभी-कभी मूर्ख दिखने या अविश्वास किए जाने के डर के कारण ऐसा होता है, हालांकि गवाह उसके द्वारा देखी गई घटना का सच्चा और ईमानदार विवरण दे रहा होता है।

*29.13. एक पूर्व कथन हालांकि साक्ष्य के साथ असंगत प्रतीत होता है, जरूरी नहीं कि विरोधाभास के लिए पर्याप्त हो। जब तक कि पूर्व कथन में बाद के कथन को बदनाम करने की शक्ति न हो, भले ही बाद का कथन कुछ हद तक पूर्व के साथ भिन्न हो, यह उस गवाह का खंडन करने में सहायक नहीं होगा। [**देखें भरवाड़ा भोगिनभाई हिरजीभाई बनाम गुजरात राज्य, 1983 क्रि एलजे 1096: ए.आई.आर. 1983 एस.सी. 753, लीला राम बनाम हरियाणा राज्य, ए.आई.आर. 1999 एस.सी. 3717, और तहसीलदार सिंह बनाम यूपी राज्य, ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 1012**]*

30. सीधे शब्दों में कहें तो, चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य के मूल्य का आकलन करने में, दो प्रमुख विचार यह हैं कि क्या मामले की परिस्थितियों में, घटनास्थल पर या ऐसी स्थितियों में उनकी उपस्थिति पर विश्वास करना संभव है जिससे उनके लिए उनके द्वारा गवाही दिए गए तथ्यों को देखना संभव हो और दूसरे, क्या उनके साक्ष्य में कुछ भी स्वाभाविक रूप से असंभव या अविश्वसनीय है। इन दोनों विचारों के संबंध में, परिस्थितियां या तो उन गवाहों से स्वयं प्राप्त की गई हैं या अन्य सबूतों द्वारा स्थापित की गई हैं जो उनकी उपस्थिति को अप्रमाणित करने या उनके बयानों की सत्यता को बदनाम करने के लिए हैं, उनका उस मूल्य पर असर पड़ेगा जो एक न्यायालय उनके साक्ष्य से जुड़ा होगा। यद्यपि ऐसे मामलों में जहां अभियुक्त की दलील केवल इनकार है, फिर भी अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य की जांच अपने गुण-दोष के आधार पर की जानी चाहिए, जहां अभियुक्त एक निश्चित दलील उठाता है या एक सकारात्मक मामला सामने रखता है जो अभियोजन पक्ष के साथ असंगत है, मूल्य का आकलन करते समय ऐसी दलील या मामले की प्रकृति और इसके संबंध में अभियोजन पक्ष के साक्ष्य का संभावनाओं को भी ध्यान में रखना होगा। (महत्व सन्निविष्ट)

28. **पहलवान सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2020(6) एएलजे 166** का प्रस्तर-48 को नीचे उद्धृत किया गया है:

"48. इस प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, अब यह कानून की एक स्थापित स्थिति है कि अभियोजन की कहानी के समर्थन में न्यायालय द्वारा हितबद्ध गवाहों के बयानों पर सुरक्षित रूप से भरोसा किया जा सकता है। लेकिन यह सावधानी से किया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि आपराधिक न्याय के प्रशासन को उन व्यक्तियों द्वारा कमजोर न किया जाए जो मृतक से निकटता से संबंधित हैं। जब उनके बयानों में अन्य साक्ष्यों, विशेषज्ञ साक्ष्यों और मामले की परिस्थितियों द्वारा पुष्टि की जाती है, तो अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करते हुए साक्ष्य की श्रृंखला के पूरा होने का स्पष्ट रूप से चित्रण किया जाता है, तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि न्यायालय द्वारा तथाकथित 'हितबद्ध गवाहों' के बयान पर भरोसा क्यों नहीं किया जा सकता है। यह विश्वास करना कठिन होगा कि करीबी रिश्तेदार असली अपराधी को छोड़ देंगे और निर्दोष व्यक्तियों को झूठा फंसा देंगे क्योंकि उनकी आरोपी व्यक्तियों के साथ दुश्मनी है। (महत्व सन्निविष्ट)

29. जहां तक घायल गवाह की गवाही का संबंध है, **कप्तान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2020(1) एडीजे 106 (डीबी)** में इस न्यायालय ने प्रस्तर-20 में निम्नानुसार अवलोकन किया है:

"20. सबूतों की बारीकी से जांच से पता चलता है कि (अ०सा०-1) विमला देवी और (अ०सा०-2) राम सिंगार पांडे के बयान स्पष्ट, ठोस और विश्वसनीय हैं। उनसे जिरह की गई है, लेकिन वे अभियोजन पक्ष के संस्करण पर कायम रहे और ऐसा कोई तथ्य, विरोधाभास या असंगति सामने नहीं आ सकी, जिससे उनकी गवाही के बारे में कोई संदेह पैदा हो सके। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि घटना के बाद, मृतकों के साथ-साथ घायलों को भी अस्पताल ले जाया गया और उन्हें वहां भर्ती कराया गया और उसी रात मृतक राम निवास राव की मृत्यु हो गई, यह स्पष्ट है कि घटना की प्रथम सूचना रिपोर्ट बिना किसी अनुचित देरी के दर्ज की गई थी। (अ०सा०-1) विमला देवी के संस्करण में (अ०सा०-2) राम सिंगार पांडे की गवाही से पुष्टि की गई है और यह पूरी तरह से चिकित्सा साक्ष्य के अनुरूप है। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि (अ०सा०-2) राम सिंगार पांडे को खुद उसी घटना में चोटें आई हैं। जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2009)9 एससीसी 719, उच्चतम न्यायालय ने एक घायल अभियुक्त की गवाही को दिए गए विशेष साक्ष्य के दर्जे को दोहराया। तथ्य यह है कि गवाह को घटना के समय और स्थान पर चोटें आईं, उसकी गवाही को समर्थन देता है कि वह घटना के दौरान मौजूद था। यदि घायल गवाह से लंबी जिरह की जाती है और उसकी गवाही को खारिज करने के लिए कुछ भी नहीं कहा जा सकता है, तो उस पर भरोसा किया जाना चाहिए। इसी तरह का विचार कृष्ण बनाम कृष्ण के मामले में व्यक्त किया गया था। हरियाणा राज्य, (2006) 12 एस.सी.सी. 459। माननीय सर्वोच्च न्यायालय आपराधिक अपील संख्या-513-514 वर्ष 2014 में बालेश्वर महतो और अन्य बनाम बिहार राज्य और एक अन्य ने 9.1.2017 को निर्णय लिया है, ने निम्नानुसार कानून को दोहराया है:

असत्यापित

"28. एक गवाह के साक्ष्य के साथ संलग्न किए जाने वाले वजन के प्रश्न पर इस न्यायालय द्वारा व्यापक रूप से चर्चा की गई है। जहां घटना का एक गवाह स्वयं घटना में घायल हो गया है, ऐसे गवाह की गवाही को आम तौर पर बहुत विश्वसनीय माना जाता है, क्योंकि वह एक गवाह है जो अपराध स्थल पर उसकी उपस्थिति की अंतर्निहित गारंटी के साथ आता है और किसी को झूठा फंसाने के लिए अपने वास्तविक हमलावर (हमलावरों) को बख्शने की संभावना नहीं है।

*"एक घायल गवाह को बदनाम करने के लिए ठोस सबूत की आवश्यकता होती है। [**रामलगन सिंह बनाम बिहार राज्य [(1973) 3 एस.सी.सी. 881:1973 एस.सी.सी. (क्रि) 563: ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 2593], मलखान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1975) 3 एस.सी.सी. 311: 1974 एस.सी.सी. (क्रि) 919 : ए.आई.आर. 1975 एस.सी. 12], माछी सिंह बनाम पंजाब राज्य [(1983) 3 एस.सी.सी. 470: 1983 एस.सी.सी. (क्रि) 681], अप्पाभाई बनाम गुजरात राज्य [1988 पूरक एस.सी.सी. 241 : 1988 एस.सी.सी. (क्रि) 559: ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 696], बोंक्या बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1995) 6 एस.सी.सी. 447: 1995 एस.सी.सी. (क्रि) 1113], भाग सिंह [(1997) 7 एस.सी.सी. 712: 1997 एस.सी.सी. (क्रि) 1163], मोहर बनाम मोहर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2002) 7 एस.सी.सी. 606: 2003 एस.सी.सी. (क्रि) 121] (एस.सी.सी. पी. 606बी-सी), दिनेश कुमार बनाम राजस्थान राज्य [(2008) 8 एस.सी.सी. 270: (2008) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 472], विष्णु बनाम राजस्थान राज्य [(2008) 8 एस.सी.सी. 270 : (2008) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 472]। राजस्थान राज्य [(2009) 10 एस.सी.सी. 477 (2010) 1 एस.सी.सी. (क्रि) 302], अन्नारेड्डी संबाशिवा रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य [(2009) 12 एस.सी.सी. 546: (2010) 1 एस.सी.सी. (क्रि) 630] और बलराजे बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2010) 6 एस.सी.सी. 673 : (2010) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 211] 29. इस मुद्दे पर निर्णय लेते समय, जरनैल सिंह बनाम जरनैल सिंह के मामले में भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया गया था। **पंजाब राज्य [(2009) 9 एस.सी.सी. 719: (2010) 1 एस.सी.सी. (क्रि) 107]**, जहां इस न्यायालय ने एक घायल अभियुक्त की गवाही को दिए गए विशेष साक्ष्य के दर्जे को दोहराया और अपने पहले के निर्णयों पर भरोसा किया: (एस.सी.सी. पीपी 726-27, प्रस्तर-28-29)*

"28. दर्शन सिंह (अ०सा०-4) एक घायल गवाह था। डॉक्टर ने उसकी जांच की थी। उनकी गवाही को हल्के में दरकिनार नहीं किया जा सकता था। उन्होंने घटना की पूरी जानकारी दी थी क्योंकि वह उस समय मौजूद थे जब हमलावर ट्यूबवेल पर पहुंचे थे। शिवलिंगप्पा कल्लायनप्पा बनाम कर्नाटक राज्य [1994 पूरक (3) एस.सी.सी. 235: 1994 एस.सी.सी. (क्रि) 1694] इस न्यायालय ने माना है कि घायल गवाह के बयान पर तब तक भरोसा किया जाना चाहिए जब तक कि प्रमुख विरोधाभासों और विसंगतियों के आधार पर उसके साक्ष्य को अस्वीकार करने के लिए मजबूत आधार न हों, इस कारण से कि घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति स्थापित हो जाती है यदि यह साबित हो जाता है कि उसे उक्त घटना के दौरान चोट लगी थी।

***उत्तर प्रदेश राज्य बनाम किशन चंद [(2004) 7 एस.सी.सी. 629: 2004 एस.सी.सी. (क्रि) 2021]** में इसी तरह के दृष्टिकोण को दोहराया गया है, यह देखते हुए कि एक मुहर लगे गवाह की गवाही की अपनी प्रासंगिकता*

*और प्रभावकारिता है। तथ्य यह है कि गवाह को घटना के समय और स्थान पर चोटें आईं, उसकी गवाही को समर्थन देता है कि वह घटना के दौरान मौजूद था। यदि घायल गवाह से लंबी जिरह की जाती है और उसकी गवाही को खारिज करने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता है, तो उस पर भरोसा किया जाना चाहिए (**कृष्ण बनाम हरियाणा राज्य [(2006) 12 एस.सी.सी. 459: (2007) 2 एस.सी.सी. (क्रि) 214]**) इस प्रकार, हमारी सुविचारित राय है कि दर्शन सिंह (अ०सा०-4) के साक्ष्य पर निचली अदालतों द्वारा सही ढंग से भरोसा किया गया है।*

30. इस बिंदु पर कानून को इस आशय से संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है कि घायल गवाह की गवाही को कानून में एक विशेष दर्जा दिया जाता है। यह इस तथ्य के परिणामस्वरूप है कि गवाह को चोट लगना अपराध स्थल पर उसकी उपस्थिति की एक अंतर्निहित गारंटी है और क्योंकि गवाह अपने वास्तविक हमलावर को केवल अपराध के कमीशन के लिए किसी तीसरे पक्ष को झूठा फंसाने के लिए बिना सजा दिए नहीं जाने देना चाहेगा। इस प्रकार, घायल गवाह के बयान पर तब तक भरोसा किया जाना चाहिए जब तक कि उसमें प्रमुख विरोधाभासों और विसंगतियों के आधार पर उसके साक्ष्य को अस्वीकार करने के लिए मजबूत आधार न हों। इस निर्णय में, चिकित्सा साक्ष्य और चश्मदीद साक्ष्य के बीच संबंध पर भी चर्चा की गई थी, जो पहले के उदाहरणों की संख्या के आधार पर निम्नानुसार है:

*"33. **हरियाणा राज्य बनाम हरियाणा राज्य में भागीरथ [(1999) 5 एस.सी.सी. 96: 1999 एस.सी.सी. (क्रि) 658]** यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था: (एस.सी.सी. पी. 101, प्रस्तर-15)*

"15. एक चिकित्सा गवाह द्वारा दी गई राय इस विषय पर अंतिम शब्द नहीं होनी चाहिए। इस तरह की राय का परीक्षण न्यायालय द्वारा किया जाएगा। यदि राय तर्क या निष्पक्षता से रहित है, तो न्यायालय उस राय पर चलने के लिए बाध्य नहीं है। आखिरकार, राय वह है जो किसी तथ्य की स्थिति के बारे में किसी व्यक्ति के दिमाग में बनता है। यदि एक डॉक्टर एक राय बनाता है और दूसरा डॉक्टर समान तथ्यों पर एक अलग राय बनाता है, तो न्यायाधीश के लिए उस दृष्टिकोण को अपनाने के लिए खुला है जो अधिक वस्तुनिष्ठ या संभावित है। इसी तरह, यदि एक डॉक्टर द्वारा दी गई राय संभावना के अनुरूप नहीं है, तो न्यायालय का उस राय पर जाने का कोई दायित्व नहीं है, क्योंकि यह डॉक्टर द्वारा कहा गया है। बेशक, उन व्यक्तियों द्वारा दी गई राय को उचित महत्व दिया जाना चाहिए जो विशेष विषय के विशेषज्ञ हैं।

***शिवलिंगप्पा कल्लायनप्पा बनाम कर्नाटक राज्य, 1994 पूरक (3) एस.सी.सी. 235: 1994 एस.सी.सी. (क्रि) 1694**, न्यायालय ने माना है कि घायल गवाह के बयान पर तब तक भरोसा किया जाना चाहिए जब तक कि प्रमुख विरोधाभासों और विसंगतियों के आधार पर उसके साक्ष्य को अस्वीकार करने के लिए मजबूत आधार न हों, इस कारण से कि घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति स्थापित होती है यदि यह साबित हो जाता है कि उसे उक्त घटना के दौरान चोट लगी थी।*

यह माना गया है कि इस बिंदु पर कानून को इस आशय का संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है कि घायल गवाह की गवाही को कानून में एक विशेष दर्जा दिया जाता है। यह इस तथ्य के परिणामस्वरूप है कि गवाह को चोट लगना अपराध स्थल पर उसकी उपस्थिति की एक अंतर्निहित गारंटी है और क्योंकि गवाह अपने वास्तविक हमलावर को केवल अपराध के कमीशन के लिए किसी तीसरे पक्ष को झूठा फंसाने के लिए बिना सजा दिए नहीं जाने देना चाहेगा। इस प्रकार, घायल गवाह के बयान पर तब तक भरोसा किया जाना चाहिए जब तक कि उसमें प्रमुख विरोधाभासों और विसंगतियों के आधार पर उसके साक्ष्य को अस्वीकार करने के लिए मजबूत आधार न हों। (महत्व सन्निविष्ट)

30. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **नीरज शर्मा बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2024)3 एस.सी.सी. 125** में आपराधिक मुकदमे में घायल गवाह के महत्व के संबंध में दिए गए हालिया फैसले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर-22 और 23 में निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

"22. एक आपराधिक मुकदमे में घायल गवाह के महत्व को कम करके नहीं कहा जा सकता है। जब तक इस तरह के गवाह पर संदेह करने के लिए बचाव पक्ष द्वारा बाध्यकारी परिस्थितियां या सबूत नहीं दिए जाते हैं, तब तक इसे आपराधिक मुकदमे में एक अत्यंत मूल्यवान सबूत के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

*23. **बालू सुदाम खाल्डे बनाम महाराष्ट्र राज्य 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 355** के मामले में इस न्यायालय ने उन सिद्धांतों को सारांशित किया जिन्हें घायल चश्मदीद गवाह के साक्ष्य की मूल्यांकन करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए। इस अदालत ने इस प्रकार कहा:*

"26. जब एक घायल चश्मदीद गवाह के साक्ष्य की मूल्यांकन की जानी है, तो न्यायालयों द्वारा प्रतिपादित कम नोट किए गए कानूनी सिद्धांतों को ध्यान में रखना आवश्यक है:

(ए) घटना के समय और स्थान पर एक घायल चश्मदीद गवाह की उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है जब तक कि उसके बयान में भौतिक विरोधाभास न हों।

(बी) जब तक, यह अन्यथा साक्ष्य द्वारा स्थापित नहीं किया जाता है, तब तक यह विश्वास किया जाना चाहिए कि एक घायल गवाह वास्तविक दोषियों को भागने और अभियुक्त को झूठा फंसाने की अनुमति नहीं देगा।

(ग) घायल गवाह के साक्ष्य का अधिक साक्ष्य मूल्य होता है और जब तक बाध्यकारी कारण मौजूद न हों, उनके बयानों को हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए।

(घ) घायल गवाह के साक्ष्य पर प्राकृतिक आचरण में कुछ अलंकरण या मामूली विरोधाभासों के कारण संदेह नहीं किया जा सकता है।

(ई) यदि किसी घायल गवाह के साक्ष्य में कोई अतिशयोक्ति या सारहीन अलंकरण है, तो इस तरह के विरोधाभास, अतिशयोक्ति या अलंकरण को घायल के साक्ष्य से खारिज कर दिया जाना चाहिए, लेकिन पूरे साक्ष्य को नहीं।

(च) अभियोजन पक्ष के संस्करण के व्यापक आधार को ध्यान में रखा जाना चाहिए और समय बीतने के साथ स्मृति के नुकसान के कारण सामान्य रूप से उत्पन्न होने वाली विसंगतियों को छोड़ दिया जाना चाहिए।
(महत्व सन्निविष्ट)

31. हमने प्रस्तुतियों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और गवाहों के बयान को ध्यान से देखा है।

32. अ०सा०-1 डॉ. वी.पी. अग्रवाल वह डॉक्टर हैं जिन्होंने राम सिंह, दल चंद, ब्रह्मजीत और चमनलाल को लगी चोट की मेडिकल जांच की है, जिनके बारे में कहा गया था कि वे लड़ाई के समय चबूतरा पर मौजूद थे। अ०सा०-2-ब्रह्मजीत, अ०सा०-3-राम सिंह और अ०सा०-4-दल चंद सभी घायल चश्मदीद गवाह हैं और उनकी चोटों को अ०सा०-1-डॉ. वी.पी. अग्रवाल द्वारा विधिवत सत्यापित किया गया है। उनकी चोट की रिपोर्ट के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि शरीर के ऊपरी हिस्से पर चोटें प्रकृति में सरल हो सकती हैं और अ०सा०-1 के अनुसार 28.10.1981 को लगभग 8.00 बजे लाठी के कारण हो सकती है, इसलिए, इन परिस्थितियों में उनकी उपस्थिति बिल्कुल भी संदेह में नहीं है। यह भी देखा जा सकता है कि बचाव पक्ष के कई व्यक्ति वहां आए थे जहां ऐसी घटना हुई थी जहां उन्हें निजी बचाव के अभ्यास में चोटें आई थीं और हरफूल, आरोपियों में से एक ने स्वीकार किया था कि वह क्रॉस मामले की प्रथम सूचना रिपोर्ट नाथू के पास दर्ज कराने गया था।

33. अभियोजन पक्ष के गवाहों, जो सभी घायल चश्मदीद गवाह थे, द्वारा अपनाया गया सुसंगत रुख यह है; आरोपी पक्ष से पहले 18 व्यक्ति सूचनाकर्ता के चबूतरा में आए हैं जहां सूचनाकर्ता-ब्रह्मजीत, फगना, राम सिंह, दल चंद और चमनलाल बैठे थे; सभी आरोपियों ने लाठी-डंडा से उन्हें पीटना शुरू कर दिया। मृतक-फगना ने भी अपने बचाव में लाठी चलाई, लेकिन उसे आरोपियों ने घेर लिया और नाथू के घर की ओर घसीटा और एक कूमल (चोरी करने के लिए घर में अंधविश्वास से बनाया गया) बनाया; अभियोजन पक्ष के सभी घायल गवाह, अर्थात् अ०सा०-2-ब्रह्मजीत, अ०सा०-3-दल चंद, अ०सा०-4 राम सिंह भी अपनी जिरह में भी बरकरार हैं। इसलिए, विशिष्ट मामला यह है कि फगना को चबूतरा में पीटा गया और नाथू के घर की ओर घसीटा गया। नक़्शा नज़री में स्पष्ट रूप से तीर से पता चलता है कि चबूतरा से नाथू के घर तक और 90 सीढ़ियों को चिह्नित किया गया था जहां उन्हें घसीटा गया था।

34. अ०सा०-2-ब्रह्मजीत ने स्पष्ट रूप से कहा था कि जब वे थाना को घटना की रिपोर्ट करने गए थे तो आरोपी पक्ष पहले से ही वहां मौजूद था और उस समय उनकी रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी। उसकी जिरह में अ०सा०-2-ब्रह्मजीत को इस आशय का सुझाव दिया गया था कि वे फगना को जबरन ले जाने के लिए नाथू के घर गए हैं। इस सुझाव को स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया गया और इनकार के साथ यह कहा गया कि दलचंद ने उन्हें

सूचित किया था कि फगना को उनके द्वारा मारा गया था और वे सबूत बनाने के लिए बर्तन फैला रहे हैं। चबूतरा पर प्रकाश के स्रोत के संबंध में यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि एक मोमबत्ती की रोशनी थी और वह आरोपी व्यक्तियों को आसानी से पहचान सकता था। यह विवाद में नहीं है कि दोनों पक्ष एक-दूसरे के लिए बहुत अच्छी तरह से जाने जाते हैं और इसलिए, उनमें से प्रत्येक एक-दूसरे को आसानी से पहचान सकता था, भले ही प्रकाश का स्रोत इतना मजबूत न हो।

35. अपनी जिरह में अ०सा०-3-दल चंद ने केवल इस हद तक स्वीकार किया था कि जब आरोपी व्यक्तियों ने फगना को नाथू के घर तक खींच लिया है, तो वे उसे मुक्त करने के लिए एक उद्देश्य के साथ उनके पीछे चले गए हैं, हालांकि, इससे पहले आरोपी व्यक्तियों ने पहले ही कूमल को गढ़ा है और इसे देखने के बाद वे वापस आ गए।

36. अ०सा०-4-राम सिंह ने अपनी जिरह में उसी तथ्यों का वर्णन करते हुए बताया है कि किस तरह से फगना को चबूतरा से नाथू के घर ले जाया गया था। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि फगना के पैर पकड़कर उन्होंने उसे घसीटा है; दूरी लगभग 90 कदम है; उक्त घसीटने के कारण उसे चोटें आईं।

37. अ०सा०-5-डॉ. एल.एम. पारिख ने शव परीक्षण रिपोर्ट को साबित कर दिया है; मृतक के शरीर पर 16 से अधिक मृत्यु पूर्व थे; डॉक्टर की राय में चोट संख्या-3, 4, 5 और 9 बल्लम के कारण हो सकती है और उन्होंने आगे कहा है कि चोट संख्या-10 और 13 घसीटने के कारण हो सकती है।

38. अ०सा०-6-सब इंस्पेक्टर, दया राम शर्मा ने पंचायतनामा और उनके द्वारा तैयार की गई नक़्शा नज़री और खून आलूदा मिट्टी और सादी मिट्टी के संग्रह को साबित किया है। अदालत के समक्ष अपने बयान में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि उन्हें कूमल (चोरी करने के लिए छेद बनाने) को प्रभावित करने के लिए लोहे से बना कोई उपकरण नहीं मिला। उन्होंने यह भी कहा था कि कूमल जो प्रभावित हुआ था वह काफी बड़ा था और एक व्यक्ति आसानी से वहां से गुजर सकता है। उन्होंने यह भी कहा था कि कूमल को ईंटों की दीवार में लगाया गया था, इसलिए, इस आशय का उनका बयान महत्वपूर्ण हो जाता है कि कूमल को अंजाम देने के लिए कोई उपकरण मौके पर नहीं मिला था, क्योंकि कूमल को बिना किसी नुकीली लोहे की छड़ या उपकरण के नहीं बनाया जा सकता था।

39. अ०सा०-7-हेड कांस्टेबल अनोखे लाल ने वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट की चिक रिपोर्ट को साबित कर दिया है जो रोज़नामचा संख्या-10 में 2.45 बजे दर्ज की गई थी। नाथू ने देर रात 2.00 बजे प्राथमिकी दर्ज कराई थी।

40. धारा 313 भ०द०वि० के तहत दर्ज बयान में आरोपी अत्तर सिंह ने प्रश्न संख्या-7 के जवाब में कहा है कि फगना ने चोरी की है; ग्रामीण मौके पर जमा हो गए हैं जिन्होंने उन्हें घायल कर दिया और ग्रामीणों द्वारा घायल होने के कारण उनकी मौत हो गई।

41. हमने नक़्शा नज़री को भी ध्यान से देखा है। नक़्शा नज़री से स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि चबूतरा जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार लड़ाई की घटना हुई थी, नाथू के घर से लगभग 90 कदम की दूरी पर है, जहां मृतक फगना का शव मिला था। यह भी विवाद में नहीं है कि दो प्रथम सूचना रिपोर्टों से यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि घटना वास्तव में हुई थी और दोनों पक्षों को चोटें आई हैं। यह भी विवाद में नहीं है कि मृतक फगना का शव कूमल के पास कमरे के अंदर पाया गया था, जबकि जिन बर्तनों को कथित तौर पर कूमल बनाकर ले जाया जा रहा था, उन्हें दिखाया गया था और खेत में दीवार के बाहर पाया गया था। बेशक, कूमल को प्रभावित करने का कोई उपकरण मौके पर नहीं मिला था और कभी बरामद नहीं किया गया था। घटनास्थल यानी मृतक फगना के घर की चबूतरा से खून आलूदा मिट्टी बरामद की गई। घटनास्थल पर इस आशय की चुनौती उठाई जा रही है कि यदि मिट्टी दो स्थानों से एकत्र की जाती है तो वह अलग-अलग होनी चाहिए और इसलिए, घटना का स्थान साबित नहीं होता है। फगना के चबूतरा से खून आलूदा मिट्टी और सादी मिट्टी का संग्रह औपचारिक गवाहों द्वारा विधिवत साबित किया गया था। मृतक का शव नाथू के घर के अंदर मिला था, इसलिए घटनास्थल पर भी सवाल नहीं उठता और उस स्थान से मिट्टी भी बरामद की गई थी। जबकि इस संबंध में औपचारिक गवाह बरकरार रहते हैं और इस आशय की मामूली विसंगति कि मिट्टी का मिलान नहीं हो रहा था, प्रत्यक्ष गवाहों के मामले में कोई परिणाम नहीं है। जहां तक यह तर्क है कि 90 सीढ़ियों के रास्ते से खून आलूदा मिट्टी एकत्र नहीं की गई थी, इसलिए, मृतक को चबूतरा से नाथू के घर तक घसीटना साबित नहीं हुआ है और इससे पूरे अभियोजन पक्ष के संस्करण पर संदेह पैदा होता है, इसे दोषपूर्ण जांच का एक हिस्सा कहा जा सकता है, जो 3 घायल गवाहों के चश्मदीद साक्ष्य के मामले में कोई परिणाम नहीं है। इसके अलावा, 90 सीढ़ियों का मार्ग जनता द्वारा उपयोग किया जाता है और जब घटना रात में 8.00 बजे हुई थी, तो निर्विवाद रूप से किसी भी मामले में अभियुक्त की ओर से कम से कम 18 व्यक्तियों और सूचनाकर्ता की ओर से कई व्यक्तियों के मार्ग पर एक बड़ा आंदोलन हुआ होगा। इसके अलावा, एक सामान्य मार्ग होने के नाते जनता द्वारा भी इसका उपयोग किया गया होगा, विशेष रूप से इस घटना के कारण एक आम ग्रामीणों को जाने और देखने की चिंता है कि क्या हो रहा है, इसलिए, कच्चा-मार्ग पर खून के धब्बे धूमिल हो गए होंगे और दिखाई नहीं दे रहे होंगे। इसलिए, यह अपने आप में तीन घायल गवाहों के चश्मदीद साक्ष्य को खारिज करने के लिए पर्याप्त है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अभियोजन पक्ष के गवाह संबंधित गवाह हैं, हालांकि, चूंकि मृतक के चबूतरा पर हुई घटना के रूप में, उनके बेटे और अन्य संबंधित व्यक्तियों की उपस्थिति काफी स्वाभाविक है, वह भी रात लगभग 8.00 बजे सूर्यास्त के बाद और इस तथ्य के साथ कि वे घायल गवाह थे और उनमें से प्रत्येक को शरीर के ऊपरी हिस्से के साथ-साथ निर्णयों के आलोक में भी चोटें आई हैं ऊपर उल्लेख किया गया है कि घटना के उनके चश्मदीद गवाहों के बयान पर संदेह नहीं किया जा सकता .

42. अ०सा०-5 डॉ. एल.एम. पारिख, जिन्होंने शव परीक्षण किया था, ने कहा है कि चोटें संख्या-10 और 13 घसीटने के कारण हो सकती हैं। लाठी के उपयोग के अलावा बल्लम का उपयोग भी साबित होता है क्योंकि उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि चोट संख्या-3, 4, 5 और 9 बल्लम के कारण हो सकती है।

43. यह अभियोजन पक्ष का आरोप है कि पहली घटना मृतक फगना के चबूतरा में हुई थी, उसके बाद, मृतक को 18 अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा नाथू के घर की ओर खींच लिया गया था। सूचनाकर्ता की ओर से चार लोगों को चोटें आई हैं और जब सूचनाकर्ता थाना में प्राथमिकी दर्ज कराने गया, जो लगभग 7 किमी दूर है, तो खचेरू का बेटा नाथू पहले से ही वहां बैठा था। प्राथमिकी में आरोप लगाया गया है कि मृतक फगना को घसीटकर नाथू के घर ले जाने के बाद आरोपी व्यक्ति कूमल बना रहे थे और इसलिए यह स्पष्ट है कि वे अपने पक्ष में सबूत बना रहे थे और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए पहले थाने में मौजूद थे, इसलिए सूचना दर्ज नहीं की जा सकी। यह भी अभिलेखों में है कि आरोपी पक्ष द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने पर विवेचनाधिकारी/पुलिस अधिकारी तुरंत उस स्थान के लिए रवाना हो गए और काफी देर तक मौके पर मौजूद रहे। अ०सा०-6-सब इंस्पेक्टर-दयाराम शर्मा के बयान से पता चलता है कि रात 2.00 बजे दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट के आधार पर, वह पहले ही खचेरू के बेटे नाथू द्वारा दर्ज रिपोर्ट के आधार पर विवेचना के लिए घटनास्थल पर जा चुका था और अ०सा०-2-ब्रह्मजीत ने यह भी कहा है कि जब वह प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने गया था तो नाथू पहले से ही थाना में बैठा था। इसलिए, यह स्पष्ट है कि वह थाना पहुंच गया था, लेकिन पुलिस ने उसकी रिपोर्ट दर्ज नहीं की और इसलिए, यह साबित नहीं हुआ है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट समय से पहले थी।

44. जहां तक मृतक फगना के चबूतरा पर प्रकाश के स्रोत का संबंध है, अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि एक मोमबत्ती की रोशनी थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट में प्रकाश के स्रोत का लोप अपने आप में अभियोजन के मामले में महत्वपूर्ण विसंगति नहीं है क्योंकि प्रथम सूचना रिपोर्ट एक विश्वकोश नहीं है और एक बार जब 18 व्यक्तियों ने हमला किया है और कई लोग घायल हो गए हैं और एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रकाश का अभाव था और मंद प्रकाश पर्याप्त है क्योंकि एक ही गांव के निवासी और ज्ञात सभी व्यक्ति थे एक-दूसरे को और एक-दूसरे को आसानी से पहचान सकते थे।

45. जहां तक मकसद/आशय का संबंध है, हालांकि अभियोजन पक्ष के मामले में मकसद स्पष्ट रूप से आरोप लगाया गया है, हालांकि, मकसद प्रत्यक्ष चश्मदीद साक्ष्य के मामले में बैकस्टेज ले जाता है और प्रस्तुत मामले में तीन घायल गवाह हैं जिनकी मौके पर उपस्थिति स्वाभाविक है और वे परिवार के सदस्य हैं।

46. जहां तक यह तर्क है कि तथ्यों के एक ही संकलन पर चार व्यक्तियों को बरी कर दिया गया है, इस उद्देश्य के लिए, हम विचारण न्यायालय के फैसले को पढ़ चुके हैं और प्रस्तर-21 में हम पाते हैं कि आरोपी जौहरी और फूल सिंह की उम्र क्रमशः लगभग 80 वर्ष और 75 वर्ष थी जबकि आरोपी धर्मपाल और जय सिंह की आयु घटना के समय लगभग 14 वर्ष थी। धारा 313 भ०द०वि० के तहत अपना बयान दर्ज करने के समय जौहरी की आयु लगभग 90 वर्ष थी, जय सिंह और धर्मपाल की आयु लगभग 16 वर्ष थी जब उनके बयान दर्ज

किए गए थे, विचारण न्यायालय ने स्पष्ट रूप से इस तर्क को ध्यान में रखा है कि सभी चार व्यक्ति उनकी वृद्धावस्था और कम उम्र इस तरह के अपराध को करने में असमर्थ थे और उन्हें उनकी उम्र के आधार पर केवल संदेह का लाभ दिया जाता है और इसके लिए विचारण न्यायालय ने अभिलेखों पर किसी अन्य तथ्य पर विचार नहीं किया है और उन्हें बरी किया जाना विशुद्ध रूप से उनकी वृद्धावस्था और कम उम्र के आधार पर है। इस उद्देश्य के लिए, विचारण न्यायालय ने कहा है कि यूनो, फाल्सस इन ओम्निबस का सिद्धांत भारत में लागू नहीं होता है और इसलिए, उन्हें संदेह का लाभ दिया गया था।

47. मामले के इस दृष्टिकोण में, अपीलकर्ताओं के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया निर्णय केवल माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून से संबंधित है कि साक्ष्य पर कैसे विचार किया जाना है और उनका अवलोकन कैसे किया जाना है। निर्धारित कानून के साथ कोई झगड़ा नहीं है, हालांकि, हम पाते हैं कि वास्तव में अपीलकर्ताओं के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया बालाका सिंह (उपरोक्त) का निर्णय अपीलकर्ताओं के लिए कोई मदद नहीं करता है।

48. इस स्तर पर, हम विचारण न्यायालय के फैसले को भी पढ़ चुके हैं और हम पाते हैं कि विचारण न्यायालय द्वारा दिया गया तर्क पूरी तरह से उचित और तार्किक है। हम, अभिलेखों पर मौजूद साक्ष्यों की अपनी मूल्यांकन पर, प्रस्तुत अपील में कोई बल नहीं पाते हैं।

49. तदनुसार अपील **खारिज** की जाती है। जीवित अपीलकर्ता संख्या-2- बानी सिंह पुत्र जौहरी सिंह, अपीलकर्ता संख्या-3-ओम प्रकाश पुत्र जौहरी सिंह, अपीलकर्ता संख्या-7-चित्तर पुत्र मुरारी का, अपीलकर्ता संख्या-9-सेनी पुत्र मंगलू, अपीलकर्ता संख्या-13-तोता राम पुत्र प्रताप सिंह की दोषसिद्धि की पुष्टि हुई है। चूंकि अपील खारिज कर दी गई है और निचली अदालत द्वारा दी गई दोषसिद्धि और सजा की पुष्टि हमारे द्वारा की गई है, इसलिए उनके जमानत बांड रद्द किये जाते हैं और ज़ामिनान को उन्मोचित किया जाता है। संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को निर्देशित किया जाता है कि वे जीवित अपीलकर्ताओं को अभिरक्षा में लेकर उन्हें जेल भेजें, ताकि वे विचारण न्यायालय द्वारा प्रदान की गई तथा हमारे द्वारा पुष्टि की गई सजा को भुगत सकें।

50. इस आदेश की एक प्रति रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा एक सप्ताह के भीतर अनुपालन के लिए संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को सूचित की जाए।

51. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को भी निर्देश दिया जाता है कि वह एक महीने के भीतर अपनी अनुपालन रिपोर्ट इस न्यायालय को भेजें।

52. अवर न्यायालय के अभिलेखों को तुरंत संबंधित न्यायालय को भेजा जाए।

(2025) 5 ILRA 864

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति सैय्यद कमर हसन रिजवी

आपराधिक अपील संख्या- 2625/1982

टुंकू सिंह और अन्य **... अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **... प्रतिवादी**

अपीलकर्तागण के लिए अधिवक्ता:
श्री अमित श्रीवास्तव

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
डी.जी.ए., श्री गौतम चौधरी श्री हरीश चंद्र यादव, श्री पवन कुमार, श्री सर्वानंद पांडेय

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता-धारा 302 - दोनों चश्मदीद गवाहों ने गवाही दी है कि घटना के तुरंत बाद कई ग्रामीण घटनास्थल पर पहुंचे- लेकिन अभियोजन पक्ष द्वारा कोई भी पेश नहीं किया गया - पी.डब्ल्यू.-2 की विश्वसनीयता और अभियोजन पक्ष के प्रकरण की समग्र विश्वसनीयता पर संदेह - मुलुथे के घर पर कथित हत्या-तीसरे चश्मदीद गवाह-अभियोजन पक्ष ने मुल्लू को गवाह के रूप में पेश करने में विफल रहा- पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-2 मृतक के रिश्तेदार हैं - उनके कथन को साबित करने के लिए कोई अतिरिक्त सबूत नहीं है -पी.डब्लू.-2 को एक मौका के रूप में पहचाना जाता है - अभियोजन उचित संदेह से परे अपीलकर्तागण के अपराध को साबित करने में विफल रहा है।

अपील स्वीकृत। (ई-9)

<u>उद्धृत प्रकरण की सूची:</u>

1. मनोज और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2023) 2 एससीसी 353
2. हरबीर सिंह बनाम शीशपाल और अन्य, (2016) 16 एससीसी 418
3. जरनैल सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य, (2009) 9 एससीसी 719
4. बहल सिंह बनाम हरियाणा, 1976 आपराधिक एलजे 1568

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद कमर हसन रिजवी द्वारा पारित)

1. यह आपराधिक अपील एस.टी. संख्या 497/1981 में चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, फतेहपुर द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 12.10.1982 के खिलाफ दायर की गई है, जिसके तहत विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अपीलकर्तागण को आईपीसी की धारा 302/34 के तहत दोषी ठहराया और उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई।

2. प्रकरण का तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि 12 मई 1981 को हुई कथित घटना पर, जिसमें राम सरन सिंह उर्फ चित्तू की मृत्यु हो गई थी, 12 मई 1981 को ही 21:05 बजे आईपीसी की धारा 302 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी, जिसमें उसी दिन यानी 12 मई 1981 को लगभग 16.00 बजे हुई हत्या की घटना का वर्णन किया गया था। एफआईआर बच्चन सिंह द्वारा दर्ज कराई गई थी, जो शिकायतकर्ता है और मृतक की बहन का पति भी है।

3. एफआईआर के अनुसार, बचन सिंह और उनकी पत्नी 20 मई 1981 को अमिलिहापाल गांव में होने वाले मुंडन समारोह के अवसर पर मृतक राम सरन सिंह @ चित्तू के आवास पर गए थे। घटना के दिन बचन सिंह और राम सरन सिंह (मृतक) लगभग 16:00 बजे मुल्लू (बढ़ई) के घर गए थे। दोनों मुल्लू के आवास पर बरोठा पर पड़ी चारपाई पर बैठ गए। इस बीच, राम सरन सिंह ने मुल्लू को पास के कुम्हार के पास जाने और 20 मई 1981 को अपने बेटे के मुंडन समारोह के लिए आवश्यक हुंडा (मिट्टी के बर्तन) और पराई (जलाऊ लकड़ी) की आपूर्ति की व्यवस्था करने के लिए कहा। जब वे बातचीत में लगे हुए थे, तब प्रताप सिंह के दोनों बेटे बचाऊ सिंह और टुंकू सिंह देसी पिस्टल लेकर मौके पर पहुंचे। बच्चू सिंह ने बहुत करीब से राम सरन सिंह (मृतक) की गर्दन पर गोली चला दी। इसके बाद दूसरा शॉट टुंकू सिंह ने चलाया। शिकायतकर्ता बचन सिंह डर के मारे तुरंत आंगन की ओर भाग गया। गोली चलने की आवाज सुनकर गवाह शिव सरन सिंह @ बग्गा सिंह और गांव के कई अन्य लोग मौके पर पहुंचे। उनके पहुंचने पर आरोपी मौके से भाग गए। वे इस डर से आरोपी व्यक्तियों को नहीं पकड़ सके कि वे देशी पिस्तौल के साथ थे। यह उल्लेख किया गया था कि हत्या के पीछे का मकसद कुछ संपत्ति विवाद था। आरोप है कि मृतक राम सरन सिंह @ छित्तू सिंह ने इससे पहले कैलाश सिंह द्वारा अपनी बहन के बेटों हरि बरन सिंह और बलवंत सिंह को संपत्ति हस्तांतरित करने में पैरवी की थी। कैलाश सिंह प्रताप सिंह के चचेरे भाई थे। इसी रंजिश के चलते टुंकू सिंह और बच्चू सिंह ने मृतक राम सरन सिंह @ छित्तू सिंह की हत्या कर दी थी। गोली लगने से घायल होने पर राम सरन सिंह @ छित्तू सिंह की मौत हो गई। बचन सिंह (शिकायतकर्ता) मुल्लू बढ़ई और गांव के अन्य व्यक्तियों की देखरेख में शव को चारपाई पर छोड़कर एफआईआर दर्ज कराने के लिए पुलिस स्टेशन आया।

4. प्रथम सूचनाकर्ता बचन सिंह के आदेश पर अंगद ने एफआईआर दर्ज की थी। हेड मोहरिर द्वारिका ने उपरोक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर प्रदर्श क-1 ने 12.5.1981 को 21.05 बजे एफ.आई.आर. इसके बाद उन्होंने उसी दिन जीडी प्रदर्श क-4 के क्रम संख्या 30 में प्रकरण दर्ज किया। उन्होंने विशेष रिपोर्ट प्रदर्श क-5 भी तैयार की

और इसे 13.5.1981 को सुबह 6:10 बजे कांस्टेबल शमशुद्दीन के माध्यम से अधिकारियों को भेजा। विवेचनाधिकारी श्री बलिकरन सिंह, पीडब्ल्यू 4 उस समय पुलिस स्टेशन में नहीं थे। वह उस तारीख को तलाश के लिए गया था। वह 12/13.5.1981 की रात 2.00 बजे पुलिस चौकी छिवलाहा पहुंचा, जहां कांस्टेबल मोहम्मद आरिफ और जय नारायण एफआईआर की प्रति और जांच के रूप में लाए। इसके बाद वह मौके पर पहुंचे और 13.5.1981 को सुबह 4.00 बजे वहां पहुंचे। उस समय अंधेरा था, और लालटेन की रोशनी अपर्याप्त थी, इसलिए उन्होंने पूछताछ को सुबह 6.00 बजे तक के लिए स्थगित कर दिया। इस बीच यानी सुबह 4.00 बजे से सुबह 6.00 बजे तक उन्होंने शिकायतकर्ता बचन सिंह, मुल्लू और शिव सरन सिंह उर्फ बग्गा सिंह के बयान दर्ज किए। फिर दिन की रोशनी में उन्होंने जांच की प्रक्रिया शुरू की, राम सरन सिंह उर्फ छितू के शव को हिरासत में लिया और जांच के गवाह नियुक्त किए। उन्होंने जांच रिपोर्ट में चोटों को दर्ज किया और जांच रिपोर्ट प्रदर्श क-6 पर जांच के गवाहों के हस्ताक्षर प्राप्त किए। इसके बाद उन्होंने फोटोलैश प्रदर्श क-7 तैयार किया और मृत शरीर पर चोटों के स्थानों को चिह्नित किया जहां चोटें दिखाई दे रही थीं। इसके बाद, उन्होंने शव प्रदर्श क 8 को सील कर दिया। इसके बाद उन्होंने मुख्य चिकित्सा अधिकारी को पत्र और चालान लैश तैयार किया, जिसे क्रमशः प्रदर्श क-9 और 10 के रूप में चिह्नित किया गया था। एफआईआर और जीडी की प्रतियां जो उन्हें चिवलाहा पुलिस आउट पोस्ट में कांस्टेबलों द्वारा दी गई थीं, उन्हें क्रमशः प्रदर्श क-11 और 12 के रूप में चिह्नित किया गया था। इसके बाद विवेचनाधिकारी ने शव को पोस्टमार्टम के लिए ले जाने के लिए कांस्टेबल सीताराम और चौकीदार हुड्डी को सौंप दिया। उक्त कांस्टेबल सीताराम ने आर.आई. श्री राणा प्रदर्श क-13 से पुलिस फॉर्म संख्या 33 प्राप्त किया। विवेचनाधिकारी ने जांच के गवाहों के बयान दर्ज किए, घटना के स्थान का निरीक्षण किया और साइट-प्लान प्रदर्श क-14 तैयार किया। उन्होंने मौके से खून से सनी मिट्टी और समतल मिट्टी को इकट्ठा किया, उन्हें सील कर दिया और उन्हें एक्सटेंशन 1 और एक्सटेंशन 2 के रूप में चिह्नित किया। उसे चारपाई (चारपाई) पर भी खून मिला। उन्होंने उस चरपाई के खून से सने "बैन" के टुकड़े काट दिए और फर्द प्रदर्श क-15 तैयार किया। उन्होंने इन सभी वस्तुओं को कांस्टेबल जय नारायण सिंह के माध्यम से पुलिस स्टेशन भेजा, जहां 13.5.1981 को दोपहर 12:05 बजे जीडी प्रदर्श क-16 में इसके क्रम संख्या 15 में एक प्रविष्टि की गई थी। उन्होंने आरोपियों की गिरफ्तारी के लिए उनके घर पर छापा मारा, लेकिन वे मौजूद नहीं थे। चूंकि उन्हें गिरफ्तार नहीं किया जा सका, इसलिए उन्होंने सीआरपीसी की धारा 82/83 के तहत प्रक्रिया शुरू करने के लिए 17-5-1981 को रिपोर्ट प्रस्तुत की।

5. उधर, कॉन्स्टेबल सीताराम ने शव को सीलबंद लिफाफे में मुर्दाघर में लाकर मुख्य चिकित्सा अधिकारी को सौंप दिया। डॉ. स्वतंत्र सिंह, पी.डब्ल्यू-3, जो चिकित्सा अधिकारी, सदर अस्पताल, फतेहपुर के पद पर तैनात थे, ने 13.5.1981 को शाम 4:15 बजे मृतक के शरीर का पोस्टमार्टम किया। शव की बाहरी जांच करने पर, उन्होंने पाया कि मृतक औसत कद-काठी का व्यक्ति था, कठोर मोर्टिस ऊपरी हिस्से से गुजर गया था और शरीर के निचले हिस्से में मौजूद था, पेट दोनों में हरे रंग के मलिनकिरण से हल्का फैला हुआ था। उन्हें निम्नलिखित दो मृत्यु पूर्व चोटें मिलीं।

1. गर्दन के ऊपरी हिस्से के सामने प्रवेश का बंदूक की गोली का घाव ठोड़ी के ठीक नीचे तिरछा 3-1/2" 1-1/2" मार्जिन उल्टा रखा गया। जबड़े के फ्रेम के साथ मौजूद टैटू को काला करना, स्वरयंत्र और श्वासनली का घाव सिद्धांत उपास्थि का फ्रैक्चर।

2. दाहिने कान के ऊपर दाहिना फ्रंटो-पार्श्विका क्षेत्र 1/2" ए 1/4" और मांसपेशियों में गहरा 2" घाव होना चाहिए।

6. अभियोजन पक्ष ने अपने प्रकरण को साबित करने के लिए निम्नलिखित चार (4) गवाहों को पेश किया: -

1 बचन सिंह पी.डब्ल्यू.1 के रूप में

2. शिव सरन उर्फ वंगा पी.डब्ल्यू.2 के रूप में

3 डॉ. सावतंत्र सिंह पी.डब्ल्यू.3 के रूप में

4. बलिकरन सिंह उपनिरीक्षक पी.डब्ल्यू. 4 के रूप में।

7. अभियोजन पक्ष द्वारा अपने प्रकरण को साबित करने के लिए 17 प्रदर्शन भी प्रस्तुत किए गए थे। पीडब्लू-1 (सूचनाकर्ता बचन सिंह) ने न्यायालय के समक्ष अपनी गवाही में कहा है कि बचाऊ सिंह और टुंकू सिंह दोनों प्रताप सिंह के बेटे हैं और सगे भाई हैं। वे अमिलिहापाल में रहते हैं। मृतक राम सरन उर्फ छिट्टू उसका सगा बहनोई था। घटना से चार या पांच दिन पहले, राम सरन (मृतक) अपनी पत्नी को अपने बेटे के मुंडन समारोह के लिए आमंत्रित करने के लिए अपने घर गए, जो 20.05.1981 को निर्धारित था। शिकायतकर्ता के घर पर होने वाले एक अन्य समारोह में सगाई के कारण, उसने अपनी पत्नी को मृतक के साथ ससुराल नहीं भेजा और आश्वासन दिया कि 4-6 दिन बाद वह अपनी पत्नी (यानी मृतक की बहन) को लाएगा। इसके बाद, 4-5 दिनों के बाद, वह अपनी पत्नी के साथ अमिलिहापाल गया और दोपहर लगभग 2:30 बजे पहुंचा। उस समय राम सरन उर्फ छिट्टू अपने काम में व्यस्त थे। कुछ देर बैठने के बाद वह शाम करीब 4:00 बजे राम सरन उर्फ छिट्टू के साथ मुल्लू कारपेंटर के स्थान पर गया और अपने खलिहान में एक खाट पर बैठ गया। मुल्लू को खाना खाने के लिए घर जाना था। मुल्लू से बातचीत के दौरान आरोपी व्यक्ति टुंकू और बाचाऊ वहां पहुंचे, दोनों के पास पिस्टल थी। आरोपी बाचाऊ ने करीब चार कदम दूर से राम सरन पर गोली चलाई, जिससे उसकी गर्दन में गोली लगी। इसके तुरंत बाद टुंकू ने राम सरन पर एक और गोली चला दी। इस गवाह ने आगे कहा कि वह डर गया और अलार्म बजाते हुए मुल्लू के घर के अंदर भाग गया। उसकी चीखें और गोलियों की आवाज सुनकर कई गवाह पहुंचे। दोनों आरोपी पूर्व की ओर भाग गए। उन्होंने अपने आग्नेयास्त्रों के डर से उन्हें पकड़ने का प्रयास नहीं किया।

8. पी.डब्ल्यू.-1 आगे प्रस्तुत करता है कि उसके पिता कैलाश का चचेरा भाई निर्विवाद था। कैलाश ने अपनी संपत्ति अपने भतीजों को हस्तांतरित कर दी थी और राम सरन उर्फ छिट्टू ने इस व्यवस्था को सुगम बनाया, जिससे आरोपी और राम सरन के बीच दुश्मनी हो गई। यह विलेख घटना से दो महीने पहले निष्पादित किया गया था। इसी रंजिश से आकर आरोपियों ने रामसरन की हत्या कर दी।

9. पी.डब्ल्यू.-1 में कहा गया है कि घटना के समय, मुल्लू, बढ़ई प्रताप सिंह के स्वामित्व वाले घर में रहता था। घर में एक दरवाजा है जो उत्तर की ओर सड़क पर खुलता है, जो एक लंबे हॉल और बरामदे की ओर जाता है। वह बरामदे में एक खाट पर बैठा था, जिसके पास राम सरन बैठे थे। जैसे ही टुंकू और बचाऊ ने वहां प्रवेश किया, उन्होंने बिना किसी पूर्व बातचीत के गोलीबारी शुरू कर दी। केवल राम सरन उर्फ छिट्टू को ही गोलियां लगीं। पहली गोली चलने के तुरंत बाद यह गवाह भाग गया और दूसरी गोली चलाते हुए नहीं देखा। आरोपी के भागने के बाद वह खलिहान में लौट आया। कई ग्रामीणों के आने पर वह दो से चार मिनट तक वहीं रहे। इसके बाद वह राम सरन उर्फ छिट्टू के घर गया, जहां अंगद ने एक रिपोर्ट लिखी। वह शाम 6:00 बजे अमिलिहापाल से राम शंकर सोनार धाने के साथ पैदल ही पुलिस स्टेशन गए। वह आगे कहता है कि आरोपी सगे भाई हैं और मुल्लू के घर के पूर्व में स्थित एक घर में एक साथ रहते हैं। उनके घर में मुल्लू के दरवाजे से कुछ ही कदम की दूरी पर एक गेट है।

10. पी.डब्ल्यू.-1 आगे प्रस्तुत करता है कि हत्या के बाद, शिवचरण सिंह उर्फ बग्गा डर के कारण अमिलिहापाल से मौजा सेम्रहारा चला गया और जिरह में उसने पुष्टि की कि वह घटना के समय अमिलिहापाल में मौजूद था और राम सरन की हत्या के बारे में सुनकर तुरंत ही वहां पहुंच गया। राम सरन की मौत के लिए मुल्लू और महाराज के परिवार के सदस्यों के जिम्मेदार होने का आरोप झूठा है। शिवचरण उर्फ बग्गा डर के मारे मौजा सेमरहरा में रहने लगा।

11. पी.डब्ल्यू.-2 शिव सरन उर्फ बग्गा ने अपने साक्ष्य में कहा है कि लगभग 15-1/2 महीने पहले वह सुदीन तेली की दुकान से सामान खरीदने गया था। शाम लगभग 4.00 बजे उन्होंने मुल्लू बढ़ई के घर की तरफ से रोने और बंदूक की गोली चलने की आवाज सुनी। वह उस स्थान पर दौड़ा और उसने देखा कि टुंकू सिंह और बच्चू सिंह आरोपी व्यक्ति मुल्लू के घर से बाहर निकल रहे हैं और पूर्व की ओर भाग रहे हैं। दोनों के हाथ में देसी पिस्तौल (तमंचा) थी।

12. पी.डब्ल्यू.-2 में आगे कहा गया है कि आरोपी के पिता कैलाश ने अपनी संपत्ति अपने भतीजों को हस्तांतरित कर दी थी। उसका भाई छित्तू प्रोवर्ट के ट्रांसफर से जुड़े विधिक प्रकरण में कैलाश का साथ देता था। उसकी संलिप्तता के कारण आरोपी ने अपने भाई से दुश्मनी करना शुरू कर दिया। वह प्रताप सिंह या आरोपी के खिलाफ कैलाश या उसके भतीजों से जुड़े किसी भी विधिक विवाद से अनजान था। उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि यह सच नहीं है कि वह 4-5 साल से मरहरा में रह रहे हैं।

13. पी.डब्ल्यू.-2 में आगे कहा गया है कि सुदीन की दुकान उसके घर में स्थित है, जिसका प्रवेश द्वार पूर्व की ओर है। आरोपी का घर सुदीन के घर के दक्षिण-पूर्वी कोने में स्थित है, जिसके बीच में कोई अन्य घर नहीं है। बचन तेली का घर सड़क के उस पार, सुदीन के निवास के पूर्व में है। अन्य घर सुदीन के घर के उत्तर में स्थित हैं। घटनास्थल पर पहुंचने के लगभग 5-6 मिनट बाद, अन्य लोग इकट्ठा होने लगे। उस समय तक आरोपी भाग चुका था। उनका कहना है कि सुदीन की दुकान पर कोई अन्य ग्राहक नहीं था, न ही घटना के समय

सुदीन मौजूद था। उनकी पत्नी दुकान संभाल रही थीं जब उन्होंने गोलियों और चिल्लाने की आवाज सुनी। उसने पुलिस इंस्पेक्टर को बताया कि उसने टुंकू और बच्चू को हत्या करने के बाद भागते हुए देखा था।

14. पी.डब्ल्यू.-3, डॉ. स्वतंत्र सिंह और पीडब्लू-4 का बयान, बाली कर्ण सिंह के बयान भी प्राप्त किए गए।

15. इसके बाद, अभियुक्त, बच्चू सिंह और टुंकू सिंह के बयान सीआरपीसी की धारा 313 के तहत दर्ज किए गए और दोनों ने उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार किया है।

16. मुकदमे के समापन पर, अपर सत्र न्यायाधीश, फतेहपुर ने 12.10.1982 को आरोपी व्यक्तियों को आईपीसी की धारा 302 के साथ पठित धारा 34 के तहत दोषी ठहराया और उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई। इसलिए, यह अपील दाखिल की गयी।

17. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री अमित कुमार श्रीवास्तव और राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अमित सिन्हा को सुना और प्रकरण के अभिलेख का अवलोकन किया।

18. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष का प्रकरण काफी हद तक बढ़ई मुल्लू के निवास पर कथित हत्या की घटना पर निर्भर करता है। घटना से ठीक पहले मुल्लू मृतक (राम सरन उर्फ छिट्टू) और पीडब्लू-1 के साथ उसके घर पर मौजूद था। मुल्लू कथित घटना का तीसरा चश्मदीद गवाह था। हालांकि, अभियोजन पक्ष मुल्लू को गवाह के रूप में पेश करने में विफल रहा। मुल्लू की गवाही वास्तविक घटनाओं और अनुक्रम के बारे में महत्वपूर्ण सबूत प्रदान कर सकती थी जिसके कारण हत्या हुई। मुल्लू की गवाही की अनुपस्थिति, विशेष रूप से जब घटना उसके आवास पर हुई थी, अभियोजन पक्ष के प्रकरण में एक महत्वपूर्ण अंतर पैदा करती है। इस प्राथमिक गवाह को शामिल करने में विफलता अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की प्रामाणिकता और पूर्णता के बारे में गंभीर संदेह पैदा करती है।

19. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि पीडब्लू -2, शिवचरण सिंह उर्फ बग्गा को एक मौका गवाह के रूप में पेश किया गया है, जो संयोग से अपराध स्थल के आसपास के क्षेत्र में होने का दावा करता है। हालाँकि, उनकी गवाही की विश्वसनीयता संदिग्ध है। घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति निराधार प्रतीत होती है, क्योंकि कोई स्पष्ट कारण नहीं है कि वह हत्या स्थल के पास दुकान पर क्यों होगा।

20. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने (2023) 2 एससीसी 353 में प्रतिवेदित **मनोज और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य** में निर्णय के पैराग्राफ 102, 103 और 104 पर बहुत अधिक भरोसा किया: को यहां प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"102. एक मौका गवाह वह है, जो अचानक घटनास्थल पर प्रकट होता है। गवाह की इस प्रजाति का वर्णन पूरन बनाम पंजाब राज्य (एआईआर 1953 एससी 459) में निम्नलिखित शब्दों में किया गया था:
"ऐसे गवाहों की आदत होती है कि जब कुछ हो रहा होता है तो वे अचानक घटनास्थल पर आ जाते हैं और फिर उस घटना को देखने के बाद गायब हो जाते हैं, जिसके बारे में उन्हें बाद में सबूत देने के लिए बुलाया जाता है।

103. इस न्यायालय ने संयोग के गवाहों की गवाही से निपटने के बारे में सावधानी बरती है। दरिया सिंह बनाम पंजाब राज्य (एआईआर 1965 एससी 328), यह देखा गया कि:
"... जहां गवाह पीड़ित का करीबी रिश्तेदार है और उसे अपने हमलावर के प्रति पीड़ित की शत्रुता को साझा करने के लिए दिखाया गया है, यह स्वाभाविक रूप से आपराधिक न्यायालयों के लिए आवश्यक बनाता है कि वे ऐसे गवाह द्वारा दिए गए सबूतों की बहुत सावधानी से जांच करें और उस पर कार्रवाई करने का निर्णय लेने से पहले उस साक्ष्य में सभी कमजोरियों की जांच करें। इस तरह के साक्ष्यों से निपटने में, अदालतें स्वाभाविक रूप से इस जांच से शुरू होती हैं कि क्या उक्त गवाह आकस्मिक गवाह थे या क्या वे वास्तव में अपराध स्थल पर मौजूद थे..... यदि आपराधिक न्यायालय इस बात से संतुष्ट है कि पीड़ित से संबंधित गवाह संयोग से गवाह नहीं था, तो उसके साक्ष्य की संभावनाओं के दृष्टिकोण से जांच की जानी चाहिए और हमले के बारे में उसके द्वारा दिए गए विवरण की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए।

*104. **जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य [(2009) 9 एससीसी 719]** फिर से, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि:*
"22. एक मौका गवाह के साक्ष्य के लिए बहुत सतर्क और गहन जांच की आवश्यकता होती है और एक मौका गवाह को घटना स्थल पर अपनी उपस्थिति की पर्याप्त रूप से व्याख्या करनी चाहिए (सतबीर बनाम सूरत सिंह (1997) 4 एससीसी 192 30, हरजिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य (2004) 11 एससीसी 253, अचरापरमबथ प्रदीपन और अन्य बनाम केरल राज्य (2006) 13 एससीसी 643 और सर्वेश नारायण शुक्ला बनाम दारोगा सिंह (2007) 13 एससीसी 360)। एक आकस्मिक गवाह का बयान, जिसकी घटना स्थल पर उपस्थिति संदिग्ध बनी हुई है, को खारिज कर दिया जाना चाहिए (शंकरलाल बनाम राजस्थान राज्य (2004) 10 एससीसी 632 के अनुसार)।"

21. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने **(2016) 16 एससीसी 418: हरबीर सिंह बनाम शीशपाल और अन्य** में निर्णय के पैराग्राफ 22 से 24 पर भी भरोसा किया, जिसे यहां निम्नलिखित के तहत पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"22. उच्च न्यायालय ने आगे कहा है कि ऐसे गवाह थे जिनके बयानों पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए था। प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने विशेष रूप से प्रस्तुत किया है कि पीडब्लू 5 और पीडब्लू 6 संयोग के गवाह हैं जिनकी घटना के स्थान पर उपस्थिति स्वाभाविक नहीं थी।

*23. "संयोग गवाह" के परिभाषित गुणों को महाजन, जे., द्वारा **पूरन बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1953 एससी 459** में समझाया गया था। यह माना गया कि ऐसे गवाहों की आदत होती है कि जब कुछ हो रहा होता है तो वे अचानक घटनास्थल पर आ जाते हैं और फिर उस घटना को देखने के बाद गायब हो जाते हैं, जिसके बारे में उन्हें बाद में सबूत देने के लिए बुलाया जाता है।*

*24. **मौसम सिंघा रॉय बनाम पश्चिम बंगाल, (2003) 12 एससीसी 377** के प्रकरण में, इस न्यायालय ने यह देखते हुए कि पीडब्लू 2 और पीडब्ल्यू 3 के साक्ष्य में कुछ स्पष्ट विरोधाभास/चूक और एफआईआर में उनके नामों की अनुपस्थिति को नीचे की न्यायालयों द्वारा बहुत हल्के ढंग से खारिज कर दिया गया है। इसी प्रकार, शंकरलाल वी। राजस्थान राज्य, (2004) 10 एससीसी 632 और जरनैल सिंह बनाम राजस्थान के प्रकरण में प्रकरण दर्ज किया गया है। पंजाब राज्य, (2009) 9 एससीसी 719, इस प्रस्ताव के लिए अधिकारी हैं कि एक मौका गवाह का बयान, जिसकी घटना के स्थान पर उपस्थिति संदिग्ध बनी हुई है, को खारिज कर दिया जाना चाहिए। इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए कारणों से हम मानते हैं कि पीडब्लू 5 और पीडब्ल्यू 6 संयोग के गवाह थे और उनके बयानों को सही तरीके से खारिज कर दिया गया है।*

इसी तरह, **(2009) 9 एससीसी 719** में प्रतिवेदित **जरनैल सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य** प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के पैराग्राफ 20 से 23 तक को भी निम्नानुसार यहां पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"20. रिकॉर्ड पर मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों पर विचार करने के बाद, उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि 21-6-2000 को शाम 7.30/8.00 बजे बस-स्टैंड बस्सी पठाना में बलबीर सिंह और गुरदीप सिंह द्वारा साजिश रचने के तथ्य के संबंध में गुरचरण सिंह (पीडब्लू 18) का बयान विश्वास के योग्य नहीं था। गुरचरण सिंह (पीडब्लू-18), एक मौका गवाह यह नहीं बता सका कि वह उक्त समय बस-स्टैंड पर किन परिस्थितियों में मौजूद था।

*21. **साचे लाल तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2004) 11 एससीसी 410**, इस न्यायालय ने हत्या के एक प्रकरण में संयोग गवाह के साक्ष्य मूल्य पर विचार करते हुए जो एक गली में हुआ था और राहगीर ने गवाही दी थी कि उसने घटना देखी थी, निम्नानुसार देखा गया था:*

'अगर अपराध गली में किया जाता है तो केवल एक राहगीर ही गवाह होगा। उसके साक्ष्य को हल्के ढंग से दरकिनार नहीं किया जा सकता है या इस आधार पर संदेह की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता है कि वह केवल एक संयोग गवाह था। हालांकि, वहां उनकी उपस्थिति के लिए एक स्पष्टीकरण होना चाहिए।

न्यायालय ने आगे समझाया कि अभिव्यक्ति "मौका गवाह" उन देशों से उधार ली गई है जहां हर आदमी के घर को उसका महल माना जाता है और हर किसी के पास कहीं और या किसी अन्य व्यक्ति के महल में उसकी उपस्थिति के लिए स्पष्टीकरण होना चाहिए। भारत जैसे देश में यह अभिव्यक्ति बिल्कुल अनुपयुक्त है जहां लोग अपनी उपस्थिति की व्याख्या करने के प्रकरण में कम औपचारिक और अधिक लापरवाह हैं। 22. एक मौका गवाह के साक्ष्य के लिए बहुत सतर्क और करीबी जांच की आवश्यकता होती है और एक

मौका गवाह को घटना के स्थान पर अपनी उपस्थिति की पर्याप्त रूप से व्याख्या करनी चाहिए (सतबीर बनाम सूरत सिंह (1997) 4 एससीसी 192; हरजिंदर सिंह बनाम हरजिंदर सिंह पंजाब राज्य (2004) 11 एससीसी 253; आचार्यपरम्बथ प्रदीपन और अन्य। बनाम केरल राज्य (2006) 13 एससीसी 643; और सर्वेश नारायण शुक्ला बनाम दारोगा सिंह और अन्य। (2007) 13 एससीसी 360)। एक मौका गवाह का बयान, जिसकी घटना के स्थान पर उपस्थिति संदिग्ध बनी हुई है, को खारिज कर दिया जाना चाहिए (शंकरलाल बनाम राजस्थान राज्य (2004) 10 एससीसी 632 के अनुसार)।

23. घटना के बाद संयोग गवाह के आचरण को भी विशेष रूप से ध्यान में रखा जा सकता है कि क्या उसने घटना के बारे में गांव में किसी और को सूचित किया है। (थंगैया बनाम तमिलनाडु राज्य (2005) 9 एससीसी 650 के माध्यम से)। गुरचरण सिंह (पीडब्लू-18) ने एफआईआर दर्ज करने से पहले सूचनाकर्ता दर्शन सिंह (पीडब्लू-4) से मुलाकात की और गुरचरण सिंह (पीडब्लू-18) और दर्शन सिंह (पीडब्लू-4) द्वारा साजिश के तथ्य का खुलासा नहीं किया गया। एफआईआर में साजिश के तथ्य का उल्लेख नहीं किया गया है। इस मुद्दे पर अन्य गवाह हाकम सिंह से अभियोजन पक्ष द्वारा पूछताछ नहीं की गई है। इस प्रकार, उच्च न्यायालय साजिश से संबंधित अभियोजन पक्ष के प्रकरण के हिस्से को खारिज करने में उचित था। हालांकि, वर्तमान प्रकरण की वास्तविक स्थिति में, जहां तक वर्तमान अपील का संबंध है, उक्त दो सह-अभियुक्तों को बरी करने का कोई असर नहीं है।

1976 10 आपराधिक एलजे 1568 में प्रतिवेदित निर्णय **बहल सिंह बनाम हरियाणा राज्य** के पैराग्राफ को भी यहां प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"10. घटना के समय और स्थान पर पीडब्ल्यू 4 और 5 की उपस्थिति के संबंध में, विचारण न्यायालय ने गंभीर संदेह व्यक्त किया। यदि संयोग या संयोग से कोई व्यक्ति घटना के स्थान पर होता है, तो उसे संयोग गवाह कहा जाता है। और यदि ऐसा व्यक्ति पीड़ित का रिश्तेदार या मित्र होता है या अभियुक्त के प्रति शत्रुतापूर्ण व्यवहार करता है तो उसके संयोग से गवाह होने को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। इस तरह के सबूत जरूरी नहीं कि अविश्वसनीय या अविश्वसनीय हों, लेकिन इसके लिए सतर्क और करीबी जांच की आवश्यकता होती है। इस प्रकरण में, पी.डब्लू.s 4 और 5 मृतक के अजेय रिश्तेदार थे, उनमें से एक का करीबी रिश्तेदार था। घटना स्थल पर होने के लिए उनके द्वारा दिया गया कारण विचारण न्यायालय को सही नहीं प्रतीत हुआ। उच्च न्यायालय के लिए दो आकस्मिक गवाहों के साक्ष्य के मूल्यांकन से भिन्न होने का कोई बाध्यकारी या पर्याप्त कारण नहीं था। यह अच्छी तरह से उच्च न्यायालय द्वारा टिप्पणी की जा सकती है कि प्रतिवादी भी उनका संपार्श्विक था, लेकिन वे अभियोजन पक्ष के पक्षपातपूर्ण गवाह प्रतीत होते थे और इसलिए उनकी गवाही को ट्रायल जज द्वारा संदेह की दृष्टि से देखा गया था।

22. अपीलकर्तागण के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि पीडब्लू-1 (बचन सिंह) और पीडब्लू-2 (शिवचरण सिंह उर्फ बग्गा) दोनों मृतक राम सरन उर्फ छिट्टू के करीबी रिश्तेदार हैं। पीडब्लू-1 मृतक का बहनोई है, जबकि पीडब्लू-

2 उसका भाई-बहन है। प्रत्यक्ष पारिवारिक संबंधों वाले इच्छुक पक्षों के रूप में, अभियुक्तों के खिलाफ दोषसिद्धि सुनिश्चित करने में उनका निहित स्वार्थ है। मृतक के साथ उनके संबंधों और प्रतिशोध लेने के उनके मकसद के कारण उनकी गवाही पक्षपातपूर्ण हो सकती है। यह एक सुस्थापित विधिक सिद्धांत है कि संबंधित और इच्छुक गवाहों की गवाही की बारीकी से जांच की जानी चाहिए। यहां, उनके बयानों में पूर्वाग्रह की प्रबल संभावना है, खासकर जब अभियोजन पक्ष उनके दावों की पुष्टि करने के लिए किसी भी स्वतंत्र या निष्पक्ष गवाह को पेश करने में विफल रहा।

23. अपीलकर्तागण के अधिवक्ता ने आपराधिक अपील संख्या 1105/2010 **(मोहम्मद जब्बार अली और अन्य बनाम पैराग्राफ 55, 56 और 57 में असम राज्य)** में पारित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है -

"55. यह ध्यान दिया जाता है कि इस प्रकरण में गवाहों की गवाही को बहुत महत्व दिया गया है। उपरोक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि इस न्यायालय ने न्यायालय में दिए गए किसी भी दागी साक्ष्य को खारिज करने के लिए गवाहों की विश्वसनीयता की जांच की है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया था कि अभियोजन पक्ष वर्तमान प्रकरण में किसी भी स्वतंत्र गवाह की जांच करने में विफल रहा है और गवाह एक-दूसरे से संबंधित थे। इस न्यायालय को कई प्रकरण में संबंधित/इच्छुक/पक्षपातपूर्ण गवाहों के उक्त पहलू और ऐसे गवाहों की विश्वसनीयता पर विचार करने का अवसर मिला है। यह न्यायालय इस सुस्थापित सिद्धांत से अवगत है कि सिर्फ इसलिए कि गवाह संबंधित/रुचिपूर्ण/पक्षपातपूर्ण गवाह हैं, उनकी गवाही की अवहेलना नहीं की जा सकती है, हालांकि, यह भी सच है कि जब गवाह संबंधित/रुचि रखते हैं, तो उनकी गवाही की अधिक सावधानी और सावधानी के साथ जांच की जानी चाहिए। गंगाधर बेहरा बनाम गंगाधर बेहरा के प्रकरण में। उड़ीसा राज्य, (2002) 8 एससीसी 381 के प्रकरण में इस न्यायालय ने माना कि ऐसे संबंधित गवाहों की गवाही का विश्लेषण इसकी विश्वसनीयता के लिए सावधानी के साथ किया जाना चाहिए।

56. **राजू उर्फ बालचंद्रन बनाम तमिलनाडु राज्य, (2012) 12 एससीसी 701**, इस न्यायालय ने कहा:
"29. योग और सार यह है कि एक संबंधित या इच्छुक गवाह के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक और सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए। ऐसे प्रकरण में जहां संबंधित और इच्छुक गवाह की हमलावर के साथ कुछ दुश्मनी हो सकती है, बार को बढ़ाने की आवश्यकता होगी और गवाह के साक्ष्य की जांच विवेकपूर्ण जांच के मानक को लागू करके की जानी होगी। हालाँकि, यह केवल विवेक का नियम है और विधि का नहीं है, जैसा कि दलीप सिंह ((1953) 2 एससीसी 36: एआईआर 1953 एससी 364] में आयोजित किया गया है और सरवन सिंह [(1976) 4 एससीसी 369] में निम्नलिखित शब्दों में दोहराया गया है: (सरवन सिंह प्रकरण [(1976) 4 एससीसी 369, पृष्ठ 376, पैरा 10)

"10.... एक इच्छुक गवाह के साक्ष्य में किसी भी दुर्बलता नहीं होती है, लेकिन न्यायालयों को विवेक के नियम के रूप में, न कि विधि के नियम के रूप में, यह अपेक्षा की जाती है कि ऐसे गवाहों के साक्ष्य की थोड़ी सावधानी से जांच की जानी चाहिए। एक बार जब वह दृष्टिकोण बनाया जाता है और न्यायालय संतुष्ट हो जाती है कि इच्छुक गवाहों के साक्ष्य में सच्चाई का एक अंगूठी है, तो ऐसे सबूतों पर बिना पुष्टि के भी भरोसा किया जा सकता है।

57. इसी मुद्दे पर आगे विस्तार से विचार करते हुए, यह ध्यान दिया जाता है कि गणपति बनाम गणपति के प्रकरण में। तमिलनाडु राज्य, (2018) 5 एससीसी 549 के प्रकरण में, इस न्यायालय ने माना कि कई प्रकरण में जब घटना के समय केवल परिवार के सदस्य मौजूद होते हैं और अभियोजन पक्ष का प्रकरण केवल उनके साक्ष्य पर आधारित होता है, तो न्यायालयों को सतर्क रहना होगा और मुकदमे की प्रक्रिया में सबूतों का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करना होगा।

24. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि एक आपराधिक मुकदमे में, यह अभियोजन पक्ष का कर्तव्य है कि वह उचित संदेह से परे अभियुक्त के अपराध को साबित करे। इस प्रकरण में, अभियोजन पक्ष का प्रकरण विसंगतियों और महत्वपूर्ण गवाहों की अनुपस्थिति से प्रभावित है। विचारण न्यायालय ने पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 की गवाही पर बहुत अधिक भरोसा किया, जो दोनों मृतक के करीबी रिश्तेदार हैं। निष्पक्ष गवाहों से पुष्टिकारक साक्ष्य की कमी और प्राथमिक गवाह (मुल्लू) को शामिल करने में विफलता अभियोजन पक्ष के घटनाओं के संस्करण पर महत्वपूर्ण संदेह पैदा करती है। कि उचित संदेह से परे अपराध स्थापित करने के लिए इच्छुक या पक्षपातपूर्ण गवाहों की गवाही की स्वतंत्र गवाहों द्वारा पुष्टि की जानी चाहिए।

25. अभियोजन पक्ष का दावा है कि हत्या संपति विवाद से प्रेरित थी। अभियोजन पक्ष के अनुसार, राम सरन सिंह ने अपीलकर्ता के पिता के चचेरे भाई कैलाश सिंह को कैलाश के भतीजों को संपति हस्तांतरित करने में मदद की थी, जिससे अपीलकर्तागण और मृतक के बीच कथित तौर पर दुश्मनी पैदा हुई। हालांकि, कैलाश और अपीलकर्तागण के बीच संपति विवाद का कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं है और संपति पर किसी भी संघर्ष के अस्तित्व की पुष्टि करने के लिए कोई विश्वसनीय गवाही प्रस्तुत नहीं की गई थी। बचन सिंह (पीडब्लू-1) ने संपति के लेन-देन का उल्लेख करते हुए स्वीकार किया कि उन्हें कैलाश और प्रताप सिंह (अपीलकर्ता के पिता) के बीच किसी भी मुकदमेबाजी या विवाद की जानकारी नहीं थी। इसके अलावा, संपति विवाद के संबंध में कोई स्वतंत्र पुष्टि या दस्तावेजी सबूत नहीं था, इस प्रकार एक स्पष्ट और सम्मोहक मकसद स्थापित करने में विफल रहने के कारण अभियोजन पक्ष के अनुसार कथित तौर पर दो गोलियां चलाई गईं। हालांकि, पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में केवल एक चोट का सबूत है और दूसरी गोली की कहानी खाली कारतूस आदि के किसी भी संग्रह से बिल्कुल भी प्रमाणित नहीं है। यह गवाहों को अविश्वसनीय बनाता है।

26. इसके विपरीत, विद्वान अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि दो चश्मदीद गवाहों ने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन किया है। इन गवाहों की गवाही में कोई दोष नहीं है। चश्मदीद गवाहों की विश्वसनीयता को कम करने के लिए छोटी-मोटी विसंगतियां पर्याप्त नहीं हैं। सभी चश्मदीद गवाहों की गवाही स्वाभाविक, भरोसेमंद और परस्पर सुसंगत और सामान्य मानव आचरण के अनुरूप होती है। अभियोजन पक्ष द्वारा रखे गए चिकित्सा और नेत्र साक्ष्य में कोई विरोधाभास नहीं है। एफआईआर दर्ज करने में देरी और अन्य पुलिस और चिकित्सा कार्यवाही के संबंध में, एफआईआर के चरण में ही अभियोजन पक्ष की ओर से ठोस स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया है, जिस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य को केवल संयोग के गवाह या रिश्ते के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है, जिसकी पुष्टि किसी अन्य स्वतंत्र गवाह के साक्ष्य से नहीं होती है; केवल आवश्यकता यह है कि उनके साक्ष्य की उचित देखभाल और सावधानी के साथ जांच की जानी चाहिए।

27. हम निश्चित रूप से इस विचार के हैं कि जब दोनों चश्मदीद गवाहों ने गवाही दी है कि कई ग्रामीण घटना के तुरंत बाद घटनास्थल पर पहुंचे, लेकिन अभियोजन पक्ष द्वारा इन अन्य संभावित गवाहों में से कोई भी पेश नहीं किया गया, जिससे संदेह पैदा होता है कि केवल पी.डब्ल्यू.-2 को गवाह के रूप में क्यों लाया गया। गवाहों की चयनात्मक पसंद, अन्य तटस्थ व्यक्तियों को छोड़कर, जो निष्पक्ष गवाही दे सकते थे, अभियोजन पक्ष द्वारा अपने प्रकरण के अनुकूल कथा बनाने के प्रयास का सुझाव देते हैं। यह पी.डब्लू..-2 की विश्वसनीयता और अभियोजन पक्ष के प्रकरण की समग्र विश्वसनीयता पर महत्वपूर्ण संदेह पैदा करता है।

28. जब अभियोजन पक्ष का प्रकरण बढ़ई मुल्लू के निवास पर कथित हत्या की घटना पर बहुत अधिक निर्भर करता है। घटना से ठीक पहले मुल्लू मृतक (राम सरन उर्फ छिट्टू) और पीडब्ल्यू-1 के साथ उनके घर पर मौजूद था। मुल्लू कथित घटना का तीसरा चश्मदीद गवाह था, हालांकि, अभियोजन पक्ष मुल्लू को गवाह के रूप में पेश करने में विफल रहा। मुल्लू की गवाही वास्तविक घटनाओं और अनुक्रम के बारे में महत्वपूर्ण सबूत प्रदान कर सकती थी जिसके कारण हत्या हुई। मुल्लू की गवाही की अनुपस्थिति, विशेष रूप से जब घटना उसके आवास पर हुई थी, अभियोजन पक्ष के प्रकरण में एक महत्वपूर्ण अंतर पैदा करती है। इस प्राथमिक गवाह को शामिल करने में विफलता अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की प्रामाणिकता और पूर्णता के बारे में गंभीर संदेह पैदा करती है।

29. पक्षों के लिए विद्वान अधिवक्ता की दलीलों पर विचार करने और प्रकरण के रिकॉर्ड की जांच करने पर, इस न्यायालय की राय है कि अवर न्यायालय सामग्री और प्रासंगिक साक्ष्य का ठीक से आकलन करने में विफल रही। विशेष रूप से, मुख्य प्रत्यक्षदर्शी, मुल्लू कारपेंटर, जिनकी गवाही न्याय के हितों के लिए महत्वपूर्ण थी, को अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया था। इसके अलावा, पी.डब्लू.-1 और पी.डब्लू.-2 मृतक के रिश्तेदार हैं, उनके बयानों को साबित करने के लिए कोई अतिरिक्त सबूत नहीं है और पी.डब्लू.-2 को एक मौका गवाह के रूप में पहचाना जाता है। इन आधारों पर, यह न्यायालय नीचे की न्यायालय के फैसले को पलटने के लिए पर्याप्त कारण ढूंढता है।

30. ऊपर जो संकेत दिया गया है, उसे देखते हुए, हमारा विचार है कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अपीलकर्तागण के अपराध को साबित करने में विफल रहा है।

31. इसलिए, अपील की स्वीकृत की जाती है। एस.टी. संख्या 497/1981 में चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, फतेहपुर द्वारा पारित 12.10.1982 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द किया जाता है। अपीलकर्ता टुंकू सिंह और बचऊ सिंह जमानत पर हैं। उन्हें आत्मसमर्पण करने की जरूरत नहीं है। जमानतदार और जमानत बांड से मुक्ति दे दी जाती है।

32. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437-ए के प्रावधानों का पालन करने का निर्देश दिया जाता है।

33. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह अनुपालन के लिए इस आदेश की एक प्रति संबंधित न्यायालय को प्रेषित करे।

(2025) 5 ILRA 874

अपीलाधिकारिता आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला

माननीया न्यायमूर्ति सुश्री नन्द प्रभा शुक्ला

आपराधिक अपील संख्या - 2781 सन् 1982

लखन एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...**प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री ए.एल. अग्रवाल, श्री ए.पी. सिंह, श्री ललित कुमार मिश्रा, श्री मनमोहन मिश्रा, श्री आर.सी. कंडपाल

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएँ 313, 374(2) एवं 437-A - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 34, 302, 304, 307, 308 एवं 323

तथ्य:

- अपील धारा 374(2) CrPC के अंतर्गत दोषसिद्धि एवं दंडादेश के विरुद्ध दायर की गई।
- अभियुक्तों को धारा 302/34 एवं 307/34 IPC के अंतर्गत दोषसिद्ध किया गया था।
- प्रारंभ में चार अपीलकर्ता थे, परंतु दो की मृत्यु हो जाने पर अपील शेष दो के विरुद्ध जारी रही।
- एफ.आई.आर. में हमले का आरोप था, जिससे गंभीर चोटें आईं और मृत्यु हुई।
- भय के कारण एफ.आई.आर. दर्ज करने में विलंब हुआ।
- बचाव पक्ष ने निजी रक्षा का अधिकार (Right of Private Defence) का दावा किया।
- अभियुक्तों पर लगी चोटें चिकित्सकीय रूप से प्रमाणित थीं।
- कोई प्रतिकूल एफ.आई.आर. दर्ज नहीं हुई, परंतु सरकारी चिकित्सक की रिपोर्ट ने चोटों की पुष्टि की।
- न्यायालय ने पाया कि अभियोजन घटना की उत्पत्ति सिद्ध करने में विफल रहा।
- केवल हितग्राही गवाहों की जाँच की गई।
- अभियुक्तों की चोटों का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया।

अनुवादित 2

- दीर्घकालीन पारिवारिक विवाद स्वीकार किया गया।

न्यायालय का निर्णय:

- अभियुक्तों की चोटों का स्पष्टीकरण न देना अभियोजन के मामले को कमजोर करता है।
- घटना की उत्पत्ति छिपाना अभियोजन की विश्वसनीयता पर संदेह उत्पन्न करता है।
- परीक्षण न्यायालय ने अभियोजन साक्ष्यों की उचित समीक्षा नहीं की और महत्वपूर्ण कमियों को अनदेखा किया।
- इन परिस्थितियों में अभियोजन का मामला अविश्वसनीय पाया गया।
- अभियुक्तों को संदेह का लाभ दिया गया।

परिणाम:

- अपील स्वीकृत।
- दोषसिद्धि एवं दंडादेश निरस्त।
- अपीलकर्ताओं को विधिक अनुपालन के अधीन रिहा/जमानत से मुक्त किया गया। (अनुच्छेद 10-13)

आवेदन स्वीकृत। (E-11)

उद्धृत वाद

1. राजस्थान राज्य बनाम माधो एवं अन्य, AIR 1991 SC 1065
2. लक्ष्मी सिंह एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, (1976) 4 SCC 349
3. नंदलाल एवं अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2023) 2 SCR 276

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती नंद प्रभा शुक्ला द्वारा प्रदत्त)

1. जीवित अपीलार्थियों के लिए विद्वान एमिकस क्यूरी श्री मन मोहन मिश्रा, राज्य-प्रत्यर्थियों के लिए विद्वान राज्य विधि अधिकारी सुश्री मायूरी मल्होत्रा को सुना गया और अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

2. वर्तमान आपराधिक अपील दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 374(2) के अधीन चार दोषसिद्ध व्यक्तियों द्वारा विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश IV, इलाहाबाद द्वारा सत्र विचारण संख्या 162/1980 में दिनांक 02.11.1982 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्राथमिकृत की गई है, जिसके द्वारा सभी अपीलार्थियों को धारा 302/34 आई.पी.सी. के अधीन आजीवन कारावास और धारा 307/34 आई.पी.सी. के अधीन चार वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी। दोनों सजाएं समवर्ती रूप से चलेंगी।

3. अपीलार्थी संख्या 3 कलेश्वर और अपीलार्थी संख्या 4 कल्लू की मृत्यु के कारण, उनकी अपीलें क्रमशः 17.09.2015 और 06.04.2015 को समाप्त हो गई हैं। अपील का अंतिम रूप से तर्क जीवित अपीलार्थी संख्या 1 लखन और अपीलार्थी संख्या 2 देशराज की ओर से किया गया है।

<u>प्रारम्भिक तथ्य</u>

4. संक्षेप में अभियोजन की कहानी यह है कि:

दिनांक 06.08.1977 को सायं 6:00 बजे, प्रथम सूचनादाता, राजाराम ने थाना सराय अकील, जिला इलाहाबाद में चार अपीलार्थियों के विरुद्ध धारा 323/308 आई.पी.सी. के अधीन मामला अपराध संख्या 134/1977 के रूप में एफ.आई.आर. दर्ज कराई, जिसमें कहा गया कि दिनांक 05.08.1977 को लगभग 4:00 बजे अपराह्न, उनका चचेरा भाई, प्राण, अपना शरीर धोने के लिए विक्रमा तालाब जा रहा था। ग्रामवासी लखन, देशराज, कलेश्वर और कल्लू, *'लाठियों'* से लैस होकर, प्राण पर हमला किया। प्राण ने चीख-पुकार मचाई। परिणामस्वरूप, प्रथम सूचनादाता और उसके सगे भाई, प्रभु और चन्दन उसके बचाव के लिए दौड़े। जब उन्होंने हस्तक्षेप किया, तो कल्लू ने उन पर भी हमला करने के लिए उकसाया और तदनुसार सह-अभियुक्तों ने प्रथम सूचनादाता और उसके भाइयों पर हमला किया। जब उन्होंने चीख-पुकार मचाई, तो साक्षी शुक्रू, गुरुदीन, भैयालाल भी उनके बचाव के लिए घटनास्थल पर पहुंचे। उसके भाई, प्रभु को उसकी गर्दन पर लाठी की चोटें आई थीं, जो बेहोश हो गया था। प्रथम सूचनादाता और उसके भाइयों को भी उनके सिर, हाथ और पीठ पर लाठी की चोटें आई थीं। चूंकि प्रथम सूचनादाता अत्यधिक भयभीत था, इसलिए वह उसी तारीख को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए पुलिस स्टेशन नहीं गया।

राजाराम प्रथम सूचनादाता, गांव भौरे, थाना सराय, अकील, जिला इलाहाबाद का निवासी था और अभियुक्त लखन, देशराज, कल्लू और कलेश्वर भी उसी गांव के निवासी थे। अभियुक्त देशराज और कलेश्वर सगे भाई थे और लखन उनके परिवार से संबंधित था। कल्लू अभियुक्त देशराज का बहनोई था। मृतक प्रभु और घायल चन्दन राजाराम के सगे भाई थे। प्राण उनका चचेरा भाई था। प्रथम सूचनादाता राजाराम और अभियुक्त देशराज के बीच पुरानी शत्रुता विद्यमान थी।

एफ.आई.आर. दर्ज होने के बाद, सभी घायलों को जिला अस्पताल बेली, इलाहाबाद भेजा गया और दिनांक 06.8.1977 को तेज बहादुर सप्रू अस्पताल, इलाहाबाद में आपातकालीन ड्यूटी पर तैनात चिकित्सा अधिकारी द्वारा उनकी चिकित्सकीय जांच की गई।

घायल प्रभु की जांच डॉ. बी.बी. सिंह द्वारा दिनांक 06.08.1977 को रात 11:55 बजे की गई। **प्रभु** के शरीर पर पाई गई चोटें इस प्रकार हैं:

"1. बायीं ओर, माथे पर 1" x 1/4" x त्वचा गहराई का चीरा घाव।
2. चेहरे की दायीं ओर 1½" x 3/4" का घर्षित चोट।
3. छाती के दायीं ओर सामने मध्य में 2" x 1/2" का चोट।
4. छाती के दायीं ओर सामने 3/4" x /4" का घर्षण।
5. चेहरे और बायीं जांघ के ऊपरी भाग पर 4" x 1" का चोट।"

घायल प्राण की जांच भी डॉ. बी.बी. सिंह द्वारा लगभग उसी समय की गई। **प्राण** के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

"1. छाती-सामने की दायीं ओर 2" x 1/2" का घर्षित चोट।
2. नाक की पुल पर 1/4" x 1/4" का घर्षण।
3. बायीं ओर माथे पर 1" x 1/2" का घर्षित चोट।
4. बायीं ओर कंधे की पीठ पर 3½" x 1½" का चोट।
5. बायीं बांह के पीछे, ऊपरी भाग पर 4" x 1" का घर्षित चोट।
6. बायीं उंगली की नोक पर 1/2" x 1/4" x मांसपेशी गहराई का चीरा घाव।"

घायल राजाराम की जांच भी लगभग उसी समय, डॉ. बी.बी. सिंह द्वारा की गई। **राजाराम** के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

"1. माथे की दायीं ओर 1 ¾" x 1/2" x हड्डी गहराई का चीरा घाव।
2. दायीं ओर सिर पर, दायें कान से 4" ऊपर 1½" x 1/2" x खोपड़ी गहराई का चीरा घाव।
3. दायीं ओर जांघ ऊपरी और बाहरी भाग पर 1" x 1/2" का घर्षित चोट।"

यद्यपि अभियोजन के अनुसार, चन्दन को चोटें लगी थीं, लेकिन कोई चोट रिपोर्ट अभिलेख पर नहीं रखी गई।

घायल प्रभु (प्रथम सूचनादाता का सगा भाई) की दिनांक 07.08.1977 को रात 10:05 बजे अस्पताल में मृत्यु हो गई। उसका शव परीक्षण डॉ. वी.बी. सहाय द्वारा दिनांक 09.08.1977 को दोपहर 2:00 बजे आयोजित किया गया। **प्रभु** के मृत शरीर पर निम्नलिखित मरणोपरांत पूर्व चोटें पाई गईं:

"1. बायीं भौंह के पार्श्व कोण पर अनुप्रस्थ रूप से रखा गया 1" लंबा चीरा घाव 1/4" x हड्डी गहराई।
2. चेहरे की राइड साइड पर 1½" x 3/4" का घर्षण।
3. छाती की दायीं ओर मध्य-हंसली रेखा में 5वीं पसली के स्तर पर 2" x 1/2" का चोट।

4. बायीं गर्दन के पश्च-पार्श्व पक्ष पर घर्षित चोट।
5. बायीं जांघ के मध्य में तिरछे नीचे की ओर और मध्य की ओर 4" लंबा 1" चौड़ा चोट।"

आंतरिक परीक्षण पर, खोपड़ी के नीचे रक्तस्राव था, बायें टेम्पोरल क्षेत्र में अधिक। खोपड़ी का फ्रैक्चर, बायां पार्श्विका और टेम्पोरल में अनियमित फ्रैक्चर रेखाएं थीं, बड़े पैमाने पर अतिरिक्त-ड्यूरल रक्तस्राव और बायें टेम्पोरल क्षेत्र पर एक बड़ा थक्का उपस्थित था। मस्तिष्क तरलीकृत। छाती में, पसलियों का कोई फ्रैक्चर नहीं था लेकिन छाती की बाहरी चोट के स्थल पर अंतर्निहित ऊतक में कुछ रक्तस्राव था। डॉक्टरों की राय में, मृत्यु का कारण सिर और मस्तिष्क की चोट का परिणाम था।

शव परीक्षण रिपोर्ट की प्राप्ति के बाद, अभियुक्तों पर धारा 304 आई.पी.सी. को धारा 323 आई.पी.सी. के साथ पठित करते हुए अभियोजन चलाया गया।

विवेचना के दौरान, साक्षियों के कथन अभिलिखित किए गए, स्थल योजना तैयार की गई और अपराधकारी सामग्री एकत्र की गई और दिनांक 12.09.1977 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। मामले को दिनांक 17.08.1980 को सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया और दिनांक 18.11.1980 को सभी चार अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध प्रभु की हत्या के लिए धारा 302 को 34 आई.पी.सी. के साथ पठित और प्राण और राजाराम को लगी चोटों के लिए धारा 307 को 34 आई.पी.सी. के साथ पठित करते हुए आरोप तैयार किए गए।

<u>अभियोजन साक्ष्य</u>

5. अभियुक्त व्यक्तियों ने आरोपों के लिए दोषी नहीं होने का अभिवचन किया और विचारण आगे बढ़ा। अभियोजन ने अपने मामले को सिद्ध करने के लिए, सात साक्षियों की परीक्षा की और संगत प्रदर्श/दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए।

1.	अ.सा.-1 राजाराम	प्रथम सूचनादाता/घायल साक्षी-एफ.आई.आर. सिद्ध की (प्रदर्श का-1)
2.	अ.सा.-2 प्राण	प्रथम सूचनादाता का भाई/घायल साक्षी
3.	अ.सा.-3 डॉ.वी.बी. सहाय	शव परीक्षण आयोजित किया-उसी को सिद्ध किया (प्रदर्श का-2)
4.	अ.सा.-4 आर.पी. मिश्रा	विवेचना अधिकारी-स्थल योजना (प्रदर्श का-3) और आरोप पत्र (प्रदर्श का-4) सिद्ध किया
5.	अ.सा.-5 राम कृष्ण दुबे	कांस्टेबल मोहरिर-एफ.आई.आर. का लेखक (प्रदर्श का-1) और दिनांक 06.08.1977 को घंटों पर जी.डी. प्रविष्टि-रिपोर्ट संख्या 24 सिद्ध की (प्रदर्श का-5)। उन्होंने दिनांक 10.08.1977 को धारा 308 आई.पी.सी. से धारा 304 आई.पी.सी. में मामले को भी परिवर्तित किया, अर्थात् जी.डी. रिपोर्ट संख्या 28 समय 20:35 घंटे (प्रदर्श का-6)

6.	अ.सा.-6 डॉ. बी.बी. सिंह	प्रभु (मृतक), प्राण और राजाराम की चोट रिपोर्ट सिद्ध की, अर्थात् (प्रदर्श का-7, का-8 और का-9)
7.	अ.सा.-7 डॉ.आर.आर. वर्मा	पंचायतनामा (प्रदर्श का-10), चालान नाश (प्रदर्श का-11), फोटो नाश (प्रदर्श का-12), शव परीक्षण के लिए मुख्य चिकित्सा अधिकारी को रिपोर्ट (प्रदर्श का-13) सिद्ध की।

अपने संस्करण के समर्थन में, अभियोजन द्वारा निम्नलिखित दस्तावेजों पर भरोसा किया गया और इसकी सामग्री सिद्ध की गई, अर्थात्

प्रदर्श संख्या	विवरण	द्वारा सिद्ध
क-1	एफ.आई.आर.	अ.सा.1 और अ.सा.5
क-2	शव परीक्षण रिपोर्ट	अ.सा.3
क-3	स्थल योजना	अ.सा.4
क-4	आरोप पत्र	अ.सा.4
क-5	जी.डी. रिपोर्ट संख्या 24 समय 16 घंटे दिनांक 06.08.1977	अ.सा.5
क-6	जी.डी. रिपोर्ट संख्या 28 समय 20-34 घंटे 10.08.1977	अ.सा.5
क-7	घायल प्रभु की चोट रिपोर्ट	अ.सा.6
क-8	घायल प्राण की चोट रिपोर्ट	अ.सा.6
क-9	घायल राजाराम की चोट रिपोर्ट	अ.सा.6
क-10	जांच रिपोर्ट	अ.सा.7
क-11	चालान नाश	अ.सा.7
क-12	फोटो नाश	अ.सा.7
क-13	शव परीक्षण के लिए मुख्य चिकित्सा अधिकारी को रिपोर्ट	अ.सा.7

अनुवादित

अ.सा.1 राजाराम, प्रथम सूचनादाता और एक घायल प्रत्यक्षदर्शी साक्षी थे। उन्होंने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा कि वे सभी चार अपीलार्थियों लखन, देशराज, कल्लू और कलेश्वर को जानते थे, देशराज और कलेश्वर सगे भाई थे और लखन देशराज का चचेरा भाई था। कल्लू देशराज का बहनोई था। प्रथम सूचनादाता चार भाई थे, स्वयं, चन्दन, प्रभु और नुखई। प्राण उनका चचेरा भाई था। उनके सगे भाई प्रभु को दुर्भाग्यपूर्ण दिन मार दिया गया था। भोजन और पेय के लिए पारिवारिक झगड़ा था। अभियुक्त व्यक्तियों के साथ उनकी पारिवारिक शत्रुता थी। घटना की तारीख को लगभग 4:00 बजे अपराह्न, उनका चचेरा भाई प्राण अपना शरीर धोने के लिए विक्रमा तालाब के रास्ते पर था। इस बीच, सभी चार अभियुक्त जो अपने दरवाजों के पास खड़े थे, लाठियों से लैस होकर प्राण पर हमला किया जब वह उनके दरवाजों पर पहुंचा। प्राण ने चीख-पुकार मचाई, तब प्रथम

सूचनादाता प्रभु और चन्दन घटनास्थल पर पहुंचे। कल्लू ने उकसाया कि उन पर भी हमला किया जाना चाहिए। सभी अभियुक्तों ने प्रथम सूचनादाता और उसके भाइयों पर अपनी लाठियों से हमला किया। ग्रामवासी सुकुरु, गुरदीन और भैयालाल भी घटनास्थल पर पहुंचे और घटना को देखा। प्रथम सूचनादाता प्रभु, प्राण और चन्दन, सभी चारों को चोटें आईं। प्रभु को उसकी गर्दन पर गंभीर चोटें आई थीं और वह बोलने में असमर्थ था। उक्त साक्षी ने आगे कहा कि उन्होंने घटना की अगली तारीख को एफ.आई.आर. दर्ज कराई और एफ.आई.आर. की सामग्री को प्रदर्श का-1 के रूप में सिद्ध किया। वे समय पर एफ.आई.आर. दर्ज नहीं करा सके क्योंकि वे अभियुक्त व्यक्तियों से बहुत डरे हुए थे। एफ.आई.आर. दर्ज कराने के बाद, वे चिकित्सकीय परीक्षण के लिए बेली अस्पताल गए। लगी चोटों के कारण, प्रभु की तीसरे दिन बेली अस्पताल में मृत्यु हो गई।

अपनी प्रतिपरीक्षा में, प्रथम सूचनादाता ने कहा कि यद्यपि अपीलार्थियों के साथ उनके सौहार्दपूर्ण पारिवारिक संबंध थे लेकिन बाद में, उनके संबंध खराब हो गए। पारिवारिक झगड़े के अलावा, कोई अन्य शत्रुता नहीं थी। कल्लू अपने गांव से दूर रहता था लेकिन घटना की तारीख को, वह अपने गांव में उपस्थित था क्योंकि कल्लू की बहन की शादी देशराज से हुई थी। घटना से पहले, पक्षकारों के बीच मार-पीट की कोई अन्य घटना नहीं हुई थी। यहां तक कि यह घटना अचानक हुई। घटना की तारीख को, वे, चन्दन और प्रभु अपनी नौकरी पर गए थे और लगभग 4:00 बजे अपराह्न अपने घरों को वापस लौटे थे। अपनी प्रतिपरीक्षा में, इस साक्षी ने स्पष्ट किया कि घटना के समय, प्राण अपना शरीर धोने के बाद विक्रमा तालाब से लौट रहा था। उन्होंने स्पष्ट रूप से इनकार किया कि घटना के समय, प्राण अपना शरीर धोने के लिए विक्रमा तालाब के रास्ते पर था। यह एफ.आई.आर. में गलत तरीके से उल्लेख किया गया था। घटना कैथा के पेड़ के नीचे अभियुक्त व्यक्तियों के दरवाजों के सामने हुई। जब घटना हुई तो वे अपने घर में भोजन कर रहे थे। चन्दन भी अपने घर पर था। वे लगभग 15 मिनट पहले घर लौटे थे। जब उन्होंने शोर सुना, तो वे बाहर आए और देखा कि अभियुक्त अपनी लाठियों से प्राण पर हमला कर रहे थे। वे, चन्दन, प्राण और प्रभु सभी निहत्थे थे।

प्राण को 4 से 6 लाठी के वार दिए गए। प्राण के बाद, अभियुक्तों ने प्रभु पर 25 से अधिक बार हमला किया। चन्दन को भी लगभग 25 वार दिए गए लेकिन उन्हें केवल कल्लू और देशराज के दो लाठी के वार लगे, जिसके कारण वे गिर गए। कलेश्वर और लखन ने उन पर हमला नहीं किया। आगे उक्त साक्षी ने कहा कि उन्होंने अपीलार्थियों के शरीर पर कोई चोट नहीं देखी। यदि उन्हें कोई चोटें आई थीं, तो वे इस बारे में जानकार नहीं थे कि वे कैसे लगीं। उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि न तो उन्होंने और न ही उनके भाइयों ने कोई हथियार उठाया और न ही अपीलार्थियों पर हमला किया। अभियुक्तों के डर से, वे अगले दिन लगभग दोपहर 2:00 बजे पुलिस स्टेशन गए जो उनके गांव से लगभग 6 मील की दूरी पर है। चन्दन को चोटें आई थीं और उनकी चिकित्सकीय जांच की गई थी। उन्होंने अभियुक्तों पर हमला करने से इनकार किया और अपने आप को बचाने के लिए, उन्होंने झूठी एफ.आई.आर. दर्ज कराई थी।

अ.सा.2- प्राण, भी एक घायल प्रत्यक्षदर्शी साक्षी और प्रथम सूचनादाता का चचेरा भाई है। अपनी मुख्य परीक्षा में, उन्होंने कहा कि घटना की तारीख को लगभग 4:00 बजे अपराह्न, वे अपना शरीर धोने के बाद

विक्रमा तालाब से वापस लौट रहे थे। जब वे कैथा के पेड़ के पास, देशराज के दरवाजों पर पहुंचे, तो उन्हें देशराज, कल्लू, कलेश्वर और लखन मिले, जो लाठियों से लैस थे। जब वे कैथा के पेड़ के पास पहुंचे, तो सभी अभियुक्तों ने उन पर हमला करना शुरू कर दिया। तब उन्होंने चीख-पुकार मचाई। शोर सुनकर, प्रभु, चन्दन और राजाराम घटनास्थल पर पहुंचे। अभियुक्तों ने प्रभु पर हमला किया, जो गिर गया और उसकी गर्दन पर गंभीर चोटें आईं। राजाराम और चन्दन पर भी हमला किया गया। चोटों के कारण, वे बेहोश हो गए और बेली अस्पताल में उनकी चिकित्सकीय जांच की गई।

प्रतिपरीक्षा के दौरान, उन्होंने कहा कि घटना की तारीख को, लगभग 4:00 बजे अपराह्न, वे अपने खेतों में काम करने के बाद वापस लौट रहे थे। वे सीधे विक्रमा तालाब गए, अपना शरीर धोया और वापस लौट रहे थे जब घटना हुई। जब वे लगभग 10-15 कदम की दूरी पर थे, तो उन्होंने अभियुक्तों को लाठियों से लैस देखा। वे यह नहीं समझ सके कि अभियुक्त क्यों खड़े थे। पहला लाठी का वार उनकी पीठ पर दिया गया, जिसके कारण वे गिर गए और बेहोश रहे। जब वे लेटे हुए थे, तो उन्हें कई लाठी के वार दिए गए, उन्होंने चिल्लाया और चीख-पुकार मचाई। अपनी प्रतिपरीक्षा में आगे कहा कि अपने खेतों से लौटने के बाद, वे निहत्थे थे और यहां तक कि खुरपी भी नहीं ले जा रहे थे। प्रभु पहले उन्हें बचाने के लिए पहुंचे, उसके बाद चन्दन। अभियुक्तों ने प्रभु पर हमला किया और जो भी आया उस पर हमला किया गया। चन्दन, प्रभु और राजाराम निहत्थे थे। वे इस बारे में जानकार नहीं थे कि अपीलार्थियों को कोई चोटें लगीं या यह कैसे लगी। यह कहना गलत था कि वे और उनके भाई देशराज के दरवाजों पर आए और उन पर हमला किया। चन्दन को भी चोटें आई थीं और अस्पताल में उनकी चिकित्सकीय जांच की गई थी। उन्होंने अभियुक्तों को चोटें पहुंचाने से इनकार किया और अपने आप को बचाने के लिए, उन्होंने झूठी एफ.आई.आर. दर्ज कराई थी।

अ.सा.-3 डॉ. वी.बी. सहाय, ने मृतक प्रभु का शव परीक्षण आयोजित किया था जिसे कांस्टेबल सी.पी. 1046 अल्ताफ हुसैन द्वारा लाया गया था। मृतक लगभग 35 वर्ष की आयु का था और दिनांक 08.08.1977 को लगभग रात 10:05 बजे अस्पताल में मृत्यु हो गई थी। **प्रभु** के मृत शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

"1. बायीं भौंह के पार्श्व कोण पर अनुप्रस्थ रूप से रखा गया 1" लंबा चीरा घाव 1/4" x हड्डी-गहराई।

2. कूल्हे की दायीं ओर 1½" x 3/4" का घर्षण।

3. छाती की दायीं ओर मध्य-हंसली रेखा में 5वीं पसली के स्तर पर 3" x 1/2" का चोट।

4. बायीं गर्दन के पश्च पार्श्व पक्ष पर घर्षित चोट।

5. बायीं जांघ के मध्य में तिरछे नीचे की ओर और मध्य की ओर 4" लंबा, 1" चौड़ा चोट।"

उक्त साक्षी ने शव परीक्षण रिपोर्ट को प्रदर्श का-2 के रूप में सिद्ध किया जो उनकी अपनी हस्तलेखन में थी। उन्होंने कहा कि चोटें लाठी से लगी हो सकती हैं और मृत्यु कारित करने के लिए प्रकृति के सामान्य क्रम में पर्याप्त थीं। अपनी प्रतिपरीक्षा में, उन्होंने कहा कि यह कहना कठिन है कि यदि, रक्त की व्यवस्था की गई होती, तो रोगी जीवित रह सकता था।

अ.सा.-4 आर.पी. मिश्रा, विवेचना अधिकारी ने कहा कि उनकी उपस्थिति में एफ.आई.आर. दर्ज की गई थी और विवेचना उन्हें सौंपी गई थी। उन्होंने साक्षियों के कथन अभिलिखित किए और एक स्थल निरीक्षण और स्थल योजना बनाई, जिसे उन्होंने प्रदर्श का-3 के रूप में सिद्ध किया। दिनांक 10.08.1977 को, उन्होंने मामले को 308/323 आई.पी.सी. से धारा 304/23 आई.पी.सी. में परिवर्तित किया। दिनांक 25.08.1977 को, उन्होंने अभियुक्तों का कथन अभिलिखित किया और दिनांक 12.09.1977 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया जिसे उन्होंने प्रदर्श का-4 के रूप में सिद्ध किया।

अपनी प्रतिपरीक्षा में, उन्होंने कहा कि स्थल योजना साक्षियों के संकेत पर तैयार की गई थी और राजाराम भी उपस्थित थे। घायल को दिनांक 06.08.1977 को चिकित्सा-कानूनी परीक्षण के लिए भेजा गया था। स्थल योजना में, उन्होंने प्रभु और देशराज के घर के बीच की दूरी नहीं दिखाई थी। पुलिस स्टेशन में अभियुक्तों का कथन अभिलिखित करते समय, उन्होंने अभियुक्तों के शरीर पर कोई चोट नहीं देखी।

अ.सा.-5 राम कृष्ण दुबे, कांस्टेबल मोहरिर ने कहा कि चिक रिपोर्ट उनकी तहरीर थी और उनके द्वारा हस्ताक्षरित थी जिसे प्रथम सूचनादाता राजाराम द्वारा बोली गई थी और उन्हें पढ़कर सुनाई गई थी और उन्होंने इसे प्रदर्श का-1 के रूप में सिद्ध किया था। उन्होंने जी.डी. प्रविष्टि को जी.डी. रपट संख्या 24 दिनांक 06.08.1977 को 16 घंटे पर के रूप में भी सिद्ध किया और इसे प्रदर्श का-5 के रूप में सिद्ध किया। उन्होंने यह भी कहा कि मृतक प्रभु की शव परीक्षण रिपोर्ट की प्राप्ति के बाद, उनके द्वारा मामले को धारा 304 आई.पी.सी. में परिवर्तित किया गया था और इसे जी.डी. प्रविष्टि संख्या 24 दिनांक 10.08.1977 को 20-35 घंटे पर के रूप में सिद्ध किया।

अपनी प्रतिपरीक्षा में, उन्होंने कहा कि उन्होंने राजाराम और अन्य घायलों को उनकी मजरूबी चिट्ठी के साथ अस्पताल भेजा था। सराय अकील अस्पताल से, घायल को जिला अस्पताल बेली भेजा गया था। चन्दन राजाराम के साथ अस्पताल नहीं गया था।

उक्त साक्षी की पुनः परीक्षा की गई और उन्होंने कहा कि दिनांक 06.08.1977 को, चन्दन आया और मजरूबी चिट्ठी उसे दी गई थी लेकिन यह जानकार नहीं थे कि चन्दन की कोई चिकित्सा-कानूनी रिपोर्ट पुलिस स्टेशन पर दी गई थी या नहीं।

अ.सा.-6 डॉ. बी.बी. सिंह, ने प्रथम सूचनादाता और सभी घायलों की चिकित्सकीय जांच की थी। उन्होंने कहा कि दिनांक 06.08.1977 को वे टी.बी. सप्रू अस्पताल में चिकित्सा अधिकारी के रूप में तैनात थे और रात 11:55 बजे प्रभु की चोटों की जांच की और उनके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाईं:

"1. बायीं ओर, माथे पर 1" x 1/4" x त्वचा गहराई का चीरा घाव।
2. चेहरे की दायीं ओर 1½" x 3/4" का घर्षित चोट।
3. छाती के दायीं ओर सामने मध्य में 2" x 1/2" का चोट।
4. छाती के दायीं ओर सामने 3/4" x /4" का घर्षण।
5. चेहरे और बायीं जांघ के ऊपरी भाग पर 4" x 1" का चोट।"

रोगी की स्थिति खराब थी और बेहोश था और अस्पताल में भर्ती किया गया था। उनकी चोटों को अवलोकन के अधीन नहीं रखा गया था और एक्स-रे की सलाह दी गई थी। चोटें संख्या 2 से 5 साधारण थीं और किसी कुंद वस्तु से लगी थीं। अवधि लगभग 1½ दिन की थी और इसे प्रदर्श का-7 के रूप में सिद्ध किया।

उसी तारीख को, उन्होंने रात 11:50 बजे **प्राण** की चोट की जांच की और उनके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

"1. छाती-सामने की दायीं ओर 2" x 1/2" का घर्षित चोट,
2. नाक की पुल पर 1/4" x 1/4" का घर्षण।
3. बायीं ओर माथे पर 1" x 1/2" का घर्षित चोट।
4. बायीं ओर कंधे की पीठ पर 3" x 1½" का चोट।
5. बायीं बांह के पीछे, ऊपरी भाग पर 4" x 1" का घर्षित चोट।
6. बायीं उंगली की नोक पर 1/2" x 1/4" मांसपेशी गहराई का चीरा घाव।"

सभी चोटें साधारण थीं, कुंद हथियार से लगीं, सिवाय चोट संख्या 2 के, जो किसी कठोर वस्तु से घर्षण से लगी थी। अवधि 1½ दिन की थी और इसे प्रदर्श का-8 के रूप में सिद्ध किया।

उसी दिन, उन्होंने रात 11:55 बजे प्रथम सूचनादाता **राजाराम** की जांच की और उनके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाईं:

अनुवादित

"1. माथे की दायीं ओर 1" x 1/2" हड्डी गहराई का चीरा घाव। 2. दायीं ओर सिर पर, दायें कान से 4" ऊपर 1 ½" x1/2" x खोपड़ी गहराई का चीरा घाव। 3. दायीं ओर जांघ ऊपरी और बाहरी भाग पर 1" x 1/2" का घर्षित चोट।"

सभी चोटें साधारण थीं जो लाठी जैसे कुंद हथियार से लगीं। अवधि 1½ दिन की थी और इसे प्रदर्श का-9 के रूप में सिद्ध किया। उन्होंने आगे कहा कि सभी तीन घायलों को दिनांक 05.08.1977 को लगभग 4:00 बजे अपराह्न चोटें आई थीं।

अपनी प्रतिपरीक्षा में, उन्होंने कहा कि 1½ दिन का मतलब 36 घंटे है। अवधि किसी भी तरफ 4-6 घंटे भिन्न हो सकती है।

अ.सा.-7 आर.आर. वर्मा, ने कहा कि वे थाना कैंट में द्वितीय अधिकारी के रूप में तैनात थे और टी.बी. सप्रू अस्पताल से प्रभु की मृत्यु के बारे में सूचना प्राप्त होने के बाद, वे अस्पताल पहुंचे और जांच रिपोर्ट तैयार की जो उनकी हस्तलेखन और हस्ताक्षर में थी और इसे प्रदर्श का-10 के रूप में सिद्ध किया। उन्होंने चालान नाश प्रदर्श का-11, फोटो नाश प्रदर्श का-12, शव परीक्षण के माध्यम से सी.एम.ओ. को रिपोर्ट, प्रदर्श -13 को भी सिद्ध किया जिसे उन्होंने सील किया और कांस्टेबल 1046 अल्ताफ अली और 538 ओम प्रकाश को अग्रेषित किया।

<u>धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन अभियुक्तों की परीक्षा</u>

6. अभियुक्त अपीलार्थियों ने धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन अभिलिखित अपने कथन में स्वीकार किया कि उन्होंने निजी प्रतिरक्षा के अपने अधिकार के प्रयोग में मृतक पर हमला किया था। उन्होंने कहा कि वे अपने घर के सामने बैठे हुक्का का आनंद ले रहे थे, तब प्राण और उसके भाई उनके दरवाजों पर लाठियों से लैस होकर आए और देशराज पर हमला किया। देशराज को बचाने के लिए, अन्य अभियुक्त/अपीलार्थियों ने हस्तक्षेप किया और निजी प्रतिरक्षा के अपने अधिकार के प्रयोग में प्रथम सूचनादाता और उसके भाइयों पर हमला किया जिसमें प्राण और प्रभु को चोटें आईं। उन्होंने अपनी चोटों की भी जांच करवाई।

<u>प्रतिरक्षा साक्षी</u>

7. अपनी प्रतिरक्षा के समर्थन में, अभियुक्त अपीलार्थियों ने प्र.सा.1 के रूप में डॉ. एस.पी. शर्मा, सर्जन, मोती लाल नेहरा, अस्पताल इलाहाबाद को प्रस्तुत और परीक्षित किया, जिन्होंने कहा कि दिनांक 10.08.1977 को, वे मोती लाल नेहरू अस्पताल, इलाहाबाद में आपातकालीन ड्यूटी पर डॉक्टर के रूप में तैनात थे। उक्त तारीख को, लगभग शाम 7:15 बजे, उन्होंने देशराज, कल्लू, लखन, कलेश्वर की चोटों की जांच की। **देशराज** के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

"1. नाक की जड़ से 3½" ऊपर ललाट की हड्डी पर 3" x 1/4" खोपड़ी गहराई का चीरा घाव। घाव में मवाद पाया गया।

2. दायें कान से 3" ऊपर दायीं पार्श्विका हड्डी पर 1½" x 1/4" x खोपड़ी गहराई का चीरा घाव। मवाद उपस्थित था।
3. बायें वर्ष से 4" ऊपर बायीं पार्श्विका हड्डी पर 2½" x 1/4" x खोपड़ी गहराई का चीरा घाव। मवाद उपस्थित था।
4. दायें निचले पैर के मध्य पक्ष पर मध्य मैलियोलस से 2½" ऊपर 1/2" x 1/4" x मांसपेशी गहराई का चीरा घाव।
5. टखने के चारों ओर आघातजन्य सूजन भी उपस्थित थी। मवाद उपस्थित था।
6. दायें निचले अग्रबाहु पर आघातजन्य सूजन के साथ काले रंग का 3" x 1" का चोट।
7. इसके शीर्ष पर दायें कंधे पर 1/2" x 1/8" का घर्षित चोट। पपड़ी बन गई थी।
8. घाव के चारों ओर आघातजन्य सूजन के साथ बायीं छोटी उंगली पर 1/2" x 1/4" का चीरा घाव।"

उन्होंने आगे कहा कि टखने के चारों ओर आघातजन्य सूजन भी उपस्थित थी। मवाद उपस्थित था। चोटें पांच दिन पुरानी थीं। चोट संख्या 4, 5 और 7 को एक्स-रे के अधीन अवलोकन के अधीन रखा गया था। शेष साधारण चोटें थीं और कुंद हथियार से लगी थीं।

उसी दिन, उन्होंने शाम लगभग 7:30 बजे **कल्लू** की जांच की और उनके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाईं:

"1. मध्य-रेखा में नाक की जड़ से 4" ऊपर सिर के सामने 1½" x 1/4" x खोपड़ी गहराई का चीरा घाव। मवाद उपस्थित था।
2. बायीं कोहनी-जोड़ के नीचे और पार्श्व में 12" नीचे 1/2" x 1/4" का घर्षण। पपड़ी बन गई थी।"

उन्होंने चोटों को प्रदर्श ख-2 के रूप में सिद्ध किया, जो उनकी अपनी हस्तलेखन और हस्ताक्षर में था।

उसी दिन, उन्होंने शाम 7:45 बजे **लखन** की चोटों की जांच की, उन्होंने लखन की जांच की और उनके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाईं:

"1. कोहनी-जोड़ के 4" नीचे इसके पार्श्व पक्ष में दायीं मध्य अग्रबाहु पर 2" x 1/8" का पपड़ीदार घर्षण।

2. पूर्वकाल श्रेष्ठ इलियाक स्पाइन के 4" नीचे बायीं जांघ के पार्श्व पक्ष पर 1" x 1/2" का पपड़ीदार घर्षण।"

उक्त चोटों को प्रदर्श ख-3 के रूप में सिद्ध किया गया, जो उनकी अपनी हस्तलेखन और हस्ताक्षर में तैयार किया गया था।

अनुवादित

लगभग शाम 7:50 बजे, उन्होंने **कलेश्वर** की चोटों की जांच की और उनके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाईं:

"1. बायें कान से 5" ऊपर सिर के शीर्ष पर 1½" x 1/8" x खोपड़ी गहराई का चीरा घाव। घाव के दोनों सिरों पर पपड़ी के साथ मवाद उपस्थित था।
2. छाती के सामने मेम्ब्रियम स्टेरिम के ठीक नीचे 2" x 1/2" का पपड़ीदार घर्षण।"

चोटें पांच दिन पुरानी थीं, प्रकृति में साधारण और कुंद हथियार से लगी थीं जिसे प्रदर्श ख-4 के रूप में सिद्ध किया गया और उनकी अपनी हस्तलेखन और हस्ताक्षर में तैयार किया गया था।

सभी चोटें दिनांक 05.08.1977 को लगभग शाम 5-6:00 बजे लगीं। अपनी प्रतिपरीक्षा में, उन्होंने कहा कि घायल कोई मजरूबी चिट्ठी नहीं लाए और न ही कोई रिपोर्ट थी। वे याद नहीं कर सके कि चिकित्सा-कानूनी परीक्षण के बाद, उन्होंने पुलिस स्टेशन को सूचित किया था या नहीं। यद्यपि देशराज को एक्स-रे की सलाह दी गई थी लेकिन यह जानकार नहीं है कि एक्स-रे किया गया था या नहीं। गिरने के बाद देशराज को चोट संख्या 1, 2 और 3 लगने की न्यूनतम संभावना है। उन्होंने चोटों की स्थिति को देखने के बाद पांच दिन की अवधि का उल्लेख किया न कि घायल के कथन पर। देशराज की चोट संख्या 1, 2 और 3 में कोई सूजन नहीं थी लेकिन चोट संख्या 4 में कोई सूजन नहीं थी। यह कहना गलत है कि घायलों को कोई चोट नहीं लगी और गढ़ी गई थीं।

<u>अभियोजन की ओर से प्रस्तुतियां</u>

8. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अभियोजन ने अपने मामले को उचित संदेह से परे सिद्ध किया है। घटना की तारीख, समय, स्थान और तरीके को अभियोजन साक्षियों द्वारा सिद्ध किया गया है। अ.सा.-1 राजाराम और अ.सा.-2 प्राण जो घटना के घायल प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं, जिन्होंने अपनी गवाहियों में, कहा है कि मृतक प्रभु पर अपीलार्थियों द्वारा लाठियों के वारों से गंभीर रूप से हमला किया गया था, जिसकी बाद में, दिनांक 09.08.1977 को मृत्यु हो गई। घायल प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं जिन्होंने अभियोजन मामले का समर्थन किया है और घटना की चिकित्सा-कानूनी रिपोर्टों के साथ भी पुष्टि की गई है। अभियोजन ने एफ.आई.आर. दर्ज करने में देरी की व्याख्या भी की है। अ.सा.-3 डॉ. वी.बी. सहाय ने मृतक प्रभु की शव परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श का-2) को सिद्ध किया था जो उनकी हस्तलेखन में थी और अपनी मुख्य परीक्षा में कहा कि मरणोपरांत पूर्व चोटें लाठी से लगी हो सकती थीं, जो मृत्यु कारित करने के लिए प्रकृति के सामान्य क्रम में पर्याप्त थीं। अ.सा.-4 श्री आर.पी. मिश्रा, जो विवेचना अधिकारी थे, ने स्थल योजना (प्रदर्श का-3) और आरोप पत्र (प्रदर्श का-4) को सिद्ध किया था। अ.सा.-5 राम किशन दुबे, कांस्टेबल मोहररिर प्रथम सूचना रिपोर्ट के लेखक थे और दिनांक 06.08.1977 और 10.08.1977 को धारा 308 आई.पी.सी. से धारा 304 आई.पी.सी. में मामले के रूपांतरण के बारे में इसकी जी.डी. प्रविष्टि को सिद्ध किया। अ.सा.-6 डॉ. बी.बी. सिंह ने प्रभु, प्राण और राजाराम की चोट रिपोर्ट को क्रमशः प्रदर्श का-7, का-8 और का-9 के रूप में

अनुवादित

सिद्ध किया था। अ.सा.-7 आर.आर. वर्मा ने पंचायतनामा (प्रदर्श का-10), चालान नाश (प्रदर्श का-11), फोटो नाश (प्रदर्श का-12) और सी.एम.ओ. की रिपोर्ट (प्रदर्श का-13) को सिद्ध किया था।

प्रतिरक्षा की ओर से प्रस्तुतियां

9. अपनी प्रतिरक्षा में, जीवित अपीलार्थियों के लिए विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अभियोजन घटना की उत्पत्ति को स्थापित करने में विफल रहा है, इसलिए, अपीलार्थी संदेह के लाभ के हकदार हैं और उन्हें बरी किया जाना चाहिए। विचारण न्यायालय ने अपीलार्थियों को दोषसिद्ध करने में घोर रूप से त्रुटि की है। यह आगे प्रस्तुत किया गया कि यद्यपि अभियुक्तों ने चोटें पहुंचाई थीं लेकिन यह उनके निजी प्रतिरक्षा के अधिकार के प्रयोग में लगाई गई थीं। अपीलार्थियों को कोई विशिष्ट भूमिका आरोपित नहीं की गई थी। सभी अभियुक्त अपीलार्थियों को भी उसी घटना में चोटें आई थीं, जिनकी अभियोजन द्वारा बिल्कुल भी व्याख्या नहीं की गई।

सर्वप्रथम, यह अभिकथन किया गया है कि घटना की उत्पत्ति सिद्ध नहीं हुई है। दूसरे, यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि घटना अभियुक्त व्यक्तियों के घर के सामने हुई, इसलिए, यह न केवल निजी प्रतिरक्षा के अधिकार के प्रयोग के बारे में अभियुक्तों के पक्ष का समर्थन करता है बल्कि अभियोजन मामले में संदेह भी पैदा करता है क्योंकि अ.सा.1 ने अपनी गवाही में कहा था कि अभियुक्त का घर रास्ते पर था जबकि उनका चचेरा भाई प्राण विक्रमा तालाब से लौट रहा था। तीसरे, अभियुक्तों को लगी गंभीर चोटों की अभियोजन द्वारा व्याख्या नहीं की गई है। यह अभियोजन मामले में संदेह डालता है विशेष रूप से जब केवल दो तथ्य साक्षी हैं जो हितबद्ध साक्षी भी हैं। चौथे, घटना की पुष्टि करने के लिए कोई स्वतंत्र साक्षी नहीं हैं। पांचवें, विवेचना अधिकारी का कथन सूचनादाता पक्ष द्वारा आक्रमण की पुष्टि करता है। अ.सा.-1 दावा करता है कि चन्दन घायल हुआ था और उसे अस्पताल ले जाया गया था, हालांकि लेखक ने उसके दावे का खंडन किया है। यह प्रथम सूचनादाता के अतिरंजित संस्करण को उजागर करता है। एफ.आई.आर. दर्ज करने में लगभग 24 घंटे की देरी है। अंत में, अभियुक्त व्यक्तियों की चोटों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता क्योंकि वे गंभीर चोटें हैं और सभी अभियुक्तों की जांच सरकारी डॉक्टर प्र.सा.1 द्वारा की गई थी, जो एक सरकारी अस्पताल, मोती लाल नेहरू अस्पताल, इलाहाबाद में आपातकालीन ड्यूटी पर थे, जिन्होंने राय दी कि लगी सभी चोटें पांच दिन पुरानी थीं, प्रकृति में साधारण और कुंद वस्तु से लगी थीं।

विश्लेषण और निष्कर्ष

10. पक्षकारों के लिए विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और उठाई गई प्रस्तुतियों के बाद, यह प्रकट होता है कि पक्षकारों के बीच पारिवारिक झगड़ा विद्यमान था। यद्यपि, कई व्यक्ति घायल हुए थे और प्रभु की मृत्यु हो गई थी लेकिन चूंकि अभियोजन ने घटना की उत्पत्ति को सिद्ध नहीं किया था, जो अभियोजन मामले को संदिग्ध बनाता है।

अ.सा.-1 और अ.सा.-2 ने अपनी गवाही में कहा कि भोजन और पेय का एक पुराना पारिवारिक झगड़ा विद्यमान था और पक्षकारों के बीच कोई अन्य विवाद नहीं था। जब अ.सा.-2, प्रथम सूचनादाता का चचेरा भाई

प्राण, अपना शरीर धोने के बाद विक्रमा तालाब से लौट रहा था और देशराज के घर के सामने, कैथा के पेड़ के पास पहुंचा, तो उसे सभी चार अभियुक्त मिले, जो लाठियों से लैस थे, जिन्होंने उस पर हमला करना शुरू कर दिया। उक्त साक्षी कथित घटना के पीछे का कोई कारण और इसके पीछे का वास्तविक उद्देश्य क्या था, यह प्रकट नहीं कर सका। अभियोजन साक्षियों ने अपनी प्रतिपरीक्षा में कहा था कि उन्होंने अभियुक्त देशराज, कल्लू, लखन और कलेश्वर के शरीर पर कोई चोट नहीं देखी और यह कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया कि अभियुक्तों को चोटें कैसे लगीं।

जहाँ तक निजी प्रतिरक्षा के अधिकार के प्रयोग का संबंध है, यह अभियोजन का स्वीकृत मामला है कि जब प्रथम सूचनादाता का चचेरा भाई प्राण, विक्रमा तालाब से लौट रहा था और देशराज के घर के सामने पहुंचा, तब घटना हुई। अपीलार्थी अभियुक्त अपने घर के सामने बैठे थे और हुक्का का आनंद ले रहे थे। घटना का स्थान अभियुक्तों के घर के सामने था। वे आशंकित हो गए और अपने आप को बचाने के लिए, उन्होंने निजी प्रतिरक्षा के अपने अधिकार के प्रयोग में अपनी लाठियों से प्राण पर हमला किया।

अभिलेख के अवलोकन से, यह भी प्रकट होता है कि एक दिन की देरी के बाद एफ.आई.आर. दर्ज की गई थी, जिसे अभियोजन ने अपनी एफ.आई.आर. में यह समझाया था कि चूंकि वे अभियुक्तों से बहुत डरे हुए थे, इसलिए, वे उसी तारीख को एफ.आई.आर. दर्ज कराने के लिए पुलिस स्टेशन नहीं गए।

यह भी देखा गया है कि यद्यपि अभियुक्तों को उनके शरीर पर चोटें आई थीं लेकिन उनके द्वारा कोई प्रति एफ.आई.आर. दर्ज नहीं की गई थी। उन्होंने घटना के पांच दिन बाद अपनी चिकित्सकीय जांच करवाई। यह भी प्रकट होता है कि सभी घायलों की चिकित्सकीय जांच सरकारी डॉक्टर, डॉ. एस.पी. शर्मा द्वारा की गई थी, जिन्हें प्र.सा.-1 के रूप में प्रस्तुत किया गया था और देशराज, कल्लू, लखन और कलेश्वर की चोट रिपोर्टों को सिद्ध किया। इस प्रकार, उक्त चोट रिपोर्टें न तो गढ़ी गई थीं और न ही एक जाली थीं। डॉक्टर ने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा कि घायल कोई मजरूबी चिट्ठी नहीं लाए और न ही कोई लिखित रिपोर्ट। वे याद नहीं कर सके कि घायलों की जांच करने के बाद, उन्होंने पुलिस स्टेशन को सूचित किया था या नहीं। यद्यपि देशराज को एक्स-रे की सलाह दी गई थी लेकिन यह जानकार नहीं थे कि एक्स-रे किया गया था या नहीं। देशराज की चोट संख्या 1, 2 और 3 गिरने से नहीं लग सकतीं। उन्होंने चोटों की स्थिति को देखने के बाद पांच दिन की अवधि का उल्लेख किया था। उन्होंने स्पष्ट रूप से इनकार किया कि चोटें गढ़ी गई थीं या एक जाली थीं।

अभियोजन ने कोई स्वतंत्र साक्षी प्रस्तुत नहीं किया और केवल दो तथ्य साक्षियों, राजाराम अ.सा.-1 और प्राण अ.सा.-2 की परीक्षा की, जो निकट संबंधी थे और हितबद्ध साक्षी थे, जो अभियोजन कहानी पर भी संदेह करता है। यद्यपि अभियोजन संस्करण के अनुसार, चन्दन को भी चोटें आई थीं और उसे अस्पताल ले जाया गया था लेकिन इसकी पुष्टि करने के लिए कोई चोट रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई। अभियुक्त व्यक्तियों को लगी चोटों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता क्योंकि वे गंभीर चोटें थीं और यहां तक कि सरकारी डॉक्टर, प्र.सा.-1 द्वारा भी साक्ष्यित किए गए थे, जो एक सरकारी अस्पताल, अर्थात्, मोती लाल नेहरू अस्पताल, इलाहाबाद में आपातकालीन ड्यूटी पर थे।

अभिलेख पर रखी गई सामग्री और अग्रिम प्रस्तुतियों पर विचार करने के बाद, यह धारणा देता है कि, भले ही, अपीलार्थियों के विरुद्ध आरोप सत्य के रूप में स्वीकार किए जाएं, वे अभी भी निजी प्रतिरक्षा के अधिकार के अभिवचन पर, बरी होने के हकदार हैं। यह अभियोजन का स्वीकृत मामला है कि प्राण अपना शरीर धोने के

बाद विक्रमा तालाब से लौट रहा था और जब वह अपीलार्थियों के घर के सामने पहुंचा, तो घटना हुई। इसलिए, यह अभियोजन था जो आक्रामक था। चूंकि अपीलार्थियों ने देशराज पर हमला होते देखा, इसलिए उन्होंने निजी प्रतिरक्षा के अपने अधिकार के प्रयोग में प्राण और सभी अन्य जिन्होंने हस्तक्षेप किया, पर हमला किया। यद्यपि, विचारण न्यायालय ने प्रतिरक्षा को नोटिस किया था लेकिन उसी पर चर्चा करने में विफल रहा। न तो प्रतिरक्षा साक्षियों और न ही प्रतिरक्षा प्रदर्शों और लगी चोटों पर विचारण न्यायालय द्वारा टिप्पणी की गई है। अभियोजन साक्षियों ने, अपनी गवाही में, प्रतिरक्षा द्वारा लगी चोटों के बारे में कुछ भी प्रकट नहीं किया है और न ही घटना की उत्पत्ति को प्रकट किया है। यद्यपि उन्होंने घटना के बारे में कहा था लेकिन इन पहलुओं पर पूरी तरह से चुप रहे। प्रतिरक्षा ने अपनी चोटों को सिद्ध किया है जो उसी घटना में लगीं। इस प्रकार, अभियोजन ने घटना की उत्पत्ति और उत्पत्ति को दबाया है और अभियुक्त के व्यक्ति पर चोटों की व्याख्या करने में विफल रहा है, इसलिए, किसी स्पष्टीकरण की पेशकश नहीं करने के लिए अभियोजन के विरुद्ध एक प्रतिकूल अनुमान लगाया जा सकता है। अभियोजन ने घटना का सच्चा संस्करण अभिलेख पर नहीं लाया है, इसलिए, मामले की विफलता के लिए स्वयं को पूर्ण रूप से दोषी ठहराया जाना है।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने **राजस्थान राज्य बनाम माधो और अन्य, एआईआर 1991 एससी 1065** में, यह अवलोकित किया था कि:

"यदि अभियोजन साक्षी वास्तविकता से दूर भागते हैं और यहाँ प्रत्यर्थियों को लगी चोटों की व्याख्या नहीं करते हैं, तो यह अभियोजन मामले की उत्पत्ति पर संदेह डालता है क्योंकि साक्ष्य दर्शाता है कि ये चोटें उसी घटना के दौरान लगी थीं। यह धारणा देता है कि साक्षी घटना के कुछ भाग को दबा रहे हैं।"

माननीय शीर्ष न्यायालय के **लक्ष्मी सिंह और अन्य बनाम बिहार राज्य, (1976) 4 एससीसी 349** में अवलोकनों का संदर्भ देते हुए, जिसमें यह धारित किया गया है कि:

"12. ..... हमें लगता है कि एक हत्या के मामले में, घटना के समय या झगड़े के दौरान अभियुक्तों द्वारा लगी चोटों की गैर-व्याख्या एक बहुत महत्वपूर्ण परिस्थिति है जिससे न्यायालय निम्नलिखित अनुमान लगा सकता है:

"(1) कि अभियोजन ने घटना की उत्पत्ति और उत्पत्ति को दबाया है और इस प्रकार सच्चा संस्करण प्रस्तुत नहीं किया है;

(2) कि साक्षी जो अभियुक्त के व्यक्ति पर चोटों की उपस्थिति से इनकार करते हैं, एक सबसे सामग्रिक बिंदु पर झूठ बोल रहे हैं और इसलिए, उनका साक्ष्य अविश्वसनीय है;

(3) कि यदि एक प्रतिरक्षा संस्करण है जो अभियुक्त के व्यक्ति पर चोटों की व्याख्या करता है, तो यह संभावित प्रतीत होता है ताकि अभियोजन मामले पर संदेह डाला जा सके।"

हाल ही में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **नन्द लाल और अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2023)2 एससीआर 276** में, उपरोक्त संदर्भित अवलोकनों को दोहराते हुए, निम्नवत् धारित किया है:

"अभियुक्त के व्यक्ति पर चोटों की व्याख्या करने के लिए अभियोजन की ओर से चूक बहुत अधिक महत्व ग्रहण करती है जहाँ साक्ष्य हितबद्ध या विरोधी साक्षियों से मिलकर बनता है या जहाँ प्रतिरक्षा एक संस्करण देती है जो अभियोजन के साथ असंभाव्यता की प्रतिस्पर्धा करता है, विशेष रूप से जब कुछ साक्षियों ने यह कहते हुए झूठ बोला है कि उन्होंने अभियुक्त के व्यक्ति पर कोई चोट नहीं देखी"

यह आगे धारित किया गया है कि सिद्ध पूर्व शत्रुता के मामले में, झूठे अभियोजन की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। यह अभिकथन किया गया है कि जहाँ तक एफ.आई.आर. के पंजीकरण में देरी का संबंध है, एफ.आई.आर. की तत्काल दर्ज व्यक्तियों की संख्या के अत्यधिक अभियोजन के संबंध में संदेह को दूर करती है, विशेष रूप से, जब मामले में दो समूहों के बीच लड़ाई शामिल थी। जब पक्षकार आपस में भिड़ रहे हों, तो एफ.आई.आर. की तत्काल दर्ज, अभियोजन मामले को विश्वसनीयता प्रदान करती है।

इस प्रकार अभियुक्तों के व्यक्तियों पर चोटों की गैर-व्याख्या, एक संदेह पैदा करती है, कि क्या, अभियोजन ने घटना की वास्तविक उत्पत्ति को अभिलेख पर लाया है। ऐसी गैर-व्याख्या, हालांकि, एक कारक है जिसे अभियोजन साक्षियों की सत्यता का आंकलन करने में ध्यान में रखा जाना है, और न्यायालय को साक्ष्य की सावधानी से जांच करनी होती है। प्रत्येक मामला अपनी विशेषताएं प्रस्तुत करता है। कुछ मामलों में, अभियोजन की अपनी कहानी की चोटों के लिए लेखा-जोखा देने में विफलता, जबकि अन्य में इसका अभियोजन मामले पर बहुत कम या कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं हो सकता है। यह भी, एक दिए गए मामले में, निजी प्रतिरक्षा के अभिवचन को मजबूत कर सकता है, कि यह पाया जाता है कि अभियुक्त को उसी लेन-देन में चोटें आई थीं जिसमें शिकायतकर्ता पक्ष पर हमला किया गया था, निजी प्रतिरक्षा का अभिवचन प्रथमदृष्ट्या स्थापित हो जाएगा और भार अभियोजन पर स्थानांतरित हो जाएगा कि वे चोटें अभियुक्त को शिकायतकर्ता पक्ष द्वारा आत्म-प्रतिरक्षा में लगाई गई थीं, यह सिद्ध करने के लिए।

<u>निष्कर्ष</u>

11. इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विचारण न्यायालय ने अभियोजन मामले में प्रकट होने वाली कमी या त्रुटि पर उचित विचार नहीं दिया है और सही परिप्रेक्ष्य में उनकी गवाही की सावधानीपूर्वक जांच किए बिना अ.सा.-1 और अ.सा.-2 की गवाही पर भरोसा किया है। उत्पत्ति और घटना की उत्पत्ति की व्याख्या करने में अभियोजन की विफलता का प्रभाव है कि अभियोजन घटना के सही संस्करण को अभिलेख पर लाने में विफल रहा है। उत्पत्ति और घटनाओं के बारे में अभियोजन की असंभाव्यता और जिस तरीके से घटनाएं सामने आईं, ने अभियोजन मामले पर एक संदेह पैदा किया, जिसकी अवर न्यायालय द्वारा जांच नहीं की गई है। प्रतिरक्षा ने स्पष्ट रूप से अपने संस्करण को संभावित बनाया है, जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है। विचारण न्यायालय के निष्कर्ष कि अभियोजन ने उचित संदेह से परे अपना मामला स्थापित किया था, इसलिए, पोषणीय नहीं हो सकते। अभियुक्त अपीलार्थी स्पष्ट रूप से मामले में संदेह के लाभ के हकदार हैं।

12. उपर्युक्त कारणों और ऊपर आयोजित चर्चा के लिए, वर्तमान अपील सफल होती है और **अनुज्ञात** की जाती है।

13. विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश IV, इलाहाबाद द्वारा सत्र विचारण संख्या 162/1980 में दिनांक 02.11.1982 को पारित दोषसिद्धि का निर्णय और आदेश, एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है।

14. अपीलार्थी संख्या 1 लखन और अपीलार्थी संख्या 2 देशराज को मुक्त किया जाएगा, यदि वे जेल में हैं और यदि, वे जमानत पर हैं, तो उनके जमानत बांड दं.प्र.सं. की धारा 437-ए के अनुपालन के अधीन निर्वहन किए जाएंगे, बशर्ते कि वे किसी अन्य मामले में वांछित नहीं हैं।

15. इस आदेश की प्रति रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा आवश्यक कार्यवाही के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रयागराज को भेजी जाए।

16. विद्वान एमिकस क्यूरी को नियमों के अनुसार उनका पारिश्रमिक/शुल्क का भुगतान किया जाएगा।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 887

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 22.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह

प्रथम अपील संख्या 49 सन् 2025

मीनू राजवंशी ...अपीलार्थी

बनाम

बृजेश ...प्रत्यर्थी

अपीलार्थी के अधिवक्ता: ऋषि राज, वाणी श्रीवास्तव, वरुण सिंह

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता:

सिविल विधि - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश VI, VIII, नियम 6 A, 17, 151, - हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 - धारा 13 - भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धाराएं 498-A, 504 एवं 506 - दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 - धाराएं 3 एवं 4 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 227 - प्रथम अपील - अपीलार्थी पत्नी द्वारा प्राथमिकृत की गई है - पारिवारिक न्यायालय के उस आदेश को चुनौती दी गई है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी के संशोधन आवेदन को अनुमति प्रदान की गई - अपीलार्थी का विवाह वर्ष 2011 में सम्पन्न हुआ - वैवाहिक विवाद - दहेज की मांग के दबाव तथा अन्य विवश करने वाली परिस्थितियों के कारण वह अपने पति के घर से चली गई - पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध दाण्डिक कार्यवाही संस्थित की गई - पत्नी द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अन्तर्गत विवाह-विच्छेद हेतु वाद संस्थित - प्रत्यर्थी पति ने विभिन्न प्रकार के आवेदनों द्वारा कालापहरण की युक्तियाँ अपनाईं - पारिवारिक न्यायालय ने उन्हें क्रमशः अस्वीकृत किया - अपीलार्थी पत्नी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष वाद के शीघ्र निस्तारण हेतु अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत याचिका संस्थित - चार माह की अवधि में वाद का निस्तारण करने के निर्देश के साथ याचिका का निस्तारण किया गया - प्रत्यर्थी पति ने पुनः वाद में प्रकीर्ण आवेदन दाखिल किए - अस्वीकृत - प्रथम अपील - खारिज - पति वहीं नहीं रुका - पति ने सी.पी.सी. के आदेश VI नियम 17 सपठित धारा 151 के अन्तर्गत संशोधन आवेदन दाखिल किया - अभिवचनों तथा प्रार्थना खण्ड में संशोधन चाहा, दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना की प्रार्थना सहित - आपत्ति - अनुमत - वर्तमान अपील - न्यायालय ने पाया कि संशोधन आवेदन दस वर्ष पश्चात् तथा अंतिम सुनवाई से ठीक पूर्व, और साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर बंद हो जाने के पश्चात् दाखिल किया गया, केवल कार्यवाही में विलम्ब करने के उद्देश्य से - साक्षी-तलबी के अनेक आवेदनों की पूर्व अस्वीकृति तथा मामले को

अनुवादित

चार माह में निष्पादित करने के उच्च न्यायालय के निर्देश के बावजूद, पारिवारिक न्यायालय ने उचित न्यायिक विवेक के बिना संशोधन को अनुमति दी - अभिनिर्धारित, 'नीताबेन दिनेश पटेल बनाम दिनेश दहयाभाई पटेल' के उद्धृत प्रकरण के आलोक में, संशोधन आवेदन पर पारित आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं हो सकता और उसे अपास्त किया जाना उत्तरदायी है - परिणामतः, अपील स्वीकार की जाती है - पारिवारिक न्यायालय को निर्देशित किया जाता है कि वह बिना अनावश्यक स्थगन के प्रतिदिन के आधार पर दो माह के भीतर मामले का निस्तारण करे। (पैरा - 13, 15, 16, 17, 19)

अपील स्वीकृत। (E-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. एम. रेवन्ना बनाम अंजनम्मा (मृत) विधिक प्रतिनिधि एवं अन्य; (2019) 4 SCC 332।
2. नीताबेन दिनेश पटेल बनाम दिनेश दहयाभाई पटेल (सिविल अपील संख्या 5901-5902, 2021)।
3. जे. सैमुएल एवं अन्य बनाम गट्टू महेश एवं अन्य; (2012) 2 SCC 300।

(माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. परिवार न्यायालय अधिनियम, 1986 की धारा 19 (1) के अन्तर्गत यह प्रथम अपील, विद्वान अपर प्रधान न्यायाधीश-6, पारिवारिक न्यायालय, लखनऊ द्वारा मूल वाद संख्या 2977, 2014 (श्रीमती मीनू राजवंशी बनाम बृजेश) में, जो हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (जिसे इसके पश्चात् अधिनियम 1955 के रूप में संदर्भित किया जाएगा) की धारा 13 के अन्तर्गत दाखिल था, दिनांक 20.2.2025 को पारित उस आदेश के विरुद्ध प्राथमिकृत की गई है, जिसके द्वारा विद्वान पारिवारिक न्यायालय ने प्रत्यर्थी द्वारा दाखिल संशोधन आवेदन को अनुमति प्रदान की।

2. अपीलार्थी के अनुसार संक्षिप्त तथ्य यह है कि दिनांक 1.5.2011 को लखनऊ में हिन्दू रीति-रिवाज एवं विधियों के अनुसार अपीलार्थी का विवाह प्रत्यर्थी के साथ सम्पन्न हुआ। अपीलार्थी अपने पति के घर गई और अपने वैवाहिक दायित्वों का निर्वहन किया, किन्तु उन्होंने दहेज में कार एवं नकद राशि की मांग की, इसलिए दहेज की मांग के दबाव तथा अन्य विवश करने वाली परिस्थितियों के कारण अपीलार्थी ने दिनांक 31.12.2012 को प्रत्यर्थी का घर छोड़ दिया। दिनांक 18.4.2013 को अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी एवं उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध थाना मडियाँव, जिला-लखनऊ में आई.पी.सी. की धाराएं 498-A, 504, 506 तथा डी.पी. एक्ट की धारा 3/4 के अन्तर्गत मुकदमा अपराध संख्या 171, 2013 में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई। अन्वेषण के पश्चात् आरोप-पत्र दाखिल किया गया तथा सम्बन्धित न्यायालय ने दिनांक 23.12.2013 को मामले में संज्ञान लिया।

3. चूँकि दोनों पक्षकार एक वर्ष से अधिक समय से पृथक्-पृथक् रह रहे थे, इसलिए दिनांक 5.11.2014 को हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अन्तर्गत मूल वाद संख्या 2977, 2014 (श्रीमती मीनू राजवंशी बनाम बृजेश) में विवाह-विच्छेद हेतु वाद संस्थित किया गया। उक्त वाद में कालापहरण की युक्तियाँ अपनाते हुए प्रत्यर्थी ने विभिन्न प्रकार के आवेदन दाखिल किए और उसी क्रम में उसने साक्षियों - दीपक कुमार राजवंशी, ज्योति राजवंशी और श्रीमती पूजा राज को तलब किए जाने हेतु आवेदन दाखिल किया, जिसे पारिवारिक न्यायालय ने दिनांक 29.8.2023 को अस्वीकृत कर दिया। तत्पश्चात् प्रत्यर्थी ने साक्षियों - श्रीमती पूजा और श्रीमती पारुल को तलब किए जाने हेतु भी आवेदन दाखिल किया, जिसे भी पारिवारिक न्यायालय ने क्रमशः दिनांक 16.5.2024 और 23.8.2024 को अस्वीकृत कर दिया।

4. प्रत्यर्थी द्वारा अपनाई जा रही कालापहरण की युक्तियों से व्यथित होकर अपीलार्थी ने इस न्यायालय के समक्ष भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत याचिका संख्या 4516, 2024 में निर्धारित अवधि के भीतर अपने वाद का निस्तारण कराने का निर्देश दिए जाने की प्रार्थना की। उक्त याचिका का निस्तारण इस न्यायालय द्वारा दिनांक 21.9.2024 के आदेश द्वारा यह निर्देश देते हुए किया गया कि अपीलार्थी के वाद का निस्तारण, इस आदेश की प्रमाणित प्रति कार्यवाही के अभिलेख पर प्रस्तुत किए जाने की तिथि से चार माह की अवधि के भीतर किया जाए। तत्पश्चात्, प्रत्यर्थी ने पुनः साक्षी-हिमानी चौधरी को तलब किए जाने हेतु आवेदन दाखिल किया, जिसे पारिवारिक न्यायालय ने दिनांक 4.12.2024 को अस्वीकृत कर दिया। दिनांक 4.12.2024 के उक्त आदेश के विरुद्ध प्रत्यर्थी ने इस न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील दोषपूर्ण संख्या 20, 2025 दाखिल की और इस न्यायालय ने दिनांक 10.2.2025 के आदेश द्वारा उक्त प्रथम अपील को खारिज कर दिया। तथापि, प्रत्यर्थी वहीं नहीं रुका और उसने दिनांक 29.12.2024 को सी.पी.सी. के आदेश VI नियम 17 सपठित धारा 151 के अन्तर्गत संशोधन आवेदन दाखिल किया, जिसमें दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना हेतु अभिवचनों के साथ-साथ प्रार्थना खण्ड में भी संशोधन की माँग की गई, जिस पर अपीलार्थी ने दिनांक 8.1.2025 को आपत्ति दाखिल की। पारिवारिक न्यायालय ने उक्त संशोधन आवेदन को दिनांक 20.2.2025 को अनुमत किया, जो इस अपील में चुनौती के अधीन है।

5. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया है कि प्रत्यर्थी बार-बार एक या दूसरे तरीके से अपीलार्थी द्वारा दाखिल विवाह-विच्छेद याचिका की कार्यवाही में विलम्ब करने का प्रयास कर रहा है, ताकि वह अपना जीवन पुनः प्रारम्भ न कर सके। अपीलार्थी ने इस न्यायालय के समक्ष भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत याचिका संख्या 4516, 2024 दाखिल की, जिसमें दिनांक 21.9.2024 को यह निर्देश दिया गया कि विवाह-विच्छेद याचिका का निस्तारण, आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से चार माह के भीतर किया जाए। इस न्यायालय ने याचिका का निस्तारण करते समय यह अभिलक्षित किया कि प्रत्यर्थी कार्यवाही में विलम्ब करने का प्रयास कर रहा है। सन्दर्भ की सुविधा के लिए, उक्त याचिका में इस न्यायालय द्वारा दिनांक 21.9.2024 को पारित आदेश को नीचे उद्धृत किया जाता है:-

"1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया। पारित किए जा रहे आदेश के दृष्टिगत, विपक्षी पक्षकारों को नोटिस जारी करने की आवश्यकता नहीं है।

2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत यह याचिका, हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अन्तर्गत याचिकाकर्ता द्वारा दाखिल वाद के शीघ्र निस्तारण हेतु सम्बन्धित न्यायालय को निर्देश दिए जाने की प्रार्थना से संस्थित की गई है। यह प्रस्तुत किया गया है कि उक्त कार्यवाही पिछले दस वर्षों से अंतिम निर्णय के बिना विचाराधीन है। विद्वान अधिवक्ता ने सम्बन्धित न्यायालय द्वारा दिनांक 23.08.2024 को पारित आदेश की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, यह बताने के लिए कि सम्बन्धित न्यायालय ने स्वयं यह संकेत दिया है कि प्रतिवादी के असहयोगात्मक रवैये के कारण कार्यवाही के अंतिम निस्तारण में विलम्ब हो रहा है।

3. प्रस्तुत अभ्यावेदनों पर विचार करने एवं आदेश-पत्रक के अवलोकन पर, यह प्रतीत होता है कि सम्बन्धित न्यायालय ने अपने दिनांक 23.08.2024 के आदेश में स्पष्टतः यह उल्लेख किया है कि प्रतिवादी के असहयोगात्मक रवैये के कारण कार्यवाही के अंतिम निस्तारण में विलम्ब हो रहा है, जो लगातार अस्वीकृति के बावजूद बार-बार उसी प्रकृति के आवेदन दाखिल करता रहता है।

4. उक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों के दृष्टिगत, सम्बन्धित न्यायालय, जो कि अपर प्रधान न्यायाधीश (कक्ष संख्या-6), पारिवारिक न्यायालय, लखनऊ है, को निर्देशित किया जाता है कि यदि कोई अन्य विधिक बाधा न हो तो वाद संख्या 2977, 2014 (श्रीमती मीनू राजवंशी बनाम बृजेश) का निस्तारण, इस आदेश की प्रमाणित प्रति कार्यवाही के अभिलेख पर प्रस्तुत किए जाने की तिथि से चार माह की अवधि के भीतर शीघ्रातिशीघ्र किया जाए।

5. इस आदेश का लाभ याचिकाकर्ता को केवल तभी उपलब्ध होगा जब वह कार्यवाही के शीघ्र निस्तारण में सहयोग करे।

*6. उक्त अभिलक्षणों के साथ, याचिका का **निस्तारण किया जाता है**।"*

6. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह प्रस्तुत किया है कि प्रत्यर्थी ने पुनः साक्षी-हिमानी चौधरी को तलब किए जाने हेतु आवेदन दाखिल किया, जिसे पारिवारिक न्यायालय ने दिनांक 4.12.2024 को अस्वीकृत कर दिया। दिनांक 4.12.2024 के उक्त आदेश को प्रत्यर्थी ने इस न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील दोषपूर्ण संख्या 20, 2024 दाखिल करके चुनौती दी, जिसे भी दिनांक 10.2.2025 को वापस लिए जाने के रूप में खारिज कर दिया गया। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह प्रस्तुत किया है कि अभिलेख के मुख पर यह देखा जाना है कि साक्षियों को तलब करने हेतु प्रत्यर्थी द्वारा क्रमशः दाखिल उत्तरोत्तर आवेदनों को पारिवारिक न्यायालय ने दिनांक 29.8.2023, 16.5.2024, 23.8.2024 और 4.12.2024 को अस्वीकृत कर दिया। अतः प्रत्यर्थी के आचरण को इस न्यायालय द्वारा देखा जाना चाहिए क्योंकि वह दस वर्षों से अधिक समय से लंबित

विवाह-विच्छेद कार्यवाही में विलम्ब करने का प्रयास कर रहा है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया है कि प्रत्यर्थी के संशोधन आवेदन को अनुमति प्रदान करते समय, पारिवारिक न्यायालय ने न्यायिक विवेक नहीं लगाया और उसने सी.पी.सी. के आदेश VI नियम 17 के उपबन्धों की भी अनदेखी की, क्योंकि उक्त संशोधन आवेदन वाद के संस्थित होने की तिथि से दस वर्ष पश्चात् तथा इस न्यायालय द्वारा चार माह में मामले का निस्तारण करने का निर्देश दिए जाने के पश्चात् दाखिल किया गया था। सन्दर्भ की सुविधा के लिए, सी.पी.सी. का आदेश VI नियम 17 नीचे उद्धृत किया जाता है:-

"17. अभिवचनों का संशोधन। - न्यायालय, कार्यवाही के किसी भी प्रक्रम पर, किसी भी पक्षकार को अपने अभिवचन को इस प्रकार परिवर्तित या संशोधित करने की अनुमति प्रदान कर सकता है जैसा न्यायसंगत हो, और ऐसे सभी संशोधन किए जाएंगे जो पक्षकारों के बीच विवाद के वास्तविक प्रश्नों के अवधारण के प्रयोजन के लिए आवश्यक हों: परन्तु विचारण प्रारम्भ होने के पश्चात् संशोधन का कोई आवेदन अनुमत नहीं किया जाएगा, जब तक कि न्यायालय इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचता कि यद्यपि सम्यक् परिश्रम के बावजूद, पक्षकार विचारण के प्रारम्भ होने से पूर्व विषय नहीं उठा सका।"

7. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह प्रस्तुत किया है कि संशोधन आवेदन को अनुमति दिए जाने से दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना एवं क्षतिपूर्ति का दावा उत्पन्न हो सकता है, जिनका वाद की दस वर्षों की लंबितता के दौरान प्रत्यर्थी द्वारा कभी अभिवचन नहीं किया गया। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि पारिवारिक न्यायालय ने दिनांक 23.8.2024 के अपने स्वयं के अभिलक्षण, जो अपील में अनुलग्नक-3 के रूप में संलग्न है, की अनदेखी की, जिसमें यह अभिलक्षित किया गया था कि प्रत्यर्थी कार्यवाही में विलम्ब करने का प्रयास कर रहा है। अतः विलम्बित प्रक्रम पर किया गया संशोधन विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि यदि संशोधन अनुमत कर दिया जाए तो नए वाद-हेतु उत्पन्न होंगे जो अपनी अंतिम परिणति के बहुत निकट हैं।

8. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा ***एम. रेवन्ना बनाम अंजनम्मा (मृत) विधिक प्रतिनिधि एवं अन्य; (2019) 4 SCC 332*** के मामले में प्रतिपादित निर्णय पर आश्रय लेते हुए यह प्रस्तुत किया है कि अपीलार्थी का मामला उक्त निर्णय में प्रतिपादित अनुपात द्वारा पूर्णतः आच्छादित है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि विलम्बित प्रक्रम पर संशोधन आवेदन को अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि संशोधन आवेदन को अनुमति देने से निश्चित रूप से मामले की प्रकृति बदल जाएगी। उक्त निर्णय के सुसंगत अनुच्छेद संख्या 7, 8 और 9 को नीचे उद्धृत किया जाता है:-

"7. संशोधन की अनुमति देने से इनकार किया जा सकता है यदि यह पूर्णतः भिन्न, नया और असंगत मामला प्रस्तुत करता है, अथवा वाद के मूल चरित्र को चुनौती देता है। सी.पी.सी. के आदेश VI नियम 7 का परन्तुक व्यावहारिक रूप से विचारण प्रारम्भ होने के पश्चात् अभिवचनों के संशोधन के आवेदन को अनुमत किए जाने से रोकता है, जब तक कि न्यायालय इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचता कि यद्यपि सम्यक् परिश्रम के बावजूद,

पक्षकार विचारण के प्रारम्भ होने से पूर्व विषय नहीं उठा सका। परन्तुक, एक सीमा तक, किसी भी प्रक्रम पर संशोधन की अनुमति देने के निरपेक्ष विवेकाधिकार को सीमित करता है। इसलिए, विचारण प्रारम्भ होने के पश्चात् संशोधन माँगने वाले व्यक्ति पर यह भार है कि वह यह दर्शाए कि यद्यपि सम्यक् परिश्रम के बावजूद, ऐसा संशोधन पहले नहीं माँगा जा सकता था। इसमें कोई विवाद नहीं हो सकता कि संशोधन को अधिकार के रूप में, और सभी परिस्थितियों में नहीं माँगा जा सकता। यद्यपि सामान्यतः मुकदमेबाजी की बहुलता से बचने के लिए अभिवचनों में संशोधन की अनुमति दी जाती है, न्यायालय को यह विचार करने की आवश्यकता है कि संशोधन के लिए आवेदन सदाशयता से किया गया है या दुर्भावना से और क्या संशोधन से दूसरे पक्ष को ऐसी क्षति होती है जिसकी पूर्ति धन के रूप में पर्याप्त रूप से नहीं की जा सकती।

8. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वाद वर्ष 1993 में दाखिल किया गया था और उस समय प्रतिवादी संख्या 4 से 6 को वाद में पक्षकार नहीं बनाया गया था। वादी संख्या 1 से 5 और प्रतिवादी संख्या 1 से 3 ही पक्षकार थे। उन्होंने दिनांक 22.04.1993 को वाद की खारिजी के लिए एक संयुक्त ज्ञापन दाखिल किया था, जो वाद दाखिल किए जाने के एक या दो माह के भीतर था। समझौता याचिका को उच्च न्यायालय ने आर.एफ.ए. संख्या 297/1994 में न्यायोचित रूप से खारिज कर दिया। समझौता याचिका में, आश्चर्यजनक रूप से, यह उल्लेख किया गया था कि वर्ष 1972 में संयुक्त पारिवारिक सम्पतियों का विभाजन मेटस और बाउंड्स द्वारा हो चुका है। यदि विभाजन वास्तव में वर्ष 1972 में हो गया था और पंचायत परिकथ के अनुसार इस पर अमल हुआ था, तो वादी संख्या 1 से 5 ने वर्ष 1993 में विभाजन और पृथक् कब्जे के लिए वाद नहीं दाखिल किया होता। बहरहाल, अभिलेख से यह स्पष्ट है कि वाद को एक या दूसरे बहाने से वादी संख्या 1 से 5 द्वारा लम्बित रखा गया और अन्ततः वाद-पत्र के संशोधन हेतु आवेदन दिनांक 01.09.2008 को दाखिल किया गया। उस समय तक दोनों पक्षों के साक्ष्य अभिलिखित हो चुके थे और मामला विचारण न्यायालय के समक्ष अंतिम सुनवाई हेतु सूचीबद्ध था। यदि वास्तव में संयुक्त पारिवारिक सम्पत्तियों का पूर्व में विभाजन हो गया था, तो कोई भी बात वादी संख्या 1 से 5 को वाद-पत्र के संशोधन हेतु पहले ही आवश्यक आवेदन दाखिल करने से नहीं रोकती थी। इसी प्रकार, कोई भी बात उन्हें वाद-पत्र में ही आवश्यक अभिकथन करने से नहीं रोकती थी, क्योंकि वाद वर्ष 1993 में दाखिल किया गया था। वादी संख्या 1 से 5 के अनुसार भी, उन्हें वर्ष 1993 में ही समझौते के बारे में पता चल गया था। अतः उनके द्वारा यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि जब वाद 1993 में दाखिल किया गया था, तो वे वर्ष 2008 तक संशोधन का आवेदन क्यों नहीं दाखिल कर सके। यद्यपि, जब वादी संख्या 1 से 5 को दिनांक 22.04.1993 को दिनांक 18.05.1972 के विभाजन विलेख (पंचायत परिकथ) की जानकारी हुई, तब भी उन्होंने उचित समय के भीतर वाद-पत्र के संशोधन का आवेदन दाखिल किए बिना चुप रहे। इसके विपरीत, उन्होंने P.W.-1 से विस्तृत प्रतिपरीक्षण किया और P.W.-2 की परीक्षा पूरी होने में पाँच वर्ष से अधिक समय लगाया, और उसके पश्चात् ही दिनांक 01.09.2008 को वाद-पत्र के संशोधन हेतु आवेदन दाखिल किया, तब भी जब वाद अंतिम तर्क के लिए सूचीबद्ध था। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वाद स्वयं विभाजन और पृथक् कब्जे के लिए है। अब, अभिवचनों के संशोधन के आवेदन के माध्यम से, वादी संख्या 1 से 5 यह अभिकथन करना चाहते हैं कि विभाजन वर्ष 1972 में ही हो चुका था और वे वाद को आगे नहीं चलाना चाहते।

इसके विपरीत, वादी संख्या 6/प्रत्यर्थी संख्या 1 इस आधार पर कि विभाजन हुआ ही नहीं था, वाद में विभाजन की कार्यवाही जारी रखना चाहते हैं।

9. मामले के समस्त तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हम इस सुविचारित मत पर हैं कि वाद-पत्र के संशोधन का आवेदन न केवल विलम्बित है, अपितु सदाशयतापूर्ण भी नहीं है, और यदि इसे अनुमत किया जाए तो यह वाद की प्रकृति और चरित्र को बदल देगा। यदि संशोधन के आवेदन को अनुमति प्रदान की जाती है, तो इससे न्याय का विपर्यय होगा, इसमें न्यायालय वादी संख्या 1 से 5 को वाद-पत्र में की गई उनकी स्वीकृति, कि पूर्व में विभाजन नहीं हुआ था, से वापस लेने की अनुमति दे देगा। अतः, इस प्रक्रम पर वाद-पत्र के संशोधन की अनुमति देने से वादी संख्या 6/प्रत्यर्थी संख्या 1 को गम्भीर पूर्वाग्रह होगा।"

9. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी ने स्वयं यह प्रस्तुत किया कि वह अपनी पत्नी/अपीलार्थी के साथ रहना चाहता था किन्तु उसने मना कर दिया और पिछले 10 वर्षों से वह अपने परिवार के सदस्यों के साथ मिलकर अपीलार्थी द्वारा मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जा रहा है, इसलिए दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना की प्रार्थना के सम्बन्ध में उसके संशोधन के आवेदन के साथ-साथ अन्य अभिवचनों को भी अनुमत किया जाए, ताकि वह उस सीमा तक साक्ष्य प्रस्तुत कर सके और सी.पी.सी. के आदेश VIII नियम 6-A के उपबन्ध के दृष्टिगत अपना प्रतिदावा स्थापित कर सके। सी.पी.सी. के आदेश VIII नियम 6-A के उपबन्ध नीचे उद्धृत किए जाते हैं:-

"6-A. प्रतिवादी द्वारा प्रतिदावा - (1) किसी वाद में प्रतिवादी, नियम 6 के अन्तर्गत समायोजन के अभिवचन के अपने अधिकार के अतिरिक्त, वादी के दावे के विरुद्ध प्रतिदावे के रूप में, प्रतिवादी को वादी के विरुद्ध वाद दाखिल किए जाने से पूर्व या पश्चात् किन्तु प्रतिवादी द्वारा अपना प्रतिवाद प्रस्तुत किए जाने से पूर्व या प्रतिवाद प्रस्तुत करने हेतु नियत समयावधि की समाप्ति से पूर्व उपचित वाद-हेतु के सम्बन्ध में कोई अधिकार या दावा स्थापित कर सकता है, चाहे ऐसा प्रतिदावा हर्जाने के दावे की प्रकृति का हो अथवा न हो:
परन्तु ऐसा प्रतिदावा न्यायालय के आर्थिक अधिकार-क्षेत्र की पेकुनियरी सीमाओं से अधिक नहीं होगा।

(2) ऐसे प्रतिदावे का वही प्रभाव होगा जैसा किसी प्रतिवाद का होता है, ताकि न्यायालय उसी वाद में मूल दावे तथा प्रतिदावे दोनों पर अंतिम निर्णय दे सके।

(3) वादी को न्यायालय द्वारा नियत की गई अवधि के भीतर प्रतिवादी के प्रतिदावे के उत्तर में लिखित कथन दाखिल करने की स्वतंत्रता होगी।

(4) प्रतिदावे को वाद-पत्र के रूप में माना जाएगा और वाद-पत्रों पर लागू नियमों द्वारा शासित होगा।"

10. अपने कथन के समर्थन में, प्रत्यर्थी ने मान्नीय उच्चतम न्यायालय द्वारा ***नीताबेन दिनेश पटेल बनाम दिनेश दहयाभाई पटेल (सिविल अपील संख्या 5901-5902, 2021)*** के मामले में प्रतिपादित निर्णय पर भी आश्रय लिया है और उक्त निर्णय के सुसंगत अनुच्छेद संख्या 8 को नीचे उद्धृत किया जाता है:-

"अब जहाँ तक प्रदर्श 281 आवेदन में पैरा 37 के सम्बन्ध में माँगे गए संशोधन का प्रश्न है, सर्वप्रथम यह उल्लेखनीय है कि वह प्रतिदावे के रूप में था। यह सत्य है कि सी.पी.सी. के आदेश VIII नियम 6-A के अनुसार, किसी वाद में प्रतिवादी, नियम 6 के अन्तर्गत समायोजन के अभिवचन के अपने अधिकार के अतिरिक्त, वादी के दावे के विरुद्ध प्रतिदावे के रूप में, प्रतिवादी को वादी के विरुद्ध वाद दाखिल किए जाने से पूर्व या पश्चात् किन्तु प्रतिवादी द्वारा अपना प्रतिवाद प्रस्तुत किए जाने से पूर्व या प्रतिवाद प्रस्तुत करने हेतु नियत समयावधि की समाप्ति से पूर्व उपचित वाद-हेतु के सम्बन्ध में कोई अधिकार या दावा स्थापित कर सकता है, चाहे ऐसा प्रतिदावा हर्जाने के दावे की प्रकृति का हो अथवा न हो। तथापि, वर्तमान मामले में, अपीलार्थी के अनुसार, प्रतिदावे का वाद-हेतु, अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा अपना प्रतिवाद (लिखित कथन) प्रस्तुत कर दिए जाने के पश्चात् और विशेषतः जब वादी (वर्तमान प्रत्यर्थी) की प्रतिपरीक्षा के दौरान दिनांक 14.12.2006 को हिनाबेन मनुभाई पांचाल के साथ विवाह का तथ्य स्वीकार किया गया और विवाह प्रमाण-पत्र प्रस्तुत किया गया, उपचित हुआ था। अतः उच्च न्यायालय इस आधार पर, कि अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन दाखिल करके अपना प्रतिवाद प्रस्तुत कर दिए जाने के पश्चात् प्रतिदावा अनुमत नहीं है, पैरा 37 में प्रस्तावित प्रतिदावे को अनुमति देने से इनकार करने में न्यायसंगत और/या उचित नहीं है। उक्त आधार पर, उच्च न्यायालय को पैरा 37 के सम्बन्ध में माँगे गए संशोधन को अस्वीकार नहीं करना चाहिए था। तथापि, साथ ही, जो मुख्य प्रश्न विचार किया जाना अपेक्षित है वह यह है कि क्या अपीलार्थी-पत्नी उस राहत का दावा कर सकती थी जो पैरा 37 में प्रतिदावे के रूप में प्रत्यर्थी पति द्वारा विवाह के विघटन हेतु दाखिल विवाह याचिका में माँगी गई थी?"

11. हमने अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री ऋषि राज के साथ-साथ प्रत्यर्थी (स्वयं) को सुना है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

12. विभिन्न निर्णयों में, मान्नीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि सम्यक् परिश्रम का प्रयोग प्रतिदावे के लिए आवश्यकता है, जिसे माफ नहीं किया जा सकता और "सम्यक् परिश्रम" शब्द किसी पक्ष के रचनात्मक ज्ञान के दायरे का निर्धारण करता है। मान्नीय उच्चतम न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि विलम्बित प्रक्रम पर आवेदन को सी.पी.सी. के आदेश VI नियम 17 के अन्तर्गत अनुमित किया जा सकता है, किन्तु केवल युक्तिसंगत स्पष्टीकरण के साथ। तथापि, वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी कोई युक्तिसंगत स्पष्टीकरण देने में असमर्थ है कि वह पिछले 10 वर्षों तक मामले के प्रति कैसे चुप रहा और अब जब अंतिम सुनवाई की तिथि नियत हो गई है, तब उसने संशोधन एवं प्रतिदावा स्थापित करने हेतु आवेदन दाखिल किया है। मान्नीय उच्चतम न्यायालय ने ***जे. सैमुएल एवं अन्य बनाम गट्टू महेश एवं अन्य; (2012) 2 SCC 300*** के मामले में "सम्यक् परिश्रम" शब्दों पर विस्तार से विचार किया है और सुसंगत अनुच्छेद संख्या 18 से 20 को नीचे उद्धृत किया जाता है:-

"18. न्यायालय का प्राथमिक उद्देश्य मामले की गुण-दोष के आधार पर सुनवाई करना और यह सुनिश्चित करना है कि न्याय का नियम प्रवर्तित हो। इसके लिए मामले के सच्चे तथ्यों को न्यायालय के समक्ष रखना आवश्यक है ताकि अपना निर्णय देते समय न्यायालय को सभी सुसंगत सूचनाएं प्राप्त हों। अतः, कभी-कभी पक्षकारों को अपने वाद-पत्र संशोधित करने की अनुमति देना आवश्यक हो जाता है। किसी पक्ष को उसके अभिवचन के संशोधन की अनुमति देने का न्यायालय का विवेकाधिकार दो शर्तों पर निर्भर है, प्रथमतः, दूसरे पक्ष के साथ अन्याय नहीं होना चाहिए और द्वितीयतः, संशोधन पक्षकारों के बीच विवाद के वास्तविक प्रश्नों के अवधारण के प्रयोजन के लिए आवश्यक होना चाहिए। तथापि, न्याय करने में पक्षकारों के हितों को संतुलित करने के लिए, परन्तुक जोड़ा गया है जो स्पष्ट रूप से यह कहता है कि: विचारण प्रारम्भ होने के पश्चात् संशोधन का कोई आवेदन अनुमत नहीं किया जाएगा, जब तक कि न्यायालय इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचता कि यद्यपि सम्यक् परिश्रम के बावजूद, पक्षकार विचारण के प्रारम्भ होने से पूर्व विषय नहीं उठा सका।" (बल दिया गया)

19. सम्यक् परिश्रम वह विचार है कि कुछ प्रकार की राहत माँगे जाने से पूर्व उचित अन्वेषण आवश्यक है। उचित परिश्रमशील प्रयास उस पक्षकार के लिए आवश्यकता है जो अनुमानित राहत प्राप्त करने के लिए न्यायिक तंत्र का उपयोग करना चाहता है। किसी का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता को यह सुनिश्चित करने के लिए सम्यक् परिश्रम करना होगा कि किए गए प्रतिवेदन तथ्यात्मक रूप से सटीक और पर्याप्त हैं। विचारण के प्रारम्भ होने के पश्चात् माँगे गए संशोधन की स्थितियों में विवेकाधिकार के प्रयोग का निर्धारण करने हेतु परीक्षण प्रदान करने के लिए "सम्यक् परिश्रम" शब्द का विशेष रूप से संहिता में प्रयोग किया गया है।

20. किसी दावे से उत्पन्न राहत माँगने वाले पक्षकार को सम्यक् परिश्रम का प्रयोग करना होता है और यह एक ऐसी आवश्यकता है जिसे माफ नहीं किया जा सकता। "सम्यक् परिश्रम" शब्द किसी पक्ष के रचनात्मक ज्ञान के दायरे का निर्धारण करता है, और दावे के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है तथा वाद के परिणाम के लिए निर्णायक है।"

13. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेख का अवलोकन करने के पश्चात्, हम पाते हैं कि सी.पी.सी. के आदेश VI नियम 17 सपठित धारा 151 के अन्तर्गत संशोधन आवेदन अपीलार्थी द्वारा वाद संस्थित किए जाने के 10 वर्ष पश्चात् प्रत्यर्थी द्वारा दाखिल किया गया। इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय ने याचिका संख्या 4516, 2024 में दिनांक 21.9.2024 के आदेश द्वारा, जिसके द्वारा अपीलार्थी की याचिका का निस्तारण किया गया था, यह नोट करते हुए कि पारिवारिक न्यायालय के आदेश-पत्रक के अवलोकन से यह प्रकट होता है कि प्रत्यर्थी एक के बाद एक आवेदन दाखिल करके कार्यवाही में विलम्ब करने का प्रयास कर रहा है, जिन्हें अस्वीकृत किया जाता रहा, पारिवारिक न्यायालय को चार माह में मामले का निस्तारण करने का निर्देश दिया। इस न्यायालय द्वारा पारित उक्त आदेश के बावजूद, पारिवारिक न्यायालय ने दिनांक 4.12.2024 को प्रत्यर्थी द्वारा दाखिल संशोधन आवेदन पर विचार किया और उसे अनुमत कर दिया। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि संशोधन के माध्यम से जो संशोधन माँगा जा रहा है, वह वाद संस्थित होने के समय से ही प्रत्यर्थी को

ज्ञात था, किन्तु उसने संशोधन आवेदन तब दाखिल किया जब कार्यवाही अंतिम प्रक्रम पर थी, जो निश्चित रूप से कालापहरण की युक्ति है और इससे मामले की प्रकृति बदल जाएगी। अतः, प्रत्यर्थी का कोई मामला नहीं है, क्योंकि साक्षियों को तलब करने हेतु पारिवारिक न्यायालय के समक्ष उसके द्वारा दाखिल उत्तरोत्तर आवेदनों को दिनांक 29.8.2023, 16.5.2024, 23.8.2024 और 4.12.2024 को अस्वीकृत किया जाता रहा तथा अपीलार्थी द्वारा दाखिल याचिका का भी इस न्यायालय द्वारा पारिवारिक न्यायालय को चार माह में वाद का निस्तारण करने का निर्देश देते हुए निस्तारण किया गया। अंततः, प्रत्यर्थी ने कार्यवाही में विलम्ब करने और अपनी परित्यक्त पत्नी को, जो पिछले 10 वर्षों से एक द्वार से दूसरे द्वार भटक रही है, परेशान करने के उद्देश्य से संशोधन के लिए हाल ही में आवेदन दाखिल किया है। सी.पी.सी. के आदेश VI नियम 17 के उपबन्धों को दिए गए तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा कि जब तक न्यायालय इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचता कि यद्यपि सम्यक् परिश्रम के बावजूद पक्षकार विषय न्यायालय के समक्ष नहीं उठा सका। वर्तमान मामले में, पिछले 10 वर्षों में प्रत्यर्थी मामले के प्रति चुप रहा और जब कार्यवाही अंतिम प्रक्रम पर थी, तब उसने संशोधन आवेदन दाखिल किया, जो सी.पी.सी. के आदेश VI नियम 17 के उपबन्धों की भावना के विरुद्ध है।

14. नियम 6-A के उपबन्धों के अविकल पठन पर यह स्पष्ट है कि प्रतिदावा वादी के विरुद्ध प्रतिवादी को उपचित वाद-हेतु के सम्बन्ध में दाखिल किया जा सकता है, चाहे वाद दाखिल होने से पूर्व या पश्चात् हो, किन्तु प्रतिवादी द्वारा अपना प्रतिवाद प्रस्तुत किए जाने से पूर्व अथवा प्रतिवाद प्रस्तुत करने हेतु नियत समयावधि की समाप्ति से पूर्व। वर्तमान मामले में, दिनांक 4.12.2024 को साक्ष्य बंद करने का आदेश पारित होने के पश्चात्, प्रत्यर्थी द्वारा दिनांक 19.12.2024 को दाखिल संशोधन आवेदन पोषणीय नहीं है।

15. अपीलार्थी की याचिका संख्या 4516, 2024 में इस न्यायालय द्वारा दिनांक 21.9.2024 को पारित आदेश के अवलोकन के पश्चात्, यह अत्यंत आश्चर्यजनक है कि पारिवारिक न्यायालय ने दिनांक 20.2.2025 को संशोधन आवेदन को अनुमत कर दिया, जबकि इस न्यायालय ने पहले ही पारिवारिक न्यायालय को चार माह में मामले का निस्तारण करने का निर्देश दिया था और इस सम्बन्ध में कोई संशोधन आवेदन भी नहीं दाखिल किया गया था। अतः, आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं हो सकता और वह अपास्त किए जाने योग्य है।

16. प्रत्यर्थी द्वारा आश्रित मान्नीय उच्चतम न्यायालय का ***नीताबेन दिनेश पटेल बनाम दिनेश दहयाभाई पटेल (सुप्रा)*** का निर्णय भी वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा, क्योंकि उक्त मामले में यह देखा जाना है कि अपीलार्थी-पत्नी के मामले के अनुसार, उसे वास्तव में प्रत्यर्थी और हिनाबेन मनुभाई पांचाल के बीच दिनांक 14.12.2006 को हुए वास्तविक विवाह की जानकारी प्रत्यर्थी की प्रतिपरीक्षा के दौरान और विवाह प्रमाण-पत्र के अभिलेख पर प्रस्तुत किए जाने पर ही हुई। यद्यपि प्रत्यर्थी-पति ने दिनांक 14.12.2006 को हिनाबेन मनुभाई पांचाल के साथ विवाह किया था, किन्तु उसने सही और सच्चे तथ्य का खुलासा नहीं किया और सारवान तथ्यों को छिपाए रखा। प्रतिपरीक्षा में ही उसने दिनांक 14.12.2006 को हिनाबेन मनुभाई पांचाल के साथ विवाह स्वीकार किया और विवाह प्रमाण-पत्र प्रस्तुत किया। अतः, उक्त मामले के तथ्यों का अवलोकन करने के पश्चात्, यह स्पष्ट है कि उक्त मामले में संशोधन दस्तावेज अभिलेख पर आते ही दाखिल किया गया था, जबकि वर्तमान मामले

में वाद वर्ष 2014 में संस्थित किया गया था और प्रत्यर्थी ने 10 वर्ष पश्चात् संशोधन आवेदन दाखिल किया, केवल मुकदमेबाजी के उद्देश्य को विफल करने के लिए, क्योंकि दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना की प्रार्थना वाद संस्थित किए जाने के समय ही की जा सकती थी किन्तु उसने अपना दावा, जो उसके ज्ञान में था, दाखिल नहीं करना चुना। यह भी उल्लेखनीय है कि दिनांक 4.12.2024 को साक्ष्य बंद करने का आदेश पारित होने तथा पारिवारिक न्यायालय द्वारा दिनांक 23.12.2024 को अंतिम सुनवाई की तिथि नियत किए जाने के पश्चात्, प्रत्यर्थी ने दुर्भावनापूर्ण आशय से दिनांक 19.12.2024 को संशोधन आवेदन दाखिल किया।

17. दिनांक 4.12.2024 का आदेश जो अपील में अनुलग्नक संख्या-5 के रूप में दाखिल किया गया है, यह इंगित करता है कि पारिवारिक न्यायालय ने यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि प्रत्यर्थी को साक्ष्य प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर दिया गया था और तत्पश्चात् साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर बंद कर दिया गया तथा मामला दिनांक 23.12.2024 को सुनवाई के लिए नियत किया गया। तथापि, प्रत्यर्थी ने कार्यवाही में विलम्ब करने के उद्देश्य से दिनांक 19.12.2024 को संशोधन आवेदन दाखिल किया और पारिवारिक न्यायालय ने उचित न्यायिक विवेक के बिना उक्त आवेदन को अनुमत कर दिया।

18. अपील तदनुसार स्वीकार की जाती है। विद्वान अपर प्रधान न्यायाधीश-6, पारिवारिक न्यायालय, लखनऊ द्वारा दिनांक 20.2.2025 को पारित आदेश अपास्त किया जाता है।

19. यद्यपि विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका संख्या 4516, 2024 में दाखिल आवेदन, आई.ए. संख्या 2, 2025 पर दिनांक 5.3.2025 के आदेश द्वारा पारिवारिक न्यायालय को यह निर्देश दिया कि वह इस आदेश की प्रमाणित प्रति कार्यवाही के अभिलेख पर प्रस्तुत किए जाने की तिथि से आठ माह की अवधि के भीतर मामले का निस्तारण करे, तथापि विशिष्ट तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए अर्थात् यह पुराना मामला है, सम्बन्धित पारिवारिक न्यायालय को निर्देशित किया जाता है कि वह आज की तिथि से दो माह के भीतर, वकीलों की हड़ताल के आधार सहित, कोई भी अनावश्यक स्थगन प्रदान किए बिना, प्रतिदिन के आधार पर मामले में कार्यवाही करे और उसका निस्तारण करे।

20. लागत के संदर्भ मे कोई आदेश नहीं

(2025) 5 ILRA 896

मूल अधिकारिता – सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 09.05.2025

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह,

के समक्ष

रिट – ए सं. 3505 सन् **2024**

राम पाल सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: विनय कुमार सिंह

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: सी.एस.सी., मयंक सिन्हा, नीरव चित्रवंशी, रण विजय सिंह

A. सेवा विधि – उपदान संदाय अधिनियम, 1972 – धारा 7(3-A) एवं 8 – उपदान – विलंबित संदाय पर ब्याज – अधिकारिता

प्रकृति एवं उपदान की व्याख्या की गई – अभिनिर्धारित: पेंशन एवं उपदान सरकार द्वारा सेवानिवृत्ति के पश्चात् दी जाने वाली दया या उपकार नहीं है, अपितु यह एक मूल्यवान अधिकार है, और इसलिए यदि इसके निपटान एवं संवितरण में कोई विलंब होता है, तो उस पर ब्याज का दंड देय होगा – इस प्रकार विलंबित उपदान संदाय पर ब्याज न तो दंडात्मक प्रकृति का है और न ही प्रतिकरात्मक, बल्कि यह किसी अन्य व्यक्ति द्वारा धन रोके रखने का आवश्यक परिणाम है। (पैरा 18 एवं 19)

B. प्रक्रिया एवं व्यवहार – संशोधन आवेदन – पोषणीयता

रिट याचिका अंततः निर्णीत की गई – तथापि, संशोधन आवेदन के माध्यम से विलंबित संदाय पर ब्याज का दावा किया गया – विचारणीय प्रश्न कि क्या संशोधन आवेदन पर मूल प्रार्थना स्वीकार की जा सकती है – अभिनिर्धारित: अंततः निर्णीत रिट याचिका में कार्यवाही पुनः प्रारंभ करने के लिए कोई प्रकीर्ण आवेदन पोषणीय नहीं होगा – उपदान राशि पर ब्याज की प्रार्थना सभी अर्थों में एक मूल प्रार्थना है – आदेश पारित करने के पश्चात् यह न्यायालय 'functus officio' हो जाता है और मूलतः निर्णीत विषयों पर आवेदन सुनने की अधिकारिता नहीं रखता – उच्च न्यायालय ने संशोधन आवेदन अस्वीकृत किया, तथापि याचिकाकर्ता को पुनर्विलोकन याचिका दाखिल करने की स्वतंत्रता दी। (पैरा 24, 29, 30, 32 एवं 33)

संशोधन आवेदन अस्वीकृत। (E-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. H. गंगाहनुमे गौड़ा बनाम कर्नाटक कृषि उद्योग निगम लिमिटेड, (2003) 3 SCC 40

2. डी.डी. तिवारी (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम उत्तर हरियाणा बिजली वितरण निगम एवं अन्य, (2014) 8 SCC 894

3. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम ब्रह्म दत्त शर्मा एवं अन्य, (1987) 2 SCC 179

4. सिविल अपील सं. 5041/2021; सुपरटेक लिमिटेड बनाम एमरल्ड कोर्ट ओनर रेजिडेंट वेलफेयर एसोसिएशन एवं अन्य (प्रकीर्ण आवेदन सं. 1572/2021)

5. जयपुर विद्युत वितरण निगम लिमिटेड बनाम अदानी पावर राजस्थान लिमिटेड, 2024 SCC OnLine SC 313

6. अजय कुमार जैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2024 SCC OnLine SC 3677

(न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह द्वारा प्रदत्त)

<u>सी.एम. आवेदन संख्या 1/2024 के संबंध में (विलंब क्षमा हेतु)</u>

1. विलंब क्षमा के आवेदन के समर्थन में दाखिल शपथ-पत्र में दिया गया कारण पर्याप्त है।

2. तदनुसार, आवेदन **स्वीकार** किया जाता है।

3. विलंब क्षमा किया जाता है।

<u>सी.एम. आवेदन संख्या 2/2024 के संबंध में (संशोधन हेतु)</u>

1. आवेदक-याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री विनय कुमार सिंह, राज्य के लिए स्थायी अधिवक्ता, विपक्षी संख्या 2 से 5 के अधिवक्ता श्री मयंक सिन्हा को सुना गया।

2. यह संशोधन आवेदन दिनांक 24.05.2024 के आदेश को इस सीमा तक संशोधित करने की प्रार्थना के साथ दाखिल किया गया है कि उपदान के विलंबित भुगतान पर रु. 26,897/- की ब्याज राशि आवेदक-याचिकाकर्ता को अदा की जाए।

3. रिट ए संख्या 3505/2024 (राम पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) निम्नलिखित मुख्य प्रार्थना के साथ दाखिल की गई थी:-

"परमादेश की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी किया जाए जिसमें विपक्षी पक्षकारों को रु. 26,897/- की राशि ब्याज सहित अदा करने का आदेश दिया जाए जो दिनांक 09.09.2004 को उपदान भुगतान पत्र संख्या-982 के माध्यम से काटी गई थी।"

अनुवादित

4. मामले का तथ्यात्मक विवरण यह है कि याचिकाकर्ता कार्यपालक अभियंता, विद्युत वितरण निगम-प्रथम, अयोध्या के कार्यालय में कार्यालय सहायक-II के रूप में कार्यरत था और दिनांक 31.08.2004 को सेवानिवृत्त हुआ था। उसकी सेवानिवृत्ति के पश्चात्, दिनांक 9.9.2004 को रु. 2,32,829/- की उपदान राशि उसे अदा की गई और रु. 26,897/- की राशि कथित रूप से बिना कोई सुसंगत कारण दिए रोक ली गई। उपदान के भुगतान के संबंध में अनेक अनुरोधों के पश्चात् भी कोई कार्रवाई नहीं की गई और व्यथित होकर उपरोक्त रिट याचिका संस्थित की गई।

5. उपरोक्त रिट याचिका में पक्षकारों को विस्तार से सुनने के पश्चात्, रिट न्यायालय ने दिनांक 24.05.2024 को आदेश पारित किया, जो निम्नवत् पुनरुत्पादित है:-

""दिनांक 6.5.2024 को निम्नलिखित आदेश पारित किया गया था:-
"याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि रिट ए संख्या 6130/2023 में इस न्यायालय द्वारा दिनांक 24-08-2023 को पारित आदेश के पश्चात्, याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन का निस्तारण दिनांक 04-12-2023 के आदेश द्वारा किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता को देय उपदान से रु. 26,897/- की राशि की कटौती का औचित्य सिद्ध किया गया। उन्होंने आगे कहा कि उक्त राशि इस आधार पर काटी गई है कि सेवा अवधि के दौरान अधिक भुगतान के रूप में वही राशि अदा की गई थी लेकिन उपदान से राशि की कटौती के संबंध में कोई विधि नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि ऐसे किसी प्रावधान के अभाव में, आदेश स्वयं विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं है।
उपरोक्त के दृष्टिगत, श्री नितिन माथुर, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता जो राज्य के लिए उपस्थित हैं तथा विपक्षी संख्या 3 से 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री रण विजय सिंह को एतद्द्वारा निर्देश दिया जाता है कि वे यह अनुदेश प्राप्त करें कि किस प्रावधान के अंतर्गत याचिकाकर्ता के उपदान से रु. 26,897/- की राशि काटी गई है?
प्रार्थनानुसार, इस मामले को अगले सप्ताह नए के रूप में सूचीबद्ध/पुकारा जाए।"
प्रत्यर्थी संख्या 3 से 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री रण विजय सिंह, अनुदेशों के आधार पर प्रस्तुत करते हैं कि यद्यपि उपदान के भुगतान से रु. 26,897/- की राशि की कटौती के लिए आदेश पारित किया गया है लेकिन इसकी कटौती के लिए कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है।
चूंकि प्राधिकारी किसी कर्मचारी के उपदान से किसी राशि की कटौती के प्रावधान के संबंध में अधिवक्ता को कोई अनुदेश प्रदान करने में विफल रहे हैं, अतः दिनांक 4.12.2023 का आदेश निर्वाह नहीं कर सकता और इस प्रकार, इसे एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है।
मामला प्रत्यर्थी संख्या 5 को यह विचार करने और निर्णय करने के लिए प्रत्यावेदित किया जाता है कि याचिकाकर्ता को देय उपदान राशि के विरुद्ध रु. 26897/- की राशि के भुगतान के संबंध में इस आदेश की प्रमाणित प्रति उनके समक्ष प्रस्तुत किए जाने की तिथि से दो सप्ताह की अवधि के भीतर मामले पर पुनः विचार किया जाए और निर्णय किया जाए।
उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, रिट याचिका स्वीकार की जाती है।""

6. उपरोक्त आदेश द्वारा, रिट न्यायालय ने रिट याचिका में प्रत्यर्थी संख्या 5 को उपदान राशि के विरुद्ध रु. 26,897/- की राशि के भुगतान के संबंध में मामले पर पुनः विचार करने और निर्णय करने का निर्देश दिया।

7. यह स्वीकृत तथ्य है कि रु. 26,897/- की उपदान राशि आवेदक-याचिकाकर्ता को अदा की गई है जो संशोधन आवेदन के पैरा संख्या 6 से स्पष्ट है।

8. संशोधन आवेदन यह परिवाद उठाते हुए दाखिल किया गया है कि दिनांक 24.5.2024 के आदेश को विपक्षी पक्षकार द्वारा कभी चुनौती नहीं दी गई बल्कि इसका अनुपालन किया गया है, किंतु ब्याज भाग का भुगतान अभी तक नहीं किया गया है।

9. आवेदक-याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का प्रस्तुतीकरण है कि आवेदक-याचिकाकर्ता इस धारणा में था कि उपदान राशि पर ब्याज के भुगतान के लिए प्रार्थना मांगी गई है और उपदान की राशि के विलंबित भुगतान पर ब्याज के भुगतान के लिए विधि का सुस्थापित सिद्धांत है और इसलिए, आवेदक-याचिकाकर्ता को यह अपेक्षा थी कि उसे ब्याज अदा किया जाएगा, लेकिन वास्तव में विभाग ने इसका भुगतान नहीं किया। वह आगे प्रस्तुत करते हैं कि चूंकि आवेदक-याचिकाकर्ता के लिए उपदान राशि पर ब्याज के भुगतान की मांग करते हुए रिट याचिका के अन्य दौर में जाना संभव नहीं होगा क्योंकि रिट ए संख्या 3505/2024 में याचना और प्रार्थना पहले ही की जा चुकी है। वह प्रस्तुत करते हैं कि इस मुद्दे पर विधि सुस्थापित है।

10. अपने तर्क के समर्थन में, आवेदक-याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने **एच. गंगाहनुमे गौड़ा बनाम कर्नाटक कृषि उद्योग निगम लिमिटेड (2003) 3 एससीसी 40** के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है और पैरा संख्या 9 और 10 का संदर्भ दिया है। पैरा संख्या 9 और 10 निम्नवत् पठित हैं:-

"9. विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश से उपर्युक्त उद्धृत से यह स्पष्ट है कि उपदान के विलंबित भुगतान पर ब्याज केवल इस आधार पर अस्वीकार किया गया था कि अपीलार्थी उपदान, अवकाश के नकद समतुल्य आदि के लिए हकदार था या नहीं, इस बारे में संदेह था, जांच की लंबितता के दौरान न्यायालयों की भिन्न राय के दृष्टिगत। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह निर्धारित करते हुए कि अपीलार्थी उपदान के भुगतान के लिए हकदार था, अधिनियम की धारा 7(3-ए) का सम्यक् ध्यान रखते हुए उपदान के विलंबित भुगतान पर ब्याज से इनकार करने में सही नहीं था। यह प्रत्यर्थी का मामला नहीं था कि उपदान के भुगतान में विलंब कर्मचारी की गलती के कारण था और इसने उस आधार पर विलंबित भुगतान के लिए नियंत्रण प्राधिकारी से लिखित अनुमति प्राप्त की थी। जैसा कि उपरोक्त में उल्लेख किया गया है, नियोक्ता को समय पर उपदान का भुगतान करने और उपदान के विलंबित भुगतान पर ब्याज अदा करने के लिए धारा 7 के प्रावधानों में स्पष्ट अधिदेश है। अधिनियम की धारा 8 की शर्तों के अनुसार नियोक्ता द्वारा देय उपदान की राशि का भुगतान नहीं किए जाने की स्थिति में चक्रवृद्धि ब्याज के साथ उपदान की राशि की वसूली का भी प्रावधान है। चूंकि नियोक्ता ने धारा 7(3-ए) के परंतुक की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया, इसलिए उपदान के विलंबित भुगतान पर

अपीलार्थी को ब्याज से वंचित करने के लिए कोई विवेकाधिकार शेष नहीं रहा। दुर्भाग्यवश, उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने यह पाते हुए कि अपीलार्थी ब्याज का हकदार था, केवल इस आधार पर उपदान के विलंबित भुगतान पर ब्याज के दावे के संबंध में विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा प्रयुक्त विवेकाधिकार मनमाना नहीं कहा जा सकता। सर्वप्रथम, उपरोक्त में कही गई बातों के प्रकाश में, विद्वान एकल न्यायाधीश अधिनियम की धारा 7 में निहित अनिवार्य प्रावधानों के विरुद्ध विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए ब्याज अनुदान से इनकार नहीं कर सकते थे। खंडपीठ ने, हमारी राय में, यह मानने में त्रुटि की कि विद्वान एकल न्यायाधीश ब्याज अधिनिर्णय के मामले में विवेकाधिकार का प्रयोग कर सकते थे और ऐसा प्रयुक्त विवेकाधिकार मनमाना नहीं था।

10. प्रस्तुत तथ्यों और उपर्युक्त कारणों के प्रकाश में, आक्षेपित आदेश निर्वाह नहीं कर सकता। परिणामस्वरूप, इसे अपास्त किया जाता है। प्रत्यर्थी को निर्देश दिया जाता है कि वह अपीलार्थी को जिस उपदान राशि का हकदार है, उस पर 10% की दर से ब्याज का भुगतान उस तिथि से करे जब वह देय हो गई थी, उपदान राशि के भुगतान की तिथि तक। तदनुसार अपील स्वीकार की जाती है और रु. 10,000 के रूप में परिमाणित लागत के साथ।"

11. उपरोक्त का संदर्भ देते हुए, वह प्रस्तुत करते हैं कि माननीय शीर्ष न्यायालय ने उपदान भुगतान अधिनियम, 1972 (इसके पश्चात् अधिनियम 1972 के रूप में संदर्भित) की धारा 7(3-ए) और 8 के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए यह निर्धारित किया है कि उपदान के विलंबित भुगतान पर ब्याज अनिवार्य है और विवेकाधीन नहीं है। यह आगे निर्धारित किया गया है कि यदि कर्मचारी की गलती के कारण कोई विलंब नहीं है तो नियोक्ता उपदान के विलंबित भुगतान पर ब्याज का भुगतान करने के लिए बाध्यकारी कर्तव्याधीन है।

12. आगे प्रस्तुत किया गया कि **डी.डी. तिवारी (मृतक) अपने विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम उत्तर हरियाणा बिजली वितरण निगम एवं अन्य (2014) 8 एससीसी 894** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा संख्या 6 से 8 में मामले से निपटा है जो वर्तमान याचिकाकर्ता-आवेदक के मामले को चारों ओर से आच्छादित करता है। पैरा संख्या 6 से 8 निम्नवत् उद्धृत हैं:-

"6. यह निर्विवाद तथ्य है कि अपीलार्थी दिनांक 31-10-2006 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवा से सेवानिवृत्त हुआ और विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश ने संगत तथ्यों और विधिक स्थिति का उल्लेख करने के पश्चात् प्रत्यर्थी नियोक्ता को मृतक कर्मचारी के विधिक प्रतिनिधियों को त्रुटिवश रोके गए पेंशन संबंधी लाभों और उपदान राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया है, बिना ब्याज अधिनिर्णीत किए, जिसके लिए अपीलार्थी विधिक रूप से हकदार है, इसलिए इस न्यायालय को अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना होगा क्योंकि मृतक कर्मचारी की हकदारी की तिथि से भुगतान की तिथि तक नियोक्ता द्वारा भुगतान किए जाने योग्य या देय ब्याज से वंचित करने में न्याय का गर्भपात हुआ है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा उपरोक्त संदर्भित निर्णय

में प्रतिपादित विधिक सिद्धांत के अनुसार है। हमें देय पेंशन राशि और उपदान राशि दोनों पर 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज अधिनिर्णीत करना होगा जो प्रत्यर्थी द्वारा अदा किए जाने हैं।

7. यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि प्रत्यर्थियों ने उपदान राशि के भुगतान को त्रुटिवश रोक दिया है, जिसके लिए यहां अपीलार्थी उपदान भुगतान अधिनियम, 1972 के प्रावधानों के अंतर्गत उपदान के विलंबित भुगतान पर दंडात्मक राशि के भुगतान के लिए विधि में हकदार हैं। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, हम हस्तगत मामले में ऐसा करने का प्रस्ताव नहीं करते हैं।

8. उपरोक्त कारणों के लिए, हम पेंशन और उपदान राशि के विलंबित भुगतान पर हकदारी की तिथि से वास्तविक भुगतान की तिथि तक 9% की दर से ब्याज अधिनिर्णीत करते हैं। यदि इस आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से छह सप्ताह के भीतर इस राशि का भुगतान नहीं किया जाता है, तो वही मृतक कर्मचारी को राशि देय होने की तिथि से 18% प्रति वर्ष की दर से ब्याज वहन करेगी। उपरोक्त निर्देशों के साथ, यह अपील स्वीकार की जाती है।"

13. उपरोक्त का संदर्भ देते हुए, याचिकाकर्ता-आवेदक के अधिवक्ता ने बल दिया है कि माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा अत्यंत विशिष्ट रूप से यह निर्धारित किया गया है कि पेंशन और उपदान सरकार द्वारा वितरित की जाने वाली कृपा नहीं है बल्कि यह कर्मचारी का मूल्यवान अधिकार और संपत्ति है और इसके संवितरण में कोई भी दोषपूर्ण विलंब ब्याज के भुगतान के दंड के साथ आएगा।

14. अपने तर्कों को समाप्त करते हुए, वह प्रस्तुत करते हैं कि चूंकि इस मुद्दे पर विधि सुस्थापित है कि उपदान के विलंबित भुगतान के लिए अनिवार्य रूप से उस पर ब्याज के भुगतान की आवश्यकता होती है और आगे रिट याचिका में आवेदक-याचिकाकर्ता ने उपदान के विलंबित भुगतान पर ब्याज के भुगतान के लिए अत्यंत विशिष्ट रूप से निर्देश मांगे हैं, जिसे दिनांक 24.05.2024 के आदेश में अनजाने में निर्देशित करने से छोड़ दिया गया है, इसलिए विनम्रतापूर्वक प्रार्थना की जाती है कि प्रत्यर्थी संख्या 5 को उपदान के विलंबित भुगतान पर ब्याज का भुगतान करने का निर्देश दिया जाए।

15. उपरोक्त तर्कों का खंडन करते हुए, मध्यांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड के अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि दिनांक 24.05.2024 का आदेश पारित किया गया था जिसमें रु. 26,897/- की शेष उपदान राशि के भुगतान का निर्देश दिया गया था और इसके अनुपालन में, दिनांक 12.07.2024 के पत्र द्वारा इसका भुगतान किया गया है। वह यह भी प्रस्तुत करते हैं कि आवेदक-याचिकाकर्ता को दिसंबर, 1987 से दिसंबर, 1995 के बीच वेतन में अधिक राशि प्राप्त हुई थी और उसके वेतन की वसूली का कोई अन्य साधन नहीं था इसलिए, इसे ब्याज से समायोजित किया गया है और इसलिए, आवेदक-याचिकाकर्ता का कोई भुगतान देय नहीं है, इसलिए प्रस्तुतीकरण है कि यह आवेदन खारिज किए जाने योग्य है।

16. पक्षकारों के अधिवक्ताओं के प्रस्तुतीकरणों पर विचार करने और अभिलेख के अवलोकन के पश्चात्, यह ज्ञात होता है कि आवेदक-याचिकाकर्ता ने एक रिट याचिका संस्थित की थी जिसमें रिट याचिका के प्रत्यर्थी संख्या 5 को निर्देश जारी किया गया था कि आवेदक-याचिकाकर्ता को उपदान राशि के शेष भुगतान के विरुद्ध रु. 26,897/- का भुगतान किया जाएगा। रिट याचिका में की गई प्रार्थना से यह स्पष्ट है कि प्रार्थना द्वारा ब्याज की भी मांग की गई थी।

17. विपक्षी पक्षकार के विद्वान अधिवक्ता का तर्क दो प्रकार का है, एक कि उपदान राशि पर ब्याज आवेदक/याचिकाकर्ता को अदा करने का निर्देश नहीं दिया गया है। दूसरे, अंतिम आदेश पारित होने के पश्चात् संशोधन आवेदन धारणीय नहीं है।

18. जहां तक तर्क के प्रथम भाग का संबंध है, उपदान के विलंबित भुगतान पर ब्याज के भुगतान के संबंध में विधि बिल्कुल स्पष्ट है क्योंकि यह सुस्थापित है कि ऐसे उपदान के विलंबित भुगतान पर ब्याज न तो दंडात्मक प्रकृति का है और न ही प्रतिपूरक प्रकृति का है और आगे यह अन्य व्यक्ति द्वारा धन के प्रतिधारण का आवश्यक परिणाम है। यह अनेक शब्दों में कहा गया है कि उपदान राशि पर ब्याज का भुगतान अनिवार्य है और इसके भुगतान के संबंध में निर्णय लेने के लिए विवेकाधीन नहीं है।

19. बार-बार यह भी निर्धारित किया गया है कि पेंशन और उपदान कर्मचारी की सेवानिवृत्ति के पश्चात् सरकार द्वारा दिखाई गई दया या शिष्टाचार नहीं है, बल्कि यह मूल्यवान अधिकार है और इसलिए, यदि इसके निपटान और संवितरण में कोई विलंब होता है, तो वही ब्याज के भुगतान के दंड के साथ आएगा।

20. हस्तगत मामला यह है कि उपदान राशि के विरुद्ध रु. 26,897/- की राशि की कटौती विभाग द्वारा वेतन के अधिक भुगतान के समायोजन के बदले में की गई थी जो विधि के अंतर्गत किसी भी तरह से अनुज्ञेय नहीं है। आपत्ति दाखिल करते समय, प्रत्यर्थी निगम द्वारा यह याचना विशेष रूप से उठाई गई है कि ब्याज भी नहीं दिया जा सकता क्योंकि आवेदक-याचिकाकर्ता को दिसंबर, 1987 से दिसंबर, 1995 तक वेतन का अधिक भुगतान हुआ था। वास्तव में यह याचना विधि के सुस्थापित सिद्धांत के प्रकाश में स्वीकार्य नहीं है।

21. जबकि, संशोधन आवेदन की धारणीयता के संबंध में प्रथम और सर्वप्रमुख प्रश्न का संबंध है, स्वीकार्य रूप से, रिट याचिका का गुणागुण के आधार पर अंततः निस्तारण किया गया है। अब, क्या संशोधन आवेदन ऐसे मामले में धारणीय है जहां अंतिम आदेश पारित किया गया है, निर्धारण का बिंदु है?

22. सामान्य ज्ञान के साथ बोलते हुए, यह कहा जाएगा कि यदि याचना और प्रार्थना है, तो अंतिम आदेश में संशोधन के अवसर से इनकार करना अन्यायपूर्ण होगा क्योंकि वही वाद-विवाद की बहुलता देगा, लेकिन विधि जो समय की अवधि में सुस्थापित हुई है वह यह है कि, ऐसा संशोधन आवेदन धारणीय नहीं है।

23. यह न्यायालय **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम ब्रह्म दत्त शर्मा एवं अन्य (1987) 2 एससीसी 179** में प्रतिवेदित मामले का संदर्भ दे सकता है। निर्णय के पैरा संख्या 10 को निम्नवत् पुनरुत्पादित किया जाता है:-

"भारत का संविधान- अनुच्छेद 226 प्रकीर्ण आवेदन, पहले से निर्णीत रिट याचिका में दाखिल किया गया, लंबे समय के अंतराल (2 वर्ष) के पश्चात् पश्चातवर्ती घटनाओं के संबंध में कार्यवाही को पुनर्जीवित करने के लिए पोषणीय नहीं प्रक्रिया प्रैक्टिस और
अवधारित :
जब कार्यवाही रिट याचिका के अंतिम निस्तारण द्वारा समाप्त हो जाती है तो न्यायालय के लिए ऐसे मामले के संबंध में प्रकीर्ण आवेदन के माध्यम से कार्यवाही को फिर से खोलना खुला नहीं है जो एक नया वाद कारण प्रदान करता है। यदि इस सिद्धांत का पालन नहीं किया जाता है तो भ्रम और अव्यवस्था होगी और कार्यवाही की अंतिमता का कोई अर्थ नहीं रहेगा।"

24. शीर्ष न्यायालय ने यह निर्धारित किया है कि अंततः निर्णीत रिट याचिका में कार्यवाही को पुनर्जीवित करने के लिए, कोई प्रकीर्ण आवेदन धारणीय नहीं होगा।

25. सुपरटेक लिमिटेड बनाम एमराल्ड कोर्ट मालिक निवासी कल्याण संघ एवं अन्य प्रकीर्ण आवेदन संख्या 1572/2021, सिविल अपील संख्या 5041/2021 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नवत् निर्धारित किया है:-

"11 वर्तमान प्रकीर्ण आवेदन में प्रयास स्पष्ट रूप से इस न्यायालय के निर्णय के सारवान संशोधन की मांग करना है। ऐसा प्रयास प्रकीर्ण आवेदन में अनुज्ञेय नहीं है। जबकि श्री मुकुल रोहतगी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय नियम 2013 के आदेश LV नियम 6 के प्रावधानों पर भरोसा किया है, उसमें जो परिकल्पित है वह न्याय के उद्देश्यों के लिए या न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए आवश्यक आदेश देने की न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का संरक्षण है। आदेश LV नियम 6 को सर्वोच्च न्यायालय नियम 2013 में आदेश XLVII में पुनर्विलोकन के प्रावधानों को दरकिनार करने के लिए उलटा नहीं किया जा सकता। प्रकीर्ण आवेदन प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

12 न्यायिक उद्घोषणा की पहचान इसकी स्थिरता और अंतिमता है। न्यायिक निर्णय रेत के टीलों की तरह नहीं हैं जो हवा और मौसम की सनकों के अधीन हैं। इस न्यायालय में एक चिंताजनक प्रवृत्ति उभरी है कि अंतिम निर्णय उद्घोषित होने के पश्चात् बार-बार आवेदन दाखिल किए जा रहे हैं, जिन्हें प्रकीर्ण आवेदन के रूप में शैलीबद्ध किया गया है। ऐसी प्रथा का कोई विधिक आधार नहीं है और इसे दृढ़ता से हतोत्साहित किया जाना चाहिए। यह वाद-विवाद को एक चाल में कम कर देता है। प्रकीर्ण आवेदन उन लोगों के लिए एक पसंदीदा मार्ग बन रहे हैं जिनके पास न्यायिक निर्णयों के अनुपालन से बचने के लिए रणनीतियों का पीछा करने के लिए संसाधन हैं। एक न्यायिक उद्घोषणा प्रकीर्ण आवेदन दाखिल करके निर्णय उद्घोषित होने के पश्चात् संशोधन

के अधीन नहीं हो सकती। निर्णय के संशोधन/स्पष्टीकरण की मांग करते हुए प्रकीर्ण आवेदन दाखिल करना विधि में परिकल्पित नहीं है। आगे, यह एक सुस्थापित विधिक सिद्धांत है कि कोई भी अप्रत्यक्ष रूप से वह नहीं कर सकता जो वह प्रत्यक्ष रूप से नहीं कर सकता ["Quando aliquid prohibetur ex directo, prohibetur et per obliquum"]।

13 आगे, एक अन्य विधिक सिद्धांत है जो वर्तमान मामले में लागू होता है। यह है कि जहां किसी निश्चित तरीके से कोई निश्चित काम करने की शक्ति दी जाती है, वह काम उस तरीके से किया जाना चाहिए या बिल्कुल नहीं और निष्पादन के अन्य तरीके अनिवार्य रूप से निषिद्ध हैं। इसलिए, जब कोई विधि किसी विशेष चीज को किसी विशेष तरीके से किए जाने की आवश्यकता करती है, तो इसे उस तरीके से किया जाना चाहिए या बिल्कुल नहीं और निष्पादन के अन्य तरीके अनिवार्य रूप से निषिद्ध हैं। इस न्यायालय ने भी इस सूत्र को अंगीकृत किया है"। यह नियम प्रदान करता है कि कुछ करने की स्पष्ट रूप से निर्धारित विधि अनिवार्य रूप से इसे किसी अन्य तरीके से करने पर निषेध का निहितार्थ करती है।"

26. यह निर्धारित किया गया है कि निर्णय के सारवान संशोधन की मांग करते हुए प्रकीर्ण आवेदन के माध्यम से अनुज्ञेय नहीं है क्योंकि वही प्रक्रिया के दुरुपयोग के समतुल्य है और वह कार्यवाही में अनंत बहुलता भी उत्पन्न करेगा।

27. हाल ही में, **जयपुर विद्युत वितरण निगम लिमिटेड बनाम अडानी पावर राजस्थान लिमिटेड, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 313** में प्रतिवेदित मामले में, यह निम्नवत् निर्धारित किया गया है:-

"हमने वर्तमान आवेदन की धारणीयता के प्रश्न की जांच करना आवश्यक महसूस किया क्योंकि हमारी राय है कि विधि की स्थिति को स्पष्ट करना आवश्यक था कि किसी मामले के निस्तारण के पश्चात् ऐसे निस्तारण-पश्चात् प्रकीर्ण आवेदन कब मनोरंजित किए जा सकते हैं। यह न्यायालय पदमुक्त हो गया है और दिनांक 31.08.2020 को इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय द्वारा अपील के निस्तारण के पश्चात् विधि में निर्दिष्ट से परे पाठ्यक्रम के माध्यम से आवेदन को मनोरंजित करने के लिए क्षेत्राधिकार बनाए नहीं रखता। यह किसी लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को सुधारने का आवेदन नहीं है। न ही यह समय के विस्तार का आवेदन है। निस्तारण आदेश के संशोधन और स्पष्टीकरण के लिए निस्तारण-पश्चात् आवेदन केवल दुर्लभ मामलों में होगा, जहां इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश निष्पादनीय प्रकृति का है और पश्चातवर्ती घटनाओं या विकासों के कारण न्यायालय के निर्देशों को कार्यान्वित करना असंभव हो सकता है। इस आवेदन की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि उस विवरण में फिट नहीं होती।"

28. इस विधि का **अजय कुमार जैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3677** में प्रतिवेदित मामले में भी पश्चात्वर्ती रूप से अनुसरण किया गया है।

29. निस्संदेह, रिट ए संख्या 3505/2024 में दिनांक 24.5.2024 को पारित अंतिम आदेश में उपदान के विलंबित भुगतान पर ब्याज के भुगतान का कोई निर्देश नहीं है क्योंकि मामला प्रत्यर्थी संख्या 5 को उपदान राशि के विरुद्ध रु. 26,897/- की राशि के संबंध में मामले पर विचार करने और निर्णय करने के लिए प्रत्यावेदित किया गया था। उपदान राशि पर ब्याज के भुगतान के लिए प्रार्थना सभी अर्थों में, सारवान प्रार्थना है।

30. यह कहना उचित है कि यह न्यायालय आदेश पारित करने के पश्चात् पदमुक्त हो गया है और सारवान रूप से निर्णीत मुद्दों के लिए आवेदन को मनोरंजित करने के लिए क्षेत्राधिकार बनाए नहीं रखता। वास्तव में यह संशोधन आवेदन है और किसी लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि के सुधार या समय के विस्तार का आवेदन नहीं है, इसलिए, इस न्यायालय की विचारित राय में, संशोधन आवेदन सारवान और मुख्य रूप से दिनांक 24.05.2024 के आदेश की प्रकृति को बदल देगा।

31. अतः, यह न्यायालय संशोधन आवेदन की धारणीयता के संबंध में विपक्षी पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा की गई आपत्ति में बल पाता है।

32. परिणामस्वरूप, संशोधन आवेदन धारणीयता के आधार पर खारिज किया जाता है।

33. कहने की आवश्यकता नहीं है कि पुनर्विलोकन याचिका दाखिल करने का उपचार याचिकाकर्ता के लिए सदैव खुला है।

34. अभिलेखागार को सौंपा गया।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 903

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विक्रम डी. चौहान

रिट - ए संख्या 6048 वर्ष 2024

श्रीमती कुसुम लता सिंह **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री विनय कुमार तिवारी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: मुख्य स्थायी अधिवक्ता

सेवा कानून- अवकाश नकदीकरण- भुगतान में देरी - सेवानिवृत्ति देयक संपत्ति के रूप में - याचिकाकर्ता 31.03.2018 को सहायक अध्यापक के रूप में सेवानिवृत्त हुई - बार-बार प्रत्यावेदन देने के बावजूद 25.04.2024 तक अवकाश नकदीकरण के देयकों का भुगतान नहीं किया गया - प्रतिवादियों ने तर्क दिया कि ब्याज प्रदान करने का कोई प्रावधान नहीं है - वैधता।

अभिनिर्णय: सेवानिवृत्ति देयक संविधान के अनुच्छेद 300A के तहत संपत्ति के समान हैं - अवकाश नकदीकरण जारी करने में छह वर्ष की देरी अनुचित है - वैधानिक प्रावधान के अभाव में भी, कर्मचारी अनुच्छेद 14, 19 और 21 के तहत साम्या (equity) के आधार पर ब्याज पाने का हकदार है - एस.के. दुआ मामले के अनुसार, विलंबित सेवानिवृत्ति लाभों पर ब्याज देय है - सेवानिवृत्ति से वास्तविक भुगतान तक 6% वार्षिक दर से ब्याज का भुगतान तीन महीने के भीतर करने का निर्देश जारी किया गया, ऐसा न करने पर ₹100 प्रति दिन की दर से दंडात्मक मुआवजा भी देय होगा।

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की गई।

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

एस.के. दुआ बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, (2008) 3 एसीसी 44

(माननीय न्यायमूर्ति विक्रम डी. चौहान द्वारा पारित)

अनुवादित

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादी-राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ दायर की गई है:-

"1:- प्रतिवादियों को परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जो उन्हें याचिकाकर्ता के अर्जित अवकाश के नकदीकरण की राशि को तत्काल स्वीकृत और वितरित करने का आदेश दे, जो उनकी सेवानिवृत्ति की तिथि यानी 31/03/2018 को देय हो गई थी, साथ ही पात्रता की तिथि से वास्तविक भुगतान की तिथि तक 18% की दर से ब्याज भी दिया जाए।

2:- प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता के दिनांक 14/03/2024 के प्रत्यावेदन (रिट याचिका का अनुलग्नक संख्या 2) को इस माननीय न्यायालय द्वारा निर्धारित समय सीमा के भीतर तय करने हेतु परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।"

3. दिनांक 23.04.2024 को इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया था:-
"निदेशक, माध्यमिक शिक्षा निदेशालय, उ.प्र., लखनऊ; संयुक्त शिक्षा निदेशक, सप्तम मंडल गोरखपुर, गोरखपुर और जिला विद्यालय निरीक्षक, गोरखपुर अपने निजी हलफनामों के माध्यम से कारण स्पष्ट करेंगे कि याचिकाकर्ता के अवकाश नकदीकरण की बकाया राशि का भुगतान उन्हें आज तक क्यों नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता राजकीय कन्या इंटर कॉलेज, गोरखपुर में सहायक अध्यापक (एल.टी. ग्रेड) थीं और अधिवर्षता आयु प्राप्त करने पर 31.03.2018 को ए.डी. राजकीय कन्या इंटर कॉलेज, गोरखपुर से सेवानिवृत्त हुईं।
प्रथम दृष्टया, ऐसा कोई कारण नजर नहीं आता कि याचिकाकर्ता के अर्जित अवकाश नकदीकरण की बकाया राशि का भुगतान क्यों नहीं किया जाना चाहिए था। तीनों प्रतिवादी इसी बात को ध्यान में रखते हुए कारण स्पष्ट करेंगे।
*इसे **02.05.2024** को **नए मामले** के रूप में सूचीबद्ध करें।*
*इस आदेश को रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा **24 घंटे** के भीतर सिविल जज (सीनियर डिवीजन), लखनऊ के माध्यम से निदेशक, माध्यमिक शिक्षा निदेशालय, उ.प्र., लखनऊ को; और सिविल जज (सीनियर डिवीजन), गोरखपुर के माध्यम से संयुक्त शिक्षा निदेशक, सप्तम मंडल गोरखपुर तथा जिला विद्यालय निरीक्षक, गोरखपुर को संप्रेषित किया जाए।"*

4. इसके अनुपालन में, शिक्षा निदेशक का व्यक्तिगत शपथपत्र इस न्यायालय के समक्ष दायर किया गया और दिनांक 02.05.2024 को इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया :-
"प्रतिवादी संख्या 2, 3 और 4 की ओर से व्यक्तिगत हलफनामे आज न्यायालय में विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री धीरेंद्र प्रताप सिंह द्वारा दायर किए गए हैं। इन हलफनामों को रिकॉर्ड पर लिया जाए और कार्यालय द्वारा इन्हें संख्यांकित किया जाए।
शिक्षा निदेशक (माध्यमिक शिक्षा), उ.प्र. प्रयागराज/लखनऊ द्वारा दायर हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 6 में यह कहा गया है:

'6. यह कि उपर्युक्त अवकाश नकदीकरण स्वीकृति आदेश दिनांक 25.04.2024 के अनुक्रम में, वित्त एवं लेखाधिकारी (माध्यमिक शिक्षा), गोरखपुर ने दिनांक 27.04.2024 को टोकन संख्या 3224332066 के माध्यम से याचिकाकर्ता के बचत बैंक खाते में 2,01,600/- रुपये की राशि जमा कर दी है।'

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता इस तथ्य से इनकार नहीं करते हैं कि अवकाश नकदीकरण के मद में 2,01,600/- रुपये की राशि उनके खाते में जमा कर दी गई है, लेकिन उनका कहना है कि यह भुगतान बिना ब्याज के किया गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता अवकाश नकदीकरण के विलंबित भुगतान पर ब्याज दिए जाने के अपने दावे पर जोर देते हैं। आज न्यायालय में दायर व्यक्तिगत हलफनामों को प्रति-शपथ पत्र मानते हुए, इस याचिका को स्वीकार किया जाता है। विद्वान स्थायी अधिवक्ता इस विषय पर एक अतिरिक्त प्रति-शपथ पत्र दायर कर सकते हैं कि ब्याज क्यों न दिया जाए। उक्त हलफनामा दो सप्ताह के भीतर दायर किया जाएगा।

***आदेश** हेतु दिनांक **17.05.2024** को सूचीबद्ध करें।"*

5. दिनांक 02.05.2024 के आदेश के अनुपालन में, प्रतिवादी-राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा 15.05.2024 को एक हलफनामा दायर किया गया, जिसमें कहा गया है कि अवकाश नकदीकरण के विलंबित भुगतान पर ब्याज प्रदान करने का कोई प्रावधान नहीं है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि याचिकाकर्ता 31.03.2018 को ए.डी. राजकीय कन्या इंटर कॉलेज, गोरखपुर में सहायक अध्यापक के पद से सेवानिवृत्त हुई थीं और उनके अवकाश नकदीकरण का भुगतान नहीं किया गया था। परिणामस्वरूप यह रिट याचिका दायर की गई, जिसमें इस न्यायालय के निर्देश पर और दिनांक 23.04.2024 के आदेश के बाद प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता के पक्ष में अवकाश नकदीकरण की राशि जारी की, जो उन्हें 25.04.2024 को प्राप्त हुई। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि अवकाश नकदीकरण की राशि जारी करने में असाधारण देरी हुई है, जिससे याचिकाकर्ता को हानि हुई है और इसके लिए कोई स्पष्टीकरण भी नहीं दिया गया है।

7. प्रतिवादी-राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता का कहना है कि ब्याज के भुगतान का कोई प्रावधान नहीं है और इसी कारण ब्याज नहीं दिया गया है।

8. यह विचारणीय है कि एक कर्मचारी होने के नाते याचिकाकर्ता सेवानिवृत्ति के बाद समय पर सभी सेवानिवृत्ति देयकों की हकदार है। वर्तमान मामले में, यद्यपि याचिकाकर्ता 31.03.2018 को सेवानिवृत्त हुई थीं, लेकिन उनके अवकाश नकदीकरण के देयकों का भुगतान 25.04.2024 को किया गया, यानी लगभग छह वर्षों के बाद।

9. यह आगे विचारणीय है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 300A के तहत कर्मचारी के सेवानिवृत्ति देयक उसकी संपत्ति हैं और इन देयकों को जारी करने में प्रतिवादियों की ओर से बिना किसी स्पष्टीकरण के की गई देरी न तो स्वीकार्य है और न ही कानून में इसकी अनुमति है। साम्या के आधार पर, कर्मचारी विलंबित भुगतान

पर ब्याज का हकदार है, जैसा कि **एस.के. दुआ बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, (2008) 3 एससीसी 44** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून में कहा गया है:

"11. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, हमारी राय में, यह अपील आंशिक रूप से स्वीकार किए जाने योग्य है। पक्षों के बीच यह विवाद का विषय नहीं है कि अपीलकर्ता 30 जून, 1998 को सेवा से सेवानिवृत्त हुए थे। यह भी निर्विवाद है कि सेवा से सेवानिवृत्ति के समय अपीलकर्ता सरकारी सेवा में तीन दशक से अधिक का समय पूरा कर चुके थे। इसलिए, स्पष्ट रूप से वह कानून के अनुसार सेवानिवृत्ति लाभों के हकदार थे। यह सच है कि उनके खिलाफ कुछ आरोप-पत्र/कारण बताओ नोटिस जारी किए गए थे और अपीलकर्ता से यह पूछा गया था कि उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही क्यों न शुरू की जाए। हालांकि, अपीलकर्ता का पक्ष यह है कि वे सभी कार्रवाइयां श्री कुरैशी के इशारे पर की गई थीं, जिनके खिलाफ अपीलकर्ता ने कदाचार और दुराचरण के गंभीर आरोप लगाए थे, जिसके परिणामस्वरूप श्री कुरैशी को सिंचाई सचिव के पद से हटा दिया गया था। उक्त श्री कुरैशी फिर मुख्यमंत्री के प्रधान सचिव बन गए। उसके तुरंत बाद अपीलकर्ता को आरोप-पत्र जारी किए गए और उनके खिलाफ कार्यवाही शुरू की गई। तथ्य यह है कि अंततः कार्यवाहियां समाप्त कर दी गईं और अपीलकर्ता को सभी सेवानिवृत्ति लाभ दिए गए। लेकिन इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि अपीलकर्ता को वे लाभ चार साल बाद दिए गए। इन परिस्थितियों में, प्रथम दृष्टया हमारा मत है कि अपीलकर्ता द्वारा व्यक्त की गई शिकायत तर्कसंगत प्रतीत होती है कि वह ऐसे लाभों पर ब्याज पाने के हकदार होंगे। यदि इस क्षेत्र में कोई वैधानिक नियम प्रभावी हैं, तो अपीलकर्ता उन नियमों के आधार पर ब्याज के भुगतान का दावा कर सकते हैं। यदि इस उद्देश्य के लिए कोई प्रशासनिक निर्देश, दिशानिर्देश या मानदंड निर्धारित हैं, तो अपीलकर्ता उस आधार पर ब्याज के लाभ का दावा कर सकते हैं। लेकिन वैधानिक नियमों, प्रशासनिक निर्देशों या दिशानिर्देशों के अभाव में भी, एक कर्मचारी संविधान के भाग III के तहत अनुच्छेद 14, 19 और 21 पर भरोसा करते हुए ब्याज का दावा कर सकता है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि सेवानिवृत्ति लाभ 'बक्षीस' की प्रकृति के नहीं होते हैं, हमारी राय में, सुदृढ़ है और इसके समर्थन में किसी अन्य विधि की आवश्यकता नहीं है। उस परिप्रेक्ष्य में, हमारे सुविचारित मत में, उच्च न्यायालय का प्रतिवादियों को नोटिस जारी किए बिना ही याचिका को प्रारंभिक स्तर पर खारिज करना सही नहीं था।"

10. यह आगे विचारणीय है कि प्रतिवादियों द्वारा इस बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि अर्जित अवकाश के देयकों के भुगतान में देरी क्यों हुई। चूंकि विलंब का कोई उचित कारण नहीं बताया गया है, इसलिए याचिकाकर्ता अपनी सेवानिवृत्ति की तिथि से लेकर वास्तविक भुगतान की तिथि तक 6% वार्षिक दर से ब्याज पाने की हकदार हैं। उपरोक्त ब्याज का भुगतान प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर किया जाएगा। यदि उक्त अवधि के भीतर राशि का भुगतान नहीं किया जाता है, तो याचिकाकर्ता उपर्युक्त ब्याज के अतिरिक्त 100/- रुपये प्रति दिन की दर से दंडात्मक मुआवजे की भी हकदार होंगी।

11. उपरोक्त टिप्पणियों/निर्देशों के साथ, यह रिट याचिका निस्तारित की जाती है।

(2025) 5 ILRA 906

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट - ए संख्या 17029 वर्ष 2013

श्रीमती माया **...याचिकाकर्ता**

बनाम

जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी बागपत एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री सिया राम साहू, श्री विष्णु गुप्ता (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
श्री राजेश यादव, श्री आशुतोष मिश्रा

अनुवादित

सिविल कानून - यू.पी. बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 पेंशन/पारिवारिक पेंशन - याचिकाकर्ता के पति को 19.11.1963 को अप्रशिक्षित शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था, जो 30.06.1991 को सेवानिवृत्त हुए। याचिकाकर्ता के पति को इस आधार पर पेंशन देने से इनकार कर दिया गया था कि उन्होंने 30.05.1973 के शासनादेश के तहत कट-ऑफ तिथि 25.07.1973 तक 15 वर्ष की सेवा पूरी नहीं की थी। अभिनिर्णय: उच्च न्यायालय ने यह माना कि बाद का शासनादेश दिनांक 04.12.1982, जिसने 30.06.1978 तक 10 वर्ष की नियमित सेवा की आवश्यकता को कम कर दिया था, इस मामले में पूरी तरह से लागू होता है, क्योंकि याचिकाकर्ता के पति ने तब तक 14 वर्ष से अधिक की सेवा दे दी थी; केवल पुराने शासनादेश पर भरोसा करते हुए दावे को खारिज करना अवैध था। एक बार जब पेंशन खारिज करने वाले 05.03.2008 के आदेश को रद्द कर दिया गया, तो उसके कानूनी परिणाम स्वतः लागू होंगे। हालांकि, चूंकि कर्मचारी की मृत्यु 2011 में हो गई थी और याचिकाकर्ता (विधवा, आयु लगभग 85 वर्ष) दशकों से मुकदमेबाजी कर रही है, इसलिए न्यायालय ने राज्य को निर्देश दिया कि वह पारिवारिक पेंशन के बदले उन्हें 7,50,000/- रुपये का एकमुश्त मुआवजा दे। यह आदेश विशिष्ट परिस्थितियों में पारित किया गया है और इसे नजीर के रूप में नहीं माना जाएगा। (पैरा 20-28)।

याचिका स्वीकार की गई। (E-5)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता ने दावा किया है कि उनके पति की प्रारंभिक नियुक्ति 01.10.1957 को प्राइमरी स्कूल, करमालीपुर गढ़ी, बागपत, मेरठ में एक अप्रशिक्षित शिक्षक के रूप में हुई थी। उन्होंने आगे दावा किया कि उनके पति ने सरूरपुर कलां स्थित एक प्रशिक्षण शिविर से 19.05.1960 से 30.05.1960 तक प्रशिक्षण प्राप्त किया था। याचिकाकर्ता का आगे यह भी दावा है कि इसके पश्चात उनके पति को 19.11.1963 को प्राइमरी स्कूल, करमालीपुर गढ़ी, बागपत, मेरठ में एक अप्रशिक्षित सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था, जहाँ उन्होंने अपनी सेवानिवृत्ति यानी 30.06.1991 तक कार्य किया।

2. याचिकाकर्ता ने आगे दावा किया है कि उनके पति ने अपनी प्रारंभिक नियुक्ति यानी 01.10.1957 से लेकर सेवानिवृत्ति यानी 30.06.1991 तक लगभग 34 वर्षों तक कार्य किया। याचिकाकर्ता का यह भी पक्ष है कि उनके पति द्वारा इतने लंबे समय तक कार्य किए जाने के बावजूद उन्हें पेंशन से वंचित रखा गया, जिसके लिए उन्होंने कई प्रत्यावेदन भी प्रस्तुत किए।

3. उपरोक्त परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता के पति ने एक रिट ए संख्या 20312/1999 दायर की थी, जिसे 08.05.1999 के आदेश द्वारा इस निर्देश के साथ निस्तारित किया गया था कि बी.एस.ए., मेरठ कानून के अनुसार सेवानिवृत्ति लाभों के संबंध में याचिकाकर्ता के दावे पर निर्णय लेंगे।

4. उपरोक्त आदेश के अनुपालन में, याचिकाकर्ता के पति के दावे पर विचार किया गया, हालांकि, 25.01.2000 के एक आदेश द्वारा इसे इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि 30.05.1973 के शासनादेश के अनुसार याचिकाकर्ता के पति को प्रशिक्षण से छूट नहीं दी जा सकती थी। इसका कारण यह बताया गया कि कट-ऑफ तिथि यानी 25.07.1973 से पहले उन्हें 15 वर्ष की सेवा पूरी करनी आवश्यक थी, जबकि उन्होंने केवल 9 वर्ष 8 महीने और 6 दिन की सेवा पूरी की थी। याचिकाकर्ता की नियुक्ति की तिथि 19.11.1963 मानी गई, जब उन्हें अप्रशिक्षित शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था।

5. इसके पश्चात, याचिकाकर्ता के पति की ओर से उक्त आदेश को रिट ए संख्या 30422/2000 दायर करके चुनौती दी गई, जिसे 04.01.2008 के आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया गया। उक्त आदेश का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत है: "घटनाओं के उपरोक्त क्रम को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को बेसिक शिक्षा अधिकारी के समक्ष अपना पक्ष रखने के लिए सुनवाई का अवसर प्रदान नहीं किया गया था। **दिनांक 04.12.82 के परिपत्र (उप-पैरा 1) में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि यदि किसी अप्रशिक्षित शिक्षक ने 30.06.78 को 10 वर्ष की सेवा पूरी कर ली है, तो वह संबंधित शासनादेशों और परिपत्रों में वर्णित सभी लाभों का हकदार था। इसके अतिरिक्त, यदि याचिकाकर्ता की सेवा की गणना 01.10.1957 से की जाती है, तो उन्होंने 25.07.73 से बहुत पहले ही 15 वर्ष की सेवा पूरी कर ली थी। इस प्रकार, ऐसा प्रतीत होता है कि महत्वपूर्ण तथ्यों को विचार से बाहर रखा गया है और न्याय के हित में रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों की पुन: सुनवाई और पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है।**

उपरोक्त के आलोक में, रिट स्वीकार की जाती है और बेसिक शिक्षा अधिकारी, मेरठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.01.2000 को रद्द किया जाता है। बेसिक शिक्षा अधिकारी, मेरठ को निर्देशित किया जाता है कि वे रिकॉर्ड मंगाएं, सुनवाई की एक तिथि निर्धारित करें और याचिकाकर्ता का पक्ष संज्ञान में लें। याचिकाकर्ता के लिए अपने पक्ष के समर्थन में सभी प्रासंगिक शासनादेशों और परिपत्रों को प्रस्तुत करने का विकल्प खुला रहेगा। बेसिक शिक्षा अधिकारी रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का मूल्यांकन करने और याचिकाकर्ता के पक्ष पर विचार करने के बाद, निर्णय और आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से एक महीने की अवधि के भीतर कानून के अनुसार उचित आदेश पारित करेंगे। यह न्यायालय इस प्रकार का निर्देश इसलिए जारी कर रहा है क्योंकि याचिकाकर्ता लगभग 76 वर्ष की आयु का एक गरीब स्कूल शिक्षक है और इस कारण विवाद का शीघ्र निपटारा आवश्यक है।"

6. उपरोक्त आदेश में, दिनांक 04.12.1982 के एक परिपत्र का संदर्भ दिया गया है, जिसे संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"प्रशिक्षण मुक्त लाभ का आदेश
(2)/6751 04/13 10(1)/0203

शिव दत्त त्रिवेदी

संयुक्त शिक्षा निदेशक (प्रशिक्षण)
शिक्षा निदेशालय, उत्तर प्रदेश
इलाहाबाद दिनांक दिसम्बर, 4, 1982

प्रिय श्री निगम,

कृपया अपने प० दिनांक शा० पत्रांक जी-1/2453/81-82 दिनांकित 27.12.81 एवं जी-1/1524-82-83 07.10.82 का अवलोकन करने का कष्ट करे जो सहायता प्राप्त जूनियर हाईस्कूलो एवं प्राइमरी स्कूलो में कार्यरत अप्रशिक्षित अध्यापक/अध्यापिका को प्रशिक्षण योग्यता से मुक्ति प्रदान करने के सम्बन्ध में है।

उपर्युक्त सन्दर्भित पत्रो द्वारा की गई जिज्ञासाओ के सम्बन्ध में मुझे आपको निम्नवत सूचित करने की निर्देश हुआ है-

1 जिन अप्रशिक्षित अध्यापको/अध्यापिकाओ की अविरल सेवा अवधि 30-6-1978 को 10 वर्ष या इससे अधिक पूरी हो चुकी हो, उन्हे प्रशिक्षण से मुक्ति का लाभ 1-7-75 में देय होगा, भले ही आप द्वारा मुक्ति प्रदान किये जाने से सम्बन्धित आदेश उक्त तिथि के बाद ही निर्गत किये जाये।

2 राजाज्ञा संख्या/2186/15 (13)/1499 (7)/17 दिनांक 20-7-79 एवं राजाज्ञा/2104 (1)/15 (13) /1499 (ii) /11 दिनांक नवम्बर 1, 1971 द्वारा प्रदत्त प्रशिक्षण से मुक्ति की सुविधा अशासकीय मान्यता प्राप्त प्राइमरी तथा जूनियर हाईस्कूलो के प्राधानाध्यापको को भी देय होगी। किन्तु इस सम्बन्ध में जो आदेश आप द्वारा निर्गत किये जाये, इसमे इस बात का स्पष्ट उल्लेख कर दिया जाना चाहिए कि प्रशिक्षण से प्रदान की गई

मुक्ति का आशय, उन्हे प्रशिक्षित अध्यापक मानना मात्र है। प्रधान अध्यापक/प्रधान अध्यापिका के पद पर उनकी नियुक्ति/पदोन्नति तभी मान्य होगी जब वे अधिसूचना संख्या 8988 पन्द्रह-20 (11/72) दिनांक फरवरी 13,1978 द्वारा विज्ञापित तथा 13 फरवरी 1979 से प्रभावी उ०प्र० असाशकिय मान्यता प्राप्त बेसिक (जूनियर हाईस्कूल) अध्यापकों की भर्ती और सेवा नियमावली 1978 द्वारा निर्धारित शौक्षिक योग्यता बाद प्रतिबन्ध भी पूरी करते हो।

3 ऐसे अध्यापको/अध्यापिकाओ जिनकी सेवा अवधि में व्यवधान हो के प्रकरण निदेशालय को विवरण सहित प्रशिक्षण हेतु भेजे जाये तथा निदेशालय की सहमति प्राप्त होने के पश्चात ही उनको प्रशिक्षण से मुक्ति से सम्बंधित आदेश आप द्वारा किये जावे।

भवदीय
(शिव दत्त त्रिवेदी) "

7. उपरोक्त परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता के पति के दावे पर पुनः विचार किया गया, हालांकि, दिनांक 05.03.2008 के आदेश द्वारा इसे फिर से उन्हीं आधारों पर खारिज कर दिया गया जिन पर पिछला आदेश पारित किया गया था, जबकि उस पिछले आदेश को इस न्यायालय द्वारा पहले ही रद्द किया जा चुका था। संदर्भ के लिए, दिनांक 05.03.2008 के आदेश का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत है:

"विवेचना

श्री शालगराम के द्वारा प्राप्त कराये गये अभिलेखों के परीक्षण से स्पष्ट होता है कि-

1. श्री सालगराम द्वारा एक प्रमाण पत्र उर्दू में लिखित प्रस्तुत किया है जिसका अनुवाद कराया गया। उसके अनुसार इनकी जन्मतिथि 03.07.1930 है, जो दर्जा चार (04) पास की है तथा दिनांक 13.05.1947 की सदर बागपत से जारी किया गया है।

2. जू० हाईस्कूल परीक्षा 1952 में उत्तीर्ण होने का प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया है।

3. 01.10.1957 से नवम्बर 1963 तक सहायता प्राप्त पाठशाला क्रमअलीपुर गढी विकास क्षेत्र बागपत में कार्य करने का प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया है। किस तिथि तक कार्य किया है इसका कोई उल्लेख नहीं है। यह प्रमाण पत्र मान्य नहीं है क्योंकि प्रमाण पत्र जिस संस्था में कार्य किया है उस संस्था द्वारा जारी नहीं किया गया है। प्रधान अध्यापक प्रा०पा० विलोचुपरा द्वारा दिनांक 10.04.1970 को जारी किया गया है जिसका कोई सम्बन्ध नहीं है। सक्षम अधिकारी से प्रतिहस्ताक्षरित भी नहीं है, वेतन एवं भत्तो का भी उल्लेख नहीं है।

4. वादी द्वारा उक्त अवधि में 15 रूपये प्रतिमाह वेतन प्राप्त करना बताया है। वेतन प्राप्त करने का कोई रजिस्टर, बैंक पास बुक आदि प्रस्तुत नहीं किया गया। ग्राम प्रधान का प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया है। विद्यालय प्रधान अध्यापक का वेतन देने सम्बन्धी कोई प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।

5. उक्त विद्यालय में पी. एफ. आदि कटने सम्बन्धी कोई भी प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया है.

6. नियुक्ति पत्र के अनुसार दिनांक 19.11.1963 को प्रा० पा० कर्मअलीपुर गढी में कार्यभार ग्रहण करने का प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया गया है।

7. सचिव, उ०प्र० बेसिक शिक्षा परिषद के पत्र सं० बे०शि०प० /प्रशि०मु० / 24157-24215/85-86 दिनांक 06.09.1985 के अनुसार जिन अध्यापकों ने निरन्तर सेवा 15 वर्ष पूर्ण कर ली हो और निर्धारित शैक्षिक योग्यता रखते हो बी०टी०सी० प्रशिक्षण से छूट प्रदान करने के निर्देश प्रदान किये गये है।

8. जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी मेरठ के पत्रांक ई० (1) 2339-40/91-92 दिनांक 23.10.91 द्वारा बेसिक शिक्षा परिषद के पत्र दिनांक 16.09.85 के अनुक्रम में प्रशिक्षण से मुक्ति प्रदान की गयी है, जो त्रुटि पूर्ण है क्योकि 19.1163 से पूर्व की सेवायें मान्य नहीं है तथा निर्देशों के अनुसार शैक्षिक योग्यता भी पूर्ण नहीं करते है। कम से कम शैक्षिक योग्यता इण्टरमीडियेट या समक्ष होनी चाहिये।

9. श्री शालगराम की दिनांक 25.07.73 को मान्य सेवाये 9 वर्ष 8 माह 6 दिन होती है। जो 15 वर्ष से अत्यधिक कम है।

निर्णय

श्री शालगराम अप्रशिक्षित (सेवानिवृत्त) स०अ० प्रा०पा० क्यामपुर की मान्य नियुक्ति तिथि 15.11.63 है। सचिव बेशिक शिक्षा परिषद इलाहाबाद के आदेश दिनांक 16.09.85 के अनुसार 25.07.73 को कुल मान्य अप्रशिक्षित सेवाए 9 वर्ष 8 माह 6 दिन है जो 15 वर्ष से कम है। निर्धारित तिथि को शैक्षिक योग्यता भी पूर्ण नहीं करते है। सी.पी.एफ./जी.पी.एफ. योजना में भी सम्मिलित नहीं है। निर्धारित शर्ते पूर्ण नहीं करते इसलिए नियमों के अन्तर्गत पेंशन के अधिकारी नहीं हैं।
अतः श्री शालगराम का प्रत्यावेदन निस्तारित करते हुए निरस्त किया जाता है।"

8. इसके पश्चात, याचिकाकर्ता के पति ने एक अवमानना याचिका दायर की कि उनके दावे पर दिनांक 05.03.2008 के आदेश द्वारा इस न्यायालय के पूर्व आदेश दिनांक 25.01.2000 की शर्तों के अनुसार विचार नहीं किया गया।

9. अवमानना आवेदन को अंततः 21.11.2012 को निर्णीत किया गया, जिसके तहत नोटिस को डिस्चार्ज (समाप्त) कर दिया गया और दिनांक 05.03.2008 के आदेश की सत्यता को चुनौती देने की स्वतंत्रता प्रदान की गई।

10. दुर्भाग्यवश, अवमानना की कार्यवाही में आदेश पारित होने से पहले ही याचिकाकर्ता के पति की 19.04.2011 को मृत्यु हो गई।

11. उपरोक्त परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका दायर कर इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, जिसमें उन्होंने 05.03.2008 के आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की है, साथ ही अपने पति को पेंशन दिए जाने और तदनुसार स्वयं को पारिवारिक पेंशन प्रदान करने की भी प्रार्थना की है।

12. जब यह रिट याचिका वर्ष 2013 में दायर की गई थी, तब याचिकाकर्ता ने अपनी आयु 73 वर्ष घोषित की थी, इस नाते आज उनकी आयु लगभग 85 वर्ष होगी।

13. याचिकाकर्ता के पति ने एक बहुत लंबी कानूनी लड़ाई लड़ी है। उनकी मौलिक नियुक्ति 19.11.1963 को हुई थी। पूर्व की नियुक्ति मौलिक पद के विरुद्ध न होने के कारण उनकी सेवा में शामिल नहीं की जा सकती और साथ ही कथित प्रशिक्षण को शिक्षकों की नियुक्ति के उद्देश्य से प्रशिक्षण नहीं माना जा सकता था। याचिकाकर्ता (के पति) ने 19.11.1963 से 30.06.1991 तक यानी लगभग 27 वर्षों तक कार्य किया और उसके बाद वह इस न्यायालय के समक्ष पहले 1999 में, फिर 2000 में आए, और यहाँ तक कि 05.03.2008 को विवादित आदेश पारित होने के बाद भी वह अवमानना कार्यवाही के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष थे, जिसे उनकी मृत्यु के बाद 21.11.2012 को निस्तारित किया गया।

14. अतः, याचिकाकर्ता के पति लगभग 12 वर्षों तक इस न्यायालय के समक्ष संघर्ष करते रहे और उसके बाद उनकी पत्नी वर्ष 2013 में वर्तमान रिट याचिका दायर करके इस न्यायालय के समक्ष आई हैं और वह पिछले 12 से अधिक वर्षों से न्यायसंगत निर्णय की प्रतीक्षा कर रही हैं।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री सिया राम साहू द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता श्री विष्णु गुप्ता ने उपरोक्त निर्विवाद तथ्यों के आधार पर 04.12.1982 के उस शासनादेश पर गहरा भरोसा जताया है, जिस पर विचार करने का निर्देश तब दिया गया था जब 04.01.2008 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के पति द्वारा दायर दूसरी रिट याचिका को स्वीकार किया गया था।

16. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि दिनांक 04.12.1982 के उक्त शासनादेश पर विचार नहीं किया गया और याचिकाकर्ता के पति के दावे को 16.09.1985 के बाद के एक शासनादेश के आधार पर पुनः खारिज कर दिया गया। साथ ही, यह भी गलत तरीके से माना गया कि याचिकाकर्ता के पति सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति के लिए पात्र नहीं थे क्योंकि उन्होंने इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की थी। संदर्भ के लिए, दिनांक 16.09.1985 के शासनादेश की विषय-वस्तु नीचे उद्धृत है:

"उपर्युक्त कृपया अपने पत्रांक सं० विषयक 2837/88/भशि०मु०/85-86 दिनांक 05.08.85 का सन्दर्भ ले जो उक्त अध्यापिका को प्रशिक्षण से मुक्ति प्रदान करने में है।

इस सम्बन्ध में आपसे यह कहना है कि उप सचिव उ०प्र० शासन शिक्षा-13 अनुभाग लखनऊ के पत्र संख्या 1274/15/19-1499/6/61 दिनांक 10.09.73 में उल्लिखित राजाज्ञा संख्या 1386/15/13/1450/56/73 दिनांक 30.05.73 के द्वारा राज्यपाल महोदय ने जुलाई 25, 1973 को जिन अध्यापक अध्यापिकाओं ने 15 वर्ष की निरन्तर सेवा पूर्ण कर ली हो और उक्त दिनांक को निर्धारित शैक्षिक योग्यता रखते हो की भी टी०सी० प्रशिक्षण से छूट प्रदान कर दी है। इसके लिये किसी अधिकारी के आदेश की आवश्यकता नहीं है। इसमें आपको केवल इतना ही देखना है कि उक्त तिथि में उसकी 15 वर्ष की निरन्तर सेवा पूर्ण हो चुकी हो तथा निर्धारित शैक्षिक योग्यता रखते हो।

कृपया शासन के दिये गये निर्देशों के अनुरूप निर्धारित शैक्षिक योग्यता रखने वाले ऐसे शिक्षक/शिक्षिका जिन्होने 25.07.72 को 15 वर्ष की सेवा पूर्ण कर ली हो प्रशिक्षण से मुक्त समझे जायेंगे तथा उन्हे दि० 25.07.72 के उपरान्त प्रशिक्षित वेतनक्रम दिया जाये।"

17. यह किसी अन्य व्यक्ति के मामले के संबंध में एक संचार था, जिसमें 30.05.1973 के शासनादेश का संदर्भ दिया गया था। यही शासनादेश मुकदमेबाजी के पहले दौर में याचिकाकर्ता के पति के दावे को खारिज करने का आधार था, इसलिए इस पर भरोसा किया जाना गलत था।

18. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम रोजालिया मिंज सोहंता (श्रीमती) एवं अन्य, 2003 (3) UPLBEC 2513; शौकत अली खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2024 (9) ADJ 797; सरला श्रीवास्तव बनाम डी.आई.ओ.एस., इलाहाबाद, 1998(1) AWC 250** के मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा जताया है।

19. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता, श्री आशुतोष मिश्रा ने विवादित आदेश का समर्थन किया और 25.07.1973 के एक आदेश पर भरोसा जताया। हालांकि, वह यह स्पष्ट करने में विफल रहे कि 04.12.1982 के शासनादेश पर ध्यान क्यों नहीं दिया गया, जबकि इस न्यायालय ने विशेष रूप से उक्त शासनादेश के आलोक में याचिकाकर्ता के पति के दावे पर विचार करने का निर्देश देते हुए आदेश पारित किया था।

20. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह एक लंबी कानूनी लड़ाई का मामला है। याचिकाकर्ता के पति के दावे को 25.07.1973 के शासनादेश के आधार पर प्रशिक्षण से छूट देने के लिए निर्देशित किया गया था, जिसके लिए कट-ऑफ तिथि यानी 25.07.1973 तक 15 वर्ष की नियमित सेवा होना आवश्यक है। निर्विवाद रूप से, याचिकाकर्ता के पति ने 10 वर्ष से भी कम सेवा की थी, इसलिए उक्त शासनादेश का कोई लाभ नहीं दिया जा सकता था।

21. हालांकि, 04.12.1982 के बाद के एक पत्र के माध्यम से, उन शिक्षकों को प्रशिक्षण से छूट दी जा सकती थी जिन्होंने 30.06.1978 तक 10 वर्ष की नियमित सेवा की थी। वर्तमान तथ्यों के अनुसार, चूंकि याचिकाकर्ता

के पति की नियुक्ति 19.11.1963 को हुई थी, इसलिए उन्होंने कट-ऑफ तिथि (30.06.1978) तक लगभग 14 वर्ष और 6 महीने की सेवा पूरी कर ली थी। अतः, यह याचिकाकर्ता के पति के मामले पर पूरी तरह लागू होता है और उन्हें प्रशिक्षण से छूट दी जा सकती थी, लेकिन इसके प्रभाव पर ध्यान नहीं दिया गया।

22. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, संबंधित राज्य-प्रतिवादियों द्वारा 04.12.1982 के शासनादेश की पूरी तरह से अनदेखी की गई और 01.06.1985 के बाद के शासनादेश पर विचार किया गया, जिसमें 04.12.1982 के बाद के शासनादेश पर विचार किए बिना पूर्व के 30.05.1973 वाले शासनादेश का संदर्भ दिया गया था।

23. उपरोक्त परिस्थितियों में, न्यायालय इस बात पर विचार कर रहा है कि याचिकाकर्ता के पति पात्र थे या नहीं। याचिकाकर्ता के पति की नियुक्ति 19.11.1963 को हुई थी। उनकी योग्यता 'मिडल' यानी कक्षा-8 थी और उन्हें इस आधार पर अपात्र माना गया कि 1978 के प्रासंगिक नियमों के अनुसार, उनका 12वीं उत्तीर्ण होना आवश्यक था।

24. इस संबंध में, न्यायालय का सुविचारित मत है कि स्वीकार्य रूप से जब 1963 में याचिकाकर्ता की नियुक्ति हुई थी, तब शिक्षक की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता का कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं था। 1978 में जब नियम लागू हुए, तब पहले से नियुक्त शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण प्रमाण पत्र प्राप्त करने के अलावा न्यूनतम योग्यता उत्तीर्ण करने की कोई आवश्यकता नहीं थी, और बाद में ऐसे शासनादेश आए, जहाँ सेवा की अवधि के आधार पर प्रशिक्षण से छूट भी प्रदान की गई थी।

25. उपरोक्त परिस्थितियों में, 05.03.2008 के विवादित आदेश को रद्द किया जाता है और इसके कानूनी परिणाम प्रभावी होंगे।

26. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, याचिकाकर्ता के पति की मृत्यु वर्ष 1991 में उनकी सेवानिवृत्ति के बाद वर्ष 2011 में हो गई थी। अतः, पेंशन का लाभ वास्तविक रूप में नहीं दिया जा सकता या इसे केवल काल्पनिक आधार पर दिया जा सकता है। अब प्रश्न वर्तमान याचिकाकर्ता को पारिवारिक पेंशन देने का है, जो पिछले 12 वर्षों से यह कानूनी लड़ाई लड़ रही हैं।

27. वर्तमान में, याचिकाकर्ता की आयु लगभग 85 वर्ष होगी और इस स्तर पर, पारिवारिक पेंशन की राशि निर्धारित करना कठिन होगा और संभवतः उन्हें जीवित रहने के लिए एकमुश्त राशि की आवश्यकता हो सकती है। इसलिए, न्याय के हित में और उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, इस रिट याचिका को इस निर्देश के साथ **निस्तारित** किया जाता है कि उचित सत्यापन के बाद याचिकाकर्ता के बैंक खाते में 7,50,000/- रुपये (सात लाख पचास हजार रुपये मात्र) की एकमुश्त राशि का भुगतान किया जाएगा, और इसके लिए संबंधित राज्य-प्रतिवादी कानून के अनुसार उन्हें सूचित करेंगे।

28. यह आदेश ऊपर संदर्भित विशिष्ट परिस्थितियों में पारित किया गया है, इसलिए इसे भविष्य के मामलों के लिए नजीर के रूप में नहीं माना जाएगा।

(2025) 5 ILRA 913

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 12.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान

रिट - ए संख्या 2000885 वर्ष 2005

नैपाल सिंह **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद एवं अन्य **...विपक्षीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

रविंद्र कुमार, गौरव मेहरोत्रा, के.एन. विश्वकर्मा, रानी सिंह, रविंद्र कुमार

विपक्षीगण के अधिवक्ता:

आर.के. मेहरोत्रा, अनुराग श्रीवास्तव, महेश चंद्र, मनोज सिंह, ओ.पी. श्रीवास्तव, पुनीत चंद्र

सेवा कानून - अनुशासनात्मक कार्यवाही - प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत - दस्तावेज उपलब्ध न कराने, मौखिक जांच आयोजित न करने और दोषी के उत्तर की अनदेखी करने के कारण जांच दूषित - सेवानिवृत्ति के अंतिम समय में बर्खास्तगी का दंड - अनुपातहीन।

निर्धारित: विभागीय जांच अनिवार्य रूप से 1966 के विनियमों के विनियम 27 के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार कड़ाई से संचालित की जानी चाहिए। भरोसेमंद दस्तावेजों की आपूर्ति न करना, मौखिक जांच के लिए तारीख तय न करना और जिरह की अनुमति न देना कार्यवाही को दूषित करता है। जहाँ जांच अधिकारी ने दोषी को 8 में से 6 आरोपों से दोषमुक्त कर दिया था, फिर भी अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दो आंशिक रूप से सिद्ध आरोपों पर स्पष्टीकरण पर विचार किए बिना बर्खास्तगी का बड़ा दंड लगा दिया, वहां दंड का आदेश अवैध और अनुपातहीन है। चूंकि रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान कर्मचारी की मृत्यु हो गई, इसलिए मामले को वापस भेजने का कोई उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा। बर्खास्तगी का आदेश रद्द किया गया। याचिकाकर्ता की विधवा सभी सेवा और सेवानिवृत्ति लाभों की 8% ब्याज के साथ हकदार है, जो भुगतान में चूक होने पर 12% दंडात्मक ब्याज तक बढ़ जाएगा।

रिट याचिका स्वीकार की गई।

<u>चर्चा किए गए वादविधि:</u>

1. भगत राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (1983) 2 एससीसी 442.
2. रंजीत ठाकुर बनाम भारत संघ, (1987) 4 एससीसी 611.
3. भारत संघ बनाम गिरिराज शर्मा, 1994 सप्प (3) एससीसी 755.
4. एस.के. गिरी बनाम गृह सचिव, गृह मंत्रालय, 1995 सप्प (3) एससीसी 519.
5. बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ, (1995) 6 एससीसी 749.
6. बिशन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1996) 10 एससीसी 461.
7. भास्कर पाराशरी बनाम निदेशक मंडल, अलीगढ़ ग्रामीण बैंक, (2005) 5 एडब्लूसी 4845 (All).
8. रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक, (2009) 2 एससीसी 570.
9. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा, (2010) 2 एससीसी 772.
10. निर्मला जे. झाला बनाम गुजरात राज्य, (2013) 4 एससीसी 301.
11. सत्येंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2024 एससीसी OnLine SC 3325.

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता सुश्री रानी सिंह द्वारा सहायता प्राप्त श्री गौरव मेहरोत्रा, तथा विपक्षीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री पुनीत चंद्र को सुना गया।

2. चुनौती के अधीन आदेश, विपक्षी संख्या 2, अर्थात् आवास आयुक्त, उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 29.07.2004 का बर्खास्तगी आदेश (अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में निहित) है।

3. इस मामले के तथ्यों और गुण-दोषों पर चर्चा करने से पहले यह उल्लेख करना आवश्यक है कि याचिकाकर्ता नैपाल सिंह, जिन्होंने यह रिट याचिका दायर की थी, की मृत्यु हो चुकी है और दिनांक 25.07.2022 को उनके स्थान पर उनकी पत्नी श्रीमती करुणा सिंह को प्रतिस्थापित किया गया है।

4. यह संकेत देना भी प्रासंगिक है कि इस न्यायालय का निर्णय और आदेश दिनांक 02.11.2022 को सुरक्षित रखा गया था और उसे दिनांक 29.05.2023 को सुनाया गया था, जिसके माध्यम से रिट याचिका को दिनांक 29.05.2023 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। दिनांक 29.05.2023 के निर्णय और आदेश को चुनौती देते हुए, इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष विशेष अपील संख्या 402 वर्ष 2023 दायर की गई थी और खंडपीठ ने दिनांक 10.08.2023 के आदेश के माध्यम से निर्णय और आदेश दिनांक 29.05.2023 को रद्द करते हुए विशेष अपील को अंतिम रूप से निस्तारित कर दिया और मामले को रिट न्यायालय को पुनः प्रेषित कर दिया ताकि इस रिट याचिका पर नए सिरे से निर्णय लिया जा सके।

अनुवादित

5. श्री गौरव मेहरोत्रा ने तर्क दिया है कि आक्षेपित बर्खास्तगी आदेश दोषपूर्ण विभागीय जांच के आधार पर पारित किया गया है, क्योंकि विभागीय जांच निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार संचालित और संपन्न नहीं की गई थी।

6. जांच अधिकारी द्वारा संचालित जांच, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और प्रासंगिक सेवा नियमावली का पूर्ण उल्लंघन है, क्योंकि मृतक याचिकाकर्ता को दिनांक 30.07.2002 के आरोप पत्र के साथ उन दस्तावेजों की प्रतियां कभी नहीं दी गईं जिनके आधार पर उनके विरुद्ध आरोप लगाए गए थे। वास्तव में, मृतक याचिकाकर्ता द्वारा अपने पत्रों दिनांक 07.07.2004, 14.07.2004, 16.07.2004 और 19.07.2004 के माध्यम से कई अनुरोध किए जाने के बाद भी, जांच अधिकारी ने न तो दस्तावेज उपलब्ध कराने पर और न ही मृतक याचिकाकर्ता के अनुरोधों का उत्तर देने पर कोई ध्यान दिया।

7. श्री मेहरोत्रा ने प्रस्तुत किया कि जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट दिनांक 22.04.2004 के अवलोकन मात्र से यह सिद्ध नहीं होता है कि मृतक याचिकाकर्ता द्वारा इस प्रत्याशा में भेजे गए अंतरिम जवाब पर विचार किया गया है कि जांच अधिकारी द्वारा आरोप पत्र के साथ दस्तावेज उपलब्ध कराए जाएंगे। जांच अधिकारी ने अपनी जांच रिपोर्ट दिनांक 22.04.2004 प्रस्तुत करते समय इस जवाब को संज्ञान में नहीं लिया।

8. मृतक याचिकाकर्ता की सेवाओं को नियंत्रित करने वाले प्रासंगिक प्रावधान 'बोर्ड के अधिकारियों और सेवकों की सेवा शर्तें विनियम, 1966' (संक्षेप में "विनियम, 1966") हैं, जिसमें विनियम 27 के अंतर्गत किसी दोषी कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही संचालित करने के लिए एक विस्तृत प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है। इस माननीय न्यायालय के अवलोकन और विचारार्थ विनियम, 1966 का विनियम 27 नीचे दिया गया है:

"27. (1) बोर्ड के किसी अधिकारी या सेवक पर विनियम 25 के खंड (e) से (g) में निर्दिष्ट कोई भी दंड तब तक नहीं लगाया जाएगा, जब तक कि इसके बाद प्रदान की गई रीति के अनुसार, जहाँ तक संभव हो, जांच न की गई हो।

(2) अनुशासनात्मक प्राधिकारी उन आरोपों के आधार पर निश्चित आरोप पत्र तैयार करेगा जिन पर जांच की जानी प्रस्तावित है। ऐसे आरोप, उन आरोपों के विवरण के साथ जिन पर वे आधारित हैं, अधिकारी या सेवक को लिखित रूप में सूचित किए जाएंगे और उसे अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निर्दिष्ट समय के भीतर अपने बचाव का लिखित विवरण प्रस्तुत करने और यह बताने की आवश्यकता होगी कि क्या वह व्यक्तिगत रूप से सुनवाई चाहता है।

स्पष्टीकरण: *इस उप-विनियम और उप-विनियम (3) में अभिव्यक्ति "अनुशासनात्मक प्राधिकारी" में वह प्राधिकारी भी शामिल होगा जो इन विनियमों के तहत विनियम 25 के खंड (a) से (d) में दिए गए दंडों को लगाने के लिए सक्षम है।*

(3) बोर्ड के अधिकारी या सेवक को, अपना बचाव तैयार करने के प्रयोजन के लिए, ऐसे आधिकारिक रिकॉर्ड का निरीक्षण करने और उनसे उद्धरण लेने की अनुमति दी जाएगी जिन्हें वह निर्दिष्ट करे, बशर्ते कि ऐसी अनुमति देने से इनकार किया जा सकता है यदि लिखित रूप में दर्ज कारणों से अनुशासनात्मक प्राधिकारी की राय में ऐसे रिकॉर्ड उस प्रयोजन के लिए प्रासंगिक नहीं हैं या उसे उन तक पहुंच देना सार्वजनिक हित के विरुद्ध है।

(4) बचाव का लिखित विवरण प्राप्त होने पर, या यदि निर्दिष्ट समय के भीतर ऐसा विवरण प्राप्त नहीं होता है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी स्वयं उन आरोपों की जांच कर सकता है जिन्हें स्वीकार नहीं किया गया है, या यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझे, तो इस प्रयोजन के लिए एक जांच बोर्ड या एक जांच अधिकारी नियुक्त कर सकता है।

(5) अनुशासनात्मक प्राधिकारी आरोपों की जांच करने वाले प्राधिकारी (जिसे इसके बाद जांच प्राधिकारी कहा गया है) के समक्ष आरोपों के समर्थन में मामला प्रस्तुत करने के लिए किसी भी व्यक्ति को नामित कर सकता है। बोर्ड का अधिकारी या सेवक अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित बोर्ड के किसी अन्य अधिकारी या सेवक की सहायता से अपना पक्ष प्रस्तुत कर सकता है। न तो बोर्ड और न ही उसका अधिकारी या सेवक किसी अधिवक्ता द्वारा प्रतिनिधित्व किए जाने का हकदार होगा।

(6) जांच प्राधिकारी, जांच के दौरान, ऐसे दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करेगा और ऐसे मौखिक साक्ष्य लेगा जो आरोपों के संबंध में प्रासंगिक या महत्वपूर्ण हों। बोर्ड का अधिकारी या सेवक आरोपों के समर्थन में जांचे गए गवाहों से जिरह करने और व्यक्तिगत रूप से साक्ष्य देने का हकदार होगा। आरोपों के समर्थन में मामला प्रस्तुत करने वाला व्यक्ति बोर्ड के अधिकारी या सेवक और उसके बचाव में जांचे गए गवाहों से जिरह करने का हकदार होगा। यदि जांच प्राधिकारी किसी गवाह की जांच करने से इस आधार पर इनकार करता है कि साक्ष्य प्रासंगिक या महत्वपूर्ण नहीं है, तो वह अपने कारणों को लिखित रूप में दर्ज करेगा।

(7) जांच की समाप्ति पर, जांच प्राधिकारी जांच की एक रिपोर्ट तैयार करेगा, जिसमें प्रत्येक आरोप पर अपने निष्कर्ष और उनके कारणों को दर्ज करेगा। यदि ऐसे प्राधिकारी की राय में जांच की कार्यवाही उन आरोपों से भिन्न आरोप स्थापित करती है जो मूल रूप से तैयार किए गए थे, तो वह ऐसे आरोपों पर निष्कर्ष दर्ज कर सकता है, बशर्ते कि ऐसे आरोपों पर निष्कर्ष तब तक दर्ज नहीं किए जाएंगे जब तक कि बोर्ड के अधिकारी या सेवक ने उन्हें गठित करने वाले तथ्यों को स्वीकार न कर लिया हो या उसे उनके विरुद्ध अपना बचाव करने का अवसर न मिला हो।

(8) जांच के रिकॉर्ड में शामिल होंगे -

(1) अधिकारी या सेवक के विरुद्ध तैयार किए गए आरोप और उप-विनियम (2) के तहत उसे दिया गया आरोपों का विवरण;

(i) उसका बचाव का लिखित विवरण, यदि कोई हो;

(ii) जांच के दौरान लिए गए मौखिक साक्ष्य;
(iii) जांच के दौरान विचार किए गए दस्तावेजी साक्ष्य;
(iv) जांच के संबंध में अनुशासनात्मक प्राधिकारी और जांच प्राधिकारी द्वारा दिए गए आदेश, यदि कोई हो; और
(v) प्रत्येक आरोप पर निष्कर्ष और उसके कारणों को दर्शाने वाली एक रिपोर्ट।

(9) *अनुशासनात्मक प्राधिकारी, यदि वह जांच प्राधिकारी नहीं है, तो जांच के रिकॉर्ड पर विचार करेगा और प्रत्येक आरोप पर अपने निष्कर्ष दर्ज करेगा।*

(10)(i) *यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी, आरोपों पर अपने निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए, इस राय का है कि विनियम 25 के खंड (e) से (g) में निर्दिष्ट दंडों में से कोई भी दंड लगाया जाना चाहिए, तो वह –*
(a) अधिकारी या सेवक को जांच प्राधिकारी की रिपोर्ट की एक प्रति और, जहाँ अनुशासनात्मक प्राधिकारी स्वयं जांच प्राधिकारी नहीं है, वहां जांच प्राधिकारी के निष्कर्षों के साथ अपनी असहमति के संक्षिप्त कारणों (यदि कोई हो) के साथ अपने निष्कर्षों का विवरण प्रदान करेगा।
(b) उसे एक नोटिस देगा जिसमें उसके संबंध में प्रस्तावित कार्रवाई बताई जाएगी और उसे एक निर्दिष्ट समय के भीतर ऐसा अभ्यावेदन प्रस्तुत करने के लिए कहा जाएगा जैसा वह प्रस्तावित कार्रवाई के विरुद्ध करना चाहता हो।
(ii) *अनुशासनात्मक प्राधिकारी अधिकारी या सेवक द्वारा दिए गए अभ्यावेदन पर विचार करेगा और यह निर्धारित करेगा कि उस पर क्या दंड लगाया जाना चाहिए और मामले में उचित आदेश पारित करेगा।*

(11) *यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी अपने निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए इस राय का है कि विनियम 25 के खंड (a) से (d) में निर्दिष्ट दंडों में से कोई भी दंड लगाया जाना चाहिए, तो वह मामले में उचित आदेश पारित करेगा।*

(12) *अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश अधिकारी या सेवक को सूचित किए जाएंगे, जिसे जांच प्राधिकारी की रिपोर्ट की एक प्रति भी प्रदान की जाएगी, और जहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच प्राधिकारी नहीं है, वहां उसके निष्कर्षों का विवरण और जांच प्राधिकारी के निष्कर्षों से असहमति के संक्षिप्त कारणों (यदि कोई हो) के साथ दिया जाएगा, बशर्ते कि वे उसे पहले ही प्रदान न किए गए हों।"*

9. 1966 के विनियमों का विनियम 27 उस उचित प्रक्रिया का प्रावधान करता है जिसका पालन जांच अधिकारी द्वारा दोषी कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही संचालित करते समय किया जाना अनिवार्य है।

10. 1966 के विनियमों का विनियम 27(3) स्पष्ट रूप से यह प्रावधान करता है कि दोषी कर्मचारी को आरोपों का विवरण/आरोप पत्र तामील किए जाने के बाद, अपना बचाव तैयार करने के उद्देश्य से, उसे ऐसे आधिकारिक रिकॉर्ड का निरीक्षण करने और उनसे उद्धरण लेने की अनुमति दी जाएगी जिन्हें वह निर्दिष्ट करे। विनियम

27(3) में आगे यह भी प्रावधान है कि आधिकारिक रिपोर्टों के निरीक्षण और उद्धरण लेने की अनुमति के ऐसे अनुरोध को लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों के आधार पर अस्वीकार किया जा सकता है। हालांकि, वर्तमान मामले में निर्विवाद रूप से कई अनुरोधों और अनुस्मारकों के बावजूद, दिनांक 30.07.2002 के आरोप पत्र में लगाए गए आरोपों के आधारभूत दस्तावेज न तो प्रदान किए गए और न ही मृतक याचिकाकर्ता को लिखित में कोई इनकार सूचित किया गया, जो 1966 के विनियमों के विनियम 27(3) की स्पष्ट अवहेलना है।

11. श्री मेहरोत्रा ने प्रस्तुत किया है कि मृतक याचिकाकर्ता के विरुद्ध जिन दस्तावेजों के आधार पर आरोप तय किए गए थे, उन्हें उपलब्ध कराने के कई अनुरोधों के बावजूद दस्तावेज प्रदान नहीं किए गए। यह सुस्थापित सिद्धांत है कि विभागीय जांच का सामना कर रहे एक कर्मचारी को सभी प्रासंगिक बयान, दस्तावेज और अन्य सामग्री प्राप्त करने का अधिकार है ताकि वह विभागीय जांच में अपना बचाव करने के लिए उचित अवसर प्राप्त कर सके।

12. 1966 के विनियमों का विनियम 27(6) प्रावधान करता है कि जांच अधिकारी, जांच के दौरान, आरोपों के संबंध में मौखिक साक्ष्य पर विचार करेगा। दोषी कर्मचारी आरोपों के समर्थन में परीक्षित गवाहों से जिरह करने और व्यक्तिगत रूप से साक्ष्य देने का हकदार होगा। यदि जांच अधिकारी किसी भी गवाह की जांच करने से इस आधार पर इनकार करता है कि साक्ष्य प्रासंगिक या महत्वपूर्ण नहीं है, तो इसे लिखित रूप में दर्ज किया जाएगा।

13. श्री मेहरोत्रा ने प्रस्तुत किया है कि वर्तमान मामले में दिनांक 22.04.2004 की जांच रिपोर्ट से यह स्पष्ट होता है कि जांच 1966 के विनियमों के विनियम 27(6) के अनुसार संचालित नहीं की गई थी, क्योंकि मौखिक जांच बिल्कुल भी आयोजित नहीं की गई और न ही किसी गवाह का परीक्षण या जिरह की गई। इसलिए, जांच अधिकारी द्वारा तैयार की गई जांच रिपोर्ट पूरी तरह से दूषित है।

14. 1966 के विनियमों के विनियम 27(8) के अनुसार, जांच के रिकॉर्ड में अधिकारी या सेवक के विरुद्ध तैयार किए गए आरोप और उप-विनियम (2) के तहत उसे दिया गया आरोपों का विवरण, बचाव का लिखित विवरण, जांच के दौरान लिए गए मौखिक साक्ष्य, जांच के दौरान विचार किए गए दस्तावेजी साक्ष्य, जांच के संबंध में अनुशासनात्मक प्राधिकारी और जांच प्राधिकारी द्वारा दिए गए आदेश (यदि कोई हो) और प्रत्येक आरोप पर निष्कर्ष एवं उसके कारणों को दर्शाने वाली रिपोर्ट शामिल होगी। हालांकि, वर्तमान मामले में जांच रिपोर्ट विनियम 27(8) के अधिदेश के अनुरूप नहीं है, क्योंकि दिनांक 22.04.2004 की जांच रिपोर्ट में विनियम 27(8) में अनिवार्य जांच रिपोर्ट के आवश्यक तत्व गायब हैं।

15. वर्तमान मामले में दिनांक 22.04.2004 की जांच रिपोर्ट में, मृतक याचिकाकर्ता को उस पर लगाए गए कुल आठ आरोपों में से छह आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया था। मृतक याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए कुल आठ आरोपों में से केवल दो आरोप, यानी आरोप संख्या 3 और आरोप संख्या 6 ही कथित तौर पर सिद्ध

पाए गए हैं। इस माननीय न्यायालय के अवलोकन और विचारार्थ आरोप संख्या 3 और 6 को नीचे पुनरुत्पादित किया गया है:

".....

आरोप संख्या-3 :- **(शिलान्यास तथा मूर्ति स्थापना पर व्यय**) -

इस मद में आरोप है कि शिलान्यास एवं मूर्ति हेतु न तो प्रारम्भिक आगणन में कोई प्रावधान था और न ही शासन द्वारा दी गयी प्रशासनिक स्वीकृति में। इसके बावजूद उक्त मद में 14.32 लाख की धनराशि व्यय कर दी गयी तथा कार्य के समाप्त हो जाने के पश्चात् भी उक्त हेतु कोई औपचारिक स्वीकृति प्राप्त नहीं की गयी। उक्त में परिषद सेवा शाई-1006 के विनियम-48 (1) प. (2) के अनुरूप आचरण प्रदर्शित करने के लिए आप दोषी हैं।

आरोप संख्या-6:- **(वाच एम वार्ड कार्यों पर अनियमितता बरतना)-**इस मद में अपचारी पर यह आरोप है कि इन्होंने बगैर किसी स्वीकृति व प्राविधान के जनपद अम्बेडकर नगर के निर्माणाधीन कलेक्ट्रेट तथा आवासीय भवनों के कार्यों पर बाच एवं वार्ड के कार्यों पर रू. 19.20 लाख की धनराशि व्यय करके शासन को आर्थिक हानि पहुंचागी तथा परिषद की छवि धूमिल की। इसके लिए आप पूर्णतः दोषी हैं।

16. श्री मेहरोत्रा ने प्रबलता के साथ यह प्रस्तुत किया है कि मृतक याचिकाकर्ता के मामले पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने के बजाय, विशेष रूप से जब जांच अधिकारी ने दिनांक 22.04.2004 की जांच रिपोर्ट में याचिकाकर्ता को आरोप पत्र दिनांक 30.07.2002 में मृतक याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप संख्या (i), आरोप संख्या (ii), आरोप संख्या (iv), आरोप संख्या (v), आरोप संख्या (vii) और आरोप संख्या (viii) से पूर्णतः दोषमुक्त कर दिया था, जबकि आरोप संख्या (iii) और आरोप संख्या (vi) को मृतक याचिकाकर्ता के विरुद्ध कथित रूप से सिद्ध पाया गया था और जिसके विरुद्ध मृतक याचिकाकर्ता ने दिनांक 27.07.2004 को अपना उत्तर प्रस्तुत किया था, विपक्षी संख्या 2 ने अत्यंत मनमाने और अवैध तरीके से, दिनांक 27.07.2004 के उत्तर में मृतक याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए तर्कों पर विचार किए बिना, आरोप पत्र दिनांक 30.07.2002 में लगाए गए आरोप संख्या (iii) और आरोप संख्या (iv) के विरुद्ध, जिन्हें जांच अधिकारी द्वारा दिनांक 22.04.2004 की जांच रिपोर्ट में कथित तौर पर सिद्ध पाया गया था, सेवा से बर्खास्तगी का बड़ा दंड देने की कार्यवाही की, वह भी मृतक याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति से दो दिन पूर्व, जो न केवल मृतक याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए कथित आरोपों के सापेक्ष घोर रूप से अनुपातहीन है, बल्कि मृतक याचिकाकर्ता के प्रति विद्वेष और जानबूझकर किए गए उत्पीड़न की ओर संकेत करता है,

17. इसके अतिरिक्त, आक्षेपित आदेश दिनांक 29.07.2004 अर्थात् सेवा से बर्खास्तगी, यह दर्शाता है कि आक्षेपित आदेश दिनांक 29.07.2004 अच्छे और पर्याप्त कारण बताए बिना पारित किया गया था।

18. श्री मेहरोत्रा ने यह भी प्रस्तुत किया है कि यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि यदि दंड की मात्रा अपराध की गंभीरता के प्रति इतनी अनुपातहीन है कि वह माननीय न्यायालय के अंतःकरण को झकझोर देती है, तो वह रद्द किए जाने योग्य है। भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह विधि स्थापित है कि यदि दिया गया दंड कदाचार की गंभीरता के अनुपातहीन है, तो वह मनमाना होगा और इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 14 के अधिदेश का उल्लंघन करेगा, अतः अवैध होने के कारण इसे लागू नहीं किया जा सकता। याचिकाकर्ता का उपरोक्त तर्क भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय के साथ-साथ इस माननीय न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला पर आधारित है, जिनमें से कुछ निर्णय **(1983) 2 एससीसी 442 मामले में: भगत राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य; (1987) 4 एससीसी 611 मामले में: रंजीत ठाकुर बनाम भारत संघ एवं अन्य; 1994 Supp (3) एससीसी 755 मामले में: भारत संघ बनाम गिरिराज शर्मा; 1995 Supp (3) एससीसी 519 मामले में: एस.के. गिरी बनाम गृह सचिव, गृह मंत्रालय एवं अन्य; (1995) 6 एससीसी 749 मामले में: बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ और (1996) 10 एससीसी 461 मामले में: बिशन सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य, और (2005) 5 AWC 4845 ALL मामले में रिपोर्ट किए गए हैं: भास्कर पाराशरी बनाम निदेशक मंडल, अलीगढ़ ग्रामीण बैंक एवं अन्य।**

19. श्री गौरव मेहरोत्रा ने प्रस्तुत किया है कि जहाँ तक आरोप संख्या 3 और 6 के प्रत्यक्ष मूल्य पर विचार किया जाए, याचिकाकर्ता को उन आरोपों के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि उसने दिनांक 27.7.2004 के अपने उत्तर में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से समझाया था। हालांकि, याचिकाकर्ता के स्पष्टीकरण पर विचार किए बिना अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने गलत तरीके से यह माना कि वे दो आरोप याचिकाकर्ता के विरुद्ध सिद्ध हो गए हैं।

20. उपरोक्त तर्कों को बल देने के लिए, श्री गौरव मेहरोत्रा ने माननीय उच्चतम न्यायालय के हालिया निर्णय **'सत्येंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य' (2024 एससीसी Online SC 3325)** पर भरोसा जताया है, जिसके माध्यम से उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया है कि जांच की कार्यवाही कड़ाई से निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार संचालित की जानी चाहिए और यदि जांच प्रक्रिया के इतर संचालित की जाती है, तो वह कानून की दृष्टि में शून्य होगी। उपरोक्त निर्णय में इस विषय वस्तु पर उच्चतम न्यायालय के कुछ प्रासंगिक निर्णयों पर विचार किया गया है।

21. इसके विपरीत, विपक्षीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री पुनीत चंद्र ने आक्षेपित आदेश का बचाव करने का प्रयास किया, लेकिन वे आक्षेपित आदेश का उचित बचाव नहीं कर सके क्योंकि वे यह प्रदर्शित नहीं कर सके कि जांच की कार्यवाही कड़ाई से निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार संचालित की गई है। वे इस बात का भी बचाव नहीं कर सके कि याचिकाकर्ता द्वारा आरोप संख्या 3 और 6 के संबंध में दिए गए विशिष्ट स्पष्टीकरण पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा विचार क्यों नहीं किया गया है, क्योंकि आक्षेपित आदेश में उस पर कोई निष्कर्ष नहीं दिया गया है। यद्यपि श्री चंद्र ने कहा है कि दिनांक 24.7.2004 के कारण बताओ नोटिस का

उत्तर कार्यालय में 30.7.2004 को प्राप्त हुआ था, जबकि दंड का आदेश पहले ही 29.7.2004 को पारित किया जा चुका था, इसलिए उस पर विचार नहीं किया जा सका।

22. आगे सामना कराए जाने पर और आक्षेपित आदेश दिखाए जाने पर, जिसमें आरोप संख्या 3 और 6 के संबंध में केवल इतना ही आरोप लगाया गया है कि आरोपित कर्मचारी को उचित सावधानी और एहतियात बरतनी चाहिए थी, इसलिए वह केवल अपने कर्तव्यों के निर्वहन में सुस्ती के लिए जिम्मेदार है, इस प्रश्न पर कि उसे उसकी सेवानिवृत्ति के अंतिम समय में बर्खास्तगी का बड़ा दंड क्यों दिया गया है, श्री चंद्र याचिकाकर्ता को बड़ा दंड देने का कारण स्पष्ट नहीं कर सके। अतः श्री चंद्र दंड के आदेश का 'अनुपातहीन' होने की दलील पर बचाव नहीं कर सके क्योंकि यह कदाचार की गंभीरता के अनुरूप नहीं है।

23. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के उपरांत और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने के पश्चात, सर्वप्रथम, मैं **'सत्येंद्र सिंह' (उपरोक्त)** के मामले में पैराग्राफ 13, 14, 15, 16, 17 और 18 पर विचार करना चाहूँगा, जिसमें शीर्ष अदालत ने पूर्व के निर्णयों पर विचार करते हुए यह निर्धारित किया कि विभागीय जांच निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार संचालित की जानी चाहिए और अनुशासनात्मक प्राधिकारी कड़ाई से कानून के अनुसार ही कोई आदेश पारित कर सकता है। **'सत्येंद्र सिंह' (उपरोक्त)** के मामले के पैराग्राफ संख्या 13, 14, 15, 16, 17 और 18 इस प्रकार हैं:

*"13. इस न्यायालय ने निर्णयों की एक श्रृंखला में यह निर्धारित किया है कि बड़े दंड का प्रस्ताव करने वाले आरोपों वाली अनुशासनात्मक कार्यवाही में साक्ष्य दर्ज करना अनिवार्य है। इस संबंध में **'रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक'** और **'निर्मला जे. झाला बनाम गुजरात राज्य'** का संदर्भ लिया जा सकता है।*

***14. 'रूप सिंह नेगी'** के मामले में, इस न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि केवल दस्तावेजों का प्रस्तुत किया जाना पर्याप्त नहीं है, दस्तावेजी साक्ष्य की सामग्री को गवाहों का परीक्षण करके सिद्ध किया जाना चाहिए। उसका प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:-*

"14. निर्विवाद रूप से, विभागीय कार्यवाही एक अर्ध-न्यायिक कार्यवाही है। जांच अधिकारी अर्ध-न्यायिक कार्य का संपादन करता है। दोषी अधिकारी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध पाया जाना चाहिए। जांच अधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह पक्षकारों द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्रियों पर विचार करने के उपरांत किसी निष्कर्ष पर पहुंचे। जांच अधिकारी द्वारा सभी अभियुक्तों के विरुद्ध जांच के दौरान एकत्र किए गए कथित साक्ष्य को अपने आप में अनुशासनात्मक कार्यवाही में साक्ष्य नहीं माना जा सकता। उन दस्तावेजों को सिद्ध करने के लिए किसी गवाह का परीक्षण नहीं किया गया था। प्रबंधन के गवाहों ने केवल दस्तावेज प्रस्तुत किए और उनकी सामग्री को सिद्ध नहीं किया। जांच अधिकारी द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ एफ.आई.आर. पर भरोसा किया गया, जिसे साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता था।

15. हमने पहले भी गौर किया है कि एकमात्र बुनियादी साक्ष्य जिस पर जांच अधिकारी द्वारा भरोसा किया गया था, वह पुलिस के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा किया गया कथित इकबालिया बयान था। अपीलकर्ता के अनुसार, उसे उक्त इकबालिया बयान पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया गया था, क्योंकि उसे पुलिस स्टेशन में प्रताड़ित किया गया था। अपीलकर्ता बैंक का कर्मचारी होने के नाते, उक्त इकबालिया बयान को सिद्ध किया जाना चाहिए था। यह दिखाने के लिए कुछ साक्ष्य रिकॉर्ड पर लाए जाने चाहिए थे कि उसने बैंक ड्राफ्ट बुक चुराने का कृत्य किया था। स्वीकार्य रूप से, कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं था। यहाँ तक कि कोई अप्रत्यक्ष साक्ष्य भी नहीं था। रिपोर्ट का स्वर यह प्रदर्शित करता है कि जांच अधिकारी ने उसे दोषी ठहराने का मन बना लिया था, अन्यथा वह इस आधार पर आगे नहीं बढ़ता कि अपराध इस तरह से किया गया था कि कोई साक्ष्य नहीं बचा।

...

***19. 'नरिंदर मोहन आर्य'** के मामले [(2006) 4 एससीसी 713] में प्रतिवादी के विरुद्ध पारित निर्णय और डिक्री ने अंतिमता प्राप्त कर ली थी। उक्त वाद में, अनुशासनात्मक कार्यवाही की जांच रिपोर्ट पर विचार किया गया था, और इसे बिना किसी साक्ष्य पर आधारित माना गया था। उसमें अपीलकर्ता ने उपर्युक्त स्थिति में अनुशासनात्मक कार्यवाही की वैधता पर सवाल उठाते हुए एक रिट याचिका दायर की थी, जिसे खारिज कर दिया गया था। इस न्यायालय ने निर्धारित किया कि जब जालसाजी जैसा महत्वपूर्ण निष्कर्ष ऐसे साक्ष्य पर निकाला जाता है जो कानून की नजर में अस्तित्वहीन (non est) है, तो सिविल कोर्ट को मामले में हस्तक्षेप करने का अधिकार होगा। इस न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि जांच अधिकारी द्वारा निष्कर्ष तभी निकाला जा सकता है जब रिकॉर्ड पर कुछ साक्ष्य मौजूद हों...." (बल दिया गया)*

*15. यही दृष्टिकोण **'उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा'** में दोहराया गया था, जिसमें इस न्यायालय ने निर्धारित किया कि एकपक्षीय जांच में भी, यह जांच अधिकारी का कर्तव्य है कि वह विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य का परीक्षण करे ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या बिना खंडन वाला साक्ष्य आरोपों को सिद्ध मानने के लिए पर्याप्त है। **'सरोज कुमार सिन्हा'** में की गई प्रासंगिक टिप्पणियां इस प्रकार हैं:-*

"28. अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी के रूप में कार्य करने वाला जांच अधिकारी एक स्वतंत्र न्यायनिर्णायक की स्थिति में होता है। उससे विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकारी/सरकार का प्रतिनिधि होने की अपेक्षा नहीं की जाती है। उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य का परीक्षण करना है, भले ही दोषी अधिकारी अनुपस्थित हो, यह देखने के लिए कि क्या बिना खंडन वाला साक्ष्य आरोपों को सिद्ध मानने के लिए पर्याप्त है। वर्तमान मामले में उपरोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि किसी भी मौखिक साक्ष्य का परीक्षण नहीं किया गया है, इसलिए दस्तावेज सिद्ध नहीं हुए हैं, और उन्हें प्रतिवादी के विरुद्ध आरोप सिद्ध होने का निष्कर्ष निकालने के लिए विचार में नहीं लिया जा सकता था।

33. जैसा कि वर्तमान मामले में पहले गौर किया गया है, न केवल प्रतिवादी को उन दस्तावेजों तक पहुंच से वंचित किया गया जिन पर उसके विरुद्ध भरोसा किया जाना था, बल्कि उसे बिना सुने ही दोषी ठहरा दिया

गया क्योंकि जांच अधिकारी जांच संचालित करने के लिए कोई तारीख तय करने में विफल रहा। दूसरे शब्दों में, प्रतिवादी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के समर्थन में एक भी गवाह का परीक्षण नहीं किया गया है। इसलिए, उच्च न्यायालय ने सही अवलोकन किया है कि पूरी कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पूर्ण उल्लंघन और निष्पक्षता की पूरी तरह से अवहेलना के कारण दूषित (vitiated) है। प्रतिवादी को कार्यवाही के किसी भी चरण में आरोप पत्र में लगाए गए आरोपों के विरुद्ध स्पष्टीकरण देने का अवसर कभी नहीं मिला।" (बल दिया गया)

*"16. **'निर्मला जे. झाला'** के मामले में, इस न्यायालय ने निर्धारित किया कि प्रारंभिक जांच (preliminary inquiry) में दर्ज किए गए साक्ष्यों का उपयोग नियमित जांच (regular inquiry) के लिए नहीं किया जा सकता है, क्योंकि दोषी कर्मचारी उससे जुड़ा नहीं होता है और प्रारंभिक जांच में परीक्षित व्यक्तियों से जिरह करने का अवसर नहीं दिया जाता है। उसका प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:-*

"42. इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने **'अमलेंदु घोष बनाम पूर्वोत्तर रेलवे' [AIR 1960 SC 992]** में यह निर्धारित किया कि किसी विशेष कथित कदाचार के संबंध में प्रारंभिक जांच करने का उद्देश्य केवल एक विशेष तथ्य का पता लगाना और प्रथम दृष्टया यह जानना होता है कि क्या कथित कदाचार किया गया है, और प्रारंभिक जांच में दर्ज निष्कर्षों के आधार पर दंड का कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। इसका उपयोग केवल यह विचार करने के लिए किया जा सकता है कि क्या दोषी के विरुद्ध नियमित अनुशासनात्मक कार्यवाही की जानी आवश्यक है।

43. इसी प्रकार **'चंपकलाल चिमनलाल शाह बनाम भारत संघ' [AIR 1964 SC 1854]** में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने समान दृष्टिकोण अपनाते हुए निर्धारित किया कि प्रारंभिक जांच को नियमित जांच के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए। प्रारंभिक जांच भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) के प्रावधानों द्वारा शासित नहीं होती है। प्रारंभिक जांच एकपक्षीय (ex-parte) की जा सकती है, क्योंकि यह केवल सरकार की संतुष्टि के लिए होती है, हालांकि आमतौर पर निष्पक्षता के लिए ऐसी जांच में भी सरकारी कर्मचारी से स्पष्टीकरण मांगा जा सकता है। लेकिन उस चरण में, उसे सुनवाई का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि जांच केवल सरकार की संतुष्टि के लिए है कि क्या नियमित जांच की जानी चाहिए। न्यायालय ने आगे इस प्रकार निर्धारित किया: (AIR पृ. 1862, पैरा 12)

"12. इसलिए दोनों जांचों के बीच कोई भ्रम नहीं होना चाहिए और केवल तभी जब सरकार अनुच्छेद 311 में संकेतित तीन बड़े दंडों में से एक को सरकारी कर्मचारी पर लगाने के उद्देश्य से विभागीय जांच करने के लिए आगे बढ़ती है, सरकारी कर्मचारी उस अनुच्छेद के संरक्षण का हकदार होता है [न कि उससे पूर्व]।"

44. 'नारायण दत्तात्रेय रामतीर्थकर बनाम महाराष्ट्र राज्य' [(1997) 1 एससीसी 299] में इस न्यायालय ने इस मुद्दे पर विचार किया और निम्नानुसार निर्धारित किया:

"...प्रारंभिक जांच का आरोप पत्र जारी होने के बाद की जाने वाली जांच से कोई लेना-देना नहीं है। प्रारंभिक जांच केवल यह पता लगाने के लिए है कि क्या दोषी के विरुद्ध अनुशासनात्मक जांच शुरू की जानी चाहिए। एक बार नियमों के तहत नियमित जांच आयोजित होने के बाद, प्रारंभिक जांच अपना महत्व खो देती है और प्रारंभिक जांच कानून के अनुसार सख्ती से की गई थी या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करते हुए की गई थी अथवा नहीं, इसका कोई परिणाम शेष नहीं रहता।"

45. उपरोक्त के आलोक में, यह स्पष्ट है कि प्रारंभिक जांच में दर्ज साक्ष्यों का उपयोग नियमित जांच में नहीं किया जा सकता है क्योंकि दोषी उससे जुड़ा नहीं होता है, और ऐसी जांच में परीक्षित व्यक्तियों से जिरह करने का अवसर नहीं दिया जाता है। ऐसे साक्ष्यों का उपयोग करना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होगा। (बल दिया गया)

*17. इस प्रकार, एकपक्षीय जांच में भी, आरोपों को सिद्ध करने के लिए गवाहों के साक्ष्य दर्ज करना अनिवार्य है। वर्तमान मामले के तथ्यों को 1999 के नियमों की कसौटी पर परखने के बाद, और **'रूप सिंह नेगी'** एवं **'निर्मला जे. झाला'** के मामलों में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के आधार पर, हम इस सुदृढ़ विचार के हैं कि बड़े दंड के साथ दंडनीय आरोपों के संबंध में अपीलकर्ता के विरुद्ध संचालित जांच कार्यवाही पूरी तरह से दूषित और कानून की नजर में अस्तित्वहीन थी, क्योंकि विभाग द्वारा आरोपों के समर्थन में कोई भी मौखिक साक्ष्य दर्ज नहीं किया गया था।*

18. इसके परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय ने ट्रिब्यूनल द्वारा दिए गए तर्कसंगत निर्णय में हस्तक्षेप करते हुए कानून की गंभीर त्रुटि की है, जिसके माध्यम से ट्रिब्यूनल ने अपीलकर्ता पर दंड लगाने वाले आदेश को रद्द कर दिया था।"

24. ऊपर जो विचार किया गया है, जिसमें **'सत्येंद्र सिंह' (उपरोक्त)** का कानूनी मामला भी शामिल है, उसके आलोक में मेरा यह सुविचारित मत है कि विभागीय जांच कड़ाई से निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार संचालित और संपन्न की जानी चाहिए और अनुशासनात्मक प्राधिकारी अंतिम आदेश पारित करते समय यह सुनिश्चित करेगा कि जांच अधिकारी ने प्रक्रिया का पालन किया है। तत्पश्चात, वह आरोपित कर्मचारी को जांच रिपोर्ट की प्रति प्रदान करते हुए और उससे स्पष्टीकरण मांगते हुए सुनवाई का अवसर प्रदान करेगा। वह अंतिम आदेश में आरोपित कर्मचारी के स्पष्टीकरण पर अपने स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज करेगा। यदि कोई दंड लगाया जाता है, तो वह कदाचार की गंभीरता के अनुरूप होना चाहिए क्योंकि उसे अनुपातहीन दंड लगाने से बचना चाहिए।

25. वर्तमान मामले में, जांच अधिकारी ने 1986 के विनियमों के विनियम 27 के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार विभागीय जांच संचालित नहीं की है, क्योंकि न तो प्रासंगिक / मांग किए गए / भरोसेमंद दस्तावेजों की प्रतियां कर्मचारी को प्रदान की गई हैं और न ही आरोपों को सिद्ध करने के लिए मौखिक जांच हेतु कोई तिथि, समय और स्थान तय किया गया है। अतः इन कारणों से जांच अधिकारी के निष्कर्ष दूषित हो जाते हैं।

इस जांच रिपोर्ट के आधार पर कर्मचारी को कोई दंड नहीं दिया जा सकता था। साथ ही, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने इस पहलू पर ध्यान नहीं दिया है क्योंकि इन बिंदुओं पर कोई निष्कर्ष नहीं दिया गया है। जांच रिपोर्ट का ध्यानपूर्वक अवलोकन करना उनका कानूनी कर्तव्य था लेकिन उनकी ओर से ऐसा कोई प्रयास नहीं किया गया। यदि उन्होंने इन पहलुओं का कानूनी रूप से अवलोकन किया होता, तो उन्होंने निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार नए सिरे से जांच के लिए मामले को वापस भेज दिया होता। अन्यथा भी, यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने आरोप संख्या (iii) और (vi) पर जांच रिपोर्ट का अवलोकन किया होता, जो आंशिक रूप से सिद्ध प्रतीत होते हैं, तो उन्होंने उसकी सेवानिवृत्ति के अंतिम समय में बड़ा दंड नहीं दिया होता।

26. इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए जांच रिपोर्ट और दंड का आदेश अवैध, मनमाना और अनावश्यक होने के कारण कानून की दृष्टि में अस्तित्वहीन हैं। अतः, ये निरस्त और रद्द किए जाने योग्य हैं।

27. चूंकि आरोपित कर्मचारी / रिट याचिका के याचिकाकर्ता, नैपाल सिंह की रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई है और उनकी विधवा देय राशि का दावा करने के लिए इस रिट याचिका को लड़ रही हैं, इसलिए मामले को नए सिरे से विभागीय जांच के लिए वापस भेजने का कोई उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा क्योंकि विभागीय जांच स्वीकार्य रूप से एक दोषपूर्ण विभागीय जांच है।

28. तदनुसार, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

29. विपक्षी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.7.2004 (अनुलग्नक संख्या 1) को **रद्द** करते हुए उत्प्रेषण लेख की प्रकृति की एक रिट जारी की जाती है।

30. विपक्षीगण को यह आदेश देते हुए **परमादेश** की प्रकृति की एक रिट जारी की जाती है कि वे आरोपित कर्मचारी यानी नैपाल सिंह (अब मृतक) के सभी सेवा लाभों, जिनमें सेवानिवृत्ति के बाद के लाभ भी शामिल हैं, का भुगतान उनकी पत्नी श्रीमती करुणा सिंह को करें, जिन्हें 25.7.2022 को प्रतिस्थापित याचिकाकर्ता बनाया गया है। यह भुगतान इस न्यायालय के आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से दो महीने की अवधि के भीतर, उस तिथि से जब उक्त लाभ देय हुए थे, वास्तविक भुगतान की तिथि तक 8% वार्षिक ब्याज के साथ किया जाए।

31. यह आगे निर्देशित किया जाता है कि यदि उक्त भुगतान प्रतिस्थापित याचिकाकर्ता यानी करुणा सिंह को निर्धारित समय के भीतर और निर्देशित तरीके से नहीं किया जाता है, तो वह 12% वार्षिक की दर से दंडात्मक ब्याज पाने की हकदार होंगी।

32. वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 5 ILRA 923

मूल अधिकारिता – दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ, 01.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

रिट-सी संख्या 1775 सन् 2025

मोहम्मद तल्हा. ..याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य. ..प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: अर्शद जमील, मोहम्मद आमिर शाज़ाद, मोहम्मद सलमान

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: ए.एस.जी.आई., सी.एस.सी.

क. दीवानी विधि – भारत का संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226, 21 एवं 19(1)(घ) – पासपोर्ट अधिनियम, 1967 – धारा 6(2)(च) एवं 22 –

याचिकाकर्ता, जो एक व्यवसायरत अधिवक्ता हैं, ने पासपोर्ट हेतु आवेदन किया – उमापति निर्णय के अनुसरण में दो आपराधिक मामलों की लंबितता के आधार पर उनका आवेदन अस्वीकार कर दिया गया – विधिक प्रश्न यह उद्भूत हुआ कि क्या अधिनियम, 1967 के अधीन पासपोर्ट के जारी किए जाने अथवा नवीनीकरण हेतु किसी विचाराधीन बंदी को संबंधित आपराधिक न्यायालय से अनुमति अथवा अनापत्ति प्रमाण-पत्र प्राप्त करना आवश्यक है – अभिनिर्धारित: न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम, 1967 की धारा 6(2)(च) पासपोर्ट के जारी किए जाने को उन मामलों में वर्जित करती है, जहाँ आवेदक के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही लंबित हो – तथापि, धारा 22 के अधीन केंद्र सरकार की शक्ति के कारण यह प्रतिबंध निरपेक्ष नहीं है – दिनांक 25.08.1993 के जी.एस.आर. 570(ई) के अनुसार, विचाराधीन बंदियों को इस प्रतिबंध से छूट दी जा सकती है यदि वे संबंधित न्यायालय से भारत छोड़ने की अनुमति प्राप्त करने के आदेश प्रस्तुत करें – मात्र अनापत्ति प्रमाण-पत्र पर्याप्त नहीं होगा – छूट अधिसूचना में सांविधिक बल है और न्यायालय इसकी अपेक्षा की उपेक्षा यह कहते हुए नहीं कर सकते कि किसी अनुमति की आवश्यकता नहीं है – न्यायालय ने अवर न्यायालय के उस आदेश को अपास्त किया जिसमें ऐसी अनुमति को अनावश्यक ठहराया गया था और याचिकाकर्ता को नवीन अनुमति प्राप्त करने हेतु निर्देशित किया। (पैरा 1 से 29)

अनुवादित

ख. पर इन्क्यूरियम का सिद्धांत:

यदि कोई निर्णय आबद्धकर नजीरों अथवा सांविधिक प्रावधानों की उपेक्षा करता है, तो वह पर इन्क्यूरियम के रूप में दिया गया माना जाएगा और उसका कोई आबद्धकर मूल्य नहीं होगा। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उमापति निर्णय इसी श्रेणी में आता है। (ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. सलिम कुमार बनाम भारत संघ एवं अन्य, रिट याचिका संख्या 31723 (एम/बी) सन् 2018
2. शिव शंकर बनाम भारत संघ एवं अन्य, रिट-सी संख्या 8621 सन् 2022
3. श्रीमती रश्मि कपूर बनाम भारत संघ एवं अन्य, रिट-सी संख्या 3617 सन् 2022
4. शाह आलम बनाम भारत संघ एवं अन्य, रिट-सी संख्या 8874 सन् 2024
5. उमापति बनाम भारत संघ एवं अन्य, रिट-सी संख्या 5587 सन् 2024
6. यू.टी. ऑफ लद्दाख एवं अन्य बनाम जे.एंड के. नेशनल कॉन्फ्रेंस एवं अन्य, सिविल अपील संख्या 5707 सन् 2023 {एस.एल.पी. (सी.) संख्या 18727 सन् 2023}
7. एन.आई.सी.एल. बनाम प्रणय सेठी (2017) 16 एस.सी.सी. 680
8. चंद्र प्रकाश एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य (2002) 4 एस.सी.सी. 234
9. भारत संघ बनाम रघुबीर सिंह (1989) 2 एस.सी.सी. 754
10. प्रदीप चंद्र परीजा एवं अन्य बनाम प्रमोद चंद्र पटनायक (2002) 1 एस.सी.सी. पृ. 1
11. रत्तीराम बनाम म.प्र. राज्य (2012) 4 एस.सी.सी. 516
12. नेशनल टेलीफोन कं. लि. बनाम पोस्ट मास्टर जनरल (1913) AC 546 HL
13. संदीप कुमार बाफना बनाम महाराष्ट्र राज्य (2014) 6 एस.सी.सी. 623
14. सतवान सिंह साहनी बनाम भारत संघ (1966) AIR SCC 1836

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री एस.बी. पाण्डेय, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता/डी.एस.जी.आई., जिन्हें श्री वरुण पाण्डेय, विद्वान अधिवक्ता द्वारा सहायता प्रदान की गई, भारत संघ के अधिवक्ता एवं राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय की रिट अधिकारिता का आह्वान करते हुए प्रतिपक्षी संख्या 2 – क्षेत्रीय पासपोर्ट अधिकारी, क्षेत्रीय पासपोर्ट कार्यालय, गोमती नगर, लखनऊ – को विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली द्वारा

दिनांक 25.08.1993 को जारी अधिसूचना के अनुसार उन्हें पासपोर्ट जारी करने हेतु निदेश देने का मैण्डेमस परमादेश जारी किए जाने की प्रार्थना की है।

3. अनावश्यक विवरणों को छोड़ते हुए, रिट याचिका से यह प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता, जो इस न्यायालय के एक व्यवसायरत अधिवक्ता हैं, ने आवेदन संख्या LK3069688351424 के अंतर्गत नवीन पासपोर्ट जारी किए जाने हेतु आवेदन किया था, जिसमें पासपोर्ट अधिकारी को संबंधित पुलिस द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध दो आपराधिक मामलों की लंबितता के संबंध में प्रतिकूल प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया था। रिट याचिका में उल्लिखित दो आपराधिक मामले हैं: (i) मामला अपराध संख्या 113/13, धारा 147/504/506/507/354/354डी भा.द.सं. के अंतर्गत; एवं (ii) मामला अपराध संख्या 123/11, धारा 323/504/506 भा.द.सं. के अंतर्गत।

4. याचिकाकर्ता का यह पक्ष है कि विचाराधीन बंदी के रूप में उन्होंने दिनांक 05.06.2024 को मामला अपराध संख्या 113/13 में ए.सी.जे.एम., सी.बी.आई. (ए), लखनऊ के न्यायालय के समक्ष आवेदन प्रस्तुत किया था, जिसे दिनांक 30.07.2024 के आदेश द्वारा इस आधार पर निस्तारण कर दिया गया कि रिट-सी संख्या 5587 सन् 2024: उमापति बनाम भारत संघ एवं 3 अन्य में एक समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 25.06.2024 को दिए गए निर्णय के दृष्टिगत पासपोर्ट प्राप्त करने हेतु विचारण न्यायालय से अनुमति लेना आवश्यक नहीं है। दूसरे आपराधिक मामले, अर्थात् मामला अपराध संख्या 123/11 के संबंध में, याचिकाकर्ता ने अनुलग्नक संख्या 4 के रूप में उप-निरीक्षक, पुलिस स्टेशन चौक, लखनऊ द्वारा ए.सी.जे.एम., सी.बी.आई. (एपी) के न्यायालय को प्रस्तुत प्रतिवेदन की प्रति संलग्न की है, जिसमें उप-निरीक्षक, पुलिस स्टेशन चौक, लखनऊ ने ए.सी.जे.एम., सी.बी.आई. (एपी) के न्यायालय को यह प्रतिवेदित किया है कि मामला अपराध संख्या 123 सन् 2011 में तत्कालीन विवेचना अधिकारी ने दिनांक 16.07.2011 का अंतिम प्रतिवेदन संख्या 45 संबंधित न्यायालय को अग्रेषित/प्रस्तुत किया था।

5. प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता उपरोक्त आदेशों को लेकर प्रतिपक्षी संख्या 2 – क्षेत्रीय पासपोर्ट अधिकारी – के समक्ष उपस्थित हुए, जहाँ उन्हें यह सूचित किया गया कि उक्त आदेशों का संबंधित पुलिस द्वारा सत्यापन कराया जाएगा और क्षेत्रीय पासपोर्ट अधिकारी तदनुसार कार्यवाही करेंगे।

6. उक्त पृष्ठभूमि में याचिकाकर्ता की यह शिकायत है कि चूँकि उन्हें अद्यावधि पासपोर्ट जारी नहीं किया गया है, अतः संबंधित प्राधिकरण को उस प्रयोजन हेतु निर्देश दिया जाए तथा उन्होंने विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली की दिनांक 25.08.1993 की अधिसूचना का संदर्भ लिया है।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, चूँकि विचारण न्यायालय ने दिनांक 25.06.2024 के आदेश द्वारा उनका अनापत्ति प्रमाण-पत्र का आवेदन इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि उमापति (उपरोक्त) के निर्णय के अनुसार पासपोर्ट जारी किए जाने/नवीनीकरण हेतु विचारण न्यायालय की पूर्वानुमति की आवश्यकता

नहीं है, ऐसे में प्रतिपक्षी संख्या 2 – क्षेत्रीय पासपोर्ट अधिकारी – के पास प्रचलित अधिसूचना के अनुसार उन्हें पासपोर्ट जारी/नवीनीकृत न करने का कोई औचित्य नहीं था।

8. विपरीत पक्ष में श्री एस.बी. पाण्डेय, विद्वान डी.एस.जी.आई. ने कहा कि इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा उमापति मामले में पारित निर्णय के सामान्य पठन से यह स्पष्ट है कि उक्त निर्णय में इसी विषय से संबंधित समन्वय पीठों के पूर्व के निर्णयों में से किसी पर भी विचार नहीं किया गया और न ही दिनांक 25.08.1993 की विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली की अधिसूचनाओं तथा पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 22 के अधीन भारत सरकार द्वारा दिनांक 10.10.2019 को जारी कार्यालय ज्ञापन पर विचार किया गया, जो प्रतीत होता है कि उक्त समन्वय पीठ के संज्ञान में लाई ही नहीं गई थीं।

9. श्री पाण्डेय ने हमारा ध्यान इस न्यायालय के पूर्व के निर्णयों की ओर भी आकृष्ट किया, जैसे रिट याचिका संख्या 31723 (एम/बी) सन् 2018 **'सलिम कुमार बनाम भारत संघ एवं अन्य'** में दिनांक 20.11.2018 को पारित निर्णय, जिसमें इस पहलू के साथ-साथ जी.एस.आर. 570(ई) दिनांक 25.08.1993 पर भी विचार किया गया था तथा दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विचार किया गया था और तत्पश्चात् याचिकाकर्ता को आपराधिक अधिकारिता के उस न्यायालय के समक्ष उचित आवेदन करने का निर्देश दिया गया था जहाँ उसके विरुद्ध विचारण लंबित था, जिसमें विदेश जाने की अनुमति मांगी गई थी। इसके साथ ही यह परिणामी निर्देश भी दिया गया था कि यदि अवर न्यायालय द्वारा ऐसी अनुमति प्रदान की जाती है, तो पासपोर्ट जारी किए जाने पर विचार किया जाए। उन्होंने रिट-सी संख्या 8621 सन् 2022 **'शिव शंकर बनाम भारत संघ एवं अन्य'** में दिनांक 03.12.2022 को दिए गए एक अन्य खंडपीठ के निर्णय को भी हमारे समक्ष प्रस्तुत किया, जिसमें दिनांक 25.08.1993 एवं 10.10.2019 की अधिसूचनाओं तथा पासपोर्ट अधिनियम, 1967 के प्रावधानों पर विचार करने के पश्चात् समान दृष्टिकोण अपनाया गया है। उन्होंने इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा **'श्रीमती रश्मि कपूर बनाम भारत संघ एवं अन्य'** के प्रकरण में रिट-सी संख्या 3617 सन् 2022 में दिनांक 21.06.2022 को दिए गए इसी प्रकार के निर्णय का भी संदर्भ दिया, जिसमें भी विधि का प्रतिपादन किया गया और उस मामले में भी समुचित निर्देश जारी किए गए जहाँ आपराधिक मामले लंबित थे और पासपोर्ट जारी नहीं किया जा रहा था। उन्होंने खंडपीठ, जिसके एक सदस्य हम में से एक (माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय, जे.) थे, द्वारा रिट-सी संख्या 8874 सन् 2024: **'शाह आलम बनाम भारत संघ एवं अन्य'** में दिनांक 21.10.2024 को दिए गए एक हालिया निर्णय का भी संदर्भ लिया और फिर रिट-सी संख्या 5587 सन् 2024 **'उमापति बनाम भारत संघ एवं अन्य'** में एक समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 25.06.2024 को दिए गए उस निर्णय का संदर्भ लिया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पासपोर्ट जारी करने के लिए लंबित आपराधिक विचारण वाले आपराधिक अधिकारिता के न्यायालय से अनुमति लेने का पासपोर्ट अधिनियम, 1967 में कोई प्रावधान नहीं है और पासपोर्ट अधिकारी को याचिकाकर्ता के आवेदन पर निर्णय लेने हेतु निर्देश जारी किया गया है। यह प्रस्तुत किया गया कि दिनांक 25.06.2024 का यह निर्णय उसी विषय पर समन्वय पीठों के पूर्व के निर्णयों पर विचार किए बिना दिया गया है। उन्होंने माननीय उच्चतम न्यायालय के उन विभिन्न निर्णयों की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया जिनमें नजीरों के नियम पर विचार-विमर्श किया गया है और यह अभिनिर्धारित किया गया है

कि समन्वय पीठों के परस्पर विरोधाभासी निर्णयों की स्थिति में, पूर्व के निर्णय का अनुसरण किया जाना चाहिए, विशेषकर तब जब परवर्ती खंडपीठ ने पूर्व की खंडपीठ के निर्णय पर विचार न किया हो। ये निर्णय हैं: सिविल अपील संख्या 5707 सन् 2023 (@विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 18727 सन् 2023) **'यू.टी. ऑफ लद्दाख एवं अन्य बनाम जम्मू एवं कश्मीर नेशनल कॉन्फ्रेंस एवं अन्य'** दिनांक 06.09.2023; (2017) 16 एस.सी.सी. 680 **'नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी',** जो वस्तुतः इसी विषय पर संविधान पीठ का निर्णय है; **'चंद्र प्रकाश एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य'** (2002) 4 एस.सी.सी. 234; **'भारत संघ बनाम रघुबीर सिंह' (1989)** 2 एस.सी.सी. 754; **'प्रदीप चंद्र परीजा एवं अन्य बनाम प्रमोद चंद्र पटनायक'** (2002) 1 एस.सी.सी. पृ. 1; **'रत्तीराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य'** (2012) 4 एस.सी.सी. 516; **'नेशनल टेलीफोन कंपनी लि. बनाम पोस्ट मास्टर जनरल'** 1913 AC 546 (HL) एवं **'संदीप कुमार बाफना बनाम महाराष्ट्र राज्य'** (2014) 6 एस.सी.सी. 623। उन्होंने विशेष रूप से माननीय उच्चतम न्यायालय के रत्तीराम (उपरोक्त) मामले के निर्णय का संदर्भ लिया, जिसमें समान शक्ति की दो पीठों द्वारा दिए गए निर्णयों के बीच विरोधाभास का प्रश्न विशेष रूप से विचार हेतु आया था और माननीय उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने रघुबीर सिंह (उपरोक्त) में संविधान पीठ के निर्णय एवं इस विषय के अन्य निर्णयों पर आश्रय लेते हुए अभिनिर्धारित किया कि पूर्व का निर्णय एक आबद्धकर नजीर थी और उसके अज्ञान में पारित परवर्ती निर्णय आबद्धकर नजीर नहीं होगा क्योंकि पर इन्क्यूरियम की अवधारणा लागू होगी।

10. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण को सुनने के पश्चात्, इस न्यायालय की दृष्टि में यह मूल प्रश्न है कि क्या पासपोर्ट अधिनियम, 1967 के अधीन किसी विचाराधीन बंदी को विदेश जाने के लिए और पासपोर्ट जारी किए जाने अथवा नवीनीकरण के लिए उस न्यायालय से अनुमति/अनापत्ति प्रमाण-पत्र प्राप्त करना आवश्यक है जहाँ उसका विचारण लंबित है।

11. इस न्यायालय द्वारा उक्त विषय का निर्णय करने के प्रयास में यह अभिलेख पर लाना समीचीन होगा कि पचास वर्ष से भी पूर्व माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने प्रसिद्ध निर्णय **'सतवान सिंह साहनी बनाम भारत संघ'**: AIR 1966 SCC 1836 में नागरिक के यात्रा के अधिकार को भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत वैयक्तिक स्वतंत्रता के अधिकार के रूप में पढ़ा और अभिनिर्धारित किया। उक्त निर्णय के परिणामस्वरूप पासपोर्ट विधेयक प्रस्तुत किया गया जो बाद में 'पासपोर्ट अधिनियम, 1967' के रूप में अधिनियमित हुआ। उक्त अधिनियम और तदनुसार बनाए गए पश्चात्वर्ती पासपोर्ट नियम 1980 का सार भारत से नागरिकों को पासपोर्ट/यात्रा दस्तावेज प्रदान करना/जारी करना और उनके प्रस्थान को विनियमित करना एवं उससे सम्बद्ध और आनुषंगिक मामलों को प्रदान करना था।

12. पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 3 में अनिवार्य रूप से यह प्रावधान है कि कोई भी व्यक्ति तब तक भारत से प्रस्थान नहीं करेगा अथवा प्रस्थान करने का प्रयास नहीं करेगा, जब तक कि उसके पास इस प्रयोजन हेतु वैध पासपोर्ट अथवा यात्रा दस्तावेज न हो।

13. पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 5, पासपोर्ट, यात्रा दस्तावेज आदि के लिए आवेदन दाखिल करने से संबंधित है, जिसमें पासपोर्ट प्राधिकरण को उक्त प्रावधान की शर्तों के अनुसार पासपोर्ट जारी करने और/या अस्वीकार करने का अधिकार प्रदान किया गया है।

14. तथापि, पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6 पासपोर्ट, यात्रा दस्तावेज आदि को विशिष्ट रूप से अस्वीकार करने के प्रावधानों से संबंधित है, जिसमें अस्वीकृति की विभिन्न शर्तें गणित की गई हैं। पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6, जो विशेष रूप से पासपोर्ट, यात्रा दस्तावेज आदि की अस्वीकृति का प्रावधान करती है, निम्नप्रकार है:-

"6. पासपोर्ट, यात्रा दस्तावेज आदि की अस्वीकृति – (1) इस अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन रहते हुए, पासपोर्ट प्राधिकरण निम्नलिखित में से किसी एक या अधिक आधारों पर, और किसी अन्य आधार पर नहीं, धारा 5 की उपधारा (2) के खण्ड (ख) अथवा खण्ड (ग) के अधीन किसी देश के भ्रमण हेतु पृष्ठांकन करने से इनकार करेगा, अर्थात् :–

(क) कि आवेदक ऐसे देश में ऐसी गतिविधियों में संलग्न हो सकता है अथवा होने की संभावना है जो भारत की संप्रभुता और अखंडता के लिए हानिकारक हों;
(ख) कि ऐसे देश में आवेदक की उपस्थिति भारत की सुरक्षा के लिए हानिकारक हो सकती है अथवा होने की संभावना है;
(ग) कि ऐसे देश में आवेदक की उपस्थिति किसी अन्य देश के साथ भारत के मैत्रीपूर्ण संबंधों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकती है;
(घ) कि केंद्र सरकार की राय में ऐसे देश में आवेदक की उपस्थिति लोक हित में नहीं है।

(2) इस अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन रहते हुए, पासपोर्ट प्राधिकरण निम्नलिखित में से किसी एक या अधिक आधारों पर, और किसी अन्य आधार पर नहीं, धारा 5 की उपधारा (2) के खण्ड (ग) के अधीन किसी विदेशी देश के भ्रमण हेतु पासपोर्ट या यात्रा दस्तावेज जारी करने से इनकार करेगा, अर्थात् :–

(क) कि आवेदक भारत का नागरिक नहीं है;
(ख) कि आवेदक भारत के बाहर भारत की संप्रभुता और अखंडता के लिए हानिकारक गतिविधियों में संलग्न हो सकता है अथवा होने की संभावना है;
(ग) कि भारत से आवेदक का प्रस्थान भारत की सुरक्षा के लिए हानिकारक हो सकता है अथवा होने की संभावना है;
(घ) कि भारत के बाहर आवेदक की उपस्थिति किसी विदेशी देश के साथ भारत के मैत्रीपूर्ण संबंधों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकती है;

(ङ) कि आवेदक को भारत में किसी न्यायालय द्वारा उसके आवेदन की तारीख से पूर्ववर्ती पाँच वर्ष की अवधि के भीतर किसी नैतिक अधमता के अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया हो और उसके संबंध में दो वर्ष से कम अवधि के कारावास का दंड न दिया गया हो;

(च) कि आवेदक द्वारा कथित रूप से किए गए किसी अपराध के संबंध में भारत में किसी आपराधिक न्यायालय में कार्यवाही लंबित हो;

(छ) कि किसी भी तत्कालीन प्रवृत्त विधि के अधीन किसी न्यायालय द्वारा आवेदक की उपस्थिति हेतु वारंट अथवा समन, या गिरफ्तारी हेतु वारंट जारी किया गया हो, अथवा किसी ऐसे न्यायालय द्वारा आवेदक के भारत से प्रस्थान को प्रतिबंधित करने का आदेश दिया गया हो;

(ज) कि आवेदक को स्वदेश प्रत्यावर्तित किया गया हो और उसने ऐसे प्रत्यावर्तन के संबंध में किए गए व्यय की प्रतिपूर्ति न की हो;

(झ) कि केंद्र सरकार की राय में आवेदक को पासपोर्ट या यात्रा दस्तावेज जारी करना लोक हित में नहीं होगा।"

15. चूँकि इस न्यायालय का संबंध भारत में किसी आपराधिक न्यायालय के समक्ष कार्यवाही की लंबितता के दौरान पासपोर्ट जारी किए जाने के विषय से है, इसलिए विचारणीय प्रासंगिक प्रावधान पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6(2)(च) होगी, जो स्पष्ट शब्दों में पासपोर्ट प्राधिकरण को धारा 5 की उपधारा (2) के खण्ड (ग) के अधीन किसी विदेशी देश के भ्रमण हेतु पासपोर्ट अथवा यात्रा दस्तावेज जारी करने से इस आधार पर इनकार करने का निर्देश देती है कि आवेदक द्वारा कथित रूप से किए गए किसी अपराध के संबंध में भारत में किसी आपराधिक न्यायालय में कार्यवाही लंबित है। पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6(2) में प्रयुक्त शब्द 'करेगा' प्रावधान की आवश्यक अथवा आबद्धकर प्रकृति को इंगित करता है और विवेक के लिए कोई अवकाश नहीं देता। धारा 6(2)(च) भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(च) के ढाँचे के भीतर विधि द्वारा लगाया गया एक युक्तियुक्त प्रतिबंध है और उन मामलों में पासपोर्ट जारी किए जाने को वर्जित करती है जहाँ आवेदक द्वारा कथित रूप से किए गए किसी अपराध के संबंध में भारत में किसी आपराधिक न्यायालय में कार्यवाही लंबित हो।

16. धारा 22 सन् 1967 के अधिनियम द्वारा ही अधिरोपित प्रतिबंधों से एक अपवाद उत्कीर्ण करती है। यह इस प्रकार है:-

"22. छूट देने की शक्ति – जहाँ केंद्र सरकार की राय हो कि लोक हित में ऐसा करना आवश्यक अथवा समीचीन है, वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा और ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, यदि कोई हों, जो वह अधिसूचना में विनिर्दिष्ट करे,–

(क) किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के वर्ग को इस अधिनियम अथवा इसके अधीन बनाए गए नियमों के सभी या किन्हीं प्रावधानों के प्रचालन से छूट दे सकती है; और

(ख) ऐसी किसी अधिसूचना को जितनी बार आवश्यक हो रद्द कर सकती है और पुनः इसी प्रकार की अधिसूचना द्वारा उस व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के वर्ग को ऐसे प्रावधानों के प्रचालन के अधीन कर सकती है।"

17. उपरोक्त धारा 22 केंद्र सरकार को यह शक्ति प्रदान करती है कि जब उसकी राय हो कि राजपत्र में अधिसूचना द्वारा लोक हित में ऐसा करना आवश्यक अथवा समीचीन है, तो वह छूट दे सकती है। ऐसी अधिसूचना द्वारा छूट में किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के वर्ग को अधिनियम अथवा इसके अधीन बनाए गए नियमों के सभी या किन्हीं प्रावधानों के प्रचालन से छूट सम्मिलित है। इसी संदर्भ में, ऐसी छूट प्रदान करने के उद्देश्य से, पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 22 के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए केंद्र सरकार ने राजकीय राजपत्र अधिसूचना [जी.एस.आर. 570(ई) दिनांक 25.08.1993] प्रकाशित की। संदर्भ हेतु राजकीय राजपत्र [जी.एस.आर. 570(ई) दिनांक 25.08.1993] का प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत किया जाता है:-

"विदेश मंत्रालय अधिसूचना

नई दिल्ली, दिनांक 25 अगस्त, 1993

जी.एस.आर. 570(ई). – पासपोर्ट अधिनियम 1967 [15 of 1967] की धारा 22 के खण्ड (क) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए और दिनांक 14 अप्रैल, 1976 के विदेश मंत्रालय की अधिसूचना जी.एस.आर. 298(ई) को अधिक्रमित करते हुए, केंद्र सरकार, इस मत की होते हुए कि लोक हित में ऐसा करना आवश्यक है, एतद्द्वारा भारत के उन नागरिकों को, जिनके विरुद्ध भारत में किसी आपराधिक न्यायालय के समक्ष कथित रूप से उनके द्वारा किए गए किसी अपराध के संबंध में कार्यवाही लंबित है और जो संबंधित न्यायालय से भारत छोड़ने की अनुमति देने वाले आदेश प्रस्तुत करते हैं, उक्त अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (2) के खण्ड (च) के प्रावधानों के प्रचालन से, निम्नलिखित शर्तों के अधीन रहते हुए, छूट देती है, अर्थात् :-

(क) ऐसे प्रत्येक नागरिक को जारी किया जाने वाला पासपोर्ट –

(i) उपर्युक्त न्यायालय के आदेश में विनिर्दिष्ट अवधि के लिए जारी किया जाएगा, यदि न्यायालय ने वह अवधि विनिर्दिष्ट की हो जिसके लिए पासपोर्ट जारी किया जाना है; अथवा

(ii) यदि ऐसे आदेश में पासपोर्ट जारी किए जाने अथवा विदेश यात्रा की कोई अवधि विनिर्दिष्ट न की गई हो, तो पासपोर्ट एक वर्ष की अवधि के लिए जारी किया जाएगा; अथवा

(iii) यदि ऐसा आदेश एक वर्ष से कम अवधि के लिए विदेश यात्रा की अनुमति देता हो, किंतु पासपोर्ट की वैधता की अवधि विनिर्दिष्ट न करता हो, तो पासपोर्ट एक वर्ष के लिए जारी किया जाएगा; अथवा

(iv) यदि ऐसा आदेश एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए विदेश यात्रा की अनुमति देता हो और पासपोर्ट की वैधता की अवधि विनिर्दिष्ट न करता हो, तो पासपोर्ट में विनिर्दिष्ट विदेश यात्रा की अवधि के लिए पासपोर्ट जारी किया जाएगा।

(ख) उपर्युक्त (क)(ii) और (क)(iii) की शर्तों के अनुसार जारी किए गए किसी पासपोर्ट का नवीनीकरण एक-एक वर्ष की अवधि के लिए किया जा सकेगा, बशर्ते कि आवेदक ने न्यायालय द्वारा स्वीकृत अवधि के लिए विदेश

यात्रा न की हो; और इस शर्त पर भी कि इस दौरान न्यायालय का आदेश रद्द अथवा परिवर्तित न किया गया हो;

(ग) उपर्युक्त (क)(i) की शर्तों के अनुसार जारी किए गए किसी पासपोर्ट का नवीनीकरण केवल एक नए न्यायालय आदेश के आधार पर किया जा सकेगा जो पासपोर्ट की आगे की वैधता अवधि विनिर्दिष्ट करे अथवा विदेश यात्रा की अवधि विनिर्दिष्ट करे;

(घ) उक्त नागरिक पासपोर्ट जारी करने वाले प्राधिकरण को लिखित में यह वचन देगा कि यदि संबंधित न्यायालय द्वारा आवश्यक किया जाए, तो वह इस प्रकार जारी पासपोर्ट की वैधता के दौरान किसी भी समय उसके समक्ष उपस्थित होगा।

[संख्या VI|401|37|79]

ह. एल.के. पोनप्पा, संयुक्त सचिव, (सी.पी.वी.)"

(जोर डाला गया)

18. इस दृष्टि से यह सुरक्षित रूप से निष्कर्षित किया जा सकता है कि अधिनियम, 1967 की धारा 6(2)(च) का प्रावधान उन व्यक्तियों को पासपोर्ट जारी किए जाने पर निरपेक्ष प्रतिबंध नहीं लगाता जिनके विरुद्ध आपराधिक कार्यवाहियाँ लंबित हों, क्योंकि इस संदर्भ में पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 22, पासपोर्ट अधिनियम, 1967 के सभी अथवा किन्हीं प्रावधानों के प्रयोग से छूट प्रदान करने हेतु केंद्र सरकार को शक्ति प्रदान करती है, जिसका प्रयोग दिनांक 25.08.1993 की अधिसूचना जारी करके किया गया है।

19. इस न्यायालय का मत है कि राजकीय राजपत्र अधिसूचना जी.एस.आर. 570(ई) दिनांक 25.08.1993 के अंतर्गत केंद्र सरकार ने लंबित आपराधिक कार्यवाहियों का सामना कर रहे व्यक्तियों को अधिनियम, 1967 की धारा 6(2)(च) के अधीन अधिरोपित प्रतिबंधों से छूट प्रदान की है, बशर्ते वे संबंधित न्यायालय से भारत छोड़ने की अनुमति देने वाला आदेश प्राप्त करें। इसके अतिरिक्त, यदि संबंधित न्यायालय अनुमति प्रदान करता है, तो आदेश में विनिर्दिष्ट अवधि के लिए पासपोर्ट जारी किया जा सकेगा। यदि कोई अवधि उल्लिखित नहीं है, तो पासपोर्ट अधिकतम एक वर्ष के लिए जारी किया जाएगा। भारत छोड़ने की अनुमति देने वाले न्यायालय के आदेश के अभाव में, सन् 1967 के अधिनियम की धारा 6(2)(च) का प्रतिबंध प्रवर्तन में रहेगा जो पासपोर्ट के जारी किए जाने या नवीनीकरण को रोकता है।

20. अधिनियम, 1967 की धारा 22 के अंतर्गत उपरोक्त अधिसूचना में सांविधिक समर्थन और बल है। किसी विचाराधीन बंदी के लिए विदेश जाने हेतु 'अनुमति' अथवा 'अनापत्ति प्रमाण-पत्र' प्राप्त करने की अपेक्षा अधिनियम, 1967 के अंतर्गत एक सांविधिक अपेक्षा है।

21. जिस अवधि के लिए पासपोर्ट जारी किया जा सकता है, उसके संबंध में, उपरोक्त अधिसूचना से यह सहज बोधगम्य है कि खण्ड (क) के उप-खण्ड (i), (iii) और (iv) के मामले में, न्यायालय न केवल विचाराधीन बंदी को भारत से प्रस्थान की अनुमति देता है, अपितु उसके लिए एक अवधि भी विनिर्दिष्ट करता है, जिस

स्थिति में पासपोर्ट प्राधिकरण न्यायालय द्वारा प्रदत्त उस अवधि के लिए पासपोर्ट जारी करने हेतु आबद्ध है, अथवा उप-खण्ड (iii) के मामले में यात्रा की अवधि एक वर्ष से कम होने पर एक वर्ष के लिए।

22. यह देखा गया है कि केंद्र सरकार ने पासपोर्ट जारी किए जाने की अवधि को जानबूझकर विचारण न्यायालय के विवेक पर छोड़ा है। तथापि, यदि न्यायालय आवेदक को भारत छोड़ने की अनुमति देना तो स्वीकार करता है किंतु इसके लिए अवधि विनिर्दिष्ट नहीं करता, अर्थात् विचारण न्यायालय प्रथम दृष्टया अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने से विरत रहता है, तो अवधि निर्धारित करने की शक्ति केंद्र सरकार की अवशिष्ट प्राधिकारिता पर वापस आ जाती है, जो उसे प्रथमतः उसकी शक्ति के स्रोत, अर्थात् पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 22 द्वारा प्रदत्त है, और ऐसे मामले में केंद्र सरकार द्वारा एक वर्ष की युक्तियुक्त अवधि नियत की गई है, जिसे यह न्यायालय पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6(2)(च) के संदर्भ में पठित मूल विधि अर्थात् पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 22 तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(5) के अनुरूप पाता है।

23. इस स्थिति में, प्राधिकरणों के मध्य पासपोर्ट आवेदन की प्रक्रिया के संबंध में भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो गई थी, जिस पर विदेश मंत्रालय ने पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6(2)(च) के अंतर्गत आवेदनों के प्रसंस्करण हेतु दिशा-निर्देश/प्रक्रिया विहित करते हुए कार्यालय ज्ञापन, संख्या VI/401/I/5/2019, दिनांक 10.10.2019, प्रकाशित किया। उक्त ज्ञापन के अनुसार भी, आवेदक से अपेक्षित है कि वह पासपोर्ट प्राधिकरणों को आवेदन/वचन पत्र प्रस्तुत करे जिसमें सभी लंबित आपराधिक मामलों का प्रकटन हो। यदि विचाराधीन बंदी के विरुद्ध कोई मामला लंबित है, तो उक्त विचाराधीन बंदी संबंधित न्यायालय से भारत छोड़ने की अनुमति के लिए 'अनापत्ति प्रमाण-पत्र' (NOC) प्राप्त करेगा। तत्पश्चात्, पुलिस प्राधिकरणों द्वारा पुलिस सत्यापन (PV) कराया जाएगा और पुलिस सत्यापन प्रतिवेदन के अधीन रहते हुए, पासपोर्ट प्राधिकरण पासपोर्ट जारी करने अथवा अस्वीकार करने का निर्णय कारण सहित ले सकता है। यह उल्लेखनीय है कि उक्त ज्ञापन पूर्व की अधिसूचना का ही विस्तार है, इसलिए कि सन् 2019 का उक्त ज्ञापन स्वयं ही यह अभिलेख करता है कि जी.एस.आर. 570(ई) के प्रावधानों को सभी मामलों में कठोरता से लागू किया जाए, क्योंकि यह एक सांविधिक अधिसूचना है और नियमों का भाग है।

24. दी गई परिस्थितियों में, यद्यपि पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6(2)(च) स्पष्ट रूप से यह प्रावधान करती है कि यदि याचिकाकर्ता द्वारा कथित रूप से किए गए किसी अपराध के संबंध में भारत में किसी आपराधिक न्यायालय में कार्यवाही लंबित हो, तो यह पासपोर्ट जारी करने से इनकार करने का आधार होगा, तथापि, जी.एस.आर. 570(ई) (दिनांक 25 अगस्त, 1993) की हितकारी सांविधिक अधिसूचना को दिनांक 10.10.2019 के कार्यालय ज्ञापन के साथ पढ़ने पर, याचिकाकर्ता उस न्यायालय से 'अनापत्ति प्रमाण-पत्र' प्रस्तुत करने पर, जहाँ कार्यवाही लंबित है, पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6(2)(च) के प्रचालन से मुक्त हो जाएगा/जाएगी और विदेश जाने के लिए अधिकृत होगा/होगी तथा इस अनापत्ति प्रमाण-पत्र के लिए पासपोर्ट जारी/नवीनीकरण अंतर्निहित है।

25. पासपोर्ट अधिनियम, 1967 के प्रावधानों और उक्त अधिनियम की धारा 22 के अंतर्गत जारी हितकारी अधिसूचना के सामान्य पठन से एकमात्र तार्किक निष्कर्ष यह निकलता है कि उन सभी मामलों में जहाँ आपराधिक कार्यवाहियाँ लंबित हों और पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6(2)(च) के प्रचालन से पासपोर्ट जारी करने से इनकार किया गया हो, वहाँ विचाराधीन बंदी को, एक शर्त-पूर्व के रूप में, सर्वप्रथम उस संबंधित न्यायालय, जहाँ विचारण लंबित हो, से विदेश यात्रा अथवा प्रस्थान की अनुमति अथवा अनापत्ति प्रमाण-पत्र प्राप्त करना होगा, जिसके लिए मूलतः पासपोर्ट की आवश्यकता होती है, और तभी, एक शर्त-उत्तर के रूप में, अनुमति आदेश में ही उल्लिखित अवधि के लिए, अथवा जी.एस.आर. 570(ई) दिनांक 25 अगस्त, 1993 में उल्लिखित अवधि के लिए पासपोर्ट जारी किए जाने हेतु पासपोर्ट प्राधिकरण के समक्ष आवेदन करना होगा।

26. तथापि, अधिनियम, 1967 की धारा 6(2)(च) और दिनांक 10.10.2019 के कार्यालय ज्ञापन संख्या VI/40/1/5/2019 की गलत व्याख्या करते हुए, कई विचाराधीन बंदी पासपोर्ट के पुनः जारी किए जाने के लिए अनुमति आदेश की अपेक्षा न्यायालय से 'अनापत्ति प्रमाण-पत्र' (NOC) प्राप्त करते रहे। तदनुसार, विदेश मंत्रालय ने इस मुद्दे को स्पष्ट करने के आशय से, अपने पी.एस.पी. प्रभाग के माध्यम से कार्यालय ज्ञापन (OM) दिनांक 06.12.2024 प्रकाशित किया, जिसमें यह कहा गया कि कोई ऐसा विधिक प्रावधान नहीं है जिसके तहत आवेदक को पासपोर्ट जारी किए जाने अथवा पुनः जारी किए जाने के लिए संबंधित न्यायालय से अनुमति अथवा 'अनापत्ति प्रमाण-पत्र' (NOC) प्राप्त करना हो। इसके बजाय, आवेदक को संबंधित न्यायालय से विशेष रूप से भारत छोड़ने अथवा विदेश यात्रा करने की अनुमति प्राप्त करनी होती है। कार्यालय ज्ञापन (OM) दिनांक 06.12.2024 का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत किया जाता है:-

"8. यह ध्यान देने योग्य है कि पासपोर्ट जारी करने के लिए संबंधित न्यायालय से अनुमति/अनापत्ति प्रमाण-पत्र प्राप्त करने का कोई ऐसा प्रावधान नहीं है; इसके बजाय यह भारत छोड़ने की अनुमति है। यदि आवेदक विहित दस्तावेज उपलब्ध कराने में असमर्थ हो, तो पी.आई.ए. पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6 के अंतर्गत अपील हेतु प्रावधान निर्धारित करते हुए अस्वीकृति आदेश जारी कर सकता है।"

27. यह कहना अनावश्यक है कि राजकीय राजपत्र [जी.एस.आर. 570(ई) दिनांक 25.08.1993] के अनुसार, पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6(2)(च) के अधीन छूट केवल उन व्यक्तियों पर लागू होती है जो संबंधित न्यायालय से भारत छोड़ने की अनुमति देने वाले आदेश प्रस्तुत करते हैं, अन्यथा पासपोर्ट जारी किए जाने से इनकार करने की कठोरता स्वतः अनुसरण करेगी।

28. प्रकट रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि जब याचिकाकर्ता ने ऐसे अनापत्ति प्रमाण-पत्र के लिए आवेदन किया, तो संबंधित विचारण न्यायालय ने यह कहते हुए आदेश पारित किया कि उसके द्वारा ऐसी अनुमति दिए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम पासपोर्ट अधिनियम, 1967 के प्रासंगिक प्रावधानों और उसके अंतर्गत जारी अधिसूचनाओं पर पहले ही चर्चा कर चुके हैं जो आपराधिक विचारण लंबित होने पर न्यायालय से ऐसी अनुमति लिए जाने की अपेक्षा रखते हैं। हमने उसी विषय पर विधि की विवेचना और स्पष्टीकरण करने वाले अनेक

समन्वय पीठों के पूर्व के निर्णयों का भी संदर्भ लिया है। इस संदर्भ में हमने विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता एवं भारत के उप महान्यायवादी के तर्कों को भी ध्यान में रखा है। तदनुसार, हम मामला अपराध संख्या 113 सन् 2013 से उत्पन्न मामला संख्या 2397 सन् 2023 में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट (ए.पी.), लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 30.07.2024 के आदेश को अपनी स्वतः प्राप्त अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग में अपास्त करते हैं। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता का आवेदन पुनर्जीवित माना जाएगा और उपरोक्त चर्चा के आलोक में नवीन रूप से विचार किया जाएगा तथा तीन सप्ताह की अवधि के भीतर निर्णय लिया जाएगा। उपरोक्त दिनांक 30.07.2024 का आदेश पूर्व में उल्लिखित मामला अपराध संख्या 113 सन् 2013 के संदर्भ में पारित किया गया है, तथापि याचिकाकर्ता के विरुद्ध एक अन्य आपराधिक मामला भी है, जो मामला अपराध संख्या 123 सन् 2011 है, जिसके संबंध में याचिकाकर्ता ने विवेचना अधिकारी द्वारा अंतिम प्रतिवेदन प्रस्तुत किए जाने का संकेत करने वाला कोई दस्तावेज दाखिल किया है, किंतु उसकी स्वीकृति के संबंध में कोई आदेश नहीं है, इसलिए याचिकाकर्ता को यह पता करना होगा कि अंतिम प्रतिवेदन स्वीकार किया गया है या नहीं; यदि हाँ, तो उक्त आदेश क्षेत्रीय पासपोर्ट अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करे। यदि वह स्वीकार नहीं किया गया हो अथवा प्रतिवाद आवेदन पर उसे आगे बढ़ाया जा रहा हो, तो उसे उपरोक्त चर्चा के अनुसार उसी रीति से आपराधिक अधिकारिता के उस न्यायालय से, जहाँ उक्त मामला लंबित हो, अनुमति प्राप्त करनी होगी। यदि उपरोक्त न्यायालयों द्वारा विदेश जाने का अनापत्ति प्रमाण-पत्र/अनुमति प्रदान की जाती है, तो याचिकाकर्ता उसे संबंधित क्षेत्रीय पासपोर्ट अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करे, जो तत्पश्चात् विधि के अनुसार पासपोर्ट जारी किए जाने हेतु याचिकाकर्ता के आवेदन को प्रसंस्कृत करेगा और ऐसे अनापत्ति प्रमाण-पत्र/अनुमति की प्रस्तुति के तीन सप्ताह की अवधि के भीतर निर्णय लेगा।

29. रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

अनवाणित

(2025) 5 ILRA 932

मूल अधिकारिता - सिविल पक्ष

दिनांकित: लखनऊ 19.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

रिट सी संख्या 3389 सन् 2025

मेसर्स राजधानी इंटर स्टेट ट्रांसपोर्ट कं. नई दिल्ली ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: तुषार मित्तल, कार्तिकेय दुबे, श्रीकांत त्रिपाठी

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: मुख्य स्थायी अधिवक्ता (C.S.C.)

A. सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226, 14, 21 एवं 32 - इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली 1952 - अध्याय IV - नियम 3 - नोटरी अधिनियम, 1952 - धारा 8(1)(e)

न्यायालय ने न्याय तक पहुँच को प्रभावित करने वाले दो महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किया - नोटरी पब्लिक के समक्ष शपथ ली गई शपथ-पत्रों की विधिमान्यता तथा बार एसोसिएशन द्वारा फोटो पहचान हेतु अवैध शुल्क आरोपण। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि नोटरी अधिनियम के अंतर्गत नोटरी पब्लिक द्वारा अभिप्रमाणित शपथ-पत्र विधिमान्य हैं तथा न्यायालय की रजिस्ट्री को बिना किसी आपत्ति के उन्हें स्वीकार करना होगा। न्यायालय ने यह भी घोषित किया कि फोटो पहचान के लिए आधिकारिक रूप से स्वीकृत रु. 125/- से अधिक रु. 500/- वसूल करने की प्रथा अवैध, अनाधिकृत एवं न्याय तक पहुँच सुनिश्चित करने वाले संवैधानिक सिद्धांतों का उल्लंघन है। किसी भी अतिरिक्त वसूली पर अवमान कार्यवाही होगी - निदेश जारी किया गया। (पैरा 1 से 39)

रिट याचिका का निस्तारण किया जाता है। (E-6)

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया द्वारा प्रदत्त)

1. दिनांक 16.04.2025 के आदेश के अनुसरण में, जिसमें इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता द्वारा नोटरी पब्लिक के समक्ष शपथ ली गई शपथ-पत्र स्वीकार न किए जाने तथा विधि के किसी भी प्रावधान के विपरीत वादकारियों से रु. 400/- से रु. 500/- तक की राशि वसूल किए जाने के संबंध में उठाई गई शिकायतों पर ध्यान दिया था,

अनुवादित

उच्च न्यायालय की ओर से उपस्थित अधिवक्ता द्वारा अनुदेश प्राप्त कर प्रस्तुत किए गए हैं, जिन्हें अभिलेख पर लिया जाता है।

2. श्री तुषार मित्तल, विद्वान एमिकस क्यूरी, जिन्हें इस न्यायालय द्वारा नियुक्त किया गया है; श्री जे. एन. माथुर, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता; श्री एस. एम. सिंह रायकवार, विद्वान अधिवक्ता जो इस न्यायालय की सहायता हेतु उपस्थित हुए हैं; श्री मनोज द्विवेदी, अवध बार एसोसिएशन के महामंत्री; एवं श्री गौरव मेहरोत्रा, विद्वान अधिवक्ता जो उच्च न्यायालय की ओर से उपस्थित हुए हैं, को सुना गया।

3. श्री गौरव मेहरोत्रा, विद्वान अधिवक्ता, इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल द्वारा उन्हें दिए गए अनुदेशों के आधार पर, स्पष्ट रूप से कहते हैं कि नोटरी पब्लिक के समक्ष शपथ ली गई शपथ-पत्र से समर्थित याचिकाओं, आवेदनों एवं अन्य दाखिलों को अस्वीकार करने का कोई प्रस्ताव नहीं है। उन्होंने अत्यंत स्पष्ट शब्दों में कहा कि नोटरी अधिनियम के अंतर्गत नियुक्त नोटरी पब्लिक के समक्ष शपथ ली गई शपथ-पत्र से युक्त कोई भी याचिका याचिकाओं एवं अन्य दाखिलों के संबंध में एक विधिमान्य दस्तावेज है और रहेगी। विवाद उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के संबंध में, जिसमें इलाहाबाद एवं लखनऊ दोनों स्थानों पर फोटो पहचान के लिए रु. 500/- वसूल किया जाना सम्मिलित है, यह बताया गया कि जनहित याचिका संख्या 55060 वर्ष 2015 में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने उस ढंग पर विचार किया था जिसमें उच्च न्यायालय नियमावली की शर्तों के अनुसार नियुक्त शपथ आयुक्त के समक्ष शपथ-पत्र दिलाए जाते हैं। इस न्यायालय को उस ढंग से अवगत कराया गया जिसमें बार एसोसिएशन द्वारा फोटो पहचान की सुविधा उपलब्ध कराने के लिए मुवक्किलों से शुल्क लिया जा रहा था तथा यह अभिलक्षित किया गया कि उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन द्वारा राशि वसूल करने की कार्रवाई का कोई विधिक अनुमोदन नहीं है और दिनांक 04.09.2015 के अपने संकल्प के अनुसरण में कार्य करने से उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन को रोकते हुए एक अवरोध आदेश पारित किया गया था जब तक कि उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन द्वारा कार्यप्रणाली प्रस्तुत न कर दी जाए और माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा अनुमोदित न कर दी जाए।

4. यह भी अभिलेख पर लाया गया है कि उपरोक्त आदेश के होते हुए भी, रु. 500/- वसूल किए जाने की प्रथा जारी रही, अतः विषय पुनः इस न्यायालय की एक खंडपीठ के समक्ष रिट-सी संख्या 33750 वर्ष 2022 (अभिषेक शुक्ला बनाम उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन एवं अन्य) में आया, जिसमें न्यायालय ने उस ढंग का अवलोकन करने के पश्चात जिसमें उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन की गवर्निंग काउंसिल द्वारा पारित संकल्प के आधार पर मात्र रु. 500/- वसूल किए जा रहे थे, दिनांक 31.10.2022 को पारित संकल्प पर स्थगन देते हुए एक अंतरिम आदेश पारित किया।

5. यह ज्ञात होता है कि उपरोक्त वर्णित अवरोध आदेशों के होते हुए भी, इलाहाबाद एवं लखनऊ दोनों स्थानों पर शपथ-पत्रों पर लगाई जाने वाली फोटो के लिए मात्र पहचान हेतु वादकारियों से रु. 500/- वसूल करने की प्रथा जारी है।

6. उसके उत्तर में, उच्च न्यायालय के विद्वान अधिवक्ता मेरा ध्यान इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली के अध्याय IV नियम 2 एवं नियम 3 की ओर आकृष्ट करते हैं, जो निम्नानुसार हैं:

"2. फीस - शपथ आयुक्तों के समक्ष शपथ-पत्रों के सत्यापन के लिए ऐसी फीस दी जाएगी जैसी मुख्य न्यायाधीश के आदेश द्वारा समय-समय पर निर्धारित की जाए।

3. रजिस्टर - शपथ आयुक्त एक या अधिक रजिस्टर रखेंगे जिनमें उनके समक्ष शपथ लिए गए प्रत्येक शपथ-पत्र के संबंध में निम्नलिखित विशेषताएं अंकित होंगी, अर्थात:-

(a) क्रमांक;
(b) शपथ-पत्र बनाने की तारीख एवं समय;
(c) उस मामले की विशेषताएं जिससे शपथ-पत्र संबंधित है;
(d) शपथ-पत्र बनाने वाले व्यक्ति की पूर्ण विशेषताएं;
(e) उसकी पहचान करने वाले व्यक्ति की विशेषताएं;
(f) दी गई फीस;
(g) जिस शपथ आयुक्त के समक्ष शपथ-पत्र शपथित किया गया हो उसका नाम; तथा
(h) शपथ आयुक्त के हस्ताक्षर एवं टिप्पणियां, यदि कोई हों।
मुख्य न्यायाधीश रखे जाने वाले रजिस्टरों की संख्या समय-समय पर नियत कर सकते हैं और उनमें अंकित किए जाने वाले विवरण में जोड़ या परिवर्तन कर सकते हैं। रजिस्टर रजिस्ट्रार द्वारा निरीक्षण के लिए खुले रहेंगे।"

7. यह तर्क दिया गया है कि नियम 3 के परंतुक के अनुसार, मुख्य न्यायाधीश रखे जाने वाले रजिस्टरों की संख्या नियत करने और उनमें अंकित किए जाने वाले विशेषताओं में जोड़ने या परिवर्तन करने के लिए सशक्त हैं।

8. उक्त शक्तियों के अंतर्गत, प्रारंभ में प्रशासनिक समिति ने दिनांक 06.10.2015 को आयोजित अपनी बैठक में निम्नलिखित संकल्प पारित किया:

"एजेंडा:
माननीय न्यायालय के फोटो शपथ-पत्र प्रणाली की प्रक्रिया के कार्यान्वयन के संबंध में।
उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन, इलाहाबाद के दिनांक 1 अक्टूबर 2015 के पत्र तथा उसके संलग्नकों और जनहित याचिका (PIL) संख्या 55060 वर्ष 2015 में दिनांक 29 सितंबर 2015 को माननीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश तथा दिनांक 11 सितंबर 2015 की कार्यालय टिप्पणी पर विचार।

रेसोल्यूशन:

उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन, इलाहाबाद के दिनांक 1 अक्टूबर 2015 के पत्र तथा उसके संलग्नकों और जनहित याचिका (PIL) संख्या 55060 वर्ष 2015 में दिनांक 29 सितंबर 2015 को माननीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश तथा दिनांक 11 सितंबर 2015 की कार्यालय टिप्पणी पर विचार किया गया। यह संकल्प पारित हुआ कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली, 1952 के अध्याय IV नियम 3 के अंतर्गत मुख्य न्यायाधीश द्वारा निम्नलिखित निदेश जारी किए जा सकते हैं:

"(1) शपथ आयुक्त एक रजिस्टर रखेंगे जिसमें शपथित प्रत्येक शपथ-पत्र के संबंध में निर्धारित विशेषताएं अंकित होंगी;

(2) प्रत्येक शपथ-पत्र के शपथकर्ता को इलाहाबाद उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन द्वारा जारी पहचान संख्या के साथ अपना पासपोर्ट साइज फोटोग्राफ लगाना होगा;

(3) किसी विशेष वाद में किसी व्यक्ति को एक पहचान संख्या आवंटित की जाएगी जो उसी वाद में उसी शपथकर्ता द्वारा दाखिल किए जाने वाले सभी आगामी शपथ-पत्रों के लिए उपयोग की जा सकती है;

(4) किसी विशेष शपथकर्ता को किसी वाद में आवंटित पहचान संख्या रजिस्टर में विशेष रूप से अंकित की जाएगी;

परंतु उपर्युक्त कार्यप्रणाली का अनुरोध राज्य या केंद्र सरकारों के अधिकारियों द्वारा या राज्य की साधनभूत संस्थाओं की ओर से दाखिल किए जाने वाले शपथ-पत्रों के संबंध में नहीं किया जाएगा।"

आगे यह संकल्प पारित हुआ कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन द्वारा किए जाने वाले कार्य की प्रकृति तथा इसमें निहित प्रशासनिक व्ययों को उचित ध्यान में रखते हुए बार एसोसिएशन द्वारा प्रति पहचान संख्या रु. सत्तर की राशि ली जा सकती है। इस प्रकार निर्धारित राशि में रजिस्ट्रार जनरल की पूर्व स्वीकृति के बिना, मुख्य न्यायाधीश के अनुदेशों पर, वृद्धि नहीं की जाएगी।"

9. तत्पश्चात, रजिस्ट्रार जनरल द्वारा दिनांक 10.09.2018 को एक कार्यालय ज्ञापन जारी किया गया, जो नीचे उद्धृत है:

<u>इलाहाबाद स्थित उच्च न्यायालय</u>

<u>प्रशासन 'जी-1' (संशोधन) अनुभाग</u>

<u>कार्यालय ज्ञापन</u>

संख्या 268/प्रशा. जी-I/इलाहाबाद: दिनांक: 10 सितंबर, 2018

पूर्ववर्ती कार्यालय ज्ञापन संख्या 763/प्रशा. जी-I/इलाहाबाद: दिनांक: 30.08.2016 के अधिक्रमण में, माननीय न्यायालय की फोटो शपथ-पत्र प्रणाली की प्रक्रिया के कार्यान्वयन हेतु, इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली,

1952 के अध्याय IV नियम 3 में निहित प्रावधानों के अनुसार, माननीय न्यायालय को इस आशय का नया कार्यालय ज्ञापन जारी करने का निदेश देना उचित प्रतीत हुआ कि -

(1) शपथ आयुक्त एक रजिस्टर रखेंगे जिसमें शपथित प्रत्येक शपथ-पत्र के संबंध में निर्धारित विशेषताएं अंकित होंगी;

(2) प्रत्येक शपथ-पत्र के शपथकर्ता को इलाहाबाद उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन या इलाहाबाद हेतु एडवोकेट्स एसोसिएशन तथा लखनऊ पीठ हेतु अवध बार एसोसिएशन, लखनऊ द्वारा जारी पहचान संख्या के साथ अपना पासपोर्ट साइज फोटोग्राफ लगाना होगा;

(3) किसी विशेष वाद में किसी व्यक्ति को एक पहचान संख्या आवंटित की जाएगी जो उसी वाद में उसी शपथकर्ता द्वारा दाखिल किए जाने वाले सभी आगामी शपथ-पत्रों के लिए उपयोग की जा सकती है;

(4) किसी विशेष शपथकर्ता को किसी वाद में आवंटित पहचान संख्या रजिस्टर में विशेष रूप से अंकित की जाएगी;

परंतु उपर्युक्त कार्यप्रणाली का अनुरोध राज्य या केंद्र सरकारों के अधिकारियों द्वारा या राज्य की साधनभूत संस्थाओं की ओर से दाखिल किए जाने वाले शपथ-पत्रों के संबंध में नहीं किया जाएगा।

आगे यह निदेश दिया जाता है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन या इलाहाबाद हेतु एडवोकेट्स एसोसिएशन तथा लखनऊ पीठ हेतु अवध बार एसोसिएशन, लखनऊ द्वारा किए जाने वाले कार्य की प्रकृति तथा इसमें निहित प्रशासनिक व्ययों को उचित ध्यान में रखते हुए, बार एसोसिएशन या इलाहाबाद हेतु एडवोकेट्स एसोसिएशन तथा लखनऊ पीठ हेतु अवध बार एसोसिएशन, लखनऊ द्वारा प्रति पहचान संख्या रु. सत्तर की राशि ली जा सकती है। इस प्रकार निर्धारित राशि में रजिस्ट्रार जनरल की पूर्व स्वीकृति के बिना, मुख्य न्यायाधीश के अनुदेशों पर, वृद्धि नहीं की जाएगी।

सभी संबंधितों को तत्काल प्रभाव से उपर्युक्त आदेश का अनुपालन करने का निदेश दिया जाता है।

न्यायालय के आदेश से
(मो. फैज आलम खान)
रजिस्ट्रार जनरल

10. तत्पश्चात, रजिस्ट्रार जनरल द्वारा जारी दिनांक 09.08.2023 के कार्यालय ज्ञापन के द्वारा, फोटो पहचान संख्या की सुविधा उस AOR तक विस्तारित की गई जो बार एसोसिएशन का सदस्य नहीं है। इसके अतिरिक्त, दिनांक 22.11.2024 के कार्यालय ज्ञापन द्वारा, फोटो शपथ-पत्र की दरें बढ़ाकर रु. 125/- कर दी गई हैं। उक्त कार्यालय ज्ञापन नीचे उद्धृत है:

इलाहाबाद स्थित उच्च न्यायालय
प्रशासन 'जी-1' (संशोधन) अनुभाग

कार्यालय ज्ञापन

संख्या 998/प्रशा. जी-I/इलाहाबाद: दिनांक: 22 नवंबर, 2024

पूर्ववर्ती कार्यालय ज्ञापन संख्या 805/प्रशा. जी-I/इलाहाबाद: दिनांक: 09.08.2023 के अधिक्रमण में, माननीय न्यायालय की फोटो शपथ-पत्र प्रणाली की प्रक्रिया के कार्यान्वयन हेतु, इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली, 1952 के अध्याय IV नियम 3 में निहित प्रावधानों के अनुसार, माननीय न्यायालय को इस आशय का संशोधित कार्यालय ज्ञापन जारी करने का निदेश देना उचित प्रतीत हुआ कि -

(1) शपथ आयुक्त एक रजिस्टर रखेंगे जिसमें शपथित प्रत्येक शपथ-पत्र के संबंध में निर्धारित विशेषताएं अंकित होंगी;

(2) प्रत्येक शपथ-पत्र के शपथकर्ता को इलाहाबाद उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन या इलाहाबाद हेतु एडवोकेट्स एसोसिएशन तथा लखनऊ पीठ हेतु अवध बार एसोसिएशन, लखनऊ द्वारा जारी पहचान संख्या के साथ अपना पासपोर्ट साइज फोटोग्राफ लगाना होगा;

(3) किसी विशेष वाद में किसी व्यक्ति को एक पहचान संख्या आवंटित की जाएगी जो उसी वाद में उसी शपथकर्ता द्वारा दाखिल किए जाने वाले सभी आगामी शपथ-पत्रों के लिए उपयोग की जा सकती है;

(4) किसी विशेष शपथकर्ता को किसी वाद में आवंटित पहचान संख्या रजिस्टर में विशेष रूप से अंकित की जाएगी;

परंतु उपर्युक्त कार्यप्रणाली का अनुरोध राज्य या केंद्र सरकारों के अधिकारियों द्वारा या राज्य की साधनभूत संस्थाओं की ओर से दाखिल किए जाने वाले शपथ-पत्रों के संबंध में नहीं किया जाएगा।

परंतु यह और कि माननीय उच्च न्यायालय द्वारा जारी AOR संख्या धारण करने वाला अधिवक्ता, जो उपर्युक्त संघों का सदस्य नहीं है, को फोटो पहचान संख्या के लिए मना नहीं किया जाएगा।

आगे यह निदेश दिया जाता है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन या इलाहाबाद हेतु एडवोकेट्स एसोसिएशन तथा लखनऊ पीठ हेतु अवध बार एसोसिएशन, लखनऊ द्वारा किए जाने वाले कार्य की प्रकृति तथा इसमें निहित प्रशासनिक व्ययों को उचित ध्यान में रखते हुए, बार एसोसिएशन या इलाहाबाद हेतु एडवोकेट्स एसोसिएशन तथा लखनऊ पीठ हेतु अवध बार एसोसिएशन, लखनऊ द्वारा प्रति पहचान संख्या एक सौ पच्चीस रुपये की राशि ली जा सकती है। इस प्रकार निर्धारित राशि में रजिस्ट्रार जनरल की पूर्व स्वीकृति के बिना, मुख्य न्यायाधीश के अनुदेशों पर, वृद्धि नहीं की जाएगी।

सभी संबंधितों को तत्काल प्रभाव से उपर्युक्त आदेश का अनुपालन करने का निदेश दिया जाता है।

न्यायालय के आदेश से

(राजीव भारती)

रजिस्ट्रार जनरल

असंशोधित

11. उन्होंने दिनांक 12.04.2019 का पत्र भी अभिलेख पर रखा जिसके द्वारा एक दुकान को अवध बार एसोसिएशन के फोटो पहचान कार्य हेतु नामित किया गया।

12. यह कहा गया है कि नियम 2 एवं नियम 3 के परंतुक से शक्ति प्राप्त कर, शपथ आयुक्त के समक्ष शपथ-पत्र के सत्यापन हेतु शुल्क पहले रु. 75/- निर्धारित थे जिन्हें बाद में बढ़ाकर रु. 125/- किया गया। यह तर्क दिया गया है कि उच्च न्यायालय ने अपने प्रशासनिक पक्ष से या माननीय मुख्य न्यायाधीश ने शक्तियों के प्रयोग में कभी भी बार एसोसिएशनों को रु. 125/- से अधिक कोई राशि वसूल करने की अनुमति नहीं दी। यह तर्क दिया गया है कि फोटो पहचान कार्य बार एसोसिएशनों को सौंपा और बाहर दिया (outsource) गया था जिन्होंने बदले में इसे किसी तृतीय पक्ष को सौंप दिया और यह उच्च न्यायालय के नियंत्रण से बाहर है।

13. श्री गौरव मेहरोत्रा के इस निर्देश के संबंध में कि नोटरी पब्लिक द्वारा हस्ताक्षरित शपथ-पत्र पर कोई रोक नहीं है, श्री तुषार मित्तल एवं श्री जे. एन. माथुर उस दोष-सूची की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं जो उच्च न्यायालय की वेबसाइट पर अपलोड की गई है, यह तर्क देने के लिए कि यदि श्री गौरव मेहरोत्रा के कथन को स्वीकार कर लिया जाए, तो शपथ-पत्रों से संबंधित फाइलिंग अनुभाग द्वारा अधिसूचित दोष-सूची के कारण, नोटरी पब्लिक के समक्ष शपथ लिए गए शपथ-पत्र से समर्थित याचिकाओं आदि की वास्तविक दाखिलगी पर्याप्त नहीं हो सकती और वादकारियों को होने वाली असुविधा जारी रहेगी।

14. श्री एस. एम. सिंह रायकवार ने विस्तारपूर्वक तर्क दिया है कि न्याय तक पहुँच संविधान द्वारा प्रदत्त एक मूल्यवान अधिकार है और फोटो पहचान शुल्क के नाम पर राशि वसूल करके इसे हतोत्साहित नहीं किया जा सकता; उनके अनुसार यह न्याय तक पहुँच को सुगम बनाने की संवैधानिक भावना के विपरीत है।

15. यह भी तर्क दिया गया है कि फोटो शपथ-पत्र केंद्र के नाम पर वादकारियों से रु. 500/- की भारी राशि वसूल करना न तो किसी कानून द्वारा स्वीकृत है और न ही यह न्याय तक पहुँच को सुगम बनाने के संवैधानिक दर्शन की पूर्ति में सहायक है। वे आगे तर्क करते हैं कि बार एसोसिएशन न तो वादकारियों से कोई धनराशि स्वीकार करने की पात्र है, न ही यह किसी संवैधानिक प्रावधान द्वारा स्वीकृत है, विशेषकर जब यह उच्च न्यायालय के समक्ष की जाने वाली कार्यवाहियों से संबंधित है।

16. यह भी तर्क दिया गया है कि वादकारियों से धनराशि वसूल करना उपरोक्त वर्णित दोनों खंडपीठों द्वारा पारित अंतरिम निदेशों का उल्लंघन है। यह भी तर्क दिया गया है कि किसी भी राशि की वसूली, अधिवक्ता अधिनियम की धारा 49(1)(c) द्वारा प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में बनाई गई बार काउंसिल ऑफ इंडिया नियमावली के भाग VI के अध्याय II के नियम 26 का भी उल्लंघन है।

17. संक्षेप में, यह तर्क दिया गया है कि उच्च न्यायालय की नाक के नीचे ही, बिना किसी वैधानिक आधार के, न्याय तक पहुँच से वंचित किया जा रहा है। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि याचिका दाखिल करने के लिए

उच्च न्यायालय ने एक दोष-सूची अपलोड की है जिसे स्टाम्प रिपोर्टिंग अनुभाग अधिसूचित कर सकता है, जो 272 की संख्या में है, जो उत्तर प्रदेश राज्य में इस न्यायालय में आने वाले वादकारियों के लिए, जिनमें अधिकांश निर्धन हैं, एक बड़ा अवरोध है।

18. श्री जे. एन. माथुर, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि स्टाम्प रिपोर्टर द्वारा अधिसूचित की जा सकने वाली 272 कमियों/आपत्तियों के परिणामस्वरूप और जिनका उल्लेख इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली में भी नहीं है, बार के युवा सदस्य कमियों को दूर करने के लिए रजिस्ट्री के पीछे भागने में अपना बहुमूल्य समय व्यर्थ कर रहे हैं, जो सभी के लिए न्याय सुलभ कराने के अभिप्राय के विपरीत है, जो उनके अनुसार संविधान का मूलभूत लक्षण है।

19. बार में की गई उपर्युक्त प्रस्तुतियों पर विचार करने पर यह स्पष्ट है कि मुख्यतः दो कारणों से न्याय तक पहुँच अत्यधिक कठिन होती जा रही है: पहला, प्रति शपथ-पत्र रु. 500/- की दर से फोटो पहचान के नाम पर राशि वसूल करना और दूसरा, याचिकाओं, आवेदनों आदि में स्टाम्प रिपोर्टिंग अनुभाग द्वारा अधिसूचित की जाने वाली दोष-सूची की संख्या।

20. श्री तुषार मित्तल ने यह भी तर्क दिया है कि केरल उच्च न्यायालय ने एक अत्यंत प्रशंसनीय कदम उठाते हुए अपनी नियमावली में संशोधन किया है और यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से कि प्रतिरूपण को समाप्त किया जाए, OTP एवं ई-मेल अधिसूचना आधारित सत्यापन की व्यवस्था की है; उनका कहना है कि नियमावली में उचित संशोधन करके इसी प्रकार का प्रावधान किया जाना इस न्यायालय द्वारा विचार में लिया जा सकता है।

21. यह संवैधानिक आदेश की दृष्टि से स्पष्ट है कि न्याय तक पहुँच नागरिकों में निहित एक मूल्यवान अधिकार है; वस्तुतः अनुच्छेद 32 के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय में जाने का अधिकार संविधान के भाग III के अंतर्गत प्रत्याभूत एक मूल अधिकार है; देश के अन्य न्यायालयों में जाने का अधिकार भी एक संवैधानिक अधिकार है। एक बार जब न्यायिक उपाय का लाभ उठाने का अधिकार एक संवैधानिक अधिकार है, तो न्याय तक पहुँचने का मार्ग सुगम एवं अनावश्यक बाधाओं से मुक्त होना चाहिए, अन्यथा यह एक ऐसा दुर्गम मार्ग बन जाएगा जिस पर कोई न जाए। न्याय तक पहुँच को सुनिश्चित करने हेतु निर्धारित प्रक्रियागत आवश्यकताओं को इस प्रकार समाप्त करना होगा कि संवैधानिक अधिकार एक रिक्त प्रावधान मात्र न रह जाए। पहुँच के लिए निर्धारित प्रक्रियाएं ऐसी नहीं होनी चाहिए जो उस उद्देश्य को ही विफल कर दें जिनकी पूर्ति के लिए वे बनाई गई हैं। प्रक्रियाएं मार्ग को प्रशस्त करने वाली होनी चाहिए न कि बाधा बनने वाली। यद्यपि प्रक्रियाएं आवश्यक हैं, वे घर्षण की भाँति हैं जो एक 'आवश्यक बुराई' है, किंतु यह अत्यधिक नहीं होनी चाहिए, अन्यथा संपूर्ण तंत्र ठप्प हो जाएगा।

अनुमोदित

22. बार में की गई प्रस्तुतियों पर विचार करते हुए यह ध्यान में लाना आवश्यक है कि नोटरी अधिनियम वर्ष 1952 में केंद्र सरकार एवं राज्य सरकार दोनों द्वारा नोटरियों की नियुक्ति के प्रावधानों के साथ लागू किया गया था। नोटरियों को प्रदत्त कार्यों को धारा 8 में विनिर्दिष्ट किया गया है, और धारा 8(1)(e) नोटरियों को किसी भी व्यक्ति से शपथ लेने या उनसे शपथ-पत्र प्राप्त करने के लिए सशक्त करती है।

23. श्री गौरव मेहरोत्रा की इस प्रस्तुति पर विचार करते हुए कि नोटरी अधिनियम के अंतर्गत नोटरी पब्लिक के समक्ष शपथ ली गई शपथ-पत्र को विधिमान्य शपथ-पत्र के रूप में स्वीकार किया जाता है, अंतरिम उपाय के रूप में यह निदेश दिया जाता है कि रजिस्ट्री/स्टाम्प रिपोर्टिंग अनुभाग उच्च न्यायालय के समक्ष इलाहाबाद एवं लखनऊ दोनों में दाखिल की गई और संपूर्ण भारत देश में नियुक्त नोटरी पब्लिक के समक्ष शपथ ली गई शपथ-पत्रों से समर्थित सभी याचिकाओं, आवेदनों, अपीलों आदि को याचिकाओं, आवेदनों, अपीलों आदि के समर्थन में एक विधिमान्य शपथ-पत्र के रूप में स्वीकार करेगा।

24. बताई गई व्यावहारिक कठिनाइयों के दृष्टिगत, यह और स्पष्ट किया जाता है कि स्टाम्प रिपोर्टिंग अनुभाग नोटरी पब्लिक के समक्ष शपथ ली गई शपथ-पत्रों से समर्थित याचिकाओं के संबंध में शपथ-पत्रों से संबंधित दोष-सूची नहीं उठाएगा।

25. इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल/वरिष्ठ रजिस्ट्रार द्वारा इस आदेश की एक प्रति स्टाम्प रिपोर्टिंग अनुभाग को परिचालित की जाए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि इस निदेश के अनुपालन में किसी भी उल्लंघन से अवमान की कार्यवाही होगी।

26. फोटो पहचान के संबंध में दूसरे प्रश्न पर आते हुए, संशोधनों के रूप में हुए प्रावधान इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली के अध्याय IV नियम 3 से अपनी उत्पत्ति प्राप्त करते हैं, किंतु इस युग में जहाँ डिजिटल इंडिया को प्रोत्साहित करने के प्रयास हो रहे हैं, वहाँ वादकारियों के द्वारा मात्र फोटो पहचान के लिए दूर-दूर से यात्रा करने की पिछड़ी हुई प्रथा को जारी रखना स्पष्टतः प्रतिगामी है। इसके परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन तथा अवध बार एसोसिएशन द्वारा संकल्पों के आधार पर विधि की स्वीकृति से परे राशि वसूल की जा रही है, और ऐसी प्रथा का जारी रहना न तो वांछनीय है और न ही यह न्याय के उस मंदिर के लिए शुभ है जो सभी को न्याय सुलभ कराने के संवैधानिक लक्ष्य की पूर्ति में बार एसोसिएशनों की सक्रिय सहायता से कार्य करता है।

27. इसके दृष्टिगत तथा केरल उच्च न्यायालय द्वारा की गई प्रशंसनीय पहल को ध्यान में रखते हुए, यह मामला माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखा जाए ताकि वे, जैसा उचित हो, नियमावली में उचित संशोधन करने के लिए प्रशासनिक पक्ष पर कदम उठाने पर विचार कर सकें जिससे वादकारियों को कोई कष्ट न हो।

28. इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली के अवलोकन पर यह स्पष्ट है कि अध्याय IV नियम 1 शपथ आयुक्त की नियुक्ति तथा शपथ-पत्रों के शपथीकरण का प्रावधान करता है; अध्याय IX नियम 8 उन दस्तावेजों का प्रावधान करता है जो अपील के ज्ञापन तथा रिट याचिका के साथ संलग्न होने हैं; अध्याय XI नियम 3 कार्यालय रिपोर्ट का प्रावधान करता है जो रजिस्ट्री को अध्याय XI नियम 3 के खंड (a) से (f) में विनिर्दिष्ट कमियों को इंगित करने के लिए सशक्त बनाता है।

29. उल्लेखनीय रूप से, अध्याय XXII जो संविधान के अनुच्छेद 226 एवं अनुच्छेद 227 के अंतर्गत रिट याचिकाओं से संबंधित है, स्टाम्प रिपोर्टिंग अनुभाग को अध्याय XXII नियम 1, नियम 1 के खंड (2), नियम 1 के खंड (3) एवं नियम 1 के खंड (3-A) (PILs के संबंध में) में उल्लिखित के अतिरिक्त कोई कमी इंगित करने की शक्ति प्रदान नहीं करता।

30. यह भी ध्यान में लाना आवश्यक है कि ई-फाइलिंग के लिए उच्च न्यायालय द्वारा अनुदेश जारी किए गए हैं।

31. इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली में कोई प्रावधान न होने की स्थिति में, प्रथमदृष्ट्या, अधिसूचित 272 की संख्या वाली दोष-सूची का भी कोई वैधानिक आधार प्रतीत नहीं होता।

32. रिपोर्टिंग अनुभाग द्वारा नियमित रूप से इंगित की जा रही अत्यधिक संख्या में कमियों का यह वर्तमान विषय भी माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष उनके विचारार्थ तथा यदि आवश्यक समझें तो उचित उपाय अपनाने के लिए रखा जाना आवश्यक है।

33. इस आदेश की एक प्रति विचारार्थ माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखी जाए।

34. रु. 500/- की राशि वसूल करने के संबंध में, श्री मनोज द्विवेदी, अवध बार एसोसिएशन के महामंत्री, ने बताया कि उनके संकल्प के अनुसार यह अधिवक्तागण हैं जो उक्त राशि जमा करते हैं जो बाद में उनके खाते में भुगतान की जाती है। यह प्रस्तुति स्पष्टतः खंडपीठों के आदेशों को विफल करने का प्रयास है। यद्यपि उच्च न्यायालय बार एसोसिएशनों को अपने सदस्यों के कल्याण के लिए कदम उठाने की शक्ति है, किंतु उसे इस न्यायालय के समक्ष याचिकाओं, आवेदनों, अपीलों आदि के रूप में दाखिल किए गए मुकदमों की मात्रा से नहीं जोड़ा जा सकता। श्री मनोज द्विवेदी द्वारा तर्कित कल्याण उपायों को शपथ-पत्रों से जोड़ना स्पष्टतः अनुचित एवं विधि के विपरीत है, अतः इस अंतरिम आदेश के द्वारा उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन एवं अवध बार एसोसिएशन को यह सुनिश्चित करने का निदेश दिया जाता है कि किसी भी दर पर फोटो पहचान के संबंध में वादकारियों/अधिवक्ताओं से कोई राशि न वसूल की जाए।

अनुवादित

35. बार एसोसिएशनों को, हालांकि, अपने सदस्यों के लिए ऐसे कल्याण कदम उठाने की छूट है जैसे उचित हों, किंतु उन्हें इस न्यायालय के समक्ष किसी भी दाखिलगी से नहीं जोड़ा जाएगा।

36. शपथ-पत्रों को वसूल की गई राशि से जोड़ना बार एसोसिएशन की गवर्निंग बॉडी के सदस्यों द्वारा न्यायालय की अवमानना होगी।

37. इस आदेश की एक प्रति दोनों बार एसोसिएशनों की गवर्निंग बॉडी को उनके अनुपालन हेतु भेजी जाए।

38. यह और निदेश दिया जाता है कि फोटो पहचान केंद्र का संचालन करने वाले व्यक्ति, चाहे कोई फर्म हो या कंपनी, भी व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होंगे यदि इस न्यायालय के संज्ञान में यह लाया जाए कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली के अध्याय IV नियम 3 के अंतर्गत माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा स्वीकृत राशि से अधिक फोटो पहचान के लिए कोई राशि वसूल की जा रही है।

39. यह विषय उक्त आदेश के साथ **निस्तारित** होता है। रिट याचिका में उठाए गए प्रश्न के निर्णय के लिए रिट याचिका सूचीबद्ध होती रहेगी।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 940

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

रिट सी संख्या 12032 वर्ष 2024

रानी पांडे एवं अन्य **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री अरुण कुमार सिंह, श्री आशुतोष उपाध्याय, श्री लल्लन चौबे, सुश्री शिखा श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री चंद्र शेखर सिंह, श्री धर्मेंद्र कुमार शुक्ला, श्री हरि केशव, सोनू निर्मल

ए. सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - न्यायालय के साथ धोखाधड़ी - प्रतिरूपण और आधार कार्ड का दुरुपयोग - एक रिट याचिका इस दावे के साथ दायर की गई कि याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 कानूनी रूप से विवाहित थे और उन्हें खतरों का सामना करना पड़ रहा था, जिसके लिए उन्होंने पुलिस सुरक्षा की मांग की। सुनवाई की तिथि पर, याचिकाकर्ता संख्या 1 अपने भाई के साथ व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुई और प्रतिरूपण एवं अपने आधार कार्ड के दुरुपयोग का आरोप लगाते हुए याचिका दायर करने से इनकार किया। उसने पुष्टि की कि वह एक सम्राट पांडे के साथ विवाहित है, उसके दो बच्चे हैं और वर्तमान में वैवाहिक कलह के कारण अपने माता-पिता के साथ रहती है। याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता के रूप में नामित अधिवक्ता लल्लन चौबे को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जिन्होंने अपनी संलिप्तता से इनकार करते हुए अपने हस्ताक्षरों के कूटरचित होने का दावा किया। रजिस्ट्रार जनरल के माध्यम से प्रारंभिक जांच का आदेश दिया गया, जिसने पुष्टि की कि याचिका धोखाधड़ी से दायर की गई थी। दोनों याचिकाकर्ताओं ने याचिका दायर करने से इनकार किया। प्रथम दृष्टया न्यायालय को गुमराह करने के लिए की गई धोखाधड़ी का मामला बनता है। पुलिस आयुक्त को जांच करने और धोखाधड़ी का पता लगाने के लिए वैज्ञानिक एवं फोरेंसिक पद्धतियों का उपयोग करने के निर्देश जारी किए गए। (पैरा 1 से 19)

रिट याचिका खारिज की जाती है। (E-6)

(माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा पारित)

1. वर्तमान रिट याचिका इस अभिकथन के साथ दाखिल की गई है कि याचिकाकर्ता संख्या 1 एवं 2 विधि सम्मत विवाहित पति-पत्नी हैं, जिनका विवाह दिनांक 22.02.2022 को जनपद मऊ स्थित बनदेवी मंदिर में हिंदू रीति-रिवाजों एवं रस्मों के अनुसार संपन्न हुआ था। याचिकाकर्ता अपने दावे के समर्थन में अनुलग्नक-2 के रूप में संलग्न छायाचित्र पर भरोसा करते हैं। आगे यह कथित है कि वे अपने विवाह के समय से ही पति-पत्नी के रूप में सहवास कर रहे हैं। याचिकाकर्ता संख्या 1 का आरोप है कि वह अपने माता-पिता, जिन्हें प्रतिवादी संख्या 4 के रूप में पक्षकार बनाया गया है, से अपने जीवन के प्रति खतरे के कारण अपने पैतृक गृह जाने में असमर्थ है। प्रतिवादी संख्या 3 को याचिकाकर्ता संख्या 2 के पिता के रूप में पक्षकार बनाया गया है। याचिकाकर्ता संख्या 1 ने पुलिस अधीक्षक, आजमगढ़ को एक शिकायत प्रस्तुत की थी, किंतु अभिकथन है कि उसे कोई सुरक्षा प्रदान नहीं की गई है। यह भी कथित है कि याचिकाकर्ता संख्या 2 जीविकोपार्जन हेतु दिल्ली में निवास करता है। खतरे की आशंका के दृष्टिगत, याचिकाकर्ता इस न्यायालय से वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, आजमगढ़ को उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु निर्देश की मांग करते हैं।

2. दिनांक 27.04.2024 को, जब मामला सुनवाई हेतु पुकारा गया, याचिकाकर्ताओं की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ। हालांकि, श्रीमती रानी पांडे अपने भाई श्री राधेश्याम पांडे के साथ व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुईं और न्यायालय के समक्ष यह प्रस्तुत किया कि वर्तमान याचिका किसी प्रतिरूपणकर्ता द्वारा उनकी जानकारी या सहमति के बिना, किसी परोक्ष उद्देश्य से दाखिल की गई है। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि वह वर्तमान याचिका पर हस्ताक्षर करने के प्रयोजन से कभी प्रयागराज नहीं आईं और याचिका अथवा संलग्न शपथ-पत्र पर हस्ताक्षर करने से इनकार किया। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि इस प्रक्रिया में उनके आधार कार्ड का दुरुपयोग किया गया है। उन्होंने कथन किया कि वह विधि सम्मत रूप से एक श्री सम्राट पांडे के साथ विवाहित हैं और उक्त विवाह से उनके दो बच्चे हैं, जिनकी आयु लगभग 6 और 5 वर्ष है। वैवाहिक कलह और प्रचलित मुकदमेबाजी के कारण, वह वर्तमान में अपने पिता, प्रतिवादी संख्या 4 के साथ निवास कर रही हैं।

3. श्रीमती रानी पांडे–वह व्यक्ति जिनकी ओर से कथित तौर पर वर्तमान याचिका दायर की गई थी–को सुनने के पश्चात, अधिवक्ता श्री लल्लन चौबे, रोल नंबर ए/L0050/2012, चैंबर नंबर 79, मोबाइल नंबर 9452340385, निवासी 37ए/1, करणपुर, प्रयागराज, को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जिसमें उन परिस्थितियों के संबंध में स्पष्टीकरण मांगा गया जिनके तहत यह याचिका दायर की गई थी। इस न्यायालय के महानिबंधक को भी उन परिस्थितियों के संबंध में, जिनमें याचिका दायर और सूचीबद्ध की गई थी, प्रारंभिक जांच करने और सीलबंद लिफाफे में रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था।

4. इस न्यायालय के निर्देश के अनुपालन में, निबंधक (न्यायिक) (जांच) द्वारा एक प्रारंभिक जांच की गई और सीलबंद लिफाफे में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। जांच इस निष्कर्ष के साथ समाप्त हुई कि वर्तमान रिट-सी संख्या 12032 वर्ष 2024, शीर्षक 'श्रीमती रानी पांडे और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य', श्रीमती

रानी पांडे, पुत्री उदय भान पांडे, निवासी महुई फतेहपुर, फतेहपुर मंडाव, जिला मऊ द्वारा दायर नहीं की गई थी। अपने बयान में, अधिवक्ता लल्लन चौबे ने याचिका दायर करने से इनकार किया और दावा किया कि उनकी जानकारी या सहमति के बिना किसी ढोंगी/छद्मवेशी द्वारा उनके नाम और हस्ताक्षर का दुरुपयोग किया गया था। शपथ आयुक्त श्री विजय राय को प्रथम दृष्टया अपने कर्तव्यों के निर्वहन में लापरवाह पाया गया।

5. पुलिस रिपोर्ट इंगित करती है कि श्रीमती रानी पांडे का विवाह 28.01.2016 को हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार श्री सम्राट पांडे, पुत्र अशोक पांडे के साथ हुआ था, और उक्त विवाह से उनके दो बच्चे हैं। वर्ष 2022 से, वैवाहिक कलह के कारण, वह अपने माता-पिता के साथ रह रही हैं।

6. जांच अधिकारी ने कार्यवाही के दौरान श्री लल्लन चौबे (अधिवक्ता), श्रीमती रानी पांडे, कु. शुचि देवी, श्री उदय भान पांडे, श्री राधेश्याम पांडे और श्री विनोद पांडे के बयान दर्ज किए।

7. मामले की गंभीरता और दूरगामी परिणामों को देखते हुए, न्यायालय ने किसी भी निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले श्री सम्राट पांडे (श्रीमती रानी पांडे के पति), उनके पिता श्री अशोक कुमार पांडे और श्री विनोद पांडे का पक्ष जानने के लिए उन्हें नोटिस जारी करना उचित समझा। श्री सम्राट पांडे को महानिदेशक, सशस्त्र सीमा बल, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के माध्यम से नोटिस तामील कराया गया। श्री विनोद पांडे को स्थानीय थाना प्रभारी (SHO) के माध्यम से एक अलग नोटिस तामील कराया गया, और सभी न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए।

8. अधिवक्ता लल्लन चौबे ने इस न्यायालय के आदेश दिनांक 27.04.2024 के अनुपालन में दिनांक 13.05.2024 को एक शपथ-पत्र प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने कहा कि उन्हें इस याचिका के बारे में तब तक कोई जानकारी नहीं थी जब तक कि उन्हें अपने कनिष्ठ के माध्यम से इस न्यायालय से नोटिस प्राप्त नहीं हुआ। उन्होंने वकालतनामा पर हस्ताक्षर करने या याचिका दायर करने से स्पष्ट रूप से इनकार किया, और दावा किया कि उनके हस्ताक्षर कूटरचित किए गए थे। अधिवक्ता लल्लन चौबे ने जांच अधिकारी के समक्ष अपने बयान में स्वीकार किया कि याचिका में उल्लिखित मोबाइल नंबर के उपभोक्ता और अधिवक्ता रोल नंबर के धारक वही हैं।

9. श्री सम्राट पांडे ने अधिवक्ता श्री अरुण कुमार सिंह के माध्यम से दिनांक 27.11.2024 को एक प्रति-शपथ-पत्र दाखिल किया, जिसमें आरोप लगाया गया कि उनकी पत्नी श्रीमती रानी पांडे, याचिकाकर्ता संख्या 2 श्री विनोद पांडे, जो कि उनके पड़ोसी हैं, के साथ पर-पुरुषगमन संबंधों में हैं। उन्होंने दावा किया कि उनके पिता ने सुलह का प्रयास किया था, लेकिन श्रीमती रानी पांडे ने वापस आने से इनकार कर दिया और उन्हें झूठे मामले में फंसाने की धमकी दी। उन्होंने पक्षों के बीच निष्पादित दिनांक 27.05.2024 के एक समझौता विलेख पर भरोसा जताया।

10. इसी प्रकार, श्री विनोद पांडे ने अपने शपथ-पत्र में याचिका में लगाए गए आरोपों से इनकार किया और अपनी ओर से याचिका दायर करने वाले व्यक्ति के बारे में जानकारी होने से मना किया। उन्होंने श्रीमती रानी पांडे के साथ किसी भी प्रकार के विवाह संपन्न होने से भी इनकार किया।

11. विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों पर विचार करने और श्री सम्राट पांडे, श्रीमती रानी पांडे, श्री विनोद पांडे एवं अधिवक्ता श्री लल्लन चौबे के साथ बातचीत करने के पश्चात, इस न्यायालय का प्रथम दृष्टया यह मत है कि किसी परोक्ष उद्देश्य की प्राप्ति के लिए न्यायालय के साथ धोखाधड़ी की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायालय की प्रक्रियाओं से अच्छी तरह वाकिफ किसी व्यक्ति की सक्रिय संलिप्तता के बिना ऐसी धोखाधड़ी को अंजाम नहीं दिया जा सकता था।

12. यह एक स्वीकृत तथ्य है कि श्रीमती रानी पांडे कानूनी रूप से श्री सम्राट पांडे के साथ विवाहित हैं और उनके दो बच्चे हैं। यह भी निर्विवाद है कि वह वैवाहिक विवाद के कारण अपने माता-पिता के साथ रहती हैं और मुकदमेबाजी लंबित है। श्रीमती रानी पांडे ने गंभीर आशंका व्यक्त की है कि वर्तमान याचिका उनके पति द्वारा किसी अधिवक्ता के साथ मिलीभगत करके तलाक के आधार तैयार करने के लिए दायर की गई हो सकती है।

13. यह संज्ञान में आया है कि 'एडवोकेट ऑन रोल (एओआर), जिनके नाम से याचिकाएँ दायर की जाती हैं, इस न्यायालय की रजिस्ट्री से पंजीकरण प्रक्रिया के पांच अलग-अलग चरणों में, और उसके पश्चात प्रत्येक तिथि पर जब मामला सूचीबद्ध होता है, एओआर से जुड़े मोबाइल नंबर पर एसएमएस सूचनाएं प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए, एक नमूना एसएमएस टेम्पलेट नीचे प्रदान किया गया है:

I. प्रथम चरण: याचिकाकर्ताओं की फोटो पहचान के समय, जैसा कि यहाँ वर्णित प्रक्रिया के अनुसार है:

"प्रिय अधिवक्ता (A/---/2010)।

आपके मुवक्किल ------ के लिए 600/- रुपये की रसीद उत्पन्न हो गई है।

एचसीबीए टेक टीम"

II. द्वितीय चरण: जिस समय याचिका को फाइलिंग नंबर आवंटित किया जाता है:

"आपका भौतिक रूप से दाखिल किया गया मामला CAPL दिनांक ------ को प्राप्त हुआ, प्रथम पक्ष का नाम -------, फाइलिंग/प्राप्ति संख्या ------- आवंटित की गई है, जो रिपोर्टिंग में लंबित है -इलाहाबाद उच्च न्यायालय"

III. तृतीय चरण: जिस समय रजिस्ट्री द्वारा कोई त्रुटि निकाली जाती है**:**

"दिनांक ------ को दाखिल की गई फाइलिंग संख्या ---------- में त्रुटि (त्रुटियां) संख्या..... है। त्रुटियों का विवरण एएचसी वेबसाइट पर उपलब्ध है। -एएचसी"

IV. चतुर्थ चरण: रजिस्ट्री द्वारा उठाई गई त्रुटियों (यदि कोई हो) के निराकरण के उपरांत**:**

"----- बनाम ------ फाइलिंग संख्या -------- दिनांक ------- को दाखिल। रिपोर्ट के अनुसार त्रुटि मुक्त है और फाइल फ्रेश फाइलिंग अनुभाग को भेजी जा रही है-इलाहाबाद उच्च न्यायालय।"

V. पंचम चरण: जिस समय मामला न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध होता है:

"मामले दिनांक 00/00/2025 को सूचीबद्ध हैं, अधिवक्ता का नाम — (A/R—/2012) [मामले का विवरण]-इलाहाबाद उच्च न्यायालय"

14. उपरोक्त उदाहरण से यह स्पष्ट है कि विद्वान अधिवक्ता, जिनके ए.ओ.आर. के तहत वर्तमान याचिका दायर की गई है, उन्हें याचिकाकर्ताओं द्वारा जमा किए गए 600/- रुपये में से उनके ए.ओ.आर. से जुड़े खाते में 475/- रुपये प्राप्त हुए होंगे। इसके अतिरिक्त, यह भी संभावित है कि उन्होंने याचिका की पहली सुनवाई से पूर्व कम से कम पांच अवसरों पर ए.ओ.आर. से संबद्ध मोबाइल नंबर पर एसएमएस सूचनाएं प्राप्त की होंगी।

15. यह मामला एक निष्पक्ष और गहन जांच की मांग करता है, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि अपराधियों ने न्यायालय के साथ धोखाधड़ी करने का प्रयास किया है। यदि षड्यंत्रकारी अपने मंसूबों में सफल हो जाते, तो यह न केवल न्याय का मखौल और आपराधिक न्याय प्रणाली पर एक कलंक होता, बल्कि इससे कानून के शासन में जनता का विश्वास भी गंभीर रूप से कम होता और न्यायिक संस्थानों की गरिमा भी क्षीण होती। ऐसा परिणाम न्याय वितरण प्रणाली के मूल आधार पर प्रहार करता है और इसे अत्यंत सतर्कता एवं दृढ़ संकल्प के साथ रोका जाना चाहिए।

16. उपरोक्त के दृष्टिगत, पुलिस आयुक्त, प्रयागराज को इस मामले की प्रारंभिक जांच करने का निर्देश दिया जाता है। यदि कोई संज्ञेय अपराध किया जाना पाया जाता है, तो तत्काल प्राथमिकी दर्ज की जाएगी, और इस संवैधानिक न्यायालय के साथ की गई धोखाधड़ी को उजागर करने के लिए व्यापक जांच की जाएगी। पुलिस आयुक्त, प्रयागराज से एक स्वतंत्र, निष्पक्ष और अप्रभावित जांच की अपेक्षा की जाती है ताकि उन सभी षड्यंत्रकारियों और व्यक्तियों को न्याय के कटघरे में लाया जा सके जिन्होंने इस धोखाधड़ी को अंजाम देने के लिए साजो-सामान या अन्य सहायता प्रदान की थी। निष्पक्ष, निष्पक्षपाती और गहन जांच सुनिश्चित करने के लिए फोरेंसिक और वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग किया जाना चाहिए।

16.1 पुलिस आयुक्त, प्रयागराज स्वयं जांच की निगरानी करेंगे और जांच की प्रगति की समीक्षा के बाद, साप्ताहिक रूप से केस डायरी में अपनी संतुष्टि दर्ज करेंगे।

16.2 जांच शीघ्रता से पूरी की जाएगी, और त्रैमासिक प्रगति रिपोर्ट बिना किसी विफलता के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रयागराज को प्रस्तुत की जाएगी।

17. निबंधक (अनुपालन) को तत्काल अनुपालन हेतु संपूर्ण केस रिकॉर्ड की प्रमाणित प्रति पुलिस आयुक्त, प्रयागराज को भेजने का निर्देश दिया जाता है।

18. महानिबंधक को निर्देश दिया जाता है कि वे मूल केस फाइल को सुरक्षित अभिरक्षा में रखें और आवश्यकता पड़ने पर उसे प्रस्तुत करें। यदि फोरेंसिक या वैज्ञानिक विश्लेषण, जैसे कि हस्ताक्षर, टिकटों या फोटो आईडी कार्ड के सत्यापन के लिए आवश्यकता हो, तो उसकी प्रमाणित प्रति रखने के पश्चात मूल रिकॉर्ड जांच अधिकारी को सौंपा जा सकता है।

19. उपरोक्त के आलोक में, याचिका उपरोक्त शर्तों के साथ **खारिज** की जाती है।

(2025) 5 ILRA 944

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया

रिट सी संख्या 13636 वर्ष 2025

सूरजपुर इंडेन गैस सेवा, अग्रवाल मार्केट, जिला गौतम बुद्ध नगर ...याचिकाकर्ता

बनाम

इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड (प्रबंध निदेशक) एवं अन्य ...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अरुण कुमार सिंह, श्री चंद्रिका पटेल, श्री जी.के. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

श्री आनंद तिवारी

(A) मध्यस्थता एवं सुलह विधि विधिक सिद्धांत: मध्यस्थता खंड की उपस्थिति में रिट याचिका की विचारणीयता – मध्यस्थता एवं सुलह अधिनियम, 1996 – धारा 7, 9, 17 और 23 – जहाँ पर्याप्त और प्रभावी वैकल्पिक उपचार मौजूद है, वहाँ रिट याचिका विचारणीय नहीं है, क्योंकि मध्यस्थता एक महत्वपूर्ण वैकल्पिक विवाद निवारण प्रक्रिया है – न्यायालय, अपने रिट क्षेत्राधिकार में, उस मामले पर विचार नहीं कर सकता जहाँ पक्षकारों के बीच एक वैध मध्यस्थता खंड मौजूद हो, क्योंकि मध्यस्थता एवं सुलह अधिनियम, 1996 एक 'स्वतः पूर्ण संहिता' है जो अंतरिम संरक्षण सहित पर्याप्त उपचार प्रदान करती है। (पैरा - 12, 15, 16)

याचिकाकर्ता का एलपीजी वितरण विवाद – प्रत्यर्थी इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन द्वारा पारित दो आदेशों को चुनौती दी गई – प्रत्यर्थी ने तर्क दिया कि पक्षकारों के बीच समझौते में बाध्यकारी मध्यस्थता खंड के अस्तित्व के कारण रिट याचिका विचारणीय नहीं थी। (पैरा - 1 से 5)

अभिनिर्धारित: समझौते के खंड 37(ए) के तहत प्रदान किए गए मध्यस्थता खंड और मध्यस्थता एवं सुलह अधिनियम, 1996 के तहत प्रभावी उपचारों की उपलब्धता के आलोक में रिट याचिका विचारणीय नहीं है, याचिकाकर्ता के लिए धारा 23 के तहत मध्यस्थ के पास जाने का विकल्प खुला रखा जाता है। निर्णय में की गई किसी भी टिप्पणी को गुण-दोष के आधार पर अधिनिर्णय के रूप में नहीं माना जाना चाहिए और यदि

याचिकाकर्ता मध्यस्थ के पास जाता है, तो मामले का निर्णय अनावश्यक स्थगन के बिना शीघ्रता से किया जाना चाहिए। (पैरा - 17 से 19)

याचिका खारिज। (E-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. संजना एम. विग (सुश्री) बनाम एच.पी. कॉर्पोरेशन लिमिटेड, (2005) 8 एससीसी 242
2. सी.ओ.आर.ई. बनाम ECI-SPIC-SMO-MCML (JV), (2020) 14 एससीसी 712
3. जम्मू-कश्मीर राज्य एवं अन्य बनाम देव दत्त पंडित, (1999) 7 एससीसी
4. भारत संघ बनाम वरिंदर कंस्ट्रक्शंस लिमिटेड एवं अन्य, (2018) 7 एससीसी 794

(माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जी.के. सिंह, जिनके सहायता विद्नाव अधिवक्ता श्री चंद्रिका पटेल ने की, तथा प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आनंद तिवारी को सुना गया।

2. प्रत्यर्थी संख्या 3/मंडलीय एल.पी.जी. बिक्री प्रमुख, नोएडा इंडेन मंडलीय कार्यालय ए-1, उद्योग मार्ग, सेक्टर-1 नोएडा, जिला गौतम बुद्ध नगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 07.02.2024 के साथ-साथ प्रत्यर्थी संख्या 2/मुख्य महाप्रबंधक (एल.पी.जी.) उत्तर प्रदेश बिक्री कार्यालय-II ए-1, उद्योग मार्ग, सेक्टर-1 नोएडा, जिला गौतम बुद्ध नगर द्वारा अपील में पारित आदेश दिनांक 17.02.2025 इस याचिका के माध्यम से चुनौती के अधीन हैं।

3. विभिन्न अन्य तर्कों के अलावा, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा एक तर्क यह दिया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश पूर्णतः एक अस्पष्ट आदेश है और निरस्त किए जाने योग्य है।

4. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी निगम के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर वर्तमान रिट याचिका विचारणीय नहीं है, विशेष रूप से इस तथ्य को देखते हुए कि याचिकाकर्ता के पास पक्षकारों के बीच 28 नवंबर, 2014 को हुए समझौते के खंड 37(ए) के अनुसार मध्यस्थ के पास जाने का एक वैधानिक वैकल्पिक उपचार उपलब्ध है, जिसकी प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 4 के रूप में संलग्न है। उक्त समझौते का कार्यकारी हिस्सा, यानी खंड 37 (ए) इस प्रकार है:-

***"37. (ए)** इस समझौते के तहत या इसके संबंध में उत्पन्न होने वाले सभी प्रश्न, विवाद और मतभेद निगम के निदेशक (विपणन) की एकमात्र मध्यस्थता के लिए संदर्भित किए जाएंगे। यदि ऐसा निदेशक (विपणन) एकमात्र*

मध्यस्थ के रूप में कार्य करने में असमर्थ या अनिच्छुक है, तो मामला ऐसे निदेशक (विपणन) द्वारा उनके स्थान पर निगम के किसी अन्य अधिकारी को एकमात्र मध्यस्थता के लिए भेजा जाएगा, जो मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिए इच्छुक हो। पक्षकारों को यह ज्ञात है कि इसके तहत नियुक्त मध्यस्थ निगम का कर्मचारी है और निगम का शेयरधारक हो सकता है। वह मध्यस्थ जिसे मूल रूप से मामला भेजा गया था, चाहे वह निदेशक (विपणन) हो या अधिकारी, जैसा भी मामला हो, उसके स्थानांतरित होने या पद खाली करने या किसी भी कारण से कार्य करने में असमर्थ होने पर, निदेशक (विपणन) समझौते की शर्तों के अनुसार मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को नामित करेगा और ऐसा व्यक्ति उस चरण से संदर्भ के साथ आगे बढ़ने का हकदार होगा जिस पर उसके पूर्ववर्ती द्वारा इसे छोड़ा गया था। यह भी इस समझौते की शर्त है कि निदेशक (विपणन) या उक्त के रूप में नामित व्यक्ति के अलावा कोई अन्य व्यक्ति मध्यस्थ के रूप में कार्य नहीं करेगा। इस प्रकार नियुक्त मध्यस्थ का अधिनिर्णय अंतिम, निर्णयात्मक और समझौते के सभी पक्षकारों पर बाध्यकारी होगा और मध्यस्थता एवं सुलह अधिनियम, 1996 के प्रावधान या उसके किसी वैधानिक संशोधन या पुन: अधिनियमन और उसके तहत बनाए गए नियम इस खंड के तहत मध्यस्थता की कार्यवाही पर लागू होंगे।

***(बी)** पक्षकार इसके द्वारा सहमत हैं कि इस समझौते के तहत उत्पन्न होने वाली किसी भी चीज़ के संबंध में एकमात्र मध्यस्थ द्वारा किए गए किसी भी आवेदन या अधिनिर्णय/अधिनिर्णयों या अन्य कार्यवाहियों पर विचार करने का क्षेत्राधिकार अकेले नोएडा शहर की अदालतों के पास होगा।"*

5. उक्त स्थिति का सामना होने पर, याचिकाकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जी.के. सिंह मध्यस्थता के माध्यम से वैकल्पिक प्रभावी उपचार की मौजूदगी से इनकार नहीं कर सके।

6. पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुना गया तथा रिकॉर्ड का अवलोकन किया गया।

7. संसद ने अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए 'मध्यस्थता एवं सुलह अधिनियम, 1996' (संक्षेप में 1996 का अधिनियम) के नाम से एक अधिनियम बनाया ताकि घरेलू मध्यस्थता, अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता और विदेशी मध्यस्थता अधिनिर्णयों के प्रवर्तन से संबंधित कानून को समेकित और संशोधित किया जा सके, साथ ही सुलह से संबंधित कानून और उससे जुड़े या प्रासंगिक मामलों को परिभाषित किया जा सके।

8. इस न्यायालय के अवलोकन हेतु 1996 के अधिनियम की धारा 7 और 9 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है-

धारा 7. मध्यस्थता समझौता - (1) इस भाग में, "मध्यस्थता समझौता" का अर्थ पक्षकारों के बीच एक समझौता है जिसके तहत वे उन सभी या कुछ विवादों को मध्यस्थता के लिए भेजते हैं जो उनके बीच एक परिभाषित कानूनी संबंध के संबंध में उत्पन्न हुए हैं या उत्पन्न हो सकते हैं, चाहे वे संविदात्मक हों या नहीं।

(2) मध्यस्थता समझौता एक अनुबंध में मध्यस्थता खंड के रूप में या एक अलग समझौते के रूप में हो सकता है।

(3) मध्यस्थता समझौता लिखित में होगा।

(4) एक मध्यस्थता समझौता लिखित माना जाएगा यदि वह निम्नलिखित में समाहित हो–

(क) पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित दस्तावेज़;
(ख) पत्रों, टेलेक्स, टेलीग्राम या दूरसंचार के अन्य माध्यमों का आदान-प्रदान [इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से संचार सहित] जो समझौते का रिकॉर्ड प्रदान करते हों; या
(ग) दावों और बचाव के बयानों का आदान-प्रदान जिसमें एक पक्ष द्वारा समझौते के अस्तित्व का आरोप लगाया गया हो और दूसरे द्वारा इनकार नहीं किया गया हो।

(5) मध्यस्थता खंड वाले दस्तावेज़ का किसी लिखित अनुबंध में संदर्भ एक मध्यस्थता समझौता माना जाएगा यदि संदर्भ ऐसा है जो उस मध्यस्थता खंड को अनुबंध का हिस्सा बनाता है।
धारा 9. न्यायालय द्वारा अंतरिम उपाय आदि-- (1) कोई पक्षकार, मध्यस्थता कार्यवाही के दौरान या उसके पहले, या मध्यस्थता अधिनिर्णय दिए जाने के बाद लेकिन धारा 36 के अनुसार लागू होने से पहले, न्यायालय में आवेदन कर सकता है–

(i) मध्यस्थता कार्यवाही के उद्देश्यों के लिए किसी नाबालिग या विकृत मस्तिष्क के व्यक्ति हेतु संरक्षक की नियुक्ति के लिए; या
(ii) निम्नलिखित मामलों में से किसी के संबंध में संरक्षण के अंतरिम उपाय के लिए, अर्थात्:-- (क) किसी भी वस्तु का संरक्षण, अंतरिम अभिरक्षा या बिक्री जो मध्यस्थता समझौते का विषय-वस्तु है;

(ख) मध्यस्थता में विवादित राशि को सुरक्षित करना;

(ग) किसी भी संपत्ति या वस्तु को रोकना, संरक्षित करना या निरीक्षण करना जो मध्यस्थता में विवाद का विषय है, या जिसके संबंध में कोई प्रश्न उत्पन्न हो सकता है, और उपरोक्त उद्देश्यों में से किसी के लिए किसी व्यक्ति को किसी भी भूमि या भवन में प्रवेश करने के लिए अधिकृत करना जो किसी भी पक्ष के कब्जे में है, या किसी भी नमूने को लेने या किसी भी अवलोकन को करने या प्रयोग करने के लिए अधिकृत करना, जो पूर्ण जानकारी या साक्ष्य प्राप्त करने के उद्देश्य से आवश्यक या समीचीन हो सकता है;

(घ) अंतरिम निषेधाज्ञा या रिसीवर की नियुक्ति;

(ङ) संरक्षण के ऐसे अन्य अंतरिम उपाय जो न्यायालय को उचित और सुविधाजनक लगें, और न्यायालय के पास आदेश देने की वही शक्ति होगी जो उसके समक्ष किसी भी कार्यवाही के उद्देश्य और संबंध में होती है।

(2) जहाँ मध्यस्थता कार्यवाही शुरू होने से पहले, कोई न्यायालय उप-धारा (1) के तहत संरक्षण के किसी अंतरिम उपाय के लिए आदेश पारित करता है, वहाँ मध्यस्थता कार्यवाही ऐसे आदेश की तारीख से नब्बे दिनों की अवधि के भीतर या ऐसे आगे के समय के भीतर शुरू की जाएगी जैसा कि न्यायालय निर्धारित करे।

(3) एक बार मध्यस्थ न्यायाधिकरण (arbitral tribunal) गठित हो जाने के बाद, न्यायालय उप-धारा (1) के तहत आवेदन पर तब तक विचार नहीं करेगा, जब तक कि न्यायालय यह न पाए कि ऐसी परिस्थितियाँ मौजूद हैं जो धारा 17 के तहत प्रदान किए गए उपचार को प्रभावी (efficacious) नहीं बना सकती हैं।
धारा 17. मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा आदेशित अंतरिम उपाय-- (1) कोई पक्षकार, मध्यस्थता कार्यवाही के दौरान या मध्यस्थता अधिनिर्णय दिए जाने के बाद किसी भी समय, लेकिन धारा 36 के अनुसार इसे लागू किए जाने से पहले, मध्यस्थ न्यायाधिकरण को आवेदन कर सकता है–

(i) मध्यस्थता कार्यवाही के उद्देश्यों के लिए किसी नाबालिग या विकृत मस्तिष्क के व्यक्ति हेतु संरक्षक की नियुक्ति के लिए; या
(ii) निम्नलिखित मामलों में से किसी के संबंध में संरक्षण के अंतरिम उपाय के लिए, अर्थात्:-- (क) किसी भी वस्तु का संरक्षण, अंतरिम अभिरक्षा या बिक्री जो मध्यस्थता समझौते का विषय-वस्तु है;

(ख) मध्यस्थता में विवादित राशि को सुरक्षित करना;

(ग) किसी भी संपत्ति या वस्तु को रोकना, संरक्षित करना या निरीक्षण करना जो मध्यस्थता में विवाद का विषय है, या जिसके संबंध में कोई प्रश्न उत्पन्न हो सकता है, और उपरोक्त उद्देश्यों में से किसी के लिए किसी व्यक्ति को किसी भी भूमि या भवन में प्रवेश करने के लिए अधिकृत करना जो किसी भी पक्ष के कब्जे में है, या किसी भी नमूने को लेने या कोई अवलोकन करने या प्रयोग करने के लिए अधिकृत करना, जो पूर्ण जानकारी या साक्ष्य प्राप्त करने के उद्देश्य से आवश्यक या समीचीन हो सकता है;

(घ) अंतरिम निषेधाज्ञा या रिसीवर की नियुक्ति;

(ङ) संरक्षण के ऐसे अन्य अंतरिम उपाय जो मध्यस्थ न्यायाधिकरण को उचित और सुविधाजनक लगें, और मध्यस्थ न्यायाधिकरण के पास आदेश देने की वही शक्ति होगी जो न्यायालय के पास उसके समक्ष किसी भी कार्यवाही के उद्देश्य और संबंध में होती है।

(2) धारा 37 के तहत अपील में पारित किसी भी आदेश के अधीन, इस धारा के तहत मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा जारी किसी भी आदेश को सभी उद्देश्यों के लिए न्यायालय का आदेश माना जाएगा और इसे सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के तहत उसी तरह लागू किया जा सकेगा जैसे कि यह न्यायालय का आदेश हो।

9. यही विचार माननीय शीर्ष अदालत द्वारा **संजना एम. विग (सुश्री) बनाम हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड (2005) 8 एससीसी 242**, **सेंट्रल ऑर्गेनाइजेशन फॉर रेलवे इलेक्ट्रिफिकेशन बनाम ECI-SPIC-SMO-MCML (JV) (2020) 14 एससीसी 712** के साथ-साथ **जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य बनाम देव दत्त पंडित (1999) 7 एससीसी पेज 339** के मामलों में अपनाया गया था।

10. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य बनाम देव दत्त पंडित (1999) 7 एससीसी पेज 339** के पैरा 23 में निम्नानुसार अवलोकन किया है:-

"23. मध्यस्थता को एक महत्वपूर्ण वैकल्पिक विवाद निवारण प्रक्रिया माना जाता है जिसे अदालतों में मामलों के उच्च लंबित होने और मुकदमेबाजी की लागत के कारण प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। मध्यस्थता को पूरी गंभीरता से देखा जाना चाहिए ताकि वादी जनता को इस प्रक्रिया द्वारा अपने विवादों को सुलझाने की त्वरित प्रक्रिया में विश्वास हो।"

11. उक्त निर्णयों का अनुसरण करते हुए माननीय शीर्ष अदालत ने **भारत संघ बनाम वरिंदर कंस्ट्रक्शंस लिमिटेड और अन्य (2018) 7 एससीसी 794** के पैरा 12 में निम्नानुसार अवलोकन किया है:-
"मध्यस्थता का प्राथमिक उद्देश्य त्वरित, प्रभावी, सस्ते और शीघ्र तरीके से अंतिम निर्णय तक पहुँचना है। मध्यस्थता के संबंध में कानून को विनियमित करने के लिए, विधायिका ने एक कानून पेश किया जिसे मध्यस्थता एवं सुलह अधिनियम, 1996 के रूप में जाना जाता है। मध्यस्थता प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बनाने के लिए, विधायिका ने उन मामलों में अदालतों की भूमिका को सीमित कर दिया है जहाँ मामला मध्यस्थता के अधीन है। अधिनियम की धारा 5 ने विशेष रूप से कुछ हद तक अदालतों के हस्तक्षेप को प्रतिबंधित किया है। दूसरे शब्दों में, केवल असाधारण परिस्थितियों में, जैसा कि इस अधिनियम द्वारा प्रदान किया गया है, न्यायालय उस विवाद में हस्तक्षेप करने का हकदार है जो मध्यस्थता का विषय है। ऐसा हस्तक्षेप मध्यस्थता कार्यवाही के पहले, उसके दौरान या बाद में, जैसा भी मामला हो, हो सकता है। संक्षेप में, न्यायालय मध्यस्थता के विषय में तब तक हस्तक्षेप नहीं करेगा जब तक कि किसी भी पक्ष के साथ अन्याय न हो।"

12. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त निर्णयों में निरंतर यह माना है कि मध्यस्थता एक महत्वपूर्ण वैकल्पिक विवाद निवारण प्रक्रिया है जिसे प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

13. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य पर विवाद नहीं किया है कि वहां एक मध्यस्थता खंड मौजूद है और इसके अलावा वे उस समझौते के हस्ताक्षरकर्ता हैं जिसमें मध्यस्थता खंड शामिल

है और विचाराधीन मुद्दा स्वयं भी मध्यस्थता योग्य है और मध्यस्थता खंड के दायरे में है जिसे मध्यस्थ द्वारा विचार और अधिनिर्णित किया जा सकता है।

14. वर्तमान मामले के तथ्यों में पूर्वोक्त निर्णयों को लागू करते हुए, न्यायालय पाता है कि पक्षकारों द्वारा उठाया गया विवाद तथ्यात्मक मुद्दों के इर्द-गिर्द केंद्रित है जिसमें तथ्यों के जटिल प्रश्न शामिल हैं जिनका निर्धारण करने के लिए मौखिक साक्ष्य की आवश्यकता है। यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत वर्तमान कार्यवाही में साक्ष्य लेते समय तथ्यों के विवादित प्रश्नों की कोई जाँच नहीं कर सकता है।

15. इसके अलावा, एक बार जब प्रतिवादी और याचिकाकर्ता के बीच निष्पादित समझौते दिनांक 28.11.2014 में मध्यस्थता खंड मौजूद है और याचिकाकर्ता इसके हस्ताक्षरकर्ता होने के नाते इस पर विवाद नहीं कर रहे हैं और यह भी स्वीकार कर रहे हैं कि विवाद स्पष्ट रूप से मध्यस्थता योग्य है, तो माननीय शीर्ष अदालत द्वारा प्रतिपादित कानून के सिद्धांतों को लागू करते हुए, यह न्यायालय वर्तमान रिट याचिका पर विचार करने में अपनी असमर्थता पाता है क्योंकि याचिकाकर्ता के पास समझौते दिनांक 28.11.2014 के खंड 37(ए) में प्रदान किए गए मध्यस्थता का पर्याप्त प्रभावी उपचार उपलब्ध है।

16. फिर भी, मध्यस्थता एवं सुलह अधिनियम, 1996 एक स्वतः पूर्ण संहिता है जिसमें न केवल आवश्यक सुरक्षा उपाय प्रदान किए गए हैं, बल्कि मध्यस्थता अधिनियम की धारा 9 और धारा 17 के तहत सक्षम न्यायालय और न्यायाधिकरण को अधिकार क्षेत्र भी सौंपा गया है ताकि उपयुक्त मामलों में अंतरिम संरक्षण सुनिश्चित किया जा सके। इस प्रकार, याचिकाकर्ता की यह आशंका कि यह न्यायालय ही वर्तमान कार्यवाही में अंतरिम संरक्षण प्रदान कर सकता है, संदर्भ से बाहर है क्योंकि जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, विशिष्ट उपचार याचिकाकर्ताओं के लिए मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के तहत उपलब्ध है।

17. परिणामस्वरूप, वर्तमान रिट याचिका समझौते दिनांक 28.11.2014 के खंड 37(ए) के तहत प्रदान किए गए वैकल्पिक प्रभावी उपचार के आधार पर विचारणीय न होने के कारण खारिज की जाती है, और याचिकाकर्ता के लिए अधिनियम 1996 की धारा 23 के तहत उपलब्ध उपचार प्राप्त करने का विकल्प खुला रखा जाता है।

18. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वर्तमान निर्णय में की गई किसी भी टिप्पणी को इस अभिव्यक्ति के रूप में नहीं माना जाना चाहिए कि इस न्यायालय ने मामले का गुण-दोष के आधार पर फैसला किया है।

19. यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि याचिकाकर्ता मध्यस्थ के समक्ष आवेदन दाखिल करता है, तो उसका निर्णय शीघ्रता से और अनावश्यक स्थगन दिए बिना किया जाना चाहिए।

(2025) 5 ILRA 949

मूल अधिकार क्षेत्र

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

रिट सी संख्या 22491/2024

साथ में

अन्य संबंधित मामले

शनि देव और अन्य **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:
श्री निपुण सिंह, श्री रंजीत कुमार यादव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
श्री राम विशाल मिश्रा, सी.एस.सी.

अनुवादित

(A) पारिवारिक कानून - विवाह पंजीकरण - धोखाधड़ी वाले प्रमाण पत्र - हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 - बाल विवाह रोकथाम अधिनियम, 1929 - उत्तर प्रदेश विवाह पंजीकरण नियम, 2017 - हिंदू विवाह पंजीकरण नियम, 1973 - जोड़े की सुरक्षा

के लिए याचिका दायर करने में आर्य समाज विवाह प्रमाण पत्रों का बड़े पैमाने पर दुरुपयोग - पुलिस जांच में नकली आधार, पैन, शैक्षिक प्रमाण पत्र, झूठे गवाह और कम उम्र में विवाह का पता चला - बिना स्थानीय निवास के गाजियाबाद/गौतम बुद्ध

नगर में विवाह पंजीकरण का पैटर्न - स्थानीय पुलिस और रजिस्ट्रार कार्यालयों की मिलीभगत/लापरवाही - न्यायालय ने संस्थागत सुधार, 2017 के नियमों में संशोधन और विवाह पंजीकरण के लिए अंतरिम दिशानिर्देशों का आदेश दिया - अंतर-विभागीय सत्यापन प्रक्रिया के लिए निर्देश। (पैरा 5, 7 से 35)

याचिकाकर्ताओं ने दावा किया कि उन्होंने परिवार की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ शादी की है और पुलिस सुरक्षा की मांग की। राज्य ने आर्य समाज के शादी के सर्टिफ़िकेट की असलियत पर सवाल उठाए। जांच में पता चला कि ऐसी ही याचिकाओं में जाली सर्टिफ़िकेट का बड़े पैमाने पर गलत इस्तेमाल हो रहा था, जिनमें कम उम्र के लोग

और ऐसी संस्थाएं शामिल थीं जिनका कोई अस्तित्व ही नहीं था। इसके बाद न्यायालय ने पूरे राज्य के लिए सुधारात्मक निर्देश जारी किए। (पैरा 3 से 7, 12 से 14)

फैसला: - अनुच्छेद 21 बालिग होने पर जीवनसाथी चुनने का अधिकार देता है, लेकिन कानूनी प्रावधानों से बचने के लिए जाली या मनगढ़ंत दस्तावेजों के ज़रिए इस अधिकार का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। राज्य कानूनी नियमों का पालन सुनिश्चित करने, शादी की पवित्रता बनाए रखने और सुरक्षा संबंधी आदेशों (रिट) के गलत इस्तेमाल को रोकने के लिए बाध्य है; इसलिए उत्तर प्रदेश मैरिज रजिस्ट्रेशन रूल्स, 2017 में छह महीने के भीतर संशोधन करने और शादी के रजिस्ट्रेशन के लिए अनिवार्य अंतरिम गाइडलाइंस जारी करने का निर्देश दिया गया। संबंधित SSP से वेरिफिकेशन के बाद राहत मांगने की छूट के साथ याचिकाएं निस्तारित कर दी गईं। (पैरा 13, 30 से 38)

याचिकाओं का निपटारा किया गया। (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री अश्विनी कुमार त्रिपाठी और राज्य-प्रतिवादियों की ओर से अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता की दलीलें सुनीं और रिकॉर्ड देखा।

2. चूंकि इस रिट याचिका में शामिल मुद्दे 124 संबंधित याचिकाओं में उठाए गए मुद्दों जैसे ही हैं, इसलिए सभी याचिकाओं पर एक साथ सुनवाई की जा रही है और एक ही आदेश से उनका निपटारा किया जा रहा है।

3. याचिकाकर्ताओं ने वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इटावा को निर्देश देने की मांग करते हुए यह रिट याचिका दायर की है, ताकि उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए उचित कदम उठाए जा सकें। याचिकाकर्ता निलोई गांव, जसवंत नगर पुलिस स्टेशन, इटावा जिले के निवासी हैं और उनका दावा है कि उन्होंने 3 जून, 2024 को आर्य समाज मंदिर, ग्रेटर नोएडा में विवाह संपन्न कराया था, जो आर्य समाज प्रतिनिधि सभा, 5 मीराबाई बाग, लखनऊ से संबद्ध है।

4. याचिकाकर्ताओं ने बताया है कि उन्होंने अपने-अपने परिवारों की इच्छा के विरुद्ध विवाह संपन्न कराया है, जिसके कारण उन्हें अपने जीवन को खतरा महसूस हो रहा है। इस संबंध में, 8 जुलाई, 2024 को वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इटावा को पुलिस सुरक्षा की मांग करते हुए एक शिकायत प्रस्तुत की गई थी। उक्त शिकायत उच्च न्यायालय परिसर में स्थित डाकघर से पंजीकृत डाक द्वारा भेजी गई थी। याचिकाकर्ताओं ने अपने आधार कार्ड की फोटोकॉपी भी संलग्न की हैं, यह साबित करने के लिए कि दोनों व्यक्ति विवाह के समय विवाह योग्य आयु के थे।

अनुवादित

5. विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने 'एनेक्शर-3' के तौर पर लगाए गए मैरिज सर्टिफिकेट की असलियत पर गंभीर संदेह जताते हुए इसे जाली दस्तावेज़ बताया है। उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान उस सर्टिफिकेट की ओर दिलाया है, जिसे कथित तौर पर आर्य समाज मंदिर, ग्रेटर नोएडा ने जारी किया था। इस सर्टिफिकेट में ज़रूरी जानकारियाँ नहीं हैं, जैसे कि शादी कराने वाले पंडित का नाम, आर्य समाज मंदिर का रजिस्टर्ड पता, और गवाहों के नाम, पते व संपर्क विवरण। इन कमियों से यह गंभीर सवाल उठता है कि क्या शादी हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के प्रावधानों के अनुसार हुई थी। यह भी बताया गया है कि याचिकाकर्ताओं ने गाज़ियाबाद में मैरिज रजिस्ट्रेशन अधिकारी के पास शादी के रजिस्ट्रेशन के लिए आवेदन किया है।

5.1 उन्होंने आगे कहा कि, चूंकि याचिकाकर्ताओं ने अपनी शिकायत इटावा के सीनियर सुपरिटेंडेंट ऑफ़ पुलिस को उच्च न्यायालय परिसर में स्थित पोस्ट ऑफिस से रजिस्टर्ड पोस्ट के ज़रिए भेजी थी, इसलिए यह साफ़ है कि वे स्थानीय पुलिस अधिकारियों के सामने व्यक्तिगत रूप से पेश नहीं हुए। इस आधार पर, यह तर्क दिया गया है कि यह रिट याचिका शुरुआती स्तर पर ही सुनवाई के लायक नहीं है और इसे शुरू में ही खारिज किया जाना चाहिए।

6. यह पहला मामला नहीं है जब विद्वान एडिशनल चीफ़ स्टैंडिंग काउंसिल ने ऐसे गंभीर आपत्तियां उठाई हैं, जिसमें याचिका की स्वीकार्यता और उसके गुण-दोष, दोनों पर सवाल उठाए गए हैं। लगातार यह तर्क दिया जाता रहा है कि ऐसी कई याचिकाएं नकली मैरिज सर्टिफिकेट और जाली आधार कार्ड के साथ दायर की गई हैं- जो इस न्यायालय में याचिका दायर करने के लिए फोटो पहचान के मकसद से एक ज़रूरी शर्त है।

7. इस न्यायालय ने देखा है कि ऐसे कई मामलों में, मैरिज सर्टिफिकेट (शादी के प्रमाण-पत्र) उन सोसायटियों द्वारा जारी किए जाते हैं जो (a) गाजियाबाद, (b) गौतम बुद्ध नगर और (c) प्रयागराज में स्थित बताई जाती हैं। जांच करने पर पता चला है कि कई मामलों में, संबंधित सोसायटियों का कोई अस्तित्व ही नहीं है और उच्च न्यायालय से सुरक्षा का आदेश पाने के लिए नकली सर्टिफिकेट जारी किए गए हैं। यह भी सामने आया है कि गवाह के तौर पर बताए गए लोग नकली थे, आधार कार्ड समेत उनकी जानकारी जाली थी, और ऐसे सर्टिफिकेट जारी करने वाली संस्थाओं/संगठनों के पास अपने नियमों (बाय-लॉज़) के तहत ऐसा करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं था। कई मामलों में तो असल में कोई शादी की रस्म भी नहीं हुई थी।

8. इसके अलावा, एक पैटर्न सामने आया है जिसमें, उदाहरण के लिए, याचिकाकर्ता जो अभी अहमदाबाद में रह रहे हैं, वे दावा करते हैं कि उन्होंने महाराष्ट्र के एक मंदिर में शादी की है, फिर भी शादी का रजिस्ट्रेशन गाजियाबाद में कराते हैं, और उसके बाद इस न्यायालय में आकर जौनपुर, उत्तर प्रदेश में रह रहे माता-पिता से सुरक्षा की मांग करते हैं। ऐसी याचिकाओं के समर्थन में लगाए गए दस्तावेज़, खासकर उम्र और शादी के सबूत, अक्सर नकली पाए जाते हैं। कई महिला याचिकाकर्ता नाबालिग पाई गई हैं, जिनकी उम्र 14 से 16 साल के बीच है। कई मामलों में, यह भी देखा गया है कि पुरुष याचिकाकर्ताओं ने अपनी पिछली शादियों का खुलासा किए बिना ये रिश्ते बनाए, और इसके बजाय नकली सर्टिफिकेट और मॉर्फ़ की गई तस्वीरों का सहारा लिया।

संबंधित एस.एस.पी. से सीधे संपर्क करने के बजाय, याचिकाकर्ताओं ने बस प्रयागराज के पोस्ट ऑफिस से एक रिक्वेस्ट लेटर भेजा और तुरंत इस न्यायालय के रिट अधिकार क्षेत्र के तहत याचिकाएं दायर कर दीं।

9. ऐसी याचिकाओं की बड़ी संख्या को देखते हुए, इस न्यायालय की रोस्टर में "रिटसी (युगल सुरक्षा)" नाम की एक अलग कैटेगरी बनाई गई है। हालांकि न्यायालय यह मानता है कि कुछ याचिकाओं में ऐसे लोग शामिल होते हैं जिन्हें सचमुच न्यायिक सुरक्षा और दखल की ज़रूरत होती है, लेकिन यह भी उतना ही साफ़ है कि ऐसे मामले उन मामलों की तुलना में काफ़ी कम हैं जो दलालों की मदद से जानकारी न रखने वाले लोगों द्वारा झूठे दस्तावेज़ों और झूठे दावों के आधार पर दायर किए जाते हैं।

10. मामले की गंभीरता और सुरक्षा मांगने के बहाने धोखाधड़ी वाली याचिकाएं दायर करने के बढ़ते चलन को देखते हुए, इस न्यायालय ने संबंधित सीनियर सुपरिटेंडेंट ऑफ़ पुलिस (जिनके अधिकार क्षेत्र में याचिकाकर्ताओं के माता-पिता रहते हैं) को निर्देश दिया है कि वे निम्नलिखित चार बिंदुओं पर विस्तृत जांच करें:

(i) रिट याचिका में उठाए गए तर्कों का बिंदु-वार जवाब;
(ii) याचिकाकर्ताओं के आधार कार्ड, पैन कार्ड और शैक्षणिक प्रमाणपत्रों की जांच;
(iii) इस बात की पुष्टि कि क्या शादी हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के प्रावधानों के अनुसार हुई थी, और क्या शादी के समय दोनों याचिकाकर्ता कानूनी उम्र के थे;
(iv) उस पुजारी (पुरोहित) से शादी के प्रमाणपत्र की जांच जिसने कथित तौर पर रस्म पूरी कराई थी, और उसे जारी करने वाले अधिकारी, जैसे कि सोसाइटी के अध्यक्ष/सचिव से भी जांच।

11. पुलिस वेरिफिकेशन रिपोर्ट मिलने के बाद यह पाया गया है कि लगभग 25% मामलों में याचिकाकर्ता न्यायालय में पेश होना बंद हो गए। कई अन्य मामलों में, उनके अधिवक्ता मामले के गुण-दोष पर बहस करने के बजाय सुनवाई टालने की मांग करने लगे।

12. जांच से पता चला कि शादी के कई कथित सर्टिफिकेट नकली थे, जिन्हें बिना रजिस्ट्रेशन वाले या फर्जी आर्य समाज ट्रस्ट और सोसायटियों ने जारी किया था। ये संस्थाएं हिंदू मैरिज एक्ट और चाइल्ड मैरिज रेस्टोरेंट एक्ट का उल्लंघन करके काम करती थीं और अक्सर कम उम्र के जोड़ों की शादियां करवाती थीं। न्यायालयों ने आधार कार्ड, पैन कार्ड, हलफनामे और जन्म प्रमाण पत्र जैसे अहम दस्तावेजों में हेराफेरी देखी। इससे एक ऐसी बड़ी समस्या पैदा हुई जिसने न केवल शादी की पवित्रता को खतरे में डाला, बल्कि मानव तस्करी, यौन शोषण और दूसरी सामाजिक बुराइयों को भी बढ़ावा दिया।

13. बेशक, बालिग होने पर हर नागरिक को जीवनसाथी चुनने और शादी करने या लिव-इन रिलेशनशिप में रहने का मौलिक अधिकार है। हालांकि, इस अधिकार का इस्तेमाल कानूनी प्रावधानों को दरकिनार करके या भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत सुरक्षा पाने के लिए न्यायालय में नकली और जाली दस्तावेज जमा

करके नहीं किया जा सकता। देश के कानून का सख्ती से पालन सुनिश्चित करना और शादी की संस्था की गरिमा और पवित्रता की रक्षा करना राज्य और उसकी एजेंसियों की सामूहिक जिम्मेदारी है।

14. ऊपर की गई चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने गाज़ियाबाद और गौतम बुद्ध नगर के स्टांप और रजिस्ट्रेशन विभाग के असिस्टेंट इंस्पेक्टर जनरल्स (एआईजी) को न्यायालय में व्यक्तिगत रूप से पेश होने का निर्देश दिया। उन्हें शादी के रजिस्ट्रेशन के नियम, संबंधित नोटिफिकेशन, सरकारी आदेश या शादी संपन्न कराने और उसके रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया से संबंधित कोई भी अन्य दस्तावेज़ पेश करने का भी निर्देश दिया गया। इसके अलावा, उन्हें अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में रजिस्टर्ड सभी शादियों का विवरण भी देना होगा।

14.1 प्रयागराज के ज़िला मजिस्ट्रेट को एक विशेष टीम बनाने का निर्देश भी दिया गया, जिसमें ये सदस्य शामिल हों: (i) असिस्टेंट कमिश्नर ऑफ़ पुलिस (एसीपी) के पद से कम न हो ऐसा पुलिस अधिकारी, जिसे इस न्यायालय द्वारा दिए गए आदेशों और तथ्यों की जानकारी हो, (ii) असिस्टेंट रजिस्ट्रार, सोसाइटीज़ एंड चिट्स, प्रयागराज, (iii) मैरिज रजिस्ट्रेशन ऑफ़िसर, प्रयागराज, और (iv) प्रयागराज के पुलिस कमिश्नर से सलाह करके कोई अन्य ज़रूरी अधिकारी।

14.2 इस टीम को यह निर्देश भी दिया गया कि वह ज़िला प्रयागराज के अधिकार क्षेत्र में आने वाली सभी सोसायटियों (चाहे वे रजिस्टर्ड हों या नहीं) और उन पुरोहितों के पास जाए जो घर से भागकर शादी करने वाले जोड़ों की शादी कराने और मैरिज सर्टिफिकेट जारी करने का काम करते हैं।

14.3 गाज़ियाबाद और गौतम बुद्ध नगर के ज़िला मजिस्ट्रेटों को भी इसी तरह की कार्रवाई करने का निर्देश दिया गया।

14.4 समिति को शादी कराने और उसके बाद मैरिज सर्टिफिकेट जारी करने का काम करने वाली संस्थाओं के कामकाज को बेहतर बनाने और उसे रेगुलेट करने के लिए सुझाव देने की ज़िम्मेदारी भी सौंपी गई।

15. उत्तर प्रदेश के स्टांप और रजिस्ट्रेशन महानिरीक्षक ने 01.08.2023 से 01.08.2024 तक राज्य भर में रजिस्टर्ड शादियों की संख्या से संबंधित डेटा सौंपा है। यह जानकारी ज़िलेवार दी गई है और इसका विवरण नीचे दिया गया है:

01.08.2023 से 01.08.2024 तक	
ज़िले का नाम	**पंजीकृत विवाहों की कुल संख्या**
सहारनपुर	1178
मुजफ्फरनगर	1178

बिजनोर	1106
मुरादाबाद	1528
रामपुर	747
अमरोहा	613
मेरठ	4025
बागपत	610
गाजियाबाद	**29022**
गौतमबुद्ध नगर	3008
बुलन्दशहर	1123
अलीगढ	1281
हाथरस	493
मथुरा	1491
आगरा	**3630**
फ़िरोज़ाबाद	487
मैनपुरी	389
बदायूँ	280
बरेली	1623
पीलीभीत	904
शाहजहाँपुर	843
लखीमपुर खीरी	748
सीतापुर	241
हरदोई	318
उन्नाव	655
लखनऊ	8001
रायबरेली	565
फर्रुखाबाद	474
कन्नौज	237
इटावा	352
औरैया	270
कानपुर देहात	410
कानपुर नगर	**7094**
जालौन	478
झाँसी	1611

अनुवादित

ललितपुर	222
हमीरपुर	214
महोबा	151
बांदा	291
चित्रकोट	112
फ़तेहपुर	414
प्रतापगढ़	940
कौशांबी	186
प्रयागराज	**2519**
बाराबंकी	191
अयोध्या	533
अम्बेडकर नगर	364
सुल्तानपुर	347
बहराईच	216
श्रावस्ती	51
बलरामपुर	284
गोंडा	581
सिद्धार्थनगर	127
बस्ती	285
संतकबीरनगर	187
महराजगंज	215
गोरखपुर	**2284**
कुशीनगर	452
देवरिया	635
आज़मगढ़	733
मऊ	444
बलिया	1517
जौनपुर	846
ग़ाज़ीपुर	1202
चंदौली	466
वाराणसी	2711
भदोही	194
मिर्ज़ापुर	530

अनुवादित

सोनभद्र	235
एटा	364
कासगंज	119
अमेठी	287
हापुड	464
सम्भल	875
शामली	519
कुल 100156	**100156**

16. रिपोर्ट से पता चलता है कि 01.08.2023 से 01.08.2024 की अवधि के दौरान गाजियाबाद में कुल 29,022 और गौतम बुद्ध नगर में 3,008 शादियां रजिस्टर हुईं। इसी तरह, अन्य प्रमुख जिलों में रजिस्टर्ड शादियों की संख्या इस प्रकार है: आगरा- 3,630; लखनऊ- 8,001; प्रयागराज- 2,019; गोरखपुर- 2,284; वाराणसी- 2,711; और मेरठ- 4,025।

16.1 इसके विपरीत, उल्लेखनीय रूप से कई में कम संख्या दर्ज की गई जिले, जैसे: श्रावस्ती- 51; कासगंज119; चित्रकोट- 112.

16.2 इसके अलावा, जिलों में का हाथरस, फ़िरोज़ाबाद, मैनपुरी, बदायूँ, हरदोई, फर्रुखाबाद, कन्नौज, इटावा, जालौन, ललितपुर, हमीरपुर, महोबा, बांदा, कौशांबी, सुल्तानपुर, बहराईच, बलरामपुर, सिद्धार्थनगर, बस्ती, संत कबीर नगर, महराजगंज, मऊ, भदोही, एटा, अमेठी, हापुड, और अन्य, कम इस दौरान 500 से अधिक विवाह उसी अवधि पंजीकृत किए गए।

17. सहायक के कार्यालय द्वारा सौंपी गई रिपोर्ट की जांच करने पर रजिस्ट्रेशन के इंस्पेक्टर जनरल से पता चला है कि कुल 29,022 शादियों में से, गाज़ियाबाद ज़िले के संबंधित डिप्टी रजिस्ट्रार द्वारा शादियों का रजिस्ट्रेशन इस प्रकार किया गया है:

17.1 डिप्टी रजिस्ट्रार सदर-V के ऑफिस में 19,047 शादियों का रजिस्ट्रेशन हुआ।
17.2 डिप्टी रजिस्ट्रार सदर-III के ऑफिस में 5,177 शादियों का रजिस्ट्रेशन हुआ।
17.3 डिप्टी रजिस्ट्रार सदर-I के ऑफिस में 2,286 शादियों का रजिस्ट्रेशन हुआ।
17.4 डिप्टी रजिस्ट्रार सदर-II, गाजियाबाद के ऑफिस में 761 शादियों का रजिस्ट्रेशन हुआ।
17.5 डिप्टी रजिस्ट्रार मोदी नगर, गाजियाबाद के ऑफिस में 299 शादियों का रजिस्ट्रेशन हुआ।
17.6 डिप्टी रजिस्ट्रार लोनी-I के ऑफिस में 78 शादियों का रजिस्ट्रेशन हुआ।
17.7 डिप्टी रजिस्ट्रार लोनी-II के ऑफिस में 22 शादियों का रजिस्ट्रेशन हुआ।
17.8 इसके अलावा यह भी देखा गया है कि गाजियाबाद में रजिस्टर्ड कई मामलों में, दूल्हा और दुल्हन दोनों ही मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश के पूर्वी इलाकों के रहने वाले थे। गाजियाबाद से उनका कोई लेना-देना या संपर्क

अनधिकृत

नहीं था, सिवाय शादी करने और बाद में गाजियाबाद में मैरिज रजिस्ट्रेशन ऑफिस (डिप्टी रजिस्ट्रार सदर-V और III के ऑफिस) में उसे रजिस्टर कराने के मकसद के।

18. इतने बड़े पैमाने पर धोखाधड़ी स्थानीय पुलिस और डिप्टी रजिस्ट्रार कार्यालय के मौन समर्थन या जानबूझकर बरती गई लापरवाही के बिना नहीं हो सकती थी। संगठित तरीके से ऐसी गतिविधियों का जारी रहना इस बात का पक्का संकेत है कि उन्हें इसकी जानकारी थी, भले ही साफ़ तौर पर सहमति। शादी की संस्था की पवित्रता को उन लोगों ने बुरी तरह कमज़ोर किया है, जिन्होंने हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की कानूनी ज़रूरतों की खुलेआम अनदेखी करते हुए शादियाँ कीं। ऐसी हरकतों ने एक चिंताजनक मिसाल कायम की है, जिससे समाज के ताने-बाने पर बुरा असर पड़ने का खतरा है।

19. ऊपर बताई गई बातों और स्थिति की गंभीरता को देखते हुए, इस न्यायालय ने स्टांप और रजिस्ट्रेशन के इंस्पेक्टर जनरल को निर्देश दिया कि वे गाज़ियाबाद में 29,022 शादियों के रजिस्ट्रेशन के कारणों की अच्छी तरह से जांच करें, क्योंकि यह संख्या दूसरे ज़िलों में रजिस्टर्ड शादियों की संख्या से बहुत अलग है। इंस्पेक्टर जनरल को यह भी निर्देश दिया गया है कि वे गड़बड़ियों को दूर करने और शादी के रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया के किसी भी तरह के गलत इस्तेमाल को रोकने के लिए सुझाव दें और सही उपाय सुझाएं।

20. पंजीकरण महानिरीक्षक ने प्रारंभ में कुछ सुझाव प्रस्तुत किए; हालांकि, ये सुझाव बाल विवाह निषेध अधिनियम, 1929 के उल्लंघन में नाबालिग जोड़ों द्वारा किए जाने वाले भागकर विवाह और अवैध विवाह से उत्पन्न बढ़ती सामाजिक समस्या का प्रभावी ढंग से समाधान करने के लिए अपर्याप्त पाए गए। ऐसे गुप्त विवाह अक्सर परिवारों को बिखरने का कारण बनते हैं। अचानक और गुप्त संबंधों के कारण। यह अनिवार्य है कि पंजीकरण महानिरीक्षक का कार्यालय सभी संबंधित हितधारकों के साथ सार्थक और समन्वित संवाद स्थापित करे, जिनमें आधार कार्ड, पैन कार्ड, जन्म प्रमाण पत्र, शैक्षणिक बोर्ड प्रमाण पत्र और सोसाइटियों एवं ट्रस्टों द्वारा जारी विवाह प्रमाण पत्र जारी करने के लिए जिम्मेदार अधिकारी शामिल हैं। चूंकि इन दस्तावेजों में जन्म तिथि होती है, इसलिए विवाह प्रमाण पत्र जारी करने से पहले इनका सत्यापन आवश्यक है। कानूनी प्रावधानों का पालन सुनिश्चित करने के लिए विवाह पंजीकरण कार्यालय ज़रूरी है।

21. ऐसी शादियों के अक्सर गंभीर नतीजे होते हैं, जिनमें मानव तस्करी, यौन शोषण और जबरन मज़दूरी जैसी बातें शामिल हैं। इसमें शामिल बच्चों को सामाजिक अस्थिरता, शोषण, ज़बरदस्ती, हेर-फेर और पढ़ाई में रुकावट के कारण गहरे भावनात्मक और मानसिक सदमे का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा, इन मामलों से न्यायिक व्यवस्था पर भी भारी बोझ पड़ता है। इसलिए, ज़रूरी है कि दस्तावेज़ों की अच्छी तरह से जाँच-पड़ताल के लिए एक मज़बूत सिस्टम बनाया जाए और शादियाँ करवाने और उनका रजिस्ट्रेशन करने वाले ट्रस्ट और सोसायटियों की कड़ी जवाबदेही तय की जाए।

22. इस पृष्ठभूमि में, बाल विवाह निषेध अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने, विवाह संस्था की पवित्रता बनाए रखने और व्यापक रूप से समाज के कल्याण की रक्षा करने के उद्देश्य से, जाली दस्तावेजों पर आधारित

बेबुनियाद याचिकाओं को नियंत्रित करने के उपायों के संबंध में इलाहाबाद उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन के माननीय सदस्यों से सुझाव भी आमंत्रित किए गए थे। इस संबंध में, विद्वान अधिवक्ता श्री आर. वी. मिश्रा को इस न्यायालय की विचार-विमर्श प्रक्रिया में सहायता करने के लिए 'एमिकस क्यूरी' (न्यायालय मित्र) नियुक्त किया गया है।

23. उपरोक्त विचार-विमर्श के आधार पर, गौतम बुद्ध नगर और गाजियाबाद के पुलिस आयुक्तों को एतद्द्वारा निर्देश दिया जाता है कि वे उन ट्रस्टों और सोसाइटियों की गतिविधियों की गहन और गोपनीय जांच करें, जो हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 और बाल विवाह निषेध अधिनियम, 1929 के प्रावधानों के उल्लंघन में विवाह संपन्न कराने में शामिल हैं। जांच के दायरे में निम्नलिखित बातें शामिल होंगी, लेकिन यह इन्हीं तक सीमित नहीं होगा:

(i) गौतम बुद्ध नगर और गाज़ियाबाद ज़िलों के अधिकार क्षेत्र में शादियाँ कराने वाले सभी ट्रस्ट और सोसायटियों की एक विस्तृत सूची तैयार करना;
(ii) ऐसे ट्रस्ट/सोसायटियों के मुख्य पदाधिकारियों (जैसे अध्यक्ष, सचिव और शादी कराने वाले पुरोहित) की प्रोफ़ाइलिंग करना, जिसमें उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि, आर्थिक स्थिति और किसी भी आपराधिक रिकॉर्ड के साथ-साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शामिल अन्य व्यक्तियों की जानकारी भी शामिल हो;
(iii) उन संसाधनों, संपर्कों और ज़रीयों की पहचान और विश्लेषण करना जिनके माध्यम से ट्रस्ट प्रबंधन - जो इन गतिविधियों से लाभान्वित होता है - घर से भागे हुए लड़के-लड़कियों से उनकी शादी कराने के लिए संपर्क करता है;
(iv) उन लोगों के बारे में जानकारी इकट्ठा करना जो घर से भागे जोड़ों को उम्र, पते, शपथ-पत्र और फ़र्ज़ी पुलिस शिकायतों से जुड़े झूठे दस्तावेज़ बनवाने में मदद करते हैं, और जो उन्हें कानूनी कार्रवाई से बचाने के लिए पनाह या सुरक्षा देते हैं;
(v) ट्रस्ट/सोसायटियों द्वारा किए गए वित्तीय लेन-देन की जाँच करना;
(vi) कोई भी अन्य गुप्त जानकारी इकट्ठा करना जो इस पूरे चक्र - शादी कराने से लेकर फ़र्ज़ी दस्तावेज़ों के आधार पर न्यायालय में सुरक्षा याचिकाएँ दायर करने तक - के काम करने के तरीके को पूरी तरह से समझने में इस न्यायालय की मदद कर सके।

24. याचिका पर सुनवाई के दौरान, गाज़ियाबाद पुलिस ने कई ऐसी फ़र्ज़ी सोसायटियों और ट्रस्टों के ख़िलाफ़ छह एफआईआर दर्ज कीं, जो धोखाधड़ी से शादियाँ करवाने और नकली मैरिज सर्टिफ़िकेट जारी करने में शामिल थे। इनका विवरण इस प्रकार है:
(i) 2024 का मुकदमा अपराध संख्या 470, बीएनएस, पुलिस की धारा 318(4) के तहत थाना कोतवाली, गाजियाबाद आयुक्तालय.
(ii) 2024 का मुकदमा अपराध संख्या 471, बीएनएस, पुलिस की धारा 318(4) के तहत थाना कोतवाली, गाजियाबाद आयुक्तालय.

(iii) मुकदमा अपराध संख्या 1030 का 2024, बीएनएस, पुलिस की धारा 318(4) के तहत थाना कविनगर, गाजियाबाद आयुक्तालय.

(iv) 2024 का मुकदमा अपराध संख्या 753, बीएनएस, पुलिस की धारा 318(4) के तहत थाना विजय नगर, ग़ाज़ियाबाद आयुक्तालय.

(v) 2024 का मुकदमा अपराध संख्या 940, बीएनएस, पुलिस की धारा 318(4) के तहत थाना नंदग्राम, गाजियाबाद आयुक्तालय.

(vi) इसी तरह एक एफआईआर भी थी 2024 का मुकदमा अपराध संख्या 619 के रूप में दर्ज किया गया, बीएनएस की धारा 318(4) के तहत, और बाद में अनुभागों को शामिल करने के लिए संशोधन किया गया 338/336(3)/340(2) बीएनएस पर पी.एस. सूरजपुर।

25. प्रयागराज के पुलिस कमिश्नर द्वारा दाखिल हलफ़नामे को देखने पर पता चलता है कि कथित दोषियों के ख़िलाफ़ दस एफआईआर दर्ज की गई हैं। इनका विवरण नीचे दिया गया है:

(i) मुकदमा अपराध संख्या 218/2024, बीएनएस, 2023 की धारा 318(4), 338, 336(3), 340(2) के तहत, पुलिस स्टेशन- कैंट, प्रयागराज।

(ii) मुकदमा अपराध संख्या 235/2024, बीएनएस, 2023 की धारा 318(4), 338, 336(3), 340(2) के तहत, पुलिस स्टेशन- कैंट, प्रयागराज।

(iii) मुकदमा अपराध संख्या 236/2024, बीएनएस, 2023 की धारा 318(4), 338, 336(3), 340(2) के तहत, पुलिस स्टेशन- कैंट, प्रयागराज।

(iv) मुकदमा अपराध संख्या 237/2024, बीएनएस, 2023 की धारा 318(4), 338, 336(3), 340(2) के तहत, पुलिस स्टेशन- कैंट, प्रयागराज।

(v) मुकदमा अपराध संख्या 219/2024, बीएनएस, 2023 की धारा 318(4), 338, 336(3), 340(2) के तहत, पुलिस स्टेशन- कैंट, प्रयागराज।

(vi) मुकदमा अपराध संख्या 239/2024, बीएनएस, 2023 की धारा 318(4), 338, 336(3), 340(2) के तहत, पुलिस स्टेशन- कैंट, प्रयागराज।

(vii) मुकदमा अपराध संख्या 613/2024, बीएनएस, 2023 की धारा 318(4), 338, 336(3), 340(2) के तहत, पुलिस स्टेशन- हंडिया, प्रयागराज।

(viii) मुकदमा अपराध संख्या 182/ 2024, बीएनएस, 2023 की धारा 319(2), 318(4), 336(3), 340(2) के तहत, पुलिस स्टेशन- कौंधियारा, प्रयागराज।

(ix) मुकदमा अपराध संख्या 238/2024, बीएनएस, 2023 की धारा 318(4), 338, 336(3), 340(2) के तहत, पुलिस स्टेशन- कैंट, प्रयागराज।

(x) मुकदमा अपराध संख्या 189/2024, बीएनएस की धारा 336(2), 338, 336(3), 340(2) और बाल विवाह निषेध अधिनियम की धारा 9/10/11 के तहत, पुलिस स्टेशन होलागढ़, प्रयागराज।

अनुवादित

26. प्रयागराज के पुलिस कमिश्नर द्वारा 26.11.2024 को दाखिल किए गए हलफनामे में कहा गया है कि मुख्य मामले - सिविल मिसलेनियस रिट याचिका (सी) संख्या 22491/2024 (शनिदेव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) - से जुड़ी 77 रिट याचिकाओं की विस्तार से जांच की गई। यह जांच अनुपालन हलफनामा दाखिल करने तक की गई थी। जांच में पता चला कि इनमें से 10 याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं ने आर्य समाज संगठनों द्वारा जारी किए गए बताए जाने वाले नकली विवाह प्रमाण पत्र लगाए थे। हालांकि, संबंधित आर्य समाज संगठनों के पदाधिकारियों ने ऐसे प्रमाण पत्र जारी करने से साफ इनकार कर दिया। ऐसे प्रमाण-पत्र या याचिकाकर्ताओं की शादी संपन्न कराना।

26.1 ऐसे मामलों में, यह पाया गया कि इस न्यायालय से कानूनी राहत पाने के लिए रिट याचिकाओं के साथ नकली दस्तावेज़ और जाली शादी के सर्टिफ़िकेट लगाए गए थे, जो गैर-कानूनी है। जिन मामलों में पहली नज़र में अपराध की बात सामने आई, उनमें गंगानगर ज़ोन, सिटी ज़ोन, यमुनानगर ज़ोन और कमिश्नरेट प्रयागराज में एफआईआर दर्ज की गईं।

26.2 इसके अलावा, यह बताया गया है कि मुकदमा अपराध संख्या 218/2024 में, जो पुलिस स्टेशन कैंट, कमिश्नरेट प्रयागराज में भारतीय दंड संहिता की धाराओं 318(4), 338, 336(3) और 340(2) के तहत दर्ज किया गया था, जांच के दौरान याचिकाकर्ता श्रीकांत (पिता राजू, निवासी गाँव मोहनपुरा, लरखोर, पुलिस स्टेशन सैफई, इटावा) को जांच अधिकारी ने 02.11.2024 को गिरफ़्तार किया। उसके बयान और एक भरोसेमंद सूचनाकर्ता से मिली जानकारी के आधार पर, पुलिस उच्च न्यायालय के पास स्थित अजय एंटरप्राइज़ेज़ नाम की फोटोकॉपी की दुकान पर पहुँची, जहाँ दो लोग अलग-अलग कंप्यूटर पर काम करते हुए मिले। पूछताछ करने पर, एक ने अपनी पहचान राजा उर्फ़ शेष मणि दुबे और दूसरे ने अनिल कुमार प्रजापति के तौर पर बताई।

26.3 राजा उर्फ शेष मणि दुबे द्वारा संचालित कंप्यूटर की जाँच के दौरान, जाँच अधिकारी को आर्य समाज, कृष्णा नगर, प्रयाग (पता: 529, के.एल., कृष्णा नगर, किदगंज, प्रयागराज) द्वारा कथित तौर पर जारी किए गए विवाह प्रमाण पत्र का एक प्रपत्र मिला। कंप्यूटर से जुड़े प्रिंटर का उपयोग करके प्रपत्र का रंगीन प्रिंटआउट लिया गया, जिसमें एक मुद्रित प्रमाण पत्र मिला जिस पर पुजारी के अस्पष्ट हस्ताक्षर और मुहर लगी हुई थी/ *जारी करने वाले अधिकारी के हस्ताक्षर और मुहर के साथ "संतोष कुमार शास्त्री, पुरोहित, आर्य समाज प्रयाग" नाम*

26.4 दूसरे कंप्यूटर की जांच करने पर, दो अन्य संस्थाओं से जारी विवाह प्रमाण-पत्र मिले: एक "आर्य समाज गौशाला नगर, वृंदावन-मथुरा (सर्वदेशिक सभा, नई दिल्ली से संबद्ध)" से और दूसरा "आर्य समाज उलाऊ खेड़ा, फिरोजाबाद, यूपी" से। इन प्रपत्रों के प्रिंटआउट भी प्राप्त किए गए। पहले प्रमाण-पत्र के प्रपत्र पर "श्याम सुंदर आर्य" के अस्पष्ट हस्ताक्षर थे, साथ ही एक मुहर भी थी जिस पर "सचिव, आर्य समाज गौशाला नगर, वृंदावन, मथुरा" लिखा था, जबकि दूसरे प्रमाण-पत्र पर "आर्य समाज उलाऊ खेड़ा, फिरोजाबाद, यूपी" की अस्पष्ट मुहर और हस्ताक्षर थे। दोनों कंप्यूटर एक ही प्रिंटर से जुड़े हुए थे।

26.5 अनिल कुमार प्रजापति द्वारा इस्तेमाल किए गए कंप्यूटर की जांच करने पर, जांच अधिकारी को आर्य समाज उलाऊ खेड़ा, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश. द्वारा जारी किया गया बताया जाने वाला एक शादी के सर्टिफिकेट का हस्ताक्षरित और मुहरबंद प्रोफार्मा मिला। इन विवरणों की पुष्टि के लिए प्रोफार्मा का एक रंगीन प्रिंटआउट लिया गया। दोनों आरोपियों को उन पर लगे आरोपों के बारे में बताया गया और बाद में गिरफ्तार कर लिया गया। पुलिस ने कंप्यूटर सीपीयू, कीबोर्ड, माउस, प्रिंटर और मॉनिटर ज़ब्त किए और सभी ज़रूरी कानूनी प्रक्रियाओं का पालन किया, जैसा कि मुकदमा डायरी संख्या 8 में दर्ज है।

26.6 प्रयागराज कमिश्नरेट के हंडिया पुलिस स्टेशन में आईपीसी की धाराओं 318(4), 338, 336(3) और 340(2) के तहत दर्ज मुकदमा अपराध संख्या 613/2024 की जांच के दौरान, आरोपी आशीष कुमार (उम्र 19 साल), जो नंदलाल का बेटा और हरसन पुर, अहिरि, हंडिया पुलिस स्टेशन, प्रयागराज का रहने वाला है, को 30.10.2024 को सब-इंस्पेक्टर मणि भूषण शुक्ला ने गिरफ्तार किया और उचित कानूनी कार्रवाई शुरू की गई।

26.7 माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा सिविल मिसलेनियस रिट (सी) संख्या 24353/2024 (श्रीमती प्रीति और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में 07.11.2024 को पारित आदेश के अनुपालन में, शपथकर्ता ने पत्र संख्या ए3944/2024 (दिनांक 17.11.2024) के माध्यम से एक जांच शुरू की। जांच से पता चला कि याचिकाकर्ताओं ने उच्च न्यायालय से सुरक्षा राहत पाने के लिए जाली विवाह प्रमाण पत्र जमा किए थे, जो कि एक गैर-कानूनी कार्य है। नतीजतन, श्रीमती प्रीति, भूपेंद्र और अन्य अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ पुलिस स्टेशन कैंट, कमिश्नरेट प्रयागराज में भारतीय दंड संहिता की धाराओं 318(4), 338, 336(3) और 340(2) के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) संख्या 248/2024 दर्ज की गई। मामले की जांच अभी चल रही है।

27. 7.11.2024 के आदेश का पालन करते हुए, गौतम बुद्ध नगर के ज़िला मजिस्ट्रेट ने 14.11.2024 के पत्र के ज़रिए एक समिति का गठन किया। इस समिति में गौतम बुद्ध नगर के सब-डिविज़नल मजिस्ट्रेट अध्यक्ष के तौर पर; गौतम बुद्ध नगर के हेडक्वार्टर के असिस्टेंट कमिश्नर ऑफ़ पुलिस; गौतम बुद्ध नगर के डिप्टी रजिस्ट्रार (चिट्स एंड फंड्स); सब-रजिस्ट्रार-I; और गौतम बुद्ध नगर के दादरी के सब-रजिस्ट्रार शामिल हैं। समिति को इस मामले में उठाए गए मुद्दों की जांच करने और अपनी रिपोर्ट न्यायालय को सौंपने का काम सौंपा गया है।

28. प्रयागराज के असिस्टेंट इंस्पेक्टर जनरल (रजिस्ट्रेशन) ने समिति की रिपोर्ट के निष्कर्षों पर आधारित सुझावों को शामिल करते हुए 6.12.2024 का एक हलफ़नामा पेश किया और निम्नलिखित सुझाव आगे बढ़ाए, जिनका विवरण नीचे दिया गया है। 28.1 उत्तर प्रदेश में होने वाली सभी शादियों का रजिस्ट्रेशन 'उत्तर प्रदेश विवाह पंजीकरण नियम, 2017' के तहत किया जाता है। हालाँकि, इन नियमों में न तो एप्लीकेशन में उस धार्मिक रीति-रिवाज/प्रथा के बारे में पूछा जाता है जिसके तहत शादी हुई थी, और न ही रजिस्ट्रेशन सर्टिफिकेट में इनका ज़िक्र किया जाता है। नियमों में बदलाव का सुझाव दिया गया है ताकि एप्लीकेशन देने वालों के लिए उन रीति-

रिवाजों और परंपराओं की जानकारी देना ज़रूरी हो जाए जिनके तहत शादी हुई थी। प्रस्तावित बदलाव के बाद ही 'हिंदू विवाह अधिनियम, 1955' या अलग-अलग धर्मों के लिए लागू अन्य विवाह कानूनों का पालन सुनिश्चित किया जा सकेगा।

28.2 उत्तर प्रदेश विवाह पंजीकरण नियम, 2017 के तहत, विवाह पंजीकरण अभी आवेदकों द्वारा दिए गए बयानों और अपलोड किए गए सबूतों व प्रमाणपत्रों की उनके ओरिजिनल डॉक्यूमेंट्स से जांच पर आधारित है। हालांकि, मौजूदा ऑनलाइन पंजीकरण सिस्टम में, विवाह पंजीकरण अधिकारी को शक के आधार पर आपत्ति जताने और आवेदन खारिज करने का अधिकार देने का कोई प्रावधान नहीं है। शक होने पर, पक्षों को बस वापस भेज दिया जाता है, और ऐसे मामलों का कोई रिकॉर्ड ऑफिस में नहीं रखा जाता। पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए, विवाह पंजीकरण अधिकारी द्वारा जताई गई आपत्तियों का रिकॉर्ड रखने के मकसद से मौजूदा सिस्टम में बदलाव करने की सलाह दी जाती है। इसे लागू करने के लिए, मौजूदा नियमों में ज़रूरी बदलाव भी करने होंगे।

28.3 शादी कराने वाले संस्थानों, धार्मिक व्यक्तियों, पुजारियों और अन्य लोगों को रेगुलेट करने के लिए नियम या कानून बनाना ज़रूरी लगता है। इससे फ़र्ज़ी मैरिज सर्टिफ़िकेट जारी होने पर रोक लगाने और यह पक्का करने में मदद मिलेगी कि शादी की प्रक्रिया सही तरीके से और कानूनी मानकों के अनुसार पूरी हो।

28.4 शादी कराने वाली संस्थाओं को निर्देश दिए जाएं कि वे दूल्हा-दुल्हन की उम्र और पते के सबूत जैसे दस्तावेज़ों की फोटोकॉपी अपने पास रखें। इससे जवाबदेही तय होगी और भविष्य में किसी भी विवाद या कानूनी जांच की स्थिति में सत्यापन योग्य रिकॉर्ड उपलब्ध रहेंगे।

28.5 उम्र के प्रमाण-पत्रों के ऑनलाइन वेरिफिकेशन के लिए एक मज़बूत और भरोसेमंद सिस्टम बनाया जाना चाहिए और उसे शादी के रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया से जोड़ा जाना चाहिए। इससे शादी के रजिस्ट्रेशन के समय उम्र के वेरिफिकेशन की प्रमाणिकता पक्की होगी और गलत दस्तावेज़ों के गलत इस्तेमाल को रोका जा सकेगा।

28.6 विवाह पंजीकरण अधिकारी के पास उम्र के प्रमाण-पत्रों और विवाह से जुड़े दस्तावेज़ों की जाँच-पड़ताल करने के बाद ही विवाह को पंजीकृत करने का अधिकार या कानूनी मंज़ूरी होनी चाहिए। इससे कानूनी ज़रूरतों का पालन सुनिश्चित होगा और अधूरी या धोखाधड़ी वाली जानकारी के आधार पर विवाह के पंजीकरण को रोका जा सकेगा।

28.7 यह ध्यान देने वाली बात है कि अभी उत्तर प्रदेश में, हिंदू विवाह पंजीकरण नियम, 1973 के तहत कोई भी विवाह पंजीकृत नहीं किया जाता है। 13 अगस्त, 2017 को उत्तर प्रदेश विवाह पंजीकरण नियम, 2017 लागू होने के बाद से, सभी धर्मों के विवाहों का पंजीकरण इन्हीं नियमों के तहत किया जाता है। यह भी ध्यान रखना ज़रूरी है कि ये नियम महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा बनाए गए थे; स्टाम्प और पंजीकरण विभाग के

असत्यापित

पास विवाह पंजीकरण प्रक्रिया की कमियों को दूर करने के लिए इनमें संशोधन करने का कोई अधिकार नहीं है। इसलिए, यह अनुरोध है कि न्यायालय कृपया नियम, 2017 में संशोधन के संबंध में ज़रूरी निर्देश जारी करे।

29. ऊपर बताए गए स्टेकहोल्डर्स के साथ बातचीत के बाद, इंस्पेक्टर जनरल, स्टाम्प और रजिस्ट्रेशन के ऑफ़िस ने स्टेकहोल्डर्स के साथ व्यापक बातचीत के बाद नोटिफिकेशन संख्या 1547/24 (तारीख 14.10.2024) जारी किया, जिसके तहत डिप्टी रजिस्ट्रार के ऑफ़िस को साफ़ और खास निर्देश दिए गए हैं। 14.10.2024 के नोटिफिकेशन का संबंधित हिस्सा नीचे दिया गया है:

"प्रेषक,
सहायक महानिरीक्षक निबंधन,
गाजियाबाद।

xxxxxxx

संख्याः 1547 / स०म०नि०- गा०बाद/2024 दिनांक 14-10-2024

विषयः- **सिविल मिस रिट याचिका संख्या-22491 वर्ष 2024 शनिदेव व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य में अभिकथन (Instructions) दाखिल किये जाने के सम्बन्ध में।**

महोदय,

कृपया उपर्युक्त विषयक सिविल मिस रिट याचिका संख्या-22491 वर्ष 2024 शनिदेव व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य का सन्दर्भ ग्रहण करने का कष्ट करें, जिसके द्वारा उक्त रिट याचिका में मा० उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा दिनांक 07.08.2024 व 03.09.2024 को पारित आदेश के अनुपालन में पूर्व में इस कार्यालय द्वारा निर्गत पत्र संख्या-1404/2024 दिनांक 20.09.2024 द्वारा अभिकथन दाखिल किया गया है।

प्रश्नगत प्रकरण में मा० उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा पारितआदेशों के अनुपालन में महानिरीक्षक निबंधन, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा अपने परिपत्र संख्या-3375/तीन-ए-शि०का० लख०/2024 दिनांक 10 अक्टूबर, 2024, जो समस्त उप महानिरीक्षक निबंधन, उत्तर प्रदेश, समस्त सहायक महानिरीक्षक निबंधन, उत्तर प्रदेश, एवं समस्त उप निबंधक, उत्तर प्रदेश को सन्बोधित तथा अन्य को पृष्ठांकित किया गया है। उक्त परिपत्र द्वारा कार्यालय महानिरीक्षक निबंधन, उत्तर प्रदेश द्वारा पूर्व में निर्गत परिपत्रों को अवक्रमित करते हुए नवीन परिपत्र जारी किया गया है, जिसमें विवाह रजिस्ट्रीकरण विषयक् निम्नलिखित दिशा-निर्देश प्रसारित किये गये हैं:-

1- विवाह के दोनों पक्षकारों (वर एवं वधु) की पहचान उनकी सहमति के आधार पर आधार प्रमाणीकरण के माध्यम से की जायेगी।

अनुवादित

2- विवाह के दोनों पक्षकार यथा वर एवं वधु के साथ-साथ दो साक्षियों का विवरण स्टाम्प एवं रजिस्ट्रेशन विभाग द्वारा उपलब्ध कराये गये सॉफ्टवेयर पर प्रविष्टि की जायेगी। सम्बन्धित विवाह पंजीकरण अधिकारी के समक्ष वर एवं वधु के साथ-साथ दो साक्षियों के फोटो एवं बायोमैट्रिक अंगुष्ठ निशान सॉफ्टवेयर पर दर्ज किये जायेंगे।

3- विवाह पंजीकरण अधिकारी द्वारा वर एवं वधु की जन्मतिथि के
सत्यापन के समाधान के बाद ही पंजीकरण की कार्यवाही की जायेगी।

4- केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के प्रमाणपत्रों के सत्यापन हेतु बोर्ड द्वारा डिजिटल शैक्षणिक दस्तावेजों के संग्रह हेतु एक ऑनलाइन व्यवस्था सृजित की गयी है. जो डिजिलॉकर प्लेटफॉर्म के साथ एकीकृत है। ऐसे समस्त शैक्षणिक दस्तावेजों का सत्यापन https://apisetu.gov.in पर किया जायेगा।

5- माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के प्रमाणपत्रों सत्यापन हेतु https://results.upmsp.edu.in पर जाकर वर्ष 2002 के बाद निर्गत परीक्षाफल जिमें जन्मतिथि भी अंकित होती है, का सत्यापन किया जायेगा।

6- रजिस्ट्रार जन्म एवं मृत्यु पंजीकरण दद्वारा निर्गत प्रमाण-पत्र का सत्यापन सी०आर०एस० पोर्टल से विभागीय पोर्टल के ए०पी०आई० संयोजन के पश्चात् प्राप्त किया जा सकता है। जन्म प्रमाण पत्र से सम्बन्धित प्रारम्भिक सूचना जनगणना विभाग (Census) से प्राप्त की जा सकती है।

7- पासपोर्ट स्थायी ड्राईविंग लाईसेन्स एवं पैन में दर्ज जन्मतिथि का सत्यापन सम्बन्धित विभाग के पोर्टल से किया जायेगा। उक्त के अतिरिक्त विभागीय सॉफ्टवेयर का Protean e Gov Technologies Lid के पोर्टल से संयोजन किया जाना प्रक्रियाधीन है. जिसके पश्चात पासपोर्ट, ड्राईविंग लाइसेन्स एवं पैन में दर्ज जन्मतिथि का सत्यापन एक ही पोर्टल से किया जा सकेगा।

8- CISCE बोर्ड द्वारा निर्गत प्रमाण-पत्रों का सत्यापन www.cisce.org पोर्टल पर किया जायेगा।

9- ऐसे प्रकरणों में जहां विवाह के पक्षकारों से सम्बन्धित शिक्षण संस्थाओं के अभिलेख ऑनलाईन उपलब्ध नहीं है, वहां मूल प्रमाण पत्र से मिलान करते हुए जन्मतिथि का सत्यापन किया जायेगा। कोई भी जन्मतिथि का प्रमाण-पत्र उपलब्ध न होने की दशा में सम्बन्धित जनपद के मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा निर्गत आयु प्रमाण-पत्र से सत्यापन किया जायेगा।

10 वर एवं वधु के साथ-साथ दो साक्षियों के पहचान फ्ते के प्रमाण-पत्र एवं आयु के प्रमाणपत्र के रूप में निम्न में से एक पहचान पत्र अपलोड किया जायेगा।

(1) पक्षकारों की पहचान के सम्बन्ध में आधार के अतिरिक्त निम्न में से किसी एक अतिरिक्त पहचान-पत्र का अपलोड किया जाना।

(क) स्थायी ड्राईविंग लाईसेन्स ।

(ख) पैन कार्ड

(ग) मतदाता पहचान-पत्र

(घ) पासपोर्ट

(च) सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त कोई अन्य अभिलेख ।

(ii) पक्षकारों के पते के सम्बन्ध में निम्न में से किसी एक अभिलेख का अपलोड किया जाना।

(क) आधार कार्ड

(ख) मतदाता पहचान-पत्र

(ग) स्थायी ड्राईविंग लाईसेन्स ।

(घ) पासपोर्ट

(ङ) राशन कार्ड

(च) यूटिलिटी बिल (जल, विद्युत, टेलीफोन अथवा गैस बिल)

(छ) रेन्ट एग्रीमेन्ट

(ज) बैंक पासबुक

(झ) सरकार द्वारा निर्गत कोई अन्य अभिलेख ।

(iii) पक्षकारों की आयु (जन्म तिथि प्रमाण-पत्र) के सम्बन्ध में निम्न में से किसी एक अभिलेख का अपलोड किया जाना।

(क) पासपोर्ट

(ख) स्थायी ड्राईविंग लाईसेन्स ।

(ग) पैनकार्ड

(घ) हाईस्कूल / एस०एस०सी० प्रमाण-पत्र (सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त बोर्ड द्वारा निर्गत)

(ङ) पंजीकरण द्वारा निर्गत प्रमाण-पत्र

रजिस्ट्रार, जन्म मृत्यु

(च) सी०एम०ओ० दवारा जारी जन्मतिथि/आयु प्रमाण-पत्र

(v) वर एवं वधु द्वारा दहेज प्रतिषेध (वर-वधु भेंट सूची) नियम 1985 के अन्तर्गत उपहारों की सूची व अन्य तथ्यों से सम्बन्धित विवरण का प्रारूप स्टाम्प एवं रजिस्ट्रेशन विभाग के पोर्टल से डाउनलोड कर आवश्यक प्रविष्टि के बाद शपथ-पत्र के रूप में अपलोड किया जाना।

(v) विवाह सम्पन्न होने के साक्ष्य के सम्बन्ध में निम्न में से कोई एक प्रमाण-पत्र अपलोड किया जाना।

अनुवादित

(क) विवाह स्थल के प्राधिकारी /धार्मिक प्राधिकारी द्वारा निर्गत प्रमाण-पत्र।

(ख) राजपत्रित अधिकारी अथवा किसी स्थानीय निकाय के सदस्य द्वारा निर्गत प्रमाण-पत्र ।

(ग) विवाह निमंत्रण पत्र की प्रति। मा० उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेशों के अनुपालन में महानिरीक्षक निबंधन, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा अपने परिपत्र संख्या-3375/तीन-ए-शि०का० लख० /2024 दिनांक 10 अक्टूबर, 2024, द्वारा पूर्व में निर्गत परिपत्रों को अवक्रमित करते हुए उपरोक्त नवीन दिशा-निर्देश प्रसारित किये गये हैं. जिसकी छायाप्रति सुलभ सन्दर्भ हेतु माननीय न्यायालय, इलाहाबाद के संज्ञान में लाने हेतु सादर प्रेषित है। उच्च

संलग्नक-यथोपिर।"

30. विवाह प्रमाण पत्र जारी करना न केवल वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करता है, बल्कि नाबालिगों को समय से पहले वैवाहिक दायित्वों, संभावित शोषण और शैक्षिक और व्यक्तिगत विकास के अवसरों से वंचित करके मौलिक अधिकारों का भी उल्लंघन करता है। यह सार्वजनिक व्यवस्था को कमजोर करने के अलावा गरिमा और समानता की संवैधानिक गारंटी का उल्लंघन करता है।

31. इन कदाचार को सक्षम करने में स्थानीय पुलिस और प्रशासनिक अधिकारियों की भागीदारी भविष्य के दुरुपयोग को रोकने के लिए संस्थागत सुधारों और जवाबदेही तंत्र की मांग करती है। यह एक एकीकृत सत्यापन प्रणाली बनाने के लिए पंजीकरण कार्यालयों, पुलिस, कल्याण विभागों और शैक्षणिक संस्थानों के बीच अंतर-विभागीय समन्वय की आवश्यकता पर भी प्रकाश डालता है।

32. यहां जिन मुद्दों पर प्रकाश डाला गया है, वे विवाहों की वैधता और पवित्रता सुनिश्चित करने के लिए एक मजबूत और सत्यापन योग्य विवाह पंजीकरण तंत्र की तत्काल आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। जबकि हिंदू विवाह अधिनियम विवाह संपन्न करने के लिए कानूनी ढांचा निर्धारित करता है और शून्य और शून्य विवाह के परिणामों के साथ-साथ अन्य संबंधित प्रावधानों को निर्धारित करता है, इसकी प्रभावकारिता इसके प्रावधानों के उचित प्रवर्तन पर निर्भर है।

33. उठाई गई गंभीर चिंताओं को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय, अपने स्वत: संज्ञान रिट क्षेत्राधिकार और उच्च न्यायालय को प्रदत्त अधिकार का प्रयोग करते हुए, इसके द्वारा प्रधान सचिव, महिला एवं बाल विकास विभाग को स्टाम्प और पंजीकरण महानिरीक्षक के समन्वय से उत्तर प्रदेश विवाह पंजीकरण नियम, 2017 में संशोधन करने का निर्देश देता है। इस तरह के संशोधन छह महीने के भीतर किए जाएंगे, पूर्वोक्त पैराग्राफ 30-30.7 में निर्धारित सुझावों को ध्यान में रखते हुए।

33.1 इस आदेश की एक प्रति प्राप्त होने के तुरंत बाद, मुख्य सचिव का कार्यालय यहां चिह्नित मुद्दे के अनुरूप उत्तर प्रदेश विवाह पंजीकरण नियम, 2017 के त्वरित संशोधन के समन्वय और सुनिश्चित करने के लिए एक नामित अधिकारी नियुक्त करेगा।

34. नए नियम बनाने के लिए अंतरिम निर्देश: जब तक संशोधित नियम विधिवत तैयार नहीं किए जाते और लागू नहीं किए जाते, तब तक स्टाम्प और पंजीकरण महानिरीक्षक को निम्नलिखित सुनिश्चित करने का निर्देश दिया जाता है:

34.1 विवाह पंजीकरण का कार्य सौंपे गए सभी उप रजिस्ट्रार दिनांक 14.10.2024 की अधिसूचना के तहत जारी निर्देशों का सख्ती से पालन करेंगे, पत्र और भावना दोनों में।

34.2 पुरोहित- या विवाह संपन्न होने का दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा शपथ ग्रहण किया गया शपथ पत्र विवाह के पंजीकरण के समय अनिवार्य कर दिया जाएगा। पुरोहित की पहचान और विश्वसनीयता स्थापित करने के लिए हलफनामे में निम्नलिखित विवरण होने चाहिए: (i) पूरा नाम, (ii) पिता का नाम, (iii) स्थायी पता, (iv) वर्तमान पता, (v) आधार कार्ड की प्रति, (vi) कोई अन्य वैध पहचान दस्तावेज, (vii) मोबाइल नंबर, (viii) हाल ही में पासपोर्ट आकार की तस्वीर, (ix) एक गंभीर घोषणा जिसमें पुष्टि की गई हो कि उसने विवाह किया है, और (x) विवाह समारोह की एक वीडियो रिकॉर्डिंग, जो अनिवार्य होगी, विशेष रूप से भगोड़े जोड़ों से जुड़े मामलों में। प्रोहित या विवाह संपन्न करने वाले व्यक्ति को पंजीकरण के समय विवाह रजिस्ट्रार के कार्यालय में शारीरिक रूप से उपस्थित होना चाहिए।

34.3 उप पंजीयक विवाह प्रमाण पत्र के पीछे की ओर इस आशय का एक स्पष्ट समर्थन करेगा कि: (i) दिनांक 14.10.2024 की अधिसूचना में निहित निर्देशों का विधिवत अनुपालन किया गया है; और (ii) पुरोहित या विवाह संपन्न करने का दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा शपथ ग्रहण किए गए हलफनामे का अवलोकन किया गया है और उसे संतुष्टि मिली है, और वह विवाह के पंजीकरण के समय उपस्थित था।

34.4 विवाह केवल उस स्थान पर पंजीकृत किया जाएगा जहां विवाह का कोई भी पक्ष आमतौर पर रहता है या जहां किसी भी पक्ष के माता-पिता आमतौर पर रहते हैं। एक अपंजीकृत किराया समझौते को निवास का वैध प्रमाण नहीं माना जाएगा।

34.5 स्टाम्प और पंजीकरण के संबंधित सहायक महानिरीक्षक अनुपालन की निगरानी के लिए जिम्मेदार होंगे। वे यह सुनिश्चित करेंगे कि उप पंजीयक उपरोक्त निर्देशों के अनुसार सख्ती से अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं। इस तरह के अनुपालन को प्रमाणित करने वाली एक मासिक प्रविष्टि इस उद्देश्य के लिए संबंधित कार्यालयों में बनाए गए एक रजिस्टर में दर्ज की जाएगी।

35. पूर्वोक्त अंतरिम निर्देश विशेष रूप से भगोड़े जोड़ों से जुड़े विवाहों के पंजीकरण पर लागू होंगे- अर्थात, जिन्होंने अपने संबंधित परिवार के सदस्यों की सहमति के बिना वैवाहिक गठबंधन में प्रवेश किया है। बशर्ते, यदि विवाह के पक्षकारों के परिवार के सदस्यों में से कोई भी पंजीकरण के समय उपस्थित है, तो विवाह

अधिकारी, अपने विवेक पर, विवाह की वास्तविकता के बारे में संतुष्ट होने के बाद, उपरोक्त शर्तों को पूरी तरह से या आंशिक रूप से छोड़ सकता है।

36. सभी संबंधित याचिकाओं में की गई प्रार्थनाओं पर वापस लौटते हुए, याचिकाकर्ताओं को संबंधित वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक (एसएसपी) से संपर्क करने की स्वतंत्रता के साथ निस्तारित जाता है। एसएसपी, दावों और तर्कों के सत्यापन पर, उचित समझे जाने वाले उपचारात्मक उपाय करेगा।

37. रजिस्ट्रार (अनुपालन) को इस आदेश की एक प्रति तुरंत प्रेषित करने का निर्देश दिया जाता है; (i) मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार, (ii) प्रधान सचिव, महिला एवं बाल विकास विभाग, और (iii) महानिरीक्षक, स्टाम्प और पंजीकरण, उत्तर प्रदेश, आवश्यक अनुपालन के लिए।

38. तदनुसार, याचिकाओं का निस्तारण उपरोक्त शर्तों में किया जाता है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 964

अपीलाधिकारिता आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह

धारा 482 बीएनएसएस के अंतर्गत आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन संख्या -1699 सन् 2025

विजय कुमार दुबे ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

आवेदक के अधिवक्ता: श्री अनूप भैया लाल शुक्ला

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि – भारतीय दंड संहिता, 1860 – धाराएँ 409, 420, 467, 468, 471, 447A, 120B एवं 34 – भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 – धारा 13(2)

तथ्य:

- प्रासंगिक समय पर आवेदक ट्यूबवेल ऑपरेटर एवं *संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना* के अंतर्गत कर्मचारियों का प्रभारी था।
- उसके विरुद्ध कोई विभागीय जांच प्रारंभ नहीं की गई।
- योजना का कार्य वर्ष 2004-05 में हुआ, परंतु एफ.आई.आर. वर्ष 2012 में, छह वर्ष बाद दर्ज की गई।
- एफ.आई.आर. दर्ज होने के लगभग 12 वर्ष बाद आवेदक को गिरफ्तार करने का प्रयास किया जा रहा है।
- संबंधित अधिकारी ने विवेचना को उचित समय में समाप्त करने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया।
- इसी प्रकार की अन्य 40 एफ.आई.आर. की विवेचना आज भी लंबित है।
- न्यायालय के पूर्व आदेश के बाद तीन अभियुक्तों, जिनमें आवेदक भी सम्मिलित है, के विरुद्ध आरोपपत्र दाखिल किया गया।
- आवेदक का नाम एफ.आई.आर. में नहीं था।
- प्रति-शपथपत्र में यह स्पष्ट नहीं किया गया कि आवेदक की संलिप्तता कब और कैसे सामने आई।
- केवल सामान्य आरोप लगाए गए कि अभियुक्तों ने *मस्टर रोल* तैयार कर सरकारी धन का दुरुपयोग किया और ब्लॉक प्रमुख एवं ब्लॉक विकास अधिकारी के साथ मिलीभगत की।

अनुवादित

- आवेदक द्वारा कथित गबन की कोई विशिष्ट राशि उल्लेखित नहीं की गई।

निर्णय:

- उपर्युक्त परिस्थितियों को देखते हुए अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र स्वीकृत किया जाता है। (अनुच्छेद 7, 8)

- आवेदन स्वीकृत। (E-13)

उद्धृत वाद

- *सुशीला अग्रवाल एवं अन्य बनाम राज्य (दिल्ली एनसीटी) एवं अन्य*, (2020) 5 SCC 1

(माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह द्वारा प्रदत्त)

1- श्री अनूप भैया लाल शुक्ला, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता, श्री दीपक मिश्रा, उत्तर प्रदेश राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2- यह आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन आवेदक द्वारा अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम), विशेष न्यायालय संख्या 3, वाराणसी द्वारा दिनांक 05.02.2025 को पारित आदेश द्वारा उसके अग्रिम जमानत आवेदन की अस्वीकृति के पश्चात प्रस्तुत किया गया है, जिसमें अपराध संख्या 83 सन् 2012, धारा 409, 420, 467, 468, 471, 447ए, 120बी और 34 आईपीसी तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के अंतर्गत, थाना-जलालपुर, जनपद-जौनपुर में अग्रिम जमानत की मांग की गई है।

3- मामले के संक्षिप्त तथ्य निम्नलिखित हैं: -

3.1- जनपद जौनपुर में वित्तीय वर्ष 2004-05 में "संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना" के अंतर्गत किए गए कार्य के संबंध में अनेक शिकायतें प्राप्त होने पर, भ्रष्टाचार निरोधक संगठन द्वारा दो परियोजनाओं में किए गए कार्य के यादृच्छिक नमूनाकरण के आधार पर जांच की गई। जांच के दौरान, किया गया कार्य संतोषजनक नहीं पाया गया। अनेक अनियमितताएं और कदाचार आदि पाए गए। यह भी देखा गया कि कार्य योजना के दिशा-निर्देशों के अनुसार नहीं किया गया था।

3.2- तत्पश्चात, राज्य सरकार के निर्देश पर, जनपद जौनपुर के विभिन्न थानों में कुल 41 प्रथम सूचना रिपोर्टें दर्ज की गईं, जिनमें कुल 249 लोक सेवकों और 112 निजी व्यक्तियों के विरुद्ध अनियमितताओं, गबन, कदाचार और सार्वजनिक धन तथा खाद्यान्न आदि के दुर्विनियोजन के आरोप लगाए गए।

3.3- प्रथम सूचना रिपोर्टों का वर्षवार विवरण निम्नानुसार है:-

वर्ष	प्रथम सूचना रिपोर्ट की संख्या
2012	05
2012	03
2012	01
2012	11
2012	16
2012	05

3.4- उपरोक्त सभी 41 प्रथम सूचना रिपोर्टों की विवेचना आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ, वाराणसी को सौंपी गई।

3.5- वर्तमान मामला ग्राम पंचायत-जलालपुर, जनपद जौनपुर में क्षेत्र पंचायत के अंश से किए गए कार्य से संबंधित है, जिसके संबंध में दिनांक 24.02.2012 को थाना जलालपुर, जनपद जौनपुर में 13 अभियुक्तों के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

4- दिनांक 11.03.2025 को, मामले की विस्तार से सुनवाई की गई और निम्नलिखित आदेश पारित किया गया: -

"1. श्री अनूप भैया लाल शुक्ला, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता और श्री अजय सिंह, राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए.-I को सुना गया तथा अभिलेख में उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

2. यह अग्रिम जमानत आवेदन धारा 482 बीएनएसएस के अंतर्गत आवेदक- विजय कुमार दुबे द्वारा अपराध संख्या 83 सन् 2012, धारा 409, 420, 467, 468, 471, 477-ए, 120-बी, 34 आईपीसी एवं भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के अंतर्गत, थाना जलालपुर, जनपद जौनपुर में, विचारण की लंबितता के दौरान अग्रिम जमानत की मांग करते हुए प्रस्तुत किया गया है।

3. यह मामला आज नवीन पूरक सूची में सूचीबद्ध है। दिनांक 5.3.2025 को, इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किया गया था: -

"1. श्री अनूप भैया लाल शुक्ला, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता और श्री अजय सिंह, राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए.-I को सुना गया तथा अभिलेख में उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

2. यह अग्रिम जमानत आवेदन धारा 482 बीएनएसएस के अंतर्गत आवेदक- विजय कुमार दुबे द्वारा अपराध संख्या 83 सन् 2012, धारा 409, 420, 467, 468, 471, 477-ए, 120-बी, 34 आईपीसी एवं भ्रष्टाचार

अनुवादित

निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के अंतर्गत, थाना जलालपुर, जनपद जौनपुर में, विचारण की लंबितता के दौरान अग्रिम जमानत की मांग करते हुए प्रस्तुत किया गया है।

3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान मामले की प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 24.02.2012 को दर्ज की गई थी और विवेचना आज तक चल रही है तथा आरोप-पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है, शपथ-पत्र के अनुच्छेद 13 को न्यायालय के समक्ष रखा गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि यद्यपि प्रथम सूचना रिपोर्ट 13 नामित अभियुक्तों के विरुद्ध दर्ज की गई थी परन्तु आवेदक का नाम इसमें नहीं है। शपथ-पत्र के अनुच्छेद 10 को रखते हुए यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि विपक्षी संख्या 2 ने दिनांक 03.01.2025 को आवेदक को नोटिस भेजा है, इसलिए उसे वर्तमान मामले में अपनी संलिप्तता की जानकारी हुई और इस प्रकार वह गिरफ्तारी की आशंका में है। यह प्रस्तुत किया गया है कि सह-अभियुक्त सुरेश चंद को इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 07.11.2023 को आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन धारा 438 सीआरपीसी संख्या 8724/2023 में पारित आदेश के द्वारा अग्रिम जमानत प्रदान की गई है, उक्त आदेश की प्रति शपथ-पत्र के साथ अनुलग्नक-5 के रूप में संलग्न है। आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है जैसा कि शपथ-पत्र के अनुच्छेद 18 में कहा गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि मामले में विवेचना चल रही है जो राज्य के आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ द्वारा की जा रही है।

4. यह तथ्य कि आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ द्वारा विवेचना को युगों तक लंबित रखा जा रहा है, अब एक सामान्य तथ्य है। यह न्यायालय अनेक मामलों में इसका दैनिक आधार पर सामना कर रहा है।

5. यह प्रस्तुत किया गया है कि सह-अभियुक्त राजेश कुमार मिश्रा का आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन धारा 482 बीएनएसएस संख्या 1756 सन् 2025 का मामला दिनांक 11.03.2025 को निर्धारित है।

6. आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन धारा 482 बीएनएसएस संख्या 1756/2025 (राजेश कुमार मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) के साथ संबद्ध करें और संबद्ध मामले में निर्धारित तिथि को सूचीबद्ध करें।

7. अगली सूची तिथि तक या धारा 173(2) सीआरपीसी के अंतर्गत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत होने तक, यदि कोई हो, जो भी पहले हो, उपर्युक्त अपराध संख्या में आवेदक- विजय कुमार दुबे की गिरफ्तारी की स्थिति में, संबंधित थाने के थाना प्रभारी के संतोष के अनुसार रु. 50,000/- का व्यक्तिगत बंधपत्र तथा समान राशि में दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर अंतरिम अग्रिम जमानत पर रिहा किया जाएगा, निम्नलिखित शर्तों के साथ: -

(i) आवेदक आज से दो सप्ताह की अवधि के भीतर संबंधित थाने के थाना प्रभारी के समक्ष उपस्थित होगा और इस आदेश की प्रमाणित प्रति इसके अनुपालन के लिए प्रस्तुत करेगा।

अनुवादित

(ii) आवेदक स्वयं को पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए उपलब्ध कराएगा जब और जैसे आवश्यक हो.

(iii) आवेदक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को ऐसे तथ्यों को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष प्रकट करने से हतोत्साहित करने के लिए कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा.

(iv) आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा और यदि उसके पास पासपोर्ट है तो वही संबंधित एसएसपी/एसपी के समक्ष उसके द्वारा जमा किया जाएगा।

8. किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में, विवेचना अधिकारी को आवेदक को प्रदान की गई अग्रिम जमानत को रद्द करने के लिए उपयुक्त आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता होगी।

9. विवेचना अधिकारी को निर्देश दिया जाता है कि वह वर्तमान मामले की विवेचना को विधि के अनुसार पूर्ण करे बिना इस न्यायालय द्वारा आवेदक के वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन पर विचार करते समय की गई किसी भी टिप्पणी से प्रभावित हुए।

10. आवेदक को निर्देश दिया जाता है कि वह आज से दस दिनों के भीतर संबंधित एसएसपी/एसपी के समक्ष इस आदेश की एक प्रति प्रस्तुत करे, जो वर्तमान आदेश के अनुपालन को सुनिश्चित करेगा।"

4. राज्य के लिए विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उनके निर्देशों के अनुसार विवेचना अभी भी लंबित है। यह सामान्यतः देखा जाता है कि उत्तर प्रदेश राज्य के आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ द्वारा विवेचना को युगों तक लंबित रखा जाता है। इसकी लंबितता के लिए एकमात्र औचित्य जब मांगा जाता है तो यह कहा जाता है कि चूंकि मामले की विवेचना की जा रही है और यह एक बड़ा मामला है, इसलिए विवेचना लंबित है। इस न्यायालय ने अनेक मामलों में देखा है और उनमें आदेश भी पारित किए हैं जिनमें आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ से उनके स्तर पर विवेचना की अनंत लंबितता के संबंध में स्पष्टीकरण मांगा गया है। एक ऐसा मामला वर्तमान मामला है। मामले के तथ्यों को नोट करते हुए इस न्यायालय ने इसमें दिनांक 5.3.2025 को आदेश पारित किया है जो पहले से ही यहां ऊपर उद्धृत किया गया है। न्यायालय के समक्ष आने वाले बड़ी संख्या में मामले दर्शाते हैं कि राज्य के आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ द्वारा विवेचना की लंबितता अत्यधिक है और यह प्रतीत होता है कि विवेचना की निगरानी की कोई प्रणाली नहीं है और यहां तक कि ऐसे आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ द्वारा विवेचना को पूर्ण करने में कोई तत्परता भी नहीं है। वर्षों के बाद वे अभियुक्तों के दरवाजे खटखटाना शुरू करते हैं और फिर अभियुक्त न्यायालयों का रुख करते हैं। यह बिल्कुल भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। एकमात्र निष्कर्ष जो निकाला जा सकता है, जैसा कि अभी है, प्रथम दृष्टया वर्तमान मामले के तथ्यों और अन्य मामलों को देखते हुए जो इस न्यायालय के समक्ष आए हैं, यह है कि आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ विवेचना को गंभीरता से नहीं ले रहा है और उन्हें ज्ञात सर्वोत्तम कारणों से इसे अनंत काल तक लंबित रखते हैं। वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा

विवेचना की निगरानी की प्रक्रिया भी अप्रभावी प्रतीत होती है। आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ, पुलिस विभाग के बीच आर्थिक अपराधों और यहां तक कि भ्रष्टाचार से उत्पन्न होने वाले मामलों की विवेचना के लिए तैयार की गई एक विशेष शाखा है। अभियुक्तों को इतनी अधिक छूट देना, विवेचना को लंबे समय तक बिना विवेचना के छोड़ देना साक्ष्य को नष्ट करने और/या इसमें संबंधित लोगों द्वारा साक्ष्य से छेड़छाड़ करने में भी परिणत हो सकता है।

5. पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश, लखनऊ संपूर्ण राज्य के पुलिस प्रकोष्ठ के प्रमुख हैं। मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश, लखनऊ राज्य के प्रशासनिक प्रकोष्ठ के प्रमुख भी राज्य के मामलों की देखभाल के लिए वहां हैं। दोनों अधिकारियों को तीन सप्ताह के भीतर वर्तमान मामले में निम्नलिखित विशेषताओं के संबंध में प्रतिक्रिया देने दें: -

(i). आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ द्वारा विवेचना को लंबे समय तक लंबित क्यों रखा जाता है।

(ii). क्या विवेचना में विलंब के लिए अधिकारियों पर कोई उत्तरदायित्व लगाया गया है और यदि हां तो यदि विवेचना अनंत काल तक विलंबित होती है तो राज्य उनके विरुद्ध कैसे कार्यवाही करता है।

(iii). आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ के समक्ष आज तक लंबित सभी मामलों का विवरण जिनमें विवेचना लंबित है।

(iv). यदि विवेचना लंबे समय से लंबित है और इसकी प्रभावी निगरानी की कोई प्रणाली नहीं है, तो आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ के समक्ष विवेचना की प्रभावी निगरानी और प्रबंधन के लिए एक प्रक्रिया तैयार करने के लिए कदम उठाने होंगे ताकि वे शीघ्रता से पूर्ण हों, इस संबंध में उनका आह्वान।

6. राज्य के लिए विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की और उन्हें मामले में प्रत्युत्तर शपथ-पत्र दायर करने के लिए तीन सप्ताह का समय प्रदान किया गया है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के पास उक्त प्रत्युत्तर शपथ-पत्र के लिए, यदि कोई हो, पुनः उत्तर शपथ-पत्र दायर करने के लिए तत्पश्चात एक सप्ताह का समय होगा।

7. मामले को दिनांक 16.04.2025 को संबद्ध मामले के साथ सूचीबद्ध किया जाए।

8. चूंकि दिनांक 5.3.2025 के आदेश के द्वारा आवेदक के पक्ष में एक अंतरिम आदेश प्रदान किया गया है, अगली सूची तिथि तक या धारा 173(2) सीआरपीसी/धारा 193 बीएनएसएस, 2023 के अंतर्गत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत होने तक, यदि कोई हो, जो भी पहले हो, उपर्युक्त अपराध संख्या में आवेदक- विजय कुमार दुबे की गिरफ्तारी की स्थिति में, संबंधित थाने के थाना प्रभारी के संतोष के अनुसार रु. 50,000/- का नवीन व्यक्तिगत बंधपत्र तथा समान राशि में दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर अंतरिम अग्रिम जमानत पर रिहा किया जाएगा, निम्नलिखित शर्तों के साथ: -

(i) आवेदक आज से दस दिनों की अवधि के भीतर संबंधित थाने के थाना प्रभारी के समक्ष उपस्थित होगा और इस आदेश की प्रमाणित प्रति इसके अनुपालन के लिए प्रस्तुत करेगा।

(ii) आवेदक स्वयं को पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए उपलब्ध कराएगा जब और जैसे आवश्यक हो;

(iii) आवेदक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को ऐसे तथ्यों को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष प्रकट करने से हतोत्साहित करने के लिए कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा.

(iv) आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा और यदि उसके पास पासपोर्ट है तो वही संबंधित एसएसपी/एसपी के समक्ष उसके द्वारा जमा किया जाएगा।

9. किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में, विवेचना अधिकारी को आवेदक को प्रदान की गई अग्रिम जमानत को रद्द करने के लिए उपयुक्त आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता होगी।"

10. विवेचना अधिकारी को निर्देश दिया जाता है कि वह वर्तमान मामले की विवेचना को विधि के अनुसार पूर्ण करे बिना इस न्यायालय द्वारा आवेदक के वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन पर विचार करते समय की गई किसी भी टिप्पणी से प्रभावित हुए।

11. आवेदक को निर्देश दिया जाता है कि वह आज से दस दिनों के भीतर संबंधित एसएसपी/एसपी के समक्ष इस आदेश की एक प्रति प्रस्तुत करे, जो वर्तमान आदेश के अनुपालन को सुनिश्चित करेगा।"

5- आज मामले को लिए जाने पर, राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस न्यायालय के दिनांक 11.03.2025 के आदेश के अनुपालन में, श्री प्रशांत कुमार, पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश, लखनऊ ने दिनांक 11.04.2025 का अपना व्यक्तिगत शपथ-पत्र दायर किया है, जो अभिलेख पर है। मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश, लखनऊ ने शपथ-पत्र दायर नहीं किया।

6- पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा दिनांक 11.04.2025 के शपथ-पत्र के माध्यम से इस न्यायालय द्वारा दिनांक 11.04.2025 के आदेश के द्वारा की गई जांच के उत्तर में प्रस्तुत उत्तर निम्नानुसार हैं: -

*"13. कि **बिंदु संख्या (i)** के उत्तर में, यह विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत किया जाता है कि:-*

(I) शासनादेश संख्या 234/25-8-2014-89(11)/70 टीसी दिनांक 19 अगस्त 2014 में कि आर्थिक अपराधों में जहां गबन, दुर्विनियोजन, सरकारी धन की हानि के मामले दर्ज हैं, प्रथम दृष्टया साक्ष्य पाया जाता है कि आर्थिक हानि की राशि या संभावित राशि बड़ी है, और यदि मामला तकनीकी रूप से जटिल है और आर्थिक अपराध एक से अधिक जनपद में किए गए पाए जाते हैं, तो ऐसे मामलों की विवेचना आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ द्वारा संलग्न सूची में दिए गए प्रारूप में संबंधित दस्तावेजों के साथ की जानी चाहिए और आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ को एक प्रस्ताव उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

(II) जिसके अनुक्रम में, ऐसे मामलों की विवेचना आर्थिक अपराध विवेचना संगठन द्वारा प्राप्त की जाती है।

(III) इस संगठन द्वारा जो भी विवेचना या जांच प्राप्त की जाती है, वह न केवल राज्य के अनेक जनपदों से संबंधित है, बल्कि अनेक मामलों में विवेचना अन्य राज्यों तक विस्तारित होती है। जिसके कारण विवेचना अधिकारियों को साक्ष्य एकत्र करने में अधिक समय और श्रम व्यय करना पड़ता है। परिणामस्वरूप, विवेचना और जांच के निस्तारण में अधिक विलंब होता है।

(IV) मामले से संबंधित अभियुक्त एक ही विभाग से संबंधित हैं और इसलिए नियुक्त नोडल अधिकारी विभाग से दबाव में आता है और अभिलेख/सूचना प्रदान करने में अनावश्यक रूप से विलंब करता है। इसके कारण, विवेचना के निस्तारण में बहुत विलंब होता है और कुछ मामले ऐसे हैं जिनमें वैज्ञानिक साक्ष्य के आधार पर हस्ताक्षर मिलान आवश्यक है। उन मामलों में, एफएसएल से रिपोर्ट विलंब से प्राप्त होती है। इसके कारण भी, विवेचना में विलंब होता है।

(V) आर्थिक अपराध विवेचना संगठन द्वारा जो भी विवेचना निष्कर्ष निकाला जाता है, उसे नियमों के अनुसार अनुमोदन के लिए सरकार को भेजा जाता है और सरकारी अधिकारियों द्वारा समीक्षा के बाद अनुमोदन प्राप्त करने में विलंब होता है। अनुमोदन के बाद, विवेचना में आगे की कानूनी कार्रवाई की जाती है। इसके कारण भी विवेचना लंबित रहती है।

(VI) विवेचना के बाद, यदि मामले में कोई लोक सेवक दोषी पाया जाता है, तो उसके विरुद्ध न्यायालय में मामला दायर करने के लिए अभियोजन स्वीकृति प्राप्त करने के लिए संबंधित विभाग को प्रस्ताव भेजा जाता है, लेकिन अभियुक्त के उसी विभाग में तैनात होने के कारण, संबंधित विभाग द्वारा अभियोजन स्वीकृति प्रदान करने में बहुत विलंब होता है। इसके कारण भी, विवेचना लंबे समय तक लंबित रहती है।

(VII) कुछ मामलों में, यदि संबंधित विभाग अभियोजन स्वीकृति के लिए भेजे गए पत्रों और कथनों से सहमत नहीं होता है, तो उनके द्वारा अभियोजन स्वीकृति नहीं दी जाती है, तो अभियोजन स्वीकृति का प्रस्ताव मुख्य सचिव के समक्ष अनेक मामलों में प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें मुख्य सचिव का अंतिम निर्णय होता है। जिसके कारण कथनों के निस्तारण में बहुत विलंब होता है।

अनुवादित

(VIII) आर्थिक अपराध विवेचना संगठन द्वारा की गई विवेचना में विलंब का मुख्य कारण यह है कि विवेचना के बाद, यदि अभियुक्त दोषी पाया जाता है, तो उसे गिरफ्तार करने का प्रयास किया जाता है, लेकिन यदि अभियुक्त फरार हो जाता है, तो अभियुक्त को गिरफ्तार करने के लिए एनबीडब्ल्यू प्राप्त करने के लिए न्यायालय को आवेदन भेजकर एनबीडब्ल्यू, 82 सीआरपीसी, 83 सीआरपीसी की कानूनी प्रक्रिया प्राप्त की जाती है। यह भी विवेचना में विलंब का कारण बनता है।

*14. कि **बिंदु संख्या (ii)** के उत्तर में, यह विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत किया जाता है कि विवेचना अधिकारी द्वारा विवेचना में विलंब के मामले में की गई कार्रवाई-*

(i) विवेचना के शीघ्र निस्तारण के लिए, मुख्यालय स्तर से वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा मासिक समीक्षा बैठकें बुलाई जाती हैं और इसके अतिरिक्त, समय-समय पर, अधिकारी-वार विवेचना की समीक्षा की जाती है और विवेचना में विलंब का कारण पूछा जाता है और इसके निस्तारण के लिए आवश्यक दिशा-निर्देश जारी किए जाते हैं और विवेचकों को विवेचना के शीघ्र निस्तारण के लिए आदेश दिए जाते हैं।

(ii) नियमित समीक्षा के बाद, यदि यह पाया जाता है कि विवेचना अधिकारियों ने विवेचना के निस्तारण में अनावश्यक विलंब या लापरवाही दिखाई है, तो उनके विरुद्ध दंडात्मक कार्रवाई की जाती है।

15. कि बिंदु संख्या (iii) के उत्तर में, यह विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत किया जाता है कि आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ में लंबित विवेचना, आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ में कुल 701 विवेचना लंबित हैं। इन अधिकांश विवेचनाओं में, अभिलेख संग्रह और साक्ष्य संग्रह की प्रक्रिया चल रही है। उक्त विवेचनाओं का निस्तारण गुण-दोष के आधार पर यथाशीघ्र सुनिश्चित किया जाएगा।

16. कि यह विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत किया जाता है कि वित्तीय वर्ष 2004-2005 के दौरान एसजीआरवाई (संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना) के अंतर्गत जनपद-जौनपुर में खाद्यान्न और धन का गबन और दुर्विनियोजन किया गया है, जनपद-जौनपुर के विभिन्न थानों में कुल 41 प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई हैं जिसमें थाना-आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ, वाराणसी शामिल है, जिसका विवरण निम्नानुसार है:

*17. कि **बिंदु संख्या (iv)** के उत्तर में, यह विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत किया जाता है कि विवेचना के शीघ्र निस्तारण के लिए दिशा-निर्देश-*

(i) यह विनम्रतापूर्वक है कि विवेचना के शीघ्र निस्तारण के लिए, मुख्यालय स्तर पर वरिष्ठ अधिकारियों की देखरेख में एक कार्य योजना तैयार की जाती है। विवेचना की निगरानी के लिए, विवेचना अधिकारी द्वारा क्षेत्र पुलिस अधीक्षक मुख्यालय को मासिक प्रगति रिपोर्ट प्रदान की जाती है। जिसका मुख्यालय स्तर पर वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा निरीक्षण/परीक्षण किया जाता है। विवेचना के बाद, विवेचना अधिकारी द्वारा विवेचना का

सार उल्लेख करते हुए अंतिम प्रगति रिपोर्ट तैयार की जाती है और इसकी अभियोजन शाखा और वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा जांच की जाती है। तत्पश्चात, अंतिम प्रगति रिपोर्ट को अनुमोदन के लिए सरकार को भेजा जाता है।

(ii) विवेचना के शीघ्र निस्तारण के लिए, क्षेत्र पुलिस अधीक्षक और मुख्यालय स्तर पर, विवेचक-वार समीक्षा की जाती है, और विवेचना में कठिनाइयों को सुलझाने/समाधान करने के लिए दिशा-निर्देश जारी किए जाते हैं और संबंधित विभाग से दस्तावेजी साक्ष्य प्राप्त करने के लिए संबंधित विभाग के साथ मुख्यालय स्तर से पत्राचार भी किया जाता है।"

6.1- उपरोक्त उत्तर के अलावा, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि इस मामले की प्रथम सूचना रिपोर्ट 13 अभियुक्तों के विरुद्ध दर्ज की गई थी। विवेचना के दौरान मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर 12 अभियुक्तों की संलिप्तता प्रकाश में आई। 6 नामित अभियुक्त दोषी नहीं पाए गए और उनके नाम विवेचना से अलग कर दिए गए। विवेचना के दौरान 8 अभियुक्तों की मृत्यु हो गई।

6.2- आवेदक अन्य अभियुक्तों के साथ मिलीभगत से हरिपुर पल्ली से श्मशान घाट तक की गई मिट्टी के कार्य का गबन करने के लिए दोषी पाया गया। आवेदक ने एक जाली मस्टर रोल बनाया और ब्लॉक प्रमुख और ब्लॉक विकास अधिकारी के साथ मिलीभगत से लगातार सरकारी धन का उपयोग किया।

6.3- दिनांक 26.03.2025 को आवेदक (विजय कुमार दुबे), सुरेश चंद्र और राजेश कुमार मिश्रा के विरुद्ध आरोप-पत्र दायर किया गया है, जिस पर संबंधित अवर न्यायालय ने दिनांक 02.04.2025 को संज्ञान लिया।

7- आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि प्रासंगिक समय पर, आवेदक ट्यूबवेल ऑपरेटर के रूप में तैनात था। संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना में, वह कर्मचारियों का प्रभारी था। इस मामले में आवेदक के विरुद्ध कोई विभागीय जांच संस्थित नहीं की गई है।

7.1- आवेदक को इस मामले में झूठा फंसाया गया है और विवेचना अधिकारी द्वारा निष्पक्ष विवेचना किए बिना आवेदक के विरुद्ध आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया है। आवेदक के न्यायिक प्रक्रिया से भागने या अभियोजन साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने की कोई संभावना नहीं है। विवेचना के दौरान, आवेदक ने विवेचना के साथ अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया है और उपर्युक्त अंतरिम अग्रिम जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया है जो दिनांक 11.03.2025 को प्रदान की गई थी, इसलिए, वही विचारण के समापन तक पूर्ण बनाए जाने योग्य है। अंत में, यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा और विचारण में सहयोग करेगा।

8- पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और मामले के अभिलेख का अवलोकन करने के पश्चात, मैं पाता हूं कि:-

8.1- 'एसजीआरवाई' के अंतर्गत वर्ष 2004-05 में किए गए कार्य के संबंध में, वर्ष 2012 में छह वर्ष के बाद प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई।

8.2- विवेचना अधिकारी द्वारा पिछले कई वर्षों से आवेदक को गिरफ्तार करने का कोई प्रयास नहीं किया गया।

8.3- प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के लगभग 12 वर्ष बाद, अब आवेदक को गिरफ्तार करने का प्रयास किया जा रहा है।

8.4- अब यह एक सामान्य विशेषता है कि उत्तर प्रदेश राज्य के आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ द्वारा की गई विवेचना एक या दूसरे बहाने से असीमित अवधि के लिए लंबित है और कई वर्षों के बाद, उनके द्वारा अभियुक्तों को गिरफ्तार करने का प्रयास किया जाता है।

8.5- वर्तमान मामले में, संबंधित अधिकारी द्वारा उचित अवधि के भीतर विवेचना को पूर्ण करने के लिए कोई ईमानदार प्रयास नहीं किए गए हैं।

8.6- पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश, लखनऊ ने अपने दिनांक 11.04.2025 के व्यक्तिगत शपथ-पत्र में किसी भी मामले की विवेचना को आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ को सौंपने की प्रक्रिया, आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ द्वारा विवेचना की रीति, विवेचना रिपोर्ट के अनुमोदन या अस्वीकृति और अभियोजन स्वीकृति की प्रदानगी या अस्वीकृति, आदि का उल्लेख किया है।

8.7- <u>दिनांक 11.04.2025 के शपथ-पत्र में यह भी उल्लेख है कि निम्नलिखित कारणों से विवेचना में विलंब होता है</u>:-

i- विवेचना अधिकारियों को साक्ष्य एकत्र करने में अधिक समय और श्रम व्यय करना पड़ता है।
ii- विभागीय अधिकारी अनावश्यक रूप से अभिलेख प्रदान करने में विलंब करते हैं।
iii- एफएसएल से रिपोर्ट विलंब से प्राप्त होती है।
iv- सरकारी अधिकारियों द्वारा समीक्षा के बाद अनुमोदन।
v- अनुमोदन के बाद, आगे की कानूनी कार्रवाई की जाती है।
vi- यदि कोई लोक सेवक दोषी पाया जाता है, तो अभियोजन स्वीकृति प्राप्त करने के लिए संबंधित विभाग को प्रस्ताव भेजा जाता है, लेकिन संबंधित विभाग द्वारा अभियोजन स्वीकृति प्रदान करने में बहुत विलंब होता है।
vii- विभागीय अधिकारी द्वारा अभियोजन के लिए स्वीकृति से इनकार के मामले में, अंतिम निर्णय के लिए मुख्य सचिव को प्रस्ताव भेजा जाता है, जिसके कारण बहुत विलंब होता है।

अनुवादित

viii- अभियुक्त के फरार होने के कारण, गिरफ्तारी के लिए प्रयास किए जाते हैं और उनके विरुद्ध जबरन कार्रवाई प्रारंभ की जाती है।

<u>विवेचना को पूर्ण करने में विलंब के उपर्युक्त कारण, स्वयं राज्य के संबंधित सरकारी अधिकारियों की ओर से की जा रही शिथिलता को दर्शाते हैं, जिसे इस न्यायालय द्वारा समर्थित नहीं किया जा सकता है। मामले के तथ्यों के अंतर्गत, पिछले 12 वर्षों से विवेचना को लंबित रखने के लिए दिया गया स्पष्टीकरण एक प्रशंसनीय स्पष्टीकरण नहीं कहा जा सकता है।</u>

8.8- आज की तिथि तक, समान प्रकृति की अन्य 40 प्रथम सूचना रिपोर्टों से उत्पन्न विवेचना अभी भी लंबित है।

8.9- वर्तमान मामले में इस न्यायालय द्वारा दिनांक 11.03.2025 को आदेश पारित किए जाने के बाद दिनांक 26.03.2025 को आवेदक सहित तीन अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया है।

8.10- आवेदक का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं है। प्रत्युत्तर शपथ-पत्र में यह भी उल्लेख नहीं है कि विवेचना के दौरान आवेदक की संलिप्तता कब और कैसे प्रकाश में आई। केवल सामान्य और टालमटोल वाला कथन उल्लेख किया गया है कि अभियुक्त ने एक जाली मस्टर रोल बनाया और ब्लॉक प्रमुख और ब्लॉक विकास अधिकारियों के साथ मिलीभगत से लगातार सरकारी धन का उपयोग किया। दिनांक 11.03.2025 के प्रत्युत्तर शपथ-पत्र में आवेदक की ओर से कथित गबन की विशिष्ट राशि का उल्लेख नहीं किया गया है।

8.11- यह न्यायालय इस विचार का भी है कि अग्रिम जमानत की प्रदानगी और प्रथम सूचना रिपोर्ट या आरोप-पत्र को रद्द करने के मानदंड भिन्न आधार पर खड़े हैं।

8.12- सह-अभियुक्त सुरेश चंद को समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 07.11.2023 के आदेश द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 8724/2023 में अग्रिम जमानत प्रदान की गई है।

8.13- अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि मामले के तथ्यों के अंतर्गत, आवेदक को अग्रिम जमानत की प्रदानगी से न्याय के विफल होने का खतरा है।

9. बीएनएसएस 2023 की धारा 482 का उद्देश्य यह है कि किसी व्यक्ति को शिकायतकर्ता या किसी अन्य व्यक्ति के व्यक्तिगत प्रतिशोध या द्वेष को संतुष्ट करने के लिए, जो चीजों को प्रत्यक्ष या परदे के पीछे से संचालित कर रहा है, अनावश्यक रूप से परेशान या अपमानित नहीं किया जाना चाहिए। यह सुस्थापित है कि विधायिका द्वारा इस न्यायालय को प्रदान की गई विवेकाधीन शक्ति को एक कठोर सूत्र में नहीं रखा जा सकता है, लेकिन अग्रिम जमानत की प्रदानगी या अस्वीकृति की ऐसी विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग उपयुक्त मामलों में उपलब्ध सामग्री के आधार पर विशेष मामले के तथ्यों का मूल्यांकन करने के बाद और अन्य प्रासंगिक कारकों (आरोप की प्रकृति और गंभीरता, अभियुक्त को आरोपित भूमिका, अभियुक्त का आचरण, आपराधिक पूर्ववृत्त, आवेदक द्वारा न्याय से भागने की संभावना, साक्षियों के साथ छेड़छाड़ या

शिकायतकर्त्ता को धमकी की आशंका, विवेचना या समाज में अग्रिम जमानत की प्रदानगी का प्रभाव, आदि) पर विचार करते हुए सावधानीपूर्वक सूक्ष्म परिशुद्धता के साथ परस्पर विरोधी हित, अर्थात् व्यक्तिगत स्वतंत्रता की पवित्रता और समाज के हित के बीच संतुलन बनाए रखते हुए किया जाना चाहिए।

10- **सुशीला अग्रवाल और अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) और अन्य (2020)5 एससीसी 1** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि अग्रिम जमानत को अनिवार्य रूप से सीमित अवधि का होना आवश्यक नहीं है। उपयुक्त मामले में यह विचारण के समापन तक जारी रह सकती है। इसके अलावा उच्च न्यायालय में निहित अग्रिम जमानत प्रदान करने की शक्ति आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के बाद समाप्त नहीं होती है। यदि दिए गए मामले के तथ्य आवेदक को अग्रिम जमानत की प्रदानगी के लिए हकदार बनाते हैं, तो आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के बाद भी और न्यायालय द्वारा उसका संज्ञान लेने के बाद भी, दूसरी अग्रिम जमानत उच्च न्यायालय के समक्ष निर्वहणीय होगी, भले ही आवेदक को पहले उच्च न्यायालय द्वारा आरोप-पत्र प्रस्तुत होने तक अग्रिम जमानत प्रदान की गई हो।

11- उपरोक्त विवेचना के प्रकाश में, इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के उपरोक्त अनुसार प्रस्तुतीकरण, यह न्यायालय महसूस करता है कि उपर्युक्त अंतरिम अग्रिम जमानत आदेश दिनांक 11.03.2025 पुष्टि किए जाने योग्य है।

12- उपरोक्त के परिणामस्वरूप, आवेदक के पक्ष में दिनांक 11.03.2025 को प्रदान किया गया उपर्युक्त अंतरिम अग्रिम जमानत आदेश विचारण के समापन तक निम्नलिखित शर्तों के अधीन लागू रहेगा।

(i) कि आवेदक विचारण के शीघ्र निस्तारण में सहयोग करेगा और अपरिहार्य के अलावा प्रत्येक तिथि पर नियमित रूप से न्यायालय में उपस्थित होगा।

(ii) कि आवेदक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को ऐसे तथ्यों को न्यायालय के समक्ष प्रकट करने से हतोत्साहित करने के लिए या साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने के लिए कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा।

(iii) कि आवेदक किसी भी आपराधिक गतिविधि में शामिल नहीं होगा।

(iv) उपरोक्त उल्लिखित किसी भी शर्त के उल्लंघन के मामले में, अभियोजन के लिए इस अग्रिम जमानत आदेश को रद्द करने के लिए इस न्यायालय के समक्ष उपयुक्त आवेदन प्रस्तुत करना खुला होगा।

13- उपर्युक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ, वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन **स्वीकार** किया जाता है।

14- यह स्पष्ट किया जाता है कि उपरोक्त की गई टिप्पणियां इस अग्रिम जमानत आवेदन के निर्धारण के उद्देश्य के लिए सीमित हैं और किसी भी तरह से मामले के गुण-दोष पर अभिव्यक्ति के रूप में नहीं समझी जाएंगी। संबंधित विचारण न्यायालय अभिलेख पर सामग्री/साक्ष्यों के आधार पर विधि के अनुसार अपने स्वतंत्र निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए पूर्णतः स्वतंत्र होगा।

(2025) 5 ILRA 973

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 08.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-3971 वर्ष 2025

विपिन तिवारी ... अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता: अजय कुमार शुक्ला, निशा देवी

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय न्याय संहिता, 2023 - धारा 109(1), 324(4), 351(3), 103(1) और 61(2) - भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 - धारा 180, 192 और 230 - जमानत आवेदन की रखरखाव के खिलाफ प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई, क्योंकि जांच अधूरी होने के बावजूद केस डायरी के उद्धरण संलग्न किए गए हैं - इससे पता चलता है कि आवेदक जांच को प्रभावित कर सकता है और विवेचनाधिकारी आरोपी को बचाने की कोशिश कर सकता है - केस डायरी के अर्क को संलग्न करना आम बात हो गई है - केस डायरी के अर्क को संलग्न करना आम बात हो गई है और अनुलग्नक नहीं करना अपवाद है - जब पैरवी करने वाले व्यक्तियों को फोटो प्रतियां स्वतंत्र रूप से प्रदान की जाती हैं, तो जमानत आवेदन में संलग्न केस डायरी के अंश की प्रतियां न्यायालय द्वारा योग्यता की जांच किए बिना जमानत आवेदन को अस्वीकार करने का आधार नहीं बनेंगी - आपत्ति खारिज कर दी गई - घटना के 37 घंटे बाद प्राथमिकी दर्ज की गई - पक्षों के बीच पुरानी दुश्मनी - कई सीसीटीवी कैमरों के फुटेज की जांच के बावजूद मोटरसाइकिल को टक्कर मारने वाले बोलेरो वाहन की पंजीकरण संख्या अज्ञात बनी हुई है और आवेदक इससे जुड़ा नहीं है - उच्च न्यायालय के फोटो हलफनामा केंद्र से कॉल अभिलेखों और फोटो उच्च न्यायालय के परिसर में उसकी उपस्थिति दिखाता है जो घटनास्थल से 175 किमी दूर है - सह-आरोपी को पहले ही जमानत दी जा चुकी है - आवेदक जमानत पर रिहा होने का हकदार है। (प्रस्तर-4, 21, 23, 44)

आवेदन की अनुमति है। (ई-13)

<u>उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची</u>:

अनुवादित

1. सिद्धार्थ बनाम बिहार राज्य: (2005) 12 एस.सी.सी. 545, (प्रस्तर-27)

2. बालकराम बनाम उत्तराखंड राज्य: (2017) 7 एस.सी.सी. 668

3. पी. चिदंबरम बनाम प्रवर्तन निदेशालय: (2019) 9 एस.सी.सी. 24 (अनुवर्ती)

4. कर्नाटक राज्य बनाम शिवन्ना: (2014) 8 एस.सी.सी. 913, (प्रस्तर-6, 10, 10.1 से 10.05)

5. उत्तर प्रदेश की एक बनाम स्थिति: (2020) 10 एस.सी.सी. 505, (प्रस्तर-2 से 5, 21)

6. पुष्पा देवी एम. जटिया बनाम एमएल वधावन: (1987) 3 एस.सी.सी. 367, (प्रस्तर-19) 7. रोहित बिश्नोई बनाम राजस्थान राज्य और अन्य: (2023) 18 एस.सी.सी. 753

8. सुशील सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एस.एल.पी. No.14837 वर्ष 2024 में, (प्रस्तर-2)

9. बनवारी लाल कांछल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन ऑल 2510, (प्रस्तर-85, 86)

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के अधिवक्ता श्री अजय कुमार शुक्ला, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता-1 श्री अनुराग वर्मा, सूचनाकर्ता के अधिवक्ता श्री भुवन राज को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. थाना लालगंज, जिला- प्रतापगढ़ में पंजीकृत भारतीय न्याय संहिता (जिसे बाद में 'बी.एन.एस.' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) की धारा 109(1), 324(4), 351(3), 103(1), 61(2) के तहत केस अपराध संख्या-317 वर्ष 2024 में आवेदक को जमानत पर रिहा करने के लिए प्रस्तुत आवेदन दायर किया गया है।

3. आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि एक सह-आरोपी व्यक्ति सचिन मिश्रा @ आदर्श मिश्रा को आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-2963 वर्ष 2025 में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 09.04.2025 के आदेश के माध्यम से जमानत दी गई है और इसलिए, आवेदक भी समानता के आधार पर जमानत पर रिहा होने का हकदार है।

4. सूचक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री भुवन राज ने जमानत प्रार्थना-पत्र की ग्राह्यता के विरुद्ध एक प्रारम्भिक आपत्ति उठाई है, यह कहते हुए कि जमानत प्रार्थना-पत्र के साथ केस डायरी के कुछ अंशों की प्रतिलिपियाँ संलग्न की गई हैं, जबकि विवेचना अभी पूर्ण नहीं हुई है तथा अभियोजन से संबंधित अभिलेख न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किए गए हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि आवेदक द्वारा केस डायरी के कुछ भागों तक पहुँच बना लिया जाना इस तथ्य का संकेत है कि वह विवेचना को प्रभावित करने में सक्षम है तथा विवेचक अधिकारी अभियुक्त व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान करने का प्रयास कर रहा है।

5. इस संबंध में प्रासंगिक सांविधिक प्रावधान धारा 192 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (इसके बाद 'बी.एन.एस.एस' के रूप में संदर्भित) में निहित है, जो निम्नानुसार प्रदान करता है: -

"192. जांच में कार्यवाही की डायरी।

(1) इस अध्याय के अधीन अन्वेषण करने वाला प्रत्येक पुलिस अधिकारी दिन-ब-दिन एक डायरी में अन्वेषण में अपनी कार्यवाहियों को दर्ज करेगा, जिसमें उस समय का उल्लेख होगा जिस पर सूचना उस तक पहुंची, जिस समय उसने अपनी जांच शुरू की और बंद की, उसके द्वारा दौरा किया गया स्थान या स्थान, और उसकी जांच के माध्यम से पता लगाई गई परिस्थितियों का विवरण।

(2) धारा 180 के तहत जांच के दौरान दर्ज गवाहों के बयान केस डायरी में डाले जाएंगे।

(3) उपधारा (1) में निर्दिष्ट डायरी एक खंड होगी और विधिवत पृष्ठांकित होगी।

(4) कोई फौजदारी न्यायालय ऐसे न्यायालय में जांच या विचारण के अधीन किसी मामले की पुलिस डायरी भेज सकेगा और ऐसी डायरियों का उपयोग मामले में साक्ष्य के रूप में नहीं, बल्कि ऐसी जांच या विचारण में सहायता करने के लिए कर सकेगा।

(5) न तो अभियुक्त और न ही उसके एजेंट ऐसी डायरियों को बुलाने के हकदार होंगे, न ही वह उन्हें केवल इसलिए देखने का हकदार होगा क्योंकि वे न्यायालय द्वारा संदर्भित किए गए हैं; लेकिन, यदि उनका उपयोग उस पुलिस अधिकारी द्वारा किया जाता है जिसने उन्हें अपनी याददाश्त को ताज़ा करने के लिए बनाया है, या यदि न्यायालय ऐसे पुलिस अधिकारी का खंडन करने के उद्देश्य से उनका उपयोग करता है, तो भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 2023 की धारा 148 या धारा 164, जैसा भी मामला हो, के प्रावधान लागू होंगे। (महत्व सन्निविष्ट)

6. हालाँकि, बी.एन.एस.एस की धारा 230 इस प्रकार प्रदान करती है: -

"230. अभियुक्त को पुलिस रिपोर्ट की प्रति और अन्य दस्तावेजों की आपूर्ति - किसी ऐसे मामले में जहां पुलिस रिपोर्ट पर कार्यवाही शुरू की गई है, मजिस्ट्रेट बिना किसी विलम्ब के, और किसी भी स्थिति में अभियुक्त के पेश होने या पेश होने की तारीख से चौदह दिनों से अधिक नहीं, अभियुक्त और पीड़ित को (यदि अधिवक्ता द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया हो) निशुल्क प्रस्तुत नहीं करेगा, निम्नलिखित में से प्रत्येक की एक प्रति: -

(i) पुलिस रिपोर्ट;

(ii) धारा 173 के तहत दर्ज की गई प्राथमिकी;

(iii) धारा 180 की उप-धारा (3) के तहत दर्ज किए गए सभी व्यक्तियों के बयान, जिन्हें अभियोजन पक्ष अपने गवाहों के रूप में जांचने का प्रस्ताव करता है, किसी भी भाग को छोड़कर, जिसके संबंध में पुलिस अधिकारी द्वारा धारा 193 की उप-धारा (7) के तहत इस तरह के बहिष्करण के लिए अनुरोध किया गया है;

(iv) धारा 183 के तहत दर्ज किए गए स्वीकारोक्ति और बयान, यदि कोई हों;

(v) धारा 193 की उपधारा (6) के अंतर्गत पुलिस प्रतिवेदन के साथ मजिस्ट्रेट को प्रेषित किया गया कोई अन्य दस्तावेज अथवा उसका कोई प्रासंगिक अंश:

(iii) और अनुरोध के लिए पुलिस अधिकारी द्वारा दिए गए कारणों पर विचार करते हुए, निदेश दें कि बयान के उस भाग की एक प्रति या उसके ऐसे हिस्से की एक प्रति जो मजिस्ट्रेट उचित समझे, अभियुक्त को प्रस्तुत की जाएगी: परन्तु यह भी कि यदि मजिस्ट्रेट संतुष्ट हो जाता है कि ऐसा कोई दस्तावेज बड़ा है, तो वह अभियुक्त और पीड़ित (यदि किसी अधिवक्ता द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया हो) को उसकी एक प्रति प्रस्तुत करने के बजाय, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के माध्यम से प्रतियां प्रस्तुत कर सकता है या निर्देश दे सकता है कि उसे केवल व्यक्तिगत रूप से या अदालत में एक अधिवक्ता के माध्यम से इसका निरीक्षण करने की अनुमति दी जाएगी: बशर्ते कि इलेक्ट्रॉनिक रूप में दस्तावेजों की आपूर्ति को विधिवत प्रस्तुत माना जाएगा। (महत्व सन्निविष्ट)

7. धारा 192 तथा धारा 230 बी.एन.एस.एस. में निहित प्रावधानों के साधारण पाठ से यह संकेत मिलता है कि यद्यपि धारा 192 बी.एन.एस.एस. यह प्रावधान करती है कि अभियुक्त अथवा उसका अभिकर्ता केस डायरी को मँगाने अथवा उसका अवलोकन करने का अधिकारी नहीं होगा, भले ही उसका उल्लेख न्यायालय द्वारा किया गया हो–और यह अवस्था केवल विचारण के प्रारम्भ के पश्चात् ही आती है–किन्तु धारा 230 बी.एन.एस.एस. यह प्रावधान करती है कि अभियुक्त की उपस्थिति पर, मजिस्ट्रेट अभियुक्त को पुलिस प्रतिवेदन की प्रतियाँ, धारा 180 की उपधारा (3) के अंतर्गत अभिलिखित उन सभी व्यक्तियों के कथनों की प्रतियाँ जिन्हें अभियोजन अपने साक्षियों के रूप में परीक्षित कराना प्रस्तावित करता है, धारा 183 के अंतर्गत अभिलिखित स्वीकारोक्तियाँ एवं कथन, यदि कोई हों, तथा धारा 193 की उपधारा (6) के अंतर्गत पुलिस प्रतिवेदन के साथ मजिस्ट्रेट को प्रेषित किसी अन्य दस्तावेज अथवा उसके किसी प्रासंगिक अंश की प्रतियाँ उपलब्ध कराएगा।

8. धारा 192 और 230 बी.एन.एस.एस में निहित बी.एन.एस.एस के उपरोक्त प्रावधानों को क्रमशः द०प्र०स० की धारा 172 और 207 में स्थान मिला। इस प्रकार धारा 172(3) और धारा 207 द०प्र०स० में निहित प्रावधानों में एक स्पष्ट विरोधाभास था, जो अभियुक्त को प्रदान किए जा रहे अभियोजन पत्र की प्रतियों के संबंध में बी.एन.एस.एस की धारा 192 और 230 में निहित प्रावधानों में विरोधाभास बना हुआ है। जब किसी क़ानून में निहित दो प्रावधानों के बीच संघर्ष होता है, तो अभियुक्त के लिए लाभकारी को वरीयता दी जानी चाहिए, खासकर जब यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप हो। यह प्राकृतिक न्याय का एक बुनियादी सिद्धांत है कि किसी भी व्यक्ति को सुनवाई का पर्याप्त अवसर दिए बिना निंदा नहीं की जानी चाहिए, जिसमें उसे उसके खिलाफ सामग्री की प्रतियां प्रदान करना शामिल होगा। इसलिए, धारा 230 बी.एन.एस.एस में निहित प्रावधान प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप हैं और धारा 192 बी.एन.एस.एस के साथ संघर्ष के मामले में, धारा 230 में निहित प्रावधान लागू होंगे।

9. **सिद्धार्थ बनाम बिहार राज्य: (2005)12 एस.सी.सी. 545**, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 172(3) द०प्र०स० का उल्लेख किया और कहा कि: -

"27. ... धारा 172 के उपखंड (3) में विशेष रूप से यह प्रावधान किया गया है कि न तो अभियुक्त और न ही उसके एजेंट ऐसी डायरियों को बुलाने के हकदार होंगे और न ही वे उन्हें केवल इसलिए देखने के हकदार होंगे

क्योंकि उन्हें अदालत द्वारा संदर्भित किया गया है, लेकिन यदि उनका उपयोग उस पुलिस अधिकारी द्वारा किया जाता है जिसने उन्हें अपनी याददाश्त को ताज़ा करने के लिए बनाया था, या यदि अदालत ऐसे पुलिस अधिकारी का खंडन करने के उद्देश्य से उनका उपयोग करती है, तो धारा 161 द०प्र०स० के प्रावधानों या साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के प्रावधानों का अनुपालन किया जाएगा। अदालत को ऐसी डायरियों को सबूत के रूप में उपयोग न करने के लिए बुलाने का अधिकार है, बल्कि जो कुछ भी हुआ उसका पता लगाने के लिए इसे सहायता के रूप में उपयोग करने के लिए कहा जाता है। अपराध की जांच के दौरान विपिन तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 977। कुछ विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए इन प्रावधानों को दंड प्रक्रिया संहिता में शामिल किया गया है। जांच करने वाले पुलिस अधिकारी को कई सूचनाएं मिल सकती हैं जो आरोपी को नहीं बताई जा सकती हैं। वह इस तरह के तथ्यों को केस डायरी में दर्ज करने के लिए बाध्य है। लेकिन अगर पूरी केस डायरी आरोपी को उपलब्ध कराई जाती है, तो यह दूसरों के लिए गंभीर पूर्वाग्रह पैदा कर सकती है और यहां तक कि उन लोगों की सुरक्षा को भी प्रभावित कर सकती है जिन्होंने पुलिस को बयान दिए हैं। आपराधिक जांच के मामले में गोपनीयता हमेशा रखी जाती है और आरोपी को पूरी केस डायरी उपलब्ध कराना वांछनीय नहीं है। इस मामले में, हमने देखा है कि पूरी केस डायरी आरोपी को दी गई थी और विवेचनाधिकारी से कई तथ्यों पर बड़े पैमाने पर जिरह की गई थी जो मामले के उद्देश्य के लिए बहुत अधिक प्रासंगिक नहीं थे। सत्र न्यायाधीश को यह देखने में सावधानी बरतनी चाहिए थी कि मामले की सुनवाई द०प्र०स० के प्रावधानों के अनुसार की गई है।

10. **बालक्रम बनाम उत्तराखंड राज्य: (2017)7 एस.सी.सी. 668**, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि न तो आरोपी और न ही उसका एजेंट ऐसी केस डायरी के लिए कॉल करने का हकदार है और जांच या मुकदमे के दौरान उन्हें देखने के हकदार भी नहीं हैं। बालकराम (उपरोक्त) के मामले में निर्णय का पालन **पी. चिदंबरम बनाम प्रवर्तन निदेशालय: (2019) 9 एस.सी.सी. 24**, हालांकि, सिद्धार्थ, बालकराम और पी. चिदंबरम (उपरोक्त) के मामलों में उपरोक्त निर्णयों में से कोई भी द०प्र०स० की धारा 207 या धारा 230 बी.एन.एस.एस में निहित वैधानिक जनादेश को ध्यान में नहीं रखता है।

11. हमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **कर्नाटक राज्य बनाम शिवन्ना: (2014) 8 एस.सी.सी. 913** में जारी किए गए निम्नलिखित निर्देशों पर भी ध्यान देना चाहिए: -

6. महानगरों सहित पूरे देश में बलात्कार और सामूहिक बलात्कार के जघन्य अपराध की लगातार पुनरावृत्ति को ध्यान में रखते हुए, हमारा विचार है कि अब समय आ गया है कि द०प्र०स० में सुधार के ऐसे उपायों को कानूनी बिरादरी के साथ-साथ सभी संबंधित लोगों द्वारा विचार-विमर्श और बहस के बाद पेश किया जाए।

* * *

10. इस पर विचार करने पर, हमने हमारे सामने पेश हुए अधिवक्ता द्वारा दिए गए सुझाव को स्वीकार कर लिया है और इसलिए संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, हम पूरे देश के सभी

थाना इंचार्ज को इस न्यायालय के निर्देशों का पालन करने के लिए परमादेश के रूप में अंतरिम निर्देश जारी करते हुए प्रसन्न हैं, जो इस प्रकार हैं:

10.1. बलात्कार के अपराध से संबंधित सूचना प्राप्त होने पर, विवेचनाधिकारी धारा 164 द०प्र०स० के तहत पीड़िता को उसका बयान दर्ज करने के उद्देश्य से किसी भी महानगर/अधिमानतः न्यायिक मजिस्ट्रेट के पास ले जाने के लिए तत्काल कदम उठाएगा। धारा 164 द०प्र०स० के तहत बयान की एक प्रति तुरंत विवेचनाधिकारी को एक विशिष्ट निर्देश के साथ सौंपी जानी चाहिए कि धारा 164 द०प्र०स० के तहत इस तरह के बयान की सामग्री का खुलासा तब तक किसी व्यक्ति को नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि धारा 173 द०प्र०स० के तहत आरोपपत्र/रिपोर्ट दायर नहीं की जाती है।

10.2. विवेचनाधिकारी जहां तक संभव हो पीड़ित को निकटतम महिला महानगर/अधिमानतः महिला न्यायिक मजिस्ट्रेट के पास ले जाएगा। विवेचनाधिकारी विशेष रूप से उस तारीख और समय को अभिलेखों करेगा जिस पर उसे बलात्कार के अपराध के बारे में पता चला और जिस तारीख और समय पर वह पीड़िता को महानगर/अधिमानतः महिला न्यायिक मजिस्ट्रेट के पास ले गया, जैसा कि पूर्वोक्त है।

10.4. यदि पीड़ित को मजिस्ट्रेट के पास ले जाने में 24 घंटे से अधिक की देरी होती है, तो विवेचनाधिकारी को केस डायरी में इसके कारणों को दर्ज करना चाहिए और उसकी एक प्रति मजिस्ट्रेट को सौंपनी चाहिए।

10.5. पीड़िता की चिकित्सा जांच: द०प्र०स० में अधिनियम 25 वर्ष 2005 द्वारा डाली गई धारा 164-ए द०प्र०स० विवेचनाधिकारी की ओर से बलात्कार की पीड़िता की तुरंत चिकित्सकीय जांच कराने का दायित्व लगाती है। इस तरह की मेडिकल जांच की रिपोर्ट की एक प्रति तुरंत मजिस्ट्रेट को सौंपी जानी चाहिए जो धारा 164 द०प्र०स० के तहत पीड़िता का बयान दर्ज करता है।

12. इस प्रकार, हालांकि शिवन्ना (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देश दिया कि धारा 164 द०प्र०स० के तहत बयान की एक प्रति तुरंत विवेचनाधिकारी को एक विशिष्ट निर्देश के साथ सौंपी जानी चाहिए कि धारा 164 द०प्र०स० के तहत इस तरह के बयान की सामग्री का खुलासा तब तक किसी व्यक्ति को नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि धारा 173 द०प्र०स० के तहत आरोप पत्र/रिपोर्ट दायर नहीं की जाती है, यह निर्देश बलात्कार और सामूहिक बलात्कार के मामलों तक ही सीमित था। प्रस्तुत मामले में बलात्कार और सामूहिक बलात्कार करने का आरोप शामिल नहीं है।

13. **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम ए: (2020) 10 एस.सी.सी. 505**, में जारी किए गए निदेश भी विचार करने के लिए प्रासंगिक है, लेकिन निर्देश का उल्लेख करने से पहले, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि इसे निर्णय के निम्नलिखित प्रस्तर में उल्लिखित तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में जारी किया गया था: -

"2. 25-8-2019 को, अपीलकर्ता के पिता ने थाना कोतवाली, जिला शाहजहांपुर में शिकायत दर्ज कराई कि उन्होंने अपीलकर्ता का एक वीडियो उसके फेसबुक अकाउंट पर देखा था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि प्रतिपक्षी 2 और कुछ अन्य लोगों ने अपीलकर्ता और कई अन्य लड़कियों का यौन शोषण किया था; कि अपीलकर्ता से संपर्क नहीं किया जा सकता था; कि वह अपीलकर्ता को खतरे की आशंका कर रहा था; और इस मामले में त्वरित कार्रवाई की जाए।

3. इसके बाद, श्री ओम सिंह, एडवोकेट द्वारा दायर एक शिकायत के अनुसार, इस आशय का कि वह प्रतिपक्षी 2 द्वारा संचालित आश्रम के कानूनी कार्य की देखभाल करता है; और यह कि एक अज्ञात व्यक्ति ने धमकी दी थी कि यदि पांच करोड़ रुपये का भुगतान नहीं किया गया, तो समाज में प्रतिपक्षी 2 की प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंचेगा। उक्त शिकायत तुरंत प्राथमिकी संख्या-442 वर्ष 2019 के रूप में दर्ज की गई।

4. अपीलकर्ता के पिता द्वारा दायर शिकायत दो दिन बाद दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में "भ०द०वि०") की धारा 506 और 364 के तहत अपहरण और यौन उत्पीड़न के अपराधों के संबंध में प्राथमिकी संख्या-445 वर्ष 2019 के रूप में दर्ज की गई थी। 5. अपीलकर्ता का फेसबुक वीडियो वायरल हो गया था, कुछ अधिवक्ताओं द्वारा इस न्यायालय को पत्र लिखे गए थे, जिसके बाद इस न्यायालय में स्वत: संज्ञान रिट याचिका (क्रिल) संख्या-2 वर्ष 2019 दर्ज की गई थी। 30-8-2019 को इस न्यायालय को यह सूचित किया गया कि अपीलकर्ता राजस्थान राज्य के दौसा जिले में पाया गया था। 30-8-2019 को, इस न्यायालय ने अपीलकर्ता का बयान दर्ज किया कि वह उत्तर प्रदेश वापस जाने का इरादा नहीं रखती थी, लेकिन उससे दिल्ली में मिलेगी इसलिए कुछ निर्देश पारित किए गए। उपरोक्त अजीबोगरीब तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने शिवन्ना (उपरोक्त) में जारी किए गए उपरोक्त निर्देशों का उल्लेख किया और कहा कि: -

"21. इस तरह के बयान की एक प्रति प्राप्त करने का अधिकार केवल संज्ञान लेने के बाद और धारा 207 द०प्र०स० और 208 द०प्र०स० द्वारा विचारित स्तर पर उत्पन्न होगा, न कि इससे पहले।

14. उपरोक्त निर्देशों को उस विशिष्ट तथ्यात्मक पृष्ठभूमि के प्रकाश में पढ़ा जाना चाहिए जिसमें वे जारी किए गए थे, जबकि प्रस्तुत मामले में उन मामलों के समान किसी भी तरह से तथ्य शामिल नहीं हैं जिनमें पूर्वोक्त निर्देश जारी किए गए थे।

15. हमें इस तथ्य को नहीं भूलना चाहिए कि राज्य का प्रयास न्याय सुनिश्चित करना है न कि सभी अभियुक्तों की दोषसिद्धि सुनिश्चित करना। राज्य अपने अधिकारियों और कर्मचारियों के माध्यम से कार्य करता है और इसलिए, राज्य के अधिकारियों और कर्मचारियों का प्रयास भी समान होना चाहिए, अर्थात न्याय सुनिश्चित करना और सभी आरोपी व्यक्तियों की दोषसिद्धि सुनिश्चित करना नहीं।

16. यह प्राकृतिक न्याय का एक बुनियादी सिद्धांत है कि किसी भी व्यक्ति को सुनवाई का पर्याप्त अवसर दिए बिना निंदा नहीं की जानी चाहिए, जिसमें उसके खिलाफ सामग्री की प्रतियां प्रदान करना शामिल होगा। निंदा का मतलब केवल दोषसिद्धि और सजा नहीं है। एक निर्दोष व्यक्ति को गिरफ्तार किया जा रहा है और मुकदमे के दौरान जेल में डाल दिया जा रहा है, इसकी भी निंदा की जाती है क्योंकि उसकी प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि के नुकसान के अलावा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के उसके मौलिक अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

17. धारा 230 बी.एन.एस.एस में प्रावधान है कि अभियुक्त की उपस्थिति पर, मजिस्ट्रेट अभियुक्त को पुलिस रिपोर्ट की प्रतियां, धारा 180(3) के तहत दर्ज किए गए बयानों की प्रतियां, धारा 183 के तहत दर्ज किए गए स्वीकारनामे और बयानों और धारा 193(6) के तहत पुलिस रिपोर्ट के साथ मजिस्ट्रेट को भेजे गए किसी भी अन्य दस्तावेज को प्रस्तुत करेगा। अग्रिम जमानत के अपने उपाय का लाभ उठाने के इच्छुक आरोपी व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष पेश होना होगा और उसे न्यायालय के समक्ष पूर्ण तथ्य प्रस्तुत करने की आवश्यकता होगी, जिसमें जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री शामिल हो सकती है, जिसके लिए आरोपी धारा 230 बी.एन.एस.एस के तहत हकदार होगा।

18. यदि किसी निर्दोष व्यक्ति को आरोपी बनाया जाता है, तो उसे हिरासत में ले लिया जाता है और उसे तब तक अभियोजन के कागजात प्रदान नहीं किए जाते हैं जब तक कि जांच समाप्त नहीं हो जाती, न्यायालय में एक आरोप पत्र दायर नहीं किया जाता है और न्यायालय अपराध का संज्ञान लेता है, वह उस अवधि तक जेल में रहेगा और वह सभी प्रासंगिक तथ्यों और सामग्री से युक्त एक उचित रूप से तैयार जमानत आवेदन भी प्रस्तुत नहीं कर पाएगा, जिस पर विचार करने की आवश्यकता है उनकी जमानत याचिका पर फैसला करने के लिए न्यायालय द्वारा।

19. उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के विनियम 107 में निहित प्रावधान पर एक नजर डालना उचित होगा, जो निम्नानुसार प्रदान करता है: -

"107. विवेचनाधिकारी को खुद को साक्ष्य दर्ज करने वाला केवल लिपिक नहीं मानना चाहिए। निरीक्षण करना और अनुमान लगाना उसका कर्तव्य है। हर मामले में, वह गवाहों के सबूतों की जांच करने में अपराध स्थल और सामान्य परिस्थितियों के अपने विशेष ज्ञान का उपयोग करेगा, और हर मामले में जहां अपराधी अज्ञात है, वह उस दिशा का निर्धारण करेगा जिसमें वह उसकी खोज करेगा। उसे स्थानीय अपराधियों के तौर-तरीकों का अध्ययन करना चाहिए, जो स्थानीय पुलिस को पता है, ताकि उनके हाथों के काम को पहचाना जा सके और गवाहों और शिकायतकर्ता के संदेह पर विश्वास करने के खिलाफ सतर्क रहना चाहिए जो स्पष्ट निष्कर्षों के विपरीत हैं जो तथ्यों से उत्पन्न हो सकते हैं। उसे याद रखना चाहिए कि सच्चाई का पता लगाना उसका कर्तव्य है, न कि केवल एक दृढ़ विश्वास हासिल करना। उनमें, उसे किसी भी व्यक्ति के पक्ष या विपक्ष में तथ्यों के बारे में कोई दृष्टिकोण नहीं बनाना चाहिए और यद्यपि उसे ऐसे मामले में बचाव के लिए सबूत की तलाश करने के लिए रास्ते से बाहर नहीं जाना चाहिए जिसमें उसके पास यह मानने के लिए संतोषजनक कारण हैं कि

आरोपी दोषी है, उसे हमेशा आरोपी को उसके सामने सबूत पेश करने का अवसर देना चाहिए और, यदि प्रस्तुत किया जाता है, तो ऐसे सबूतों पर सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए। सेंधमारी के मामलों में, जांच इस विषय पर दिए गए विशेष आदेशों के अनुसार की जानी चाहिए। (महत्व सन्निविष्ट)

20. यदि कोई विवेचनाधिकारी जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री की प्रतियां प्रदान करता है, जिसके लिए अभियुक्त धारा 230 बी.एन.एस.एस के तहत हकदार है, तो अदालत के समक्ष पेश किया जा सकता है ताकि न्यायालय मामले के सभी प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए जमानत याचिका पर निर्णय ले सके, तो इसके परिणामस्वरूप जमानत आवेदन पर उसके गुण-दोष के आधार पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।

21. यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि इस न्यायालय में शायद ही कभी ऐसे मामले का सामना करना पड़ता है जहां केस डायरी के अर्क से फोटोकॉपी जमानत आवेदन के साथ संलग्न नहीं होती है। केस डायरी के उद्धरणों की प्रतियां संलग्न करना एक आदर्श बन गया है और इसे संलग्न नहीं करना एक अपवाद है। जब आपराधिक मामलों के पैरवी करने वाले व्यक्तियों को फोटोकॉपी स्वतंत्र रूप से प्रदान की जा रही है, तो जमानत आवेदन के साथ संलग्न केस डायरी के अर्क की प्रतियां अदालत द्वारा इसके गुण-दोष की जांच किए बिना जमानत आवेदन को अस्वीकार करने का आधार नहीं बनेगी। इसके अलावा, एक व्यक्ति जो हिरासत में है, उसे किसी व्यक्ति द्वारा उसके लाभ के लिए खरीदी गई केस डायरी के उद्धरण के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, क्योंकि वह इस प्रक्रिया में सीधे तौर पर शामिल नहीं है और इसलिए, इस प्रारंभिक आपत्ति पर उसकी जमानत याचिका को अस्वीकार करके उसे पीड़ित नहीं किया जा सकता है।

22. पुष्पा देवी एम. जटिया बनाम एमएल धवन: (1987) 3 एस.सी.सी. 367 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि: -

"19. ... इस राय का समर्थन करने के लिए प्राधिकरण की एक लंबी लाइन है कि अदालत इस बात से चिंतित नहीं है कि सबूत कैसे प्राप्त किए जाते हैं। हालांकि नियम एक अपवाद के अधीन है। न्यायाधीश के पास कथित अपराध की शुरुआत के बाद खरीदे गए सबूतों को बाहर करने का विवेक है, जो तकनीकी रूप से स्वीकार्य होने के बावजूद न्यायाधीश को अनुचित प्रतीत होता है। इस तरह के मामले का शास्त्रीय उदाहरण यह है कि इस तरह के साक्ष्य का पूर्वाग्रहपूर्ण प्रभाव इसके साक्ष्य मूल्य के अनुपात से बाहर होगा। घर के करीब आते हुए, इस न्यायालय ने ***मगराज पटोडिया बनाम आरके बिड़ला [(1970)2 एस.सी.सी. 888: ए.आई.आर. 1971 एस.सी. 1295: (1971)2 एस.सी.आर 118]*** *में माना कि एक दस्तावेज जो अनुचित या यहां तक कि अवैध तरीकों से खरीदा गया था, इसकी स्वीकार्यता को रोक नहीं सकता है, बशर्ते कि इसकी प्रासंगिकता और वास्तविकता साबित हो जाए।*

23. पूर्वगामी कारणों से, मुझे सूचनाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति में कोई बल नहीं मिलता है और इसे अस्वीकार कर दिया जाता है। अब मैं आवेदन के गुण-दोष की जांच करने के लिए आगे बढ़ता हूं।

24. श्री. सूचनाकर्ता के अधिवक्ता भुवन राज ने जोरदार तरीके से खारिज कर दिया है। उन्होंने जमानत आवेदन का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि घटना 05.08.2024 को हुई थी, आवेदक को मुख्य आरोपी बताया जा रहा है, जांच अभी भी लंबित है और घटना में शामिल वाहन को आज तक बरामद नहीं किया गया है क्योंकि जांच आरोपी व्यक्तियों से प्रभावित हो रही है। उन्होंने कहा है कि यदि आवेदक को जमानत पर रिहा किया जाता है, तो जांच उसके प्रभाव से प्रभावित होने की पूरी संभावना है।

25. सूचनाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आरोपी व्यक्तियों ने जानबूझकर बुलेट मोटरसाइकिल को टक्कर मारी थी, जिसे मृतक उसे खत्म करने के लिए सवारी कर रहा था और पक्षगण के बीच एक पुरानी संपत्ति विवाद के कारण इसे दुर्घटना की झलक देने के लिए। उन्होंने रोहित बिश्नोई बनाम रोहित बिश्नोई राजस्थान राज्य और अन्य: (2023) 18 एस.सी.सी. 753, के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जमानत आवेदन पर निर्णय लेते समय ध्यान में रखे जाने वाले बिंदुओं को निम्नलिखित शब्दों में दोहराया है: -

"इस अदालत ने कई मौकों पर जमानत याचिका पर फैसला करते समय अदालत द्वारा विचार किए जाने वाले कारकों पर चर्चा की है। जमानत देने का निर्णय लेते समय जिन प्राथमिक विचारों को संतुलित किया जाना चाहिए, वे हैं:

(1) अपराध की गंभीरता;

(ii) अभियुक्त के न्याय से भागने की संभावना;

(iii) अभियोजन पक्ष के गवाहों पर अभियुक्त की रिहाई का क्या प्रभाव पड़ता है;

(iv) अभियुक्त द्वारा सबूतों के साथ छेड़छाड़ करने की संभावना। हालांकि ऐसी सूची संपूर्ण नहीं है, यह कहा जा सकता है कि यदि कोई अदालत जमानत आवेदन पर निर्णय लेने में ऐसे कारकों को ध्यान में रखती है, तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि निर्णय अपने विवेक के विवेकपूर्ण प्रयोग के परिणामस्वरूप हुआ है, गुडिकांति नरसिम्हुलु बनाम आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय; प्रह्लाद सिंह भाटी बनाम प्रह्लाद सिंह भाटी बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) और अनिल कुमार यादव बनाम अनिल कुमार यादव। राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली)"

अनुवादित

26. उन्होंने एस.एल.पी. संख्या-14837 वर्ष 2024 में उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सुशील सिंह के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 17.01.2025 के आदेश के निम्नलिखित भाग पर भी भरोसा किया है जो इस प्रकार है:-

"2. इलाहाबाद में उच्च न्यायालय ने आरोपी प्रतिपक्षी संख्या-2 इंद्रभवन सिंह की जमानत के लिए आवेदन पर विचार करते हुए एक मिनी विचारण किया और ऐसी टिप्पणियां कीं, जिनमें मुकदमा चलने पर न्याय को भटकाने की क्षमता है। सुशील सिंह (अपीलकर्ता) के भाई की हत्या के अपराध के संबंध में लगाए गए आरोपों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, आरोपी प्रतिपक्षी संख्या-2 को दी गई भूमिका, साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 के संदर्भ में उसके निवास से पिस्तौल की बरामदगी की परिस्थिति, कार्यवाही का चरण और प्रतिपक्षी संख्या-2 का पूर्ववृत, हमारी सुविचारित राय है कि उच्च न्यायालय ने प्रतिपक्षी संख्या-2 को जमानत पर बड़ा करना उचित नहीं था, मुख्य रूप से प्राथमिकी दर्ज करने में 8 घंटे और 30 मिनट की देरी के कारण और कथित चश्मदीद गवाहों के बयानों पर उचित विश्वास किए बिना ग्राम प्रधान के बयान पर भरोसा किया।

27. उपरोक्त आदेश इस न्यायालय द्वारा पारित एक विशेष आदेश को रद्द करते हुए पारित किया गया है, जिसमें प्राथमिकी के पंजीकरण में 8 घंटे और 30 मिनट की देरी के प्राथमिक आधार पर एक आरोपी व्यक्ति को जमानत दी गई थी और कथित चश्मदीद गवाहों के बयानों पर उचित विश्वास नहीं किया गया था। यह आदेश कानून के किसी भी सामान्य सिद्धांत को निर्धारित नहीं करता है जो सार्वभौमिक अनुप्रयोग का हो सकता है। यह मिसालों के कानून का एक स्थापित सिद्धांत है कि केवल एक निर्णय द्वारा निर्धारित कानून का अनुपात बाध्यकारी है। मामले के अजीबोगरीब तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में की गई टिप्पणियों का सार्वभौमिक अनुप्रयोग नहीं है और उन टिप्पणियों को एक मिसाल के रूप में उद्धृत नहीं किया जाना चाहिए।

28. प्रस्तुत मामले में प्राथमिकी 06.08.2024 को 23:26 बजे आवेदक और उसके भाई अंबिकेश तिवारी के खिलाफ दर्ज की गई थी, जिसमें कहा गया था कि सूचनाकर्ता के पति और उसके चचेरे भाई मनोज शुक्ला के बड़े भाई हरिकेश कुमार तिवारी 05.08.2024 को सुबह 10:00 बजे जमानत मामले के सिलसिले में बुलेट मोटरसाइकिल से लालगंज तहसील जा रहे थे। सुबह करीब 10:30 बजे जैसे ही वे रायपुर पेट्रोल पंप के पास पहुंचे, आवेदक सफेद बोलेरो पहनकर वहां आया, जिसका रजिस्ट्रेशन संख्या पता नहीं चल पाया है और उसने बाईं ओर से बुलेट मोटरसाइकिल को टक्कर मार दी जिससे हरिकेश तिवारी गंभीर रूप से घायल हो गए और पीछे की सीट पर बैठे मनोज कुमार को भी चोटें आईं। बोलेरो भाग गई। प्राथमिकी में कहा गया है कि पिछले कुछ दिनों से आरोपी कुछ पुरानी दुश्मनी के कारण पीड़ितों को जान से मारने की धमकी दे रहे थे।

29. हरिकेश तिवारी की इलाज के दौरान मृत्यु हो गई और 19.08.2024 को उनका शव परीक्षण किया गया। शव परीक्षण परीक्षा रिपोर्ट में दाहिने कान के ऊपर सिर के दाईं ओर 12 सेमी X 6 सेमी आकार का एक संलयन, सिर के पिछले हिस्से पर 6 सेमी X 4 सेमी आकार का एक संलयन, दाहिने कंधे के ऊपर 6 सेमी X

3 सेमी आकार का एक घर्षण और दाहिने पैर के औसत दर्जे के पहलू पर एक घर्षण चोट का उल्लेख है। मौत का कारण शव परीक्षण से पहले सिर में चोट लगने के कारण कोमा में पाया गया है।

30. धारा 180 बी.एन.एस.एस. के तहत दर्ज सूचनाकर्ता के बयान में, उसने कहा कि उसका पति किसी मामले के संबंध में जेल में है। सूचनाकर्ता के परिवार और आरोपी व्यक्तियों के बीच संपत्ति का विवाद है। सूचनाकर्ता के ससुर और आरोपी व्यक्तियों के पिता सगे भाई हैं। धान की बुवाई के समय आरोपी का हरिकेश तिवारी के साथ झगड़ा हो गया था और पुलिस ने विपिन तिवारी और हरिकेश तिवारी (मृतक) का चालान किया था और मृतक उस मामले में मनोज कुमार शुक्ला और सुनील कुमार शुक्ला के साथ जमानत के लिए जा रहा था। जैसे ही वे रायपुर पेट्रोल पंप के पास पहुंचे थे, अज्ञात पंजीकरण संख्या की एक सफेद बोलेरो हरिकेश तिवारी की बुलेट मोटरसाइकिल से टकरा गई, जिससे वे नीचे गिर गए और दोनों घायल हो गए। हरिकेश तिवारी को सीएचसी, लालगंज ले जाया गया, जहां से उन्हें जिला अस्पताल प्रतापगढ़ भेजा गया। इसके बाद उसे इलाहाबाद रेफर कर दिया गया, लेकिन लखनऊ के एक निजी अस्पताल में उसका इलाज चल रहा था। मनोज शुक्ला और सुनील कुमार शुक्ला ने बताया था कि बोलेरो बसंतगंज से उनका पीछा कर रही थी, लेकिन चूंकि इसमें पर्दे लगाए गए थे, इसलिए वाहन में बैठे लोगों को देखा नहीं जा सकता था।

31. धारा 307, 323, 506 भ०द०वि० के तहत एक अन्य आपराधिक मामले में आवेदक की संलिप्तता का खुलासा जमानत आवेदन के प्रस्तर-19 में किया गया है जिसमें उसे पहले ही जमानत दी जा चुकी है।

32. जमानत आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे में यह भी कहा गया है कि घटना की तारीख यानी 05.08.2024 को कमलेश तिवारी की जमानत याचिका का विरोध करने के लिए आवेदक इस न्यायालय में उपस्थित था। फोटो एफिडेविट में उनकी तस्वीर पूर्वाह्न 11:20 बजे लगभग 11:20 बजे ली गई थी और उसी की एक प्रति जमानत आवेदन के अनुलग्नक संख्या-8 के रूप में संलग्न की गई है।

33. प्राथमिकी संख्या-201 वर्ष 2021 की एक प्रति जमानत आवेदन के साथ संलग्न की गई है जो आवेदक द्वारा तीन व्यक्तियों के खिलाफ दर्ज की गई थी:

(i) कमलेश तिवारी (वर्तमान सूचनाकर्ता मीरा तिवारी के पति)

(ii) आदर्श तिवारी, पुत्र कमलेश तिवारी और

(iii) कमलेश तिवारी के पिता देवेंद्र तिवारी ने बताया कि सूचनाकर्ता की 16 वर्ष की भतीजी द्वारा आम तोड़ने के संबंध में विवाद के कारण आरोपी व्यक्तियों ने उस पर गोली चला दी जिससे वह गंभीर रूप से घायल हो गई। उस मामले में सूचनाकर्ता का पति जेल में है। हालांकि, सूचनाकर्ता का दावा है कि आरोपी व्यक्तियों ने

धान की बुवाई के समय हरिकेश तिवारी के साथ झगड़ा किया था और पुलिस ने आवेदक और हरिकेश तिवारी का चालान किया था और मृतक घटना की तारीख को उस मामले में जमानत के लिए जा रहा था।

34. जांच के दौरान यह पता चला कि बोलेरो में बैठे तीसरे व्यक्ति सचिन मिश्रा @ आदर्श मिश्रा थे और उन्हें आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-2963 वर्ष 2025 में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 09.04.2025 के आदेश के माध्यम से जमानत दी गई है।

35. अपर शासकीय अधिवक्ता-I ने कहा है कि केस डायरी में मनोज कुमार शुक्ला को लगी किसी भी चोट का उल्लेख नहीं है। मनोज कुमार शुक्ला की मेडिको-लीगल जांच रिपोर्ट के निष्कर्षों को दर्ज करने में विफलता प्रथम दृष्टया इंगित करती है कि उन्हें कोई चोट नहीं आई थी।

36. विवेचनाधिकारी ने दर्ज किया है कि विपिन तिवारी (आवेदक), उनकी चाची सरोज तिवारी और आवेदक के दोस्त सचिन मिश्रा के कॉल डिटेल अभिलेखों के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि विपिन तिवारी और सरोज तिवारी के मोबाइल फोन लोकेशन 05.08.2024 की सुबह से घटना के बाद तक एक ही स्थान पर पाए गए हैं। विपिन तिवारी और सरोज तिवारी के मोबाइल फोन के बीच सुबह 06:00 बजे कॉल शुरू हुई और यह सुबह 07:00 बजे तक जारी रही, जिसके दौरान आवेदक के मोबाइल फोन का लोकेशन रानीगंज, कैथोला से रायबरेली और लखनऊ होते हुए सैलून तक था। रानीगंज, कैथोला से रायबरेली और लखनऊ होते हुए सैलून के बीच मोबाइल फोन की आवाजाही से संकेत मिलता है कि विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज की गई टिप्पणी कि 05.08.2024 की सुबह से उसी टावर पर घटना के बाद तक इसका स्थान पाया गया है, गलत है।

37. आवेदक के कॉल डिटेल अभिलेखों के अवलोकन के बाद केस डायरी में दर्ज टिप्पणियों से संकेत मिलता है कि आवेदक ने 08:59:48 बजे फोन किया था, जबकि उसका स्थान एस.जी.पी.जी.आई., लखनऊ था। उन्होंने 09:30:46 पर एक फोन कॉल किया है, जबकि उनका स्थान विनीत खंड, गोमती नगर लखनऊ में था और एक अन्य कॉल 10:06:32 बजे की गई थी, जबकि उनका स्थान न्यू उच्च न्यायालय कंपाउंड, गोमती नगर, लखनऊ में था। 10:40:23 बजे एक और कॉल की गई, जब उनका लोकेशन लखनऊ के गोमती नगर में उच्च न्यायालय कंपाउंड में था। इसके बाद, 11:31:49 बजे, आवेदक का मोबाइल फोन लोकेशन सुरेंद्र नगर, फैजाबाद रोड, लखनऊ में था, जो इस न्यायालय के परिसर के पास एक स्थान है।

38. इस उच्च न्यायालय के परिसर में आवेदक का स्थान उसके कॉल डिटेल अभिलेखों से 05.08.2024 को 10:06:32 बजे से 10:40:23 बजे तक स्थापित होता है, जबकि दुर्घटना 05.08.2024 को लगभग 10:30 बजे जिला प्रतापगढ़ में हुई थी, जो लखनऊ में इस उच्च न्यायालय के परिसर से लगभग 175 किलोमीटर दूर है।

39. 05.08.2024 को सुबह 11:20 बजे इस न्यायालय में आवेदक की उपस्थिति इस न्यायालय के फोटो हलफनामा केंद्र में ली गई उसकी तस्वीर से स्थापित होती है, जिसकी एक प्रति जमानत आवेदन के साथ संलग्न की गई है।

40. अपर शासकीय अधिवक्ता-I ने यह भी प्रस्तुत किया है कि यह केस डायरी में दर्ज है कि बोलेरो कार और बुलेट मोटरसाइकिल सीसीटीवी के कई कैमरों के फुटेज में देखी गई थी। हालांकि, किसी भी सीसीटीवी फुटेज में बोलेरो कार या उसमें बैठे लोगों का रजिस्ट्रेशन संख्या नहीं देखा जा सकता है।

41. अपर शासकीय अधिवक्ता-I ने बताया है कि जांच 05.02.2025 को निरीक्षक (अपराध) को स्थानांतरित कर दी गई है।

42. सूचनाकर्ता के अधिवक्ता ने विवेचनाधिकारी को दोषी ठहराया है कि वह आपत्तिजनक सफेद बोलेरो को बरामद करने में विफल रहा है और उसने तर्क दिया है कि यह आवेदक के प्रभाव में किया गया है जो जेल में बंद है। न्यायालय को इस निवेदन में कोई बल नहीं मिलता है क्योंकि बोलेरो कार को केवल यह विवरण देकर पुनर्प्राप्त करने में विफलता कि यह सफेद रंग की थी और इसमें पर्दे लगाए गए थे और इसकी पंजीकरण संख्या या इसकी पहचान करने के लिए पर्याप्त किसी अन्य विशेष का खुलासा किए बिना, प्रथम दृष्टया जानबूझकर नहीं लगते हैं।

43. जब हम रोहित बिश्नोई (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में मामले के तथ्यों की जांच करते हैं, तो प्रस्तुत मामले में आरोप यह है कि एक बुलेट मोटरसाइकिल को बोलेरो कार ने टक्कर मार दी थी और सूचनाकर्ता के बयान और कई सीसीटीवी फुटेज की जांच करके की गई टिप्पणियों के अनुसार, न तो बोलेरो का रजिस्ट्रेशन संख्या देखा जा सका और न ही उसमें सवार लोगों का। सूचनाकर्ता का दावा है कि आरोपी व्यक्तियों ने मृतक की हत्या की और उन्होंने इसे एक दुर्घटना का आभास देने की कोशिश की। सूचनाकर्ता के अनुसार भी घटना दुर्घटना की तरह लग रही है। आवेदक और आरोपी व्यक्ति एक ही पूर्वज के वंशज हैं और वे आवेदक के दादा द्वारा छोड़ी गई जमीन के एक ही टुकड़े के लिए लड़ रहे हैं। आवेदक के कानून की प्रक्रिया से भागने की कोई गंभीर संभावना नहीं है। जमानत आवेदन में कहा गया है कि सूचनाकर्ता के पति पर धारा 307 भ०द०वि० के तहत अपराध करने का आरोप है, जिसमें आवेदक की भतीजी के कंधे पर बंदूक की गोली लगी थी और वह उस मामले के संबंध में जेल में है। इसलिए, प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत होता है कि सूचनाकर्ता के परिवार के सदस्यों का भी स्पष्ट इतिहास नहीं है।

44. बिना कोई टिप्पणी किए जो मुकदमे के परिणाम को प्रभावित कर सकता है, मेरा विचार है कि तथ्य यह है कि प्राथमिकी घटना के 37 घंटे बाद दर्ज किया गया था; पक्षगण के बीच एक पुरानी दुश्मनी है; मोटरसाइकिल को टक्कर मारने वाली बोलेरो के पंजीकरण संख्या की पहचान कई सीसीटीवी कैमरों के फुटेज की जांच के बाद भी नहीं की गई है; आवेदक उस बोलेरो वाहन से जुड़ा नहीं है और आवेदक के कॉल डिटेल अभिलेखों और इस

न्यायालय के फोटो हलफनामा केंद्र में ली गई उसकी तस्वीर से संकेत मिलता है कि घटना के समय वह इस उच्च न्यायालय के परिसर में मौजूद था जो घटनास्थल से लगभग 175 किलोमीटर की दूरी पर है और एक अन्य आरोपी व्यक्ति के पास पहले से ही 5 सभी हैं। विपिन तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 985 को जमानत दे दी गई है, मेरा विचार है कि आवेदक भी जमानत पर रिहा होने का हकदार है।

45. तदनुसार, इस जमानत आवेदन की **अनुमति** दी जाती है।

46. आवेदक-विपिन तिवारी को निम्नलिखित शर्तों के अधीन संबंधित मजिस्ट्रेट/न्यायालय की संतुष्टि के लिए एक व्यक्तिगत बांड और समान राशि में दो-दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर उपरोक्त मामले में जमानत पर रिहा किया जाए: -

(i) आवेदक अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा;

(ii) आवेदक अभियोजन पक्ष के गवाहों पर दबाव नहीं डालेगा;

(iii) आवेदक विचारण न्यायालय द्वारा निर्धारित प्रत्येक तारीख को उपस्थित होगा।

47. मामले से भाग लेने से पहले, न्यायालय अभिलेखों पर यह रखने के लिए बाध्य है कि यद्यपि इस जमानत आवेदन पर कम समय में एक छोटे आदेश द्वारा निर्णय लिया जा सकता था, सूचनाकर्ता के अधिवक्ता ने मामले के कई पहलुओं पर बहुत विस्तृत प्रस्तुतियाँ की हैं। इस न्यायालय को यह बताना पड़ा कि जमानत आवेदन का विरोध करते समय प्रस्तुत प्रस्तुतियों को मामले के गुण-दोष से नहीं निपटना चाहिए और यह कि 44 नए मामले और 200 सूचीबद्ध मामले हैं जिन्हें न्यायालय द्वारा निपटाया जाना है और इसलिए, उन्हें अन्य वादियों के प्रति भी विचारशील होना चाहिए, लेकिन वह कायम रहे, हालांकि बेहद सम्मानजनक तरीके से कि वह अपने मुवक्किल के हित में प्रस्तुतियाँ आगे बढ़ाने के लिए बाध्य है। वह एक तरह से सही है, लेकिन साथ ही, इस बात को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता है कि जमानत आवेदन पर निर्णय लेते समय, न्यायालय से लघु विचारण आयोजित करने की अपेक्षा नहीं की जाती है और इस न्यायालय ने अनावश्यक विवरण में जाए बिना, प्रासंगिक बिंदुओं पर संक्षिप्त विचार करने के आधार पर जमानत आवेदन पर निर्णय लेने का भी प्रयास किया। हालांकि, जब कोई अधिवक्ता जारी रहता है और विस्तृत प्रस्तुतियाँ प्रस्तुत करता है, तो न्यायालय को उसे अभिलेखों करना होगा और उससे निपटना होगा, क्योंकि किसी अधिवक्ता की प्रस्तुतियों का उल्लेख नहीं करना और उससे निपटना अधिवक्ता को शिकायत का एक वास्तविक कारण देगा। इसके परिणामस्वरूप आदेश में विभिन्न टिप्पणियां की गई हैं, जिन्हें सूचनाकर्ता के अधिवक्ता के बने रहने के अलावा टाला जा सकता था। इसलिए, अत्यधिक सावधानी के रूप में, यह स्पष्ट किया जाता है कि इस आदेश में की गई कोई भी टिप्पणी मामले के गुण-दोष को प्रभावित नहीं करेगी।

48. इस लंबे आदेश के परिणामस्वरूप कई अन्य मामलों की कीमत पर एक जमानत आवेदन पर निर्णय लेने में न्यायालय का उचित समय से अधिक समय खर्च हुआ है, जिस नुकसान को पूरा नहीं किया जा सकता है। **बनवारी लाल कंछल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन 2510** में इस न्यायालय ने कहा था कि: -

"85. अक्सर यह कहा जाता है कि न्यायाधीश और अधिवक्ता रथ के पहिए हैं। इस रथ की गति बढ़ाने के लिए, रथ के अन्य पहियों यानी अधिवक्ताओं को भी गियर बदलना चाहिए और अदालतों में न्याय की गति को बढ़ाने के लिए अदालतों की अधिक कुशलता से सहायता करनी चाहिए।

86. मैं इस अवसर पर सभी अधिवक्ताओं से अनुरोध करता हूं कि वे अदालत के समय के अनुत्पादक व्यय को कम करके न्याय के त्वरित वितरण में सहयोग करें। अधिवक्ता को मांगे गए स्थगन की संख्या कम करनी चाहिए और उन्हें उनकी अनुपस्थिति में प्रस्तुतियों की सुनवाई पर आपत्ति नहीं करनी चाहिए, खासकर जब प्रस्तुतियों को नोट करने के लिए एक अधिवक्ता मौजूद हो। अदालत के कीमती समय का बेहतर उपयोग भी किया जा सकता है यदि अधिवक्ता एक ही बिंदु पर कई मामलों के कानूनों का हवाला देने से बचते हैं। वही पुरानी प्रथाएं वही पुराने परिणाम देती रहेंगी, लेकिन जैसा कि समाज को मामलों के तेजी से निपटान की आवश्यकता है, हम सभी को बेहतर परिणाम देने के लिए अपनी प्रथाओं को बदलना चाहिए।

49. मैं एक बार फिर बार के विद्वान सदस्यों से अनुरोध करता हूं और उन्हें याद दिलाता हूं कि उनके मुवक्किल के प्रतिनिधि होने के अलावा, वे न्यायालय के जिम्मेदार अधिकारी भी हैं। उन्हें अन्य वादियों के प्रति भी विचारशील होना चाहिए और दलीलें तैयार करते समय और साथ ही न्यायालय के समक्ष दलीलें देते समय सटीक और संक्षिप्त होकर न्याय के शीघ्र वितरण में सहयोग करना चाहिए।

(2025) 5 ILRA 986

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 02.05.2025

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार

समक्ष

दूसरी अपील संख्या-167 वर्ष 2023

अंबिका प्रसाद @ अंबिका प्रसाद पांडे और अन्य ... अपीलकर्ता

बनाम श्याम

बिहारी और अन्य ... प्रतिपक्षीगण

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: उमा कांत मिश्रा, जय प्रकाश यादव, करुणा शंकर मिश्रा, राजीव कुमार बाजपेयी

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता: व्यास नारायण शुक्ला, व्यास नारायण शुक्ल

दीवानी कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 100 - भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 - धारा 63 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1860 - धारा 63, 68, 69, 70 और 71 - दूसरी अपील - वादी-अपीलकर्ताओं द्वारा दायर की गई - अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और डिक्री का विरोध करते हुए, जिसके तहत अपीलीय अदालत ने विचारण न्यायालय की डिक्री - वसीयत - को उलट दिया - जिसे पिता द्वारा निष्पादित किया गया था, अपने अन्य चार बेटों में से एक बेटे को छोड़कर - संपत्ति विवाद - मूल मुकदमा - एक वसीयत को रद्द करने के लिए - विचारण न्यायालय - छह मुद्दों को तैयार करने पर और मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य की मूल्यांकन के बाद, इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रतिपक्षी वसीयत के वैध और स्वैच्छिक निष्पादन को स्थापित करने में विफल रहे - तदनुसार, मुकदमा डिक्री किया गया था - पहली अपील - अपीलीय अदालत - अपील की अनुमति दी - मुख्य रूप से पंजीकरण और चयनात्मक गवाह गवाही के तथ्य पर भरोसा करते हुए - जबकि विचारण न्यायालय के विस्तृत निष्कर्षों की अवहेलना करते हुए - दूसरी अपील - न्यायालय ने पाया कि - वसीयत का प्रमाण किसी भी अन्य साधन की तुलना में उच्च स्तर पर खड़ा है - यदि कोई संदिग्ध परिस्थितियां हैं, चाहे दूसरे पक्ष द्वारा उठाया गया हो या अन्यथा अदालत से पहले वसीयत के प्रस्तावक द्वारा भी स्पष्ट या हटा दिया जाना आवश्यक है, जिसमें विफल रहने पर विवाद में वसीयत को वैध नहीं कहा जा सकता है - सबसे बड़े बेटे ने विशेष रूप से आरोप लगाया था कि वसीयत धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया था, ऐसे समय में जब वसीयतकर्ता मानसिक और शारीरिक रूप से अक्षम था - विचारण न्यायालय ने इन पहलुओं पर विधिवत विचार किया था और ठोस निष्कर्ष दर्ज किए थे - अपीलीय अदालत, हालांकि, इस पर विचार करने में विफल रही और विचारण न्यायालय के निष्कर्ष की अनदेखी की - अवधारित - प्रथम अपीलीय अदालत ने अवैध और विकृत निष्कर्षों को दर्ज करने वाली अपील की अनुमति दी है - नतीजतन, प्रथम अपीलीय न्यायालय

द्वारा पारित डिक्री को रद्द कर दिया जाता है - विचारण न्यायालय के फैसले और डिक्री को बहाल किया जाता है - विचारण न्यायालय के निष्कर्षों में कोई अवैधता या विकृति नहीं पाई जाती है - तदनुसार, दूसरी अपील की अनुमति दी जाती है। (प्रस्तर-- 26, 34, 35)

अपील की अनुमति है। (ई-11)

<u>उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची</u>:

1. गुरो (श्रीमती) बनाम आत्मा सिंह और अन्य; (1992)2 एस.सी.सी. 507, अंबिका प्रसाद @ अंबिका प्रसाद पांडे और अन्य बनाम श्याम बिहारी और अन्य 987
2. बेंगा बेहरा और अन्य बनाम ब्रज किशोर नंदा और अन्य- 2007 इला सीजे 2249,
3. धन्नूलाल और अन्य बनाम गणेशराम और अन्य- (2015) 12 एस.सी.सी. 301,
4. भरपुर सिंह और अन्य बनाम शमशेर सिंह - ए.आई.आर. 2009 एस.सी. 1766,
5. श्रीमती जसवंत कौर बनाम श्रीमती अमृत कौर और अन्य; ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 74,
6. के. लक्ष्मणन बनाम थेक्काइल पद्मिनी और अन्य; 2009(106) आरडी 610,
7. गोपाल कृष्ण और अन्य बनाम दौलत राम और अन्य- दीवानी अपील संख्या-(एस) 13192 वर्ष 2024 - दिनांक 02.01.2025 को निर्णय लिया गया,
8. मीना प्रधान और अन्य बनाम कमला प्रधान और अन्य- 2023 9 एस.सी.सी. 734,
9. शिवकुमार और अन्य बनाम शरणबसप्पा और अन्य- 2021 (11) एस.सी.सी. 277

(<u>माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार द्वारा प्रदत्त</u>)

1. वादी अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री जय प्रकाश यादव और प्रतिपक्षी प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता श्री व्यास नारायण शुक्ला को सुना।

2. सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 (इसके बाद सी.पी.सी. के रूप में संदर्भित) की धारा 100 के तहत अतिरिक्त जिला न्यायाधीश/एफ.टी.सी.-आईएसटी द्वारा दीवानी अपील संख्या-38/2009 (श्याम बिहारी और अन्य बनाम शारदा प्रसाद (मृतक) में पारित निर्णय और डिक्री के खिलाफ दिनांक 05.10.2023 (श्याम बिहारी और अन्य बनाम शारदा प्रसाद (मृतक) द्वारा दायर की गई है। सुल्तानपुर के मामले में निचली अपीलीय अदालत ने प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षियों को पहली अपील करने की अनुमति दी। नतीजतन, वादी-अपीलकर्ताओं द्वारा दायर वसीयत यानी नियमित वाद संख्या-225/2004 (शारदा प्रसाद और अन्य बनाम बालकृष्ण और अन्य) को रद्द करने के

लिए मुकदमे में पारित निर्णय और डिक्री दिनांक 26.05.2009 को रद्द कर दिया गया और वाद को खारिज कर दिया गया।

3. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विवादित संपत्ति स्वर्गीय राम चंद्र पांडे की है, जो पक्षकारों के पिता थे। उनके परिवार में उनके पांच बेटे हैं। विवाद एक कथित पंजीकृत वसीयत विलेख के मद्देनजर उत्पन्न हुआ, जिसके बारे में कहा जाता है कि स्वर्गीय राम चंद्र पांडे द्वारा 02.11.1998 को निष्पादित किया गया था, जिसमें वादी शीतला प्रसाद यानी वादी-अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती को शामिल नहीं किया गया था और संपत्ति शेष चार बेटों को वसीयत की गई थी, जिसमें से तीन बेटों को 1/5 वां हिस्सा दिया गया है, जबकि सबसे छोटे बेटे को 2/5 वां हिस्सा दिया गया है। असंतुष्ट होकर वादी ने नियमित वाद संख्या-225 वर्ष 2004 वाला एक मुकदमा दायर किया, जिसे तर्क वितर्क के बाद 26.05.2009 को डिक्री दिया गया।

4. आगे यह प्रस्तुत किया जाता है कि विचारण न्यायालय ने अभिलेखों पर उपलब्ध सबूतों से निपटने के बाद, स्पष्ट रूप से एक निष्कर्ष दिया कि वसीयत का प्रमाणित गवाह, अर्थात्, राम सागर मिश्रा वसीयत के उचित सत्यापन और निष्पादन को साबित नहीं कर सका, साथ ही इस तथ्य के साथ कि उस समय वसीयतकर्ता की आयु 84 वर्ष थी और विभिन्न बीमारियों से पीड़ित था। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि वसीयत में बताए गए वादी अपीलकर्ताओं को बाहर करने का एकमात्र आधार यह था कि वादी-अपीलकर्ताओं का अपने ससुराल के गांव में अपना घर था और वह कभी भी पिता और अन्य भाइयों के साथ नहीं रहता था। साक्ष्य पर, इस तथ्य को खारिज कर दिया गया और यह पाया गया कि वादी-अपीलकर्ताओं के पास कभी भी कोई संपत्ति या उसके ससुराल वालों के गांव में नहीं था। इस प्रकार यह प्रस्तुत किया गया है कि सभी को ध्यान में रखते हुए, विचारण न्यायालय ने मुकदमे का फैसला सुनाया, जिसे निचली अपीलीय अदालत ने गवाह के साक्ष्य से निपटने के दौरान विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए कारणों से हस्तक्षेपित किया गया है और इस प्रकार कानून के अनुसार वसीयत को साबित किए बिना, निचली अपीलीय अदालत ने प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षियों को अपील करने और मुकदमे को खारिज करने में गलती की है। इसलिए, प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री को रद्द किया जा सकता है और इस अपील की अनुमति दी जा सकती है।

5. प्रतिपक्षी प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता श्री व्यास नारायण शुक्ला ने प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय ने अभिलेखों पर दलीलों, सबूतों और सामग्री पर उचित रूप से विचार किए बिना, मुकदमे का फैसला सुनाया था, लेकिन प्रथम अपीलीय अदालत ने प्रमाणित गवाह के साक्ष्य के अलावा प्रतिपक्षी प्रतिपक्षियों की ओर से पेश किए गए सबूतों पर ध्यान दिया है जिसमें आपसी और सामान्य परिवार के रिश्तेदार शामिल थे, जो सभी वादी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ गवाही देते हैं और इसे ध्यान में रखते हुए प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अभिलेखों पर दलीलों, साक्ष्यों और सामग्री पर विचार करने के बाद कानून के अनुसार आक्षेपित निर्णय और डिक्री पारित की है, जो किसी भी अवैधता या त्रुटि से ग्रस्त नहीं है, जिसके लिए इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता हो सकती है। यह अपील गलत और आधारहीन आधार पर दायर की गई है। इस अपील में तैयार किए गए कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न इस अपील में नहीं उठते हैं। यह अपील खारिज की जा सकती है।

6. इस अपील में कानून के निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार किए गए हैं: दिनांक 20.11.2023 के आदेश के माध्यम से- "(ए) क्या निचली अपीलीय अदालत ने प्रमाणित गवाह राम सागर मिश्रा के साक्ष्य पर विचार किए बिना निष्कर्षों को उलटने में उचित ठहराया था, जो अपनी जिरह में दिनांक 02.11.1998 के प्रश्न में आक्षेपित वसीयत के उचित निष्पादन और सत्यापन को स्थापित नहीं कर सका? (बी) क्या निचली अपीलीय अदालत ने यह नोटिस करने में विफल रहने में त्रुटि की है कि यह वसीयत का प्रस्तावक है जिसे भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 सपठित भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के अनुसार इसके निष्पादन और सत्यापन को स्थापित करना है और एक बार प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षी गवाह प्रारंभिक बोझ का निर्वहन करने में विफल रहा है कि क्या ऐसी परिस्थितियों में निचली अपीलीय अदालत अपील की अनुमति दे सकती थी और क्या सूट खारिज कर सकती थी?"

7. मैंने पक्षगण के अधिवक्ता की प्रस्तुतियों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

8. वसीयत विलेख को रद्द करने का मुकदमा वादी-अपीलकर्ताओं शारदा प्रसाद के पूर्ववर्ती-हित द्वारा दायर किया गया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि विवादित संपत्ति शुरू में उनके पिता यानी स्वर्गीय राम चंद्र पांडे के नाम पर दर्ज की गई थी। उनके 5 बेटे शारदा प्रसाद, बाल कृष्ण, आद्या प्रसाद, राम अवध और श्याम बिहारी थे। सबसे बड़ा बेटा शारदा प्रसाद यानी वादी रेलवे सुरक्षा बल में शामिल हो गया और गुजरात में तैनात था। दूसरा बेटा बाल कृष्ण राज्य रिजर्व पुलिस विभाग में कार्यरत था। आद्या प्रसाद प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक थे। राम अवध जिला सुल्तानपुर में प्रैक्टिस करते हुए अधिवक्ता थे और सबसे छोटा बेटा श्याम बिहारी घर पर रहते थे और जीप चलाते थे। 80 वर्ष से अधिक आयु प्राप्त करने के बाद 11.11.2002 को राम चंद्र पांडे की मृत्यु हो गई और उन्होंने अपने सभी पूर्वोक्त बेटों को उत्तराधिकारी के रूप में छोड़ दिया। जब राम चंद्र की मृत्यु की सूचना पर अंबिका प्रसाद @ अंबिका प्रसाद पांडे और अन्य बनाम श्याम बिहारी पांडेय, शारदा प्रसाद सुल्तानपुर आए, फिर दिसंबर 2002 के महीने में उन्हें यह सुनने को आया कि वसीयत उनके बाकी चार भाइयों यानी प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षी ने धोखाधड़ी से मिलीभगत करके तैयार करवा लिया है और म्यूटेशन (दाखिल खारिज) का केस दायर कर दिया गया है। उन्होंने उक्त मामले में आपत्ति दर्ज की, जो लंबित है। उन्होंने अपने भाइयों से बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए कहा, लेकिन उन्होंने अंततः 01.05.2004 को इसे पूरा करने से इनकार कर दिया, इसलिए उसी तारीख को, उन्होंने वसीयत विलेख की प्रमाणित प्रति के लिए आवेदन किया, जो उन्हें 06.05.2004 को मिली। इसके बाद उन्होंने वसीयत विलेख को रद्द करने के लिए मुकदमा दायर किया।

9. मुकदमा इस आधार पर दायर किया गया था कि उनके पिता रामचंद्र पांडे ने कभी भी सोच-समझकर कोई वसीयत विलेख निष्पादित नहीं किया था और उनकी बीमारी की स्थिति में उन्हें धोखा देते हुए वसीयत विलेख तैयार किया गया है। रामचंद्र पांडे बहुत बूढ़े थे और अपनी मृत्यु से पहले पिछले 7-8 वर्षों से हृदय रोग, मधुमेह और उच्च रक्तचाप से पीड़ित थे। उसकी सोचने और समझने की शक्ति खत्म हो गई थी और वह अपनी इच्छा से कोई काम नहीं कर पा रहा था। वसीयत विलेख पर हस्ताक्षर और अंगूठे का निशान उनसे लिया गया है,

जिसमें उन्हें धोखा देने वाले बिक्री विलेख के बारे में छिपाया गया है। वसीयत विलेख के गवाह एक-दूसरे की मदद कर रहे हैं और साजिश में शामिल हैं। वसीयत पत्र पर रामचंद्र पांडेय की तस्वीर उनकी बीमारी की हालत में बिना किसी जानकारी के तैयार की गई है। वादी हमेशा अपने पिता की सेवा करता था, जो उनकी सेवा से खुश थे, इसलिए, उन्हें छोड़कर किसी भी वसीयत विलेख को निष्पादित करने का कोई अवसर नहीं था। इस प्रकार यह सब काम उसे धोखा देकर कपटपूर्ण तरीके से किया गया है। वसीयत के गवाह श्री रवीश चंद्र पांडे और श्री अंबिका प्रसाद पेशे से अधिवक्ता हैं और श्री राम अवध पांडेय, एडवोकेट यानी प्रतिपक्षी संख्या-5 के दोस्त हैं। वादी ने प्रतिपक्षी प्रतिपक्षियों को वसीयत विलेख रद्द करने के लिए कहा, लेकिन उन्होंने अंततः 01.05.2004 को इनकार कर दिया, जिसके कारण मुकदमा दायर करने की कार्रवाई का कारण उत्पन्न हुआ।

10. प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षियों द्वारा वादपत्र में किए गए कथनों से इनकार करते हुए एक सामान्य लिखित बयान दायर करके मुकदमा लड़ा गया था और उसमें आरोप लगाया गया था कि वादी शारदा प्रसाद सेवा प्राप्त करने के बाद गुजरात गए थे। इसके बाद वह सुल्तानपुर जिले के परगना मीरनपुर के शुद्ध जड्डूपुर में अपने पिता से मिलने कभी वापस नहीं आए। हालांकि वह प्रतापगढ़ में अपने ससुराल में आता था। उनके बच्चे भी उनके नाना के साथ रहने लगे हैं और उनके बच्चों की शादी भी वहीं से संपन्न हो गई है। वह प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षियों के बेटे-बेटियों की शादी में शामिल होने के लिए भी कभी नहीं आया। वह भी उनके माता-पिता की मृत्यु के समय नहीं आया था। पक्षकारों के पिता ने वसीयत विलेख के निष्पादन के बारे में चर्चा करने के लिए वादी को बुलाया था, लेकिन वह नहीं आया था, इसलिए, 02.11.1998 को वसीयत विलेख के निष्पादन से एक दिन पहले, उन्होंने वसीयत विलेख के दोनों गवाहों, अर्थात् श्री राम सागर मिश्रा और श्री रवीश चंद्र पांडे, अधिवक्ता और प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षियों के सामने उनके साथ चर्चा करने के बाद वसीयत विलेख को निष्पादित करने का फैसला किया। तदनुसार, वसीयत विलेख 02.11.1998 को निष्पादित किया गया था, जिसमें प्रतिपक्षी प्रतिपक्षी संख्या-1 से 3 और प्रतिपक्षी संख्या-4 को 2/5 वां हिस्सा दिया गया है क्योंकि वह पिता के साथ रहता था और उसकी देखभाल करता था। यह भी कहा गया है कि 11.11.2002 को मृत्यु के समय पक्षकारों के पिता की आयु 80 वर्ष से अधिक थी और वादी को टेलीग्राम दिए जाने के बावजूद, वह न तो आया था और न ही अपने अंतिम संस्कार के लिए कोई पैसा दिया था और वह भी उनकी मां की मृत्यु के समय नहीं आया था, जबकि उसे सूचना दी गई थी। पक्षकारों के पिता उपरोक्त के कारण वादी से खुश नहीं थे, इसलिए, उन्होंने उपरोक्त वसीयत विलेख को निष्पादित किया था।

11. वादी शारदा प्रसाद द्वारा न्यायालय की अनुमति से प्रतिकृति दायर की गई थी, जिसमें लिखित बयान में किए गए कथनों से इनकार किया गया था और कहा गया था कि वादी वर्ष 18 वर्ष 3 महीने की आयु में सेवा में आया था। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने अपनी पत्नी और बच्चों को कभी भी गांव धन्नीपुर में अपने ससुराल में नहीं छोड़ा, बल्कि उन्होंने उन्हें अपनी देखभाल करने और घरेलू और कृषि कार्यों में मदद के लिए गांव प्योर जड्डूपुर में अपने माता-पिता के साथ छोड़ दिया था। वह और उसका परिवार कभी-कभार या किसी निमंत्रण पर ही अपने ससुराल जाते थे। उन्होंने वादपत्र में दिए गए कथनों को भी दोहराया और यह भी कहा कि उन्होंने अपने भाइयों की शिक्षा आदि के लिए पैसे दिए थे और उन्हें रोजगार दिलाने की भी कोशिश की थी। उन्होंने

यह भी कहा कि वह न केवल अपनी मां की मृत्यु के समय आए थे, बल्कि अपने पिता की मृत्यु के समय भी आए थे। वसीयत विलेख को प्रतिपक्षियों द्वारा वसीयत के गवाहों के साथ मिलीभगत करके उनके पिता को धोखा देकर निष्पादित किया गया है।

12. दलीलों के आदान-प्रदान के बाद, विचारण न्यायालय द्वारा 6 मुद्दे तय किए गए। इसके बाद पक्षों द्वारा मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पेश किए गए। मौखिक साक्ष्य में, वादी शारदा प्रसाद अ०सा०-1, सीता राम अ०सा०-2 और श्री कृष्ण कुमार तिवारी अ०सा०-3 के रूप में पेश हुए। प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षियों की ओर से, बालकृष्ण पांडे ब०सा०-1 के रूप में, त्रिभुवन नारायण मिश्रा ब०सा०-2 के रूप में, शेर बहादुर ब०सा०-3 के रूप में और राम सागर मिश्रा ब०सा०-4 के रूप में पेश हुए।

13. प्रस्तुत साक्ष्यों, अभिवचनों तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करते हुए, विचारण न्यायालय ने यह कहते हुए वाद डिक्री किया कि प्रतिवादी-प्रतिवादियों द्वारा वादी-अपीलकर्ताओं द्वारा प्रकट की गई वसीयत पत्र के निष्पादन में उत्पन्न संदेह को दूर करने में असफलता रही है तथा वे यह पूर्णतः सिद्ध करने में भी विफल रहे कि उक्त वसीयत पत्र राम चन्द्र पाण्डेय द्वारा अपनी स्वतंत्र इच्छा (स्वेच्छा) एवं पूर्ण स्वस्थ अवस्था में विधि के अनुरूप निष्पादित किया गया था। परिणामस्वरूप, विचारण न्यायालय ने अपने दिनांक 26.05.2009 के निर्णय एवं डिक्री द्वारा दिनांक 02.11.1998 की वसीयत पत्र को निरस्त (रद्द) कर दिया।

14. व्यथित होने के कारण, प्रतिपक्षी प्रतिपक्षियों ने एक दीवानी अपील दायर की, जिसे प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा इस आधार पर निर्धारण के बिंदु को तैयार करने के बाद अनुमति दी गई है कि विवादित वसीयत पंजीकृत है और इसे विल राम सागर मिश्रा के गवाह के साक्ष्य से साबित किया गया है और विचारण न्यायालय द्वारा पारित 26.05.2009 के फैसले और डिक्री को रद्द कर दिया और मुकदमे को खारिज कर दिया। इसलिए, यह दूसरी अपील दायर की गई है, जिसे कानून के उपरोक्त महत्वपूर्ण प्रश्नों पर स्वीकार किया गया है।

15. पक्षों की दलीलों और इस न्यायालय के समक्ष पेश की गई दलीलों और इस अपील में शामिल कानून के उपरोक्त महत्वपूर्ण प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय को इस बात पर विचार करना होगा कि क्या मृतक राम चंद्र पांडे द्वारा कानून के अनुसार विचाराधीन वसीयत विलेख निष्पादित किया गया है और इसका निष्पादन वसीयत विलेख के प्रस्तावक यानी प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षियों द्वारा कानून के अनुसार साबित किया गया है या नहीं, और वादी अपीलकर्ताओं द्वारा उठाए गए संदेह को प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षियों द्वारा स्पष्ट और दूर कर दिया गया है या नहीं।

16. भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63 वह तरीका प्रदान करती है, जिसमें एक वसीयत निष्पादित की जाएगी, जिसे नीचे निकाला गया है: -

"63. विशेषाधिकार रहित वसीयत का निष्पादन प्रत्येक वसीयतकर्ता, जो किसी अभियान में नियोजित या वास्तविक युद्ध में संलग्न सैनिक न हो, [या ऐसा वायुसेनिक न हो जो इस प्रकार नियोजित या संलग्न हो,] अथवा समुद्र में कार्यरत नाविक (mariner) न हो, अपनी वसीयत का निष्पादन निम्नलिखित नियमों के अनुसार करेगा:– या इस तरह से नियोजित या लगे हुए हैं;] या समुद्र में एक नाविक, निम्नलिखित नियमों के अनुसार अपनी इच्छा का निष्पादन करेंगे: - (क) वसीयतकर्ता वसीयत पर हस्ताक्षर करेगा या उस पर अपना चिन्ह लगाएगा, या इस पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी उपस्थिति में और उसके निर्देश से हस्ताक्षर किए जाएंगे। (ख) वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर या चिह्न, या उसके लिए हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर इस प्रकार रखे जाएंगे कि ऐसा प्रतीत होगा कि यह वसीयत के रूप में लेखन को प्रभावी करने का इरादा था। (ग) वसीयत को दो या दो से अधिक गवाहों द्वारा सत्यापित किया जाएगा, जिनमें से प्रत्येक ने वसीयतकर्ता को वसीयत पर हस्ताक्षर करते हुए देखा है या वसीयत पर अपना निशान चिपकाया है या किसी अन्य व्यक्ति को वसीयतकर्ता की उपस्थिति में और निर्देश पर हस्ताक्षर करते देखा है, या वसीयतकर्ता से अपने हस्ताक्षर या चिह्न की व्यक्तिगत पावती प्राप्त की है, या ऐसे अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर के; और प्रत्येक गवाह वसीयतकर्ता की उपस्थिति में वसीयत पर हस्ताक्षर करेगा, लेकिन यह आवश्यक नहीं होगा कि एक ही समय में एक से अधिक गवाह उपस्थित हों, और किसी विशेष रूप के सत्यापन की आवश्यकता नहीं होगी।

17. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 से 71 में यह प्रावधान है कि वसीयत को कैसे साबित करने की आवश्यकता है, जो यहां नीचे दी गई है: -

"68. कानून द्वारा सत्यापित किए जाने के लिए आवश्यक दस्तावेज के निष्पादन का प्रमाण- यदि किसी दस्तावेज को कानून द्वारा सत्यापित करने की आवश्यकता है, तो इसे साक्ष्य के रूप में तब तक उपयोग नहीं किया जाएगा जब तक कि कम से कम एक प्रमाणित गवाह को इसके निष्पादन को साबित करने के उद्देश्य से नहीं बुलाया जाता है, यदि कोई प्रमाणित गवाह जीवित है, और न्यायालय की प्रक्रिया के अधीन है और साक्ष्य देने में सक्षम है: [बशर्ते कि किसी भी दस्तावेज के निष्पादन के प्रमाण में एक प्रमाणित गवाह को बुलाना आवश्यक नहीं होगा, जो कि वसीयत नहीं है, जिसे भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1908 (16 वर्ष 1908) के प्रावधानों के अनुसार पंजीकृत किया गया है, जब तक कि उस व्यक्ति द्वारा इसके निष्पादन को विशेष रूप से अस्वीकार नहीं किया जाता है।

69. सबूत जहां कोई प्रमाणित गवाह नहीं मिला.-यदि ऐसा कोई सत्यापन गवाह नहीं मिल सकता है, या यदि दस्तावेज यूनाइटेड किंगडम में निष्पादित किया गया है, तो यह साबित किया जाना चाहिए कि कम से कम एक प्रमाणित गवाह का सत्यापन उसकी लिखावट में है, और यह कि दस्तावेज़ निष्पादित करने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर उस व्यक्ति की हस्तलेखन में है।

70. सत्यापित दस्तावेज के लिए पार्टी द्वारा निष्पादन की स्वीकारोक्ति - किसी पक्ष का स्वयं द्वारा अपने निष्पादन के एक सत्यापित दस्तावेज में प्रवेश उसके विरुद्ध उसके निष्पादन का पर्याप्त प्रमाण होगा, हालांकि यह एक दस्तावेज है जो कानून द्वारा सत्यापित किया जाना आवश्यक है।

71. गवाह को प्रमाणित करते समय प्रमाण निष्पादन से इनकार करता है। - यदि सत्यापन करने वाला गवाह दस्तावेज़ के निष्पादन से इनकार करता है या याद नहीं करता है, तो इसका निष्पादन अन्य साक्ष्यों द्वारा साबित किया जा सकता है।

18. उपरोक्त धारा 68 में प्रावधान है कि यदि किसी दस्तावेज को कानून द्वारा सत्यापित करने की आवश्यकता है, तो इसे तब तक साक्ष्य के रूप में उपयोग नहीं किया जाएगा जब तक कि कम से कम एक प्रमाणित गवाह को इसके निष्पादन को साबित करने के उद्देश्य से नहीं बुलाया जाता है, यदि वह जीवित है और साक्ष्य देने में सक्षम है। धारा 69 में प्रावधान है कि यदि ऐसा कोई प्रमाणित गवाह नहीं मिल सकता है, तो यह साबित किया जाना चाहिए कि कम से कम एक प्रमाणित गवाह का सत्यापन उसकी लिखावट में है और दस्तावेज को निष्पादित करने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर उस व्यक्ति की हस्तलेखन में हैं। किसी पक्ष के निष्पादन के प्रमाणित दस्तावेज में प्रवेश के मामले में, यह धारा के अनुसार उसके खिलाफ उसके निष्पादन का पर्याप्त प्रमाण होगा

70. यदि सत्यापन करने वाला गवाह दस्तावेज़ के निष्पादन से इनकार करता है या याद नहीं करता है, तो धारा के अनुसार अन्य साक्ष्यों द्वारा इसका निष्पादन साबित किया जा सकता है

71. इस मामले में धारा 68 लागू होती है क्योंकि एक गवाह वसीयत को साबित करने के लिए उपस्थित हुआ था।

19. **गुरो (श्रीमती) बनाम आत्मा सिंह और अन्य; (1992) 2 एस.सी.सी. 507**, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि कानून अच्छी तरह से स्थापित है कि वसीयत को साबित करने का तरीका आमतौर पर किसी अन्य दस्तावेज को साबित करने से भिन्न नहीं होता है, सिवाय इसके कि भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 द्वारा वसीयत के मामले में निर्धारित विशेष आवश्यकता को छोड़कर। उक्त निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर-3 यहां नीचे दिया गया है: - "

3. वसीयत के प्रमाण के संबंध में कानून अच्छी तरह से स्थापित है कि वसीयत को साबित करने का तरीका आमतौर पर किसी अन्य दस्तावेज को साबित करने से भिन्न नहीं होता है, सिवाय इसके कि भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 द्वारा वसीयत के मामले में निर्धारित विशेष आवश्यकता को छोड़कर। वसीयत को साबित करने का दायित्व प्रस्तावक पर है और वसीयत के निष्पादन के आसपास की संदिग्ध परिस्थितियों के अभाव में, वसीयतनामा क्षमता का प्रमाण और कानून द्वारा आवश्यक वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर दायित्व का निर्वहन करने के लिए पर्याप्त हैं। जहां, हालांकि संदिग्ध परिस्थितियां थीं, वसीयत को वास्तविक के रूप में

स्वीकार करने से पहले उन्हें अदालत की संतुष्टि के लिए समझाने की जिम्मेदारी प्रस्तावक पर होगी। इस तरह के संदिग्ध संदेह एक अस्थिर हस्ताक्षर, एक कमजोर दिमाग और संपत्ति का अनुचित और अन्यायपूर्ण निपटान हो सकता है या प्रस्तावक स्वयं वसीयत बनाने में अग्रणी भाग ले सकता है जिसके तहत उसे पर्याप्त लाभ मिलता है। संदिग्ध परिस्थितियों की उपस्थिति प्रारंभिक दायित्व को भारी बना देती है और दस्तावेज़ को वसीयतकर्ता की अंतिम वसीयत के रूप में स्वीकार करने से पहले प्रस्तावक को सभी वैध संदेह को दूर करना चाहिए। (एस. वेंकलचला त्यंगार बनाम बीएन थिम्माजम्मा, रानी पूर्णिमा देवी बनाम कुमार किलागेंद्र नारायण देव2, जसवंत कौर बनाम अमृत कौर)।

20. माननीय सर्वोच्च न्यायालय, **बेंगा बेहरा और अन्य बनाम ब्रज किशोर नंदा और अन्य सीजे 2249** के मामले अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया है, जिसमें कहा गया है कि वसीयत के निष्पादन के प्रमाण की आवश्यकता कुछ अन्य दस्तावेजों के मामले में समान है, उदाहरण के लिए उपहार या बंधक और कम से कम एक प्रमाणित गवाह की वसीयत के निष्पादन और सत्यापन को साबित करने के लिए जांच की जानी चाहिए और यह साबित किया जाना है कि निष्पादक ने हस्ताक्षर किए थे और/या अपनी उपस्थिति में अपने अंगूठे का निशान दिया था। कम से कम दो गवाहों और गवाहों ने निष्पादक की उपस्थिति में अपने हस्ताक्षर किए थे। यह भी माना गया है कि संदिग्ध परिस्थितियों के अस्तित्व को इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पर्याप्त माना जा सकता है कि वसीयत का निष्पादन विधिवत साबित नहीं हुआ है।

21. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धन्नूलाल एवं अन्य बनाम गणेशराम एवं अन्य; (2015) 12 एस.सी.सी. के प्रकरण में यह प्रतिपादित किया है कि वसीयत के प्रमाणन स्तर अन्य दस्तावेजों की तुलना में अधिक उच्च कोटि का होता है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक अनुच्छेद 19 निम्नलिखित रूप में उद्धृत किया जा रहा है–"

19. वसीयत का प्रमाण अन्य दस्तावेजों की तुलना में उच्च स्तर पर खड़ा है। गवाहों या अन्य गवाहों का स्पष्ट प्रमाण होना चाहिए कि वसीयत की सामग्री निष्पादक को पढ़ी गई थी और वह, इसे सही स्वीकार करने के बाद, गवाहों की उपस्थिति में अपने हस्ताक्षर करता है। निष्पादक द्वारा अपने हस्ताक्षर करने के बाद ही, सत्यापन करने वाले गवाह निष्पादक की उपस्थिति में अपने हस्ताक्षर करेंगे।

22. **भरपुर सिंह और अन्य बनाम शमशेर सिंह; ए.आई.आर. 2009 एस.सी. 1766** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63 के खंड (सी) और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 68 में निहित प्रावधानों के संबंध में वसीयत को साबित किया जाना चाहिए और ऐसे मामले में जहां वसीयत संदिग्ध परिस्थितियों से घिरी हुई है, इसे वसीयतकर्ता के अंतिम वसीयतनामा स्वभाव के रूप में नहीं माना जाएगा। प्रासंगिक प्रस्तर-11 नीचे दिया गया है: - "

11. वसीयत के प्रमाण के संबंध में कानूनी सिद्धांत अब रिज़ॉल्यूशन इंटीग्रे नहीं हैं। भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63 के खंड (सी) और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 68 में निहित

प्रावधानों के संबंध में एक वसीयत को साबित किया जाना चाहिए, जिसमें वसीयत के प्रस्तावक को एक या अधिक प्रमाणित गवाहों की जांच करके अपने निष्पादन को साबित करना होगा। जहां, हालांकि, वसीयत की वैधता को धोखाधड़ी, जबरदस्ती या अनुचित प्रभाव के आधार पर चुनौती दी जाती है, सबूत का बोझ कैविएटर पर होगा। ऐसे मामले में जहां वसीयत संदिग्ध परिस्थितियों से घिरी हुई है, इसे वसीयतकर्ता के अंतिम वसीयतनामा स्वभाव के रूप में नहीं माना जाएगा।

23. **श्रीमती जसवंत कौर बनाम श्रीमती अमृत कौर और अन्य; ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 74**, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 और साक्ष्य अधिनियम के 68 के प्रासंगिक प्रावधानों पर विचार करते हुए, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ ने प्रस्तर-9 और 10 में निम्नानुसार अवधारित किया गया है।

पंचाट

"9. ऐसे मामलों में जहां वसीयत का निष्पादन संदेह में डूबा हुआ है, इसका प्रमाण वादी और प्रतिपक्षी के बीच एक साधारण लीज़ नहीं रह जाता है। आम तौर पर, ऐसे मामलों में एक विज्ञापन कार्यवाही अदालत की अंतरात्मा का मामला बन जाती है और फिर विचार के लिए उठने वाला सही सवाल यह है कि क्या वसीयत के समर्थक के नेतृत्व में साक्ष्य अदालत के विवेक को संतुष्ट करने के लिए है कि वसीयत को वसीयतकर्ता द्वारा विधिवत निष्पादित किया गया था। इस तरह की संतुष्टि तक पहुंचना तब तक असंभव है जब तक कि वसीयत स्थापित करने वाला पक्ष वसीयत बनाने के आसपास की संदिग्ध परिस्थितियों का 'ठोस और ठोस स्पष्टीकरण प्रदान न करे।

10. वसीयत को साबित करने के लिए आवश्यक साक्ष्य की प्रकृति और मानक पर असर डालने वाले निर्णयों की एक लंबी कतार है। उन निर्णयों की समीक्षा इस न्यायालय के एक विस्तृत निर्णय में की गई है। थिर्नमाजम्मा और अन्य (1) न्यायालय ने गजेंद्रगडकर जे. के माध्यम से बोलते हुए, उस मामले में निम्नलिखित स्थिति निर्धारित की: -

1. आम तौर पर कहा जाता है, वसीयत को किसी भी अन्य दस्तावेज की तरह साबित करना होता है, ऐसे मामलों में विवेकपूर्ण दिमाग की संतुष्टि की सामान्य परीक्षा के रूप में लागू किया जाने वाला परीक्षण। जैसा कि अन्य दस्तावेजों के प्रमाण में आसानी है, इसलिए वसीयत के प्रमाण के मामले में, कोई गणितीय निश्चितता के साथ प्रमाण पर जोर नहीं दे सकता है।

2. चूंकि उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 में वसीयत को सत्यापित करने की आवश्यकता होती है, इसलिए इसे साक्ष्य के रूप में तब तक उपयोग नहीं किया जा सकता है, जब तक कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 द्वारा आवश्यक है, कम से कम एक प्रमाणित गवाह को इसके निष्पादन को साबित करने के उद्देश्य से बुलाया गया है, यदि कोई प्रमाणित गवाह जीवित है और अदालत की प्रक्रिया के अधीन है और सबूत देने में सक्षम है।

3. अन्य दस्तावेजों के विपरीत, वसीयत मृत्यु से बोलती है [वसीयतकर्ता और इसलिए वसीयत का निर्माता उन परिस्थितियों के बारे में गवाही देने के लिए कभी भी उपलब्ध नहीं होता है जिनमें वसीयत निष्पादित की गई थी। यह पहलू इस प्रश्न के निर्णय में गंभीरता के एक तत्व का परिचय देता है कि क्या प्रस्तावित दस्तावेज वसीयतकर्ता की अंतिम वसीयत और वसीयतनामा साबित होता है। आम तौर पर, प्रस्तावक पर जो जिम्मेदारी होती है, उसे आवश्यक तथ्यों के प्रमाण पर निर्वहन किया जा सकता है जो वसीयत बनाने में जाते हैं।

4. ऐसे मामले जिनमें वसीयत का निष्पादन संदिग्ध परिस्थितियों से घिरा हुआ है, एक अलग स्तर पर खड़े होते हैं। एक अस्थिर हस्ताक्षर, एक कमजोर दिमाग, संपत्ति का एक अनुचित और अन्यायपूर्ण स्वभाव, प्रस्तावक स्वयं वसीयत के निर्माण में अग्रणी भाग लेता है जिसके तहत उसे पर्याप्त लाभ मिलता है और ऐसी अन्य परिस्थितियां वसीयत के निष्पादन के बारे में संदेह पैदा करती हैं। उस संदेह को प्रस्तावक के केवल इस दावे से दूर नहीं किया जा सकता है कि वसीयत पर वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर हैं या वसीयतकर्ता उस समय मन और स्मृति की ध्वनि और निपटान की स्थिति में था जब वसीयत की गई थी, या वसीयतकर्ता की पत्नी और बच्चों की तरह जो सामान्य रूप से उसकी संपत्ति में अपना उचित हिस्सा प्राप्त करते थे, उन्हें अस्वीकार कर दिया गया था क्योंकि वसीयतकर्ता के पास अपना हिस्सा हो सकता था उन्हें बाहर करने के अपने कारण। संदिग्ध परिस्थितियों की उपस्थिति प्रारंभिक दायित्व को भारी बना देती है और इसलिए, ऐसे मामलों में जहां वसीयत के निष्पादन पर परिस्थितियां अदालत के संदेह को उत्तेजित करती हैं, प्रस्तावक को दस्तावेज़ को वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा के रूप में स्वीकार करने से पहले सभी वैध संदेहों को दूर करना चाहिए।

5. यह वसीयत के संबंध में है, जिसका निष्पादन संदिग्ध परिस्थितियों से घिरा हुआ है कि न्यायिक विवेक की संतुष्टि की परीक्षा विकसित की गई है। यह परीक्षण इस बात पर जोर देता है कि इस प्रश्न का निर्धारण करने में कि क्या अदालत के समक्ष पेश किया गया कोई लिखत वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा है, अदालत को एक गंभीर प्रश्न पर निर्णय लेने के लिए कहा जाता है और संदिग्ध परिस्थितियों के कारण अदालत को पूरी तरह से संतुष्ट होना पड़ता है कि वसीयतकर्ता द्वारा वसीयत को वैध रूप से निष्पादित किया गया है।

6. यदि कोई कैविएटर वसीयत के निष्पादन के संबंध में धोखाधड़ी, अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती आदि का आरोप लगाता है, तो ऐसी दलीलों को उसके द्वारा साबित किया जाना चाहिए, लेकिन ऐसी दलीलों के अभाव में भी, पंचाट के निष्पादन के आसपास की परिस्थितियां इस बात पर संदेह पैदा कर सकती हैं कि क्या वसीयतकर्ता अपनी मर्जी से कार्य कर रहा था। और फिर यह प्रस्तावक की प्रारंभिक जिम्मेदारी का एक हिस्सा है कि वह इस मामले में सभी तर्कसंगत संदेहों को दूर करे।

24. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने *के. लक्ष्मणन बनाम थेक्कायिल पद्मिनी एवं अन्य*; 2009 (106) आर.डी. 610 के प्रकरण में, जिस पर याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया है, यह प्रतिपादित किया है कि वसीयत को सिद्ध करने का भार उसके प्रस्तोता पर होता है, जिसे वसीयत के विधि-सम्मत निष्पादन एवं उसकी प्रामाणिकता को सिद्ध करना होता है। इसके लिए उसे उक्त वसीयत के चारों ओर विद्यमान किसी भी

संदिग्ध परिस्थितियों के अभाव को सिद्ध करना होता है तथा साथ ही वसीयतकर्ता की वसीयती क्षमता एवं उसके हस्ताक्षर को प्रमाणित करना होता है। एक बार जब यह सब सिद्ध कर दिया जाता है, तो यह माना जाएगा कि प्रस्तोता ने अपना भार निर्वहन कर दिया है। ये भी माना गया है कि यदि वसीयत के निष्पादन के संबंध में संदिग्ध परिस्थितियां हैं, तो उन्हें न्यायालय की संतुष्टि के लिए समझाने की जिम्मेदारी भी प्रस्तावक पर है और केवल जब ऐसी जिम्मेदारी का निर्वहन किया जाता है, तो न्यायालय वसीयत को वास्तविक मानेगा। यहां तक कि जब ऐसी कोई दलीलें नहीं होती हैं, लेकिन परिस्थितियां संदेह पैदा करती हैं, तो यह न्यायालय की अंतरात्मा को संतुष्ट करने के लिए प्रस्तावक पर है। संदिग्ध परिस्थितियां कई कारणों से उत्पन्न होती हैं जैसे कि वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर की वास्तविकता, वसीयतकर्ता के दिमाग की शर्तें, वसीयत में किए गए स्वभाव प्रासंगिक परिस्थितियों के आलोक में अप्राकृतिक, असंभव या अनुचित हैं या वसीयत में यह दिखाने के लिए अन्य संकेत हो सकते हैं कि वसीयतकर्ता का मन स्वतंत्र नहीं था।

25. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में पारित एक निर्णय और आदेश दिनांक 02.01.2025 में दीवानी अपील संख्या-(एस) 13192 वर्ष 2024 (गोपाल कृष्ण और अन्य बनाम दौलत राम और अन्य) में **मीणा प्रधान और अन्य बनाम कमला प्रधान और अन्य 2023 9 एस.सी.सी. 734 और शिवकुमार और अन्य बनाम शरणबसप्पा और अन्य; 2021 (11) एस.सी.सी. 277** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर विचार करते हुए प्रतिपक्षी के अधिवक्ता पर भरोसा किया; जिसमें देखा कि वसीयत साबित करने के लिए आवश्यकताएं अच्छी तरह से स्थापित हैं और उन्हें उपरोक्त निर्णयों में दोहराया गया है और उसी में संक्षेप में दिए गए सिद्धांतों को पुन: प्रस्तुत किया गया है। प्रासंगिक प्रस्तर-8 नीचे दिया गया है: - "

8. वसीयत साबित करने के लिए आवश्यक शर्तें अच्छी तरह से स्थापित हैं। उन्हें हाल ही में मीना प्रधान और अन्य बनाम कमला प्रधान और अन्य और शिवकुमार और अन्य बनाम शरणबसप्पा और अन्य में इस न्यायालय के एक फैसले में दोहराया गया था।

10. पूर्व द्वारा संक्षेप में दिए गए सिद्धांतों को नीचे प्रस्तुत किया गया है: -

"10.1. न्यायालय को दो पहलुओं पर विचार करना होगा: पहला, कि वसीयत वसीयतकर्ता द्वारा निष्पादित की जाती है, और दूसरा, यह कि यह उसके द्वारा निष्पादित अंतिम वसीयत थी;

10.2. इसे गणितीय सटीकता के साथ सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन विवेकपूर्ण मन की संतुष्टि की कसौटी पर खरा उतरना होगा।

10.3. उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के तहत आवश्यक सभी औपचारिकताओं को पूरा करने के लिए एक वसीयत की आवश्यकता होती है, अर्थात्:

(क) वसीयतकर्ता वसीयत पर हस्ताक्षर करेगा या अपने निशान को चिपकाएगा या उस पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी उपस्थिति में और उसके निर्देश द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे और उक्त हस्ताक्षर या प्रत्यय यह दिखाएगा कि यह वसीयत के रूप में लेखन को प्रभावी करने का इरादा था;

(ख) इसे दो या दो से अधिक गवाहों द्वारा सत्यापित करना अनिवार्य है, हालांकि सत्यापन का कोई विशेष रूप आवश्यक नहीं है;

(ग) प्रत्येक प्रमाणित गवाह ने वसीयतकर्ता पर हस्ताक्षर किए होंगे या वसीयत पर अपना निशान लगाया होगा या किसी अन्य व्यक्ति को वसीयतकर्ता की उपस्थिति में और निर्देश पर हस्ताक्षर करते हुए देखा होगा, या वसीयतकर्ता से ऐसे हस्ताक्षरों की व्यक्तिगत पावती प्राप्त की है;

(घ) प्रत्येक गवाह वसीयतकर्ता की उपस्थिति में वसीयत पर हस्ताक्षर करेगा, हालांकि, एक ही समय में सभी गवाहों की उपस्थिति की आवश्यकता नहीं है;

10.4. वसीयत के निष्पादन को साबित करने के उद्देश्य से, कम से कम एक प्रमाणित गवाह, जो जीवित है, अदालत की प्रक्रिया के अधीन है, और साक्ष्य देने में सक्षम है, की जांच की जाएगी;

10.5. सत्यापन करने वाले गवाह को न केवल वसीयतकर्ता के हस्ताक्षरों के बारे में बात करनी चाहिए, बल्कि यह भी कहना चाहिए कि प्रत्येक गवाह ने वसीयतकर्ता की उपस्थिति में वसीयत पर हस्ताक्षर किए थे;

10.6. यदि एक प्रमाणित गवाह वसीयत के निष्पादन को साबित कर सकता है, तो अन्य प्रमाणित गवाहों की परीक्षा को समाप्त किया जा सकता है;

10.7. जहां वसीयत को साबित करने के लिए जांच की गई एक गवाह अपने उचित निष्पादन को साबित करने में विफल रहता है, तो दूसरे उपलब्ध सत्यापन गवाह को उसके साक्ष्य के पूरक के रूप में बुलाया जाना चाहिए;

10.8. जब भी वसीयत के निष्पादन के बारे में कोई संदेह होता है, तो यह प्रस्तावक की जिम्मेदारी होती है कि वह वसीयतकर्ता की अंतिम वसीयत के रूप में स्वीकार किए जाने से पहले सभी वैध संदेहों को दूर करे। ऐसे मामलों में, प्रस्तावक पर प्रारंभिक जिम्मेदारी भारी हो जाती है;

10.9. न्यायिक विवेक की कसौटी उन मामलों से निपटने के लिए विकसित की गई है जहां वसीयत का निष्पादन संदिग्ध परिस्थितियों से घिरा हुआ है। इसके लिए वसीयतकर्ता की जागरूकता जैसे कारकों पर विचार करने की आवश्यकता है क्योंकि सामग्री के साथ-साथ परिणामों, प्रकृति और वसीयत में स्वभाव के प्रभाव; निष्पादन के

समय वसीयतकर्ता के मन और स्मृति की ध्वनि, निश्चित और निपटान की स्थिति; वसीयतकर्ता ने अपनी मर्जी से कार्य करते हुए वसीयत को निष्पादित किया;

10.10. जो व्यक्ति धोखाधड़ी, मनगढ़ंत, अनुचित प्रभाव आदि का आरोप लगाता है, उसे इसे साबित करना होगा। हालांकि, इस तरह के आरोपों के अभाव में भी, यदि ऐसी परिस्थितियां संदेह पैदा करती हैं, तो यह प्रस्तावक का कर्तव्य बन जाता है कि वह एक ठोस और ठोस स्पष्टीकरण देकर ऐसी संदिग्ध परिस्थितियों को दूर करे;

10.11. संदिग्ध परिस्थितियाँ "वास्तविक, जर्मन और मान्य" होनी चाहिए, न कि केवल "संदेह करने वाले मन की कल्पना [शिवकुमार बनाम शरणबसप्पा, (2021)11 एस.सी.सी. 277]"। क्या कोई विशेष विशेषता "संदिग्ध" के रूप में योग्य होगी, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। प्रकृति में वैध संदेह पैदा करने वाली कोई भी परिस्थिति एक संदिग्ध परिस्थिति के रूप में योग्य होगी, उदाहरण के लिए, एक अस्थिर हस्ताक्षर, एक कमजोर दिमाग, संपत्ति का एक अनुचित और अन्यायपूर्ण स्वभाव, प्रस्तावक स्वयं वसीयत बनाने में अग्रणी भाग लेता है जिसके तहत उसे पर्याप्त लाभ मिलता है, आदि।

26. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, वसीयत का प्रमाण किसी भी अन्य साधन की तुलना में उच्च स्तर पर खड़ा है। वसीयत को न केवल भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 से 71 के अनुसार भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के अनुसार निष्पादित करने के लिए साबित किया जाना आवश्यक है, बल्कि यदि कोई संदिग्ध परिस्थितियां हैं, चाहे दूसरे पक्ष द्वारा उठाई गई हो या अन्यथा न्यायालय के समक्ष भी वसीयत के प्रस्तावक द्वारा भी स्पष्ट किया जाना या हटाया जाना आवश्यक है, जिसके विफल होने पर विवाद में वसीयत को निष्पादक की वैध और अंतिम वसीयत नहीं कहा जा सकता है। हालांकि, संदिग्ध परिस्थितियां 'वास्तविक और वैध' होनी चाहिए। क्या कोई विशेष विशेषता 'संदिग्ध' के रूप में योग्य होगी, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। प्रकृति में वैध संदेह पैदा करने वाली कोई भी परिस्थिति संदिग्ध परिस्थिति के रूप में योग्य होगी, उदाहरण के लिए, एक अस्थिर हस्ताक्षर, एक कमजोर दिमाग, संपत्ति का एक अनुचित और अन्यायपूर्ण स्वभाव, प्रस्तावक स्वयं वसीयत बनाने में अग्रणी भाग लेता है जिसके तहत उसे पर्याप्त लाभ मिलता है आदि। इस प्रकार, केवल इसलिए कि वसीयत विलेख पंजीकृत है, यह अच्छा और वैध नहीं होगा।

27. प्रस्तुत मामले के तथ्यों का समर्थन करते हुए, वसीयत को 02.11.1998 को पक्षकारों के पिता राम चंद्र पांडे द्वारा 84 वर्ष की आयु में निष्पादित किया गया था। वादी-अपीलकर्ताओं ने आरोप लगाया कि वह वसीयत के निष्पादन की तारीख से लगभग 7-8 साल पहले गंभीर रूप से बीमार था और हृदय रोग, मधुमेह और उच्च रक्तचाप से पीड़ित था, इसलिए, वह स्वतंत्र रूप से सोचने और समझने की स्थिति में नहीं था। पक्षों के पिता की बीमारियों और शारीरिक स्थिति के संबंध में विवाद है क्योंकि वादी अपीलकर्ताओं ने गवाही दी थी कि वह उपरोक्त बीमारियों के कारण गंभीर रूप से बीमार था। दूसरी ओर, प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षियों ने इनकार कर दिया है। वादी-अपीलकर्ता ने यह भी कहा कि वह अपने भाइयों को अपने पिता के इलाज के लिए पैसे देता था और जब

भी वह घर पर होता था तो वह उसके साथ सुल्तानपुर में त्रियुगी नारायण वैद्य के पास जाता था। हालांकि, वह तारीख और समय का खुलासा नहीं कर सके।

28. ब०सा०-1 बाल कृष्ण पांडे ने अपनी बीमारियों के बारे में इनकार किया, और कहा कि उनके पिता का कोई इलाज नहीं किया गया था, जबकि ब०सा०-2 त्रिभुवन नारायण मिश्रा ने अपने साक्ष्य में कहा था कि उनके मामा उनकी मृत्यु से पहले कई बार बीमार पड़ गए थे और बुढ़ापे के कारण उन्हें कई बीमारियां थीं। जब उन्हें बीमारियों के बारे में पता चलता था, तो वे उन्हें अपने घर पर देखने जाते थे। उन्होंने यह भी कहा कि मेरे मामा अपनी आंखों पर चश्मा लगाने के बाद रामायण पढ़ते थे लेकिन ऐसा नहीं है कि वह देख या सुन नहीं सकते थे। वह कम सुनता था। कभी-कभी चक्कर आ जाते थे और इलाज के लिए सुल्तानपुर जाते थे। उनकी सोचने और समझने की शक्ति खोई नहीं थी। वह फिट था। विचारण न्यायालय ने उपरोक्त पर विचार करते हुए दर्ज किया है कि निर्विवाद रूप से, वसीयत विलेख पर राम चंद्र पांडे की तस्वीर बिना चश्मे के है, जबकि ब०सा०-2 ने स्वीकार किया है कि वह चश्मा पहनता था और वह कम सुनता था। यह आगे दर्ज किया गया है कि वसीयत विलेख पर हस्ताक्षर एक समान नहीं हैं, जो पक्षों के बीच विवादित नहीं है, इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि शारीरिक स्थिति के कारण, उसके हाथ कांप रहे होंगे और 02.11.1998 को वसीयत विलेख के निष्पादन के समय, वह लगभग 84 वर्ष का था और वह अपनी मृत्यु से पहले कई बार बीमार पड़ गया था और ठीक से सुनने और देखने में भी सक्षम नहीं था। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि वसीयत विलेख के निष्पादन के समय, रामचंद्र पांडे शारीरिक और मानसिक रूप से फिट नहीं थे।

29. प्रतिपक्षी संख्या-5 राम अवध सुल्तानपुर में एक अधिवक्ता था और वसीयत विलेख के गवाहों में से एक था श्री रवीश चंद्र पांडे, अधिवक्ता राम अवध पांडे के साथ काम कर रहा होगा और उसे जानता था। ब०सा०-1 बाल कृष्ण पांडे ने स्वयं स्वीकार किया है कि रामचंद्र पांडे ने वसीयत विलेख के निष्पादन से पहले वसीयत के गवाहों को उनके साथ चर्चा करने के लिए बुलाया था और अपने सभी चार बेटों यानी प्रतिपक्षियों और उनके रिश्तेदारों के सामने चर्चा की थी। उन्होंने यह भी कहा कि उनके पिता वादी से खुश नहीं थे और उन सभी ने अपनी राय व्यक्त की कि यदि विवादित संपत्ति का कोई हिस्सा वादी को दिया जाता है, तो वह इसे किसी और को बेच देगा, जिसके कारण पारिवारिक संपत्ति बर्बाद हो जाएगी। इस प्रकार प्रतिपक्षियों ने अपने पिता द्वारा उनके पक्ष में वसीयत के निष्पादन के लिए निर्णय लेने में सक्रिय रूप से भाग लिया।

30. ब०सा०-2 ने अपने साक्ष्य में कहा है कि नवंबर 1998 में उनके मामा राम चंद्र पांडे ने उन्हें बुलाया था। वह वादी शारदा प्रसाद और उसके परिवार के सदस्यों के अपने माता-पिता के प्रति व्यवहार के कारण बहुत परेशान था। उन्होंने यह भी कहा कि वसीयत के निष्पादन से पहले, उन्होंने उन्हें बताया था और उन्हें वसीयत विलेख भी दिखाया था और उसके बाद इसे पंजीकृत कराया था। उन्होंने यह भी कहा कि उनके मामा ने वसीयत विलेख के बारे में भी उनसे परामर्श किया था। उन्होंने यह भी कहा कि उन्होंने अपने मामा को वादी शारदा प्रसाद को कुछ न देने की कोई राय नहीं दी थी, बल्कि उन्होंने वादी को कुछ देने की राय दी थी, अगर वह

आता है। उन्होंने यह भी कहा कि उन्होंने वसीयत विलेख के निष्पादन से 15 दिन या 1 महीने पहले सलाह दी थी।

31. ब०सा०-4 राम सागर मिश्रा, एडवोकेट, जो वसीयत विलेख के गवाह हैं, ने कहा कि वसीयत कानून के अनुसार निष्पादित की गई थी। उन्होंने कहा कि रामचंद्र पांडेय ने उन्हें नहीं पढ़ाया था। वह नहीं जानता कि वह प्राथमिक विद्यालय, उत्तरी में शिक्षक था या नहीं। वह हमेशा घर पर रहते थे और खेती का काम करते थे। उनका घर रामचंद्र पांडे के घर से लगभग 11/4 किमी दूर है। उन्होंने कहा कि उनके अलावा वसीयत के दो अन्य गवाह हैं और उन्हें नहीं पता कि वसीयत विलेख पर हस्ताक्षर रामचंद्र पांडे के हैं या नहीं। बाल कृष्ण पांडेय सहित तीनों गवाहों ने वसीयत पत्र पर हस्ताक्षर किए थे। उन्होंने यह भी बताया कि वह सुबह 11:00 बजे तहसील के रजिस्ट्री कार्यालय में पहुंचे थे और उनसे पहले रामचंद्र पांडे और बालकृष्ण पांडे पहुंच गए थे। उन्होंने यह भी कहा कि गवाह रामचंद्र पांडेय, राम अवध, श्याम बिहारी, आद्या प्रसाद भी तहसील आए थे। उन्होंने अर्जिनेवियों के समक्ष वसीयत विलेख पर हस्ताक्षर किए थे और एक रजिस्ट्री कार्यालय में और एक अन्य स्थान पर हस्ताक्षर किए थे, लेकिन इस अन्य स्थान का खुलासा नहीं किया गया है। उपरोक्त पर विचार करते हुए, विचारण न्यायालय ने दर्ज किया है कि ब०सा०-4 के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि वसीयत विलेख के निष्पादन के समय, सभी प्रतिपक्षी और सभी गवाह उपस्थित थे, लेकिन राम चंद्र पांडे को सलाह देने के लिए कोई स्वतंत्र व्यक्ति उपस्थित नहीं था। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि वसीयत के निष्पादन के समय राम चंद्र पांडे, जिनकी आयु लगभग 84 वर्ष थी, एक कमजोर और बीमार व्यक्ति थे और उनका कोई स्वतंत्र सलाहकार नहीं था और वह प्रतिपक्षी प्रतिपक्षियों के अनुचित प्रभाव में थे। यह न्यायालय विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए उक्त निष्कर्षों से सहमत है, इस कारण से कि प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षियों की उपस्थिति यानी वसीयत के सभी लाभार्थियों की उपस्थिति प्रत्येक स्थान पर यानी राम चंद्र पांडे द्वारा वसीयत को निष्पादित करने के निर्णय के समय और वसीयत के निष्पादन और ब०सा०-1 की स्वीकृति के समय कि रिश्तेदारों सहित सभी प्रतिपक्षियों ने कोई हिस्सा नहीं देने की सलाह दी थी। वादी शारदा प्रसाद, स्वयं राम चंद्र पांडे द्वारा स्वतंत्र इच्छा और मन से वसीयत के निष्पादन के संबंध में संदेह पैदा करता है। ब०सा०-2 ने विशेष रूप से कहा है कि उन्होंने कुछ भी न देने की सलाह दी थी, बल्कि कुछ हिस्सा देने की सलाह दी थी। गवाह यानी ब०सा०-4 भी राम चंद्र पांडे को पहले से नहीं जानता है।

32. यह भी देखा गया है कि ब०सा०-1 ने मुख्य परीक्षा के अपने हलफनामे के प्रस्तर-8 में स्वीकार किया है कि वसीयत विलेख राम चंद्र पांडे द्वारा बताए अनुसार लिखा गया था और उसके बाद इसे पढ़ा गया और उन्हें और उपस्थित अन्य लोगों को बताया गया, इसके बाद, वसीयत विलेख पर पहले राम चंद्र पांडे द्वारा गवाहों के समक्ष हस्ताक्षर किए गए और उसके बाद गवाह रवीश चंद्र पांडे और राम सागर मिश्रा ने वसीयत विलेख पर हस्ताक्षर किए। इसके बाद रजिस्ट्री कार्यालय में भी सबसे पहले रामचंद्र पांडेय ने अंगूठे का निशान लगाया और उसकी पहचान करते हुए गवाहों ने भी अपने अंगूठे का निशान बना लिया। ब०सा०-2 ने अपने साक्ष्य में कहा है कि वसीयत विलेख उसे उसके मामा द्वारा दिखाया गया था, जब वह अपने घर गया था। इसलिए वसीयत विलेख तैयार करने के स्थान और समय के संबंध में भी ब०सा०-, 1 और ब०सा०-2 के साक्ष्य में विरोधाभास है। ब०सा०-4 राम सागर मिश्रा, जो वसीयत विलेख के गवाह हैं, भी विसंगति को देखते हुए वसीयत के निष्पादन को साबित नहीं कर सके जैसा कि ऊपर अपने साक्ष्य में चर्चा की गई है और अपनी जिरह में भी वह कानून के अनुसार वसीयत के निष्पादन को साबित नहीं कर

सका। यह भी देखा गया है कि उन्होंने कहा है कि वसीयत पर उनके और दो अन्य गवाहों ने हस्ताक्षर किए थे, लेकिन वसीयत में केवल दो गवाह हैं। इस प्रकार वह कानून के अनुसार वसीयत के निष्पादन को साबित नहीं कर सका।

33. जहां तक प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षियों की दलील यह है कि राम चंद्र पांडे ने वादी शारदा प्रसाद को कोई हिस्सा नहीं दिया था क्योंकि उनकी पत्नी और बच्चे उनके ससुराल में रहते थे और वहां संपत्ति भी खरीदते थे, जिसे वादी-अपीलकर्ताओं द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है, प्रतिपक्षी प्रतिपक्षी ससुराल के घर में किसी भी संपत्ति की खरीद के संबंध में कोई सबूत पेश करने में विफल रहे या उनके नाम उक्त स्थान का राशन कार्ड या मतदाता सूची। इस प्रकार वादी अपीलकर्ताओं के गवाहों ने मामले को साबित कर दिया और उनके द्वारा उठाए गए संदेह को प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षियों द्वारा स्पष्ट और दूर नहीं किया जा सका।

34. विचारण न्यायालय ने उपरोक्त निष्कर्षों को दर्ज करते हुए इस आधार पर मुकदमे का फैसला सुनाया कि वादी-अपीलकर्ताओं द्वारा उठाए गए वसीयत विलेख के निष्पादन में उठाए गए संदेह को प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षियों द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है।

35. प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष चुनौती दिए जाने पर, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने इस आधार पर अपील की अनुमति दी कि वसीयत विलेख पंजीकृत है, जिसे गवाह राम सागर मिश्रा ने विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को रद्द किए बिना साबित कर दिया है, जबकि जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, न तो ब०सा०-4 राम सागर मिश्रा, वसीयत विलेख के गवाह भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 के अनुसार वसीयत के निष्पादन को साबित कर सकते हैं भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के अनुसार और न ही वसीयत विलेख के निष्पादन के संबंध में वादी-अपीलकर्ताओं द्वारा उठाए गए संदेह को प्रतिपक्षी द्वारा किसी भी ठोस साक्ष्य द्वारा स्पष्ट और दूर किया जा सकता है, जबकि वसीयत के संबंध में यह स्थापित कानून है कि न केवल यह भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के अनुसार साबित किया जाना है कि वसीयत को भारतीय सेशन की धारा 63 के अनुसार निष्पादित किया गया है अधिनियम लेकिन संदेह, यदि कोई हो, उठाए गए हैं और यदि न्यायालय के समक्ष नहीं उठाए गए हैं, तो उन्हें ठोस साक्ष्य प्रस्तुत करके वसीयत के प्रस्तावक द्वारा स्पष्ट और दूर किया जा सकता है। प्रथम अपीलीय अदालत इस पर विचार करने में विफल रही और विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों पर विचार किए बिना और उन्हें रद्द किए बिना आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित किया। इस प्रकार, इस न्यायालय का विचार है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अवैध और विकृत निष्कर्षों को दर्ज करने वाली अपील की अनुमति दी है, इसलिए प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को रद्द करने योग्य है और अपील विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को बरकरार रखते हुए अनुमति देने योग्य है, जो कानून के अनुसार एक तर्कसंगत और बोलने वाले आदेश द्वारा पारित किया गया है और किसी भी अवैधता या विकृति से ग्रस्त नहीं है।

35. तदनुसार, दूसरी अपील की लागत के साथ **अनुमति** दी जाती है। अतिरिक्त जिला न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट-आई.एस.टी., सुल्तानपुर द्वारा दीवानी अपील संख्या-38/2009 (श्याम बिहारी और अन्य बनाम शारदा प्रसाद (मृतक) में पारित निर्णय और डिक्री दिनांक 05.10.2023 को **रद्द/अपास्त** की जाती है और नियमित वाद संख्या-225/2004(शारदा प्रसाद बनाम बालकृष्ण और अन्य) में पारित निर्णय और डिक्री दिनांक 26.05.2009 को बरकरार रखा जाता है।

(2025) 5 ILRA 1000

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 01.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

धारा 482 के तहत आवेदन संख्या-3726 वर्ष 2025

आदित्य मूर्ति **... आवेदनकर्ता**

बनाम

सी.बी.आई./ए.सी.बी. **... प्रतिपक्षी**

आवेदक के अधिवक्ता: पूर्णेंदु चक्रवर्ती, अंबरीश सिंह यादव, अमित जायसवाल ओजुस लॉ, प्रांजल जैन

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: अनुराग कुमार सिंह

अनुवादित

आवेदक सी.बी.आई. द्वारा दर्ज प्राथमिकी में आरोपी है, जो किसी भी निजी शिकायत पर आधारित नहीं है - आवेदक संयुक्त राज्य अमेरिका में एक रिश्तेदार के विवाह समारोह में भाग लेने और फ्रांस में एक पारिवारिक आनंद यात्रा का आनंद लेने के लिए विदेश यात्रा करने की अनुमति मांग रहा है। यह उद्देश्य ग्रीन कार्ड के पुनर्वैधीकरण जैसा कोई आवश्यक उद्देश्य नहीं है। आवेदक के खिलाफ केंद्रीय जांच ब्यूरो द्वारा दर्ज एक प्राथमिकी द्वारा कार्यवाही शुरू की गई है और विचारण न्यायालय ने उस पर धारा 120-बी सपठित धारा 420 भ०द०वि० और धारा 13(2) सपठित धारा 13(1)(डी) के तहत अपराध करने के लिए आरोप लगाया है। 2011 से लंबित मुकदमा अब बचाव पक्ष के साक्ष्य के चरण में पहुंच गया है। इस स्तर पर, वह केवल अपने पिता की बहन के पोते के विवाह समारोह में शामिल होने के लिए विदेश यात्रा करना चाहता है, जो उसके परिवार का सदस्य नहीं है। सैन डिएगो, कैलिफोर्निया, यू.एस.ए. में शादी में भाग लेने के बाद, आवेदक फ्रांस की पारिवारिक आनंद यात्रा करना चाहता है। 18. एक आरोपी व्यक्ति जिसे जमानत पर रिहा किया गया है, उसे कुछ जरूरी आवश्यकता के लिए विदेश यात्रा करने की अनुमति दी जा सकती है जैसे कि चिकित्सा पृष्ठ 9 वर्ष 11 उपचार, आवश्यक आधिकारिक कर्तव्यों में भाग लेना और इसी तरह। एक आरोपी व्यक्ति जिसे जमानत पर रिहा किया गया है, केवल एक रिश्तेदार की शादी में शामिल होने और दूसरे देश की सुखद यात्रा करने के लिए दूसरे देश की यात्रा करने के अधिकार के रूप में अनुमति नहीं ले सकता है। एक विदेश में एक रिश्तेदार की शादी और दूसरे देश की आनंद यात्रा एक विचाराधीन आरोपी व्यक्ति की विदेश यात्रा के लिए बिल्कुल भी आवश्यक उद्देश्य नहीं हैं। 19. केवल, क्योंकि विचारण न्यायालय ने पहले आवेदक को कई पर गैर-आवश्यक वस्तुओं के लिए विदेश यात्रा करने की अनुमति दी थी, इसलिए उसे इस बार भी गैर-आवश्यक वस्तुओं के लिए विदेश यात्रा करने का अधिकार नहीं मिलता है, जब मुकदमा बचाव साक्ष्य के चरण में पहुंच गया है। 20. आवेदक के

अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह कारण विचारण न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट नहीं किया गया है और विचारण न्यायालय ने केवल इस आधार पर आवेदन को खारिज कर दिया है कि चूंकि मुकदमा बचाव साक्ष्य के चरण में पहुंच गया है, इसलिए आवेदक को विदेश यात्रा की अनुमति नहीं दी जा सकती है। 21. धारा 528 बी.एन.एस.एस द्वारा मान्यता प्राप्त इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए, इस न्यायालय की शक्ति विचारण न्यायालय द्वारा सौंपे गए कारणों की जांच तक ही सीमित नहीं है। विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द करने की मांग करने के अलावा, आवेदक ने इस न्यायालय से अनुरोध किया है कि वह उसे विदेश यात्रा करने की अनुमति देने के लिए एक आदेश पारित करे और इन परिस्थितियों में, यह न्यायालय निश्चित रूप से आवेदक द्वारा की गई प्रार्थना के औचित्य पर गौर कर सकता है ताकि यह आकलन किया जा सके कि मांगी गई अनुमति 5 सभी को दी जा सकती है। आदित्य मूर्ति बनाम सी.बी.आई./ए.सी.बी. लखनऊ। आवेदक को 1001 रुपये का भुगतान किया गया है। विचारण न्यायालय ने आवेदक को एक रिश्तेदार की शादी में शामिल होने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका की यात्रा करने और परिवार की आनंद यात्रा का आनंद लेने के लिए फ्रांस की अनुमति मांगने वाले आवेदन को खारिज करने में कोई अवैधता नहीं की है, जब मुकदमा बचाव पक्ष के साक्ष्य के चरण में पहुंच गया है। आवेदक को अपने रिश्तेदार की शादी में शामिल होने के लिए अमेरिका की यात्रा करने और परिवार की आनंद यात्रा का आनंद लेने के लिए फ्रांस जाने का अधिकार नहीं है, जब सी.बी.आई. द्वारा दायर मामले की सुनवाई, जिसमें आवेदक एक आरोपी है, बचाव साक्ष्य के चरण में पहुंच गया है। आवेदक की विदेश यात्रा की अनुमति मांगने वाले आवेदन के साथ-साथ धारा 528 बी.एन.एस.एस के तहत आवेदन में योग्यता नहीं है और तदनुसार, खारिज कर दिया जाता है। (ई-9)

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के अधिवक्ता श्री पूर्णेंदु चक्रवर्ती और सी.बी.आई. के अधिवक्ता श्री अनुराग कुमार सिंह को सुना।

2. भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (जिसे बाद में 'बी.एन.एस.एस' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) की धारा 528 के तहत दायर प्रस्तुत आवेदन के माध्यम से, आवेदक ने प्राथमिकी संख्या-07/2012 से उत्पन्न मामले संख्या-07/2012 में विशेष न्यायाधीश, सी.बी.आई.-5, लखनऊ द्वारा पारित आदेश की वैधता को चुनौती दी है। RC0062010A0015, धारा 120-बी भ०द०वि० के तहत भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, थाना-सी.बी.आई./ए.सी.बी., जिला लखनऊ की धारा 420, 468, 471 और धारा 13(1)(डी)/13(2) सपठित है और आवेदक के चचेरे भाई के बेटे के विवाह समारोह में शामिल होने और पारिवारिक आनंद यात्रा का आनंद लेने के लिए 03.05.2025 से 22.05.2025 तक संयुक्त राज्य अमेरिका और फ्रांस की विदेश यात्रा की अनुमति मांगी है।

3. आवेदक ने विचारण न्यायालय के समक्ष दिनांक 03.02.2025 को एक आवेदन दायर किया था, जिसमें उपरोक्त अवधि के लिए विदेश जाने की अनुमति मांगी गई थी, जिसमें कहा गया था कि वह एस.आर.एम.एस. ट्रस्ट द्वारा संचालित श्री राम मूर्ति स्मारक इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज में सलाहकार है, जो वर्ष 1990

में स्थापित एक सार्वजनिक धर्मार्थ ट्रस्ट है। आवेदक के चचेरे भाई (आवेदक के पिता की बहन का पोता) का बेटा सैन जोस, यू.एस.ए. में रहने वाला एक अमेरिकी नागरिक है, और उसने आवेदक को सैन डिएगो, कैलिफोर्निया, यू.एस.ए. में अपने विवाह समारोह में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया है।

4. ई-मेल के माध्यम से आवेदक को भेजे गए निमंत्रण के अनुसार, शादी समारोह 03.05.2025 से 13.05.2025 के बीच सैन डिएगो, कैलिफोर्निया, यू.एस.ए. में निर्धारित है। शादी के कार्यक्रम के बाद, आवेदक और उसके परिवार के सदस्यों ने भारत लौटने से पहले पेरिस और नीस (फ्रांस) की यात्रा की योजना बनाई है। आवेदक और उसकी पत्नी के यात्रा टिकट पहले ही खरीदे जा चुके हैं।

5. इस मामले को जन्म देने वाली प्राथमिकी वर्ष 2010 में दर्ज की गई थी। जांच के बाद, 01.07.2011 को धारा 120-बी सपठित धारा 420 भ०द०वि० और धारा 13(1)(डी) सपठित धारा 13(1)(डी) के तहत अपराधों के लिए एक आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(डी) सपठित धारा 13(2) के तहत मूल अपराध था। विचारण न्यायालय ने आवेदक के खिलाफ धारा 120-बी सपठित धारा 420 भ०द०वि० और धारा 13(1)(डी) सपठित धारा 13(1)(डी) के तहत अपराधों के लिए आवेदक के खिलाफ आरोप तय किए हैं और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(डी) सपठित धारा 13(2) के तहत मूल अपराध के लिए आवेदक के खिलाफ कोई आरोप तय नहीं किया गया है। अभियोजन पक्ष के 36 गवाहों के बयान पहले ही दर्ज किए जा चुके हैं और धारा 313 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज करने के बाद, मामला बचाव पक्ष के साक्ष्य के लिए तय किया जाता है। विचारण न्यायालय ने आवेदक की ओर से की गई दलील दर्ज की है कि आवेदक ने विचारण न्यायालय की अनुमति से पहले कई मौकों पर विदेश यात्रा की है और उसने किसी भी अवसर पर स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया है और उसने प्रस्तुत किया है कि उसकी अनुपस्थिति में उसका प्रतिनिधित्व उसके अधिवक्ता द्वारा किया जाएगा और मुकदमे में देरी नहीं होगी।

6. विचारण न्यायालय ने यह भी दर्ज किया है कि प्रस्तुत मामला सबसे पुराने मामलों में से एक है और यह उन मामलों में शामिल है जिनके संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा शीघ्र निपटान के लिए एक कार्य योजना बनाई गई है। मामले की प्रगति की निगरानी उच्च न्यायालय के साथ-साथ माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा की जा रही है। इन परिस्थितियों में, यदि आवेदक को विदेश यात्रा करने की अनुमति दी जाती है, तो इससे मामले के निपटान में अनुचित देरी हो सकती है। निचली अदालत ने उपरोक्त कारणों से यात्रा करने की अनुमति के आवेदन को खारिज कर दिया।

7. श्री. आवेदक के अधिवक्ता पूर्णेंदु चक्रवर्ती ने प्रस्तुत किया है कि आवेदक के पिता एस.आर.एम. मेडिकल कॉलेज के ट्रस्टी हैं और आवेदक उस ट्रस्ट द्वारा संचालित मेडिकल कॉलेज में केवल एक सलाहकार है। आवेदक के पिता विदेश यात्रा नहीं कर रहे हैं। आवेदक के मुकदमे का सामना करने के लिए वापस नहीं आने की कोई संभावना नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि मुकदमा पिछले डेढ़ दशकों से चल रहा है और आवेदक की केवल 22 दिनों की अनुपस्थिति से कोई खास फर्क नहीं पड़ेगा।

8. आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आवेदक को विदेश यात्रा करने का मौलिक अधिकार है और इस मौलिक अधिकार से इनकार करना कानून में अस्थिर है। इस सबमिशन के समर्थन में उन्होंने मेनका गांधी बनाम भारत संघ और अन्य: (1978) 1 एस.सी.सी. 248 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर अवलंबन किया है।

9. श्री. चक्रवर्ती ने कहा है कि आवेदक ने पहले भी कई मौकों पर इसी तरह के उद्देश्यों के लिए विदेश यात्रा की अनुमति मांगी थी, जैसे कि पारिवारिक आनंद यात्राएं, और अनुमति हमेशा दी गई थी। आवेदक ने किसी भी अवसर पर निचली अदालत द्वारा दी गई स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया है और वह विदेश यात्रा के बाद भारत वापस आने के बाद हमेशा मुकदमे का सामना करता रहा है। उन्होंने परवेज नूरदीन लोखंडवाला बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य: (2020) 10 एस.सी.सी. 77 के मामले में फैसले पर अवलंबन किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को विदेश यात्रा करने की अनुमति देने से इनकार करने के उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया है, जब वह पहले से ही कई अवसरों पर विदेश यात्रा कर चुका था और किसी भी अवसर पर स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया था।

10. मेनका गांधी बनाम भारत संघ: (1978)1 एस.सी.सी. 248, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के सात माननीय न्यायाधीशों की संविधान पीठ द्वारा तय किया गया था। संक्षेप में कहा गया है, मामले के तथ्य यह थे कि याचिकाकर्ता के पास 01.06.1976 को जारी किया गया पासपोर्ट था। 04.07.1977 को उन्हें क्षेत्रीय पासपोर्ट अधिकारी, दिल्ली से एक पत्र मिला, जिसमें उन्हें सूचित किया गया था कि भारत सरकार द्वारा पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 10(3)(सी) के तहत जनहित में उनका पासपोर्ट जब्त करने का निर्णय लिया गया है और पत्र प्राप्त होने की तारीख से सात दिनों के भीतर पासपोर्ट सरेंडर करने की आवश्यकता है। याचिकाकर्ता ने तत्काल क्षेत्रीय पासपोर्ट अधिकारी को एक पत्र प्रेषित कर, पासपोर्ट अधिनियम की धारा 10(5) के अंतर्गत आदेश पारित किए जाने के कारणों के विवरण की प्रति उपलब्ध कराए जाने का अनुरोध किया। इसके प्रत्युत्तर में भारत सरकार, विदेश मंत्रालय द्वारा दिनांक 06.07.1977 को एक उत्तर भेजा गया, जिसमें अन्य बातों के साथ यह उल्लेख किया गया कि सरकार ने "सार्वजनिक हित में" आदेश पारित किए जाने के कारणों के विवरण की प्रति याचिकाकर्ता को उपलब्ध न कराए जाने का निर्णय लिया है। इसके बाद याचिकाकर्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की, जिसमें उसके पासपोर्ट को जब्त करने में सरकार की कार्रवाई को चुनौती दी गई और ऐसा करने के लिए कारण बताने से इनकार कर दिया। सरकार की कार्रवाई की वैधता के खिलाफ याचिका में निर्धारित मुख्य चुनौती मुख्य रूप से इस आधार पर आधारित थी कि धारा 10(3)(सी), जहां तक यह पासपोर्ट प्राधिकरण को "आम जनता के हित में" पासपोर्ट जब्त करने का अधिकार देती है, संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित समानता खंड का उल्लंघन है। चूंकि इन शब्दों द्वारा दर्शाई गई स्थिति अस्पष्ट और अपरिभाषित है और इस प्रावधान द्वारा प्रदत्त शक्ति, इसलिए, अत्यधिक है और "अति-चौड़ाई" के दोष से ग्रस्त है। याचिका में यह भी चुनौती दी गई थी कि पासपोर्ट धारक को बचाव में सुनवाई का मौका दिए बिना पासपोर्ट प्राधिकरण द्वारा पासपोर्ट जब्त करने का आदेश नहीं दिया जा सकता है। 20.07.1977 को एक अंतरिम आदेश दिया गया था जिसमें निर्देश दिया गया था कि याचिकाकर्ता का पासपोर्ट याचिका की

सुनवाई और अंतिम निपटान तक न्यायालय के रजिस्ट्रार के पास जमा रहना चाहिए। माननीय न्यायमूर्ति श्री पी.एन. भगवती जे, अपने और एन. एल. उंतवालिया और एस. मुर्तजा फ़ज़ल अली की ओर से बोलते हुए कहा कि: -

"19....इस प्रकार यह देखा जाएगा कि भले ही किसी अधिकार को अनुच्छेद 19(1) में विशेष रूप से नामित नहीं किया गया है, फिर भी यह उस अनुच्छेद के किसी खंड द्वारा आच्छादित किया गया एक मौलिक अधिकार हो सकता है, यदि यह किसी नामित मौलिक अधिकार का एक अभिन्न अंग है या उस मौलिक मूल प्रकृति और चरित्र का हिस्सा है दाएँ। यह पर्याप्त नहीं है कि याचिकाकर्ता द्वारा दावा किया गया अधिकार नामित मौलिक अधिकार से बहता है या उद्भूत है या नामित मौलिक अधिकार के प्रयोग को सार्थक और प्रभावी बनाने के लिए इसका अस्तित्व आवश्यक है। प्रत्येक गतिविधि जो एक नामित मौलिक अधिकार के प्रयोग की सुविधा प्रदान करती है, आवश्यक रूप से उस मौलिक अधिकार में नहीं समझी जाती है और न ही इसे केवल इसलिए माना जा सकता है क्योंकि उस मौलिक अधिकार का प्रभावी ढंग से प्रयोग करना अन्यथा संभव नहीं हो सकता है। इसके विपरीत निर्माण से असंगत परिणाम सामने आएंगे और अनुच्छेद 19(1) की पूरी योजना, जो अलग-अलग अधिकार प्रदान करती है और अधिकार की प्रकृति के आधार पर अलग-अलग मानकों के अनुसार अलग-अलग प्रतिबंध लगाती है, परेशान हो जाएगी। यह देखना आवश्यक है कि क्या याचिकाकर्ता द्वारा दावा किया गया अधिकार नामित मौलिक अधिकार का एक अभिन्न अंग है या नामित मौलिक अधिकार के समान मूल प्रकृति और चरित्र का हिस्सा है ताकि इस तरह के अधिकार का प्रयोग वास्तविकता में और सार में नामित मौलिक अधिकार के प्रयोग के एक उदाहरण के अलावा और कुछ नहीं है। यदि यह सही परीक्षण है, जैसा कि हम मानते हैं, तो विदेश जाने के अधिकार को सभी परिस्थितियों में भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में शामिल नहीं माना जा सकता है। न्यायमूर्ति श्री डगलस ने कैंट बनाम में कहा। " डलेस ने कहा कि "किसी भी दिशा में सीमाओं के पार और सीमाओं के अंदर भी आवाजाही की स्वतंत्रता हमारी विरासत का एक हिस्सा थी। विदेश यात्रा, जैसे देश के भीतर यात्रा, आजीविका के लिए आवश्यक हो सकती है। यह व्यक्ति के दिल के उतना ही करीब हो सकता है जितना कि वह क्या खाता है, या पहनता है, या पढ़ता है। आंदोलन की स्वतंत्रता हमारे मूल्यों की योजना में बुनियादी है। और न्यायाधीश ने अपने देश में आवाजाही की स्वतंत्रता के संबंध में जो कहा वह हमारे देश में भी अच्छा है। आवाजाही की स्वतंत्रता हमारी प्राचीन परंपरा का एक हिस्सा रही है जिसने हमेशा मनुष्य की गरिमा को बनाए रखा और उसमें ईश्वर का अवतार देखा। वैदिक ऋषियों को मानव शरीर की गति में या आत्मा की चेतना के उच्च स्तरों पर उड़ान भरने में कोई सीमा नहीं थी। यहां तक कि उपनिषद काल के बाद, बौद्ध युग और ईसा के बाद की प्रारंभिक शताब्दियों में, इस देश के लोग व्यापार और व्यवसाय की खोज में या ज्ञान की तलाश में या दूसरों पर अपने प्राचीन ऋषियों और ऋषियों द्वारा प्रदान किए गए ज्ञान के प्रकाश को दूसरों पर डालने के उद्देश्य से विदेशों में गए। भारत ने अपनी सीमाओं के बाहर विस्तार किया: उसके जहाजों ने समुद्र को पार किया और उसके धन की अच्छी अधिकता पूर्व के साथ-साथ पश्चिम में भी फैल गई। उनके सांस्कृतिक दूतों और दूतों ने दक्षिण-पूर्व एशिया में उनकी कला और महाकाव्यों का प्रसार किया और उनके धर्मों ने चीन और जापान और अन्य सुदूर पूर्वी देशों पर विजय प्राप्त की और पश्चिम की ओर फिलिस्तीन और अलेक्जेंड्रिया तक फैल गए। यहां तक कि पिछली सदी के अंत और वर्तमान सदी की शुरुआत में भी, हमारे

*लोग अफ्रीकी देशों में बसने के लिए समुद्र पार कर गए थे। देश और विदेश में आवाजाही की स्वतंत्रता हमारी विरासत का एक हिस्सा है और, जैसा कि पहले ही बताया गया है, यह मानव व्यक्तित्व की वृद्धि और विकास के लिए आवश्यक एक अत्यधिक पोषित अधिकार है और इसके महत्व पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है। लेकिन इसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का हिस्सा नहीं कहा जा सकता है। यह भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के समान मूल प्रकृति और चरित्र का नहीं है। जब कोई व्यक्ति विदेश जाता है, तो वह कई कारणों से ऐसा कर सकता है और यह आवश्यक नहीं है और हमेशा भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रयोग के लिए हो सकता है। प्रत्येक विदेश यात्रा अभिव्यक्ति और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का प्रयोग नहीं है और यह कहना सही नहीं होगा कि जब भी विदेश जाने के अधिकार पर कोई प्रतिबंध होता है, तो इसमें बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उल्लंघन होता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि किसी दिए गए मामले में भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रयोग के लिए विदेश जाना आवश्यक हो सकता है, लेकिन यह इसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का अभिन्न अंग नहीं बनाता है। प्रत्येक गतिविधि जो भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रयोग के लिए आवश्यक हो सकती है या जो इस तरह के अभ्यास को सुविधाजनक बना सकती है या इसे सार्थक और प्रभावी बना सकती है, उसे मौलिक अधिकार का दर्जा नहीं दिया जा सकता है जैसे कि यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति के मौलिक अधिकार का हिस्सा हो। अन्यथा, व्यावहारिक रूप से हर गतिविधि किसी न किसी मौलिक अधिकार का हिस्सा बन जाएगी और कुछ अधिकारों को केवल मौलिक अधिकारों के रूप में अलग-अलग अनुमेय प्रतिबंधों के साथ बनाने का उद्देश्य विफल हो जाएगा। * * * 34. इसलिए, विदेश जाने के अधिकार को परिधीय या सहवर्ती अधिकार के सिद्धांत पर अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत गारंटीकृत भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में शामिल नहीं माना जा सकता है। अखिल भारतीय बैंक कर्मचारी संघ के मामले में इस सिद्धांत को दृढ़ता से खारिज कर दिया गया है और हम इसे पुनर्जीवित करने के किसी भी प्रयास का सामना नहीं कर सकते हैं, क्योंकि यह अनुच्छेद 19(1) की योजना को पूरी तरह से उलट देगा और अखिल भारतीय बैंक कर्मचारी संघ मामले में न्यायालय की ओर से बोलते हुए राजगोपाल अय्यंगर के शब्दों को उद्धृत करने के लिए, "सहवर्ती अधिकारों के अनुरूप अधिकारों के रूप में लगातार बढ़ते संकेंद्रित हलकों की एक श्रृंखला द्वारा "सहवर्ती अधिकारों आदि के रूप में निरंतर बढ़ते संकेंद्रित हलकों की एक श्रृंखला द्वारा, लगभग विचित्र परिणाम की ओर अग्रसर करें"। इसी तरह, उन्हीं कारणों से, विदेश जाने के अधिकार को अनुच्छेद 19(1)(जी) के तहत गारंटीकृत व्यापार, व्यवसाय, पेशे या कॉल करने के अधिकार के हिस्से के रूप में नहीं माना जा सकता है। विदेश जाने का अधिकार स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 19(1) और धारा 10(3)(सी) के किसी भी खंड के तहत गारंटीकृत अधिकार नहीं है, जो 5 सभी को अधिकृत करता है। आदित्य मूर्ति बनाम सी.बी.आई./ए.सी.बी. लखनऊ। (ख) पासपोर्ट को जब्त करके विदेश जाने के अधिकार पर प्रतिबंध लगाने को अनुच्छेद 19(1)(क) या (छ) का उल्लंघन करते हुए शून्य नहीं माना जा सकता क्योंकि इसका प्रत्यक्ष और अपरिहार्य प्रभाव विदेश जाने के अधिकार पर है न कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार या व्यापार करने के अधिकार पर। व्यवसाय, पेशा या कॉलिंग। (महत्व सन्निविष्ट) माननीय न्यायमूर्ति श्री वाई. बनाम चंद्रचूड़ जे. और बनाम आर. कृष्णा अय्यर जे. भागवती जे. इस प्रकार, मेनका गांधी (उपरोक्त) यह नहीं मानती हैं कि विदेश यात्रा का अधिकार एक मौलिक अधिकार है।*

11. दिलचस्प बात यह है कि मेनका गांधी (उपरोक्त) में, सरकार की ओर से एक बयान दिया गया था कि सरकार याचिकाकर्ता द्वारा उसके पासपोर्ट को जब्त करने और उसे इस मामले में एक अवसर देने के संबंध में किए जा सकने वाले किसी भी अभ्यावेदन पर विचार करने के लिए सहमत थी। अभ्यावेदन प्राप्त होने के दो सप्ताह के भीतर अवसर दिया जाएगा। पासपोर्ट जब्त करने के निर्णय की पुष्टि होने की स्थिति में, याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व पर लिए जाने वाले निर्णय की तारीख से छह महीने की अवधि से अधिक नहीं होगी। उपरोक्त कथन को ध्यान में रखते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करना अनावश्यक था और तदनुसार, रिट याचिका को बिना कोई औपचारिक आदेश पारित किए निपटा दिया गया था, लेकिन यह आदेश दिया गया था कि पासपोर्ट अगले आदेश तक सर्वोच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार की हिरासत में रहेगा।

12. इसलिए, मेनका गांधी (उपरोक्त) यह निर्धारित नहीं करती हैं कि एक व्यक्ति जिस पर एक लोक सेवक द्वारा धोखाधड़ी और कदाचार के लिए आपराधिक साजिश के अपराध करने का आरोप लगाया गया है, और जिसे जमानत पर रिहा किया गया है, उसे एक देश में किसी रिश्तेदार की शादी में शामिल होने के लिए विदेश यात्रा करने और दूसरे देश में आनंद यात्रा का आनंद लेने का मौलिक अधिकार है।

13. परवेज नूरदीन लोखंडवाला (उपरोक्त) मामले की उत्पत्ति एक निजी शिकायत में हुई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि अपीलकर्ता ने अपने भाई के जाली हस्ताक्षर करके पावर ऑफ अटॉर्नी बनाई थी। मजिस्ट्रेट ने द०प्र०स० की धारा 156(3) के तहत जांच का निर्देश देते हुए एक आदेश पारित किया। इसके बाद अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 420, 467, 468, 469, 470, 471 और 474 सपठित धारा 34 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराधों के लिए एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। अपीलकर्ता एक भारतीय नागरिक था और उसके पास भारतीय पासपोर्ट था। वह 1985 से संयुक्त राज्य अमेरिका में रह रहे थे और उनके पास ग्रीन कार्ड था जिससे वह संयुक्त राज्य अमेरिका में रह सकते थे। अपीलकर्ता 10.01.2020 को भारत आया था। प्राथमिकी के आधार पर जारी लुकआउट नोटिस के अनुपालन में उन्हें 21.02.2020 को गिरफ्तार किया गया था। उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को कुछ शर्तों के अधीन जमानत दी थी, जिसमें यह शर्त भी शामिल थी कि वह अपना पासपोर्ट और/या ग्रीन कार्ड जांच एजेंसी के पास जमा कर देगा और वह निचली अदालत की पूर्व अनुमति के बिना ठाणे पुलिस आयुक्तालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं जाएगा। आवेदक ने अपने ग्रीन कार्ड के पुन: सत्यापन के लिए अमेरिका जाने की अनुमति मांगी थी। उच्च न्यायालय ने अनुमति देने से इनकार कर दिया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहते हुए अपील की अनुमति दी कि: -

"22. निजी शिकायत जो वर्तमान कार्यवाही की उत्पत्ति है, जनवरी 2014 में स्थापित की गई थी। आरोप की गंभीरता यह है कि अपीलकर्ता ने अपने भाई शालीन की पावर ऑफ अटॉर्नी वर्ष 19-12-2011 को जाली और गढ़ी है। श्री झा प्रस्तुत करते हैं कि, तथ्य की बात के रूप में, किसी भी बिंदु पर पावर ऑफ अटॉर्नी का उपयोग नहीं किया गया है; उसका भाई उस समय भारत में मौजूद था जब वाहन में प्रवेश किया गया था; और यह कि उनके भाई ने कभी कोई आपत्ति नहीं उठाई। तथापि, हम वर्तमान स्तर पर इन तथ्यात्मक पहलुओं पर विचार करने के इच्छुक नहीं हैं। यह ध्यान रखना पर्याप्त होगा कि सह-आरोपी को 16-4-2018 को सत्र न्यायाधीश,

ठाणे द्वारा जमानत दी गई थी। हमें केवल यह तय करने के लिए कहा जाता है कि अपीलकर्ता को आठ सप्ताह के लिए अमेरिका की यात्रा करने की अनुमति दी जानी चाहिए या नहीं। इस मुद्दे का मूल्यांकन करते समय, हमें आरोपों की प्रकृति, अपीलकर्ता के आचरण और सबसे बढ़कर, यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता का ध्यान रखना चाहिए कि वह अभियोजन पक्ष से बचने का जोखिम पैदा नहीं करता है। अपीलकर्ता द्वारा अदालत को प्रस्तुत किए गए विवरण से संकेत मिलता है कि उसने 2015 और 2020 के बीच नियमित रूप से सोलह मौकों पर अमेरिका और भारत के बीच यात्रा की है। उन्होंने भारत के साथ घनिष्ठ संपर्क बनाए रखा है। उच्च न्यायालय का यह विचार कि उसका भारत के साथ कोई संपर्क नहीं है, अभिलेखों पर मौजूद सामग्री के विपरीत है। प्रस्तुत मामले के तथ्यों में प्राथमिकी दर्ज करने से अपीलकर्ता को अपने ग्रीन कार्ड को फिर से वैध करने के व्यवसाय में भाग लेने के लिए आठ सप्ताह के लिए अमेरिका की यात्रा पर रोक नहीं लगनी चाहिए। (महत्व सन्निविष्ट)

14. इस प्रकार माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने परवेज नूरदीन लोखंडवाला को इस बात को ध्यान में रखते हुए अनुमति दी थी कि उनके खिलाफ प्राथमिकी एक निजी शिकायत के आधार पर दर्ज की गई थी कि उन्होंने अपने भाई के हस्ताक्षर करके पावर ऑफ अटॉर्नी बनाई थी, जिसका उपयोग किसी भी अवसर पर पावर ऑफ अटॉर्नी नहीं किया गया था। अपीलकर्ता ग्रीन कार्ड धारक था और वह वर्ष 1985 से संयुक्त राज्य अमेरिका में रह रहा था। उन्हें अपने ग्रीन कार्ड के पुन: सत्यापन के लिए अमेरिका की यात्रा करनी पड़ी।

15. यह स्थापित कानून है कि एक मिसाल को उस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए समझा जाना चाहिए और लागू किया जाना चाहिए जिसमें मामले का फैसला किया गया था और उस मामले में शामिल प्रश्न जिस पर निर्णय लिया गया था। मामलों की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में अंतर कानून के सिद्धांतों के आवेदन में अंतर की दुनिया बना सकता है। **परसा राजा माणिक्याला राव बनाम परसा राजा माणिक्याला राव आंध्र प्रदेश राज्य, (2003) 12 एस.सी.सी. 306: 2003 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1142**, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि: -

"9. प्रत्येक मामला, विशेष रूप से एक आपराधिक मामला, अपने स्वयं के तथ्यों पर निर्भर करता है और एक मामले और दूसरे के बीच एक करीबी समानता उपचार की तरह वारंट करने के लिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि एक महत्वपूर्ण विवरण पूरे पहलू को बदल सकता है। ऐसे मामलों का फैसला करने में, किसी को मामलों को दूसरे के रंग के खिलाफ एक मामले के रंग का मिलान करके (जैसा कि कॉर्डोज़ो द्वारा कहा गया है) का फैसला करने के प्रलोभन से बचना चाहिए।

16. प्रस्तुत आवेदक सी.बी.आई. द्वारा दर्ज एक प्राथमिकी में एक आरोपी है और मामला किसी भी निजी शिकायत पर आधारित नहीं है। आवेदक संयुक्त राज्य अमेरिका में एक रिश्तेदार के विवाह समारोह में भाग लेने और फ्रांस में एक पारिवारिक आनंद यात्रा का आनंद लेने के लिए विदेश यात्रा करने की अनुमति मांग रहा है। यह उद्देश्य ग्रीन कार्ड के पुनर्वैधीकरण जैसा कोई आवश्यक उद्देश्य नहीं है। इसलिए, प्रस्तुत मामले के

तथ्य किसी भी तरह से परवेज नूरदीन लोखंडवाला (उपरोक्त) के तथ्यों के समान नहीं हैं और आवेदक को इसका कोई लाभ नहीं मिल सकता है।

17. आवेदक के विरुद्ध कार्यवाही केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफ.आई.आर.) के आधार पर प्रारंभ की गई है तथा विचारण न्यायालय द्वारा उस पर भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी सहपठित धारा 420 एवं भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(d) के अंतर्गत अपराध किए जाने के आरोप तय किए गए हैं। मुकदमा 2011 से लंबित, अब बचाव पक्ष के साक्ष्य के चरण में पहुंच गया है। इस स्तर पर, वह केवल अपने पिता की बहन के पोते के विवाह समारोह में शामिल होने के लिए विदेश यात्रा करना चाहता है, जो उसके वर्तमान परिवार का सदस्य नहीं है। सैन डिएगो, कैलिफोर्निया, यू.एस.ए. में शादी में भाग लेने के बाद, आवेदक फ्रांस की पारिवारिक आनंद यात्रा करना चाहता है।

18. एक आरोपी व्यक्ति जिसे जमानत पर रिहा किया गया है, उसे चिकित्सा उपचार, आवश्यक आधिकारिक कर्तव्यों में भाग लेने और इसी तरह की कुछ जरूरी आवश्यकता के लिए विदेश यात्रा करने की अनुमति दी जा सकती है। एक आरोपी व्यक्ति जिसे जमानत पर रिहा किया गया है, केवल एक रिश्तेदार की शादी में शामिल होने और दूसरे देश की सुखद यात्रा करने के लिए दूसरे देश की यात्रा करने के अधिकार के रूप में अनुमति नहीं ले सकता है। एक विदेश में एक रिश्तेदार की शादी और दूसरे देश की आनंद यात्रा एक विचाराधीन आरोपी व्यक्ति की विदेश यात्रा के लिए बिल्कुल भी आवश्यक उद्देश्य नहीं हैं।

19. केवल, क्योंकि विचारण न्यायालय ने पहले आवेदक को कई पर गैर-आवश्यक वस्तुओं के लिए विदेश यात्रा करने की अनुमति दी थी, इसलिए उसे इस बार भी गैर-आवश्यक वस्तुओं के लिए विदेश यात्रा करने का अधिकार नहीं मिलता है, जब मुकदमा बचाव साक्ष्य के चरण में पहुंच गया है।

20. आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह कारण विचारण न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट नहीं किया गया है और विचारण न्यायालय ने केवल इस आधार पर आवेदन को खारिज कर दिया है कि चूंकि मुकदमा बचाव साक्ष्य के चरण में पहुंच गया है, इसलिए आवेदक को विदेश यात्रा की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

21. धारा 528 बी.एन.एस.एस द्वारा मान्यता प्राप्त इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए, इस न्यायालय की शक्ति विचारण न्यायालय द्वारा सौंपे गए कारणों की जांच तक ही सीमित नहीं है। विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द करने की मांग करने के अलावा, आवेदक ने इस न्यायालय से अनुरोध किया है कि वह उसे विदेश यात्रा करने की अनुमति देने के लिए एक आदेश पारित करे और इन परिस्थितियों में, यह न्यायालय निश्चित रूप से आवेदक द्वारा की गई प्रार्थना के औचित्य को देख सकता है ताकि यह आकलन किया जा सके कि क्या मांगी गई अनुमति आवेदक को दी जा सकती है।

22. इस न्यायालय ने **जितेंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला 674** के मामले में माना है कि एक व्यक्ति जिसे न्यायालय द्वारा लगाई गई शर्तों के अधीन गिरफ्तार किया गया है और जमानत पर रिहा किया गया है, वह न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के अधीन रहता है और उसे न्यायालय की रचनात्मक हिरासत में माना जाएगा। इसलिए, आवेदक एक स्वतंत्र व्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता का आनंद नहीं लेता है और उसकी स्वतंत्रता पर उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं, जिसमें उसके देश से बाहर जाने का प्रतिबंध भी शामिल है।

23. पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए, मेरा विचार है कि विचारण न्यायालय ने आवेदक को एक रिश्तेदार की शादी में भाग लेने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका की यात्रा के लिए और फ्रांस में पारिवारिक आनंद यात्रा का आनंद लेने के लिए अनुमति मांगने वाले आवेदन को खारिज करने में कोई अवैधता नहीं की है, जब मुकदमा बचाव साक्ष्य के चरण में पहुंच गया है। आवेदक को अपने रिश्तेदार की शादी में शामिल होने के लिए अमेरिका की यात्रा करने और परिवार की आनंद यात्रा का आनंद लेने के लिए फ्रांस जाने का अधिकार नहीं है, जब सी.बी.आई. द्वारा दायर मामले की सुनवाई, जिसमें आवेदक एक आरोपी है, बचाव साक्ष्य के चरण में पहुंच गया है।

24. आवेदक की विदेश यात्रा के लिए अनुमति मांगने वाले आवेदन के साथ-साथ धारा 528 बी.एन.एस.एस के तहत आवेदन में योग्यता की कमी है और तदनुसार, **खारिज** किया जाता है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1008

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ **14.05.2025**

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

धारा **482** के तहत आवेदन **संख्या - 3979** वर्ष **2025**

निहारिका सिंह **... अपीलकर्ता**

बनाम

प्रवर्तन निदेशालय लखनऊ **... प्रतिपक्षी**

अपीलकर्ता के **अधिवक्ता:** ऐश्वर्या प्रताप सिंह**,** विवेक कुमार शुक्ला

प्रतिपक्षी के **अधिवक्ता:** कुलदीप श्रीवास्तव

धन शोधन निवारण अधिनियम (पी.एम.एल.ए.), 2002-धारा 3 - पी.एम.एल.ए. की धारा 3 के तहत धन शोधन का अपराध उस अनुसूचित अपराध से स्वतंत्र है जिसके माध्यम से अपराध की आय उत्पन्न हुई थी - यदि कई व्यक्तियों पर अनुसूचित अपराध करने का आरोप लगाया जाता है और उनमें से एक या कुछ को दोषमुक्त नहीं किया जाता है, लेकिन उनमें से सभी को दोषमुक्त/बरी नहीं किया जाता है - यह नहीं कहा जा सकता है कि अनुसूचित अपराध नहीं किया गया है - या आय यदि अभियोजन चल रहा है तो भले ही किसी व्यक्ति को अनुसूचित अपराध में अभियुक्त के रूप में नामित नहीं किया गया हो - या यदि उसे अनुसूचित अपराध के संबंध में दोषमुक्त कर दिया गया है/आरोपमुक्त कर दिया गया है - तो यह पी.एम.एल.ए. के तहत उसके अभियोजन के खिलाफ कोई रोक नहीं लगाएगा।

आवेदन खारिज कर दिया गया। (ई-9)

उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची:

1. विजय मदनलाल चौधरी और अन्य बनाम यू.ओ.आई. और अन्य: (2022) एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 929
2. प्रवर्तन निदेशालय बनाम गगनदीप सिंह: 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन दिल्ली 514
3. जीवन कुमार बनाम उप प्रवर्तन निदेशालय: (2024) एस.सी.सी. ऑनलाइन दिल्ली 271
4. प्रवर्तन निदेशालय बनाम अखिलेश सिंह: (2024) एस.सी.सी. ऑनलाइन दिल्ली 3051

5. पवना डिब्बूर बनाम प्रवर्तन निदेशालय, (2023) 15 एस.सी.सी. 91

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के अधिवक्ता श्री तुषार अग्रवाल और श्री ऐश्वर्या प्रताप सिंह और प्रतिपक्षी प्रवर्तन निदेशालय के अधिवक्ता श्री रोहित त्रिपाठी को सुना।

2. धारा 482 द०प्र०स० के तहत दायर प्रस्तुत आवेदन के माध्यम से, आवेदक ने सत्र मामले संख्या-2578/2024 में विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक/पी.एम.एल.ए., (सी.बी.आई.वेस्ट), लखनऊ द्वारा पारित संज्ञान और समन आदेश दिनांक 24.10.2024 की वैधता, ईसीआईआर/एलकेजेडओ/12/2021 में दायर अभियोजन शिकायत और उपरोक्त मामले में सभी परिणामी कार्यवाही को चुनौती दी है।

3. संक्षेप में बताया गया है कि मामले के तथ्य यह हैं कि पुलिस ने 21.02.2020 और 26.10.2020 के बीच धारा 120-बी, 323, 406, 409, 419, 420, 467, 468, 470, 471, 504, 506, 505(1)(बी) भ०द०वि० के तहत कई व्यक्तियों के खिलाफ कई प्राथमिकी दर्ज की हैं, जिसमें आरोप लगाया गया है कि मेसर्स अनी बुलियन ट्रेडर्स, एनी कमोडिटी ब्रोकर्स प्राइवेट लिमिटेड, आई विजन इंडिया क्रेडिट को-ऑपरेटिव सोसाइटी लिमिटेड, अनी बुलियन इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड आदि ने उत्तर प्रदेश के विभिन्न स्थानों पर कई पोंजी योजनाओं को आगे बढ़ाया था और निवेशकों को आकर्षक रिटर्न के लालच में कंपनियों में पैसा निवेश करने का लालच दिया था। सभी को पोस्ट डेटेड चेक जारी किए गए थे। निवेशकों को वापस कर दिया गया था, लेकिन उन्हें बैंकों द्वारा बिना भुगतान के वापस कर दिया गया था। कंपनी ने भूमि के जाली स्वामित्व विलेख दिखाए जबकि कंपनी के पास कोई जमीन नहीं थी। कंपनी के निदेशकों ने निवेशकों के पैसे को अन्य संबंधित कंपनियों में डायवर्ट किया है और इसका उपयोग निदेशकों के करीबी रिश्तेदारों के नाम पर चल/अचल संपत्ति प्राप्त करने के लिए किया है।

4. प्रवर्तन निदेशालय ने 08.03.2021 को आवेदक और उसके पति अजीत कुमार गुप्ता सहित पांच व्यक्तियों के खिलाफ ईसीआईआर/एलकेजेडओ/12/2021 दर्ज किया, जिसमें कहा गया था कि आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ अवैध कमाई के संबंध में जांच करना समीचीन प्रतीत होता है, जो अपराध की आय हो सकती है यानी धारा 120-बी के तहत आपराधिक गतिविधियों से अर्जित दागी धन, 323, 406, 409, 419, 420, 467, 468, 470, 471, 504, 506, 505(1)(बी) भ०द०वि० जिसमें से 120-बी, 419, 420, 467 और 471 भ०द०वि० पी.एम.एल.ए. के साथ संलग्न अनुसूची के भाग ए के प्रस्तर-1 के तहत अनुसूचित अपराध हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अपराध से प्राप्त आय का उपयोग आरोपी व्यक्तियों द्वारा विभिन्न चल/अचल संपत्तियों के अधिग्रहण के लिए किया गया है, ताकि इसे बेदाग संपत्ति के रूप में पेश किया जा सके, जो पी.एम.एल.ए. 2002 की धारा 3 के तहत एक अपराध है।

5. जांच के बाद, प्रवर्तन निदेशालय ने विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक, सी.बी.आई. (w), लखनऊ की अदालत में आवेदक और उसके पति अजीत कुमार गुप्ता सहित पांच व्यक्तियों और तीन कंपनियों - (i) मेसर्स अनी बुलियन एंड इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड, (ii) मैसर्स अनी कमोडिटी ब्रोकर्स प्राइवेट लिमिटेड और (iii) मेसर्स इन्वेस्टर्स एनी सिक्योरिटीज प्राइवेट लिमिटेड के खिलाफ शिकायत दर्ज की।

6. आवेदक के खिलाफ आरोप है कि वह भारतीय विदेश सेवा अधिकारी वर्ष 2006 बैच की विदेश मंत्रालय के साथ काम कर रही है। उसने जानबूझकर सांठगांठ की और पोंजी योजनाओं की विश्वसनीयता स्थापित करने में अपनी प्रभावशाली स्थिति के माध्यम से अपने पति की सहायता की। वह भारत सरकार की एक उच्च शिक्षित वरिष्ठ अधिकारी होने के नाते, अजीत कुमार गुप्ता और उनकी कंपनियों द्वारा अवधारित विभिन्न समारोहों में भाग लेकर निवेशकों को लुभाने के लिए अनी ग्रुप ऑफ कंपनीज की विश्वसनीयता स्थापित करने में अपने पति अजीत कुमार गुप्ता की सहायता करने में सक्रिय रूप से और जानबूझकर अपने पद का उपयोग किया। अजीत कुमार गुप्ता और उनकी कंपनियों द्वारा आयोजित विभिन्न समारोहों में प्रचार करके धन जुटाने में उनकी सक्रिय भागीदारी के कारण, उन्हें एनी ग्रुप ऑफ कंपनीज की प्रथम महिला के रूप में जाना जाता था। इस तरह, उसने जानबूझकर अपने पति को अनुसूचित अपराधों को अंजाम देने और अपराध की आय को 44.44 करोड़ रुपये जुटाने में सहायता की और उकसाया।

7. इसके अलावा, आवेदक को अपने पति अजीत कुमार गुप्ता की कंपनियों से अनुसूचित अपराध के गठन से उत्पन्न अपराध की आय का प्राप्तकर्ता होने के नाते अपराध की आय को छिपाने में अपने पति की सहायता करने में शामिल पाया गया, जिसका उपयोग बाद में उसके अपने नाम पर अचल संपत्तियों के अधिग्रहण के लिए किया गया था। आवेदक ने श्रीमती शिखा तिवारी से विराट खंड, गोमती नगर, लखनऊ में एक घर खरीदा था। बिक्री प्रतिफल में से 35 लाख रुपये का भुगतान मैसर्स अनी बुलियन ट्रेडर्स प्राइवेट लिमिटेड द्वारा किया गया है। 4.45 करोड़ रुपये में खरीदी गई उपरोक्त संपत्ति को आवेदक द्वारा 1.56 करोड़ रुपये में बेचा गया है और उसके पास 11 लाख रुपये के लाभ के रूप में अर्जित किया गया है जो सीधे अपराध की आय से प्राप्त किया गया है।

8. जांच से पता चला है कि आवेदक ने अपने पति अजीत कुमार गुप्ता को 76 लाख रुपये की अपराध की आय को छिपाने में सहायता की है, जो उसने एनी ग्रुप ऑफ कंपनीज से अपने खाते में प्राप्त किया था और उसने निवेशकों के इस पैसे का उपयोग गोमती नगर में स्थित एक संपत्ति के भूमि उपयोग को बदलने के लिए लखनऊ विकास प्राधिकरण लखनऊ, को भुगतान करने के लिए किया था। हालांकि, यह पूरा नहीं हो सका और लखनऊ विकास प्राधिकरण ने 24.11.2020 को आवेदक के बैंक खाते में 76 लाख रुपये वापस कर दिए।

9. शिकायत में कहा गया है कि इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि आवेदक ने सक्रिय रूप से और जानबूझकर अपने पति अजीत कुमार गुप्ता को 2.03 करोड़ रुपये की अपराध की आय के अधिग्रहण, कब्जे, लेयरिंग, छिपाने और

उपयोग में सहायता की और इसलिए, उसने धारा 3 के तहत परिभाषित और पी.एम.एल.ए. 2002 की धारा 4 के तहत दंडनीय मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध किया है।

10. आवेदक को अनुसूचित अपराधों से संबंधित 12 मामलों में आरोपी बनाया गया था, लेकिन जांच के बाद, उनका नाम उन 12 मामलों में से किसी के संबंध में प्रस्तुत आरोप-पत्र में शामिल नहीं किया गया है।

11. आवेदक के अधिवक्ता का निवेदन यह है कि विवेचनाधिकारी ने अनुसूचित अपराध के संबंध में जांच पूरी कर ली है और एक आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है जिसमें आवेदक का नाम शामिल नहीं है। आवेदक अनुसूचित अपराध से संबंधित मामले के तहत सभी आरोपों से मुक्त हो जाता है। इसलिए, आवेदक पर धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 (इसके बाद 'पी.एम.एल.ए.' के रूप में संदर्भित) के तहत मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध के लिए मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है।

12. आवेदक के अधिवक्ता ने **विजय मदनलाल चौधरी और अन्य बनाम अन्य भारत संघ और अन्य: (2022) एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 929**, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलंबन किया है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि: -

"109. संक्षेप में कहें तो, यह केवल ऐसी संपत्ति है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से एक अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप प्राप्त या प्राप्त की जाती है जिसे अपराध की आय के रूप में माना जा सकता है। अधिनियम 2002 के तहत प्राधिकारी इस धारणा पर धन शोधन के लिए किसी भी व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई का सहारा नहीं ले सकते हैं कि उनके द्वारा बरामद की गई संपत्ति अपराध की आय होनी चाहिए और एक अनुसूचित अपराध किया गया है, जब तक कि इसे क्षेत्राधिकार पुलिस के साथ दर्ज नहीं किया जाता है या सक्षम मंच के समक्ष शिकायत के माध्यम से जांच लंबित नहीं होती है। क्योंकि, अभिव्यक्ति "व्युत्पन्न या प्राप्त" पहले से ही पूरा किए गए अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि का संकेत है। इसी प्रकार, यदि किसी अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि में नामित व्यक्ति को उसके विरुद्ध आपराधिक मामले (अनुसूचित अपराध) को निर्वहन के आदेश के कारण सक्षम क्षेत्राधिकार की अदालत द्वारा अंततः दोषमुक्त कर दिया जाता है, तो ऐसे व्यक्ति या उसके माध्यम से उसके माध्यम से दावा करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध उक्त अनुसूचित अपराध से जुड़ी संपत्ति के संबंध में धन शोधन के लिए कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है। केवल यही व्याख्या वर्ष अधिनियम 2002 के उपबंधों, विशेष रूप से धारा 2(1)(u) को धारा 3 के साथ पठित करने पर, स्वीकार्य ठहराई जा सकती है। किसी अन्य दृष्टिकोण को अपनाना इन उपबंधों का पुनर्लेखन करने तथा परिभाषा उपबंध 'अपराध की आय' की स्पष्ट भाषा की अवहेलना करने के समान होगा, जैसा कि वह वर्तमान में विद्यमान है।

13. आवेदक की ओर से प्रस्तुत अधिवक्ता ने दिल्ली उच्च न्यायालय की एकल न्यायाधीश पीठ द्वारा प्रवर्तित निदेशालय बनाम गगनदीप सिंह 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन डेल 514 में दिए गए निर्णय पर भी भरोसा किया है, जिसमें दिल्ली उच्च न्यायालय की एकल न्यायाधीश पीठ ने यह प्रतिपादित किया कि:

"30. हालांकि, मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध को अलग-थलग करके नहीं समझा जाना चाहिए, बल्कि पूरक प्रावधानों के साथ पढ़ा जाना चाहिए, अर्थात, अधिनियम की अनुसूची में सूचीबद्ध अपराध। पी.एम.एल.ए. के उपर्युक्त प्रावधानों का अवलोकन पी.एम.एल.ए. के तहत अनुसूचित अपराधों के कमीशन और बाद में मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध के बीच पूर्वापेक्षा संबंध स्थापित करता है। धारा 3 की भाषा स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध में शामिल धन आवश्यक रूप से अपराध की आय है, जो अधिनियम की अनुसूची में सूचीबद्ध अनुसूचित अपराधों के संबंध में आपराधिक गतिविधि से उद्भूत है। इसलिए, पी.एम.एल.ए. की धारा 3 के अपराध के लिए आवश्यक तत्व बन जाते हैं, पहला, अपराध की आय, दूसरा, अधिनियम की अनुसूची में निर्दिष्ट अपराधों से उत्पन्न अपराध की आय और तीसरा, मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध के दौरान ज्ञान का तथ्य। प्रस्तुत मामले में, कार्यवाही के प्रारंभिक चरण में, प्रतिपक्षियों पर एनडीपीएस अधिनियम की धारा 21/25/29 और धारा 420/468/471/120-बीभ०द०वि० के तहत अपराधों के लिए आरोप लगाए गए थे, हालांकि, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, अमृतसर ने कहा कि अदालत के समक्ष पेश की गई सामग्री के साथ-साथ प्रतिपक्षियों के खिलाफ लगाए गए आरोप काफी हद तक संदेह के आधार पर लगाए गए थे। हालांकि कुछ सामग्री, संपत्तियां और नकदी बरामद की गई थी और कुर्क/जब्त की गई थी, लेकिन यह तथ्य स्थापित नहीं किया जा सका कि ऐसी संपत्तियां नशीले पदार्थों की तस्करी के अपराध से प्राप्त की गई थीं।

31. इस टिप्पणी को ध्यान में रखते हुए कि प्रतिपक्षियों के खिलाफ कोई अनुसूचित अपराध नहीं किया गया था, इस न्यायालय ने पाया कि पहली बार में उनके खिलाफ पी.एम.एल.ए. में जांच और कार्यवाही स्थापित नहीं की जा सकती थी।

14. इस फैसले को प्रवर्तन निदेशालय द्वारा एस.एल.पी. (क्रिल) डायरी संख्या-42315 वर्ष 2022 दाखिल करके चुनौती दी गई है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय को 10.02.2023 को याचिका का नोटिस जारी करते हुए प्रसन्नता हुई और एस.एल.पी. अभी भी लंबित है।

15. आवेदक के अधिवक्ता ने माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय की एकल न्यायाधीश पीठ द्वारा **जीवन कुमार बनाम उप प्रवर्तन निदेशालय: (2024) एस.सी.सी. ऑनलाइन दिल्ली 271 और प्रवर्तन निदेशालय बनाम अखिलेश सिंह: (2024) एस.सी.सी. ऑनलाइन दिल्ली 3051** में दिए गए दो और फैसलों पर अवलंबन किया है, जिसमें पी.एम.एल.ए. के तहत कार्यवाही को इस आधार पर रद्द कर दिया गया था कि याचिकाकर्ता को विचारण न्यायालय द्वारा इस मामले से संबंधित मुकदमे में बरी कर दिया गया था। अनुसूचित अपराध। अखिलेश सिंह (उपरोक्त) के मामले में यह व्यवस्था दी गई थी कि:-

"28. इस प्रकार, उपरोक्त निर्णयों से उभरने वाली स्थिति यह है कि अनुसूचित अपराध और उससे उत्पन्न अपराध की आय मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध की नींव है एक बार जब किसी व्यक्ति को अनुसूचित अपराध से मुक्त या बरी कर दिया जाता है, तो नींव ही खटखटाया जाता है और मनी लॉन्ड्रिंग का आरोप जीवित नहीं रहेगा क्योंकि अपराध की कोई आय नहीं होगी। इसके साथ ही, पी.एम.एल.ए. के तहत कुर्क की गई संपत्तियों को कानूनी रूप से अपराध की आय के रूप में नहीं माना जा सकता है या इसे आपराधिक गतिविधि से प्राप्त या प्राप्त संपत्ति के रूप में नहीं देखा जा सकता है।

16. आवेदक के अधिवक्ता ने हेमल मेहता बनाम प्रवर्तन निदेशालय में मद्रास उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा पारित दिनांक 13.04.2023 के अंशों के निम्नलिखित 1012 भारतीय कानून रिपोर्ट इलाहाबाद श्रृंखला पर भी भरोसा किया है: -

"8. ऐसा प्रतीत होता है कि रिट याचिकाकर्ता का नाम बाद में अपराध संख्या-39 वर्ष 2019 में अप्रैल 2019 में एक अन्य रिपोर्ट के आधार पर आरोपी संख्या-10 के रूप में शामिल किया गया था। इसके बाद रिट याचिकाकर्ता ने क्रिल ओ पी सं- 15869 वर्ष 2019 के मामले में इस न्यायालय के समक्ष विभिन्न आधारों पर प्राथमिकी को रद्द करने के लिए दायर किया गया है। जहां तक रिट याचिकाकर्ता का संबंध है, इस न्यायालय को अपराध संख्या-39 वर्ष 2019 में जांच पर रोक लगाने का आदेश देते हुए प्रसन्नता हुई।

9. हालांकि, यह रिट याचिकाकर्ता की शिकायत है कि उसे धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 के प्रावधानों के तहत प्रतिपक्षी से समन प्राप्त हुआ है, जो आक्षेपित कार्यवाही के आधार पर 09.01.2023 को प्रतिपक्षी के सामने पेश होने के लिए है।

* * *

14. रिट याचिकाकर्ता की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता ने **विजय मदनलाल चौधरी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (2022) एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 929** में रिपोर्ट किए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर-467(v)(डी) में निम्नानुसार निर्णय दिया है: -

"467. उपरोक्त विश्लेषण के आलोक में, अब हम निम्नलिखित शब्दों में मुद्दे में मौलिक बिंदुओं पर अपने निष्कर्ष को संक्षेप में प्रस्तुत करने के लिए आगे बढ़ते हैं: - (v)(ए) 2002 अधिनियम की धारा 3 की व्यापक पहुंच है और अपराध की आय से निपटने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हर प्रक्रिया और गतिविधि को पकड़ती है और औपचारिक अर्थव्यवस्था में दागी संपत्ति के एकीकरण के अंतिम कार्य के होने तक सीमित नहीं है। संशोधन वर्ष 2019 के माध्यम से धारा 3 में डाला गया स्पष्टीकरण धारा 3 के तात्पर्य का विस्तार नहीं करता है, बल्कि प्रकृति में केवल स्पष्टीकरण है। यह "और" शब्द को स्पष्ट करता है जो अभिव्यक्ति से पहले "या" के रूप में पेश या दावा करता है; और एक स्पष्टीकरण संशोधन होने के नाते, इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा भले

ही इसे वित्त अधिनियम या अन्यथा के माध्यम से पेश किया गया हो। (ख) उपर्युक्त से स्वतंत्र होकर, हमारा स्पष्ट मत है कि धारा 3 में होने वाली अभिव्यक्ति और उक्त उपबंध को पूरा प्रभाव देने के लिए "या" के रूप में समझा जाना चाहिए ताकि किसी के द्वारा संलिप्त "प्रत्येक" प्रक्रिया या गतिविधि को शामिल किया जा सके। संपत्ति को बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करना या दावा करना अपने आप में मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध होगा, जो एक स्वतंत्र प्रक्रिया या गतिविधि है। (ग) याचिकाकर्ताओं द्वारा सुझाई गई व्याख्या, कि केवल विचाराधीन संपत्ति को अदाग संपत्ति के रूप में पेश करने या दावा करने पर कि धारा 3 का अपराध पूरा होगा, अस्वीकार कर दिया जाता है। (घ) वर्ष अधिनियम 2002 की धारा 3 के अंतर्गत अपराध अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप संपत्ति के अवैध लाभ पर निर्भर है। यह ऐसी संपत्ति से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि से संबंधित है, जो धनशोधन के अपराध का गठन करती है। वर्ष अधिनियम 2002 के अंतर्गत प्राधिकारी किसी व्यक्ति पर सैद्धांतिक आधार पर अथवा इस धारणा के आधार पर मुकदमा नहीं चला सकते हैं कि अनुसूचित अपराध किया गया है, जब तक कि वह अधिकार क्षेत्र की पुलिस के पास पंजीकृत न हो और/अथवा सक्षम मंच के समक्ष आपराधिक शिकायत के माध्यम से लंबित पूछताछ/विचारण न हो। यदि व्यक्ति को अंतत अनुसूचित अपराध से बरी कर दिया जाता है या उसके खिलाफ आपराधिक मामले को सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया जाता है, तो कोई 5 सभी नहीं हो सकते हैं। निहारिका सिंह बनाम प्रवर्तन निदेशालय लखनऊ। उसके खिलाफ या ऐसी संपत्ति का दावा करने वाले किसी व्यक्ति के खिलाफ धन-शोधन का अपराध 1013 है, जो उसके माध्यम से अनुसूचित अपराध से जुड़ी संपत्ति है।
9232998032

15. रिट याचिकाकर्ता की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्राथमिकी संख्या-39 वर्ष 2019 दिनांक 02.02.2019 में किए गए कथनों का उल्लेख किया और बताया कि याचिकाकर्ता का नाम न तो आरोपी के रूप में संदर्भित किया गया है और न ही भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा 420 और 471 सपठित धारा 120-बी नामक अपराधों में शामिल है। वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे बताया कि दिनांक 23.03.2020 की आक्षेपित कार्यवाही में भी, याचिकाकर्ता का नाम कहीं भी नहीं पाया गया है।

17. उन्होंने प्रस्तुत किया है कि मद्रास उच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एस.एल.पी. (सीआरएल) डायरी संख्या-28128 वर्ष 2023 में चुनौती दी गई थी और इसे 18.09.2023 को पारित निम्नलिखित आदेश के माध्यम से वापस लेने के रूप में खारिज कर दिया गया था: -

"श्री एस. बनाम राजू, एएसजी ने प्रस्तुत किया है कि 10.05.2023 को विधेय अपराध पर प्राथमिकी रद्द कर दी गई है। ऐसी परिस्थितियों में, याचिका अप्रभावी हो जाती है। विशेष अनुमति याचिका को खारिज कर दिया जाता है क्योंकि यह अप्रिय हो गया है। एएसजी यह भी चाहते हैं कि यह न्यायालय यह देखे कि इस स्थिति में रद्द करने के आदेश को बाद में एक बेहतर मंच द्वारा पलट दिया जाता है, उसके मुवक्किल को कार्यवाही को पुनर्जीवित करने का अधिकार होगा। हम इस संबंध में कोई टिप्पणी नहीं करते हैं, सिवाय इसके कि राजू के मुवक्किल को ऐसी स्थिति में ऐसे कदम उठाने का अधिकार होगा जो कानून के तहत स्वीकार्य हो।

18. हालाँकि, आवेदक के अधिवक्ता ने जो नहीं बताया, वह यह था कि मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 13.04.2023 का आदेश आदेश केवल एक अंतरिम आदेश है जो आदेश के प्रस्तर-24 में दर्ज कारणों से याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही पर रोक लगा रहा है: -

"चूंकि रिट याचिकाकर्ता दंडनीय धारा 120-बी के अपराधों के लिए दर्ज मामले में अभियुक्तों में से एक नहीं है, भारतीय दंड संहिता, 1860 के तहत दायर याचिका संख्या-420 और 471 के तहत हम धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 के प्रावधानों के तहत धन शोधन के अपराध में शामिल व्यक्ति के रूप में रिट याचिकाकर्ता के अभियोजन को न्यायोचित ठहराने में असमर्थ हैं।"

19. अप्रासंगिक आदेशों का हवाला देने की बढ़ती प्रवृत्ति ने न्यायालय को माननीय मद्रास उच्च न्यायालय की वेब साइट से आदेश को सत्यापित करने के लिए मजबूर कर दिया है, जिसमें रिट याचिका का खुलासा हुआ है जिसमें आवेदक के अधिवक्ता द्वारा 13.04.2023 के अंतरिम आदेश पर भरोसा किया गया था, निम्नलिखित कारणों से पहले से ही 12.12.2023 को अनुमति दी गई है: -

"4. इस अदालत ने इसी तरह के मामलों में अपना विचार व्यक्त किया है कि एक बार पूर्वनिर्धारित अपराध पर प्राथमिकी रद्द हो जाने के बाद पी.एम.एल.ए. अधिनियम के तहत कार्यवाही आगे नहीं बढ़ सकती है। माननीय उच्चतम न्यायालय की वृहद पीठ द्वारा विजय मदनलाल चौधरी और अन्य बनाम अन्य के मामले में कानून का भली-भांति निर्धारण किया गया है। ***भारत संघ और अन्य ने (2022) एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 929*** *में रिपोर्ट की, जिसमें, यह इस प्रकार है:*

"467 - ... (v)(घ) वर्ष अधिनियम 2002 की धारा 3 के अंतर्गत अपराध अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप संपत्ति के अवैध लाभ पर निर्भर है। यह ऐसी संपत्ति से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि से संबंधित है, जो धनशोधन के अपराध का गठन करती है। वर्ष 2002-1014 के भारतीय विधि प्रतिवेदन इलाहाबाद श्रृंखला अधिनियम के अंतर्गत प्राधिकारी किसी भी व्यक्ति पर काल्पनिक आधार पर अथवा इस धारणा के आधार पर मुकदमा नहीं चला सकते हैं कि अनुसूचित अपराध किया गया है, जब तक कि वह अधिकार क्षेत्र की पुलिस के पास पंजीकृत न हो और/अथवा सक्षम मंच के समक्ष आपराधिक शिकायत के माध्यम से लंबित पूछताछ/विचारण न हो। यदि व्यक्ति को अंततः अनुसूचित अपराध से बरी कर दिया जाता है या उसके खिलाफ आपराधिक मामले को सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया जाता है, तो उसके खिलाफ या किसी के खिलाफ धनशोधन का कोई अपराध नहीं हो सकता है जो यह दावा करता है कि ऐसी संपत्ति उसके माध्यम से अनुसूचित अपराध से जुड़ी संपत्ति है।

5. इस दृष्टिकोण को कई मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी अनुमोदित किया गया है। यहां तक कि इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत आदेश में भी, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास यह देखने का अवसर

था कि एक बार विधेय अपराध पर प्राथमिकी को रद्द कर दिए जाने के बाद कुछ भी नहीं बचता है। ऐसी परिस्थितियों में, इस न्यायालय को सभी मामलों को लंबित रखने का कोई कारण नहीं दिखता है।

6. इसलिए, इन सभी रिट याचिकाओं की अनुमति दी जाती है और ईसीआईआर/सीईजेडओआई/17/2020, दिनांक 23.03.2020 में प्रतिपक्षी की आक्षेपित कार्यवाही को रद्द कर दिया जाता है। कोई कीमत नहीं। नतीजतन, संबंधित विविध याचिकाएं निरर्थक हो गई हैं।

20. एक मामले में एक अन्य उच्च न्यायालय द्वारा पारित एक अंतरिम आदेश का हवाला देते हुए, जो पहले से ही बहुत पहले तय हो चुका है, आवेदक के अधिवक्ता श्री तुषार अग्रवाल और श्री ऐश्वर्या प्रताप सिंह द्वारा प्रदान की गई पेशेवर सहायता की गुणवत्ता पर अच्छी तरह से प्रतिबिंबित नहीं करता है।

21. उद्धृत निर्णयों की संख्या को गुणा करने की प्रवृत्ति न्याय के हितों की पूर्ति नहीं करती है, क्योंकि इसके परिणामस्वरूप न्यायालय का कीमती समय बर्बाद होता है, जिसका उपयोग कई अन्य लंबित मामलों को तय करने के लिए किया जा सकता है। इस न्यायालय ने बार-बार अधिवक्ता से अनुरोध किया है कि वे अपनी दलीलें सटीक और संक्षिप्त रखें और अप्रासंगिक या अनावश्यक निर्णयों का हवाला देने से बचें।

22. इसके विपरीत, प्रवर्तन निदेशालय के अधिवक्ता श्री रोहित त्रिपाठी ने **पवना डिब्बूर बनाम पंजाब प्रवर्तन निदेशालय, (2023) 15 एस.सी.सी. 91**, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलंबन किया है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि: -

"15. अपराध की आय के अस्तित्व के लिए पूर्ववर्ती शर्त एक अनुसूचित अपराध का अस्तित्व है। इस पहलू पर, विजय मदनलाल चौधरी [विजय मदनलाल चौधरी बनाम भारत संघ, (2023)12 एससीसी 1] में इस न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करना आवश्यक है। उक्त निर्णय के प्रस्तर-109 में, इस न्यायालय ने इस प्रकार कहा:

"109. संक्षेप में कहें तो, यह केवल ऐसी संपत्ति है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से एक अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप प्राप्त की जाती है जिसे अपराध की आय के रूप में माना जा सकता है। अधिनियम 2002 के तहत प्राधिकारी इस धारणा पर धन शोधन के लिए किसी भी व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई का सहारा नहीं ले सकते हैं कि उनके द्वारा बरामद की गई संपत्ति अपराध की आय होनी चाहिए और एक अनुसूचित अपराध किया गया है, जब तक कि इसे क्षेत्राधिकार पुलिस के साथ दर्ज नहीं किया जाता है या सक्षम मंच के समक्ष शिकायत के माध्यम से जांच लंबित नहीं होती है। क्योंकि, अभिव्यक्ति "व्युत्पन्न या प्राप्त" पहले से ही पूरा किए गए अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि का संकेत है। इसी प्रकार, यदि किसी अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि में नामित व्यक्ति को अपराधमुक्त करने, बरी करने या आपराधिक मामले (अनुसूचित अपराध) को रद्द करने के आदेश के कारण सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय द्वारा अंतत दोषमुक्त कर दिया जाता है, तो 5 सभी। निहारिका सिंह बनाम प्रवर्तन निदेशालय

लखनऊ। (ख) उसके विरुद्ध धारा 1015 की रिट याचिका (सिविल) के तहत ऐसे व्यक्ति अथवा व्यक्ति के विरुद्ध उक्त अनुसूचित अपराध से जुड़ी संपत्ति के संबंध में उसके माध्यम से दावा करने वाले व्यक्ति अथवा व्यक्ति के विरुद्ध धनशोधन के लिए कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है। इस व्याख्या को अकेले अधिनियम 2002 के प्रावधानों के आधार पर स्वीकार किया जा सकता है, विशेष रूप से धारा 2(1)(यू) को धारा 3 के साथ पढ़ा जा सकता है। किसी अन्य दृष्टिकोण को लेना इन प्रावधानों को फिर से लिखना होगा और परिभाषा खंड "अपराध की आय" की स्पष्ट भाषा की अवहेलना करना होगा, जैसा कि यह अभी तक प्राप्त करता है। (मूल और आपूर्ति में जोर)

16. प्रस्तर-134 और 135 में, इस न्यायालय ने इस प्रकार व्यवस्था दी: (विजय मदनलाल चौधरी मामला)

"134. अधिनियम 2002 की धारा 3 की सादी भाषा से, यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध अपराध की आय से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि के संबंध में एक स्वतंत्र अपराध है जो किसी अनुसूचित अपराध से संबंधित या उसके संबंध में आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप प्राप्त या प्राप्त किया गया था। प्रक्रिया या गतिविधि किसी भी रूप में हो सकती है - चाहे वह छिपाने, कब्जे, अधिग्रहण, अपराध की आय का उपयोग हो, जितना कि इसे बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करना या ऐसा होने का दावा करना। इस प्रकार, अपराध की आय से जुड़ी ऐसी किसी एक प्रक्रिया या गतिविधि में शामिल होना मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध होगा। इस अपराध का अन्यथा किसी अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि से कोई लेना-देना नहीं है - उस अपराध के परिणामस्वरूप प्राप्त या प्राप्त अपराध की आय को छोड़कर।

135. यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि इस तरह की प्रक्रिया या गतिविधि को केवल तभी शामिल किया जा सकता है जब संपत्ति आपराधिक गतिविधि (एक अनुसूचित अपराध) के परिणामस्वरूप प्राप्त या प्राप्त की जाती है। अपराध की आय से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि में शामिल होना या उसमें शामिल होना या उसमें शामिल होना या उसमें शामिल होना या उसमें शामिल होना धन-शोधन का अपराध होगा; और किसी दिए गए तथ्य की स्थिति में ऐसी प्रक्रिया या गतिविधि एक निरंतर अपराध हो सकती है, चाहे अनुसूचित अपराध के गठन की तारीख और समय कुछ भी हो। दूसरे शब्दों में, आपराधिक गतिविधि अधिनियम 2002 के प्रयोजन के लिए अनुसूचित अपराध के रूप में अधिसूचित किए जाने से पहले की गई हो सकती है, लेकिन यदि कोई व्यक्ति अनुसूचित अपराध के रूप में अधिसूचित किए जाने के बाद भी ऐसी आपराधिक गतिविधि से प्राप्त या प्राप्त अपराध की आय से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निपटने में लिप्त है या जारी रखता है, अधिनियम 2002 के तहत मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है - अपराध की आय (पूरी तरह से या आंशिक रूप से) को रखने या उसके कब्जे को बनाए रखने या पूरी तरह से समाप्त होने तक खाइयों में इसका उपयोग करने के लिए। धन-शोधन का अपराध उस तारीख पर निर्भर या उससे जुड़ा नहीं है जिस दिन अनुसूचित अपराध किया गया है, या यदि हम ऐसा कह सकते हैं, तो विधेय अपराध किया गया है। प्रासंगिक तिथि वह तारीख है जिस पर व्यक्ति अपराध की ऐसी आय से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि में शामिल होता है। ये तत्व मूल प्रावधान में आंतरिक हैं (धारा 3, 2013 तक संशोधित और 31-7-2019 तक लागू थी); और इसे

केवल वित्त (संख्या-2) अधिनियम, 2019 के माध्यम से स्पष्टीकरण के माध्यम से समझाया और स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार समझा जाता है, 2019 में डाले गए स्पष्टीकरण में खंड (ii) को शामिल करने का कोई परिणाम नहीं है क्योंकि यह धारा 3 के दायरे को बिल्कुल भी नहीं बदलता या बढ़ाता है।

(महत्त्व सन्निविष्ट)

*17. धारा 3 पी.एम.एल.ए. पर वापस आते हुए, इसके सादे पठन पर, धारा 3 के तहत एक अपराध एक अनुसूचित अपराध किए जाने के बाद किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, आइए हम एक ऐसे व्यक्ति का मामला लें जो अनुसूचित अपराध से जुड़ा नहीं है, जानबूझकर अपराध की आय को छिपाने में सहायता करता है या 1016 भारतीय कानून रिपोर्ट इलाहाबाद श्रृंखला जानबूझकर अपराध की आय के उपयोग में सहायता करती है। उस मामले में, उसे धारा 3 पी.एम.एल.ए. के तहत अपराध करने का दोषी ठहराया जा सकता है। एक ठोस उदाहरण देने के लिए, "जबरन बरामदगी" से संबंधित भ०द०वि० की धारा 384 से 389 के तहत अपराध पी.एम.एल.ए. की अनुसूची के प्रस्तर-1 में शामिल अनुसूचित अपराध हैं। एक आरोपी धारा 384 से 389 भ०द०वि० के तहत जबरन बरामदगी का अपराध कर सकता है और धन उगाही कर सकता है। इसके बाद, जबरन बरामदगी के अपराध से असंबंधित व्यक्ति जबरन बरामदगी की आय को छिपाने में उक्त अभियुक्त की सहायता कर सकता है। ऐसे मामले में, जो व्यक्ति जबरन बरामदगी के अपराध की आय को छिपाने के लिए अनुसूचित अपराध में अभियुक्त की सहायता करता है, वह धन-शोधन के अपराध का दोषी हो सकता है। इसलिए, यह आवश्यक नहीं है कि जिस व्यक्ति के खिलाफ धारा 3 पी.एम.एल.ए. के तहत अपराध का आरोप लगाया गया है, उसे अनुसूचित अपराध में आरोपी के रूप में दिखाया गया हो। **विजय मदनलाल चौधरी [विजय मदनलाल चौधरी बनाम भारत संघ, (2023)12 एस.सी.सी.1]** में इस न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर-135 में जो कहा गया है, वह उपरोक्त निष्कर्ष का समर्थन करता है। धारा 3 पी.एम.एल.ए. के तहत अपराध को आकर्षित करने के लिए पूर्ववर्ती शर्तें यह हैं कि एक अनुसूचित अपराध होना चाहिए और धारा 3 पी.एम.एल.ए. की उप-धारा (1) के खंड (यू) में परिभाषित अनुसूचित अपराध के संबंध में अपराध की आय होनी चाहिए।*

18. किसी दिए गए मामले में, यदि अनुसूचित अपराध के लिए अभियोजन सभी अभियुक्तों को बरी करने या सभी अभियुक्तों के आरोपमुक्त होने या अनुसूचित अपराध की कार्यवाही को पूरी तरह से रद्द कर दिया जाता है, तो अनुसूचित अपराध मौजूद नहीं होगा, और इसलिए, धारा 3 पी.एम.एल.ए. के तहत दंडनीय अपराध के लिए किसी पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है क्योंकि अपराध की कोई आय नहीं होगी। इस प्रकार, ऐसे मामले में, जिस आरोपी के खिलाफ धारा 3 पी.एम.एल.ए. के तहत शिकायत दर्ज की गई है, वह सभी आरोपियों को बरी करने या बरी करने से समाप्त होने वाले अनुसूचित अपराध से लाभान्वित होगा। इसी तरह, उसे अनुसूचित अपराध की कार्यवाही को रद्द करने का लाभ मिलेगा। हालांकि, पी.एम.एल.ए. मामले में एक आरोपी जो अपराध की आय को छिपाने या उपयोग करने में सहायता करके अनुसूचित अपराध करने के बाद सामने आता है, उसे अनुसूचित अपराध में आरोपी होने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे आरोपी पर पी.एम.एल.ए. के तहत तब तक मुकदमा चलाया जा सकता है जब तक कि अनुसूचित अपराध मौजूद है। इस प्रकार, अपीलकर्ता की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा इस आधार पर उठाया गया दूसरा तर्क कि अपीलकर्ता को अनुसूचित अपराधों में दायर आरोप-पत्र में आरोपी के रूप में नहीं दिखाया गया था, खारिज किए जाने योग्य है।

23. इसलिए, विजय मदनलाल चौधरी (उपरोक्त) और पवना डिब्बूर (उपरोक्त) के पढ़ने से जो सही कानूनी स्थिति सामने आती है, वह यह है कि पी.एम.एल.ए. की धारा 3 के तहत मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध उस अनुसूचित अपराध से स्वतंत्र है जिसके माध्यम से अपराध की आय उत्पन्न हुई थी। यदि अनुसूचित अपराध के आरोपी सभी व्यक्तियों को दोषमुक्त कर दिया जाता है या बरी कर दिया जाता है, तो इसका अर्थ यह होगा कि कोई अनुसूचित अपराध नहीं किया गया था। अनुसूचित अपराध किए बिना, अनुसूचित अपराध से उत्पन्न अपराध की कोई आय नहीं होगी। इन परिस्थितियों में, 'अपराध की आय' का कोई 'मनी लॉन्ड्रिंग' नहीं हो सकता है। हालांकि, यदि कई व्यक्तियों पर अनुसूचित अपराध करने का आरोप लगाया जाता है और उनमें से एक या कुछ, लेकिन उनमें से सभी को दोषमुक्त/बरी नहीं किया जाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि अनुसूचित अपराध नहीं किया गया है या अपराध की आय उत्पन्न नहीं हुई है। ऐसी स्थिति में, यदि किसी अनुसूचित अपराध के संबंध में अन्य किसी अभियुक्त व्यक्ति/व्यक्तियों के विरुद्ध अभियोजन कार्यवाही प्रचलित हो, भले ही किसी व्यक्ति को अनुसूचित अपराध में आरोपी के रूप में नामित नहीं किया गया है या यदि उसे अनुसूचित अपराध के संबंध में दोषमुक्त/मुक्त कर दिया गया है, तो यह पी.एम.एल.ए. के तहत उसके अभियोजन के खिलाफ एक बार नहीं बनाएगा। यदि पी.एम.एल.ए. के तहत अभियोजन के लिए उसके खिलाफ कार्रवाई करने के लिए सामग्री है।

24. मामले के पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, उपरोक्त मामलों के आलोक में, मेरा विचार है कि यद्यपि आवेदक का नाम अनुसूचित अपराध के गठन के संबंध में विवेचनाधिकारी द्वारा प्रस्तुत आरोप-पत्र में शामिल नहीं किया गया है, प्रवर्तन निदेशालय द्वारा दायर शिकायत में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अनुसूचित अपराध के गठन में उसके पति की सहायता करने और उकसाने के अलावा अपराध, आवेदक अपने पति अजीत कुमार गुप्ता को अपराध की आय को छिपाने और छिपाने में सहायता करने में भी शामिल है। वह अपराध की आय की प्राप्तकर्ता रही है। अपराध की आय का कुछ हिस्सा आवेदक के बैंक खाते में स्थानांतरित कर दिया गया है, अपराध की आय का कुछ हिस्सा आवेदक के नाम पर अचल संपत्ति खरीदने के लिए उपयोग किया गया है और कुछ हिस्से का उपयोग आवेदक के नाम पर खरीदी गई संपत्ति के भूमि उपयोग के रूपांतरण के लिए किया गया है। इसलिए, भले ही अनुसूचित अपराधों के कमीशन में आवेदक की संलिप्तता, जिसके माध्यम से अपराध की आय उत्पन्न की गई थी, स्थापित नहीं किया गया है, यह आरोप कि आवेदक अपराध की आय को छिपाने और रखने में शामिल है और उसने अपराध की आय का उपयोग किया है, अभी भी जांच की जानी चाहिए।

25. अतः मैं इस मत का हूँ कि यद्यपि आवेदिका को अनुसूचित अपराध के किए जाने से संबंधित समस्त आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया है, तथापि उसे धन शोधन के अपराध के लिए अभियोजन का सामना करना होगा, क्योंकि धन शोधन एक स्वतंत्र (standalone) अपराध है, जो अनुसूचित अपराध से पृथक एवं भिन्न है।

26. धारा 528 बी.एन.एस.एस के तहत आवेदन में योग्यता का अभाव है और इसे एतद्द्वारा **खारिज** किया जाता है।

27. यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने आरोप के गुण-दोष की जांच नहीं की है और इस आदेश में की गई कोई भी टिप्पणी मुकदमे को प्रभावित नहीं करेगी।

(2025) 5 ILRA 1017

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 01.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

धारा 482 के तहत आवेदन संख्या-5057 वर्ष 2024

विष्णु प्रभाकर ... आवेदनकर्ता

बनाम

भारत संघ ... प्रतिपक्षी

आवेदककर्ता के अधिवक्ता: पूर्णेंदु चक्रवर्ती, आलोक कुमार सिंह, अंकित कुमार पांडेय, आशुतोष वर्मा, अविरल राज सिंह, ध्रुव कुमार सिंह, पलाश बनर्जी, ऋत्विक राय, वैभव तिवारी

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: कुलदीप श्रीवास्तव

आवेदनकर्ता के खिलाफ कोई आरोप नहीं है कि उसने अपराध की कोई आय उत्पन्न की थी या अर्जित की थी, केवल यह आरोप है कि उसने धन जुटाने में सहायता की है - यह केवल तभी होता है जब इस तरह के कृत्यों के परिणामस्वरूप धन उद्भूत है कि पी.एम.एल.ए. अपराध की आय के तुरंत बाद कदम उठाता है - प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है।

आवेदन की अनुमति है। (ई-9)

उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची:

1. वाई. बालाजी बनाम कार्तिक देसारी और अन्य: 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 645
2. विजय मदन लाल चौधरी बनाम यू.ओ.आई. और अन्य: (2023) 12 एस.सी.सी. 1 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 929

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा उद्घोषित)

1. आवेदक के अधिवक्ता श्री पूर्णेंदु चक्रवर्ती, श्री ऋत्विक राय और श्री अविरल राज सिंह और प्रतिपक्षी के अधिवक्ता श्री कुलदीप श्रीवास्तव को सुना - प्रवर्तन निदेशालय (जिसे बाद में 'ई.डी.' के रूप में संदर्भित किया जाएगा)।

2. धारा 482 द०प्र०स० के तहत दायर प्रस्तुत आवेदन के माध्यम से, आवेदक ने आवेदक के खिलाफ प्रवर्तन निदेशालय द्वारा दायर 16.09.2017 की शिकायत, दिनांक 02.04.2018 के संज्ञान और समन आदेश और धन शोधन निवारण अधिनियम की धारा 3 और 4 के तहत सत्र मामला संख्या-123 वर्ष 2023 की पूरी कार्यवाही को रद्द करने का अनुरोध किया है। 2002 के मामले में विशेष न्यायाधीश (सी.बी.आई.), न्यायालय संख्या-III, लखनऊ, के न्यायालय में आवेदक के खिलाफ दायर किया गया था।

3. संक्षेप में कहा गया है, मामले के तथ्य यह हैं कि शुरू में 27.12.2008 को, मुख्य क्षेत्रीय प्रबंधक, इंडियन ओवरसीज बैंक, जोनल कार्यालय, लखनऊ ने पुलिस अधीक्षक, सी.बी.आई., बैंक प्रतिभूति और धोखाधड़ी प्रकोष्ठ, नई दिल्ली को कुछ धोखाधड़ी वाले लेनदेन के बारे में शिकायत करते हुए एक शिकायत भेजी और कहा कि: -

"अतः उपर्युक्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री ए.के. दत्ता के कार्यकाल के दौरान शाखा का संचालन उचित से इतर था। जाँच प्रतिवेदन से यह भी स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि श्री विजय कुमार जायसवाल अपने उद्देश्य सिद्ध करने हेतु अपने समस्त साधनों का उपयोग करने के लिए प्रवृत्त थे–जो कि कुछ हद तक उचित तथा अधिकांशतः अनुचित थे–और यह कि श्री ए.के. दत्ता बैंक को भारी जोखिमों एवं हानियों के प्रति अनावृत करने की कीमत पर भी उनके साथ सहयोग करने के लिए तत्पर थे।"

• मैसर्स शिवा डिस्ट्रीब्यूटर्स/मैसर्स विनायक डिस्ट्रीब्यूटर्स को हस्ताक्षरित बैंकर्स चेक सौंपना, उनके खाते को डेबिट किए बिना, या बैंक की पुस्तकों में बीसी के लिए लेखांकन के बिना।

• श्री के प्रतिहस्ताक्षर को मिटाना। ए.के. दत्ता ने क्लियरिंग हाउस को चेक प्रस्तुत करने से पहले 'रिलायंस कम्युनिकेशंस इन्फ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड' के पक्ष में जारी किए गए 40 लाख रुपये के बैंकर्स चेक पर और शाखा द्वारा 05.10.2006 को वापस कर दिया गया।

• केवल 25 लाख रुपये की सीमा के लिए मैसर्स विनायक डिस्ट्रीब्यूटर्स के अनुरोध को मिटाने के बाद मेसर्स विनायक डिस्ट्रीब्यूटर्स को 40 लाख रुपये की सीसी सीमा को मंजूरी।

• श्री विजय जायसवाल तथा श्री ए. के. दत्ता के उपर्युक्त कृत्य स्पष्ट रूप से आपराधिकता की बू देते हैं और यह प्रत्यक्ष है कि श्री ए. के. दत्ता ने अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते हुए श्री विजय कुमार जायसवाल तथा अन्य अज्ञात व्यक्तियों को अनुचित आर्थिक लाभ पहुँचाया। उनकी गतिविधियों से न केवल हमारे बैंक को एक विशाल गलत नुकसान हुआ है, बल्कि शाखा/बैंक के कर्मचारियों के जीवन और अंगों के लिए भी सीधा खतरा पैदा हुआ है। कुछ अन्य बाहरी लोगों की भी संलिप्तता से इनकार नहीं किया जा सकता है। "संलग्न परिशिष्ट में प्रदत्त विवरणों के अनुसार, श्री दत्ता द्वारा की गई कपटपूर्ण लेन-देन की राशि का आकलन ₹852.61 लाख किया गया है। इस राशि में कुछ खातों में प्रदान की गई अनुचित अतिरिक्त छूटों/ऋण प्रविष्टियों के कारण बैंक को संभावित रूप से होने वाली ब्याज/कमीशन/विनिमय आय की हानि, तथा नकद प्रेषणों से संबंधित खातों में

आरोपित किए गए शुल्कों की अतिरिक्त राशि सम्मिलित नहीं है, जैसा कि परिशिष्ट के पाद-टिप्पणी में विस्तृत रूप से उल्लेखित है। ये खाते 01.04.2008 को एनपीए बन गए हैं और मैसर्स कृतार्थ कम्युनिकेशंस को छोड़कर 28.05.2007 को डी.आर.टी. लखनऊ में मुकदमे दायर किए गए हैं।

इसलिए हम आपसे अनुरोध करते हैं कि श्री विजय कुमार जायसवाल (प्रोपराइटर: मैसर्स शिवा डिस्ट्रीब्यूटर्स), श्री ए.के. दत्ता, तत्कालीन वरिष्ठ प्रबंधक, वाराणसी छावनी शाखा (वर्तमान में निलंबित) और अन्य अज्ञात, के खिलाफ नियमित मामला दर्ज किया जाए। ऐसे व्यक्ति जो धोखाधड़ी को अंजाम देने के लिए बैंक के खिलाफ साजिश रचने में शामिल हैं, गहन जांच कराया जाए और दोषियों को न्याय के कटघरे में लाते हैं और कानून के अनुसार आगे की कार्रवाई शुरू की जाए।

4. दिनांक 06.02.2009 को, पुलिस अधीक्षक, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सी.बी.आई.), बैंक प्रतिभूति एवं धोखाधड़ी प्रकोष्ठ, नई दिल्ली ने शिकायत पर यह टिप्पणी अंकित की कि उसमें उल्लिखित तथ्य प्रथम दृष्टया भारतीय दण्ड संहिता की धारा 120-बी सहपठित धारा 420, 468, 471 तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(d) एवं उनके अंतर्गत दंडनीय मूल अपराधों के किए जाने का प्रकटीकरण करते हैं, जो कि (1) श्री ए. के. दत्ता, तत्कालीन वरिष्ठ प्रबंधक, इंडियन ओवरसीज बैंक, वाराणसी, (2) श्री विजय कुमार जायसवाल, प्रोपराइटर, मेसर्स शिवा डिस्ट्रीब्यूटर्स, वाराणसी, तथा (3) अन्य अज्ञात व्यक्तियों द्वारा किए गए प्रतीत होते हैं।

5. दिनांक 06-02-2009 को ही प्राथमिकी सं 2009 को ही प्राथमिकी आरसीबीडी1/2009/ई/0003 थाना सी.बी.आई./बैंक सिक्योरिटीज एंड फ्रॉड सेल, नई दिल्ली में धारा 120-बी, 420, 468 और 471 भ०द०वि० और धारा 13(2) सपठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(डी) के तहत दर्ज किया गया था और उसके तहत मूल अपराध - (1) श्री ए. के. दत्ता, तत्कालीन वरिष्ठ प्रबंधक, (2) दिनांक 27-12-2008 की उपर्युक्त शिकायत के आधार पर मैसर्स शिवा डिस्ट्रीब्यूटर्स, वाराणसी के प्रोपराइटर श्री विजय कुमार जायसवाल और (3) अन्य अज्ञात व्यक्तियों के संबंध में कोई शिकायत दर्ज की गई है।

6. जांच के बाद, धारा 120-बी सपठित धारा 420, 477-ए, 201 भ०द०वि० और धारा 13(2) सपठित 13(1)(सी) और (डी) के तहत अपराधों के लिए एक आरोप पत्र 10.06.2010 को प्रस्तुत किया गया था - (1) अशोक कुमार दत्ता, तत्कालीन वरिष्ठ प्रबंधक, इंडियन ओवरसीज बैंक, कैंट, वाराणसी, (2) विजय कुमार जायसवाल, (3) विष्णु प्रभाकर, तत्कालीन सहायक प्रबंधक, इंडियन ओवरसीज बैंक, कैंट, वाराणसी (आवेदक), (4) विवेक बल्लभ चतुर्वेदी, तत्कालीन वरिष्ठ प्रबंधक, इंडियन ओवरसीज बैंक, कैंट, वाराणसी (5) जय श्री जायसवाल, विजय कुमार जायसवाल की पत्नी और (6) ऋषि मोहन। आरोप पत्र में कहा गया है कि ए. के. दत्ता ने विजय कुमार जायसवाल को अनुचित सुविधाएं दी थीं और बैंक के दिशानिर्देशों के अनुसार एके दुता, विष्णु प्रभाकर और विवेक बल्लभ चतुर्वेदी द्वारा मासिक रिटर्न में एक्सेस की सूचना नहीं दी गई थी। फर्म 40 लाख की ओसीसी सीमा का आनंद ले रही थी और फर्म के खाते में 1 करोड़ रुपये से अधिक की पहुंच की अनुमति थी। 17

सितंबर, 2005 के बाद खाता अत्यधिक अनियमित हो गया। फर्म की सीसी सीमा को बढ़ाकर 90 लाख रुपये कर दिया गया था और उसके बाद आरोपी व्यक्तियों ने फर्म के खाते में पहुंच की अनुमति दी और बैंकर के चेक बिना किसी प्रतिफल की प्राप्ति के मेसर्स शिवा डिस्ट्रीब्यूटर्स को जारी किए गए। उपरोक्त आरोप पत्र के आधार पर शुरू किया गया मुकदमा अभी भी लंबित है।

7. 19.05.2010 को, प्रवर्तन निदेशालय ने केवल (1) श्री ए. के. दत्ता और (2) श्री विजय कुमार जायसवाल के खिलाफ ईसीआईआर/1/वीसीआई/2010 पंजीकृत किया। जांच के बाद, 16.09.2017 को प्रवर्तन निदेशालय ने विशेष न्यायाधीश, पी.एम.एल.ए., इलाहाबाद की अदालत में शिकायत संख्या-1 वर्ष 2018 छह व्यक्तियों के खिलाफ दायर की - (1) विजय कुमार जायसवाल, (2) अशोक कुमार दत्ता, (3) विष्णु प्रभाकर, (4) विवेक बल्लभ चतुर्वेदी, (5) ऋषि मोहन और (6) जय श्री जायसवाल। 02.04.2018 को, न्यायालय ने आरोपी व्यक्तियों को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाने का आदेश पारित किया। वर्तमान में यह मुकदमा विशेष न्यायाधीश सी.बी.आई. न्यायालय संख्या-3/विशेष न्यायाधीश पी.एम.एल.ए. लखनऊ के न्यायालय में लंबित है

8. आवेदक को अग्रिम जमानत आवेदन संख्या-954 वर्ष 2023 में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 24.07.2023 के आदेश के माध्यम से अग्रिम जमानत प्रदान की गई है। पक्षों के अधिवक्ता ने न्यायालय को सूचित किया है कि विचारण न्यायालय ने इस आवेदन के लंबित रहने के दौरान अंतिम तिथि पर आरोप तय किए हैं।

9. आवेदक ने धन शोधन निवारण अधिनियम (जिसे इसके बाद 'पी.एम.एल.ए.' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) के तहत कार्यवाही को इस आधार पर रद्द करने की मांग की है कि प्रवर्तन निदेशालय द्वारा दायर शिकायत में आवेदक के खिलाफ लगाया गया एकमात्र आरोप यह है कि आवेदक ने अपराध की आय उत्पन्न करने में अन्य आरोपी व्यक्तियों की जानबूझकर सहायता करके पी.एम.एल.ए. की धारा 3 के प्रावधानों का उल्लंघन किया है। आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आवेदक पहले से ही इस आरोप पर स्थापित अनुसूचित अपराधों के लिए अभियोजन का सामना कर रहा है कि उसने अपराध करने में भाग लिया है जिसके माध्यम से सह-आरोपी विजय कुमार जायसवाल द्वारा अपराध की आय उत्पन्न की गई है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि अपराध की आय को उत्पन्न करने में सहायता प्रदान करना पी.एम.एल.ए. के तहत मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध नहीं है। उन्होंने विजय मदन लाल चौधरी बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर अवलंबन किया है: (2023) 12 एससीसी 1 = 2022 एससीसी ऑनलाइन SC 929।

10. इसके विपरीत, ई.डी. के अधिवक्ता श्री कुलदीप श्रीवास्तव ने प्रस्तुत किया है कि अपराध की आय का अधिग्रहण और अपराध की आय के अधिग्रहण में सहायता प्रदान करना पी.एम.एल.ए. की धारा 3 में निहित मनी लॉन्ड्रिंग की परिभाषा में शामिल है। उन्होंने वाई. बालाजी बनाम कार्तिक देसारी और अन्य: 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 645 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के निम्नलिखित अंश पर अवलंबन किया है: -

"100. ... यह तर्क कि अपराध की आय का केवल सृजन धन-शोधन के अपराध का गठन करने के लिए पर्याप्त नहीं है, वास्तव में बेतुका है। जैसा कि हम धारा 3 से देख सकते हैं, इसमें छह प्रक्रियाओं या गतिविधियों की पहचान की गई है। वे हैं, (i) छिपाना; (ii) कब्जा; (iii) अधिग्रहण; (iv) उपयोग; (v) बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करना; और (vi) बेदाग संपत्ति के रूप में दावा करना। यदि कोई व्यक्ति रिश्वत लेता है, तो वह अपराध की आय प्राप्त करता है। तो, "अधिग्रहण" की गतिविधि होती है। यहां तक कि अगर वह इसे बरकरार नहीं रखता है, लेकिन इसका "उपयोग" करता है, तो वह धनशोधन के अपराध का दोषी होगा, क्योंकि "उपयोग" धारा 3 में उल्लिखित छह गतिविधियों में से एक है।

11. उपरोक्त सबमिशन के जवाब में, आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अपराध की आय का सृजन और अपराध की आय का अधिग्रहण अलग-अलग और अलग चीजें हैं। आवेदक पर आरोप है कि उसने अपराध की आय को उत्पन्न करने में सहायता की है, न कि अपराध की आय के अधिग्रहण में। 5 सभी। विष्णु प्रभाकर बनाम भारत संघ 1021

12. मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध को पी.एम.एल.ए. की धारा 3 में परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है: -

"3. धनशोधन का अपराध- जो कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लिप्त होने का प्रयास करता है या जानबूझकर सहायता करता है या जानबूझकर एक पक्षकार है या वास्तव में अपराध की आय से जुड़ी किसी प्रक्रिया या गतिविधि में शामिल है, जिसमें इसे छिपाना, कब्जा, अर्जन या उपयोग और इसे अदाग संपत्ति के रूप में पेश करना या दावा करना शामिल है, वह धन-शोधन के अपराध का दोषी होगा। स्पष्टीकरण-संदेह के निवारण के लिए, एतद्द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि, - (i) कोई व्यक्ति धन-शोधन के अपराध का दोषी होगा यदि ऐसा व्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लिप्त होने का प्रयास करता है या जानबूझकर सहायता करता है या जानबूझकर एक पक्षकार है या वास्तव में अपराध की आय से जुड़ी निम्नलिखित प्रक्रियाओं या गतिविधियों में से एक या अधिक में शामिल है, अर्थात्-

(क) छिपाना; या
(ख) कब्जा; या
(ग) अधिग्रहण; या
(घ) उपयोग; या
(ङ) अदाग संपत्ति के रूप में प्रस्तुत करना; या
(च) किसी भी तरह से बेदाग संपत्ति के रूप में दावा करना;

(ii) अपराध की आय से जुड़ी प्रक्रिया या कार्यकलाप एक सतत् गतिविधि है और तब तक जारी रहती है जब तक कि कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपराध की आय का लाभ उठाकर उसे छिपाकर या कब्जे में

लेकर या उसे अदाग संपत्ति के रूप में उपयोग करके या उसे बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करके या किसी भी प्रकार से अदाग संपत्ति के रूप में दावा करके प्राप्त नहीं कर रहा है।

13. विजय मदन लाल चौधरी (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के तीन माननीय न्यायाधीशों की पीठ द्वारा पी.एम.एल.ए. की धारा 3 की व्याख्या निम्नलिखित तरीके से की गई है: -

"124. इस धारा को पहली बार अधिनियम 2 वर्ष 2013 द्वारा संशोधित किया गया था। अभिव्यक्ति "अपराध और प्रक्षेपण की आय" अभिव्यक्ति द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था "अपराध की आय सहित इसके छिपाने, कब्जे, अधिग्रहण या उपयोग और पेश या दावा सहित". हम अधिनियम 2 वर्ष 2013 के तहत शुरू किए गए इस परिवर्तन से ज्यादा चिंतित नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, वित्त (संख्या-2) अधिनियम, 2019 में संशोधन से पहले का प्रावधान यथावत रहा। इस प्रावधान को तोड़ने पर, यह स्पष्ट रूप से इंगित करेगा कि- यह मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध है, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लिप्त होने या जानबूझकर सहायता करने या जानबूझकर पक्ष लेने या वास्तव में अपराध की आय से जुड़ी "किसी भी प्रक्रिया या गतिविधि" में शामिल होने की स्थिति में। प्रावधान का उत्तरार्द्ध केवल अपराध की आय से जुड़ी विभिन्न प्रक्रिया या गतिविधि का विस्तार है, जैसे कि इसे छिपाना, कब्जा, अधिग्रहण, उपयोग, या इसे बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करना या इसे बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करना। यह स्थिति 2019 में डाले गए स्पष्टीकरण के माध्यम से स्पष्ट है।

* * *

128. इसे अलग तरीके से रखने के लिए, 2019 से पहले की धारा में "सहित" अभिव्यक्ति को शामिल किया गया था, जो अपराध की आय से जुड़ी विभिन्न प्रक्रिया या गतिविधि के संदर्भ का संकेत है। इस प्रकार, मुख्य प्रावधान (जैसा कि स्पष्टीकरण भी) यह निर्धारित करता है कि यदि कोई व्यक्ति अपराध की आय से जुड़ी किसी भी प्रक्रिया या गतिविधि में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शामिल पाया जाता है, तो उसे मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध का दोषी ठहराया जाना चाहिए। यदि याचिकाकर्ताओं द्वारा निर्धारित व्याख्या को स्वीकार किया जाना था, तो यह इस प्रकार होगा कि यह केवल विचाराधीन संपत्ति को बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करने या दावा करने पर ही अपराध पूरा होगा। यह धारा 3 पी.एम.एल.ए. के पीछे विधायी इरादे की प्रभावकारिता को कमजोर करेगा और इसमें "प्रोजेक्ट या दावा" शब्द की घटना के संबंध में एफएटीएफ द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोण की अवहेलना भी करेगा।

* * *

132. इसलिए, 2019 में डाला गया स्पष्टीकरण धारा 3 के तात्पर्य का विस्तार करने में शामिल नहीं है, जैसा कि यह 2019 से पहले था, बल्कि प्रकृति में केवल स्पष्टीकरण है। धारा 3 को व्यापक रूप से न केवल मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध की जांच करने के लिए बल्कि उस अपराध को रोकने और विनियमित करने के लिए भी लिखा गया है। यह प्रावधान स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि अपराध की आय से जुड़ी किसी भी (प्रत्येक) प्रक्रिया या गतिविधि के परिणामस्वरूप मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध होता है। अपराध की आय को बेदाग संपत्ति

के रूप में पेश करना या दावा करना, अपने आप में, मनी लॉन्ड्रिंग में लिप्त होने या उसमें शामिल होने का प्रयास है, जैसे कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपराध की आय को जानबूझकर छिपाना, रखना, प्राप्त करना या उपयोग करना। यह 18-7-2019 को संसद के समक्ष वित्त विधेयक, 2019 के साथ प्रस्तुत किए गए बयान से पुष्ट होता है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है [इस निर्णय का प्रस्तर-119 से 121 देखें]

133. उपरोक्त से स्वतंत्र, हमें धारा 3 में अभिव्यक्ति "और" को "या" के रूप में समझने में कोई संकोच नहीं है, उक्त प्रावधान को पूरा खेल देने के लिए ताकि किसी के द्वारा भी शामिल "हर" प्रक्रिया या गतिविधि को शामिल किया जा सके, जिसमें संपत्ति को बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करना या दावा करना शामिल है। अपराध की आय को बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करने या दावा करने का कार्य यह मानता है कि व्यक्ति के कब्जे में है या उसका उपयोग कर रहा है (अपराध की आय), यह भी एक स्वतंत्र गतिविधि है जो मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध का गठन करती है। दूसरे शब्दों में, "और" शब्द के कारण विभिन्न गतिविधियों को संयुक्त रूप से पढ़ने के लिए खुला नहीं है। यदि उस व्याख्या को स्वीकार कर लिया जाता है, तो अधिनियम 2002 की धारा 3 की प्रभावशीलता को अपराध की आय रखने वाले एक व्यक्ति के सरल उपकरण से आसानी से निराश किया जा सकता है और उसका साथी इसे बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करने या दावा करने में लिप्त होगा ताकि कोई भी अधिनियम 2002 की धारा 3 के तहत आच्छादित न हो। अधिनियम 2002 की धारा 3 की नंगी भाषा से, यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध अपराध की आय से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि के संबंध में एक स्वतंत्र अपराध है जो किसी अनुसूचित अपराध से संबंधित या उसके संबंध में आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप प्राप्त या प्राप्त किया गया था। प्रक्रिया या गतिविधि किसी भी रूप में हो सकती है - चाहे वह छिपाने, कब्जे, अधिग्रहण, अपराध की आय का उपयोग हो, जितना कि इसे बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करना या ऐसा होने का दावा करना। इस प्रकार, अपराध की आय से जुड़ी ऐसी किसी एक प्रक्रिया या गतिविधि में शामिल होना मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध होगा। इस अपराध का अन्यथा किसी अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि से कोई लेना-देना नहीं है - उस अपराध के परिणामस्वरूप प्राप्त या प्राप्त अपराध की आय को छोड़कर।

135. यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि इस तरह की प्रक्रिया या गतिविधि को केवल तभी शामिल किया जा सकता है जब संपत्ति आपराधिक गतिविधि (एक अनुसूचित अपराध) के परिणामस्वरूप प्राप्त या प्राप्त की जाती है। अपराध की आय से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि में शामिल होना या उसमें शामिल होना या उसमें शामिल होना या उसमें शामिल होना या उसमें शामिल होना मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध होगा; और इस तरह की प्रक्रिया या गतिविधि के मामले में अनुसूचित अपराध के गठन की तारीख और समय के बावजूद स्थिति एक निरंतर अपराध हो सकती है। दूसरे शब्दों में, आपराधिक गतिविधि अधिनियम 2002 के प्रयोजन के लिए अनुसूचित अपराध के रूप में अधिसूचित किए जाने से पहले की गई हो सकती है, लेकिन यदि कोई व्यक्ति अनुसूचित अपराध के रूप में अधिसूचित किए जाने के बाद भी ऐसी आपराधिक गतिविधि से प्राप्त या प्राप्त अपराध की आय से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निपटने में लिप्त है या जारी रखता है, अधिनियम 2002 के तहत मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है - अपराध की आय (पूरी तरह से या

आंशिक रूप से) को रखने या उसके कब्जे को बनाए रखने या पूरी तरह से समाप्त होने तक खाइयों में इसका उपयोग करने के लिए। मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध उस तारीख पर निर्भर या जुड़ा नहीं है जिस दिन अनुसूचित अपराध किया गया है, या यदि हम ऐसा कह सकते हैं, तो विधेय अपराध किया गया है। प्रासंगिक तिथि वह तारीख है जिस पर व्यक्ति अपराध की ऐसी आय से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि में शामिल होता है। ये तत्व मूल प्रावधान में आंतरिक हैं (धारा 3, 2013 तक संशोधित और 31-7-2019 तक लागू थी); और इसे केवल वित्त (संख्या-2) अधिनियम, 2019 के माध्यम से स्पष्टीकरण के माध्यम से समझाया और स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार समझा जाता है, 2019 में डाले गए स्पष्टीकरण में खंड (ii) को शामिल करने का कोई परिणाम नहीं है क्योंकि यह धारा 3 के दायरे को बिल्कुल भी नहीं बदलता या बढ़ाता है।

136. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, "मनी लॉन्ड्रिंग" की प्राथमिक समझ यह है कि मनी लॉन्ड्रिंग के तीन आम तौर पर स्वीकृत चरण हैं, वे हैं:

136.1. प्लेसमेंट: जो अपराध के प्रत्यक्ष संघ से धन को स्थानांतरित करने के लिए है।

136.2. लेयरिंग: जो पन्नी की खोज के लिए निशान को छिपा रहा है।

136.3. एकीकरण : जो वैध स्रोतों से अपराधी को धन उपलब्ध करा रहा है।

* * *

147. हम उस तर्क पर भी ध्यान दे सकते हैं कि परिभाषा से प्रक्षेपण की आवश्यकता को हटाने से विधेय अपराध और मनी लॉन्ड्रिंग अप्रभेद्य हो जाएगी। यह, हमारे विचार में, गलत और भ्रामक है। यह याचिका इस साधारण कारण से दम नहीं रख सकती है कि अधिनियम 2002 में अनुसूचित अपराध जैसा कि यह खड़ा है (आज तक संशोधित) स्वतंत्र आपराधिक कार्य हैं। यह केवल तभी होता है जब इस तरह के कृत्यों के परिणामस्वरूप धन उद्भूत है कि 2002 का अधिनियम किसी भी प्रक्रिया या गतिविधि में अपराध की आय के शामिल होते ही कदम उठाता है। अपराध की ऐसी आय से निपटना किसी भी रूप में हो सकता है - प्रक्रिया या गतिविधि होने के नाते। इस प्रकार, प्रक्रिया या गतिविधि में सहायता करना भी मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध का एक हिस्सा है। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रक्रिया या गतिविधि में शामिल होने के किसी के कार्य के कानूनी परिणामों को भुगतने के लिए उत्तरदायी होने के लिए, पर्याप्त है और न केवल गलत तरीके से अर्जित धन को बेदाग धन के रूप में पेश करने पर। एक अपराध सिंडिकेट के कई सदस्य आने वाले वर्षों के लिए आसानी से धन को अपने पास रख सकते हैं, ऐसी स्थिति में कानून के हाथों को ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई करने से नहीं रोका जा सकता है, अगर इस तरह के अवैध धन की जानकारी किसी अज्ञात स्रोत से भी सामने आती है।

148. अगला प्रश्न यह है : क्या धारा 3 के तहत अपराध एक स्टैंड-अलोन अपराध है? वास्तव में, यह एक अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप संपत्ति के गलत और अवैध लाभ पर निर्भर है। फिर भी, यह ऐसी संपत्ति से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि से संबंधित है, जो मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध है। संपत्ति को 2002 अधिनियम की धारा 2(1)(यू) के तहत "अपराध की आय" की परिभाषा को योग्य होना चाहिए।

** * **

153 दूसरे शब्दों में, अधिनियम 2002 के तहत प्राधिकरण किसी व्यक्ति पर मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध के लिए मुकदमा तभी चलाता है जब उसके पास यह मानने का कारण हो, जिसे लिखित रूप में दर्ज करना आवश्यक है कि उस व्यक्ति के पास "अपराध की आय" है। केवल अगर उस विश्वास को अपराध की आय से जुड़ी किसी भी प्रक्रिया या गतिविधि में संबंधित व्यक्ति की संलिप्तता का संकेत देने वाले ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा समर्थित किया जाता है, तो अधिनियम के तहत अपराध की आय को कुर्क करने और जब्त करने के लिए आगे बढ़ाया जा सकता है और जब तक इसे केंद्र सरकार में निहित नहीं किया जाता है, तब तक शुरू की गई ऐसी प्रक्रिया एक एकल प्रक्रिया होगी। (महत्व सन्निविष्ट)

14. **वाई. बालाजी बनाम कार्तिक देसारी और अन्य: 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 645** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दो माननीय न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिया गया एक निर्णय है। दो-न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष मामले में शामिल दो प्रश्नों में से एक था: "प्रश्न 1: क्या अपराध की आय या अपराध की आय का प्रतिनिधित्व करने वाली संपत्ति की पहचान किए बिना और धारा 3 द्वारा आवश्यक अपराध की आय से जुड़ी किसी भी प्रक्रिया या गतिविधि की पहचान किए बिना, जो आधारभूत/क्षेत्राधिकार संबंधी तथ्य का गठन करता है, ई.डी. जांच शुरू कर सकता है और समन जारी कर सकता है?"

15. उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देने के लिए प्रासंगिक उस मामले के प्रासंगिक तथ्य यह हैं कि तीन प्राथमिकी दर्ज की गई थीं, जिसमें आरोप लगाया गया था कि आरोपी ने सार्वजनिक परिवहन निगम में कई व्यक्तियों को नियुक्ति प्रदान करने के लिए अवैध रिश्वत लेकर अनुसूची में शामिल अपराध किए थे। एक मामले में यह आरोप लगाया गया था कि 2 करोड़ रुपये से अधिक की राशि एकत्र की गई थी और दूसरे मामले में 95 लाख रुपये की राशि एकत्र की गई थी। इस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि: -

"100. ... यह रिश्वत का पैसा है जो धारा 2(1)(u) के अर्थ के भीतर 'अपराध की आय' का गठन करता है। यह जानना कोई रॉकेट साइंस नहीं है कि अवैध रिश्वत प्राप्त करने वाले लोक सेवक के पास अपराध की आय है। यह तर्क कि अपराध की आय का केवल सृजन ही धनशोधन के अपराध के लिए पर्याप्त नहीं है, वास्तव में बेतुका है। जैसा कि हम धारा 3 से देख सकते हैं, इसमें छह प्रक्रियाओं या गतिविधियों की पहचान की गई है। वे हैं,

(i) छिपाना; (ii) कब्जा; (iii) अधिग्रहण; (iv) उपयोग; (v) बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करना; और (vi) बेदाग संपत्ति के रूप में दावा करना। यदि कोई व्यक्ति रिश्वत लेता है, तो वह अपराध की आय प्राप्त करता है। तो, "अधिग्रहण" की गतिविधि होती है। यहां तक कि अगर वह इसे अपने पास नहीं रखता है, लेकिन इसका "उपयोग" करता है, तो वह धनशोधन के अपराध का दोषी होगा, क्योंकि "उपयोग" धारा 3 में उल्लिखित छह गतिविधियों में से एक है।

101. विधेय अपराधों के लिए प्राथमिकी धारा 3 के सभी तीन घटकों की पहचान करती है, अर्थात्, (i) व्यक्ति; (ii) प्रक्रिया; और (iii) उत्पाद। प्राथमिकी में आरोपी वे लोग हैं जो इस प्रक्रिया या गतिविधि में शामिल हैं। उन्होंने जो अवैध संतुष्टि ली है, वह अपराध की आय का प्रतिनिधित्व करती है। (i) पहली बार में इस तरह की अवैध संतुष्टि का अधिग्रहण; (ii) दागी धन का उपयोग करने से पहले उसका कब्जा; और (iii) आज इसे बेदाग धन के रूप में पेश करना, वह प्रक्रिया या गतिविधि है जिसमें अभियुक्त शामिल हैं। भ्रष्टाचार का पैसा अपराध की आय का प्रतिनिधित्व करता है।

16. उपरोक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने वाई. बालाजी (उपरोक्त) में कहा: -

"97. यदि धारा 3 के मुख्य भाग को फोरेंसिक परिशुद्धता के साथ विच्छेदित किया जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि धारा 3 खुद को तीन चीजों को संबोधित करती है (हम उन्हें 3 'पी' कह सकते हैं) अर्थात्, (i) व्यक्ति; (ii) प्रक्रिया या गतिविधि; और (iii) उत्पाद। जहां तक धारा 3 द्वारा आच्छादित किए गए व्यक्तियों का संबंध है, वे हैं, (i) वे जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लिप्त होने का प्रयास करते हैं; या (ii) जो जानबूझकर सहायता करते हैं; या (iii) जो जानबूझकर एक पार्टी हैं; या (iv) जो वास्तव में शामिल हैं। जहां तक प्रक्रिया का संबंध है, धारा छह अलग-अलग गतिविधियों की पहचान करती है, अर्थात् (i) छिपाना; (ii) कब्जा; (iii) अधिग्रहण; (iv) उपयोग; (v) प्रक्षेपण; या (vi) बेदाग संपत्ति के रूप में दावा करना, जिनमें से कोई भी अपराध का गठन करने के लिए पर्याप्त है। जहां तक उत्पाद का संबंध है, धारा 3 "अपराध की आय" या प्रक्रिया या गतिविधि के उत्पाद के रूप में अपराध की आय का प्रतिनिधित्व करने वाली संपत्ति की पहचान करती है।

98. धारा 3 में जिन तीन बातों को संबोधित किया गया है, उनमें से (i) व्यक्ति; (ii) प्रक्रिया; और (iii) उत्पाद, पहले दो को किसी व्याख्या या परिभाषा की आवश्यकता नहीं है। तीसरा पहलू अर्थात् "उत्पाद", जिसे धारा 3 "अपराध की आय" के रूप में संदर्भित करती है, के लिए एक परिभाषा की आवश्यकता होती है और इसलिए इसे धारा 2(1)(यू) में निम्नानुसार परिभाषित किया गया है: -

"2. परिभाषाएँ। (1) इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो, -

XXX XXX XXX XXX

(u) "अपराध की आय" का अर्थ है किसी अनुसूचित अपराध या ऐसी किसी संपत्ति के मूल्य से संबंधित आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त की गई कोई भी संपत्ति या

जहां ऐसी संपत्ति देश के बाहर ली गई या धारित की जाती है, फिर देश या विदेश में अवधारित मूल्य के बराबर संपत्ति; जेओ स्पष्टीकरण। शंकाओं को दूर करने के लिए, एतद्द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि "अपराध की आय" जिसमें न केवल अनुसूचित अपराध से प्राप्त या प्राप्त संपत्ति शामिल है, बल्कि कोई भी संपत्ति जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अनुसूचित अपराध से संबंधित किसी भी आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप प्राप्त या प्राप्त की जा सकती है;"

* * * *

100- तीनों प्राथमिकी में आरोप लगाया गया है कि आरोपी ने सार्वजनिक परिवहन निगम में कई व्यक्तियों को नियुक्ति प्रदान करने के लिए अवैध रिश्वत लेकर अनुसूची में शामिल अपराध किए थे। एक मामले में आरोप लगाया गया है कि 2 करोड़ रुपये से अधिक की राशि एकत्र की गई थी और दूसरे मामले में 95 लाख रुपये की राशि एकत्र की गई थी। यह रिश्वत का पैसा है जो धारा 2(1)(u) के अर्थ के भीतर 'अपराध की आय' का गठन करता है। यह जानना कोई रॉकेट साइंस नहीं है कि अवैध रिश्वत प्राप्त करने वाले लोक सेवक के पास अपराध की आय है। यह तर्क कि अपराध की आय का केवल सृजन धन-शोधन के अपराध का गठन करने के लिए पर्याप्त नहीं है, वास्तव में बेतुका है। जैसा कि हम धारा 3 से देख सकते हैं, इसमें छह प्रक्रियाओं या गतिविधियों की पहचान की गई है। वे हैं; (i) छिपाना; (ii) कब्जा; (iii) अधिग्रहण (iv) उपयोग; (v) बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करना; और (vi) बेदाग संपत्ति के रूप में दावा करना। यदि कोई व्यक्ति रिश्वत लेता है, तो वह अपराध की आय प्राप्त करता है। तो, "अधिग्रहण" की गतिविधि होती है। यहां तक कि अगर वह इसे बरकरार नहीं रखता है, लेकिन इसका "उपयोग" करता है, तो वह धन-शोधन के अपराध का दोषी होगा, क्योंकि "उपयोग" धारा 3 में उल्लिखित छह गतिविधियों में से एक है।

101. विधेय अपराधों के लिए प्राथमिकी धारा 3 के सभी तीन घटकों की पहचान करती है, अर्थात्, (i) व्यक्ति; (ii) प्रक्रिया; और (iii) उत्पाद। प्राथमिकी में आरोपी वे लोग हैं जो इस प्रक्रिया या गतिविधि में शामिल हैं। उन्होंने जो अवैध संतुष्टि ली है, वह अपराध की आय का प्रतिनिधित्व करती है। (i) पहली बार में इस तरह की अवैध संतुष्टि का अधिग्रहण; (ii) दागी धन का उपयोग करने से पहले उसका कब्जा; और (iii) आज इसे बेदाग धन के रूप में पेश करना, वह प्रक्रिया या गतिविधि है जिसमें अभियुक्त शामिल हैं। भ्रष्टाचार का पैसा अपराध की आय का प्रतिनिधित्व करता है। 102. इसलिए, सभी तर्क जैसे कि कोई मूलभूत तथ्य या क्षेत्राधिकार संबंधी तथ्य नहीं हैं, केवल न्यायालय को धोखा देने के उद्देश्य से हैं। (मूल में जोर दिया गया)

17. ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि विजय मदन लाल चौधरी (उपरोक्त) के मामले में तीन माननीय न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिए गए निर्णय को दो न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष रखा गया था, जिसने वाई. बालाजी (उपरोक्त) का फैसला किया था, विजय मदन लाल चौधरी (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गई मनी लॉन्ड्रिंग की परिभाषा के दायरे पर वाई बालाजी के मामले में पारित निर्णय में विचार नहीं किया गया है। विजय मदन लाल चौधरी (उपरोक्त) मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने पी.एम.एल.ए. के विभिन्न उपबंधों पर विचार किया है और उनकी व्याख्या की है और पी.एम.एल.ए. के प्रावधान की व्याख्या के आधार

पर कानून के कुछ सिद्धांत निर्धारित किए हैं। वाई. बालाजी (उपरोक्त) का निर्णय ऊपर उल्लिखित उस मामले के अजीबोगरीब तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर किया गया है।

18. यह स्थापित कानून है कि एक मिसाल को उस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए पढ़ा जाना चाहिए जिसमें मामले का फैसला किया गया था। वाई. बालाजी में आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ रिश्वत लेने का आरोप था और इस प्रकार इससे अपराध की आय उत्पन्न हुई। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि रिश्वत लेना अपराध की आय को प्राप्त करने के समान है।

19. प्रस्तुत मामले में, आवेदक के खिलाफ कोई आरोप नहीं है कि उसने अपराध की कोई आय उत्पन्न की थी या अर्जित की थी। आवेदक के खिलाफ एकमात्र आरोप यह है कि उसने अपराध उत्पन्न करने में सहायता की है और इस तरह धन शोधन निवारण अधिनियम की धारा 3 के प्रावधान का उल्लंघन किया है। अनुसूचित अपराध से संबंधित मामले में आवेदक के खिलाफ आरोप यह है कि मासिक रिटर्न में उसने विजय कुमार जायसवाल को अनुचित सुविधाएं देने में ए. के. दत्ता द्वारा की गई पहुंच की रिपोर्ट नहीं की और इस प्रकार उसने बैंक के दिशानिर्देशों का पालन नहीं किया।

20. **परसा राजा माणिक्याला राव बनाम आंध्र प्रदेश की स्थिति: (2003) 12 एस.सी.सी. 306** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि: -

"9. प्रत्येक मामला, विशेष रूप से एक आपराधिक मामला, अपने स्वयं के तथ्यों पर निर्भर करता है और एक मामले और दूसरे के बीच एक करीबी समानता उपचार की तरह वारंट करने के लिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि एक महत्वपूर्ण विवरण पूरे पहलू को बदल सकता है। ऐसे मामलों को तय करने में, किसी को मामलों को दूसरे के रंग के खिलाफ एक मामले के रंग का मिलान करके (जैसा कि कॉर्डोज़ो द्वारा कहा गया है) का फैसला करने के प्रलोभन से बचना चाहिए। इसलिए, यह तय करने के लिए कि कोई मामला लाइन के किस तरफ पड़ता है, दूसरे मामले के साथ व्यापक समानता बिल्कुल भी निर्णायक नहीं है।

21. विजय मदन लाल चौधरी (उपरोक्त) में निर्धारित कानून के अनुसार, मनी लॉन्ड्रिंग की प्रक्रिया या गतिविधि को केवल तभी शामिल किया जा सकता है जब संपत्ति किसी अनुसूचित अपराध के परिणामस्वरूप प्राप्त या प्राप्त की जाती है। "मनी लॉन्ड्रिंग" के मूलभूत चरण हैं - (1) प्लेसमेंट: जो अपराध के प्रत्यक्ष संबंध से धन को स्थानांतरित करना है, (2) लेयरिंग: जिसका अर्थ है अनुगमन को विफल करने हेतु धन के स्रोत की कड़ी को छिपाना; तथा एकीकरण: जिसका आशय है अपराधी को ऐसे स्रोतों से धन उपलब्ध कराना जो प्रत्यक्षतः वैध प्रतीत होते हों। प्रवर्तन निदेशालय द्वारा दायर शिकायत में यह कोई आरोप नहीं है कि आवेदक उपर्युक्त किसी भी गतिविधि में संलिप्त था। धन शोधन निवारण अधिनियम केवल उसी स्थिति में लागू होता है जब ऐसे कृत्यों के परिणामस्वरूप धन उत्पन्न होता है और अपराध से अर्जित आय किसी प्रक्रिया या गतिविधि में

संलिप्त पाई जाती है; लेकिन प्रस्तुत मामले में, आवेदक पर अपराध की आय के उत्पन्न होने के बाद किसी भी प्रक्रिया या गतिविधि में शामिल होने का आरोप नहीं है।

22. पी.एम.एल.ए. के तहत किसी व्यक्ति पर तभी मुकदमा चलाया जा सकता है जब ई.डी. के पास यह मानने का कारण हो कि उस व्यक्ति के पास अपराध की आय है, जो विश्वास अपराध की आय से जुड़ी किसी भी प्रक्रिया या गतिविधि में संबंधित व्यक्ति की भागीदारी का संकेत देने वाले ठोस और विश्वसनीय सबूतों द्वारा समर्थित है। प्रस्तुत मामले में, ऐसा कोई आरोप नहीं है कि आवेदक के पास किसी भी समय अपराध की कोई आय रही है।

23. आवेदक पहले से ही वर्ष 2010 से अनुसूचित अपराध के लिए मुकदमे का सामना कर रहा है और पक्षों के अधिवक्ता ने सूचित किया है कि उस मामले में भी आज तक केवल आरोप तय किए गए हैं और किसी भी अभियोजन पक्ष के गवाह की जांच नहीं की गई है। प्रवर्तन निदेशालय द्वारा दर्ज किया गया मामला वर्ष 2010 में ईसीआईआर दर्ज करके शुरू किया गया था, शिकायत वर्ष 2017 में दर्ज की गई थी, वर्ष 2025 में आरोप तय किए गए हैं और आगे की कार्यवाही होनी बाकी है। ऐसा लगता है कि न तो सी.बी.आई. द्वारा शुरू किए गए अनुसूचित अपराध से संबंधित मामले और न ही ई.डी. द्वारा शुरू किए गए पी.एम.एल.ए. से संबंधित मामले में पिछले 11/2 दशक के दौरान कोई महत्वपूर्ण प्रगति हो सकी है।

24. उपर्युक्त चर्चा के परिप्रेक्ष्य में, मैं इस सुविचारित मत पर पहुँचता हूँ कि वर्तमान प्रकरण के तथ्यों में, जहाँ आवेदक के विरुद्ध एकमात्र आरोप अपराध से अर्जित आय के सृजन में सहायता प्रदान करने का है, तथा उस पर अपराध से अर्जित आय के सृजन के उपरांत किसी भी प्रक्रिया या गतिविधि में संलिप्त होने या किसी भी समय ऐसी अपराध से अर्जित आय के कब्जे में होने का आरोप नहीं है, वहाँ प्रथमदृष्टया भी धन शोधन निवारण अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत परिभाषित मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध स्थापित नहीं होता। इन परिस्थितियों में, आवेदक के विरुद्ध पीएमएलए के अंतर्गत कार्यवाही का निरंतर बने रहना मात्र उसके उत्पीड़न के समान होगा।

25. तदनुसार, धारा 482 द०प्र०स० के तहत दायर आवेदन की **अनुमति** दी जाती है। दिनांक 16.09.2017 की वह शिकायत, जो प्रवर्तन निदेशालय द्वारा आवेदक के विरुद्ध दायर की गई थी, तथा दिनांक 02.04.2018 का संज्ञान एवं समन आदेश, और सत्र वाद संख्या 123 वर्ष 2023 की समस्त कार्यवाही, जो धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 की धारा 3 एवं 4 के अंतर्गत, विशेष न्यायाधीश (सी.बी.आई.), न्यायालय संख्या-III, लखनऊ की न्यायालय में, केवल आवेदक के विरुद्ध लंबित है, **रद्द/अपास्त** की जाती है।

(2025) 5 ILRA 1027

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 08.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन के तहत 528 बी.एन.एस.एस. सं-14448 वर्ष 2025

फुरकान पुत्र अख्तर अली और अन्य ... आवेदकगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य ... प्रतिपक्षी

आवेदकगण के अधिवक्ता: श्री आलोक कुमार पांडे, श्री प्रशांत कुमार, श्री सुशील कुमार पांडे

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

मुस्लिम कानून- यदि कोई मुस्लिम पुरुष मुस्लिम कानून के अनुसार अपनी पहली शादी करता है - तो दूसरी, तीसरी या चौथी शादी शून्य नहीं होगी - धारा 494 भ०द०वि० के तत्व दूसरी शादी के लिए आकर्षित नहीं होंगे - दूसरी शादी को छोड़कर, परिवार न्यायालय अधिनियम की धारा 7 के तहत या किसी सक्षम अदालत द्वारा शरीयत के अनुसार - यदि पहली शादी विशेष अधिनियमों के तहत की जाती है - और दूसरी शादी करती है - तो दूसरी शादी को छोड़कर - परिवार न्यायालय अधिनियम की धारा 7 के तहत या किसी सक्षम अदालत द्वारा घोषित किया जाता है। मुस्लिम कानून के अनुसार, इस्लाम में धर्मांतरण के बाद उसकी दूसरी शादी अमान्य होगी और धारा 494 भ०द०वि० के तहत अपराध होगा। (ई-9)

उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची:

1. श्रीमती सरला मुद्गल बनाम यू.ओ.आई. और अन्य, 1995 3 एस.सी.सी. 635
2. लिली थॉमस बनाम यू.ओ.आई. और अन्य, 2000 6 एस.सी.सी. 224
3. कलीम शेख मुनाफ और अन्य बनाम महाराष्ट्र और दूसरा, आपराधिक आवेदन संख्या-2255 वर्ष 2019
4. डॉ. सूरजमणि स्टेला कुजूर बनाम दुर्गा चरण हंसदाह और अन्य, (2001) 3 एस.सी.सी. 13
5. ए.एस. नज़र और अन्य बनाम जिसा और अन्य, 2017 एस.सी.सी. ऑनलाइन केरल 17001
6. ज़फ़र अब्बास रसूल मर्चेंट बनाम गुजरात राज्य, 2015 एस.सी.सी. ऑनलाइन गुजरात 5552
7. रिट याचिका संख्या-202 वर्ष 2018, अश्विनी कुमार उपाध्याय बनाम यू.ओ.आई.

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदकों के अधिवक्ता श्री आलोक कुमार पांडे और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. प्रस्तुत आवेदन दायर किया गया है ताकि अपराध संख्या-5 वर्ष 2020 से उत्पन्न आवेदकों के खिलाफ आपराधिक मामला संख्या-17364 वर्ष 2021 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम फुरकान और अन्य) में पारित आरोप-पत्र संख्या-376, 495, 120-बी, 504, 506 भ०द०वि० थाना-मैनाथर, जिला-मुरादाबाद, अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-06, मुरादाबाद के न्यायालय में लंबित, के तहत आवेदकों के खिलाफ आरोप पत्र संख्या-318/2020 को रद्द किया जा सके और समन आदेश जारी किए गए हों।

3. आवेदकों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि इस तथ्य को प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए अपने बयान में स्वीकार किया गया है कि आवेदक संख्या-1 पहले से ही शादीशुदा था और इस तथ्य का उसे खुलासा नहीं किया गया था। हालांकि प्रतिपक्षी संख्या-2 ने स्वीकार किया है कि उसने आवेदक संख्या-1 के साथ रिश्ते में रहने के बाद उससे शादी की थी, और वह दिल्ली में रह रही है। इसलिए, एक विवाहित पत्नी होने के नाते, धारा 494 भ०द०वि० के तहत कोई अपराध नहीं बनता है क्योंकि मुस्लिम कानून के तहत, एक मुस्लिम पुरुष 4 बार तक शादी कर सकता है, और यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरीयत) आवेदन अधिनियम, 1937 (इसके बाद "शरीयत अधिनियम" के रूप में संदर्भित) मुस्लिम पुरुष को एक से अधिक बार शादी करने की अनुमति देता है, प्रतिपक्षी संख्या-2 के साथ दूसरी शादी करने के बाद भी, उसके खिलाफ धारा 494 भ०द०वि० के तहत कोई अपराध नहीं किया जाएगा।

4. आवेदकों के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि शरीयत अधिनियम की धारा 2 विवाह और तलाक से संबंधित सभी मुद्दों को शरीयत अधिनियम के अनुसार तय करने की अनुमति देती है, जो पुरुष को पति या पत्नी के जीवनकाल के दौरान भी शादी करने की अनुमति देता है। यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि शरीयत अधिनियम 1937 में अधिनियमित किया गया था, जो एक विशेष अधिनियम है, जबकि भ०द०वि० सामान्य अधिनियम है, जिसे 1860 में अधिनियमित किया गया था। इसलिए, मैक्सल को ध्यान में रखते हुए, जनरलिया स्पेशलिबस नॉन डेरोगेंट के मामले में यह विशेष अधिनियम सामान्य अधिनियम पर प्रभावी होगा।

5. अपने तर्क के समर्थन में, आवेदकों के अधिवक्ता ने **श्रीमती सरला मुद्गल बनाम भारत संघ और अन्य, 1995 3 एस.सी.सी. 635** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर अवलंबन किया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि धर्म की स्वतंत्रता धर्मनिरपेक्षता का मूल आधार है, और इसकी गारंटी भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 और दावा करने के अधिकार द्वारा दी गई थी। व्यक्ति के बाहरी प्रत्यक्ष कृत्यों सहित अभ्यास और प्रचार, आस्था का विषय है और इसकी गारंटी भारत के संविधान द्वारा दी गई है। इसलिए, विवाह का मुद्दा, जो धार्मिक स्वतंत्रता से संबंधित है, भारत के संविधान द्वारा संरक्षित है। उस फैसले में यह भी कहा गया था कि केवल उन मामलों में धारा 494 भ०द०वि० के तहत अपराध आकर्षित होगा जहां दूसरी

शादी शून्य है, जैसे इस्लाम में धर्मांतरण के बाद दूसरी शादी का अनुबंध करना, उसे अपनी पहली शादी को भंग करना होगा। आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि श्रीमती सरला मुद्गल (उपरोक्त) के मामले में, शीर्ष अदालत ने यह भी कहा है कि सरकार को किसी भी व्यक्ति द्वारा धर्म के दुरुपयोग को रोकने के लिए समान नागरिक संहिता तैयार करने के मुद्दे पर गौर करना चाहिए, लेकिन आज तक, समान नागरिक संहिता लागू नहीं की गई है। भ०द०वि० के विशेष अधिनियम होने पर शरीयत अधिनियम लागू होगा। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने **लिली थॉमस बनाम भारत संघ और अन्य, 2000 6 एस.सी.सी. 224** के मामले में कहा है कि मुस्लिम कानून के तहत दूसरी शादी अपराध नहीं है यदि पहली शादी मुस्लिम कानून के अनुसार की गई थी और प्रस्तुत मामले में, यह विवाद में नहीं है कि पहली शादी आवेदक संख्या-1 द्वारा अनुबंधित की गई थी। आवेदक संख्या-2, खुसनुमा के साथ, मुस्लिम कानून के अनुसार। इसलिए, आवेदक का प्रतिपक्षी संख्या-2 के साथ विवाह एक वैध विवाह है।

6. आवेदकों के अधिवक्ता ने **कलीम शेख मुनाफ और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य**, आपराधिक आवेदन संख्या-2255 वर्ष 2019 के मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय की खंडपीठ के फैसले पर अवलंबन किया है, जिसमें खंड पीठ ने **डॉ. सूरजमणि स्टेला कुजूर बनाम दुर्गा चरण हंसदा और एक अन्य (2001) 3 एस.सी.सी. 13 के साथ-साथ एएस नज़र और अन्य बनाम जिसा और अन्य, 2017 एस.सी.सी. ऑनलाइन केरल 17001** के मामले में निर्णय, के मामले में शीर्ष न्यायालय के फैसले पर अवलंबन किया है जिसमें यह देखा गया है कि धारा 494 भ०द०वि० के तहत अपराध को आकर्षित करने के लिए, दूसरी शादी शून्य होनी चाहिए, लेकिन मुस्लिम कानून में, दूसरी शादी शून्य नहीं है यदि पहली शादी भी मुस्लिम कानून के अनुसार की जाती है। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि मुस्लिम कानून के अनुसार, एक मुस्लिम पुरुष 4 विवाह तक कर सकता है, और सभी विवाह वैध होंगे।

7. आवेदकों के अधिवक्ता ने निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया है कि मुस्लिम कानून में बहुविवाह 'अनिवार्य' और 'अनुशंसित' की श्रेणी में नहीं है, बल्कि 'अनुमत' की श्रेणी में है और प्रस्तुत किया है कि कुरान की आयत 4:3 के अनुसार, एक - दो, तीन या चार से अधिक विवाह मनुष्य के अपनी पत्नियों के साथ व्यय के रूप में व्यवहार, आवास, भोजन, कपड़े और दयालु उपचार में समानता के अधीन है। यदि किसी व्यक्ति को लगता है कि वह इस तरह की समानता का पालन करने में विफल रहेगा, तो उसे इस विकल्प का अभ्यास करने की अनुमति नहीं है। इसलिए, कुरान का संदेश स्पष्ट है। यदि कोई पुरुष अपनी सभी पत्नियों के साथ न्यायपूर्ण रहने की शर्त को पूरा करने में असमर्थ है, तो उसे एक से अधिक पत्नियां रखने की अनुमति नहीं है।

8. इसके विपरीत, अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि एक मुस्लिम पुरुष द्वारा किया गया दूसरा विवाह हमेशा वैध विवाह नहीं होगा क्योंकि यदि पहली शादी मुस्लिम कानून के अनुसार नहीं की गई थी, लेकिन विशेष अधिनियम या हिंदू कानून के अनुसार की गई थी, तो दूसरी शादी शून्य होगी और धारा 494 भ०द०वि० के तहत अपराध आकर्षित होगा। अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि यदि कोई गैर-मुस्लिम विवाहित व्यक्ति अपने पति या पत्नी के जीवनकाल के दौरान मुस्लिम धर्म में परिवर्तित हो जाता

है और दूसरी शादी करता है, तो दूसरी शादी अमान्य होगी और धारा 494 भ०द०वि० के तहत अपराध लागू होगा। उन्होंने लिली थॉमस (उपरोक्त) के प्रस्तर-32 पर भी भरोसा किया, जिसमें शीर्ष न्यायालय ने कहा है कि धारा 494 भ०द०वि० के तहत अपराध केवल तभी आकर्षित होगा जब दूसरी शादी शून्य हो। अपर शासकीय अधिवक्ता ने **जाफर अब्बास रसूल मोहम्मद मर्चेंट बनाम गुजरात राज्य, 2015 एस.सी.सी. ऑनलाइन गुजरात 5552** पर भी भरोसा किया है, जिसमें प्रस्तर-40 में, मुस्लिम कानून में बहुविवाह के अपवादों पर भी चर्चा की गई है। इस फैसले पर भरोसा करते हुए, अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे कहा कि एक मुस्लिम व्यक्ति के पास अपने पति या पत्नी के जीवनकाल के दौरान एक से अधिक बार शादी करने की कोई निरंकुश शक्ति नहीं है। यह केवल उन मामलों में है जहां दूसरी शादी जाफर अब्बास रसूल मोहम्मद मर्चेंट (उपरोक्त) के प्रस्तर-40 में उकेरे गए अपवाद के भीतर नहीं आती है, कि विवाह वैध होगा।

9. अपर शासकीय अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि रिट याचिका संख्या-202 वर्ष 2018, अश्विनी कुमार उपाध्याय बनाम भारत संघ में शरीयत अधिनियम की वैधता का मुद्दा भी सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है।

10. चूंकि यह मुद्दा पहले से ही शीर्ष न्यायालय के समक्ष लंबित है, इसलिए जब तक सर्वोच्च न्यायालय द्वारा शरीयत अधिनियम को अमान्य घोषित नहीं किया जाता है, तब तक इस पर निर्णय नहीं लिया जा सकता है, यह अधिनियम अभी भी अच्छा रहेगा और इसे वैध माना जाएगा। विश्लेषण और निष्कर्ष :-

11. पक्षों के अधिवक्ता को सुनने और अभिलेखों के अवलोकन के बाद, निर्धारण के लिए एकमात्र प्रश्न यह उठता है कि पति या पत्नी के जीवनकाल के दौरान दूसरी शादी करने के बाद भी, एक मुस्लिम पुरुष धारा 494 भ०द०वि० के तहत द्विविवाह के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

12. धारा 494 भ०द०वि० [धारा 82(1) बी.एन.एस. के अनुरूप] की प्रयोज्यता के लिए, यह आवश्यक है कि दूसरी शादी के समय, एक जीवित पति या पत्नी होना चाहिए, और दूसरी शादी शून्य है। भारतीय दंड संहिता की धारा 494 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है: -

भारतीय दंड संहिता, 1860 494 में धारा 494 में पति या पत्नी के जीवनकाल में फिर से विवाह करना- जो कोई भी पति या पत्नी जीवित है, किसी ऐसे मामले में विवाह करता है जिसमें ऐसे पति या पत्नी के जीवन के दौरान होने के कारण ऐसा विवाह शून्य हो जाता है, उसे किसी भी प्रकार के कारावास से दंडित किया जाएगा, जिसकी अवधि सात वर्ष तक हो सकती है, और जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा। अपवाद-यह धारा किसी ऐसे व्यक्ति पर लागू नहीं होती है जिसका ऐसे पति या पत्नी के साथ विवाह को सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय द्वारा शून्य घोषित कर दिया गया है, और न ही किसी ऐसे व्यक्ति के लिए जो पूर्व पति या पत्नी के जीवन के दौरान विवाह का अनुबंध करता है, यदि ऐसा पति या पत्नी, बाद के विवाह के समय, ऐसे व्यक्ति से सात वर्ष के अंतराल तक लगातार अनुपस्थित रहा होगा, और ऐसे 5 सभी के द्वारा नहीं सुना गया होगा। फुरकान

पुत्र अख्तर अली और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1031 व्यक्ति उस समय के भीतर जीवित होने के बशर्ते कि इस तरह के बाद के विवाह को अनुबंधित करने वाला व्यक्ति, ऐसी शादी होने से पहले, उस व्यक्ति को सूचित करेगा, जिसके साथ इस तरह के विवाह का अनुबंध किया गया है, जहां तक कि यह उसकी जानकारी में है।

13. भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि यदि जीवित पति या पत्नी के जीवनकाल के दौरान दूसरी शादी की जाती है या अनुबंधित की जाती है, लेकिन यदि दूसरी शादी शून्य नहीं होती है, तो धारा 494 भ०द०वि० की सामग्री आकर्षित नहीं होगी। दूसरे शब्दों में, धारा 494 भ०द०वि० की सामग्री को आकर्षित करने के लिए, दूसरी शादी शून्य होनी चाहिए।

14. शरीयत अधिनियम की धारा 2 के अनुसार, दो मुसलमानों (पुरुष और महिला) के बीच विवाह की वैधता शरीयत के अनुसार तय की जाएगी। शरीयत अधिनियम की धारा 2 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है: -

"2. मुसलमानों के लिए पर्सनल लॉ का अनुप्रयोग- इसके विपरीत किसी भी प्रथा या उपयोग के होते हुए, निर्वसीयत उत्तराधिकार के संबंध में सभी प्रश्नों में, महिलाओं की विशेष संपत्ति जिसमें व्यक्तिगत संपत्ति शामिल है या अनुबंध या उपहार के तहत प्राप्त की गई है या पर्सनल लॉ के तहत प्राप्त की गई है, विवाह, तलाक, इला, जिहार, लियान, खुला और मुबारात, भरण-पोषण, दहेज सहित विवाह का विघटन, संरक्षकता, उपहार, ट्रस्ट और ट्रस्ट की संपत्तियां और वक्फ (दान और धर्मार्थ संस्थानों और धर्मार्थ और धार्मिक बंदोबस्ती के अलावा), उन मामलों में निर्णय के नियम जहां पक्ष मुस्लिम हैं, मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरीयत) होंगे।

15. मुस्लिम पर्सनल लॉ (निकाह) के तहत विवाह एक नागरिक अनुबंध है जो बच्चों के पारस्परिक आनंद और वैधीकरण की दृष्टि से विपरीत लिंग के दो व्यक्तियों के बीच किया गया है। विवाह की इस्लामी अवधारणा हिंदू अवधारणा से अलग है, जिसके तहत विवाह केवल एक नागरिक अनुबंध नहीं है बल्कि एक धार्मिक संस्कार (संस्कार) है। इस्लाम के तहत विवाह का डिजाइन और उद्देश्य न केवल बच्चों का प्रजनन है, बल्कि आपसी आनंद भी है। इस्लाम में ब्रह्मचर्य और तपस्या को मान्यता नहीं दी गई है क्योंकि वे असंख्य बुरे परिणामों की ओर ले जाते हैं। मुस्लिम विवाहों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है, और इन विवाहों पर मुल्ला के मुस्लिम कानून के सिद्धांत में प्रस्तर-260 से 264 में चर्चा की गई थी: - (i) साहिल, यानी, एक वैध विवाह मुस्लिम कानून के तहत विवाह के सभी नियमों, अनिवार्य और निर्देशिका के साथ पुष्टि में है। इस तरह का विवाह इस्लामी कानून के अनुसार पक्षों के बीच आपसी अधिकारों, कर्तव्यों और दायित्वों का निर्माण करता है। (ii) बातिल, अर्थात् एक शून्य विवाह, जिसके विरुद्ध निषेध स्थायी और निरपेक्ष है, उदाहरण के लिए, किसी अन्य व्यक्ति के जीवन के साथ विवाह या विवाह के लिए निषिद्ध स्तर के संबंध में खड़े दो व्यक्तियों के बीच विवाह। इस तरह की शादी कानून की नजर में नहीं है। यह पक्षगण के बीच कोई नागरिक अधिकार या दायित्व नहीं बनाता है। शून्य विवाह की संतान नाजायज है। (iii) फसीद, अर्थात् अनियमित विवाह जो अपने आप में

गैरकानूनी नहीं है, लेकिन अपनी विशेषताओं में गैरकानूनी है, उदाहरण के लिए, गवाहों या गवाहों की अपेक्षित संख्या-के बिना विवाह, इद्दत से गुजर रही महिला के साथ विवाह, गैरकानूनी संयोजनों से प्रभावित विवाह, 4 अन्य लोगों के साथ विवाह के निर्वाह के दौरान 5वीं पत्नी का विवाह, गैर-मुस्लिम पत्नी के साथ विवाह आदि। एक अनियमित विवाह पति और पत्नी के बीच विरासत के पारस्परिक अधिकार का निर्माण नहीं करता है, लेकिन बच्चे वैध हैं।

16. आवेदकों के अधिवक्ता श्री आलोक कुमार पांडे ने प्रस्तुत किया है कि इस्लाम में, हमारे पास अनुमत कार्यों के लिए तीन डिग्री हैं: (i) अनिवार्य (ii) अनुशंसित (iii) अनुमत। उन्होंने आगे कहा है कि बहुविवाह तीसरी श्रेणी में आता है। कई सामाजिक कारणों से बहुविवाह की अनुमति है। हालांकि, यह अनुमति से है और कुरान में एक मुस्लिम पुरुष के लिए बहुविवाह में लिप्त होने का दायित्व या सिफारिश नहीं है। इस्लामी कानून के न्यायविद, आसफ ए.ए. फिज़ी ने टिप्पणी की: -

'इस्लाम में बहुविवाह की अनुमति केवल है। चार पत्नियां रखना एक मुसलमान का मौलिक अधिकार नहीं है; इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि एक विवाह के पक्ष में कानून के किसी भी प्रावधान में संविधान के अनुच्छेद 25 का उल्लंघन शामिल है। " (आसफ़ ए.ए. फ़िज़ी: मोहम्मडन कानून की रूपरेखा, पृ.212)।

17. विवाह के संदर्भ में, विषय के तहत, 'क़ुरता', फ़िज़ी का कहना है: "मुस्लिम कानून बहुविवाह की अनुमति देता है लेकिन इसे प्रोत्साहित नहीं करता है, और कुरान की आज्ञा (कुरान iv, 3) से पता चलता है कि व्यवहार में पति की ओर से व्यवहार की पूर्ण समानता, सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, उपलब्धि असंभव है। इसलिए, 'भारत में लागू मुस्लिम कानून ने बहुविवाह को एक ऐसी संस्था के रूप में माना है जिसे बर्दाश्त किया जाना चाहिए, लेकिन प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए।

18. मुस्लिम कानून की अवधारणा शरीयत की इमारत पर आधारित है, मुस्लिम कानून जैसा कि पारंपरिक रूप से व्याख्या की जाती है और भारत में लागू किया जाता है, एक और दूसरे के निर्वाह के दौरान एक से अधिक विवाह की अनुमति देता है, हालांकि कानून में सह-पत्नियों के बीच न्याय करने की क्षमता एक शर्त मिसाल है। मुस्लिम कानून के तहत भी, विवाह की बहुलता पति को बिना शर्त प्रदान नहीं की जाती है। सूरह निसा : तफ़सीर इब्ने कथीर : 3. और यदि आपको डर है कि आप अनाथ लड़कियों के साथ न्याय नहीं कर पाएंगे, तो अपनी पसंद की दो या तीन या चार महिलाओं से शादी करें; लेकिन अगर आपको डर है कि आप (उनके साथ) न्याय से व्यवहार नहीं कर पाएंगे, तो केवल एक या (बंदियों और सेवकों) के पास जो आपके दाहिने हाथों में हैं। यह आपको ताउलू (ज़ुल्म?) से रोकने के लिए करीब है।

129. आप कभी भी पत्नियों के बीच पूर्ण न्याय नहीं कर पाएंगे, भले ही यह आपकी प्रबल इच्छा हो, इसलिए उनमें से एक के लिए बहुत अधिक झुकाव न करें ताकि दूसरे को लटका दिया जा सके। और यदि आप न्याय करते हैं, और वह सब करते हैं जो सही है और तक़वा है, तो अल्लाह हमेशा क्षमाशील, सबसे दयालु है। तफ़सीर

अल-मिज़ान (3) और अगर आपको डर है कि आप अनाथों के प्रति न्यायसंगत व्यवहार नहीं कर सकते हैं, तो ऐसी (अन्य) महिलाओं से शादी करें जो आपको अच्छी लगें, दो और तीन और चार; लेकिन अगर आपको डर है कि आप (उनके बीच) न्याय नहीं करेंगे, तो (शादी करें) केवल एक या जो आपके दाहिने हाथ में है; यह निकट है कि आप सही रास्ते से विचलित नहीं हो सकते हैं। (129) और यह आपके अधिकार में नहीं है कि आप पत्नियों के बीच न्याय करें, भले ही आप चाहें, लेकिन (एक से) पूरी तरह से अनिच्छा के साथ विमुख न हों; ताकि तुम ऐसे ही सुनें जैसे सस्पेंस में थे, और यदि तुम सुलह करते हो और बुराई से बचते हो, तो निश्चय अल्लाह क्षमा करता है। सहृदय।

19. कुरान एक उचित कारण के लिए बहुविवाह की अनुमति देता है, लेकिन पुरुष आज उस प्रावधान का उपयोग स्वार्थी उद्देश्य के लिए करते हैं। बहुविवाह का उल्लेख कुरान में केवल एक बार मिलता है, और बहुविवाह का उल्लेख कुरआन में केवल एक बार मिलता है, और वह भी सशर्त बहुविवाह के संदर्भ में है। एक ऐतिहासिक कारण है कि कुरान बहुविवाह की अनुमति देता है। इतिहास में एक समय था जब बड़ी संख्या में महिलाएं विधवा हो गई थीं, और अरबों में आदिम आदिवासी झगड़े में बच्चे अनाथ हो गए थे। मदीना में नवजात इस्लामी समुदाय की रक्षा करने में मुसलमानों को भारी नुकसान उठाना पड़ा। यह ऐसी परिस्थितियों में था कि कुरान ने अनाथों और उनकी माताओं को शोषण से बचाने के लिए सशर्त बहुविवाह की अनुमति दी।

20. कुरान की ऊपर उद्धृत आयतों से, यह स्पष्ट है कि कुरान पुरुषों से पहले अनाथों की देखभाल करने पर विचार करने के लिए कहता है और केवल जब उन्हें लगता है कि वे अलगाव में रहते हुए अनाथों के हितों के साथ न्याय करने में सक्षम नहीं हो सकते हैं, तो क्या उन्हें अपनी विधवा माताओं से शादी करने पर विचार करना चाहिए, इस शर्त पर कि नए परिवार के साथ मौजूदा परिवार के बराबर निपटा जाएगा।

21. उपरोक्त चर्चा से, यह स्पष्ट है कि एक जीवित पति या पत्नी के जीवनकाल के दौरान दूसरी शादी मुस्लिम कानून में अनुमेय है, लेकिन कुछ शर्तों के साथ। इसलिए, यदि कोई मुस्लिम पुरुष मुस्लिम कानून के अनुसार दूसरी शादी करता है, तो जीवित पति या पत्नी के जीवनकाल के दौरान, उसकी दूसरी शादी एक वैध विवाह होगी, इस शर्त के अधीन कि पहली शादी भी मुस्लिम कानून के अनुसार अनुबंधित की गई थी। दूसरी शादी को अभी भी मुस्लिम कानून के तहत बातिल (शून्य विवाह) के रूप में घोषित किया जा सकता है, लेकिन जब तक इस तरह की घोषणा नहीं की जाती है, तब तक दो मुसलमानों (पुरुष और महिला) की दूसरी शादी वैध होगी।

22. दूसरी शादी के संबंध में मोहम्मडन कानून और धारा 494 भ०द०वि० के तहत दूसरी शादी के मुद्दे पर श्रीमती सरला मुद्गल (उपरोक्त) के मामले में विचार किया गया था। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय इस प्रश्न पर विचार कर रहा था कि क्या हिंदू कानून के तहत विवाहित एक हिंदू पति, इस्लाम को अपनाकर, पहली शादी को भंग किए बिना दूसरी शादी कर सकता है और क्या ऐसा पति धारा 494 भ०द०वि० के तहत दोषी होगा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक विस्तृत चर्चा के बाद कहा कि हिंदू विवाह अधिनियम के तहत होने वाले हिंदू विवाह को केवल अधिनियम के तहत निर्दिष्ट आधार पर भंग किया जा सकता है और जब तक हिंदू

विवाह अधिनियम के अनुसार हिंदू विवाह को भंग नहीं किया जाता है, तब तक पति-पत्नी में से कोई भी इस्लाम में परिवर्तित होकर दूसरी शादी नहीं कर सकता है, क्योंकि इस्लाम में धर्मांतरण हिंदू विवाह अधिनियम के तहत किए गए विवाह को भंग नहीं करेगा और इस तरह दूसरी शादी करने वाला व्यक्ति धारा 494 भ०द०वि० के तहत अभियोजन के लिए उत्तरदायी होगा। श्रीमती सरला मुद्गल (उपरोक्त) के प्रस्तर-17, 18, 19, 20 और 21 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है: -

17. अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि आधुनिक हिंदू कानून एकपत्नीत्व को सख्ती से लागू करता है। अधिनियम के तहत किए गए विवाह को अधिनियम की धारा 13 के तहत उपलब्ध आधारों को छोड़कर भंग नहीं किया जा सकता है। उस स्थिति में, जिन पक्षों ने अधिनियम के तहत विवाह किया है, वे तब भी विवाहित रहते हैं जब पति दूसरी पत्नी की तलाश में इस्लाम अपना लेता है। इस्लाम में धर्मांतरण की शरण में एक धर्मत्यागी द्वारा दूसरी शादी फिर भी अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करने वाली शादी होगी, जिसके द्वारा वह इस्लाम में परिवर्तित होने के बावजूद अधिनियम के तहत अपनी पहली शादी के संबंध में शासित होगा। इसलिए, एक धर्मत्यागी का दूसरा विवाह, उसकी पत्नी के साथ अवैध विवाह होगा, जिसने अधिनियम के तहत उससे शादी की थी और हिंदू बनी रहेगी। धर्मत्यागी और उसकी हिंदू पत्नी के बीच दूसरा विवाह अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन है और इस तरह यह कोई भी नहीं होगा। भारतीय दंड संहिता की धारा 494 इस प्रकार है:-

"पति या पत्नी के जीवनकाल में फिर से शादी करना। जो कोई भी, जिसका पति या पत्नी जीवित है, किसी ऐसे मामले में विवाह करता है, जिसमें ऐसे पति या पत्नी के जीवन के दौरान होने के कारण ऐसा विवाह शून्य हो जाता है, उसे सात वर्ष तक की अवधि के लिए किसी भी प्रकार के कारावास से दंडित किया जाएगा और जुर्माना भी लगाया जाएगा। धारा के आवश्यक तत्व हैं: (1) पति या पत्नी का जीवित होना; (2) किसी भी मामले में शादी; (3) जिसमें ऐसा विवाह शून्य है; (4) ऐसे पति या पत्नी के जीवन के दौरान होने के कारण।

18. इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस्लाम अपनाने के बाद एक हिंदू पति द्वारा संपन्न विवाह अधिनियम के तहत सख्ती से एक शून्य विवाह नहीं हो सकता है क्योंकि वह अब हिंदू नहीं है, लेकिन तथ्य यह है कि उक्त विवाह अधिनियम का उल्लंघन होगा जो सख्ती से एकपत्नीत्व का दावा करता है।

19. अधिनियम के प्रयोजन के लिए अभिव्यक्ति "शून्य" अधिनियम की धारा 11 के तहत परिभाषित किया गया है। धारा के तहत परिभाषा के दायरे में इसका एक सीमित अर्थ है। दूसरी ओर, धारा 494 भ०द०वि० के तहत एक ही अभिव्यक्ति का एक अलग उद्देश्य है और इसकी सार्थक व्याख्या की जानी चाहिए।

20. धारा 494 भ०द०वि० के तहत अभिव्यक्ति "शून्य" का व्यापक अर्थों में उपयोग किया गया है। एक विवाह जो कानून के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करता है, धारा 494 भ०द०वि० के तहत इस्तेमाल की गई अभिव्यक्ति के संदर्भ में शून्य होगा।

21. अधिनियम के तहत संपन्न हिंदू विवाह को केवल अधिनियम के तहत निर्दिष्ट किसी भी आधार पर भंग किया जा सकता है। जब तक अधिनियम के तहत हिंदू विवाह भंग नहीं हो जाता है, तब तक पति-पत्नी में से कोई भी दूसरी शादी नहीं कर सकता है। इस्लाम में धर्मांतरण और फिर से शादी करने से अधिनियम के तहत हिंदू विवाह अपने आप में भंग नहीं होगा। इसलिए धर्मांतरित द्वारा दूसरी शादी अधिनियम का उल्लंघन होगी और धारा 494 भ०द०वि० के संदर्भ में शून्य होगी। कोई भी कार्य जो कानून के अनिवार्य प्रावधानों का उल्लंघन करता है, वह पूरी तरह से शून्य है।

23. हिंदू से मुस्लिम में धर्मांतरण के बाद मुस्लिम कानून के तहत दूसरी शादी के मुद्दे और दूसरी शादी के संबंध में धारा 494 भ०द०वि० के तहत अभियोजन पर लिली थॉमस (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा फिर से विचार किया गया था। इस मामले में, शीर्ष न्यायालय ने फिर से कानूनी स्थिति को दोहराया कि केवल इस्लाम में धर्मांतरण से पहली शादी के वैवाहिक संबंधों का अंत नहीं होगा और किसी अन्य धर्म में धर्मांतरण के बावजूद, एक विवाहित हिंदू हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 17 के तहत द्विविवाह के अपराध के लिए अभियोजन के लिए उत्तरदायी होगा। शीर्ष न्यायालय द्वारा यह भी देखा गया कि दूसरी शादी पर धारा 494 भ०द०वि० के तहत अभियोजन से केवल तभी बचा जा सकता है जब पहली शादी मुस्लिम कानून के तहत हो, न कि अगर पहली शादी किसी अन्य पर्सनल लॉ के तहत हो। लिली थॉमस (उपरोक्त) के प्रस्तर-32 और 33 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है: -

32. उपरोक्त से, यह देखा जा सकता है कि केवल धर्मांतरण से वैवाहिक संबंध समाप्त नहीं होते हैं जब तक कि उस आधार पर तलाक की डिक्री अदालत से प्राप्त नहीं हो जाती। जब तक कोई डिक्री पारित नहीं हो जाती, तब तक विवाह बना रहता है। पहली शादी के निर्वाह के दौरान कोई भी अन्य विवाह हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 17 सपठित धारा 494 के तहत अपराध होगा और व्यक्ति, किसी अन्य धर्म में परिवर्तित होने के बावजूद, इस अधिनियम के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है। द्विविवाह का अपराध। यह भी इस प्रकार है कि यदि पहली शादी हिंदू 5 के तहत संपन्न हुई थी। फुरकान पुत्र अख्तर अली और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 1035 के अन्य विवाह अधिनियम, 'पति' या 'पत्नी', केवल किसी अन्य धर्म में परिवर्तित होकर, उनके बीच वैध विवाह के कारण पहले से स्थापित वैवाहिक संबंधों को समाप्त नहीं कर सकते हैं। जब तक वह विवाह कायम रहता है, तब तक दूसरा विवाह नहीं किया जा सकता है, यहां तक कि किसी अन्य पर्सनल लॉ के तहत भी नहीं, और इस तरह के विवाह के होने पर, उस व्यक्ति पर धारा 494 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है।

33. महोम्मेडन कानून के तहत स्थिति अलग होगी क्योंकि पहली शादी के बावजूद, दूसरी शादी पति द्वारा अनुबंधित की जा सकती है, ऐसे धार्मिक प्रतिबंधों के अधीन जैसा कि भाई सेठी ने अपने अलग फैसले में लिखा है, जिसके साथ मैं इस बिंदु पर भी सहमत हूं। यह महोम्मेडन कानून और अन्य व्यक्तिगत कानूनों के बीच महत्वपूर्ण अंतर है। महोम्मेडन कानून के तहत दूसरी शादी के संबंध में धारा 494 के तहत अभियोजन से केवल

तभी बचा जा सकता है जब पहली शादी भी महोम्मेडन कानून के तहत हो और न कि पहली शादी किसी अन्य पर्सनल लॉ के तहत हो जहां पति या पत्नी के जीवनकाल में दूसरी शादी करने पर प्रतिबंध था।

24. डॉ. सूरजमणि स्टेला कुजूर (उपरोक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से इस मुद्दे पर विचार किया और कहा कि दूसरी शादी के शून्य होने का तथ्य धारा 494 भ०द०वि० की प्रयोज्यता के लिए एक अनिवार्य शर्त है, जब तक कि दूसरी शादी को कानून के बल या बाध्यकारी प्रभाव वाले मौजूदा रीति-रिवाजों के अनुसार शून्य घोषित नहीं किया जाता है, धारा 494 भ०द०वि० के तहत अपराध लागू नहीं होगा। इस मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय संथाल जनजाति की दूसरी शादी पर विचार कर रहा था, जो द्विविवाह की अनुमति देता है। डॉ. सूरजमणि स्टेला कुजूर (उपरोक्त) के प्रस्तर-14 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है: -

14. शिकायत में कहीं भी अपीलकर्ता ने कानून के बल वाले किसी भी कथित रिवाज का उल्लेख नहीं किया है जो प्रतिपक्षी द्वारा दूसरी शादी के अनुष्ठापन और उसके परिणामों को प्रतिबंधित करता है। इस बात पर जोर दिया जा सकता है कि केवल एक प्रथा पर जोर देने के लिए एक प्रथा का अनुरोध करना पर्याप्त नहीं था जब तक कि यह आगे यह दलील नहीं दी गई थी कि ऐसे पति या पत्नी के जीवन के दौरान होने के कारण दूसरी शादी शून्य थी। दूसरी शादी को शून्य साबित करने के लिए, अपीलकर्ता एक ऐसी प्रथा के अस्तित्व को दिखाने के लिए बाध्य था जो इस तरह के विवाह को अशक्त, अप्रभावी, कानून का कोई बल या बाध्यकारी प्रभाव नहीं था, कानून में लागू होने में असमर्थ या गैर-कानूनी बनाता था। दूसरी शादी का शून्य होना धारा 494 भ०द०वि० की प्रयोज्यता के लिए एक अनिवार्य शर्त है। कानून की यह स्थापित स्थिति है कि आपराधिक दायित्व को पूरा करने के लिए, अभियोजन पक्ष या शिकायतकर्ता अपराध का गठन करने वाले सभी अवयवों के अस्तित्व को साबित करने के लिए बाध्य है जो सामान्य रूप से और आमतौर पर एक क़ानून द्वारा परिभाषित किया जाता है। अपीलकर्ता स्वयं अपने रुख में स्पष्ट नहीं प्रतीत होती है क्योंकि 24 अक्टूबर, 1992 को अदालत में दर्ज अपने बयान में उसने कहा है कि "मैं धर्म से हिंदू हूं"। निचली अदालत ने शिकायत को खारिज करते हुए कहा, 'शिकायत में ऐसी किसी प्रथा का कोई जिक्र नहीं है और न ही इस तरह की प्रथा का सबूत है। दलीलों और सबूतों के अभाव में, केवल पुस्तक का संदर्भ पर्याप्त नहीं है। उच्च न्यायालय ने इस अपील में आक्षेपित निर्णय के माध्यम से माना कि अधिनियम की धारा 2 की उप-धारा (2) के संदर्भ में अधिसूचना के अभाव में प्रतिपक्षी के खिलाफ द्विविवाह के अपराध के लिए अभियोजन का कोई मामला नहीं बनाया गया था क्योंकि कथित दूसरी शादी को अधिनियम या कानून के बल पर किसी भी कथित प्रथा के तहत शून्य नहीं कहा जा सकता है।

25. दूसरी शादी की वैधता और मुस्लिम कानून के तहत दूसरी शादी के संबंध में धारा 494 भ०द०वि० के आकर्षण का मुद्दा भी जाफर अब्बास रसूल मोहम्मद मर्चेंट (उपरोक्त) के मामले में गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष विचार किया गया, जिसमें न्यायमूर्ति जेबी पारदीवाला ने कुरान की कई आयतों और मुस्लिम कानून की व्याख्या पर विचार किया है और कहा है कि दो मुसलमानों (पुरुष और महिला) के बीच दूसरी शादी की अनुमति कुछ शर्तों के अधीन है। उस मामले में, गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा यह भी देखा गया है कि कुरान

बहुविवाह को मना करता है यदि एक से अधिक बार शादी करने का उद्देश्य स्वार्थ या यौन इच्छा है और आगे कहा गया कि यह मौलवियों पर है कि वे यह सुनिश्चित करें कि मुसलमान अपने स्वार्थ के लिए बहुविवाह को सही ठहराने के लिए कुरान का दुरुपयोग न करें। न्यायालय ने यह भी कहा कि ऐसा कोई कानून नहीं है जो मुस्लिम कानून के तहत दूसरी शादी को शून्य घोषित करता है, इसलिए, यह धारा 494 भ०द०वि० के तहत दंडनीय नहीं होगा। जाफर अब्बास रसूल मोहम्मद मर्चेंट (उपरोक्त) के प्रस्तर-61, 62 और 71 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है: -

61- जैसे-जैसे इस देश और दुनिया भर में सामाजिक परिस्थितियां बदलती जा रही हैं, जीवन की वास्तविकता यह है कि जहां तक विवाह का संबंध है, मुसलमानों के पर्सनल लॉ पर एक कोड के बिना भी, बहुविवाह गुमनामी में जा रहा है। शिक्षा, पारिवारिक संरचना के बदलते पैटर्न, दुनिया की वास्तविकता के संदर्भ में एक परिवार की संरचना, और आर्थिक आवश्यकताएं अपने आप में एक ऐसी स्थिति पैदा कर रही हैं जहां एकपत्नीत्व वास्तविकता बन रही है, हालांकि धर्म एक मुस्लिम को बहुविवाह में उद्यम करने की अंतरात्मा की इस तरह की मंजूरी के साथ अनुमति देता है। लेकिन, इस्लाम में बहुविवाह जिस संहिता पर टिकी हुई है, वह सख्त और कठिन है।

62. इसके अतिरिक्त, कुरान बहुविवाह को मना करता है यदि एक से अधिक बार शादी करने का उद्देश्य स्वार्थ या यौन इच्छा है। यह मौलवियों और मुस्लिम पुरुषों पर निर्भर करता है कि वे अपने स्वार्थ में बहुविवाह के जघन्य पितृसत्तात्मक कार्य को सही ठहराने के लिए कुरान का दुरुपयोग न करें।

71. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, जहां तक धारा 494 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध का संबंध है, मेरे पास श्री जोशी की इस दलील को स्वीकार करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचा है कि उनके मुवक्किल पर धारा 494 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है। इस हद तक, याचिका को अनुमति देनी होगी, और तदनुसार, इसकी अनुमति दी जाती है।

26. यद्यपि मुस्लिम कानून अपनी पहली शादी के जीवनकाल के दौरान पुरुष द्वारा दूसरी शादी करने पर रोक नहीं लगाता है, लेकिन यह महिला को अपने पति के जीवनकाल के दौरान दूसरी शादी करने के लिए सख्ती से प्रतिबंधित करता है क्योंकि यह विवाह मुस्लिम कानून के तहत बातिल (शून्य विवाह) है और ऐसी महिला धारा 494 भ०द०वि० के तहत अभियोजन के लिए उत्तरदायी होगी। भारत में, हमारे पास पांच विवाह कानून हैं, जिनमें से सभी पहली शादी के निर्वाह के दौरान दूसरी शादी पर रोक लगाते हैं। ये कानून इस प्रकार हैं :- (i) विशेष विवाह अधिनियम, 1954(ii) विदेशी विवाह अधिनियम, 1969 (iii) ईसाई विवाह अधिनियम, 1872 (iv) पारसी विवाह और तलाक अधिनियम, 1936 (v) हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 इसलिए, यदि पहली शादी उपर्युक्त अधिनियमों में से किसी के तहत की जाती है, तो दूसरी शादी किसी अन्य धर्म में धर्मांतरण के बाद भी अमान्य होंगे।

27. उपरोक्त मुद्दा कलीम शेख मुनाफ (उपरोक्त) के मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय के समक्ष भी विचार किया गया, जिसमें बॉम्बे उच्च न्यायालय ने एक मुस्लिम पुरुष द्वारा दूसरी शादी के मुद्दे और दूसरी शादी के संबंध में धारा 494 भ०द०वि० की प्रयोज्यता पर विचार किया। बॉम्बे उच्च न्यायालय ने डॉ. सूरजमणि स्टेला कुजूर (उपरोक्त) के साथ-साथ एएस नजर (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर विचार करने के बाद कहा है कि एक मुस्लिम पुरुष चार विवाहों तक अनुबंध कर सकता है, इसलिए, एक मुस्लिम पुरुष द्वारा दूसरी शादी शून्य नहीं है, इसलिए, ऐसे मुस्लिम पुरुष के खिलाफ धारा 494 भ०द०वि० के तहत अभियोजन शुरू नहीं किया जा सकता है।

28. उपरोक्त विश्लेषण से, यह स्पष्ट है कि एक मुस्लिम पुरुष द्वारा अनुबंधित दूसरी शादी शरीयत के अनुसार वैध है, लेकिन कुछ मामलों में, दूसरी शादी अमान्य होगी यदि शरीयत द्वारा इसे बातिल (शून्य विवाह) के रूप में घोषित किया जाता है, खासकर जहां विवाह रिश्ते की निषिद्ध डिग्री के भीतर किया गया था या अनुबंधित किया गया था, लेकिन सवाल उठता है कि मुस्लिम पुरुष की दूसरी शादी को मुस्लिम कानून के अनुसार बातिल (शून्य विवाह) के रूप में कौन घोषित करेगा। शरीयत अधिनियम की धारा 2 में प्रावधान है कि विवाह से संबंधित सभी प्रश्नों का निर्णय शरीयत के अनुसार किया जाएगा और शरीयत अधिनियम की धारा 3 के अनुसार, यह निर्धारित प्राधिकारी द्वारा तय किया जा सकता है लेकिन राज्य ने शरीयत अधिनियम की धारा 4 के तहत निर्धारित प्राधिकारी को अधिसूचित नहीं किया है। किसी विशिष्ट निर्धारित प्राधिकारी की अनुपस्थिति में, आम तौर पर ऐसे प्रश्नों का निर्णय मौलवियों द्वारा किया जाता था, लेकिन परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 के लागू होने पर, विवाह की वैधता या विवाह से संबंधित किसी भी प्रश्न का निर्णय परिवार न्यायालय अधिनियम की धारा 7 के स्पष्टीकरण (ए) और (बी) के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए परिवार न्यायालय द्वारा किया जा सकता है। विवाह के पक्षकारों के धर्म की परवाह किए बिना; परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 एक विशेष अधिनियम है जिसे विवाह और पारिवारिक मामलों से संबंधित विवादों में सुलह को बढ़ावा देने और उनके त्वरित निपटान को सुरक्षित करने के उद्देश्य से परिवार न्यायालयों की स्थापना के लिए अधिनियमित किया गया था। परिवार न्यायालय अधिनियम की धारा 20 का उस समय लागू अन्य सभी कानूनों पर अधिभावी प्रभाव पड़ता है। कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 20 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है -

20. अधिभावी प्रभाव रखने वाला अधिनियम-इस अधिनियम के उपबंधों का तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में या इस अधिनियम के अतिरिक्त किसी अन्य विधि के आधार पर प्रभावी होने वाले किसी लिखत में उसमें निहित किसी असंगत बात होते हुए भी प्रभाव होगा। इसलिए, एक विशेष अधिनियम होने के नाते, परिवार न्यायालय अधिनियम अन्य सभी कानूनों पर अधिभावी प्रभाव डालेगा, भले ही इसमें कोई असंगति हो। इसलिए, धारा 494 भ०द०वि० या अन्य उद्देश्यों के लिए भी, शरीयत अधिनियम की धारा 2 के अनुसार विवाह की वैधता से संबंधित प्रश्न, परिवार न्यायालय परिवार न्यायालय अधिनियम की धारा 7 के तहत इस मुद्दे पर निर्णय ले सकता है। संदर्भ के लिए, धारा 7 निम्नानुसार उद्धृत की गई है: -

7. क्षेत्राधिकार - (1) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, एक कुटुम्ब न्यायालय निम्नलिखित कार्य करेगा: (क) स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट प्रकृति के वादों और कार्यवाहियों के संबंध में तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन किसी जिला न्यायालय या किसी अधीनस्थ सिविल न्यायालय द्वारा प्रयोग किए जाने वाले सभी अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करेगा और उसका प्रयोग करेगा; और (ख) इस तरह के कानून के तहत इस तरह के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के प्रयोजनों के लिए, एक जिला न्यायालय या, जैसा भी मामला हो, उस क्षेत्र के लिए ऐसे अधीनस्थ सिविल न्यायालय के रूप में माना जाए, जिस तक परिवार न्यायालय का अधिकार क्षेत्र विस्तारित है।

स्पष्टीकरण- इस उप-धारा में निर्दिष्ट वाद और कार्यवाही निम्नलिखित प्रकृति के वाद और कार्यवाही हैं, अर्थात्: - (क) विवाह की शून्यता की डिक्री के लिए विवाह के पक्षकारों के बीच वाद या कार्यवाही (विवाह को शून्य और शून्य घोषित करना या, जैसा भी मामला हो, विवाह को रद्द करना) या वैवाहिक अधिकारों की बहाली या न्यायिक अलगाव या विवाह का विघटन; (ख) विवाह की वैधता के रूप में या किसी व्यक्ति की वैवाहिक स्थिति के रूप में घोषणा के लिए एक मुकदमा या कार्यवाही; (ग) पक्षगण या उनमें से किसी एक की संपति के संबंध में विवाह के पक्षकारों के बीच एक मुकदमा या कार्यवाही; (घ) वैवाहिक संबंध से उत्पन्न होने वाली परिस्थिति में आदेश या निषेधाज्ञा के लिए एक मुकदमा या कार्यवाही; (ई) किसी भी व्यक्ति की वैधता के रूप में घोषणा के लिए एक मुकदमा या कार्यवाही; (च) एक मुकदमा या रखरखाव के लिए कार्यवाही; (छ) व्यक्ति की संरक्षकता या किसी नाबालिग की अभिरक्षा, या पहुंच के संबंध में एक मुकदमा या कार्यवाही। (2) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, कुटुम्ब न्यायालय के पास भी होगा और उसका प्रयोग होगा- (क) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973(2 वर्ष 1974) के अध्याय IX (पत्नी, बच्चों और माता-पिता के भरण-पोषण के आदेश से संबंधित) के अधीन प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा प्रयोग किया जाने वाला क्षेत्राधिकार; और (ख) ऐसे अन्य क्षेत्राधिकार जो किसी अन्य अधिनियमन द्वारा इसे प्रदान किए जा सकें।

29. उपरोक्त विश्लेषण से यह भी स्पष्ट है कि मुस्लिम कानून के अनुसार, एक मुस्लिम पुरुष को दूसरी शादी करने का कोई निरंकुश अधिकार नहीं है जब तक कि वह सभी पत्नियों को समान व्यवहार देने की क्षमता न रखे। इसलिए, उपरोक्त विश्लेषण के साथ-साथ चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय निम्नलिखित का निर्णय देता है: (i) यदि कोई मुस्लिम पुरुष मुस्लिम कानून के अनुसार अपनी पहली शादी करता है तो दूसरी, तीसरी या चौथी शादी शून्य नहीं होगी, इसलिए, धारा 494 भ०द०वि० की सामग्री दूसरी शादी के लिए आकर्षित नहीं होगी, सिवाय उन मामलों के जहां दूसरी शादी को परिवार न्यायालय द्वारा धारा 7 के तहत शरीयत के अनुसार बतिल (शून्य विवाह) घोषित किया गया था। (ख) यदि हां, तो तत्संबंधी ब्यौरा क्या है? (ii) यदि किसी व्यक्ति द्वारा पहला विवाह विशेष विवाह अधिनियम, 1954, विदेशी विवाह अधिनियम, 1969, ईसाई विवाह अधिनियम, 1872, पारसी विवाह और तलाक अधिनियम, 1936 और हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के तहत किया जाता है और वह मुस्लिम कानून के अनुसार दूसरा विवाह करता है, तो इस्लाम में परिवर्तन के बाद उसका दूसरा विवाह अमान्य हो जाएगा, और ऐसे विवाह के लिए धारा 494 भ०द०वि० के तहत अपराध आकर्षित होगा। (iii) कुटुम्ब न्यायालय को मुस्लिम पर्सनल लॉ के अनुसार किए गए मुस्लिम विवाह की वैधता का निर्णय लेने के लिए कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार भी है।

30. यह न्यायालय आगे यह टिप्पणी करना चाहेगा कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 25 धार्मिक स्वतंत्रता को मानने, अभ्यास करने और प्रचार करने की अनुमति देता है, जिसमें व्यक्ति के उसके धार्मिक विश्वास के अनुसार बाहरी प्रत्यक्ष कार्य भी शामिल हैं, लेकिन यह अधिकार सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य और 5 सभी के अधीन है। विनय कुमार गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और संविधान के भाग- III के अन्य 1039 अन्य प्रावधान। इसलिए, अनुच्छेद 25 के तहत धार्मिक स्वतंत्रता निरंकुश नहीं है और इसे राज्य द्वारा विनियमित किया जा सकता है।

31. हालांकि मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरीयत) एप्लीकेशन एक्ट, 1937 ने घोषणा की कि एक्ट, 1937 की धारा 2 में उल्लिखित मुसलमानों के बीच के मुद्दों का फैसला मुस्लिम पर्सनल लॉ के अनुसार किया जाएगा, लेकिन संसद ने मुस्लिम महिलाओं के कल्याण के लिए अपनी नियामक शक्ति का प्रयोग करते हुए निम्नलिखित कानून बनाए हैं: - (i) मुस्लिम विवाह अधिनियम का विघटन, 1939 (ii) मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 (iii) मुस्लिम महिला (विवाह पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019

32. ऊपर चर्चा किए गए मुस्लिम कानून के कई प्रावधानों के अवलोकन से, यह भी स्पष्ट है कि इस्लाम केवल कुछ परिस्थितियों में और कुछ शर्तों के साथ एक से अधिक विवाह की अनुमति देता है, लेकिन इस अनुमति का व्यापक रूप से दुरुपयोग किया जाता है, यहां तक कि मुस्लिम कानून के जनादेश के खिलाफ भी जैसा कि कुरान की ऊपर उद्धृत आयतों में उल्लेख किया गया है। इसलिए, इस न्यायालय का यह भी विचार है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 44 के जनादेश के अनुसरण में समान नागरिक संहिता के अधिनियमन के संबंध में श्रीमती सरला मुद्गल (उपरोक्त), लिली थॉमस (उपरोक्त) और जाफर अब्बास रसूल मोहम्मद मर्चेंट (उपरोक्त) में दिए गए सुझाव पर विधायिका द्वारा विचार करने की आवश्यकता है।

33. विवाद पर वापस आते हुए, प्रतिपक्षी संख्या-2 के बयान के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि उसने स्वीकार किया कि आवेदक संख्या-1 ने उसके साथ दूसरी शादी की है और दोनों मुस्लिम हैं, इसलिए, दूसरी शादी वैध है, इसलिए आवेदकों के खिलाफ भ०द०वि० की धारा 376 के साथ-साथ 495/120-बी भ०द०वि० के तहत अपराध नहीं बनाया जाता है।

34. मामले पर विचार करने की आवश्यकता है।

35. प्रतिवादी संख्या-2 को नोटिस निर्गत किया जाए, जो निकटतम तिथि पर प्रत्यावर्तनीय हो।

36. इस मामले को 26.05.2025 से शुरू होने वाले सप्ताह में सूचीबद्ध करें।

37. सूचीबद्ध होने की अगली तारीख तक, उपरोक्त मामले में आवेदकों के खिलाफ कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी।

(2025) 5 ILRA 1039

मूल अधिकारिता

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

आपराधिक प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 संख्या - 20422 वर्ष 2024

एवं

प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 संख्या - 32108 वर्ष 2024

विनय कुमार गुप्ता **.....आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य **.....विपक्षी**

आवेदक के अधिवक्ता :
श्री अरविंद कुमार मिश्रा, श्री देवेंद्र मिश्रा

विपक्षी के अधिवक्ता :
शासकीय अधिवक्ता

अनुवादित

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएँ 107, 108, 109, 110 और 482 - उत्तर प्रदेश गैंगेस्टर और असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 - धाराएँ 2, 2-बी(1), 3, 12 और 14 - उत्तर प्रदेश गैंगेस्टर और असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) नियम, 2021 - नियम 5, 5(3)(क), 8(3), 10(1), 16(1), 16(2), 17(2), 20, 20(3), 20(4), 22(2), 26(1), 36 और 64 - भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 - धाराएँ 94, 126, 127, 128, 129 और 193 - दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत आवेदन - गैंगेस्टर अधिनियम के तहत संपूर्ण कार्रवाई को चुनौती देना - केवल एक 'प्राथमिकी' (एफ.आई.आर.) के आधार पर शुरू किया गया - फर्जी दस्तावेजों का उपयोग करके अवैध खनन और परिवहन का आरोप, जिसके कारण कथित तौर पर जनता में भय और राजस्व की हानि हुई - आवेदकों ने झूठे फंसाए जाने का दावा किया और अपनी दयनीय आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डाला, जिसके कारण न्यायालय ने गैंग चार्ट की उचित सत्यापन के बिना यांत्रिक (मैकेनिकल) अनुमोदन सहित प्रक्रियात्मक कमियों की संवीक्षा की - न्यायालय ने पुलिस अधीक्षक (एस.पी.) को अधिनियम के लागू होने को उचित ठहराने वाली सभी सामग्रियां प्रस्तुत करने का निर्देश दिया और उपजिलाधिकारी (एस.डी.एम.) द्वारा वित्तीय जांच का आदेश दिया, जिससे अभियुक्तों के पास न्यूनतम संपत्ति और बैंक गतिविधि का पता चला - अनुमोदन करने वाले अधिकारियों द्वारा दिए गए तर्कों से असंतुष्ट होकर, न्यायालय ने उनकी वर्चुअल उपस्थिति अनिवार्य की और 2021 के नियमों के नियम 5(3)(क) के

अनुपालन तथा प्रशिक्षण की आवश्यकता पर जोर दिया - पुनः जाँच का आदेश दिया गया था, और लापरवाह अधिकारियों के खिलाफ विभागीय कार्रवाई की सिफारिश की गई थी, जिसके परिणामस्वरूप सभी अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया गया और एक अंतिम रिपोर्ट (क्लोजर रिपोर्ट) दाखिल की गई - भविष्य के दुरुपयोग को रोकने के लिए, न्यायालय ने गृह विभाग और अभियोजन निदेशालय के परस्पर विरोधी जाँच-सूचियों (चेकलिस्ट) के समेकन का आगे निर्देश दिया, अभियोजन अधिकारियों द्वारा आरोप-पत्रों (चार्जशीट) की पूर्व-प्रस्तुति समीक्षा अनिवार्य की, न्यायालयों को गैर-अनुपालन की रिपोर्ट करने का अधिकार दिया - तदनुसार, उत्तर प्रदेश में समान कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए एक नया परिपत्र और अनुपालन रिपोर्ट प्रसारित करने के निर्देशों के साथ आवेदन का निस्तारण किया जाता है। (पैरा - 10, 11, 12, 14, 17, 18, 19, 20, 21)

प्रार्थना पत्र निस्तारित। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

गोरख नाथ मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (डायरी संख्या 2673 वर्ष 2023)

(माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा पारित)

1. दोनों आवेदनों में आवेदकों के अधिवक्ता श्री अरविंद कुमार मिश्रा और श्री अफजल अहमद खान दुर्रानी, राज्य-प्रतिपक्षियों के लिए श्री विभव आनंद सिंह, अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा सहायता प्राप्त अतिरिक्त महाधिवक्ता दुर्रानी को सुना और अभिलेखों पर सामग्री का अवलोकन किया।

2. प्रस्तुत वादपत्र प्रस्तुत कर, प्रकरण अपराध संख्या 161 वर्ष 2022 से उद्भूत समस्त कार्यवाहियों को, जो उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स एवं असामाजिक गतिविधियाँ (निवारण) अधिनियम, 1986 की धारा 2/3 के अंतर्गत थाना करारी, जनपद कौशांबी में पंजीकृत है तथा माननीय अपर सत्र न्यायाधीश/एफटीसी-1, कौशांबी की न्यायालय में विचाराधीन है, साथ ही माननीय अपर सत्र न्यायाधीश/एफटीसी-1, कौशांबी द्वारा दिनांक 24.01.2024 को पारित संज्ञान आदेश को चुनौती दी गई है।

3. आवेदकों का मामला गैंग-चार्ट की मंजूरी से सामने आता है, और अवलोकन करने पर यह देखा गया है कि गिरोह के सरगना अजय कुमार सरोज, जीते निवासी जीते निवासी गोराजू थाना पश्चिम सरीरा, जिला कौशांबी अपने सह-आरोपी सदस्यों के साथ; (i) राहुल पुत्र छिड्डा, निवासी घसिया का पुरा, थाना-पश्चिम सरीरा जिला, कौशाम्बी, (ii) विनय कुमार गुप्ता पुत्र स्वर्गीय गोविंद प्रसाद, निवासी बुकसी का पुरवा, थाना पश्चिम सरीरा, जिला कौशाम्बी, और (iii) राजाराम केशरवानी पुत्र छेदीलाल निवासी गोराजू, थाना-पश्चिम सरीरा, जिला कौशाम्बी, जिला स्तर पर एक संगठित गिरोह चला रहा है। इस गिरोह के सदस्यों ने नकली रावणों के आधार पर अवैध खनन और परिवहन करके भारी मात्रा में अवैध धन अर्जित किया है; गिरोह की गतिविधियों के कारण सरकार को भारी राजस्व हानि हो रही है। इस तरह की हरकतें करके उक्त गिरोह ने जनता में इतना डर पैदा कर दिया

है कि लोग उनके डर के कारण उनके खिलाफ शिकायत करने का साहस नहीं जुटा पा रहे हैं। इससे पहले, समाचार पत्रों की रिपोर्ट के अनुसार, इस तरह के खनन माफियाओं के कारण सड़क दुर्घटनाओं में खनन अधिकारियों की मौत हो जाती थी, जिन्होंने अवैध खनन को रोकने का प्रयास किया था। सार्वजनिक रूप से उनके आतंक के कारण, सामान्य जीवन और कानून और व्यवस्था की स्थिति में व्यवधान पैदा होता है, इसलिए, उक्त गिरोह द्वारा किया गया आपराधिक कृत्य गैंगस्टर अधिनियम, 1986 की धारा 2 बी की उप-धारा (1) के तहत आच्छादित किया जाता है।

4. उपरोक्त तथ्यों के आधार पर, एक प्राथमिकी दर्ज की गई और जांच के समापन के बाद, आवेदकों के खिलाफ पुलिस रिपोर्ट दर्ज की गई और उसके बाद आवेदकों को आक्षेपित समन आदेश 24.1.2024 के माध्यम से तलब किया गया।

5. आवेदकों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदकों को एक ही मामले के आधार पर गलत तरीके से फंसाया गया है। वास्तविक खनन माफिया के इशारे पर अवैध खनन में आवेदकों की संलिप्तता के झूठे और मनगढ़ंत आरोप लगाए गए हैं, जो स्थानीय पुलिस की सहायता और सहायता से अवैध खनन में शामिल हैं। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि स्थानीय पुलिस और राजस्व अधिकारियों को विश्वास में लिए बिना वर्तमान नौकरशाही व्यवस्था में किसी भी तरह की ऐसी गतिविधि संभव नहीं है। इसके बाद यह प्रस्तुत किया जाता है कि कथित गिरोह का नेता बेहद गरीब आदमी है और उसके पास पक्का घर भी नहीं है। अन्य सह-आवेदक सामान्य रूप से जीवन जी रहे हैं और ज्ञात या अज्ञात स्रोतों से कोई आय नहीं है- गिरोह चार्ट में लगाए गए आरोपों के विपरीत। जिला मजिस्ट्रेट और पुलिस अधीक्षक ने नोडल अधिकारी द्वारा उनके सामने प्रस्तुत सामग्री पर प्रथम दृष्टया संतुष्ट किए बिना यांत्रिक रूप से गैंग चार्ट को मंजूरी दे दी है।

6. इसके विपरीत, अपर महाधिवक्ता ने गैंग चार्ट पर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया और तर्क दिया कि आवेदकों के खिलाफ अवैध खनन के गंभीर आरोप हैं। आगे तर्क दिया गया कि अभिलेखों पर सामग्री को पढ़ने से, यह प्रथम दृष्टया पता चला है कि जिले के दो वरिष्ठतम अधिकारियों द्वारा अवैध खनन में आरोपियों की संलिप्तता के तार्किक निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद आवेदकों के खिलाफ गैंगस्टर अधिनियम के प्रावधानों को लागू किया गया है।

7. दी गई परिस्थितियों में, इस न्यायालय ने दिनांक 3.7.2024 के आदेश के माध्यम से निर्देश दिया; (i) पुलिस अधीक्षक, कौशाम्बी को एक मामले के आधार पर गैंगस्टर अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने को न्यायोचित ठहराने के लिए नोडल अधिकारी द्वारा उनके और जिला मजिस्ट्रेट, कौशाम्बी द्वारा प्रस्तुत की गई संपूर्ण सामग्री को दाखिल करने के लिए, (ii) पुलिस अधीन, कौशाम्बी अपने अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले सभी पुलिस स्टेशनों के उन मामलों की एक सूची भी प्रदान करेंगे जिनमें एक ही मामले के आधार पर गैंगस्टर अधिनियम के प्रावधानों को लागू किया गया है, और (iii) ऐसे अभियुक्तों की सूची जो आपराधिक आरोपों का सामना कर रहे हैंजिला कौशाम्बी के सभी पुलिस स्टेशनों से पांच से अधिक मामलों में प्राथमिकी - उनके पूर्ण

डोजियर या किसी अन्य प्रासंगिक जानकारी के साथ, जो इस आदेश के उद्देश्य के अनुरूप एसपी द्वारा आवश्यक समझी गई हो।

8. उपजिलाधिकारी, मंझनपुर को निर्देशित किया गया कि वे जनपदाधिकारी से अनुमोदन प्राप्त करने के उपरांत अभियुक्तगण की वित्तीय स्थिति के संबंध में प्रतिवेदन प्रस्तुत करें, जिसमें उनकी संपत्ति का विवरण (पैतृक एवं स्वअर्जित), विगत तीन वर्षों के बैंक खातों का विवरण, तथा वर्ष 2017 से अब तक गिरोह सरगना अजय कुमार सरोज एवं सह-अभियुक्तगण राहुल, विनय कुमार गुप्ता तथा राजा राम केशरवानी के कब्जे/स्वामित्व में रही संपत्तियों का ब्यौरा, अथवा गैंग-चार्ट में अंकित आरोपों के समर्थन में अन्य कोई प्रासंगिक सूचना सम्मिलित हो।

9. इसके अनुपालन में, एस.डी.एम., मंझनपुर ने दिनांक 25.7.2024 के एक हलफनामे के माध्यम से न्यायालय को अवगत कराया है कि इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के संदर्भ में एक जांच की गई थी, और जांच के दौरान, यह पता चला कि गिरोह का सरगना अजय कुमार सरोज गांव बाकरगंज, माझा गोराजू, जिला कौशांबी में रहता है और उसके नाम पर कोई चल और अचल संपत्ति नहीं है और वह मजदूर के रूप में काम करता है। इसी तरह, सह-आरोपी राहुल भूमिहीन है, उसका कोई बैंक खाता नहीं है और वह पुणे, महाराष्ट्र में मजदूरी करता है। आवेदक विनय कुमार गुप्ता अपने भाइयों के साथ एक घर में रहते हैं और उनके पास एक बाइक है। आरोपी राजा राम केशरवानी के पास दो ट्रैक्टर और एक बाइक है। सभी आरोपियों के खाते के बयान, कुल मिलाकर, गैंग-चार्ट में लगाए गए आरोपों के विपरीत न्यूनतम लेनदेन को दर्शाते हैं।

10. पूर्वगामी तथ्यों के आधार पर, निष्पक्ष निर्णय की सुविधा के लिए, ए.सी.एस. (गृह), तत्कालीन जिला मजिस्ट्रेट और एसपी कौशाम्बी, जिन्होंने गैंगस्टर अधिनियम के तहत कार्यवाही शुरू करने की मंजूरी दी थी, को इस न्यायालय के समक्ष वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से वर्चुअल रूप से उपस्थित होने का निर्देश दिया गया था।

11. तत्कालीन जिला मजिस्ट्रेट, कौशाम्बी और तत्कालीन पुलिस अधीक्षक, कौशाम्बी ने आवेदकों के खिलाफ उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम), अधिनियम, 1986 के प्रावधानों को लागू करने के लिए अपनी मंजूरी के संबंध में अपने स्पष्टीकरण प्रस्तुत किए। हालांकि, न्यायालय गैंग-चार्ट की सामग्री के आधार पर अधिकारियों के दृष्टिकोण और तर्क से संतुष्ट नहीं था। जबकि ए.सी.एस. (गृह) ने न्यायालय को अवगत कराया कि, इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के अवलोकन और अधिकारियों को सुनने के बाद, गैंगस्टर अधिनियम, 1986 और वर्ष 2021 में उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत अनिवार्य कानूनी और प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं के बारे में अधिकारियों को संवेदनशील बनाने के लिए एक व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम निर्धारित करने की आवश्यकता है।

11.1 निश्चित रूप से, गृह विभाग की यह पहल जिला स्तर पर तैनात अधिकारियों के व्यावसायिक कौशल को बढ़ाकर कार्य संस्कृति में सुधार लाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम होगी। राज्य सरकार की पहल से आम जनता के साथ अधिकारियों की निरंतर भागीदारी को बढ़ावा मिलेगा।

11.2 न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि जिलों में जिला मजिस्ट्रेटों और पुलिस आयुक्तों/एसएसपी/एसपी को अपने पेशेवर कौशल को बढ़ाने के लिए निरंतर प्रशिक्षण की आवश्यकता है। यह देखा गया है कि ये अधिकारी थानाध्यक्ष और उप निरीक्षक द्वारा तैयार की गई रिपोर्टों पर बहुत अधिक भरोसा करते हैं, जिसका व्यक्तियों और कानून के शासन के प्रशासन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। नागरिकों पर कड़े कानूनी प्रावधान लागू करते समय अधिक न्यायसंगत, न्यायसंगत और सतर्क दृष्टिकोण आवश्यक है। उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम), नियम, 20212 के नियम 5(3)(ए) पर भरोसा किया गया है, जिसमें गैंग-चार्ट के अनुमोदन हेतु, नोडल अधिकारी द्वारा प्रस्तुत अभिलेखीय सामग्री पर कारणयुक्त निष्कर्ष अभिलिखित करते हुए, जनपदाध्यक्ष की अध्यक्षता में सिविल प्रशासन एवं पुलिस–दोनों की संयुक्त बैठक आयोजित किया जाना आवश्यक है, साथ ही उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स एवं असामाजिक गतिविधियाँ (निवारण) अधिनियम, 1986 तथा उसके अधीन निर्मित अन्य प्रावधानों एवं नियमों का अनुपालन भी अपेक्षित है।

12. पूर्वगामी चर्चाओं के आलोक में, एस.डी.एम., मंझनपुर द्वारा दायर हलफनामे और सुनवाई के दौरान सामने आई अन्य प्रासंगिक सामग्रियों पर विचार करते हुए, प्रस्तुत मामले की एक सक्षम अधिकारी द्वारा फिर से जांच करने का निर्देश दिया गया था। साथ ही गृह विभाग के अधिकारी द्वारा जांच कराने का भी निर्देश दिया गया था, न कि विनय कुमार गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एस.एच.ओ. पी.एस. करारी, जिला कौशांबी और तत्कालीन नोडल अधिकारी द्वारा त्रुटिपूर्ण जांच करने में उप सचिव के पद से नीचे के मामले में 1043 मामले दर्ज किए गए।

13. इसके अनुपालन में, संयुक्त सचिव (गृह) ने दिनांक 10.12.2024 को एक जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया था कि थानाध्यक्ष को लापरवाह पाया गया था और उनके खिलाफ जिला स्तर पर एक विभागीय जांच अवधारित करने का प्रस्ताव था और तत्कालीन अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक, कौशाम्बी-नोडल अधिकारी को आधिकारिक कर्तव्य का पालन करते समय सतर्क और समझदार रहने का निर्देश दिया गया था।

14. अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक/नोडल अधिकारी, कौशाम्बी ने दिनांक 11.12.2024 के अनुपालन हलफनामे के माध्यम से न्यायालय को सूचित किया कि पुन: जांच में सभी आरोपी व्यक्तियों को पुलिस द्वारा सभी आरोपों से मुक्त कर दिया गया है और सभी आरोपियों के खिलाफ 9.12.2024 को न्यायालय के समक्ष एक क्लोजर रिपोर्ट दायर की गई है और एस.सी.डी. परचा संख्या-14 में एक निष्कर्ष दर्ज किया गया है। इसलिए, आवेदकों द्वारा उठाई गई शिकायतों का समाधान किया गया है।

15. यह न्यायालय बार-बार ऐसे मामलों का सामना करता है जिनमें जिला मजिस्ट्रेटों/पुलिस आयुक्तों/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षकों/पुलिस अधीक्षकों द्वारा दिमाग नहीं लगाने से यह देखा गया है कि अधिनियम, 1968 और नियम, 2021 के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए नियमित तरीके से यांत्रिक रूप से अनुमोदन प्रदान किए जाते हैं।

16. इस मामले की सुनवाई के दौरान, आवेदकों और राज्य दोनों द्वारा कई निर्णयों का हवाला दिया गया था। नियम, 2021 के आलोक में इन निर्णयों के अवलोकन पर, इस न्यायालय ने कहा कि पुलिस बार-बार उनका पालन करने में विफल रही है। इस गैर-अनुपालन के परिणामस्वरूप, एक ओर, पीड़ित को न्याय से वंचित किया गया है, और दूसरी ओर, पुलिस को गुप्त उद्देश्यों के लिए संसाधनहीन, निर्दोष और कमजोर व्यक्तियों के खिलाफ अत्याचार करने के लिए एक उपकरण प्रदान किया गया है। अक्सर, इस तरह के दुरुपयोग से वास्तविक गैंगस्टरों को लाभ होता है, जिन्हें न्याय के कटघरे में लाने के बजाय ढाल दी जाती है। इसलिए, गृह विभाग को पुलिस महानिदेशक के परामर्श से सभी जिला मजिस्ट्रेटों और पुलिस आयुक्तों/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षकों/पुलिस अधीक्षकों के लिए एक चेक लिस्ट और प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करने का निर्देश दिया गया था ताकि अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए अधिकारियों को संवेदनशील बनाया जा सके।

17. राज्य के प्रतिपक्षियों के लिए अपर महाधिवक्ता ने सचिव (गृह) द्वारा जारी कार्यालय ज्ञापन/परिपत्र दिनांक 02.12.2024 की एक प्रति सौंपी, और इसे अभिलेखों पर लिया गया है। दिनांक 02.12.2024 के कार्यालय ज्ञापन के अवलोकन से पता चलता है कि गृह विभाग ने गोरख नाथ मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (डायरी संख्या-2673 वर्ष 2023) में उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के अनुपालन में दिशा-निर्देश तैयार किए हैं। दिशानिर्देश यहां उल्लिखित हैं:

"(1) अधिनियम के उपबंधों को केवल तभी लागू किया जाएगा जब कोई अपराध किसी गिरोह द्वारा व्यक्तिगत रूप से या सामूहिक रूप से सार्वजनिक व्यवस्था को भंग करने के इरादे से किया गया हो या हिंसा, हिंसा की धमकी, प्रदर्शन, धमकी, उत्पीड़न, या किसी अन्य माध्यम से अपने या दूसरों के लिए कोई अनुचित, सांसारिक, आर्थिक, भौतिक, मौद्रिक, या अन्य लाभ प्राप्त करने के लिए किया गया हो।

(2) गैंग चार्ट थाना के थानाध्यक्ष/प्रभारी अधिकारी द्वारा नियम, 2021 के फॉर्म संख्या-3 में गिरोह की आपराधिक गतिविधियों का विवरण लिखकर तैयार किया जाएगा और गैंग चार्ट के साथ संलग्न किया जाएगा।

(3) थाना में रखे गए गिरोह रजिस्टर की प्रमाणित प्रति भी गैंग चार्ट के साथ संलग्न की जाएगी। इसके अतिरिक्त, डीसीआरबी और सीसीटीएनएस/आईसीजेएस के माध्यम से एकत्र किए गए आपराधिक विवरण भी संलग्न किए जाएंगे।

(4) गिरोह चार्ट में स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट होना चाहिए कि गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2 के खंड (बी) के किस उप-खंड के तहत चार्ट में वर्णित अपराध आते हैं।

(5) गिरोह चार्ट में उल्लिखित सभी मामलों की वर्तमान स्थिति स्पष्ट रूप से बताई जानी चाहिए।

(6) गिरोह चार्ट में सभी जानकारी सही और सटीक रूप से दर्ज की जानी चाहिए, और कोई भी असत्यापित या झूठी जानकारी शामिल नहीं की जानी चाहिए।

(7) नियम, 2021 के नियम 5 के प्रावधानों का पूर्ण अनुपालन सुनिश्चित किया जाना चाहिए। जिन मामलों के लिए आरोपियों के खिलाफ अधिनियम के तहत पहले ही कार्रवाई की जा चुकी है, उनका उल्लेख गैंग चार्ट में नहीं किया जाना चाहिए। हालांकि, ऐसे मामलों की एक सूची नियम 5 के तहत निर्धारित प्रारूप में गिरोह चार्ट के साथ संलग्न की जाएगी।

(8) पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट के कार्यालय में फाइल प्राप्त होने पर, सभी तथ्यों की गहन पुन: जांच की जाएगी और नियम, 2021 के नियम 5(3)(ए) के अनुसार, पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक के साथ संयुक्त बैठक में संतुष्ट होने के बाद ही गैंग चार्ट को मंजूरी देंगे।

(9) गिरोह चार्ट की तैयारी, अनुमोदन, कानूनी जांच और अन्य प्रासंगिक कार्रवाइयों के संबंध में उपर्युक्त सरकारी आदेशों के सख्त अनुपालन के अलावा, नियमावली 2021 के नियम 5(3)(ए) के तहत जिला मजिस्ट्रेट/पुलिस आयुक्त/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक की संयुक्त बैठकों के प्रस्तावों को अभिलेखों करने के लिए एक रजिस्टर रखा जाएगा। इसके अलावा, पुलिस आयुक्त/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक और जिला मजिस्ट्रेट के साथ-साथ नोडल अधिकारी यह सुनिश्चित करेंगे कि वे गैंग चार्ट पर हस्ताक्षर करते समय अपने हस्ताक्षर के नीचे की तारीख का उल्लेख करें।

(10) सक्षम प्राधिकारियों की संतुष्टि यह प्रतिबिंबित होनी चाहिए कि उन्होंने न केवल गिरोह चार्ट पर बल्कि उससे जुड़े दस्तावेजों/प्रपत्रों पर भी अपना ध्यान केंद्रित किया है।

(11) मूल मामले के तहत आरोप पत्र दाखिल करने की तारीख का उल्लेख गैंग चार्ट के कॉलम 6 में किया जाना चाहिए, नियम, 2021 के नियम 22(2) के तहत आच्छादित किए गए मामलों को छोड़कर, जहां जांच के दौरान गैंगस्टर अधिनियम लागू किया जा सकता है। नियम, 2021 के नियम 8(3) के अनुसार, गिरोह के खिलाफ मामलों की नवीनतम स्थिति और दोषसिद्धि या गिरोह के खिलाफ प्रासंगिक अदालती कार्यवाही का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए, जैसा कि गिरोह चार्ट में दिखाया गया है। इसलिए, गिरोह चार्ट के अनुमोदन की तारीख के अनुसार प्रत्येक मामले की स्थिति को अध्यतन करके इस नियम का कड़ाई से अनुपालन सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

अनुपालित

(12) नियम 10(1) के अनुसार, बरामदगी ज्ञापन और आरोप पत्र की प्रमाणित प्रति गिरोह चार्ट के साथ संलग्न की जानी चाहिए।

(13) नियम, 2021 के नियम 16(1) में अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक द्वारा गिरोह चार्ट को अग्रेषित करने से संबंधित नियम निर्धारित किए गए हैं। इसलिए, अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक को निर्धारित नियम के अनुसार गैंग चार्ट के बारे में अपनी संतुष्टि स्पष्ट रूप से दर्ज करनी चाहिए।

(14) नियम, 2021 के नियम 16(2) के तहत, जिला पुलिस अधिकारी, अर्थात् वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक, सभी कार्य करेंगे। विनय कुमार गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1045 नियम 16(1) के तहत अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक की सिफारिश का अध्ययन करते हुए, उनकी संतुष्टि दर्ज करते हैं और गैंग चार्ट को अनुमोदन के लिए पुलिस आयुक्त या जिला मजिस्ट्रेट को अग्रेषित करते हैं।

(15) नियम, 2021 के नियम 17(2) के अनुसार, गैंग चार्ट पर हस्ताक्षर करने के लिए पूर्व-मुद्रित रबर स्टैम्प का उपयोग निषिद्ध है। तदनुसार, सक्षम प्राधिकारी द्वारा एक स्वतंत्र दिमाग के उचित आवेदन के बाद ही गैंग चार्ट पर अनुमोदन दर्ज किया जाएगा, और पूर्व-मुद्रित रबर स्टैम्प का उपयोग नहीं किया जाएगा।

(16) नियम, 2021 के नियम 20(3) के तहत गैंगस्टर से संबंधित जांच पूरी होने के बाद लेकिन आरोप पत्र या अंतिम रिपोर्ट अदालत में प्रस्तुत करने से पहले, जांच से संबंधित दस्तावेजों को अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक द्वारा संबंधित अभियोजक को भेजा जाना चाहिए। इसलिए, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि गैंगस्टर से संबंधित सभी जांच अभिलेखों की जांच संबंधित अभियोजन अधिकारी द्वारा की जाए।

(17) यदि अभियोजन अधिकारी जांच में या जांच के दौरान एकत्र किए गए दस्तावेजों में किसी अवैधता या अनियमितता की ओर इशारा करता है, तो उसे ठीक किया जाना चाहिए। अभियोजन अधिकारी द्वारा यह पुष्टि करने के बाद ही कि कोई अवैधता या अनियमितता नहीं है, अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक नियम, 2021 के नियम 20(4) के तहत अनुमोदन के लिए दस्तावेजों को वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक या पुलिस अधीक्षक को भेजेंगे।

(18) नियम, 2021 के नियम 26(1) के तहत, जब भी उपर्युक्त आरोप पत्र नियम 20 के तहत आवश्यक अनुमोदन के लिए पुलिस आयुक्त/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक के समक्ष भेजा जाता है, तो उनके द्वारा सभी दस्तावेजों की गहन पुन: जांच अनिवार्य रूप से की जानी चाहिए।

(19) नियम, 2021 के नियम 36 के तहत, गैंगस्टर की चल और अचल संपत्तियों और उनके अधिग्रहण के स्रोतों के संबंध में उचित जांच की जानी चाहिए। यदि गैंगस्टर द्वारा भूमि पर अवैध कब्जे के बारे में सबूत एकत्र किए जाने हैं, तो विवेचनाधिकारी को राजस्व प्राधिकरण से राजस्व अभिलेखों और सबूत एकत्र करने होंगे।

(20) अधिनियम की धारा 14 के तहत, कुर्की के लिए संपत्ति के पूर्ण विवरण और दस्तावेजी साक्ष्य के साथ एक रिपोर्ट अनिवार्य रूप से पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत की जानी चाहिए। पुलिस कमिश्नर/डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट द्वारा पारित गैंगस्टर की संपत्ति कुर्की के आदेश की एक प्रति भी जांच में शामिल की जानी चाहिए।

(21) गैंगस्टर से संबंधित थाना में दर्ज मामले की जांच उसी थाना द्वारा नहीं की जाएगी। यदि पंजीकरण स्टेशन के थानाध्यक्ष/प्रभारी अधिकारी को जांच स्टेशन में तैनात या स्थानांतरित किया जाता है, तो उन्हें नोडल अधिकारी को सूचित करना चाहिए और स्वयं जांच करने से बचना चाहिए, क्योंकि यह उन्हें शिकायतकर्ता और अन्वेषक दोनों की स्थिति में डाल देगा।

(22) उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) नियम, 2021 के नियम 64 के तहत, गैंगस्टर अधिनियम के तहत कार्यवाही के पर्यवेक्षण, समीक्षा और प्रबंधन के लिए जिला-स्तरीय, मंडल-स्तर और राज्य स्तरीय समितियों का गठन किया गया है। पुलिस कमिश्नर/जिलाधिकारी की अध्यक्षता में जिला स्तरीय समिति की त्रैमासिक बैठकें सुनिश्चित की जाएं। इसी तरह संभागीय आयुक्त की अध्यक्षता में मंडल स्तरीय समिति की बैठकें हर छह माह में अनिवार्य रूप से बुलाई जानी चाहिए।

(23) यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि किसी भी गैंगस्टर को किसी भी परिस्थिति में सरकारी सेवाओं, व्यवसायों, पट्टों या सरकारी योजनाओं से कोई लाभ न मिले। संपत्ति की कुर्की, प्रशासक की नियुक्ति, लाइसेंस की जब्ती, निलंबन या रद्द करने और बरामदगी जैसे उपायों को आवश्यकतानुसार नियोजित किया जाना चाहिए।

(24) इस अधिनियम के तहत जांच छह महीने के भीतर पूरी की जानी चाहिए। यदि संभव न हो तो जिला पुलिस अधिकारी द्वारा अनुमोदन के बाद एक बार में अधिकतम 3 महीने का विस्तार दिया जा सकता है। इससे आगे किसी और विस्तार की अनुमति नहीं दी जाएगी।

(25) विवेचनाधिकारी को आरोप पत्र में आरोपी और गवाहों का नाम, पता (स्थायी और अस्थायी), फोन नंबर और प्रासंगिक विवरण का उल्लेख करना चाहिए।

(26) जिला पुलिस अधिकारी को संबंधित न्यायालय को आरोप पत्र/अंतिम रिपोर्ट भेजने की स्वीकृति प्रदान करने से पहले जांच के दौरान एकत्र किए गए सभी तथ्यों और साक्ष्यों की गहन समीक्षा करनी चाहिए।

(27) यदि विवेचनाधिकारी इसे उचित समझता है, तो गैंगस्टर की पुलिस हिरासत रिमांड पहले 60 दिनों के भीतर ली जानी चाहिए।

(28) गैंगस्टर की प्रारंभिक रिमांड और प्रत्येक बाद की रिमांड के समय, विवेचनाधिकारी को पूरी केस डायरी के साथ व्यक्तिगत रूप से विशेष अदालत के समक्ष उपस्थित होना होगा।

(29) अधिनियम की धारा 14 के तहत संपत्ति के पूर्ण विवरण और कुर्की के लिए दस्तावेजी साक्ष्य के साथ रिपोर्ट विवेचनाधिकारी द्वारा अनिवार्य रूप से पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट को भेजी जानी चाहिए।

(30) यदि पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट द्वारा गैंगस्टर की संपत्ति की कुर्की का आदेश पारित किया गया है, तो उस आदेश की एक प्रति भी जांच में शामिल की जानी चाहिए।

(31) धारा 14 के तहत कार्यवाही और गैंग चार्ट/प्राथमिकी दर्ज करने का अनुमोदन जिला स्तरीय पर्यवेक्षी समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

(32) प्रभावी दोषसिद्धि के लिए, निम्नलिखित प्रावधानों का अनुपालन आवश्यक है:
(i) यदि धारा 107, 108, 109, 110 द०प्र०स० (अब भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 की धारा 126, 127, 128, 129), राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980, नारकोटिक ड्रग्स एंड साइकोट्रोपिक सब्सटेंस एक्ट, 1970 या उत्तर प्रदेश गुंडा अधिनियम, 1970 की धारा 107, 108, 1099, या उत्तर प्रदेश गुंडा अधिनियम, 1970 के तहत गिरोह चार्ट में उल्लिखित अभियुक्तों के खिलाफ कार्रवाई की गई है, इस तरह के विवरण को गिरोह चार्ट में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए और ऐसे आदेशों की प्रमाणित प्रतियां संलग्न की जानी चाहिए।
(ii) अधिनियम की धारा 12 का पूर्ण अनुपालन सुनिश्चित किया जाना चाहिए, जिसमें यह प्रावधान है कि इस अधिनियम के तहत विचारण किसी अन्य न्यायालय के समक्ष लंबित अभियुक्त के विरुद्ध किसी अन्य मामले की तुलना में प्राथमिकता लेगा। इस अधिनियम के तहत विचारण समाप्त होने तक दूसरा मामला निलंबित रहेगा। इसलिए, सभी अभियोजकों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि ऐसे अन्य मामलों की सुनवाई को निलंबित करने के लिए एक आवेदन दायर किया जाए।
(iii) उक्त अधिनियम के अंतर्गत अन्वेषण करते समय अन्वेषण अधिकारी का यह दायित्व है कि वह ऐसे साक्ष्य संकलित करे जो स्पष्ट रूप से यह प्रदर्शित करें कि अभियुक्त गैंगस्टर अधिनियम में वर्णित असामाजिक गतिविधियों में संलग्न है तथा वह लोक-व्यवस्था को भंग करने के उद्देश्य से अथवा अपने लिए या अन्य किसी के लिए, एकल अथवा सामूहिक रूप से, किसी अनुचित लौकिक, आर्थिक, भौतिक या अन्य लाभ की प्राप्ति के आशय से, हिंसा, हिंसा की धमकी या प्रदर्शन, भयादोहन, उत्पीड़न अथवा अन्य किसी माध्यम से उक्त कृत्यों को अंजाम देता है।

(33) धारा 14 के तहत केवल कुर्की पर्याप्त नहीं है; गैंगस्टर स्पेशल न्यायालय द्वारा राज्य के पक्ष में कुर्क की गई संपत्ति को जब्त करना भी जरूरी है। इसलिए, जिला और मंडल स्तर पर इसकी नियमित और गहन समीक्षा की जानी चाहिए।

(34) विशेष रूप से, कार्यालय ज्ञापन संख्या-4080/6-Pu0- 9-2024-1842633 दिनांक 24.09.2024 के साथ एक चेकलिस्ट भेजी गई थी। अपर पुलिस महानिदेशक (अभियोजन), उत्तर प्रदेश, लखनऊ के पत्र संख्या-5-1-रिट-44-2024/5302/2024 दिनांक 29.11.2024 के आधार पर, संलग्नक-1 के रूप में उसमें उल्लिखित चेकलिस्ट बिंदुओं को शामिल करते हुए उचित विचार-विमर्श के बाद एक नई चेकलिस्ट तैयार की गई है। गैंग चार्ट के अनुमोदन और प्राथमिकी के पंजीकरण से पहले, संलग्नक -1 के रूप में संलग्न चेकलिस्ट के सभी बिंदुओं को पूरा करना होगा। ये चेकलिस्ट बिंदु उदाहरणात्मक हैं और संपूर्ण नहीं हैं। इसलिए, हितधारकों से इस संबंध में एक विस्तृत और प्रभावी चेकलिस्ट तैयार करने की अपेक्षा की जाती है।

18. निदेशक (अभियोजन), उत्तर प्रदेश के कार्यालय द्वारा दिनांक 29.11.2024 को जारी पत्र से संकेत मिलता है कि पुलिस अधिकारियों के लिए दो चेकलिस्ट तैयार की गई हैं- एक गृह विभाग द्वारा और दूसरी अभियोजन निदेशालय द्वारा। इन जांच सूचियों को सख्त अनुपालन के लिए उत्तर प्रदेश के पुलिस महानिदेशक, अपर पुलिस महानिदेशक (अभियोजन), सभी पुलिस आयुक्तों, जिला मजिस्ट्रेटों, वरिष्ठ पुलिस अधीक्षकों/पुलिस अधीक्षकों और गृह विभाग के संबंधित अनुभाग को भेज दिया गया है।

19. दो अलग-अलग चेकलिस्ट के अस्तित्व से जिला स्तर पर जांच अधिकारियों और अभियोजन अधिकारियों के बीच भ्रम पैदा हो सकता है। इसलिए, पूर्वगामी चर्चाओं के आधार पर, अतिरिक्त मुख्य सचिव (गृह) को एतद्द्वारा निर्देशित किया जाता है;

(i) यह सुनिश्चित करने के लिए कि इस आदेश के 30 दिनों के भीतर गृह विभाग और निदेशालय (अभियोजन) द्वारा तैयार की गई दो चेक लिस्ट - पूर्वोक्त - के आधार पर एक एकल जांच सूची तैयार की जाए, और जांच के दौरान जांच सूची के साथ विवेचनाधिकारी द्वारा कड़ाई से पालन सुनिश्चित किया जाएगा।

(ii) पुलिस महानिदेशक, गृह विभाग से परामर्श कर संयुक्त रूप से एक संकलन (कम्पेन्डियम) तैयार करेंगे, जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित होंगे– (क) गोरख नाथ मिश्र प्रकरण (उपर्युक्त) के अनुपालन में गृह विभाग द्वारा निर्मित दिशा-निर्देश, (ख) पुलिस महानिदेशक द्वारा निर्गत परिपत्र संख्या डीजी/परिपत्र सं.-06/2018 दिनांक 19.02.2018, (ग) एक समेकित जाँच-सूची (चेक लिस्ट), तथा (घ) इस आदेश के प्राधिकार के अंतर्गत जारी अन्य समस्त निर्देश।

(iii) पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश परिपत्र का कड़ाई से कार्यान्वयन सुनिश्चित करेगा। पुलिस महानिदेशक द्वारा दिनांक 19.02.2018 को जारी किया गया महानिदेशक/परिपत्र संख्या-06/2018, जिसके तहत प्रत्येक विवेचनाधिकारी के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि जांच पूरी होने पर, आरोप-पत्र/अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पहले, विवेचनाधिकारी को केस डायरी के साथ मसौदा आरोप पत्र को सर्किल अधिकारी के माध्यम से अभियोजन अधिकारी को अग्रेषित करना होगा। अभियोजन अधिकारी केस डायरी की समीक्षा करेगा और जांच के दौरान एकत्र किए गए सबूतों का मूल्यांकन करेगा। यदि कोई कमी या विसंगतियां पाई जाती हैं, तो उन्हें इंगित किया जाएगा, और उन मुद्दों को संबोधित करने के लिए आगे की जांच का निर्देश दिया जाएगा। अभियोजन अधिकारी की समीक्षा के बाद केस डायरी उसी चैनल के माध्यम से विवेचनाधिकारी को वापस कर दी जाएगी, और उसके बाद ही आरोप पत्र या अंतिम रिपोर्ट अदालत में प्रस्तुत की जाएगी।

अनुवादित

(iv) महानिदेशक (अभियोजन) समयबद्ध तरीके से केस डायरी के साथ आरोप पत्र की समीक्षा करने के लिए सभी अभियोजन अधिकारियों को सामान्य दिशा-निर्देश जारी करेंगे। उक्त कार्य को पूरा करने के लिए दिनों की संख्या अभियोजन विभाग द्वारा तय की जाएगी।

(v) आरोप पत्र एक विधिवत पृष्ठांकित सूचकांक के साथ दायर किया जाएगा जिसमें शामिल है; (क) क्रम संख्या, (ख) क्रमबद्ध रूप से जांच का तिथि-वार संक्षिप्त विवरण, (ग) जांच के दौरान एकत्र किए गए दस्तावेजों का विवरण, (घ) विवेचनाधिकारी द्वारा उठाए गए कदमों का संक्षिप्त विवरण, (ङ) किसी भी व्यक्ति को दस्तावेज और अन्य वस्तु प्रस्तुत करने के लिए जारी की गई धारा 94 बी.एन.एस.एस., 2023 नोटिस का विवरण, और (च) या विवेचनाधिकारी द्वारा उपयुक्त समझे जाने वाले कोई अन्य विवरण।

(vi) प्रत्येक विवेचनाधिकारी को जांच पूरी होने पर, आरोप पत्र/अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पहले, न्यायालय को आरोप पत्र प्रस्तुत करने से एक दिन पहले या न्यायालय को आरोप पत्र प्रस्तुत करने की तारीख को केस डायरी में यह उल्लेख करना होगा कि गोरखनाथ मिश्र के मामले (उपरोक्त) के अनुपालन में जारी किए गए दिशा-निर्देश, जांच सूची में उल्लिखित कदम और परिपत्र संख्या-1000 का अधिदेश जारी किया गया है। पुलिस महानिदेशक द्वारा दिनांक 19.02.2018 को जारी डीजी/परिपत्र संख्या-06/2018 का अक्षरश: अनुपालन किया गया है। उपरोक्त विवरण वाली केस डायरी की प्रति धारा 193 बी.एन.एस.एस, 2023 के तहत रिपोर्ट के बाद न्यायालय को भेज दी जाएगी।

(vii) यदि पूर्ववर्ती निर्देश संख्या-2019 में है। (v) विवेचनाधिकारी द्वारा अनुपालन नहीं किया गया है, विशेष न्यायाधीश, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या विद्वान मजिस्ट्रेट, जैसा भी मामला हो, पुलिस आयुक्त या वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक को तत्काल सूचित करेगा और निदेश देगा कि विवेचनाधिकारी के विरुद्ध उपयुक्त विभागीय कार्रवाई शुरू की जाए। यह सुनिश्चित करना न्यायालय का भी उतना ही कर्तव्य है कि संवैधानिक न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों को अधिकारियों द्वारा सख्ती से लागू किया जाए, कानून के शासन को अक्षरश: और भावना दोनों में बनाए रखा जाए।

(viii) तदनुसार गृह विभाग द्वारा एक नया कार्यालय ज्ञापन/परिपत्र जारी किया जाना चाहिए जिसमें पुलिस महानिदेशक और निदेशालय (अभियोजन) को पूर्वगामी निर्देशों के आधार पर अपने-अपने अधिकारियों को एक नया परिपत्र/कार्यालय ज्ञापन जारी करने का निर्देश दिया गया हो। (ix) एसीएस (गृह) इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से 45 दिनों के भीतर रजिस्ट्रार (अनुपालन) के माध्यम से एक अनुपालन रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

20. रजिस्ट्रार (अनुपालन) को इस आदेश की एक प्रति प्रभावी अनुपालन के लिए अतिरिक्त मुख्य सचिव (गृह), पुलिस महानिदेशक और महानिदेशक (अभियोजन) को भेजने का निर्देश दिया जाता है।

21. इस आदेश की एक प्रति इस न्यायालय के महानिबंधक के माध्यम से उत्तर प्रदेश के समस्त माननीय जनपद न्यायाधीशों को प्रेषित की जाए, इस निर्देश सहित कि वे उक्त निर्णय को समस्त न्यायिक अधिकारियों के मध्य प्रसारित कर निर्देश संख्या (vii) के अनुपालन को सुनिश्चित करें।

22. उपरोक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ, प्रस्तुत आवेदनों का **निस्तारण** किया जाता है।

(2025) 5 ILRA.1049

मूल अधिकारिता

अपराधिक पक्ष

दिनांक : इलाहाबाद, 12.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

अपराधिक विविध आवेदन धारा 482 संख्या 22859 / 2024

तथा

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 18870 / 2024

तथा

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 29462 / 2024

बिरेन्द्र सिंह .....आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ....प्रतिवादीगण

आवेदक की ओर से अधिवक्ता :
श्री पंकज शर्मा, श्री प्रदीप कुमार

प्रतिवादीगण की ओर से अधिवक्ता :
श्री फुजैल अहमद अंसारी, शासकीय अधिवक्ता

अनुवादित

अपराधिक विधि - अपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973
धाराएँ 482, 451, 457, 458 एवं 459 - संयुक्त प्रान्त आबकारी अधिनियम, 1910 - धाराएँ **60, 63, 72 एवं 73 - उत्तर प्रदेश मोटर यान कराधान अधिनियम, 1997** - धाराएँ **22, 2 एवं 158 - उत्तर प्रदेश मोटर कराधान नियमावली, 1998** - नियम **9(क), 19-क - उत्तर प्रदेश मोटर यान नियमावली, 1998** - नियम **203, 203-क - उत्तर प्रदेश पुलिस अधिनियम** - धाराएँ **23 एवं 29 - उत्तर प्रदेश गोवध निवारण अधिनियम, 1945** - धारा **5-क(7) - उत्तर प्रदेश लघु खनिज (रियायत) नियमावली, 2021** - नियम **72(6)**।

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत आवेदन -

प्रथम सूचना रिपोर्ट - आबकारी निरीक्षक की शिकायत पर प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत - उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम के अंतर्गत अवैध शराब, नकदी तथा एक वाहन की बरामदगी एवं जब्ती के लिए छापा मारा गया - वाहन के स्वामी द्वारा वाहन को अवमुक्त किए जाने हेतु आवेदन प्रस्तुत किया गया - विचारण लंबित होने के आधार पर आवेदन निरस्त - पुनरीक्षण याचिका भी निरस्त - अतः वर्तमान आवेदन प्रस्तुत किया गया। न्यायालय

ने पाया कि यह घटना उत्तर प्रदेश में विद्यमान एक व्यापक एवं गंभीर प्रणालीगत समस्या को उजागर करती है, जहाँ न्यायिक प्रक्रियाओं में असंगति, केंद्रीकृत निगरानी व्यवस्था के अभाव तथा प्रशासनिक विलंब के कारण 1,13,000 से अधिक वाहन जब्त होकर निरुद्ध पड़े हुए हैं। ये अक्षमताएँ न केवल न्यायालयों और संबंधित विभागों पर अनावश्यक भार डालती हैं, बल्कि आपराधिक दुरुपयोग तथा आर्थिक क्षति का जोखिम भी उत्पन्न करती हैं। इस समस्या के समाधान के लिए न्यायालय ने एक व्यापक सुधार प्रक्रिया प्रारम्भ की तथा जब्त वाहनों के समयबद्ध निस्तारण के लिए सुव्यवस्थित दिशा-निर्देश विकसित करने हेतु एक उच्चस्तरीय समन्वय समिति के गठन का निर्देश दिया। समिति के लिए निम्नलिखित प्रमुख सिफारिशें की गईं–सी.सी.टी.एन.एस. से संबद्ध एक केंद्रीकृत डिजिटल डैशबोर्ड बनाया जाए, जिससे जब्त वाहनों की स्थिति की निगरानी की जा सके। प्रत्येक जिले में क्यू.आर. आधारित निगरानी व्यवस्था वाले वाहन यार्ड स्थापित किए जाएँ, ताकि वाहनों का पता लगाने और उनकी स्थिति की निगरानी में सुविधा हो। ऐसे वाहनों की नीलामी को प्राथमिकता दी जाए, जिनके संबंध में कोई दावेदार उपलब्ध नहीं है। संबंधित अधिकारियों के मध्य उत्तरदायित्व एवं जवाबदेही सुनिश्चित की जाए, जिससे प्रशासनिक विलंब को रोका जा सके। न्यायालय ने इस बात पर विशेष बल दिया कि वाहन राष्ट्रीय संपत्ति हैं और उन्हें प्रक्रियात्मक निष्क्रियता के कारण खराब अथवा नष्ट होने की स्थिति में नहीं छोड़ा जाना चाहिए। न्यायालय ने इस बात पर भी जोर दिया कि न्यायिक दृष्टिकोण व्यावहारिक तथा विकासोन्मुखी होना चाहिए, जिसमें वैधानिक अनुपालन के साथ-साथ आर्थिक उपयोगिता एवं संपत्ति के अधिकारों के बीच संतुलन स्थापित किया जाए। आवेदन का निस्तारण करते हुए न्यायालय ने अनुपालन हेतु रजिस्ट्रार को निर्देश दिया कि इस आदेश को उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव को प्रेषित किया जाए, ताकि इस आदेश का छह माह की अवधि के भीतर प्रभावी अनुपालन सुनिश्चित किया जा सके। (पैरा 28, 30, 32, 40, 41, 42, 43, 44 एवं 45)

आवेदन निस्तारित। (ई-11)

उद्धृत मामलों की सूची

1. प्रेम स्वामी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य - 1997 इलाहाबाद क्रिमिनल केसेज़ (सप्लीमेंट) 99 में प्रकाशित।

2. धीरेन्द्र सिंह थापा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य - अपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1926 / 2016।

3. सुंदरभाई अंबालाल देसाई बनाम गुजरात राज्य - (2002) 10 एस.सी.सी. 283।

(निर्णय माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा दिया गया)

1. आवेदकों के लिए अधिवक्ता, राज्य-प्रतिपक्षियों के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा सहायता प्राप्त अतिरिक्त महाधिवक्ता को सुना, और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. प्रस्तुत मामले में आबकारी निरीक्षक की शिकायत पर पुलिस द्वारा प्राथमिकी दर्ज की गई थी। प्राथमिकी दर्ज होने के बाद भारी मात्रा में अवैध शराब और 14,03,550 रुपये बरामद किए गए और एक महिंद्रा पिकअप

वाहन भी बरामद किया गया, जिस पर पंजीकरण संख्या-14,03,550 रुपये दर्ज की गई थी। यूपी-16-जेटी-5779 को जब्त कर लिया गया था। वाहन के मालिक ने अलीगढ़ के अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष एक आवेदन दायर कर वाहन को छोड़ने की मांग की। तदनुसार, जिला मजिस्ट्रेट से एक जवाब मांगा गया, जिन्होंने यह कहते हुए जवाब दिया कि चूंकि मामला विचारण के लिए लंबित है, इसलिए वाहन को छोड़ा नहीं जा सकता है। इस जवाब के आधार पर अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने वाहन को छोड़ने के आवेदन को खारिज कर दिया। दिनांक 10.5.2024 के अस्वीकृति आदेश से व्यथित होकर, आवेदक ने विद्वान जिला न्यायाधीश, अलीगढ़ के समक्ष संख्या-174 वर्ष 2024 वाली एक पुनरीक्षण याचिका दायर की। आवेदक के अधिवक्ता ने प्रेम स्वामी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और धीरेन्द्र सिंह थापा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पर भरोसा किया। हालांकि, विद्वान जिला न्यायाधीश ने आवेदकों के मामले को उन उद्धृत मामलों से अलग किया, यह देखते हुए कि संदर्भित मामलों में एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत वाहनों की जब्ती शामिल थी, जबकि आवेदकों के मामले में उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन शामिल था और इस तरह पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया गया।

3. माननीय जिला न्यायाधीश ने सुन्दरभाई अम्बालाल देसाई बनाम गुजरात राज्य 3 में भारत का सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त उस सुविख्यात तथा व्यापक रूप से उद्धृत निर्णय की उपेक्षा की, जिसमें अन्वेषण अभिकरणों द्वारा अभिगृहीत वाहनों एवं माल की रिहाई के लिए विस्तृत प्रक्रिया का निरूपण किया गया है। इसके बजाय, विद्वान जिला न्यायाधीश ने याचिकाकर्ता के मामले को 1997 में उच्च न्यायालय द्वारा तय किए गए मामले से अलग करके पुनरीक्षण याचिका का फैसला किया। यह ध्यान देने योग्य है कि प्रेम स्वामी के मामले (उपरोक्त) में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने पुनरीक्षण याचिका की अनुमति दी और सुपरदारी पर जब्त किए गए वाहन को मालिक को छोड़ने का निर्देश दिया, एक ऐसे मामले में जहां वाहन को उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1910 के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए जब्त कर लिया गया था।

4. स्पष्टता के लिए, सुंदरभाई अंबालाल देसाई मामले (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि धारा 451 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का शीघ्रता से प्रयोग किया जाना चाहिए, क्योंकि इससे कई उद्देश्यों की पूर्ति होगी:

(i) वस्तु के स्वामी को इसका उपयोग न किए जाने या दुरुपयोग किए जाने के कारण कोई नुकसान नहीं होगा;
(ii) अदालत या पुलिस को वस्तु को सुरक्षित अभिरक्षा में रखने की आवश्यकता नहीं होगी; तथा
(iii) यदि वस्तु का कब्जा सौंपने से पहले एक उचित पंचनामा तैयार किया जाता है, तो इसे लेख के उत्पादन की आवश्यकता के बजाय मुकदमे के दौरान साक्ष्य के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। यदि आवश्यक हो, तो संपत्ति की प्रकृति का विवरण देते हुए साक्ष्य भी दर्ज किए जा सकते हैं।

5. दिनांक 05.08.2024 के आदेश के अनुपालन में, विद्वान जिला न्यायाधीश, अलीगढ़ ने दिनांक 16.08.2024 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट की जांच करने पर, यह देखा गया है कि आवेदक बीरेंद्र सिंह द्वारा दायर आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-174 वर्ष 2024 की अनुमति दी गई थी, और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, अलीगढ़

द्वारा पारित आदेश दिनांक 10.05.2024, विविध आवेदन संख्या-98/11/2024 में, जो आबकारी अधिनियम की धारा 60, 63 और 72 के तहत दर्ज मामला अपराध संख्या-123/2024, थाना-टप्पल, जिला अलीगढ़, से उद्भूत है, को अलग कर दिया गया है। सुंदरभाई अंबालाल देसाई मामले (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार वाहन की रिहाई के लिए आवेदक के आवेदन पर नए सिरे से पुनर्विचार करने के लिए मामले को विद्वान मजिस्ट्रेट के पास वापस भेज दिया गया था। इस विशेष मामले में इस मुद्दे को हल कर लिया गया है; हालांकि, अंतर्निहित स्थिति अपरिवर्तित बनी हुई है और इसी तरह के अन्य मामलों में भी बने रहने की उम्मीद है।

6. हर दिन, इस न्यायालय पर बड़ी संख्या में आवेदनों का बोझ पड़ता है और जब्त किए गए वाहनों को रिहा करने की मांग की जाती है। बीरेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1051 के खिलाफ पुलिस या विभिन्न सरकारी विभागों द्वारा एन.डी.पी.एस. अधिनियम, गैंगस्टर अधिनियम, गोवध अधिनियम, उत्पाद शुल्क अधिनियम, खान और खनिज अधिनियम, और एमवी अधिनियम जैसे कानूनों के उल्लंघन और बी.एन.एस., 2023 के तहत दर्ज अपराधों के लिए मामला दर्ज किया गया है। यद्यपि विभिन्न प्राधिकरणों को संबंधित संविधियों और उनके तहत बनाए गए नियमों के तहत वाहनों को जब्त करने और छोड़ने का अधिकार है, फिर भी उनकी रिहाई की सामान्य प्रक्रिया धारा 451 द०प्र०स० के तहत है। यह देखा गया है कि उत्तर प्रदेश में बड़ी संख्या में वाहन थानों के बाहर गैर-कार्यशील, ध्वस्त, निष्क्रिय, केवल चेसिस तक सिमटकर, जंग लगे और अप्रयुक्त हैं - अव्यवस्थित स्थिति में छोड़ दिए गए हैं।

7. पुलिस थानों में इन वाहनों के जमा होने के कई कारण हैं, जिनमें शामिल हैं:
(i) मालिक ने रिहाई आवेदन दायर नहीं किया हो सकता है;
(ii) अदालतों ने रिहाई आवेदनों को खारिज कर दिया होगा;
(iii) मालिक के पास रिलीज आदेश के खिलाफ ज़मानत बांड का उत्पादन करने के लिए पर्याप्त धन की कमी हो सकती है;
(iv) वाहनों को चल रहे परीक्षणों में साक्ष्य के रूप में रखा जा सकता है, परीक्षण समाप्त होने तक उनके निपटान को रोका जा सकता है;
(v) नौकरशाही की अक्षमताएं या जब्ती, जब्ती, नीलामी, स्क्रैपिंग, या अनुपयोगी वाहनों के निपटान के लिए सुव्यवस्थित प्रक्रियाओं की कमी;
(vi) कठोर मौसम की स्थिति के लंबे समय तक संपर्क में रहना जिससे जंग लग जाती है और आगे क्षरण होता है; तथा
(vii) पुलिस प्रशासन में उपेक्षा या निरीक्षण। ये कारण उदाहरणात्मक हैं, संपूर्ण नहीं।

8. वाहन रिलीज आवेदनों से निपटने में अदालतों द्वारा कोई समान या सुसंगत दृष्टिकोण नहीं अपनाया गया है। इसके अतिरिक्त, राज्य सरकार के पास पुलिस और अन्य विभागों द्वारा जब्त और जब्त किए गए वाहनों के ब्यौरे को प्रवित करने और प्रतिबिंबित करने के लिए वाहनों या एजेंसी को स्टोर करने के लिए एक केन्द्रीकृत

स्थान का अभाव है। यह महत्वपूर्ण है क्योंकि, कई मामलों में, अदालत द्वारा जारी किए गए वाहनों का उपयोग अपराधियों द्वारा, केवल संख्या-प्लेट और चेसिस संख्या-बदलकर, बार-बार किया जाता है।

9. सुंदरभाई अंबालाल देसाई मामले (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों को पुलिस, जिला मजिस्ट्रेटों, पुलिस आयुक्तों और विचारण न्यायालय द्वारा नियमित रूप से नजरअंदाज किया जाता है। हालांकि, दुर्भाग्य से, अदालतों ने भी वाहनों की रिहाई के संबंध में कानून में निरंतरता या एकरूपता बनाए नहीं रखी है।

10. इस संदर्भ में, अतिरिक्त मुख्य सचिव (गृह), पुलिस महानिदेशक (उत्तर प्रदेश) और प्रमुख सचिव (परिवहन) को नोटिस जारी कर पुलिस थानों में जब्त वाहनों की भीड़ को कम करने के लिए प्रभावी उपायों का प्रस्ताव करने के लिए कहा गया था। उन्हें निर्देश दिया गया कि वे इस न्यायालय को अपने सुझाव प्रस्तुत करने से पहले सभी जिला मजिस्ट्रेटों और आबकारी, वन, खान और अन्य विभागों के संबंधित अधिकारियों से परामर्श करें। इसी तरह, उत्तर प्रदेश के डीजीपी को वरिष्ठ पुलिस अधीक्षकों और पुलिस आयुक्तों सहित फील्ड स्तर के अधिकारियों के साथ परामर्श करने का निर्देश दिया गया था। इन प्रस्तावों में शामिल हो सकते हैं:

(i) जब्त किए गए वाहनों की नीलामी के लिए निर्धारित समय-सीमा के साथ एक समान दिशा-निर्देश तैयार करना;
(ii) लावारिस वाहनों को संभालने के लिए मानकीकृत प्रक्रियाएं;
(iii) जब्त किए गए सभी वाहनों के लिए नियमित इन्वेंट्री और लेखा परीक्षा तंत्र;
(iv) जब्ती के समय अनिवार्य वीडियो और फोटोग्राफिक प्रलेखन; और (v) जांच अधिकारियों के लिए जवाबदेही तंत्र का प्रवर्तन और न्यायिक निर्देशों और उच्चतम न्यायालय के दिशानिर्देशों का पालन न करने के लिए अधिकारियों को जब्त/जब्त करना।

11. उत्तर प्रदेश के मुख्य सचिव को एक हलफनामा प्रस्तुत करने का भी निर्देश दिया गया, जिसमें एक एकल खिड़की वेब पोर्टल के विकास का प्रस्ताव है, जिससे सभी संबंधित विभागों- पुलिस, परिवहन, वन, खनन और आबकारी विभागों को आपराधिक मामलों में शामिल चोरी, जब्त या जब्त किए गए वाहनों पर वास्तविक समय का डेटा अपलोड करने और साझा करने में सक्षम बनाया जा सके।

12. इस न्यायालय द्वारा पारित विभिन्न आदेशों के अनुपालन में, गृह, परिवहन और आबकारी विभागों ने अपने-अपने हलफनामे प्रस्तुत किए। इसके अतिरिक्त, इस मुद्दे पर व्यापक दृष्टिकोण की सुविधा के लिए विद्वान जिला न्यायाधीशों से भी इनपुट प्राप्त हुए थे।

अनुवादित

13. दिनांक 20.08.2024 के आदेश के अनुसार, गृह विभाग ने पत्र संख्या-4009(ए)/चाह-पीओ-2024-754401 दिनांक 14.09.2024 के माध्यम से सभी जिलाधिकारियों को आबकारी, वन और खान विभागों के संबंधित अधिकारियों के साथ व्यापक परामर्श करने और समेकित सुझाव सचिव (गृह) को भेजने का निर्देश दिया।

14. पुलिस मुख्यालय द्वारा संकलित प्रारंभिक आंकड़ों के आधार पर, यह बताया गया है कि वर्तमान में उत्तर प्रदेश के सभी थानों में लगभग 72,776 वाहन जब्त किए गए हैं। जब्त किए गए इन वाहनों का जोनवार और आयुक्ताराज्य-वार विवरण इस प्रकार है:
क्र.सं. जोन/कमिश्नरेट वाहनों की संख्या-1. मेरठ 12,478 2. बरेली 12,164 3. आगरा 6,764 4. कानपुर 3,968 5. लखनऊ 9,566 6. प्रयागराज 1,891 7. गोरखपुर 6,324 8. वाराणसी 7,314 9. 10 आयुक्तालय लखनऊ 2,197 10. 11 आयुक्तालय गौतम बुद्ध नगर 2,004 11. 12 आयुक्तालय कानपुर 1,945 12. 13 आयुक्तालय वाराणसी 802 13. 14 आयुक्तालय गाजियाबाद 354 14. 15 आयुक्तालय आगरा 1,716 15. 16 प्रयागराज आयुक्तालय 3,102 16. जीआरपी (राजकीय रेलवे पुलिस) 187 राज्य कुल 72,776

15. पुलिस विभाग ने संबंधित फील्ड अधिकारियों के साथ विचार-विमर्श के बाद निम्नलिखित सुझाव दिए;

15.1 उत्तर प्रदेश में सिविल थानों की संख्या लगभग 1,500 है, और इन थानों पर पार्क किए गए वाहनों की संख्या लगभग 72,776 आंकी गई है। इतनी बड़ी संख्या में वाहनों के संबंध में तकनीक के उपयोग के बिना कार्रवाई करना संभव नहीं है। इससे पहले, एक राष्ट्रीय वाहन समन्वय पोर्टल चालू था, जो थानों में जब्त किए गए वाहनों से संबंधित डेटा के प्रवेश की अनुमति देता था। राज्य स्तर पर एक समान पोर्टल विकसित किया जाना चाहिए, और एक ऐसी प्रणाली लागू की जानी चाहिए जो थानों में खड़े सभी वाहनों के लिए सभी वाहन विवरण (पंजीकरण संख्या, इंजन नंबर, चेसिस नंबर, मेक, मॉडल आदि) की प्रविष्टि को अनिवार्य करती है। इससे पुलिस थानों से वाहनों के त्वरित निस्तारण में सुविधा होगी। यदि पोर्टल में प्रविष्ट की गई सूचना जनसाधारण के साथ साझा की जाती है, तो जिन व्यक्तियों के वाहन चोरी हो गए हैं, वे उक्त पोर्टल पर अपने वाहनों संबंधी जानकारी प्राप्त करने में सक्षम होंगे।

15.2 पुलिस थानों में खड़े वाहनों का निपटान सुनिश्चित करने के लिए समय-समय पर ऑपरेशन क्लीन के समान अभियान चलाए जाने चाहिए।

15.3 मामले से संबंधित वाहनों के निपटान के संबंध में, संबंधित मामले में निर्णय के तुरंत बाद कार्यवाही शुरू होनी चाहिए। ऐसे मामलों में जहां कोई अपील प्रस्तावित नहीं है, उन वाहनों को मजिस्ट्रेट/अदालत के आदेश के माध्यम से प्राथमिकता के आधार पर निपटाया जाना चाहिए।

15.4 थाना स्तर पर, लावारिस वाहनों की नीलामी के लिए प्राथमिकता की कार्रवाई की जानी चाहिए।

15.5 पंजीकरण संख्या, इंजन नंबर, चेसिस संख्या या अन्य उपलब्ध विवरणों के आधार पर वाहन मालिकों का पता लगाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

15.6 जिन वाहनों के मालिकों को पहले ही बीमा दावे प्राप्त हो चुके हैं, उनके लिए संबंधित बीमा कंपनी को उन वाहनों की स्थिति के बारे में भी सूचित किया जाना चाहिए।

16. क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी (प्रवर्तन), प्रयागराज द्वारा दायर अनुपालन हलफनामे के अवलोकन के आधार पर यह नोट किया गया है कि कुल 71,344 वाहन जब्त किए गए हैं। इनमें से 31,525 वाहनों को छोड़ दिया गया है, जबकि शेष 39,819 वाहनों को उत्तर प्रदेश के सभी 19 मंडलों में विभाग के पास पार्क किए जाने की सूचना है। इन वाहनों को मुख्य रूप से कर का भुगतान न करने, अतिरिक्त कर और जुर्माना लगाने के लिए जब्त किया गया था। इसके अलावा 5,021 वाहनों की नीलामी की गई है। हलफनामे में आगे स्पष्ट किया गया है कि जब्ती उत्तर प्रदेश मोटर वाहन कराधान अधिनियम, 1997 के प्रावधानों के तहत की गई थी। लागू कर के भुगतान के बाद, वाहनों को उक्त अधिनियम की धारा 22(2) के अनुसार जारी किया जाता है। ऐसे मामलों में जहां 45 दिनों तक कर का भुगतान नहीं किया जाता है, वाहन उत्तर प्रदेश मोटर कराधान नियम, 1998 के नियम 9(ए) के तहत नीलामी के अधीन हैं।

17. अतिरिक्त आबकारी आयुक्त (प्रशासन) द्वारा जारी दिनांक 18.11.2024 के पत्र के अवलोकन से पता चलता है कि वर्तमान में 923 वाहन या तो आबकारी विभाग द्वारा बनाए गए गोदामों में या थानों में खड़े हैं। ऐसे वाहनों की नीलामी जिला मजिस्ट्रेट की अध्यक्षता वाली एक समिति द्वारा की गई है, जिसमें आबकारी और परिवहन विभाग दोनों के प्रतिनिधि शामिल हैं। ये नीलामियां संयुक्त प्रांत उत्पाद शुल्क अधिनियम की धारा 72 और 73 के अनुसार अपील अवधि की समाप्ति के बाद होती हैं।

17.1 इसके अलावा, सहायक आबकारी आयुक्त (टास्क फोर्स) को एक एकीकृत एकल खिड़की वेब पोर्टल के विकास के लिए नोडल अधिकारी के रूप में नामित किया गया है। यह भी ध्यान दिया जाता है कि आबकारी आयुक्त कार्यालय, उत्तर प्रदेश ने दिनांक 22.11.2024 के अपने पत्र के माध्यम से सभी जिला आबकारी अधिकारियों को बिना किसी देरी के निर्धारित दिशानिर्देशों को लागू करने का निर्देश दिया है। लावारिस वाहनों से कानून के अनुसार निपटा जाना है, बशर्ते कि सक्षम न्यायालय से पूर्व अनुमति प्राप्त की जाए।

17.2 आबकारी विभाग ने यह भी सुझाव दिया है कि राज्य स्तर पर एक एकीकृत पोर्टल विकसित किया जाना चाहिए जहां कोई भी एजेंसी जब्त किए गए वाहनों का विवरण अपलोड कर सके। इस जानकारी में विवरण शामिल होना चाहिए जैसे कि जिस अपराध के लिए वाहन जब्त किया गया था, अदालत/मजिस्ट्रेट जहां मामला लंबित है, मामले की वर्तमान स्थिति, मामले के निर्णय के अनुसार नीलामी की तारीख, वाहन का बाजार मूल्य आदि। इस एकीकृत पोर्टल के माध्यम से, सभी न्यायालय वाहन की वर्तमान स्थिति और आपराधिक गतिविधियों में इसकी भागीदारी दोनों का पता लगाने में सक्षम होंगे। इससे न्यायिक निर्णय में तेजी आएगी।

17.3 किसी भी व्यक्ति, संस्था (जैसे ऋण प्रदाता) या बीमा कंपनी द्वारा जब्त किए गए वाहन के स्वामित्व के संबंध में, वाहन की नीलामी कलेक्टर/जिला मजिस्ट्रेट की अनुमति से की जानी चाहिए, और आय को सरकारी खजाने में जमा किया जाना चाहिए।

17.4 नीलामी के माध्यम से जब्त किए गए वाहनों के निपटान के लिए एक निश्चित समय सीमा निर्धारित की जानी चाहिए, ताकि उस अवधि के भीतर निपटान सुनिश्चित किया जा सके। मूल रूप से, अपील/पुनरीक्षण अवधि समाप्त होने के बाद देरी होती है। इसलिए, अनावश्यक देरी से बचने और बैच नीलामी को सक्षम करने के लिए नियमों के अनुसार तत्काल सार्वजनिक नीलामी कार्यवाही का प्रावधान किया जाना चाहिए।

17.5 यदि जांच या मुकदमे के दौरान किसी वाहन को अदालत के समक्ष पेश किया जाता है, और कोई दावेदार मौजूद है, तो निम्नलिखित औपचारिकताओं को पूरा करने पर वाहन को सही व्यक्ति को सौंप दिया जाना चाहिए:

(क) विस्तृत जब्ती रिपोर्ट (पंचनामा) तैयार करना।
(ख) वाहन की तस्वीरें/वीडियोग्राफी और एक बांड जिसमें कहा गया हो कि विचारण के दौरान आवश्यकता पड़ने पर इसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा।
(ग) फोटोग्राफ, वीडियोग्राफी और जब्ती दस्तावेजों पर अभियुक्त और वाहन प्राप्त करने वाले शिकायतकर्ता/अभिरक्षक द्वारा प्रतिहस्ताक्षर किए जाने चाहिए।

17.6 जब्त किए गए वाहनों की नियमित फोटोग्राफी, विशेष रूप से जब्ती या लंबित अपील/पुनरीक्षण के तहत वाहनों के लिए, सुनिश्चित की जानी चाहिए। पाक्षिक फोटोग्राफी की जानी चाहिए, और केस फाइल के साथ पेन ड्राइव/सीडी में फोटो-अभिलेखों संरक्षित किए जाने चाहिए। यदि न्यायिक आदेश के बाद नीलामी/बिक्री शुरू की जाती है, तो नीलामी अभिलेखों में सबूत के रूप में उचित फोटो/वीडियोग्राफी का दस्तावेजीकरण किया जाना चाहिए।

17.7 अभिरक्षा पर छोड़े गए और बाद में फिर से जब्त किए गए वाहनों का मूल्य अक्सर मूल्यह्रास और मालिक द्वारा लंबे समय तक उपयोग के कारण कम हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप राजस्व हानि होती है। इसलिए, सक्षम न्यायालय द्वारा किसी भी दावेदार (मालिक, ऋण प्रदाता, बीमाकर्ता) को जारी करते समय, मूल्यांकन किए गए वाहन मूल्य की सावधि जमा रसीद (एफडीआर) संबंधित जिला स्तरीय अधिकारी के पक्ष में ली जानी चाहिए, जिसे अभियोजन के लिए सुरक्षा के रूप में गिरवी रखा गया हो।

17.8 संयुक्त प्रांत उत्पाद शुल्क अधिनियम की धारा 72 के तहत, मामला दर्ज करने के 3 दिनों के भीतर जिला मजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जानी चाहिए। बाजार मूल्य रिपोर्ट के अभाव में, वाहन रिलीज में देरी होती है। अधिनियम वाहन जब्ती के 3 दिनों के भीतर मामला दर्ज करने की अनुमति देता है; इसलिए, यह

प्रस्ताव किया गया है कि जब्त करने वाली एजेंसी को 7 दिनों के भीतर न्यायालय को एक सक्षम प्राधिकारी से बाजार मूल्यांकन रिपोर्ट प्रदान करने के लिए अनिवार्य किया जाए।

17.9 यदि, धारा 72 के तहत मामला दर्ज करने के 3 महीने के भीतर, सक्षम अदालत से कोई जब्ती आदेश प्राप्त नहीं होता है, तो वाहन को मालिक को इस शर्त पर जारी किया जाना चाहिए कि वे बाजार मूल्य के बराबर एक बांड जमा करें, परीक्षण के दौरान जब भी आवश्यक हो, वाहन को काम करने की स्थिति में पेश करने के लिए सहमत हों। इस अवधि के दौरान वाहन की बिक्री प्रतिबंधित रहेगी।

17.10 ऐसे मामलों में जहां अभियुक्त, वाहन मालिक, बीमा कंपनी या किसी अन्य पक्ष द्वारा धारा 72 के तहत कोई दावा नहीं किया जाता है, वाहन मालिक और बीमा कंपनी (यदि वाहन को वित्तपोषित किया गया था) को नोटिस जारी किया जाना चाहिए, और आगे की कार्रवाई ऊपर दिए गए सुझावों के अनुसार की जानी चाहिए।

17.11 यदि वाहन के स्वामी अथवा बीमा कंपनी का पता लगाना संभव न हो, तो जिस जनपद में वाहन पंजीकृत है, वहाँ के दो सर्वाधिक प्रसारित समाचारपत्रों में सूचना प्रकाशित कर, एक नियत तिथि पर वाहन की नीलामी की जानी चाहिए।

17.12 नशीले पदार्थों के अवैध परिवहन में उपयोग किए जाने वाले वाहनों की जब्ती प्रक्रिया और वर्तमान स्थिति की कलेक्टर/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक की अध्यक्षता में मासिक अपराध बैठकों में अनिवार्य रूप से समीक्षा की जानी चाहिए। जब्ती प्रक्रिया में किसी भी बाधा को उस बैठक में तुरंत हल किया जाना चाहिए।

18. अभियोजन विभाग ने सूचित किया है कि गृह विभाग ने समय-समय पर जब्त माल के निपटान के संबंध में दिशा-निर्देश जारी किए हैं। विशेष रूप से, राज्य सरकार द्वारा उचित विचार के बाद जारी 18 अप्रैल 2016 को जारी सरकारी आदेश संख्या-698/पु0- 9-16-31(16)/2016 में जिला और थाना गोदामों में संग्रहीत माल के निपटान के लिए विशिष्ट निर्देशों की रूपरेखा दी गई है। जब्त किए गए वाहनों के निपटान से संबंधित प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं:

18.1 जहां पुलिस द्वारा कोई संपत्ति जब्त की जाती है, संबंधित स्टेशन अधिकारी को संपत्ति की जब्ती के बारे में जानकारी सात दिनों के भीतर अदालत को भेजनी चाहिए और अदालत से आदेश प्राप्त करने के बाद माल का निपटान सुनिश्चित करना चाहिए।

18.2 मोटर वाहन अधिनियम और नियम 203 की धारा 158 के प्रावधानों के साथ-साथ निर्धारित प्रपत्र एसआर 48 (विवेचनाधिकारी की रिपोर्ट) का अनुपालन किया जाना चाहिए और प्रत्येक विवेचनाधिकारी इन नियमों का अनुपालन सुनिश्चित करेगा और दुर्घटना से संबंधित मामलों की जांच के दौरान तुरंत संबंधित अदालत को अपनी रिपोर्ट भेजेगा।

18.3 इसका पालन करने में विफलता के परिणामस्वरूप पुलिस अधिनियम की धारा 23 सपठित धारा 29 के तहत कार्रवाई की जाएगी। यदि वाहन के लिए कोई दावेदार नहीं है, तो वास्तविक मालिक का पता लगाने के लिए बीमा कंपनी के नेटवर्क का उपयोग किया जाना चाहिए।

18.4 जिला या थाना गोदामों में संग्रहीत सामान, जिनके मामलों का निपटान किया गया है, को एक सतत अभियान के माध्यम से तुरंत निपटाया जाना चाहिए।

18.5 जिला मजिस्ट्रेट की मासिक अभियोजन समीक्षा बैठक में, जिसमें पुलिस अधीक्षक उपस्थित रहेंगे, पुलिस द्वारा जब्त किए गए माल के निपटान की विस्तृत समीक्षा की जाएगी।

18.6 यदि अदालतें माल के निपटान में रुचि नहीं दिखा रही हैं, तो अदालतों के साथ उचित समन्वय सुनिश्चित करने के लिए निगरानी प्रकोष्ठ की बैठक में इस पर चर्चा की जानी चाहिए।

18.7 प्रत्येक स्टेशन अधिकारी या स्टेशन प्रमुख की वार्षिक रिपोर्ट भी उनके अधिकार क्षेत्र में माल के निपटान पर आधारित होगी।
सभी पुलिस अधीक्षक/उप महानिरीक्षक/महानिरीक्षक यह सुनिश्चित करेंगे कि यह कार्रवाई की जाए।

19. जहाँ प्रकरणगत संपत्ति अपील अवधि व्यतीत हो जाने के उपरांत भी लंबित बनी रहती है, वहाँ सामान्य नियम (दाण्डिक) के अधीन विहित प्रपत्र में संपत्ति के अधिकारी व्यक्ति को सूचना दी जानी चाहिए। यदि ऐसा व्यक्ति संपत्ति का दावा करने हेतु उपस्थित नहीं होता है, अथवा संपत्ति अप्रदत्त बनी रहती है, अथवा स्वामी का पता नहीं चल पाता है, अथवा पुलिस संपत्ति के विधिक उत्तराधिकारी की पहचान करने में असमर्थ रहती है, तथा ऐसी संपत्ति के संबंध में कोई परिवाद प्रस्तुत नहीं किया जाता है, तो ऐसी अप्रदत्त संपत्ति का निस्तारण दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराएँ 457, 458 एवं 459 के अधीन विनिर्दिष्ट प्रक्रिया के अनुसार किया जाएगा।

20. सचिव (गृह विभाग) ने निम्नलिखित सुझाव अग्रेषित किए:

20.1 केस प्रॉपर्टी: ऐसे मामलों में जहां अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है, अदालत को तुरंत इसे मंजूरी देनी चाहिए और केस प्रॉपर्टी के निपटान के लिए आदेश जारी करना चाहिए। तदनुसार निपटान के लिए एक समय-सीमा तय की जानी चाहिए। बहुत पुराने मामले की संपत्तियों के लिए, मामले के परिणाम की स्थिति का पता लगाया जाना चाहिए, जिसके आधार पर अनावश्यक लंबित मामले की संपत्तियों का निपटान किया जा सकता है।

20.2 लावारिस/अप्राप्य संपत्ति: ऐसी अधिकांश वस्तुएं समय के साथ अपनी उपयोगिता खो देती हैं, जिससे सार्वजनिक धन की हानि होती है और मालखाने में भंडारण स्थान की कमी हो जाती है। ऐसी लावारिस वस्तुओं

की एक सूची तैयार की जानी चाहिए और संबंधित मजिस्ट्रेट के माध्यम से नीलामी प्रक्रिया के माध्यम से निपटाया जाना चाहिए। नीलामी योग्य वस्तुओं के मूल्य का आकलन सक्षम अधिकारियों द्वारा किया जाना चाहिए ताकि उनका आधार मूल्य निर्धारित किया जा सके।

20.3 अनुलग्नक (बरामदगी): अक्सर, कुर्की के तहत वस्तुओं को मानदंडों के विपरीत, उचित भंडारण की कमी के कारण खुले क्षेत्रों या पुलिस परिसर में अन्य उपयोग योग्य स्थानों में बेतरतीब ढंग से रखा जाता है। जिन वस्तुओं के नष्ट होने की संभावना है, उन्हें अदालत का आदेश प्राप्त करने के बाद नीलाम किया जाना चाहिए, और नकद आय को सुरक्षित रूप से जमा किया जाना चाहिए ताकि जरूरत पड़ने पर उन्हें वापस किया जा सके। यदि आरोपी जिसकी संपत्ति कुर्क की गई है, गिरफ्तार किया जाता है या अदालत के समक्ष पेश होता है, तो संपत्ति परिवार को वापस कर दी जानी चाहिए।

20.4 व्यक्तिगत खोज आइटम: गिरफ्तारी के समय एक अभियुक्त की व्यक्तिगत तलाशी के दौरान प्राप्त वस्तुएं अक्सर आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद लंबित रहती हैं। स्पष्ट निर्देश जारी किए जाने चाहिए कि ऐसी वस्तुओं को आरोपी द्वारा प्रदान किए गए पते पर परिवार के सदस्यों को वापस किया जाना चाहिए, या तदनुसार निपटान सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

20.5 दुर्घटनाओं में शामिल वाहन, जिनके मालिक ज्ञात हैं, उन्हें तकनीकी निरीक्षण और अदालत का आदेश प्राप्त करने के बाद उन्हें वापस कर दिया जाना चाहिए। अन्यथा, अदालत के निर्देश प्राप्त होने के बाद छह महीने के भीतर वाहन की नीलामी की जानी चाहिए।

20.6 अन्य राज्यों (केरल और आंध्र प्रदेश) के समान, राज्य स्तरीय केंद्रीकृत मालखाना सूचना केंद्र से जुड़े क्यूआर कोड ट्रैकिंग का उपयोग करके "जिला-स्तरीय केंद्रीकृत वाहन यार्ड" स्थापित करने की व्यवहार्यता का पूरी तरह से अध्ययन किया जाना चाहिए। यदि आवश्यक हो, तो गृह विभाग चुनिंदा जिलों में पायलट के रूप में इस परियोजना को शुरू करने पर विचार कर सकता है।

20.7 लावारिस/अप्राप्य वस्तुओं का निपटान: ऐसी वस्तुओं की एक सूची तैयार की जानी चाहिए, अदालत के आदेश प्राप्त किए जाने चाहिए, और जल्द से जल्द नीलामी के माध्यम से निपटान किया जाना चाहिए। ऐसे मामलों में जहां लावारिस वाहन के मालिक का पता नहीं लगाया जा सकता है या सत्यापित नहीं किया जा सकता है, परिवहन विभाग को नीलामी के लिए इसके मूल्य को जल्दी से निर्धारित करने का निर्देश दिया जाना चाहिए।

20.8 बीमित वाहनों का निपटान: ऐसे मामलों में जहां वाहन मालिक को पहले ही बीमा मुआवजा मिल चुका है, वाहन बीमा कंपनी के नियंत्रण में आ जाता है। ऐसी स्थितियों में, अदालत का आदेश प्राप्त करने के बाद, बीमा

कंपनी के लिए वाहन की कस्टडी लेने के लिए एक समय सीमा निर्धारित की जानी चाहिए। यदि वे निर्धारित समय के भीतर ऐसा करने में विफल रहते हैं, तो वाहन को नियमों के अनुसार नीलाम किया जाना चाहिए।

20.9 एक वेब पोर्टल को पुलिस तकनीकी सेवा मुख्यालय की सहायता से सी.सी.टी.एन.एस. प्रणाली के साथ एपीआई के माध्यम से जोड़ा जाएगा। सी.सी.टी.एन.एस. के साथ जुड़ने के लिए, एन.आई.सी. नए वेब-आधारित एप्लिकेशन सॉफ्टवेयर के लिए कार्यात्मक आवश्यकताओं का आकलन और परिभाषित कर सकता है। यदि यह सॉफ़्टवेयर "वन डेटा वन्स एंट्री" सिद्धांत पर काम करता है, तो यह सभी हितधारकों के लिए फायदेमंद हो सकता है।

20.10 उपर्युक्त के अलावा, पुलिस विभाग तथा आबकारी विभाग को भी उपर्युक्त सुझावों पर सभी हितधारकों के मध्य समन्वय स्थापित करते हुए एक व्यावहारिक एवं कार्यान्वयन योग्य योजना विकसित करने के उद्देश्य से गहन विचार-विमर्श एवं विस्तृत मंथन करना चाहिए।

21. विद्वान जिला न्यायाधीशों से भी सुझाव आमंत्रित किए गए थे ताकि जब्त किए गए वाहनों को रिहा करने का आदेश देने में विचारण अदालतों द्वारा सामना की जाने वाली कानूनी बाधाओं की, विशेष रूप से जब्ती के समय जब्त करने वाले अधिकारियों, नामित अधिकारियों या जांच अधिकारियों द्वारा की गई प्रक्रियात्मक कमियों या अनियमितताओं से जुड़े मामलों में, पहचान की जा सके। प्रस्तुतियाँ इस बात पर प्रकाश डालती हैं कि, रिहाई आवेदनों पर सुनवाई के दौरान, अभियोजन पक्ष अक्सर संवैधानिक न्यायालयों के निर्णयों पर भरोसा करता है ताकि यह तर्क दिया जा सके कि अदालतों के पास कुछ विशेष क़ानूनों के तहत वाहनों को जारी करने का अधिकार क्षेत्र नहीं है। विद्वान जिला न्यायाधीश ने वाहन जब्ती के समय जब्त और जांच अधिकारियों द्वारा की गई विभिन्न कमियों और प्रक्रियात्मक अनियमितताओं पर भी प्रकाश डाला है। पिछले प्रस्तर में इस तरह की चूक के कई उदाहरण दिए गए हैं। इसमे शामिल हैं:

21.1 उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998 के नियम 203-ए के तहत अनिवार्य सत्यापन प्रक्रिया - जिसमें एक तकनीकी रिपोर्ट तैयार करने और ड्राइविंग लाइसेंस, पंजीकरण प्रमाण पत्र, फिटनेस प्रमाण पत्र, बीमा कागजात और रूट परमिट जैसे दस्तावेजों के सत्यापन की आवश्यकता होती है - अक्सर विवेचनाधिकारी द्वारा समय पर तरीके से नहीं किया जाता है। यह देरी आम तौर पर तब होती है जब उल्लंघन करने वाला वाहन राज्य के बाहर पंजीकृत होता है।

21.2 जघन्य अपराधों से जुड़े मामलों में, उल्लंघन करने वाले वाहन से फोरेंसिक नमूनों या साक्ष्य (जैसे, खून के धब्बे) का समय पर संग्रह अक्सर नहीं किया जाता है। यह प्रक्रियात्मक चूक वाहन की रिहाई में अनुचित देरी में योगदान करती है।

21.3 दावेदारों द्वारा प्रतिभूति बांड जमा करने में बार-बार देरी होती है, जिससे रिलीज आदेशों की आगे की प्रक्रिया रुक जाती है।

21.4 गैंगस्टर अदालतों द्वारा जारी किए गए रिहाई आदेशों के साथ राज्य एजेंसियों द्वारा गैर-अनुपालन है, अक्सर इस आधार पर कि अपीलीय न्यायालय के समक्ष एक अपील दायर की गई है, बावजूद इसके कि कोई रोक नहीं दी गई है।

21.5 जांच अधिकारियों द्वारा उच्चतम न्यायालय के निर्देशों का अनुपालन न किया जाता है जिसमें कहा गया है कि विवेचनाधिकारी को संबंधित बीमा कंपनी को अपराध करने में वाहन की संलिप्तता के बारे में सूचित करना चाहिए।

22. विद्वान जिला न्यायाधीशों, सचिव (गृह), प्रधान सचिव (आबकारी और परिवहन) और पुलिस महानिदेशक के कार्यालय द्वारा एक व्यापक अभ्यास किया गया है। मौजूदा मुद्दों पर विचार-विमर्श को सुविधाजनक बनाने और उपयुक्त दिशा-निर्देश और सिफारिशें तैयार करने के लिए, पुलिस महानिदेशक द्वारा एक उच्च स्तरीय समिति का भी गठन किया गया था, जिसमें अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक (अभियोजन), अपर पुलिस महानिदेशक (तकनीकी) और अपर पुलिस महानिदेशक (अपराध) शामिल थे।

23. विभिन्न विशेष क़ानूनों के तहत अपराध करने में शामिल वाहनों की जब्ती एक सामान्य घटना है। हालाँकि, उनकी रिहाई की प्रक्रिया एक समान नहीं है और विशिष्ट वैधानिक प्रावधानों द्वारा शासित होती है जो अक्सर बी.एन.एस.एस, 2023 की धारा 497 से 505 जैसे सामान्य आपराधिक प्रक्रिया कानूनों को ओवरराइड करते हैं।

24. राज्य में विशेष क़ानूनों के तहत जब्त किए गए वाहनों की रिहाई अलग-अलग प्रक्रियात्मक तंत्र और वैधानिक बारों द्वारा नियंत्रित होती है, जो अक्सर बी.एन.एस.एस, 2023 के तहत आपराधिक अदालतों के अधिकार क्षेत्र को बाहर कर देती है। ये बार विशिष्ट विधायी इरादों को पूरा करते हैं- चाहे वह तस्करी को रोकना हो, जंगलों की रक्षा करना हो, नशीले पदार्थों को नियंत्रित करना हो या गोहत्या को रोकना हो। हालांकि, ये वैधानिक ढांचे समय पर निर्णय, प्रशासनिक दक्षता और उचित प्रक्रिया के माध्यम से संपत्ति के अधिकारों की सुरक्षा की आवश्यकता पर भी प्रकाश डालते हैं। अदालतों और प्रवर्तन अधिकारियों को कानूनी कठोरता और आर्थिक उपयोगिता के बीच संतुलन बनाना चाहिए, यह सुनिश्चित करते हुए कि जब कानून को बरकरार रखा जाता है, तो नौकरशाही जड़ता या कानूनी अनिश्चितता के कारण राष्ट्रीय संपत्ति बेकार नहीं हो जाती है।

25. यह पता चला है कि पुलिस द्वारा जब्त किए गए 72,776 वाहन पुलिस थानों में तैनात हैं, और 923 वाहनों को आबकारी विभागों द्वारा जब्त कर लिया गया है, और या तो आबकारी या थाना द्वारा प्रबंधित गोदाम में खड़े हैं, और 39,819 वाहन परिवहन विभाग के पास लंबित हैं। उत्तर प्रदेश में लक्ष्य वर्ष 14180 के मुकाबले औसतन 7500 वाहन जब्त किए गए हैं। 11819 वाहनों को 45 दिनों से अधिक समय तक परिवहन

विभाग की हिरासत में रखा जाता है, जबकि, नियम के अनुसार, 45 दिनों के बाद वाहन की नीलामी के लिए उत्तर प्रदेश मोटर कराधान नियम, 1998 के नियम 19 ए के माध्यम से एक विशिष्ट प्रक्रिया संहिताबद्ध की गई है। इस संबंध में, अतिरिक्त परिवहन आयुक्त (प्रवर्तन), उत्तर प्रदेश द्वारा जारी दिनांक 27.11.2024 के एक पत्र का संदर्भ आमंत्रित किया जाता है।

26. चाहे वाहनों को आबकारी अधिनियम, सीमा शुल्क अधिनियम, एन.डी.पी.एस. अधिनियम, वन अधिनियम, गोवध अधिनियम, या भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 के सामान्य प्रावधानों के तहत जब्त किया जाता है, वाहन केवल अपराध के साधनों से कहीं अधिक का प्रतिनिधित्व करते हैं- वे राष्ट्रीय बुनियादी ढांचे और आर्थिक गतिविधि के महत्वपूर्ण घटक हैं।

27. मौलिक न्यायशास्त्रीय सिद्धांत है "अपराधी को दंडित करें, साधन को नहीं। एक वाहन अपराध नहीं करता है- यह सबसे अच्छा, एक निष्क्रिय उपकरण है जिसका किसी व्यक्ति द्वारा दुरुपयोग किया जाता है। किसी व्यक्ति की दोषसिद्धि और संपत्ति की उपयोगिता के बीच अंतर करने के लिए कानून को पर्याप्त रूप से सूक्ष्म होना चाहिए। वाहनों को लंबे समय तक बनाए रखना, अक्सर लंबित परीक्षणों या प्रक्रियात्मक अंतराल के बहाने से, आर्थिक बर्बादी, प्रशासनिक अक्षमता और मालिक के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है जब कानूनी स्वामित्व को निर्णायक रूप से चुनौती नहीं दी जाती है।

28. जब्त किया गया प्रत्येक वाहन केवल एक जब्त वस्तु नहीं है - यह एक राष्ट्रीय संपत्ति है। वाहन औद्योगिक विकास, रसद, कृषि, पर्यटन और व्यापार में योगदान करते हैं। थानों, आबकारी गोदामों या परिवहन यार्डों में उन्हें जितना अधिक समय तक खराब होने के लिए छोड़ दिया जाएगा, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को उतना ही अधिक नुकसान होगा। डेटा एक परेशान करने वाली तस्वीर से पता चलता है: 72,776 वाहन थानों में बेकार पड़े हैं, 923 आबकारी विभाग के पास हैं, और 39,819 से अधिक वाहन परिवहन विभाग के पास लंबित हैं, जिनमें से कई वैधानिक रूप से स्वीकार्य सीमा से परे हैं। अकेले उत्तर प्रदेश में, 11,819 वाहन 45 दिनों से अधिक समय तक हिरासत में रहते हैं, जो उत्तर प्रदेश मोटर कराधान नियम, 1998 के नियम 19-ए के विपरीत है, जो उनके निपटान के लिए एक स्पष्ट प्रक्रिया को संहिताबद्ध करता है।

29. निष्क्रिय वाहन सकल घरेलू उत्पाद, वाणिज्यिक कर या रोजगार क्षेत्रों में कुछ भी योगदान नहीं देते हैं। यदि उन्हें विधिसम्मत उपयोग के लिए मुक्त किया जाता है, तो वे पुनः अर्थव्यवस्था में प्रविष्ट होकर ईंधन कर, पथकर, वस्तु एवं सेवा कर (जी.एस.टी.) से राजस्व उत्पन्न करेंगे तथा लॉजिस्टिक्स एवं परिवहन क्षेत्र में रोजगार सृजन में योगदान देंगे। अतः उनकी रिहाई का आर्थिक औचित्य लोकहित एवं राजकोषीय सावधानी– दोनों के साथ समन्वित है।

30. संवैधानिक और कानूनी अधिकारों के संरक्षक के रूप में अदालतों को जब्त किए गए वाहनों की रिहाई से निपटने के दौरान विकास - उन्मुख लेंस अपनाना चाहिए। न्यायिक विमर्श को आर्थिक विकास और अपव्यय को

कम करने के व्यापक राष्ट्रीय उद्देश्य से सूचित किया जाना चाहिए। जबकि कुछ विशेष क़ानून न्यायिक रिहाई पर प्रतिबंध लगाते हैं, अदालतें सक्रिय रूप से कर सकती हैं और करनी चाहिए:

(ए) जब्ती, नीलामी या रिलीज प्रक्रियाओं के साथ समय पर अनुपालन को प्रोत्साहित करना, (बी) गैर-अनुपालन के लिए विभागीय देरी और प्रत्यक्ष जवाबदेही की निगरानी करना, (सी) मामले पर पूर्वाग्रह डाले बिना संपत्ति के क्षरण को रोकने के लिए अंतरिम हिरासत आदेश (सुरत्नामा या क्षतिपूर्ति बांड) का उपयोग करना, (घ) अदालतों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि प्रशासनिक सुस्ती वैधानिक और संवैधानिक सुरक्षा उपायों को ओवरराइड न करे।

31. विद्वान जिला न्यायाधीशों से प्राप्त सुझावों से यह स्पष्ट है कि कथित आपराधिक गतिविधि में शामिल वाहनों की जब्ती और रिहाई आपराधिक अदालतों के लिए चिंता का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यह चिंता विशेष रूप से तब महत्व प्राप्त करती है जब वाहनों को विशेष कानूनों के तहत जब्त किया जाता है, जैसे कि उत्तर प्रदेश गोवध अधिनियम, 1945, उत्तर प्रदेश उत्पाद शुल्क अधिनियम, भारतीय वन अधिनियम, 1927 और उत्तर प्रदेश लघु खनिज रियायत नियम, 2021। इन क़ानूनों में वैधानिक बाधाएँ हैं जो भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 के सामान्य प्रावधानों को ओवरराइड करती हैं।

32. उत्तर प्रदेश गोहत्या अधिनियम, 1945 की धारा 5ए(7) जब्त किए गए वाहनों को छोड़ने के लिए न्यायिक विवेक पर स्पष्ट रोक प्रदान करती है। यह प्रावधान केवल अधिकृत अधिकारियों या राज्य सरकार को जब्ती और रिहाई के संबंध में निर्णय लेने के अधिकार के साथ सशक्त बनाने के विधायी इरादे को दर्शाता है। इस प्रावधान में कहा गया है:
"मुकदमे या जब्ती की कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान किसी भी अदालत द्वारा वाहन को छोड़ने के लिए कोई आदेश पारित नहीं किया जाएगा।

32.1 उत्तर प्रदेश उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1910 की धारा 72 जब्त की गई संपत्ति की जब्ती से संबंधित है, जो केवल कलेक्टर को शक्ति प्रदान करती है। यह धारा आपराधिक मुकदमे से अलग एक समानांतर न्यायिक ढांचा बनाती है, जिससे रिहाई के मामलों में मजिस्ट्रेटों के अधिकार क्षेत्र को बाहर रखा जाता है।

32.2 भारतीय वन अधिनियम, 1927 की धारा 52-डी (उत्तर प्रदेश संशोधन, 2001)(उत्तर प्रदेश में यथा संशोधित) किसी अन्य अधिकारी या अदालत को जब्त की गई संपत्ति पर अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से स्पष्ट रूप से रोकती है और धारा 52 और 52-ए वन अधिकारियों को जब्ती की कार्यवाही करने का अधिकार देती है।
उत्तर प्रदेश गौण खनिज रियायत नियम, 2021 का नियम 72(6) स्पष्ट रूप से सक्षम प्राधिकारी और रिलीज की प्रक्रिया को निर्धारित करता है, जिससे विभागीय कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान न्यायिक हस्तक्षेप को रोका जा सके। नियम 72(6) में प्रावधान है कि: "जुर्माना जमा करने और गौण खनिजों की कीमत जमा करने के बाद, वाहन और सामग्री जिला मजिस्ट्रेट द्वारा जारी की जाएगी।

33. जबकि वैधानिक सलाखों का सख्त अनुपालन गैर-परक्राम्य है, लेकिन अदालतों और संबंधित विभागों को वाहनों की आर्थिक उपयोगिता को राष्ट्रीय संपत्ति के रूप में भी मानना चाहिए। अब समय आ गया है कि जब्ती, नीलामी और रिहाई की कार्यवाही के समय पर निर्णय लेने, जब्ती, रिपोर्टिंग और समाधान के लिए स्पष्ट समयसीमा और डिजिटल ट्रैकिंग सिस्टम स्थापित करने के लिए एक तंत्र विकसित किया जाए।

34. विशेष क़ानूनों के तहत जब्त किए गए वाहनों की रिहाई को नियंत्रित करने वाली कानूनी व्यवस्था को वैधानिक विशिष्टता, प्रक्रियात्मक जटिलता और न्यायिक विवेक की विशेषता है। अदालतों का लगातार संदेश यह है कि विशेष क़ानून प्रक्रियात्मक संहिता के सामान्य प्रावधानों पर हावी हैं। हालाँकि, इस कठोर संरचना को मालिकों के अधिकारों, राज्य के आर्थिक हितों और सार्वजनिक हित के विरुद्ध संतुलित किया जाना चाहिए। एक सामंजस्यपूर्ण ढांचा जो व्यावहारिक लचीलेपन के साथ प्रक्रियात्मक अनुशासन को एकीकृत करता है, जब्त किए गए वाहनों के उपचार में कानून के शासन और आर्थिक तर्कसंगतता दोनों को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है। इसलिए, परस्पर विरोधी प्रक्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करने और सख्त शर्तों के तहत अंतरिम रिहाई की अनुमति देने के लिए एक विधायी समीक्षा, खासकर जहां स्वामित्व विवादित नहीं है, न्याय और आर्थिक दक्षता दोनों की सेवा कर सकता है।

35. ये मुद्दे पुलिस और अभियोजकों सहित सभी हितधारकों के लिए स्पष्टता, संहिताकरण और प्रशिक्षण की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं।

36. चाहे वाहनों को आबकारी अधिनियम, सीमा शुल्क अधिनियम, एन.डी.पी.एस. अधिनियम, वन अधिनियम, गोवध अधिनियम, या दंड प्रक्रिया संहिता (द०प्र०स०) के सामान्य प्रावधानों के तहत जब्त किया जाता है, वाहन केवल अपराध के साधनों से अधिक का प्रतिनिधित्व करते हैं- वे राष्ट्रीय बुनियादी ढांचे और आर्थिक गतिविधि के महत्वपूर्ण घटक हैं।

37. इस मुद्दे ने जिला अदालत के न्यायाधीशों के लिए महत्व प्राप्त किया है, जिन्हें रिहाई आवेदनों के निर्णय के दौरान कानूनी बाधाओं का सामना करना पड़ा, खासकर जहां जब्ती प्रक्रिया में वैधानिक और प्रक्रियात्मक अनियमितताएं शामिल हैं।

38. भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 की धारा 497 से 505, जांच या मुकदमे की कार्यवाही के दौरान अदालत के समक्ष प्रस्तुत संपत्ति की हिरासत, अंतरिम रिहाई और निपटान को नियंत्रित करने वाली एक व्यापक रूपरेखा निर्धारित करती है।

38.1 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 की धारा 497 से 505 में निहित प्रावधान ऐसे मामलों में ओटियोस नहीं होते हैं जहां संबंधित विभाग एक विशेष अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत निर्धारित वैधानिक समय-सीमा का पालन करने में विफल रहता है। वैधानिक योजना न केवल विभाग के हितों की रक्षा

के लिए बल्कि जांच या मुकदमे के दौरान अदालत के समक्ष पेश की गई संपत्ति के नुकसान, गिरावट या दुरुपयोग को रोकने के उद्देश्य से न्यायिक निगरानी सुनिश्चित करने के उद्देश्य से समय पर निर्णय लेने की आवश्यकता पर जोर देती है।

38.2 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 की धारा 504, उस प्रक्रिया को निर्धारित करती है जिसका पालन तब किया जाना चाहिए जब कोई भी दावेदार छह महीने की अवधि के भीतर जब्त की गई संपत्ति पर वैध दावा स्थापित नहीं करता है। ऐसे मामलों में, मजिस्ट्रेट को एक आदेश पारित करने का अधिकार है जिसमें यह निर्देश दिया गया है कि संपत्ति राज्य सरकार के निपटान में निहित होगी, जो तब संपत्ति को बेचने के लिए आगे बढ़ सकती है, बिक्री से प्राप्त आय को राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा निर्धारित तरीके से निपटाया जाएगा। अदालतें यह सुनिश्चित करने के लिए कर्तव्यबद्ध हैं कि नौकरशाही की अंतःक्रिया के कारण न्याय और उचित प्रशासन की हानि के लिए प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों का दुरुपयोग या उपेक्षा न की जाए।

39. इस प्रकार, संरचनात्मक सुधारों की आवश्यकता है (ए) जब्त किए गए वाहनों पर नज़र रखने के लिए एक केंद्रीकृत, राज्य-स्तरीय डिजिटल डैशबोर्ड और उनकी कानूनी स्थिति पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करेगी, (बी) पुलिस के बीच निर्बाध समन्वय, परिवहन, वन और आबकारी विभाग ओवरलैप, दोहराव और दीर्घकालिक भंडारण को रोक सकते हैं, (सी) प्रत्येक वाहन के लिए जब्ती के 30-45 दिनों के भीतर न्यायिक समीक्षा को अनिवार्य करना, (डी) जहां रिलीज की अनुमति नहीं है या स्वामित्व विवादित है, वाहनों की नीलामी या पट्टे पर लिया जाना चाहिए, एस्क्रो में रखी गई आय के साथ, अदालत के परिणामों के अधीन, और (ई) प्रवर्तन अधिकारियों और वाहन मालिकों दोनों को जब्ती के समय जब्ती, स्वामित्व अधिकारों और प्रक्रियात्मक अधिकारों के बारे में सही कानूनी स्थिति के बारे में उनके अधिकारों और कानूनी परिणामों के बारे में स्पष्ट शब्दों में शिक्षित किया जाना चाहिए।

40. राज्य गोदामों और थानों में करोड़ों मूल्य के हजारों वाहनों को सड़ने की अनुमति नहीं दे सकता है, जबकि उद्योग रसद की कमी से जूझ रहे हैं, और राज्य संभावित राजस्व को जब्त कर लेता है। वैधता, आर्थिक अर्थ और मानवाधिकारों में निहित वाहन जब्ती और रिहाई के लिए एक सुधारित दृष्टिकोण केवल न्यायिक विवेक का मामला नहीं है, बल्कि राष्ट्रीय प्रगति के लिए एक आवश्यकता है। वाहनों को आपराधिक प्रक्रिया में देनदारियों के रूप में नहीं माना जाना चाहिए, बल्कि संरक्षित, संरक्षित और वैध उपयोग के लिए संपत्ति के रूप में माना जाना चाहिए। संवैधानिक मूल्यों और आर्थिक दूरदर्शिता द्वारा निर्देशित अदालतों के पास इस बदलाव का नेतृत्व करने का अवसर और जिम्मेदारी दोनों हैं।

41. इसलिए, पूर्वगामी विचार-विमर्श के आधार पर, यह न्यायालय मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार को सचिव (गृह), प्रधान सचिव (परिवहन), प्रधान सचिव (उत्पाद शुल्क), महानिदेशक (अभियोजन), अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक (तकनीकी), अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक (अपराध), और ऐसे अन्य विशेषज्ञ (विशेषज्ञों) को शामिल करते हुए एक समन्वय समिति का गठन करने का निर्देश देना उचित समझता है जिन्हें आवश्यक समझा जा

सकता है। समिति विचार-विमर्श करेगी और संबंधित विभागों के लिए संरचित दिशानिर्देशों के साथ एक व्यापक नीति तैयार करेगी ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि जब्त किए गए और थानों या भंडारण सुविधाओं में रखे गए वाहनों की नीलामी की जाए या अन्यथा समय पर और प्रभावी तरीके से निपटा जाए, जिससे आगे के नुकसान या गिरावट को रोका जा सके।

42. समन्वय समिति सचिव (गृह), पुलिस महानिदेशक, क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी (प्रवर्तन), प्रयागराज, अतिरिक्त आबकारी आयुक्त (प्रशासन) और अभियोजन विभाग द्वारा दिए गए सुझावों की जांच करेगी, जैसा कि यहां ऊपर चर्चा की गई है। इन इनपुट के आधार पर, समिति एक निश्चित समय सीमा के भीतर उपयुक्त दिशानिर्देश तैयार करेगी, जिससे संबंधित विभागों को नीलामी की कार्यवाही के साथ आगे बढ़ने में सक्षम बनाया जा सके, यदि पहले से नहीं किया गया है।

42.1 समिति एकल-खिड़की वेब पोर्टल के विकास में तेजी लाने और एपीआई इंटरफेस के माध्यम से सी.सी.टी.एन.एस. प्रणाली के साथ इसका एकीकरण सुनिश्चित करने के लिए संबंधित विभागों को उचित निर्देश जारी करेगी। इस तरह के एकीकरण के प्रयोजन के लिए, राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र (एन.आई.सी.) प्रस्तावित वेब-आधारित एप्लिकेशन सॉफ्टवेयर की कार्यात्मक आवश्यकताओं का आकलन और परिभाषित कर सकता है, जैसा कि संबंधित विभागों द्वारा सुझाया गया है।

42.2 अन्य राज्यों (केरल और आंध्र प्रदेश) के समान, राज्य स्तरीय केंद्रीकृत मालखाना सूचना केंद्र से जुड़े क्यूआर कोड ट्रैकिंग का उपयोग करके "जिला-स्तरीय केंद्रीकृत वाहन यार्ड" स्थापित करने की व्यवहार्यता का पूरी तरह से अध्ययन किया जाना चाहिए। गृह विभाग इस परियोजना को चुनिंदा जिलों में पायलट के रूप में शुरू करने पर विचार करेगा, जैसा कि सुझाव दिया गया है।

42.3 समन्वय समिति उन मामलों में पुलिस द्वारा जब्त किए गए वाहनों की नीलामी की व्यवहार्यता पर भी विचार-विमर्श करेगी, जहां न तो वाहन के मालिक और न ही बीमा कंपनी ने मुकदमे के लंबित रहने के दौरान मामले की स्थापना की तारीख से छह महीने के भीतर ऐसे वाहनों को जारी करने के लिए न्यायालय के समक्ष कोई आवेदन दायर किया है।

42.4 दुर्घटना के मामलों में पुलिस द्वारा जब्त किए गए वाहनों को नीलामी या निराकरण के लिए दायर की जाएगी।

42.5 पुलिस महानिदेशक यह सुनिश्चित करेगा कि, समन्वय समिति द्वारा किए गए अभ्यास के पूरा होने पर, कोई भी वाहन थानों में या उसके आसपास जंग लगने के लिए छोड़ दिया गया है।

43. यदि संबंधित विभाग का कोई नामित अधिकारी, या एक पुलिस अधिकारी, लावारिस वाहनों की नीलामी करने की अनुमति मांगने के लिए न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर करता है, तो ऐसे आवेदन पर शीघ्रता से और कानून के अनुसार विचार किया जाना आवश्यक है। सुंदरभाई अंबालाल देसाई मामले (उपरोक्त) में अनिवार्य रूप से एक उचित पंचनामा तैयार करने के बाद, विभाग को नीलामी के साथ आगे बढ़ने की अनुमति दी जा सकती है - विशेष रूप से उन मामलों में जहां जब्त वाहन दुर्घटना में शामिल हो गया है। केवल मुकदमे का लंबित रहना, अपने आप में, आपत्तिजनक वाहन के निपटान के लिए एक बाधा के रूप में काम नहीं करेगा, खासकर जहां इसका निरंतर प्रतिधारण कोई साक्ष्य उद्देश्य पूरा नहीं करता है और अनावश्यक गिरावट या भीड़भाड़ का कारण बन सकता है।

44. इस निर्णय को समाप्त करने से पहले, मैं सचिव (गृह), पुलिस महानिदेशक के कार्यालय और आबकारी और परिवहन विभागों के संबंधित अधिकारियों के सावधानीपूर्वक और समर्पित प्रयासों के लिए अपनी ईमानदारी से मूल्यांकन करना उचित समझता हूं। विद्वान जिला न्यायाधीशों द्वारा दिए गए सुझावों से संरचनात्मक दिशा-निर्देशों के निर्माण में रचनात्मक भूमिका निभाने की उम्मीद है। यह व्यापक और सावधानीपूर्वक अभ्यास प्रस्तुत आवेदन में उठाई गई चिंताओं को दूर करने के लिए अधिकारियों की ईमानदार प्रतिबद्धता को दर्शाता है, और कानूनी ढांचे के भीतर प्रभावी और व्यावहारिक समाधान सुनिश्चित करने में न्यायपालिका की सक्रिय भागीदारी को रेखांकित करता है।

45. निबंधक (अनुपालन) को एतद्द्वारा निर्देश दिया जाता है कि वह इस आदेश की एक प्रति उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव को इसके प्रभावी अनुपालन के लिए प्रेषित करे। मुख्य सचिव यह सुनिश्चित करेंगे कि समन्वय समिति द्वारा की गई पूरी प्रक्रिया छह महीने की अवधि के भीतर संपन्न हो जाए।

45.1 गृह सचिव द्वारा दिनांक 27.11.2024 को प्रस्तुत अनुपालन शपथपत्र की प्रमाणित प्रति (पृष्ठ 1 से 26 सहित); गृह सचिव द्वारा पत्र संख्या 4513/ि-पु0-9-24-754401 दिनांक 18.11.2024 के माध्यम से प्रेषित निर्देश (पृष्ठ 1 से 18 सहित); गृह सचिव द्वारा पत्र संख्या 4295-ि-पु0-9-24-754401 के माध्यम से प्रेषित निर्देश (पृष्ठ 1 से 12 सहित); पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश के कार्यालय से निर्गत पत्र संख्या डीजी-10-वि-प्र-रिट-(385) 2024/63/3 दिनांक 9.10.2024 (पृष्ठ 1 से 15 सहित); क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी (प्रवर्तन), प्रयागराज द्वारा दिनांक 28.9.2024 को प्रस्तुत अनुपालन शपथपत्र की प्रति (पृष्ठ 1 से 20 सहित); माननीय अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत संकलन की प्रति (पृष्ठ 1 से 49 सहित); तथा दिनांक 11.12.2024 का संकलन, जिसमें आबकारी विभाग का शपथपत्र एवं समय-समय पर प्रेषित निर्देश सम्मिलित हैं (पृष्ठ 1 से 32 सहित), के साथ-साथ उप आबकारी आयुक्त, प्रयागराज द्वारा दिनांक 17.12.2024 को निर्गत पत्र की प्रति, जिसमें विभाग द्वारा अभिगृहीत वाहनों का विवरण निहित है; तथा 5 ऑल. प्रोफेसर हरिश चन्द्र चौधरी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य 1063 की प्रति – इन समस्त अभिलेखों को इस आदेश की प्रति सहित समन्वय समिति द्वारा विचारार्थ मुख्य सचिव को प्रेषित किया जाए।

45.2 इस आदेश की एक प्रति समन्वय के लिए गृह विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार के कार्यालय को भेजी जाए।

45.3 इस आदेश की एक प्रति इस न्यायालय के महानिबंधक के माध्यम से उत्तर प्रदेश के सभी विद्वान जिला न्यायाधीशों को प्रेषित की जाए, यह सुनिश्चित करने के निर्देश के साथ कि निर्णय सभी न्यायिक अधिकारियों के बीच विधिवत परिचालित किया जाए।

45.4 महानिबंधक भी इस निर्णय की एक प्रति निदेशक जे.टी.आर.आई., लखनऊ को अभिलेखों और संदर्भ के लिए अग्रेषित करेंगे।

46. तदनुसार, आवेदन का **निस्तारण** ऊपर बताई गई शर्तों के अधीन किया जाता है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1063

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद, 02.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि

विशेष अपील संख्या 228 वर्ष 2025

के साथ

विशेष अपील संख्या 235 वर्ष 2025

और

विशेष अपील संख्या 309 वर्ष 2025

प्रो. हरीश चंद्र चौधरी एवं अन्य **... अपीलार्थीगण**

बनाम

भारत संघ एवं अन्य **... प्रत्यर्थीगण**

अनुवादित

अपीलार्थीगण की ओर से अधिवक्ता: श्री संकल्प नारायण, श्री श्रीवत्स नारायण, श्री जी.के. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता: ए.एस.जी.आई., श्री धनंजय अवस्थी, श्री हेम प्रताप सिंह, श्री अजीत कुमार सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

A. सेवा विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - रिट - पूर्व न्याय (रेस जुडिकाटा) का सिद्धांत - प्रयोज्यता - अंशदायी भविष्य निधि योजना से पेंशन योजना में परिवर्तन का लाभ प्राप्त करने का दावा - पात्रता - पात्रता का मुद्दा पक्षकारों के बीच वी.पी. सिंह के मामले में निर्णीत किया गया था - प्रभाव - विधि में किया गया परिवर्तन किस सीमा तक निर्णय की बाध्यकारी प्रकृति को प्रभावित कर सकता है - अभिनिर्धारित किया गया कि पक्षकारों के बीच किसी वाद-हेतु के संबंध में एक बार किया गया अधिनिर्णयन अंतिमता प्राप्त कर लेने के पश्चात उसे पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता - पक्षकारों के बीच उसी विवाद के संबंध में किया गया पूर्व अधिनिर्णयन प्रभावी बना रहता है और कोई त्रुटिपूर्ण निर्णय भी पक्षकारों के बीच पूर्व न्याय (रेस जुडिकाटा) के रूप में प्रभावी होता है तथा विधि में बाद में हुआ परिवर्तन ऐसे पूर्व अधिनिर्णयन को अमान्य नहीं करेगा– अपीलार्थीगण किसी राहत के हकदार नहीं होंगे, भले ही सर्वोच्च न्यायालय का तत्पश्चात् श्रीमती शशि किरण के मामले में दिया गया निर्णय उनके दावे का समर्थन करता हो। (पैरा 38, 48 एवं 50)

B. सेवा विधि - केंद्रीय विश्वविद्यालय सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1967 - पेंशन योजना - पात्रता - दिनांक 01.05.1987 का कार्यालय ज्ञापन - 09.07.1990 को नियुक्त अपीलार्थी, जो 01.01.1986 को बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की सेवा में नहीं था, पर इसकी प्रयोज्यता - अंशदायी भविष्य निधि योजना में सम्मिलित किए जाने के विरुद्ध आपत्ति की गई - प्रभाव - अभिनिर्धारित किया गया कि दिनांक 01.05.1987 के कार्यालय ज्ञापन के आधार पर वे सभी व्यक्ति, जो 01.01.1986 के पश्चात सेवा में आए थे, पेंशन योजना के अंतर्गत आच्छादित थे। ऐसे कर्मचारियों के लिए अंशदायी भविष्य निधि योजना में सम्मिलित किए जाने का कोई विकल्प उपलब्ध नहीं था। (पैरा 54 एवं 57)

विशेष अपील संख्या 309 वर्ष 2025 स्वीकार की जाती है तथा शेष अपीलें खारिज की जाती हैं। (ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. भारत संघ बनाम एम.के. सरकार; (2010) 2 एससीसी 59
2. कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय बनाम रमेश गुप्ता; (2000) 10 एससीसी 97
3. एस. रामचंद्र राव बनाम एस. नागभूषण राव एवं अन्य; 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1460
4. भारत संघ बनाम मद्रास टेलीफोन अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति सामाजिक कल्याण संघ; (2006) 8 एससीसी 662
5. भारत संचार निगम लिमिटेड एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य; (2006) 2 एससीआर 823
6. ए.आर. अंतुले बनाम आर.एस. नायक एवं अन्य; (1988) 2 एससीसी 602

(माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा द्वारा प्रदत्त)

1. ये अपीलें एकल न्यायाधीश के दिनांक 18.3.2025 के एक फैसले से उद्भूत हैं, जिसके तहत एकल न्यायाधीश ने दिल्ली विश्वविद्यालय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **श्रीमती शशि किरण और अन्य, 2022 (7) एस.सी.आर 957** के फैसले का लाभ देने से इनकार कर दिया है। एकल न्यायाधीश ने माना है कि श्रीमती शशि किरण (उपरोक्त) के मामले में निर्णय हालांकि एक निर्णय है, फिर भी प्रस्तुत मामले के तथ्यों में याचिकाकर्ताओं को इसका लाभ नहीं दिया जा सकता है।

2. रिट याचिकाओं के इस बैच में याचिकाकर्ता बनारस हिंदू विश्वविद्यालय (इसके बाद 'बी.एच.यू' के रूप में संदर्भित) के शिक्षण और गैर-शिक्षण कर्मचारी हैं। उनमें से कुछ सेवानिवृत्त भी हो चुके हैं। याचिकाकर्ता अखौरी सुधीर कुमार सिन्हा को छोड़कर, अन्य सभी याचिकाकर्ता 1.1.1986 से पहले बी.एच.यू में कार्यरत थे। ये सभी केंद्रीय विश्वविद्यालय सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1967 द्वारा शासित थे। इन नियमों के अनुसार, वे अंशदायी भविष्य निधि योजना (इसके बाद सी.पी.एफ. योजना के रूप में संदर्भित) के लाभ के हकदार थे। वे पेंशन योजना के अंतर्गत नहीं आते थे।

3. केंद्र सरकार के कर्मचारियों को भी सी.पी.एफ. योजना के दायरे में लाया गया। उन्हें पेंशन योजना में बदलने का विकल्प दिया गया था। सभी कर्मचारियों द्वारा इस विकल्प का प्रयोग नहीं किया गया और उनमें से कुछ को सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रखा गया। चौथे वेतन आयोग की सिफारिशों को केंद्र सरकार के कर्मचारियों के लिए 1.1.1986 से लागू किया गया था। आयोग की एक सिफारिश यह थी कि 1-1-1986 को सेवा में सभी सी.पी.एफ. लाभाथयों को उस तारीख को पेंशन योजना में शामिल माना जाना चाहिए, जब तक कि वे विशेष रूप से सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रखने का विकल्प नहीं चुनते हैं। यह निर्णय दिनांक 1.5.1987 के कार्यालय ज्ञापन के माध्यम से लागू किया गया था, जिसे इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

'अधोहस्ताक्षरी को यह बताने का निर्देश दिया जाता है कि अंशदायी भविष्य निधि योजना (सी.पी.एफ. योजना) द्वारा शासित केंद्र सरकार के कर्मचारियों को पेंशन योजना में आने के लिए पहले भी बार-बार विकल्प दिए गए हैं। इस तरह का अंतिम विकल्प कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग में दिया गया था। (अ) दिनांक 6 जून, 1985 की एक प्रति (अंग्रेज़ी तथा हिन्दी में)। तथापि, केन्द्रीय सरकार के कुछ कर्मचारी अभी भी केन्द्रीय सुरक्षा बल योजना के अंतर्गत बने हुए हैं। चौथे केंद्रीय वेतन आयोग ने अब सिफारिश की है कि 1 जनवरी, 1986 को सेवा में सभी सी.पी.एफ. लाभार्थियों को उस तारीख को पेंशन योजना में शामिल माना जाना चाहिए, जब तक कि वे विशेष रूप से सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रखने का विकल्प नहीं चुनते हैं।

2. सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद राष्ट्रपति को यह निर्णय लेते हुए प्रसन्नता होती है कि उक्त सिफारिश को स्वीकार किया जाएगा और इसके बाद बताए गए तरीके से कार्यान्वित किया जाएगा।

3. सभी सी.पी.एफ. लाभार्थी, जो 1.1.1986 को सेवा में थे और जो इन के जारी होने की तारीख को अभी भी सेवा में हैं। प्रो. हरीश चंद्र चौधरी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 1065 आदेशों को पेंशन योजना में आया माना जाएगा।

3.2. हालांकि, ऊपर उल्लिखित श्रेणी के कर्मचारियों के पास सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रखने का विकल्प होगा, यदि वे चाहें तो। यदि कर्मचारी सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रखना चाहते हैं तो विकल्प का प्रयोग करना होगा और संलग्न फॉर्म में 30.09.1987 तक संबंधित कार्यालय प्रमुख को सूचित करना होगा। यदि उपरोक्त तिथि तक कार्यालय प्रमुख द्वारा कोई विकल्प प्राप्त नहीं होता है, तो कर्मचारियों को पेंशन योजना में आने वाला माना जाएगा।

3.3. सी.पी.एफ. लाभार्थियों, जो 1.1.1986 को सेवा में थे, लेकिन अब सेवानिवृत्त हो चुके हैं और जिनके मामले में सी.पी.एफ. योजना के तहत सेवानिवृत्ति लाभों का भुगतान भी किया गया है, उनके पास पेंशन योजना के तहत अपने सेवानिवृत्ति लाभों की गणना करने का विकल्प होगा, बशर्ते कि वे सरकार को वापस कर दें, अंशदायी भविष्य निधि में सरकारी अंशदान और उस पर ब्याज, सी.पी.एफ. खाते के निपटान के समय उनके द्वारा आहरित किया गया। इस तरह के विकल्प का प्रयोग 30.09.1987 तक किया जाएगा।

3.4. सी.पी.एफ. लाभार्थियों के मामले में, जो 1.1.1986 को सेवा में थे, लेकिन तब से सेवानिवृत्त हो चुके हैं, और जिनके मामले में सी.पी.एफ. खाते का भुगतान पहले से ही नहीं किया गया है, उन्हें सेवानिवृत्ति लाभ की अनुमति दी जाएगी जैसे कि वे पेंशन योग्य प्रतिष्ठानों पर वहन किए गए थे, जब तक कि वे विशेष रूप से 30.09.1987 तक सी.पी.एफ. योजना के तहत अपने सेवानिवृत्ति लाभों का निपटान करने का विकल्प नहीं चुनते हैं।

सी.पी.एफ. लाभाथयों के मामले में 3.5 की सिफारिश की गई है, जो 1-1-1986 को सेवा में थे, लेकिन अब तक उनकी मृत्यु हो गई है। या तो सेवानिवृत्ति से पहले या सेवानिवृत्ति के बाद, मामले को प्रस्तर-

3.3 या 3.4 ऊपर, जैसा भी मामला हो। ऐसे मामलों में विधवा/विधुर द्वारा 30.09.1987 तक और विधवा/विधुर की अनुपस्थिति में परिवार के सबसे बड़े जीवित सदस्य द्वारा विकल्पों का प्रयोग किया जाएगा, जो अन्यथा परिवार पेंशन योजना के तहत पारिवारिक पेंशन के लिए पात्र होते, यदि ऐसी योजना लागू होती।

3.6 एक बार प्रयोग किया गया विकल्प अंतिम होगा।

3.7 प्रस्तर द्वारा आच्छादित किए गए मामलों के प्रकारों में

3.3 और 3.5 में अंशदायी भविष्य निधि में सरकार के अंशदान की वापसी के साथ-साथ सेवानिवृत्ति के समय आहरित ब्याज को शामिल करते हुए, राशि को 30 सितंबर, 1987 तक वापस करना होगा। यदि उक्त तिथि तक राशि वापस नहीं की जाती है, तो 30.9.1987 से आगे की देरी की अवधि के लिए उस पर साधारण ब्याज 10% प्रति वर्ष की दर से देय होगा।

4. दिनांक 1.5.1987 के कार्यालय ज्ञापन में प्रावधान किया गया है कि 1.1.1986 को सेवा में सभी सी.पी.एफ. लाभार्थी उस तारीख को पेंशन योजना में आ गए, जब तक कि वे (सी.पी.एफ. लाभार्थियों) ने विशेष रूप से सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रखने का विकल्प नहीं चुना। यह स्पष्ट है कि कार्यालय ज्ञापन उन लोगों पर लागू था जो 1.1.1986 को सेवा में थे। यह उन कर्मचारियों के लिए भी लागू किया गया था जो 1.1.1986 के बाद सेवानिवृत्त हुए थे।

5. दिनांक 1.5.1987 के पूर्वोक्त कार्यालय ज्ञापन ने सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रखने के विकल्प का प्रयोग करने के लिए 30 सितंबर, 1987 के रूप में कट-ऑफ तिथि निर्धारित की।

6. बी.एच.यू ने 24/26 सितंबर, 1987 को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (इसके बाद 'यू.जी.सी.' के रूप में संदर्भित) से इस विषय पर आदेशों को सूचित करने का अनुरोध किया। इसके अलावा, बी.एच.यू में दिनांक 1-5-1987 के कार्यालय ज्ञापन के कार्यान्वयन के लिए भी अनुमोदन मांगा गया था। इसके बाद, बी.एच.यू के निबंधक द्वारा 9.4.1988 को एक अधिसूचना जारी की गई, जिसमें यह प्रावधान किया गया कि बी.एच.यू के कर्मचारी सी.पी.एफ. योजना से पेंशन योजना को अपनाने के लिए तैयार हो जाएंगे जब तक कि सी.पी.एफ. योजना के तहत 9 जुलाई, 1988 तक जारी रखने के विकल्प का उपयोग नहीं किया जाता है। बी.एच.यू के

निबंधक का यह आदेश बी.एच.यू की कार्यकारी परिषद द्वारा पारित एक प्रस्ताव के अनुसार था, जिसे इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

'मुझे आपको सूचित करने का निर्देश दिया गया है कि उपरोक्त विषय पर भारत सरकार के आदेशों को विश्वविद्यालय के कर्मचारियों पर लागू करने का निर्णय लिया गया है। तदनुसार, सीपीपी/पीएफ योजना पर विश्वविद्यालय के सभी कर्मचारी जो 1-1-1986 को सेवा में थे, उन्हें पेंशन योजना में शामिल माना जाएगा। 2. हालांकि, ऊपर उल्लिखित श्रेणी के कर्मचारियों के पास पीएफ/सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रखने का विकल्प होगा, यदि वे चाहें तो। इस विकल्प का प्रयोग करना होगा और संलग्न प्रपत्र में 9 जुलाई, 1988 तक इस कार्यालय को सूचित करना होगा। यदि इस तिथि तक कोई विकल्प प्राप्त नहीं होता है तो कर्मचारी को पेंशन योजना में आने वाला माना जाएगा। ..... "

7. सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रखे जाने वाले दिनांक 1.5.1987 के कार्यालय ज्ञापन के संदर्भ में विकल्प को बाद में बी.एच.यू द्वारा अपने स्तर पर, 12.5.1995, 29.8.1995 और 4.12.1995 को अपने कर्मचारियों के लिए विस्तारित किया गया था।

8. वर्तमान समूह के सभी रिट याचिकाकर्ताओं ने सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रखने का विकल्प चुना, जैसा कि पहले से उन पर लागू था। इसलिए, ये व्यक्ति पेंशन योजना में नहीं आए।

9. ऐसा प्रतीत होता है कि पांचवें वेतन आयोग की रिपोर्ट की सिफारिशों को 1.1.1996 से लागू किया गया था, जो पेंशन योजना के तहत आच्छादित किए गए कर्मचारियों के पक्ष में काफी हद तक थे। बी.एच.यू के जिन कर्मचारियों ने सी.पी.एफ. योजना के तहत बने रहने का विकल्प चुना था, उन्होंने पेंशन योजना का विकल्प चुनने के लिए एक और अवसर देने का अनुरोध किया। इस अनुरोध पर विचार करने के लिए कुलपति द्वारा एक समिति का गठन किया गया था। समिति ने 13-1-2001 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें दो माह की अवधि के भीतर ऐसे विकल्प का प्रयोग करने के लिए एक और अवसर प्रदान करने की सिफारिश की गई थी। इस सिफारिश को प्रारंभ में बी.एच.यू के कुलपति द्वारा 20 मार्च, 2001 और 18 जनवरी, 2002 को स्वीकार किया गया था। तथापि, जब 19-20 जुलाई, 2002 को अवधारित बी.एच.यू की कार्यकारी परिषद की बैठक में इस मामले को उठाया गया तो परिषद ने कुलपति के इस निर्णय को अनुमोदित करने पर खेद व्यक्त किया। विकल्प का प्रयोग करने के लिए और अवसर प्रदान करने के लिए बी.एच.यू के अनुरोध को भी भारत सरकार और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा 22-7-2003, 23-9-2003 और 20-10-2003 को अस्वीकार कर दिया गया था। ऐसे सभी निर्णयों को रिट याचिका संख्या-32101 वर्ष 2004 (डॉ. वी.पी. सिंह और अन्य बनाम कार्यकारी परिषद बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी और अन्य) और 28790 वर्ष 2004 (प्रोफेसर मृत्युंजय भट्टाचार्य बनाम कार्यकारी परिषद, बी.एच.यू, वाराणसी और अन्य) में चुनौती दी गई थी। इस समूह के कई याचिकाकर्ता इसी विषय पर पक्षों के बीच मुकदमेबाजी के पहले दौर में भी याचिकाकर्ता थे। जवाबी हलफनामे

के प्रस्तर-24 में बी.एच.यू ने कहा है कि याचिकाकर्ता संख्या-1, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 13, 15, 16, 18, 19, 21, 22, 23, 25 और 26 रिट याचिका संख्या-32101 वर्ष 2004 में याचिकाकर्ता थे।

10. मुकदमेबाजी के पहले दौर में याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि पांचवें वेतन आयोग ने कर्मचारियों के पक्ष में वेतन पैकेज में भारी संशोधन किया था। प्रो. हरीश चंद्र चौधरी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 1067 जिन्होंने सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रहने वालों की तुलना में पेंशन योजना का विकल्प चुना था।

11. इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने एक विस्तृत निर्णय द्वारा यह देखते हुए रिट याचिका को खारिज कर दिया कि बी.एच.यू पूरी तरह से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के माध्यम से केंद्र सरकार द्वारा वित्त पोषित है, और यह कि कर्मचारियों को सी.पी.एफ. योजना से पेंशन योजना में बदलने के लिए अतिरिक्त विकल्प देने की अनुमति देने के लिए यू.जी.सी. या केंद्र सरकार द्वारा कोई मंजूरी नहीं दी गई थी। इस खंडपीठ के फैसले ने पक्षों के बीच हस्तक्षेप को अंतिम रूप दे दिया है।

12. दिल्ली विश्वविद्यालय के कर्मचारियों ने दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष सी.पी.एफ. योजना के स्थान पर पेंशन योजना का विकल्प चुनने का एक और मौका देने की याचिका भी दायर की थी। दिल्ली उच्च न्यायालय ने इस आधार पर ऐसी याचिका को अनुमति दी कि 30 सितम्बर, 1987 के बाद कुलपति द्वारा पेंशन योजना को अपनाने के विकल्प का प्रयोग करना कोई वास्तविक नहीं था।

13. बी.एच.यू की कार्यकारी परिषद ने दिल्ली उच्च न्यायालय के दिनांक 30.04.2014 के निर्णय पर भरोसा करते हुए 29.6.2014 को एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय को बी.एच.यू के कर्मचारियों तक विस्तारित किया गया। बी.एच.यू के कर्मचारियों को सी.पी.एफ. योजना से पेंशन योजना में बदलने का एक और अवसर दिया गया।

14. दिल्ली उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने दिनांक 30.4.2014 के अपने फैसले में दिल्ली विश्वविद्यालय के कर्मचारियों को तीन अलग-अलग क्षमताओं में वर्गीकृत किया, अर्थात (i) जहां कर्मचारी द्वारा सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रखने के लिए कोई विकल्प नहीं चुना गया था, फिर भी सी.पी.एफ. योजना के तहत कटौती जारी रही (जिसे विरमानी का मामला कहा जाता है); (ii) सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रखने के विकल्प का प्रयोग 30 सितम्बर, 1987 के बाद किया गया था (जिसे एनसी बख्शी का मामला कहा गया है); (iii) जहां 30 सितम्बर, 1987 से पहले सी.पी.एफ. स्कीम (जिसे शशि किरण बैच कहा जाता है) के अंतर्गत जारी रखने के विकल्प का प्रयोग किया गया था। एकल न्यायाधीश ने पहली दो श्रेणी में रिट याचिकाओं को अनुमति दी, जबकि तीसरी श्रेणी में आने वाली रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया गया।

15. एकल न्यायाधीश के फैसले को दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष पत्र पेटेंट अपील में चुनौती दी गई थी, जिस पर 24 अगस्त, 2016 को फैसला सुनाया गया था। खंडपीठ ने पहले दो श्रेणी के मामलों में एकल

न्यायाधीश के फैसले की पुष्टि करते हुए तीसरी श्रेणी के मामलों यानी शशि किरण बैच की याचिकाओं में भी दावे की अनुमति दी।

16. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, उच्च शिक्षा विभाग, भारत सरकार ने भी दिल्ली विश्वविद्यालय को दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले के आलोक में उचित कार्रवाई करने के लिए प्रशासनिक निर्देश जारी किए।

17. बी.एच.यू की कार्यकारी परिषद ने हालांकि दिल्ली उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के फैसले के संदर्भ में कर्मचारियों के अनुरोध पर विचार करने के लिए दिनांक 29.6.2014 का प्रस्ताव पारित किया था, फिर भी इसे लागू करने से पहले, परिषद को अवगत कराया गया था कि एकल न्यायाधीश के 30.4.2014 के फैसले के खिलाफ एक अपील दायर की गई थी। इसलिए कार्यकारी परिषद ने 29.9.2015 को दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष दायर अपील पर अद्यतन जानकारी के साथ मामले को अपने समक्ष रखने का संकल्प लिया। तदनुसार, 24.8.2016 को खंड पीठ के फैसले के बाद कि इस मुद्दे को 30.3.2017 को कार्यकारी परिषद के समक्ष फिर से रखा गया था। कार्यकारी परिषद ने निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किए:

"संकल्प लिया गया कि सी.पी.एफ. को जी.पी.एफ. में बदलने के अनुरोध को माननीय उच्च न्यायालय, दिल्ली के दिनांक 24.8.2016 के निर्णय और यू.जी.सी./एमएचआरडी को सूचित करने के तहत मानव संसाधन विकास मंत्रालय के दिनांक 23.01.2017 के आदेशों के अनुसार अनुमोदित और विनियमित किया जाए।

18. दिनांक 24.8.2016 के खंड पीठ के फैसले को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील में पेश किया गया था। न्यायालय द्वारा दिनांक 10.5.2022 के फैसले के माध्यम से सभी तीन श्रेणी के मामलों का निर्णय लिया गया। दिल्ली उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिए गए निर्णय की पुष्टि सी.पी.एफ. योजना के तहत अंशदान को 8 प्रतिशत प्रति वर्ष साधारण ब्याज के साथ वापस लेने के मामूली संशोधन के साथ की गई थी। श्रीमती शशि किरण (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अनिवार्य रूप से अपीलकर्ता के दावे का आधार बनता है जिसे पेंशन योजना में परिवर्तित करने की अनुमति दी जाती है।

19. प्रस्तुत मामले के तथ्यों में, हम दूसरी श्रेणी के मामलों (विशेष अपील संख्या-309 वर्ष 2025 को छोड़कर) से निपट रहे हैं, जहां सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रखने के विकल्प का प्रयोग दिनांक 1.5.1987 यानी 30 सितंबर, 1987 के कार्यालय ज्ञापन में इंगित कटऑफ तिथि के बाद किया गया था। इस श्रेणी के मामलों को उच्चतम न्यायालय ने एनसी बख्शी के मामले के रूप में वर्गीकृत किया है।

20. दिलचस्प बात यह है कि जब बी.एच.यू ने दिल्ली उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के फैसले का पालन करने का निर्णय लिया, तो उसने न तो यू.जी.सी. से परामर्श किया था, न ही इस मामले में केंद्र सरकार की राय ली गई थी। उनसे भी कोई मंजूरी नहीं मिली। इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पक्षों के बीच दिए गए निर्णय के प्रभाव, जो अंतिम रूप प्राप्त कर चुके थे, की भी जांच नहीं की गई।

21. बी.एच.यू के कुलपति ने 29.9.2022 को सचिव, उच्च शिक्षा विभाग, भारत सरकार को एक पत्र भेजा, जिसमें दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले से उद्भूत होने वाली अपीलों में भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किए गए निर्णय के संदर्भ में सी.पी.एफ. के तहत कर्मचारियों को जी.पी.एफ. पेंशन योजना में स्थानांतरित करने के लिए मंत्रालय की सहमति मांगी गई थी। बी.एच.यू के इस अनुरोध को केन्द्र सरकार ने स्वीकार नहीं किया।

22. इसलिए कुछ याचिकाकर्ताओं द्वारा सी.पी.एफ. योजना से जी.पी.एफ. योजना में माइग्रेशन से संबंधित कारण के संबंध में रिट-ए संख्या-15158 वर्ष 2022 दायर किया गया था। इस रिट याचिका का निपटारा 29.11.2022 को किया गया, जिसमें केंद्र सरकार को सही तथ्यों को सत्यापित करने और ऐसे कारणों के संबंध में उचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया। यह भी प्रावधान किया गया था कि यदि राशि देय पाई जाती है और देय होती है, तो उसका भुगतान तीन महीने की अवधि के भीतर किया जाएगा अन्यथा इस पर @ 8% प्रति वर्ष ब्याज लग सकता है।

23. इसके बाद शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार ने 3.4.2023 को एक आदेश पारित किया, जिसमें दिल्ली विश्वविद्यालय के कर्मचारियों के संबंध में किए गए निर्णय के आधार पर सी.पी.एफ. योजना से जी.पी.एफ. योजना में माइग्रेशन का लाभ देने से इनकार कर दिया गया। केन्द्र सरकार का यह विचार था कि दिल्ली विश्वविद्यालय के कर्मचारियों के संबंध में दिया गया निर्णय अन्य केन्द्रीय विश्वविद्यालयों पर लागू नहीं होता है।

24. केंद्र सरकार द्वारा दिनांक 26.4.2023 को पारित आदेश में उल्लेख किया गया कि दिल्ली विश्वविद्यालय के कर्मचारियों के संबंध में कार्यालय ज्ञापन, दिनांक 1.5.1987 को अपनाने के विषय में दिनांक 25.5.1987 का एक पृथक आदेश जारी था। अतः इसे अपीलकर्ताओं 5 ऑल. प्रोफेसर हरिश चन्द्र चौधरी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य 1069 को असफल घोषित करने के एक अतिरिक्त आधार के रूप में लिया गया। परिणामस्वरूप, दिनांक 3.4.2023 एवं 26.4.2023 के आदेशों को उक्त न्यायालय में याचिकाओं के माध्यम से चुनौती दी गई।

25. एकल न्यायाधीश ने कहा है कि दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय तथ्यों पर अलग है। न्यायाधीश ने यह भी कहा है कि हालांकि केंद्र सरकार के आदेश उसमें उल्लिखित आधारों के लिए टिकाऊ/पुख्ता नहीं हैं क्योंकि बी.एच.यू ने भी प्रस्तुत मामले में इस योजना को अपनाया था और सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय व्यक्तिगत रूप से नहीं बल्कि एक निर्णय था और केंद्र सरकार का विपरीत दृष्टिकोण सही नहीं है। फिर भी तथ्य अलग-अलग होने के कारण, अपीलकर्ताओं को किसी भी राहत का हकदार नहीं माना गया है। तदनुसार रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया गया है।

26. अपीलकर्ताओं के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जीके सिंह ने प्रस्तुत किया कि दिनांक 1.5.1987 के कार्यालय ज्ञापन के तहत सी.पी.एफ. से पेंशन योजना में स्विच ओवर, स्वचालित था, जब तक कि कर्मचारी ने अन्यथा

विकल्प नहीं चुना। इस विकल्प का प्रयोग केवल 30.9.1987 तक किया जाना था। **दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण और अन्य, 2022 (7) एस.सी.आर 957** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर, 30.9.1987 के बाद अपनाया गया कोई भी विकल्प अर्थहीन है और इसलिए, सभी अपीलकर्ता पेंशन योजना के हकदार हैं। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता सी.पी.एफ. योजना के तहत प्राप्त लाभों को 8% ब्याज के साथ वापस करने का वचन देते हैं।

27. श्री सिंह ने आगे तर्क दिया कि 2011 में खंड पीठ द्वारा किए गए पिछले निर्णय ने अपनी प्रभावकारिता खो दी है क्योंकि नियोक्ता यानी बी.एच.यू ने बाद में दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले के आधार पर इस मामले में एक अलग दृष्टिकोण लेने का संकल्प लिया है, जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है और इसलिए, सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए विवाद श्रीमती शशि किरण (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से समाप्त हो गया है।

28. इसके विपरीत, श्री अजीत कुमार सिंह, बी.एच.यू के लिए श्री एच.पी. सिंह और श्री मनोज कुमार सिंह की सहायता से भारत के अतिरिक्त महान्यायवादी श्री एस.पी. सिंह ने अपील में की गई प्रार्थना का इस आधार पर विरोध किया कि एकल न्यायाधीश के समक्ष उठाए गए विवाद पर इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पहले निर्णय दिया गया था और, इसलिए, दिल्ली उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के बाद के फैसले का इस मुद्दे को फिर से खोलने का प्रभाव नहीं हो सकता है। एक बार अपीलकर्ताओं के खिलाफ विवाद सुलझ जाने के बाद इसे पुनर्जीवित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। प्रतिपक्षियों द्वारा यह भी आग्रह किया गया है कि एकल न्यायाधीश ने सही ढंग से माना है कि प्रस्तुत मामले के तथ्य अलग-अलग हैं।

29. हमने श्री जी.के. सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री संकल्प नारायण की सहायता से सुना है; श्री अजीत कुमार सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री हेम प्रताप सिंह, बी.एच.यू के अधिवक्ता; भारत के अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल श्री एस.पी. सिंह ने भारत संघ की ओर से श्री मनोज कुमार सिंह की सहायता प्राप्त को सुना, और अभिलेखों पर मौजूद सामग्रियों का अवलोकन किया।

30. अपीलों के इस समूह (विशेष अपील संख्या-309 वर्ष 2025 को छोड़कर) में अपीलकर्ता 1.1.1986 को बी.एच.यू के रोजगार में थे। इन व्यक्तियों ने सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रखने के विकल्प का प्रयोग किया था। केन्द्रीय पुलिस बल योजना के अंतर्गत, केन्द्रीय विश्वविद्यालय सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1967 के अनुसरण में, उन्हें शामिल किया गया था। उनकी ओर से निवेदन यह है कि उनके द्वारा विकल्प का प्रयोग कार्यालय ज्ञापन में कट-ऑफ तिथि, दिनांक 1.5.1987 के बाद किया गया था। यह प्रस्तुत किया जाता है कि कट-ऑफ तिथि यानी 30 सितंबर, 1987 के बाद विकल्प का प्रयोग कानून में एक वैध विकल्प नहीं माना जा सकता है और इसलिए, वे एनसी बख्शी के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा इंगित शर्तों के समान शर्तों पर पेंशन योजना में आने के हकदार हैं। कानून में इस स्थिति को अन्यथा श्रीमती शशि किरण (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदित किया गया है।

31. जहां तक कट-ऑफ तिथि यानी 30 सितंबर, 1987 के बाद अपीलकर्ताओं द्वारा विकल्प के प्रयोग के संबंध में तथ्यात्मक पहलू का संबंध है, इस पर कोई मुद्दा नहीं है। यहां तक कि प्रतिपक्षीगण ने भी स्वीकार किया कि कट-ऑफ तिथि के बाद उनके द्वारा इस तरह के विकल्प का प्रयोग किया गया था। कार्यालय ज्ञापन के संदर्भ में, सी.पी.एफ. से पेंशन योजना में स्विच ओवर स्वचालित था। जब तक कार्यालय ज्ञापन में दर्शाए गए समय के भीतर विकल्प का प्रयोग नहीं किया जाता था, दिनांक 1.5.1987 को, पेंशन योजना में स्विच करना इसका परिणाम था। एकल न्यायाधीश ने भी इस संबंध में अपीलकर्ताओं के दावे को स्वीकार कर लिया है।

32. अपीलकर्ताओं के इस तर्क को स्वीकार करने के बाद कि सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रखने के लिए उनके द्वारा विकल्प का प्रयोग कार्यालय ज्ञापन, दिनांक 1.5.1987 के तहत अनुमेय था, फिर भी मामले के तथ्यों में मांगी गई राहत से इनकार कर दिया गया है। एकल न्यायाधीश के फैसले के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाएगा कि अपीलकर्ताओं के दावे को गुण-दोष के आधार पर स्वीकार कर लिया गया है। प्रस्तर-21, 22 और 23 में एकल न्यायाधीश के निर्णय में निहित चर्चाओं को फिर से प्रस्तुत किया गया है: -

"21. मामले का तथ्यात्मक पहलू जो निर्विवाद प्रतीत होता है, वह यह है कि भारत संघ ने दिनांक 01.05.1987 को कार्यालय ज्ञापन जारी किया है कि सी.पी.एफ. लाभार्थी जो 01.01.1986 को सेवा में थे और कार्यालय ज्ञापन जारी करने की तारीख यानी 01.05.1987 को अभी भी सेवा में थे, उन्हें जी.पी.एफ.-सह-पेंशन योजना में आने वाला माना जाएगा, सिवाय इसके कि उन्होंने 30.09.1987 तक सी.पी.एफ. योजना में बने रहने के अपने विकल्प का प्रयोग किया है और जहां तक वर्तमान याचिकाकर्ताओं के मामले का संबंध है, दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवधारित उक्त कार्यालय ज्ञापन की व्याख्या, यह है कि कट-ऑफ तिथि, अर्थात् 30.09.1987 के पश्चात प्रदत्त कोई भी विकल्प, यदि कर्मचारियों को सीपीएफ योजना में बने रहने का अवसर दिया गया हो, वह अमान्य होगा। याचिकाकर्ताओं के अनुसार, उन्होंने उक्त तिथि तक अपना विकल्प प्रस्तुत नहीं किया, अतः उन्हें जीपीएफ-कम-पेंशन योजना में शामिल माना जाएगा, भले ही उन्होंने उक्त तिथि के पश्चात विकल्प प्रस्तुत किया हो। न्यायालय को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा योजना को अपनाने की तिथि, अर्थात् 09.04.1988 और कट-ऑफ तिथि 09.07.1988 के प्रभाव पर विचार करना आवश्यक है।

22. याचिकाकर्ताओं के वरिष्ठ अधिवक्ताओं ने इस व्याख्या पर जोर दिया है कि याचिकाकर्ताओं ने कट ऑफ तिथि, यानी 30.09.1987 के बाद सी.पी.एफ. योजना में बने रहने का विकल्प दिया है, इसलिए, उनके विकल्प गैर-कानूनी थे और उन्हें पहले से ही जी.पी.एफ.-सह-पेंशन योजना में बदलने के लिए माना गया था और वे तैयार हैं कि यदि उनकी प्रार्थनाएं स्वीकार कर ली जाती हैं, वे उचित ब्याज के साथ बहुत ही कम अवधि के भीतर सी.पी.एफ. के संघ के अंशदान को वापस कर देंगे। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा विकल्प देने के लिए निर्धारित तिथि 30.09.1987 से परे थी, इसलिए इसका कोई कानूनी परिणाम नहीं होगा।

23. न्यायालय का मत है कि ऊपर उल्लिखित विधिक स्थिति के संदर्भ में कोई विवाद नहीं है और जैसा कि दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण में सर्वोच्च न्यायालय ने अति विशिष्ट शब्दों में माना है। अतः 30.09.1987 के पश्चात दिए गए विकल्प के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून का पालन किया जाना अनिवार्य है। तथापि, कुछ तथ्य वर्तमान मामलों को अभी भी भिन्न बनाते हैं।

33. एकल न्यायाधीश ने **नीरजा टीकू बनाम स्कूल ऑफ प्लानिंग एंड आर्किटेक्चर और अन्य, 2024: डीएचसी:2891** में दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए कहा है कि दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय का निर्णय व्यक्तिगत रूप से नहीं बल्कि एक निर्णय है। एकल न्यायाधीश ने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया है कि दिल्ली उच्च न्यायालय के लाभ का विस्तार करने के लिए बी.एच.यू के संकल्प को अस्वीकार करने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा आग्रह किए गए आधार भी टिकाऊ/पुख्ता नहीं हैं। इसलिए, गुण-दोष के आधार पर, हम पाते हैं कि एकल न्यायाधीश ने अपीलकर्ताओं के दावे को स्वीकार कर लिया है। एकमात्र कारण जिस पर अपीलकर्ताओं को राहत से वंचित किया गया है, वह निर्णय के प्रस्तर-29 में प्रतिपक्षियों की प्रस्तुति है, जिसे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

29. न्यायालय इस बात पर भी ध्यान देता है कि याचिकाकर्ताओं की इसी तरह की प्रार्थना को इस न्यायालय द्वारा दिनांक 12.08.2011 के फैसले के माध्यम से पहले ही खारिज कर दिया गया था और केवल इस आधार पर कि बाद में दिल्ली उच्च न्यायालय की एकल पीठ द्वारा कानून की एक अलग व्याख्या दी गई थी, जिसकी खंडपीठ द्वारा पुष्टि की गई थी और उसके बाद दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई थी और चूंकि याचिकाकर्ता इन निर्णयों के बाद अधिकारियों से संपर्क कर रहे थे, यह आधार नहीं देगा कि उक्त निर्णय याचिकाकर्ताओं पर इतना लागू होता है जितना कि पहले का निर्णय आड़े नहीं आएगा।

34. हम पहले ही देख चुके हैं कि अधिकांश अपीलकर्ताओं ने पहले बी.एच.यू के समक्ष पेंशन योजना पर स्विच करने का एक और अवसर प्रदान करने का दावा किया था। अपीलकर्ता जैसे व्यक्ति अपने आप में एक वर्ग का गठन करते हैं क्योंकि सी.पी.एफ. योजना से पेंशन योजना में स्विच करने का उनका दावा समान रूप से रखा गया है। बी.एच.यू के ऐसे अधिकांश कर्मचारियों (इस समूह में अधिकांश अपीलकर्ताओं सहित) ने इस संबंध में अपना दावा उठाया था। अपीलकर्ताओं की इस दलील पर एक समिति द्वारा विचार किया गया था और कुलपति ने भी ऐसी सिफारिशों को मंजूरी दे दी थी, बशर्ते कि कार्यकारी परिषद द्वारा इसकी मंजूरी दी जाए। हालांकि, कार्यकारी परिषद ने सी.पी.एफ. से पेंशन योजना में बदलने के लिए इस तरह के अवसर प्रदान करने के लिए कुलपति के आदेशों को मंजूरी देने पर खेद व्यक्त किया। इसके बाद अधिकांश अपीलकर्ता रिट याचिका संख्या-32101 वर्ष 2004 और 28790 वर्ष 2004 दायर करके इस न्यायालय में आए। इस न्यायालय की खंडपीठ ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि रिट याचिकाकर्ता केंद्रीय विश्वविद्यालय सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1967 द्वारा आच्छादित किए गए थे, जो सी.पी.एफ. योजना की प्रयोज्यता के लिए प्रदान करता था। बाद में इन व्यक्तियों द्वारा सी.पी.एफ. योजना को जारी रखने के विकल्प का भी प्रयोग किया गया था। इस न्यायालय की खंडपीठ

ने **भारत संघ बनाम एमके सरकार, (2010) 2 एस.सी.सी. 59** में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने पेंशन योजना में बदलने के लिए सेवानिवृत्ति के 22 साल बाद किए गए अभ्यावेदन को खारिज कर दिया था। इस न्यायालय ने डॉ. वी.पी. सिंह (उपरोक्त) में इस तथ्य पर भी ध्यान दिया कि नई पेंशन योजना 1.1.2004 के बाद केंद्र सरकार में शामिल होने वाले सभी कर्मचारियों के लिए लागू हो गई थी। इस संदर्भ में डॉ. वी.पी. सिंह के मामले में इस न्यायालय ने बी.एच.यू के कर्मचारियों को सी.पी.एफ. योजना से पेंशन योजना में बदलने के लिए राहत देने से इनकार कर दिया। तब तक कई अपीलकर्ता सेवानिवृत्त भी हो चुके थे। याचिकाकर्ताओं के दावे को खारिज करने में न्यायालय के साथ ये विचार प्रबल हुए। खंड पीठ के समक्ष रिट याचिका लगभग 100 कर्मचारियों द्वारा दायर की गई थी। डॉ. वी.पी. सिंह के मामले में इस न्यायालय के निर्णय को अंतिम रूप दे दिया गया है। वर्तमान समूह के अधिकांश अपीलकर्ता मुकदमेबाजी के पहले दौर में भी याचिकाकर्ता थे। उन्होंने खंडपीठ के फैसले को स्वीकार कर लिया है और इसके खिलाफ उच्चतम न्यायालय में कोई अपील दायर नहीं की है। इसलिए, प्रतिपक्षियों के सबमिशन का जोर यह है कि अपीलकर्ताओं को उस मुद्दे को फिर से आंदोलन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है जिसने उनके खिलाफ पक्षों के बीच अंतिम रूप प्राप्त कर लिया है। जिन लोगों ने डॉ. वीपी सिंह की रिट में शामिल नहीं हुए थे, उन लोगों पर आरोप है कि उन्होंने पेंशन योजना का विकल्प चुनने के लिए कोई नया विकल्प नहीं देने के कार्यकारी परिषद के फैसले को स्वीकार कर लिया है।

35. अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित श्री जीके सिंह ने यह कहकर इस आपत्ति से बाहर निकलने का प्रयास किया कि बाद में कार्यकारी परिषद ने बी.एच.यू के कर्मचारियों को दिल्ली उच्च न्यायालय का लाभ देने का निर्णय लिया है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि एक बार जब बी.एच.यू ने स्वयं ऐसे कर्मचारियों के दावे को स्वीकार कर लिया है, तो बाद में, डॉ. वी.पी. सिंह मामले में इस न्यायालय द्वारा पहले के निर्णय के आधार पर अपीलकर्ताओं के खिलाफ रेस जुडिकाटा की याचिका पर दबाव नहीं डाला जा सकता है। इस प्रकार यह आग्रह किया जाता है कि अपीलकर्ताओं के लिए एक नया कारण उत्पन्न हुआ है और पिछली रिट याचिका को खारिज करने से संबंधित परिस्थिति अपीलकर्ताओं को राहत देने के रास्ते में नहीं आ सकती है।

36. श्री संकल्प नारायण, श्री जी.के सिंह की सहायता करने वाले अधिवक्ता ने **कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय बनाम रमेश गुप्ता, (2000) 10 एस.सी.सी. 97** में उच्च न्यायालय के एक फैसले पर अवलंबन किया है कि कुछ समान परिस्थितियों में जहां विश्वविद्यालय ने पहले संबंधित कर्मचारी को राहत देने से इनकार कर दिया था और इस तरह के निर्णय की रिट याचिका को खारिज करने के साथ भी पुष्टि की गई थी, फिर भी इस तरह के लाभ का विस्तार करने के लिए विश्वविद्यालय के बाद के निर्णय को लागू करने का निर्देश दिया गया था। रमेश गुप्ता (उपरोक्त) में न्यायालय का निर्णय पुन: प्रस्तुत किया जाता है: -

"विश्वविद्यालय ने पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय के उस फैसले का विरोध किया है जिसमें विश्वविद्यालय से कार्यकारी परिषद के 26-4-1994 के प्रस्ताव को लागू करने का आह्वान किया गया था, जिसके द्वारा कार्यकारी परिषद ने न्यायमूर्ति सोढ़ी की सिफारिश को मंजूरी दी थी और विश्वविद्यालय के एक कर्मचारी को

वेतन का भुगतान करने का फैसला किया था। वर्णित तथ्यों से, ऐसा प्रतीत होता है कि पहले विश्वविद्यालय ने स्वयं संबंधित कर्मचारी को वेतन के प्रश्न पर विचार किया था और 16-11-1985 के एक प्रस्ताव द्वारा प्रश्न में राहत प्रदान नहीं की थी। 16-11-1985 को विश्वविद्यालय का वह संकल्प अंतिम हो गया क्योंकि इसके खिलाफ दायर रिट याचिका को खारिज कर दिया गया था और 1986 में इस न्यायालय में विशेष अनुमति याचिका भी खारिज कर दी गई थी। वर्ष 1994 में कर्मचारी द्वारा दायर किए जाने पर विश्वविद्यालय के उपरोक्त निर्णय को अंतिम रूप देने के बावजूद, कार्यकारी परिषद ने उक्त अभ्यावेदन को न्यायमूर्ति सोढ़ी की अध्यक्षता वाली एक समिति को भेजना उचित समझा, और उस समिति ने सभी प्रासंगिक सामग्रियों पर विचार करने के बाद निर्णय लिया कि कर्मचारी का वेतन क्या होना चाहिए और किस तारीख से प्रभावी होना चाहिए। न्यायमूत सोढ़ी समिति की उक्त सिफारिश को कार्यकारी परिषद द्वारा दिनांक 26-4-1994 के संकल्प द्वारा अनुमोदित किया गया था। लेकिन कार्यकारी परिषद के उपर्युक्त संकल्प के बावजूद, चूंकि इसे विश्वविद्यालय द्वारा कार्यान्वित नहीं किया गया था, संबंधित कर्मचारी ने संकल्प में निहित निर्देशों का पालन करने के लिए विश्वविद्यालय को परमादेश जारी करने के लिए उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश जारी करने के बाद, विश्वविद्यालय ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। विश्वविद्यालय की ओर से पेश श्री सांघी का तर्क है कि उच्च न्यायालय के पास 26-4-1994 के कार्यकारी परिषद के प्रस्ताव के अनुसार संबंधित कर्मचारी को राहत देने के लिए विश्वविद्यालय को कोई परमादेश जारी करने का कोई अधिकार नहीं है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि कार्यकारी परिषद का उक्त संकल्प बिल्कुल नहीं है, यह संविधि के प्रावधानों के अनुरूप नहीं है। विश्वविद्यालय संविधि की प्रासंगिक सामग्री की जांच करने पर, हमें इसमें कोई बल नहीं मिलता है। कार्यकारी परिषद विश्वविद्यालय संविधि के तहत विश्वविद्यालय का ही एक हिस्सा है। कुलाधिपति के पास विश्वविद्यालय के किसी भी प्राधिकारी की ऐसी कार्यवाहियों को रद्द करने की शक्ति है जो उनकी राय में अधिनियम, संविधि या अध्यादेश के अनुरूप नहीं है। कार्यकारी परिषद का संकल्प वर्ष 1994 का होने के कारण और कुलाधिपति ने संविधि के अनुसार उस शक्ति का प्रयोग नहीं किया है, यह अच्छी तरह से माना जा सकता है कि उक्त संकल्प संविधि या अध्यादेश के प्रावधानों के अनुरूप है या कम से कम कुलाधिपति ने स्वयं कार्यकारी परिषद के उक्त संकल्प में हस्तक्षेप करना कभी उचित नहीं समझा। एक बार जब कुलाधिपति द्वारा अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए कार्यकारी परिषद के संकल्प को रद्द नहीं किया जा रहा है, तो उस संकल्प से होने वाले लाभों को निश्चित रूप से विश्वविद्यालय को परमादेश जारी करके कानून की अदालत द्वारा लागू किया जा सकता है, जो कोई और नहीं बल्कि एक प्राधिकरण है जिस पर रिट जारी की जा सकती है। इसलिए, हम उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्देश के साथ कोई कमजोरी नहीं देखते हैं ताकि इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जा सके। विशेष अनुमति याचिका खारिज की जाती है।

37. इसलिए, प्रस्तुत अपील में हमारे विचार के लिए निम्नलिखित प्रश्न सामने आते हैं: -

(i) क्या अपीलकर्ताओं के दावे को पुनर्न्यायिक के सिद्धांतों द्वारा प्रतिबंधित किया गया है या 29 जून, 2014 और 30 मार्च, 2017 को बी.एच.यू द्वारा बाद के प्रस्तावों को पारित करने से अपीलकर्ताओं को अपने दावे को पुनर्जीवित करने के लिए नया कारण देने का प्रभाव है, भले ही इस न्यायालय द्वारा डॉ. वी.पी. सिंह (उपरोक्त) के मामले में इस तरह के दावे को अस्वीकार कर दिया गया हो;

(ii) क्या अपीलकर्ता श्रीमती शशि किरण (उपरोक्त) के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए इस अपील में उनके द्वारा मांगी गई राहत के हकदार हैं।

38. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि एक कारण के संबंध में पक्षगण के बीच एक निर्णय, एक बार अंतिमता से जुड़ा हुआ है, उसे पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता है। अपीलों के इस समूह में अपीलकर्ता या तो डॉ. वी.पी. सिंह के मामले में मुकदमेबाजी के पिछले दौर में याचिकाकर्ता थे या जिन्होंने कार्यकारी परिषद के निर्णय को स्वीकार कर लिया था कि सी.पी.एफ. योजना से पेंशन योजना में बदलने का नया अवसर नहीं दिया गया था। हम पहले ही मान चुके हैं कि ऐसे व्यक्ति अपने आप में एक वर्ग का गठन करते हैं और उनका प्रतिनिधित्व लगभग 100 शिक्षकों/कर्मचारियों द्वारा किया जाता है। उन लोगों में से कुछ जिन्होंने इस न्यायालय से संपर्क नहीं किया था, वे समान रूप से स्वीकृति के सिद्धांतों पर आच्छादित किए गए हैं।

39. बी.एच.यू के अधिवक्ता द्वारा न्यायालय को एक चार्ट सौंपा गया है जिसमें सूचित किया गया है कि 1.1.1986 को 659 कर्मचारी बी.एच.यू की सेवा में थे। 1-1-1986 को बी.एच.यू की सेवा में कुल कर्मचारियों में से 130 ने बी.एच.यू के दिनांक 9-4-1988 और 12-5-1995 के आदेशों के अनुसरण में विकल्प का प्रयोग करते हुए सी.पी.एफ. योजना में बने रहने का विकल्प चुना। 529 कर्मचारियों ने किसी भी विकल्प का प्रयोग नहीं किया या सी.पी.एफ. से जी.पी.एफ. योजना में जाने का विकल्प चुना। अपीलकर्ताओं के अनुसार, वास्तविक संख्या अभी 121 है। इनमें से 44 सी.पी.एफ. से पेंशन योजना में जाने की मांग कर रहे हैं। इस वर्ग के 100 से अधिक व्यक्तियों ने पेंशन योजना में बदलने के लिए डॉ. वीपी सिंह (उपरोक्त) के मामले में पहले रिट याचिका दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था। इसलिए, यह स्पष्ट है कि डॉ. वी.पी. सिंह में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पिछले फैसले में वस्तुतः उन सभी व्यक्तियों को शामिल किया गया था जो सी.पी.एफ. से पेंशन योजना में बदलना चाहते थे। अन्य, जो उस स्तर पर रिट में शामिल नहीं हुए थे, स्पष्ट रूप से सी.पी.एफ. योजना के तहत उन्हें जारी रखने के लिए सहमत हो गए। दोनों पहलुओं से देखने पर, हमारा विचार है कि अपीलकर्ता जो मुकदमेबाजी के पिछले दौर में रिट याचिकाकर्ता थे या नहीं, वे डॉ. वी.पी. सिंह (उपरोक्त) के मामले में खंड पीठ के फैसले से समान रूप से बंधे हैं।

40. खंड पीठ ने डॉ. वी.पी. सिंह (उपरोक्त) की रिट याचिका को खारिज करते हुए इस तथ्य पर ध्यान दिया कि बी.एच.यू पूरी तरह से केंद्र सरकार द्वारा वित्त पोषित है और 100% रखरखाव अनुदान प्राप्त कर रहा है। बी.एच.यू भी यू.जी.सी. के फैसलों से बंधा हुआ है। प्रस्तर-17 में, खंडपीठ ने टिप्पणी की है कि वित्तीय अनुशासन के मामलों में बी.एच.यू यू.जी.सी. द्वारा लिए गए निर्णयों से बाध्य है जो बी.एच.यू को पूरी तरह से वित्त पोषित करता है। डॉ. वी.पी. सिंह (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय के प्रस्तर-16 और 17 में खंड पीठ द्वारा की गई टिप्पणियों को पुन: प्रस्तुत किया जाता है: -

"16. इन तथ्यों से, हम पाते हैं कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने कभी भी बनारस हिंदू विश्वविद्यालय को विकल्प में बदलाव के लिए कट ऑफ तिथि बढ़ाने के लिए कोई निर्णय नहीं दिया था। मानव संसाधन

विकास मंत्रालय ने वित्त मंत्रालय (व्यय विभाग) से अनुरोध किया था, जो सी.पी.एफ. से जी.पी.एफ. योजना में स्विच करने के लिए कट ऑफ तिथि को बढ़ाने के लिए सहमत नहीं था। कार्यालय ज्ञापन संख्या-4/1/87 दिनांक 1.5.1987 में सी.पी.एफ. से जी.पी.एफ. में परिवर्तन से संबंधित योजना को अधिसूचित किया गया था, कभी भी संशोधित नहीं किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के किसी भी प्राधिकार के बिना और कार्यकारी परिषद के किसी भी प्रस्ताव के बिना अपने कुछ कर्मचारियों के लिए तारीख 31 दिसंबर, 1995 तक बढ़ा दी है। उन्हें जो परिवर्तन दिया गया वह विश्वविद्यालय के कुलपति के अधिकार से परे था। प्रो डीके राय की अध्यक्षता वाली समिति ने जी.पी.एफ. में बदलने के लिए एक और अवसर देने की सिफारिश की थी, जिसे कार्यकारी परिषद की सिफारिशों के बिना कुलपति द्वारा स्वीकार कर लिया गया प्रतीत होता है और अंत में कार्यकारी परिषद ने अपने आक्षेपित निर्णय से कुलपति के दिनांक 20.3.2001 और 18.1.2002 के आदेशों को अनुमोदित करने में असमर्थता पर खेद व्यक्त किया था। विश्वविद्यालय के कुलपति विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और मानव संसाधन विकास मंत्रालय के निर्देशों के खिलाफ कार्रवाई नहीं कर सकते थे क्योंकि विश्वविद्यालय पूरी तरह से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा वित्त पोषित है।

17. हमारी राय है कि कार्यकारी परिषद की किसी भी मंजूरी के बिना, जो कि वित्तीय अनुशासन के मामलों में बाध्य है, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, जो विश्वविद्यालय को पूरी तरह से वित्त पोषित करता है, द्वारा लिए गए निर्णयों के बिना कुलपति के पास विकल्प की तारीख बढ़ाने का कोई अधिकार नहीं था।

41. इस न्यायालय का यह भी विचार था कि 1.1.2004 के बाद केंद्र सरकार में शामिल होने वाले सभी कर्मचारियों के लिए नई पेंशन योजना उपलब्ध होने के बाद, रिट याचिकाकर्ताओं को पेंशन योजना का लाभ देने का कोई औचित्य नहीं है, जिनमें से कई सेवानिवृत्त हो गए **थे। प्रो. हरीश चंद्र चौधरी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 1075** के मामले में डॉ. वी.पी. सिंह (उपरोक्त) के मामले में रिट याचिकाकर्ताओं को राहत देने से इनकार करना केंद्र सरकार या यू.जी.सी. से सी.पी.एफ. से पेंशन योजना में रूपांतरण की तारीख बढ़ाने के लिए अनुमोदन की कमी थी। डॉ. वी.पी. सिंह (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय के प्रस्तर-18 से 22 को पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"18. प्रस्तुत मामले में शामिल प्रश्न विकल्प की तारीख का विस्तार करने के लिए नहीं है, बल्कि याचिकाकर्ता को सी.पी.एफ. योजना में जारी रखने के अपने विकल्प को वापस लेने की अनुमति देने के लिए है। इस योजना के तहत सभी शिक्षकों/कर्मचारियों को जी.पी.एफ.-ग्रेच्युटी-पेंशन योजना का लाभ दिया गया था। केवल उन कर्मचारियों को लाभ नहीं दिया गया, जिन्होंने सी.पी.एफ. योजना के तहत बने रहने के अपने विकल्प का प्रयोग किया था। केंद्रीय विश्वविद्यालय सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1967 के नियम 3(iii) में संशोधन नहीं किया गया था ताकि कुलपति को अंतिम तिथि बढ़ाने का अधिकार दिया जा सके। कुलपति ने अपने दम पर बिना किसी वैध अधिकार के वर्ष 1988 और 1995 में कट ऑफ तिथि बढ़ा दी। याचिकाकर्ताओं ने इस अनधिकृत विस्तार नीति का भी लाभ नहीं उठाया। इसलिए, उन्हें आगे विस्तार का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है। कार्यकारी

परिषद ने यूजीसी और मानव संसाधन विकास मंत्रालय के निर्देशों का पालन करते हुए तारीख बढ़ाने में असमर्थता पर खेद व्यक्त करने में कोई गलती नहीं की।

19. याचिकाकर्ता विश्वविद्यालय के शिक्षक और कर्मचारी हैं। उन्होंने अपने द्वारा अपनाए गए विकल्प के वित्तीय निहितार्थों को पूरी तरह से समझ लिया था। 5वें वेतन आयोग द्वारा 1.1.1996 से दिए गए लाभ उन्हें 30.9.1987 की निर्धारित कट ऑफ तिथि समाप्त होने के लगभग नौ साल बाद जी.पी.एफ.-ग्रेच्युटी पेंशन योजना का विकल्प चुनने की अनुमति देने का आधार नहीं हो सके।

20. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भेदभाव की शिकायत पर पर्याप्त स्पष्टीकरण दिया है। 1994 में नियुक्त गुवाहाटी विश्वविद्यालय के कर्मचारियों को गलत तरीके से सी.पी.एफ. योजना की पेशकश की गई थी और इस प्रकार उन सभी को त्रुटि को सुधारने के लिए जी.पी.एफ. योजना में लाया गया था। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग/मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों को अनुदेश दिए गए थे कि वे कट ऑफ डेट को न बढ़ाएं क्योंकि वे यू.जी.सी. द्वारा वित्तपोषित नहीं हैं। उनके द्वारा लिया गया कोई भी निर्णय केंद्रीय विश्वविद्यालयों के शिक्षकों/कर्मचारियों के साथ भेदभाव नहीं करेगा। यू.जी.सी. और मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा जारी किए गए स्पष्टीकरण के खिलाफ दिल्ली विश्वविद्यालय ने अवैध कार्रवाई जारी रखी।

*21. **भारत संघ बनाम एमके सरकार, (2010) 2 एस.सी.सी. 59** में उच्चतम न्यायालय ने माना कि जहां सी.पी.एफ. योजना द्वारा शासित एक कर्मचारी ने पेंशन योजना का विकल्प नहीं चुना, उसे कई मौके दिए जाने के बावजूद, उसकी सेवानिवृत्ति के 22 साल बाद उसका प्रतिनिधित्व, राशि वापस करने की इच्छा के साथ पेंशन योजना में स्विच करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यदि उसका अनुरोध स्वीकार कर लिया जाता है, तो इसका प्रभाव उसे दोहरा लाभ प्राप्त करने की अनुमति देगा। इतने लंबे समय के बाद रिट याचिका दायर करने के लिए कोई आवर्ती या निरंतर कार्रवाई का कारण नहीं था। यदि आगे यह माना जाता है कि जब उसे विकल्प की उपलब्धता के बारे में सूचना या ज्ञान था, तो उसे यह तर्क देने के लिए नहीं सुना जा सकता था कि उसके पास विकल्प की लिखित सूचना नहीं थी।*

22. हम यह भी पाते हैं कि यह रिट याचिका 5.8.2004 को दायर की गई थी, जिसमें विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद के 19/20 जुलाई, 2002 के निर्णय को चुनौती दी गई थी, जिसे विश्वविद्यालय के निबंधक द्वारा 5.9.2002 को सूचित किया गया था, और 1.1.2004 के बाद केंद्र सरकार में शामिल होने वाले सभी कर्मचारियों के लिए नई पेंशन योजना लागू होने के बहुत बाद में। जी.पी.एफ.-पेंशन योजना के तहत आने वाले कर्मचारियों को नई पेंशन योजना में बदलने की पेशकश की गई थी और इस प्रकार वर्ष 2004 में याचिकाकर्ताओं के लिए कोई औचित्य नहीं था, जिनमें से कई बहुत पहले सेवानिवृत्त हो चुके हैं, उन्हें अपना विकल्प बदलने और जी.पी.एफ.-ग्रेच्युटी-पेंशन योजना में वापस जाने का अवसर दिया जा सकता है।

42. हालांकि डॉ. वी.पी. सिंह (उपरोक्त) में खंड पीठ के फैसले को अंतिम रूप दिया गया है, फिर भी कार्यकारी परिषद ने 29 जून, 2014 और 30 मार्च, 2017 को अपीलकर्ताओं के पक्ष में बाद के प्रस्ताव पारित करने के लिए आगे बढ़े हैं। ये दोनों फैसले बी.एच.यू के स्तर पर लिए जाते हैं। ऐसे प्रयोजनों के लिए बी.एच.यू द्वारा यू.जी.सी. या केन्द्र सरकार से न तो कोई सहमति प्राप्त हुई है और न ही कोई अनुमोदन प्राप्त किया गया है।

43. बेशक, बी.एच.यू पूरी तरह से यू.जी.सी. और केंद्र सरकार द्वारा वित्त पोषित है। याचिकाकर्ताओं को पेंशन योजना के तहत लाभ देने के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधनों को अंततः केंद्र सरकार और यू.जी.सी. द्वारा वहन करना होगा। डॉ. वी.पी. सिंह (उपरोक्त) के मामले में पक्षकारों के बीच पिछले बाध्यकारी निर्णय के बावजूद, बी.एच.यू को अपीलकर्ताओं के दावे को स्वीकार करने की अनुमति देने के लिए केंद्र सरकार या यू.जी.सी. द्वारा कोई निर्णय नहीं लिया गया है। बी.एच.यू द्वारा बी.एच.यू के कर्मचारियों पर दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय का विस्तार करने के लिए लिया गया निर्णय तब लागू नहीं किया जा सकता जब विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और केन्द्र सरकार के अनुमोदन या सहमति का अभाव हो। यही कारण था कि इस न्यायालय ने डॉ. वी.पी. सिंह के मामले में सी.पी.एफ. योजना को पेंशन योजना में बदलने की अनुमति देने की याचिका को खारिज कर दिया। जैसा कि हमने माना है कि डॉ. वी.पी. सिंह में निर्णय अपीलकर्ताओं के लिए बाध्यकारी है क्योंकि इस मुद्दे पर इस तरह का एक अलग दृष्टिकोण नहीं लिया जा सकता है।

44. पक्षगण के बीच पिछले अधिनिर्णय के बाध्यकारी प्रभाव के संबंध में कानून पर सवाल उठाने के लिए बहुत अच्छी तरह से तय है। **एस. रामचंद्र राव बनाम एस. नागभूषण राव और अन्य, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1460** में, उच्चतम न्यायालय ने स्थापित सिद्धांत को दोहराया है कि पक्षगण के बीच एक गलत निर्णय भी बाध्यकारी होगा। प्रस्तर-28 से 31 में की गई न्यायालय की टिप्पणियों को पुन: प्रस्तुत किया जाता है: -

28. यह भी अच्छी तरह से तय है, जैसा कि कई निर्णयों में निर्धारित किया गया है, कि एक गलत निर्णय भी एक ही मुकदमेबाजी के लिए पक्षगण पर बाध्यकारी रहता है और एक ही मुद्दे के संबंध में, यदि सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय द्वारा एक ही पक्षों के बीच प्रदान किया जाता है। गोरी गौरी नायडू (उपरोक्त) के मामले में, इस न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ कहा, "4..... कानून अच्छी तरह से स्थापित है कि भले ही गलत हो, एक अंतर-पार्टी निर्णय पक्ष को बाध्य करता है यदि सक्षम क्षेत्राधिकार की अदालत ने लिस का फैसला किया है।

29. मखीजा निर्माण और इंजीनियरिंग (पी) लिमिटेड (उपरोक्त) के अनुसार, इस न्यायालय ने एक मिसाल और रेस ज्यूडिकाटा के सिद्धांत के संचालन के बीच अंतर को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया है:

19. ... एक मिसाल एक अलग मामले में समान स्थितियों में बांधने के लिए काम करती है। रेस ज्यूडिकाटा किसी अन्य कारण से पक्षों को कार्यवाही में बांधने के लिए काम करता है, लेकिन यह कि मुकदमेबाजी का अंत होना चाहिए।

30. एस. नागराज (उपरोक्त) में, इस न्यायालय द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया था कि बाध्यकारी निर्णयों को प्रति न्यायिक सिद्धांतों पर भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है क्योंकि उन सिद्धांतों की मिसालों के सिद्धांत के लिए प्रासंगिकता है, लेकिन रेस ज्यूडिकाटा के सिद्धांत पर कोई आवेदन नहीं है।

31. पिछले प्रस्तर में जो देखा और चर्चा की गई है, उसके लिए यह संदेह का विषय नहीं है कि रेस ज्यूडिकाटा का सिद्धांत अच्छी तरह से विनियमित प्रणाली के लिए मौलिक है। प्रो. ***हरीश चंद्र चौधरी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 1077*** *में न्यायशास्त्र, सार्वजनिक नीति के विचार पर आधारित होने के लिए कि एक न्यायिक निर्णय को सही माना जाना चाहिए और किसी भी व्यक्ति को एक ही तरह के मुकदमेबाजी से दो बार परेशान नहीं किया जाना चाहिए। रेस ज्यूडिकाटा का यह सिद्धांत न केवल अलग-अलग बाद की कार्यवाही में बल्कि उसी कार्यवाही के बाद के चरण में भी आकर्षित होता है। इसके अलावा, एक बाध्यकारी निर्णय को हल्के ढंग से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है और यहां तक कि एक गलत निर्णय भी एक ही मुकदमेबाजी के पक्षों के लिए बाध्यकारी रहता है और उसी मुद्दे के संबंध में, यदि सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय द्वारा प्रदान किया जाता है। इस तरह के बाध्यकारी निर्णय को प्रति इनक्यूरियम के सिद्धांत पर भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह सिद्धांत मिसालों पर लागू होता है, न कि रेस ज्यूडिकाटा के सिद्धांत पर।*

45. (?) यह समान रूप से तय है कि कानून में केवल परिवर्तन, बाद में, पहले किए गए बाध्यकारी अधिनिर्णय को प्रभावित नहीं करेगा और न ही पक्षगण के बीच पारस्परिक रूप से तय किए गए मुद्दों को फिर से खोलेगा। **भारत संघ बनाम मद्रास टेलीफोन एस.सी. और एसटी सोशल वेलफेयर एसोसिएशन, (2006) 8 एस.सी.सी. 662** में, उच्चतम न्यायालय ने प्रस्तर-21 में निम्नानुसार टिप्पणी की: "

*21. उपरोक्त टिप्पणियों और स्पष्टीकरण के संबंध में हमें कोई संदेह नहीं है कि ऐसे आवेदक जिनके वरिष्ठता और परिणामी पदोन्नति का दावा परमानंद लाल मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले में निर्धारित सिद्धांतों के आधार पर किया गया है [****परमानंद लाल और बृज मोहन बनाम भारत संघ, डब्ल्यूपीएस संख्या-2739 और 2652 वर्ष 1991 20-2-1985*** *को तय किया गया] को न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा निर्णय द्वारा बरकरार रखा गया है या मान्यता दी गई है और आदेश जो अंतिम रूप प्राप्त कर चुके हैं,* ***मद्रास टेलीफोन [(1997) 10 एस.सी.सी. 226: 1997 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 1279]*** *में निर्णय में लिए गए विपरीत दृष्टिकोण से प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं होंगे। चूंकि ऐसे आवेदकों के अधिकारों को एक विधिवत गठित कार्यवाही में निर्धारित किया गया था, जिसके निर्धारण ने अंतिम रूप प्राप्त कर लिया है, इसलिए विपरीत दृष्टिकोण लेने वाले अदालत या न्यायाधिकरण के बाद के निर्णय से उन आवेदकों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा जिनके मामलों में आदेश अंतिम रूप से प्राप्त कर चुके हैं। हम उसी के अनुसार आदेश देते हैं।*

46. **बीएसएनएल और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, (2006)2 एस.सी.आर 823** में, उच्चतम न्यायालय ने फिर से इस सिद्धांत को दोहराया कि निर्णय के किसी भी बाद के फैसले से पहले के एलआईएस के पक्षों पर निर्णय की बाध्यकारी प्रकृति को परेशान नहीं किया जाएगा क्योंकि रेस ज्यूडिकाटा का सिद्धांत काम करना जारी रखेगा।

47. **ए.आर. अंतुले बनाम आर.एस. नायक और अन्य, (1988)2 एस.सी.सी. 602** में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने प्रस्तर-183 में निम्नानुसार व्यवस्था दी है: -

"183..... जब पिछले निर्णय को इतना खारिज कर दिया जाता है तो ऐसा नहीं होता है - न ही अधिरूढ़ पीठ के पास ऐसा करने का कोई अधिकार क्षेत्र होता है - कि पिछले निर्णय में ऑपरेटिव आदेश, इंटर पार्टेस की अंतिमता को पलट दिया जाता है। इस संदर्भ में 'निर्णय' शब्द का अर्थ केवल पिछले आदेश का कारण है, न कि पिछले निर्णय में ऑपरेटिव आदेश, बाध्यकारी अंतर-पक्ष। यहां तक कि अगर पिछले निर्णय को एक बड़ी पीठ द्वारा खारिज कर दिया जाता है, तो ऑपरेटिव आदेश में व्यक्त किए गए अधिनिर्णय की प्रभावकारिता और बाध्यकारी प्रकृति अंतर-पक्षीय रूप से अबाधित रहती है ..... (हमारे द्वारा बल वर्धित)

48. कानून के मद्देनजर यह तय किया गया है कि एक ही एलआईएस के संबंध में पक्षगण के बीच एक पिछला अधिनिर्णय ऑपरेटिव रहता है और यहां तक कि एक गलत निर्णय भी पक्षगण के बीच पारस्परिक रूप से रेस ज्यूडिकाटा के रूप में काम करता है और कानून में बाद में परिवर्तन इस तरह के पिछले निर्णय को अमान्य नहीं करेगा, हमारा विचार है कि उसी कारण में दिल्ली उच्च न्यायालय के बाद के निर्णय और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि श्रीमती शशि किरण अपीलकर्ताओं को इस मुद्दे को फिर से उठाने के लिए कोई नया कारण प्रस्तुत नहीं करेंगी।

49. इसी तरह, यू.जी.सी. या केंद्र सरकार द्वारा पूर्व अनुमोदन या सहमति के अभाव में कार्यकारी परिषद के पास दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के लाभ का विस्तार करने के लिए वर्ष 2014 और 2017 के बाद के प्रस्तावों को पारित करने का कोई अधिकार नहीं था।

50. इस प्रकार हमारा विचार है कि अपीलकर्ता किसी भी राहत के हकदार नहीं होंगे, भले ही श्रीमती शशि किरण (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का बाद का निर्णय उनके दावे का समर्थन करता है। हमारा यह भी विचार है कि कार्यकारी परिषद का बाद का निर्णय भी अपीलकर्ताओं के बचाव में नहीं आएगा, क्योंकि केंद्र सरकार और यू.जी.सी. दोनों ने सी.पी.एफ. से पेंशन योजना में बदलाव की अनुमति देने से इनकार कर दिया था। डॉ. वी.पी. सिंह के मामले में इस न्यायालय ने केंद्र सरकार के इस फैसले की पुष्टि की थी। केन्द्र सरकार/विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से कोई अनुमति प्राप्त किए बिना, बी.एच.यू के लिए पेंशन योजना को अपनाने का विकल्प प्रदान करने के मामले में कोई अलग निर्णय लेना खुला नहीं था। चूंकि बी.एच.यू यू.जी.सी./केंद्र सरकार द्वारा 100% वित्त पोषित है और अन्यथा उसके पास इस उद्देश्य के लिए वित्त वहन करने के लिए

पर्याप्त संसाधन नहीं हैं, इसलिए हम पेंशन योजना का विकल्प चुनने के लिए अपीलकर्ताओं के दावे को स्वीकार करने में न्यायोचित नहीं होंगे।

51. वित्तीय प्रबंधन और अनुशासन के मामलों में अदालतों को राहत देने में सावधान और सतर्क रहना होगा। ऐसे मामलों में किसी भी हस्तक्षेप की अनुमति केवल तभी दी जाएगी जब मामले के तथ्य कानून के स्थापित सिद्धांतों पर इस तरह के हस्तक्षेप को उचित ठहराते हैं।

52. पेंशन योजना 1.1.1986 को शुरू की गई थी। सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रखने के विकल्प का लाभ अपीलकर्ताओं द्वारा उठाया गया था। पेंशन योजना में बदलने के उनके अनुरोध को 2011 में अस्वीकार कर दिया गया था। डॉ. वी.पी. सिंह में इस तरह के निर्णय की पुष्टि करने वाले निर्णय को अंतिम रूप दिया गया है। पेंशन योजना को 2004 में ही बंद कर दिया गया है। ऐसी परिस्थितियों में और विशेष रूप से जब अधिकांश अपीलकर्ता अन्यथा सेवानिवृत्त हो चुके हैं, तो इस न्यायालय के लिए इस मामले में हस्तक्षेप करना और लगभग 40 साल बाद सी.पी.एफ. योजना से पेंशन योजना में बदलाव की अनुमति देना विवेकपूर्ण प्रयोग नहीं होगा। यह विशेष रूप से ऐसा है, क्योंकि मुकदमेबाजी के पिछले दौर में अपीलकर्ताओं के ऐसे दावे को अन्यथा खारिज कर दिया गया है।

53. जहां तक रमेश गुप्ता (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संबंध है, रमेश गुप्ता को राहत देने के लिए यू.जी.सी. या केंद्र सरकार के पूर्व अनुमोदन की कोई आवश्यकता नहीं थी, जैसा कि मामले में है। ऐसी परिस्थितियों में, हम पाते हैं कि रमेश गुप्ता (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय भी तथ्यों पर अलग है और अपीलकर्ताओं के कारण बहुत मददगार नहीं होगा।

54. जहां तक विशेष अपील संख्या-309 वर्ष 2025 में अपीलकर्ता का संबंध है, वह 9.7.1988 को प्रौद्योगिकी संस्थान, बी.एच.यू में नियुक्त होने आया था। इसलिए, वह 1-1-1986 को बी.एच.यू के रोजगार में नहीं थे। दिनांक 1-5-1987 के कार्यालय ज्ञापन के आधार पर रोजगार में 1.1.1986 के बाद आए थे, पेंशन योजना के तहत आच्छादित किए गए थे। ऐसे कर्मचारियों के लिए सी.पी.एफ. योजना में शामिल होने का कोई विकल्प उपलब्ध नहीं था। दिनांक 1.5.1987 के कार्यालय ज्ञापन में विचारित विकल्प इस प्रकार श्री अखौरी सुधीर कुमार सिन्हा के पास उपलब्ध नहीं था। श्री अखौरी सुधीर कुमार सिन्हा को भी पेंशन योजना में शामिल किया गया था और अंतरिम उपाय के रूप में अंतरिम जी.पी.एफ. संख्या-13062 दी गई थी। तथापि, कार्यकारी परिषद के दिनांक 19-20 जुलाई, 2002 के संकल्प के अनुपालन में इसे वापस ले लिया गया था। श्री सिन्हा ने दिनांक 19.9.2011 के अपने अभ्यावेदन के माध्यम से निबंधक को सूचित किया कि जब उन्हें बी.एच.यू में वास्तविक रूप से नियुक्त किया गया था यानी 9.7.1990 को सी.पी.एफ. योजना स्वयं उनके लिए उपलब्ध नहीं थी, फिर भी बी.एच.यू ने गलती से उन्हें सी.पी.एफ. योजना के तहत शामिल करने की पेशकश की। उन्होंने बी.एच.यू को पत्र लिखकर 1995 और फिर 2001 में पेंशन योजना का लाभ लेने का दावा किया था। अपने पत्रों में, उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि न तो उन्होंने जानबूझकर सी.पी.एफ. योजना का विकल्प चुना है और न ही उनकी

ओर से किसी त्रुटि के कारण उन्हें सी.पी.एफ. योजना का लाभ दिया गया है। उन्होंने फार्मास्यूटिक्स विभाग के प्रोफेसर डॉ. सुशील कुमार सिंह के साथ समानता का भी दावा किया है, जिन्हें दिनांक 20 मार्च, 2013 के आदेश के तहत सी.पी.एफ. से जी.पी.एफ. योजना में बदलने की अनुमति दी गई है। दिनांक 20 मार्च, 2013 का आदेश विशेष अपील संख्या-309 वर्ष 2025 का अनुलग्नक 10 है। इस आदेश में स्पष्ट रूप से दर्ज किया गया है कि डॉ. सुशील कुमार सिंह ने 9.7.1990 को बी.एच.यू में कार्यभार ग्रहण किया है। यह दावा किया जाता है कि श्री सिन्हा का मामला डॉ. सुशील कुमार सिंह के मामले से मिलता-जुलता है। श्री सिन्हा का दावा भी डॉ. वी.पी. सिंह के मामले में इस न्यायालय के पिछले निर्णय में शामिल नहीं है।

55. श्री सिन्हा की ओर से पेश अधिवक्ता श्री अविनाश चंद्रा ने डॉ. टी.एस.एन. शास्त्री, कुलपति, तमिलनाडु डॉ. अम्बेडकर लॉ यूनिवर्सिटी, पूम्पोझिल बनाम पांडिचेरी विश्वविद्यालय और अन्य, डब्ल्यूपी संख्या-29276 वर्ष 2019, दिनांक 16.10.2020 के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के एक फैसले पर अवलंबन किया है, जिसमें मामले के तथ्य इस मामले के तथ्यों से काफी मिलते-जुलते हैं।

56. मद्रास उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने यह मानने की योजना पर ध्यान दिया है कि डॉ. शास्त्री की नियुक्ति की तारीख को सी.पी.एफ. योजना स्वयं उपलब्ध नहीं थी। इस संदर्भ में मद्रास उच्च न्यायालय ने श्री शास्त्री के दावे को अनुमति दे दी है और उन्हें पेंशन योजना का लाभ देने का निर्देश जारी किया गया है। डा सिन्हा के दावे का विरोध केवल इस आधार पर किया जाता है कि उन्होंने सी.पी.एफ. योजना के तहत काम जारी रखा था और इस तरह सी.पी.एफ. योजना को स्वीकार कर लिया था।

57. श्री सिन्हा के दावे के संबंध में प्रस्तुत संबंधित प्रस्तुतियों पर विचार करने के बाद, हम पाते हैं कि बी.एच.यू में उनकी मूल नियुक्ति की तारीख यानी 9.7.1990 को, उन्हें पेंशन योजना द्वारा आच्छादित किया गया था। यहां तक कि 9 जुलाई, 1988 को बी.एच.यू में उनकी अस्थायी नियुक्ति कट-ऑफ-डेट यानी 1.1.1986 के बाद हुई थी। यह स्पष्ट रूप से पता चला है कि उन्होंने सी.पी.एफ. योजना में शामिल होने पर आपत्ति जताई थी। वास्तव में उन्हें पेंशन योजना में शामिल किया गया था, लेकिन यह कार्यकारी परिषद के दिनांक 19-20 जुलाई, 2002 के संकल्प के कारण था कि उनसे ऐसा लाभ वापस ले लिया गया था। अन्यथा उनके लिए सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रखने का विकल्प देने का कोई अवसर नहीं था। वह इस तरह के फैसले के खिलाफ प्रतिनिधित्व करते रहे हैं और उच्चतम न्यायालय द्वारा इस मुद्दे को सुलझाए जाने के बाद उन्होंने न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। मामले के तथ्यों में, हम पाते हैं कि उनका मामला स्पष्ट रूप से पेंशन योजना द्वारा आच्छादित किया गया है और सी.पी.एफ. योजना के तहत जारी रखने के लिए उनके द्वारा किसी भी विकल्प का प्रयोग करने का सवाल कार्यालय ज्ञापन, दिनांक 1.5.1987 के तहत समर्थित नहीं है। बी.एच.यू ने 2013 में इसी तरह की परिस्थितियों में डॉ. सुशील कुमार सिंह के दावे को खुद ही स्वीकार कर लिया है। अन्यथा इस न्यायालय द्वारा श्री सिन्हा के दावे का कोई पूर्व निर्णय नहीं है।

अनुवादित

58. ऐसी परिस्थितियों में, हमारा विचार है कि श्री सिन्हा द्वारा दायर रिट याचिका की अनुमति दी जानी चाहिए। एकल न्यायाधीश ने याचिकाओं के बैच को खारिज करते हुए श्री सिन्हा के मामले के तथ्यों की जांच नहीं की है। वास्तव में एकल न्यायाधीश द्वारा अपीलकर्ता के मामले पर कोई विचार नहीं किया जाता है।

59. इस मामले को देखते हुए और पूर्वोक्त चर्चा के मद्देनज़र, श्री अखौरी सुधीर कुमार सिन्हा द्वारा दायर विशेष अपील संख्या-309 वर्ष 2025 सफल होती है और इसकी **अनुमति** दी जाती है। रिट-ए संख्या-7111 वर्ष 2020 को खारिज करने वाले एकल न्यायाधीश के निर्णय को **रद्द/अपास्त** कर दिया जाता है। प्रतिपक्षियों को श्री अखौरी सुधीर कुमार सिन्हा को पेंशन योजना का लाभ इस शर्त पर देने के लिए परमादेश जारी किया जाता है कि वह आज से दो महीने के भीतर 8% वार्षिक ब्याज के साथ प्राप्त सी.पी.एफ. लाभ, यदि कोई हो, जमा करेगा।

60. अन्य सभी अपीलों के ऊपर अवधारित कारणों और चर्चाओं के लिए यानी विशेष अपील संख्या-228 वर्ष 2025 और 235 वर्ष 2025 (विशेष अपील संख्या-309 वर्ष 2025 को छोड़कर), विफल होते हैं और **खारिज/निरस्त** किये जाते हैं।

61. लागत के रूप में कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1080

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट ए संख्या- 27328/2018

बन्ना लाल **... याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **... प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
दिनेश कुमार, लाल बाबू लाल, मनीष सिंह, नरेश सिंह तोमर, सुषमा सिंह

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:
अशोक कुमार यादव, सी.एस.सी.

सेवा विधि - बेसिक स्कूलों में सहायक शिक्षक - योग्यता की समानता - इंटरमीडिएट के साथ आईएएफ शिक्षा प्रमाण पत्र - मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम, 2009 - क्या आईएएफ शिक्षा परीक्षा प्रमाण पत्र बेसिक स्कूलों में सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्ति के लिए इंटरमीडिएट परीक्षा के बराबर है। अभिनिर्धारित: भारतीय वायुसेना शिक्षा प्रमाण पत्र इंटरमीडिएट के बराबर है, सचिव, उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा जारी परिपत्र दिनांक 28.4.1992 के मद्देनजर; मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा दिनांक 23.8.2017 को जारी परिपत्र और राम लाल श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य का निर्णय और अन्य, तटस्थ उद्धरण संख्या 2019: एएचसी:205812 (पैरा 18) (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा पारित)

1. श्री यतिंद्र, विद्वान न्यायमित्र, श्री सर्व देव सिंह, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 के लिए श्री के. शाही को सुना।

2. याचिकाकर्ता ने अपनी हाई स्कूल परीक्षा के बाद वर्ष 1975 में एक एयरमैन के रूप में वायु सेना में प्रवेश किया था। उन्होंने अगस्त, 1979 में योजना 'ए' के तहत कॉर्पोरल के पद पर पदोन्नति के लिए आई.ए.एफ. शिक्षा परीक्षा उत्तीर्ण की, जो वायु सेना मुख्यालय, नई दिल्ली में निर्धारित और आयोजित की गई थी।

3. याचिकाकर्ता के प्रकरण के अनुसार आई.ए.एफ. एजुकेशन टेस्ट इंटरमीडिएट परीक्षा के बराबर है और इसके आधार पर सेवा के दौरान उन्होंने 1992 में कलकटिया विश्वविद्यालय, वारंगल, अन्हद्र प्रदेश से स्नातक की उपाधि प्राप्त की है।

4. याचिकाकर्ता 30.11.2007 को वायु सेना से सेवानिवृत्त हुआ और उसके बाद उसने वर्ष 2008 में बीएड की डिग्री उत्तीर्ण की, और वर्ष 2010-2012 में बीटीसी प्रशिक्षण पूरा किया।

5. उपर्युक्त योग्यताओं के आधार पर उन्होंने बेसिक स्कूलों में सहायक अध्यापक की नियुक्ति के लिए भर्ती प्रक्रिया में भाग लिया है, जिसमें उनका चयन किया गया था और नियुक्ति पत्र दिनांक 25.7.2013 के माध्यम से नियुक्ति दी गई थी और वे एक प्राथमिक विद्यालय में शामिल हुए थे।

6. श्री यतिंद्र, विद्वान न्यायमित्र ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता को इंटरमीडिएट परीक्षा के साथ आईएएफ शिक्षा परीक्षा के समतुल्य होने के बारे में दिनांक 23.4.2014 को एक नोटिस जारी किया गया था, हालांकि प्रत्यर्थी उत्तर से संतुष्ट नहीं थे और याचिकाकर्ता की सेवाओं को दिनांक 01.10.2014 के एक आदेश द्वारा समाप्त कर दिया गया था। आक्षेपित आदेश का प्रासंगिक हिस्सा इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया जाता है:

"सचिव माध्यमिक शिक्षा परिषद, उत्तर प्रदेश इलाहाबाद को इस कार्यालय के पत्रांक/शिविर/1985/2014-15 दिनांक 09.05.2014 द्वारा उक्त के सम्बन्ध में सम्पूर्ण विवरण अंकित करते हुए श्री बन्ना लाल द्वारा उत्तीर्ण वायुसेना ट्रेड परीक्षा को इण्टरमीडिएट के समकक्ष माना जा सकता है अथवा नहीं के सम्बन्ध में मार्ग दर्शन मांगा गया। उक्त पृच्छा के सम्बन्ध में सचिव, माध्यमिक शिक्षा परिषद, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद ने पत्रांक - परिषद -9/146 दिनांक 09.06.2014 द्वारा सूचित किया गया कि भारतीय वायुसेना द्वारा जारी प्रमाण पत्र (आई.ए.एफ) परिषद की इण्टरमीडिएट परीक्षा के समक्ष मान्य नहीं है।

उक्त से स्पष्ट है कि श्री बन्ना लाल द्वारा नियुक्ति प्राप्ति के लिये इण्टरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण होने के सम्बन्ध में जो अभिलेख प्रस्तुत किये गये वह इण्टमीडिएट परीक्षा के समकक्ष मान्य नहीं है।

अतः श्री बन्ना लाल द्वारा प्रस्तुत वायु सैनिक ट्रेड परीक्षा का सर्टिफिकेट जो REB (SZ) TAMBARAM द्वारा जारी किया गया है, इण्टरमीडिएट परीक्षा के समकक्ष न होने के कारण इस कार्यालय के पत्रांक/आदेश संख्या/10385-66/2013-14 दिनांक 25.07.2013 विकास खण्ड कोराव इलाहाबाद की सेवा समाप्त की जाती है। "

7. एयर वेटरन्स एयर हेडक्वार्टर, नई दिल्ली निदेशालय द्वारा जारी और जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, इलाहाबाद को संबोधित दिनांक 20.2.2014 के एक पत्र की सामग्री का विवरण इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया जाता है:
"जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी

इलाहाबाद (उ०प्र०)

<u>नव नियुक्त परिषदीय अध्यापक के इण्टरमीडिएट अंक पत्र के सत्यापन के सम्बन्ध में</u>

महोदय,

1- आपके पत्रांक/शिविर/25305/2013-14 दिनांक 11/12/2013 के संदर्भ में।

2- आपको सूचित किया जाता है कि उक्त पत्र के साथ संलग्न अंक पत्र इण्टरमीडिएट अंक पत्र नहीं है। यह अंक पत्र उक्त भूतपूर्व सैनिक द्वारा वायुसैनिक ट्रेड परीक्षा में पास होने का अंक पत्र है जो REB (SZ) TAMBARAM द्वारा जारी किया गया है"

8. माध्यमिक शिक्षा सचिव की 9.6.2014 की रिपोर्ट को न तो प्रत्यर्थीगण द्वारा रिकॉर्ड पर रखा गया था और न ही इसे पहले याचिकाकर्ता को प्रदान किया गया था।

9. याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष 2014 की एक रिट याचिका संख्या 58697 में दिनांक 1.10.2014 के समाप्ति आदेश को चुनौती दी, जिसे 14.3.2018 के एक आदेश द्वारा सचिव, बेसिक शिक्षा परिषद के समक्ष अपील दायर करने की स्वतंत्रता के साथ निपटाया गया था।

10. तदनुसार, याचिकाकर्ता ने अपील को प्राथमिकता दी। अपील को दिनांक 20.3.2016 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था और बाद में 23.10.2018 के एक आदेश द्वारा एक अभ्यावेदन को खारिज कर दिया गया था। प्रासंगिक भाग को इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"प्रकरण के अनुशीलन से स्पष्ट है कि याची श्री बन्ना लाल की नियुक्ति परिषदीय प्राथमिक विद्यालय में सहायक अध्यापक के पद पर हुई थी। तदोपरान्त जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा श्री बन्ना लाल की सेवायें समाप्त कर दी गयी, जिसके विरूद्ध श्री बन्ना लाल द्वारा प्रत्यावेदन प्रस्तुत किया गया है।

श्री बन्ना लाल की नियुक्ति परिषदीय प्राथमिक विद्यालय में सहायक अध्यापक के पद पर होने के पश्चात जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा श्री बन्ना लाल के शैक्षिक प्रमाण पत्रों का सत्यापन कराया गया। इसी क्रम में जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी ने उक्त अंक पत्र को वायुसेवा मुख्यालय नई दिल्ली से सत्यापन हेतु प्रेषित किया गया। वायु सेना द्वारा अवगत कराया गया कि "संलग्न अंक पत्र डण्टरमीडिएट अंक पत्र नहीं है। यह अंक पत्र उक्त भूतपूर्व सैनिक द्वारा वायु सेना ट्रेड परीक्षा में पास होने का अंक पत्र है जो विभाग द्वारा जारी किया गया है। " पुनः जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी इलाहाबाद द्वारा श्री बन्ना लाल से सम्बन्धित शैक्षिक विवरण को कार्यालय के पत्रांक शिविर/1985/2014-15 दिनांक 09.05.2014 द्वारा राचिव माध्यमिक शिक्षा परिषद उ०प्र० इलाहाबाद को प्रेषित कर शैक्षिक प्रमाण पत्रों की समकक्षता के सम्बन्ध में पृच्छा की गयी। माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा कार्यालय के पत्रांक परिषद-9/146 दिनांक 09.06.2014 द्वारा सूचित किया गया कि भारतीय वायु सेना द्वारा जारी उक्त प्रमाण पत्र परिषद की इण्टरमीडिएट परीक्षा के समकक्ष मान्य नहीं है।

इस आधार पर जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी इलाहाबाद द्वारा कार्यालय के पत्राक 667/2014-15 दिनांक 01.10.2014 द्वारा श्री बन्ना लाल की सेवायें समाप्त कर दी गयी।

इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि श्री बन्ना लाल द्वारा पूर्व में परिषद कार्यालय में दिनांक 04.01.2016 को सेवा समाप्ति के विरुद्ध अपील प्रस्तुत की गयी थी। उक्त अपील का निस्तारण परिषद कार्यालय के पत्रांक बे०शि०प०/21873-76/2015-16 दिनांक 10.03.2016 द्वारा किया गया था। वर्तमान में श्री बन्ना लाल द्वारा कोई नवीन तथ्य नहीं प्रस्तुत किये गये हैं। ऐसी स्थिति में जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी इलाहाबाद द्वारा निर्गत सेवा समाप्ति आदेश संख्या 667/2014-15 दिनांक 01.10.2014 में किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।

<u>निर्णय</u>

उपरोक्तानुसार श्री बन्ना लाल पूर्व सहायक अध्यापक सिपौवा, वि०ख० कोराव जनपद इलाहाबाद द्वारा प्रस्तुत प्रत्यावेदन निरस्त करते हुए उपरोक्तानुसार निस्तारित किया जाता है। ”

11. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अपील के साथ-साथ अभ्यावेदन को दिनांक 20.2.2014 (रिकॉर्ड पर उपलब्ध) और दिनांक 9.6.2014 (रिकॉर्ड पर उपलब्ध नहीं) की दो रिपोर्ट के आधार पर खारिज कर दिया गया था।

12. विद्वान न्यायमित्र ने प्रस्तुत किया कि आई.ए.एफ. परीक्षा प्रमाण पत्र इंटरमीडिएट के बराबर है और निम्नलिखित दस्तावेजों और निर्णय पर भरोसा करता है:

(i) सचिव, उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा दिनांक 28-04-1992 को जारी एक परिपत्र जिसमें सभी सचिवों को संबोधित किया गया है (अपील के साथ संलग्न)। संदर्भ के लिए इसे पूरी तरह से पुन: प्रस्तुत किया गया है:

“उपरोक्त विषयक भारत सरकार की विज्ञप्ति सं:15012/8/82-स्थापना (डी) दिनांक 12 फरवरी, 1986 तथा भूतपूर्व सैनिक पुनर्वास कार्यान्वयन समिति के प्रस्तावों पर सम्यक विचारोपरान्त शासन द्वारा निम्नलिखित निर्णय लिये गये हैं :-

(1) ऐसे भूतपूर्व सैनिक, जो मैट्रीकुलेट हों तथा इण्डियन स्पेशल आर्मी सर्टीफिकेट आफ एजूकेशन या नौ सेना/वायु सेना में समकक्षीय सर्टीफिकेट प्राप्त किये हों तथा संघ की सशस्त्र सेवा में कम से कम 15 वर्ष की सेवा पूरी कर ली हो, को उनके लिए आरक्षित सिविल पदों के समूह 'ग" की उन सेवाओं/पदों के लिये अर्ह माना जायेगा, जिसके लिये न्यूनतम शैक्षिक अर्हता स्नातक निर्धारित हो, परन्तु जहां उनके लिये तकनीकी या व्यावसायिक कार्य अनुभव अनिवार्य न हो या जहां गैर तकनीकी व्यावसायिक कार्य अनुभव अनिवार्य हो और नियुक्ति

प्राधिकारी का सन्तोष हो जाय कि ऐसे भूतपूर्व सैनिक अल्प प्रशिक्षण प्राप्त करने के उपरान्त अपने दायित्वों का निर्वहन कर सकते हैं।

(2) भूतपूर्व सैनिकों के लिये आरक्षित सिविल सेवा के समूह "ग" व "घ" के ऐसे पदों, जिनके लिए न्यूनतम् शैक्षिक अर्हता मैट्रीक्लेशन निर्धारित हो, नियुक्ति प्राधिकारी अपने स्वविवेक से ऐसे भूतपूर्व सैनिकों को न्यूनतम् शैक्षिक अर्हता से छूट प्रदान कर सकते हैं, जिन्होंने इण्डियन आर्मी क्लास-1 परीक्षा या उसके समकक्षीय नौ सेना या वायु सेना की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली हो और संघ की सशस्त्र सेवा में कम से कम 15 वर्ष की सेवा पूरी कर ली हो और अन्यथा कार्य अनुभव एवं अर्हताओं के आधार पर उन्हें उक्त पद के दायित्वों के निर्वहन के लिए उपयुक्त समझा जाय।

(3) यदि भूतपूर्व सैनिक समूह "ग" व "घ" के पदों के विरूद्ध निर्धारित सीमा तक चयनित न हो सकें तो दक्षता को कुप्रभावित किये बगैर सामान्य मापदण्ड को इस सीमा तक शिथिक किया जा सकता है, जिससे आरक्षण का कोटा पूरा हो जाये।

2. कृपया उपरोक्त निर्णयों से अपने अधीनस्थ समस्त नियुक्ति प्राधिकारियों को अवगत कराने का कष्ट करें।

भवदीय

ओ०पी० आर्य, सचिव।"

(ii) मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा दिनांक 23.08.2017 को जारी एक परिपत्र और इसके संबंधित भाग का उल्लेख इसके बाद किया गया है:

'इस मंत्रालय को पूर्व सैनिक श्रेणी के कर्मियों के संबंध में योग्यता की समानता के निर्धारण पर कई अभ्यावेदन प्राप्त हुए हैं। यह स्पष्ट करने का अनुरोध किया गया था कि क्या कोई भूतपूर्व सैनिक जो मैट्रिक पास है और जिसके पास भारतीय सेना का विशेष शिक्षा प्रमाण पत्र या नौसेना या वायु सेना में इसके समकक्ष प्रमाण पत्र है और जिसने कम से कम 15 वर्ष की सेवा की है, उसे 50 प्रतिशत अंकों के साथ उच्चतर माध्यमिक के समकक्ष के रूप में पुन रोजगार के उद्देश्य से स्नातक प्रमाण पत्र जारी किया जाता है।

2. इस प्रकरण की जांच निशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम, 2009 के डीओपीटी की दिनांक 12 फरवरी, 1986 की अधिसूचना के विभिन्न प्रावधानों के आलोक में की गई है। शिक्षकों की न्यूनतम अर्हताओं के संबंध में एनसीटीई की अधिसूचना और एनसीटीई द्वारा गठित विशेषज्ञ समिति की सिफारिशें। दिनांक 1 दिसम्बर, 2014 के पत्र संख्या 1769/एनसीटीई/डीजीआर/आरईएस-8 के तहत एनसीटीई की विशेषज्ञ समिति की सिफारिशों को नीचे दिया गया है।

" एक भूतपूर्व सैनिक, जो मैट्रिक उत्तीर्ण हो तथा जिसके पास भारतीय सेना का विशेष शैक्षिक प्रमाणपत्र अथवा नौसेना एवं वायु सेना का समकक्ष प्रमाणपत्र हो, और जिसने सशस्त्र बलों में न्यूनतम 15 वर्ष की सेवा

की हो, तथा जिसे योजना-'A' के अंतर्गत भारतीय वायु सेना का कॉर्पोरल प्रमाणपत्र जारी किया गया हो, उसे 50% अंकों के साथ 10+2 उत्तीर्ण के रूप में भी माना जाएगा (यह न्यूनतम पात्रता योग्यता उस कार्यक्रम के लिए है, जो एन.सी.टी.ई. की स्वीकृति के अनुसार विद्यालयों में कार्यरत अप्रशिक्षित सेवारत शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु किसी भी संस्था द्वारा ओपन एंड डिस्टेंस लर्निंग (ODL) माध्यम से संचालित किया जाता है)। इससे भूतपूर्व सैनिक श्रेणी के अंतर्गत आने वाले अप्रशिक्षित सेवारत प्राथमिक शिक्षकों को ODL माध्यम से डी.ई.एल.एड. (D.EL.Ed.) कार्यक्रम में प्रवेश लेकर अध्ययन करने में सुविधा प्राप्त होगी।"

3- एनसीटीई की विशेषज्ञ समिति की उपरोक्त सिफारिशों को स्वीकार करने का निर्णय लिया गया है।

4- यह माननीय मानव संसाधन विकास मंत्री की मंजूरी से संबंधित है।

(iii) राम लाल श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, तटस्थ उद्धरण संख्या 2019: एएचसी: 205812 के प्रकरण में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित निर्णय। और इसके प्रासंगिक भाग का उल्लेख इसके बाद किया गया है:

"वर्तमान प्रकरण में, याचिकाकर्ता को स्नातक, बीएड और विशेष बीटीसी-2004 के रूप में उसकी योग्यता के आधार पर सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्ति दी गई है। इसलिए, इस विलंबित चरण में जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, आजमगढ़ की ओर से उपस्थित श्री बी.पी. सिंह द्वारा इस तरह की आपत्ति उठाई गई कि क्या भारतीय वायु सेना द्वारा आयोजित उनकी विभागीय परीक्षा दिनांक 4.12.1980 को 'कॉर्पोरल एजुकेशन टेस्ट' (सीपीएल ईडीएन) के रूप में जानी जाती है, वैध है या यूपी बोर्ड ऑफ हाई स्कूल एंड इंटरमीडिएट द्वारा आयोजित इंटरमीडिएट के समकक्ष है, इसका कोई अर्थ नहीं होगा। तदनुसार, उक्त आपत्ति निराधार और बिना किसी आधार के है।"

(iv) भारतीय वायुसेना के शिक्षा प्रमाण-पत्र में ही विनिदष्ट किया गया है कि इसे नियमित माध्यमिक परीक्षा के समकक्ष के रूप में मान्यता दी गई है, यद्यपि केवल उच्चतर अध्ययन के प्रयोजन के लिए और विश्वविद्यालय के नाम का भी उल्लेख किया गया है। इसके प्रासंगिक हिस्से का उल्लेख इसके बाद किया गया है:

"एक भूतपूर्व सैनिक, जो मैट्रिक उत्तीर्ण हो तथा जिसके पास भारतीय सेना का विशेष शिक्षा प्रमाणपत्र अथवा नौसेना एवं वायु सेना का समकक्ष प्रमाणपत्र हो, और जिसने सशस्त्र बलों में कम से कम 15 वर्ष की सेवा की हो, तथा जिसे योजना-'A' के अंतर्गत भारतीय वायु सेना का कॉर्पोरल प्रमाणपत्र जारी किया गया हो, उसे 50% अंकों के साथ 10+2 उत्तीर्ण के रूप में भी माना जाएगा (यह न्यूनतम पात्रता योग्यता उस कार्यक्रम के लिए है, जो एन.सी.टी.ई. की स्वीकृति के अनुसार विद्यालयों में कार्यरत अप्रशिक्षित सेवारत शिक्षकों को प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु किसी भी संस्था द्वारा ओपन एंड डिस्टेंस लर्निंग (ODL) माध्यम से संचालित किया जाता है)। इससे

भूतपूर्व सैनिक श्रेणी के अंतर्गत आने वाले अप्रशिक्षित सेवारत प्राथमिक शिक्षकों को ODL माध्यम से डी.ई.एल.एड. (D.EL.Ed.) कार्यक्रम करने में सक्षम बनाया जाएगा।"

(v) उक्त प्रमाण-पत्र के आधार पर, याचिकाकर्ता ने स्नातक, बीएड और बीटीसी प्रशिक्षण उत्तीर्ण किया है और कभी कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी।

13. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया है और आक्षेपित आदेश के प्रासंगिक हिस्से का उल्लेख किया है कि चूंकि वयोवृद्ध वायु कार्यालय मुख्यालय निदेशालय ने समकक्षता पर विवाद नहीं किया है, इसलिए, आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं थी।

14. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

15. इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता ने वायु सेना से भारतीय वायुसेना शिक्षा प्रमाण पत्र पारित किया है, इसके आधार पर उसने स्नातक उत्तीर्ण किया है और अपनी सेवानिवृत्ति के बाद उसने बीईडी और बीटीसी भी उत्तीर्ण किया है और वे डिग्री और प्रमाण पत्र अभी भी अच्छे हैं और इसके आधार पर उन्हें सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था।

16. इस विवाद पर कि क्या भारतीय वायुसेना शिक्षा प्रमाण पत्र इंटरमीडिएट के बराबर है, संबंधित प्रत्यर्थी द्वारा 20.2.2014 (रिकॉर्ड पर उपलब्ध) और 9.6.2014 (रिकॉर्ड पर उपलब्ध नहीं) की दो रिपोर्टों के आधार पर नकारात्मक रूप से निर्णय लिया गया था।

17. दिनांक 20.2.2014 की रिपोर्ट में केवल यह कहा गया है कि भारतीय वायुसेना शिक्षा प्रमाण पत्र की मार्कशीट इंटरमीडिएट परीक्षा की मार्कशीट नहीं है। कोई संदर्भ नहीं दिया गया था कि यह इंटरमीडिएट के बराबर था या नहीं, इसलिए, केवल इसके आधार पर, विशेष रूप से अन्य दस्तावेजों की अनदेखी करते हुए, समानता से इनकार करना उचित नहीं होगा। जहां तक दिनांक 9.6.2014 की अन्य रिपोर्ट का संबंध है, जो रिकॉर्ड पर नहीं है, इसलिए, न्यायालय को इसकी सामग्री के बारे में जानकारी नहीं है।

18. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, एक से अधिक दस्तावेज हैं, जो इंटरमीडिएट के साथ भारतीय वायुसेना शिक्षा प्रमाण पत्र की समानता को इंगित करते हैं जैसे कि 28.4.1992 का परिपत्र, दिनांक 23.8.2017 का परिपत्र और साथ ही राम लाल श्रीवास्तव (पूर्वोक्त) का निर्णय, लेकिन अपील के साथ परिपत्र दायर किए जाने के बावजूद, ऐसे सभी दस्तावेजों पर प्रत्यर्थीगण द्वारा ध्यान नहीं दिया गया था।

19. मैंने उपरोक्त संदर्भित परिपत्रों और राम लाल श्रीवास्तव (पूर्वोक्त) की सामग्री का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया है, कि भारतीय वायुसेना शिक्षा प्रमाण पत्र इंटरमीडिएट के बराबर है, इसलिए, आक्षेपित आदेश में सौंपे गए कारण गलत हैं और इसे रद्द किया जा सकता है।

20. अब न्यायालय इस बात पर ध्यान देता है कि याचिकाकर्ता की वर्तमान आयु लगभग 67 वर्ष है और उसने 1.8.2013 से 30.9.2014 तक बिना वेतन के सहायक शिक्षक के रूप में काम किया है। इसलिए, यहां तक कि आक्षेपित आदेश को भी रद्द कर दिया जाता है, न्यायालय उन्हें सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त करने का निर्देश नहीं दे सकती है। उन्होंने 2014 के बाद से तब तक काम नहीं किया है जब तक कि वह सेवानिवृत्ति की आयु यानी 62 वर्ष (2019) यानी 5 से 6 वर्ष तक नहीं पहुंच जाते। इस बीच, उन्होंने अपनी एलएलबी की डिग्री हासिल की है और अब वह इस न्यायालय के एक अधिवक्ता हैं। जिस अवधि के लिए उसने काम नहीं किया है, उसे "नो वर्क नो पे" माना जाएगा।

21. उपरोक्त परिस्थितियों में और न्याय के हित में, इस रिट याचिका का निस्तारण निम्नलिखित निर्देशों के साथ किया जाता है:

(क) दिनांक 1.10.2014, 10.3.2016 और 23.10.2018 के आक्षेपित आदेशों को रद्द किया जाता है।

(ख) याचिकाकर्ता 1.8.2013 से 30.9.2014 तक वेतन के भुगतान का हकदार है, जब निर्विवाद रूप से, उसने काम किया है और उक्त अवधि के लिए उसके वेतन का भुगतान 8 सप्ताह की अवधि के भीतर किया जाएगा।

(ग) सैद्धांतिक आधार पर भी बहाली के लिए कोई निदेश पारित नहीं किया जा सका।

(घ) प्रत्यर्थीगण द्वारा याचिकाकर्ता को 12 सप्ताह के भीतर भुगतान किए जाने वाले 25 लाख रुपये के रूप में एकमुश्त मुआवजा/लागत निर्धारित की जाती है।

(ङ) श्री यतिन्द्र, विद्वान न्यायमित्र ने न्यायालय की बहुत ही उचित तरीके से सहायता की है और इसके लिए उच्च न्यायालय विधिक, सेवा समिति, इलाहाबाद उन्हें चार सप्ताह के भीतर 5500/- रुपये का भुगतान करेगी।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1085

मूल क्षेत्राधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

रिट-ए संख्या- 1000115/2014

पूरन सिंह **... याचिकाकर्ता**

बनाम

जनपद न्यायाधीश लखनऊ और अन्य **... प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
हीरा लाल श्रीवास्तव, अमित जायसवाल, अपूर्व तिवारी

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:
यू.एन. मिश्रा, रमेश चंद्र पाठक

A. किरायेदारी विधि - यूपी शहरी भवन (किराए, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 - धारा 30 (1) - शक्ति का दायरा - किराए की जमा - मकान मालिक और किरायेदार के संबंध पर कोई निर्णय नहीं, आक्षेपित आदेश को कितनी हद तक दूषित करता है - अभिनिर्धारित, धारा 30 स्वयं मकान मालिक और किरायेदार के संबंध को तय करने के लिए मुंसिफ को कोई अधिनिर्णयात्मक शक्ति प्रदान नहीं करती है, अन्यथा 'किरायेदार होने का दावा करने' शब्द का उपयोग करने का कोई उद्देश्य नहीं होगा - अधिनियम की धारा 30 के आधार पर मुंसिफ को निर्णय की कोई शक्ति नहीं दी गई है और यहां तक कि अगर जमा किसी व्यक्ति द्वारा खुद को किरायेदार होने का दावा किया जाता है, और वास्तव में किरायेदार नहीं है, तो धारा 30 के तहत जमा का लाभ स्पष्ट रूप से मकान मालिक द्वारा शुरू की गई उपयुक्त कार्यवाही में उसे उपलब्ध नहीं होगा और किरायेदार/व्यवसाय में व्यक्ति द्वारा चुनाव लड़ा गया और किरायेदार नहीं। (पैरा 11 और 13)

रिट याचिका खारिज। (ई-1)

<u>उद्धृत प्रकरण की सूची:</u>

1. मैसर्स एस. चंद एंड कंपनी बनाम द्वितीय एडीजे; 1985 (1) एआरसी 251
2. मूलचंद मोटुमन टेकवानी बनाम ए.डी.जे.; 1985 (2) एआरसी 142
3. सेंट जोन्स स्कूल बनाम विशेष न्यायाधीश, ईसी अधिनियम; 1999 (1) एआरसी 588

अनुवादित

4. चतुर मोहन और अन्य बनाम राम बिहारी दीक्षित; 1964 इलाहाबाद एलजे 256

5. अनवर अली बनाम ए.डी.जे. 2002 (2) एआरसी 562

6। राजेन्द्र कुमार कर्णवाल बनाम श्रीमती कैलाश गर्ग; 2005(4) एडब्लूसी 3858 जे

7. फतेह चंद बनाम बीएस गोयल; 1967 एएलजे 979

8. गिरधारी लाल मेहता बनाम जनपद न्यायाधीश वाराणसी; 1984 (1) एआरसी 126

9. चतुर मोहन और अन्य बनाम राम बिहारी दीक्षित; 1964 इलाहाबाद एलजे 256; 1963 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 55

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री अपूर्व तिवारी को सुना। प्रत्यर्थीगण की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं है।

2. वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 29.04.2014 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जो 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 30 (1) के साथ-साथ 2014 के सिविल पुनरीक्षण संख्या 222 में जनपद न्यायाधीश द्वारा पारित 15.09.2014 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके तहत दिनांक 29.04.2014 के आदेश के खिलाफ अधिमान्य पुनरीक्षण को खारिज कर दिया गया था।

3. संक्षेप में तथ्य यह है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 ने 12.10.2011 को उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1972 की धारा 30 (1) के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसमें खुद को 338, 5 वीं स्ट्रीट, राजेंद्र नगर, लखनऊ में स्थित परिसर का किरायेदार होने का दावा किया गया और यह भी दावा किया कि याचिकाकर्ता मकान मालिक था। यह आरोप लगाया गया था कि परिसर का किराया 100 रुपये प्रति माह था और इसे जमा किया जा रहा था क्योंकि याचिकाकर्ता ने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। उक्त आवेदन 2011 के विविध आवेदन संख्या 126 (अनुलग्नक संख्या 3) के रूप में पंजीकृत किया गया था। उक्त आवेदन के जवाब में, याचिकाकर्ता ने 15.03.2014 को अपनी आपत्ति दर्ज की, जिसमें कहा गया था कि वह विचाराधीन संपत्ति का मालिक नहीं था और याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी संख्या 3 के बीच मकान मालिक और किरायेदार का कोई संबंध नहीं था। यह भी कहा गया था कि विचाराधीन संपत्ति का स्वामित्व और स्वामित्व पायनियर मोंटेसरी स्कूल नामक सोसायटी के पास था और प्रत्यर्थी संख्या 3 को कभी भी याचिकाकर्ता या सोसायटी द्वारा किरायेदार के रूप में शामिल नहीं किया गया था। यह भी एक बचाव के रूप में लिया गया था कि प्रत्यर्थी संख्या 3 स्कूल में कुछ निर्माण कार्य के लिए लगा हुआ था और उसे कच्चे माल आदि के भंडारण के लिए कुछ कमरों की अनुमति दी गई थी और उसके बाद वह कथित तौर पर खुद को किरायेदार होने का दावा करते हुए कमरों पर कब्जा बनाए रखने की कोशिश कर रहा था। प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा दायर उक्त आवेदन को न्यायालय द्वारा दिनांक 29.04.2014 के आदेश के माध्यम से इस निर्देश के साथ अनुमति दी गई थी कि प्रत्यर्थी संख्या 3 अपने जोखिम पर राशि जमा कर सकता है। यह भी देखा गया कि याचिकाकर्ता को आपत्ति दर्ज करने का कोई अधिकार नहीं था और

किसी भी प्रकरण में 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 30(1) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए इसका निर्णय नहीं लिया जा सकता था। उक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने सीपीसी की धारा 115 के तहत पुनरीक्षण का समर्थन किया। उक्त पुनरीक्षण को 15.09.2014 को अनुरक्षणीय नहीं मानते हुए खारिज कर दिया गया।

4. उक्त दो फैसलों को चुनौती देते हुए, याचिकाकर्ता की ओर से पेश श्री अपूर्व तिवारी ने व्यापक रूप से तर्क दिया कि दोनों आदेश विधि में गलत थे। उनका तर्क है कि यह सिविल न्यायाधीश पर निर्भर था कि उसने प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा किरायेदारी के दावे के संबंध में प्रारंभिक मुद्दे का फैसला किया था और किसी भी प्रकरण में, आपत्तियों पर विचार करना चाहिए था। आगे यह तर्क दिया जाता है कि अधिनियम की धारा 30 (1) के तहत आदेश पारित करते समय मुंसिफ एक न्यायालय के रूप में अपने मूल अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर रहा था और यह एक 'व्यक्तित्व पदनाम' नहीं था और इस तरह, उसका आदेश सीपीसी की धारा 115 के तहत संशोधित किया जा सकता था।

5. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने **मेसर्स एस चंद एंड कंपनी बनाम द्वितीय अपर जनपद न्यायाधीश 1985 (1) एआरसी 251** के प्रकरण में फैसले पर व्यापक रूप से भरोसा किया है; में यह तर्क दिया गया था कि एक पुनरीक्षण मुंसिफ के आदेश के खिलाफ होगा। **मूलचंद मोटुमन टेकवानी बनाम अपर जनपद न्यायाधीश 1985 (2) एआरसी 142** के प्रकरण में फैसले पर भी भरोसा किया जाता है; को यह बताने के लिए कि एक पुनरीक्षण झूठ होगा। उन्होंने **सेंट जोन्स स्कूल बनाम विशेष न्यायाधीश, ईसी अधिनियम 1999 (1) एआरसी 588 और चतुर मोहन और अन्य बनाम राम बिहारी दीक्षित; 1964 सभी एलजे 256** पर भी भरोसा किया है; यह तर्क देने के लिए कि एक पुनरीक्षण झूठ होगा।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने इस न्यायालय के सामने निष्पक्ष रूप से उन निर्णयों को रखा है जो विपरीत हैं और अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा 30 के तहत पारित आदेश के खिलाफ कोई पुनरीक्षण नहीं होगा, वही **अनवर अली बनाम अपर जनपद न्यायाधीश 2002 (2) एआरसी 562 और राजेंद्र कुमार कर्णवाल बनाम श्रीमती कैलाश गर्ग; 2005(4) एडब्ल्यूसी 3858जे** के प्रकरण में है।

7. **फतेह चंद बनाम बीएस गोयल 1967 एएलजे 979** के प्रकरण में निर्णय पर भी भरोसा किया जाता है; में यह तर्क दिया गया कि मुंसिफ के पास आपत्तियों पर निर्णय लेने का अधिकार क्षेत्र था और **गिरधारी लाल मेहता बनाम जनपद न्यायाधीश वाराणसी 1984 (1) एआरसी 126** के प्रकरण में भी एक विपरीत निर्णय दिया गया है; को इस न्यायालय के समक्ष रखने के लिए कि उक्त प्रकरण में यह निर्णय लिया गया है कि मकान मालिक को यह तय करने के लिए आपत्ति दर्ज करने का कोई अधिकार नहीं है कि किराया जमा करने वाला व्यक्ति किरायेदार नहीं है।

8. उक्त के आलोक में, तर्कों पर विचार किया जाना चाहिए। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि 1972 का उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 मकान मालिक के अधिकारों को नियंत्रित करने के लिए अधिनियमित किया गया था, विशेष रूप से उक्त अधिनियम में निर्दिष्ट और कवर किए गए भवनों के संबंध में किरायेदारों के परिसर, किराए और बेदखली के अधिकार को नियंत्रित करने के लिए। 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 30, निम्नानुसार निर्धारित है:

"13. आवंटन या रिलीज के बिना भवन के कब्जे पर प्रतिबंध। *जहां कोई मकान मालिक या किरायेदार किसी भवन या उसके हिस्से पर कब्जा करना बंद कर देता है, कोई भी व्यक्ति अपनी ओर से किसी भी क्षमता में, या धारा 16 के तहत आवंटन या रिलीज के आदेश के अलावा उस पर कब्जा नहीं करेगा, और यदि कोई व्यक्ति इस पर कब्जा करने का इरादा रखता है, तो वह धारा 31 के प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसी इमारत या हिस्से का अनधिकृत निवासी माना जाए।*

9. यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि धारा 37 और धारा 38 का अधिदेश जो निम्नानुसार हैं:

37. अंतिमता और अनुमान- *(1) इस अधिनियम द्वारा या उसके अधीन प्रदत्त किसी शक्ति का प्रयोग करते हुए किए गए कोई आदेश को किसी न्यायालय में प्रश्न में नहीं बुलाया जाएगा।*

(2) जहां कोई आदेश इस अधिनियम द्वारा या उसके अधीन प्रदत्त किसी शक्ति का प्रयोग करते हुए किसी प्राधिकारी द्वारा किया गया और हस्ताक्षरित किया गया है, वहां न्यायालय यह मान लेगा कि ऐसा आदेश उस प्राधिकारी द्वारा ऐसा किया गया था।

38. टीपी अधिनियम और सिविल प्रक्रिया संहिता को ओवरराइड करने के लिए अधिनियम - *इस अधिनियम के प्रावधान संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 के अधिनियम संख्या IV), या सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 के अधिनियम संख्या V) में निहित कुछ भी असंगत होने के बावजूद प्रभावी होंगे।*

10. अधिनियम की धारा 30 के जनादेश को पढ़ने पर, यह पता चलता है कि यह धारा एक ऐसे व्यक्ति के लिए अधिनियमित की गई थी जो किसी भी किराए को जमा करना चाहता है, जिसे मकान मालिक द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है और खुद को किरायेदार होने का दावा करता है। वाक्यांश 'किरायेदार होने का दावा करना' महत्वपूर्ण है। धारा 30 का अधिदेश केवल यह देखने के लिए है कि किरायेदार को मकान मालिक द्वारा इसे स्वीकार करने से इनकार करने की स्थिति में किराया जमा करने के लिए अपने दायित्व से बचने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और इस प्रकार, यह सुनिश्चित करने के लिए भी अधिनियमित किया गया था कि किरायेदार किराए का भुगतान न करने के आधार पर बेदखल होने के लिए उत्तरदायी नहीं है जब मकान मालिक स्वयं इसे स्वीकार करने से इनकार करता है। इसी तरह, किराए की पात्रता के संबंध में विवाद की

स्थिति में, यह किरायेदार को सुरक्षा देने का प्रस्ताव करता है और न्यायालय को यह सुनिश्चित करने का अधिकार भी देता है कि जमा किए गए किराए का भुगतान मकान मालिक को किया जाता है।

11. उक्त प्रावधान के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उक्त धारा स्वयं मकान मालिक और किरायेदार के संबंध का निर्णय करने के लिए मुंसिफ को कोई अधिनिर्णयात्मक शक्तियां प्रदान नहीं करती है, अन्यथा 'किरायेदार होने का दावा करने' शब्द का उपयोग करने का कोई उद्देश्य नहीं होगा। अधिनियम की धारा 30 के आधार पर मुंसिफ को अधिनिर्णय की कोई शक्ति नहीं दी गई है और भले ही जमा किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया गया हो जो खुद को किरायेदार होने का दावा करता है, और वास्तव में किरायेदार नहीं है, धारा 30 के तहत जमा का लाभ स्पष्ट रूप से उसे मकान मालिक द्वारा शुरू की गई उपयुक्त कार्यवाही में उपलब्ध नहीं होगा और किरायेदार / व्यवसाय में व्यक्ति द्वारा प्रतिस्पर्धा की गई है, न कि किरायेदार। मकान मालिक और किरायेदार के संबंध में सभी मुद्दों पर मकान मालिक द्वारा 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 के अध्याय II से IV या अध्याय V के तहत शुरू की गई संबंधित कार्यवाही में निर्णय लिया जाना है।

12. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय, अधिनियम की व्याख्या के संबंध में हैं, जिसे समय के बिंदु पर पहले अधिनियमित किया गया था और बाद में निरस्त कर दिया गया था जब 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 को उत्तर प्रदेश (अस्थायी) किराया और बेदखली नियंत्रण अधिनियम, 1947 के रूप में अधिनियमित किया गया था। यह दावा किया जाता है कि उक्त अधिनियम में, धारा 7 (सी) धारा 30 के समान थी और **चतुर मोहन और अन्य बनाम राम बिहारी दीक्षित 1964 सभी एलजे 256; 1963 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 55** के प्रकरण में पूर्ण पीठ के फैसले में संदर्भित किया गया था। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने पूर्ण पीठ द्वारा पैरा 7 से 10, 13 से 15 और 42 से 51 में की गई टिप्पणियों पर जोर दिया है, जो इस प्रकार हैं:

"7. एक व्यक्ति पदनाम इस मायने में एक विधिक न्यायाधिकरण से अलग है कि इसके "निर्धारण को विधिक न्यायाधिकरण के निर्णय के रूप में नहीं माना जाना चाहिए"; बालकृष्ण उदयर बनाम वासुदेव अय्यर [(44) आई.ए. 261 में पृष्ठ 269 में। एक व्यक्तित्व पदनाम "एक व्यक्ति के रूप में इंगित या वर्णित है, जैसा कि एक वर्ग के सदस्य के रूप में पता लगाए गए व्यक्ति के विपरीत, या एक विशेष चरित्र को भरने के रूप में"; देखें राम मिलन बनाम बंसीलाल [ए.आई.आर. 1958 एम.पी. 203.] और सेंट्रल टॉकीज लिमिटेड बनाम द्वारिका प्रसाद [ए.आई.आर. 1961 एस.सी. 606.]। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार, वह एक ऐसा व्यक्ति है जिसे अपनी निजी क्षमता में कार्य करने के लिए चुना गया है, न कि न्यायाधीश के रूप में कार्य करने की क्षमता में; वह उस अधिकार क्षेत्र से अलग विशेष क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है जो उसके पास किसी अन्य क़ानून के तहत हो सकता है। मैंने अपने विचार का कारण दिया है कि विधायिका ने धारा 7-ई द्वारा प्रदत्त अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए एक मुंसिफ का चयन किया है, न कि उसकी निजी क्षमता में बल्कि मुंसिफ की न्यायालय के पीठासीन अधिकारी के रूप में कार्य करने की क्षमता में। गुलर्न निजामुद्दीन बनाम अखलर हुसैन खान [1933 ए.एल.जे. 971.], रंगून नगर निगम बनाम एम.ए. 25.], शोलापुर नगर पालिका बनाम तुलजाराम कृष्णासा चव्हाण [ए.आई.आर. 1931 बॉम। 682.] की व्याख्या एक कठोर और तेज़ नियम निर्धारित करने के

रूप में नहीं की जानी चाहिए कि जब किसी न्यायालय के पीठासीन अधिकारी को अधिकार क्षेत्र प्रदान किया जाता है, न कि न्यायालय को ही वह एक व्यक्ति पदनाम के रूप में कार्य करता है। "किसी को यह निर्धारित करने के उद्देश्य से पूरे प्रावधान को देखना होगा कि क्या प्रकरण की सुनवाई न्यायिक अधिकारी द्वारा न्यायालय के रूप में की जानी है या अपनी व्यक्तिगत क्षमता में; किरण चंद्र बोस बनाम कालिदास चटर्जी [ए.आई.आर. 1943 कैल. 247.] . "किसी कार्य को एक या दूसरे द्वारा किया जाना है या नहीं, यह आम तौर पर अधिनियम के चरित्र से निर्धारित किया जाता है, न कि इस तरह के पदनाम से। जब भी अधिनियम के उद्देश्य और उद्देश्यों पर विचार करने से लगाई गई शक्ति या कर्तव्य को एक ऐसा पाया जाता है जो न्यायालय का कार्य अधिक उचित रूप से है, तो इसका अर्थ ऐसा लगाया जाएगा; और जब भी यह स्पष्ट होता है कि विधायिका का मतलब न्यायाधीश था, न कि न्यायालय का, तो विधायी इरादे को पूरा करने के लिए शब्दों पर इसका अर्थ लागू किया जाएगा; 14 AM Jur., "कोर्ट्स", पैरा 4 देखें।

8. दीन दयाल बनाम वेद प्रकाश [1955 का सीआर संख्या 1034] में हमारे भाई द्विवेदी ने माना कि धारा 7-ई के तहत कार्य करने वाला मुंसिफ एक व्यक्ति पदनाम के रूप में कार्य करता है क्योंकि एक निश्चित समय के भीतर मरम्मत करने के लिए मकान मालिक को निर्देश देने वाला आदेश सामान्य रूप से न्यायालय द्वारा जारी किए गए आदेश के विपरीत है। बड़े सम्मान के साथ मैं सहमत नहीं हूं। उन्होंने इस सिद्धांत पर भरोसा किया कि एक न्यायालय किसी ऐसे कार्य को करने के लिए अनिवार्य निषेधाज्ञा जारी नहीं कर सकती है जिसकी निगरानी उसके द्वारा नहीं की जा सकती है। विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 55 (चित्र (ए) और (बी) देखें) और आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 133 धारा 7-ई द्वारा विचार किए गए अनिवार्य निषेधाज्ञा के समान अनिवार्य निषेधाज्ञा जारी करने की अनुमति देती है और फिर भी निस्संदेह उन्हें जारी करने वाले अधिकारी अदालतें हैं।

9. मेरी राय है कि एस.सी. बनर्जी बनाम राम कुमार दास [1958 का सीआर संख्या 992 मुखर्जी और उनियाल, जे.जे., 6-4-1962 को तय किया गया] और मुस्तफा हुसैन बनाम सेवा राम बोध राज [1955 का सी.आर. संख्या 1212.] वी. भार्गव, जे. द्वारा 20-4-1961 को तय किया गया सही विधि नहीं है। मैं दौलत राम साहनी बनाम त्रिलोकिनाथ [18-8-1961 को बेग और श्रीवास्तव, जेजे द्वारा तय 1955 का एस.ए. संख्या 1889] के प्रकरण में लिए गए दृष्टिकोण से सम्मानपूर्वक सहमत हूं और मानता हूं कि धारा 7-ई के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाला मुंसिफ एक न्यायालय के रूप में कार्य करता है, न कि एक व्यक्ति पदनाम के रूप में। इसलिए, उनका आदेश इस न्यायालय द्वारा धारा 115, सीपीसी के तहत पुनरीक्षण योग्य है। मैं प्रश्न का उत्तर हां में दूंगा।

पाठक, जे.—10. निर्णय के लिए संदर्भित प्रश्न है:

"क्या एक मुंसिफ उत्तर प्रदेश किराया और बेदखली अधिनियम की धारा 7-ई के प्रावधानों के तहत कार्य करते हुए केवल एक व्यक्ति पदनाम के रूप में या एक न्यायालय के रूप में कार्य करता है और क्या अधिनियम की धारा 7-ई के तहत पारित आदेश के खिलाफ एक पुनरीक्षण बनाए रखने योग्य है?"

13. हमें वास्तव में यह तय करने के लिए कहा जाता है कि क्या धारा 7-ई के तहत कार्य करने वाला मुंसिफ एक न्यायालय है। यदि वह एक न्यायालय के रूप में कार्य करता है, तो इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि इस तरह के न्यायालय के रूप में वह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अर्थ के भीतर उच्च न्यायालय के अधीनस्थ है और इसलिए, धारा 7-ई के तहत पारित आदेश के खिलाफ एक पुनरीक्षण बनाए रखने योग्य होगा।

14. यह प्रश्न कि क्या एक निर्णायक प्राधिकरण एक न्यायालय है या एक व्यक्ति पदनामित है, यह निर्भर करता है, जैसा कि मूथम, सीजे ने केदार नाथ बनाम श्री एस.एन. मिश्रा [1957 ए.एल.जे. 379.] में देखा:

"क्या यह विधि मौजूदा न्यायालय को ऐसा क्षेत्राधिकार प्रदान करता है जो पहले उसके पास नहीं था..... या क्या यह किसी विशेष उद्देश्य के लिए एक विशेष न्यायाधिकरण बनाता है जो अधिनियमन से ही अपना पूरा अधिकार प्राप्त करता है.....

क्या यह एक ऐसा प्रकरण है जहां पहले से मौजूद न्यायालय को अतिरिक्त क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है या जहां क़ानून एक न्यायाधिकरण बनाता है और इसमें विशेष क्षेत्राधिकार निहित करता है ताकि क़ानून के लिए यह न केवल अधिकार क्षेत्र से रहित हो बल्कि इस तरह के न्यायाधिकरण के रूप में विधि में मौजूद न हो? यह एक ऐसा प्रश्न है जो किसी भी यांत्रिक नियमों या कठोर मानदंडों द्वारा निर्णायक निर्धारण करने में सक्षम नहीं है। समस्या का समाधान कई परिस्थितियों पर विचार करने पर निर्भर करेगा जो अलग-अलग प्रकरण में भिन्न हो सकते हैं, और उत्तर आवश्यक रूप से उस समग्र संदर्भ के संदर्भ में दिया जाना चाहिए जिसमें क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है।

15. अब यह अच्छी तरह से तय है कि यद्यपि एक न्यायाधिकरण में एक न्यायालय के कई जाल हो सकते हैं, फिर भी यह न्यायिक शक्ति का प्रयोग करने के सख्त अर्थों में एक न्यायालय नहीं हो सकता है, और कुछ विशेषताओं का मात्र अस्तित्व, सामान्य रूप से न्यायालयों से जुड़ा होता है, आवश्यक रूप से ऐसे न्यायाधिकरण को वह दर्जा प्रदान नहीं करेगा। ऑस्ट्रेलिया की शेल कंपनी बनाम फेडरल कमिश्नर ऑफ टैक्सेशन [एलआर (1931) ए.सी. 275.] में न्यायिक समिति ने कहा: -

"एक न्यायाधिकरण इस सख्त अर्थों में एक न्यायालय नहीं है क्योंकि यह एक अंतिम निर्णय देता है। 2. न ही इसलिए कि वह शपथ लेकर गवाहों की सुनता है। 3. न ही इसलिए कि दो या दो से अधिक दावेदार पक्ष उसके सामने उपस्थित होते हैं जिनके बीच उसे निर्णय लेना होता है। 4. न ही इसलिए कि यह ऐसे निर्णय देता है जो विषयों के अधिकारों को प्रभावित करते हैं। 5. न ही इसलिए कि न्यायालय में अपील की गई है। 6. न ही इसलिए कि यह एक ऐसा शरीर है जिसके लिए एक पदार्थ दूसरे शरीर द्वारा संदर्भित किया जाता है।

इन सिद्धांतों को भारत बैंक लिमिटेड बनाम भारत बैंक लिमिटेड भारत बैंक लिमिटेड [ए.आई.आर. 1950 एस.सी. 188.], हरिनगर शुगर मिल्स लिमिटेड बनाम श्याम सुंदर झुंझुनुजाला [ए.आई.आर. 1961 एस.सी. 1669.] श्रीमती उज्जम बाई बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 1621.] में लागू किया गया है।

और, बेनेट, जे., गुलाम निजामुद्दीन बनाम अख्तर हुसैन खान [1933 ए.एल.जे. 971.] में, कहा:
"तथ्य यह है कि एक सिविल न्यायालय के पीठासीन अधिकारी को चुनाव न्यायालय की अध्यक्षता करने के लिए नियुक्त किया जाता है, चुनाव न्यायालय को दीवानी न्यायालय नहीं बना देगा।

ओक, जे.:–42. मैंने विद्वान मुख्य न्यायाधीश और मेरे विद्वान न्यायमूर्ति भाई पाठक मेरी राय में, उत्तर प्रदेश (अस्थायी) किराया और बेदखली नियंत्रण अधिनियम, 1947 (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 7-ई के तहत कार्य करने वाला एक मुंसिफ एक न्यायालय है।

43. अधिनियम की धारा 7-ई के तहत, अधिकार क्षेत्र वाला मुंसिफ मकान मालिक को कुछ मरम्मत करने का निर्देश दे सकता है। उप-धारा के अनुसार। धारा 7-ई की धारा (8) के अनुसार, जैसा कि यह मूल रूप से खड़ा था, उप-धारा के तहत मुंसिफ के आदेश से एक अपील थी। (5) या उप-धारा (6) मानो यह एक फरमान हो। उप-धारा के अनुसार। (8) धारा 7-ई की धारा (8), जैसा कि अभी है, उप-धारा के तहत पारित मुंसिफ के आदेश से कोई अपील नहीं होगी। (5) उप-सेक। धारा 7-ई की धारा (6) यदि धारा 7-ई को अलग-थलग माना जाता है, तो यह कहना मुश्किल होगा कि मुंसिफ एक न्यायालय है या एक व्यक्ति पदनाम। धारा 7-ई के तहत मुंसिफ की वास्तविक स्थिति की सराहना करने के लिए, किसी को सामान्य योजना और अधिनियम के अन्य प्रावधानों पर विचार करना होगा।

44. अधिनियम की प्रस्तावना के अनुसार, इस विधि का उद्देश्य आवास के किराए और किराए को नियंत्रित करना और किरायेदारों की बेदखली को रोकना था। अधिनियम की धारा 3 के तहत, एक जिला मजिस्ट्रेट एक मकान मालिक को एक किरायेदार के खिलाफ उसकी बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने की अनुमति दे सकता है। अधिनियम की धारा 5 के तहत, एक मकान मालिक या एक किरायेदार किराए के निर्धारण के लिए एक मुकदमा दायर कर सकता है। इस तरह के वाद को मुंसिफ की न्यायालय में या सिविल जज के न्यायालय में दायर किया जाना चाहिए, विषय-वस्तु के मूल्यांकन के अनुसार। अधिनियम की धारा 7 के तहत, एक जिला मजिस्ट्रेट घरों के आवंटन के बारे में आदेश पारित कर सकता है। धारा 7-बी के तहत, मकान मालिक किराए के बकाया की वसूली और किरायेदार को बेदखल करने के लिए क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र वाले मुंसिफ पर आवेदन कर सकता है। अधिनियम की धारा 7-सी के तहत, किरायेदार अधिकार क्षेत्र वाले मुंसिफ के न्यायालय में किराया जमा कर सकता है। धारा 7-डी के तहत, जिला मजिस्ट्रेट मकान मालिक को किरायेदार को सुविधाएं बहाल करने का निर्देश दे सकता है। अधिनियम की धारा 7-ई के तहत, मुंसिफ के अधिकार क्षेत्र में मकान मालिक को मरम्मत करने का आदेश दिया जा सकता है।

45. किरायेदार को बेदखल करने के लिए वाद दायर करने की अनुमति देना और मकान आवंटित करना प्रशासनिक कार्य हैं। ये ड्यूटी जिलामजिस्ट्रेट को सौंपी गई है। एक आवास के लिए किराया तय करना और किराए की वसूली के लिए एक किरायेदार के खिलाफ कार्रवाई करना और बेदखली के लिए न्यायिक प्रकृति के कार्य हैं। अधिनियम में कुछ स्थानों पर मुंसिफ को स्पष्ट रूप से न्यायालय के रूप में संदर्भित किया गया है। लेकिन अधिनियम में कहीं भी हमें जिला मजिस्ट्रेट को न्यायालय के रूप में संदर्भित नहीं किया गया है। अधिनियम के तहत, जिला मजिस्ट्रेट एक प्रशासनिक अधिकारी के रूप में कार्य करता है। जिला मजिस्ट्रेटों की न्यायालयों का गठन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 6 और 10 के तहत किया जाता है। लेकिन इस बात को गंभीरता से नहीं कहा जा सकता है कि इस अधिनियम के अंतर्गत कार्य करने वाला जिला मजिस्ट्रेट एक आपराधिक न्यायालय है। यह सर्वविदित है कि जिला मजिस्ट्रेट या कलेक्टर किसी जिले का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होता है। इस क्षमता में इस अधिनियम के अंतर्गत जिला मजिस्ट्रेट को कतिपय कार्य सौंपे गए हैं। "सेंट्रल टॉकीज लिमिटेड बनाम द्वारका प्रसाद [ए.आई.आर. 1961 एस.सी. 606.] यह माना गया कि, अधिनियम के तहत जिला मजिस्ट्रेट एक व्यक्ति पदनाम नहीं है। लेकिन उस प्रकरण में यह निर्धारित नहीं किया गया है कि अधिनियम के तहत जिला मजिस्ट्रेट एक न्यायालय है। अधिनियम की धारा 16 में कहा गया है कि राज्य सरकार या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा इस अधिनियम के तहत किए गए किसी भी आदेश पर किसी भी न्यायालय में प्रश्न नहीं उठाया जाएगा। धारा 16 में मुंसिफ या सिविल जज का कोई संदर्भ नहीं है। धारा 16 से पता चलता है कि अधिनियम के तहत एक मुंसिफ द्वारा पारित आदेश को विधि की न्यायालय में प्रश्न में बुलाया जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि विधायिका ने एक तरफ राज्य सरकार और जिला मजिस्ट्रेट को और दूसरी तरफ मुंसिफ और सिविल जज को अलग-अलग स्तर पर रखा है।

46. धारा 7-बी अधिनियम के तहत एक मुंसिफ की स्थिति पर बहुत प्रकाश डालती है। (1) धारा 7-बी की, "मकान मालिक किरायेदार को आवास से बाहर निकालने के आदेश के लिए क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार वाले मुंसिफ को आवेदन कर सकता है। उप-धारा के तहत। (3), मुंसिफ किरायेदार को एक नोटिस देता है जिसमें उसे किराए के बकाया का भुगतान करने के लिए कहा जाता है। उप-सेक। (5) यह निर्धारित करता है कि, यदि किरायेदार उधार जमा नहीं करता है और कोई आपत्ति दर्ज नहीं करता है, तो मुंसिफ किरायेदार को बेदखल करने का आदेश देगा। उप-सेक। धारा 7-ख की धारा (7) में कहा गया है:-

"यदि किरायेदार उप-धारा के तहत नोटिस के जवाब में उपस्थित होता है। (3) और आपत्ति दर्ज करता है, ... मुंसिफ आवेदक को सूचित करेगा कि वह, न्यायालय शुल्क के भुगतान के अधीन..... आवेदन को अकेले किराए के बकाया की वसूली के लिए एक मुकदमे में एक वादपत्र के रूप में माना जा सकता है .....

उपधारा (8) के अनुसार, यदि आवेदक आवश्यक न्यायालय शुल्क अदा कर देता है, तो आवेदन को वादपत्र (plaint) के रूप में माना जाएगा और कार्यवाही को वाद (suit) के रूप में समझा जाएगा। यह ध्यान देने योग्य है कि वही मुंसिफ अधिनियम की धारा 7-B की उपधारा (1) से लेकर उपधारा (8) तक की सम्पूर्ण कार्यवाही का निस्तारण करता है। उपधारा (8) के अंतर्गत आवेदन को वादपत्र माना जाना है और कार्यवाही एक वाद का स्वरूप धारण कर लेती है। यह स्पष्ट है कि धारा 7-B की उपधारा (8) के अंतर्गत कार्य करते हुए मुंसिफ एक दीवानी न्यायालय है। यह मानना अनुचित होगा कि उपधारा (1) के अंतर्गत मुंसिफ की एक हैसियत हो और

उपधारा (8) के अंतर्गत उसकी कोई अन्य हैसियत हो। अधिनियम की धारा 7-B के अंतर्गत सम्पूर्ण कार्यवाही के दौरान मुंसिफ की स्थिति समान ही रहनी चाहिए। केवल इस कारण से कि मकान-मालिक ने आवेदन को वादपत्र में परिवर्तित कराने के लिए न्यायालय शुल्क अदा कर दिया है, मुंसिफ की हैसियत परिवर्तित नहीं हो सकती। अधिनियम की धारा 7-B के अंतर्गत सम्पूर्ण कार्यवाही के दौरान मुंसिफ एक दीवानी न्यायालय ही है।

47. विपक्षी पक्ष की ओर से उपस्थित श्री विष्णु कुमार गुप्ता ने अपने इस तर्क के समर्थन में दो बिंदुओं की ओर संकेत किया कि अधिनियम की धारा 7-E के अंतर्गत मुंसिफ persona designata है। श्री वी.के. गुप्ता ने सर्वप्रथम यह इंगित किया कि अधिनियम की धारा 7-E के अंतर्गत क्षेत्राधिकार रखने वाले मुंसिफ को असीमित मौद्रिक (pecuniary) अधिकारिता प्राप्त है। अतः यह तर्क दिया गया कि वह बंगाल, आगरा एवं असम दीवानी न्यायालय अधिनियम, 1887 (जिसे आगे दीवानी न्यायालय अधिनियम कहा गया है) के अंतर्गत एक दीवानी न्यायालय नहीं हो सकता। श्री वी.के. गुप्ता ने यह भी इंगित किया कि दीवानी न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के अंतर्गत मुंसिफ की अधिकारिता सीमित होती है। तथापि, यह ध्यान देने योग्य है कि दीवानी न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के अंतर्गत भी सभी मुंसिफों की मौद्रिक अधिकारिता समान नहीं है। किसी एक मुंसिफ की अधिकारिता ₹2,000/- तक हो सकती है, जबकि किसी अन्य मुंसिफ की अधिकारिता ₹5,000/- तक हो सकती है। विधानमंडल के लिए यह पूर्णतः खुला था कि वह उ०प्र० अधिनियम संख्या III सन् 1947 के प्रयोजनों के लिए मुंसिफ को असीमित मौद्रिक अधिकारिता प्रदान करे।

48. दूसरे, श्री वी.के. गुप्ता द्वारा यह तर्क दिया गया था कि, अधिनियम की धारा 7-ई के तहत मरम्मत के लिए एक किरायेदार द्वारा खर्च किए गए धन की वसूली के लिए, किरायेदार को ऋण के रूप में राशि वसूलने के लिए मकान मालिक के खिलाफ एक अलग मुकदमा दायर करना होगा। धारा 7-E का (6) उप-धारा में निहित सामग्री उपबंध यह है:

"इसके बाद किरायेदार के लिए इस तरह की मरम्मत करना और किराए से उसकी लागत में कटौती करना, या मकान मालिक से अन्यथा इसे वसूलना वैध होगा जैसे कि यह मकान मालिक द्वारा उसके कारण ऋण था।
इस प्रावधान के अनुसार, एक किरायेदार मरम्मत की लागत दो तरीकों से वसूल कर सकता है। या तो वह अपने द्वारा देय किराए के विरुद्ध व्यय को समायोजित कर सकता है। या किरायेदार उस व्यय को मकान मालिक द्वारा उसके कारण ऋण के रूप में मान सकता है। यह प्रावधान अधिनियम की धारा 7-E की उपधाराओं (5) एवं (6) के अंतर्गत मुंसिफ की स्थिति पर बहुत कम प्रभाव डालता है।

49. नेशनल टेलीफोन कंपनी बनाम महामहिम के पोस्टमास्टर-जनरल [1913 ए.सी. 546.], विस्काउंट अलाल्डने, एलसी ने कहा कि, "जब किसी प्रश्न को एक स्थापित न्यायालय को संदर्भित करने के लिए कहा जाता है, तो यह आयात करता है कि उस न्यायालय की प्रक्रिया की सामान्य घटनाओं को संलग्न करना है।
इस अधिनियम के अंतर्गत व्यापक योजना यह है। अधिनियम के तहत कर्तव्यों को दो समूहों में विभाजित किया गया है। प्रशासनिक कार्य जिलाधिकार को सौंपे गए हैं। न्यायिक प्रकृति के कार्य मुआसिफों और सिविल न्यायाधीशों को सौंपे गए हैं। मुंसिफों के न्यायालयों का गठन सिविल न्यायालय अधिनियम के तहत किया जाता

है। एक धारणा है कि 1947 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या III के तहत मुंसिफ भी सिविल न्यायालय हैं। अधिनियम में कोई स्पष्ट संकेत नहीं है कि, एक मुंसिफ एक व्यक्ति पदनाम है, इसके विपरीत अधिनियम में मुंसिफों को न्यायालय के रूप में कई संदर्भ दिए गए हैं। अधिनियम में हमें तीन अलग-अलग अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं: (i) मुंसिफ का अधिकार क्षेत्र है, (ii) मुंसिफ का क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार है, और (iii) मुंसिफ का न्यायालय जिसका अधिकार क्षेत्र है। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिनियम में तीन अभिव्यक्तियों का अंधाधुंध उपयोग किया गया है। तीन अभिव्यक्तियाँ "एक ही अधिकार" को संदर्भित करती हैं। अभिव्यक्ति "मुंसिफ के न्यायालय का अधिकार क्षेत्र है" स्पष्ट रूप से प्राधिकरण को सिविल न्यायालय के रूप में संदर्भित करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य दो अभिव्यक्तियों का भी इसी अर्थ में उपयोग किया गया है। अधिनियम की धारा 7-E की उपधारा (4) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "क्षेत्राधिकार रखने वाला मुंसिफ" का अर्थ "क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार रखने वाले मुंसिफ का न्यायालय" के समतुल्य है।

50. इन सभी विचारों को ध्यान में रखते हुए, मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि, उत्तर प्रदेश (अस्थायी) किराया और बेदखली नियंत्रण अधिनियम, 1947 की धारा 7-ई के तहत कार्य करने वाला मुंसिफ उच्च न्यायालय के अधीनस्थ एक सिविल न्यायालय है। नतीजतन, धारा 115, सीपीसी के तहत वर्तमान सिविल पुनरीक्षण बनाए रखने योग्य है।

न्यायालय द्वारा: - 51. हमारे निर्णयों में दिए गए कारणों से हम मानते हैं कि उत्तर प्रदेश (अस्थायी) किराया और बेदखली नियंत्रण अधिनियम, 1947 की धारा 7-ई के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाला मुंसिफ एक सिविल न्यायालय है, न कि एक व्यक्ति पदनामित और यह कि उसके द्वारा पारित एक आदेश इस न्यायालय द्वारा धारा 115, सीपीसी के तहत संशोधित किया जा सकता है।

प्रश्न का उत्तर दिया गया।"

13. उक्त पूर्ण पीठ का निर्णय याचिकाकर्ता के लिए बहुत उपयोगी नहीं हो सकता है क्योंकि पूर्ण पीठ को जो भेजा गया था वह उत्तर प्रदेश (अस्थायी) किराया और बेदखली नियंत्रण अधिनियम, 1947 की धारा 7-ई के आधार पर मुंसिफ की शक्ति की प्रकृति थी। उक्त पूर्ण पीठ का गठन उत्तर प्रदेश (अस्थायी) किराया और बेदखली नियंत्रण अधिनियम, 1947 की धारा 7-ई के आधार पर मजिस्ट्रेट को प्रदत्त शक्तियों के दायरे पर विचार करने के लिए किया गया था। उठाया गया विशिष्ट प्रश्न यह था कि क्या धारा 7-ई के तहत शक्ति का प्रयोग करने वाला मुंसिफ शक्ति का प्रयोग करने वाली न्यायालय होगी या एक 'व्यक्ति पदनाम' होगी, पूर्ण न्यायालय ने एक विचार बनाया कि अधिनियम की धारा 7-ई के आधार पर प्रदत्त कार्यों को करने वाला मुंसिफ एक न्यायालय होगा और पारित आदेश सीपीसी की धारा 115 के तहत पुनरीक्षण योग्य होगा; वर्तमान प्रकरण में, ऐसा कोई मुद्दा नहीं उठता है। वर्तमान प्रकरण में भी, धारा 30 के आधार पर प्रदत्त कार्यों का प्रदर्शन करने वाला मुंसिफ स्पष्ट रूप से एक न्यायालय होगा और 'व्यक्ति पदनाम' नहीं होगा, हालांकि, प्रदत्त शक्तियों का दायरा अधिनियम की धारा 30 के जनादेश तक ही सीमित होगा। मकान मालिक और किरायेदार के संबंधों के संबंध में किसी भी स्पष्ट निष्कर्ष को दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है, जैसा कि इस न्यायालय के समक्ष बहस करने की मांग की जा रही है। उक्त आदेश भी संशोधित नहीं होगा क्योंकि 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 के अधिनियमन के बाद, अपील और पुनरीक्षण शक्ति विशेष रूप से 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 22 या धारा 18 के तहत प्रदान की गई थी।

सीपीसी को धारा 38 के आधार पर स्पष्ट रूप से ओवरराइड किया गया था, इस तरह, यह मानते हुए कि उक्त आदेश के खिलाफ एक पुनरीक्षण होगा, 1972 के यूपी अधिनियम संख्या 13 की पूरी तरह से गलत व्याख्या के बराबर होगा और 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 38 के साथ सीधे संघर्ष में होगा।

14. अधिनियम की धारा 30 के तहत मुंसिफ की शक्तियों के संबंध में, **गिरधारी लाल मेहता (पूर्वोक्त**) में विधि को स्पष्ट रूप से विस्तृत किया गया था, जिसमें निष्कर्ष पैरा 5 में दर्ज किया गया था जो इस प्रकार है:

"5. धारा के विस्तार से यह स्पष्ट है कि विधानमंडल ने पहले के अधिनियम के तहत उत्पन्न कठिनाई के प्रति सचेत होने के कारण जानबूझकर उन व्यक्तियों को भी लाभ पहुंचाया जो किरायेदार होने का दावा करते हैं और किरायेदार होने का दावा करते हैं ताकि मकान मालिक किराया स्वीकार करने से इनकार करने के अपने आचरण से दावेदार को न्यायालय में जमा करने की अनुमति न देकर स्थिति पैदा न कर सके और बाद में भले ही वह व्यक्ति किरायेदार पाया जाए इस अवधि के लिए भुगतान में चूक का दावा करके अपने लाभ की ओर मुड़ें। यह सच है कि जमा स्वीकार करने से पहले मुंसिफ को उप-धारा के तहत अधिकार क्षेत्र प्रदान किया गया है। दावे को स्वीकार करने के लिए धारा 30 की धारा (3) को प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना चाहिए लेकिन संतुष्टि केवल इस तथ्य की है कि आवेदन करने वाला व्यक्ति भवन का किरायेदार होने का दावा करने वाला व्यक्ति था। विधि को आगे किसी चीज की जरूरत नहीं है। कम से कम यह निर्णय पर विचार नहीं करता है। और मकान मालिक के प्रति आदेश कैसे पूर्वाग्रह से ग्रस्त है। यदि किरायेदार होने का दावा करने वाला व्यक्ति इसे जमा करता है लेकिन अंततः यह पाया जाता है कि वह किरायेदार नहीं है तो वह इस धारा के तहत आदेश से ऐसा नहीं होता है। उप-सेक का लाभ। (6) केवल उस व्यक्ति के लिए उपलब्ध होगा जो किरायेदार पाया जाता है। एक आदेश जो सुनवाई या यहां तक कि नोटिस के बिना पारित किया जाता है, स्पष्ट रूप से रेस ज्यूडिकाटा के रूप में काम नहीं कर सकता है। हाजी अब्दुल करीम के प्रकरण (1978 (यूपी) आरसीसी 691) में इस पहलू को विस्तार से लाया गया है। पुराने अधिनियम की धारा 7ई के तहत प्रयोग किए गए क्षेत्राधिकार की प्रकृति के बीच अंतर और नियम 6 में भी इंगित किया गया था। यह माना गया कि राज कुमार के प्रकरण (एआईआर 1971 ऑल 273) से कोई सहायता प्राप्त नहीं की जा सकती है ताकि धारा 30 के तहत उस आदेश को स्थापित किया जा सके जो रेस ज्यूडिकाटा के रूप में संचालित है। न ही आदेश को एक तर्कसंगत आदेश न होने की दुर्बलता से पीड़ित कहा जा सकता है। अधिकार क्षेत्र की प्रकृति के अनुसार आदेश को निर्णय की तरह विस्तृत करने की आवश्यकता नहीं है। इसे मन के अनुप्रयोग का प्रदर्शन करना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है।"

16. ऊपर दर्ज तर्क को देखते हुए, रिट याचिका में गुण-दोष का अभाव है और इसे **खारिज** किया जाता है। रिट याचिका भी खारिज की जानी चाहिए क्योंकि इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता न तो मकान मालिक होने का दावा करता है और न ही मकान मालिक है और इस तरह, आक्षेपित आदेश का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

17. यह भी स्पष्ट किया जाता है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा अधिनियम की धारा 30 के तहत किराए की जमा करने से किसी भी कार्यवाही में कोई लाभ नहीं मिलेगा जो उसके खिलाफ उसकी बेदखली के लिए या अन्यथा मकान मालिक/मालिक द्वारा स्थापित की गई है।

(2025) 5 ILRA 1094

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश पाठक

रिट सी संख्या-2373 वर्ष 2024

मेसर्स मैरियन बायोटेक प्राइवेट लिमिटेड ... याचिककर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: नीजा श्रीवास्तव, वरिष्ठ अधिवक्ता, वीरेंद्र सिंह

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता: ए.एस.जी.आई., सी.एस.सी., आर.पी.एस.

भारत का संविधान, अनुच्छेद 226 - औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 - धारा 4, 16, 17, 17A, 17B, 25(3) - ड्रग्स और कॉस्मेटिक्स नियम, 1945 - नियम 85(3) - फंक्टस ऑफिसियो और समीक्षा क्षेत्राधिकार - याचिकाकर्ता ने 04.10.2023 के आदेश को चुनौती दी, जिसने एक समीक्षा आवेदन की अनुमति दी और प्रोपलीन ग्लाइकोल का उपयोग करने वाली दवाओं को छोड़कर याचिकाकर्ता के ड्रग लाइसेंस (फॉर्म 25 और फॉर्म 28) को पुनर्जीवित करते हुए 11.08.2023 के अपीलीय आदेश को निलंबित कर दिया। उज्बेकिस्तान में बच्चों की मौत से जुड़े घटिया डीओके-1 मैक्स सिरप के कारण। याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि अपीलीय प्राधिकरण के पास अपने आदेश की समीक्षा करने के अधिकार क्षेत्र का अभाव है, जो वैधानिक प्रावधानों से अनुपस्थित है, अपील के बाद पदेन बन गया, और अधिनियम की धारा 25(3) का उल्लंघन करते हुए समीक्षा आदेश पारित किया। प्रतिपक्षीगण ने तर्क दिया कि सार्वजनिक हित, घटिया दवाओं में अतिरिक्त डायथिलीन ग्लाइकोल (डीईजी) और एथिलीन ग्लाइकोल (ईजी) और उज्बेकिस्तान अदालत के आदेशों की गलत बयानी के कारण समीक्षा उचित थी। इंडियन बैंक बनाम सत्यम फाइबर्स के अनुसार धोखाधड़ी को ठीक करने के लिए अंतर्निहित शक्तियों का हवाला देते हुए। न्यायालय ने माना कि अपीलीय प्राधिकारी, अपील का निर्णय लेने के बाद, नियम 85(3) के तहत कार्यवाहक बन गया, और अधिनियम या नियमों के तहत कोई वैधानिक समीक्षा शक्ति मौजूद नहीं थी। नरेश कुमार बनाम सरकार (दिल्ली एन.सी.टी.) और पटेल नरशी ठाकर्शी बनाम प्रद्युम्न सिंहजी के मामले में अपील के दौरान उज्बेकिस्तान अदालत के आदेशों और नशीली दवाओं की कमी सहित सभी तथ्यों का पता नहीं चला। आवेदन के दिन ही एकपक्षीय रूप से पारित किए गए समीक्षा आदेश में नए सबूतों या कानूनी आधार का अभाव था। रिट याचिका की मंजूरी, पुनर्विचार आदेश रद्द। (प्रस्तर-15-33)

रिट याचिका की अनुमति दी गई।

उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची:

1. नरेश कुमार और अन्य बनाम सरकार (दिल्ली एन.सी.टी.), (2019) 9 एस.सी.सी. 416
2. पटेल नरशी ठाकर्शी और अन्य बनाम प्रद्युम्न सिंहजी अर्जुन सिंहजी, (1973) 3 एस.सी.सी. 844
3. मानस मेडिकोज मनसा अपने मालिक चमन लाल बनाम पंजाब राज्य और अन्य, 2010 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी एंड एच 5184 के माध्यम से
4. इंडियन बैंक बनाम सत्यम फाइबर्स (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, (1996) 5 एस.सी.सी. 550
5. एसपी चेंगलवरैया नायडू (मृत) एलआर बनाम जगन्नाथ (मृत) द्वारा एलआर और अन्य, (1994) 1 एस.सी.सी. 1
6. बुधिया स्वैन और अन्य बनाम गोपीनाथ देब और अन्य, (1999) 4 एस.सी.सी. 396
7. यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम राजेंद्र सिंह और अन्य, (2000)3 एस.सी.सी. 581
8. ए.वी.एस. पपाय्या शास्त्री और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश और अन्य सरकार, (2007)4 एस.सी.सी. 221
9. इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया बनाम भारतीय रिज़र्व बैंक, (2020)10 एस.सी.सी. 274
10. उड़ीसा प्रशासनिक न्यायाधिकरण बार एसोसिएशन बनाम यू.ओ.आई. और अन्य, 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 309
11. ललित नारायण मिश्रा बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य, 2016 एस.सी.सी. ऑनलाइन एचपी 2866
12. वीजी नायडू बनाम पहलराज गंगाराम, 2016 एस.सी.सी. ऑनलाइन एमएडी 9710
13. शिवराजी और अन्य बनाम चकबंदी और अन्य के उप निदेशक, 1997 आरडी 562
14. दीप चंद बनाम अतिरिक्त निदेशक, कंसोलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स, पंजाब, जलंधर, 164 पीएलजे 313
15. एसएल कपूर बनाम जगमोहन और अन्य, (1980) 4 एस.सी.सी. 379
16. हुआंग बनाम गृह विभाग के राज्य सचिव, (2007) यूकेएचएल 11
17. हीरा लाल पाटनी बनाम श्री काली नाथ, ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 199
18. सतीश चंद्र चटर्जी बनाम कुमार सतीश कांता रॉय और अन्य, ए.आई.आर. 1923 पीसी

(माननीय न्यायमूर्ति दिनेश पाठक द्वारा उद्घोषित)

1. श्री वी.पी. श्रीवास्तव (वरिष्ठ अधिवक्ता) की सहायता से याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री वीरेंद्र सिंह और नीजा श्रीवास्तव और श्री मनीष गोयल (वरिष्ठ अधिवक्ता), अतिरिक्त महाधिवक्ता, श्री ए.के. गोयल, राज्य प्रतिपक्षी संख्या-1 से 5 के अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता के साथ-साथ श्री शशि प्रकाश सिंह (वरिष्ठ

अधिवक्ता), भारत के अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल द्वारा सहायता प्रदत्त एवं प्रतिपक्षी संख्या-6 के अधिवक्ता श्री आरपीएस चौहान द्वारा सहायता प्रदत्त को सुना।

2. याचिकाकर्ता अपीलीय प्राधिकारी/विशेष सचिव, खाद्य, सुरक्षा एवं औषधि प्रशासन, उत्तर प्रदेश (प्रतिपक्षी संख्या-2) द्वारा पारित आदेश दिनांक 04.10.2023 (अनुबंध संख्या-16) से आहत है, जिसके द्वारा सहायक आयुक्त (औषधि) की ओर से प्रस्तुत पुनर्विचार प्रार्थना-पत्र दिनांक 04.10.2023 स्वीकार कर लिया गया है तथा औषधि एवं प्रसाधन सामग्री नियमावली, 1945 (संक्षेप में 'नियम, 1945') के नियम 85(3) के अंतर्गत अपील संख्या-1005/2023 में पारित पूर्व आदेश दिनांक 11.08.2023 को स्थगित कर दिया गया है। साथ ही, विनिर्माण कंपनी (याची) को यह निर्देशित किया गया है कि वह उज़्बेकिस्तान गणराज्य की विभिन्न न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों की प्रमाणित प्रतियां प्रस्तुत करे तथा सुधारात्मक एवं निवारक कार्रवाई (सी.ए.पी.ए.) की प्रक्रिया को लागू करने के पश्चात उत्तर प्रदेश की औषधि अनुज्ञापन-सह-नियंत्रण प्राधिकरण एवं भारत के औषधि महानियंत्रक के समक्ष अनुपालन आख्या प्रस्तुत करे।

3. अभिलेखों से निकाले गए तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी है जिसकी विनिर्माण इकाई बी-48-49, सेक्टर 67, जिला गौतमबुद्ध नगर में है। उन्हें नियम 1945 के प्रावधानों के तहत फॉर्म 25 और फॉर्म 28 में स्वदेशी और विदेशी बिक्री दोनों के लिए दवा का निर्माण करने के लिए ड्रग्स लाइसेंस दिया गया है। सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी लाइसेंस के अनुसार, उन्हें विभिन्न सक्रिय अवयवों के साथ टैबलेट, कैप्सूल और सिरप बनाने की अनुमति दी गई है। प्रस्तुत रिट याचिका डीओके-1, मैक्स टैबलेट और सिरप के निर्माण से संबंधित है, जिसमें पेरासिटामोल बीपी 500 मिलीग्राम, गुइफेनेसिन बीपी 200 मिलीग्राम और फेनिलथ्रिन हाइड्रोक्लोराइड बीपी 10 मिलीग्राम के सक्रिय फार्मास्युटिकल तत्व हैं। दिनांक 29.9.2022 (अनुलग्नक संख्या-3) के पत्र द्वारा, उन्हें केवल निर्यात के प्रयोजनों के लिए अतिरिक्त दवा वस्तु (मात्रा आधारित) का निर्माण करने की अनुमति दी गई है। उज्बेकिस्तान गणराज्य के समरकंद में डीओके-1 मैक्स सिरप के सेवन के कारण 15 बच्चों की मौत के संबंध में संबंधित अधिकारियों से प्राप्त जानकारी पर, केंद्रीय और राज्य औषधि प्राधिकरणों के संयुक्त निरीक्षण दल ने 27.12.2022 से 12.1.2023 के बीच याचिकाकर्ता के कारखाने परिसर में कई निरीक्षण किए हैं और परीक्षण और विश्लेषण के प्रयोजनों के लिए दवाओं के नमूने एकत्र किए हैं। इसके बाद, नियम 1945 के नियम 85(2) के तहत याचिकाकर्ता को दिनांक 30.12.2022 को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया है कि नियम 1945 के नियम 74 और 78 के तहत उल्लिखित लाइसेंस शर्तों के उल्लंघन के कारण उसका ड्रग्स लाइसेंस (फॉर्म 25 और फॉर्म 28) रद्द/निलंबित क्यों नहीं किया जाना चाहिए। याचिकाकर्ता ने अपना जवाब दिनांक 13.1.2023 को दाखिल किया है। हालाँकि, इस बीच, संयुक्त निरीक्षण दल द्वारा एकत्र किए गए नमूनों को परीक्षण और विश्लेषण के लिए भेजा गया है, और इसकी रिपोर्ट याचिकाकर्ता को बाद के नोटिस दिनांक 3.3.2023 (अनुलग्नक संख्या-7) और 4.3.2023 (अनुलग्नक संख्या-8) द्वारा एक अवलोकन के साथ सूचित की गई है कि सरकारी विश्लेषक, क्षेत्रीय औषधि परीक्षण प्रयोगशाला (आरडीटीएल) द्वारा भेजी गई क्रमशः 1.3.2023 और 14.1.2023 की परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार, नमूनों में डीआई एथिलीन ग्लाइकोल (डीईजी) और एथिलीन ग्लाइकोल (ईजी) आवश्यक मानक से अधिक पाए गए हैं।

4. ड्रग्स लाइसेंसिंग-कम-कंट्रोलिंग अथॉरिटी उत्तर प्रदेश ने औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 (संक्षिप्तता अधिनियम, 1940 में) की धारा 25(3) के तहत प्रतिपादित प्रतीक्षा अवधि वर्ष 28 दिनों के बिना दिनांक 13.3.2023 (अनुलग्नक संख्या-9) द्वारा याचिकाकर्ता के ड्रग्स लाइसेंस (फॉर्म 25 और फॉर्म 28) को रद्द कर दिया है। दिनांक 13.3.2023 के आदेश से व्यथित होने के बाद, याचिकाकर्ता ने नियम 1945 के नियम 85(3) के तहत दिनांक 1.6.2023 की अपील को दायर की दी है। अपीलीय प्राधिकारी (प्रतिपक्षी संख्या-2) ने इस उद्देश्य के लिए गठित विभागीय टीम की सहायता से दिनांक 11.8.2023 (अनुलग्नक संख्या-13) के आदेश के माध्यम से अपील की आंशिक रूप से अनुमति दी है और अपीलकर्ता (याचिकाकर्ता) के ड्रग्स लाइसेंस को पुनर्जीवित किया है, सिवाय उन दवाओं के निर्माण को जिसमें प्रोपलीन ग्लाइकोल (पीजी) का उपयोग करने की अनुमति है। दिनांक 11.8.2023 के अपीलीय आदेश के अनुसरण में, ड्रग लाइसेंसिंग सह नियंत्रण प्राधिकरण उत्तर प्रदेश ने उन दवाओं के निर्माण के लिए दिनांक 14.9.2023 (अनुलग्नक संख्या-14) जारी किया है, जिनमें प्रोपलीन ग्लाइकोल (पीजी) एक आवश्यक घटक है। बाद के चरण में, सहायक आयुक्त (ड्रग्स) मुख्यालय, खाद्य सुरक्षा और औषधि प्रशासन, उत्तर प्रदेश, लखनऊ ने अपीलीय न्यायालय के दिनांक 11.8.2023 के आदेश के खिलाफ दिनांक 4.10.2023 को समीक्षा आवेदन दायर किया है। अपीलीय प्राधिकारी (प्रतिपक्षी संख्या-2) ने पुनर्विचार प्रार्थना-पत्र को स्वीकार करते हुए अपील संख्या-1005/2023 में पारित आदेश दिनांक 11.08.2023 को निलंबित कर दिया है तथा यह निर्देश दिया है कि विनिर्माण कंपनी (याची) उज़्बेकिस्तान की विभिन्न न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों की प्रमाणित प्रतियां प्रस्तुत करे और सुधारात्मक एवं निवारक कार्रवाई सुधारात्मक और निवारक कार्रवाई (सी.ए.पी.ए.) की प्रक्रिया को लागू करने के पश्चात उत्तर प्रदेश की औषधि अनुज्ञापन एवं नियंत्रण प्राधिकरण तथा भारत के औषधि महानियंत्रक के समक्ष एक आख्या प्रस्तुत करे। उक्त आदेश दिनांक 04.10.2023, जो कि वर्तमान याचिका में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती के अधीन है।

5. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि:-

5(i) नियम 1945 के तहत अपीलीय प्राधिकारी के पास दिनांक 11.8.2023 के अपने पिछले आदेश की समीक्षा करने के लिए अधिकार क्षेत्र का अंतर्निहित अभाव है, क्योंकि न तो अधिनियम 1940 में और न ही नियम 1945 में अपीलीय प्राधिकारी को अपने आदेश की समीक्षा करने की कोई शक्ति प्रदान की गई है। समीक्षा की शक्ति का प्रयोग किसी सांविधिक प्रावधान के बिना नहीं किया जा सकता है। इसे विशेष रूप से, और आवश्यक निहितार्थों द्वारा, कानून के प्रावधानों के तहत साबित किया जाना चाहिए ताकि संबंधित प्राधिकारी को समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करने में सक्षम बनाया जा सके।

5(ii) अन्यथा भी, अभिलेखों पर प्रथम दृष्ट्या कोई गलती या त्रुटि स्पष्ट नहीं है, या किसी भी नई या महत्वपूर्ण सामग्री या साक्ष्य की खोज जो उचित परिश्रम के बावजूद समीक्षा की मांग करने वाले पक्ष के ज्ञान में नहीं थी या किसी अन्य पर्याप्त कारण से अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित पिछले आदेश की समीक्षा की गारंटी देती है। अपनी दलील के समर्थन में, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने **नरेश कुमार और अन्य बनाम सरकार (दिल्ली के एन.सी.टी.), (2019) 9 एस.सी.सी. 416; पटेल नरशी ठाकर्शी और अन्य बनाम श्री प्रद्युम्न सिंहजी अर्जुन सिंहजी (1973) 3 एस.सी.सी. 844; मानस मेडिकोस मनसा के मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय**

द्वारा अपने मालिक चमन लाल बनाम पंजाब राज्य और अन्य, 2010 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी एंड एच 5184 के मामले में पारित आदेश पर अवलंबन किया है।

5(iii) इसके बाद यह प्रस्तुत किया जाता है कि एक बार जब अपीलीय प्राधिकारी ने नियम 1945 के नियम 85(3) के तहत योग्यता के आधार पर अपील का निर्णय ले लिया है, तो यह अपील में पारित आदेश की तारीख से कार्यवाहक पदेन बन जाता है, क्योंकि अपीलीय आदेश पक्षों के बीच अंतिम हो गया है जो क़ानून में उपलब्ध उपाय के अधीन है और उसके पास अपने पिछले आदेश की समीक्षा करने के लिए अधिकार क्षेत्र का अंतर्निहित अभाव है।

5(iv) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अधिनियम 1940 की धारा 25(3) के तहत प्रतिपादित प्रावधान पर भी जोर दिया है, जिसमें पीड़ित व्यक्ति (निर्माता) को विश्लेषक की रिपोर्ट के खिलाफ प्रासंगिक दस्तावेजों के साथ कोई आपत्ति दर्ज करने के लिए 28 दिनों का समय दिया गया है। प्रस्तुत मामले में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुत प्रस्तुतीकरण के अनुसार, वैधानिक अवधि समाप्त नहीं हुई है और आपत्ति दर्ज करने के अवसर के बिना, याचिकाकर्ता का ड्रग लाइसेंस रद्द कर दिया गया है।

5(v) इसके बाद यह प्रस्तुत किया जाता है कि दिनांक 4.10.2023 को चुनौती के तहत समीक्षा आदेश याचिकाकर्ता को दिए गए सुनवाई के अवसर के बिना पारित किया गया है, क्योंकि समीक्षा आवेदन 4.10.2023 को दायर किया गया था और इसे उसी दिन एकपक्षीय आदेश के माध्यम से अनुमति दी गई है ।

6. प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि -
6(i) सरकारी विश्लेषक (आरटीडीएल), चंडीगढ़ की रिपोर्ट में ग्लाइकोल का पदार्थ अनुमत डिग्री से अधिक पाया गया है जो बच्चों के स्वास्थ्य के लिए विनाशकारी है। अधिनियम 1940 की धारा 4 में आरोप लगाया गया है जिसमें जहरीले पदार्थ के बारे में अनुमान लगाया जाता है। उन्होंने न्यायालय का ध्यान अधिनियम 1940 के अध्याय IV, विशेष रूप से धारा 16 की ओर आकर्षित किया है, जो अनुसूचित दवाओं की गुणवत्ता के मानक निर्धारित करता है

6(ii) उन्होंने अधिनियम 1940 की धारा 17, 17(A) और 17(B) की ओर अदालत का ध्यान आकर्षित किया है और यह साबित करने की कोशिश की है कि याचिकाकर्ता द्वारा निर्मित दवाएं घटिया हैं और जनहित में, अपीलीय न्यायालय के आदेश की सही समीक्षा की गई है।

6(iii) इसके बाद यह प्रस्तुत किया जाता है कि अधिनियम 1940 के प्रावधानों का उन नियमों पर अधिभावी प्रभाव पड़ता है जो मुकदमेबाजी के अधीनस्थ हैं, इसलिए, अधिनियम 1940 के प्रावधानों के उल्लंघन में आदेश पारित किए जाने की स्थिति में संबंधित पक्ष (प्राधिकरण) के लिए समीक्षा दायर करने का उपाय हमेशा उपलब्ध होता है। अन्यथा भी, नियम 1945 का नियम 85(3) अपीलीय आदेश के खिलाफ समीक्षा दायर करने पर रोक

नहीं लगाता है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(6) सपठित अनुच्छेद 19(1)(जी) के तहत निहित कानूनी अधिकार पूर्ण नहीं हैं और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार के अधीन हैं। इसलिए, यह मानते हुए भी कि समीक्षा की कोई शक्ति नहीं है, संबंधित प्राधिकरण के पास जनहित में अपने आदेश की समीक्षा करने का एक अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र है।

6(iv) विनिर्माण कंपनी के झूठे प्रतिनिधित्व के कारण, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा गलत आदेश पारित किया गया था जिसे ठीक करने की आवश्यकता थी। तदनुसार, औषध लाइसेंसिंग एवं नियंत्रण प्राधिकरण, उत्तर प्रदेश ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष समीक्षा आवेदन सही ढंग से प्रस्तुत किया है। कंपनी ताशकंद के अंतर जिला आर्थिक न्यायालय की सही प्रति प्रदान करने में विफल रही। यह प्रस्तुत किया जाता है कि चर्चा के दौरान यह सामने आया है कि उज्बेकिस्तान के सर्वोच्च न्यायालय ने ताशकंद के अंतर जिला आर्थिक न्यायालय के 13.01.2023 के पहले के फैसले को ठीक किया, जिसमें अंतर जिला आर्थिक न्यायालय ने कंपनी द्वारा निर्मित सभी "उपयोग के लिए अनुपयुक्त" दवाओं को नष्ट करने का आदेश पारित किया था। शीर्ष अदालत ने "ड्रग्स अनफिट फॉर यूज" शब्द को "ड्रग्स अनफिट फॉर यूज" डॉक-1मैक्स सिरप 100 मिलीलीटर" और एम्ब्रोनोल सिरप 15 मिलीग्राम/5 मिलीलीटर, श्रृंखला AAS2201 और AAS2202" शब्दों से बदल दिया। ताशकंद के अंतर जिला आर्थिक न्यायालय का 13.1.2023 का शेष निर्णय अपरिवर्तित है। इस प्रकार, यह पाया गया कि आरोपी कंपनी ने पहले भ्रामक प्रस्तुति दी थी जिसमें कहा गया था कि उज्बेकिस्तान के सर्वोच्च न्यायालय ने केवल दो दवाओं, अर्थात् डॉक-1 सिरप और एम्ब्रोनोल सिरप पर प्रतिबंध लगा दिया है और बाकी दवाओं की अनुमति है। बैठक के दौरान यह भी ध्यान में आया कि यह मामला अभी भी अंतिम निर्णय के लिए उज्बेकिस्तान की अदालतों में लंबित है। अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने इंडियन बैंक बनाम सत्यम फाइबर्स (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड (1996) 5 एस.सी.सी. 550; एलआर बनाम जगन्नाथ (मृत) द्वारा एलआर और अन्य (1994) आई एस.सी.सी. 1 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित बुधिया स्वैन और अन्य बनाम गोपीनाथ देब और अन्य (1999) 4 एस.सी.सी. 396; यूनाइटेड इंडियन इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम राजेंद्र सिंह और अन्य (2000) 3 एस.सी.सी. 581; ए.वी. पपाय्या शास्त्री और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य (2009) 4 एस.सी.सी. 221 इत्यादि निर्णय पर भरोसा किया है।

6(v) प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत करने की कोशिश की है कि किसी चीज को प्रतिबंधित करने की शक्ति क्योंकि अतिरिक्त शुल्क हमेशा एक विधायी नीति होती है, इसलिए, कानून के माध्यम से प्रदत्त उनके अधिकार क्षेत्र के तहत अधिकारी पिछली कार्यवाही की शुद्धता की जांच कर सकते हैं जो हानिकारक है और कानून के प्रावधानों के खिलाफ है। अपने सबमिशन के समर्थन में, उन्होंने **इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया बनाम भारतीय रिजर्व बैंक, (2020) 10 एस.सी.सी. 274** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित फैसले पर भरोसा किया है।

7. पक्षों के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार करने और अभिलेखों के अवलोकन के बाद, यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत रिट याचिका में शामिल मुद्दा एक संकीर्ण कम्पास में निहित है कि "क्या नियम 1945 के नियम 85(3) के तहत अपीलीय प्राधिकारी को अपील संख्या-1005 वर्ष 2023 में पारित अपने पिछले आदेश दिनांक 11.8.2023 की समीक्षा करने का अधिकार क्षेत्र मिला है, समीक्षा के लिए किसी भी वैधानिक प्रावधान के अभाव में, और अपने अपीलीय अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के बाद कार्यवाहक बन गया।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अपीलीय प्राधिकारी के अपने पहले के आदेश पर फिर से विचार करने के अधिकार क्षेत्र के अभाव में आक्षेपित आदेश को खारिज कर दिया है और प्रस्तुत किया है कि एक बार नियम 1945 के नियम 85(3) के तहत अपील पर अंतिम रूप से निर्णय हो जाने के बाद, अपीलीय प्राधिकारी कार्यवाहक बन जाता है और वह मामले में शामिल प्रश्न को नए सिरे से तय करने के लिए समीक्षा की प्रकृति में किसी भी आवेदन पर विचार नहीं कर सकता है। हालांकि, प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि क़ानून के तहत अपीलीय प्राधिकारी किसी भी समय उनके आदेश में सुधार कर सकता है, यदि उन्हें लगता है कि आदेश गलत तथ्यों पर पारित किया गया है, इसलिए, उन्हें कार्यवाहक के रूप में नहीं माना जा सकता है। तात्कालिक मामले में शामिल बिंदु को ध्यान में रखते हुए, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, "फंक्टस ऑफिसियो" वाक्यांश को परिभाषित करना उचित होगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि किसी भी न्यायाधीश या अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण को इस स्थिति में कार्यवाहक के रूप में माना जाएगा कि उसने अपनी आधिकारिक क्षमता में अपना कर्तव्य निभाया है और उक्त विषय वस्तु पर कुछ भी निर्णय/विचार/पुनर्विचार करने के लिए नहीं रहता है जब तक कि ऐसा करने के लिए कोई कानूनी प्रावधान न हो। **उड़ीसा प्रशासनिक न्यायाधिकरण बार एसोसिएशन बनाम भारत संघ और अन्य, 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 309** के हालिया फैसले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने "फंक्टस ऑफिसियो" वाक्यांश पर चर्चा की है। उपरोक्त निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

107. पी. रामनाथ अय्यर की द लॉ लेक्सिकन (1997 संस्करण) फंक्टस ऑफिशियो शब्द को इस प्रकार परिभाषित करती है: -

"एक शब्द किसी ऐसी चीज पर लागू होता है जिसके पास एक बार जीवन और शक्ति होती है, लेकिन जो किसी भी गुण का नहीं बन गया है, जिसने अपने पद को पूरा किया है या कार्यालय से बाहर है, एक प्राधिकरण जिसने अधिकृत कार्य किया है ताकि अधिकार समाप्त हो जाए"

108. ब्लैक लॉ डिक्शनरी (5वां संस्करण) इस शब्द को इस प्रकार परिभाषित करता है
"कार्य को पूरा करने के बाद, कार्यालय का निर्वहन किया या उद्देश्य को पूरा किया, और इसलिए कोई और बल या अधिकार नहीं है, जो इसके निर्माण के उद्देश्य को पूरा कर चुका है, और इसलिए कोई और गुण या प्रभाव नहीं है

109. फंक्टस ऑफिसियो का सिद्धांत अंतिमता के सिद्धांत को प्रभावी करता है। एक बार जब कोई न्यायाधीश या अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण निर्णय दे देता है, तो निर्णय पर फिर से विचार करना और संशोधन करना उसके लिए खुला नहीं है। इसे सही स्पष्ट करें, या उलट दें (कानून द्वारा प्रदत्त समीक्षा की शक्ति के प्रयोग को छोड़कर) एक बार जब कोई न्यायिक या अर्ध-न्यायिक निर्णय अंतिम रूप प्राप्त कर लेता है, तो यह केवल अपीलीय अदालत के समक्ष कार्यवाही में परिवर्तन के अधीन होता है

110. उदाहरण के लिए, दंड प्रक्रिया संहिता 1975 की धारा 362 में प्रावधान है कि कानून की अदालत को एक बार हस्ताक्षर करने के बाद अपने फैसले को बदलना नहीं है

"362 न्यायालय निर्णय में परिवर्तन नहीं करेगा। इस संहिता द्वारा या किसी अन्य कानून द्वारा अन्यथा प्रदान किए गए के अलावा, कोई भी न्यायालय, जब उसने किसी मामले के निपटान के अपने निर्णय या अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर किए हैं, तो वह लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने के अलावा इसे बदल या समीक्षा नहीं कर सकता है।

*111. **हरि सिंह मान बनाम हरभजन सिंह बाजवा** में, इस न्यायालय ने माना कि धारा 362 कार्य-पदेन के सिद्धांत पर आधारित थी;*
70. यह धारा कानून के एक स्वीकृत सिद्धांत पर आधारित है कि एक बार जब किसी मामले का न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से निपटा दिया जाता है, तो उक्त न्यायालय एक विशिष्ट वैधानिक प्रावधान के अभाव में कार्यवाहक पदेन बन जाता है और उसी राहत के लिए एक नई प्रार्थना पर विचार करने के लिए अयोग्य हो जाता है जब तक कि अंतिम निपटान के पूर्व आदेश को कानून द्वारा निर्धारित तरीके से सक्षम क्षेत्राधिकार की अदालत द्वारा रद्द नहीं किया जाता है। किसी मामले के निपटारे के आधिकारिक आदेश पर हस्ताक्षर किए जाने के क्षण अदालत कार्यवाहक बन जाती है। इस तरह के आदेश को लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने की सीमा तक नहीं बदला जा सकता है।

112. फंक्टस ऑफिसियो का सिद्धांत एक स्पष्ट बिंदु प्रदान करने के लिए मौजूद है जहां न्यायिक प्रक्रिया समाप्त होती है और विवाद को शांत करने के लिए। इसके बिना, अदालतों जैसे निर्णय लेने वाले निकाय अंतहीन रूप से अपने निर्णयों पर फिर से विचार कर सकते हैं। अदालत या अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण के समक्ष किसी मामले के लिए एक निश्चित समापन बिंदु के साथ, पक्षगण न्यायिक समीक्षा की मांग करने या अपील को दायर की देने के लिए स्वतंत्र हैं। वैकल्पिक रूप से, उनके अधिकार अंतिमता के साथ निर्धारित किए जाते हैं। इसी तरह के विचार राज्य द्वारा लिए गए निर्णयों पर लागू नहीं होते हैं जो पूरी तरह से नीति या समीचीनता पर आधारित होते हैं।

115. प्रस्तुत मामले की ओर मुड़ते हुए, अपीलकर्ताओं का तर्क कि ओ.ए.टी. की स्थापना के बाद केंद्र सरकार को कार्यवाहक पद प्रदान किया गया था, जांच का सामना नहीं करता है। ओ.ए.टी. स्थापित करने का निर्णय

प्रशासनिक था और नीतिगत विचारों पर आधारित था। यदि फंक्टस ऑफिशियो के सिद्धांत को राज्य द्वारा प्रशासनिक निर्णय लेने के क्षेत्र में लागू किया जाए, तो इसकी कार्यकारी शक्ति अपंग हो जाएगी। राज्य किसी भी नीति या नीति-आधारित निर्णय को बदलने या उलटने में असमर्थ होगा और इसका कामकाज ठप हो जाएगा। सभी नीतियां अंतिम रूप प्राप्त करेंगी और कोई भी परिवर्तन प्रभावी करने के लिए असंभव के करीब होगा।

114. यह न केवल बड़े नीतिगत निर्णयों को प्रभावित करेगा बल्कि छोटे निर्णयों को भी प्रभावित करेगा। उदाहरण के लिए, एक मामूली नीतिगत निर्णय जैसे कि बस मार्ग एक बार अधिसूचित होने के बाद किसी भी संशोधन के लिए उत्तरदायी नहीं होगा। एक बार निर्धारित होने के बाद, बस मार्ग एक लोकप्रिय गंतव्य पर एक अतिरिक्त पड़ाव की मांग की परवाह किए बिना समान रहेगा। सब्सिडी, कॉर्पोरेट गवर्नेंस, आवास, शिक्षा और सामाजिक कल्याण से संबंधित प्रमुख नीतिगत निर्णय फ्रीज हो जाएंगे यदि कार्यवाहक पदेन के सिद्धांत को प्रशासनिक निर्णयों पर लागू किया जाना था। यह कल्पना नहीं की जा सकती है क्योंकि यह सरकार और शासन की नींव के उद्देश्य को विफल कर देगा। अपने स्वभाव से, नीतियां किसी भी समय समाज में प्रचलित परिस्थितियों के आधार पर परिवर्तन के अधीन हैं। फंक्टस ऑफिसियो के सिद्धांत को आमतौर पर उन मामलों में लागू नहीं किया जा सकता है जहां सरकार एक नीति बना रही है और उसे लागू कर रही है।

115. प्रस्तुत मामले में, राज्य और केंद्र सरकार के अधिकार को एस.ए.टी. की स्थापना के बाद समाप्त नहीं किया गया है। इसी तरह, राज्य और केंद्र सरकारों को यह नहीं कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने निर्माण के उद्देश्य को पूरा कर लिया है और एक बार एस.ए.टी. स्थापित करने के बाद उनका कोई और गुण या प्रभाव नहीं है। राज्य कानून के अनुसार अपने नीतिगत फैसलों पर फिर से विचार कर सकता है। इन कारणों से, ओ.ए.टी. की स्थापना के बाद केंद्र सरकार को कार्यवाहक पद प्रदान नहीं किया गया था।

9. **ललित नारायण मिश्रा बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य, 2016 एस.सी.सी. ऑनलाइन एचपी 2866** के मामले में, हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने माना है कि "फंक्टस ऑफिसियो" एक लैटिन शब्द है जिसका अर्थ है कि उसने अपना पद निभाया है। जहां तक किसी अधिकारी या आधिकारिक निकाय के संबंध में, इसका मतलब है कि आगे के अधिकार या कानूनी क्षमता के बिना क्योंकि मूल आयोग के कर्तव्यों और कार्यों को पूरी तरह से पूरा कर लिया गया है। "फंक्टस" का अर्थ है प्रदर्शन करना और "पद" का अर्थ है कार्यालय। इस प्रकार, वाक्यांश फंक्टस ऑफिसियो का अर्थ है अपने कार्यालय का प्रदर्शन करना, जिसका अर्थ है कि सार्वजनिक अधिकारी आगे के अधिकार या कानूनी क्षमता के बिना है क्योंकि मूल आयोग के कर्तव्यों और कार्यों को पूरी तरह से पूरा किया गया है।

10. ट्रेयनर की लैटिन मैक्सिम्स, चौथा संस्करण निम्नलिखित अर्थ की अभिव्यक्ति देता है "अपने आधिकारिक कर्तव्य का निर्वहन करने के बाद" यह किसी भी व्यक्ति के बारे में कहा जाता है जो एक निश्चित नियुक्ति करता है, जब उसके कार्यालय के कर्तव्यों का निर्वहन किया जाता है। इस प्रकार एक न्यायाधीश, जिसने अपने

सामने लाए गए प्रश्न का निर्णय लिया है, वह कार्यवाहक है और अपने स्वयं के निर्णय की समीक्षा नहीं कर सकता है।

11. व्हार्टन के लॉ लेक्सिकॉन, 14वें संस्करण में, अभिव्यक्ति फंक्टस ऑफिसियो का अर्थ दिया गया है: "एक व्यक्ति जिसने अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया है, या जिसका कार्यालय या अधिकार समाप्त हो गया है।

12. पी. रामनाथ अय्यर का नियम शब्दकोश इस अभिव्यक्ति को अर्थ देता है: "एक शब्द किसी ऐसी चीज पर लागू होता है जिसके पास कभी जीवन और शक्ति होती है, लेकिन जो किसी भी गुण का नहीं बन गया है। इस प्रकार जब एक एजेंट ने वह व्यवसाय पूरा कर लिया है जो उसे सौंपा गया था, तो उसकी एजेंसी कार्यवाहक है।

13. ब्लैक के लॉ डिक्शनरी दसवें संस्करण में, फंक्टस ऑफिसियो का अर्थ है: "अपने कार्यालय (एक अधिकारी या आधिकारिक निकाय के) को आगे के अधिकार या कानूनी क्षमता के बिना प्रदर्शन करना क्योंकि मूल आयोग के कर्तव्यों और कार्यों को पूरी तरह से पूरा किया गया है। दूसरे शब्दों में, प्राधिकरण, जिसके पास जीवन और शक्ति थी, ने उद्देश्य/गतिविधियों/कार्य के पूरा होने के कारण सब कुछ खो दिया है।

14. निष्पादन की कार्यवाही से निपटते हुए, **वीजी नायडू बनाम पहलराज गंगाराम, 2016 एस.सी.सी. ऑनलाइन एमएडी 9710** के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की एकल पीठ ने कहा है कि जब तक सीमा बनी रहती है, तब तक निष्पादन आवेदन कितने भी हो सकते हैं और यदि क़ानून है, तो कुछ प्रकार की त्रुटियों के कुछ खातों को ठीक करने की शक्ति प्रदान करता है, तब फंक्टस ऑफिसियो का सिद्धांत ऐसी योग्यता के अधीन होगा और इसकी प्रयोज्यता प्राधिकरण के कामकाज को प्रदत्त शक्ति की प्रकृति और सीमा पर निर्भर करेगी। यह आगे देखा गया है कि

"अंतिमता का सिद्धांत फंक्टस ऑफिसियो के सिद्धांत से जुड़ा हुआ है, लेकिन, अंतिमता के सिद्धांत के अपवाद हैं। हालाँकि, निर्णय को रद्द करने की न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का उपयोग केवल असाधारण परिस्थितियों में ही किया जा सकता है ताकि न्याय के गर्भपात से बचा जा सके। धोखाधड़ी के रूप में एक वास्तविक, यद्यपि सीमित, मुकदमेबाजी की अंतिमता के महत्वपूर्ण सिद्धांत के अपवाद हैं। (महत्व सन्निविष्ट)

15. प्रस्तुत मामले की दी गई परिस्थितियों में, जैसा कि पिछले प्रस्तर में चर्चा की गई है, फंक्टस ऑफिशियो की प्रकृति और दायरे पर विचार करने के बाद, यह सुरक्षित रूप से समाप्त किया जा सकता है कि अपीलीय प्राधिकारी दिनांक 11.8.2023 का आदेश पारित होने के बाद कार्यवाहक बन गया। जिस क्षण उन्होंने अपीलीय प्राधिकारी होने के नाते आदेश पारित किया, नियम 1945 के नियम 85(3) के तहत निहित उनकी अपीलीय शक्ति आगे के अधिकार या कानूनी क्षमता के अधीन समाप्त हो जाती है। इस प्रकार, समीक्षा प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को प्रमाणित करने के लिए समीक्षा का वैधानिक प्रावधान आवश्यक है। **नरेश कुमार और अन्य (उपरोक्त)** का मामला भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही से उद्भूत हुआ है, जिसमें अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित

निर्णय/अधिनिर्णय की समीक्षा की गई है; बाद में, जबकि पंचाट को अंतिम रूप दिया गया है। तथ्यों की इस पृष्ठभूमि में, माननीय उच्च न्यायालय ने माना है कि समीक्षा की शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब क़ानून इसके लिए प्रदान किया गया हो और संबंधित क़ानून में ऐसे किसी भी प्रावधान के अभाव में, समीक्षा की शक्ति का प्रयोग संबंधित प्राधिकारी द्वारा नहीं किया जा सकता है। इसी तरह का दृष्टिकोण इस उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने **शिवराजी और अन्य बनाम चकबंदी के उप निदेशक और अन्य, 1997 आरडी 562** के मामले में भी लिया था। उपरोक्त मामला उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम, 1953 के तहत कार्यवाही से उत्पन्न हुआ था। चकबंदी के उप निदेशक (यूपीसीएच अधिनियम की धारा 48 के तहत पुनरीक्षण प्राधिकरण) ने अधिनियम के तहत समीक्षा के किसी भी वैधानिक प्रावधान के बिना अपने पिछले आदेश की समीक्षा की है। इस माननीय उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने इस मामले पर विस्तार से चर्चा की है और कहा है कि समीक्षा की शक्ति विशेष रूप से प्रदान की जानी चाहिए। चकबंदी प्राधिकरण, विशेष रूप से चकबंदी के उप निदेशक को उनके आदेश की समीक्षा करने की कोई शक्ति निहित नहीं है और इसलिए, किसी भी कार्यवाही को फिर से नहीं खोल सकते हैं और अपने पहले के आदेश की समीक्षा या संशोधन नहीं कर सकते हैं। हालांकि, एक न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण के रूप में, उसके पास किसी भी लिपिकीय गलती या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने की शक्ति है, जो एक न्यायाधिकरण के रूप में अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए अपने आदेश में प्रकट होता है।

16. पटेल, नरशी ठाकरशी और अन्य (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का आदेश (तीन न्यायाधीश) द्वारा निर्णय लिया गया है, साथ ही साथ महत्वपूर्ण है, जिसमें समीक्षा की शक्ति को किसी भी प्राधिकरण की अंतर्निहित शक्ति के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है जब तक कि क़ानून प्रदान न करे। उपरोक्त निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर-4 को नीचे उद्धृत किया गया है: -

4. पहला प्रश्न जिस पर हमें विचार करना है वह यह है कि क्या श्री मनकोडी के पास 22 अक्टूबर, 1956 को सौराष्ट्र सरकार द्वारा दिए गए आदेश को रद्द करने की क्षमता थी। यह याद रखना चाहिए कि श्री मनकोडी राज्य सरकार के प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर रहे थे। श्री मनकोडी द्वारा पारित आदेश, कानून में, सौराष्ट्र सरकार द्वारा दिए गए आदेश की समीक्षा के बराबर है। यह अच्छी तरह से तय है कि समीक्षा करने की शक्ति एक अंतर्निहित शक्ति नहीं है। यह कानून द्वारा या तो विशेष रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए। अधिनियम में ऐसा कोई उपबंध हमारे ध्यान में नहीं लाया गया जिससे यह पता लगाया जा सके कि सरकार के पास अपने स्वयं के आदेश की समीक्षा करने की शक्ति है। यदि सरकार के पास अपने स्वयं के आदेश की समीक्षा करने की कोई शक्ति नहीं थी, तो यह स्पष्ट है कि उसका प्रतिनिधि अपने आदेश की समीक्षा नहीं कर सकता था। यह प्रश्न कि क्या सरकार का आदेश कानून में सही है या वैध है, इन कार्यवाहियों में तब तक विचार के लिए नहीं उठता जब तक कि उस आदेश को किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा रद्द नहीं किया जाता है या शून्य घोषित नहीं किया जाता है। इसलिए इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। अधीनस्थ न्यायाधिकरणों को उस आदेश का पालन करना होगा। केवल इसी कारण से श्री मनकोडी के आदेश को रद्द किया जा सकता था।

17. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा तय किए गए मनसा मेडिकोस (उपरोक्त) के मामले पर भी भरोसा किया है, जिसमें **दीप चंद बनाम अतिरिक्त निदेशक, कंसोलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स, पंजाब, जूलंदर, 164 पीएलजे 313** के मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की बड़ी पीठ के फैसले पर प्रस्तर-12 और 13 में भरोसा किया गया है, जिन्हें नीचे उद्धृत किया गया है:-

12. दीप चंद के मामले (उपरोक्त) में इस न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की पूर्ण पीठ के समक्ष उठाया गया मुद्दा निम्नानुसार था: -

"अतिरिक्त निदेशक, चकबंदी, इस तरह की शक्ति प्रदान करने वाले किसी भी वैधानिक प्रावधान के अभाव में गुण-दोष के आधार पर अपने आदेशों को वापस लेने या समीक्षा करने के लिए कितना सक्षम था?"

13. पूर्ण खंडपीठ, इस विषय पर न्यायिक उदाहरणों के सरगम का विश्लेषण करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंची थी कि स्पष्ट लिपिकीय या इसी तरह की गलतियों को ठीक करने की शक्ति की कल्पना की जा सकती है, लेकिन केवल तभी जब वे निर्णय के सार को प्रभावित नहीं करते हैं; अन्यथा योग्यता के आधार पर समीक्षा की कोई शक्ति नहीं हो सकती है, सिवाय उस सीमा के कि क़ानून इसे प्रदान करता है और आगे माना जाता है कि चकबंदी के अतिरिक्त निदेशक को अपने पहले के गलत और अन्यायपूर्ण आदेश को याद करने या समीक्षा करने का अधिकार नहीं था, जब भी यह पता चला कि त्रुटि विवाद के गुणों पर उनके स्वयं के गलत दृष्टिकोण के कारण थी।

18. हालांकि, यह कई न्यायिक घोषणाओं के माध्यम से अवधारित किया गया है कि कानून के तहत कानून के पदेन का प्रस्ताव और क़ानून के तहत समीक्षा क्षेत्राधिकार की कमी धोखाधड़ी, मिलीभगत और गलत बयानी के अपवादों के अधीन है। किसी भी अदालत या न्यायाधिकरण के पास अपने निर्णय या आदेश को वापस लेने या समीक्षा करने की अंतर्निहित शक्ति है, यदि उक्त आदेश या निर्णय धोखाधड़ी/जालसाजी द्वारा प्राप्त किया गया है, क्योंकि धोखाधड़ी सब कुछ को दूषित करती है, यहां तक कि अत्यंत गंभीर कार्यवाही भी। इंडियन बैंक (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि भारत में अदालतों के पास अंतर्निहित शक्ति है, विशेष रूप से धारा 151 सीपीसी के तहत, यदि यह अदालत में धोखाधड़ी से प्राप्त किया जाता है तो अपने फैसले या आदेश को वापस लेने के लिए। मुकदमे या कार्यवाही में किसी पक्ष पर धोखाधड़ी के मामले में, अदालत प्रभावित पक्ष को धोखाधड़ी से प्राप्त डिक्री को रद्द करने के लिए एक अलग मुकदमा दायर करने का निर्देश दे सकती है। अंतर्निहित शक्तियां ऐसी शक्तियां हैं जो सभी न्यायालयों में निवास करती हैं, विशेष रूप से सभी उच्च क्षेत्राधिकार में। ये शक्तियां कानून से नहीं बल्कि न्यायाधिकरण या अदालतों की प्रकृति और गठन से उत्पन्न होती हैं ताकि वे अपनी गरिमा बनाए रख सकें, इसकी प्रक्रिया और नियमों का पालन कर सकें, अपने अधिकारी को अपमान और गलत से बचा सकें और अनुचित व्यवहार को दंडित कर सकें। चूंकि धोखाधड़ी अदालत की कार्यवाही की गंभीरता, नियमितता और सुव्यवस्था को प्रभावित करती है और अदालतों

की प्रक्रिया के दुरुपयोग के बराबर भी है, इसलिए अदालतों को अदालत में धोखाधड़ी से प्राप्त आदेश को रद्द करने की अंतर्निहित शक्ति माना गया है। (महत्व सन्निविष्ट)

19. इंडियन बैंक (उपरोक्त) के मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, जिसमें दिल्ली में राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग ने प्रतिपक्षी के दावे (माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सिविल अपील में) की अनुमति दी है और बाद में अपीलकर्ता की ओर से पेश किए गए आवेदन पर इसकी समीक्षा की गई थी, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर-24 से 32 में 'धोखाधड़ी' और 'जालसाजी' शब्द को परिभाषित किया है, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:-

24. अब हम अगले और संबद्ध प्रश्नों की ओर मुड़ सकते हैं; जालसाजी क्या है, क्या जालसाजी एक धोखाधड़ी है और क्या इस मामले में, जालसाजी और धोखाधड़ी साबित हो जाती है?

25. जालसाजी की उत्पत्ति फ्रांसीसी शब्द "फोर्जर" में हुई है, जिसका अर्थ है:

"किसी चीज़ को फ्रेम करने या फैशन करने के लिए जैसा कि स्मिथ निहाई पर अपना काम करता है। और इसका उपयोग हमारे कानून में किसी अन्य व्यक्ति के अधिकार के पूर्वाग्रह के लिए झूठे लेखन को धोखाधड़ीपूर्ण बनाने और प्रकाशित करने के लिए किया जाता है (टर्म्स डे ला ले) (स्ट्राउड का न्यायिक शब्दकोश, पांचवां संस्करण खंड 2)

26. वेबस्टर के व्यापक शब्दकोश, अंतर्राष्ट्रीय संस्करण में, "जालसाजी" को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:

"धोखाधड़ी के इरादे से गलत तरीके से बनाने या भौतिक रूप से बदलने का कार्य; कोई भी लेखन, जो वास्तविक है, कानूनी प्रभावकारिता या कानूनी दायित्व की नींव हो सकता है।

27. इस परिभाषा को रेम्बर्ट बनाम राज्य, 25 पूर्वाह्न प्रतिनिधि 639 में अपनाया गया था। एक अन्य मामले में, अर्थात्, राज्य बनाम फेल्प्स, 34 पूर्वाह्न दिसंबर 672, यह निर्धारित किया गया था कि जालसाजी धोखाधड़ी या धोखे के उद्देश्य से किसी भी लिखित उपकरण का झूठा निर्माण है। यह निर्णय जालसाजी के अर्थ पर आधारित प्रतीत होता है जैसा कि टॉमलिन के लॉ डिक्शनरी में निर्धारित किया गया है।

28. उपरोक्त से, यह देखा जाएगा कि धोखाधड़ी जालसाजी का एक अनिवार्य घटक है।

29. भारतीय दंड संहिता के तहत जालसाजी एक अपराध है जिसे धारा 463 में परिभाषित किया गया है, जबकि धारा 464 एक झूठे दस्तावेज बनाने से संबंधित है। धारा 465 झूठे दस्तावेज बनाने से संबंधित है। धारा 465

जालसाजी के लिए सजा निर्धारित करती है। "जाली दस्तावेज" को धारा 470 में परिभाषित किया गया है, जबकि धारा 471 जाली दस्तावेज को वास्तविक के रूप में उपयोग करने के अपराध से संबंधित है।

30. जालसाजी और धोखाधड़ी अनिवार्य रूप से साक्ष्य के मामले हैं जिन्हें प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा या सिद्ध तथ्यों से निकाले गए निष्कर्षों द्वारा एक तथ्य के रूप में साबित किया जा सकता है।

*31. **सतीश चंद्र चटर्जी बनाम कुमार सतीश कांथा रॉय और अन्य ए.आई.आर. 1923 पीसी 73** में प्रिवी काउंसिल ने निम्नानुसार निर्धारित किया:*

"इस मामले में वादपत्र में निहित धोखाधड़ी और मिलीभगत के आरोपों को निस्संदेह उन लोगों द्वारा साबित किया जाना चाहिए जिन्होंने उन्हें बनाया है- स्थापित तथ्यों या उन तथ्यों से वैध रूप से तैयार किए गए निष्कर्षों द्वारा साबित किया गया है जो समग्र रूप से एक साथ लिए गए हैं। संदेह और अनुमान उन तथ्यों या उन अनुमानों के लिए अनुमेय विकल्प नहीं हैं, लेकिन इसके लिए किसी भी तरह से यह आवश्यक नहीं है कि एक आरोपी या धोखाधड़ी द्वारा अपनाई गई हर पेचीदा बनावटी या साजिश को पूरी तरह से उजागर किया जाना चाहिए और उसके खिलाफ फैसला ठीक से पाए जाने से पहले स्पष्ट किया जाना चाहिए। यदि यह इतने सारे नहीं होते तो एक चतुर और निपुण चालाक बच जाता।

32. उपरोक्त सिद्धांत न केवल कानून की अदालत पर लागू होगा, बल्कि वैधानिक न्यायाधिकरणों पर भी लागू होगा, जिन्हें आयोग की तरह, गवाहों की उपस्थिति को लागू करने की शक्ति सहित सिविल प्रक्रिया संहिता के कुछ प्रावधानों को लागू करके साक्ष्य अभिलेखों करने की शक्ति प्रदान की जाती है और उन्हें हलफनामे पर साक्ष्य प्राप्त करने की शक्ति भी दी जाती है। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के तहत आयोग अधिनियम की धारा 13(iv) और (v) सपठित धारा 22 में इंगित प्रक्रिया का पालन करके विवाद का निर्णय लेता है।

20. **एसपी चेंगलवरैया नायडू (उपरोक्त)** के मामले में, प्रतिपक्षी ने न्यायालय में धोखाधड़ी करके प्रारंभिक डिक्री प्राप्त की है और मामले की इस पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से प्रासंगिक और भौतिक दस्तावेज का खुलासा न करना धोखाधड़ी के बराबर है। प्रस्तर-5 और 6 के प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

5. उच्च न्यायालय, हमारे विचार में, पेटेंट त्रुटि में गिर गया। उच्च न्यायालय के समक्ष छोटा प्रश्न यह था कि क्या इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, जगन्नाथ ने अदालत में धोखाधड़ी करके प्रारंभिक डिक्री प्राप्त की थी। हालांकि, उच्च न्यायालय ने ऐसी टिप्पणियां कीं जो पूरी तरह से विकृत हैं।
हम उच्च न्यायालय से सहमत नहीं हैं कि "वादी पर कोई कानूनी कर्तव्य नहीं है कि वह एक सच्चे मामले के साथ अदालत में आए और इसे सच्चे साक्ष्य से साबित करे"। "मुकदमेबाजी की अंतिमता" के सिद्धांत को इतनी बेतुकेपन की हद तक दबाया नहीं जा सकता है कि यह बेईमान वादियों के हाथों में धोखाधड़ी का इंजन बन

जाए। कानून की अदालतें पक्षों के बीच न्याय प्रदान करने के लिए होती हैं। जो अदालत में आता है, उसे साफ-सुथरे हाथ लेकर आना चाहिए। हम यह कहने के लिए विवश हैं कि अक्सर न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जा रहा है। संपत्ति हड़पने वाले, कर चोर, बैंक-ऋण-डोजर्स और जीवन के सभी क्षेत्रों के अन्य बेईमान व्यक्ति अदालत को ढूंढते हैं - अवैध-लाभ को अनिश्चित काल तक बनाए रखने के लिए एक सुविधाजनक लीवर की प्रक्रिया करते हैं। हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि जिस व्यक्ति का मामला झूठ पर आधारित है, उसे अदालत का दरवाजा खटखटाने का कोई अधिकार नहीं है। मुकदमेबाजी के किसी भी चरण में उसे सरसरी तौर पर बाहर निकाला जा सकता है।

6. प्रस्तुत मामले के तथ्य इस बात में कोई संदेह नहीं छोड़ते हैं कि जगन्नाथ ने अदालत में धोखाधड़ी करके प्रारंभिक डिक्री प्राप्त की थी। एक धोखाधड़ी दूसरे का अनुचित लाभ उठाकर कुछ हासिल करने के डिजाइन के साथ जानबूझकर धोखे का एक कार्य है। यह दूसरे के नुकसान से लाभ उठाने के लिए एक धोखा है। यह एक धोखा है जिसका उद्देश्य लाभ प्राप्त करना है। जगन्नाथ चुनीलाल सोकर के साथ क्लर्क के रूप में काम कर रहे थे।

21. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बुधिया स्वैन और अन्य (उपरोक्त)** के मामले में न्यायाधिकरण या न्यायालय के समीक्षा/वापस बुलाने के अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट किया है और कुछ शर्तें दी हैं जिनमें समीक्षा/वापस बुलाने की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। उपरोक्त उद्धृत निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर-8 और 9 को नीचे उद्धृत किया गया है: -

8. हमारी राय में एक न्यायाधिकरण या एक अदालत उसके द्वारा पहले किए गए आदेश को याद कर सकती है यदि (i) किसी आदेश में परिणत होने वाली कार्यवाही अधिकार क्षेत्र की अंतर्निहित कमी से ग्रस्त है और अधिकार क्षेत्र की ऐसी कमी पेटेंट है,

(ii) निर्णय प्राप्त करने में धोखाधड़ी या मिलीभगत मौजूद है,

(iii) अदालत द्वारा किसी पक्ष को पूर्वाग्रह देने की गलती हुई है या

(iv) इस तथ्य की अनभिज्ञता में एक निर्णय दिया गया था कि एक आवश्यक पक्ष को बिल्कुल भी सेवा नहीं दी गई थी या उसकी मृत्यु हो गई थी और संपत्ति का प्रतिनिधित्व नहीं किया गया था।
किसी निर्णय को वापस लेने की शक्ति का प्रयोग तब नहीं किया जाएगा जब कार्यवाही को फिर से खोलने या निर्णय को खाली करने का आधार मूल कार्रवाई में दलील देने के लिए उपलब्ध था, लेकिन ऐसा नहीं किया गया था या जहां किसी अन्य कार्यवाही में उचित उपाय जैसे कि अपील या पुनरीक्षण के माध्यम से उपलब्ध था, लेकिन इसका लाभ नहीं उठाया गया था। किसी निर्णय की छुट्टी लेने का अधिकार छूट, एस्टोपेल या स्वीकृति से खो सकता है।

9. क्षेत्राधिकार की कमी और अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में केवल त्रुटि के बीच अंतर किया जाना चाहिए। पूर्व अभ्यास के मूल में प्रहार और अधिकार क्षेत्र की कमी कार्यवाही को दूषित कर सकती है जिससे उन्हें और उसमें पारित आदेशों को अमान्य बना दिया जा सकता है। क्षेत्राधिकार के प्रयोग में एक मात्र त्रुटि कार्यवाही की वैधता को खराब नहीं करती है और उस पर पारित आदेश को तब तक खराब नहीं करती है जब तक कि परिसीमा के कानून के अधीन चुनौती देकर कानून को ज्ञात तरीके से अलग नहीं किया जाता है। ***हीरा लाल पाटनी बनाम श्री काली नाथ ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 199*** *में यह अवधारित किया गया था: -*

"एक डिक्री की वैधता को निष्पादन कार्यवाही में केवल इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि जिस अदालत ने डिक्री पारित की थी, उसके पास इस अर्थ में अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र की कमी थी कि यह मामले को जब्त नहीं कर सकता था क्योंकि विषय वस्तु अपने अधिकार क्षेत्र के लिए पूरी तरह से विदेशी थी या प्रतिपक्षी उस समय मर चुका था जब मुकदमा दायर किया गया था या डिक्री पारित की गई थी, या कुछ ऐसा अन्य आधार जो मुकदमे की विषय वस्तु के संबंध में या उसके पक्षकारों के संबंध में न्यायालय को पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र में कमी प्रदान करने का प्रभाव डाल सकता है।

22. यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि दावेदारों ने दुर्घटना के संबंध में झूठा मामला डालकर मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण से मुआवजा प्राप्त किया है। इसके बाद, बीमा कंपनी को यह साबित करने के लिए प्रासंगिक दस्तावेज मिले हैं कि, वास्तव में, कोई दुर्घटना नहीं हुई थी और न्यायालय में धोखाधड़ी करके पंचाट प्राप्त किया गया था। बीमा कंपनी द्वारा दायर समीक्षा आवेदन को माननीय उच्च न्यायालय तक खारिज कर दिया गया था, हालांकि, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धोखाधड़ी के आधार पर समीक्षा याचिका की विचारणीयता को माना है। प्रासंगिक प्रस्तर-15, 16 और 17 नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

15. अपीलकर्ता कंपनी से धोखाधड़ी के आधार पर पहली बार में दावे का विरोध करने की उम्मीद करना अवास्तविक है क्योंकि अपीलकर्ता कंपनी को उस स्तर पर दावेदारों द्वारा कथित तौर पर निभाई गई धोखाधड़ी के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। यदि बीमा कंपनी को मुआवजे के लिए दावा निकालने के भयावह उद्देश्य के साथ किसी भी संदिग्ध मनगढ़ंत कहानी के बारे में पता चलता है, और यदि उस समय तक निर्णय पहले ही पारित हो चुका था, तो कंपनी के लिए पंचाट के खिलाफ वैधानिक अपील दायर करना संभव नहीं होगा। न केवल अपील दायर करने के लिए सीमा की सीमा के कारण बल्कि अपील पर विचार भले ही देरी को माफ किया जा सकता हो, तब तक की गई दलीलों से तैयार किए गए मुद्दों तक सीमित होगा।

16. इसलिए, हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि उच्च स्तर की धोखाधड़ी के रूप में नए खोजे गए तथ्यों के आधार पर आदेश को वापस लेने के लिए आगे बढ़ने का उपाय, ऐसी स्थिति में बंद नहीं किया जा सकता है। किसी भी अदालत या न्यायाधिकरण को अपने स्वयं के आदेश को याद करने के लिए शक्तिहीन नहीं माना जा

सकता है यदि यह आश्वस्त है कि आदेश धोखाधड़ी या इस तरह के आयाम की गलत बयानी के माध्यम से उलझा गया था जो दावे के आधार को प्रभावित करेगा।

17. अपीलकर्ता बीमा कंपनी द्वारा लगाए गए आरोप, कि दावेदार उस दुर्घटना में शामिल नहीं थे, जिसका वर्णन उन्होंने दावा याचिकाओं में किया था, को मामले में आगे की जांच के बिना खारिज नहीं किया जा सकता है, क्योंकि, उक्त आरोप को दावेदारों द्वारा विशेष रूप से अस्वीकार नहीं किया गया है जब उन्हें पुरस्कारों को वापस लेने के लिए आवेदनों पर आपत्तियां दर्ज करने के लिए कहा गया था। दावेदारों ने तब अपने प्रतिरोध को इस दलील तक सीमित कर दिया कि वापस बुलाने का आवेदन कानूनी रूप से बनाए रखने योग्य नहीं है। इसलिए, हम दृढ़ता से महसूस करते हैं कि बीमा कंपनी द्वारा अब कथित धोखाधड़ी के आधार पर दावे का विरोध करने की अनुमति दी जानी चाहिए। यदि हम बीमा कंपनी को उनके तर्कों को प्रमाणित करने का अवसर देने में विफल रहते हैं, तो यह निश्चित रूप से न्याय के गंभीर गर्भपात का कारण बन सकता है।

23. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एवी पपाय्या शास्त्री और अन्य (उपरोक्त) के मामले में 'धोखाधड़ी' की परिभाषा को और स्पष्ट किया है। प्रासंगिक प्रस्तर-22, 26 और 39 नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

22. इस प्रकार यह कानून का स्थापित प्रस्ताव है कि न्यायालय, न्यायाधिकरण या प्राधिकरण पर धोखाधड़ी करके प्राप्त निर्णय, डिक्री या आदेश कानून की नजर में एक अमान्य और गैर-ईस्ट है। प्रथम न्यायालय या अंतिम न्यायालय द्वारा इस तरह के निर्णय, डिक्री या आदेश को प्रत्येक न्यायालय द्वारा अशक्तता के रूप में माना जाना चाहिए, चाहे वह श्रेष्ठ हो या निम्नस्तर। इसे किसी भी न्यायालय में, किसी भी समय, अपील, पुनरीक्षण, रिट या यहां तक कि संपार्श्विक कार्यवाही में भी चुनौती दी जा सकती है।

26. धोखाधड़ी को दूसरे का अनुचित लाभ उठाकर कुछ अनुचित या अवांछित लाभ हासिल करने के डिजाइन के साथ जानबूझकर धोखे के कार्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। धोखाधड़ी में एक दूसरे के नुकसान पर लाभ होता है। यहां तक कि अधिकांश गंभीर कार्यवाही भी दूषित हो जाती है यदि वे धोखाधड़ी से प्रेरित होती हैं। इस प्रकार धोखाधड़ी एक बाहरी संपार्श्विक कार्य है जो सभी न्यायिक कृत्यों को दूषित करता है, चाहे वह व्यक्तिगत रूप से हो या अन्य रूप से। 'मुकदमेबाजी की अंतिमता' के सिद्धांत को इस हद तक नहीं बढ़ाया जा सकता है कि इसका उपयोग बेईमान और धोखेबाज वादियों द्वारा उत्पीड़न के इंजन के रूप में किया जा सकता है।

39. उपरोक्त सिद्धांत, हालांकि, धोखाधड़ी के अपवाद के अधीन है। एक बार जब यह स्थापित हो जाता है कि आदेश एक सफल पक्ष द्वारा धोखाधड़ी का अभ्यास करके या खेलकर प्राप्त किया गया था, तो इसे दूषित किया जाता है। इस तरह के आदेश को कानूनी, वैध या कानून के अनुरूप नहीं ठहराया जा सकता है। यह अस्तित्वहीन और गैर-वास्तविक है और इसे खड़े होने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यह कानून का मूल सिद्धांत है और इसके लिए और विस्तार की आवश्यकता नहीं है। इसलिए, यह कहा गया है कि धोखाधड़ी से प्राप्त निर्णय,

डिक्री या आदेश को अमान्य माना जाना चाहिए, चाहे वह प्रथम दृष्टया न्यायालय द्वारा हो या अंतिम न्यायालय द्वारा। और इसे प्रत्येक न्यायालय द्वारा गैर-जरूरी माना जाना चाहिए, चाहे वह श्रेष्ठ हो या कमतर।

24. ऊपर की गई चर्चाओं के आलोक में, अब, प्रासंगिक प्रश्न यह होगा कि "नियम 1945 के नियम 85(3) के तहत अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 11.8.2023 के आदेश को प्राप्त करते समय वर्तमान याचिकाकर्ता द्वारा कौन सी धोखाधड़ी/जालसाजी की गई है या गलत बयानी की गई है।

25. प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने विवादित दवा यानी डीओके -1 सिरप और एम्ब्रोनल सिरप में विलायक के रूप में उपयोग किए जाने वाले प्रोपलीन ग्लाइकोल (पीजी) में अनुमत डिग्री से अधिक डायथिलीन ग्लाइकोल (डीईजी) और एथिलीन ग्लाइकोल (ईजी) की उपस्थिति पर जोर दिया है, और राज्य और केंद्रीय एजेंसियों की संयुक्त टीम द्वारा की गई जांच की संख्या-के दौरान कमी पाई गई है। उन्होंने उज्बेकिस्तान गणराज्य की विभिन्न अदालतों द्वारा पारित निर्णयों पर भी जोर दिया है और यह इंगित करने का प्रयास किया है कि याचिकाकर्ता द्वारा इस संबंध में उचित दस्तावेज दायर नहीं किए गए हैं। प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता द्वारा लगाए गए आरोपों और प्रतिपक्षी संख्या-1 से 5 के साथ-साथ प्रतिपक्षी संख्या-6 की ओर से दायर जवाबी हलफनामे पर विचार करने और बोर्ड पर उपलब्ध अभिलेखों की जांच करने पर, यह पता चलता है कि कुछ भी नया तथ्य या सामग्री या सबूत नहीं लाया गया है, जो उचित परिश्रम के बावजूद समीक्षा की मांग करने वाले प्रतिध्वनि के ज्ञान में नहीं था, अपने पिछले आदेश की समीक्षा के प्रयोजनों के लिए अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि 27.12.2022 और 12.1.2023 के बीच राज्य और केंद्रीय अधिकारियों की संयुक्त टीम द्वारा की गई फैक्ट्री परिसरों की कई जांच के दौरान पाई गई कमी, यदि कोई हो, अपीलीय प्राधिकारी सहित संबंधित विभाग के अधिकारियों की जानकारी में थी। इसके अलावा, **डायथिलीन ग्लाइकोल (डीईजी) और एथिलीन ग्लाइकोल (ईजी)** की उपस्थिति, अनुमत डिग्री से अधिक, भी अधिकारियों की जानकारी में थी, क्योंकि संबंधित प्राधिकरण ने आरडीटीएल, चंडीगढ़ के सरकारी विश्लेषक के परिणाम के आधार पर याचिकाकर्ता को दिनांक 23.3.2023 और 4.3.2023 को नोटिस जारी किया है, जिसके तहत उपरोक्त दोनों पदार्थ अनुमत डिग्री से अधिक पाए गए थे। समरकंद, उज्बेकिस्तान गणराज्य में बच्चों की मृत्यु और विलायक में डीईजी और ईजी की उपस्थिति जैसे प्रोपलीन ग्लाइकोल (पीजी) की उपस्थिति पर विचार करने के बाद, जांच के दौरान मैनफैक्चरिंग प्लांट में पाई गई कमियों और विस्तृत कारण बताओ नोटिस दिनांक 30.12.2022 जारी किया गया है। उपरोक्त कारण बताओ नोटिस में दिनांक 27.12.2022 की रिपोर्ट और दिनांक 29.12.2022 की रिपोर्ट का सार शामिल है। सुविधा और तैयार संदर्भ के लिए, 30.12.2022 के कारण बताओ नोटिस की प्रासंगिक सामग्री यहां उद्धृत की गई है:-

1 .कार्यालय खाद्य सुरक्षा एवं औषधि प्रशासन उत्तर प्रदेश, सेक्टर सी, अलीगंज, लखनऊ।
सं००: ड्रग/5831/5586
लखनऊ
दिनांक 30.12.2022

कारण बताओ नोटिस

मेसर्स मैरियन बायोटेक प्रा०लि०, बी- 48-49, सेक्टर-67, नोएडा, गौतमबुद्धनगर (उ०प्र०) को इस कार्यालय द्वारा औषधि निर्माण लाइसेंस संख्याः 01 ऑफ 2010 (फार्म-25) एवं 01/ एस०सी०/पी० ऑफ 2010 (फार्म-28) प्रदत्त है। फर्म द्वारा निर्मित औषधि Dok-1 Maks Tablets and Syrup (Paracetamol 500mg, Guaifenesin 200mg, Phenylephrine Hydrochloride 10mg) के सेवन से समरकन्द, उज्बेकिस्तान में 15 बच्चों के मृत्यु की प्राप्त सूचना के क्रम में दिनांक 27.12 2022 को श्री विनोद कुमार गुप्ता एवं श्री आशीष कौण्डल, औषधि निरीक्षक (द्वय), सी०डी०एस०सी०ओ०, नार्थ जोन गाजियाबाद, श्री अरविन्द कुमार, सहायक आयुक्त (औषधि), मेरठ मण्डल, मेरठ तथा श्री वैभव बब्बर, औषधि निरीक्षक, गौतमबुद्धनगर द्वारा विवेचना/संयुक्त निरीक्षण किया गया था। विवेचना/निरीक्षण आख्या की एक प्रति फर्म को मौके पर उपलब्ध करा दी गयी थी। विवेचना/निरीक्षण में निम्नलिखित कमियां/अनियमितताएं पायी गयी-

1. Dok-1 मैक्स सिरप के निर्माण के लिए, B.No। DXS2104, फर्म ने अपने अनुमोदित विक्रेता मैसर्स मनाली पेट्रोकेमिकल लिमिटेड, चेन्नई से आपूर्तिकर्ता मैसर्स माया केमटेक इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली के माध्यम से प्रोपलीन ग्लाइकोल की खरीद की थी। मैसर्स माया केमटेक द्वारा जारी बिक्री चालान की समीक्षा करने पर, निरीक्षण दल ने पाया कि आपूर्तिकर्ता के चालान पर प्रोपलीन ग्लाइकोल के लॉट संख्या-और फार्माकोपिया विनिर्देश का कोई उल्लेख नहीं है। इसके अलावा, फर्म निर्माता के सी.ओ.ए. की प्रति पेश करने में विफल रही।

2 डॉक-1 मैक्स सिरप के निर्माण के लिए, B.No। DXS2209, फर्म को एक गैर-अनुमोदित विक्रेता से प्रोपलीन ग्लाइकोल का उपयोग करने के लिए पाया गया था, और तैयार उत्पादों के निर्माण में इसका इस्तेमाल किया था। फर्म ने निरीक्षण दल को सूचित किया कि उन्होंने केवल बीपी विनिर्देशों के अनुसार प्रोपलीन ग्लाइकोल का परीक्षण किया था और अपने बैचों में उपयोग किया था। फर्म ने निरीक्षण दल को आगे बताया कि उन्होंने डायथिलीन ग्लाइकोल और एथिलीन ग्लाइकोल की अशुद्धता के लिए प्रोपलीन ग्लाइकोल का परीक्षण नहीं किया था।

2. उल्लेखनीय है कि फर्म का दिनांक 29.12.2022 को श्री विनोद कुमार गुप्ता एवं श्री आशीष कौण्डल, औषधि निरीक्षक (द्वय), सी०डी०एस०सी०ओ० नार्थ जोन, गाजियाबाद, श्री ए०के० गुप्ता, सहायक आयुक्त (औषधि), मेरठ मण्डल तथा श्री वैभव बब्बर, औषधि निरीक्षक, गौतमबुद्धनगर द्वारा पुनः संयुक्त निरीक्षण किया गया, निरीक्षण आख्या की एक प्रति फर्म को मौके पर उपलब्ध करा दी गयी थी। निरीक्षण आख्या के अवलोकन से यह विदित होता है कि निरीक्षण के समय निम्नलिखित कमियां/अनियमितताएं विद्यमान थी-

1. प्रोपलीन ग्लाइकोल की खरीद की चालान प्रति पर कोई दवा लाइसेंस नहीं था और आपूत किए गए प्रोपलीन ग्लाइकोल उत्पाद पर कोई फार्माकोपीय विनिर्देश, बैच संख्या आदि नहीं है।

2. प्रोपलीन ग्लाइकोल के सी.ओ.ए. के अनुसार डायथाइल ग्लाइकोल और एथिल ग्लाइकोल की उपस्थिति के लिए कोई परीक्षण नहीं पाया गया। आर.एम./218/2021 दिनांक 10/05/2021 और एआर नं. फर्म द्वारा आर.एम./230/2021 दिनांक 21/05/2021 के माध्यम से जारी किया गया है।

3. सी.ओ.ए. के अनुसार प्रोपलीन ग्लाइकोल की आपूर्ति मैसर्स माया केमटेक, इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, खसरा संख्या: 558, सिरसपुर रोड, लिबासपुर, श्री गणेश धर्म कांता के बगल में, उत्तर पश्चिम दिल्ली 110042 द्वारा की गई थी, जो मैसर्स मानस पेट्रोकेमिकल्स, इंडिया द्वारा निर्मित थी, हालांकि फर्म द्वारा आपूर्तिकर्ता या निर्माता का कोई सी.ओ.ए. प्रदान नहीं किया गया था।

4. फर्म की स्वीकृत विक्रेता सूची में आपूर्तिकर्ता मेसर्स माया केमटेक, उत्तर पश्चिम दिल्ली-110042 का नाम नहीं था।

5. जांच के समय अनुमोदित विश्लेषणात्मक रसायनज्ञ अनुपस्थित था।

6. थर्मोहाइग्रोमीटर आईडी नं बेसमेंट में एफजी स्टोर में प्रदान किया गया सीआई-23 जांच के दौरान काम नहीं करता पाया गया।

7. फर्म ने आवश्यक तापमान पर तैयार माल के भंडारण के लिए पर्याप्त स्थान प्रदान नहीं किया था। जांच के दिन, तैयार उत्पादों के कई बैच जैसे: सिनेपर टैबलेट बी। CNT2279, एमएफडी 08 2022, EXP 07.2028, फेरोफोर्ट कैप्सूल, बी. नं. FFC2204, एमएफडी: 07.2022, ऍक्स्प: 06.2025, बेल्डोमैक्स टैबलेट, बी. संख्या-BDT2201, एमएफडी: 08.2022, ऍक्स्प: 07.2026 को लंबे समय से प्रेषण के लिए स्टॉक किए गए कॉरिडोर में रखा गया था। जिस कॉरिडोर में ये बैच रखे गए थे, उसके तापमान का कोई अभिलेख नहीं था। एफजी स्टोर में हॉट पॉइंट की पहचान करने के लिए तापमान मानचित्रण नहीं किया गया था।

8. दो अस्वीकृत सामग्री एल-सिस्टीन और कैल्शियम सल्फिटो को बिना किसी एक्सेस कंट्रोल और लॉक एंड चाबी के अस्वीकृत आर.एम. स्टोर में रखा गया पाया गया। फर्म द्वारा उनकी अस्वीकृति से संबंधित कोई अभिलेखों प्रदान नहीं किया गया था।

9. आर.एम. वेयर हाउस में सामग्री की प्राप्ति के समय विक्रेता या स्रोत के साथ सामग्री को सत्यापित करने की कोई प्रक्रिया नहीं है। जांच के दिन आर.एम. रिसीविंग बे में कोई अनुमोदित विक्रेता सूची उपलब्ध नहीं पाई गई थी।

10. आई.डी. संख्या वाले मटेरियल पास बॉक्स की डोर इंटरलॉकिंग सिस्टम। नमूना कक्ष में सामग्री के अंतरण के लिए प्रदान की गई एलओआर/जीएफ/026 कार्य नहीं कर रही थी।

11. खाली कैप्सूल भंडारण कक्ष की दीवार में रिसाव देखा गया और इस प्रकार इसे स्वच्छ स्थिति में नहीं रखा गया था।

12. स्वीकृत आर.एम. स्टोर रूम में तापमान अभिलेखों करने के लिए थर्मोहाइग्रोमीटर एपीआई ड्रम पर रखा गया था। सबसे खराब स्थिति के आधार पर तापमान मानचित्रण के बाद स्थान की पहचान नहीं की गई थी।

13. अनुमोदित तरल सामग्री स्टोर रूम में रखे गए विभिन्न प्रकार के सॉल्वैंट्स के लिए कोई व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण प्रदान नहीं किया गया था।

14. एल.ए.एफ. के वितरण के स्टैंड में जंग लगा हुआ पाया गया।

15. भूतल पर केवल एक चेंजिंग रूम पाया गया जो पर्यावरण के नियंत्रण के बिना था और इसका उपयोग गैर-महत्वपूर्ण क्षेत्र में काम करने वाले श्रमिकों के लिए प्राथमिक गाउन के साथ-साथ टैबलेट सेक्शन, कैप्सूल सेक्शन, लिक्विड सेक्शन, ऑइंटमेंट सेक्शन के साथ-साथ ओरल-ग्रेन्युल्स पाउच सेक्शन के कोर मैन्युफैक्चरिंग एरिया में काम करने वाले श्रमिकों के लिए सेकेंडरी गाउन के लिए किया जा रहा था। इस चेंज रूम में अलग-अलग तरह के गाउन पहनने की कोई प्रक्रिया नहीं पाई गई।

16. संबंधित विनिर्माण अनुभाग में प्रवेश से ठीक पूर्व वस्त्र परिवर्तन (गारमेंट चेंज) हेतु कोई व्यवस्था उपलब्ध नहीं पाई गई। इसके अतिरिक्त, उक्त चेंज रूम में स्थित सिंक एवं ड्रेनेज को जीएमपी अनुरूप ड्रेन से सुसज्जित नहीं पाया गया तथा उनका रख-रखाव भी स्वच्छ एवं स्वास्थ्यकर अवस्था में नहीं था। उक्त चेंज रूम का द्वार भी जंग लगा हुआ पाया गया।

17. मौखिक तरल निर्माण अनुभाग में, बोतल सफाई कक्ष में प्रवेश सीधे डिकार्टनिंग रूम के माध्यम से किया गया था। बोतल सफाई कक्ष में प्रवेश के लिए अलग से कोई एयरलॉक प्रदान नहीं किया गया था।

18. विनिर्माण ब्लॉक में संबंधित स्थानों में अनुमोदित वर्तमान लेआउट प्रदर्शित नहीं किया गया था।

19. फर्म ने सभी विनिर्माण क्षेत्र में दीवार से दीवार जोड़ों और दीवार से छत के जोड़ों तक कोविंग प्रदान नहीं की है।

20. ओरल लिक्विड फिलिंग और मैन्युफैक्चरिंग रूम में प्रदान किया गया एपॉक्सी फ्लोरिंग कई स्थानों पर टूटा हुआ पाया गया, जिससे इसे साफ करना मुश्किल हो गया।

21. तरल विनिर्माण कक्ष में प्रदान किए गए ड्रेन पॉइंट की कोई पहचान नहीं थी और समय-समय पर सफाई अभिलेख भी उपलब्ध नहीं था।

22. असेंबली/मशीन पार्ट्स को भरने वाले तरल खंड की सफाई के लिए अलग से धुलाई क्षेत्र प्रदान नहीं किया गया था।

23. तरल विनिर्माण टैंक, होल्डिंग टैंक, बोतल सफाई मशीन, बोतल भरने की मशीन आदि जैसे महत्वपूर्ण उपकरणों के लिए निवारक रखरखाव और योग्यता की स्थिति उपलब्ध नहीं पाई गई।

24. तरल खंड में सफाई पर उत्पाद परिवर्तन के समय फिल्टर प्रेस के पैड के परिवर्तन/विनाश के लिए मानदंड/अभिलेख उपलब्ध नहीं थे।

25. टैबलेट निर्माण अनुभाग में, टैबलेट ग्रेन्युलेशन रूम में व्यू ग्लास टूटा हुआ पाया गया था। दानेदार बनाने वाले खंड में डिफरेंशियल प्रेशर मैनोमीटर भी काम नहीं कर रहा था। टूल रूम में कोई वायु आपूर्ति और रीटम प्रदान नहीं किया गया था। 'ग्रेन्युल्स क्वारंटीन रूम में कोई मैग्नीहेलिक गेज नहीं पाया गया। टैबलेट कम्प्रेशन-I में अंतर दबाव -5-20 पास्कल की सीमा के खिलाफ -2 पास्कल के रूप में देखा गया था।

26. यह देखा गया कि फर्म ने एक क्यूबिकल के रूप में टैबलेट कोटिंग क्षेत्र के भीतर टैबलेट कम्प्रेशन-IV रूम प्रदान किया है। इस कम्प्रेशन-IV रूम का दरवाजा सीधे कोटिंग रूम में खुल रहा था। कम्प्रेशन-IV रूम में कोई डिफरेंशियल प्रेशर डिस्प्ले नहीं था। इसके अलावा, कम्प्रेशन-IV रूम और कोटिंग रूम को एक ही एएचयू के साथ आपूर्ति की गई थी। इस प्रकार क्रॉस संदूषण का खतरा होता है।

27. विभिन्न उपकरणों को बिना किसी सफाई की स्थिति के टैबलेट निर्माण क्षेत्र में रखा गया था।

28. एफ.बी.डी. बाउल कोटिंग रूम में निष्क्रिय अवस्था में रखा गया था जिससे कोटिंग रूम भीड़भाड़ वाली हो रही थी।

29. टैबलेट निरीक्षण मशीन कक्ष कंटेनरों से भरा हुआ था और कमरे को भीड़भाड़ वाला बना रहा था।

30. ब्लिस्टर रूम में, एपॉक्सी टूटा हुआ पाया गया था। इस कमरे का अंतर दबाव निर्दिष्ट सीमा से बाहर पाया गया था।

31. गोलियों दानेदार बनाने के कमरे, कैप्सूल निर्माण कक्ष और मौखिक कणिकाओं पाउडर निर्माण कक्ष में कोई धूल निष्कर्षण प्रणाली प्रदान नहीं की गई थी।

32. दूसरी मंजिल पर प्रदान किए गए मरहम निर्माण कक्ष, मरहम भरने का कमरा, मौखिक दाने निर्माण कक्ष, और अलू-अलु ब्लिस्टर पैकिंग रूम सीधे एक आम गलियारे में खुल रहे थे और इन कमरों के अंतर दबाव निर्दिष्ट सीमा से बाहर पाए गए थे।

33. ओरल पाउडर ग्रैन्यूल मैन्युफैक्चरिंग रूम में फ्लोर एपॉक्सी टूटा हुआ पाया गया, जिससे इसे साफ करना मुश्किल हो गया।

34. कैप्सूल निर्माण कक्ष की दीवारों को रिसाव के साथ देखा गया।

26. औषधि अनुज्ञापन-सह-नियंत्रण प्राधिकरण, उत्तर प्रदेश ने औषधि लाइसेंस निरस्तीकरण आदेश दिनांक 13.03.2023 पारित करते समय, उपर्युक्त वर्णित कारण बताओ नोटिस की सामग्री तथा सरकारी विश्लेषक की आख्या पर पुनः विचार करते हुए उन्हें संज्ञान में लिया है। इसके अतिरिक्त, अपीलीय प्राधिकारी ने औषधि एवं प्रसाधन सामग्री नियमावली, 1945 के नियम 85(3) के अंतर्गत पारित आदेश दिनांक 11.08.2023 (जिसे पुनर्विचार हेतु प्रस्तुत किया गया है) पारित करते समय भी कारण बताओ नोटिस दिनांक 30.12.2022 की सामग्री, याची फर्म द्वारा प्रस्तुत प्रत्युत्तर, तथा औषधि अनुज्ञापन-सह-नियंत्रण प्राधिकरण, उत्तर प्रदेश द्वारा अपने आदेश दिनांक 11.08.2023 में लिए गए दो अन्य आधारों को भी पुनः दोहराया एवं विचाराधीन किया है। यह उल्लेख करना समीचीन है कि अपीलीय प्राधिकारी ने अपील का निर्णय करने में सहायता हेतु एक विभागीय समिति का गठन किया था। दोनों पक्षों को विस्तार से सुना गया। विभागीय समिति द्वारा प्रस्तुत आख्या तथा दोनों पक्षों की दलीलों पर विचार करने के उपरांत, अपीलीय प्राधिकारी ने आदेश दिनांक 11.08.2023 द्वारा अपील को आंशिक रूप से स्वीकार किया, इस अवलोकन के साथ कि औषधि के निर्माण में प्रयुक्त प्रोपाइलीन ग्लाइकोल (PG) सॉल्वेंट में डायइथाइलीन ग्लाइकोल (DEG) एवं एथाइलीन ग्लाइकोल (EG) की अत्यधिक उपस्थिति हानिकारक हो सकती है। यह भी अवलोकित किया गया कि उक्त कमी के अतिरिक्त, कंपनी द्वारा निर्मित औषधियों की गुणवत्ता में कोई अन्य कमी नहीं पाई गई है। इन तथ्यों की पृष्ठभूमि में, अपीलीय प्राधिकारी ने याची को अपना औषधि लाइसेंस बनाए रखने की अनुमति प्रदान की है, तथापि उन औषधियों के निर्माण के संबंध में, जिनमें सॉल्वेंट प्रोपाइलीन ग्लाइकोल (PG) के उपयोग की अनुमति दी गई है, उसे अपवादस्वरूप बाहर रखा गया है।

27. ऐसा प्रतीत होता है कि बाद के चरण में, उन्हीं तथ्यों/आधारों पर पुनर्विचार प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया गया, जिन पर अपीलीय प्राधिकारी द्वारा अपने आदेश दिनांक 11.08.2023 में पहले ही विचार किया जा चुका था। आश्चर्यजनक रूप से, पुनर्विचार प्रार्थना-पत्र दिनांक 04.10.2023 की संपूर्ण सामग्री को शब्दशः पुनर्विचार आदेश दिनांक 04.10.2023 में दोहरा दिया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि पुनर्विचार आदेश, याची को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किए बिना तथा यह विवेचना किए बिना कि पूर्व आदेश दिनांक 11.08.2023 को किन आधारों पर पुनर्विचार योग्य माना गया, पुनर्विचार प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किए जाने के उसी दिन पारित कर दिया गया। पुनर्विचार प्रार्थना-पत्र तथा पुनर्विचार आदेश दिनांक 04.10.2023, दोनों में ही संबंधित प्राधिकारी द्वारा

जांच के दौरान पाई गई कमियों, निर्मित औषधियों की निम्नस्तरीय गुणवत्ता, राज्य एवं केंद्रीय एजेंसियों की संयुक्त टीम द्वारा तैयार निरीक्षण आख्या का सार, आर.डी.टी.एल., चंडीगढ़ के सरकारी विश्लेषक द्वारा प्रस्तुत आख्या का सार, तथा उज़्बेकिस्तान गणराज्य की विभिन्न न्यायालयों द्वारा 15 बच्चों की मृत्यु की घटना से संबंधित पारित निर्णयों को पुनः दोहराया गया है। आदेश दिनांक 04.10.2023 के अनुच्छेद संख्या-11 में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि याची का औषधि लाइसेंस राज्य एवं केंद्रीय एजेंसियों द्वारा गठित संयुक्त निरीक्षण दल की आख्या के आधार पर निरस्त किया गया था; तथा यह उपयुक्त होगा कि कंपनी द्वारा सुधारात्मक एवं निवारक कार्रवाई (Corrective and Preventive Action–C.A.P.A.) की प्रक्रिया को लागू किए जाने के उपरांत फर्म के औषधि लाइसेंस को पुनर्जीवित किया जाए, जिसका मूल्यांकन एवं परीक्षण राज्य औषधि नियंत्रण प्राधिकरणों तथा सी.डी.एस.सी.ओ. के अधिकारियों द्वारा किया जाना चाहिए। प्रथम दृष्टया, ऐसा प्रतीत होता है कि पुनर्विचार का संपूर्ण आधार अंततः आदेश दिनांक 04.10.2023 के अनुच्छेद संख्या-11 की सामग्री पर ही आधारित है, जो कि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.08.2023 की पुनर्समीक्षा करने की संबंधित प्राधिकारी की मात्र व्यक्तिगत इच्छा/मनमानी को प्रतिबिंबित करता है। प्रतिवादियों द्वारा दायर प्रत्युत्तर हलफनामों, पुनर्विचार प्रार्थना-पत्र तथा पुनर्विचार प्रार्थना-पत्र पर पारित आदेश का अवलोकन करने के उपरांत, मुझे ऐसा कोई भी तत्व परिलक्षित नहीं होता, जो धोखाधड़ी/कूटरचना, साठगांठ अथवा मिथ्याप्रस्तुतीकरण (misrepresentation) की परिभाषा के अंतर्गत आता हो। उज़्बेकिस्तान गणराज्य के समरकंद में 15 बच्चों की मृत्यु की घटना से संबंधित तथ्य, राज्य एवं केंद्रीय प्राधिकारियों की संयुक्त टीम द्वारा किए गए विभिन्न निरीक्षणों के समय पाई गई कमियों की उपस्थिति, तथा याची की कंपनी द्वारा निर्मित निम्नस्तरीय औषधियों के संबंध में तथ्य, प्रारंभ से ही प्रतिवादियों की जानकारी में थे, जब याची के कारखाना परिसर का निरीक्षण किया गया था। अभिलेख से उद्भूत इन तीन तत्वों के अतिरिक्त, प्रतिवादियों द्वारा याची की ओर से किसी प्रकार की प्रत्यक्ष कूटरचना को प्रदर्शित करने वाला कोई अन्य तथ्य स्थापित नहीं किया गया है।

28. जहां तक उज्बेकिस्तान गणराज्य की विभिन्न अदालतों द्वारा पारित निर्णय का संबंध है, मुझे प्रतिपक्षियों के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए इस कथन पर संदेह है कि याचिकाकर्ता ने उज्बेकिस्तान गणराज्य की विभिन्न अदालतों द्वारा पारित निर्णय प्रस्तुत करते समय कोई धोखाधड़ी या गलत बयानी की है। उन्होंने दिनांक 11.8.2023 के आदेश के प्रस्तर-7 के तीसरे बिंदु पर जोर दिया है और यह प्रस्तुत करने का प्रयास किया है कि याचिकाकर्ता (अपराधी फर्म) ने उज्बेकिस्तान गणराज्य के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के संबंध में अपीलीय प्राधिकारी को गुमराह किया है। उन्होंने बताया है कि याचिकाकर्ता ने जानकारी दी है कि उज्बेकिस्तान गणराज्य के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दो दवाओं, डीओके-1 मैक्स सिरप और एम्ब्रोनोल सिरप के केवल दो बैचों पर प्रतिबंध लगा दिया गया था और शेष दवाओं पर प्रतिबंध नहीं लगाया गया था। सुविधा के लिए, प्रस्तर-7 के बिंदु संख्या-3 को नीचे उद्धृत किया गया है: -

3. उनके द्वारा बताया गया कि उज्बेकिस्तान गणराज्य के मा० उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रकरण में केवल Dok-1 Max Syrup एवं Ambronol Syrup के दो बैचों को प्रतिबन्धित किया गया। इसके अलावा उनके द्वारा निर्मित किसी अन्य औषधि को प्रतिबन्धित नहीं किया गया है। उनके द्वारा यह भी बताया गया कि उनके

निदेशकों के विरूद्ध की गयी एफ०आई०आर० को भी मा० उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा खारिज कर दिया गया।

29. उन्होंने आगे इस बात पर भी ज़ोर दिया है कि कंपनी जिला आर्थिक न्यायालय, ताशकंद द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.01.2023 की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने में विफल रही। तथापि, बाद में केंद्रीय एवं राज्य विभागों के अधिकारियों को यह ज्ञात हुआ कि उज़्बेकिस्तान गणराज्य के सर्वोच्च न्यायालय ने ताशकंद के अंतर-जिला आर्थिक न्यायालय द्वारा पारित पूर्व निर्णय दिनांक 13.01.2023 में संशोधन/सुधार किया है, जिसमें उक्त अंतर-जिला आर्थिक न्यायालय द्वारा कंपनी द्वारा निर्मित 'उपयोग के लिए अनुपयुक्त औषधियों (DRUGS UNFIT FOR USE)' को नष्ट किए जाने का आदेश पारित किया गया था। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 'DRUGS UNFIT FOR USE' शब्दों के स्थान पर 'DRUGS UNFIT FOR USE DOK-1 Max Syrup 100 ml तथा Ambronol Syrup 15 mg/5 ml, श्रृंखला संख्या AAS2201 एवं AAS2202' शब्द प्रतिस्थापित किए गए हैं। ताशकंद के अंतर-जिला आर्थिक न्यायालय के निर्णय दिनांक 13.01.2023 का शेष भाग यथावत रखा गया है। इन तथ्यों की पृष्ठभूमि में, उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि अभियुक्त कंपनी द्वारा पूर्व में यह भ्रामक सूचना प्रदान की गई थी कि उज़्बेकिस्तान गणराज्य के सर्वोच्च न्यायालय ने केवल दो औषधियों, अर्थात् DOK-1 तथा Ambronol Syrup, पर ही प्रतिबंध लगाया है और शेष औषधियों के निर्माण एवं उपयोग की अनुमति है। **"उन्होंने यह भी रेखांकित किया है कि उक्त कार्यवाही अभी उज़्बेकिस्तान गणराज्य की न्यायालय में विचाराधीन है। राज्य-प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपीलीय आदेश दिनांक 11.08.2023 के अनुच्छेद संख्या-7 के बिंदु संख्या-3 पर विशेष बल देते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया कि उज़्बेकिस्तान गणराज्य के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के संबंध में याची द्वारा की गई मिथ्याप्रस्तुतीकरण ने अपीलीय प्राधिकारी के मस्तिष्क को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया तथा उसी प्रभाव में अपीलीय प्राधिकारी ने आदेश दिनांक 11.08.2023 पारित किया, जिसके द्वारा याची का लाइसेंस कुछ शर्तों के अधीन पुनर्जीवित कर दिया गया। अपने तर्कों के समर्थन में, प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय एस अल कपूर बनाम जगमोहन एवं अन्य, (1980) 4 सुप्रीम कोर्ट केसेज़ 379 तथा हाउस ऑफ लॉर्ड्स के निर्णय हुआँग बनाम सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर होम डिपार्टमेंट (H.L.(E)) वर्ष 2007 पर भरोसा किया।

30. उज्बेकिस्तान गणराज्य की विभिन्न अदालतों द्वारा सुनाए गए निर्णय से संबंधित प्रतिपक्षियों के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतीकरण के आलोक में दिनांक 11.8.2023 के निर्णय और दिनांक 4.10.2023 के समीक्षा के आदेश की बारीकी से जांच से पता चलता है कि दिनांक 11.8.2023 के आदेश के प्रस्तर 7 के बिंदु संख्या-तीन को एक अकेला आधार नहीं कहा जा सकता है जो अपीलीय प्राधिकारी के दिमाग को प्रभावित कर सकता है। इसलिए, एसएल कपूर (उपरोक्त) का उद्धृत मामला और हाउस ऑफ लॉर्ड्स का निर्णय प्रस्तुत मामले की दी गई परिस्थितियों में लागू नहीं होता है। दिनांक 4.10.2023 के समीक्षा आदेश के प्रस्तर-9 से पता चलता है कि दिनांक 26.3.2023 के अपने उत्तर में विनिर्माण कंपनी ने उज्बेकिस्तान गणराज्य के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 28.4.2023 के आदेश का निर्णय दायर किया है, जिसके तहत अंतर जिला

आर्थिक न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 13.1.2023 के आदेश में कुछ संशोधन किए गए हैं। तैयार संदर्भ के लिए दिनांक 4.10.2023 के आदेश के प्रस्तर-9 और 10 को नीचे उद्धृत किया गया है:

4. निर्माता फर्म द्वारा पत्र दिनांक 20.06.2023 के साथ उपलब्ध कराये गये Decision of the Supreme Court's judicial commission on economic cases in cassation proceedings, Dated 28.04.2023 में निम्न निर्णय दिया गया है-

"9 निर्माता फर्म द्वारा पत्र दिनाक 20.6.2023 के साथ उपलब्ध कराए गए कैसेशन कार्यवाही में आर्थिक मामलों पर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक आयोग का निर्णय, दिनांक 28.04.2023 मे निम्न निर्णय दिया गया है-

<u>अदालत का फैसला</u>:
ताशकंद के अंतर-जिला आर्थिक न्यायालय के 13 जनवरी, 2023 के फैसले और 9 फरवरी, 2023 से ताशकंद सिटी न्यायालय की आर्थिक मामलों की न्यायिक समिति के फैसले को बदला जाना चाहिए।

13 जनवरी, 2023 को ताशकंद अंतर-जिला आर्थिक न्यायालय के फैसले के निष्कर्ष में "उपयोग के लिए अनुपयुक्त दवाएं" शब्दों को "उपयोग के लिए अनुपयुक्त ड्रग्स" शब्दों से बदल दिया गया है, "डीओके-1 मैक्स सिरप 100 मिलीलीटर" और "एम्ब्रोनोल सिरप 15 मिलीग्राम/5 मिलीलीटर", "श्रृंखला AAS2201 और AAS2202" शब्दों को प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए।

13 जनवरी, 2023 से ताशकंद अंतर-जिला आर्थिक न्यायालय का बाकी निर्णय अपरिवर्तित रहा।
अदालत की लागत प्रतिपक्षी द्वारा वहन की जाएगी।

5. निर्माता फर्म द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त अभिलेख में सबसे ऊपर दाहिनी ओर "unofficial translation and decision brief" अंकित है, जिससे स्पष्ट होता है कि निर्माता फर्म द्वारा निर्णय की प्रमाणित प्रति उपलब्ध नहीं करायी गयी है। यह भी उल्लेखनीय है कि निर्माता फर्म द्वारा Inter-district Economic Court of Tashkent from January 13, 2023 and the decision of the Judicial Committee on Economic Affairs of the Tashkent City Court from February 9, 2023 की पठनीय सत्यापित प्रतिलिपि उपलब्ध नहीं करायी गयी है।
उज्बेकिस्तान न्यायालय के उपरोक्त निर्णय से यह स्पष्ट है कि निर्माता फर्म को वहां के न्यायालय से आशिक राहत प्राप्त हुई है तथा निर्माता फर्म को पूर्णतः निर्दोष घोषित नहीं किया गया है।"

31. इस प्रकार, दिनांक 4.10.2023 के आदेश के प्रस्तर-9 में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उज्बेकिस्तान गणराज्य के सर्वोच्च न्यायालय का दिनांक 28.4.2023 का आदेश दिनांक 20.6.2023 के पत्र के साथ दायर किया गया था। इसका मतलब है कि दिनांक 28.4.2023 का आदेश संबंधित अधिकारियों के साथ-साथ अपीलीय

प्राधिकारी के ज्ञान में था और उज्बेकिस्तान गणराज्य के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 28.4.2023 के आदेश पर विचार करने के बाद, दिनांक 11.8.2023 का अपीलीय आदेश पारित किया गया है। दिनांक 4.10.2023 के आदेश के प्रस्तर-10 में, समीक्षा प्राधिकरण ने कहा है कि उज्बेकिस्तान की अदालत द्वारा पारित उपरोक्त आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि विनिर्माण फर्म को उस अदालत से आंशिक राहत मिली है और इसे पूरी तरह से दोषमुक्त नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दिनांक 28.4.2023 के आदेश की फोटोस्टेट प्रति इस अदालत के समक्ष पेश की गई है, जिससे पता चलता है कि उपरोक्त आदेश के ऑपरेटिव हिस्से का उल्लेख दिनांक 4.10.2023 के समीक्षा आदेश के प्रस्तर-9 में किया गया है। कहने की जरूरत नहीं है कि दिनांक 11.8.2023 का आदेश पारित करने से पहले, अपीलीय प्राधिकारी ने अपील पर निर्णय लेने में उनकी सहायता के लिए एक समिति का गठन किया था। उक्त समिति ने आरडीटीएल, चंडीगढ़ के सरकारी विश्लेषक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट, राज्य और केंद्रीय एजेंसियों द्वारा अवधारित संयुक्त निरीक्षण समिति की रिपोर्ट, याचिकाकर्ता के जवाब के साथ-साथ उज्बेकिस्तान गणराज्य में हुई घटना के संबंध में केंद्र सरकार से एकत्र की गई कई सूचनाओं की जांच करने के बाद एक विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की है। दिनांक 11.8.2023 के आदेश के प्रस्तर-6 में, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा गठित समिति ने कई तकनीकी मुद्दों की ओर इशारा किया है, जिनकी संख्या नौ तक है। रिपोर्ट में मामले के सभी प्रासंगिक पहलुओं को बिंदुवार बताया गया है।

32. यह मानते हुए कि याचिकाकर्ता ने उज़्बेकिस्तान गणराज्य के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश की सही प्रति प्रस्तुत नहीं की है, यह शायद ही अपील के गुणों को प्रभावित करता है जो अधिनियम 1940 और नियम 1945 के तहत कार्यवाही से उत्पन्न हो रहा था। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि भारतीय अधिकारी उज्बेकिस्तान गणराज्य के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के आधार पर भारतीय कानून के तहत की गई अपनी कार्यवाही को मान्य करने का प्रयास कर रहे हैं। दुर्भाग्य से, प्रतिपक्षियों द्वारा कुछ भी नहीं बताया गया है कि अधिनियम 1940 और नियम 1945 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते समय भारतीय अधिकारियों द्वारा क्या प्रक्रियात्मक दोष किया गया है या भारतीय कानून यानी अधिनियम 1940 और नियम 1945 के तहत की गई कार्यवाही में याचिकाकर्ता द्वारा अपीलीय प्राधिकारी पर क्या धोखाधड़ी या जालसाजी की गई है। औषधियों से संबंधित भारतीय कानून संपूर्ण और आत्मनिर्भर संहिता हैं जिनके लिए किसी विदेशी न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के किसी सत्यापन की आवश्यकता नहीं होती है। अधिनियम 1940 और नियम 1945 में उल्लिखित प्रावधानों के अनुसार, याचिकाकर्ता के कारखाने के परिसर का एक से अधिक बार निरीक्षण किया गया है और कारखाने से एकत्र किए गए नमूनों की जांच सरकारी विश्लेषक द्वारा की गई है। संबंधित अधिकारियों ने अधिनियम 1945 और नियम 1945 के तहत प्रतिपादित कानूनी आवश्यकता के अनुसार, याचिकाकर्ता के कारखाने परिसर में दवाओं की निर्माण प्रक्रिया और दवा की गुणवत्ता की जांच करने के लिए गहराई से विचार किया है। इस बात पर कुछ भी ठोस नहीं है कि भारतीय कानून के तहत किए गए अपने आधिकारिक कर्तव्यों को मान्य करने के इरादे से विदेशी अदालतों द्वारा पारित फैसले में राज्य और केंद्र के अधिकारियों ने क्या विशेष पाया है। उज्बेकिस्तान गणराज्य की विभिन्न अदालतों द्वारा पारित आदेशों में इस न्यायालय के समक्ष कुछ विशेष नहीं दिखाया गया है, सिवाय दवाओं की गुणवत्ता के संबंध में कुछ टिप्पणियों

के, जिन्हें उपयोग के लिए अनुपयुक्त पाया गया है, और उक्त अवलोकन को बाद में कुछ हद तक संशोधित किया गया था। अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 11.8.2023 के निर्णय के गुण-दोष पर आधारित यह टिप्पणी इस न्यायालय के समक्ष कैसे संतोषजनक नहीं बताई गई है। पिछले आदेश की पुनरीक्षण/समीक्षा को बढ़ावा देने के लिए, संबंधित अधिकारियों के हाथों में उपलब्ध उपायों का इस तरह के अविवेकी तरीके से दुरुपयोग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। याचिकाकर्ता द्वारा निर्मित दवा में डीईजी और ईजी के अत्यधिक उपयोग का निर्णय पारित करते समय अपीलीय प्राधिकारी द्वारा उचित मूल्यांकन किया गया है, इसलिए, उसी आधार पर, पिछले आदेश की समीक्षा उचित नहीं है। यहां तक कि, उज़्बेकिस्तान गणराज्य की विभिन्न अदालतों द्वारा पारित आदेशों को रखने में याचिकाकर्ता की ओर से कोई गलत बयानी या धोखाधड़ी नहीं है।

33. इस परिप्रेक्ष्य में, जैसा कि उपर्युक्त है, मेरा विचार है कि संबंधित अधिकारियों को समीक्षा/वापस बुलाने के उपाय की उपलब्धता के बावजूद, कुछ शर्तों के तहत, जैसा कि कई न्यायिक घोषणाओं के तहत अनुमति दी गई है, प्रतिपक्षियों द्वारा अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 11.8.2023 के आदेश के खिलाफ अपने समीक्षा आवेदन को बनाए रखने के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया है, जो अपील पर अंतिम निर्णय के बाद फंक्टस ऑफिसियो बन गए। चुनौती के तहत आदेश को मज़बूत करने के लिए धोखाधड़ी, जालसाजी या गलत बयानी का कोई मामला नहीं बनाया गया है। आक्षेपित आदेश अवैध है, कानून के तहत अनुचित है और अधिकार क्षेत्र के बिना है। इस तरह के आदेश का अस्तित्व याचिकाकर्ता के अधिकार और हित के प्रति प्रतिकूल प्रभाव डालेगा और उसके लिए न्याय की हानि के बराबर होगा।

34. परिणामस्वरूप, प्रस्तुत रिट याचिका सफल होती है और इसकी **अनुमति** दी जाती है। समीक्षा प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 4.10.2023 को पारित आदेश को **रद्द/अपास्त** किया जाता है, लागत के बारे में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

(2025) 5 ILRA 1115

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 27.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

अनुच्छेद 227 के तहत मामला संख्या - 612 वर्ष 2024

ओंकार नाथ गौर और एक अन्य ... याचिकाकर्तगण

बनाम

डी.एम./अध्यक्ष अपीलीय न्यायाधिकरण लखनऊ और अन्य ... प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

अरविंद कुमार श्रीवास्तव, अनुराग नारायण श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, अभिनव पंकज, अविनाश पांडेय, इंद्र प्रकाश, महेंद्र प्रताप पांडेय, विजय कृष्ण द्विवेदी

दीवानी कानून - माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण अधिनियम, 2007 - धारा 7, 8, 9, 21 और 23 - उत्तर प्रदेश माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण नियम, 2014 - नियम 14, 15, 16, 21 और 23 - रखरखाव न्यायाधिकरण या अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा वरिष्ठ नागरिक या माता-पिता की संपत्ति से बच्चों, रिश्तेदारों या अन्य लोगों को बेदखल करने का आदेश - वैधता - रखरखाव न्यायाधिकरण की शक्ति जो उप-मंडल अधिकारी के रैंक से नीचे के अधिकारी द्वारा संचालित नहीं है या अपीलीय न्यायाधिकरण, जो जिला मजिस्ट्रेट के रैंक से नीचे के अधिकारी द्वारा संचालित नहीं है, अध्याय II वर्ष 2007 अधिनियम में दी गई शक्तियों से परे कार्य नहीं कर सकता है - चूंकि न तो अधिनियम, 2007 और न ही नियम, 2014 स्पष्ट रूप से उन्हें बेदखली की शक्तियां देता है, इसलिए वे ऐसी शक्तियों को ग्रहण नहीं कर सकते हैं या अंतर्निहित शक्तियों का उपयोग नहीं कर सकते हैं जैसे कि दीवानी अदालतों के पास धारा 151 सी.पी.सी. के तहत है - इस प्रकार, अधिनियम की धारा 5 के संदर्भ में इसके समक्ष आवेदन का निर्णय लेते समय, (ख) वर्ष 2007 के मामले में वे अधिनियम, 2007 की धारा 7, 8 या 9 के अंतर्गत बेदखली आदेश पारित नहीं कर सकते हैं - उर्मिला दीक्षित (अवसंरचना) में अधिनियम, धारा 21, 23 और उच्चतम न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए, भरण-पोषण अधिकरण (अनुरक्षण अधिकरण/अपीलीय अधिकरण स्थानांतरण को शून्य घोषित करने के बाद, वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति से अवांछनीय व्यक्ति को बेदखल करने सहित वरिष्ठ

अनुवादित

नागरिक के पक्ष में कब्जे के लिए परिणामी आदेश पारित कर सकता है - गुण-दोष के आधार पर निर्णय के लिए संबंधित न्यायालय को भेजे गए मामले को भेज दिया गया है। (प्रस्तर-2, 98, 99, 137)

याचिका लंबित। (ई-13)

उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची:

1. सुश्री स्वराज वरुण और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश और अन्य; 2020 (11) ए.डी.जे. 646 (डीबी), (प्रस्तर-28)
2. बिपराजी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला० 964, (प्रस्तर-24 से 31)
3. शिवानी वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2023 (6) ए.डी.जे. 496 (डीबी), (प्रस्तर-65 से 67)
4. अभिषेक तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला० 367
5. खुशबू शुक्ला बनाम जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ और अन्य 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला० 794
6. एस. वनिता बनाम उपायुक्त, बेंगलुरु; 2021 (15) एस.सी.सी. 730
7. दिनेश आहूजा @ चीनी बनाम जिला मजिस्ट्रेट; 2024 (6) ए.डब्ल्यू.सी. 6058 इला, (प्रस्तर-29 से 32)
8. ओम प्रकाश मनचंदा बनाम जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर, (2019) 132 ए.एल.आर. 566, (प्रस्तर-26)
9. रणधीर सिंह बनाम जिला मजिस्ट्रेट, फैजाबाद और अन्य; (2020) 146 आरडी 178 (डीबी), (प्रस्तर-28, 29)
10. उर्मिला दीक्षित बनाम सुनील सरन दीक्षित और अन्य; 2025 (2) एस.सी.सी. 787, (प्रस्तर-13, 14, 23 से 26)
11. समतोला देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2025 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 669, (प्रस्तर-30 से 35)
12. राजेश्वर प्रसाद राव बनाम बिहार राज्य: 2025 लाइव लॉ (एस.सी.) 418, (प्रस्तर-10, 11)
13. कृष्ण कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला० 645
14. भारत संघ बनाम देवकी नंदन अग्रवाल, 1992 सप्प (1) एस.सी.सी. 323, (प्रस्तर-14)
15. मौलवी हुसैन हाजी अब्राहम उमरजी बनाम गुजरात राज्य, (2004)6 एस.सी.सी. 672, (प्रस्तर-17 से 23)
16. राम रतन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1977) 1 एस.सी.सी. 188, (प्रस्तर-4)

(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह द्वारा उद्घोषित)

विश्लेषण की सुविधा के लिए इस निर्णय को खंडों में विभाजित किया गया है। ये हैं:-

क	परिचय	2-4
ख	याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुतियाँ।	4-8

ग	उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से प्रस्तुतियाँ	8-9
घ	भारत संघ की ओर से प्रस्तुतियाँ।	9-13
छ	बार के सदस्यों की ओर से प्रस्तुतियाँ।	13-15
एफ.	चर्चा और विश्लेषण	15-73
एफ.1	प्रश्न संख्या (i) और (ii)	15-45
एफ.2	प्रश्न संख्या-(iii)	46-73
ग्राम	संदर्भित प्रश्नों का सारांश और उत्तर।	73-74

A. परिचय

1. माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण अधिनियम, 2007 (इसके बाद "अधिनियम वर्ष 2007" के रूप में संदर्भित) से उत्पन्न होने वाले मौलिक महत्व के प्रश्न इस पूर्ण पीठ के विचारार्थ विषय हैं।

2. अक्सर, अधिनियम वर्ष 2007 से उत्पन्न होने वाले मामलों के समक्ष मामले आ रहे हैं, जहां मुद्दा वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता की संपत्ति से बच्चों, रिश्तेदार या किसी तीसरे व्यक्ति को बेदखल करने का आदेश पारित करने के लिए भरण-पोषण न्यायाधिकरण या/और अपीलीय न्यायाधिकरण की शक्तियों के संबंध में है।

3. इस न्यायालय के एकल न्यायाधीशों के बीच अलग-अलग विचार थे। हालांकि, जो महत्वपूर्ण माना गया वह यह तथ्य था कि खंड पीठ के विपरीत फैसले भी थे। ऐसे ही एक मामले में यानी याचिका संख्या 612(ए-227) वर्ष 2024 (ओंकार नाथ गौर और अन्य बनाम डीएम/अध्यक्ष, अपीलीय न्यायाधिकरण, लखनऊ और 2 अन्य) वाली याचिका में, एकल न्यायाधीश ने खंडपीठों के निर्णयों में द्वंद्व पर ध्यान दिया, जिसमें एक विचार व्यक्त किया गया था कि अधिनियम वर्ष 2007 के तहत, भरण-पोषण न्यायाधिकरण और अपीलीय न्यायाधिकरण के पास बेदखली या बेदखली का आदेश देने की शक्ति नहीं है। यह विचार **सुश्री स्वराज वरुण और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2020 (11) ए.डी.जे. 646 (डीबी) और बिपराजी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला० 964** में व्यक्त किया गया था।

4. हालाँकि, पश्चात् की एक खण्डपीठ ने शिवानी वर्मा बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. ऐण्ड अदर्स; 2023 (6) ए.डी.जे. 496 (डी.बी.) के प्रकरण में यह मत व्यक्त किया कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियों एवं मामलों में बेदखली का आदेश पारित किया जा सकता है। उक्त निर्णय में न्यायालय ने इस न्यायालय के माननीय एकल-न्यायाधीशों द्वारा पारित अभिषेक तिवारी बनाम स्टेट ऑफ यू.पी., 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन ऑल 367 तथा खुशबू शुक्ला बनाम डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, लखनऊ ऐण्ड अदर्स, 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन ऑल 794 के दो अन्य निर्णयों को अधिचालित कर दिया। हालाँकि, शिवानी वर्मा (उपर्युक्त) में खण्डपीठ ने इससे पूर्व की दो खण्डपीठीय वाद-निर्णयों–सुश्री स्वराज वरुण (उपर्युक्त) तथा बिप्राजी सिंह (उपर्युक्त)–का संज्ञान नहीं लिया।

5. इस प्रकार, खंड पीठ द्वारा व्यक्त किए गए विचारों में फूट और कई एकल न्यायाधीशों द्वारा खंड पीठ के फैसलों के प्रभाव पर विचार किए बिना और इसमें शामिल प्रश्नों के महत्व को ध्यान में रखते हुए, एकल न्यायाधीश ने 15 फरवरी, 2024 के अपने आदेश के माध्यम से चार प्रश्न तैयार किए और मामले को एक आधिकारिक घोषणा के लिए एक बड़ी पीठ द्वारा उत्तर देने के लिए संदर्भित किया।

6. उपरोक्त पृष्ठभूमि में निम्नलिखित प्रश्न इस पूर्ण पीठ के विचारार्थ भेजे गए हैं:-

"(i) *अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 7 के तहत गठित भरण-पोषण न्यायाधिकरण का वास्तविक दायरा और शक्तियां क्या हैं, जो अधिनियम वर्ष 2007 के अध्याय- II में निहित है और क्या अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 7, 8 और 9 के संदर्भ में अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए न्यायाधिकरण को अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 5 के संदर्भ में अपने समक्ष पसंदीदा आवेदन पर निर्णय लेते समय बेदखली का आदेश अधिनियम वर्ष 2007, में पारित करने का अधिकार होगा?*

(ii) अधिनियम वर्ष 20*16 की धारा 15 और 16 के अनुसार अपीलीय अधिकरण के रूप में शक्ति का प्रयोग करने वाले जिला मजिस्ट्रेट का वास्तविक कार्यक्षेत्र और शक्ति क्या होगी और क्या ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपीलीय न्यायाधिकरण बेदखली का आदेश पारित कर सकता है?*

(iii) *अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 21 का वास्तविक दायरा क्या है जो वरिष्ठ नागरिक के जीवन और संपत्ति के संरक्षण से संबंधित है जो अधिनियम वर्ष 2007 के अध्याय-V में निहित है और प्राधिकरण अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 23 के अनुसार कुछ अंतरणों को शून्य के रूप में निर्णय देने के लिए आदेश पारित कर सकता है, जबकि नियम 21 और 22 के तहत जिला मजिस्ट्रेट के कर्तव्यों और शक्तियों को प्रदत्त किया गया है। इस संबंध में वर्ष 2014 के नियम और इस संदर्भ में बेदखली के आदेश पारित किए जा सकते हैं?*

(iv) क्या *सुश्री स्वर्ण वर्मा (उपरोक्त)(उपरोक्त) और बिपराजी सिंह (उपरोक्त) में खंडपीठ सही कानून निर्धारित करती है या क्या शिवानी वर्मा (उपरोक्त) में खंड पीठ द्वारा निर्धारित कानून सही कानून निर्धारित करती है?*

7. इस पूर्ण पीठ को संदर्भित प्रश्नों की गंभीरता और इसके प्रभावों को देखते हुए, इस न्यायालय ने पक्षों के अधिवक्ता को सुनने के अलावा बार के सदस्यों को अपने समक्ष मुद्दों पर न्यायालय को संबोधित करने के लिए भी आमंत्रित किया था।

8. रिट याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश अधिवक्ता श्री अनुराग नारायण श्रीवास्तव ने इस प्रस्ताव को खारिज कर दिया कि अधिनियम वर्ष 2007 के तहत, अधिकारियों को उचित मामलों में बेदखली का आदेश पारित करने का अधिकार है। इस प्रस्ताव का स्थायी अधिवक्ता श्री निशांत शुक्ला ने भी समर्थन किया है। बार के एक अन्य सदस्य श्री अभिनव पंकज, एडवोकेट ने भी उपरोक्त प्रस्ताव का समर्थन किया, जैसा कि रिट-याचिकाकर्ताओं और राज्य के अधिवक्ता द्वारा प्रचारित किया गया था।

9. दूसरी ओर, अवध बार एसोसिएशन के विद्वान सदस्य श्री अपूर्व तिवारी और श्री सुधांशु चौहान, अधिवक्ता, जो आमतौर पर भारत संघ की ओर से पेश होते हैं, ने इस प्रस्ताव को खारिज कर दिया कि अधिनियम वर्ष 2007 के तहत, बेदखली का कोई आदेश पारित करने के लिए अधिकारियों को कोई विशिष्ट शक्ति प्रदान नहीं की गई है। अधिनियम के तहत बनाए गए नियम भी ऐसी कोई शक्ति प्रदान नहीं करते हैं और शक्ति के किसी भी स्रोत के अभाव में, ट्रिब्यूनल सीमित क्षेत्राधिकार का प्राधिकरण होने के नाते बेदखली का आदेश देने के लिए ऐसी शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता है।

बी. <u>याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रस्तुतियाँ</u> : -

10. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री अनुराग नारायण श्रीवास्तव ने प्रस्तुत किया कि जैसा कि अधिनियम वर्ष 2007 के शीर्षक से पता चलता है कि अधिनियम मुख्य रूप से न केवल भरण-पोषण के लिए बल्कि माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण के लिए भी प्रख्यापित किया गया था और अधिनियम के उद्देश्यों को पूरा करने के साथ-साथ माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के लिए भरण-पोषण और कल्याण प्रदान करने के लिए एक मजबूत प्रणाली बनाने के लिए, अधिनियम वर्ष 2007 के तहत प्राधिकारियों को माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के निवास के अधिकार की रक्षा करने और उन्हें सम्मान और शांति के साथ रहने में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक और आवश्यक आदेश पारित करने के लिए पर्याप्त शक्तियां प्रदान की गई हैं। अधिनियम वर्ष 2007 के इस प्रशंसनीय उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्राधिकारियों को बच्चों या रिश्तेदारों को बेदखल करने के आदेश सहित उपयुक्त आदेश पारित करने की शक्तियां हैं, जैसा भी मामला हो, यदि ऐसे वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता को दी गई राहत को अधिक प्रासंगिक और सार्थक बनाने के लिए यह अपरिहार्य है।

11. यह आगे प्रस्तुत किया गया था कि अधिनियम वर्ष 2007 की योजना ऐसी है कि अपील का मंच केवल वरिष्ठ नागरिक या माता-पिता के लिए प्रदान किया जाता है और यह रखरखाव न्यायाधिकरण के समक्ष शिकायत में बच्चों या प्रतिवादी को अपील के इस तरह के मंच का लाभ उठाने का अधिकार नहीं देता है। तथापि, अपीलीय अधिकरण अपील की शक्तियों का प्रयोग करते हुए यह सुनिश्चित करने के लिए बेदखली के आदेश सहित उपयुक्त आदेश पारित कर सकता है कि माता-पिता/वरिष्ठ नागरिक द्वारा दावा किए गए भरण-पोषण को सार्थक अभिव्यक्ति दी जाए क्योंकि अधिनियम वर्ष 2007 में यथा परिभाषित भरण-पोषण की अवधि व्यापक है और इसमें अन्य बातों के साथ-साथ निवास का अधिकार भी शामिल है। इसलिए, एक प्रतिबंधात्मक अर्थ नहीं दिया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित करने के लिए कि वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता, जिनके पास अधिनियम के तहत निवास का अधिकार है, गरिमा के साथ रह सकते हैं, तो यह आवश्यक है कि अपीलीय न्यायाधिकरण को ऐसी किसी भी बाधा को दूर करने की शक्ति प्रदान की जाए जो एक वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता के लिए एक गरिमापूर्ण शांतिपूर्ण और सम्मानजनक जीवन में रहने में बाधा पैदा कर सकता है।

12. यह भी आग्रह किया गया था कि उत्तर प्रदेश माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के भरण-पोषण और कल्याण नियम, 2014 (इसके बाद नियमावली वर्ष 2014 के रूप में संदर्भित) के तहत बनाए गए नियम 21 जिला मजिस्ट्रेट को ऐसे निर्देश जारी करने की शक्तियां प्रदान करता है जो अधिनियम के साथ असंगत नहीं हो सकते

हैं और जिला मजिस्ट्रेट, जो अपीलीय प्राधिकारी है, ऐसे आदेश पारित कर सकते हैं जो आवश्यक हो सकते हैं, जिसमें आदेश पारित करने बेदखली की शक्ति भी शामिल है।

13. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि **एस. वनिता बनाम उपायुक्त, बेंगलुरु; 2021 (15) एस.सी.सी. 730** में शीर्ष न्यायालय ने घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 (इसके बाद "अधिनियम वर्ष 2005" के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों के बीच परस्पर क्रिया पर विचार करते हुए और अधिनियम वर्ष 2007 पर विचार करते हुए माना कि दोनों अधिनियमों और उनके प्रावधानों को सामंजस्यपूर्ण रूप से समझा जाना चाहिए और कुछ परिस्थितियों में, बेदखली की शक्ति जो अधिकरण के हाथ में है, उसका प्रयोग उसके द्वारा किया जा सकता है।

14. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि जहां बच्चों/रिश्तेदारों का रवैया, व्यवहार और कार्य अनुकूल नहीं हैं, अर्थात उनके माता-पिता/वरिष्ठ नागरिक, तो ऐसी परिस्थितियों में, वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता आघात का अनुभव कर सकते हैं और एक कठिन परिस्थिति का सामना कर सकते हैं और दबाव और भावनात्मक निर्भरता के कारण माता-पिता/वरिष्ठ नागरिकों के लिए भावनात्मक और शारीरिक आघात का चुपचाप सामना करते हुए ऐसे बच्चों/रिश्तेदारों को बाहर करना या बाहर करना कठिन हो सकता है। ऐसी परिस्थितियों में, अधिनियम वर्ष 2007 ऐसे आघातग्रस्त/उपेक्षित माता-पिता/वरिष्ठ नागरिक की सहायता के लिए आता है और अधिनियम वर्ष 2007 के तहत कार्यवाही में, यदि परिस्थितियों में आवश्यक हो, तो दी गई परिस्थितियों में योग्य मामलों में अधिकारी माता-पिता/वरिष्ठ नागरिक के लाभ और कल्याण के लिए बेदखली के आदेश सहित उचित आदेश पारित कर सकते हैं।

15. यह भी प्रस्तुत किया गया था कि जहां विचाराधीन संपत्ति वरिष्ठ नागरिक की है और ऐसे मामलों में जहां वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता के साथ उनके बच्चों/रिश्तेदारों द्वारा दुर्व्यवहार किया जाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि वे अपने बच्चों/रिश्तेदारों को बेदखल करने का अधिकार खो देते हैं क्योंकि ऐसे बच्चों/रिश्तेदारों की स्थिति एक लाइसेंसधारी से ज्यादा कुछ नहीं है और मालिक/लाइसेंसदाता की क्षमता में माता-पिता/वरिष्ठ नागरिक मांग सकते हैं उन बच्चों को हटाना/बेदखली करना जो वास्तव में बोलते हैं, उन्हें माता-पिता/वरिष्ठ नागरिक की इच्छा के विरुद्ध उक्त संपत्ति को बनाए रखने या उसमें रहने का कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं है।

16. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि **स्वराज वरुण (उपरोक्त)** के खंड पीठ के फैसले में, न्यायालय ने निवास आदेश के दायरे पर विचार नहीं किया, जबकि अधिनियम में परिभाषित भरण-पोषण शब्द में निवास का अधिकार शामिल है और निवास का ऐसा आदेश भरण-पोषण न्यायाधिकरण द्वारा पारित किया जा सकता है। यह भी आग्रह किया गया था कि उक्त निर्णय अधिनियम वर्ष 2007 के अध्याय V के उद्देश्य पर विचार नहीं करता है और न ही इस बात का दायरा है कि निवास आदेश, यदि एक वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता द्वारा दावा किया जाता है, तो विशेष रूप से नियमावली वर्ष 2014 के नियम 21 और 24 के आलोक में प्रभावी और सार्थक बनाया जा सकता है।

अनधिकृत

17. इसके अलावा, यह बताया गया था कि बिपराजी सिंह (उपरोक्त) में खंड पीठ ने एस. वनिता (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विचार नहीं किया था और उपरोक्त कारणों से इसे बेदखली के अधिकार से वंचित करने के लिए सेवा में नहीं डाला जा सकता है, खासकर जब अधिनियम की पूरी योजना पर उक्त निर्णय में सही परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया गया था।

18. अंत में यह आग्रह किया गया था कि शिवानी वर्मा (उपरोक्त) में इस न्यायालय के बाद के खंडपीठ के फैसले ने अधिनियम की पूरी योजना और नियमों पर ध्यान दिया, जिसमें 'भरण-पोषण' शब्द भी शामिल है जिसमें निवास का अधिकार शामिल है। इसने एस. वनिता (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रभाव और महत्व पर भी ध्यान दिया और इस प्रकार सभी दृष्टिकोण लेने के बाद, यह सही निष्कर्ष निकाला है कि वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता को निवास/भरण-पोषण का अधिकार प्रदान करने के लिए, यदि बेदखली के आदेश की आवश्यकता है, तो इसे वैध रूप से पारित किया जा सकता है।

ग. <u>उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से प्रस्तुतियाँ</u>:-

19. राज्य के स्थायी अधिवक्ता श्री निशांत शुक्ला ने अभिलेखों के लिए उत्तर प्रदेश राज्य के समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा तैयार की गई व्यापक कार्य योजना की एक प्रति प्रदान की है और अधिनियम वर्ष 2007 और नियमावली वर्ष 2014 के विभिन्न प्रावधानों का उल्लेख करते हुए कहा है कि अधिनियम की योजना ऐसी है कि यह वरिष्ठ नागरिकों/माता-पिता के भरण-पोषण और संरक्षण की दोहरी आवश्यकता को पहचानती है और इसमें ऐसे वर्ग के लिए उत्पीड़न से बचने का तत्व भी शामिल है। इसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता के उत्पीड़न से बचने और वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता को उनके गरिमापूर्ण जीवन यापन के लिए सार्थक भरण-पोषण और सुरक्षा प्रदान करने के लिए, यदि किसी उचित मामले में आवश्यक हो तो बेदखली का आदेश न्यायाधिकरण के साथ-साथ जिला मजिस्ट्रेट द्वारा भी दिया जा सकता है, जैसा कि शिवानी वर्मा (उपरोक्त) में इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा स्पष्ट किया गया है।

20. यह आग्रह किया जाता है कि जबकि जिला मजिस्ट्रेट किसी वरिष्ठ नागरिक या उसकी संपत्ति की रक्षा के लिए भरण-पोषण से संबंधित किसी भी विवाद को हल करने के अलावा या ऐसे मामले में जहां वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता की ऐसी संपत्ति के उपयोग का अधिकार शामिल है, तो ऐसे माता-पिता/वरिष्ठ नागरिक को आवश्यक राहत प्रदान करने के लिए, बेदखली का आदेश पारित किया जा सकता है और यह भरण-पोषण न्यायाधिकरण और जिला मजिस्ट्रेट के पास निहित शक्ति होगी, जैसा भी मामला हो।

21. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि एस. वनिता (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय ने बाध्यकारी परिस्थितियों में बेदखली आदेश पारित करने के लिए न्यायाधिकरण की शक्ति को मान्यता दी थी और एकमात्र चेतावनी जिसका प्रयोग किया जाना आवश्यक है, वह यह है कि न्यायाधिकरण या जिला मजिस्ट्रेट, जैसा भी मामला हो, संतुष्ट होना चाहिए और बाध्यकारी परिस्थितियों के अस्तित्व से संबंधित कारणों को दर्ज करना चाहिए, जिसके लिए रिकॉर्डिंग द्वारा इस तरह के आदेश को पारित करने की आवश्यकता होती है यह संतोष है कि यदि ऐसा

आदेश पारित नहीं किया जाता है तो यह वरिष्ठ नागरिक को सम्मान और शांति के साथ अपनी संपत्ति का आनंद लेने के अधिकार से वंचित कर देगा।

22. यह भी प्रस्तुत किया गया था कि अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 23 स्पष्ट रूप से एक वरिष्ठ नागरिक द्वारा निष्पादित हस्तांतरण के दस्तावेज को शून्य घोषित करने के लिए न्यायाधिकरण के पास निहित शक्ति को मान्यता देती है और यह ट्रिब्यूनल को प्रदत्त व्यापक शक्ति को भी दर्शाता है, फिर, एक सहवर्ती के रूप में, ट्रिब्यूनल किसी व्यक्ति को बेदखल करने सहित कब्जे को बहाल करने के लिए एक आदेश भी पारित कर सकता है, ऐसा न करने पर अधिकरण अधिनियम वर्ष 2007 के तहत वरिष्ठ नागरिकों/माता-पिता को पूर्ण राहत और लाभ प्रदान करने के अपने दायित्व से कम हो जाएगा। कोई अन्य अर्थ अधिनियम वर्ष 2007 के उद्देश्य को पराजित करने के समान होगा, जो कानून में उचित नहीं होगा। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि भरण-पोषण न्यायाधिकरण या जिला मजिस्ट्रेट, जैसा भी मामला हो, अधिनियम वर्ष 2007 के तहत बच्चों/रिश्तेदारों को बेदखल करने का आदेश देने का अधिकार नहीं है।

घ. भारत संघ की ओर से प्रस्तुतियाँ:-

23. संघ की ओर से पेश अधिवक्ता श्री सुधांशु चौहान ने प्रस्तुत किया है कि अधिनियम वर्ष 2007 के लागू होने से पहले भी, माता-पिता को भरण-पोषण प्रदान करने के लिए कानून में कुछ अधिनियम और प्रावधान थे, अर्थात् हिंदू दत्तक ग्रहण और भरण-पोषण अधिनियम, 1956 (इसके बाद अधिनियम वर्ष 1956 के रूप में संदर्भित) और आपराधिक प्रक्रिया संहिता में भरण-पोषण के प्रावधान धारा 125 द०प्र०स० के तहत प्रदान किए गए हैं, जो भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (इसके बाद "बी.एन.एस.एस." के रूप में संदर्भित) की धारा 144 में भी परिलक्षित होते हैं, जो सामान्य प्रकृति के हैं और केवल माता-पिता या वरिष्ठ नागरिकों तक ही सीमित नहीं हैं।

24. यह आगे प्रस्तुत किया गया था कि अधिनियम वर्ष 1956 के तहत, एक व्यक्ति (हालांकि अधिनियम में परिभाषित हिंदुओं तक ही सीमित है) अपने वैध या नाजायज बच्चों और अपने अशक्त या वृद्ध माता-पिता को बनाए रखने के लिए बाध्य है। जबकि धारा 125 द०प्र०स० और अब बी.एन.एस.एस. की धारा 144 के प्रावधान 'भरण-पोषण' या 'माता-पिता' शब्द को परिभाषित नहीं करते हैं, लेकिन उक्त प्रावधान अन्य बातों के साथ-साथ पिता या माता को भरण-पोषण प्रदान करने की शब्दावली का उपयोग करता है जो खुद को बनाए रखने में असमर्थ हैं और ऐसे मामलों में, अंतरिम भरण-पोषण के लिए मासिक भत्ता और कार्यवाही के लिए खर्च संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा प्रदान किया जा सकता है।

25. यह आग्रह किया गया था कि धारा 125 द०प्र०स० एक सामान्य प्रावधान है जो सभी नागरिकों के लिए उनके धार्मिक अभिविन्यास के बावजूद उपलब्ध है, हालांकि, इसके विपरीत, अधिनियम वर्ष 1956 केवल हिंदुओं के लिए उपलब्ध है जैसा कि अधिनियम वर्ष 1956 में परिभाषित किया गया है। रखरखाव के लिए कानून में प्रावधानों की उपलब्धता के बावजूद, बुजुर्गों की देखभाल प्रदान करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों को संबोधित

करने की एक आकस्मिक आवश्यकता महसूस की गई। सामाजिक संरचना में धीरे-धीरे बदलाव को देखते हुए, पुरानी पीढ़ी को अपने बाद के अधिकांश वर्षों को वैरागी में बिताने के लिए प्रेरित किया, जिसने उन्हें भावनात्मक उपेक्षा का सामना करना पड़ा और कई मामलों में, इसने शारीरिक, वित्तीय और भावनात्मक उपेक्षा और दुर्व्यवहार का सहारा लेकर दुर्व्यवहार को जन्म दिया।

26. ये मुद्दे समाज के लिए एक चुनौती बन रहे थे, इसलिए, ऐसी चिंताओं को दूर करने के लिए, अधिनियम वर्ष 2007 अस्तित्व में आया। यह एक भरण-पोषण न्यायाधिकरण के निर्माण का प्रावधान करता है जिसे अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 2(बी) में परिभाषित भरण-पोषण के मुद्दे पर विचार करने की आवश्यकता होती है, लेकिन ऐसे न्यायाधिकरण को बेदखली का आदेश पारित करने की कोई शक्ति नहीं दी गई है।

27. श्री चौहान द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि यह मुद्दा संसद के समक्ष भी विचाराधीन था और उक्त विधेयक पर बहस के दौरान, जो बाद में अधिनियम वर्ष 2007 के रूप में अस्तित्व में आया, यह देखा गया कि वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा से संबंधित मामला, मूल रूप से कानून और व्यवस्था से संबंधित है और यह राज्य का विषय है। इसलिए, संबंधित राज्य सरकारों के लिए इस मुद्दे की जांच करने के लिए खुला छोड़ दिया गया था और यदि वे उचित समझते थे तो वे नियम बनाते समय उपर्युक्त पहलू पर कानून बना सकते थे। इसलिए, किसी संपत्ति से बेदखली के मुद्दे को संसद द्वारा जानबूझकर अधिनियम में शामिल करने से छूट दिया गया था और प्रस्तुत मामले में राज्य सरकार ने भी भरण-पोषण न्यायाधिकरण/अपीलीय अधिकरण या जिला मजिस्ट्रेट, जैसा भी मामला हो, को ऐसी किसी भी शक्ति को शामिल नहीं किया है या प्रदान नहीं किया है।

28. इसके बाद यह आग्रह किया गया कि धारा 23 एक स्वतंत्र प्रावधान है और इसे लागू करने के लिए, उक्त धारा में निहित आवश्यक शर्तों का पहले पता लगाया जाना चाहिए। यदि उक्त शर्तें मौजूद हैं, तभी न्यायाधिकरण एक उचित मामले में उक्त धारा में परिकल्पित आदेश पारित कर सकता है और एक सहवर्ती के रूप में वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता को कब्जा बहाल करने का एक सीमित आदेश पारित किया जा सकता है, हालांकि, यह नहीं कहा जा सकता है कि न्यायाधिकरण को निश्चित रूप से बच्चों/रिश्तेदारों या किसी तीसरे पक्ष को बेदखल करने का आदेश देने की शक्तियां प्रदान की गई हैं।

29. यह आगे प्रस्तुत किया गया था कि अधिनियम वर्ष 2007 के प्रावधानों को देखते हुए, यह इंगित करेगा कि अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 15 और 16 के संदर्भ में गठित अपीलीय प्राधिकरण के पास अलग-अलग और सीमित शक्तियां हैं जो केवल रखरखाव न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेशों की वैधता का आकलन करने तक ही सीमित हैं। यद्यपि जिला मजिस्ट्रेट को अपीलीय प्राधिकारी के रूप में नामित किया गया है, फिर भी अधिनियम वर्ष 2007 के तहत अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य करते हुए जिला मजिस्ट्रेट की शक्तियां उन शक्तियों से भिन्न हैं जिनका प्रयोग जिला मजिस्ट्रेट द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए राज्य सरकार द्वारा नियुक्त प्राधिकारी के रूप में किया जाता है कि अधिनियम का उद्देश्य और लक्ष्य प्राप्त हो गया है। इसे धारा

15 और 16 की भाषा से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है जो एक अपीलीय प्राधिकारी के रूप में प्रयोग की जाने वाली शक्तियों से संबंधित है जो अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 22 में प्रयुक्त भाषा के साथ-साथ अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 32 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के विपरीत है।

30. इस दृष्टिकोण में, यह आग्रह किया गया था कि जिला मजिस्ट्रेट को बेदखली का आदेश पारित करने की शक्तियां प्रदान नहीं की गई हैं, जब तक कि यह नहीं माना जाता है कि अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 22 में निर्दिष्ट व्यापक कार्य योजना या राज्य सरकार द्वारा अपनी नियम बनाने की शक्ति का प्रयोग करते हुए बनाए गए नियमों को आगे बढ़ाने के लिए जिला मजिस्ट्रेट को बेदखली की शक्ति प्रदान की गई है। यह भी प्रस्तुत किया गया था कि बेदखली की शक्ति न तो भरण-पोषण न्यायाधिकरण को और न ही अपीलीय प्राधिकरण को प्रदान की गई है, जो अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 16 के तहत शक्तियों का प्रयोग करता है। इसके अलावा, उपर्युक्त के अलावा, जिला मजिस्ट्रेट को कोई न्यायिक शक्तियां प्रदान नहीं की गई हैं। स्पष्ट रूप से, राज्य सरकार ने अधिनियम में न ही नियमों में अधिकरण या जिला मजिस्ट्रेट को बेदखली की कोई शक्ति प्रदान की है और इसके अलावा अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 22(2) के तहत राज्य सरकार द्वारा तैयार की गई व्यापक कार्य योजना से ऐसी कोई शक्ति नहीं ली जा सकती है। इसलिए, यह अनुमान लगाना कि बेदखली का आदेश पारित करने की शक्ति भरण-पोषण न्यायाधिकरण या अपीलीय न्यायाधिकरण या जिला मजिस्ट्रेट में निहित है, क्योंकि अधिनियम वर्ष 2007 के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए निहित शक्तियां एक उचित निष्कर्ष नहीं हो सकता है।

ई. <u>बार के सदस्यों की ओर से प्रस्तुतियाँ</u>:-

31. बार के अधिवक्ता और सदस्य श्री अपूर्व तिवारी ने न्यायालय की सहायता की और उन्होंने प्रस्तुत किया कि एक विशेष अधिनियम के तहत गठित एक न्यायाधिकरण अधिनियम के चारों कोनों के भीतर ही अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए बाध्य है। अधिनियम वर्ष 2007 द्वारा बनाया गया न्यायाधिकरण किसी न्यायालय की प्रकृति या भूमिका को ग्रहण नहीं करता है जो या तो भारत के संविधान के अनुच्छेद 214 (उच्च न्यायालयों के लिए) या अनुच्छेद 124 (सर्वोच्च न्यायालय के लिए) या बंगाल, आगरा और असम अधिनियम 1887 के तहत गठित दीवानी न्यायालयों के तहत, या संबंधित राज्य के दीवानी न्यायालय अधिनियम के तहत गठित किया जाता है।

32. एक न्यायाधिकरण के पास अंतर्निहित शक्तियां नहीं हैं, जो अन्यथा भारत के संविधान के तहत या किसी अधिनियम के तहत गठित न्यायालय के पास उपलब्ध हो सकती हैं जो विशेष रूप से किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण को ऐसी शक्तियां प्रदान करती है। यह भी प्रस्तुत किया गया कि अधिनियम वर्ष 2007, न्यायाधिकरण या अपीलीय प्राधिकरण को बेदखली की कोई शक्ति प्रदान नहीं करता है।

33. चूंकि अधिनियम वर्ष 2007 एक विशेष अधिनियम है, इसलिए, इसके प्रावधानों को अधिनियम में प्रावधानों की सहायता से ही समझा जाना चाहिए और उक्त उद्देश्य के लिए बाहरी सहायता उधार नहीं ली जा सकती है। अधिनियम वर्ष 2007 के किसी भी उपबंध पर विचार करते समय, अधिनियम में दी गई परिभाषा पर ही विचार किया जा सकता है और अधिनियम वर्ष 2007 के प्रयोजनों के लिए किसी विशेष अर्थ को बताना या किसी अन्य अधिनियम या नियमों से उधार लेकर कुछ शक्तियों का आयात करना उचित नहीं होगा।

34. यह आग्रह किया गया था कि अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 23 (हालांकि एक सीमित उद्देश्य के लिए) के अलावा, कोई संकेत नहीं है कि अधिनियम वर्ष 2007 के तहत गठित न्यायाधिकरण को बेदखली का आदेश देने की शक्तियां प्रदान की गई हैं। चूंकि अपील के प्रावधान को एक प्रतिबंधात्मक भाषा में रखा गया है, जो केवल वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता के आदेश पर अधिनियम वर्ष 2007 के तहत अपील की अनुमति देता है, न कि किसी 'पीड़ित पक्ष' के इशारे पर, इसलिए अपीलीय प्राधिकरण प्रतिबंधात्मक शक्तियों का भी प्रयोग करेगा अर्थात यह कहने के लिए कि वह शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता है और ऐसे आदेश पारित नहीं कर सकता है जिसे ट्रिब्यूनल को पहली बार में प्रदान नहीं किया गया है या पारित करने का हकदार नहीं है।

35. ऐसे मामले में जहां अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 23 के संदर्भ में एक वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता द्वारा राहत का दावा किया गया है, जिसे यदि न्यायाधिकरण द्वारा खारिज कर दिया जाता है और केवल ऐसे मामले में अपील की जाती है जब अपीलीय प्राधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि धारा 23 में राहत से संबंधित न्यायाधिकरण के आदेश को अन्यायपूर्ण रूप से अस्वीकार कर दिया गया है, यह तब अपील की अनुमति देते हुए सीमित परिदृश्य में कब्जे को बहाल करने का ऐसा आदेश पारित कर सकता है, लेकिन अन्यथा नहीं।

36. यह भी आग्रह किया गया कि अधिनियम वर्ष 2007 माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के लिए एक सामाजिक लाभकारी अधिनियम है, इसलिए प्रावधानों को इस तरह से समझा जाना चाहिए जैसा कि अधिनियम में ही व्यक्त किया गया है। यदि कोई शक्ति जो अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों द्वारा प्रदान नहीं की गई है, तो यह आवश्यक रूप से संवैधानिक न्यायालय को अधिनियम में ऐसी शक्तियों को पढ़ने के लिए व्याख्या की शक्तियों का सहारा लेने की अनुमति नहीं दे सकता है जिन्हें विशेष कानून को प्रख्यापित करते समय विधायिका द्वारा ही छोड़ दिया गया था।

37. यह भी आग्रह किया गया कि यह सच है कि लाभकारी कल्याणकारी कानून उदार व्याख्या के योग्य है, लेकिन साथ ही यह देखा जाना चाहिए कि उदार व्याख्या किसी भी विषम स्थिति को जन्म नहीं दे सकती है, क्योंकि इस तरह की व्याख्या वांछनीय नहीं होगी। यह प्रस्तुत किया गया था कि यदि कोई अधिनियम कुछ कार्यों को एक विशेष तरीके से करने की शक्ति प्रदान करता है तो ऐसे कार्यों को अकेले उसी तरीके से किया जाना चाहिए और अन्यथा नहीं।

38. चूंकि बेदखली की शक्ति विशेष रूप से अधिनियम वर्ष 2007 में और न ही नियमावली वर्ष 2014 में प्रदान की गई है, इसलिए, ऐसी शक्तियों का प्रयोग न्यायाधिकरण, अपीलीय न्यायाधिकरण या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार शिवानी वर्मा (उपरोक्त) में खंड पीठ द्वारा व्यक्त किया गया विचार अधिनियम वर्ष 2007 और नियमावली वर्ष 2014 के प्रावधानों के अनुरूप नहीं हो सकता है।

39. यह भी प्रस्तुत किया गया था कि भले ही अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 27 दीवानी न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को रोकती है, लेकिन इसे अधिनियम वर्ष 2007 के प्रावधानों के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए, अर्थात, केवल ऐसे मामले जो अधिनियम वर्ष 2007 द्वारा पूरी तरह से आच्छादित और शासित हैं, उस सीमा तक, दीवानी न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को प्रतिबंधित किया जाएगा और समग्र रूप से नहीं। यह इस तथ्य का भी संकेत है कि अधिनियम के तहत गठित न्यायाधिकरण और अपीलीय प्राधिकरण सीमित क्षेत्राधिकार के न्यायाधिकरण हैं जो अधिनियम वर्ष 2007 और नियमावली वर्ष 2014 के ढांचे के भीतर शक्तियों का प्रयोग करते हैं, न कि इसके बाद।

<u>च. चर्चा और विश्लेषण</u>:-

40. इस न्यायालय को संदर्भित चार प्रश्नों पर ध्यान देने के बाद, यह प्रकट होगा कि पहले दो प्रश्न अधिनियम वर्ष 2007 के अध्याय II से संबंधित हैं, इसलिए, उन्हें एक साथ विचार करना उचित होगा।

F.1. प्रश्न संख्या (i) और (ii)

41. सुविधा के लिए, प्रश्न संख्या। (i) और (ii) को इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"(i) *अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 7 के तहत गठित भरण-पोषण न्यायाधिकरण का वास्तविक दायरा और शक्तियां क्या हैं, जो अधिनियम वर्ष 2007 के अध्याय- II में निहित है और क्या अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 7, 8 और 9 के संदर्भ में अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए न्यायाधिकरण को अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 5 के संदर्भ में अपने समक्ष पसंदीदा आवेदन पर निर्णय लेते समय बेदखली का आदेश पारित करने का अधिकार होगा। अधिनियम वर्ष 2007?*

(ii) अधिनियम वर्ष 20*16 (एसआईसी) की धारा 15 और 16 के संदर्भ में अपीलीय न्यायाधिकरण के रूप में शक्ति का प्रयोग करने वाले जिला मजिस्ट्रेट का वास्तविक दायरा और शक्ति क्या होगी और क्या ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपीलीय न्यायाधिकरण बेदखली का आदेश पारित कर सकता है?*

42. उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर देने के लिए, पहले अधिनियम वर्ष 2007 और नियमावली वर्ष 2014 की योजना की जांच करना प्रमुख महत्व होगा ताकि न्यायालय को इसके संदर्भित प्रश्नों के निर्णायक उत्तर तक पहुंचने में सक्षम बनाया जा सके।

अनुवादित

43. आरंभ करने के लिए, अधिनियम वर्ष 2007 के कथनों, उद्देश्यों और कारणों को यहां पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"उद्देश्यों और कारणों का कथन- *भारतीय समाज के पारंपरिक मानदंडों और मूल्यों ने बुजुर्गों की देखभाल करने पर जोर दिया। हालांकि, संयुक्त परिवार प्रणाली के कमजोर होने के कारण, बड़ी संख्या में बुजुर्गों की उनके परिवार द्वारा देखभाल नहीं की जा रही है। नतीजतन, कई वृद्ध व्यक्तियों, विशेष रूप से विधवा महिलाओं को अब अपने गोधूलि वर्षों को अकेले बिताने के लिए मजबूर किया जाता है और भावनात्मक उपेक्षा और शारीरिक और वित्तीय सहायता की कमी के संपर्क में आते हैं। इससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि बुढ़ापा एक बड़ी सामाजिक चुनौती बन गई है और वृद्ध व्यक्तियों की देखभाल और सुरक्षा पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। हालांकि माता-पिता दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के तहत भरण-पोषण का दावा कर सकते हैं, लेकिन यह प्रक्रिया समय लेने वाली होने के साथ-साथ महंगी भी है। इसलिए, माता-पिता के लिए भरण-पोषण का दावा करने के लिए सरल, सस्ते और त्वरित प्रावधानों की आवश्यकता है।*

2. विधेयक में बच्चों या उनके वृद्ध रिश्तेदारों की संपत्ति के उत्तराधिकारी व्यक्तियों पर ऐसे वृद्ध रिश्तेदारों का भरण-पोषण करने का दायित्व डालने का प्रस्ताव है और निर्धन वृद्ध व्यक्तियों को भरण-पोषण प्रदान करने के लिए वृद्धाश्रमों की स्थापना के लिए प्रावधान करने का भी प्रस्ताव है।
विधेयक में वरिष्ठ नागरिकों को बेहतर चिकित्सा सुविधाएं प्रदान करने और उनके जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के प्रावधानों *का भी प्रस्ताव है।*

3. इसलिए, विधेयक में *निम्नलिखित का प्रावधान करने का प्रस्ताव है-*
(क) *माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों को आवश्यकता आधारित भरण-पोषण प्रदान करने के लिए उपयुक्त तंत्र स्थापित किया जाएगा;*

(ख) वरिष्ठ नागरिकों को बेहतर चिकित्सा सुविधाएं प्रदान करना*;*

(ग) वृद्ध व्यक्तियों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के लिए एक उपयुक्त तंत्र *को संस्थागत रूप देना;*

(घ) प्रत्येक जिले में वृद्धाश्रमों की स्थापना /

4. विधेयक उपरोक्त उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहता है /

44. अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों को ध्यान में रखते हुए, यह पता चलता है कि अधिनियम को उन बच्चों/ऐसे व्यक्तियों पर एक दायित्व डालने के लिए प्रख्यापित किया गया था, जो अपने माता-पिता/वरिष्ठ

नागरिक या उनके रिश्तेदारों की संपत्ति को उत्तराधिकारी बनाएंगे, यह सुनिश्चित करने के लिए कि ऐसे माता-पिता/वरिष्ठ नागरिक/रिश्तेदारों का भरण-पोषण किया जाए और उनके अंतिम वर्षों में उनकी उपेक्षा न की जाए।

45. इस अधिनियम में यह सुनिश्चित करने के लिए कि वृद्ध आबादी निराश्रित न रहे और वृद्धाश्रमों की स्थापना के लिए पर्याप्त उपाय किए जाएं और संस्थागत तरीके से निर्धन वृद्धजनों के लाभ के लिए इसके रखरखाव और रखरखाव के लिए पर्याप्त उपाय किए जाएं। अधिनियम वर्ष 2007 में वरिष्ठ नागरिकों को बेहतर चिकित्सा सुविधाएं प्रदान करने के साथ-साथ उनके जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के लिए एक वातावरण के निर्माण की भी परिकल्पना की गई है।

46. अब अधिनियम वर्ष 2007 की संरचना का विहंगम दृश्य लेना उचित होगा। अधिनियम वर्ष 2007 से पता चलेगा कि इसे सात अध्यायों में शामिल किया गया है। प्रत्येक अध्याय का एक नामकरण है और प्रत्येक अध्याय की सामग्री समग्र रूप से अधिनियम वर्ष 2007 की व्यापक छतरी के तहत माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के लिए रखरखाव और कल्याण के विभिन्न पहलुओं से संबंधित है।

47. विधायिका ने इस अधिनियम का प्रारूप तैयार करते समय इसे आसानी से केवल अध्यायों में विभाजित किया है। आम तौर पर, किसी अधिनियम को भागों और अध्यायों में विभाजित करना काफी हद तक अधिनियम की लंबाई और उसमें निपटाई जाने वाली विषय वस्तु पर निर्भर करता है, हालांकि कानून का मसौदा तैयार करने की इस शैली से संबंधित कोई कठोर और तेज़ नियम नहीं है; हालांकि, यह पता लगाया जा सकता है कि वर्गों के एक समूह की विषय वस्तु दूसरे समूह की विषय वस्तु से इतनी अलग है, यद्यपि यह मुख्य अधिनियम का एक अभिन्न अंग है, फिर भी ऐसे मामले में अधिनियम को अध्यायों में विभाजित किया जा सकता है। यह विचार व्यक्त किया गया है कि इसे आसानी से एक समग्र की अलग-अलग इकाइयों के रूप में निपटाया जा सकता है जब विषय वस्तु निकटता से जुड़ी हुई हो और वर्गीकरण और संदर्भ की सुविधा के लिए केवल अलग शीर्षक की आवश्यकता होती है। **(देखें: टीके विश्वनाथन लेजिस्लेटिव ड्राफ्टिंग: शेपिंग द लॉ फॉर द न्यू मिलेनियम, इंडियन लॉ इंस्टीट्यूट, दूसरा संस्करण, 2007)**

48. विधायी प्रारूपण को देखते हुए, यह प्रकट होगा कि अधिनियम वर्ष 2007 में, पहले अध्याय का शीर्षक 'प्रारंभिक' है और इसमें तीन खंड शामिल हैं। धारा 1 अधिनियम के प्रारंभ होने की तारीख से इसकी सीमा और प्रयोज्यता का परिचय देती है। धारा 2 अधिनियम में उपयोग किए गए कुछ शब्दों और शब्दों को संदर्भित करती है जिन्हें परिभाषित किया गया है और विशेष रूप से 'बच्चे**', 'भरण-पोषण', 'माता-पिता', 'संपत्ति', 'वरिष्ठ नागरिक', 'न्यायाधिकरण'** और '**कल्याण' शब्दों पर** ध्यान देने की आवश्यकता है, इसलिए, उपर्युक्त शब्दों की परिभाषाओं को इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है।

"2. परिभाषाएँ

(ए) "बच्चों" में बेटा, *बेटी, पोता और पोती शामिल हैं, लेकिन इसमें नाबालिग शामिल नहीं हैं;*

(ख) "रखरखाव" में भोजन, *कपड़े, निवास और चिकित्सा उपस्थिति और उपचार का प्रावधान शामिल है;*
(घ) "माता-पिता" से पिता या माता का तात्पर्य है *चाहे वह जैविक, दत्तक या सौतेले पिता या सौतेली माता, जैसा भी मामला हो, चाहे पिता या माता वरिष्ठ नागरिक हो या नहीं;*
(ङ) "विहित" का अर्थ है *इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विहित;*
(च) "संपत्ति" से किसी प्रकार की संपत्ति , *चाहे वह चल या अचल, पैतृक या स्व-उपार्जित, मूर्त या अमूर्त हो और इसमें ऐसी संपत्ति में अधिकार या हित शामिल हैं;*
(छ) "रिश्तेदार" से *निःसंतान वरिष्ठ नागरिक का कोई कानूनी उत्तराधिकारी अभिप्रेत है जो नाबालिग नहीं है और उसकी मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति के कब्जे में है या उत्तराधिकारी होगा;*
(ज) "वरिष्ठ नागरिक" से भारत *का नागरिक होने वाला कोई भी व्यक्ति अभिप्रेत है, जिसने साठ वर्ष या उससे अधिक की आयु प्राप्त कर ली है;*
(ञ) "अधिकरण" से *धारा 7 के अधीन गठित भरण-पोषण न्यायाधिकरण अभिप्रेत है;*
(ट) कल्याण से वरिष्ठ *नागरिकों के लिए आवश्यक भोजन, स्वास्थ्य देखभाल, मनोरंजन, अन्य सुविधाओं और अन्य सुविधाओं का प्रावधान है।*

49. धारा 3 इस अधिनियम को अधिभावी प्रभाव देती है और यह निम्नानुसार है: -
"3. अधिभावी प्रभाव रखने के लिए अधिनियम--*इस अधिनियम के उपबंधों का प्रभाव इस अधिनियम के अलावा किसी अन्य अधिनियमन में या इस अधिनियम के अलावा किसी अन्य अधिनियम के आधार पर प्रभावी होने वाले किसी लिखत में निहित किसी असंगत बात के होते हुए भी होगा।*

50. अगले अध्याय II में 'माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का रखरखाव' शीर्षक है। इस अध्याय में, धारा 4 स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि माता-पिता सहित एक वरिष्ठ नागरिक जो अपनी कमाई से या उसके स्वामित्व वाली संपत्ति से खुद को बनाए रखने में असमर्थ है, अधिनियम की धारा 5 के तहत आवेदन करने का हकदार होगा। अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 4 और 5 का संदर्भ दिया जाना चाहिए जो निम्नानुसार पढ़ें: -

"4. माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण- *(1) माता-पिता सहित एक वरिष्ठ नागरिक जो अपनी कमाई से या अपने स्वामित्व वाली संपत्ति से खुद को बनाए रखने में असमर्थ है, निम्नलिखित के मामले में धारा 5 के तहत आवेदन करने का हकदार होगा-*

(i) माता-पिता या दादा-दादी, उनके एक या अधिक बच्चों के नाबालिग नहीं होने के खिलाफ;
(ii) एक निःसंतान वरिष्ठ नागरिक, *धारा के खंड (छ) में निर्दिष्ट उसके ऐसे रिश्तेदार के विरुद्ध*

(2) बच्चों या *रिश्तेदार, जैसा भी मामला हो, एक वरिष्ठ नागरिक को बनाए रखने का दायित्व ऐसे नागरिक की जरूरतों तक फैला हुआ है ताकि वरिष्ठ नागरिक सामान्य जीवन जी सकें।*

(3) अपने *माता-पिता को बनाए रखने के लिए बच्चों का दायित्व ऐसे माता-पिता या पिता या माता या दोनों की जरूरतों तक फैला हुआ है, जैसा भी मामला हो, ताकि ऐसे माता-पिता सामान्य जीवन जी सकें।*

(4) कोई भी व्यक्ति *किसी वरिष्ठ नागरिक का रिश्तेदार होने के नाते और पर्याप्त साधन रखने के नाते ऐसे वरिष्ठ नागरिक का भरण-पोषण करेगा बशर्ते कि वह ऐसे वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति के कब्जे में हो या उसे ऐसे वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति विरासत में प्राप्त होगी:*
बशर्ते कि जहां एक से अधिक *रिश्तेदार एक वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति के उत्तराधिकार के हकदार हैं, ऐसे रिश्तेदार द्वारा भरण-पोषण उस अनुपात में देय होगा जिसमें वे अपनी संपत्ति को उत्तराधिकारी होंगे।*

5. रखरखाव के लिए आवेदन.*—(1) धारा 4 के तहत रखरखाव के लिए एक आवेदन किया जा सकता है-*
(क) वरिष्ठ नागरिक या माता-पिता द्वारा *, जैसा भी मामला हो; या*
(ख) यदि वह उसके *द्वारा प्राधिकृत किसी अन्य व्यक्ति या संगठन द्वारा अक्षम है; या*
(ग) अधिकरण स्वत *संज्ञान ले सकता है।*
स्पष्टीकरण--इस धारा के प्रयोजनों के लिए "संगठन" से सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 (21 वर्ष 1860) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य कानून के तहत पंजीकृत कोई स्वैच्छिक संघ अभिप्रेत है।

(2) न्यायाधिकरण, इस *धारा के तहत भरण-पोषण के लिए मासिक भत्ते के संबंध में कार्यवाही के लंबित होने के दौरान, ऐसे बच्चों या रिश्तेदार को माता-पिता सहित ऐसे वरिष्ठ नागरिक के अंतरिम भरण-पोषण के लिए मासिक भत्ता बनाने और माता-पिता सहित ऐसे वरिष्ठ नागरिक को उसी का भुगतान करने का आदेश दे सकता है जैसा कि न्यायाधिकरण समय-समय पर निर्देशित कर सकता है।*

(3) *उपधारा (1) के अधीन भरण-पोषण के लिए आवेदन प्राप्त होने पर, बच्चों या रिश्तेदारों को आवेदन की सूचना देने के बाद और पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के बाद, भरण-पोषण की राशि निर्धारित करने के लिए जांच कराना।*

(4) उप-धारा (2) के तहत दायर किए गए एक आवेदन *को रखरखाव के लिए मासिक भत्ते और कार्यवाही के लिए खर्च ऐसे व्यक्ति को आवेदन की सूचना की तारीख से नब्बे दिनों के भीतर निपटाया जाएगा:*
बशर्ते कि न्यायाधिकरण उक्त *अवधि का विस्तार कर सकता है, एक बार असाधारण परिस्थितियों में तीस दिनों की अधिकतम अवधि के लिए लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए.*

(5) *उपधारा (1) के अधीन भरण-पोषण के लिए आवेदन किसी एक व्यक्ति अथवा मोटे व्यक्तियों के विरुद्ध दायर किया जा सकेगा:*
बशर्ते कि ऐसे बच्चे या *रिश्तेदार रखरखाव के लिए आवेदन में माता-पिता को बनाए रखने के लिए उत्तरदायी दूसरे व्यक्ति को दोषी ठहरा सकते हैं।*

(6) जहां *एक से अधिक व्यक्तियों के खिलाफ रखरखाव आदेश दिया गया था, उनमें से एक की मृत्यु रखरखाव का भुगतान जारी रखने के लिए दूसरों के दायित्व को प्रभावित नहीं करती है।*

(7) कार्यवाही के लिए रखरखाव और व्यय के लिए ऐसा कोई भी भत्ता *आदेश की तारीख से देय होगा, या, यदि ऐसा आदेश दिया गया है, तो रखरखाव या कार्यवाही के व्यय के लिए आवेदन की तारीख से, जैसा भी मामला हो।*

(8) यदि, इस प्रकार आदेश दिए गए बच्चे या रिश्तेदार *आदेश का पालन करने के लिए पर्याप्त कारण के बिना विफल हो जाते हैं, तो ऐसा कोई भी न्यायाधिकरण, आदेश के प्रत्येक उल्लंघन के लिए, जुर्माना छोड़ने के लिए प्रदान की गई विधि में देय राशि लगाने के लिए वारंट जारी कर सकता है, और ऐसे व्यक्ति को पूरे के लिए सजा दे सकता है, या कार्यवाही के रखरखाव और व्यय के लिए प्रत्येक महीने के भत्ते का कोई भी हिस्सा, जैसा भी मामला हो, वारंट के निष्पादन के बाद अवैतनिक रहकर, एक अवधि के लिए कारावास के लिए जो एक महीने तक बढ़ सकता है या भुगतान होने तक यदि जल्द ही किया जाता है, जो भी पहले हो:*
बशर्ते कि *इस धारा के तहत देय किसी भी राशि की वसूली के लिए कोई वारंट जारी नहीं किया जाएगा जब तक कि ट्रिब्यूनल को उस तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर ऐसी राशि लगाने के लिए आवेदन नहीं किया जाता है, जिस दिन यह देय हो गया था।*

51. यह ध्यान देना प्रासंगिक होगा कि इस तथ्य के बावजूद कि 'माता-पिता' और 'वरिष्ठ नागरिक' दोनों को क्रमशः धारा 2(डी) और (एच) में परिभाषित किया गया है, फिर भी धारा 4 में यह इंगित करता है कि वरिष्ठ नागरिकों के साथ-साथ माता-पिता दोनों भरण-पोषण के हकदार हैं, बशर्ते कि वे अपनी कमाई या उनके स्वामित्व वाली संपत्ति से खुद को बनाए रखने में असमर्थ हों।

52. धारा 4 की उपधारा (2) और (3) बच्चों या रिश्तेदार पर एक वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता को इस हद तक बनाए रखने का दायित्व देती है कि ऐसे वरिष्ठ नागरिक की आवश्यकता को पूरा किया जा सके ताकि उन्हें सामान्य जीवन जीने में मदद मिल सके।

53. गौरतलब है कि धारा 2(डी) में परिभाषित माता-पिता शब्द में माता और पिता दोनों को उनके व्यापक अर्थ में शामिल किया गया है और उपधारा (3) के संदर्भ में, यह माता और पिता दोनों को बनाए रखने का दायित्व होगा, जैसा भी मामला हो।

54. धारा 5 भरण-पोषण के लिए आवेदन न केवल एक वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता द्वारा किए जाने की अनुमति देती है, जैसा भी मामला हो, लेकिन यदि वे अक्षम हैं तो उनकी ओर से कोई भी व्यक्ति या यहां तक कि उनके द्वारा अधिकृत संगठन भी अपने लाभ के लिए न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र का आह्वान कर सकता है।

55. अधिनियम ट्रिब्यूनल के अधिकार क्षेत्र को लागू करने के हकदार व्यक्ति को व्यापक आयाम देता है, इतना ही, कि ट्रिब्यूनल को स्वयं स्वत: संज्ञान लेने की शक्ति प्रदान की गई है। यह इंगित करता है कि पूरा प्रयास यह सुनिश्चित करना है कि कोई भी वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता जो खुद का भरण-पोषण करने में असमर्थ हैं, वे स्वयं या कल्याण की दिशा में काम करने वाले संगठन के माध्यम से न्यायाधिकरण से संपर्क कर सकते हैं, जिसमें कल्याणकारी समितियां/गैर-सरकारी संगठन शामिल हो सकते हैं या यहां तक कि यदि ऐसा कोई मुद्दा संबंधित न्यायाधिकरण के संज्ञान में आता है, तो वह स्वत: संज्ञान ले सकता है ताकि अधिनियम के लाभों को अधिकतम तक पहुंचाया जा सके और जहां तक संभव हो।

56. वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता के लाभ के लिए पारंपरिक मुकदमेबाजी में लागू 'लोकस स्टैंडी' की अवधारणा को कमजोर कर दिया गया है। भले ही विधायिका ने न्यायाधिकरण को किसी आवेदन की शुरुआत के लिए स्वत: प्रवचन शक्तियों का प्रयोग करने या कार्यवाही शुरू करने के लिए भरण-पोषण न्यायाधिकरण की शक्तियों का उपयोग करने की शक्ति प्रदान की है, फिर भी विधायिका ने अपने विवेक से अधिनियम में उल्लिखित किसी भी अंतर्निहित शक्ति या किसी अन्य विशिष्ट शक्ति को, भरण-पोषण न्यायाधिकरण/अपीलीय न्यायाधिकरण पर प्रदान करने से स्पष्ट रूप से परहेज किया है।

57. न्यायाधिकरण को अंतरिम उपाय के रूप में भरण-पोषण के लिए मासिक भत्ता प्रदान करने की शक्ति प्रदान की गई है, जबकि आवेदन विचाराधीन है। अधिनियम की धारा 4 इंगित करती है कि भरण-पोषण के लिए आवेदन प्राप्त होने पर, अधिकरण के समक्ष व्यक्ति की आवश्यकता के संदर्भ में भुगतान/प्रदान की जाने वाली भरण-पोषण की राशि का निर्धारण करने के लिए जांच करना आवश्यक है और यह मौद्रिक और गैर-मौद्रिक लाभों दोनों के संदर्भ में अधिनियम के तहत परिभाषित 'भरण-पोषण' की विभिन्न प्रकृति का संयोजन भी हो सकता है। यह आवेदन में प्रतिवादी को अवसर देने के बाद किया जा सकता है और एक बार जब न्यायाधिकरण को पता चलता है कि धारा 4 के आवश्यक तत्व स्थापित हो गए हैं, तो उसे रखरखाव आदेश पारित करना आवश्यक है। धारा 4 के तहत एक आदेश पारित होने के बाद और उसके बाद बच्चों या रिश्तेदार की ओर से किसी भी विफलता या उल्लंघन के मामले में, जैसा भी मामला हो, जिसके खिलाफ न्यायाधिकरण द्वारा भरण-पोषण का आदेश पारित किया गया है, ऐसे प्रतिवादी को वारंट/जुर्माना लगाकर आदेश का उल्लंघन/गैर-अनुपालन के लिए घसीटा जा सकता है और कारावास की सजा भी लगाई जा सकती है जिसे एक अवधि तक बढ़ाया जा सकता है एक महीने की अवधि या भुगतान किए जाने तक, जो भी पहले हो और यह अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 5 (8) के सादे अवलोकन से स्पष्ट है।

58. धारा 7 भरण-पोषण न्यायाधिकरण के गठन से संबंधित है जिसे राज्य सरकार द्वारा गठित किया जाना है और उपधारा (2) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ऐसे न्यायाधिकरण का पीठासीन अधिकारी उप-मंडल अधिकारी के पद से नीचे का अधिकारी नहीं होगा। अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 8 के अनुसार जांच करने के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया संक्षिप्त प्रकृति की होगी।

59. बेहतर समझ के लिए, धारा 7 और 8 को इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"7. भरण-पोषण ***अधिकरण*** *का गठन- (1) राज्य सरकार, इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से छह माह की अवधि के भीतर, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, प्रत्येक उपखंड के लिए एक या एक से अधिक अधिकरणों का गठन करेगी, जो धारा 5 के अधीन भरण-पोषण के आदेश पर निर्णय लेने और उस पर निर्णय लेने के प्रयोजन के लिए अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किए जाएं।*

(2) अधिकरण की अध्यक्षता किसी *ऐसे अधिकारी द्वारा की जाएगी जो किसी राज्य के उप-मंडल अधिकारी के पद से नीचे का न हो।*

(3) जहां किसी क्षेत्र के लिए दो या दो से अधिक अधिकरणों *का गठन किया जाता है, वहां राज्य सरकार, सामान्य या विशेष आदेश द्वारा, उनके बीच व्यापार के वितरण को विनियमित कर सकेगी।*

"8. जांच के मामले में संक्षिप्त प्रक्रिया---*(1) धारा 5 के अधीन कोई जांच करने में, अधिकरण किसी भी नियम के अधीन रहते हुए, जो इस संबंध में राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किए जा सकते हैं, ऐसी संक्षिप्त प्रक्रिया का पालन कर सकेगा जो वह उचित समझे।*

(2) न्यायाधिकरण के पास *शपथ पर साक्ष्य लेने और गवाहों की उपस्थिति को लागू करने और दस्तावेजों और भौतिक वस्तुओं की खोज और उत्पादन को बाध्य करने और ऐसे अन्य उद्देश्यों के लिए जो निर्धारित किए जा सकते हैं, के उद्देश्य से दीवानी न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी; और न्यायाधिकरण को दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 195 और अध्याय XXVI के सभी प्रयोजनों के लिए एक दीवानी न्यायालय माना जाएगा;*

(3) इस संबंध में किए जाने वाले किसी भी नियम के अधीन, *न्यायाधिकरण, भरण-पोषण के लिए किसी भी दावे पर निर्णय लेने और निर्णय लेने के प्रयोजन के लिए, जांच करने में सहायता करने के लिए जांच से संबंधित किसी भी मामले का विशेष ज्ञान रखने वाले एक या एक से अधिक व्यक्तियों का चयन कर सकता है।*

60. अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 9 भरण-पोषण के आदेश से संबंधित है जिसे पारित करना आवश्यक है, हालांकि, यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि धारा 9 की उपधारा (2) भरण-पोषण की अधिकतम मात्रा प्रदान करती है जिसका आदेश न्यायाधिकरण द्वारा दिया जा सकता है, 10,000/- रुपये प्रति माह से अधिक नहीं होगा (यह निश्चित रूप से किसी भी सीमा के अधीन है जो राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जा सकती है जो उत्तर प्रदेश राज्य में है। अभी तक 10,000 रुपये है।

61. अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 10 न्यायाधिकरण को धारा 9 के तहत किए गए अपने आदेश को बदलने की अनुमति देती है जो या तो परिस्थितियों में किसी भी परिवर्तन के कारण हो सकती है या किसी भी निर्णय के कारण हो सकती है जो एक सक्षम दीवानी न्यायालय द्वारा प्रदान किया जा सकता है।

62. अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 11 भरण-पोषण के आदेश को लागू करने की बात करती है जबकि धारा 12 में कहा गया है कि एक व्यक्ति, चाहे वह वरिष्ठ नागरिक हो या माता-पिता, किसी अन्य कानून में निहित किसी भी प्रावधान के संदर्भ में भरण-पोषण का दावा कर सकता है, जैसे कि द०प्र०स० के अध्याय IX के संदर्भ में (और अब अध्याय X के संदर्भ में, भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 की धारा 144 से 147)(इसके बाद BNSS वर्ष 2023 के रूप में संदर्भित) या अधिनियम वर्ष 2007 के तहत लेकिन दोनों के तहत नहीं।

63. अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 13 और 14 न्यायाधिकरण को ट्रिब्यूनल के साथ बच्चों या रिश्तेदार, जिनके खिलाफ एक भरण-पोषण आदेश पारित किया गया है, से जमा राशि प्राप्त करने का अधिकार देता है और यह साधारण ब्याज का भुगतान भी निर्देशित कर सकता है जो प्रति वर्ष 5% से 18% के बीच हो सकता है।

64. धारा 9 में पारित भरण-पोषण के आदेश को अपीलीय न्यायाधिकरण में अपील योग्य बनाया गया है, जिसकी अध्यक्षता जिला मजिस्ट्रेट के रैंक से नीचे के अधिकारी द्वारा की जानी है। हालांकि, ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि अधिनियम वर्ष 2007 में प्रदान की गई अपीलीय न्यायाधिकरण में धारा 16 के संदर्भ में अपील केवल एक वरिष्ठ नागरिक या माता-पिता के आदेश पर होती है। यह एक प्रतिबंधात्मक अधिकार है और केवल वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता के लिए उपलब्ध है। यह अपील के अधिकार के विपरीत है, जो आम तौर पर एक पारंपरिक और एडवोसोरियल मुकदमेबाजी में एक 'पीड़ित व्यक्ति' को प्रदान किया जाता है।

65. यह आवश्यक रूप से इंगित करता है कि एक वरिष्ठ नागरिक या माता-पिता, जैसा भी मामला हो, अपीलीय न्यायाधिकरण से संपर्क कर सकते हैं जहां: -

(i) रखरखाव के लिए उनका आवेदन अस्वीकार कर दिया जाता है,

(ii) यदि इसे आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है और वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता इस बात से व्यथित हैं कि भरण-पोषण अधिकरण द्वारा अपूर्ण राहत अथवा कोई राहत प्रदान नहीं की गई है।

66. वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता के लिए इसे सुविधाजनक और मैत्रीपूर्ण बनाने के लिए, वे वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता का प्रतिनिधित्व करने के लिए रखरखाव अधिकारी द्वारा पेश किए गए अच्छे कार्यालयों का आह्वान करने के हकदार हैं, जैसा भी मामला ट्रिब्यूनल या अपीलीय न्यायाधिकरण के समक्ष हो, जैसा भी मामला हो।

67. अधिनियम वर्ष 2007 के अध्याय II के विभिन्न प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, अब अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 9 को संलग्न करते समय विधायिका द्वारा आयातित भाषा का उल्लेख करना उचित होगा, जिसे इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

***"9. भरण-पोषण के लिए आदेश**--(1) यदि बच्चे या रिश्तेदार, यथास्थिति, किसी वरिष्ठ नागरिक को अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ होने के कारण उपेक्षा करते हैं या बनाए रखने से इनकार करते हैं, तो न्यायाधिकरण, ऐसी उपेक्षा या इनकार से संतुष्ट होने पर, ऐसे बच्चों या रिश्तेदारों को ऐसे वरिष्ठ नागरिक के भरण-पोषण के लिए ऐसी मासिक दर पर मासिक भत्ता देने का आदेश दे सकेगा, जैसा कि न्यायाधिकरण उचित समझे और ऐसे वरिष्ठ नागरिक को उसी का भुगतान करने के लिए जैसा कि न्यायाधिकरण समय-समय पर निर्देश दे सकता है।*

(2) *ऐसे अधिकरण द्वारा आदेशित अधिकतम भरण-पोषण भत्ता ऐसा होगा जो राज्य सरकार द्वारा विहित किया जाए जो दस हजार रुपये प्रति माह से अधिक नहीं होगा।*

68. उपरोक्त उद्धृत प्रावधान से, यह स्पष्ट होगा कि अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 7 के तहत गठित भरण-पोषण न्यायाधिकरण केवल 10,000/- रुपये से अधिक की राशि का भरण-पोषण आदेश पारित नहीं कर सकता है।

69. अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 2(बी) में परिभाषित 'रखरखाव' शब्द स्पष्ट रूप से बताता है और अपने दायरे में एक रखरखाव आदेश जारी करने की शक्ति लेता है जो अन्य बातों के साथ-साथ भोजन, कपड़े, निवास और चिकित्सा उपस्थिति और उपचार के प्रावधानों को अपने दायरे में लेता है। यह इस कारण से महत्वपूर्ण है कि एक सामाजिक कल्याण कानून होने के नाते, अधिनियम यह मानता है कि भोजन, कपड़े, निवास और चिकित्सा उपस्थिति या उपचार से संबंधित वरिष्ठ नागरिकों/माता-पिता की आवश्यकता जो एक बार का उपाय नहीं हो सकती है, बल्कि यह एक परिवर्तनशील या परिवर्तनशील आवश्यकता हो सकती है। इसलिए, विधायिका ने जानबूझकर 'प्रावधान' शब्द का उपयोग किया है। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि वर्तमान निर्धारित सीमा के अनुसार भोजन, कपड़े, निवास, चिकित्सा उपस्थिति और उपचार के लिए जो प्रावधान किया जाना है, वह 10,000 रुपये प्रति माह से अधिक नहीं है और दस हजार रुपये की बिक्री का उल्लंघन किए बिना किसी भी स्तर पर इसमें बदलाव किया जा सकता है।

70. यहां, यह ध्यान देना प्रासंगिक होगा कि 'रखरखाव' शब्द को द०प्र०स० के अध्याय IX में परिभाषित नहीं किया गया है, जो धारा 125 द०प्र०स० से संबंधित है या बी.एन.एस.एस. वर्ष 2023 की धारा 144 के संदर्भ में अध्याय X में है। हालांकि, तथ्य यह है कि उपरोक्त प्रावधानों के संदर्भ में यह केवल मौद्रिक राशि है जिसे मजिस्ट्रेट द्वारा प्रदान किया जा सकता है और यह व्यक्ति की किसी भी गैर-मौद्रिक जरूरतों को पूरा करने के लिए प्रदान करने या प्रावधान करने का उल्लेख नहीं करता है। यह इंगित करता है कि भले ही सामान्य कानून

के तहत जो अन्य बातों के साथ-साथ माता-पिता पर लागू होता है और जरूरी नहीं कि वह एक वरिष्ठ नागरिक हो, लेकिन ऐसे माता-पिता द०प्र०स० या बी.एन.एस.एस. अधिनियम वर्ष 2007 के तहत दिए जा सकने वाले अधिक भरण-पोषण प्राप्त कर सकते हैं, जैसा कि अधिनियम वर्ष 2007 में दिया गया है, रखरखाव आदेश 10,000/- रुपये प्रति माह (वर्तमान सीमा के अनुसार) से अधिक नहीं हो सकता है, जिसमें सभी प्रकार के, मौद्रिक और गैर-मौद्रिक दोनों रखरखाव शामिल हैं।

71. धारा 9(i), न्यायाधिकरण को प्रदान किए जाने वाले भरण-पोषण की राशि निर्धारित करने के लिए एक जांच आयोजित करने के बाद भरण-पोषण आदेश पारित करने का अधिकार देती है और यह राशि/मासिक भत्ता ऐसे वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता की विशिष्ट आवश्यकता और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया जाता है। यह मुख्य रूप से एक वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता के लिए एक आवश्यकता आधारित उपाय है, जो भोजन, कपड़े, निवास और चिकित्सा उपस्थिति और उपचार की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, जैसा भी मामला हो, एक मजबूत तरीके से प्रदान किया जाता है, लेकिन 10,000 रुपये प्रति माह से अधिक नहीं है।

72. अध्याय II में निहित अधिनियम के प्रावधान किसी भी तरह से यह संकेत नहीं देते हैं कि न्यायाधिकरण को बेदखली की कोई शक्ति प्रदान की गई है, जबकि यह भरण-पोषण की राशि निर्धारित करने के लिए जांच करने की शक्तियों का प्रयोग करता है (देखें: अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 5(3)]

73. अधिनियम वर्ष 2007 के अध्याय II के प्रावधान भी भरण-पोषण न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेशों को कोई अंतिमता प्रदान नहीं करते हैं, क्योंकि भरण-पोषण न्यायाधिकरण का एक आदेश सारांश कार्यवाही में पारित किया जाता है और इसे अधिनियम की धारा 10 के अनुसार भरण-पोषण न्यायाधिकरण द्वारा बदला या रद्द या परिवर्तित किया जा सकता है। ध्यान देने योग्य रूप से, अधिकरण को समीक्षा की शक्ति प्रदान नहीं की गई है। आदेश में यह परिवर्तन/रद्दीकरण/परिवर्तन तब किया जा सकता है जब अपीलीय न्यायाधिकरण या सिविल क्षेत्राधिकार के सक्षम न्यायालय द्वारा इसके विपरीत कोई निर्णय लिया गया हो। इसलिए, भरण-पोषण न्यायाधिकरण का आदेश स्पष्ट रूप से अपीलीय न्यायाधिकरण और सक्षम सिविल क्षेत्राधिकार के न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अधीन है। अतएव, भरण-पोषण अधिकरण का आदेश स्पष्ट रूप से अपीलीय अधिकरण तथा सक्षम दीवानी न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अधीन है। फिर भी, 2007 के अधिनियम या 2014 के नियमों में भरण-पोषण अधिकरण को बेदखली का कोई आदेश पारित करने की शक्ति प्रदान किए जाने का कोई आधार/स्रोत दृष्टिगोचर नहीं होता।

74. अब, धारा 16 में अधिनियम वर्ष 2007 के उसी अध्याय II में अपीलीय न्यायाधिकरण में अपील का प्रावधान है। सुविधा के लिए धारा 16 को इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

***"16. अपील.**-(1) कोई वरिष्ठ नागरिक या माता-पिता, जैसा भी मामला हो, किसी अधिकरण के आदेश से व्यथित हो, आदेश की तारीख से साठ दिनों के भीतर, अपीलीय न्यायाधिकरण में अपील कर सकेगा:*

बशर्ते कि अपील पर, *बच्चे या रिश्तेदार जिन्हें इस तरह के भरण-पोषण आदेश के संदर्भ में किसी भी राशि का भुगतान करना आवश्यक है, ऐसे माता-पिता को अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा निर्देशित तरीके से इस तरह से आदेश दी गई राशि का भुगतान करना जारी रखेंगे:*
बशर्ते कि *अपीलीय न्यायाधिकरण, साठ दिनों की उक्त अवधि की समाप्ति के बाद अपीलों पर विचार कर सकता है, यदि यह संतुष्ट है कि अपीलकर्ता को समय पर अपील को प्राथमिकता देने से पर्याप्त कारण से रोका गया था।*

(2) अपील प्राप्त होने पर, *अपीलीय न्यायाधिकरण प्रतिवादी को नोटिस देने का कारण बनेगा।*

(3) अपीलीय न्यायाधिकरण उस *न्यायाधिकरण से कार्यवाही के अभिलेखों के लिए कॉल कर सकता है जिसके आदेश के खिलाफ अपील को प्राथमिकता दी जाती है।*

(4) अपीलीय न्यायाधिकरण हो सकता है, अपील *की जांच करने के बाद और अपील को अस्वीकार करने के लिए बुलाए गए अभिलेखों या तो अनुमति दें या अस्वीकार करें.*

(5) अपीलीय न्यायाधिकरण *न्यायाधिकरण के आदेश के विरुद्ध दायर अपील पर निर्णय देगा और निर्णय लेगा और अपीलीय न्यायाधिकरण का आदेश अंतिम होगा: बशर्ते कि कोई अपील तब तक अस्वीकार नहीं की जाएगी जब तक कि दोनों पक्षों को व्यक्तिगत रूप से या विधिवत प्राधिकृत प्रतिनिधि के माध्यम से सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया हो।*

(6) अपीलीय न्यायाधिकरण अपील प्राप्त होने के एक महीने के भीतर लिखित रूप में अपना आदेश सुनाने का प्रयास करेगा।

(7) उपधारा (5) के अधीन किए गए प्रत्येक आदेश की एक प्रति *दोनों पक्षों को निःशुल्क भेजी जाएगी।*

75. उपरोक्त धारा से पता चलता है कि अपीलीय न्यायाधिकरण को माता-पिता या वरिष्ठ नागरिक के आदेश पर अपील पर विचार करने का अधिकार दिया गया है और उसमें निहित पहला प्रावधान इंगित करता है कि यदि किसी पीड़ित वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता द्वारा अपील दायर की जाती है, तो वह अपने आप में बच्चों/रिश्तेदार, जो आवेदन में प्रतिवादी है, को अनुमति नहीं देगा, भरण-पोषण न्यायाधिकरण द्वारा आदेश के अनुसार भरण-पोषण की राशि का भुगतान नहीं करना।

76. अपीलीय न्यायाधिकरण, कहने की जरूरत नहीं है, अधिनियम वर्ष 2007 और नियमावली वर्ष 2014 के चार कोनों के भीतर कानून में निर्धारित के रूप में अपने अपीलीय अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए आवश्यक है. यदि वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता के आवेदन को पूरी तरह से खारिज कर दिया जाता है या यदि

अनुवादित

आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है तो अपीलीय न्यायाधिकरण भरण-पोषण न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश की शुद्धता का निर्धारण करेगा और ऐसा करते समय, यह विचार करेगा कि क्या वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता अपनी कमाई से या उसके स्वामित्व वाली संपत्ति से खुद को बनाए रखने में असमर्थ है और यदि हां, तो फिर यह यह देखने के बाद भरण-पोषण प्रदान करेगा कि भरण-पोषण न्यायाधिकरण द्वारा इसे क्यों ठुकरा दिया गया था। ऐसे मामले में जहां भरण-पोषण न्यायाधिकरण द्वारा आंशिक राहत दी गई है, तो आवश्यक रूप से अपीलीय न्यायाधिकरण एक उचित प्रावधान निर्धारित करेगा और एक उपयुक्त प्रावधान करेगा जिसमें अधिनियम वर्ष 2007 द्वारा निर्धारित 10,000/- रुपये की अधिकतम सीमा के अधीन रखरखाव की मात्रा में वृद्धि शामिल हो सकती है।

77. अधिनियम वर्ष 2007 की संपूर्ण धारा 16 को पढ़ने से, यह इंगित नहीं करता है कि बेदखली के किसी भी आदेश को पारित करने के लिए अपीलीय न्यायाधिकरण को कोई विशेष शक्ति प्रदान की गई है। अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा प्रयोग की जाने वाली अपील की शक्ति भरण-पोषण न्यायाधिकरण के आदेश की शुद्धता की जांच करने के लिए आवश्यक है। अधिनियम वर्ष 2007 में, यदि भरण-पोषण न्यायाधिकरण को बेदखली का आदेश पारित करने का अधिकार नहीं है, तो एक फोर्टियोरी के रूप में, अपीलीय न्यायाधिकरण भी बेदखली का कोई आदेश पारित नहीं कर सकता है। गौरतलब है कि अधिनियम वर्ष 2007 में या यहां तक कि नियमावली वर्ष 2014 के नियम 14, 15 और 16 में भी ऐसा कोई संकेत नहीं है जो अपीलीय न्यायाधिकरण को बेदखली का आदेश देने के लिए ऐसी शक्तियां प्रदान करने का संकेत दे सकता है।

78. इस मोड़ पर, यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि अधिनियम वर्ष 2007 के तहत पंजाब राज्य द्वारा बनाए गए नियम, जिन्हें "माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का पंजाब भरण-पोषण और कल्याण नियम 2012" के रूप में जाना जाता है और 27.11.2014 को अधिसूचित किया गया है, में बेदखली का प्रावधान है और प्रासंगिक नियम निम्नानुसार है: -

"3(1)। ***वरिष्ठ नागरिकों/माता-पिता की संपत्ति/आवासीय भवन से बेदखली की प्रक्रिया:***

(i) विभिन्न विभागों/एजेंसियों अर्थात सामाजिक सुरक्षा, उप-मंडल मजिस्ट्रेट, पुलिस विभाग, गैर-सरकारी संगठनों/सामाजिक कार्यकर्ताओं, वरिष्ठ नागरिकों के लिए हेल्पलाइन और स्वयं जिला मजिस्ट्रेट द्वारा वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति के संबंध में प्राप्त शिकायतें (माता-पिता और वरिष्ठ नागरिक भरण-पोषण अधिनियम, 2007 के प्रावधानों के अनुसार) को आगे की कार्रवाई के लिए संबंधित जिले के जिला मजिस्ट्रेट को अग्रेषित किया जाएगा।

(ii) जिला मजिस्ट्रेट *ऐसी शिकायत/आवेदन प्राप्त होने की तारीख से 15 दिनों के भीतर राजस्व विभाग/संबंधित तहसीलदारों के माध्यम से संपत्ति के शीर्षक और मामले के तथ्यों के सत्यापन के लिए संबंधित उप-मंडल मजिस्ट्रेटों को ऐसी शिकायतों/आवेदनों को तत्काल अग्रेषित करेगा।*

(iii) उप-मंडल *मजिस्ट्रेट शिकायत/आवेदन प्राप्त होने की तारीख से 21 दिनों के भीतर अंतिम आदेश के लिए जिला मजिस्ट्रेट को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेंगे।*
यदि जिला मजिस्ट्रेट की राय है कि माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों और वरिष्ठ नागरिकों के भरण-पोषण और कल्याण अधिनियम 2007 में परिभाषित किसी भी संपत्ति के किसी भी बेटे या बेटी या कानूनी उत्तराधिकारी के कानूनी वारिस पर अनधिकृत कब्जा कर रहे हैं, और उन्हें बेदखल कर दिया जाना चाहिए, तो जिला मजिस्ट्रेट इसके बाद सभी संबंधित व्यक्तियों को कारण बताओ के लिए लिखित रूप में नोटिस जारी करेगा कि बेदखली उनके खिलाफ जारी नहीं किया जाना चाहिए।

(v) नोटिस होगा: -

(ए) उस आधार को निर्दिष्ट करें जिस पर बेदखली का आदेश दिया जाना प्रस्तावित है; और

(ख) सभी संबंधित व्यक्तियों से अपेक्षा करता है, अर्थात् वे सभी व्यक्ति, जो संपत्ति/परिसर पर कब्जे में हैं या हो सकते हैं, या उसमें हित का दावा करते हैं, प्रस्तावित आदेश के विरुद्ध ऐसी तारीख को या उससे पहले कोई कारण, यदि कोई हो, को नोटिस में विनिर्दिष्ट करने की तारीख से दस दिन से पहले की तारीख होने के नाते, उसके जारी होने की तारीख से दस दिन से पहले की तारीख नहीं होने के कारण, बताओ सकते हैं।

(ग) जिला मजिस्ट्रेट नोटिस को बाहरी दरवाजे पर या सार्वजनिक परिसर के किसी अन्य विशिष्ट भाग पर और ऐसे अन्य तरीके से चिपकाकर तामील करवाएगा जो विहित किया जा सके, जिसके बाद यह समझा जाएगा कि नोटिस सभी संबंधित व्यक्तियों को विधिवत दिया गया है/दिया गया है।

79. इसी कड़ी में, केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ ने माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के चंडीगढ़ भरण-पोषण नियम, 2009 के रूप में जाने जाने वाले अपने नियम तैयार किए हैं, जिसमें नियम 3(1) में वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता की संपत्ति/आवासीय भवन से बेदखली के संबंध में शक्तियां प्रदान की गई हैं और यह निम्नानुसार है: -

"3(1) वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता की संपत्ति/आवासीय भवन से बेदखली की प्रक्रिया: -

(1) विभिन्न विभागों अर्थात समाज कल्याण, उप-मंडल मजिस्ट्रेट, पुलिस विभाग, गैर-सरकारी संगठनों/सामाजिक कार्यकर्ताओं, वरिष्ठ नागरिकों के लिए हेल्पलाइन और स्वयं जिला मजिस्ट्रेट द्वारा वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति के संबंध में प्राप्त शिकायतें (माता-पिता और वरिष्ठ नागरिक भरण-पोषण अधिनियम, 2007 के प्रावधानों के अनुसार) को आगे की कार्रवाई के लिए जिला मजिस्ट्रेट, संघ राज्य क्षेत्र, चंडीगढ़ को भेज दी जाएंगी।

(ii) जिला मजिस्ट्रेट, संघ *राज्य क्षेत्र, चंडीगढ़ ऐसी शिकायत/आवेदन प्राप्त होने की तारीख से 15 दिनों के भीतर राजस्व विभाग/संबंधित तहसीलदारों के माध्यम से संपत्ति के शीर्षक और मामले के तथ्यों के सत्यापन के लिए संबंधित उप-मंडल मजिस्ट्रेटों को ऐसी शिकायतों/आवेदनों को तत्काल अग्रेषित करेगा।*

(iii) उप-मंडल मजिस्ट्रेट शिकायत/आवेदन प्राप्त होने की तारीख से 21 दिनों के भीतर अंतिम आदेश के लिए अपनी रिपोर्ट तत्काल जिला मजिस्ट्रेट को प्रस्तुत करेंगे।

(iv) यदि जिला मजिस्ट्रेट की यह राय है *कि माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण अधिनियम, 2007 में यथा परिभाषित किसी वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता का कोई बेटा या बेटी या कानूनी उत्तराधिकारी किसी संपत्ति पर अनधिकृत कब्जा कर रहा है और उन्हें बेदखल कर दिया जाना चाहिए, तो जिला मजिस्ट्रेट-सह-संपदा अधिकारी इसके बाद सभी संबंधित व्यक्तियों को कारण बताओ के लिए लिखित रूप में एक नोटिस जारी करेगा कि उनके खिलाफ बेदखली का आदेश जारी नहीं किया जाना चाहिए।*

(v) नोटिस -

(क) उन आधारों को विनिर्दिष्ट करेंगे जिनके आधार पर *बेदखली का आदेश दिए जाने का प्रस्ताव है; और*

(ख) सभी संबंधित व्यक्तियों से अपेक्षा करता है, *अर्थात् सभी व्यक्ति, जो संपत्ति/परिसर पर कब्जा कर रहे हैं या उसमें रुचि का दावा कर सकते हैं, प्रस्तावित आदेश के विरुद्ध ऐसी तारीख को, जैसा कि नोटिस में विनिर्दिष्ट है, उसके जारी होने की तारीख से दस दिन से पहले की तारीख होने के कारण, यदि कोई हो, को दर्शाने के लिए।*

(ग) जिला मजिस्ट्रेट *नोटिस को बाहरी दरवाजे पर या सार्वजनिक परिसर के किसी अन्य विशिष्ट भाग पर और ऐसे अन्य तरीके से चिपकाकर तामील करवाएगा जो विहित किया जा सके, जिसके बाद नोटिस सभी संबंधित व्यक्तियों को विधिवत दिया गया समझा जाएगा।*

80. पूर्वोक्त से, यह सुरक्षित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि जहां तक अधिनियम वर्ष 2007 और नियमावली वर्ष 2014 का संबंध है, वे बेदखली की ऐसी कोई शक्ति प्रदान नहीं करते हैं, हालांकि, यदि बेदखली की शक्ति प्रदान की जानी थी, तो यह विशेष रूप से नियमों को लागू करते समय विधायिका द्वारा किया जाना है। गौरतलब है कि उत्तर प्रदेश राज्य में, सरकार ने हालांकि नियमावली वर्ष 2014 बनाए हैं, लेकिन स्पष्ट रूप से उसने भरण-पोषण न्यायाधिकरण और/या अपीलीय न्यायाधिकरण को ऐसी कोई शक्ति प्रदान नहीं की है।

असंशोधित

81. अब, इस स्तर पर, इस न्यायालय के कुछ निर्णयों और उसमें दिए गए तर्क पर ध्यान देना प्रासंगिक होगा कि अधिनियम वर्ष 2007 के तहत भरण-पोषण न्यायाधिकरण/अपीलीय न्यायाधिकरण के पास बेदखली का आदेश पारित करने की शक्ति नहीं थी।

82. **स्वराज वरुण (उपरोक्त) में**, इस न्यायालय की खंडपीठ ने निम्नानुसार व्यवस्था दी: -

"28. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, अधिनियम के उद्देश्य और लक्ष्य पर विचार करते हुए, हमारी सुविचारित राय है कि प्रतिवादी संख्या 5 और उसके दो बेटों को घर से बेदखल करने या बेदखल करने की प्रार्थना जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नियमों के नियम 21 के तहत उसे प्रदान की गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए नहीं दी जा सकती थी। 2014. प्रतिवादी संख्या 5 को घर से बेदखल करने या बेदखल करने का मुद्दा, जिसे उसका वैवाहिक घर बताया गया है, केवल एक उचित कार्यवाही में दीवानी न्यायालय द्वारा जांच की जा सकती है। वरिष्ठ नागरिक अधिनियम, 2007 की धारा 27 के तहत इस मामले में प्रतिबंध लागू नहीं होगा। अन्यथा भी, यदि ऐसी कोई आपत्ति उठाई जाती है, तो मुकदमे की कार्यवाही में सक्षम अदालत द्वारा जांच की जानी चाहिए।

83. बिपराजी सिंह (उपरोक्त) में, इस न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ ने उसी भावना को प्रतिध्वनित किया जैसा कि स्वराज वरुण (उपरोक्त) में व्यक्त किया गया था, लेकिन अतिरिक्त कारणों के साथ जो निम्नानुसार देखे गए हैं: -

"24. अधिनियम की योजना यह दर्शाती है कि अधिनियम वर्ष 2007 के अध्याय II के तहत वरिष्ठ नागरिकों के भरण-पोषण के संबंध में, अधिनियम वर्ष 2007 के तहत न्यायिक तंत्र रखा गया है। वरिष्ठ नागरिकों के भरण-पोषण के प्रयोजन के लिए, वरिष्ठ नागरिकों और माता-पिता के भरण-पोषण के संबंध में मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए धारा 7 के तहत एक भरण-पोषण न्यायाधिकरण का गठन किया गया है और उपर्युक्त अधिकरण को भरण-पोषण न्यायाधिकरण के समक्ष मुद्दों के निर्धारण के उद्देश्य से अधिनियम की धारा 8 के तहत दीवानी न्यायालय की शक्ति प्रदान की गई है। यह भी देखा जाना चाहिए कि अधिनियम वर्ष 2007 के अध्याय II के तहत न्यायिक तंत्र प्रदान किया गया है, जिसके लिए न्यायाधिकरण विवाद पर निर्णय लेने का अधिकार है।

25. जहां तक जिला मजिस्ट्रेट को नियम 21 के तहत प्रदत्त शक्ति का संबंध है, उक्त शक्ति वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा तक सीमित है। अधिनियम के तहत न्यायिक तंत्र का हिस्सा बनने के लिए जिला मजिस्ट्रेट को ऐसी कोई शक्ति प्रदान नहीं की गई है और जिला मजिस्ट्रेट की शक्ति प्रकृति में कार्यकारी है और उसे केवल वरिष्ठ नागरिकों की संपत्ति की रक्षा करने की आवश्यकता है, जहां अभिलेखों से या अन्यथा, यह पाया जा सकता है कि संपत्ति का शीर्षक या संपत्ति का अधिकार वरिष्ठ नागरिक में निहित है। जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष कार्यवाही सारांश प्रकृति की होती है और नियम 21 के उद्देश्य को पूरा करने के उद्देश्य से जिला मजिस्ट्रेट द्वारा केवल सीमित जांच की जा सकती है, ताकि यह पता लगाया जा सके कि संपत्ति

वरिष्ठ नागरिकों की है या नहीं या वरिष्ठ नागरिक का संबंधित संपत्ति में कोई अधिकार है। नियम किसी भी तरह से जिला मजिस्ट्रेट को संपत्ति के स्वामित्व या अधिकारों के संबंध में पक्षों के विवादित दावे पर विचार करने की अनुमति नहीं देता है। इसलिए संपत्ति की "सुरक्षा" का अर्थ यह समझा जाना चाहिए कि एक वरिष्ठ नागरिक अपने कल्याण और भलाई के लिए अपने नाम या कब्जे में संपत्ति रखता है।

26. वर्तमान संवैधानिक ढांचे के तहत न्यायिक तंत्र कानून के सामान्य न्यायालयों को प्रदान किया जाता है और कार्यपालिका को संपत्ति के संबंध में पक्षकारों के अधिकारों को निर्धारित करने की शक्तियां प्रदान नहीं की जाती हैं। जहां कभी भी कार्यपालिका को किसी कानून के तहत पार्टियों के अधिकारों पर निर्णय लेने की शक्ति प्रदान की गई है, शक्ति को अच्छी तरह से परिभाषित किया गया है और संबंधित कानून के तहत कार्यकारी प्राधिकरण का अधिकार क्षेत्र भी निर्धारित किया गया है। अधिनियम वर्ष 2007 में, संपत्ति में मालिक, अधिकार और हित के विवादित प्रश्न पर निर्णय लेने के लिए जिला मजिस्ट्रेट को प्रदान किए जा रहे किसी भी न्यायिक तंत्र की कोई शक्ति निर्धारित नहीं की गई है।

27. यह भी देखा जाना चाहिए कि संपत्ति के अधिकार या अधिकार के संबंध में विवाद के लिए संपत्ति के अधिकार और स्वामित्व के संबंध में नेतृत्व किए गए साक्ष्य के आधार पर साक्ष्य की अगुवाई और खोज की रिकॉर्डिंग की आवश्यकता होगी। संवैधानिक ढांचे के तहत उक्त शक्तियों का प्रयोग कानून के सामान्य न्यायालयों द्वारा किया जाना है और अधिनियम वर्ष 2007 में कोई प्रावधान किए बिना इस तरह के तंत्र को नियम 21 की आड़ में जिला मजिस्ट्रेट को प्रदान करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है जो वरिष्ठ नागरिकों की संपत्ति के संरक्षण तक सीमित है।

28. धारा 23 के तहत, कुछ परिस्थितियों में संपत्ति के हस्तांतरण को शून्य घोषित किया गया है और वरिष्ठ नागरिक को हस्तांतरण शून्य होने की घोषणा के लिए न्यायाधिकरण से संपर्क करने की अनुमति दी गई है या भरण-पोषण के लिए, जैसा भी मामला हो। धारा 23 के तहत संपत्ति से उत्पन्न होने वाली संपत्ति और वरिष्ठ नागरिक के अधिकारों के संरक्षण के संबंध में, अधिनियम वर्ष 2007 के अध्याय 2 के तहत गठित भरण-पोषण न्यायाधिकरण को न्यायिक तंत्र प्रदान किया गया है।

29. उपर्युक्त अधिनियम की योजना के तहत, जहां कहीं भी वरिष्ठ नागरिक के अधिकार के निर्णय की आवश्यकता होती है, न्यायाधिकरण को उपरोक्त अधिनियम के तहत शक्ति प्रदान की गई है। न्यायाधिकरण को अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 8 के तहत दीवानी न्यायालय की शक्तियां भी प्रदान की गई हैं। अधिनियम के तहत न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 16 के तहत अपील के अधीन हैं। यह देखा जाना चाहिए कि वरिष्ठ नागरिकों के भरण-पोषण के उद्देश्य से और अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 23 के तहत प्रदत्त अधिकारों के संरक्षण के लिए उपरोक्त अधिनियम के तहत न्यायिक तंत्र से संकेत मिलता है कि वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति और जीवन की सुरक्षा के लिए उपरोक्त अधिनियम के तहत जिला मजिस्ट्रेट की

अनुवादित

शक्ति के संबंध में जिला मजिस्ट्रेट के आदेश पर किसी भी निर्णय के लिए है संपत्ति या वरिष्ठ नागरिक के अधिकारों के लिए किसी भी विवादित दावे का।

30. नियमावली वर्ष 2014 के नियम 21 के तहत जिला मजिस्ट्रेट वरिष्ठ नागरिक और तीसरे पक्ष के बीच शीर्षक के गंभीर विवाद के संबंध में एक न्यायिक मंच नहीं है। अधिनियम वर्ष 2007 में निहित प्रावधान और उसके तहत बनाए गए नियम केवल ऐसी संपत्ति के रखरखाव के उद्देश्य से संपत्ति पर वरिष्ठ नागरिक के अधिकारों की सुरक्षा प्रदान करते हैं। अधिनियम व्यक्तियों के बीच संपत्ति विवाद या संपत्ति में अधिकारों के निर्णय या निर्धारण के लिए कोई नया मंच बनाने का इरादा नहीं रखता है। नियमावली वर्ष 2014 के तहत जिला मजिस्ट्रेट की शक्तियों के लिए जिला मजिस्ट्रेट को यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता होगी कि उपरोक्त प्राधिकारी के समक्ष आवेदक एक वरिष्ठ नागरिक है और आगे जिस संपत्ति के संबंध में सुरक्षा मांगी जा रही है वह वरिष्ठ नागरिक के स्वामित्व में है या वरिष्ठ नागरिक का कोई अधिकार है, विवाद में संपत्ति में ब्याज या शीर्षक। वरिष्ठ नागरिक द्वारा दावा की गई संपत्ति में अधिकार या शीर्षक या हित एक मौजूदा अधिकार होना चाहिए जो उपरोक्त संपत्ति में वरिष्ठ नागरिक के शीर्षक, हित या अधिकार पर किसी भी बादल के बिना हो। जहां संबंधित संपत्ति के लिए वरिष्ठ नागरिक के शीर्षक, हित या अधिकार के संबंध में गंभीर विवाद है और उपरोक्त विवाद को केवल प्रमुख साक्ष्य द्वारा हल किया जा सकता है और आगे संपत्ति के शीर्षक के संबंध में एक निष्कर्ष दर्ज करके, ऐसी परिस्थितियों में जिला मजिस्ट्रेट के पास विशेष रूप से उस मामले में पक्षों के प्रतिद्वंद्वी दावों पर विचार करने का अधिकार नहीं होगा जहां विवाद के संबंध में विवाद है संपत्ति तीसरे पक्ष के पास है जो न तो रिश्तेदार है और न ही वरिष्ठ नागरिक के बच्चे हैं।

31. यह भी देखा जाना चाहिए कि अधिनियम वर्ष 2007 के तहत, जिला मजिस्ट्रेट को कोई न्यायिक शक्तियां प्रदान नहीं की गई हैं और अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 22 के तहत राज्य सरकार को वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक व्यापक कार्य योजना निर्धारित करने का निर्देश जारी किया गया था। राज्य सरकार ने अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 32 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए नियमावली वर्ष 2014 बनाए हैं, जहां जिला मजिस्ट्रेट के तहत वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति और जीवन की रक्षा करने की शक्तियां प्रदान की गई हैं। यह विधायिका का काम है कि वह किसी भी प्राधिकारी को न्यायिक शक्तियां प्रदान करे और हम पहले ही देख चुके हैं कि संपत्ति के विवादित दावे के संबंध में न्यायनिर्णयन की ऐसी शक्ति न तो जिला मजिस्ट्रेट को प्रदान करने का इरादा है और न ही वास्तव में जिला मजिस्ट्रेट को प्रदान की गई है। इसलिए हम वैधानिक योजना के आलोक में नियम 21 को पढ़ने और स्पष्ट करने के इच्छुक हैं कि नियम 21 के तहत जिला मजिस्ट्रेट में निहित शक्ति संपत्ति के संबंध में संभावित दावों तक विस्तारित नहीं होती है जहां शीर्षक, ब्याज या कब्जे को निर्धारण/अधिनिर्णय की आवश्यकता होती है। उपरोक्त उद्देश्य के लिए जिला मजिस्ट्रेट प्रश्नगत संपत्ति में वरिष्ठ नागरिक के शीर्षक, हित के संबंध में एक संक्षिप्त जांच कर सकता है, हालांकि शीर्षक या अधिकार का आंतरिक प्रश्न जिसमें साक्ष्य और निर्णय की आवश्यकता होती है, उपरोक्त नियमावली वर्ष 2014 के तहत जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नहीं किया जा सकता है।

अनुपालित

84. दूसरी ओर, **शिवानी वर्मा (उपरोक्त) में**, एक अन्य खंड पीठ ने अधिनियम के प्रावधानों पर विचार करते हुए लेकिन स्वराज वरुण (उपरोक्त) और बिपराजी सिंह (उपरोक्त) में दो खंडपीठों के पहले के फैसलों पर विचार नहीं करते हुए, यह मानते हुए कि बेदखली के आदेश पारित किए जा सकते हैं, इसने प्रस्तर-67 में अपना निष्कर्ष निम्नानुसार दर्ज किया: -

"67. निष्कर्ष:

अधिनियम 2007 के अध्याय II और अध्याय V, *नियम 2014 सपठित, विभिन्न क्षेत्रों में और विभिन्न प्रयोजनों के लिए, अन्य बातों के साथ-साथ, वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति से संबंधित कार्य करते हैं।*

अध्याय II न्यायाधिकरण द्वारा पारित किए जाने वाले भरण-पोषण के आदेश तक ही सीमित है, जिसमें बच्चों/रिश्तेदारों के खिलाफ वरिष्ठ नागरिक या माता-पिता के लिए निवास का प्रावधान शामिल है, लेकिन नाबालिग बच्चों या तीसरे पक्ष के खिलाफ नहीं।

अधिनियम, 2007 के अध्याय II के अंतर्गत अधिकरण *के पास अन्य बातों के साथ-साथ बच्चों/रिश्तेदारों के विरुद्ध निवास के प्रावधान के संबंध में भरण-पोषण का आदेश देने का एकमात्र क्षेत्राधिकार है। वरिष्ठ नागरिक द्वारा भरण-पोषण (निवास) के लिए मांगी गई परिसर/संपत्ति का अधिकार क्षेत्र केवल अधिकरण का होगा। अधिकरण निवास के संबंध में भरण-पोषण के आवेदन की अनुमति देते हुए वरिष्ठ नागरिक के बच्चों/रिश्तेदारों के खिलाफ उक्त आवासीय संपत्ति से बेदखली का आदेश दे सकता है।*

अध्याय V केवल *वरिष्ठ नागरिक के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा तक ही सीमित है। संपत्ति की सुरक्षा में मूर्त संपत्ति से रहने वाले को बेदखल करना भी शामिल होगा। यह शक्ति जिला मजिस्ट्रेट को प्रदान की जाती है। रहने वाला बच्चे/रिश्तेदार या तीसरा पक्ष हो सकता है।*

हालांकि, अध्याय V के तहत जिला मजिस्ट्रेट *को संपत्ति के संबंध में अधिकार क्षेत्र का अभाव होगा, अर्थात, निवास के प्रावधान के लिए भरण-पोषण, ऐसी संपत्ति से बच्चों/रिश्तेदारों को बेदखल करने का आदेश देने के लिए। हालांकि, जिला मजिस्ट्रेट के पास वरिष्ठ नागरिक की किसी भी अन्य प्रकार की संपत्ति के संबंध में शक्ति होगी, जिसमें उससे बेदखल करने का आदेश भी शामिल है।*

वरिष्ठ नागरिक की रिश्तेदार होने के नाते, वरिष्ठ नागरिक द्वारा मांगी गई आवास से बेदखल किया जा सकता है ताकि सामान्य जीवन जीने के लिए उसकी जरूरतों को पूरा किया जा सके। लेकिन अधिकरण द्वारा बेदखली का ऐसा आदेश घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 20057 के तहत साझा परिवार के संबंध में सक्षम मजिस्ट्रेट/दीवानी न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अधीन है। वरिष्ठ नागरिक और बहू के हितों को उनकी प्रतिस्पर्धी जरूरतों को ध्यान में रखते हुए अधिकरण द्वारा समायोजित किया जाना होगा। बहू को वरिष्ठ नागरिक के कब्जे में या स्वामित्व वाले 'साझा घर' से बेदखल नहीं किया जा सकता है8, हालांकि, ट्रिब्यूनल द्वारा उपयुक्त समायोजन किया जा सकता है।

यहां ऊपर दिए गए कानून के मद्देनजर, अभिषेक तिवारी (उपरोक्त) और खुशबूल शुक्ला (उपरोक्त) को खारिज किया जाता है। किसी अन्य मामले में दिया गया निर्णय जो यहां ऊपर प्रतिपादित कानून के विपरीत है, उसे भी खारिज कर दिया जाएगा।

85. **शिवानी वर्मा (उपरोक्त)** में न्यायालय ने जिस आधार पर कार्यवाही की, वह यह थी कि भरण-पोषण न्यायाधिकरण के पास निवास आदेश देने का आदेश देने की शक्ति है और न्यायाधिकरण के पास एक रखरखाव के मामले से निपटने के दौरान जिसमें एक निवास आदेश पारित किया जाता है, तो ऐसे मामले में एक बेदखली आदेश पारित किया जा सकता है, जबकि एक जिला मजिस्ट्रेट अध्याय V के संदर्भ में किसी अन्य से संबंधित बेदखली का आदेश पारित कर सकता है वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता की संपत्ति को छोड़कर, जो निवास से संबंधित भरण-पोषण आदेश के अनुदान द्वारा आच्छादित नहीं की गई है। इस संबंध में स्पष्टता के लिए, शिवानी वर्मा (उपरोक्त) के पैरा-65 और 66 को इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"65. यह इस प्रकार है कि न्यायाधिकरण के पास केवल एक विशेष प्रकार की संपत्ति (निवास) के साथ व्यवहार करने की शक्ति है जो भरण-पोषण के लिए मांगी गई है, लेकिन वरिष्ठ नागरिक की किसी अन्य प्रकार की संपत्ति पर निर्णय लेने की शक्तियों का अभाव है। इस तरह की शक्ति अध्याय V के तहत जिला मजिस्ट्रेट के पास किसी भी व्यक्ति के खिलाफ किसी भी प्रकार की चल या अचल, मूर्त या अमूर्त संपत्ति की रक्षा करने के लिए निहित है, अर्थात, बच्चों/रिश्तेदारों या तीसरे पक्ष के खिलाफ, लेकिन वरिष्ठ नागरिक द्वारा अपने बच्चों/रिश्तेदारों से भरण-पोषण के लिए निवास के लिए मांगी गई संपत्ति को शामिल नहीं किया जाएगा। कोई अन्य व्याख्या जिला मजिस्ट्रेट को भरण-पोषण के प्रावधान के लिए वरिष्ठ नागरिक द्वारा मांगी गई संपत्ति पर व्यवहार करने और उस पर निर्णय लेने की शक्ति प्रदान करना होगा, केवल इस कारण से कि बेदखली की शक्ति को विशेष रूप से वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति की 'सुरक्षा' अभिव्यक्ति में पढ़ा जाना है। केवल वरिष्ठ नागरिक के भरण-पोषण के लिए आवश्यक संपत्ति के मुद्दे पर निर्णय लेते समय न्यायाधिकरण के पास सीमित शक्ति है।

66. न्यायाधिकरण वरिष्ठ नागरिक या माता-पिता द्वारा संपर्क किया जा सकता है, जैसा भी मामला हो, भरण-पोषण के लिए। जबकि, वरिष्ठ नागरिक अकेले ही अपने जीवन और किसी भी प्रकार की संपत्ति की सुरक्षा के लिए जिला मजिस्ट्रेट से संपर्क कर सकते हैं, जो न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही में शामिल संपत्ति (निवास) के अलावा है।

86. हालांकि, इस न्यायालय की राय है कि अधिनियम वर्ष 2007 में परिभाषित 'संपत्ति' शब्द को एक ही अधिनियम की विभिन्न धाराओं और अध्यायों में अलग-अलग अर्थ नहीं दिया जा सकता है जैसा कि शिवानी वर्मा (उपरोक्त) में न्यायालय द्वारा किए जाने का प्रयास किया गया था। तथ्य यह है कि एक माता-पिता/वरिष्ठ नागरिक अपनी संपत्ति (अधिनियम की धारा 4 में प्रयुक्त भाषा) से रखरखाव करने में असमर्थ है, इसका अर्थ है कि यदि वह निवास के रखरखाव आदेश की मांग कर रहा है, तो शायद उसके पास अपनी कोई आवासीय संपत्ति नहीं होनी चाहिए और न ही वह अपनी संपत्ति से खुद को बनाए रखने में सक्षम है (जिसमें उसकी संपत्ति और वित्तीय संसाधन शामिल होंगे)।

87. भरण-पोषण न्यायाधिकरण 'निवास आदेश' पारित करते समय या तो प्रतिवादी को, शिकायत में, वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता के लिए निवास की व्यवस्था करने का निर्देश दे सकता है या वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता को धारा 19 के अनुसार वृद्धाश्रम में या किराए के आवास में रखने में सक्षम बनाने के लिए कुछ मौद्रिक सहायता प्रदान कर सकता है, जिसमें शिकायत के प्रतिवादी द्वारा भुगतान किया जाना है या यहां तक कि शिकायत के प्रतिवादी को अनुमति देने का निर्देश भी देना है वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता शिकायत के प्रतिवादी के साथ रहेंगे, लेकिन फिर वह शिकायत के प्रतिवादी को बेदखल करने का आदेश नहीं दे सकता है और अधिक से अधिक ऐसे निर्देश दे सकता है जो संघर्ष को कम कर सकते हैं, यदि कोई हो। ऐसा कहने के बाद, यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 2(बी) में प्रयुक्त 'निवास' शब्द को घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 के अधिनियम की धारा 17 और 19 में उपयोग किए गए 'निवास आदेश' शब्द के संदर्भ से अलग तरीके से परिभाषित किया गया है।

88. इसके अलावा, अधिनियम वर्ष 2007 में परिभाषित 'संपत्ति' शब्द बहुत व्यापक आयाम का है और यह कहना कि 'निवास आदेश' के तहत आच्छादित की गई संपत्ति के अलावा अन्य संपत्ति को बेदखली का आदेश देने के लिए जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नोटिस में लिया जा सकता है, एक स्पष्ट विसंगति को जन्म दे सकता है, क्योंकि अध्याय 5 के संदर्भ में अधिनियम वर्ष 2007 के तहत जिला मजिस्ट्रेट को किसी भी न्यायिक कार्य से सम्मानित नहीं किया गया है। इस न्यायालय द्वारा प्रश्न संख्या से निपटने के दौरान इस राय के बाद के भाग में इसे विस्तार से समझाया गया है। (iii). इसलिए, बेदखली का आदेश देने के लिए भरण-पोषण न्यायाधिकरण/अपीलीय न्यायाधिकरण की शक्ति से संबंधित मुद्दे के संबंध में यहां विचार किए गए मुद्दों के संबंध में पूरक कारणों को ध्यान में रखा जाए। फिर भी, तथ्य यह है कि शिवानी वर्मा (उपरोक्त) में खंड पीठ ने अलग-अलग परिस्थितियों में भरण-पोषण न्यायाधिकरण और जिला मजिस्ट्रेट को अधिनियम में कुछ पढ़कर और उद्देश्यपूर्ण व्याख्या के उपकरण की सहायता से व्याख्या करने की अपनी शक्ति को बढ़ाकर शक्तियां प्रदान करने की कोशिश की, जो संपत्ति शब्द और भरण-पोषण न्यायाधिकरण और जिला मजिस्ट्रेट की शक्तियों और कार्यों पर विचार करते समय एक विसंगति पैदा करता है।

89. शिवानी वर्मा (उपरोक्त) में निर्णय के बाद **दिनेश आहूजा @ चीनी बनाम जिला मजिस्ट्रेट; 2024 (6) ए.डब्ल्यू.सी. 6058 इला०** में एक अन्य खंड पीठ द्वारा निर्णय लिया गया था, जिसमें यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था: -

90. “29. वास्तव में, सर्वोच्च न्यायालय ने सारांश बिंदु 24 (ii) और 24 (iv) में कहा कि घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 के तहत उसकी कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान बहू (उस मामले में) को सरसरी तौर पर बेदखल नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वोच्च न्यायालय स्वयं इस बात से अवगत था कि सारांश बेदखली की कार्यवाही अन्यथा उत्पन्न हो सकती है और अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत समाप्त हो सकती है। हालांकि, यह तर्क दिया गया कि इस तरह की कार्यवाही को समाप्त नहीं किया जा सकता है और एक अन्य विशेष अधिनियम के तहत एक

अन्य कार्यवाही के लंबित होने के दौरान अंतिम नहीं बनाया जा सकता है। इस सीमा तक, उच्चतम न्यायालय के निर्णय में ही चर्चा की गई है कि घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 और उसके अंतर्गत सुरक्षा को कम या अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए।

91. 30. हमारे द्वारा पेश किए गए इस कारण को ध्यान में रखते हुए, हम रविशंकर (उपरोक्त) में पटना उच्च न्यायालय के फैसले और सिमरत रंधावा (उपरोक्त) में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के फैसले से सम्मानजनक असहमति में पाते हैं। कृष्ण कुमार (उपरोक्त) में इस न्यायालय के एकल न्यायाधीश का निर्णय अलग है, जो अधिनियम के अध्याय II के तहत कार्यवाही के लिए संदर्भित है, न कि अधिनियम के अध्याय V के लिए, जैसा कि प्रस्तुत मामला है।

92. 31. जहां तक याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के आधार पर उठाई गई तीसरी आपत्ति का सवाल है, हम पाते हैं कि प्रस्तुत मामले में इसका कोई आवेदन नहीं है। जबकि दीवानी न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र अधिनियम के अध्याय V के तहत बेदखली के लिए सारांश कार्यवाही से बच सकता है, जिसके तहत बनाए गए नियमों के साथ पढ़ा जाता है, सीएपी के साथ पढ़ा जाता है, वह सारांश कार्यवाही किसी भी दीवानी मुकदमे के परिणाम के अधीन रह सकती है जिसमें बड़े मुद्दे और अन्य अधिकार शामिल हो सकते हैं।

32. हम यह स्पष्ट करते हैं कि हम कार्यवाही की सटीक सीमा और प्रकृति के बारे में शासन करने का प्रस्ताव नहीं कर रहे हैं, जिसके लिए अधिनियम के अध्याय V के तहत सारांश बेदखली की कार्यवाही के अधीन रह सकती है। हालांकि, केवल दीवानी न्यायालयों के पूर्ण क्षेत्राधिकार के बल पर उठाई गई आपत्तियों से निपटने के लिए, हम प्रदान करते हैं कि अधिनियम के तहत सारांश बेदखली सिविल जज (सीनियर डिवीजन), मेरठ की अदालत में लंबित ओ.एस. संख्या 837 वर्ष 2020 (दिनेश आहूजा बनाम इंद्रजीत आहूजा) के अंतिम परिणाम के अधीन रहेगी। उन कार्यवाहियों में पार्टियों के बड़े और अन्य अधिकारों का विरोध किया जा सकता है और उनका निर्णय लिया जा सकता है। किया गया कोई भी अन्य निर्माण विशेष कल्याण कानून के पूरे उद्देश्य और लक्ष्य को विफल कर देगा, अर्थात् अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियम।

93. **ओम प्रकाश मनचंदा बनाम जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर, (2019) 132 ए.एल.आर. 566 में**, इस न्यायालय के एक एकल न्यायाधीश ने निम्नानुसार निर्णय दिया है: -

"26. इस प्रकार, उपरोक्त चर्चा से, यह स्पष्ट है कि वरिष्ठ नागरिक अधिनियम, 2007 को वृद्ध माता-पिता को उनके बच्चों सहित उनके निकट और प्रियजनों के अत्याचारों के खिलाफ त्वरित उपचार प्रदान करने के लिए अधिनियमित किया गया है। यदि माता-पिता वृद्ध और बूढ़े हैं और खुद को बनाए रखने में असमर्थ हैं, तो बेटे या रिश्तेदार को अपने माता-पिता को बनाए रखने के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। सारांश जांच करने के बाद न्यायाधिकरण द्वारा भरण-पोषण तय किया जा सकता है और यह सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी

उपाय किए जा सकते हैं कि इसका भुगतान किया जाए और वरिष्ठ नागरिक को अपनी दैनिक जरूरतों और चिकित्सा खर्चों को पूरा करने के लिए पर्याप्त धन मिले ताकि वह सम्मान के साथ अपना जीवन जी सके। इसके अलावा, वरिष्ठ नागरिक के घर में रहने वाले बेटे या रिश्तेदार द्वारा किसी भी उत्पीड़न के मामले में, जो उसे (वरिष्ठ नागरिक) मानसिक क्रूरता या शारीरिक प्रताड़ना के अधीन करता है, वह (वरिष्ठ नागरिक का बेटा या रिश्तेदार) वरिष्ठ नागरिक अधिनियम 2007 की धारा 23 के तहत खुद को बेदखली के लिए उत्तरदायी बनाएगा, इस तथ्य के बावजूद कि जिस संपत्ति में वह रह रहा है, उसे ऐसे वरिष्ठ नागरिक द्वारा उसके नाम पर स्थानांतरित कर दिया गया है। इसका कारण यह है कि हस्तांतरणकर्ता को बनाए रखने की शर्त के साथ किया गया हस्तांतरण ऐसी किसी भी स्थिति के मामले में शून्य माना जाएगा। धारा 23 में प्रयुक्त 'हस्तांतरण' शब्द का अर्थ केवल वास्तविक हस्तांतरण को शामिल करना नहीं होगा, बल्कि इसे एक उदार विचार दिया जाएगा ताकि बेटे या रिश्तेदार को "कब्जे का हस्तांतरण" शामिल किया जा सके। वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति में रहने वाला बेटा या रिश्तेदार केवल एक लाइसेंसधारी होगा जिसे माता-पिता के प्यार से उस पर कब्जा करने की अनुमति दी गई है। और वरिष्ठ नागरिक के ऐसे लाइसेंसधारी को वरिष्ठ नागरिक अधिनियम, 2007 की धारा 23 के तहत कार्यवाही के अधीन किया जाएगा यदि मानसिक प्रताड़ना या शारीरिक हमले का मामला पाया जाता है।

ओम प्रकाश मनचंदा (उपरोक्त) में न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियाँ एक विवाद से उत्पन्न होती हैं जो संयुक्त परिवार की संपत्ति से संबंधित है और इसमें साझेदारी विवाद शामिल है। अधिनियम वर्ष 2007 के प्रावधानों को पिता द्वारा अपने तीसरे बेटे के खिलाफ अपने दो बेटों के कहने पर लागू किया गया था और यह कहने की जरूरत नहीं है कि विभाग पहले से ही नियमित अदालतों का ध्यान आकर्षित कर रहे थे, इसलिए, उक्त आदेश अपने स्वयं के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए पारित किया गया है और मामला उस मुद्दे पर ज्यादा प्रकाश नहीं डालता है जो इस पूर्ण पीठ के विचाराधीन है।

94. **रणधीर सिंह बनाम जिला मजिस्ट्रेट, फैजाबाद और अन्य; (2020) 146 आरडी 178 (डीबी)** में खंड पीठ ने निम्नानुसार अवधारित किया है: -

"(28) आक्षेपित आदेश पारित करते समय, जिला मजिस्ट्रेट ने उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट का अध्ययन किया है और यह पता लगाने पर कि याचिकाकर्ता घर में पांच कमरे होने के बावजूद, अपनी बड़ी बहू के साथ अपनी इच्छा से रह रहा है; याचिकाकर्ता के बेटे और प्रतिवादी नंबर 3 के बीच वैवाहिक विवाद लंबित है; और याचिकाकर्ता ने कोई सबूत पेश नहीं किया है जो यह स्थापित कर सके कि प्रतिवादी नंबर 3 ने याचिकाकर्ता को विचाराधीन घर के अन्य पांच कमरों में रहने से रोक दिया है। उपरोक्त तथ्य की पृष्ठभूमि में, जिला मजिस्ट्रेट ने अभिलेखों पर ठोस सामग्री के आधार पर तथ्य के विशिष्ट निष्कर्ष दर्ज किए हैं और याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया निर्णय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होता है।

(29) आक्षेपित आदेश के अवलोकन से, यह दर्शाता है कि जिला मजिस्ट्रेट ने उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट के आधार पर, विशिष्ट निष्कर्ष दर्ज किया है कि अभिलेखों पर कोई सबूत नहीं है, जो यह स्थापित करता है कि प्रतिवादी संख्या 3 याचिकाकर्ता को विचाराधीन घर के अन्य पांच कमरों में रहने से रोकने की कोशिश कर रहा है। दरअसल, याचिकाकर्ता अपनी बड़ी बहू के साथ फैजाबाद में अपनी मर्जी से रह रहा है। वरिष्ठ नागरिक होने के नाते याचिकाकर्ता के हितों की रक्षा के लिए, जिला मजिस्ट्रेट ने अपने आदेश में संबंधित पुलिस स्टेशन को विशेष रूप से समय-समय पर दोनों पक्षों को देखने का निर्देश दिया है और पक्षकारों से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वे एक-दूसरे के शांतिपूर्ण जीवन में हस्तक्षेप किए बिना सौहार्दपूर्ण वातावरण में रहें।

(30) उचित विचार करने पर, हमारा विचार है कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष ठोस और उचित प्रतीत होते हैं और आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है।
उपरोक्त निर्णय से पता चलेगा कि उक्त मामले में, जिला मजिस्ट्रेट को यह सुनिश्चित करने के निर्देश दिए गए थे कि दोनों पक्ष एक-दूसरे के शांतिपूर्ण जीवन में हस्तक्षेप किए बिना सौहार्दपूर्ण वातावरण में रहें, हालांकि, उक्त निर्णय वास्तव में यह नहीं बताता है कि क्या बेदखली की कोई शक्ति भरण-पोषण न्यायाधिकरण/अपीलीय न्यायाधिकरण को प्रदान की गई है। इसलिए, उक्त निर्णय भी इस पूर्ण पीठ के समक्ष इस मुद्दे पर अधिक प्रकाश नहीं डालता है और उसके बाद बहुत सहायता नहीं करता है।

95. यह कहना प्रासंगिक है कि सुनवाई समाप्त होने के बाद, पक्षों के अधिवक्ता ने **उर्मिला दीक्षित बनाम सुनील सरन दीक्षित और अन्य 2025 (2) एस.सी.सी. 787** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय को इस न्यायालय के ध्यान में लाया था; जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था की: -

"13. अधिनियम की प्रस्तावना में कहा गया है कि यह माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के भरण-पोषण और कल्याण के लिए अधिक प्रभावी प्रावधानों के लिए अभिप्रेत है, जो संविधान के तहत गारंटीकृत और मान्यता प्राप्त हैं।

14. इसलिए, यह स्पष्ट है कि यह अधिनियम कानून का एक लाभकारी टुकड़ा है, जिसका उद्देश्य वरिष्ठ नागरिकों के अधिकारों को सुरक्षित करना है, उनके सामने आने वाली चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए। यह इस पृष्ठभूमि में है कि अधिनियम की व्याख्या की जानी चाहिए और एक ऐसा निर्माण जो अधिनियम के उपायों को आगे बढ़ाता है, को अपनाया जाना चाहिए।

****

*23. अपीलकर्ता ने हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है कि इस तरह का एक वचन पूरी तरह से अधूरा है, और धारा 23 के तहत उसकी याचिका में, यह कहा गया है कि पार्टियों के बीच शांतिपूर्ण संबंधों का टूटना है। ऐसी स्थिति में, **[सुदेश छिकारा बनाम रमती देवी, (2024) 14 एस.सी.सी. 225: 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1684]** में उल्लिखित दो शर्तों की उचित व्याख्या कानून की लाभकारी प्रकृति को आगे बढ़ाने के लिए की जानी चाहिए,*

न कि सख्ती से जो विधायिका के इरादे को पूरा करेगी। इसलिए, उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश और नीचे के न्यायाधिकरणों ने उपहार विलेख को रद्द करने के लिए सही ठहराया था क्योंकि वरिष्ठ नागरिकों की भलाई के लिए शर्तों का पालन नहीं किया गया था। हम खंडपीठ द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से सहमत नहीं हो पा रहे हैं, क्योंकि यह एक लाभकारी कानून के बारे में सख्त दृष्टिकोण रखता है।

24. मामले को सौंपने से पहले, हमें आक्षेपित आदेश ***[सुनील शरण दीक्षित बनाम उर्मिला दीक्षित, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एमपी 3776]*** *के माध्यम से की गई टिप्पणियों को स्पष्ट करना चाहिए, जो संपत्ति का कब्जा सौंपने के लिए न्यायाधिकरण की योग्यता के बराबर है।* ***एस. वनिता [एस. वनिता बनाम कॉमर, (2021) 15 एस.सी.सी. 730]*** *में, इस न्यायालय ने कहा कि अधिनियम के तहत न्यायाधिकरण बेदखली का आदेश दे सकते हैं यदि वरिष्ठ नागरिक की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक और समीचीन है। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि अधिनियम के तहत गठित न्यायाधिकरण, धारा 23 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, कब्जे को स्थानांतरित करने का आदेश नहीं दे सकते हैं। यह अधिनियम के उद्देश्य और लक्ष्य को विफल कर देगा, जो बुजुर्गों के लिए त्वरित, सरल और सस्ते उपचार प्रदान करना है।*

25. उच्च न्यायालय की एक और टिप्पणी जिसे स्पष्ट किया जाना चाहिए, वह यह है कि धारा 23 अधिनियम का एक स्वतंत्र प्रावधान है। हमारे सुविचारित विचार में, धारा 23 के तहत वरिष्ठ नागरिकों को उपलब्ध राहत आंतरिक रूप से अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के कथन से जुड़ी हुई है, कि हमारे देश के बुजुर्ग नागरिकों की कुछ मामलों में देखभाल नहीं की जा रही है। यह सीधे तौर पर अधिनियम के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए है और वरिष्ठ नागरिकों को अपने अधिकारों को तुरंत सुरक्षित करने का अधिकार देता है जब वे किसी संपत्ति को हस्तांतरित करते हैं जो हस्तांतरणकर्ता द्वारा बनाए जाने की शर्त के अधीन है।

26. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, इस निर्णय के प्रस्तर-1 में वर्णित विवरण के साथ आक्षेपित निर्णय और आदेश ***[सुनील शरण दीक्षित बनाम उर्मिला दीक्षित, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एमपी 3776]*** *को रद्द कर दिया जाता है। नतीजतन, 7-9-2019 का गिफ्ट डीड रद्द कर दिया जाता है। इस मामले के उपस्थित तथ्यों और परिस्थितियों में, अपील की अनुमति दी जाती है। परिसर का कब्जा 28-2-2025 तक अपीलकर्ता को वापस कर दिया जाएगा।*

जाहिर है, उर्मिला दीक्षित (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 23 के संदर्भ में उपरोक्त टिप्पणियां कीं क्योंकि उक्त मामले में उपहार विलेख को रद्द करने का मुद्दा इसके परिणामों के साथ शामिल था। इस न्यायालय ने मुद्दा संख्या 2 पर विचार करते समय, (iii) राय के बाद के भाग में इस पर ध्यान दिया है।

96. फिर सर्वोच्च न्यायालय का एक और निर्णय **समतोला देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2025 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 669** के मामले में दिया गया था, जो इस विषय पर कुछ प्रकाश डालता है और इस न्यायालय द्वारा देखा गया था जिसमें यह निम्नानुसार माना गया था: -

"30. वरिष्ठ नागरिक अधिनियम में अध्याय-II के तहत माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के भरण-पोषण का प्रावधान है। इसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रावधान है कि कोई वरिष्ठ नागरिक या माता-पिता जो अपनी कमाई से अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ है या उसके स्वामित्व वाली संपत्ति अपने माता-पिता या दादा-दादी या अपने एक या अधिक बच्चों (नाबालिग नहीं) के विरुद्ध आवेदन करने का हकदार होगा या जहां वरिष्ठ नागरिक अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विनिर्दिष्ट रिश्तेदारों के विरुद्ध निर्गमरहित है ताकि वह सामान्य जीवन जी सके। इस तरह के आवेदन पर अधिनियम के तहत गठित न्यायाधिकरण भरण-पोषण और व्यय के लिए मासिक भत्ते का प्रावधान कर सकता है और यदि वे आदेश का पालन करने में विफल रहते हैं, तो न्यायाधिकरण आदेश के उल्लंघन के लिए जुर्माना लगाने के लिए वारंट जारी कर सकता है और ऐसे व्यक्ति को एक अवधि के लिए कारावास की सजा दे सकता है जिसे एक महीने तक बढ़ाया जा सकता है या जब तक भुगतान नहीं किया जाता है, जो भी पहले हो।

31. वरिष्ठ नागरिक अधिनियम के उपबंधों में कहीं भी विशेष रूप से ऐसे वरिष्ठ व्यक्ति के स्वामित्व वाले या उससे संबंधित किसी परिसर से व्यक्तियों की बेदखली के लिए कार्यवाही करने का प्रावधान नहीं है। यह केवल एस. वनिता बनाम आयुक्त, बेंगलुरु शहरी जिला5 में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के कारण है कि वरिष्ठ नागरिक अधिनियम के तहत न्यायाधिकरण भी बेदखली का आदेश दे सकता है यदि वरिष्ठ नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक और समीचीन है। इस प्रकार न्यायाधिकरण ने वरिष्ठ नागरिक अधिनियम की धारा 23 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए बेदखली के आदेश पारित करने का अधिकार क्षेत्र हासिल कर लिया था, जो अन्यथा संपत्ति की बिक्री को शून्य मानने का प्रावधान करता है यदि यह वरिष्ठ नागरिक के हित के खिलाफ है।

32. उपरोक्त निर्णय का पालन इस न्यायालय ने उर्मिला दीक्षित (उपरोक्त) में किया। हालांकि, उपरोक्त मामले में भी अदालत ने केवल यह माना है कि किसी दिए गए मामले में, न्यायाधिकरण बेदखली का आदेश दे सकता है, लेकिन हर मामले में बेदखली का आदेश पारित करना आवश्यक और अनिवार्य नहीं है। अपीलीय न्यायाधिकरण ने कृष्ण कुमार को बेदखल करने की आवश्यकता वाला कोई कारण दर्ज नहीं किया है या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, वरिष्ठ नागरिक की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए बेदखली का आदेश देना समीचीन है।

33. हमारी राय में, इसलिए, अपीलीय न्यायाधिकरण को केवल इस कारण से बेदखल करने का आदेश देना उचित नहीं था कि संपत्ति कल्लू मल की है, इस तथ्य को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया है कि 1/6 वें हिस्से और उपहार और बिक्री विलेखों को रद्द करने के संबंध में कृष्ण कुमार का दावा दीवानी अदालत के समक्ष निर्णय लंबित है।

34. हमारी राय में, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, कृष्ण कुमार को घर के एक हिस्से से बेदखल करने का आदेश देने के लिए चरम कदम उठाने की कोई आवश्यकता नहीं थी, बल्कि वरिष्ठ नागरिक अधिनियम की

अनुवादित

धारा 4/5 के तहत प्रदान किए गए भरण-पोषण का आदेश देकर और उसे माता-पिता को परेशान करने और उनके दैनिक जीवन में हस्तक्षेप करने से रोककर उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती थी।

35. उपरोक्त स्थिति के प्रकाश में, उच्च न्यायालय न्यायाधिकरण द्वारा पारित बेदखली आदेश को रद्द करने और न्यायाधिकरण द्वारा लगाई गई अन्य शर्तों को बनाए रखने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर अच्छी तरह से प्रतीत होता है।
शीर्ष अदालत ने देखा कि भरण-पोषण न्यायाधिकरण/अपीलीय न्यायाधिकरण के पास बेदखली का आदेश देने की शक्ति नहीं है और इस निर्णय में उर्मिला दीक्षित (उपरोक्त) में शीर्ष न्यायालय की टिप्पणियों का भी उल्लेख किया गया है।

97. इसके बाद सर्वोच्च न्यायालय का एक और निर्णय **राजेश्वर प्रसाद राव बनाम बिहार राज्य: 2025 लाइव लॉ (एस.सी.) 418** में आया, जहां कुछ परिस्थितियों में बेदखली का आदेश जारी करने के अधिकार को मान्यता दी गई है और संबंधित भाग निम्नानुसार है: -

"10. जहां तक बेदखली का आदेश देने के लिए अधिनियम के तहत न्यायाधिकरण के अधिकार का संबंध है, इस अदालत ने एस वनिता बनाम डिप्टी कमिश्नर बेंगलुरु अर्बन एवं अन्य में विशेष रूप से माना कि अधिनियम के तहत ट्रिब्यूनल के पास वरिष्ठ नागरिकों के भरण-पोषण और सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए बेदखली का आदेश देने का अधिकार है। इस मामले में बहू द्वारा बेदखली के आदेश के समान चुनौती शामिल थी। मामले से प्रासंगिक (प्रस्तर-25) नीचे निकाला गया है:

"25. धारा 23 की उप-धारा (2) का सार, जैसा कि दूसरे और तीसरे प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत किया गया है, यह है कि न्यायाधिकरण के पास बेदखली 4 (2021) 15 एस.सी.सी. 730 को निर्देशित करने का आदेश पारित करने का अधिकार क्षेत्र था। एस.एल.पी. (सिविल) संख्या 7675/2024 पृष्ठ 10 वर्ष 12 अपीलकर्ता का जो उनकी बहू है।
सबमिशन के अनुसार, बेदखली का आदेश देने की शक्ति "एक संपत्ति से रखरखाव प्राप्त करने के अधिकार" और उस अधिकार के प्रवर्तन की गारंटी देने वाले प्रावधान में निहित है। सबमिशन का समर्थन करते हुए, उन्होंने उस दृष्टिकोण का उल्लेख किया है जो कई उच्च न्यायालयों द्वारा लिया गया है, यह दर्शाता है कि ट्रिब्यूनल एक वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति से एक बच्चे या रिश्तेदार को बेदखल करने का आदेश दे सकता है, जहां वरिष्ठ नागरिक को बनाए रखने के दायित्व का उल्लंघन हुआ है। वरिष्ठ नागरिक अधिनियम, 2007 के तहत न्यायाधिकरण के पास बेदखली का आदेश देने का अधिकार हो सकता है, यदि वरिष्ठ नागरिक या माता-पिता के भरण-पोषण और सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक और समीचीन हो। बेदखली, दूसरे शब्दों में, रखरखाव और संरक्षण के अधिकार के प्रवर्तन की एक घटना होगी। हालाँकि, यह उपाय विवाद में प्रतिस्पर्धी दावों के विज्ञापन के बाद ही दिया जा सकता है। यह दोहराना आवश्यक है कि प्रस्तुत मामले में स्थिति यह है कि बहू यानी अपीलकर्ता से बेदखली की मांग की गई थी। जिस जमीन पर घर का निर्माण किया गया है, वह

मूल रूप से उन आवेदकों के बेटे द्वारा खरीदी गई थी जो अपनी बहू को बेदखल करने की मांग कर रहे हैं। बेटे ने अपीलकर्ता से शादी से कुछ महीने पहले संपत्ति खरीदी थी। बाद में उन्होंने एक पंजीकृत बिक्री विलेख द्वारा संपत्ति को अपने पिता को हस्तांतरित कर दिया था और यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि यह कई वर्षों के अंतराल के बाद उसी विचार के लिए था। पिता ने एस.एल.पी. (सिविल) संख्या-7675/2024 पृष्ठ 11 वर्ष 12 मोड़ में अपने जीवनसाथी के पक्ष में एक उपहार विलेख निष्पादित किया। अपीलकर्ता ने दावा किया है कि जब तक आवेदन दायर नहीं किया गया था, तब तक वह अपने वैवाहिक निवास के रूप में घर में रह रही थी। उनके पति ने (उनके अनुसार) उन्हें और उनकी नाबालिग बेटी को छोड़ दिया है और उन्हें अधर में छोड़ दिया है। बकाये का भुगतान नहीं करने के कारण परिसर की बिजली काट दी गई थी। उनकी बेटी ने इंजीनियरिंग डिग्री कोर्स में प्रवेश की मांग की है, लेकिन उसके पिता, चौथे प्रतिवादी ने कोई वित्तीय सहायता प्रदान नहीं की है। जो तबादले हुए हैं, उन्हें चल रहे वैवाहिक विवाद के संदर्भ से अलग नहीं देखा जा सकता है। मुद्दा यह है कि क्या अपीलकर्ता को बहू और नाबालिग बेटी के रूप में उपरोक्त तरीके से बेदखल किया जा सकता था।

11. इसके अलावा, अपीलकर्ता के वकीलों ने बिहार वरिष्ठ नागरिक नियम, 2012 के नियम 21(2)(i) को सही ढंग से इंगित किया है, जो विशेष रूप से प्रदान करता है कि यह सुनिश्चित करना जिला मजिस्ट्रेट का कर्तव्य है कि वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की रक्षा की जाए और वे सुरक्षा और सम्मान के साथ रहने में सक्षम हों। वर्तमान अपीलकर्ता 75 वर्ष का है। यह अधिनियम के उद्देश्य की हार होगी यदि अपीलकर्ता को उसके बेटे और बहू के खिलाफ बेदखली का लाभ नहीं दिया जाता है, जिन्होंने न केवल उसकी स्व-अर्जित संपत्ति का अतिक्रमण किया है, बल्कि एस.एल.पी. (सिविल) संख्या 7675/2024 पृष्ठ 12 वर्ष 12 ने उसे झूठी आपराधिक शिकायतों, दुर्व्यवहार करने और रेस्ट हाउस चलाने में बाधा पैदा करने की धमकी दी है और इस तरह बूढ़े माता-पिता को मानसिक और शारीरिक उत्पीड़न का कारण बना दिया है।

हालांकि, अत्यंत सम्मान के साथ, सर्वोच्च न्यायालय का उक्त निर्णय बिहार राज्य से उभरने वाले अपने स्वयं के तथ्यों पर आधारित है, जबकि **समतोला देवी (उपरोक्त)** का मामला उत्तर प्रदेश राज्य से उत्पन्न होता है, जिसमें उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश (कृष्ण **कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला० 645 में**) ने माना था कि अध्याय II के तहत न्यायाधिकरण बेदखली सरलीकरण का आदेश नहीं दे सकता है। यद्यपि उक्त मामलों का निर्णय अपने स्वयं के तथ्यों के आधार पर किया गया है और वे निर्णायक रूप से यह नहीं मानते हैं कि अधिनियम वर्ष 2007 के तहत भरण-पोषण न्यायाधिकरण, अपीलीय न्यायाधिकरण या प्राधिकरण के पास बेदखली का आदेश देने की शक्तियां हैं या नहीं, लेकिन **समतोला देवी (उपरोक्त)** सर्वोच्च न्यायालय का निकटतम निर्णय है जो मानता है कि मैटेनेंस ट्रिब्यूनल/अपीलीय न्यायाधिकरण के पास बेदखली का आदेश देने की शक्तियां नहीं हैं।

98. उपरोक्त चर्चाओं के आलोक में, इस न्यायालय ने पाया कि भरण-पोषण न्यायाधिकरण जो उप-विभागीय अधिकारी या अपीलीय न्यायाधिकरण के रैंक से नीचे के अधिकारी द्वारा संचालित नहीं है, जो जिला मजिस्ट्रेट के पद से नीचे के अधिकारी द्वारा संचालित नहीं है, जबकि एक रखरखाव न्यायाधिकरण या एक अपीलीय न्यायाधिकरण के रूप में अपने संबंधित कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए, अध्याय II के संदर्भ में प्रदत्त अधिकार

क्षेत्र और शक्तियों से परे नहीं जा सकता है। इसके अलावा, अधिनियम वर्ष 2007 या नियमावली वर्ष 2014 द्वारा भरण-पोषण न्यायाधिकरण/अपीलीय न्यायाधिकरण को स्पष्ट रूप से प्रदान की जा रही बेदखली की ऐसी किसी भी शक्ति के अभाव में ऐसी शक्तियों को आत्मसात नहीं किया जा सकता है और न ही अंतर्निहित शक्तियों के तहत ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, इसके अलावा, जब न्यायाधिकरणों को अंतर्निहित शक्तियों के साथ प्रदान नहीं किया गया है, दीवानी अदालतों के विपरीत जिन्हें अंतर्निहित शक्तियां प्रदान की गई हैं, जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता धारा 151 से देखा गया है।

99. उपरोक्त कारणों से, यह न्यायालय स्पष्ट रूप से इस मत पर है कि 2007 के अधिनियम या 2014 के नियमों के अंतर्गत न तो भरण-पोषण अधिकरण को और न ही अपीलीय अधिकरण को बेदखली की कोई शक्ति प्रदान की गई है। अतः, 2007 के अधिनियम की धारा 7, 8 और 9 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए न भरण-पोषण अधिकरण और न ही अपीलीय अधिकरण कोई बेदखली का आदेश पारित कर सकता है।

100. इस प्रकार, प्रश्न संख्या-(i) और (ii) का उत्तर तदनुसार दिया गया है।

101. अब, तैयार किए गए तीसरे प्रश्न से निपटने के लिए आगे बढ़ने से पहले, अधिनियम की धारा 20 को नोट करना उचित होगा जो अध्याय IV का एक हिस्सा है, अधिनियम की योजना को समग्र रूप से समझने के लिए और उस उद्देश्य के लिए धारा 20 को इसके बाद पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

अध्याय IV

"20. वरिष्ठ नागरिकों के लिए चिकित्सा सहायता ।– राज्य सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि -

(i) सरकार द्वारा पूर्ण या आंशिक रूप से वित्त पोषित सरकारी अस्पताल या अस्पताल प्रदान करेंगे जहां तक संभव हो सभी वरिष्ठ नागरिकों के लिए बिस्तर;

(ii) वरिष्ठ नागरिकों के लिए अलग से कतारों की व्यवस्था की जाए;

(iii) वरिष्ठ नागरिकों के लिए पुरानी, टमनल और अपक्षयी रोगों के उपचार के लिए सुविधा का विस्तार किया गया है;

(iv) वृद्धावस्था संबंधी पुरानी बीमारियों और वृद्धावस्था के लिए अनुसंधान कार्यकलापों का विस्तार किया जाता है;

(v) प्रत्येक जिला अस्पताल में वृद्धावस्था रोगियों के लिए निर्धारित सुविधाएं हैं जिनकी अध्यक्षता विधिवत रूप से एक चिकित्सा अधिकारी करता है जिसे वृद्धावस्था परिचर्या में अनुभव हो।

102. उपरोक्त प्रावधान से पता चलता है कि अधिनियम वर्ष 2007 के अध्याय IV में एक एकल धारा 20 शामिल है और यह वरिष्ठ नागरिकों के लिए चिकित्सा देखभाल और ध्यान देने के लिए प्रावधान करता है और सरकारी अस्पतालों में वृद्ध रोगियों के लिए उपयोगकर्ता के अनुकूल, आवश्यकता आधारित सुविधाएं सुनिश्चित

करने के लिए राज्य के अपने कर्तव्य के भीतर लेता है। समग्र योजना में धारा 20 के आयात को इस राय के बाद के भाग में प्रश्न संख्या-(iii) से निपटने के दौरान देखा गया है।

F.2 प्रश्न संख्या। (iii):-

103. अब, प्रश्न संख्या पर विचार करने का समय आ गया है। (iii) जिसे पुनर्पूंजीकरण के उद्देश्य से पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

(iii) अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 21 का वास्तविक दायरा क्या है जो वरिष्ठ नागरिक के जीवन और संपत्ति के संरक्षण से संबंधित है जो अधिनियम वर्ष 2007 के अध्याय-V में निहित है और प्राधिकरण अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 23 के अनुसार कुछ अंतरणों को शून्य के रूप में निर्णय देने के लिए आदेश पारित कर सकता है?

104. अधिनियम वर्ष 2007 के अध्याय V का शीर्षक '**वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा**' है और यह धारा 21 से धारा 23 तक को अपने दायरे में लेता है। अधिनियम की धारा 21 को पुन: प्रस्तुत करना प्रासंगिक होगा जो निम्नानुसार है: -

21. वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण के लिए प्रचार, जागरूकता आदि के उपाय - राज्य सरकार यह सुनिश्चित करने के लिए सभी उपाय करेगी कि-

(i) इस अधिनियम के उपबंधों का नियमित अंतरालों पर टेलीविजन, रेडियो और प्रिंट सहित सार्वजनिक मीडिया के माध्यम से व्यापक प्रचार किया जाता है;

(ii) पुलिस अधिकारियों और न्यायिक सेवा के सदस्यों सहित केन्द्र सरकार और राज्य सरकार के अधिकारियों को इस अधिनियम से संबंधित मुद्दों पर आवधिक रूप से संवेदीकरण और जागरूकता प्रशिक्षण दिया जाता है।

(iii) वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण से संबंधित मुद्दों का समाधान करने के लिए कानून, गृह मामलों, स्वास्थ्य और कल्याण से संबंधित संबंधित मंत्रालयों अथवा विभागों द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के बीच प्रभावी समन्वय किया जाता है और इसकी आवधिक समीक्षा की जाती है।

105. ध्यान देने योग्य बात यह है कि धारा 21 राज्य सरकार को यह सुनिश्चित करने के लिए सभी उपाय करने का निर्देश देती है कि:-

(i) अधिनियम वर्ष 2007 के उपबंधों का नियमित अंतरालों पर टेलीविजन, रेडियो और प्रिंट सहित सार्वजनिक मीडिया के माध्यम से व्यापक प्रचार किया जाता है;

(ii) पुलिस अधिकारियों और न्यायिक सेवा के सदस्यों सहित केन्द्र और राज्य सरकार के अधिकारियों को इस अधिनियम से संबंधित मुद्दे पर आवधिक रूप से संवेदीकरण और जागरूकता प्रशिक्षण दिया जाता है; और

(iii) वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण से संबंधित मुद्दे का समाधान करने के लिए कानून, गृह, स्वास्थ्य और कल्याण से संबंधित संबंधित मंत्रालयों अथवा विभागों द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के बीच प्रभावी समन्वय स्थापित करना और इसकी आवधिक समीक्षा करना।

106. धारा 21 मुख्य रूप से राज्य पर यह सुनिश्चित करने का दायित्व डालती है कि उसके सभी कार्यकारी हथियार समन्वय में काम करें ताकि अधिनियम का प्रशंसनीय उद्देश्य प्राप्त हो सके और बुजुर्गों के लिए एक अनुकूल और सुविधाजनक पारिस्थितिकी तंत्र स्थापित हो सके।

107. यह अध्याय V और अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 21 और धारा 22 को नियम 21 और नियम 22 के साथ पढ़ा जाता है, अधिनियम के इरादे को व्यक्त करता है कि वरिष्ठ नागरिकों को जहां तक उनकी जरूरतों के संबंध में प्राथमिकता दी जानी चाहिए, चाहे वह उनकी चिकित्सा आवश्यकताओं से संबंधित हो, (ख) सरकार ने आवास, भरण-पोषण, सम्मान के साथ जीने के उनके अधिकार और यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि सरकार के विभिन्न माध्यमों के साथ अपने दिन-प्रतिदिन के मुद्दों को आगे बढ़ाते समय उन्हें परेशान न किया जाए। इस तरह के पारिस्थितिकी तंत्र को प्राप्त करने के लिए, सबसे पहले यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि अधिनियम के वास्तविक लाभार्थियों यानी बुजुर्ग आबादी और देखभाल करने वालों को अधिनियम के उद्देश्यों और लक्ष्यों के बारे में अच्छी तरह से सूचित और संवेदनशील बनाया जाए ताकि राज्य के साधन, बुजुर्गों की समस्याओं और मुद्दों से निपटने में, वरिष्ठ नागरिकों के सामने आने वाली समस्याओं पर समय पर ध्यान देने और उसे दूर करने के लिए एक मजबूत प्रणाली स्थापित की जा सके।

108. अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 22 स्पष्ट रूप से एक सक्षम धारा है जो राज्य सरकार को अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने की शक्तियां प्रदान करने और जिला मजिस्ट्रेट के रैंक से नीचे के अधिकारी द्वारा इसका सुचारू पालन सुनिश्चित करने का निर्देश देती है। अधिनियम के तहत जिला मजिस्ट्रेट ऐसे अधिकारी को कर्तव्यों को प्रत्यायोजित कर सकता है जो स्थानीय सीमाओं के भीतर अधिनियम के तहत प्रदत्त सभी या किसी भी कर्तव्य को पूरा करेगा और उनका पालन करेगा। धारा 22 की उपधारा (2) राज्य सरकार को वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के लिए एक व्यापक कार्य योजना प्रदान करने के लिए बाध्य करती है।

109. धारा 21 को आगे बढ़ाने के लिए और जिला मजिस्ट्रेट को प्रदान किए जाने वाले प्रस्तावित कर्तव्यों और शक्तियों के संबंध में राज्य ने क्या समझा है, इसकी स्पष्ट तस्वीर रखने के लिए नियमावली वर्ष 2014 के तहत बनाए गए नियम 21 में प्रतिबिंब मिलता है, जो निम्नानुसार है: -

"21. **जिला मजिस्ट्रेट के कर्तव्य और शक्तियां**--(1) जिला मजिस्ट्रेट उपनियम (2) और (3) में उल्लिखित कर्तव्यों का पालन करेगा और शक्तियों का प्रयोग करेगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अधिनियम के उपबंधों का उसके जिले में समुचित रूप से पालन किया जाए।
(2) जिला मजिस्ट्रेट का यह कर्तव्य होगा कि:

(i) यह सुनिश्चित करना कि जिले के वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की रक्षा की जाए और वे सुरक्षा और सम्मान के साथ रह सकें;

(ii) अधिकरणों के अनुरक्षण और अनुरक्षण आदेशों के निष्पादन के लिए आवेदनों का समय पर और निष्पक्ष निपटान सुनिश्चित करने की दृष्टि से जिले के अनुरक्षण अधिकरणों और अनुरक्षण अधिकारियों के कार्य की निगरानी करना;

(iii) जिले में वृद्धाश्रमों के कार्यकरण की निगरानी करना ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे इन नियमों और सरकार के किसी अन्य दिशा-निर्देशों और आदेशों में निर्धारित मानकों के अनुरूप हैं;

(iv) वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण के लिए अधिनियम के उपबंधों और केन्द्र और राज्य सरकारों के कार्यक्रमों का नियमित और व्यापक प्रचार सुनिश्चित करना;

(v) पंचायतों, नगर पालिकाओं, नेहरू युवा केंद्रों, शैक्षणिक संस्थानों और विशेष रूप से उनकी राष्ट्रीय सेवा योजना इकाइयों, संगठनों, विशेषज्ञों, कार्यकर्ताओं, आदि, जिले के वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण के लिए उनके संसाधनों और प्रयासों को प्रभावी ढंग से एकत्रित करने के लिए प्रोत्साहित और समन्वय करना;

(vi) प्राकृतिक आपदाओं और अन्य आपात स्थितियों की स्थिति में वरिष्ठ नागरिकों को समय पर सहायता और राहत का प्रावधान सुनिश्चित करना;

(vii) वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण से संबंधित विभिन्न विभागों और स्थानीय निकायों के अधिकारियों को ऐसे नागरिकों की आवश्यकताओं और अधिकारियों के प्रति कर्तव्य के प्रति आवधिक रूप से संवेदनशील बनाना सुनिश्चित करना।

(viii) संभागीय पुलिस महानिरीक्षक वाले शहरों को छोड़कर जिले में वरिष्ठ नागरिकों से संबंधित मामलों की जांच और विचारण की प्रगति की समीक्षा करना। परवर्ती;

(ix) यह सुनिश्चित करना कि पंचायतों, खंड विकास कार्यालयों, तहसीलदार कार्यालयों, जिला समाज कल्याण कार्यालयों, कलेक्ट्रेट, पुलिस स्टेशन आदि जैसे नागरिकों के लिए सामान्य संपर्क के अधिकारियों में रखरखाव के लिए निर्धारित आवेदन पत्रों की पर्याप्त संख्या उपलब्ध हो;

(x) जिला मुख्यालयों पर वरिष्ठ नागरिकों के लिए समपत हेल्पलाइनों की स्थापना को बढ़ावा देना, जिसका आरंभ किया जा सके; और

(xi) ऐसे अन्य कृत्यों का निष्पादन करना जो सरकार, आदेश द्वारा, समय-समय पर इस निमित्त जिला मजिस्ट्रेट को सौंपे।

(3) उपनियम (2) में उल्लिखित कर्तव्यों का पालन करने की दृष्टि से, जिला मजिस्ट्रेट ऐसे निदेश जारी करने के लिए सक्षम होगा, जो अधिनियम के साथ असंगत नहीं हैं; जिले में काम करने वाली किसी भी संबंधित सरकार या सांविधिक एजेंसी या निकाय के लिए ये नियम और सरकार के सामान्य दिशानिर्देश, जैसा भी आवश्यक हो सकता है, और विशेष रूप से निम्नलिखित के लिए:

(क) पुलिस, स्वास्थ्य और प्रचार विभागों में राज्य सरकार के अधिकारी और वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण से संबंधित विभाग;

(ख) अनुरक्षण न्यायाधिकरण और सुलह अधिकारी;

(ग) पंचायतें और नगरपालिकाएं; और
(घ) शैक्षणिक संस्थान।

110. नियमावली वर्ष 2014 के नियम 21(2)(i) से पता चलता है कि जिला मजिस्ट्रेट पर यह सुनिश्चित करने का कर्तव्य डाला गया है कि वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की रक्षा की जाए और वे सुरक्षा और सम्मान के साथ रहने में सक्षम हों। यदि ऊपर निकाले गए नियम 21(2) को नियम 21(2)(ii) से (xi) में उल्लिखित अन्य दायित्वों के संदर्भ में देखा जाता है, तो यह दर्शाता है कि जिला मजिस्ट्रेट उन शहरों को छोड़कर जिले में वरिष्ठ नागरिकों से संबंधित मामलों की जांच और परीक्षण की प्रगति की समीक्षा भी कर सकते हैं, जहां पुलिस महानिदेशक हैं। नियम 21 में इस प्रकार प्रदान किए गए और परिकल्पित कर्तव्य ऐसे सभी दायित्वों से संबंधित हैं, जो वरिष्ठ नागरिकों के दैनिक जीवन में विभिन्न सरकारी इंटरफेस के साथ बातचीत करते समय उनके सामने आने वाली विभिन्न चुनौतियों से संबंधित हैं। इसका उद्देश्य सरकारी संगठनों के साथ एक वरिष्ठ नागरिक के संपर्क के अनुभव को कम तनावपूर्ण और अधिक मैत्रीपूर्ण और सुविधाजनक बनाना है और नोडल अधिकारी होने के नाते जिला मजिस्ट्रेट को अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 21 के संदर्भ में क्या हासिल करने की आवश्यकता है, इसकी देखरेख और निरीक्षण करना आवश्यक है।

111. नियम 21 में उल्लिखित कर्तव्यों से पता चलता है कि वे प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य का विस्तार हैं। अधिनियम के तहत बनाए गए नियम 21 और 22 सपठित धारा 19 से धारा 22 तक स्पष्ट रूप से संकेत देगी कि यह वरिष्ठ नागरिकों के लिए एक सुरक्षित इकोसिस्टम के निर्माण की परिकल्पना करता है जहां वे अपने बच्चों/रिश्तेदारों या यहां तक कि तीसरे पक्ष के हाथों तनाव या उपेक्षा और उत्पीड़न के डर के बिना रह सकते हैं और फिर भी उन्हें यह महसूस करने का आराम है कि उनकी जरूरतों का सम्मान किया जाएगा और समझा जाएगा। आवश्यकता पड़ने पर, प्राधिकारी वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता की आयु के साथ आने वाली कमजोरियों को स्पष्ट रूप से पहचानते हुए उचित रूप से प्रतिक्रिया देंगे।

112. वास्तव में, एक तरह से, यह मापने के लिए एक परीक्षा है कि एक समाज कितनी अच्छी तरह विकसित और प्रगति की है और सूचकांकों में से एक, अन्य बातों के साथ-साथ, समाज और राज्य अपने वरिष्ठ नागरिकों की देखभाल कैसे करते हैं और यह अधिनियम राज्य के लिए अधिनियम के तहत वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता को लाभ प्रदान करने के लिए सकारात्मक दिशा में आगे बढ़ने के लिए एक प्रकाशस्तंभ है।

113. नियम 21 और 22 के साथ धारा 21 और 22 को पढ़ने से पता चलता है कि विधानमंडल ने नियम के अध्याय VI में नियम 22 को 'वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा' नाम के साथ रखा है, जबकि वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा वाक्यांश अधिनियम के अध्याय V का नामकरण है और यह नियम 21(2)(i) में भी स्थान पाता है जो जिला मजिस्ट्रेट के कर्तव्यों से संबंधित है। नियम 22 में कहा गया है कि वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के लिए कार्य योजना। नियम 22 में प्रयुक्त कार्य

योजना शब्द वर्ष 2007 की धारा 22(2) के अनुरूप है जो सरकार को एक व्यापक कार्य योजना निर्धारित करने के लिए बाध्य करता है।

114. नियम 22 वर्ष 2014 पर एक नज़र डालना लाभप्रद होगा और यह निम्नानुसार है: -

22. वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के लिए कार्य योजना;

(1) जिला पुलिस अधीक्षक और उन शहरों के मामले में जहां प्रभागीय पुलिस महानिरीक्षक हैं, ऐसे प्रभागीय पुलिस महानिरीक्षक ऐसे दिशा-निर्देशों के अधीन रहते हुए सभी आवश्यक कदम उठाएगा जो सरकार वरिष्ठ नागरिकों की किसी संपत्ति के जीवन की सुरक्षा के लिए समय-समय पर जारी करे।

(2) उप-नियम (1) की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना

(i) प्रत्येक पुलिस स्टेशन अपने अधिकार क्षेत्र में रहने वाले वरिष्ठ नागरिकों की एक अद्यतन सूची बनाए रखेगा, विशेष रूप से वे जो अकेले रह रहे हैं (उनके घर में कोई सदस्य नहीं है जो वरिष्ठ नागरिक नहीं है);

(Ii) पुलिस स्टेशन का एक प्रतिनिधि, जहां तक संभव हो, एक सामाजिक कार्यकर्ता या स्वयंसेवक के साथ, महीने में कम से कम एक बार नियमित अंतराल पर ऐसे वरिष्ठ नागरिकों से मिलने जाएगा, और इसके अलावा, उनसे सहायता का अनुरोध प्राप्त होने पर यथाशीघ्र उनसे मिलने जाएगा,

(iii) वरिष्ठ नागरिकों की शिकायतों/समस्याओं पर स्थानीय पुलिस द्वारा तुरंत कार्रवाई की जाएगी।

(iv) प्रत्येक पुलिस स्टेशन के लिए एक या एक से अधिक स्वयंसेवी समिति का गठन किया जाएगा जो एक ओर वरिष्ठ नागरिकों, विशेष रूप से अकेले रहने वाले लोगों और दूसरी ओर पुलिस और जिला प्रशासन के बीच नियमित संपर्क सुनिश्चित करेगी।

(v) जिला पुलिस अधीक्षक या प्रभागीय पुलिस महानिरीक्षक, जैसा भी मामला हो, वरिष्ठ नागरिकों के जान-माल की सुरक्षा के लिए उठाए जा रहे कदमों को नियमित अंतराल पर मीडिया में और पुलिस स्टेशन के माध्यम से व्यापक रूप से प्रचारित करवाएगा;

(vi) प्रत्येक पुलिस स्टेशन एक अलग-अलग रजिस्टर रखेगा जिसमें वरिष्ठ नागरिकों के विरुद्ध किए गए अपराधों से संबंधित सभी महत्वपूर्ण विवरण शामिल होंगे, जैसा कि अनुलग्नक-IV में दिया गया है

(vii) खंड (vi) में निर्दिष्ट रजिस्टर को सार्वजनिक निरीक्षण के लिए उपलब्ध कराया जाएगा, और पुलिस स्टेशन का निरीक्षण करने वाला प्रत्येक अधिकारी रजिस्टर में दर्ज की गई स्थिति की हमेशा समीक्षा करेगा;

(viii) पुलिस स्टेशन ऐसे अपराधों की मासिक रिपोर्ट जिला पुलिस अधीक्षक को प्रत्येक माह की 10 तारीख तक भेजेगा;

(ix) वरिष्ठ नागरिकों द्वारा उनकी सुरक्षा के हित में क्या करें और क्या न करें की सूची को व्यापक रूप से प्रचारित किया जाएगा;

(x) ऐसे नागरिकों के अनुरोध पर घरेलू नौकरों और वरिष्ठ नागरिकों के लिए काम करने वाले अन्य लोगों के पूर्ववृत्त का तुरंत सत्यापन किया जाएगा;

(xi) वरिष्ठ नागरिकों की सुरक्षा के लिए सामुदायिक पुलिस व्यवस्था पड़ोस में रहने वाले नागरिकों, निवासी कल्याण संघ, युवा स्वयंसेवकों, गैर-सरकारी संगठनों आदि के साथ मिलकर की जाएगी।

(xii) जिला पुलिस अधीक्षक पिछले महीने के दौरान वरिष्ठ नागरिकों के खिलाफ अपराधों की स्थिति के बारे में प्रत्येक माह की 20 तारीख तक पुलिस महानिदेशक और जिला मजिस्ट्रेट को एक मासिक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा, जिसमें पंजीकृत अपराधों की जांच और अभियोजन की प्रगति और महीने के दौरान उठाए गए निवारक कदम शामिल हैं। जैसा कि अनुलग्नक VI में है

(xiii) जिला प्रबंधक रिपोर्ट को नियम 24 के अधीन गठित जिला स्तरीय समिति के समक्ष रखवाएगा;

(xiv) पुलिस महानिदेशक कैलूस (xii) के तहत प्रस्तुत रिपोर्टों को तिमाही में एक बार संकलित करवाएगा और उन्हें प्रत्येक तिमाही के साथ-साथ प्रत्येक वर्ष सरकार को प्रस्तुत करेगा, ताकि अन्य बातों के साथ-साथ नियम 23 के तहत गठित वरिष्ठ नागरिकों की राज्य परिषद के समक्ष रखा जा सके।

115. नियम 22(2)(i) से (x) जो ऊपर निकाला गया है, से पता चलता है कि प्रत्येक पुलिस स्टेशन के लिए इसमें उल्लिखित निर्देश दिए गए हैं कि वे अपने अधिकार क्षेत्र में रहने वाले वरिष्ठ नागरिकों की एक अद्यतित सूची बनाए रखें और उन लोगों पर ध्यान केंद्रित करें जो स्वयं रह रहे हैं। इसमें पुलिस स्टेशन के एक प्रतिनिधि के साथ-साथ एक सामाजिक कार्यकर्ता या स्वयंसेवक को महीने में कम से कम एक बार नियमित अंतराल पर ऐसे वरिष्ठ नागरिकों से मिलने का भी निर्देश दिया गया है। यदि किसी वरिष्ठ नागरिक द्वारा अनुरोध किया जाता है, तो ऐसे वरिष्ठ नागरिकों द्वारा व्यक्त की गई शिकायत और समस्या पर तत्परता से ध्यान दें। इसके अलावा, इसमें किए गए विस्तार से पता चलेगा कि पुलिस के काम, जिसे पारंपरिक रूप से केवल कानून प्रवर्तन एजेंसी के रूप में माना जाता था, पुलिस अधिकारियों को वरिष्ठ नागरिकों के लिए विशेष जोर देने के साथ जनता के मित्र के रूप में कार्य करने, व्यवहार करने और काम करने के लिए मजबूत करके एक नया रूप देने की मांग की गई है।

116. यह कहने के बाद, इस न्यायालय को यह नहीं लगता है कि किसी भी प्रावधान या नियम में ऐसा कोई संकेत नहीं है जो ऐसी कार्रवाई करने और किसी तीसरे पक्ष या व्यक्ति के खिलाफ बेदखली का आदेश पारित करने के लिए विशेष शक्तियां बनाता है या प्रदान करता है जो वरिष्ठ नागरिक के साथ या वरिष्ठ नागरिक से संबंधित परिसर में रह रहा है। नियम 21 और नियम 22 में दिए गए कर्तव्य मुख्य रूप से वरिष्ठ नागरिकों के लिए एक संरक्षित तनाव मुक्त वातावरण प्रदान करने के लिए सामाजिक ताने-बाने को मजबूत करने और सुरक्षित करने के लिए हैं और निश्चित रूप से किसी भी व्यक्ति को बेदखल करने के लिए एक मंच बनाने या विशेष शक्तियां प्रदान करने के लिए नहीं हैं, भले ही ऐसे पक्ष की उपस्थिति या कब्जा वरिष्ठ नागरिक के प्रतिकूल हो।

117. दूसरे शब्दों में, इस देश के नागरिकों पर लागू होने वाले देश के कानून का समान रूप से पालन किया जाना चाहिए, सिवाय इसके कि वरिष्ठ नागरिक, जो एक पसंदीदा खंड का हिस्सा हैं, को केवल अधिनियम वर्ष 2007 की शर्तों के अनुसार प्राथमिकता दी जानी है। नियम 22 के संदर्भ में, जबकि पुलिस को अपने कर्तव्यों और कार्यों का पालन करना आवश्यक है और जहां वे वरिष्ठ नागरिकों से संबंधित मामले से निपट रहे हैं, उन्हें संवेदनशीलता और गति के साथ समस्याओं और शिकायतों को देखने और तदनुसार कार्य करने के लिए सतर्क

रहना चाहिए। यह याद रखना उचित होगा कि धारा 19(ii) अन्य बातों के साथ-साथ न्यायिक अधिकारियों को भी संवेदनशील बनाने का प्रावधान करती है, ताकि अपने न्यायिक कार्यों के निर्वहन के दौरान, यदि उन्हें किसी वरिष्ठ नागरिक से संबंधित मामलों का सामना करना पड़ता है, तो उन्हें अधिनियम वर्ष 2007 के इरादे को ध्यान में रखते हुए आवश्यक रूप से उचित प्राथमिकता देने के लिए पर्याप्त रूप से संवेदनशील होना चाहिए। इसी तरह की स्थिति है जहां एक वरिष्ठ नागरिक जो अपने इलाज के लिए अस्पताल जाता है, तो धारा 20 के अनुसार, वरिष्ठ नागरिकों को प्राथमिकता के आधार पर आवश्यक सुविधाएं दी जानी चाहिए।

118. इस संदर्भ में नियम 22 जिसे "वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा" शीर्षक दिया गया है, को नियमावली वर्ष 2014 के अध्याय VI में रखा गया है और पुलिस अधिकारियों पर यह सुनिश्चित करने का दायित्व रखा गया है कि वरिष्ठ नागरिकों के लाभ और सुरक्षा के लिए निवारक उपाय किए जाएं और संपूर्ण नियम 22 किसी भी तरह से पुलिस पर लगाए गए किसी भी दायित्व को इंगित या प्रतिबिंबित नहीं करता है अधिकारियों को समग्र रूप से नागरिकों को नियंत्रित करने वाले कानून द्वारा बनाए गए मंचों के पहले से स्थापित ढांचे से परे किसी भी उपचारात्मक अभ्यास को अंजाम देने के लिए।

119. इस स्तर पर, यह पता लगाना प्रासंगिक होगा कि सुरक्षा शब्द का क्या अर्थ है। सीधे शब्दों में कहें तो 'रक्षा' शब्द का अर्थ है किसी भी प्रकार की चोट, नुकसान या खतरे को ढंकना, ढालना या बचाव करना। ब्लैक लॉ डिक्शनरी के दसवें संस्करण में 'सुरक्षा' शब्द को परिभाषित किया गया है: -

"सुरक्षा, एन. (14सी) 1. रक्षा करने का कार्य। 2. संरक्षण-वाद। 3. कवरेज (1)। 4. एक नोटरी पब्लिक द्वारा नाविकों और विदेश यात्रा करने वाले अन्य व्यक्तियों को दिया गया एक दस्तावेज, यह प्रमाणित करता है कि वाहक एक अमेरिकी नागरिक है। - - रक्षा करें, वीबी।
'सुरक्षात्मक आदेश' शब्द को ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी के दसवें संस्करण में भी निम्नानुसार परिभाषित किया गया है: -

"सुरक्षात्मक आदेश। 1. एक अदालत का आदेश जो किसी पार्टी को आचरण में शामिल होने से रोकता है या प्रतिबंधित करता है (विशेष रूप से एक कानूनी प्रक्रिया जैसे कि खोज) जो विरोधी पक्ष या तीसरे पक्ष के गवाह को अनावश्यक रूप से परेशान या बोझ देता है। [मामले: संघीय सिविल प्रक्रिया 1271; प्रीट्रायल प्रक्रिया 41. सीजेएस डिस्कवरी §§ 12, 47।

2. निरोधक आदेश (1)।
आपातकालीन सुरक्षात्मक आदेश। एक त्वरित आधार पर दिया गया एक अस्थायी सुरक्षात्मक आदेश, usu. एक एकपक्षीय सुनवाई के बाद (दूसरे पक्ष को नोटिस के बिना), आमतौर पर एक घरेलू हिंसा के मामले में एक दुर्व्यवहार करने वाले से निषेधाज्ञा राहत प्रदान करने के लिए; विशेष रूप से, एक अल्पकालिक निरोधक आदेश जो एक पीड़ित से घरेलू हिंसा की शिकायत के जवाब में एक कानून-प्रवर्तन अधिकारी के अनुरोध पर जारी किया

जाता है जो तत्काल खतरे में है। घरेलू हिंसा का शिकार व्यक्ति केवल कानून-प्रवर्तन अधिकारी के माध्यम से ईपीओ प्राप्त कर सकता है। कोई नोटिस की आवश्यकता नहीं है, लेकिन दुर्व्यवहार करने वाले को आदेश दिया जाना चाहिए। ईपीओ की अवधि राज्य के कानून के आधार पर तीन से सात दिनों तक भिन्न होती है। - ईपीओ। सीएफ अस्थायी निरोधक आदेश।

स्थायी सुरक्षात्मक आदेश। सुनवाई के बाद दोनों पक्षों को नोटिस के साथ दी गई अनिश्चितकालीन अवधि का एक सुरक्षात्मक आदेश; विशेष रूप से, एक अदालत का आदेश जो किसी दुर्व्यवहार करने वाले को लंबे समय तक संरक्षित व्यक्ति से संपर्क करने या उससे संपर्क करने से रोकता है। नाम के बावजूद, स्थायी आदेशों में अक्सर राज्य के कानून द्वारा निर्धारित समाप्ति तिथियां होती हैं। एक आदेश में दुर्व्यवहार करने वाले को कुछ कार्य करने की भी आवश्यकता हो सकती है जैसे कि परामर्श में भाग लेना या संरक्षित व्यक्ति के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना। पीपीओ"

120. इस प्रकार, रक्षा शब्द का अर्थ है सुरक्षा/एक कवर/एक ढाल और इस मामले में एक निर्दिष्ट वर्ग के लिए जो वरिष्ठ नागरिकों के लिए सुरक्षा के लिए संदर्भित होगा। फिर भी, रक्षा शब्द और सुरक्षा शब्द, इसकी क्रिया होने के नाते वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की रक्षा करने के कार्य का तात्पर्य है। इसका तात्पर्य आवश्यक रूप से एक प्रत्याशित कदम या किसी घटना के पूर्व-खाली में की गई कार्रवाई से है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ऐसी घटना का मौका कम से कम हो। जाहिर है, यह सब एक निवारक कार्य है और एक उपचारात्मक या प्रतिक्रियाशील कार्रवाई के विपरीत है जो एक घटना होने के बाद आवश्यक हो सकता है।

121. यह ध्यान देना प्रासंगिक होगा कि अधिनियम की धारा 22(2) में परिकल्पित व्यापक कार्य योजना राज्य सरकार द्वारा दिनांक 21 मार्च, 2016 के अपने सरकारी आदेश संख्या 8/2016/727/26-02-2016 के तहत तैयार की गई है। यदि राज्य सरकार की नीति या कार्य योजना को देखा जाता है, तो इससे पता चलेगा कि इसमें अन्य बातों के साथ-साथ शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य, आर्थिक सुरक्षा, आश्रय, कल्याण और वरिष्ठ नागरिकों के लिए आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ उन्हें उत्पीड़न और शोषण से बचाने के लिए प्रभावी और उपयुक्त पारिस्थितिकी तंत्र प्रदान करने के लिए एक ढांचे के निर्माण की परिकल्पना की गई है और ऐसी सुरक्षा और सुविधाएं पूरे राज्य में ग्रामीण क्षेत्रों में दी जानी हैं और शहरी क्षेत्र।

122. कार्य योजना में विभिन्न स्तरों पर स्वास्थ्य देखभाल प्रदान करने के लिए विभिन्न स्तरों पर वृद्धाश्रमों की स्थापना, अर्थात कमीशनरेट, जिला स्तर, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों, सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों और उप-स्टेशनों का विवरण दिया गया है ताकि वरिष्ठ नागरिकों को सभी स्तरों पर चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराई जा सकें। इसमें वृद्धावस्था और वृद्धावस्था स्वास्थ्य के लिए सुविधाएं प्रदान करने का भी उल्लेख किया गया है और इसके आगे राज्य ने किंग जॉर्ज चिकित्सा विश्वविद्यालय, लखनऊ में 'सेंटर फॉर एडवांस रिसर्च इन एजिंग एंड जेरियाट्रिक मेंटल हेल्थ' नामक एक विभाग बनाया है, जहां डिमेंशिया और अल्जाइमर से पीड़ित वरिष्ठ नागरिकों का इलाज किया जाता है।

123. वरिष्ठ नागरिकों को आर्थिक रूप से सुरक्षित करने के लिए, वरिष्ठ नागरिक पेंशन योजना जैसी कुछ कल्याणकारी योजनाएं शुरू की गई हैं। अब, इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि दिनांक 21 मार्च, 2016 की कार्य योजना का खंड 2.4 वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा से संबंधित है, जिसके लिए निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं जिन्हें इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: - हिन्दी

124. इसके अतिरिक्त, वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए, राज्य सरकार ने वरिष्ठ नागरिकों के लिए एक हेल्पलाइन भी समर्पित की है और वृद्ध निवासियों के लिए "सवेरा योजना" के तत्वावधान में एक पहल की गई है। सवेरा योजना के लिए एक हेल्पलाइन नंबर 112 समर्पित किया गया है, जहां वरिष्ठ नागरिक अपना पंजीकरण करा सकते हैं।

125. यह योजना वरिष्ठ नागरिकों के लिए लक्षित है जो हेल्पलाइन के माध्यम से सहायता प्राप्त कर सकते हैं, निकटतम पुलिस स्टेशन से संपर्क कर सकते हैं या पुलिस प्रतिक्रिया वाहन ऐसे वरिष्ठ नागरिक के दरवाजे तक पहुंच सकता है जहां उसे समय पर सहायता प्रदान की जा सकती है और उसकी सुरक्षा चिंताओं को भी दूर किया जा सकता है।

126. 29 नवंबर, 2023 को, पुलिस मुख्यालय ने सवेरा योजना के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए एक एसओपी जारी की, जिसे इसके बाद तैयार संदर्भ के लिए पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:- हिन्दी

127. यह योजना शहरों और ग्रामीण क्षेत्रों दोनों में उपलब्ध है। सवेरा योजना के लिए एसओपी इसके उद्देश्य, पंजीकरण को रेखांकित करता है और इसके अलावा पुलिस अधिकारियों द्वारा गश्त स्तर, पुलिस स्टेशन के स्तर पर और स्टेशन हाउस स्तर पर किए जाने वाले कर्तव्यों की भी परिकल्पना करता है। इस योजना को पूरी तरह से देखते हुए, यह संकेत देगा कि पुलिस की भूमिका का विस्तार इस अर्थ में किया गया है कि वरिष्ठ नागरिकों सहित जनता के लाभ के लिए सामाजिक जिम्मेदारियों को शामिल करके कानून और व्यवस्था बनाए रखने की इसकी पारंपरिक भूमिका का विस्तार किया गया है।

उदाहरण के लिए, जहां भी एक वरिष्ठ नागरिक को किसी ऐसे व्यक्ति के हाथों अतिचार या शोषण के रूप में खतरा महसूस होता है जो एक रिश्तेदार या देखभाल करने वाला या कोई अन्य तीसरा व्यक्ति हो सकता है या ऐसी स्थिति में जहां एक वरिष्ठ नागरिक अकेले हो सकता है और उसे चिकित्सा आपातकाल या आग लग सकती है, ऐसी स्थितियों में, वरिष्ठ नागरिक अपनी शिकायत दर्ज करने के लिए इस हेल्पलाइन 112 का उपयोग कर सकते हैं और पुलिस अपने गश्ती बल के अनुसार संकट में ऐसे वरिष्ठ नागरिकों तक तुरंत पहुंच सकती है और वरिष्ठ नागरिकों की शिकायत को दूर करने के लिए पहले उत्तरदाता के रूप में कार्य कर सकती है।

इसी तरह, यदि वरिष्ठ नागरिकों को किसी अवांछित तत्व के इशारे पर खतरा महसूस होता है, जो ऐसे वरिष्ठ नागरिकों की परेशानी को कम करता है, तो वह 112 नंबर तक पहुंच सकता है और पहली प्रतिक्रिया टीम इस

मुद्दे को हल करने के लिए जल्द से जल्द ऐसे वरिष्ठ नागरिकों तक पहुंचेगी, जिसमें स्थिति को कम करने के लिए मध्यस्थता का सहारा लेना भी शामिल है।

इसी तरह, चिकित्सा आपात स्थिति के मामले में, वरिष्ठ नागरिक प्रथम प्रतिक्रिया टीम तक पहुंच सकते हैं जो प्राथमिक चिकित्सा प्रदान कर सकते हैं या वरिष्ठ नागरिक को निकटतम स्वास्थ्य केंद्र/अस्पतालों में ले जा सकते हैं जहां प्राथमिक उपचार दिया जा सकता है और उसके बाद चिकित्सा सलाह के अनुसार, वरिष्ठ नागरिक को उपयुक्त अस्पताल में निर्देशित किया जा सकता है। यदि आगे विशेष उपचार की आवश्यकता है। इसी तरह आग जैसी आपदा के मामले में, पहली प्रतिक्रिया टीम तुरंत फायर ब्रिगेड को बुला सकती है जो तनाव के समय ऐसे वरिष्ठ नागरिकों के लिए आवश्यक कार्य कर सकती है।

128. इस प्रकार, यह देखा जाएगा कि राज्य सरकार द्वारा तैयार किए गए अधिनियम और नियमों और व्यापक कार्य योजना में जो कुछ भी दर्शाया गया है, वह एक निवारक और सुविधाजनक कार्य योजना है और यह कोई विशेष न्यायिक मंच नहीं बनाता है और न ही यह तत्काल निवारण प्रदान करते समय अधिकारियों के साथ कोई नई न्यायनिर्णयात्मक/ कानूनों के मौजूदा ढांचे से परे बलपूर्वक शक्तियां प्रदान करता है। उपर्युक्त प्रावधान/योजना से यह पता चलेगा कि प्रदान किए गए उपाय सेवा आधारित, पूर्व-निर्धारित और निवारक प्रकृति के हैं और निश्चित रूप से प्रतिक्रियात्मक या उपचारात्मक नहीं हैं।

129. कानून प्रवर्तन एजेंसी से जनता का मित्र बनने तक राज्य और उसके पुलिस बल की भूमिका में एक संक्रमणकालीन परिवर्तन लाना है। बुजुर्गों के लिए एक एकीकृत हेल्पलाइन बनाने और 'सवेरा योजना' के तहत वरिष्ठ नागरिकों की बड़ी आबादी को पंजीकृत कराने के प्रयास करने की अवधारणा मुख्य रूप से वरिष्ठ नागरिकों का एक डेटा बैंक बनाना है ताकि प्रभावी निगरानी की जा सके और ऐसे पसंदीदा वर्ग पर तुरंत ध्यान दिया जा सके और वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति के लिए इस तरह की सुरक्षा की परिकल्पना अधिनियम और नियमों में की गई है।

130. अब, यह न्यायालय को एक महत्वपूर्ण प्रावधान यानी अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 23 पर विचार करने के लिए लाता है, जिसका प्रभाव पड़ता है और यह न्यायाधिकरण को कुछ शक्तियां भी प्रदान करता है जो अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 5 से 9 में उल्लिखित शक्तियों के विपरीत हैं। संदर्भ में आसानी के लिए, धारा 23 को इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"23. संपत्ति का अंतरण ***कतिपय परिस्थितियों में शून्य*** *होगा--(1) जहां कोई वरिष्ठ नागरिक, जो इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात्, उपहार के रूप में या अन्यथा अपनी संपत्ति रखता है, इस शर्त के अधीन कि अंतरिती अंतरणकर्ता को बुनियादी सुविधाएं और बुनियादी भौतिक आवश्यकताएं प्रदान करेगा और ऐसा अंतरिती ऐसी सुविधाएं और भौतिक आवश्यकताएं प्रदान करने से इनकार करता है या विफल रहता है, संपत्ति के उक्त हस्तांतरण को धोखाधड़ी या जबरदस्ती या अनुचित प्रभाव में किया गया माना जाएगा और हस्तांतरणकर्ता के विकल्प पर न्यायाधिकरण द्वारा शून्य घोषित किया जाएगा।*

(2) जहां किसी वरिष्ठ नागरिक को किसी संपत्ति से भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकार है और ऐसी संपत्ति या उसका हिस्सा हस्तांतरित किया जाता है, वहां अंतरिती के खिलाफ भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकार लागू किया जा सकता है यदि अंतरिती को अधिकार की सूचना है, या यदि हस्तांतरण नि: शुल्क है; लेकिन विचार के लिए और अधिकार की सूचना के बिना हस्तांतरणकर्ता के खिलाफ नहीं।

(3) यदि कोई वरिष्ठ नागरिक उपधारा (1) और (2) के तहत अधिकारों को लागू करने में असमर्थ है, तो धारा 5 की उपधारा (1) के स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट किसी भी संगठन द्वारा उसकी ओर से कार्रवाई की जा सकती है।

131. पूर्वोक्त प्रावधान को पढ़ने पर, यह इंगित करेगा कि उक्त धारा को सक्रिय करने के लिए, उसमें उल्लिखित कुछ शर्तें मौजूद होनी चाहिए: -

(i) एक वरिष्ठ नागरिक द्वारा अपनी संपत्ति के इस अधिनियम के प्रारंभ के बाद उपहार के माध्यम से या अन्यथा एक हस्तांतरण किया जाता है;
(ii) इस तरह का अंतरण इस शर्त के अधीन है कि अंतरिती अंतरणकर्ता को बुनियादी सुविधाएं और बुनियादी भौतिक जरूरतों के लिए प्रदान करेगा;
(iii) उक्त शर्त के बावजूद, अंतरिती ऐसी सुविधाएं और भौतिक आवश्यकताएं प्रदान करने से इनकार करता है या विफल रहता है, जिसका वादा किया गया था;

132. यदि उपरोक्त तीन शर्तें सह-अस्तित्व में हैं, तो हस्तांतरणकर्ता के विकल्प पर किए गए इस तरह के हस्तांतरण को धोखाधड़ी या जबरदस्ती या अनुचित प्रभाव में किया गया माना जाएगा और हस्तांतरणकर्ता के विकल्प पर न्यायाधिकरण द्वारा शून्य घोषित किया जाएगा।

133. वरिष्ठ नागरिकों की रक्षा करने और उनके लिए एक सुरक्षित वातावरण बनाने का यह एक और तरीका है ताकि वे बेईमान लोगों के लिए एक आसान शिकार न बन सकें, जिनमें बच्चे/रिश्तेदार या तीसरे व्यक्ति (देखभाल करने वाले सहित) शामिल हो सकते हैं या नहीं भी हो सकते हैं, जो वरिष्ठ नागरिक का लाभ उठा सकते हैं, विशेष रूप से वे जो अपने दम पर रह रहे हैं या अपनी उम्र के साथ कमजोरियों के कारण ऐसे व्यक्तियों पर निर्भर हो सकते हैं।

134. यह धारा 23 जैसा कि ऊपर देखा गया है, सेवा में दबाए जाने से पहले तीन शर्तों को पूर्व-मानता है। तथ्य यह है कि तीन शर्तें मौजूद हैं, तो डीमिंग प्रावधान पूर्व-मानता है कि इस तरह के हस्तांतरण धोखाधड़ी, जबरदस्ती और अनुचित प्रभाव के कारण होता है, जिससे हस्तांतरणकर्ता के आदेश पर न्यायाधिकरण द्वारा लेनदेन को शून्य घोषित किए जाने के लिए कमजोर बना दिया जाता है।

135. जैसा कि ऊपर देखा गया है, न्यायाधिकरण का गठन धारा 7 के तहत किया जाता है जो राज्य के उपमंडल अधिकारी के पद से नीचे के अधिकारी द्वारा संचालित नहीं होता है। इसके अलावा, न्यायाधिकरण को धारा 23 में परिकल्पित एक लिखत को शून्य घोषित करने की शक्तियां प्रदान की गई हैं। 'शून्य' शब्द का अर्थ है, कुछ वैध नहीं है और स्थापना के बाद से बाध्यकारी नहीं है। इसलिए, उस सीमित संदर्भ में जहां एक अंतरिती जिसे एक सशर्त लिखत के आधार पर वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति में अनन्य कब्जा या अधिकार दिया जाता है, जैसा कि अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 23 में उल्लिखित है, तो जिस क्षण इस तरह के एक उपकरण को न्यायाधिकरण द्वारा शून्य घोषित किया जाता है जो लिखत की तारीख से प्रभावी होता है, फिर, जहां आवश्यक हो, कब्जे को हस्तांतरणकर्ता यानी वरिष्ठ नागरिक के पास अपनी स्थापना से ही मान्यता दी जा सकती है और न्यायाधिकरण अपने आदेश द्वारा कब्जा सौंप सकता है, जिसे नियम 21 और 22 सपठित धारा 21, 22 के संदर्भ में जिला मजिस्ट्रेट को प्रदत्त शक्तियों का उपयोग करते हुए अधिकारियों के माध्यम से लागू किया जा सकता है।

136. हालांकि, इसका मतलब यह नहीं है कि या तो भरण-पोषण न्यायाधिकरण या अपीलीय न्यायाधिकरण या जिला मजिस्ट्रेट को अधिकार से संबंधित किसी भी जटिल प्रश्न से निपटने के लिए एक निर्णायक भूमिका निभाने की शक्तियां प्रदान की जाएं, जो एक अधिकार, प्रामाणिक स्थापित कर सकता है, जो अधिनियम वर्ष 2007 के तहत वरिष्ठ नागरिकों के लिए प्रतिकूल हो सकता है और/या नियमित अदालतों का ध्यान आकर्षित कर रहा है या फ़ोरम।

137. अधिनियम की समग्र योजना पर विचार करने और धारा 23 के साथ-साथ **उर्मिला दीक्षित (उपरोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय की घोषणा को देखने के बाद, यह प्रकट करेगा कि धारा 23 के संदर्भ में स्थानांतरण के साधन को शून्य घोषित करने के बाद, जैसा भी मामला हो, भरण-पोषण न्यायाधिकरण/अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियां, वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति से अवांछनीय व्यक्ति को बेदखल करने सहित वरिष्ठ नागरिक के पक्ष में कब्जे के संबंध में आवश्यक आदेश पारित करना परिणामी है।

138. वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति से किसी भी व्यक्ति के कब्जे या हटाने का यह परिणामी आदेश, बेदखली की शक्ति की तुलना में पुनर्स्थापना की प्रकृति में अधिक है, जैसा कि पारंपरिक अर्थों में समझा जाता है और आम तौर पर किराए और किरायेदारी कानूनों से जुड़ा होता है।

139. आम तौर पर, बेदखली के आदेश सक्षम न्यायालयों/प्राधिकारियों द्वारा कुछ क़ानून या वैधानिक नियमों के संदर्भ में और पार्टियों के अधिकारों का पता लगाने के बाद और किसी पक्ष को कुछ प्रावधानों का उल्लंघन करने के लिए पाए जाने पर पारित किए जाते हैं जो दूसरे पक्ष को ऐसे चूककर्ता पक्ष को बेदखल करने का अधिकार देता है।

अनुवादित

140. अपने सरल अर्थ में बहाली शब्द का अर्थ है दूसरे से अन्यायपूर्ण रूप से ली गई किसी भी चीज़ को बहाल करना। इसकी जड़ें लैटिन मैक्सिम 'रेस्टिटिटुइओ' में हैं। बहाली के उपरोक्त सिद्धांत सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 144 में भी स्पष्ट रूप से सन्निहित हैं। बहाली शब्द का इस्तेमाल पहले आम कानून में किसी विशिष्ट चीज़ या स्थिति की वापसी या प्रत्यावर्तन को दर्शाने के लिए किया जाता था। आधुनिक कानूनी उपयोग में, इसका अर्थ अक्सर शामिल करने के लिए बढ़ाया गया है, न केवल बहाली या अपने सही मालिक को कुछ वापस देना, बल्कि, मुआवजा, प्रतिपूर्ति, क्षतिपूर्ति या किसी अन्य को होने वाले नुकसान या चोट के लिए प्राप्त लाभ का प्रत्यावर्तन।

141. बहाली का सिद्धांत भी भारतीय अनुबंध अधिनियम, 1872 की धारा 64 और 65 में प्रतिबिंबित होता है। संदर्भ में आसानी के लिए, उपरोक्त धारा 64 और 65 को इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"धारा 64: ***एक शून्यकरणीय अनुबंध के निरसन के परिणाम***
जब एक पार्टी जिसके विकल्प पर एक *अनुबंध शून्य करने योग्य है, उसे रद्द कर देता है, तो दूसरा पक्ष अनुबंध करने के लिए बाध्य नहीं होता है।*
जो पक्ष अनुबंध को रद्द करता है *और इसके तहत कोई लाभ प्राप्त करता है, उसे उस लाभ को बहाल करना चाहिए, जहां तक संभव हो, उस व्यक्ति को जिसके पास से यह प्राप्त हुआ था।*
धारा 65: उस व्यक्ति का दायित्व ***जिसने शून्य समझौते या अनुबंध के तहत लाभ प्राप्त किया है जो शून्य हो जाता है***
जब कोई समझौता *शून्य पाया जाता है या कोई अनुबंध शून्य हो जाता है, तो कोई भी व्यक्ति जिसे इसके तहत लाभ प्राप्त हुआ है, वह उस लाभ को बहाल करने के लिए बाध्य है, या इसके लिए मुआवजा देने के लिए, उस व्यक्ति को जिसके पास से यह प्राप्त हुआ था। इसका मतलब है कि उन्हें प्राप्त किसी भी लाभ को वापस करना होगा या इसके लिए मुआवजे का भुगतान करना होगा, यह सुनिश्चित करते हुए कि कोई भी अन्यायपूर्ण रूप से समृद्ध न हो।*

142. यह इस संदर्भ में है कि यदि अधिनियम की धारा 23 को देखा जाता है, तो यह इंगित करेगा कि यदि धारा 23 में परिकल्पित आवश्यक तत्व मौजूद हैं, जिसका अर्थ है कि एक दस्तावेज एक वरिष्ठ नागरिक द्वारा इस आधार पर निष्पादित किया जाता है कि जिस व्यक्ति के पक्ष में इस तरह के दस्तावेज निष्पादित किए जाते हैं, वह उक्त वरिष्ठ नागरिक को बनाए रखेगा। यदि अंतरिती शर्त का उल्लंघन करता है और वरिष्ठ नागरिक धारा 23 के संदर्भ में कोई कार्रवाई करता है और न्यायाधिकरण उक्त दस्तावेज को शून्य घोषित करता है, तो एक सहवर्ती के रूप में, प्रतिपूर्ति का मूलधन आकर्षित होता है और यह बहाली के उक्त अधिकार की मान्यता में है कि भरण-पोषण न्यायाधिकरण वरिष्ठ नागरिक को कब्जा बहाल करने का आदेश जारी कर सकता है।

143. अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 23 के संदर्भ में उल्लिखित और संदर्भित दस्तावेज की मूल अवधारणा इंगित करती है कि यह ट्रांसफ्री/प्राप्तकर्ता पर पारस्परिक दायित्वों को समाहित करता है और इस तरह के दायित्व के उल्लंघन पर यह लिखत को शून्य बना देता है और ऐसी परिस्थितियों में ट्रांसफ्री/दानकर्ता को अर्जित कोई भी लाभ स्वचालित रूप से समाप्त हो जाता है और ऐसी परिस्थितियों में ही वरिष्ठ नागरिक को कब्जा बहाल किया जा सकता है। इसका कारण यह है कि दस्तावेज़ निष्पादित होने के बाद भी दाता/ट्रांसफ्री (वरिष्ठ नागरिक) और ट्रांसफ्री/दानकर्ता (कानूनी उत्तराधिकारी या तीसरा पक्ष) दोनों कब्जे में हैं और ऐसा नहीं है कि तीसरे पक्ष के पास हस्तांतरणकर्ता/दाता/वरिष्ठ नागरिक को बाहर करने के लिए अनन्य कब्जे में है, इसलिए, जो कब्जा बहाल किया जाता है वह हस्तांतरणकर्ता/दाता/वरिष्ठ नागरिक का होता है। ट्रांसफ्री/प्राप्तकर्ता/तीसरे पक्ष द्वारा दावा किया गया कब्जा केवल निष्पादित उक्त लिखत से उत्पन्न होता है जो हस्तांतरणकर्ता/वरिष्ठ नागरिक की देखभाल करने के लिए प्रतिकारक दायित्व डालता है और इसे अमान्य माना जाता है तो इस तरह के कब्जे को कायम नहीं रखा जा सकता है और इसे प्रतिस्थापना के सिद्धांतों से शक्ति प्राप्त करके हस्तांतरणकर्ता/वरिष्ठ नागरिक को वापस करना पड़ता है।

144. दूसरी ओर, सामान्य और सामान्य परिस्थितियों में, एक वरिष्ठ नागरिक और उसके प्रतिद्वंद्वी के बीच किसी भी विवाद का निर्णय दीवानी न्यायालयों या अन्य मंचों में किया जाना होता है जो कानून के अनुसार उपलब्ध हो सकते हैं और ऐसे दीवानी न्यायालयों या मंचों में, न्यायिक अधिकारी या प्राधिकरण, जैसा भी मामला हो, प्राथमिकता देने के लिए अधिक संवेदनशील होंगे, अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 21 (ii) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, नियमावली वर्ष 2014 के नियम 21 और 22 सपठित किया गया। राज्य या जिला मजिस्ट्रेट, जो नियम 21 और 22 सपठित अधिनियम की धारा 19 और 20 के अनुसार बाध्य है, केवल वरिष्ठ नागरिकों की सामाजिक सुरक्षा के लिए एक मजबूत सामाजिक ढांचा बनाने के लिए आवश्यक है।

145. तथापि, अधिनियम या नियम अधिनियम वर्ष 2007 के संदर्भ में कुछ करने के लिए अधिभावी शक्तियों या प्राधिकार के साथ एक विशेष मंच या एक विशेष प्राधिकारी प्रदान या सृजन नहीं करते हैं जो अन्यथा केवल नियमित न्यायालयों और प्राधिकरणों के पास उपलब्ध है। धारा 3 के संदर्भ में इस अधिनियम की अधिभावी शक्तियां केवल अधिकरण या प्राधिकरण को प्रदत्त शक्तियों की सीमा तक सीमित हैं, जिन्हें उन्हें अधिनियम वर्ष 2007 के अनुसार निर्वहन करना है, न कि उससे अधिक। पारंपरिक मंच और न्यायालय कानून के अनुसार उन मामलों को आगे बढ़ाने के लिए स्वतंत्र हैं जो उन मामलों द्वारा आच्छादित नहीं किए गए हैं जो अधिनियम वर्ष 2007 के संदर्भ में अनुरक्षण न्यायाधिकरण, अपीलीय अधिकरण के दायरे और अधिकार क्षेत्र में हैं।

146. परंपरागत रूप से, किसी व्यक्ति को बेदखल करने का अधिकार किराया कानूनों में या विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 या संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 के संदर्भ में निहित है। अधिनियम वर्ष 2007 के तहत परिकल्पित न्यायाधिकरण सीमित क्षेत्राधिकार का एक प्राधिकरण है और वह भी केवल 10,000 रुपये की सीमा तक रखरखाव के मुद्दों से निपटता है। अधिनियम में परिभाषित 'संपत्ति' शब्द का बहुत व्यापक अर्थ है और इसमें चल और अचल, मूर्त या अमूर्त, पैतृक या स्व-अर्जित दोनों शामिल हैं। बेदखली की शक्ति से संबंधित

अन्य अधिनियम के प्रावधानों को दरकिनार करने के लिए अधिनियम की मंशा प्रतीत नहीं होती है, अन्यथा जहां एक न्यायाधिकरण जो रखरखाव आदेश पारित करने के लिए सक्षम है, अधिकतम 10,000/- रुपये की सीमा तक अप्रत्यक्ष रूप से एक वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति से निपटने का अधिकार नहीं दिया जा सकता है जो 10,000/- रुपये के मूल्य से कई गुना अधिक हो सकता है और उसकी आड़ में अधिनियम वर्ष 2007 के तहत न्यायाधिकरण या प्राधिकरण अन्य नियमित अदालतों और कानून द्वारा स्थापित मंच के दायरे में प्रवेश कर सकता है, जिसके पास विषय वस्तु पर अधिकार क्षेत्र है।

147. अब, अधिनियम वर्ष 2007 की घोषणा के साथ, यदि यह माना जाता है कि न्यायाधिकरण या जिला मजिस्ट्रेट के पास बेदखली का आदेश देने का अधिकार है तो ऐसी शक्ति के पास अधिनियम वर्ष 2007 के भीतर कुछ स्रोत होना चाहिए और उसके बाद ही इसे सेवा में लगाया जा सकता है या फिर यह कुछ प्राप्त करने के लिए एक अप्रत्यक्ष विधि होगी जो अधिनियम द्वारा सीधे प्रदान नहीं की गई है, और ऐसी व्याख्या वांछनीय नहीं होगी।

148. यह सच है कि अधिनियम वर्ष 2007 वरिष्ठ नागरिकों/माता-पिता के लिए एक सामाजिक लाभकारी कानून है और इसे उदारतापूर्वक उनके पक्ष में माना जाना चाहिए, फिर भी यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि व्याख्या के नियम न्यायालय को किसी कानून या अधिनियम के प्रावधान को पढ़ने का अधिकार नहीं देते हैं, एक ऐसी शक्ति जो अन्यथा स्पष्ट रूप से अनुपस्थित है, जैसा कि अधिनियम की योजना और उसके तहत बनाए गए नियम।

149. अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि अदालतें कानून नहीं बनाती हैं, बल्कि यह कानून की व्याख्या करती हैं। यद्यपि अधिनियम वर्ष 2007 एक सामाजिक लाभकारी विधान है, लेकिन इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि अदालतें अधिनियम में कुछ ऐसा नहीं पढ़ती हैं जो प्रदान नहीं किया गया है। यह संविधि के पालन का सुनहरा नियम है कि अधिनियम को सभी शब्दों और उपबंधों के साथ पढ़ा जाना चाहिए और इसे इस बात को ध्यान में रखते हुए व्यावहारिक बनाया जाना चाहिए कि सभी धाराओं को पूर्ण प्रभाव दिया जाता है और जहां तक संभव हो किसी भी प्रावधान को निरर्थक या अनावश्यक नहीं बनाया जाता है।

150. अदालत को कैसस ओमिसस के सिद्धांत को लागू करके अधिनियम में कुछ पढ़ने के लिए प्रलोभित किया जा सकता है, लेकिन यहां तक कि एक सामाजिक लाभकारी कानून में भी ऐसा करने के लिए, उद्देश्यपूर्ण व्याख्या का दृष्टिकोण अपनाते हुए, दिशानिर्देश हैं और जब तक उक्त दिशानिर्देश आकर्षित नहीं होते हैं, तब तक व्याख्या की शक्ति का प्रयोग करने की आड़ में अदालत को कानून को फिर से लिखने का अधिकार नहीं है। **भारत संघ बनाम देवकी नंदन अग्रवाल, 1992 सप्प (1) एस.सी.सी. 323 में**, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है: -

"14. हम *1 नवंबर, 1986 से पहले लागू पैराग्राफ 2 के प्रावधानों को "पांच साल से अधिक" और 1 नवंबर, 1986 के बाद की अवधि के लिए उसी पैराग्राफ में "चार साल से अधिक" के रूप में पढ़ने में न्यायाधीशों के तर्क को समझने में नुकसान में हैं। यह न्यायालय का कर्तव्य नहीं है कि वह कानून के दायरे को बढ़ाए या विधायिका के इरादे को बढ़ाए जब प्रावधान की भाषा स्पष्ट और स्पष्ट हो। अदालत इस अच्छे कारण से कानून को फिर से लिख नहीं सकती है, फिर से तैयार नहीं कर सकती है या फिर से तैयार नहीं कर सकती है कि उसके पास कानून बनाने की कोई शक्ति नहीं है। कानून बनाने की शक्ति अदालतों को नहीं दी गई है। न्यायालय किसी क़ानून में शब्दों को नहीं जोड़ सकता है या उसमें ऐसे शब्दों को नहीं पढ़ सकता है जो वहां नहीं हैं। यह मानते हुए कि विधायिका द्वारा उपयोग किए जाने वाले शब्दों में कोई दोष या चूक है, अदालत कमी को दूर करने या उसे पूरा करने के लिए उसकी सहायता नहीं कर सकती है। अदालतें तय करेंगी कि कानून क्या है और यह क्या होना चाहिए। अदालत निश्चित रूप से एक निर्माण को अपनाती है जो विधायिका के स्पष्ट इरादे को पूरा करेगी लेकिन खुद को कानून नहीं बना सकती है। लेकिन न्यायिक सक्रियता को शून्य विधायी निर्णय पर स्थापित करने के लिए लागू करना संवैधानिक सद्भाव और उपकरणों की समानता को नष्ट करना है। पी.के. उन्नी बनाम निर्मला इंडस्ट्रीज, (1990) 2 एस.सी.सी. 378, मांगीलाल बनाम सुगनचंद राठी एआईआर 1965 एस.सी. 101, श्री राम राम नारायण मेधी बनाम बॉम्बे राज्य, एआईआर 1959 एस.सी. 459, हीरा देवी (श्रीमती) बनाम जिला बोर्ड, शाहजहांपुर (1952) 2 एस.सी.सी. 154, नलीनाक्ष बायसाक बनाम श्याम सुंदर हलदर (1953) 1 एस.सी.सी. 167, गुजरात स्टील ट्यूब्स लिमिटेड बनाम गुजरात स्टील ट्यूब मजदूर सभा (1980) 2 एस.सी.सी. 593, जी. नारायणस्वामी बनाम जी. पन्नीरसेल्वम (1972) 3 एस.सी.सी. 717, एनएस वरदाचारी बनाम जी. वसंत पई (1972) 2 एस.सी.सी. 594, भारत संघ बनाम संकट चंद हिमतलाल शेठ (1977) 4 एस.सी.सी. 193 और सीएसटी बनाम औरियाया चैंबर ऑफ कॉमर्स, इलाहाबाद (1986) 3 एस.सी.सी. 50। योजना को संशोधित करना और बदलना और इसे उन लोगों पर लागू करना जो अन्यथा योजना के तहत हकदार नहीं हैं, भेदभाव से बचने के लिए कभी-कभी अदालतों द्वारा अपनाई गई सकारात्मक कार्रवाई के सिद्धांत के तहत भी नहीं आएंगे। अगर हम ऐसा कह सकते हैं, तो उच्च न्यायालय ने इस मामले में जो किया है वह विधायी शक्ति का स्पष्ट और नग्न हड़पना है।*

151. **मौलवी हुसैन हाजी अब्राहम उमर बनाम गुजरात राज्य, (2004) 6 एस.सी.सी. 672 में**, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है: -

"17. शब्द और वाक्यांश ऐसे प्रतीक हैं *जो संदर्भों के मानसिक संदर्भों को उत्तेजित करते हैं। किसी क़ानून की व्याख्या करने का उद्देश्य इसे लागू करने वाली विधायिका के इरादे का पता लगाना है। (देखें इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड अकाउंटेंट्स ऑफ इंडिया बनाम प्राइस वाटरहाउस [(1997) 6 एस.सी.सी. 312: एआईआर 1998 एस.सी. 74] । विधायिका का इरादा मुख्य रूप से इस्तेमाल की गई भाषा से इकट्ठा किया जाना है, जिसका अर्थ है कि जो कहा गया है उस पर ध्यान दिया जाना चाहिए और जो नहीं कहा गया है उस पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। परिणामस्वरूप, एक निर्माण जिसे शब्दों के समर्थन, जोड़ या प्रतिस्थापन की आवश्यकता होती है या जिसके परिणामस्वरूप शब्दों को अर्थहीन माना जाता है, से बचना चाहिए। जैसा कि क्रॉफर्ड बनाम में देखा गया*

है। स्पूनर [(1846) 6 मू पीसी 1: 4 एमआईए 179] , अदालतें विधायिकाओं के किसी अधिनियम के दोषपूर्ण वाक्यांशों की सहायता नहीं कर सकती हैं, हम जोड़ या सुधार नहीं कर सकते हैं, और निर्माण द्वारा उन कमियों को पूरा कर सकते हैं जो वहां रह गई हैं। (देखें गुजरात राज्य बनाम दिलीपभाई नाथजीभाई पटेल [(1998) 3 एस.सी.सी. 234: 1998 एस.सी.सी. (सीआरआई) 737: जेटी (1998) 2 एस.सी. 253] । किसी अधिनियम में शब्दों को पढ़ना निर्माण के सभी नियमों के विपरीत है जब तक कि ऐसा करना नितांत आवश्यक न हो। [स्टॉक बनाम फ्रैंक जोन्स (टिपटन) लिमिटेड देखें [(1978) 1 ऑल ईआर 948: (1978) 1 डब्ल्यूएलआर 231 (एचएल)]] व्याख्या के नियम अदालतों को ऐसा करने की अनुमति नहीं देते हैं, जब तक कि प्रावधान अर्थहीन या संदिग्ध अर्थ का न हो। अदालतों को संसद के अधिनियम में शब्दों को पढ़ने का अधिकार नहीं है जब तक कि इसके लिए स्पष्ट कारण अधिनियम के चारों कोनों के भीतर न पाया जाए। (प्रति लॉर्ड लोरेबर्न, एल.सी. विकर्स संस एंड मैक्सिम लिमिटेड बनाम इवांस [1910 एसी 444: 79 एलजेकेबी 954 (एचएल)] में उद्धृत जुम्मा मस्जिद बनाम कोडिमनिएंड्रा देविया [एआईआर 1962 एस.सी. 847] में उद्धृत।

18. सवाल यह नहीं है कि क्या माना जा सकता है और क्या इरादा किया गया है, बल्कि सवाल यह है कि क्या कहा गया है। "क़ानून को यूक्लिड के प्रमेयों के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए", न्यायाधीश लर्न हैंड ने कहा, "लेकिन शब्दों को उन उद्देश्यों की कुछ कल्पना के साथ समझा जाना चाहिए जो उनके पीछे हैं"। (देखें लेनिघ वैली कोल कंपनी बनाम येनसवेज [218 एफआर 547]। इस विचार को भारत संघ बनाम वेडेम वास्को डी गामा के फिलिप टियागो डी गामा [(1990) 1 एस.सी.सी. 277: एआईआर 1990 एस.सी. 981] (एस.सी.सी. पी. 284, प्रस्तर-16) में दोहराया गया था।

19. डी.आर. वेंकटचलम बनाम उप परिवहन आयुक्त में। [(1977) 2 एस.सी.सी. 273: एआईआर 1977 एस.सी. 842] यह देखा गया कि अदालतों को वैचारिक संरचना या योजना की अपनी पूर्वकल्पित धारणाओं के आधार पर प्रावधान के अर्थ के प्राथमिक निर्धारण के खतरे से बचना चाहिए, जिसमें व्याख्या किए जाने वाले प्रावधान कुछ हद तक फिट हैं। वे व्याख्या की आड़ में विधायी कार्य को हड़पने के हकदार नहीं हैं।

20. किसी प्रावधान की व्याख्या करते समय न्यायालय केवल कानून की व्याख्या करता है और उसे कानून नहीं बना सकता है। यदि कानून के किसी प्रावधान का दुरुपयोग किया जाता है और कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अधीन किया जाता है, तो यह विधायिका पर निर्भर करता है कि यदि आवश्यक समझा जाए तो इसमें संशोधन, संशोधन या निरस्त किया जाए। (सीएसटी बनाम पॉपुलर ट्रेडिंग कंपनी [(2000) 5 एस.सी.सी. 511 देखें]) विधायी कैसस ओमिसस को न्यायिक व्याख्यात्मक प्रक्रिया द्वारा आपूर्ति नहीं की जा सकती है।

21. निर्माण के दो सिद्धांत - *एक कैसस ओमिसस से संबंधित और दूसरा क़ानून को समग्र रूप से पढ़ने के संबंध में - अच्छी तरह से स्थापित प्रतीत होते हैं। पहले सिद्धांत के तहत, स्पष्ट आवश्यकता के मामले को छोड़कर, और जब इसका कारण क़ानून के चारों कोनों में पाया जाता है, तो अदालत द्वारा एक कैसस ओमिसस की आपूर्ति नहीं की जा सकती है, लेकिन साथ ही, एक कैसस ओमिसस का आसानी से अनुमान नहीं लगाया*

जाना चाहिए, और उस उद्देश्य के लिए, एक क़ानून या धारा के सभी हिस्सों को एक साथ समझा जाना चाहिए, और एक धारा के प्रत्येक खंड को संदर्भ के साथ समझा जाना चाहिए। संदर्भ और उसके अन्य खंडों के लिए ताकि किसी विशेष उपबंध पर किए जाने वाले निर्माण को पूरे संविधि का एक सुसंगत अधिनियमन किया जा सके। यह तब और अधिक होगा जब किसी विशेष खंड के शाब्दिक निर्माण से स्पष्ट रूप से बेतुके या विषम परिणाम निकलते हैं जो विधायिका द्वारा अभिप्रेत नहीं हो सकते थे। "एक अनुचित परिणाम उत्पन्न करने का इरादा", डैंकवर्ट्स, एलजे, आर्टेमिउ बनाम में कहा। प्रोकोपियो [(1966) 1 क्यूबी 878: (1965) 3 ऑल ईआर 539: (1965) 3 डब्ल्यूएलआर 1011 (सीए)] (सभी ईआर पी. 544 आई), "यदि कोई अन्य निर्माण उपलब्ध है तो इसे क़ानून में आरोपित नहीं किया जाना चाहिए"। जहां शब्दों को शाब्दिक रूप से लागू करना है "कानून के स्पष्ट इरादे को हरा देगा और पूरी तरह से अनुचित परिणाम उत्पन्न करेगा", हमें "शब्दों के साथ कुछ हिंसा करनी चाहिए" और इसलिए उस स्पष्ट इरादे को प्राप्त करना चाहिए और एक तर्कसंगत निर्माण का उत्पादन करना चाहिए। [ल्यूक बनाम आईआरसी में लॉर्ड रीड [1963 एसी 557: (1963) 1 ऑल ईआर 655: (1963) 2 डब्ल्यूएलआर 559(एचएल)] जहां एसी पी. 577 में उन्होंने यह भी देखा: (ऑल ईआर पी. 664 आई) "यह कोई नई समस्या नहीं है, हालांकि हमारे प्रारूपण का मानक ऐसा है कि यह शायद ही कभी उभरता है।

22. तब यह सच है कि,

"जब किसी कानून के शब्द शायद *ही कभी होने वाली असुविधा तक नहीं पहुंचते हैं, बल्कि अक्सर होने वाले असुविधा के कारण होते हैं, तो यह अच्छा कारण है कि शब्दों को आगे तक न बढ़ाया जाए, यह कहकर कि यह कैसस ओमिसस है, और कानून का इरादा क्वे फ्रीक्वेंटियस एसीडंट है"।*

"लेकिन", दूसरी ओर, "यह कोई कारण नहीं है, जब किसी कानून के शब्द एक असुविधा के लिए पर्याप्त रूप से विस्तारित होते हैं, तो शायद ही कभी होता है, कि उन्हें इसका विस्तार नहीं करना चाहिए और साथ ही यदि यह अधिक बार होता है, क्योंकि ऐसा होता है लेकिन शायद ही कभी" (देखें फेंटन बनाम हैम्पटन [(1858) 11 मू पीसी 347: 6 डब्ल्यूआर 341])। एक कैसस ओमिसस को व्याख्या द्वारा नहीं बनाया जाना चाहिए, कुछ मजबूत आवश्यकता के मामले में छोड़कर। जहां, हालांकि, एक कैसस ओमिसस वास्तव में होता है, या तो विधायिका की अनजाने के माध्यम से, या सिद्धांत पर कि क्वोड सेमेल ऑट बीआईएस मौजूद है, विधायकों के लिए, नियम यह है कि विशेष मामला, इस प्रकार के लिए अप्रदान किया गया है, को कानून के अनुसार निपटाया जाना चाहिए क्योंकि यह इस तरह के क़ानून से पहले अस्तित्व में था - कैसस ओमिसस एट ओब्लिवियोनि डेटस डिस्पोज़िशनी कम्युनिस ज्यूरिस रिलिक्विटर; "ए कैसस ओमिसस", जोन्स वी। स्मार्ट [(1785) 1 टीआर 44: 99 ईआर 963] (ईआर पी. 967), "किसी भी मामले में कानून की अदालत द्वारा आपूर्ति नहीं की जा सकती है, इसके लिए कानून बनाना होगा"।

23. वसीयत, विधियों और वास्तव में, सभी लिखित उपकरणों को बनाने के लिए सुनहरा नियम इस प्रकार कहा गया है:

"शब्दों के व्याकरणिक और सामान्य अर्थ का पालन किया जाना चाहिए जब तक कि इससे कुछ बेतुकापन या बाकी उपकरण के साथ कुछ घृणा या असंगति न हो, जिस स्थिति में शब्दों के व्याकरणिक और सामान्य अर्थ को संशोधित किया जा सकता है, ताकि उस बेतुकेपन और असंगति से बचा जा सके, लेकिन आगे नहीं" (देखें ग्रे बनाम पियर्सन [(1857) 6 एचएल कैस 61 : 26 एलजे सीएच 473])।

हालाँकि, इस "सुनहरे नियम" के बाद के भाग को बहुत सावधानी के साथ लागू किया जाना चाहिए। "अगर", जर्विस, सीजे ने टिप्पणी की,

उपयोग किए गए सटीक शब्द स्पष्ट और स्पष्ट हैं, हमारे निर्णय में, हम उन्हें उनके सामान्य अर्थों में समझने के लिए बाध्य हैं, भले ही यह मामले के बारे में हमारे विचार में, एक बेतुकेपन या प्रकट अन्याय की ओर ले जाता है। शब्दों को संशोधित या विविध किया जा सकता है, जहां उनका आयात संदिग्ध या अस्पष्ट है। लेकिन हम विधायकों के कार्यों को तब मानते हैं जब हम उपयोग किए गए सटीक शब्दों के सामान्य अर्थ से अलग हो जाते हैं, केवल इसलिए कि हम देखते हैं, या कल्पना करते हैं, उनके शाब्दिक अर्थ के पालन से एक बेतुकापन या प्रकट अन्याय "। (देखें एबली बनाम डेल [(1851) 11 सीबी 378: 138 ईआर 519], ईआर पी. 525।

152. एक बार, विधायिका ने अधिनियम और नियमों को तैयार करते समय बेदखली की ऐसी शक्तियां प्रदान नहीं की हैं और न ही इस बात का कोई संकेत है कि ऐसी शक्तियां या तो कार्य योजना में प्रदान की गई हैं, ऐसी परिस्थितियों में, इस न्यायालय के लिए अधिनियम में कुछ पढ़ना और कुछ शक्तियों के साथ सीमित क्षेत्राधिकार वाले प्राधिकरण या न्यायाधिकरण का निवेश करना उचित नहीं होगा, जिसे विधायिका ने अपने विवेक से जानबूझकर बाहर कर दिया था। ऐसे प्राधिकरण या न्यायाधिकरण का कार्यक्षेत्र।

153. यह पूर्वोक्त पृष्ठभूमि में है कि धारा 23 को एक स्टैंड अलोन धारा के रूप में माना जाता है और केवल तीन पूर्व-शर्तों के पालन पर, कि उक्त धारा लागू होती है और केवल ऐसी परिस्थितियों में जो सीमित हैं और यहां ऊपर समझाया गया है, एक सीमित मामले में भरण-पोषण न्यायाधिकरण/अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा पारित किए जा रहे आदेश पर साधन को शून्य घोषित कर सकते हैं, एक आवश्यक परिणाम के रूप में और आदेश के परिणामी प्रभाव के रूप में, वरिष्ठ नागरिक के पास कब्जा वापस रखा जा सकता है और केवल उस सीमित सीमा तक, न्यायाधिकरण क्षतिपूर्ति का आदेश पारित कर सकता है जिसे लागू किया जा सकता है और यदि आवश्यक हो तो पुलिस अधिकारियों की सहायता लेकर जिला मजिस्ट्रेट के माध्यम से किया जा सकता है।

154. हमारे देश में हम कानून के शासन का पालन करते हैं। किसी पक्ष के कब्जे को पवित्रता के साथ देखा जाता है और कब्जे को बाधित करने के लिए किसी व्यक्ति के किसी भी कार्य को गंभीरता से देखा जाता है। गौरतलब है कि एक ऐसा अंतर है जिसे एक ऐसे कार्य पर विचार करते हुए ध्यान में रखा जाना चाहिए जहां

कोई व्यक्ति अतिचार की वास्तविक प्रक्रिया में हो सकता है, जो उस स्थिति के विपरीत हो सकता है जहां किसी व्यक्ति ने अतिक्रमण किया हो और अपने कब्जे का निपटान किया हो।

155. इस संबंध में, **राम रतन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1977) 1 एस.सी.सी. 188 में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियां**; प्रासंगिक होंगी जिन्हें निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"4. .....हालांकि, हम सोचते हैं *कि इस न्यायालय का बसे हुए कब्जे की प्रकृति को परिभाषित करने का मतलब यह नहीं है। किसी भी कठोर और तेज़ नियम को निर्धारित करना वास्तव में कठिन है कि एक अतिचारकर्ता का कब्ज़ा कब एक व्यवस्थित कब्जे में परिपक्व हो सकता है। लेकिन इस न्यायालय का वास्तव में मतलब यह था कि अतिचार करने वाले का कब्जा प्रभावी, अबाधित और मालिक की जानकारी में या छिपाने के किसी भी प्रयास के बिना होना चाहिए। उदाहरण के लिए, कब्जे का एक आवारा या आकस्मिक कार्य निपटाए गए कब्जे के बराबर नहीं होगा। 'बसे हुए कब्जे' शब्द में कोई विशेष आकर्षण या जादू नहीं है और न ही यह एक अनुष्ठानिक सूत्र है जिसे एक स्ट्रेट-जैकेट में सीमित किया जा सकता है, लेकिन इसका उपयोग किसी व्यक्ति के इस तरह के स्पष्ट और प्रभावी कब्जे के लिए किया गया है, भले ही वह एक अतिचारी हो, जिसे आपराधिक कानून के तहत सच्चे मालिक द्वारा हमले के खिलाफ अपनी संपत्ति की रक्षा करने का अधिकार मिलता है। इस प्रकार हमारी राय में ऐसे मामलों में कब्जे की प्रकृति जो एक अतिचारी को संपत्ति और व्यक्ति की निजी रक्षा के अधिकार का प्रयोग करने का अधिकार दे सकती है, में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए:*

"(i) अतिचार करने वाले को *पर्याप्त रूप से लंबी अवधि में संपत्ति के वास्तविक भौतिक कब्जे में होना चाहिए;*

(ii) कि कब्जा *या तो मालिक के ज्ञान के लिए व्यक्त या निहित होना चाहिए या छिपाने के किसी भी प्रयास के बिना और जिसमें एनिमस पॉसेंडी का एक तत्व शामिल है। हालाँकि, अतिचार करने वाले के कब्जे की प्रकृति प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर तय की जाने वाली बात होगी;*

(iii) *अतिचार करने वाले द्वारा सच्चे मालिक को बेदखल करने की प्रक्रिया पूर्ण और अंतिम होनी चाहिए और वास्तविक मालिक द्वारा स्वीकार की जानी चाहिए; और*

(iv) कृषि *योग्य भूमि के मामले में बसे हुए कब्जे की गुणवत्ता निर्धारित करने के लिए सामान्य परीक्षणों में से एक यह होगा कि अतिक्रमण करने वाले ने कब्जा लेने के बाद कोई फसल उगाई थी या नहीं। यदि फसल अतिचारी द्वारा उगाई गई थी, तो सच्चे मालिक को भी अतिचारी द्वारा उगाई गई फसल को नष्ट करने और जबरन कब्जा करने का कोई अधिकार नहीं है, इस स्थिति में अतिचार करने वाले को निजी रक्षा का अधिकार होगा और सच्चे मालिक को निजी रक्षा का कोई अधिकार नहीं होगा।*

156. यह देखना प्रासंगिक होगा कि निषेधाज्ञा सबसे विपुल निवारक राहतों में से एक है जो अदालतों द्वारा मांगी और दी जाती है, हालांकि, अधिनियम वर्ष 2007 के तहत या नियमावली वर्ष 2014 के संदर्भ में न्यायाधिकरण या जिला मजिस्ट्रेट को ऐसी किसी भी शक्ति के साथ निवेश नहीं किया गया है।

157. इस प्रकार, जहां न्यायाधिकरण या जिला मजिस्ट्रेट के पास कानूनी दायित्व के उल्लंघन को रोकने के लिए निषेधाज्ञा देने की शक्ति नहीं है और फिर यह सुझाव देने के लिए कि उसी न्यायाधिकरण या जिला मजिस्ट्रेट को किसी भी स्पष्ट शक्ति के अभाव में किसी व्यक्ति को बेदखल करने की शक्ति दी गई है, असंगत हो जाता है।

158. ऐसी स्थिति हो सकती है जहां कानून की अदालत में कुछ ठोस कार्यवाही लंबित है जिसमें एक वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता शामिल हैं जहां विवादास्पद प्रश्न विचाराधीन हो सकते हैं, जिसमें कब्जे/बेदखली की राहत शामिल है। फिर क्या एक साथ यह कहा जा सकता है कि वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता न्यायाधिकरण या जिला मजिस्ट्रेट से संपर्क कर सकते हैं और संक्षिप्त कार्यवाही के माध्यम से बेदखली/कब्जे का आदेश प्राप्त कर सकते हैं, जबकि दूसरा पक्ष नियमित अदालतों के समक्ष लगा रहता है, यह भी अधिनियम और नियमों की योजना के अनुरूप प्रतीत नहीं होता है।

159. इस प्रकार, उपरोक्त सभी कारणों से, इस न्यायालय का मानना है कि अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 21 के संदर्भ में या नियमावली वर्ष 2014 के नियम 21 और 22 के संदर्भ में प्रयोग की गई शक्तियों में ऊपर बताए गए को छोड़कर, जहां अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 23 लागू होती है, बेदखली का आदेश पारित करना शामिल नहीं हो सकता है।

G. संदर्भित प्रश्नों का सारांश और उत्तर : -

160. यहां ऊपर की गई विस्तृत चर्चाओं के आलोक में हम संदर्भ को निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं और उसका उत्तर देते हैं: -

प्रश्न (i) और (ii)

अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 7 के तहत धारा 7, 8 और 9 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए गठित भरण-पोषण न्यायाधिकरण को अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 5 के संदर्भ में अपने समक्ष आवेदन पर निर्णय लेते समय बेदखली का आदेश पारित करने का अधिकार नहीं है। अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 15 और 16 के संदर्भ में अपीलीय न्यायाधिकरण को भी बेदखली का आदेश देने की शक्ति प्रदान नहीं की गई है, सिवाय इसके कि जहां अपील में अपीलीय न्यायाधिकरण अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 23 की दलील से उत्पन्न वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता की प्रार्थना की अनुमति देता है।

प्रश्न संख्या। (iii)

अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 21 के दायरे को ध्यान में रखते हुए, प्राधिकरण बेदखली का आदेश पारित करने के लिए सक्षम नहीं है क्योंकि नियमावली वर्ष 2014 की धारा 21 और नियम 21 और 22 जिला मजिस्ट्रेट को बेदखली की कोई शक्ति प्रदान नहीं करते हैं। तथापि, भरण-पोषण अधिकरण/अपीलीय अधिकरण केवल अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 23 द्वारा आच्छादित किए गए मामलों में, जब वह किसी दस्तावेज/लिखत को शून्य घोषित कर देता है, तो अपनी प्रतिपूर्ति शक्तियों का प्रयोग करने वाले सहवर्ती के रूप में वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता को कब्जा वापस कर सकता है।

प्रश्न संख्या। (iv)

प्रश्न संख्या 10 के उत्तर में। (iv), हम पाते हैं कि **शिवानी वर्मा (उपरोक्त)** में खंडपीठ द्वारा दिया गया निर्णय सही कानून निर्धारित नहीं करता है और तदनुसार, इसे खारिज कर दिया जाता है। **स्वराज वरुण (उपरोक्त)** और **बिपराजी सिंह (उपरोक्त)** में खंड पीठ के निर्णय में जहां तक वे मानते हैं कि बेदखली की शक्ति भरण-पोषण न्यायाधिकरण को प्रदान नहीं की गई है और अपीलीय न्यायाधिकरण या जिला मजिस्ट्रेट को एक संशोधन के साथ बरकरार रखा गया है कि यह अपवाद के अधीन है जहां एक मामला अधिनियम वर्ष 2007 की धारा 23 द्वारा आच्छादित किया जाता है और एक दस्तावेज को शून्य घोषित किया जाता है तो भरण-पोषण न्यायाधिकरण / अपीलीय अधिकरण अपनी बहाली शक्तियों का प्रयोग करते हुए, किसी दिए गए मामले में, जहां आवश्यक हो, वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता को कब्जे को बहाल/सौंप सकता है।

161. संदर्भ का उत्तर तदनुसार दिया जाता है।

162. मामले को अब गुण-दोष के आधार पर अपने निर्णयों के लिए संबंधित न्यायालय के समक्ष रखा जाएगा।

(2025) 5 ILRA 1165

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ, 07.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजन राय

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 37 के अधीन अपील, दोषपूर्ण संख्या–9 वर्ष 2025

परियोजना निदेशक, उत्तर प्रदेश स्वास्थ्य प्रणाली विकास परियोजना, लखनऊ एवं अन्य ... अपीलार्थीगण

बनाम

वाणिज्यिक न्यायालय संख्या 1, लखनऊ एवं अन्य ... प्रत्यर्थीगण

अपीलार्थीगण की ओर से अधिवक्ता: मुख्य स्थायी अधिवक्ता

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता: अभिनव भट्टाचार्य

(A) सिविल विधि - मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 - धाराएँ 34, 34(3), 37 एवं 43 - वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 - धाराएँ 13, 13(1क) एवं 29(2) - परिसीमा अधिनियम, 1963 - धाराएँ 5 एवं 12 - अनुच्छेद 116, 117 - मध्यस्थता अधिनियम की धारा 37 के अधीन, वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 13 के साथ पठित अपील–वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को चुनौती देते हुए–मध्यस्थता वाद–मध्यस्थीय अधिनिर्णय–मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34 के अधीन मध्यस्थीय अधिनिर्णय को अपास्त करने के लिए प्रस्तुत आवेदन–परिसीमा के आधार पर खारिज–वर्तमान अपील–प्रथा एवं प्रक्रिया–न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि–विलंब माफी के आवेदन पर विचार करने से पूर्व, सिविल न्यायालयों, अधिकरणों या मध्यस्थों को पक्षकार के रूप में संयोजित करने की बढ़ती हुई प्रथा की कड़ी निंदा की- अपीलों या रिट याचिकाओं में उनके न्यायिक आदेशों को चुनौती दिए जाने पर ऐसे सिविल न्यायालयों, अधिकरणों या मध्यस्थों को प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाए जाने की प्रथा–न्यायिक क्षमता में कार्य करने वाले ऐसे निर्णायक निकाय व्यक्तिगत अभियोजन से तब तक उन्मुक्त रहते हैं, जब तक कदाचार के संबंध में विशिष्ट और गंभीर आरोप नहीं लगाए जाते–अभिनिर्धारित किया गया कि–वर्तमान मामले में न तो वाणिज्यिक न्यायालय का कोई व्यक्तिगत हित था और न ही मध्यस्थ के विरुद्ध कोई आरोप था और इसलिए, न्यायालय ने उन्हें पक्षकारों की सूची से हटाने का निर्देश दिया–न्यायिक स्वतंत्रता और प्रक्रियात्मक औचित्य को बनाए रखने के लिए, न्यायालय ने बाध्यकारी प्रक्रिया संबंधी निर्देश जारी किया कि–वादकारियों को मध्यस्थता और सुलह अधिनियम,

1996 की धारा 34 या 37 के अधीन अपीलों में न्यायालयों, अधिकरणों या मध्यस्थों को तब तक पक्षकार नहीं बनाना चाहिए, जब तक कि कदाचार या दुराचरण के पुष्ट दावे न हों। (पैरा–4, 8, 9)

(B) सिविल विधि - मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 - धाराएँ 34, 34(3), 37 एवं 43 - वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 - धाराएँ 13, 13(1क) एवं 29(2) - परिसीमा अधिनियम, 1963 - धाराएँ 5 एवं 12 - अनुच्छेद 116, 117 - मध्यस्थता अधिनियम की धारा 37 के अधीन, वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम की धारा 13(1क) के साथ पठित अपील–मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34 के अधीन प्रस्तुत आवेदन को खारिज करने वाले आक्षेपित वाणिज्यिक न्यायालय के आदेश को चुनौती–संविदा–अदत्त बिलों और प्रतिकर को लेकर विवाद उत्पन्न–मध्यस्थता कार्यवाही–मध्यस्थीय अधिनिर्णय–मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34 के अधीन मध्यस्थीय अधिनिर्णय को अपास्त करने के लिए प्रस्तुत आवेदन–परिसीमा के आधार पर खारिज–वर्तमान अपील–परिसीमा विधि–न्यायालय ने पाया कि अपील प्रारंभ में धारा 13(1क) के अधीन निर्धारित 60 दिनों की वैधानिक अवधि के पश्चात दायर की गई थी, जिसमें 77 दिनों का विलंब हुआ और तत्पश्चात पुनःदाखिल करने में कुल 93 दिनों का विलंब हुआ- अपीलार्थी ने प्रशासनिक अनुमोदनों, विधिक परामर्श और दस्तावेजों के संकलन का हवाला देते हुए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन विलंब माफी की मांग की–न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ऐसे कारण अपर्याप्त हैं और विलंब का कारण नौकरशाही की अक्षमता तथा तत्परता के अभाव को माना–न्यायालय ने पुनः स्पष्ट किया कि धारा 5 के अधीन "पर्याप्त कारण" की परिधि इतनी लोचदार नहीं है कि वाणिज्यिक वादों में हुए दीर्घकालिक विलंब को समायोजित किया जा सके, विशेष रूप से शीघ्र निस्तारण के विधायी अधिदेश को ध्यान में रखते हुए–फलतः विलंब माफी का आवेदन अस्वीकार कर दिया गया और अपील परिसीमा द्वारा वर्जित होने के कारण खारिज कर दी गई। (पैरा–28, 29, 30, 31, 32)

आवेदन खारिज किया गया। (ई-11)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. सावित्री देवी बनाम जिला न्यायाधीश, गोरखपुर एवं अन्य – एआईआर 1999 एससी 976
2. कंसोलिडेटेड इंजीनियरिंग एंटरप्राइजेज बनाम इरिगेशन डिपार्टमेंट – (2008) 7 एससीसी 169
3. भारत संघ बनाम वरिंदेरा कंस्ट्रक्शन्स लिमिटेड – (2020) 2 एससीसी 111
4. मेसर्स एन. वी. एस. इंटरनेशनल बनाम स्टेट ऑफ असम एवं अन्य – (2020) 2 एससीसी 109
5. महाराष्ट्र सरकार बनाम मेसर्स बोर्स ब्रदर्स इंजीनियर्स एंड कॉन्ट्रैक्टर्स प्राइवेट लिमिटेड – 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 233
6. वी. एस. नागराजन बनाम एस.के.एस. इस्पात एंड पावर लिमिटेड एवं अन्य – (2022) 2 एससीसी 244
7. सावित्री देवी बनाम जिला न्यायाधीश, गोरखपुर एवं अन्य – एआईआर 1999 एससी 976

5.इला परियोजना निदेशक, उत्तर प्रदेश स्वास्थ्य प्रणाली विकास परियोजना, लखनऊ एवं अन्य बनाम वाणिज्यिक न्यायालय संख्या 1 लखनऊ एवं अन्य 1515

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा)

सी.एम. आवेदन संख्या-आईए/1/2025 पर आदेश: विलंब की माफी के लिए आवेदन

(1) अपीलकर्ताओं के अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री तुषार वर्मा और अपील दायर करने में देरी की माफी के लिए प्रस्तुत आवेदन पर प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता श्री अभिनव भट्टाचार्य को सुना।

प्रस्तावना

(2) प्रस्तुत अपील अपीलकर्ताओं द्वारा मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 13 सपठित है, जिसमें मध्यस्थता मामले संख्या-08 वर्ष 2023 में विद्वान पीठासीन अधिकारी, वाणिज्यिक न्यायालय संख्या-1, लखनऊ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 07.09.2024 को बाधित किया गया है: परियोजना निदेशक, यू.पी.एच.एस.डी.पी., लखनऊ और अन्य बनाम मैसर्स मारुति कंस्ट्रक्शन) के साथ-साथ मध्यस्थ द्वारा पारित 31.01.2021 का आर्बिट्रल पंचाट भी पारित किया गया।

(3) मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के तहत दिनांक 31.01.2021 के मध्यस्थ पंचाट के खिलाफ आवेदन को परिसीमा के आधार पर खारिज कर दिया गया है।

अनुवादित

<u>अभ्यास निर्देशों पर आदेश</u>

(4) प्रस्तुत अपील दायर करने में देरी के लिए आवेदन पर निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ने से पहले, अपील या रिट में प्रतिपक्षी के रूप में दीवानी अदालत और/या न्यायाधिकरणों को आरोपित करने की बढ़ती प्रवृत्ति पर ध्यान देना उचित है, जिसमें उक्त दीवानी अदालत या न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश को उसके साथ आक्षेपित किया गया है। हालांकि ऐसा लगता है कि उक्त मुद्दे पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 25 साल पहले निर्णय लिया गया था, जबकि दीवानी अदालत या न्यायाधिकरण की व्यवस्था में हालिया उछाल, जैसा भी मामला हो, इसके पीठासीन अधिकारी के माध्यम से, इस न्यायालय को स्थापित कानून को दोहराने का एक अनिवार्य कर्तव्य है। ऐसा कहने के बाद, यह समझा जाना चाहिए कि इस देश में न्यायालय/न्यायाधिकरण, जब न्यायिक क्षमता में कार्य करते हैं, तो न्यायालय/न्यायाधिकरण के उस विशेष पीठासीन अधिकारी के खिलाफ दुर्भावना, पक्षपात, पूर्वाग्रह आदि के आरोपों जैसे अपवादों के साथ, अपनी व्यक्तिगत या व्यक्तिगत क्षमता में न्यायालय के रूप में मुकदमा चलाने और मुकदमा चलाने से कुछ प्रकार की छूट प्राप्त करते हैं जिसे आरोप लगाने से पहले उच्च स्तर की सीमा को पूरा करने की आवश्यकता है। हम पाते हैं कि इन दीवानी न्यायालयों/न्यायाधिकरणों को किसी भी कार्यवाही में पक्षकार नहीं बनाया जा सकता है, जिसमें उन्होंने मामले का फैसला किया है, क्योंकि ये निर्णय न्यायिक कार्यवाही में अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा सुधार के अधीन हैं। ये निर्णय न्यायिक कार्यवाही में अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा सुधार के अधीन हैं। हमारे इस दृष्टिकोण का समर्थन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सावित्री देवी बनाम जिला न्यायाधीश, गोरखपुर एवं अन्य

में दिया गया निर्णय करता है : ए.आई.आर. 1999, जो आज भी प्रासंगिक है और निष्कर्ष भाग में निम्नानुसार लिखा गया है :-

'इस मामले से अलग होने से पहले हमारे लिए यह जरूरी है कि हम इस मामले के एक पहलू की ओर इशारा करें जो परेशान करने वाला है। उच्च न्यायालय में दायर रिट याचिका के साथ-साथ इस न्यायालय में दायर विशेष अनुमति याचिका में, जिला न्यायाधीश, गोरखपुर और 4 वें अतिरिक्त दीवानी न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन) गोरखपुर को प्रतिपक्षी के रूप में दिखाया गया है और विशेष अनुमति याचिका में उन्हें प्रतिपक्षी के रूप में दिखाया गया है। उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर होने पर सिविल कार्यवाही में मामले का निपटारा करने वाले न्यायिक अधिकारियों को आरोपित करने की कोई आवश्यकता नहीं थी; न ही उन्हें विशेष अनुमति याचिका में पक्षकार के रूप में आरोपित करने और उन्हें प्रतिपक्षी के रूप में वर्णित करने का कोई औचित्य है। हम याचिकाकर्ता द्वारा अपनाए गए पाठ्यक्रम को स्वीकार नहीं करते हैं जो संबंधित न्यायिक अधिकारियों के कार्यों में अनावश्यक गड़बड़ी पैदा करेगा। उन्हें किसी भी तरह से सरकार के अधिकारियों के बराबर नहीं किया जा सकता है। अब समय आ गया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिकाओं या भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत विशेष अनुमति याचिकाओं के लिए सिविल कार्यवाही का निपटारा करने वाले न्यायिक अधिकारियों को पक्षकार के रूप में आरोपित करने की प्रथा को रोक दिया जाए। हम इस तरह की प्रथा की कड़ी निंदा कर रहे हैं। (महत्व सन्निविष्ट)

(5) यह समझा जाना चाहिए कि न तो न्यायालय या न्यायाधिकरण या उस मामले के लिए न्यायालय/न्यायाधिकरण के पीठासीन अधिकारी (अधिकारियों) को उच्च न्यायालय के समक्ष अपने आदेश का बचाव करने की आवश्यकता है। यदि उच्च न्यायालय, अपने अपीलीय या पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, जैसा भी मामला हो, अभिलेखों की मांग करता है, तो उच्च न्यायालय द्वारा हमेशा न्यायालय या पीठासीन अधिकारी को एक पक्ष के रूप में अनिवार्य रूप से शामिल किए बिना बुलाया जा सकता है। ये न्यायालय या न्यायाधिकरण केवल पक्षों के बीच के मुद्दे पर निर्णय लेते हैं और उनका कोई व्यक्तिगत हित नहीं होता है और उनके द्वारा उठाए गए या निर्णय दिए गए मुद्दों से कोई लेना-देना नहीं होता है और इस तरह, किसी भी तरह से अपने आदेश (आदेशों) का बचाव करने की आवश्यकता नहीं होती है। चूंकि, उन्हें अपने आदेश का बचाव करने की आवश्यकता नहीं है, इसलिए अपीलीय मंच या पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष उन्हें पक्षकार बनाने में कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा, जैसा भी मामला हो, इसके बजाय इसे शर्मिंदगी, निराशा और न्यायपालिका की स्वतंत्रता में बाधा उत्पन्न करना होगा। उच्चतम न्यायालय ने जोगेंद्रसिंहजी विकालसिंहजी बनाम गुजरात राज्य (2015) 9 एस.सी.सी. 1 के मामले में उपर्युक्त सहमति को दोहराते हुए कहा है:-

"..... दीवानी अदालतें, जो मामलों का फैसला करती हैं, शब्द के सबसे सख्त अर्थों में अदालतें हैं। न तो अदालत और न ही पीठासीन अधिकारी उच्च न्यायालय के समक्ष आदेश का बचाव करता है, जिस पर वह विरोध नहीं करता है। यदि उच्च न्यायालय, अपने रिट क्षेत्राधिकार या पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, जैसा भी मामला हो, अभिलेखों की मांग करता है, तो उच्च न्यायालय द्वारा हमेशा न्यायालय या पीठासीन अधिकारी को एक पक्ष के रूप में पेश किए बिना इसकी मांग की जा सकती है। इसी तरह, समय बीतने के साथ कई न्यायाधिकरण हुए हैं जो केवल निर्णय देते हैं और उनका एलआईएस से कोई लेना-देना नहीं है। हम कुछ

उदाहरण दे सकते हैं; प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985, सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क और सेवा कर अपीलीय न्यायाधिकरण, आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण, बिक्री कर न्यायाधिकरण और ऐसे अन्य के तहत गठित न्यायाधिकरण। प्रत्येक निर्णायक प्राधिकरण को एक न्यायाधिकरण के रूप में नामित किया जा सकता है, लेकिन उक्त प्राधिकरण (प्राधिकरण) शुद्ध और सरल निर्णय देने वाले अधिकारियों से अलग हैं और यही कारण है कि उन्हें प्राधिकरण कहा जाता है। एक आयकर आयुक्त, चाहे वह किसी भी पद पर हो, जब वह निर्णय देता है, तो उसे एक पक्षकार बनाया जाना चाहिए, क्योंकि वह अपने आदेश का बचाव कर सकता है। वह चुनाव लड़ने का हकदार है। कई क़ानून के तहत कई प्राधिकरण हैं। इसलिए, जिस प्रस्ताव को सुरक्षित रूप से समाप्त किया जा सकता है, वह यह है कि अधिकारी या न्यायाधिकरण, जो कानून में उनके द्वारा पारित आदेशों का बचाव करने के हकदार हैं, आवश्यक पक्ष हैं और यदि उन्हें पक्षकारों के रूप में नहीं रखा जाता है, तो रिट याचिका को बनाए रखने योग्य नहीं माना जा सकता है या अदालत उन्हें अपने विवेक का प्रयोग करने में पक्षकारों के रूप में शामिल करने की स्वतंत्रता दे सकती है। ऐसे न्यायाधिकरण हैं जिन्हें अपने स्वयं के आदेश का बचाव करने की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं है, और उस स्थिति में ऐसे न्यायाधिकरणों को पक्षकारों के रूप में व्यवस्थित करने की आवश्यकता नहीं है। एक और उदाहरण देने के लिए: - कुछ अधिनियमों में, जिला न्यायाधीश चुनाव न्यायाधिकरण के रूप में कार्य करते हैं जिनके आदेशों से अधिनियम के प्रावधानों के आधार पर एक संशोधन या रिट हो सकती है। ऐसी स्थिति में, उच्च न्यायालय, अर्थात् उच्च न्यायालय, यदि अभिलेखों को आमंत्रित करने की आवश्यकता हो, तो भी जिला न्यायाधीश को पक्षकार होने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार, संक्षेप में, जब एक न्यायाधिकरण या प्राधिकरण को अपने स्वयं के आदेश का बचाव करने की आवश्यकता होती है, तो इसे एक पक्ष बनाया जाना चाहिए, जिसमें विफल रहने पर उच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाही को बनाए रखने योग्य नहीं माना जाएगा।

(6) इस प्रकार, हमारा विचार है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 (वाणिज्यिक न्यायालय-1, लखनऊ, अपने पीठासीन अधिकारी के माध्यम से) को उक्त न्यायालय द्वारा अपनी न्यायिक क्षमता में पारित आदेश के विरुद्ध दायर प्रस्तुत अपील में पक्षकार नहीं बनाया जाना चाहिए। किसी भी मामले में, यह एक आवश्यक या उचित पक्ष होने की आवश्यकता को भी पूरा नहीं करता है, ताकि प्रस्तुत अपील का पक्षकार बनाया जा सके। यह न्यायालय सावित्री देवी के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए एक विचार के साथ सम्मानजनक सहमति में प्रस्तुत अपील में 'पीठासीन अधिकारी के माध्यम से वाणिज्यिक न्यायालय-1, लखनऊ' को एक पक्षकार-प्रतिपक्षी के रूप में बनाने की प्रथा को अस्वीकार करता है और इस तरह, कार्यालय को "पीठासीन अधिकारी, वाणिज्यिक न्यायालय-1, लखनऊ, अपने पीठासीन अधिकारी के माध्यम से" को प्रतिपक्षी संख्या-1 के रूप में प्रस्तुत अपील के पक्षकारों के ज्ञापन से हटाने का निर्देश देता है।

(7) इसी प्रकार, जहां तक एक वाणिज्यिक न्यायालय में मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 या 37 के तहत एक याचिका में एक पक्ष के रूप में एक मध्यस्थ को आरोपित करने का संबंध है, यह न्यायालय वाणिज्यिक न्यायालयों या दीवानी न्यायालयों पर लागू एक सादृश्य को आकर्षित करते हुए, यह भी मानता है

कि मध्यस्थ को मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 34 या 37 के तहत किसी भी कार्यवाही में पक्षकार-प्रतिपक्षी के रूप में आरोपित नहीं किया जाना चाहिए, यह समझा जाना चाहिए कि अधिनियम के प्रावधान अधिनियम, 1996 की धारा 34 के तहत एक पंचाट को चुनौती देने के लिए विभिन्न आधार प्रदान करते हैं और उक्त अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत अपील करने का अधिकार भी प्रदान करते हैं। दोनों मामलों में, यह पंचाट है, जो न्यायालयों के समक्ष अधिनिर्णय का विषय है और, इस प्रकार, मध्यस्थ को पक्ष-प्रतिपक्षी के रूप में आरोपित करने का कोई मतलब नहीं है क्योंकि मध्यस्थ को न तो पंचाट का बचाव करने वाला व्यक्ति होना आवश्यक है और न ही उसे विवाद के विषय-वस्तु में व्यक्तिगत रूप से रुचि होनी चाहिए। यह न्यायालय इस तथ्य से बेखबर नहीं हो सकता है कि अक्सर, मध्यस्थों को इस न्यायालय द्वारा नोटिस प्राप्त होने पर शर्मिंदा किया जाता है, जो उन्हें अनावश्यक बोझ में डाल देता है और लगभग सभी मामलों में, उनका प्रतिनिधित्व नहीं किया जाता है। इस प्रकार, उन्हें प्रतिपक्षी नहीं कहा जा सकता है। जिस तरह किसी संशोधन या अपील के मामले में निचले मंच या निचले मंच पर काम करने वाले न्यायाधीश को एक पक्ष के रूप में शामिल नहीं किया जाता है, मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 या 37 के तहत कार्यवाही में, 1996, मध्यस्थ या मध्यस्थ न्यायाधिकरण के सदस्य पूरी तरह से परियोजना निदेशक, यू.पी.एच.एस.डी.पी., लखनऊ। और अन्य बनाम वाणिज्यिक न्यायालय संख्या-1 लखनऊ। और अन्य 1169 अनावश्यक पक्षकारों के खिलाफ जब तक विशिष्ट व्यक्तिगत आरोप नहीं लगाए जाते हैं। यह केवल एक दुर्लभ मामले में होता है जब एक मध्यस्थ के खिलाफ व्यक्तिगत आरोप लगाया जाता है, तो उसे उसके खिलाफ लगाए गए विशिष्ट आरोपों का जवाब देने की आवश्यकता होगी और उन दुर्लभ मामलों में, ऐसे मध्यस्थ को लगाया जा सकता है। इसके अलावा, मध्यस्थता और सुलह अधिनियम में ही विभिन्न प्रावधान हैं, जिसमें मध्यस्थ को एक पक्षकार बनाया जा सकता हैप्रतिपक्षी बनाया जा सकता है, हालांकि, सभी मामलों में, जिसमें निर्णय दिया गया है और मुख्य रूप से जब मध्यस्थ कार्यवाहक बन गया है, आमतौर पर उक्त मध्यस्थ या मध्यस्थ न्यायाधिकरण बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है, जैसा भी मामला हो, मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 या 37 के तहत कार्यवाही के तहत एक पक्षकार प्रतिपक्षी। जहां तक प्रस्तुत मामले का संबंध है, इस न्यायालय को एकल पंच के प्रति कोई व्यक्तिगत आरोप दिखाई नहीं देता और अतः आदेश दिया जाता है कि कार्यालय वर्तमान अपील के पक्षकारों की सूची से 'इंजीनियर श्री पी. एन. गुप्ता, एकल पंच' को प्रतिवादी क्रमांक 2 के रूप में हटा दे।

(8) उपरोक्त दृष्टिगत, हम एक प्रैक्टिस दिशा-निर्देश जारी करने का प्रस्ताव रखते हैं कि जब learned अधिवक्ता (अधिवक्ता/अधिवक्ता गण) आर्बिट्रेशन एवं सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 37 के अंतर्गत और वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 13 के साथ अपील दायर करें, तो वे इस न्यायालय के समक्ष न्यायालयों/त्रिब्यूनलों या पंचों को पक्षकार नहीं बनाएंगे, जब तक कि अपील में उस विशेष न्यायाधीश/त्रिब्यूनल के खिलाफ सिद्ध दुराचार/कदाचार के संबंध में विशिष्ट दावे नहीं किए गए हों।

(9) इस अभ्यास निर्देश का पालन उन सभी वादियों द्वारा किया जाना चाहिए, जो वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 13 सपठित मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत अपील दायर करने का प्रस्ताव करते हैं।

<u>अपील की पृष्ठभूमि</u>

(10) प्रस्तुत मामले के अभिलेखों से उपलब्ध तथ्यों के अनुसार, प्रतिवादी-मारुति कंस्ट्रक्शन लिमिटेड (आर्बिट्रेशन कार्यवाही में दावा करने वाला) ने, याचिकाकर्ता-उत्तर प्रदेश स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विकास परियोजना यू.पी.एच.एस.डी.पी. द्वारा आमंत्रित बोलियाँ में सफल होने पर, दिनांक 21.02.2002 को एक अनुबंध में प्रवेश किया। यह अनुबंध 'जिला अस्पताल पुरुष (डी.एच.एम.), सुलतानपुर, जिला अस्पताल महिला (डी.एच.एफ.) सुलतानपुर और बीपीएचसी - संग्रामपुर, जिला सुलतानपुर, उत्तर प्रदेश' के मरम्मत, नवीनीकरण और विस्तार कार्य के निष्पादन के लिए किया गया था, जिसकी कुल अनुबंध कीमत 87,62,721.40 रुपये थी। अनुबंध की निर्धारित अवधि 12 महीने थी। जाहिर है, काम पूरा होने के बाद, याचिकाकर्ता (मध्यस्थता कार्यवाही में प्रतिपक्षी) द्वारा अंतिम बिल का भुगतान नहीं किया गया था, कुछ भुगतान रोक दिए गए थे और यह प्रतिपक्षी-ठेकेदार का तर्क था कि अंतिम बिल याचिकाकर्ता द्वारा कभी तैयार नहीं किया गया था और न ही अंतिम बिल की कोई प्रति उन्हें दी गई थी। इस प्रकार, प्रतिपक्षी-ठेकेदार ने अंतिम बिलों के साथ-साथ अनुबंध के तहत अतिरिक्त मदों और क्षति/मुआवजे के लिए भुगतान का दावा किया, जबकि याचिकाकर्ता द्वारा यह तर्क दिया गया था कि कार्य के निष्पादन में देरी हुई थी और यहां तक कि प्रतिपक्षी को समय का विस्तार भी दिया गया था और इस तरह, बैंक गारंटी को उनके द्वारा सही ढंग से भुनाया गया था और इसके अलावा किसी भी भुगतान की आवश्यकता नहीं थी। इस प्रकार, एक विवाद उठाया गया था और समझौते के अनुसार अधिनिर्णायक द्वारा इसका समाधान नहीं किया जा रहा था, जिसे इंस्टीट्यूशन ऑफ इंजीनियर्स (इंडिया) द्वारा नियुक्त एक इंजीनियर श्री पीएन गुप्ता के मध्यस्थता के लिए भेजा गया था।

एकमात्र मध्यस्थ ने 15 मुद्दों को विरचित और 31.01.2021 के फैसले के माध्यम से प्रतिपक्षी के कुछ दावों को ब्याज के साथ सम्मानित किया।

(11) स्पष्ट रूप से, एकमात्र मध्यस्थ द्वारा दिए गए निर्णय से संतुष्ट नहीं होने के कारण अपीलकर्ताओं ने 03.02.2023 को मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के तहत एक आपत्ति दायर की, जिसमें देरी की माफी के लिए एक आवेदन भी शामिल था, जिसमें यह दावा किया गया था कि दिनांक 31.01.2022 के अधिनिर्णय की प्रामाणिक/पूर्ण प्रति अपीलकर्ताओं द्वारा केवल 27.12.2022 को प्राप्त की गई थी और, आपत्तियाँ धारा 34 के तहत निर्धारित वैधानिक अवधि के भीतर प्रस्तुत की गई थीं।

(3) मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 19 हालाँकि, ऐसा लगता है कि वाणिज्यिक न्यायालय-1, लखनऊ ने अपीलकर्ताओं के तर्क में कोई सार नहीं पाया और इस तरह, शीर्ष न्यायालय के दो निर्णयों पर भरोसा करते हुए; (i) **भारत संघ बनाम पॉपुलर कंस्ट्रक्शन कंपनी (2001) 8 एस.सी.सी. 470 और (ii) सिम्प्लेक्स**

इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड बनाम भारत संघ: (2009) 2 एस.सी.सी. 455, दिनांक 07.09.2024 के निर्णय और आदेश के माध्यम से परिसीमा के आधार पर अपीलकर्ताओं द्वारा दायर उक्त आवेदन/आपत्तियों को खारिज कर दिया।

(12) दिनांक 07.09.2024 का उक्त निर्णय और आदेश वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 13 सपठित मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत दायर प्रस्तुत अपील का विषय है। अपील के साथ प्रस्तुत अपील दायर करने में देरी की माफी के लिए एक आवेदन भी है। हालांकि, देरी की माफी के लिए उक्त आवेदन के साथ एक हलफनामा भी शामिल है, हालांकि, इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि उक्त आवेदन कितने दिनों की देरी से दायर किया गया है। इस प्रकार, इस न्यायालय को देरी के दिनों की संख्या का पता लगाने और यह जांचने के लिए कठिन कार्य सौंपा गया है कि क्या उक्त दिनों की देरी के लिए उल्लिखित कारण उक्त देरी को माफ करने के लिए पर्याप्त हैं या नहीं।

(13) प्रस्तुत अपील की बारीकी से जांच करने से पता चलेगा कि अपील सबसे पहले 22.01.2025 को दायर की गई थी, जिसमें दिनांक 07.09.2024 के आक्षेपित आदेश को चुनौती दी गई थी, लेकिन इसमें कई खामियां थीं। दोषों को दूर करने के साथ-साथ देरी की माफी के लिए आवेदन के साथ इसे 07.02.2025 को फिर से दायर किया गया था। आक्षेपित निर्णय 07.09.2024 को पारित किया गया था। अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत अपील दायर करने की सीमा निर्णय और आदेश की तारीख से 60 दिन है, जो 06.11.2024 को समाप्त हो गई है। परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत आवेदन के समर्थन में हलफनामा दिनांक 07.02.2025 है। इस प्रकार, 22.01.2025 तक यानी जब पहली बार अपील दायर की गई थी, तो देरी लगभग 77 दिनों की थी और 07.02.2005 को यानी जब दोषों को दूर करने के बाद देरी की माफी के आवेदन के साथ अपील फिर से दायर की गई थी, तो देरी लगभग 93 दिन थी। देरी के कारणों का उल्लेख देरी की माफी के आवेदन के साथ हलफनामे के प्रस्तर-24 से 36 में किया गया है।

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत अपील दायर करने का आधार निर्धारित करने वाला परिसीमा कानून

(14) इस मोड़ पर, हम वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 13 सपठित मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत अपील दायर करने के लिए आधार पर सीमा के कानून पर चर्चा करना चाहेंगे।

(15) “आर्बिट्रेशन एवं सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 37 अपील दायर करने का प्रावधान निर्धारित करती है, जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त निम्नलिखित प्रावधान शामिल हैं -

"(1) [तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य कानून में निहित किसी बात के होते हुए भी, अपील] आदेश पारित करने वाले न्यायालय की मूल डिक्री से अपील सुनने के लिए कानून द्वारा प्राधिकृत न्यायालय को निम्नलिखित आदेशों (और किसी अन्य से नहीं) से होगी, अर्थात्:

(ए) धारा 8 के तहत पक्षगण को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने से इनकार करना;

(ख) धारा 9 के अधीन कोई उपाय देने या देने से इनकार करना;

(ग) धारा 34 के तहत मध्यस्थ पंचाट को अलग रखना या अलग करने से इनकार करना।

(2) अपील भी मध्यस्थ न्यायाधिकरण के एक आदेश से एक अदालत के लिए झूठ बोलेगा-

(क) उपधारा में निर्दिष्ट याचिका को स्वीकार करना

(2) या धारा 16 की उपधारा (3); या

(बी) धारा के तहत एक अंतरिम उपाय प्रदान करना या अस्वीकार करना

17. (3) इस धारा के अधीन अपील में पारित आदेश से कोई दूसरी अपील नहीं होगी, लेकिन इस धारा की कोई बात उच्चतम न्यायालय में अपील करने के किसी अधिकार को प्रभावित या छीन नहीं लेगी।

(16) उपर्युक्त रूप से, माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996 में माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 37 के अधीन ऐसी अपीलें दायर करने के लिए कोई विशिष्ट सीमा प्रदान नहीं की गई है क्योंकि इसमें उक्त अधिनियम की धारा 34(3) के अनुसार मध्यस्थ पंचाट के विरुद्ध आपत्ति/आवेदन दायर करने का प्रावधान है। हालाँकि, मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 43 में प्रावधान है कि परिसीमा अधिनियम, 1963('इसके बाद 'परिसीमा अधिनियम' के रूप में संदर्भित) मध्यस्थता पर लागू होगा क्योंकि यह न्यायालय में कार्यवाही पर लागू होता है। **कंसोलिडेटेड इंजीनियरिंग एंटरप्राइजेज बनाम सिंचाई विभाग: (2008) 7 एस.सी.सी. 169**] के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि जहां परिसीमा अधिनियम किसी भी न्यायालय में अपील या आवेदनों के लिए सीमा की अवधि निर्धारित करता है और विशेष अधिनियम परिसीमा की कोई अवधि निर्धारित नहीं करता है, तो परिसीमा अधिनियम में निर्धारित सीमा धारा 4 से 24 के साथ लागू होगी, जब तक कि उन्हें विशेष अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से बाहर नहीं रखा जाता है। इस प्रकार, आवश्यक निहितार्थ से, अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत अपील को प्राथमिकता देने की अवधि परिसीमा अधिनियम में प्रदान की गई अनुसूची के अनुच्छेद 116 या अनुच्छेद 117 के अनुसार होगी। यह कहना पर्याप्त है कि परिसीमा अधिनियम की अनुसूची के अनुच्छेद 116 और 117 किसी अन्य न्यायालय से उच्च न्यायालय में अपील दायर करने के लिए 90 दिनों की सीमा अवधि और 30 की अवधि का प्रावधान करते हैं उच्च न्यायालय के समक्ष एक इंट्रा अपील दायर करने के लिए दिन, अर्थात, एकल पीठ द्वारा खंड पीठ को पारित आदेश, बशर्ते कि कानून खंड पीठ के समक्ष ऐसी अपील का प्रावधान करता है। परिसीमा अधिनियम की अनुसूची के अनुच्छेद 116 और 117 को उद्धृत और उल्लेख करने के बाद, जो आमतौर पर अपील की उपरोक्त प्रकृति के लिए लागू होता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसी किसी भी अपील को प्राथमिकता देने में किसी भी देरी के मामले में, परिसीमा अधिनियम की धारा 5 निर्धारित सीमा अवधि के विस्तार का प्रावधान करती है, बशर्ते आवेदक न्यायालय को संतुष्ट करे कि इस तरह की देरी के लिए 'पर्याप्त कारण' था।

(17) हालांकि, वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 (इसके बाद 'वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की घोषणा के साथ, मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत अपील दायर

करने के लिए सीमा की एक नई व्यवस्था लागू हुई। वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम की धारा 13 में अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया है: -

"धारा 13: वाणिज्यिक न्यायालयों और वाणिज्यिक प्रभागों के फरमानों से अपील। जिला न्यायाधीश के स्तर से नीचे के वाणिज्यिक न्यायालय के निर्णय या आदेश से व्यथित कोई भी व्यक्ति निर्णय या आदेश की तारीख से साठ दिनों की अवधि के भीतर वाणिज्यिक अपीलीय न्यायालय में अपील कर सकता है।

(1क) कोई भी व्यक्ति जो मूल सिविल क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले जिला न्यायाधीश के स्तर पर वाणिज्यिक न्यायालय के निर्णय या आदेश से व्यथित है या, जैसा भी मामला हो, उच्च न्यायालय का वाणिज्यिक प्रभाग निर्णय या आदेश की तारीख से साठ दिनों की अवधि के भीतर उस उच्च न्यायालय के वाणिज्यिक अपीलीय प्रभाग में अपील कर सकता है: बशर्ते कि एक अपील एक वाणिज्यिक प्रभाग या एक वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा पारित ऐसे आदेशों से होगी जो विशेष रूप से इस अधिनियम द्वारा संशोधित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (5 वर्ष 1908) के आदेश XLIII के तहत परिगणित हैं और मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (26 वर्ष 1996) की धारा 37 के तहत गणना की गई है।
(2) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या उच्च न्यायालय के लेटर्स पेटेंट में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार अन्यथा किसी वाणिज्यिक प्रभाग या वाणिज्यिक न्यायालय के किसी आदेश या डिक्री से कोई अपील नहीं की जाएगी।

(18) इस प्रकार, वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम को ध्यान में रखते हुए मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत अपील को प्राथमिकता देने की सीमा केवल साठ दिन है और निश्चित रूप से, परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के प्रावधान विलंब की माफी के लिए लागू होंगे। हालांकि, एक चेतावनी है, क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **भारत संघ बनाम वरिंदर कंस्ट्रक्शन लिमिटेड: (2020)2 एस.सी.सी. 111**, में कहा कि अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत अपील दायर करने के लिए सीमा के समान मुद्दे पर निर्णय देते हुए, आदेश पारित होने की तारीख से 120 दिनों की एक सीमा अवधि को शामिल किया है और माना है कि 120 दिनों से अधिक की किसी भी देरी की अनुमति नहीं दी जा सकती है, जिसने एक तरह से अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत अपील को प्राथमिकता देने में परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के प्रावधानों को खारिज कर दिया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह नोट करते हुए कि चूंकि अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अनुसार, आवेदन को अधिकतम अवधि वर्ष 120 दिनों के भीतर दायर किया जाना चाहिए, जिसमें 30 दिनों की छूट अवधि भी शामिल थी और इससे अधिक कुछ नहीं, इसलिए, उसी से दायर अपील को भी उसी अनुपात में आच्छादित किया जाना चाहिए, निम्नलिखित शब्दों में कहा गया है:
"आमतौर पर, हम उक्त निर्णय को इस मामले में भी लागू करते। हालांकि, हम पाते हैं कि दिनांक 10.04.2013 के आक्षेपित खंडपीठ के फैसले ने देरी के आधार पर भारत संघ द्वारा दायर अपील को खारिज कर दिया है। अपील दायर करने में 142 दिन और अपील दायर करने में 103 दिन की देरी पाई गई। खंड पीठ द्वारा किए गए महत्वपूर्ण बिंदुओं में से एक यह है कि, इस तथ्य के अलावा कि देरी के आधार में कोई पर्याप्त कारण नहीं

बनाया गया है, क्योंकि धारा 34 आवेदन को 30 दिनों की छूट अवधि सहित अधिकतम अवधि वर्ष 120 दिनों के भीतर दायर किया जाना है, धारा 37 के तहत स्व-समान कार्यवाही से दायर अपील को उसी ड्रिल द्वारा आच्छादित किया जाना चाहिए। इस तथ्य को देखते हुए कि एक अपीलीय कार्यवाही मूल कार्यवाही की निरंतरता है, जैसा कि लछमेश्वर प्रसाद शुकुल और अन्य बनाम केेश्वर लाल चौधरी और अन्य, ए.आई.आर. 1941 *में अवधारित किया गया है, और बार-बार हमारे निर्णयों का पालन किया गया है, हम महसूस करते हैं कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 34 के तहत या तो खारिज किए जाने या अनुमति दिए जाने से धारा 37 के तहत अपील दायर करने में 120 दिनों से अधिक की देरी की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि यह उद्देश्य को निष्फल कर देगा। मध्यस्थता कार्यवाही के समग्र वैधानिक उद्देश्य को अत्यंत प्रेषण के साथ तय किया जा रहा है। इस मामले को देखते हुए, चूंकि मूल अपील भी 142 दिनों की देरी के साथ दायर की गई थी, इसलिए हम इस विशेष मामले के तथ्यों पर इन विशेष अनुमति याचिकाओं पर विचार करने के इच्छुक नहीं हैं।*

(19) इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने वरिंदर कंस्ट्रक्शन लिमिटेड (उपरोक्त) में अपील दायर करने में वर्ष 142 दिनों की देरी को माफ करने से इनकार कर दिया, यह मानते हुए कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत अपील दायर करने वाले पक्ष के लिए अधिकतम अवधि वर्ष 120 दिन उपलब्ध है और इसी आशय के लिए **मैसर्स एनवी इंटरनेशनल बनाम असम राज्य और अन्य (2020)2 एस.सी.सी. 109** में सर्वोच्च न्यायालय का एक और निर्णय है जिसमें शीर्ष न्यायालय ने वीरेंद्र कंस्ट्रक्शंस लिमिटेड (उपरोक्त) में बताई गई स्थिति को भी दोहराया और अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत अपील दायर करने में 90 दिनों से वर्ष 189 दिनों की देरी को माफ करने से इनकार कर दिया। उक्त निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम के मुख्य उद्देश्य, यानी मध्यस्थ विवादों के त्वरित निपटान पर भी जोर दिया और कहा कि 120 दिनों से अधिक की किसी भी देरी को माफ नहीं किया जा सकता है।

(20) इन दोनों निर्णयों में, पहले के निर्णय यानी समेकित इंजीनियरिंग उद्यम (उपरोक्त) को नोट नहीं किया जा सका।

(21) दोनों मामलों में निर्धारित कानून यानी वरिंदर कंस्ट्रक्शन लिमिटेड (उपरोक्त) और मैसर्स एनवी इंटरनेशनल (उपरोक्त) **महाराष्ट्र सरकार बनाम मैसर्स बोरसे ब्रदर्स इंजीनियर्स एंड कॉन्ट्रैक्टर्स प्राइवेट लिमिटेड: 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 233** में शीर्ष न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष विचार के लिए आया, जिसमें शीर्ष न्यायालय ने कंसोलिडेटेड इंजीनियरिंग लिमिटेड (उपरोक्त) के साथ परस्पर विरोधी स्थिति को नोट किया और वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम 2015 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए और निर्णय कंसोलिडेटेड इंजीनियरिंग लिमिटेड (उपरोक्त) ने माना कि यदि विषय वस्तु का निर्दिष्ट मूल्य INR 3,00,000.00 या अधिक है, तो अधिनियम की धारा 37 के तहत अपील वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम की धारा 13(1A) के अनुसार आदेश की तारीख से 60 दिनों के भीतर दायर की जानी चाहिए। हालांकि, उन दुर्लभ मामलों में, जहां निर्दिष्ट मूल्य INR 3,00,000.00 से कम राशि के लिए है, तो अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत

अपील परिसीमा अधिनियम की अनुसूची के अनुच्छेद 116 और 117 द्वारा शासित होगी, जैसा भी मामला हो। उक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अधिनियम, 1996 की धारा 37 को अधिनियम, 1996 की धारा 43 और परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) के साथ पढ़ा जाता है, तो यह स्पष्ट होता है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 अधिनियम की धारा 37 के तहत दायर अपीलों पर लागू होगी। 1996 के मामले में और उक्त प्रयोज्यता को स्वीकार करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने सकारात्मक रूप से नोट किया कि वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम की धारा 13(1ए) में अधिनियम, 1996 की धारा 34(3) के समान कोई प्रावधान नहीं है और केवल निर्णय या आदेश की तारीख से 60 दिनों की सीमा अवधि का प्रावधान है; इस अवधि से आगे की देरी को माफ किया जा सकता है या नहीं, इस पर जाने के बिना। हालांकि, शीर्ष न्यायालय ने यह भी कहा कि देरी की माफी, हालांकि अनुमति है, को अधिनियम के मुख्य उद्देश्य, यानी विवादों के त्वरित निपटान के पूर्ण अलगाव में नहीं देखा जा सकता है। उसी के आलोक में, शीर्ष न्यायालय ने कहा कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत 'पर्याप्त कारण' की अभिव्यक्ति लंबी देरी को आच्छादित करने के लिए पर्याप्त लोचदार नहीं है और केवल इसलिए कि पर्याप्त कारण बनाया गया है, इस तरह की देरी को माफ करने का कोई अधिकार नहीं है। शीर्ष न्यायालय ने आगे कहा कि केवल थोड़ी देरी को एक अपवाद के रूप में माफ किया जा सकता है; एक अपवाद के रूप में, न कि नियम के माध्यम से, और वह भी केवल तभी जब पार्टी ने वास्तविक तरीके से काम किया और लापरवाही से नहीं। इस प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ महाराष्ट्र सरकार बनाम मेसर्स बोरसे ब्रदर्स इंजीनियर्स एंड कॉन्ट्रैक्टर्स प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) में निम्नानुसार व्यवस्था दी है: -

"61. मध्यस्थता अधिनियम और वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम की धारा 37 के तहत दायर अपीलों के लिए मध्यस्थता अधिनियम और वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम की धारा 37 के तहत दायर अपीलों के लिए उपरोक्त और त्वरित निपटान के उद्देश्य को देखते हुए, जो सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 116 और 117 या वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम की धारा 13(1 ए) द्वारा शासित हैं, 90 दिनों से अधिक की देरी, 30 दिन या 60 दिन, क्रमशः, अपवाद के माध्यम से माफ किए जाने चाहिए, न कि नियम के माध्यम से। एक उपयुक्त मामले में जिसमें एक पक्ष ने अन्यथा वास्तविक कार्य किया है और लापरवाही से नहीं, ऐसी अवधि से परे एक छोटी देरी को अदालत के विवेक में, हमेशा ध्यान में रखते हुए माफ किया जा सकता है कि तस्वीर का दूसरा पक्ष यह है कि प्रतिपक्षी ने समानता और न्याय दोनों में हासिल किया हो सकता है, अब पहले पक्ष की निष्क्रियता, लापरवाही या लैच से क्या खो सकता है।

(22) प्रस्तुत अपील में, इस न्यायालय ने पाया कि आक्षेपित आदेश दिनांक 07.09.2024 है। इस प्रकार, 22.01.2025 तक यानी जब पहली बार अपील दायर की गई थी, तो देरी लगभग 77 दिनों की थी और 07.02.2005 को यानी जब दोषों को दूर करने के बाद देरी की माफी के आवेदन के साथ अपील फिर से दायर की गई थी, तो देरी लगभग 93 दिन थी।

<u>स्टाम्प रिपोर्टर की रिपोर्ट पर आदेश</u>

(23) स्टाम्प रिपोर्टर की रिपोर्ट के अनुसार, अपील 06-12-2024 तक समय पर होगी (गलत तरीके से उल्लेख किया गया है क्योंकि यह 06-11-2024 होना चाहिए) और इस प्रकार इसकी रिपोर्ट में इस हद तक एक समर्थन रखा गया है कि:

22.01.2025 तक 47 दिनों की विलंबता। विलंब आवेदन 07.02.2025 को सुबह 11:00 बजे प्रस्तुत किया गया। सबसे पहले, स्टाम्प रिपोर्टिंग अधिकारी ने त्रुटिपूर्ण रूप से उल्लेख किया कि यदि अपील 06.12.2024 तक दायर की जाती, तो वह समय पर मानी जाती, जिसका सरल कारण यह है कि जिस आदेश को चुनौती दी जानी थी, वह 07.09.2024 को पारित किया गया था और वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 13(1A) के अनुसार साठ दिन की अवधि, जैसा कि उपर्युक्त चर्चा में वर्णित है, 06.11.2024 को समाप्त हो गई थी।_ऐसा लगता है कि रिपोर्टिंग अनुभाग ने परिसीमा की अवधि को 90 दिनों के रूप में माना है जो गलत है क्योंकि यह अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत एक वाणिज्यिक न्यायालय के आदेश के खिलाफ अपील है। इस प्रकार, अपील समय के भीतर होती, यदि यह 06-11-2024 को या उससे पहले दायर की गई होती, न कि 06-12-2024 जैसा कि स्टाम्प रिपोर्ट में गलती से बताया गया है। दूसरे, स्टांप रिपोर्टिंग में तारीख '22.01.2025' शामिल है, जो संभवतः यह दर्शाता है कि अपील की ई-फाइलिंग की पहली तारीख है, हालांकि, मामले का तथ्य यह है कि अपील बहुत अधिक दोषों के साथ ई-दायर की गई थी, जैसा कि रजिस्ट्री द्वारा बताया गया था और 07.02.2025 को देरी की माफी के लिए आवेदन के साथ दोषों को दूर करने के बाद इसे अंततः फिर से दायर किया गया, जैसा कि स्टांप रिपोर्ट से भी स्पष्ट है। अपील दायर करने की पहली तारीख यानी 22.01.2025 को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत अपील में 77 दिनों की देरी होगी, जबकि देरी की माफी के लिए आवेदन के साथ दोषों को दूर करने के बाद फिर से दाखिल करने की तारीख पर विचार करने पर यानी 07.02.2025 को प्रस्तुत अपील में 93 दिनों की देरी होगी।

<u>विलंब की माफी के आवेदन के लिए विचार</u>

(24) जो इस न्यायालय को अपीलकर्ताओं द्वारा दायर आवेदन पर लाता है जिसमें अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत प्रस्तुत अपील दायर करने में देरी की माफी की मांग की गई है।

(25) अपीलकर्ताओं द्वारा दायर देरी आवेदन और सहायक हलफनामे की माफी एक दिलचस्प पढ़ने के लिए बनाती है और यह न्यायालय हलफनामे के प्रासंगिक भाग को उद्धृत करना उचित समझता है, जो अन्य बातों के साथ-साथ यह भी दिखाएगा कि अपीलकर्ताओं द्वारा अपील दायर करने में देरी को माफ करने के लिए कोई "पर्याप्त कारण" बनाया गया है या नहीं। विलंब माफी के लिए हलफनामे में अन्य बातों के साथ-साथ प्रस्तर-24 से 36 तक का उल्लेख किया गया है; इस प्रकार है:-

"24. कि वाणिज्यिक न्यायालय ने पक्षों को सुनने और प्रतिपक्षी/प्रतिपक्षी द्वारा आपतियां भरने के बाद अंततः अधिनियम, 1996 की धारा 34 के तहत आवेदन को खारिज कर दिया, जो अपीलकर्ताओं द्वारा परिसीमा के

आधार पर दायर किया गया था, केवल धारा 34 के तहत कार्यवाही को दिनांक 07.09.2024 के आदेश द्वारा वर्जित समय तक रोक दिया गया था।

25. महानिदेशालय के दिनांक 25.09.2024 के पत्र के माध्यम से राज्य सरकार के समक्ष इस मामले में आवश्यक निर्देश मांगने का अनुरोध किया गया था। दिनांक 25.09.2024 के पत्र की एक सच्ची प्रति इस हलफनामे के अनुलग्नक-डी9 के रूप में दाखिल की जा रही है।

26. सरकार के दिनांक 21.10.2024 के पत्र के माध्यम से, चिकित्सा स्वास्थ्य सेवा निदेशालय को निर्देश दिए गए थे कि वह मुख्य स्थायी अधिवक्ता से कानूनी राय ले और उसके बाद प्रदान की गई कानूनी राय के साथ मामले का आवश्यक विवरण प्रदान करे।

27. कि महानिदेशालय के दिनांक 23.10.2024 के माध्यम से मुख्य स्थायी अधिवक्ता से कानूनी राय मांगी गई थी।

28. राज्य विधि अधिकारी द्वारा दिनांक 12.11.2024 के पत्र के माध्यम से माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष वाणिज्यिक न्यायालय, लखनऊ द्वारा पारित आदेश 07.09.2025 को चुनौती देने के लिए कानूनी राय दी गई थी।

29. दिनांक 12.11.2024 को कानूनी राय प्राप्त करने के बाद, उसके बाद राज्य सरकार के समक्ष भेजे गए महानिदेशालय के दिनांक 13.11.2023 के पत्र के माध्यम से माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष दिनांक 07.09.2024 के आदेश को चुनौती देने के लिए आवश्यक अनुमति और अनुमोदन मांगा गया था।

30. दिनांक 21.11.2024 को प्रतियोगिता की अनुमति के माध्यम से राज्य सरकार द्वारा आवश्यक अनुमोदन और स्वीकृतियां प्रदान की गई थीं।

31. दिनांक 21.11.2024 के आदेश द्वारा आवश्यक प्रतियोगिता अनुमति जारी करने के बाद, राज्य सरकार ने दिनांक 26.11.2024 के अपने पत्र के माध्यम से, चिकित्सा स्वास्थ्य और सेवा निदेशालय, उत्तर प्रदेश के कार्यालय में दिनांक 21.11.2024 का उपरोक्त प्रतियोगिता आदेश प्राप्त किया था। दिनांक 26.11.2024 के पत्र की एक सच्ची प्रति इस हलफनामे के अनुलग्नक-डी10 के रूप में दाखिल की जा रही है।

32. इसके बाद चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवा निदेशालय, उत्तर प्रदेश ने 27.11.2024 को मुख्य स्थायी अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, लखनऊ के कार्यालय में प्राप्त अपने पत्र दिनांक 26.11.2024 के माध्यम से, जिस पर अपील तैयार करने के लिए 29.11.2024 को राज्य विधि अधिकारी को संबंधित फाइल आवंटित की गई थी।

33. कि राज्य विधि अधिकारी, जिसे संबंधित फाइल आवंटित की गई थी, ने 02.12.2024 को उपरोक्त आवंटित फाइल प्राप्त की और संबंधित पायरोवकर से दिनांक 07.09.2024 के आदेश की प्रमाणित प्रति मांगी, जिससे यह सूचित किया गया कि उनके पास दिनांक 07.09.2024 के आदेश की केवल छायाप्रति उपलब्ध है, अतः उन्हें निर्देशित किया गया कि माननीय न्यायालय के समक्ष अपील दायर करने के प्रयोजनार्थ दिनांक 07.09.2024 के आदेश की प्रमाणित प्रति हेतु आवेदन करें।

34. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए प्रमाणित प्रति 03.12.2024 को लागू की गई थी जो 01.01.2025 को प्राप्त हुई थी और 06.01.2024 को अपील दायर करने के प्रयोजनों के लिए राज्य विधि अधिकारी को सौंप दी गई थी।

35. इसके बाद कुछ अन्य पत्रों और दस्तावेजों की आवश्यकता थी क्योंकि मैसर्स मारुती कंस्ट्रक्शन बनाम परियोजना निदेशक और अन्य के बीच मध्यस्थता का मामला उपरोक्त मध्यस्थता मामले के संबंध में प्रासंगिक अभिलेखों चिकित्सा और स्वास्थ्य निदेशालय, उत्तर प्रदेश के पास उपलब्ध नहीं थे। इस प्रकार, दिनांक 07.09.2024 के निर्णय और आदेश को चुनौती देने के संबंध में संबंधित फाइल के आवंटन के बाद, राज्य विधि अधिकारी द्वारा मांगे गए प्रासंगिक दस्तावेज केवल 13.01.2025 को प्रदान किए जा सके और जिसके बाद अपील तैयार की गई और 20.01.2025 को ई-फाइलिंग के माध्यम से दायर की गई, जिस पर रजिस्ट्री द्वारा बहुत सारी खामियों की ओर इशारा किया गया। हालांकि दोषों को दूर करने की कोशिश की जा रही थी, लेकिन समझौते के साथ-साथ 31.01.2021 का अधिनिर्णय भारी होने के कारण, टाइप होने में कुछ काफी समय लगा, इस तरह से पूरा होने के बाद इसे कुछ और दोषों के साथ ई-फाइल किया गया था, जिसमें 31.01.2021 के आक्षेपित आदेश की डिक्री की प्रति की आवश्यकता भी शामिल थी।

36. कि उपरोक्त पर तुरंत औपचारिक आदेश की प्रति 24.01.2025 को लागू की गई है जो 06.02.2025 को प्राप्त की जा सकती है। इसके बाद सभी प्रभावों को हटाने के बाद बिना किसी देरी के अपील दायर की जा रही है।

(26) अपीलकर्ता ने देरी की माफी के लिए अपनी याचिका के समर्थन में हलफनामे में कई निर्णयों का भी हवाला दिया है, हालांकि, यह न्यायालय अपीलकर्ता की इस दलील को स्वीकार करने में असमर्थ है कि प्रस्तुत अपील को देरी से दायर करने के लिए पर्याप्त कारण दिखाया गया है। हलफनामे के प्रस्तर-25 से यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता ने पहली बार 25.09.2024 को ही राज्य सरकार से संपर्क किया था, यानी आक्षेपित आदेश पारित होने के लगभग 18 दिनों के बाद, खासकर जब निदेशालय अच्छी तरह से जानता था कि अधिनियम, 1996 की धारा 34 के तहत उनका आवेदन मुख्य रूप से परिसीमा के आधार पर खारिज कर दिया गया था। इसके बाद राज्य सरकार ने मुख्य स्थायी अधिवक्ता से कानूनी राय लेने के लिए निदेशालय को सूचित करने के लिए 28 दिनों से अधिक का समय लिया, जिन्होंने हलफनामे के प्रस्तर-28 के अनुसार 12.11.2024 को आक्षेपित

आदेश को चुनौती देने के लिए अपनी राय दी थी। इस प्रकार, केवल मुख्य स्थायी अधिवक्ता से राय लेने में 65 दिनों का कीमती समय समाप्त हो गया और जब तक निदेशालय को उक्त सलाह प्राप्त हुई, तब तक वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम की धारा 13(1ए) के तहत निर्धारित 60 दिनों की निर्धारित अवधि सीमा पहले ही समाप्त हो चुकी थी। इसके तुरंत बाद अपील दायर नहीं की गई, लेकिन निदेशालय ने राज्य सरकार से मंजूरी मांगी, जो अपील दायर करने की समय-अवधि पहले ही समाप्त होने के बाद 21.11.2024 को दी गई। दिलचस्प बात यह है कि मामला यहीं समाप्त नहीं होता है, क्योंकि 21.11.2024 को अनुमोदन दिए जाने के बाद भी, अपीलकर्ता के स्वयं के प्रदर्शन के अनुसार, अपील अंततः 22.01.2025 को दायर की गई, लेकिन दोषों के साथ, इसलिए, इसे वापस ले लिया गया और केवल 07.02.2025 को यानी राज्य सरकार द्वारा दी गई आवश्यक मंजूरी और मंजूरी के लगभग 77 दिनों के बाद फिर से दायर किया गया। अपीलकर्ता द्वारा 03.12.2024 से 01.01.2025 के बीच की अवधि को उचित ठहराने का एक कमजोर प्रयास किया गया है, यानी आक्षेपित आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने में वर्ष 28 दिन। हालांकि, इस न्यायालय ने पाया कि प्रमाणित प्रति प्राप्त करने के लिए ली गई उक्त अवधि भी उक्त 28 दिनों की देरी को माफ करने के लिए अपीलकर्ता के बचाव में नहीं आ सकती है, क्योंकि परिसीमा अधिनियम की धारा 12 के संदर्भ में किसी भी बहिष्करण का दावा केवल तभी किया जा सकता है, जब प्रमाणित प्रति के लिए आवेदन सीमा अवधि की समाप्ति से पहले किया गया हो, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बनाम नागराजन बनाम एसकेएस इस्पात एंड पावर लिमिटेड और अन्य में भी कहा गया है: (2022) 2 एस.सी.सी. 244।

(27) इसके बाद, अपीलकर्ता ने 06.01.2025 से 20.01.2025 के बीच मध्यस्थता कार्यवाही के कुछ पत्रों और दस्तावेजों को मिलाने के आधार पर और देरी को उचित ठहराने का प्रयास किया है, जो फिर से कोई फायदा नहीं लगता है क्योंकि न तो पत्रों के किसी विवरण या दस्तावेजों की प्रकृति का उल्लेख किया गया है और न ही इस बात का कोई संकेत है कि ऐसी कार्रवाई पहले क्यों नहीं की गई थी। कारण आकस्मिक प्रतीत होते हैं जैसा कि हलफनामे की सामग्री से भी स्पष्ट है कि अपीलकर्ता ने प्रस्तुत अपील दायर करने के लिए एक कार्य को पूरा करने के लिए एक कार्य के पूरा होने की प्रतीक्षा की थी, जिसे प्रस्तुत अपील दायर करने के लिए निदेशालय द्वारा आधे-अधूरे मन से किया गया प्रयास कहा जा सकता है, यदि प्रस्तुत मामले को आगे बढ़ाने में ढील नहीं दी गई है।

(28) बोर्से ब्रदर्स के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय मध्यस्थता द्वारा विवादों के त्वरित समाधान के उद्देश्य पर जोर देते हैं, और यह मानते हैं कि अधिनियम की धारा 37 के तहत अपील दायर करने में देरी के लिए एक आवेदन पर न्यायालय के विचार को उस व्यापक उद्देश्य से सूचित किया जाना चाहिए।

(29) इस न्यायालय ने पाया कि निदेशालय द्वारा प्रस्तुत मामले में दिया गया स्पष्टीकरण, मोटे तौर पर सरकारी तंत्र की प्रशासनिक सुस्ती की प्रकृति में है, जो प्रस्तुत अपील दायर करने में होने वाली देरी को माफ करने के लिए 'पर्याप्त कारण' की सीमा को पूरा नहीं कर सकता है। इन स्पष्टीकरणों को इस रूप में नहीं कहा जा सकता है

देरी को माफ करने के लिए "पर्याप्त कारण" और अपीलकर्ता के एक सरकारी संगठन होने के कारण तर्क का भी कोई लाभ नहीं हो सकता है। वास्तव में, सर्वोच्च न्यायालय ने मैसर्स बोरसे ब्रदर्स इंजीनियर्स एंड कॉन्ट्रैक्टर्स (उपरोक्त) में जोर देकर कहा कि जहां तक वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम का संबंध है, किसी सरकारी निकाय को सीमा के संदर्भ में कोई विशेष रियायत नहीं है। संदर्भ से संबंधित सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार अवलोकन किया और कहा कि -

"57. इसी तरह, केवल इसलिए कि सरकार इसमें शामिल है, देरी की माफी के लिए एक अलग मानदंड निर्धारित नहीं किया जा सकता है। यह ***पोस्टमास्टर जनरल बनाम लिविंग मीडिया इंडिया लिमिटेड, (2012) 3 एस.सी.सी. 563*** *["पोस्टमास्टर जनरल"] में कहा गया था, जो इस प्रकार है:*

"27. यह विवाद में नहीं है कि संबंधित व्यक्ति (व्यक्तियों) को इस न्यायालय में एक विशेष अनुमति याचिका दायर करने के माध्यम से मामले को लेने के लिए सीमा की निर्धारित अवधि सहित शामिल मुद्दों से अच्छी तरह से पता था या उनसे वाकिफ था। वे यह दावा नहीं कर सकते कि उनके पास सीमा की एक अलग अवधि है जब विभाग के पास अदालत की कार्यवाही से परिचित सक्षम व्यक्ति थे। प्रशंसनीय और स्वीकार्य स्पष्टीकरण के अभाव में, हम यह प्रश्न उठा रहे हैं कि विलंब को यंत्रवत् केवल इसलिए माफ क्यों किया जाए क्योंकि सरकार या सरकार का एक स्कंध हमारे समक्ष एक पक्ष है।

28. यद्यपि हम इस तथ्य से अवगत हैं कि देरी की माफी के मामले में जब कोई घोर लापरवाही या जानबूझकर निष्क्रियता या प्रामाणिकता की कमी नहीं थी, तो पर्याप्त न्याय को आगे बढ़ाने के लिए एक उदार रियायत अपनाई जानी चाहिए, हम इस विचार से हैं कि तथ्यों और परिस्थितियों में, विभाग पहले के विभिन्न निर्णयों का लाभ नहीं उठा सकता है। उपयोग की जा रही और उपलब्ध आधुनिक तकनीकों को देखते हुए अवैयक्तिक मशीनरी और कई नोट बनाने की विरासत में मिली नौकरशाही पद्धति के कारण किए गए दावे को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। परिसीमा का कानून निस्संदेह सरकार सहित सभी को बाध्य करता है।

29. हमारे विचार में, सभी सरकारी निकायों, उनकी एजेंसियों और उपकरणों को सूचित करने का यह सही समय है कि जब तक उनके पास देरी के लिए उचित और स्वीकार्य स्पष्टीकरण नहीं है और वास्तविक प्रयास नहीं किया गया है, तब तक सामान्य स्पष्टीकरण को स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि प्रक्रिया में प्रक्रियात्मक लालफीताशाही की काफी डिग्री के कारण फाइल को कई महीनों/वर्षों तक लंबित रखा गया था। सरकारी विभागों का यह सुनिश्चित करने का विशेष दायित्व है कि वे परिश्रम और प्रतिबद्धता के साथ अपने कर्तव्यों का पालन करें। देरी की माफी एक अपवाद है और इसे सरकारी विभागों के लिए प्रत्याशित लाभ के रूप में उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। कानून सभी को एक ही रोशनी में आश्रय देता है और कुछ लोगों के लाभ के लिए इसे घुमाया नहीं जाना चाहिए।

(30) इसके अलावा, परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत 'पर्याप्त कारण' अभिव्यक्ति लंबी देरी को आच्छादित करने के लिए पर्याप्त लोचदार नहीं है और केवल इसलिए कि पर्याप्त कारण बनाया गया है, इस तरह के विलंब को माफ करने का कोई अधिकार नहीं है। बोर्स ब्रदर्स मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि केवल थोड़ी देरी को अपवाद के रूप में माफ किया जा सकता है, न कि नियम के माध्यम से, और वह भी केवल तभी जब पार्टी ने वास्तविक तरीके से काम किया हो, न कि लापरवाही से। यह समझा जाना चाहिए कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 और वाणिज्यिक अधिनियम, 2015 दोनों के उद्देश्य को देखते हुए, अंतर्निहित विवादों के त्वरित समाधान के कारण, "पर्याप्त कारण" अभिव्यक्ति को उन कारणों से संबंधित और/या संबद्ध करने के लिए एक प्रतिबंधात्मक अर्थ दिया जाना चाहिए, जिनके लिए माफी का दावा करने वाले पक्ष को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। हमें प्रस्तुत अपील में ऐसी कोई परिस्थिति नहीं मिलती है। इसके अलावा, यह भी याद रखना चाहिए कि केवल इसलिए कि किसी दिए गए मामले के तथ्यों में पर्याप्त कारण बनाया गया है, अपीलकर्ता को देरी को माफ करने का कोई अधिकार नहीं है। इसे **रामलाल बनाम रीवा कोलफील्ड्स लिमिटेड, (1962) 2 एस.सी.आर 762** के मामले में रखा गया था, जो इस प्रकार है: -

"12. हालांकि, इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि पर्याप्त कारण दिखाए जाने के बाद भी एक पक्ष अधिकार के मामले के रूप में प्रश्न में देरी की माफी का हकदार नहीं है। पर्याप्त कारण का प्रमाण धारा 5 द्वारा न्यायालय में निहित विवेकाधीन क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए एक शर्त है। यदि पर्याप्त कारण साबित नहीं होता है, तो आगे कुछ भी नहीं करना पड़ता है; देरी को माफ करने के आवेदन को केवल उस आधार पर खारिज किया जाना चाहिए। यदि पर्याप्त कारण दिखाया जाता है तो न्यायालय को यह पूछताछ करनी होगी कि क्या उसे अपने विवेक से देरी को माफ करना चाहिए। मामले का यह पहलू स्वाभाविक रूप से सभी प्रासंगिक तथ्यों पर विचार करने का परिचय देता है और यह इस स्तर पर है कि पार्टी का परिश्रम या उसकी सदाशयता विचार के लिए गिर सकती है; लेकिन पर्याप्त कारण दिखाए जाने के बाद विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करते समय जांच का दायरा स्वाभाविक रूप से केवल ऐसे तथ्यों तक ही सीमित होगा जिन्हें न्यायालय प्रासंगिक मान सकता है। यह इस जांच को उचित नहीं ठहरा सकता कि पार्टी अपने पास उपलब्ध सभी समय के दौरान खाली क्यों बैठी थी। इस संबंध में हम यह बता सकते हैं कि जब न्यायालय परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के तहत किए गए आवेदनों पर काम कर रहा होता है तो प्रामाणिकता या उचित परिश्रम के विचार हमेशा महत्वपूर्ण और प्रासंगिक होते हैं। ऐसे आवेदनों से निपटने में न्यायालय 5 सभी है। सिकंदर आलम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1179 के मामले में धारा 5 और

14. इसलिए, हमारी राय में, जिन विचारों को धारा 14 के प्रावधानों द्वारा स्पष्ट रूप से भौतिक और प्रासंगिक बनाया गया है, उन्हें समान सीमा तक और उसी तरह से उन आवेदनों से निपटने में लागू नहीं किया जा सकता है जो धारा 14 के संदर्भ के बिना केवल धारा 5 के तहत तय किए जाने वाले हैं।

(31) उपरोक्त की अगली कड़ी के रूप में, हम इसे दोनों स्थितियों में देरी को माफ करने के लिए एक उपयुक्त मामला नहीं मानते हैं।

(i) उपरोक्त के अनुक्रम में, हम यह नहीं मानते कि यह ऐसा उपयुक्त प्रकरण है जिसमें विलंब को दोनों परिस्थितियों में क्षम्य किया जाए, अर्थात्– (i) दिनांक 22.01.2025 को, जब अपील प्रथम बार 77 दिनों के विलंब के साथ, यद्यपि त्रुटियों सहित तथा विलंब-क्षमा हेतु किसी आवेदन के बिना, दायर की गई थी; तथा (ii) दिनांक 07.02.2025 को, जब अपील त्रुटियों के निराकरण के पश्चात 93 दिनों के विलंब के साथ पुनः दायर की गई और वर्तमान अपील के दायर किए जाने में हुए विलंब की क्षमा हेतु आवेदन संलग्न किया गया था; इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कि 'मध्यस्थता एवं सुलह अधिनियम, 1996' तथा 'वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015' दोनों में त्वरित निस्तारण के उद्देश्य को अंतर्निहित किया गया है। इस प्रकार, उपरोक्त कैप्शन वाली अपील दायर करने में देरी की माफी के लिए आवेदन एतद्द्वारा **खारिज** किया जाता है।

<u>अपील पर आदेश</u>

(32) प्रस्तुत अपील में, वाणिज्यिक न्यायालय-1, लखनऊ द्वारा अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अंतर्गत पारित विवादित आदेश को अपीलकर्ताओं द्वारा अधिनियम, 1996 की धारा 37 के अंतर्गत अनुमेय 60 दिनों की अवधि के पश्चात, बिना किसी उपर्युक्त 'पर्याप्त कारण' के विलंबित अपील प्रस्तुत कर चुनौती दी गई है। अतः उपर्युक्त शीर्षकित अपील को अवधि-सीमा से बाधित मानते हुए, तदनुसार **निरस्त/खारिज** किया जाता है।

(33) वाणिज्यिक न्यायालयों के आदेश से उत्पन्न होने वाले मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत अपील में परिसीमा की सही रिपोर्टिंग सुनिश्चित करने के लिए आदेश की एक प्रति महापंजीयक को भेजी जाएगी।

(2025) 5 ILRA 1179

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र धारी सिंह

आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन संख्या-3263 वर्ष 2025

(बी.एन.एस.एस की धारा 482 के तहत)

सिकंदर आलम ... उम्मीदवार

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य ... प्रतिपक्षीगण

आवेदक के अधिवक्ता: श्री बृजेश कुमार शर्मा, श्री पंकज भारती

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता , श्री प्रदीप कुमार मिश्रा, श्री वेद प्रकाश मिश्रा

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302, 120-बी, 506 और 34 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 - यह स्वीकार किया गया तथ्य है कि आवेदक आदतन अपराधी है, आपराधिक इतिहास के साथ जघन्य अपराध करने में शामिल है वर्ष 17 गंभीर मामले - जांच एजेंसी या पुलिस के साथ सहयोग नहीं करना, क्योंकि उसके खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किया गया है - इसके अलावा, प्राथमिकी को रद्द करने की मांग करने वाली उनकी रिट याचिका पहले ही खारिज कर दी जा चुकी है - जांच के दौरान पुलिस द्वारा एकत्र की गई हिरासत रिपोर्ट, सबूतों और सामग्री के अवलोकन से उपरोक्त धाराओं के तहत अपराधों के लिए आवेदक के खिलाफ पर्याप्त विश्वसनीय सबूत का पता चलता है - शिकायतकर्ता का रुख भी आवेदक को कथित अपराध में फंसाता है - सूचनाकर्ता और गवाहों के परिवार के सदस्यों को धमकी देने की संभावना - उपरोक्त आधारों को ध्यान में रखते हुए, अग्रिम जमानत अर्जी खारिज (प्रस्तर-12, 13) 1180

आवेदन अस्वीकृत कर दिया गया। (ई-13)

<u>उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची</u>:

1. प्रशांत कुमार सरकार बनाम आशीष चटर्जी और अन्य1 (2010) 14 एस.सी.सी.-496, (प्रस्तर-9)

2. कल्याण चंद्र सरकार बनाम राजेश रंजन @ पप्पू यादव और अन्य (2004) और एस.सी.सी. 528 (प्रस्तर-11)

अस्वीकृत

3. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अमरमणि त्रिपाठी, (2005) 8 एस.सी.सी. 21 4. X बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या-13378 वर्ष 2024, (प्रस्तर-14)

5. बृजमणि देवी बनाम पप्पू कुमार, (2022) 4 एस.सी.सी. 497, (प्रस्तर-25, 26)

6. जितेंद्र प्रताप सिंह @ जीतू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, इलाहाबाद उच्च न्यायालय (लखनऊ खंडपीठ) द्वारा धारा 438 द०प्र०स० संख्या-144 वर्ष 2024 के तहत आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत याचिका, (प्रस्तर-15 से 19)

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र धारी सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक - सिकंदर आलम की ओर से बी.एन.एस.एस. की धारा 482 के तहत अपराध संख्या-0169 वर्ष 2024 में धारा 302, 120-बी, 506, 34 भ०द०वि०, थाना - शाहगंज, जिला - जौनपुर के तहत अग्रिम जमानत की मांग करते हुए प्रस्तुत आवेदन दायर किया गया है।

2. आवेदक की ओर से पेश अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आवेदक का नाम प्राथमिकी में नहीं था, उसके नाम का खुलासा सूचनाकर्ता के बयान में किया गया था। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 सुदर्शन न्यूज और आर.टी.आई. एक्टिविस्ट का रिपोर्टर था। आगे यह प्रस्तुत किया जाता है कि आवेदक और सूचनाकर्ता के बीच कुछ विवाद चल रहा था, इसलिए, उसे झूठा फंसाया गया है। धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज सूचनाकर्ता के बयान में आवेदक के नाम का खुलासा नहीं किया है, लेकिन बाद के बयान में उसने पहली बार आवेदक का नाम लिया है। यह स्पष्ट किया जाता है कि सूचनाकर्ता का भाई कार्यकर्ता होने के नाते 'मदरसा संपत्तियों' के संबंध में अनियमितताओं की जांच कर रहा था, लेकिन आवेदक उक्त 'मदरसा' से जुड़ा नहीं था, इसलिए आवेदक द्वारा अपराध करने का कोई कारण उपलब्ध नहीं था जैसा कि प्राथमिकी में आरोप लगाया गया है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि आवेदक को प्रस्तुत अपराध से जोड़ने के लिए अभिलेखों पर कोई विश्वसनीय सबूत या सामग्री नहीं है। आवेदक मस्तिष्क और हृदय रोग से भी पीड़ित है और 2003 से मुंबई के अस्पताल में इलाज चल रहा है। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि पिछले आपराधिक इतिहास को पेपर बुक के संबंधित प्रस्तर-में समझाया गया है। उसे धारा 302, 120-बी, 506, 34 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध में झूठा फंसाया गया है और पुलिस द्वारा गिरफ्तारी की बहुत आशंका है।

3. आवेदक की ओर से पेश अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, आवेदक को गिरफ्तारी की स्थिति में अग्रिम जमानत पर रिहा किया जा सकता है। उन्होंने जांच में सहयोग करने का बीड़ा उठाया है और यह भी कहा है कि वह अग्रिम जमानत देते समय इस न्यायालय द्वारा लगाए गए सभी नियमों और शर्तों का पालन करेंगे।

4. इसके विपरीत, राज्य की ओर से पेश होने वाले अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत अग्रिम जमानत आवेदन का पुरजोर विरोध किया और प्रस्तुत किया है कि आवेदक के पास वर्ष 17 आपराधिक मामले हैं, सभी प्रकृति

में गंभीर हैं। वह आदतन अपराधी है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि प्राथमिकी 14.05.2024 को दर्ज की गई थी और तब से वह पुलिस से फरार है और जांच में सहयोग नहीं कर रहा है। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि गैर-जमानती वारंट 26.03.2025 को जारी किए गए हैं, इसके बावजूद आवेदक पुलिस या जांच एजेंसी के सामने पेश नहीं हो रहा है। आगे यह प्रस्तुत किया जाता है कि आवेदक ने प्राथमिकी को रद्द करने के लिए अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका दायर की थी, जिसे इस न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 13.11.2024 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया था। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि उक्त रिट याचिका को खारिज करने के बाद आवेदक ने जांच एजेंसी के सामने पेश नहीं होने और जांच से बचने का विकल्प चुना है। उन्होंने धारा 120-बी, 506, 34 भ०द०वि० के साथ धारा 302 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए जघन्य अपराध का आरोप लगाया है। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि जांच के दौरान पुलिस द्वारा एकत्र किए गए साक्ष्य, आवेदक को कथित अपराध से जोड़ने के लिए विश्वसनीय सबूत हैं। सूचनाकर्ता के बयान में कोई विरोधाभास नहीं है। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि यदि आवेदक अग्रिम जमानत पर रिहा हो जाता है, तो वह जांच को प्रभावित कर सकता है और गवाहों को भी प्रभावित कर सकता है।

5. राज्य के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपराध की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, उससे हिरासत में पूछताछ की आवश्यकता है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि निर्णय के कैटिना में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि जघन्य अपराधों में न्यायालय आम तौर पर अग्रिम जमानत नहीं दे सकते हैं। इस मामले में आवेदक के खिलाफ विश्वसनीय सबूत हैं जो आवेदक को प्रस्तुत मामले से जोड़ते हैं। आवेदक एक आदतन अपराधी है क्योंकि उसका आपराधिक इतिहास वर्ष 17 है जो यह स्थापित करता है कि वह जांच को प्रभावित कर सकता है या गवाहों को धमकी दे सकता है। यह जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया जाता है कि अपराध की प्रकृति और आवेदक के आपराधिक इतिहास को ध्यान में रखते हुए, तत्काल जमानत आवेदन को खारिज किया जा सकता है।

6. शिकायतकर्ता/सूचनाकर्ता के अधिवक्ता ने अग्रिम नोटिस में उपस्थित होकर तत्काल जमानत आवेदन का जोरदार विरोध किया और प्रस्तुत किया कि आवेदक द्वारा सूचनाकर्ता के भाई की बेरहमी से हत्या कर दी गई है। इसे आवेदक के आपराधिक इतिहास के रूप में भी संदर्भित किया जाता है। आवेदक कट्टर अपराधी है और इसलिए, इस मामले में सूचनाकर्ता और गवाहों के परिवार के सदस्यों को धमकी देने की संभावना है। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि यदि आवेदक अग्रिम जमानत पर रिहा हो जाता है, तो यह जमानत की शर्तों का दुरुपयोग करने का एक बड़ा मौका है। शिकायतकर्ता के अधिवक्ता ने जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, आवेदक अग्रिम जमानत देने के लिए किसी भी मामले को बनाने में विफल रहा है। इसलिए, तत्काल जमानत आवेदक किसी भी योग्यता से रहित है और खारिज किए जाने के लिए उत्तरदायी है।

7. आवेदक की ओर से पेश अधिवक्ता, श्री वेद प्रकाश मिश्रा, सूचनाकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता के साथ-साथ राज्य के लिए श्री कैलाश पाठक, अपर शासकीय अधिवक्ता की ओर से पेश हुए अधिवक्ता को सुना और जमानत आवेदन में की गई सामग्री के साथ-साथ अभिलेखों पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

8. संबंधित पक्षों की ओर से प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार करने से पहले, गिरफ्तारी की आशंका वाले व्यक्ति को जमानत देने के संबंध में नए क़ानून के प्रावधान को तैयार संदर्भ के लिए नीचे पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

9. अग्रिम जमानत प्रदान करने के लिए बी.एन.एस.एस. की धारा 482, जब कोई व्यक्ति गैर-जमानती अपराध के लिए गिरफ्तारी की आशंका करता है, तो मामले के इन तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर अग्रिम जमानत देने के लिए अदालतों में निहित विवेक का प्रावधान, धारा 482 बी.एन.एस.एस. निम्नानुसार है:

"482. गिरफ्तारी की आशंका वाले व्यक्ति को जमानत देने का निदेश।
(1) जब किसी व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसे गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है, तो वह इस धारा के अधीन निदेश के लिए उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय में आवेदन कर सकेगा; और वह न्यायालय, यदि वह उचित समझे, तो निर्देश दे सकता है कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में, उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा।

(2)जब उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय उप-धारा (1) के तहत एक निर्देश देता है, तो वह विशेष मामले के तथ्यों के आलोक में ऐसे निर्देशों में ऐसी शर्तों को शामिल कर सकता है, जो कि वह उचित समझे, जिसमें शामिल हैं-

(i) एक शर्त कि व्यक्ति जब भी आवश्यक हो, पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए स्वयं को उपलब्ध कराएगा;

(ii) एक शर्त कि वह व्यक्ति, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा ताकि उसे न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से हतोत्साहित किया जा सके;

(iii) एक शर्त कि व्यक्ति न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा;

(iv) ऐसी अन्य शर्तें जो धारा 480 की उपधारा (3) के तहत लगाई जा सकती हैं, जैसे कि जमानत उस धारा के तहत दी गई हो। (3) यदि ऐसे व्यक्ति को तत्पश्चात् ऐसे अभियोग पर किसी थाना के प्रभारी अधिकारी द्वारा बिना वारंट के गिरफ्तार किया जाता है, और गिरफ्तारी के समय या ऐसे अधिकारी की अभिरक्षा में रहते

हुए किसी भी समय जमानत देने के लिए तैयार किया जाता है, तो उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा; और यदि इस तरह के अपराध का संज्ञान लेते हुए कोई मजिस्ट्रेट यह निर्णय लेता है कि उस व्यक्ति के खिलाफ पहली बार में वारंट जारी किया जाना चाहिए, तो वह उपधारा (1) के तहत न्यायालय के निर्देश के अनुरूप जमानती वारंट जारी करेगा। (4) भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 65 और धारा 70 की उपधारा (2) के अधीन अपराध करने के आरोप में किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी से संबंधित किसी भी मामले पर इस धारा की कोई बात लागू नहीं होगी।

10. कोई मामला जमानत देने के लिए उपयुक्त है या नहीं, इसका निर्धारण कई कारकों का संतुलन शामिल है, जिनमें अपराध की प्रकृति, सजा की गंभीरता और अभियुक्त की भागीदारी के बारे में प्रथम दृष्टया दृष्टिकोण महत्वपूर्ण हैं। जमानत देने या अस्वीकृति के लिए आवेदन का आकलन करने के लिए अदालतों के लिए कोई सीधा फार्मूला मौजूद नहीं है।

11. यह आकलन करने के चरण में कि क्या कोई मामला जमानत देने के लिए उपयुक्त है, न्यायालय को अभियुक्त द्वारा अपराध के गठन को उचित संदेह से परे स्थापित करने के लिए अभिलेखों पर साक्ष्य के विस्तृत विश्लेषण में प्रवेश करने की आवश्यकता नहीं है। यह मुकदमे का मामला है। हालांकि, न्यायालय को यह जांचने की आवश्यकता है कि क्या यह मानने के लिए प्रथम दृष्टया या उचित आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है और इसमें शामिल विचारों के संतुलन पर, अभियुक्त की निरंतर हिरासत आपराधिक न्याय प्रणाली के उद्देश्य को पूरा करती है।

12. यह स्वीकार किया गया तथ्य है कि आवेदक एक आदतन अपराधी है और आपराधिक इतिहास वर्ष 17 मामले हैं, सभी प्रकृति में गंभीर हैं। यह भी स्वीकार किया गया है कि आवेदक जांच एजेंसी के साथ सहयोग नहीं कर रहा है क्योंकि उसके खिलाफ पहले ही गैर-जमानती वारंट जारी किया जा चुका है। आवेदक द्वारा प्राथमिकी को रद्द करने के लिए इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष दायर रिट याचिका पहले ही खारिज कर दी जा चुकी है।

13. मैंने जांच के दौरान पुलिस द्वारा एकत्र की गई हिरासत रिपोर्ट और सबूतों और सामग्री का भी अवलोकन किया है, आवेदक को धारा 302, 120-बी, 506, 34 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध से जोड़ने के लिए पुलिस द्वारा एकत्र किए गए पर्याप्त विश्वसनीय सबूत हैं और मैंने धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज शिकायतकर्ता के बयान को भी पढ़ा है। अपने बयान में, यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वह अपराध करने के लिए जिम्मेदार है, जैसा कि आरोप लगाया गया है।

"बयान वादी.... श्री संतोष कुमार श्रीवास्तव पुत्र स्व० श्री योगेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव निवासी ग्राम सबरहद थाना शाहगंज जौनपुर मो.न. 7052484838 द्वारा पूछताछ पर बताया कि मैं ग्राम सबरहद का रहने वाला हूँ हम 6 भाई थे, सबसे बड़े विनोद श्रीवास्तव उनके बाद प्रमोद श्रीवास्तव फिर मैं तथा मेरे बाद आशुतोष, परितोष, अतुल

थे हमारी दो बहनें शशिबाला में मधुबाला भी हैं। आशुतोष श्रीवास्तव सुदर्शन न्यूज चैनल स्थानीय पत्रकार थे तथा सूचना के अधिकार का प्रयोग कर जन समस्याओं को हल कराने में आगे रहते थे क्षेत्र में अवैध रूप से की जाने वाली गौ तस्करी का विरोध करते थे हमारे गांव सबरहद के गाटा संख्या 1816 तालाब खाते के नाम दर्ज था जिस पर गांव के कुछ लोगों की काफी समय से नियत कब्जा करने की भी जिसके चलते गांव के कुछ लोगों द्वारा साजिश कर तालाब खाते की जमीन की नवैय्यत परिवर्तित कर उसे फारुकिया मदरसा के नाम दर्ज करा दी गयी तथा उस जमीन पर फारुकिया मदरसे के प्रबन्ध समिति के लोगों द्वारा अवैध रूप से लीज पर देकर मछली पालन कराकर अवैध रुप से रुपया कमाया जा रहा था। जिसकी जानकारी जब मेरे भाई आशुतोष को हुई तो उसके द्वारा नासिर जमाल पुत्र फरीदुलहक, अरफी उर्फ कामरान पुत्र मैनुद्दीन, जमीस्दीन पुत्र हनीफ कुरैसी व मो. हासिम पुत्र वाहिद द्वारा किये गये अवैध कब्जे के सम्बन्ध में तहसील शाहगंज व राजस्व परिषद उत्तर प्रदेश लखनऊ को जरिये आईजीआरएस शिकायत की गयी व आरटीआई के तहत वस्तुस्थिति के सम्बन्ध में तहसील शाहगंज से सूचना मांगी गयी जिस कारण फारुकिया मदरसे प्रबन्ध समिति के नासिर जमाल पुत्र फरीदुलहक, अरफी उर्फ कामरान पुत्र मैनुद्दीन जमीस्टीन पुत्र हनीफ कुरैसी व मो. हासिम पुत्र वाहिद आदि मेरे भाई से काफी नाराज हो गये नासिर जमाल द्वारा पोखरे की जमीन, रामलीला मैदान व रामरथ मार्ग पर अतिक्रमण कर खाता संख्या 1037 में कराया गया जिसमें उसका सहयोग अरफी उर्फ कामरान द्वारा किया गया अरफी द्वारा नासिर जमाल के कहने पर पोखरे की जमीन रनिवाया की जमीन, चाँद तारा पोखरे की जमीन पर भी नासिर जमाल व अन्य से साजिश कर कब्जा किया गया मो हासिम जो वर्तमान में जिला कारागार जौनपुर में बंद है के द्वारा वर्ष 2020 मेरे भाई आशुतोष के विरुद्ध एक फर्जी मुकदमा 330/22 धारा 302/307/504/506/120बी, भादंवि पंजीकृत कराया था विवेचना से सत्यता पायी जाने पर अभियोग में धारा 302/201/194/211/120ची भादंवि व 3(2)5 एस.सी/एस. डी एक्ट का अपराध हासिम के विरुद्ध ही पाया गया था जिसमें वह जेल भेजा गया था अभियुक्त जमीरुद्दीन क्षेत्र का एक बड़ा गो तस्कर है जो आस पास के क्षेत्रों से गाय बैल को अवैध रूप से कटान के लिए तस्करी किये जाने में लिप्त रहता है। मेरे भाई द्वारा आशुतोष द्वारा इन सभी लोगों के अवैध कृत्यों के विरुद्ध आवाज विभिन्न माध्यमों से उठाई थी जिससे यह सभी लोग मेरे भाई से काफी नाराज थे तथा मेरे भाई को कई बार प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रुप में जान से मारने की धमकी भी दी थी। जिसकी सूचना मेरे भाई द्वारा समय समय पर प्रशासन को दी गयी थी। कल दिनांक 13.05.2024 की सुबह 9.30 बजे मेरा भाई अपने बुलेट मोटरसाइकिल न. यूपी 65 डीआर 0447 से उसरहदा आजाद जाने को कहकर घर से निकला था मैं उससे पूर्व ही घर के पास संतलाल मेडिकल स्टोर पर दवा लेने गया था जब मेरे भाई मोटरसाइकिल लेकर सबरहद मोड़ के पास काजी एग व किराना स्टोर के पास पहुंचा तो वहाँ पहले से मौजूद अर्को व उसके साथ 5 अज्ञात लोगों द्वारा मेरे भाई को हाथ देकर रोका गया मेरे भाई ने मोटरसाइकिल रोक दी तभी उर्फी व कामरान के इशारे पर पांचों लोगों ने अपने पास लिये घातक शखों से मेरे भाई आशुतोष को जान से मारने की नियत में गोलियां मार दी। लोगो को आतंकित करते हुये अरफी उर्फ कामरान ने चिल्लाकर कहा आज भाई नासिर जमाल जमिरुद्दीन व मोहम्मद हासिम व मदरसे के कमेटी के लोगों का काम पूरा हो गया जिसे संतलाल मेडिकल स्टोर पर मौजूद मैंने सुना व पूरी घटना देखी घटना के बाद हमलावर व अरफी मौके से भाग गये उनके भाग जाने के बाद मैंने भागकर घायल आशुतोष को सड़क से सहारा देकर उठाया घर पर खबर कर अपने भाइयों अतुल व पारितोष को बुलाकर टेम्पो से आशुतोष को शाहगंज अस्पताल ले जाने

लगे। रास्ते में आशुतोष ने रुक रुक कर इशारे से हम तीनो भाइयों को बताया कि उसे अरफी उर्फ कामरान, नासिर जमाल, जमीरुद्दीन, मो. हासिम व फारुकिया मदरसे प्रबन्ध समिति के लोगों द्वारा साजिश कर गोली मरवायी गयी है। टैम्पो से ले जाते समय कुछ आगे चलने पर वीमार्ट के दकान के सामने पहुँचते पहुँचते आशुतोष ने गोलियों से आयी चोट के कारण दम तोड़ दिया हम लोग सी.एच.सी. शाहगंज पहुंचे जहां डाक्टर ने मेरे भाई का मुआयना कर उसे मृत घोषित कर दिया। अचानक इतनी बड़ी घटना हो जाने के कारण हमारा पूरा परिवार सदमे व डर के कारण भयभीत था तथा आशुतोष के शव का पोस्टमार्टम व उसकी अंत्येष्टि कर्म काण्ड में लगे रहने के कारण तत्काल थाने पर तहरीर नहीं दे सका था। आज कुछ फुर्सत पाकर तहरीर टाइप थाने पर आकर मुकदमा लिखाया है।"

14. **प्रशांत कुमार सरकार बनाम आशीष चटर्जी और अन्य 1** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी:

"प्रस्तर-09: हमारी राय है कि आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अस्थिर है। यह तुच्छ है कि यह न्यायालय सामान्य रूप से अभियुक्त को जमानत देने या अस्वीकार करने वाले उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप नहीं करता है। हालांकि, उच्च न्यायालय पर भी यह समान रूप से निर्भर है कि वह इस बिंदु पर इस न्यायालय के निर्णयों की अधिकता में निर्धारित बुनियादी सिद्धांतों के अनुपालन में विवेकपूर्ण, सावधानी और सख्ती से अपने विवेक का प्रयोग करे। यह अच्छी तरह से तय है कि, अन्य परिस्थितियों के अलावा, जमानत के लिए आवेदन पर विचार करते समय ध्यान में रखे जाने वाले कारक हैं:

(i) क्या यह मानने के लिए कोई प्रथम दृष्टया या उचित आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया था;

(ii) आरोप की प्रकृति और गंभीरता;

(iii) दोषसिद्धि की स्थिति में सजा की गंभीरता;

(iv) जमानत पर रिहा किए जाने पर अभियुक्त के फरार होने या भागने का खतरा;

(v) अभियुक्त का चरित्र, व्यवहार, साधन, स्थिति और स्थिति;

(vi) अपराध दोहराए जाने की संभावना;

(vii) गवाहों को प्रभावित करने की उचित आशंका; और

(viii) निश्चित रूप से, जमानत देने से न्याय को विफल करने का खतरा।

15. **कल्याण चंद्र सरकार बनाम राजेश रंजन उर्फ पप्पू यादव और अन्य** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर-11 में निम्नानुसार टिप्पणी की: -

"*11. जमानत देने या अस्वीकार करने के संबंध में कानून बहुत अच्छी तरह से तय किया गया है। जमानत देने वाली अदालत को अपने विवेक का प्रयोग विवेकपूर्ण तरीके से करना चाहिए, न कि निश्चित रूप से। हालांकि जमानत देने के चरण में सबूतों की विस्तृत जांच और मामले के गुण-दोष के विस्तृत दस्तावेज की आवश्यकता नहीं है, ऐसे आदेशों में प्रथम दृष्टया यह निष्कर्ष निकालने के कारणों को इंगित करने की आवश्यकता है कि जमानत विशेष रूप से क्यों दी जा रही थी, जहां आरोपी पर गंभीर अपराध करने का आरोप लगाया गया है। ऐसे कारणों से रहित कोई भी आदेश दिमाग के आवेदन न करने से ग्रस्त होगा। जमानत देने वाली अदालत के*

लिए जमानत देने से पहले अन्य परिस्थितियों के साथ-साथ निम्नलिखित कारकों पर भी विचार करना आवश्यक हैं; वे हैं: क) आरोप की प्रकृति और दोषसिद्धि के मामले में सजा की गंभीरता और सहायक साक्ष्य की प्रकृति) गवाह के साथ छेड़छाड़ करने की उचित आशंका या शिकायतकर्ता को धमकी की आशंका हो।

16. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अमरमणि त्रिपाठी के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मामले के तथ्यों को इस आशय का नोट किया कि प्रतिपक्षी को पिछले 25 वर्षों में दस अन्य आपराधिक मामलों में नामित किया गया था, जिनमें से पांच मामले हत्या के प्रयास के लिए धारा 307 भ०द०वि० के तहत और हत्या करने के लिए धारा 302 भ०द०वि० के तहत थे। कि ज्यादातर मामलों में उन्हें पर्याप्त सबूतों के अभाव में बरी कर दिया गया था। किसी अन्य बात का उल्लेख किए बिना, इस न्यायालय ने अभिलिखित किया कि उक्त वाद में उच्च न्यायालय ने हत्या जैसे जघन्य अपराध, जिसमें दोषसिद्धि होने पर मृत्युदंड अथवा आजीवन कारावास का दंडादेश हो सकता है, में जमानत प्रदान किए जाने के सामान्य सिद्धांत की पूर्णतः उपेक्षा की। प्रकरण एक्स बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य 4 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 14 में निम्नलिखित रूप से प्रतिपादित किया है:

17. X बनाम राजस्थान राज्य और अन्य 4 के मामले में - माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 14 में निम्नानुसार व्यवस्था दी है: -

"14. आमतौर पर बलात्कार, हत्या, डकैती आदि जैसे गंभीर अपराधों में, एक बार जब मुकदमा शुरू हो जाता है और अभियोजन पक्ष अपने गवाहों से पूछताछ करना शुरू कर देता है, तो अदालत, चाहे वह विचारण न्यायालय हो या उच्च न्यायालय, आरोपी की जमानत याचिका पर विचार करने में संकोच करना चाहिए।

18. बृजमणि देवी बनाम पप्पू कुमार के मामले में; माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है: -

"25. जबकि हम इस तथ्य से अवगत हैं कि किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता एक अमूल्य अधिकार है, साथ ही जमानत के लिए आवेदन पर विचार करते समय अदालतें एक अभियुक्त के खिलाफ आरोपों की गंभीर प्रकृति और मामले में असर डालने वाले तथ्यों को नहीं भूल सकती हैं, विशेष रूप से, जब आरोप झूठे नहीं हो सकते हैं, प्रकृति में तुच्छ या कष्टप्रद लेकिन अभिलेखों पर लाई गई पर्याप्त सामग्री द्वारा समर्थित हैं ताकि न्यायालय को प्रथम दृष्टया निष्कर्ष पर पहुंचने में सक्षम बनाया जा सके। जमानत देने के लिए एक आवेदन पर विचार करते समय, प्रथम दृष्टया निष्कर्ष का कारणों से समर्थन किया जाना चाहिए और अभिलेखों पर लाए गए मामले के महत्वपूर्ण तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इस पर पहुंचा जाना चाहिए। अपराध की प्रकृति, अभियुक्त की आपराधिक पृष्ठभूमि, यदि कोई हो, और सजा की प्रकृति पर उचित विचार किया जाना चाहिए जो किसी अभियुक्त के खिलाफ कथित अपराध की तुलना में दोषसिद्धि के बाद होगी।

26. हमने उपरोक्त आक्षेपित आदेशों के प्रासंगिक अंश निकाले हैं। शुरुआत में, हम देखते हैं कि निकाले गए हिस्से ही एकमात्र भाग हैं जो जमानत देते समय उच्च न्यायालय के "तर्क" का हिस्सा बनते हैं। जैसा कि उपरोक्त निर्णयों से उल्लेख किया गया है, अदालत के लिए जमानत देते समय विस्तृत कारण देना आवश्यक नहीं है, खासकर जब मामला प्रारंभिक चरण में हो और अभियुक्त द्वारा अपराधों के आरोपों को इस तरह से स्पष्ट नहीं किया गया हो। यह धारणा देने के लिए विस्तृत विवरण दर्ज नहीं किया जा सकता है कि मामला ऐसा है जिसके परिणामस्वरूप जमानत देने के लिए आवेदन पर आदेश पारित करते समय दोषसिद्धि होगी या, इसके विपरीत, बरी हो जाएगा। साथ ही, अभियुक्त के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की प्रकृति; आरोप सिद्ध हो जाने तथा युक्तियुक्त संदेह से परे प्रमाणित होकर दोषसिद्धि होने की स्थिति में संभावित दंड की गंभीरता; अभियुक्त द्वारा साक्षियों को प्रभावित किए जाने की युक्तियुक्त आशंका; साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ की संभावना; अभियोजन प्रकरण की निराधारता अथवा तुच्छता; अभियुक्त के आपराधिक पूर्ववृत्त; तथा अभियुक्त के विरुद्ध आरोप के समर्थन में न्यायालय की प्रथम दृष्टया संतुष्टि–इन समस्त तथ्यों के मध्य समुचित संतुलन स्थापित किया जाना अपेक्षित होगा।

19. जितेंद्र प्रताप सिंह उर्फ जीतू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में इस माननीय न्यायमूर्ति श्री न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित नवीनतम निर्णय में निम्नानुसार व्यवस्था दी गई है: -

"15. प्रस्तुत मामले में, राज्य संशोधन स्पष्ट रूप से मौत की सजा से दंडनीय अपराधों के लिए अग्रिम जमानत पर रोक लगाता है। वैधानिक बार निरपेक्ष है। यह अदालतों के लिए नहीं है कि वे कानून को फिर से लिखें या एक विधायी जनादेश के अपवाद बनाएं जो स्पष्ट है। जबकि न्यायालय व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संरक्षक हैं, वे कानून के शासन को बनाए रखने और विधायिका द्वारा निर्धारित सीमाओं का सम्मान करने के लिए भी बाध्य हैं।

16. यह तर्क कि अपराध की प्रकृति पर यह निर्धारित करने में विचार किया जाना चाहिए कि क्या अग्रिम जमानत दी जा सकती है, वैधानिक निषेध के बावजूद, असमर्थनीय है। इस तरह का दृष्टिकोण प्रभावी रूप से विधायी बार को अर्थहीन बना देगा और न्यायिक अतिरेक का द्वार खोल देगा।

17. वैधानिक बार के सख्त आवेदन से उत्पन्न होने वाली कोई भी कथित कठिनाई या अन्याय विधायिका के लिए संशोधन के माध्यम से संबोधित करने का मामला है। यह न्यायालयों के लिए नहीं है कि वे क़ानून के स्पष्ट प्रावधानों के विपरीत विवेक का प्रयोग करके कानून में कथित अंतराल को भरें। हालांकि, जैसा कि पृथ्वी राज चौहान (उपरोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा तय किया गया है, अदालत धारा 482 द०प्र०स० के तहत या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत अपने अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र में अभी भी गिरफ्तारी से अंतरिम संरक्षण प्रदान कर सकता है यदि प्रथम दृष्टया, आरोप लगाए गए अपराध शिकायत की सामग्री से बाहर नहीं हैं। इसके अलावा, यहां तक कि एक नियमित जमानत आवेदन लंबित होने तक उचित मामलों में, एक अदालत द्वारा अंतरिम जमानत भी दी जा सकती है।

18. धारा 438 द०प्र०स० के स्पष्ट शब्दों के आलोक में, जो उन मामलों में अग्रिम जमानत आवेदन दायर करने पर रोक लगाता है जहां अपराध मौत की सजा से दंडनीय है, इस न्यायालय की राय है कि ऐसे मामलों में अग्रिम जमानत आवेदन पर विचार करने के लिए किसी भी न्यायिक विवेक का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

19. इसलिए, इस पीठ को संदर्भित प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है। अदालतें उन मामलों में अग्रिम जमानत आवेदन पर विचार नहीं कर सकती हैं जहां राज्य संशोधन इसे प्रतिबंधित करता है।

20. पूर्वगामी प्रस्तर में बताए गए कारणों को ध्यान में रखते हुए, मुझे आवेदक के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों और निम्नलिखित कारणों से जमानत आवेदन में की गई सामग्री में कोई योग्यता नहीं मिलती है: सबसे पहले, आवेदक कथित तौर पर धारा 302 भ०द०वि० के तहत दंडनीय जघन्य अपराध के गठन में शामिल है, जिसमें सजा को आजीवन कारावास या मौत की सजा दी जा सकती है। दूसरे, सूचनाकर्ता की धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए बयान में प्राथमिकी की सामग्री की पुष्टि की गई है, अभिलेखों पर मौजूद अन्य सामग्री, जो जांच के दौरान पुलिस द्वारा एकत्र की गई हैं, प्रथम दृष्टया आवेदक को उक्त अपराध करने के लिए जोड़ती हैं। तीसरा, आवेदक पर इतिहास वर्ष 17 आपराधिक मामले हैं। चौथा, आवेदक के आपराधिक इतिहास को ध्यान में रखते हुए, गवाहों को खतरे की बड़ी आशंका है जैसा कि सूचनाकर्ता की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता ने कहा है।

21. उपरोक्त कारणों को ध्यान में रखते हुए, मुझे प्रस्तुत आवेदन में कोई दम नहीं लगता। इसलिए, गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त किए बिना, प्रस्तुत जमानत आवेदन **खारिज** किया जाता है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1186

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 30.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति मदन पाल सिंह

आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-12507 वर्ष 2024

अनवर ढेबर ... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: उत्कर्ष मालवीय, वरद नाथ

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 19(1), 21, 22(1), 39-A और 226 - अनवर ढेबर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1187 आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 50, 167 और 304 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 120-बी, 384, 420, 467, 468 और 471 - भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1961 - धारा 7 और 12 - रिट याचिका - गिरफ्तारी पर आघात करना और ए.सी.बी. द्वारा दर्ज किए गए लगातार सभी रिमांड आदेशों - ई.सी.आई.आर. - प्राथमिकी - को अवैध घोषित करना - पहले याचिकाकर्ता को भ०द०वि० के तहत अपराधों के लिए ए.सी.बी. द्वारा छत्तीसगढ़ में अन्य सह-आरोपियों के साथ गिरफ्तार किया गया था और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, जिसके लिए उन्हें जमानत दी गई थी - हालांकि, उनकी रिहाई के उसी दिन, उन्हें उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा रायपुर में फिर से गिरफ्तार कर लिया गया था, उनकी जमानत रिहाई के 20 मिनट के भीतर - ट्रांजिट रिमांड - विशेष न्यायाधीश, मेरठ ने उन्हें संविधान के अनुच्छेद 19(1), 22 (1) और द०प्र०स० की धारा 50 के उल्लंघन का हवाला देते हुए उनकी आपत्तियों के बावजूद न्यायिक हिरासत में भेज दिया - उनकी गिरफ्तारी फ़र्द और उनके बेटे को सूचना विधिवत थी उसी दिन बनाया गया - न्यायालय ने पाया कि, - गिरफ्तारी ज्ञापन में कारण बताने के लिए एक कॉलम का अभाव था, और याचिकाकर्ता को कानूनी सहायता के अपने अधिकार के बारे में सूचित नहीं किया गया था, जो संविधान के अनुच्छेद 21, 22 (1), 39 ए और धारा 304 द०प्र०स० के तहत संरक्षित है - माना जाता है, कानूनी सहायता प्राप्त करने का अधिकार एक अभियुक्त का एक मूल्यवान अधिकार है और उसे उसकी गिरफ्तारी से पहले उस अधिकार के बारे में सूचित किया जाना चाहिए - इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 22 (1) और धारा 50 द०प्र०स० का पालन न करने के कारण गिरफ्तारी के आधार को कभी भी लिखित रूप में नहीं बताया गया था, न ही याचिकाकर्ता

को अपनी हिरासत की रिमांड का बचाव करने का अवसर दिया गया था, गिरफ्तारी और उसके बाद के सभी रिमांड आदेशों को रद्द कर दिया गया था - हालांकि, आरोप-पत्र अप्रभावित रहता है और कार्यवाही कानून के अनुसार जारी रह सकती है - जारी किए गए निर्देश, भविष्य में होने वाली प्रक्रियात्मक चूक को रोकने के लिए पुलिस महानिदेशक द्वारा उत्तर प्रदेश के सभी पुलिस कामकों को दिए गए निर्णय के परिचालन के लिए एक समिति का गठन किया गया है। (प्रस्तर-16, 17, 18, 19)

रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। (ई-11)

परिणाम: - रिट याचिका अनुमति दी गई।

<u>उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची</u>:

1. विमल किशोर मेहरोत्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य- ए.आई.आर. 1956 इला 56,
2. आशीष कक्कड़ बनाम चंडीगढ़ केंद्र शासित प्रदेश - मनु/एससीओआर/ 31085/2025;
3. विहान कुमार बनाम हर राज्य। और अन्य- मनु/एस.सी./0161/2025;
4. मंजीत सिंह @ इंदर @ मंजीत सिंह चाना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य- आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-934 वर्ष 2025 में पारित आदेश दिनांक 09.04.2025;
5. मार्फिंग तमांग बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) - मनु/डीई/0755/2025;
6. एयर इंडिया सांविधिक निगम और अन्य बनाम यूनाइटेड लेबर यूनियन और अन्य- (1997) 9 एस.सी.सी. 377,
7. विधु गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य- एस.एल.पी. (आपराधिक) संख्या-10178 वर्ष 2024;
8. क्रिस्टी बनाम लीचिंस्की (1947 ई. 573),
9. प्रबीर पुरकायस्थ बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली)(उपरोक्त) - कानून (एस.सी.)-2024-5-46,
10. पंकज बंसल बनाम यू.ओ.आई.- कानून (एस.सी.)-2023- 10-3,
11. विहान कुमार बनाम हर राज्य - कानून (एस.सी.)- 2025-2-20 (प्रस्तर-21)
12. आशीष कक्कड़ बनाम चंडीगढ़ केंद्र शासित प्रदेश - आपराधिक अपील संख्या-1518 वर्ष 2025 एस.एल.पी. (सीआरएल) संख्या-1662 वर्ष 2025 से उत्पन्न 25.03.2025 को निर्णय लिया गया।

<u>(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा और</u>
<u>माननीय न्यायमूर्ति मदन पाल सिंह द्वारा पारित)</u>

अनुवादित

1. श्री उत्कर्ष मालवीय, श्री वरद नाथ और याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री विकास वालिया की सहायता से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनूप त्रिवेदी को सुना; राज्य की ओर से श्री मनीष गोयल, अपर महाधिवक्ता श्री रूपक चौबे, श्री जेके उपाध्याय और श्री विकास सहाय की सहायता से पेश हुए; उनको सुना गया और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. यह रिट याचिका याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी को 30.07.2023 की पहली रिपोर्ट के माध्यम से अवैध घोषित करने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है, जिसने केस अपराध संख्या-196 वर्ष 2023 को जन्म दिया था। एक और राहत के लिए प्रार्थना की गई है और वह यह है कि याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी के बाद पारित सभी क्रमिक रिमांड आदेशों को अवैध घोषित किया जाए।

3. याचिकाकर्ता अनवर ढेबर को इस मामले में एक मामले के संबंध में गिरफ्तार किया गया था, जिसे प्रवर्तन मामला सूचना रिपोर्ट (इसके बाद "ई.सी.आई.आर." के रूप में संदर्भित) के माध्यम से दर्ज किया गया था। ई.सी.आई.आर./आर.पी.जेड.ओ./11/2022। इस मामले को याचिकाकर्ता द्वारा अन्य सह-अभियुक्तों के साथ लड़ा जा रहा था और उसमें ई.सी.आई.आर. को चुनौती दी गई थी। हालाँकि, 17.01.2024 को, भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो, छत्तीसगढ़ द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 और 12 सपठित भ०द०वि० की धारा 420, 467, 468, 471 और 120-बी के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी, जिसने मामला अपराध संख्या-4 वर्ष 2024 को जन्म दिया था और इसमें याचिकाकर्ता को 04.04.2024 को गिरफ्तार किया गया था। जब याचिकाकर्ता को इस तरह गिरफ्तार किया गया, तो छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय ने उसे 14.06.2024 को जमानत दे दी। इसके साथ ही, उत्तर प्रदेश राज्य में इसी क्रम में हुई घटनाओं के संबंध में, उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा 30.07.2023 को की धारा 420, 468, 471, 473, 484 और 120-बी भ०द०वि० के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी और जिसने अपराध संख्या-196 वर्ष 2023 को जन्म दिया था। जब याचिकाकर्ता, छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय द्वारा केस अपराध संख्या-4 वर्ष 2024 में, 18.06.2024 को रात 09:20 बजे एक आदेश द्वारा जमानत पर रिहा किया गया, तो उत्तर प्रदेश पुलिस ने उसे उसी तारीख को यानी 18.06.2024 को रात 09:40 बजे रायपुर में ही गिरफ्तार कर लिया। उत्तर प्रदेश राज्य के विवेचनाधिकारी, श्री ए.सी. श्रीवास्तव ने धारा 167 द०प्र०स० के तहत रायपुर में मजिस्ट्रेट से ट्रांजिट रिमांड के लिए आवेदन किया, जिसे 48 घंटे के लिए मंजूर किया गया था। 21.06.2024 को, विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, मेरठ ने याचिकाकर्ता को 01.07.2024 तक न्यायिक हिरासत में ले लिया, इस तथ्य के बावजूद कि याचिकाकर्ता ने विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, मेरठ के समक्ष स्पष्ट रूप से आवेदन किया था कि उसकी गिरफ्तारी भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1) और 22(1) का उल्लंघन है। उन्होंने यह भी कहा था कि गिरफ्तारी द०प्र०स० की धारा 50 के प्रावधानों का उल्लंघन है। जिस समय याचिकाकर्ता को 18.06.2024 को उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा रायपुर में गिरफ्तार किया गया था, उस समय गिरफ्तारी का ज्ञापन था। गिरफ्तारी के संबंध में सूचना भी उसी तारीख यानी 18.06.2024 को उनके बेटे को भेजी गई थी। याचिकाकर्ता के बेटे को दी गई जानकारी को यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

""गिरफ्तारी की सूचना प्रति

जुनैद वेबर 5/0 अनवर देबर उम्र 28 वर्ष निवासी ओस्मचौक के पास हिन्द परस्कोल के सामने कैरन बाजार रायपुर छत्तीसगढ़ा आपको सूचित किया जाता है कि थाना कसना गौतम बुद्ध नगर कि न०: 196/23 धारा 420, 419, 467, 468, 471, 120B, 384 IPC व 7 क भ्रष्टाचार निरोधक में आज दिनांक 18.06.24 को 21:40 अपने पिता अनवर वेबर को थाना सिविल लाईनस में गिरफ्तार किया गया जिन्हें न्यायालय समय पर संबंधित न्यायालय में पेश किया जायेगा"

गिरफ्तारी के ज्ञापन को भी यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

<u>"गिरफ्तारी का प्रपत्र</u>

1. अभियुक्त का नाम अनवर वेबर पिता का नाम स्व० जीकर भाई डेबर निवासी औकम चौक हिन्दू हाईसूख के सामने बैगम बाजार रामपुर छत्तीसगढ़ वर्ष 52 वर्ष लगभग

2. अन्तर्गत मु०अ०सं० / धारा 196/23 धारा 419, 420, 467, 468, 471, 1200, 384 आई.पी.सी. व 8क 17/13 भ्रष्ट्राचार नि० अधि० थाना करना गौतमबुद्धनगर में वांछित है।

3. गिरफ्तारी का स्थान जेल गेट के सामने दिनांक

18.6.24 समय 21:40"

4. गिरफ्तारी करने वाले पुलिस अधि०/कर्मचारीगण का विवरण-एसआई श्री पवन कुमार, एसआई श्री फैजूक्दीन सिटली एच.सी. रमाशंकर चौधरी, एचसी राघवेन्द्र तिवारी, एचसी सूरज कुमार सी/ सुधीर कुमार एचसी प्रवीन शुक्ला

5. स्थानीय साक्षी जिसकी उपस्थित में गिरफ्तारी की गयी--

6. गिरफ्तारी के समय अभियुक्त के कब्जे से प्राप्त वस्तु इत्यादि का विवरण--

7. गिरफ्तारी साक्षीगण के हस्ताक्षर

8. अभियुक्त के नि०अ० / हस्ताक्षर

9. पुलिस अधिकारी/कर्मचारी का हस्ताक्षर शंकर

एचसी राघवेन्द्र तिवारी सी / सुधीर कुमार एचसी सूरज कुमार रमा

प्रारूप-2

<u>गिरफ्तारी सूचना पत्र जिला विधिक सेवा प्राधिकरण को दी जाने वाली सूचना</u>

1. जनपद का नाम रामपुर छत्तीसगढ़

2. अभिरक्षा में लिए गये व्यक्ति का नाम अनवर जेबर पिता का नाम स्व० जीकर भाई वेबर पता निवासी ओकम चौक हिन्दू हाईसुख के सामने बैगम बाजार रामपुर छत्तीसगढ़3. अभिरक्षा में लेने की तिथि 18.6.24

4. अपराध संख्या थाना व धारा 196/23 धारा

419, 420, 467, 468, 471, 120बी, 384 आई.पी.सी. व 7 क श्रहाचार नि० अधि०

5. किसके द्वारा गिरफ्तार किया गया एसआई श्री पवन सिंह, एसआई श्री फैजूददीन सिददीकी, एचसी प्रवीन शुक्ल, एचसी राघवेन्द्र तिवारी, एचसी सूरज, एचसी रमा शंकर, सी / सुधीर

6. गिरफ्तारी के बाद कहाँ रखा गया

7. मित्र सम्बन्धी का नाम व पता जिसे सूचना देनी है- सोरव देवर (पुत्र) मो० 8881383333

अनुवादित

दिनांक: 18.06.2024

(पवन कुमार सिंह)
उ०नि०
एस०टी०एफ०
लखनऊ"

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का यह तर्क है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(1) के अनुसार, किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार या हिरासत में नहीं लिया जा सकता है, जब तक कि उसे इस तरह की गिरफ्तारी के आधार के बारे में सूचित नहीं किया जा सके। उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें परामर्श करने के अधिकार से भी वंचित नहीं किया जाएगा और उनकी पसंद के विधि अधिवक्ता द्वारा उनका बचाव किया जाएगा। चूंकि, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(1) पर भरोसा किया था और इसलिए इसे यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"22. कुछ मामलों में गिरफ्तारी और हिरासत के खिलाफ संरक्षण। -
(1) गिरफ्तार किए गए किसी भी व्यक्ति को ऐसी गिरफ्तारी के कारणों के बारे में सूचित किए बिना हिरासत में नहीं रखा जाएगा और न ही उसे अपनी पसंद के विधिक व्यवसायी से परामर्श करने और बचाव करने के अधिकार से वंचित किया जाएगा।

5. उन्होंने धारा 50 द०प्र०स० पर भी भरोसा किया है और प्रस्तुत किया है कि प्रत्येक पुलिस अधिकारी, जिसने बिना वारंट के किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया है, उसे गिरफ्तार व्यक्ति को उन अपराधों का पूरा विवरण देना होगा जिनके लिए उसे गिरफ्तार किया गया था। वह गिरफ्तार व्यक्ति को इस तरह की गिरफ्तारी के आधार के बारे में भी सूचित करेगा। धारा 50 द०प्र०स० को यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:
"50. गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को गिरफ्तारी के आधार और जमानत के अधिकार के बारे में सूचित किया जाना चाहिए।

(1) प्रत्येक पुलिस अधिकारी या अन्य व्यक्ति जो किसी व्यक्ति को बिना वारंट के गिरफ्तार करता है, उसे उस अपराध का पूरा विवरण तत्काल सूचित करेगा जिसके लिए उसे गिरफ्तार किया गया है या ऐसी गिरफ्तारी के अन्य आधार हैं।

(2) जहां कोई पुलिस अधिकारी गैर-जमानती अपराध के आरोपी व्यक्ति के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को बिना वारंट के गिरफ्तार करता है, तो वह गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को सूचित करेगा कि वह जमानत पर रिहा होने का हकदार है और वह अपनी ओर से जमानत की व्यवस्था कर सकता है।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एक प्रसिद्ध खंड पीठ के फैसले पर भरोसा करते हुए ए.आई.आर. 1956 में रिपोर्ट की सभी 56 (विमल किशोर मेहरोत्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) ने प्रस्तुत किया कि प्रावधान में अंतर्निहित उद्देश्य यह था कि जब गिरफ्तारी का आधार उस व्यक्ति को सूचित किया जाएगा जिसे गिरफ्तार किया जा रहा था तो वह गिरफ्तार व्यक्ति उपयुक्त न्यायालय में आवेदन करने की स्थिति में होगा उचित राहत के लिए जमानत या उच्च न्यायालय का रुख करें। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि यह जानकारी गिरफ्तार व्यक्ति को अपने मुकदमे के प्रयोजनों के लिए समय पर अपना बचाव तैयार करने में सक्षम बनाएगी। उस उद्देश्य के लिए, उन्होंने उपर्युक्त निर्णय के प्रस्तर-31 पर भरोसा किया और इसलिए इसे यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"इस प्रावधान में अंतर्निहित उद्देश्य कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को गिरफ्तारी के आधार के बारे में सूचित किया जाना चाहिए, ऐसा प्रतीत होता है। गिरफ्तारी के आधार के बारे में जानने पर, वह व्यक्ति जमानत के लिए उपयुक्त न्यायालय में आवेदन करने या बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट के लिए उच्च न्यायालय का रुख करने की स्थिति में होगा। इसके अलावा, यह जानकारी गिरफ्तार व्यक्ति को अपने मुकदमे के प्रयोजनों के लिए समय पर अपना बचाव तैयार करने में सक्षम बनाएगी। इन कारणों से, संविधान द्वारा यह प्रावधान किया गया है कि, गिरफ्तारी के आधार के बारे में उस व्यक्ति को सूचित किया जाना चाहिए ??? जितनी जल्दी हो सके। प्रस्तुत मामले में प्रतिपक्षियों की ओर से यह तर्क नहीं दिया गया था कि, गिरफ्तारी के तुरंत बाद याचिकाकर्ता को जानकारी देना अव्यावहारिक था। प्रतिपक्षियों की ओर से तर्क यह है कि, याचिकाकर्ता को आवश्यक जानकारी पहले ही प्रदान की जा चुकी है। अनुलग्नक ग में वर्णित कथित घटना कानपुर में हुई थी। याचिकाकर्ता को कानपुर शहर से गिरफ्तार किया गया था। यह जेल कानपुर में स्थित है। गिरफ्तारी के एक सप्ताह के भीतर याचिकाकर्ता को आवश्यक जानकारी आसानी से प्रदान की जा सकती है।

7. प्रस्तर-31 उस आदेश का एक हिस्सा था जो माननीय न्यायमूर्ति श्री जस्टिस ओक और माननीय न्यायमूर्ति श्री जस्टिस देसाई की एक खंडपीठ द्वारा दिया गया था, जिसमें माननीय न्यायमूर्ति श्री जस्टिस देसाई, जो बेंच का एक हिस्सा भी थे, ने अलग से अपना निर्णय दिया, हालांकि वह उसी निष्कर्ष पर पहुंचे थे जैसा कि माननीय न्यायमूर्ति श्री जस्टिस ओक द्वारा किया गया था, और याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अपनी बात को घर लाने के लिए फैसले के प्रस्तर-42, 43, 44, 45, 46, 47, 48 और 49 पर भरोसा किया। प्रस्तर-को यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"42. यह प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार है कि गिरफ्तार होने पर उसे "जितनी जल्दी हो, इस तरह की गिरफ्तारी के आधार के बारे में सूचित किया जाना चाहिए"; उसे इतनी सूचित किए बिना हिरासत में नहीं रखा जा सकता है। हमारे सामने पक्षकारों का यह सामान्य मामला है कि आवेदक को गिरफ्तार किए जाने पर केवल यह सूचित किया गया था कि उसे अधिनियम की धारा 7 के तहत गिरफ्तार किया गया था; इस बात का कोई आरोप नहीं है कि उन्हें कोई अन्य सूचना दी गई थी। धारा 7 एक विस्तृत धारा है जिसमें कई प्रावधान हैं और उन्हें यह नहीं बताया गया था कि किस विशेष प्रावधान के तहत उन्हें गिरफ्तार किया गया था। उसके खिलाफ

लगाए गए आरोपों या उसके द्वारा किए गए कथित कार्य के बारे में उसे कुछ भी नहीं कहा गया था और यह धारा 7 के तहत दंडनीय अपराध है।

43. अनुच्छेद 22(1) में नियम है कि गिरफ्तार किया जा रहा है पर एक व्यक्ति गिरफ्तारी के लिए आधार के बारे में सूचित किया जाना चाहिए, हालांकि बिल्कुल समान नहीं है, इंग्लैंड में प्रचलित नियमों और अनवर ढेबर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1191 संयुक्त राज्य अमेरिका। इंग्लैंड में प्रचलित नियम यह है कि "सामान्य परिस्थितियों में एक पुलिसकर्मी या एक निजी व्यक्ति द्वारा वारंट के बिना गिरफ्तारी को केवल तभी उचित ठहराया जा सकता है जब यह गिरफ्तार व्यक्ति को ज्ञात किए गए आरोप पर गिरफ्तारी हो"; (प्रति विस्काउंट साइमन एलसी - 'क्रिस्टी बनाम लीचिंस्की (1947 एसी 573 पृष्ठ 586 (एफ)

44. यह सामान्य कानून का एक नियम है और अलग-अलग अधिकारियों द्वारा अलग-अलग भाषाओं में वर्णित है, लेकिन अर्थ एक ही है; गिरफ्तार व्यक्ति को यह बताया जाना चाहिए कि उसे क्या गिरफ्तार किया गया है या उसकी गिरफ्तारी का कारण क्या है। संयुक्त राज्य अमेरिका में अभियुक्त को "आरोप की प्रकृति और कारण के बारे में सूचित किया जाना" संवैधानिक अधिकार है; अमेरिकी संविधान में 6 वां संशोधन देखें। में - ***'हूपर बनाम लेन', (1857) 6 एचएलसी 443: 10 ईआर 1368 (जी)****, नियम के कारणों में से एक यह कहा गया था कि गिरफ्तार व्यक्ति को पता होना चाहिए कि वह गिरफ्तारी के लिए बाध्य है या नहीं। 'लीचिंस्की के मामले (एफ)' में लॉर्ड साइमंड्स ने पृष्ठ 591 पर कहा:*

"पहली टाइलिंग को पहले रखते हुए, मैं कहूंगा कि यह प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि वह गिरफ्तारी से मुक्त हो, जब तक कि किसी अन्य नागरिक में उसे गिरफ्तार करने का अधिकार न हो, चाहे वह कांस्टेबल हो या नहीं। और मैं आगे कहूंगा कि यह प्रत्येक नागरिक के गिरफ्तारी से मुक्त होने के अधिकार का परिणाम है कि उसे गिरफ्तारी का विरोध करने के लिए तब तक प्रेरित किया जाना चाहिए जब तक कि वह गिरफ्तारी वैध न हो। इन अधिकारों को इस प्रस्ताव के साथ कैसे मिलाया जा सकता है कि उसे यह जाने बिना गिरफ्तार किया जा सकता है कि उसे क्यों गिरफ्तार किया गया है? ..... अंधा, निर्विवाद आज्ञाकारिता अत्याचारियों और दासों का कानून है: यह अभी तक अंग्रेजी धरती पर नहीं पनपता है।

45. प्रोफेसर ग्लेनविले एल. विलियम्स ने अपने लेख "(1954) आपराधिक कानून की समीक्षा में एक वैध गिरफ्तारी की आवश्यकताएं, पृष्ठ 6 पृष्ठ 16 पर, लॉर्ड साइमंड्स द्वारा दिए गए कारण की आलोचना करते हुए "कुछ हद तक कानूनी" कहा क्योंकि कुछ लोग गिरफ्तारी के कानून को इस तरह से जानते हैं कि वे मौके पर ही तय कर सकते हैं कि जिस गिरफ्तारी के अधीन उन्हें किया जा रहा है वह कानूनी है या नहीं। उनकी राय में सही कारण एक अलग है, उदाहरण के लिए, विस्काउंट 11 वें साइमन एलसी द्वारा उसी मामले में पृष्ठ 588 पर निम्नलिखित शब्दों में दिया गया कारण: "यदि संदेह पर आरोप लगाया जाता है कि जिस व्यक्ति को गिरफ्तार किया गया है, उसे तब और वहां से अवगत कराया गया है, तो उसके पास किसी भी गलतफहमी का

असंवीक्षित

स्पष्टीकरण देने या अन्य व्यक्तियों पर ध्यान आकर्षित करने का अवसर है जिनके लिए वह गलत हो सकता है परिणाम यह है कि आगे की पूछताछ उसे झूठे आरोप के परिणामों से बचा सकती है।

46. पृष्ठ 592 पर लॉर्ड साइमंड्स द्वारा दिया गया एक और कारण यह है कि गिरफ्तार व्यक्ति बिना किसी देरी के ऐसे कदम उठा सकता है जो उसे स्वतंत्रता प्राप्त करने में सक्षम बनाएंगे। एक और कारण यह है कि यह निरंकुशता और अति उत्साह के खिलाफ सुरक्षा के रूप में कार्य करता है। जैसा कि प्रोफेसर ग्लेनविले एल. विलियम्स ने टिप्पणी की है (उपरोक्त, पृष्ठ 17 पर)

"इस नियम का प्रभाव पुलिस को अस्पष्ट सामान्य संदेह पर गिरफ्तार करने से रोकने का है, संदिग्ध सटीक अपराध को नहीं जानता है, लेकिन कुछ अपराध के गठन के सबूत प्राप्त करने की उम्मीद करता है जिसके लिए उनके पास गिरफ्तार करने की शक्ति है"।

*47. **'मैकनाब बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका', (1943) 318 यूएस 332 (एच)** में, फ्रैंकफर्टर ने पृष्ठ 343 पर देखा: 'इसलिए अनुभव ने सलाह दी है कि अतिउत्साही और साथ ही निरंकुश ..... के खतरों के खिलाफ सुरक्षा उपाय प्रदान किए जाने चाहिए इस तरह के कानून, जिसमें पुलिस को उचित तत्परता के साथ गिरफ्तार व्यक्तियों को हिरासत में लेने के लिए कानूनी कारण दिखाना चाहिए, एक महत्वपूर्ण सुरक्षा उपाय का गठन करता है।*

*48. **'अनटेड स्टेट्स बनाम क्रुइकशंक', (1876) 92 यूएस 542 पृष्ठ 559 1192** पृष्ठ 594(I) पर, वाइट सीजे द्वारा यह देखा गया था कि अभियुक्त को उसके खिलाफ आरोप का एक विनिर्देश रखने का अधिकार दिया गया है ताकि वह यह तय कर सके कि उसे रद्द करने के लिए प्रस्ताव द्वारा अपना बचाव प्रस्तुत करना चाहिए या नहीं, डिमर्रर या दलील। संविधान सभा की बहस, जिसने संविधान का निर्माण किया, एक निश्चित अधिनियमन के पीछे के कारण का पता लगाने के उद्देश्य से प्रासंगिक है। संविधान के मसौदा विधेयक में विचाराधीन अनुच्छेद के अनुरूप अनुच्छेद 15क था। अनुच्छेद के प्रावधानों के लिए दिया गया कारण यह था कि वे अवैध या मनमाने ढंग से गिरफ्तारियों के खिलाफ सुरक्षा उपाय थे (9 संविधान सभा बहस, पृष्ठ 1497)।*

49. अनुच्छेद 22(1) में "इस तरह की गिरफ्तारी के लिए आधार" या इलाज के लिए शब्दों की व्याख्या प्रावधान के लिए ऊपर दिए गए कारणों के प्रकाश में की जानी चाहिए। यदि किसी व्यक्ति को वारंट पर गिरफ्तार किया जाता है, तो गिरफ्तारी के कारणों का आधार वारंट है; यदि वारंट उसे पढ़ा जाता है, तो यह इस आवश्यकता का पर्याप्त अनुपालन है कि उसे उसकी गिरफ्तारी के आधार के बारे में सूचित किया जाना चाहिए। यदि उसे बिना वारंट के गिरफ्तार किया जाता है, तो उसे बताया जाना चाहिए कि उसे क्यों गिरफ्तार किया गया है। यदि उसे अपराध करने के लिए गिरफ्तार किया जाता है, तो उसे बताया जाना चाहिए कि उसने एक निश्चित अपराध किया है जिसके लिए उस पर मुकदमा चलाया जाएगा। उसे यह सूचित करने के लिए कि उसने एक निश्चित अपराध किया है, उसे उसके द्वारा किए गए कार्य के बारे में बताया जाना चाहिए जो अपराध के बराबर है।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने उच्चतम न्यायालय के हालिया फैसलों पर भरोसा किया, जो आशीष कक्कड़ बनाम यूटी ऑफ चंडीगढ़ हैं, जो मनु/एससीओआर/31085/2025 में रिपोर्ट किए गए हैं; **प्रवीर पुरकायस्था बनाम एनसीटी दिल्ली (2024) 8 एस.सी.सी. 254** में रिपोर्ट किया गया; **विहान कुमार बनाम हरियाणा राज्य और अन्य मनु/एससी/0161/2025; मंजीत सिंह @ इंदर @ मंजीत सिंह चाना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 2 अन्य** में दिनांक 09.04.2025 को आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-934 वर्ष 2025 और मार्फिंग तमांग बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) में पारित किया गया है। प्रबीर पुरकायस्थ (उपरोक्त) के फैसले पर भरोसा करते हुए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने उस निर्णय के विशेष रूप से प्रस्तर-8 पर भरोसा किया और इसलिए इसे यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"8. अपीलकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता श्री कपिल सिब्बल ने अपीलकर्ता की गिरफ्तारी और रिमांड की कार्यवाही पर सवाल उठाने के लिए निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ दीं: -

(i) प्राथमिकी संख्या-224 ईयर 2023 (प्राथमिकी जिसके संबंध में अपीलकर्ता को गिरफ्तार किया गया था) वस्तुतः उन्हीं तथ्यों पर दूसरी प्राथमिकी के अलावा और कुछ नहीं है क्योंकि इससे पहले, एक और प्राथमिकी संख्या-116 वर्ष 2020 दिनांक 26 अगस्त, 2020 को पीएस ई.ओ.डब्ल्यू., दिल्ली पुलिस ("ई.ओ.डब्ल्यू. प्राथमिकी") द्वारा दर्ज किया गया था, जिसमें अपीलकर्ता और कंपनी द्वारा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ.डी.आई.) नियमों और देश के अन्य कानूनों के उल्लंघन का आरोप लगाया गया था, जिससे सरकारी खजाने को नुकसान होता है। हालांकि, उक्त प्राथमिकी की एक प्रति अपीलकर्ता को प्रदान नहीं की गई थी। ई.ओ.डब्ल्यू. प्राथमिकी को विधेय अपराधों का खुलासा करने के रूप में मानते हुए, प्रवर्तन निदेशालय (संक्षेप में "ई.डी.") ने धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 (संक्षेप में 'पी.एम.एल.ए.' के लिए) की धारा 3 और 4 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए एक प्रवर्तन मामला सूचना रिपोर्ट (संक्षेप में 'ई.सी.आई.आर.') दर्ज की। ई.डी. ने कंपनी के कार्यालय मेसर्स पीपीके न्यूजक्लिक स्टूडियो प्राइवेट लिमिटेड सहित विभिन्न स्थानों पर व्यापक तलाशी और जब्ती अभियान चलाया, जिसमें अपीलकर्ता निदेशक है।

(ii) कंपनी ने रिट याचिका (सीआरएल) संख्या-5 ई.**सी.आई.आर. अनवर ढेबर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1193**, एवं 1129 वर्ष 2021 और 1130 वर्ष 2021 के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा 21 जून, 2021 को दंडात्मक कदमों के खिलाफ अंतरिम संरक्षण प्रदान किया गया था। अपीलकर्ता को 7 जुलाई, 2021 के आदेश के तहत अग्रिम जमानत की मांग करने वाले एक आवेदन में अंतरिम सुरक्षा भी प्रदान की गई थी।

(iii) प्राथमिकी संख्या-224 ईयर 2023 पूरी तरह से अनुमानों और अटकलों पर दर्ज की गई है, जिसमें रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों में कोई दम नहीं है। प्राथमिकी की सामग्री जो अपीलकर्ता को बहुत बाद के चरण में प्रदान की गई थी, बिना किसी मौलिक तथ्य या सामग्री के प्राथमिकी दर्ज करने की आवश्यकता के एक विशुद्ध रूप से काल्पनिक कहानी का खुलासा करती है।

(iv) निश्चित रूप से, प्राथमिकी संख्या-224 वर्ष 2023 की प्रति न तो सार्वजनिक डोमेन में उपलब्ध कराई गई थी और न ही अपीलकर्ता को उसकी गिरफ्तारी और रिमांड तक उसकी प्रति प्रदान की गई थी, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 20, 21 और 22 में निहित जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का पूर्ण उल्लंघन है।

(v) श्री सिब्बल ने बताया कि विद्वान रिमांड न्यायाधीश ने 5 अक्टूबर, 2023 के आदेश के माध्यम से, अपीलकर्ता द्वारा दायर आवेदन को उक्त प्राथमिकी की प्रमाणित प्रति की मांग करते हुए स्वीकार कर लिया, जो 5 अक्टूबर, 2023 को देर शाम अपीलकर्ता के अधिवक्ता को प्रदान की गई थी, यानी अपीलकर्ता को पुलिस हिरासत में भेजे जाने के काफी बाद।

(vi) कि गिरफ्तारी के आधार अपीलकर्ता को मौखिक या लिखित रूप में सूचित नहीं किए गए थे और इस तरह की कार्रवाई भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 (1) और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 50 (इसके बाद 'द०प्र०स०' के रूप में संदर्भित किया जा रहा है) के तहत संवैधानिक जनादेश का घोर उल्लंघन है।

(vii) पंकज बंसल बनाम पंकज बंसल के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा रिलायंस प्रस्तुत किया गया था। भारत संघ और अन्य1 के मामले में यह तर्क दिया गया था कि यदि ऐसी गिरफ्तारी कानून के अनुरूप नहीं थी, तो केवल लगातार रिमांड आदेश पारित करना प्रारंभिक गिरफ्तारी को मान्य करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। वरिष्ठ अधिवक्ता ने आग्रह किया कि पंकज बंसल (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय ने पी.एम.एल.ए. की धारा 19(1) के प्रावधान की व्याख्या की, जो यू.ए.पी.ए. की धारा 43बी(1) में निहित प्रावधानों के समान है। इस प्रकार, उक्त निर्णय पूरी तरह से अपीलकर्ता के मामले पर लागू होता है।

(viii) श्री सिब्बल ने पंकज बंसल (उपरोक्त) के निर्णय में की गई टिप्पणियों का उल्लेख किया और आग्रह किया कि चूंकि अपीलकर्ता को उसकी गिरफ्तारी के समय और पुलिस हिरासत में भेजने से पहले गिरफ्तारी के आधार प्रस्तुत नहीं किए गए थे, इसलिए अपीलकर्ता की निरंतर हिरासत को पूरी तरह से अवैध और कानून की नजर में अमान्य माना जाता है क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 22(1) के अधिदेश से प्रभावित होता है।

(ix) श्री सिब्बल ने यह भी आग्रह किया कि राम किशोर अरोड़ा बनाम राम किशोर अरोड़ा के मामले में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की खंडपीठ द्वारा लिया गया दृष्टिकोण प्रवर्तन निदेशालय 2 पंकज बंसल (उपरोक्त) में निर्णय को संचालन में संभावित मानते हुए भी राहत मांगने में अपीलकर्ता के रास्ते में नहीं आएगा। उन्होंने बताया कि पंकज बंसल (उपरोक्त) के मामले में फैसला 3 अक्टूबर, 2023 को सुनाया गया था, जबकि अपीलकर्ता का अवैध रिमांड आदेश 4 अक्टूबर, 2023 को पारित किया गया था और इसलिए, पंकज बंसल (उपरोक्त) के मामले में निर्धारित कानून राम किशोर अरोड़ा (उपरोक्त) में दी गई व्याख्या के बावजूद अपीलकर्ता के मामले में पूरी तरह से लागू होता है।

(x) अपीलकर्ता की गिरफ्तारी भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 में निहित प्रावधानों का घोर उल्लंघन है, इसलिए, अपीलकर्ता रिमांड आदेश के 1194 भारतीय कानून की रिपोर्ट इलाहाबाद श्रृंखला को रद्द करने और तुरंत हिरासत से रिहा करने के लिए निर्देश मांगने का हकदार है।

(xi) अपीलकर्ता को गिरफ्तार करने और उसकी रिमांड मांगने में विवेचनाधिकारी की कार्रवाई न केवल दुर्भावनापूर्ण है, बल्कि उच्चतम आदेश की धोखाधड़ी से भी भरी है।

(xii) 4 अक्टूबर, 2023 के रिमांड आदेश का उल्लेख करते हुए, यह तर्क दिया गया कि अपीलकर्ता को विवेचनाधिकारी द्वारा गिरफ्तारी के आधार से अवगत कराए बिना रात भर कैद में रखा गया था। उन्हें 4 अक्टूबर, 2023 को सुबह-सुबह अपीलकर्ता की ओर से लगे अधिवक्ता श्री अर्शदीप खुराना को सूचित किए बिना विद्वान रिमांड न्यायाधीश की अदालत में पेश किया गया था, जो स्वीकार किए गए थे कि वह विवेचनाधिकारी के संपर्क में थे क्योंकि उन्होंने अपीलकर्ता की गिरफ्तारी के बाद थाना लोधी कॉलोनी में कार्यवाही में भाग लिया था। अपीलकर्ता की पुलिस हिरासत रिमांड गुप्त रूप से प्राप्त करने के लिए, विवेचनाधिकारी ने अपीलकर्ता को सुबह 6:00 बजे से पहले विद्वान रिमांड न्यायाधीश के आवास पर पेश किया, जिसमें एक रिमांड अधिवक्ता श्री उमाकांत कटारिया को सूचित किया गया, जिन्हें अपीलकर्ता ने कभी भी अपना पक्ष रखने के लिए नहीं लगाया था।

(xiii) विद्वान रिमांड न्यायाधीश ने आरोपी को सुबह 6:00 बजे पुलिस हिरासत में भेज दिया, जैसा कि रिमांड आदेश (उपरोक्त) से स्पष्ट है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री अर्शदीप खुराना को सुबह 7:07 बजे एक व्हाट्सएप संदेश द्वारा रिमांड देने के आदेश के बारे में सूचित किया गया था, लेकिन यह निरर्थकता की कवायद थी क्योंकि इस बात की कोई संभावना नहीं थी कि अधिवक्ता रिमांड के लिए प्रार्थना का विरोध करने के लिए समय पर विद्वान रिमांड न्यायाधीश के आवास पर पहुंच सकता था।

(xiv) तथ्य की बात के रूप में, रिमांड आवेदन पहले ही सुबह 6:00 बजे स्वीकार कर लिया गया था, जो कि रिमांड आदेश (उपरोक्त) के अंत में संलग्न समय से प्रकट होता है। विद्वान रिमांड न्यायाधीश ने सुबह 6:00 बजे के रूप में समय दर्ज करके कार्यवाही पर हस्ताक्षर किए। इसलिए, इस निष्कर्ष से कोई बच नहीं सकता है कि रिमांड आदेश अपीलकर्ता या उसके द्वारा लगाए गए अधिवक्ता को गिरफ्तारी के आधार की प्रति प्रदान किए बिना पारित किया गया था। अपीलकर्ता को जानबूझकर उसकी गिरफ्तारी के आधार के बारे में जानकारी से वंचित किया गया था और इस तरह उसे और उसके अधिवक्ता को पुलिस हिरासत रिमांड की प्रार्थना का विरोध करने और जमानत मांगने से रोका गया था।

(xv) उन्होंने आगे आग्रह किया कि प्रतिपक्षी द्वारा अपनाया गया यह रुख कि विद्वान रिमांड न्यायाधीश द्वारा रिमांड आदेश पारित करने से पहले अपीलकर्ता के अधिवक्ता को गिरफ्तारी के आधार से अवगत करा दिया गया था, अभिलेखों के सामने अस्वीकार्य है क्योंकि रिमांड आदेश पारित करने का समय 4 अक्टूबर के आदेश

में स्पष्ट रूप से दर्ज किया गया है। 2023 सुबह 6:00 बजे के रूप में माना जाता है कि गिरफ्तारी के आधार से अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री अर्शदीप खुराना को सुबह 7:00 बजे के बाद अच्छी तरह से अवगत कराया गया था। यह तर्क दिया गया था कि विद्वान रिमांड न्यायाधीश द्वारा 4 अक्टूबर, 2023 के आदेश में यह नोट किया गया था कि रिमांड के लिए आवेदन पर अपीलकर्ता के अधिवक्ता को सुना गया था, रिमांड आदेश से स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इन पंक्तियों को बाद में शामिल करने के तथ्य को इस तथ्य से पुष्ट किया जाता है कि जब तक अधिवक्ता को सूचित किया गया था, तब तक अपीलकर्ता को पहले ही पुलिस हिरासत में भेज दिया गया था और गिरफ्तारी के कथित आधारों वाली रिमांड आवेदन की प्रति उसे प्रेषित की गई थी।

(xvi) कि प्राथमिकी संख्या-224 वर्ष 2023 में मूलभूत तथ्य ई.ओ.डब्ल्यू. प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों के लगभग समान हैं। अपीलकर्ता को 5 सभी प्रदान किए गए थे। 1195 ई.ओ.डब्ल्यू. प्राथमिकी में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा गिरफ्तारी के खिलाफ अनवर ढेबर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में संरक्षण। इस सुरक्षा के कारण, अपीलकर्ता को सलाखों के पीछे डालने में अधिकारियों के दुर्भावनापूर्ण उद्देश्य को पूरा नहीं किया जा रहा था और इसलिए, पूरी तरह से गढ़े गए आरोपों के साथ एक नई प्राथमिकी संख्या-224 वर्ष 2023 दर्ज की गई और अपीलकर्ता को प्राथमिकी की प्रति प्रदान किए बिना और अपीलकर्ता को गिरफ्तारी के आधार से अवगत कराए बिना अवैध रूप से उसकी स्वतंत्रता से वंचित कर दिया गया।

9. इसके बाद उन्होंने अपने मामले को और मजबूत करने के लिए, उस फैसले के प्रस्तर-20, 22, 29, 30, 46, 47, 48, 49, 50, 51 और 52 पर भरोसा किया और इसलिए उन्हें यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"20. जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 20, 21 और 22 के तहत गारंटीकृत सबसे पवित्र मौलिक अधिकार है। इस मौलिक अधिकार का अतिक्रमण करने के किसी भी प्रयास को इस न्यायालय द्वारा फैसलों की एक श्रृंखला में खारिज कर दिया गया है। इस संबंध में, हम इस न्यायालय द्वारा रॉय वीडी बनाम में की गई निम्नलिखित टिप्पणियों का उल्लेख कर सकते हैं। ***केरल राज्य [रॉय वी.डी. बनाम केरल राज्य, (2000) 8 एस.सी.सी. 590: 2001 एस.सी.सी. (सीआरआई) 42] : (एस.सी.सी. पी. 593, प्रस्तर-7)***

"7. किसी व्यक्ति का जीवन और स्वतंत्रता इतनी पवित्र है कि उसे कानून के अधिकार के बिना हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यह एक ऐसा सिद्धांत है जिसे सभी सभ्य देशों में मान्यता प्राप्त है और लागू किया गया है। हमारे संविधान में अनुच्छेद 21 न केवल भारत के नागरिकों के लिए बल्कि विदेशियों के लिए भी जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा की गारंटी देता है। इस प्रकार, भारत के संविधान के अनुच्छेद 20, 21 और 22 द्वारा गारंटीकृत इस तरह के मौलिक अधिकार का उल्लंघन करने के किसी भी प्रयास से सख्ती से निपटा जाना चाहिए।

22. ए.एस.जी. ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(5) की भाषा का उल्लेख किया और आग्रह किया कि निवारक निरोध के मामले में भी, संवैधानिक योजना के लिए यह आवश्यक नहीं है कि जिन आधारों पर हिरासत का आदेश पारित किया गया है, उन्हें लिखित रूप में हिरासत में लिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, हम उक्त निवेदन से प्रभावित नहीं हैं।

29. इसलिए, हमें यह दोहराने में कोई संकोच नहीं है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 (1) और 22 (5) के तहत प्रदान किए गए किसी अपराध के संबंध में गिरफ्तार किए गए व्यक्ति या निवारक हिरासत में रखे गए व्यक्ति को गिरफ्तारी के आधार या हिरासत के आधार को लिखित रूप में संप्रेषित करने की आवश्यकता पवित्र है और किसी भी स्थिति में इसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता है। इस संवैधानिक आवश्यकता और वैधानिक जनादेश का पालन न करने से हिरासत या हिरासत अवैध हो जाएगी, जैसा भी मामला हो। 30. इसके अलावा, अनुच्छेद 22(1) के प्रावधानों की व्याख्या इस न्यायालय द्वारा ***पंकज बंसल [पंकज बंसल बनाम भारत संघ, (2024)7 एस.सी.सी. 576]*** *में पहले ही की जा चुकी है, जिसमें संदेह से परे यह बताया गया है कि गिरफ्तारी के आधार को किसी अपराध के लिए गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को जल्द से जल्द लिखित रूप में सूचित किया जाना चाहिए। इसलिए, ए.एस.जी. की उत्कट दलील कि अपीलकर्ता-आरोपी को लिखित रूप में गिरफ्तारी के आधार के बारे में बताने के लिए कानून के तहत कोई आवश्यकता नहीं थी, खारिज कर दिया गया है। 46. अब, इस पहलू पर आते हैं कि क्या गिरफ्तारी के आधार वास्तव में अपीलकर्ता को विवेचनाधिकारी की हिरासत में भेजे जाने से पहले लिखित रूप में सूचित किए गए थे।*

47. हमने गिरफ्तारी ज्ञापन (अनुलग्नक पी-7) का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया है और पाया है कि यह कहीं भी उन आधारों को नहीं बताता है जिन पर आरोपी को गिरफ्तार किया जा रहा था। गिरफ्तारी ज्ञापन केवल एक प्रो फॉर्मा है जो औपचारिक रूप का संकेत देता है कि जिन कारणों से आरोपी को गिरफ्तार किया जा रहा था।

48. यह दोहराव की कीमत पर दोहराया जा सकता है कि वाक्यांश में एक महत्वपूर्ण अंतर है "गिरफ्तारी के कारण" और "गिरफ्तारी के आधार". गिरफ्तारी ज्ञापन में दर्शाए गए "गिरफ्तारी के कारण" पूरी तरह से औपचारिक पैरामीटर हैं अर्थात आरोपी व्यक्ति को आगे कोई अपराध करने से रोकने के लिए; अपराध की उचित जांच के लिए; आरोपी व्यक्ति को अपराध के साक्ष्य को गायब करने या किसी भी तरह से ऐसे सबूतों के साथ छेड़छाड़ करने से रोकने के लिए; गिरफ्तार व्यक्ति को मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को प्रलोभन, धमकी या वादा करने से रोकने के लिए ताकि उसे अदालत या विवेचनाधिकारी को ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोका जा सके। ये कारण आमतौर पर किसी अपराध के आरोप में गिरफ्तार किए गए किसी भी व्यक्ति पर लागू होते हैं, जबकि "गिरफ्तारी के आधार" में विवेचनाधिकारी के हाथ में ऐसे सभी विवरण शामिल होने की आवश्यकता होगी जिसके लिए आरोपी की गिरफ्तारी की आवश्यकता होती है। इसके साथ ही, लिखित रूप में सूचित गिरफ्तारी के आधार को गिरफ्तार अभियुक्त को उन सभी बुनियादी तथ्यों से अवगत कराना चाहिए, जिनके आधार पर उसे गिरफ्तार किया जा रहा था ताकि उसे हिरासत में रिमांड के खिलाफ खुद का बचाव करने

अनुवादित

और जमानत लेने का अवसर मिल सके। इस प्रकार, "गिरफ्तारी के आधार" हमेशा अभियुक्त के लिए व्यक्तिगत होंगे और इसे "गिरफ्तारी के कारणों" के साथ तुलना नहीं की जा सकती है जो प्रकृति में सामान्य हैं।

49. ऊपर किए गए विस्तृत विश्लेषण से, अदालत के मन में इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई झिझक नहीं है कि 4-10-2023 को रिमांड का आदेश पारित करने से पहले लिखित रूप में गिरफ्तारी के आधारों के संचार के कथित अभ्यास में रिमांड आवेदन की प्रति अपीलकर्ता-अभियुक्त या उसके अधिवक्ता को प्रदान नहीं की गई थी, जो अपीलकर्ता की गिरफ्तारी और बाद में रिमांड को दूषित करता है।

*50. परिणामस्वरूप, अपीलकर्ता **पंकज बंसल [पंकज बंसल बनाम भारत संघ, (2024) 7 एस.सी.सी. 576]** में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के अनुपात को लागू करके हिरासत से रिहा करने के निर्देश का हकदार है।*

51. तदनुसार, अपीलकर्ता की गिरफ्तारी के बाद दिनांक 4-10-2023 का रिमांड आदेश और इसी तरह दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 13-10-2023 को पारित आक्षेपित आदेश [प्रबीर पुरकायस्थ बनाम राज्य (दिल्ली का एनसीटी) क्रिल MC सं-7278 वर्ष 2023 उपनाम अमित चक्रवर्ती बनाम राज्य (दिल्ली का एनसीटी), (2023) 6 HCC (डीईआ) 565] को इसके द्वारा कानून की नजर में अमान्य घोषित किया जाता है और रद्द करने योग्य है और एतद्द्वारा और रद्द/अपास्त किया जाता है।

52. यद्यपि हमें अपीलकर्ता को बांड या सुरक्षा प्रस्तुत करने की आवश्यकता के बिना उसकी रिहाई का निर्देश देने के लिए राजी किया गया होगा, लेकिन चूंकि आरोप पत्र दायर किया गया है, इसलिए हम यह निर्देश देना उचित समझते हैं कि अपीलकर्ता को विचारण न्यायालय की संतुष्टि के लिए जमानत और बांड प्रस्तुत करने पर हिरासत से रिहा कर दिया जाएगा। 10. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अपनी दलीलें देते हुए प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के प्रस्तर-24, 28, 29 और 30 में स्पष्ट रूप से कहा था कि गिरफ्तारी के दौरान और उसके बाद की रिमांड के दौरान, याचिकाकर्ता को कभी भी गिरफ्तारी के आधार प्रदान नहीं किए गए थे और इन प्रस्तर-को राज्य द्वारा जवाबी हलफनामे में कहीं भी अस्वीकार नहीं किया गया है। वास्तव में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, मेरठ के दिनांक 21.06.2024 के आदेश पर बहुत अधिक भरोसा किया, जिसमें याचिकाकर्ता ने विशेष रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(1) और द०प्र०स० की धारा 50 के प्रावधानों पर भरोसा किया था और 5 सभी प्रस्तुत किए थे। अनवर ढेबर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1197 में कहा गया था कि याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी के लिए कोई आधार नहीं बताया गया था और विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, मेरठ ने सभी अभिलेखों को देखने के बाद कहा था कि याचिकाकर्ता के बेटे शोएब ढेबर को केवल एक जानकारी दी गई थी, और उसके बाद उन्होंने आदेश में कुछ भी नहीं कहा था। तैयार संदर्भ के लिए, दिनांक 21.06.2024 के आदेश को निम्नानुसार यहां पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"न्यायालय - विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम) विशेष न्यायालय सं०-2/ अपर सत्र न्यायाधीश, मेरठ

मुकदमा अपराध संख्या-196/2023

अन्तर्गत धारा-419, 420, 467, 468, 471, 484 व 120बी भा०द०सं० व धारा 7क भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, थाना-कासना, जनपद गौतमबुद्ध नगर, (ग्रेटर नोएडा)

रिमाण्ड शीट

दिनांक-21.06.2024

प्रार्थना पत्र पेश हुआ। उक्त प्रस्तुत मामले में अभियुक्त अनवार ढेबर की ओर से अन्य प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर कथन किया गया है कि अभियुक्त को गिरफ्तार करके विवेचक द्वारा सविधान के अनुच्छेद 19 (1) एवं 22 (1) का उल्लघन किया गया है तथा धारा 50 सीआर०पी०सी० के प्रावधानों का पालन नहीं किया गया है। अतः विवेचक को निर्देशित किया जाए कि गिरफ्तारी के कारण से संबधित कागजात की छायाप्रति प्रदान की जाए। सुना गया तथा समस्त प्रपत्रों का अवलोकन किया गया। प्रपत्रों के अवलोकन से स्वष्ट है कि प्रार्थी / अभियुक्त को दिनांक 18.06.2024 को गिरफ्तार किया गया है। 24 घण्टे के अन्दर अभियुक्त को इस न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था इसलिए अभियुक्त को दिनाक 19.06.2024 को विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम / प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, रायपुर (छत्तीसगढ़) के समक्ष प्रस्तुत किया गया, जहां से उसको 48 घण्टे का ढांजिट रिमाण्ड स्वीकार किया गया जिसके अनुसार अभियुक्त को आज दिनांक 21.06.2024 को इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया। गिरफ्तारी के समय अभियुक्त को शोएब ढेबर पुत्र को सूचना दिया जाना गिरफ्तारी प्रपत्र में उल्लेख है। अभियुक्त को अन्तर्गत धारा 419, 420, 467, 468, 471, 484 व 120थी भा०प०स० व धारा 7 क भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम में गिरफ्तार किया गया है।

प्रपत्रों के अवलोकन से स्पष्ट है कि अभियुक्त के विरूद्ध गम्भीर अपराध का आरोप लगाया गया है। विवेचक द्वारा 14 दिवस की न्यायिक अभिरक्षा की मांग की गयी है। अतः तथ्यों व परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए। प्रार्थी / अभियुक्त का रिमाण्ड अन्तर्गत धारा 167 द०प्र०सं० स्वीकार किये जाने का आधार पर्याप्त है। अतः अभियुक्त को दिनांक 01.07.2024 तक न्यायिक अभिरक्षा में जेल प्रेषित किया जाए। अभियुक्त नियमानुसार प्रत्येक आदेश की प्रतिलिपि प्राप्त करने का हकदार होगा।

(रमेश)

प्रभारी विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम)

विशेष न्यायालय सं०-02/अपर सत्र न्यायाधीश, मेरठ""

11. अंत में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि गिरफ्तारी का आधार जो गिरफ्तारी के समय जांच एजेंसी द्वारा लिखित रूप में प्रस्तुत किया जाना आवश्यक था और चूंकि वे गिरफ्तार करने वाले अधिकारियों द्वारा भेजे गए किसी भी संचार में स्पष्ट रूप से अनुपस्थित हैं, इसलिए गिरफ्तारी कानून में खराब और अवैध होगी। वास्तव में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता, पूरे जवाबी हलफनामे और उसमें संलग्न सभी दस्तावेजों पर भरोसा

करते हुए, कहते हैं कि प्रतिपक्षियों की स्वीकारोक्ति है कि याचिकाकर्ता को कभी भी गिरफ्तारी का कोई आधार नहीं दिया गया था। इसलिए याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह न्यायालय **एयर इंडिया वैधानिक निगम और अन्य बनाम यूनाइटेड लेबर यूनियन और अन्य (1997) 9 उच्चतम न्यायालय के मामले 377** में रिपोर्ट किए गए उच्चतम न्यायालय के फैसले पर भरोसा कर सकता है और याचिकाकर्ता को सुरक्षा देने के लिए अपनी असाधारण शक्तियों का उपयोग कर सकता है और याचिकाकर्ता को राहत प्रदान करने के लिए यह घोषणा कर सकता है कि याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी, जिसके बाद लगातार रिमांड आदेश दिया गया था, अवैध और अमान्य था कानून की नजर में और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और 22 द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकारों के उल्लंघन में, दिनांक 30.07.2023 की प्राथमिकी के संबंध में, जिसने केस 1198 अपराध संख्या-196 वर्ष 2023, थाना - कासना (गौतम बुद्ध नगर), उत्तर प्रदेश को जन्म दिया था। चूंकि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने फैसले के प्रस्तर-60 और 61 पर बहुत अधिक भरोसा किया था, इसलिए उन्हें यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"60. संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा दिया गया

*लोक विधि उपाय न केवल उसमें प्रदान की गई विशेषाधिकार रिट जारी करना है, बल्कि किसी भी मौलिक अधिकार को लागू करने के लिए और "किसी अन्य प्रयोजन के लिए" कोई आदेश या निर्देश भी जारी करना है। न्यायिक निर्णय द्वारा सार्वजनिक कानून और निजी कानून के उपचार के बीच का अंतर धीरे-धीरे हाशिए पर चला गया और मिटा दिया गया। **एल.आई.सी. बनाम एस्कॉर्ट्स लिमिटेड [(1986)1 एस.सी.सी. 264]** में इस न्यायालय ने (एस.सी.सी. प्रस्तर-102, पृष्ठ 344 में) बताया था कि सार्वजनिक कानून क्षेत्र और निजी कानून क्षेत्र के बीच सीमाओं का सीमांकन करने में कठिनाई होगी। प्रश्न का निर्णय प्रत्येक मामले में विशेष कार्रवाई के संदर्भ में किया जाना चाहिए, वह गतिविधि जिसमें राज्य या राज्य का साधन कार्रवाई करते समय लगा हुआ है, प्रश्न का सार्वजनिक कानून या निजी कानून चरित्र और अन्य प्रासंगिक परिस्थितियों की मेजबान। इसमें सवाल यह था कि क्या एल.आई.सी. के प्रबंधन को शेयरों की खरीद स्वीकार करने के कारणों को दर्ज करना चाहिए? यह उस तथ्य-स्थिति में था कि इस न्यायालय ने माना कि जब शेयरधारकों का प्रबंधन संकल्प द्वारा निर्णय पर पहुंचा तो कारण बताने की कोई आवश्यकता नहीं थी। इस न्यायालय ने अन्य मामलों में समान रूप से बताया कि जब आर्थिक शक्ति और आर्थिक उद्यमी और आर्थिक लाभ के आवंटक के रूप में राज्य की शक्ति मौलिक अधिकारों की सीमाओं के अधीन होती है, तो राज्य के कार्यात्मक नियंत्रण के तहत एक निजी निगम समुदाय के स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए खतरनाक गतिविधि में लगा हुआ है, सार्वजनिक हित से ओत-प्रोत होता है जिसे राज्य अंततः अपनी औद्योगिक नीति पर विशेष रूप से विनियमित करने का प्रस्ताव करता है। यह भी उन्हीं सीमाओं के अधीन होगा जो एम.सी. भारत संघ*

61. किसी व्यक्ति का कानूनी अधिकार एक अनुबंध या एक क़ानून, या कानून के बल वाले एक उपकरण पर स्थापित किया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत लागू करने योग्य सार्वजनिक कानून के उपाय के लिए, प्राधिकरण की कार्रवाई को सार्वजनिक कानून के दायरे में आने की आवश्यकता है - चाहे वह राज्य का विधायी कार्य हो, राज्य का एक कार्यकारी कार्य हो या एक साधन या सार्वजनिक कानून तत्व से प्रभावित व्यक्ति या प्राधिकरण। प्रत्येक मामले में प्रश्न निर्धारित करने की आवश्यकता है। हालांकि, कार्रवाई की प्रकृति

को सामान्यीकृत करना संभव नहीं हो सकता है जो या तो सार्वजनिक कानून उपचार या निजी कानून क्षेत्र के तहत आएगी और न ही इस तरह के कार्यों की विस्तृत सूची देना वांछनीय है। जैसा कि इस न्यायालय ने कलकत्ता गैस कंपनी (मालिकाना) लिमिटेड बनाम में अवधारित किया है। ***डब्ल्यूबी राज्य [ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 1044: 1962 सप्प (3) एस.सी.आर 1] (ए.आई.आर. प्रस्तर-5)*** *कि यदि कंपनी के प्रबंधन बोर्ड की सिफारिश के आधार पर किसी कंपनी के प्रबंधक के कानूनी अधिकार को अस्वीकार कर दिया जाता है, तो यह उसे संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका दायर करके अपने अधिकार को लागू करने का अधिकार देगा।* ***मुलामचन्द बनाम मध्य प्रदेश राज्य [ए.आई.आर. 1968 एस.सी. 1218: 1968 एमएएच एलजे 842]*** *इस न्यायालय ने माना था कि भले ही अनुच्छेद 229 का अनुपालन न करने के कारण अनुबंध शून्य था, फिर भी अधिनियम की धारा 70 के तहत क्षतिपूर्ति के सिद्धांत पर राशि के भुगतान के लिए निर्देश दिया जा सकता है, क्योंकि राज्य ने शून्य अनुबंध के तहत लाभ प्राप्त किया था। इसी दृष्टिकोण को* ***डब्ल्यूबी राज्य बनाम बीके मंडल एंड संस [ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 779] (ए.आई.आर. पृष्ठ 789 पर) और न्यू मरीन कोल कंपनी (बंगाल)(पी) लिमिटेड बनाम भारत संघ [(1964) 2 एस.सी.आर 859: ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 152] गुजरात राज्य वित्तीय निगम बनाम लोटस होटल्स (P) 5 सभी। अनवर ढेबर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1199 लिमिटेड [(1983) 3 एस.सी.सी. 379]*** *में दोहराया गया था एवं वचन पत्र के सिद्धांत को लागू करके संविदात्मक दायित्व का पालन करने के लिए प्रतिपक्षी को ऋण जारी करने का निर्देश जारी किया गया था।* ***महाबीर ऑटो स्टोर्स बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन में। [(1990) 3 एस.सी.सी. 752]*** *राज्य की साधनता के खिलाफ अनुच्छेद 226 के सार्वजनिक कानून उपाय के तहत संविदात्मक दायित्वों को लागू किया गया था।* ***श्रीलेखा विद्यार्थी बनाम श्रीलेखा विद्यार्थी वि. उत्तर प्रदेश राज्य [(1991) 1 एस.सी.सी. 212: 1991 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 742]*** *संविदात्मक दायित्वों को तब लागू किया गया था जब सार्वजनिक कानून तत्व शामिल था। अन्य न्यायालयों में भी यही न्यायिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है, अर्थात्,* ***गिलिक बनाम वेस्ट नॉरफ़ॉक और विस्बेक एरिया हेल्थ अथॉरिटी [1986 एसी 112: (1985) 3 ऑल ईआर 402: (1985) 3 डब्ल्यूएलआर 830, एचएल]*** *में हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने माना कि हालांकि वादी के दावे को अस्वीकार कर दिया गया था, लेकिन न्यायिक समीक्षा की शक्ति की निहाई पर, यह माना गया कि दावे की सार्वजनिक कानून सामग्री इतनी महान थी कि उसके मामले को सामान्य नियम का अपवाद बना दिया गया था। इसी तरह* ***रॉय (डॉ) बनाम केंसिंग्टन और चेल्सी और वेस्टमिंस्टर फैमिली प्रैक्टिशनर कमेटी [(1992) 1 एसी 624: (1992) 1 ऑल ईआर 705: (1992) 2 डब्ल्यूएलआर 239, एचएल]*** *हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने दोहराया कि हालांकि निजी कानून का मामला सामान्य कार्यों द्वारा लागू करने योग्य है, एक अदालत भी न्यायिक समीक्षा की बाधाओं से मुक्त है और यह कि सार्वजनिक कानून उपाय तब उपलब्ध है जब डॉ रॉय के पारिश्रमिक में कटौती करने की मांग की गई थी। एल.आई.सी. बनाम उपभोक्ता शिक्षा और अनुसंधान केंद्र [(1995) 5 एस.सी.सी. 482] में इस न्यायालय ने माना कि विवाद की प्रकृति और दायरे का पता लगाने के लिए प्रत्येक मामले की उसके तथ्यों और परिस्थितियों पर जांच की जा सकती है। सार्वजनिक कानून और निजी कानून के उपचार के बीच का अंतर अब पतला हो गया है और व्यावहारिक रूप से मिटा दिया गया है।*

12. श्री मनीष गोयल, श्री रूपक चौबे, श्री जेके उपाध्याय और श्री विकास सहाय की सहायता से अपर महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जब गिरफ्तारी का ज्ञापन था और याचिकाकर्ता के बेटे को भी गिरफ्तारी के बारे में सूचित किया गया था, तो गिरफ्तारी कानूनी थी क्योंकि याचिकाकर्ता को कारण ज्ञात थे। हालांकि, अपर महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को 18.06.2024 को छत्तीसगढ़ जेल से रिहा होने के बाद, उत्तर प्रदेश पुलिस ने याचिकाकर्ता को उसी तारीख को गिरफ्तार कर लिया था, जिसमें प्राथमिकी थी, जिसने केस अपराध संख्या-196 वर्ष 2023 को जन्म दिया था। 19.06.2024 को, सत्र न्यायालय, रायपुर ने याचिकाकर्ता को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, मेरठ के विशेष न्यायाधीश के समक्ष पेश करने में सक्षम बनाने के लिए ट्रांजिट रिमांड प्रदान की थी। उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने ट्रांजिट रिमांड का विरोध किया था और वास्तव में इस आधार पर जमानत मांगी थी कि प्राथमिकी जिसने केस अपराध संख्या-196 वर्ष 2023(उत्तर प्रदेश) को जन्म दिया था और प्राथमिकी जिसने केस अपराध संख्या-4 वर्ष 2024(छत्तीसगढ़) को जन्म दिया था, समान थे और वास्तव में याचिकाकर्ता ने विशेष न्यायाधीश के समक्ष आवेदन में उन आधारों का भी उल्लेख किया था, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, मेरठ। साथ ही 21.06.2024 को, अभिलेखों को स्पष्ट करने के लिए, उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया था कि सर्वोच्च न्यायालय ने एस.एल.पी. (आपराधिक) संख्या-10178 वर्ष 2024 (विधु गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में प्राथमिकी में आगे की कार्यवाही पर रोक लगा दी थी, जिसने केस अपराध संख्या-196 वर्ष 2023(उत्तर प्रदेश) को जन्म दिया था और याचिकाकर्ता ने भी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित 19.08.2024 के आदेश के अनुसरण में 12.08.2024 को खुद को रिहा कर दिया था। इसके बाद, याचिकाकर्ता को गिरफ्तार नहीं किया गया और 19.04.2025 को केवल एक आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, जिस पर संबंधित न्यायालय ने 23.04.2025 को संज्ञान लिया। अपर महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जब उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा ट्रांजिट रिमांड प्राप्त किया जा रहा था, तब याचिकाकर्ता ने इसका विरोध किया था और इसलिए, वह प्रस्तुत करता है कि प्राथमिकी का आधार बनाने वाले आरोप और सामग्री, जिसने केस अपराध संख्या-196 वर्ष 2023(उत्तर प्रदेश) को जन्म दिया था, याचिकाकर्ता को पता था और इसलिए गिरफ्तारी के आधार ज्ञात थे। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता को आधारों के बारे में पता नहीं था।

13. अपर महाधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया कि यह आपराधिक न्यायशास्त्र का एक स्थापित नियम है कि गिरफ्तारी के आधार का सार महत्वपूर्ण था न कि संचार के रूप में तकनीकी। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि एक तकनीकी त्रुटि गिरफ्तारी को दूषित नहीं करेगी। राज्य के अपर महाधिवक्ता ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 (1) में निहित "जितनी जल्दी हो सके" शब्दों पर भरोसा करते हुए कहा था कि जब कोई व्यक्ति अपनी गिरफ्तारी का विरोध करता है, तो गिरफ्तार करने वाले अधिकारी के लिए बल प्रयोग करने से पहले गिरफ्तारी का आधार बताना आवश्यक नहीं है। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि इस मामले में भी जब याचिकाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों का विरोध था, तो जांच एजेंसी के लिए गिरफ्तारी का आधार प्रदान करना असंभव था। अपर महाधिवक्ता ने क्रिस्टी बनाम लीचिंस्की (1947 ईस्वी 573) में फैसले पर भरोसा करते हुए अभियुक्त को गिरफ्तारी के आधार के बारे में सूचित करने के नियम की उत्पत्ति और विकास में चला गया और एक विशिष्ट प्रस्तर जिस पर उन्होंने विशेष रूप से भरोसा किया था, उसे यहां प्रस्तुत किया जा रहा है:

"विशेष रूप से उल्लेखनीय बात यह है कि इनमें से कई निर्णयों में सामान्य नियम के अपवाद को समझाया और उचित ठहराया गया है, और यह अप्रत्यक्ष रूप से सामान्य नियम स्थापित करता है। उदाहरण के लिए, मैकलेय के मामले में

(1), काउंटेस ऑफ रटलैंड के मामले में स्टार चैंबर का निर्णय

(2) इसका पालन किया गया था कि गिरफ्तारी का आधार बताना आवश्यक नहीं है जब पार्टी उसे गिरफ्तार करने वाले व्यक्ति से पहले प्रतिरोध करती है "अपने सभी शब्द बोल सकता है।

(1) ऋण की एक वादी के आधार पर गिरफ्तारी से उत्पन्न हुआ, जिसके कारण देनदार और उसके दोस्तों ने घातक परिणामों के साथ आधिकारिक गिरफ्तारी का विरोध किया, और यह फैसला सुनाया गया कि "गिरफ्तारी करने वाले अधिकारी को यह दिखाना चाहिए कि किसके मुकदमे में, किस अदालत से बाहर और किस कारण से उसने गिरफ्तारी की, जब गिरफ्तार पक्ष खुद को गिरफ्तारी के लिए प्रस्तुत करता है, लेकिन तब नहीं जब पार्टी विरोध करती है।

(3), यह निर्धारित किया गया है कि किसी व्यक्ति को यह बताने की कोई आवश्यकता नहीं है कि उसे क्यों गिरफ्तार किया जा रहा है जबकि उसे गिरफ्तारी की परिस्थितियों में पहले से ही कारण पता होना चाहिए। रेक्स बनाम के निर्णय से एक और योग्यता एकत्र की जा सकती है। इस आशय के लिए कि गिरफ्तारी करने वाले व्यक्ति के लिए तकनीकी या सटीक भाषा में आरोप बताना आवश्यक नहीं है।

14. श्री मनीष गोयल, अपर महाधिवक्ता ने भी गिरफ्तारी के आधार के बारे में आरोपी को सूचित करने के सामान्य नियम के अपवादों पर जोर दिया। अंत में, उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय को एक निश्चित घटना बीत जाने के बाद एक घोषणात्मक रिट जारी नहीं करनी चाहिए, खासकर जब मामला एक निश्चित अदालत के समक्ष विचाराधीन हो। उन्होंने प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय के पास बंदी प्रत्यक्षीकरण और क्वो वारंटो की रिट जारी करने की शक्ति थी, जिसके द्वारा एक घोषणा की जा सकती थी। परमादेश, निषेध और उत्प्रेषण नामक अन्य रिट विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रहे थे। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि प्रबीर पुरकायस्थ 5 में उच्चतम न्यायालय के फैसलों पर याचिकाकर्ता की भरोसा। अनवर ढेबर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1201 (उपरोक्त) और **पंकज बंसल बनाम पंकज बंसल बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (2024) 7 एस.सी.सी. 576** में रिपोर्ट किया गया था कि गलत धारणा थी। उन मामलों में, उच्चतम न्यायालय का निर्देश था कि गिरफ्तारी को गैरकानूनी पाए जाने पर आरोपी को तुरंत रिहा कर दिया जाए क्योंकि वे पी.एम.एल.ए. और यू.ए.पी.ए. से संबंधित मामलों में अनिवार्य थे और इसलिए, वे निर्णय प्रस्तुत मामले में लागू नहीं थे।

15. पक्षों के अधिवक्ता को सुनने के बाद, इस न्यायालय का विचार है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत यह न्यायालय किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण को जारी कर सकता है, जिसमें उपयुक्त मामलों में,

कोई भी सरकार, उन क्षेत्रों के भीतर निर्देश, आदेश या रिट शामिल हैं, जिसमें बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, निषेध, यथा-वारंटो और उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट शामिल हैं या उनमें से कोई भी, भाग III द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार के प्रवर्तन के लिए और किसी अन्य उद्देश्य के लिए]। तथापि, उच्च न्यायालय के लिए ऐसे आदेश जारी करने का कोई मनाही नहीं है जो न्याय के हित में किसी विशेष मामले में अपेक्षित थे, जैसा कि एअर इंडिया सांविधिक निगम (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय के निर्णय में कहा गया है। निश्चित रूप से, गिरफ्तारी 18.06.2024 को हुई और याचिकाकर्ता को गिरफ्तारी का फ़र्द दिया गया और याचिकाकर्ता के बेटे को एक सूचना भेजी गई। वास्तव में याचिकाकर्ता और उसके परिवार की ओर से कोई विरोध नहीं था। इसके बाद, 21.06.2024 और 01.07.2024 को विभिन्न रिमांड आदेश आए। गिरफ्तारी के फ़र्द, याचिकाकर्ता के बेटे को दी गई जानकारी और रिमांड के आदेशों से, हमें यह नहीं पता चलता है कि गिरफ्तारी के आधार याचिकाकर्ता को सूचित किए गए थे। वास्तव में, फ़र्द गिरफ्तारी में गिरफ्तारी का कारण बताने के लिए कोई कॉलम नहीं है। साथ ही, याचिकाकर्ता को अपनी हिरासत की रिमांड का बचाव करने के लिए सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था। इस प्रकार, कुछ निश्चितता के साथ यह कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता को कभी भी गिरफ्तारी के आधार प्रस्तुत नहीं किए गए थे जैसा कि धारा 50 द०प्र०स० (अब बी.एन.एस.एस की धारा 47) के तहत अनिवार्य है। यहां हालांकि इस मामले की प्रकृति यह मांग नहीं करती है कि हम उन आधारों को दें जो गिरफ्तारी के समय आवश्यक रूप से होने चाहिए थे और जो आरोपी को प्रदान किए जाने चाहिए थे जिसे गिरफ्तार किया जा रहा था, हम कुछ आधारों की गणना करना उचित समझते हैं।

i. भले ही अपराधों को पहले से ही प्राथमिकी में गिना गया है, तथ्य यह है कि पुलिस को आशंका थी कि आरोपी एक खूंखार अपराधी था और इसलिए उसे गिरफ्तार किया जाना था।

ii. इसके अलावा, पुलिस ने आशंका जताई कि आरोपी सबूतों के साथ छेड़छाड़ कर सकता है और गवाहों पर दबाव डाल सकता है, इसे भी गिरफ्तारी के आधार के रूप में दिया जाना चाहिए।

iii. फिर भी हमारा विचार है कि गिरफ्तारी का एक आधार यह भी हो सकता है कि जिस व्यक्ति को गिरफ्तार करने की मांग की गई थी वह एक आदतन अपराधी था और जेल के बाहर वह समाज के लिए खतरा होगा।

iv. पुलिस को गिरफ्तारी के आधार के रूप में उन सभी जांचों को भी देना चाहिए जो गिरफ्तारी से पहले हुई थीं, जिसके कारण पुलिस ने यह निर्धारित किया था कि आरोपी एक खूंखार अपराधी था और मामले के गवाहों के लिए खतरा था।

v. आधार में अपराध के लिए अभियुक्त की मिलीभगत के संबंध में सबूत भी शामिल होंगे।

vi. आधार में अभियुक्त द्वारा किए गए वास्तविक अपराध को भी शामिल किया जाना चाहिए।

vii. आधार यह भी निर्दिष्ट करना चाहिए कि क्या पुलिस को सार्वजनिक व्यवस्था में खलल पड़ने की उम्मीद थी।

viii. यदि लोक व्यवस्था के विघटन की आशंका भी हो, तो वह भी एक आधार का रूप ग्रहण कर सकती है। तथापि, उपर्युक्त आधार परिसीमित अथवा पूर्ण नहीं माने जाएंगे।

16. इस प्रकार, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि गिरफ्तारी के समय गिरफ्तारी के आधार को कभी भी लिखित रूप में सूचित नहीं किया गया था। यहां तक कि कारण भी नहीं बताए गए। गिरफ्तारी ज्ञापन के प्रारूप धारा 50 द०प्र०स० (अब बी.एन.एस.एस की धारा 47) और भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(1) की अनिवार्य शर्तों को पूरा नहीं करते हैं। कानूनी सहायता प्राप्त करने का अधिकार एक अभियुक्त का एक मूल्यवान अधिकार है और उसे गिरफ्तारी से पहले ही इसकी जानकारी दी जानी चाहिए। वास्तव में, यदि वह एक अधिवक्ता को नियुक्त करने में असमर्थ है तो राज्य को उसे कानूनी सहायता प्राप्त करने के लिए पर्याप्त सहायता प्रदान करनी चाहिए। ये अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21, 22(1) और 39A से आते हैं। राज्य के खर्च पर अभियुक्त को पर्याप्त कानूनी सहायता भी धारा 304 द०प्र०स० (अब बी.एन.एस.एस की धारा 341) के तहत निहित है। आपराधिक अपील संख्या-1518 वर्ष 2025 @ एस.एल.पी. [सीआरएल] संख्या-1662 वर्ष 2025 (आशीष कक्कड़ बनाम चंडीगढ़ केंद्र शासित प्रदेश) में पारित सर्वोच्च न्यायालय के 25.03.2025 के एक हालिया फैसले में भी इस प्रकार कहा गया है:

"13. आपराधिक अपील संख्या-1518 वर्ष 2025 @ एस.एल.पी. [सीआरएल] संख्या-1662 वर्ष 2025)(आशीष कक्कड़ बनाम चंडीगढ़ केंद्र शासित प्रदेश) में पारित सर्वोच्च न्यायालय के हालिया निर्णय में इसी तरह के मुद्दे पर विचार किया गया है। दिनांक 25.03.2025 का निर्णय और आदेश नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"अनुमति दी गई।"

2. अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 384, 420, 468, 471, 509 और 120बी के तहत दर्ज प्राथमिकी संख्या-33/2022 के संबंध में 30.12.2024 को गिरफ्तार किया गया और 3 दिनों की अवधि के लिए पुलिस हिरासत में भेज दिया गया।

3. प्रस्तुत अपील के माध्यम से, अपीलकर्ता ने अपनी गिरफ्तारी और 30.12.2024 के रिमांड आदेश दोनों को तीन आधारों पर चुनौती दी है, अर्थात्, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 41-ए (इसके बाद 'संहिता' के रूप में संदर्भित) के तहत जनादेश का स्पष्ट गैर-अनुपालन है; रिमांड के समय अपीलकर्ता को नहीं सुना गया था और संहिता की धारा 50 के तहत अनिवार्य गिरफ्तारी के आधार अपीलकर्ता को केवल गिरफ्तारी ज्ञापन के खिलाफ प्रस्तुत नहीं किए गए हैं।

4. हम गिरफ्तारी के आधार को प्रस्तुत न करने के संबंध में अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए केवल अंतिम मुद्दे पर विचार करने के इच्छुक हैं।

5. अनुलग्नक पी-3 को देखने पर, हम देख सकते हैं कि अपीलकर्ता को जो प्रदान किया गया है वह निर्धारित प्रारूप में केवल एक गिरफ्तारी ज्ञापन है, जो अपीलकर्ता को सूचना के माध्यम से दिया जाना है। इसे गिरफ्तारी के स्थान के साथ अपीलकर्ता के नाम से भर दिया गया है। इसके अतिरिक्त, यह भी लिखा गया है कि सह-अभियुक्त के बयान के आधार पर उसे गिरफ्तार किया गया है।

6. हम अपीलकर्ता की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुति से सहमत हैं कि उक्त गिरफ्तारी ज्ञापन को गिरफ्तारी के आधार के रूप में नहीं माना जा सकता है, क्योंकि उसे कोई अन्य सार्थक विवरण प्रस्तुत नहीं किया गया है।

7. यह, संहिता की धारा 50 के तहत जनादेश का स्पष्ट गैर-अनुपालन होने के नाते, जिसे भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 22 (1) को प्रभावी करने के लिए पेश किया गया है, हम आक्षेपित निर्णय को रद्द करने के लिए इच्छुक हैं, विशेष रूप से, इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के आलोक में, जिसे प्रबीर पुरकायस्थ बनाम प्रबीर पुरकायस्थ के रूप में रिपोर्ट किया गया है। राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली)(2024) 8 एस.सी.सी. 254

8. मामले को देखते हुए, आक्षेपित निर्णय को रद्द कर दिया जाता है और अपीलकर्ता की गिरफ्तारी के बाद परिणामी रिमांड आदेश को भी रद्द कर दिया जाता है।

9. अपीलकर्ता को तब तक मुक्त किया जाएगा, जब तक कि उसे किसी अन्य मामले में आवश्यक न हो। तदनुसार अपील की अनुमति दी जाती है। 5 सभी। 1203 ताले हसन और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य

10. लंबित आवेदन, यदि कोई हो, का भी निपटारा किया जाएगा।

17. इस मामले में, हम निश्चित रूप से पाते हैं कि गिरफ्तारी ज्ञापन में याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी के आधार के लिए कोई कॉलम नहीं है। इस प्रकार, धारा 50 द०प्र०स० और भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(1) के जनादेश का निश्चित रूप से पालन न करने के कारण, हमारा विचार है कि याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी को अवैध घोषित किया जाना चाहिए और बाद के सभी गिरफ्तारी ज्ञापनों को रद्द कर दिया जाना चाहिए और रिमांड के आदेश को भी रद्द कर दिया जाना चाहिए।

18. हमने प्रस्तुत किए गए आरोप-पत्र में हस्तक्षेप नहीं किया है। न्यायालय आरोप पत्र के अनुसार कानून के अनुसार कार्यवाही जारी रख सकता है।

19. ऊपर दिए गए कारणों से, रिट याचिका की **अनुमति** दी जाती है।

20. इस निर्णय को पुलिस महानिदेशक के कार्यालय को भेजा जाए जो इसे उत्तर प्रदेश राज्य के सभी पुलिस कर्मियों के बीच परिचालित करेगा। हम इस सर्कुलेशन को इस तरह से करवा रहे हैं क्योंकि कई गिरफ्तारियों में एक तकनीकी त्रुटि के परिणामस्वरूप गिरफ्तारियों को अवैध घोषित किया जा रहा है।

(2025) 5 ILRA 1203

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 30.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति संदीप जैन

आपराधिक अपील संख्या-370 वर्ष 1991

ताले हसन और अन्य ... **अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... **प्रतिपक्षी**

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

इमरान माबूद खान, खलीलुल्लाह खान, श्याम शंकर पांडे

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: --

(क) आपराधिक कानून - परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर हत्या और बलात्कार - धारा 27 साक्ष्य अधिनियम के तहत उचित प्रकटीकरण के बिना न्यायेतर स्वीकारोक्ति और बरामदगी की स्वीकार्यता - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302, 376 और 201 - साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 27 - हथियार की बरामदगी और गैर-न्यायिक स्वीकारोक्ति को स्वीकार्य और ठोस साक्ष्य के माध्यम से सख्ती से साबित किया जाना चाहिए - केवल न्यायेतर स्वीकारोक्ति पुष्टि के अभाव में दोषसिद्धि को न्यायोचित नहीं ठहरा सकती है - उचित के बिना बरामदगी प्रकटीकरण कथन धारा 27 की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है और अकेले दोषसिद्धि का आधार नहीं बन सकता है - संदेह, चाहे वह कितना भी मजबूत क्यों न हो, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामलों में उचित संदेह से परे प्रमाण को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता - दोषसिद्धि को बनाए नहीं रखा जा सकता है जहां अभियोजन पक्ष परिस्थितियों की पूरी श्रृंखला स्थापित करने में विफल रहता है और प्रस्तुत साक्ष्यों में संदिग्ध बरामदगी और अविश्वसनीय अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति शामिल होती है। (प्रस्तर-60,61,75)

17.05.1987 को दो नाबालिग लड़कियां लापता हो गईं - 21.05.1987 को उनके सड़े हुए शव बरामद किए गए - इसके बाद अपीलकर्ताओं को गिरफ्तार किया गया और कथित तौर पर कबूल कर लिया गया और मृतक के हथियार और सामान बरामद किए गए - आरोपी ने कथित तौर पर ग्रामीणों के सामने कबूल कर लिया और 'दरांती' और एक बाली बरामद की - गैर-न्यायिक स्वीकारोक्ति और बरामदगी के आधार पर दोषसिद्धि

- चिकित्सीय राय मृत्यु के कारण का पता नहीं लगा सकी; कोई प्रत्यक्ष सबूत या चश्मदीद गवाह नहीं। (प्रस्तर-3 से 13, 41 से 42)

अवधारित: - अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि को अपुष्ट गैर-न्यायिक स्वीकारोक्ति और अस्वीकार्य बरामदगी पर कायम नहीं रखा जा सकता है। अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अपराध साबित करने के लिए परिस्थितियों की पूरी श्रृंखला स्थापित करने में विफल रहा। **दोषसिद्धि और सजा को अपास्त किया गया।** (प्रस्तर-41, 50 से 52, 54 से 60, 78)

अपील की अनुमति दी गई। (ई-7)

<u>उद्धृत निर्णयज विधियों की सूची:</u>

1. ईरभद्रप्पा बनाम कर्ण राज्य, (1983) 2 एस.सी.सी. 330
2. बोधराज बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य, (2002) 8 एस.सी.सी. 45
3. रामानंद @ नंदलाल भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2022)एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1396
4. सुब्रमण्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2023) 11 एस.सी.सी. 255
5. राजेश और अन्य. बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2023) 15 एस.सी.सी. 521
6. शरद बर्धिचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र, (1984) 4 एस.सी.सी. 116
7. हनुमंत बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1952) 2 एस.सी.सी. 71
8. शिवाजी सहबरो बोबडे और अन्य बनाम महाराष्ट्र, (1973) 2 एस.सी.सी. 793
9. राज नायकर बनाम छत्तीसगढ़ राज्य (2024) 3 एस.सी.सी. 481
10. दुद्धनाथ पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1981) 2 एस.सी.सी. 166
11. मुस्तकीम बनाम राजस्थान का राज्य। (2011) 11 एस.सी.सी. 724
12. साहू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1965 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 60
13. जगता बनाम हर राज्य, (1974) 4 एस.सी.सी. 747
14. किशोर चंद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (1991) 1 एस.सी.सी. 286
15. सहदेवन बनाम तमिलनाडु राज्य (2012) 6 एस.सी.सी. 403
16. मोहम्मद फसरीन बनाम राज्य (2019) 8 एस.सी.सी. 811

(माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह और
माननीय न्यायमूर्ति संदीप जैन द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री श्याम शंकर पांडे और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता सुश्री अर्चना सिंह को सुना।

2. प्रस्तुत आपराधिक अपील दिनांक 27.02.1991 के निर्णय और आदेश से उद्भूत होती है, जो श्री ब्रह्म सिंह, विद्वान द्वितीय अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, रामपुर द्वारा सत्र परीक्षण संख्या-101 वर्ष 1988 (राज्य बनाम ताले हसन और अन्य) में पारित किया गया है, जो धारा 376 और 302/201 भ०द०वि०, थाना-शाहाबाद, जिला रामपुर के तहत केस अपराध संख्या-133 वर्ष 1987 से उद्भूत है; जिसके द्वारा, वर्तमान अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अपराध के लिए आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है, धारा 376 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए पांच साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है और धारा 201 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है। सभी दंडादेशों को निम्नानुसार एक साथ चलाने का निर्देश दिया गया था: -

आरोपी ताले हसन एवं गुलाब को धारा 302 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत दोषसिद्ध करते हुए प्रत्येक को आजीवन कारावास की सजा सुनाई जाती है तथा उन्हें धारा 376 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत दोषसिद्ध होने पर पाँच वर्ष का कठोर कारावास भी दिया जाता है। पुनः उन्हें धारा 201 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा भी सुनाई जाती है। समस्त सजाएँ साथ-साथ (समवर्ती रूप से) चलेंगी।

3. अभियोजन पक्ष की कहानी 19.05.1987 को 'टी' के चाचा 'जे' द्वारा दायर एक गुमशुदगी की रिपोर्ट पर सामने आई। रिपोर्ट में कहा गया है, 'के' और एक अन्य लड़की, 'टी' 17.05.1987 को दोपहर में घास काटने के लिए अपने घर से निकले थे। दोनों लड़कियां, जिनकी उम्र क्रमश: 10 और 8 साल है, देर शाम तक घर नहीं लौटीं। 'जे' और मदियान बडे के अन्य ग्रामीणों द्वारा तलाशी ली गई। इसका कोई फलदायी परिणाम नहीं निकला। इसके बाद, 21.05.1987 को गंगा नदी के पास एक तालाब से 'के' और 'टी' के शव बरामद किए गए। दोनों शव अपघटन के अंतिम चरण में थे। इसके अलावा, उसी दिन 'के' के कपड़े बरामद किए गए और मुकदमे में उन्हें प्रदर्श क-29 के रूप में चिह्नित किया गया। उसके शव के पास 'टी' के कुछ निजी सामान भी बरामद किए गए और मुकदमे में प्रदर्श क-26 के रूप में चिह्नित किया गया। इसके अतिरिक्त, 21.05.1987 को 'के' के शव के आसपास से खून से सनी और सादी मिट्टी बरामद की गई थी। वह फ़र्द बरामगदी परीक्षण में प्रदर्श क-28 है।

4. अभियोजन पक्ष की कहानी के अनुसार, मृतक के शवों की खोज के बाद, (गांव में) अफवाहें फैलीं, जिसमें वर्तमान अपीलकर्ताओं को घटना में शामिल किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि इन अफवाहों के कारण अपीलकर्ता को पकड़ लिया गया। उनकी गिरफ्तारी के बाद, अपीलकर्ता ताले हसन पर आरोप है कि वह पुलिस को अमर सिंह के गन्ने के खेत में ले गया, जहां उसने कथित तौर पर 'के' के साथ बलात्कार किया।

5. 21.05.1987 को मृतक 'के' और 'टी' के शवों की जांच की गई। 'के' की पंचनामा रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि शव अपघटन के अंतिम चरण में था और उसे सड़ा दिया गया था। कपड़ों के लिए, यह नोट किया गया था, शरीर पर ऊपरी और निचले दोनों वस्त्र मौजूद थे, जैसा कि मृतक द्वारा पहने जाने वाले कुछ चूड़ियाँ थीं। इसी तरह, मृतक 'टी' की पंचनामा रिपोर्ट से पता चला कि उसका निचला कपड़ा शरीर पर मौजूद था, जबकि बाकी शरीर नग्न था। दाहिने हाथ पर चूड़ियां मिलीं। दो पंचनामा रिपोर्टों को मुकदमे में क्रमशः प्रदर्श क-19 और प्रदर्श क-18 के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

6. 22.05.1987 को, डॉ. अरुण गुप्ता ने 'के' और 'टी' के शवों पर दो शव परीक्षण किए। 'के' की शव परीक्षण रिपोर्ट मुकदमे में प्रदर्श क-3 है, जबकि 'टी' की शव परीक्षण रिपोर्ट मुकदमे में प्रदर्श क-4 है। 'के' की शव परीक्षण रिपोर्ट में नीचे दर्ज किया गया है:

"शरीर अत्यधिक विघटित अवस्था है, बाल आसानी से बाहर निकल जाते हैं। कई स्थानों पर सॉकेट त्वचा में दांत ढीले, कीड़ों द्वारा खाए गए कीड़े, पूरे शरीर में रेंगने वाले कीड़ों की बड़ी मात्रा। मुंह आधा खुला। आंखें बंद। आंखों की गेंद नरम; बाहरी जननांगों आकार के कीड़ों द्वारा खाए गए वर्ष 2 सेमी पीठ और नितंबों की त्वचा पूरी तरह से अनुपस्थित है। पसलियों को पीछे की तरफ उजागर किया जाता है। कीड़ों की मांसपेशियों द्वारा खाए गए निचले पैर के पैर की त्वचा उजागर हो जाती है।

7. 'टी' की शव परीक्षण रिपोर्ट में निम्नानुसार दर्ज किया गया है:
"2 बजे लंबे कीड़े बड़ी संख्या में पूरे शरीर में रेंगते हैं, शरीर अपघटन के अग्रिम चरण में है। खोपड़ी, बाल और त्वचा समग्र रूप से अनुपस्थित। खोपड़ी और चेहरे की हड्डी उजागर। आंखों की गेंदें अनुपस्थित। नाक उपास्थि अनुपस्थित। सॉकेट में दांत ढीले। पेट की दीवार और सभी आंत अनुपस्थित। छाती के ऊपर की त्वचा अनुपस्थित। पसलियां उजागर। दाहिनी जांघ के हिस्से में त्वचा और मांसपेशियां अनुपस्थित होती हैं और दाहिने निचले पैर के कीड़े रेंगते हैं। बाएं निचले पैर के टिबिया और फाइबुला को इसके ऊपरी पहलू पर उजागर किया जाता है बाएं ऊपरी हाथ को शरीर से अलग किया जाता है। ह्यूमरस त्रिज्या और उल्ना (केवल हड्डियां) ढीले कार्पेल, मेटाकार्पल और दाहिने हाथ के फालेंज अनुपस्थित हैं। दाहिनी ऊपरी बांह की त्वचा को कीड़ों द्वारा खा लिया जाता है। नाखून ढीले।

8. वे शव परीक्षण रिपोर्ट भी अभिलेख पर हैं और वे स्वीकृत दस्तावेज हैं। मृतक 'के' और 'टी' के कपड़े और निजी सामान को फोरेंसिक जांच के लिए भेजा गया था।

9. फोरेंसिक रिपोर्ट के अनुसार, बरामद एक दरांती में खून के निशान थे। फोरेंसिक जांच के लिए भेजे गए कपड़ों में मानव रक्त की उपस्थिति का पता चला। हालांकि, फोरेंसिक जांच के लिए भेजी गई वस्तुओं पर पाया गया सारा खून विघटित पाया गया। मुकदमे में फोरेंसिक रिपोर्ट प्रदर्श क-33 है।

10. जांच के दौरान, दोनों अपीलकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। अन्वेषण के दौरान दोनों अपीलकर्ताओं को गिरफ्तार किया गया। साथ ही, दो अतिरिक्त न्यायिक संस्वीकृतियों का अभिलेख किया जाना बताया गया है–एक ग्रामवासी पूरन (विचारण में साक्षी अ०सा०-2) के समक्ष तथा दूसरी 'एम', 'टी' के पिता (विचारण में साक्षी अ०सा०-5) के समक्ष।

11. 28.05.1987 को, अपीलकर्ता ताले हसन का दावा किया जाता है कि उसने विवेचनाधिकारी को उस स्थान का खुलासा किया था, जहां उसने कथित तौर पर 'के' पर बलात्कार किया था। तलाशी लेने पर, विवेचनाधिकारी श्री बीएन मिश्रा (मुकदमे में अ०सा०-8) ने उस स्थान से 'के' का एक झुमका/स्टील का 'कुंडल' बरामद किया। वह फ़र्द बरामगदी दिनांक 28.05.1987 मुकदमे में प्रदर्श क-5 है। यह खेमकरण (मुकदमे में अ०सा०-4), 'एम' (मुकदमे में अ०सा०-5), राम प्रसाद (मुकदमे में अ०सा०-6) और बाबू राम (मुकदमे में अ०सा०-3) द्वारा गवाह था।

12. 28.05.1987 को, अपीलकर्ता-गुलाब ने श्री बी.एन. मिश्रा (मुकदमे में अ०सा०-8) को एक तेज धार वाले हथियार, दरांती की बरामदगी के लिए एक लकड़ी के हैंडल/पकड़ के साथ बरामद किया, जिसे मुकदमे में प्रदर्श क-1 के रूप में पहचाना गया। उसी दिन, एक और दरांती, जिसे खून से सना हुआ बताया गया है, श्री बीएन मिश्रा (अ०सा०-8) द्वारा अभियुक्त-तले हसन की ओर इशारा करते हुए बरामद किया गया था। इस मद के लिए फ़र्द बरामगदी खेमकरण (मुकदमे में अ०सा०-4), 'एम' (मुकदमे में अ०सा०-5), राम प्रसाद (मुकदमे में अ०सा०-6), और बाबू राम (मुकदमे में अ०सा०-3) द्वारा देखा गया था, और मुकदमे में उसकी पहचान प्रदर्श क-2 के रूप में की गई है।

13. ऐसी परिस्थिति में, जांच पूरी हो गई और अदालत में आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया।

14. सत्र न्यायालय में विचारण के लिए मामले को प्रस्तुत किए जाने पर, दोनों अपीलकर्ताओं के खिलाफ निम्नलिखित आरोप तय किए गए: -

"प्रथम :- यह कि दिनांक 17.5.87, को समय किसी समय अज्ञात स्थान वहद जंगल ग्राम बदे मडेयान के उत्तर की तरफ गंगा की झाड़ थाना शाहबाद जिला रामपुर के अंतर्गत आप लोगो ने वादी की पुत्रिया नाबालिग 'के' और 'टी' के साथ बलात्कार करके उनकी हत्या कर दी, और ऐसा करके आप लोगो ने ऐसा अपराध किया जो धारा 302 भ०द०वि० के अन्तंगत दन्डनीय अपराध है, और इस सत्र न्यायालय के प्रसंगान में है।

द्वितीयः- यह कि उपरोक्त दिनांक समय एवं स्थान पर आप लोगो ने वादी की पुत्रिया 'के' एवं 'टी' की हत्या करके उसकी लाश को छिपाने का प्रयास किया, और कानून की गिरफत से अपने आपको बचाने के लिए आप लोगो के हत्या के सबूत को छिपाने का प्रयत्न किया, और उसके द्वारा आप लोगो ने ऐसा अपराध किया जो धारा 201 भ०द०वि० के अन्तंगत दन्डनीय अपराध किया, जो इस सत्र न्यायालय के प्रसंगान में है।

तृतीयः- यह कि उपरोक्त दिनांक समय एवं स्थान पर आप लोगो ने वादी की लड़की 'के' मृतक के साथ बलात्कार किया, और उसके द्वारा आपने ऐसा अपराध किया, जो धारा 376 भ०द०वि० के अन्तंगत दन्डनीय अपराध है, और इस सत्र न्यायालय के प्रसंगान में है। "

15. मुकदमे में, दस्तावेजी साक्ष्य के अलावा, अभियोजन पक्ष ने दस गवाहों से पूछताछ की। सबसे पहले, 'टी' के चाचा, 'जे', जो पहले सूचनाकर्ता थे, की जांच अ०सा०-1 के रूप में की गई थी। अपनी मुख्य परीक्षण के दौरान, उन्होंने साबित कर दिया कि 'के' 'बी' (अ०सा०-3) की बेटी थी। उन्होंने बयान दिया कि 11 साल की उम्र के 'के' और 8 साल की 'टी' अपने मवेशियों के लिए घास इकट्ठा करने के लिए दोपहर लगभग 12:00 बजे अपने घर से निकले थे। उन्होंने बताया कि हालांकि लड़कियां अक्सर इस उद्देश्य के लिए बाहर नहीं जाती थीं, लेकिन वे 17.05.1987 को इस उद्देश्य के लिए बाहर गई थीं। उनके शव लगभग पांच दिनों के बाद, गांव से लगभग 1 किलोमीटर दूर, गांव के एक तालाब में पाए गए। उन्होंने गांव के चौकीदार शिव लाल (मुकदमे में जांच नहीं हुई) को पुलिस को इस बारे में सूचित करने के लिए भेजा था। उन्होंने साबित कर दिया कि उन्होंने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी। उन्होंने आगे साबित किया, उन्होंने 'के' और 'टी' को उन कपड़ों से पहचाना जो उनके मृत शरीर पर उपलब्ध थे। साथ ही, उन्होंने इनकार किया, उन्हें अन्य ग्रामीणों से वर्तमान अपीलकर्ताओं की संलिप्तता के बारे में पता चला था।

16. अपनी जिरह के दौरान, उसने स्वीकार किया कि पहले वह आगा साहब पुत्र नब्बन साहब द्वारा नियोजित किया गया था। उन्होंने आगे दावा किया कि उन्होंने वह नौकरी छोड़ दी थी। उनसे पूछे जाने पर उन्होंने कहा- ज्यादातर ग्राम प्रधान नब्बन साहब के परिवार से चुने गए थे। आगे के सवाल पर, उन्होंने स्वीकार किया, वर्तमान प्रधान 'घोसी' जाति से थे और वर्तमान अपीलकर्ता यानी आरोपी व्यक्ति भी उसी जाति के थे। उन्होंने विशेष रूप से स्वीकार किया, 'टी' का निचला वस्त्र उसकी खोज के समय उसके मृत शरीर पर मौजूद पाया गया था। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उन्होंने आगा साहब के प्रभाव में आकर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी।

17. पूरन की जांच अ०सा०-2 के रूप में की गई थी। अपनी मुख्य परीक्षण के दौरान, वह अपीलकर्ताओं को पहचानने में विफल रहे। उसे पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया और अभियोजन पक्ष द्वारा जिरह के लिए प्रस्तुत किया गया। उसमें, शुरू में उसने अनभिज्ञता का नाटक किया, लेकिन बाद में अपीलकर्ताओं को अपने परिचित व्यक्तियों के रूप में सही ढंग से पहचाना। इसके बाद वह अपीलकर्ताओं द्वारा किए गए अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति को साबित करने के लिए निकल पड़ा। उसमें उन्होंने नीचे कहा : -

"इनमें से एक के बाप का नाम मन्नू है, दूसरे के बाप का नाम याद नहीं आ रहा। इनमें से एक का नाम तालेहसन व दूसरे का गुलाब है। मैंने इन्हें सबसे पहले तब देखा जबकि ये पकड़े गये। इन्होंने पहले मुझसे यह कहा थाकितने दिन पहले कहा था जो होना था हो गया। अब फैसला करा दो।" , याद नहीं। मेरे गांव के पास

की 'के' व 'टी' लड़कियों का कत्ल हुआ था। उपरोक्त दोनों मुलाज़िम ने मुझसे कहा था हमसे गलती हो गई।" हमने इन लड़कियों के साथ बुरा काम किया और उन्हें जान से मार दिया। हमें इस बात की माफी करा दो। "

18. बचाव पक्ष द्वारा जिरह की अनुमति दिए जाने पर, उन्होंने स्पष्ट किया कि आरोपी व्यक्ति उनसे दोपहर लगभग 12:00 बजे मिले थे। उन्होंने आगे कहा, उनके साथ उनमें से एक के पिता मंगू भी थे। हालांकि, उन्होंने अपीलकर्ता के माता-पिता के सटीक माता-पिता को निर्दिष्ट नहीं किया। पूछताछ करने पर, उसने कहा, वह उस समय अकेला था और उसने अपीलकर्ताओं से कहा था कि यदि संभव हो तो वह पुलिस द्वारा उन्हें माफी दिलवा देगा। उन्होंने आगे कहा, वह न तो पुलिस के पास गए और न ही मृतक के माता-पिता के पास। साथ ही पुलिस ने उससे कुछ भी नहीं पूछा। वह मृतक के पिता से संपर्क नहीं किया और उसने पुलिस को कोई बयान भी नहीं दिया। फिर भी, उन्होंने इस बात से इनकार किया कि अपीलकर्ता उनके पास नहीं गए थे या वह अपनी जाति के झुकाव के कारण झूठा बयान दे रहे थे।

19. इसके बाद, 'के' के पिता 'बी' की जांच अ०सा०-3 के रूप में की गई। उन्होंने 'जे' द्वारा दिए गए बयान में कोई जोड़ नहीं दिया। हालांकि, अपनी जिरह के दौरान उन्होंने कहा कि उन्हें पता चला कि अपीलकर्ता इस घटना में शामिल थे और उन्होंने पहले मृतक के साथ बलात्कार किया था। फिर भी, अगले प्रश्न पर, उन्होंने दावा किया, उन्हें किसी और ने घटना के बारे में सूचित नहीं किया था। एक अन्य प्रश्न पर, उन्होंने स्वीकार किया कि वर्तमान में ग्राम प्रधान और वर्तमान अपीलकर्ता 'घोसी' जाति से संबंधित हैं। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि उन्होंने प्रधान चुनाव में रामपुर के खान साहब को वोट दिया था, जाहिर तौर पर उसी व्यक्ति का जिक्र करते हुए, जिसे उनके भाई 'जे' ने नब्बन साहब के रूप में वर्णित किया था।

20. इसके बाद, 'के' ग्रामीण की जांच अ०सा०-4 के रूप में की गई। उन्होंने बताया कि दोनों मृत लड़कियों के लापता होने के सामान्य तथ्यों के अलावा, पांचवें दिन उनके शव मिले थे। उन्होंने आगे स्वीकार किया कि विवेचनाधिकारी द्वारा 'पंचायतनामा' तैयार की गई थी। जहां तक दरांती की बरामदगी का सवाल है, उन्होंने इनकार किया कि उनकी उपस्थिति में उन्हें बरामद किया गया था। उन्होंने दावा किया कि वह थाना में मौजूद रहे, जहां उन्होंने दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किए।

21. उसे शत्रुतापूर्ण घोषित नहीं किया गया था। जिरह के लिए पेश किए जाने पर, उन्होंने आगे कहा, 'बी', 'एम' और 'आर' ने थाना में प्रदर्श क-1 और प्रदर्श क-2 यानी दो दरांती के फ़र्द बरामगदी पर भी अपने हस्ताक्षर किए थे। उन्होंने बताया कि उस समय दोनों आरोपी थाने में मौजूद थे। उन्होंने दावा किया कि अगर आरोपी व्यक्तियों को उस समय थाना से बाहर ले जाया गया था तो उन्हें जानकारी नहीं थी। फिर भी, उन्होंने कहा कि अन्य गवाह विवेचनाधिकारी के साथ थाना से बाहर नहीं गए थे।

22. 'टी' के पिता 'एम' की जांच अ०सा०-5 के रूप में की गई थी। दोनों लड़कियों के लापता होने के तथ्यों को साबित करने के अलावा, उन्होंने दावा किया (उनकी मुख्य परीक्षा के दौरान), विवेचनाधिकारी द्वारा उनके शव

के पास से 'के' की झुमका/स्टील का 'कुंडल' बरामद किया गया था, जबकि गन्ने के खेत से दरांती बरामद की गई थी।

23. इसके बाद, उन्होंने दोनों अपीलकर्ताओं द्वारा किए गए अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारालमे को साबित कर दिया। जिसे उन्होंने नीचे वर्णित किया है:

"तालेहसन और गुलाब ने मेरे सामने दरोगा को यह बयान दिया कि तालेहसन ने कहा मैंने"'के' के साथ गलत काम किया तो वह मर गई"

24. उन्होंने गुलाब की न्यायेतर स्वीकारोक्ति को निम्नानुसार साबित किया: -

"गुलाब ने कहा कि "'टी' ने कहा कि मैं घर जाकर कह दूँगी तो मैंने उसे लाठी मारी और उसके दाँत तोड़ " दिये और दूसरी लाठी मारकर उसका हाथ तोड़ दिया, जब लड़की चिल्लाने लगी तो उसकी दराती से गर्दन काट दी। "

25. उन्होंने आगे बड़ी दरांती को 'टी' से संबंधित बताया। उन्होंने यह भी खुलासा किया, यह गन्ने के खेत के कोने से अपीलकर्ता-गुलाब की ओर इशारा करते हुए खोजा गया था। दूसरी दरांती गिरजा सिंह के कृषि क्षेत्र से अपीलकर्ता-तले हसन की ओर इशारा करते हुए बरामद की गई थी। अपनी जिरह के दौरान, उन्होंने इनकार किया, जब बरामदगी की गई थी तो वह उपस्थित नहीं थे। उन्होंने कहा, विवेचनाधिकारी अपीलकर्ताओं और गवाहों के साथ उस स्थान पर गए थे जहां दो दरांती और झुमके/स्टील कुंडल बरामद किए गए थे। उन्होंने कपड़ों आदि की बरामदगी को भी साबित किया। जहां तक ग्राम प्रधान का सवाल है, उन्होंने स्वीकार किया कि वर्तमान ग्राम प्रधान 'घोसी' जाति से थे, जबकि पहले के ग्राम प्रधान अल-हसन के परिवार से आते थे, जिनकी रामपुर में एक 'कोठी' (हवेली) थी। उन्होंने स्वीकार किया कि उक्त व्यक्ति प्यारे घोसी के हाथों ग्राम प्रधान का चुनाव हार गया। साथ ही, उन्होंने इस बात से इनकार किया कि वह (खान साहब) के समर्थक थे और उक्त खान साहब के उकसावे पर उनके और 'जे' द्वारा एक झूठा मामला दर्ज किया गया था।

26. एक अन्य ग्रामीण 'आर' की जांच अ०सा०-6 के रूप में की गई थी। उन्होंने वर्णन किया, जिस स्थान से 'के' और 'टी' के शव खोजे गए थे, उसका उपयोग अपीलकर्ताओं और उनके और अन्य सभी ग्रामीणों द्वारा चराई के मैदान के रूप में किया गया था। जिरह के दौरान उन्होंने दावा किया कि शवों की खोज के अलावा कुछ और बरामद नहीं हुआ है। हालांकि, उन्होंने स्वीकार किया कि 'के' और 'टी' के शव बरामद होने के समय वह वहां मौजूद थे।

27. इसके बाद, डॉ. अरुण गुप्ता की अ०सा०-7 के रूप में जांच की गई। उन्होंने शव परीक्षण रिपोर्ट को साबित किया। उन्होंने आगे साबित किया कि 'के' और 'टी' के शव लगभग पांच दिन पुराने थे। उनके दांत ढीले हो गए थे। त्वचा छिल रही थी और शरीर कीड़ों से संक्रमित थे। 'के' और 'टी' के अत्यधिक विघटित शरीर पर चोट के कोई स्पष्ट निशान नहीं थे। उन्होंने यह भी साबित कर दिया कि मौत के कारणों का पता नहीं लगाया जा सका

है। यह खुलासा किया गया था, शव पर पाए गए किसी भी कपड़े को थाना को सौंप दिया गया था। 'टी' के शव के संबंध में, उन्होंने आगे कहा, उस शव के बाएं हाथ का ऊपरी आधा हिस्सा शरीर से कटा हुआ पाया गया था।

28. इसके बाद, श्री बीएन मिश्रा, थानाध्यक्ष, की अ०सा०-8 के रूप में जांच की गई। अपनी मुख्य परीक्षण के दौरान, उन्होंने दरांती और झुमके/स्टील 'कुंडल' दोनों की बरामदगी साबित की।
29. इसके बाद, श्री एन.बी. पंत की अ०सा०-9 के रूप में जांच की गई। उन्होंने शवों की बरामदगी और अन्य संबंधित वस्तुओं और कार्यवाही के संबंध में तथ्यों को साबित किया।

30. एस.आई. एस.सी. तोमर, विवेचनाधिकारी की अ०सा०-10 के रूप में जांच की गई थी। उन्होंने खून से सनी धरती आदि की बरामदगी को साबित किया। उन्होंने 28.05.1987 को अपीलकर्ताओं द्वारा पूरन के सामने किए गए अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति को भी साबित किया।

31. इसके बाद, आरोपी-अपीलकर्ताओं के बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए। अवर न्यायालय ने पक्षों को सुना और उसके बाद, आक्षेपित आदेश पारित किया।

32. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता की प्रस्तुति यह है कि अवर न्यायालय ने अपीलकर्ताओं को बलात्कार के जघन्य अपराध के लिए केवल अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति और दो 'दरांती' की बरामदगी के आधार पर दोषी ठहराकर कानून में गलती की। 'दरांती' में से एक को खून से सना हुआ बताया गया था। दोनों को अपीलकर्ताओं के इशारा पर बरामद किया गया, साथ ही 'के' से संबंधित एक झुमका/स्टील 'कुंडल' की बरामदगी भी हुई।

33. इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है, अपीलकर्ताओं के खिलाफ तय किया गया आरोप अभियोजन पक्ष द्वारा एकत्र किए गए ठोस और ठोस साक्ष्य द्वारा कभी भी साबित नहीं किया गया था। यह प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं बल्कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला होने के कारण, अभियोजन पक्ष को यह स्थापित करने के लिए अपने बोझ से मुक्त नहीं होना चाहिए था कि अपीलकर्ताओं ने मृत लड़कियों के साथ बलात्कार किया था और उसके बाद उनकी हत्या कर दी थी। यदि इकबालिया बयान को बाहर रखा गया है, तो सबूत का एकमात्र टुकड़ा जो बचता है वह बरामदगी है। यह अपने आप में केवल संदेह के लिए एक मजबूत आधार प्रदान कर सकता है लेकिन दोषसिद्धि के लिए आवश्यक सबूत नहीं है।

34. अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति के प्रत्यक्ष साक्ष्य के रूप में, यह कहा गया है, अभियोजन पक्ष द्वारा विश्वास या किसी अन्य परिस्थिति का कोई पूर्व संबंध साबित नहीं किया गया था जो अभियोजन पक्ष के कथन को विश्वसनीयता प्रदान कर सकता है कि अपीलकर्ताओं ने पूरन को ऐसा स्वीकारनामा दिया हो सकता है, जो किसी भी पक्ष से संबंधित नहीं है और जो विश्वास की कोई स्थिति नहीं रखता है, या 'एम', 'टी' के पिता को। इन बयानों का उल्लेख करते हुए, यह तर्क दिया गया है कि पूरन और 'एम' द्वारा सिद्ध स्वीकारोक्ति का सार

एक ही घटना के बारे में दो अलग-अलग गवाहों द्वारा सुनाए गए दो अलग-अलग विवरण प्रस्तुत करता है। यह अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति को स्वाभाविक रूप से असंगत और संदिग्ध बना देता है।

35. जहां तक बरामदगी का सवाल है, यह तर्क दिया गया है, वे भी संदेह से मुक्त नहीं हैं। जबकि 'एम' ने दावा किया, बरामद पुलिस द्वारा खुलासा और साबित के रूप में की गई थी, खेमकरण (अ०सा०-4) और 'बी' (अ०सा०-3) ने 'के' से संबंधित झुमके की बरामदगी को साबित नहीं किया। हालांकि, 'टी' के जनक 'एम' ने भी उस बरामदबी को साबित करने की कोशिश की। इसी तरह, 'दरातियों' की बरामदगी के संबंध में, यह दावा किया गया है कि कम से कम एक गवाह, अर्थात् खेमकरण (अ०सा०-4), जो एक स्वतंत्र गवाह है, ने 'दरातियों' की बरामदगी के संबंध में अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया। उनके अनुसार, न तो आरोपी व्यक्ति और न ही गवाह उन बरामदगी को करने के लिए थाना से बाहर गए।

36. ऐसे संदिग्ध तथ्यों में, यह कहा गया है, अवर न्यायालय ने धारा 302 और 376 के तहत अपीलकर्ताओं को धारा 201 भ०द०वि० सपठित जघन्य अपराध के लिए दोषी ठहराने में गलती की है।

37. दूसरी ओर, अपर शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करेगा कि घटना को 'टी' के चाचा 'जे' द्वारा तुरंत सूचित किया गया था। 'के' और 'टी' वर्ष 17.05.1987 की शाम को लापता हो गए। उनके परिवारों और अन्य ग्रामीणों ने 17.05.1987 और 18.05.1987 को उनकी तलाश की। जब लड़कियां नहीं मिल सकीं, तो 19-05-1987 को गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज कराई गई। पुलिस भी लड़कियों की तलाश नहीं कर सकी। ऐसी परिस्थितियों में, 21.05.1987 को गंगा नदी के पास एक गांव के तालाब से उनके शवों की खोज पर प्राथमिकी दर्ज की गई और जांच शुरू हुई। शव अत्यधिक सड़ी हुई अवस्था में होने के कारण का पता नहीं चल सका है। इसके अतिरिक्त, चूंकि दोनों शवों के निजी अंग पूरी तरह से सड़ गए थे, इसलिए बलात्कार के बारे में कोई राय नहीं बनाई जा सकी। हालांकि, जिस जगह पर शव मिले थे, वहां से खून से सनी मिट्टी बरामद की गई, जिससे साफ पता चलता है कि लड़कियों की हत्या की गई थी।

38. जहां तक बरामदगी का सवाल है, यह प्रस्तुत किया गया है, 'के' और 'टी' द्वारा पहने गए कपड़ों के अलावा, तीन अन्य वस्तुएं बरामद की गई थीं। ये सभी बरामदगी अपीलकर्ताओं की ओर इशारा करते हुए की गई थी। विशेष रूप से, 'के' से संबंधित झुमका/स्टील 'कुंडल' को आरोपी तले हसन के सामने गन्ने के खेत से बरामद किया गया था। यह प्रकटीकरण कथन विवेचनाधिकारी एस.सी. तोमर (अ०सा०-10) द्वारा विधिवत साबित किया गया था, जैसा कि केस डायरी पर दर्ज किया गया था और प्रदर्शनी के रूप में चिह्नित किया गया था, जिसमें प्रदर्श क-30, प्रदर्श क-31, और प्रदर्श क-32 शामिल हैं। प्रदर्श क-5 पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि यह ठीक से सिद्ध हुआ था। इसके अलावा, अपीलकर्ताओं की ओर से इंगित किए जाने पर दो 'दरांती', एक 'के' और दूसरा 'टी' से संबंधित थे। 'के' से संबंधित बड़ी 'दरांती' अपीलकर्ता गुलाब की ओर इशारा करते हुए बरामद की गई थी, जबकि दूसरी को अपीलकर्ता तले हसन की ओर इशारा करते हुए बरामद किया गया था।

वह 'दरांती' खून से सनी थी। इन वस्तुओं के लिए फ़र्द बरामगदी भी परीक्षण में प्रदर्श क-1 और प्रदर्श क-2 के रूप में सिद्ध हुए थे।

39. इन बरामदगियों के संदर्भ में, दो अपीलकर्ताओं द्वारा न्यायेतर स्वीकारोक्ति की गई थी। इस स्वीकारोक्ति को पूरन (अ०सा०-2) और 'एम' (अ०सा०-5) द्वारा सिद्ध किया गया था। चूंकि दोनों अपीलकर्ताओं द्वारा किए गए गैर-न्यायिक स्वीकारनामे की पुष्टि ऊपर उल्लिखित तीन मदों की बरामदगी से होती है, इसलिए इस बात पर जोर दिया गया है कि धारा 376 भ०द०वि० के तहत अपराध और धारा 302 भ०द०वि० के तहत जघन्य अपराध दोनों के लिए दोषसिद्धि को बरकरार रखने के लिए पर्याप्त सबूत हैं।

40. उस संबंध में, अपराध के निर्विवाद तथ्यों और परिस्थितियों का संदर्भ दिया गया है, जिसमें दो नाबालिग लड़कियां 17.05.1987 को लापता हो गई थीं, जब वे अपने मवेशियों के लिए घास लेने गई थीं। उनके शव बाद में एक चरागाह के पास एक तालाब में पाए गए, जिसका उपयोग वर्तमान अपीलकर्ताओं सहित अन्य लोगों द्वारा किया गया था। इस तथ्य को राम प्रसाद (अ०सा०-6) ने स्थापित किया था। परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर उत्पन्न होने वाला मामला होने के नाते, न्यायालय को साक्ष्य की उसी गुणवत्ता की आवश्यकता नहीं हो सकती है जो प्रत्यक्ष साक्ष्य के मामले में अपेक्षित होगी। चूंकि अपीलकर्ता कोई बचाव साक्ष्य पेश नहीं कर सके और यह बरामदगी या गैर-न्यायिक स्वीकारोक्ति के अभियोजन पक्ष के खाते पर संदेह नहीं कर सकता था, इसलिए केवल एक निष्कर्ष निकाला जा सकता है - कि अपीलकर्ता दो नाबालिग लड़कियों के बलात्कार और हत्या से जुड़ी घटना के लिए जिम्मेदार थे।

41. पक्षों के अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख का अवलोकन करने के बाद, यह स्पष्ट है, मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर उत्पन्न हुआ था। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष ने स्वीकार किया कि दो लड़कियां, 'के' और 'टी', 17.05.1987 को लापता हो गईं और 19.05.1987 तक उनका पता नहीं लगाया जा सका। उस स्तर पर, वर्तमान अपीलकर्ताओं के खिलाफ कोई संदेह नहीं हुआ। यह तथ्य स्पष्ट है और अभियोजन पक्ष के लिए यह निर्विवाद है, क्योंकि यह अभियोजन पक्ष का अपना मामला है कि अज्ञात बदमाशों के खिलाफ गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज की गई थी। फिर, पूरन (अ०सा०-2) और 'एम' (अ०सा०-5) के अनुसार, अपीलकर्ताओं द्वारा इन दो गवाहों के सामने गैर-न्यायिक स्वीकारोक्ति की गई, जिसमें स्वीकार किया गया कि उन्होंने अपराध किया था। इसके बाद, अपीलकर्ताओं को घटना के दस दिन बाद 28.05.1987 को गिरफ्तार किया जा सकता है। उनकी गिरफ्तारी के बाद, दो 'दरांती' की बरामदगी की गई।

42. यह भी सच है कि उन बरामदगियों के संबंध में, प्रकटीकरण बयान दिनांक 28.05.1987 के दो फ़र्द बरामगदी में दर्ज किए गए थे, अर्थात्, प्रदर्श क-1 और प्रदर्श क-2। ताले हसन के इशारे पर बरामद 'दरांती' में कुछ खून के धब्बे थे। साथ ही, फॉरेंसिक/सीरोलॉजिकल रिपोर्ट में यह स्थापित नहीं किया गया है कि उक्त रक्त मानव मूल का था। एफएसएल, आगरा द्वारा दिनांक 02.12.1989 (प्रदर्श-33) को प्रस्तुत फोरेंसिक रिपोर्ट में यह स्पष्ट रूप से दर्ज किया गया है कि उस 'दराती' पर पाए गए रक्त के नमूने को विघटित कर दिया गया

था। ताले हसन (प्रदर्श क-5) के संकेत पर बरामद किए गए झुमके/स्टील 'कुंडल' की तीसरी बरामदगी के संबंध में, यह ध्यान दिया जा सकता है कि फ़र्द बरामगदी में 'के' के उस झुमके/स्टील के 'कुंडल' की बरामदगी के संबंध में एक प्रकटीकरण बयान शामिल करने का दावा नहीं किया गया है। इसके विपरीत, उस फ़र्द बरामगदी में निहित कथन यह है कि आरोपी ताले हसन ने स्वेच्छा से विवेचनाधिकारी को वह स्थान दिखाया, जहां उसने बलात्कार किया था। पुलिस दल के उस स्थान पर पहुंचने पर, उन्हें झुमके/स्टील का 'कुंडल' मिला, जिसकी पहचान 'के' से संबंधित थी। फ़र्द बरामगदी में आगे बताया गया है कि झुमके/स्टील के कुंडल की पहचान 'के' के पिता 'बी' द्वारा 'के' के के होने के रूप में की गई थी। उस फ़र्द बरामगदी के गवाह खेमकरण (अ०सा०-4), 'एम' (अ०सा०-5), राम प्रसाद (अ०सा०-6), और 'बी' (अ०सा०-3) हैं।

43. **ईरभद्रप्पा बनाम कर्नाटक राज्य, (1983) 2 एस.सी.सी. 330 में भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872** की धारा 27 की बरामदगी पर, विशेष रूप से हमले के हथियार की बरामदगी और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 की आवश्यकता पर, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की:

"8. इसलिए धारा 27 की प्रयोज्यता के लिए दो शर्तें पूर्वापेक्षाएँ हैं, अर्थात् (1) जानकारी ऐसी होनी चाहिए जो तथ्य की खोज का कारण बनी हो; और (2) जानकारी को खोजे गए तथ्य से "स्पष्ट रूप से संबंधित" होना चाहिए। प्रस्तुत मामले में, मुकदमे के दौरान एक सुझाव था कि अ०सा०-26 को अन्य स्रोतों से पूर्व जानकारी थी कि आपत्तिजनक लेख कुछ स्थानों पर छिपाए गए थे और यह कि बयान प्रदर्श P-35 बरामदगी के बाद तैयार किया गया था और इसलिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अर्थ के भीतर कोई "तथ्य खोजा गया" नहीं था। हमें इस प्रश्न पर विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि अ०सा०-26 को उसकी जिरह के दौरान कोई सुझाव नहीं दिया गया था कि वह उन स्थानों को जानता था जहां आपत्तिजनक वस्तुएं रखी गई थीं। ऐसा होने पर, अपीलकर्ता प्रदर्श P-35 द्वारा दिया गया बयान स्पष्ट रूप से साक्ष्य में स्वीकार्य है।

(महत्व सन्निविष्ट)

44. फिर, **बोधराज बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य, (2002)8 एस.सी.सी. 45** में, उच्चतम न्यायालय ने आगे निम्नानुसार कहा:

"18. हिरासत में रहते हुए अभियुक्त द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर हमले के हथियार की बरामदगी पर एक परिस्थिति के रूप में जोर दिया गया था। सवाल यह है कि क्या बरामदगी से संबंधित सबूत आरोपी पर अपराध दर्ज करने के लिए पर्याप्त हैं। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 (संक्षेप में "साक्ष्य अधिनियम") धारा 25 से 26 के परंतुक के रूप में है और पुलिस हिरासत में किए गए स्वीकारोक्ति के माध्यम से भी एक बयान जो स्पष्ट रूप से खोजे गए तथ्य से संबंधित है, अभियुक्त के खिलाफ साक्ष्य में स्वीकार्य है। इस स्थिति को दिल्ली प्रशासन में इस न्यायालय द्वारा संक्षेप में निपटाया गया था। ***बनाम बाल कृष्ण [(1972) 4 एस.सी.सी. 659 : ए.आई.आर.1972 एस.सी. 3] और मो. इनायतुल्लाह वी. महाराष्ट्र राज्य [(1976) 1 एस.सी.सी. 828: 1976 एस.सी.सी. (क्रिल०) 199: ए.आई.आर.1976 एस.सी. 483]*** *. शब्द "इतनी सारी*

जानकारी" जो इस तथ्य से स्पष्ट रूप से संबंधित है, बहुत महत्वपूर्ण हैं और अनुभाग की पूरी शक्ति उन पर केंद्रित है। स्पष्ट रूप से स्वीकार्य जानकारी की सीमा उस तथ्य की सटीक प्रकृति पर निर्भर होनी चाहिए जिससे ऐसी जानकारी संबंधित होने की आवश्यकता होती है। पूर्ववर्ती धाराओं द्वारा लगाया गया प्रतिबंध संभवतः विधायिका के डर से प्रेरित था कि पुलिस के प्रभाव में आने वाले व्यक्ति को अनुचित दबाव के प्रयोग से कबूल करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। यदि प्रतिबंध हटाने के लिए जो कुछ भी आवश्यक है, वह बाद में उत्पादित किसी वस्तु से संबंधित जानकारी के स्वीकारनामे में शामिल होना है, तो यह मान लेना उचित लगता है कि पुलिस की प्रेरक शक्तियां अवसर के बराबर साबित होंगी, और व्यवहार में प्रतिबंध अपना प्रभाव खो देगा। प्रावधान का उद्देश्य यानी धारा 27 साक्ष्य की स्वीकृति का प्रावधान करना था, जो कि धारा के अस्तित्व के लिए पूर्ववर्ती धाराओं के परिणामस्वरूप साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जा सकता था। ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 27 के तहत जैसा कि किसी भी तथ्य की खोज के लिए साक्ष्य को स्वीकार्य बनाने के लिए है, सूचना पुलिस की हिरासत में किसी भी आरोपी से आनी चाहिए। पुलिस हिरासत की आवश्यकता अत्यंत विषम परिणामों के उत्पादक है और उन मामलों में बहुत मूल्यवान सबूतों को बाहर कर सकती है जहां एक व्यक्ति, जिसे बाद में हिरासत में ले लिया जाता है और एक आरोपी बन जाता है, अपराध करने के बाद एक पुलिस अधिकारी से मिलता है या स्वेच्छा से उसके पास या थाना जाता है और अपराध की परिस्थितियों को बताता है जो, हथियार या कोई अन्य ठोस तथ्य, इस प्रकार उससे प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप, शव की खोज की ओर ले जाता है। यह जानकारी जो अन्यथा स्वीकार्य है, धारा 27 के तहत अस्वीकार्य हो जाती है यदि जानकारी किसी पुलिस अधिकारी की हिरासत में किसी व्यक्ति से नहीं आई है या किसी ऐसे व्यक्ति से आई है जो पुलिस अधिकारी की हिरासत में नहीं है।धारा 27 के तहत स्वीकार्य विवरण वह है जो खोज की ओर ले जाने वाली जानकारी है। इस प्रकार, जो स्वीकार्य जानकारी है, उसे साबित करना होगा, न कि पुलिस अधिकारी द्वारा उस पर बनाई गई राय। दूसरे शब्दों में, अभियुक्त द्वारा हिरासत में रहते हुए दी गई सटीक जानकारी जिसे लेकर वस्तुएं बरामद हुईं, उसे साबित करना होगा। इसलिए, अभियुक्त और अभियोजन पक्ष दोनों के लाभ के लिए यह आवश्यक है कि दी गई जानकारी को दर्ज किया जाना चाहिए और साबित किया जाना चाहिए और यदि ऐसा दर्ज नहीं किया जाता है, तो सटीक जानकारी साक्ष्य के माध्यम से प्रस्तुत की जानी चाहिए। साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 में निहित मूल विचार बाद की घटनाओं द्वारा पुष्टि का सिद्धांत है। ये इस सिद्धांत पर आधारित है कि यदि किसी कैदी से प्राप्त किसी भी जानकारी के बल पर की गई खोज के रूप में कोई तथ्य खोजा जाता है, तो ऐसी खोज इस बात की गारंटी है कि कैदी द्वारा प्रदान की गई जानकारी सत्य है। जानकारी प्रकृति में इकबालिया या गैर-दोषी हो सकती है, लेकिन अगर इसके परिणामस्वरूप किसी तथ्य की खोज होती है, तो यह एक विश्वसनीय जानकारी बन जाती है। अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि किसी वस्तु की बरामदगी इस खंड में परिकल्पित तथ्य की खोज नहीं है। पुलुकुरी कोट्टाया बनाम में प्रिवी काउंसिल का निर्णय ***सम्राट [ए.आई.आर.1947 पीसी 67:48 क्रिलजे 533:74 आईए 65]*** *इस व्याख्या का समर्थन करने के लिए सबसे अधिक उद्धृत प्राधिकरण है कि खंड में परिकल्पित "तथ्य की खोज की" उस स्थान को गले लगाती है जहां से वस्तु का उत्पादन किया गया था, इसके बारे में अभियुक्त का ज्ञान, लेकिन दी गई जानकारी उस प्रभाव से स्पष्ट रूप से संबंधित होनी चाहिए। (देखें* ***महाराष्ट्र राज्य बनाम दामू गोपीनाथ शिंदे [(2000) 6 एस.सी.सी. 269: 2000 एस.सी.सी. (क्रिल०) 1088: 2000 क्रिलजे 2301]*** *इसमें कोई संदेह नहीं है कि साक्ष्य में स्वीकार*

की जाने वाली जानकारी जानकारी के उस हिस्से तक ही सीमित है जो "स्पष्ट रूप से खोजे गए तथ्य से संबंधित है"। लेकिन स्वीकार्यता प्राप्त करने के लिए जानकारी को इतना छोटा करने की आवश्यकता नहीं है कि यह असंवेदनशील या समझ से बाहर हो जाए। स्वीकार की गई जानकारी की सीमा समझ के अनुरूप होनी चाहिए। केवल यह बयान कि आरोपी पुलिस और गवाहों को उस स्थान पर ले गया जहां उसने लेख छिपाए थे, दी गई जानकारी का संकेत नहीं है। (महत्व सन्निविष्ट)

45. फिर, **रामानंद उर्फ नंदलाल भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2022) एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1396** में सर्वोच्च न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने कानून में उस सिद्धांत को और विस्तृत किया और स्पष्ट रूप से इसे नीचे के रूप में व्यक्त किया: "

53. यदि, यह विवेचनाधिकारी के बारे में कहा जाता है कि आरोपी अपीलकर्ता ने अपनी मर्जी और इच्छा से हिरासत में रहते हुए एक बयान दिया कि वह उस स्थान पर ले जाएगा जहां उसने अपने खून से सने कपड़ों के साथ अपराध के हथियार को छिपाया था, तो <u>विवेचनाधिकारी को जो पहली चीज करनी चाहिए थी, वह थी थाना में ही दो स्वतंत्र गवाहों को बुलाना। एक बार जब दो स्वतंत्र गवाह थाना में उनकी उपस्थिति में पहुंचते हैं, तो आरोपी को एक उचित बयान देने के लिए कहा जाना चाहिए क्योंकि वह उस स्थान को इंगित करने के संबंध में चाहता है जहां उसने अपराध के हथियार को छिपाया है। जब अभियुक्त हिरासत में रहते हुए दो स्वतंत्र गवाहों (पंच गवाहों) के समक्ष ऐसा बयान देता है, तो अभियुक्त द्वारा बोले गए सटीक बयान, या यों कहें कि अभियुक्त द्वारा बोले गए सटीक शब्दों को पंचनामा के पहले भाग में शामिल किया जाना चाहिए जिसे विवेचनाधिकारी कानून के अनुसार तैयार कर सकता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के प्रयोजन के लिए पंचनामा का यह पहला भाग हमेशा स्वतंत्र गवाहों की उपस्थिति में थाना में तैयार किया जाता है ताकि यह विश्वास किया जा सके कि अभियुक्त द्वारा अपनी इच्छा पर उस स्थान को इंगित करने की इच्छा व्यक्त करते हुए एक विशेष बयान दिया गया था जहां अपराध के हथियार या अपराध के कमीशन में उपयोग की गई कोई अन्य वस्तु छिपा दिया गया था। एक बार पंचनामा का पहला भाग पूरा हो जाने के बाद, पुलिस पक्ष आरोपी और दो स्वतंत्र गवाहों (पंच गवाह) के साथ उस विशेष स्थान पर जाएगी, जैसा कि आरोपी के नेतृत्व में किया जा सकता है। यदि उस विशेष स्थान से अपराध के हथियार या खून से सने कपड़े या कोई अन्य वस्तु जैसी कोई चीज मिलती है तो पूरी प्रक्रिया का वह हिस्सा पंचनामा का दूसरा भाग होगा। इस तरह कानून विवेचनाधिकारी से उम्मीद करता है कि वह साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत विचार किए गए खोज पंचनामा को आकर्षित करेगा। यदि हम विवेचनाधिकारी के पूरे मौखिक साक्ष्य को पढ़ते हैं तो यह स्पष्ट है कि मामले के उपरोक्त सभी प्रासंगिक पहलुओं में इसकी कमी है।*

56. <u>खोज के साक्ष्य को स्वीकार करने से पहले कानून की आवश्यकता को पूरा करने की आवश्यकता यह है कि पंचनामा की सामग्री को साबित करना। विवेचनाधिकारी अपने बयान में पंचनामा की सामग्री को साबित करने के लिए कानून में बाध्य है और यह केवल तभी होता है जब विवेचनाधिकारी ने कानून के अनुसार खोज पंचनामा की सामग्री को सफलतापूर्वक साबित कर दिया है, तो उस मामले में अभियोजन पक्ष को ऐसे सबूतों पर भरोसा</u>

करना उचित हो सकता है और विचारण न्यायालय भी साक्ष्य को स्वीकार कर सकता है. प्रस्तुत मामले में, हमने जांच अधिकारी, अ०सा०-7, योगेंद्र सिंह के मौखिक साक्ष्य से जो देखा है, वह यह है कि उन्होंने खोज पंचनामा की सामग्री को साबित नहीं किया है और उन्होंने जो कुछ भी गवाही दी है वह यह है कि जैसा कि आरोपी ने अपराध के हथियार को इंगित करने की इच्छा व्यक्त की थी, उसी को पंचनामा के तहत खोजा गया था। हमने विवेचनाधिकारी के साक्ष्य के इस हिस्से को बारीकी से देखा है और आश्वस्त हैं कि किसी भी तरह की कल्पना से यह नहीं कहा जा सकता है कि विवेचनाधिकारी ने खोज पंचनामा (प्रदर्श-5) की सामग्री को साबित कर दिया है। एक कारण है कि हम विवेचनाधिकारी के अंत में पंचनामा की सामग्री को साबित करने पर जोर दे रहे हैं, विशेष रूप से जब स्वतंत्र पंच गवाहों की जांच की गई है, हालांकि उन्होंने इस तरह की खोज के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा है या मुकर गए हैं और अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया है। न्यायालय को विवेचनाधिकारी के साक्ष्य पर सुरक्षित रूप से भरोसा करने में सक्षम बनाने के लिए, यह आवश्यक है कि किसी अभियुक्त के लिए जिम्मेदार सटीक शब्दों, उसके द्वारा दिए गए बयान के रूप में, अभिलेख पर लाया जाए और इस उद्देश्य के लिए विवेचनाधिकारी अपने साक्ष्य में सटीक बयान देने के लिए बाध्य है, न कि केवल यह कहकर कि अपराध के हथियार की खोज पंचनामा तैयार किया गया था क्योंकि आरोपी लेने के लिए तैयार था यह एक विशेष स्थान से बाहर है। (महत्व सन्निविष्ट)

46. **सुब्रमण्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2023) 11 एस.सी.सी. 255 में**, सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से उपरोक्त सिद्धांत को नीचे के रूप में समझाया:

"78. यदि, विवेचनाधिकारी के बारे में यह कहा जाता है कि अपीलकर्ता-अभियुक्त ने अपनी मर्जी और इच्छा से हिरासत में रहते हुए एक बयान दिया कि वह उस स्थान पर ले जाएगा जहां उसने अपराध का हथियार छिपाया था, शव को दफनाने की जगह, कपड़े आदि, तो विवेचनाधिकारी को जो पहला काम करना चाहिए था, वह था थाना में ही दो स्वतंत्र गवाहों को बुलाना। एक बार जब दो स्वतंत्र गवाह थाना में उनकी उपस्थिति में पहुंचेंगे, तो अभियुक्त को एक उचित बयान देने के लिए कहा जाना चाहिए क्योंकि वह उस स्थान को इंगित करने के संबंध में चाहता है जहां उसने अपराध के हथियार को छिपाया है, आदि। जब अभियुक्त हिरासत में रहते हुए दो स्वतंत्र गवाहों (पंच गवाहों) के समक्ष ऐसा बयान देता है, तो अभियुक्त द्वारा बोले गए सटीक बयान, या यों कहें कि अभियुक्त द्वारा बोले गए सटीक शब्दों को पंचनामा के पहले भाग में शामिल किया जाना चाहिए जिसे विवेचनाधिकारी कानून के अनुसार तैयार कर सकता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के प्रयोजन के लिए पंचनामा का यह पहला भाग हमेशा स्वतंत्र गवाहों की उपस्थिति में थाना में तैयार किया जाता है ताकि यह विश्वास किया जा सके कि अभियुक्त द्वारा अपनी इच्छा और इच्छा पर उस स्थान को इंगित करने की इच्छा व्यक्त करते हुए एक विशेष बयान दिया गया था जहां अपराध के हथियार या अपराध के कमीशन में उपयोग की गई कोई अन्य वस्तु छिपा दिया गया था। एक बार पंचनामा का पहला भाग पूरा हो जाने के बाद, पुलिस पक्ष आरोपी और दो स्वतंत्र गवाहों (पंच गवाह) के साथ उस विशेष स्थान पर जाएगी, जैसा कि आरोपी के नेतृत्व में किया जा सकता है। यदि उस विशेष स्थान से अपराध के हथियार या खून से सने कपड़े या कोई अन्य वस्तु जैसी कोई चीज मिलती है तो पूरी प्रक्रिया का वह हिस्सा पंचनामा का दूसरा भाग होगा। इस तरह

कानून विवेचनाधिकारी से उम्मीद करता है कि वह साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत विचार किए गए खोज पंचनामा को आकर्षित करेगा। यदि हम विवेचनाधिकारी के पूरे मौखिक साक्ष्य को पढ़ते हैं तो यह स्पष्ट है कि मामले के उपरोक्त सभी प्रासंगिक पहलुओं में इसकी कमी है।

47. हाल ही में, **राजेश और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2023) 15 एस.सी.सी. 521** में सर्वोच्च न्यायालय की एक अन्य तीन-न्यायाधीशों की पीठ के फैसले द्वारा उस सिद्धांत को दोहराया गया है।

48. इस प्रकार हम पाते हैं, दो 'दरांती' की बरामदगी के संबंध में, दो फ़र्द बरामगदी मौजूद हैं। उन दस्तावेजों के अवलोकन से पता चलता है कि उनमें आरोपी व्यक्तियों द्वारा दिए गए प्रकटीकरण बयान भी शामिल हैं। फिर भी, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रकट की गई बरामदगी के तथ्य के रूप में, अभियोजन पक्ष के मामले को विवेचनाधिकारी के साथ-साथ 'एम' (अ०सा०-5) द्वारा समर्थित किया गया है। इसके अलावा, 'एम', जो 'टी' का पिता है, और 'बी' (अ०सा०-3), 'के' के पिता, ने की गई तीन बरामदगी का समर्थन किया। वहीं, राम प्रसाद (अ०सा०-6) इस मुद्दे पर चुप रहे और बरामदगी के संबंध में कोई बयान नहीं दिया। इन बरामदगी के तीसरे गवाह और एकमात्र स्वतंत्र गवाह खेमकरण (अ०सा०-4) ने अपनी मुख्य परीक्षण के दौरान अभियोजन पक्ष की कहानी के उस हिस्से पर पूरी तरह से विवाद किया। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उनकी उपस्थिति में दो 'दरांती' बरामद किए गए थे। इसके बजाय उन्होंने कहा, वह और अन्य गवाह थाना में रुके थे और वे बरामदगी की गई थी। उन्होंने केवल थाना में फ़र्द बरामगदी प्रदर्श क-1 और प्रदर्श क-2 पर हस्ताक्षर किए। अपनी जिरह के दौरान, उन्होंने उस बयान को बनाए रखा और आगे स्पष्ट किया कि वर्तमान अपीलकर्ता भी थाना में रहे, जबकि वे बरामदगी की गई थी, और उन्हें इस बात की जानकारी नहीं थी कि उन्होंने उस बरामदगी के संबंध में कभी थाना छोड़ दिया था।

49. हालांकि, अपनी परीक्षा के दौरान ही उन्होंने खुद को की गई बरामदगी से दूर कर लिया था, उन्हें कभी भी शत्रुतापूर्ण घोषित नहीं किया गया था और किसी भी हद तक अभियोजन पक्ष द्वारा जिरह के अधीन नहीं किया गया था। हो सकता है कि अभियोजन पक्ष मुकदमे में उस कदम से चूक गया हो। हालांकि हम केवल खेमकरण (अ०सा०-4) की गवाही के बल पर दो 'दरातियों' की बरामदगी पर अविश्वास नहीं कर सकते हैं, लेकिन यह अभियोजन पक्ष की कहानी में एक संदेह पेश करता है। हम यह जोड़ने में जल्दबाजी कर सकते हैं कि हम अकेले खेमकरण की गवाही के बल पर पूरी अभियोजन कहानी को बाहर फेंकने के लिए इस संदेह को एक उचित संदेह के रूप में वर्गीकृत या वर्गीकृत करने का इरादा नहीं रखते हैं।

50. हालांकि, जो अधिक प्रासंगिक है वह संदेह है जो 'के' के झुमके/स्टील 'कुंडल' की बरामदगी के संबंध में उत्पन्न होता है। प्रदर्श क-5 के अवलोकन से पता चलता है कि इसमें आरोपी तले हसन द्वारा कोई खुलासा बयान नहीं दिया गया है कि उसने किसी भी स्थान पर 'के' की झुमका/स्टील का कुंडल गुप्त किया था और उसने इसे बरामद करने के लिए पुलिस की मदद करने के लिए स्वेच्छा से काम किया था। इसलिए, धारा 27 भारतीय साक्ष्य अधिनियम की अनिवार्य आवश्यकता को पूरा नहीं किया गया था। इसलिए, न तो उस झुमके/स्टील

के 'कुंडल' के बारे में कोई जानकारी किसी भी आरोपी द्वारा प्रस्तुत की गई थी और न ही इसके परिणामस्वरूप बरामदगी से अभियोजन पक्ष को यह साबित करने में मदद मिल सकती है कि ताले हसन ने 'के' पर बलात्कार किया था।

51. दूसरा, हालांकि वह फ़र्द बरामगदी 'एम' (अ०सा०-5) द्वारा मुकदमे में साबित हो सकता है, यह भुलाया नहीं जा सकता है, वह 'टी' का पिता है। अभियोजन पक्ष ने यह स्थापित करने के लिए कोई सबूत नहीं दिया कि 'एम' किसी भी तरह से 'के' से संबंधित था। इसके विपरीत, 'J' के अनुसार, 'के' 'बी' (अ०सा०-3) की बेटी थी। ऐसी परिस्थितियों में, यह अत्यधिक असंभव है, यदि 'एम' परीक्षण में 'के' के झुमके/स्टील के कुंडल की पहचान कर सकता था। जबकि फ़र्द बरामगदी (प्रदर्श क-5) में बताया गया है, झुमका/स्टील 'कुंडल' 'के' का था, इसकी पहचान उसके पिता, 'बी' (अ०सा०-3) ने नहीं की थी। उस गवाह ने मुकदमे में यह स्थापित करने के लिए कोई सबूत नहीं दिया कि झुमके/स्टील 'कुंडल' 'के' का था। किसी भी मामले में, उस झुमके/स्टील के कुंडल की बरामदगी से 'के' के बलात्कार या हत्या का सबूत नहीं मिल सकता है और न ही हो सकता है।

52. फ़र्द बरामगदी दिनांक 28.05.1987 प्रदर्श क-5 में दर्ज अभियुक्त तले हसन के प्रकटीकरण बयान के अभाव में, यह भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 की आवश्यकता को पूरा नहीं करता है। उस सीमा तक झुमके/स्टील के कुंडल की बरामदगी का कोई महत्व नहीं है।

53. परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर अभियोजन पक्ष के मामले के संबंध में, **शरद बर्धिचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य (1984)4 एस.सी.सी. 116** में कानून की स्थिति स्पष्ट की गई थी। बदले में, उस फैसले में, उच्चतम न्यायालय ने **हनुमंत बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1952)2 एस.सी.सी. 71** में अपने पहले के फैसले पर भरोसा किया। इस मुद्दे पर कानून को तब संक्षेप में प्रस्तुत किया गया था और **शिवाजी सहबराव बोबडे और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (1973) 2 एस.सी.सी. 793** में "सबूत के पंचशील" का विवरण दिया गया था। उपरोक्त कानून पर विचार किया गया है और सर्वोच्च न्यायालय ने **राज नायकर बनाम छत्तीसगढ़ राज्य (2024) 3 एस.सी.सी. 481** में हाल ही में एक फैसले में इसका पालन किया है। उपर्युक्त कानून का उल्लेख करते हुए, यह नीचे देखा गया है:

"16. निस्संदेह, अभियोजन पक्ष का मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है। परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर दोषसिद्धि के संबंध में कानून को शरद बर्धिचंद सारडा बनाम शारद के मामले में इस न्यायालय के निर्णय में बहुत अच्छी तरह से स्पष्ट किया गया है। महाराष्ट्र राज्य [शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एस.सी.सी. 116: 1984 एस.सी.सी. (क्रिल०) 487: 1984 आई.एन.एस.सी. 121] , जिसमें इस न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दिया: (एस.सी.सी. पीपी. 184-85, प्रस्तर-152-54)

"152. उच्च न्यायालय द्वारा भरोसा किए गए मामलों पर चर्चा करने से पहले हम एक आपराधिक मामले में आवश्यक प्रकृति, चरित्र और आवश्यक साक्ष्य पर कुछ निर्णयों का हवाला देना चाहेंगे जो केवल परिस्थितिजन्य

*साक्ष्य पर निर्भर करते हैं। इस न्यायालय का सबसे मौलिक और बुनियादी निर्णय हनुमंत बनाम है। **मध्य प्रदेश राज्य [हनुमंत बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1952) 2 एस.सी.सी. 71: ए.आई.आर.1952 एस.सी. 343: 1952 एस.सी.आर. 1091]** इस मामले का समान रूप से पालन किया गया है और इस न्यायालय द्वारा बड़ी संख्या में बाद के फैसलों में लागू किया गया है, उदाहरण के लिए, तुफैल बनाम तुफैल उत्तर प्रदेश राज्य [तुफैल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1969) 3 एस.सी.सी. 198: 1970 एस.सी.सी. (क्रिल०) 55] और राम गोपाल बनाम महाराष्ट्र राज्य [राम गोपाल बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1972) 4 एस.सी.सी. 625] हनुमंत मामले में महाजन ने जो निर्धारित किया है उसे निकालना उपयोगी हो सकता है [हनुमंत बनाम मध्य प्रदेश,(1952)2 एस.सी.सी.71: ए.आई.आर.1952 एस.सी. 343:1952 एस.सी.आर. 1091]: [हनुमंत बनाम मध्य प्रदेश (1952) 2 एस.सी.सी. 71: ए.आई.आर. 1952 एस.सी. 343:1952 एस.सी.आर. 1091] एस.सी.सी. पीपी 76-77, प्रस्तर-12)*

'12. यह याद रखना अच्छी तरह से है कि ऐसे मामलों में जहां साक्ष्य परिस्थितिजन्य प्रकृति के हैं, जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पहली बार में पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए, और इस प्रकार स्थापित सभी तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए। फिर, परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए और वे ऐसी होनी चाहिए कि प्रत्येक परिकल्पना को बाहर कर दिया जा सके, लेकिन जिसे साबित करने का प्रस्ताव है। दूसरे शब्दों में, अब तक सबूतों की एक श्रृंखला पूरी होनी चाहिए ताकि अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़ा जा सके और यह ऐसा होना चाहिए कि सभी मानवीय संभावना के भीतर यह कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।

153. इस निर्णय का एक करीबी विश्लेषण यह दिखाएगा कि एक आरोपी के खिलाफ एक मामले को पूरी तरह से स्थापित करने से पहले निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए:

(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए।

यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय ने संकेत दिया है कि संबंधित परिस्थितियां "होनी चाहिए या होनी चाहिए" और "स्थापित नहीं हो सकती हैं"। न केवल एक व्याकरणिक बल्कि "साबित किया जा सकता है" और "साबित किया जाना चाहिए या साबित किया जाना चाहिए" के बीच एक कानूनी अंतर है जैसा कि इस न्यायालय ने शिवाजी सहबराव बोबाडे बनाम शिवाजी सहबराव बोबाडे में अवधारित किया था। महाराष्ट्र राज्य [शिवाजी सहबराव बोबडे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1973) 2 एस.सी.सी. 793: 1973 एस.सी.सी. (क्रिल०) 1033] जहां टिप्पणियां की गई थीं: (एस.सी.सी. पी. 807, प्रस्तर-19)

'19. ... निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि अदालत को दोषी ठहराने से पहले आरोपी को दोषी होना चाहिए और न केवल दोषी होना चाहिए और "हो सकता है" और "होना चाहिए" के बीच की मानसिक दूरी लंबी है और निश्चित निष्कर्षों से अस्पष्ट अनुमानों को विभाजित करती है।

(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात्, उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर समझाया नहीं जाना चाहिए, सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है,

(3) परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए,

(4) उन्हें साबित की जाने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, और
(5) साक्ष्य की एक श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़ें और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानवीय संभावना में यह कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।

154. ये पांच सुनहरे सिद्धांत, यदि हम ऐसा कह सकते हैं, तो परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर किसी मामले के प्रमाण का पंचशील बनाते हैं।

17. इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि अभियोजन पक्ष के लिए यह आवश्यक है कि जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए। न्यायालय का मानना है कि यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि अदालत द्वारा आरोपी को दोषी ठहराने से पहले आरोपी को "दोषी साबित किया जाना चाहिए" और न केवल "दोषी साबित किया जा सकता है"। यह माना गया है कि न केवल एक व्याकरणिक बल्कि "साबित किया जा सकता है" और "साबित किया जाना चाहिए या साबित किया जाना चाहिए" के बीच एक कानूनी अंतर है। यह माना गया है कि इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात, उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर समझाया नहीं जाना चाहिए, सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है। यह भी माना गया है कि परिस्थितियाँ ऐसी होनी चाहिए कि वे साबित की जाने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर कर दें। यह माना गया है कि सबूतों की एक श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़ा जाए और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानवीय संभावनाओं में यह कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।

18. <u>यह स्थापित कानून है कि संदेह, चाहे वह कितना भी मजबूत क्यों न हो, उचित संदेह से परे सबूत की जगह नहीं ले सकता है। एक आरोपी को संदेह के आधार पर दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, चाहे वह कितना भी मजबूत क्यों न हो। एक आरोपी को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि वह उचित संदेह से परे दोषी साबित न हो जाए।</u> (महत्व सन्निविष्ट)

54. उस अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, हम प्रस्तुत मामले में तथ्यों तक पहुंच सकते हैं। बेशक, अंतिम बार देखे जाने का कोई सबूत नहीं है। कथित बलात्कार के अलावा, अभियोजन पक्ष द्वारा

कोई मकसद नहीं बताया गया है। जहां तक बलात्कार का संबंध है, फोरेंसिक या चिकित्सा साक्ष्य के माध्यम से कोई साक्ष्य/पुष्टि नहीं की गई है।

55. इसलिए, हमारे विचार के लिए जो जीवित है वह दो 'दरातियों' की बरामदगी की प्रासंगिकता है जो कम से कम कुछ हद तक साबित हो चुकी है। जैसा कि उन बरामदगी में संदेह है, खेमकरण (अ०सा०-4) के नेतृत्व में सबूतों को देखते हुए, इस मुद्दे पर कानून स्पष्ट है कि हत्या के हथियार की बरामदगी परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर मामले में स्थापित की जाने वाली एक प्रासंगिक परिस्थिति हो सकती है। हालाँकि, अभियुक्त के अपराध को स्थापित करना अपने आप में पर्याप्त नहीं हो सकता है। उच्चतम न्यायालय द्वारा **दत्त नाथ पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1981) 2 एस.सी.सी. 166** में निर्धारित इस संबंध में सिद्धांत को निम्नानुसार देखा जा सकता है:

15. यदि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला होता, तो अलग-अलग विचार प्रबल होते क्योंकि दो प्रत्यक्षदर्शियों की गवाही को छोड़कर साक्ष्य का संतुलन पूरी तरह से परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर निर्भर मामलों में आवश्यक मानक का नहीं है। अपीलकर्ता के कहने पर पिस्तौल की बरामदगी के साक्ष्य अपने आप में यह साबित नहीं कर सकते हैं कि जिसने हथियार की ओर इशारा किया था, उसने अपराध में इसका इस्तेमाल किया था। खोज के साथ दिया गया बयान छिपाने के लेखकत्व की पहचान करने के लिए बुरी तरह से अस्पष्ट है, जिसके परिणामस्वरूप हथियार की ओर इशारा करना अपीलकर्ता के ज्ञान को साबित कर सकता है कि हथियार कहाँ रखा गया था। बैलिस्टिक विशेषज्ञ के साक्ष्य में आरोप का प्रमाण एक महत्वपूर्ण कदम आगे है, लेकिन पर्याप्त नहीं है, क्योंकि उच्चतम स्तर पर, यह दर्शाता है कि जिस गोली से पप्पू को मार डाला गया था, वह पिस्तौल से चलाई गई थी जिसे अपीलकर्ता ने इंगित किया था। पिस्तौल की खोज के आसपास के सबूतों को पूरी तरह से असत्य के रूप में खारिज नहीं किया जा सकता है, लेकिन यह कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों को अनुत्तरित छोड़ देता है और एक आपराधिक अदालत, अंतरात्मा की अदालत के मन में बेचैनी की भावना पैदा करता है कि यह होना चाहिए: अपीलकर्ता को सार्वजनिक मार्ग पर दिन के उजाले में पिस्तौल छिपाने का अवसर कैसे मिल सकता है? यदि उसने अभियोजन पक्ष के सुझाव के अनुसार आत्म-सुरक्षा के उपाय के रूप में पिस्तौल को फिर से लोड किया, तो उसने इसे हाथी पार्क के पास फेंककर इतनी जल्दी इससे छुटकारा क्यों पाया? और ऐसा कैसे हुआ कि पुलिस ने पिस्तौल की खोज को देखने के लिए राम किशोर (अ०सा०-4) से बेहतर किसी पर हमला नहीं किया? राम किशोर पहले ही अभियोजन पक्ष के पक्ष में सात अलग-अलग मामलों में गवाही दे चुके थे और स्पष्ट रूप से पुलिस के इशारे पर थे। (महत्व सन्निविष्ट)

56. इसके अलावा **मुस्तकीम बनाम राजस्थान राज्य (2011) 11 एस.सी.सी. 724** में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार निर्धारित किया है:

25. अधिनियम की धारा 27 के संबंध में, अभियुक्त के प्रकटीकरण पर ठोस वस्तु की खोज महत्वपूर्ण है, लेकिन अकेले इस तरह के प्रकटीकरण से स्वचालित रूप से यह निष्कर्ष नहीं निकलेगा कि अपराध भी अभियुक्त

द्वारा किया गया था। वास्तव में, इसके बाद, अभियोजन पक्ष पर ठोस वस्तु की खोज और अपराध के कमीशन में इसके उपयोग के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित करने का भार होता है। अधिनियम की धारा 27 के तहत जो स्वीकार्य है वह खोज की ओर ले जाने वाली जानकारी है और अभियोजन पक्ष द्वारा इस पर बनाई गई कोई राय नहीं है। (महत्व सन्निविष्ट)

57. यहां, हत्या का महत्वपूर्ण पहलू किसी भी परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर स्थापित नहीं किया गया था। फोरेंसिक और चिकित्सा साक्ष्य पूरी तरह से अनिर्णायक थे। हालांकि, पूरी परिस्थितियों में, यह स्वीकार किया जा सकता है, दो लड़कियों 'के' और 'टी' की मृत्यु एक ही समय में अप्राकृतिक कारण से हुई थी, अभियोजन पक्ष द्वारा किसी भी परिस्थितिजन्य साक्ष्य या चिकित्सीय राय के आधार पर यह स्थापित नहीं किया गया है कि उन्हें अपीलकर्ताओं द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया था, जिसमें 'दरांती' का दावा किया गया था कि अपीलकर्ताओं के सामने से बाहर की ओर इशारा करते हुए उन्हें बरामद किया गया था।

58. 'दरांती' में से एक पर खून की उपस्थिति भी यह मानने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकती है कि अपीलकर्ताओं ने इसका इस्तेमाल दो लड़कियों 'के' और 'टी' में से किसी एक की हत्या का कारण बनने के लिए किया था। अपने आप में वसूली, केवल यह स्थापित कर सकती है कि एक तथ्य के रूप में दो अपीलकर्ताओं को पता था कि इस तरह के 'दरांती' (लड़कियों 'के' और 'टी' से संबंधित) को कहां से स्रावित किया गया था। यह ज्ञान कई परिस्थितियों से उत्पन्न हो सकता है, जिनमें से एक यह हो सकता है कि इसका उपयोग लड़कियों 'के' और 'टी' की अप्राकृतिक मृत्यु का कारण बनने के लिए किया गया था। यह अन्य परिस्थितियों को बाहर नहीं करता है जिसमें अपीलकर्ताओं ने उस स्थान का ज्ञान प्राप्त किया हो सकता है जहां इस तरह के 'दरांती' को साबित किया जा सकता है।

59. इसके अलावा, अपने आप में, यह ज्ञान कि दो 'दरांती' एक विशेष स्थान पर गुप्त थे, किसी भी तरह से नहीं है, और यह किसी भी तरह से यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकता है कि, इसलिए, अपीलकर्ताओं ने उन दो 'दरांती' के उपयोग से दो लड़कियों, 'के' और 'टी' की अप्राकृतिक मृत्यु का कारण बना था। स्पष्ट रूप से, यह केवल एक संदेह रह सकता है, लेकिन इस तथ्य का प्रमाण नहीं है कि 'दरांती' का उपयोग मृतक 'के' और 'टी' की अप्राकृतिक मृत्यु का कारण बनने के लिए किया गया था या अपीलकर्ताओं द्वारा इस तरह की अप्राकृतिक घटना का कारण बनने के लिए उनका उपयोग किया गया था। उन दो महत्वपूर्ण परिस्थितियों को अभियोजन पक्ष द्वारा साबित नहीं किया गया है। हमें डर है कि अभियोजन पक्ष ने उन परिस्थितियों को साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं दिया है।

60. तब जो बचता है वह गैर-न्यायिक स्वीकारोक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है। सिद्धांत रूप से, इसे नकारा नहीं जा सकता है, एक गैर-न्यायिक स्वीकारोक्ति स्वीकार्य साक्ष्य है। किसी दिए गए मामले में, इसे अभियोजन पक्ष के पक्ष में पढ़ा जा सकता है या इसे दोषसिद्धि सुरक्षित करने के लिए पर्याप्त भी पाया जा सकता है। सिद्धांत

रूप से, इस बिंदु पर कानून साहू **बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1965 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 60** से शुरू होने के समान रहा है, जैसा कि निम्नानुसार देखा गया था, जिसमें यह दिया गया था:

6. लेकिन, किसी साक्ष्य की स्वीकार्यता और उससे जुड़े वजन के बीच स्पष्ट अंतर है। एक इकबालिया स्वगत साक्ष्य का एक प्रत्यक्ष टुकड़ा है। यह भावनाओं के संघर्ष की अभिव्यक्ति हो सकती है; चुभे हुए विवेक को दबाने का एक सचेत प्रयास; अपने कार्य के लिए बहाना या औचित्य खोजने के लिए एक तर्क; या अपराध में अपने हिस्से के अतिशयोक्ति का एक पश्चाताप या पश्चाताप करने वाला कार्य। स्वर नरम और कम हो सकता है; शब्द भ्रमित हो सकते हैं; वे गवाहों के आधार पर परस्पर प्रतिपक्षी व्याख्याओं में सक्षम हो सकते हैं, चाहे वे पक्षपाती हों या ईमानदार, बुद्धिमान या अज्ञानी, कल्पनाशील या नीरस हों, जैसा भी मामला हो। आम तौर पर वे एक भ्रमित मन के बड़बड़ाहट होते हैं। इस तरह के साक्ष्य को स्वीकार करने से पहले, यह ठोस साक्ष्य द्वारा स्थापित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त द्वारा उपयोग किए गए सटीक शब्द क्या थे। यहां तक कि अगर इतना स्थापित किया गया था, तो विवेक और न्याय की मांग है कि इस तरह के साक्ष्य को दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं बनाया जा सकता है। इसका उपयोग केवल एक पुष्टिकारक साक्ष्य के रूप में किया जा सकता है।

61. फिर भी, **जगता बनाम हरियाणा राज्य (1974) 4 एस.सी.सी. 747** में, यह भी माना गया था कि यह सबूत का एक कमजोर टुकड़ा रह सकता है। फिर, **किशोर चंद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य (1991)1 एस.सी.सी. 286 में**, उच्चतम न्यायालय ने एक न्यायेतर स्वीकारोक्ति पर कार्रवाई करते समय न्यायालयों द्वारा बरती जाने वाली सावधानी का नियम निर्धारित किया। उस संबंध में, यह नीचे दिया गया था:

14. जहां तक अभियुक्त के कथित अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति का संबंध है, अभियोजन पक्ष ने राम सिंह (अ०सा०-4) के साक्ष्य पर भरोसा किया है। उस गवाह के साक्ष्य के माध्यम से ले जाने के बाद, हम पाते हैं कि इसमें विश्वसनीयता की कमी है और सच्चाई की कोई भी रमक नहीं है। 15 जनवरी, 1972 की सुबह पुलिस ग्राम फरमाना में सहकारी समिति के कार्यालय में मौजूद थी। हमें इस बात का कोई कारण नहीं दिखता कि आरोपी को पुलिस के सामने आत्मसमर्पण करने के बजाय फरमाना गांव में राम सिंह के घर क्यों जाना चाहिए, उसके सामने एक स्वीकारोक्ति बतानी चाहिए और उसे आरोपी को पुलिस के सामने पेश करने के लिए कहना चाहिए। हमें कुछ भी नहीं दिखाया गया है कि आरोपी खुद जाकर पुलिस के सामने पेश क्यों नहीं हो सका। हमने ऊपर उल्लेख किया है कि इस मामले में आरोपी से फुलपति मृतक के गहने बरामद होने की कहानी पेश करने का प्रयास किया गया है। हमारी राय में, मृतक के गहने हटाने और आरोपी से उनकी बरामदगी के बारे में एक झूठी कहानी पेश करने की जांच एजेंसी का प्रयास, राम सिंह अ०सा० के सामने कथित रूप से किए गए अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति के संबंध में सबूतों की विश्वसनीयता को भी प्रभावित करेगा। एक अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति के बारे में सबूत चीजों की प्रकृति में एक कमजोर सबूत है। यदि प्रस्तुत मामले में इसकी संभावना की कमी है, तो इसे अस्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। इसलिए, हम अभियुक्त की न्यायेतर स्वीकारोक्ति के संबंध में सबूतों पर कोई भरोसा करने के लिए तैयार नहीं हैं।

15. श्री मारवाह ने कुछ मामलों में टिप्पणियों के आधार पर तर्क दिया है कि एक स्वीकारोक्ति के मूल्य को अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए अन्य सबूतों के साथ लेकर आंका जाना चाहिए। यह प्रश्न, हमारी राय में, तभी उठेगा जब स्वीकारोक्ति करने के बारे में विश्वसनीय सबूत हों। यदि, हालांकि, न्यायालय को इस बिंदु पर सबूत मिलता है कि क्या अभियुक्त ने स्वीकारोक्ति को अविश्वसनीय और संभावना में कमी के रूप में बनाया था, तो इस बात पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि स्वीकारोक्ति का क्या मूल्य जुड़ा होगा, यदि अभियुक्त द्वारा इसे बनाने के बारे में सबूत विश्वसनीय और भरोसेमंद पाए गए थे। यह स्पष्ट है कि स्वीकारोक्ति का मूल्य केवल तभी किया जा सकता है जब अभियुक्त द्वारा इसे बनाने के बारे में विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा इसका अस्तित्व स्थापित किया जाए। (महत्व सन्निविष्ट)

62. इसके अलावा, इस प्रकार के साक्ष्य को त्यागने के लिए नहीं, बल्कि शायद आपराधिक मुकदमे में इसकी विश्वसनीयता और उपयोग के मापदंडों को निर्धारित करने के लिए, उच्चतम न्यायालय ने **सहदेवन बनाम टीएन राज्य (2012) 6 एस.सी.सी. 403** में नीचे के रूप में विस्तार से बताया:

16. इस न्यायालय के उपर्युक्त निर्णयों के उचित विश्लेषण पर, उन सिद्धांतों को बताना उचित होगा जो एक गैर-न्यायिक स्वीकारोक्ति को एक अभियुक्त की दोषसिद्धि का आधार बनाने में सक्षम साक्ष्य का एक स्वीकार्य टुकड़ा बना देंगे। ये उपदेशों उन मामलों की सत्यता से निपटने के दौरान न्यायिक दिमाग का मार्गदर्शन करेंगे जहां अभियोजन पक्ष अभियुक्त द्वारा कथित रूप से किए गए एक गैर-न्यायिक स्वीकारोक्ति पर बहुत अधिक निर्भर करता है:

(i) न्यायेतर स्वीकारोक्ति अपने आप में एक कमजोर साक्ष्य है। अदालत को इसकी अधिक सावधानी और सतर्कता से जांच करनी होगी।

(ii) इसे स्वेच्छा से बनाया जाना चाहिए और सत्य होना चाहिए।

(iii) इससे आत्मविश्वास पैदा होना चाहिए।

(iv) एक न्यायेतर स्वीकारोक्ति अधिक विश्वसनीयता और साक्ष्य मूल्य प्राप्त करती है यदि यह ठोस परिस्थितियों की एक श्रृंखला द्वारा समर्थित है और अन्य अभियोजन साक्ष्य द्वारा इसकी पुष्टि की जाती है।

(v) एक न्यायेतर स्वीकारोक्ति को दोषसिद्धि का आधार बनाने के लिए, यह किसी भी ठोस विसंगतियों और अंतर्निहित असंभावनाओं से ग्रस्त नहीं होना चाहिए।

(vi) इस तरह के बयान को अनिवार्य रूप से किसी भी अन्य तथ्य की तरह और कानून के अनुसार साबित किया जाना चाहिए।

63. वर्तमान तथ्यों में, इससे पहले कि हम न्यायेतर स्वीकारोक्ति पर विचार करें, जिस पृष्ठभूमि में वे स्वीकारोक्ति उत्पन्न हुई थी, उसे संक्षेप में नोट किया जाना चाहिए। 'जे' (अ०सा०-1), 'टी' का चाचा। अपनी जिरह के दौरान, वह इस बात से इनकार नहीं कर सका कि वह पहले आगा साहब के बेटे नब्बन साहब के साथ ड्राइवर के रूप में काम कर चुका था। उन्होंने स्वीकार किया कि उन व्यक्तियों के परिवार के सदस्यों को अक्सर

ग्राम प्रधान के रूप में चुना जाता था। अपनी आगे की जिरह के दौरान, उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि वर्तमान अपीलकर्ता और वर्तमान ग्राम प्रधान 'घोसी' जाति के सदस्य होने के कारण एक अन्य राजनीतिक गठबंधन से संबंधित थे।

64. फिर, पूरन (अ०सा०-2) ने केवल दो अपीलकर्ताओं द्वारा कथित रूप से किए गए गैर-न्यायिक स्वीकारानामे को साबित किया। इसमें उन्होंने अपीलकर्ताओं द्वारा बोले गए सटीक शब्दों का उपयोग करने का विकल्प चुना। उनका वर्णन नीचे किया गया है:

"इनमें से एक के बाप का नाम मन्नू है, दूसरे के बाप का नाम याद नहीं आ रहा। इनमें से एक का नाम तालेहसन व दूसरे का गुलाब है। मैंने इन्हें सबसे पहले तब देखा जबकि ये पकड़े गये। इन्होंने पहले मुझसे यह कहा था कितने दिन पहले कहा था " जो होना था हो गया। अब फैसला करा दो।", याद नहीं। मेरे गांव के पास की 'के' व 'टी' लड़कियों का कत्ल हुआ था। उपरोक्त दोनों मुलाज़िम ने मुझसे कहा था हमसे ग़लती हो गई।" हमने इन लड़कियों के साथ बुरा काम किया और उन्हें जान से मार दिया। हमें इस बात की माफी करा दो।"

65. उसी समय, 'एम' (अ०सा०-5), जो 'टी' का पिता है और 'जे' का छोटा भाई है, ने भी दो आरोपियों द्वारा उससे बोले गए सटीक शब्दों को साबित करने का फैसला किया। जहां तक आरोपी तले हसन का संबंध है, अ०सा०-5 के अनुसार, उसने नीचे दिए गए रूप में कबूल किया:

"तालेहसन और गुलाब ने मेरे सामने दरोगा को यह बयान दिया कि तालेहसन ने कहा मैंने"'के' के साथ गलत काम किया तो वह मर गई। "

66. जहां तक आरोपी गुलाब का संबंध है, उन्होंने स्वीकारोक्ति को निम्नानुसार वर्णित किया:

"गुलाब ने कहा कि "'टी' ने कहा कि मैं घर जाकर कह दूँगी तो मैंने उसे लाठी मारी और उसके दाँत तोड़ " दिये और दूसरी लाठी मारकर उसका हाथ तोड़ दिया, जब लड़की चिल्लाने लगी तो उसकी दराती से गर्दन काट दी। "

67. स्पष्ट रूप से, हालांकि यह दो गवाहों के लिए आरोपी अपीलकर्ताओं द्वारा इस्तेमाल किए गए सटीक शब्दों को साबित करने के लिए आवश्यक नहीं हो सकता है और हम प्राकृतिक विसंगति के लिए कुछ मार्जिन दे सकते हैं जो उत्पन्न हो सकता है यदि एक ही घटना या स्वीकारनामे को दो अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा दो अलग-अलग समय पर वर्णित किया जाना था, जो हम अनदेखा नहीं कर सकते हैं वर्णित या कबूल किए गए तथ्यों में ठोस विसंगति है। जहां तक पूरन (अ०सा०-2) का संबंध है, उन्होंने सुनाया, अपीलकर्ताओं ने कबूल किया, जो कुछ भी हुआ वह अतीत है, और उन्होंने लड़कियों के साथ एक 'बुरा काम' करके और उनकी हत्या करके गलती की थी। हालांकि, 'एम' (अ०सा०-5) ने बताया कि 'के' की मौत बलात्कार से पीड़ित होने पर हुई थी, जबकि गुलाब ने कबूल किया कि 'टी' ने आरोपी के खिलाफ उसके घर पर शिकायत करने की धमकी दी थी। उस पर लाठी से हमला किया गया, जिससे उसके दांत टूट गए और हाथ टूट गया। जब 'टी' ने मदद के लिए चिल्लाया, तो उसने उसकी गर्दन पर 'दरांती' से हमला किया, जिससे उसकी मौत हो गई। समय के अंतर और जिस

परिस्थिति में न्यायेतर स्वीकारोक्ति का दावा किया गया है, उसके अलावा, हम यह भी पाते हैं कि दोनों स्वीकारनामे में एक महत्वपूर्ण अंतर है।

68. यद्यपि हम एक संदेह की खोज नहीं कर सकते हैं, लेकिन एक स्वीकारोक्ति की दूसरे के साथ तुलना करके, हम यह स्वीकार नहीं कर सकते हैं कि 'एम' (गुलाब द्वारा किए गए होने के लिए) द्वारा दावा किए गए स्वीकारोक्ति बयान में कोई पुष्टि नहीं मिलती है। इस तथ्य के अलावा कि 'टी' को लगी चोटों को उसके मृत शरीर की अत्यधिक विघटित स्थिति के कारण साबित नहीं किया जा सका, चिकित्सा साक्ष्य से भी किसी टूटे हुए दांत या फ्रैक्चर हाथ का पता नहीं चला। इसके अलावा, किसी भी लाठी या कठोर/कुंद वस्तु की कोई बरामदगी नहीं की गई थी जो कथित रूप से 'एम' (अ०सा०-5) द्वारा साबित किए गए गैर-न्यायिक स्वीकारोक्ति की पुष्टि कर सके। स्पष्ट रूप से, हम नहीं पाते हैं, कि गैर-न्यायिक स्वीकारोक्ति इस तरह के साक्ष्य मूल्य का है जो अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने के लिए हमारे पूर्ण विश्वास के लायक हो सकता है।

69. अ०सा०-2 ने भी किसी भी तथ्य का खुलासा नहीं किया, जिसमें यह सुझाव दिया गया हो कि वह सूचनाकर्ता या अभियुक्त के साथ विश्वास या अधिकार की स्थिति रखता है, जिसने आरोपी को अ०सा०-2 को कबूल करने के लिए मजबूर किया होगा। इसके अलावा, अपनी जिरह के दौरान, अ०सा०-2 ने कहा कि उसने इस स्वीकारोक्ति पर कार्रवाई नहीं की और कभी भी पुलिस या मृत लड़कियों के परिवारों से संपर्क नहीं किया। न्यायालय को यह अनुमान लगाने के लिए छोड़ दिया गया है कि अ०सा०-2 के सामने ऐसा स्वीकारोक्ति क्यों की गई। यदि अभियोजन पक्ष पूरी तरह से न्यायेतर स्वीकारोक्ति पर निर्भर करता है, तो इसकी गुणवत्ता, अवधि और आसपास की परिस्थितियां ऐसी होनी चाहिए जो इसकी सत्यता और वास्तविकता के बारे में कोई संदेह नहीं छोड़ती हैं, ताकि दोषसिद्धि का वारंट किया जा सके। यहां ऐसा नहीं है।

70. दूसरा, हालांकि 'एम' 'टी' का पिता है, और ऐसे व्यक्ति के लिए की गई एक गैर-न्यायिक स्वीकारोक्ति ने अभियोजन पक्ष के मामले को विश्वसनीयता प्रदान की हो सकती है क्योंकि ऐसे व्यक्ति को अधिकार की स्थिति का आनंद मिल सकता है यदि अभियुक्त दया की मांग कर रहा था, तो वह स्वीकारालनामा उसे नहीं किया गया था। यह पुलिस निरीक्षक को बनाया गया था, न कि 'एम' को। उन्होंने स्वयं कहा, अपीलकर्ता गुलाब और ताले हसन ने उनकी उपस्थिति में पुलिस निरीक्षक के सामने वे स्वीकारादेश दिए। इसलिए, अ०सा०-5 को स्वीकारोक्ति नहीं दी गई थी। बल्कि यह वह था जिसे उसने पुलिस निरीक्षक को बताया था।

71. विवेचनाधिकारी एस.आई. एस.सी. तोमर (अ०सा०-10) ने केवल केस डायरी में उनके द्वारा दर्ज अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति (प्रदर्श क-30) को साबित किया। साथ ही, इस तरह के बयान जांच का हिस्सा होने के नाते और पुलिस अधिकारी के समक्ष दिए जाने के कारण, यह भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 30 की आवश्यकता को पूरा नहीं करेगा। वह स्वीकारोक्ति साक्ष्य के माध्यम से स्वीकार्य नहीं हो सकती है।

72. **मोहम्मद फसरीन बनाम राज्य (2019) 8 एस.सी.सी. 811** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:

"8. इसलिए, हम इस मामले के निर्णय के लिए, इस आधार पर आगे बढ़ते हैं कि स्वीकारोक्ति स्वीकार्य है। यहां तक कि अगर यह स्वीकार्य है, तो अदालत को संतुष्ट होना होगा कि यह एक स्वैच्छिक बयान है, किसी भी दबाव से मुक्त है और यह भी कि अभियुक्त को स्वीकारोक्ति दर्ज करने से पहले उसके अधिकारों से अवगत कराया गया था। इस मामले के अभिलेख में ऐसी कोई सामग्री नहीं लाई गई है। यह भी अच्छी तरह से तय है कि एक स्वीकारोक्ति, विशेष रूप से अभियुक्त हिरासत में होने पर दर्ज की गई स्वीकारोक्ति, सबूत का एक कमजोर टुकड़ा है और कुछ पुष्टिकारक सबूत होने चाहिए। सह-आरोपी का कबूलनामा, जिसे एक पुष्टिकारक सबूत कहा गया था, पर ऊपर चर्चा की गई है और इसका कोई ठोस मूल्य नहीं है। इसलिए, दो इकबालिया बयानों के अलावा - सह-अभियुक्तों में से एक और दूसरा अभियुक्त, अभियोजन पक्ष ने अपीलकर्ता को अपराध के कमीशन से जोड़ने के लिए कोई सबूत इकट्ठा नहीं किया है। इस प्रकार, स्वीकारोक्ति की स्वीकार्यता की वैधता में जाने के बिना, हम मानते हैं कि भले ही ये स्वीकारोक्ति स्वीकार्य हों, फिर भी सबूत आरोपी को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। (महत्व सन्निविष्ट)

73. किए गए बलात्कार के आरोप पर भी कुछ विचार किया जा सकता है। अभियोजन पक्ष का मामला पूरी तरह से न्यायेतर स्वीकारोक्ति पर टिका हुआ है। जैसा कि उल्लेख किया गया है, 'के' और 'टी' के शवों की अत्यधिक विघटित स्थिति के कारण चिकित्सा साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किए जा सके। बलात्कार का कोई प्रत्यक्ष सबूत भी नहीं था। परिस्थितिजन्य साक्ष्य ने स्थापित किया कि दोनों शव कपड़े पहने हुए पाए गए थे, कम से कम उनके निचले अंगों/आधे हिस्से पर। 'टी' के लिए 'पंचायतनामा' (प्रदर्श क-18), इस बात की पुष्टि करता है और दर्ज करता है कि निचले वस्त्र 'टी' के मृत शरीर के ऊपर थे, हालांकि एक पैर गायब था। इसके अलावा 'टी' के शरीर के दाहिने हाथ पर छह चूड़ियां मिलीं, लेकिन उसका ऊपरी शरीर नग्न पाया गया।

74. जहां तक 'के' का संबंध है, 'पंचायतनामा' (प्रदर्श क-19) में दर्ज किया गया है कि 'के' (दो लड़कियों में से बड़ी) के मृत शरीर पर कपड़े बरकरार थे। उसके शव पर उसकी शर्ट और उसका निचला परिधान/पेटीकोट पाया गया। इसके अतिरिक्त, उसके बाएं हाथ पर चार और दाहिने हाथ पर तीन चूड़ियां मिलीं। यह बलात्कार के कमीशन की भी पुष्टि नहीं कर सकता है। माना जाता है कि घटना के पांच दिन बाद शवों की खोज की गई थी। वे अत्यधिक विघटित अवस्था में थे, जैसा कि डॉक्टर द्वारा सिद्ध किया गया था - इस हद तक कि न तो मृत्यु का कारण और न ही बलात्कार के बारे में कोई राय बनाई जा सकती थी, क्योंकि संबंधित शरीर के अंग पूरी तरह से विघटित हो गए थे।

75. इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, जब बलात्कार को सकारात्मक रूप से स्थापित नहीं किया जा सका, तो मकसद अज्ञात रहता है। संदेह, चाहे कितना भी मजबूत क्यों न हो, परिस्थितियों की पूरी श्रृंखला के अस्तित्व को स्वीकार करने के लिए न्यायालय को राजी करने के लिए आवश्यक सबूतों को कभी भी प्रतिस्थापित नहीं

कर सकता है। जब तक साक्ष्य की श्रृंखला पूरी नहीं पाई जाती है, तब तक कोई दोषसिद्धि उत्पन्न नहीं हो सकती है या उस आधार पर कायम नहीं रह सकती है।

76. ऊपर बताए गए कारणों से, हम पाते हैं कि विचारण न्यायालय ने ठोस सबूत (या तो प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य) के अभाव में दोषसिद्धि के आदेश तक पहुंचने में गलती की है।
77. नतीजतन, अपील सफल होती है और **अनुमति** दी जाती है।

78. सत्र परीक्षण संख्या 101 वर्ष 1988 (राज्य बनाम तालेय हसन एवं अन्य), जो अपराध संख्या 133 वर्ष 1987, धारा 376 एवं 302/201 भारतीय दण्ड संहिता, थाना शाहाबाद, जनपद रामपुर से उत्पन्न हुआ था, में विद्वान द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, रामपुर द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 27.02.1991 को एतद्द्वारा **अपास्त/रद्द** किया जाता है।

79. अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के अभाव में अपीलकर्ताओं को आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। चूँकि अपीलकर्ता वर्तमान में कारागार में निरुद्ध हैं, अतः उन्हें तत्काल रिहा किया जाए, बशर्ते कि वे किसी अन्य वाद में वांछित न हों तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 437A के अनुपालन के अधीन हों।

80. इस आदेश की एक प्रति के साथ विचारण न्यायालय के अभिलेख को रजिस्ट्रार (अनुपालन) के माध्यम से संबंधित न्यायालय को प्रेषित किया जाए और इस आदेश की एक प्रति संबंधित जेल अधिकारियों को भी भेजी जाए।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1224

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 30.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजीव गुप्ता

माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल

आपराधिक अपील संख्या-1557 वर्ष 2020

सम्बद्ध

आपराधिक अपील संख्या-1558 वर्ष 2020

नौशाद **... अपीलार्थी**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **... प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: कृपा शंकर मिश्रा

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, ए.एन.मुल्ला, शशि शेखर तिवारी, अरुण कुमार पांडेय

(ए) आपराधिक कानून - परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर दोषसिद्धि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 364, 302/34 और 201 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 27 और 65-बी - केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत दोहराए गए - जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकालने की कोशिश की जाती है, उन्हें सुसंगत और दृढ़ता से स्थापित किया जाना चाहिए - कि वे परिस्थितियां एक निश्चित प्रवृत्ति की होनी चाहिए जो अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करती हैं - एक श्रृंखला इतनी पूर्ण है कि इस निष्कर्ष से कोई बच नहीं सकता है कि सभी मानवीय संभावनाओं के भीतर अपराध अभियुक्त द्वारा किया गया था और अभियुक्त के अपराध के अलावा किसी भी परिकल्पना पर स्पष्टीकरण देने में असमर्थ होना चाहिए और उसकी बेगुनाही के साथ असंगत होना चाहिए - परिस्थितियों की श्रृंखला अधूरी, दोषसिद्धि को बनाए नहीं रखा जा सकता है - परिस्थितिजन्य साक्ष्य इतना पूर्ण होना चाहिए कि अभियुक्त के अपराध के अलावा हर परिकल्पना को बाहर किया जा सके - प्रत्येक कड़ी जब तक एक श्रृंखला एक साथ नहीं जुड़ती है, तब तक एक श्रृंखला संदेह का संकेत दे सकती है, लेकिन यह अपने आप में सबूत की जगह नहीं ले सकती है और आरोपी को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। (प्रस्तर-44, 46 से 49, 68 से 72)

(बी) आपराधिक कानून - इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों की स्वीकार्यता - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 65-बी - धारा 65-बी(4) के तहत एक प्रमाण पत्र इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों के माध्यम से साक्ष्य की स्वीकार्यता के

अनुवादित

लिए एक शर्त है - प्रमाण पत्र के स्थान पर मौखिक साक्ष्य पर्याप्त नहीं हो सकता है - सी.सी.टी.वी. फुटेज को साक्ष्य में तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता है जब तक कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी - धारा 65-बी(4) के तहत प्रमाण पत्र के साथ स्पष्ट रूप से कहा गया है कि द्वितीयक साक्ष्य केवल स्वीकार्य है यदि बताए गए तरीके से नेतृत्व किया जाता है और अन्यथा नहीं - अन्यथा धारण करने के लिए धारा 65-बी(4) को ओटियोज किया जाएगा। (प्रस्तर-40 से 42, 49, 71)

आरोपी अपीलकर्ताओं पर एक बच्चे (5 वर्ष की आयु) का अपहरण और हत्या करने का आरोप लगाया गया था - धारा 364 भ०द०वि० के तहत अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ शुरू में प्राथमिकी दर्ज की गई थी - लापता शिकायत के आधार पर - आरोपी के नाम बाद में पूरक आवेदन के माध्यम से सामने आए - आरोपी के खुलासे के आधार पर कथित शव की बरामदगी - अभियोजन का मामला पूरी तरह से परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित है, जिसमें अंतिम बार देखा गया और सी.सी.टी.वी. फुटेज शामिल है - आवश्यक प्रमाणन के बिना और संबंधित गवाहों से पूछताछ किए बिना - विचारण न्यायालय ने परिस्थितिजन्य साक्ष्य का उपयोग करके अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया। (प्रस्तर-2-16, 39, 43)

अवधारित: - अभियोजन पक्ष अभियुक्त को अपराध से जोड़ने वाले परिस्थितिजन्य साक्ष्यों की एक पूरी श्रृंखला स्थापित करने में विफल रहा। परिस्थितियों की श्रृंखला में लिंक स्पष्ट रूप से गायब हैं। प्रस्तुत मामले में जांच सही नहीं है। अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने के लिए अभिलेखों पर कोई विश्वसनीय, कानूनी, स्वीकार्य या विश्वसनीय सबूत नहीं है। दोषसिद्धि को अलग कर दिया गया। अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को किसी अन्य मामले में आवश्यक होने तक तुरंत रिहा किया जाना चाहिए। (प्रस्तर-71, 72, 74, 75)

अपील की अनुमति है। (ई-7)

उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची:

1. अनवर पीवी बनाम पीके बशीर, (2014) 10 एस.सी.सी. 473
2. चंद्रभान सुदाम सनप बनाम महाराष्ट्र, 2025 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 174
3. क्वीन-एम्प्रेस बनाम होश नाक, 1941 इला० एलजे 416
4. हनुमंत, पुत्र गोविंद नरगुंदकर बनाम मध्य प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1952 एस.सी. 343
5. खासबाबा मारुति शोल्के बनाम महाराष्ट्र, (1973) 2 एस.सी.सी. 449
6. शरद बर्धिचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र, (1984) 4 एस.सी.सी. 116
7. राम किशन मिथन लाल शर्मा बनाम बोम राज्य, ए.आई.आर. 1955 एस.सी. 104
8. पुलुकारी कोट्टैया बनाम किंग एम्परर, ए.आई.आर. 1947 पीसी 67
9. दिल्ली प्रशासन बनाम बालकृष्ण, ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 3

10. बाबू साहेबगौड़ा रुद्रगौदर बनाम कर्ण राज्य, (2024) 8 एस.सी.सी. 149

11. जय देव और हरि सिंह बनाम पुंज राज्य, ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 612

12. आंध्र प्रदेश बनाम चीमालापति गणेशेश्वर राव, ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 1850

13. गीजगंदा सोमैया बनाम कर्ण राज्य, (2007) 9 एस.सी.सी. 315

(माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल द्वारा उद्घोषित)

1. ये दोनों अपीलें एक साथ जुड़ी हुई हैं क्योंकि वे सह-अभियुक्तों की हैं और एक ही निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश से उत्पन्न होती हैं।

2. प्रस्तुत अपीलें अपीलकर्ता नौशाद एवं अहसान द्वारा, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/एफ.टी.सी. न्यायालय संख्या 1, सहारनपुर द्वारा सत्र वाद संख्या 634 सन् 2017 (राज्य बनाम अहसान एवं अन्य) में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 17.03.2020 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई हैं। उक्त निर्णय द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता की धारा 364 के अंतर्गत आजीवन कारावास एवं ₹25,000/- के अर्थदंड से, तथा अर्थदंड अदा न किए जाने की दशा में प्रत्येक को 6 माह के अतिरिक्त कारावास से; धारा 302/34 के अंतर्गत आजीवन कारावास एवं ₹25,000/- के अर्थदंड से, अर्थदंड अदा न किए जाने की दशा में प्रत्येक को 6 माह के अतिरिक्त कारावास से; तथा धारा 201 के अंतर्गत 5 वर्ष का सश्रम कारावास एवं ₹5,000/- के अर्थदंड से, अर्थदंड अदा न किए जाने की दशा में प्रत्येक को 1 माह के अतिरिक्त कारावास से दंडित किया गया है। सभी सजाएँ साथ-साथ चलने का आदेश दिया गया है। विचारण न्यायालय द्वारा यह भी आदेशित किया गया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को कारागार में पूर्व में बिताई गई अवधि का समायोजन (सेट-ऑफ) प्रदान किया जाएगा।

3. नदीम द्वारा दिनांक 10.8.2017 को एक टाइप किया गया आवेदन निरीक्षक थाना- कोतवाली देवबंद, जिला सहारनपुर को संबोधित किया गया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि उनके बेटे मो. सफेद कुर्ता, पायजामा और पीले रंग का स्लीपर पहने करीब 5 साल उम्र का ज़ैद 10.8.2017 को सुबह करीब 11.15 बजे बिना किसी को बताए लापता हो गया था। उसके द्वारा बहुत खोजा गया लेकिन उसका पता नहीं चल सका। परेशान और दुखी होने के बाद उसे उसके पास आना पड़ा। वह प्रार्थना करता है कि उसके बेटे के बारे में उसकी लापता रिपोर्ट दर्ज की जाए। उक्त आवेदन प्रदर्श क-1।

4. उक्त आवेदन के आधार पर दिनांक 10.8.2017 को 11.15 बजे अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध धारा 364 भारतीय दंड संहिता (भ०द०वि०), थाना- देवबंद, जिला सहारनपुर के तहत केस अपराध संख्या-0777 वर्ष 2017 के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई। चिक प्राथमिकी प्रदर्श क-5 है।

5. इसके बाद नदीम द्वारा दिनांक 10.8.2017 को एक हस्तलिखित आवेदन निरीक्षक कोतवाली देवबंद, जिला सहारनपुर को दिया गया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि 10.8.2017 को उन्होंने अपने बेटे ज़ैद के बारे में गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज कराई थी और अब उन्हें पता चला है कि उनके बेटे को अहसान, पुत्र माजिद और नौशाद, पुत्र जुल्फकार ने ले लिया था, जो उसके साथ काम कर रहे थे जिन्होंने उसका अपहरण कर लिया था। गुलशेर, पुत्र शमीम और शारिक, पुत्र मो. खालिद ने उन्हें अपने बेटे ज़ैद को ले जाते हुए देखा है। डॉ. सईद अनवर के घर में लगे सी.सी.टी.वी. कैमरे में भी उनके बेटे को ले जाते हुए अभिलेखों किया गया है। कैमरे की फुटेज प्राप्त की जाए तथा अहसन एवं नौशाद के विरुद्ध विधिक कार्रवाई की जाए। उक्त प्रार्थना-पत्र को अभिलेख पर प्रदर्श क-2 के रूप में अंकित किया गया है। उक्त प्रार्थना-पत्र (प्रदर्श क-2) को दिनांक 10.8.2017 को समय 21.15 बजे, थाना कोतवाली देवबंद, जनपद सहारनपुर में रोज़नामचा संख्या 43 में दर्ज किया गया।

6. आरोपी नौशाद और अहसान को कथित तौर पर 10/11.8.2017 की रात को गिरफ्तार किया गया था और यह आरोप लगाया गया है कि 11.8.2017 को सुबह 4.30 बजे गवाहों वसीम और मोहम्मद याकूब के गन्ने के खेत से असलम, शारिक के 15 कदम अंदर जाने पर ज़ैद का शव बरामद किया गया। उक्त आशय का एक फ़र्द बरामगदी दिनांक 11.8.2017 तैयार किया गया था जिसमें संबंधित अधिकारी ने उल्लेख किया था कि प्रस्तुत मामले में धारा 302/201 भ०द०वि० जोड़ी गई है। आगे बताया गया है कि यह फ़र्द उन्होंने देवेंद्र कुमार द्वारा इंस्पेक्टर पंकज कुमार त्यागी के आदेश पर तैयार किया है। उक्त ज्ञापन प्रदर्श क-3 है।

7. मृतक ज़ैद के शरीर की जांच 11.8.2017 को सुबह 6.30 बजे की गई थी जो सुबह 8 बजे समाप्त हुई। यह कार्य थाना- कोतवाली देवबंद, जिला सहारनपुर के सब इंस्पेक्टर योगेन्द्र सिंह ने किया। जो अभिलेखों पर प्रदर्श क-10 है।

8. इसके बाद 11.8.2017 को सुबह 11.05 बजे डॉ. वीरेंद्र भट्ट (अ०सा०-4) द्वारा मृतक ज़ैद की शव परीक्षण जांच की गई, जिसमें डॉक्टर ने निम्नलिखित पूर्व-शव परीक्षण चोटों का उल्लेख किया: -

"1. मुंह और नाक के आसपास कई चोट और खरोंच।
2. पूरे शरीर में मौजूद मिट्टी के कण।

9. मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व डूबने के परिणामस्वरूप दम घुटने के रूप में बताया गया था। उक्त शव परीक्षण रिपोर्ट क-4 प्रदर्श है।

10. मृतक के कुर्ता और पायजामा को जांच के लिए विधि विज्ञान प्रयोगशाला, उत्तर प्रदेश, आगरा भेजा गया। विधि विज्ञान प्रयोगशाला की दिनांक 5.4.2019 की रिपोर्ट में कहा गया है कि दोनों वस्तुओं में रक्त पाया गया जो मानव रक्त था लेकिन वह विघटित हो गया था और इस प्रकार स्रोत का पता नहीं चल सका है।

अनुवादित

11. विवेचना पूरी हुई और आरोपी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ धारा 364, 302, 201 364 भ०द०वि० के तहत 14.9.2017 को आरोप पत्र दायर किया गया। वही प्रदर्श क-9 है।

12. उक्त आरोप पत्र पर, अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, देवबंद ने दिनांक 1.11.2017 के अपने आदेश द्वारा संज्ञान लिया।

13. धारा 364, 302/34 और 201 भ०द०वि० के तहत आरोप सत्र न्यायाधीश, सहारनपुर द्वारा 21.12.2017 के आदेश के माध्यम से आरोपी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ तय किया गया था, जिसे पढ़ा गया और उन्हें समझाया गया कि जिन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया और मुकदमा चलाने का दावा किया।

14. मुकदमे में अभियोजन पक्ष ने मृतक के पहले सूचनाकर्ता और पिता नदीम को अ०सा०-1 के रूप में पेश किया, गुलशेर को मृतक को अ०सा०-2 के रूप में ले जाने का गवाह, वसीम, अ०सा०-3 के रूप में मृत शरीर की बरामदगी का गवाह, डॉ. वीरेंद्र भट्ट जिन्होंने अ०सा०-4 के रूप में शव परीक्षण किया, हेड कांस्टेबल जितेंद्र सिंह तोमर, जिस व्यक्ति ने अ०सा०-5 के रूप में चिक प्राथमिकी तैयार की, पंकज कुमार त्यागी, विवेचनाधिकारी अ०सा०-6, रमजानी, अ०सा०-7 के रूप में जांच के गवाह और कांस्टेबल भूपेंद्र कुमार को जांच के गवाह के रूप में तैयार किया और शव को शव परीक्षण के लिए ले जाने वाले व्यक्ति की परीक्षा अ०सा०-8 के रूप में की गई।

15. आरोपी-अपीलकर्ताओं ने धारा 313 भ०द०वि० के तहत अपने बयानों में अभियोजन पक्ष के संस्करण से इनकार किया और कहा कि प्रस्तुत मामले में उन्हें झूठा फंसाया गया है और कहा गया है कि वे निर्दोष हैं। उन्होंने आगे कहा कि अभियोजन पक्ष के गवाह झूठ बोल रहे हैं और जो बरामदगी दिखाई गई है, वह झूठी बरामदगी है। उन्होंने आगे कहा कि उनके खिलाफ झूठा मामला दर्ज किया गया है। आरोपी अहसान ने आगे कहा कि धमकी देने के बाद पहला सूचनाकर्ता उसके साथ यौन संबंध रखता था और उसे धमकी देता था कि अगर उसने किसी को इसका खुलासा किया तो वह उसे झूठे मामले में फंसा देगा। उसने काम के कारण अपने 20,000 रुपये नहीं दिए और यहां तक कि वह जेल में उससे मिलने जाता था और कहता था कि उसने गलत किया है और उसे जल्द ही रिहा कर देगा। उनका कहना है कि उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया है और वह निर्दोष हैं।

16. आरोपी नौशाद ने आगे कहा कि उसने सूचनाकर्ता को 3,000/- रुपये दिए थे। वह आरोपी अहसान का चचेरा भाई है। उनके रिश्तेदार होने के नाते, उन्हें प्रस्तुत मामले में झूठा फंसाया गया है और वह निर्दोष हैं।

17. आरोपी व्यक्तियों द्वारा कोई बचाव पक्ष का गवाह पेश नहीं किया गया था, लेकिन अभियुक्तों ने अपने बचाव में 45-केए के रूप में क्रमांकित दस्तावेजों की सूची दायर की, जिसमें सूचनाकर्ता के 9 आवेदनों की प्रतियां संलग्न थीं, जो डिप्टी जेलर, देवबंद को उनसे मिलने की अनुमति के लिए दी गई थीं।

18. विचारण न्यायालय अभिलेखों पर मौजूद सबूतों और सामग्री पर विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि परिस्थितियों की श्रृंखला में लिंक अच्छी तरह से जुड़े हुए हैं और अभियोजन पक्ष ने उचित संदेह से परे अपना मामला स्थापित किया है और इस प्रकार आरोपी-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया है।

19. अ०सा०-1 नदीम मृतक का पहला सूचनाकर्ता और पिता है। वह कहता है कि वह आरोपी को जानता है। आरोपी अहसान उसके साथ पटाखे बनाने का काम करता है। आरोपी नौशाद अहसान से मिलने जाता था। सफेद कुर्ता और पायजामा और पीले स्लीपर पहने उनका लगभग 5 साल का बेटा 10.8.2017 को सुबह लगभग 11.15 बजे घर से लापता हो गया। उसने अपने बेटे की बहुत खोज की लेकिन उसका पता नहीं लगा सका और फिर 10.8.2017 को उसने एक गुमशुदगी की रिपोर्ट टाइप की और उस पर हस्ताक्षर किए और उसे थाना में दे दिया। वह प्रदर्श क-1 के समान ही साबित करता है; उन्होंने आगे कहा कि 10.8.2017 को शाम को गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज करने के बाद जब वह अपने बेटे की तलाश करते हुए वापस आए तो गुलशेर, पुत्र शमीम और शारिक, पुत्र मो. खालिद ने बताया कि उन्होंने अपने बेटे को अहसान, उसके कर्मचारी और नौशाद के साथ जाते हुए देखा। वह आगे कहता है कि वे डॉ. सईद अनवर के घर गए जहां सी.सी.टी.वी स्थापित किया गया था और इसकी जांच की और पाया कि आरोपी अहसान ने अपने बेटे के हाथों को पकड़ लिया था और उसके साथ जा रहा था। इसके बाद उन्होंने 10.8.2017 को थाना में दूसरा आवेदन दिया, जिसे उन्होंने प्रदर्श क-2 साबित किया। उन्होंने आगे कहा कि 11.8.2017 को आरोपी अहसान और नौशाद को गिरफ्तार किया गया था। दोनों आरोपियों को सुबह करीब 4.30 बजे याकूब के गन्ने के खेत में ले जाया गया, जहां से उनके बेटे का शव बरामद हुआ। उनके बेटे ज़ैद को दोनों आरोपियों ने गन्ने के खेत में डुबो दिया, जो पानी से भरा हुआ था। वह सी.सी.टी.वी. फुटेज दाखिल कर सकता है जो वर्तमान समय में उसके पास नहीं है। वह आगे कहता है कि उसके बेटे का अपहरण कर लिया गया था। डॉ. सईद अनवर के कैमरे में सी.सी.टी.वी. फुटेज में अपहरणकर्ताओं की तस्वीर देखी जा सकती है। वह अपहरण से पहले अपने बेटे की तस्वीर और सी.सी.टी.वी. फुटेज दाखिल करता है, जिसे सामग्री प्रदर्श-1 के रूप में चिह्नित किया गया है और बाद में जब आरोपी ने उसका हाथ पकड़ा था और उसे ले जा रहा था, तब की दो तस्वीरें भी दर्ज की गई हैं, जिन्हें सामग्री प्रदर्श-2 और 3 के रूप में चिह्नित किया गया है।

20. अपनी जिरह में उन्होंने कहा कि यह तस्वीर उनके द्वारा डॉ. अनवर के सी.सी.टी.वी. फुटेज से तैयार की गई है। वह डॉ. सईद अनवर को इसलिए जानते हैं क्योंकि वह उसी इलाके के रहने वाले हैं। सामग्री प्रदर्श-1 घटना से पहले उनके बेटे की तस्वीर है। उक्त तस्वीर उनके द्वारा हाल ही में बनाई गई थी। आरोपी अहसान पिछले 3 साल से उसके साथ काम कर रहा है। आरोपी नौशाद अहसान का रिश्तेदार है। उनका बेटा पढ़ाई के लिए मदरसा जाता था जो उनके घर के पीछे है। वह रोजाना जाता था और वापस आता था। वह सुबह 7 बजे पढ़ाई के लिए जाता था और मदरसा सुबह 11 बजे बंद हो जाता था। घटना के दिन वह गांव महिकोटा गया था और उसने घटना को नहीं देखा। वह सुबह 9 बजे अहसान को उनके घर बुलाने नहीं गए। उनका कहना है कि यह कहना गलत है कि वह आरोपी अहसान को सुबह 9 बजे उनके घर बुलाने गए थे और पढ़ाए जाने पर वह इससे इनकार कर रहे हैं। उसने अन्य लोगों के साथ अपने बेटे की तलाशी ली।

21. गुलशेर और शारिक घटना के गवाह हैं। उक्त दोनों गवाह उसके साथ तलाशी के लिए नहीं गए। गवाह शारिक उसका चचेरा भाई है। गुलशेर उसका रिश्तेदार नहीं है और एक अलग इलाके में रहता है। उनके बेटे के लापता होने के बाद आस-पास के इलाकों में इसके बारे में काफी खबरें थीं। उन्होंने इस बारे में घोषणा भी करवाई थी। वह शाम को अहसान के घर नहीं गया लेकिन घटना के बाद अहसान खुद उसके पास आया और करीब दो घंटे तक तलाश में शामिल रहा और फिर फरार हो गया। थाने के बाहर गुमशुदगी की रिपोर्ट लिखी गई थी। फिर वह कहता है कि यह इलाके में लिखा गया था। जब वह गुमशुदगी की रिपोर्ट लिख रहे थे तो वहां कई लोग जमा हो गए थे। गवाह गुलशेर और शारिक उस समय मौजूद नहीं थे। जब वह गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज कराने के बाद थाने से लौटा तो उससे मुलाकात हुई। वह इस सुझाव से इनकार करता है कि वे थाना में उसके साथ थे। उसका कहना है कि उसे नहीं पता कि आरोपी कहां से और किस दिन आया था। आरोपियों को रात में गिरफ्तार कर थाने लाया गया। वह थाने भी गया था। उन्हें नहीं पता कि उनके बेटे के शव का परीक्षण कब किया गया। वह अस्पताल गया था, जहां शव रखा गया था। गुलशेर का घर उसके घर से कुछ ही दूरी पर है लेकिन इलाके पास में हैं। वह नौशाद को वैसे ही जानता है जैसे वह अहसान आता था। अहसान अपने बेटे को टहलने नहीं ले गया। उन्होंने अपने बेटे को कभी कुछ नहीं दिया। वह इस बात से इनकार करता है कि अहसान पहले अपने बेटे को चलने के लिए ले जाता था और उससे बहुत प्यार करता था। उनका कहना है कि यह गलत है कि वह ट्यूशन के बाद यह बयान दे रहे हैं। 10.8.2017 को गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज करने के बाद विवेचनाधिकारी द्वारा उनका बयान दर्ज किया गया था, जिसके बाद उनका बयान दर्ज नहीं किया गया था। वह कई बार जेल में आरोपी से मिलने गया। वह इस बात से इनकार करता है कि आरोपी ने उसके बेटे का अपहरण नहीं किया और उसकी हत्या नहीं की और आरोपी ने उसके बेटे को नहीं लिया। वह आगे उस सामग्री प्रदर्श-2 से इनकार करता है; तस्वीर भी घटना से पहले की है। उनका कहना है कि उन्होंने विवेचनाधिकारी को वह स्थान नहीं दिखाया जहां सी.सी.टी.वी. उन्होंने आगे इस बात से इनकार किया कि कोई सी.सी.टी.वी. कैमरा नहीं लगाया गया है। वह आगे इस बात से इनकार करता है कि आरोपी अहसान और नौशाद के पास पैसे बकाया थे और उसी का दुरुपयोग करने के लिए, उसने उन्हें झूठा फंसाया है। वह आगे इस बात से इनकार करता है कि उसने अहसान को धमकी देने के बाद उसकी इच्छा के खिलाफ उसके साथ यौन संबंध बनाए थे और आगे इस बात से इनकार करते हैं कि उसने कभी उसे धमकी नहीं दी थी कि अगर उसने इसे किसी को बताया, तो वह उसे झूठे मामले में फंसाकर जेल भेज देगा। वह इस बात से इनकार करता है कि उसी के कारण वह जेल में अहसान से मिलने गया था। वह आगे इस बात से इनकार करता है कि उसने अहसान से कहा था कि वह उसे जल्द ही रिहा कर देगा। वह आगे इस बात से इनकार करता है कि उसने आरोपियों से कहा है कि उसने उन्हें झूठा फंसाया है। वह आगे इस बात से इनकार करता है कि वह पुलिस के दबाव पर गलत बयान दे रहा है।

22. अ०सा०-2 गुलशेर एक रिक्शा चालक है और आरोपी व्यक्तियों द्वारा मृतक को ले जाने का गवाह है। उनका कहना है कि आरोपी अहसान और नौशाद सूचनाकर्ता नदीम के घर पर काम करते थे। 10.8.2017 को सुबह लगभग 11-11.30 बजे जब वह यात्रियों की प्रतीक्षा कर रहा था और इधर-उधर घूम रहा था, तो उसने दोनों आरोपियों को सूचनाकर्ता के बच्चे ज़ैद को ले जाते देखा। आरोपी अहसान ने बच्चे की उंगलियां पकड़ रखी

थीं। वह यात्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाता रहा और फिर रात करीब 8 बजे अपने घर पहुंचा। सुबह जब वह अपने रिक्शा से गया तो उसे पता चला कि ज़ैद गायब है। उसने बताया था कि ज़ैद को अहसान और नौशाद ले गए थे और उसने उन्हें थाना में ऐसा करते देखा था। उसे पता चला था कि ज़ैद का शव खेत से बरामद किया गया है।

23. अपनी जिरह में वह कहता है कि उसका घर सूचनाकर्ता के घर से वर्ष 1-1 ½ किमी की दूरी पर स्थित है। वह नदीम के घर जाता था क्योंकि वह अपने रिक्शे पर सामग्री ले जाता था और इस तरह वह उसे अच्छी तरह से जानता था। वह नहीं जानता कि नदीम के कितने बच्चे हैं। उसे नहीं पता कि ज़ैद (मृतक) पढ़ने के लिए स्कूल जाता है या नहीं। आरोपी अहसान ज्यादातर सूचनाकर्ता के घर में रहता है और ज़ैद को घूमने के लिए ले जाता था। इससे पहले भी उसने उसे कई बार घूमने के लिए ज़ैद को ले जाते हुए देखा था। विवेचनाधिकारी ने अगले दिन सुबह अपना बयान दर्ज किया था। इसके बाद उन्होंने कहा कि थाना में लगभग 20 दिनों के बाद उनका बयान दर्ज किया गया था, जिसके बाद उनका बयान फिर कभी दर्ज नहीं किया गया था। घटना के दिन से लेकर अगले दिन तक वह खुद ही थाने गया था। उसने विवेचनाधिकारी से कहा था कि वह घटना के अगले दिन थाना गया था, लेकिन अगर उसके बयान में यह नहीं लिखा है, तो वह इसके बारे में कारण नहीं बता सकता है। अगले दिन उसे इलाके के लोगों से ज़ैद के लापता होने के बारे में पता चला। उन्हें इलाके की मस्जिद से ज़ैद के लापता होने के बारे में जानकारी नहीं है। वह इस सुझाव से इनकार करता है कि उसने आरोपी को घटना के दिन सुबह लगभग 11.30 बजे ज़ैद को ले जाते हुए नहीं देखा था। वह आगे इस बात से इनकार करता है कि वह थाना नहीं गया और विवेचनाधिकारी को कुछ भी नहीं बताया। वह आगे इस बात से इनकार करता है कि चूंकि वह सूचनाकर्ता का दोस्त है, इसलिए उसके कहने पर वह गलत बयान दे रहा है।

24. अ०सा०-3 वसीम मृत शरीर की बरामदगी का गवाह है। उन्होंने बताया कि 11.8.2017 को सुबह करीब 4-4.30 बजे उन्होंने सुना कि ज़ैद का शव याकूब के गन्ने के खेत में पड़ा है। जब वह वहां पहुंचा तो उसने पाया कि शव खेत के मेढ़ पर पड़ा हुआ है। मैदान के अंदर करीब 15-20 कदम की दूरी पर था। आरोपी अहसान और नौशाद ने अपनी मौजूदगी में इसे बरामद किया था। इसके बाद पुलिस ने शव को बाहर निकालकर अपने कब्जे में ले लिया और फ़र्द बरामगदी तैयार किया, जिस पर उसने हस्ताक्षर भी किए। वह उस पर अपने हस्ताक्षर की पहचान करता है। इसे अभिलेखों में प्रदर्श क-3 के रूप में चिह्नित किया गया है।

25. अपनी जिरह में वह कहता है कि प्रस्तुत मामले का सूचनाकर्ता उससे अलग इलाके में रहता है। उनका इलाका लगभग थाना से 300-400 मीटर की दूरी पर स्थित है। जिस स्थान से शव बरामद किया गया था, वह उसके घर से लगभग आधा किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। उनके घर और सड़क के दोनों ओर थाना के बीच में काफी आबादी है। जब वह उक्त स्थान पर पहुंचा तो पुलिस के अलावा करीब 10-12 अन्य लोग मौजूद थे। वह वहां करीब 30 मिनट तक मौजूद रहे और वहां पेपर तैयार किए गए। उन्होंने बताया कि उक्त स्थान पर ज़ैद के शव को सील कर शव परीक्षण के लिए भेज दिया गया था। उसने केवल एक ही स्थान पर हस्ताक्षर किए थे जिसके बाद वह मृतक के घर वापस आ गया था। वह सुबह करीब 6 बजे उक्त घर पहुंचे थे और सुबह

9-9.30 बजे तक वहीं रहे। मृतक के पिता और उसके परिवार के सदस्य घर में थे। वह सुबह करीब 4.30 बजे मृतक के घर पर मौजूद था और वहां ही उसने सुना था कि ज़ैद का शव बरामद कर लिया गया है और फिर 10-12 लोग उक्त स्थान के लिए रवाना हुए। उक्त रात में वह सूचनाकर्ता के घर पर रुका था। शाम को थाने में विवेचनाधिकारी ने उनका बयान दर्ज किया। उसने विवेचनाधिकारी को बताया था कि आरोपी अहसान और नौशाद ने शव बरामद करवाया था और फिर शव को बाहर निकालने के बाद एक फ़र्द तैयार किया गया था जिसमें उसने हस्ताक्षर किए थे लेकिन अगर बयान में ऐसा नहीं है तो वह कारण नहीं बता सकता। उनका कहना है कि यह कहना गलत है कि उन्होंने विवेचनाधिकारी को इस बारे में नहीं बताया और अब वह मामले को एक अलग रंग देने के लिए कह रहे हैं। वह बताता है कि जब उसने प्रदर्श क-3, उनके हस्ताक्षर के अलावा, उस पर कोई अन्य हस्ताक्षर नहीं था। उनका कहना है कि यह गलत है कि उन्होंने थाना में एक कोरे कागज पर हस्ताक्षर किए थे। उनका कहना है कि यह गलत है कि उक्त स्थान से उनकी उपस्थिति में शव बरामद नहीं किया गया था और इसके संबंध में कोई कागजी कार्रवाई नहीं की गई थी। उन्होंने आगे कहा कि यह कहना गलत है कि वह उक्त तिथि और समय पर बरामदगी के स्थान पर नहीं गए थे। उन्होंने आगे कहा कि यह गलत है कि वह पढ़ाए जाने पर उक्त बयान दे रहे हैं क्योंकि सूचनाकर्ता उसका दोस्त है और गलत बयान दे रहा है।

26. अ०सा०-4 डॉ. वीरेंद्र भट्ट ने 11.8.2017 को सुबह लगभग 11 बजे मृतक का शव परीक्षण किया। वह उक्त शव परीक्षण को साबित करता है जो कि प्रदर्श क-1 है। डॉक्टर की नोटिंग पहले ही ऊपर बताई जा चुकी है और इस प्रकार यहां दोहराई नहीं जा रही है।

27. अपनी जिरह में उन्होंने कहा कि उन्होंने प्रदर्श क-4 में शव परीक्षण करने के समय का उल्लेख नहीं किया था। वह आगे कहता है कि अगर मृतक पानी के नाले या बड़े नाले में गिरता है, तो वह डूबने के कारण मर जाएगा। डूबने से मृतक की मौत हो गई। मृतक की मृत्यु 10.8.2017 को सुबह 11 बजे या 5-6 घंटे पहले हुई होगी। मृतक के चेहरे पर चोट के निशान थे।

28. अ०सा०-5 जितेंद्र सिंह तोमर, हेड कांस्टेबल हैं जिन्होंने चिक प्राथमिकी और रोज़नामचा को उसी के बारे में लिखा था। वह चिक प्राथमिकी को प्रदर्श क-5 के रूप में साबित करता है। और रोज़नामचा के रूप में प्रदर्श क-6 साबित किया।

29. अपनी जिरह में उन्होंने कहा कि कंप्यूटर ऑपरेटर ने अपने डिक्टेशन पर प्रदर्श क-5 टाइप किया था जिसमें धारा 364 भ०द०वि० का उल्लेख किया गया था और अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उन्होंने आगे कहा कि प्राथमिकी के कॉलम 12 में यह उल्लेख किया गया है कि मो. ज़ैद 10.8.2017 को लगभग 11.15 बजे गया था और यह भी लिखा है कि यह अनुरोध किया जाता है कि लड़के के बारे में गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज की जाए। उन्होंने कहा कि कॉलम 7 में आरोपी अहसान और नौशाद के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है जो सामने आए थे, लेकिन यह अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ है। उनका कहना है कि यह सही है

कि प्रदर्श क-6 में किसी भी आरोपी के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है। उनका कहना है कि धारा 364 भ०द०वि० के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई थी और कॉलम 14 में सूचनाकर्ता के हस्ताक्षर या अंगूठे का कोई निशान नहीं लिया गया था। उन्होंने आगे कहा कि सर्किल अधिकारी के हस्ताक्षर के तहत किसी तारीख का उल्लेख नहीं किया गया है। उन्होंने आगे कहा है कि प्रदर्श क-5, उनके हस्ताक्षर नहीं हैं और उनके हस्ताक्षर के लिए कोई कॉलम नहीं है। कंप्यूटर ऑपरेटर ने भी इस पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं। प्राथमिकी दर्ज करते समय थाना प्रभारी थाने में मौजूद थे, जिन्हें घटना की जानकारी दी गई थी। प्रभारी जो मामले का विवेचनाधिकारी था, वह थानाध्यक्ष के अधीन होता है और गवाह उसके अधीन होता है और उसके द्वारा जारी किए गए सभी निर्देशों का पालन किया जाना था जो उसकी जिम्मेदारी थी। वह कहता है कि प्रदर्श क-6 में उनके हस्ताक्षर के तहत तारीख का उल्लेख नहीं किया गया है और प्रभारी निरीक्षक ने इस पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं। इस सुझाव पर कि प्राथमिकी समय से पहले की गई है और प्रभारी के कहने पर वह इससे इनकार करते हैं।

30. अ०सा०-6 थानाध्यक्ष पंकज कुमार त्यागी इस मामले के विवेचनाधिकारी हैं।
उन्होंने कहा कि सूचनाकर्ता के लापता होने के संबंध में अज्ञात व्यक्ति के खिलाफ धारा 364 भ०द०वि० के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई थी। विवेचना उनके द्वारा की गई थी। उसी दिन सूचनाकर्ता ने उसे अहसान और नौशाद द्वारा अपने बेटे का अपहरण करने के संबंध में एक और आवेदन दिया, जिसे रोज़नामचा में नोट किया गया था। वह गवाहों के बयान दर्ज करने, बरामदगी की रिकॉर्डिंग करने और फिर आरोपी अहसान और नौशाद के खिलाफ धारा 302, 364, 201 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र दायर करने का उल्लेख करता है। उनका कहना है कि शव की बरामदगी के स्थान की नक़्शा नज़री उनके द्वारा तैयार की गई थी जो कि प्रदर्श- क-7 है। वह आगे कहता है कि जिस स्थान से बच्चे का अपहरण किया गया था, उसे देखा गया था और उसके द्वारा एक नक़्शा नज़री तैयार किया गया था जो अभिलेखों पर प्रदर्श क-8 है। वह आरोप पत्र को प्रदर्श क-9 साबित करता है। वह आगे वीडियो सीडी को सामग्री प्रदर्श-4 के रूप में साबित करता है, और एक और सीडी सामग्री प्रदर्श-5 के रूप में साबित करता है।

31. अपनी जिरह में उन्होंने कहा कि किसी भी सीडी पर इसकी तैयारी और इसके अंत के समय का उल्लेख नहीं किया गया है और उस पर सर्कल अधिकारी के हस्ताक्षर के नीचे कोई तारीख नहीं बताई गई है। उनका कहना है कि मृतक ज़ैद के पिता को छोड़कर, जो सूचनाकर्ता हैं, उन्होंने अपने परिवार के किसी भी सदस्य से पूछताछ नहीं की। उन्होंने उस स्कूल के किसी भी व्यक्ति से पूछताछ नहीं की, जहां मृतक पढ़ता था। उन्होंने कहा कि उन्होंने उस दुकान के मालिक से पूछताछ नहीं की, जहां सी.सी.टी.वी. फुटेज स्थापित किया गया था और न ही उन्होंने आस-पास के किसी व्यक्ति से पूछताछ की। उनका कहना है कि उन्होंने खुद सी.सी.टी.वी. फुटेज नहीं लिया। घटनास्थल और थाना के बीच की दूरी 1-1 1/2 किमी है। सूचनाकर्ता के घर और घटनास्थल के बीच की दूरी लगभग 2 किमी है। आरोपी व्यक्तियों को उनके द्वारा या किसी और द्वारा नहीं पीटा गया था। वह यह नहीं बता सकते कि उन्हें चोटें कैसे आईं। उसे याद नहीं है कि किस समय पुलिस ने आरोपी को गिरफ्तार करने के लिए आगे बढ़ा। थाना से गिरफ्तारी के स्थान की दूरी 3-3 1/2 किमी है। दोनों आरोपियों को आरोपी अहसान के घर से गिरफ्तार किया गया। उस समय अहसान के माता-पिता और परिवार के सदस्य

वहां मौजूद थे और गिरफ्तारी ज्ञापन तैयार किया गया था। उनका कहना है कि यह सच है कि कागज संख्या-25/1 पर आरोपी अहसान के माता-पिता या परिवार के सदस्यों के हस्ताक्षर नहीं हैं और तारीख के कॉलम में कोई तारीख का उल्लेख नहीं है। कॉलम 9 में चोटों के संबंध में कोई विवरण नहीं दिया गया है। गिरफ्तारी के संबंध में सूचना किसे दी गई है, इसका कोई उल्लेख नहीं है। आरोपियों को मेडिकल जांच के लिए कब भेजा गया था, इस बारे में कोई जानकारी नहीं है। कॉलम 6 में यह उल्लेख किया गया है कि अभियुक्त की ओर इशारा करने पर, मृतक का मृत शरीर बरामद किया गया था, लेकिन गवाह का कोई विवरण नहीं दिया गया है जो गिरफ्तारी के समय मौजूद था। उन्होंने फ़र्द बनाया था और उस मामले को बदल दिया था जिसके लिए उन्होंने सीडी तैयार की थी, लेकिन उन्होंने प्रदर्श क-3 तैयार करने से पहले धारा 302, 201 भ०द०वि० जोड़ दी थी। उन्होंने आगे कहा कि यह सही है कि फ़र्द बरामगदी उनके द्वारा नहीं बनाया गया था और इसमें इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि शव को सीएचसी भेजा जा रहा है और इसमें इसका कोई कारण नहीं बताया गया है। उन्होंने आगे कहा कि यह सही है कि शव को बरामद करने के स्थान पर सील नहीं किया गया था। फ़र्द बरामगदी में इस बात का कोई जिक्र नहीं है कि शव की पहचान किसने की। उन्हें याद नहीं है कि बरामदगी के लिए कितने लोगों को रवानगी में दिखाया गया है। उनका कहना है कि यह गलत है कि फ़र्द बरामगदी पर उन्होंने और एसआई देवेंद्र सिंह ने केवल हस्ताक्षर किए थे, लेकिन किसी अन्य पुलिस कर्मी के हस्ताक्षर नहीं हैं। वह आगे कहता है कि यह सही है कि गवाह वसीम के नाम पर ओवरराइटिंग है और इसमें आरोपी के नाम का कोई संदर्भ नहीं है। उन्होंने कहा कि यह सही है कि प्रदर्श क-3 गन्ने के खेत में शव बरामद होने के स्थान पर में पानी से भरे किसी तालाब के होने का कोई उल्लेख नहीं है। उनका कहना है कि यह गलत है कि उक्त समय और स्थान पर और आरोपी की ओर इशारा करने पर शव बरामद नहीं किया गया है, लेकिन थाना में सभी दस्तावेज तैयार किए गए हैं जो एंटे टाइम हैं और मामले को एक अलग रंग देने के लिए, मृत शरीर के आरोपी की ओर इशारा करते हुए बरामदगी दिखाई गई है। यह गलत है कि आरोपी की ओर इशारा करने पर झूठी बरामदगी दिखाई गई है। उन्होंने बताया कि उनके द्वारा 13.8.2017 को शव की बरामदगी के स्थान का नक़्शा नज़री तैयार की गई है। उन्होंने आगे कहा कि मृत शरीर की बरामदगी के दो दिनों के बाद उक्त नक़्शा नज़री तैयार किया गया है, लेकिन इसे बनाने में देरी के संबंध में कोई कारण नहीं बताया गया है। उनका कहना है कि नक़्शा नज़री में जिस वाहन से वे गए थे, उसे नहीं दिखाया गया है और यहां तक कि गवाहों की आवाजाही के मार्ग का भी उल्लेख नहीं किया गया है। उनका कहना है कि नक़्शा नज़री में यह नहीं दिखाया गया है कि बरामदगी का स्थान पानी से भरा हुआ था। उनका कहना है कि खेत के मालिक को नहीं बुलाया गया और उनसे पूछताछ भी नहीं की गई। वह इस बात से इनकार करते हैं कि नक़्शा नज़री थाना में तैयार किया गया था और घटना को एक अलग रंग देने के लिए भी समय से पहले तैयार किया गया है। उनका कहना है कि नक़्शा नज़री में आरोपी के नाम का उल्लेख नहीं किया गया था और धारा 201 भ०द०वि० पर ओवरराइटिंग है।

32. वह कहता है कि प्रदर्श क-8 जो घटनास्थल की साइट प्लान है, अभियुक्त के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है। जिस स्थान पर सी.सी.टी.वी. कैमरा स्थापित किया गया था, वह भी प्रदर्श क-8 में नहीं दिखाया गया है। यह सही है कि जिस स्थान से गवाहों ने आरोपी को मृतक को ले जाते हुए देखा है, उसका भी नक़्शा नज़री में उल्लेख नहीं है और आगे यह उल्लेख नहीं है कि आरोपी ने मृतक को कहां से बुलाया था। उनका कहना है

कि यह सही है कि नक़्शा नज़री प्रदर्श क-8, इसकी तैयारी की तारीख का उल्लेख नहीं किया गया है और सूचनाकर्ता के घर और स्थान "ए" के बीच की दूरी का भी उल्लेख नहीं किया गया है। नक़्शा नज़री सूचनाकर्ता की ओर इशारा करते हुए तैयार किया गया था। उनका कहना है कि सूचनाकर्ता घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि मृतक की गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी, लेकिन अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ अपहरण का मामला दर्ज किया गया था। उनका कहना है कि जब गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज की जाती है तो उसमें किसी भी धारा का उल्लेख नहीं किया जाता है। आरोपी की गिरफ्तारी के बाद सूचनाकर्ता थाने आया था या नहीं उसे याद नहीं है। उसे याद नहीं है कि कितने दिनों के बाद उसने गवाह गुलशेर से पूछताछ की थी। फिर वह कहता है कि उसे याद नहीं है कि गवाह अ०सा०-3 वसीम ने कहा है कि आरोपी अहसान और नौशाद ने उसकी उपस्थिति में शव बरामद किया था और फ़र्द पर उसके हस्ताक्षर भी किए गए थे और अगर उसने उसे बताया होता तो उसके बयान में इसका उल्लेख किया गया होता। यह कहना गलत है कि उन्होंने मामले की जांच नहीं की है और सूचनाकर्ता के साथ साजिश में आरोपी के खिलाफ झूठा और आधारहीन आरोप पत्र दाखिल किया है। उन्होंने आगे कहा कि यह गलत है कि सभी कार्यवाही थाना में की गई है और मामले को एक अलग रंग देने और अच्छा काम दिखाने के लिए समय से पहले की गई है और झूठे तरीके से कागजात तैयार किए गए हैं।

33. अ०सा०-7 रामजानी पंचनामा का गवाह है। वह पूछताछ पर अपने हस्ताक्षर साबित करता है जिसे प्रदर्श क-10 के रूप में चिह्नित किया गया है। अपनी जिरह में उन्होंने कहा कि पंचनामा के पांच गवाहों की राय में, मृतक की मृत्यु डूबने के कारण हुई। वह इस बात से इनकार करता है कि पूछताछ उसके सामने तैयार नहीं की गई थी और उसने केवल इस पर हस्ताक्षर किए थे।

34. अ०सा०-8 कांस्टेबल भूपेंद्र कुमार पंचनामा के गवाह हैं, जिन्हें बाद में मृत शरीर सौंप दिया गया और उन्होंने और कांस्टेबल हर्ष तोमर ने इसे शव परीक्षण के लिए ले लिया। वह फॉर्म 13 और अन्य प्रासंगिक दस्तावेजों क-11 से 14 को प्रदर्श साबित करता है।

35. अपनी जिरह में वह कहता है कि वह हर्ष तोमर के साथ सुबह थाना से निकला था। वह अपनी मोटरसाइकिल पर सी.एच.सी. उन्होंने कहा है कि प्रदर्श क-10 में आरोपी के नाम का उल्लेख नहीं है और इसमें धारा 364 भ०द०वि० के अंक 4 पर ओवरराइटिंग है। वह बताते हैं कि प्रदर्श क-10, रिपोर्ट की तारीख, जांच शुरू होने का समय और स्थान का उल्लेख नहीं किया गया है। उनका कहना है कि कॉलम 4 में शव बरामद होने के स्थान पर सी.एच.सी. उन्होंने आगे कहा कि कॉलम 7 में, उक्त दस्तावेज के बंद होने के समय का उल्लेख नहीं किया गया है। उन्होंने बताया कि शव लेकर वह शव परीक्षण हाउस पहुंचे थे।

36. दोनों अपीलों में अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री कृपा शंकर मिश्रा, श्री ए.एन. मुल्ला, श्री शशि शेखर तिवारी, श्री अरुण कुमार पांडे, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों (पेपर-बुक, उच्च न्यायालय की फाइल और विचारण न्यायालय के अभिलेखों) का अवलोकन किया।

37. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता निम्नानुसार प्रस्तुत किए गए: -

(i). अज्ञात व्यक्ति के खिलाफ धारा 364 भ०द०वि० के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई थी, हालांकि 10.8.2017 को दर्ज होने के लिए एक गुमशुदगी की रिपोर्ट दी गई थी।

(ii). अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों के नाम का खुलासा 10.8.2017 को सूचनाकर्ता द्वारा दिए गए दूसरे आवेदन में पहली बार प्रस्तुत मामले में आया था।

(iii). मृत शरीर की बरामदगी से संबंधित कथित फ़र्द बरामदगी में, यह उल्लेख किया गया है कि प्रस्तुत मामले में धारा 302/201 भ०द०वि० जोड़ी गई है।

(iv). मृतक के शव का पंचनामा उसकी बरामदगी के पश्चात् किया गया, लेकिन फिर भी बरामदी मेमो में, इस तथ्य के बावजूद कि विवेचनाधिकारी ने लिखा था कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और 201 भी जोड़ी गई हैं, शव परीक्षण में केवल मामला धारा 364/302 के अंतर्गत होने का उल्लेख है। शव परीक्षण रिपोर्ट में धारा 201 भ०द०वि० का कोई उल्लेख नहीं है।

(v). अ०सा०-1 नादिम अभियुक्तों द्वारा मृतक को उनके साथ ले जाने का प्रत्यक्षदर्शी नहीं है। वह दिनांक 10.8.2017 के दूसरे प्रार्थना-पत्र में अभियुक्तों के नाम प्रकट करता है और बताता है कि गुलशेर और शरिके उस ले जाने के साक्षी थे तथा यह भी डॉ. सईद अनवार के घर में स्थापित सी.सी.टी.वी. कैमरे में रिकॉर्ड किया गया था।

(vi). सी.सी.टी.वी. फुटेज के साक्ष्य पर बिल्कुल भी भरोसा नहीं किया जा सकता है क्योंकि डॉ. सईद अनवर, जिस व्यक्ति के घर/परिसर पर उक्त कैमरा लगाया गया था, उसकी जांच नहीं की गई थी, इसके संबंध में साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी के तहत कोई प्रमाण पत्र नहीं है और उक्त क्लिपिंग की तारीख और समय की कोई निश्चितता नहीं है क्योंकि अ०सा०-2 गुलशेर ने भी कहा है कि आरोपी बच्चा पहले भी टहलने के लिए।

(vii). प्रस्तुत मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है जिसमें परिस्थितियों की श्रृंखला में लिंक स्पष्ट रूप से गायब हैं।

(viii). अभियुक्त-अपीलकर्ता की गिरफ्तारी पूरी तरह से संदिग्ध है क्योंकि विवेचनाधिकारी का कहना है कि फ़र्द बरामदगी में किसी भी गवाह के हस्ताक्षर नहीं थे और उसी में तारीख भी गायब थी। उन्होंने आगे कहा कि जिस व्यक्ति को लापता होने के बारे में जानकारी नहीं दी गई थी, उसका विवरण और शव की बरामदगी भी संदिग्ध है क्योंकि यह कथित तौर पर 11.8.2017 को बरामद किया गया था, लेकिन उक्त बरामदगी के संबंध में नक़्शा नज़री 13.8.2017 को तैयार किया गया है, जिसके लिए विवेचनाधिकारी द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं

दिया गया है। वही यह दिखाने के लिए जाएगा कि उक्त दस्तावेज बाद में एक बाद के विचार के रूप में तैयार किया गया था।

(ix). मृतक को ले जाने की घटना के संबंध में नक़्शा नज़री पर तारीख नहीं है। इसमें वह जगह भी नहीं दिखाई जाती है जहां सी.सी.टी.वी. इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

(x). जिस स्थान से मृतक का शव बरामद किया गया था, वह गन्ने का खेत था और अभिलेखों पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह दिखाया जा सके कि इसमें पानी भरा हुआ था ताकि बच्चा उसमें डूब सके।

(xi). तथ्य जो प्रतीत होता है वह यह है कि मृतक की मृत्यु कहीं डूबने के कारण हुई थी, जिसके बाद सूचनाकर्ता के परिचित आरोपी व्यक्ति प्रस्तुत मामले में शामिल थे क्योंकि सूचनाकर्ता की उनके साथ कुछ दुश्मनी थी और फिर पुलिस ने अच्छा काम दिखाने के लिए उन्हें फंसाया है। प्रस्तुत मामले में पूरी विवेचना थाना में की जाती है और मामले को एक अलग रंग देने के लिए कागजात तैयार किए गए हैं।

(xii). अपीलकर्ताओं का उक्त अपराध करने का कोई मकसद नहीं है।

(xiii). अपील की अनुमति दी जाए और निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश को रद्द किया जाए और अभियुक्त-अपीलकर्ता को उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों से बरी कर दिया जाए और उन्हें जेल से रिहा करने का निर्देश दिया जाए क्योंकि वे जेल में हैं।

38. प्रति विपरीत राज्य के अधिवक्ताओं ने रद्द करने के लिए प्रार्थना का विरोध किया और निम्नानुसार प्रस्तुत किया:

(i). आरोपी-अपीलकर्ता पहले सूचनाकर्ता से परिचित होते हैं।

(ii). गुलशेर, अ०सा०-2 ने उन्हें मृतक को अपने साथ ले जाते हुए देखा है।

(iii). दोनों आरोपी-अपीलकर्ताओं की ओर इशारा करते हुए मृतक का शव बरामद किया गया था।

(iv). आरोपी-अपीलकर्ताओं को डॉ. सईद अनवर के परिसर में स्थापित एक कैमरे के सी.सी.टी.वी. फुटेज में मृतक को ले जाते हुए देखा गया था।

(v). एफ.एस.एल. रिपोर्ट मृतक के कपड़ों पर मौजूद मानव रक्त को दर्शाती है।

(vi). अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित कर दिया है और श्रृंखला में लिंक पूर्ण हैं।

(vii). प्रस्तुत अपील किसी भी योग्यता से रहित है और खारिज किए जाने के लिए उत्तरदायी है।

39. पक्षों के अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेखों देखने के बाद, यह स्पष्ट है कि आरोपी-अपीलकर्ताओं को प्रस्तुत मामले में पहले सूचनाकर्ता द्वारा पुलिस को दिए गए दूसरे आवेदन दिनांक 10.8.2017 के आधार पर आरोपी बनाया गया है। शुरुआत में उनके द्वारा एक गुमशुदगी की रिपोर्ट दी गई थी, जिसे धारा 364 भ०द०वि० के तहत प्राथमिकी के रूप में दर्ज किया गया था, जिसमें उनका नाम नहीं है। फिर वह उसी दिन पुलिस को एक और आवेदन देता है, जिसमें कहा गया है कि गुलशेर और शारिक ने आरोपी अहसान और नौशाद को अपने बेटे ज़ैद को ले जाते हुए देखा था और यह सी.सी.टी.वी. में भी दर्ज है, जिसका कैमरा डॉ. सईद अनवर के घर पर लगाया गया है। इसके बाद आरोपी-अपीलकर्ताओं को प्रस्तुत मामले में आरोपी बनाया गया था। आरोपी अहसान सूचनाकर्ता की स्थापना में काम कर रहा था। आरोपी नौशाद अहसान का रिश्तेदार था और उससे मिलने जाता था और इस तरह सूचनाकर्ता को पता था। अभियोजन पक्ष का मामला दोनों अभियुक्तों को 10/11.8.2017 की रात में गिरफ्तार किया गया था। कहा जाता है कि गिरफ्तारी अधिकारी अ०सा०-6 द्वारा गिरफ्तारी का एक फ़र्द तैयार किया गया था, जिसने अपनी जिरह में कहा था कि आरोपी को आरोपी अहसान के घर से गिरफ्तार किया गया था, जहां नौशाद भी मौजूद था और उस समय अहसान के परिवार के सदस्य और माता-पिता भी मौजूद थे और एक फ़र्द तैयार किया गया था। उनका कहना है कि फ़र्द पर अहसान के माता-पिता या परिवार के सदस्यों के हस्ताक्षर नहीं हैं। वह आगे कहते हैं कि तारीख के कॉलम में कोई तारीख का उल्लेख नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि इसमें इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि उनकी गिरफ्तारी के बारे में किसे सूचित किया गया था। इस प्रकार गिरफ्तारी का ज्ञापन अधूरा है और इसमें महत्वपूर्ण विवरण का अभाव है। इसके बाद वह कहता है कि आरोपियों को ले जाया गया और उनके संकेत पर राज्यों ने मृतक ज़ैद का शव एक याकूब के गन्ने के खेत से बरामद किया। अभियोजन पक्ष द्वारा याकूब से पूछताछ नहीं की गई है। मृतक की मौत का कारण शव परीक्षण से पहले डूबने के कारण दम घुटना है। मृत शरीर की बरामदगी के स्थान की नक़्शा नज़री कथित बरामदगी के दो दिनों के बाद तैयार की गई है और उसमें भी खेत के पानी से भरे होने का कोई उल्लेख नहीं है और इस प्रकार इस तथ्य की पुष्टि करने के लिए अभिलेखों पर कुछ भी नहीं है कि खेत पानी से भरा हुआ था। जिस स्थान से मृतक को कथित तौर पर आरोपी व्यक्तियों द्वारा ले जाया गया था, उसकी नक़्शा नज़री उस तारीख को अंकित नहीं करती है जिस दिन इसे तैयार किया गया था। विवेचनाधिकारी द्वारा इस बात का कोई उचित कारण नहीं बताया गया है कि मृतक को ले जाने के स्थान के संबंध में नक़्शा नज़री में तारीख का उल्लेख क्यों नहीं किया गया है और आगे यह भी बताया गया है कि कथित बरामदगी के दो दिनों के बाद शव की बरामदगी के स्थान के बारे में नक़्शा नज़री क्यों तैयार किया गया है। इसके अलावा, अभियोजन पक्ष द्वारा सी.सी.टी.वी. फुटेज पर भरोसा किया जा रहा है ताकि आरोपी व्यक्तियों को मृतक को ले जाते हुए दिखाया जा सके। बताया जा रहा है कि उक्त सी.सी.टी.वी. कैमरा डॉ. सईद अनवर के घर पर लगाया गया है। प्रस्तुत मामले में डा सईद अनवर से पूछताछ नहीं की गई है। उक्त सी.सी.टी.वी. फुटेज में

आरोपी व्यक्तियों द्वारा मृतक को ले जाने की तारीख और समय नहीं दिखाया गया है। यहां तक कि उक्त सी.सी.टी.वी. फुटेज के संबंध में भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी के तहत कोई प्रमाण पत्र नहीं है।

40. इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य की स्वीकार्यता के संबंध में कानून तुच्छ है। सी.सी.टी.वी. फुटेज साक्ष्य में स्वीकार्य हो सकता है यदि यह भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी के मानदंडों को पूरा करता है। उक्त धारा के तहत एक प्रमाण पत्र इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों के साथ होना चाहिए जब इसे साक्ष्य में प्रस्तुत किया जाता है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी(4) के तहत प्रमाण पत्र की आवश्यकता इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य के माध्यम से साक्ष्य की स्वीकार्यता के लिए एक शर्त है।

41. **अनवर पी.वी. बनाम पी.के. बशीर (2014)10 एस.सी.सी. 473**, के मामले में यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नानुसार अवधारित किया गया था:

"22. इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों से संबंधित साक्ष्य, जैसा कि यहां पहले उल्लेख किया गया है, एक विशेष प्रावधान होने के नाते, साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 सपठित धारा 63 के तहत द्वितीयक साक्ष्य पर सामान्य कानून उसी पर परिणाम देगा। जेनरालिया स्पेशियालिबस नॉन डीओगंत, अर्थात विशेष कानून हमेशा सामान्य कानून पर प्रबल होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायालय ने इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों की स्वीकार्यता से संबंधित धारा 59 और 65-ए पर ध्यान देने से चूक गई। इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों के माध्यम से द्वितीयक साक्ष्य के मामले में धारा 63 और 65 का कोई अनुप्रयोग नहीं है; यह पूरी तरह से धारा 65-ए और 65-बी द्वारा शासित है। उस सीमा तक, इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों से संबंधित द्वितीयक साक्ष्य की स्वीकार्यता पर कानून का बयान, जैसा कि इस न्यायालय ने **नवजोत संधू [दिल्ली राज्य (एनसीटी) बनाम नवजोत संधू, (2005) 11 एस.सी.सी. 600: 2005 एस.सी.सी. (क्रि) 1715**] में कहा है, सही कानूनी स्थिति निर्धारित नहीं करता है। इसे खारिज करने की आवश्यकता है और हम ऐसा करते हैं। द्वितीयक साक्ष्य के माध्यम से एक इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों को साक्ष्य में तब तक स्वीकार नहीं किया जाएगा जब तक कि धारा 65-बी के तहत आवश्यकताएं पूरी न हों। इस प्रकार, सीडी, वीसीडी, चिप, आदि के मामले में, दस्तावेज लेने के समय प्राप्त धारा 65-बी के संदर्भ में प्रमाण पत्र के साथ होना चाहिए, जिसके बिना, उस इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों से संबंधित द्वितीयक साक्ष्य अस्वीकार्य है।

42. **चंद्रभान सुदाम सनप बनाम महाराष्ट्र राज्य: 2025 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 174** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य की स्वीकार्यता के प्रश्न पर विचार करते हुए निम्नानुसार अवधारित किया गया है:

"47. अर्जुन पंडितराव खोतकर बनाम कैलाश कुशनराव गोरंट्याल, (2020) 3 एस.सी.सी. 216 में रिपोर्ट किए गए एक रेफरल आदेश में दो-न्यायाधीशों की पीठ ने निम्नलिखित प्रश्न को एक बड़ी पीठ को भेजा:

*"3. हमारी सुविचारित राय है कि **अनवर पी.वी. [अनवर पी.वी. बनाम पी.के. बशीर, (2014)10 एस.सी.सी. 473: (2015)1 एस.सी.सी. (सीआईवी)27: (2015)1 एस.सी.सी. (क्रि) 24: (2015)1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 108] के मद्देनजर, शफी मोहम्मद [शफी मोहम्मद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य।, (2018)2 एस.सी.सी. 801: (2018)2 एस.सी.सी. (सीआईवी)346: (2018)1 एस.सी.सी. (क्रि)860]** पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। समय बीतने के साथ-साथ जांच के दौरान इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों पर निर्भरता बढ़ना तय है। इसलिए इस संबंध में निश्चितता के साथ कानून बनाने की जरूरत है। इसलिए, हम इस मामले को एक वृहद न्यायपीठ को भेजना उचित समझते हैं। कहने की जरूरत नहीं है कि इस मामले में तात्कालिकता का एक तत्व है।*

48. अर्जुन पंडितराव खोतकर बनाम कैलाश कुशनराव गोरंट्याल में तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा (2020)7 एस.सी.सी.1 में रिपोर्ट किए गए निर्णय में संदर्भ का उत्तर दिया गया, जिसके प्रासंगिक अंश इस प्रकार हैं: -

*"45. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि **शफी मोहम्मद [शफी मोहम्मद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (2018)2 एस.सी.सी. 801: (2018)2 एस.सी.सी.807: (2018)2 एस.सी.सी. (सीआईवी) 346: (2018)2 एस.सी.सी. (सीआईवी)351: (2018)1 एस.सी.सी. (क्रि) 860: (2018)1 एस.सी.सी. (क्रि) 865]** का प्रमुख आधार कि इस तरह के प्रमाण पत्र को उन व्यक्तियों द्वारा सुरक्षित नहीं किया जा सकता है जिनके पास इलेक्ट्रॉनिक उपकरण नहीं है, पूरी तरह से गलत है। धारा 65-बी(4) के तहत अपेक्षित व्यक्ति से इस तरह के प्रमाण पत्र के उत्पादन के लिए एक न्यायाधीश को हमेशा एक आवेदन किया जा सकता है, जिसमें ऐसा व्यक्ति इसे देने से इनकार करता है।*

*46. परिणामस्वरूप, इस न्यायालय की एक खंडपीठ के दिनांक 3-4-2018 के निर्णय को **शफी मो. बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य [शफी मोहम्मद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (2018) 5 एस.सी.सी. 311: (2018) 2 एस.सी.सी. (क्रि) 704], शफी मोहम्मद [शफी मोहम्मद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (2018) 2 एस.सी.सी. 801: (2018) 2 एस.सी.सी. 807: (2018) 2 एस.सी.सी. (सीआईवी) 346: (2018)2 एस.सी.सी. (सीआईवी) 351: (2018)1 एस.सी.सी. (क्रि) 860:(2018)1 एस.सी.सी. (क्रि) 865],** भी होना चाहिए, और इसके द्वारा, खारिज कर दिया गया है।*

47. हालांकि, यहां एक चेतावनी दर्ज की जानी चाहिए। प्रस्तुत मामले के तथ्यों से पता चलता है कि प्रतिवादियों द्वारा उच्च न्यायालय के माध्यम से और अन्यथा किए गए सभी प्रयासों के बावजूद, संबंधित अधिकारियों से साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी(4) के तहत अपेक्षित प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए, फिर भी संबंधित अधिकारियों ने जानबूझकर किसी न किसी बहाने से ऐसा प्रमाण पत्र देने से इनकार कर दिया। एक तथ्य-परिस्थिति में जहां संबंधित व्यक्ति या प्राधिकारी से अपेक्षित प्रमाण पत्र के लिए आवेदन किया गया है, और व्यक्ति या प्राधिकारी या तो ऐसा प्रमाण पत्र देने से इनकार करता है, या ऐसी मांग का जवाब नहीं देता है, तो इस तरह के प्रमाण पत्र की मांग करने वाला पक्ष सीपीसी या भ०द०वि० या साक्ष्य अधिनियम के उपर्युक्त प्रावधानों के तहत अदालत में पेश करने के लिए आवेदन कर सकता है। एक बार जब अदालत में ऐसा आवेदन

किया जाता है, और अदालत तब आदेश देती है या निर्देश देती है कि अपेक्षित प्रमाण पत्र उस व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जाए जिसे वह इस तरह के प्रमाण पत्र का उत्पादन करने के लिए समन भेजता है, प्रमाण पत्र मांगने वाले पक्ष ने वह सब कुछ किया है जो वह अपेक्षित प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए कर सकता है.....

*52. हम यह जोड़ने में जल्दबाजी कर सकते हैं कि धारा 65-बी उस चरण की बात नहीं करती है जिस पर इस तरह के प्रमाण पत्र को न्यायालय को प्रस्तुत किया जाना चाहिए। **अनवर पी.वी. [अनवर पी.वी. बनाम पी.के. बशीर, (2014)10 एस.सी.सी. 473: (2015) 1 एस.सी.सी. (सीआईवी)27: (2015)1 एस.सी.सी. (क्रि)24: (2015)1 एस.सी.सी. (एल एंड एस)108]** में, इस न्यायालय ने कहा कि इस तरह के प्रमाण पत्र को इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों के साथ होना चाहिए जब इसे साक्ष्य में प्रस्तुत किया जाता है। हम केवल यह जोड़ सकते हैं कि ऐसा उन मामलों में है जहां इस तरह के प्रमाण पत्र को इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों पर भरोसा करने वाले व्यक्ति द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। हालांकि, ऐसे मामलों में जहां या तो एक दोषपूर्ण प्रमाण पत्र दिया जाता है, या ऐसे मामलों में जहां इस तरह के प्रमाण पत्र की मांग की गई है और संबंधित व्यक्ति द्वारा नहीं दिया जाता है, विचारण करने वाले न्यायाधीश को साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी(4) में निर्दिष्ट व्यक्ति/व्यक्तियों को बुलाना चाहिए, और यह अपेक्षा करनी चाहिए कि ऐसा प्रमाण पत्र ऐसे व्यक्ति/व्यक्तियों द्वारा दिया जाए। यह विचारण न्यायाधीश को तब करना चाहिए जब उपरोक्त परिस्थितियों में अपेक्षित प्रमाण पत्र के बिना उसके सामने इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों पेश किया जाता है। यह, निश्चित रूप से, कानून के अनुसार और प्रत्येक मामले के तथ्यों पर न्याय की आवश्यकताओं के अनुसार सिविल मामलों में प्रयोग किए जा रहे विवेक के अधीन है। जब आपराधिक मुकदमों की बात आती है, तो सामान्य सिद्धांत को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि अभियुक्त को भ०द०वि० की प्रासंगिक धाराओं के तहत मुकदमे की शुरुआत से पहले उन सभी दस्तावेजों की आपूर्ति की जानी चाहिए जिन पर अभियोजन पक्ष भरोसा करना चाहता है।*

56. इसलिए, सामान्य प्रक्रिया के संदर्भ में, अभियोजन पक्ष उन सभी दस्तावेजों की आपूर्ति करने के लिए बाध्य है जिन पर मुकदमे की शुरुआत से पहले एक अभियुक्त को भरोसा किया जा सकता है। इस प्रकार, आपराधिक मुकदमों में अदालतों द्वारा बाद के चरण में साक्ष्य दायर करने की अनुमति देने की शक्ति का प्रयोग करने से अभियुक्त के लिए गंभीर या अपरिवर्तनीय पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए। धारा 91 या 311 भ०द०वि० या साक्ष्य अधिनियम की धारा 165 के तहत अभियोजन पक्ष द्वारा किसी भी आवेदन की जांच करते समय अदालत द्वारा पक्षों के अधिकारों के संबंध में एक संतुलन अभ्यास किया जाना चाहिए। प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर, और अदालत यह देखने के बाद विवेक का प्रयोग करती है कि आरोपी निष्पक्ष सुनवाई के अभाव में पूर्वाग्रह से ग्रस्त नहीं है, अदालत उपयुक्त मामलों में अभियोजन पक्ष को बाद में इस तरह के प्रमाण पत्र को प्रस्तुत करने की अनुमति दे सकती है। यदि यह अभियुक्त है जो अपने बचाव के हिस्से के रूप में अपेक्षित प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना चाहता है, तो यह फिर से मामले के न्याय पर निर्भर करेगा - कानून के अनुसार अदालत द्वारा प्रयोग किए जाने वाले विवेक।

*61. इसलिए, हम दोहरा सकते हैं कि धारा 65-बी(4) के तहत आवश्यक प्रमाण पत्र इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों के माध्यम से साक्ष्य की स्वीकार्यता के लिए एक शर्त है, जैसा कि **अनवर पीवी [अनवर पी.वी. बनाम पीके बशीर, (2014) 10 एस.सी.सी. 473: (2015)1 एस.सी.सी. (सीआईवी)27: (2015)1 एस.सी.सी. (क्रि)24: (2015)1 एस.सी.सी. (एल एंड एस)108], और शफी मोहम्मद [शफी मोहम्मद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (2018)2 एस.सी.सी. 801: (2018)2 एस.सी.सी. 807: (2018)2 एस.सी.सी. (सीआईवी) 346: (2018)2 एस.सी.सी. (सीआईवी)351: (2018)1 एस.सी.सी. (क्रि)860: (2018)1 एस.सी.सी. (क्रि) 865]।** इस तरह के प्रमाण पत्र के स्थान पर मौखिक साक्ष्य संभवतः पर्याप्त नहीं हो सकता है क्योंकि धारा 65-बी(4) कानून की एक अनिवार्य आवश्यकता है। वास्तव में, टेलर बनाम टेलर [टेलर बनाम टेलर, [एलआर] 1 अध्याय 426] में पवित्र सिद्धांत, जिसका पालन इस न्यायालय के कई निर्णयों में किया गया है, को भी लागू किया जा सकता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी(4) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि द्वितीयक साक्ष्य केवल तभी स्वीकार्य है जब बताए गए तरीके से नेतृत्व किया जाए और अन्यथा नहीं। अन्यथा धारण करने के लिए धारा 65-बी(4) को ओटियोज किया जाएगा।*

73. संदर्भ का उत्तर इस प्रकार यह कहकर दिया जाता है कि:

*73.1. **अनवर पी.वी. [अनवर पी.वी. बनाम पी.के. बशीर, (2014) 10 एस.सी.सी. 473: (2015) 1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 27: (2015) 1 एस.सी.सी. (क्रि) 24: (2015) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 108**], जैसा कि हमारे द्वारा ऊपर स्पष्ट किया गया है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी पर इस न्यायालय द्वारा घोषित कानून है। **टोमासो ब्रूनो [टोमासो ब्रूनो बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2015) 7 एस.सी.सी. 178: (2015) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 54]** में निर्णय, प्रति इंक्यूरियम होने के कारण, कानून को सही ढंग से निर्धारित नहीं करता है। इसके अलावा, **शफी मोहम्मद [शफी मोहम्मद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (2018) 2 एस.सी.सी. 801: (2018) 2 एस.सी.सी. 807: (2018) 2 एस.सी.सी. (सीआईवी) 346: (2018) 2 एस.सी.सी. (सीआईवी) 351: (2018) 1 एस.सी.सी. (क्रि) 860: (2018) 1 एस.सी.सी. (क्रि) 865]** और दिनांक 3-4-2018 के निर्णय को शफी मोहम्मद के रूप में रिपोर्ट किया गया। हिमाचल प्रदेश राज्य [शफी मोहम्मद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (2018)5 एस.सी.सी. 311: (2018) 2 एस.सी.सी. (क्रि) 704], कानून को सही ढंग से निर्धारित नहीं करते हैं और इसलिए इसे खारिज कर दिया जाता है।*

73.2. ऊपर उल्लिखित स्पष्टीकरण यह है कि धारा 65-बी(4) के तहत आवश्यक प्रमाण पत्र अनावश्यक है यदि मूल दस्तावेज स्वयं प्रस्तुत किया जाता है। यह लैपटॉप कंप्यूटर, कंप्यूटर टैबलेट या यहां तक कि एक मोबाइल फोन के मालिक द्वारा किया जा सकता है, गवाह बॉक्स में कदम रखकर और यह साबित करके कि संबंधित उपकरण, जिस पर मूल जानकारी पहले संग्रहीत की जाती है, उसके स्वामित्व और/या उसके द्वारा संचालित है। ऐसे मामलों में जहां "कंप्यूटर" "कंप्यूटर सिस्टम" या "कंप्यूटर नेटवर्क" का हिस्सा होता है और इस तरह के सिस्टम या नेटवर्क को भौतिक रूप से अदालत में लाना असंभव हो जाता है, तो इस तरह के इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों में निहित जानकारी प्रदान करने का एकमात्र साधन धारा 65-बी(1) के अनुसार हो सकता है, साथ ही

*धारा 65-बी(4) के तहत अपेक्षित प्रमाण पत्र के साथ। **अनवर पी.वी. [अनवर पी.वी. बनाम पी.के. बशीर, (2014)10 एस.सी.सी. 473: (2015)1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 27: (2015)1 एस.सी.सी. (क्रि) 24: (2015)1 एस.सी.सी. (एल एंड एस)108]** में प्रस्तर-24 में अंतिम वाक्य जो "... यदि इस तरह के इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों का उपयोग साक्ष्य अधिनियम की धारा 62 के तहत प्राथमिक साक्ष्य के रूप में किया जाता है ..." इस प्रकार स्पष्ट किया गया है; इसे "साक्ष्य अधिनियम की धारा 62 के तहत,..." शब्दों के बिना पढ़ा जाना चाहिए। इस स्पष्टीकरण के साथ, अनवर पीवी के प्रस्तर-24 में बताए गए कानून **[अनवर पी.वी. बनाम पी.के. बशीर, (2014)10 एस.सी.सी. 473: (2015)1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 27: (2015)1 एस.सी.सी. (क्रि)24: (2015)1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 108]** पर फिर से विचार करने की आवश्यकता नहीं है।*

(महत्व सन्निविष्ट)

49. इस फैसले ने मामले को विवाद से परे कर दिया है। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 65-बी(4) के तहत प्रमाण पत्र इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों के माध्यम से साक्ष्य की स्वीकार्यता के लिए एक शर्त है और आगे यह स्पष्ट है कि न्यायालय ने अनवर पीवी (उपरोक्त) को भी कानून की सही स्थिति माना है।

43. जब हम अ०सा०-1 द्वारा विचारण के दौरान पेश किए गए सबूतों के माध्यम से आगे बढ़ते हैं, तो हम पाते हैं कि सूचनाकर्ता द्वारा पुलिस को दिए गए दूसरे आवेदन में आरोपी-अपीलकर्ताओं के नामों का उल्लेख करने के संबंध में तथ्य को उनके द्वारा अपनी गवाही में समझाया गया है जिसमें उन्होंने कहा है कि शाम को 10.8.2017 को गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज होने के बाद, गुलशेर और शारिक ने उसे बताया कि उन्होंने उसके बेटे को आरोपी अहसान और नौशाद के साथ जाते देखा था। प्रस्तुत मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा शारिक से पूछताछ नहीं की गई है। गुलशेर की जांच अ०सा०-2 के रूप में की गई है, जिसने अपनी गवाही में 10.8.2017 को सूचनाकर्ता से मुलाकात नहीं की है, लेकिन उसने कहा कि अगले दिन यानी 11.8.2017 को उसे पता चला कि ज़ैद लापता है और फिर वह थाना गया और पुलिस को बताया कि उसने अहसान और नौशाद को उसे ले जाते हुए देखा था। उक्त दोनों तथ्य अपने आप में विपरीत हैं। प्रस्तुत मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामला है।

44. घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है और अभियोजन पक्ष का पूरा मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर टिका हुआ है।

45. **रानी-महारानी बनाम होश नाक, 1941 इला0 एलजे 416** का मामला इस मोड़ पर संदर्भित करने योग्य है जो परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मुद्दे पर एक लोकस क्लासिक है। यह एक बहुत पुराना निर्णय है जो माननीय न्यायमूर्ति श्री सर तेज बहादुर सप्रू की सिफारिश पर अपने निर्णय के साठ वर्षों के बाद इलाहाबाद लॉ जर्नल में छपा था। होश नाक (उपरोक्त) के मामले में, यह माना गया है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा अपराध साबित करने के लिए चार चीजें आवश्यक हैं। वे हैं:

(1) : कि जिस परिस्थिति से निष्कर्ष निकाला जाता है वह पूरी तरह से स्थापित हो जाए।

(2) : कि सभी तथ्य परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए।

(3) : कि परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए।

(4) : कि परिस्थितियों, एक नैतिक निश्चितता के लिए, वास्तव में हर परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, लेकिन जिसे साबित करने का प्रस्ताव है।

46. फिर **गोविंद नरगुंदकर बनाम मध्य प्रदेश राज्य के पुत्र हनुमंत के मामले में: ए.आई.आर. 1952 एस.सी. 343** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रस्तर-10 में निम्नानुसार अवधारित किया गया है:

"10. ..... यह याद रखना अच्छी तरह से है कि ऐसे मामलों में जहां साक्ष्य परिस्थितिजन्य प्रकृति के हैं, जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पहली बार में पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए, और इस प्रकार स्थापित सभी तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए। फिर, परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए और वे ऐसी होनी चाहिए कि प्रत्येक परिकल्पना को बाहर कर दिया जा सके, लेकिन जिसे साबित करने का प्रस्ताव है। दूसरे शब्दों में, अब तक सबूतों की एक श्रृंखला पूरी होनी चाहिए ताकि अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़ा जा सके और यह ऐसा होना चाहिए कि सभी मानवीय संभावना के भीतर यह कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा .....

47. इसके बाद, **खासबाबा मारुति शोल्के बनाम महाराष्ट्र राज्य: (1973) 2 एस.सी.सी. 449 के मामले में सर्वोच्च** न्यायालय द्वारा निम्नानुसार अवधारित किया गया था:

"18. परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक अभियुक्त की दोषसिद्धि को आधार बनाने के लिए, न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य ऐसे चरित्र का है जो केवल अभियुक्त के अपराध के अनुरूप है। यदि, हालांकि, परिस्थितिजन्य साक्ष्य किसी अन्य तर्कसंगत स्पष्टीकरण को स्वीकार करता है, तो ऐसी स्थिति में संदेह का एक तत्व रेंग जाएगा और अभियुक्त को आवश्यक रूप से इसका लाभ होना चाहिए। जिन परिस्थितियों पर भरोसा किया गया है, वे निर्णायक चरित्र की होनी चाहिए और अभियुक्त के अपराध के अलावा हर परिकल्पना को बाहर करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, अब तक सबूतों की एक श्रृंखला पूरी होनी चाहिए ताकि आरोपी की बेगुनाही के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़ा जा सके। परिस्थितियों को यह दिखाना चाहिए कि सभी उचित संभावना के भीतर आरोपी द्वारा आक्षेपित कार्य किया गया होगा। यदि परिस्थितिजन्य साक्ष्यों से दो निष्कर्ष संभव हैं, एक अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करता है, और दूसरा, यह भी बोधगम्य है कि अपराध करना किसी और का कार्य था, तो परिस्थितिजन्य साक्ष्य अभियुक्त को दोषी ठहराने की गारंटी नहीं देंगे.....

48. परिस्थितिजन्य साक्ष्य इतना पूर्ण होना चाहिए कि अभियुक्त के अपराध के अलावा हर परिकल्पना को बाहर कर दिया जाए।

49. **शरद बर्धिचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य: (1984)4 एस.सी.सी.116** के प्रसिद्ध मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने परिस्थितिजन्य साक्ष्य के पांच सिद्धांतों को परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर स्तंभ के रूप में वर्णित किया है। पांच सिद्धांतों को प्रस्तर-153 में वर्णित किया गया है जो यहां निकाला गया है:

"153. इस निर्णय का एक करीबी विश्लेषण यह दिखाएगा कि एक आरोपी के खिलाफ एक मामले को पूरी तरह से स्थापित करने से पहले निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए:

(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए। यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय ने संकेत दिया कि संबंधित परिस्थितियां 'होनी चाहिए या होनी चाहिए' और 'स्थापित नहीं हो सकती हैं'। न केवल एक व्याकरणिक बल्कि 'साबित किया जा सकता है' और "साबित किया जाना चाहिए या साबित किया जाना चाहिए" के बीच एक कानूनी अंतर है जैसा कि इस न्यायालय ने **शिवाजी सहबराव बोबाडे बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1973)2 एस.सी.सी. 793; प्रस्तर-19, पृष्ठ 807]** में अवधारित किया था जहां निम्नलिखित टिप्पणियां की गई थीं: *"निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि अभियुक्त को अदालत द्वारा दोषी ठहराए जाने से पहले दोषी होना चाहिए और न केवल दोषी होना चाहिए और 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच की मानसिक दूरी लंबी है और निश्चित निष्कर्षों से अस्पष्ट अनुमानों को विभाजित करती है।*

(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात्, उन्हें व्याख्यात्मक नहीं होना चाहिए और अभियुक्त के दोषी होने के अलावा कोई अन्य परिकल्पना नहीं होनी चाहिए।

(3) परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए।

(4) उन्हें साबित की जाने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, और

(5) सबूतों की एक श्रृंखला होनी चाहिए ताकि अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप निष्कर्ष के लिए उचित आधार पर छोड़ दिया जा सके और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानवीय संभावना में यह कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।
इसके अलावा, उक्त निर्णय के प्रस्तर 154 में यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था:

"154. ये पांच स्वर्णिम सिद्धांत, यदि हम ऐसा कह सकते हैं, तो परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर किसी मामले के प्रमाण का पंचशील बनते हैं।

7. आपराधिक न्यायशास्त्र का मुख्य सिद्धांत यह है कि अभियोजन पक्ष को अपने पैरों पर खड़ा होना होगा और उसे उचित संदेह से परे अपने मामले को साबित करना चाहिए। संदेह एक उचित व्यक्ति का होना चाहिए और संदेह की तर्कसंगतता जांच किए जाने वाले अपराध की प्रकृति के अनुरूप होनी चाहिए।

50. अभिलेखों पर साक्ष्य की मूल्यांकन करने से पहले **भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 को इंगित करना आवश्यक है** जो निम्नानुसार है:

"27: अभियुक्त से प्राप्त जानकारी कितनी साबित हो सकती है:

परन्तु जब किसी पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति से प्राप्त सूचना के परिणामस्वरूप खोजे गए किसी तथ्य के रूप में कोई तथ्य गवाही दी जाती है, तो ऐसी बहुत सारी जानकारी, चाहे वह स्वीकारोक्ति के बराबर हो या नहीं, जो इस तथ्य से स्पष्ट रूप से संबंधित हो, साबित हो सकती है।

51. साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि यह धारा बाद के तथ्यों द्वारा पुष्टि के सिद्धांत पर आधारित है। वह सिद्धांत यह है कि जहां, एक स्वीकारोक्ति के परिणामस्वरूप अन्यथा अस्वीकार्य है, खोज की जाती है और तथ्यों की खोज की जाती है, यह एक गारंटी है कि किया गया स्वीकारोक्ति सच थी। लेकिन जानकारी का केवल वही हिस्सा साबित किया जा सकता है जो खोजे गए तथ्यों से स्पष्ट या सख्ती से संबंधित है।

52. **राम किशन मिथन लाल शर्मा बनाम बॉम्बे राज्य: ए.आई.आर. 1955 एस.सी. 104** के मामले में, शीर्ष न्यायालय द्वारा यह माना जाता है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 अधिनियम की धारा 25 और 26 में अधिनियमित नियमों का अपवाद है, जो यह प्रावधान करते हैं कि किसी पुलिस अधिकारी के सामने की गई कोई स्वीकारोक्ति किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति के खिलाफ साबित नहीं की जाएगी और किसी भी व्यक्ति द्वारा की गई कोई स्वीकारोक्ति नहीं की जाएगी जब तक वह एक पुलिस अधिकारी की हिरासत में है, जब तक कि यह एक मजिस्ट्रेट की तत्काल उपस्थिति में नहीं किया जाता है, ऐसे व्यक्ति के खिलाफ साबित किया जाएगा। हालांकि, जहां किसी पुलिस अधिकारी की हिरासत में किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति से प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप किसी तथ्य का पता चलता है, वहां की जानकारी का वह हिस्सा जो इस तथ्य से स्पष्ट रूप से संबंधित है, यह साबित हो सकता है कि यह स्वीकारोक्ति है या नहीं।

53. **पुलुकारी कोट्टैया बनाम किंग सम्राट के मामले में: ए.आई.आर. 1947 पीसी 67** के मामले में यह इस प्रकार अवधारित किया गया है: *"धारा 27 को लागू करने के लिए आवश्यक शर्त यह है कि किसी तथ्य की खोज को प्रस्तुत किया जाना चाहिए, और उसके बाद इतनी सारी जानकारी जो इस तथ्य से स्पष्ट रूप से संबंधित है, साबित हो सकती है"।*

54. धारा इस दृष्टिकोण पर आधारित है कि यदि कोई तथ्य वास्तव में दी गई जानकारी के परिणामस्वरूप खोजा जाता है, तो कुछ गारंटी दी जाती है जिससे जानकारी सत्य थी, और तदनुसार सुरक्षित रूप से साक्ष्य में दी जा सकती है, लेकिन स्पष्ट रूप से स्वीकार्य जानकारी की सीमा उस तथ्य की सटीक प्रकृति पर निर्भर होनी चाहिए जिससे ऐसी जानकारी संबंधित होने की आवश्यकता है।

55. **दिल्ली प्रशासन बनाम बालकृष्ण के मामले में: ए.आई.आर. 1972 एस.सी.3** ने माना है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 धारा 25 और 26 के परंतुक के रूप में है और पुलिस हिरासत में किए गए स्वीकारोक्ति के माध्यम से एक बयान जो स्पष्ट रूप से खोजे गए तथ्य से संबंधित है, अभियुक्त के खिलाफ सबूत है।

56. यह इस बात को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 का पुलिस द्वारा एक अभियुक्त के खिलाफ अक्सर दुरुपयोग किया गया है। इसलिए, न्यायालय को उपरोक्त प्रावधान के आवेदन के बारे में सतर्क और सतर्क रहना चाहिए। साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 और 26 के प्रावधानों द्वारा प्रदान की जाने वाली सुरक्षा को पुलिस द्वारा साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के प्रावधानों का सहारा लेकर दूर करने की मांग की जाती है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 की वैधता को शीर्ष न्यायालय ने बरकरार रखा है।

57. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की गिरफ्तारी के बाद, पुलिस ने शव की बरामदगी के लिए उनके साथ आगे बढ़े और यह आरोप लगाया गया है कि उनके इंगित करने पर, मृतक मो. ज़ैद किया गया था। बरामदगी के बारे में एक फ़र्द तैयार किया गया था जो कहा गया है कि इंस्पेक्टर पंकज कुमार त्यागी के आदेश पर देवेंद्र कुमार, सब-इंस्पेक्टर द्वारा लिखा गया था, वही प्रदर्श क-3 है। **बाबू साहेबगौड़ा रुद्रगौदर बनाम कर्नाटक राज्य: (2024) 8 एससीसी 149** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत दर्ज किए गए प्रकटीकरण बयान को साबित करने के लिए कानून को ठहराया और दोहराया है। यह निम्नानुसार अवधारित किया गया है:

"60. अब हम कानून के तहत आवश्यकता के बारे में चर्चा करेंगे ताकि साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 (इसके बाद "साक्ष्य अधिनियम" के रूप में संदर्भित किया जा रहा है) के तहत दर्ज किए गए प्रकटीकरण बयान और उसके आगे की गई खोजों को साबित किया जा सके।

61. साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत एक पुलिस अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया एक अभियुक्त का बयान मूल रूप से पूछताछ के दौरान विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज किए गए अभियुक्त के स्वीकारनामे का एक ज्ञापन है जिसे लिखित रूप में लिया गया है। इस तरह के बयान का इकबालिया हिस्सा अस्वीकार्य है और केवल वह हिस्सा जो स्पष्ट रूप से तथ्य की खोज की ओर ले जाता है, साक्ष्य में स्वीकार्य है जैसा कि इस न्यायालय द्वारा ***उत्तर प्रदेश राज्य बनाम देवमन उपाध्याय [उत्तर प्रदेश राज्य बनाम देवमन उपाध्याय, 1960 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 8: ए.आई.आर. 1960 एस.सी. 1125]*** *में निर्धारित किया गया है।*

62. इस प्रकार, जब विवेचनाधिकारी इस तरह के प्रकटीकरण बयान को साबित करने के लिए गवाह बॉक्स में कदम रखता है, तो उसे यह बताने की आवश्यकता होगी कि आरोपी ने उसे क्या कहा था। विवेचनाधिकारी अनिवार्य रूप से अपने और अभियुक्त के बीच हुई बातचीत के बारे में गवाही देता है, जिसे लिखित रूप में लिया गया है, जिससे आपत्तिजनक तथ्य (तथ्यों) की खोज होती है।

63. साक्ष्य अधिनियम की धारा 60 के अनुसार, सभी मामलों में मौखिक साक्ष्य प्रत्यक्ष होना चाहिए। यह धारा कोई अस्पष्टता नहीं छोड़ती है और यह आदेश देती है कि मौखिक साक्ष्य के मामले में कोई माध्यमिक/सुनी-सुनाई साक्ष्य नहीं दी जा सकती है, सिवाय धारा में उल्लिखित परिस्थितियों के। किसी ऐसे व्यक्ति के मामले में जो किसी तथ्य को सुनने का दावा करता है, उसके संबंध में केवल उसका साक्ष्य दिया जाना चाहिए।

64. साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत प्रकटीकरण कथन को साबित करने का तरीका इस न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में विचार का विषय रहा है, जिनमें से कुछ को नीचे संदर्भित किया जा रहा है।

*65. **मो. अब्दुल हफीज वी. आंध्र प्रदेश राज्य [मो. अब्दुल हफीज वी. आंध्र प्रदेश राज्य, (1983)1 एस.सी.सी.143: 1983 एस.सी.सी. (क्रि)139]**, इस न्यायालय द्वारा इस प्रकार अवधारित किया गया था: (एस.सी.सी. पी. 146, प्रस्तर-5)*

"5. ... यदि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत अन्यथा स्वीकारोक्ति स्वीकार्य है, तो विवेचनाधिकारी पर यह अनिवार्य है कि वह यह बताए और अभिलेखों करे कि किसने जानकारी दी; जब वह एक से अधिक अभियुक्तों के साथ काम कर रहा होता है, तो उसके द्वारा किन शब्दों का इस्तेमाल किया गया था ताकि प्राप्त जानकारी के अनुसार एक बरामदगी सूचना देने वाले व्यक्ति से जुड़ी हो सके ताकि उस व्यक्ति के खिलाफ आपत्तिजनक सबूत प्रदान किया जा सके।

*66. इसके अलावा, **सुब्रमण्य बनाम कर्नाटक राज्य [सुब्रमण्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2023) 11 एस.सी.सी. 255]** में यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था: (एस.सी.सी. पीपी 299-300, प्रस्तर-76 से 78)*

"76. उपरोक्त साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए, हम इस बात पर विचार करने के लिए आगे बढ़ते हैं कि क्या अभियोजन पक्ष कानून के अनुसार खोजों को साबित करने और स्थापित करने में सक्षम है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 इस प्रकार है:

'27. अभियुक्त से प्राप्त सूचना में से कितनी जानकारी सिद्ध की जा सकती है - बशर्ते कि, जब किसी पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति से प्राप्त सूचना के परिणामस्वरूप किसी तथ्य को गवाही दी जाती है, तो ऐसी बहुत सारी जानकारी, चाहे वह स्वीकारोक्ति के बराबर हो या नहीं, जैसा कि इस प्रकार खोजे गए तथ्य से स्पष्ट रूप से संबंधित है, साबित किया जा सकता है।

77. अभियोजन पक्ष के सभी पूर्वोक्त गवाहों के साक्ष्य में पहली और बुनियादी कमजोरी यह है कि उनमें से किसी ने भी अपीलकर्ता द्वारा दिए गए सटीक बयान की गवाही नहीं दी है, जिसके कारण अंततः साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत प्रासंगिक तथ्य की खोज हुई।

78. यदि, विवेचनाधिकारी के बारे में यह कहा जाता है कि अपीलकर्ता-अभियुक्त ने अपनी मर्जी और इच्छा से हिरासत में रहते हुए एक बयान दिया कि वह उस स्थान पर ले जाएगा जहां उसने अपराध के हथियार को छिपाया था, शव को दफनाने की जगह, कपड़े आदि, तो सबसे पहले विवेचनाधिकारी को थाना में ही दो स्वतंत्र गवाहों को बुलाना चाहिए था। एक बार जब दो स्वतंत्र गवाह थाना में उनकी उपस्थिति में पहुंचेंगे, तो अभियुक्त को एक उचित बयान देने के लिए कहा जाना चाहिए क्योंकि वह उस स्थान को इंगित करने के संबंध में चाहता है जहां उसने अपराध के हथियार को छिपाया है, आदि। जब अभियुक्त हिरासत में रहते हुए दो स्वतंत्र गवाहों (पंच गवाहों) के समक्ष ऐसा बयान देता है, तो अभियुक्त द्वारा बोले गए सटीक बयान, या यों कहें कि अभियुक्त द्वारा बोले गए सटीक शब्दों को पंचनामा के पहले भाग में शामिल किया जाना चाहिए जिसे विवेचनाधिकारी कानून के अनुसार तैयार कर सकता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के प्रयोजन के लिए पंचनामा का यह पहला भाग हमेशा स्वतंत्र गवाहों की उपस्थिति में थाना में तैयार किया जाता है ताकि यह विश्वास किया जा सके कि अभियुक्त द्वारा अपनी इच्छा और इच्छा पर उस स्थान को इंगित करने की इच्छा व्यक्त करते हुए एक विशेष बयान दिया गया था जहां अपराध के हथियार या अपराध के कमीशन में उपयोग की गई कोई अन्य वस्तु छिपा दिया गया था। एक बार पंचनामा का पहला भाग पूरा हो जाने के बाद, पुलिस पार्टी आरोपी और दो स्वतंत्र गवाहों (पंच गवाह) के साथ उस विशेष स्थान पर जाएगी, जैसा कि आरोपी के नेतृत्व में किया जा सकता है। यदि उस विशेष स्थान से अपराध के हथियार या खून से सने कपड़े या कोई अन्य वस्तु जैसी कोई चीज मिलती है तो पूरी प्रक्रिया का वह हिस्सा पंचनामा का दूसरा भाग होगा। इस तरह कानून विवेचनाधिकारी से उम्मीद करता है कि वह साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत विचार किए गए खोज पंचनामा को आकर्षित करेगा। यदि हम विवेचनाधिकारी के पूरे मौखिक साक्ष्य को पढ़ते हैं तो यह स्पष्ट है कि मामले के उपरोक्त सभी प्रासंगिक पहलुओं में इसकी कमी है। (महत्व सन्निविष्ट)

*67. इसी तरह का दृष्टिकोण इस न्यायालय द्वारा **रामानंद बनाम रामानंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [रामानंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2023) 16 एस.सी.सी. 510: 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1396]**, में लिया गया था जिसमें इस न्यायालय ने माना कि जांच के दौरान विवेचनाधिकारी द्वारा तैयार किए गए ज्ञापन का प्रदर्शन मात्र इसकी सामग्री के प्रमाण के बराबर नहीं हो सकता है। शपथ पर गवाही देते समय, विवेचनाधिकारी को उन घटनाओं के क्रम का वर्णन करना होगा जो प्रकटीकरण बयान की रिकॉर्डिंग के लिए घटित हुईं।*

58. विवेचनाधिकारी का कहना है कि अहसान के घर से अभियुक्तों की गिरफ्तारी के बाद उन्होंने उनसे पूछताछ की और इसे केस डायरी में नोट किया और फिर उनके इंगित करने पर ज़ैद के शव की बरामदगी की।
आरोपी के बयान का ज्ञापन विवेचनाधिकारी द्वारा साबित नहीं किया गया है और यह केवल शव की बरामदगी के संबंध में फ़र्द को उसके द्वारा साबित किया गया है।

59. अब इस मामले में धारा 313 भ०द०वि० की प्रयोज्यता पर आते हुए, यहां यह बताना उचित है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 अभियुक्त को व्यक्तिगत रूप से उसके खिलाफ साक्ष्य में दिखाई देने वाली किसी भी परिस्थिति की व्याख्या करने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से है।

60. इस दृष्टि से, अपीलकर्ता से भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत पूछे गए प्रश्नों की प्रकृति को भी देखा और संदर्भित किया जाना आवश्यक है। अपीलकर्ता से पूछे गए प्रश्न अभियुक्त द्वारा उत्तर देने के लिए अत्यंत जटिल थे। प्रश्नों को अधिक स्पष्ट होना चाहिए था, सही तथ्य को स्वतंत्र रूप से और सीधे तरीके से प्रस्तुत करते हुए, बजाय इसके कि उन्हें कई परिस्थितियों के मिश्रण के साथ प्रस्तुत किया जाए और अभियुक्त से स्पष्ट उत्तर की अपेक्षा की जाए। इसका एक उदाहरण प्रश्न संख्या 4 है, जो दोनों अभियुक्तों से पूछा गया और यह एक पृष्ठ से अधिक लंबा है तथा सटीक रूप से 33 पंक्तियों में विस्तारित है। इसी प्रकार, प्रश्न संख्या 7 और 9 भी बहुत लंबे प्रश्न हैं, जो अलग-अलग घटनाओं से संबंधित हैं, लेकिन इन्हें सामूहिक रूप से पूछे गए और जटिल प्रश्न हैं। इस प्रकार की परिस्थितियों को अभियुक्त से उत्तर के लिए प्रस्तुत करना वास्तव में काल्पनिक ही माना जा सकता है।

आरोपी से पूछे गए प्रश्न उसके लिए समझ में आने चाहिए, भले ही वह एक अनपढ़ व्यक्ति हो। एक जटिल प्रश्न जिसमें एक स्ट्रिंग में मुद्दे के कई पहलू शामिल हैं, से बचा जाना चाहिए। प्रश्न में एक से अधिक परिस्थितियाँ या कई उदाहरणों का संयोजन नहीं होना चाहिए। प्रश्न उचित होना चाहिए। इस परीक्षा में, अदालत के लिए प्रश्नों की एक लंबी श्रृंखला पढ़ना और आरोपी से पूछना अनुचित है कि कथन सही है या नहीं। अभियुक्त से प्रत्येक भौतिक परिस्थिति के बारे में अलग-अलग पूछताछ की जानी चाहिए ताकि अभियुक्त को निष्पक्ष स्पष्टीकरण का अवसर मिल सके।

16. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 इस प्रकार है:

"313: अभियुक्त से पूछताछ करने की शक्ति:

(1) प्रत्येक जांच या मुकदमे में, अभियुक्त को व्यक्तिगत रूप से उसके विरुद्ध साक्ष्य में प्रकट होने वाली किसी भी परिस्थिति की व्याख्या करने में न्यायालय सक्षम बनाने के प्रयोजन के लिए-

(ए) किसी भी स्तर पर, अभियुक्त को पूर्व चेतावनी दिए बिना, उससे ऐसे प्रश्न रख सकता है जो न्यायालय आवश्यक समझे;

(ख) अभियोजन पक्ष के गवाहों से पूछताछ किए जाने के बाद और उसके बचाव के लिए बुलाए जाने से पहले, मामले पर आम तौर पर उससे पूछताछ करेगा:

बशर्ते कि एक समन मामले में, जहां न्यायालय ने अभियुक्त की व्यक्तिगत उपस्थिति को समाप्त कर दिया है, वह खंड (बी) के तहत उसकी परीक्षा को भी समाप्त कर सकता है।

(2) उपधारा (1) के अधीन अभियुक्त की जांच करते समय उसे कोई शपथ नहीं दी जाएगी।

(3) अभियुक्त ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने से इनकार करके या उनके झूठे उत्तर देकर स्वयं को दण्ड के भागी नहीं बनाएगा।

अनुवादित

4) अभियुक्त द्वारा दिए गए उत्तरों को ऐसी जांच या मुकदमे में ध्यान में रखा जा सकता है, और किसी अन्य अपराध में उसके पक्ष में या उसके खिलाफ साक्ष्य में रखा जा सकता है, या किसी अन्य अपराध के लिए मुकदमे में, जो ऐसे उत्तरों से पता चलता है कि उसने किया है।

(5) न्यायालय अभियुक्त के समक्ष रखे जाने वाले प्रासंगिक प्रश्नों को तैयार करने में अभियोजक और बचाव पक्ष के अधिवक्ता की सहायता ले सकता है और न्यायालय इस धारा के पर्याप्त अनुपालन के रूप में अभियुक्त द्वारा लिखित बयान दाखिल करने की अनुमति दे सकता है।

61. धारा के पढ़ने से यह स्पष्ट है कि यह पता लगाना न्यायालय का कर्तव्य है कि क्या धारा 313 भ०द०वि० के तहत अभियुक्त के सामने रखी गई परिस्थितियां उसके लिए समझदार थीं और क्या वह इसे समझने के बाद इसका उत्तर दे सकता है और क्या प्रश्न ने अभियुक्त के लिए कोई पूर्वाग्रह पैदा किया है।

62. यह कानून का विषय है कि अभियुक्त के खिलाफ साक्ष्य में दिखाई देने वाली परिस्थितियों को अभियुक्त को ऐसी परिस्थितियों की व्याख्या करने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से अभियुक्त को रखा जाना चाहिए। यह न्यायालय का अनिवार्य कर्तव्य है। हमने धारा 313 भ०द०वि० के तहत दर्ज पूरे बयान की जांच की है।

63. **जय देव और हरि सिंह बनाम पंजाब राज्य: ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 612** के मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि धारा 342 भ०द०वि० के तहत आरोपी व्यक्ति की परीक्षा का उद्देश्य उसे उसके खिलाफ साक्ष्य में दिखाई देने वाली किसी भी परिस्थिति को समझाने का अवसर देना है। धारा 342 भ०द०वि० के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय, न्यायालय को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि साक्ष्य में दिखाई देने वाली सभी प्रासंगिक परिस्थितियों को आरोपी व्यक्ति के सामने रखा जाए। अभियुक्त से कुछ सामान्य और व्यापक प्रश्न पूछना पर्याप्त नहीं होगा, क्योंकि इस तरह के प्रविधि को अपनाने से अभियुक्त को सभी प्रासंगिक परिस्थितियों को समझाने का अवसर नहीं मिल सकता है। दूसरी ओर, यह उचित या सही नहीं होगा कि अदालत आरोपी व्यक्ति से विस्तृत प्रश्न पूछे जो उसकी जिरह के बराबर हो सकते हैं। यह निर्धारित करने में अंतिम परीक्षा यह निर्धारित करने के लिए होगी कि धारा 342 के तहत आरोपी की निष्पक्ष जांच की गई है या नहीं, यह पूछताछ करना होगा कि क्या उससे पूछे गए सभी प्रश्नों के संबंध में, उसे यह कहने का अवसर मिला है कि वह उसके खिलाफ अभियोजन के मामले के संबंध में क्या कहना चाहता था। यदि ऐसा प्रतीत होता है कि आरोपी व्यक्ति की परीक्षा दोषपूर्ण थी और इस तरह उसके लिए एक पूर्वाग्रह पैदा किया गया है, तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह एक गंभीर दुर्बलता होगी। यह स्पष्ट है कि धारा 342 भ०द०वि० के तहत आरोपी व्यक्ति की जांच करने के तरीके के संबंध में कोई सामान्य नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है। सच्ची स्थिति यह प्रतीत होती है कि संक्षिप्तता के लिए जुनून जो कुछ सर्वव्यापी सामान्य प्रश्न पूछने से संतुष्ट हो सकता है, धारा 342 भ०द०वि० की आवश्यकताओं के साथ उतना ही असंगत है जितना कि संपूर्णता के लिए चिंता जो अनावश्यक रूप से विस्तृत और बड़ी संख्या-में प्रश्नों को निर्देशित कर सकता है जो आरोपी व्यक्तियों की जिरह के बराबर हो सकता है।

64. उपरोक्त निर्णय से यह स्पष्ट है कि प्रश्न में केवल परिस्थितियों को दिया जाना चाहिए, न कि विवरण, जो अन्यथा अभियुक्त की जिरह के बराबर हो सकता है।

65. **आंध्र प्रदेश राज्य बनाम चीमलपति गणेशेश्वर राव: ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 1850** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अभियुक्त को कई मामलों को लगाते हुए प्रश्न नहीं पूछे जाने चाहिए।

66. यह कानून का एक अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि एक दोषसिद्धि को केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर स्थापित नहीं किया जा सकता है जब तक कि इसे अभियुक्त के अपराध के अलावा किसी अन्य परिकल्पना पर नहीं समझाया जा सकता है।

67. यह अच्छी तरह से तय है कि एक मामले में जो परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर निर्भर करता है, कानून दो गुना आवश्यकताओं को दर्शाता है: -

(i) अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने के लिए आवश्यक परिस्थितियों की श्रृंखला में प्रत्येक कड़ी को उचित संदेह से परे अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित किया जाना चाहिए।

(ii) सभी परिस्थितियाँ केवल अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करते हुए सुसंगत होनी चाहिए।

68. **शरद बिरधीचंद सारदा (उपरोक्त)** के मामले में उपरोक्त सिद्धांत निम्नानुसार प्रतिपादित किया गया है: - *"परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक मामले में सामान्य सिद्धांत यह है कि जिन परिस्थितियों से अपराध का अनुमान लगाने की मांग की जाती है, उन्हें दृढ़ता से स्थापित किया जाना चाहिए; कि वे परिस्थितियाँ एक निश्चित प्रवृति की होनी चाहिए जो अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करती हैं; कि संचयी रूप से ली गई परिस्थितियों को एक श्रृंखला इतनी पूर्ण रूप से तैयार करनी चाहिए कि इस निष्कर्ष से कोई बच नहीं सके कि सभी मानवीय संभावनाओं के भीतर अपराध अभियुक्त द्वारा किया गया था और उन्हें अभियुक्त के अपराध के अलावा किसी भी परिकल्पना पर स्पष्टीकरण देने में असमर्थ होना चाहिए और उसकी बेगुनाही के साथ असंगत होना चाहिए।*

69. यह अच्छी तरह से तय है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक मामले में न्यायालयों को एक कर्तव्यनिष्ठ दृष्टिकोण होना चाहिए और दोषसिद्धि केवल उस मामले में दर्ज की जानी चाहिए जिसमें श्रृंखला के सभी लिंक पूर्ण हैं और अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करते हैं। प्रत्येक लिंक जब तक एक श्रृंखला से एक साथ नहीं जुड़ा होता है, तब तक संदेह का संकेत हो सकता है, लेकिन यह अपने आप में सबूत की जगह नहीं ले सकता है और आरोपी को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं होगा।

70. ऐसे मामलों में जहां साक्ष्य प्रकृति में विशुद्ध रूप से परिस्थितिजन्य है, जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकालने की मांग की जाती है, उन्हें किसी भी उचित संदेह से परे पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए और ऐसी परिस्थितियां सुसंगत होनी चाहिए और अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करते हुए एक पूरी श्रृंखला बनानी चाहिए और अभियोजन पक्ष द्वारा परिस्थितियों की श्रृंखला स्थापित की जानी चाहिए। **गीजगंदा सोमैया बनाम कर्नाटक राज्य (2007)9 एस.सी.सी. 315** के मामले में शीर्ष न्यायालय ने पहले के कई फैसलों का उल्लेख करते हुए प्रस्तर-15 में निम्नानुसार अवधारित किया गया था: -

"15. सर अल्फ्रेड विल्स ने अपनी बोधगम्य पुस्तक विल्स परिस्थितिजन्य साक्ष्य (अध्याय VI) में परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में विशेष रूप से पालन किए जाने वाले निम्नलिखित नियमों को निर्धारित किया है: (1) किसी भी कानूनी अनुमान के आधार के रूप में कथित तथ्यों को स्पष्ट रूप से साबित किया जाना चाहिए और तथ्यात्मक प्रस्ताव से जुड़े उचित संदेह से परे होना चाहिए; (2) सबूत का बोझ हमेशा उस पक्ष पर होता है जो किसी भी तथ्य के अस्तित्व का दावा करता है, जो कानूनी जवाबदेही का अनुमान लगाता है; (3) सभी मामलों में, चाहे प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य साक्ष्य हों, सबसे अच्छा सबूत पेश किया जाना चाहिए जो मामले की प्रकृति को स्वीकार करता है; (4) अपराध के अनुमान को सही ठहराने के लिए, दोषी तथ्य अभियुक्त की बेगुनाही के साथ असंगत होना चाहिए और उसके अपराध की तुलना में किसी अन्य उचित परिकल्पना पर स्पष्टीकरण देने में असमर्थ होना चाहिए; और (5) यदि अभियुक्त के अपराध का कोई उचित संदेह है, तो वह बरी होने के अधिकार का हकदार है।
बाद के फैसलों के एक कैटिना में भी यही सिद्धांत दोहराया गया है।

71. जहां तक सी.सी.टी.वी के साक्ष्य का संबंध है, यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी(4) के तहत किसी भी उपयुक्त प्रमाण पत्र के बिना है। इस प्रकार उक्त सी.सी.टी.वी. फुटेज पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। मामले की प्राथमिकी धारा 364 भ०द०वि० के तहत दर्ज की गई थी। बरामदगी का एक ज्ञापन प्रदर्श क-3 में कहा जाता है कि 11.8.2017 को विवेचनाधिकारी पंकज कुमार त्यागी के आदेश पर तैयार किया गया था, जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि प्रस्तुत मामले में धारा 302/201 भ०द०वि० जोड़ी गई है। बाद में मृतक के शरीर की पंचनामा की गई जिसमें केवल धारा 364/302 भ०द०वि० का उल्लेख किया गया है। इसमें धारा 201 भ०द०वि० का कोई संदर्भ नहीं है। उस स्थान की नक़्शा नज़री में जहां से मृतक को आरोपी-अपीलकर्ताओं द्वारा ले जाया गया बताया गया है, इस तथ्य का उल्लेख है कि यह धारा 364, 302, 201 364 भ०द०वि० के तहत केस अपराध संख्या-777 वर्ष 2017 से संबंधित घटना के स्थान का है। उक्त नक़्शा नज़री प्रदर्श क-8 है। यह वास्तव में आश्चर्यजनक है कि उक्त दस्तावेजों में धारा 201/364/302 भ०द०वि० का उल्लेख कैसे किया गया है क्योंकि प्राथमिकी केवल धारा 364 भ०द०वि० के तहत दर्ज की गई थी, लेकिन 11.8.2017 को तैयार किए गए प्रदर्श क-3 के अनुसार, इस मामले में धारा 302/201 भ०द०वि० जोड़ी गई थी। वही यह दर्शाता है कि उक्त नक़्शा नज़री प्रदर्श क-8 जिस पर वह तारीख नहीं है जिस पर इसे तैयार किया गया था, एक पूर्व-समयबद्ध दस्तावेज है। शव की बरामदगी भी इस मायने में भरोसेमंद नहीं है क्योंकि इसे गन्ने के खेत से बरामद किया गया है, जहां पानी होने का कोई उल्लेख नहीं है, लेकिन मौत का कारण एंटी-मॉर्टम डूबने के परिणामस्वरूप दम घुटना है और अभियोजन पक्ष का मामला नहीं है कि हत्या कहीं और की गई है और शव को कहीं और फेंक दिया गया था। विवेचनाधिकारी द्वारा कथित रूप से दर्ज किए गए आरोपियों के बयान, जिसके बाद उनके द्वारा कथित रूप से शव की बरामदगी को साबित

नहीं किया गया है। इसके अलावा, शव को उसकी बरामदगी के स्थान पर सील नहीं किया गया था, जिसके लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। इस पर जांच सीएचसी में की गई थी, जो कि इसमें इसकी बरामदगी के स्थान के रूप में दिखाया गया है। इस प्रकार शव की बरामदगी भी अभियोजन पक्ष की कहानी और चिकित्सा साक्ष्य के अनुरूप नहीं है। इस प्रकार, अंतिम बार देखे गए साक्ष्य की अविश्वसनीयता, सी.सी.टी.वी. फुटेज की अस्वीकार्यता, शव की बरामदगी में स्पष्ट अनियमितताएं, मृत्यु के कारण से संबंधित सबूतों की पुष्टि का अभाव, किसी भी मकसद का अभाव और जांच के दस्तावेजों को पूरी तरह से लापरवाह तरीके से तैयार किया जा रहा है, इसमें कोई संदेह नहीं है, लेकिन इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि परिस्थितियों की श्रृंखला में लिंक गायब हैं और जांच सही नहीं है।

72. अभियोजन पक्ष के संस्करण में स्पष्ट अवैधताओं, अनियमितताओं और विसंगतियों को देखते हुए यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि प्रस्तुत मामले में अपीलकर्ताओं का निहितार्थ बिना किसी कानूनी, स्वीकार्य और विश्वसनीय सबूत के है।

73. इस प्रकार अपील सफल होती है और **अनुमति** दी जाती है।

74. अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने और सजा सुनाने वाले विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश को एतद्द्वारा **रद्द** किया जाता है।

75. आरोपी-अपीलकर्ता जेल में बताए गए हैं। उन्हें किसी अन्य मामले में वांछित नहीं होने पर तुरंत जेल से रिहा करने का निर्देश दिया जाता है।

76. इस मोड़ पर यह न्यायालय अ०सा०-6 पंकज कुमार त्यागी, तत्कालीन थानाध्यक्ष, थाना- देवबंद, जिला सहारनपुर द्वारा की गई विवेचना के पूरी तरह से सुस्त और अनुशासनहीन तरीके पर टिप्पणी करना उचित समझता है, न्यायालय को लगता है कि वह विवेचना करने के लिए अक्षम अधिकारी है, वर्तमान जैसे जटिल मामले की विवेचना करना तो दूर की बात है जो परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है।

77. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह इस निर्णय की प्रमाणित प्रति विचारण न्यायालय के अभिलेखों के साथ आवश्यक जानकारी और अनुवर्ती कार्रवाई के लिए संबंधित विचारण न्यायालय को भेजे।

78. इस निर्णय की प्रति रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा आज से एक सप्ताह के भीतर सूचना और आवश्यक कार्रवाई के लिए डीजीपी, उत्तर प्रदेश लखनऊ को भी भेजी जाए।

79. चूंकि अपीलों पर निर्णय लिया जा रहा है, लंबित आवेदन, यदि कोई हो, और जमानत आवेदनों का निपटारा किया जाएगा।

(2025) 5 ILRA 1249

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजीव गुप्ता

माननीय न्यायमूर्ति हरवीर सिंह

आपराधिक अपील संख्या - 1820 वर्ष 2015

पंकज **... अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **... प्रतिपक्षी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अजय कुमार मिश्रा, श्री अरूण कुमार सिंह, श्री विवेक सिंह

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री विवेक कुमार सिंह

संदेह - घटना का लाभ रात के अंधेरे घंटों में हुआ था - कोई चश्मदीद गवाह नहीं था - प्राथमिकी में किसी का नाम नहीं था - मृतक के पिता और भाई, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे पीड़ित को अस्पताल ले गए थे - अभियोजन पक्ष से संबंधित गवाहों द्वारा पेश नहीं किया गया था, जिनकी गवाही अभियोजन पक्ष की कहानी की पुष्टि करने के लिए महत्वपूर्ण प्रतीत होती है - यदि प्रस्तुत नहीं किया गया है, तब अभियोजन पक्ष के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जा सकता है - संदेह का लाभ दिया जा सकता है।

अपील की अनुमति दी गई। (ई-9)

<u>उद्धृत निर्णयज विधियों की सूची:</u>

1. रत्नू यादव बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, आपराधिक अपील संख्या-1365 वर्ष 2018
2. बाबू साहेबगौड़ा रुद्रगौदर और अन्य बनाम कर्ण राज्य। (आपराधिक अपील संख्या-985 वर्ष 2010)
3. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम देवमन उपाध्याय (ए.आई.आर.1960 एस.सी. 1125)
4. मो. अब्दुल हफीज बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1983) 1 एस.सी.सी. 143
5. रामानंद @ नंदलाल भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1396)

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति राजीव गुप्ता द्वारा पारित)

1. अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री अजय कुमार मिश्रा, राज्य के लिए श्री ए.एन. मुल्ला और श्री आशीष तिवारी, प्रथम सूचनाकर्ता के अधिवक्ता श्री विवेक कुमार सिंह को सुना और विचारण न्यायालय के अभिलेख का अवलोकन किया।

2. यह आपराधिक अपील अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 13, मेरठ द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 418 वर्ष 2010 (राज्य बनाम पंकज एवं अन्य), जो अपराध संख्या 432 वर्ष 2009, धारा 302 भारतीय दण्ड संहिता, थाना सरूरपुर, जनपद मेरठ से उत्पन्न हुआ था, तथा सत्र परीक्षण संख्या 419 वर्ष 2010 (राज्य बनाम पंकज), जो अपराध संख्या 476 वर्ष 2009, धारा 25/4 आयुध अधिनियम, थाना सरूरपुर, जनपद मेरठ से उत्पन्न हुआ था, में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 09.03.2015 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है। उक्त निर्णय एवं आदेश द्वारा अपीलकर्ता को धारा 302 सहपठित धारा 34 भारतीय दण्ड संहिता के अधीन दण्डनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध करते हुए आजीवन कारावास तथा ₹5,000/- के अर्थदण्ड से दण्डित किया गया है। इसके अतिरिक्त, अपीलकर्ता को धारा 4/25 आयुध अधिनियम के अधीन दण्डनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध करते हुए एक वर्ष के कठोर कारावास तथा ₹1,000/- के अर्थदण्ड से दण्डित किया गया है, साथ ही अर्थदण्ड अदा न किए जाने की दशा में निर्धारित व्यतिक्रम उपबन्ध भी लागू किए गए हैं। दोनों सजाओं को साथ-साथ (समवर्ती रूप से) चलाए जाने का निर्देश दिया गया है।

3. अभियोजन पक्ष के कथनानुसार, वर्तमान वाद में प्रथम सूचना रिपोर्ट मृतका पारुल के चाचा जयीवीर सिंह द्वारा दिनांक 24.11.2009 की लिखित तहरीर (प्रदर्श क-4) के आधार पर दर्ज कराई गई थी, जिसे अपराध संख्या 413 वर्ष 2009, धारा 307 भारतीय दण्ड संहिता, थाना सरूरपुर, जनपद मेरठ के अंतर्गत सायं 08:15 बजे पंजीकृत किया गया। इसकी कार्बन प्रति रोज़नामचा (जी.डी.) रिपोर्ट संख्या 42, समय 20:15 बजे के अंतर्गत तैयार की गई, जिसे उस समय के आरक्षी लिपिक रामचन्द्र (अ०सा०-5) द्वारा सिद्ध कर प्रदर्श क-5 के रूप में अंकित कराया गया।

4. संक्षेप में, अभियोजन पक्ष की कहानी, जैसा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में कहा गया है, यह है कि 24.11.2009 को लगभग 07:15 बजे, अपने भाई हरवीर सिंह की बेटी कुमारी पारुल अपने घर के दरवाजे से बाहर निकलने के बाद कुत्तों को रोटी दे रही थी, जब दो अज्ञात व्यक्ति वहां पहुंचे और दोनों ने कुमारी पारुल के पेट में चाकू से वार कर दिया। उसके साथ मारपीट करने के बाद वे तुरंत घटनास्थल से चले गए, जो घटना कुछ लोगों ने देखी है। पारुल को उनके भाई और उनके भतीजे राहुल मेरठ के अस्पताल ले गए थे। उपरोक्त आरोपों के आधार पर, पत्रकार राजपाल सिंह, पुत्र रणजीत सिंह, निवासी कर्णावल, तहसील सरधाना, मेरठ द्वारा एक लिखित रिपोर्ट लिखी गई थी और उसके बाद इसे थाना सरूरपुर, जिला मेरठ में केस अपराध संख्या-413 वर्ष 2009 के तहत धारा 307 भ०द०वि० के तहत दर्ज किया गया था।

अनुवादित

5. उक्त प्राथमिकी उप निरीक्षक देवेंद्र सिंह (अ०सा०-7) की उपस्थिति में दर्ज की गई थी, जिन्हें उक्त मामले की जांच का जिम्मा सौंपा गया था। इसके बाद उन्होंने पहले सूचनाकर्ता का बयान दर्ज किया और फिर घटनास्थल का दौरा किया और घटनास्थल से खून आलूदा मिट्टी और सादी मिट्टी एकत्र की, इसे एक अलग कंटेनर में रखा, इसे सील कर दिया और उसके बाद फ़र्द बरामगदी तैयार किया, जिसे साबित किया गया और प्रदर्श क-2 के रूप में चिह्नित किया गया।

6. इसके बाद, अ०सा०-7, विवेचनाधिकारी ने नक़्शा नज़री तैयार किया था, जिसे साबित किया गया है और प्रदर्श क -7 के रूप में चिह्नित किया गया है। पीड़िता कुमारी पारुल की मृत्यु के बारे में जानकारी मिलने पर, मामले को धारा 302 भ०द०वि० के तहत बदल दिया गया, इसके बाद विवेचनाधिकारी ने उसके घर का दौरा किया और पंचनामा रिपोर्ट तैयार की और उसके बाद अन्य प्रासंगिक दस्तावेज जैसे फोटो-लाश, चालान-लाश, प्रतिसार निरीक्षक को पत्र, सीएमओ को पत्र, नमूना मुहर तैयार की और उसके बाद शव को एक कपड़े में लपेटकर कांस्टेबल को सौंप दिया ताकि उसे अस्पताल के पास शव परीक्षण के लिए मुर्दाघर ले जाया जा सके। पंचनामा रिपोर्ट के साथ-साथ अन्य दस्तावेजों को सिद्ध कर दिया गया है और उन्हें प्रदर्श क-8 से क-13 के रूप में चिह्नित किया गया है। इसके बाद मामले की विवेचना अ०सा०-8 प्रमोद कुमार शर्मा को सौंपी गई थी।

7. 25.11.2009 को शाम 04:30 बजे डॉ. डीके सक्सेना (अ०सा०-6) द्वारा मृतक पारुल के व्यक्ति का शव परीक्षण किया गया।डॉक्टर ने मृतक के व्यक्ति पर निम्नलिखित मृत्यु पूर्व शव परीक्षण चोटों का उल्लेख किया है:

(i) छुरा घाव 5 सेमी x 2 मीटर x गुहा उप तटीय क्षेत्र के गहरे बाईं ओर बाएं निप्पल से 12 सेमी नीचे 7 'ओ' घड़ी की स्थिति दिशा में पीछे और औसत दर्जे का। घाव के नीचे विच्छेदन पर नरम ऊतकों और पेरिटोनियम को स्थानों पर काट है। लिवर के पेट और बाएं हिस्से को जगह-जगह कटे हुए है। पेट गुहा 2 लीटर रक्त के थक्के से भरा है।

(ii) छुरा घोंपने का घाव 5 सेमी x 2 सेमी गुहा गहरा। बाईं ओर पेट 4 सेमी नाभि से 3 'ओ' घड़ी पर विच्छेदन पेरिटोनियम पर स्थानों पर कटा हुआ पाया गया।

8. मृतक की मृत्यु का कारण शव परीक्षण से पहले की चोटों के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव होना माना गया है।

9. इसके बाद 27.11.2009 को पहले सूचनाकर्ता जयवीर सिंह ने एक और लिखित आवेदन दिया जिसमें कहा गया था कि 24.11.2019 को लगभग 07:15 बजे, उनकी भतीजी पर चाकू से वार किया गया था, जिसके संबंध में उनके द्वारा थाना में जानकारी दी गई थी। राजपाल सिंह द्वारा लिखी गई लिखित रिपोर्ट के आधार पर प्राथमिकी दर्ज की गई। इसके बाद उनकी भतीजी ने दम तोड़ दिया। उक्त दिन, उसकी भाभी परविता अपने

घेर से अपने घर वापस लौट रही थी, जिसने हमलावरों को पीड़ित पर चाकू से हमला करते हुए देखा और गली में बेहोश हो गई थी, जिसकी शारीरिक स्थिति बाद में बिगड़ गई थी। आज उक्त सदमे से उबरने के बाद, पार्वती ने खुलासा किया कि उनकी बेटी पारुल को पंकज और बबलू (पंकज के मामा के बेटे) ने चाकू मार दिया था, जो बाद में अपने घर की ओर भाग गए। उन्होंने आगे कहा कि आज उनके गांव के एक सतवीर सिंह ने भी उन्हें सूचित किया था कि घटना के समय वह चिंटू की दुकान के पास खड़े थे, जब पंकज बबलू (उनके मामा के बेटे) के साथ वहां पहुंचे और उनके हाथों में चाकू से पारुल पर हमला किया और उनके घर की ओर भाग गया। अगले दिन सतवीर सिंह अपने रिश्तेदार की मौत पर शोक मनाने निकले थे और आज जब वह वापस लौटे तो पता चला कि अज्ञात लोगों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई है, तो उन्होंने जयवीर सिंह को सच्चाई बताई थी।

10. उक्त लिखित आवेदन की सामग्री को 27.11.2009 को केस डायरी में लिखित रूप में कर दिया गया था और इसे सिद्ध किया गया है और प्रदर्श क-1 के रूप में चिह्नित किया गया है। इसके बाद 29.11.2009 को, विवेचनाधिकारी ने मृतक की मां पार्वती, जयवीर की पत्नी श्रीमती गीता, रवींद्र की पत्नी श्रीमती पूनम का बयान दर्ज किया था। इसके अलावा, 07.12.2009 को, बबलू को गिरफ्तार किया गया दिखाया गया है और उसके इशारा पर एक चाकू बरामद किया गया है, जिसका फ़र्द बरामगदी विवेचनाधिकारी (अ०सा०-8) द्वारा तैयार किया गया था और इसे साबित किया गया है और प्रदर्श क-14 के रूप में चिह्नित किया गया है। इसके बाद 17.12.2009 को, अपीलकर्ता-पंकज ने अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और 18.12.2009 को जिला जेल में उसका प्रकटीकरण बयान दर्ज किया गया, जिसके अनुसार, 23.12.2009 को, उसे पुलिस हिरासत में लेने के बाद, एक चाकू की बरामदगी दिखाई गई है, जिसका फर्द फ़र्द बरामगदी 23.12.2009 को तैयार किया गया है, जिसे सिद्ध किया गया है और प्रदर्श क-15 के रूप में चिह्नित किया गया है। चाकू की बरामदगी के उक्त स्थान की साइट योजना भी तैयार की गई है और इसे प्रदर्श क-17 के रूप में चिह्नित किया गया है।

11. इसके बाद विवेचनाधिकारी ने संबंधित गवाहों के बयान दर्ज किए और नामित अभियुक्तों के खिलाफ ठोस और ठोस साक्ष्य एकत्र करने के बाद आरोपी पंकज और बबलू के खिलाफ धारा 302 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया, जिसे साबित किया गया है और प्रदर्श क-18 के रूप में चिह्नित किया गया है।

12. उक्त आरोप पत्र के आधार पर विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान ग्रहण किया गया, किन्तु चूँकि यह वाद विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था, अतः इसे सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया। तत्पश्चात् सत्र न्यायालय द्वारा यह वाद अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 13, मेरठ के न्यायालय को स्थानान्तरित किया गया, जहाँ इसे सत्र विचारण संख्या 418 वर्ष 2010 (राज्य बनाम पंकज एवं अन्य), धारा 302 भा०द०वि० तथा सत्र विचारण संख्या 419 वर्ष 2010 (राज्य बनाम पंकज), धारा 25/4 आयुध अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत किया गया।

13. जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर, विचारण न्यायालय ने आरोपी व्यक्तियों पंकज और बबलू के खिलाफ धारा 302 भ०द०वि० और शस्त्र अधिनियम की धारा 25(ii)(बी) के तहत आरोप तय किए। उक्त आरोपों को पढ़ा गया और आरोपियों- हमलावरों को समझाया गया, जिन्होंने दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और मुकदमा चलाने का दावा किया।

14. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष के 10 गवाहों को पेश किया है और कई प्रासंगिक दस्तावेज भी पेश किए गए हैं और अभिलेख पर लाए गए हैं, जिन्हें साबित किया गया है और प्रदर्श क-1 से क-25 के रूप में चिह्नित किया गया है। उनकी गवाही, संक्षेप में, निम्नानुसार है:

15. अ०सा०-1 जयवीर सिंह इस मामले का पहला सूचनाकर्ता है। उन्होंने अपनी गवाही में कहा है कि घटना दिनांक 24.11.2009 को शाम 07:15 बजे है। घटना की संबंधित तारीख और समय पर, उनकी भतीजी कुमारी पारुल घर से बाहर निकलने के बाद कुत्तों को रोटी खिला रही थी, जब दो अज्ञात व्यक्ति वहां पहुंचे, जिन्होंने उसके पेट में चाकू घोंप दिया, जिससे घायल हो गए और भाग गए। इसके बाद कुमारी पारुल को इलाज के लिए मेरठ लाया गया। उक्त घटना के संबंध में, उन्होंने राजपाल सिंह द्वारा लिखित एक लिखित रिपोर्ट दर्ज की थी और उस पर हस्ताक्षर करने के बाद इसे थाना सरूरपुर में सौंप दिया था, जिसके आधार पर, चिक प्राथमिकी तैयार की गई थी और मामला दर्ज किया गया था।

16. अ०सा०-1 ने आगे कहा कि, जब वह अपने परिवार के सदस्यों के साथ अपनी भतीजी को इलाज के लिए मेरठ ले जा रहा था, तो अस्पताल ले जा रहा था, उसने अंतिम सांस ली, इस तरह, वे उसे अस्पताल ले जाए बिना वापस लौट आए। आगे कहा गया है कि घटना के समय उसकी भाभी पार्वती, मृतक पारुल की मां घेर से वापस लौट रही थी, जिसने घटना देखी और उसके बाद बेहोश हो गई, जिसके परिणामस्वरूप उसकी चिकित्सा स्थिति बिगड़ गई और उसे इलाज के लिए बुढ़ाना ले जाया गया। इसके बाद 27.11.2009 को जब उसकी हालत में सुधार हुआ, तो वह अपने घर वापस लौट आई और खुलासा किया कि उसने हमलावरों को देखा और उनकी पहचान कर ली थी, जिन्होंने घटना के दिन उसकी बेटी को चाकू मार दिया था और उनके नाम पंकज और बबलू के रूप में प्रकट किए थे। उन्होंने आगे कहा कि 27.11.2009 को गांव का एक सतवीर सिंह भी उनके घर आया था और उन्हें सूचित किया था कि घटना के समय, वह चिंटू की दुकान के पास खड़ा था, जब पंकज और बबलू बाहर आए और उन्होंने पारुल पर अपने-अपने चाकू से हमला किया और जंगल के पास अपने घर की ओर भाग गए।

17. यह पूछे जाने पर, कि सतवीर ने पहले इस तथ्य का खुलासा क्यों नहीं किया था, उसने कहा कि चूंकि वह अपने रिश्तेदार की मृत्यु का शोक मनाने गया था, इसलिए वह पहले उक्त जानकारी का खुलासा नहीं कर सकता था। उक्त जानकारी को फिर से एक ब्रजपाल द्वारा लिखित रूप में कर दिया गया था, जिसे उसे पढ़ा गया था और उसके बाद उसने थाना के गेट पर उक्त लिखित रिपोर्ट अ०सा०-8 को सौंप दी, जिसने इसे केस डायरी में शामिल किया, जिसे साबित किया गया है और प्रदर्श क-1 के रूप में चिह्नित किया गया है। उनके

द्वारा दर्ज की गई पहले की प्राथमिकी के आधार पर, पुलिस घटनास्थल पर पहुंची थी और जांच की थी और सादी मिट्टी और खून आलूदा मिट्टी सहित प्रासंगिक सामग्री एकत्र की थी और अपना फ़र्द बरामगदी तैयार किया था, जिसे साबित किया गया है और प्रदर्श क-2 के रूप में चिह्नित किया गया है। इसके बाद पुलिस ने जांच की और मृतक के शव को शव परीक्षण के लिए भेज दिया गया।

18. जिरह के दौरान, अ०सा०-1 ने कहा कि घटना का गवाह सतवीर सिंह 'चाचा' के रूप में उससे संबंधित है। उन्होंने आगे कहा कि जसवीर पुत्र श्रीनिवास और रॉबिन पुत्र रामपाल ने आरोपी हमलावरों को भागते हुए देखा था और उन्हें इस तथ्य का खुलासा किया था, हालांकि, उन्होंने डर के कारण विवेचनाधिकारी को उक्त नामों का खुलासा नहीं किया। उन्होंने आगे कहा कि घटना के समय वह अपने घर से 100-150 गज की दूरी पर थे और संबंधित समय पर, उनकी मां सीमा देवी और भाभी पूनम के साथ दो अन्य महिलाएं घर में मौजूद थीं। उन्होंने आगे कहा कि पारुल को चाकू मारने के तथ्य का खुलासा रॉबिन, यशवीर और चिंटू ने उन्हें तब किया था, जब वह अपने घर जा रहे थे और वहां पहुंचने के बाद वह रिपोर्ट दर्ज कराने गए थे।

19. अ०सा०-1 ने आगे कहा कि उनके घर पहुंचने से पहले, उनके भाई हरवीर और भतीजे राहुल पहले ही पारुल को मेरठ अस्पताल ले गए थे। उन्होंने अदालत के समक्ष दिनांक 04.10.2010 के अपने पहले के बयान से आगे कहा और कहा कि:

"मैं नहीं कह सकता कि दिनांक 4.10.10 को जो मैंने बयान दिया 'जब मैं तथा मेरे अन्य परिवार जन अपनी भतीजी कु० पारुल को इलाज के लिए मेरठ ला रहे थे तो रास्ते में ही उसने दम तोड़ दिया था' मैं नहीं कह सकता कि यह बात सही है या गलत है"

20. अ०सा०-1 ने आगे कहा कि चिंटू की दुकान उसके घर से 20 गज की दूरी पर है और जब वह चिंटू की दुकान पर पहुंचा, तो उसे याद नहीं है, अगर कोई अन्य व्यक्ति वहां था, हालांकि, चिंटू उसकी दुकान पर मौजूद था, जहां उसने उसे घटना की सूचना दी। रिपोर्ट दर्ज कराने के बाद जब वह वापस लौट रहे थे तो उन्हें पारुल की मौत के बारे में फोन आया। उन्होंने आगे कहा कि उन्हें याद नहीं है कि जब वह रिपोर्ट लिखने के लिए कागज लेने चिंटू की दुकान पर पहुंचे थे, तो उनके चाचा सतवीर वहां मौजूद थे या नहीं।

21. अ०सा०-1 ने अपनी आगे की जिरह में कहा कि घटनास्थल पर पहुंचने वाले दो व्यक्तियों के तथ्य का खुलासा उसके पिता और मां ने उसे किया था, हालांकि, वह यह नहीं बता सकता कि दो अज्ञात व्यक्तियों द्वारा अपनी भतीजी को छुरा घोंपने के तथ्य के बारे में उन्हें किसने सूचित किया। उन्होंने आगे कहा कि जब वह गांव पहुंचे तो पुलिस पहले से ही वहां मौजूद थी। उन्होंने आगे कहा कि, जब पुलिस घटनास्थल पर अपेक्षित कार्यवाही कर रही थी, तो यह तथ्य कि उनकी भाभी बेहोश हो गई थी, उनकी जानकारी में थी। उन्होंने आगे कहा कि उनकी भाभी को उनके भाई रवींद्र ने बेहोशी की हालत में बुढ़ाना अस्पताल ले गए। उन्होंने आगे कहा कि उन्हें इस बात की कोई जानकारी नहीं है कि उनकी भाभी को बुढ़ाना में एक नर्सिंग होम में कहां भर्ती कराया

गया था। उन्होंने आगे कहा कि रवींद्र के अलावा उनके परिवार का कोई भी व्यक्ति बुढ़ाना में अपनी भाभी से मिलने नहीं गया था और वह 24.11.2009 से 26.11.2009 तक नर्सिंग होम में भर्ती रहीं।

22. अ०सा०-1 ने आगे कहा कि जांच करते समय, पुलिस ने यशवीर, रॉबिन और जयपाल की उपस्थिति में उनसे पूछताछ की थी। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने बाबू राम, ओमपाल सिंह, सुबोध, राजकुमार, कटारे और चिंटू से घटना के बारे में पूछा था, लेकिन उन्होंने डर के कारण उनका कुछ भी खुलासा नहीं किया था। उक्त गवाह ने आगे कहा कि 27.11.2009 को सुबह लगभग 07:00-08:00 बजे, सतवीर सिंह और उसकी भाभी परविता ने उसे आरोपियों के नाम के बारे में बताया था, जिसने पीड़ित को चाकू मार दिया था। उन्होंने आगे कहा कि 26.11.2009 को उनकी भाभी शाम को अपने घर पर गांव वापस आ गई थी और संबंधित समय पर बोल रही थी और उनके साथ-साथ परिवार के अन्य सदस्यों के साथ बातचीत कर रही थी।

23. उन्होंने आगे अपनी अज्ञानता दिखाई, कि क्या विवेचनाधिकारी उनकी भाभी परविता का बयान दर्ज करने के लिए उनके घर पहुंचे थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि चूंकि उनकी पंकज और बबलू (उनके मामा के बेटे) के साथ दुश्मनी थी, इसलिए उन्हें प्रस्तुत मामले में गलत तरीके से फंसाया गया है। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि पारुल के गांव के कई लड़कों के साथ संबंध थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि बबलू को प्रस्तुत मामले में गलत तरीके से फंसाया गया था। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि पारुल के ग्रामीणों के साथ अवैध संबंध थे और वह शादी से पहले भागना चाहती थी, जिसके परिणामस्वरूप उसके परिवार के सदस्यों ने उसकी हत्या कर दी। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि आरोपी व्यक्तियों को झूठा फंसाया गया है।

24. अ०सा०-2 सतवीर सिंह एक अन्य गवाह है, जो खुद को घटना का चश्मदीद गवाह होने का दावा करता है। उन्होंने अपनी गवाही में कहा कि पंकज विजेंद्र का बेटा है, जो उसके पैतृक गांव का रहने वाला है और बबलू उसके मामा का बेटा है। यह घटना दिनांक 24-11-2009 की है। घटना के समय शाम करीब 07:15 बजे वह अपने घर से चिंटू की दुकान पर बीड़ी खरीदने गया था, जहां उसने देखा कि आरोपी-हमलावरों ने पीड़िता पारुल के साथ मारपीट की, जब वह कुत्तों को रोटी देने के लिए अपने घर से बाहर निकला था। उन्होंने आगे कहा कि दोनों आरोपियों ने पीड़िता को जमीन पर गिरा दिया था और पंकज और बबलू दोनों ने अपने चाकुओं से उस पर हमला किया था। बताया जा रहा है कि दुकान पर रखी बिजली की रोशनी में यह घटना देखी गई। उन्होंने आगे कहा कि पीड़िता द्वारा शोर मचाने पर, उसके अलावा, उसकी मां परविता पत्नी हरवीर, जो अपने घेर से लौट रही थी, भी घटनास्थल पर पहुंच गई थी और उसने दो हमलावरों को अपनी बेटी पारुल पर चाकू से हमला करते हुए देखा था और उसके बाद हाथों में चाकू लेकर अपने घर के दक्षिण की ओर भाग गया था। घटना के बाद डर के मारे वह अपने घर लौट आया और अगले दिन अपने रिश्तेदार की मौत पर शोक मनाने चला गया। 26.11.2009 को वह कंकरखेड़ा में अपने घर पर रुके जो निर्माणाधीन था और 27.11.2009 को वापस लौट आए। अपने गांव पहुंचने पर, उन्हें पता चला कि पारुल के परिवार के सदस्यों ने अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ

रिपोर्ट दर्ज कराई है और उसके बाद वह पारुल के चाचा जयवीर से मिले और उन्हें घटना के चश्मदीद गवाह होने की सूचना दी, जहां पंकज और बबलू द्वारा पारुल पर चाकुओं से हमला किया गया था।

25. उन्होंने अपनी जिरह में कहा कि शाम लगभग 07:00 बजे, जब वह बीड़ी खरीदने के लिए चिंटू की दुकान पर गए थे, तब तक उन्हें फोन पर अपने रिश्तेदार की मृत्यु के बारे में जानकारी मिल गई थी। उक्त मौत लगभग चार दिन पहले हुई थी और गुलवीर सिंह की मौत हो गई थी, जिसका छोटा भाई बलजीत पुत्र बलवीर है, जिसके साथ उसकी असली भतीजी सावित्री की शादी हुई है। अगले दिन वह गुलवीर सिंह की मौत शोक मनाने गए थे, हालांकि उनकी तेहरवी 4-5 दिन बाद तय हो गई थी। उन्होंने आगे कहा कि शाम लगभग 07:10 बजे, वह चिंटू की दुकान पर पहुंचे थे और बीड़ी खरीदी थी और जब उन्होंने बंडल खोला था और बीड़ी जला रहे थे, तो चिंटू की दुकान पर कोई अन्य व्यक्ति मौजूद नहीं था। चिंटू भी अपने घर के अंदर था और उसे बीड़ी देने के लिए बाहर आया था। उन्होंने आगे कहा कि उक्त जगह से लगभग 2-3 मिनट के लिए, उन्होंने घटना देखी और उसके बाद अपने घर गए, हालांकि, संबंधित समय पर उन्होंने जसवीर और रॉबिन को अपनी दुकान पर नहीं देखा था। उन्होंने आगे कहा कि जब वह चिंटू की दुकान पर खड़े थे, तो उन्होंने पार्वती को अपने घेर से आते हुए और लगभग 11⁄2 गज की दूरी से मोड़ पर पहुंचते देखा था। उन्होंने आगे कहा कि प्रासंगिक समय परविता, जब उन्होंने पहली बार उसे देखा था, वह अपने घर से 10 गज की दूरी पर थी। उन्होंने आगे कहा कि वह हरवीर के 'अंकल' के रूप में संबंधित हैं।

26. 19.01.2011 को उनकी गवाही दर्ज करने के बाद, आगे की जिरह के लिए अगली तारीख 25.01.2011 निर्धारित की गई थी, हालांकि, उक्त तारीख को उनसे जिरह नहीं की जा सकी और उनके साक्ष्य को बंद कर दिया गया।

27. नतीजतन, अभियुक्त-अपीलकर्ता बबलू द्वारा उसे वापस बुलाने के लिए एक आवेदन दायर किया गया था, जिसे अनुमति दी गई थी और अ०सा०-2 से 16.03.2011 को आगे जिरह की गई, जिसमें उन्होंने कहा कि घटना के समय, वह पारुल को बचाने के लिए घटनास्थल पर पहुंचे थे, हालांकि चिंटू ने उसे बचाने का कोई प्रयास नहीं किया। संबंधित समय पर, कोई भी आते नहीं देखा गया और हमलावर उससे 20 गज की दूरी पर थे। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने पारुल को हाथ में ब्रेड लेकर घर से बाहर निकलते हुए भी देखा था और फिर करीब डेढ़ मिनट बाद हमलावरों को वहां आते देखा था, जिनकी उनके द्वारा सही पहचान की गई थी, हालांकि, वह पारुल और हमलावरों के बीच की बातचीत को नहीं सुन सके। जब हमलावरों ने पीड़िता पर चाकू मारा, तो उसने 'मां' चिल्लाया, जिसके परिणामस्वरूप उसका ध्यान वहां गया। पंकज ने पहले पीड़िता पर चाकू से हमला किया और फिर बबलू ने उसके साथ मारपीट की। प्रासंगिक समय पर, यह महसूस करते हुए कि उसकी जान खतरे में है, उसने उसे बचाने की कोशिश की। हमलावरों ने उस पर हमला करने के बाद उस जगह से भागने की कोशिश की जहां वह खड़ा था और उसने शोर भी मचाया। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने नहीं देखा था, अगर चिंटू बाहर आया था, क्योंकि उन्होंने शोर गुल बजाकर हमलावरों का पीछा किया था। जब वह हमलावरों का पीछा कर रहा था, तो उसने पार्वती को आते देखा।

28. उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने लगभग 20-30 गज तक हमलावरों का पीछा करना जारी रखा और उसके बाद उनका पीछा करने के बाद, वह सीधे अपने घर चले गए और उसके बाद परविता के घर नहीं गए। लौटने के बाद उन्होंने पारुल की जीवित स्थिति के बारे में कोई पूछताछ नहीं की। 25-11-2009 को वह हरवीर से मिलने नहीं गए क्योंकि वह मेरठ के लिए रवाना हुए और 27-11-2009 को वापस लौटे। घटना के दिन वह अपने घर पर मौजूद था, लेकिन उसे इस बात की कोई जानकारी नहीं थी कि पुलिस घटनास्थल का दौरा कर चुकी है। तीन दिन बाद विवेचनाधिकारी ने उससे पूछताछ की। इस घटना को उन्होंने बिजली की रोशनी में देखा था, हालांकि, उक्त तथ्य का खुलासा नहीं किया गया था क्योंकि विवेचनाधिकारी द्वारा उनसे पूछताछ नहीं की गई थी। उन्होंने कंकरखेड़ा में अपने घर के निर्माण के बारे में भी विवेचनाधिकारी को सूचित नहीं किया था।

29. उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने विवेचनाधिकारी को पीड़ित की मां परविता के घेर से लौटने और घटनास्थल पर पहुंचने के बारे में सूचित किया था। उन्होंने आगे कहा कि पंकज का घर उनके घर के सामने स्थित है, हालांकि बबलू दूसरे गांव का रहने वाला है और वह उससे हर रोज मिलता था।

30. उन्होंने आगे इस सुझाव से इनकार किया कि मृतक के परिवार के सदस्यों के साथ संबंधों के कारण, वह झूठी गवाही दे रहे हैं। उन्होंने आगे इस सुझाव से इनकार किया कि उन्होंने घटना नहीं देखी थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उन्होंने पंकज और बबलू को पीड़िता पारुल पर हमला करते नहीं देखा था। उन्होंने आगे कहा कि घटना के बाद, परविता को कहां ले जाया गया था, यह उन्हें पता नहीं है। घटना की तारीख को उसने उसे देखा था। उन्होंने आगे कहा कि उनकी मौजूदगी में किसी ने भी परविता को बेहोशी की हालत में नहीं ले जाया था। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि वह बबलू को पहले सूचनाकर्ता के साथ मिलीभगत में झूठा फंसा रहे हैं।

31. पंकज की ओर से जिरह के दौरान, उन्होंने आगे कहा कि घटना के प्रासंगिक समय में, वह वहां पहुंच गए थे, हालांकि, कोई शोर गुल नहीं किया जा रहा था। लड़की को बचाने के लिए वह 10-15 कदम की दौड़ लगा, लेकिन जब तक वह मृतक को बचाने के लिए वहां पहुंचा, तब तक हमलावर निकल चुके थे। वह पारुल के पास नहीं रुका, बल्कि हमलावरों का करीब 25 मीटर तक पीछा किया और उसके बाद घटनास्थल पर वापस लौट आया। उन्होंने अपनी आगे की जिरह में कहा कि जब वह घटनास्थल पर पहुंचे, तो जयवीर और मृतक की मां वहां मौजूद थीं, हालांकि, उन्हें याद नहीं है कि वहां और कौन मौजूद था। उन्होंने पारुल को अस्पताल ले जाने का कोई प्रयास नहीं किया। उद्धृत करने के लिए:
"जब मैं घटनास्थल पर पहुंचा जयवीर, उसकी माँ वहाँ मौजूद थे। वहाँ और कौन लोग मौजूद थे मुझे ध्यान नहीं है। मैंने लड़की पारुल को अस्पताल ले जाने की कोशिश नहीं की, माँ और चाचा ने की होगी। "

32. उन्होंने आगे कहा कि घटना के समय बिजली की आपूर्ति नहीं थी। वह पीड़िता के साथ अस्पताल नहीं गया और न ही घटना के बारे में जानकारी देने के लिए थाना गया।

33. अ०सा०-2 ने आगे कहा कि घटना की रात, वह जानकारी नहीं प्राप्त कर सका, अगर उसकी पोती की मृत्यु हो गई थी, क्योंकि वह अपने घर गया था। जब वह अपने घर पहुंचा, तो वह अपने बेटे उपेंद्र और उसके दो बच्चों से मिला, लेकिन उसकी पत्नी से नहीं, क्योंकि वह दूसरी मंजिल पर थी। घटना के संबंध में, उन्होंने अपने बेटे उपेंद्र और अपनी दो पोती सोनू और मोनू को चाकू से हमला करने के तथ्य के बारे में सूचित किया था। उक्त जानकारी प्राप्त करने के बाद, वे जयवीर के घर गए थे, जबकि वह अपनी पत्नी के साथ उनके घर पर मौजूद थे। दस मिनट बाद उपेंद्र अपने घर वापस लौटा और उसे बताया कि पारुल को मेरठ अस्पताल ले जाया गया है। उन्होंने आगे कहा कि वह अपनी भतीजी की मौत की सूचना मिलने के बाद जयवीर के घर नहीं गए क्योंकि उन्हें बाहर जाना था, और न ही उनके अंतिम संस्कार में भाग लिया।

34. उन्होंने इस बात से इनकार किया कि गुलवीर की मृत्यु नहीं हुई थी, न ही वह उनकी मृत्यु का शोक मनाने के लिए वहां गए थे। उन्होंने आगे कहा कि 26.11.2009 को, वह कंकनखेड़ा में अपने घर पर इस कारण से रुके थे कि उन्होंने हमलावरों को पीड़ित पर हमला करते हुए देखा था और यह आशंका करते हुए कि वह किसी कठिन परिस्थिति में नहीं पड़ सकते हैं, उन्होंने वहां रहना पसंद किया और एक फोन भी नहीं किया। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उन्होंने घटना नहीं देखी थी और न ही चिंटू की दुकान पर मौजूद थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि अंधेरे के कारण उन्होंने घटना नहीं देखी थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि परिवार का सदस्य होने के कारण वह सही तथ्यों को छिपा रहे हैं। उन्होंने आगे इस बात से इनकार किया कि जिस लड़के के साथ पारुल की शादी तय हुई थी, उसे पारुल ने पसंद नहीं किया था और इस तरह की झुंझलाहट के कारण, वह घटना के दिन अपना घर छोड़ना चाहती थी। उन्होंने आगे इस सुझाव से इनकार किया कि उसके भागने के तथ्य का खुलासा उन्हें किया गया था और इसके परिणामस्वरूप, उनके द्वारा उसे मौत के घाट उतार दिया गया था।

35. अ०सा०-3 परविता मृतक की मां है। उसने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि यह घटना लगभग 22 महीने पहले शाम लगभग 07:15 बजे हुई थी, जब वह अपने घेर से अपने घर के लिए लौट रही थी और जब वह मोड़ के पास पहुंची, तो उसने देखा कि पंकज और बबलू ने अपने घर के सामने अपनी बेटी पारुल पर चाकू से हमला किया था। बताया जा रहा है कि यह घटना इन्वर्टर द्वारा जलाए गए बल्ब की रोशनी में देखी गई थी। उनके अलावा सतवीर भी इस घटना का गवाह था। उक्त घटना को देखकर वह तुरंत बेहोश हो गई और जब उसे होश आया तो उसने खुद को बुढ़ाना में डॉ. राकेश मित्तल के स्वामित्व वाले अस्पताल में भर्ती पाया। उन्होंने आगे कहा कि उन्हें 26.11.2009 को होश आ गया था। उसने आगे कहा कि जब वह अस्पताल से अपने घर वापस आई, तो उसके घर पर, उसने अपने बहनोई जयवीर को घटना के बारे में सूचित किया था। अपने घर पहुंचने पर उन्हें अपनी बेटी की मौत के बारे में पता चला। उसने आगे कहा कि उसकी बेटी पारुल की शादी 28.11.2009 को होनी थी, हालांकि, अभियुक्त-हमलावर जबरन उससे शादी करना चाहते थे। चूंकि उसकी बेटी ने उनसे शादी करने से इनकार कर दिया था, इसलिए आरोपी व्यक्तियों ने उसे मौत के घाट उतार दिया।

36. जिरह के दौरान, उसने कहा कि 24.11.2009 को लगभग 06:30 बजे, वह अपने मवेशियों को पानी उपलब्ध कराने के लिए अपने घर से घेर गई थी, जो संख्या में दो थे और वहां कोई अन्य काम नहीं था। उसने आगे कहा कि उसने अपने मवेशियों को पानी उपलब्ध कराने में लगभग 45 मिनट का समय लिया। संबंधित समय पर, हरवीर और उसके दो भाई जयवीर और रवींद्र अन्य महिलाओं और बच्चों के साथ घर में मौजूद थे। उसने आगे बताया कि घेर से लौटते समय लगभग अंधेरा हो चुका था और जब वह राम कुमार के घर के सामने वाली गली में पहुंची तो उसने सतवीर को वहां खड़ा देखा, जो दूसरी तरफ मुंह करके खड़ा था। सतवीर सिंह के अलावा कोई अन्य व्यक्ति वहां मौजूद नहीं था। उसने आगे कहा कि अपने घेर से लौटते समय, जब वह राम कुमार के घर पहुंची, तो उसने बचाव का शोर गुल सुना, हालांकि, पहचान नहीं सकी, कि यह किसका शोर गुल था। शोर गुल सुनकर वह अपने घर की ओर दौड़ी, सतवीर भी चिंटू की दुकान से अपने घर की ओर बढ़ गया, हालांकि, वह सतवीर से आगे थी और वह उसका पीछा कर रहा था।

37. अपनी आगे की जिरह में, उसने कहा कि उसने अभियुक्त-हमलावरों को चाकू से पारुल पर हमला करते हुए देखा था, जब वह मोड़ पर पहुंची थी। उसने आगे बताया कि जब वह पारुल के पास पहुंची तो वह बेहोश होकर गिर पड़ी। जिस जगह पर वह बेहोश होकर गिरी थी, वह मोड़ से 10-11 गज की दूरी पर थी और पारुल वहीं लेटी हुई थी, हालांकि वहां कोई अन्य व्यक्ति मौजूद नहीं था। जिस समय उसने पारुल को चाकू से चोट लगने के बाद जमीन पर लेटे देखा था, उस समय उसके परिवार का कोई भी सदस्य घर से बाहर नहीं निकला था। पारुल अपने घर के दरवाजे से 2-3 गज की दूरी पर लेटी हुई थी। उसने आगे कहा कि हालांकि उसने पारुल को चाकू से चोट लगने के बाद लेटे हुए देखा था, लेकिन उसने उसे उठाने का कोई प्रयास नहीं किया क्योंकि वह बेहोश हो गई थी। इस घटना से पहले कोई दुखद खबर सुनने के बाद वह कभी बेहोश नहीं हुई थी और न ही कभी उसे ऐंठन का सामना करना पड़ा था। उसने शरीर के उन हिस्सों को नहीं देखा था जहां पारुल को चाकू मारा गया था, लेकिन उसने केवल खून बहते हुए देखा था।

38. अ०सा०-3 ने आगे कहा कि घटनास्थल से पारुल को चुनने के बाद, वह नहीं जानती कि उसे अपने घर के किस कमरे में रखा गया था। उसे यह भी नहीं पता कि उसे अस्पताल कौन ले गया था। इसके बाद उसे पता चला कि उसका भाई रवींद्र उसे बेहोशी की हालत में डॉ. राकेश मित्तल द्वारा चलाए जा रहे बुढ़ाना के नर्सिंग होम में ले गया था। उसने आगे कहा कि उसका भाई बिटवाड़ा में रहता था, जो कर्णावाल से 25-26 किलोमीटर दूर है। वह घटनास्थल पर बेहोशी की हालत में तब तक पड़ी रही जब तक कि उसका भाई बिटवाड़ा से नहीं आया और उसे अस्पताल नहीं ले गया। उन्होंने आगे कहा कि वह 24-11-2009 से 26-11-2009 को शाम 07:00 बजे तक नर्सिंग होम में भर्ती रहीं। नर्सिंग होम में उनकी मां राजवाली ही मौजूद थीं और उनके अलावा कर्णावाल का कोई अन्य व्यक्ति वहां मौजूद नहीं था। 26.11.2009 को लगभग 07:00 बजे, वह अपने होश में आ गई और प्रासंगिक समय पर उसकी मां उसके साथ थी और 26.11.2009 को लगभग 07:00-07:30 बजे, वह अपनी मां के साथ टैक्सी में कर्णाल पहुंची।

39. अ०सा०-3 ने आगे कहा कि नर्सिंग होम में नुस्खे और डॉक्टर की फीस सहित अन्य रसीदें उसके घर पर पड़ी हैं, जो अदालत में दायर नहीं की गई हैं। उसने आगे बताया कि शाम करीब 07:45 बजे वह नर्सिंग होम से अपने घर पहुंची और अपने देवर जयवीर को घटना के बारे में बताया। नर्सिंग होम में उसने न तो किसी को इस घटना के बारे में बताया और न ही अपनी मां को भी। उन्होंने आगे कहा कि विवेचनाधिकारी ने 29.11.2009 को उनके गांव में उनका बयान दर्ज किया। संबंधित समय, जब विवेचनाधिकारी ने उनका बयान दर्ज किया था, तो सतवीर और जयवीर सहित परिवार के कई सदस्य घर में मौजूद थे, हालांकि, नर्सिंग होम में उनका बयान दर्ज नहीं किया गया था। उसने आगे कहा कि उसने विवेचनाधिकारी के सामने गवाही दी थी कि पंकज और बबलू ने पीड़ित पर बार-बार चाकू मारा और उसके बाद हाथों में चाकू लेकर अपने घर चले गए। उसने आगे कहा कि विवेचनाधिकारी के समक्ष अपने बयानों में, उसने कहा था कि 27.11.2009 को जब वह होश में आई, तो उसने अपने घर के निवासियों को सूचित किया कि उसकी बेटी पारुल को पंकज और बबलू ने पीटा था। उसने विवेचनाधिकारी को आगे बताया कि उसने दुकान के बाहर रखे इन्वर्टर से जलाए गए बल्ब में घटना देखी थी और संबंधित समय पर, सतवीर भी वहां मौजूद था और घटना को देखा था। घटना देखने के बाद वह बेहोश हो गई। उसने विवेचनाधिकारी को यह भी सूचित किया था कि उसे बुढ़ाना में डा राकेश मित्तल के नर्सिंग होम में भर्ती कराया गया था और 26-11-2009 को शाम को होश आ गया था।

40. अ०सा०-3 ने विवेचनाधिकारी को आगे कहा कि पारुल की शादी 28.11.2009 को होनी थी और आरोपी-हमलावर उसकी बेटी से शादी करना चाहते थे, हालांकि, उसकी बेटी ने उनसे शादी करने से इनकार कर दिया था, इस तरह, हमलावरों ने उसकी हत्या कर दी थी। नर्सिंग होम जाने का तथ्य भी उसे बताया गया। उन्होंने आगे कहा कि उपरोक्त तथ्यों का खुलासा विवेचनाधिकारी को उनके द्वारा दर्ज किए गए अपने बयान में किया गया था, हालांकि, यदि उनके बयान में उक्त तथ्य का उल्लेख नहीं किया गया है, तो वह इसका उल्लेख न करने का कोई कारण नहीं बता सकती हैं।

41. उसने आगे इस सुझाव से इनकार किया कि उसने इस घटना को नहीं देखा था और 27.11.2009 तक घटना के समय गांव में मौजूद थी और बेहोश नहीं हुई थी। उसने आगे इस बात से इनकार किया कि उसकी बेटी अपनी इच्छा के अनुसार शादी करना चाहती थी, हालांकि, क्योंकि वे इसके लिए सहमत नहीं थे, इस तरह, उसे मौत के घाट उतार दिया गया था। उसने आगे इस सुझाव से इनकार किया कि उसने हमलावरों को पीड़ित पर हमला करते हुए नहीं देखा था और उन्हें झूठा फंसा रही है। पंकज के बारे में उन्होंने कहा कि पंकज उनके मोहल्ले का निवासी है, लेकिन उन्हें नहीं पता कि उनका घर उनके घर से कितनी दूर है। उसने आगे कहा कि पारुल ने उसे सूचित किया था कि पंकज और बबलू उससे शादी करना चाहते हैं और बबलू ने पारुल को उससे शादी करने के लिए कहा था, हालांकि, उसने उसी के लिए मना कर दिया था। उक्त तथ्य का खुलासा उसे लगभग 15-20 दिन पहले किया गया था और उसने अपने पति और परिवार के अन्य सदस्यों को इसके बारे में सूचित किया था। बबलू द्वारा पीड़िता से शादी करने के प्रस्ताव का खुलासा विवेचनाधिकारी को किया गया था, हालांकि, अगर इसका उल्लेख नहीं किया गया है, तो वह इसके लिए कोई कारण नहीं बता सकती है।

42. आगे की जिरह के दौरान, अ०सा०-3 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि घटना की तारीख से पहले, वह कभी भी बेहोश नहीं हुई थी और न ही उसके सिर पर कभी कोई चोट आई थी। उसने आगे कहा कि 26.11.2009 को जब वह होश में आई, तो उसके परिवार के सभी सदस्य उसके साथ थे और उसने जयवीर को इस घटना के बारे में बताया था, जिसने खुद उससे इस घटना के बारे में पूछा था। उसने आगे इस सुझाव से इनकार किया कि उसने इस घटना को नहीं देखा था। उसने आगे इस बात से इनकार किया कि वह बेहोश नहीं हुई थी। उसने आगे इस बात से इनकार किया कि उसे किसी भी नर्सिंग होम में भर्ती नहीं किया गया था। उसने इस बात से इनकार किया कि पंकज ने उसे सूचित किया था कि उसकी बेटी के उसके घर छोड़ने की संभावना है। उसने आगे इस सुझाव से इनकार किया कि उक्त दुश्मनी के कारण, वह अपीलकर्ता पंकज को झूठा फंसा रही है।

43. अ०सा०-4 डॉ. राकेश मित्तल मेडिकल ऑफिसर हैं, जिनके नर्सिंग होम में पीड़िता की मां पार्वती को भर्ती कराया गया है। उन्होंने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि 24-11-2009 को हरवीर सिंह की पत्नी पार्वती को तीव्र मानसिक सदमे और अवसाद में उनके नर्सिंग होम में लाया गया था और उन्हें ऐंठन हो रही थी। उसकी जांच करने के बाद, उसने उसे अपने क्लिनिक में रहने की सलाह दी और जब शाम तक उसकी हालत में सुधार नहीं हुआ, तो उसने उसे अपने घर पर दो दिनों के लिए वहां भर्ती रहने के लिए कहा, जो पहले उसका क्लिनिक था। उन्होंने आगे कहा कि 26.11.2009 को शाम 05:00 बजे होश में आने के बाद उन्होंने परविता को अस्पताल से छुट्टी दे दी थी। रोगी को दिया गया चिकित्सा उपचार और उसकी लिखावट में तैयार किया गया उसका केस हिस्ट्री अभिलेख में है और इसे सिद्ध किया गया है और प्रदर्श क-2 के रूप में चिह्नित किया गया है। परविता की चिकित्सकीय पुन: जांच करने के लिए, उसने उसे 27.11.2009 को बुलाया था और 27.11.2009 को उसकी फिर से जांच करने के बाद, उसने उसे छुट्टी दे दी थी, जिसकी डिस्चार्ज स्लिप साबित हो गई है और प्रदर्श क-3 के रूप में चिह्नित किया गया है।

44. जिरह के दौरान, अ०सा०-4 ने कहा कि उसने 26.11.2009 को दोपहर 02:00 बजे पार्वती की चिकित्सकीय जांच की थी, उसके बाद वह होश में आने लगी। उन्होंने आगे कहा कि उन्हें याद नहीं है, अगर होश में आने के समय उनके परिवार के सदस्य क्लिनिक में मौजूद थे। परविता को उसके भाई रवींद्र अपने क्लिनिक में लाया, जिससे वह अच्छी तरह से परिचित है और उसके अलावा, वह उसके किसी भी रिश्तेदार की पहचान नहीं कर सकता है। उन्होंने आगे कहा कि उनके क्लिनिक के सामने रवींद्र का एक कंप्यूटर संस्थान है। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने अपने क्लिनिक में किसी भी महिला को उसकी देखभाल करते हुए नहीं देखा था। उन्होंने आगे कहा कि 24-25.11.2009 को परविता को बोलने के लिए होश नहीं आया। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने पार्वती को अपने घर पर भर्ती कराया था, जो पहले उनका क्लिनिक था। उन्होंने आगे कहा कि उनके क्लिनिक में, उन्हें दो रोगियों को भर्ती करने की अनुमति है, लेकिन संबंधित समय पर, उनके क्लिनिक में कोई अन्य मरीज भर्ती नहीं किया गया था। उन्होंने आगे कहा कि मरीजों के प्रवेश को एक रजिस्टर में रखा जाता है, हालांकि, वह उक्त रजिस्टर नहीं लाए हैं। उन्होंने आगे कहा कि वह उस सीरियल नंबर के बारे में नहीं बता सकते जिस पर पर्वता को भर्ती किया गया था।

45. 24.11.2009 को रोगी पार्वती को प्रदान किया गया उपचार न्यायालय में दायर किया गया है, जिसे प्रदर्श क-2 के रूप में चिह्नित किया गया है, जिसमें सभी प्रासंगिक विवरण शामिल हैं, हालांकि, उक्त प्रदर्श क-2 में, रोगी के रक्तचाप, नाड़ी की दर आदि का कोई विवरण नहीं है। पर्वता का बेडहेड टिकट भी तैयार हो चुका था, लेकिन यह अभिलेख में नहीं है। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि पर्वता को उनके क्लिनिक में भर्ती नहीं किया गया था और यही कारण है कि उक्त दस्तावेज उपलब्ध नहीं हैं। उन्होंने आगे कहा कि 24.11.2009 से पहले, उन्होंने परविता को कोई उपचार प्रदान नहीं किया था। उन्होंने आगे स्पष्ट रूप से कहा कि 27.11.2009 को उनके द्वारा पार्वती की फिर से जांच की गई और फिर डिस्चार्ज स्लिप जारी की गई, जो प्रदर्श क-3 साबित हुई है। उन्होंने आगे इस सुझाव का खंडन किया कि प्रदर्श क-2 और क-3 फ़र्ज़ी दस्तावेज हैं और रवींद्र के साथ अपनी दोस्ती के कारण वह अदालत में झूठी गवाही दे रहा है।

46. अ०सा०-4 ने आगे कहा कि जब परविता को उनके क्लिनिक में भर्ती कराया गया था, तब तक कोई भी पुलिसकर्मी उनका बयान दर्ज करने के लिए वहां नहीं पहुंचा था और उनके इलाज के दौरान, न तो रवींद्र और न ही किसी और ने उन्हें घटना के बारे में सूचित किया था। उन्होंने आगे कहा कि न तो प्रदर्श क-2 पर और न ही प्रदर्श क-3 पर, रोगी की पहचान का उल्लेख किया गया है। किसी भी पुलिस कर्मी ने पार्वती के साथ किए गए व्यवहार के तथ्य की भी पुष्टि नहीं की थी। उन्होंने आगे कहा कि वह पिछले साढ़े तीन साल से रवींद्र को जानते हैं और उनका क्लिनिक उनके संस्थान के ठीक सामने स्थित है। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि रवींद्र से परिचित होने के कारण उन्होंने फ़र्ज़ी दस्तावेज क-2 और क-3 बनाए थे।

47. अ०सा०-5 रामचंद्र कांस्टेबल है, जिसने जयवीर द्वारा लिखित रिपोर्ट के आधार पर, धारा 307 भ०द०वि० के तहत केस अपराध संख्या-413 वर्ष 2009 के तहत प्राथमिकी दर्ज की थी और संबंधित रोज़नामचा तैयार की थी, जिसे प्रदर्श क-4 और क-5 के रूप में चिह्नित किया गया है। जिरह के दौरान, उन्होंने कहा कि प्रदर्श क-4 में, इस बात का कोई विवरण नहीं है कि इसे सर्किल अधिकारी को कब भेजा गया था, यहां तक कि पहले सूचनाकर्ता को रिपोर्ट की एक प्रति देने के तथ्य का भी उल्लेख नहीं किया गया है। उक्त गवाह को वापस बुला लिया गया है और उसकी आगे की गवाही 22.11.2012 को दर्ज की गई है, जहां उसने कहा है कि 07.12.2009 को, चाकू की बरामदगी के आधार पर उसने शस्त्र अधिनियम की धारा 25/4 के तहत केस अपराध संख्या-432 वर्ष 2009 के तहत प्राथमिकी दर्ज की थी और प्रदर्श क-19 के रूप में ही साबित हुआ है, जिसकी कार्बन कॉपी रोज़नामचा रिपोर्ट संख्या-36 के माध्यम से तैयार की गई है; जिसे सिद्ध किया गया है और प्रदर्श क-20 के रूप में चिह्नित किया गया है।

48. अ०सा०-6 डॉ. डी.के. सक्सेना चिकित्सा अधिकारी हैं, जिन्होंने 25.11.2009 को सुबह 04:30 बजे मृतक के व्यक्ति का शव परीक्षण किया था। मृतक के व्यक्ति पर पाए गए चोटों को उसके द्वारा अपनी गवाही में दोहराया गया था, जिसका उल्लेख पहले ही ऊपर किया जा चुका है। उनके द्वारा शव परीक्षण रिपोर्ट को प्रदर्श क-6 के रूप में साबित किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि वह यह नहीं बता सकते कि क्या उनके द्वारा नोट

की गई चोटें 24.11.2009 को शाम 07:00-07:30 बजे के बीच हो सकती हैं। उन्होंने आगे कहा कि पीड़िता को लगी चोटें उसकी मौत का कारण हो सकती हैं और सामान्य रूप से उसकी मौत का कारण बन सकती हैं।

49. जिरह के दौरान, उन्होंने राय व्यक्त करने में असमर्थता दिखाई है, यदि दोनों चोटें एक हथियार और एक ही बल के कारण हुई थीं। उन्होंने आगे कहा कि पीड़ित की मृत्यु 24.11.2009 को सायं 07:00 से 07:30 बजे के बीच हो सकती है।

50. अ०सा०-7 देवेंद्र सिंह पहले विवेचनाधिकारी हैं, जिनकी उपस्थिति में 24.11.2009 को केस अपराध संख्या-413 वर्ष 2009 की प्राथमिकी दर्ज की गई थी और उन्हें जांच सौंपी गई थी। उन्होंने उक्त प्राथमिकी दर्ज करने के बाद, केस डायरी में पहले सूचनाकर्ता का बयान दर्ज किया और उसके बाद घटनास्थल पर पहुंचे और सादे मिट्टी और खून आलूदा मिट्टी को इकट्ठा किया, इसे एक कंटेनर में सील किया और अपना फर्द फ़र्द बरामगदी तैयार किया, जिसे साबित किया गया है और प्रदर्श क-2 के रूप में चिह्नित किया गया है। उनके द्वारा नक़्शा नज़री भी तैयार किया गया था, जिसे सिद्ध किया गया है और प्रदर्श क-7 के रूप में चिह्नित किया गया है। 24.11.2009 को पंचनामा रिपोर्ट भी उनके द्वारा तैयार की गई थी, जिसे साबित किया गया है और प्रदर्श क-8 के रूप में चिह्नित किया गया है और अन्य प्रासंगिक दस्तावेज जैसे सीएमओ को पत्र, प्रतिसार निरीक्षक को पत्र, फोटो-लाश, चालान-लाश आदि उनके द्वारा तैयार किए गए थे और प्रदर्श क-8 से क-13 के रूप में चिह्नित किए गए थे। मृतक की मौत की सूचना मिलने पर धारा 302 भ०द०वि० के तहत मामले को बदल दिया गया और उसके बाद जांच प्रमोद कुमार शर्मा थानाध्यक्ष (अ०सा०-8) को सौंपी गई। 07.12.2009 को, सह-आरोपी बबलू को ट्यूबवेल के पास से बाहर निकाले जाने पर चाकू की बरामदगी दिखाई गई है, जिसकी फर्द बरामदगी भी अ०सा०-6 द्वारा तैयार की गई थी और इसे साबित किया गया है और प्रदर्श क-15 के रूप में चिह्नित किया गया है।

51. जिरह के दौरान, उसने कहा है कि उसने बबलू का कोई खुलासा बयान दर्ज नहीं किया था। उक्त चाकू को फोरेंसिक जांच के लिए भी नहीं भेजा गया था। उन्होंने अपनी जिरह में आगे कहा है कि धारा 307 भ०द०वि० के तहत मामला दर्ज होने के बाद, संबंधित दस्तावेज उन्हें जांच के लिए सौंप दिए गए थे। इसके तुरंत बाद वह घटनास्थल पर पहुंचा, जो जयवीर के दरवाजे के सामने था और जयवीर का बयान दर्ज किया और उसके बाद घटनास्थल से सादी मिट्टी और खून आलूदा मिट्टी एकत्र की, इसे एक कंटेनर में रखा, इसे सील कर दिया और उसका फ़र्द बरामगदी तैयार किया गया और उसके बाद वह आरोपी-अपीलकर्ता को गिरफ्तार करने के लिए निकल पड़ा। हालांकि, उन्हें बताया गया कि पीड़िता की पहले ही मौत हो चुकी है। पीड़िता के शव को उसके घर लाया गया। इसके बाद वह फिर से मृतक के घर पहुंचा और पूछताछ की। उन्होंने आगे कहा कि उन्हें याद नहीं है कि पूछताछ के समय उनकी मां घटनास्थल पर बेहोशी की हालत में नहीं मिली थी और न ही उन्होंने परविता को वहां बेहोशी की हालत में देखा था। इसके बाद, उन्होंने जयवीर की ओर इशारा करते हुए नक़्शा नज़री तैयार किया।

52. उन्होंने आगे कहा कि पारुल का शव उसके घर पहुंचने से पहले उसने पहले सूचनाकर्ता जयवीर का बयान दर्ज किया था। उन्होंने आगे कहा कि जयवीर ने अपने बयान में उन्हें यह नहीं बताया है कि जब पारुल के साथ घटना हुई, तो उनकी भाभी, परविता, जो पारुल की मां हैं, अपने घेर से अपने घर लौट रही थीं और हमले की वास्तविक घटना को देखा था, जो बाद में बेहोश हो गईं। जयवीर ने उन्हें यह भी नहीं बताया कि उन्हें बुढ़ाना के अस्पताल ले जाया गया है। जयवीर ने उन्हें यह भी नहीं बताया कि भागते समय हमलावरों को जसवीर पुत्र श्रीनिवास और रॉबिन पुत्र रामपाल ने देखा था, जिन्होंने उन्हें उक्त घटना के बारे में सूचित किया था। जयवीर ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में यह भी नहीं बताया कि चिंटू उसकी दुकान पर मौजूद था और उसने उसे घटना के बारे में सूचित किया था। उन्होंने यह भी नहीं बताया कि रिपोर्ट दर्ज कराने के बाद वह राजपाल के साथ मोटरसाइकिल से मेरठ गए थे। उन्होंने यह भी नहीं बताया कि जब वे गांव चानू पहुंचे तो उन्हें प्रकाश नर्सिंग होम से पारुल की मौत के बारे में फोन आया। उसने यह भी नहीं बताया कि उसकी भाभी परविता को बेहोशी की हालत में उसका भाई रवींद्र अस्पताल ले गया था और रवींद्र गांव पहुंचने से पहले उसकी भाभी पार्वती को घटनास्थल से ले गया था।

53. उन्होंने आगे कहा कि हालांकि यह सच है कि उक्त घटना में, पहला सूचनाकर्ता घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है, फिर भी उसके इंगित करने पर उसने साइट योजना तैयार की थी। यहां तक कि नक़्शा नज़री में भी रोशनी के किसी स्रोत की ओर इशारा नहीं किया गया था, यहां तक कि चिंटू की दुकान की ओर भी इशारा नहीं किया गया है। उन्होंने घटनास्थल के आसपास रहने वाले किसी भी गवाह का बयान दर्ज नहीं किया और न ही उनके घरों को दिखाया। जिस कपड़े में चाकू सील किया जाता है, उस पर न्यायालय के हस्ताक्षर नहीं होते हैं और न ही कोई मुहर होती है। बरामद किए गए चाकू में खून के धब्बे नहीं हैं। उन्होंने इस बात पर भी अनभिज्ञता दिखाई कि हिरासत में लिए गए चाकू को फोरेंसिक जांच के लिए भेजा गया है या नहीं। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि वह उस स्थान का दौरा नहीं किए थे जहां से चाकू की बरामदगी दिखाई गई है और उन्होंने इस सुझाव से इनकार किया कि नकली बरामदगी दिखाई गई है और थाना में प्रासंगिक दस्तावेज तैयार किए गए हैं। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि नक़्शा नज़री उनके द्वारा घटनास्थल पर तैयार नहीं किया गया था, बल्कि बाद में थाना में ही जाली बनाई गई थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि किसी गवाह से पूछताछ नहीं की गई और उनके फ़र्ज़ी बयान दर्ज किए गए हैं।

54. अ०सा०-8 प्रमोद कुमार शर्मा दूसरा जांच कार्यालय है और 25.11.2009 को प्रस्तुत मामले की जांच सौंपी गई थी, जब इसे धारा 302 भ०द०वि० के तहत परिवर्तित किया गया था। उन्होंने अपनी गवाही में कहा है कि 27.11.2009 को पहले सूचनाकर्ता जयवीर द्वारा एक आवेदन दिया गया था, जिसमें कहा गया था कि उनकी भाभी ने इस घटना को देखा था और आरोपी व्यक्तियों, अर्थात् पंकज और बबलू (उनके मामा के बेटे) को नामजद किया था, जिन्होंने पीड़िता पारुल को चाकू मारा था। उक्त आवेदन को केस डायरी में कॉपी किया गया था। 29.11.2009 को उन्होंने हरवीर की पत्नी पार्वती, जयवीर की पत्नी श्रीमती गीता, रवींद्र की पत्नी श्रीमती पूनम का बयान दर्ज किया था। 17.12.2009 को, उसने आरोपी बबलू को गिरफ्तार किया था और अपना खुलासा बयान दर्ज किया था, जिसमें आरोपी ने अपराध का हथियार बरामद करने के लिए कहा था, जिसके

अनुसार, वह गवाहों के साथ कर्णावाल जंगल में चला गया था और ओम सिंह के ट्यूबवेल के पास एक चाकू बरामद किया गया था, जो अपराध का हथियार था, जिसे कब्जे में ले लिया गया था। इसके बाद, इसकी फर्द बरामदगी तैयार की गई, जिस पर अभियुक्त सहित गवाहों द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे और इसे साबित किया गया था और प्रदर्श क-14 के रूप में चिह्नित किया गया था। जिस स्थल से हथियार बरामद किया गया था, वह भी तैयार कर लिया गया है, जिसे सिद्ध किया गया है और प्रदर्श क-16 के रूप में चिह्नित किया गया है।

55. उन्होंने आगे कहा कि 17.12.2009 को एक अन्य आरोपी पंकज ने अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और 18.12.2009 को उन्होंने जिला जेल में अपना बयान दर्ज कराया, जिसमें आरोपी पंकज ने अपराध का हथियार बरामद करने का भी उल्लेख किया। इसके परिणामस्वरूप, 23.12.2009 को, पुलिस हिरासत रिमांड के आधार पर, अ०सा०-8 कर्णावाल जंगल पहुंचा और गन्ने के खेत से ओम सिंह के ट्यूबवेल के पास एक चाकू बरामद किया, जिसे उसके कब्जे में ले लिया गया था और इसकी फर्द बरामदगी उप निरीक्षक देवेंद्र सिंह द्वारा तैयार की गई थी, जिस पर गवाहों द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे और इसे साबित किया गया है और प्रदर्श क-15 के रूप में चिह्नित किया गया है। बरामदगी की नक़्शा नज़री भी तैयार किया गया था, जिसे सिद्ध किया गया है और प्रदर्श क-17 के रूप में चिह्नित किया गया है। 10.01.2010 को, उन्होंने डॉ. राकेश मित्तल का बयान दर्ज किया और विवेचना पूरी करने के बाद आरोप पत्र प्रस्तुत किया, जो साबित हो गया है और प्रदर्श क-18 के रूप में चिह्नित किया गया है।

56. जिरह के दौरान, उन्होंने कहा कि 24.11.2009 को जयवीर ने अपनी भतीजी पारुल को छुरा घोंपने के संबंध में एक रिपोर्ट दर्ज कराई थी और उसी दिन लगभग 21:05 बजे उसकी मृत्यु के बारे में जानकारी प्राप्त हुई थी, जिसे लिखित रूप में कर दिया गया था। उन्होंने आगे कहा कि पीड़िता पारुल की मौत की सूचना मिलने के बाद वह उसके घर पहुंचे, हालांकि यह नहीं बता सकते कि उनकी मां परविता वहां मौजूद थीं या नहीं। उन्होंने 25.11.2009 को फिर से घटनास्थल का दौरा किया, हालांकि, गवाहों के बयान दर्ज नहीं किए, हालांकि मृतक के मामा रवींद्र वहां मौजूद थे, लेकिन यह नहीं बता सके कि उसकी मां परविता वहां अपने घर पर मौजूद थी या नहीं। 27.11.2009 को, कर्णावाल गेट के पास, जयवीर सिंह ने उसे 27.11.2009 को एक आवेदन दिया था, हालांकि, उसने 27.11.2009 को परविता का बयान दर्ज नहीं किया, क्योंकि वह अपने घर पर मौजूद नहीं थी और दवाएं लेने गई थी। उन्होंने आगे कहा कि जिस अस्पताल में पार्वती का बेहोशी की हालत में इलाज किया जा रहा था, उसके बारे में उन्हें कोई जानकारी नहीं है और न ही किसी गवाह ने इसका खुलासा किया है।

57. अ०सा०-8 ने आगे कहा कि जयवीर ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में। उन्होंने यह नहीं बताया है कि रॉबिन, यशवीर और चिंटू ने उन्हें पारुल की चाकू मारने के बारे में सूचित किया था और न ही उन्होंने यह बयान दिया था कि जयवीर के उनके घर पहुंचने से पहले, उनके भाई हरवीर और राहुल पहले ही पीड़िता पारुल को मेरठ अस्पताल ले गए थे। जयवीर ने उन्हें यह भी नहीं बताया कि चिंटू उनकी दुकान पर मौजूद थे और उन्होंने उन्हें घटना के बारे में बताया। उन्होंने यह भी नहीं बताया कि गांव पहुंचने से पहले राहुल

और उसके पिता मृतक के शव को लेकर घर पहुंच गए थे। उन्होंने यह भी नहीं बताया कि उनकी भाभी परविता को बेहोशी की हालत में गांव पहुंचने से पहले उनके भाई रवींद्र अस्पताल ले गए। उन्होंने यह भी खुलासा नहीं किया कि उनकी भाभी को इलाज के लिए बेहोशी की हालत में बुढ़ाना ले जाया गया था और न ही उन्होंने यह खुलासा किया कि रवींद्र के अलावा परिवार का कोई अन्य सदस्य अस्पताल में परविता को देखने नहीं गया था। अ०सा०-1 ने उन्हें यह भी नहीं बताया कि 24.11.2009 से 26.11.2009 के बीच परविता नर्सिंग होम में भर्ती रहीं। उन्होंने यह भी खुलासा नहीं किया कि 26.11.2009 को उनकी भाभी नर्सिंग होम से घर वापस आई और शाम को बात कर रही थी और उसने उसके और उसके परिवार के अन्य सदस्यों के साथ बात की थी।

58. उन्होंने आगे कहा कि सतवीर ने अपने बयान में यह खुलासा नहीं किया कि दोनों आरोपी-हमलावर पंकज और बबलू ने पीड़िता को जमीन पर गिराने के बाद उसके साथ मारपीट की थी। उन्होंने यह भी नहीं बताया कि उन्होंने इस घटना को बल्ब की रोशनी में देखा था, दुकान पर जलाया गया था और परविता भी घटनास्थल पर पहुंच गई थी। अ०सा०-2 सतवीर ने यह भी खुलासा नहीं किया कि वह अपने घर के निर्माण की निगरानी के लिए कंकरखेड़ा गया था और 27.11.2009 को वापस लौट आया था। उसने यह भी नहीं बताया कि अगले दिन उसके कुछ रिश्तेदारों की मौत की सूचना मिलने पर वह गंगानगर गया था। उसने आगे उसे यह नहीं बताया कि वह भी घटनास्थल पर गया और पारुल को बचाने की कोशिश की, और न ही यह खुलासा किया कि उसने पारुल को हाथ में रोटी लेकर उसके घर से बाहर निकलते हुए देखा था। सतवीर ने उन्हें यह भी नहीं बताया कि जब आरोपी लोगों ने पीड़िता के साथ मारपीट की, तो उसने 'मां' कहकर शोर मचाया। उन्होंने यह भी नहीं बताया कि पहले पंकज ने पारुल को चाकू मारा और बबलू ने उसे जमीन पर गिरा दिया। उन्होंने यह भी नहीं बताया कि जब उन्होंने हमलावरों का पीछा किया, तो उन्होंने परविता को देखा, और न ही यह खुलासा किया कि उन्होंने लगभग 20-30 कदम तक आरोपी व्यक्तियों का पीछा किया और संबंधित समय पर कुछ लोग आ रहे थे और जा रहे थे, लेकिन उनका नाम नहीं ले सके। उसने यह भी नहीं बताया कि हमलावरों का पीछा करने के बाद वह अपने घर गया और उसके बाद वह परविता के घर नहीं गया। उन्होंने यह खुलासा नहीं किया कि अपना घर लौटने के बाद उन्होंने पारुल की स्थिति के बारे में पूछताछ नहीं की और 25.11.2009 को हरवीर के घर नहीं गए। उसने यह भी नहीं बताया कि जब वह घटनास्थल पर पहुंचा तो उसने जयवीर और उसकी मां को वहां मौजूद देखा।

59. आगे की जिरह के दौरान, अ०सा०-8 ने कहा कि उसने पंकज की पुलिस हिरासत रिमांड प्राप्त कर ली थी और उसके बाद उसकी ओर इशारा करते हुए चाकू बरामद किया था। उन्होंने ओम सिंह का बयान भी दर्ज नहीं किया, जिनके ट्यूबवेल के पास से अपराध हथियार चाकू बरामद किया गया था।

60. अ०सा०-9 उप निरीक्षक विजेंद्र सिंह शस्त्र अधिनियम की धारा 25/4 के तहत केस अपराध संख्या-476 वर्ष 2009 के विवेचनाधिकारी हैं। उन्होंने अपनी गवाही में कहा है कि 24.12.2009 को उन्होंने थानाध्यक्ष प्रमोद कुमार शर्मा और उप निरीक्षक देवेंद्र सिंह का बयान दर्ज किया था और नक़्शा नज़री तैयार किया था।

61. अ०सा०-10 हेड कांस्टेबल सहजोर सिंह गवाह है, जिसने शस्त्र अधिनियम की धारा 25/4 के तहत केस अपराध संख्या-476 वर्ष 2009 की चिक प्राथमिकी तैयार की थी, जिसे रोज़नामचा संख्या-32 के माध्यम से शाम 07:45 बजे लिखित रूप में दर्ज किया गया था।

62. अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों को समाप्त करने के बाद, धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त-अपीलकर्ता पंकज और बबलू का बयान दर्ज किया गया है। आरोपी-अपीलकर्ता पंकज ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में गवाहों के पूरे अभियोजन साक्ष्य को झूठा और मनगढ़ंत होने का दावा किया और अभियोजन पक्ष की कहानी से इनकार किया। अपीलकर्ता पंकज ने अपने बयान में आगे कहा है कि, वास्तव में, पारुल को किसी व्यक्ति से प्यार हो गया था और उसकी शादी से पहले, वह उसके साथ भागना चाहती थी, जैसे, पीड़ित पारुल या किसी अज्ञात व्यक्ति के परिवार के सदस्य, उनकी गरिमा की रक्षा के लिए, उसकी मौत का कारण बने हैं और उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया है, जैसा कि उसने मृतक के परिवार के सदस्यों को पारुल के आचरण के बारे में सूचित किया था और उक्त दुश्मनी की पृष्ठभूमि में, उसे प्रस्तुत मामले में झूठा फंसाया गया है।

63. विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य और सामग्री का मूल्यांकन करने के बाद और अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की गवाही पर निहित भरोसा रखते हुए माना है कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ मामले को सफलतापूर्वक साबित कर दिया है और अपीलकर्ता द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण अपर्याप्त और गलत पाया गया था और इस तरह, वह उस अपराध के लिए दोषी ठहराए जाने के लिए उत्तरदायी है और उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है।

64. उक्त निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होने के कारण, अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत अपील दायर की गई है।

65. यहां यह बताना उचित है कि प्रस्तुत अपील के लंबित रहने के दौरान, सह-आरोपी बबलू की पहले ही मृत्यु हो चुकी थी और इस प्रकार, उसकी अपील को आपराधिक अपील संख्या-1861 वर्ष 2015 (राज्य बनाम बबलू @ अजीत) में पारित आदेश दिनांक 05.04.2024 द्वारा खारिज कर दिया गया है।

66. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि इस मामले में विचारण न्यायालय ने सही परिप्रेक्ष्य में अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य और सामग्री का मूल्यांकन नहीं की है और अपीलकर्ताओं के खिलाफ दोषसिद्धि और सजा के निष्कर्षों को अवैध रूप से दर्ज किया है।

67. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की गवाही के आधार पर दोषसिद्धि का निष्कर्ष, वास्तव में, अपर शासकीय अधिवक्ता पर आधारित है, जिसे कानून में त्रुटिपूर्ण नहीं कहा जा सकता है।

68. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि मुकदमे के दौरान पेश किए गए पूरे सबूतों को देखने पर, हम पाते हैं कि अ०सा०-1 जयवीर, जो प्रस्तुत मामले का पहला सूचनाकर्ता है, घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है और केवल सुनी-सुनाई बातों के आधार पर रिपोर्ट दर्ज की है। यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि अ०सा०-1 ने पहली बार में दो अज्ञात अभियुक्तों के खिलाफ पीड़िता पारुल और उसकी भतीजी पर हमला करने की रिपोर्ट दर्ज कराई थी, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने अपनी भतीजी पारुल को चाकू मार दिया और भाग गया। इसके बाद, घटना के दो दिनों के बाद, मृतक की मां सतवीर और उसकी भाभी पार्वती से उसे प्राप्त हुई सूचना के आधार पर मृतक की मां ने 27.11.2009 को एक बाद का आवेदन दायर किया है, जिसमें कहा गया है कि उन्होंने आरोपी-अपीलकर्ता पंकज को बबलू के साथ, उसके मामा के बेटे को देखा था कि उसने पीड़ित पारुल को चाकू मार दिया था और उसके बाद उनके भागने को अच्छा बना दिया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि जब हम अ०सा०-1 की गवाही के माध्यम से जाते हैं, तो हम पाते हैं कि उनकी गवाही कई विसंगतियों और सुधारों से भरी हुई है और उक्त परिस्थिति की पृष्ठभूमि में, कल्पना के किसी भी खिंचाव से, उन्हें एक विश्वसनीय गवाह कहा जा सकता है जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है।

69. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि अ०सा०-2 सतवीर की गवाही, जो कथित तौर पर एक चिंटू की दुकान से घटना को देखने के लिए भी विश्वास को प्रेरित नहीं करती है और उसकी गवाही भी विसंगतियों और सुधारों से भरी हुई है। यहां तक कि विवेचनाधिकारी ने भी बताया है कि उक्त गवाह ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत पूछताछ के दौरान उसे किसी भी प्रासंगिक परिस्थिति का खुलासा नहीं किया है, हालांकि, अपनी गवाही में, उसने अभियोजन पक्ष की कहानी विकसित की है और खुद को एक चश्मदीद गवाह के रूप में पेश करने की कोशिश की है, हालांकि जब हम उसके पूरे सबूतों को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि घटना से पहले और बाद में उसके आचरण से, चश्मदीद गवाह होने की उनकी गवाही भी आत्मविश्वास को प्रेरित नहीं करती है और इसे खारिज किया जा सकता है।

70. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि मृतक की मां अ०सा०-3 की गवाही भी बहुत विश्वास को प्रेरित नहीं करती है। कहा जाता है कि उसने इस घटना को तब देखा जब वह अपने घेर से लौट रही थी और मोड़ पर पहुंची थी और घटना को देखती थी, कहा जाता है कि वह घटनास्थल पर पहुंची थी, जब कहा जाता है कि वह बेहोश हो गई थी और उसके भाई रवींद्र द्वारा उसे अस्पताल ले जाया गया था और कहा जाता है कि वह दो दिनों तक बेहोशी की हालत में अस्पताल में रही और उसके बाद लौटने पर उसने अपने बहनोई जयवीर को घटना की सूचना दी थी, जिसके आधार पर अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी विकसित की गई है, हालांकि, जब हम उक्त गवाह की गवाही को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि उसके बयान में ठोस विसंगतियां और विरोधाभास हैं, जो अभियोजन की कहानी को अत्यधिक संदिग्ध बना देता है और दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, उसे एक विश्वसनीय गवाह भी नहीं कहा जा सकता है, हालांकि, विचारण न्यायालय ने उसकी गवाही पर निहित भरोसा करते हुए अपीलकर्ता के खिलाफ दोषसिद्धि के निष्कर्ष को दर्ज किया है, जो कानून में त्रुटिपूर्ण है और इसे रद्द किया जा सकता है।

71. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि यहां तक कि ओम सिंह के ट्यूबवेल के पास एक खुली जगह से अपीलकर्ता पंकज की ओर इशारा करते हुए दिखाए गए अपराध हथियार चाकू की बरामदगी भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के स्थापित सिद्धांतों के अनुसार साबित नहीं हुई है और इसलिए, अपीलकर्ता के खिलाफ बरामदगी के तथ्य को भी अभियोजन पक्ष द्वारा स्पष्ट रूप से साबित नहीं किया गया है, फिर भी विचारण न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता को शस्त्र अधिनियम की धारा 4/25 के तहत दोषी ठहराया है और उसे तदनुसार सजा सुनाई है, जो कानून में गलत है और इसे रद्द किया जाना है।

72. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि कहा जाता है कि विचाराधीन घटना को यशवीर, रॉबिन और चिंटू जैसे बड़ी संख्या में व्यक्तियों ने देखा था, लेकिन उक्त गवाहों में से किसी को भी विचारण न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया गया है। यहां तक कि मृतक के पिता हरवीर और मृतक के भाई राहुल की भी जांच नहीं की गई है, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे मृतक को अस्पताल ले गए थे। अ०सा०-3 परविता के सगे भाई रवींद्र, जो उसे अस्पताल में ले गए थे, को पेश नहीं किया गया है, हालांकि वे प्रासंगिक थे और ठोस गवाह थे, हालांकि, अभियोजन पक्ष द्वारा जानबूझकर रोक दिया गया है, जो अभियोजन की कहानी को अत्यधिक संदिग्ध बनाता है।

73. इसके विपरीत, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता के साथ-साथ पहले सूचनाकर्ता के अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय और आदेश का समर्थन किया है और प्रस्तुत किया है कि अभियुक्त ने यहां अपराध किया है, जो मुकदमे के दौरान पेश किए गए सबूतों से उचित संदेह से परे साबित हुआ और अपराध के कमीशन में अपीलकर्ता के अपराध की ओर इशारा किया गया है और इस तरह, विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश में कोई अवैधता नहीं है और इसकी पुष्टि की जा सकती है।

74. पक्षों के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार करने और मुकदमे के दौरान पेश किए गए पूरे सबूतों पर विचार करने के बाद, हम पाते हैं कि वर्तमान घटना 24.11.2009 को शाम को लगभग 07:15 बजे पीड़ित मृतक पारुल के दरवाजे पर हुई थी, जब वह कुत्तों को रोटी खिलाने के लिए बाहर गई थी, हालांकि, कहा जाता है कि दो लोगों ने उसके साथ मारपीट की, जिससे उसकी मौत हो गई, जिसकी जानकारी उसके चाचा जयवीर ने मेरठ के सरूरपुर थाना में दी थी। उक्त सूचना के आधार पर, धारा 307 भ०द०वि० के तहत केस अपराध संख्या-413 वर्ष 2009 के तहत दो अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई थी।

75. अ०सा०-1 की गवाही से, हम पाते हैं कि पहला सूचनाकर्ता घटना का चश्मदीद गवाह नहीं था और केवल संदेह के आधार पर दो अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज की थी। प्राथमिकी में ही कहा गया है कि पीड़िता पारुल को उसके पिता हरवीर और उसके सगे भाई राहुल अस्पताल ले गए थे, हालांकि उन्हें गवाह के तौर पर पेश नहीं किया गया है। बताया जाता है कि पीड़िता ने 24.11.2009 को अंतिम सांस ली थी और उसकी मृत्यु की सूचना मिलने पर धारा 302 भ०द०वि० के तहत मामले को बदल दिया गया और उसके बाद पुलिस मृतक

के घर पहुंची, जहां उसके शव को उसके पिता और भाई द्वारा लाया गया था और पंचनामा रिपोर्ट तैयार की गई थी। इसके बाद शव को शव परीक्षण के लिए भेज दिया गया।

76. घटना के दो दिनों के बाद, कहा जाता है कि पहले सूचनाकर्ता जयवीर द्वारा विवेचनाधिकारी को एक और आवेदन दिया गया था, जिसमें कहा गया था कि 24.11.2009 को लगभग 07:15 बजे उसकी भतीजी को चाकू मार दिया गया था, जिसके संबंध में जानकारी उसके द्वारा 24.11.2009 को ही दी गई थी, हालांकि बाद में, यह खुलासा किया गया है कि घटना की तारीख को, मृतक की मां उसकी बहन परविता घेर से अपने घर वापस लौट रही थी और जब वह अपने घर के पास मोड़ के पास पहुंची, तो उसने देखा कि आरोपी अपीलकर्ता पंकज ने बबलू के साथ उसके मामा के बेटे को पीड़ित पारुल और उसकी बेटी पर चाकू मार दिया और घटना को देखकर वह बेहोश हो गई और बाद में उसकी चिकित्सा स्थिति बिगड़ गई और उसे अस्पताल ले जाया गया।जहां दो दिनों के बाद, होश में आने पर, वह अपने घर वापस लौट आई थी और जयवीर को सूचित किया था कि उसने अपीलकर्ता पंकज और बबलू को अपनी बेटी को चाकू मारते हुए देखा था, जिससे उसकी मौत हो गई।

77. उक्त तिथि को उक्त घटना के संबंध में सूचना उसे उसी गांव के निवासी सतवीर पुत्र नाहर सिंह द्वारा भी दी गई थी, जब वह चिंटू नामक व्यक्ति की दुकान पर खड़ा था, जहां वह बीड़ी खरीदने आया था और जिसने पूरी घटना देखी थी और उसे सुनाया था, जिसके आधार पर अभियोजन पक्ष की कहानी तैयार की गई है और पंकज और बबलू को आरोपी माना गया है। पुलिस ने दिनांक 07-12-2009 और 17-12-2009 को उनकी गिरफ्तारी के बाद उनके द्वारा दिए गए प्रकटीकरण वक्तव्य के आधार पर एक खुले स्थान से उनकी ओर इशारा करने पर अपराध हथियार चाकू की बरामदगी दिखाई थी।

78. मृतक की मां अ०सा०-1 जयवीर सिंह, अ०सा०-2 सतवीर सिंह और अ०सा०-3 परविता की गवाही के आधार पर विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि अपीलकर्ता पंकज और बबलू ने पारुल की मौत उसके घर के बाहर कर दी है, जब उसने उनमें से एक से शादी करने से इनकार कर दिया था और उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई थी।

79. हमने पक्षों को सुना है, मुकदमे के समय पेश किए गए सबूतों पर विचार किया है और विचारण न्यायालय के फैसले का अवलोकन किया है। निर्णय के लिए जो मुद्दे सामने आते हैं वे हैं (i) क्या अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य एकमात्र जीवित अपीलकर्ता पंकज के खिलाफ दोषसिद्धि दर्ज करने के लिए पर्याप्त हैं: (ii) यदि उपरोक्त का उत्तर सकारात्मक है, तो अपीलकर्ता पंकज को उचित सजा क्या दी जानी चाहिए।

80. मुद्दों को संबोधित करने से पहले, हम मुकदमे के दौरान पेश किए गए गवाहों की गवाही के महत्व के संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून पर फिर से विचार करना उचित समझते हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने कई निर्णयों में माना है कि मौखिक गवाही को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। (i) पूरी तरह से विश्वसनीय (ii) पूरी तरह से अविश्वसनीय (iii) न तो पूरी तरह से

विश्वसनीय और न ही पूरी तरह से अविश्वसनीय। मामलों की पहली दो श्रेणियां अदालत के लिए अपने निष्कर्ष पर पहुंचने में गंभीर कठिनाई पैदा नहीं कर सकती हैं, हालांकि, मामलों की तीसरी श्रेणी में, अदालत को सतर्क रहना होगा और विश्वसनीय गवाही, प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य द्वारा किसी भी ठोस विवरण की पुष्टि की तलाश करनी होगी, और नियम और विवेक की आवश्यकता होती है।

81. पूर्वोक्त कानून द्वारा निर्देशित और पहले प्रश्न का उत्तर देने के हमारे प्रयास में, हम पाते हैं कि उनके सबूतों की व्यापक जांच करने के बाद, हम अभियोजन पक्ष के गवाहों के मौखिक साक्ष्य में स्पष्ट विरोधाभास और विसंगतियां देखते हैं। हमारे विचार से, ये अभियोजन पक्ष के संस्करण की सत्यता के संबंध में एक गंभीर संदेह पैदा करने का प्रभाव डालते हैं।

82. अब हम मुकदमे के दौरान पेश किए गए तीन अभियोजन गवाहों के चश्मदीद गवाहों की गवाही में से प्रत्येक पर विचार करेंगे।

83. जहां तक जयवीर सिंह की गवाही का सवाल है, हम पाते हैं कि वह घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है और उसकी गवाही पूरी तरह से सतवीर सिंह अ०सा०-2 और परविता अ०सा०-3 के साक्ष्य पर आधारित है। इसके अलावा, जब हम उसकी गवाही को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि वह बिल्कुल भी विश्वसनीय गवाह नहीं है और उसकी गवाही विसंगतियों और सुधारों से भरी हुई है।

84. अ०सा०-1 जयीवीर ने अपने मुख्य परीक्षण में स्पष्ट रूप से कथन किया कि पारुल को चाकू मारने की घटना के पश्चात् वह अपने अन्य परिजनों के साथ अपनी भतीजी कुमारी पारुल को उपचार हेतु मेरठ ले जा रहे थे, किन्तु अस्पताल पहुँचने के मार्ग में ही उसकी मृत्यु हो गई, जिसके कारण वे लोग वापस अपने घर लौट आए। तथापि, बाद में अपनी जिरह के दौरान उन्होंने अपने उक्त कथन से विचलित होते हुए कहा कि यद्यपि दिनांक 04.10.2010 को जब उनका कथन विचारण न्यायालय के समक्ष अभिलिखित किया जा रहा था, तब उन्होंने ऐसा कथन किया था। *"मैं नहीं कह सकता कि दिनांक 4.10.10 को जो मैंने बयान दिया 'जब मैं तथा मेरे अन्य परिवार जन अपनी भतीजी कु० पारुल को इलाज के लिए मेरठ ला रहे थे तो रास्ते में ही उसने दम तोड़ दिया था' मैं नहीं कह सकता की यह बात सही है या गलत है।"*

85. इस प्रकार, उनकी उक्त गवाही से, यह स्पष्ट है कि उक्त गवाह अत्यधिक असंगत है और अपने स्वयं के बयान से पीछे हट रहा है। जब हम आगे उनके साक्ष्य को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि उन्होंने अपनी गवाही में कहा है कि जब उन्हें अपनी भतीजी पारुल की चाकू मारने के बारे में पता चला, तो वह घटनास्थल से 100-150 गज की दूरी पर थे और 10-15 मिनट में वहां पहुंच गए थे और उन्होंने चिंटू की दुकान से एक कागज एकत्र किया था जिस पर उन्होंने रिपोर्ट लिखी थी। संबंधित समय पर, चिंटू अपनी दुकान पर मौजूद था और उसने उसे घटना के बारे में सूचित किया था। उद्धृत करने के लिए :

"मुझे ध्यान नहीं उस समय कटारे व धर्मवीर आये थे या नहीं। जिस समय चिन्टू की दुकान पर मैं पहुंचा मुझे ध्यान नहीं है कि उस समय मेरे जान पहचान का कोई खड़ा था या नहीं। चिन्टू दुकान में मौजूद था। दुकान- " पर मुझे चिन्टू ने वाकये के बारे में बताया था।

86. हालाँकि, जब हम उक्त कथन की सत्यता का परीक्षण करते हैं, तो हम पाते हैं कि उक्त गवाह सच्चा गवाह नहीं है। अगर चिंटू ने उसे घटना के बारे में सूचित किया होता, जैसा कि उसके द्वारा कहा गया था, तो वह निश्चित रूप से नामजद आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज करता, न कि दो अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ, जिससे उसकी गवाही अत्यधिक संदिग्ध और विश्वास करना मुश्किल हो जाता है। जब हम आगे उसकी गवाही के माध्यम से जाते हैं, तो हम पाते हैं कि उसने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि दो अज्ञात व्यक्तियों ने उसकी भतीजी को चाकू मारने की घटना को अंजाम दिया था और इस तथ्य का खुलासा उसकी मां सोना और पिता बलजीत ने उसे किया था, हालांकि, उनकी बिल्कुल भी जांच नहीं की गई है। उन्होंने आगे कहा कि दो व्यक्तियों द्वारा अपने माता-पिता को हमले के उक्त तथ्य का खुलासा किसने किया, इस तथ्य के बारे में उन्हें जानकारी नहीं थी, जो उनकी गवाही को संदिग्ध बनाता है। इसके अलावा, जब हम अ०सा०-1 की गवाही को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि उन्होंने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि उनकी भाभी पार्वती, घटना को देखकर, बेहोश हो गई थीं और उनके सगे भाई रवींद्र द्वारा उन्हें अस्पताल ले जाया गया था, हालांकि, उक्त गवाही के विपरीत अ०सा०-3 परविता ने अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा है कि वह, दरअसल, गांव बिटवाड़ा में रहने वाले अपने भाई रवींद्र को अस्पताल ले गए। उन्होंने अपनी गवाही में आगे कहा कि, जब पुलिस उनके द्वारा दी गई सूचना पर उनके गांव पहुंची थी और जांच आदि कर रही थी, तो उन्हें पता चला था कि उनकी भाभी परविता को बेहोशी की हालत में अस्पताल ले जाया गया है, हालांकि, इस तथ्य का खुलासा पुलिस को नहीं किया गया था, जो अभियोजन की कहानी को और संदिग्ध बनाता है।

87. उक्त गवाह ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि 27.11.2009 को लगभग 07:00-08:00 पूर्वाह्न सतवीर और उसकी भाभी परविता ने उसे आरोपी व्यक्तियों के नाम का खुलासा किया था, हालांकि अपनी आगे की गवाही में, उसने स्वीकार किया कि उसकी भाभी 26.11.2009 को शाम को अपने घर वापस आ गई थी और संबंधित समय पर बोल रही थी और उसके साथ-साथ परिवार के अन्य सदस्यों के साथ चर्चा की थी। -- *"27.11.09 को सुबह 7-8 बजे मुझे सतवीर सिंह व मेरी भाभी परवीता ने बताया था सुबह 7-8 बजे मुजिज्मान के नाम बताये थे कि इन्होंने ही चाकू से मारा हो। मेरी भाभी 26.11.09 को नर्सिंग होम से गांव में शाम को घर पर आ गयी थी उस समय वह बोल चाल रही थी उससे मेरी व सभी घर वालों की बात चीत हो गयी थी।- "*

88. इस प्रकार, यदि हम अ०सा०-1 के उक्त बयान का विश्लेषण करते हैं, तो हम पाते हैं कि उसकी गवाही के अनुसार उसकी भाभी 26.11.2009 को वापस आ गई और उसके और उसके परिवार के सदस्यों के साथ चर्चा की, हालांकि, ऐसी परिस्थितियों में यह तर्क नहीं है कि अगले दिन केवल 07:00-08:00 बजे ही क्यों, वह उन आरोपियों के नाम का खुलासा करेगी, जिन्होंने चाकू से उसकी बेटी पर हमला किया था। ऐसा प्रतीत होता है

कि परिवार के सदस्यों के साथ बहुत विचार-विमर्श के बाद, अपीलकर्ता पंकज का नाम बबलू के साथ एक हमलावर के रूप में पेश किया गया था और यही कारण है कि घटना के दो दिनों के बाद ही उनका नाम इस मामले में आरोपी के रूप में सामने आया है, जो परिस्थिति अभियोजन पक्ष की कहानी को भी संदिग्ध बना देती है और उक्त गवाह की गवाही को अविश्वसनीय बनाती है।

89. अब अ०सा०-2 सतवीर की गवाही पर आते हुए, हम पाते हैं कि उन्हें घटना का चश्मदीद गवाह कहा जाता है और उन्होंने कहा है कि उन्होंने आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा मारपीट की घटना को चिंटू की दुकान से देखा था, जहां वह बीड़ी खरीदने आया था। कहा जाता है कि उसने बल्ब की रोशनी में इस घटना को देखा और आगे कहा कि जब हमलावर पीड़िता पारुल पर हमला कर रहे थे, तो उसकी मां भी अपने घेर से लौटते समय घटनास्थल पर पहुंची थी और आरोपी व्यक्तियों को चाकू से मृतक पर हमला करते हुए देखा था। उन्होंने अपनी परीक्षा में स्पष्ट रूप से कहा है कि घटना के बाद वह डर के कारण अपने घर वापस लौट आए थे और अगले दिन अपने रिश्तेदार की मृत्यु का शोक मनाने के लिए चले गए थे और दो दिनों के बाद यानी 27.11.2009 को लौटे और उसके बाद पहले सूचनाकर्ता जयवीर के घर गए और उन्हें घटना की जानकारी दी।

90. जिरह के दौरान, उन्होंने कहा कि घटना को देखने के बाद वह अपने रिश्तेदार की मृत्यु पर शोक मनाने के लिए गंगानगर गए थे, हालांकि, आगे कहा कि मृत्यु, वास्तव में, घटना से चार दिन पहले हुई थी और वह भी उनके दूर के रिश्तेदार गुलवीर की, जिसे उनकी भतीजी सावित्री का जेठ कहा जाता है और दो दिनों के बाद ही लौटा था।जो अपने आप में काफी असंभव प्रतीत होता है और सामान्य विवेक वाले व्यक्ति द्वारा विश्वास नहीं किया जा सकता है, विशेष रूप से, इस परिस्थिति को देखते हुए कि मृत्यु लगभग चार दिन पहले हुई थी और वह भी उसके दूर के रिश्तेदार की जहां वह दो दिनों तक रुका था। वास्तव में, ऐसा प्रतीत होता है कि चूंकि उक्त गवाह कथित रूप से घटना का चश्मदीद गवाह है, हालांकि, वहां उपस्थित होने के बावजूद, उसने पीड़ित को बचाने का कोई प्रयास नहीं किया और कहा जाता है कि वह डर के मारे अपने घर गया था और यह घटना के दो दिनों के बाद 27.11.2009 को था। उसके चश्मदीद गवाह होने के उक्त तथ्य का खुलासा किया गया है, फिर दो दिनों तक उसकी अनुपस्थिति का स्पष्टीकरण देने और पहले सूचनाकर्ता को घटना का खुलासा करने के लिए, अभियोजन पक्ष की कहानी में कमी को छिपाने के लिए उक्त स्पष्टीकरण दिया गया है, जो बिल्कुल भी तर्क नहीं देता है।

91. इसके अलावा, जब हम अ०सा०-2 की गवाही को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि उन्होंने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि दो आरोपी नामित व्यक्तियों द्वारा हमले की घटना के समय, उन्होंने परविता को मोड़ पर देखा था, जो अपने घर जा रही थी, हालांकि, उनकी पूरी गवाही में, एक भी संकेत नहीं है कि वह दो व्यक्तियों द्वारा अपनी बेटी को चाकू मारने की घटना को देखने के बाद बेहोश हो गई थी, जो अ०सा०-1 और अ०सा०-3 की गवाही के बिल्कुल विपरीत है, जिन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि हमले की घटना को देखने पर, परविता बेहोशी की हालत में गिर गई थी। हालांकि अपनी जिरह में उसने स्पष्ट रूप से कहा है कि वह घटनास्थल पर गया था और पारुल को बचाने की कोशिश की थी, लेकिन उसने यह नहीं देखा कि मृतक की

मां पार्वती बेहोशी की हालत में गिर गई थी। यह विशेष परिस्थिति उनके चश्मदीद गवाह के खाते को अत्यधिक संदिग्ध बनाती है।

92. यहां यह बताना और भी महत्वपूर्ण है कि जब हम अ०सा०-2 की गवाही से गुजरते हैं, तो हम पाते हैं कि उनकी गवाही कई विसंगतियों और सुधारों से भरी हुई है। उन्होंने अपनी मुख्य परीक्षा में स्पष्ट रूप से कहा है कि घटना को देखने के बाद, डर के कारण वह अपने घर वापस लौट आए थे और अगली सुबह अपने रिश्तेदार की मृत्यु के शोक में गंगानगर चले गए थे, हालांकि, अपनी जिरह में, उन्होंने कहा कि घटना को देखने के बाद वह घटनास्थल पर पहुंच गए थे और पारुल को बचाने की कोशिश कर रहे थे, जबकि आरोपी व्यक्तियों ने उस रास्ते से भागने की कोशिश की जहां वह था खड़ा होकर उसने उन्हें पकड़ने के लिए शोर गुल बजाया। उसने यह कहकर अपनी गवाही में और सुधार किया कि उसने शोर मचाने के बाद, उसने आरोपी व्यक्तियों का लगभग 20-30 गज की दूरी तक पीछा किया और उनका पीछा करने के बाद, वह अपने घर वापस लौट आया और उस दिन परविता के घर नहीं गया। उन्होंने आगे कहा कि वह पीड़ित पारुल की स्थिति के बारे में पूछताछ करने के लिए घटनास्थल पर भी नहीं गए और उसके बाद 27.11.2009 को ही वापस लौटे, जब उन्हें सूचित किया गया कि पारुल का पहले ही निधन हो चुका है और फिर उन्होंने मृतक के चाचा जयवीर को सूचित किया कि हमलावरों पंकज ने बबलू के साथ मिलकर 24.11.2009 को पीड़ित की हत्या कर दी थी।

93. अ०सा०-2 का उपरोक्त आचरण स्पष्ट रूप से सुझाव देता है कि वह एक विश्वसनीय गवाह नहीं है और अपनी गवाही में कदम दर कदम सुधार कर रहा है और इसलिए उसे विश्वसनीय गवाह नहीं माना जा सकता है। कहा जाता है कि तीन दिनों के बाद विवेचनाधिकारी द्वारा उनकी जांच की गई और उन्हें पूरी घटना के बारे में बताया गया, हालांकि, जब हम विवेचनाधिकारी प्रमोद कुमार शर्मा (अ०सा०-8) की गवाही को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि सतवीर ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में विवेचनाधिकारी को प्रासंगिक तथ्य की ओर इशारा नहीं किया और केवल पहली बार विचारण न्यायालय के समक्ष उक्त तथ्यों का वर्णन कर रहा है। इस संबंध में, अ०सा०-8 के बयान पर ध्यान देना प्रासंगिक है जहां उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है:

"मुझे गवाह सतवीर ने यह बयान नहीं दिया कि 'दोनों हाजिर अदालत मुजिज्मान ने जमीन पर गिराकर उसे अपने हाथों में लिये चाकुओं से दोनों लोगों यानि पंकज व बबलू ने उस पर जानलेवा हमला कर दिया। ' मुझे सतवीर ने यह बात नहीं बताई थी कि 'मैंने यह घटना दुकान पर लगी लाईट की रोशनी में देखी थी तथा मेरे अलावा प्रविता भी मौके पर आ गई थी। ' मुझे सतवीर ने यह बयान भी नहीं दिया कि 'मैं अगले दिन शाम को अपने मकान कंकरखेड़ा में जो बन रहा है उसकी देखरेख के लिये वहीं रहा और 26.11.09 तक वहीं रहा दिनांक 27.11.09 को वापस करनावल आ गया। ' मुझे सतवीर ने यह बयान भी नहीं दिया कि 'मैं जब अपने घर से चिन्टू की दुकान पर बीड़ी लेने चला था उससे पहले मुझे अपनी रिश्तेदारी में मौत की खबर मिल चुकी थी। ' मुझे सतवीर ने यह भी नहीं बताया था कि अगले दिन मौत की खबर सुनकर वैसे ही परिवार से मिलने गंगा नगर चला गया था उस दिन कोई तेहरवीं वगैरा नहीं थी तेहरवी उसके चार पाँच दिन बाद थी। मुझे सतवीर ने यह भी नहीं बताया कि 'मैं गंगा नगर गुलवीर सिंह की मौत सुनकर 25.11.09 को सुबह छः बजे चला था। ' मैंने चिन्टू की दुकान पर जसवीर पुत्र श्रीनिवास, रोबिन पुत्र रामपाल जो हमारे गांव के हैं उस समय चिन्टू की

दुकान पर नहीं देखा। ' मुझे सतवीर ने बयान में यह नहीं बताया कि 'मैं मौके पर गया था तथा कु० पारुल को बचाने का प्रयास किया था। ' यह भी बयान नहीं दिया कि 'जब मैं बचाने जा रहा था तब आते हुये किसी को नहीं देखा। ' मुझे सतवीर ने यह बयान भी नहीं दिया कि 'मैंने पारुल को घर के दरवाजे से बाहर आते हुये भी देखा था पारुल के हाथों में रोटी थी। ' मुझे सतवीर ने यह भी नहीं बताया कि 'जब मुलजिमान ने चाकू मारा तो उसने माँ कह कर शोर मचाया। ' यह बयान भी सतवीर ने मुझे नहीं दिया कि 'सबसे पहले पंकज ने पारुल को चाकू मारा व बबलू ने पकड़ कर पारुल को गिराया। ' सतवीर ने मुझे यह बयान भी नहीं दिया कि 'जब मैं मुलजिम का पीछा करने गया तो मैंने प्रविता को देखा मैं पीछा करते हुए 20-30 गज भागा था उस समय कई आदमी इधर उधर आ जा रहे थे उनके नाम नहीं बता सकता। ' मुझे सतवीर ने यह भी नहीं बताया कि 'पीछा करने के बाद मैं फिर अपने घर चला गया उसके बाद मैं मौके पर या प्रविता के घर उस दिन नहीं आया। ' मुझे यह भी बयान नहीं दिया कि 'मैंने लौट कर पारुल की हालत नहीं देखी दिनांक 25.11.09 को अगले दिन सुबह भी मैं हरवीर के घर नहीं आया था। ' मैंने सतवीर का बयान उसके घर पर लिया था। मुझे सतवीर ने यह बयान भी नहीं दिया कि 'जब मैं जोहड़ तक उनके पीछे भागा इस बीच रास्ते में मुझे कोई आदमी नहीं मिला। मुझे सतवीर ने यह बयान भी नहीं दिया कि 'जब मैं घटनास्थल पर पहुंचा जयवीर व उसकी माँ वहाँ मौजूद थे। "

94. इस प्रकार, यहां यह बताना प्रासंगिक है कि सतवीर की गवाही पहली बार विचारण न्यायालय के समक्ष सुनाई गई थी और विवेचनाधिकारी को इसका खुलासा नहीं किया गया था और इस प्रकार, उनकी गवाही सुधारों पर आधारित है और इस पर विश्वास करना बेहद मुश्किल हो जाता है। इसके अलावा, उन्होंने अपनी गवाही में कहा है कि उन्होंने मृतक की मां पार्वती को घटनास्थल पर पहुंचते देखा था और घटनास्थल पर भी पहुंचे थे, लेकिन उन्होंने अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा है कि उन्हें नहीं पता कि घटना के बाद पार्वती को कहां ले जाया गया था और आगे उन्होंने किसी को भी परविता को बेहोशी की हालत में ले जाते नहीं देखा है।जो आगे उनकी गवाही को अत्यधिक संदिग्ध बना देता है। उक्त गवाह ने अपनी जिरह में स्पष्ट रूप से कहा है कि:

"जब मैं घटनास्थल पर पहुँचा, जयवीर, उसकी माँ वहाँ मौजूद थे। बाकी वहाँ और कौन लोग मौजूद थे, मुझे ध्यान नहीं है। मैंने लड़की पारुल को अस्पताल ले जाने की कोशिश नहीं की। माँ और चाचा ने की होगी। "

95. उनकी गवाही से यह स्पष्ट है कि जब वह घटनास्थल पर पहुंचे, तो पीड़ित की मां और जयवीर, पहला सूचनाकर्ता वहां मौजूद थे, हालांकि, इस स्तर पर उन्होंने इस तथ्य के बारे में पहले सूचनाकर्ता को खुलासा नहीं किया कि उक्त घटना पंकज और बबलू द्वारा की गई है। इसके अलावा, अ०सा०-2 की गवाही अभियोजन पक्ष की कहानी की इस हद तक पुष्टि नहीं करती है कि पीड़िता को हमला करते हुए देखकर, उसकी मां बेहोशी की हालत में गिर गई थी। इस स्पष्ट परिस्थिति को नोट करने में विफलता उसके चश्मदीद गवाह के बयान की सत्यता के बारे में एक गंभीर संदेह पैदा करती है और उसकी गवाही से उभरने वाली परिस्थिति की समग्रता में, वह एक सच्चा चश्मदीद गवाह प्रतीत नहीं होता है और वास्तव में, घटना के दो दिनों के बाद अपने चश्मदीद गवाह के बयान के बारे में पेश किया गया है।

96. इस प्रकार, हमारी राय है कि अ०सा०-2 का प्रत्यक्षदर्शी विवरण हमारे विश्वास को प्रेरित नहीं करता है और उसे एक अविश्वसनीय गवाह बनाता है। इसलिए, विचारण न्यायालय द्वारा उसे एक विश्वसनीय गवाह मानने के विपरीत दृष्टिकोण स्वीकार्य नहीं है।

97. एक और परिस्थिति है, जो अ०सा०-2 की गवाही को अत्यधिक संदिग्ध बनाती है। उन्होंने अपनी गवाही में कहा है कि:

"मुझे घटना वाली रात को यह पता नहीं चला था कि मेरी पोती की मृत्यु हो गयी है। मैं अपने घर चला गया था। मुझे अपने घर उपेन्द्र मेरा लड़का व उसके दो बच्चे मिले थे। पत्नी नहीं मिली क्योंकि वह दूसरी मंजिले पर रहती है। मैंने घटना के बाबत अपने बेटे उपेन्द्र व अपनी पोती सोनू व मोनू को चाकू लगने वाली बात बतायी थी। यह बात सुनकर वे जयवीर के घर चले गये थे। मैं व मेरी पत्नी घर पर ही थे। मेरी पत्नी व मेरे लड़के की पत्नी दूसरी मंजिले पर थी। 10 मिनट बाद उपेन्द्र वापस लौट कर आया था। उसने बताया था कि पारुल को मेरठ अस्पताल ले गये हैं। यह बात उसने अपनी पत्नी व माँ को बतायी थी। "

98. जब हम अ०सा०-2 के उक्त बयान का विश्लेषण करते हैं, तो हम पाते हैं कि उनकी गवाही के अनुसार, वह घटना को देखने के बाद अपने घर गए थे, जहां उनकी मुलाकात उनके बेटे उपेंद्र और उनके दो बच्चों से हुई। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने अपने बेटे उपेंद्र और उनकी पोती भतीजी सोनू और मोनू को चाकू से हमले के बारे में बताया था और उनके खुलासे के बाद, वे जयवीर के घर गए थे और दस मिनट के बाद, उपेंद्र अपने घर वापस आ गया था और उसे सूचित किया था कि पीड़ित पारुल को मेरठ अस्पताल ले जाया गया है। यदि अ०सा०-2 की यह गवाही सच होती और यदि उसने अपने बेटे और पोती को चाकू से हमले की घटना सुनाई होती, जो पहले सूचनाकर्ता जयवीर के घर गया था, तो निश्चित रूप से उसी दिन उपेंद्र ने पहले सूचनाकर्ता जयवीर को पंकज और बबलू द्वारा पारुल की हत्या की घटना के बारे में बताया होता और 24.11.2009 को दर्ज की गई पहली प्राथमिकी में, हमलावरों के नाम का खुलासा किया गया होता, हालांकि, दो अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ पहली प्राथमिकी दर्ज करना अभियोजन की कहानी में एक गंभीर सेंध लगाता है और इसे अत्यधिक संदिग्ध बनाता है।

99. यह विशेष परिस्थिति स्पष्ट रूप से स्थापित करती है कि पंकज और बबलू को चाकू मारकर पारुल की मौत का कारण बनने के लिए नामित करने की बाद की कहानी को 27.11.2009 को सुबह पार्वती और सतवीर द्वारा दी गई कथित जानकारी के आधार पर गढ़ा गया है, जिसमें उन्हें उक्त घटना का चश्मदीद गवाह बताया गया है, हालाँकि, जब हम उक्त गवाहों की पूरी गवाही को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि उनकी गवाही में बहुत सारी विसंगतियां और सुधार हैं, जो उक्त गवाहों को अत्यधिक संदिग्ध और विश्वास करने में कठिन बना देता है, उन्हें एक विश्वसनीय गवाह नहीं कहा जा सकता है और अभियोजन पक्ष की कहानी में गंभीर सेंध लगाता है।

100. अब मृतक की मां अ०सा०-3 पार्वती की गवाही पर आते हुए, हम पाते हैं कि कहा जाता है कि उसने अपने मवेशियों को पानी पिलाने के बाद अपने घेर से लौटते समय इस घटना को देखा था और कहा जाता है कि यह घटना तब हुई जब वह अपने घर के मोड़ पर पहुंची और घटनास्थल पर पहुंची, जहां पीड़िता पारुल के साथ मारपीट की बताई जा रही है। आरोप है कि उसने इस घटना को इन्वर्टर द्वारा जलाए गए बल्ब में देखा था, हालांकि अ०सा०-2 ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि यह घटना बिजली की रोशनी में हुई थी। इसके अलावा, अ०सा०-3 ने अपने बयान में कहा है कि घटना को देखकर, जब वह घटनास्थल पर पहुंची, तो वह बेहोश हो गई और जब वह 26.11.2009 को होश में आई, तो उसने खुद को डॉ. राकेश मित्तल द्वारा संचालित बुढ़ाना के अस्पताल में भर्ती पाया और केवल उसके लौटने पर उसने अ०सा०-1, उसके बहनोई को अपीलकर्ता पंकज और बबलू द्वारा पीड़ित पर चाकू से हमला करने के तरीके और भागीदारी के बारे में सूचित किया था। चूंकि घटना के बाद के भाग में अ०सा०-2 ने कहा है कि घटना के समय बिजली की आपूर्ति नहीं थी, इसलिए उक्त विसंगति को कवर करने के लिए, अ०सा०-3 द्वारा इन्वर्टर लाइट शुरू की गई है।

101. जब हम अ०सा०-3 की गवाही को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि मृतक की मां अ०सा०-3 परविता ने कहा है कि वह अपनी बेटी पर हमला होते देखकर बेहोश हो गई थी और दो दिनों तक बेहोश अवस्था में रही, जो निम्नलिखित कारणों से अधिक आत्मविश्वास को प्रेरित नहीं करती है। अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, परविता भी घटनास्थल के पास बेहोश हो गई थी, जहां उसकी बेटी को दो हमलावरों पंकज और बबलू ने चाकू मार दिया था और घायल हालत में वहीं पड़ी थी, इसके बाद यह आरोप लगाया गया है कि घटना के तुरंत बाद पीड़िता पारुल को उसके पिता हरवीर और भाई राहुल इलाज के लिए अस्पताल ले गए थे। हालांकि, अ०सा०-3 परविता, जो बेहोशी की हालत में वहां पड़ी थी, पर उनका बिल्कुल भी ध्यान नहीं गया और वह बेहोशी की हालत में वहीं लेटी रही, जब तक कि उसे उसके भाई रवींद्र द्वारा अस्पताल नहीं ले जाया गया, जो अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, बिटवाड़ा में रहता था, जो अ०सा०-3 के अनुसार भी घटनास्थल से लगभग 25-30 किलोमीटर है।

102. यह विशेष परिस्थिति अभियोजन पक्ष की कहानी के बारे में गंभीर संदेह पैदा करती है कि गवाह अ०सा०-3 हमले की घटना को देखने के तुरंत बाद बेहोश हो गया था और अपने पति और बेटे राहुल की लावारिस के बिना पड़ा रहा, जो मृतक पारुल को अस्पताल ले गया था। अ०सा०-3 के घटनास्थल पर बेहोशी की हालत में लेटे होने का तथ्य भी अ०सा०-2, सतवीर सिंह की गवाही से संदिग्ध हो जाता है, जिसे घटना का चश्मदीद गवाह कहा जाता है, हालांकि, उसने अपनी गवाही में यह संकेत भी नहीं की है कि उसने परविता को बेहोशी की हालत में गिरते देखा था, हालांकि अपनी गवाही में उसने स्पष्ट रूप से कहा था कि घटना के बाद वह किस स्थान पर पहुंचा था। घटना और पार्वती और जयवीर को वहां मौजूद देखा था, लेकिन यह नहीं बताया था कि परविता वहां बेहोशी की हालत में पड़ी थी, जो इस तथ्य के बारे में भी गंभीर संदेह पैदा करती है कि घटना के समय परविता बेहोश हो गई थी। यदि यह तथ्य सच होता, तो निश्चित रूप से अ०सा०-2 ने अपने बयान में उक्त तथ्य को अपनी गवाही में इंगित किया होता, जिसके अभाव में अभियोजन पक्ष की कहानी की सत्यता के बारे में गंभीर संदेह पैदा होता है।

103. अ०सा०-4 डॉ. राकेश मित्तल द्वारा संचालित अस्पताल में पीड़ित पार्वती को चिकित्सा उपचार प्रदान करने का तथ्य भी संदेह से परे नहीं है। अ०सा०-3 ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि वह दो दिनों तक बेहोशी की स्थिति में रही यानी घटना के समय 07:15 बजे से 26.11.2009 बजे तक शाम 07:00 बजे तक, जो अपने आप में इस तथ्य की पृष्ठभूमि में अत्यधिक संदिग्ध प्रतीत होता है कि उसने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि:

"मेरे साथ इस घटना के पूर्व कभी भी दुख भरी घटना सुनने या देखने के बाद बेहोशी नहीं हुई थी। ना ही मुझे इस घटना से पूर्व कभी बेहोश होने का दौरा पड़ा। मैंने यह भी नहीं देखा कि पायल के कहाँ कहाँ और कितने-चाकू लगे, केवल खून बहते हुए देखा था। "

104. इस प्रकार, अ०सा०-3 के उक्त बयान से, यह स्पष्ट है कि पीड़िता अपने जीवन में पहली बार बेहोश हो गई थी, अपनी बेटी पर हमला देखकर और दो दिनों तक यानी लगभग 48 घंटे तक बेहोश अवस्था में रही, हालांकि वह घटना के समय लगभग 40 वर्ष की आयु की एक युवा महिला थी और घटना के समय किसी भी चिकित्सा समस्या से पीड़ित नहीं थी, जो दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में काफी अप्राकृतिक प्रतीत होता है।

105. यहां तक कि चिकित्सा उपचार में उसका इलाज करने वाले डॉक्टर ने भी कहा है कि वह तीव्र मानसिक सदमे और अवसाद के दौरे से पीड़ित थी और उसे 24.11.2009 को रात 10:30 बजे उसके भाई रवींद्र द्वारा अस्पताल में भर्ती कराया गया था, जो 25-30 किलोमीटर तक रहता था। घटनास्थल से दूर होने का अर्थ है कि उक्त पीड़िता घटनास्थल पर कम से कम लगभग एक घंटे तक बेहोशी की हालत में पड़ी रही होगी, लेकिन उसके परिवार के सदस्यों या उसके पति और बेटे ने उस पर ध्यान नहीं दिया, जिनके बारे में कहा जाता है कि वह मृतक को अस्पताल ले गए थे। यहां तक कि अ०सा०-4 के बयान के अनुसार, जिस स्थान पर अ०सा०-3 परविता को चिकित्सा उपचार दिया गया था, वह अ०सा०-4 डॉ. राकेश मित्तल का अपना घर था, जो पहले उनका क्लिनिक था और पीड़ित पार्वती को छोड़कर, वहां इलाज के लिए किसी और को भर्ती नहीं किया गया था।

106. अ०सा०-4 ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि

"*चूँकि प्रतिभा को मेरे क्लिनिक पर उसके भाई श्री रविन्द्र लेकर आये थे, जिन्हें मैं पहले से ही जानता था, अतः क्लिनिक में इलाज के दौरान उनके ही होने के अलावा मैं नहीं बता सकता कि कोई अन्य परिजन था या नहीं, क्योंकि मैं किसी अन्य परिजन को नहीं जानता था। खुद कहा कि मेरे क्लिनिक के सामने ही रविन्द्र का कम्प्यूटर इंस्टीट्यूट है। "*

107. क्लिनिक के प्रवेश रजिस्टर में आवश्यक प्रविष्टि बिल्कुल भी प्रस्तुत नहीं की गई है, जो परिस्थिति आगे चलकर पार्वती को दिए गए उपचार के बारे में गंभीर संदेह पैदा करती है और वह दो दिनों तक बेहोशी की स्थिति में रहती है। यहां तक कि बेड हेड टिकट को भी अभिलेख पर नहीं लाया गया है।

108. जब हम अ०सा०-3 की गवाही को आगे देखते हैं, तो हम पाते हैं कि वह 26.11.2009 को लगभग 07:00 बजे होश में आई और प्रासंगिक समय पर उसकी मां उसके साथ थी, हालांकि, उसने अपनी मां को भी घटना के बारे में कुछ भी नहीं बताया। उसने अपनी गवाही में आगे कहा कि 26.11.2009 को लगभग 07:45 बजे, वह अपने घर पहुंची थी और उसके बाद उसके बहनोई जयवीर द्वारा किए गए प्रश्न पर, उसने उसे घटना के बारे में सूचित किया था, हालांकि, जब हम अ०सा०-1 की गवाही के माध्यम से जाते हैं, तो हम पाते हैं कि जयवीर ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि केवल 27.11.2009 को लगभग 07:00-08:00 बजे सतवीर सिंह और उनकी भाभी परविता ने उन्हें सूचित किया था कि आरोपी- अपीलकर्ता पंकज ने बबलू के साथ मिलकर उसकी बेटी पर चाकू से वार किया था।

109. इस प्रकार, हम पाते हैं कि दो गवाहों द्वारा हमलावरों के नाम का खुलासा करने के बारे में ठोस विवरण के संबंध में गवाहों के बयान में ठोस विसंगतियां और अंतर हैं, जो अभियोजन पक्ष की कहानी में एक गंभीर सेंध लगाता है और इसे अत्यधिक संदिग्ध बनाता है।

110. इस प्रकार, घटनाओं के अनुक्रम से, हम पाते हैं कि घटना रात के अंधेरे घंटों में हुई थी और किसी ने भी वास्तव में इस घटना को नहीं देखा था और हमलावरों के नाम ज्ञात नहीं थे और यही कारण है कि जयवीर द्वारा दर्ज की गई पहली प्राथमिकी में, किसी को भी आरोपी के रूप में नामित नहीं किया गया था और यह अ०सा०-1 के माता-पिता द्वारा दी गई जानकारी पर दो अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ दर्ज किया गया था, जैसा कि बताया गया था उनके द्वारा अपने बयान में। हालांकि उन्होंने आरोपी को नामित नहीं किया था और बाद में घटना के दो दिनों के बाद, पूरी कहानी को मृतक के परिवार के सदस्यों द्वारा बहुत चर्चा और विचार-विमर्श के बाद गढ़ा और रचा गया है, जिसके तहत अपीलकर्ता पंकज और बबलू को पूरी घटना को रंग देकर आरोपी हमलावरों के रूप में नामित करने का निर्णय लिया गया था और बाद में अभियोजन की कहानी विकसित की गई है कि चूंकि परविता बेहोश हो गई थी और एक में रह गई थी। दो दिनों तक बेहोशी की हालत में था और एक अन्य चश्मदीद गवाह सतवीर अपने दूर के रिश्तेदार की मृत्यु का शोक मनाने गया था और उनके लौटने के बाद ही हमलावरों के नाम ने दिन का उजाला देखा था, हालांकि, जब हम अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की गवाही को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि घटना के दिन हमलावरों के नाम का खुलासा नहीं करने में उनके द्वारा विकसित कहानी आत्मविश्वास को प्रेरित नहीं करती है और प्रकट होती है अपीलकर्ता पंकज और बबलू को आरोपी के रूप में नामित करके एक बाद के विचार के रूप में तैयार किया गया था।

111. अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी और चश्मदीद गवाहों की गवाही इस परिस्थिति से भी झूठी साबित होती है कि हालांकि अ०सा०-2 और अ०सा०-3 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उनके अलावा चिंटू, यशवीर और रॉबिन भी घटना के समय उपस्थित थे, लेकिन अभियोजन पक्ष की कहानी की पुष्टि करने के लिए उनमें से किसी को भी पेश नहीं किया गया है। इसके अलावा, यहां तक कि मृतक के पिता और भाई, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे पीड़ित को अस्पताल ले गए थे, अभियोजन पक्ष द्वारा पेश नहीं किए गए हैं, जो अभियोजन पक्ष की

कहानी की पुष्टि करने के लिए ठोस गवाह हो सकते थे, हालांकि, ऐसा लगता है कि उन्हें जानबूझकर रोका गया है, हालांकि वे मामले के महत्वपूर्ण गवाह हैं।

112. इसके अलावा, न तो अ०सा०-3 की मां और न ही उसके भाई रवींद्र, जो उसे अस्पताल ले गए थे और उसके इलाज के दौरान अस्पताल में मौजूद थे, को भी अभियोजन पक्ष द्वारा जानबूझकर रोका गया है, हालांकि वे अभियोजन पक्ष की कहानी की पुष्टि करने के लिए ठोस गवाह थे, जो अभियोजन की कहानी में गंभीर सेंध लगाता है और इसे संदिग्ध बनाता है।

113. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **रत्नू यादव बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, आपराधिक अपील संख्या-1365 वर्ष 2018** के हालिया फैसले में माना है कि संबंधित गवाह, जिनकी गवाही अभियोजन पक्ष की कहानी की पुष्टि करने के लिए सामग्री प्रतीत होती है, यदि प्रस्तुत नहीं की जाती है, तो अभियोजन पक्ष के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

114. कानून के उक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, चूंकि उपरोक्त ठोस गवाह जो अभियोजन पक्ष की सत्यता पर प्रकाश डाल सकते थे, उन्हें पेश नहीं किया गया है, अभियोजन की कहानी में गंभीर सेंध लगाता है और इसे संदिग्ध बनाता है।

115. उपरोक्त चर्चाओं को देखते हुए, हमारी राय है कि तीनों गवाहों में से किसी को भी विश्वसनीय गवाह नहीं कहा जा सकता है और उनकी गवाही अपीलकर्ता पंकज को धारा 302 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराने के लिए विश्वास को प्रेरित नहीं करती है और वह संदेह का लाभ देने योग्य है। हमारी राय में, विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया विपरीत दृष्टिकोण मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में सही दृष्टिकोण नहीं है और इसलिए, इसे रद्द किया जाना योग्य है और अपीलकर्ता को संदेह का लाभ दिया जा सकता है और आरोपित उक्त अपराध से बरी कर दिया जाता है।

116. अब अपीलकर्ता की ओर इशारा करते हुए चाकू की कथित बरामदगी पर आते हैं और शस्त्र अधिनियम की धारा 4/25 के तहत उनकी दोषसिद्धि और सजा के तथ्य पर विचार करते हुए, हम पाते हैं कि मुकदमे के दौरान पेश किए गए सबूतों से, उक्त आरोपों को भी ठोस और ठोस रूप से स्थापित नहीं किया गया है। यहां तक कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत उपरोक्त बरामदगी के लिए किए गए प्रकटीकरण बयान को भी विवेचनाधिकारी द्वारा उक्त बरामदगी को साबित करते समय आरोपी को नहीं बताया गया है, जिसके अभाव में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के स्थापित सिद्धांत के अनुसार, अपीलकर्ता पंकज की ओर इशारा करते हुए की गई बरामदगी को निपटाए जाने के मद्देनजर साबित नहीं कहा जा सकता है माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **बाबू साहेबगौड़ा रुद्रगौदर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य (आपराधिक अपील संख्या-985 वर्ष 2010**) के मामले में प्रस्तर-58, 59, 60, 62, 63, 65 में निर्धारित कानून के सिद्धांतों ने कहा है कि: -

58. अब हम कानून के तहत आवश्यकता के बारे में चर्चा करेंगे ताकि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 (इसके बाद 'साक्ष्य अधिनियम' के रूप में संदर्भित किया जा रहा है) के तहत दर्ज किए गए प्रकटीकरण बयान को साबित किया जा सके और इसके आगे की गई खोजों को साबित किया जा सके।

*9. साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत एक पुलिस अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया एक आरोपी का बयान मूल रूप से पूछताछ के दौरान विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज किए गए अभियुक्त के स्वीकारोक्ति का एक ज्ञापन है जिसे लिखित रूप में लिया गया है। इस तरह के बयान का इकबालिया हिस्सा अस्वीकार्य है और केवल वह हिस्सा जो स्पष्ट रूप से तथ्य की खोज की ओर ले जाता है, साक्ष्य में स्वीकार्य है जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम देवमन उपाध्याय के मामले में (ए.आई.आर.1960 एस.सी. 1125)** में रिपोर्ट किया गया है।*

60 इस प्रकार, जब विवेचनाधिकारी इस तरह के प्रकटीकरण बयान को साबित करने के लिए गवाह के बक्से में कदम रखता है, तो उसे यह बताने की आवश्यकता होगी कि आरोपी ने उसे क्या कहा था। विवेचनाधिकारी अनिवार्य रूप से अपने और अभियुक्त के बीच हुई बातचीत के बारे में गवाही देता है जिसे लिखित रूप में लिया गया है जिससे आपत्तिजनक तथ्यों की खोज होती है।

62. साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत प्रकटीकरण कथन को साबित करने का तरीका इस न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में विचार का विषय रहा है, जिनमें से कुछ को नीचे संदर्भित किया जा रहा है।

*63 मोहम्मद मोहम्मद के मामले में, **अब्दुल हफीज बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1983) 1 एस.सी.सी. 143** में रिपोर्ट किया गया था, यह इस न्यायालय द्वारा निम्नानुसार माना गया था: -*

5 .... यदि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत अन्यथा स्वीकारोक्ति स्वीकार्य है, तो विवेचनाधिकारी पर यह अनिवार्य है कि वह यह बताए और अभिलेख करे कि किसने जानकारी दी; जब वह एक से अधिक अभियुक्तों के साथ काम कर रहा होता है, तो उसके द्वारा किन शब्दों का इस्तेमाल किया गया था ताकि प्राप्त जानकारी के अनुसार एक बरामदगी सूचना देने वाले व्यक्ति से जुड़ी हो सके ताकि उस व्यक्ति के खिलाफ आपत्तिजनक सबूत प्रदान किया जा सके।

*65 इसी तरह का दृष्टिकोण इस न्यायालय द्वारा **रामानंद @ नंदलाल भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1396)** में रिपोर्ट किए गए मामले में लिया गया था, जिसमें इस न्यायालय ने माना कि जांच के दौरान विवेचनाधिकारी द्वारा तैयार किए गए ज्ञापन का प्रदर्शन मात्र इसकी सामग्री के प्रमाण के बराबर नहीं हो सकता है। शपथ पर गवाही देते समय, विवेचनाधिकारी को उन घटनाओं के क्रम का वर्णन करना होगा जो प्रकटीकरण बयान की रिकॉर्डिंग के लिए घटित हुईं।*

117. इसके अलावा, अभियोजन पक्ष के अपने मामले के अनुसार भी, उक्त बरामदगी गन्ने के खेत से एक खुली जगह से की गई बताई गई है, जो उक्त बरामदगी की सत्यता के बारे में गंभीर संदेह पैदा करती है और इसे अत्यधिक संदिग्ध बनाती है। यहां यह बताना और भी महत्वपूर्ण है कि पुलिस अधिकारियों को छोड़कर, जिन पर कथित तौर पर उक्त बरामदगी की गई है, किसी भी स्वतंत्र गवाह को उक्त बरामदगी की पुष्टि नहीं की गई है, जिससे उक्त बरामदगी संदिग्ध हो जाती है और इस पर विश्वास करना मुश्किल हो जाता है।

118. इस प्रकार, अतः, उनके साक्ष्य से अपीलकर्ता पंकज की निशानदेही पर की गई कथित बरामदगियों की सत्यता एवं विश्वसनीयता पर गंभीर संदेह उत्पन्न होता है तथा उक्त बरामदगियाँ विधिक दृष्टि से अस्तित्वहीन प्रतीत होती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में हमारा मत है कि अपीलकर्ता की धारा 4/25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत की गई दोषसिद्धि को भी यथावत् बनाए नहीं रखा जा सकता। तदनुसार, उक्त दोषसिद्धि एवं उसके आधार पर आरोपित दण्डादेश को **निरस्त** किया जाता है।

119. पूर्वगामी चर्चाओं को देखते हुए, हमारी राय है कि प्रस्तुत अपील की अनुमति दी जा सकती है और तदनुसार **अनुमति** दी जाती है। विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश को **रद्द** किया जाता है। अपीलकर्ता पहले से ही जमानत पर है। उसे आत्मसमर्पण करने की जरूरत नहीं है। उनके जमानत बांड रद्द किए जाते हैं और विचारण न्यायालय की संतुष्टि के लिए धारा 437-ए द०प्र०स० के अनुपालन के अधीन जमानतदारों को रिहा कर दिया जाता है।

120. इस निर्णय और आदेश की एक प्रति सूचना और आवश्यक अनुपालन के लिए विचारण न्यायालय के अभिलेख के साथ विचारण न्यायालय को भेजी जाए।

(2025) 5 ILRA 1277

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

धारा 528 बी.एन.एस.एस. के तहत आवेदन सं - 10997 वर्ष 2025

शशांक गुप्ता @ गुड्डू और अन्य ... आवेदकगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य ... प्रतिपक्षीगण

आवेदकगण के लिए अधिवक्ता: श्री धर्मेंद्र वैश

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 155(2) - भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 - धारा 174 (2) - धारा -155(2) द०प्र०स० (बी.एन.एस.एस. की संबंधित धारा 174 (2) का जनादेश - कि पुलिस एक गैर-संज्ञेय अपराध की जांच नहीं कर सकती है - यदि पुलिस एक प्राथमिकी की जांच करना जारी रखती है - जो संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करती है - तो यह द०प्र०स० / बी.एन.एस.एस. के जनादेश के खिलाफ होगा और ऐसे मामले में, अदालत धारा 528 बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए जांच में हस्तक्षेप कर सकती है या रोक सकती है।- रामलाल यादव की पूर्ण पीठ के फैसले में स्थापित कानूनी सिद्धांत - कानून में हाल के घटनाक्रमों के कारण अब लागू नहीं हो सकते हैं, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा व्याख्या की गई है- इस मामले को नौ न्यायाधीशों की एक बड़ी पीठ को भेजें। (ई-9)

<u>उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची</u>:

1. रामलाल यादव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1989 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला 73
2. हरियाणा और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य 1992 पूरक 1 एस.सी.सी. 335
3. इमरान प्रतापगढ़ी बनाम गुजरात राज्य और एक आपराधिक अपील संख्या-1545 वर्ष 2025 में
4. द किंग एम्परर बनाम ख्वाजा नज़ीर अहमद 1944 एस.सी.सी. ऑनलाइन पीसी 29
5. एस.एन. शर्मा बनाम बिपेन कुमार तिवारी और अन्य (1970) 1 एस.सी.सी. 653 में रिपोर्ट किए गए
6. गुलाम मुस्तफा बनाम कर्ण राज्य एवं अन्य, (2023) 18 एस.सी.सी. 265

अनुवादित

7. अभिषेक बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2023) 16 एस.सी.सी. 666 में रिपोर्ट किया गया

8. पी. रामचंद्र राव बनाम कर्ण राज्य (2002) 4 एस.सी.सी. 578

9. पदल वेंकट रामा रेड्डी @ रामू बनाम कोववुरी सत्यनारायण रेड्डी और अन्य। (2011) 12 एस.सी.सी. 437 में रिपोर्ट किया गया,

10. परबतभाई अहीर @ परबतभाई भीमसिंहभाई करमूर और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2017) 9 एस.सी.सी. 641

11. आनंद कुमार मोहट्टा और एक अन्य बनाम राज्य (दिल्ली का राष्ट्रीय क्षेत्र), गृह विभाग और अन्य (2019) 11 एस.सी.सी. 706

12. महमूद अली और अन्य। बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य। (2023)15 एस.सी.सी. 488

13. भजन लाल (उपरोक्त) और आरपी कपूर बनाम पुन राज्य, ए.आई.आर. 1960 एस.सी. 866 में रिपोर्ट किया गया

14. टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य और अन्य (2001) 6 एस.सी.सी. 181

15. जनता दल बनाम एचएस चौधरी और अन्य (1992) 4 एस.सी.सी. 305

16. निहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराज्य और अन्य (2021)19 एस.सी.सी. 401

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा उद्घोषित)

1. आवेदकगण के अधिवक्ता श्री धर्मेंद्र वैश, राज्य के अपर शासकीय अधिवक्ता श्री पंकज सक्सेना, श्री रौनक चतुर्वेदी और एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) श्री जितेंद्र कुमार सिसोदिया द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष तिवारी को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. प्रस्तुत आवेदन शुरू में सीजेएम, चित्रकूट द्वारा बी.एन.एस.एस. की धारा 175(3) (द०प्र०स० की धारा 156(3) के तहत पारित दिनांक 03.02.2025 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर किया गया था, जिसके द्वारा, पुलिस को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का निर्देश दिया गया था। इसके बाद, अदालत की अनुमति से एक संशोधन भी किया गया था, जिसमें अपराध संख्या-114 वर्ष 2025 के मामले में दिनांक 26.02.2025 को डीपी अधिनियम की धारा 3/4 सपठित भ०द०वि० की धारा 3/4 के तहत परिणामी प्राथमिकी को रद्द करने की मांग की गई थी।

3. हालांकि, अपर शासकीय अधिवक्ता ने एक प्रारंभिक आपत्ति उठाई कि रामलाल यादव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1989 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला 73 के मामले में सात न्यायाधीशों की पीठ की पूर्ण पीठ के फैसले के मद्देनजर, प्राथमिकी को रद्द करने के लिए धारा 528 बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482

द०प्र०स०) के तहत आवेदन सुनवाई योग्य नहीं है क्योंकि इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत चुनौती दी जा सकती है।

4. इसके विपरीत, आवेदकगण के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि शीर्ष न्यायालय के बाद के फैसलों को ध्यान में रखते हुए, जिसमें यह देखा गया है कि धारा 528 बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए) प्राथमिकी को रद्द किया जा सकता है, रामलाल यादव के मामले (उपरोक्त) में पूर्ण पीठ द्वारा निर्धारित कानून अब एक अच्छा कानून नहीं है और इसे माननीय के बाद के निर्णयों द्वारा खारिज कर दिया गया है हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय ने 1992 पूरक 1 एस.सी.सी. 335 के साथ-साथ इमरान प्रतापगढ़ी बनाम गुजरात राज्य और एक अन्य आपराधिक अपील संख्या-1545 वर्ष 2025 में रिपोर्ट की।

5. उपरोक्त सबमिशन को ध्यान में रखते हुए, निर्धारण के लिए एक महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न उठता है कि क्या शीर्ष न्यायालय के बाद के फैसले को देखते हुए, प्राथमिकी को धारा 528 बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) के तहत चुनौती दी जा सकती है और रामलाल यादव (उपरोक्त) की पूर्ण पीठ के फैसले को सर्वोच्च न्यायालय के बाद के निर्णयों द्वारा खारिज किया गया माना जाता है।

6. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न उत्पन्न हुआ है, इस न्यायालय ने श्री मनीष तिवारी, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री रौनक चतुर्वेदी के साथ-साथ उच्च न्यायालय विधिक सेवा प्राधिकरण के पैनल अधिवक्ता श्री जितेंद्र सिसोदिया से भी अनुरोध किया, जिन्होंने यहां उत्पन्न हुए कानूनी प्रश्न पर संबोधित करके न्याय मित्र के रूप में न्यायालय की सहायता की।

आवेदकगण के लिए अधिवक्ता की प्रस्तुति:

7. आवेदकगण के अधिवक्ता श्री धर्मेंद्र वैश ने प्रस्तुत किया है कि रामलाल यादव (उपरोक्त) की पूर्ण पीठ का निर्णय राजा सम्राट बनाम ख्वाजा नजीर अहमद 1944 एस.सी.सी. ऑनलाइन पीसी 29 के फैसले पर बहुत अधिक निर्भर करता है और प्रासंगिक टिप्पणियों की अनदेखी करते हुए और साथ ही ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) के फैसले की गलत व्याख्या करते हुए कहा कि उच्च न्यायालय धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। प्राथमिकी के अवलोकन से कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है, फिर भी जांच की जाती है। आवेदकगण के अधिवक्ता ने आगे कहा कि ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) के मामले में भी, प्रिवी काउंसिल ने कहा है कि हालांकि पुलिस के पास संज्ञेय अपराध में जांच की निरंकुश शक्ति है, लेकिन अगर कोई संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है तो पुलिस को इसकी जांच करने का कोई अधिकार नहीं है और इसलिए, उस मामले में, अदालत को इस तरह की अवैध जांच में हस्तक्षेप करने की अनुमति दी गई है। आवेदकगण के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि इस अदालत ने, भजन लाल (उपरोक्त) के मामले में, कहा है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति या धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग या तो अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा

प्रस्तर-102(1) से 102(7) में उल्लिखित मामलों की श्रेणी में न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है।

8. आवेदकगण के अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि सर्वोच्च न्यायालय ने इमरान प्रतापगढ़ी (उपरोक्त) के हालिया फैसले में प्रस्तर-42(vii) में कहा है कि ऐसा कोई पूर्ण नियम नहीं है कि प्रारंभिक अवस्था में जांच में उच्च न्यायालय द्वारा धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है, जो धारा 528 बी.एन.एस.एस. के बराबर है और यदि उच्च न्यायालय को लगता है कि इसके चेहरे पर कोई अपराध नहीं बनता है फिर अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए, यह हमेशा हस्तक्षेप कर सकता है, भले ही जांच प्रारंभिक चरण में हो। आवेदकगण के अधिवक्ता द्वारा अंत में यह प्रस्तुत किया गया है कि उच्च न्यायालय धारा 528 बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) के तहत शक्ति का प्रयोग करने में प्राथमिकी को रद्द कर सकता है क्योंकि रामलाल यादव (उपरोक्त) की पूर्ण पीठ के फैसले को शीर्ष न्यायालय के बाद के फैसले द्वारा स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया गया है।

9. आवेदकगण के अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय ने गुलाम मुस्तफा बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य, (2023) 18 एस.सी.सी. 265 में रिपोर्ट किए गए मामले में, कहा गया है कि उपयुक्त मामलों में, उच्च न्यायालय धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए प्राथमिकी को रद्द कर सकता है।

अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री पंकज सक्सेना की प्रस्तुति / तर्क:

10. श्री पंकज सक्सेना, अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि रामलाल यादव (उपरोक्त) की 7 न्यायाधीशों की पीठ ने ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) में प्रिवी काउंसिल के फैसले पर विचार करने के बाद कहा है कि पुलिस के पास संज्ञेय अपराध की जांच करने की निरंकुश शक्ति है और अदालत धारा 482 द०प्र०स० (संबंधित धारा 528 बी.एन.एस.एस.) के तहत शक्ति का प्रयोग करने में जांच के दौरान हस्तक्षेप नहीं कर सकती है। इसलिए प्राथमिकी को केवल भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत चुनौती दी जा सकती है, न कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत। अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि द०प्र०स० के तहत किसी भी आदेश को प्रभावी करने या किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करने के लिए धारा 528 बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) के तहत शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, लेकिन प्राथमिकी का पंजीकरण और बाद की जांच उपरोक्त तीन श्रेणियों के भीतर नहीं आती है। प्राथमिकी धारा 154 द०प्र०स० के तहत दर्ज संज्ञेय अपराध की जानकारी है और संज्ञेय अपराध के बारे में ऐसी जानकारी प्राप्त करने पर, पुलिस धारा 157 द०प्र०स० (बी.एन.एस.एस. की संबंधित धारा 176) के अनुसार विवेचना कर सकती है। इसलिए, संज्ञेय अपराध की प्राथमिकी को द०प्र०स० या अदालत की प्रक्रिया के तहत एक आदेश के रूप में नहीं माना जा सकता है क्योंकि यह अदालत के समक्ष आरोप पत्र दायर होने के बाद ही सामने आएगा। इसलिए, धारा 528 बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) के तहत शक्ति का प्रयोग अदालत के समक्ष आरोप पत्र दायर करने और संज्ञान

लेने के बाद ही किया जा सकता है। अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करने की श्रेणी बहुत बड़ी है, लेकिन इसकी व्याख्या इस तरह से नहीं की जा सकती है कि अदालत जांच के दौरान हस्तक्षेप कर सके, और यह कार्यवाही अदालत के समक्ष लंबित होने के बाद ही आएगी। अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा अंत में यह प्रस्तुत किया जाता है कि प्राथमिकी को चुनौती देने वाले धारा 528 बी.एन.एस.एस. के तहत प्रस्तुत आवेदन को रखरखाव के आधार पर खारिज किया जाना चाहिए।

11. श्री पंकज सक्सेना, अपर शासकीय अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि रामलाल यादव (उपरोक्त) में पूर्ण पीठ का निर्णय इस न्यायालय पर बाध्यकारी है, जो कि निर्णय के सिद्धांत को देखते हुए है, और उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि बड़ी पीठ के साथ असहमति के मामले में, अदालत विपरीत दृष्टिकोण नहीं ले सकती है। यह मामले को उपयुक्त मामलों में बड़ी पीठ के पास भेज सकता है, जिसमें बड़ी पीठ का निर्णय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के विपरीत प्रतीत होता है। अपने तर्क के समर्थन में, अपर शासकीय अधिवक्ता ने **मिश्री लाल बनाम धीरेंद्र नाथ (1999) 4 एस.सी.सी. 11 और शंकर राजू बनाम भारत संघ (2011) 2 एस.सी.सी. 132** में शीर्ष अदालत के फैसले पर भी भरोसा किया है।

एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री मनीष तिवारी का तर्क:

12. श्री मनीष तिवारी, वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि रामलाल यादव (उपरोक्त) की पूर्ण पीठ का निर्णय अनिवार्य रूप से ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) में प्रिवी काउंसिल के फैसले में दिए गए तर्क पर पारित किया गया है। उन्होंने कहा कि ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) में, प्रिवी काउंसिल ने स्पष्ट रूप से कहा कि यदि कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है तो पुलिस के पास उस स्तर पर अपराध की विवेचना करने का कोई अधिकार नहीं है और अगर पुलिस इस तरह की अवैध जांच करने के लिए आगे बढ़ती है जो द०प्र०स० द्वारा ही प्रतिबंधित है तो अदालत हस्तक्षेप कर सकती है। इसलिए, प्रिवी काउंसिल ने कहा कि ऐसे मामलों में उच्च न्यायालय अवैध हिरासत के खिलाफ बंदी प्रत्यक्षीकरण के अनुरूप पुराने धारा 491 द०प्र०स० के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है। इसलिए, द०प्र०स० (अधिनियम संख्या-वी वर्ष 1898) (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) की धारा 561-ए के तहत न्यायालय की शक्ति के संबंध में ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) में पूरी व्याख्या अवैध हिरासत से संबंधित थी, न कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत निहित अन्य मौलिक अधिकार के संबंध में जो वर्तमान में उपलब्ध है और यहां तक कि द०प्र०स० 1973 में या बी.एन.एस.एस., 2023 से पुराने धारा 491 द०प्र०स० तक कोई संबंधित धारा नहीं है। इसलिए, आज की तारीख में, अदालत केवल बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) की धारा 528 के तहत अवैध जांच के दौरान हस्तक्षेप कर सकती है।

13. वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि संज्ञेय अपराध की प्राथमिकी भी बी.एन.एस.एस. की धारा 173 (संबंधित धारा 154 द०प्र०स०, 1973) के तहत एक आदेश है और संज्ञेय अपराध की प्राथमिकी की जांच भी बी.एन.एस.एस./द०प्र०स० की प्रक्रिया के अनुसार की जाती है। इसलिए, प्राथमिकी के साथ-साथ संज्ञेय अपराध की बाद की जांच को संहिता के आदेश को लागू करने के लिए अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए

अदालत द्वारा हस्तक्षेप किया जा सकता है, क्योंकि पुलिस प्राथमिकी की जांच नहीं कर सकती है जहां कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है।

14. वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए वैधानिक उपाय और सामान्य वैधानिक उपाय को समाप्त करने के बाद ही असाधारण संवैधानिक उपाय का प्रयोग किया जाना चाहिए, जो कि 528 बी.एन.एस.एस./482 द०प्र०स० है। इसलिए, सामान्य तौर पर, प्राथमिकी को 528 बी.एन.एस.एस./482 द०प्र०स० के वैधानिक उपाय के तहत चुनौती दी जानी चाहिए और केवल असाधारण मामलों में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उपाय का लाभ उठाया जा सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, वरिष्ठ अधिवक्ता ने **किम वानसू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2025 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 17** के मामले में शीर्ष न्यायालय के फैसले के प्रस्तर-6 पर भी भरोसा किया है, जिसमें शीर्ष न्यायालय ने कहा कि आम तौर पर आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की मांग की जाएगी और धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करके किया जाएगा, लेकिन निश्चित रूप से इसका मतलब यह नहीं है कि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति के आह्वान में नहीं किया जा सकता है। इसलिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति या धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा या तो अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है।

15. श्री मनीष तिवारी, वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तर-22 में किए गए रामलाल यादव (उपरोक्त) मामले की पूर्ण पीठ के फैसले की टिप्पणियों को आगे प्रस्तुत किया गया है कि यदि पुलिस अधिकारी दुर्भावनापूर्ण तरीके से जांच करता है, तो उसे धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्ति के तहत रद्द नहीं किया जा सकता है, लेकिन भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत भजन लाल (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के विपरीत है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने बहुत स्पष्ट रूप से कहा कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के प्रयोग में, अदालत हस्तक्षेप कर सकती है जहां प्राथमिकी और जांच स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण है या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण तरीके से आरोपी से बदला लेने के लिए एक गुप्त उद्देश्य से शुरू की गई है।

16. श्री मनीष तिवारी, वरिष्ठ अधिवक्ता, आगे प्रस्तुत करते हैं कि ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) के फैसले की **पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य बनाम स्वपन कुमार गुहा और अन्य (1982) 1 एस.सी.सी. 561** में रिपोर्ट की गई थी। उस मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) में प्रिवी काउंसिल ने भी अदालत को जांच में हस्तक्षेप करने की अनुमति दी है, जहां रिपोर्ट संज्ञेय अपराध के कमीशन (गठन) का खुलासा नहीं करती है और अदालत उन्हें ऐसे मामलों में जांच करने का कर्तव्य नहीं लगाती है। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि धारा 157 द०प्र०स० के तहत जांच शुरू करने की पूर्व शर्त यह है कि प्राथमिकी में प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध का खुलासा होना चाहिए। इसलिए, पुलिस के पास धारा 157 द०प्र०स० के तहत जांच शुरू करने का कोई निरंकुश विवेकाधिकार नहीं है। वरिष्ठ अधिवक्ता, मनीष तिवारी द्वारा आगे

प्रस्तुत किया गया है कि **एसएन शर्मा बनाम बिपेन कुमार तिवारी और अन्य (1970) 1 एस.सी.सी. 653** का निर्णय, जिस पर रामलाल यादव (उपरोक्त) में पूर्ण पीठ द्वारा भरोसा किया गया था, धारा 528 बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) के तहत अंतर्निहित शक्ति के संबंध में था, लेकिन यह केवल भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति के बारे में चर्चा करता है। इसलिए, रामलाल यादव के मामले (उपरोक्त) की पूर्ण पीठ के फैसले में यह टिप्पणी कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग में प्राथमिकी और परिणामी जांच को रद्द नहीं किया जा सकता है, गलत है क्योंकि एसएन शर्मा (उपरोक्त) में शीर्ष न्यायालय द्वारा ऐसी कोई टिप्पणी नहीं की गई है।

17. श्री मनीष तिवारी, वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि रामलाल यादव (उपरोक्त) में निर्णय सुनाने के समय, पुराने धारा 491 द०प्र०स० जैसा कोई उपाय नहीं है और यही कारण है कि अदालत ने कहा कि प्राथमिकी के खिलाफ एकमात्र उपाय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण उपाय है, लेकिन बाद में अग्रिम जमानत के संबंध में धारा 438 द०प्र०स० के कार्यान्वयन पर, स्थिति बदल गई है क्योंकि वर्ष 2019 में उत्तर प्रदेश में धारा 438 द०प्र०स० के लागू होने के बाद, वैधानिक उपाय के रूप में गिरफ्तारी के खिलाफ संरक्षण प्रदान किया गया है, इसलिए अंतरिम जमानत या सुरक्षा के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति का उपयोग करना अब कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए, आज की तारीख में, उत्तर प्रदेश में धारा 438 द०प्र०स० के लागू होने के बाद, धारा 528 बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) के तहत प्राथमिकी या परिणामी कार्यवाही को रद्द करने का उपाय एक सामान्य वैधानिक उपाय है जिसे रामलाल यादव (उपरोक्त) की पूर्ण पीठ के फैसले के आधार पर कम नहीं किया जा सकता है। अंत में वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने संबंधित मामलों के साथ धारा 482 संख्या-3380 वर्ष 2023 के तहत आवेदन में जावेद असलम के मामले में प्राथमिकी को रद्द करने के लिए धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन की रखरखाव के मुद्दे पर विचार किया है, जिसमें माननीय न्यायालय ने कहा कि अभिषेक बनाम मध्य प्रदेश राज्य के मामले में शीर्ष न्यायालय के बाद के फैसले के मद्देनजर (2023) 16 एस.सी.सी. 666 में रिपोर्ट किया गया, प्राथमिकी को रद्द करने के लिए द०प्र०स० की धारा 482 के तहत आवेदन सुनवाई योग्य है।

18. वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति का प्रयोग वहां किया जा सकता है जहां मौलिक अधिकार या संबंधित अधिकार का उल्लंघन हो, इसके अधिकार क्षेत्र का अभाव या अत्यधिक उपयोग हो, या किसी वैधानिक प्रावधान या अधीनस्थ कानून के अधिकार (वैधता) को चुनौती दी जा सके। हालांकि, धारा 528 बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) के तहत शक्ति का प्रयोग कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने और न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करने के लिए भी किया जा सकता है, और यह शक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत आपराधिक कार्यवाही में असाधारण शक्ति से कहीं अधिक व्यापक है।

श्री जितेंद्र कुमार सिसोदिया, एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) का प्रस्तुतीकरण:

19. श्री जितेंद्र कुमार सिसोदिया, एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) ने प्रस्तुत किया है कि कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग में अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग भी शामिल है। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि **पी. रामचंद्र राव बनाम कर्नाटक राज्य (2002)4 एस.सी.सी. 578** के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा धारा 528 बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) के तहत आवेदन की रखरखाव पर विचार किया गया था, **पी. रामचंद्र राव बनाम कर्नाटक राज्य, पदल वेंकट रामा रेड्डी उर्फ रामू बनाम कोववुरी सत्यनारायण रेड्डी और अन्य (2011) 12 एस.सी.सी. 437** में रिपोर्ट किए गए थे। परबतभाई अहीर उर्फ परबतभाई भीमसिंहभाई करमूर और अन्य बनाम गुजरात राज्य और एक अन्य (2017)9 एस.सी.सी. 641, आनंद कुमार मोहट्टा और अन्य बनाम राज्य (दिल्ली का एनसीटी), गृह विभाग और अन्य (2019)11 एस.सी.सी. 706 और अभिषेक (उपरोक्त) में रिपोर्ट किया गया।

20. उपरोक्त निर्णयों में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि धारा 528 बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) के तहत अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग में प्राथमिकी को रद्द किया जा सकता है। इसलिए, रामलाल यादव (उपरोक्त) में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा निर्धारित कानून को सर्वोच्च न्यायालय के बाद के निर्णयों द्वारा खारिज कर दिया गया माना जाता है। श्री सिसोदिया द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि शीर्ष न्यायालय ने महमूद अली और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2023) 15 एस.सी.सी. 488 में रिपोर्ट किए गए मामले में कहा है कि जांच का चरण या मामला धारा 528 बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) के तहत अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए इसे रद्द करने के लिए प्रासंगिक नहीं है। यदि इस तरह की कार्यवाही स्पष्ट रूप से तुच्छ या कष्टप्रद है या प्रतिशोध लेने के लिए एक गुप्त उद्देश्य के साथ स्थापित की गई है। श्री सिसोदिया ने अंत में प्रस्तुत किया कि प्राथमिकी के साथ-साथ परिणामी कार्यवाही, या तो धारा 528 बी.एन.एस.एस. के तहत अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करके या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति में रद्द की जा सकती है, जहां भजन लाल (उपरोक्त) और आरपी कपूर बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर.1960 एस.सी. 866 में रिपोर्ट किए गए के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित शर्तें पर संतुष्ट हैं।

एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) श्री रौनक चतुर्वेदी का प्रस्तुतीकरण:

21. श्री रौनक चतुर्वेदी ने प्रस्तुत किया है कि रामलाल यादव (उपरोक्त) की पूर्ण पीठ अनिवार्य रूप से ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) अनुपात पर आधारित है। हालांकि, ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) में, प्रिवी काउंसिल ने खुद स्वीकार किया कि यदि कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है, तो पुलिस के पास मामले की जांच करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, और उस मामले में अदालत हस्तक्षेप कर सकती है। प्रिवी काउंसिल द्वारा कहीं भी यह नहीं कहा गया था कि अदालत पुराने द०प्र०स० (संगत 482 द०प्र०स०, 1973) की धारा 561-ए के तहत शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप नहीं कर सकती है, लेकिन रामलाल यादव (उपरोक्त) के मामले में पूर्ण पीठ द्वारा यह गलती से मान लिया गया था कि ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) में प्रिवी काउंसिल ने कहा है कि अदालत धारा 482 द०प्र०स० (पुराने द०प्र०स० की 561-ए) के तहत शक्ति के प्रयोग में जांच के दौरान हस्तक्षेप नहीं कर सकती है।

22. यह आगे श्री रौनक चतुर्वेदी द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जो शीर्ष न्यायालय ने **भजन लाल (उपरोक्त), टीटी एंटनी बनाम केरल राज्य और अन्य (2001) 6 एस.सी.सी. 181, जनता दल बनाम एचएस चौधरी और अन्य (1992) 4 एस.सी.सी. 305, निहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2021) 19 एस.सी.सी. 401** में रिपोर्ट किए गए हैं, ने कहा है कि प्राथमिकी को पढ़ने से कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है या प्राथमिकी की संस्था स्वयं कई निर्णयों द्वारा निर्धारित श्रेणियों के भीतर आती है, अदालत जांच में धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति के प्रयोग में बहुत अच्छी तरह से हस्तक्षेप कर सकती है या प्राथमिकी को रद्द कर सकती है।

23. श्री रौनक चतुर्वेदी, एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र), यह भी प्रस्तुत करते हैं कि सर्वोच्च न्यायालय ने स्वपन कुमार गुहा (उपरोक्त) के मामले में, ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) की प्रिवी काउंसिल के फैसले पर विचार किया है और कहा है कि अदालतों ने प्रिवी काउंसिल की प्रासंगिक टिप्पणियों को गलत तरीके से नजरअंदाज कर दिया है, जिसमें प्रिवी काउंसिल ने विशेष रूप से उल्लेख किया है कि जहां कोई संज्ञेय अपराध नहीं किया गया है, उस मामले में अदालत जांच में हस्तक्षेप कर सकती है क्योंकि पुलिस के पास मामले की जांच करने का कोई अधिकार नहीं है।

24. श्री रौनक चतुर्वेदी ने केदार नारायण परिदा और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य और एक अन्य (2009) 9 एस.सी.सी. 538 में रिपोर्ट किए के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते और साथ ही टीटी एंटनी (उपरोक्त) के फैसले पर प्रस्तुत किया कि पुलिस के पास कोई निरंकुश शक्ति नहीं है, जो जांच करने की दैवीय शक्ति के समान है, लेकिन यदि पुलिस अधिकारी विभिन्न निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सीमाओं का उल्लंघन करता है और उन्हें सीमित करता है, तो अदालत न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के साथ-साथ कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए धारा 528 बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) के तहत अपनी अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप कर सकती है।

25. एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि धारा 528 बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के बाद के निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, रामलाल यादव (उपरोक्त) के मामले में पूर्ण पीठ के फैसले को निहित रूप से खारिज कर दिया गया है और ऐसे मामलों में, जहां तक रामलाल यादव (उपरोक्त) की पूर्ण पीठ के अनुपात का संबंध है, स्टेयर डिसीसिस के सिद्धांत से विचलन की अनुमति है।

26. एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि **पंजाब राज्य बनाम देवंस मॉडर्न ब्रुअरीज लिमिटेड के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पंजाब राज्य बनाम देवंस मॉडर्न ब्रुअरीज लिमिटेड (2004) 11 एस.सी.सी. 26** में रिपोर्ट किया गया है कि मैक्सिम "सेसेंटे राशन सेसत इप्सा लेक्स" (जब कानून का कारण समाप्त हो जाता है, तो कानून स्वयं समाप्त हो जाता है) को ध्यान में रखते हुए, हालांकि मामले को न तो

उलट दिया गया है और न ही खारिज कर दिया गया है, यह बदली हुई स्थिति और बदले हुए कानून के कारण कानून से बाहर हो सकता है।

27. श्री रौनक चतुर्वेदी, एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र), यह भी प्रस्तुत करते हैं कि रामलाल यादव (उपरोक्त) के पूर्ण पीठ के फैसले पर राम शंकर पांडे और अन्य बनाम यूपी पुलिस स्टेशन अधिकारी के मामले में आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन संख्या-2310 वर्ष 1994 में विचार किया गया था, जिसमें इस न्यायालय की एकल पीठ ने कहा है कि सर्वोच्च न्यायालय के बाद के फैसलों को ध्यान में रखते हुए, जहां तक न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप की शक्ति का संबंध है, , रामलाल यादव (उपरोक्त) में दिया गया निर्णय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के अनुरूप नहीं है। एकल न्यायाधीश ने आगे कहा कि शीर्ष अदालत के बाद के फैसले के मद्देनजर रामलाल यादव (उपरोक्त) की पूर्ण पीठ का फैसला अब एक अच्छा कानून नहीं है। यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि राम शंकर पांडे (उपरोक्त) के फैसले ने भगवत दीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन संख्या-193 वर्ष 1995 में बड़ी पीठ को संदर्भित किया।

28. हालांकि संदर्भ प्राप्त करने पर खंडपीठ ने कहा कि राम शंकर पांडे (उपरोक्त) में लिया गया दृष्टिकोण सही नहीं है, लेकिन खंडपीठ, भगवत दीन (उपरोक्त) मामले में संदर्भ का निर्णय लेते समय टीटी एंटनी (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर विचार करने में विफल रही, जहां शीर्ष न्यायालय ने ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) के मामले में प्रिवी काउंसिल के फैसले पर विचार करने के बाद माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए, न्यायालय न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करने के लिए जांच को रोक सकता है। एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि शीर्ष न्यायालय ने **रामावतार बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2022) 13 एस.सी.सी. 635** में रिपोर्ट किए गए के मामले में कहा है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत सर्वोच्च न्यायालय में निहित अंतर्निहित शक्ति की तरह, उच्च न्यायालय भी, धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए पूर्ण न्याय करने की कार्यवाही को रद्द कर सकता है। इसलिए, धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत सर्वोच्च न्यायालय में निहित अंतर्निहित शक्ति के समान है।

विश्लेषण:

29. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलों को सुनने के पश्चात्, निर्धारण हेतु एकमात्र प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा रामलाल यादव (उपर्युक्त) मामले में प्रतिपादित विधि, जिसके अनुसार बी.एन.एस.एस. की धारा 528 (जो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के समतुल्य है) के अंतर्गत प्राथमिकी तथा उसके पश्चात् की जाँच को निरस्त करने हेतु आवेदन ग्राह्य नहीं है, अब भी विधिसम्मत एवं प्रवर्तनीय विधि बनी हुई है, जबकि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भजन लाल (उपर्युक्त), गुलाम मुस्तफ़ा (उपर्युक्त), अभिषेक (उपर्युक्त), टी.टी. एंटनी (उपर्युक्त), नेहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर (उपर्युक्त) तथा इमरान प्रतापगढ़ी (उपर्युक्त) जैसे अनेक निर्णयों में की गई टिप्पणियाँ विद्यमान हैं।

30. आगे बढ़ने से पहले, धारा 528 बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) का उल्लेख करना उचित होगा और इसे निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"528. उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों की बचत।
इस संहिता में कुछ भी उच्च न्यायालय की अंतनहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करने के लिए नहीं समझा जाएगा जो इस संहिता के तहत किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए आवश्यक हो सकते हैं, या किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हो सकते हैं।

31. धारा 528 बी.एन.एस.एस. के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय निम्नलिखित तीन उद्देश्यों के लिए धारा 528 बी.एन.एस.एस. के तहत अंतर्निहित शक्ति का उपयोग कर सकता है:
(i) इस संहिता के तहत किसी भी आदेश को प्रभावी करने के लिए;
(ii) किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए;
(iii) न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करना।

32. संज्ञेय अपराध के कमीशन (गठन) के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट धारा 154 द०प्र०स० (धारा 173 बी.एन.एस.एस. के अनुरूप) के तहत दर्ज की गई है। जब यह पाया जाता है कि प्राथमिकी संज्ञेय अपराध के कमीशन (गठन) का खुलासा करती है तो पुलिस मामले की जांच के लिए आगे बढ़ती है लेकिन यह धारा 155(2) द०प्र०स० का जनादेश है कि यदि प्राथमिकी में संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं होता है, तो पुलिस मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना मामले की जांच नहीं करेगी, और यदि पुलिस गैर-संज्ञेय अपराध की जांच करने के लिए आगे बढ़ती है, तब उसकी कार्रवाई अवैध होगी। इसलिए, द०प्र०स० का यह आदेश है कि मजिस्ट्रेट की अनुमति के बिना गैर-संज्ञेय अपराधों की जांच न की जाए, लेकिन यदि पुलिस अभी भी आगे बढ़ती है तो अदालत धारा 155(2) द०प्र०स० में उल्लिखित इस आदेश/जनादेश को प्रभावी करने के लिए धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकती है। इसी तरह, धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति भी उच्च न्यायालय को न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करने के लिए व्यापक शक्ति प्रदान करती है, हालांकि द०प्र०स० में "न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करना" शब्दों को परिभाषित नहीं किया गया है, लेकिन कई निर्णयों में यह देखा गया है कि 'न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करना' का अर्थ है पुलिस अधिकारियों या अदालत की ओर से न्याय के अंत को रोकना जो कानून के खिलाफ है।

33. रामलाल यादव (उपरोक्त) की पूर्ण पीठ के फैसले ने प्रस्तर-22 में कहा कि भले ही पुलिस अधिकारी द्वारा दुर्भावना के साथ जांच की जाती है, तो उच्च न्यायालय धारा 582 बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए जांच को रद्द नहीं कर सकता है, लेकिन भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए ऐसा कर सकता है। इस मामले का फैसला करते समय, रामलाल यादव (उपरोक्त) में इस अदालत की पूर्ण पीठ ने ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त)

के मामले में प्रिवी काउंसिल के फैसले पर बहुत अधिक भरोसा किया और यह भी कहा कि शीर्ष अदालत ने बाद में पश्चिम बंगाल राज्य बनाम एसएन बसाक के मामले में ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) के उपरोक्त फैसले को मंजूरी दे दी, एस.एन. शर्मा (उपरोक्त), हजारी लाल गुप्ता बनाम रामेश्वर प्रसाद ने ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 484, जेहान सिंह बनाम दिल्ली प्रशासन 1974 एस.सी. 1146 में रिपोर्ट की, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और एक अन्य ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 2229, पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य बनाम संपत लाल और अन्य (1985)1 एस.सी.सी. 317, स्वपन कुमार गुहा (उपरोक्त) और आरपी कपूर। (उपरोक्त) रामलाल यादव के मामले (उपरोक्त) के प्रस्तर-4, 14, 16, 17, 18, 19, 20, 22 और 26 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"4. अपनी अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप के बिना एक संज्ञेय अपराध की जांच करने के लिए पुलिस की शक्ति पर प्रिवी काउंसिल और उच्चतम न्यायालय के कई निर्णयों में विचार किया गया है। सम्राट बनाम ख्वाजा नजीर अहमद ए.आई.आर. 1945 पीसी 18 के मामले में, यह आयोजित किया गया था:

"जिस तरह यह आवश्यक है कि किसी अपराध के प्रत्येक आरोपी को न्याय की अदालत में स्वतंत्र पहुंच प्राप्त हो ताकि यदि वह उस अपराध का दोषी नहीं पाया जाता है जिसके साथ उस पर आरोप लगाया गया है, तो उसे विधिवत बरी किया जा सके, इसलिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि न्यायपालिका को उन मामलों में पुलिस के साथ हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जो उनके प्रावधान के भीतर हैं और जिनमें कानून उन पर जांच का कर्तव्य लगाता है। भारत में, जैसा कि दिखाया गया है, न्यायिक अधिकारियों से किसी भी अधिकार की आवश्यकता के बिना एक कथित संज्ञेय अपराध की परिस्थितियों की जांच करने के लिए पुलिस की ओर से एक वैधानिक अधिकार है, और जैसा कि माननीय न्यायमूर्ति का मानना है, यह एक दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम होगा यदि अदालत के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के प्रयोग से उन वैधानिक अधिकारों में हस्तक्षेप करना संभव माना जाए। न्यायपालिका और पुलिस के कार्य परस्पर पूरक हैं, अतिव्यापी नहीं हैं और कानून और व्यवस्था के उचित पालन के साथ व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संयोजन केवल प्रत्येक को अपने स्वयं के कार्य का प्रयोग करने के लिए छोड़ देकर प्राप्त किया जाना है, हमेशा, निश्चित रूप से, धारा 491 के तहत स्थानांतरित किए जाने पर एक उपयुक्त मामले में हस्तक्षेप करने के लिए अदालत के अधिकार के अधीन, बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में निदेश देने के लिए आपराधिक दंड संहिता। हालाँकि, वर्तमान के रूप में ऐसे मामले में, अदालत के कार्य तब शुरू होते हैं जब उसके सामने किसी आरोप को प्राथमिकता दी जाती है और तब तक नहीं। कभी-कभी यह सोचा जाता है कि धारा 561-ए ने अदालत को बढ़ी हुई शक्तियां दी हैं जो उस धारा के अधिनियमित होने से पहले उसके पास नहीं थीं। लेकिन ये वैसा नहीं है। यह धारा कोई नई शक्तियां नहीं देती है, यह केवल यह प्रदान करती है कि जो न्यायालय के पास पहले से ही स्वाभाविक रूप से हैं, उन्हें संरक्षित किया जाएगा और डाला जाएगा, जैसा कि माननीय न्यायमूर्ति का मानना है, ऐसा न हो कि यह माना जाए कि न्यायालय के पास केवल वही शक्तियां हैं जो आपराधिक प्रक्रिया संहिता द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदान की गई हैं, और यह कि कोई अंतर्निहित शक्ति उस अधिनियम के पारित होने से बची नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है, यदि कोई संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं

किया जाता है, और इससे भी अधिक यदि किसी भी प्रकार के अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है, तो पुलिस के पास जांच करने का कोई अधिकार नहीं होगा।

14. इस प्रकार यह स्थापित कानून है कि एक रिपोर्ट की जांच करने की पुलिस की शक्ति जो एक संज्ञेय अपराध के कमीशन (गठन) का खुलासा करती है, निरंकुश है और धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

16. यह उल्लेखनीय है कि सम्राट बनाम ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) के मामले में, हालांकि यह आयोजित किया गया था: -
"इसमें कोई संदेह नहीं है कि अगर कोई संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है, और इससे भी अधिक अगर किसी भी प्रकार के अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है तो पुलिस के पास होगा।
इसमें कोई संदेह नहीं है कि अगर किसी भी तरह के अपराध का खुलासा नहीं होता है और इससे भी ज्यादा अगर किसी भी तरह के अपराध का खुलासा नहीं होता है तो पुलिस के पास जांच करने का कोई अधिकार नहीं होगा।

17. इसमें यह नहीं माना गया था कि यदि कोई अपराध प्रकट नहीं होता है, तो उच्च न्यायालय द्वारा धारा 561-ए द०प्र०स० 1898 के तहत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए जांच को रद्द किया जा सकता है, जो धारा 482 द०प्र०स० 1973 से मेल खाती है। दूसरी ओर, यह उसमें अवधारित किया गया था;
"न्यायपालिका और पुलिस के कार्य परस्पर पूरक हैं, अतिव्यापी नहीं हैं और कानून और व्यवस्था का संयोजन केवल प्रत्येक को अपने स्वयं के कार्य का प्रयोग करने के लिए छोड़कर प्राप्त किया जाना है, जो हमेशा धारा 491, आपराधिक पीसी के तहत स्थानांतरित होने पर एक उपयुक्त मामले में हस्तक्षेप करने के लिए अदालत के अधिकार के अधीन है, बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में निर्देश देने के लिए।

18. जिससे यह पता चलता है कि यदि पुलिस ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में किसी भी प्रकार के अपराध का खुलासा नहीं होने पर जांच की तो बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में धारा 491-ए सीआरएल पीसी 1898 के तहत एकमात्र उपाय उपलब्ध था। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करने के लिए इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियां किसी अभियुक्त के खिलाफ अदालत में आरोप पत्र दायर होने के बाद ही लागू होती हैं, और तब तक उन मामलों में भी नहीं जहां पुलिस गलत तरीके से एक रिपोर्ट की जांच करती है जिसमें किसी भी अपराध के कमीशन (गठन) का खुलासा नहीं किया गया है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि ***बंगाल राज्य बनाम स्वपन कुमार गुहा (ए.आई.आर. 1982 एस.सी. 949)*** *के मामले में फर्म और उसके भागीदारों द्वारा फर्म के खिलाफ शुरू की गई जांच को रद्द करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर रिट याचिका को कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा अनुमति दी गई थी और परमादेश की एक रिट जारी की गई थी जिसमें राज्य सरकार और उसके संबंधित अधिकारियों को निर्देश दिया गया था कि वे पहले को तुरंत वापस लें और वापस लें सूचना रिपोर्ट और उसके आधार पर की*

गई सभी कार्यवाही और उपरोक्त निर्णय के खिलाफ पश्चिम बंगाल राज्य द्वारा दायर अपील को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था और यह आयोजित किया गया था:

19. प्रिवी काउंसिल ने यह कहकर अपने बयान को योग्य बनाया;

इसमें कोई संदेह नहीं है कि अगर किसी भी तरह के अपराध का खुलासा नहीं होता है और इससे भी ज्यादा अगर किसी भी तरह के अपराध का खुलासा नहीं होता है तो पुलिस के पास जांच करने का कोई अधिकार नहीं होगा।

पीठ ने कहा, "अगर कुछ भी है तो फैसले से पता चलता है कि अगर प्राथमिकी द्वारा किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है तो जांच को रद्द किया जा सकता है। यह भी देखा गया होगा, जिसे कभी-कभी अनदेखा कर दिया जाता है, कि प्रिवी काउंसिल ने यह कहकर कानून के अपने बयान को योग्य बनाने का ध्यान रखा कि न्यायपालिका को उन मामलों में पुलिस के साथ हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जो उनके क्षेत्राधिकार के भीतर हैं। यह निश्चित रूप से पुलिस के क्षेत्राधिकार के भीतर नहीं है कि वह ऐसी रिपोर्ट की विवेचना करे जो संज्ञेय अपराध के कमीशन (गठन) का खुलासा नहीं करती है और संहिता उन पर ऐसे मामलों में विवेचना का कर्तव्य नहीं लगाती है।

इन निर्णयों और अन्य निर्णयों से जो स्थिति उभरती है, जिस पर भाई ए.एन. सेन द्वारा चर्चा की गई है, वह यह है कि संहिता की धारा 157 के तहत जांच शुरू करने से पहले की शर्त यह है कि प्राथमिकी को प्रथम दृष्टया यह खुलासा करना होगा कि एक संज्ञेय अपराध किया गया है। यह मानना गलत है कि पुलिस के पास संहिता की धारा 157 के तहत विवेचना शुरू करने का निरंकुश विवेक है। उनकी विवेचना का अधिकार संज्ञेय अपराध के कमीशन (गठन) पर संदेह करने के कारण के अस्तित्व से निर्धारित होता है और उनके पास तब तक संदेह करने का कारण नहीं हो सकता जब तक कि प्राथमिकी, प्रथम दृष्टया, इस तरह के अपराध के कमीशन (गठन) का खुलासा नहीं करता है। यदि वह शर्त पूरी हो जाती है, तो जांच जारी रहनी चाहिए और ख्वाजा नजीर अहमद में नियम लागू होगा। तब न्यायालय के पास विवेचना को रोकने की कोई शक्ति नहीं है, क्योंकि ऐसा करना संज्ञेय अपराधों की विवेचना करने के लिए पुलिस की वैध शक्ति पर अंकुश लगाना होगा। दूसरी ओर, यदि प्राथमिकी संज्ञेय अपराध के कमीशन (गठन) का खुलासा नहीं करता है, तो अदालत निर्धारित या प्राप्त जानकारी के आधार पर विवेचना को रद्द करने में उचित होगी।

20. इस प्रकार, यदि प्रथम सूचना रिपोर्ट में किसी अपराध के कमीशन (गठन) का खुलासा नहीं किया जाता है, तो ऐसी रिपोर्ट के आधार पर जांच संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रद्द की जा सकती है, न कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए। यह उल्लेख किया जा सकता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 491, 1898 को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 द्वारा निरस्त कर दिया गया है।

22. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यदि किसी पुलिस अधिकारी द्वारा विवेचना की शक्ति का प्रयोग दुर्भावनापूर्ण तरीके से किया जाता है, तो उच्च न्यायालय धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए विवेचना को रद्द नहीं कर सकता है, लेकिन संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत ऐसा कर सकता है।

26. हालांकि, हमारी स्पष्ट राय है कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति एक प्राथमिकी या शिकायत को रद्द करने के लिए एक आरोप पत्र या शिकायत दायर करने के बाद अदालत में कार्यवाही करने के संदर्भ में है, न कि अदालत में आरोप पत्र दायर करने से पहले विवेचना के लिए।

34. रामलाल यादव (उपरोक्त) की पूर्ण पीठ के फैसले के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि यह मुख्य रूप से ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) में प्रिवी काउंसिल के फैसले की टिप्पणियों पर भरोसा करता है, जिसमें यह देखा गया है कि पुलिस को जांच करने का वैधानिक अधिकार है और अदालत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती है। भले ही प्राथमिकी के अवलोकन से कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है क्योंकि उस मामले में उच्च न्यायालय ने धारा 491 द०प्र०स०, 1868 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए जांच में हस्तक्षेप कर सकता है जो उच्च न्यायालय को बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में निर्देश जारी करने की शक्ति देता है।

35. ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) के मामले में, यह मुद्दा था कि क्या उच्च न्यायालय द०प्र०स० 1868 (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०, 1973) की धारा 561-ए के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए प्राथमिकी के परिणामस्वरूप होने वाली कार्यवाही को रद्द कर सकता है। इस मामले में हालांकि प्रिवी काउंसिल ने कहा कि न्यायपालिका को विवेचना के मामले में पुलिस के साथ हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए क्योंकि कानून संज्ञेय अपराध के मामले में विवेचना करने के लिए पुलिस पर एक वैधानिक कर्तव्य लगाता है, लेकिन प्रिवी काउंसिल ने यह भी कहा कि कुछ परिस्थितियों में, अदालत धारा 491 द०प्र०स० के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए विवेचना के दौरान भी हस्तक्षेप कर सकती है। 1868 में ऐसा कोई मामला दर्ज किया गया है, जहां यह पाया गया है कि कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है, जिसके लिए पुलिस को विवेचना करने का कोई अधिकार नहीं है, बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में निर्देश जारी करते हुए। यह भी देखा गया कि द०प्र०स०, 1868 की धारा 561-ए के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति, अदालत के समक्ष आरोप को प्राथमिकता देने के बाद ही लागू होगी। ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) के फैसले का प्रासंगिक उद्धरण निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"भारत में जैसा कि दिखाया गया है कि न्यायिक अधिकारियों से किसी भी अधिकार की आवश्यकता के बिना एक कथित संज्ञेय अपराध की परिस्थितियों की जांच करने के लिए पुलिस की ओर से एक वैधानिक अधिकार है, और यह एक दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम होगा, जैसा कि माननीय न्यायमूर्ति का मानना है, एक दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम होगा यदि न्यायालय के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के प्रयोग से उन वैधानिक अधिकारों में हस्तक्षेप करना संभव माना जाए। न्यायपालिका और पुलिस के कार्य पूरक हैं, अतिव्यापी नहीं हैं और कानून और व्यवस्था के उचित पालन के साथ व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संयोजन केवल प्रत्येक को अपने स्वयं के कार्य का प्रयोग करने के लिए छोड़कर प्राप्त किया जाना है, हमेशा निश्चित रूप से न्यायालय के अधिकार के अधीन है जब धारा 491 द०प्र०स० के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में निर्देश देने के लिए स्थानांतरित किया जाता है। हालाँकि, वर्तमान के रूप में ऐसे मामले में, न्यायालय के कार्य तब शुरू होते हैं जब उसके समक्ष किसी आरोप को

प्राथमिकता दी जाती है और तब तक नहीं। कभी-कभी यह सोचा गया है कि धारा 561 ए ने न्यायालय को बढ़ी हुई शक्तियां दी हैं जो उस धारा के अधिनियमित होने से पहले उसके पास नहीं थीं। लेकिन ये वैसा नहीं है। यह धारा कोई नई शक्तियां नहीं देती है, यह केवल यह प्रदान करती है कि जो न्यायालय के पास पहले से ही स्वाभाविक रूप से हैं, उन्हें संरक्षित किया जाएगा और माननीय न्यायमूर्ति के विचार के अनुसार डाला जाएगा, ऐसा न हो कि यह माना जाए कि न्यायालय के पास केवल वही शक्तियां हैं जो द०प्र०स० द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदान की गई हैं और कोई अंतर्निहित शक्ति उस अधिनियम के पारित होने से बची नहीं थी।

36. ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) के फैसले के उपरोक्त उद्धरण से, यह स्पष्ट है कि प्रिवी काउंसिल ने देखा कि पुलिस के पास संज्ञेय अपराध की विवेचना करने की निरंकुश शक्ति है, लेकिन यदि कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है, तो पुलिस को विवेचना करने का कोई अधिकार नहीं है और अगर पुलिस विवेचना जारी रखती है तो अदालत हस्तक्षेप कर सकती है और धारा 491 द०प्र०स० 1898 के तहत उचित निर्देश जारी कर सकती है। धारा 491 द०प्र०स०, 1898 को उद्धृत करना प्रासंगिक है, जिसे निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"491. बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति के निर्देश जारी करने की शक्ति

(1) उच्च न्यायालय प्रभाग, जब कभी उचित समझे, निदेश दे सकेगा: -

(क) कि किसी व्यक्ति को उसके अपीलीय आपराधिक क्षेत्राधिकार की सीमा के भीतर न्यायालय के समक्ष लाया जाए ताकि उस पर कानून के अनुसार कार्रवाई की जा सके;

(ख) ऐसी सीमाओं के साथ सार्वजनिक या निजी हिरासत में अवैध रूप से या अनुचित तरीके से हिरासत में रखे गए व्यक्ति को स्वतंत्रता पर निर्धारित किया जाए;

(ग) ऐसी सीमाओं के भीतर स्थित किसी जेल में बंद कैदी को न्यायालय के समक्ष लाया जाए ताकि ऐसे न्यायालय में लंबित या पूछताछ किए जाने वाले किसी मामले में गवाह के रूप में पूछताछ की जा सके;

(घ) पूर्वोक्त रूप से हिरासत में लिए गए कैदी को न्यायालय-मार्शल या किसी कमिश्नर के समक्ष विचारण के लिए लाया जाए या ऐसे न्यायालय-मार्शल या कमिश्नर के समक्ष लंबित किसी मामले को छूते हुए उसकी जांच की जाए;

(ङ) विचारण के प्रयोजनार्थ ऐसी सीमाओं के भीतर किसी कैदी को एक हिरासत से दूसरी हिरासत में ले जाया जाए; और

(2) उच्चतम न्यायालय, समय-समय पर, इस धारा के अधीन मामलों में प्रक्रिया को विनियमित करने के लिए नियम बना सकेगा।

(3) इस धारा में कुछ भी निवारक निरोध के लिए प्रदान करने वाले किसी भी कानून के तहत हिरासत में लिए गए व्यक्तियों पर लागू नहीं होता है।

37. पुराने द०प्र०स० की उपरोक्त उद्धृत धारा 491 के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि यह शक्ति उच्च न्यायालय की थी लेकिन द०प्र०स०, 1973 में, इस शक्ति को हटा दिया गया था, और नए द०प्र०स० में, उच्च न्यायालय के पास धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्ति है। इसलिए, द०प्र०स० वर्ष 1898 के निरसन के बाद, परिस्थितियां बदल गई हैं और पुराने धारा 491 द०प्र०स० के तहत शक्ति अब उपलब्ध नहीं है, इसलिए, जब प्राथमिकी में किसी अपराध का खुलासा नहीं होता है और पुलिस अभी भी जांच जारी रखती है, तो ऐसे मामले में, द०प्र०स० में उच्च न्यायालय को उपलब्ध केवल शक्ति ही धारा 482 द०प्र०स० द०प्र०स० के तहत इसकी अंतर्निहित शक्ति या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति है।

38. आर.पी. कपूर (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने प्राथमिकी के साथ-साथ परिणामी कार्यवाही को रद्द करने के लिए पुराने द०प्र०स० (संबंधित 482 द०प्र०स०) की धारा 561-ए के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति के मुद्दे पर विचार किया। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग विशेष रूप से संहिता के अन्य प्रावधानों द्वारा आच्छादित किए गए मामलों के संबंध में नहीं किया जा सकता है, लेकिन उच्च न्यायालय अपने अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए कार्यवाही को रद्द कर सकता है। विशेष रूप से उन मामलों में जहां केवल प्राथमिकी या शिकायत को देखने से, किसी अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है और ऐसे मामलों में जहां आपराधिक कार्यवाही को जारी रखना या जारी रखना अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग हो सकता है या जहां उच्च न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि प्राथमिकी के परिणामस्वरूप संस्था के खिलाफ कानूनी रोक है या कार्यवाही जारी है, उस मामले में उच्च न्यायालय कार्यवाही को रद्द करने में उचित होगा, लेकिन अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए शीर्ष न्यायालय द्वारा आगे देखा गया था, उच्च न्यायालय उन सबूतों का मूल्यांकन नहीं कर सकता है जो उत्पन्न होते हैं या जांच शुरू नहीं करते हैं कि प्रश्न में साक्ष्य विश्वसनीय हैं या नहीं। आर.पी. कपूर (उपरोक्त) के निर्णय के प्रस्तर-6 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"6. अपील के गुण-दोष से निपटने से पहले, संहिता की धारा 561-ए के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति की प्रकृति और दायरे पर विचार करना आवश्यक है। उक्त धारा उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति को ऐसे आदेश देने की शक्ति को बचाती है जो इस संहिता के तहत किसी भी आदेश को प्रभावी करने या किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हो सकती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग विशेष रूप से संहिता के अन्य प्रावधानों द्वारा आच्छादित किए गए मामलों के संबंध में नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत मामले में, जिस मजिस्ट्रेट के समक्ष संहिता की धारा 173 के तहत पुलिस रिपोर्ट दायर की गई है, उसने अभी तक उक्त रिपोर्ट के गुण-दोष पर अपना दिमाग नहीं लगाया है और अपीलकर्ता के पक्ष में यह माना जा सकता है कि कार्यवाही को रद्द करने का उसका अनुरोध संहिता के किसी विशिष्ट प्रावधान के अंतर्गत आने वाला वर्तमान स्तर पर नहीं है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि उच्च न्यायालय के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किसी उचित मामले में कार्यवाही को रद्द करने के लिए किया जा सकता है ताकि या तो किसी भी अदालत की

प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोका जा सके या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित किया जा सके। आमतौर पर एक आरोपी व्यक्ति के खिलाफ शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही को संहिता के प्रावधानों के तहत मुकदमा चलाया जाना चाहिए, और उच्च न्यायालय एक अंतरिम चरण में उक्त कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के लिए अनिच्छुक होगा। किसी भी अनम्य नियम को निर्धारित करना संभव, वांछनीय या समीचीन नहीं है जो इस अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के प्रयोग को नियंत्रित करेगा। हालाँकि, हम कुछ श्रेणियों के मामलों को इंगित कर सकते हैं जहां कार्यवाही को रद्द करने के लिए अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। ऐसे मामले हो सकते हैं जहां उच्च न्यायालय के लिए यह विचार करना संभव हो सकता है कि किसी आरोपी व्यक्ति के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही की संस्था या जारी रखना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग हो सकता है या आक्षेपित कार्यवाही को रद्द करने से न्याय के अंत सुरक्षित हो सकते हैं। यदि विचाराधीन आपराधिक कार्यवाही किसी अभियुक्त व्यक्ति द्वारा कथित रूप से किए गए अपराध के संबंध में है और यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि संस्था के खिलाफ कोई कानूनी रोक है या उक्त कार्यवाही को जारी रखना है, तो उच्च न्यायालय उस आधार पर कार्यवाही को रद्द करने में उचित होगा। उदाहरण के लिए, अपेक्षित मंजूरी के अभाव में इस श्रेणी के अंतर्गत मामले प्रस्तुत किए जा सकते हैं। ऐसे मामले भी उत्पन्न हो सकते हैं जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और पूरी तरह से स्वीकार किया गया हो, कथित अपराध का गठन नहीं करते हैं; ऐसे मामलों में साक्ष्य का मूल्यांकन करने का कोई सवाल ही नहीं उठता; यह केवल शिकायत या प्रथम सूचना रिपोर्ट को देखने का मामला है ताकि यह तय किया जा सके कि कथित अपराध का खुलासा किया गया है या नहीं। ऐसे मामलों में उच्च न्यायालय के लिए यह कहना वैध होगा कि आरोपी व्यक्ति के खिलाफ आपराधिक अदालत की प्रक्रिया जारी करने की अनुमति देना स्पष्ट रूप से अन्यायपूर्ण होगा। मामलों की एक तीसरी श्रेणी भी उत्पन्न हो सकती है जिसमें उच्च न्यायालय के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र को सफलतापूर्वक लागू किया जा सकता है। इस श्रेणी के अंतर्गत आने वाले मामलों में आरोपी व्यक्ति के खिलाफ लगाए गए आरोप कथित अपराध हैं, लेकिन मामले के समर्थन में या तो कोई कानूनी सबूत पेश नहीं किया गया है या स्पष्ट रूप से सबूत पेश किए गए हैं या आरोप को साबित करने में स्पष्ट रूप से विफल रहते हैं। मामलों के इस वर्ग से निपटने में ऐसे मामले के बीच के अंतर को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है जहां कोई कानूनी सबूत नहीं है या जहां सबूत हैं जो लगाए गए आरोप के साथ स्पष्ट रूप से और स्पष्ट रूप से असंगत हैं और ऐसे मामले जहां कानूनी सबूत हैं जो इसका मूल्यांकन पर प्रश्न में आरोप का समर्थन कर सकते हैं या नहीं भी कर सकते हैं। धारा 561-ए के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय इस बात की जांच नहीं करेगा कि विचाराधीन साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं। यह ट्रायल मजिस्ट्रेट का कार्य है, और आमतौर पर यह किसी भी पक्ष के लिए उच्च न्यायालय के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का आह्वान करने और यह तर्क देने के लिए खुला नहीं होगा कि सबूतों की उचित सराहना पर आरोपी के खिलाफ लगाए गए आरोप कायम नहीं रहेंगे। मोटे तौर पर कहा गया है कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के मामले में धारा 561-ए के तहत उच्च न्यायालय के अंतर्निहित क्षेत्राधिकार की प्रकृति और दायरा है, और यह बिंदु पर न्यायिक निर्णयों का प्रभाव है।

39. एस.एन बसाक (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) के फैसले पर भरोसा करने के बाद कहा, जहां प्राथमिकी संज्ञान अपराध के अवलोकन पर अदालत को अपनी अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग में जांच में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए क्योंकि संज्ञेय अपराध की जांच करना पुलिस का कर्तव्य है। एसएन बसाक (उपरोक्त) के प्रस्तर-3 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"3. जिस समय प्रतिवादी ने उच्च न्यायालय में याचिका दायर की थी, उस समय पुलिस प्रवर्तन शाखा के उप-निरीक्षक द्वारा पुलिस को केवल एक लिखित रिपोर्ट दी गई थी और उस रिपोर्ट के आधार पर पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी द्वारा एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी और जांच शुरू हो गई थी। उस समय कोई मामला लंबित नहीं था, सिवाय इसके कि प्रतिवादी अदालत के समक्ष पेश हुआ था, आत्मसमर्पण कर दिया था और उसे जमानत के लिए स्वीकार कर लिया गया था। संज्ञेय अपराधों की जांच की शक्तियां दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XIV में निहित हैं। धारा 154 जो उस अध्याय में है, संज्ञेय अपराधों में जानकारी और धारा 156 ऐसे अपराधों की जांच से संबंधित है और इन धाराओं के तहत पुलिस को मजिस्ट्रेट के अधिकार के बिना किसी भी कथित संज्ञेय अपराध की परिस्थितियों की जांच करने का वैधानिक अधिकार है और जांच करने की पुलिस की इस वैधानिक शक्ति को धारा 439 के तहत शक्ति के प्रयोग से या अदालत की अंतर्निहित शक्ति के तहत हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 561-ए के तहत। जांच करने के लिए पुलिस के वैधानिक अधिकार के संबंध में न्यायपालिका की शक्तियों के संबंध में, प्रिवी काउंसिल ने ***किंग एम्परर बनाम ख्वाजा नजीर अहमद [71 आईए 203, 212]*** *में निम्नानुसार अवलोकन किया:*

"न्यायपालिका और पुलिस के कार्य पूरक हैं, अतिव्यापी नहीं हैं और कानून और व्यवस्था के उचित पालन के साथ व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संयोजन केवल प्रत्येक को अपने स्वयं के कार्य का प्रयोग करने के लिए छोड़कर प्राप्त किया जाना है, हमेशा, निश्चित रूप से, अदालत के अधिकार के अधीन है जब आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 491 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में निर्देश देने के लिए एक उपयुक्त मामले में हस्तक्षेप करने के लिए। हालाँकि, वर्तमान जैसे मामले में, अदालत के कार्य तब शुरू होते हैं जब उसके सामने किसी आरोप को प्राथमिकता दी जाती है, और तब तक नहीं। कभी-कभी यह सोचा गया है कि धारा 561-ए ने अदालत को बढ़ी हुई शक्तियां दी हैं जो उस धारा के अधिनियमित होने से पहले उसके पास नहीं थीं। लेकिन ये वैसा नहीं है। यह धारा कोई नई शक्तियां नहीं देती है, यह केवल यह प्रदान करती है कि जो न्यायालय के पास पहले से ही स्वाभाविक रूप से हैं, उन्हें संरक्षित किया जाएगा और डाला जाएगा, जैसा कि माननीय न्यायमूर्ति का मानना है, ऐसा न हो कि यह माना जाए कि न्यायालय के पास केवल वही शक्तियां हैं जो आपराधिक प्रक्रिया संहिता द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदान की गई हैं और यह कि कोई अंतर्निहित शक्ति उस अधिनियम के पारित होने से बची नहीं थी।

इस व्याख्या के साथ, जिसे पुलिस के सांविधिक कर्तव्यों और शक्तियों और न्यायालय की शक्तियों पर रखा गया है, हम सहमत हैं। इसलिए उच्च न्यायालय ने अपराध की जांच में पुलिस की शक्तियों के साथ हस्तक्षेप करने में गलती की, जो पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी को भेजी गई जानकारी में कथित था।

40. एस.एन. शर्मा (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने जांच में हस्तक्षेप करने के लिए पुराने धारा 159 द०प्र०स० के दायरे पर विचार करते हुए कहा कि मजिस्ट्रेट ने पुराने धारा 159 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए कहा था कि एक बार जब प्राथमिकी के अवलोकन से संज्ञेय अपराध हो जाता है तो मजिस्ट्रेट के पास पुलिस द्वारा की गई जांच में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। इस फैसले में, शीर्ष न्यायालय ने ख्वाजा नज़ीर अहमद (उपरोक्त) के फैसले पर भी विचार किया है और कहा है कि हालांकि ख्वाजा नज़ीर अहमद (उपरोक्त) में शामिल मुद्दा पुराने द०प्र०स० की धारा 561-ए के तहत था और इस मामले में भी यही स्थिति नहीं है, फिर भी ख्वाजा नज़ीर अहमद (उपरोक्त) में प्रिवी काउंसिल की टिप्पणियों में कहा गया है कि एक बार प्राथमिकी के अवलोकन से संज्ञेय अपराध हो जाता है तो न्यायपालिका पुलिस जांच में हस्तक्षेप नहीं कर सकती है, इस बात का समर्थन करती है कि पुराने धारा 159 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, मजिस्ट्रेट जांच को रोक नहीं सकता है। हालांकि, उपयुक्त मामलों में, न्यायपालिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्ति का उपयोग करके भी हस्तक्षेप कर सकती है। इस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह नहीं देखा कि यदि प्राथमिकी के अवलोकन से कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है, तो उच्च न्यायालय पुराने द०प्र०स० (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) की धारा 561-ए के तहत अपनी अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग में जांच के दौरान हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। एसएन शर्मा (उपरोक्त) के प्रस्तर-7, 9 और 10 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"7. यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि धारा 156 की उप-धारा (3) में भी, मजिस्ट्रेट को दी गई एकमात्र शक्ति, जो धारा 190 के तहत किसी अपराध का संज्ञान ले सकती है, जांच का आदेश देना है; पुलिस द्वारा जांच को रोकने की किसी शक्ति का कोई उल्लेख नहीं है। इस प्रकार, इन धाराओं की योजना स्पष्ट रूप से यह है कि किसी भी संज्ञेय अपराध की जांच करने के लिए पुलिस की शक्ति मजिस्ट्रेट द्वारा अनियंत्रित है, और यह केवल उन मामलों में है जहां पुलिस मामले की जांच नहीं करने का निर्णय लेती है कि मजिस्ट्रेट हस्तक्षेप कर सकता है और या तो जांच का निर्देश दे सकता है, या, वैकल्पिक रूप से, मामले की जांच के लिए आगे बढ़ने के लिए अपने अधीनस्थ मजिस्ट्रेट को स्वयं आगे बढ़ा सकता है या प्रतिनियुक्त कर सकता है। जांच करने की पुलिस की शक्ति को मजिस्ट्रेट द्वारा किसी भी नियंत्रण से स्वतंत्र कर दिया गया है।

9. दोनों न्यायालयों ने अपने निर्णय मुख्य रूप से प्रिवी काउंसिल द्वारा राजा-सम्राट बनाम ख्वाजा नजीर अहमद [71 आईए 203] में व्यक्त किए गए विचार पर आधारित थे। हालाँकि, वह मामला उस बिंदु तक नहीं था जो हमारे सामने निर्णय के लिए आया है। प्रिवी काउंसिल इस सवाल से चिंतित थी कि क्या उच्च न्यायालय के पास दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 561-ए के तहत पुलिस को दी गई प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसरण में पुलिस

द्वारा की जा रही कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति है। तथापि, प्रिवी काउंसिल ने कुछ टिप्पणियां की हैं जिन पर उच्च न्यायालयों द्वारा भरोसा किया गया है और वे निम्नलिखित प्रभाव के हैं:

"भारत में, जैसा कि दिखाया गया है, पुलिस की ओर से न्यायिक अधिकारियों से किसी भी अधिकार की आवश्यकता के बिना एक कथित संज्ञेय अपराध की परिस्थितियों की जांच करने का एक वैधानिक अधिकार है, और जैसा कि माननीय न्यायमूर्ति का मानना है, यह एक दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम होगा यदि अदालत के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के प्रयोग से उन वैधानिक अधिकारों में हस्तक्षेप करना संभव माना जाए। न्यायपालिका और पुलिस के कार्य एक-दूसरे के पूरक हैं, अतिव्यापी नहीं हैं, और कानून और व्यवस्था के उचित पालन के साथ व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संयोजन केवल प्रत्येक को अपने स्वयं के कार्य का प्रयोग करने के लिए छोड़ देकर प्राप्त किया जाना है, हमेशा, निश्चित रूप से, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 491 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में निर्देश देने के लिए एक उपयुक्त मामले में हस्तक्षेप करने के लिए न्यायालय के अधिकार के अधीन।

10. यह व्याख्या, कुछ हद तक, इस दृष्टिकोण का समर्थन करती है कि दंड प्रक्रिया संहिता की योजना यह है कि संज्ञेय अपराध की जांच करने के लिए पुलिस की शक्ति में न्यायपालिका द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। प्रिवी काउंसिल के माननीय न्यायमूर्ति, निश्चित रूप से, द०प्र०स० की धारा 561-ए के तहत केवल उच्च न्यायालय की शक्तियों से संबंधित थे, जबकि हमें संहिता की धारा 159 की व्याख्या करनी होगी जो एक मजिस्ट्रेट की शक्तियों को परिभाषित करती है जिसका प्रयोग वह संहिता की धारा 157 के तहत संज्ञेय अपराध की पुलिस से रिपोर्ट प्राप्त करने पर कर सकता है। हमारी राय में, धारा 159 का उद्देश्य वास्तव में मजिस्ट्रेट को यह सुनिश्चित करने के लिए एक सीमित शक्ति देना था कि पुलिस सभी संज्ञेय अपराधों की जांच करे और अपराध की जांच के साथ आगे न बढ़ने के कुछ सीमित मामलों के लिए दिए गए अधिकार का दुरुपयोग करके ऐसा करने से इनकार न करे।

41. जेहान सिंह (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने प्राथमिकी के अनुसरण में कार्यवाही को रद्द करने के लिए पुराने द०प्र०स० (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) की धारा 561-ए के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति की जांच की। इस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से ख्वाजा नज़ीर अहमद (उपरोक्त) में प्रिवी काउंसिल के फैसले पर भरोसा किया और कहा कि जहां प्राथमिकी के आरोप से प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध बनाया जाता है, उस मामले में, उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए जांच में हस्तक्षेप नहीं कर सकता क्योंकि उच्च न्यायालय के पास सबूतों का मूल्यांकन करने या साक्ष्य या आरोप की विश्वसनीयता के बारे में पूछताछ करने की कोई शक्ति नहीं है। इस मामले में, शीर्ष न्यायालय ने इस आधार पर अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करने से इनकार कर दिया कि आवेदन समय से पहले था क्योंकि पुलिस ने ऐसी सामग्री एकत्र की थी जिस पर मजिस्ट्रेट को संज्ञान लेते समय अपना दिमाग लगाना था। जेहान सिंह (उपरोक्त) के प्रस्तर-16, 17 और 18 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"16. प्रथम सूचना रिपोर्ट को पढ़ने से पता चलेगा कि इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक होना चाहिए। इसमें यह आरोप लगाया गया है कि बस (डीएलपी-3867) चिराग दिल्ली के इंद्रज और सुख लाल की थी और सामग्री के समय उनके नौकरों, मुंशी राम ड्राइवर, मोहिंदर सिंह कंडक्टर और शेर सिंह हेल्पर के माध्यम से उनके कब्जे में थी, और इसे उनकी हिरासत या कब्जे से उनकी सहमति के बिना जेहान सिंह और आरके पाठक सहित चार व्यक्तियों द्वारा हटा दिया गया था। जो सभी उस वाहन में प्रवेश कर गए थे, जिसे उनमें से एक ने चलाया था जो मजबूत कद-काठी, मध्यम कद, सांवले रंग आदि का था, सिंधिया हाउस तक। सार रूप में आरोप यह था कि बस को गलत तरीके से हटाना अपीलकर्ता जेहान सिंह और आरके पाठक और उनके अनाम साथियों की ठोस कार्रवाई थी। प्रथम दृष्टया, प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोपों को, यदि सही माना जाता है, तो अपीलकर्ता और उसके साथियों द्वारा संज्ञेय अपराध करने का खुलासा किया जाता है। हो सकता है कि जांच के दौरान पुलिस द्वारा एकत्र किए जाने वाले और साक्ष्य, जिसमें किराया-खरीद समझौते, साझेदारी विलेख और रसीद आदि शामिल हैं, प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों की पुष्टि या गलत साबित कर सकते हैं, लेकिन इस स्तर पर उच्च न्यायालय जैसा कि आरपी कपूर मामले में इस न्यायालय द्वारा इंगित किया गया था, नहीं कर सका, अपने अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में, उस साक्ष्य का मूल्यांकन करें या पूछताछ करें कि क्या यह विश्वसनीय था या नहीं।

17. हो सकता है कि सभी सबूत इकट्ठा करने के बाद पुलिस खुद ही रद्दीकरण रिपोर्ट पेश करे। हालांकि, यदि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के तहत मजिस्ट्रेट के समक्ष आरोप पत्र पेश किया जाता है, तो मामले का संज्ञान लेने के बाद मजिस्ट्रेट द्वारा इन सभी मामलों पर विचार करना होगा। इस स्तर पर, हम संभवतः यह संकेत नहीं दे सकते हैं कि विशुद्ध रूप से काल्पनिक स्थितियों में क्या किया जाना चाहिए जो इस मामले में उत्पन्न हो सकती है या नहीं भी हो सकती है।

18. पूर्वगामी कारणों से, हम मानेंगे कि धारा 561-ए के तहत याचिकाओं को समय से पहले और अक्षम मानकर खारिज किया जाना था। इस छोटी सी जमीन पर, हम इस अपील को खारिज कर देंगे।

42. स्वपन कुमार गुहा (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने जांच के दौरान उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप के दायरे पर विचार किया, हालांकि, प्राथमिकी को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत चुनौती दी गई थी। इस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) के मामले में प्रिवी काउंसिल की टिप्पणियों पर विचार किया और सही ढंग से व्याख्या की और कहा कि अदालत कभी-कभी प्रिवी काउंसिल की टिप्पणियों की अनदेखी करती है, जो स्वयं अदालत को जांच के दौरान हस्तक्षेप करने की अनुमति देती है, जहां प्राथमिकी के अवलोकन पर कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है, तो पुलिस का द०प्र०स० के तहत जांच करने का कोई कर्तव्य नहीं है। इस मामले में यह भी देखा गया है कि पुलिस के पास धारा 157 द०प्र०स० के तहत जांच शुरू करने का कोई निरंकुश विवेक नहीं है क्योंकि जांच करने का उनका अधिकार संज्ञेय अपराध के कमीशन (गठन) पर संदेह करने के कारण के अस्तित्व के अधीन है। स्वपन कुमार गुहा (उपरोक्त) के प्रस्तर-20 और 21 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"20. एकमात्र अन्य निर्णय जिसका मुझे उल्लेख करने की आवश्यकता है, वह राजा-सम्राट बनाम ख्वाजा नजीर अहमद [ए.आई.आर. 1945 पीसी 18: (1944) 71 आईए 203: 217 आईसी 1] में प्रिवी काउंसिल का है, जो यह कहने के लिए कि किसी भी जांच को कभी भी रद्द नहीं किया जा सकता है, हर जगह अभियोजन पक्ष का चार्टर है। एक अंश में अक्सर उद्धृत लेकिन बहुत गलत समझा गया। लॉर्ड पोर्टर ने न्यायिक समिति की राय देते हुए कहा: (आईए पृष्ठ 212-13)

"माननीय न्यायमूर्ति की राय में, हालांकि, मामले का अधिक गंभीर पहलू पुलिस के कर्तव्यों के साथ अदालत द्वारा परिणामी हस्तक्षेप में पाया जाना है। जिस तरह यह आवश्यक है कि किसी अपराध के प्रत्येक आरोपी को न्याय की अदालत में स्वतंत्र पहुंच प्राप्त हो ताकि उस अपराध का दोषी न पाए जाने पर उसे विधिवत बरी किया जा सके, जिसके साथ उस पर आरोप लगाया गया है, इसलिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि न्यायपालिका को उन मामलों में पुलिस के साथ हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जो उनके क्षेत्राधिकार के भीतर हैं और जिनमें कानून उन पर विवेचना का कर्तव्य लगाता है। भारत में, जैसा कि दिखाया गया है, पुलिस की ओर से न्यायिक अधिकारियों से किसी भी अधिकार की आवश्यकता के बिना एक कथित संज्ञेय अपराध की परिस्थितियों की जांच करने का एक वैधानिक अधिकार है, और जैसा कि माननीय न्यायमूर्ति का मानना है, यह एक दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम होगा यदि अदालत के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के प्रयोग से उन वैधानिक अधिकारों में हस्तक्षेप करना संभव माना जाए। न्यायपालिका और पुलिस के कार्य एक-दूसरे के पूरक हैं, अतिव्यापी नहीं हैं, और कानून और व्यवस्था के उचित पालन के साथ व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सयोजन केवल प्रत्येक को अपने स्वयं के कार्य का प्रयोग करने के लिए छोड़ देकर प्राप्त किया जाना है, हमेशा, निश्चित रूप से, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 491 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में निर्देश देने के लिए एक उपयुक्त मामले में हस्तक्षेप करने के लिए न्यायालय के अधिकार के अधीन। वर्तमान के रूप में ऐसे मामले में, हालांकि, अदालत के कार्य तब शुरू होते हैं जब उसके सामने एक आरोप को प्राथमिकता दी जाती है, और तब तक नहीं।

मुझे नहीं लगता कि यह निर्णय श्री सोमनाथ चटर्जी द्वारा हमारे समक्ष रखे गए व्यापक प्रस्ताव का समर्थन करता है। प्रिवी काउंसिल के समक्ष मामले में, इसी तरह के आरोप जो पहले अभियोजन में आरोपियों के खिलाफ लगाए गए थे, उन्हें खारिज कर दिया गया था। उच्च न्यायालय ने पिछले अभिलेखों की जांच के बाद नए आरोपों की जांच को रद्द कर दिया, जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि आरोपी के खिलाफ सबूत अस्वीकार्य थे। प्रिवी काउंसिल के सामने सवाल यह नहीं था कि क्या नई प्राथमिकी में किसी अपराध का खुलासा हुआ है। वास्तव में, उस मार्ग के तुरंत बाद जो मैंने ऊपर निकाला है, प्रिवी काउंसिल ने यह कहकर अपने बयान को योग्य बनाया:

इसमें कोई संदेह नहीं है कि अगर किसी भी तरह के अपराध का खुलासा नहीं होता है और इससे भी अधिक, अगर किसी भी तरह के अपराध का खुलासा नहीं होता है, तो पुलिस के पास विवेचना करने का कोई अधिकार नहीं होगा।

इसलिए, यदि कुछ भी हो, तो निर्णय से पता चलता है कि यदि प्राथमिकी द्वारा कोई संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है तो विवेचना को रद्द किया जा सकता है। यह भी देखा गया होगा, जिसे कभी-कभी अनदेखा कर दिया जाता है, कि प्रिवी काउंसिल ने यह कहकर कानून के अपने बयान को योग्य बनाने का ध्यान रखा

कि न्यायपालिका को उन मामलों में पुलिस के साथ हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जो उनके क्षेत्राधिकार के भीतर हैं। यह निश्चित रूप से पुलिस के क्षेत्राधिकार के भीतर नहीं है कि वह ऐसी रिपोर्ट की विवेचना करे जो संज्ञेय अपराध के कमीशन (गठन) का खुलासा नहीं करती है और संहिता उन पर ऐसे मामलों में विवेचना का कर्तव्य नहीं लगाती है।

*"21. इन निर्णयों और अन्य निर्णयों से जो स्थिति उभरती है, जिन पर भाई एएन सेन द्वारा चर्चा की जाती है, वह यह है कि संहिता की धारा 157 के तहत विवेचना शुरू करने के लिए पूर्व शर्त यह है कि प्राथमिकी में प्रथम दृष्टया यह खुलासा किया जाना चाहिए कि एक संज्ञेय अपराध किया गया है। यह मानना गलत है कि पुलिस के पास संहिता की धारा 157 के तहत विवेचना शुरू करने का निरंकुश विवेक है। उनकी विवेचना का अधिकार संज्ञेय अपराध के कमीशन (गठन) पर संदेह करने के कारण के अस्तित्व से निर्धारित है और उनके पास तब तक संदेह करने का कारण नहीं हो सकता जब तक कि प्राथमिकी, प्रथम दृष्टया, इस तरह के अपराध के कमीशन (गठन) का खुलासा नहीं करती है। यदि वह शर्त पूरी हो जाती है, तो विवेचना जारी रहनी चाहिए और **ख्वाजा नज़ीर अहमद [ए.आई.आर. 1945 पीसी 18: (1944) 71 आईए 203: 217 आईसी 1]** में नियम लागू होगा। तब अदालत के पास जांच को रोकने की कोई शक्ति नहीं है, क्योंकि ऐसा करना संज्ञेय अपराधों की विवेचना करने के लिए पुलिस की वैध शक्ति पर अंकुश लगाना होगा। दूसरी ओर, यदि प्राथमिकी संज्ञेय अपराध के कमीशन (गठन) का खुलासा नहीं करती है, तो अदालत को निर्धारित या प्राप्त जानकारी के आधार पर विवेचना को रद्द करना उचित होगा।*

43. संपत लाल (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने पुलिस विवेचना के लंबित हस्तक्षेप के दायरे पर विचार किया। हालांकि, सर्वोच्च न्यायालय भारत के संविधान की धारा 226 के तहत अपनी शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप पर विचार कर रहा था। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि हालांकि ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए, आम तौर पर अदालत के पास जांच में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, यदि प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध प्राथमिकी के अवलोकन से किया जाता है, फिर भी जहां प्राथमिकी के अवलोकन से कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है, उस मामले में, मजिस्ट्रेट विवेचना के दौरान हस्तक्षेप कर सकता है और अदालत ने यह भी कहा है कि अदालत में जांच एजेंसी को निर्देश देने के लिए शेष क्षेत्राधिकार बचा है जब वह संतुष्ट हो जाता है कि कानून की आवश्यकता का अनुपालन नहीं किया गया था और जांच ठीक से या अनुचित जल्दबाजी और तत्परता के साथ नहीं की जा रही है। संपत लाल (उपरोक्त) के प्रस्तर-26 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"26. प्रस्तुत मामले में जांच अभी भी लंबित है जैसा कि हमें बार में बताया गया था। इस
बात की पूरी संभावना है कि किसी दिन, और हम आशा और विश्वास करते हैं कि इसमें और कोई देरी नहीं होगी, सक्षम क्षेत्राधिकार की अदालत इस मामले को जब्त कर लेगी और उसे यह तय करने के लिए बुलाया जाएगा कि यह हत्या का मामला है या आत्महत्या का। इसलिए, हमने सोचा है कि तथ्यों में प्रवेश न करना और किसी भी तरह से किसी भी राय को व्यक्त न करना विवेक का उचित प्रयोग करें ताकि मुकदमे पर पूर्वाग्रह हो सके। यह इंगित करने के लिए पर्याप्त है कि जांच एजेंसी को निर्देश देने के लिए न्यायालय में अवशिष्ट

क्षेत्राधिकार बचा है जब वह संतुष्ट हो जाता है कि कानून की आवश्यकताओं का अनुपालन नहीं किया जा रहा है और जांच ठीक से या जल्दबाजी और तत्परता के साथ नहीं की जा रही है। न्यायालय को इस तथ्य के प्रति सचेत रहना होगा कि कानून की योजना यह है कि जांच पुलिस को सौंपी गई है और यह आमतौर पर न्यायालय की सामान्य पर्यवेक्षी शक्ति के अधीन नहीं है। हम अपने सामने रखे गए मामले के तथ्यों के आधार पर यह विचार करने के इच्छुक हैं कि न्यायालय के समक्ष रखी गई सामग्री इस न्यायालय द्वारा बताए गए नियम के अपवाद को उचित नहीं ठहराती है और इस स्तर पर एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की आवश्यकता नहीं है।

44. भजन लाल (उपरोक्त) में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने प्राथमिकी को रद्द करने के लिए धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति के दायरे पर विचार किया है। इस मामले में, शीर्ष अदालत ने ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) के फैसले पर विचार करने के बाद कहा कि प्रिवी काउंसिल ने खुद ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) के अपने फैसले में कहा था कि अगर प्राथमिकी में कोई संज्ञेय अपराध नहीं होता है, तो विवेचना को रद्द किया जा सकता है। इस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने द०प्र०स० के प्रावधान के अनुसार संज्ञेय अपराध की जांच करने के लिए पुलिस की शक्ति पर विचार करने के बाद धारा 482 द०प्र०स० या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए प्राथमिकी या शिकायत या परिणामी विवेचना को रद्द करने के लिए हस्तक्षेप के दायरे के बारे में विस्तृत दिशानिर्देश निर्धारित किए थे।

45. भजन लाल (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) में उल्लिखित हस्तक्षेप के दायरे को बढ़ाया। इस मामले में, शीर्ष न्यायालय ने कहा कि उन मामलों के अलावा जहां प्राथमिकी के साथ-साथ दस्तावेज के अवलोकन से कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है या ऐसे मामले में जहां प्राथमिकी या शिकायत के आरोप इतने बेतुके या स्वाभाविक रूप से असंभव थे कि कोई भी उचित व्यक्ति इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि आरोपी के खिलाफ पर्याप्त आधार या कार्यवाही है या द०प्र०स० या किसी अन्य में कानूनी रोक है कार्यवाही को शुरू करने और जारी रखने के लिए अधिनियम और यह भी कि मामला जहां कार्यवाही में दुर्भावनापूर्ण और/या गुप्त उद्देश्य से या अभियुक्त से प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे नाराज करने के उद्देश्य से कार्यवाही में भाग लिया गया है, लेकिन शीर्ष न्यायालय ने आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने में सावधानी बरतने का भी उल्लेख किया है और कहा है कि दुर्लभतम मामलों में इसका उपयोग कम से कम किया जाना चाहिए प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोप की विश्वसनीयता या वास्तविकता के बारे में जांच शुरू किए बिना। भजन लाल (उपरोक्त) के प्रस्तर-102 और 103 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"102. अध्याय XIV के तहत संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या और अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में या संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों जिसे हमने ऊपर निकाला और पुन: प्रस्तुत किया है, हमने उदाहरण के माध्यम से मामलों की निम्नलिखित श्रेणियां दी हैं जिनमें ऐसी शक्ति

का प्रयोग या तो किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालांकि किसी भी सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से चैनलाइज्ड और अनम्य दिशा-निर्देशों या कठोर सूत्रों को निर्धारित करना और असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं हो सकता है जिसमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और पूरी तरह से स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या अभियुक्त के खिलाफ मामला नहीं बनता है।

(2) जहां प्राथमिकी के साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट और अन्य सामग्री, यदि कोई हो, में आरोप संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, संहिता की धारा 155(2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश को छोड़कर, संहिता की धारा 156(1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराते हैं।

(3) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी भी अपराध के कमीशन (गठन) का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते हैं।

(4) जहां, प्राथमिकी में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते हैं, लेकिन केवल एक गैर-संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, संहिता की धारा 155(2) के तहत मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी जांच की अनुमति नहीं दी जाती है।

(5) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं जिसके आधार पर कोई भी विवेकपूर्ण व्यक्ति कभी भी इस उचित निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी उपबंध में संस्था के लिए एक स्पष्ट कानूनी रोक लगाई गई है और कार्यवाही जारी है और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में कोई विशिष्ट प्रावधान है, जो पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां एक आपराधिक कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से भाग ली जाती है और/या जहां अभियुक्त से प्रतिशोध लेने के लिए एक गुप्त उद्देश्य के साथ और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे नाराज करने की दृष्टि से कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से शुरू की जाती है।

103. हम इस आशय की सावधानी का एक नोट भी देते हैं कि एक आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग बहुत कम और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतम मामलों में; कि अदालत प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा के बारे में जांच शुरू करने में न्यायसंगत नहीं होगी और यह कि असाधारण या अंतर्निहित शक्तियां अदालत को अपनी इच्छा या मनमर्जी के अनुसार कार्य करने के लिए एक मनमाना अधिकार क्षेत्र प्रदान नहीं करती हैं।

46. पेप्सी फूड्स लिमिटेड और अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य (1998)5 एस.सी.सी. 749 में रिपोर्ट किए गए मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा जांच के दौरान हस्तक्षेप के दायरे पर विचार किया और कहा कि अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए, उच्च न्यायालय द्वारा अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप की अनुमति है, यदि प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और पूरी तरह से स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया अभियुक्त के खिलाफ कोई अपराध या मामला नहीं बनाते हैं। पेप्सी फूड्स लिमिटेड (उपरोक्त) के प्रस्तर-22 और 26 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

*"22. यह तय हो गया है कि उच्च न्यायालय आपराधिक मामलों में न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है। **हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल [1992 पूरक (1) एस.सी.सी. 335: 1992 एस.सी.सी. (क्रि) 426: जेटी (1990) 4 एस.सी. 650]** में इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति और संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों की भी जांच की, जिसके बारे में कहा गया था कि उच्च न्यायालय द्वारा या तो किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। कुछ दिशा-निर्देश निर्धारित करते समय जहां न्यायालय इन प्रावधानों के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करेगा, यह भी कहा गया था कि ये दिशानिर्देश अदालतों द्वारा पालन किए जाने वाले कठोर सूत्र नहीं हो सकते हैं। इस तरह की शक्ति का प्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, लेकिन किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करने के लिए एकमात्र उद्देश्य के साथ। ऐसे दिशा-निर्देशों में से एक यह है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और पूरी तरह से स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं है या आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनता है। अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा अधीक्षण की शक्ति न केवल प्रशासनिक प्रकृति की है, बल्कि न्यायिक प्रकृति की भी है। यह अनुच्छेद उच्च न्यायालय को अवर अदालतों द्वारा कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने और यह देखने के लिए कि न्याय प्रशासन की धारा स्वच्छ और शुद्ध बनी रहे, विशाल शक्तियां प्रदान करती है। संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत और संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्ति की कोई सीमा नहीं है, लेकिन इन शक्तियों का उपयोग करते समय अधिक सावधानी और सावधानी बरती जानी चाहिए। जब शक्तियों का प्रयोग संहिता के अनुच्छेद 227 या धारा 482 के तहत हो सकता है, तो अनुच्छेद 226 के प्रावधानों को लागू करना हमेशा*

आवश्यक नहीं हो सकता है। अनुच्छेद 226 और 227 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा शक्तियों के प्रयोग के लिए सिद्धांतों को निर्धारित करने वाले इस न्यायालय के कुछ निर्णयों का उल्लेख किया जा सकता है।

26. जिस नामकरण के तहत याचिका दायर की गई है, वह काफी प्रासंगिक नहीं है और यह अदालत को अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से नहीं रोकता है, जो अन्यथा उसके पास है, जब तक कि विशेष प्रक्रिया निर्धारित न हो जो प्रक्रिया अनिवार्य है। यदि वर्तमान जैसे मामले में अदालत को पता चलता है कि अपीलकर्ता अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का उपयोग नहीं कर सकते हैं, तो अदालत निश्चित रूप से याचिका को संहिता के अनुच्छेद 227 या धारा 482 के तहत एक के रूप में मान सकती है। हालांकि, यह इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि संशोधन और अपील संहिता में प्रावधान मौजूद हैं, लेकिन तत्काल राहत के लिए कुछ समय के लिए संहिता की धारा 482 या अनुच्छेद 227 का सहारा लेना पड़ सकता है जो अधीनस्थ अदालतों द्वारा की जा सकती हैं। हालांकि वर्तमान याचिका उच्च न्यायालय में अनुच्छेद 226 और 227 के तहत दायर की गई है, लेकिन संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अच्छी तरह से माना जा सकता है।

47. **इंद्र मोहन गोस्वामी और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य और एक अन्य (2007) 12 एस.सी.सी.1** में रिपोर्ट किए गए मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्तियों के दायरे पर विचार करने के बाद, कहा कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्ति व्यापक है और यदि अन्याय की ओर ले जाने वाली प्रक्रिया का कोई दुरुपयोग अदालत के ध्यान में लाया जाता है और अन्याय को रोकने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है, क़ानून में किसी अन्य विशिष्ट प्रावधान के अभाव में अंतर्निहित शक्तियों का आह्वान उचित होगा।

48. इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य जोर यह था कि यदि अन्याय के लिए एक उपाय प्रदान करने वाला कोई वैधानिक प्रावधान था, तो उस शक्ति का प्रयोग सामान्य रूप से नहीं किया जाना चाहिए, लेकिन इस तरह के वैधानिक उपाय के अभाव में, उच्च न्यायालय के लिए अन्याय को रोकने के लिए धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करना हमेशा खुला है। प्रस्तर-23 और 24 इंद्र मोहन गोस्वामी (उपरोक्त) को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"धारा 482 द०प्र०स० के तहत अदालतों की शक्तियों का दायरा:
23. इस न्यायालय ने कई मामलों में धारा 482 द०प्र०स० के तहत अदालतों की शक्तियों का दायरा और दायरा निर्धारित किया है। प्रत्येक उच्च न्यायालय के पास वास्तविक और पर्याप्त न्याय करने के लिए पूर्व डेबिटो औचित्य कार्य करने की अंतर्निहित शक्ति है, जिसके प्रशासन के लिए यह अकेले मौजूद है, या अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए। धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है:

(i) संहिता के तहत एक आदेश को प्रभावी करने के लिए;

(ii) न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए, और
(iii) अन्यथा न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करने के लिए।

24. धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग संयम से, सावधानी से और बहुत सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और केवल तभी जब इस तरह की कवायद इस धारा में विशेष रूप से निर्धारित परीक्षणों द्वारा उचित हो। न्याय की उन्नति के लिए न्यायालय का अधिकार मौजूद है। यदि अन्याय की ओर ले जाने वाली प्रक्रिया का कोई भी दुरुपयोग अदालत के ध्यान में लाया जाता है, तो अदालत क़ानून में विशिष्ट प्रावधानों के अभाव में अंतर्निहित शक्तियों का उपयोग करके अन्याय को रोकने में उचित होगी।

49. **पडल वेंकट रामा रेड्डी उर्फ रामू बनाम कोववुरी सत्यनारायण रेड्डी और अन्य 2011 (12) एस.सी.सी. 437** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्ति बहुत व्यापक है, लेकिन एक अभ्यास के रूप में, इसका उपयोग केवल असाधारण मामलों में किया जाना चाहिए, क्योंकि उच्च न्यायालय केवल कानून की अदालत नहीं है, बल्कि न्यायालय भी है और अन्याय को दूर करने के लिए अंतर्निहित शक्तियां रखता है। शीर्ष न्यायालय ने यह भी कहा कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग द०प्र०स० के तहत पारित किसी भी आदेश को प्रभावी बनाने के लिए न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए प्राथमिकी, जांच या किसी अन्य आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए किया जा सकता है। पदल वेंकट रामा रेड्डी उर्फ रामू (उपरोक्त) के प्रस्तर-11 और 12 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"11. यद्यपि उच्च न्यायालय के पास अंतर्निहित शक्ति है और इसका दायरा बहुत व्यापक है, यह व्यवहार का एक नियम है कि इसका प्रयोग केवल असाधारण मामलों में ही किया जाएगा। धारा 482 उच्च न्यायालयों के लिए एक प्रकार की अनुस्मारक है कि वे केवल कानून की अदालतें नहीं हैं, बल्कि न्याय की अदालतें भी हैं और उनके पास अन्याय को दूर करने की अंतर्निहित शक्तियां हैं। उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति उस स्थिति का एक अविभाज्य गुण है जो उसके अधीनस्थ न्यायालयों के संबंध में है। ये शक्तियां आंशिक रूप से प्रशासनिक और आंशिक रूप से न्यायिक हैं। वे आवश्यक रूप से न्यायिक होते हैं जब वे न्यायिक आदेश के संबंध में और न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करने के लिए प्रयोग करने योग्य होते हैं। धारा 482 के तहत क्षेत्राधिकार विवेकाधीन है, इसलिए उच्च न्यायालय विवेक का प्रयोग करने से इनकार कर सकता है यदि किसी पक्ष ने साफ हाथों से संपर्क नहीं किया है।

12. धारा 482 के तहत एक कार्यवाही में, उच्च न्यायालय तथ्यों के किसी भी निष्कर्ष में प्रवेश नहीं करेगा, विशेष रूप से, जब मामले को नीचे की दो अदालतों के तथ्यों के समवर्ती निष्कर्ष द्वारा समाप्त किया गया है। धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों में उच्च न्यायालय या उसके अधीनस्थ किसी भी न्यायालय के समक्ष लंबित प्राथमिकी, जांच या किसी भी आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्तियां शामिल हैं और ये व्यापक परिमाण और प्रभाव की हैं। ऐसी शक्तियों का प्रयोग न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने, किसी भी न्यायालय

की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने और ऐसे आदेश देने के लिए किया जा सकता है जो किसी दिए गए मामले के तथ्यों के आधार पर इस संहिता के तहत किसी भी आदेश को प्रभावी करने के लिए आवश्यक हो सकते हैं। न्यायालय हमेशा न्याय के किसी भी गर्भपात पर ध्यान दे सकता है और संहिता की धारा 482 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करके इसे रोक सकता है। ये शक्तियां संहिता के किसी अन्य प्रावधान द्वारा न तो सीमित हैं और न ही कम की गई हैं। हालांकि, ऐसी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग संयम से, सावधानी से किया जाना चाहिए।

50. **आनंद कुमार मोहट्टा और अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली), गृह विभाग और अन्य (2019) 11 एस.सी.सी. 706** में मामले में, शीर्ष न्यायालय ने प्राथमिकी को रद्द करने के लिए धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों पर विचार करते हुए कहा कि इस शक्ति का प्रयोग प्राथमिकी के चरण में भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग या न्याय की हानि को रोकने के लिए किया जा सकता है। आनंद कुमार मोहट्टा (उपरोक्त) के प्रस्तर-16 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

*"16. इस धारा के शब्दों में ऐसा कुछ भी नहीं है जो अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग या न्याय की हानि को रोकने के लिए न्यायालय की शक्ति के प्रयोग को केवल प्राथमिकी के चरण तक सीमित करता है। यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि उच्च न्यायालय धारा 482 द०प्र०स० के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर सकता है, भले ही निर्वहन आवेदन ट्रायल न्यायालय के पास लंबित हो **[जी. सागर सूरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2000)2 एस.सी.सी. 636, प्रस्तर-7: 2000 एस.सी.सी. (क्रि) 513। उमेश कुमार बनाम उमेश कुमार आंध्र प्रदेश राज्य, (2013)10 एस.सी.सी. 591, प्रस्तर-20: (2014)1 एस.सी.सी. (क्रि) 338: (2014)2 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 237]**। वास्तव में, यह मानना एक उपहास होगा कि किसी व्यक्ति के खिलाफ शुरू की गई कार्यवाही को प्राथमिकी के चरण में हस्तक्षेप किया जा सकता है, लेकिन तब नहीं जब यह आगे बढ़ गया हो और आरोप आरोपपत्र में बदल गए हों। इसके विपरीत, यह कहा जा सकता है कि प्राथमिकी के कारण होने वाली प्रक्रिया का दुरुपयोग तब और बढ़ जाता है जब प्राथमिकी ने जांच के बाद आरोप पत्र का रूप ले लिया हो। यह शक्ति निस्संदेह किसी भी अदालत की शक्ति की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए प्रदान की गई है।*

51. शीर्ष न्यायालय ने निहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर (उपरोक्त) के मामले में, ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) में प्रिवी काउंसिल के फैसले पर विचार करने के बाद, कहा कि हालांकि ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) की टिप्पणियां अब तक सही हैं, जहां तक संज्ञेय अपराध की जांच करने के लिए पुलिस के वैधानिक अधिकार और कर्तव्य का संबंध है, फिर भी ख्वाजा नजीर अहमद के मामले में प्रिवी काउंसिल(उपरोक्त) जांच में हस्तक्षेप करने की भी अनुमति दी गई है, जहां प्राथमिकी के अवलोकन से कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है और भजन लाल (उपरोक्त) के मामले में शीर्ष न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए, उच्च न्यायालय के लिए प्राथमिकी और परिणामी जांच को रद्द करने की अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करने के लिए दिशानिर्देश निर्धारित किए गए हैं। निहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर (उपरोक्त) के प्रस्तर-33 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"निष्कर्ष:

33. उपरोक्त दृष्टिकोण और ऊपर बताए गए कारणों से, प्रधान/मुख्य मुद्दे पर हमारा अंतिम निष्कर्ष, क्या उच्च न्यायालय धारा 482 द०प्र०स० के तहत और / या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिका को रद्द करने की याचिका के लंबित रहने के दौरान जांच पर रोक लगाने और/या "कोई दंडात्मक कदम नहीं उठाया जाएगा" का अंतरिम आदेश पारित करने में उचित होगा और क्या उच्च न्यायालय किन परिस्थितियों में और क्या धारा 482 द०प्र०स० और/या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही/शिकायत/प्राथमिकी को खारिज करते हुए, जांच के दौरान या धारा 173 द०प्र०स० के तहत अंतिम रिपोर्ट/आरोप पत्र दायर होने तक आरोपी को गिरफ्तार नहीं करने या "कोई दंडात्मक कदम नहीं उठाने" का आदेश पारित करना उचित है। हमारे अंतिम निष्कर्ष इस प्रकार हैं:

33.1. संज्ञेय अपराध की जांच करने के लिए संहिता के अध्याय XIV में निहित दंड प्रक्रिया संहिता के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत पुलिस के पास सांविधिक अधिकार और कर्तव्य है।

33.2. न्यायालय संज्ञेय अपराधों की किसी भी जांच को विफल नहीं करेंगे।

33.3. यह केवल उन मामलों में है जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में किसी भी प्रकार के संज्ञेय अपराध या अपराध का खुलासा नहीं किया गया है कि न्यायालय जांच को आगे बढ़ाने की अनुमति नहीं देगा।

33.4. कुचलने की शक्ति का प्रयोग सावधानी से किया जाना चाहिए, जैसा कि "दुर्लभ मामलों में से दुर्लभतम" में देखा गया है (मृत्युदंड के संदर्भ में गठन के साथ भ्रमित नहीं होना चाहिए)।

33.5. किसी प्राथमिक/शिकायत की जांच करते समय, जिसे रद्द करने की मांग की गई है, न्यायालय प्राथमिकी/शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा के बारे में जांच नहीं कर सकती है।

33.6. प्रारंभिक चरण में आपराधिक कार्यवाही को बाधित नहीं किया जाना चाहिए।

33.7. शिकायत /प्राथमिकी को रद्द करना एक सामान्य नियम के बजाय एक अपवाद होना चाहिए।

33.8. आम तौर पर, अदालतों को पुलिस के अधिकार क्षेत्र को हड़पने से रोक दिया जाता है, क्योंकि राज्य के दो अंग गतिविधियों के दो विशिष्ट क्षेत्रों में काम करते हैं और एक को दूसरे क्षेत्र पर नहीं चलना चाहिए।

33.9. न्यायपालिका और पुलिस के कार्य परस्पर पूरक हैं, अतिव्यापी नहीं।

33.10. अपवाद मामलों को छोड़कर जहां हस्तक्षेप न करने से न्याय की हानि हो सकता है, न्यायालय और न्यायिक प्रक्रिया को अपराधों की जांच के चरण में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

33.11. न्यायालय की असाधारण और अंतर्निहित शक्तियां न्यायालय को अपनी सनक या सनक के अनुसार कार्य करने के लिए एक मनमाना क्षेत्राधिकार प्रदान नहीं करती हैं।

33.12. प्रथम सूचना रिपोर्ट एक विश्वकोश नहीं है जो रिपोर्ट किए गए अपराध से संबंधित सभी तथ्यों और विवरणों का खुलासा करना चाहिए। इसलिए, जब पुलिस द्वारा जांच जारी है, तो अदालत को प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों के गुण-दोष पर विचार नहीं करना चाहिए। पुलिस को जांच पूरी करने की अनुमति दी जानी चाहिए। अस्पष्ट तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना जल्दबाजी होगी कि शिकायत/प्राथमिकी जांच के लायक नहीं है या यह कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। जांच के बाद, यदि विवेचनाधिकारी को पता चलता है

कि शिकायतकर्ता द्वारा किए गए आवेदन में कोई सार नहीं है, तो विवेचनाधिकारी विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष एक उपयुक्त रिपोर्ट/सारांश दाखिल कर सकता है जिस पर ज्ञात प्रक्रिया के अनुसार विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा विचार किया जा सकता है।

33.13. धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति बहुत व्यापक है, लेकिन व्यापक शक्ति प्रदान करने के लिए अदालत को अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। यह अदालत पर एक कठिन और अधिक मेहनती कर्तव्य डालता है।

33.14. हालांकि, एक ही समय में, न्यायालय, यदि वह उचित समझता है, तो कानून द्वारा लगाए गए आत्म-संयम और विशेष रूप से इस न्यायालय द्वारा निर्धारित मापदंडों के संबंध में **आरपी कपूर [आरपी कपूर बनाम पंजाब राज्य, 1960 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 21: ए.आई.आर. 1960 एस.सी. 866] और भजन लाल [हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल,1992 पूरक(1) एस.सी.सी.335:1992 एस.सी.सी. (क्रि) 42**6] के पास प्राथमिकी/शिकायत को रद्द करने का अधिकार क्षेत्र है।

33.15. जब कथित अभियुक्त और अदालत द्वारा प्राथमिकी को रद्द करने के लिए प्रार्थना की जाती है, जब वह धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करती है, तो केवल यह विचार करना होगा कि प्राथमिकी में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध के कमीशन (गठन) का खुलासा करते हैं या नहीं। अदालत को गुण-दोष के आधार पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि आरोपों के गुण-दोष संज्ञेय अपराध हैं या नहीं और अदालत को जांच एजेंसी/पुलिस को प्राथमिकी में आरोपों की जांच करने की अनुमति देनी होगी।

33.16. उपरोक्त पैरामीटर लागू होंगे और/या उपरोक्त पहलुओं पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया जाना आवश्यक है, जबकि धारा 482 द०प्र०स० और/या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए एक रद्द याचिका में एक अंतरिम आदेश पारित करते समय। हालांकि, रद्द करने वाली याचिका के लंबित रहने के दौरान जांच पर रोक लगाने का अंतरिम आदेश सावधानी से पारित किया जा सकता है। इस तरह के अंतरिम आदेश को नियमित, आकस्मिक और/या यंत्रवत् पारित करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। आम तौर पर, जब जांच चल रही हो और तथ्य अस्पष्ट हों और संपूर्ण साक्ष्य/सामग्री उच्च न्यायालय के समक्ष न हो, तो उच्च न्यायालय को गिरफ्तारी न करने या "कोई दंडात्मक कदम नहीं उठाने" का अंतरिम आदेश पारित करने से खुद को रोकना चाहिए और आरोपी को सक्षम अदालत के समक्ष धारा 438 द०प्र०स० के तहत अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने के लिए वापस ले जाना चाहिए। उच्च न्यायालय धारा 482 द०प्र०स० के तहत और/या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रद्द करने वाली याचिका को खारिज करते समय जांच के दौरान या जांच पूरी होने तक और/या धारा 173 द०प्र०स० के तहत अंतिम रिपोर्ट/आरोप पत्र दायर होने तक गिरफ्तार नहीं करने और/या "कोई दंडात्मक कदम नहीं" का आदेश पारित करने में न्यायोचित नहीं होगा।

33.17. यहां तक कि ऐसे मामले में जहां उच्च न्यायालय की प्रथम दृष्टया राय है कि आगे की जांच पर अंतरिम रोक लगाने के लिए एक असाधारण मामला बनाया गया है, धारा 482 द०प्र०स० और/या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय व्यापक मापदंडों पर विचार करने के बाद, उच्च न्यायालय को संक्षिप्त कारण देने होंगे कि इस तरह के अंतरिम आदेश की आवश्यकता क्यों है और/या पारित किया जाए ताकि यह न्यायालय द्वारा दिमाग के आवेदन को प्रदर्शित कर सके और उच्च मंच इस बात पर विचार कर सके कि इस तरह के अंतरिम आदेश को पारित करते समय उच्च न्यायालय के साथ क्या विचार किया गया था।

33.18. जब भी उच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त मापदंडों के भीतर "कोई जबरदस्ती कदम नहीं अपनाया जाना है" का अंतरिम आदेश पारित किया जाता है, तो उच्च न्यायालय को यह स्पष्ट करना चाहिए कि "कोई जबरदस्ती कदम नहीं उठाया जाना चाहिए" का क्या मतलब है क्योंकि शब्द "कोई जबरदस्ती कदम नहीं अपनाया जाना है" को बहुत अस्पष्ट और/या व्यापक कहा जा सकता है जिसे गलत समझा जा सकता है और/या गलत तरीके से लागू किया जा सकता है।

52. शीर्ष न्यायालय ने **महमूद अली और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2023) 15 एस.सी.सी. 488** में रिपोर्ट के मामले में कहा कि जब कोई आरोपी प्राथमिकी या आपराधिक कार्यवाही को इस आधार पर रद्द करने के लिए भारत के संविधान की धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्ति या असाधारण शक्ति का उपयोग करते हुए अदालत के समक्ष आता है कि यह स्पष्ट रूप से तुच्छ है, परेशान करने वाला है या गुप्त उद्देश्य से स्थापित किया गया है, फिर उच्च न्यायालय का कर्तव्य है कि वह प्राथमिकी को सावधानी से और थोड़ा और बारीकी से देखे, और आगे कहा कि अंतर्निहित शक्ति या असाधारण शक्ति का प्रयोग करने के लिए, ऐसा मामला प्रासंगिक नहीं है। इसका प्रयोग किसी मामले की शुरुआत या पंजीकरण के चरण में या जांच के दौरान सामग्री के संग्रह के बाद भी किया जा सकता है। महमूद अली (उपरोक्त) के प्रस्तर-11 और 13 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"11. इस स्तर पर, हम कुछ महत्वपूर्ण निरीक्षण करना चाहेंगे। जब भी कोई अभियुक्त न्यायालय के समक्ष आता है तो आपराधिक प्रक्रिया संहिता (द०प्र०स०) की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों या संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण अधिकार क्षेत्र का उपयोग करके प्राथमिकी प्राप्त करने के लिए या आपराधिक कार्यवाही को अनिवार्य रूप से इस आधार पर रद्द कर दिया जाता है कि ऐसी कार्यवाही स्पष्ट रूप से तुच्छ या कष्टप्रद है या प्रतिशोध लेने के गुप्त उद्देश्य से स्थापित की गई है, फिर ऐसी परिस्थितियों में अदालत का कर्तव्य है कि वह प्राथमिकी को सावधानी से और थोड़ा और बारीकी से देखे।

13. तुच्छ या कष्टप्रद कार्यवाही में, न्यायालय का कर्तव्य है कि वह मामले के अभिलेखों से उभरने वाली कई अन्य परिस्थितियों को देखे, और यदि आवश्यक हो, तो उचित देखभाल और सावधानी के साथ पंक्तियों के बीच पढ़ने का प्रयास करे। धारा 482 द०प्र०स० या संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय न्यायालय को खुद को केवल मामले के चरण तक ही सीमित रखने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि मामले की शुरुआत/पंजीकरण के साथ-साथ जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री के साथ-साथ समग्र परिस्थितियों को ध्यान में रखने का अधिकार है। उदाहरण के लिए मामले को लें। समय के साथ कई प्राथमिकी दर्ज की गई हैं। ऐसी परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में कई प्राथमिकी दर्ज करना महत्वपूर्ण हो जाता है, जिससे निजी या व्यक्तिगत द्वेष के कारण प्रतिशोध लेने का मुद्दा आकर्षित होता है, जैसा कि आरोप लगाया गया है।

53. अभिषेक (उपरोक्त) के मामले में, जिसमें आवेदक प्राथमिकी को रद्द करने की मांग कर रहे थे, और मामले के लंबित रहने के दौरान, पुलिस ने जांच पूरी की और आरोप पत्र दायर किया। इस मामले में, शीर्ष न्यायालय ने कहा कि यदि प्राथमिकी को रद्द करने के लिए धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन दायर किया गया है, तो उपरोक्त आवेदन के लंबित रहने के दौरान भी, यदि पुलिस ने आरोप पत्र दायर किया था, तो भी उच्च न्यायालय, अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए, प्राथमिकी को रद्द कर सकता है, यदि यह स्पष्ट रूप से तुच्छ या कष्टप्रद है या प्रतिशोध लेने के गुप्त उद्देश्य से स्थापित किया गया है। अभिषेक (उपरोक्त) के प्रस्तर-14 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"14. यह तथ्यात्मक पृष्ठभूमि होने के नाते, हम शुरुआत में ही यह नोट कर सकते हैं कि यह तर्क कि प्राथमिकी के खिलाफ अपीलकर्ताओं की रद्द करने की याचिका किसी भी स्थिति में, खारिज किए जाने योग्य थी, क्योंकि उसके संबंध में आरोप पत्र न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और फाइल पर लिया गया था, केवल खारिज करने की आवश्यकता है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि उच्च न्यायालय के पास प्राथमिकी को रद्द करने के लिए धारा 482 द०प्र०स० के तहत दायर याचिका पर विचार करने और उस पर कार्रवाई करने की शक्ति बनी रहेगी, भले ही ऐसी याचिका के लंबित रहने के दौरान पुलिस द्वारा आरोप पत्र दायर किया जाता है [देखें ***जोसेफ सल्वराज ए. वी. गुजरात राज्य [जोसेफ सल्वराज ए. वी. गुजरात राज्य, (2011)7 एस.सी.सी. 59: (2011)3 एस.सी.सी. (क्रि)23] इस सिद्धांत को आनंद कुमार मोहट्टा बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) [आनंद कुमार मोहट्टा बनाम राज्य (दिल्ली का राष्ट्रीय क्षेत्र), (2019)11 एस.सी.सी. 706: (2019)4 एस.सी.सी. (क्रि) 288 (2)]****, इसलिए, इस मुद्दे को हमारी ओर से और स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है।*

54. सर्वोच्च न्यायालय ने गुलाम मुस्तफा (उपरोक्त) के मामले में फिर से प्राथमिकी को रद्द करने में अंतर्निहित शक्ति के दायरे पर विचार किया है और कहा है कि, इसमें कोई संदेह नहीं है कि पुलिस को आमतौर पर जांच करने की अनुमति दी जानी चाहिए, लेकिन उचित मामलों में, अदालत धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए प्राथमिकी को रद्द कर सकती है। गुलाम मुस्तफा (उपरोक्त) के प्रस्तर-35 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"35. हमने प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत मिसालों पर चिंतित विचार किया है और हमारा विचार है कि यह तथ्यात्मक परिदृश्य के लिए अनुपयुक्त हैं। यह कहना पर्याप्त होगा कि जबकि उसमें निर्धारित प्रस्ताव विवादित नहीं हैं, वे वर्तमान अपीलकर्ता के संस्करण पर पूर्वाग्रह नहीं करते हैं। ***तपन कुमार सिंह [सीबीआई बनाम तपन कुमार सिंह, (2003) 6 एस.सी.सी.175: 2003 एस.सी.सी. (क्रि) 1305] और नरेश [उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नरेश, (2011)4 एस.सी.सी. 324: (2011)2 एस.सी.सी. (क्रि) 216]*** *इंगित करते हैं कि प्राथमिकी को विस्तृत होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह केवल जांच प्रक्रिया शुरू करने के लिए है और पुलिस को आमतौर पर जांच करने की अनुमति दी जानी चाहिए। यह सामान्य नियम है, लेकिन एक उपयुक्त मामले में इस न्यायालय या उच्च न्यायालय पर एक बेड़ी नहीं है।*

55. इमरान प्रतापगढ़ी (उपरोक्त) के नवीनतम फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 सपठित धारा 528 बी.एन.एस.एस. के तहत दायर याचिका में प्राथमिकी को रद्द करने के मुद्दे पर विचार कर रहा था और कहा कि ऐसा कोई नियम नहीं है कि प्राथमिकी को रद्द करने के लिए प्रारंभिक चरण में द०प्र०स० की धारा 528 बी.एन.एस.एस. के तहत अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है और आगे कहा गया है कि जहां कोई मामला नहीं हुआ है प्राथमिकी के सामने यह बात कही गई है कि कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए यह हमेशा हस्तक्षेप कर सकता है, हालांकि जांच प्रारंभिक चरण में है। इमरान प्रतापगढ़ी (उपरोक्त) के प्रस्तर-42 (vii) को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"42(vii) ऐसा कोई पूर्ण नियम नहीं है कि जब जांच प्रारंभिक चरण में हो, तो उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत या धारा 528 बी.एन.एस.एस. के बराबर धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करके किसी अपराध को रद्द करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं कर सकता है। जब दिए गए मामले में उच्च न्यायालय को पता चलता है कि कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए उसके सामने कोई अपराध नहीं किया गया था, तो वह हमेशा हस्तक्षेप कर सकता है, भले ही जांच प्रारंभिक चरण में हो। यह सब प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ अपराध की प्रकृति पर निर्भर करता है। ऐसा कोई व्यापक नियम नहीं है जो उच्च न्यायालय की शक्तियों पर केवल इस आधार पर प्रतिबंध लगा सके कि जांच प्रारंभिक चरण में थी।

56. सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से किम वानसू (उपरोक्त) के मामले में कहा कि आम तौर पर, प्राथमिकी को रद्द करना उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करके किया जा सकता है, धारा 482 द०प्र०स० के तहत वैधानिक शक्ति होने के नाते, लेकिन उस सामान्य अभ्यास का मतलब यह नहीं है कि भारत के संविधान की धारा 226 के तहत असाधारण शक्ति के प्रयोग में प्राथमिकी को रद्द करने की मांग नहीं की जा सकती है और आगे कहा गया है कि प्राथमिकी को रद्द करने की मांग या तो धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति में या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति का प्रयोग करते हुए, या तो अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए की जा सकती है। किम वानसू (उपरोक्त) के प्रस्तर-6 का एक प्रासंगिक उद्धरण निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"6. इस न्यायालय के कुछ निर्णयों को संदर्भित करना उचित है कि विषय प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों के संदर्भ में प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार करने से पहले आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की उच्च न्यायालय की शक्ति के संबंध में, जैसा कि ऊपर निकाला गया है। यह सच है कि आम तौर पर, आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की मांग की जाएगी और धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए किया जाएगा। लेकिन निश्चित रूप से, इसका अर्थ यह नहीं है कि यह केवल भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति का उपयोग करके नहीं किया जा सकता है। इस न्यायालय ने हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य मामले में यह स्थिति स्पष्ट .....।

57. **रामावतार बनाम मध्य प्रदेश राज्य के मामले में। 2022 (13) एस.सी.सी. 635** में रिपोर्ट किए गए, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 142 के तहत असाधारण शक्ति या धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करने के लिए कसौटी पूर्ण न्याय करना होगा। इसलिए, इसे किसी भी स्तर पर प्रयोग किया जा सकता है। उक्त निर्णय के प्रस्तर-10 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

*"10. जहां तक पहले प्रश्न का संबंध है, रामगोपाल बनाम इस न्यायालय के हालिया निर्णय का एकमुश्त उल्लेख करना उचित होगा। **मध्य प्रदेश राज्य [रामगोपाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2022) 14 एस.सी.सी. 531: 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 834]**, जिसमें, इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ जिसमें हम में से दो (एन.वी. रमण, सीजेआई और सूर्य कांत) शामिल थे, को एक समान प्रश्न का सामना करना पड़ा। सकारात्मक उत्तर देते हुए, यह स्पष्ट किया गया है कि धारा 320द०प्र०स० के तहत अदालत के अधिकार क्षेत्र को संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत इस न्यायालय में निहित अंतर्निहित शक्तियों के आह्वान के खिलाफ निषेध के रूप में नहीं माना जा सकता है और न ही धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालयों की शक्तियों पर। यह भी माना गया कि अनुच्छेद 142 या धारा 482 द०प्र०स० के तहत असाधारण शक्तियों का प्रयोग करने के लिए कसौटी पूर्ण न्याय करना होगा। इसलिए, यह न्यायालय या उच्च न्यायालय, जैसा भी मामला हो, अपराध की प्रकृति और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पीड़ित/शिकायतकर्ता ने स्वेच्छा से समझौता किया है, अपनी संबंधित संवैधानिक/अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए कार्यवाही को रद्द कर सकता है।*

58. आपराधिक अपील संख्या-1224 वर्ष 2025 में पुलिस निरीक्षक द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए कुलंदईसामी बनाम राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने कहा कि प्राथमिकी को रद्द करने के लिए धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग जांच के प्रारंभिक चरण में भी किया जा सकता है, और ऐसा कोई पूर्ण नियम नहीं है कि भले ही जांच प्रारंभिक चरण में हो, यथा धारा 482 द०प्र०स० के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाली अदालत हस्तक्षेप नहीं कर सकती है।

59. ऊपर चर्चा की गई कानूनी स्थिति से, यह स्पष्ट है कि ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) के मामले में प्रिवी काउंसिल, हालांकि यह देखा कि पुलिस के पास संज्ञेय अपराध की जांच करने की वैधानिक शक्ति है, लेकिन यह भी देखा गया कि अदालत द्वारा जांच में हस्तक्षेप किया जा सकता है जब प्राथमिकी के आरोप से कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है। लेकिन यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) में फैसला सुनाते समय, दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 में धारा 491 के रूप में एक प्रावधान था, जो अवैध हिरासत के खिलाफ उपाय प्रदान करता है, इसलिए, प्रिवी काउंसिल ने कहा कि गैर-संज्ञेय अपराध के मामले में, फिर धारा 491 द०प्र०स० के तहत प्रदान किए गए वैधानिक उपाय को पुराने द०प्र०स० की धारा 561-ए के तहत अंतर्निहित शक्ति के बजाय अदालत द्वारा लागू किया जा सकता है, लेकिन पुराने द०प्र०स० को निरस्त करने के बाद, नए द०प्र०स० (पुराने धारा 491 द०प्र०स० के अनुरूप) में ऐसा कोई प्रावधान नहीं किया गया था। इसलिए, किसी अन्य प्रावधान के अभाव में, द०प्र०स० में उपलब्ध एकमात्र प्रावधान धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्ति थी जिसका प्रयोग तब किया जा सकता है जब कोई संज्ञेय अपराध नहीं होता है, क्योंकि

पुलिस धारा 155(2) द०प्र०स० के तहत मजिस्ट्रेट की अनुमति के बिना गैर-संज्ञेय मामले की जांच नहीं कर सकती है, लेकिन रामलाल यादव (उपरोक्त) के मामले में पूर्ण पीठ के फैसले द्वारा इन तथ्यों को नजरअंदाज कर दिया गया था; अन्यथा भी, भजनलाल (उपरोक्त) के मामले में शीर्ष न्यायालय के बाद के निर्णयों द्वारा जांच के दौरान हस्तक्षेप का दायरा बढ़ गया है। भजन लाल (उपरोक्त) के फैसले में, जिसमें ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) में प्रिवी काउंसिल के फैसले पर भी विचार किया गया था, शीर्ष न्यायालय ने उच्च न्यायालय को धारा 482 द०प्र०स० (संबंधित धारा 528 बी.एन.एस.एस.) या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत निम्नलिखित आधारों पर न्याय की हानि को रोकने के लिए प्राथमिकी या परिणामी जांच को रद्द करने के लिए अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करने की अनुमति दी:

"(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं है या अभियुक्त के खिलाफ मामला नहीं बनता है।

(2) जहां प्राथमिकी के साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट और अन्य सामग्री, यदि कोई हो, में आरोप संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, संहिता की धारा 155(2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश को छोड़कर, संहिता की धारा 156(1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराते हैं।

(3) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी भी अपराध के कमीशन (गठन) का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते हैं।

(4) जहां, प्राथमिकी में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते हैं, लेकिन केवल एक गैर-संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, संहिता की धारा 155(2) के तहत मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी जांच की अनुमति नहीं दी जाती है।

5) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिसके आधार पर कोई भी विवेकपूर्ण व्यक्ति कभी भी एक न्यायसंगत निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी उपबंध में संस्था के लिए एक स्पष्ट कानूनी रोक लगाई गई है और कार्यवाही जारी है और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में कोई विशिष्ट प्रावधान है, जो पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां एक आपराधिक कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से शामिल की जाती है और/या जहां अभियुक्त से प्रतिशोध लेने के लिए एक गुप्त उद्देश्य के साथ और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे नाराज करने की दृष्टि से कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से शुरू की जाती है।

60. भजन लाल (उपरोक्त) के फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने रामलाल यादव (उपरोक्त) के मामले में पूर्ण पीठ द्वारा विचार किए गए लगभग सभी निर्णयों पर विचार किया और जांच के दौरान उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप के दायरे का विस्तार किया।

61. निहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर (उपरोक्त) के फैसले में, शीर्ष न्यायालय ने ख्वाजा नजीर अहमद (उपरोक्त) में प्रिवी काउंसिल के फैसले पर विचार करने के बाद, भजन लाल (उपरोक्त) के फैसले के साथ-साथ धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्ति के दायरे के बारे में बाद के निर्णयों को फिर से दोहराया। संज्ञेय अपराध की जांच करने के लिए पुलिस का सांविधिक अधिकार और कर्तव्य है, लेकिन उपयुक्त मामलों में, जिसमें ऐसे मामले भी शामिल हैं जहां प्राथमिकी के अवलोकन से कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है, यथा अदालत जांच को आगे बढ़ने की अनुमति नहीं दे सकती है और जांच में हस्तक्षेप कर सकती है, जिसमें आरोपी को गिरफ्तार नहीं करने या जांच के दौरान उठाए गए दंडात्मक कदम न उठाने का आदेश पारित करना शामिल है।

62. इसलिए, सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों से यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय, धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए, प्राथमिकी को रद्द करने की मांग करने वाले मामले में जांच में हस्तक्षेप कर सकता है, जहां न केवल ऐसे मामले में जहां प्राथमिकी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करती है, बल्कि भजन लाल (उपरोक्त) और निहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर (उपरोक्त) में उल्लिखित अन्य शर्तों को पूरा करने पर भी है।

63. इस न्यायालय का यह भी विचार है कि यह धारा 155(2) द०प्र०स० (बी.एन.एस.एस. की संबंधित धारा 174(2) का जनादेश है कि पुलिस एक गैर-संज्ञेय अपराध की जांच नहीं कर सकती है। इसलिए, यदि पुलिस एक प्राथमिकी की जांच करना जारी रखती है, जो संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करती है कि यह द०प्र०स० / बी.एन.एस.एस. के जनादेश के खिलाफ होगा और ऐसे मामले में, अदालत धारा 528 बी.एन.एस.एस. (संबंधित धारा 482 द०प्र०स०) के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए जांच में हस्तक्षेप कर सकती है या रोक सकती है।

64. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, यह न्यायालय रामलाल यादव (उपरोक्त) में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले से सम्मानपूर्वक असहमत है, जिसमें यह देखा गया है कि धारा 482 द०प्र०स० (संबंधित धारा 528 बी.एन.एस.एस.) के तहत अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए प्राथमिकी या परिणामी जांच को रद्द नहीं किया जा सकता है। शीर्ष न्यायालय के बाद के निर्णयों से स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि प्राथमिकी को धारा 482 द०प्र०स० (संबंधित धारा 528 बी.एन.एस.एस.) के तहत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए रद्द किया जा सकता है, यदि भजन लाल (उपरोक्त) के प्रस्तर-102 के साथ-साथ निहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर (उपरोक्त) के प्रस्तर-33 में निर्धारित शर्तें संतुष्ट हैं।

65. इस न्यायालय का विचार है कि यद्यपि रामलाल यादव (उपरोक्त) की पूर्ण पीठ के निर्णय को स्पष्ट रूप से उलट या खारिज नहीं किया गया है, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय के फैसले में व्यक्त परिस्थितियों और कानूनी सिद्धांत का विकास रामलाल यादव (उपरोक्त) द्वारा स्थापित कानून को अप्रचलित बना देता है। " सेस्सान्ते रातियोने सेस्सात इप्सा लेक्स" (जिस आधार (रैशनल) पर विधि लागू होती है, उसके लुप्त हो जाने पर विधि का प्रवर्तन भी स्वतः समाप्त हो जाता है) के सिद्धांत के अनुसार, जिस पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा देवांस

अनुवादित

मॉडर्न ब्रुअरीज (उपरोक्त) के मामले में भी विचार किया गया था, ऐसे मामलों में स्टेयर डिसीसिस के सिद्धांत को छोड़ा जा सकता है।

66. न्यायमूर्ति लुई ब्रैंडिस ने **वाशिंगटन राज्य बनाम डब्ल्यूसी डॉसन एंड कंपनी औद्योगिक दुर्घटना आयोग ऑफ कैलिफोर्निया राज्य (264 यूएस 219: 68 एल.एड. 646)** में रिपोर्ट में अपने असहमति वाले फैसले में कहा है कि "स्टेयर डिसीसिस आमतौर पर कार्रवाई का एक बुद्धिमान नियम है। लेकिन यह एक सार्वभौमिक, कठोर आदेश नहीं है। यदि स्टेयर डिसीसिस के निर्णय के नियम का आँख बंद करके और यंत्रवत् पालन किया जाता है, तो यह कानून के विकास को बौना और अवरुद्ध कर देगा और समाज की बदलती जरूरतों के साथ खुद को समायोजित करने की इसकी क्षमता को प्रभावित करेगा।

67. यह न्यायालय सम्मानपूर्वक स्वीकार करता है कि रामलाल यादव (उपरोक्त) की पूर्ण पीठ के फैसले में स्थापित कानूनी सिद्धांत अब कानून में हाल के घटनाक्रमों के कारण लागू नहीं हो सकते हैं, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा व्याख्या की गई है। फिर भी, न्यायिक अनुशासन की भावना में और शंकर राजू (उपरोक्त) और मिश्री लाल (उपरोक्त) के मामलों में जोर दिए गए निर्णय के सिद्धांत को बनाए रखने के लिए, न्यायालय इस मामले को नौ न्यायाधीशों की एक बड़ी पीठ को भेजने के लिए इच्छुक है। यह रेफरल आवश्यक है क्योंकि रामलाल यादव (उपरोक्त) मामले में सात न्यायाधीशों की पीठ ने फैसला सुनाया था। हम निम्नलिखित प्रश्नों पर बड़ी पीठ द्वारा प्रदान की जाने वाली अंतर्दृष्टि और मार्गदर्शन की प्रतीक्षा कर रहे हैं:

(i) माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा *भजन लाल* (उपर्युक्त), *नीहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर* (उपर्युक्त) तथा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के अन्य पश्चातवर्ती निर्णयों में प्रतिपादित विधि के आलोक में, क्या *रामलाल यादव* (उपर्युक्त) के प्रकरण में पूर्ण पीठ द्वारा प्रतिपादित यह विधि कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 (जो भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 528 के समतुल्य है) के अंतर्गत उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए किसी प्राथमिकी (एफ.आई.आर.) तथा उससे अनुगामी विवेचना को निरस्त नहीं कर सकता–आज भी विधिसम्मत एवं प्रभावी मानी जाती है?

(ii) क्या भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 528 (जो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के समतुल्य है) के अंतर्गत प्रदत्त अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए किसी प्राथमिकी (एफ.आई.आर.) तथा उससे अनुगामी विवेचना को निरस्त किया जा सकता है, यदि भजन लाल (उपर्युक्त) के निर्णय के अनुच्छेद 102 तथा नीहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर (उपर्युक्त) के निर्णय के अनुच्छेद 33 में निर्दिष्ट शर्तें पूर्ण होती हों?

68. महानिबंधक को निर्देश दिया जाता है कि वह संदर्भित मुद्दों को हल करने के लिए नौ न्यायाधीशों की एक बड़ी पीठ के गठन के लिए माननीय मुख्य न्यायाधीश को केस अभिलेख तीन दिनों के भीतर प्रस्तुत करें।

69. पूर्व में पारित अंतरिम आदेश, थाना-करवी, जनपद-चित्रकूट में पंजीकृत अपराध संख्या 114/2025, जो भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 498-ए, 323, 504, 506 एवं 342 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धाराएँ 3 एवं 4 के अंतर्गत दर्ज है, में विवेचना की समाप्ति तक प्रभावी बना रहेगा।

(2025) 5 ILRA 1309

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

धारा 482 के तहत आवेदन संख्या-16456 वर्ष 2024

एवं अन्य सम्बद्ध वाद

नीरज @ बंती शाही और अन्य **... आवेदकगण**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य **... प्रतिपक्षीगण**

आवेदकगण के लिए अधिवक्ता: डी.एम. त्रिपाठी, नागेंद्र प्रताप सिंह, विमलेंदु त्रिपाठी

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 173, 190, 190(1)(1), 190(1)(बी), 190(1)(बी), 191(1)(सी), 200, 203, 204, 207, 209, 260 और 482 - भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 - धारा 528 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 120 - बी, 147, 323, 420, 465, 467, 468, 471, 477-ए, 447, 504 और 506 - सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान की रोकथाम अधिनियम, 1984 - धारा 3 और 4 - धारा 482 भ०द०वि० के तहत आवेदन - आक्षेपित समन आदेशों को चुनौती - याचिकाओं के समूह पर निर्णय देते हुए, न्यायालय ने इस पर गंभीर चिंता व्यक्त की - (i) विचारण न्यायालय द्वारा समन आदेश जारी करना, अक्सर न्यायिक दिमाग को लागू किए बिना या कारण बताए बिना मुद्रित प्रोफार्मा प्रारूपों का उपयोग करना - इस तरह की प्रथा न केवल न्यायिक अनुशासन को कमजोर करती है, बल्कि बोझ भी डालती है। धारा 207 भ०द०वि० के तहत प्रक्रियात्मक चरण से पहले आरोपों के बारे में स्पष्टता से आरोपी व्यक्तियों को स्पष्टता से वंचित करने वाली प्रणाली - (ii) इसके अलावा, हालांकि भ०द०वि० के तहत निर्वहन का वैधानिक उपाय विचारण न्यायालय के समक्ष उपलब्ध है, वादी तेजी से इस मार्ग को बाय-पास करते हैं, संज्ञेय आदेशों को रद्द करने के लिए धारा 482 भ०द०वि० के तहत उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाते हैं और "कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं" की मांग करते हैं - इस तरह के दृष्टिकोण, कानूनी रूप से अस्थिर और प्रक्रियात्मक रूप से समय से पहले माना जाता है - न्यायालय दोहराता है कि "संज्ञान लेने" के लिए औपचारिक या तर्कसंगत आदेश की आवश्यकता नहीं है, लेकिन मजिस्ट्रेट को कानून के तहत आगे बढ़ने के इरादे से अपराध के कथित कमीशन/गठन के लिए न्यायिक दिमाग लागू करने की आवश्यकता होती है - (iii) अदालत यह भी पाती है कि, अपर्याप्त न्यायिक प्रशिक्षण, विरासत प्रथाओं, लिपिक कर्मचारियों पर अत्यधिक निर्भरता के कारण प्रणालीगत खामियां, और एक बैकलॉग-केंद्रित संस्कृति जो न्यायिक जांच से

अनुवादित

समझौता करती है - माना गया कि, पूर्व-टाइप किए गए प्रारूपों और रबर-स्टैम्प्ड टेम्प्लेट के माध्यम से समन आदेश जारी करना अस्वीकार्य है और इसे तुरंत बंद कर दिया जाना चाहिए - निरंतर न्यायिक प्रशिक्षण, बढ़ी हुई पर्यवेक्षी निगरानी, और अदालत के कर्मचारियों के कानूनी संवेदीकरण सहित संस्थागत सुधारों के लिए निर्देश जारी किए गए - न्यायिक प्रशिक्षण और अनुसंधान संस्थान और संबंधित अधिकारियों को अनुपालन और भविष्य के लिए निर्णय को प्रसारित करने का निर्देश दिया गया संदर्भ - आक्षेपित समन आदेशों में कोई भौतिक अनियमितता नहीं पाते हुए, सभी आवेदनों को खारिज कर दिया गया - हालांकि, आवेदकगण को धारा 207 भ०द०वि० के अनुपालन के बाद फिर से आवेदन करने की स्वतंत्रता दी गई (प्रस्तर- 33, 34, 35, 37, 38, 40, 41)

<u>उद्धृत प्रकरण की सूची:</u>

1- सतेन्द्र कुमार अन्तिल बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो एवं अन्य- (2022) 10 एससीसी 51,

2- अवध कुमार एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2024) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 4121

3- कांति देवी एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2024) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 4248

4- हिमांशु कुमार एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2024) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 3749

5- रूपेश एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2024) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 3751

6- हेमन्त कुमार बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2024) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 2429

7- राजनाथ यादव बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2024) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 2431

8- राधे श्याम बनाम उ.प्र. राज्य द्वारा अपर मुख्य सचिव, गृह, लखनऊ एवं अन्य- (2024) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 2145

9- बसन्त सिंह बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2024) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1617

10- राम केवल बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2024) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 129

11- हामिद रजा बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2023) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 3973

12- प्रभाकान्त एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2023) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 397

13- सत्य पाल बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2023) 4 एडीजे 345 (एलबी)

14- मतीन अहमद बनाम उ.प्र. राज्य द्वारा प्रधान सचिव, गृह विभाग, लखनऊ एवं अन्य- (2023) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 48

15- वेद कृष्ण बनाम उ.प्र. राज्य द्वारा प्रधान सचिव, गृह, सिविल सचिवालय, लखनऊ एवं अन्य- (2023) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 3365

16- कृष्ण कुमार बनाम उ.प्र. राज्य द्वारा प्रधान सचिव, गृह एवं अन्य- (2023) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 38,

17- प्रमोद कुमार शाही उर्फ मंटू शाही बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2022) 4 आपराधिक सीसी 484,

18- संगम लाल बनाम उ.प्र. राज्य- (2022) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 430,

19- संजय जैन एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2022) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1505,

20- गुलाब सिंह एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2022) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 174

21- जय प्रकाश वर्मा एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2022) 5 एडीजे 325

22- धर्मराज एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2021) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1307

23- सुरेन्द्र कुमार एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2021) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1337

24- छबीलै एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2020) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1694

25- विष्णु कुमार गुप्ता एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2020) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1363

26- सुदेश भदौरिया बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2020) 3 एसीआर 2187

27- दीपक झा बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2020) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1893

28- अवधेश बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2019) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 5080

29- मेनुद्दीन एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2018) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 4082

30- रॉबिन एल. प्रसाद बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2015) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 5192

31- कवी अहमद बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2011) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1658

32- ललन कुमार सिंह बनाम महाराष्ट्र राज्य- (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 1383

33- सुनील भारती मित्तल बनाम सी.बी.आई.- (2015) 4 एससीसी 609

34- भूषण कुमार बनाम राज्य (एन.सी.टी. दिल्ली)- (2012) 5 एससीसी 424

35- दर्शन सिंह राम किशन बनाम महाराष्ट्र राज्य- (1971) 2 एससीसी 654

36- अनिल कटियार एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य- (2024) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 2584

37- उपासना सिंह एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2022) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 474

38- धनवान सिंह एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2022) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 143

39- पवन कुमार बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2021) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 800

40- संजय एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2021) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 44

41- टेक्नो फैब्स (प्रोपराइटरशिप फर्म) बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2019) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 7581

42- अब्दुल रशीद बनाम उ.प्र. राज्य- (2010) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 2819

43- सौरभ देवाना बनाम उ.प्र. राज्य- (2010) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 509

44- अंकित बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2009) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 2188,

45- अनिल कटियार एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य द्वारा सी.बी.सी.आई.डी., लखनऊ- (2024) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 2584

46- बसरुद्दीन बनाम उ.प्र. राज्य- (2011) (1) JIC 335 (इलाहाबाद)(एलबी)

47- कवी अहमद बनाम उ.प्र. राज्य- दाण्डिक पुनरीक्षण संख्या 3209 वर्ष 2010

48- अब्दुल रशीद बनाम उ.प्र. राज्य- (2010) 3 जेआईसी 761 (इलाहाबाद)

49- भूषण कुमार बनाम राज्य (एन.सी.टी. दिल्ली)- (2012) 5 एससीसी 424

50- लाल कुमार सिंह बनाम महाराष्ट्र राज्य- (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 1383

51- पेप्सी फूड्स लिमिटेड बनाम विशेष मजिस्ट्रेट- (1998) 5 एससीसी 749

52- बिन्देश्वरी प्रसाद भारद्वाज बनाम उ.प्र. राज्य- (2016) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 3397

53- अतुल कुमार जैन एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2016) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 3343

54- संजीत लाल बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2015) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 8752

55- मुन्ना लाल एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य- (2008) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1798

56- कांति भद्र शाह बनाम पश्चिम बंगाल राज्य- (2000) 1 एससीसी 722

57- उ.प्र. पुलिस एवं नियंत्रण बोर्ड बनाम मोहन मीकिन्स लिमिटेड- (2001) (पूरक) एसीसी 21 (एससी),

58- फखरुद्दीन अहमद बनाम उत्तरांचल राज्य एवं अन्य, 2008 (17) एससीसी 157,

59- सम्राट बनाम सुरेन्द्र मोहन चक्रवर्ती- (1910) 37 एससीसी ऑनलाइन कलकत्ता 41

60- विधि स्मरणकर्ता बनाम अबनी कुमार बनर्जी- (1950) एससीसी ऑनलाइन कलकत्ता 49,

61- गोपाल मारवाड़ी बनाम सम्राट- एआईआर 1943 पटना 245,

62- अजीत कुमार पालित बनाम पश्चिम बंगाल राज्य- एआईआर (1963) सर्वोच्च न्यायालय 765,

63- आर.आर. चारी बनाम उ.प्र. राज्य- (1951) एससीसी 250

64- दर्शन सिंह राम किशन बनाम महाराष्ट्र राज्य- (1971) 2 एससीसी 654

65- किशुन सिंह एवं अन्य बनाम बिहार राज्य- (1993) 2 एससीसी 16

66- अनिल सरन बनाम बिहार राज्य- (1995) 6 एससीसी 142

67- मुख्य प्रवर्तन अधिकारी बनाम वीडियोकॉन इंटरनेशनल लिमिटेड- (2008) 2 एससीसी 492

68- फखरुद्दीन अहमद बनाम उत्तरांचल राज्य एवं अन्य- (2008) 17 एससीसी 157

69- महमूद उल रहमान बनाम खाजिर मोहम्मद टुंडा एवं अन्य- (2015) 12 एससीसी 420,

70- नागव्वा बनाम वीरन्ना शिवलिंगप्पा कोंजलगी- (1976) 3 एससीसी 736

71- किशुन सिंह बनाम बिहार राज्य- (1993) 2 एससीसी 16

72- पश्चिम बंगाल राज्य बनाम मोहम्मद खालिद- (1995) 1 एससीसी 654

73- जगदीश राम बनाम राजस्थान राज्य- (2004) 4 एससीसी 432,

74- उ.प्र. प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड बनाम भूपेन्द्र कुमार मोदी- (2009) 2 एससीसी 147

75- उ.प्र. प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड बनाम मोहन मीकिन्स लिमिटेड- (2000) 3 एससीसी 745,

76- मुख्य आयात एवं निर्यात नियंत्रक बनाम रोशन लाल अग्रवाल- (2003) 4 एससीसी 139,

77- जगदीश राम बनाम राजस्थान राज्य- (2004) 4 एससीसी 432

78- भारत संघ बनाम प्रकाश पी. हिंदुजा एवं अन्य, 2003 6 एससीसी 195,

79- एस.डब्ल्यू.आई.एल. लिमिटेड बनाम दिल्ली राज्य, (2001) 6 एससीसी 670,

80- गुजरात राज्य बनाम अफरोज मोहम्मद हसनफत्ता- (2019) 1 एससीआर,

81- प्रदीप एस. वोडेयार बनाम कर्नाटक राज्य- (2021) 19 एससीसी 62,

82- मुख्य प्रवर्तन अधिकारी बनाम वीडियोकॉन इंटरनेशनल लिमिटेड (2008) 2 एससीसी 492

(माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा उद्घोषित)

1. सभी मामलों में आवेदकगण के अधिवक्ता, राज्य-प्रतिपक्षी श्री विमलेंदु त्रिपाठी, एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. न्यायपालिका न्याय का आधार है, और इसकी प्रभावशीलता स्थापित कानूनी सिद्धांतों के पालन पर निर्भर करती है। हालांकि, 482 भ०द०वि० क्षेत्राधिकार के तहत उच्च न्यायालय को एक आवर्ती मुद्दा सताता है- विचारण न्यायालय अक्सर संवैधानिक न्यायालयों के आधिकारिक बाध्यकारी निर्णयों के उल्लंघन में समन आदेश पारित करते हैं। लगातार फैसलों के बावजूद, जो संज्ञान लेने को नियंत्रित करने वाले कानूनी ढांचे को स्पष्ट करते हैं, विचारण न्यायालय यांत्रिक और मनमाने ढंग से ऐसे आदेश जारी करना जारी रखते हैं, अक्सर पूर्व-मसौदा या रबर-स्टैम्प्ड टेम्प्लेट में मामले के विवरण डालकर, जिसे आमतौर पर "प्रिंटेड-प्रोफार्मा कॉग्निजेंस ऑर्डर" कहा जाता है।

3. यह मुद्दा न्यायिक अनुशासन, कानूनी प्रशिक्षण और न्यायिक जवाबदेही के बारे में गंभीर चिंताएं पैदा करता है। यह न केवल उच्च न्यायालयों के अधिकार को कमजोर करता है बल्कि अनावश्यक मुकदमेबाजी, न्यायिक संसाधनों की बर्बादी और वादियों के साथ गंभीर अन्याय की ओर भी ले जाता है।

4. यह बार की एक मानक प्रथा है कि आरोप पत्र दाखिल करने के बाद, जिस क्षण विद्वान मजिस्ट्रेट या विशेष न्यायाधीश, जैसा भी मामला हो, आरोप पत्र पर अपराध का संज्ञान लेता है और अभियुक्त को धारा 207 भ०द०वि० के चरण तक पहुंचने की प्रतीक्षा किए बिना हमेशा अदालत के समक्ष पेश होने का निर्देश देता है। अभियुक्त इस तर्क के आधार पर समन आदेशों को रद्द करने के लिए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाता

है कि न्यायाधीश द्वारा मुद्रित प्रोफार्मा या रबर-स्टैम्प्ड प्रारूप पर न्यायिक दिमाग के आवेदन के बिना यांत्रिक रूप से संज्ञान लिया गया है, बिना कोई कारण बताए अभियुक्त का नाम और कोड की संबंधित धारा को हाथ से सम्मिलित किया गया है, और साथ ही साथ आरोप-पत्र को रद्द करने की प्रार्थना की गई है।

5. आरोप पत्रों को धारा 207 भ०द०वि० के चरण तक पहुंचे बिना चुनौती दी जाती है, जिससे आरोपी इस तथ्य से अनजान हैं कि विवेचनाधिकारी द्वारा उनके खिलाफ विवेचना के दौरान दोषी ठहराने वाली क्या सामग्री एकत्र की गई है। प्राथमिकी, जमानत आदेश या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय द्वारा जारी एक निर्देश पर भरोसा किया जाता है, जिसमें आरोप पत्र दाखिल होने तक या शायद ही कभी, मुकदमा पूरा होने तक या शायद ही कभी, धारा 173 भ०द०वि० के तहत एक रिपोर्ट के साथ मुकदमा पूरा होने तक आरोपी के खिलाफ कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं की जाती है, जिसमें केवल आरोपी का नाम और धारा जिसके तहत पुलिस ने आरोप पत्र दायर किया है, गवाहों की सूची के साथ।

6. संक्षेप में, बड़ी संख्या में मामलों में - कुछ मामलों को छोड़ते हुए - हमेशा अधिवक्ताओं द्वारा दोहराए जाने वाले तर्कों के दो सेट किए जाते हैं; (i) संज्ञानन आदेश मुद्रित और रबर स्टाम्प प्रोफार्मा पर कोई आधार निर्दिष्ट किए बिना यांत्रिक तरीके से पारित किया गया है, और (ii) एकमुश्त रूप से, "कोई जबरदस्ती कार्रवाई नहीं" के लिए प्रार्थना करता है, जिसका अर्थ है कि आवेदक(ओं) को मुकदमे के दौरान गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है और सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य के मामले पर भरोसा करता है और आगे विचारण न्यायालय के समक्ष निर्वहन आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता के साथ निपटान की मांग करता है। इन आवेदकगण को न्यायालयों द्वारा नियमित रूप से यह निर्देश देते हुए निर्णय लिया गया है कि विचारण न्यायालय के समक्ष डिस्चार्ज आवेदन दाखिल करने या उसका निपटान करने तक आवेदक के खिलाफ कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं की जाए और मामले को विचारण न्यायालय के समक्ष उन्मोचन की स्वतंत्रता के साथ निपटाया जाए।

6.1 यह कोई उद्देश्य नहीं रखता है। अभियुक्त के पास पहले से ही विचारण न्यायालय के समक्ष डिस्चार्ज आवेदन दायर करने का वैधानिक अधिकार है; और इसलिए इस तरह की राहत के लिए उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाने की कोई आवश्यकता नहीं है। जहां तक "कोई जबरदस्ती कार्रवाई नहीं" की राहत का संबंध है, इसे संज्ञानात्मक आदेश को रद्द करने के चरण में आपराधिक न्यायशास्त्र में मान्यता प्राप्त नहीं है। इसके अलावा, वादियों पर कोई अनिवार्य दायित्व नहीं है कि वे केवल सतेंद्र कुमार अंतिल (उपरोक्त) में पहले से ही वर्णित अधिकारों की रक्षा के लिए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाएंगे। इस न्यायालय के विचारशील दृष्टिकोण में, पूरी कवायद निरर्थक है और गलत जानकारी रखने वाले वादियों पर अनावश्यक बोझ डालती है।

7. यहां ऊपर चर्चा किए गए सीमित तर्कों के आधार पर, आवेदकगण ने सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन), देवरिया की अदालत में लंबित आपराधिक मामला संख्या-5293 वर्ष 2018 की आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए धारा 482 भ०द०वि० के तहत इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। सभी आवेदनों में

सामान्य मुख्य मुद्दे पर निर्णय लेने के उद्देश्य से धारा 482 भ०द०वि० संख्या-16456 वर्ष 2024 के तहत आवेदन को लीड केस के रूप में लिया गया है।

8. इस मुद्दे को हल करने के लिए, अधिवक्ता श्री विमलेंदु त्रिपाठी को इस मुद्दे से संबंधित मामलों के एक समूह में एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) नियुक्त किया गया है।

9. एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) ने न्यायालय की सहायता के लिए लिखित तर्क की एक प्रति के साथ निर्णयों का संकलन प्रदान किया और इसे अभिलेखों पर लिया गया है।

10. एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) को सुनने के बाद और संकलन की जांच करने पर, यह देखा गया है कि यह न्यायालय अवध कुमार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; कांति देवी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; हिमांशु कुमार और अन्य बनाम हिमांशु कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; रूपेश और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य5, हेमंत कुमार बनाम हेमंत कुमार उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; राजनाथ यादव बनाम राजनाथ यादव उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; राधे श्याम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के माध्यम से; अतिरिक्त मुख्य सचिव होम लखनऊ और एक अन्य; बसंत सिंह बनाम बसंत सिंह उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; राम केवल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; हामिद रजा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; प्रभाकांत और एक अन्य बनाम प्रभाकांत ने मामले दर्ज किए। उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; सत्य पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; मतीन अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के माध्यम से; गृह विभाग के प्रधान सचिव लखनऊ और एक अन्य; वेद कृष्णा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के माध्यम से; प्रधान सचिव गृह सिविल संप्रदाय। लखनऊ और एक अन्य; कृष्ण कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के माध्यम से; प्रधान सचिव गृह और अन्य; प्रमोद कुमार शाही उर्फ मंटू शाही बनाम मंटू शाही। उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; संगम लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; संजय जैन और एक अन्य बनाम संजय जैन उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; गुलाब सिंह और अन्य बनाम गुलाब सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; धर्मराज और अन्य बनाम धर्मराज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; सुरेंद्र कुमार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; छबिली और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; सुदेश भदौरिया बनाम सुदेश भदौरिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; दीपक झा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; अवधेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; मैनुद्दीन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; रॉबिन एल. प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; कावी अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; महाराष्ट्र राज्य; सुनील भारती मित्तल बनाम सी.बी.आई.; भूषण कुमार बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली); दर्शन सिंह राम किशन बनाम राम किशन महाराष्ट्र राज्य और इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित विभिन्न निर्णय; के मामले में मामला दर्ज किया गया है कि न्यायालय ने समन आदेशों को रद्द कर दिया और मुख्य रूप से ललनकुमार सिंह बनाम उच्चतम न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए कानून के अनुसार नए सिरे से बोलने का आदेश पारित करने के लिए मामलों को विचारण न्यायालय में वापस भेज दिया।

11. अनिल कटियार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में; उपासना सिंह और एक अन्य बनाम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; धनवान सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; पवन कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; संजय और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; टेक्नो फैब्स (प्रोपराइटर शिप फर्म) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; अब्दुल रशीद बनाम उत्तर प्रदेश का राज्य; सौरभ दीवाना बनाम उत्तर प्रदेश का राज्य; अंकित बनाम उत्तर प्रदेश की धारा 482 भ०द०वि० के तहत आवेदन को न्यायालय द्वारा अनुमति दी गई है, और आक्षेपित समन आदेश को महानिबंधक के समक्ष रखने के निर्देश के साथ रद्द कर दिया गया है ताकि उत्तर प्रदेश के सभी जिला न्यायाधीशों को कानून के अनुसार एक परिपत्र/ज्ञापन जारी किया जा सके और उन्हें सूचित किया जाए कि वे सभी न्यायिक अधिकारियों को "मुद्रित **प्रोफार्मा"** का उपयोग न करने के लिए सूचित करेंन्यायिक आदेश पारित करते समय। ऊपर उल्लिखित सभी मामलों में कमोबेश इसी तरह के निर्देश जारी किए गए हैं।

11.1 सौरभ देवाना मामले (उपरोक्त) में, यह न्यायालय एक कदम आगे बढ़ गया है और विद्वान जिला न्यायाधीश को सभी अदालतों से खाली मुद्रित प्रोफार्मा एकत्र करने और उसे नष्ट करने का निर्देश दिया है। यह भी निर्देश दिया गया कि आदेश की प्रति इस न्यायालय की प्रशासनिक समिति के समक्ष विचार के लिए रखी जाए और यदि अनुमोदित हो तो आवश्यक परिपत्र जारी किया जा सकता है।

11.2 अंकित मामले (उपरोक्त) में, इस न्यायालय ने फिर से विद्वान जिला न्यायाधीश, सहारनपुर को न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत में उपलब्ध खाली मुद्रित प्रोफार्मा को जब्त करने और उसे नष्ट करने के लिए इसी तरह के निर्देश जारी किए। इसके अलावा, महानिबंधक को आदेश की एक प्रति प्रशासनिक समिति के समक्ष रखने का भी निर्देश दिया गया था।

11.3 संजय मामले (उपरोक्त) में, इस न्यायालय ने मुद्रित प्रोफार्मा पर समन आदेश पारित करने के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट से स्पष्टीकरण मांगा, और न्यायाधीश को ऐसे आदेश पारित करते समय भविष्य में सतर्क और सतर्क रहने की चेतावनी भी जारी की गई।

12. अनिल कटियार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सी.बी.सी.आई.डी. लखनऊ के माध्यम से इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने बसरुद्दीन बनाम बनाम बसाईरुद्दीन पर भरोसा करते हुए लखनऊ को खारिज कर दिया है। उत्तर प्रदेश राज्य, कवि अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, अब्दुल रशीद बनाम इस न्यायालय की एक अन्य समन्वय पीठ द्वारा पारित उत्तर प्रदेश के निर्णयों और भूषण कुमार बनाम उत्तर प्रदेश की की स्थिति के निर्णय के मामले में निर्णय दिए गए हैं। राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली), लाल कुमार सिंह बनाम महाराष्ट्र राज्य, पेप्सी फूड्स लिमिटेड बनाम विशेष मजिस्ट्रेट, उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित फैसलों ने दिनांक 08.09.2015 के आक्षेपित समन आदेश को यह देखते हुए रद्द कर दिया कि उच्चतम न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा पारित कई आदेशों के बावजूद, विद्वान मजिस्ट्रेट अभी भी आदेश पारित कर रहे हैं और न्यायिक दिमाग को लागू किए बिना मुद्रित प्रोफार्मा पर संज्ञान ले रहे हैं और मामले में, समन आदेश में अभिलेखों पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह पता चले कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने समन आदेश पारित करने और आरोप पत्र पर संज्ञान लेने से पहले अभिलेखों पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया हो। लखनऊ पीठ में इस न्यायालय के

वरिष्ठ निबंधक को यह भी निदेश दिया गया था कि वे उत्तर प्रदेश के सभी जिला न्यायालयों के सभी विद्वान जिला न्यायाधीशों और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट/मुख्य मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेटों को प्रस्तुत अनुपालन और सूचना के लिए निर्णय की एक प्रति प्रेषित करें।

13. बिंदेश्वरी प्रसाद भारद्वाज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; अतुल कुमार जैन और अन्य बनाम अतुल कुमार जैन बनाम अतुल कुमार जैन और अन्य के मामले में मामले दर्ज किए गए थे। उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; संजीत लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, और मुन्ना लाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, इस न्यायालय की समन्वय पीठों ने आवेदकगण की अपील को खारिज कर दिया कि वे आक्षेपित समन आदेश को रद्द कर दें और कांति भद्र शाह बनाम कांति भद्र शाह और उत्तर प्रदेश पुलिस और नियंत्रण बोर्ड बनाम मोहन मीकिन्स लिमिटेड के मामले में यह निष्कर्ष दर्ज किया गया है कि यह महत्वहीन है कि मजिस्ट्रेट ने मुद्रित प्रोफार्मा पर संज्ञान लिया है या अभियुक्त को तलब करने के लिए टाइप किए गए प्रोफार्मा का उपयोग किया है। अंततः, प्रश्न मजिस्ट्रेट द्वारा दिमाग के आवेदन का होगा। लिखित या लिखित आदेश, हालांकि किसी विशेष रूप या प्रोफार्मा में नहीं, फिर भी दिमाग के अनुप्रयोग से पीड़ित हो सकता है। दिमाग के अनुप्रयोग के संबंध में तर्क की जांच सभी प्रासंगिक पहलुओं के आधार पर की जानी चाहिए। जब, आरोप पत्र में किसी आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त सामग्री का खुलासा किया जाता है, तो यह मानना मुश्किल होगा कि "समन आदेश पारित करते समय दिमाग का उपयोग न करना", और आगे कहा गया कि विचारण न्यायालय के लिए आरोप पत्र पर संज्ञान लेने और आरोपी को तलब करने के कारणों को दर्ज करने की कोई कानूनी आवश्यकता नहीं है।

14. पूर्वगामी को ध्यान में रखते हुए, निष्पक्ष और अच्छी तरह से स्थापित निर्धारण पर पहुंचने के लिए प्रस्तुत मामले के तथ्यात्मक संदर्भ पर संक्षेप में चर्चा करना उचित है। थाना-भाटपाररानी, जिला देवरिया में सरकारी भूमि पर अतिक्रमण करने और जान को खतरा पहुंचाने और घायल करने के अन्य आरोपों के अलावा नीरज शाई, मनोज साही, हेमंत साही और अभिरेन्द्र साही के खिलाफ सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुंचाने के लिए धारा 3/4 सपठित धारा 147, 323, 504, 506, 447 के तहत एक प्राथमिकी अपराध संख्या-147, दिनांक 29.5.2016 दर्ज की गई थी। जांच पूरी होने पर, पुलिस द्वारा आवेदकगण के खिलाफ 17.06.2006 को सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान की रोकथाम अधिनियम की धारा 3/4 सपठित धारा 323, 504, 506, 447 भ०द०वि० के तहत एक आरोप पत्र दायर किया गया था, जिसमें संदिग्ध बीरू को दोषमुक्त कर दिया गया था। विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा 07.12.2018 को संज्ञान लिया गया था, और तदनुसार, आवेदकगण को विचारण न्यायालय द्वारा तलब किया गया था। समन आदेश से व्यथित होकर, आवेदकगण ने 7 दिसंबर 2018 के आक्षेपित समन आदेश को रद्द करने के लिए यह आवेदन दायर किया है।

15. इस पृष्ठभूमि में, निम्नलिखित प्रश्न विचार के लिए उठते हैं (i) संहिता की धारा 190 के चिंतन के भीतर, जैसा भी मामला हो, मजिस्ट्रेट या विशेष न्यायाधीश द्वारा "किसी अपराध का संज्ञान लेने" की अभिव्यक्ति का क्या अर्थ है? (ii) धारा 190(1)(बी) भ०द०वि० के तहत पुलिस रिपोर्ट के आधार पर संज्ञान लेने के मामले में

अभियुक्त को प्रक्रिया जारी करने का निर्देश देकर, क्या न्यायालय के लिए यह अनिवार्य है कि वह अपनी संतुष्टि के लिए कारणों को दर्ज करे कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार हैं? और (iii) धारा 190(1)(ए) भ०द०वि० के तहत शिकायत के आधार पर संज्ञान लेने के मामले में आरोपी को प्रक्रिया जारी करने का निर्देश देकर, क्या न्यायालय के लिए यह अनिवार्य है कि वह अपनी संतुष्टि के लिए कारणों को दर्ज करे कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार हैं?

16. प्रतिद्वंद्वी तर्कों और ऊपर चर्चा किए गए निर्णयों की जांच करने से पहले, मैं संक्षेप में संहिता के प्रासंगिक प्रावधानों का उल्लेख करूंगा। संहिता का अध्याय XIV, जिसमें धारा 190 से 199 शामिल है, आपराधिक कार्यवाही शुरू करने के लिए आवश्यक वैधानिक शर्तों को संबोधित करती है। चूंकि, माना जाता है कि विवाद धारा 190 के अर्थ के भीतर विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेने से संबंधित है, इसलिए मैं अपनी चर्चा को उक्त प्रावधान तक ही सीमित रखूंगा। संहिता की धारा 190 में प्रावधान शामिल हैं कि मजिस्ट्रेट अपराधों का संज्ञान कैसे लेंगे। संहिता की धारा 190 की उपधारा 1 एक मजिस्ट्रेट को किसी अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार देती है। यह प्रदान करता है कि एक मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान ले सकता है, (ए) तथ्यों की शिकायत प्राप्त होने पर जो इस तरह के अपराध का गठन करते हैं; या (बी) ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर; या (ग) पुलिस अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त सूचना पर, या उसकी स्वयं की जानकारी पर कि ऐसा अपराध किया गया है58.

17. अध्याय XV, जिसमें धारा 200 से 203 भ०द०वि० शामिल है, "मजिस्ट्रेटों को शिकायतें" से संबंधित है और उस प्रक्रिया को निर्धारित करता है जो शिकायत पर किसी अपराध का संज्ञान लेते समय मजिस्ट्रेट द्वारा पालन की जाएगी। इसी तरह, अध्याय XVI "मजिस्ट्रेटों के समक्ष कार्यवाही शुरू करने" से संबंधित है। हालांकि, मैं यह नोट कर सकता हूं कि, शिकायत या पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर, मजिस्ट्रेट के पास संज्ञान लेने के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया और तरीके को निर्धारित करने के लिए एक से अधिक प्रविधि खुले होते हैं।

18. पहला प्रश्न यह है कि संहिता की धारा 190 के अर्थ के भीतर एक मजिस्ट्रेट द्वारा "किसी अपराध का संज्ञान लेने" की अभिव्यक्ति का क्या अर्थ है, इसे उल्लिखित चर्चा के आलोक में संबोधित किया जा सकता है। संहिता में "संज्ञान" शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है। ब्लैक लॉज डिक्शनरी संज्ञान को परिभाषित करती है; मानसिक अवलोकन या जागरूकता की सीमा, जागरूक होने का तथ्य, ज्ञान, (कानून) दिए गए मामले से निपटने के लिए न्यायालय को दी गई शक्तियां, क्षेत्राधिकार और लेक्सिकॉन-वेबस्टर डिक्शनरी परिभाषित करती है; क्षेत्राधिकार, या अधिकार क्षेत्र का प्रयोग, या कारणों को निर्धारित करने की कोशिश करने की शक्ति; किसी मामले की न्यायिक जांच, या इसे बनाने की शक्ति और अधिकार इत्यादि।

19. सम्राट बनाम सौरेंद्र मोहन चकरबुट्टी, स्टीफन और कार्ंडफ में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने यह विचार लिया है कि संज्ञान लेने के लिए कोई औपचारिक कार्रवाई शामिल नहीं है, या वास्तव में किसी भी प्रकार की कार्रवाई शामिल नहीं है, लेकिन जैसे ही एक मजिस्ट्रेट, इस तरह, एक अपराध के संदिग्ध कमीशन/गठन के

लिए अपने दिमाग को लागू करता है, तो होता है। इसी दृष्टिकोण को दास गुप्ता ने कानूनी स्मरण बनाम अबानी कुमार बनर्जी में यह मानते हुए अनुमोदित किया था कि "संज्ञान लेने" का गठन दंड प्रक्रिया संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है, और मुझे इसे परिभाषित करने का प्रयास करने की कोई इच्छा नहीं है। हालांकि, मुझे यह स्पष्ट लगता है कि इससे पहले कि यह कहा जा सके कि किसी भी मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190(1)(ए) के तहत किसी भी अपराध का संज्ञान लिया है, उसने न केवल याचिका की सामग्री पर अपना दिमाग लगाया होगा, बल्कि उसने अब तक एक विशेष तरीके से आगे बढ़ने का उद्देश्य किया होगा जैसा कि इस अध्याय के बाद के प्रावधानों में दर्शाया गया है, - धारा 200 भ०द०वि० के तहत कार्यवाही करना, और उसके बाद इसे धारा 202 भ०द०वि० के तहत जांच और रिपोर्ट के लिए भेजना।

20. गोपाल मारवाड़ी बनाम सम्राट, यह देखा गया था कि संहिता में "संज्ञान" शब्द का उपयोग उस बिंदु को इंगित करने के लिए किया जाता है जिस पर मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश पहले किसी अपराध का न्यायिक नोटिस लेता है। यह कार्यवाही शुरू करने से अलग बात है। यह मजिस्ट्रेट द्वारा कार्यवाही शुरू करने की पूर्व शर्त है। अदालत ने देखा कि "संज्ञान" शब्द कुछ हद तक अनिश्चितकालीन आयात का एक शब्द है, और शायद इसका उपयोग हमेशा एक ही अर्थ में नहीं किया जाता है।

21. "किसी अपराध का संज्ञान लेने" की अभिव्यक्ति की वैधानिक व्याख्या का आवश्यक सिद्धांत सम्राट बनाम सौरेंद्र मोहन चकरबुट्टी (उपरोक्त) और कानूनी स्मरणकर्ता बनाम अबानी कुमार बनर्जी (उपरोक्त) में प्रतिपादित किया गया है। अजीत कुमार पालित बनाम अजीत कुमार पालित में। पश्चिम बंगाल में, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि आपराधिक कानून या प्रक्रिया में "संज्ञान" शब्द का कोई गूढ़ या रहस्यमय महत्व नहीं है। इसका केवल अर्थ है - किसी न्यायालय या न्यायाधीश के संदर्भ में जागरूक होना और जब उपयोग किया जाता है, तो न्यायिक रूप से नोटिस लेना और सम्राट (उपरोक्त) में कलकत्ता उच्च न्यायालय की टिप्पणी को मंजूरी देना, यह माना गया है कि "संज्ञान लेने में कोई औपचारिक कार्रवाई या वास्तव में किसी भी प्रकार की कार्रवाई शामिल नहीं है, बल्कि एक मजिस्ट्रेट के रूप में तुरंत होता है, इस प्रकार, किसी अपराध के संदिग्ध कमीशन/गठन के लिए अपना दिमाग लगाता है"।

22. सम्राट (उपरोक्त), और कानूनी स्मरण मामले (उपरोक्त) में कलकत्ता उच्च न्यायालय की टिप्पणी को मंजूरी देते हुए, भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने आरआर चारी बनाम उत्तर प्रदेश, दर्शन सिंह राम किशन बनाम महाराष्ट्र राज्य, किशन सिंह और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य; बिहार राज्य, अनिल सरन बनाम बिहार राज्य, मुख्य प्रवर्तन अधिकारी बनाम वीडियोकॉन इंटरनेशनल लिमिटेड, इस धारणा में लगातार रहा है कि "संज्ञान लेने" में कोई औपचारिक कार्रवाई शामिल नहीं है, या वास्तव में किसी भी प्रकार की कार्रवाई शामिल नहीं है, लेकिन यह तब होता है जब एक मजिस्ट्रेट, इस तरह, जांच और मुकदमे की दिशा में बाद के कदम उठाने के लिए आगे बढ़ने के उद्देश्य से किसी अपराध के संदिग्ध कमीशन/गठन पर अपना दिमाग लगाता है।

23. फिर से, कानूनी स्मरण मामले (उपरोक्त) में कलकत्ता उच्च न्यायालय की टिप्पणी को मंजूरी देते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने फखरुद्दीन अहमद बनाम उत्तरांचल राज्य और अन्य डीके जैन ने पीठ की ओर से बोलते

हुए कहा कि यह स्पष्ट है कि अनिश्चितकालीन आयात की अभिव्यक्ति होने के नाते, यह सटीक रूप से परिभाषित करना न तो व्यावहारिक है और न ही वांछनीय है कि "संज्ञान लेने" का क्या अर्थ है। मजिस्ट्रेट ने अपराध का संज्ञान लिया है या नहीं है, यह उस विशेष मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, जिसमें अधिक मामले को स्थापित करने की मांग की गई है और प्रारंभिक कार्रवाई की प्रकृति और आगे जोर दिया गया है कि फिर भी, यह अच्छी तरह से तय है कि एक मजिस्ट्रेट के समक्ष कहा जा सकता है कि उसने किसी अपराध का संज्ञान लिया है, यह जरूरी है कि उन्होंने आरोपों पर ध्यान दिया हो और पुलिस रिपोर्ट के अलावा किसी अन्य स्रोत से प्राप्त जानकारी पर शिकायत में या पुलिस रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों पर अपना दिमाग लगाया हो, जैसा भी मामला हो।

24. महमूद उल रहमान बनाम खजीर मोहम्मद टुंडा और अन्य में, उच्चतम न्यायालय ने पेप्सी फूड्स लिमिटेड (उपरोक्त), दर्शन सिंह राम किशन (उपरोक्त), सम्राट बनाम सौरेंद्र मोहन (उपरोक्त), नगावा बनाम वीरन्ना शिवलिंगप्पा कोंजालगी, किशन सिंह बनाम में पूर्व न्यायिक निर्णयों की गहन समीक्षा के बाद। बिहार राज्य, पश्चिम बंगाल राज्य बनाम मो. खालिद, जगदीश राम बनाम राजस्थान राज्य, मुख्य प्रवर्तन अधिकारी बनाम वीडियोकॉन इंटरनेशनल लिमिटेड (उपरोक्त), उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड बनाम भूपेंद्र कुमार मोदी में माना गया है कि धारा 190/204 भ०द०वि० के चरण में किसी औपचारिक या बोलने वाले आदेश या तर्कपूर्ण आदेश की आवश्यकता नहीं है, मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध के गठन के तथ्यों और धारा 200 भ०द०वि० के तहत दर्ज किए गए बयानों के लिए पर्याप्त संकेत होना चाहिए ताकि अपराधी के खिलाफ कार्रवाई की जा सके। प्रासंगिक प्रस्तर-यहां नीचे निकाला गया है:

"21. भ०द०वि० की धारा 191(1)(बी) के तहत मजिस्ट्रेट को पुलिस रिपोर्ट का लाभ है और धारा 190(1)(सी) भ०द०वि० के तहत, उसके पास अपराध के कमीशन/गठन की जानकारी या ज्ञान है। लेकिन, धारा 190(1)(ए) भ०द०वि० के तहत, उसके सामने केवल एक शिकायत है। इसलिए संहिता निर्दिष्ट करती है कि "तथ्यों की शिकायत जो ऐसे अपराधों का गठन करती है"। इसलिए, यदि शिकायतकर्ता, प्रत्यक्ष रूप से, किसी भी अपराध के कमीशन/गठन का खुलासा नहीं करता है, तो मजिस्ट्रेट धारा 190(1)(ए) भ०द०वि० के तहत संज्ञान नहीं लेगा। शिकायत को केवल खारिज कर दिया जाना है।

25. पेप्सी फूड लिमिटेड मामले (उपरोक्त) में, उच्चतम न्यायालय ने यह विचार लिया है कि एक आपराधिक मामले में एक आरोपी को बुलाना एक गंभीर मामला है। आपराधिक कानून को निश्चित रूप से शुरू नहीं किया जा सकता है। यह ध्यान दिया जाता है कि शिकायतकर्ता को आपराधिक कानून को गति देने के लिए शिकायत के साथ अपने आरोपों का समर्थन करने के लिए केवल दो गवाहों को लाना होगा। इसलिए, यह मानें कि शिकायत के मामले में आरोपी को बुलाने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश में यह प्रतिबिंबित होना चाहिए कि उसने मामले के तथ्यों और उसके लागू कानून पर अपना दिमाग लगाया है, जबकि मोहम्मद उल रहमान मामले (उपरोक्त) में यह माना जाता है कि धारा 190(1)(बी) भ०द०वि० के तहत मजिस्ट्रेट को पुलिस रिपोर्ट का लाभ मिलता है। इसलिए, पुलिस रिपोर्ट के आधार पर एक आरोपी को बुलाना एक शिकायत मामले में एक आरोपी को बुलाने की तुलना में पूरी तरह से एक अलग स्तर पर है। गुजरात राज्य बनाम अफरोज मोहम्मद हसनफट्टा

(उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यही दृष्टिकोण अपनाया गया है, जिसमें कहा गया है कि अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए सबूतों की पर्याप्तता, मामले की योग्यता और बचाव की दलीलों की जांच मुकदमे के चरण में की जानी चाहिए, न कि प्रक्रिया जारी करने के चरण में। इसके अलावा, क्या गवाहों का बयान सुनी-सुनाई बात है, क्या यह समकालीन व्याख्या द्वारा समर्थित है, और क्या यह "रेस गेस्टे" के अंतर्गत आता है, यह केवल मुकदमे के समय, पुलिस मामले में निर्धारित किया जाना है।

26. कांति भद्र शाह मामले (उपरोक्त) में, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि कोई कानूनी आवश्यकता नहीं है कि विचारण न्यायालय को आरोप तय करने का कारण दिखाते हुए एक आदेश लिखना चाहिए, पहले से ही बोझ वाले विचारण न्यायालय पर इस तरह के अतिरिक्त काम का बोझ क्यों डाला जाना चाहिए। अदालती प्रक्रियाओं में तेजी लाने के लिए सभी संभव उपायों को अपनाने और टालने योग्य देरी के कारण आने वाली सभी बाधाओं को रोकने के उपाय करने का समय आ गया है। यदि मजिस्ट्रेट को विभिन्न चरणों में विस्तृत आदेश लिखना होगा, तो विचारण न्यायालयों में कार्यवाही की धीमी प्रगति को और धीमा कर दिया जाएगा। हमें मजिस्ट्रेटों और सत्र न्यायाधीशों के कई पृष्ठों के अंतःवर्ती आदेश मिल रहे हैं। हम इस बात की मूल्यांकन कर सकते हैं कि क्या उनके समक्ष कार्यवाही को समाप्त करने के लिए ऐसा विस्तृत आदेश पारित किया गया है। लेकिन, अन्य चरणों में विस्तृत आदेश लिखना काफी अनावश्यक है, जैसे कि प्रक्रिया जारी करना, आरोपी को हिरासत में भेजना, आरोप तय करना, मुकदमे के साथ अगले चरण में भेजना। (महत्त्व सन्निविष्ट)

27. उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड बनाम मोहन मीकिन्स लिमिटेड में, स्थिति को और स्पष्ट किया गया था कि संज्ञान लेने के चरण में बोलने का आदेश पारित करना आवश्यक नहीं है। आयात और निर्यात के मुख्य नियंत्रक बनाम रोशन लाल अग्रवाल में, सर्वोच्च न्यायालय ने उस स्थिति पर विचार करके फिर से संज्ञान आदेश की वैधता और अनौचित्य का परीक्षण किया, जहां मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित आदेश इस प्रकार है:

"8.....संज्ञान लिया गया। मामला दर्ज करें। आरोपी को समन जारी करें। (एस.सी.सी. पी. 145, पैरा. 9)
और यह माना गया कि: "9.....अभियुक्त को प्रक्रिया जारी करने के चरण में, मजिस्ट्रेट को कारण दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है। (महत्व सन्निविष्ट)

27. उपरोक्त निर्णय में कांति भद्र शाह (उपरोक्त), और उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (उपरोक्त) का भी उल्लेख किया गया था।

28. जगदीश राम बनाम राजस्थान राज्य में, सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से दोहराया कि अभियुक्त को प्रक्रिया जारी करने के चरण में, मजिस्ट्रेट को कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है। हालांकि, उसे संतुष्ट होना होगा कि पर्याप्त आधार है, और ऐसी संतुष्टि यह नहीं है कि दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं।

29. इसी तरह, सुनील भारती मित्तल मामले (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने माना है कि किसी अपराध का संज्ञान लेना और अपराधी पर मुकदमा चलाना दो अलग-अलग चीजें हैं। संहिता की धारा 190 में किसी अपराध का संज्ञान लेने और अपराधियों से निपटने का अधिकार नहीं है। इसलिए, शिकायत दर्ज होने या प्राथमिकी दर्ज होने पर किसी अपराधी का पता नहीं चलने या उसका नाम न होने पर भी संज्ञान लिया जा सकता है। उनके नाम जांच के दौरान या बाद में सामने आ सकते हैं।

30. यदि प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट में पुलिस द्वारा किसी व्यक्ति को आरोपी के रूप में नामित नहीं किया गया है, तो अदालत अपराध का संज्ञान लेने और आरोपी को बुलाने में उचित होगी, यदि उसे लगता है कि जांच के दौरान एकत्र किए गए सबूत और सामग्री अभियुक्त के अभियोजन को सही ठहराती है। यहां तक कि अगर व्यक्ति को आरोप में आरोपी के रूप में शामिल नहीं किया गया है, तो उसे संहिता की धारा 190 के तहत संज्ञान लेने के चरण में, बिना मुकदमे के कोड 79 की धारा 319 के चरण तक पहुंचने की प्रतीक्षा किए बिना, बुलाया जा सकता है।

31. **गुजरात राज्य बनाम अफरोज मोहम्मद हसनफट्टा** में, दूसरे पूरक आरोप पत्र पर संज्ञान लेने और प्रतिपक्षी अफरोज हसनफट्टा को समन जारी करने के आदेश को चुनौती दी गई थी, जो इस प्रकार है:
"मैं आरोपी के खिलाफ जारी किए जाने वाले समन की धारा 420, 465, 467, 467, 468 आदि के अपराध के लिए आरोपपत्र / शिकायत पर विचार करता हूं।

31.1 उपरोक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जहां तक पुलिस रिपोर्ट के आधार पर संज्ञान लेने का संबंध है, मजिस्ट्रेट को जांच के दौरान पुलिस द्वारा एकत्र किए गए आरोप पत्र, गवाहों के बयान और अन्य साक्ष्यों का लाभ है। विवेचनाधिकारी/थानाध्यक्ष दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुपालन में और जांच के नियमों के अनुसार की गई जांच के दौरान आवश्यक साक्ष्य एकत्र करते हैं। इस प्रकार एकत्र किए गए साक्ष्य और सामग्रियों को विवेचनाधिकारी के स्तर पर उठाया जाता है, और उसके बाद, एक आरोप पत्र दायर किया जाता है। उपयुक्त मामलों में, आरोप पत्र दायर करने से पहले लोक अभियोजक की राय भी ली जाती है। इस प्रकार अदालत को पुलिस द्वारा उसके सामने रखी गई सामग्री के साथ-साथ पुलिस रिपोर्ट का लाभ मिलता है।

31.2 धारा 190(1)(बी) भ०द०वि० के तहत, जहां मजिस्ट्रेट ने पुलिस रिपोर्ट पर किसी अपराध का संज्ञान लिया है और मजिस्ट्रेट संतुष्ट है कि कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है, मजिस्ट्रेट प्रक्रिया जारी करने का निर्देश देता है। पुलिस रिपोर्ट के आधार पर किसी अपराध का संज्ञान लेने के मामले में, मजिस्ट्रेट को प्रक्रिया जारी करने के लिए कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है। पुलिस रिपोर्ट पर स्थापित मामलों में, मजिस्ट्रेट को केवल आरोपी को समन जारी करने का आदेश पारित करने की आवश्यकता होती है। अभियुक्त को समन जारी करने का ऐसा आदेश मजिस्ट्रेट की संतुष्टि के अधीन, पुलिस रिपोर्ट और अन्य दस्तावेजों पर विचार करने और खुद को संतुष्ट करने के अध्यधीन आधारित है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

31.3 पुलिस रिपोर्ट के आधार पर एक मामला, आरोपी को समन जारी करने के चरण में, मजिस्ट्रेट को कोई कारण दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है। यदि आरोप पत्र कानून द्वारा वर्जित है या जहां अधिकार क्षेत्र की कमी है या जब आरोप पत्र खारिज कर दिया जाता है या फाइल पर नहीं लिया जाता है, तो मजिस्ट्रेट को आरोप पत्र की अस्वीकृति और इसे फाइल पर नहीं लेने के लिए अपने कारणों को दर्ज करना आवश्यक है।

31.4 पूर्वगामी तर्क के आधार पर, उपरोक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि धारा 420, 465, 467, 468, 471, 477ए, 120बी भ०द०वि० के तहत पुलिस द्वारा दायर आरोप पत्र के आधार पर किए गए अपराध का संज्ञान वैध था, और आदेश जारी करने की प्रक्रिया, हालांकि इसने मजिस्ट्रेट द्वारा कारणों को स्पष्ट रूप से दर्ज नहीं किया था, किसी भी कानूनी दुर्बलता से पीड़ित नहीं था।

32. डॉ. डी.वाई चंद्रचूड़ ने प्रदीप एस. वोडेयार बनाम कर्नाटक राज्य में उच्चतम न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ के लिए बोलते हुए महमूद उल रहमान (उपरोक्त) का उल्लेख किया है और उस पर भरोसा किया है;

"85. इसके अलावा, कुरियन जोसेफ ने दो-न्यायाधीशों की पीठ के लिए लिखते हुए धारा 190(1)(ए) और 190(1)(बी) के बीच अंतर पर स्पष्ट रूप से ध्यान दिया है: ***(महमूद उल रहमान मामला [महमूद उल रहमान बनाम काजिर मोहम्मद टुंडा, (2015) 12 एस.सी.सी. 420: (2016) 1 एस.सी.सी. (क्रि) 124], एस.सी.सी. पी. 430****, प्रस्तर-21)*

"21. धारा 190(1)(बी) भ०द०वि० के तहत, मजिस्ट्रेट को पुलिस रिपोर्ट का लाभ मिलता है और धारा 190(1)(सी) भ०द०वि० के तहत, उसके पास अपराध करने की जानकारी या ज्ञान होता है। लेकिन धारा 190(1)(ए) भ०द०वि० के तहत, उनके सामने केवल एक शिकायत है। इसलिए संहिता निर्दिष्ट करती है कि "तथ्यों की शिकायत जो इस तरह के अपराध का गठन करती है"। इसलिए, यदि शिकायत, ऊपरी तौर पर, किसी भी अपराध के कमीशन/गठन का खुलासा नहीं करती है, तो मजिस्ट्रेट भ०द०वि० की धारा 190(1)(ए) के तहत संज्ञान नहीं लेगा। शिकायत को केवल खारिज कर दिया जाना है।

****

"91. ***पेप्सी फूड्स लिमिटेड [पेप्सी फूड्स लिमिटेड बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट, (1998) 5 एस.सी.सी. 749: 1998 एस.सी.सी. (क्रि) 1400]*** *में निर्णय को इस आधार पर अलग करते हुए कि यह एक शिकायत मामले में संज्ञान लेने से संबंधित है,* ***अफरोज मोहम्मद हसनफट्टा मामले [गुजरात राज्य बनाम अफरोज मोहम्मद हसनफत्ता, (2019) 20 एस.सी.सी. 539: (2020) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 876]*** *में न्यायालय ने पुलिस रिपोर्ट के आधार पर संज्ञान के मामले में अवधारित किया था, मजिस्ट्रेट को सामग्री का अवलोकन करने का लाभ है, उसे कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है: (****अफरोज मोहम्मद हसनफट्टा मामला [गुजरात राज्य बनाम अफरोज मोहम्मद हसनफत्ता, (2019) 20 एस.सी.सी. 539: (2020) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 876], एस.सी.सी. पी. 552, प्रस्तर-23****)"*

"23. जहां तक पुलिस रिपोर्ट के आधार पर संज्ञान लेने का संबंध है, मजिस्ट्रेट को जांच के दौरान पुलिस द्वारा एकत्र किए गए आरोप-पत्र, गवाहों के बयान और अन्य साक्ष्यों का लाभ मिलता है। विवेचनाधिकारी/थानाध्यक्ष दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुपालन में और जांच के नियमों के अनुसार की गई जांच के दौरान आवश्यक साक्ष्य एकत्र करते हैं। इस प्रकार एकत्र किए गए साक्ष्यों और सामग्रियों की विवेचनाधिकारी के स्तर पर की जाती है और उसके बाद आरोप पत्र दायर किया जाता है। उपयुक्त मामलों में, आरोप पत्र दायर करने से पहले लोक अभियोजक की राय भी ली जाती है। इस प्रकार अदालत को पुलिस द्वारा उसके सामने रखी गई सामग्री के साथ-साथ पुलिस रिपोर्ट का लाभ मिलता है। धारा 190(1)(बी) भ०द०वि० के तहत, जहां मजिस्ट्रेट ने पुलिस रिपोर्ट पर किसी अपराध का संज्ञान लिया है और मजिस्ट्रेट संतुष्ट है कि कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है, मजिस्ट्रेट प्रक्रिया जारी करने का निर्देश देता है। पुलिस रिपोर्ट के आधार पर किसी अपराध का संज्ञान लेने के मामले में, मजिस्ट्रेट को प्रक्रिया जारी करने के लिए कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है। पुलिस रिपोर्ट पर स्थापित मामलों में, मजिस्ट्रेट को केवल आरोपी को समन जारी करने का आदेश पारित करने की आवश्यकता होती है। अभियुक्त को समन जारी करने का ऐसा आदेश मजिस्ट्रेट की संतुष्टि पर आधारित है, पुलिस रिपोर्ट और अन्य दस्तावेजों पर विचार करता है और खुद को संतुष्ट करता है कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है। पुलिस रिपोर्ट के आधार पर मामले में, आरोपी को समन जारी करने के चरण में, मजिस्ट्रेट को कोई कारण दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है। यदि आरोप पत्र कानून द्वारा वर्जित है या जहां अधिकार क्षेत्र की कमी है या जब आरोप-पत्र खारिज कर दिया जाता है या फाइल पर नहीं लिया जाता है, तो मजिस्ट्रेट को आरोप-पत्र की अस्वीकृति और इसे फाइल पर नहीं लेने के लिए अपने कारणों को दर्ज करना आवश्यक है। (महत्व सन्निविष्ट)

*"92. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि विशेष न्यायाधीश ने धारा 173 भ०द०वि० के तहत प्रस्तुत एक रिपोर्ट के आधार पर संज्ञान लिया, न कि एक निजी शिकायत के आधार पर। इसलिए, मामला पूरी तरह से **अफरोज मोहम्मद हसनफट्टा [गुजरात राज्य बनाम अफरोज मोहम्मद हसनफत्ता, (2019)20 एस.सी.सी. 539: (2020)3 एस.सी.सी. (क्रि) 876]** में निर्णय द्वारा आच्छादित किया गया है। विशेष न्यायाधीश ने अपराध का संज्ञान लेने से पहले प्राथमिकी, गवाहों के बयानों और संबंधित दस्तावेजों पर ध्यान दिया। इस पृष्ठभूमि में, विशेष न्यायाधीश के आदेश को इस आधार पर गलत ठहराना दूर की कौड़ी होगी कि यह संज्ञान लेने के लिए विस्तृत कारण नहीं बताता है या यह दिमाग के आवेदन का संकेत नहीं देता है। इसलिए, इस मामले के तथ्यों में, संज्ञान लेने का आदेश गलत नहीं है।*

33. उपरोक्त विचार-विमर्श के आधार पर, इस न्यायिक विसंगति के अंतर्निहित कारणों को इसके बाद उल्लिखित कारकों के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है: (ए) एक प्रभावी और निरंतर प्रशिक्षण कार्यक्रमों की अनुपस्थिति, और न्यायिक अधिकारियों के लिए उनके न्यायिक भागफल को बढ़ाने के लिए जागरूकता, (बी) न्यायाधीश अदालतों में अपनाई जाने वाली पुरानी मानक कानूनी प्रक्रियाओं पर भरोसा कर सकते हैं, (सी) मौजूदा प्रशिक्षण सत्र, यदि कोई हो, तो अक्सर प्रति-कार्यात्मक तरीके से अवधारित किया जाता है, (डी) गैर-कंप्यूटर युग में पूर्व-प्रकार के न्यायिक प्रारूपों का व्यापक उपयोग, मामलों का भारी बैकलॉग- यह दबाव एक ऐसी संस्कृति को

बढ़ावा देता है जहां दक्षता न्यायिक सटीकता पर दायर की लेती है, जिसके परिणामस्वरूप बार-बार कानूनी त्रुटियां होती हैं, और संज्ञानात्मक आदेश का मसौदा तैयार करने और जारी करने के लिए अदालत के कर्मचारियों पर विचारण न्यायालय के न्यायाधीशों की अत्यधिक निर्भरता, और (ई) न्याय सुनिश्चित करने के लिए अपने कर्तव्य के प्रति कुछ न्यायिक अधिकारियों की उदासीनता और व्यक्तिगत जवाबदेही की अनुपस्थिति आदेश पारित करने में एक नियमित और आकस्मिक दृष्टिकोण की ओर ले जाती है।

34. न्यायाधीश, अदालत के कर्मचारियों पर समय के निरंतर या सरासर निर्भरता के कारण, कभी-कभी यांत्रिक रूप से मसौदा सम्मन आदेशों पर हस्ताक्षर कर सकते हैं, उन्हें विवरण न्यायिक जांच के अधीन किए बिना। यह अभ्यास संज्ञान आदेशों की ओर ले जाता है जो अक्सर अच्छी तरह से स्थापित कानूनी सिद्धांतों का उल्लंघन करते हैं, संज्ञान आदेशों में जो अच्छी तरह से स्थापित कानूनी सिद्धांतों का खंडन करते हैं, क्योंकि लिपिक कर्मचारी न तो कानूनी रूप से प्रशिक्षित होते हैं और न ही न्यायिक तर्क करने के अधिकार के साथ निहित होते हैं।

35. ऊपर चिह्नित मुद्दे को हल करने के लिए, न्यायाधीशों को बाध्यकारी न्यायिक मिसाल का अनुपालन सुनिश्चित करते हुए, आदेशों की समीक्षा करने और उन्हें अंतिम रूप देने के लिए निरंतर प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। संवैधानिक न्यायालय अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा कड़ाई से अनुपालन के लिए समय-समय पर निर्णयों/आदेशों को परिचालित करते रहे हैं लेकिन आदेशों में वांछित अनुपालन नहीं देखा जाता है। प्रक्रियात्मक आदेशों का मसौदा तैयार करने में त्रुटियों को रोकने के लिए कार्यालय के कर्मचारियों को बुनियादी कानूनी प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। विचारण जजों को उन पर हस्ताक्षर करने से पहले सभी संज्ञान आदेशों की गंभीर समीक्षा करके अधिक सतर्कता बरतनी चाहिए। प्रभावी पर्यवेक्षी तंत्र बाध्यकारी फैसलों का अनुपालन सुनिश्चित कर सकता है और व्यवस्थित त्रुटियों को ठीक कर सकता है।

36. व्यवस्थित अनियंत्रित दोष ने न्याय के गंभीर गर्भपात को जन्म दिया और संवैधानिक न्यायालयों पर अनावश्यक मुकदमेबाजी का बोझ डाल दिया।

37. बाध्यकारी और प्रेरक राष्ट्रपतियों का बड़े पैमाने पर पुनर्विश्लेषण करना और पूर्व आधिकारिक निर्णयों पर भरोसा करना, मैं कानून को इस प्रकार सारांशित करता हूं;

37.1 संज्ञान लेने में कोई औपचारिक कार्रवाई शामिल नहीं है, या वास्तव में किसी भी प्रकार की कार्रवाई शामिल नहीं है, लेकिन जैसे ही एक मजिस्ट्रेट, इस तरह, एक अपराध के संदिग्ध कमीशन/गठन के लिए अपने दिमाग को लागू करता है, के रूप में होता है:

37.2 जब मजिस्ट्रेट लिखता है कि "(ए) आरोप पत्र और आरोप पत्र के साथ संलग्न दस्तावेजों के अवलोकन पर, या (बी) संज्ञान लिया गया। मामला दर्ज करें। अभियुक्त को समन जारी करना" समन आदेश पारित करने

के उद्देश्य से पर्याप्त है। इसका अर्थ है कि विद्वान मजिस्ट्रेट या विशेष न्यायाधीश, जैसा भी मामला हो, पूरे साक्ष्य को पढ़ चुके हैं और जांच के दौरान पुलिस द्वारा एकत्र की गई गवाहों के बयान और अन्य सामग्री को पढ़ चुके हैं, और न्यायिक दिमाग का उपयोग करके कार्यालय का संज्ञान लिया है।

37.3 उल्लेख करें कि अपराध की सटीक धारा कम से कम महत्व की है, और इसलिए, जहां तक सम्मन आदेश का संबंध है, इसका कोई नकारात्मक परिणाम नहीं है।

37.4 विचारण न्यायालय पहले से ही अत्यधिक बोझ तले दबे हुए हैं और संज्ञान लेने और प्रक्रिया जारी करने, धारा 207 और 209 भ०द०वि० के अनुपालन, प्राथमिकी दर्ज करने के लिए पुलिस को निर्देश देने, आरोप तय करने आदि के चरण में विस्तृत तर्कसंगत आदेश की अपेक्षा करके उन पर और अधिक बोझ डालने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि, भ०द०वि० की धारा 260 कहती है, कोई भी भौतिक अनियमितता मुकदमे को दूषित नहीं करेगी।

37.5 फिर भी, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि इससे पहले कि एक मजिस्ट्रेट को किसी अपराध का संज्ञान लेने के लिए कहा जा सकता है, यह जरूरी है कि उसने आरोप का ध्यान लिया हो और शिकायत में या पुलिस रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों या पुलिस रिपोर्ट के अलावा किसी अन्य स्रोत से प्राप्त जानकारी पर अपना दिमाग लगाया हो, जैसा भी मामला हो सकता है और वहां दायर की गई सामग्री। इस बात पर थोड़ा जोर देने की आवश्यकता है कि यह केवल तभी होता है जब मजिस्ट्रेट अपने दिमाग का प्रयोग करता है और संतुष्ट हो जाता है कि आरोप, यदि साबित हो जाते हैं, तो एक अपराध का गठन किया जाएगा और कथित अपराधी के खिलाफ कार्यवाही शुरू करने का निर्णय लिया जाएगा, कि यह सकारात्मक रूप से कहा जा सकता है कि संज्ञान अपराध के संबंध में है, न कि अपराधी के संबंध में और ये कि उसने अपराध का संज्ञान लिया है।

37.6 संज्ञान लेने का अर्थ है "के बारे में जागरूक होना और जब किसी अदालत या न्यायाधीश के संदर्भ में उपयोग किया जाता है, तो यह न्यायिक रूप से नोट लेने का अर्थ है"।

37.7 धारा 191(1)(बी) भ०द०वि० के तहत मजिस्ट्रेट को पुलिस रिपोर्ट का लाभ है और धारा 190(1)(सी) भ०द०वि० के तहत, उसके पास अपराध के कमीशन/गठन की जानकारी या ज्ञान है। लेकिन, धारा 190(1)(ए) भ०द०वि० के तहत, उसके सामने केवल एक शिकायत है। इसलिए संहिता निर्दिष्ट करती है कि "तथ्यों की शिकायत जो ऐसे अपराधों का गठन करती है"। इसलिए, यदि शिकायतकर्ता, प्रत्यक्ष रूप से, किसी भी अपराध के कमीशन/गठन का खुलासा नहीं करता है, तो मजिस्ट्रेट धारा 190(1)(ए) भ०द०वि० के तहत संज्ञान नहीं लेगा। शिकायत को केवल अस्वीकार किया जाना है।

37.8 संज्ञान लेने में किसी भी प्रकार की कोई औपचारिक कार्रवाई शामिल नहीं है। यह तब होता है जब मजिस्ट्रेट किसी अपराध के संदिग्ध कमीशन/गठन पर अपना दिमाग लगाता है।

37.9 दंड प्रक्रिया संहिता के लिए धारा 203 भ०द०वि० के तहत एक आख्यापक आदेश की आवश्यकता होती है, जब शिकायत खारिज कर दी जाती है, तो भी कारणों को केवल संक्षेप में बताने की आवश्यकता होती है।

38. जबकि रबर स्टैम्प या मुद्रित प्रोफार्मा की सामग्री कानून के अनुसार हो सकती है, लेकिन ऐसे पूर्व-मुद्रित प्रारूपों में अभियुक्त के नाम और वैधानिक प्रावधानों को सम्मिलित करना अनुचित है। मुझे खेद है कि इस प्रथा से यह परेशान करने वाली धारणा पैदा होती है कि मजिस्ट्रेट ने, न्यायिक दिमाग लगाना तो दूर की बात है, मामले की फाइल का भी अवलोकन नहीं किया है। तदनुसार, सभी विद्वान मजिस्ट्रेटों और विशेष न्यायाधीशों को तत्काल प्रभाव से संज्ञान लेने और समन आदेश जारी करने के उद्देश्य से "प्री-प्रिंटेड रबर स्टैम्प" या "प्री-टाइप किए गए प्रोफार्मा" का उपयोग रोकने का निर्देश दिया जाता है।

39. न्यायालय श्री विमलेंदु त्रिपाठी, एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) द्वारा दी गई बहुमूल्य सहायता को स्वीकार करता है और उसकी गहराई से मूल्यांकन करता है, जिनकी व्यावहारिक प्रस्तुतियाँ और अच्छी तरह से शोध किए गए तर्कों ने उपरोक्त आवेदनों में उठाए गए मुद्दे के न्यायसंगत और उचित निर्णय में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

40. आवेदनों में इस न्यायालय की कोई अनुग्रह दरकार नहीं है, क्योंकि आक्षेपित सम्मन आदेश में कोई भौतिक अनियमितता नहीं पाई गई है। तदनुसार, प्रस्तुत आवेदन, सभी जुड़े आवेदनों के साथ, उपरोक्त शर्तों में **खारिज कर** दिया जाता है, जिसमें आवेदकगण को धारा 207 भ०द०वि० के अनुपालन के बाद उचित चरण में योग्यता के आधार पर नए आवेदन दाखिल करने की स्वतंत्रता दी जाती है। उस स्तर पर, आवेदकगण को पूरी केस डायरी तक पहुंच का लाभ मिलेगा, जिससे वे, यदि सलाह दी जाती है, आरोप-पत्र को रद्द करने की मांग करने के लिए उचित आधार आगे बढ़ा सकेंगे।

41. निबंधक (अनुपालन) को इस न्यायालय के महानिबंधक के माध्यम से इस आदेश की एक प्रति राज्य के सभी विद्वान जिला न्यायाधीशों को भेजने का निर्देश दिया जाता है। जिला न्यायाधीश, बदले में, यह सुनिश्चित करेंगे कि इस आदेश की एक प्रति सभी न्यायिक अधिकारियों को उनके संबंधित न्यायाधीशों के भीतर परिचालित की जाए। इसके अतिरिक्त, इस आदेश की एक प्रति निदेशक, न्यायिक प्रशिक्षण और अनुसंधान संस्थान (जे.टी.आर.आई.), लखनऊ, उत्तर प्रदेश को अभिलेखों और भविष्य के संदर्भ के लिए भेजी जाएगी।

(2025) 5 ILRA 1324

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम

रिट-ए संख्या 2717 वर्ष 2004

जवाहर लाल गुप्ता **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
विकास सिंह, जे.पी. त्रिपाठी

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

अनुवादित

क. सेवा कानून - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 - नियम 3 और 7 - अनुशासनात्मक कार्यवाही - दंड - परिनिंदा - प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत - अनुप्रयोग - गलत रिपोर्ट प्रस्तुत करने का आरोप लगाया गया था - हालाँकि, प्रतिवादी ने 17 वर्षों के बाद कार्यवाही शुरू की - जाँच रिपोर्ट में ऐसी किसी तारीख का उल्लेख नहीं है जो जाँच अधिकारी द्वारा तय की गई हो, जब याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई के लिए बुलाया गया था - जाँच अधिकारी दस्तावेजों की फोटोकॉपी को साबित करने के लिए किसी भी गवाह की परीक्षा करने में विफल रहा - प्रभाव - अभिनिर्धारित, बड़ा दंड लगाने के लिए 1999 के नियमों के नियम 7 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का सख्ती से पालन करना अनिवार्य है। नियम 7 के तहत निर्धारित प्रक्रिया प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का समावेशन ही है - आगे अभिनिर्धारित, जाँच कार्यवाही 1999 के नियमों के नियम 7 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन न करने के साथ-साथ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के कारण दूषित है। (पैरा 20 और 57)

ख. सेवा कानून - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 - नियम 9 - अनुशासनात्मक कार्यवाही - दंड - परिनिंदा - प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत - अभ्यावेदन पर विचार न करना - प्रभाव - विवेक का प्रयोग न होना कैसे परिलक्षित होता है - अभिनिर्धारित, निर्णय के लिए कारण बताना सुशासन के मूल सिद्धांतों में से एक है। यह निर्णय लेने वाले की मनमानी के खिलाफ एक सुरक्षा कवच के रूप में कार्य करता है - विवेक का प्रयोग केवल निर्णय में दिए गए कारणों से परिलक्षित होता है। कारणों

से समर्थित आदेश यह सुनिश्चित करता है कि निर्णय लेने वाले प्राधिकारी/न्यायालय ने सुनवाई के समय प्रस्तुत तर्कों और साक्ष्यों पर ईमानदारी से विचार किया है - जाँच अधिकारी के निष्कर्षों के विरुद्ध याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर विचार न करना, 1999 के नियमों के नियम 9 के उप-नियम 4 का उल्लंघन है और साथ ही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का भी उल्लंघन है। (पैरा 37, 39 और 57)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>

1.मोहम्मद यूनुस खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; (2010) 10 एससीसी 539

2. उत्तरांचल राज्य बनाम खड़क सिंह; 2008 (8) एससीसी 236

3. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा; 2010 (2) एससीसी 772

4. रिट याचिका संख्या 1126 वर्ष 2011; प्रज्ञेश मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

5. राम रेखा सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2014 (9) एडीजे 425 (डीबी)

6. महेश नारायण गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2011(5) एडीजे 177

7. मोहम्मद यूनुस खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; (2010) 10 एससीसी 539

8. उत्तरांचल राज्य बनाम खड़क सिंह; 2008 (8) एससीसी 236

9. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा; 2010 (2) एससीसी 772

10. रिट याचिका संख्या 1126 वर्ष 2011; प्रज्ञेश मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; निर्णय तिथि 17.08.2012

11. राम रेखा सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2014 (9) एडीजे 425 (डीबी)

12. महेश नारायण गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2011(5) एडीजे 177

13. अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, महानदी कोलफील्ड्स लिमिटेड बनाम रवींद्रनाथ चौबे; (2020) 18 एससीसी 71

14. ब्रीन बनाम ए.ई.यू.; (1971) 2 क्यूबी 175

15. जी. वल्लिकुमारी बनाम आंध्र एजुकेशन सोसाइटी एवं अन्य; (2010) 2 एससीसी 497

16. रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक; 2009 (3) एससीसी 570

17. मध्य प्रदेश राज्य बनाम बनी सिंह एवं अन्य; 1990 (सप्लीमेंट्री) एससीसी 738

18. आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एन. राधाकिशन; (1998) 4 एससीसी 154

19. पी.वी. महादेवन बनाम एम.डी., टी.एन. हाउसिंग बोर्ड; (2005) 6 एससीसी 636

20. यूको बैंक एवं अन्य बनाम राजेंद्र शंकर शुक्ला; (2018) 14 एससीसी 92

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम द्वारा पारित)

1. यह रिट याचिका उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करने हेतु दायर की गई है, जिसके द्वारा दिनांक 23.02.2004 के आक्षेपित आदेश (रिट याचिका का अनुलग्नक संख्या 1) को रद्द किया जा सके।

2. इस मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को 16.05.1973 को आपूर्ति निरीक्षक के पद पर नियुक्त किया गया था। वर्ष 1984 में, याचिकाकर्ता कानपुर में आपूर्ति निरीक्षक के रूप में तैनात था। आयुक्त, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति, उत्तर प्रदेश - प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दिनांक 05.04.1999 को पारित आदेश के माध्यम से, याचिकाकर्ता को निलंबित कर दिया गया था। क्षेत्रीय खाद्य नियंत्रक, झांसी को दिनांक 05.04.1999 के आदेश द्वारा जांच अधिकारी नियुक्त किया गया था। क्षेत्रीय खाद्य नियंत्रक, झांसी ने दिनांक 21.01.2000 को याचिकाकर्ता को दो आरोपों वाली आरोप-पत्र जारी की। याचिकाकर्ता को निर्देश दिया गया कि वह आरोप-पत्र प्राप्त होने की तिथि से दो सप्ताह के भीतर अपना उत्तर प्रस्तुत करे और, यदि निर्धारित समय सीमा के भीतर याचिकाकर्ता द्वारा कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया जाता है, तो यह मान लिया जाएगा कि याचिकाकर्ता को इस मामले में कुछ नहीं कहना है। आरोप-पत्र प्राप्त करने के बाद, याचिकाकर्ता ने 06.04.2000 को जांच अधिकारी को एक पत्र लिखा, जिसमें उल्लेख किया कि आरोप-पत्र याचिकाकर्ता को 03.04.2000 को प्राप्त हुआ था और चूंकि मामला 17 साल पुराना है, इसलिए वह निर्धारित समय सीमा के भीतर अपना उत्तर प्रस्तुत करने का प्रयास करेगा या अधिक समय के लिए अनुरोध करेगा। इसके बाद, याचिकाकर्ता द्वारा 11.04.2000 को जांच अधिकारी को एक और पत्र प्रस्तुत किया गया, जिसमें उनसे 11.04.2000 के पत्र में उल्लिखित दस्तावेज उपलब्ध कराने का अनुरोध किया गया, ताकि वह आरोप-पत्र का प्रभावी उत्तर दे सके। दिनांक 17.04.2000 को, याचिकाकर्ता ने एक और पत्र प्रस्तुत कर उत्तर देने के लिए दो सप्ताह का अतिरिक्त समय मांगा और यह भी अनुरोध किया कि 11.04.2000 के पत्र में उल्लिखित दस्तावेज याचिकाकर्ता को उपलब्ध कराए जाएं। पुनः 02.05.2000 को, याचिकाकर्ता ने अनुरोध किया कि 11.04.2000 के पत्र में संदर्भित दस्तावेज याचिकाकर्ता को उपलब्ध कराए जाएं और चूंकि उत्तर प्रस्तुत करने की समय-सीमा 02.05.2000 को समाप्त हो रही है, इसलिए उसे अपना उत्तर प्रस्तुत करने के लिए एक माह का अतिरिक्त समय दिया जाए। जांच अधिकारी द्वारा दिनांक 10.05.2000 को पारित आदेश के माध्यम से, याचिकाकर्ता को अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने के लिए पंद्रह दिन का समय इस शर्त के साथ दिया गया कि, यदि याचिकाकर्ता द्वारा स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया जाता है, तो दस्तावेजों के आधार पर जांच रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी जाएगी। दिनांक 24.05.2000 को, याचिकाकर्ता ने अपना उत्तर प्रस्तुत करते हुए अपने विरुद्ध लगाए गए सभी आरोपों से इनकार किया और आरोपों के संबंध में अपना स्पष्टीकरण भी दिया। अपने उत्तर के साथ, याचिकाकर्ता ने अपने स्पष्टीकरण के समर्थन में दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में प्रेम नारायण गुप्ता का 23.05.2000 का शपथ-पत्र, कस्तूरी लाल का 23.05.2000 का शपथ-पत्र और सुरेंद्रजीत सिंह का 23.05.2000 का शपथ-पत्र प्रस्तुत किया। दिनांक 24.06.2000 के पत्र द्वारा, याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई के लिए 04.07.2000 को जांच अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया गया। 04.07.2000 को, याचिकाकर्ता व्यक्तिगत सुनवाई के लिए जांच अधिकारी के समक्ष उपस्थित हुआ, लेकिन उस दिन जांच पूरी नहीं हो सकी। 11.07.2000 को, याचिकाकर्ता ने एक आवेदन के साथ अपने मामले

के समर्थन में कुछ दस्तावेज प्रस्तुत किए। दिनांक 30.10.2000 के आदेश द्वारा, अनुशासनात्मक प्राधिकारी यानी प्रतिवादी संख्या 2 ने जांच अधिकारी की दिनांक 21.08.2000 की रिपोर्ट के संबंध में याचिकाकर्ता से जवाब मांगा। दिनांक 30.10.2000 के आदेश के साथ, याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट की प्रतिलिपि उपलब्ध कराई गई, जिसे जांच अधिकारी द्वारा 21.08.2000 को प्रस्तुत किया गया था। जांच रिपोर्ट की प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 11 के रूप में संलग्न है। 12.12.2000 को, याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा जारी 30.10.2000 के नोटिस का अपना उत्तर प्रस्तुत किया। प्रतिवादी संख्या 2 ने 23.07.2001 के आदेश द्वारा निम्नलिखित दंड अधिरोपित किए:-

i) याचिकाकर्ता को उसके प्रारंभिक मूल वेतन पर प्रत्यावर्तित कर दिया गया और उसे एक निंदा प्रविष्टि भी दी गई।

दिनांक 23.07.2001 के आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 1 के समक्ष अपील दायर की, याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया गया और प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दिया गया दिनांक 23.07.2001 का दंड आदेश निरस्त कर दिया गया। दिनांक 23.02.2004 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता को स्थायी रूप से दो वार्षिक वेतन वृद्धियों को रोकने और एक निंदा प्रविष्टि का दंड दिया गया। अतः, यह वर्तमान रिट याचिका प्रस्तुत है।

3. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आक्षेपित आदेश को चुनौती देते हुए निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए गए हैं:

i. पूरी जांच कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के साथ-साथ 'उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999' (जिसे आगे 'नियमावली, 1999' कहा गया है) के नियम 7 और 9 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन न करने के कारण दूषित थी;

ii. याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप पुराने थे, क्योंकि कथित रिपोर्ट याचिकाकर्ता द्वारा वर्ष 1983 में प्रस्तुत की गई थी, जबकि आरोप-पत्र याचिकाकर्ता को 17 वर्षों के अंतराल के बाद वर्ष 2000 में जारी किया गया था;

iii. अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने 'नियमावली, 1999' के नियम 9 के उप-नियम 4 का उल्लंघन करते हुए बड़ा दंड अधिरोपित करने का आदेश पारित किया था; और

iv. अंत में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता पर लगाया गया दंड अत्यधिक था।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों का खंडन करते हुए, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि जांच कार्यवाही पूरी तरह से 'नियमावली, 1999' के नियम 7 के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करते हुए की गई थी। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने 'नियमावली, 1999' के नियम 9 के उप-नियम 4 के अनुसार याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर पर विचार करने के बाद ही दंड अधिरोपित किया है। अधिरोपित दंड अत्यधिक नहीं है और विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के इस तर्क का भी खंडन किया है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप पुराने हैं।

5. प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार करने से पहले, 'उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999' में निहित प्रावधानों को देखना उचित होगा।

6. 'उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999' का नियम 3 बड़े दंडों का प्रावधान करता है, जो इस प्रकार उद्धृत हैं:-

".....बड़े दंड:

(i) संचयी प्रभाव के साथ वेतन वृद्धियों को रोकना;

(ii) निचले पद या ग्रेड या समय-मान या समय-मान में निचले स्तर पर अवनति;

(iii) सेवा से हटाना, जो भविष्य के रोजगार के लिए अयोग्य नहीं ठहराता;

(iv) सेवा से बर्खास्तगी, जो भविष्य के रोजगार के लिए अयोग्य ठहराती है।

स्पष्टीकरण - इस नियम के अर्थ के अंतर्गत निम्नलिखित दंड नहीं माने जाएंगे, अर्थात्:

(I) किसी सरकारी सेवक द्वारा विभागीय परीक्षा उत्तीर्ण करने में विफल रहने या सेवा को नियंत्रित करने वाले नियमों या आदेशों के अनुसार किसी अन्य शर्त को पूरा करने में विफल रहने पर वेतन वृद्धि को रोकना;

(ii) कार्यक्षमता अवरोध को पार करने के लिए उपयुक्त न पाए जाने के कारण वेतन के समय-मान में कार्यक्षमता अवरोध पर रोक;

(iii) परिवीक्षा पर नियुक्त किसी व्यक्ति को नियुक्ति की शर्तों या ऐसी परिवीक्षा को नियंत्रित करने वाले नियमों और आदेशों के अनुसार परिवीक्षा अवधि के दौरान या अंत में प्रत्यावर्तित करना;

(iv) परिवीक्षा पर नियुक्त किसी व्यक्ति की सेवा को सेवा की शर्तों या ऐसी परिवीक्षा को नियंत्रित करने वाले नियमों और आदेशों के अनुसार परिवीक्षा अवधि के दौरान या अंत में समाप्त करना।"

7. बड़े दंड अधिरोपित करने की प्रक्रिया नियमावली, 1999 के नियम 7 के अंतर्गत दी गई है और उसे इस प्रकार उद्धृत किया गया है:

"7. बड़े दंड अधिरोपित करने की प्रक्रिया -

किसी सरकारी सेवक पर कोई भी बड़ा दंड अधिरोपित करने से पहले, निम्नलिखित तरीके से एक जांच की जाएगी:

(i) अनुशासनात्मक प्राधिकारी स्वयं आरोपों की जांच कर सकता है या अपने अधीनस्थ किसी प्राधिकारी को आरोपों की जांच करने के लिए जांच अधिकारी के रूप में नियुक्त कर सकता है।

(ii) कदाचार गठित करने वाले तथ्य, जिन पर कार्रवाई करने का प्रस्ताव है, उन्हें निश्चित आरोप या आरोपों के रूप में तैयार किया जाएगा जिसे आरोप-पत्र कहा जाएगा। आरोप-पत्र का अनुमोदन अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा किया जाएगा:

परंतु जहाँ नियुक्ति प्राधिकारी राज्यपाल हों, वहां संबंधित विभाग के प्रधान सचिव या सचिव, जैसा भी मामला हो, द्वारा आरोप-पत्र का अनुमोदन किया जा सकता है।

(iii) तैयार किए गए आरोप इतने सटीक और स्पष्ट होने चाहिए कि वे आरोपित सरकारी सेवक को उसके विरुद्ध तथ्यों और परिस्थितियों का पर्याप्त संकेत दे सकें। प्रस्तावित दस्तावेजी साक्ष्य और उसे सिद्ध करने

के लिए प्रस्तावित गवाहों के नाम, यदि कोई मौखिक साक्ष्य हो तो उसके साथ, आरोप-पत्र में उल्लिखित किए जाएंगे।

(iv) आरोपित सरकारी सेवक को आरोप-पत्र जारी होने की तिथि से 15 दिनों से कम न होने वाली एक निर्दिष्ट तिथि पर व्यक्तिगत रूप से अपना लिखित बचाव का कथन प्रस्तुत करने के लिए कहा जाएगा, और उसे यह बताना होगा कि क्या वह आरोप-पत्र में उल्लिखित किसी गवाह से प्रति-परीक्षा करना चाहता है और क्या वह अपने बचाव में साक्ष्य देना या प्रस्तुत करना चाहता है। उसे यह भी सूचित किया जाएगा कि यदि वह निर्दिष्ट तिथि पर उपस्थित नहीं होता है या लिखित कथन दाखिल नहीं करता है, तो यह मान लिया जाएगा कि उसके पास प्रस्तुत करने के लिए कुछ नहीं है और जांच अधिकारी एकपक्षीय रूप से जांच पूरी करने के लिए आगे बढ़ेगा।

(v) आरोप-पत्र, उसमें उल्लिखित दस्तावेजी साक्ष्यों की प्रतिलिपि तथा गवाहों की सूची और उनके बयानों (यदि कोई हों) के साथ, आरोपित सरकारी सेवक को व्यक्तिगत रूप से या आधिकारिक रिकॉर्ड में उल्लिखित पते पर पंजीकृत डाक द्वारा तामील किया जाएगा। यदि आरोप-पत्र पूर्वोक्त तरीके से तामील नहीं किया जा सका, तो आरोप-पत्र को व्यापक प्रसार वाले एक दैनिक समाचार पत्र में प्रकाशित करके तामील किया जाएगा:

परंतु जहाँ दस्तावेजी साक्ष्य अधिक मात्रा में हों, वहां आरोप-पत्र के साथ उनकी प्रतिलिपि उपलब्ध कराने के बजाय, आरोपित सरकारी सेवक को जांच अधिकारी के समक्ष उनका निरीक्षण करने की अनुमति दी जाएगी।

(vi) जहाँ आरोपित सरकारी सेवक उपस्थित होता है और आरोपों को स्वीकार कर लेता है, वहां जांच अधिकारी ऐसी स्वीकृति के आधार पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

(vii) जहाँ आरोपित सरकारी सेवक आरोपों से इनकार करता है, वहां जांच अधिकारी आरोप-पत्र में प्रस्तावित गवाहों को बुलाने और आरोपित सरकारी सेवक की उपस्थिति में उनके मौखिक साक्ष्य दर्ज करने के लिए आगे बढ़ेगा, जिसे ऐसे गवाहों से प्रति-परीक्षा करने का अवसर दिया जाएगा। पूर्वोक्त साक्ष्य दर्ज करने के बाद, जांच अधिकारी उन मौखिक साक्ष्यों को बुलाएगा और दर्ज करेगा जिन्हें आरोपित सरकारी सेवक ने अपने लिखित कथन में अपने बचाव में प्रस्तुत करने की इच्छा व्यक्त की थी:

परंतु जांच अधिकारी लिखित में दर्ज किए जाने वाले कारणों से किसी गवाह को बुलाने से मना कर सकता है।

(viii) जांच अधिकारी 'उत्तर प्रदेश विभागीय जांच (साक्षियों की उपस्थिति का प्रवर्तन और दस्तावेजों का उत्पादन) अधिनियम, 1976' के प्रावधानों के अनुसार किसी भी गवाह को साक्ष्य देने के लिए सम्मन कर सकता है या किसी व्यक्ति को अपने समक्ष दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए कह सकता है।

(ix) जांच अधिकारी सत्य का पता लगाने या आरोपों से संबंधित तथ्यों का उचित प्रमाण प्राप्त करने के उद्देश्य से, किसी भी समय किसी भी गवाह से या आरोपित व्यक्ति से कोई भी प्रश्न पूछ सकता है।

(x) जहाँ आरोपित सरकारी सेवक नोटिस की तामील होने या तिथि की जानकारी होने के बावजूद जांच में निर्धारित तिथि पर या कार्यवाही के किसी भी चरण में उपस्थित नहीं होता है, तो जांच अधिकारी एकपक्षीय रूप से जांच आगे बढ़ाएगा। ऐसे मामले में जांच अधिकारी आरोपित सरकारी सेवक की अनुपस्थिति में आरोप-पत्र में उल्लिखित गवाहों के बयान दर्ज करेगा।

(xi) अनुशासनात्मक प्राधिकारी, यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझता है, तो आरोप के समर्थन में अपनी ओर से मामले को प्रस्तुत करने के लिए किसी सरकारी सेवक या विधि व्यवसायी को "प्रस्तुतकर्ता अधिकारी" के रूप में नियुक्त कर सकता है।

(xii) सरकारी सेवक अपनी ओर से मामले को प्रस्तुत करने के लिए किसी अन्य सरकारी सेवक की सहायता ले सकता है, लेकिन वह इस उद्देश्य के लिए किसी विधि व्यवसायी को नियुक्त नहीं कर सकता है, जब तक कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा नियुक्त प्रस्तुतकर्ता अधिकारी स्वयं एक विधि व्यवसायी न हो या अनुशासनात्मक प्राधिकारी मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ऐसा करने की अनुमति न दे:

परंतु यह नियम निम्नलिखित मामलों में लागू नहीं होगा:

(i) जहाँ किसी व्यक्ति पर ऐसे आचरण के आधार पर कोई बड़ा दंड अधिरोपित किया जाता है, जिसके कारण उसे किसी आपराधिक आरोप में दोषी ठहराया गया हो; या

(ii) जहाँ अनुशासनात्मक प्राधिकारी इस बात से संतुष्ट हो कि, लिखित में दर्ज किए जाने वाले कारणों से, इन नियमों में प्रदान की गई रीति से जांच करना व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है; या

(iii) जहाँ राज्यपाल इस बात से संतुष्ट हों कि, राज्य की सुरक्षा के हित में, इन नियमों में प्रदान की गई रीति से जांच करना समीचीन नहीं है।"

8. 'उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999' का नियम 9, जांच रिपोर्ट पर कार्रवाई का प्रावधान करता है। नियमावली, 1999 का नियम 9 इस प्रकार उद्धृत है:

"9. जांच रिपोर्ट पर कार्रवाई -

(1) अनुशासनात्मक प्राधिकारी, लिखित में दर्ज किए जाने वाले कारणों से, मामले को पुनः जांच के लिए उसी या किसी अन्य जांच अधिकारी के पास भेज सकता है, जिसकी सूचना आरोपित सरकारी सेवक को दी जाएगी। तदनुसार जांच अधिकारी नियम 7 के प्रावधानों के अनुसार, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निर्देशित चरण से जांच करने के लिए आगे बढ़ेगा।

(2) यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी किसी आरोप पर जांच अधिकारी के निष्कर्षों से असहमत है, तो वह उसके कारणों को लिखित में दर्ज करते हुए उस पर अपने स्वयं के निष्कर्ष अभिलिखित करेगा।

(3) यदि आरोप सिद्ध नहीं होते हैं, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आरोपित सरकारी सेवक को आरोपों से दोषमुक्त कर दिया जाएगा और उसे तदनुसार सूचित किया जाएगा;

(4) यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी, सभी या किन्हीं आरोपों पर अपने निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, इस राय का है कि आरोपित सरकारी सेवक पर नियम 3 में निर्दिष्ट कोई दंड अधिरोपित किया जाना चाहिए, तो वह जांच रिपोर्ट और उप-नियम (2) के तहत अभिलिखित अपने निष्कर्षों की एक प्रति आरोपित सरकारी सेवक को देगा और उससे अपेक्षा करेगा कि यदि वह चाहे, तो उचित निर्दिष्ट समय के भीतर अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत करे। अनुशासनात्मक प्राधिकारी, जांच से संबंधित सभी प्रासंगिक अभिलेखों और यदि कोई हो तो आरोपित सरकारी सेवक के अभ्यावेदन को ध्यान में रखते हुए, और इन नियमों के नियम 16 के प्रावधानों के अधीन,

इन नियमों के नियम 3 में उल्लिखित एक या अधिक दंड अधिरोपित करते हुए एक तर्कसंगत आदेश पारित करेगा और उसे आरोपित सरकारी सेवक को सूचित करेगा।"

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपनी दलीलों को विस्तार देते हुए प्रस्तुत किया कि 04.07.2000 को याचिकाकर्ता को जांच अधिकारी द्वारा व्यक्तिगत सुनवाई के लिए बुलाया गया था। 04.07.2000 को जांच पूरी नहीं हो सकी और याचिकाकर्ता को कुछ दस्तावेज जमा करने के लिए एक सप्ताह का अतिरिक्त समय दिया गया, जो याचिकाकर्ता द्वारा 11.07.2000 को जमा कर दिए गए थे। आगे यह तर्क दिया गया है कि 04.07.2000 के बाद, जांच अधिकारी द्वारा जांच में कोई भी तिथि निर्धारित नहीं की गई थी और सीधे तौर पर, 21.08.2000 को जांच अधिकारी द्वारा जांच रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी गई।

10. अपनी दलीलों को पुष्ट करने के लिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान रिट याचिका के पैरा संख्या 14, 15, 16 और 17 में किए गए अभिकथनों की ओर आकर्षित किया है। रिट याचिका के पैरा संख्या 14, 15, 16 और 17 इस प्रकार उद्धृत हैं:-

"14. यह कि 24.6.2000 को, जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को एक पत्र भेजा जिसमें उसे 4.7.2000 को व्यक्तिगत सुनवाई के लिए उपस्थित होने को कहा गया। जांच अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता को 4.7.2000 को व्यक्तिगत सुनवाई के लिए उपस्थित होने के लिए भेजे गए 24.6.2000 के पत्र की एक फोटोकॉपी इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 9 के रूप में संलग्न की जा रही है।

15. यह कि 4.7.2000 को, याचिकाकर्ता व्यक्तिगत सुनवाई के लिए जांच अधिकारी के समक्ष उपस्थित हुआ, लेकिन उस तिथि पर जांच पूरी नहीं हो सकी और जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को कुछ दस्तावेज जमा करने के लिए एक सप्ताह का अतिरिक्त समय प्रदान किया।
यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि 4.7.2000 को याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई के लिए बुलाने से पहले, जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध करने के उद्देश्य से 21.1.2000 के आरोप-पत्र के संबंध में याचिकाकर्ता को कुछ आंशिक मौखिक सुनवाई प्रदान करने के अलावा कोई जांच नहीं की थी और विभाग ने 21.1.2000 के आरोप-पत्र में याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध नहीं किया था।

16. यह कि 11.7.2000 को, याचिकाकर्ता ने 4.7.2000 को जांच अधिकारी द्वारा दिए गए मौखिक निर्देशों के अनुसरण में जांच अधिकारी को कुछ दस्तावेज प्रस्तुत किए। 11.7.2000 के उस पत्र की एक फोटोकॉपी जिसके माध्यम से याचिकाकर्ता ने जांच अधिकारी को कुछ दस्तावेज प्रस्तुत किए, इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 10 के रूप में संलग्न की जा रही है।

17. यह कि 4.7.2000 के अलावा, 21.1.2000 के आरोप-पत्र के संबंध में याचिकाकर्ता के विरुद्ध जांच करने के लिए जांच अधिकारी द्वारा कोई अन्य तिथि निर्धारित नहीं की गई थी, लेकिन अचानक बिना कोई जांच किए, जांच अधिकारी ने प्रतिवादी संख्या 2 को जांच रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी जिसमें यह माना गया कि याचिकाकर्ता पर लगाए गए दो आरोप आंशिक रूप से सिद्ध हुए हैं।"

11. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान प्रतिवादियों द्वारा दायर प्रति शपथपत्र, विशेष रूप से प्रति शपथपत्र के पैरा संख्या 5 की ओर भी आकर्षित किया और प्रस्तुत किया कि पैरा संख्या 5 में रिट याचिका के पैरा संख्या 14 से 17 में किए गए अभिकथनों का सामान्य खंडन किया गया है। प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत प्रति शपथपत्र का पैरा संख्या 5 इस प्रकार उद्धृत है:-

"5. यह कि रिट याचिका के पैराग्राफ 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21 और 22 की सामग्री इस स्तर पर स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि जांच अधिकारी द्वारा उसे उचित और पूर्ण अवसर प्रदान किया गया था और जांच के लंबित रहने के दौरान उसे सभी प्रासंगिक दस्तावेज उपलब्ध कराए गए थे और केवल उसके बाद ही, दंड प्राधिकारी ने दंड आदेश पारित किया। यहां यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि दंड आदेश पारित होने के बाद, याचिकाकर्ता ने सरकार के समक्ष अपील दायर की थी और उक्त अपील में याचिकाकर्ता द्वारा किए गए अभिकथनों के आधार पर सरकार द्वारा मामले की पुनः जांच की गई थी। याचिकाकर्ता का यह कहना उचित नहीं है कि जांच 17 वर्षों के बाद शुरू की गई थी, क्योंकि प्रारंभिक जांच सी.बी.आई. द्वारा की गई थी और केवल उसके बाद ही नियमों के तहत विभागीय जांच करने का निर्णय लिया गया था।"

12. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि प्रतिवादियों द्वारा प्रति शपथपत्र में कोई खंडन नहीं किया गया है और जांच रिपोर्ट में भी ऐसा कोई दावा नहीं किया गया है कि 04.07.2000 के बाद या पहले जांच अधिकारी द्वारा कोई तिथि निर्धारित की गई थी, जब याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई के लिए बुलाया गया था। उस दिन, यानी 04.07.2000 को जांच पूरी नहीं हो सकी, जांच को स्थगित कर दिया गया था और जांच में आगे की कोई तिथि निर्धारित नहीं की गई थी और सीधे तौर पर, याचिकाकर्ता के विरुद्ध रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी गई।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के **मोहम्मद यूनुस खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** और अन्य **(2010) 10 एससीसी 539**, **उत्तरांचल राज्य बनाम खड़क सिंह 2008 (8) एससीसी 236**, **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा 2010 (2) एससीसी 772**, तथा इस न्यायालय की खंडपीठ के **प्रज्ञेश मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** (रिट याचिका संख्या 1126 वर्ष 2011), **राम रेखा सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2014 (9) एडीजे 425 (डीबी), और महेश नारायण गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2011 (5) एडीजे 177** के निर्णयों पर भरोसा जताया है।

14. सर्वोच्च न्यायालय ने **मोहम्मद यूनुस खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2010) 10 एससीसी 539** के मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही अर्ध-न्यायिक कार्यवाही की प्रकृति की होती है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का सख्ती से पालन किया जाना आवश्यक है। मोहम्मद यूनुस खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपर्युक्त) का पैरा संख्या 16 इस प्रकार उद्धृत है:-

"16. हमें इस सुस्थापित कानून को ध्यान में रखते हुए आगे बढ़ना होगा कि किसी सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करना और उसे कदाचार का दोषी पाए जाने पर वैधानिक नियमों के तहत दंडित करना अर्ध-न्यायिक कार्यवाही की प्रकृति का होता है। यद्यपि घरेलू जांच में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के प्रक्रियात्मक तकनीकी नियम लागू नहीं होते हैं, फिर भी, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का सख्ती से पालन किया जाना आवश्यक है। इसलिए, जांच निष्पक्ष और उचित रूप से संचालित की जानी चाहिए और जांच रिपोर्ट में उन कारणों का उल्लेख होना चाहिए जिनके आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि दोषी के विरुद्ध तैयार किया गया आरोप सिद्ध हो गया है। यह जांच अधिकारी का एकतरफा कथन नहीं हो सकता है। कदाचार के लिए दंड वैधानिक नियमों और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप ही दिया जा सकता है। (देखें बच्चितर सिंह बनाम पंजाब राज्य व अन्य, एआईआर 1963 एससी 395; भारत संघ बनाम एच.सी. गोयल, एआईआर 1964 एससी 364; अनिल कुमार बनाम पीठासीन अधिकारी, एआईआर 1985 एससी 1121; मोनी शंकर बनाम भारत संघ (2008) 3 एससीसी 484; और भारत संघ बनाम प्रकाश कुमार टंडन, (2009) 2 एससीसी 541)।"

15. सर्वोच्च न्यायालय ने **उत्तरांचल राज्य बनाम खड़क सिंह 2008 (8) एससीसी 236** के मामले में, निर्णय के पैरा संख्या 11 में निम्नलिखित सिद्धांत प्रतिपादित किए, जो इस प्रकार उद्धृत हैं:-

"11) उपरोक्त निर्णयों से, निम्नलिखित सिद्धांत उभर कर सामने आते हैं:
i) जांच का संचालन सद्भावपूर्वक किया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित करने के लिए सावधानी बरती जानी चाहिए कि जांच महज एक औपचारिक औपचारिकता बनकर न रह जाए।
ii) यदि कोई अधिकारी ऐसी किसी घटना का गवाह है जो जांच का विषय है या यदि जांच किसी अधिकारी की रिपोर्ट पर शुरू की गई थी, तो निष्पक्षता के नाते उसे जांच अधिकारी नहीं होना चाहिए। यदि जांच अधिकारी की नियुक्ति के बाद, जांच के दौरान ऐसी स्थिति की जानकारी होती है, तो जांच करने का कार्य किसी अन्य अधिकारी को सौंपने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए।
iii) एक जांच में, नियोक्ता/विभाग को सबसे पहले कर्मचारी/दोषी के विरुद्ध साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए कदम उठाने चाहिए, और उसे नियोक्ता के गवाहों से प्रति-परीक्षण करने का अवसर देना चाहिए। केवल उसके बाद ही, कर्मचारी/दोषी से पूछा जाना चाहिए कि क्या वह कोई साक्ष्य प्रस्तुत करना चाहता है और उसे उसके विरुद्ध प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों के बारे में स्पष्टीकरण देने के लिए कहा जाना चाहिए।

असंवादित

iv) जांच रिपोर्ट प्राप्त होने पर, आगे की कार्यवाही करने से पहले, अनुशासनात्मक/दंड देने वाले प्राधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह जांच रिपोर्ट की एक प्रति और जांच अधिकारी द्वारा भरोसा किए गए सभी संबंधित दस्तावेज उपलब्ध कराए, ताकि उसे अपनी राय, यदि कोई हो, व्यक्त करने में सक्षम बनाया जा सके।

16. सर्वोच्च न्यायालय ने **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा** 2010 (2) एससीसी 772 के मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि उस स्थिति में भी, जहां दोषी कर्मचारी जांच में उपस्थित होने में विफल रहता है, जांच अधिकारी एकपक्षीय जांच के साथ आगे बढ़ सकता है, लेकिन ऐसी स्थिति में भी, जांच अधिकारी को दोषी कर्मचारी की अनुपस्थिति में आरोप-पत्र में उल्लिखित गवाहों के बयान दर्ज करने चाहिए। उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा (उपर्युक्त) के मामले में निर्णय के पैरा संख्या 25, 26, 27 और 28 इस प्रकार उद्धृत हैं:-

"25. पहली जांच रिपोर्ट इस आधार पर भी दूषित है कि जांच अधिकारी प्रतिवादी को आरोपों का उत्तर देने के लिए उपस्थित होने हेतु कोई तिथि निर्धारित करने में विफल रहे। नियम 7(x) स्पष्ट रूप से निम्नलिखित प्रावधान करता है:

"(x) जहां आरोपित सरकारी सेवक, नोटिस की तामील होने या तिथि की जानकारी होने के बावजूद, जांच में निर्धारित तिथि पर या कार्यवाही के किसी भी चरण में उपस्थित नहीं होता है, तो जांच अधिकारी एकपक्षीय जांच के साथ आगे बढ़ेगा। ऐसे मामले में जांच अधिकारी आरोपित सरकारी सेवक की अनुपस्थिति में आरोप-पत्र में उल्लिखित गवाहों के बयान दर्ज करेगा।"

26. उपर्युक्त उप-नियम का सामान्य अवलोकन यह दर्शाता है कि जब प्रतिवादी आरोप-पत्र का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में विफल रहा, तो जांच अधिकारी के लिए जांच में उसकी उपस्थिति के लिए एक तिथि निर्धारित करना अनिवार्य था। केवल उस स्थिति में जब सरकारी सेवक निर्धारित तिथि की सूचना मिलने के बावजूद उपस्थित होने में विफल रहता है, जांच अधिकारी एकपक्षीय जांच के साथ आगे बढ़ सकता है। ऐसी परिस्थितियों में भी, जांच अधिकारी के लिए आरोप-पत्र में उल्लिखित गवाहों के बयान दर्ज करना अनिवार्य है। चूंकि सरकारी सेवक अनुपस्थित है, इसलिए वह स्पष्ट रूप से गवाहों के प्रति-परीक्षण का लाभ खो देगा। लेकिन फिर भी, आरोपों को सिद्ध करने के लिए विभाग को जांच अधिकारी के समक्ष आवश्यक साक्ष्य प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। ऐसा इसलिए है ताकि इस आरोप से बचा जा सके कि जांच अधिकारी ने अभियोजक और न्यायाधीश दोनों के रूप में कार्य किया है। अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी के रूप में कार्य करने वाला जांच अधिकारी एक स्वतंत्र न्यायनिर्णायक की स्थिति में होता है। उससे यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकारी/सरकार का प्रतिनिधि हो। उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों की जांच करना है, यहाँ तक कि दोषी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी, यह देखने के लिए कि क्या बिना खंडन किए गए साक्ष्य यह मानने के लिए पर्याप्त हैं कि आरोप सिद्ध हो गए हैं। वर्तमान मामले में उक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि कोई मौखिक साक्ष्य नहीं लिया गया है, इसलिए दस्तावेज सिद्ध नहीं हुए हैं, और यह निष्कर्ष निकालने के लिए उन पर विचार नहीं किया जा सकता था कि प्रतिवादियों के विरुद्ध आरोप सिद्ध हो गए हैं।

27. इसके अलावा, भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) के तहत विभागीय जांच प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुसार की जानी आवश्यक है। प्राकृतिक न्याय के नियमों की यह एक बुनियादी आवश्यकता है कि किसी भी ऐसी कार्यवाही में, जो कर्मचारी पर दंड लगाए जाने पर समाप्त हो सकती है, कर्मचारी को सुनवाई का उचित अवसर दिया जाए।

28. जब किसी सरकारी सेवक के विरुद्ध विभागीय जांच की जाती है, तो इसे सामान्य प्रक्रिया नहीं माना जा सकता। जांच की कार्यवाही बंद दिमाग के साथ भी संचालित नहीं की जा सकती। जांच अधिकारी को पूरी तरह से निष्पक्ष होना चाहिए। प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन न केवल यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाना आवश्यक है कि न्याय किया गया है, बल्कि यह भी कि न्याय होता हुआ स्पष्ट रूप से दिखाई दे। प्राकृतिक न्याय के नियमों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि किसी सरकारी सेवक के साथ उन कार्यवाहियों में निष्पक्ष व्यवहार किया जाए, जो उसे सेवा से बर्खास्त करने/हटाने सहित दंड के अधिरोपण में समाप्त हो सकती हैं। शॉघनेसी बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका, 1953 345 यूएस 206 (जस्टिस जैक्सन) के मामले में, संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश ने कहा था, "प्रक्रियात्मक निष्पक्षता और नियमितता स्वतंत्रता का अपरिहार्य सार है। कठोर मूल कानूनों को तब सहन किया जा सकता है यदि उन्हें निष्पक्ष और निष्पक्ष रूप से लागू किया जाए।"

17. इस न्यायालय की खंडपीठ ने **प्रज्ञेश मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य**, रिट याचिका संख्या 1126 वर्ष 2011, में 17.08.2012 को निर्णय सुनाते हुए, नियमावली, 1999 के नियम 7 के उप-नियम (7) की व्याख्या करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि बड़ा दंड अधिरोपित करने से पूर्व नियम 7(v), (vii) और (x) के प्रावधानों का पालन किया जाना आवश्यक है। निर्णय के प्रासंगिक पैरा संख्या 45, 46, 47, 48 और 49 इस प्रकार उद्धृत हैं:-

"45. जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, उप-नियम (vii) यह अपेक्षा करता है कि जांच अधिकारी यह सुनिश्चित करे कि आरोपों के समर्थन में विपक्षी दलों द्वारा भरोसा किए गए दस्तावेजों और गवाहों की सूची उपलब्ध कराई जाए। जांच अधिकारी ने रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं रखा कि उक्त सूची याचिकाकर्ता को कब उपलब्ध कराई गई थी। स्पष्ट रूप से, आरोपों के समर्थन में जांच अधिकारी द्वारा किसी भी गवाह का परीक्षण नहीं किया गया था, इसलिए आरोपों को सिद्ध मानना, वास्तव में एक ऐसा निष्कर्ष है जो बिना किसी साक्ष्य के दर्ज किया गया है।

46. यह निर्विवाद है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 के तहत शुरू की गई थी, जिसमें अनुशासनात्मक कार्यवाही संचालित करने के लिए एक पूर्ण तंत्र मौजूद है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता पर सेवा से बर्खास्तगी का बड़ा दंड लगाया गया है, इसलिए, रिट याचिका के अंतिम निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले, हमारे लिए यह सुनिश्चित करना अनिवार्य

होगा कि क्या नियम 7(v), (vii) और 7(x) के तहत बड़ा दंड अधिरोपित करने के लिए निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया है या नहीं।

47. 1999 की नियमावली के उप-नियम 7 (vii) और (x) का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि यदि आरोपित सरकारी सेवक आरोपों से इनकार करता है, तो ऐसी स्थिति में जांच अधिकारी का यह दायित्व है कि वह आरोप-पत्र में प्रस्तावित गवाहों को बुलाए और आरोपित कर्मचारी की उपस्थिति में उनके मौखिक बयान दर्ज करे, जिसे ऐसे गवाहों से प्रति-परीक्षण करने का अवसर दिया जाएगा। उपर्युक्त बयानों को दर्ज करने के बाद, जांच अधिकारी को आरोपित सरकारी सेवक के गवाहों के, यदि कोई हों, मौखिक बयान दर्ज करने की आवश्यकता होती है, यदि वह उन्हें अपने बचाव में प्रस्तुत करना चाहता है।

48. 1999 की नियमावली के नियम 7 के उप-नियम (vii) और (x) के तहत दिए गए प्रावधानों को देखने के बाद, हमने यह नोट किया है कि आरोपों के खंडन की स्थिति में, जांच अधिकारी का यह कानूनी दायित्व है कि वह गवाहों को बुलाए और आरोपित सरकारी सेवक को जांच में शामिल गवाहों से प्रति-परीक्षण करने का अवसर प्रदान करे। यह जांच अधिकारी पर यह कर्तव्य अधिरोपित करता है कि वह आरोपित कर्मचारी को जांच आयोजित करने की तिथि, स्थान और समय के बारे में सूचित करे, क्योंकि जब तक आरोपित कर्मचारी को जांच कार्यवाही की तिथि, स्थान और समय की जानकारी नहीं होगी, वह इसमें भाग लेने के लिए उपस्थित नहीं हो सकता। यह आगे स्पष्ट करता है कि केवल गवाहों के बयान दर्ज करना ही जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा, जब तक कि आरोपित कर्मचारी पर लगाए गए प्रत्येक आरोप पर अलग-अलग चर्चा न की जाए और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री, जिसमें गवाहों द्वारा दिए गए मौखिक बयान और यदि कोई प्रति-परीक्षण हुआ हो, तो उसे ध्यान में रखने के बाद यह सिद्ध न किया जाए कि आरोप साबित हुए हैं या नहीं।

49. वर्तमान मामले में, रिकॉर्ड और याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों के अवलोकन से, जिसका विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा खंडन नहीं किया गया है, यह स्पष्ट होता है कि आरोपित कर्मचारी को कभी भी जांच आयोजित करने की तिथि, स्थान और समय के बारे में सूचित नहीं किया गया था। इसके अलावा, यदि यह मान भी लिया जाए कि आरोपित कर्मचारी को जांच आयोजित करने की तिथि, स्थान और समय के बारे में सूचित किया गया था, तब भी जांच अधिकारी प्रत्येक आरोप पर अलग-अलग चर्चा करने और उन्हें सिद्ध पाए जाने में विफल रहा है, हमारी सुविचारित राय में, केवल यह दर्ज कर देना कि आरोप सिद्ध हो गए हैं, पर्याप्त नहीं कहा जा सकता, जब तक कि आरोप 1999 की नियमावली के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार सिद्ध न किए गए हों, जो अनुशासनात्मक कार्यवाही संचालित करने के लिए बनाई गई है।

18. इस न्यायालय की खंडपीठ ने **राम रेखा सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य** 2014 (9) एडीजे 425 (डीबी) के मामले में पुनः यह अभिनिर्धारित किया कि उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 के प्रावधानों के उल्लंघन और प्राकृतिक न्याय के मूलभूत सिद्धांतों के उल्लंघन में की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही निरस्त किए जाने योग्य है। निर्णय के प्रासंगिक पैरा संख्या 14, 15 और 16 इस प्रकार उद्धृत हैं:-

"14. प्रतिवादी दलीलों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने और लागू कानून के संदर्भ में रिकॉर्ड की जांच करने के बाद, हम इस मामले में प्रतिवादियों द्वारा अपनाई गई अनुशासनात्मक कार्यवाही की प्रक्रिया का अनुमोदन करने में असमर्थ हैं; और हम स्पष्ट रूप से इस विचार के हैं कि इन अमान्य कार्यवाहियों के परिणामस्वरूप पारित दंड आदेश को रद्द किया जाना चाहिए, साथ ही प्रतिवादियों के लिए यह विकल्प खुला है कि वे कानून के अनुसार कार्यवाही आगे बढ़ाएं।

15. यह सुस्थापित है कि विभागीय जांच कार्यवाही में, विशेष रूप से नियमों की आवश्यकता और सामान्यतः प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया जाना आवश्यक है; और इनके उल्लंघन में आयोजित की गई कार्यवाही कायम नहीं रह सकती। सरोज कुमार सिन्हा (उपर्युक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ कहा:

29. उपरोक्त के अलावा, भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) के तहत विभागीय जांच प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुसार की जानी आवश्यक थी। प्राकृतिक न्याय के नियमों की यह एक बुनियादी आवश्यकता है कि किसी भी ऐसी कार्यवाही में, जो कर्मचारी पर दंड लगाए जाने पर समाप्त हो सकती है, कर्मचारी को सुनवाई का उचित अवसर दिया जाए।

30. जब किसी सरकारी सेवक के विरुद्ध विभागीय जांच की जाती है, तो इसे सामान्य प्रक्रिया नहीं माना जा सकता। जांच की कार्यवाही बंद दिमाग के साथ भी संचालित नहीं की जा सकती। जांच अधिकारी को पूरी तरह से निष्पक्ष होना चाहिए। प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन न केवल यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाना आवश्यक है कि न्याय किया गया है, बल्कि यह भी कि न्याय होता हुआ स्पष्ट रूप से दिखाई दे। प्राकृतिक न्याय के नियमों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि किसी सरकारी सेवक के साथ उन कार्यवाहियों में निष्पक्ष व्यवहार किया जाए, जो उसे सेवा से बर्खास्त करने/हटाने सहित दंड के अधिरोपण में समाप्त हो सकती हैं।

16. यह भी बहुत अधिक बहस का विषय नहीं है कि भले ही दोषी कर्मचारी आरोप-पत्र का अपना उत्तर प्रस्तुत न करे, फिर भी जांच अधिकारी यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकता कि आरोप स्वतः ही सिद्ध हो गए। अनुशासनात्मक कार्यवाही के ऐसे मामलों में निष्पक्ष सुनवाई का उचित अवसर देने की बुनियादी आवश्यकता यह भी है कि दोषी कर्मचारी की भागीदारी के साथ आवश्यक साक्ष्य दर्ज किए जाएं। ....."

19. इस न्यायालय की खंडपीठ ने **महेश नारायण गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य**, 2011(5) एडीजे 177 के मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि विभाग किसी वाद में वादी की तरह होता है और आरोपों को सिद्ध करने का प्रारंभिक भार विभाग पर होता है, जिसे निश्चित रूप से आरोपित कर्मचारी की उपस्थिति और उसकी जानकारी में कुछ मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य एकत्र करके ही सिद्ध किया जा सकता है। निर्णय के पैरा संख्या 16 और 17 इस प्रकार उद्धृत हैं:-

"16. इस स्तर पर, हमें यह उल्लेख करना चाहिए कि किसी दोषी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही में, विभाग बिल्कुल एक वादी की तरह होता है और आरोपों को सिद्ध करने का प्रारंभिक भार विभाग पर होता है, जिसे निश्चित रूप से केवल आरोपित कर्मचारी की उपस्थिति और उसकी जानकारी में कुछ मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य एकत्र करके ही सिद्ध किया जा सकता है। भले ही विभाग अपने स्वयं के रिकॉर्ड/दस्तावेजों पर निर्भर रहना चाहे जो पहले से ही उपलब्ध हैं, तब भी जांच अधिकारी को उन्हें देखकर और विश्लेषण के बाद अपने स्वयं के तर्क देते हुए, यह निष्कर्ष दर्ज करना होगा कि वे दस्तावेज आरोपों को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं।

17. किसी भी मामले में, जांच अधिकारी का यह दृष्टिकोण कि "चूंकि कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया गया है, इसलिए आरोप स्वतः ही सिद्ध हो जाएंगे", अनुमोदित नहीं किया जा सकता। यह त्रुटिपूर्ण होगा। बार-बार यह कहा गया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकरण को दोषी कर्मचारी के विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही करने का अधिकार है, लेकिन कुछ साक्ष्य एकत्र किए जाने चाहिए और आरोपों को पुष्ट करने का औचित्य विस्तार से बताया जाना चाहिए। उत्तर दाखिल न करने के कारण आरोप स्वतः सिद्ध मान लेने का जांच अधिकारी का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से गलत और त्रुटिपूर्ण है। यह प्राकृतिक न्याय, निष्पक्ष खेल और निष्पक्ष सुनवाई के सिद्धांतों के विरुद्ध है, और इस प्रकार, जांच अधिकारी को इस संबंध में सावधान किया जाना चाहिए।

20. उपर्युक्त निर्णयों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि बड़ा दंड अधिरोपित करने के लिए 1999 की नियमावली के नियम 7 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का सख्ती से पालन करना अनिवार्य है। 1999 की नियमावली के नियम 7 के तहत निर्धारित प्रक्रिया कुछ और नहीं बल्कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का समावेश है। इस न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी यह अभिनिर्धारित किया गया है कि आरोपित कर्मचारी के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध करने का प्रारंभिक भार राज्य पर है, जिसे आरोपित कर्मचारी की उपस्थिति में साक्ष्य प्रस्तुत करके पूरा किया जाना चाहिए। उन मामलों में भी जहाँ दोषी कर्मचारी ने जांच में भाग नहीं लिया या उसका विरोध नहीं किया, जांच अधिकारी एकपक्षीय जांच आगे बढ़ा सकता है, लेकिन जांच अधिकारी के लिए यह अनिवार्य है कि वह गवाहों और अन्य दस्तावेजी साक्ष्यों, यदि कोई हों, की जांच करके कर्मचारी के विरुद्ध सबूत एकत्र करे। इसके अलावा, प्रारंभिक भार का निर्वहन करने के बाद, दोषी कर्मचारी को आरोपों के साथ-साथ जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्यों पर स्पष्टीकरण देने के लिए बुलाया जाना चाहिए, और उसके बाद, जांच अधिकारी को राज्य और दोषी कर्मचारी द्वारा उपलब्ध कराई गई सामग्री पर अपना स्वयं का निष्कर्ष दर्ज करना चाहिए। यहां तक कि उन मामलों में भी जहां जांच केवल दस्तावेजी साक्ष्यों के आधार पर हो, जांच रिपोर्ट में यह इंगित होना चाहिए कि जांच अधिकारी ने उन दस्तावेजों पर अपना विवेक लगाया है जिन पर दोषी कर्मचारी के विरुद्ध भरोसा किया जाना है।

21. जांच के उद्देश्यों के लिए, यह एक पूर्व-शर्त है कि जांच अधिकारी को जांच आयोजित करने के लिए एक तिथि, समय और स्थान निर्धारित करके दोषी कर्मचारी को अवश्य बुलाना चाहिए। जांच, दोषी कर्मचारी की अनुपस्थिति में आगे नहीं बढ़ सकती और जांच में आगे बढ़ने से पहले, जांच की तिथि, समय और स्थान

निर्धारित करके कर्मचारी को सूचित किया जाना चाहिए और केवल उसके बाद ही, उन मामलों में जहां दोषी कर्मचारी उपस्थित होता है और कार्यवाही का विरोध करता है, साक्ष्य उसकी उपस्थिति में एकत्र किए जाने चाहिए, उन मामलों में भी, जहां दोषी कर्मचारी उपस्थित नहीं होता या जांच का विरोध नहीं करता है, जांच अधिकारी को उन गवाहों का परीक्षण अवश्य करना चाहिए जिन पर भरोसा किया जाना है, और उसके बाद ही दोषी कर्मचारी के अपराध के संबंध में निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए।

22. वर्तमान मामले में, जैसा कि याचिकाकर्ता ने अपनी रिट याचिका के पैरा संख्या 14, 15, 16 और 17 में उल्लेख किया है, 04.07.2000 के अलावा, न तो उससे पहले और न ही उसके बाद कोई अन्य तिथि निर्धारित की गई थी। 04.07.2000 को, सीधे तौर पर याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई के लिए बुलाया गया था। याचिकाकर्ता के अनुसार, चूंकि व्यक्तिगत सुनवाई 04.07.2000 को पूरी नहीं हो सकी थी और याचिकाकर्ता को कुछ दस्तावेज जमा करने का निर्देश दिया गया था, जिन्हें याचिकाकर्ता ने 11.07.2000 को जमा कर दिया था। इसके बाद कोई जांच नहीं की गई और सीधे तौर पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध जांच रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी गई। रिट याचिका के पैरा संख्या 14, 15, 16 और 17 में किए गए अभिकथनों का प्रतिवादियों द्वारा अपने प्रतिशपथ-पत्र में विशिष्ट रूप से खंडन नहीं किया गया है। वहाँ केवल एक सामान्य खंडन है कि उपर्युक्त पैराग्राफ स्वीकार्य नहीं हैं और याचिकाकर्ता को जांच अधिकारी द्वारा उचित और पूर्ण अवसर प्रदान किया गया था। प्रतिशपथ-पत्र में ऐसा कोई अभिकथन नहीं है और न ही जांच अधिकारी की रिपोर्ट में कोई ऐसा उल्लेख है कि 04.07.2000 से पहले, जब याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई के लिए उपस्थित होने के लिए बुलाया गया था, कोई तिथि निर्धारित की गई थी; और न ही कोई ऐसा अभिकथन है कि 04.07.2000 के बाद और जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पहले कोई तिथि निर्धारित की गई थी।

23. मेरी दृष्टि में, वर्तमान मामले में जांच रिपोर्ट स्वयं 1999 की नियमावली के नियम 7 के अनुपालन न होने और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के कारण दूषित है, क्योंकि जांच अधिकारी द्वारा जांच की कोई तिथि, समय और स्थान निर्धारित नहीं किया गया था।

24. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट की ओर भी आकर्षित किया, यह प्रदर्शित करने के लिए कि विभाग के मामले को सिद्ध करने अथवा उन दस्तावेजों को प्रमाणित करने के लिए जांच अधिकारी द्वारा किसी भी गवाह का परीक्षण नहीं किया गया, जिन पर जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध निष्कर्ष दर्ज करने के लिए भरोसा किया था। इस प्रकार, याचिकाकर्ता को आरोपों का दोषी ठहराने के लिए उसके विरुद्ध कोई साक्ष्य ही नहीं था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आरोप-पत्र प्राप्त करने के बाद, याचिकाकर्ता ने 11.04.2000 को एक पत्र लिखा, जिसके माध्यम से याचिकाकर्ता ने जांच अधिकारी से कुछ दस्तावेज मांगे ताकि वह अपना उत्तर प्रस्तुत कर सके। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि 11.04.2000 के पत्र में उल्लिखित दस्तावेज कभी भी याचिकाकर्ता को उपलब्ध नहीं कराए गए और याचिकाकर्ता को उक्त आदेश में संदर्भित दस्तावेजों की प्रति के बिना ही अपना उत्तर देने के लिए मजबूर किया गया। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता

ने इस न्यायालय का ध्यान रिट याचिका के पैरा संख्या 9, 10, 11 और 12 में किए गए अभिकथनों की ओर आकर्षित किया, जो इस प्रकार उद्धृत हैं:-

"9. यह कि दिनांक 06.04.2000 को, याचिकाकर्ता ने जांच अधिकारी को एक पत्र भेजा कि मामला 17 वर्ष पुराना है और इसलिए, उसे उचित उत्तर देने के लिए कुछ समय की आवश्यकता है। उसने जांच अधिकारी से दिनांक 21.01.2000 के आरोप-पत्र का उत्तर देने के लिए कुछ समय देने का अनुरोध किया, और तत्पश्चात दिनांक 11.04.2000 को, याचिकाकर्ता ने जांच अधिकारी को एक और पत्र लिखा, जिसमें उनसे कुछ दस्तावेज (जिनका उल्लेख स्वयं 11.04.2000 के पत्र में किया गया था) उपलब्ध कराने का आग्रह किया, जिनके आधार पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप तय किए गए थे। इस आशय के लिए याचिकाकर्ता द्वारा जांच अधिकारी को भेजे गए दिनांक 06.04.2000 और 11.04.2000 के पत्रों की एक फोटोकॉपी सामूहिक रूप से इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 4 के रूप में संलग्न की जा रही है।

10. यह कि दिनांक 17.04.2000 को, याचिकाकर्ता ने जांच अधिकारी को एक और पत्र भेजा, जिसमें उन्हें सूचित किया गया कि दिनांक 11.04.2000 के पत्र के माध्यम से मांगे गए दस्तावेज याचिकाकर्ता को उपलब्ध नहीं कराए गए हैं और इस प्रकार, उसे आरोप-पत्र का अपना उत्तर प्रस्तुत करने के लिए 15 दिनों का अतिरिक्त समय दिया जाए और साथ ही यह अनुरोध किया कि उपयुक्त उत्तर देने के लिए वे दस्तावेज भी उसे उपलब्ध कराए जाएं, जिनकी मांग दिनांक 11.04.2000 के पत्र में की गई थी। इस आशय के लिए याचिकाकर्ता द्वारा जांच अधिकारी को भेजे गए दिनांक 17.04.2000 के पत्र की एक छायाप्रति इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 5 के रूप में संलग्न की जा रही है।

11. यह कि दिनांक 02.05.2000 को, याचिकाकर्ता ने जांच अधिकारी को एक और पत्र भेजा कि याचिकाकर्ता को उन आदेशों के बारे में कोई जानकारी नहीं है जो जांच अधिकारी द्वारा उसके (याचिकाकर्ता के) 06.04.2000, 11.04.2000 और 17.04.2000 को प्रस्तुत पत्रों पर पारित किए गए थे और चूंकि मामला 17 वर्ष पुराना था, वह अपना उत्तर प्रस्तुत करने की स्थिति में नहीं था और उसने जांच अधिकारी से आगे यह अनुरोध किया कि वे दिनांक 11.04.2000 के पत्र के माध्यम से मांगे गए आवश्यक दस्तावेज याचिकाकर्ता को उपलब्ध कराने हेतु उपयुक्त आदेश पारित करें और तत्पश्चात दिनांक 21.01.2000 के आरोप-पत्र का उत्तर देने के लिए एक माह का समय और प्रदान करें। इस आशय के लिए याचिकाकर्ता द्वारा जांच अधिकारी को भेजे गए दिनांक 02.05.2000 के पत्र की एक छायाप्रति इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 6 के रूप में संलग्न की जा रही है।

"12. यह कि दिनांक 10.05.2000 को, जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता द्वारा उन्हें भेजे गए दिनांक 17.04.2000 के पत्र (रिट याचिका का अनुलग्नक संख्या 5) के अनुसरण में याचिकाकर्ता को एक पत्र भेजा, जिसमें याचिकाकर्ता को दिनांक 06.04.2000, 11.04.2000 और 17.04.2000 के पत्रों (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 4 और 5) पर कोई आदेश पारित किए बिना, 15 दिनों के भीतर दिनांक 21.01.2000 के आरोप-पत्र का उत्तर देने के

अनुवादित

लिए कहा गया। इस आशय के लिए जांच अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता को भेजे गए दिनांक 10.05.2000 के पत्र की एक फोटोकॉपी इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 7 के रूप में संलग्न की जा रही है।"

25. विद्वान अधिवक्ता ने रिट याचिका के उपर्युक्त पैराग्राफों में किए गए अभिकथनों के उत्तर में प्रतिवादियों द्वारा प्रतिशपथ-पत्र के पैरा संख्या 4 में दिए गए जवाब की ओर भी न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया, जो इस प्रकार उद्धृत है:-

"4. यह कि रिट याचिका के पैराग्राफ 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11 और 12 की सामग्री पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा की गई अनियमितताओं के लिए उसके विरुद्ध नियमानुसार विभागीय जांच शुरू की गई थी और जांच अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता को पूर्ण अवसर प्रदान किया गया था।"

26. यह तर्क दिया गया है कि रिट याचिका के उपर्युक्त पैराग्राफों में किए गए अभिकथनों के उत्तर में, प्रतिवादियों ने यह कह दिया कि उन पैराग्राफों पर कोई टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है, इस प्रकार उन्होंने यह स्वीकार कर लिया है कि याचिकाकर्ता द्वारा मांगे गए दस्तावेज उसे प्रदान नहीं किए गए थे। याचिकाकर्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आरोप वर्ष 1983 में एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के संबंध में था, जब याचिकाकर्ता कानपुर में तैनात था। जबकि उसके तुरंत बाद याचिकाकर्ता का स्थानांतरण कानपुर से दूसरे स्थान पर कर दिया गया था और आरोप-पत्र उसे 17 वर्षों के अंतराल के बाद वर्ष 2000 में दिया गया था। याचिकाकर्ता के लिए अपनी याददाश्त के आधार पर अपना उत्तर प्रस्तुत करना संभव नहीं था, क्योंकि जब उसे आरोप-पत्र दिया गया तब वह कानपुर में नहीं था और इसलिए, प्रतिवादियों द्वारा भरोसा किए गए दस्तावेजों तक उसकी पहुंच नहीं थी। याचिकाकर्ता द्वारा अनुरोधित प्रासंगिक दस्तावेजों को उपलब्ध न कराना भी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

27. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि आरोप संख्या 1 को सिद्ध करने के लिए, जांच अधिकारी द्वारा सतनाम सिंह पुत्र गुरपाल सिंह के दिनांक 29.04.1983 के शपथ-पत्र पर भरोसा किया गया था। याचिकाकर्ता ने आरोप-पत्र के अपने उत्तर में उक्त शपथ-पत्र के प्रति अपनी आपत्तियां इस आशय के साथ प्रस्तुत की थीं कि सतनाम सिंह द्वारा प्रस्तुत किए गए उस शपथ-पत्र में, जिस समय याचिकाकर्ता ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, व्यापार स्थल की सीमाओं का उल्लेख किया गया था, जिनकी पुष्टि याचिकाकर्ता ने मौके पर जाकर की थी। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि जांच अधिकारी के समक्ष याचिकाकर्ता का बचाव यह था कि आरोप-पत्र के साथ जो शपथ-पत्र की फोटोकॉपी उसे दी गई थी, वह या तो फर्जी थी या फिर मूल शपथ-पत्र में दी गई सीमाओं को 'इंक रिमूवर' (ink remover) की सहायता से मिटा दिया गया था। याचिकाकर्ता की आपत्ति पर विचार करते हुए, जांच अधिकारी ने यह निष्कर्ष निकाला कि विभाग द्वारा जांच अधिकारी को उपलब्ध कराए गए लाइसेंस रिकॉर्ड की छायाप्रति से, याचिकाकर्ता द्वारा बताए गए इस निष्कर्ष पर पहुँचना संभव नहीं था कि मूल शपथ-पत्र में सीमाएं उल्लिखित थीं या नहीं।

28. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि जांच करने वाले जांच अधिकारी के पास मूल रिकॉर्ड भी उपलब्ध नहीं था। इस संबंध में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जांच अधिकारी की रिपोर्ट के निष्कर्षों का हवाला दिया है, जो रिट याचिका के पृष्ठ संख्या 48 पर अनुलग्नक संख्या 11 के रूप में दाखिल जांच अधिकारी की रिपोर्ट के आंतरिक पृष्ठ संख्या 5 और 6 पर हैं, और जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:

".....आरोप के अंश कि आवेदनपत्र के साथ संलग्न शपथपत्र में आवेदक द्वारा प्रार्थनापत्र में अंकित किये गये व्यापार स्थल की चौहद्दी नियमानुसार अंकित नहीं की गई थी तथा व्यापार स्थल के किराये का होना उल्लिखित किया गया था, अतः उनका दायित्व था कि वे आवेदक से सम्बन्धित मकान मालिक द्वारा निर्गत किराये की रसीद/अनुबन्धपत्र की प्रति प्राप्त करते हुए शपथपत्र में व्यापार स्थल की चौहद्दी नियमानुसार अंकित कराने के उपरान्त मौके पर जाकर जाँचकर अपनी निष्पक्ष आख्या प्रेषित करते किन्तु उन्होंने अपने निहित स्वार्थ पूर्ति हेतु मेसर्स नानक ट्रेडर्स को कोयला थोक लाइसेन्स दिलवाने हेतु बिना जाँच पड़ता किये गलत रूपसे सत्यापन रिपोर्ट प्रस्तुत करके उसे अनधिकृत रूप से लाइसेन्स दिलवाने में सहयोग देकर अपने पद का दुरुपयोग करते हुए अपने दायित्वों के प्रति घोर लापरवाही बरती, के प्रतिवाद में उन्होंने अपने स्पष्टीकरण में कहा है कि यह कहना असत्य है कि उन्होंने बिना जाँच किये हुए बिक्री स्थल की चौहद्दी सत्यापित कर दी। श्री सतनामसिंह द्वारा प्रस्तुत शपथपत्र दिनांक 29-4-83 में विक्रय स्थल की चौहद्दी अंकित थी, जिसे उन्होंने स्थल पर सत्यापित किया था तथा उनकी आख्या एवं शपथपत्र का परीक्षण क्षेत्रीय खाद्य अधिकारी एवं वरिष्ठ पूर्ति निरीक्षक कोयला अनुभाग द्वारा भी किया गया था। उन्हें दी गई कथित शपथपत्र की छायाप्रति या तो फर्जी है, इसलिए जनरल स्टाम्प के पीछे स्टाम्प बेचने वाले का कोई नोटिस अंकित नहीं है अथवा इसमें अंकित चौहद्दी इंकरिमूवल द्वारा अन्य व्यक्तियों ने मिटा दी है, जो श्री सतनामसिंह को अवैधानिक रूप से सहयोग कर रहे थे। नानक ट्रेडर्स, 171 हरजेन्दरनगर कानपुर नगर की लाइसेन्स पत्रावली की जो फोटो प्रति उपलब्ध कराई गई है, उससे यह निष्कर्ष निकाल पाना सम्भव नहीं है कि पत्रावली में लगे शपथपत्र की फोटो प्रति से सम्बन्धित मूल शपथपत्र का स्टैम्प किस तिथि को स्टाम्प बेन्डर से क्रय किया गया तथा चौहद्दी के कालम में चौहद्दी पूर्व में अंकित थी अथवा नहीं। अपचारी कर्मचारी द्वारा उल्लिखित उक्त कथन बचाव में पर्याप्त नहीं है। उनके द्वारा अपनी हस्तलिपि में चौहद्दी को अंकित करते हुए सत्यापन अंकित किया जाना चाहिए था।...."

29. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि पूरी जांच लाइसेंस की फाइल की फोटोकॉपी के आधार पर संचालित की गई थी, जो जांच अधिकारी को दी गई थी। उक्त फोटोकॉपी न तो किसी गवाह का परीक्षण करके विभाग द्वारा प्रमाणित की गई और न ही जांच की मूल फाइल कभी जांच अधिकारी को उपलब्ध कराई गई। संपूर्ण जांच कार्यवाही साक्ष्य के अभाव में दूषित है और इस कारण भी कि जिन दस्तावेजों पर जांच अधिकारी ने भरोसा किया, वे कभी प्रमाणित ही नहीं किए गए। याचिकाकर्ता के प्रतिकूल निष्कर्ष केवल उन फोटोकॉपी के आधार पर दर्ज किए गए जो जांच अधिकारी को उपलब्ध कराई गई थीं, जिन पर याचिकाकर्ता ने जांच अधिकारी के समक्ष घोर आपत्ति जताई थी।

30. याचिकाकर्ता ने अपने उत्तर में विशेष रूप से चुनौती दी थी कि आरोप-पत्र के साथ उसे उपलब्ध कराई गई फोटोकॉपी शपथ-पत्र की सही प्रति नहीं थी, क्योंकि मूल शपथ-पत्र में उन सीमाओं का उल्लेख था जिनकी पुष्टि याचिकाकर्ता ने स्वयं की थी। किंतु जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता द्वारा लगाए गए आरोपों की सच्चाई का पता लगाने का कोई प्रयास नहीं किया और मूल रिकॉर्ड का परीक्षण किए बिना ही दस्तावेजों की फोटोकॉपी पर विश्वास कर लिया। याचिकाकर्ता को रिकॉर्ड का निरीक्षण करने की अनुमति तक नहीं दी गई, जबकि उसने इस उद्देश्य के लिए विशेष रूप से अनुरोध किया था।

31. **चेयरमैन-सह-प्रबंध निदेशक, महानदी कोलफील्ड्स लिमिटेड बनाम रवींद्रनाथ चौबे; (2020) 18 एससीसी 71** में रिपोर्ट किए गए मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 63 में इस प्रकार निर्धारित किया है:-

"63. किसी दोषी व्यक्ति के विरुद्ध जांच करने का उद्देश्य केवल उस पर लगाए गए आरोप को सिद्ध करना या उस पर दंड अधिरोप करना ही नहीं है, बल्कि ऐसी जांच इस उद्देश्य से भी की जाती है कि मामले की सच्चाई सामने आ सके, और इस अर्थ में, जांच का परिणाम या तो आरोपों को सिद्ध न करने वाला हो सकता है या उसके पक्ष का समर्थन करने वाला, और फलस्वरूप उसे दोषमुक्त भी किया जा सकता है। इसलिए, यह आवश्यक है कि संबंधित प्राधिकारी द्वारा कदाचार, यदि कोई हो, के लिए अनुशासनात्मक जांच करने में निष्पक्ष कार्रवाई की जानी चाहिए, भले ही कर्मचारी सेवा से सेवानिवृत्त हो गया हो, बशर्ते कि संबंधित अनुशासनात्मक नियमों के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया हो, जैसे कि इस मामले में 1978 के नियम, और वास्तव में 1978 के नियमों की योजना, जिससे हमारा सरोकार है, 1972 के अधिनियम की योजना के न तो प्रतिकूल है और न ही उसका उल्लंघन करती है।"

32. रिकॉर्ड के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पहले जांच अधिकारी द्वारा किसी भी गवाह का परीक्षण नहीं किया गया था। यह भी सामने आया है कि मूल लाइसेंस फाइल, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के साथ-साथ शपथ-पत्र और फर्म द्वारा दायर आवेदन शामिल थे, वह जांच अधिकारी को उपलब्ध नहीं कराई गई थी और उक्त फाइल की केवल फोटोकॉपी के आधार पर पूरी जांच कार्यवाही संपन्न कर ली गई। याचिकाकर्ता द्वारा उपर्युक्त दस्तावेजों के फर्जी होने की चुनौती को जांच अधिकारी ने मूल फाइल मंगवाए बिना ही खारिज कर दिया। अतः, मेरी दृष्टि में, याचिकाकर्ता को दोषी ठहराने के लिए उसके विरुद्ध कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं था।

33. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दिनांक 30.10.2000 का कारण बताओ नोटिस तामील किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता से दिनांक 21.08.2000 की जांच रिपोर्ट में जांच अधिकारी द्वारा दर्ज निष्कर्षों पर जवाब मांगा गया था। याचिकाकर्ता ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा जारी दिनांक 30.10.2000 के कारण बताओ नोटिस का उत्तर दिनांक 12.12.2000 को प्रस्तुत किया। इसकी प्रति अनुलग्नक संख्या 12 के रूप में संलग्न की गई है। अनुशासनात्मक

प्राधिकारी ने दिनांक 23.07.2001 के आदेश द्वारा प्रमुख दंड अधिरोपित किया। दिनांक 23.07.2001 के आदेश की प्रति रिट याचिका में अनुलग्नक संख्या 13 के रूप में संलग्न है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने दिनांक 23.07.2001 के दंड आदेश की प्रति का उल्लेख करते हुए तर्क दिया कि आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि मामले के बुनियादी तथ्यों, याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपों, याचिकाकर्ता के उत्तर और जांच अधिकारी द्वारा दर्ज निष्कर्षों को नोट करने के बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने इस प्रकार निर्णय दिया है:

'.....मैंने श्री जवाहर लाल गुप्ता, पूर्ति निरीक्षक के विरुद्ध प्रचलित विभागीय कार्यवाही में उनके विरुद्ध लगाये गये दोनों आरोपों, आरोपी का उत्तर, जाँचाधिकारी की जाँचाख्या, जाँचाख्या पर अपचारी कर्मचारी का उत्तर एवं संगत साक्ष्यों/अभिलेखों का भलीभांति परीक्षणोपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि श्री जवाहर लाल गुप्ता, पूर्ति निरीक्षक के विरुद्ध गम्भीर प्रकृति के आरोप है, जिसे जाँचाधिकारी द्वारा आंशिक रूप से दोनों आरोपों को सिद्ध पाया गया है। मैं जाँचाधिकारी की विवेचना से सहमत हूँ। श्री जवाहर लाल गुप्ता, पूर्ति निरीक्षक के विरुद्ध प्रचलित विभागीय कार्यवाही उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक अनुशासन एवं अपील (नियमावली, 1999 के नियम 3 के दीर्घ शक्तियाँ (दो) “किसी निम्नस्तर पद या श्रेणी या समय वेतनमान या किसी समय वेतनमान में निम्नतर प्रक्रम पर अवनति करना" में निहित प्राविधानों के अन्तर्गत आरोपों की गम्भीरता को दृष्टिगत रखते हुए निम्न दण्डों सहित एतदद्वारा विभागीय कार्यवाही समाप्त की जाती है।..."

34. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा जांच अधिकारी के निष्कर्षों के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण पर कोई स्वतंत्र निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है और उसने यांत्रिक रूप से जांच अधिकारी की रिपोर्ट की पुष्टि कर दी है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश एक तर्कहीन आदेश है और इस प्रकार मनमाना है।

35. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने अपील दायर की थी। अपील में, याचिकाकर्ता ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को चुनौती देते हुए विभिन्न आधार लिए थे। याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को केवल सजा की मात्रा के प्रश्न पर आंशिक रूप से स्वीकार किया गया था। अपीलीय प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आपत्तियों/अभ्यावेदन पर विचार नहीं किया है और याचिकाकर्ता द्वारा दायर आपत्तियों पर कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है, और इस प्रकार अपीलीय आदेश भी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

36. कारणों को दर्ज करना प्राकृतिक न्याय का एक सिद्धांत है और प्रत्येक आदेश लिखित में दर्ज कारणों द्वारा समर्थित होना चाहिए। यह निर्णय लेने की प्रक्रिया में पारदर्शिता और वैधता सुनिश्चित करता है। जिस व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, उसे यह जानने को मिलता है कि उसके आवेदन/अभ्यावेदन को क्यों अस्वीकार कर दिया गया है। जिन मामलों में आदेश आगे अपील के अधीन होता है, उनमें कारणों को दर्ज करना एक अन्य दृष्टिकोण से भी बहुत महत्वपूर्ण है। एक अपीलीय न्यायालय या प्राधिकारी को उन कारणों की जांच करने का लाभ मिलना चाहिए जो आदेश पारित करने वाले न्यायालय या प्राधिकारी के निर्णय का आधार बने थे। इसके

विपरीत, अपीलीय आदेश में कारणों का अभाव अपीलीय न्यायालय या प्राधिकारी को उस लाभ से वंचित कर देता है और उस पर स्वयं मामले की जांच करने और प्रश्न का निर्धारण करने का भारी उत्तरदायित्व डाल देता है।

37. जैसा कि लॉर्ड डेनिंग ने **ब्रीन बनाम ए.ई.यू. (1971) 2 क्यूबी 175** में जोर दिया है, किसी निर्णय के लिए कारण बताना सुशासन के मूल सिद्धांतों में से एक है। यह निर्णय लेने वाले की मनमानी के खिलाफ एक सुरक्षा कवच का निर्माण करता है। किसी निर्णय के आधार को स्पष्ट करना निर्णय लेने की गुणवत्ता में कई महत्वपूर्ण तरीकों से सुधार कर सकता है, जैसे कि यदि किसी व्यक्ति को अपने निर्णय के लिए कारण देने के लिए बाध्य किया जाता है, तो यह व्यक्तिगत अधिकारों से जुड़े मामलों में उस पर कुछ प्रतिबंध लगाता है। दूसरे, यदि कोई निर्णायक अपने निष्कर्षों के लिए कारण बताने के लिए बाध्य है, तो उसके लिए मामले पर सावधानीपूर्वक विचार करना आवश्यक हो जाएगा। कारण बताने की शर्त स्पष्टता लाती है, निर्णय लेने वाले की ओर से वस्तुनिष्ठता और निष्पक्षता सुनिश्चित करती है, और अन्याय तथा मनमानी को कम करती है, क्योंकि "प्रकटीकरण की बाध्यता ही विचार करने की गारंटी देती है"।

38. भारत में, स्थिति कुछ अलग है लेकिन न्यायालयों ने इस क्षेत्र में काफी रचनात्मकता दिखाई है। भारतीय न्यायालयों का एक बहुत ही महत्वपूर्ण तर्क इस विचार को विकसित करना है कि प्राकृतिक न्याय की मांग है कि निर्णय लेने वाले निकाय अपने निर्णयों के लिए कारण बताएं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी निर्धारित किया है कि चूंकि कई संवैधानिक प्रावधान निर्णय लेने वाले निकायों के न्यायिक नियंत्रण की गारंटी देते हैं, इसलिए ऐसे निकायों के लिए यह अनिवार्य है कि वे तर्कसंगत निर्णय दें ताकि न्यायिक नियंत्रण को प्रभावी और सार्थक बनाया जा सके। प्रशासनिक कानून में कारणों को दर्ज करने का कर्तव्य हालांकि न्यायाधीश-निर्मित कानून है, लेकिन न्यायिक प्राधिकारियों के मामले में, जिसमें मजिस्ट्रेट और विशेष अदालतें शामिल हैं, जो विभिन्न कानूनों के तहत न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं, इसमें कोई विवाद नहीं है कि उनके आदेशों में उनके समर्थन के लिए कारण अवश्य होने चाहिए।

39. निर्णय में दिए गए कारणों से ही मस्तिष्क का अनुप्रयोग परिलक्षित होता है। कारणों द्वारा समर्थित आदेश यह सुनिश्चित करता है कि निर्णय लेने वाले प्राधिकारी/न्यायालय ने सुनवाई के समय प्रस्तुत तर्कों और साक्ष्यों पर वास्तव में ध्यान दिया है। यह एक सुप्रसिद्ध सिद्धांत है कि न्याय न केवल होना चाहिए, बल्कि होता हुआ दिखना भी चाहिए। बिना कारण के दिए गए निर्णय न्यायपूर्ण हो सकते हैं, लेकिन उन्हें पढ़ने वालों को वे न्यायपूर्ण प्रतीत नहीं हो सकते। दूसरी ओर, तर्कसंगत निष्कर्षों में न्याय का आभास होता है।

40. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **जी. वल्लिकुमारी बनाम आंध्र एजुकेशन सोसाइटी और अन्य**, जो (2010) 2 एससीसी 497 में रिपोर्ट किया गया है, के सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 19 में इस प्रकार निर्धारित किया है:-

"19. अपने आदेश में, प्रबंध समिति के अध्यक्ष ने अपीलकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों और जांच अधिकारी द्वारा दर्ज निष्कर्षों के आलोक में उसके द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन का उल्लेख तो किया, लेकिन उसके अभ्यावेदन की सामग्री पर ध्यान दिए बिना और नियमों के नियम 120(1)(iv) के संदर्भ में मस्तिष्क के अनुप्रयोग का कोई संकेत दिए बिना, उन्होंने उसे सेवा से हटाने का निर्देश दिया। अतः, इस निष्कर्ष से बचने का कोई उपाय नहीं है कि दंड का आदेश अध्यक्ष द्वारा संबंधित वैधानिक नियम और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अधिदेश का अनुपालन किए बिना पारित किया गया था। प्रत्येक अर्ध-न्यायिक या यहां तक कि उस प्रशासनिक प्राधिकारी द्वारा, जिसे किसी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला आदेश पारित करने का कार्य सौंपा गया है, कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता और उस व्यक्ति को उसकी सूचना देना प्राकृतिक न्याय के नियमों के स्वीकृत पहलुओं में से एक है और इसका उल्लंघन संबंधित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को दूषित करने का प्रभाव रखता है।"

41. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने फैसले के पैराग्राफ संख्या 13 का भी उल्लेख किया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिल्ली स्कूल शिक्षा नियमावली, 1973 के नियम 120 को उद्धृत किया गया था, जो इस प्रकार है:-

"13.....

12. यह अध्याय सहायता प्राप्त न करने वाले अल्पसंख्यक स्कूलों पर लागू नहीं होगा:- इस अध्याय में निहित कोई भी बात सहायता प्राप्त न करने वाले अल्पसंख्यक स्कूल पर लागू नहीं होगी।

दिल्ली स्कूल शिक्षा नियमावली, 1973

120. प्रमुख दंड अधिरोपित करने की प्रक्रिया:- (1) किसी कर्मचारी पर कोई प्रमुख दंड अधिरोपित करने वाला कोई भी आदेश तब तक नहीं दिया जाएगा जब तक कि नीचे निर्दिष्ट तरीके से, जहां तक संभव हो, जांच न कर ली गई हो:"

(क) अनुशासनात्मक प्राधिकारी उन आरोपों के आधार पर निश्चित आरोप तैयार करेगा जिन पर जांच की जानी प्रस्तावित है और आरोपों की एक प्रति, उन आरोपों के विवरण के साथ जिन पर वे आधारित हैं, कर्मचारी को दी जाएगी और उसे उस समय के भीतर, जो अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निर्दिष्ट किया जा सकता है, लेकिन दो सप्ताह से बाद का नहीं, अपना लिखित बचाव बयान प्रस्तुत करने और यह बताने के लिए कहा जाएगा कि क्या वह व्यक्तिगत रूप से सुना जाना चाहता है;

(ख) बचाव के लिखित बयान की प्राप्ति पर, या जहां निर्दिष्ट समय के भीतर ऐसा कोई बयान प्राप्त नहीं होता है, वहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी स्वयं उन आरोपों की जांच कर सकता है जिन्हें स्वीकार नहीं किया गया है, या यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझे, तो उस उद्देश्य के लिए एक जांच अधिकारी नियुक्त कर सकता है;

(ग) जांच के समापन पर, जांच अधिकारी प्रत्येक आरोप पर अपने निष्कर्षों के संबंध में, उनके कारणों के साथ, जांच की एक रिपोर्ट तैयार करेगा;

अनुवादित

(घ) अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच के रिकॉर्ड पर विचार करेगा और प्रत्येक आरोप पर अपने निष्कर्ष दर्ज करेगा और यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी की यह राय है कि कोई प्रमुख दंड अधिरोपित किया जाना चाहिए, तो वह-

(i) कर्मचारी को जांच अधिकारी की रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान करेगा, जहां ऐसे अधिकारी द्वारा जांच की गई है;
(ii) उसे लिखित में नोटिस देगा जिसमें उसके संबंध में की जाने वाली प्रस्तावित कार्रवाई का उल्लेख होगा और उसे निर्दिष्ट समय के भीतर, जो दो सप्ताह से अधिक न हो, प्रस्तावित कार्रवाई के विरुद्ध अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत करने के लिए कहेगा;
(iii) कर्मचारी द्वारा किए गए अभ्यावेदन (यदि कोई हो) की प्राप्ति पर, अनुशासनात्मक प्राधिकारी यह निर्धारित करेगा कि कर्मचारी पर क्या दंड, यदि कोई हो, अधिरोपित किया जाना चाहिए और दंड अधिरोपित करने के अपने अस्थायी निर्णय को पूर्व अनुमोदन के लिए निदेशक को सूचित करेगा;
(iv) कर्मचारी द्वारा दंड के विरुद्ध किए गए अभ्यावेदन पर विचार करने के बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकारी उस दंड के संबंध में अपने निष्कर्ष दर्ज करेगा जो वह कर्मचारी पर अधिरोपित करने का प्रस्ताव करता है और अपने निष्कर्षों और निर्णय को अनुमोदन के लिए निदेशक को भेजेगा। मामले को निदेशक को भेजते समय, अनुशासनात्मक प्राधिकारी उसे मामले के सभी प्रासंगिक रिकॉर्ड उपलब्ध कराएगा, जिसमें कर्मचारी के विरुद्ध तैयार किए गए आरोपों का विवरण, कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन, जांच रिपोर्ट की एक प्रति (जहां ऐसी जांच की गई हो), और अनुशासनात्मक प्राधिकारी की कार्यवाही शामिल होगी।

(2) निदेशक का अनुमोदन प्राप्त होने के बाद ही अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा प्रमुख दंड अधिरोपित करने के संबंध में कोई आदेश दिया जाएगा।

(3) किसी मान्यता प्राप्त निजी स्कूल का कोई भी कर्मचारी जो अनिवार्य सेवानिवृत्ति या किसी प्रमुख दंड को अधिरोपित करने वाले किसी भी आदेश से व्यथित है, वह अधिकरण के समक्ष अपील दायर कर सकता है।

42. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि नियम 120 (1)(d)(4), 1999 के नियमों के नियम 9 (4) के 'पारी मटेरिया' (समान विषय वस्तु वाला) है और यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान मामले में भी, दंड का आदेश अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा 1999 के नियमों के नियम 9(4) के अधिदेश का पालन किए बिना पारित किया गया है।

43. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक**, **2009 (3) एससीसी 570** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर आगे भरोसा जताया। फैसले के पैराग्राफ संख्या 5, 6, 7 और 17 इस प्रकार उद्धृत हैं:-

"5. अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष, अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि उसके विरुद्ध कोई साक्ष्य नहीं था। अनुशासनात्मक प्राधिकारी का ध्यान इस तथ्य की ओर भी आकर्षित किया गया कि 9.5.2000 के एक आदेश द्वारा, आपराधिक न्यायालय ने उसे आरोपमुक्त करने का आदेश पारित किया था। केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 411 के तहत आरोप एक राजबीर के विरुद्ध तय किए गए थे।

न तो राज्य और न ही बैंक ने इसके विरुद्ध कोई पुनरीक्षण याचिका दायर की। वह आदेश अंतिम हो गया। अनुशासनात्मक प्राधिकारी के रूप में कार्य करते हुए क्षेत्रीय प्रबंधक ने 24.1.2001 के एक आदेश द्वारा, बिना कोई कारण बताए और अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए तर्कों पर विचार किए बिना, जिसमें यह तथ्य भी शामिल था कि उसे आपराधिक न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया है, अपीलकर्ता को सेवा से बर्खास्त करने का निर्देश दिया, जिसमें कहा गया:

"कि मैंने तथ्यों का फिर से सावधानीपूर्वक अवलोकन किया है और मैं आपको द्विपक्षीय समझौते के खंड 19.5 (समय-समय पर संशोधित) के संदर्भ में घोर कदाचार के लिए जिम्मेदार ठहराता हूं और प्रस्तावित दंड को कम करने का कोई औचित्य नहीं है। इसलिए, द्विपक्षीय समझौते के खंड 19.6 के संदर्भ में, मैं प्रस्तावित दंड 'बैंक सेवा से बर्खास्तगी' की पुष्टि करता हूं। चूंकि आप निलंबन के अधीन हैं, इसलिए मैं आदेश देता हूं कि द्विपक्षीय समझौते के प्रावधानों के संदर्भ में आप केवल बैंक सेवा से अपनी बर्खास्तगी तक ही निर्वाह भत्ते के पात्र होंगे।"

6. अपीलकर्ता ने उक्त आदेश के विरुद्ध अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। अपीलीय प्राधिकारी ने विस्तार से उसके तर्कों पर गौर किया। अन्य बातों के अलावा, इस आधार पर कि अपीलकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर दिया गया था, अपील को यह राय व्यक्त करते हुए खारिज कर दिया गया:

"उपरोक्त के मद्देनजर, अपीलकर्ता द्वारा अपनी 23.02.2001 की अपील में दी गई दलीलें और व्यक्तिगत सुनवाई के दौरान उसके मौखिक तर्क सारहीन हैं। इस प्रकार मुझे अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश में हस्तक्षेप करने या उसे बदलने का कोई कारण नहीं दिखता। अतः सिद्ध आरोपों की प्रकृति और गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अपने 24.01.2001 के आदेश के माध्यम से श्री नेगी पर अधिरोपित 'बैंक सेवा से बर्खास्तगी' का दंड एतद्द्वारा पुष्ट किया जाता है और श्री नेगी की अपील खारिज की जाती है।"

7. अपीलीय प्राधिकारी ने भी अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए तर्कों पर अपना विवेक नहीं लगाया; उनके निष्कर्ष के समर्थन में कोई कारण नहीं बताया गया।

किस साक्ष्य के आधार पर अपीलकर्ता को दोषी पाया गया, यह नहीं बताया गया।

17. इसके अलावा, अनुशासनात्मक प्राधिकारी के साथ-साथ अपीलीय प्राधिकारी का आदेश भी किसी कारण द्वारा समर्थित नहीं है। चूंकि उनके द्वारा पारित आदेशों के गंभीर नागरिक परिणाम होते हैं, इसलिए उचित कारण बताए जाने चाहिए थे। यदि जांच अधिकारी ने अपीलकर्ता द्वारा किए गए इकबालिया बयान पर भरोसा किया था, तो कोई कारण नहीं था कि आपराधिक न्यायालय द्वारा उसी साक्ष्य के आधार पर पारित आरोपमुक्ति के आदेश पर विचार क्यों नहीं किया जाना चाहिए था....."

44. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जांच अधिकारी के निष्कर्षों पर याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर/अभ्यावेदन पर विचार नहीं किया, सही है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर कोई स्वतंत्र निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है और जांच अधिकारी के निष्कर्षों को स्वीकार कर लिया है। वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दिए गए अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अपीलीय प्राधिकारी ने केवल दंड की मात्रा के आधार पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप किया है। अपीलीय प्राधिकारी ने अपनी अपील में याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई आपत्तियों की जांच नहीं की है और न ही उन पर कोई निष्कर्ष दर्ज किया है, बल्कि उसने यांत्रिक रूप से अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश की पुष्टि कर दी है।

45. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप पुराने हैं और पुराने आरोपों पर जांच का कोई औचित्य नहीं है। उन्होंने इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित मामलों के फैसलों का हवाला दिया: **मध्य प्रदेश राज्य बनाम बनी सिंह और अन्य** (1990) (सप्लीमेंट) एससीसी 738, **आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एन. राधाकिशन** (1998) 4 एससीसी 154, और **पी.वी. महादेवन बनाम एम.डी., टी.एन. हाउसिंग बोर्ड** (2005) 6 एससीसी 636।

46. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उस चार्जशीट (आरोप-पत्र) का उल्लेख किया है जो रिट याचिका के पृष्ठ संख्या 21 पर अनुलग्नक संख्या 3 के रूप में संलग्न है। उक्त आरोप-पत्र में याचिकाकर्ता के विरुद्ध दो आरोप हैं, जिन्हें नीचे उद्धृत किया गया है:-

"आरोप संख्या 1 :-

जब आप वर्ष 1983 में आपूर्तिनिरीक्षक के पद पर जनपद कानपुर नगर में कार्यरत थे, उस दौरान दिनांक 29-4-83 को भी सतनामसिंह पत्र श्री गुरपालसिंह, मकान नं० 171 हरजेन्दरनगर कानपुर नगर के नाम से थोक कोयला लाइसेन्स प्राप्त करने के लिए आवेदनपत्र जिला पूर्ति अधिकारी को प्राप्त हुआ था, जिसकी जाँच कर आप द्वारा उक्त व्यक्ति को कोयला थोक लाइसेन्स दिये जाने की संस्तुति दिनांक 30-4-83 को की गई थी। उक्त आवेदनपत्र के साथ संलग्न शपथपत्र में आवेदक द्वारा प्रार्थनापत्र में अंकित किये गये व्यापार स्थल की चौहद्दी नियमानुसार अंकित नहीं की गई थी तथा व्यापार स्थल के किराये का होना उल्लिखित किया गया था। अतः आपका दायित्व था कि आप आवेदक से सम्बन्धित मकान मालिक द्वारा निर्गत किराये की रसीद/अनुबन्धपत्र की प्रति प्राप्त करते हुए शपथपत्र में व्यापार स्थल की चौहद्दी नियमानुसार अंकित कराने के उपरान्त मौके पर जाकर जाँच कर अपनी निष्पक्ष आख्या प्रेषित करते किन्तु आपने अपने निहित स्वार्थ पूर्ति हेतु मेसर्स नानक ट्रेडर्स को कोयला थोक विक्रेता लाइसेन्स दिलवाने हेतु बिना जाँच पड़ताल किए गलत रूप से सत्यापन रिपोर्ट प्रस्तुत करके उसे अनधिकृत रूप से लाइसेन्स दिलवाने में सहयोग देकर अपने पद का दुरुपयोग करते हुए अपने दायित्वों के प्रति घोर लापरवाही बरती। अतः आप मेसर्स नानक ट्रेडर्स को अनधिकृत रूप से कोयला विक्रेता लाइसेन्स निर्गत कराने के दोषी हैं, जिसके कारण आपकी सत्यनिष्ठा भी संदिग्ध है।

उपरोक्त आरोप के समर्थन में निम्नलिखित साक्ष्य पढ़े जायेंगेः-

1- श्री सतनामसिंह पुत्र गुरपालसिंह 171, हरजेन्दरनगर कानपुर नगर द्वारा मेसर्स नानक ट्रेडर्स के नाम से कोयला थोक लाइसेन्स प्राप्त करने हेतु प्रेषित आवेदनपत्रदिनांक 29-4-83 एवं उस पर आपकी आख्या दिनांक 30-4-831

2- श्री सतनामसिंह पुत्र श्री गुरपालसिंह, 171 हरजेन्दरनगर कानपुर नगर द्वारा प्रेषित शपथपत्र दिनांक 29-4-8

<u>आरोप संख्या 2 :-</u>

आपकी आख्या के आधार पर मेसर्स नानक ट्रेडर्स, 171 हरजेन्दरनगर, कानपुर को कोयला थोक लाइसेन्स संख्या 173 जिला पूर्ति अधिकारी कानपुर नगर द्वारा निर्गत किये जाने के उपरान्त उन्हें अक्टूबर 83 में 675 मि० टन स्टीम, नवम्बर 83 में 92 मि०टन साफूट एवं 450 मि०टन स्टीम, दिसम्बर 83 में 300 मि०टन साफूट एवं 75 मि०टन स्टीम एवं मई 84 में 1199 मि० टन ब्लैक कोयले की स्पान्सरिंग की गई थी। जिसके सम्बन्ध में उक्त फर्म का दायित्व था कि वह स्पान्सरिंग के अनुसार जनपद में कोयले का आयात करके उसकी सूचना समय समय पर कार्यालय को देते, उसका वितरण करते तथा स्टाक रजिस्टर, बिक्री रजिस्टर, कैश मेमो आदि अभिलेख रखते तथा प्रत्येक माह की 7 तारीख तक नक्शा प्रस्तुत करते परन्तु उनके द्वारा उपरोक्तानुसार कार्यवाही करते हुए सूचनायें प्रेषित नहीं की गई। अतः अपर जिला मजिस्ट्रेट आपूर्ति के आदेशानुसार श्री०पी० के०सरकार पूर्तिनिरीक्षक कैन्ट ने उक्त लाइसेन्सी के यहाँ चेकिंग की। चेकिंग करने पर उन्होंने पाया कि उक्त फर्म आप द्वारा सत्यापित व्यापार स्थल 171 हरजेन्दरनगर कानपुर नगर में कार्यरत नहीं है और उक्त स्थान पर श्री कश्मीरासिंहके नाम से पूर्व में कोयले की दुकान थी तथा निरीक्षण के समय उक्त स्थान पर केवल भूसे का ढेर लगा पाया गया, जिसके फलस्वरूप उनके द्वारा उक्त फर्म के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने हेतु आख्या प्रेषित की गई तथा अपर जिला मजिस्ट्रेट आपूर्ति, कानपुर नगर के आदेश संख्या 81 डी/जिपूअ/कोल/84 दिनांक 23 अक्टूबर 1984 द्वारा उसके लाइसेन्स को निलम्बित करते हुए उसे कारण बताओ नोटिस संख्या 521 डी/जिपूअ/कोल/84 दिनांक 9-11-84 निर्गत किया गया एवं तत्पश्चात् उसका लाइसेन्स अपर जिलाधिकारी (आपूर्ति) कानपुर नगर के आदेश संख्या 19-12-84 द्वारा निरस्त कर दिया गया। यदि आप द्वारा नियमानुसार जाँच करके अपनी आख्या प्रेषित की गई होती तो उक्त फर्म को अनधिकृत रूप से लाइसेन्स प्राप्त नहीं हो पाता तथा वह उक्त नियम विरुद्ध कार्य नहीं करती। अतः आप परोक्ष रूप से उक्त फर्म को कोयले का अवैध व्यापार कराने के दोषी हैं एवं आपकी सत्यनिष्ठा संदिग्ध है।

उपरोक्त आरोप के समर्थन मैं निम्नलिखित साक्ष्य पढ़े जायेगे :-

1- उक्त फर्म को लाइसेन्स निर्गत किये जाने हेतु आपकी संस्तुति दिनांक 30-4-83

2 श्री पी०के०सरकार, पूर्तिनिरीक्षक का थानाध्यक्ष को सम्बोधित पत्र

3-फर्म मैसर्स नानक ट्रेडर्स, 171 हरजेन्दरनगर कानपुर के लाइसेन्स संख्या 173 का निलम्बन आदेश संख्या 81 डी/जिपूअ० / कोल/84 दिनांक 23 अक्टूबर 84

4- फर्म को निर्गत कारण बताओ नोटिस संख्या 521 डी/जिपूअ० / कोल /84 युक्त रसद विभाग

5- फर्म मैसर्स नानक ट्रेडर्स के थोक कोयला लाडगेन्स संख्या 173 का निरस्तीकरण आदेश दिनांक 19-12-84

अतः आपसे अपेक्षा को जाती है कि उपरोक्त आरोप के सम्बन्ध मैं अपना लिखित उत्तरआरोपपत्र की प्राप्ति के 2 सप्ताह अथवा उसके पूर्व अध्धौहस्ताक्षरी को प्रेषित करें। यदि आप कारण कोई लिखित उत्तर उपरोक्त अवधि के अन्दर प्रस्तुत नहीं किया जा है तो यह समझा जायेगा कि आपको उक्त के सम्बन्ध मैं कुछ नहीं कहना है और अन्तिम आदेश तदनुतार पारित कर दिये जायेंगे।"

47. याचिकाकर्ता ने आरोप संख्या 1 का हवाला देते हुए तर्क दिया कि आरोप संख्या 1 के अनुसार, एक सतनाम सिंह को लाइसेंस प्रदान करने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा कथित तौर पर 30.04.1983 को रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। आरोप संख्या 2 का उल्लेख करते हुए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि निरीक्षण के आधार पर यह पाया गया कि उक्त फर्म का व्यावसायिक स्थान, जिसे याचिकाकर्ता द्वारा प्रमाणित किया गया था, यानी 171 हरजेंद्र नगर, कानपुर, वहां मौजूद नहीं था। यह पाया गया कि पहले उस स्थान पर कश्मीर सिंह की कोयले की दुकान थी और निरीक्षण के दौरान मौके पर केवल घास का ढेर मिला था। इसलिए, फर्म के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी और अपर जिलाधिकारी, खाद्य एवं रसद, कानपुर नगर ने 23.10.1984 के आदेश द्वारा लाइसेंस निलंबित कर दिया था और फर्म को 09.11.1984 का नोटिस जारी किया था कि उसका लाइसेंस रद्द क्यों न किया जाए, और तदुपरांत 19.12.1984 के आदेश द्वारा उक्त फर्म का लाइसेंस रद्द कर दिया गया था। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि वर्ष 1984 में ही प्रतिवादियों को यह पता चल गया था कि याचिकाकर्ता की रिपोर्ट कथित तौर पर गलत थी और उसके बाद, 19.12.1984 को फर्म का लाइसेंस रद्द कर दिया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि इसका कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि प्रतिवादियों ने उस समय याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू क्यों नहीं की और कार्यवाही शुरू करने के लिए 1999 तक इंतजार क्यों किया। 05.04.1999 के आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता को निलंबित कर दिया गया था और उसके बाद, 21.01.2000 को याचिकाकर्ता को आरोप-पत्र जारी किया गया था, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है।

48. याचिकाकर्ता के अनुसार, प्रतिवादियों को वर्ष 1984 में ही यह पता चल गया था कि 30.04.1983 को रिपोर्ट प्रस्तुत करने में याचिकाकर्ता का कथित कदाचार हुआ है, जैसा कि आरोप संख्या 2 से स्पष्ट है कि फर्म का लाइसेंस 09.11.1984 को रद्द कर दिया गया था। परंतु प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू नहीं की और अनुशासनात्मक कार्यवाही बिना किसी स्पष्टीकरण के 17 वर्षों के अंतराल के बाद शुरू की गई।

49. **मध्य प्रदेश राज्य बनाम बानी सिंह (उपरोक्त)** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि यदि आरोप-पत्र जारी करने में अत्यधिक देरी का कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं है, तो इतनी देर से विभागीय जांच को आगे बढ़ने की अनुमति देना अनुचित होगा। मध्य प्रदेश राज्य बनाम बानी सिंह (उपरोक्त) के पैरा संख्या 3 और 4 इस प्रकार उद्धृत किए गए हैं:

"3. ओ.ए. 102 वर्ष 1987, उसी अधिकारी द्वारा 22.4.1987 को विभागीय जांच कार्यवाही शुरू करने और आरोप-पत्र जारी करने के खिलाफ दायर की गई थी। यह उन घटनाओं के संबंध में थी जो 1975-76 में हुई थीं, जब उक्त अधिकारी कमांडेंट, 14वीं बटालियन, एस.ए.एफ. ग्वालियर के रूप में तैनात थे। 16.12.1987 के आदेश द्वारा, अधिकरण ने 1975-76 में हुई घटना के संदर्भ में विभागीय कार्यवाही शुरू करने में 12 वर्षों से अधिक की अत्यधिक देरी के आधार पर चार्ज मेमो और विभागीय जांच को रद्द कर दिया। .....

4. 16.12.1987 के आदेश के विरुद्ध अपील इस आधार पर दायर की गई है कि अधिकरण को केवल देरी और विलंब के आधार पर कार्यवाही को रद्द नहीं करना चाहिए था और मामले के गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेने के लिए जांच को जारी रखने की अनुमति देनी चाहिए थी। हम विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क से सहमत होने में असमर्थ हैं। जिन अनियमितताओं के बारे में जांच की जानी है, वे वर्ष 1975-1977 के बीच हुई बताई जाती हैं। विभाग का यह मामला नहीं है कि उन्हें उक्त अनियमितताओं की जानकारी नहीं थी और उन्हें इसका पता केवल 1987 में चला। उनके अनुसार, अप्रैल 1977 में भी उक्त अनियमितताओं में अधिकारी की संलिप्तता के बारे में संदेह था और तब से जांच चल रही थी। यदि ऐसा है, तो यह सोचना अनुचित है कि उन्हें अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में 12 वर्षों से अधिक का समय लगा, जैसा कि अधिकरण ने कहा है। चार्ज मेमो जारी करने में अत्यधिक देरी का कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं है और हमारी भी यह राय है कि इस स्तर पर विभागीय जांच को आगे बढ़ने की अनुमति देना अनुचित होगा। किसी भी स्थिति में, अधिकरण के आदेशों में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है और तदनुसार हम इस अपील को खारिज करते हैं।"

50. **आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एन. राधाकिशन (उपरोक्त)** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा संख्या 18, 19 और 20 में इस प्रकार कहा है:

"18. पंजाब राज्य और अन्य बनाम चमन लाल गोयल (1995 (2) एससीसी 570) में, पंजाब राज्य, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के उस आदेश से व्यथित था जिसने गोयल के विरुद्ध आरोप-पत्र और उन आरोपों की जांच के लिए जांच अधिकारी की नियुक्ति के आदेश को रद्द कर दिया था। इस मामले में, जो घटना आरोपों का विषय थी, वह दिसंबर 1986 और जनवरी 1987 की शुरुआत में हुई थी, जब गोयल नाभा हाई सिक्योरिटी जेल में अधीक्षक के रूप में कार्यरत थे। 9 जुलाई 1992 को ही गोयल को आरोप-पत्र जारी किया गया था। उन्होंने 4 जनवरी 1993 को आरोपों से इनकार करते हुए अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया। जांच अधिकारी की नियुक्ति 20 जुलाई 1993 को की गई थी और उसके शीघ्र बाद, 24 अगस्त 1993 को गोयल ने उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर कर दी। उच्च न्यायालय ने आरोप-पत्र सौंपने में पांच साल और छह महीने की देरी के मुख्य आधार पर आरोप-पत्र को रद्द कर दिया, जिसके लिए कोई स्वीकार्य स्पष्टीकरण नहीं था। इस न्यायालय ने इस तथ्यात्मक स्थिति की जांच की कि देरी कैसे हुई और क्या देरी के कारण गोयल किसी भी तरह से पूर्वाग्रहित हुए थे। इस न्यायालय ने ए.आर. अंतुले बनाम आर.एस. नायक (1992 (1) एससीसी 225) में निर्धारित सिद्धांतों पर भरोसा किया और कहा कि, हालांकि वह मामला आपराधिक अभियोजन से संबंधित था, लेकिन उसमें प्रतिपादित सिद्धांत अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में देरी के तर्कों पर भी व्यापक रूप से लागू होते हैं। ए.आर. अंतुले मामले के निर्णय का उल्लेख करते हुए इस न्यायालय ने कहा:-

"निर्णय के पैरा 86 में, इस न्यायालय ने उसमें विचार किए गए कई निर्णयों से उभरने वाले प्रस्तावों का उल्लेख किया और टिप्पणी की कि 'अंततः न्यायालय को कई प्रासंगिक कारकों को संतुलित और तौलना होगा - संतुलन परीक्षण या संतुलन प्रक्रिया - और प्रत्येक मामले में यह निर्धारित करना होगा कि क्या किसी दिए गए मामले में शीघ्र सुनवाई के अधिकार से वंचित किया गया है।' यह भी माना गया है कि, सामान्य तौर पर, जहां न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आरोपी के शीघ्र सुनवाई के अधिकार का उल्लंघन हुआ है, वहां आरोप, या दोषसिद्धि, जैसा भी मामला हो, को रद्द कर दिया जाएगा। साथ ही, यह भी देखा गया है कि न्यायालय के पास केवल यही एक रास्ता खुला नहीं है और किसी विशेष मामले में, अपराध की प्रकृति और अन्य परिस्थितियां ऐसी हो सकती हैं कि कार्यवाही को रद्द करना न्याय के हित में न हो। ऐसे मामले में, यह देखा गया है कि न्यायालय के पास ऐसी अन्य उपयुक्त आदेश पारित करने का विकल्प खुला है, जिसे वह मामले की परिस्थितियों में उचित और न्यायसंगत समझता है।

उस मामले में इस न्यायालय ने कहा कि यह अधिक उचित है और न्याय के हित के साथ-साथ प्रशासन के हित में भी है कि जो जांच काफी हद तक आगे बढ़ चुकी है, उसे पूरा होने दिया जाए। साथ ही, न्यायालय ने निर्देश दिया कि गोयल को पदोन्नति के लिए तुरंत विचार में लिया जाना चाहिए, बिना किसी संदर्भ के और बिना आरोपों या जांच के लंबित रहने को ध्यान में रखे, यदि वह पदोन्नति के लिए उपयुक्त पाए जाते हैं।

19. यह निर्धारित करना संभव नहीं है कि विभागीय कार्यवाही समाप्त करने में देरी होने पर सभी मामलों और सभी स्थितियों में कौन से पूर्व-निर्धारित सिद्धांत लागू होंगे। क्या इस आधार पर विभागीय कार्यवाही समाप्त की जानी चाहिए, इसका परीक्षण प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर किया जाना है। मामले का सार यह है कि न्यायालय को सभी प्रासंगिक कारकों पर विचार करना होगा और उन्हें संतुलित और तौलना होगा, ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि क्या स्वच्छ और ईमानदार प्रशासन के हित में यह उचित है कि विभागीय कार्यवाही को देरी के बाद भी चलने दिया जाए, विशेष रूप से तब जब देरी असामान्य हो और देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण न हो। दोषी कर्मचारी का यह अधिकार है कि उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शीघ्रता से पूरी की जाए और उसे मानसिक पीड़ा व मौद्रिक हानि न उठानी पड़े, जब कार्यवाही में देरी के लिए वह स्वयं जिम्मेदार न हो और इसे अनावश्यक रूप से लंबा खींचा गया हो। इस बात पर विचार करते समय कि क्या देरी ने अनुशासनात्मक कार्यवाही को दूषित कर दिया है, न्यायालय को आरोप की प्रकृति, उसकी जटिलता और इस बात पर गौर करना होता है कि देरी किस कारण से हुई है। यदि देरी का कोई स्पष्टीकरण नहीं है, तो दोषी कर्मचारी को होने वाली क्षति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इसे इस दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी अपने कर्मचारी के विरुद्ध आरोपों को आगे बढ़ाने में कितना गंभीर है। प्रशासनिक न्याय का यह मूल सिद्धांत है कि किसी विशेष कार्य के लिए नियुक्त अधिकारी को अपने कर्तव्यों का पालन ईमानदारी, कुशलता और नियमों के अनुसार करना चाहिए। यदि वह इस मार्ग से भटकता है, तो उसे निर्धारित दंड भुगतना होगा। सामान्यतः, अनुशासनात्मक कार्यवाही को प्रासंगिक नियमों के अनुसार अपनी गति से चलने की अनुमति दी जानी चाहिए, लेकिन देरी न्याय को विफल कर देती है। देरी आरोपित अधिकारी के लिए प्रतिकूल होती है, जब तक कि यह न दिखाया जा सके कि देरी के लिए वही दोषी है या जब अनुशासनात्मक

कार्यवाही संचालित करने में हुई देरी के लिए उचित स्पष्टीकरण मौजूद हो। अंततः, न्यायालय को इन दो विपरीत विचारों के बीच संतुलन बनाना होता है।

20. इस मामले में हम पाते हैं कि रिकॉर्ड का कोई संदर्भ दिए बिना, केवल महानिदेशक, भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो की रिपोर्ट के आधार पर, प्रतिवादी और दस अन्य लोगों के विरुद्ध आरोप तय किए गए, जो सभी शब्दशः थे और उनमें आरोपित प्रत्येक अधिकारी द्वारा निभाई गई भूमिका का विवरण नहीं दिया गया था। प्रतिवादी के विरुद्ध चार आरोप थे। उनमें से तीन से उसका कोई संबंध नहीं था। उसने चौथे आरोप के संबंध में अपना स्पष्टीकरण दिया था, लेकिन अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने न तो उसकी जांच की और न ही कोई जांच अधिकारी नियुक्त करना उचित समझा, भले ही यह मान लिया जाए कि 1991 के नियमों के तहत कार्रवाई वैध रूप से शुरू की जा रही थी। इतने वर्षों तक जांच कार्यवाही को पूरा करने में हुई देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं है। मामला पूरी तरह से विभाग के रिकॉर्ड पर निर्भर था और महानिदेशक, भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो ने यह बताया था कि उनकी रिपोर्ट देने से पहले किसी भी गवाह से पूछताछ नहीं की गई थी। एक के बाद एक नियुक्त किए गए जांच अधिकारियों को केवल रिकॉर्ड की जांच करनी थी ताकि यह देखा जा सके कि कथित विचलन और निर्माण अवैध और अनाधिकृत थे या नहीं, और फिर यह तय करना था कि उपनियमों के विपरीत उन्हें माफ करने या अनुमोदित करने के लिए कौन जिम्मेदार था। यह किसी का भी मामला नहीं है कि प्रतिवादी ने किसी भी स्तर पर जांच कार्यवाही में बाधा डालने या देरी करने का प्रयास किया। अधिकरण ने राज्य के उन स्पष्टीकरणों को सही ढंग से स्वीकार नहीं किया कि देरी क्यों हुई। वास्तव में, विचार करने योग्य कोई भी स्पष्टीकरण शायद ही मौजूद था। इन परिस्थितियों में, अधिकरण 31 जुलाई 1995 के आरोप-पत्र को रद्द करने और राज्य को 27 अक्टूबर 1995 तथा 1 जून 1996 के ज्ञापनों को अनदेखा करते हुए विभागीय पदोन्नति समिति की सिफारिश के अनुसार प्रतिवादी को पदोन्नत करने का निर्देश देने में उचित था। अधिकरण ने सही ढंग से इन दो बाद वाले ज्ञापनों को रद्द नहीं किया।"

51. **पी.वी. महादेवन बनाम एम.डी., टी.एन. हाउसिंग (उपरोक्त)** के मामले में प्रासंगिक पैरा संख्या 7, 8, 9, 10, 11 और 12 हैं, जिन्हें नीचे उद्धृत किया गया है:-

"7. यही आधार विशेष रूप से इस अपील में इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया है, जिसमें यह कहा गया है कि आरोप-पत्र जारी करके अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में 10 वर्षों से अधिक की देरी विभागीय कार्यवाही को दूषित कर देगी और आरोप-पत्र जारी करने जैसी कार्यवाही शुरू करने में हुई अत्यधिक देरी के लिए किसी भी स्पष्टीकरण के अभाव में, रिट याचिका में की गई कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना उचित होगी।

8. हमारा ध्यान इस अपील में प्रतिवादी-बोर्ड द्वारा दायर प्रति-शपथ पत्र की ओर भी आकर्षित किया गया। यद्यपि कुछ स्पष्टीकरण दिया गया है, लेकिन दिया गया स्पष्टीकरण बिल्कुल भी ठोस नहीं है। प्रति-शपथ पत्र में पहली बार यह कहा गया है कि वर्ष 1990 के दौरान हुई अनियमितता, जिसके लिए वर्ष 2000 में अपीलकर्ता

के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई शुरू की गई थी, 1994-1995 की दूसरी छमाही की ऑडिट रिपोर्ट में सामने आई थी।

9. तमिलनाडु राज्य आवास बोर्ड अधिनियम, 1961 (तमिलनाडु अधिनियम संख्या 17, 1961) की धारा 118 और 119 इस प्रकार हैं:

"118. प्रत्येक वर्ष के अंत में, बोर्ड सरकार को उस वर्ष के लिए अपनी प्राप्तियों और व्यय के खातों का सारांश प्रस्तुत करेगा।

119. बोर्ड के खातों की जांच और लेखा-परीक्षा (ऑडिट) वर्ष में एक बार ऐसे लेखा परीक्षक द्वारा की जाएगी जिसे सरकार इस निमित्त नियुक्त करे।"

10. धारा 118 विशेष रूप से प्रत्येक वर्ष के अंत में खातों का सारांश प्रस्तुत करने का प्रावधान करती है और धारा 119 खातों की वार्षिक लेखा-परीक्षा (ऑडिट) से संबंधित है। इन दो वैधानिक प्रावधानों का बिल्कुल भी अनुपालन नहीं किया गया है। इस मामले में, लेन-देन वर्ष 1990 में हुआ था। व्यय पर अगले वर्ष के खातों में विचार किया जाना चाहिए था। इस मामले में, ऑडिट रिपोर्ट अंततः 1994-1995 में जारी की गई थी। तमिलनाडु अधिनियम 17 के उपरोक्त दो प्रावधानों के आलोक में ऑडिट खातों को अंतिम रूप देने में हुई देरी के लिए दिया गया स्पष्टीकरण जांच की कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता। अब यह कहा गया है कि अपीलकर्ता सेवा से सेवानिवृत्त हो चुके हैं। प्रतिवादी की ओर से विभागीय अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में हुई अत्यधिक देरी के लिए भी कोई स्वीकार्य स्पष्टीकरण नहीं है। श्री आर. वेंकटरमणि, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता प्रतिवादी की ओर से पेश हुए। उनकी यह दलील कि अपीलकर्ता द्वारा अनियमितता किए जाने की तारीख से लेकर उस तारीख तक की अवधि, जब यह हाउसिंग बोर्ड के संज्ञान में आई, को इस उद्देश्य से नहीं गिना जा सकता कि क्या अपीलकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में बोर्ड की ओर से कोई देरी हुई है, में कोई दम या बल नहीं है। प्रतिवादी द्वारा इस न्यायालय में प्रति-शपथ पत्र में अब जो रुख अपनाया गया है, वह संतोषजनक नहीं है और देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण देने हेतु यह केवल एक बाद का विचार है।

11. इन परिस्थितियों में, हम इस राय के हैं कि इतने लंबे समय के बाद प्रतिवादी को विभागीय कार्यवाही आगे बढ़ाने की अनुमति देना अपीलकर्ता के लिए अत्यंत प्रतिकूल होगा। भ्रष्टाचार और संदिग्ध सत्यनिष्ठा के आरोपों के तहत एक उच्च सरकारी अधिकारी को रखने से संबंधित अधिकारी को असहनीय मानसिक पीड़ा और व्यथा होगी। इसलिए, एक सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध लंबी खिंचने वाली अनुशासनात्मक जांच से न केवल सरकारी कर्मचारी के हित में, बल्कि जनहित में और सरकारी कर्मचारियों के मन में विश्वास पैदा करने के हित में भी बचा जाना चाहिए। इस स्तर पर, अब पर्दा गिराने और जांच को समाप्त करने की आवश्यकता है। अनुशासनात्मक कार्यवाही के कारण अपीलकर्ता पहले ही बहुत अधिक कष्ट भोग चुका है। वास्तव में, लंबी खिंचने वाली अनुशासनात्मक कार्यवाही के कारण अपीलकर्ता को हुई मानसिक पीड़ा और कष्ट, मिलने वाली सजा से कहीं अधिक होंगे। अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने की प्रक्रिया में विभाग द्वारा की गई गलतियों का खामियाजा अपीलकर्ता को नहीं भुगतना चाहिए।

12. इसलिए, हम अपीलकर्ता के विरुद्ध जारी आरोप-पत्र को रद्द करने में कोई संकोच नहीं करते हैं। अपील स्वीकार की जाती है। अपीलकर्ता कानून के अनुसार सभी सेवानिवृत्ति लाभों का हकदार होगा। सेवानिवृत्ति लाभों का भुगतान इस तिथि से तीन महीने के भीतर कर दिया जाएगा। कोई वादव्यय नहीं।

52. **यूको बैंक और अन्य बनाम राजेंद्र शंकर शुक्ला, (2018) 14 एससीसी 92** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा संख्या 12 में इस प्रकार व्यवस्था दी है:

"12. हमें उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखता है। हालाँकि, हमारे लिए उन कुछ तथ्यों पर प्रकाश डालना आवश्यक है जो विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों के दौरान हमारे ध्यान में लाए गए थे। चिंता का पहला मुद्दा शुक्ला के विरुद्ध आरोप-पत्र जारी करने में लगभग 7 वर्षों की अत्यधिक देरी है। इस अस्पष्टीकृत देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि बैंक के भीतर कुछ आंतरिक चर्चाएँ चल रही थीं, लेकिन बैंक को अपना मन बनाने में 7 साल लग गए, यह पूरी तरह से तर्कहीन और अस्वीकार्य है। इसी आधार पर, आरोप-पत्र जारी करने में अत्यधिक और अस्पष्टीकृत देरी के कारण शुक्ला के विरुद्ध आरोप-पत्र को रद्द किए जाने योग्य है।"

53. वर्तमान मामले के तथ्यों के अनुसार, याचिकाकर्ता द्वारा रिपोर्ट 30.04.1983 को प्रस्तुत की गई थी और प्रतिवादी प्राधिकारी को 1984 में ही यह जानकारी मिल गई थी कि याचिकाकर्ता की रिपोर्ट गलत थी, लेकिन प्रतिवादियों द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया। संबंधित समय पर, याचिकाकर्ता कानपुर में तैनात था और बाद में उसका कानपुर से स्थानांतरण कर दिया गया था, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि कार्यवाही शुरू करने में हुई देरी के लिए याचिकाकर्ता को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। प्रतिवादियों द्वारा इसका कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि 17 वर्षों के अंतराल के बाद कार्यवाही क्यों शुरू की गई।

54. जहाँ तक विद्वान स्थायी अधिवक्ता के इस तर्क का संबंध है कि जाँच 1999 के नियमों के नियम 7 के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की गई थी और याचिकाकर्ता को अपना पक्ष रखने का पर्याप्त अवसर प्रदान करने के बाद उसके विरुद्ध आदेश पारित किया गया है, तो यह तर्क भ्रामक है।

55. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि यदि जांच करने में कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है, तो याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जांच शुरू करने का निर्देश दिया जाना चाहिए।

56. अब मेरे समक्ष यह प्रश्न उठता है कि क्या याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जांच शुरू करने का निर्देश दिया जाना चाहिए या नहीं। यह न्यायालय पाता है कि इस पहलू पर भी न्यायालयों के निर्णयों का एक समूह है, जो यह कहता है कि दंड आदेश को रद्द किया जाना चाहिए और कर्मचारी को सभी परिणामी लाभों के साथ राहत

दी जानी चाहिए। दूसरा पहलू यह है कि जहां जांच कार्यवाही दोषी कर्मचारी को पर्याप्त अवसर न मिलने के आधार पर दूषित हो जाती है, वहां न्यायालयों को नियोक्ता को यह अनुमति देनी चाहिए कि वह कर्मचारी को निलंबन के अधीन मानते हुए उसके विरुद्ध नए सिरे से कार्यवाही करे, उसे निर्वाह भत्ता का भुगतान करे, और वेतन आदि के बकाये के संबंध में निर्णय नई कार्यवाही के अंतिम परिणाम के आलोक में लिया जाए। वर्तमान मामले के तथ्यों में, कर्मचारी यानी याचिकाकर्ता काफी पहले सेवानिवृत्त हो चुके हैं। इसके अलावा, याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप पुराने हैं क्योंकि विभागीय कार्यवाही कथित कदाचार की तारीख से लगभग 17 वर्षों के अंतराल के बाद शुरू की गई थी। मेरी दृष्टि में, नई जांच का निर्देश देने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा और इस स्तर पर विभागीय जांच की अनुमति देना अनुचित होगा।

57. वर्तमान मामले के तथ्यों में, मेरी राय में, जांच कार्यवाही 1999 के नियमों के नियम 7 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन न करने के कारण, साथ ही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के कारण दूषित है। इसके अतिरिक्त, मेरा यह भी मानना है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई साक्ष्य नहीं था क्योंकि जांच अधिकारी उन दस्तावेजों की फोटोकॉपी को साबित करने के लिए किसी भी गवाह की जांच करने में विफल रहा, जो विभाग द्वारा जांच अधिकारी को दिए गए थे। जांच अधिकारी ने मूल रिकॉर्ड की जांच करने की परवाह भी नहीं की, विशेष रूप से ऐसी परिस्थितियों में जब याचिकाकर्ता ने उन छायाप्रति की शुद्धता पर संदेह जताया, जो याचिकाकर्ता को उपलब्ध कराई गई थीं और जो जांच अधिकारी के समक्ष भी थीं। अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी दोनों ने ही जांच अधिकारी के निष्कर्षों के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन पर कोई स्वतंत्र निष्कर्ष दर्ज नहीं किया और जांच अधिकारी द्वारा दर्ज निष्कर्षों की पुष्टि कर दी है। जांच अधिकारी के निष्कर्षों के विरुद्ध याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर विचार न करना 1999 के नियमों के नियम 9 के उप-नियम 4 का उल्लंघन है, साथ ही यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का भी उल्लंघन है कि पक्षों के अधिकारों को प्रभावित करने वाले आदेशों में कारण निहित होने चाहिए।

58. इसके अलावा, मेरा यह भी मानना है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप पुराने थे क्योंकि कथित कदाचार याचिकाकर्ता द्वारा वर्ष 1983 में किया गया था, जो कि स्वयं आरोप-पत्र के अनुसार वर्ष 1984 में ही विभाग-प्रतिवादी की जानकारी में आ गया था, लेकिन प्रतिवादी प्राधिकारी द्वारा 1999 तक याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही शुरू करने का कोई प्रयास नहीं किया गया और विभागीय कार्यवाही 17 वर्षों के अंतराल के बाद शुरू की गई।

59. इन कारणों से, मेरी सुविचारित राय है कि आक्षेपित आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता है और इसे निरस्त किया जाना चाहिए। रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है। 23.02.2004 का आदेश निरस्त किया जाता है।

60. याचिकाकर्ता सभी परिणामी लाभों का हक्दार होगा, जिनकी गणना प्रतिवादियों द्वारा की जाएगी और इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रतिवादियों के समक्ष प्रस्तुत करने की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर याचिकाकर्ता को दी जाएगी। यदि उपर्युक्त निर्देशानुसार परिणामी लाभ याचिकाकर्ता को नहीं दिए जाते हैं, तो याचिकाकर्ता निर्णय की तिथि से वास्तविक भुगतान किए जाने तक 7 प्रतिशत ब्याज का भुगतान पाने का हक्दार होगा। वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

(2025) 5 ILRA 1351

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.05.2025

सामने

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट-ए संख्या-11837 वर्ष 2020

एवं सम्बद्ध अन्य मामले

प्रशांत राय ... **प्रार्थी**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... **प्रतिपक्षियों**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: राधा कांत ओझा (वरिष्ठ अधिवक्ता), शत्रुघ्न सोनवाल, शिवेंदु ओझा

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता: अरुण कुमार, सी.एस.सी., कुश्मोंडेय शाही

दीवानी कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - विशेषज्ञ समिति द्वारा प्रदान की गई उत्तर कुंजी की न्यायिक समीक्षा - क्या अदालत को सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा (ए.टी.आर.ई.) 2018 की मूल्यांकन प्रक्रिया में हस्तक्षेप करना चाहिए, विशेष रूप से उत्तर कुंजी पर आपतियां, अमूल्यांकित उत्तर, कटिंग/ओवरराइटिंग, इकाइयों की चूक, और अंक देने में विसंगतियों के संबंध में?

अवधारित: कानून अच्छी तरह से स्थापित है कि उम्मीदवार पर न केवल यह प्रदर्शित करने की जिम्मेदारी है कि मुख्य उत्तर गलत है, बल्कि यह भी कि यह एक स्पष्ट गलती है जो पूरी तरह से स्पष्ट है और यह दिखाने के लिए किसी भी अनुमानित प्रक्रिया या तर्क की आवश्यकता नहीं है कि मुख्य उत्तर गलत है। संवैधानिक अदालतों को ऐसे मामलों में बहुत संयम बरतना चाहिए और प्रमुख उत्तरों की शुद्धता को चुनौती देने वाली याचिका पर विचार करने के लिए अनिच्छुक होना चाहिए। अदालत को किसी उम्मीदवार की उत्तर पुस्तिकाओं का पुनर्मूल्यांकन या जांच नहीं करनी चाहिए - उसके पास इस मामले में कोई विशेषज्ञता नहीं है और अकादमिक मामलों को शिक्षाविदों पर छोड़ देना सबसे अच्छा है। अदालत को प्रमुख उत्तरों की शुद्धता का अनुमान लगाना चाहिए और उस धारणा पर आगे बढ़ना चाहिए, और संदेह की स्थिति में, लाभ उम्मीदवार के बजाय परीक्षा प्राधिकरण को जाना चाहिए। (प्रस्तर-12)

खारिज कर दिया। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा उद्घोषित)

1. याचिकाकर्ताओं की ओर से संबंधित रिट याचिकाओं में श्री शिवेंदु ओझा और श्री शत्रुघ्न सोनवाल, श्री शिवेंदु ओझा और श्री शत्रुघ्न सोनवाल, याचिकाकर्ताओं की ओर से संबंधित रिट याचिकाओं में अधिवक्ता, श्री के. शाही, श्री के. के. चंद, बी.एस.ए. के अधिवक्ता, श्री आशीष नागवंशी, ए.सी.एस.सी., श्री राजेश्वर त्रिपाठी सी.एस.सी. और सुश्री श्रुति मालवीय, ब्रीफ़ होल्डर की ओर से संबंधित रिट याचिकाओं में शामिल थे।

2. रिट याचिकाओं का यह वर्तमान समूह, सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा, 2018 और उक्त परीक्षा के कुछ प्रश्नों पर याचिकाकर्ताओं द्वारा दिए गए उत्तरों पर आपत्तियों से उद्भूत होता है।

3. याचिकाकर्ताओं का यह मामला है कि यदि उनकी आपत्तियों पर विचार किया जाता है और तदनुसार उनके संबंधित अंकों में वृद्धि की जाती है, तो वे कट ऑफ अंक यानी सामान्य श्रेणी के लिए 67 अंक या एस.सी. श्रेणी के लिए 60 अंक, जैसा भी मामला हो, पार कर सकते हैं।

4. इस विवाद को पहले रिट याचिका संख्या-18235 वर्ष 2018, अनिरुद्ध नारायण शुक्ला और 118 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ के समक्ष लाया गया था, जिसे दिनांक 30.10.2018 के निर्णय द्वारा निपटाया गया था, जिसमें उत्तरों के पुनर्मूल्यांकन के लिए कुछ निर्देश पारित किए गए थे और उसमें दिए गए संदर्भ निर्देशों के लिए इसे बाद में पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"ऊपर जो देखा गया है, उसके आलोक में, अब उन विशिष्ट मुद्दों को संदर्भित करना उचित होगा जिन्हें याचिकाकर्ताओं की शिकायतों पर विचार करने के लिए इस न्यायालय द्वारा पहले स्पष्ट किया गया है।

(I) कुछ याचिकाकर्ताओं को उनके सही उत्तरों के लिए अंक नहीं दिए गए हैं क्योंकि उनके उत्तरों का मूल्यांकन नहीं किया गया है:
यह देखा गया है कि कुछ याचिकाकर्ताओं को उनके सही उत्तरों के लिए अंक नहीं दिए गए हैं क्योंकि उनके उत्तरों का मूल्यांकन नहीं किया गया है। एक बार जब अधिकारियों ने उत्तर पुस्तिका के पुनर्मूल्यांकन की अनुमति देने का बीड़ा उठाया है तो इससे कोई कठिनाई नहीं होती है। पुनर्मूल्यांकन करते समय, इस पहलू की विशेष रूप से जांच की जा सकती है और इस तरह के उदाहरणों को सही उत्तरों के लिए अंक देकर ठीक किया जाएगा, जिनका पहले मूल्यांकन नहीं किया गया है।
पहला मुद्दा तदनुसार हल किया गया है।

(II) कुछ अन्य सही उत्तरों के लिए कोई अंक नहीं दिए गए हैं क्योंकि इस तथ्य के कारण कि स्कैन की गई प्रतियों में कुछ कटिंग नोट की गई है, हालांकि कार्बन प्रतियों पर ऐसी कोई कटिंग उपलब्ध नहीं है।
याचिकाकर्ताओं की शिकायत की दूसरी श्रेणी को निम्नलिखित शब्दों में गिना गया है: -

2,000 रुपये शुल्क जमा करने पर दिशा-निर्देशों के अनुसार बड़ी संख्या में उम्मीदवारों को स्कैन की गई प्रतियां जारी की गई हैं। ऐसे मामलों में, जहां यह पाया जाता है कि उत्तर पुस्तिका में कटिंग के दौरान उम्मीदवार द्वारा रखी गई कार्बन कॉपी में कोई कटिंग मौजूद नहीं है, ऐसे याचिकाकर्ताओं को इस आदेश की प्रमाणित और/या सच्ची प्रति के साथ आज से दो सप्ताह की अवधि के भीतर परीक्षा नियामक प्राधिकरण के समक्ष इस तरह के आरोप के समर्थन में सामग्री पेश करने की अनुमति देना उचित होगा। प्राधिकरण ऐसे मामलों की जांच करेगा और एक उचित निर्णय लिया जाएगा और संबंधित याचिकाकर्ता को सूचित किया जाएगा।

(III) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद की मौजूदा पुस्तकों और अन्य विशेषज्ञ सामग्री के अनुसार कुछ प्रश्नों के मुख्य उत्तर स्पष्ट रूप से गलत बताए गए हैं

याचिकाकर्ताओं की ओर से उजागर किया गया तीसरा मुद्दा उपलब्ध विभिन्न साहित्यों के संदर्भ में मॉडल उत्तरों के सुधार के संबंध में है और याचिकाकर्ताओं के तर्क के समर्थन में भरोसा किया गया है। श्री सरोज यादव ने यह दिखाने के लिए इस न्यायालय के समक्ष साहित्य रखा है कि पुस्तिका श्रृंखला 'ए' के प्रश्न संख्या-37 की अपलोड की गई उत्तर कुंजी में उल्लिखित उत्तर सही नहीं है और एक अलग उत्तर सही उत्तर होगा। हालांकि, इस तरह की आपत्ति की इस अदालत द्वारा गुण-दोष के आधार पर जांच करने की आवश्यकता नहीं है, इस साधारण कारण से कि याचिकाकर्ताओं में से किसी ने भी परीक्षा नियामक प्राधिकरण के समक्ष उस समय के भीतर ऐसी शिकायत नहीं उठाई है जिसे प्राधिकरण द्वारा परीक्षा के संचालन की अनुसूची प्रकाशित करते समय इस उद्देश्य के लिए अनुमति दी गई थी।

मैं प्रस्तुत मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ऐसा दृष्टिकोण अपनाने के लिए इच्छुक हूं, जहां 68,500 नियुक्तियां की जानी हैं और 1 लाख से अधिक उम्मीदवारों ने विज्ञापन के अनुसार आवेदन किया है। परीक्षा का कार्यक्रम व्यापक रूप से प्रकाशित किया गया था और प्रत्येक उम्मीदवार को उत्तरों पर आपत्ति करने के अपने अधिकार के बारे में पता था, जिसे अस्थायी रूप से प्राधिकरण की वेबसाइट पर अपलोड किया गया था। एक बार जब याचिकाकर्ता इस तरह के अवसर का लाभ उठाने में विफल रहे हैं और कोई आपत्ति नहीं उठाई गई है, तो यह न्यायालय इस स्तर पर ऐसी आपत्तियों पर विचार करने के लिए इच्छुक नहीं होगा। अन्यथा भी, गुण-दोष के आधार पर यह पाया जाता है कि उत्तर कुंजी के विरुद्ध कुछ व्यक्तियों द्वारा उठाई गई आपत्तियां इलाहाबाद विश्वविद्यालय और उससे संबद्ध कॉलेजों के तीन एसोसिएट प्रोफेसरों वाली विशेषज्ञों की समिति के समक्ष रखी गई थीं और आपत्तियों की जांच की मूल कार्यवाही इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई है। एक बार जब आवेदकगण को अपनी आपत्तियां दर्ज करने का अवसर दिया गया, जिसका लाभ नहीं उठाया गया है, तो यह न्यायालय विशेषज्ञों की राय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहेगा, जो अन्यथा बहुत सम्मान के हकदार हैं। इसलिए, परिस्थितियों की समग्रता में, यह न्यायालय अधिकारियों द्वारा पहले से अपलोड की गई सही उत्तर कुंजी तक ही सीमित नहीं होगा। अन्यथा, न्यायालय ध्यान दे सकता है कि केवल एक प्रश्न को दो संभावित उत्तरों के रूप में उजागर किया गया है, जिनमें से एक को गलत होने का आरोप लगाया गया है।

(IV) कुछ प्रश्नों के लिए, सही उत्तरों के लिए अंक इस बहाने से नहीं दिए गए हैं कि सही उत्तरों को दर्ज करने से पहले कुछ कटिंग मौजूद है, हालांकि उत्तर अन्यथा सुपाठ्य हैं:
याचिकाकर्ताओं की ओर से उजागर किया गया चौथा मुद्दा उत्तरों के संदर्भ में है, भले ही सही हों, कुछ कटिंग या ओवरराइटिंग को देखते हुए कोई अंक नहीं दिया गया है, हालांकि उत्तर सही और सुपाठ्य हैं। यह पहले ही देखा जा चुका है कि परीक्षा नियामक प्राधिकरण पदार्थ से अधिक फॉर्म को वरीयता नहीं देगा और यदि उत्तर सही हैं, तो उम्मीदवारों को अंक दिए जाएंगे, भले ही कुछ कटिंग या ओवरराइटिंग हो। हालाँकि, यह उत्तर सुपाठ्य और स्पष्ट होने के अधीन होगा। यह भी स्पष्ट किया जाता है कि यदि उम्मीदवारों ने दो उत्तर दिए हैं, हालांकि उन्हें एक उत्तर देना आवश्यक था, तो परीक्षा प्राधिकारी उत्तर को अनदेखा करने के लिए स्वतंत्र होगा; जितना अधिक, आवेदकगण/उम्मीदवारों से केवल एक उत्तर देने की अपेक्षा की जाती है, न कि दो उत्तर की।

(v) कुछ सही उत्तरों को कोई अंक नहीं दिया गया है यदि इकाई जैसे 'रुपये' या 'किलोमीटर' आदि नहीं लिखे गए हैं या मामूली व्याकरण संबंधी त्रुटियां की गई हैं, जबकि उत्तर भौतिक रूप से और काफी हद तक सही है:
उम्मीदवारों की पांचवीं श्रेणी फिर से वे हैं जिन्होंने सार पर फॉर्म को वरीयता देने के उदाहरणों पर प्रकाश डाला है। शिकायत को प्रमाणित करने के लिए, प्रश्न संख्या-66 का संदर्भ दिया जाता है, साथ ही इसके उत्तर को मॉडल उत्तर कुंजी में दिखाया गया है, जिसे इसके बाद निकाला गया है:

" प्र. 66. यदि 6 पुरुषों की 15 दिनों की मजदूरी 2100 रुपये है, तो 12 दिनों के लिए 9 पुरुषों की मजदूरी ज्ञात कीजिए।
मॉडल उत्तर कुंजी के अनुसार इसका उत्तर इस प्रकार है: -
रू० 2520 या रु. 2520"
यह बताया गया है कि कई उम्मीदवार , जिन्होंने उत्तर को "2520" के रूप में उल्लेख किया है, लेकिन रुपये (रुपये) को इकाई के रूप में उल्लेख करने में विफल रहे हैं, उन्हें अंक देने से इनकार कर दिया गया है। प्रश्न का उद्देश्य उम्मीदवार की गणितीय क्षमता का परीक्षण करना था और यदि उम्मीदवार सही था, तो उत्तर को केवल इसलिए गलत नहीं ठहराया जा सकता था क्योंकि उत्तर में इकाई निर्दिष्ट नहीं थी।
इसी तरह, पुस्तिका श्रृंखला 'ए' के प्रश्न संख्या-55 में निम्नानुसार है: -

"प्र. 55. एक नियमित बहुभुज वर्ष 10 पक्षों के प्रत्येक बाहरी कोणों का पता लगाएं।यह बताया गया है कि कई उम्मीदवार, जिन्होंने उत्तर को "2520" के रूप में उल्लेख किया है, लेकिन रुपये (रुपये) को इकाई के रूप में उल्लेख करने में विफल रहे हैं, उन्हें अंक देने से इनकार कर दिया गया है। प्रश्न का उद्देश्य उम्मीदवार की गणितीय क्षमता का परीक्षण करना था और यदि उम्मीदवार सही था, तो उत्तर को केवल इसलिए गलत नहीं ठहराया जा सकता था क्योंकि उत्तर में इकाई निर्दिष्ट नहीं थी।
इसी तरह, पुस्तिका श्रृंखला 'ए' के प्रश्न संख्या-55 में निम्नानुसार है: -

"प्र.55. एक नियमित बहुभुज वर्ष 10 पक्षों के प्रत्येक बाहरी कोणों का पता लगाएं।

मॉडल उत्तर कुंजी के अनुसार इसका उत्तर इस प्रकार है: -

"36°"

मॉडल उत्तर कुंजी में इसका उत्तर '36°' के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। कुछ उम्मीदवारों ने सही उत्तर को '36' के रूप में उल्लेख किया है, लेकिन उल्लिखित डिग्री चिह्न सुपाठ्य या स्पष्ट या छोड़ा नहीं गया है, जिसे गलत उत्तर के रूप में माना गया है। प्रश्न संख्या-135, इसी तरह, इसके बाद भी निकाला गया है: -

"प्र.135. मोहन पश्चिम दिशा में चलना शुरू करता है और 3 किमी चलता है, फिर दाएं मुड़ता है और आगे 4 किमी चलता है। वह आगे बाएं मुड़ता है और 2 किमी चलता है, फिर से बाएं मुड़ता है और 4 किमी चलता है। मोहन अपने उद्गम स्थल से कितनी दूर है और किस दिशा में है?

मॉडल उत्तर कुंजी के अनुसार इसका उत्तर इस प्रकार है:

"5 कि०मी० पश्चिम।

कुछ उम्मीदवार, जिन्होंने सही उत्तर लिखा है, यदि किमी/किलोमीटर स्पष्ट करने में विफल रहे हैं, तो उनके उत्तर को गलत माना गया है।

इन सभी सवालों से ऐसा प्रतीत होता है कि जहां भी गणना सही है, लेकिन इकाई को छोड़ दिया गया है, वहां भी उत्तर को गलत माना गया है। यद्यपि इकाई का लेखन वांछनीय हो सकता है, लेकिन इसकी चूक अंक देने से इनकार करने का आधार नहीं होनी चाहिए, क्योंकि उद्देश्य स्वयं उम्मीदवार के गणितीय कौशल और क्षमता का मूल्यांकन करना है। इसलिए, प्राधिकारी पुनर्मूल्यांकन के प्रयोजन के लिए, इकाई आदि जैसे रुपये (रुपये) या किमी/किलोमीटर, आदि के उल्लेख में इस तरह की चूक को अनावश्यक महत्व नहीं देंगे।

(VI) अधिलेखन के मामलों में अंक देने में घोर विसंगतियां मौजूद हैं, क्योंकि कुछ छात्रों के उत्तरों के लिए, अधिलेखित करने के बावजूद पूर्ण अंक दिए गए हैं, हालांकि इसी तरह की गलतियों के लिए दूसरों को कोई अंक नहीं दिया गया है:

छठी श्रेणी के मामले उन उम्मीदवारों से संबंधित हैं, जिनके अनुसार उनमें से कुछ के साथ विभेदक व्यवहार किया गया है; जबकि कुछ मामलों में अधिलेखन के मामलों में सही अंक दिए गए हैं, लेकिन अन्य मामलों में इसे अस्वीकार कर दिया गया है। याचिकाकर्ताओं द्वारा यह आरोप लगाया गया है कि समान परिस्थितियों में, कुछ उम्मीदवारों के लिए जहां कटिंग की गई है, परीक्षा निकाय ने ऐसे उम्मीदवारों को अंक दिए हैं, लेकिन उन्हें इसी तरह के व्यवहार से वंचित कर दिया गया है।

चूंकि इस न्यायालय ने पहले ही टिप्पणी की है कि परीक्षा नियामक प्राधिकरण एक ऐसा दृष्टिकोण अपनाएगा जो राज्य भर के संस्थानों में सहायक शिक्षकों के रूप में भर्ती होने के लिए अच्छी प्रतिभा की पहचान करने में मदद करेगा, केवल कटौती आदि, सही उत्तरों और टिप्पणियों पर विचार करने से इनकार करने का आधार नहीं होगा, जो पहले से ही व्यक्तियों की दूसरी श्रेणी के साथ व्यवहार करते समय किए गए हैं। ये नियम यहां भी लागू होगा।

(VII) कुछ प्रश्नों के लिए, मॉडल/कुंजी उत्तर पुस्तिका में कई उत्तरों (एक से अधिक) को सही उत्तर के रूप में दिखाया गया है। हालांकि, अंक केवल कई सही उत्तरों में से एक या दूसरे के लिए दिए गए हैं और सभी के लिए नहीं:

सातवीं श्रेणी भी बहुत कठिनाई पैदा नहीं करेगी; जितना कि, मॉडल उत्तर कुंजी में दिखाए गए सभी सही उत्तरों के लिए, परीक्षक को उम्मीदवारों को अंक देने की आवश्यकता होगी। इसलिए, मूल्यांकन केवल कुछ सही उत्तरों तक ही सीमित नहीं होगा; जितना अधिक, कई प्रश्नों में कई सही उत्तर होते हैं।

(VIII) कुछ याचिकाकर्ताओं का दावा है कि उन्हें अयोग्य घोषित किया गया है, हालांकि स्कैन की गई प्रतियों के अनुसार उन्हें जो अंक दिए गए हैं, वे स्पष्ट रूप से योग्यता अंकों से ऊपर हैं:

अंतिम श्रेणी, यानी आठवीं श्रेणी, मामलों की संख्या उन लोगों से संबंधित है जिन्हें चयन सूची में शामिल नहीं किया गया है, हालांकि, स्कैन की गई प्रति के अवलोकन से, ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने भर्ती के लिए निर्धारित कट ऑफ से ऊपर अंक प्राप्त किए हैं। परीक्षा नियामक प्राधिकरण के सचिव से प्राप्त निर्देशों के आधार पर राज्य के अधिवक्ता ने कहा कि ऐसे सभी मामलों पर विधिवत विचार किया जाएगा और यदि उम्मीदवारों ने कट ऑफ से अधिक अंक प्राप्त किए हैं, तो उन्हें चयन सूची में शामिल किया जाएगा। हालांकि, ऐसे सभी उम्मीदवारों को इस आदेश की प्रमाणित और/या सही प्रति के साथ आज से दो सप्ताह की अवधि के भीतर परीक्षा नियामक प्राधिकरण के समक्ष अपने दावे के समर्थन में सामग्री प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया जाता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ याचिकाकर्ताओं ने पुनर्मूल्यांकन के लिए आवेदन करने के लिए दिनांक 05.10.2018 के सरकारी आदेश के तहत दी गई स्वतंत्रता का लाभ नहीं उठाया है, इस साधारण कारण से कि रिट याचिकाएं इस न्यायालय के समक्ष लंबित थीं। यह कहा गया है कि कुछ याचिकाकर्ताओं को ऐसा न करने की सलाह दी गई थी। चूंकि पुनर्मूल्यांकन का कार्य, अन्यथा, प्रतिपक्षियों द्वारा स्वयं उपलब्ध कराया गया है, इसलिए इस आदेश की प्रमाणित और/या सच्ची प्रति के साथ, आज से दो सप्ताह की अवधि के भीतर ऐसे सभी याचिकाकर्ताओं को अपनी आपत्तियां करने या पुनर्मूल्यांकन के लिए आवेदन करने के लिए एक और अनुग्रह प्रदान करना उचित होगा। यह स्पष्ट किया जाता है कि इस अवसर को प्रदान करने के अलावा, किसी भी व्यक्ति को नई शिकायत दर्ज करने का कोई और अवसर नहीं दिया जाएगा। परीक्षा नियामक प्राधिकरण द्वारा उपर्युक्त टिप्पणियों के आधार पर और कानून के अनुसार पुनर्मूल्यांकन किया जाएगा। उपरोक्त दिशा-निर्देश यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं कि उम्मीदवारों के साथ उचित व्यवहार किया जाए और भर्ती के संबंध में पहले से तैयार किए गए प्रश्नों पर अनावश्यक मुकदमेबाजी से बचा जा सके।

परीक्षा नियामक प्राधिकरण के सचिव का कहना है कि पुनर्मूल्यांकन का कार्य आज से दो महीने की अवधि के भीतर तेजी से पूरा किया जाएगा। तथापि, यह प्रावधान किया जाता है कि जब तक इस प्रकार की प्रक्रिया पूरी नहीं हो जाती है, तब तक संबंधित भर्ती की बची हुई सीटों/रिक्तियों पर भर्ती की नई प्रक्रिया नहीं की जाएगी।

उपरोक्त टिप्पणियों/निर्देशों के साथ, इस याचिका का तदनुसार निपटारा किया जाता है।

लागत के बारे में कोई आदेश पारित नहीं किया गया है।

5. इस न्यायालय की एक अन्य समन्वय पीठ (रिट याचिका संख्या-5365 वर्ष 2019), राधा देवी और 2 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य, आदेश दिनांक 17.5.2019 में भी उसी परीक्षा की उत्तर कुंजी पर विचार किया है और पुस्तिका श्रृंखला 'सी' के संदर्भ प्रश्न संख्या-10 में इसका उत्तर "दीर्घ संधि" "स्वर संधि" माना है। उक्त आदेश का प्रासंगिक हिस्सा इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"स्थायी अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रश्न पुस्तिका श्रृंखला-सी के प्रश्न संख्या-10 और 55 के उत्तर के संबंध में विशेषज्ञ रिपोर्ट को अभिलेखों पर लिया जाता है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रश्न पुस्तिका श्रृंखला-सी, याचिकाकर्ता संख्या-3 की मुख्य उत्तर और उत्तर स्क्रिप्ट से यह प्रदर्शित किया गया है कि प्रश्न संख्या-10 और 55 के लिए उसके द्वारा दिए गए उत्तर सही हैं। इसलिए, उक्त उत्तर के लिए याचिकाकर्ता संख्या-3 को दो अंक प्रदान किए जाने हैं। प्रारंभ में, मूल परिणाम में याचिकाकर्ता को 63 अंक मिले थे और पुनर्मूल्यांकन के बाद, प्रश्न संख्या-52 और 54 को अंक देकर उसके अंक बढ़ाकर 65 कर दिए गए हैं।

प्रतिवादी संख्या-4 अर्थात् सचिव, परीक्षा नियामक प्राधिकरण, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद को प्रश्न संख्या-10 और 55 को दो और अंक प्रदान करके याचिकाकर्ता संख्या-3 के परिणाम में सुधार करने का निर्देश दिया जाता है। याचिकाकर्ता संख्या-3 का सही परिणाम आज से एक पखवाड़े के भीतर वेबसाइट पर अपलोड किया जाएगा।

रिट याचिका को उपरोक्त सीमा तक अनुमति दी जाती है।

6. उपरोक्त आदेश को राज्य द्वारा विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या-756 वर्ष 2019 में चुनौती दी गई थी, हालांकि इसे दिनांक 20.8.2010 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। संदर्भ के लिए इसे इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"अपील पर आदेश

श्री अजीत कुमार सिंह, अतिरिक्त महाधिवक्ता, श्री पंकज राय, राज्य अपीलकर्ता के लिए अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता, और श्री राधा कांत ओझा, वरिष्ठ अधिवक्ता, प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता श्री अवनीश त्रिपाठी की सहायता से सुनीं।

प्रस्तुत अपील रिट-ए संख्या-5365 वर्ष 2019 में पारित 17.5.2019 के फैसले और आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके तहत एकल न्यायाधीश ने दो प्रश्नों के संबंध में याचिकाकर्ता के परिणाम को सुधारने का निर्देश दिया है। दो प्रश्न यानी प्रश्न संख्या-10 और 55, उम्मीदवार द्वारा दिए गए उत्तर और मॉडल उत्तर नीचे दिए गए हैं:

प्र. नं. 10 : "सुखात्र:" मे कौन सी संधि है?

याचिकाकर्ता द्वारा दिया गया उत्तर है: दीर्घ संधि जबकि मॉडल उत्तर है: वृद्धि संधि /स्वर संधि।

प्र. नं. 55 : भारतीय पुनर्वास परिषद (आरसीआई) की स्थापना किस प्रकार के बच्चों की शिक्षा के लिए की जाती है?

भारतीय पुनर्वास परिषद की स्थापना किस प्रकार के बच्चो के शिक्षा के लिए दी गई है?

याचिकाकर्ता द्वारा दिया गया उत्तर है: "पिछड़े बालकों के लिए एवं विशिष्ट बालकों जबकि मॉडल का उत्तर है: ' विकलांग / दिव्यान्ग बच्चों हेतु / शारीरिक रूप से अक्षम / विशिष्ट बालक / पी०डब्ल्यू०डी / निशक्त / अक्षम।" प्रतिपक्षियों के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.के. ओझा ने इस रिट याचिका में पारित पहले के आदेश को हमारे संज्ञान में लाया है, जो दिनांक 3.5.2019 का आदेश है, जिसमें एकल न्यायाधीश ने माना था कि प्रश्न संख्या-10 का मॉडल उत्तर संदर्भ सामग्री के आधार पर एक गलत उत्तर था, जिसे न्यायालय के समक्ष यह प्रदर्शित करने के लिए लाया गया था कि सही उत्तर वह है जो याचिकाकर्ता द्वारा दिया गया था, न कि जैसा कि मॉडल उत्तर में दर्शाया गया था।

प्रश्न संख्या-55 के संबंध में, एकल न्यायाधीश ने पाया कि मॉडल उत्तर के अनुसार उत्तर सही था और उस आधार पर न्यायालय ने दो अंक जोड़ने का निर्देश दिया था। राज्य सरकार ने दिनांक 3.5.2019 के आदेश को चुनौती नहीं दी है, इसलिए उक्त आदेश पर निर्णय नहीं लिया जाना है। जहां तक प्रश्न संख्या-55 के दिए गए उत्तर के लिए जोड़े जाने का संबंध है, यह विशेष अपील संख्या-902 वर्ष 2019 (उत्तर प्रदेश राज्य) में हमारे निर्णय द्वारा पूरी तरह से कवर किया गया है। और 3 अन्य बनाम प्रदीप कुमार) और दो अन्य संबंधित अपीलों पर 13.8.2019 को निर्णय लिया गया। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि दिनांक 3.5.2019 के आदेश को चुनौती नहीं दी गई है, हम मानते हैं कि 17.5.2019 के निर्णय और आदेश में कोई खामी नहीं है, इसके बाद विशेष अपील खारिज की जा सकती है।
तदनुसार, विशेष अपील खारिज की जाती है।

7. उत्तर प्रदेश राज्य ने एक विशेष अनुमति याचिका संख्या-11462 वर्ष 2020 के माध्यम से उपरोक्त संदर्भित आदेश को चुनौती दी है, जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 9.10.2020 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया था।

8. याचिकाकर्ताओं का यह आगे भी मामला है कि अनिरुद्ध शुक्ला (उपरोक्त) में पारित आदेश के बाद, उन्होंने अपनी संबंधित आपत्तियां दर्ज की हैं। हालांकि, उनके उत्तरों पर अनिरुद्ध शुक्ला (उपरोक्त) के संदर्भ में विचार नहीं किया गया था, इसलिए वे पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं।

9. सुनवाई के दौरान, अदालत ने याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं से निर्देश लेने के लिए कहा है कि यदि संबंधित रिट याचिकाओं में उठाई गई आपत्तियों को पूरी तरह से अनुमति दी जाती है, तो क्या वे कट ऑफ अंक को पार कर पाएंगे या नहीं और मामले को उस उद्देश्य के लिए स्थगित कर दिया गया था।

10. अंतिम सुनवाई की तारीख पर, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि केवल निम्नलिखित रिट याचिकाओं में यदि उनकी आपत्तियां सही पाई जाती हैं और उनकी संख्या बढ़ जाती है, तो वे कट ऑफ मार्क्स को पार कर लेंगे और उक्त रिट याचिकाओं का विवरण इस प्रकार है:

1. रिट ए संख्या-11837 वर्ष 2020

2. रिट ए संख्या-13075 वर्ष 2020

3. रिट ए संख्या-12239 वर्ष 2020

4. रिट ए संख्या-1628 वर्ष 2021

5. रिट ए संख्या-12185 वर्ष 2020

6. रिट ए संख्या-12418 वर्ष 2020

7. रिट ए संख्या-917 वर्ष 2021

8. रिट ए संख्या-14096 वर्ष 2020

9. रिट ए संख्या-13564 वर्ष 2020

10. रिट ए संख्या-12000 वर्ष 2021

11. रिट ए संख्या-12692 वर्ष 2020

12. रिट ए संख्या-12467 वर्ष 2020

13. रिट ए संख्या-12419 वर्ष 2020

14. रिट ए संख्या-12629 वर्ष 2020

15. रिट ए संख्या-13506 वर्ष 2020

अनुवादित

11. उपरोक्त परिस्थितियों में, न्यायालय बाकी रिट याचिकाओं पर विचार नहीं कर रहा है क्योंकि यह एक निरर्थक अभ्यास होगा और उन्हें इस टिप्पणी के साथ निपटाया जाता है कि भले ही उनकी आपत्तियों पर विचार किया जाए तो वे कट ऑफ मार्क्स को पार नहीं कर पाएंगे। उक्त रिट याचिकाओं का विवरण इसके बाद उल्लिखित है:

1. रिट ए संख्या-11420 वर्ष 2020

2. रिट ए संख्या-11674 वर्ष 2020

3. रिट ए संख्या-11683 वर्ष 2020

4. रिट ए संख्या-11713 वर्ष 2020

5. रिट ए संख्या-11721 वर्ष 2020

6. रिट ए संख्या-11732 वर्ष 2020

7. रिट ए संख्या-11742 वर्ष 2020

8. रिट ए संख्या-11938 वर्ष 2020

9. रिट ए संख्या-12187 वर्ष 2020

10. रिट ए संख्या-12200 वर्ष 2020

11. रिट ए संख्या-12221 वर्ष 2020
12. रिट ए संख्या-12223 वर्ष 2020
13. रिट ए संख्या-12401 वर्ष 2020
14. रिट ए संख्या-12427 वर्ष 2020
15. रिट ए संख्या-12444 वर्ष 2020
16. रिट ए संख्या-12455 वर्ष 2020
17. रिट ए संख्या-12472 वर्ष 2020
18- रिट ए संख्या-12538 वर्ष 2020
19. रिट ए संख्या-12708 वर्ष 2020
20. रिट ए संख्या-12979 वर्ष 2020
21. रिट ए संख्या-13030 वर्ष 2020
22. रिट ए संख्या-13048 वर्ष 2020
23. रिट ए संख्या-13174 वर्ष 2020
24. रिट ए संख्या-13214 वर्ष 2020
25. रिट ए संख्या-13279 वर्ष 2020
26. रिट ए संख्या-13282 वर्ष 2020
27. रिट ए संख्या-13294 वर्ष 2020
28. रिट ए संख्या-13357 वर्ष 2020
29. रिट ए संख्या-13776 वर्ष 2020
30. रिट ए संख्या-14287 वर्ष 2020
31. रिट ए संख्या-15040 वर्ष 2020
32. रिट ए संख्या-15044 वर्ष 2020
33. रिट ए संख्या-15105 वर्ष 2020
34. रिट ए संख्या-15109 वर्ष 2020
35. रिट ए संख्या-15114 वर्ष 2020
36. रिट ए संख्या-15149 वर्ष 2020
37. रिट ए संख्या-1632 वर्ष 2021
38. रिट ए संख्या-638 वर्ष 2021
39. रिट ए संख्या-1681 वर्ष 2021

अनुवादित

40. रिट ए संख्या-1707 वर्ष 2021

41. रिट ए संख्या-178 वर्ष 2021

42. रिट ए संख्या-1888 वर्ष 2021

43. रिट ए संख्या-2112 वर्ष 2021

44. रिट ए संख्या-4157 वर्ष 2021

45. रिट ए संख्या-4350 वर्ष 2021

46. रिट ए संख्या-652 वर्ष 2021

47. रिट ए संख्या-811 वर्ष 2021

48. रिट ए संख्या-8604 वर्ष 2021

49. रिट ए संख्या-871 वर्ष 2021

50. रिट ए संख्या-9099 वर्ष 2021

51. रिट ए संख्या-92 वर्ष 2021

12. न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा/हस्तक्षेप के दायरे में कानून की स्थापित स्थिति को ध्यान में रखते हुए प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है, इस मुद्दे पर कि विशेषज्ञ समिति द्वारा प्रदान किए गए प्रमुख उत्तरों के साथ-साथ ऐसे मामलों में अदालत को संयम बरतना चाहिए। संदर्भ के लिए, **रण विजय सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश और अन्य राज्य, (2018)2 एस.सी.सी. 357, विकास कुमार गुप्ता बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, 2021(2) एस.सी.सी. 309, उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और अन्य बनाम राहुल सिंह और अन्य** के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का प्रासंगिक हिस्सा**, (2018)7 एस.सी.सी. 254, विशेष अपील संख्या-242 वर्ष 2022, जितेंद्र सिंह बनाम भारत संघ और अन्य, तटस्थ उद्धरण संख्या-2024: एएचसी:125327-डीबी में इस न्यायालय की खंडपीठ का फैसला** और साथ ही रिट याचिका संख्या-6605 वर्ष 2022, **प्रगति अग्रवाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, तटस्थ उद्धरण संख्या-2024: एएचसी: 18999** में पारित निर्णय इसके बाद पुन: प्रस्तुत किए गए हैं:-

*"रण विजय सिंह और अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश एवं अन्य***

30. इसलिए, इस विषय पर कानून काफी स्पष्ट है और हम केवल कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्षों को उजागर करने का प्रस्ताव करते हैं। वे हैं:

30.1. यदि किसी परीक्षा को नियंत्रित करने वाला कोई क़ानून, नियम या विनियम उत्तर पुस्तिका के पुनर्मूल्यांकन या उत्तर पुस्तिका की जांच को अधिकार के रूप में अनुमति देता है, तो परीक्षा अवधारित करने वाला प्राधिकारी इसकी अनुमति दे सकता है;

30.2. यदि एक परीक्षा को नियंत्रित करने वाला एक क़ानून, नियम या विनियमन उत्तर पुस्तिका के पुनर्मूल्यांकन या जांच की अनुमति नहीं देता है (जैसा कि इसे प्रतिबंधित करने से अलग) तो अदालत केवल तभी पुनर्मूल्यांकन या जांच की अनुमति दे सकती है जब यह बहुत स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया गया हो, बिना किसी "तर्क की अनुमानित प्रक्रिया या युक्तिकरण की प्रक्रिया द्वारा" और केवल दुर्लभ या असाधारण मामलों में कि एक अहम त्रुटि की गई है;

30.3. न्यायालय को किसी उम्मीदवार की उत्तर पुस्तिकाओं का पुनर्मूल्यांकन या जांच नहीं करनी चाहिए - उसके पास इस मामले में कोई विशेषज्ञता नहीं है और शैक्षणिक मामलों को शिक्षाविदों पर छोड़ देना सबसे अच्छा है;

30.4. न्यायालय को मुख्य उत्तरों की शुद्धता का अनुमान लगाना चाहिए और उस धारणा पर आगे बढ़ना चाहिए; और

30.5. संदेह की स्थिति में, लाभ उम्मीदवार के बजाय परीक्षा प्राधिकारी को जाना चाहिए।

31. अपनी ओर से हम यह जोड़ सकते हैं कि सहानुभूति या करुणा उत्तर पुस्तिका के पुनर्मूल्यांकन को निर्देशित करने या न करने के मामले में कोई भूमिका नहीं निभाती है। यदि परीक्षा प्राधिकरण द्वारा कोई त्रुटि की जाती है, तो उम्मीदवारों का पूरा शरीर प्रभावित होता है। पूरी परीक्षा प्रक्रिया केवल इसलिए पटरी से उतरने के लायक नहीं है क्योंकि कुछ उम्मीदवार निराश या असंतुष्ट हैं या एक गलत प्रश्न या गलत उत्तर के कारण उनके साथ कुछ अन्याय हुआ है। सभी उम्मीदवारों को समान रूप से पीड़ित होना पड़ता है, हालांकि कुछ को अधिक नुकसान हो सकता है लेकिन इसमें मदद नहीं की जा सकती है क्योंकि गणितीय सटीकता हमेशा संभव नहीं होती है। इस न्यायालय ने गतिरोध से बाहर निकलने का एक रास्ता दिखाया है - संदिग्ध या आपत्तिजनक प्रश्न को बाहर करना।

32. यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस न्यायालय के कई निर्णयों के बावजूद, जिनमें से कुछ पर ऊपर चर्चा की गई है, परीक्षाओं के परिणाम में अदालतों द्वारा हस्तक्षेप किया गया है। यह परीक्षा अधिकारियों को एक अविश्वसनीय स्थिति में रखता है जहां वे जांच के दायरे में हैं, न कि उम्मीदवार। इसके अतिरिक्त, एक बड़े पैमाने पर और कभी-कभी लंबे समय तक परीक्षा अभ्यास अनिश्चितता की हवा के साथ समाप्त होता है। हालांकि इसमें कोई संदेह नहीं है कि उम्मीदवारों ने परीक्षा की तैयारी में जबरदस्त प्रयास किया है, यह नहीं भूलना चाहिए कि परीक्षा अधिकारियों ने भी परीक्षा को सफलतापूर्वक अवधारित करने के लिए समान रूप से महान प्रयास किए हैं। कार्य की विशालता बाद के चरण में कुछ चूक का खुलासा कर सकती है, लेकिन अदालत को परीक्षा में सफलतापूर्वक भाग लेने वाले उम्मीदवारों और परीक्षा अधिकारियों द्वारा किए गए प्रयासों में हस्तक्षेप करने से पहले परीक्षा अधिकारियों द्वारा की गई आंतरिक जांच और संतुलन पर विचार करना चाहिए। प्रस्तुत अपील इस तरह के हस्तक्षेप के परिणाम का एक उत्कृष्ट उदाहरण है जहां आठ साल बीत जाने के बाद भी परीक्षाओं के परिणाम को अंतिम रूप नहीं दिया जाता है। परीक्षा अधिकारियों के अलावा, यहां तक कि उम्मीदवार भी परीक्षा के परिणाम की निश्चितता या अन्यथा के बारे में आश्चर्यचकित रह जाते हैं - चाहे वे उत्तीर्ण हुए हों या नहीं; क्या उनका परिणाम अदालत द्वारा अनुमोदित या अस्वीकृत किया जाएगा; उन्हें कॉलेज या विश्वविद्यालय

में प्रवेश मिलेगा या नहीं; और उन्हें भर्ती किया जाएगा या नहीं। यह असंतोषजनक स्थिति किसी के लाभ के लिए काम नहीं करती है और अनिश्चितता की ऐसी स्थिति के परिणामस्वरूप भ्रम और भी बदतर हो जाता है। इन सबका समग्र और बड़ा प्रभाव यह है कि जनहित प्रभावित होता है।
उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग अपने अध्यक्ष और अन्य बनाम राहुल सिंह और अन्य के माध्यम से;

*12. कानून अच्छी तरह से स्थापित है कि उम्मीदवार पर न केवल यह प्रदर्शित करने की जिम्मेदारी है कि मुख्य उत्तर गलत है, बल्कि यह भी कि यह एक स्पष्ट गलती है जो पूरी तरह से स्पष्ट है और यह दिखाने के लिए किसी भी अनुमानित प्रक्रिया या तर्क की आवश्यकता नहीं है कि मुख्य उत्तर गलत है। संवैधानिक अदालतों को ऐसे मामलों में बहुत संयम बरतना चाहिए और मुख्य उत्तरों की शुद्धता को चुनौती देने वाली याचिका पर विचार करने के लिए अनिच्छुक होना चाहिए। कानपुर विश्वविद्यालय के मामले में [**कानपुर विश्वविद्यालय बनाम समीर गुप्ता, (1983) 4 एस.सी.सी. 309**], न्यायालय ने एक प्रणाली की सिफारिश की:*
(1) संयम;
(2) प्रश्नों में अस्पष्टता से बचना;
(3) संदिग्ध प्रश्नों को बाहर करने के लिए त्वरित निर्णय लिए जाएं और ऐसे प्रश्नों को कोई अंक नहीं दिया जाए।

13. जहां तक प्रस्तुत मामले का संबंध है, प्रमुख उत्तरों की पहली सूची प्रकाशित करने से पहले ही आयोग ने दो विशेषज्ञ समितियों द्वारा संचालित प्रमुख उत्तर प्राप्त किए थे। इसके बाद, आपत्तियां आमंत्रित की गईं और आपत्तियों के सत्यापन के लिए 26 सदस्यीय समिति का गठन किया गया और इस अभ्यास के बाद समिति ने सिफारिश की कि 5 प्रश्नों को हटा दिया जाए और 2 प्रश्नों में, मुख्य उत्तरों को बदल दिया जाए। यह माना जा सकता है कि इन समितियों में विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ शामिल थे, जिनके लिए परीक्षार्थियों का परीक्षण किया गया था। न्यायाधीश अकादमिक मामलों में विशेषज्ञों की भूमिका नहीं निभा सकते हैं। जब तक, उम्मीदवार यह प्रदर्शित नहीं करता है कि मुख्य उत्तर स्पष्ट रूप से गलत हैं, तब तक अदालतें अकादमिक क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकती हैं, दोनों पक्षों द्वारा दिए गए तर्कों के पेशेवरों और विपक्षों का वजन नहीं कर सकती हैं और फिर इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकती हैं कि कौन सा उत्तर बेहतर या अधिक सही है।

14. प्रस्तुत मामले में, हम पाते हैं कि सभी तीन प्रश्नों को तर्क की एक लंबी प्रक्रिया की आवश्यकता थी और उच्च न्यायालय ने स्वयं देखा है कि आयोग के रुख का समर्थन कुछ पाठ्यपुस्तकों द्वारा भी किया जाता है। जब परस्पर विरोधी विचार हों, तो अदालत को विशेषज्ञों की राय के आगे झुकना चाहिए। ***न्यायाधीश सभी क्षेत्रों में विशेषज्ञ नहीं हैं और न ही हो सकते हैं और इसलिए, उन्हें बहुत संयम बरतना चाहिए और विशेषज्ञों की राय को परेशान करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।***

13. न्यायालय ने **विशेष अपील संख्या-79 वर्ष 2020, आलोक कुमार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश और अन्य राज्य, तटस्थ उद्धरण संख्या-2024: एएचसी-एलकेओ:58065-डीबी** में पारित खंडपीठ के फैसले पर भी ध्यान दिया और संदर्भ के लिए, इसके प्रासंगिक हिस्से को इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया जाता है:

"32. इन सभी कारणों से, हालांकि हम अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा किए गए प्रयासों की मूल्यांकन करते हैं, लेकिन उनके तर्क कितने भी आकर्षक क्यों न लगें, विशुद्ध रूप से तथ्यों पर, यह ऐसा मामला नहीं है जहां इस न्यायालय को इंट्रा न्यायालय अपील में रिट न्यायालय के फैसले में हस्तक्षेप करना चाहिए। भले ही रिट न्यायालय द्वारा दिए गए कुछ तर्क गलत हों, रिट न्यायालय द्वारा रिट याचिकाओं को खारिज करना ऊपर दिए गए कारणों से कायम है, इसलिए, सभी अपीलें विफल हो जाती हैं और तदनुसार खारिज की जाती हैं।

33. इस स्तर पर, आवेदकगण के अधिवक्ता ने एक स्वर में प्रस्तुत किया कि लगभग सभी अपीलकर्ता अधिक उम्र के हो गए हैं। श्री शुक्ला, अपील में से एक में उपस्थित अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस न्यायालय के समक्ष अधिकांश अपीलकर्ता "शिक्षामित्र" हैं और आनंद कुमार यादव (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दो भर्तियों के लिए आयु में छूट के लिए निर्देश जारी किए थे, जिसका वे पहले ही लाभ उठा चुके हैं, इसलिए, इस संबंध में कुछ निर्देश जारी किए जाएं। यदि यहां अपीलकर्ता में से कोई भी आनंद कुमार यादव (उपरोक्त) के मामले में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के तहत किसी भी लाभ का हकदार है, तो यह कहने की जरूरत नहीं है कि इस निर्णय के बावजूद उन्हें यह उपलब्ध होगा।

34. यह भी प्रदान किया गया है कि यदि अधिकतम आयु में छूट के लिए किसी नियम में कोई प्रावधान है और यहां अपीलकर्ताओं के संदर्भ में इस तरह की छूट पर विचार करने में कोई कानूनी बाधा नहीं है, तो राज्य सरकार कानून के अनुसार इस पर विचार कर सकती है।

35. इस मामले का एक और पहलू है जिस पर हमें विचार करने की आवश्यकता है। 68,500 रिक्तियों में से, जिनके लिए योग्यता परीक्षा अवधारित की गई थी, केवल 41,556 उम्मीदवार योग्य थे, जो 20.08.2018 के विज्ञापन द्वारा शुरू की गई बाद की भर्ती प्रक्रिया में उपस्थित हो सकते थे। इसके अलावा, यह सूचित किया जाता है कि इसके बाद, सहायक शिक्षक के 69,000 पदों को भरने के लिए 05.12.2018 को एक और भर्ती प्रक्रिया शुरू की गई थी/विज्ञापित किया गया था, लेकिन इन पदों में 27,713 पद शामिल नहीं थे, जिनके लिए अर्हक परीक्षा ए.टी.आर.ई. 2018 अवधारित की गई थी और जो इन अपीलों की विषय वस्तु हैं। हमने बोर्ड और राज्य के अधिवक्ता से पूछा कि 2018 के बाद एक और ए.टी.आर.ई. अवधारित क्यों नहीं किया गया है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अन्य विज्ञापनों के संबंध में कुछ मुकदमेबाजी लंबित थी। हमें 2018 के बाद एक और ए.टी.आर.ई. अवधारित नहीं करने का कोई औचित्य नहीं दिखता। इसलिए हम राज्य सरकार और बोर्ड, जो भी इस संबंध में जिम्मेदार हो सकते हैं, को निर्देश देते हैं कि वे प्रासंगिक नियमों के संदर्भ में ए.टी.आर.ई. अवधारित करने के लिए तत्काल कदम उठाएं, जब तक कि इस संबंध में कोई कानूनी बाधा न हो। हम आगे निर्देश देते हैं कि यदि कोई कानूनी बाधा नहीं है, तो उक्त परीक्षा जल्द से जल्द अवधारित की जानी चाहिए और ए.टी.आर.ई.

अवधारित करने के संबंध में निर्णय आज से दो महीने की अवधि के भीतर लिया जाएगा और उस संदर्भ में, अपीलकर्ताओं से संबंधित आयु में छूट को कानून के अनुसार जहां तक अनुमेय माना जा सकता है। यदि कोई कानूनी बाधाएं हैं, तो इस आशय का एक विज्ञापन कम से कम दो समाचार पत्रों (एक हिंदी में और दूसरा अंग्रेजी में) में प्रकाशित किया जाना चाहिए, जो पूरे उत्तर प्रदेश में प्रसारित हो, ताकि उम्मीदवारों को कम से कम यह पता चल सके कि उक्त परीक्षा क्यों अवधारित नहीं की जा रही है।

14. अब न्यायालय उपरोक्त संदर्भित रिट याचिकाओं पर व्यक्तिगत रूप से विचार करता है।

15. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता के साथ-साथ राज्य के अधिवक्ता ने भी इस न्यायालय की सुविधा के लिए एक चार्ट तैयार किया है और न्यायालय उक्त चार्ट पर बहुत अधिक भरोसा कर रहा है।

16. रिट याचिका संख्या-11837 वर्ष 2020, **प्रशांत राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**

इस मामले में, याचिकाकर्ता को मूल परिणाम में 61 अंक मिले हैं और पुनर्मूल्यांकन के बाद, उसकी संख्या-समान रही यानी 61 और अर्हता प्राप्त करने के लिए उसे कम से कम 67 अंक यानी 6 अधिक अंकों की आवश्यकता होती है।

याचिकाकर्ता ने श्रृंखला 'डी' के प्रश्न संख्या-3,5,124, 135, 140, 141 और 142 के संबंध में विवाद उठाया है। राज्य के अधिवक्ता के अनुसार, प्रश्न संख्या-3,5,135 और 140 पर आपत्ति पर पहले ही विचार किया जा चुका था और संख्या-दी गई थी जो 61 अंकों में शामिल थीं।

जहां तक शेष 3 प्रश्नों यानी 124, 141 और 142 का संबंध है, याचिकाकर्ताओं ने प्रश्न संख्या-124 का उत्तर नहीं दिया है, इसलिए कोई अंक नहीं दिया जा सकता है।

प्रश्न संख्या-141 था "भारत में पहला फ्रांसीसी कारखाना कहाँ स्थापित किया गया था? जिसका उत्तर याचिकाकर्ता ने 'गुजरात' के रूप में दिया था, हालांकि, उत्तर कुंजी के अनुसार यह 'सूरत, गुजरात' था, इसलिए, कोई अंक नहीं दिया गया था।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने इस बात पर विवाद नहीं किया है कि पहला फ्रांसीसी कारखाना सूरत 'गुजरात' में स्थापित किया गया था और सबसे उपयुक्त उत्तर 'सूरत, गुजरात' होगा, न कि केवल गुजरात, इसलिए, कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाता है।

इस रिट याचिका में पहली बार प्रश्न संख्या-37, 45, 57, 136 और 144 के संबंध में भी विवाद उठाया गया है, जिसमें प्रश्न संख्या-37 का सही उत्तर 'तमिलनाडू' था जबकि याचिकाकर्ता ने 'तमिलनाडु' का उत्तर दिया है और साथ ही उसने 'जम्मू-कश्मीर' को भी काटा है, इसलिए अंतर के साथ 'तमील नाडू' उत्तर को सही उत्तर नहीं माना जा सकता है।

जहां तक प्रश्न संख्या-45 और 144 का संबंध है, पहले मूल्यांकन पर अंक पहले ही दिए जा चुके हैं, इसलिए, भले ही न्यायालय उत्तर संख्या-44,57,136 और 144 को सही मानता है, याचिकाकर्ता को केवल 64 संख्या-मिलेंगे यानी 67 के कट ऑफ अंक से कम।

जहां तक अंतिम प्रश्न संख्या-142 का संबंध है अर्थात "राज्य संविधान समिति के अध्यक्ष कौन थे" और सही उत्तर "सरदार वल्लभ भाई पटेल" था, हालांकि उल्लिखित उत्तर "डॉ. भीम राव अम्बेडकर" था और चूंकि याचिकाकर्ता यह दिखाने में सक्षम नहीं है कि उत्तर कुंजी में दिया गया उत्तर गलत था, इसलिए, आपत्ति खारिज कर दी जाती है।

उपरोक्त परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को कोई अतिरिक्त अंक नहीं दिया जा सकता है। रिट याचिका संख्या-11837 वर्ष 2020 तदनुसार खारिज कर दी जाती है।

रिट याचिका संख्या-13075 वर्ष 2020, संदीप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता को मूल्यांकन से पहले 64 अंक मिले और उसके बाद, उसे 66 अंक मिले, इसलिए उसे अभी भी अर्हता प्राप्त करने के लिए कम से कम 2 अंकों की आवश्यकता है।

इस रिट याचिका में प्रश्न संख्या-93, 101, 110 और 114 के संबंध में विवाद था।

प्रश्न संख्या-93, 110 और 114 के संबंध में राज्य के अनुसार, याचिकाकर्ता को एक-एक अंक दिया गया था।

जहां तक प्रश्न संख्या-101 का संबंध है, याचिकाकर्ता ने '100 जे विद्युत ऊर्जा' का उत्तर दिया है, जबकि सही उत्तर 100 वाट या 100 जूल प्रति सेकंड या 100 केजे / घंटा होगा, इसलिए, याचिकाकर्ता ने बिजली की इकाई का गलत उल्लेख किया है।

इस संबंध में, न्यायालय अनिरुद्ध नारायण शुक्ला (उपरोक्त) के एक फैसले पर ध्यान देता है, जिसमें इकाई के संबंध में कुछ छूट दी गई थी। हालांकि, प्रस्तुत मामले में जो विषय भौतिकी से उत्पन्न हो रहा है, जिसमें इकाई भी एक महत्वपूर्ण कारक है और चूंकि प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता ने 'विद्युत ऊर्जा' लिखा है जो शक्ति की इकाई नहीं है और सही इकाई या तो 'वाट' या 'जूल प्रति सेकंड' या केजे/एच है, इसलिए, उक्त उत्तर को कोई अंक नहीं दी जा सकती है।

इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को 64+3=67 अंक दिए गए। हालाँकि, प्रश्न संख्या-122 का भी पुनर्मूल्यांकन किया गया था, जिसमें उत्तर (x-6)(x-3) था। हालाँकि, याचिकाकर्ता ने x=6/x=3 भी जोड़ा है, जिसकी आवश्यकता नहीं थी, इसलिए, उक्त प्रश्न को दी गई 1 संख्या-सही ढंग से काटी गई थी, तदनुसार, उसे 66 अंक मिले यानी कट ऑफ अंक से कम। कोई अतिरिक्त संख्या नहीं दी जा सकी। इसलिए, इस रिट याचिका को तदनुसार खारिज किया जाता है।

रिट याचिका संख्या-12239 वर्ष 2020, शिवराम चतुर्वेदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता को मूल्यांकन से पहले 66 अंक मिले और पुनर्मूल्यांकन के बाद, उसे 66 अंक मिले, इसलिए उसे कट ऑफ उत्तीर्ण करने के लिए कम से कम 1 अंक की आवश्यकता थी।

इस रिट याचिका में प्रश्न संख्या-66, 73 और 113 के संबंध में विवाद था।

राज्य के अनुसार प्रश्न संख्या-66, 73 और 113 के संबंध में याचिकाकर्ता को एक-एक अंक दिया गया। इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को 66+3=69 अंक मिलेंगे। हालांकि, इस पुनर्मूल्यांकन प्रक्रिया में, प्रश्न संख्या-40, 130, 133 का भी पुनर्मूल्यांकन किया गया था। जिसमें प्रश्न संख्या-40 का उत्तर 'बहुरत्ना' था जबकि याचिकाकर्ता ने 'सदृशे वर्तते' भी जोड़ा है, जिसकी आवश्यकता नहीं थी।

अनुवादित

प्रश्न संख्या-130 का उत्तर 'गीतांजलि' था। हालांकि, याचिकाकर्ता ने जवाब 'गीजाजली' के रूप में दिया है जो बिल्कुल गलत है और इसे व्याकरण की गलती नहीं माना जा सकता है।

जहां तक प्रश्न संख्या-133 का संबंध है, याचिकाकर्ता ने 'ई36' का उत्तर दिया है, जबकि सही उत्तर 36ई होगा, इसलिए, याचिकाकर्ता ने उत्तर को उलट दिया है, जो उक्त प्रश्न के एल्गोरिथम के खिलाफ था।

उपरोक्त में प्रश्न 40, 130 और 133 के लिए पहले दिए गए एक-एक संख्या को सही तरीके से काटा गया था। तदनुसार, याचिकाकर्ता को 69-63 = 66 अंक मिले यानी कट ऑफ अंक से कम। अंक देने और घटाने में कोई त्रुटि नहीं है। इसलिए, इस रिट याचिकाकर्ता को तदनुसार खारिज किया जाता है।

रिट याचिका संख्या-1628 वर्ष 2021, महेश कुमार गोला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 4 अन्य

प्रस्तुत मामले में, याचिकाकर्ता को मूल्यांकन से पहले 65 अंक मिले और बाद में उसे 66 अंक मिले, इसलिए उसे अर्हता प्राप्त करने के लिए केवल 1 अंक की आवश्यकता थी।

इस रिट याचिका में विवाद प्रश्न संख्या-16, 36, 37, 82 और 99 के संबंध में था।

प्रश्न संख्या-36 के संबंध में राज्य के अनुसार, याचिकाकर्ता को एक अंक दिया गया था। प्रश्न संख्या-37 के लिए राधा देवी (उपरोक्त) के संदर्भ में, एक अंक भी दिया गया था।

जहां तक प्रश्न संख्या-82 का संबंध है, याचिकाकर्ता ने '1854 घोषणा पत्र' का उत्तर दिया है, जबकि सही उत्तर होगा "घोषणा पत्र/वुड का आज्ञापत्र / वुड का घोषणा पत्र (1854)/वुड का आज्ञापत्र (1854)' इसलिए, याचिकाकर्ता ने 'वुड' शब्द का उल्लेख नहीं किया है, जिसने उसके उत्तर को बिल्कुल गलत बना दिया क्योंकि प्रेषण 1854 में चार्ल्स वुड द्वारा किया गया था, प्राथमिक स्कूलों को स्थानीय शिक्षा अपनाने का सुझाव दिया, जो प्राथमिक विद्यालयों में स्थानीय भाषाओं के महत्व को पहचानती है, इसलिए, पुनर्मूल्यांकन के दौरान कोई अंक नहीं दी गई।

जहां तक प्रश्न सं-16 का संबंध है, याचिकाकर्ता ने 'भाववाचक' का उत्तर दिया है, जबकि सही उत्तर 'भाववाच्य' होगा, याचिकाकर्ता ने वाच्य (आवाज) के स्थान पर 'संज्ञा के प्रकार' का उल्लेख किया है, जो उत्तर को पूरी तरह से गलत बनाता है। "भाववाच्य में क्रिया का भाव प्रधान होता है जबतक भाववाचक में कोई विशेष भाव या स्थिति को दर्शाया जाता है" हालांकि यह एक व्याकरणिक गलती हो सकती है लेकिन यह इस प्रश्न की आवश्यकता के अनुसार उत्तर की भावना को पूरी तरह से बदल देती है, इसलिए, इस प्रश्न के लिए कोई अंक नहीं दिया गया था।

जहां तक प्रश्न सं- 99 का संबंध है, याचिकाकर्ता ने 'जड़, मूड, क्षण, मन्द्, 70-79, सामान्या, श्रेष्ठ, उत्कृष्, प्रतिभाशाली' का उत्तर दिया है, जबकि सही उत्तर 'जड़बुद्धि, मूढ, मूर्ख/81-90, 80-89, 90 से कम सभी आईक्यू होगा। 'वर्ग/मूर्ख मूढ़ जड़/मंदबुद्धि अल्प बुद्धि जड़बुद्धि,' इसलिए, याचिकाकर्ता ने आईक्यू की गलत श्रृंखला का उल्लेख किया है और केवल एक खंड के लिए 70-79 आईक्यू का उल्लेख किया है। इसलिए, इस प्रश्न के लिए कोई अंक नहीं दिया गया था।

इस संबंध में, न्यायालय अनिरुद्ध नारायण शुक्ला (उपरोक्त) में पारित एक निर्णय पर ध्यान देता है, जिसमें इस प्रश्न पर चर्चा की गई है और आईक्यू के संबंध में कुछ छूट दी गई थी और यह भी सुझाव दिया गया था कि इस प्रश्न के मूल्यांकन के दौरान हाइपर तकनीकी दृष्टिकोण नहीं होना चाहिए, फिर भी याचिकाकर्ता का

उत्तर विचार करने के लिए पर्याप्त नहीं था, इसलिए मूल्यांकन के दौरान उक्त उत्तर के लिए कोई अंक नहीं दिया गया था।

इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को (65+2= 67) अंक दिए गए थे, हालांकि, 40 प्रश्न सं- भी पुनर्मूल्यांकन किया गया था, जिसमें उत्तर 'बहुरत्ना' था, हालांकि, याचिकाकर्ता ने उपसर्ग और प्रत्यय जोड़ा है और 'विस्मयो नहीं कर्तव्यों बहुरत्ना वसुंधरा' का उल्लेख किया है, जिसकी आवश्यकता नहीं थी, इसलिए, पहले दिए गए एक अंक को सही तरीके से काटा गया था, तदनुसार उसे 67-1 = 66 अंक मिले यानी कट ऑफ अंक से कम। इसलिए, कोई अतिरिक्त अंक देने का कोई आधार नहीं है, इस रिट याचिका को खारिज किया जाता है।

12185 वर्ष 2020, निहाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता को मूल्यांकन से पहले 62 अंक मिले और उसके बाद, उसे 65 अंक मिले, इसलिए उसे अभी भी अर्हता प्राप्त करने के लिए कम से कम 2 अंकों की आवश्यकता है।

इस रिट याचिका में श्रृंखला-डी के प्रश्न संख्या-2,4,50 और 119 के संबंध में विवाद था।

राज्य के अनुसार प्रश्न संख्या-50 और 119 के उत्तर के लिए एक-एक अंक दिया गया था और राधा देवी (उपरोक्त) के संदर्भ में प्रश्न संख्या-57 के लिए 1 अंक दिया गया था अर्थात 62+3=65 अंक।

प्रश्न संख्या-2 के संबंध में, याचिकाकर्ता ने सवाद विधि (वाद-विवाद) का उत्तर दिया है, जबकि सही उत्तर विचार-विमर्श /सहकारी/वाद-विवाद / सहभागी शिकक्षड /समूह चर्चा /रुचिपूर्ण समूह चर्चा, सवाद विधि और वाद विवाद होगा जो यहां आवश्यक नहीं है, इसलिए पुनर्मूल्यांकन के दौरान उक्त उत्तर के लिए कोई अंक नहीं दिया गया था।

प्रश्न संख्या-4 के संबंध में, याचिकाकर्ता ने बच्चो की प्रोफाइल तैयार करना का उत्तर दिया है, जहां सही उत्तर होगा सचयी अभिलेख /उपाख्यानात्मक (एनेक्डोटल) अभिलेख/छात्र प्रोफाइल / छात्र प्रगति अभिलेख / संचती अभिलेख / पोर्टफोलीओ। दिया गया उत्तर बिल्कुल सही नहीं था, लेकिन फिर भी एक अंक दिया गया है, लेकिन यह अभी भी याचिकाकर्ता के लिए मददगार नहीं होगा क्योंकि जैसा कि ऊपर आवश्यक था, याचिकाकर्ता को 62+3=65 अंक दिए गए थे, यानी कट ऑफ अंक से कम और एक अंक जोड़ने से कट ऑफ पार नहीं होगा। इसलिए, इस रिट याचिका को तदनुसार खारिज किया जाता है।

रिट याचिका संख्या-12418 वर्ष 2020, कुसुम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता को मूल्यांकन से पहले 62 अंक मिले और पुनर्मूल्यांकन पर उसे 65 अंक मिले, इसलिए उसे अभी भी अर्हता प्राप्त करने के लिए कम से कम 2 अंकों की आवश्यकता है।

इस रिट याचिका में प्रश्न संख्या-13, 18, 22, 33, 78, 100, 139 के संबंध में विवाद था।

राज्य के अनुसार प्रश्न संख्या-18, 22, 33 और 100 के संबंध में याचिकाकर्ता को एक-एक अंक यानी 62+4=66 अंक दिए गए।

हालाँकि, प्रश्न संख्या-78 का भी पुनर्मूल्यांकन किया गया, जिसमें उत्तर 24 वर्ग सेमी या 24 सेमी 2 था। हालाँकि, याचिकाकर्ता ने केवल 24 सेमी का उत्तर दिया है। इसलिए, याचिकाकर्ता ने यूनिट का गलत इस्तेमाल किया है

इस संबंध में अदालत **अनिरुद्ध नारायण शुक (उपरोक्त**) में दिए गए फैसले पर ध्यान देती है, जिसमें उत्तर में इकाई के उपयोग के संबंध में कुछ छूट दी गई थी, हालांकि, वर्तमान प्रश्न जो विषय गणित से उत्पन्न हो रहा है जिसमें इकाई भी एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक है और चूंकि प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता ने केवल सीएम का उल्लेख किया है जो क्षेत्र (क्षेत्रफल) की इकाई नहीं है जबकि क्षेत्रफल की सही इकाई मीटर, सेमी, मिमी या इंच का वर्ग होगा। इसलिए, उक्त प्रश्न को पहले दी गई 1 संख्या को सही ढंग से काटा गया था, तदनुसार याचिकाकर्ता को 66-1 = 65 अंक मिले जो कट ऑफ अंकों से कम है।

प्रश्न संख्या-139 का उत्तर यानी सहभागी शिक्षण विधि को सही माना जा सकता है, हालांकि एक और अंक भी दिया जाता है, फिर भी यह 67 अंक से कम होगा। इसलिए, इस रिट याचिका को तदनुसार **खारिज** किया जाता है।

रिट याचिका संख्या-917 वर्ष 2021, रश्मि शिखा सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

प्रस्तुत रिट याचिका में, याचिकाकर्ता को 64 अंक मिले, हालांकि, पुनर्मूल्यांकन पर उसे 65 अंक मिले क्योंकि वह अभी भी आवश्यक कट ऑफ से 2 अंक कम है।

इस रिट याचिका में, विवाद प्रश्न संख्या-7, 10, 21, 131, 139 के संबंध में है। हालांकि, राज्य ने कोई निर्देश नहीं दिया है क्योंकि अनिरुद्ध नारायण शुक्ला (उपरोक्त) के फैसले के बाद याचिकाकर्ता द्वारा कोई आपत्ति दायर नहीं की गई है, अभी भी न्याय के लक्ष्य के लिए अदालत इस रिट याचिका पर योग्यता के आधार पर विचार कर रही है।

प्रश्न संख्या-7 में, याचिकाकर्ता ने 'दिगु समास' लिखा है जबकि सही उत्तर दिगु समास/तत्पुरुष है, इसलिए, उत्तर सही प्रतीत होता है, इसलिए याचिकाकर्ता को इस प्रश्न के लिए 1 अंक दिया जा सकता है।

प्रश्न संख्या-10 के संबंध में, याचिकाकर्ता ने दीर्घ संधि का उत्तर दिया जबकि सही उत्तर वृद्धि संधि /स्वर संधि है। इस संबंध में न्यायालय उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम राधा देवी और अन्य (विशेष अपील दोषपूर्ण 756 वर्ष 2019) के फैसले का संदर्भ लेता है, जिसमें उत्तर को सही माना जाता है। इसलिए, प्रस्तुत मामला उक्त निर्णय के अंतर्गत आता है और याचिकाकर्ता का उत्तर सही है।

इसलिए, याचिकाकर्ता को इस उत्तर के लिए 1 अंक दिए जा सकते हैं।

प्रश्न संख्या-21 के संबंध में, याचिकाकर्ता ने उत्तर 'वह' दिया है और उत्तर कुंजी के अनुसार सही उत्तर भी प्रतीत होता है। इसलिए, जहां तक इस प्रश्न का भी संबंध है, 1 अंक दिया जा सकता है।

प्रश्न संख्या-131 में, याचिकाकर्ता ने उत्तर 'अचल कुमार जोशी' दिया है जबकि सही उत्तर अचल कुमार ज्योति / इसलिए, उक्त उत्तर के लिए कोई अंक नहीं दिया जा सकता है।

प्रश्न संख्या-139 के संबंध में, याचिकाकर्ता का उत्तर दीन दयाल बंदरगाह है और सही उत्तर दीन दयाल पोर्टल/दीन दयाल बंदरगाह/पां। इसलिए, याचिकाकर्ता को उक्त उत्तर के लिए 1 अंक प्रदान किए जा सकते हैं।

इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को 64+4=68 अंक मिल सकते हैं यानी कट ऑफ से अधिक। न्यायालय इस बात पर ध्यान देता है कि चूंकि राज्य ने याचिकाकर्ता के संबंध में पुनर्मूल्यांकन का कोई विवरण नहीं लाया है, इसलिए यह एक मामला हो सकता है कि उपरोक्त अंक पहले से ही कुल अंकों में शामिल किए जा सकते हैं,

इसलिए न्याय के हित में, याचिकाकर्ता के मामले की परीक्षा नियामक प्राधिकरण द्वारा फिर से जांच की जाए। तदनुसार इस रिट याचिका का निपटारा किया जाता है।

रिट याचिका संख्या-14096 वर्ष 2020, दिव्या मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता को 60 अंक मिले और पुनर्मूल्यांकन के बाद, उसे 64 अंक मिले, इसलिए उसे अभी भी अर्हता प्राप्त करने के लिए कम से कम 3 अंकों की आवश्यकता है।

इस रिट याचिका में प्रश्न संख्या-1, 10, 20, 35, 78, 94, 106, 110 के संबंध में विवाद था।

राज्य के अनुसार प्रश्न संख्या-1, 35, 78, 94, 110 के संबंध में, याचिकाकर्ता को प्रत्येक के लिए एक अंक दिया गया था अर्थात 60+5=65 अंक दिए गए।

जहां तक प्रश्न संख्या-10 का संबंध है, याचिकाकर्ता ने 'एनआईटीई' का उत्तर दिया है, जबकि सही उत्तर 'एनसीटीई' होगा, क्योंकि दोनों दो अलग-अलग संस्थान हैं, इसलिए याचिकाकर्ता ने गलत उत्तर दिया है। इसलिए, पुनर्मूल्यांकन पर कोई अंक नहीं दिया गया था। इसलिए, कोई अवैधता नहीं है।

प्रश्न संख्या-106 में, याचिकाकर्ता ने दो उत्तर 'पलमोनरी, अरोटा' दिए हैं जबकि सही उत्तर 'फुसफुस शिरा/पलमोनरी शिरा' होगा। इसलिए, पुनर्मूल्यांकन पर, कोई अंक नहीं दिए गए थे, इसलिए यह हस्तक्षेप का मामला नहीं है।

इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को 60+5= 65 अंक दिए गए। हालांकि, प्रश्न संख्या-139 का भी पुनर्मूल्यांकन किया गया था, जिसमें उत्तर था वुड का घोषणा पत्र/वुड का आज्ञा पत्र/वुड का घोषणा पत्र (1854) / वुड डिस्पैच / वुड का आज्ञापत्र (1854) हालांकि, याचिकाकर्ता ने 'वुड का घोषणा पत्र (1835)' का उत्तर दिया है, जो कि गलत वर्ष है, इसलिए, उक्त प्रश्न को पहले दी गई 1 संख्या सही ढंग से काटी गई थी, तदनुसार, उसे 64 अंक मिले यानी कट ऑफ अंक से कम।

इन परिस्थितियों में प्रश्न संख्या-20 के उत्तर को सही उत्तर माना जा सकता है यानी अपग बच्चो के लिए एक अंक को सही उत्तर माना जा सकता है, लेकिन एक अंक जोड़ने से याचिकाकर्ता योग्य नहीं होगा क्योंकि वह अभी भी 2 संख्याओं से कम होगा। इसलिए, इस रिट याचिका को तदनुसार खारिज किया जाता है।

13564 वर्ष 2020, दीपक कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता को 65 अंक मिले और पुनर्मूल्यांकन पर, अंक समान रहते हैं यानी 65, इस तरह उसे अर्हता प्राप्त करने के लिए कम से कम 2 अंक की आवश्यकता थी।

इस रिट याचिका में प्रश्न संख्या-35, 47, 69, 119, 128 के संबंध में विवाद था।

राज्य के अनुसार प्रश्न संख्या-35, 119 और 128 के संबंध में याचिकाकर्ता को एक-एक अंक यानी 65+3= 68 अंक दिए गए।

जहां तक प्रश्न संख्या-47 का संबंध है, सही उत्तर निरव्यूह/अव्यूह होगा, जबकि याचिकाकर्ता ने 'आव्यूह' का उत्तर दिया है, जो सही उत्तर नहीं है। इसलिए, पुनर्मूल्यांकन पर, कोई अंक देने की आवश्यकता नहीं थी।

जहां तक प्रश्न संख्या-69 का संबंध है, सही उत्तर 'हरबार्ट' होगा जबकि याचिकाकर्ता ने 'हरबर्ट स्पेंसर' का उत्तर दिया है जो सही नहीं है।

इस संबंध में, न्यायालय अनिरुद्ध नारायण शुक्ला (उपरोक्त) में एक निर्णय पर ध्यान देता है, जिसमें 'हरबार्ट' की वर्तनी के संबंध में कुछ छूट दी गई थी। हालांकि, प्रस्तुत मामला उक्त छूट के अंतर्गत नहीं आता है क्योंकि याचिकाकर्ता ने 'स्पेंसर' जोड़ा है जो अलग-अलग व्यक्ति को संदर्भित करता है। इसलिए, पुनर्मूल्यांकन के दौरान, उक्त उत्तर के लिए कोई संख्या सही रूप से नहीं दी गई थी।

इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को 65+3=68 अंक दिए गए। हालाँकि, प्रश्न संख्या-48, 61 और 148 का भी पुनर्मूल्यांकन किया गया। प्रश्न संख्या-61 का उत्तर 'भावात्मक पक्ष/ भावपक्ष/सवेगात्मक पक्ष' होगा जबकि याचिकाकर्ता ने 'व्यतक्तगि पक्ष' का उत्तर बिल्कुल गलत उत्तर दिया है। अंत में, प्रश्न संख्या-147 का सही उत्तर 'अक्षय कुमार' होगा जबकि याचिकाकर्ता ने 'अक्षल कुमार' का उत्तर दिया है, जो एक गलत उत्तर है। इसलिए, प्रत्येक के लिए 1 अंक जो पहले उक्त तीन प्रश्नों को दिया गया था, काट लिया गया था, तदनुसार, उसे 68-3 = 65 अंक मिले यानी कट ऑफ अंक से कम।

प्रश्न संख्या-48 का उत्तर दिगुसमास/तत्पुरुष समास है और याचिकाकर्ता ने 'दिगु समास' का उल्लेख किया है, हालांकि वर्तनी गलत है, फिर भी इसे एक छोटी सी गलती मानते हुए, एक अंक दिया जा सकता है, लेकिन यह केवल 66 अंक बनाएगा यानी वह अभी भी कट ऑफ अंक से कम होगा। इसलिए, इस रिट याचिका को तदनुसार **खारिज** किया जाता है।

रिट याचिका संख्या-12000 वर्ष 2021, कुमारी प्रशाली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता को 63 अंक मिले और पुनर्मूल्यांकन पर उसे 65 अंक मिले, इस तरह उसे अर्हता प्राप्त करने के लिए कम से कम 2 अंक की आवश्यकता थी।

इस रिट याचिका में विवाद केवल प्रश्न संख्या-10, 20, 23, 44, 52, 68, 99 के संबंध में है।

प्रश्न संख्या-10 और 99 के संबंध में राज्य के अनुसार, याचिकाकर्ता को एक-एक अंक यानी 63+2+65 से सम्मानित किया गया था।

जहां तक प्रश्न संख्या-20 का संबंध है, याचिकाकर्ता ने '100 शक्ति' का उत्तर दिया है, जबकि सही उत्तर '100 वाट' या '100 जूल/सेकेंड' या 100 जे/एस या 360 केजे/एच होगा, इसलिए, याचिकाकर्ता ने इकाई का गलत उल्लेख किया है।

इस संबंध में, न्यायालय अनिरुद्ध नारायण शुक्ला (उपरोक्त) के एक निर्णय पर ध्यान देता है, जिसमें यूनिट के संबंध में कुछ छूट दी गई थी। हालांकि, प्रस्तुत मामले में जो भौतिकी के विषय से उत्पन्न हो रहा है जिसमें इकाई भी एक महत्वपूर्ण कारक है और चूंकि प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता ने 'शक्ति' का उल्लेख किया है जो शक्ति की इकाई नहीं है और सही इकाई या तो 'जूल प्रति सेकंड या केजे/एच' है, इसलिए, पुनर्मूल्यांकन पर, उक्त उत्तर को कोई अंक नहीं दिया गया था।

प्रश्न संख्या-23 के संबंध में, याचिकाकर्ता ने 'वाहनों' का उत्तर दिया है, जबकि सही उत्तर 'एक स्व-चालित वाहन/वाहन/तीन पहियों वाली एक बॉक्सी खुली शीर्ष वाली लकड़ी की मशीन' होगा। इसलिए, पुनर्मूल्यांकन के बाद, उक्त उत्तर को कोई अंक नहीं दिया गया था।

प्रश्न संख्या-44 में, याचिकाकर्ता ने 'प्रत्युत्पनमती' का उत्तर दिया है जबकि सही उत्तर 'परतूपन्नमती/प्रतिउत्पन्नमति' होगा। इसलिए, पुनर्मूल्यांकन पर, उक्त उत्तर को कोई अंक नहीं दिया जा सकता है क्योंकि दोनों शब्द अलग-अलग अर्थ का अर्थ रखते हैं।

प्रश्न संख्या-52 में, सही उत्तर 'जड़बुधही, मूढ, मूर्ख/81-90, 80-89, 90 से कम सभी I.Q. वर्ग/मूर्ख, मूढ, जड़/मंदबुद्धि, अल्प बुद्धि , जड़बुद्धि /मूर्ख, मूर्ख, मूर्ख ' जबकि याचिकाकर्ता ने '60-70 मंदबुद्धिता' का उत्तर दिया, जो सही नहीं है।

इस संबंध में, न्यायालय अनिरुद्ध नारायण शुक्ला (उपरोक्त) के एक फैसले पर ध्यान देता है, जिसमें आईक्यू की सीमा के संबंध में कुछ छूट दी गई थी। हालांकि, वर्तमान उत्तर उक्त छूट के भीतर नहीं आएगा। इसलिए, पुनर्मूल्यांकन पर, उक्त उत्तर को कोई अंक नहीं दिया जा सकता था।

प्रश्न संख्या-68 में, याचिकाकर्ता ने 'आर्मस्ट्रांक' का उत्तर दिया है जबकि सही उत्तर 'आर्मस्ट्रांग'/ एचई आर्मस्ट्रांग होगा। हालांकि वर्तनी गलत है, फिर भी इसे एक छोटी सी गलती माना जा सकता है और इस तरह एक अंक दिया जा सकता है, लेकिन फिर भी यह 65+1=66 होगा यानी वह अभी भी कट ऑफ से एक अंक कम होगा। इसलिए, इस रिट याचिका को तदनुसार **खारिज** किया जाता है।

रिट याचिका संख्या-12692 वर्ष 2020, अर्चना यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता को शुरू में 63 अंक मिले और पुनर्मूल्यांकन के बाद, उसे 64 अंक मिले, इसलिए उसे अर्हता प्राप्त करने के लिए कम से कम 3 अंक की आवश्यकता थी।

इस रिट याचिका में केवल प्रश्न संख्या-17, 52, 59, 63, 74, 106 के संबंध में विवाद उत्पन्न हुआ।

प्रश्न संख्या-59 और 74 के संबंध में राज्य के अनुसार, याचिकाकर्ता को एक-एक अंक यानी 63+2=65 से सम्मानित किया गया था।

जहां तक प्रश्न संख्या-17 का संबंध है, याचिकाकर्ता ने '71 कम (मन्द्दबुतद्दिा)' का उत्तर दिया है, जबकि सही उत्तर 'जड़बुधही, मूढ, मूर्ख/81-90, 80-89, 90 से कम सभी आईक्यू' होगा। वर्ग/मूर्ख, मूढ, जड़/मंदबुद्धि, अल्प बुद्धि , जड़बुद्धि /मूर्ख', इसलिए, याचिकाकर्ता ने गलत उत्तर का उल्लेख किया है।

इस संबंध में, **न्यायालय अनिरुद्ध नारायण शुक्ला (उपरोक्त**) के एक फैसले पर ध्यान देता है, जिसमें आईक्यू की सीमा के संबंध में कुछ छूट दी गई थी। हालांकि, प्रस्तुत मामला उक्त छूट के अंतर्गत नहीं आएगा। इसलिए, पुनर्मूल्यांकन पर, उक्त उत्तर के लिए कोई अंक w2s सही नहीं दिया गया है।

प्रश्न संख्या-52 के संबंध में, याचिकाकर्ता ने बालिका का उत्तर दिया है जबकि सही उत्तर बालिका: इसलिए, पुनर्मूल्यांकन पर, कोई अंक नहीं दिया गया है क्योंकि बालिका एक एकवचन रूप (एकवचन) है जबकि बालिका: एक बहुवचन रूप है (बहुवचन)

प्रश्न संख्या-63 में याचिकाकर्ता ने "भूतकाल" का उत्तर दिया है जबकि सही उत्तर 'सन्द्देहवाचक वाक्य/सरल वाक्य/साधारण वाक्य/संदेहबोधक वाक्य/अनिश्चित वाचक/संगिद्ध भूतकाल' होगा। इसलिए, याचिकाकर्ता ने केवल 'भूतकाल' का उल्लेख किया है जो प्रश्न की आवश्यकता के अनुसार पर्याप्त नहीं है, इसलिए, पुनर्मूल्यांकन पर, कोई अंक नहीं दिया गया था।

प्रश्न संख्या-106 में याचिकाकर्ता ने 'सिरा' का उत्तर दिया है जबकि सही उत्तर 'फुसफुस शिरा/पलमोनरी शिरा' होगा। इसलिए, याचिकाकर्ता ने न तो फुसफुस और न ही पलमोनरी निर्दिष्ट किया है, जो पूर्ण उत्तर नहीं हो सकता है, इसलिए पुनर्मूल्यांकन पर, उक्त उत्तर को कोई अंक नहीं दिया जा सकता है।

इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को 63+2=65 अंक दिए गए। हालांकि, प्रश्न संख्या-58 का भी पुनर्मूल्यांकन किया गया था, जिसका सही उत्तर 'बहुरत्ना' था। हालांकि, याचिकाकर्ता ने 'विस्मयो नहि कर्तव्यों बहरत्रा वसुंधरा' का उत्तर दिया है, जो सही उत्तर नहीं है, इसलिए, उक्त प्रश्न को पहले दी गई 1 अंक सही ढंग से काटी गई थी, तदनुसार, उसे 64 अंक मिले यानी कट ऑफ अंक से कम। इसलिए, इस रिट याचिका को तदनुसार **खारिज** किया जाता है।

रिट याचिका संख्या-12467 वर्ष 2020, सुनील कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता को शुरू में पुनर्मूल्यांकन से पहले 62 अंक मिले हैं और बाद में पुनर्मूल्यांकन पर उसके अंक बढ़ाकर 66 कर दिए गए हैं, क्योंकि ऐसे याचिकाकर्ता को अभी भी अर्हता प्राप्त करने के लिए कम से कम एक अंक की आवश्यकता होती है।

इस रिट याचिका में केवल प्रश्न संख्या-37 और 98 के संबंध में विवाद उत्पन्न हुआ, हालांकि इन प्रश्नों के संबंध में राज्य द्वारा कोई निर्देश नहीं दिया गया है क्योंकि याचिकाकर्ता ने अनिरुद्ध नारायण शुक्ला (उपरोक्त) के फैसले के बाद उपरोक्त प्रश्नों के संबंध में कोई आपत्ति दर्ज नहीं की थी, फिर भी अदालत इन दो प्रश्नों (37, 98) के संबंध में याचिकाकर्ता की शिकायत पर विचार कर रही है।

जहां तक प्रश्न संख्या-37 का संबंध है, याचिकाकर्ता ने दीर्घ संधि का उत्तर दिया है जबकि उत्तर कुंजी के अनुसार सही उत्तर 'वृद्धि संधि/स्वर संधि' होगा। न्यायालय राधा देवी (उपरोक्त) पर ध्यान देता है, जिसमें दीर्घ संधि को इस प्रश्न के सही उत्तर से ऊपर माना जाता था, इसलिए उक्त उत्तर के लिए एक संख्या दी जा सकती है।

प्रश्न संख्या-98 के संबंध में, याचिकाकर्ता ने मानबुद्धिता (80-90) का उत्तर दिया है, जबकि उत्तर कुंजी के अनुसार सही उत्तर विकलांग / दिव्यानग बच्चो हेतु / शारीरिक रूप से अक्षम / विशिष्ट बालक / पी०डब्लू०डी०/ निशक्त / अक्षम था। याचिकाकर्ता ने प्रश्न संख्या-98 के उत्तर के कॉलम में प्रश्न संख्या-99 के उत्तर का उल्लेख किया है, इसलिए याचिकाकर्ता का उत्तर बिल्कुल गलत था, इसलिए प्रश्न संख्या-98 के संबंध में याचिकाकर्ता को कोई अंक नहीं दिया जाना चाहिए।

इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को 66 + 1 = 67 अंक मिले जो इस परीक्षा के लिए कट ऑफ मार्क है। न्यायालय इस बात पर ध्यान देता है कि चूंकि राज्य ने याचिकाकर्ता के संबंध में पुनर्मूल्यांकन का कोई विवरण नहीं लाया है, इसलिए, यह एक ऐसा मामला हो सकता है कि उपरोक्त अंक पहले से ही कुल अंकों में शामिल हो सकती है, इसलिए न्याय के हित में, याचिकाकर्ता के मामले की परीक्षा नियामक प्राधिकरण द्वारा फिर से जांच की जाए। तदनुसार इस रिट याचिका का निपटारा किया जाता है।

रिट याचिका संख्या-12419 वर्ष 2020, ज्योत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता को 64 अंक मिले और मूल्यांकन पर उसे 66 अंक मिले, इस तरह उसे अर्हता प्राप्त करने के लिए कम से कम 2 अंक की आवश्यकता थी।

इस रिट याचिका में केवल प्रश्न संख्या-53, 56 और 132 के संबंध में विवाद उत्पन्न हुआ।

राज्य के अनुसार प्रश्न संख्या-56 और 82 के संबंध में याचिकाकर्ता को एक-एक अंक दिया गया

जहाँ तक प्रश्न संख्या-53 का संबंध है, उत्तर (x-6)(x-3) या (x-3)(x-6) था। हालाँकि, याचिकाकर्ता ने प्रश्न का उत्तर (x-3)(x-6) =x=6, x=3 के रूप में दिया है, इसलिए, याचिकाकर्ता ने x=6, x=3 भी जोड़ा है जिसकी आवश्यकता नहीं थी इसलिए कोई अंक नहीं दिया गया था।

प्रश्न संख्या-132 के संबंध में, याचिकाकर्ता ने दो उत्तर 36E और (मामा) का संबंध लिखा है जबकि सही उत्तर मामा/रवि कमल का भाजा है/मामा-भाजा है। इसलिए पुनर्मूल्यांकन पर उक्त उत्तर को कोई अंक नहीं दिया जा सका।

इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को 64+2=66 अंक दिए गए, यानी कट ऑफ अंक से कम। इसलिए, इस रिट याचिका को तदनुसार **खारिज** किया जाता है।

रिट याचिका संख्या-12629 वर्ष 2020 , आंचल सोनकर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता को 54 अंक मिले और पुनर्मूल्यांकन पर, उसे 57 अंक मिले, इसलिए उसे अर्हता प्राप्त करने के लिए कम से कम 11 अंक की आवश्यकता थी।

इस रिट याचिका में केवल प्रश्न संख्या-31, 33, 81, 84, 137, 83, 106 और 150 के संबंध में विवाद उत्पन्न हुआ।

राज्य के अनुसार प्रश्न संख्या-31, 81, 84 और 137 के संबंध में याचिकाकर्ता को एक-एक अंक यानी 54+4=58 से सम्मानित किया गया।

जहां तक प्रश्न संख्या-83 का संबंध है, याचिकाकर्ता ने 'E36' का उत्तर दिया है, जबकि सही उत्तर 36E है, इसलिए, याचिकाकर्ता ने उत्तर को उलट दिया है, जो प्रश्न के एल्गोरिथ्म के खिलाफ है, इसलिए, पुनर्मूल्यांकन पर, उक्त उत्तर के लिए कोई अंक नहीं दिया गया था।

प्रश्न संख्या-106 के संबंध में, याचिकाकर्ता ने "पलमोनरी" का उत्तर दिया है जबकि सही उत्तर "फुसफुस शिरा/ पलमोनरी शिरा/ पल्मोनरी शिरा" होगा। यह एक अधूरा उत्तर होने के कारण, उक्त उत्तर के लिए कोई अंक नहीं दिया गया था।

जहां तक प्रश्न संख्या-150 का संबंध है, याचिकाकर्ता ने दो उत्तर "पम्पास" और "प्रेयरी" दिए हैं जबकि सही उत्तर "पम्पास/पम्पाज" होगा। इसलिए, पुनर्मूल्यांकन के दौरान कोई अंक नहीं दी गई क्योंकि उसने 1 से अधिक उत्तर दिए थे, एक गलत था।

इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को 54+4=58 अंक दिए गए। हालांकि, प्रश्न संख्या-54 का भी पुनर्मूल्यांकन किया गया था, जिसमें सही उत्तर 'अनीयर प्रत्यय/अनीय' था। हालांकि, याचिकाकर्ता ने 'ईय प्रत्यय' का उत्तर दिया है, जो सही नहीं था, इसलिए, उक्त प्रश्न को पहले दी गई 1 अंक सही ढंग से काटा गया था, तदनुसार, उसे 57 अंक मिले यानी कट ऑफ अंक से कम। इसलिए, इस रिट याचिका को तदनुसार **खारिज** किया जाता है।

अनुवादित

रिट याचिका संख्या-13506 वर्ष 2020, सोनू वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता को 66 अंक मिले और पुनर्मूल्यांकन पर उसके अंक समान (66 अंक) रहे, इस तरह, फिर भी उसे अर्हता प्राप्त करने के लिए कम से कम एक अंक की आवश्यकता थी।

इस रिट याचिका में विवाद केवल प्रश्न संख्या-86 और 148 के संबंध में है, हालांकि, इन प्रश्नों के संबंध में राज्य द्वारा कोई निर्देश नहीं दिया गया है क्योंकि याचिकाकर्ता ने उपरोक्त प्रश्नों के संबंध में कोई आपत्ति दर्ज नहीं की थी, अनिरुद्ध नारायण शुक्ला (उपरोक्त) के फैसले के बाद, अभी भी न्यायालय इन दो प्रश्नों के संबंध में याचिकाकर्ता की शिकायत पर विचार कर रहा है।

प्रश्न संख्या-86 के संबंध में, याचिकाकर्ता ने 'बिट्स के रूप में' उत्तर दिया है जबकि सही उत्तर 'बाइनरी फार्म/01 के रूप में/बिट फार्म' होगा, उत्तर सही उत्तर में से एक के अनुरूप है, इसलिए उक्त उत्तर के लिए एक अंक दिया जा सकता है।

प्रश्न संख्या-148 के संबंध में, याचिकाकर्ता ने अफ्रीका महाद्वीप का उत्तर दिया है, जबकि उत्तर कुंजी के अनुसार सही उत्तर अफ्रीका/दक्षिण अफ्रीका होगा, इसलिए, एक अंक दिया जा सकता है।

इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को 66+2=68 अंक दिए जा सकते हैं यानी कट ऑफ अंक से अधिक। न्यायालय इस बात पर ध्यान देता है कि चूंकि राज्य ने याचिकाकर्ता के संबंध में पुनर्मूल्यांकन का कोई विवरण नहीं लाया है, इसलिए, यह एक मामला हो सकता है कि उपरोक्त अंक पहले से ही कुल अंकों में शामिल हैं, इसलिए न्याय के हित में, स्थिति को स्पष्ट करने के लिए परीक्षा नियामक प्राधिकरण द्वारा याचिकाकर्ता के मामले की फिर से जांच की जाए। इस रिट याचिका को तदनुसार आगे की टिप्पणी के साथ निपटाया जाता है कि पुन: परीक्षा करते समय, रिक्तियों की स्थिति पर भी ध्यान दिया जा सकता है।

समाप्ति/निष्कर्ष:

रिट-ए संख्या- 917 वर्ष 2021, 12467 वर्ष 2020 और 13506 वर्ष 2020 का निपटान किया जाता है।

रिट-ए संख्या-13075 वर्ष 2020, 12239 वर्ष 2020, 1628 वर्ष 2021, 12185 वर्ष 2020, 12418 वर्ष 2020, 14096 वर्ष 2020, 13564 वर्ष 2020, 120000 वर्ष 2021, 12692 वर्ष 2020, 12419 वर्ष 2020 और 12629 वर्ष 2020 को खारिज किया जाता है।

(2025) 5 ILRA 1371

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

रिट ए संख्या-18956 वर्ष 2022

सम्बद्ध

रिट-ए संख्या-5771 वर्ष 2023

लवकुश तिवारी और अन्य ... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: आदित्य प्रकाश वर्मा, शैलेश वर्मा

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता: मुख्य स्थायी अधिवक्ता

A. सेवा कानून - यूपी पुलिस विनियम - 396 - ग्राम पुलिस/ग्राम प्रहरी - दावा किए गए पुलिस कर्मियों के अनुसार न्यूनतम मजदूरी - पात्रता - धारित, एक ग्राम पुलिसकर्मी किसी भी प्रकार का व्यवसाय, व्यापार या व्यवसाय करने और इससे अपनी आजीविका अर्जित करने के लिए स्वतंत्र है; और, फिर भी, वह एक ग्राम पुलिसकर्मी के रूप में अपने कर्तव्यों का बहुत अच्छी तरह से निर्वहन कर सकता है। इस संदर्भ में ग्राम पुलिसकर्मी या ग्राम प्रहरी को दिए जा रहे मानदेय का मूल्यांकन तर्कसंगतता की कसौटी पर किया जाना चाहिए। हमें नहीं लगता कि ग्राम प्रहरी या ग्राम पुलिसकर्मी किसी भी तरह से किसी भी प्रकार के बंधन या जबरन श्रम के अधीन हैं, अपने पद का लाभ उठाते हुए, रोजगार के अवसरों की कमी से उत्पन्न होते हैं - याचिकाकर्ता परमादेश के हकदार नहीं हैं, राज्य सरकार को उनके मानदेय या वेतन को संशोधित करने और बढ़ाने का आदेश देते हैं, किसी भी नाम से पुकारा जाता है, इसे एक पुलिसकर्मी द्वारा अजत न्यूनतम वेतनमान के बराबर लाने के लिए। (प्रस्तर-53 और 57)

ख. भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 14 - उचित वर्गीकरण - ग्राम पुलिस को 2500/- रुपये प्रति माह का पारिश्रमिक दिया जा रहा था - तर्कसंगतता की कसौटी पर संवैधानिक वैधता को चुनौती दी गई - अवधारित किया गया, यह पदधारी द्वारा उसकी आजीविका के स्रोत के रूप में किया गया पूर्णकालिक रोजगार नहीं है - वर्तमान समय में प्रति माह 2500/- रुपये का पारिश्रमिक बहुत कम हो सकता है, यह संविधान के अनुच्छेद 14 का मनमाना, अनुचित या उल्लंघन नहीं करता है। (प्रस्तर-53)

अनुवादित

रिट याचिका का निपटारा किया गया। (ई-1)

उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची:

1. होम गार्ड्स वेलफेयर एसोसिएशन बनाम हिमाचल प्रदेश और अन्य राज्य; (2015) 6 एस.सी.सी. 247
2. राम नाथ गुप्ता (होमगार्ड संख्या-0384) और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2016 (7) ए.डी.जे. 453
3. विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या-735 वर्ष 2016 का निर्णय 06.12.2016 को
4. चंद्रावती देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2021(1) ए.डी.जे. 59
5. सभा शंकर दुबे बनाम प्रभागीय वन अधिकारी एवं अन्य; (2019) 12 एस.सी.सी. 297
6. देवकीनंदन बनाम सम्राट सुलेमान; ए.आई.आर. 1936 इला 753
7. पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स एंड अदर्स बनाम यू.ओ.आई. और अन्य; (1982)3 एस.सी.सी. 235
8. पंजाब राज्य और अन्य बनाम जगजीत सिंह और अन्य; (2017)1 एस.सी.सी. 148
9. केरल राज्य बनाम नवीना प्रभु; (2009) 3 एस.सी.सी. 649
10. महाराष्ट्र बनाम भगवान; (2022) 4 एस.सी.सी. 193
11. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम चंद्रावती देवी और अन्य; 2021:एएचसी:26379-डीबी
12. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम पुट्टी लाल; (2006) 9 एस.सी.सी. 337

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा उद्घोषित)

1. यह निर्णय प्रस्तुत रिट याचिका और संबंधित रिट-ए संख्या-5771 वर्ष 2023 पर फैसला करेगा। चूंकि दोनों याचिकाओं में तथ्य और कानून के संयुक्त प्रश्न शामिल हैं, इसलिए तथ्यों और पक्षों के मामले को रिट-ए संख्या-18956 वर्ष 2022 से देखा जाएगा, जिसे प्रमुख मामले के रूप में माना जाएगा।

2. याचिकाकर्ता ग्राम पुलिसकर्मी, चौकीदार या ग्राम प्रहरी हैं, जिन्हें समय-समय पर अलग-अलग बुलाया जाता है, लेकिन उत्तर-पश्चिमी क्षेत्राधिकार गांव और सड़क पुलिस अधिनियम, 1873 (अधिनियम संख्या-XVI वर्ष 1873)(संक्षेप में, 'अधिनियम वर्ष 1873') के तहत कुछ पुरातनता के इस कार्यालय में निश्चित रूप से नियुक्त किया गया है और जब से निरसन और संशोधन (दूसरा) अधिनियम 2017 द्वारा निरस्त कर दिया गया है, (अधिनियम संख्या-4 वर्ष 2018) (संक्षेप में, 'संशोधन अधिनियम वर्ष 2017') याचिकाकर्ता अनिवार्य रूप से ग्राम पुलिसकर्मी हैं, जो अपनी उत्पत्ति को उस समय से ढूंढ रहे हैं जब आधुनिक पुलिस नेटवर्क ने ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार के शुरुआती दिनों में पैर जमाने नहीं थे। उस समय भी, अधिनियम वर्ष 1873 में 'ग्राम पुलिसकर्मियों' और 'सड़क पुलिसकर्मियों' की स्थिति को राज्य के दूरदराज के गांवों, नुक्कड़ और कोनों में

नियमित पुलिस प्रतिष्ठान के विस्तारित हथियारों के रूप में माना जाता था, जिसे तब उत्तर-पश्चिमी क्षेत्राधिकार कहा जाता था।

3. ऐसा प्रतीत होता है कि ग्राम पुलिसकर्मियों ने उस दिन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी जब यह पद बनाया गया था और उसके बाद लंबे समय तक। लेकिन, समय की गति के साथ, विशेष रूप से स्वतंत्रता के बाद, आधुनिक पुलिस प्रणाली के संगठन और स्थापना में बड़ी प्रगति हुई। इसके अलावा, संचार, त्वरित परिवहन और निगरानी की प्रणालियों में महान तकनीकी प्रगति थी। ऐसा लगता है कि इन सभी कारकों को मिलाकर ग्राम पुलिसकर्मियों या ग्राम प्रहरी, जैसा कि अब कहा जाता है, की स्थिति को कमोबेश अल्पविकसित बना दिया है। फिर भी, पद को बरकरार रखा गया है और ऐसे पदाधिकारी हैं, जिनके पास कानून के तहत कुछ कर्तव्य हैं।

4. अग्रणी मामले में याचिकाकर्ताओं की संख्या-1487 है, और संबंधित मामले में याचिकाकर्ताओं की संख्या-31 है। प्रमुख याचिका में पक्षकारों ने हलफनामों का आदान-प्रदान किया है। प्रमुख मामले को 27.11.2024 को सुनवाई के लिए स्वीकार किया गया, जो तुरंत आगे बढ़ा। संबंधित मामले की सुनवाई भी 27.11.2024 को प्रमुख मामले के साथ की गई। दोनों मामलों में निर्णय सुरक्षित रखा गया था।

5. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री आदित्य प्रकाश वर्मा और राज्य की ओर से पेश होने वाले अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री गिरिजेश कुमार त्रिपाठी की सहायता से अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री पीके गिरि को सुना।

6. यहां प्रश्न यह है कि क्या ग्राम पुलिसकर्मी न्यूनतम वेतन के अनुदान के हकदार हैं, जिसके लिए पुलिसकर्मी उत्तर प्रदेश राज्य की नियमित स्थापना के हकदार हैं। याचिकाकर्ताओं का कहना है कि वे दशकों से राज्य सरकार के अधीन ग्राम पुलिसकर्मी या ग्राम प्रहरी के रूप में काम कर रहे हैं। यह उदाहरण के रूप में कहा गया है कि याचिकाकर्ता संख्या-2 वर्ष 1987, यानी लगभग 37 साल से काम कर रहा है। इसलिए, वे दावा करते हैं कि प्रतिपक्षियों को नियमित प्रतिष्ठान में उत्तर प्रदेश राज्य में सेवारत पुलिस कर्मियों पर लागू न्यूनतम मजदूरी प्रदान करने के लिए एक परमादेश जारी किया जाए। याचिकाकर्ताओं को उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के लिए मानदेय मिलता है। उनका कहना है कि ग्राम पुलिसकर्मी या ग्राम प्रहरी के रूप में याचिकाकर्ताओं के काम को अवध कानून अधिनियम, 1876 (अधिनियम संख्या-XVIII वर्ष 1876) के अध्याय IV की धारा 29 से 38 (संक्षेप में, 'अधिनियम वर्ष 1876') और उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के अध्याय IX के प्रस्तर-89 से 92 के तहत परिभाषित किया गया है। इन विनियमों में ग्राम पुलिस कमयों द्वारा की गई किसी भी अनियमितता के लिए दंड का भी प्रावधान है।

7. याचिकाकर्ता वर्तमान में प्रतिपक्षियों के अधीन ग्राम पुलिस/ग्राम प्रहरी के रूप में तैनात हैं और लंबे समय से काम कर रहे हैं। उनका काम नियमित प्रकृति का होता है। इसलिए, वे संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के तहत निहित सिद्धांतों पर नियमित स्थापना में उत्तर प्रदेश राज्य में पुलिसकर्मियों को देय न्यूनतम वेतनमान के हकदार हैं। याचिकाकर्ताओं को पहले 1500 रुपये प्रति माह की राशि का भुगतान किया जाता था, लेकिन

दिनांक 08.03.2019 के आदेश के माध्यम से, पारिश्रमिक को बढ़ाकर 2500 रुपये प्रति माह कर दिया गया है। याचिकाकर्ताओं के अनुसार, यह बहुत कम राशि है, और निश्चित रूप से किसी भी तरह से, उन्हें प्रस्तुत अर्थव्यवस्था में बनाए रखने के लिए पर्याप्त नहीं है। राज्य हर तरह से याचिकाकर्ताओं का शोषण कर रहा है, जबकि याचिकाकर्ता ईमानदारी और नियमित रूप से अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं।

8. याचिकाकर्ताओं ने प्रतिपक्षियों के समक्ष वर्ष 2019 से समय-समय पर अपने पक्ष का प्रतिनिधित्व किया, यह शिकायत करते हुए कि वे बेहतर सेवा सुविधाओं के साथ नियमित संवर्ग में न्यूनतम वेतनमान के हकदार हैं। इन अनुरोधों पर, जिस भी तरह से ये राज्य विधि आयोग के समक्ष आए, विधि आयोग को उठाए गए सभी मुद्दों पर विचार करने के लिए प्रेरित किया। मामले की जांच करने के बाद, विधि आयोग ने 03.12.2021 को राज्य सरकार को अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कीं। विधि आयोग द्वारा अपनी सिफारिशें किए हुए साढ़े तीन वर्ष से अधिक समय बीत चुका है, लेकिन निकट भविष्य में इन्हें कार्यान्वित नहीं किया गया है और सरकार द्वारा कार्यान्वयन के लिए आगे भी नहीं बढ़ाया गया है।

9. इसके बाद याचिकाकर्ताओं की ओर से यह दलील दी जाती है कि इसी तरह झारखंड और बिहार राज्यों में ग्राम चौकीदार (ग्राम चौकीदार) को दिनांक 07.04.2015 और 31.10.2016 की अधिसूचना के माध्यम से उनका उचित लाभ प्रदान किया गया है, जहां गांव चौकीदार को राज्य की सेवा में चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी का दर्जा दिया गया है। उन्हें 5200 - 20,200 रुपये का वेतन बैंड और 1800 रुपये का ग्रेड वेतन प्रदान किया गया है। इस लाभ को वर्ष 2006 से पूर्वव्यापी प्रभाव से बढ़ाया गया था। याचिकाकर्ताओं द्वारा होमगार्ड के मामले से भी समानता खींचने की मांग की गई है। उन्हें भी इसी तरह के कार्यकाल और मामूली पारिश्रमिक पर बनाए रखा गया था। हालांकि, **होम गार्ड्स वेलफेयर एसोसिएशन बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य, (2015) 6 एस.सी.सी. 247** में उच्चतम न्यायालय के फैसले को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ताओं का आग्रह है कि वे महीने के सभी 30 दिनों के लिए पारिश्रमिक के हकदार हैं, जो राज्य के पुलिस कर्मियों को भुगतान किए जाने वाले न्यूनतम वेतन के बराबर होगा।

10. होमगार्ड की पात्रता के सादृश्य पर समान अधिकार का समर्थन करने के लिए, याचिकाकर्ता **राम नाथ गुप्ता (होमगार्ड संख्या-0384) और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2016 (7) ए.डी.जे. 453** में इस न्यायालय के न्यायाधीश के फैसले पर भरोसा करते हैं। इस निर्णय के खिलाफ खंड पीठ में अपील की गई, जिसने 06.12.2016 को तय किए गए विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या-735 वर्ष 2016 में इसकी पुष्टि की, जिसमें थोड़ा संशोधन किया गया था कि 'पुलिस कांस्टेबल' शब्दों को 'पुलिस कर्मी' शब्दों से बदल दिया गया था। विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या-735 वर्ष 2016 में खंड पीठ के फैसले को राज्य द्वारा एस.एल.पी. (सी) संख्या-2264 वर्ष 2017 के माध्यम से चुनौती दी गई थी, लेकिन उच्चतम न्यायालय ने सभी परिणामी लाभ प्रदान करने के निर्देश के साथ एस.एल.पी. को खारिज कर दिया। फिर भी एक स्पष्टीकरण दिया गया था कि उच्च न्यायालय के फैसले से पहले होमगार्ड को न्यूनतम वेतनमान में बकाया मजदूरी का दावा करने में सक्षम बनाने का कोई आदेश नहीं है। राज्य को आठ सप्ताह के भीतर अनुपालन में आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया था।

11. याचिकाकर्ता होमगार्ड के मामले से समानता प्राप्त करना चाहते हैं। वे रसोइयों के मामले से भी समानता प्राप्त करना चाहते हैं, जिस पर इस न्यायालय द्वारा **चंद्रावती देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2021(1) ए.डी.जे. 59**, के मामले में विचार किया गया था जहां स्कूलों में मध्याह्न भोजन योजना के तहत काम करने वाले रसोइयों को 1000/- रुपये प्रति माह की दर से पारिश्रमिक दिया जा रहा था। इसी तरह की समानता सभा **शंकर दुबे बनाम प्रभागीय वन अधिकारी और अन्य, (2019) 12 एस.सी.सी. 297** के मामले से ली गई है, जो उत्तर प्रदेश राज्य के वन विभाग में कार्यरत ग्रुप-डी पदों पर दैनिक रेटेड श्रमिकों से संबंधित है। इन कर्मचारियों, जिन्हें प्रति माह निश्चित वेतन पर पारिश्रमिक दिया गया था, उन्हें एक ही पद पर काम करने वाले नियमित कर्मचारियों के लिए लागू वेतनमान का न्यूनतम भुगतान करने का आदेश दिया गया था। याचिकाकर्ताओं का मामला यह है कि अधिनियम वर्ष 1873 के तहत ग्राम पुलिसकर्मियों के कार्य और कर्तव्य, और वर्तमान में उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों द्वारा शासित हैं, स्पष्ट रूप से प्रदान करते हैं कि ग्राम पुलिसकर्मी पुलिस के सहयोगी हैं। उनके काम की प्रकृति को सतर्कता के रूप में परिभाषित किया गया है। उन्हें पुलिस विभाग की तीसरी आंख बताया जा रहा है। याचिकाकर्ताओं का कहना है कि वे लगातार अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं, लेकिन राज्य उन्हें न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अनुसार निर्धारित न्यूनतम वेतनमान के तहत निर्धारित न्यूनतम मजदूरी का भुगतान नहीं करके उनके साथ भेदभाव कर रहा है। याचिकाकर्ताओं का यह भी कहना है कि याचिकाकर्ताओं से 2500 रुपये प्रति माह की मामूली राशि पर काम लेना संविधान के अनुच्छेद 23 के तहत निषिद्ध बेगार लेने के बराबर है, इसके अलावा भेदभाव भी किया जाता है, जो संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है।

12. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री आदित्य प्रकाश वर्मा द्वारा यह तर्क दिया गया है कि उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के प्रस्तर-96 के प्रावधानों के तहत, याचिकाकर्ताओं की तरह, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अधिनियम वर्ष 1873 की धारा 3 से 6 के तहत या अधिनियम वर्ष 1876 की धारा 29 से 32 के तहत की जाती है। वह प्रस्तुत करता है कि प्रतिपक्षियों का रुख यह है कि अधिनियम वर्ष 1873 को संशोधन अधिनियम वर्ष 2017 द्वारा निरस्त कर दिया गया है, लेकिन संशोधन अधिनियम, 2017 की धारा 4 में बचत खंड निरसन से पहले किए गए कार्यालय या नियुक्तियों की रक्षा करता है। परिणामस्वरूप, ग्राम प्रहरी की नियुक्तियां पहले की गई थीं, जब अधिनियम वर्ष 1873 लागू था, वैध बनी रहेंगी। तब यह तर्क दिया जाता है कि अधिनियम वर्ष 1876 के प्रावधान अभी भी लागू हैं और अधिनियम की धारा 29 से 32 के तहत नियमित रूप से नई नियुक्तियां की जा रही हैं। नियुक्ति की योजना का अवलोकन, जैसा कि यह अधिनियम वर्ष 1873 की धारा 3 से 6 के तहत था, और, जैसा कि वर्तमान में है, अधिनियम वर्ष 1876 की धारा 29 से 32 के तहत, स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि नियुक्ति की शक्ति राज्य सरकार के पास है, जो उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के प्रस्तर-96 के अनुसार, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्रयोग किया जाता है। यह आग्रह किया जाता है कि भले ही यह राज्य सरकार का मामला हो कि व्यक्ति, जो अधिनियम वर्ष 1873 के तहत नामांकन कर सकते हैं, वर्तमान सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में मौजूद नहीं हैं, तथ्य यह है कि अधिनियम राज्य सरकार को नामांकन के डिफ़ॉल्ट रूप में, जैसा कि अधिनियम वर्ष 1876 की धारा 32 के तहत परिकल्पित किया गया है, किसी व्यक्ति की आयु, चरित्र और योग्यता की उचित जांच के बाद उसे नियुक्त करना, राज्य सरकार के निवेदन को तथ्यहीन बना देता है।

13. जहां तक याचिकाकर्ताओं की सेवा शर्तों को नियंत्रित करने वाले नियमों का संबंध है, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता के अनुसार, अधिनियम वर्ष 1876 की धारा 39 के तहत इन्हें तैयार करने की शक्ति राज्य सरकार को सौंपी गई थी, लेकिन आज तक, सरकार द्वारा कोई सेवा नियम नहीं बनाया गया है। इसके बाद कहा जाता है कि जहां तक याचिकाकर्ताओं को मजदूरी के भुगतान का संबंध है, ग्राम पुलिसकर्मियों या ग्राम प्रहरी को 1500/- रुपये प्रति मासिक की दर से पारिश्रमिक दिया गया था, लेकिन प्रमुख सचिव, गृह विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ द्वारा दिनांक 08.03.2019 को जारी एक आदेश द्वारा, पारिश्रमिक को कुछ अन्य सुविधाओं के साथ बढ़ाकर 2500/- रुपये प्रति माह कर दिया गया है। उपरोक्त सरकारी आदेश में विस्तृत विवरण दिया गया है, जिसका हम इस निर्णय के दौरान संकेत देंगे।

14. इसके बाद याचिकाकर्ताओं की ओर से यह आग्रह किया जाता है कि दिनांक 08.03.2019 के सरकारी आदेश में प्रयुक्त शब्द 'मंडेय' है, जिसका अर्थ मानदेय है, लेकिन उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के प्रस्तर-91 में उल्लिखित ग्राम पुलिसकर्मी या ग्राम प्रहरी को दिया जाने वाला पारिश्रमिक 'वेतन' है; मानदेय नहीं। इसके बाद यह बताया जाता है कि यदि ग्राम पुलिसकर्मी द्वारा कार्यों के निर्वहन में कोई कदाचार किया जाता है, जो अधिनियम वर्ष 1873 की धारा 10 या अधिनियम वर्ष 1876 की धारा 73 के तहत उसकी सेवा को प्रभावित करता है, तो जिला मजिस्ट्रेट को उसे बर्खास्त करने की शक्ति प्रदान की जाती है। अधिनियम वर्ष 1873 की धारा 11 या अधिनियम वर्ष 1876 की धारा 37 के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा दोषी ठहराए जाने पर ग्राम पुलिसकर्मी कारावास और/या जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी हैं।

15. अगला बिंदु, जो याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री वर्मा द्वारा उजागर किया गया है, वह यह है कि याचिकाकर्ताओं के कर्तव्यों को उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के प्रस्तर-89 और 91 में परिभाषित किया गया है और यह वर्तमान में अधिनियम वर्ष 1876 की धारा 34 में और इससे पहले, अधिनियम वर्ष 1873 की धारा 8 के निरसन से पहले पाया जा सकता है। यह तर्क दिया गया है कि उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के प्रस्तर-89 में यह प्रावधान है कि एक ग्राम पुलिसकर्मी का मुख्य कर्तव्य उस गांव की निगरानी करना और उसकी निगरानी करना है, जिसका वह प्रभारी है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि जब इस प्रावधान को अधिनियम वर्ष 1876 की धारा 34 के साथ पढ़ा जाता है, तो यह स्पष्ट रूप से स्थापित होता है कि ग्राम पुलिसकर्मियों या ग्राम प्रहरी के कर्तव्य समान हैं, यदि उत्तर प्रदेश पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 23 के तहत प्रदान किए गए पुलिस अधिकारियों के कर्तव्यों के समान नहीं हैं।

16. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने इस बात पर जोर दिया कि ग्राम पुलिसकर्मियों के लिए कर्तव्यों का एक और सेट उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के प्रस्तर-91 में किया गया है, जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि यह भी उनका कर्तव्य होगा कि वे अपने गांवों में लोगों के जन्म और मृत्यु की रिपोर्ट करें और इस उद्देश्य के लिए, उन्हें महीने में दो बार अपने थाना में रिपोर्ट करने और उपस्थित होने की आवश्यकता है। याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा बहुत जोर देकर कहा गया है कि अधिनियम वर्ष 1873, साथ ही अधिनियम वर्ष 1876, ग्राम पुलिसकर्मियों या ग्राम प्रहरी को उन अधिनियमों के प्रावधानों के अनुसार व्यक्तियों को गिरफ्तार करने

की शक्ति प्रदान करता है। यह स्थापित करने के लिए कि याचिकाकर्ता वास्तव में पुलिसकर्मी हैं, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने **देवकीनंदन बनाम समाट सुलेमान, ए.आई.आर. 1936 इला० 753** में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के अधिकार का समर्थन किया है, जहां पूर्ण पीठ द्वारा यह माना गया था कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 25 के प्रयोजन के लिए ग्राम पुलिसकर्मियों को पुलिस अधिकारी माना जाएगा। उनका कहना है कि वहां यह टिप्पणी की गई थी कि ये ग्राम पुलिसकर्मी उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के प्रस्तर-373 के तहत पुलिस बल के सदस्य हैं, क्योंकि यह उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के प्रस्तर-396 के साथ दिन में वापस खड़ा था।

17. इसके बाद यह प्रस्तुत किया जाता है कि ग्राम पुलिसकर्मियों के कर्तव्यों के अधिक सर्वेक्षण के लिए उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के प्रस्तर-245, 257, 260, 261, 267 और 273 पर एक नज़र डालने की आवश्यकता होगी। यह आग्रह किया जाता है कि एक बहुत ही दिलचस्प बिंदु, जैसा कि याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने कहा है, इन सभी प्रावधानों के लिए सामान्य है, यह तथ्य है कि ग्रामीण पुलिसकर्मियों को उनके गांवों के लिए सौंपे गए कर्तव्य, शहरी क्षेत्रों में पुलिस प्रतिष्ठान में बीट कांस्टेबल को सौंपे गए कर्तव्य के समान हैं। इस बात पर जोर दिया जाता है कि ये कर्तव्य याचिकाकर्ताओं के पुलिस कार्यों के निर्वहन के मामले को और मजबूत करते हैं। यह भी पता चला है कि इन सभी कर्तव्यों में समय का सार है और इसलिए, त्वरित निर्णय होता है।

18. तर्क यह है कि एक ग्राम पुलिसकर्मी के इन कर्तव्यों से पता चलता है कि राज्य की यह दलील कि याचिकाकर्ता महीने में केवल दो दिन काम करते हैं, निराधार है। याचिकाकर्ता कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए पुलिस बलों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर लगातार काम करते हैं। न्यायालय का ध्यान प्रत्युत्तर हलफनामे में पृष्ठ संख्या-35 पर संलग्न कर्तव्य चार्ट की ओर आकर्षित किया जाता है, विशेष रूप से पृष्ठ संख्या-39 पर, जो एक महीने के लंबे कर्तव्य विवरण का प्रावधान करता है। यह भी तर्क दिया जाता है कि उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के प्रस्तर-396 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता स्पष्ट रूप से पुलिस बल का हिस्सा हैं और पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 47 में यह निर्धारित किया गया है कि ग्राम पुलिसकर्मी जिला पुलिस अधीक्षक के अधिकार के अधीन होंगे, जो जिले के मजिस्ट्रेट के सामान्य नियंत्रण के अधीन होगा। यह भी बताया गया है कि याचिकाकर्ताओं को थानाध्यक्ष द्वारा आदेश जारी किए गए हैं, उन्हें निर्दिष्ट स्थानों पर विशिष्ट अवसरों पर काम करने के लिए कहा गया है। इस संबंध में, हमारा ध्यान प्रत्युत्तर हलफनामे के पृष्ठ संख्या-35 और उसके बाद की ओर आकर्षित किया गया है।

19. यह तर्क दिया जाता है कि राज्य सरकार के मामले में अतिरिक्त मुख्य सचिव के व्यक्तिगत हलफनामे के प्रस्तर-16 में दलील दी गई थी कि सरकार की राय है कि याचिकाकर्ताओं को 2500/- रुपये की राशि में पर्याप्त मानदेय प्रदान किया जाता है, क्योंकि वे महीने में केवल दो दिन काम करते हैं, तथ्यात्मक और कानूनी रूप से त्रुटिपूर्ण है। याचिकाकर्ताओं के अनुसार, राज्य की दलील में भ्रांति का कारण यह है कि उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों का प्रस्तर-91, जो गांव में जन्म और मृत्यु की रिपोर्टिंग का प्रावधान करता है, याचिकाकर्ताओं को महीने में दो बार थाना में उपस्थित होने की आवश्यकता होती है, जो उनके माध्यमिक कर्तव्यों में से एक है।

उनका प्राथमिक कर्तव्य उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के प्रस्तर-89 और अधिनियम वर्ष 1876 की धारा 34 या अधिनियम वर्ष 1873 की धारा 8 से उत्पन्न होता है। उपर्युक्त प्रस्तर के तहत कर्तव्य कठिन हैं और राज्य के संप्रभु कार्यों के लिए संदर्भित हैं, जिन्हें संभवतः निर्वहन नहीं किया जा सकता है, जो महीने में दो दिन काम करते हैं। इसके लिए अपराध का लगातार पता लगाने और आदतन अपराधियों की आवाजाही की आवश्यकता होती है, इसके अलावा उच्च अधिकारियों को इसकी तत्काल सूचना दी जाती है। यह भी कहा जाता है कि पुलिस विभाग की पूरी खुफिया जानकारी गांव के पुलिसकर्मियों की स्थापना पर निर्भर है। आगे यह कहा जाता है कि याचिकाकर्ताओं को दिए जाने वाले 2500 रुपये प्रति माह के मानदेय या वेतन को उनके शरीर और आत्मा के साथ-साथ उनके परिवार को भी एक साथ रखने के लिए पर्याप्त नहीं माना जा सकता है।

20. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा 16.05.2024 की नवीनतम अधिसूचना का संदर्भ दिया गया है, जिसमें न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के तहत जारी न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की गई है। अकुशल कामगारों के लिए 410 रुपये, अर्धकुशल कामगारों के लिए 451 रुपये और कुशल कामगारों के लिए 505 रुपये प्रतिदिन अनिवार्य है। नियोक्ता अधिसूचना में की गई मजदूरी की दरों का अनुपालन करने के लिए बाध्य हैं। राज्य सरकार, जिसे एक आदर्श नियोक्ता माना जाता है, जैसा कि याचिकाकर्ताओं का कहना है, प्रति दिन 83.30 रुपये (मजदूरी की दैनिक दर 2500 रुपये प्रति माह के वेतन पर काम करती है) का भुगतान करना सुविधाजनक समझती है।

21. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने **पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स एंड अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, (1982) 3 एस.सी.सी. 235** में उच्चतम न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें रिपोर्ट के प्रस्तर-12 से 15 पर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया है। उन्होंने विशेष रूप से चंद्रावती देवी (उपरोक्त) का उल्लेख किया है। याचिकाकर्ताओं द्वारा न्यूनतम मजदूरी के अपने अधिकार का समर्थन करने के लिए इन प्राधिकरणों पर भरोसा किया गया है। उच्चतम न्यायालय द्वारा **पंजाब राज्य और अन्य बनाम जगजीत सिंह और अन्य, (2017) 1 एस.सी.सी. 148** में निर्धारित सिद्धांत पर भी भरोसा किया जाता है, जहां याचिकाकर्ताओं के अनुसार, न्यूनतम मजदूरी प्राप्त करने के अधिकार को भी संवैधानिक जनादेश माना गया है। अंत में, यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ताओं का मामला होमगार्ड की तुलना में बेहतर स्तर पर है, क्योंकि बाद वाले पुलिस बल के सदस्य नहीं हैं और ऐसा करने के लिए बुलाए जाने पर केवल कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए नियोजित हैं। फिर भी, अदालत ने उन्हें राम नाथ गुप्ता (उपरोक्त) और होमगार्ड्स वेलफेयर एसोसिएशन (उपरोक्त) में सुरक्षा प्रदान की है, जिससे उन्हें महीने में सभी 30 दिनों के लिए पारिश्रमिक और राज्य के पुलिस कर्मियों द्वारा प्राप्त न्यूनतम वेतन का एक प्रतिशत दिया गया है।

22. अपर मुख्य सचिव (गृह) की ओर से दायर जवाबी हलफनामे में, जो उनका व्यक्तिगत हलफनामा है, यह पक्ष यह है कि ग्राम पुलिसकर्मियों या ग्राम प्रहरी को मानदेय का भुगतान किया जा रहा है और सरकार द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार दिनांक 08.03.2019 और उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के अध्याय IX के प्रस्तर-90 और 91 में अन्य सुविधाएं दी जा रही हैं। यह कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं को उनके द्वारा किए गए

कार्य के अनुपात में पर्याप्त मानदेय और अन्य सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं। उन्हें महीने में केवल दो दिन काम करने की आवश्यकता होती है और लाभ के लिए कोई अन्य काम करने के लिए स्वतंत्र होते हैं, अर्थात् कृषि या स्थानीय व्यवसाय।

23. पुलिस महानिदेशक द्वारा उनके द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में भी इसी तरह का रुख अपनाया गया है। प्रतिवादी संख्या-3 की ओर से एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, जो अतिरिक्त मुख्य सचिव के समान रुख अपनाता है।

24. श्री पी.के. गिरि, अतिरिक्त महाधिवक्ता, श्री गिरिजेश कुमार त्रिपाठी, अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता की सहायता से, प्रस्तुत करते हैं कि ग्राम पुलिसकर्मी या ग्राम प्रहरी किसी भी तरह से राज्य के पुलिस बल के सदस्य नहीं हैं। उन्होंने पुलिस अधिनियम, 1861(5 वर्ष 1861) की धारा 1 के तहत 'पुलिस' की परिभाषा की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जहां इसे निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया गया है:

"पुलिस" शब्द में वे सभी व्यक्ति शामिल होंगे जिन्हें इस अधिनियम के तहत नामांकित किया जाएगा;"

25. अतिरिक्त महाधिवक्ता ने इसके बाद पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 2 की ओर ध्यान आकर्षित किया है, जो पुलिस बल के गठन को निम्नानुसार प्रदान करता है:

"2. बल का गठन:- इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, राज्य सरकार के अधीन संपूर्ण पुलिस-प्रतिष्ठान, एक पुलिस-बल माना जाएगा और औपचारिक रूप से नामांकित किया जाएगा; और इसमें अधिकारियों और पुरुषों की संख्या शामिल होगी, और इस तरह से गठित किया जाएगा, जैसा कि राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर आदेश दिया जाएगा।
इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी भी पुलिस बल के अधीनस्थ रैंक के सदस्यों का वेतन और सेवा की अन्य सभी शर्तें ऐसी होंगी जो राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जाएं।

26. श्री गिरि ने प्रस्तुत किया कि ग्राम पुलिसकर्मियों द्वारा किए जाने वाले कार्य एक सहायक भूमिका की प्रकृति में हैं, जो ग्राम स्तर की निगरानी के साथ स्थानीय प्रशासन की सहायता करते हैं। उनकी ड्यूटी महीने में दो बार रिपोर्ट करने तक सीमित है - एक बार अपनी रिपोर्ट जमा करने के लिए और दूसरा अपना मानदेय लेने के लिए। किसी भी तरह से, ग्राम पुलिसकर्मियों की जिम्मेदारियां पुलिस की नियमित स्थापना के बराबर नहीं हैं। यह बताया गया है कि ग्राम पुलिसकर्मियों के लिए मानदेय शुरू में सरकारी आदेश संख्या-1393 पी / सीएच-पीयू -6-12-1 सीएम / 12 दिनांक 24.09.2012 द्वारा 1500 रुपये प्रति माह निर्धारित किया गया था। बाद में इसे सरकारी आदेश संख्या-45/2019/490पी/सीएच-पीयू-6-2019-01-सीएम/2012 दिनांक 08.03.2019 के तहत बढ़ाकर 2500 रुपये प्रति माह कर दिया गया था। यह मानदेय याचिकाकर्ताओं के कंधों पर आने वाले सीमित कर्तव्यों और जिम्मेदारियों के समानुपाती है। यह प्रस्तुत किया गया है कि 08.03.2019 के सरकारी

आदेश को न्यायालय में चुनौती नहीं दी गई है। यह स्वीकार किया जाता है कि इस न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश, न्यायमूर्ति एएन मित्तल की अध्यक्षता वाले विधि आयोग को उत्तर प्रदेश राज्य में ग्राम पुलिसकर्मियों की नियुक्ति, सेवा शर्तों, उत्तरदायित्वों और सामाजिक सुरक्षा आदि से संबंधित मामलों पर सिफारिश करने के लिए कहा गया था। यथासमय विधि आयोग ने सरकार को अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कर दी हैं। सिफारिशें अभी भी सरकार के विचाराधीन हैं और इन पर कोई अधिकार स्थापित नहीं किया जा सकता है।

27. श्री गिरि ने **केरल राज्य बनाम नवीना प्रभु, (2009)3 एस.सी.सी. 649** में सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार पर भरोसा करते हुए कहा है कि सर्वोच्च न्यायालय ने वहां माना है कि न्यायालयों को वित्तीय और नीतिगत मामलों से संबंधित निर्देश जारी करने में संयम बरतना चाहिए, क्योंकि ये अनिवार्य रूप से कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र में आते हैं। इसी उद्देश्य के लिए, अतिरिक्त महाधिवक्ता ने **महाराष्ट्र राज्य बनाम भगवान, (2022)4 एस.सी.सी. 193** में सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार पर भरोसा किया है। अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा इस बात पर जोर दिया गया है कि ग्राम पुलिसकर्मियों का कार्य महीने में दो दिन तक सीमित है, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, और वे कृषि या व्यवसाय जैसे अन्य व्यवसायों में संलग्न होने के लिए स्वतंत्र हैं। उन्हें प्रदान किया गया मानदेय उनके द्वारा किए जाने वाले कर्तव्यों के लिए पर्याप्त है। उन्होंने कहा कि नियमितीकरण और न्यूनतम मजदूरी की याचिकाकर्ताओं की मांग पूरी तरह से अस्थिर है।

28. हमने दोनों पक्षों की ओर से प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

29. इसमें कोई संदेह नहीं है कि ग्राम पुलिसकर्मी या ग्राम प्रहरी पुलिस अधिनियम के तहत पुलिस के नामांकित सदस्य नहीं हैं। उन्हें यूपी पुलिस विनियमों के तहत ग्राम चौकीदार के रूप में वर्णित किया गया है। फिर भी, उन्हें उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के प्रस्तर-396 के तहत पुलिस बल के निकायों में से एक माना जाता है। प्रस्तर-396 पढ़ता है:

"**396. पुलिस बल के निकाय.**- पुलिस बल में निम्नलिखित निकाय होते हैं:
प्रांतीय पुलिस, नागरिक सशस्त्र और घुड़सवार
अधिनियम V वर्ष 1861 के तहत नियुक्त और नामांकित
2 - राजकीय रेलवे पुलिस
अधिनियम XVI वर्ष 1873 के तहत आगरा में और अधिनियम XVII वर्ष 1876 के तहत अवध में नियुक्त किया गया।
3 - गांव के चौकीदार
अधिनियम V वर्ष 1861 के तहत नामांकित नहीं किया गया है।

30. उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के प्रस्तर-396 से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि राज्य के पुलिस बल में शामिल पुरुषों के शरीर का हिस्सा है, लेकिन गांव चौकीदार नामांकित सदस्य नहीं हैं। वे अपनी नियुक्ति का पता पुरातनता के क़ानूनों से लगाते हैं, यानी अधिनियम वर्ष 1873 और अधिनियम वर्ष 1876, जिनमें से एक, जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, वर्ष 2017 में निरस्त कर दिया गया है। ग्राम पुलिस कर्मियों या चौकीदार के कर्तव्यों, जैसा कि उन्हें उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के तहत कहा जाता है, प्रस्तर-89, 90, 245, 257, 260, 261, 267 और 273 के अवलोकन पर अंदाजा लगाया जा सकता है। उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के ये प्रस्तर हैं:

*"89. **गांव चौकीदार का मुख्य कर्तव्य**:- गांव के चौकीदार एक ग्राम सेवक होते हैं, जिसका मुख्य कर्तव्य गांवों की निगरानी और निगरानी करना होता है। उसे अपराधियों का पता लगाने में सहायता करने के लिए ग्राम प्रधान के लिए रिपोर्ट ले जाने की आवश्यकता होती है, और कानून द्वारा अधिकृत गिरफ्तारी करने की आवश्यकता होती है। वह अपने कर्तव्यों के उचित प्रदर्शन के लिए जिला मजिस्ट्रेट के प्रति जिम्मेदार है। ग्राम प्रधान से संबंधित नियम सरकारी आदेशों की नियमावली में हैं।*

*90. **चौकीदार के लिए फ्रीशिप** - गांव के चौकीदारों को भूमि पर खेती करने से मना नहीं किया गया है; उन्हें उन गांवों में से एक में रहना चाहिए जिसके लिए वे जिम्मेदार हैं। उन्हें कांस्टेबुलरी बल के सदस्यों द्वारा छोटे कर्तव्यों पर नियोजित किया जाना चाहिए।*

*245. **हिस्ट्रीशीटर के नाम कांस्टेबलों की बीट बुक और ग्राम चौकीदारों की अपराध अभिलेखों बुक में दर्ज किए जाएंगे** - सभी हिस्ट्रीशीट-मैन के नाम बीट कांस्टेबलों की नोटिसबुक में और ग्राम चौकीदारों की अपराध अभिलेखों बुक में दर्ज किए जाएंगे। अधिकारियों और पुरुषों द्वारा गांव के सभी दौरे, जहां बुरे पात्र रहते हैं, गांव के अपराध नोट-बुक की फ्लाई-शीट में दिखाया जाएगा और फ्लाई-शीट में एक प्रविष्टि से पता चलेगा कि गांव में सभी क्लास ए हिस्ट्रीशीट के पुरुषों का दौरा किया गया है। इन यात्राओं के परिणाम को दर्शाने वाला एक पूरा नोट रोज़नामचा में बनाया जाएगा, फ्लाई शीट में रोज़नामचा रिपोर्ट की संख्या के संदर्भ में, जब कुछ भी महत्वपूर्ण पता लगाया जाता है, तो हिस्ट्री-शीट में एक संक्षिप्त नोट भी बनाया जाएगा। शहरों में प्रत्येक हिस्ट्रीशीट के साथ एक अलग फ्लाई-शीट संलग्न की जानी चाहिए, जिस पर संदिग्ध की यात्राओं को दर्ज किया जाएगा।*

***नोट**:- फ्लाई शीट को हिस्ट्रीशीटर की निगरानी के सूचकांक के रूप में भी जाना जाता है।*
257. हिस्ट्रीशीटर के आवागमन की सूचना बीट कांस्टेबल या ग्राम चौकीदार द्वारा एस.ओ. को दी जानी चाहिए - यह गांव के चौकीदार या बीट कांस्टेबल (कस्बों में) का कर्तव्य है कि जब भी हिस्ट्रीशीट पर कोई बुरा चरित्र अपने घर से बाहर निकलता है, तो तुरंत थाना के प्रभारी अधिकारी को उसके प्रस्थान और उसके गंतव्य के बारे में सूचित करे, यदि ज्ञात हो।

260. सर्कल के भीतर हिस्ट्रीशीटर का दौरा, बीट कांस्टेबल के माध्यम से पूछताछ द्वारा सत्यापित किया जाए- जब कोई बुरा चरित्र अपने घर से उस सर्कल के भीतर किसी असामान्य या संदिग्ध गंतव्य के लिए निकलता है, जिसका वह निवासी है, तो कांस्टेबल या चौकीदार की रिपोर्ट रोज़नामचा में दर्ज की जाएगी और एक कांस्टेबल के माध्यम से या उस गांव के चौकीदार से पूछताछ द्वारा जितनी जल्दी हो सके यात्रा का सत्यापन किया जाएगा। बुरे चरित्र पर आरोप लगाया जाता है कि वह चला गया है।

*261. **चौकीदारों द्वारा बुरे पात्रों के प्रस्थान की रिपोर्ट**- चौकीदारों द्वारा बुरे पात्रों के प्रस्थान की रिपोर्ट (1) वृत्त के बाहर किसी गंतव्य के लिए, (2) सर्कल के भीतर एक असामान्य गंतव्य के लिए (3) एक अज्ञात गंतव्य के लिए, (4) रात में रोज़नामचा में दर्ज किया जाएगा, और ऐसी प्रत्येक रिपोर्ट की संख्या और तारीख का संदर्भ चौकीदार की अपराध, प्रत्येक संदिग्ध के नाम के बाद का उद्देश्य, अभिलेखों बुक में प्रदान किए गए कॉलम में दर्ज किया जाएगा।*

267. गांव के चौकीदार का कर्तव्य, जब वह अपने गांव में किसी संदिग्ध अजनबी के आने की खबर सुनता है- यदि गांव के चौकीदार को अपने गांव में किसी संदिग्ध अजनबी के आने की खबर मिलती है, तो वह उससे उसके पूर्ववृत्त और निवास के बारे में पूछताछ करेगा और इस तरह से प्राप्त सभी जानकारी को जल्द से जल्द थाना भेजेगा या ले जाएगा।

273. जहां टेलीफोन उपलब्ध है, वहां आमतौर पर जांच पर्ची नहीं भेजी जाएगी- ग्रामीण क्षेत्रों में चौकीदारों को सौंपे गए कर्तव्यों का पालन पुलिस द्वारा शहरों और कस्बों में किया जाएगा। जहां एक टेलीफोन उपलब्ध है, पूछताछ पर्चियां आमतौर पर नहीं भेजी जाएंगी, लेकिन टेलीफोन का उपयोग तब किया जाएगा जब भी आगमन या प्रस्थान की रिपोर्ट प्राप्त होती है, ऐसी रिपोर्टें रोज़नामचा में दर्ज की जाती हैं या प्रस्थान की जाती हैं, ऐसी रिपोर्टों को रोज़नामचा में दर्ज किया जाता है और अभिलेखों के उद्देश्य से पूछताछ पर्चियां तैयार की जा रही हैं। टेलीफोन द्वारा प्राप्त उत्तरों को इसी तरह रोज़नामचा और पूछताछ पर्ची में दर्ज किया जाएगा। शहर के पुलिस स्टेशनों के शहर के निरीक्षक और प्रभारी अधिकारी यह देखने के लिए जिम्मेदार होंगे कि जांच पर्चियों की फाइलों को अद्यतित रखा जाए और टेलीफोन पूछताछ के लिए तुरंत जवाब दिए जाएं। एक बुरे चरित्र की आवाजाही के बारे में एक जांच के लिए टेलीफोन द्वारा जवाब देने में 24 घंटे से अधिक की देरी की सूचना तुरंत शहर के निरीक्षक को दी जानी चाहिए।

31. उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के उपर्युक्त उद्धृत प्रस्तर के तहत दिए गए इन कर्तव्यों में से कितने कर्तव्य, जो अब ग्राम पुलिसकर्मियों के कंधों पर आते हैं, यह बहुत विवाद का विषय नहीं है। ग्राम पुलिसकर्मियों के लिए निर्धारित कर्तव्यों पर एक नज़र डालने से यह नहीं पता चलता कि वे आधुनिक युग में बहुत प्रासंगिक हैं। उनके मुख्य कर्तव्य को विनियम 89 में उनके प्रभार में गांवों की निगरानी और निगरानी के रूप में वर्णित किया गया है। अन्य कर्तव्यों में से एक गांव के मुखिया के लिए रिपोर्ट ले जाना, अपराधियों का पता लगाने में उसकी सहायता करना और गिरफ्तारी करना है, जैसा कि कानून द्वारा अधिकृत है। समकालीन समाज में संवैधानिक

दर्जे के साथ एक निर्वाचित पंचायत और त्रिस्तरीय पंचायती राज की व्यवस्था है। उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के प्रस्तर-89 को जिस अर्थ में समझा जाता है, उस अर्थ में कोई ग्राम प्रधान नहीं है। कानून के लिए गिरफ्तारी करने के लिए गांव के पुलिसकर्मियों या ग्राम प्रहरी पर शायद ही कोई भरोसा करेगा। आधुनिक दुनिया में, एक अपराधी को गिरफ्तार करना लगभग तकनीकी रूप से प्रशिक्षित काम बन गया है, जिसमें गिरफ्तार करने वाले अधिकारी की व्यक्तिगत सुरक्षा, आसपास के लोगों और गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की सुरक्षा के मामले शामिल हैं। संवैधानिक न्यायालयों द्वारा निर्धारित जटिल दिशानिर्देशों के साथ गिरफ्तारी के जटिल नियमों का पालन किया जाना चाहिए।

32. महीने में दो बार गांव के पुलिसकर्मियों के लिए थाना में उपस्थिति जन्म और मृत्यु पर रिपोर्ट करने के लिए होती है। आजकल गांवों में जन्म और मृत्यु का पंजीकरण पुलिस की निगरानी का विषय नहीं रह गया है। बढ़ती शिक्षा और आधुनिक ग्रामीण जीवन का हिस्सा बनने के लिए आवश्यक विभिन्न अभिलेखों की आवश्यकताओं के साथ, परिवार को जन्म और मृत्यु पंजीकरण अधिनियम, 1969 के तहत अपने जन्म और मृत्यु का पंजीकरण कराना होगा, जो भी नामित अधिकारी हो।

33. गांव में जन्म और मृत्यु को दर्ज करने का कार्य ग्राम पंचायत के पास है। उत्तर प्रदेश पंचायती राज अधिनियम, 1947 का अध्याय IV (संक्षेप में, अधिनियम वर्ष 1947) ग्राम पंचायत की शक्तियों, कर्तव्यों, कार्यों और प्रशासन से संबंधित है। धारा 15 ग्राम पंचायत के कार्यों से संबंधित है। धारा 15 (xxiii) है:

"15. ग्राम पंचायत के कार्य - राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर विनिर्दिष्ट की जाने वाली शर्तों के अधीन रहते हुए, एक ग्राम पंचायत निम्नलिखित कार्य करेगी, अर्थात् -
xxiii- चिकित्सा और स्वच्छता
(क) ग्रामीण स्वच्छता को बढ़ावा देना।
(b) महामारी से बचाव।
(ग) मानव और पशु टीकाकरण के कार्यक्रम।
(घ) आवारा पशुओं और पशुधन के विरुद्ध निवारक कार्रवाई।
(ई) जन्म, मृत्यु और विवाह का पंजीकरण करना।

34. ग्राम पंचायत के उपर्युक्त कार्यों को आगे बढ़ाने के लिए, सरकार ने अधिनियम वर्ष 1947 की धारा 110 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उत्तर प्रदेश पंचायती राज अधिनियम (परिवार रजिस्टर का रखरखाव) नियम, 1970 (संक्षेप में, 'नियम वर्ष 1970') तैयार किया है। इसमें फॉर्म ए में एक परिवार रजिस्टर के रखरखाव की परिकल्पना की गई है, जिसमें गांव सभा से संबंधित गांव में सामान्य रूप से रहने वाले सभी व्यक्तियों के परिवार-वार नाम और विवरण शामिल हैं। नियम 2 कहता है कि आमतौर पर रजिस्टर में प्रत्येक परिवार को एक पृष्ठ आवंटित किया जाएगा। नियम 3 द्वारा यह प्रावधान किया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति, जो सामान्य रूप से गांव सभा के क्षेत्र में रह रहा है, परिवार रजिस्टर में पंजीकृत होने का हकदार होगा। नियम 4 में परिवार

रजिस्टर में त्रैमासिक प्रविष्टियों का प्रावधान है। यह अनिवार्य करता है कि प्रत्येक तिमाही की शुरुआत में, एक वर्ष के अप्रैल से शुरू होने पर, गांव सभा के सचिव प्रत्येक परिवार में पिछली तिमाही में हुए जन्म और मृत्यु, यदि कोई हो, के परिणामस्वरूप परिवार रजिस्टर में आवश्यक परिवर्तन करने के लिए बाध्य हैं। इस तरह के बदलावों को जानकारी के लिए ग्राम पंचायत की अगली बैठक से पहले रखा जाएगा। इसके बाद नियम वर्ष 1970 का नियम 5 है, जो सहायक विकास अधिकारी (पंचायत) को उसके पास किए गए एक आवेदन पर निवेश करता है, जिसमें परिवार रजिस्टर में किसी भी मौजूदा प्रविष्टि को सुधारने का आदेश देने की शक्ति है। गांव सभा के सचिव इन आवेदनों पर सहायक विकास अधिकारी (पंचायत) द्वारा दिए गए आदेशों का पालन करने के लिए बाध्य हैं।

35. अधिनियम वर्ष 1947 के तहत नई वैधानिक व्यवस्था यह दर्शाएगी कि एक गांव में जन्म और मृत्यु की रिपोर्टिंग और पंजीकरण अब गांव सभा का लगभग अनन्य क्षेत्राधिकार है। उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के तहत गांव के पुलिसकर्मियों के कंधों पर गांव में होने वाली हर मौत और जन्म की रिपोर्ट करने का कठिन कर्तव्य बहुत अधिक उद्देश्य प्रतीत नहीं होता है। सुनवाई के दौरान भी इस बात का ध्यान नहीं दिया गया कि गांव में प्रत्येक जन्म और मृत्यु इतनी महत्वपूर्ण पुलिस खुफिया जानकारी का मामला है कि दुनिया में प्रवेश करने वाले प्रत्येक बच्चे और इससे बाहर निकलने वाले प्रत्येक व्यक्ति को तुरंत थाना और जिला पुलिस अधीक्षक को पता होना चाहिए। ग्राम पुलिस वालों या ग्राम प्रहरी या ग्राम चौकीदार के इस कार्य में बहुत कुछ दिखाई नहीं दे रहा है, जो अब किया जाना है। प्रस्तर-245, 257, 260, 261 में उल्लिखित हिस्ट्रीशीटर और बुरे पात्रों की आवाजाही की रिपोर्टिंग और गांव में संदिग्ध अजनबियों की निगरानी का पूरा प्रावधान अभी भी पुलिस की खुफिया जानकारी का हिस्सा हो सकता है, लेकिन आधुनिक दुनिया में, संदिग्ध पात्रों पर निगरानी की कहीं बेहतर प्रणालियों से लैस है, हिस्ट्रीशीटर की तो बात ही छोड़ दें, गांव के पुलिसकर्मियों की भूमिका मामूली लगती है।

36. इस मामले का एक और पहलू है, जिस पर राज्य की ओर से बहुत जोरदार बहस की गई थी। यह कहा गया था कि आधुनिक पुलिस प्रणाली में, ग्रामीण क्षेत्रों में पुलिस नेटवर्क का एक बड़ा विस्तार हुआ है, प्रत्येक जिले में बहुत अधिक संख्या में ग्रामीण थाना स्थापित किए गए हैं। दूर-दराज के कोनों में उनकी चौकी है। अधिकांश गांवों के लिए बेहतर सड़क संपर्क है और दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्रों में पुलिस की आवाजाही के लिए कहीं बेहतर परिवहन है। इसके अलावा, कुछ बहुत ही नई सुविधाएं हैं जो समकालीन पुलिसिंग के साथ आई हैं, जैसे 'डायल -112' सुविधा, जो किसी भी प्रकार की आपात स्थिति तक पहुंचने के लिए एक मोबाइल पुलिस दस्ता है। इसे पूरा करने के लिए, गांव के निवासी अब लैंडलाइन फोन की पुरानी प्रणाली पर निर्भर नहीं हैं, जो एक समय में ग्रामीण जीवन में एक विलासिता थी। दूरसंचार में प्रगति ने एक गांव के लगभग सभी निवासियों के हाथों में मोबाइल टेलीफोन को सौंप दिया है, या उनमें से बहुत अधिक संख्या हो सकती है, जो तुरंत एक फोन कॉल के माध्यम से डायल-112 सुविधा या थाना या चौकी तक पहुंच सकते हैं। फिर इन मोबाइल सेटों पर नए सिस्टम उपलब्ध हैं, जैसे कि संचार करने के लिए एसएमएस और व्हाट्सएप संदेश। इस बहुत ही बदले हुए परिदृश्य में, ग्राम पुलिसकर्मियों की भूमिका हो सकती है, लेकिन न्यायालय को जो कुछ भी अवगत कराया गया है, वह अल्पविकसित प्रतीत होता है।

37. इन ग्राम पुलिसकर्मियों को कितने काम सौंपे जाते हैं, यह विचार करने का विषय है, और यह भी कि क्या ये पूरे समय और नियमित रोजगार की प्रकृति में हैं। याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने ग्राम पुलिसकर्मियों के लिए एक ड्यूटी चार्ट की ओर अदालत का ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें उन्हें राम जन्मभूमि भूमि प्राण प्रतिष्ठान कार्यक्रम में 22.01.2024 को जिला बलिया के गढ़वा थाना में ड्यूटी सौंपी गई है। उक्त चार्ट के अवलोकन से पता चलता है कि ग्राम पुलिसकर्मियों को 22.01.2024 को शाम 4:00 बजे से प्राण प्रतिष्ठान कार्यक्रम के अंत तक नियमित पुलिस-टीमों के साथ विभिन्न स्थानों पर जानकारी दी गई है। उपरोक्त ड्यूटी चार्ट पर एस.एच.ओ., थाना-गढ़वा, जिला बलिया द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं। 21.07.2024 से 19.08.2024 तक कांवड़ यात्रा के दौरान पुलिस बल के सदस्यों के साथ रणनीतिक बिंदुओं पर कर्तव्यों के असाइनमेंट को दर्शाते हुए फिर से एक ड्यूटी चार्ट है। कर्तव्यों का असाइनमेंट सुबह 8:00 बजे से रात 8:00 बजे तक है, और इसी तरह, रात 8:00 बजे से सुबह 8:00 बजे तक है। इस दस्तावेज़ में प्रत्युत्तर हलफनामे के पृष्ठ 39 पर यह इंगित नहीं किया गया है कि यह किस जिले से संबंधित है, लेकिन हम मानते हैं कि यह ग्राम पुलिसकर्मियों को कर्तव्यों के असाइनमेंट के लिए एक कर्तव्य चार्ट है। 27.10.2022 को लक्ष्मी-गणेश प्रतिमा विसर्जन के अवसर पर पीएस. कप्तानगंज, जिला बस्ती की स्थानीय सीमा के भीतर रणनीतिक बिंदुओं पर ग्राम पुलिसकर्मियों को ड्यूटी सौंपने वाला एक ड्यूटी चार्ट है, जो दोपहर 2:00 बजे से कार्यक्रम के अंत तक जारी रहेगा।

38. इन दस्तावेजों से पता चलता है कि जब बड़े पैमाने पर पुलिस की तैनाती की आवश्यकता होती है, तो गांव के पुलिसकर्मियों को नियमित पुलिस के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करने के लिए बुलाया जाता है, लेकिन ग्राम पुलिसकर्मी, नामांकित पुलिस के सदस्य नहीं होने के कारण, ऐसा नहीं है कि उनके पास हर दिन नियमित रूप से कर्तव्यों का असाइनमेंट होता है या वे अपनी पसंद का काम करने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं। पूर्णकालिक रोजगार का सबसे आवश्यक जाल कर्मचारी का निरंतर दायित्व है, कैलेंडर वर्ष के माध्यम से हर रोज अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए। यह कर्मचारी को वैकल्पिक व्यवसाय करने के लिए स्वतंत्र नहीं छोड़ता है। वास्तव में, एक नामांकित पुलिसकर्मी की तरह एक कर्मचारी के लिए वैकल्पिक नौकरी का पीछा करना एक कदाचार है। गांव के पुलिसकर्मियों के लिए ऐसा नहीं है। मुखबिरों और कभी-कभी सहायक के रूप में कार्य करने के अलावा, ये ग्राम पुलिसकर्मी, जब तक वे गांव में रहते हैं, सरकार या पुलिस की आपत्ति के बिना, अपने स्वयं के व्यवसाय को आगे बढ़ाने के लिए किसी भी अन्य निवासी की तरह स्वतंत्र हैं। निःसंदेह, तर्कसंगत रूप से, वे अपने व्यवसाय अथवा नौकरी के प्रयोजनार्थ उस ग्राम से, जहाँ उनकी नियुक्ति की गई है, किसी अन्य नगर की यात्रा नहीं कर सकते और न ही स्वयं को उस ग्राम से पृथक कर सकते हैं। उन्हें ग्रामीण जीवन-पद्धति से संबद्ध रहना आवश्यक है; तथापि, उस जीवन-पद्धति की सीमाओं के भीतर रहते हुए, उन्हें किसी भी व्यापार अथवा पेशे में संलग्न होने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है, जो कि किसी शासकीय सेवक अथवा नामांकित पुलिसकर्मी के मामले में उपलब्ध नहीं होती।

39. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने अपने मामले के समर्थन में कहा कि याचिकाकर्ता राज्य में पुलिसकर्मियों को दिए जाने वाले न्यूनतम वेतनमान के हकदार हैं, होमगार्ड वेलफेयर एसोसिएशन में उच्चतम न्यायालय के

फैसले पर भारी भरोसा किया। उन्होंने हमारा ध्यान माननीय न्यायमूर्ति की निम्नलिखित टिप्पणियों की ओर आकर्षित किया है:

"33. हमारे सामने आने वाले मामलों में हालांकि कुछ होमगार्ड्स ने यह दिखाने के लिए अपना नियुक्ति पत्र प्रस्तुत किया कि वे 10 से 28 वर्षों से प्लाटून हवलदार के रूप में सेवा कर रहे हैं, हम पाते हैं कि उन्हें नामांकित किया गया है और नियमित आधार पर कोई नियुक्ति नहीं है। उन्हें कभी भी वेतन/मजदूरी का भुगतान नहीं किया गया है और शुल्क भत्ते और अन्य भत्तों के अलावा वेतन/मजदूरी का कोई भुगतान करने का कोई प्रावधान नहीं है।

34. प्रत्येक राज्य के होमगार्ड स्वयंसेवकों द्वारा भरे गए फॉर्म में, होमगार्ड्स ने विशेष रूप से उल्लेख किया है कि वे भारत में किसी भी समय और स्थान पर होमगार्ड के सदस्य के रूप में सेवा करने का वचन देते हैं यदि उन्हें प्रशिक्षण या ड्यूटी के लिए बुलाया जाता है। यह हिमाचल प्रदेश होमगार्ड अधिनियम, 1968 के फॉर्म 1 से स्पष्ट है जो दर्शाता है कि वे अस्थायी भत्ते के हकदार हैं और ड्यूटी के दौरान चोट लगने या विकलांगता के मामले में वे विकलांगता पेंशन के हकदार हैं।

35. बॉम्बे होमगार्ड्स का भी ऐसा ही मामला है, जिन्हें अधिनियम के तहत स्वयंसेवक होमगार्ड के रूप में नियुक्त किया गया है। उन्होंने यह भी घोषणा की है कि उन्होंने होमगार्ड के सदस्य के रूप में स्वेच्छा से काम किया है।

36. राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के होमगार्ड को भी उस संगठन में नियुक्त किया गया है जो अधिनियम के तहत स्वयंसेवी निकाय है। ऊपर चर्चा किए गए प्रावधान से यह स्पष्ट होता है कि दिल्ली के मुख्य आयुक्त केवल स्वयंसेवकों को होमगार्ड में शामिल करते हैं। होमगार्ड्स राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में स्वयंसेवी निकाय होने के नाते, दिल्ली के अपीलकर्ता होमगार्ड नियमित रूप से नियुक्त होने का दावा नहीं कर सकते हैं।

37. राज्य सरकार का यह मामला नहीं है कि होमगार्डों का नामांकन/नियुक्तियां पिछले दरवाजे से की गई और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन करते हुए अवैध रूप से की गई थीं। इसलिए, ***उमादेवी (3) [कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी (3)(2006) 4 एस.सी.सी. 1: 2006 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 753]*** *में इस न्यायालय का निर्णय अपीलकर्ता होमगार्ड के मामले में लागू नहीं होता है। बेशक, मजदूरी की कोई अवधारणा नहीं है। इन स्वयंसेवकों को ड्यूटी भत्ता और अन्य भत्ते का भुगतान किया जाता है जिसके वे हकदार हैं। अभिलेखों पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह पता चले कि उन्होंने पूरे वर्ष कर्तव्यों का पालन किया।*

38. दूसरी ओर, यह राज्य का विशिष्ट मामला है कि जब भी आवश्यकता होती है, उन्हें ड्यूटी के लिए बुलाया जाता था और अन्यथा वे अपने घरों में ही रह जाते थे। इसलिए, सेवा की निरंतरता, महीने-दर-महीने आधार

या वर्ष-दर-वर्ष आधार के बारे में किसी भी विवरण के अभाव में, उनके द्वारा पूरे वर्ष किए गए कर्तव्यों और जिम्मेदारियों की तुलना न तो पुलिस कर्मियों के साथ की जा सकती है।

39. ऊपर की गई चर्चा को ध्यान में रखते हुए, अपीलकर्ताओं को सेवाओं के नियमितीकरण या नियमित नियुक्तियों के अनुदान के लिए कोई राहत नहीं दी जा सकती है, इसलिए निर्णयों के खिलाफ कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाता है [गृह रक्षक होम गार्ड्स कल्याण बनाम राज्य, डब्ल्यूपी (सी) संख्या-645 वर्ष 2005, आदेश दिनांक 26-5-2008(एचपी); हरदेव सिंह बनाम हरदेव सिंह पंजाब राज्य, 2013 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी एंड एच 2918; दया सिंह वी. पंजाब राज्य, याचिका (C) संख्या-7365 वर्ष 2013, आदेश दिनांक 8-4-2013 (P&H); बलबीर सिंह बनाम पंजाब राज्य, डब्ल्यूपी (सी) संख्या-12859 वर्ष 2013, आदेश दिनांक 31-5-2013 (पी एंड एच); अनंत प्रसाद बनाम भारत संघ, 2013 एस.सी.सी. ऑनलाइन डेल 314; सुरेंद्र कुमार बनाम सुरेंदर कुमार बनाम हिमाचल प्रदेश, पंजाब और दिल्ली उच्च न्यायालयों द्वारा पारित सरकार (एनसीटी दिल्ली), डब्ल्यूपी (सी) संख्या-3007 वर्ष 2010, आदेश दिनांक 20-5-2013 (डीईएल)] हिमाचल प्रदेश, पंजाब और दिल्ली उच्च न्यायालयों द्वारा पारित किया गया। तथापि, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि होमगार्डों का उपयोग आपातकाल के दौरान और अन्य प्रयोजनों के लिए किया जाता है और अपने कर्तव्य के समय उन्हें पुलिस कामकों की शक्ति से सशक्त बनाया जाता है, हमारा विचार है कि राज्य सरकार को उन्हें ऐसी दरों पर शुल्क भत्ता देना चाहिए, जिसमें से कुल 30 दिन (एक माह) उस वेतन के न्यूनतम होते हैं जिसके लिए राज्य के पुलिस कामक हकदार हैं। यह उम्मीद की जाती है कि राज्य सरकारें उपरोक्त टिप्पणी के संदर्भ में शीघ्र तीन महीने के भीतर उचित आदेश पारित करेंगी।

40. मामला हिमाचल प्रदेश, पंजाब राज्य और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के होमगार्ड से संबंधित है। बड़ी संख्या में होमगार्डों और उनके संघों ने रिट याचिकाएं दायर करके सेवा में नियमितीकरण की मांग करते हुए अपने-अपने राज्यों के उच्च न्यायालयों में याचिका दायर की थी। सभी उच्च न्यायालयों ने याचिकाओं को खारिज कर दिया था। इसमें शामिल प्रश्न, जिस पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था, रिपोर्ट के प्रस्तर-3 में निर्धारित किया गया है, जिसमें लिखा है:

3. इन अपीलों में शामिल प्रश्न यह हैं कि क्या हिमाचल प्रदेश, पंजाब और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली राज्यों के होमगार्ड होमगार्ड के कैडर/सेवाओं में नियमित रूप से नियुक्त किए जाते हैं और यदि नहीं, तो क्या वे अपनी सेवाओं के नियमितीकरण के हकदार हैं?

41. न्यायालय निम्नलिखित शब्दों में द्वितीय विश्व युद्ध के दिनों में होमगार्ड की उत्पत्ति का पता लगाता है:
"उत्पत्ति
नागरिक सुरक्षा महानिदेशालय, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित होमगार्ड के निर्देशों के संग्रह
7. होमगार्ड संगठन की उत्पत्ति नीचे दी गई है:

"1.1. उत्पत्ति

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, "होम गार्ड्स", स्थानीय रक्षा के लिए एक स्वैच्छिक नागरिक संगठन यूनाइटेड किंगडम में उठाया गया था। भारत में, 6-12-1946 को, नागरिक अशांति और सांप्रदायिक दंगों को नियंत्रित करने में पुलिस की सहायता के लिए बॉम्बे में होमगार्ड की स्थापना की गई थी। इसके बाद, कानून और व्यवस्था बनाए रखने और बाढ़, आग, अकाल आदि जैसी आपात स्थितियों से निपटने के लिए पुलिस के सहायक के रूप में एक स्वैच्छिक नागरिक बल की अवधारणा को कई अन्य राज्यों जैसे परांती रक्षा दल, पश्चिम बंगाल विलेज ब्लॉक और सिविक गार्ड्स द्वारा अपनाया गया था। 1962 में चीनी आक्रमण के मद्देनजर, केंद्र ने राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों को सलाह दी कि वे अपने मौजूदा स्वैच्छिक संगठनों को "होमगार्ड" के रूप में जाने जाने वाले एक अखिल भारतीय बल में विलय कर दें, जो अवधारणा और चरित्र दोनों में स्वैच्छिक होगा।

1.2. भूमिका

होमगार्डों को निम्नलिखित संशोधित भूमिकाएं सौंपी गई हैं। इन निर्देशों को समय-समय पर दोहराया गया है:

(ए) पुलिस के सहायक के रूप में कार्य करना और आंतरिक सुरक्षा बनाए रखने में सहायता करना।

(b) किसी भी प्रकार की आपात स्थिति, हवाई हमले, आग, बाढ़, महामारी आदि में समुदाय की सहायता करना।

(ग) मोटर परिवहन, अग्रणी और इंजीनियर समूहों, अग्निशमन ब्रिगेड, नर्सिंग और प्राथमिक चिकित्सा, प्रतिष्ठानों में जल और विद्युत आपूत आदि जैसी आवश्यक सेवाएं प्रदान करने के लिए कार्यात्मक इकाइयों का आयोजन करना।

(घ) साम्प्रदायिक सौहार्द को बढ़ावा देना और समाज के कमजोर वर्गों की रक्षा करने में प्रशासन को सहायता प्रदान करना।

(ङ) सामाजिक-आर्थिक और कल्याणकारी कार्यकलापों जैसे प्रौढ़ शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता, विकास योजनाओं और ऐसे अन्य कार्यों में भाग लेना जो उपयोगी समझे जाते हैं।

हिमाचल प्रदेश - होमगार्ड"

42. यह ध्यान दिया जाएगा कि तीन अलग-अलग राज्यों में होमगार्ड से संबंधित विभिन्न क़ानूनों में, जिन पर माननीय न्यायमूर्ति ने विचार किया, होमगार्ड, निस्संदेह, एक स्वयंसेवक बल हैं, लेकिन उनके पास एक रैंक, फ़ाइल और बटालियन है। अपने रैंक के उच्च स्तर पर, वे नियमित कर्मचारी हैं। उनके कर्तव्य कहीं अधिक व्यापक हैं और जिस बल से वे संबंधित हैं, वह अधिक संख्या में मौजूद है। यह सभी समकालीन पुलिस कर्तव्यों में पुलिस के सहायक के रूप में उनका निरंतर सहयोग की ओर ले जाता है। फिर भी, होमगार्ड के स्तर पर, बल स्वयंसेवकों का होने के नाते, सेवा में नियमितीकरण के मामले को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था, लेकिन ड्यूटी पर बुलाए जाने वाले दिनों के लिए उन्हें देय भत्तों का भुगतान इस तरह की दरों पर करने का निर्देश दिया गया था कि 30 दिनों के लिए कुल मिलाकर, राज्य के पुलिस कर्मियों को देय न्यूनतम वेतन के बराबर हो। जिसमें होमगार्ड काम कर रहे थे। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, होमगार्ड की स्थापना की उत्पत्ति, सेवा की शर्तें और प्रकृति ग्राम पुलिस के जवानों से बहुत अलग है। गांव के पुलिसकर्मियों को पिछले दिनों 'तीसरी आंख' और पुलिस के सहयोगियों के रूप में स्थापित किया गया था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि समकालीन समय में, वे भी ड्यूटी के लिए विस्तृत हैं, लेकिन एक नियमित बल का

हिस्सा नहीं होने के कारण, यहां तक कि होमगार्ड की तरह एक बल के हिस्से के रूप में भी नामांकित होने के कारण, दोनों की बराबरी नहीं की जा सकती है। होमगार्ड की तुलना में ग्राम पुलिसकर्मी की नियुक्ति की शर्तें बहुत कम कर लगाने वाली हैं, बहुत सीमित दायित्व लागू करती हैं और बहुत अधिक व्यावसायिक स्वतंत्रता देती हैं। हमारे राज्य में, होमगार्ड एक समान क़ानून द्वारा शासित होते हैं, जैसा कि होमगार्ड वेलफेयर एसोसिएशन में देखा गया है। होमगार्ड्स को नियंत्रित करने वाले उत्तर प्रदेश में क़ानून को यूपी होम गार्ड एक्ट, 1963 कहा जाता है।

43. उत्तर प्रदेश में होमगार्ड्स ने इस न्यायालय में याचिका दायर की, जैसा कि पहले ही कहा गया है, राम नाथ गुप्ता में, हमारे रिट क्षेत्राधिकार का उपयोग करते हुए, राज्य को निर्देश देने के लिए कि वे उन्हें वेतन और अन्य लाभों के बराबर परिलब्धियों और अन्य लाभों का भुगतान करें, जो पुलिस कर्मियों को स्वीकार्य हैं। राम नाथ गुप्ता के मामले में होमगार्ड्स वेलफेयर एसोसिएशन में उच्चतम न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए, इस न्यायालय ने पुलिसकर्मियों के बराबर न्यूनतम वेतन के दावे को स्वीकार कर लिया, जिसमें कहा गया था:

"21. उत्तर प्रदेश होमगार्ड अधिनियम, 1963 में निहित प्रावधानों और उसके तहत बनाए गए नियमों के अवलोकन से, मुझे पूरी तरह से विश्वास हो गया है कि उत्तर प्रदेश राज्य में होमगार्ड संगठन हिमाचल प्रदेश राज्य में होमगार्ड संगठन से अलग नहीं है।

22. राज्य विधानमंडल ने उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-XXIX वर्ष 1963 पारित करके उत्तर प्रदेश गृह रक्षक अधिनियम, 1963 को अधिनियमित किया। उक्त अधिनियम की धारा 3 में निम्नानुसार प्रावधान है:

3. होमगार्ड्स का गठन- उत्तर प्रदेश होमगार्ड्स के रूप में नामित किए जाने के लिए एक स्वयंसेवी बल का गठन और रखरखाव किया जाएगा, जिसे इसके बाद होमगार्ड कहा जाएगा और इसका गठन विहित तरीके से किया जाएगा।

23. होमगार्ड के कार्य को अधिनियम की धारा 4 में परिभाषित किया गया है जिसे नीचे निकाला गया है:

4. कार्य.-होमगार्ड के निम्नलिखित कार्य होंगे:
(ए) वे पुलिस के सहायक के रूप में काम करेंगे, और जब आवश्यक होगा, सार्वजनिक व्यवस्था और आंतरिक सुरक्षा बनाए रखने में मदद करेंगे;
(बी) वे हवाई हमलों, आग, बाढ़, महामारी और अन्य आपात स्थितियों में समुदाय की मदद करेंगे;
(ग) वे ऐसे विशेष कार्यों के लिए एक आपातकालीन बल के रूप में कार्य करेंगे जो निर्धारित किए जा सकते हैं;
(घ) वे आवश्यक सेवाओं के लिए कार्यात्मक इकाइयाँ उपलब्ध कराएंगे; और
(ङ) वे लोक कल्याण के किसी भी उपाय से संबंधित ऐसे अन्य कर्तव्यों का पालन करेंगे जो विहित किए जाएं।

24. अधिनियम की धारा 9 होमगार्डों की शक्तियों, विशेषाधिकारों और संरक्षण का प्रावधान करती है जो निम्नानुसार है:

(1) इस अधिनियम के उपबंधों और उसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन रहते हुए, एक होमगार्ड को जब धारा 8 के अधीन बुलाया जाता है तो वह पुलिस के सहायक के रूप में कार्य करने के लिए या लोक व्यवस्था या आंतरिक सुरक्षा को बनाए रखने में सहायता करने के लिए बुलाता है, उसके पास तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियम के अधीन नियुक्त पुलिस बल के सदस्य के समान शक्तियां, विशेषाधिकार और संरक्षण होगा, और ऐसे अनुकूलनों और संशोधनों के अधीन रहते हुए, जो राज्य सरकार द्वारा राजपत्र में अधिसूचना द्वारा किए जा सकते हैं, पुलिस अधिनियम, 1861(अधिनियम V वर्ष 1861) और उसके तहत बनाए गए नियमों या विनियमों के उपबंधों के अधीन उसी रीति से और उसी सीमा तक होंगे जैसा वह करेगा, यदि ऐसे होमगार्ड ने पुलिस बल में उस समय के लिए एक संगत रैंक धारण किया है होमगार्ड में होना।

(2) होमगार्ड के रूप में अपने कर्तव्य के निर्वहन में उसके द्वारा की गई या किए जाने वाले किसी भी कार्य के संबंध में होमगार्ड के विरुद्ध कोई अभियोजन स्थापित नहीं किया जाएगा, सिवाय इसके कि उस क्षेत्र पर अधिकार क्षेत्र रखने वाले जिला मजिस्ट्रेट की पूर्व स्वीकृति के बिना जिसमें होमगार्ड नामांकित था या जिसमें कार्य किया गया था।

25. अधिनियम की धारा 10 में प्रावधान है कि अधिनियम के तहत अपने कृत्यों के निर्वहन में कार्य करने वाले होमगार्ड को भारतीय दंड संहिता की धारा 21 के अर्थ के भीतर लोक सेवक माना जाएगा। हालांकि, उन्हें सिविल पद का धारक नहीं माना जाएगा। अधिनियम में कुछ दंड का भी प्रावधान है यदि कोई होम-गार्ड परित्याग और कायरता के कार्य सहित कुछ प्रकार के कदाचार में लिप्त होता है या यदि वह अपनी हिरासत में किसी व्यक्ति के साथ अनुचित व्यक्तिगत हिंसा में लिप्त होता है।

26. संगठन की प्रकृति को देखते हुए और होम-गार्ड द्वारा किए जाने वाले कर्तव्यों की प्रकृति को देखते हुए, जैसा कि गृह रक्षक, होमगार्ड वेलफेयर एसोसिएशन (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विस्तार से बताया गया है और जैसा कि उत्तर प्रदेश होमगार्ड अधिनियम, 1963 के ऊपर उद्धृत विभिन्न प्रावधानों में बताया गया है, मुझे यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि याचिकाकर्ता भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने गृह रक्षक, होम गार्ड्स वेलफेयर एसोसिएशन (उपरोक्त) के मामले में दिनांक 11.3.2015 को पारित किया। इस मामले में राज्य सरकार द्वारा प्रतिशपथ-पत्र दाखिल करते समय जो कारण बताए गए हैं और विशेषज्ञ समिति द्वारा दिनांक 14-01-2013 को अवधारित अपने निर्णय में दिए गए कारण भी इस प्रकार गृह रक्षक, होमगार्ड वेलफेयर एसोसिएशन (उपरोक्त) के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा राज्य सरकारों को निदेश जारी करने के लिए दिए गए कारणों के विपरीत हैं।

27. यह भी उल्लेखनीय है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने होमगार्डों की सेवाओं को नियमित करने या नियमित नियुक्तियों को प्रदान करने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया है।

28. ऊपर दिए गए कारणों से और गृह रक्षक, होमगार्ड्स वेलफेयर एसोसिएशन (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिकाओं के इस समूह का निपटान निम्नलिखित टिप्पणियों और निर्देशों के साथ किया जाता है:

(ए) याचिकाकर्ताओं को उनकी सेवाओं के नियमितीकरण या नियमित नियुक्तियों के अनुदान के लिए कोई राहत नहीं दी जा सकती है और इसलिए, रिट याचिकाओं के इस समूह में इस संबंध में की गई प्रार्थना को अस्वीकार किया जाता है।
एक परिणाम के रूप में, कुछ याचिकाकर्ताओं द्वारा नियमित वेतनमान में वेतन प्रदान करने के लिए की गई प्रार्थना को भी खारिज किया जाता है।

ख - राज्य सरकार को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ताओं और अन्य होमगार्डों के दावे पर विचार करे कि वह ऐसी दरों पर ड्यूटी भत्ता प्रदान करे, जिनमें से कुल तीस दिन (एक माह) उस वेतन का न्यूनतम होता है जिसके लिए राज्य सरकार में एक पुलिस कांस्टेबल गृह रक्षक के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के संदर्भ में हकदार है। होम गार्ड्स वेलफेयर एसोसिएशन (उपरोक्त) राज्य सरकार इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर शीघ्रता से उचित आदेश पारित करेगी।

44. उत्तर प्रदेश होमगार्ड अधिनियम, 1963 की धारा 9 उन्हें एक स्वयंसेवी बल में गठित करती है और उन्हें उस बल में नामांकित किया जाता है। धारा 9, जिसे इस न्यायालय ने राम नाथ गुप्ता में नोटिस किया है, में एक होमगार्ड को समान शक्तियां, विशेषाधिकार, सुरक्षा प्रदान करने का उल्लेख है, जब धारा 8 के तहत एक पुलिस अधिकारी को दिया जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि ग्राम पुलिसकर्मियों को पुलिस विनियमों के तहत कुछ विशेषाधिकार भी प्रदान किए गए होंगे, जैसे अपराधियों का पता लगाना और कानून द्वारा प्राधिकृत गिरफ्तारी करना, लेकिन प्रस्तर-89 में दिए गए कर्तव्य बहुत ही अल्पविकसित प्रतीत होते हैं और एक अलग उम्र से संबंधित हैं। यह सच है कि ग्राम पुलिसकर्मी या ग्राम प्रहरी विशेष अवसरों पर पुलिसकर्मियों के साथ ड्यूटी करते हैं, लेकिन हमारी राय में, वे जिस सहायक कार्य को करते हैं, उसकी तुलना होमगार्ड से नहीं की जा सकती है। होमगार्ड एक ऐसा बल है जिसका नामांकन एक अधिनियम के तहत किया जाता है। पुलिस के साथ उनकी भागीदारी अधिक नियमित है, जिसमें वैकल्पिक व्यवसायों में जुड़ने की बहुत कम गुंजाइश है। इसके विपरीत, ग्राम पुलिसकर्मियों के कार्य बहुत अधिक रुक-रुक कर होते हैं, जिससे उन्हें अपनी पसंद का काम करने की व्यापक स्वतंत्रता मिलती है, निश्चित रूप से, अपने गांव के स्थान से खुद को दूर नहीं किया जाता है।

45. ग्राम पुलिसकर्मियों के कर्तव्यों का सार, जैसा कि मूल रूप से परिकल्पित किया गया था, पुलिस के लिए तीसरी आंख प्रतीत होता है, गांव में दिन-प्रतिदिन की घटनाओं और अपराधियों की आवाजाही पर खुफिया जानकारी की नजर रखता है। पुलिस की ये आवश्यकताएं, हालांकि अभी भी हैं, ग्रामीण क्षेत्रों में नियमित पुलिस के हाथों में अधिक गहरी और प्रभावी पुलिसिंग उपलब्ध होने के साथ पूरी तरह से बदल गई हैं। ग्राम पुलिसकर्मियों को अब इस संबंध में एक छोटा कार्य करना पड़ सकता है। बेशक, ग्राम पुलिस के जवानों से आसूचना संबंधी जानकारी हमेशा मिल सकती है, लेकिन यह संगठित बल में किए गए कर्तव्य का उदाहरण नहीं है। राम जन्मभूमि प्राण प्रतिष्ठान कार्यक्रम, कांवड़ यात्रा और लक्ष्मी-गणेश प्रतिमा विसर्जन जैसे अवसरों पर नियमित पुलिस की सहायता के लिए ग्राम पुलिसकर्मियों का आह्वान उन्हें पुलिस के सहायक के रूप में दिखाता है, लेकिन पुलिस कार्यों के लगातार और नियमित रूप से प्रदर्शन नहीं करता है। इसलिए, हमारी सुविचारित राय में, होमगार्ड्स वेलफेयर एसोसिएशन और राम नाथ गुप्ता में निर्धारित सिद्धांतों के आधार पर होमगार्डों और ग्राम पुलिसकर्मियों या ग्राम प्रहरी के बीच कोई समानता नहीं बनाई जा सकती है।

46. फिर अन्य प्रकार के रोजगार के मामले होते हैं, जिनके आधार पर याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा समानता खींची जाती है। उनमें से एक चन्द्रावती देवी में विचार के लिए आया, जो बुनियादी प्राथमिक विद्यालयों के लिए मध्याह्न भोजन योजना के तहत काम करने वाले रसोइयों के बारे में है। इस योजना के तहत नियोजित रसोइयों को शुरू में 1000 रुपये प्रति माह की मासिक मजदूरी का भुगतान किया जाता था, यानी वर्ष 2005 में, लेकिन दिनांक 09.03.2019 के आदेश के अनुसार, इसे बढ़ाकर 1500 रुपये प्रति माह कर दिया गया था। न्यायालय ने सरकार की कड़ी आलोचना करते हुए मजदूरी की दर को संविधान के अनुच्छेद 23 के तहत निषिद्ध जबरन श्रम और बेगर का उदाहरण बताया। यह टिप्पणी की गई कि याचिकाकर्ता, जो एक बहुत ही गरीब महिला थी, कभी भी राज्य की ताकत के साथ सौदेबाजी करने की स्थिति में नहीं थी और भेदभाव का सामना करना जारी रखा। चंद्रावती देवी में निम्नलिखित टिप्पणी प्रासंगिक हैं:

"8. यह न्यायालय इस तथ्य को भी नजरअंदाज नहीं कर सकता है कि पूरे उत्तर प्रदेश राज्य में रसोइयों के रूप में कार्यरत व्यक्तियों को इतनी मामूली राशि का भुगतान किया जा रहा है जो स्पष्ट रूप से जबरन श्रम के रूप में योग्य है और वे बिना किसी शिकायत के अपनी सेवाएं प्रदान करना जारी रखते हैं। यह न्यायालय यह नहीं समझ सकता है कि प्रति माह 1,000/- रुपये कमाने वाले व्यक्ति को इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाने का अधिकार होगा, विशेष रूप से उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति के कारण, जिसने उन्हें ऐसी शर्तों पर सेवाओं को स्वीकार करने के लिए मजबूर किया है जो राज्य द्वारा लगाई गई हैं।

9. मेरा दृढ़ विचार है कि स्थायी अधिवक्ता द्वारा संदर्भित सरकारी आदेश 24 अप्रैल, 2010 के सरकारी आदेश के रूप में प्रति माह 1,000/- रुपये निर्धारित करने के लिए और 9 मार्च, 2019 के सरकारी आदेश में न्यूनतम मजदूरी 1,500/- रुपये प्रति माह निर्धारित करने के नाते स्पष्ट रूप से "जबरन श्रम" का एक रूप है, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 23 के तहत विशेष रूप से निषिद्ध है। इस प्रकार, मुझे यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि राज्य ने मजदूरी तय करने में अपनी प्रमुख स्थिति का दुरुपयोग किया है, जैसा कि मध्याह्न भोजन

प्रदान करने के लिए नियोजित रसोइयों को भुगतान किए जाने वाले दो सरकारी आदेशों द्वारा निर्धारित किया गया है।

47. उपरोक्त तर्क पर, इस न्यायालय ने एक सामान्य परमादेश जारी किया, जिसमें राज्य को न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के तहत निर्धारित दर पर सरकारी/अर्ध-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में मध्याह्न भोजन योजना के तहत नियोजित रसोइयों को मजदूरी का भुगतान सुनिश्चित करने का निर्देश दिया गया। चंद्रावती देवी में उपरोक्त निर्णय और वहां निर्धारित सिद्धांतों का याचिकाकर्ताओं के लिए कोई फायदा नहीं है क्योंकि न्यायाधीश के उक्त निर्णय को **उत्तर प्रदेश राज्य में अपील पर खंड पीठ द्वारा प्रमुख सचिव (बेसिक शिक्षा) और अन्य बनाम चंद्रावती देवी और अन्य, 2021: एएचसी: 26379-डीबी** के माध्यम से रद्द कर दिया गया है।

48. याचिकाकर्ताओं की ओर से अधिवक्ता द्वारा भिन्न प्रकृति के एक अन्य नियोजन से जो तुलनात्मक उदाहरण प्रस्तुत किया गया था, वह सभा शंकर दुबे (उपर्युक्त) के आधार पर था। सभा शंकर दुबे प्रकरण के तथ्य, जैसा कि प्रतिवेदन में उल्लिखित हैं, माननीय न्यायमूर्तियों के शब्दों में इस प्रकार सर्वाधिक उपयुक्त रूप से संक्षेपित किए जा सकते हैं। ये हैं:

*"2. अपीलकर्ता उत्तर प्रदेश राज्य में वन विभाग में समूह 'डी' पदों पर कार्यरत दैनिक श्रेणी के श्रमिक हैं। उन्होंने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाएं दायर कर अपनी सेवाओं को नियमित करने, नियमित पदों पर काम करने वाले अपने समकक्षों के लिए उपलब्ध न्यूनतम वेतनमान और उनकी सेवा में ब्रेक को माफ करते हुए उन्हें निरंतर सेवा में मानने की मांग की। रिट याचिकाओं को एकल न्यायाधीश द्वारा 28-4-2004 के फैसले **[जवाहर बनाम जिला न्यायाधीश, 2004 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला० 2437]** द्वारा खारिज कर दिया गया था। दैनिक वेतनभोगियों के नियमितीकरण को 3 महीने से कम समय की सेवा में ब्रेक को माफ करके प्रासंगिक नियमों के अनुसार विचार करने का निर्देश दिया गया था। यह माना गया कि नियमितीकरण के लिए निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है। एकल न्यायाधीश ने न्यूनतम वेतनमान के संबंध में अपीलकर्ताओं के दावे को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत ऐसा निर्देश नहीं दिया जा सकता है। अपीलकर्ताओं द्वारा दायर विशेष अपीलों को इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा दिनांक 24-9-2015 के एक फैसले द्वारा खारिज कर दिया गया था **[राम प्रताप द्विवेदी बनाम वन संरक्षक, विशेष अपील संख्या-1198 वर्ष 2006 उप नाम राज कुमार राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2015 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला० 9088] उत्तर प्रदेश राज्य बनाम छिड्डी [उत्तर प्रदेश राज्य बनाम छिड्डी, 2015 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला० 9087: (2016)1 इला एलजे 226]**।*

*3. एकल न्यायाधीश के फैसले के खिलाफ उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा विशेष अपील संख्या-1530 वर्ष 2007 संजय कुमार श्रीवास्तव बनाम दायर की गई थी। **वन संरक्षक [संजय कुमार श्रीवास्तव बनाम वन संरक्षक, 2005 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला० 2346]** उक्त रिट याचिकाएं उत्तर प्रदेश राज्य के वन विभाग में समूह 'ग' और समूह 'डी' पदों पर काम करने वाले दिहाड़ी मजदूरों द्वारा दायर की गई थीं। उन रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं*

द्वारा सेवाओं का नियमितीकरण और समान काम के लिए समान वेतन की मांग की गई राहत थी। एकल न्यायाधीश ने राज्य सरकार को निर्देश देते हुए रिट याचिकाओं को अनुमति दे दी कि वह अपनी सेवाओं को नियमित करने के लिए याचिकाकर्ताओं पर पुनर्विचार करे, कृत्रिम ब्रेक की अनदेखी करते हुए और सेवा नियमों द्वारा निर्धारित न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता और शारीरिक सहनशक्ति आवश्यकताओं में छूट दे। चयन समिति को नियमितीकरण के लिए सभी याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी पर पुनर्विचार करने का निर्देश दिया गया था। ऐसे व्यक्ति जो नियमितीकरण के लिए पात्र पाए गए थे, उन्हें उनके संबंधित प्रभागों में भविष्य में उत्पन्न होने वाली रिक्तियों में नियमित करने का निर्देश दिया गया था। एक और निर्देश दिया गया था कि याचिकाकर्ताओं को उनके नियमितीकरण तक दैनिक मजदूरी पर जारी रखा जाएगा और उन्हें न्यूनतम वेतनमान का भुगतान किया जाएगा।

4. उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा दायर अपील में, उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने न्यूनतम शैक्षिक योग्यता और शारीरिक सहनशक्ति आवश्यकताओं में छूट से संबंधित रिट याचिकाओं में जारी निर्देशों के साथ-साथ दिहाड़ी मजदूरों को भुगतान किए जाने वाले न्यूनतम वेतनमान से संबंधित निर्देश को रद्द कर दिया। एकल न्यायाधीश द्वारा अपेक्षित न्यूनतम अर्हताओं और शारीरिक सहनशक्ति आवश्यकताओं की शर्तों में छूट देने के लिए जारी किए गए निदेशों को खंडपीठ द्वारा अनुचित पाया गया। ***हरियाणा राज्य बनाम तिलक राज [हरियाणा राज्य बनाम तिलक राज, (2003) 6 एस.सी.सी. 123: 2003 एस.सी.सी. (एलएंडएस) 828] और पंजाब राज्य बनाम सुरजीत सिंह [पंजाब राज्य बनाम सुरजीत सिंह, (2009) 9 एस.सी.सी. 514: (2009) 2 एस.सी.सी. (एलएंडएस) 696]*** *में इस न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा करते हुए, उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने माना कि दिहाड़ी मजदूर न्यूनतम वेतन के हकदार नहीं हैं तराजू।*

49. जबकि न्यायालय अंततः नियमितीकरण के लिए याचिकाकर्ताओं के दावे से सहमत नहीं था, लेकिन **जगजीत सिंह (उपरोक्त) और उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम पुट्टी लाल, (2006)9 एस.सी.सी.337** में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद, याचिकाकर्ताओं को न्यूनतम वेतनमान का हकदार माना गया, जो नियमित कर्मचारी, एक ही पद पर काम कर रहे थे, प्राप्त कर रहे थे।

50. अब, सभा शंकर दुबे एक ऐसा मामला था, जहां याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश के वन विभाग में ग्रुप-डी पदों पर कार्यरत दैनिक श्रेणी के कर्मचारी थे। वे नियमित कर्मचारियों के समान कार्यों का निर्वहन कर रहे थे, एक ही पद पर थे। उनके पास प्रदर्शन करने के लिए पूरे कर्तव्य घंटे थे और एक रोजगार ठीक से था, तथाकथित सगाई की अनिश्चित और कमजोर शर्तों पर हो सकता है। ऐसा नहीं था कि उत्तर प्रदेश राज्य के वन विभाग में दैनिक आधार पर काम करने वाले ग्रुप-डी के कर्मचारियों का एक ऐसा कर्तव्य था जिसके कारण उन्हें किसी अन्य व्यवसाय या रुक-रुक कर होने वाले काम को आगे बढ़ाने की पूरी स्वतंत्रता मिल गई थी। यह नियमित काम था। यहां, याचिकाकर्ताओं के मामले में, दैनिक ड्यूटी रोजगार को सीमित करने या शामिल करने के ये कारक गायब हैं। इस प्रकार, सभा शंकर दुबे में निर्धारित सिद्धांतों के साथ किसी भी प्रकार की समानता लाने का कोई आधार नहीं है ।

51. इस मामले की जड़ यह है कि ग्राम पुलिसकर्मी या ग्राम प्रहरी या चौकीदार, जैसा कि उन्हें उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के तहत कहा जाता है, पुलिस बल के नामांकित सदस्य नहीं होने के कारण, राज्य के लिए दैनिक कार्य कार्यक्रम के छह, आठ या उससे अधिक घंटे के संदर्भ में सेवा नहीं करते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उन्हें रुक-रुक कर कठिन या संवेदनशील कार्य सौंपे जा सकते हैं, लेकिन जैसा कि पहले टिप्पणी की गई थी, उनके अधिकांश काम को एक बेहतर सुसज्जित नियमित पुलिस द्वारा आगे बढ़ाया जाता है, इसके अलावा बहुत अलग तरह की तकनीकी प्रगति होती है, जिसकी उस समय कल्पना नहीं की गई थी, जब देश के दूरदराज के कोनों में गांव के पुलिसकर्मियों को राज्य की तीसरी आंख के रूप में कल्पना की गई थी। अब ऐसा लगता है कि जब तक उनके रोजगार की शर्तों को संशोधित नहीं किया जाता है और उन्हें एक अलग तरह की व्यवस्था के तहत काम करने के लिए नहीं कहा जाता है, तब तक उनके कर्तव्य कम होते दिखेंगे।

52. यदि अधिनियमित किया जाता है, तो इस प्रकार का एक कानून ग्राम पुलिस कर्मियों या ग्राम प्रहरी के लिए रोजगार के नए नियम और शर्तें, अधिक कर्तव्य, चयन की एक नई पद्धति, नियुक्ति, सेवा शर्तें और जिम्मेदारियां ला सकता है। और, निस्संदेह, एक बार ऐसा हो जाने के बाद, कानून में सन्निहित सरकार की नई नीति उन्हें अच्छा और उचित पारिश्रमिक प्रदान करेगी। यह अलग बात है कि इस प्रकार के ग्राम पुलिसकर्मियों के कर्तव्यों में भारी परिवर्तन हो सकता है और यह एक पूर्णकालिक व्यवसाय बन सकता है। आखिरकार, ये नीतिगत मामले हैं जिस पर सरकार को विचार करना है और निर्णय लेना है; इस न्यायालय को निर्देश देने और प्रदान करने के लिए नहीं।

53. जैसा कि मामला है, एक गांव का पुलिसकर्मी किसी भी प्रकार का व्यवसाय, व्यापार या व्यवसाय करने और इससे अपनी आजीविका कमाने के लिए स्वतंत्र है; और, फिर भी, वह एक ग्राम पुलिसकर्मी के रूप में अपने कर्तव्यों का बहुत अच्छी तरह से निर्वहन कर सकता है। इस संदर्भ में ग्राम पुलिसकर्मी या ग्राम प्रहरी को दिए जा रहे मानदेय का मूल्यांकन तर्कसंगतता की कसौटी पर किया जाना चाहिए। हमें नहीं लगता कि ग्राम प्रहरी या ग्राम पुलिसकर्मी किसी भी तरह से किसी भी प्रकार के बंधन या जबरन श्रम के अधीन हैं, अपने पद का लाभ उठाते हुए, रोजगार के अवसरों की कमी से उत्पन्न होते हैं। वे जो भी कार्य करते हैं, जो किसी समय कठिन हो सकता है, वर्तमान समय में 2500/- रुपये प्रति माह का पारिश्रमिक बहुत कम हो सकता है, लेकिन यह इसे संविधान के अनुच्छेद 14 का मनमाना, अनुचित या उल्लंघन नहीं बनाता है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, इसका कारण यह है कि यह पदधारी द्वारा अपनी आजीविका के स्रोत के रूप में किया गया पूर्णकालिक रोजगार नहीं है। यह प्रश्न कि गांव के पुलिसकर्मी जो काम करते हैं, उसके लिए भी 2500 रुपये प्रति माह का पारिश्रमिक बहुत कम है, यह सरकार के नीति निर्धारण का मामला है। यह ऐसा मामला नहीं है जो संविधान के अनुच्छेद 14, 21 या 23 का उल्लंघन करता हो।

54. यहां, यह देखा जा सकता है कि ग्राम पुलिसकर्मियों को उनके मासिक पारिश्रमिक के अलावा कुछ अन्य सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। ये हैं:

i. प्रत्येक ग्राम प्रहरी को 4 सेल (320 रुपये प्रति टॉर्च) की 1 टॉर्च दी जाएगी और प्रत्येक टॉर्च के लिए हर महीने 4 सेल (60 / -) दिए जाएंगे।

ii. प्रत्येक ग्राम प्रहरी को 10 वर्षों में 1 चक्र (3000 रुपये प्रति चक्र) दिया जाएगा। जिन लोगों को पहले से ही साइकिल दी जा चुकी है, उन्हें उक्त अवधि समाप्त होने के बाद ही फिर से साइकिल दी जाएगी।

iii. सभी ग्राम प्रहरियों को प्रदान की जाने वाली साइकिलों के रखरखाव के लिए हर साल 600 रुपये की दर से रखरखाव भत्ता दिया जाएगा।

iv. प्रत्येक ग्राम प्रहरी को एक फोटो पहचान पत्र (35 रुपये प्रति पहचान पत्र) दिया जाएगा।

v. उपरोक्त के अलावा, पुलिस विनियमन/उत्तर प्रदेश पुलिस वर्दी विनियमन की धारा 261 के अनुसार ग्राम प्रहरी को इस अवधि के लिए मुफ्त वर्दी प्रदान की जाएगी:

1	लाल सफा	1 टुकड़ा	3 साल
2	खाकी कोट	2 टुकड़ा	3 साल
3	चौकीदार जर्सी	1 टुकड़ा	3 साल
4	धोती	2 टुकड़ा	2 साल
5	बेल्ट अकवार	1 टुकड़ा	20 साल
6	चमड़े की बेल्ट	1 टुकड़ा	15 साल
7	जूते	1 टुकड़ा	3 साल

55. अनिवार्य रूप से, किसी विशेष प्रकार के रोजगार के लिए पारिश्रमिक को स्पष्ट रूप से मनमाना, भेदभावपूर्ण या बेगर का मामला होने के कारण, जहां एक या दूसरे मौलिक अधिकार का उल्लंघन किया जाता है, यह न्यायालय का क्षेत्राधिकार नहीं है कि वह सरकार को वेतन में संशोधन करने या बेहतर कार्य स्थितियों के लिए प्रदान करने के लिए निर्देश जारी करे। ये अनिवार्य रूप से वित्तीय और नीतिगत मामले हैं, जो कार्यकारी क्षेत्र के भीतर आते हैं। **नवीना प्रभु** (उपरोक्त) में, यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया था:

"14. इसलिए, उपर्युक्त आदेश यह स्पष्ट करता है कि पडियार मेडिकल कॉलेज के संबंध में सरकार द्वारा प्रत्यक्ष भुगतान प्रणाली शुरू करते समय, इस तरह का लाभ कॉलेज के कर्मचारियों के सदस्यों को दिया गया था, जबकि कॉलेज से जुड़े अस्पताल के कर्मचारियों को विशेष रूप से उपरोक्त लाभ की प्रयोज्यता से बाहर रखा गया था। इस आदेश को यहां किसी भी प्रतिवादी द्वारा कभी चुनौती नहीं दी गई थी क्योंकि प्रत्यक्ष भुगतान प्रणाली का ऐसा लाभ कॉलेज से जुड़े अस्पताल के कर्मचारियों को नहीं दिया गया था। उन्होंने कोई दर्जा हासिल नहीं किया और परिणामस्वरूप उन्हें कोई अधिकार प्राप्त नहीं हुआ, विशेष रूप से इसके लाभ से बाहर रखा गया।

15. कॉलेज से जुड़े अस्पताल के कर्मचारियों को उपरोक्त आदेशों के दायरे से बाहर करने का सरकार का निर्णय विशेष रूप से यह कहते हुए किया गया था कि जहां तक कॉलेज अस्पताल का संबंध है, सरकार द्वारा प्रत्यक्ष

भुगतान प्रणाली शुरू नहीं की गई है। यह सरकार का एक नीतिगत निर्णय है और प्रतिपक्षियों द्वारा किसी भी स्तर पर मनमाने या भेदभावपूर्ण के रूप में चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए हमें उपरोक्त निर्णय की वैधता की जांच करने के लिए नहीं कहा जाता है। इसके अलावा, यह सरकार का एक नीतिगत निर्णय है, यह न्यायालय आमतौर पर सरकार के नीतिगत निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करता है।

16. यह प्रतिपक्षियों के तर्कों में से एक था कि कॉलेज के शिक्षण स्टाफ और अस्पताल के कर्मचारियों के कर्तव्यों और जिम्मेदारियों की प्रकृति समान होने के कारण जहां तक अस्पताल के कर्मचारियों का संबंध है, कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता है। यह सच है कि कॉलेज के शिक्षण स्टाफ के साथ-साथ गैर-शिक्षण कर्मचारियों को भी प्रत्यक्ष भुगतान प्रणाली का लाभ दिया जा रहा है, लेकिन यह स्वयं अस्पताल के कर्मचारियों को उक्त लाभ का दावा करने का हकदार नहीं बनाएगा या पात्र नहीं बनाएगा।

17. हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित नहीं किया जा सका कि अस्पताल के कर्मचारियों की तुलना में कॉलेज के शिक्षण और गैर-शिक्षण कर्मचारियों द्वारा निर्वहन किए गए कर्तव्यों और जिम्मेदारियों की प्रकृति के संबंध में किसी भी प्राधिकरण द्वारा कोई मूल्यांकन किया गया है। तकनीकी पहलुओं में जाने के बिना, यह भी कहा जा सकता है कि कॉलेज में कर्तव्यों और जिम्मेदारियों की प्रकृति कॉलेज से जुड़े अस्पताल में कर्मचारियों के कर्तव्यों और जिम्मेदारियों से अलग और अलग होगी। यह अदालत कर्मचारियों को अधिक शामिल करने के लिए कोई निर्देश जारी नहीं कर सकती है क्योंकि इसमें वित्तीय निहितार्थ शामिल हैं।

56. **भगवान** (उपरोक्त) में, प्रश्न एक पंजीकृत सोसायटी के कर्मचारियों के अधिकार के बारे में था, जिसे राज्य के कर्मचारियों के समान पेंशन प्राप्त करने के लिए राज्य द्वारा वित्त पोषित किया गया था। सरकार ने मंत्रिमंडल की बैठक में एक नीतिगत निर्णय लिया था कि संस्थानों, निगमों आदि को दिए जाने वाले सहायता अनुदान से राज्य द्वारा वित्तपोषित ऐसे स्वायत्त निकायों के कर्मचारियों को पेंशन संबंधी लाभ प्राप्त नहीं होंगे। जल और भूमि प्रबंधन संस्थान के रूप में जानी जाने वाली सोसायटी के कर्मचारियों के लिए पेंशन के दावे को उच्च न्यायालय ने स्वीकार कर लिया था, जिसमें उन्हें राज्य सरकार के कर्मचारियों के समान पेंशन का हकदार माना गया था। सर्वोच्च न्यायालय को चुनौती देने पर, यह अवधारित किया गया था:

"26. इस न्यायालय द्वारा निर्णयों की एक श्रेणी में निर्धारित कानून के अनुसार, स्वायत्त निकायों के कर्मचारी, अधिकार के मामले के रूप में, सरकारी कर्मचारियों के समान सेवा लाभ का दावा नहीं कर सकते हैं। केवल इसलिए कि ऐसे स्वायत्त निकायों ने सरकारी सेवा नियमों को अपनाया हो सकता है और/या शासी परिषद में सरकार का एक प्रतिनिधि हो सकता है और/या केवल इसलिए कि ऐसी संस्था राज्य/केंद्र सरकार द्वारा वित्त पोषित है, ऐसे स्वायत्त निकायों के कर्मचारी, अधिकार के मामले में, राज्य/केंद्र सरकार के कर्मचारियों के साथ समानता का दावा नहीं कर सकते हैं। यह विशेष रूप से तब होता है, जब ऐसे स्वायत्त निकायों के कर्मचारी अपने स्वयं के सेवा नियमों और सेवा शर्तों द्वारा शासित होते हैं। राज्य सरकार और स्वायत्त बोर्ड/निकाय को समकक्ष नहीं रखा जा सकता है।

27. पंजाब स्टेट कॉप मिल्क प्रोड्यूसर्स फेडरेशन लिमिटेड बनाम बलबीर कुमार वालिया [पंजाब स्टेट कॉप. मिल्क प्रोड्यूसर्स फेडरेशन लिमिटेड बनाम बलबीर कुमार वालिया, (2021) 8 एस.सी.सी. 784 : (2021) 2 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 838] (एस.सी.सी. पी. 805) में प्रस्तर-32 में निम्नानुसार देखा गया है:

"32. केंद्र या राज्य सरकार को राज्य के खर्चों को पूरा करने के लिए कर लगाने का अधिकार है। यह हमेशा सरकार का एक सचेत निर्णय होता है कि कितना कर लगाया जाना है ताकि नागरिकों पर अत्यधिक बोझ न पड़े। लेकिन बोर्डों और निगमों को अपने व्यय के लिए या तो अपने स्वयं के संसाधनों पर निर्भर रहना पड़ता है अथवा केन्द्र/राज्य सरकार से, जैसा भी मामला हो, अनुदान मांगना पड़ता है। इसलिए, केंद्र/राज्य सरकार के कर्मचारियों को उच्च वेतनमान का लाभ प्रदान करना राज्य के एक साधन द्वारा वेतनमान प्रदान करने की तुलना में अलग स्तर पर है।

28. कानून के स्थापित प्रस्ताव के अनुसार, न्यायालय को नीतिगत निर्णय में हस्तक्षेप करने से बचना चाहिए, जिसका व्यापक प्रभाव हो सकता है और वित्तीय निहितार्थ हो सकते हैं। कर्मचारियों को कुछ लाभ प्रदान करने या न देने के लिए विशेषज्ञ निकाय और उपक्रमों पर छोड़ दिया जाना चाहिए और अदालत हल्के में हस्तक्षेप नहीं कर सकती है। कुछ लाभ प्रदान करने से प्रतिकूल वित्तीय परिणाम होने वाले व्यापक प्रभाव हो सकते हैं।

29. प्रस्तुत मामले में, 'वाल्मी' एक स्वायत्त निकाय होने के नाते, सोसायटी पंजीकरण अधिनियम के तहत पंजीकृत है, 'वाल्मी' के कर्मचारी अपने स्वयं के सेवा नियमों और शर्तों द्वारा शासित होते हैं, जो विशेष रूप से किसी भी पेंशन लाभ के लिए प्रदान नहीं करते हैं; 'वाल्मी' की गवर्निंग काउंसिल ने पेंशन नियमों को छोड़कर महाराष्ट्र सिविल सेवा नियमों को अपनाया है। इसलिए, राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू पेंशन नियमों को नहीं अपनाने के लिए एक सचेत नीतिगत निर्णय लिया गया है; राज्य सरकार ने वर्ष 2005 में सहायता प्राप्त संस्थानों, बोर्डों, निगमों आदि के कर्मचारियों को पेंशन संबंधी लाभ न देने का नीतिगत निर्णय लिया है; और 'वाल्मी' के कर्मचारियों को पेंशन लाभ देने के 'वाल्मी' के तत्कालीन निदेशक के प्रस्ताव को राज्य सरकार द्वारा विशेष रूप से अस्वीकार कर दिया गया है। उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय ने राज्य को 'वाल्मी' के कर्मचारियों को पेंशन लाभ देने का निर्देश देना उचित नहीं है, जो एक स्वतंत्र स्वायत्त इकाई है।

30. उच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियां कि 'वाल्मी' के कर्मचारियों को देय वेतन और भत्तों का भुगतान राज्य की संचित निधि से किया जा रहा है और/या यह कि 'वाल्मी' को सरकार से अनुदान मिल रहा है, जहां तक अपने कर्मचारियों को पेंशन लाभ देने का संबंध है, सभी अप्रासंगिक विचार हैं। 'वाल्मी' को अपना प्रशासन अपने वित्तीय संसाधनों से चलाना पड़ता है। 'वाल्मी' के पास राज्य और/या केंद्र सरकार की तरह कोई कर लगाने की कोई वित्तीय शक्तियां नहीं हैं और 'वाल्मी' को राज्य सरकार द्वारा दिए जाने वाले अनुदानों पर निर्भर रहना पड़ता है।

31. अब, जहां तक उच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के संबंध में कि 'वाल्मी' के पास उपलब्ध राशि और कर्मचारी के योगदान के लिए ई.पी.एफ. के साथ जमा की गई राशि कर्मचारियों को पेंशन लाभ की वित्तीय देयता को पूरा करने के लिए पर्याप्त है और इसलिए, राज्य सरकार के लिए 'वाल्मी' के सेवानिवृत्त कर्मचारियों को पेंशन का लाभ देने से इनकार करने का कोई औचित्य और/या उचित आधार नहीं है, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि केवल इसलिए कि 'वाल्मी' के पास अपने पास एक फंड है, यह पेंशन लाभ देने का आधार नहीं हो सकता है। पेंशन लाभ प्रदान करना एकमुश्त भुगतान नहीं है। पेंशन लाभ प्रदान करना एक आवर्ती मासिक व्यय है और भविष्य में पेंशन लाभों के प्रति एक निरंतर देयता है। इसलिए, केवल इसलिए कि एक समय में, 'वाल्मी' के पास कुछ निधियां हो सकती हैं, इसका अर्थ यह नहीं है कि आने वाले समय के लिए, यह अपने सभी कर्मचारियों को पेंशन का भुगतान करने का इतना बोझ उठा सकता है। किसी भी मामले में, अंतत यह राज्य सरकार और सोसायटी ('वाल्मी') पर निर्भर करता है कि वे अपने कर्मचारियों को पेंशन लाभ प्रदान करें या नहीं, अपना नीतिगत निर्णय लें। इस तरह के नीतिगत निर्णय में न्यायपालिका द्वारा हस्तक्षेप जिसका वित्तीय प्रभाव हो और/या इसका व्यापक प्रभाव हो, बिल्कुल भी उचित नहीं है।

57. हमने ऊपर जो कहा है, उसकी पृष्ठभूमि में, हमारा यह मत है कि याचिकाकर्ता किसी परमादेश के पात्र नहीं हैं, जिसके माध्यम से राज्य सरकार को उनके मानदेय अथवा पारिश्रमिक – जिसे किसी भी नाम से पुकारा जाए – का पुनरीक्षण एवं संवर्धन करने का निर्देश दिया जाए, ताकि उसे राज्य पुलिस के नामांकित सदस्य के रूप में कार्यरत किसी पुलिसकर्मी को प्राप्त न्यूनतम वेतनमान के समकक्ष लाया जा सके। साथ ही, हमारा यह भी मत है कि, माननीय न्यायमूर्ति श्री ए.एन. मित्तल की अध्यक्षता वाली विधि आयोग द्वारा, अन्य बातों के साथ-साथ, ग्राम प्रहरी अथवा ग्राम पुलिसकर्मियों की सेवा-शर्तों के विनियमन हेतु किसी विधि के अधिनियमन की संस्तुति किए जाने के परिप्रेक्ष्य में, सरकार समसामयिक परिस्थितियों में ग्राम पुलिसकर्मियों अथवा ग्राम प्रहरियों के पद को प्रभावी एवं सजीव बनाने के उद्देश्य से उपयुक्त विधायन पर विचार कर सकती है।

58. दोनों रिट याचिकाओं का तदनुसार **निपटारा** किया जाता है।

(2025) 5 ILRA 1394

अपीलाधिकारिता आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 26.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या: - 750 सन् 2025

विजय कुमार @ कृष्णा ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ....प्रतिवादीगण

आवेदक के अधिवक्ता: श्री अखिलेश सिंह, श्री अतुल कुमार शाही, श्री पंकज सिंह, श्री शिवम यादव

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, श्री संजय मिश्रा

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376 एवं 323 - बालकों को लैंगिक अपराधों से संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा 3/4 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 एवं 182 - प्रथम सूचना रिपोर्ट संस्थित की गई जिसमें सूचनाकर्ता/पीड़िता ने कहा कि वह 15 वर्ष की थी और शौच हेतु बाहर गई थी, जहाँ आवेदक ने एक अन्य अज्ञात व्यक्ति के साथ मिलकर उसे पकड़ लिया, पीटा और बलात्कार किया। तत्पश्चात वे घटना स्थल से भाग गए।

संपूर्ण तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, जिसमें एफ.आई.आर. दर्ज करने में विलंब, दो परस्पर विरोधी फॉरेंसिक रिपोर्टें, कपड़ों की बरामदगी के पश्चात डी.एन.ए. नमूना विश्लेषण हेतु भेजने में दो वर्ष से अधिक का विलंब, अभियोजन के कथन का समर्थन करने वाला कोई चिकित्सीय साक्ष्य न होना, तथा विवेचना अधिकारी द्वारा पूर्व में प्रस्तुत समापन रिपोर्ट सम्मिलित है–इन सबको ध्यान में रखते हुए, बिना गुण-दोष पर कोई मत व्यक्त किए, न्यायालय ने पाया कि आवेदक ने जमानत हेतु पोषणीय आधार प्रस्तुत किया है।

अतः, जमानत प्रार्थना पत्र स्वीकृत किया जाता है। (अनुच्छेद 5, 39) **आवेदन स्वीकृत। (E-13)**

उल्लिखित वाद:

1. प्रकाश निषाद @ केवट जिनक निषाद बनाम महाराष्ट्र राज्य, AIR 2023 SC 2938
2. इरफान @ भायू मेवाती एवं अन्य बनाम मध्यप्रदेश राज्य, 2025 INSC 150
3. अनोखीलाल बनाम मध्यप्रदेश राज्य, (2019) 20 SCC 196
4. राहुल बनाम दिल्ली राज्य, गृह मंत्रालय, (2023) 1 SCC 83

अनुवादित

5. कृष्ण कुमार मलिक बनाम हरियाणा राज्य, (2011) 7 SCC 130

6. पत्तु राजन बनाम तमिलनाडु राज्य, (2019) 4 SCC 771

(माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल द्वारा प्रदत्त)

1. सूची पुनः पुकारी गई है।

2. विद्वान शासकीय अधिवक्ता तथा सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दाखिल प्रति शपथ पत्र क्रमशः अभिलेख पर लिए गए हैं।

3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री अतुल कुमार शाही तथा सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय मिश्रा एवं राज्य के लिए विद्वान शासकीय अधिवक्ता श्री सुनील कुमार को सुना गया और अभिलेख का परिशीलन किया गया।

4. आवेदक विचारण की लंबितता के दौरान मुकदमा अपराध संख्या 69 सन् 2021, धारा 376, 323 भा0द0वि0 तथा धारा 3/4 पॉक्सो अधिनियम के अधीन, थाना कुर्रा, जनपद मैनपुरी में जमानत की याचना करता है।

<u>अभियोजन कथानक:</u>

5. सूचनादाता/पीड़िता द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट संस्थित की गई कि वह 15 वर्ष की थी तथा दिनांक 24.03.2021 को लगभग 7:30 बजे सायंकाल शौच के लिए गई थी, जहां उसे आवेदक द्वारा एक अन्य अज्ञात व्यक्ति के साथ मिलकर पकड़ लिया गया और उसकी पिटाई की गई तथा उसके साथ बलात्कार किया गया और तत्पश्चात घटनास्थल से भाग गया।

<u>आवेदक की ओर से तर्क:</u>

6. आवेदक पूर्णतः निर्दोष है तथा उसे वर्तमान मामले में मिथ्या रूप से फंसाया गया है।

7. प्रथम सूचना रिपोर्ट लगभग अठारह घंटे विलंब से है तथा कथित विलंब की कोई व्याख्या नहीं है।

8. घटना का कोई चिकित्सीय पुष्टीकरण नहीं है क्योंकि पीड़िता के शरीर पर कोई चोटें नहीं पाई गईं।

9. पीड़िता की चिकित्सीय जांच दिनांक 25.03.2021 को लगभग 4:00 बजे अपराह्न की गई। पीड़िता का योनि स्वाब तथा स्लाइड तैयार की गई और फॉरेन्सिक विश्लेषण के लिए भेजी गई।

अनुवादित

10. पीड़िता ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों को दोहराया है, परन्तु अपराध के समय को 8:00 बजे सायंकाल में परिवर्तित कर दिया है। उसने अपने चिकित्सीय परीक्षण करने वाले डॉक्टर द्वारा दर्ज किए गए कथन में भी समय 8:00 बजे सायंकाल बताया है।

11. धारा 164 के अधीन दर्ज पीड़िता का कथन अलंकरणों से भरा हुआ है क्योंकि उसने एक अन्य नाम प्रस्तुत किया है तथा कहानी विकसित की है कि उसे आवेदक तथा सह-अभियुक्त व्यक्ति द्वारा धमकी दी गई थी।

12. इस स्तर पर, वह प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लिखित अपराध के समय अर्थात् 7:30 बजे सायंकाल पर वापस आ गई है।

13. पीड़िता ने घटना के दो साक्षियों को प्रस्तुत किया है तथा यह भी कहा है कि उसकी चिकित्सीय जांच उसके वस्त्र बदलने के पश्चात् की गई थी।

14. पीड़िता की चिकित्सीय जांच करने वाले डॉक्टर द्वारा पूरक रिपोर्ट तैयार की गई और उसके अनुसार, स्मीयर में कोई शुक्राणु नहीं पाया गया, इस प्रकार, उसके साथ कोई यौन हिंसा नहीं की गई।

15. पीड़िता के वस्त्र विवेचना अधिकारी द्वारा दिनांक 25.03.2021 को ही बरामद किए गए और उन्होंने सीलबंद किए जाने के समय पीड़िता के अंतर्वस्त्र तथा निचले कपड़े पर कोई दाग नहीं देखा।

16. पैथोलॉजी रिपोर्ट में, पीड़िता के योनि स्मीयर में कोई शुक्राणु नहीं पाया गया।

17. दिनांक 27.04.2024 की उक्त फॉरेन्सिक विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट में निम्नलिखित इंगित किया गया:-

(i) पीड़िता के अंतर्वस्त्र पर, मानव रक्त पाया गया, परन्तु कोई शुक्राणु नहीं पाया गया।

(ii) पीड़िता के निचले कपड़े पर, शुक्राणु पाया गया, परन्तु एक असंगत तथा अस्पष्ट निष्कर्ष उसमें उल्लिखित किया गया है जिसमें कहा गया है कि रक्त अथवा शुक्राणु मानव मूल का था।

18. उक्त रिपोर्ट दूषित है क्योंकि यह उसकी जांच में अपनाई गई प्रक्रिया के विवरण को इंगित नहीं करती है।

19. पीड़िता तथा उसके पिता ने वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, मैनपुरी के समक्ष एक शपथ पत्र प्रस्तुत किया था कि आवेदक ने उसके साथ कोई अपराध नहीं किया था और वह वयस्क थी तथा उसकी आयु जानबूझकर छुपाई गई थी। उसने उक्त आवेदन में आगे कहा है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट ग्रामवासियों के निर्देश पर संस्थित की

गई थी। उक्त शपथ पत्र को जमानत आवेदन के साथ दाखिल शपथ पत्र के अनुलग्नक संख्या 7 के रूप में दाखिल किया गया है।

20. पुलिस ने संपूर्ण विवेचना के पश्चात् दिनांक 23.04.2021 को उक्त मामले में समापन रिपोर्ट दाखिल करना उचित समझा और यहां तक कि पीड़िता/सूचनादाता के विरुद्ध धारा 182 दं0प्र0सं0 के अधीन कार्यवाही करने के लिए रिपोर्ट भी भेजी गई।

21. इसके पश्चात्, पीड़िता तथा उसके पिता ने मुख्यमंत्री पोर्टल पर एक आवेदन किया और विरोध याचिका दाखिल की, इस प्रकार, आगे की विवेचना की गई।

22. दिनांक 31.10.2023 को, आवेदक तथा सह-अभियुक्त व्यक्ति के रक्त नमूने एकत्र किए गए। दिनांक 25.11.2023 को, नमूना डीएनए परीक्षण के लिए भेजा गया और दिनांक 04.03.2024 को, डीएनए रिपोर्ट न्यायालय में प्रस्तुत की गई।

23. उक्त डीएनए रिपोर्ट में स्पष्टतः इंगित किया गया कि पीड़िता के निचले कपड़े तथा अंतर्वस्त्र पर वीर्य पाया गया, जो आवेदक के वीर्य से मेल खाता था, इस प्रकार, पीड़िता का धारा 161 दं0प्र0सं0 के अधीन दूसरा कथन दर्ज किया गया और आवेदक को गिरफ्तार किया गया।

24. उक्त डीएनए नमूना घटना के 2.5 वर्ष पश्चात् अर्थात् दिनांक 25.11.2023 को एकत्र किया गया। आवेदक तथा पीड़िता के वस्त्रों की डीएनए प्रोफाइलिंग में कोई उचित प्रक्रिया नहीं अपनाई गई, जो दो वर्ष से अधिक समय से निष्क्रिय पड़े थे।

25. दोनों फॉरेन्सिक प्रयोगशाला रिपोर्टें स्व-विरोधाभासी हैं। साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ की प्रत्येक संभावना है क्योंकि प्रयोगशाला में परीक्षण के लिए नमूना भी लगभग 25 दिनों के विलंब के पश्चात् भेजा गया था।

26. तात्कालिक प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 24.03.2021 को लगभग 7:45 बजे सायंकाल हुई एक घटना की प्रतिक्रिया है, जिसमें आवेदक को दो विदारक घाव तथा उसकी दाहिनी कोहनी में फ्रैक्चर हुआ और उसकी चिकित्सीय जांच उसी दिन रात्रि 9:15 बजे की गई। उक्त मामले में भी, पीड़िता के परिवार के सदस्यों, जिनमें उसके पिता भी शामिल हैं, के विरुद्ध दिनांक 02.07.2021 को अंतिम रिपोर्ट (आरोप पत्र) प्रस्तुत की गई। इस प्रकार, यह दुर्भावनापूर्ण अभियोजन का स्पष्ट मामला है।

27. आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। आवेदक दिनांक 16.11.2024 से कारागार में है और विचारण में सहयोग करने के लिए तैयार है। यदि आवेदक को जमानत पर रिहा किया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा।

अनुवादित

<u>राज्य/सूचनादाता की ओर से तर्क</u>:

28. प्रथम सूचना रिपोर्ट शीघ्र है और हाई स्कूल अंकपत्र के अनुसार, पीड़िता की जन्मतिथि 03.04.2005 थी, इस प्रकार, घटना के समय, वह 15 वर्ष, 11 माह और 21 दिन की थी तथा अवयस्क थी।

29. पुलिस ने दिनांक 20.03.2021 को ही पीड़िता के अंतर्वस्त्र एकत्र किए थे।

30. मामले की समापन रिपोर्ट विवेचना अधिकारी द्वारा शीघ्रता में अर्थात् घटना के 25 दिनों के भीतर प्रस्तुत की गई।

31. पीड़िता के पिता ने निष्पक्ष विवेचना के लिए इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 4858 सन् 2021 दाखिल की थी और न्यायालय ने दिनांक 03.08.2021 को निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

"याचीकर्ता के अधिवक्ता श्री संजय मिश्रा तथा राज्य-प्रत्यर्थीगण के लिए विद्वान शासकीय अधिवक्ता।
यह रिट याचिका याचीकर्ता द्वारा पुलिस प्राधिकारियों को मुकदमा अपराध संख्या 69 सन् 2021, धारा 376 डी.ए., 323 भा0द0सं0 तथा 3/4 यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012 (पॉक्सो) के अधीन, थाना कुर्रा, जनपद मैनपुरी में निष्पक्ष और निर्पक्ष विवेचना करने का निर्देश देने के लिए दाखिल की गई है।
याचीकर्ता के अनुसार, दिनांक 25.03.2021 को, याचीकर्ता की पुत्री ने निजी प्रत्यर्थी के विरुद्ध रिपोर्ट दर्ज की परन्तु आज तक पुलिस प्राधिकारियों द्वारा कुछ नहीं किया गया है। याचीकर्ता द्वारा एक आशंका व्यक्त की गई है कि या तो पुलिस अभियुक्त की रक्षा कर रही है या निजी प्रत्यर्थी के विरुद्ध कोई कार्यवाही करने में रुचि नहीं रखती है।
रिट याचिका में, याचीकर्ता ने विवेचना के स्थानांतरण के लिए भी प्रार्थना की है, तथापि, बहस के दौरान, वह प्रस्तुत करता है कि इस रिट याचिका को दाखिल करने का उद्देश्य पूर्ण हो जाएगा, यदि पुलिस प्राधिकारियों को निष्पक्ष और निर्पक्ष विवेचना के लिए निर्देश जारी किए जाएं।
राज्य के अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि पुलिस प्राधिकारी निष्पक्ष, निर्पक्ष और शीघ्रता से विवेचना करने के लिए बाध्य हैं और वही विधि के अनुसार किया जाएगा।
वर्तमान याचिका का निस्तारण करते हुए पुलिस प्राधिकारियों को निर्देश दिया जाता है कि वे उक्त मामले की विवेचना निष्पक्ष, निर्पक्ष और शीघ्रता से, अधिमानतः उनके समक्ष इस आदेश की प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से 45 दिनों के भीतर पूर्ण करें।
यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने मामले की गुणवत्ता पर कोई राय व्यक्त नहीं की है और सक्षम प्राधिकारी विधि के अनुसार कार्य करेगा। ....."

32. इस न्यायालय के उक्त आदेश के अनुपालन में, पुलिस द्वारा मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मैनपुरी के समक्ष आवेदक के डीएनए परीक्षण के लिए आवेदन किया गया।

33. मुख्य चिकित्सा अधीक्षक, मैनपुरी ने आवेदक की डीएनए प्रोफाइलिंग के लिए एक पैनल गठित किया।

34. वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, मैनपुरी के समक्ष दाखिल शपथ पत्र कूट है। वह पीड़िता द्वारा दाखिल नहीं किया गया था। वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, मैनपुरी को दिए गए कूट शपथ पत्र की जानकारी मिलने के पश्चात्, पीड़िता ने वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, मैनपुरी के समक्ष एक आवेदन किया और पक्षकारों के बीच उक्त समझौते से इंकार किया।

35. सूचनादाता के पिता ने इस न्यायालय के समक्ष आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 14064 सन् 2023 भी दाखिल की, जिसे खारिज कर दिया गया।

36. पीड़िता ने पुनः आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 19095 सन् 2024 दाखिल की, जिसमें इस न्यायालय ने अपने दिनांक 19.11.2024 के आदेश द्वारा विवेचना अधिकारी को मामले में शीघ्रता से निष्पक्ष विवेचना करने का निर्देश दिया।

37. सर्वाधिक प्रासंगिक बिंदु यह है कि सह-अभियुक्त चन्द्रशेखर को इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 07.05.2025 के आदेश द्वारा दिनांक 20.02.2024 की डीएनए रिपोर्ट के आधार पर अग्रिम जमानत प्रदान की गई इस आधार पर कि उक्त डीएनए रिपोर्ट आवेदक के संबंध में सकारात्मक पाई गई, इस प्रकार, आवेदक जमानत का हकदार नहीं है।

निष्कर्ष:

38. डीएनए रिपोर्ट का साक्ष्यिक मूल्य:

(I) अभिलेख पर दो फॉरेन्सिक रिपोर्टों के बीच एक गंभीर विसंगति विद्यमान है। डीएनए रिपोर्ट, जो घटनाओं के अभियोजन के संस्करण का समर्थन करती प्रतीत होती है, फॉरेन्सिक परीक्षण के लिए नमूनों को अग्रेषित करने में अनुचित तथा अस्पष्टीकृत विलंब अर्थात् 25 दिनों के कारण अविश्वसनीय हो जाती है।

(ii) यह विलंब फॉरेन्सिक सामग्री की अखंडता तथा पवित्रता के संबंध में महत्वपूर्ण चिंताएं उत्पन्न करता है। दाण्डिक न्यायशास्त्र में, अभिरक्षा की श्रृंखला यह सुनिश्चित करने के लिए एक मौलिक आवश्यकता है कि साक्ष्य संग्रहण के समय से लेकर न्यायालय में इसकी प्रस्तुति तक बिना छेड़छाड़, असंदूषित और प्रामाणिक रहे। इस श्रृंखला में कोई व्यवधान, विलंब, या अस्पष्टीकृत अंतराल–विशेष रूप से जब पर्याप्त रूप से स्पष्टीकृत नहीं किया जाता है–साक्ष्य की विश्वसनीयता पर संदेह की एक गंभीर छाया डालता है।

(iii) समय पर प्रेषण में चूक तथा हस्तक्षेप की अवधि के दौरान छेड़छाड़ या संदूषण की संभावना को देखते हुए, हेरफेर की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है। यह डीएनए रिपोर्ट के साक्ष्यिक मूल्य को कमजोर करता है।

(iv) माननीय उच्चतम न्यायालय ने **प्रकाश निषाद उर्फ केवट जिनक निषाद बनाम महाराष्ट्र राज्य (एआईआर 2023 एससी 2938)** में पारित हाल के अधिनिर्णय में कहा है कि नमूने जब एकत्र किए जाते हैं तो उन्हें बिना किसी विलंब के प्रयोगशाला में भेजा जाना चाहिए, ताकि संदूषण की संभावना तथा मूल्य में कमी की सहवर्ती संभावना को खारिज किया जा सके। इसने आगे टिप्पणी की:

"वर्तमान मामले में, नमूने भेजने में विलंब अस्पष्टीकृत है और इसलिए, संदूषण की संभावना तथा मूल्य में कमी की सहवर्ती संभावना को युक्तियुक्त रूप से खारिज नहीं किया जा सकता है। नमूने जब एकत्र किए जाते हैं तो उन्हें संबंधित प्रयोगशाला में यथाशीघ्र भेजा जाना सुनिश्चित करने में शीघ्रता की आवश्यकता पर, हम "विवेचना अधिकारियों के लिए अपराध स्थल डीएनए नमूनों के संग्रहण, भंडारण और परिवहन के लिए दिशानिर्देश - केंद्रीय फॉरेन्सिक विज्ञान प्रयोगशाला फॉरेन्सिक विज्ञान सेवा निदेशालय गृह मंत्रालय, भारत सरकार" का संदर्भ ले सकते हैं जो रक्त और वीर्य के विशेष संदर्भ में, इसके रूप की परवाह किए बिना, अर्थात् तरल या सूखा (परत/दाग या छींटा) अभिलिखित करता है कि इस प्रकार लिया गया नमूना "बिना किसी विलंब के प्रयोगशाला में प्रस्तुत किया जाना चाहिए।"

(v) उपर्युक्त मत माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **इरफान उर्फ भैयू मेवाती एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2025 आई.एन.एस.सी 150)** में दिनांक 16.01.2025 को पारित नवीनतम अधिनिर्णय में व्यक्त किया गया है।

(vi) यही मत माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **अनोखीलाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2019) 20 एससीसी 196), राहुल बनाम दिल्ली राज्य, गृह मंत्रालय ((2023)1 एससीसी 83), कृष्ण कुमार मलिक बनाम हरियाणा राज्य((2011) 7 एससीसी 130) तथा पट्टू राजन बनाम तमिलनाडु राज्य ((2019) 4 एससीसीं 771)** में व्यक्त किया गया है।

(vii) इस प्रकार डीएनए रिपोर्ट को न्याय के हित में तथा निष्पक्षता के सिद्धांतों को बनाए रखने के लिए, जमानत के अधिनिर्णयन के समय अत्यधिक सावधानी के साथ माना जाना है।

39. मामले के तथ्यों तथा परिस्थितियों, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा किए गए प्रस्तुतीकरण, अभिलेख पर साक्ष्य पर विचार करते हुए, प्रथम सूचना रिपोर्ट की संस्था में विलंब को ध्यान में रखते हुए तथा अभिलेख पर दो विरोधाभासी फॉरेन्सिक रिपोर्टें होने के कारण, दो वर्ष से अधिक पूर्व कब्जे में लिए गए वस्त्रों के साथ इसका मिलान करने के लिए फॉरेन्सिक विश्लेषण के लिए डीएनए रिपोर्ट भेजने में विलंब होने के कारण, तथा यह तथ्य भी कि चिकित्सीय परीक्षण रिपोर्ट अभियोजन कथानक की पुष्टि नहीं करती है तथा इस तथ्य के साथ युग्मित कि पूर्व में, तात्कालिक मामले में, विवेचना अधिकारी द्वारा समापन रिपोर्ट दाखिल की गई थी, और मामले की गुणवत्ता पर कोई राय व्यक्त किए बिना, न्यायालय का यह मत है कि आवेदक ने जमानत के लिए एक मामला बनाया है। जमानत आवेदन **स्वीकार किया जाता है**।

40. उपर्युक्त मुकदमा अपराध संख्या में संलग्न आवेदक- **विजय कुमार उर्फ कृष्णा** को व्यक्तिगत बांड तथा समान राशि में दो प्रतिभू संबंधित न्यायालय के समाधानप्रद रूप से प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्तों के अध्यधीन जमानत पर रिहा किया जाए।

(i) आवेदक विचारण के दौरान साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा।
(ii) आवेदक अभियोजन साक्षियों पर दबाव नहीं डालेगा/धमकी नहीं देगा।
(iii) आवेदक निर्धारित तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा।

41. उपर्युक्त शर्तों में से किसी के उल्लंघन की स्थिति में, यह जमानत रद्द करने का आधार होगा। आवेदक तथा प्रतिभुओं की पहचान, स्थिति तथा निवास का प्रमाण बांड स्वीकार किए जाने से पूर्व संबंधित न्यायालय द्वारा सत्यापित किया जाए।

42. यह स्पष्ट किया जाता है कि आवेदक को जमानत प्रदान करने में की गई टिप्पणियां विद्वान विचारण न्यायाधीश को साक्षियों की साक्ष्य के आधार पर अपनी स्वतंत्र राय बनाने में किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं करेंगी।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1400

मूल अधिकारिता सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 26.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यर्थी

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या: 4503/2025

ब्रह्म प्रकाश सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री राज विक्रम सिंह, श्री संजय त्रिपाठी

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, श्री गौरव मेहरोत्रा, श्री रोहित त्रिपाठी

आपराधिक विधि - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 311, 313 एवं 482 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 120-बी, 409, 420, 467, 468 एवं 471 - भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (BNSS) - धारा 448 - धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 - धारा 3, 4 एवं 59(2)(c) - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 16, 145 एवं 161 -

याचिका आक्षेपित आदेश को चुनौती देती है, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा धारा 448 BNSS के अंतर्गत दायर स्थानांतरण आवेदन को अस्वीकृत किया गया था। याचिकाकर्ता, जो पूर्व में LACFEDD के प्रबंध निदेशक रहे, भ्रष्टाचार मामले में दोषसिद्ध एवं दंडित हुए थे। अपील लंबित है, जमानत प्राप्त है। प्रवर्तन निदेशालय ने PMLA के अंतर्गत शिकायत कार्यवाही प्रारंभ की।

याचिकाकर्ता ने स्थानांतरण आवेदन दायर किया, जिसमें उन्होंने परीक्षण न्यायालय के अध्यक्ष पर पक्षपात एवं कदाचार का आरोप लगाया। आवेदन अस्वीकृत हुआ। धारा 311 Cr.P.C. के अंतर्गत गवाहों को बुलाने हेतु दायर अनेक आवेदन असंगत एवं विलंबकारी पाए गए। धारा 59(2)(c) PMLA एवं साक्ष्य अधिनियम की धाराओं के अंतर्गत आवेदन गुण-दोष पर अस्वीकृत हुए।

न्यायालय ने पाया कि– (i) शिकायत निराधार थी, कोई कार्रवाई अपेक्षित नहीं थी। (ii) बार-बार आवेदन दायर करना कार्यवाही को रोकने का प्रयास था। (iii) याचिकाकर्ता एवं अधिवक्ता का आचरण न्यायालय पर दबाव बनाने हेतु था, ताकि वे मुकदमे को लंबा खींच सकें।

न्यायालय ने परीक्षण प्रक्रिया की अखंडता को मान्य किया और आक्षेपित आदेशों की वैधता की पुष्टि की। स्थानांतरण आवेदन को झूठे एवं काल्पनिक आरोपों पर आधारित पाया गया।

अतः, रिट याचिका निरस्त की जाती है। (E-11)

उल्लिखित वाद: महाराष्ट्र राज्य बनाम रामदास श्रीनिवास नायक, (1982) 2 SCC 463

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यर्थी द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री राज विक्रम सिंह, राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए.-I श्री अनुराग वर्मा, प्रत्यर्थी संख्या 2 - प्रवर्तन निदेशालय के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री कुलदीप श्रीवास्तव, प्रत्यर्थी संख्या 3 - रजिस्ट्रार जनरल के माध्यम से माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री शिशिर जैन को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत संस्थित प्रस्तुत रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने दांडिक प्रकीर्ण मामला संख्या 4665/2024 में विशेष न्यायाधीश, पी.एम.एल.ए./सत्र न्यायाधीश, लखनऊ द्वारा दिनांक 11.04.2025 को पारित आदेश की वैधता को चुनौती दी है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा बी.एन.एस.एस. की धारा 448 के अंतर्गत परिवाद मामला संख्या 30/2018 शीर्षक प्रवर्तन निदेशालय बनाम ब्रह्म प्रकाश सिंह, धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 की धारा 3/4 के अंतर्गत, विशेष न्यायाधीश, सी.बी.आई. (पश्चिम)/विशेष न्यायालय पी.एम.एल.ए. के न्यायालय से अन्य न्यायालय में स्थानांतरण के लिए संस्थित आवेदन को अस्वीकृत कर दिया गया है।

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि जब याचिकाकर्ता एल.ए.सी.एफ.ई.डी.डी. में प्रबंध निदेशक के रूप में कार्यरत था, तब उसे विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, लखनऊ द्वारा मामला संख्या 4/2012 में दिनांक 12.02.2015 को पारित निर्णय और आदेश के माध्यम से भारतीय दंड संहिता की धारा 409, 420, 467, 468, 471, 120-ख तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत अपराध करने के लिए दोषसिद्ध ठहराया गया और 10 वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। आवेदक ने इस न्यायालय के समक्ष दांडिक अपील संख्या 203/2015 संस्थित की है और उसे दिनांक 21.05.2015 के आदेश के माध्यम से जमानत प्रदान की गई है।

4. दिनांक 23.01.2018 को, प्रवर्तन निदेशालय ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 की धारा 3/4 के अंतर्गत परिवाद मामला संख्या 30/2018 संस्थित किया। दिनांक 23.12.2024 को, याचिकाकर्ता ने बी.एन.एस.एस. की धारा 448 के अंतर्गत विशेष न्यायाधीश, सी.बी.आई. (पश्चिम)/विशेष न्यायाधीश, ई.डी. के न्यायालय से परिवाद के स्थानांतरण के लिए आवेदन संस्थित किया, जिसमें अन्य बातों

के साथ-साथ यह उल्लेख किया गया कि न्यायालय के पीठासीन अधिकारी ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता से रु. 1 करोड़ की अवैध सुविधा की मांग की है। आवेदन के पैरा 14 में उसने कहा कि दिनांक 17.09.2024 को, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत कथन अभिलिखित करने के पश्चात, जब न्यायालय का पीठासीन अधिकारी मंच पर अकेला था, उसने आरोपी की बरी के लिए और जब्त संपत्ति की रिहाई के लिए रु. 1 करोड़ की अवैध सुविधा की मांग की, परन्तु याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अवैध सुविधा देने से इनकार कर दिया और उसने कहा कि वह मामले को गुण-दोष के आधार पर बहस करेगा। दिनांक 12.12.2024 को याचिकाकर्ता ने इस संबंध में इस न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष शिकायत प्रस्तुत की।

5. स्पष्टतः, याचिकाकर्ता द्वारा माननीय मुख्य न्यायमूर्ति को भेजी गई उपर्युक्त शिकायत पर आज तक कोई कार्रवाई नहीं की गई है, संभवतः इसलिए कि माननीय मुख्य न्यायमूर्ति को शिकायत में लगाए गए आरोपों में कोई सारवत्ता नहीं मिली।

6. याचिकाकर्ता ने स्थानांतरण आवेदन में आगे कहा कि दिनांक 17.09.2024 को संस्थित दं.प्र.सं. की धारा 311 के अंतर्गत विवेचना अधिकारी/परिवादी/अभियोजन साक्षी संख्या 5 को बुलाने के लिए उसके आवेदन को दिनांक 17.09.2024 के आदेश के माध्यम से, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों पर विचार किए बिना, अस्वीकृत कर दिया गया।

7. दिनांक 23.09.2024 को, याचिकाकर्ता ने दं.प्र.सं. की धारा 311 के अंतर्गत दूसरा आवेदन संस्थित किया, जिसे दिनांक 30.09.2024 के आदेश के माध्यम से भी अस्वीकृत कर दिया गया और याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत किए गए 13 निर्णयों का विचारण न्यायालय द्वारा संदर्भित नहीं किया गया। तत्पश्चात याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष अवमानना आवेदन संख्या 4043/2024 माननीय उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय के निर्णयों की विचारण न्यायालय द्वारा जानबूझकर अवज्ञा के लिए संस्थित किया। हालांकि, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने स्वयं ही दिनांक 04.10.2025 को अवमानना आवेदन की स्थगन मांगी।

8. याचिकाकर्ता ने विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 23.09.2024 को पारित आदेश को इस न्यायालय के समक्ष दं.प्र.सं. की धारा 482 संख्या 9166/2024 के अंतर्गत आवेदन संस्थित करके चुनौती दी थी, परन्तु उस आवेदन में कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया।

9. दिनांक 11.11.2024 को, याचिकाकर्ता ने पी.एम.एल.ए. की धारा 59(2)(ग) और साक्ष्य अधिनियम की धारा 161 के साथ पठित धारा 16 एवं 145 के अंतर्गत आवेदन संस्थित किया और याचिकाकर्ता ने आवेदन के समर्थन में अनेक पूर्व उदाहरणों का उल्लेख किया। इस आवेदन को विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 09.12.2024 के आदेश के माध्यम से यह कहते हुए अस्वीकृत कर दिया गया कि याचिकाकर्ता विलंबकारी युक्तियां अपना रहा है और विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ता का प्रतिरक्षा साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर समाप्त कर दिया

और मामला बहस सुनवाई के लिए दिनांक 13.12.2024 को निर्धारित किया गया। इसके पश्चात ही याचिकाकर्ता ने दिनांक 12.12.2024 को माननीय मुख्य न्यायमूर्ति को शिकायत भेजी।

10. विद्वान सत्र न्यायाधीश ने दिनांक 11.04.2025 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से स्थानांतरण आवेदन को अस्वीकृत कर दिया है। दिनांक 11.04.2025 के आक्षेपित आदेश में अभिलिखित है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने पीठासीन अधिकारी की टिप्पणियां मांगी थीं, जिसने कहा कि दं.प्र.सं. की धारा 311 के अंतर्गत आवेदन को आग्रहित न किए जाने के रूप में लिया गया जब उसके पूर्ववर्ती न्यायालय की अध्यक्षता कर रहे थे। न्यायालय के पीठासीन अधिकारी ने खुले न्यायालय में रिश्वत की मांग के आरोप को स्पष्ट रूप से खंडित किया है और उसने आगे कहा कि जब न्यायालय सत्र में होता है, तो न्यायालय का कर्मचारी तथा लोक अभियोजक वहां उपस्थित रहते हैं। पीठासीन अधिकारी ने कहा है कि याचिकाकर्ता और उसके अधिवक्ता न्यायालय पर दबाव डालना चाहते हैं ताकि वे विचारण को लंबा खींच सकें क्योंकि वे न्यायालय कक्ष में ऊंची आवाज का प्रयोग करते हैं।

11. विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अवलोकन किया है कि याचिकाकर्ता ने इस उच्च न्यायालय के समक्ष भी आवेदन के पैरा 27 में आरोप लगाए हैं। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने आगे अवलोकन किया कि पीठासीन अधिकारी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की पुष्टि के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है। जहां तक याचिकाकर्ता के इस तर्क का संबंध है कि दं.प्र.सं. की धारा 311 और पी.एम.एल.ए. की धारा 59(2)(ग) के अंतर्गत आवेदन को गलत तरीके से अस्वीकृत किया गया है, याचिकाकर्ता विचारण न्यायालय द्वारा पारित न्यायिक आदेशों के विरुद्ध उपचार प्राप्त कर सकता है। याचिकाकर्ता ने पहले ही इस न्यायालय के समक्ष दं.प्र.सं. की धारा 482 संख्या 9166/2024 के अंतर्गत आवेदन संस्थित करके दं.प्र.सं. की धारा 311 के अंतर्गत उसके आवेदन को अस्वीकार करने वाले दिनांक 23.09.2024 के आदेश को चुनौती दी है। स्थानांतरण आवेदन में लगाए गए आरोप अस्पष्ट और आधारहीन हैं और वे मामले के स्थानांतरण के लिए कोई आधार नहीं बनाते हैं। तदनुसार, सत्र न्यायाधीश ने स्थानांतरण आवेदन को अस्वीकृत कर दिया।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया है कि न्यायालय के पीठासीन अधिकारी ने दिनांक 17.09.2024 को खुले न्यायालय में उससे रिश्वत की मांग की थी। उसने प्रस्तुत किया कि वह स्वयं विचारण न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व कर रहा है और रिश्वत की राशि उससे मांगी गई थी। जब न्यायालय ने प्रश्न किया कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस संबंध में पहली बार शिकायत कब की, तो उसने कहा कि लगभग एक माह के पश्चात दिनांक 12.12.2024 को पहली बार शिकायत की गई क्योंकि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने रिश्वत की राशि की मांग को हल्के में लिया था क्योंकि उसे प्रतिदिन न्यायालयों के समक्ष उपस्थित होना होता है और वह किसी भी न्यायिक अधिकारी के साथ किसी संघर्ष से बचना चाहता था। केवल जब याचिकाकर्ता के विरुद्ध कई न्यायिक आदेश पारित किए गए, तभी याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने पीठासीन अधिकारी के विरुद्ध शिकायत प्रस्तुत करना और उस न्यायालय से मामले के स्थानांतरण की मांग करते हुए आवेदन संस्थित करना उचित समझा। दिनांक 17.09.2024 और

12.12.2024 के बीच की अवधि, जिसे याचिकाकर्ता का विद्वान अधिवक्ता लगभग एक माह बताता है, वास्तव में लगभग तीन माह है।

13. पीठासीन अधिकारी ने स्थानांतरण आवेदन के उत्तर में सत्र न्यायाधीश को भेजी गई टिप्पणियों में सही कहा है कि जब भी कोई न्यायाधीश सत्र में होता है, तो कम से कम न्यायालय का पाठक, अन्य न्यायालय कर्मचारी और लोक अभियोजक न्यायालय कक्ष के अंदर उपस्थित रहते हैं। कोई भी सामान्य विवेक का व्यक्ति यह विश्वास नहीं करेगा कि दं.प्र.सं. की धारा 311 के अंतर्गत आवेदन की सुनवाई के समय, केवल पीठासीन अधिकारी और याचिकाकर्ता का अधिवक्ता न्यायालय में उपस्थित थे और न्यायालय कक्ष में कोई अन्य व्यक्ति उपस्थित नहीं था और यह कि पीठासीन अधिकारी ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता से रिश्वत के रूप में रु. 1 करोड़ की मांग की।

14. याचिकाकर्ता ने मामले के स्थानांतरण के लिए कोई आवेदन या रिश्वत की राशि की मांग के संबंध में कोई शिकायत तब तक नहीं की जब तक कि उसके विरुद्ध कई न्यायिक आदेश पारित नहीं हो गए। केवल इस न्यायालय के समक्ष विचारण न्यायालय के आदेश को चुनौती देने वाली कार्यवाही में स्थगन आदेश नहीं मिलने के पश्चात ही, उसने उस न्यायालय से मामले के स्थानांतरण की मांग करते हुए आवेदन प्राथमिकृत करने का चयन किया, जिसने याचिकाकर्ता के विरुद्ध आदेश पारित किए थे।

15. स्पष्टतः, स्थानांतरण आवेदन उस न्यायालय के समक्ष विचारण का सामना करने से बचने के लिए तैयार किया गया है, जिसने याचिकाकर्ता के विरुद्ध दो न्यायिक आदेश पारित किए हैं और आदेशों में से एक की चुनौती इस न्यायालय के समक्ष असफल रही है क्योंकि इस न्यायालय द्वारा आज तक कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया है।

16. चुनौती के अधीन आदेश में संदर्भित स्थानांतरण आवेदन के पैरा 27 में की गई अभिकथनाएं देखने योग्य हैं, जिन्हें नीचे पुनरुत्पादित किया जा रहा है:-

"27. कि दिनांक 12.11.2024 को धारा 482 के अंतर्गत मामला पुनः न्यायालय संख्या 11 के समक्ष सूचीबद्ध किया गया जिसकी अध्यक्षता माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान कर रहे थे जिन्होंने मामले को खुले कक्ष में एक घंटे से अधिक समय तक सुना (जो माननीय उच्च न्यायालय के सी.सी.टी.वी. कैमरा में मिल सकता है) और जब उन्हें आवेदन/याचिका को खारिज करने के लिए कोई आधार नहीं मिला क्योंकि याचिकाकर्ता गुण-दोष पर मजबूत है तो उन्होंने याचिका का निस्तारण करने से मना कर दिया और अंतिम आदेश या अंतरिम आदेश के बावजूद, याचिका को जानबूझकर निष्फल बनाते हुए, माननीय श्री राजेश सिंह चौहान (न्यायमूर्ति) ने विचारण को आगे बढ़ाने का आदेश पारित किया क्योंकि कोई अंतरिम आदेश नहीं है। उन्होंने आदेश पारित किया कि "आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री राज विक्रम सिंह और ई.डी. के विद्वान अधिवक्ता श्री कुलदीप श्रीवास्तव को सुना गया। प्रार्थनानुसार, मामला तैयार करने के लिए दिनांक 02.12.2024 से प्रारंभ होने वाले सप्ताह में सूचीबद्ध किया जाए। यह स्पष्ट किया जाता है कि कोई अंतरिम आदेश प्रदान नहीं किया गया है, इसलिए,

विद्वान विचारण न्यायालय आगे बढ़ सकता है।"। दिनांक 12.11.2024 के आदेश की सही प्रति उपरोक्त संलग्न शिकायत के अनुलग्नक-7 के रूप में संलग्न है।"

17. **महाराष्ट्र राज्य बनाम रामदास श्रीनिवास नायक, (1982) 2 एससीसी 463** में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने धारित किया कि:-

"4. ... हमें आशंका है कि हम उच्च न्यायालय में क्या घटित हुआ, इसकी जांच शुरू नहीं कर सकते। यह बस नहीं किया जाता है। लोक नीति हमें रोकती है। न्यायिक शिष्टाचार हमें संयमित करता है। न्यायिक अभिलेख के मामले प्रश्नातीत हैं। वे संदेह के लिए खुले नहीं हैं। न्यायाधीशों को क्षेत्र में नहीं घसीटा जा सकता। "निर्णयों को वाद-विवाद के खेल में मात्र पत्तों के रूप में नहीं माना जा सकता।" [सोमसुंदरम चेट्टी बनाम सुब्रमणियन चेट्टी, एआईआर 1926 पीसी 136 : 99 आईसी 742 में लॉर्ड एटकिंसन द्वारा] हमें न्यायाधीशों के उस कथन को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया है जो उनके निर्णय में अभिलिखित है, कि न्यायालय में क्या घटित हुआ। हम न्यायाधीशों के कथन को बार में कथन या शपथ पत्र और अन्य साक्ष्य द्वारा खंडित करने की अनुमति नहीं दे सकते। यदि न्यायाधीश अपने निर्णय में कहते हैं कि उनके समक्ष कुछ किया गया, कहा गया या अंगीकृत किया गया, तो वह विषय पर अंतिम शब्द होना चाहिए। सिद्धांत सुस्थापित है कि सुनवाई के समय क्या घटित हुआ, इसके बारे में तथ्य के कथन, न्यायालय के निर्णय में अभिलिखित, इस प्रकार उल्लिखित तथ्यों के निर्णायक हैं और कोई भी ऐसे कथनों को शपथ पत्र या अन्य साक्ष्य द्वारा खंडित नहीं कर सकता। यदि कोई पक्षकार सोचता है कि न्यायालय में घटनाओं को निर्णय में गलत तरीके से अभिलिखित किया गया है, तो पक्षकार का यह दायित्व है, जबकि मामला अभी भी न्यायाधीशों के मन में ताजा है, उन्हीं न्यायाधीशों का ध्यान आकर्षित करना जिन्होंने अभिलेख बनाया है, इस तथ्य की ओर कि उसके आचरण के संबंध में किया ग़या कथन एक ऐसा कथन था जो त्रुटिवश किया गया था। [मधु सूदन चौधरी बनाम चंद्रावती चौधराइन, एआईआर 1917 पीसी 30 में लॉर्ड बकमास्टर द्वारा] यह अभिलेख को सुधारने का एकमात्र तरीका है। यदि ऐसा कोई कदम नहीं उठाया जाता है, तो मामला अनिवार्य रूप से वहीं समाप्त हो जाना चाहिए। निस्संदेह एक पक्षकार पीछे हट सकता है और एक अपीलीय न्यायालय उसे दुर्लभ और उपयुक्त मामलों में इस आधार पर छूट से पीछे हटने की अनुमति दे सकता है कि छूट कानून की गलत समझ पर दी गई थी और सकल अन्याय की ओर ले गई; परन्तु, वह छूट देने के तथ्य पर ही प्रश्न नहीं उठा सकता जैसा कि निर्णय में अभिलिखित है।"

18. याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के एक माननीय न्यायाधीश के विरुद्ध आरोप लगाया है कि जब उन्हें धारा 482 संख्या 9166/2024 के अंतर्गत आवेदन को खारिज करने का कोई आधार नहीं मिला क्योंकि याचिका गुण-दोष पर मजबूत है, तो उन्होंने जानबूझकर याचिका को निष्फल बनाने के लिए अंतिम आदेश या अंतरिम आदेश पारित करने से मना कर दिया। हालांकि, उपरोक्त याचिका में दिनांक 12.11.2024 को पारित आदेश इस प्रकार है:-

"आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री राज विक्रम सिंह और ई.डी. के विद्वान अधिवक्ता श्री कुलदीप श्रीवास्तव को सुना गया।

प्रार्थनानुसार, मामला तैयार करने के लिए दिनांक 02.12.2024 से प्रारंभ होने वाले सप्ताह में सूचीबद्ध किया जाए।

यह स्पष्ट किया जाता है कि कोई अंतरिम आदेश प्रदान नहीं किया गया है, इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय आगे बढ़ सकता है।"

19. दिनांक 12.11.2024 के आदेश में न्यायालय द्वारा किया गया विवरण कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने स्वयं मामला तैयार करने के लिए स्थगन की प्रार्थना की थी, **रामदास श्रीनिवास नायक** (उपर्युक्त) में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पुनः उल्लिखित कानून के सुस्थापित सिद्धांत के दृष्टिगत सही माना जाना चाहिए।

20. स्थानांतरण आवेदन के पैरा 27 में लगाया गया आरोप कि जब इस न्यायालय की एक समन्वित पीठ को धारा 482 संख्या 9166/2024 के अंतर्गत आवेदन को खारिज करने का कोई आधार नहीं मिला क्योंकि याचिका गुण-दोष पर मजबूत है, तो उन्होंने जानबूझकर याचिका को निष्फल बनाने के लिए अंतिम आदेश या अंतरिम आदेश पारित करने से मना कर दिया, स्पष्टतः असत्य, निंदनीय और अवमाननीय है।

21. विचारण न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा स्थानांतरण आवेदन के उत्तर में सत्र न्यायाधीश को प्रस्तुत टिप्पणियों में की गई अभिकथना कि याचिकाकर्ता और उसका अधिवक्ता न्यायालय पर दबाव डालना चाहते हैं ताकि वे विचारण को लंबा खींच सकें क्योंकि वे न्यायालय कक्ष में ऊंची आवाज का प्रयोग करते हैं, भी सही है, क्योंकि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस आचरण को जारी रखा है और उसने इस न्यायालय में भी ऊंची आवाज का प्रयोग किया है और उसने आग्रह किया कि यह न्यायालय उन सभी निर्णयों से निपटे जिनका उसने विचारण न्यायालय के समक्ष दं.प्र.सं. की धारा 311 और पी.एम.एल.ए. की धारा 59(2)(ग) तथा साक्ष्य अधिनियम की धारा 161 के साथ पठित धारा 16 एवं 145 के अंतर्गत अपने आवेदनों के समर्थन में उल्लेख किया था, जबकि वे निर्णय स्थानांतरण आवेदन को अस्वीकार करने वाले आदेश की वैधता की परीक्षा के लिए प्रासंगिक नहीं हैं।

22. उपर्युक्त परिस्थितियों के दृष्टिगत, मेरा सुविचारित मत है कि स्थानांतरण आवेदन असत्य और काल्पनिक आरोपों पर संस्थित किया गया है ताकि उस पीठासीन अधिकारी के समक्ष विचारण का सामना करने से बचा जा सके जिसने याचिकाकर्ता के विरुद्ध दो आदेश पारित किए हैं। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने याचिकाकर्ता द्वारा संस्थित स्थानांतरण आवेदन को अस्वीकार करने वाला दिनांक 11.04.2025 का आक्षेपित आदेश पारित करने में कोई अवैधता नहीं की है और मैं विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा दिनांक 11.04.2025 को अस्वीकृत करते हुए लिए गए दृष्टिकोण से पूर्णतः सहमत हूं।

23. रिट याचिका में गुण-दोष का अभाव है और इसे **निस्तारित किया जाता है**।

(2025) 5 ILRA 1405

अपीलाधिकारिता

सिविल पक्ष दिनांक: इलाहाबाद 13.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला

माननीय न्यायमूर्ति जितेन्द्र कुमार सिन्हा

प्रथम अपील संख्या: 612 सन् 2023

संदीप भटनागर एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री एस.वी. गोस्वामी, श्री मनीष कुमार निगम, श्री प्रदीप कुमार राय, श्री शेष कुमार, श्री वी.पी. राय, श्री विष्णु स्वरूप श्रीवास्तव

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: –

सिविल विधि - दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 21 - विवादित विषय यह था कि क्या न्यायालय के पास धनादेशाधिकार (pecuniary jurisdiction) था। यह मुद्दा न तो उच्च न्यायालय में और न ही सर्वोच्च न्यायालय में उठाया गया था।

न्यायालय ने कहा कि पुनर्विचार का अधिकार अपील के अधिकार के समान नहीं है। आदेश 47 नियम 1 CPC के अंतर्गत पुनर्विचार का क्षेत्र सीमित है और यह केवल त्रुटिपूर्ण निर्णय के आधार पर पुनः सुनवाई की अनुमति नहीं देता।

जब प्रथम अपील दायर की गई थी, उस समय जिला न्यायाधीश का धनादेशाधिकार ₹5,00,000 था। अतः न्यायालय के पास अपील सुनने का अधिकार था। जब बहस हुई, तब भी धनादेशाधिकार अपरिवर्तित था। यद्यपि बाद में इसे ₹25,00,000 कर दिया गया, परंतु अधिकार का निर्धारण अपील दायर करने की तिथि से होता है, निर्णय की तिथि से नहीं।

अतः न्यायालय के पास अंतर्निहित एवं धनादेशाधिकार था। अपीलकर्ता विलंब से इस मुद्दे को नहीं उठा सकते। विलंब क्षमा हेतु बीमारी का आधार पर्याप्त नहीं है।

अतः, विलंब क्षमा आवेदन एवं पुनर्विचार आवेदन दोनों अस्वीकृत किए जाते हैं। (अनुच्छेद 25, 29-31) अपील निरस्त। (E-13)

उल्लिखित वाद:

अनुवादित

1. दिल्ली विकास प्राधिकरण बनाम जगन सिंह एवं अन्य, सिविल अपील संख्या 4335/2023
2. जुआरी सीमेंट लिमिटेड बनाम क्षेत्रीय निदेशक ई.एस.आई.सी., हैदराबाद एवं अन्य, (2015) 7 SCC 690
3. ए.आर. अंतुले बनाम आर.एस. नायक एवं अन्य, (1988) 2 SCC 602
4. एस. नरहरी एवं अन्य बनाम एस.आर. कुमार एवं अन्य, (2023) 7 SCC 740
5. तेजुमल बनाम मोहम्मद सरफराज, 2016(3) A.R.C. 570
6. सुबाष महादेवासा हबीब बनाम नेमासा अम्बासा धर्मदास (2007) 13 SCC 650
7. आर.एस.डी.वी. फाइनेंस कंपनी प्रा. लि. बनाम वल्लभ ग्लास वर्क्स लि., AIR 1993 2094
8. स्नेह लता गोयल बनाम पुष्पलता एवं अन्य, (2019) 3 SCC 594
9. हर्षद चिमन लाल मोदी बनाम डीएलएफ यूनिवर्सल लि., (2005) 7 SCC 791
10. हाशम अब्बास सय्यद बनाम उस्मान अब्बास सय्यद, (2007) 2 SCC 355
11. मंटू सरकार बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लि., (2009) 2 SCC 244
12. पंजाब नेशनल बैंक बनाम अतिन अरोड़ा एवं अन्य, [2025 LiveLaw (SC) 27]
13. एस. नागराज एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, 1993 Supp (4) SCC 595
14. शिवदेव सिंह बनाम पंजाब राज्य, AIR 1963 SC 1909
15. श्रीराम साहू (मृत) द्वारा LRs एवं अन्य बनाम विनोद कुमार रावत एवं अन्य, 2020(12) Scale 415
16. परिशन देवी बनाम सुमित्री देवी, (1997) 8 SCC 715
17. दिल्ली प्रशासन बनाम गुलदीप सिंह उबान एवं अन्य, AIR 2000 SC 3737
18. भारत संघ बनाम बी. वल्लुवन, (2006) 8 SCC 686
19. हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम एम.पी. मोहिलाल, (2006 INSC 832)

(माननीय न्यायमूर्ति जितेन्द्र कुमार सिन्हा द्वारा प्रदत्त)

<u>सिविल प्रकीर्ण पुनर्विलोकन आवेदन संख्या 135040 सन् 2017 पर आदेश</u>

1. श्री शेष कुमार, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता तथा श्री दिनेश वरुण, सभी प्रत्यर्थियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. हमने पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत की गई दलीलों पर विचार किया है तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है। न्याय के हित में, हमने अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता को विलम्ब क्षमा आवेदन के साथ-साथ पुनर्विलोकन आवेदन की गुणवत्ता के बिंदु पर भी सुना है।

3. यह वर्तमान सिविल प्रकीर्ण विलम्ब क्षमा आवेदन, दिनांक 25.01.2016 को प्रथम अपील संख्या 612/2003 में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को पुनर्विलोकित/प्रत्याहृत करने के लिए पुनर्विलोकन आवेदन दाखिल करने में हुए विलम्ब को क्षमा करने के लिए दायर किया गया है, जिसमें हममें से एक (माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला) पीठ के सदस्य थे। इस सिविल प्रकीर्ण आवेदन में, अन्य बातों के साथ-साथ यह आधार लिया गया है कि प्रथम अपील संख्या 612/2003 में इस न्यायालय के निर्णय के उद्घोषण से पूर्व, राजपत्र अधिसूचना संख्या 1599/79-V-1-15-1(का)19/2015 दिनांक 07.12.2015 के माध्यम से जिला न्यायाधीश का धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र रु.5,00,000/- (पांच लाख) से बढ़ाकर रु.25,00,000/- (पच्चीस लाख) कर दिया गया था, बंगाल, आगरा और असम सिविल न्यायालय अधिनियम, 1987 की धारा 19 में संशोधन किया गया था तथा संबंधित जिला न्यायाधीशों को रुपये पच्चीस लाख तक के मूल्यांकन की अपीलें सुनने का अधिकार क्षेत्र प्रदान किया गया था। अतः, प्रथम अपील का धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र विद्वान जिला न्यायाधीश का था और इस न्यायालय को प्रथम अपील का निर्णय नहीं करना चाहिए था, बल्कि इसे विद्वान जिला न्यायाधीश, मुरादाबाद को प्रेषित/स्थानांतरित किया जाना चाहिए था।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि अपील की लंबितता के दौरान प्रथम अपील सुनने के लिए विद्वान जिला न्यायाधीश का धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र रु.5,00,000/- से बढ़ाकर रु.25,00,000/- कर दिया गया था, इस न्यायालय के पास इस प्रथम अपील संख्या 612/2003 का निर्णय करने का अधिकार क्षेत्र नहीं था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अधिकार क्षेत्र का अभाव अभिलेख के मुख पर स्पष्ट त्रुटि है और पुनर्विलोकन आवेदन में प्रबल गुणवत्ता है।

5. माननीय शीर्ष न्यायालय के समक्ष इस न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध विशेष अनुमति याचिका दायर किए जाने की स्थिति का सामना करते हुए, जिसे प्रथम दृष्ट्या खारिज कर दिया गया था और गैर-बोलने वाले आदेश द्वारा तथा इस न्यायालय के समक्ष पुनर्विलोकन याचिका कैसे पोषणीय हो सकती है, विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस मामले में विलय का सिद्धांत लागू नहीं होता क्योंकि अधिकार क्षेत्र का अभाव शामिल है।

6. विलम्ब की क्षमा के संबंध में, अपने तर्क के समर्थन में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने सिविल अपील संख्या 4335/2023 में पारित माननीय शीर्ष न्यायालय के **दिल्ली विकास प्राधिकरण बनाम जगन सिंह एवं अन्य** के मामले में निर्णय पर भरोसा किया है, जिसके पैराग्राफ संख्या 11, 12, 13 और 14 इस प्रकार हैं:-

"11. प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रतिपादित विधि के प्रस्ताव के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता। हालांकि, यह निर्णय करने के लिए कोई कठोर और तीव्र नियम नहीं हो सकता कि पर्याप्त कारण विद्यमान है या नहीं। यह सब प्रत्येक व्यक्तिगत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

12. वर्षों से, इस न्यायालय ने बारंबार यह अभिनिर्धारित किया है कि विलम्ब की क्षमा के मामलों में एक उदार और न्याय-उन्मुख दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है ताकि पक्षकारों के मूल अधिकार केवल विलम्ब के आधार पर पराजित न हों। परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के तहत शक्ति का प्रयोग बहुत ही सार्थक तरीके से किया जाना चाहिए जो न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति करेगा।

13. यह सत्य है कि जिस निर्णय पर आक्षेपित निर्णय आधारित है, उसे अपास्त कर दिए जाने का तथ्य स्वयं में दीर्घ विलम्ब को क्षमा करने का आधार नहीं है। इस मामले के तथ्यों में, यह सत्य है कि इंदौर विकास प्राधिकरण के मामले में संविधान पीठ के निर्णय की तिथि के दो वर्ष और तीन दिन पश्चात विशेष अनुमति याचिका दायर की गई है।

14. इस मामले में, स्वीकृत रूप से, अधिग्रहीत भूमि का उपयोग डी.एम.आर.सी द्वारा मेट्रो डिपो के लिए किया गया है और मेट्रो डिपो अधिग्रहीत भूमि पर विद्यमान है जैसा कि आक्षेपित निर्णय में उल्लिखित है। इस प्रकार, जब 2013 अधिनियम की धारा 24 की उप-धारा (2) को लागू करते हुए रिट याचिका दायर की गई थी, अधिग्रहीत भूमि को पहले से ही मेट्रो डिपो के महत्वपूर्ण सार्वजनिक उद्देश्य के लिए उपयोग में लाया जा चुका था। पिछले कई वर्षों से सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए भूमि का उपयोग निश्चित रूप से विलम्ब की क्षमा पर विचार करते समय उदार दृष्टिकोण अपनाने के लिए एक प्रासंगिक कारक है। हम यहां यह भी नोट कर सकते हैं कि 2013 अधिनियम के लागू होने के लगभग सत्रह महीने बाद अपीलार्थी द्वारा 2013 अधिनियम की धारा 24 की उप-धारा (2) को लागू करते हुए याचिका दायर की गई थी। ऐसे मामले में जहां भूमि का उपयोग किसी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए नहीं किया गया था, ऐसे मामले में दीर्घ विलम्ब के आवेदन का निर्णय करते समय इस न्यायालय का दृष्टिकोण भिन्न होता।"

7. जहां तक अधिकार क्षेत्र के अभाव के मुद्दे का संबंध है, विद्वान अधिवक्ता ने **जुआरी सीमेंट लिमिटेड बनाम क्षेत्रीय निदेशक ई.एस.आई.सी., हैदराबाद एवं अन्य, (2015) 7 एससीसी 690** के मामले में निर्णय पर भरोसा किया है, जिसके पैराग्राफ संख्या 9, 10 और 11 इस प्रकार हैं:-

"9. अधिनियम की योजना के अनुसार, छूट प्रदान करने की शक्ति उपयुक्त सरकार को दी गई पूर्ण शक्ति है। इसका परिणाम यह है कि अधिनियम की धारा 74 के तहत गठित ई.एस.आई. न्यायालय के पास छूट प्रदान करने के प्रश्न को उठाने का अधिकार क्षेत्र नहीं है। अधिनियम की धारा 74 के तहत गठित न्यायालय छूट अधिसूचना की वैधता सहित ऐसे मामलों का निर्णय नहीं कर सकता। छूट प्रदान करने या अस्वीकार करने का आदेश निश्चित रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा के लिए खुला है। लेकिन धारा 87 के तहत छूट का प्रश्न धारा 75 के तहत नहीं उठाया जा सकता है और अधिनियम की धारा 74 के तहत गठित ई.एस.आई. न्यायालय, उपयुक्त सरकार द्वारा पारित छूट से संबंधित आदेश की वैधता या अन्यथा का निर्णय नहीं कर सकता।

10. अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया कि अधिनियम के संचालन से किसी कारखाने या प्रतिष्ठान को छूट प्रदान करना अधिनियम की धारा 75(1)(जी) के तहत ई.एस.आई. न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आता है जो विशेष रूप से ई.एस.आई. न्यायालय को किसी भी ऐसे विषय का निर्णय करने का अधिकार देता है जो मुख्य नियोक्ता और निगम के बीच किसी अंशदान या लाभ या अधिनियम के तहत देय या वसूली योग्य अन्य बकाया के संबंध में विवाद में है। यह प्रस्तुत किया गया कि केवल उच्च न्यायालय के आदेशों के अनुसरण में, अपीलार्थी ने ई.एस.आई. न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और ई.एस.आई. न्यायालय ने उच्च न्यायालय की खंडपीठ के आदेशों के आधार पर छूट प्रदान करने की अपनी शक्ति का प्रयोग किया है। यह प्रस्तुत किया गया कि ई.एस.आई. निगम ने स्वयं को ई.एस.आई. न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अधीन किया और ऐसा करते हुए, यह छूट के मुद्दे पर विचार करने के अपने अधिकार क्षेत्र के बारे में आक्षेप नहीं उठा सकता और अपने तर्क के समर्थन में, अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने <u>सोहन सिंह एवं अन्य बनाम जी.एम. आयुध कारखाना एवं अन्य,</u> (1984) सपलीमेंटरी एससीसी 661 में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया।

11. रिट याचिकाओं का निस्तारण करते हुए, निश्चित रूप से, उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी को उस राहत के लिए अधिनियम की धारा 74 के तहत गठित ई.एस.आई. न्यायालय का दरवाजा खटखटाने का निर्देश दिया जिसका अपीलार्थी ने रिट याचिकाओं में दावा किया था। उल्लेखनीय रूप से, अपीलार्थी के साथ-साथ ई.एस.आई. निगम दोनों ने उच्च न्यायालय के आदेश को चुनौती नहीं दी बल्कि स्वयं को ई.एस.आई. न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अधीन कर दिया। हमारे विचार में, न तो उच्च न्यायालय का आदेश और न ही निगम का ई.एस.आई. न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अधीन स्वयं को प्रस्तुत करने का कार्य ई.एस.आई. न्यायालय को अधिनियम के संचालन से छूट के प्रश्न का निर्धारण करने का अधिकार क्षेत्र प्रदान करेगा। सहमति से, पक्षकार न्यायालय में अधिकार क्षेत्र निहित करने के लिए सहमत नहीं हो सकते जब न्यायालय के पास अधिकार क्षेत्र नहीं है।"

8. विद्वान अधिवक्ता ने **ए.आर.अंतुले बनाम आर.एस.नायक एवं अन्य, (1988) 2 एससीसी 602 के** मामले में निर्णय पर भरोसा किया है, जिसका पैराग्राफ संख्या 87 इस प्रकार है:-

"87. उपरोक्त मामले के दृष्टिगत, अपील स्वीकार की जाती है; 16 फरवरी, 1984 (एआईआर 1984 सुप्रीम कोर्ट 684 में रिपोर्ट किया गया) को इस न्यायालय के निर्देशों के बाद इस मामले में सभी कार्यवाही को पूर्ववत और रद्द किया जाता है। परीक्षण विधि के अनुसार अर्थात 1952 के अधिनियम के तहत जैसा कि पूर्व में उल्लिखित है, आगे बढ़ेगा।"

9. जहां तक विलय के सिद्धांत का संबंध है, विद्वान अधिवक्ता ने **एस.नरहरि एवं अन्य बनाम एस.आर.कुमार एवं अन्य, (2023) 7 एससीसी 740** के मामले में निर्णय पर भरोसा किया है, जिसके पैराग्राफ संख्या 35, 36 और 37 इस प्रकार हैं:-

"35. जबकि उक्त निर्णय का निष्कर्ष वर्तमान मामले के लिए प्रासंगिक नहीं है, हालांकि, उक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के पीछे का तर्क, हमारी राय में, वर्तमान मामले पर प्रभाव डालता है। इस न्यायालय ने, उपरोक्त मामले में, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि विशेष अनुमति याचिका की खारिजी के बाद भी पुनर्विलोकन पोषणीय है, यह अवलोकित किया कि गैर-बोलने वाले आदेश द्वारा विशेष अनुमति याचिका की खारिजी विलय के सिद्धांत को आकर्षित नहीं करती।

36. सरल शब्दों में, इसका अनिवार्य रूप से अर्थ होगा कि उन मामलों में भी जहां विशेष अनुमति याचिका को वापस लिए जाने के रूप में खारिज कर दिया गया था, जहां मामले को खारिज करते समय न्यायालय द्वारा कोई कारण नहीं दिया गया था और जहां उक्त विशेष अनुमति याचिका में अनुमति नहीं दी गई थी, उक्त खारिजी को भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के दायरे में विधि निर्धारित करने के रूप में नहीं माना जाएगा।

37. यदि गैर-बोलने वाले आदेश द्वारा विशेष अनुमति याचिका की खारिजी को भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत विधि नहीं माना जाता है, तो उसी को न्याय-निर्णीत भी नहीं माना जा सकता, और इसलिए, ऐसी प्रत्येक खारिजी में, यहां तक कि उन मामलों में भी जहां खारिजी वापसी के रूप में है, नई विशेष अनुमति याचिका दायर करने का उपचार अभी भी बना रहेगा। इसके अलावा, यदि उक्त तर्क पर, उच्च न्यायालय में पुनर्विलोकन दायर करने के उपचार की अनुमति दी जाती है, तो वही तर्क बाद की विशेष अनुमति याचिका दायर करने को मनमाने ढंग से बाहर नहीं कर सकता।"

10. धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र के अभाव पर, विद्वान अधिवक्ता ने **तेजुमल बनाम मोहम्मद सरफराज 2016(3) ए.आर.सी. 570** में प्रतिवेदित मामले में निर्णय पर भरोसा किया है, जिसके पैराग्राफ संख्या 5, 6 और 7 इस प्रकार हैं:-

"5. एससीसी पुनरीक्षण संख्या 278/2016, श्री शोबित निगम बनाम श्रीमती बटुलन एवं अन्य में मेरे द्वारा दिनांक 29.08.2016 के निर्णय और आदेश के माध्यम से निर्णीत किया गया। मैंने यह अभिनिर्धारित किया है कि 07.12.2015 से प्रभावी, उ.प्र. सिविल विधि (संशोधन) अधिनियम, 2015 के दृष्टिगत, उ.प्र. राज्य के लिए लागू प्रांतीय लघुवाद न्यायालय अधिनियम की धारा 15 के तहत किराए और बेदखली के लिए पट्टादाता और पट्टाधारक के बीच रु.1 लाख तक के मूल्यांकन के सभी वादों की सुनवाई का अधिकार क्षेत्र, वाद संस्थित किए जाने की तिथि की परवाह किए बिना, सिविल जज (वरिष्ठ प्रभाग) की अध्यक्षता वाले लघुवाद न्यायालय में निहित है और जिला न्यायाधीश/अपर जिला न्यायाधीश के पास केवल रु.1 लाख से अधिक उच्च मूल्यांकन के ऐसे मामलों का निर्णय करने का अधिकार क्षेत्र होगा।

6. उपरोक्त निर्णय के दृष्टिगत, चूंकि वर्तमान वाद का मूल्यांकन रु.41,400/- है, यह सिविल जज (वरिष्ठ प्रभाग) के लघुवाद न्यायालय द्वारा संज्ञेय और विचारणीय था न कि जिला न्यायाधीश/अपर जिला न्यायाधीश

द्वारा। तदनुसार, अपर जिला न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश इसके मुख पर अधिकार क्षेत्र के बिना प्रतीत होता है।

7. शीर्ष न्यायालय ने आर.एस.डी.वी. फाइनेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम श्री वल्लभ ग्लास वर्क्स लिमिटेड, एआईआर 1993 सुप्रीम कोर्ट 2094 के मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21(1) के दृष्टिगत, वाद लाने के स्थान पर आक्षेप संबंधित पक्षकार द्वारा प्रथम अवस्था के न्यायालय में सबसे पहले अवसर पर लिया जाना चाहिए और यह कि इस प्रभाव का आक्षेप अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अनुमत नहीं किया जाएगा।"

11. डिक्री पर धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र और क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के दोष के प्रश्न पर माननीय शीर्ष न्यायालय ने **सुभाष महादेवसा हबीब बनाम नेमसा अंबसा धर्मदास (डी) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा एवं अन्य, (2007) 13 एससीसी 650** के मामले में विचार किया है, जिसमें शीर्ष न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता ने अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के अभाव और क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र तथा धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र के आक्षेप के बीच अंतर किया है। जबकि, अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का अभाव उस न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को अधिकार क्षेत्र के बिना या विधि में शून्य बना सकता है, क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र या धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र की कमी वाले न्यायालय द्वारा पारित डिक्री स्वतः शून्य नहीं हो जाती। अधिक से अधिक यह शून्यकरणीय है इस अर्थ में कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 की शर्तें पूरी होने पर इससे अपील में चुनौती दी जा सकती है। यह नोट किया जा सकता है कि सी.पी.सी. की धारा 21 यह प्रावधान करती है कि वाद लाने के स्थान पर कोई आक्षेप अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा भी अनुमत नहीं किया जाएगा जब तक कि ऐसा आक्षेप प्रथम अवस्था के न्यायालय में सबसे पहले अवसर पर नहीं लिया गया हो और न्याय की परिणामी विफलता न हुई हो।

12. माननीय शीर्ष न्यायालय के पूर्व निर्णय **आर.एस.डी.वी. फाइनेंस कं. प्राइवेट लिमिटेड बनाम वल्लभ ग्लास वर्क्स लिमिटेड, 1993 एआईआर 2094** के मामले में समान दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है, माननीय शीर्ष न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 यह प्रावधान करती है कि वाद लाने के स्थान पर कोई आक्षेप किसी भी अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अनुमत नहीं किया जाएगा जब तक कि ऐसा आक्षेप प्रथम अवस्था के न्यायालय में सबसे पहले अवसर पर नहीं लिया गया हो।

13. **स्नेह लता गोयल बनाम पुष्पलता एवं अन्य, (2019) 3 एससीसी 594** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह समान दृष्टिकोण अपनाया है कि क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र या धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र का आक्षेप वाद की विषय-वस्तु की जड़ तक नहीं जाता और अंतिम डिक्री को शून्य नहीं बनाएगा। पैराग्राफ संख्या 15 से 24 इस प्रकार हैं:-

"15. प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने किरण सिंह (उपर्युक्त) में इस न्यायालय के चार न्यायाधीशों के निर्णय पर काफी भरोसा किया है। उस मामले में, वाद के मूल्यांकन के संबंध में विवाद था। यह मुद्दा अंततः उस मंच का निर्धारण करेगा जिसके समक्ष विचारण न्यायालय के निर्णय से अपील होगी। यदि वादपत्र में निर्धारित वाद के मूल्यांकन को स्वीकार किया जाना था, तो अपील जिला न्यायालय में होगी। दूसरी ओर, यदि उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित मूल्यांकन को स्वीकार किया जाना था, तो अपील उच्च न्यायालय के समक्ष होगी न कि जिला न्यायालय के समक्ष। यह इसी पृष्ठभूमि में था कि इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि एक मौलिक सिद्धांत के रूप में, अधिकार क्षेत्र के बिना न्यायालय द्वारा पारित डिक्री शून्य है और इसकी वैधता स्थापित की जा सकती है जहां कहीं भी इसे लागू करने का प्रयास किया जाता है या इस पर भरोसा किया जाता है, यहां तक कि निष्पादन के चरण में एक संपार्श्विक कार्यवाही में भी। इसके अलावा, यह अभिनिर्धारित किया गया कि अधिकार क्षेत्र का दोष, चाहे धनराशि संबंधी हो या क्षेत्रीय हो या चाहे यह कार्यवाही की विषय-वस्तु के संबंध में हो, न्यायालय के डिक्री पारित करने के अधिकार पर ही प्रहार करता है और पक्षकारों की सहमति से भी ठीक नहीं किया जा सकता।

16. न्यायालय ने तब इस मौलिक सिद्धांत पर वाद मूल्यांकन अधिनियम 1887 की धारा 11 के प्रभाव की जांच की। इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

"7. धारा 11 यह अधिनियमित करती है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 578 में किसी बात के होते हुए भी, यह आक्षेप कि एक न्यायालय जिसके पास किसी वाद या अपील पर अधिकार क्षेत्र नहीं था, उसने अधिक मूल्यांकन या कम मूल्यांकन के कारण इसका प्रयोग किया है, अपीलीय न्यायालय द्वारा धारा में प्रावधानित के अलावा विचार नहीं किया जाएगा...एक न्यायालय द्वारा पारित डिक्री, जिसके पास किसी वाद या अपील को सुनने का अधिकार क्षेत्र नहीं होता लेकिन अधिक मूल्यांकन या कम मूल्यांकन के लिए होता, धारा के लिए नहीं, शून्य और व्यर्थ के रूप में नहीं माना जाएगा, और अधिकार क्षेत्र पर आक्षेप जो अधिक मूल्यांकन या कम मूल्यांकन पर आधारित है, उस धारा के तहत निपटाया जाएगा और अन्यथा नहीं। धारा के प्रारंभिक शब्दों में धारा 578, अब धारा 99 CPC, के संदर्भ का महत्व है। वह धारा, जबकि यह प्रावधान करती है कि उसमें उल्लिखित दोषों के कारण अपील में कोई डिक्री उलट या परिवर्तित नहीं की जाएगी जब वे मामले की गुणवत्ता को प्रभावित नहीं करते हैं, अधिकार क्षेत्र के दोषों को अपने संचालन से बाहर रखती है। इसलिए धारा 99 गुणवत्ता पर पारित डिक्री को कोई सुरक्षा नहीं देती, जब उन्हें पारित करने वाले न्यायालयों में अधिक मूल्यांकन या कम मूल्यांकन के परिणामस्वरूप अधिकार क्षेत्र की कमी थी। इस परिणाम से बचने के लिए ही धारा 11 अधिनियमित की गई थी। यह प्रावधान करती है कि अधिक मूल्यांकन या कम मूल्यांकन पर आधारित न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर आक्षेप अपीलीय न्यायालय द्वारा धारा में उल्लिखित तरीके और सीमा के अलावा विचार नहीं किए जाएंगे। यह अपने आप में पूर्ण एक स्वयं निहित प्रावधान है, और अधिक मूल्यांकन या कम मूल्यांकन पर आधारित अधिकार क्षेत्र पर कोई आक्षेप इसके अनुसार के अलावा नहीं उठाया जा सकता। क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र से संबंधित आक्षेपों के संदर्भ में, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 यह अधिनियमित करती है कि वाद लाने के स्थान पर कोई आक्षेप अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अनुमत नहीं किया जाना चाहिए, जब

तक कि न्याय की परिणामी विफलता न हो। यह वही सिद्धांत है जिसे वाद मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 में धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र के संदर्भ में अपनाया गया है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 और 99 और वाद मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 के अंतर्निहित नीति एक ही है, अर्थात, जब एक मामले की सुनवाई एक न्यायालय द्वारा गुणवत्ता पर की गई थी और निर्णय प्रदान किया गया था, तो यह विशुद्ध तकनीकी आधारों पर उलटने के लिए उत्तरदायी नहीं होना चाहिए, जब तक कि इसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता न हुई हो, और विधायिका की नीति क्षेत्रीय और धनराशि संबंधी दोनों अधिकार क्षेत्र पर आक्षेपों को तकनीकी मानने और अपीलीय न्यायालय द्वारा विचार के लिए खुला नहीं रखने की रही है, जब तक कि गुणवत्ता पर पूर्वाग्रह न हो।" (महत्व सनन्विष्ट)

17. इस प्रश्न से निपटते हुए कि क्या अपील पर एक न्यायालय द्वारा पारित डिक्री जिसके पास केवल कम मूल्यांकन या अधिक मूल्यांकन के कारण इस पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र था, इस आधार पर रद्द की जा सकती है कि सही मूल्यांकन पर वह न्यायालय अपील ppआर विचार करने के लिए सक्षम नहीं था, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि केवल मंच का परिवर्तन वाद मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 के भीतर 'पूर्वाग्रह' नहीं है। इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

*"12. धारा की भाषा पर भिन्न निष्कर्ष पर पहुंचना असंभव है। यदि एक अधीनस्थ न्यायालय या जिला न्यायालय द्वारा अपील सुनी जाने का तथ्य जहां सही मूल्यांकन दिया गया होता तो अपील उच्च न्यायालय में होती, स्वयं पूर्वाग्रह का विषय है, तो अधीनस्थ न्यायालय या जिला न्यायालय द्वारा पारित डिक्री, अधिक के बिना, रद्द करने के लिए उत्तरदायी होनी चाहिए, और शब्द "जब तक इसके अधिक मूल्यांकन या कम मूल्यांकन ने वाद या अपील के निस्तारण को इसकी गुणवत्ता पर प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं किया है" पूर्णतः बेकार हो जाएंगे। ये शब्द स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि ऐसे मामलों में पारित डिक्री सभी मामलों में और बेशक के रूप में अपीलीय न्यायालय में हस्तक्षेप के लिए उत्तरदायी नहीं हैं, बल्कि केवल तभी जब धारा में उल्लिखित पूर्वाग्रह परिणाम हो। और इसलिए धारा द्वारा परिकल्पित पूर्वाग्रह भिन्न मंच में अपील सुनी जाने के अलावा कुछ और होना चाहिए। विपरीत निष्कर्ष आश्चर्यजनक परिणाम की ओर ले जाएगा कि धारा अधिक मूल्यांकन या कम मूल्यांकन के कारण उत्पन्न अधिकार क्षेत्र के दोषों को ठीक करने के उद्देश्य से अधिनियमित की गई थी, लेकिन वास्तव में, यह उद्देश्य प्राप्त नहीं हुआ है। इसलिए हम स्पष्ट रूप से मानते हैं कि धारा द्वारा विचारित पूर्वाग्रह उस तथ्य से भिन्न कुछ है कि अपील एक मंच में सुनी गई जो सही मूल्यांकन पर इसे सुनने के लिए सक्षम नहीं होता जैसा कि अंततः निर्धारित किया गया।" **(महत्व सनन्विष्ट)***

18. न्यायालय ने इस आधार पर अधिकार क्षेत्र पर आक्षेप को अस्वीकृत कर दिया कि प्रथम अवस्था में कोई आक्षेप नहीं उठाया गया था और वाद दायर करने वाला पक्षकार अपीलीय चरण में उस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर आक्षेप उठाने से रोका गया था। इस न्यायालय ने इस प्रकार निष्कर्ष निकाला:

"16. यदि विधि यह होती कि एक न्यायालय की डिक्री जिसके पास वाद या अपील पर अधिकार क्षेत्र नहीं होता लेकिन अधिक मूल्यांकन या कम मूल्यांकन के लिए होता, को शून्यता के रूप में माना जाना चाहिए, तो निश्चित रूप से, उन्हें न्यायालय में अधिकार क्षेत्र की कमी को स्थापित करने से इस तथ्य से नहीं रोका जाएगा कि उन्होंने स्वयं इसे आमंत्रित किया था। हालांकि, वाद मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 के तहत यह स्थिति नहीं है।"

19. इस प्रकार, जहां अधिकार क्षेत्र में दोष उस प्रकार का है जो सी.पी.सी. की धारा 21 या वाद मूल्यांकन अधिनियम 1887 की धारा 11 के भीतर आता है, अधिकार क्षेत्र पर आक्षेप उसमें उल्लिखित तरीके और शर्तों के अधीन को छोड़कर नहीं उठाया जा सकता। प्रत्यर्थी के मामले में मदद करने से बहुत दूर, किरण सिंह (उपर्युक्त) में निर्णय यह अभिनिर्धारित करता है कि क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र और धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र पर आक्षेप विषय-वस्तु पर अधिकार क्षेत्र पर आक्षेप से भिन्न है। क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र की कमी पर आक्षेप वाद पर विचार करने के लिए सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की जड़ या अंतर्निहित कमी तक नहीं जाता।

20. हीरालाल बनाम कालीनाथ में, एक व्यक्ति ने बॉम्बे के उच्च न्यायालय के मूल पक्ष पर उसे देय कमीशन की वसूली के लिए वाद दायर किया। मामले को मध्यस्थता के लिए संदर्भित किया गया और इसके परिणामस्वरूप वादी के पक्ष में एक अधिनिर्णय हुआ। अधिनिर्णय की शर्तों में एक डिक्री पारित की गई और अंततः उच्च न्यायालय की डिक्री में शामिल की गई। निष्पादन कार्यवाही में, निर्णयदेनदार ने इस आधार पर इसका विरोध किया कि वाद-कारण का कोई भाग बॉम्बे में उत्पन्न नहीं हुआ था, और इसलिए, उच्च न्यायालय के पास वाद की सुनवाई का अधिकार क्षेत्र नहीं था और इसके बाद की सभी कार्यवाहियां पूर्णतः अधिकार क्षेत्र के बिना थीं और इस प्रकार शून्य थीं। इस तर्क को अस्वीकार करते हुए, इस न्यायालय की चार न्यायाधीशों की पीठ ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

"इसके [बॉम्बे उच्च न्यायालय] क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र पर आक्षेप वह है जो न्यायालय की सक्षमता तक नहीं जाता और इसलिए, छोड़ा जा सकता है। इस मामले में, जब वादी ने पत्र पेटेंट के खंड 12 के तहत मूल पक्ष पर बॉम्बे उच्च न्यायालय की अनुमति प्राप्त की, तो प्रक्रिया की शुद्धता या अनुमति देने वाले आदेश पर प्रतिवादी द्वारा प्रश्न उठाया जा सकता था या आक्षेप उसके द्वारा छोड़ा जा सकता था। जब उसने न्यायालय के माध्यम से मध्यस्थता के लिए मामले को संदर्भित करने के लिए सहमति दी, तो उसे अपने लिखित कथन में उठाए गए न्यायालय के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र पर अपने आक्षेप को छोड़ने के रूप में माना जाएगा। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि न्यायालय के स्थानीय अधिकार क्षेत्र पर आक्षेप किसी मामले की सुनवाई के लिए न्यायालय की सक्षमता पर आक्षेप के समान स्थिति पर नहीं खड़ा है। किसी मामले की सुनवाई के लिए न्यायालय की सक्षमता अधिकार क्षेत्र की जड़ तक जाती है, और जहां यह कमी है, यह अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र की कमी का मामला है। दूसरी ओर, न्यायालय के स्थानीय अधिकार क्षेत्र पर आक्षेप छोड़ा जा सकता है और इस सिद्धांत को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 जैसे अधिनियमों द्वारा वैधानिक मान्यता दी गई है।" ***(महत्व सनन्विष्ट)***

21. हर्षद चिमन लाल मोदी बनाम DLF यूनिवर्सल लिमिटेड में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि क्षेत्रीय और धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र पर आक्षेप सबसे पहले संभव अवसर पर लिया जाना है। यदि यह सबसे पहले नहीं उठाया जाता है, तो इसे बाद के चरण में लिए जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

"30. न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को कई श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। महत्वपूर्ण श्रेणियां हैं (i) क्षेत्रीय या स्थानीय अधिकार क्षेत्र; (ii) धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र; और (iii) विषय-वस्तु पर अधिकार क्षेत्र। जहां तक क्षेत्रीय और धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्रों का संबंध है, ऐसे अधिकार क्षेत्र पर आक्षेप सबसे पहले संभव अवसर पर और किसी भी स्थिति में मुद्दों के निर्धारण पर या उससे पहले लिया जाना है। इस बिंदु पर विधि अच्छी तरह से स्थापित है कि यदि ऐसा आक्षेप सबसे पहले नहीं लिया जाता है, तो इसे बाद के चरण में लिए जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। विषय-वस्तु के संबंध में अधिकार क्षेत्र, हालांकि, पूर्णतः अलग है और भिन्न स्थिति पर खड़ा है। जहां किसी न्यायालय के पास संविधि, चार्टर या आयोग द्वारा लगाई गई किसी सीमा के कारण वाद की विषय-वस्तु पर अधिकार क्षेत्र नहीं है, यह वाद-कारण या विषय को नहीं ले सकता। अधिकार क्षेत्र नहीं रखने वाले न्यायालय द्वारा पारित आदेश शून्य है।"

*22. **हशम अब्बास सैयद बनाम उस्मान अब्बास सैयद** में, इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:*

"24. हालांकि, हम यह जोड़ने के लिए जल्दबाजी कर सकते हैं कि एक न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के बीच अंतर किया जाना चाहिए जिसके पास सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 के प्रकाश में कोई क्षेत्रीय या धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र नहीं है, और एक न्यायालय द्वारा पारित डिक्री जिसके पास वाद की विषय-वस्तु के संबंध में कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। जबकि पूर्व मामले में, अपीलीय न्यायालय डिक्री के साथ हस्तक्षेप नहीं कर सकता जब तक कि पूर्वाग्रह नहीं दिखाया जाता, सामान्यतः मामलों की दूसरी श्रेणी के साथ हस्तक्षेप किया जाएगा।"
23. इसी तरह, मंटू सरकार बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कं. लिमिटेड में, इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

"20. हालांकि, वाद की विषय-वस्तु के संबंध में अधिकार क्षेत्र और क्षेत्रीय तथा धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र के बीच अंतर किया जाना चाहिए। जबकि पूर्व श्रेणी में आने वाले मामले में निर्णय शून्य होगा, बाद में यह नहीं होगा। यह ऐसा मामला नहीं है जहां अधिकरण के पास दावे की विषय-वस्तु के संबंध में कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था...हमारी राय में, न्यायालय को, प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से किसी पूर्वाग्रह की पीड़ा के किसी निष्कर्ष की अनुपस्थिति में, अपील पर विचार नहीं करना चाहिए था।"

24. वर्तमान मामले में निष्पादन में उठाया गया आक्षेप वाद की विषय-वस्तु से संबंधित नहीं था। यह क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र पर आक्षेप था जो वाद पर विचार करने के लिए सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की जड़ या

असंवीक्षित

अंतर्निहित कमी तक नहीं जाता। एक निष्पादक न्यायालय डिक्री के पीछे नहीं जा सकता और डिक्री को जैसी है वैसी निष्पादित करनी चाहिए। वासुदेव धनजीभाई मोदी बनाम रजाभाई अब्दुल रहमान में, याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी-किरायेदार को बेदखल करने के लिए लघुवाद न्यायालय, अहमदाबाद में वाद दायर किया। वाद को अंततः इस न्यायालय द्वारा उसके पक्ष में डिक्रीकृत किया गया। निष्पादन कार्यवाही के दौरान, प्रतिवादी-किरायेदार ने आक्षेप उठाया कि लघुवाद न्यायालय के पास वाद पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र नहीं था और इसकी डिक्री शून्य थी। डिक्री को निष्पादित करने वाले न्यायालय और लघुवाद न्यायालय ने तर्क को अस्वीकार कर दिया। उच्च न्यायालय ने लघुवाद न्यायालय के आदेश को अपास्त कर दिया और निष्पादन के लिए याचिका को खारिज कर दिया। इस न्यायालय में अपील पर, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त कर दिया और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

"6. डिक्री को निष्पादित करने वाला न्यायालय डिक्री के पीछे नहीं जा सकता: पक्षकारों या उनके प्रतिनिधियों के बीच उसे डिक्री को उसकी प्रकृति के अनुसार लेना चाहिए, और कोई आक्षेप नहीं विचार कर सकता कि डिक्री विधि या तथ्यों पर गलत थी। जब तक इसे उपयुक्त कार्यवाही में अपील या पुनरीक्षण में रद्द नहीं किया जाता, एक डिक्री भले ही त्रुटिपूर्ण हो, पक्षकारों के बीच बाध्यकारी है। 8. यदि डिक्री अभिलेख के मुख पर अधिकार क्षेत्र के बिना है और प्रश्न क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र या वाद मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 के तहत संबंधित नहीं है, तो डिक्री करने के लिए न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर आक्षेप उठाया जा सकता है; जहां यह निर्धारित करने के लिए कि क्या डिक्री पारित करने वाले न्यायालय के पास वाद पर विचार करने और सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र नहीं था, तथ्यों की जांच करना आवश्यक है, आक्षेप निष्पादन कार्यवाही में नहीं उठाया जा सकता।"
14. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों की गुणवत्ता का आकलन करने में, सर्वप्रथम, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 21 के प्रावधानों का उल्लेख करना आवश्यक होगा।

(1) धारा 21(1) यह परिकल्पना करती है कि वाद लाने के स्थान पर कोई आक्षेप किसी भी अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अनुमत नहीं किया जाएगा जब तक कि आक्षेप प्रथम अवस्था के न्यायालय में सबसे पहले संभव अवसर पर और सभी मामलों में जहां मुद्दे निर्धारित किए जाते हैं, ऐसे निर्धारण पर या उससे पहले नहीं लिया गया हो, और जब तक न्याय की परिणामी विफलता न हुई हो।
(2) इसके अधिकार क्षेत्र की धनराशि संबंधी सीमाओं के संदर्भ में न्यायालय की सक्षमता पर कोई आक्षेप किसी भी अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अनुमत नहीं किया जाएगा जब तक कि ऐसा आक्षेप प्रथम अवस्था के न्यायालय में सबसे पहले संभव अवसर पर, और सभी मामलों में जहां मुद्दे निर्धारित किए जाते हैं, ऐसे निर्धारण पर या उससे पहले नहीं लिया गया हो, और जब तक न्याय की परिणामी विफलता न हुई हो।
(3) इसके अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के संदर्भ में निष्पादक न्यायालय की सक्षमता पर कोई आक्षेप किसी भी अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अनुमत नहीं किया जाएगा जब तक कि ऐसा आक्षेप निष्पादक न्यायालय में सबसे पहले संभव अवसर पर नहीं लिया गया हो, और जब तक न्याय की परिणामी विफलता न हुई हो।"

धारा 21 की उप-धारा (1) यह प्रावधान करती है कि अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र पर आक्षेप उठाने से पहले, दो पूर्व शर्तें पूरी होनी चाहिए:

i) आक्षेप प्रथम अवस्था के न्यायालय में सबसे पहले संभव अवसर पर लिया जाना चाहिए; और ii) न्याय की परिणामी विफलता हुई हो।

15. **हर्षद चिमन लाल मोदी बनाम डीएलएफ यूनिवर्सल लिमिटेड मनु/एससी/0710/2005 : (2005) 7 एससीसी 791** में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि क्षेत्रीय और धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र पर आक्षेप सबसे पहले संभव अवसर पर लिया जाना है। यदि यह सबसे पहले नहीं उठाया जाता है, तो इसे बाद के चरण में लिए जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:-

"3). न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को कई श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। महत्वपूर्ण श्रेणियां हैं (i) क्षेत्रीय या स्थानीय अधिकार क्षेत्र; (ii) धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र; और (iii) विषय-वस्तु पर अधिकार क्षेत्र। जहां तक क्षेत्रीय और धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्रों का संबंध है, ऐसे अधिकार क्षेत्र पर आक्षेप सबसे पहले संभव अवसर पर और किसी भी स्थिति में मुद्दों के निर्धारण पर या उससे पहले लिया जाना है। इस बिंदु पर विधि अच्छी तरह से स्थापित है कि यदि ऐसा आक्षेप सबसे पहले नहीं लिया जाता है, तो इसे बाद के चरण में लिए जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। विषय-वस्तु के संबंध में अधिकार क्षेत्र, हालांकि, पूर्णतः अलग है और भिन्न स्थिति पर खड़ा है। जहां किसी न्यायालय के पास संविधि, चार्टर या आयोग द्वारा लगाई गई किसी सीमा के कारण वाद की विषय-वस्तु पर अधिकार क्षेत्र नहीं है, वह वाद-कारण या विषय को नहीं ले सकता। अधिकार क्षेत्र नहीं रखने वाले न्यायालय द्वारा पारित आदेश शून्य है।"

16. **हशम अब्बास सैयद बनाम उस्मान अब्बास सैयद मनु/एससी/5541/2006:(2007) 2 एससीसी 355** में, इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:-

"24. हालांकि, हम यह जोड़ने के लिए जल्दबाजी कर सकते हैं कि एक न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के बीच अंतर किया जाना चाहिए जिसके पास सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 के प्रकाश में कोई क्षेत्रीय या धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र नहीं है, और एक न्यायालय द्वारा पारित डिक्री जिसके पास वाद की विषय-वस्तु के संबंध में कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। जबकि पूर्व मामले में, अपीलीय न्यायालय डिक्री के साथ हस्तक्षेप नहीं कर सकता जब तक कि पूर्वाग्रह नहीं दिखाया जाता, सामान्यतः मामलों की दूसरी श्रेणी के साथ हस्तक्षेप किया जाएगा।"

17. इसी तरह, मंटू सरकार बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कं. लिमिटेड MANU/SC/8464/2008: (2009) 2 एससीसी 244 में, इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:-

"20. हालांकि, वाद की विषय-वस्तु के संबंध में अधिकार क्षेत्र और क्षेत्रीय तथा धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र के बीच अंतर किया जाना चाहिए। जबकि पूर्व श्रेणी में आने वाले मामले में निर्णय शून्य होगा, बाद में यह नहीं होगा। यह ऐसा मामला नहीं है जहां अधिकरण के पास दावे की विषय-वस्तु के संबंध में कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था...हमारी राय में, न्यायालय को, प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से किसी पूर्वाग्रह की पीड़ा के किसी निष्कर्ष की अनुपस्थिति में, अपील पर विचार नहीं करना चाहिए था।"

18. पंजाब नेशनल बैंक बनाम अतिन अरोड़ा एवं अन्य, सुप्रीम कोर्ट [2025 लाइव लॉ (एससी) 27] में हाल के एक निर्णय में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अपने विवेक का प्रयोग करते हुए, न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 21 के प्रावधानों को नजरअंदाज किया, जिसके सिद्धांत और नियम, वर्तमान मामले में लागू किए जाने चाहिए। यह सिद्धांत अपेक्षा करता है कि वाद लाने के स्थान के संबंध में आक्षेप अनुमत नहीं किए जाएंगे जब तक कि ऐसा आक्षेप प्रथम अवस्था के न्यायालय/अधिकरण में सबसे पहले संभव अवसर पर नहीं लिया गया हो।

19. **एस.नागराज एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, 1993, सप्लीमेंटरी (4) एससीसी 595** में, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि पुनर्विलोकन का अर्थ शाब्दिक रूप से और यहां तक कि न्यायिक रूप से पुनः परीक्षण या पुनर्विचार है। इसमें अंतर्निहित मूल दर्शन मानवीय भ्रांति की सार्वभौमिक स्वीकृति है। पुनर्विलोकन का उद्देश्य उस आदेश का सुधार है जो इस मौलिक सिद्धांत से उत्पन्न होता है कि न्याय सबसे ऊपर है और यह केवल उस त्रुटि को ठीक करने के लिए प्रयोग किया जाता है जो बिना किसी दोष के किसी दुर्घटना से हुई है। सिविल न्यायालय की अपने निर्णय/आदेश का पुनर्विलोकन करने की शक्ति सी.पी.सी. की धारा 114 में अनुरेखणीय है और जिन आधारों पर पुनर्विलोकन मांगा जा सकता है वे आदेश 47, नियम 1 सी.पी.सी. में गणना किए गए हैं, जो पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग पर निश्चित सीमाएं लगाते हैं।

20. **शिवदेव सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1963 एससी 1909** में, पुनर्विलोकन की शक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय को, पूर्ण अधिकार क्षेत्र का न्यायालय होने के नाते, न्याय के दुराचार को रोकने या इसके द्वारा की गई गंभीर और स्पष्ट त्रुटियों को सुधारने के लिए बहुत अधिक प्रदान की गई है। पुनर्विलोकन की ऐसी शक्ति निश्चित सीमाओं के भीतर प्रयोग की जानी है, जिसके लिए आदेश 47 नियम 1 सी.पी.सी. के तहत प्रदान किए गए आधार पर्याप्त मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

21. **श्री राम साहू (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से एवं अन्य बनाम विनोद कुमार रावत एवं अन्य 2020(12) स्केल 415** में, निम्नलिखित शब्दों में:-

"...9. पुनर्विलोकन के दायरे की सराहना करने के लिए, इस न्यायालय के लिए सी.पी.सी. की धारा 114 के उद्देश्य और परिधि पर चर्चा करना उचित होगा क्योंकि यही पुनर्विलोकन के लिए एक मूल प्रावधान है जब कोई व्यक्ति स्वयं को किसी डिक्री या न्यायालय के आदेश द्वारा व्यथित मानता है जिससे अपील अनुमत है लेकिन कोई अपील प्राथमिकृत नहीं की गई है या जहां आदेश और डिक्री के विरुद्ध अपील के लिए कोई प्रावधान

अनुवादित

नहीं है, डिक्री या आदेश के पुनर्विलोकन के लिए न्यायालय में आवेदन कर सकता है, जो आदेश पारित कर सकता है या डिक्री पारित कर सकता है। सी.पी.सी. की धारा 114 के नग्न पठन से, यह प्रतीत होता है कि धारा 114 सी.पी.सी. के तहत उक्त मूल पुनर्विलोकन शक्ति ने पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग में पूर्व शर्त के रूप में कोई शर्त नहीं रखी है और न ही उक्त धारा ने न्यायालय पर अपने निर्णय का पुनर्विलोकन करने की अपनी शक्ति का प्रयोग करने पर कोई प्रतिबंध लगाया है। पुनर्विलोकन के लिए आवेदन अपील की तुलना में अधिक प्रतिबंधित है और पुनर्विलोकन का न्यायालय आदेश 47, नियम 1 सी.पी.सी. में ही उल्लिखित निश्चित सीमा के रूप में सीमित अधिकार क्षेत्र रखता है।"

22. **परिसन देवी बनाम सुमित्री देवी, (1997) 8 एससीसी 715** के मामले में यह अभिनिर्धारित करते हुए कि एक त्रुटि जिसे तर्क द्वारा पता लगाया जाना है, शायद ही अभिलेख के मुख पर स्पष्ट त्रुटि कही जा सकती है। निम्नानुसार अवलोकित किया गया:-

"9. आदेश 47, नियम 1 सी.पी.सी. के तहत एक निर्णय पुनर्विलोकन के लिए खुला हो सकता है अन्य बातों के साथ-साथ यदि अभिलेख के मुख पर कोई गलती या त्रुटि है। एक त्रुटि जो स्वयं स्पष्ट नहीं है और जिसे तर्क की प्रक्रिया द्वारा पता लगाया जाना है, शायद ही अभिलेख के मुख पर स्पष्ट त्रुटि कही जा सकती है जो न्यायालय को आदेश 47, नियम 1 सी.पी.सी. के तहत अपनी पुनर्विलोकन शक्ति का प्रयोग करने के लिए न्यायोचित ठहराती है। आदेश 47, नियम 1 सी.पी.सी. के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में एक त्रुटिपूर्ण निर्णय को 'पुनः सुना और सुधारा' जाना अनुमेय नहीं है। एक पुनर्विलोकन याचिका, यह याद रखा जाना चाहिए, एक सीमित उद्देश्य है और 'प्रच्छन्न अपील' होने की अनुमति नहीं दी जा सकती।"

23. **दिल्ली प्रशासन बनाम गुलदीप सिंह उबन एवं अन्य एआईआर 2000 एससी 3737** में शीर्ष न्यायालय के अवलोकन यहां उल्लेखनीय हैं जहां न्यायालय के समक्ष यह तर्क उठाया गया था कि हर मामले में जहां "अन्याय" है, न्यायालय को प्रक्रिया के नियमों से बंधा हुआ महसूस नहीं करना चाहिए और न ही पुनर्विलोकन आवेदन के सीमित दायरे से विवश होना चाहिए। न्यायालय द्वारा न्यायमूर्ति कार्डोजो द्वारा रचित निबंध का संदर्भ देने के बाद तर्क को अस्वीकार कर दिया गया, जो वास्तव में उन सीमाओं को सारांशित करता है जिनके भीतर एक न्यायालय को विधि के चारों कोनों के भीतर पक्षकारों के अधिकारों को संतुलित करते हुए कार्य करना होता है और "न्याय" और "अन्याय" की दलील के प्रभाव में नहीं बहना होता। न्यायालय के अवलोकन इस प्रकार हैं:-

"23. शब्द "न्याय" और "अन्याय", हमारे विचार में, कभी-कभी ढीले ढंग से उपयोग किए जाते हैं और विभिन्न व्यक्तियों के लिए विशेष रूप से विपरीत पक्षों पर खड़े लोगों के लिए भिन्न अर्थ रखते हैं। "एक व्यक्ति का न्याय दूसरे का अन्याय है"। न्यायमूर्ति कार्डोजो ने कहा। "जाल उलझा हुआ और अस्पष्ट है, रंगों और छायाओं की बहुतायत के साथ गोली मार दी गई, तार अनियमित और टूटे हुए। कई रंग जो सरल लगते हैं, विश्लेषण करने पर, जटिल और अनिश्चित सम्मिश्रण पाए जाते हैं। न्याय स्वयं, जिसे हम एक परीक्षण के साथ-साथ एक आदर्श के रूप में अपील करना चाहते हैं, विभिन्न मनों और विभिन्न समय में भिन्न चीजों का अर्थ हो सकता

है। इसके मानकों को वस्तुनिष्ठ बनाने या यहां तक कि उनका वर्णन करने के प्रयास, कभी भी पूर्णतः सफल नहीं हुए हैं।"

24. विद्वान अधिवक्ता यह बताने में विफल रहे हैं कि उपरोक्त विशेष अनुमति याचिका के माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा खारिज किए जाने के दृष्टिगत तत्काल निर्णय से प्रथम अपील संख्या 612/2003 में इस न्यायालय के निर्णय द्वारा कौन सी न्याय की विफलता हुई है।

25. प्रथम अपील संख्या 612/2003 में निर्णय पारित करने से पहले इस न्यायालय के समक्ष धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र का प्रश्न नहीं उठाया गया था। यही माननीय शीर्ष न्यायालय के समक्ष भी नहीं उठाया गया था। पुनर्विलोकन का अधिकार अपील के अधिकार के समान स्थिति पर नहीं खड़ा है। पुनर्विलोकन का दायरा बहुत संकीर्ण है और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 के तहत उल्लिखित आधार पर सीमित है। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 नियम 1 के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में, एक त्रुटिपूर्ण निर्णय को "पुनः सुना और सुधारा" जाना अनुमेय नहीं है। एक पुनर्विलोकन याचिका का एक सीमित उद्देश्य है और "प्रच्छन्न अपील" होने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

26. यह सत्य है कि **एस.नरहरि (उपर्युक्त)** में माननीय शीर्ष न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत प्रथम अपील की प्रथम दृष्ट्या खारिजी विलय के रूप में संचालित नहीं होती और विशेष अनुमति याचिका की खारिजी के बाद भी उच्च न्यायालय के समक्ष पुनर्विलोकन दायर किया जा सकता है, लेकिन उस मामले के तथ्य भिन्न थे क्योंकि उस मामले में पुनर्विलोकन न्यायालय के धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र में परिवर्तन के आधार पर नहीं था। **एस.नरहरि (उपर्युक्त)** में विशेष अनुमति याचिकाएं माननीय शीर्ष न्यायालय के समक्ष अंतिम निर्णय के विरुद्ध नहीं बल्कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित कुछ आदेशों के विरुद्ध दायर की गई थीं। प्रथम अपील लंबित थी और माननीय शीर्ष न्यायालय ने कार्यवाहियों की बहुलता से बचने के लिए आदेश पारित किया था।

27. **भारत संघ बनाम बी. वल्लुवन (2006) 8 एससीसी 686** के मामले में, माननीय शीर्ष न्यायालय ने पुनः उच्च न्यायालय के पुनर्विलोकन अधिकार क्षेत्र के मापदंडों पर विचार किया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि वही धारा 114 के साथ पठित सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 नियम के तहत प्रदान की गई सीमाओं के भीतर प्रयोग किया जाएगा, और अभिलेख के मुख पर स्पष्ट त्रुटि विद्यमान होने के संबंध में निष्कर्ष दर्ज किए बिना, गुणवत्ता में नहीं जाया जा सकता। **हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम एम.पी. मोहिलाल (2006 आईएनएससी 832)** के मामले में माननीय शीर्ष न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया है कि स्पष्टीकरण आवेदन के आवरण में, पुनर्विलोकन आवेदन का परिणाम प्राप्त करने का सहारा, अनुमत नहीं किया जा सकता। इसके अलावा, पुनर्विलोकन केवल आदेश 47, नियम 1 के साथ पठित धारा 141 सी.पी.सी. में उल्लिखित आधारों पर ही होता है।

28. उपरोक्त प्रस्ताव से यह स्पष्ट है कि अधिकार क्षेत्र का अभाव चाहे धनराशि संबंधी हो या क्षेत्रीय, सबसे पहले अवसर पर लिया जाना है। लेकिन इस मामले में, निर्णय पारित करने से पहले इस न्यायालय के समक्ष यही नहीं उठाया गया है और यही माननीय शीर्ष न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया गया है।

29. यहां यह उल्लेख करना उचित है कि जब प्रथम अपील संख्या 612/2003 इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई थी, जिला न्यायाधीश का धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र रु.5,00,000/- (पांच लाख) था और इस न्यायालय के पास अपील पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र था। यहां तक कि जब तर्क सुने गए, जिला न्यायाधीश का धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र अपरिवर्तित रहा। केवल उस तिथि पर जब निर्णय उद्घोषित किया गया, जिला न्यायाधीश के धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र को रु.5,00,000/- (पांच लाख) से बढ़ाकर रु.25,00,000/- (पच्चीस लाख) कर दिया गया था। इसलिए, यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट है कि प्रथम अपील दायर करने के समय, इस न्यायालय के पास अपील पर विचार करने और सुनने का धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र था। मामले के ऐसे दृष्टिकोण में, प्रथम अपील दायर करने की तिथि पर, इस न्यायालय के पास अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के साथ-साथ धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र था।

30. मामले के उस दृष्टिकोण में, अपीलार्थी को ऐसे विलंबित चरण में धनराशि संबंधी अधिकार क्षेत्र के अभाव को उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। हम पाते हैं कि आवेदकों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों का अनुपात आवेदकों के लिए कोई सहायता नहीं करता।

31. जहां तक विलम्ब की क्षमा के आधार का संबंध है, केवल यह आधार लिया गया है कि अपीलार्थी मधुमेह और उच्च रक्तचाप से पीड़ित थे जो पुनर्विलोकन आवेदन दायर करने में विलम्ब को क्षमा करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है।

32. उपरोक्त के दृष्टिगत, विलम्ब क्षमा आवेदन में भी गुणवत्ता की कमी है और खारिज किए जाने योग्य है।

33. तदनुसार, विलम्ब क्षमा आवेदन के साथ पुनर्विलोकन आवेदन दोनों खारिज किए जाते हैं।

(2025) 5 ILRA 1419

अपीलाधिकारिता सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरिन्दम सिन्हा

माननीय न्यायमूर्ति अवनीश सक्सेना

प्रथम अपील संख्या - 1116 सन् 2024

कृष्ण कुमार गुप्ता ...**अपीलकर्ता**

बनाम

प्रीति गुप्ता ...**प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री अम्बरीश कुमार पांडे, श्री लोकनाथ शुक्ला

प्रतिवादी के अधिवक्ता: श्री ज्ञानेंद्र सिंह

सिविल विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 498A एवं 326B - दहेज निषेध अधिनियम, 1961 - धारा 3/4 - हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 - धारा 27 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 125 -

अपील आक्षेपित आदेश को चुनौती देती है, जिसमें अपीलकर्ता को स्त्रीधन लौटाने हेतु राशि देने का निर्देश दिया गया था। पूर्व में प्रतिवादी को भरण-पोषण आदेश प्राप्त हुआ था। अपीलकर्ता ने ₹6 लाख का भुगतान किया और ₹1 लाख का डिमांड ड्राफ्ट प्रस्तुत किया।

आक्षेपित निर्णय में आभूषण रसीदों की फोटोकॉपी को द्वितीयक साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया, बिना यह बताए कि उनकी ग्राह्यता का कारण क्या है। प्रतिवादी ने आरोप लगाया कि अपीलकर्ता ने जबरन उसके आभूषण छीने और उसे पीटा, जबकि एफ.आई.आर. में सात अभियुक्तों की साजिश का उल्लेख था।

प्रतिपरीक्षण में प्रतिवादी ने स्वीकार किया कि घटना के समय अपीलकर्ता उपस्थित नहीं था, जिसे अवर न्यायालय ने अनदेखा कर दिया। अवर न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि अपीलकर्ता ने रसीदों पर आपत्ति नहीं की और उनमें उल्लिखित मूल्य को स्वीकार किया।

न्यायालय ने कहा कि–

- रसीदें फोटोकॉपी थीं, अतः उन्हें उनके निर्माता या गवाह द्वारा सिद्ध किया जाना आवश्यक था।
- मात्र आपत्ति न करने से यह सिद्ध नहीं होता कि अपीलकर्ता के पास स्त्रीधन आभूषण थे।
- स्त्रीधन की वापसी का निर्धारण अधिनियम की कार्यवाही में होना चाहिए, स्वतंत्र रूप से धारा 27 के आवेदन द्वारा नहीं।

अतः, अपील स्वीकृत की जाती है। (E-13)

उल्लिखित वाद:

1. बबीता @ गायत्री बनाम मोदप्रसाद @ पिंटू, AIR Chh 40, निर्णय दिनांक 12.09.2017
2. बालकृष्ण रामचंद्र कदम बनाम संगीता बालकृष्ण कदम, AIR 1997 SC 3562

(प्रदत्त : माननीय न्यायमूर्ति अरिन्दम सिन्हा)

1. अपीलकर्ता की ओर विद्वान अधिवक्ता से श्री शाल्विन उपस्थित हुए और दिनांक 16 अप्रैल, 2025 के पूर्व आदेश के संदर्भ में, 15 मई, 2025 को, प्रत्यर्थी के पक्ष में सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया द्वारा जारी डिमांड ड्राफ्ट संख्या 026265 दिनांक 23 अप्रैल, 2025, रु. 1 लाख के लिए, प्रस्तुत किया। उन्होंने प्रस्तुत किया कि रु. 6 लाख पूर्व में भुगतान किया गया था। कि वे अपील की सुनवाई के लिए तैयार हैं। श्री ज्ञानेन्द्र सिंह द्वारा सहायता प्राप्त, श्री दिवाकर तिवारी विद्वान अधिवक्तागण, प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित हुए, पूछे जाने पर पुष्टि की कि रु. 6 लाख अपीलकर्ता द्वारा उनके मुवक्किल को पूर्व में भुगतान किया गया था।

2. यह अपील निर्णय दिनांक 31 मार्च, 2022 के विरुद्ध प्राथमिकृत की गई है, जिसमें अपीलकर्ता को *'स्त्रीधन'* वस्तुओं को लौटाने के स्थान पर रु. 10,54,364/- का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था। हमने पता लगाया है कि विवाह पारिवारिक न्यायालय के निर्णय दिनांक 1 मई, 2023 पर तत्पश्चात् विघटित हो गया था। उससे पूर्व प्रत्यर्थी ने आवेदन दिनांक 13 मई, 2015 दाखिल किया था और दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 के अंतर्गत भरण-पोषण के भुगतान का निर्देश देते हुए आदेश दिनांक 11 अगस्त, 2017 प्राप्त किया था। अपीलकर्ता ने पूर्व में रु. 6 लाख का भुगतान किया था और अन्य रु. 1 लाख के भुगतान के लिए उक्त डिमांड ड्राफ्ट प्रस्तुत किया था।

3. अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुतीकरण है कि आक्षेपित निर्णय हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 27 के प्रावधान का आह्वान करते हुए किया गया था। यह विवाह के समय या उसके आसपास प्रस्तुत संयुक्त सम्पत्ति के संबंध में डिक्री में ऐसे प्रावधानों को शामिल करने की अनुमति देता है। प्रावधान के अंतर्गत कोई स्वतंत्र आदेश नहीं किया जा सकता। विवाह निर्णय दिनांक 1 मई, 2023 पर विघटित हो गया था। भरण-पोषण के लिए कोई निर्देश नहीं था और न ही 'स्त्रीधन' के संबंध में कोई निर्देश था। ऐसा निर्देश केवल विवाह के विघटन की कार्यवाही में पारित डिक्री में दिया जा सकता था लेकिन अन्यथा नहीं।

4. श्री शाल्विन छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा निर्णय दिनांक **12 सितम्बर, 2017** में लिए गए दृष्टिकोण पर भरोसा करते हैं, जो **2018 एआईआर छत्तीसगढ़ 40 (बबिता उर्फ ग्यात्री बनाम मोद प्रसाद उर्फ पिंटू)**, पैराग्राफ 7 (लॉसूट प्रिंट) में रिपोर्ट किया गया है। उक्त पैराग्राफ नीचे पुनरुत्पादित है।

"[7] अधिनियम, 1955 की धारा 27 में निहित उपरोक्त उद्धृत प्रावधान में प्रयुक्त अभिव्यक्ति, मात्र पठन पर, स्पष्ट होगी कि न्यायालय डिक्री में ऐसे प्रावधान कर सकता है जैसा कि वह विवाह के समय या उसके आसपास प्रस्तुत किसी भी सम्पत्ति के संबंध में न्यायोचित और उचित समझे, जो पति और पत्नी दोनों की संयुक्त रूप से हो सकती है। ***जब अधिनियम के अंतर्गत पक्षकारों के बीच कोई वैवाहिक कार्यवाही निर्णीत नहीं होती है, तो प्रावधान न्यायालय को अधिनियम, 1955 की धारा 9 से 13 और 13-ए तथा 13-बी में विचारित अधिनियम के अंतर्गत कोई आगे की कार्यवाही किए बिना, अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत एक स्वतंत्र आवेदन का मनोरंजन करने का अधिकार-क्षेत्र प्रदान नहीं करता है। यह प्रावधान वाद-बहुलता से बचने और पत्नी को उसी कार्यवाही में स्त्रीधन सम्पत्तियों की वापसी के लिए आवेदन करने का अधिकार देने के आशय से बनाया गया है, जिसमें वैवाहिक विवाद न्यायालय के समक्ष निर्णयन के लिए लाया गया है।*** *तथापि, धारा 27 को स्वयं में एक पृथक और स्वतंत्र वैवाहिक कार्यवाही नहीं माना गया है ताकि न्यायालय को अधिनियम, 1955 की धारा 27 के अंतर्गत ऐसे स्वतंत्र आवेदन का मनोरंजन करने का अधिकार मिल सके।"* (बल दिया गया)

श्री शाल्विन आगे प्रस्तुत करते हैं कि पारिवारिक न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में अभिलिखित किया था कि प्रत्यर्थी को घर से बाहर निकाले जाने की घटना 24 नवम्बर, 2014 को घटी थी, जब कथित रूप से उनके मुवक्किल ने बलपूर्वक आभूषण छीने, पीटा और प्रताड़ित किया और उसे घर से बाहर फेंक दिया। प्रत्यर्थी ने अपने लिखित कथन में भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 498ए, 326बी और दहेज निषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3/4 के अंतर्गत प्राथमिकी अपराध संख्या 886/2014 की छायाप्रति संलग्न की थी, जिसमें उनके मुवक्किल का नाम है। तथापि, प्रत्यर्थी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में दिए गए साक्ष्य के पृष्ठ एक की नीचे से छठी पंक्ति में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि कथित घटना के समय, उनका मुवक्किल करवी में उपस्थित नहीं था बल्कि बम्बई में अपनी नौकरी पर था। कथित 'स्त्रीधन' की वापसी के लिए आवेदन काल्पनिक था। इसे खारिज कर दिया जाना चाहिए था।

5. श्री दिवाकर तिवारी प्रस्तुत करते हैं कि उनकी मुवक्किल ने यह दर्शाने के लिए प्रकट किए गए दस्तावेजों को विधिवत् साबित किया था कि उसके पास विवाह के समय दिया गया 'स्त्रीधन' था और तत्पश्चात्, उसे केवल वे कपड़े पहने हुए वैवाहिक घर से बाहर निकाल दिया गया जो उसने पहने थे। पारिवारिक न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता के तर्क के अभिलेख के संबंध में, घटना 24 नवम्बर, 2014 को घटी, उसी के साथ आक्षेपित निर्णय के अंतिम पैराग्राफ में निपटा गया था। पूछे जाने पर वे यह इंगित करने में असमर्थ हैं कि पारिवारिक न्यायालय ने किसे 24 नवम्बर, 2014 को प्रत्यर्थी के आभूषण छीनने और उसे घर से बाहर फेंकने का दोषी पाया था। वे आगे प्रस्तुत करते हैं कि अपीलकर्ता ने आक्षेपित निर्णय की पुनर्विलोकना के लिए दाखिल किया था लेकिन असफल रहा। अपनी पुनर्विलोकना की अस्वीकृति से अपील प्राथमिकृत नहीं करने पर, वह अपील को आगे बढ़ाने से वर्जित है। इतना ही नहीं, उसके मुवक्किल ने निष्पादन कार्यवाही शुरू की और आंशिक वसूली हुई, जिसे भी अपीलकर्ता द्वारा चुनौती नहीं दी गई।

6. आक्षेपित निर्णय से प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत आभूषण रसीदें छायाप्रतियाँ थीं। इस बात का कोई संकेत नहीं है कि उन्हें द्वितीयक साक्ष्य के रूप में क्यों स्वीकार किया गया। साथ ही, आक्षेपित निर्णय में

कहा गया है कि आवेदन में, अपीलकर्ता पर आरोप लगाया गया था कि 24 नवम्बर, 2014 को उसने बलपूर्वक उल्लिखित आभूषण प्रत्यर्थी से छीने, पीटा, प्रताड़ित किया और उसे घर से बाहर फेंक दिया। यहाँ हम नोट करते हैं कि प्राथमिकी दिनांक 24 नवम्बर, 2014 में आरोप षड्यंत्र का था। अपीलकर्ता सहित सात व्यक्तियों को अभियुक्त के रूप में नामित किया गया था। प्रत्यर्थी ने अपने लिखित कथन में स्वयं भारतीय दण्ड संहिता, 1860 और दहेज निषेध अधिनियम, 1961 के प्रावधानों के अंतर्गत प्राथमिकी अपराध संख्या 886 सन् 2014 की छायाप्रति संलग्न की, जिसमें अपीलकर्ता का नाम था। विद्वान न्यायाधीश ने प्रतिपरीक्षा में प्रत्यर्थी की स्वीकारोक्ति के आधार पर अपीलकर्ता के तर्क को अभिलिखित किया कि 24 नवम्बर, 2014 की कथित घटना घटने के समय वह उपस्थित नहीं था। फिर भी, विद्वान न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय में अपीलकर्ता के तर्क के इस पहलू से निपटा नहीं। विद्वान न्यायाधीश ने तथापि कहा कि अपीलकर्ता ने नीलम ज्वैलर्स द्वारा जारी आभूषण की रसीदों का खंडन नहीं किया था और अतः, रसीदों में उल्लिखित आभूषण की कीमत को स्वीकार करना न्यायोचित है। यहाँ हमें यह देखना चाहिए कि जैसा कि पूर्वोक्त है, रसीदें छायाप्रतियाँ थीं। प्रत्यर्थी का मामला यह था कि वे उसकी ओर से खरीदे गए और उसे 'स्त्रीधन' के रूप में दिए गए आभूषण की रसीदें थीं। अपीलकर्ता को इसलिए, प्रति रसीदों में प्रतिबिम्बित लेन-देन का कोई ज्ञान नहीं हो सकता था, जिससे उस पर स्वीकारोक्ति का बोझ डाला जाए, जो प्रति दस्तावेजों पर कार्य करने के लिए प्रमाण के रूप में आवश्यक था। एक दस्तावेज केवल उसके निर्माता द्वारा ही साबित किया जा सकता है। यह किसी मूल दस्तावेज प्राप्त करने वाले द्वारा भी साबित किया जा सकता है, जो साक्ष्य देता है कि उसने इसके निर्माता को इसे बनाते और साक्षी को सौंपते हुए देखा। जैसा कि पूर्वोक्त है, कोई संकेत नहीं है कि द्वितीयक साक्ष्य क्यों स्वीकार किया गया। छायाप्रतियों की प्रस्तुति और आपत्ति करने में लोप पर, स्वीकारोक्ति का अनुमान लगाया गया, दस्तावेजों पर भरोसा करने के लिए। यह केवल खरीद को साबित करेगा। *'स्त्रीधन'* आभूषण का कब्जा, अभी भी स्थापित किया जाना आवश्यक था।

7. विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपीलकर्ता द्वारा बलपूर्वक आभूषण छीनने, पीटने, प्रताड़ित करने और प्रत्यर्थी को घर से बाहर फेंकने के आरोपों को स्वीकार किया प्रतीत होता है क्योंकि उसके द्वारा शिकायत दर्ज की गई थी और आपराधिक मामला बांदा में न्यायालय के समक्ष लंबित है। यह अपीलकर्ता की दलील से सीधे निपटने का एक तिरछा तरीका था कि प्रत्यर्थी ने प्रतिपरीक्षा में स्वीकार किया था कि घटना के समय वह उपस्थित नहीं था।

8. तथ्यात्मक मैट्रिक्स के अलावा, कानून का प्रश्न भी है जो पारिवारिक न्यायालय के समक्ष उठाया गया था। यह था कि धारा 27 के अंतर्गत एक स्वतंत्र कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती थी जिसके परिणामस्वरूप डिक्री हो। हम **बबिता उर्फ ग्यात्री** (उपर्युक्त) में लिए गए दृष्टिकोण से सम्मानपूर्वक सहमत हैं कि धारा 27 को एक पृथक और स्वतंत्र वैवाहिक कार्यवाही नहीं माना गया है ताकि न्यायालय को ऐसे स्वतंत्र आवेदन का मनोरंजन करने का अधिकार मिल सके। खंडपीठ ने सर्वोच्च न्यायालय के **बलकृष्ण रामचन्द्र कदम बनाम संगीता बलकृष्ण कदम एआईआर 1997 एससी 3562** में प्रतिवेदित किए गए निर्णय का संदर्भ यह कहने के लिए दिया कि शीर्ष न्यायालय ने कहा था कि धारा 27 पत्नी को वैकल्पिक उपचार प्रदान करती है ताकि वह सम्पत्ति की वसूली

कर सके, जो धारा द्वारा कवर की जाती है। तदनुसार हम धारित करते हैं कि 'स्त्रीधन' की वापसी एक मुद्दा होना चाहिए, जिसका अधिनियम के अंतर्गत एक कार्यवाही में विचारण पर निर्धारण किया जाए और धारा 27 के अंतर्गत किए गए आवेदन पर स्वतंत्र रूप से नहीं।

9. हम जोड़ना चाहेंगे कि धारा 25 एक पति या पत्नी को, विवाह के विघटन की डिक्री के पश्चात्, मासिक या एकमुश्त राशि द्वारा भरण-पोषण पर निर्देश के लिए आवेदन करने की अनुमति देती है। धारा 27 डिक्री पारित करने वाले न्यायालय को विवाह के समय या उसके आसपास प्रस्तुत किसी भी सम्पत्ति के संबंध में उसमें प्रावधान शामिल करने का अधिकार देती है, जो पक्षकारों की संयुक्त रूप से हो सकती है। हम देखते हैं कि निर्णय और डिक्री दिनांक 1 मई, 2023 में विवाह को विघटित करते हुए, संयुक्त या अन्यथा सम्पत्ति के संबंध में कोई निर्देश नहीं दिया गया था।

10. आक्षेपित निर्णय अपील में अपास्त किया जाता है। 15 मई, 2025 को, प्रारूप श्री सिंह को उनके द्वारा किए गए अभिस्वीकृति पर सौंपा गया था जो उसकी प्राप्ति को दर्शाती है। उनकी मुवक्किल उक्त आदेश दिनांक 11 अगस्त, 2017 से उत्पन्न भरण-पोषण के उसके दावे के समायोजन में समान विनियोजित कर सकती है। इस प्रकार उसे कुल रु. 7 लाख प्राप्त हुए हैं। उसका दावा केवल विवाह को विघटित करने वाले निर्णय की तारीख अर्थात् 1 मई, 2023 को या उससे पहले तक हो सकता है। लिखत की छायाप्रतियों पर श्री सिंह द्वारा हस्ताक्षर किए गए। एक अभिलेख में रखी गई और दूसरी श्री शाल्विन को सौंपी गई, जिन्होंने प्रस्तुत किया था कि कुल रु. 7 लाख के अतिरिक्त, प्रत्यर्थी ने आक्षेपित निर्णय के आंशिक निष्पादन द्वारा रु. 2,10,000/- की वसूली की। उक्त राशि को भी दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 के अंतर्गत किए गए उक्त भरण-पोषण आदेश दिनांक 11 अगस्त, 2017 के अनुसरण में प्रत्यर्थी के दावे के विरुद्ध समायोजित किया जाए। हम तदनुसार, दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLI में नियम 33 के अंतर्गत अपनी अपीलीय शक्ति के प्रयोग में निर्देशित करते हैं।

11. मामले से विदा होने से पूर्व हमें प्रत्यर्थी की दलील से निपटना आवश्यक है कि अपीलकर्ता आक्षेपित निर्णय की पुनर्विलोकना मांगने में असफल रहा और साथ ही उसके द्वारा शुरू की गई निष्पादन कार्यवाही के विरुद्ध अपील प्राथमिकृत नहीं की थी। जबकि पुनर्विलोकना के आधार धारा 114 में प्रदान किए गए हैं और प्रक्रिया आदेश XLVII में, अपील वैधानिक अधिकार है, जो धारा 96 द्वारा प्रदत्त है और आदेश XLI में प्रदान की गई है। जहाँ तक निष्पादन का संबंध है, अपीलकर्ता अपील में सफल होने पर, निष्पादन मामला हटा दिया जाना चाहिए, क्योंकि अधिकार-क्षेत्र के बिना पारित आक्षेपित आदेश के अनुसरण में, शून्य होने के कारण। निष्पादन न्यायालय अपील के निर्णयन पर उत्पन्न ऐसे प्रश्न पर तदनुसार कार्य करेगा, जिसे धारा 47 के अंतर्गत निष्पादन न्यायालय द्वारा निर्धारित किया जाना है।

12. अपील स्वीकृत और निस्तारित की जाती है।

(2025) 5 ILRA 1422

अपीलाधिकारिता सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अत्ताउ रहमान मसूदी

माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-I

विशेष अपील संख्या - 161 सन् 2025

राजवीर सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राजकीय निर्माण निगम लि. एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: प्रदीप कुमार राय, लल्लन राय, प्रकाश पांडे, प्रवीण कुमार शुक्ला

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: शिशिर जैन

सेवा विधि - मॉडल आचरण, अनुशासन एवं अपील नियमावली, 1998 - नियम 5(3), 18(1) एवं (2) -
अनुशासनात्मक कार्यवाही - निलंबन - कदाचार - आरोप था कि याचिकाकर्ता ने अपनी आय से असंगत अचल संपत्ति अर्जित की।
न्यायालय ने कहा कि निगम में कार्यरत कर्मचारी द्वारा आय से असंगत अचल संपत्ति रखना नियम 5(3) के अंतर्गत कदाचार है।
खंडपीठ ने एकल न्यायाधीश के निर्णय में कोई अवैधता नहीं पाई, जिसमें निलंबन के विरुद्ध रिट याचिका निरस्त की गई थी।

अतः, अपील निरस्त की जाती है। (E-1)

उल्लिखित वाद:

1. ए.एल. कालरा बनाम प्रोजेक्ट एंड इक्विपमेंट कॉर्प. ऑफ इंडिया लि., (1984) 3 SCC 316

(माननीय न्यायमूर्ति अत्ताउ रहमान मसूदी एवं माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-I द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री पी. के. राय तथा प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री शिशिर जैन को सुना गया।

अनुवादित

2. इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली के अध्याय VIII नियम 5 के अंतर्गत प्राथमिकृत की गई इस अंतर्-न्यायालय अपील में रिट न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 3907 सन् 2025 में दिनांक 10.04.2025 को पारित निर्णय/आदेश को आक्षेपित किया गया है, जिसके द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध पारित आरोप-पत्र तथा निलंबन के आदेश को चुनौती विफल रही है। अपीलार्थी द्वारा दायर रिट याचिका का निस्तारण यह विशिष्ट निर्देश जारी करते हुए किया गया है कि आरोप-पत्र के उत्तर में उसके द्वारा दायर प्रत्युत्तर की प्राप्ति की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर अनुशासनात्मक कार्यवाही को समाप्त किया जाए और इसमें उसके सहयोग के अधीन रहते हुए।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि उसके विरुद्ध तैयार किए गए आरोप यद्यपि आदर्श आचरण, अनुशासन और अपील नियमावली, 1998 के नियम-18 (1) और (2) से संदर्भित हैं, किंतु आरोप ऐसे हैं कि वे कदाचार का गठन नहीं करते हैं।

4. इसलिए, न केवल निलंबन का आदेश विधि की दृष्टि में अवैध है, बल्कि अनुशासनात्मक कार्यवाही का स्वयं प्रारंभ करना विधि की पवित्रता के बिना है।

5. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किए गए अभिकथन को पुष्ट करने के लिए, **ए.एल. कालरा बनाम प्रोजेक्ट एंड इक्विपमेंट कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड के मामले में (1984) 3 एससीसी 316** में प्रतिवेदित निर्णय पर निर्भरता रखी है और हमें इसके कुछ सुसंगत अनुच्छेदों से अवगत कराया है। जिस निर्णय पर निर्भरता रखी गई है, उसके प्रकाश में यह तर्क दिया गया है कि वही वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर पूर्णतः लागू होता है।

6. नियमावली, 1998 के सरल पाठन पर यह एकत्रित होता है कि नियम-5 (3) में लगाए गए आरोपों के संबंध में कदाचार को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:-

"नियम-5 (3) "कदाचार" शब्द की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना अकारण और आचरण के निम्नलिखित कार्य को कदाचार माना जायेगा

(1)-----

(2)-----

(3) कर्मचारी द्वारा या उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा आय के ज्ञात साधनों से असंगत धन संबंधी संसाधन या सम्पत्ति का स्वामित्व रखना, जिसका कर्मचारी सन्तोषप्रद रूप से लेखा-जोखा न दे सकता हो।"

7. वर्तमान मामले में जारी आरोप-पत्र को नियम-18 (1) और (2) के अंतर्गत संदर्भित किया गया है, जो सुविधाजनक संदर्भ के लिए निम्नवत् भी उद्धृत किया जाता है:-

"18-(1) कोई भी कर्मचारी बिना अपने सक्षम प्राधिकारी की पूर्व जानकारी के पट्टे, गिरवी, क्रय, विक्रय, उपहार के रूप में किसी भी अचल सम्पत्ति का न तो अपने नाम से और न अपने परिवार के किसी सदस्य के नाम से अधिग्रहण या निस्तारण नहीं करेगा।

(2) बिना अपने सक्षम अधिकारी की पूर्व अनुमति के, कोई भी कर्मचारी किसी ऐसे व्यक्ति या प्रतिष्ठान के कर्मचारी या उसके मातहत से जिसके साथ उसका पदीय कार्य से सम्बन्ध हो, किसी अचल या चल सम्पति सम्बन्धी लेन-देन नहीं करेगा।"

8. आरोप-पत्र में निश्चित आरोप लगाए गए हैं जो उन सम्पत्तियों की ओर इंगित करते हैं जो अपीलार्थी द्वारा सक्षम प्राधिकारी को बिना किसी सूचना या अनुमति के अधिगृहीत की गई हैं। निगम में कार्यरत किसी कर्मचारी द्वारा अपनी आय के ज्ञात स्रोत के असमानुपातिक अचल सम्पत्तियों का स्वामित्व रखना निश्चित रूप से ऊपर उद्धृत नियम-5 उप-नियम 3 के अंतर्गत प्रदान की गई परिभाषा खंड के दृष्टिगत कदाचार के समान है।

9. हाथ में लिए गए मामले में, सम्पत्ति के अधिग्रहण के संबंध में आरोप-पत्र में लगाए गए आरोपों को किसी भी मूर्त प्रमाण के आधार पर पूर्णतः अस्वीकार नहीं किया गया है जो यह दर्शाता हो कि आरोप-पत्र में उल्लिखित सम्पत्तियों में अपीलार्थी द्वारा ऐसा कोई भी स्वामित्व अधिगृहीत नहीं किया गया है।

10. किसी भी स्थिति में, एक बार जब याचिकाकर्ता के विरुद्ध अपनी आय के ज्ञात स्रोत के असमानुपातिक अचल सम्पत्ति अधिगृहीत करने के आरोप लगाए गए हैं, तो कोई कारण नहीं है कि ऐसी कार्यवाही को जारी रहने की अनुमति क्यों न दी जाए और शीघ्रातिशीघ्र इसे इसके तार्किक निष्कर्ष तक पहुँचाया जाए।

11. अपील के अंतर्गत निर्णय/आदेश पर सावधानीपूर्वक विचार करने पर, हम इस विचारित मत के हैं कि रिट न्यायालय द्वारा पारित निर्णय हमारे समक्ष उठाए गए आधारों पर इस न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप की मांग करने वाली किसी भी अवैधता से ग्रस्त नहीं है।

12. किसी भी योग्यता से रहित अंतर्-न्यायालय अपील को तदनुसार **खारिज** किया जाता है।

(2025) 5 ILRA 1424

मूल अधिकारिता सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

रिट - A संख्या: 11589/2023

पृथ्वी राज सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

मुख्य महाप्रबंधक (मानव संसाधन), यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, केंद्रीय कार्यालय, मुंबई ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री राजेश कुमार श्रीवास्तव

प्रतिवादी के अधिवक्ता: श्री विवेक रतन अग्रवाल

सेवा विधि - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - अनुशासनात्मक कार्यवाही - हस्तक्षेप का क्षेत्र - न्यायालय ने कहा कि उच्च न्यायालय अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्षों में हस्तक्षेप कर सकता है यदि मत विकृत हो, अप्रासंगिक साक्ष्य पर आधारित हो या प्रासंगिक साक्ष्य की उपेक्षा की गई हो।

भार प्रमाण - आरोप सिद्ध करने का भार संस्था/प्रबंधन पर है। कर्मचारी द्वारा बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत न करने से आरोप सिद्ध नहीं होता।

दंड - अनिवार्य सेवानिवृत्ति - आरोप सिद्ध करने हेतु जिन गवाहों को बुलाया गया वे घटना स्थल पर उपस्थित नहीं थे। उनकी गवाही अप्रासंगिक थी। इस प्रकार, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने अप्रासंगिक साक्ष्य पर भरोसा किया।

अतः, रिट याचिका स्वीकृत की जाती है। (E-1)

उल्लिखित वाद:

1. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा, (2010) 2 SCC 772
2. रणवीर सिंह बनाम भारत संघ, 2021 (5) ALJ 457
3. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम आदित्य प्रसाद श्रीवास्तव एवं अन्य, 2017 (2) ADJ 554
4. प्रवीण कुमार बनाम भारत संघ एवं अन्य

अनुवादित

5.इला पृष्वी राज सिंह बनाम मुख्य महाप्रबंधक (मानव संसाधन), यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, केंद्रीय कार्यालय, मुंबई 1843

5. एस.बी.आई. बनाम राम भास्कर एवं अन्य, (2011) 10 SCC 249

6. राजस्थान राज्य बनाम भूपेंद्र सिंह, 2024 SCC OnLine SC 1908

7. भारत संघ बनाम ब्रह्मपाल सिंह, 2005 SCC OnLine All 1815

8. उत्तराखंड राज्य बनाम श्रीमती सुरेश्वती, (2021) 3 SCC 108

9. उत्तर प्रदेश राज्य परिवहन निगम बनाम गजाधर नाथ, (2022) 3 SCC 190

10. योगेंद्र कुमार बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2018 (6) ADJ 645

11. सी.ई.ओ., कृष्णा जिला सहकारी केंद्रीय बैंक लि. बनाम के. हनुमंथा राव एवं अन्य, (2017) 2 SCC 528

12. निर्मला जे. झाला बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य, (2013) 4 SCC 301

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

यह रिट याचिका दिनांक 22.11.2022 को मुख्य प्रबंधक, यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, वाराणसी (अनुशासनात्मक प्राधिकारी), दिनांक 21.03.2023 को उप महाप्रबंधक (ईआरडी), यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई (अपीलीय प्राधिकारी) के आदेश और दिनांक 12.05.2023 को महाप्रबंधक (मानव संसाधन), यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई (पुनर्विलोकन प्राधिकारी) के आदेश के विरुद्ध प्राथमिकृत की गई है। इन आदेशों में से प्रथम आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक कार्यवाही के पश्चात सेवा दुराचार का दोषी ठहराया गया है और अन्य बातों के साथ-साथ सेवानिवृत्ति लाभों के साथ और भविष्य की नियुक्ति से अयोग्यता के बिना अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दंड दिया गया है। इन आदेशों में से द्वितीय आदेश द्वारा, अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश से याचिकाकर्ता की अपील को खारिज कर दिया गया है, और पुनर्विलोकन प्राधिकारी द्वारा पारित इन आदेशों में से अंतिम आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता के पुनर्विलोकन को भी खारिज कर दिया गया है।

2. याचिकाकर्ता एक भूतपूर्व सैनिक है, जिसने भारतीय नौसेना में सेवा की। 10 जून, 2019 को, उसे यूनियन बैंक ऑफ इंडिया ('संक्षेप में 'बैंक') के लिपिक संवर्ग में एकल खिड़की संचालक-ए के रूप में नियुक्त किया गया था। उसे चौकी बरदह शाखा, आजमगढ़ में तैनात किया गया था। वह 26.04.2020 तक वहां तैनात रहा। इसके पश्चात, उसे औधा दुलारगंज शाखा, आजमगढ़ में मुख्य कैशियर-II-सह-क्लर्क के पद पर पदोन्नत किया गया। तत्पश्चात उसका स्थानांतरण सिकरौर शाखा, आजमगढ़ में किया गया। याचिकाकर्ता के अनुसार, बैंक में लिपिक संवर्ग में उसने मुश्किल से दो वर्ष की सेवा की थी, जब उसे दिनांक 21.03.2020 को एक कारण बताओ नोटिस दिया गया, जिसमें उससे नोटिस में उल्लिखित आरोप के विरुद्ध अपना उत्तर प्रस्तुत करने को कहा गया। उसने दिनांक 30.03.2020 के अपने उत्तर द्वारा कारण बताया। उत्तर बैंक और अनुशासनात्मक प्राधिकारी, मुख्य प्रबंधक, मानव संसाधन विभाग, क्षेत्र महाप्रबंधक कार्यालय, वाराणसी को

स्वीकार्य नहीं हुआ, जिन्होंने दिनांक 05.11.2020 का एक आरोप-पत्र जारी किया, जिसमें याचिकाकर्ता पर निम्नलिखित शब्दों में आरोप लगाया गया:

यह दिनांक 30.03.2020 को श्री पृथ्वी राज सिंह, मुख्य कैशियर II सह क्लर्क, सिकरौर शाखा (पूर्व में एकल खिड़की संचालक-ए चौकी वरदह शाखा), आजमगढ़ क्षेत्र द्वारा उन्हें आरओ आजमगढ़ द्वारा जारी दिनांक 21.03.2020 के कारण बताओ ज्ञापन संख्या RO:HRM:3557:2020 के उत्तर में प्रस्तुत स्पष्टीकरण के संदर्भ में है। श्री पृथ्वी राज सिंह द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण की उक्त कारण बताओ ज्ञापन में उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों के संबंध में तथा मामले के तथ्यों के संदर्भ में जांच की गई है और वह संतोषजनक नहीं पाया गया है।

तथ्य यह है कि दिनांक 16.03.2020 को, श्री सिंह की पत्नी श्रीमती प्रतिमा सिंह, चौकी वरदह शाखा में हमारे बैंक द्वारा उन्हें स्वीकृत डेयरी ऋण खाता (खाता संख्या 712106050000009 राजपूत डेयरी) के संवितरण के लिए आईं। ऋण का संवितरण लगभग 11.30 पूर्वाह्न में किया गया और तत्पश्चात वह शाखा से चली गईं। हालांकि, वह लगभग 01:00 अपराह्न में फिर से शाखा में आईं, सीधे कैशियर के केबिन के पास गईं, श्री सिंह के साथ कुछ चर्चा की और स्टाफ क्षेत्र में इधर-उधर घूमने के बाद, वह नकद सुरक्षा कक्ष / मजबूत कक्ष (शाखा में एक अत्यंत संवेदनशील और निषिद्ध क्षेत्र) के पास की कुर्सी पर बैठ गईं, हालांकि श्री सिंह द्वारा उनकी अनधिकृत उपस्थिति या आवाजाही के संबंध में कोई आपत्ति या चिंता नहीं व्यक्त की गई। कुछ समय बाद वह शाखा प्रबंधक की ओर बढ़ीं जो बीएम के केबिन से बाहर, शाखा में एक दूरस्थ स्थान पर कुछ फाइलों पर काम कर रहे थे और वहां काफी लंबे समय तक बैठे थे। कुछ समय बाद श्री पृथ्वी राज सिंह भी शाखा प्रबंधक के पास पहुंचे और श्री सिंह ने अपनी पत्नी के साथ मिलकर बीएम के साथ मारपीट की। यह रिपोर्ट किया गया है कि श्री सिंह ने अपनी पत्नी के साथ मिलीभगत में शाखा प्रबंधक को क्रूरतापूर्वक पीटा, जिसके परिणामस्वरूप बीएम घायल हो गए और उनके मोबाइल फोन और चश्मा आदि जैसे व्यक्तिगत सामान टूट गए। घटना के दौरान बीएम की कमीज भी फट गई। ग्राहकों के हस्तक्षेप के बाद भी, जब झगड़ा समाप्त हुआ, श्रीमती प्रतिमा सिंह बार-बार अपनी चप्पल से बीएम को मारने की कोशिश कर रही थीं और ग्राहक उन्हें रोक/रोक रहे थे लेकिन श्री सिंह ने उन्हें ऐसा करने से रोकने की कोशिश नहीं की।

ऐसा प्रतीत होता है कि दिनांक 16.03.2020 को शाखा में बीएम के साथ मारपीट की घटना पूर्व नियोजित थी और एक जिम्मेदार बैंक कर्मचारी के अनुरूप व्यवहार करने और स्थिति के आगे बढ़ने को रोकने के बजाय श्री सिंह ने श्री नीरज राजा कुमार (डीएम) के साथ शारीरिक रूप से हमला करने में अपनी पत्नी का साथ दिया। श्री पृथ्वी राज सिंह द्वारा आरोपित श्री नीरज राजा कुमार (बीएम) के दुर्व्यवहार के संबंध में शाखा के किसी भी स्टाफ/ग्राहक ने कभी शिकायत नहीं की। यह भी आश्चर्यजनक है कि श्रीमती प्रतिमा सिंह ने घटना की तारीख से पहले बीएम द्वारा की गई किसी असामान्य/अवैध मांग के संबंध में उपयुक्त प्राधिकारियों/कार्यालयों को शिकायत दर्ज नहीं कराई। इसके अलावा अन्य स्टाफ सदस्यों और ग्राहकों की उपस्थिति में व्यापार के घंटों के दौरान शाखा परिसर में बीएम के साथ शारीरिक रूप से हमला करने का उनका कृत्य उनकी सुरक्षा को खतरे में डालता है और बैंक की छवि को धूमिल करता है और किसी भी तरह से आत्मरक्षा के कृत्य के रूप में नहीं कहा जा सकता। इसके अलावा उपर्युक्त घटना के दौरान दिनांक 16.03.2020 को उनका आचरण और व्यवहार एक जिम्मेदार बैंक कर्मचारी से अपेक्षित गुणों के साथ मेल नहीं खाता।

5.इला पृष्वी राज सिंह बनाम मुख्य महाप्रबंधक (मानव संसाधन), यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, केंद्रीय कार्यालय, मुंबई 1845

श्री पृथ्वी राज सिंह को ध्यान देना होगा कि उनके द्वारा उपर्युक्त कारण बताओ ज्ञापन संख्या RO:HRM:3557:2020 दिनांक 21.03.2020 में गिनाए गए लोप और कमीशन के उक्त कृत्य, जो उन्हें क्षेत्रीय कार्यालय, आजमगढ़ द्वारा जारी किया गया था, निम्नलिखित दुराचार का गठन करते हैं और उन्हें इसके लिए आरोपित किया जाता है।

गंभीर दुराचार:

1. बैंक के परिसर में अव्यवस्थित या अशोभनीय व्यवहार।
2. सकल लापरवाही या लापरवाही जिससे बैंक को गंभीर हानि होने की संभावना हो।

लघु दुराचार:

1.कार्य की उपेक्षा और कर्तव्यों के निर्वहन में लापरवाही।
2. बैंक के व्यवसाय के किसी नियम या किसी विभाग को चलाने के निर्देश का उल्लंघन।
3. बैंक के परिसर में उपद्रव करना
4. अधिकारियों के प्रति उचित विचार, शिष्टाचार या ध्यान देने में विफलता।

3. आरोपों को निम्नलिखित दस्तावेजों और साक्षियों द्वारा सिद्ध करने की मांग की गई थी जो याचिकाकर्ता को साक्षियों की सूची के साथ प्रदान किए गए थे:

क्र.सं.	**दस्तावेजों का विवरण**	**पृष्ठों की संख्या**
11	श्री नीरज राजा, शाखा प्रबंधक, चौकी बरदह शाखा का दिनांक 16/03/2020 का पत्र	01
22	श्री वीरेंद्र प्रसाद, डीबीएम, चौकी बरदह दिनांक 16/03/2020 का पत्र	01
33	श्री अरुण कुमार गुप्ता और श्री दिनकर मिश्रा द्वारा दिनांक 18/03/2020 को प्रस्तुत निरीक्षण रिपोर्ट	02
44	समाचार पत्र की कतरन	02
5 5	प्रभारी, बरदहा पुलिस स्टेशन का पत्र	01
6 6	सीसीटीवी फुटेज (पेन ड्राइव में)	01

साक्षियों की सूची:

1. शाखा प्रबंधक, चौकी बरदह शाखा
2. उप शाखा प्रबंधक, चौकी बरदह शाखा

3. श्री अरुण गुप्ता, वरिष्ठ प्रबंधक, आरओ, आजमगढ़।

4. श्री दिनकर मिश्रा, सहायक प्रबंधक (सुरक्षा), आरओ, आजमगढ़।

साक्षियों की सूची में एक टिप्पणी थी कि प्रबंधन ने किसी भी दस्तावेज/साक्षी(यों) को जोड़ने या हटाने का अपना अधिकार सुरक्षित रखा है।

4. याचिकाकर्ता ने दिनांक 05.11.2020 के आरोप-पत्र के लिए अपना लिखित बचाव कथन प्रस्तुत किया। उसने आजमगढ़ में बैंक के शिविर कार्यालय में जांच अधिकारी के समक्ष एक आवेदन किया, जिसमें कुछ दस्तावेज मांगे, जिन्हें वह कार्यवाही में अपने उचित बचाव के लिए आवश्यक मानता था। याचिकाकर्ता के अनुरोध को प्रबंधन प्रतिनिधि द्वारा यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया गया कि दस्तावेज या तो आरोप-पत्र से संबंधित नहीं थे या विशेषाधिकार प्राप्त थे।

5. ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही बैंक द्वारा दो अधिकारियों द्वारा की गई प्रारंभिक जांच के आधार पर शुरू की गई थी - एक, अरुण कुमार गुप्ता, जो तब बैंक के क्षेत्रीय कार्यालय में वरिष्ठ प्रबंधक थे, और दूसरे, दिनकर मिश्रा, जो तब आजमगढ़ में बैंक के क्षेत्रीय कार्यालय में प्रबंधक (सुरक्षा) थे। बैंक के इन दो प्रबंधकों ने, जिन्होंने दिनांक 16.07.2020 को बैंक की चौकी बरदह शाखा में हुई घटना की प्रारंभिक जांच की, जिसने आरोप को जन्म दिया, दिनांक 18.03.2020 की प्रारंभिक जांच की एक जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिस पर प्रबंधन ने अनुशासनात्मक जांच में एक दस्तावेज के रूप में भरोसा किया जिसे MEX-3 के रूप में चिह्नित किया गया था। केवल वे साक्षी, जिनकी गवाही द्वारा, याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप, जो उनके वरिष्ठ, शाखा प्रबंधक पर हमला करने के बारे में था, जहां वह एक कैशियर था, स्थापित करने की मांग की गई थी, ये दो प्रबंधक थे, जिन्होंने प्रारंभिक जांच की और दिनांक 18.03.2020 की जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की। स्वीकार रूप से, वे याचिकाकर्ता और शाखा प्रबंधक के बीच विवाद की घटना के साक्षी नहीं थे और याचिकाकर्ता की पत्नी भी, जो दिनांक 16.03.2020 को शाखा में हुई थी।

6. आरोप के समर्थन में दस्तावेजों और साक्षियों की सूची में, पहले दो साक्षी शाखा प्रबंधक थे, वह व्यक्ति जिसे याचिकाकर्ता और उसकी पत्नी द्वारा हमला किया गया कहा जाता है, साथ ही उप शाखा प्रबंधक भी, दोनों प्रत्यक्षदर्शी थे। चूंकि घटना बैंकिंग घंटों के दौरान हुई कही जाती है, कई ग्राहक भी उपस्थित थे, जिन्होंने हस्तक्षेप किया था, लेकिन उनके नाम प्रबंधन की साक्षियों की सूची में नहीं आते हैं, या इस प्रकार कहें, वे साक्षी जिनकी प्रबंधन ने आरोप के समर्थन में जांच की। जांच अधिकारी ने दो साक्षियों की गवाही और उस दिन की बंद सर्किट टेलीविजन संक्षेप मे सी.सी.टी.वी. कैमरा रिकॉर्डिंग देखकर आरोप को सिद्ध माना, जो प्रारंभिक जांच के दौरान सुरक्षित की गई थीं, जो दो प्रबंधन साक्षियों द्वारा की गई थी, जिन्होंने प्रारंभिक जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की थी।

7. जांच अधिकारी ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी को दिनांक 17.09.2021 की अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप को सिद्ध माना गया। जांच अधिकारी की रिपोर्ट पर विचार करने के

उपरांत, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दिनांक 02.11.2021 का एक आदेश पारित किया, जिसमें प्रथमदृष्ट्या इसे स्वीकार करते हुए, दंड का प्रस्ताव दिया और याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई के लिए आगे का अवसर दिया। उसने 12.11.2021 को याचिकाकर्ता की सुनवाई की तारीख निर्धारित की।

8. इस स्तर पर, याचिकाकर्ता ने क्षेत्रीय श्रम आयुक्त, कानपूर नगर के समक्ष प्रस्तावित दंड के विरुद्ध एक औद्योगिक विवाद उठाने के लिए आवेदन किया। श्रम न्यायालय आयुक्त ने मामले पर ध्यान दिया और बैंक की प्रतिक्रिया मांगी, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि अंततः, उसने अनुशासनात्मक कार्यवाही को आगे बढ़ने और उनके तार्किक निष्कर्ष तक पहुंचने की अनुमति दी। याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा 05.09.2022 को व्यक्तिगत सुनवाई प्रदान की गई, जिसके पश्चात उक्त प्राधिकारी ने अनुशासनात्मक कार्यवाही में अंतिम आदेश पारित करने के लिए क्षेत्रीय श्रम आयुक्त (केंद्रीय) से अनुमति मांगी। श्रम आयुक्त ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी को अंतिम आदेश पारित करने की अनुमति दे दी, उसने दिनांक 22.11.2022 का पहला आक्षेपित आदेश पारित किया, जिसमें याचिकाकर्ता को दोहरे आरोप पर सेवानिवृत्ति लाभों के साथ और आगे की नियुक्ति से किसी अयोग्यता के बिना बैंक की सेवा से अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दंड दिया गया। चार आरोपों पर आरोपित लघु दुराचार के लिए, याचिकाकर्ता को निंदा की गई।

9. याचिकाकर्ता ने उक्त आदेश के विरुद्ध अपीलीय प्राधिकारी, मुंबई में बैंक के उप महाप्रबंधक के समक्ष अपील की। अपीलीय प्राधिकारी ने, दिनांक 21.03.2023 के दूसरे आक्षेपित आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता की अपील को खारिज कर दिया और अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश की पुष्टि की।

10. इस स्तर पर, याचिकाकर्ता ने रिट - ए संख्या 6611/2023 के माध्यम से न्यायालय के समक्ष इन दोनों आदेशों को चुनौती दी। बैंक के विद्वान अधिवक्ता ने एक प्रारंभिक आपत्ति उठाई कि बैंक की स्थापना में द्विपक्षीय निस्तारण की शर्तों के अनुसार पुनर्विलोकन का एक और उपाय उपलब्ध था। इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता को वैधानिक वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के आधार पर रिट याचिका का निस्तारण करने से इनकार कर दिया। याचिका का निस्तारण किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता को उस आदेश की तारीख से दो सप्ताह की अवधि के भीतर दिनांक 21.03.2023 के अपीलीय आदेश के विरुद्ध पुनर्विलोकन प्राथमिकृत करने की आवश्यकता थी। उक्त अंतिम रिट याचिका का दिनांक 02.05.2023 के आदेश द्वारा निर्णय किया गया। याचिकाकर्ता ने तब 11वें द्विपक्षीय निस्तारण दिनांक 11.11.2022 के खंड 45(i) के तहत 12.05.2023 को बैंक के प्रबंध निदेशक और मुख्य कार्यकारी अधिकारी/पुनर्विलोकन प्राधिकारी के समक्ष एक पुनर्विलोकन प्राथमिकृत किया। आक्षेपित आदेशों में से अंतिम आदेश द्वारा, दिनांक 12.05.2023 की पुनर्विलोकन या पुनर्विलोकन याचिका, जैसा कि बैंक ने इसे कहना चुना है, को महाप्रबंधक, मानव संसाधन, जो पुनर्विलोकन प्राधिकारी के रूप में कार्य कर रहे थे, द्वारा खारिज कर दिया गया।

11. आक्षेपित आदेशों से व्यथित होकर, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत यह याचिका संस्थित की गई है।

12. दिनांक 20.07.2023 को एक प्रस्ताव की सूचना जारी की गई थी, और समय के साथ, पक्षकारों ने शपथपत्रों का आदान-प्रदान किया। याचिका को 28.03.2023 को सुनवाई के लिए अंगीकृत किया गया और 06.12.2024 को, निर्णय आरक्षित किया गया।

13. इस याचिका के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश कुमार श्रीवास्तव और प्रत्यर्थी संख्या 1 से 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री विवेक रतन अग्रवाल को सुना गया।

14. दोनों पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा अत्यंत विस्तृत और प्रेरक प्रस्तुतियां की गई हैं, जो उनके तर्कों को प्राधिकारों के साथ मजबूत करती हैं।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश कुमार श्रीवास्तव ने इस बात पर बल दिया है कि नीरज राजा कुमार, शाखा प्रबंधक, जो विवाद की ओर ले जाने वाली घटना में शामिल थे, हालांकि प्रबंधन द्वारा पहले साक्षी के रूप में उद्धृत किए गए थे, जांच अधिकारी के समक्ष कभी जांच नहीं की गई। उप शाखा प्रबंधक की भी जांच नहीं की गई। श्री श्रीवास्तव ने तर्क दिया कि यह वे दो साक्षी थे जो प्रत्यक्षदर्शी थे और वास्तव में, तथ्य के प्रासंगिक साक्षी थे, जो आरोपों को सिद्ध कर सकते थे, लेकिन कभी जांच नहीं की गई। जिन दो साक्षियों की जांच की गई, वे बैंक के अधिकारी थे, जिन्होंने कभी घटना को नहीं देखा। उन्होंने प्रारंभिक जांच की और एक प्रारंभिक जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की। उन्होंने यह सब दूसरों के मुंह से सुना और सीसीटीवी कैमरा रिकॉर्डिंग देखी, जिसे उन्होंने प्रारंभिक जांच रिपोर्ट के साथ संलग्न किया। श्री श्रीवास्तव द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि प्रारंभिक जांच रिपोर्ट को जांच में दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया था, जबकि यह याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप को सिद्ध करने के लिए किसी प्रकार का दस्तावेज नहीं है। यह केवल एक राय और कुछ सामग्री है जो बैंक को दो बैंक अधिकारियों द्वारा बैंक को यह निर्णय लेने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से दी गई थी कि क्या आरोप में कुछ मूल्य था, जहां अनुशासनात्मक कार्यवाही की आवश्यकता थी।

16. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी बल दिया गया है कि प्रारंभिक जांच पर आधारित जांच रिपोर्ट में याचिकाकर्ता और शाखा प्रबंधक दोनों के विरुद्ध कार्रवाई का सुझाव दिया गया था, लेकिन शाखा प्रबंधक के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की गई। विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यह केवल याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही करने में प्रत्यर्थीगण की ओर से अनुचितता और पूर्वाग्रह को दर्शाता है, जहां उनके अपने अधिकारियों की राय थी कि शाखा प्रबंधक और याचिकाकर्ता दोनों के विरुद्ध कार्यवाही की जानी चाहिए। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा [(2010) 2 एससीसी 772]** में उच्चतम न्यायालय के प्राधिकार और इस न्यायालय में **रणवीर सिंह बनाम भारत संघ [2021 (5) एएलजे 457 :एआईआर ऑनलाइन 2021 एएलएल 2121]** के साथ-साथ **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम आदित्य प्रसाद श्रीवास्तव और अन्य[(2017 (2) एडीजे 554 (डीबी) (एलबी)** पर भरोसा किया है।

17. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री विवेक रतन अग्रवाल ने इस बात पर बल दिया है कि प्रबंधन साक्षियों की गवाही याचिकाकर्ता की उपस्थिति में दर्ज की गई थी और उसे जिरह करने का अवसर दिया गया था। दो साक्षियों ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध किया। उसे अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर भी दिया गया, जहां उसने अपनी बात कही। उसकी अपील और पुनर्विलोकन पर भी पूरी तरह से विचार किया गया और तर्कसंगत आदेशों द्वारा निर्णय किया गया। कोई प्रक्रियात्मक त्रुटि नहीं है जिसकी याचिकाकर्ता अनुशासनात्मक कार्यवाही को दूषित करते हुए इंगित कर सकता है। याचिकाकर्ता अवसर से वंचित होने की भी शिकायत नहीं कर सकता। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता यह नहीं कहता है कि उसके विरुद्ध उद्धृत साक्ष्य, अर्थात् दस्तावेज और सीसीटीवी फुटेज जिस पर जांच अधिकारी ने भरोसा किया था, प्रासंगिक नहीं थे। दस्तावेजों या सीसीटीवी फुटेज की वास्तविकता के लिए भी कोई चुनौती नहीं है, जिस पर प्राधिकारियों के निष्कर्ष आधारित हैं।

18. श्री विवेक रतन अग्रवाल द्वारा यह तर्क दिया गया है कि यह स्थापित कानून है कि यदि जांच प्रक्रियात्मक रूप से निष्पक्ष है और अप्रासंगिक साक्ष्य पर विचार करने या सामग्री साक्ष्य पर विचार न करने या विकृत निष्कर्षों द्वारा दूषित नहीं है, तो यह न्यायालय एक अपीलीय न्यायालय के रूप में उनके अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकार में प्रत्यर्थीगण के निर्णय पर निर्णय नहीं दे सकता। उन्होंने प्रवीण कुमार बनाम भारत संघ और अन्य, **भारतीय स्टेट बैंक बनाम राम भास्कर और अन्य [(2011) 10 एससीसी 249]** और **राजस्थान राज्य और अन्य बनाम भूपेंद्र सिंह(2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 1908)** में उच्चतम न्यायालय के प्राधिकारों का संदर्भ दिया है। इसके अलावा, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने हमारे न्यायालय के **यूनियन बैंक ऑफ इंडिया बनाम ब्रह्म पाल सिंह[(2005) एससीसी ऑनलाइन एएलएल 1815]** में एक खंडपीठ के निर्णय पर भरोसा किया है। यह भी तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता जो अनिवार्य रूप से प्रचारित करना चाहता है, वह तथ्यों पर एक विवाद और दंड की मात्रा की वैधता है, जिसके लिए, श्रम न्यायालय या औद्योगिक न्यायाधिकरण का क्षेत्राधिकार आदर्श और उपयुक्त उपाय है, जहां, यदि आवश्यक हो, तो प्रत्यर्थीगण भी साक्ष्य प्रस्तुत कर सकते हैं। इस संबंध में, **उत्तराखंड राज्य और अन्य बनाम श्रीमती सुरेश्वती (2021) 3 एससीसी 108** और **उत्तर प्रदेश राज्य परिवहन निगम बनाम गजाधर नाथ (2022) 3 एससीसी 190** पर भरोसा किया गया है।

19. बैंक के विद्वान अधिवक्ता ने विशेष रूप से तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपों में उनके ग्राहकों की उपस्थिति में बैंक परिसर पर अव्यवस्थित आचरण और अशोभनीय व्यवहार शामिल है। याचिकाकर्ता की अनुशासन की पूर्ण कमी, उच्छृंखल और उपद्रवी आचरण और शारीरिक रूप से हमला करने और अपने वरिष्ठ और एक वरिष्ठ अधिकारी के साथ मारपीट करने में दुर्व्यवहार गंभीर दुराचार का गठन करता है। बैंक की प्रतिष्ठा और छवि को गंभीर रूप से धूमिल किया गया है। वह प्रस्तुत करता है कि बैंकिंग उद्योग अत्यंत संवेदनशील प्रकृति का है और बैंकों को यह सुनिश्चित करना होता है कि उनके संचालन जनता के सर्वोत्तम हित में किए जाएं, जहां कर्मचारियों को अच्छे आचरण और अनुशासन को बनाए रखना होता है। उन्हें शाखा में

शिष्टाचार दिखाना होता है। कोई भी संगठन, विशेष रूप से, एक बैंक ठीक से और प्रभावी ढंग से कार्य नहीं कर सकता है यदि उसके कर्मचारी अनुशासन और अच्छे आचरण के मानदंडों का पालन नहीं करते हैं।

20. अंत में, यह प्रस्तुत किया गया है कि दंड की पर्याप्तता या प्रचुरता का निर्णय नियोक्ताओं को करना है, न कि इस न्यायालय को। वह प्रस्तुत करता है कि यह न्यायालय दंड की मात्रा के संबंध में विवेक पर अपील में नहीं बैठ सकता। मात्रा के मामलों में न्यायिक समीक्षा का सीमित दायरा उन मामलों तक सीमित है जहां लगाया गया दंड न्यायिक विवेक के लिए चौंकाने वाला अनुपातहीन पाया जाता है, जो यहां बिल्कुल भी मामला नहीं है। अपनी प्रस्तुतियों के अंतिम अंग के संबंध में, श्री अग्रवाल ने इस न्यायालय के **योगेंद्र कुमार बनाम भारत संघ और अन्य 2018 (6) एडीजे 645 (डीबी)** में खंडपीठ के निर्णयों और **मुख्य कार्यकारी अधिकारी, कृष्णा जिला सहकारी केंद्रीय बैंक लिमिटेड और अन्य बनाम के. हनुमंथ राव और अन्य (2017) 2 एससीसी 528** में उच्चतम न्यायालय के मार्गदर्शन का सहारा लिया है।

21. हमने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और अभिलेख का अवलोकन किया है। यह सत्य है कि यह न्यायालय अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्षों पर अपील में नहीं बैठ सकता, और यहां, एक पुनर्विलोकन प्राधिकारी भी है। हम अभिलेख पर सामग्री पर, क्या प्राथमिक निर्णय निर्माताओं द्वारा गठित राय सही थी, यह पता लगाने के लिए साक्ष्य की प्रशंसा करने की शक्तियों को अपने हाथ में नहीं ले सकते। हम हस्तक्षेप कर सकते हैं यदि सामग्री पर दी गई राय विकृत है, अप्रासंगिक साक्ष्य पर आधारित है या सामग्री साक्ष्य की अनदेखी कर रही है। हम हस्तक्षेप कर सकते हैं यदि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है, जिससे याचिकाकर्ता को पूर्वाग्रह हो। यह भी इस न्यायालय के लिए यह देखने के लिए खुला है कि क्या अपनाई गई प्रक्रिया निष्पक्ष, न्यायसंगत और उचित थी, और विशेष रूप से, अनुशासनात्मक जांच आयोजित करने के लिए मानक प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं के मूल सिद्धांतों के अनुरूप थी।

22. सबसे पहले, यह याद रखना होगा कि किसी भी अनुशासनात्मक कार्यवाही में, कर्मचारी के विरुद्ध लाए गए आरोप(पों) को सिद्ध करने का भार स्थापना या प्रबंधन पर होता है, जैसा कि बैंक ने यहां स्वयं को कहना चुना है। यदि कर्मचारी अपने बचाव में कोई साक्ष्य प्रस्तुत करने में विफल रहता है, तो इससे आरोप का प्रमाण नहीं होगा, जिसका भार स्थापना के कंधों पर होता है। यह बिल्कुल अलग बात है कि एक बार स्थापना ने अपना भार निर्वहन कर दिया, तो यह कर्मचारी के लिए अपने बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत करना है, ताकि जांच अधिकारी अंततः यह आकलन कर सके कि क्या आरोप संभाव्यता की प्रबलता के मानक द्वारा सिद्ध है या नहीं। यह वह मानक है जिसके द्वारा एक विभागीय कार्यवाही में आरोप(पों) को स्थापना द्वारा सिद्ध करना होता है। यह अनुशासनात्मक कार्यवाही को नियंत्रित करने वाले कानून में अच्छी तरह से स्थापित एक सुलभ सिद्धांत है कि एक विभागीय जांच के आयोजन में, जिससे एक प्रमुख दंड लगाया जा सकता है, यदि जांच के विषय आरोप(पों) को सिद्ध किया जाना है, तो यह अनिवार्य है कि स्थापना को न केवल आरोप(पों) के समर्थन में दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करना चाहिए, बल्कि मौखिक साक्ष्य या साक्षी(यों) भी प्रस्तुत करना चाहिए।

23. इस मामले में एक बहुत ही विषम विशेषता है, जो विचार की आवश्यकता है। याचिकाकर्ता के विरुद्ध संपूर्ण आरोप शाखा प्रबंधक के साथ उसकी पत्नी के साथ मिलकर बैंकिंग घंटों के दौरान, जबकि ग्राहक आसपास थे, दुर्व्यवहार के एक मामले पर आधारित है। याचिकाकर्ता का बचाव, सारांश में, आरोप के लिए यह है कि उसकी पत्नी ने बैंक में एक ऋण के लिए आवेदन किया था, जो दिन में पहले स्वीकृत किया गया था। उसे बाद में दोपहर के घंटों में शाखा प्रबंधक द्वारा बुलाया गया था, और वह बैंक में आई, जहां याचिकाकर्ता काम कर रहा था। उसने शाखा प्रबंधक को खोजा, जो अपने केबिन में नहीं था। उसे एक अन्य स्थान पर निर्देशित किया गया, बैंक के किसी दूरस्थ कोने में, जहां प्रबंधक बैठे थे और अपना काम कर रहे थे। याचिकाकर्ता अपने केबिन या डेस्क पर था, अपने कर्तव्यों को कर रहा था। याचिकाकर्ता के अनुसार, शाखा प्रबंधक ने याचिकाकर्ता की पत्नी के साथ दुर्व्यवहार किया, जिसने विरोध किया और प्रबंधक पर चिल्लाई, जिससे याचिकाकर्ता घटना के स्थल पर पहुंचा। वहां, वह आरोप लगाता है कि प्रबंधक उसकी पत्नी पर हमला कर रहा था, और वह अपनी पत्नी के बचाव के लिए दौड़ा, जिसे वह कहता है, शाखा प्रबंधक द्वारा छेड़छाड़ की गई थी। घटना स्टाफ, याचिकाकर्ता, स्वयं शाखा प्रबंधक और बैंक के उप शाखा प्रबंधक की उपस्थिति में हुई। कुछ ग्राहक भी स्थिति को विसर्जित करने के लिए आगे आए। इसलिए, आरोप अनिवार्य रूप से उन लोगों की नेत्र गवाही पर टिका है जो उपस्थित थे, जब विवाद हुआ था।

24. कानून और निष्पक्ष प्रक्रिया यह अपेक्षा करेगी कि आरोप को स्थापना द्वारा, शाखा प्रबंधक को अपने साक्षी के रूप में प्रस्तुत करके सिद्ध किया जाए, जो प्रत्यर्थीगण के मामले के अनुसार, घटना का शिकार था। इसके अलावा, उप शाखा प्रबंधक, जिन्होंने घटना को देखा था, भी एक बहुत ही स्वाभाविक साक्षी होंगे। इसके अलावा, स्टाफ के अन्य सदस्य हो सकते हैं, और हो सकता है, ग्राहक, जिन्हें प्रबंधन आरोप को सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत कर सकता है, अर्थात् वे पुरुष और महिलाएं जिन्होंने विवाद को देखा था। आरोप-पत्र में, बैंक ने शाखा प्रबंधक और उप शाखा प्रबंधक को अपने पहले और दूसरे साक्षी के रूप में उद्धृत किया, लेकिन जांच के दौरान उन्हें कभी नहीं बुलाया। इसके बजाय, बैंक के अधिकारियों को, जिन्होंने प्रारंभिक जांच की थी, और घटनास्थल पर उपस्थित नहीं थे, न केवल प्रारंभिक जांच रिपोर्ट को सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किया गया, जिसे साक्ष्य में एक दस्तावेज के रूप में उपयोग किया गया था, बल्कि प्रारंभिक जांच के दौरान उन्होंने जो तथ्य पाए थे, उनकी गवाही देने के लिए भी। स्वीकार रूप से, ये दो साक्षी, अरुण कुमार गुप्ता, तब वरिष्ठ प्रबंधक और दिनकर मिश्रा, तब प्रबंधक (सुरक्षा), MW-1 और MW-2, क्रमशः, जो बैंक के क्षेत्रीय कार्यालय में तैनात थे, ने कभी घटना को नहीं देखा। निस्संदेह, उन्होंने प्रारंभिक जांच की थी और प्रारंभिक जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। प्रारंभिक जांच का उद्देश्य हमेशा यह पता लगाना है कि क्या एक कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकार में कार्यवाही योग्य मामला बनता है। जब इस प्रकार की जांच की जाती है, तो किसी को भी भाग लेने या साक्षी(यों) की जिरह करने का अधिकार नहीं होता है जिनके बयान प्रारंभिक जांच के दौरान लिए जाते हैं। यह एक अभ्यास है जो याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप का परीक्षण करने के लिए नहीं किया जाता है, बल्कि यह निर्णय लेने के लिए किया जाता है कि क्या कार्यवाही योग्य मामला बनता है। इसलिए, एक प्रारंभिक जांच रिपोर्ट, भले ही इसे एक दस्तावेज के रूप में साक्ष्य में रखा जाए और इसे आयोजित करने वालों द्वारा सिद्ध

किया जाए, प्रासंगिक सामग्री नहीं है, जिसके आधार पर, आरोप(पों) को सिद्ध किया जा सकता है। यह विशेष रूप से वर्तमान जैसे मामले में है, जिसमें सार्वजनिक दृष्टि में दुर्व्यवहार और विवाद के आरोप शामिल हैं।

25. इसी प्रकार, दो अधिकारियों की गवाही, जिन्होंने प्रारंभिक जांच की, बिल्कुल अप्रासंगिक है। उन्होंने कभी घटना को नहीं देखा। उन्होंने केवल इसके बारे में दूसरों से सुना और सीसीटीवी कैमरा रिकॉर्डिंग देखी। इसलिए, आरोप का गठन करने वाले तथ्यों की पुष्टि पाने के लिए इन दो साक्षियों के साक्ष्य पर रखा गया भरोसा, वास्तव में, अप्रासंगिक साक्ष्य या सामग्री पर रखा गया भरोसा है, जिस पर विभागीय जांच के दौरान विचार नहीं किया जाना चाहिए था। इस प्रकार की घटना को सिद्ध करना था, हो सकता है, एक साक्षी की एकमात्र गवाही से जिसने यह सब देखा था। यहां तक कि शाखा प्रबंधक भी, जो बैंक के अनुसार, घटना का शिकार था, आरोप को स्थापित करने के लिए पर्याप्त अच्छा हो सकता था, निस्संदेह, याचिकाकर्ता के उसकी जिरह करने के अधिकार के अधीन। यदि एक या अधिक साक्षी प्रस्तुत किए जाते, जैसा कि आरोप-पत्र में प्रस्तावित किया गया था, कहें बैंक का उप शाखा प्रबंधक या कोई अन्य व्यक्ति, तो विश्वसनीय सामग्री होती, और जांच, उस स्थिति में, निष्पक्ष होती, निस्संदेह, याचिकाकर्ता के उक्त साक्षी(यों) की जिरह करने के अधिकार के अधीन, जिन्होंने विवाद आदि की घटना को घटित होते देखा था। कोई सांसारिक कारण नहीं है कि क्यों, शाखा प्रबंधक को एक साक्षी के रूप में उद्धृत करने के बाद और उप शाखा प्रबंधक को भी, न केवल इन दो पुरुषों को, बल्कि किसी अन्य को जिसने वास्तव में घटना को देखा था, बैंक की ओर से प्रस्तुत नहीं किया गया, जो याचिकाकर्ता के अपने वरिष्ठ के साथ दुर्व्यवहार, अपनी पत्नी के साथ मिलकर उसका अपमान और उस पर हमला करने के आरोप को सिद्ध करने का भार वहन करता था। बल्कि, इन साक्षियों को रोकना और किसी भी प्रत्यक्षदर्शी को प्रस्तुत न करना, याचिकाकर्ता के विरुद्ध जांच को अनिवार्य रूप से अनुचित और इसके मुख पर संदिग्ध बनाता है। प्रारंभिक जांच रिपोर्ट के साथ प्रस्तुत सीसीटीवी फुटेज पर रखा गया भरोसा, जो प्रारंभिक जांच करने वाले दो प्रबंधन साक्षियों द्वारा सिद्ध किया गया था, प्रासंगिक साक्ष्य हो सकता है, लेकिन यह आरोप को पूरी तरह से कभी सिद्ध नहीं कर सकता था। एक कैमरे की मृत आंख अक्सर महत्वपूर्ण चीजें प्रकट करती है, लेकिन पूरी कहानी नहीं बताती। यदि कोई अन्य साक्ष्य नहीं था और किसी ने भी घटना को नहीं देखा था, तो सीसीटीवी फुटेज पर भरोसा करने के लिए पर्याप्त अच्छा साक्ष्य हो सकता था, या कम से कम, याचिकाकर्ता पर सीसीटीवी फुटेज में घटित होने वाली घटनाओं को समझाने का भार स्थानांतरित करने के लिए। यहां, ऐसा मामला नहीं है।

26. प्रत्यक्षदर्शी हैं, अच्छी संख्या में, जिन्होंने घटना को देखा और जो कुछ भी सीसीटीवी फुटेज में देखा गया वह किस कारण से हुआ, इसे समझा सकते थे। यह संभव है कि जब याचिकाकर्ता की पत्नी ने परिसर के अंदर अपनी चप्पल से शाखा प्रबंधक को पीटा और याचिकाकर्ता उसकी तरफ दौड़ा, प्रबंधक पर हमला करते हुए, जैसा कि पुनर्विलोकन प्राधिकारी के आदेश में टिप्पणी की गई है, एक मिनट पहले शाखा प्रबंधक द्वारा याचिकाकर्ता की पत्नी को कुछ आपत्तिजनक कहा गया था। सीसीटीवी कैमरे ने किसी भी ध्वनि को कैप्चर नहीं किया और तुरंत पहले क्या हुआ था, इसका उत्तर देने के लिए कोई बुद्धि नहीं थी। जांच अधिकारी ने निम्नलिखित टिप्पणी करने के लिए सीसीटीवी फुटेज पर अत्यधिक भरोसा किया है:

लेकिन सीसीटीवी फुटेज में, यह देखा गया है कि श्री पृथ्वी राज सिंह के चेहरे के भाव बहुत आराम से या सामान्य दिखाई दे रहे थे जबकि उनकी पत्नी लड़ाई में शामिल थी या श्री नीरज राजा कुमार द्वारा पकड़ी गई थी। उसके चेहरे पर कोई जल्दबाजी या चिंता दिखाई नहीं दी। इन सभी विषमताओं के बावजूद और यहां तक कि श्री पृथ्वी राज सिंह ने पहले नकद केबिन का दरवाजा बंद किया फिर उसने बहुत आराम से इधर-उधर देखा और पुष्टि की कि कोई उसे नहीं देख रहा है, तत्पश्चात वह पीछे के स्थान में प्रवेश किया और बाद में उनके बीच (श्री पृथ्वी राज सिंह, सुश्री प्रतिमा सिंह और श्री नीरज कुमार राजा) लड़ाई शुरू हो गई।

27. जांच अधिकारी द्वारा जांच रिपोर्ट में यह भी टिप्पणी की गई है:

जांच अधिकारी को प्रस्तुत अपने लिखित बयान में सुश्री प्रतिमा सिंह ने भी सूचित किया कि श्री नीरज कुमार राजा ने उनका हाथ पकड़ा और कुछ उपकार/उपहार की मांग की लेकिन सीसीटीवी फुटेज में वही नहीं देखा गया वही MEX.03 से भी स्पष्ट है। सीसीटीवी फुटेज की जांच पर यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि सुश्री प्रतिमा सिंह श्री धीरज राजा कुमार की ओर बढ़ीं।

28. जांच अधिकारी ने हर समय आरोप की सच्चाई को खोजने का प्रयास किया है और वास्तव में, सीसीटीवी फुटेज और प्रारंभिक जांच के दौरान बैंक के दो अधिकारियों द्वारा दर्ज किए गए बयानों को देखकर याचिकाकर्ता के विरुद्ध दोष का निष्कर्ष लौटाया है, जिन्होंने इसे आयोजित किया। सीसीटीवी फुटेज, स्वयं, पूरी कहानी नहीं बता सकता था और प्रारंभिक जांच के दौरान दर्ज किए गए बयान विभागीय जांच के दौरान निष्कर्ष दर्ज करने के उद्देश्य से बिल्कुल अप्रासंगिक थे, भले ही इन्हें प्रारंभिक जांच रिपोर्ट या जांच रिपोर्ट लिखने वाले दो अधिकारियों द्वारा सिद्ध किया गया हो। बाद के निष्कर्ष का कारण यह है कि प्रारंभिक जांच के दौरान दिए गए बयान कभी भी विभागीय जांच में उपयोग की जाने वाली सामग्री नहीं हैं, और दूसरे पक्ष द्वारा जिरह द्वारा कभी परीक्षण या सत्यापित नहीं किए जाते हैं। यदि एक एकमात्र साक्षी, जिसने घटना को देखा था, जैसा कि पहले ही कहा गया है, प्रस्तुत किया जाता, विधिवत जिरह की जाती, और फिर गवाही की सच्चाई या अन्यथा को समझने के लिए सीसीटीवी फुटेज का विश्लेषण किया जाता, तो स्थापना पर भार अच्छी तरह से निर्वहन हो सकता था। यहां, इस मामले में, जांच अधिकारी के संपूर्ण निष्कर्ष प्रारंभिक जांच के दौरान एकत्र किए गए दो साक्षियों की जानकारी पर आधारित हैं, जो विभागीय जांच में बिल्कुल अप्रासंगिक है, सीसीटीवी फुटेज के अलावा। उक्त साक्ष्य निश्चित रूप से याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप को सिद्ध करने के लिए प्रासंगिक नहीं है, इसकी प्रकृति और इसके बारे में उपलब्ध साक्ष्य को देखते हुए।

29. यह सिद्धांत, कि अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान प्रारंभिक जांच पर कोई भरोसा नहीं रखा जा सकता है, **निर्मला जे. झाला बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2013) 4 एससीसी 301** में उच्चतम न्यायालय के विचार के लिए आया। **निर्मला जे. झाला** (उपरोक्त) में जिस पृष्ठभूमि में मुद्दा उठा, उसके तथ्यों का उनके न्यायालय के निर्णय की रिपोर्ट में स्पष्ट उल्लेख मिलता है, जिसे इसे शब्दशः उद्धृत करके सबसे अच्छा सारांशित किया जा सकता है:

2. इस अपील को जन्म देने वाले तथ्य और परिस्थितियां हैं: कि अपीलकर्ता 1978 में गुजरात राज्य न्यायिक सेवा में शामिल हुई थी, और बाद में 1992 में सिविल जज (वरिष्ठ प्रभाग) के रूप में पदोन्नत हुई। उसे अहमदाबाद में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट (ग्रामीण) के रूप में तैनात किया गया था। दिसंबर 1991 में, वह सीबीआई मामला संख्या 5/1991 में एक गौतम घनश्याम जानी की सार्वजनिक धन के दुर्विनियोजन और गबन के अपराध के लिए सुनवाई कर रही थी। अभियुक्त ने 19-8-1993 को सीबीआई के पास अपीलकर्ता के विरुद्ध शिकायत दर्ज की, यह आरोप लगाते हुए कि उसने 17-8-1993 को सी.बी. गज्जर, अधिवक्ता के माध्यम से, उसके पक्ष में आदेश पारित करने के लिए अवैध पारिश्रमिक के रूप में 20,000 रुपये की मांग की थी। चूंकि शिकायतकर्ता के लिए उक्त राशि का भुगतान करना संभव नहीं था, अपीलकर्ता उसी को किस्तों में स्वीकार करने के लिए सहमत हो गई थी, और उक्त शिकायतकर्ता के उक्त राशि को आंशिक रूप से व्यवस्थित करने के प्रयासों को सुविधाजनक बनाने के लिए, उसने स्थगन भी दिया था।

3. सीबीआई के पास दर्ज की गई उक्त शिकायत को उच्च न्यायालय को संदर्भित किया गया था और इसके अनुसरण में, अपीलकर्ता के विरुद्ध एक प्रारंभिक जांच की गई जिसमें सी.बी. गज्जर और जी.जी. जानी सहित विभिन्न व्यक्तियों के बयान दर्ज किए गए। न्यायालय ने तब दिनांक 21-1-1994 के आदेश द्वारा अपीलकर्ता को निलंबित कर दिया, और एक नियमित जांच का निर्देश दिया, श्री एम.सी. पटेल, अतिरिक्त सिविल जज, सिटी सिविल कोर्ट, अहमदाबाद को जांच अधिकारी के रूप में नियुक्त किया।

4. दिनांक 6-8-1994 का एक आरोप-पत्र, जिसमें 12 आरोप शामिल थे, अपीलकर्ता को दिया गया। मुख्य आरोपों में से एक था, सी.बी. गज्जर, अधिवक्ता के माध्यम से जी.जी. जानी से 20,000 रुपये के अवैध पारिश्रमिक की मांग, शिकायतकर्ता-अभियुक्त का पक्ष लेने के बदले में। एक अन्य प्रासंगिक आरोप यह था कि "मामा" के रूप में जाना जाने वाला एक व्यक्ति वादियों के बीच, उसके निवास पर आता था, उसके साथ न्यायालय जाता था, और उसकी ओर से वादियों से पैसे एकत्र करता था और इस प्रकार, उसने भ्रष्ट प्रथाओं में लिप्त था।

5. जांच के दौरान, जी.जी. जानी, सी.बी. गज्जर, पी.के. पंचोली और कुछ अन्य साक्षियों की विभाग द्वारा जांच की गई और उसके बचाव में, अपीलकर्ता ने स्वयं की जांच की, उसके विरुद्ध लगाए गए सभी आरोपों से इनकार करते हुए। जांच अधिकारी ने 24-10-1997 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें अपीलकर्ता को पहले आरोप का दोषी और दूसरे आरोप का आंशिक रूप से दोषी ठहराया गया अर्थात् इस हद तक कि "मामा" नाम का एक व्यक्ति उसे काफी बार मिलने आता था। हालांकि, यह साबित नहीं किया जा सका कि उसने अपीलकर्ता के साथ अपने जुड़ाव का कभी दुरुपयोग किया था। अन्य सभी आरोप निराधार पाए गए।

6. जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के अनुसरण में, मामले की उच्च न्यायालय द्वारा प्रशासनिक पक्ष पर जांच की गई, और विभिन्न कानूनी आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद अर्थात् अपीलकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी करना और उसके उत्तर पर विचार करना, न्यायालय ने दिनांक 12-10-1998 के संकल्प द्वारा,

राज्य को सिफारिश की कि अपीलकर्ता पहले आरोप की दोषी है, और इस प्रकार, अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दंड उस पर लगाया जाए। सरकार ने इसे स्वीकार कर लिया और 11-12-1998 को अपीलकर्ता को अनिवार्य सेवानिवृत्ति देते हुए एक अधिसूचना जारी की।

7. व्यथित होकर, अपीलकर्ता ने दंड के उक्त आदेश को, एक विशेष सिविल आवेदन संख्या 5759/1999 दाखिल करके उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी, इस आधार पर कि जांच अधिकारी के निष्कर्ष विकृत थे और किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं थे। हालांकि, उक्त सिविल आवेदन को उच्च न्यायालय द्वारा, दिनांक 25-8-2004 [(2004) 3 गुज एलआर 2142] के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। इसलिए, यह अपील।

30. इन तथ्यों के संदर्भ में और प्रारंभिक जांच के दौरान दर्ज किए गए बयानों और सामग्री पर रखे गए भरोसे के बारे में हाथ में मुद्दे पर, **निर्मला जे. झाला** में यह टिप्पणी की गई थी:

41. उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, हमें इस मामले में शामिल सबसे प्रासंगिक मुद्दे पर विचार करना है। स्वीकार रूप से, जांच अधिकारी, प्रशासनिक पक्ष पर उच्च न्यायालय के साथ-साथ न्यायिक पक्ष पर, ने सतर्कता अधिकारी के समक्ष प्रारंभिक जांच में श्री सी.बी. गज्जर, अधिवक्ता, श्री जी.जी. जानी, शिकायतकर्ता और श्री पी.के. पंचोली, अधिवक्ता द्वारा दिए गए बयान पर बहुत अधिक भरोसा किया था। इसलिए, प्रश्न यह उठता है कि क्या उनमें से किसी के लिए भी प्रारंभिक जांच में दर्ज किए गए उनके बयानों पर विचार करना अनुमेय था, जो अपीलकर्ता की पीठ पीछे आयोजित की गई थी, और जिसके लिए उसे उनमें से किसी की भी जिरह करने का कोई अवसर नहीं था।

42. इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने अमलेंदु घोष बनाम नार्थ ईस्टर्न रेलवे [एआईआर 1960 एससी 992] में, यह माना कि किसी विशेष कथित दुराचार के संबंध में प्रारंभिक जांच आयोजित करने का उद्देश्य केवल एक विशेष तथ्य का पता लगाने और प्रथमदृष्ट्या, यह जानने के लिए है कि क्या कथित दुराचार किया गया है और प्रारंभिक जांच में दर्ज निष्कर्षों के आधार पर, दंड का कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। इसका उपयोग केवल यह देखने के लिए किया जा सकता है कि क्या अपराधी के विरुद्ध एक नियमित अनुशासनात्मक कार्यवाही आयोजित करने की आवश्यकता है।

43. इसी तरह चंपाकलाल चिमनलाल शाह बनाम भारत संघ [एआईआर 1964 एससी 1854] में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने समान दृष्टिकोण अपनाते हुए माना कि प्रारंभिक जांच को नियमित जांच के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए। प्रारंभिक जांच भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) के प्रावधानों द्वारा शासित नहीं है। प्रारंभिक जांच एकपक्षीय रूप से आयोजित की जा सकती है, क्योंकि यह केवल सरकार की संतुष्टि के लिए है, हालांकि आमतौर पर निष्पक्षता के लिए, ऐसी जांच में भी सरकारी कर्मचारी से स्पष्टीकरण

मांगा जा सकता है। लेकिन उस स्तर पर, उसे सुनवाई का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि जांच केवल सरकार की संतुष्टि के लिए है कि क्या एक नियमित जांच आयोजित की जानी चाहिए। न्यायालय ने आगे निम्नानुसार माना: (एआईआर पृ. 1862, पैरा 12)

"12.... इसलिए दो जांचों के बीच कोई भ्रम नहीं होना चाहिए और यह केवल तभी है जब सरकार सरकारी कर्मचारी पर अनुच्छेद 311 में इंगित तीन प्रमुख दंडों में से एक लगाने के उद्देश्य से एक विभागीय जांच आयोजित करने के लिए आगे बढ़ती है कि सरकारी कर्मचारी उस अनुच्छेद [, न उससे पहले] की सुरक्षा का हकदार होता है।" (महत्व सनन्विष्ट)

(भारत सरकार बनाम तारक नाथ घोष [(1971) 1 एससीसी 734 : एआईआर 1971 एससी 823 भी देखें। संपादक: एससीसी में पैरा 10 से 14 देखें जहां प्रारंभिक और नियमित जांच के बीच भेद पर चर्चा की गई है। तारक नाथ घोष को हालांकि पी.आर. नायक बनाम भारत संघ, (1972) 1 एससीसी 332 और टी.वी. नटराज बनाम कर्नाटक राज्य, (1994) 2 एससीसी 32 में अन्य बिंदुओं पर खारिज कर दिया गया है।]।)

44. नारायण दत्तात्रय रामतीर्थकर बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1997) 1 एससीसी 299 : 1997 एससीसी (L&S) 152 : AIR 1997 SC 2148] में इस न्यायालय ने मुद्दे से निपटा और निम्नानुसार माना:
"... एक प्रारंभिक जांच का आरोप-पत्र जारी करने के बाद आयोजित जांच से कोई लेना-देना नहीं है। प्रारंभिक जांच केवल यह पता लगाने के लिए है कि क्या अपराधी के विरुद्ध अनुशासनात्मक जांच शुरू की जानी चाहिए। एक बार नियमों के तहत नियमित जांच आयोजित की जाती है, तो प्रारंभिक जांच अपना महत्व खो देती है और, क्या प्रारंभिक जांच सख्ती से कानून के अनुसार आयोजित की गई थी या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करते हुए या नहीं, इसका कोई परिणाम नहीं रहता।" (महत्व सनन्विष्ट)

45. उपरोक्त के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि प्रारंभिक जांच में दर्ज किए गए साक्ष्य को नियमित जांच में उपयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि अपराधी इससे जुड़ा नहीं होता है, और ऐसी जांच में जांच किए गए व्यक्तियों की जिरह करने का अवसर नहीं दिया जाता है। ऐसे साक्ष्य का उपयोग करना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होगा।

46. अयूबखान नूरखान पठान बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2013) 4 एससीसी 465 : एआईआर 2013 एससी 58] में इस न्यायालय ने पहले के कई निर्णयों पर भरोसा करते हुए माना कि जिरह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का एक अभिन्न अंग है, और एक व्यक्ति की पीठ पीछे दर्ज किया गया बयान जिसमें अपराधी को ऐसे व्यक्तियों की जिरह करने का कोई अवसर नहीं था, उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

47. प्रारंभिक जांच केवल एक प्रथमदृष्ट्या दृष्टिकोण लेने के लिए उपयोगी हो सकती है, कि क्या एक कर्मचारी के विरुद्ध लगाए गए आरोप में कुछ तत्व हो सकता है जो एक नियमित जांच की आवश्यकता हो सकती है।

31. हमारी राय है कि इस प्रकार की अप्रासंगिक सामग्री पर, जांच अधिकारी, अनुशासनात्मक प्राधिकारी और पुनर्विलोकन प्राधिकारी याचिकाकर्ता को कभी दोषी नहीं पा सकते थे। याचिकाकर्ता को दोषी पाने के लिए, जैसा कि पहले ही कहा गया है, आरोप के विषय की घटना के बारे में कुछ प्रासंगिक साक्ष्य होना चाहिए था, जो अन्यथा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था, और वास्तव में, आरोप-पत्र में उद्धृत किया गया था, शुरू में, शाखा प्रबंधक और उप शाखा प्रबंधक को साक्षी के रूप में उल्लेख करके, लेकिन प्रबंधन द्वारा कभी प्रस्तुत नहीं किया गया। आरोप को सिद्ध करने का भार, निस्संदेह, हमेशा स्थापना पर था, जिसे, उन्होंने इस मामले में प्रासंगिक सामग्री या साक्ष्य प्रस्तुत करके बिल्कुल भी निर्वहन नहीं किया। तथ्य विशेष रूप से यहां महत्व प्राप्त करता है, क्योंकि, याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपों की प्रकृति सामने से यह दर्शाती है कि आरोप को स्थापना द्वारा आश्वस्त रूप से सिद्ध किया जाना था। कारण यह है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप स्वाभाविक रूप से उस तरह से नहीं हो सकते थे जिस तरह से प्रत्यर्थीगण ने उन पर विश्वास किया है। स्वीकार रूप से, याचिकाकर्ता की पत्नी को पहले ही दिन में एक डेयरी ऋण स्वीकृत किया गया था, और उसके या याचिकाकर्ता के लिए शाखा प्रबंधक या बैंक के विरुद्ध कोई शिकायत रखने का कोई कारण नहीं था। प्रत्यक्षतः, उसके मामले के अनुसार, शाखा प्रबंधक द्वारा उसे बैंक में वापस बुलाया गया था, और यह तब है जब शाखा प्रबंधक ने कथित तौर पर बैंक के एक दूरस्थ कोने में, अपने केबिन से दूर, उसके साथ दुर्व्यवहार किया। तार्किक रूप से, इन परिस्थितियों में, यह याचिकाकर्ता या उसकी पत्नी के लिए, किसी अच्छे कारण या उकसावे के बिना, शाखा प्रबंधक का अपमान करने, अपमानित करने, हमला करने या दुर्व्यवहार करने की प्रेरणा का एक स्पष्ट मामला नहीं है। इन तथ्यों को ध्यान में रखना था और फिर बैंक द्वारा आरोप को सिद्ध करना था, शाखा प्रबंधक या किसी अन्य प्रत्यक्षदर्शी की जांच करके, जिसने यह सब घटित होते देखा। दुर्भाग्य से, यह कभी नहीं किया गया और आरोप को अप्रासंगिक, काटी गई और तुच्छ सामग्री के आधार पर सिद्ध माना गया, जिसे आरोप को बनाए रखने के लिए कभी भी विचार में नहीं लिया जा सकता था। आरोप की प्रकृति और इसके बारे में उपलब्ध सामग्री को देखते हुए, प्रारंभिक जांच रिपोर्ट और उसमें दर्ज किए गए बयानों पर रखा गया भरोसा भी जांच अधिकारी के लिए अपनाई गई कार्रवाई का एक स्पष्ट रूप से अवैध कार्यवाही है,

32. बैंक की ओर से की गई अंतिम प्रस्तुति यह है कि यदि शाखा प्रबंधक और उप शाखा प्रबंधक को स्थापना द्वारा नहीं बुलाया गया, तो याचिकाकर्ता उन्हें अपने बचाव में बुला सकता था। उक्त तर्क को अस्वीकार करने के लिए कहा जाता है। कारण यह है कि, यह चरण स्थापना द्वारा आरोप को सिद्ध करने के लिए अपने भार को संतोषजनक ढंग से निर्वहन करने के बाद आएगा, जिससे याचिकाकर्ता को अपने बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत करने की आवश्यकता होगी। इस न्यायालय की सुविचारित राय में, यह चरण इस मामले में कभी नहीं आया।

33. परिस्थितियों में, हालांकि आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं हो सकता, हमारा विचार है कि बैंक को एक अवसर दिया जाना चाहिए, यदि वे ऐसा चुनते हैं, तो याचिकाकर्ता के विरुद्ध आयोजित की जाने वाली जांच में उसके विरुद्ध मामले को सिद्ध करके नए सिरे से आगे बढ़ना चाहिए, इस निर्णय में टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए। आरोप-पत्र और याचिकाकर्ता का उत्तर, निस्संदेह, खड़ा रहेगा और जांच, यदि नए सिरे से आगे बढ़ाई जाती है, तो उस चरण से आगे बढ़ेगी।

34. परिणामस्वरूप, यह याचिका **सफल** होती है और **अनुमत** होती है। मुख्य प्रबंधक, यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, वाराणसी, उप महाप्रबंधक (ईआरडी), यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई और महाप्रबंधक (मानव संसाधन), यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई द्वारा क्रमशः दिनांक 22.11.2022, 21.03.2023 और 12.05.2023 को पारित आक्षेपित आदेशों को एतदद्वारा **निरस्त किया जाता है**। याचिकाकर्ता को अविलंब सेवा में बहाल किया जाएगा और उसे नियमित रूप से उसका वर्तमान वेतन भुगतान किया जाएगा। प्रत्यर्थीगण के लिए यह खुला रहेगा कि वे याचिकाकर्ता के विरुद्ध पहले से ही जारी किए गए आरोप-पत्र और उसके उत्तर के आधार पर नए सिरे से कार्यवाही करें, निस्संदेह, इस निर्णय में मार्गदर्शन को ध्यान में रखते हुए प्रासंगिक साक्ष्य पर विचार करते हुए। वेतन के बकाया का प्रश्न अनुशासनात्मक कार्यवाही में घटना पर निर्भर करेगा। हालांकि, यदि प्रत्यर्थीगण याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई कार्यवाही करने का चुनाव नहीं करते हैं, तो याचिकाकर्ता उस अवधि के लिए अपने परिलब्धियों के 50% का हकदार होगा जिसके लिए वह सेवा से बाहर रहा है।

35. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

36. इस आदेश को इस न्यायालय के विद्वान महापंजीयक द्वारा बॉम्बे उच्च न्यायालय के विद्वान महापंजीयक के माध्यम से उप महाप्रबंधक (ईआरडी), यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई और महाप्रबंधक (मानव संसाधन), यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई को संसूचित किया जाए। इस आदेश को पंजीयक (अनुपालन) द्वारा विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, वाराणसी के माध्यम से मुख्य प्रबंधक, यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, वाराणसी को भी संसूचित किया जाए।

(2025) 5 ILRA 1438

मूल अधिकारिता सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति दोनाडी रमेश

रिट - ए संख्या - 19427 सन् 2023

सम्बद्ध

रिट - ए संख्या - 16348/2024 ,रिट - ए संख्या - 21023/2023

प्रो. (डॉ.) मुजाहिद बेग ...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: कुनाल शाह, संकल्प नारायण, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: ए.एस.जी.आई., धनंजय अवस्थी, शशांक शेखर सिंह, श्यामल नारायण, सिद्धार्थ खरे, सिद्धार्थ नंदन, सैयद इमरान इब्राहीम, सैयद शहनवाज शाह, विवेक कुमार सिंह

सेवा विधि - अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अधिनियम, 1920 - धारा 19(3) एवं 22 - विश्वविद्यालय का विधान - विधान 2(1) - कुलपति का पद - नियुक्ति - कार्यकारी परिषद द्वारा उम्मीदवारों का चयन एवं विश्वविद्यालय न्यायालय को अनुशंसा।

न्यायालय ने कहा कि–

- कार्यकारी परिषद को उपलब्ध उम्मीदवारों में से पाँच श्रेष्ठ व्यक्तियों का चयन करना था।
- यह चयन मतदान द्वारा होता है, परंतु कठोर चुनाव सिद्धांत लागू नहीं होते। अनुशंसा योग्यता पर आधारित होती है। (अनुच्छेद 46)

विज़िटर का अधिकार - विज़िटर कार्यकारी परिषद एवं विश्वविद्यालय न्यायालय की अनुशंसा से बाध्य नहीं है। उसे विवेकाधिकार है कि वह अनुशंसित व्यक्तियों को अस्वीकार कर पुनः अनुशंसा हेतु कहे। अतः नियुक्ति चुनाव द्वारा नहीं, चयन द्वारा होती है। (अनुच्छेद 47-48)

पक्षपात का सिद्धांत - चूँकि नियुक्ति चयन द्वारा होती है, अतः पक्षपात का सिद्धांत लागू होता है। (अनुच्छेद 61-62)

अनुवादित

पति प्रो. गुलरेज़ की भागीदारी - कार्यकारी परिषद की बैठक में पत्नी के चयन हेतु पति की अध्यक्षता अनुचित थी। तथापि, चूँकि परिषद एवं न्यायालय की भूमिका केवल अनुशंसात्मक थी, अतः चयन प्रक्रिया निरस्त नहीं हुई। न्यायालय ने निर्देश दिया कि भविष्य में किसी निकट संबंधी की नियुक्ति हेतु बैठक में उसका पति/पत्नी या निकट संबंधी अध्यक्षता न करे। (अनुच्छेद 74-75, 88)

अतः, रिट याचिका निरस्त की जाती है। (E-1)

उल्लिखित वाद:

1. कुमारी नीलिमा मिश्रा बनाम डॉ. हरिंदर कौर पैंटल एवं अन्य, (1990) 2 SCC 740
2. आंध्र प्रदेश लोक सेवा आयोग बनाम बी. शरत चंद्र, (1990) 2 SCC 669
3. एस.ए. खान बनाम चौ. भजनलाल एवं अन्य, (1993) 3 SCC 151
4. सेंट्रल ऑर्गनाइजेशन फॉर रेलवे इलेक्ट्रिफिकेशन बनाम ECI SPIC SMO MCML, (2024) SCC OnLine SC 3219
5. ए.के. क्रैपाक बनाम भारत संघ एवं अन्य, (1969) 2 SCC 262
6. अशोक कुमार यादव बनाम हरियाणा राज्य, AIR 1987 SC 454
7. बीसीसीआई बनाम क्रिकेट एसोसिएशन ऑफ बिहार, (2015) 3 SCC 251
8. डॉ. वी.के. शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2006 (6) AWC 6263

(माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा द्वारा प्रदत्त)

1. ये तीनों याचिकाएं एक सामान्य कारण से उत्पन्न हुई हैं और इन्हें एक साथ सुना गया है। परिणामस्वरूप, इन्हें इस निर्णय द्वारा निस्तारित किया जा रहा है। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (इसके पश्चात 'विश्वविद्यालय' के रूप में संदर्भित) की कुलपति के रूप में प्रोफेसर नईमा खातून की नियुक्ति सभी तीनों याचिकाओं में आक्षेपित विषय है ।

<u>तथ्यात्मक स्थिति</u>

2. प्रोफेसर तारिक मंसूर को विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में 17.5.2017 से प्रभावी पांच वर्ष की अवधि के लिए नियुक्त किया गया था। यद्यपि उनका कार्यकाल मई, 2022 में समाप्त होने वाला था, तथापि, कुलाधिपति ने 25.3.2022 को उनके कार्यकाल को एक और वर्ष के लिए या जब तक नए कुलपति की नियुक्ति नहीं हो जाती, तब तक के लिए विस्तारित किया। कुलपति के रूप में अपने विस्तारित कार्यकाल के दौरान, प्रोफेसर तारिक मंसूर ने, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अधिनियम, 1920 (इसके पश्चात '1920 के अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 19 की उप-धारा (3) के अंतर्गत निहित अपनी शक्तियों का प्रयोग

करते हुए, प्रोफेसर मोहम्मद गुलरेज को विश्वविद्यालय का प्रो-कुलपति नियुक्त किया। तत्पश्चात, 2.4.2023 को, प्रोफेसर तारिक मंसूर ने विश्वविद्यालय के कुलपति पद से त्यागपत्र दे दिया। विश्वविद्यालय के कुलसचिव द्वारा 4.4.2023 को एक संचार जारी किया गया जिसमें कहा गया कि विश्वविद्यालय के प्रथम विधान के विधान 2(7) के आधार पर, प्रोफेसर मोहम्मद गुलरेज तब तक कुलपति के कर्तव्यों का निर्वहन करेंगे जब तक कि नया कुलपति पद ग्रहण नहीं कर लेता। प्रोफेसर गुलरेज के कार्यवाहक कुलपति के रूप में कार्यकाल के दौरान ही उनकी पत्नी प्रोफेसर नईमा खातून को विश्वविद्यालय की कुलपति के रूप में नियुक्त किया गया।

3. नए कुलपति की नियुक्ति की प्रक्रिया 23.10.2023 को कुलसचिव के एक एजेंडा के परिचालन से प्रारंभ हुई, जिसके द्वारा विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद के सदस्यों को 30 अक्टूबर, 2023 को दोपहर 12.00 बजे आयोजित एक विशेष बैठक के लिए एकत्रित होने के लिए कहा गया, जिसका उद्देश्य कुलपति की नियुक्ति के लिए विश्वविद्यालय न्यायालय को अनुशंसित किए जाने वाले पांच उम्मीदवारों के नाम वाले एक पैनल को तैयार करना था। यह अभिलेख पर है कि ऐसे प्रयोजन के लिए 33 अनुशंसाएं विचारार्थ आईं। इन व्यक्तियों ने या तो कुलसचिव के कार्यालय में अपनी जीवनवृत प्रस्तुत की थीं या अन्यथा कार्यकारी परिषद के सदस्यों द्वारा अनुशंसित किए गए थे।

4. चूंकि न्यायालय को अनुशंसित किए जाने वाले पांच नामों की लघु सूची उनके द्वारा कार्यकारी परिषद की बैठक में प्राप्त मतों पर आधारित थी, और इसलिए, प्रोफेसर मिर्जा असमेर बेग को निर्वाचन अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया, जबकि दो अन्य व्यक्तियों, अर्थात् प्रोफेसर मोहम्मद अल्तमश सिद्दीकी और प्रोफेसर मोहम्मद शमीम को गणनाकर्ता के रूप में नामित किया गया।

5. निर्वाचन अधिकारी ने चुनाव की अनुसूची प्रकाशित की, जिसके अनुसार, नामांकन पत्र दोपहर 1.00 बजे से 1.30 बजे के बीच दाखिल किए जाने थे; नामांकनों की जांच 1.30 से 2.00 बजे तक; निर्वाचन अधिकारी द्वारा 2.00 बजे नामांकित उम्मीदवारों की सूची प्रदर्शित की जानी थी; 2.10 बजे नामांकनों की वापसी; निर्वाचन अधिकारी द्वारा 2.20 बजे वैध नामांकनों की अंतिम सूची की घोषणा; 2.45 बजे मतदान; मतों की गिनती (मतदान बंद होने के बाद) और परिणामों की घोषणा (गिनती समाप्त होने के बाद)।

6. कार्यकारी परिषद की बैठक में, प्राप्त 33 अनुशंसाओं में से, नामांकित उम्मीदवारों की सूची 20 पर तय की गई। तब प्रोफेसर नईमा खातून को नामांकित किया गया, जो प्रोफेसर मोहम्मद गुलरेज की पत्नी हैं, जो विश्वविद्यालय के प्रथम विधान के विधान 2(7) के आधार पर कुलपति के रूप में कार्य कर रहे थे। सभी याचिकाकर्ताओं को 20 नामांकित उम्मीदवारों की सूची में शामिल किया गया था।

7. 30 अक्टूबर, 2023 की कार्यकारी परिषद की बैठक में बीस सदस्य विद्यमान थे। प्रोफेसर नईमा खातून चूंकि स्वयं एक आवेदक थीं, इसलिए उन्होंने मतदान नहीं किया। तदनुसार, 19 उम्मीदवार चुनाव में शेष रह

गए। कार्यकारी परिषद के इन 19 सदस्यों में से प्रत्येक पांच मत डाल सकता था। इस प्रकार चुनाव में कुल 95 मत डाले जा सकते थे।

8. गुप्त मतदान में मत डाले जाने के बाद, प्रोफेसर फैजान मुस्तफा को 9 मत प्राप्त हुए; प्रोफेसर नईमा खातून और प्रोफेसर कय्यूम हुसैन को प्रत्येक को 8 मत प्राप्त हुए। पांच व्यक्तियों, अर्थात् प्रोफेसर अब्दुल अलीम; प्रोफेसर बहारुल इस्लाम; प्रोफेसर फुरकान कमर; प्रोफेसर मुजाहिद बेग और प्रोफेसर मुजफ्फर उरुज रब्बानी को प्रत्येक को 7 मत प्राप्त हुए। अन्य व्यक्तियों को कम मत प्राप्त हुए।

9. प्रोफेसर फैजान मुस्तफा; प्रोफेसर नईमा खातून और प्रोफेसर कय्यूम हुसैन ने क्रमशः 9 और 8 मत प्राप्त किए, इसलिए उन्हें लघु सूचीबद्ध किया गया। कार्यकारी परिषद को पांच नामों वाले पैनल को तैयार करना था; जबकि उनके द्वारा प्राप्त मतों की संख्या के आधार पर केवल तीन व्यक्तियों को लघु सूचीबद्ध किया गया था। शेष दो अनुशंसाओं को पांच नामों में से चुना जाना था, जिन सभी को प्रत्येक को 7 मत प्राप्त हुए थे।

10. स्थिति का समाधान करने के लिए दूसरा मतदान आयोजित किया गया। प्रोफेसर मुजफ्फर उरुज रब्बानी और प्रोफेसर फुरकान कमर को दूसरे मतदान में लघु सूचीबद्ध किया गया। इसलिए, पैनल में प्रोफेसर फैजान मुस्तफा; प्रोफेसर नईमा खातून; प्रोफेसर कय्यूम हुसैन; प्रोफेसर मुजफ्फर उरुज रब्बानी और प्रोफेसर फुरकान कमर शामिल थे।

11. नियमों में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार, इन पांच नामों को तत्पश्चात न्यायालय के समक्ष रखा गया। न्यायालय की बैठक में, प्रोफेसर मुजफ्फर उरुज रब्बानी को 61 मत प्राप्त हुए; जबकि प्रोफेसर फैजान मुस्तफा को 50 मत प्राप्त हुए; प्रोफेसर नईमा खातून को 50 मत मिले। दो अन्य उम्मीदवारों को स्पष्टतः प्रत्येक को 47 मत प्राप्त हुए। न्यायालय ने तदनुसार प्रोफेसर मुजफ्फर उरुज रब्बानी; प्रोफेसर फैजान मुस्तफा और प्रोफेसर नईमा खातून के नाम कुलाधिपति को कुलपति के रूप में नियुक्ति के लिए उनके विचारार्थ अग्रेषित किए।

12. विश्वविद्यालय की कुलाधिपति, जो कि भारत की राष्ट्रपति हैं, ने विश्वविद्यालय के विधानों के खंड 2(1) के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रोफेसर नईमा खातून को विश्वविद्यालय की कुलपति के रूप में नियुक्त किया। इस आशय का एक संचार भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय द्वारा 22 अप्रैल, 2024 को जारी किया गया है, जो वर्तमान रिट याचिका में आक्षेपित है।

<u>कुलपति की नियुक्ति को नियंत्रित करने वाली संवैधानिक योजना</u>

13. अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के कुलपति के पद पर नियुक्ति 1920 के अधिनियम के प्रावधानों द्वारा विनियमित है। पक्षकार इस मुद्दे पर सहमत हैं। इसलिए, यह उचित होगा कि 1920 के अधिनियम के प्रावधानों के साथ-साथ उसके अंतर्गत बनाए गए विधान और विनियमों का संदर्भ दिया जाए, जहां तक यह विश्वविद्यालय के कुलपति की नियुक्ति से संबंधित है।

14. अधिनियम की धारा 16 निम्नलिखित शब्दों में विश्वविद्यालय के अधिकारियों को निर्दिष्ट करती है:-

(1) कुलाधिपति,

(2) प्रो-कुलाधिपति,

(3) कुलपति,

(3A) प्रो-कुलपति, यदि कोई हो;

(3B) मानद कोषाध्यक्ष;

(3C) कुलसचिव;

(3D) वित्त अधिकारी;

(3E) संकायों के डीन; और

(4) ऐसे अन्य अधिकारी जिन्हें विधानों द्वारा विश्वविद्यालय के अधिकारी घोषित किया जाए।

15. धारा 19 कुलपति के लिए प्रावधान करती है और पुनरुत्पादित की जाती है:-

"19. कुलपति.–(1) कुलपति की नियुक्ति कुलाधिपति द्वारा ऐसी रीति से की जाएगी जैसी विधानों द्वारा विहित की जाए।

(2) कुलपति विश्वविद्यालय का प्रधान कार्यकारी और शैक्षणिक अधिकारी होगा, और विश्वविद्यालय के मामलों पर सामान्य पर्यवेक्षण और नियंत्रण का प्रयोग करेगा और विश्वविद्यालय के सभी प्राधिकरणों के निर्णयों को प्रभावी करेगा।

(3) कुलपति, यदि वह यह राय रखता है कि किसी मामले पर तत्काल कार्यवाही आवश्यक है, तो इस अधिनियम द्वारा और इसके अंतर्गत विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकरण को प्रदत्त किसी शक्ति का प्रयोग कर सकता है और ऐसे प्राधिकरण को ऐसे मामले पर उसके द्वारा की गई कार्यवाही की रिपोर्ट देगा:

परंतु यदि संबंधित प्राधिकरण की यह राय है कि ऐसी कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए थी, तो वह मामले को कुलाधिपति के पास भेज सकता है जिसका उस पर निर्णय अंतिम होगा:

परंतु यह और भी कि विश्वविद्यालय की सेवा में कोई व्यक्ति जो इस उप-धारा के अंतर्गत कुलपति द्वारा की गई कार्यवाही से व्यथित है, उसे ऐसी कार्यवाही पर निर्णय उसे संसूचित किए जाने की तारीख से तीन माह के भीतर कार्यकारी परिषद के समक्ष ऐसी कार्यवाही के विरुद्ध अपील करने का अधिकार होगा और तत्पश्चात कार्यकारी परिषद कुलपति द्वारा की गई कार्यवाही की पुष्टि, संशोधन या उलट सकती है।

(4) कुलपति ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग करेगा और ऐसे अन्य कार्यों का पालन करेगा जैसे विधानों या अध्यादेशों द्वारा विहित किए जाएं।"

16. धारा 19, इसलिए, स्पष्ट करती है कि कुलपति की नियुक्ति कुलाधिपति द्वारा ऐसी रीति से की जानी है जैसी विधानों द्वारा विहित की जाए।

17. विश्वविद्यालय की धारा 28(1) के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, विश्वविद्यालय के विधान तैयार किए गए हैं। विधान 2(1), उस प्रक्रिया को निर्दिष्ट करता है जिसमें कुलपति की नियुक्ति कुलाधिपति

द्वारा कम से कम तीन व्यक्तियों के एक पैनल से की जानी है, जिसे न्यायालय द्वारा कार्यकारी परिषद द्वारा अनुशंसित पांच व्यक्तियों के पैनल से अनुशंसित किया गया है। परंतु, तथापि, कुलाधिपति के विवेक पर यह छोड़ देता है कि वह न्यायालय द्वारा अनुशंसित किसी भी नाम को अनुमोदित न करे और नई अनुशंसाएं मांग सकता है। कुलपति का कार्यकाल पांच वर्ष है। विधान 2(1) जो कुलपति की नियुक्ति के लिए ऐसी रीति प्रदान करता है, इसके पश्चात पुनरुत्पादित है:-

"2. कुलपति - (1) कुलपति की नियुक्ति कुलाधिपति द्वारा न्यायालय द्वारा अनुशंसित कम से कम तीन व्यक्तियों के पैनल से की जाएगी, जो कार्यकारी परिषद द्वारा अनुशंसित पांच व्यक्तियों के पैनल से होगा: परंतु यदि कुलाधिपति न्यायालय द्वारा अनुशंसित किसी भी व्यक्ति को अनुमोदित नहीं करता है, तो वह नई अनुशंसाएं मांग सकता है।"

18. धारा 22 विश्वविद्यालय के प्राधिकरणों के लिए प्रावधान करती है। इसमें अन्य के अतिरिक्त न्यायालय और कार्यकारी परिषद शामिल हैं।

19. न्यायालय की संरचना विधान 14(1) में निर्दिष्ट है। न्यायालय की संरचना और शासन के मामले में इसका प्राधिकार अधिनियम की धारा 23 में निर्दिष्ट है। धारा 23 की उप-धारा (1) और उप-धारा (2) वर्तमान प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक हैं और पुनरुत्पादित हैं:-

"(1) न्यायालय में कुलाधिपति, प्रो-कुलाधिपति, कुलपति और प्रो-कुलपति (यदि कोई हो), उस समय के लिए, और ऐसे अन्य व्यक्ति होंगे जैसे विधानों में निर्दिष्ट किए जाएं।

(2) न्यायालय विश्वविद्यालय का सर्वोच्च शासी निकाय होगा और विश्वविद्यालय की सभी शक्तियों का प्रयोग करेगा, जो अन्यथा इस अधिनियम, विधानों, अध्यादेशों और विनियमों द्वारा प्रदान नहीं की गई हैं और इसे कार्यकारी और शैक्षणिक परिषदों के कार्यों की समीक्षा करने की शक्ति होगी (सिवाय जहां ऐसी परिषदें इस अधिनियम, विधानों या अध्यादेशों के अंतर्गत उन्हें प्रदत्त शक्तियों के अनुसार कार्य की हों)।"

20. कार्यकारी परिषद की संरचना विधान 16 में निर्दिष्ट है। विधान 16(3) के आधार पर कार्यकारी परिषद के लिए गणपूर्ति पंद्रह सदस्य है। कार्यकारी परिषद की संरचना वैधानिक रूप से निर्धारित है जैसे कि, कुलपति; प्रो-कुलपति; मानद कोषाध्यक्ष; वरिष्ठता के अनुसार रोटेशन द्वारा संकायों के पांच डीन; वरिष्ठता के अनुसार रोटेशन द्वारा केंद्रों का एक निदेशक; वरिष्ठता के अनुसार रोटेशन द्वारा महिला महाविद्यालय के प्राचार्य के अतिरिक्त, महाविद्यालयों के दो प्राचार्य; प्राचार्य, महिला महाविद्यालय; वरिष्ठता के अनुसार रोटेशन द्वारा एक प्रोवोस्ट; प्रॉक्टर; न्यायालय के छह सदस्य, जिनमें से कोई भी विश्वविद्यालय का कर्मचारी नहीं होगा, जो स्वयं में से निर्वाचित होंगे; प्रोफेसरों और रीडरों के दो प्रतिनिधि जो स्वयं में से निर्वाचित होंगे; लेक्चररों के दो

प्रतिनिधि जो स्वयं में से निर्वाचित होंगे; कुलाधिपति द्वारा नामांकित किए जाने वाले तीन व्यक्ति; मुख्य रेक्टर द्वारा नामांकित किया जाने वाला एक व्यक्ति।

21. कार्यकारी परिषद विश्वविद्यालय का प्रधान कार्यकारी निकाय है और इसे अधिनियम की धारा 24 के अंतर्गत बनाया गया है, जो इसके पश्चात पुनरुत्पादित है:-

"24. कार्यकारी परिषद:–कार्यकारी परिषद विश्वविद्यालय का प्रधान कार्यकारी निकाय होगी। इसकी संरचना और इसके सदस्यों के पद का कार्यकाल और इसकी शक्तियां और कर्तव्य विधानों द्वारा विहित किए जाएंगे।"

22. कार्यकारी परिषद की शक्तियां और कार्य तत्पश्चात विधान 17 में निर्दिष्ट हैं। खंड (xvii) के आधार पर, ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग करना और ऐसे अन्य कर्तव्यों का पालन करना जैसे उस पर अधिनियम या विधानों द्वारा विधान 17(i) से 17 (xvi) के अंतर्गत निर्दिष्ट शक्तियों के अतिरिक्त प्रदत्त या अधिरोपित किए जा सकते हैं।

23. कार्यकारी परिषद के विनियम भी बनाए गए हैं। खंड (8) निर्दिष्ट करता है कि कार्यकारी परिषद की बैठकों में विचार किए गए सभी प्रश्न अध्यक्ष सहित उपस्थित सदस्यों के मतों के बहुमत द्वारा निर्णीत किए जाएंगे। यदि मत समान रूप से विभाजित हों, तो अध्यक्ष का निर्णायक मत होगा। कार्यकारी परिषद के विनियमों का अध्याय II निर्दिष्ट करता है कि कोई भी सदस्य, जो किसी प्रस्ताव से व्यक्तिगत रूप से प्रभावित होने की संभावना है, चाहे अनुकूल रूप से या प्रतिकूल रूप से, उस पर मत देने का हकदार नहीं होगा। संदेह की स्थिति में, अध्यक्ष कारणों के साथ अपना निर्णय देगा जो अभिलिखित किया जाएगा। विश्वविद्यालय के विनियमों का खंड (8) के साथ-साथ वाद-विवाद के नियमों को विहित करने वाले अध्याय II का खंड (27), पुनरुत्पादित हैं:-

"(8) कार्यकारी परिषद की बैठकों में विचार किए गए सभी प्रश्न अध्यक्ष सहित उपस्थित सदस्यों के मतों के बहुमत द्वारा निर्णीत किए जाएंगे। यदि मत समान रूप से विभाजित हों, तो अध्यक्ष का निर्णायक मत होगा। (27) कोई भी सदस्य, जो किसी प्रस्ताव से व्यक्तिगत रूप से प्रभावित होने की संभावना है, चाहे अनुकूल रूप से या प्रतिकूल रूप से, उस पर मत देने का हकदार नहीं होगा। संदेह की स्थिति में, अध्यक्ष कारणों के साथ अपना निर्णय देगा जो अभिलिखित किया जाएगा।"

24. उपरोक्त संदर्भित संवैधानिक योजना की विस्तृत परिधि के भीतर कुलपति की नियुक्ति की जानी है।

25. रिट में याचिकाकर्ताओं ने प्रोफेसर नईमा खातून के चयन और नियुक्ति को मुख्य रूप से इस आधार पर आक्षेपित किया है कि उनके पति प्रोफेसर मोहम्मद गुलरेज कुलपति के रूप में कार्य कर रहे थे और उन्होंने कार्यकारी परिषद और न्यायालय की महत्वपूर्ण बैठकों की अध्यक्षता की थी, जिसमें उनकी पत्नी को पद के लिए नियुक्ति हेतु अनुशंसित किया गया था। यह अभिकथन किया गया है कि यह केवल प्रोफेसर मोहम्मद

गुलरेज के पक्ष में पूर्वाग्रह की संभावना का मामला नहीं है, बल्कि प्रोफेसर नईमा खातून के चयन और नियुक्ति को सुरक्षित करने के लिए कार्यवाही में हेरफेर किया गया है। याचिकाकर्ताओं की ओर से विस्तार से प्रस्तुतियां की गई हैं कि कार्यकारी परिषद और न्यायालय की संरचना में चयन से मात्र 10 दिन पहले प्रोफेसर मोहम्मद गुलरेज द्वारा बिना किसी न्यायोचित कारण के परिवर्तन किया गया। ये परिवर्तन प्रोफेसर नईमा खातून के चयन को सुविधाजनक बनाने के लिए किए गए थे। यह भी आग्रह किया गया है कि कार्यकारी समिति की कार्यवाही में हेरफेर किया गया और मतों की गिनती में महत्वपूर्ण अनियमितता की गई; निर्वाचन अधिकारी ने पांच उम्मीदवारों में से दो को चुनने के लिए दूसरा चुनाव आयोजित करके खेल के नियमों को बीच में ही बदल दिया, जिन्होंने समान मत प्राप्त किए थे, भले ही चुनाव अनुसूची में ऐसी आकस्मिकता की कल्पना नहीं की गई थी; प्रोफेसर मोहम्मद गुलरेज ने हितों के टकराव के कारण उनकी भागीदारी और कार्यवाही की अध्यक्षता पर प्रश्न उठाने वाले कार्यकारी परिषद और न्यायालय के सदस्यों की आपत्ति को अस्वीकार कर दिया। यह भी तर्क दिया गया है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया जब प्रोफेसर मोहम्मद गुलरेज ने विभिन्न सदस्यों की आपत्ति को अस्वीकार करने के बाद कार्यकारी परिषद और न्यायालय की बैठक की अध्यक्षता के पक्ष में निर्णय दिया, जिससे वे अपने स्वयं के मामले में न्यायाधीश बन गए।

26. याचिकाकर्ताओं की ओर से, यह भी तर्क दिया गया है कि कुलपति की नियुक्ति चयन पर आधारित थी और न्यायालय और कार्यकारी परिषद के सदस्यों का मतदान केवल विचारों को सुनिश्चित करने के लिए था, जिसने कार्यवाही की प्रकृति को चयन से चुनाव में नहीं बदला। इसलिए, याचिकाकर्ता यह तर्क देते हैं कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का स्पष्ट रूप से उल्लंघन किया गया है और निष्पक्षता, जो किसी भी वैध चयन का मूलभूत पत्थर है, से समझौता किया गया है। इसलिए, यह प्रार्थना की गई है कि प्रोफेसर नईमा खातून के चयन और नियुक्ति को रद्द किया जाए और विश्वविद्यालय के कुलपति के पद पर नियुक्ति के लिए नई कार्यवाही की जाए।

27. प्रत्यर्थियों की ओर से, प्रस्तुतियों का प्रतिवाद यह कहते हुए किया गया है कि कार्यकारी परिषद और न्यायालय में उम्मीदवारों की लघु सूची उम्मीदवारों द्वारा प्राप्त मतों पर आधारित थी, जो एक चुनाव की प्रक्रिया थी जिसमें पूर्वाग्रह की अवधारणा की कोई भूमिका नहीं है। यह अभिकथन किया गया है कि कार्यकारी परिषद और न्यायालय की अध्यक्षता कुलपति द्वारा विधान में की जानी है और चूंकि प्रोफेसर मोहम्मद गुलरेज कार्यवाहक कुलपति थे, इसलिए उनके लिए ऐसी बैठकों की अध्यक्षता करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं था।

28. ऐसे प्रयोजन के लिए प्रत्यर्थियों द्वारा आवश्यकता के सिद्धांत पर बल दिया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि प्रोफेसर मोहम्मद गुलरेज कार्यवाही की कुर्सी पर थे और उठाई गई किसी भी आपत्ति को उनके द्वारा निर्णीत किया जाना था, और इसलिए, कार्यकारी परिषद और न्यायालय की बैठकों की अध्यक्षता की औचित्य पर प्रश्न उठाने वाले सदस्यों की आपत्ति को अस्वीकार करने के उनके निर्णय ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं किया। उनके द्वारा केवल कुर्सी के कार्य किए गए, जिन्हें अन्यथा अन्य सदस्यों का समर्थन

प्राप्त था और निर्णय उचित विचार-विमर्श के आधार पर लिया गया था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मतों की गिनती और दूसरे मतदान के आयोजन में हेरफेर के संबंध में आरोप भ्रामक तर्क हैं। चूंकि पांच उम्मीदवारों ने समान मत प्राप्त किए थे और अन्यथा विनियमों के अंतर्गत निर्णय बहुमत के नियम द्वारा होने थे, इसलिए दूसरे चुनाव का आयोजन अपरिहार्य था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि दूसरे चुनाव के आयोजन पर अन्यथा प्रश्न नहीं उठाया गया या संदेह नहीं किया गया, और इसलिए, अनुशंसा के लिए चुनाव के आयोजन में हेरफेर की दलील पश्चात् विचार का परिणाम है। प्रत्यर्थियों की ओर से, यह प्रस्तुत किया गया है कि रिट-ए संख्या 16348/2024 में याचिकाकर्ताओं ने कोई आपत्ति नहीं उठाई जब वे भी कार्यकारी परिषद और न्यायालय द्वारा अनुशंसित हुए और प्रोफेसर नईमा खातून की नियुक्ति के काफी बाद उनकी नियुक्ति के लिए एक विलंबित चुनौती उठाई गई है। यह आग्रह किया गया है कि याचिकाकर्ताओं ने स्वच्छ हाथों से इस न्यायालय का रुख नहीं किया है और रिट तिरछे कारणों से दायर की गई हैं।

29. प्रत्यर्थी इस आधार पर भी कुलपति की नियुक्ति का बचाव करते हैं कि चयन अंततः विश्वविद्यालय के कुलाधिपति द्वारा किया गया था। यह तर्क दिया गया है कि प्रोफेसर नईमा खातून केवल कुलपति के पद पर नियुक्ति के लिए अनुशंसित व्यक्ति नहीं थीं, वास्तव में, पांच व्यक्ति, जिन्हें कार्यकारी परिषद द्वारा अनुशंसित किया गया था, जबकि कुलाधिपति को न्यायालय द्वारा तीन अनुशंसाएं की गई थीं। यह आग्रह किया गया है कि सभी तीन उम्मीदवारी अंततः कुलाधिपति के समक्ष रखी गई थीं, जिन्होंने प्रोफेसर नईमा खातून को नियुक्त करने के लिए विधानों के अंतर्गत अपने विवेक का प्रयोग किया था। प्रत्यर्थियों द्वारा यह भी आग्रह किया गया है कि प्रोफेसर नईमा खातून के पास कुलपति के पद पर नियुक्ति के लिए अपेक्षित योग्यता है और वे विश्वविद्यालय के इतिहास में इस प्रकार नियुक्त होने वाली पहली महिला हैं। यह भी आग्रह किया गया है कि विश्वविद्यालय न्यायालय द्वारा कुलाधिपति को की गई तीन अनुशंसाओं में से कुलाधिपति ने डॉ. नईमा खातून को कुलपति के रूप में नियुक्त करने का निर्णय लिया था। हमारे समक्ष यह आग्रह किया गया है कि वर्तमान मामले में कुलाधिपति भारत की राष्ट्रपति हैं और प्रोफेसर नईमा खातून को चुनने में उनके विवेक में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए, विशेष रूप से जब कुलाधिपति को कोई पूर्वाग्रह या दुर्भावना का आरोप नहीं लगाया गया है। कुमारी नीलिमा मिश्रा बनाम डॉ. हरिंदर कौर पैंटल और अन्य, (1990) 2 एससीसी 740 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर निर्भरता रखी गई है, यह तर्क देने के लिए कि शैक्षणिक क्षेत्र में नियुक्ति के मामलों में न्यायालय को हस्तक्षेप करने में धीमा होना चाहिए। केवल जब संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन किया जाता है या अध्यादेशों का उल्लंघन किया जाता है तभी न्यायालय का हस्तक्षेप स्वीकार्य होगा। कुमारी नीलिमा मिश्रा (उपरोक्त) में निर्णय के पैरा 32 पर निर्भरता रखी गई है यह कहने के लिए कि कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय न्यायालय की अनुशंसा के आधार पर कुलाधिपति द्वारा की गई नियुक्तियों में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है, विशेष रूप से जब चयनित उम्मीदवार के पास अपेक्षित योग्यता हो और अन्यथा विश्वविद्यालय की पहली महिला कुलपति हो।

1. हमने श्री अमित सक्सेना, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को सुना है, जिनकी सहायता रिट याचिका संख्या 19427/2023 में याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री कुणाल शाह ने की, रिट याचिका संख्या

21023/2023 में याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री साकिब मुख्तार, श्री शशि नंदन, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता जिनकी सहायता रिट याचिका संख्या 16348/2024 में याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री उदयन नंदन ने की, सुश्री ऐश्वर्या भाटी, विद्वान अपर सॉलिसिटर जनरल ऑफ इंडिया जिनकी सहायता भारत संघ के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री विवेक कुमार सिंह, श्री अबरार अहमद ने की; श्री मनीष गोयल, विद्वान अपर महाधिवक्ता जिनकी सहायता अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री शशांक शेखर सिंह ने की, श्री अशोक खरे, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता जिनकी सहायता प्रोफेसर मोहम्मद गुलरेज के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे ने की, श्री श्यामल नारायण, कुलपति के लिए विद्वान अधिवक्ता, जिनकी नियुक्ति आक्षेपित है, श्री धनंजय अवस्थी, यू.जी.सी. के लिए विद्वान अधिवक्ता और अभिलेख पर सामग्री का भी अवलोकन किया है।

31. पिछले अवसर पर, हमने विश्वविद्यालय को कार्यकारी परिषद द्वारा न्यायालय को अनुशंसित किए जाने वाले नामों की लघु सूची की कार्यवाही से संबंधित मूल अभिलेख प्रस्तुत करने का भी निर्देश दिया और ऐसे मूल अभिलेख भी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए हैं। हमने ऐसे अभिलेखों की भी जांच की है।

32. यह निर्विवाद है कि प्रोफेसर नईमा खातून, जिन्हें विश्वविद्यालय की कुलपति के रूप में नियुक्त किया गया है, प्रोफेसर मोहम्मद गुलरेज की पत्नी हैं। वे अन्यथा कार्यकारी परिषद की सदस्य थीं लेकिन उम्मीदवारों की लघु सूची की कार्यवाही में भाग नहीं लिया, क्योंकि वे स्वयं एक उम्मीदवार थीं। प्रोफेसर नईमा खातून के पति अर्थात् प्रोफेसर मोहम्मद गुलरेज कुलपति के रूप में कार्य कर रहे थे जब नामों की लघु सूची की प्रक्रिया हुई। कार्यकारी परिषद और न्यायालय की दो बैठकों में जहां कुलाधिपति को भेजे जाने वाले नामों को लघु सूचीबद्ध किया गया था, प्रोफेसर मोहम्मद गुलरेज ने अध्यक्षता की थी। इसलिए, याचिकाकर्ता तर्क देते हैं कि कुलाधिपति को कुलपति की नियुक्ति के लिए अनुशंसित किए जाने वाले पैनल को तैयार करने के प्रयोजनों के लिए अपनाई गई कार्यवाही की प्रकृति ने पूर्वाग्रह के विरुद्ध नियम का उल्लंघन किया। यह भी आग्रह किया गया है कि कार्यवाही को प्रोफेसर मोहम्मद गुलरेज द्वारा अपनी पत्नी की सुविधा के अनुकूल बनाने के लिए संशोधित किया गया था और यह केवल पूर्वाग्रह की संभावना का मामला नहीं था बल्कि वास्तव में कार्यवाही कार्यवाहक कुलपति को आरोपित पूर्वाग्रह के कारण दूषित है, जिन्होंने अपनी पत्नी की कुलपति के रूप में नियुक्ति की योजना बनाई।

33. प्रतिद्वंद्वी पक्षों द्वारा की गई प्रस्तुतियों के आधार पर, हम पाते हैं कि वर्तमान मामले के तथ्यों में हमारे निर्धारण के लिए निम्नलिखित प्रश्न उत्पन्न होते हैं:-

(i) क्या कार्यकारी परिषद और तत्पश्चात न्यायालय द्वारा कुलाधिपति को उनकी अनुशंसा के लिए उम्मीदवारों की लघु सूची में चयन या चुनाव की प्रक्रिया शामिल है?
(ii) क्या कार्यकारी परिषद द्वारा डाले गए मतों के आधार पर पांच नामों की लघु सूची किसी हेरफेर के कारण दूषित है?

(iii) एक परिणाम के रूप में, यह देखना होगा कि क्या वर्तमान मामले के तथ्यों में कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय न्यायालय द्वारा उम्मीदवारों की लघु सूची में प्रोफेसर गुलरेज की सक्रिय भागीदारी के कारण पूर्वाग्रह की संभावना की अवधारणा आकर्षित होगी, और यदि ऐसा पाया जाता है तो इसका प्रभाव क्या है?
(iv) क्या तीन उम्मीदवारों के पैनल से प्रोफेसर नईमा खातून को चुनने में कुलाधिपति द्वारा प्रयोग किए गए विवेक में हस्तक्षेप की आवश्यकता है?

34. पक्षकार कार्यकारी परिषद और न्यायालय द्वारा कुलाधिपति को उनकी अनुशंसा के लिए उम्मीदवारों की लघु सूची चयन या चुनाव का हिस्सा होने के प्रश्न पर मतभेद में हैं।
स्वीकार्य रूप से, उम्मीदवारों की लघु सूची गुप्त मतदान की संख्या पर उम्मीदवारों द्वारा प्राप्त मतों के आधार पर है।

35. श्री अशोक खरे और श्री मनीष गोयल, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं के साथ-साथ प्रोफेसर नईमा खातून के लिए उपस्थित श्री श्यामल नारायण प्रस्तुत करते हैं कि लघु सूची की प्रक्रिया कुलपति के पद के लिए विचारार्थ उपलब्ध उम्मीदवारों द्वारा प्राप्त मतों पर आधारित है, यह चुनाव का मामला है। याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि नंदन और श्री अमित सक्सेना, तथापि, प्रस्तुत करते हैं कि मतदान केवल सदन के निर्णय को सुनिश्चित करने के आशय से है क्योंकि सभी निर्णय बहुमत द्वारा लिए जाने हैं। इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया है कि अनुशंसा चयन का एक हिस्सा है। श्री शशि नंदन ने यह प्रस्तुत करने के लिए अधिनियम और विधानों को उजागर किया है कि चयन और चुनाव दोनों को विधान में अलग से निर्दिष्ट किया गया है और कुलपति की नियुक्ति चयन के माध्यम से है।

36. प्रस्तुति की जांच करने के लिए, हमने लागू विधान के विभिन्न प्रावधानों को ध्यानपूर्वक देखा है। श्री शशि नंदन ने हमारे समक्ष संवैधानिक योजना रखी है यह आग्रह करने के लिए कि विश्वविद्यालय के कुलपति को नियुक्त किया जाना है, न कि निर्वाचित। विश्वविद्यालय के विभिन्न अधिकारी अधिनियम की धारा 16 में निर्दिष्ट किए गए हैं, जिसमें कुलाधिपति; प्रो-कुलाधिपति; कुलपति, आदि शामिल हैं। धारा 17 कुलाधिपति के लिए प्रावधान करती है। धारा 17 की उप-धारा (1) प्रासंगिक है और पुनरुत्पादित है:-

"17(1) विश्वविद्यालय के कुलाधिपति का निर्वाचन न्यायालय द्वारा ऐसी रीति से और ऐसे कार्यकाल के लिए किया जाएगा जैसा कि विधानों द्वारा विहित किया जाए।"
37. इसी प्रकार, धारा 18 प्रो-कुलाधिपति के लिए प्रावधान करती है। धारा 18 की उप-धारा (1) भी प्रासंगिक है और पुनरुत्पादित है:-
"18(1) प्रो-कुलाधिपति का निर्वाचन न्यायालय द्वारा ऐसी रीति से और ऐसे कार्यकाल के लिए किया जाएगा जैसा कि विधानों द्वारा विहित किया जाए।"
38. इसी प्रकार, विधान 1(1) उस रीति को विहित करता है जिसमें कुलाधिपति का निर्वाचन होना है। विधान 1(1) पुनरुत्पादित है:-

"1(1) कुलाधिपति का निर्वाचन न्यायालय द्वारा साधारण बहुमत से किया जाएगा।"

39. उपरोक्त प्रावधान के समान विधान 1A उस रीति को विहित करता है जिसमें प्रो-कुलाधिपति का निर्वाचन होता है और पुनरुत्पादित है:-

"1A. प्रो-कुलाधिपति - (1) प्रो-कुलाधिपति का निर्वाचन न्यायालय द्वारा साधारण बहुमत से किया जाएगा।
(2) प्रो-कुलाधिपति तीन वर्ष के कार्यकाल के लिए पद धारण करेगा और पुनर्निर्वाचन के लिए पात्र होगा।
(3) प्रो-कुलाधिपति के पद में कोई भी आकस्मिक रिक्ति कुलाधिपति द्वारा कार्यकारी परिषद की अनुशंसा पर भरी जाएगी और इस प्रकार नियुक्त व्यक्ति न्यायालय की अगली वार्षिक बैठक तक पद धारण करेगा।
(4) प्रो-कुलाधिपति, कुलाधिपति की अनुपस्थिति में, कुलाधिपति के कार्यों का पालन करेगा।"

40. उपर्युक्त धारा 17 और 18, जो निर्दिष्ट करते हैं कि कुलाधिपति और प्रो-कुलाधिपति का निर्वाचन न्यायालय द्वारा ऐसी रीति से और ऐसे कार्यकालों के लिए किया जाना है जैसा कि विधानों द्वारा विहित किया जाए, के विपरीत, अधिनियम कुलपति के संबंध में एक भिन्न योजना की कल्पना करता है। धारा 19 की उप-धारा (1) स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट करती है कि कुलपति की नियुक्ति कुलाधिपति द्वारा ऐसी रीति से की जाएगी जैसी विहित की जाए। विधानों का विधान 2 भी प्रावधान करता है कि कुलपति की नियुक्ति कुलाधिपति द्वारा न्यायालय द्वारा अनुशंसित कम से कम तीन व्यक्तियों के पैनल से की जाएगी जो कार्यकारी परिषद द्वारा अनुशंसित पांच व्यक्तियों के पैनल से होगी।

41. श्री शशि नंदन ने संवैधानिक योजना से यह भी बल दिया है कि विश्वविद्यालय के अधिकारियों के संबंध में निर्वाचन और नियुक्ति शब्द अलग-अलग उपयोग किए गए हैं जो स्पष्ट रूप से चयन और निर्वाचन पर आधारित नियुक्ति के बीच भेद बनाए रखने के संवैधानिक आशय को इंगित करता है। धारा 20 प्रो-कुलपति को ऐसी रीति से नियुक्त किए जाने का प्रावधान करती है जैसी विधानों द्वारा विहित की जाए। तथापि, मानद कोषाध्यक्ष के मामले में, उसका निर्वाचन न्यायालय द्वारा ऐसी रीति से किया जाना है जैसी विधानों द्वारा विहित की जाए। धारा 20-A के बिल्कुल विपरीत, धारा 20-B प्रावधान करती है कि कुलसचिव की नियुक्ति ऐसी रीति से की जाएगी जैसी विधानों द्वारा विहित की जाए।

42. जिन मामलों में अधिकारी को नियुक्त किया जाना है न कि निर्वाचित, विधान नियुक्ति की रीति विहित करता है। कुलपति के अलावा, प्रो-कुलपति की नियुक्ति कुलपति की अनुशंसा पर कार्यकारी परिषद द्वारा की जानी है। यहां भी कार्यकारी परिषद के व्यवसाय को विनियमित करने वाले विनियमों के विनियम 8 के दृष्टिगत कार्यकारी परिषद का निर्णय बहुमत के माध्यम से होना है। इसी प्रकार, कुलसचिव की नियुक्ति एक चयन समिति की अनुशंसा पर कार्यकारी परिषद द्वारा की जानी है। यहां भी कार्यकारी परिषद का अंतिम निर्णय बहुमत की संख्या पर होना होगा। जहां निर्णय सर्वसम्मत नहीं है, बहुमत निर्धारित करने के लिए मतों का डाला जाना अपरिहार्य है।

43. कुलपति की नियुक्ति की प्रक्रिया न्यायालय द्वारा इसके विचार और अनुशंसा के लिए कार्यकारी परिषद को जीवनवृत्त के साथ आवेदन की प्रस्तुति से प्रारंभ होती है। वर्तमान मामले में, 33 व्यक्तियों ने या तो आवेदन किया था या विचार के लिए अनुशंसित किए गए थे। इन 33 व्यक्तियों में से, कार्यकारी परिषद ने 20 नामांकनों को वैध पाया और इन 20 उम्मीदवारों में से, पांच को कार्यकारी परिषद द्वारा न्यायालय को अनुशंसित किया गया। न्यायालय को अनुशंसा के लिए इन पांच उम्मीदवारों की लघु सूची सदन की बहुमत राय को सुनिश्चित करने के लिए कार्यकारी परिषद के सदस्यों द्वारा मत डालने के आधार पर थी। इसी प्रकार, पांच अनुशंसित उम्मीदवारों में से, न्यायालय ने भी मतों की गिनती के आधार पर सदन के विचारों को सुनिश्चित करके कुलाधिपति को अनुशंसा के लिए तीन व्यक्तियों को लघु सूचीबद्ध किया। चयन प्रक्रिया में तत्पश्चात न्यायालय द्वारा कुलाधिपति को अनुशंसित तीन उम्मीदवारों का विचार शामिल था जिन्होंने प्रोफेसर नईमा खातून को नियुक्त किया।

44. याचिकाकर्ताओं की ओर से आंध्र प्रदेश लोक सेवा आयोग बनाम बी. शरत चंद्रा, (1990) 2 एससीसी 669 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर निर्भरता रखी गई है यह तर्क देने के लिए कि चयन को केवल नियुक्ति का अंतिम कार्य नहीं माना जा सकता है। चयन की प्रक्रिया में प्रत्येक चरण इसका एक हिस्सा है। पैरा 7 में, चयन शब्द को निम्नानुसार माना गया है:-

"7.....यदि 'चयन' शब्द को केवल उम्मीदवारों को चुनने के अंतिम कार्य के अर्थ में समझा जाता है, जिसमें नियुक्ति के लिए सूची की तैयारी शामिल है, तो न्यायाधिकरण का निष्कर्ष अनुचित नहीं हो सकता है। लेकिन गोल वाक्यांश वर्ग उत्तर नहीं दे सकते। उस अर्थ को स्वीकार करने से पहले, हमें उन परिणामों, विसंगतियों और अनिश्चितताओं को देखना चाहिए जिनकी ओर यह ले जा सकता है। न्यायाधिकरण वास्तव में इस बात पर विवाद नहीं करता है कि चयन की प्रक्रिया विज्ञापन जारी करने के साथ शुरू होती है और नियुक्ति के लिए चयन सूची की तैयारी के साथ समाप्त होती है। वास्तव में, इसमें आवेदन आमंत्रित करना, आवेदनों की जांच, दोषपूर्ण आवेदनों की अस्वीकृति या अपात्र उम्मीदवारों का उन्मूलन, परीक्षा आयोजित करना, साक्षात्कार या मौखिक परीक्षा के लिए बुलाना और नियुक्ति के लिए सफल उम्मीदवारों की सूची की तैयारी जैसे विभिन्न चरण शामिल हैं।"

45. चुनाव के विशिष्ट गुण अन्यथा अलग हैं। चुनाव के मामले में मतदाताओं का निर्वाचन क्षेत्र अंततः अपने हित को बढ़ावा देने के लिए अपने प्रतिनिधि को चुनता है। जो व्यक्ति चुनाव मांग रहा है वह भी मतदान के अधिकार का प्रयोग कर सकता है। आमतौर पर, मतदाता उस व्यक्ति के पक्ष में मत देता है जो उनके हित को बढ़ावा देगा। चूंकि मतदाताओं के कारण को बढ़ावा देना उद्देश्य है, इसलिए, योग्यता का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन चुनाव में प्रमुख मानदंड नहीं हो सकता है। इसके विपरीत (चुनाव) जब चयन की प्रक्रिया में मत डाला जाता है तो मतदाता को सबसे योग्य उम्मीदवार के पक्ष में अपना मत डालना चाहिए।

46. वर्तमान प्रकार के मामले में कार्यकारी परिषद के सदस्यों से अपेक्षा की गई थी कि वे विश्वविद्यालय न्यायालय को उनकी अनुशंसा के लिए उपलब्ध उम्मीदवारों में से पांच सर्वश्रेष्ठ उम्मीदवारों को चुनें। ऐसी लघु सूची मतों की गिनती द्वारा है। जैसा कि पहले देखा गया है, वर्तमान मामले के तथ्यों में चुनाव के सख्त सिद्धांत लागू नहीं हैं क्योंकि अनुशंसा उम्मीदवार की योग्यता के आधार पर होने की अपेक्षा है।

47. कुलपति के पद के लिए चयन अनिवार्य रूप से दो भागों में विभाजित है। पहले भाग में कार्यकारी परिषद और न्यायालय द्वारा कुलाधिपति को अनुशंसा शामिल है जबकि दूसरा भाग कुलाधिपति द्वारा ऐसी अनुशंसा के विचार से संबंधित है। कुलाधिपति कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय न्यायालय द्वारा की गई अनुशंसा से बाध्य नहीं है और विधान 2 के अंतर्गत न्यायालय द्वारा अनुशंसित किसी भी व्यक्ति को अनुमोदित न करने और नई अनुशंसा मांगने का विवेक रखता है।

48. नियुक्ति की योजना के अनुसार कुलाधिपति को न्यायालय द्वारा अनुशंसित तीन व्यक्तियों के पैनल से कुलपति की नियुक्ति पर विचार करना होता है, जो कार्यकारी परिषद द्वारा अनुशंसित पांच व्यक्तियों के पैनल से होता है। इसलिए, कुलपति की नियुक्ति को चुनाव के माध्यम से नहीं कहा जा सकता है।

49. कार्यकारी परिषद द्वारा पांच व्यक्तियों की अनुशंसा और तत्पश्चात कार्यकारी परिषद द्वारा अनुशंसित उन लोगों में से तीन की कुलाधिपति को अनुशंसा नियुक्ति के लिए चयन का एक हिस्सा है। केवल यह तथ्य कि अनुशंसा के चरण में सदन के बहुमत द्वारा निर्णय को सुनिश्चित करने के लिए मतदान किया जाता है, चयन पर आधारित नियुक्ति को चुनाव के रूप में नहीं माना जा सकता है। पहले मुद्दे का उत्तर तदनुसार दिया गया है।

50. याचिकाकर्ताओं की ओर से कार्यकारी परिषद द्वारा पांच उम्मीदवारों की लघु सूची में अनियमितता और हेरफेर के पहलू पर बहुत तर्क दिए गए हैं। याचिकाकर्ताओं के लिए उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अमित सक्सेना ने तर्क दिया कि लघु सूची की प्रक्रिया में हेरफेर किया गया क्योंकि वास्तव में 99 मत डाले गए जबकि केवल 95 मत डाले जाने के लिए उपलब्ध थे। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि चुनाव अनुसूची ने केवल एक चुनाव का संकेत दिया जबकि दो उम्मीदवारों को लघु सूचीबद्ध करने के लिए एक बाद का मतदान भी आयोजित किया गया जब यह पाया गया कि पांच व्यक्तियों ने समान मत प्राप्त किए थे। यह सुझाव दिया गया है कि इतने कम समय में दूसरे मतदान के लिए मतपत्रों की छपाई संभव नहीं थी और लघु सूची की कार्यवाही में हेरफेर किया गया है।

51. इस मुद्दे पर, याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुति का विश्वविद्यालय और अन्य प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता द्वारा दृढ़ता से विरोध किया गया है। उनकी ओर से यह तर्क दिया गया है कि बाद के चुनाव का आयोजन आवश्यक हो गया क्योंकि पांच उम्मीदवारों ने प्रत्येक को 6 मत प्राप्त किए थे और उनमें से केवल दो को लघु सूचीबद्ध

किया जा सकता था। यह भी आग्रह किया गया है कि समान मत प्राप्त करने वाले पांच में से दो व्यक्तियों को चुनने के लिए बाद के चुनाव के आयोजन के बारे में कभी भी कोई संदेह नहीं उठाया गया था।

52. याचिकाकर्ताओं के तर्कों पर ध्यान देते हुए, हमने पिछले अवसर पर विश्वविद्यालय को मूल अभिलेख प्रस्तुत करने का निर्देश दिया। तदनुसार, कार्यकारी परिषद द्वारा उम्मीदवारों की लघु सूची से संबंधित मूल अभिलेख हमारे समक्ष प्रस्तुत किए गए हैं। हमने अभिलेखों को देखा है। मतपत्रों आदि वाले मूल अभिलेखों को हमारे द्वारा अवलोकित किया गया है। यह पाया गया कि केवल 95 मत डाले गए थे और यह आरोप कि वास्तव में 99 मत डाले गए थे, अभिलेखों से सिद्ध नहीं होता है।

53. याचिकाकर्ताओं की दलील कि 99 मत डाले गए थे, कुछ समाचार पत्र रिपोर्टों पर आधारित है जिनमें प्रत्येक उम्मीदवार के पक्ष में डाले गए मतों की रिपोर्ट की गई थी और इसकी कुल गणना 95 मतों की जगह 99 की गई। ऐसा इसलिए है क्योंकि 30.10.2023 की कार्यकारी परिषद की बैठक में 19 सदस्य उपस्थित थे और चूंकि सभी सदस्य पांच मत डाल सकते थे, इसलिए, कुल उपलब्ध मत केवल 95 थे।

54. याचिकाकर्ताओं की यह आपत्ति स्वीकार नहीं की जा सकती, क्योंकि याचिकाकर्ताओं के दावे का आधार केवल समाचार पत्र रिपोर्ट है। ऐसी रिपोर्ट पर निर्भर नहीं रहा जा सकता है जब न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत मूल अभिलेख 95 मतपत्रों के अस्तित्व को दर्शाते हैं। जब सभी उम्मीदवारों के पक्ष में डाले गए मतों की गणना की जाती है तो संख्या 95 होती है न कि 99। ऐसी समाचार पत्र रिपोर्टें अन्यथा अफवाह साक्ष्य की प्रकृति में हैं और इसके सशक्त साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं होने की स्थिति में इस पर निर्भर नहीं रहा जा सकता है। [देखें: एस.ए. खान बनाम चौधरी भजन लाल और अन्य, (1993) 3 एससीसी 151]। मूल अभिलेख अन्यथा 95 मतपत्रों के अस्तित्व को दर्शाते हैं। ऐसी परिस्थितियों में, मतों की गिनती में हेरफेर की दलील पोषणीय नहीं हो सकती है।

55. जहां तक 30 अक्टूबर, 2023 की उसी बैठक में बाद के मतदान के प्रश्न का संबंध है, हम पाते हैं कि किसी ने भी चुनाव के समय या बाद में भी कोई आपत्ति नहीं उठाई। चूंकि पांच उम्मीदवारों ने प्रत्येक को सात मत प्राप्त किए थे और उनमें से केवल दो को अनुशंसित किया जा सकता था, इसलिए, दूसरा मतदान अपरिहार्य था जब लघु सूची डाले गए मतों पर आधारित थी।

56. यह निर्विवाद है कि 30 अक्टूबर, 2023 की कार्यकारी परिषद की बैठक में प्रोफेसर फैजान मुस्तफा ने 9 मत प्राप्त किए। प्रोफेसर नईमा खातून और प्रोफेसर कय्यूम हुसैन ने प्रत्येक को आठ मत प्राप्त किए। तत्पश्चात, पांच उम्मीदवारों अर्थात् प्रोफेसर अब्दुल अलीम, प्रोफेसर बहारुल इस्लाम, प्रोफेसर फुरकान कमर, प्रोफेसर मुजाहिद बेग और प्रोफेसर मुजफ्फर उरुज रब्बानी ने प्रत्येक को सात मत प्राप्त किए।

57. नौ और आठ मतों वाले उम्मीदवार इस प्रकार मतों की गिनती पर लघु सूचीबद्ध किए गए। प्रोफेसर फैजान मुस्तफा, प्रोफेसर नईमा खातून और प्रोफेसर कय्यूम हुसैन लघु सूचीबद्ध हुए। शेष दो उम्मीदवारों को पांच उम्मीदवारों में से लघु सूचीबद्ध किया जाना था जिन्होंने प्रत्येक को सात मत प्राप्त किए थे। चूंकि लघु सूची या तो सर्वसम्मत होनी थी या डाले गए मतों के बहुमत पर आधारित होनी थी, इसलिए, दूसरा मतदान आयोजित किया गया। 30.10.2023 को आयोजित दूसरे मतदान के संबंध में मूल अभिलेख भी प्रस्तुत किए गए हैं। यह प्रस्तुति कि चुनाव अनुसूची ने दूसरे मतदान को निर्दिष्ट नहीं किया, में कोई सार प्रतीत नहीं होता है क्योंकि चुनाव अनुसूची तैयार करते समय यह ज्ञात नहीं हो सकता है कि दूसरे मतदान की आवश्यकता होगी। यह आगे का तर्क कि मतपत्र की तैयारी, आदि में समय लगेगा, भी इन उन्नत तकनीकी युग में सामग्री नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि दूसरे मतदान के आयोजन पर अन्यथा विवाद नहीं है।

58. यद्यपि, कार्यकारी परिषद की कार्यवाही पर संदेह करते हुए आपत्तियां ली गई हैं, लेकिन किसी भी सशक्त सामग्री के अभाव में हम आपत्तियों को स्वीकार करने के इच्छुक नहीं हैं। न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत मूल अभिलेख लगाए गए आरोपों का समर्थन नहीं करते हैं। हम यह भी पाते हैं कि किसी ने भी दूसरे मतदान पर विवाद नहीं किया और न ही इसके आयोजन के औचित्य पर प्रश्न उठाया गया है। उस दृष्टिकोण से, हमें याचिकाकर्ताओं द्वारा किए गए आरोप में कोई सार नहीं मिलता है कि विश्वविद्यालय न्यायालय को अनुशंसा के लिए उम्मीदवारों की लघु सूची में हेरफेर किया गया था। दूसरे मुद्दे का उत्तर याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध दिया गया है।

59. तीसरा मुद्दा इस तथ्य के दृष्टिगत उत्पन्न होता है कि कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय न्यायालय की बैठक की अध्यक्षता प्रोफेसर मोहम्मद गुलरेज द्वारा की गई थी जबकि उनकी पत्नी को कुलाधिपति को कुलपति के रूप में नियुक्ति के लिए अनुशंसित किया गया। लघु सूची की कार्यवाही से लगभग दस दिन पहले कार्यकारी परिषद की संरचना में परिवर्तन पर भी ऐसे पूर्वाग्रह के उदाहरण के रूप में निर्भर किया गया है।

60. पूर्वाग्रह के पहलू पर पक्षकार मतभेद में हैं। प्रत्यर्थी यह तर्क देते हैं कि चूंकि अनुशंसा के लिए नामों की लघु सूची मतों की गिनती पर आधारित थी, इसलिए यह चुनाव का मामला था जिसमें पूर्वाग्रह की दलील उपलब्ध नहीं होगी।

61. हम पहले मुद्दे पर पहले ही धारण कर चुके हैं कि कुलपति के पद पर नियुक्ति चयन पर आधारित थी न कि चुनाव। एक बार ऐसा हो, तो प्रत्यर्थियों/राज्य का यह बचाव कि पूर्वाग्रह की अवधारणा आकर्षित नहीं होगी, स्वीकार नहीं किया जा सकता है। श्री अशोक खरे ने केंद्रीय संगठन रेलवे विद्युतीकरण बनाम ईसीआई एसपीआईसी एसएमओ एमसीएमएल (जेवी) ए जॉइंट वेंचर कंपनी, (2024) एससीसी ऑनलाइन एससी 3219 में सर्वोच्च न्यायालय के संविधान पीठ के निर्णय पर निर्भरता रखी है यह प्रस्तुत करने के लिए कि इस मामले के तथ्यों में पूर्वाग्रह की अवधारणा उत्पन्न नहीं होगी।

62. जहां तक चयन पर आधारित नियुक्ति का संबंध है, पूर्वाग्रह की अवधारणा स्पष्ट रूप से लागू होगी। [देखें: ए.के. क्रेपाक और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, (1969) 2 एससीसी 262; अशोक कुमार यादव बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 1987 एससी 454; बोर्ड ऑफ कंट्रोल फॉर क्रिकेट इन इंडिया बनाम क्रिकेट एसोसिएशन ऑफ बिहार, (2015) 3 एससीसी 251; डॉ. वी.के. शर्मा बनाम उ.प्र. राज्य, 2006 (6) एडब्ल्यूसी 6263]।

63. ए.के. क्रेपाक (उपरोक्त) में, चयन बोर्ड में शामिल व्यक्ति स्वयं चयन के लिए एक उम्मीदवार था। न्यायालय ने धारण किया कि जब वह आवेदक भी था तो उस व्यक्ति को चयन बोर्ड में शामिल किया जाना अनुचित था। यद्यपि, संबंधित व्यक्ति ने भाग नहीं लिया था, फिर भी चयन बोर्ड में उनकी उपस्थिति को पूर्वाग्रह माना गया। न्यायालय ने पैरा 16 में निम्नानुसार अवलोकन किया:

"16. नकीशबंद के अलावा चयन बोर्ड के सदस्यों, उनमें से प्रत्येक ने अलग-अलग, इस न्यायालय में शपथपत्र दाखिल किए हैं कि नकीशबंद ने किसी भी तरीके से चयन करने में उनके निर्णय को प्रभावित नहीं किया। ***एक समूह विचार-विमर्श में समूह का प्रत्येक सदस्य दूसरों को प्रभावित करने के लिए बाध्य है, विशेष रूप से, यदि संबंधित सदस्य विशेष ज्ञान वाला व्यक्ति है। उसका पूर्वाग्रह एक सूक्ष्म तरीके से कार्य करने की संभावना है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि चयन बोर्ड के अन्य सदस्य इस बात से अनजान हैं कि उनकी राय ने उनके निष्कर्षों को किस हद तक प्रभावित किया। हम इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि उम्मीदवारों की उपयुक्तता का निर्णय करने में बोर्ड के सदस्यों की कोई पारस्परिक चर्चा नहीं थी। ऐसा नहीं है कि अभिलेख स्वयं बोलते हैं। हम यह विश्वास करने में असमर्थ हैं कि चयन बोर्ड के सदस्य कंप्यूटर की तरह कार्य करते थे। इस चरण में यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि जब चयन किए गए थे, तब नकीशबंद के अलावा चयन बोर्ड के सदस्यों को यह जानने की संभावना नहीं थी कि बसु ने अपने अधिक्रमण के विरुद्ध अपील की थी और उनकी अपील राज्य सरकार के समक्ष लंबित थी। इसलिए उनके लिए नकीशबंद द्वारा व्यक्त राय पर अविश्वास करने का कोई अवसर नहीं था। इसलिए बोर्ड ने चयन करते समय आवश्यक रूप से नकीशबंद द्वारा व्यक्त राय को महत्व दिया होगा।"***

64. अशोक कुमार यादव (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस सिद्धांत को दोहराया कि किसी को अपने स्वयं के मामले में न्यायाधीश नहीं होना चाहिए। इसे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन माना गया। बोर्ड ऑफ कंट्रोल फॉर क्रिकेट इन इंडिया (उपरोक्त) में भी समान विचार व्यक्त किए गए हैं।

65. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी यह तर्क देते हैं कि कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय न्यायालय का उम्मीदवारों की लघु सूची के संबंध में निर्णय चुनाव के सिद्धांतों पर आधारित था, बजाय इसके कि यह चयन का मामला हो, क्योंकि सभी निर्णय मतों की गिनती के आधार पर लिए गए थे। इसलिए, यह सुझाव दिया गया है कि भले ही इसे चयन का मामला माना जाए, फिर भी इसमें चुनाव के पर्याप्त लक्षण हैं जो इसे पूर्वाग्रह के दुष्प्रभाव से बाहर करते हैं।

66. हमने पहले ही देखा है कि विश्वविद्यालय के विनियमों का खंड 8 निर्दिष्ट करता है कि कार्यकारी परिषद की बैठक में विचार किए जाने वाले सभी प्रश्नों का निर्णय उपस्थित सदस्यों के मतों के बहुमत द्वारा किया जाएगा। अनुशंसा के लिए नामों को लघु सूचीबद्ध करने के लिए कार्यकारी परिषद का निर्णय मतों की गिनती की संख्या पर होना है।

67. अध्याय II का खंड 27, वाद-विवाद के नियमों को विहित करते हुए, तथापि, प्रावधान करता है कि कोई भी सदस्य, जो किसी प्रस्ताव से व्यक्तिगत रूप से प्रभावित होने की संभावना है, चाहे अनुकूल रूप से या प्रतिकूल रूप से, उस पर मत देने का हकदार नहीं होगा। संदेह की स्थिति में, अध्यक्ष कारणों के साथ अपना निर्णय देगा जो अभिलिखित किया जाएगा।

68. प्रोफेसर मोहम्मद गुलरेज कुलपति के रूप में कार्य कर रहे थे जब कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय न्यायालय ने कुलपति की नियुक्ति के लिए कुलाधिपति को नाम अनुशंसित करने का मुद्दा उठाया।

69. कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय न्यायालय की बैठक के प्रारंभ पर कई सदस्यों द्वारा एक आपत्ति उठाई गई कि प्रोफेसर गुलरेज अहमद को बैठकों की अध्यक्षता नहीं करनी चाहिए क्योंकि उनकी पत्नी एक उम्मीदवार हैं। इस आपत्ति को प्रोफेसर गुलरेज अहमद द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है। याचिकाकर्ताओं के अनुसार, प्रोफेसर गुलरेज अहमद अपने स्वयं के मामले में न्यायाधीश बन गए और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया।

70. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी यह तर्क देते हैं कि कार्यवाहक कुलपति होने के नाते प्रोफेसर गुलरेज अहमद के लिए इन बैठकों की अध्यक्षता करना अपरिहार्य था। आवश्यकता के सिद्धांत को भी सेवा में लगाया गया है। प्रत्यर्थी मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, दिनांक 12 मार्च 2015 द्वारा जारी एक निर्देश पर भी निर्भर करते हैं जो हितों के टकराव को केवल उम्मीदवार स्वयं तक सीमित करता है और किसी अन्य तक नहीं।

71. निर्विवाद रूप से, वर्तमान मामले में कुलपति की नियुक्ति अधिनियम, विधानों और अध्यादेशों के अनुसार की जानी अपेक्षित थी। कुलपति की नियुक्ति को विनियमित करने वाली संवैधानिक योजना के अंतर्गत मंत्रालय के किसी भी निर्देश को कोई प्रयोज्यता नहीं दिखाई गई है। मंत्रालय के निर्देश ने प्रावधान किया था कि *'यदि कुलपति या कार्यकारी परिषद के कोई अन्य सदस्य जो कुलपति के पद के लिए उम्मीदवार होने के इच्छुक हैं, कार्यकारी परिषद की ऐसी बैठक में उपस्थित होते हैं, तो उन्हें कुलपति के पद के लिए उम्मीदवारों के रूप में अयोग्य माना जाएगा'।*

72. उपरोक्त परिपत्र/निर्देश, दिनांक 12.3.2015, पूरी तरह से एक अलग आकस्मिकता से निपटता था। इसका उद्देश्य कार्यकारी परिषद के सदस्यों को एक बैठक में भागीदारी से बाहर करना था जहां ऐसा सदस्य स्वयं एक उम्मीदवार है। यह हाथ में आकस्मिकता से निपटता नहीं है जहां आपत्ति पति की एक बैठक में भागीदारी से है

जहां उनकी पत्नी भी अनुशंसा के लिए विचार में हैं। यह परिपत्र भी विश्वविद्यालय पर लागू होने के लिए नहीं दिखाया गया है जहां नियुक्ति प्रक्रिया अलग है और अधिनियम, विधानों और अध्यादेशों द्वारा विनियमित है। इसलिए, दिनांक 12.3.2015 का मंत्रालय का परिपत्र प्रत्यर्थियों की सहायता के लिए नहीं आता है।

73. अध्याय II का खंड 27, वाद-विवाद के नियमों को विहित करते हुए स्पष्ट रूप से प्रावधान करता है कि कोई भी सदस्य जो किसी प्रस्ताव से व्यक्तिगत रूप से प्रभावित होने की संभावना है, अनुकूल या प्रतिकूल रूप से, उस पर मत देने का हकदार नहीं होगा। मामले के तथ्यों में, यह स्पष्ट रूप से वांछनीय था कि प्रोफेसर गुलरेज अहमद महत्वपूर्ण कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय न्यायालय की बैठकों की अध्यक्षता से परहेज करते जब उनकी अपनी पत्नी को नियुक्ति के लिए अनुशंसा के लिए विचार किया जाना था। यह नहीं कहा जा सकता है कि एक पति अपनी पत्नी से संबंधित सदन द्वारा अपनाए गए किसी प्रस्ताव से व्यक्तिगत रूप से प्रभावित नहीं होगा। भले ही ऐसा हो, सदन की धारणा अन्यथा होने की काफी संभावना है। भले ही हम प्रत्यर्थियों के तर्क को स्वीकार करें कि प्रोफेसर गुलरेज और प्रोफेसर नईमा प्रतिष्ठित अलग शिक्षाविद् हैं, फिर भी निष्पक्षता बेहतर रूप से प्रतिबिंबित होती यदि प्रोफेसर गुलरेज ने इन बैठकों की अध्यक्षता नहीं की होती।

74. चूंकि, कार्यकारी परिषद की गणपूर्ति 15 है जबकि 19 सदस्य उपस्थित थे और भाग लिया था, इसलिए, कोई कठिनाई अन्यथा उत्पन्न नहीं होती यदि प्रोफेसर गुलरेज अहमद ने परहेज किया होता और विधान के अनुसार अगले व्यक्ति को ऐसी कार्यवाही की अध्यक्षता करने की अनुमति दी होती। यह पाठ्यक्रम अनुशंसा की प्रक्रिया में पूर्वाग्रह की किसी भी आशंका को समाप्त कर देता। इस प्रकार अनुशंसा की प्रक्रिया में प्रोफेसर गुलरेज की अध्यक्षता और भागीदारी को अनुचित माना गया है।

75. हम ऐसी परिस्थितियों में, विश्वविद्यालय को एक निर्देश जारी करना उचित समझते हैं कि वह आगे से यह संकल्प करे कि किसी भी पति या पत्नी या निकट परिवार के सदस्य को अपने निकट रिश्तेदार से संबंधित किसी महत्वपूर्ण बैठक की अध्यक्षता और भागीदारी की अनुमति नहीं दी जाए।

76. ऐसा कहने के बाद, हमें यह जांचना आवश्यक है कि क्या कार्यकारी परिषद या विश्वविद्यालय न्यायालय की प्रोफेसर नईमा खातून को (शॉर्टलिस्ट) लघु सूचीबद्ध करने और उनके नाम को कुलाधिपति को अनुशंसित करने की कार्यवाही प्रोफेसर गुलरेज अहमद की भागीदारी के कारण दूषित है?

77. कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय न्यायालय बहु-सदस्यीय निकाय हैं। 30 अक्टूबर, 2023 को आयोजित इसकी बैठक में कार्यकारी परिषद के 19 सदस्यों ने भाग लिया था, जबकि 6.11.2023 को आयोजित न्यायालय की बैठक में विश्वविद्यालय न्यायालय के 84 सदस्यों ने अपने मतदान के अधिकार का प्रयोग किया।

78. कार्यकारी परिषद के सभी 19 सदस्यों ने मतदान किया। 3 उम्मीदवारों ने 8 और उससे अधिक मत प्राप्त किए। इसमें प्रोफेसर नईमा खातून शामिल थीं। कार्यकारी परिषद ने उसी बैठक में विश्वविद्यालय न्यायालय को

उनकी अनुशंसा के लिए दो और व्यक्तियों को लघु सूचीबद्ध किया। इसी प्रकार, विश्वविद्यालय न्यायालय की बैठक में 84 सदस्यों ने अपने मत डाले। प्रोफेसर मुजफ्फर उरुज रब्बानी को 61 मत प्राप्त हुए; प्रोफेसर फैजान मुस्तफा को 53 मत प्राप्त हुए और प्रोफेसर नईमा खातून को 50 मत प्राप्त हुए।

79. अधिनियम और विधानों के अंतर्गत कुलपति की नियुक्ति की योजना में चयन की प्रक्रिया में प्रोफेसर गुलरेज की भूमिका की जांच करना आवश्यक है।

80. यह निर्धारित करने के लिए कि क्या कार्यकारी परिषद या विश्वविद्यालय न्यायालय की बैठक में प्रोफेसर गुलरेज अहमद की भागीदारी ने ऐसी कार्यवाही को दूषित किया है, हमें पूर्वाग्रह की अवधारणा और वर्तमान प्रकार के मामले में इसकी प्रयोज्यता को समझना होगा जहां दोनों बैठकों में निर्णय बहु-सदस्यीय निकाय के सदस्यों द्वारा डाले गए मतों की संख्या पर पहुंचे थे। कुलपति की नियुक्ति की योजना में चयन की प्रक्रिया में प्रोफेसर गुलरेज की भूमिका को समझा जाना आवश्यक है।

81. केंद्रीय संगठन रेलवे विद्युतीकरण (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने ए.के. क्रेपाक (उपरोक्त) और अशोक कुमार यादव (उपरोक्त) में निर्णयों का संदर्भ देने के बाद पूर्वाग्रह के सिद्धांत को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत पर विचार किया। पैरा 88 और 89 में संविधान पीठ ने निम्नानुसार धारण किया:-

"88. *पूर्वाग्रह के सिद्धांत को नियंत्रित करने वाला सिद्धांत यह है कि किसी विवाद में किसी भी पक्ष के पक्ष में या उसके विरुद्ध पूर्वाग्रह वाले न्यायिक निकाय का सदस्य या जिसकी विषय वस्तु या विवादित पक्ष के संबंध में स्थिति ऐसी है कि निष्पक्षता की कमी का अनुमान लगाया जाएगा, विवाद का निर्णय करने के लिए गठित न्यायाधिकरण का हिस्सा नहीं होना चाहिए। यह सिद्धांत उन प्राधिकरणों पर लागू होता है जिन्हें अधिकारों और दायित्वों का निर्णय करने में न्यायिक रूप से कार्य करना होता है और अर्ध-न्यायिक कार्य निर्वहन करने वाले निकायों पर। विरोधी पक्षों के बीच विवाद का निर्णय करने के लिए सशक्त एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण "एक पक्ष या विवाद में दूसरे की ओर पूर्वाग्रह के बिना होना चाहिए।" न्यायाधिकरण का सदस्य जिसे न्यायिक या अर्ध-न्यायिक कार्यवाही में मुद्दों का निर्णय करने के लिए बुलाया जाता है, उसे निष्पक्ष रूप से, वस्तुनिष्ठ रूप से और पूर्वाग्रह के बिना कार्य करना चाहिए।*

lii. वास्तविक पूर्वाग्रह की संभावना का परीक्षण
ए. स्वचालित अयोग्यता

89. *पूर्वाग्रह को आम तौर पर तीन शीर्षों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है: (i) कानूनी हित, जिसका अर्थ है कि न्यायाधीश "ऐसी स्थिति में है कि पूर्वाग्रह का अनुमान लगाया जाना चाहिए"; (ii) धनात्मक हित; और (iii) व्यक्तिगत पूर्वाग्रह। एक धनात्मक या स्वामित्व हित, चाहे कितना भी छोटा हो, स्वचालित रूप से एक व्यक्ति को अयोग्य ठहराता है। एक व्यक्ति जिसका किसी मुद्दे के परिणाम में हित है जिसे हल किया जाना है, अपने*

स्वयं के मामले में न्यायाधीश के रूप में कार्य करेगा। प्रश्न यह नहीं है कि क्या न्यायाधीश का न्यायाधीश के समक्ष मामले में शामिल पक्षों के साथ कोई संबंध है बल्कि यह है कि क्या उस मामले का परिणाम वास्तविक रूप से न्यायाधीश के हित को प्रभावित कर सकता है। इस सिद्धांत को हाउस ऑफ लॉर्ड्स द्वारा डाइम्स बनाम ग्रैंड जंक्शन कैनाल में आधिकारिक रूप से कहा गया है। उस मामले में, लॉर्ड चांसलर ने एक नहर कंपनी के पक्ष में फरमान पारित किया जिसमें उनके पास पर्याप्त शेयर थे। हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने अवलोकन किया कि यह सिद्धांत कि कोई भी व्यक्ति अपने स्वयं के मामले में न्यायाधीश नहीं होना चाहिए "एक ऐसे मामले तक सीमित नहीं है जिसमें वह एक पक्ष है, बल्कि एक ऐसे मामले पर लागू होता है जिसमें उसका हित है।""

82. पूर्वाग्रह के सिद्धांत को न्यायिक कार्यवाही या न्यायाधिकरण की कार्यवाही में सख्ती से लागू किया जाता है जिन्हें निर्णय का कार्य सौंपा गया है। चयन कार्यवाही में भी चयन समिति के सदस्य एक पद पर नियुक्ति के लिए उम्मीदवार की योग्यता का निर्णय करते हैं और, इसलिए, पूर्वाग्रह की अवधारणा आकर्षित होती है। यहां तक कि जहां चयन समिति एक बहु-सदस्यीय निकाय है और इसका निर्णय सदस्यों के बीच परामर्श और चर्चा पर आधारित है, यह स्पष्ट होगा कि यदि किसी सदस्य को संबंधित उम्मीदवार से निकटता से संबंधित दिखाया गया है तो पूर्वाग्रह के सिद्धांत लागू होंगे।

83. विश्वविद्यालय के कुलपति की नियुक्ति प्रक्रिया में कार्यकारी परिषद द्वारा विश्वविद्यालय न्यायालय को पांच नामों की अनुशंसा की आवश्यकता होती है, जिसके पश्चात विश्वविद्यालय न्यायालय कार्यकारी परिषद द्वारा अनुशंसित उन पांच में से तीन उम्मीदवारों को कुलाधिपति को अनुशंसित करता है। कुलपति का अंतिम चयन कुलाधिपति द्वारा विश्वविद्यालय न्यायालय द्वारा अग्रेषित तीन नामों में से किया जाता है।

84. अधिनियम और विधानों में निर्दिष्ट नियुक्ति प्रक्रिया के अनुसार कुलाधिपति विश्वविद्यालय न्यायालय द्वारा अनुशंसित व्यक्तियों में से किसी एक को विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में नियुक्त करने के लिए बाध्य नहीं है। कुलाधिपति के पास न्यायालय द्वारा अनुशंसित किसी भी व्यक्ति को अनुमोदित न करने और नई अनुशंसाएं मांगने का विवेक है। कुलपति की नियुक्ति में कुलाधिपति का विवेक सीमित या सशर्त नहीं है। अधिनियम अंततः कुलपति की नियुक्ति करने के लिए कुलाधिपति में विश्वास रखता है।

85. अधिनियम के अंतर्गत नियुक्ति की योजना कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय न्यायालय को सीमित प्राधिकार प्रदान करती है। इसकी भूमिका कार्यकारी परिषद द्वारा सुझाए गए पांच नामों में से विश्वविद्यालय न्यायालय द्वारा तीन व्यक्तियों के नाम की अनुशंसा तक सीमित है। कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय न्यायालय बहु-सदस्यीय निकाय हैं और उनके निर्णय उनके द्वारा डाले गए मतों की संख्या पर बहुमत द्वारा होते हैं।

86. यद्यपि हमने धारण किया है कि कुलपति की नियुक्ति चयन द्वारा है न कि चुनाव, फिर भी, हमें विश्वविद्यालय के अधिनियम और विधानों के प्रावधानों को ध्यान में रखना होगा जिसमें कार्यकारी परिषद और

विश्वविद्यालय न्यायालय की भूमिका अधिक से अधिक कुलपति की नियुक्ति करने में अनुशंसात्मक प्रकृति की है। अनुशंसा भी बहु-सदस्यीय निकाय द्वारा मतों की गिनती पर आधारित है। इस पर विचार करते हुए, पूर्वाग्रह की अवधारणा पूर्णतः आकर्षित नहीं हो सकती है जब प्रोफेसर गुलरेज ने केवल नामों को लघु सूचीबद्ध और अनुशंसित करने के लिए कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय न्यायालय की बैठकों की अध्यक्षता की जो कुलाधिपति द्वारा आवश्यक रूप से स्वीकार किए जाने की आवश्यकता नहीं थी, जिनके विवेक पर प्रश्न नहीं उठाया गया है। पूर्वाग्रह की अवधारणा की प्रयोज्यता निर्धारित करने में किसी को उस व्यक्ति को सौंपी गई भूमिका को समझना होगा जिसके विरुद्ध पूर्वाग्रह का आरोप लगाया गया है। यदि ऐसे व्यक्ति की इसमें निर्णायक भूमिका है तो पूर्वाग्रह की अवधारणा आकर्षित होगी। तथापि, जहां ऐसे व्यक्ति की भूमिका उस निकाय की अध्यक्षता करने तक सीमित है जिसे एक पैनल की अनुशंसा करनी है और लघु सूचीबद्ध पैनल से चुनने का अंतिम प्राधिकार कुलाधिपति में निहित है, जिनके विरुद्ध कोई पूर्वाग्रह का आरोप नहीं लगाया गया है, चयन की कार्यवाही को प्रोफेसर गुलरेज की भागीदारी के कारण दूषित नहीं माना जा सकता है।

87. कुलाधिपति विधान के अंतर्गत कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय न्यायालय की अनुशंसा को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है और इसे स्वीकार न करने और नई अनुशंसा मांगने का प्राधिकार रखता है। कानून में अनुमान यह होगा कि कुलाधिपति के स्तर पर कार्यवाही और अभिलेखों की जांच की जाएगी। कुलाधिपति के समक्ष चयन के महत्वपूर्ण चरण पर न तो कार्यवाही में कोई कमी दिखाई गई है और न ही कोई पूर्वाग्रह का आरोप लगाया गया है। परिणामस्वरूप, कुलाधिपति द्वारा कुलपति के चयन पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है।

88.यद्यपि, हम इस राय के हैं कि प्रोफेसर गुलरेज अहमद को कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय न्यायालय की बैठक में अध्यक्षता और भागीदारी नहीं करनी चाहिए थी, फिर भी, नियुक्ति प्रक्रिया की प्रकृति और कुलपति की नियुक्ति करने में कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय न्यायालय की सीमित अनुशंसात्मक भूमिका पर विचार करते हुए, हम इस विचारित मत के हैं कि ऐसी कार्यवाही में प्रोफेसर गुलरेज अहमद की भागीदारी ने चयन कार्यवाही को दूषित नहीं किया है। हम, तदनुसार, तीसरे मुद्दे का उत्तर देते हैं। 30.10.2023 की बैठक के आयोजन से ठीक पहले कार्यकारी परिषद के एक सदस्य का परिवर्तन भी ऐसे कारण के लिए निर्णायक नहीं है।

89. हमारे विचारार्थ तैयार किए गए अंतिम मुद्दे पर आते हुए, यह उल्लेख करने योग्य है कि प्रोफेसर नईमा खातून निर्विवाद रूप से कुलपति के पद पर नियुक्ति के लिए योग्यता रखती हैं। हमें सूचित किया गया है कि एक शताब्दी से अधिक के विश्वविद्यालय के इतिहास में किसी महिला को कभी भी कुलपति के रूप में नियुक्त नहीं किया गया है। उच्च शिक्षा के एक प्रमुख संस्थान की कुलपति के रूप में महिला की नियुक्ति यह संदेश भेजती है कि महिलाओं के कारण की प्रगति के संवैधानिक उद्देश्य को बढ़ावा दिया जा रहा है। ऐसी परिस्थितियों में, प्रश्न यह है कि क्या यह न्यायालय अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पहली महिला कुलपति को केवल

इसलिए हटाएगा क्योंकि उनके पति ने कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय न्यायालय की बैठक की अध्यक्षता की थी, जिसमें कुलाधिपति को भेजे जाने वाले पैनल में उनका नाम शामिल था?

90. इसका उत्तर एक निश्चित निश्चित रूप से ना है। हम पहले ही देख चुके हैं कि प्रोफेसर नईमा खातून की कुलपति के रूप में नियुक्त होने की योग्यता मुद्दे में नहीं है। उनका अंतिम चयन कुलाधिपति द्वारा किया गया है जिनके विरुद्ध कोई पूर्वाग्रह का आरोप नहीं लगाया गया है। वे विश्वविद्यालय के महिला महाविद्यालय की पूर्व प्राचार्य थीं। केवल इसलिए कि उनके पति कुलपति के रूप में कार्य कर रहे थे और उन्होंने कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय न्यायालय की बैठकों की अध्यक्षता और भागीदारी की थी जिसने अन्य लोगों के अतिरिक्त कुलपति के रूप में नियुक्ति के लिए उनके नाम को भी अनुशंसित किया था, विश्वविद्यालय की पहली महिला कुलपति के रूप में उनकी नियुक्ति में हस्तक्षेप करने का आधार नहीं हो सकता है।

91. ऊपर दिए गए कारणों और विचार-विमर्श के लिए, हम धारण करते हैं कि विश्वविद्यालय न्यायालय द्वारा अनुशंसित तीन नामों के पैनल से अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पहली महिला कुलपति के रूप में प्रोफेसर नईमा खातून को नियुक्त करने में कुलाधिपति द्वारा प्रयोग किए गए विवेक में कोई हस्तक्षेप योग्य नहीं है।

92. तदनुसार, रिट याचिकाएं खारिज की जाती हैं। लागत सरल की गई।

अनवाचित

(2025) 5 ILRA 1457

मूल अधिकारिता सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट - A संख्या: 25278/2014

सम्बद्ध अन्य वाद

रिट ए संख्या(एं) 14570 सन् 2024, 14851 सन् 2014, 15447 सन् 2024, 17490 सन् 2014, 17728 सन् 2014, 17730 सन् 2014, 17732 सन् 2014, 21700 सन् 2018, 23263 सन् 2018, 36109 सन् 2017, 57821 सन् 2014 और 8641 सन् 2022

अज़हर अली ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री के.एस. कुशवाहा

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: श्री बी.पी.एस. कच्छवाहा, श्री आई.आर. सिंह, श्री के. शाही, श्री प्रदीप उपाध्याय, श्री संजय कुमार श्रीवास्तव

सिविल विधि - उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 - सहायक अध्यापक (उर्दू) की नियुक्ति - याचिकाकर्ता ने 1995 में इंटरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात जमिया उर्दू, अलीगढ़ से आदिब-ए-कामिल पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया। परीक्षा मात्र पाँच माह में हुई और परिणाम जुलाई 1996 में घोषित हुआ। फरवरी 1997 में मौल्लिम-ए-उर्दू परीक्षा भी उत्तीर्ण की।

न्यायालय ने कहा कि–

- दोनों पाठ्यक्रम एक वर्ष के थे, परंतु याचिकाकर्ता ने आठ माह में ही दोनों पूर्ण कर लिए।
- इससे सिद्ध होता है कि जमिया उर्दू, अलीगढ़ बिना उचित कक्षाओं के डिग्रियाँ वितरित कर रहा था।
- याचिकाकर्ता नियुक्ति हेतु अयोग्य है।

अतः, रिट याचिका निरस्त की जाती है। (अनुच्छेद 11-15) (E-5)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा प्रदत्त)

अनुवादित

1. रिट याचिकाओं के इस समूह में, सर्व/श्री के.एस. कुशवाहा, इंद्रेश दुबे, नवीन कुमार शर्मा, अवध नारायण राय, ए.सी. तिवारी, सुश्री बुशरा मरियम, मोहम्मद यासीन, महेश शर्मा, ए.के. शुक्ला, अधिवक्तागण सभी याचिकाकर्ताओं के लिए, सर्व/श्री राजेश्वर त्रिपाठी, सी.एस.सी. तथा ए.के. नागवंशी और ए.सी. श्रीवास्तव, अपर सी.एस.सी. तथा सुश्री श्रुति मालविया, राज्य के लिए संक्षिप्त धारक और सर्व/श्री संजय कुमार सिंह, भानु प्रताप सिंह कच्छवाह, के. शाही, विपिन बिहारी, शिवेन्द्र सिंह भदौरिया, विद्वान अधिवक्तागण बेसिक शिक्षा परिषद के लिए उपस्थित हुए।

2. वर्तमान समूह की सभी रिट याचिकाओं में रिट याचिकाकर्ताओं ने दावा किया है कि उन्होंने जामिया उर्दू, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश नामक संस्थान से अदीब-ए-कामिल की उपाधि प्राप्त की है।

3. सभी रिट याचिकाकर्ताओं ने घोषित किया है कि उन्होंने उ.प्र. बोर्ड से इंटरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण की थी और तत्पश्चात उन्होंने जामिया उर्दू, अलीगढ़ में अदीब-ए-कामिल, एक 1 वर्षीय पाठ्यक्रम (संबंधित समय पर) में प्रवेश लिया और एक वर्ष के पश्चात, वे उत्तीर्ण भी हो गए।

4. सभी रिट याचिकाकर्ता परीक्षा नियामक प्राधिकरण, उ.प्र. द्वारा आयोजित उ.प्र. शिक्षक पात्रता परीक्षा - 2013 में उपस्थित हुए हैं और उत्तीर्ण भी हो गए हैं।

5. सभी रिट याचिकाकर्ताओं ने उ.प्र. बेसिक शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में सहायक शिक्षक (उर्दू भाषा) की नियुक्ति के लिए दिनांक 17.08.2013 के शासनादेश के अनुसरण में प्रारम्भ की गई भर्ती प्रक्रिया में भाग लिया है। नियुक्ति के लिए निर्धारित शैक्षिक योग्यताएं निम्नलिखित रूप से उल्लिखित हैं :-

"1- आवेदन हेतु पात्रता

शैक्षिक अर्हता -

(क) भारत में विधि द्वारा स्थापित किसी विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि या सरकार द्वारा उसके समकक्ष मान्यता प्राप्त कोई उपाधि, जिसमें एक विषय के रूप में उर्दू रही हो। परन्तु कोई अभ्यर्थी उर्दू में उपयुक्त नहीं है, नियुक्ति के लिए पात्र होगा, यदि अभ्यर्थी उर्दू विषय में स्नातकोत्तर उपाधि रखता हो।

(ख) सरकार द्वारा उर्दू अध्यापन के लिए प्रशिक्षण देने हेतु लखनऊ आगरा मवाना जिला मेरठ और सकलडीहा जिला चन्दौली में स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों में से किसी एक केन्द्र से बेजिसक अध्यापक प्रमाण पत्र या सरकार द्वारा उसके समकक्ष मान्यता प्राप्त कोई अन्य प्रशिक्षण या बेजिसक अध्यापक प्रमाण पत्र (बी०टी०सी०) विद्वष्य बी०टी०सी० (उर्दू) और उ०प्र० सरकार या भारत सरकार द्वारा संचालित अध्यापक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण किया हो।

अथवा

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से अध्यापन में डिप्लोमा (उर्दू अध्यापन हेतु) और उत्तर प्रदेश सरकार या भारत सरकार द्वारा संचालित अध्यापक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण किया हो।

अथवा

दिनांक 11.08.1997 के पूर्व मोअल्लिम-ए-उर्दू उपाधि (उर्दू अध्यापक हेतु) और उत्तर प्रदेश सरकार या भारत सरकार द्वारा संचालित अध्यापक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण किया हो।"

6. सभी याचिकाकर्ताओं ने दावा किया है कि उन्हें गुणवत्ता अंकों के आधार पर तैयार की गई योग्यता सूची में सम्मिलित किया गया था और उन्होंने परामर्श में भाग लिया। कुछ याचिकाकर्ताओं को नियुक्ति प्रदान की गई और वे सम्मिलित हो गए। कुछ को नियुक्ति प्रदान की गई परन्तु विद्यालय आवंटित नहीं किए गए और अन्य नियुक्ति पत्रों की प्रतीक्षा कर रहे थे।

7. इस स्तर पर, एक विवाद/वाद-विवाद उत्पन्न हुआ कि याचिकाकर्ताओं ने अपनी संबंधित इंटरमीडिएट परीक्षा और अदीब-ए-कामिल की उपाधि एक ही वर्ष में उत्तीर्ण की है या एक वर्ष से कम की अवधि में अदीब-ए-कामिल का 1 वर्षीय पाठ्यक्रम उत्तीर्ण किया है। संयुक्त जांच आयोजित की गई और याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध प्रतिकूल आदेश पारित किए गए, जिसके द्वारा उनकी नियुक्तियां रद्द कर दी गईं या उन्हें नियुक्ति प्रदान नहीं की गई और, इसलिए, वे इस न्यायालय के समक्ष हैं।

8. सभी रिट याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ताओं ने तर्क दिया है कि :-

(क) जामिया उर्दू, अलीगढ़ नामक संस्थान पर कोई संदेह कि यह एक मान्यता प्राप्त संस्थान नहीं था या यह केवल नाममात्र का संस्थान था, जहां कोई शिक्षक या कक्षा कक्ष नहीं था, उपाधि की वैधता के संबंध में एक मुद्दे के रूप में आधारहीन था। उसी संस्थान (जामिया उर्दू, अलीगढ़) से मोअल्लिम-ए-उर्दू को इस न्यायालय (एकल तथा खंडपीठ) द्वारा **सरताज अहमद और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य तथा अन्य रिट याचिकाओं के साथ : 2018: एएचसी: 14798** में विचार किया गया था, जिसमें विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 315/2015 (सी/एम श्री नागेश्वर प्रसाद पूर्व माध्यमिक विद्यालय बनाम नंदजी यादव और अन्य) में खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय पर भी विचार किया गया और यह धारित किया गया कि जिन्होंने दिनांक 11.08.1997 को या उससे पूर्व जामिया उर्दू, अलीगढ़ से मोअल्लिम-ए-उर्दू में प्रवेश लिया था, वे दिनांक 05.01.2016 के शा.आ. के अनुसरण में बेसिक शिक्षा विभाग, उ.प्र. द्वारा संचालित प्राथमिक संस्थानों में उर्दू में सहायक शिक्षक के पदों पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के हकदार थे, इसलिए, उन लोगों के लिए भी समान कट-ऑफ प्रदान की जाए जिन्होंने उक्त संस्थान से अदीब-ए-कामिल उत्तीर्ण की है। **सरताज अहमद** (उपरोक्त) का संगत भाग निम्नलिखित रूप से उल्लिखित है :-

"7. यह मुद्दा कि क्या वे सभी जिन्होंने दिनांक 11.8.1997 को या उससे पूर्व मोअल्लिम-ए-उर्दू प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया था, प्रश्नगत पद के लिए नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के हकदार हैं, अब रेस इंटीग्रा नहीं रह गया है। इस संबंध में मुद्दा विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 315/2015, दिनांक 8.5.2017 में खंडपीठ के निर्णय द्वारा निर्णीत हो चुका है, जो बाध्यकारी है। इसलिए, इस न्यायालय को यह धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि वे सभी याचिकाकर्ता जिन्होंने दिनांक 11.8.1997 को या उससे पूर्व मोअल्लिम-ए-उर्दू

प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया था और तत्पश्चात इसे उत्तीर्ण कर लिया है, प्रश्नगत पद पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के हकदार हैं।"

(ख) याचिकाकर्ताओं को अपना संबंधित मामला रखने का कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया क्योंकि आक्षेपित आदेश एकपक्षीय रूप से पारित किए गए थे।

(ग) विद्वान अधिवक्ताओं ने प्रस्तुत किया है कि संबंधित समय पर दो पाठ्यक्रम एक साथ करने पर कोई प्रतिबंध नहीं था। पूर्ण प्रतिबंध बाद में लगाया गया था। उन्होंने इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा **बेसिक शिक्षा अधिकारी बनाम लक्ष्मी शक्या और अन्य, 2024:AHC:94194-DB** में पारित निर्णय का संदर्भ दिया है।

9. प्रतिवाद में, राज्य-प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता और संबंधित प्रत्यर्थी-बी.एस.ए. के विद्वान अधिवक्ताओं ने प्रस्तुत किया है कि :-

(i) जामिया उर्दू, अलीगढ़ विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं था।

(ii) यह एक ऐसा संस्थान था, जिसने नियमित कक्षाओं के बिना और शिक्षकों के बिना पाठ्यक्रम संचालित करके उपाधियां वितरित की हैं।

(iii) याचिकाकर्ताओं के अदीब-ए-कामिल के प्रमाण पत्र धोखाधड़ी का परिणाम थे। याचिकाकर्ताओं ने एक वर्ष से कम या 6 महीने के भीतर एक वर्षीय पाठ्यक्रम पूरा कर लिया था और उसी वर्ष उन्होंने इंटरमीडिएट उत्तीर्ण की थी।

10. अब न्यायालय व्यक्तिगत रिट याचिका पर चर्चा और निर्णय करने के लिए आगे बढ़ता है।

(1) रिट ए संख्या 25278/2014 (अजहर अली)

11. याचिकाकर्ता ने वर्ष 1995 में इंटरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण की और एक प्रमाण पत्र 26.07.1995 को जारी किया गया। याचिकाकर्ता के मामले के अनुसार, उसने जुलाई, 1995 में जामिया उर्दू, अलीगढ़ में अदीब-ए-कामिल करने के लिए प्रवेश प्राप्त किया। इसकी परीक्षा नवंबर, 1995 अर्थात 5 महीने के भीतर आयोजित की गई और परिणाम जुलाई, 1996 में घोषित किया गया। अभिलेख पर रखे गए एक प्रमाण पत्र से स्पष्ट रूप से दर्शित होता है कि याचिकाकर्ता ने फरवरी, 1997 में आयोजित मोअल्लिम-ए-उर्दू परीक्षा उत्तीर्ण की है।

12. उपर्युक्त परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता ने जुलाई, 1996 और फरवरी, 1997 के बीच अर्थात 8 महीने की बहुत कम अवधि में दो पाठ्यक्रम (अदीब-ए-कामिल और मोअल्लिम-ए-उर्दू) उत्तीर्ण किए हैं अर्थात यद्यपि दोनों पाठ्यक्रमों की अवधि 1 वर्ष थी।

13. प्रत्यर्थियों के अनुसार यदि याचिकाकर्ता ने मई, 1995 में अदीब-ए-कामिल की परीक्षा दी थी, तो उसने एक वर्ष पूर्व अर्थात जुलाई, 1994 में प्रवेश लिया होगा, जब स्वीकार्यतः वह इंटरमीडिएट कर रहा था।

अनुवादित

14. उपरोक्त संदर्भित तथ्य स्पष्ट हैं कि याचिकाकर्ता ने 5 महीने की अवधि में अदीब-ए-कामिल के लिए एक वर्ष की अपनी पढ़ाई पूरी नहीं की है और 8 महीने के भीतर दो पाठ्यक्रम उत्तीर्ण कर लिए हैं, यद्यपि दोनों पाठ्यक्रम एक वर्ष के थे, अतः उसने 8 महीने में दो पाठ्यक्रम किए।

15. उपर्युक्त तथ्य स्थापित करते हैं कि जामिया उर्दू, अलीगढ़ उचित कक्षाओं के बिना उपाधियां वितरित कर रहा था। इसलिए, याचिकाकर्ता अपात्र होने के कारण नियुक्ति का कोई अधिकार नहीं रखता है।

16. रिट याचिका गुणावगुण से विहीन होने के कारण, तदनुसार, खारिज की जाती है।

(2) रिट ए संख्या 57821/2014 (मोहम्मद जहीर)

17. याचिकाकर्ता ने 1993 में इंटरमीडिएट परीक्षा, 1994 में अदीब-ए-कामिल और 1995 में मोअल्लिम-ए-उर्दू और 2001 में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा से एक निजी प्रत्याशी के रूप में स्नातक उत्तीर्ण की है।

18. याचिकाकर्ता ने ऑनलाइन प्रपत्र में अदीब-ए-कामिल (1994) के बारे में प्रकट नहीं किया। ऑनलाइन प्रपत्र के अनुसार, उसने वर्ष 2001 में स्नातक उत्तीर्ण की है और इससे पूर्व, उसने 1995 में मोअल्लिम-ए-उर्दू उत्तीर्ण की थी, जो स्नातक के पश्चात उपलब्ध पाठ्यक्रम है। उसने परामर्श के समय अपने सभी प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए हैं परन्तु प्रमाण पत्रों की जांच केवल ऑनलाइन प्रपत्र के आधार पर की गई थी।

19. याचिकाकर्ता स्वयं दोष पर था और उसने ऑनलाइन प्रपत्र में सही जानकारी प्रस्तुत नहीं की है। उपरोक्त के दृष्टिगत, न्यायालय अजहर अली (उपरोक्त) में निर्दिष्ट कारणों को भी नोट करता है जो वर्तमान मामले पर भी पूर्णतः लागू होते हैं।

20. रिट याचिका गुणावगुण से विहीन होने के कारण, तदनुसार, **खारिज** की जाती है।

(3) रिट ए संख्या 17490/2014 (मोहम्मद अतीक)

21. याचिकाकर्ता की नियुक्ति इस आधार पर रद्द कर दी गई थी कि उसने इंटरमीडिएट और अदीब-ए-कामिल एक ही वर्ष अर्थात 1995 में उत्तीर्ण की है।

22. इस रिट याचिका के साथ अनुलग्न दस्तावेज यह भी दर्शाते हैं कि याचिकाकर्ता ने वर्ष 1995 में इंटरमीडिएट परीक्षा और वर्ष 1995 में अदीब-ए-कामिल भी उत्तीर्ण की है और यह भी कि अदीब-ए-कामिल की परीक्षा नवंबर, 1995 में हुई थी अर्थात 1 वर्ष का पाठ्यक्रम 6 महीने से कम में पूरा कर लिया गया था, इसलिए, अजहर अली (उपरोक्त) में निर्दिष्ट कारण वर्तमान मामले पर भी पूर्णतः लागू होते हैं।

अनुवादित

23. रिट याचिका गुणावगुण से विहीन होने के कारण, तदनुसार, **खारिज** की जाती है।

(4) रिट ए संख्या 14851/2014 (उजमा अंजुम)

24. याचिकाकर्ता की प्रत्याशिता इस आधार पर अस्वीकृत कर दी गई थी कि उसने इंटरमीडिएट और अदीब-ए-कामिल एक ही वर्ष में उत्तीर्ण की है।

25. इस रिट याचिका के साथ अनुलग्न दस्तावेजों के केवल अवलोकन से, याचिकाकर्ता ने वर्ष 1994 में इंटरमीडिएट और वर्ष 1994 में अदीब-ए-कामिल भी उत्तीर्ण की है और यह भी कि इसकी परीक्षा नवंबर 1994 में आयोजित की गई थी अर्थात 1 वर्ष का पाठ्यक्रम बहुत कम अवधि अर्थात 6 महीने से कम में समाप्त कर लिया गया था।

26. इसलिए, अजहर अली (उपरोक्त) में निर्दिष्ट कारण वर्तमान मामले पर भी समान रूप से लागू होते हैं।

27. रिट याचिका गुणावगुण से विहीन होने के कारण, तदनुसार, **खारिज** की जाती है।

(5) रिट ए संख्या 17728/2014 (सैयद मोहम्मद स्वाले)

28. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता की प्रत्याशिता इस आधार पर रद्द कर दी गई थी कि उसने स्नातक और मोअल्लिम-ए-उर्दू एक ही वर्ष अर्थात 1996 में उत्तीर्ण की है।

29. इस रिट याचिका के साथ अनुलग्न दस्तावेजों के केवल अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने वर्ष 1996 में रुहेलखंड विश्वविद्यालय से स्नातक, एक 3 वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम उत्तीर्ण की है और उसी वर्ष अर्थात 1996 में मोअल्लिम-ए-उर्दू भी उत्तीर्ण की है और उसने आगे प्रकट किया कि इसकी परीक्षा फरवरी, 1997 में आयोजित की गई थी, जिसका अर्थ है कि 1 वर्ष का पाठ्यक्रम 6 महीने से कम में समाप्त कर लिया गया था।

30. इसलिए, अजहर अली (उपरोक्त) में निर्दिष्ट कारण वर्तमान मामले पर भी समान रूप से लागू होते हैं।

31. रिट याचिका गुणावगुण से विहीन होने के कारण, तदनुसार, **खारिज** की जाती है।

(6) रिट ए संख्या 17730/2014 (श्रीमती शबाना अजमी)

32. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता की नियुक्ति इस आधार पर रद्द कर दी गई थी कि उसने स्नातक और मोअल्लिम-ए-उर्दू एक ही वर्ष अर्थात 1996 में उत्तीर्ण की है।

असंपादित

33. दस्तावेजों के केवल अवलोकन से, उपर्युक्त तथ्य सही हैं कि याचिकाकर्ता ने वर्ष 1996 में स्नातक का अंतिम वर्ष और उसी वर्ष मोअल्लिम-ए-उर्दू उत्तीर्ण की है। यह आगे प्रकट किया गया है कि इसकी परीक्षा फरवरी, 1997 में आयोजित की गई थी जो मोअल्लिम-ए-उर्दू के पाठ्यक्रम की अवधि अर्थात 1 वर्ष से बहुत कम है।

34. इसलिए, अजहर अली (उपरोक्त) में निर्दिष्ट कारण वर्तमान मामले पर भी समान रूप से लागू होते हैं।

35. रिट याचिका गुणावगुण से विहीन होने के कारण, तदनुसार, **खारिज** की जाती है।

(7) **रिट ए संख्या 17732/2014 (श्रीमती नसरीन जहरा नकवी)**

36. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के चयन को इस आधार पर रद्द कर दिया गया था कि उसने स्नातक और मोअल्लिम-ए-उर्दू एक ही वर्ष अर्थात 1990 में उत्तीर्ण की है।

37. दस्तावेजों के केवल अवलोकन से, यह प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने वर्ष 1990 में बी.ए. का तृतीय वर्ष उत्तीर्ण किया है जो 09.08.1990 को जारी अंक पत्र से स्पष्ट है और याचिकाकर्ता ने उसी वर्ष मोअल्लिम-ए-उर्दू भी उत्तीर्ण की है और यह आगे प्रकट किया गया है कि इसकी परीक्षा फरवरी, 1991 में आयोजित की गई थी अर्थात 1 वर्ष का पाठ्यक्रम 6 महीने के भीतर समाप्त कर लिया गया था जबकि स्वीकार्यतः मोअल्लिम-ए-उर्दू का पाठ्यक्रम 1 वर्ष का है।

38. इसलिए, अजहर अली (उपरोक्त) में निर्दिष्ट कारण वर्तमान मामले पर भी समान रूप से लागू होते हैं।

39. रिट याचिका गुणावगुण से विहीन होने के कारण, तदनुसार, **खारिज** की जाती है।

(8) रिट ए संख्या 15447/2024 (मोहम्मद आसिफ अंसारी)

40. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता सरताज अहमद (उपरोक्त) के निर्णय का लाभ लेना चाहता है कि उसने 11.08.1997 से पूर्व मोअल्लिम-ए-उर्दू के पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया था, तथापि, जैसा कि उपर्युक्त संदर्भित है, दिनांक 19.04.2024 के आक्षेपित आदेश में, याचिकाकर्ता ने जामिया उर्दू, अलीगढ़ द्वारा सम्यक रूप से सत्यापित कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया है।

41. संस्थान मकतब हिदायतुल इस्लाम, शिकारपुर, बुलंदशहर द्वारा जारी एक प्रमाण पत्र कि उसने 26.07.1997 को प्रवेश लिया था, को संगत दस्तावेज के रूप में नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह जामिया उर्दू, अलीगढ़ द्वारा सत्यापित नहीं था, इसलिए, याचिकाकर्ता का दावा सही रूप से अस्वीकृत किया गया और याचिकाकर्ता द्वारा सरताज अहमद (उपरोक्त) के निर्णय की शर्तों में चाहा गया लाभ वर्तमान मामले के तथ्यों पर विस्तारित नहीं किया जा सकता था।

अनुवादित

42. रिट याचिका गुणावगुण से विहीन होने के कारण, तदनुसार, खारिज की जाती है।

(9) रिट ए संख्या 21700/2018 (मोहम्मद इदरीश और अन्य)

43. यह रिट याचिका 5 याचिकाकर्ताओं अर्थात मोहम्मद इदरीश, खालिदा बानो, फौजिया असलम, इशरत जहान और सैयद मीसम रजा द्वारा प्राथमिकृत की गई है।

44. सभी याचिकाकर्ता इस न्यायालय के सरताज अहमद (उपरोक्त) के निर्णय में उल्लिखित कट-ऑफ तिथि का लाभ दावा कर रहे हैं कि उन्होंने कट ऑफ तिथि अर्थात 11.08.1997 से पूर्व मोअल्लिम-ए-उर्दू में प्रवेश लिया था।

45. आक्षेपित आदेश में, सत्यापन प्रतिवेदनों पर विचार किया गया और सभी याचिकाकर्ताओं ने घोषित किया है कि उन्होंने जामिया उर्दू, अलीगढ़ के परिसर के बाहर केंद्रों से पाठ्यक्रम उत्तीर्ण किया है और यह भी उल्लेख किया गया था कि उनके विवरण जामिया उर्दू, अलीगढ़ द्वारा सत्यापित नहीं थे। अन्य स्थानों पर स्थित केंद्रों से जारी प्रमाण पत्र जामिया उर्दू, अलीगढ़ से सत्यापित किए बिना कोई प्रासंगिकता नहीं रखते हैं।

46. इसलिए, जैसा कि उपर्युक्त संदर्भित है, सरताज अहमद (उपरोक्त) के निर्णय की शर्तों में, ऐसी घोषणा को वैध घोषणा नहीं माना जा सकता है। अतः कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाता है।

47. रिट याचिका गुणावगुण से विहीन होने के कारण, तदनुसार, **खारिज** की जाती है।

(10) रिट ए संख्या 23263/2018 (कमरुल हसन)

48. याचिकाकर्ता की प्रत्याशिता आक्षेपित आदेश द्वारा इस आधार पर रद्द कर दी गई थी कि यह सत्यापित नहीं किया गया था कि उसने सरताज अहमद (उपरोक्त) में उल्लिखित कट ऑफ तिथि अर्थात 11.08.1997 से पूर्व जामिया उर्दू, अलीगढ़ में मोअल्लिम-ए-उर्दू में प्रवेश लिया था।

49. प्रवेश की तिथि के संबंध में प्रमाण पत्र जामिया उर्दू, अलीगढ़ के बाहर स्थित एक केंद्र द्वारा जारी किया गया था और उक्त प्रमाण पत्र उक्त संस्थान द्वारा सत्यापित नहीं किया गया था और जैसा कि पूर्ववर्ती पैराग्राफों में अवलोकित किया गया है, जामिया उर्दू, अलीगढ़ से सत्यापन के अभाव में, उक्त घोषणा को वैध घोषणा के रूप में नहीं माना जा सकता है।

50. इसलिए, कोई हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है।

51. रिट याचिका गुणावगुण से विहीन होने के कारण, तदनुसार, **खारिज** की जाती है।

(11) रिट ए संख्या 36109/2017 (आसिम हुसैन)

52. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता ने 1994 में 5 विषयों के साथ इंटरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण की और 1995 में उर्दू के साथ और तत्पश्चात वर्ष 1995 में अदीब-ए-कामिल भी उत्तीर्ण की है। तथापि, उसने अदीब-ए-कामिल की परीक्षा की तिथि और महीना घोषित नहीं किया है, इसलिए, यह एक ऐसा मामला है कि याचिकाकर्ता ने 1 वर्ष में दो पाठ्यक्रम उत्तीर्ण किए हैं और अजहर अली (उपरोक्त) में निर्दिष्ट कारण वर्तमान मामले में भी पूर्णतः लागू होते हैं।

53. रिट याचिका गुणावगुण से विहीन होने के कारण, तदनुसार, **खारिज** की जाती है।

(12) रिट ए संख्या 14570/2024 (सामी अनवर)

54. याचिकाकर्ता के दावे पर विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि अभिलेख पर रखे गए निर्देशों के अनुसार, याचिकाकर्ता को 51.74 अंक प्राप्त हुए हैं जबकि न्यूनतम कट-ऑफ 53.20 था।

55. ऐसे निर्देशों को याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है।

56. अन्यथा भी, ऐसे निर्देशों पर विवाद करने का कोई कारण नहीं है, इसलिए, मांगी गई अनुतोष प्रदान नहीं की जा सक्ती थी।

57. तदनुसार, याचिका गुणावगुण से रहित है, अतः, **खारिज** की जाती है।

(13) रिट ए संख्या 8641/2022 (शाइस्ता बानो)

58. याचिकाकर्ता को शिक्षक (उर्दू) के पद के लिए योग्य नहीं पाया गया क्योंकि उसने मोअल्लिम-ए-उर्दू और बी.ए. एक ही शैक्षणिक सत्र अर्थात 1996 में उत्तीर्ण की है।

59. याचिकाकर्ता ने 1996 में 3 वर्षीय बी.ए. डिग्री और 1996 में मोअल्लिम-ए-उर्दू उत्तीर्ण की है। इसकी परीक्षा फरवरी, 1997 में आयोजित की गई थी।

60. इसलिए, अजहर अली (उपरोक्त) में निर्दिष्ट कारण वर्तमान मामले में लागू होते हैं क्योंकि एक वर्ष का पाठ्यक्रम 6 महीने से कम में संचालित किया गया था, इसलिए, याचिकाकर्ता योग्य नहीं है।

61. उपरोक्त के दृष्टिगत, यह न्यायालय आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं पाता है, इसलिए, याचिका गुणावगुण से रहित है, अतः, **खारिज** की जाती है।

निष्कर्ष

62. सभी रिट याचिकाएं खारिज की जाती हैं।

(2025) 5 ILRA 1464

मूल अधिकारिता सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

रिट - सी संख्या - 3795 सन् 2025

अल्फा डायग्नोस्टिक सेंटर एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

राज्य उपयुक्त प्राधिकारी एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: अनुराग नारायण श्रीवास्तव, शैलेन्द्र कुमार मिश्रा

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

संविधान - अनुच्छेद 226 - पूर्वगर्भ एवं प्रसवपूर्व निदान तकनीक (लिंग चयन निषेध) अधिनियम, 1994 - धारा 17, 20, 22, 23, 30 - नियमावली, 1996 - नियम 12 -

याचिकाकर्ताओं ने अपने अल्ट्रासाउंड केंद्र का पंजीकरण निलंबन एवं निरस्तीकरण आदेशों को चुनौती दी।

न्यायालय ने कहा कि–

- निरीक्षण एस.डी.एम. द्वारा अधिकृत था, परंतु जिला मजिस्ट्रेट की संतुष्टि दर्ज नहीं की गई।
- निरस्तीकरण से पूर्व कोई कारण बताओ नोटिस नहीं दिया गया।
- सलाहकार समिति की अनुशंसा भी अनुपस्थित थी।
- जब्ती मेमो में स्वतंत्र गवाह नहीं थे।

अतः, तलाशी अवैध थी। निलंबन आदेश में सार्वजनिक हित का कोई आधार नहीं था। निरस्तीकरण आदेश भी शून्य था।

अतः, सभी आक्षेपित आदेश निरस्त किए जाते हैं। रिट याचिका स्वीकृत। (अनुच्छेद 12-15)

उल्लिखित वाद:

1. डॉ. बृजपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2024:AHC:159207
2. रविंदर कुमार बनाम हरियाणा राज्य, (2024) 9 SCR 397
3. जिला उपयुक्त प्राधिकारी बनाम जशमीना दिलीप देवड़ा एवं अन्य, (2024) 3 SCR 60
4. डॉ. अनिल बंसल बनाम जिला उपयुक्त प्राधिकारी, गुरुग्राम, 2020:PHHC:026446

अनुवादित

5. राजेश एवं अन्य बनाम मध्यप्रदेश राज्य, MANU/SC/1040/2023

6. FOGSI बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2019) 6 SCC 283

7. असलम मोहम्मद मर्चेंट बनाम सक्षम प्राधिकारी, (2008) 14 SCC 186

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के साथ-साथ विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका राज्य अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिनांक 26.03.2025 को पारित आदेश के साथ-साथ दिनांक 13.10.2023 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता के अल्ट्रासाउंड सेंटर का पंजीकरण रद्द कर दिया गया था तथा दिनांक 12.05.2023 के निलंबन आदेश को भी चुनौती दी गई है।

3. संक्षेप में तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता संख्या 1 एक डायग्नोस्टिक सेंटर है जो "अल्फा डायग्नोस्टिक सेंटर" के नाम से चल रहा है, जिसे दिनांक 08.09.2021 को पंजीकृत किया गया था और जो गर्भधारण-पूर्व और प्रसव-पूर्व निदान तकनीक (लिंग चयन का प्रतिषेध) अधिनियम, 1994 (जिसे इसके पश्चात् "पीसीपीएनडीटी अधिनियम" के रूप में संदर्भित किया जाएगा) में निहित प्रावधानों के अनुसार चल रहा था। एसडीएम, मोहनलालगंज, लखनऊ द्वारा जारी दिनांक 01.05.2023 के प्राधिकार पत्र के आधार पर, दिनांक 01.05.2023 को एक निरीक्षण किया गया और दिनांक 01.05.2023 को ही अल्ट्रासाउंड सेंटर को जब्त करने और सील करने का आदेश पारित किया गया, जो पीसीपीएनडीटी अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत है। यह प्रतिवाद किया गया है कि पीसीपीएनडीटी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार जिला दंडाधिकारी की संतुष्टि की आवश्यकता होती है और ऐसी कोई संतुष्टि अभिलिखित नहीं की गई थी या प्रत्यर्थी संख्या 3 को परिसर को तलाशने, जब्त करने या सील करने के लिए कोई प्राधिकार पत्र जारी नहीं किया गया था। यह कथन किया गया है कि जिला दंडाधिकारी स्वयं उपस्थित नहीं थे और इस प्रकार पीसीपीएनडीटी अधिनियम की धारा 30 के आदेश का पालन नहीं किया गया था।

4. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि यद्यपि तलाशी रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया है कि जिला दंडाधिकारी को सूचना दी गई थी और उन्होंने अपनी शक्ति नायब तहसीलदार को प्रत्यायोजित की थी, तथापि तलाशी के अनुसरण में कोई आदेश पारित नहीं किया गया या दिखाया नहीं गया। रद्दीकरण का आदेश पारित किया गया, तथापि धारा 20(2) के अंतर्गत विहित कोई नोटिस अभिलेख पर नहीं था या तामील नहीं किया गया था और न ही सलाहकार समिति की कोई अनुशंसा कभी जिला दंडाधिकारी के समक्ष रखी गई थी। यह आगे तर्क दिया गया है कि दिनांक 01.05.2023 को कोई जब्ती मेमो तैयार नहीं किया गया था और इसे बाद में दिनांक 24.05.2023 को इसमें उल्लिखित व्यक्तियों के जाली और फर्जी हस्ताक्षर बनाकर तैयार किया गया था। हस्ताक्षर भिन्न हैं और जो यह स्पष्ट करता है कि यह पूर्व दिनांकित था। यहां तक कि

केंद्र के प्रबंधक के हस्ताक्षर भी फर्जी बनाए गए थे, तुलना के माध्यम से, दोनों हस्ताक्षरों को एक सामान्य शीट पर रखा गया है। यह आगे तर्क दिया गया है कि धारा 30 और गर्भधारण-पूर्व और प्रसव-पूर्व निदान तकनीक (लिंग चयन का प्रतिषेध) नियम 1996 (संक्षेप में "पीसीपीएनडीटी नियम") के नियम 12 के साथ-साथ दं.प्र.सं. की धारा 100 के प्रावधानों का पालन नहीं किया गया और कोई स्वतंत्र साक्षी नहीं थे। यह कहा गया है कि दिनांक 12.05.2023 और 13.10.2023 के आदेश पारित होने के पश्चात्, याचिकाकर्ता ने दिनांक 07.11.2023 को पीसीपीएनडीटी नियमों के नियम 19 और पीसीपीएनडीटी अधिनियम की धारा 21 के अंतर्गत अपील संख्या 109/2023 प्राथमिकृत की।

5. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह आगे तर्क दिया गया है कि अपील के लंबित रहने के दौरान, पहली बार जब्ती मेमो याचिकाकर्ताओं को दिनांक 16.10.2023 को उनके आवेदन करने पर प्रदान किया गया था। यह आगे कहा गया है कि अपीलीय प्राधिकारी ने प्रत्यर्थी को सलाहकार समिति की रिपोर्ट के साथ मूल अभिलेख प्रस्तुत करने का निर्देश दिया था और अंततः दिनांक 12.03.2025 को, दिनांक 10.05.2023 की सलाहकार समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई और याचिकाकर्ताओं को तामील की गई और उक्त रिपोर्ट के बिंदु संख्या 8 के संबंध में, याचिकाकर्ता संख्या 1 के पंजीकरण के निलंबन/रद्दीकरण के लिए सलाहकार समिति की कोई अनुशंसा नहीं थी, जो पीसीपीएनडीटी अधिनियम की धारा 17(4)(d), 17(4)(i) और धारा 20(2) के अनुसार अनिवार्य है। यह आगे तर्क दिया गया है कि अपीलीय प्राधिकारी ने इन महत्वपूर्ण पहलुओं पर विचार किए बिना दिनांक 26.03.2025 का अपीलीय आदेश पारित किया, जिसके द्वारा रद्दीकरण के आदेश की पुष्टि करते हुए आदेश पारित किए गए और अधिनियम की धारा 20(1) और धारा 20(2) के अंतर्गत विहित सुनवाई का अवसर प्रदान करने के लिए मामले को प्रतिप्रेषित किया गया।

6. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता अपीलीय प्राधिकारी द्वारा इसी प्रकार स्थित केंद्रों के संबंध में पारित निर्णय पर निर्भर करते हैं, जिसमें उसने नियमों और अधिनियम के गैर-अनुपालन के तर्क को बरकरार रखा है, जबकि याचिकाकर्ताओं के मामले में एक भिन्न दृष्टिकोण लिया गया था। उक्त के प्रकाश में, यह तर्क दिया गया है कि सभी आदेश निरस्त किए जाने योग्य हैं और रिट याचिका अनुज्ञेय है।

7. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने रिट याचिका में निहित आरोपों से इनकार करते हुए प्रति-शपथपत्र दाखिल किया है। यह तर्क दिया गया है कि नायब तहसीलदार को उप-जिला दंडाधिकारी द्वारा दिनांक 01.05.2025 के आदेश के माध्यम से तलाशी के लिए प्राधिकृत किया गया था, जो स्वयं दिनांक 30.11.2007 की अधिसूचना (अनुलग्नक-CA-2) के अनुसार जिला दंडाधिकारी का प्रत्यायोजी है। यह तर्क दिया गया है कि दिनांक 08.02.2013 की अधिसूचना के माध्यम से, एसडीएम को अपने अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत तहसील के लिए तहसील स्तर का समुचित प्राधिकारी नियुक्त किया गया है (अनुलग्नक-CA-3) और उप-प्रत्यायोजन की आगे की शक्ति के साथ। यह तर्क दिया गया है कि एसडीएम को प्रदत्त शक्तियों के अनुसार, वह तलाशी लेने के लिए नायब तहसीलदार को नामित करने के लिए प्राधिकृत था। यह आगे कहा गया है कि दोनों जब्ती मेमो याचिकाकर्ता को घटनास्थल पर उसी दिन उपलब्ध कराए गए थे, जो पत्र में ही इंगित किया गया है, जो 'प्राप्त'

दर्ज करता है। तथापि यह अंगीकृत किया गया है कि कारण बताओ नोटिस जारी किए बिना रद्दीकरण आदेश पारित किया गया था। तथापि यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि प्रश्नगत तिथि को, प्राधिकृत डॉक्टर, याचिकाकर्ता संख्या 4 लखनऊ से बाहर थे। प्राधिकृत डॉक्टर के कॉल विवरण अभिलेख पर भी निर्भरता रखी गई है यह प्रदर्शित करने के लिए कि वह लखनऊ से बाहर थे। उक्त के प्रकाश में, यह तर्क दिया गया है कि रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है, विशेष रूप से जब यह प्रतिप्रेषण के आदेश के विरुद्ध है।

8. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता **डॉ. ब्रिज पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: तटस्थ उद्धरण संख्या - 2024:एएचसी:159207** के मामले में निर्भरता रखते हैं। वह **आगे रविंदर कुमार बनाम हरियाणा राज्य: (2024) 9 एससीआर 397; पीएनडीटी अधिनियम के अंतर्गत जिला समुचित प्राधिकारी और मुख्य जिला स्वास्थ्य अधिकारी बनाम जसमीना दिलीप देवड़ा और अन्य: (2024) 3 एससीआर 60; डॉ. अनिल बंसल बनाम जिला समुचित प्राधिकारी, गुरुग्राम: तटस्थ उद्धरण संख्या 2020:पीएचएचसी:026446; राजेश और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य: मनु/एससी/1040/2023** के मामलों में निर्भरता रखते हैं।

9. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता **फेडरेशन ऑफ ऑब्सटेट्रिक्स एंड गायनेकोलॉजिकल सोसाइटीज ऑफ इंडिया (एफ ओ जी एस आई) बनाम भारत संघ और अन्य: (2019) 6 एससीसी 283** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रस्तुत निर्णय पर निर्भरता रखते हैं।

10. उपरोक्त तर्कों के प्रकाश में, पीसीपीएनडीटी अधिनियम की योजना पर ध्यान देना आवश्यक है, जिसे लिंग चयन के प्रतिषेध, गर्भधारण से पहले या बाद में, और तकनीकों को विनियमित करने के लिए प्रावधान करने के लिए अधिनियमित किया गया था। अध्याय II की धारा 3 किसी भी आनुवंशिक परामर्श केंद्र, आनुवंशिक प्रयोगशाला और आनुवंशिक क्लीनिक को प्रसव-पूर्व निदान तकनीकों की कोई गतिविधि संचालित करने से प्रतिषिद्ध करती है। धारा 3-ए विशेष रूप से प्रतिषिद्ध करती है कि कोई व्यक्ति किसी विशेषज्ञ सहित किसी महिला या पुरुष का लिंग चयन संचालित नहीं करेगा या संचालित नहीं करवाएगा। धारा 3-बी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत न होने वाले व्यक्ति को अल्ट्रासाउंड मशीन की बिक्री को प्रतिषिद्ध करती है। अध्याय III प्रसव-पूर्व निदान तकनीकों के विनियमन के लिए प्रावधान करता है। अध्याय IV केंद्रीय पर्यवेक्षी बोर्ड के गठन के लिए प्रावधान करता है और धारा 16-ए राज्य पर्यवेक्षी बोर्ड और संघ राज्य क्षेत्र पर्यवेक्षी बोर्ड के गठन के लिए प्रावधान करती है। धारा 17 राज्य के संपूर्ण या किसी भाग के लिए समुचित प्राधिकारी की नियुक्ति के लिए प्रावधान करती है, जो धारा 17(3) के अंतर्गत निर्दिष्ट सदस्यों का गठन करेगी। समुचित प्राधिकारी के कार्यों को धारा 17(4) के अंतर्गत निर्दिष्ट किया गया है। धारा 17-ए समुचित प्राधिकारियों की प्रयोग की जाने वाली शक्तियां प्रदान करती है। धारा 20 पंजीकरण के रद्दीकरण या निलंबन की शक्ति प्रदान करती है। धारा 20, 22 और 23 नीचे उद्धृत की गई हैं:

*"**20. पंजीकरण का रद्दीकरण या निलंबन।**–(1) समुचित प्राधिकारी स्वप्रेरणा से, या शिकायत पर, आनुवंशिक परामर्श केंद्र, आनुवंशिक प्रयोगशाला या आनुवंशिक क्लीनिक को एक नोटिस जारी कर सकता है कि वह कारण बताए कि नोटिस में उल्लिखित कारणों के लिए उसका पंजीकरण निलंबित या रद्द क्यों नहीं किया जाना चाहिए।*

(2) यदि, आनुवंशिक परामर्श केंद्र, आनुवंशिक प्रयोगशाला या आनुवंशिक क्लीनिक को सुनवाई का उचित अवसर देने के पश्चात् और सलाहकार समिति की सलाह को ध्यान में रखते हुए, समुचित प्राधिकारी इस बात से संतुष्ट है कि इस अधिनियम या नियमों के प्रावधानों का उल्लंघन हुआ है, तो वह ऐसे केंद्र, प्रयोगशाला या क्लीनिक के विरुद्ध की जाने वाली किसी आपराधिक कार्रवाई पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, उसके पंजीकरण को ऐसी अवधि के लिए निलंबित कर सकता है जैसा वह उचित समझे या यथास्थिति, उसके पंजीकरण को रद्द कर सकता है।

(3) उप-धारा (1) और (2) में निहित किसी बात के होते हुए भी, यदि समुचित प्राधिकारी की यह राय है कि लोकहित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है, तो वह लिखित रूप में कारण अभिलिखित करके, उप-धारा (1) में निर्दिष्ट ऐसा कोई नोटिस जारी किए बिना किसी आनुवंशिक परामर्श केंद्र, आनुवंशिक प्रयोगशाला या आनुवंशिक क्लीनिक के पंजीकरण को निलंबित कर सकता है।

***22. गर्भधारण-पूर्व और प्रसव-पूर्व लिंग निर्धारण से संबंधित विज्ञापन का प्रतिषेध और उल्लंघन के लिए दंड।–**(1) कोई व्यक्ति, संगठन, आनुवंशिक परामर्श केंद्र, आनुवंशिक प्रयोगशाला या आनुवंशिक क्लीनिक, जिसमें अल्ट्रासाउंड मशीन या इमेजिंग मशीन या स्कैनर या भ्रूण के लिंग निर्धारण या लिंग चयन करने में सक्षम कोई अन्य तकनीक रखने वाली क्लीनिक, प्रयोगशाला या केंद्र सम्मिलित है, इंटरनेट सहित किसी भी रूप में, ऐसे केंद्र, प्रयोगशाला, क्लीनिक या किसी अन्य स्थान पर उपलब्ध गर्भधारण से पहले लिंग चयन या प्रसव-पूर्व लिंग निर्धारण की सुविधाओं के संबंध में कोई विज्ञापन जारी, प्रकाशित, वितरित, संप्रेषित या जारी, प्रकाशित, वितरित या संप्रेषित नहीं करेगा या नहीं करवाएगा।*

(2) कोई व्यक्ति या संगठन, जिसमें आनुवंशिक परामर्श केंद्र, आनुवंशिक प्रयोगशाला या आनुवंशिक क्लीनिक सम्मिलित है, वैज्ञानिक हो या अन्यथा, किसी भी माध्यम से प्रसव-पूर्व निर्धारण या गर्भधारण-पूर्व लिंग चयन के संबंध में किसी भी तरीके से कोई विज्ञापन जारी, प्रकाशित, वितरित, संप्रेषित या जारी, प्रकाशित, वितरित या संप्रेषित नहीं करेगा या नहीं करवाएगा।

(3) कोई व्यक्ति जो उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के प्रावधानों का उल्लंघन करता है, वह कारावास से, जो तीन वर्ष तक का हो सकता है, और जुर्माने से, जो दस हजार रुपये तक का हो सकता है, दंडनीय होगा।

स्पष्टीकरण।–इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "विज्ञापन" में कोई नोटिस, परिपत्र, लेबल, आवरण या कोई अन्य दस्तावेज़, जिसमें इंटरनेट के माध्यम से या इलेक्ट्रॉनिक या मुद्रित रूप में किसी अन्य मीडिया के माध्यम से

विज्ञापन सम्मिलित है, और इसमें किसी होर्डिंग, दीवार-पेंटिंग, संकेत, प्रकाश, ध्वनि, धुआं या गैस के माध्यम से की गई कोई दृश्य अभिव्यक्ति भी सम्मिलित है।

***23. अपराध और दंड।**—(1) कोई चिकित्सा आनुवंशिकीविद, स्त्री रोग विशेषज्ञ, पंजीकृत चिकित्सा व्यवसायी या कोई व्यक्ति जो आनुवंशिक परामर्श केंद्र, आनुवंशिक प्रयोगशाला या आनुवंशिक क्लीनिक का स्वामी है या ऐसे केंद्र, प्रयोगशाला या क्लीनिक में नियोजित है और ऐसे केंद्र, प्रयोगशाला या क्लीनिक में या उसके लिए अपनी व्यावसायिक या तकनीकी सेवाएं प्रदान करता है, चाहे मानद आधार पर हो या अन्यथा, और जो इस अधिनियम या इसके अंतर्गत बनाए गए नियमों के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करता है, वह कारावास से, जो तीन वर्ष तक का हो सकता है, और जुर्माने से, जो दस हजार रुपये तक का हो सकता है, दंडनीय होगा और किसी भी पश्चातवर्ती दोषसिद्धि पर, कारावास से, जो पांच वर्ष तक का हो सकता है, और जुर्माने से, जो पचास हजार रुपये तक का हो सकता है, दंडनीय होगा।*

(2) पंजीकृत चिकित्सा व्यवसायी के नाम की सूचना समुचित प्राधिकारी द्वारा संबंधित राज्य चिकित्सा परिषद को आवश्यक कार्रवाई करने के लिए दी जाएगी, जिसमें न्यायालय द्वारा आरोप तय किए जाने पर और मामले के निस्तारण तक पंजीकरण का निलंबन और प्रथम अपराध के लिए पांच वर्ष की अवधि के लिए और पश्चातवर्ती अपराध के लिए स्थायी रूप से परिषद के रजिस्टर से उसके नाम को हटाना सम्मिलित है।

(3) कोई व्यक्ति जो किसी आनुवंशिक परामर्श केंद्र, आनुवंशिक प्रयोगशाला, आनुवंशिक क्लीनिक या अल्ट्रासाउंड क्लीनिक या इमेजिंग क्लीनिक या किसी चिकित्सा आनुवंशिकीविद, स्त्री रोग विशेषज्ञ, सोनोलॉजिस्ट या इमेजिंग विशेषज्ञ या पंजीकृत चिकित्सा व्यवसायी या किसी अन्य व्यक्ति की सहायता लिंग चयन के लिए या किसी गर्भवती महिला पर धारा 4 की उप-धारा (2) में निर्दिष्ट प्रयोजनों के अलावा अन्य प्रयोजनों के लिए प्रसव-पूर्व निदान तकनीकों के संचालन के लिए मांगता है, वह कारावास से, जो प्रथम अपराध के लिए तीन वर्ष तक का हो सकता है, और जुर्माने से, जो पचास हजार रुपये तक का हो सकता है, और किसी भी पश्चातवर्ती अपराध के लिए कारावास से, जो पांच वर्ष तक का हो सकता है, और जुर्माने से, जो एक लाख रुपये तक का हो सकता है, दंडनीय होगा।

(4) संदेह को दूर करने के लिए, इसके द्वारा यह प्रावधान किया जाता है कि उप-धारा (3) के प्रावधान उस महिला पर लागू नहीं होंगे जो ऐसी निदान तकनीकों या ऐसे चयन से गुजरने के लिए बाध्य की गई थी।"

11. धारा 29 अभिलेखों के रखरखाव के लिए प्रावधान करती है। धारा 30 अभिलेखों को तलाशने और जब्त करने की शक्ति प्रदान करती है, जो निम्नप्रकार है:

***"30. अभिलेखों आदि को तलाशने और जब्त करने की शक्ति।**— (1) यदि समुचित प्राधिकारी के पास 'विश्वास करने का कारण' है कि इस अधिनियम के अंतर्गत कोई अपराध किसी आनुवंशिक परामर्श केंद्र, आनुवंशिक*

प्रयोगशाला, आनुवंशिक क्लीनिक या किसी अन्य स्थान पर किया गया है या किया जा रहा है, तो ऐसा प्राधिकारी या इस संबंध में प्राधिकृत कोई अधिकारी, ऐसे नियमों के अधीन जैसे कि विहित किए जा सकें, ऐसी सहायता के साथ, यदि कोई हो, जैसा कि ऐसा प्राधिकारी या अधिकारी आवश्यक समझता है, सभी उचित समयों पर ऐसे आनुवंशिक परामर्श केंद्र, आनुवंशिक प्रयोगशाला, आनुवंशिक क्लीनिक या किसी अन्य स्थान में प्रवेश कर सकता है और तलाश कर सकता है और वहां पाए गए किसी अभिलेख, रजिस्टर, दस्तावेज़, पुस्तक, पैम्फलेट, विज्ञापन या किसी अन्य भौतिक वस्तु की जांच कर सकता है और यदि ऐसे प्राधिकारी या अधिकारी के पास विश्वास करने का कारण है कि यह इस अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध के किए जाने के साक्ष्य प्रस्तुत कर सकता है, तो उसे जब्त और सील कर सकता है।

(2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के तलाशी और जब्तियों से संबंधित प्रावधान, जहां तक हो सके, इस अधिनियम के अंतर्गत की गई प्रत्येक तलाशी या जब्ती पर लागू होंगे।"

12. उपर्युक्त सांविधिक प्रावधानों के प्रकाश में जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है और अनुलग्नक-6 में निहित दिनांक 01.05.2025 को पारित जब्ती के आदेश के अवलोकन पर, यह प्रकट होता है कि टीम ने दिनांक 01.05.2023 को केंद्र का दौरा किया, जहां श्री अजय सिंह, समन्वयक उपस्थित थे और फॉर्म-एफ के अवलोकन पर, वही विभिन्न स्थानों पर अपूर्ण पाया गया। यह भी अभिलिखित किया गया है कि फॉर्म-एफ पर डॉक्टर के हस्ताक्षर रिपोर्टों से भिन्न थे। गर्भवती महिला के भ्रूण की आवश्यक संख्या अभिलिखित नहीं की गई थी। उनके फोन नंबर अभिलिखित नहीं किए गए थे और प्रश्न पूछने पर प्रबंधक जया सिंह संतोषजनक स्पष्टीकरण प्रदान नहीं कर सकीं। यह आगे अभिलिखित करता है कि डॉक्टर को एक टेलीफोन कॉल की गई, जिन्होंने सूचित किया कि उनके पिता अस्वस्थ थे और इस प्रकार, वह पिछले पंद्रह दिनों से कोई अल्ट्रासाउंड नहीं कर रहे थे, जबकि दिनांक 28.04.2023, 29.04.2023, 30.04.2023 और 01.05.2023 की रिपोर्टों में, फॉर्म-एफ में डॉक्टर का नाम उल्लिखित था। यह आगे अभिलिखित करता है कि ये तथ्य प्राधिकृत प्राधिकारी/ जिला दंडाधिकारी को अवगत कराए गए और निर्देश प्राप्त करने पर, मशीनों और कुछ रोगियों के संबंध में फॉर्म-एफ को सील कर दिया गया और जब्त मशीनों को सील करने के पश्चात् प्रबंधक की सुपुर्दगी में सौंप दिया गया। यह आगे अभिलिखित किया गया कि लाइसेंसधारी का उक्त कृत्य अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत था और इस प्रकार लोकहित में, पीसीपीएनडीटी अधिनियम की धारा 20(3) के अंतर्गत लाइसेंस निलंबित कर दिया गया। इस संबंध में, रविंदर कुमार (उपरोक्त) के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर ध्यान देना आवश्यक है, जिसमें धारा 30 में प्रयुक्त वाक्यांश "विश्वास करने का कारण" की व्याख्या यह अर्थ लगाने के लिए की गई थी कि उस संदर्भ में विश्वास करने का कारण होना चाहिए जिसमें इसका उपयोग किया गया है, जो अधिनियम के उद्देश्य पर विचार करते हुए कार्रवाई करने के लिए प्रेरित करेगा। संगत पैराग्राफ संख्या 10, 11, 12, 13, 14, 16 और 17 नीचे पुनरुत्पादित किए गए हैं:

***"10**. किसी क्लीनिक की तलाशी के लिए पूर्ववर्ती शर्त यह है कि समुचित प्राधिकारी के पास विश्वास करने का कारण होना चाहिए कि 1994 अधिनियम के अंतर्गत कोई अपराध किया गया है या किया जा रहा है। समुचित*

प्राधिकारी, जैसा कि धारा 2(a) के अंतर्गत परिभाषित किया गया है, धारा 17 के अंतर्गत नियुक्त समुचित प्राधिकारी है। धारा 17 की उप-धाराएं (1) से (3) इस प्रकार हैं:

"17. समुचित प्राधिकारी और सलाहकार समिति। - 1. केंद्र सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए प्रत्येक संघ राज्य क्षेत्र के लिए राजपत्र में अधिसूचना द्वारा एक या अधिक समुचित प्राधिकारियों की नियुक्ति करेगी।

2. राज्य सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए संपूर्ण राज्य या राज्य के भाग के लिए राजपत्र में अधिसूचना द्वारा एक या अधिक समुचित प्राधिकारियों की नियुक्ति करेगी, जिसमें प्रसव-पूर्व लिंग निर्धारण से महिला भ्रूणहत्या की समस्या की तीव्रता को ध्यान में रखा जाएगा।

3. उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के अंतर्गत समुचित प्राधिकारियों के रूप में नियुक्त अधिकारी होंगे,–
(ए) जब संपूर्ण राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के लिए नियुक्त किए जाएं, निम्नलिखित तीन सदस्यों से मिलकर बनेंगे:–
i) स्वास्थ्य और परिवार कल्याण के संयुक्त निदेशक या उससे ऊपर के रैंक का अधिकारी - अध्यक्ष;
ii) महिला संगठनों का प्रतिनिधित्व करने वाली एक प्रतिष्ठित महिला; और
iii) संबंधित राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के विधि विभाग का एक अधिकारी:
बशर्ते कि प्रसव-पूर्व निदान तकनीक (विनियमन और दुरुपयोग की रोकथाम) संशोधन अधिनियम, 2002 के प्रवर्तन की तिथि से तीन महीने के भीतर राज्य या संघ राज्य क्षेत्र बहु-सदस्यीय राज्य या संघ राज्य क्षेत्र स्तरीय समुचित प्राधिकारी का गठन करना इसका कर्तव्य होगा:
बशर्ते यह और भी कि उसमें होने वाली किसी रिक्ति को उसकी उत्पत्ति के तीन महीने के भीतर भरा जाएगा।
(बी) जब राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के किसी भाग के लिए नियुक्त किए जाएं, ऐसे अन्य रैंक के होंगे जैसा कि राज्य सरकार या केंद्र सरकार, यथास्थिति, उचित समझे।
.. .. .."

11. अब, धारा 30 पर आते हुए, यह एक अत्यंत कठोर प्रावधान है जो समुचित प्राधिकारी या उसके द्वारा प्राधिकृत किसी अधिकारी को आनुवंशिक प्रयोगशाला, आनुवंशिक क्लीनिक, या किसी अन्य स्थान में प्रवेश करने, वहां पाए गए अभिलेख की जांच करने, उसे जब्त करने और यहां तक कि उसे सील करने की शक्ति प्रदान करता है। धारा 30 की उप-धारा (1) का प्रथम भाग इन केंद्रों या प्रयोगशालाओं को मनमानी तलाशी और जब्ती कार्रवाई से सुरक्षा प्रदान करता है। सुरक्षा यह है कि तलाशी और जब्ती केवल तभी प्राधिकृत की जा सकती है जब समुचित प्राधिकारी के पास विश्वास करने का कारण हो कि 1994 अधिनियम के अंतर्गत कोई अपराध किया गया है या किया जा रहा है।

12. प्रश्न यह है कि अभिव्यक्ति "विश्वास करने का कारण है" को क्या अर्थ दिया जा सकता है। दंड संहिता, 1860 की धारा 26 अभिव्यक्ति "विश्वास करने का कारण" को परिभाषित करती है, जो इस प्रकार है:

"26. "विश्वास करने का कारण"।– एक व्यक्ति के पास किसी बात पर "विश्वास करने का कारण" होना कहा जाता है, यदि उसके पास उस बात पर विश्वास करने का पर्याप्त कारण है, लेकिन अन्यथा नहीं।"
असलम मोहम्मद मर्चेंट बनाम सक्षम प्राधिकारी:(2008) 14 SCC 186 के मामले में, इस न्यायालय को उसी अभिव्यक्ति की व्याख्या करने का अवसर मिला था। पैराग्राफ 41 में, इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

"41. यह अब एक सर्वविदित विधि है कि जब भी कोई संविधि "विश्वास करने का कारण" प्रदान करती है, तो या तो कारण नोटिस के मुख पर प्रकट होने चाहिए या वे उन सामग्रियों पर उपलब्ध होने चाहिए जो उसके समक्ष रखी गई थीं।"
तथापि, अभिव्यक्ति की व्याख्या उस संदर्भ पर निर्भर करेगी जिसमें इसे किसी विशेष विधान में उपयोग किया गया है। कुछ संविधियों में वर्तमान की तरह, यदि प्राधिकारी के पास विश्वास करने का कारण है कि कुछ तथ्य विद्यमान हैं तो संविधि के अंतर्गत कार्रवाई शुरू करने की शक्ति है। परीक्षण यह है कि क्या एक विवेकशील व्यक्ति, उसके समक्ष रखी गई परिस्थितियों के अंतर्गत, संविधि के अंतर्गत कार्रवाई करने के लिए प्रेरित होगा। 1994 अधिनियम के उद्देश्य पर विचार करते हुए, अभिव्यक्ति "विश्वास करने का कारण" की व्याख्या इस तरीके से नहीं की जा सकती जो एक प्रक्रियात्मक अवरोध उत्पन्न करेगी। कारण यह है कि एक बार समुचित प्राधिकारी के समक्ष कोई सामग्री रखी जाती है जिसके आधार पर तलाशी की कार्रवाई करने की आवश्यकता होती है, यदि कार्रवाई में देरी होती है, तो तलाशी के आदेश पारित करने का वास्तविक उद्देश्य विफल हो जाएगा। इसलिए, जो आवश्यक है वह यह है कि समुचित प्राधिकारी या इसके सदस्यों द्वारा प्राप्त शिकायत या अन्य सामग्री को अविलंब इसके सभी सदस्यों को उपलब्ध कराया जाना चाहिए। उसी की जांच करने के पश्चात्, समुचित प्राधिकारी को शीघ्रता से यह निर्णय लेना चाहिए कि क्या विश्वास करने का कारण है कि 1994 अधिनियम के अंतर्गत कोई अपराध किया गया है या किया जा रहा है। समुचित प्राधिकारी को इस निष्कर्ष के लिए कारण अभिलिखित करने की आवश्यकता नहीं है कि उसके पास विश्वास करने का कारण है कि 1994 अधिनियम के अंतर्गत कोई अपराध किया गया है या किया जा रहा है। लेकिन, उस विश्वास को बनाने के लिए एक तर्कसंगत आधार होना चाहिए। तथापि, धारा 30 की उप-धारा (1) के अंतर्गत कार्रवाई करने का निर्णय समुचित प्राधिकारी का होना चाहिए न कि इसके व्यक्तिगत सदस्यों का।

13. दिनांक 7 नवंबर 2013 की अधिसूचना के अंतर्गत, जिले के लिए समुचित प्राधिकारी में सिविल सर्जन, महिला और बाल विकास विभाग के जिला कार्यक्रम अधिकारी, और जिला अटार्नी शामिल हैं। सिविल सर्जन समुचित प्राधिकारी का अध्यक्ष होता है। धारा 30 की उप-धारा (1) के उद्देश्य और उसमें प्रयुक्त स्पष्ट भाषा को देखते हुए, केवल अध्यक्ष या कोई अन्य सदस्य अकेले कार्य करते हुए धारा 30 की उप-धारा (1) के अंतर्गत तलाशी प्राधिकृत नहीं कर सकता। यह समुचित प्राधिकारी का निर्णय होना चाहिए। यदि समुचित प्राधिकारी का एक सदस्य तलाशी प्राधिकृत करता है, तो यह धारा 30 की उप-धारा (1) के विपरीत होने के कारण पूर्णतः अवैध होगा। यदि विधि किसी विशेष बात को किसी विशेष तरीके से करने की अपेक्षा करती है, तो वही उसी तरीके से ही की जाएगी। वर्तमान मामले में, डॉ. विरेंदर यादव, जिला समुचित प्राधिकारी सह-सिविल सर्जन,

गुरुग्राम द्वारा दायर शपथपत्र के अनुसार, दिनांक 27 अप्रैल 2017 के आदेश द्वारा तीन अधिकारियों की नियुक्ति करके तलाशी संचालित करने का निर्णय केवल उनका निर्णय था, जो कथित रूप से समुचित प्राधिकारी के अध्यक्ष की क्षमता में लिया गया था। स्वीकार्य रूप से, समुचित प्राधिकारी के अन्य दो सदस्य उक्त निर्णय के पक्षकार नहीं हैं। सिविल सर्जन ने तात्कालिकता का बहाना दिया है। समुचित प्राधिकारी को भौतिक बैठक करने की आवश्यकता नहीं है। सिविल सर्जन अन्य दो सदस्यों के साथ वीडियो बैठक कर सकते थे। तथापि, जब वीडियो बैठक आयोजित की जाती है, तो प्रत्येक सदस्य को शिकायत या सामग्री से अवगत कराया जाना चाहिए जिस पर निर्णय लिया जाएगा। यह कुछ मिनटों का मामला था।

14. इसलिए, मामले के तथ्यों में, धारा 30 की उप-धारा (1) के अनुसार अपीलार्थी के क्लीनिक की तलाशी के लिए समुचित प्राधिकारी द्वारा कोई विधिक निर्णय नहीं लिया गया था। जैसा कि पहले कहा गया है, धारा 30 की उप-धारा (1) यह निर्धारित करके एक सुरक्षा प्रदान करती है कि केवल तभी जब समुचित प्राधिकारी के पास विश्वास करने का कारण हो कि 1994 अधिनियम के अंतर्गत कोई अपराध किया गया है या किया जा रहा है तो तलाशी प्राधिकृत की जा सकती है। इस मामले में, समुचित प्राधिकारी का कोई निर्णय नहीं है, और तलाशी लेने का निर्णय सिविल सर्जन का व्यक्तिगत निर्णय है, जो संबंधित समुचित प्राधिकारी के अध्यक्ष थे। इसलिए, तलाशी की कार्रवाई स्वयं दूषित है।

15. मामले का एक अन्य तथ्यात्मक पहलू है। दिनांक 27 अप्रैल 2017 के जब्ती मेमो (अनुलग्नक पी-4) में तीन व्यक्तियों के नाम हैं। जब्ती मेमो यह अभिलिखित करता है कि दिनांक 27 अप्रैल 2017 को, जिला समुचित प्राधिकारी ने तीन सदस्यों की एक टीम का गठन किया जिनके नाम जब्ती मेमो में उल्लिखित थे। तथापि, दिनांक 27 अप्रैल 2017 का एक पत्र (अनुलग्नक पी-3) उप सिविल सर्जन रेवाड़ी द्वारा उप सिविल सर्जन गुरुग्राम को संबोधित यह अभिलिखित करता है कि टीम में चार सदस्य शामिल थे, और छापा उक्त चार सदस्यों द्वारा संचालित किया गया था।

16. आक्षेपित प्राथमिकी और आक्षेपित शिकायत के अवलोकन से पता चलता है कि इसका आधार दिनांक 27 अप्रैल 2017 को छापे के दौरान जब्त की गई सामग्री है। तलाशी में जो मिला और जब्त दस्तावेजों को छोड़कर, अभियुक्त को अधिनियम की धारा 23 के अंतर्गत दंडनीय अपराध से जोड़ने के लिए कुछ भी नहीं है। चूंकि तलाशी स्वयं पूर्णतः अवैध है, इसलिए ऐसी अवैध तलाशी के आधार पर अभियोजन जारी रखना विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग के समान होगा। उच्च न्यायालय को वह अवैधता नोटिस करनी चाहिए थी जिसे हमने इंगित किया है।

17. इसलिए, अपील अनुज्ञात की जाती है, और दिनांक 13 जनवरी 2023 के आक्षेपित निर्णय को अपास्त किया जाता है। दिनांक 27 अप्रैल 2017 की प्राथमिकी संख्या 408, गुरुग्राम के पुलिस स्टेशन में पंजीकृत, इसके द्वारा निरस्त की जाती है। विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, गुरुग्राम के न्यायालय के समक्ष लंबित शिकायत संख्या सी.ओ.एम.ए नं. 40/2018, भी निरस्त की जाती है।"

13. वर्तमान मामले में, इस न्यायालय के समक्ष समुचित प्राधिकारी द्वारा अभिलिखित किए गए किसी "विश्वास करने के कारणों" के संबंध में कोई सामग्री न तो है, यह विश्वास बनाने के लिए कि अधिनियम का कोई उल्लंघन था; 'अधिनियम के उद्देश्य' पर विचार करते हुए, धारा 30 के अंतर्गत कार्रवाई की गारंटी देते हुए, इस प्रकार, उक्त निर्णय का अनुसरण करते हुए और कोई सामग्री विद्यमान न होने के कारण, तलाशी और जब्ती स्वयं अधिनियम के आदेश के विपरीत थी। धारा 20(3) के अंतर्गत शक्ति के प्रयोग के संबंध में अगले प्रश्न पर आते हुए, जो संबंधित प्राधिकारी को पंजीकरण निलंबित करने के लिए प्राधिकृत करती है, यदि कोई राय पाई जाती है कि वही 'लोकहित' में करना आवश्यक और समीचीन है। वर्तमान मामले में, निलंबन आदेश से यह प्रदर्शित करने के लिए कोई सामग्री न तो है, कि निलंबन आदेश में नोटिस किए गए कथित उल्लंघन, लोकहित के विपरीत थे, नोटिस किए गए उल्लंघन फॉर्म को अपूर्ण भरने के संबंध में थे। यह दृष्टिकोण बनाने के लिए कोई सामग्री न तो है कि याचिकाकर्ता ऐसा कोई कृत्य करने में लगे हुए थे जो अध्याय II के अंतर्गत प्रतिषिद्ध हैं और पीसीपीएनडीटी अधिनियम की धारा 22 या 23 के अंतर्गत दंडनीय हैं।

14. किसी भी सामग्री की अनुपस्थिति में यह दृष्टिकोण बनाने के लिए कि निलंबन की कार्रवाई लोकहित में आवश्यक थी, उस आधार पर भी निलंबन न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। स्वीकार्य रूप से यहां तक कि अपीलीय आदेश के अनुसार भी, रद्दीकरण से पूर्व कोई कारण बताओ नोटिस जारी नहीं किया गया था, जिसके आधार पर अपीलीय प्राधिकारी ने मामले को प्रतिप्रेषित किया है; इस प्रभाव की स्वीकृति होने के कारण कि कोई कारण बताओ नोटिस जारी नहीं किया गया था, धारा 20(3) के आह्वान को न्यायोचित ठहराने वाली किसी सामग्री की अनुपस्थिति में रद्दीकरण का आदेश भी न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता, जिसे किसी भी स्थिति में रद्दीकरण के लिए आह्वित नहीं किया जा सकता और केवल निलंबन तक ही सीमित है। इस प्रकार सामग्री के समग्र परिप्रेक्ष्य पर, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ऐसे किसी कृत्य में लिप्त थे, जो अध्याय II के अंतर्गत प्रतिषिद्ध हैं या धारा 22 और 23 के अंतर्गत अपराध माने जा सकते हैं, यह दृष्टिकोण बनाने के लिए कोई सामग्री न तो विद्यमान थी, इस प्रकार उस आधार पर, रिट याचिका अनुज्ञेय है।

15. दिनांक 12.05.2023 का निलंबन आदेश और दिनांक 13.10.2023 के पंजीकरण के रद्दीकरण का आदेश पीसीपीएनडीटी अधिनियम के अंतर्गत अपेक्षा से कम होने के कारण पोषणीय नहीं हैं और निरस्त किए जाते हैं। दिनांक 26.03.2025 का अपीलीय आदेश भी **निरस्त** किया जाता है। रिट याचिका **अनुज्ञात** की जाती है।

(2025) 5 ILRA 1473

मूल अधिकारिता सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 09.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी

माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-I

रिट - सी संख्या - 4465 सन् 2025

रज्जन ...याचिकाकर्ता

बनाम

राज्य सूचना आयोग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: मनोज साहू **प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:** शिखर आनंद, शासकीय अधिवक्ता

सिविल विधि - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 - धारा 19(8) -

याचिकाकर्ता ने ग्राम पंचायत, जबरौली से सूचना प्राप्त करने हेतु आरटीआई आवेदन दायर किया। प्रथम अपील एवं द्वितीय अपील के बावजूद सूचना उपलब्ध नहीं कराई गई।
राज्य सूचना आयोग ने लोक सूचना अधिकारी पर ₹25,000 का दंड लगाया एवं विभागीय कार्रवाई की अनुशंसा की, परंतु यह सुनिश्चित नहीं किया कि सूचना वास्तव में याचिकाकर्ता को दी गई।

न्यायालय ने कहा कि–

- अधिनियम, 2005 का मूल उद्देश्य नागरिक को सूचना उपलब्ध कराना है।
- आयोग के पास धारा 19(8) के अंतर्गत व्यापक अधिकार हैं, जिनमें सूचना उपलब्ध कराने का निर्देश देना भी सम्मिलित है।
- आयोग ने यांत्रिक ढंग से आदेश पारित किया और अपने वैधानिक कर्तव्यों का पालन नहीं किया।
-

अतः, आक्षेपित आदेश निरस्त किया जाता है और मामला आयोग को पुनः विचार हेतु भेजा जाता है। (अनुच्छेद 1-20) रिट याचिका स्वीकृत। (E-6)

उल्लिखित वाद:

1. केन्द्रीय सूचना आयोग एवं अन्य बनाम मणिपुर राज्य एवं अन्य, (2011) 15 SCC 1
2. किशन चंद जैन बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2023) SCC OnLine SC 1021

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति अत्ताउ रहमान मसूदी एवं माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-I द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री शिखर आनंद, राज्य सूचना आयोग अर्थात् प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत इस आधार पर संस्थित की गई है कि सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (इसके पश्चात् "अधिनियम, 2005" के रूप में संदर्भित) के अंतर्गत संपूर्ण तंत्र याचिकाकर्ता को वह सूचना उपलब्ध कराने में विफल रहा है जो प्रारंभ में सूचना अधिकारी के समक्ष प्रार्थित की गई थी, जिन्होंने वही उपलब्ध कराने में विफलता व्यक्त की। इससे उत्पन्न अपील भी सांविधिक समयावधि के भीतर निर्णीत नहीं की गई, जिसके परिणामस्वरूप द्वितीय अपील राज्य सूचना आयुक्त के समक्ष दायर की गई जो अपील संख्या एस 5/ए/0460 सन् 2024 के रूप में पंजीकृत हुई, जो अंततः एक दंड आदेश में परिणत हुई और अभिलेख में पृष्ठांकित कर दी गई।

3. राज्य सूचना आयुक्त द्वारा दिनांक 24.02.2025 को पारित अपीलीय आदेश के सामान्य अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि सूचना अधिकारी, जिन्हें याचिकाकर्ता द्वारा प्रार्थित सूचना उपलब्ध कराने हेतु नोटिस जारी किया गया था तथा समन किया गया था, ने कार्यवाही में सहयोग नहीं किया। वे उपस्थिति के लिए निर्धारित तिथियों पर बारंबार उपस्थित होने में विफल रहे। अपीलीय कार्यवाही में सहयोग करने में सूचना अधिकारी की ओर से चूक के कारण, दंड खंड को लागू किया गया प्रतीत होता है, और अपीलीय कार्यवाही रु. 25,000/- (पच्चीस हजार रुपये) के दंड के अधिरोपण के साथ निर्णीत की गई प्रतीत होती है, साथ ही त्रुटिपूर्ण अधिकारी अर्थात् सूचना अधिकारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की सिफारिश भी की गई है।

4. अधिनियम, 2005 की धारा 19(3) के अंतर्गत राज्य सूचना आयुक्त के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा संस्थित अपील के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि निम्नलिखित अनुतोष मांगा गया था:-

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 19(3)- द्वितीय अपील के अधीन माँगा गया अनुतोष	सूचना उपलब्ध कराई जाय

5. मूलतः, याचिकाकर्ता द्वारा मांगा गया अनुतोष प्रार्थित सूचना उपलब्ध कराए जाने का था।

6. राज्य सूचना आयोग के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अपीलीय प्राधिकारी के लिए पीड़ित पक्षकार को प्रस्तुत किए जाने हेतु मांगी गई सूचना को अभिप्राप्त करने का कोई तंत्र नहीं है। केवल दंड के प्रावधान ही किसी त्रुटिपूर्ण अधिकारी को दंडित करने के लिए उपलब्ध हैं। वर्तमान मामले में, इसी प्रक्रिया का अनुसरण किए जाने के परिणामस्वरूप अपील का निस्तारण हुआ है और रु. 25,000/- (पच्चीस हजार रुपये) के दंड का अधिरोपण किया गया है, साथ ही त्रुटिपूर्ण अधिकारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की सिफारिश राज्य सूचना आयुक्त द्वारा दिनांक 24.02.2025 को आदेशित की गई है।

7. दूसरी ओर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि अधिनियम, 2005 का उद्देश्य मूलतः आवेदक द्वारा मांगी गई सूचना उपलब्ध कराना है। अधिनियम, 2005 के अंतर्गत कार्यवाही का समस्त तंत्र किसी व्यक्ति द्वारा मांगी गई सूचना उपलब्ध कराने के लिए अभिप्रेत है, और पीड़ित होने की स्थिति में, प्रथम अपील और द्वितीय अपील के तंत्र विधि के अंतर्गत प्रदान किए गए हैं।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क में बल प्रतीत होता है।

9. अधिनियम, 2005 की धाराएं 18 और 19 विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करती हैं जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **मुख्य सूचना आयुक्त तथा अन्य बनाम मणिपुर राज्य तथा अन्य ((2011) 15 एससीसी 1)** में अभिनिर्धारित किया गया है।

10. अधिनियम, 2005 के प्रावधानों, विशेष रूप से धारा 7 को धारा 19, उप-धारा (5), (6), (8), (9) और (10) के साथ पढ़े जाने पर सूक्ष्म परीक्षण करने पर, हम इस विचारित मत के हैं कि राज्य सूचना आयुक्त को सूचना प्राप्त करने के इच्छुक आवेदक को प्रदान किए जाने के उद्देश्य से कार्यालयों/अधिकारियों/न्यायालयों से सूचना की खोज के संबंध में व्यापक शक्तियां प्राप्त हैं।

11. अधिनियम, 2005 की धारा 19 के प्रासंगिक प्रावधान, जो अपील से संबंधित हैं, निम्नवत् हैं:-
"19. अपील.–(1) कोई भी व्यक्ति जो, धारा 7 की उप-धारा (1) या उप-धारा (3) के खंड (क) में विनिर्दिष्ट समय के भीतर निर्णय प्राप्त नहीं करता है, या केंद्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी, जैसी भी स्थिति हो, के निर्णय से पीड़ित है, ऐसी अवधि की समाप्ति से या ऐसे निर्णय की प्राप्ति से तीस दिन के भीतर प्रत्येक लोक प्राधिकरण में केंद्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी, जैसी भी स्थिति हो, से पद में वरिष्ठ ऐसे अधिकारी को अपील प्राथमिकृत कर सकता है:
परंतु ऐसा अधिकारी तीस दिन की अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील को अंगीकृत कर सकता है यदि वह संतुष्ट है कि अपीलार्थी को पर्याप्त कारण से समय पर अपील दायर करने से निवारित किया गया था।

(2) जहां धारा 11 के अंतर्गत तृतीय-पक्षकार की सूचना को प्रकट करने के लिए केंद्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी, जैसी भी स्थिति हो, द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध अपील प्राथमिकृत की जाती है, संबंधित तृतीय-पक्षकार द्वारा अपील आदेश की तिथि से तीस दिन के भीतर की जाएगी।

(3) उप-धारा (1) के अंतर्गत निर्णय के विरुद्ध द्वितीय अपील उस तिथि से नब्बे दिन के भीतर केंद्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग के समक्ष होगी जिस तिथि को निर्णय दिया जाना चाहिए था या वास्तव में प्राप्त हुआ था:

परंतु केंद्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग, जैसी भी स्थिति हो, नब्बे दिन की अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील को अंगीकृत कर सकता है यदि वह संतुष्ट है कि अपीलार्थी को पर्याप्त कारण से समय पर अपील दायर करने से निवारित किया गया था।

(4) यदि केंद्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी, जैसी भी स्थिति हो, का निर्णय जिसके विरुद्ध अपील प्राथमिकृत की गई है, तृतीय-पक्षकार की सूचना से संबंधित है, तो केंद्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग, जैसी भी स्थिति हो, उस तृतीय-पक्षकार को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर प्रदान करेगा।

(5) किसी भी अपील कार्यवाही में, यह सिद्ध करने का भार कि अनुरोध को अस्वीकार करना न्यायोचित था, केंद्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी, जैसी भी स्थिति हो, पर होगा, जिसने अनुरोध को अस्वीकार किया था।

(6) उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के अंतर्गत अपील का निस्तारण अपील की प्राप्ति के तीस दिन के भीतर या ऐसी विस्तारित अवधि के भीतर किया जाएगा जो कुल मिलाकर पैंतालीस दिन से अधिक नहीं होगी, जैसी भी स्थिति हो, उसे दायर करने की तिथि से, कारणों को लिखित रूप में अभिलिखित करते हुए।

(7) केंद्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग, जैसी भी स्थिति हो, का निर्णय बाध्यकारी होगा।

(8) अपने निर्णय में, केंद्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग, जैसी भी स्थिति हो, को शक्ति है कि–

(क) लोक प्राधिकरण से अपेक्षा करे कि वह इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक ऐसे कदम उठाए, जिनमें सम्मिलित है–

(i) यदि ऐसा अनुरोध किया गया है, तो किसी विशेष प्रारूप में सूचना तक पहुंच प्रदान करके;
(ii) केंद्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी, जैसी भी स्थिति हो, को नियुक्त करके;
(iii) कुछ सूचना या सूचना की श्रेणियों को प्रकाशित करके;
(iv) अभिलेखों के रखरखाव, प्रबंधन और विनाश के संबंध में अपनी प्रथाओं में आवश्यक परिवर्तन करके;
(v) अपने अधिकारियों के लिए सूचना के अधिकार पर प्रशिक्षण के प्रावधान को बढ़ाकर;
(vi) धारा 4 की उप-धारा (1) के खंड (ख) के अनुपालन में वार्षिक रिपोर्ट उपलब्ध कराकर;

(ख) लोक प्राधिकरण से अपेक्षा करे कि वह परिवादी को किसी हानि या अन्य नुकसान के लिए क्षतिपूर्ति करे;
(ग) इस अधिनियम के अंतर्गत प्रदान किए गए कोई भी दंड अधिरोपित करे;
(घ) आवेदन को अस्वीकार करे।

(9) केंद्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग, जैसी भी स्थिति हो, परिवादी और लोक प्राधिकरण को अपने निर्णय की सूचना, जिसमें अपील का कोई अधिकार सम्मिलित है, देगा।

(10) केंद्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग, जैसी भी स्थिति हो, अपील का निर्णय ऐसी प्रक्रिया के अनुसार करेगा जो विहित की जाए।"(महत्व सनन्विष्ट)

12. इस संबंध में, हम माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **किशन चंद जैन बनाम भारत संघ तथा अन्य (2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1021)** में दिए गए निर्णय का संदर्भ देना भी समीचीन पाते हैं, जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने पैरा संख्या 25 में निम्नवत् अभिनिर्धारित किया है:-

"25. धारा 3 के अंतर्गत विधि द्वारा स्थापित सूचना के अधिकार की धारा 4 के अंतर्गत लोक प्राधिकरणों के दायित्वों के संदर्भ में परीक्षा करने के पश्चात्, हम इस मत के हैं कि विधि का प्रयोजन और उद्देश्य केवल तभी पूर्ण होगा जब उत्तरदायित्व का सिद्धांत 'अधिकार धारकों' और 'कर्तव्य वाहकों' के बीच संबंध को नियंत्रित करे। केंद्रीय और राज्य सूचना आयोगों का एक प्रमुख स्थान है, जिन्हें अधिनियम के अध्याय III और IV के अंतर्गत सांविधिक मान्यता प्राप्त है और उनकी शक्तियां और कार्य सभी अधिनियम की धारा 18 में विस्तार से परिगणित किए गए हैं। हमने केंद्रीय और राज्य सूचना आयुक्तों को प्रदत्त 'निगरानी और रिपोर्टिंग' की विशेष शक्ति को भी नोट किया है जिसका प्रयोग अधिनियम के प्रयोजन और उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए, अर्थात्, 'प्रत्येक लोक प्राधिकरण के कामकाज में पारदर्शिता और उत्तरदायित्व को बढ़ावा देना'।" (महत्व संविष्ट)

13. उपर्युक्त प्रावधानों के साथ-साथ **किशन चंद जैन के मामले (उपर्युक्त)** में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के अवलोकन से, यह पूर्णतः स्पष्ट है कि राज्य सूचना आयोग को किसी भी न्यायालय या कार्यालय से किसी भी लोक अभिलेख या उसकी प्रतिलिपियों को अधिप्रमाणित करने की शक्ति है और यदि ऐसी अपेक्षा हो, तो किसी विशेष प्रारूप में सूचना तक पहुंच प्रदान करके।

14. यहां, इस मामले में, याचिकाकर्ता ने अधिनियम, 2005 की धारा 6 के अंतर्गत लोक सूचना अधिकारी से दिनांक 21.03.2024 को अपेक्षित आवेदन प्रस्तुत करके आठ बिंदुओं पर सूचना मांगी थी। लोक सूचना अधिकारी/प्रत्यर्थी संख्या 2 की निष्क्रियता के कारण, याचिकाकर्ता ने दिनांक 02.05.2024 को धारा 19(1) के अंतर्गत अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील प्राथमिकृत की। प्रथम अपील दायर करने के पश्चात् भी, प्रत्यर्थी संख्या 2 ने अपेक्षित सूचना उपलब्ध नहीं कराई। बाध्यकारी परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता ने दिनांक 21.06.2024 को प्रत्यर्थी संख्या 1/राज्य सूचना आयोग के समक्ष ऑनलाइन द्वितीय अपील दायर की।

15. यद्यपि आयोग ने अनेक तिथियां निर्धारित कीं, किंतु न तो संबंधित अधिकारी द्वारा अपेक्षित सूचना अभिलेख में लाई गई और न ही वह आयोग के समक्ष उपस्थित हुए। इन परिस्थितियों में आयोग ने प्रत्यर्थी संख्या 2 के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही की सिफारिश करते हुए मामले को अभिलेख में पृष्ठांकित कर दिया।

16. याचिकाकर्ता का तर्क है कि प्रारंभ से ही उसने सूचना उपलब्ध कराने का अनुरोध किया था और यह किसी भी अधिकारी द्वारा किसी भी स्तर पर उपलब्ध नहीं कराई गई है। दंड केवल प्रत्यर्थी संख्या 2 को उसके विधिक कर्तव्य की निष्क्रियता के लिए दंडित करने के उद्देश्य की पूर्ति करता है, किंतु यह याचिकाकर्ता के उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता है। अधिनियम, 2005 के अनुसार, आयोग के पास लोक सूचना अधिकारियों को उस सूचना को प्रस्तुत करने के लिए निर्देश देने की व्यापक शक्तियां हैं जिसके संबंध में प्रार्थना की गई है।

17. व्यापक रूप से, यह कथन है कि अधिनियम नागरिकों को लोक प्राधिकरणों द्वारा धारित सूचना तक पहुंच का अधिकार प्रदान करता है जिसमें अभिलेख, दस्तावेज और इलेक्ट्रॉनिक सूचना सम्मिलित है। दूसरी ओर अधिनियम का वास्तविक उद्देश्य परस्पर विरोधी हितों को संतुलित करना है, अर्थात्, एक ओर पारदर्शिता सुनिश्चित करना, उत्तरदायित्व लाना और भ्रष्टाचार को नियंत्रित करना, और साथ ही यह सुनिश्चित करना कि सूचना का प्रकटीकरण, व्यावहारिक रूप से, अन्य लोक हितों को हानि न पहुंचाए या प्रतिकूल रूप से प्रभावित न करे जिसमें सरकारों का कुशल कामकाज, सीमित राजकोषीय संसाधनों का इष्टतम उपयोग और संवेदनशील सूचना की गोपनीयता का संरक्षण सम्मिलित है ।

18. चूंकि याचिकाकर्ता ने ग्राम पंचायत, जबरौली, खंड एवं तहसील मोहनलालगंज, लखनऊ से इसके द्वारा किए गए कुछ कार्यों के संबंध में सूचना मांगी है, यह नहीं कहा जा सकता कि अपेक्षित सूचना उसे धारा 8 के अंतर्गत उपलब्ध नहीं कराई जा सकती है जो सूचना के प्रकटीकरण से छूट प्राप्त है। जैसा कि याचिकाकर्ता द्वारा कथित है, केवल प्रत्यर्थी संख्या 2 को दंडित करने से उसके उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती है। अपने सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद, वह वांछित सूचना प्राप्त करने में असमर्थ है।

19. आदेश के अवलोकन से यह प्रदर्शित होता है कि आयोग ने आक्षेपित आदेश को सरसरी तरीके से पारित किया है और इसके द्वारा किए गए प्रयास आक्षेपित आदेश से प्रतिबिंबित नहीं होते हैं। यह दर्शाता है कि केवल यांत्रिक और यंत्रवत् तरीके से आदेश पारित किया गया है। अधिनियम, 2005 के अनुसार, जब आयोग को किसी सूचना दाता से अपील प्राप्त होती है, तो वह संबंधित अधिकारी को नोटिस जारी करता है और तिथियां निर्धारित करता है और जब वह प्रतिसाद देने में विफल रहता है, तो दंड अधिरोपित किया जाता है। किंतु यह इस तथ्य को अनदेखा करता है कि यद्यपि आयोग को अधिनियम, 2005 की धारा 19 के अंतर्गत सूचना प्राप्त करने और इसे सूचना दाता को प्रदान करने की व्यापक शक्तियां हैं, फिर भी यह अधिनियम, 2005 के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपीलीय शक्तियों को लागू करने में विफल रहा है। दंड का आदेश निवारक है किंतु अधिनियम का वास्तविक उद्देश्य प्रार्थित सूचना प्रस्तुत करने में निहित है, जिसके लिए अपीलीय प्राधिकारी द्वारा कोई कदम नहीं उठाए गए।

20. उपर्युक्त कारणों से, रिट याचिका **अनुज्ञात** की जाती है और दिनांक 24.02.2025 का आक्षेपित आदेश, प्रत्यर्थी संख्या 2 के विरुद्ध अधिरोपित दंड को छोड़कर, अपास्त किया जाता है और मामले को आयोग को अपील का नए सिरे से निर्णय करने के लिए प्रेषित किया जाता है। हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमने प्रत्यर्थी संख्या 2 के विरुद्ध की गई टिप्पणियों पर विचार नहीं किया है। तथापि, हम आयोग को निर्देश देते हैं कि वह संबंधित अधिकारी से अपेक्षित सूचना प्राप्त करने और शीघ्रातिशीघ्र याचिकाकर्ता को उपलब्ध कराने के लिए अपने सर्वोत्तम प्रयास करे।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1478

मूल अधिकारिता सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 27.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

रिट - सी संख्या - 10898 सन् 2024

सौरभ मिश्रा ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: सुरेन्द्र सिंह

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

सिविल विधि - मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 - धारा 2(za) एवं 14 - विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016 -

न्यायालय ने कहा कि–

- यदि कोई व्यक्ति स्वयं प्रतिनिधि नियुक्त नहीं करता, तो धारा 14(4) में पाँच श्रेणियाँ दी गई हैं।
- अधिनियम में उपयुक्तता का कोई मानदंड नहीं है।
- इस शून्य को दूर करने हेतु न्यायालय ने परेन्स पैट्रिए अधिकारिता का प्रयोग किया।
- प्रतिनिधि नियुक्त करते समय व्यक्ति की इच्छा एवं प्राथमिकताओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। (अनुच्छेद 13-15)

संविधान - अनुच्छेद 226 - आदेश की वैधता - न्यायालय ने कहा कि आदेश की वैधता उन्हीं कारणों से आँकी जाएगी जो उसमें उल्लिखित हैं, बाद में शपथपत्र द्वारा नए कारण नहीं जोड़े जा सकते।

नैतिक अध:पतन - न्यायालय ने कहा कि नैतिक अध:पतन का अर्थ उन अपराधों से है जो नैतिकता, ईमानदारी एवं आचार के विरुद्ध हों। जैसे वित्तीय गबन, आपराधिक विश्वासभंग, चोरी, यौन अपराध आदि।
इस मामले में याचिकाकर्ता पर दर्ज अपराध नैतिक अध:पतन से संबंधित नहीं थे।

अनुवादित

न्यायालय का निर्णय - प्रतिवादी संख्या 4 मानसिक विकलांगता से पीड़ित थी। याचिकाकर्ता उसका भतीजा था और अन्य परिजनों की कोई आपत्ति नहीं थी।
न्यायालय ने परेन्स पैट्रिए अधिकारिता का प्रयोग करते हुए याचिकाकर्ता को उसका प्रतिनिधि नियुक्त किया, ताकि वह उसके उपचार, जीवनयापन, वित्तीय मामलों एवं संपत्ति का प्रबंधन कर सके।

अचल संपत्ति का हस्तांतरण बिना बोर्ड की अनुमति नहीं होगा। (अनुच्छेद 13) अतः, रिट याचिका स्वीकृत। (E-5)

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा प्रदत्त)

(1) याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री सुरेन्द्र सिंह तथा राज्य/प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

(2) याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के रिट अधिकारिता का आह्वान किया है, जिसमें विपक्षी पक्षकार संख्या 2-मानसिक स्वास्थ्य पुनर्विलोकन बोर्ड, बाराबंकी (जिसे इसके पश्चात् **'बोर्ड'** के रूप में संदर्भित किया गया है) द्वारा दिनांक 16.11.2024 को पारित आक्षेपित आदेश को निरस्त करने का निर्देश मांगा गया है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 (जिसे इसके पश्चात् **'एम.एच. अधिनियम, 2017** के रूप में संदर्भित किया गया है) की धारा 14 के अंतर्गत दायर आवेदन इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि याचिकाकर्ता का दो मामलों का आपराधिक इतिहास है, इसलिए याचिकाकर्ता को विपक्षी पक्षकार संख्या 4 के प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता, जो बौद्धिक अक्षमता से पीड़ित है।

(3) वर्तमान मामले का केंद्र बिंदु यह है कि विपक्षी पक्षकार संख्या 4 के पिता मध्यांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड, अयोध्या क्षेत्र में नोटर और ड्राफ्टर के रूप में कार्यरत थे और उसी क्षमता में कार्य करते हुए, उन्होंने अधिवर्षता की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्ति ली। तत्पश्चात्, विपक्षी पक्षकार संख्या 4 के पिता को दिनांक 16.07.2021 को उनकी मृत्यु तक विभाग से पेंशन लाभ मिल रहा था। इससे पूर्व अर्थात् 09.09.2018 को विपक्षी पक्षकार संख्या 4 की माता की पहले ही मृत्यु हो चुकी थी।

(4) याचिकाकर्ता द्वारा यह कथन किया गया है कि चूंकि विपक्षी पक्षकार संख्या 4 एक अविवाहित पुत्री थी और मध्यम बौद्धिक अक्षमता आईक्यू-44 (वीएसएमएस) (अनुलग्नक-4, अक्षमता प्रमाणपत्र के अनुसार लगभग 75% अक्षमता) से पीड़ित थी, जो उपचार के माध्यम से ठीक नहीं हो सकती है, उसने पारिवारिक पेंशन के लिए आवेदन किया, जिस पर विभाग द्वारा विचार किया गया और उसे दिनांक 17.02.2023 को रु. 14,400/- पारिवारिक पेंशन के रूप में उसके विवाह या मृत्यु, जो भी पहले हो, तक प्रदान की गई।

(5) याचिकाकर्ता के अनुसार, वह विपक्षी पक्षकार संख्या 4 का एक निकट संबंधी (भतीजा) है और विपक्षी पक्षकार संख्या 4 की दयनीय स्थिति को देखते हुए, उसने विपक्षी पक्षकार संख्या 4 की जिम्मेदारी लेने का निर्णय लिया, जिसके लिए अन्य परिवार के सदस्यों को कोई आपत्ति नहीं है। इस संबंध में, दिनांक 01.10.2024 को याचिकाकर्ता ने बोर्ड के समक्ष एम.एच. अधिनियम, 2017 की धारा 14 के अंतर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें विपक्षी पक्षकार संख्या 4 और उसकी संपत्ति की देखभाल के लिए एक प्रतिनिधि/प्रबंधक के रूप में उसकी नामांकन की मांग की गई। याचिकाकर्ता के इस आवेदन की बोर्ड द्वारा जांच की गई और उचित विचार-विमर्श/विचारणा के पश्चात्, बोर्ड ने यह राय व्यक्त की कि चूंकि दो आपराधिक मामले अर्थात् (i) अपराध संख्या 129 सन् 2016, भारतीय दंड संहिता की धारा 143, 341, आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2013 की धारा 7 और संयुक्त प्रांतीय विशेष शक्ति अधिनियम की धारा 6/11 के अंतर्गत और (ii) अपराध संख्या 292 सन् 2016, भारतीय दंड संहिता की धारा 143, 341, 323, 332 और आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2013 की धारा 7 के अंतर्गत लंबित हैं और थाना प्रभारी अधिकारी, रामनगर ने याचिकाकर्ता के चरित्र सत्यापन की अनुशंसा नहीं की थी, विपक्षी पक्षकार संख्या 4 के प्रतिनिधि के रूप में याचिकाकर्ता को नामांकित करने का दावा उचित नहीं था और तदनुसार, बोर्ड ने दिनांक 16.11.2024 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज कर दिया। यही दिनांक 16.11.2024 का आदेश है, जिसे याचिकाकर्ता द्वारा वर्तमान याचिका में चुनौती दी गई है।

(6) याचिकाकर्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता का आवेदन बोर्ड द्वारा दिनांक 16.11.2024 के आक्षेपित आदेश द्वारा केवल इस एकमात्र आधार पर खारिज कर दिया गया कि याचिकाकर्ता का दो मामलों का आपराधिक इतिहास है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, दोनों मामले अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बाराबंकी के न्यायालय के समक्ष लंबित हैं और वे अंगीकरण की अत्यंत प्रारंभिक अवस्था में हैं। विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि किसी भी व्यक्ति को तब तक दोषी नहीं माना जाता जब तक कि विधि के न्यायालय में ऐसा सिद्ध न हो जाए। अतः वह प्रार्थना करते हैं कि आक्षेपित आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधिदेश का उल्लंघन करता है और निरस्त किए जाने योग्य है तथा मामले के दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में याचिकाकर्ता को विपक्षी पक्षकार संख्या 4 के प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया जा सकता है।

(7) दिनांक 20.12.2024 को हमने निम्नलिखित आदेश पारित किया है :-

"सुना गया।

विद्वान स्थायी अधिवक्ता न्यायालय को इस बात से संतुष्ट करें कि आक्षेपित आदेश किस प्रकार पोषणीय है क्योंकि प्रथम दृष्ट्या सुश्री गंगा देवी याचिकाकर्ता के साथ निवास करती हैं और तहसीलदार, रामनगर की रिपोर्ट के अनुसार उनके द्वारा उनकी देखभाल की जा रही है, दूसरा, स्वर्गीय नारायण शर्मा मिश्रा के विधिक उत्तराधिकारियों को, जो सुश्री गंगा देवी के पति थे, कोई आपत्ति नहीं है और उन्होंने अनापत्ति प्रमाणपत्र दिया है। इसलिए, केवल इसलिए कि दो आपराधिक मामले हैं और वे भी ऐसे अपराधों से संबंधित हैं जो जघन्य अपराध प्रतीत नहीं होते हैं, हम यह समझने में असफल हैं कि सुश्री गंगा देवी के संरक्षक के रूप में याचिकाकर्ता की नामांकन को किस प्रकार अस्वीकार किया जा सकता था क्योंकि यह केवल गंगा देवी द्वारा पेंशन की प्राप्ति

को सुगम बनाने के लिए मांगा जा रहा था जिसे उनके कल्याण के लिए उपयोग किया जा सकता था, विशेष रूप से क्योंकि यह विवादित नहीं है कि सुश्री गंगा देवी याचिकाकर्ता के साथ निवास करती हैं और उनके द्वारा उनकी देखभाल की जा रही है। इसलिए, आक्षेपित आदेश किस उद्देश्य की पूर्ति करता है, हम समझने में असफल हैं। इस मामले के तथ्यों में, हम नहीं देखते कि हमें याचिकाकर्ता को अपील के उपचार के लिए क्यों भेजना चाहिए और निजी विपक्षी पक्षकार की पीड़ा को और क्यों बढ़ाना चाहिए जो ऐसी नामांकन की लाभार्थी होगी। हम विपक्षी पक्षकार संख्या 4 को नोटिस जारी करने की कोई आवश्यकता नहीं देखते हैं।
इस मामले को दिनांक 06.01.2025 को नवीन रूप में सूचीबद्ध करें।
विपक्षी पक्षकारों द्वारा जो भी शपथपत्र दाखिल किए जाने आवश्यक हैं, अगली तारीख से पूर्व दाखिल किए जाएं।"

(8) स्पष्टतः, उक्त दिनांक 20.12.2024 के आदेश के अनुसरण में, प्रत्यर्थी संख्या 1-राज्य/प्रत्यर्थी संख्या 3-जिलाधिकारी, बाराबंकी की ओर से कोई प्रत्युत्तर शपथपत्र दाखिल नहीं किया गया है, तथापि, प्रत्यर्थी संख्या 2-बोर्ड ने प्रत्युत्तर शपथपत्र दाखिल किया है, जिसमें आक्षेपित आदेश का समर्थन किया गया है, किंतु साथ ही यह भी स्वीकार किया गया है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध लंबित दोनों आपराधिक मामले प्रकृति में जघन्य नहीं थे। प्रत्युत्तर शपथपत्र में स्पष्टीकरण के रूप में एक अतिरिक्त आधार जोड़ा गया है जिसमें कहा गया है कि आवेदन इसलिए खारिज किया गया था क्योंकि उनके अनुसार अपराध नैतिक अधमता से संबंधित प्रतीत होते थे।

(9) सर्वप्रथम और सबसे महत्वपूर्ण, यह न्यायालय पाता है कि एम.एच. अधिनियम, 2017 की धारा 73 के अंतर्गत गठित किए गए बोर्ड ने एम.एच. अधिनियम, 2017 की धारा 80 (2) (क) के अंतर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया है, जो अनिवार्य रूप से सांविधिक प्रकृति के हैं। आक्षेपित आदेश के परीक्षण के समय सांविधिक कार्यकर्ता द्वारा अतिरिक्त तर्क से संबंधित विधि उच्चतम न्यायालय के सुप्रसिद्ध संविधान पीठ के निर्णय **मोहिन्दर सिंह गिल बनाम मुख्य निर्वाचन आयुक्त, नई दिल्ली** : 1978 (1) एस.सी.सी. 405 में प्रतिपादित है, जिसमें संविधान पीठ ने यह धारित किया कि जब कोई सांविधिक कार्यकर्ता कुछ आधारों के आधार पर आदेश पारित करता है, तो उसकी वैधता का निर्णय उन्हीं आधारों से किया जाना चाहिए जिनका उल्लेख किया गया है और शपथपत्र या उत्तर के रूप में नए कारणों द्वारा पूरक नहीं किया जा सकता, अन्यथा, प्रारंभ में खराब आदेश, जब तक वह चुनौती के कारण न्यायालय में आता है, तब तक उक्त सांविधिक कार्यकर्ता द्वारा बाद में लाए गए अतिरिक्त आधारों के कारण वैध हो सकता है। इस प्रकार, प्रत्युत्तर शपथपत्र में बोर्ड द्वारा दिया गया अतिरिक्त स्पष्टीकरण कि अपराध नैतिक अधमता से संबंधित प्रतीत होते थे, केवल नोट किया जाता है और खारिज किया जाता है।

(10) किसी भी स्थिति में, 'नैतिक अधमता' शब्द विधि के अंतर्गत परिभाषित नहीं है, किंतु न्यायिक पूर्वोदाहरणों के आधार पर, यह उन उदाहरणों को संदर्भित करता है जहां कोई व्यक्ति ऐसे कृत्यों में संलग्न होता है जो नैतिकता, सत्यनिष्ठा और नीतिशास्त्र के विरुद्ध हैं। न्यायालयों ने नैतिक अधमता से संबंधित अपराधों में वित्तीय दुर्विनियोग, आपराधिक विश्वासघात, चोरी, यौन दुराचार इत्यादि को शामिल किया है और यह ऐसे

आचरण को संदर्भित करता है जो स्वाभाविक रूप से नीच, अधम या भ्रष्ट है। यह न्यायालय वर्तमान मामले के तथ्यों में और याचिकाकर्ता के विरुद्ध लंबित दो आपराधिक मामलों में याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाई गई धाराओं के समग्र दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए, इस विचारित मत का है कि आरोपित अपराधों में नैतिक अधमता का कोई अपराध शामिल नहीं है। तथापि, चूंकि यह न्यायालय एम.एच. अधिनियम, 2017 के प्रावधानों के अंतर्गत वर्तमान याचिका के निस्तारण के सीमित दृष्टिकोण से उक्त दो आपराधिक मामलों में याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध लगाई गई धाराओं पर विचार कर रहा है, इस न्यायालय द्वारा की गई कोई भी टिप्पणी उक्त दो आपराधिक मामलों की गुणवत्ता पर कोई प्रभाव नहीं डालेगी, जिनके विधि के अनुसार उनकी व्यक्तिगत गुणवत्ता के आधार पर अपने स्वयं के परिणाम होंगे।

(11) अगला प्रश्न, जो विचारार्थ आता है, वह यह है कि वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में जहां आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में अपोषणीय है, क्या याचिकाकर्ता को बोर्ड/प्राधिकरण के स्तर पर भेजा जाना चाहिए या यह न्यायालय याचिकाकर्ता को प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त कर सकता है या नहीं। ऐसा कहते हुए, यह न्यायालय पाता है कि एम.एच. अधिनियम, 2017 की धारा 4 के दृष्टिकोण में, मानसिक बीमारी से पीड़ित व्यक्ति सहित प्रत्येक व्यक्ति को उसकी मानसिक स्वास्थ्य देखभाल या उपचार के संबंध में निर्णय लेने की क्षमता रखने वाला माना जाएगा। इस प्रकार, एम.एच. अधिनियम, 2017 द्वारा ही एक मानित क्षमता की परिकल्पना की गई है और इस प्रकार एम.एच. अधिनियम, 2017 की धारा 5(1)(ग) कहती है कि प्रत्येक व्यक्ति, जो नाबालिग नहीं है, को यह अधिकार होगा कि वह लिखित रूप में एक अग्रिम निर्देश बनाए जिसके प्रभाव से कि कोई भी व्यक्ति या व्यक्ति, वरीयता के क्रम में, जिन्हें वह या वह एम.एच. अधिनियम, 2017 की धारा 14 के अंतर्गत प्रदान किए गए अनुसार अपने नामांकित प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त करना चाहता है या चाहती है।

(12) तथापि, वर्तमान मामले में, यह न्यायालय जो पाता है वह यह है कि विपक्षी पक्षकार संख्या 4, जो मध्यम बौद्धिक अक्षमता आईक्यू-44 (वीएसएमएस) (अनुलग्नक-4, अक्षमता प्रमाणपत्र के अनुसार लगभग 75% अक्षमता) से पीड़ित है, अपने अधिकार का प्रयोग करने में असमर्थ है और कोई अग्रिम निर्देश नहीं है और इस प्रकार आक्षेपित आवेदन याचिकाकर्ता द्वारा एम.एच. अधिनियम, 1977 की धारा 14(4)(घ) के अंतर्गत दायर किया गया। अधिनियम की धारा 14 को निष्कर्षित करना लाभकारी होगा, जो अन्य बातों के साथ-साथ निम्नानुसार कहती है:

"धारा 14: नामांकित प्रतिनिधि की नियुक्ति और निरसन।

(1) धारा 5 की उप-धारा (1) के खंड (ग) में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, प्रत्येक व्यक्ति जो नाबालिग नहीं है, को नामांकित प्रतिनिधि नियुक्त करने का अधिकार होगा।

(2) उप-धारा (1) के अंतर्गत नामांकन सादे कागज पर लिखित रूप में उस उप-धारा में संदर्भित व्यक्ति के हस्ताक्षर या अंगूठे के निशान के साथ किया जाएगा।

(3) नामांकित प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त व्यक्ति नाबालिग नहीं होगा, इस अधिनियम के अंतर्गत उसे सौंपे गए कर्तव्यों को निर्वहन करने या कार्यों को करने के लिए सक्षम होगा, और इस अधिनियम के अंतर्गत उसे सौंपे गए कर्तव्यों को निर्वहन करने और कार्यों को करने के लिए मानसिक स्वास्थ्य पेशेवर को लिखित रूप में अपनी सहमति देगा।

(4) जहां उप-धारा (1) के अंतर्गत किसी व्यक्ति द्वारा कोई नामांकित प्रतिनिधि नियुक्त नहीं किया गया है, वहां इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए वरीयता के क्रम में निम्नलिखित व्यक्तियों को मानसिक बीमारी से पीड़ित व्यक्ति का नामांकित प्रतिनिधि माना जाएगा, अर्थात्:-

(क) धारा 5 की उप-धारा (1) के खंड (ग) के अंतर्गत अग्रिम निर्देश में नामांकित प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त व्यक्ति; या

(ख) एक संबंधी, या यदि उपलब्ध न हो या ऐसे व्यक्ति का नामांकित प्रतिनिधि बनने के लिए इच्छुक न हो; या

(ग) एक देखभालकर्ता, या यदि उपलब्ध न हो या ऐसे व्यक्ति का नामांकित प्रतिनिधि बनने के लिए इच्छुक न हो; या

(घ) संबंधित बोर्ड द्वारा नियुक्त उपयुक्त व्यक्ति; या

(ङ) यदि नामांकित प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए ऐसा कोई व्यक्ति उपलब्ध नहीं है, तो बोर्ड निदेशक, समाज कल्याण विभाग, या उसके नामित प्रतिनिधि को मानसिक बीमारी से पीड़ित व्यक्ति के नामांकित प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त करेगा:

बशर्ते कि सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 या समय-समय पर प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अंतर्गत पंजीकृत किसी संगठन का प्रतिनिधित्व करने वाला व्यक्ति, जो मानसिक बीमारी से पीड़ित व्यक्तियों के लिए कार्य कर रहा है, संबंधित बोर्ड द्वारा नामांकित प्रतिनिधि की नियुक्ति लंबित रहने तक नामांकित प्रतिनिधि के कर्तव्यों को निर्वहन करने के लिए मानसिक स्वास्थ्य पेशेवर द्वारा अस्थायी रूप से नियोजित किया जा सकता है।

(5) उप-धारा (4) के परंतुक में संदर्भित संगठन का प्रतिनिधि, मानसिक स्वास्थ्य प्रतिष्ठान के प्रभारी चिकित्सा अधिकारी या व्यक्ति के उपचार के प्रभारी मनोचिकित्सक को लिखित आवेदन कर सकता है, और ऐसा चिकित्सा अधिकारी या मनोचिकित्सक, जैसा भी मामला हो, संबंधित बोर्ड द्वारा नामांकित प्रतिनिधि की नियुक्ति लंबित रहने तक उसे अस्थायी नामांकित प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करेगा।

(6) एक व्यक्ति जिसने इस धारा के अंतर्गत किसी व्यक्ति को अपने नामांकित प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया है, उप-धारा (1) के अंतर्गत नामांकित प्रतिनिधि की नियुक्ति के लिए निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार किसी भी समय ऐसी नियुक्ति को निरस्त या परिवर्तित कर सकता है।

(7) बोर्ड, यदि यह राय रखता है कि ऐसा करना मानसिक बीमारी से पीड़ित व्यक्ति के हित में है, तो इस धारा के अंतर्गत की गई नियुक्ति को निरस्त कर सकता है, और इस धारा के अंतर्गत एक भिन्न प्रतिनिधि नियुक्त कर सकता है।

(8) नामांकित प्रतिनिधि की नियुक्ति, या मानसिक बीमारी से पीड़ित व्यक्ति की नामांकित प्रतिनिधि नियुक्त करने में असमर्थता, को व्यक्ति की अपनी मानसिक स्वास्थ्य देखभाल या उपचार के बारे में निर्णय लेने की क्षमता की कमी के रूप में नहीं माना जाएगा।

(9) मानसिक बीमारी से पीड़ित सभी व्यक्तियों को मानसिक स्वास्थ्य देखभाल या उपचार निर्णय लेने की क्षमता होगी लेकिन निर्णय लेने के लिए अपने नामांकित प्रतिनिधि से अलग-अलग स्तर के समर्थन की आवश्यकता हो सकती है।(बल दिया गया)

(13) एम.एच. अधिनियम, 2017 की धारा 14 (4) पांच विभिन्न श्रेणियों के व्यक्तियों को गिनाती है, जिन्हें नियुक्त किया जा सकता है, यदि एम.एच. अधिनियम, 2017 की धारा 14 (1) के अंतर्गत किसी व्यक्ति द्वारा कोई नामांकित प्रतिनिधि नियुक्त नहीं किया गया है। पहला वह व्यक्ति है जो धारा 5 की उप-धारा (1) के खंड (ग) के अंतर्गत अग्रिम निर्देश में नामांकित प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त है। यदि अग्रिम निर्देश में ऐसा कोई व्यक्ति उपलब्ध नहीं है, तो एम.एच. अधिनियम, 2017 की धारा 14 (4) (ख) नामांकित प्रतिनिधि के रूप में एक संबंधी को नियुक्त करने की बात करती है और किसी अन्य श्रेणियों की तुलना में उच्च स्थान पर उल्लेख पाती है। केवल तभी, यदि कोई संबंधी उपलब्ध नहीं है या नामांकित प्रतिनिधि बनने के लिए इच्छुक नहीं है, तो वरीयता के क्रम में, एक देखभालकर्ता या तत्पश्चात् एक उपयुक्त व्यक्ति को नियुक्त किया जा सकता है। एम.एच. अधिनियम, 2017 की धारा 2 (झक) के अंतर्गत परिभाषित एक संबंधी का अर्थ है मानसिक बीमारी से पीड़ित व्यक्ति से रक्त, विवाह या गोद लेने से संबंधित कोई भी व्यक्ति।

(14) तथापि, मानदंड या उपयुक्तता क्या है और इसे कैसे सुनिश्चित किया जाए, ऐसे बौद्धिक रूप से चुनौतीग्रस्त व्यक्तियों या उनकी संपत्ति की देखभाल के लिए प्रतिनिधि की नियुक्ति के लिए एम.एच. अधिनियम, 2017 के अंतर्गत कोई तंत्र प्रदान नहीं किया गया है। इस कानूनी रिक्तता पर माननीय उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों द्वारा विभिन्न निर्णयों में विचार किया गया है और प्रत्येक बार, न्यायालयों ने एम.एच. अधिनियम, 2017 के अंतर्गत प्रतिनिधि या संरक्षक नियुक्त करते समय अपने परेन्स पाटरिए अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया है।

(15) परंपरागत रूप से, परेन्स पाटरिए अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय, न्यायालय *"व्यक्ति के सर्वोत्तम हित"* के सिद्धांत को लागू करते थे, तथापि, विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (यूएनसीआरपीडी) की शुरूआत के साथ, जिसके अनुपालन में एम.एच. अधिनियम, 2017 स्पष्ट रूप से डिजाइन किया गया था, व्यक्ति के "सर्वोत्तम हित" की पूर्व अवधारणा को अब व्यक्ति की *"इच्छाओं और वरीयताओं"* के

प्रकाश में देखा जाना है। इस प्रकार, बौद्धिक रूप से चुनौतीग्रस्त व्यक्ति की *"इच्छाओं और वरीयताओं"* का निर्धारण या तो ऊपर कथित अग्रिम निर्देशों की पृष्ठभूमि में किया जाना है या अग्रिम निर्देशों की अनुपस्थिति में, इसे उन कारकों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए, जो उक्त मानसिक रूप से बीमार व्यक्ति की *'इच्छा और आशय'* की ओर संकेत करते हैं।

(16) अग्रिम निर्देशों की अनुपस्थिति में, भारत में पारिवारिक संरचनाओं का सामाजिक ताना-बाना बौद्धिक रूप से चुनौतीग्रस्त व्यक्ति की 'इच्छा और आशय' का निर्धारण करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और यही कारण है कि हम देखते हैं कि विधायिका ने एक *"संबंधी"* को उक्त व्यक्ति के *अग्रिम निर्देश* के अगले और तत्काल बाद प्रतिनिधि के रूप में नामांकित किए जाने के लिए, व्यक्ति की किसी भी श्रेणी से पूर्व, महत्वपूर्ण रूप से गिनाया है। एम.एच. अधिनियम, 2017 की धारा 2(ज) के अंतर्गत 'परिवार' शब्द का अर्थ है 'रक्त, गोद लेने या विवाह द्वारा संबंधित व्यक्तियों का एक समूह'। यह न्यायालय पाता है कि एम.एच. अधिनियम, 2017 के प्रावधान के अंतर्गत संबंधी और परिवार के बीच कोई स्पष्ट अंतर नहीं है। दोनों को परस्पर उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार, एक संबंधी को एक परिवार कहा जा सकता है और उसी क्रम में, यह कहा जा सकता है कि एक परिवार संबंधियों से मिलकर बना होता है। यह न्यायालय इस तथ्य से सचेत है कि याचिकाकर्ता विपक्षी पक्षकार संख्या 4 का एक निकट संबंधी है क्योंकि वह उसका भतीजा है और अन्य संबंधियों की ओर से उसके प्रतिनिधि के रूप में उसकी नामांकन के लिए 'अनापत्ति' है और यहां तक कि संबंधित तहसीलदार ने भी रिपोर्ट की है कि विपक्षी पक्षकार संख्या 4 याचिकाकर्ता की देखभाल में है जैसा कि इस न्यायालय द्वारा ऊपर दर्ज किया गया है।

(17) इसके अतिरिक्त, यह न्यायालय नोट करता है कि एम.एच. अधिनियम ने मानसिक रूप से बीमार व्यक्ति के "सर्वोत्तम हित" का निर्धारण करते समय विचार किए जाने वाले कुछ मानकों और कारकों को निर्धारित किया है। तथापि, व्यक्ति की "इच्छाओं और वरीयताओं" का क्या गठन होगा, इस संबंध में कोई मार्गदर्शन विद्यमान नहीं है। धारा 14 (1) के परंतुक में भी, पूर्ण समर्थन प्रदान करने के लिए विचार किए जाने वाले कारक स्पष्ट रूप से अनुपस्थित हैं। एम.एच. अधिनियम में वित्तीय मामलों के प्रबंधन, संरक्षकों की नियुक्ति या जिस तरीके से मानसिक रूप से बीमार व्यक्ति की चल/अचल संपत्ति की देखभाल की जानी है, के संबंध में कोई प्रावधान नहीं है। इस प्रकार, एक स्पष्ट सांविधिक रिक्तता है। किसी भी स्थिति में, यह न्यायालय इस राय का है कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा बार-बार मान्यता प्राप्त उक्त अधिकार क्षेत्र की गंभीर प्रकृति को देखते हुए, यह प्रश्न कि क्या यह बोर्ड है या अपीलीय प्राधिकरण है या किस न्यायालय को इसका प्रयोग करना है और किस तरीके से, यह केवल प्रक्रिया का एक प्रश्न है, जब तक कि मानसिक रूप से बीमार व्यक्ति की "इच्छाओं और वरीयताओं" और नियमों में निर्धारित अन्य कारकों को बोर्ड या इस न्यायालय द्वारा अपने परेन्स पाटरिए अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय ध्यान में रखा जाता है।

(18) वर्तमान मामले में, विपक्षी पक्षकार संख्या 4 की प्रारंभिक इच्छा और वरीयता का निर्धारण नहीं किया जा सका। यहां तक कि आज भी, उसकी शारीरिक और मानसिक स्थिति पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि वह अपनी इच्छा या वरीयता

व्यक्त करने में भी असमर्थ है। इन परिस्थितियों में न्यायालय को विपक्षी पक्षकार संख्या 4 की पीड़ा को दूर करने के लिए परेन्स पाटरिए अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत हस्तक्षेप करना होगा, जो वर्तमान मामले में अंतिम लाभार्थी है।

(19) इस मामले के तथ्यों के साथ-साथ अभिलेख पर रखी गई रिपोर्टों को देखते हुए, यह न्यायालय आश्वस्त है कि विपक्षी पक्षकार संख्या 4 अपने हित में निर्णय लेने में असमर्थ है और गंभीर रूप से गिरी हुई मानसिक और शारीरिक स्थिति में है। जहां तक उन व्यक्तियों का संबंध है, जिन्हें उसके संरक्षक के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए, विपक्षी पक्षकार संख्या 4 का याचिकाकर्ता के अलावा कोई अन्य विधिक उत्तराधिकारी प्रतीत नहीं होता है, जो उसका संबंधी और परिवार है क्योंकि वह उसके सगे भाई का पुत्र है। इसके अतिरिक्त, अन्य संबंधियों का अनापत्ति शपथपत्र विश्वसनीय प्रतीत होता है और याचिकाकर्ता को विपक्षी पक्षकार संख्या 4 के प्रतिनिधि के रूप में नामांकित करने में कोई बाधा प्रतीत नहीं होती है।

(20) इन परिस्थितियों में, न्यायालय परेन्स पाटरिए अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए निम्नानुसार निर्देश देता है :-

(i) दिनांक 16.11.2024 का आक्षेपित आदेश निरस्त किया जाता है;

(ii) याचिकाकर्त्ता को एम.एच. अधिनियम, 2017 के अंतर्गत विपक्षी पक्षकार संख्या 4 का नामांकित प्रतिनिधि और विक्लांग व्यक्तियों के अधिकार (आरपीडब्ल्यूडी) अधिनियम, 2016 के अंतर्गत उसे समर्थन प्रदान करने के लिए नियुक्त किया जाता है;

(iii) याचिकाकर्ता विपक्षी पक्षकार संख्या 4 के उसके चिकित्सा उपचार, स्वास्थ्य देखभाल, दैनिक जीवन, वित्तीय मामलों इत्यादि सहित सभी मामलों के संबंध में सभी निर्णय लेगा।

(iv) याचिकाकर्ता को मध्यांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड द्वारा प्रदान की गई पारिवारिक पेंशन सहित विपक्षी पक्षकार संख्या 4 की सभी चल और अचल संपत्तियों से निपटने के लिए नामांकित किया जाएगा, तथापि, वह 'मानसिक स्वास्थ्य पुनर्विलोकन बोर्ड', बरेली की पूर्व अनुमोदन और सहमति के बिना अचल संपत्तियों का हस्तांतरण नहीं करेगा।

(v) यदि विपक्षी पक्षकार संख्या 4 का कोई संबंधी/परिवार या मित्र यह इंगित करता है कि नामांकित प्रतिनिधि/याचिकाकर्ता उसके सर्वोत्तम हित में कार्य नहीं कर रहा है, तो ऐसा व्यक्ति भी उचित निर्देश जारी करने और याचिकाकर्ता को हटाने के लिए बोर्ड या इस न्यायालय से संपर्क करने के लिए अधिकार रखेगा।

(vi) यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ता को प्रतिनिधि के रूप में नामांकित किए जाने के बावजूद, बोर्ड के पास एम.एच. अधिनियम, 2017 के प्रावधान, एम.एच. अधिनियम, 2017 की धारा 82 सहित, के अंतर्गत परिकल्पित सभी पर्यवेक्षी शक्तियां होंगी।

(vii) उपर्युक्त निर्देश याचिकाकर्ता के प्रस्तुतीकरण और इस न्यायालय के समक्ष किए गए कथनों के साथ-साथ तहसीलदार-रामनगर की रिपोर्ट के आधार पर पारित किए गए हैं कि विपक्षी पक्षकार संख्या 4 याचिकाकर्ता की देखभाल में और उसके साथ रह रही है और याचिकाकर्ता के पक्ष में विपक्षी पक्षकार संख्या 4 के अन्य संबंधियों का वैध और विद्यमान 'अनापत्ति' शपथपत्र है। पक्षकार उक्त प्रस्तुतीकरण से बाध्य होंगे और यदि वे अन्यथा पाए जाते हैं, तो उनके विरुद्ध न्यायालय की अवमानना सहित उचित कार्यवाही आरंभ की जा सकती है।

(21) याचिका, तदनुसार, **स्वीकार** की जाती है।

(2025) 5 ILRA 1486

मूल अधिकारिता सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी

रिट - सी संख्या - 11196 सन् 2025

श्रीमती बंदना ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: सिद्धार्थ नंदन

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, जे.पी.एन. सिंह

सिविल विधि - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - क्षेत्र पंचायत एवं जिला पंचायत अधिनियम, 1961 - धारा 15(2) एवं (3) -

याचिकाकर्ता, जो क्षेत्र पंचायत की निर्वाचित सदस्य थीं, ने खंड प्रमुख के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इस प्रस्ताव पर 100 में से 70 निर्वाचित सदस्यों के हस्ताक्षर थे और इसे अधिनियम, 1961 की धारा 15(2) के अंतर्गत जिलाधिकारी को प्रस्तुत किया गया।

जिलाधिकारी ने बैठक बुलाने के बजाय 20.03.2025 को प्रस्ताव को यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि 69 सदस्यों ने शपथपत्र देकर समर्थन से इनकार किया है।

न्यायालय का निर्णय:

- एक बार जब धारा 15(2) के अंतर्गत कम से कम आधे निर्वाचित सदस्यों के हस्ताक्षर सहित अविश्वास प्रस्ताव विधिवत प्रस्तुत हो जाता है, तो जिलाधिकारी पर वैधानिक दायित्व है कि वह 30 दिनों के भीतर बैठक बुलाए।
- जिलाधिकारी प्रस्ताव को शपथपत्रों के आधार पर अस्वीकार नहीं कर सकते और न ही वे तथ्यात्मक विवादों जैसे जालसाजी या दबाव की जांच कर सकते हैं।
- जिलाधिकारी की भूमिका केवल prima facie संतुष्टि तक सीमित है, विस्तृत जांच करना उनका कार्य नहीं है।

अतः, जिलाधिकारी का आदेश निरस्त किया जाता है और पंचायत अभिलेखों से हस्ताक्षरों का संक्षिप्त सत्यापन करने का निर्देश दिया जाता है। (अनुच्छेद 1 से 31) रिट याचिका स्वीकृत। (E-6)

उल्लिखित वाद:

अनुवादित

1. मथुरा प्रसाद तिवारी बनाम सहायक जिला पंचायत अधिकारी, फैजाबाद, (1996) ALJ 612

2. श्रीमती फूलबासा बनाम जिलाधिकारी एवं अन्य, रिट C संख्या 36671/2024

3. विकास त्रिवेदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2013) 2 UPLBC 1193, अनुच्छेद 66

4. विकास कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2025) 2 ADJ 1

5. उष्मा देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2014) 4 ADJ 3

6. श्रीमती शीला देवी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2015) 2 ADJ 325

7. कविता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2018) 10 SCC 569

8. किरण पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2018) 7 SCC 521

(माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता, जो क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत अधिनियम, 1961(अधिनियम, 1961) के अंतर्गत गठित क्षेत्र पंचायत की निर्वाचित सदस्य है, ने क्षेत्र पंचायत के प्रमुख में अविश्वास प्रस्ताव लाने के आशय की एक लिखित सूचना उचित प्रारूप में स्वयं उपस्थित होकर दी, जिस पर क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या के आधे से अधिक अर्थात् 100 सदस्यों में से 70 सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे, प्रस्तावित प्रस्ताव की प्रति के साथ कलेक्टर, आजमगढ़ को, जिसका क्षेत्र पंचायत पर अधिकार क्षेत्र था। यह अविश्वास सूचना अधिनियम, 1961 की धारा 15(2) के अनुसार 7.3.2025 को प्रस्तुत की गई थी।

2. यह आरोप है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 अर्थात् कलेक्टर/जिलाधिकारी, आजमगढ़ ने दिनांक 7.3.2025 की सूचना पर कोई कार्यवाही नहीं की। तत्पश्चात, पांच दिन की अवधि के भीतर 12.3.2025 को, क्षेत्र पंचायत के 69 सदस्यों ने कथित रूप से ब्लॉक प्रमुख के समर्थन में नोटरीकृत शपथ पत्र प्रस्तुत किए, जो उसी तारीख के ब्लॉक प्रमुख के पत्र के साथ संलग्न थे, जिसमें कहा गया था कि उन्होंने प्रत्यर्थी संख्या 3 के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए किसी बैठक में भाग नहीं लिया था और न ही इस संबंध में शपथ पत्र पर हस्ताक्षर किए थे। तत्पश्चात, दिनांक 20.3.2025 के आक्षेपित आदेश द्वारा, दिनांक 7.3.2025 की अविश्वास व्यक्त करने वाली सूचना को पोषणीय नहीं पाया गया और अस्वीकृत कर दिया गया।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि एक बार अधिनियम, 1961 की धारा 15(2) में परिकल्पित आशय की लिखित सूचना कलेक्टर के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, तो कलेक्टर के पास कोई विकल्प नहीं है, बल्कि उसे धारा 15 की उप-धारा (2) के अंतर्गत सूचना दिए जाने की तारीख से 30 दिनों से अधिक की तारीख पर, जो उसके द्वारा नियत की जाएगी, क्षेत्र पंचायत के कार्यालय में प्रस्ताव पर विचार के लिए क्षेत्र पंचायत की बैठक बुलानी होगी और क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों को ऐसी बैठक की 15 दिन से कम की नहीं, ऐसे तरीके से सूचना देना अनिवार्य है जो विहित किया जाए। कलेक्टर तथ्य-खोज अभ्यास में नहीं लग सकता और इस संबंध में साक्ष्य एकत्र नहीं कर सकता। कलेक्टर द्वारा कोई विचारण नहीं किया जा सकता क्योंकि उसके

पास न्यायालय की व्यवस्था नहीं है। इस न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय **मथुरा प्रसाद तिवारी बनाम सहायक जिला पंचायत अधिकारी, फैजाबाद** (1966 एएलजे 612) का संदर्भ दिया गया है।

4. यह कहा गया है कि आक्षेपित आदेश यह दर्शाता है कि 12.3.2025 को क्षेत्र पंचायत के कथित सदस्यों द्वारा 69 शपथ पत्र कलेक्टर के समक्ष प्रस्तुत किए गए थे जिसमें कहा गया था कि वे प्रमुख के कार्य करने के तरीके और कार्य से पूर्णतः संतुष्ट हैं, जो क्षेत्र पंचायत के लाभ के लिए कार्य कर रहे हैं और बहुत से विकास कार्य किए हैं; कि 20.3.2025 को, जिस तारीख को आक्षेपित आदेश पारित किया गया था, क्षेत्र पंचायत के 34 सदस्य कथित रूप से कलेक्टर के समक्ष उपस्थित हुए थे; कि उन्होंने उनके द्वारा हस्ताक्षरित कथित शपथ पत्र प्रस्तुत किए जिसमें कहा गया था कि वे ब्लॉक प्रमुख के कार्य करने के तरीके और कार्य से पूर्णतः संतुष्ट हैं और उन पर विश्वास व्यक्त करते हैं, और कि उन्होंने कभी भी ब्लॉक प्रमुख में अविश्वास व्यक्त करने वाले किसी शपथ पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं और यदि ऐसे कोई शपथ पत्र प्रस्तुत किए गए हैं, तो उन्हें शून्य माना जाना चाहिए; कि आक्षेपित आदेश यह दर्शाता है कि चूंकि अविश्वास प्रस्ताव लाने के आशय की लिखित सूचना पर हस्ताक्षर करने वाले 34 सदस्यों ने 20.3.2025 को अपने शपथ पत्र प्रस्तुत कर दिए हैं, अतः लिखित सूचना पर शेष हस्ताक्षरकर्ता घटकर 36 रह गए हैं जो क्षेत्र पंचायत के 100 निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या के आधे से कम हैं; कि उक्त प्रस्ताव को अस्वीकार करने में कलेक्टर का कृत्य विधि के विपरीत है और इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों के विरुद्ध है।

5. न्यायालय द्वारा पूछे जाने पर, श्री संदीप सिंह, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता, जिला पंचायत राज अधिकारी (डीपीआरओ), आजमगढ़ से टेलीफोन पर प्राप्त मौखिक निर्देश के आधार पर कहते हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 3 से दिनांक 12.03.2025 के संचार की प्राप्ति के बाद न तो मुख्य विकास अधिकारी(सीडीओ) और न ही डीपीआरओ द्वारा कोई रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। उनके द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 07.03.2025 की अविश्वास की सूचना की प्राप्ति के बाद, यद्यपि उसे कलेक्टर द्वारा सीडीओ/डीपीआरओ को चिह्नित किया गया था, किंतु उनमें से किसी ने भी कोई रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की थी। विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा यह भी कहा गया है कि केवल 20.03.2025 को सीडीओ और डीपीआरओ जिलाधिकारी, आजमगढ़ के कार्यालय में एकत्रित हुए, तथ्यों को संकलित किया गया और आक्षेपित आदेश पारित किया गया। वे आगे कहते हैं कि डीपीआरओ से प्राप्त मौखिक निर्देश के अनुसार फाइल 18.03.2025 तक सीडीओ के पास थी और कोई रिपोर्ट/कार्यवाही नहीं की गई या नहीं की गई थी।

6. न्यायालय द्वारा यह पूछे जाने पर कि प्रत्यर्थी संख्या 3 को कलेक्टर के समक्ष अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किए जाने के बारे में जानकारी कैसे प्राप्त हुई, श्री के.आर. सिंह, विद्वान अधिवक्ता, कहते हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 3 को कलेक्टर या सीडीओ या डीपीआरओ के कार्यालय से कोई संचार प्राप्त नहीं हुआ, लेकिन उन्हें 04 मार्च 2025 को स्थानीय मीडिया अर्थात् जनता न्यूज चैनल नामक एक यूट्यूब चैनल से पूर्व सूचना प्राप्त हुई थी; कि 07.03.2025 को, यूट्यूब पर एक और वीडियो अपलोड किया गया जिसमें याचिकाकर्ता के पति को अविश्वास

की सूचना दिखाते हुए दिखाया गया है। इस प्रकार यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 को उक्त यूट्यूब चैनल से अविश्वास प्रस्ताव की सूचना के बारे में जानकारी प्राप्त हुई।

7. श्री के.आर. सिंह, अधिवक्ता, ने रिट याचिका के पृष्ठ 33 और 104 का संदर्भ देते हुए तर्क दिया है कि लिखित सूचना पर हस्ताक्षर करने वालों द्वारा कथित रूप से प्रस्तुत शपथ पत्रों में कहा गया है कि उनके द्वारा 10.11.2024 को एक बैठक बुलाई गई थी जबकि लिखित सूचना के साथ संलग्न अविश्वास व्यक्त करने वाले प्रस्ताव में 25.2.2025 की तारीख दर्शाई गई है। यह कहा गया है कि अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने वालों द्वारा 10.11.2024 को कोई संकल्प पारित नहीं किया गया था। अतः, अविश्वास प्रस्ताव लाने के आशय की सूचना त्रुटिपूर्ण है और अस्वीकार किए जाने योग्य है। यह भी कहा गया है कि रिट याचिका के पृष्ठ 33 पर शपथ पत्र की तारीख उस प्रस्ताव की तारीख से बाद की है जो कथित रूप से दिनांक 25.2.2025 के संकल्प में पारित किया गया था, लेकिन शपथ पत्र 10.4.2024 को आयोजित बैठक का संदर्भ देता है और इसलिए, स्पष्ट विरोधाभास है जो अविश्वास प्रस्ताव लाने के आशय की सूचना को त्रुटिपूर्ण बनाता है।

8. प्रत्युत्तर में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने रिट याचिका के पृष्ठ 20 का संदर्भ दिया है, जो प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश का भाग है, यह तर्क देने के लिए कि यह दर्शाता है कि 20.3.2025 को, क्षेत्र पंचायत के 34 सदस्य कलेक्टर के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए थे और शपथ पत्र प्रस्तुत किए थे जिसमें कहा गया था कि वे प्रमुख के कार्य से पूर्णतः संतुष्ट हैं और उन पर विश्वास व्यक्त करते हैं। तर्क यह है कि ये 34 शपथ पत्र उन 69 शपथ पत्रों में शामिल शपथ पत्रों की सामग्री की पुनरावृत्ति हैं जो ब्लॉक प्रमुख द्वारा पहले कलेक्टर के समक्ष प्रस्तुत किए गए थे।

9. जब मामला 16.4.2025 को सूचीबद्ध किया गया, तो राज्य-प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता को रिट याचिका में मुद्दे से संबंधित मूल अभिलेख प्रस्तुत करने और मामले में विस्तृत निर्देश प्राप्त करने और प्रत्युत्तर शपथ पत्र दाखिल करने का निर्देश दिया गया था।

10. 28.4.2025 को, न्यायालय के अवलोकन के लिए, कलेक्टर द्वारा दिनांक 26.4.2025 के पत्र द्वारा भेजे गए निर्देश प्रस्तुत किए गए, लेकिन कोई प्रत्युत्तर शपथ पत्र दाखिल नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा लाए जाने वाले अविश्वास प्रस्ताव से संबंधित मूल अभिलेख प्रस्तुत किए गए। यह उल्लेखनीय है कि इस न्यायालय के प्रत्युत्तर शपथ पत्र दाखिल करने के निर्देश के बावजूद, निर्देशों के साथ भेजे गए 26.4.2025 के कवरिंग पत्र में यह दर्शाया गया है कि अतिरिक्त डीपीआरओ, आजमगढ़ को उक्त निर्देश दाखिल करने का निर्देश दिया गया था।

11. कलेक्टर/जिलाधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित और स्थायी अधिवक्ता को भेजे गए दिनांक 26.4.2025 के लिखित निर्देश निम्नलिखित हैं:-

"मा० उच्च न्यायालय में योजित सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-11196/2025 श्रीमती बंदना बनाम उ०प्र० राज्य व 03 अन्य में पारित आदेश दिनांक 16.04.2025 के अनुपालन में अनुदेश निम्नवत् है:-

1. यह कि याचिनी द्वारा दिनांक 07.03.2025 को क्षेत्र पंचायत हैया के सम्पूर्ण सदस्य संख्या 100 के सापेक्ष 70 सदस्यों का शपथ पत्र संलग्न करते हुए विपक्षी संख्या 03 के विरूद्ध अविश्वास नोटिस विपक्षी संख्या 02 के समक्ष प्रस्तुत किया गया। (अनुलग्नक 01)

2. यह कि उक्त पर विपक्षी संख्या 02 द्वारा तदिनांक को मुख्य विकास अधिकारी/जिला पंचायत राज अधिकारी को नियमानुसार आवश्यक कार्यवाही करने के निर्देश दिये गये।

3. यह कि नोटिस हेतु नियत समय अवधि के पूर्व ही विपक्षी संख्या 03 द्वारा दिनांक 12.03.2025 को विपक्षी संख्या 02 के समक्ष उपस्थित होकर 69 क्षेत्र पंचायत सदस्यों द्वारा विपक्षी संख्या 03 के पक्ष में शपथ पत्र प्रस्तुत कर उनके कार्यशैली व कार्य से संतुष्ट होने तथा अब तक किये गये समस्त कार्य समस्त ग्रामों/वार्डों में समान रूप से क्षेत्र पंचायत के हित में विकास कार्य कराये जाने के कारण अपना विश्वास व्यक्त किया तथा उनके द्वारा विपक्षी संख्या 03 के विरूद्ध प्रस्तुत अविश्वास प्रार्थना पत्र पर कोई हस्ताक्षर नहीं किये जाने तथा अविश्वास प्रस्ताव की मीटिंग में प्रतिभाग न किये जाने का अभिकथन किया गया। (अनुलग्नक 02)

4. यह कि दिनांक 20.03.2025 को क्षेत्र पंचायत हैया के 34 क्षेत्र पंचायत सदस्य, जो अविश्वास सूची में सम्मिलित थे, के द्वारा स्वयं विपक्षी संख्या 02 के समक्ष उपस्थित होकर इस आशय का शपथ पत्र प्रस्तुत किया गया कि वे विपक्षी संख्या 03 के कार्यशैली व कार्य से पूर्ण रूप से संतुष्ट हैं। विपक्षी संख्या 03 द्वारा अब तक क्षेत्रपंचायत के हित में समस्त कार्य किये गये हैं और क्षेत्र पंचायत के समस्त ग्रामों/वार्डों में समान रूप से विकास कार्य भी कराये गये हैं। शपथकर्ताओं द्वारा विपक्षी संख्या 03 के पक्ष में अपना विश्वास प्रकट किया गया। शपथकर्ताओं द्वारा शपथ पत्र के पैरा 02 में यह उल्लेख किया गया है कि शपथकर्ता द्वारा विपक्षी संख्या 03 के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव के सम्बन्ध में यदि कोई नोटरी बयान हलफी प्रस्तुत की गयी हो तो उसे शून्य समझा जाय। (अनुलग्नक 03)

5. यह कि दिनांक 20.03.2025 को विपक्षी संख्या 02 के समक्ष उपस्थित होकर क्षेत्रपंचायत सदस्यों द्वारा उक्त के सम्बन्ध में की गयी पूछताछ के सम्बन्ध में स्वयं यह अवगत कराया था कि उनके ऊपर किसी भी व्यक्ति का कोई दबाव नहीं है, वे विपक्षी संख्या 03 में उनके द्वारा कराये गये निष्पक्ष विकास कार्यों के दृष्टिगत अपना विश्वास प्रकट करते हैं।

6. यह कि विपक्षी संख्या 02 द्वारा उपस्थित सदस्यों की पहचान सुनिश्चित करते हुए पत्रावली पर उपलब्ध प्रपत्रों, साक्ष्यों एवं उनके समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर शपथ पत्र प्रस्तुत करने वाले सदस्यों का परीक्षण करते हुए अविश्वास प्रस्ताव क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत अधिनियम 1961 (यथा संशोधित) की धारा 15 की उप धारा 02 में निर्दिष्ट अहर्ताओं पर पूर्ण न पाते हुए याचिनी द्वारा प्रस्तुत अविश्वास प्रस्ताव

विषयक प्रार्थना पत्र दिनांक 07.03.2025 को पोषणीय न पाते हुए विधियों, नियमों एवं शासनादेशों के अनुक्रम में स्पष्ट, समुख व कारण युक्त याचिकाधीन आदेश दिनांक 20.03.2025 पारित किया गया है जो उचित एवं विधिसम्मत है तथा निरस्त किये जाने योग्य नहीं है। (अनुलग्नक 04)

7. यह कि अविश्वास प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाने के पश्चात् याचिनी द्वारा प्रस्तुत शपथ पत्रों के आधार पर अग्रेतर कार्यवाही किये जाने की मांग नियमानुसार पोषणीय नहीं है।

8. यह कि याचिनी द्वारा अविश्वास प्रस्ताव हेतु अपेक्षित संख्या पूर्ण न कर पाने की हताशा में अनुचित लाभ प्राप्त करने की नीयत से गलत तथ्यों के आधार पर प्रश्नगत याचिका योजित की गयी है।

9. यह कि याचिनी के पास यह विकल्प है कि यदि उनके पास अविश्वास प्रस्ताव हेतु अपेक्षित सदस्य संख्या उपलब्ध है तो पुनः अविश्वास प्रस्ताव ला सकती है। वैकल्पिक अनुतोष उपलब्ध होने के कारण याचिका पोषणीय नहीं है।

10. यह कि याचिनी के स्वच्छ हाथों से माननीय न्यायालय के समक्ष न आने के कारण वह कोई अनुतोष प्राप्त करने की अधिकारिणी नहीं है।

11. यह कि उपरोक्त कारणों से बलहीन होने के कारण याचिका व्यय सहित निरस्त होने योग्य अनुदेश सेवा में प्रेषित।

जिलाधिकारी
आजमगढ़"

12. मूल अभिलेख का अवलोकन, जिसमें पृष्ठ विपरीत क्रम में संख्यांकित हैं, यह दर्शाता है कि प्रमुख में अविश्वास प्रस्ताव लाने के आशय की लिखित सूचना प्रारूप - I में बनाई गई थी और 7.3.2025 को याचिकाकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित की गई थी जो 7.3.2025 को प्रस्तावित अविश्वास प्रस्ताव के साथ कलेक्टर/जिलाधिकारी द्वारा प्राप्त की गई थी और उसी दिन, उन्होंने इसे सीडीओ/डीपीआरओ को पृष्ठांकित कर दिया। सीडीओ, आजमगढ़ ने इसे नियमों के अनुसार और बिना देरी के आवश्यक कार्यवाही करने के लिए डीपीआरओ को पृष्ठांकित किया। इस सूचना पर 70 हस्ताक्षर/अंगूठे के निशान हैं। प्रमुख में अविश्वास व्यक्त करने वाले प्रस्तावित प्रस्ताव की तारीख 25.2.2025 है। 70 शपथ पत्र भी हैं जिन पर उन व्यक्तियों द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं, जो क्षेत्र पंचायत, हैया, जिला आजमगढ़ के सदस्य होने का दावा करते हैं, और जो कहते हैं कि वे प्रमुख में अविश्वास व्यक्त करने के उद्देश्य से 10.11.2024 को एक बैठक में एकत्रित हुए थे और उन्होंने प्रस्ताव के साथ-साथ आशय की लिखित सूचना पर भी हस्ताक्षर किए थे।

13. मूल अभिलेख में, दिनांक 12.3.2025 का एक पत्र है, जो निर्देशों के साथ संलग्न भी है, जो संदीप पटेल, प्रमुख, क्षेत्र पंचायत, हैया, जिला आजमगढ़ द्वारा लिखा गया है, जो कलेक्टर, आजमगढ़ को ब्लॉक प्रमुख के विरुद्ध अविश्वास की लिखित सूचना के विषय पर संबोधित है। पत्र निम्नलिखित है:-

"पत्रांकः- दिनांकः- 12.03.25

सेवा में,

कलेक्टर,

आजमगढ़।

विषयः-प्रमुख क्षेत्र पंचायत-हैया, जनपद-आजमगढ़ के विरुद्ध प्रेषित अविश्वास प्रार्थना पत्र के सम्बंध में।

महोदय,

अधोहस्ताक्षी को विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि प्रमुख, क्षेत्र पंचायत-हैया, जनपद-आजमगढ़ के विरूद्ध कतिपय क्षेत्र पंचायत सदस्यों द्वारा कुछ क्षेत्र पंचायत सदस्यों का फर्जी हस्ताक्षर बनाकर महोदय को अविश्वास प्रस्ताव प्रार्थना पत्र प्रेषित किया गया है, जो क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत अधिनियम 1961 की धारा 15 के अंतर्गत विधिसम्मत नही है।

उक्त क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित 100 क्षेत्र पंचायत सदस्यों में से 69 क्षेत्र पंचायत सदस्यों द्वारा नोटरी शपथ पत्र पर इस आशय का बयान दिया गया है कि उनके द्वारा प्रमुख, क्षेत्र पंचायत- हैया, विकास खण्ड-आजमगढ़ के विरूद्ध अविश्वास प्रार्थना पत्र पर कोई हस्ताक्षर नहीं किया गया है।

अतः आपसे अनुरोध है कि उक्त अविश्वास प्रार्थना पत्र पर क्षेत्र पंचायत सदस्यों के किये गये फर्जी हस्ताक्षर की अपने स्तर पर यथोचित कार्यवाही करने की कृपा करें।

संलग्नकः 69 क्षेत्र पंचायत सदस्यों की नोटरी शपथ-पत्र।

(संदीप पटेल)
प्रमुख,
क्षेत्र पंचायत- हरैया,
जनपद- आजमगढ़,
उ०प्र०"

14. उक्त 12.3.2025 के पत्र के साथ, क्षेत्र पंचायत के 69 सदस्यों के नोटरीकृत शपथ पत्र संलग्न हैं। यह पत्र जिलाधिकारी द्वारा 12.3.2025 को प्राप्त किया गया था जिन्होंने इसे उसी दिन सीडीओ/डीपीआरओ को पृष्ठांकित कर दिया। उसी दिन, सीडीओ, आजमगढ़ ने, उस पत्र पर, डीपीआरओ को बिना देरी के नियमों के अनुसार आवश्यक कार्यवाही करने का निर्देश दिया। संलग्न नोटरीकृत शपथ पत्रों में, यह कहा गया है कि उन्होंने प्रमुख के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव के लिए बैठक में भाग नहीं लिया था और न ही उन्होंने अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षर किए थे। उन्होंने अविश्वास प्रस्ताव के समर्थन में कोई शपथ पत्र भी नहीं दिया था।

15. मूल अभिलेख में पृष्ठ संख्या 296 से 328 तक कई तस्वीरें भी हैं, जो संभवतः 20.03.2025 को, कलेक्टर/जिलाधिकारी के कार्यालय में ली गई प्रतीत होती हैं, जो कथित रूप से दिनांक 18.3.2025 के शपथ

पत्रों पर हस्ताक्षर करने वालों की उपस्थिति दर्शाती हैं, जो उन्हें कलेक्टर को सौंप रहे हैं। पृष्ठ 228 से 295 तक शपथ पत्रों का एक समूह है जो 34 शपथ पत्रों से संबंधित हैं जो नोटरीकृत हैं और उनके साथ आधार कार्ड की फोटोकॉपी संलग्न हैं। शपथ पत्रों में लिखा है कि यदि शपथकर्ता, जो क्षेत्र पंचायत का सदस्य है, ने प्रमुख के विरुद्ध अविश्वास के लिए कोई शपथ पत्र दिया है, तो उसे शून्य माना जाना चाहिए। यह भी कहा गया है कि शपथकर्ता ब्लॉक प्रमुख में विश्वास व्यक्त करता है और वह ब्लॉक प्रमुख द्वारा किए गए कार्य से संतुष्ट है जिन्होंने बहुत से विकास कार्य किए हैं। मूल अभिलेख के पृष्ठ 295 पर, एक शपथ पत्र पर ही, जिलाधिकारी ने 20.3.2025 को इसे सीडीओ/डीपीआरओ को पृष्ठांकित किया है।

मूल अभिलेख में कलेक्टर की दिनांक 7.3.2025, 12.3.2025 और 20.3.2025 के बारम्बार आदेशों के अनुपालन में, कलेक्टर/जिलाधिकारी या किसी अन्य प्राधिकारी को संबोधित सीडीओ या डीपीआरओ की कोई भी रिपोर्ट या संचार नहीं है।

16. अधिनियम, 1961 की धारा 15 की उप-धाराएं (1), (2) और (3) निम्नलिखित हैं:

"15. प्रमुख में अविश्वास प्रस्ताव-

(1) क्षेत्र पंचायत के प्रमुख या किसी में अविश्वास व्यक्त करने वाला एक प्रस्ताव निम्नलिखित उप-धाराओं में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार किया जा सकता है और उस पर कार्यवाही की जा सकती है।

(2) प्रस्ताव लाने के आशय की एक लिखित सूचना ऐसे प्रारूप में जो विहित किया जाए, जिस पर उस समय के लिए क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या के कम से कम आधे द्वारा हस्ताक्षर किए गए हों, प्रस्तावित प्रस्ताव की एक प्रति के साथ, सूचना पर हस्ताक्षर करने वाले सदस्यों में से किसी एक द्वारा, क्षेत्र पंचायत पर अधिकार क्षेत्र रखने वाले कलेक्टर को व्यक्तिगत रूप से दी जाएगी।

(3) कलेक्टर तत्पश्चात्-

(i) उसके द्वारा नियत तारीख पर, जो उप-धारा (2) के अंतर्गत सूचना दिए जाने की तारीख से तीस दिन से अधिक नहीं होगी, क्षेत्र पंचायत के कार्यालय में प्रस्ताव पर विचार के लिए क्षेत्र पंचायत की बैठक बुलाएगा; और

(ii) क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्य को ऐसी बैठक की पंद्रह दिन से कम की नहीं ऐसे तरीके से सूचना देगा जो विहित किया जाए।

स्पष्टीकरण- इस उप-धारा में विनिर्दिष्ट तीस दिन की अवधि की गणना में, यदि कोई हो, इस धारा के अंतर्गत किए गए प्रस्ताव के विरुद्ध दायर याचिका पर सक्षम न्यायालय द्वारा जारी स्थगन आदेश के प्रवर्तन की अवधि के साथ-साथ सदस्यों को बैठक की नई सूचनाओं को जारी करने में आवश्यक ऐसी अतिरिक्त अवधि को बहिष्कृत किया जाएगा।"

17. इस प्रकार धारा 15 की उप-धारा (2) के घटक, जैसा कि प्रावधान के सामान्य पाठ से प्रकट होते हैं, हैं:

(i) क्षेत्र पंचायत के प्रमुख में अविश्वास व्यक्त करने वाले प्रस्ताव को लाने के आशय की लिखित सूचना ऐसे प्रारूप में होगी जो विहित किया जाए,

(ii) यह लिखित सूचना उस समय के लिए क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या के कम से कम आधे द्वारा हस्ताक्षरित होगी,

(iii) उक्त लिखित सूचना के साथ प्रमुख में अविश्वास व्यक्त करने वाले प्रस्तावित प्रस्ताव की एक प्रति होगी,
(iv) उक्त लिखित सूचना के साथ-साथ प्रस्तावित प्रस्ताव की एक प्रति लिखित सूचना पर हस्ताक्षर करने वाले सदस्यों में से किसी एक द्वारा क्षेत्र पंचायत पर अधिकार क्षेत्र रखने वाले कलेक्टर को व्यक्तिगत रूप से दी जाएगी।

18. (i) जहां तक क्षेत्र पंचायत के प्रमुख में अविश्वास व्यक्त करने वाले प्रस्ताव को लाने के आशय की लिखित सूचना के प्रारूप का संबंध है, **श्रीमती फुलबसा बनाम जिलाधिकारी कलेक्टर और 6 अन्य(रिट सी संख्या 36671 of 2024, निर्णय दिनांक 27.3.2025)** के मामले में, इस न्यायालय द्वारा कई निर्णयों पर विचार करने के बाद यह धारित किया गया है कि यह प्रस्ताव लाने के आशय की पर्याप्त सूचना होगी, यदि अविश्वास के लिए प्रस्ताव लाने का आशय सूचना के अवलोकन से परिलक्षित होता है और इस प्रकार यह अनिवार्य नहीं है कि प्रस्ताव लाने के आशय की लिखित सूचना विहित प्रारूप में हो।
(ii) यह प्रस्ताव लाने के आशय की लिखित सूचना है जिस पर क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या के कम से कम आधे द्वारा हस्ताक्षर किए जाने हैं। यद्यपि, यह आवश्यकता नहीं है और न ही यह अनिवार्य है कि आशय की लिखित सूचना पर हस्ताक्षर करने वालों के शपथ पत्र लिखित सूचना पर हस्ताक्षर करने वालों द्वारा प्रस्तुत किए जाएं, शपथ पत्र कलेक्टर द्वारा आशय की लिखित सूचना की वैधता के संबंध में इसके विचार को सुविधाजनक बनाने के लिए आवश्यक हो सकते हैं।
(iii) प्रस्तावित अविश्वास प्रस्ताव की प्रति इस लिखित सूचना के साथ होनी है। प्रस्तावित अविश्वास प्रस्ताव की उस प्रति के लिए लिखित सूचना के किसी भी हस्ताक्षरकर्ता के हस्ताक्षर की आवश्यकता नहीं है। इस न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय **विकास त्रिवेदी बनाम उ.प्र. राज्य ((2013) 2 यूपीएलबीसी 1193 (पैरा 66))** के मामले में, यह अवलोकित किया गया है कि जबकि प्रस्ताव लाने के आशय की सूचना पर निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या के कम से कम आधे द्वारा हस्ताक्षर किए जाने की आवश्यकता है, प्रस्तावित प्रस्ताव की प्रति के संबंध में ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है। एक स्वाभाविक परिणाम के रूप में या अन्यथा भी, अविश्वास के प्रस्तावित प्रस्ताव को तैयार करने और संकल्पित करने के लिए अविश्वास की लिखित सूचना पर हस्ताक्षर करने वालों की किसी भी बैठक की कार्यवाही या तारीख कलेक्टर के लिए आशय की लिखित सूचना की वैधता पर विचार करने के लिए कोई परिणाम नहीं है।

19. यह न्यायालय यह नोट कर रहा है कि अधिनियम, 1961 की धारा 15 के अंतर्गत प्रारंभ किए गए कदमों से उत्पन्न याचिकाओं में, जहां लिखित सूचना के समर्थन में शपथ पत्र कलेक्टर के समक्ष दाखिल किए जा रहे हैं, खंडन शपथ पत्र कथित रूप से आशय की लिखित सूचना के कुछ हस्ताक्षरकर्ताओं द्वारा दाखिल किए जाते हैं और कलेक्टर अविश्वास प्रस्ताव लाने के आशय की लिखित सूचना को अस्वीकार करते हुए आदेश पारित करने के लिए खंडन शपथ पत्रों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ता है।

20. **विकास कुमार और अन्य बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य**(2025 (2) एडीजे 1) के मामले में, इस न्यायालय के एक अन्य खंडपीठ के निर्णय **उत्मा देवी बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य (2014 (4) एडजे 1)** पर भरोसा करते

हुए, यह निर्देशित किया गया था कि जहां प्रस्ताव के समर्थन में अभिलेख पर शपथ पत्र हैं और यदि इसके विपरीत शपथ पत्र प्रस्तुत किए गए हैं, तो यह कलेक्टर का कर्तव्य है कि वह क्षेत्र पंचायत के अभिलेख को देखने के बाद स्वयं को संतुष्ट करे। यदि जिलाधिकारी, क्षेत्र पंचायत के अभिलेखों को देखने के बाद लिखित सूचना में क्षेत्र पंचायत के सदस्यों के हस्ताक्षरों के संबंध में प्रथम दृष्टया संतुष्ट है, तो वह क्षेत्र पंचायत के कार्यालय में 'अविश्वास प्रस्ताव' पर विचार के लिए क्षेत्र पंचायत की बैठक बुलाने के लिए आगे बढ़ेगा। हालांकि, क्षेत्र पंचायत के अभिलेखों को देखने का ऐसा अभ्यास, कलेक्टर को जालसाजी, धोखाधड़ी, बलप्रयोग और/या दबाव जैसे गंभीर रूप से विवादित प्रश्न के तथ्यों का समाधान करने या निष्कर्ष में प्रवेश करने में सक्षम नहीं बनाएगा।

21. कलेक्टर को हस्ताक्षरों के इनकार को व्यक्त करते हुए धोखाधड़ी, बलप्रयोग का आरोप लगाने वाले खंडन में दाखिल किसी भी शपथ पत्र की सामग्री पर और/या लिखित सूचना की वैधता के संबंध में किसी भी निष्कर्ष पर आने के लिए लिखित सूचना के समर्थन में किसी भी शपथ पत्र की सामग्री पर भरोसा करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा अभ्यास अनुज्ञेय नहीं है। **उत्मा देवी** के उक्त निर्णय को इस न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय **श्रीमती शीला देवी और अन्य बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य** (2015 (2) एडीजे 325) के मामले में अनुमोदित किया गया है। **श्रीमती शीला देवी** में पूर्ण पीठ ने अवलोकित किया है कि कलेक्टर के लिए जालसाजी, धोखाधड़ी और बलप्रयोग जैसे गंभीर रूप से विवादित प्रश्नों के तथ्यों का समाधान करना या निष्कर्ष में प्रवेश करना खुला नहीं होगा। हालांकि, यह प्रत्येक मामले में कलेक्टर के विवेक पर छोड़ दिया गया था कि वह संक्षिप्त कार्यवाही के आधार पर यह निर्धारित करे कि क्या अविश्वास प्रस्ताव लाने के आशय की वैध सूचना की आवश्यक अपेक्षाएं पूर्ण हो गई हैं।

22. **श्रीमती शीला देवी (उपरोक्त)** के उक्त निर्णय का अनुसरण उच्चतम न्यायालय द्वारा **कविता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ((2018) 10 एससीसी 569)** के मामले में किया गया है। इसके अलावा, उच्चतम न्यायालय के एक अन्य निर्णय **किरण पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य((2018) 7 एससीसी 521)** में, निम्नलिखित अवलोकित किया गया है:

"19. विवाद को समझने के लिए, हमें अधिनियम की धारा 15 के अंतर्गत उत्कीर्णित योजना को समझना होगा। धारा 15 की उप-धारा (2) प्रावधान करती है कि प्रस्ताव लाने के आशय की एक लिखित सूचना ऐसे प्रारूप में जो विहित किया जाए, जिस पर उस समय के लिए क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या के कम से कम आधे द्वारा हस्ताक्षर किए गए हों, प्रस्तावित प्रस्ताव की एक प्रति के साथ, सूचना पर हस्ताक्षर करने वाले सदस्यों में से किसी एक द्वारा, क्षेत्र पंचायत पर अधिकार क्षेत्र रखने वाले कलेक्टर को व्यक्तिगत रूप से दी जाएगी। उप-धारा (3) कलेक्टर को बैठक बुलाने की अपेक्षा करती है। इस चरण में, कलेक्टर का अधिकार क्षेत्र केवल सूचना को स्कैन करना है यह पता लगाने के लिए कि क्या यह वैध सूचना की आवश्यक अपेक्षाओं को पूर्ण करती है। उक्त विवेक का प्रयोग, जैसा कि हम समझते हैं, प्रकृति में संक्षिप्त होना चाहिए। सूचना की वैधता के संबंध में विस्तृत जांच नहीं हो सकती। हम ऐसा सोचने के लिए बाध्य हैं क्योंकि उप-धारा (3) अधिदेश

देती है कि सूचना दिए जाने की तारीख से 30 दिन से अधिक समय में बैठक बुलानी होगी और क्षेत्र पंचायत के सभी निर्वाचित सदस्यों को कम से कम 15 दिन की सूचना दी जानी चाहिए। इसलिए, कलेक्टर को धोखाधड़ी, अनुचित प्रभाव या बलप्रयोग से संबंधित गंभीर रूप से विवादित तथ्यों के प्रश्नों पर एक क्षेत्र में प्रवेश करने या निष्कर्ष दर्ज करने की शक्ति ग्रहण नहीं करनी चाहिए। उसका एकमात्र कर्तव्य यह निर्धारित करना है कि क्या धारा 15 की उप-धारा (2) के अंतर्गत परिकल्पित एक वैध सूचना रही है। नियमित जांच करने के लिए उसका गहराई में जाना प्रावधान को विफल कर देगा। उसे अपनी सीमाओं के भीतर कार्य करना चाहिए और शेष को बैठक में निर्धारित किया जाना छोड़ देना चाहिए।"

23. यहां यह उल्लेख करना उचित है कि **श्रीमती शीला देवी** के निर्णय में, इस न्यायालय ने इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के पूर्व निर्णय **मथुरा प्रसाद तिवारी** (उपरोक्त) का अनुसरण किया है, और निम्नलिखित धारित किया है:-

"15. हमारे विचार में, बहुमत के साथ-साथ अल्पमत दोनों के निर्णय अनिवार्य रूप से समान रेखा का अनुसरण करते हैं और असहमति का क्षेत्र बल्कि संकीर्ण है। बहुमत के साथ-साथ अल्पमत दोनों के निर्णय यह अभिधारणा करते हैं कि कलेक्टर को विस्तृत जांच नहीं करनी चाहिए जहां धोखाधड़ी, बलप्रयोग और दबाव के गंभीर आरोपों का समाधान किया जाना आवश्यक है, विशेष रूप से इस तथ्य को देखते हुए कि यथाशीघ्र बैठक बुलानी थी। विचलन का क्षेत्र केवल यह है कि जबकि बहुमत ने इसे कलेक्टर पर खुला छोड़ दिया कि क्या और यदि हां तो कौन सी जांच की जानी चाहिए, असहमत न्यायाधीश का दृष्टिकोण यह था कि कलेक्टर को जांच करनी चाहिए जब तक कि बलप्रयोग या धोखाधड़ी के गंभीर प्रश्नों में विस्तृत जांच शामिल न हो। मामले के किसी भी दृष्टिकोण में और चूंकि हम पूर्ण पीठ के निर्णय से बाध्य हैं, इसलिए इस विषय पर विधि स्पष्ट है। कलेक्टर को, उस पर प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते समय, धोखाधड़ी, बलप्रयोग और दबाव के मुद्दों से जुड़े गंभीर रूप से विवादित तथ्यों के प्रश्नों की जांच नहीं करनी चाहिए। इसके अलावा, कलेक्टर के पास प्रत्येक मामले में संक्षिप्त कार्यवाही के आधार पर यह निर्धारित करने का विवेक होना चाहिए कि क्या अविश्वास प्रस्ताव लाने के आशय की वैध सूचना की आवश्यक अपेक्षाएं पूर्ण हो गई हैं। जहां संक्षिप्त जांच के दौरान, यह कलेक्टर को प्रतीत होता है कि लिखित सूचना विधि की अपेक्षाओं का अनुपालन नहीं करती है, कलेक्टर यह निर्धारित करने की अपनी शक्ति के भीतर होगा कि क्या सभी आवश्यक शर्तें पूर्ण हो गई हैं, जैसा कि धारा 15 की उप-धारा (2) में उद्घोषित किया गया है। कलेक्टर ने किसी दिए गए मामले में अपनी शक्ति का अतिक्रमण किया है या नहीं, यह एक अलग मुद्दा है जिस पर संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत न्यायिक पुनरीक्षण उपलब्ध होगा। हालांकि, हम स्पष्ट रूप से स्पष्ट करते हैं कि हम उन परिस्थितियों का विस्तृत और संपूर्ण गणन नहीं कर रहे हैं जिनमें कलेक्टर धारा (2) के अंतर्गत प्रस्तुत सूचना की वैधता निर्धारित कर सकता है या जिनमें वह सीमित जांच कर सकता है जो, जैसा कि हमने धारित किया है, वह करने का हकदार और सक्षम है। अंततः, प्रत्येक मामला अपने स्वयं के तथ्यों पर निर्भर करता है और यह कलेक्टर पर निर्भर करता है कि वह यह निर्धारित करे कि क्या उसके समक्ष उठाई गई आपत्तियां उस सीमित जांच के दायरे से बाहर हैं जो वह अविश्वास

प्रस्ताव लाने के आशय की सूचना पर कर सकता है यदि यह अविश्वास की सूचना के साथ उसे प्रस्तुत की गई है।"

24. इस प्रकार, यदि कोई हो, कलेक्टर के समक्ष उठाई गई आपत्ति केवल एक सीमित उद्देश्य की पूर्ति करेगी। क्या बैठक बुलाई जानी चाहिए या नहीं, यह विहित प्राधिकारी (वर्तमान मामले में, कलेक्टर) और उसे सूचना देने वाले हस्ताक्षरकर्ताओं के बीच का मामला है। कलेक्टर अधिनियम, 1961 की धारा 15 की उप-धारा (2) की अपेक्षा के अनुपालन में सत्यापन करते समय, उन मामलों में जो विस्तृत जांच की आवश्यकता नहीं रखते हैं, यह विचार करने के लिए स्वतंत्र होगा कि क्या वैध सूचना की अपेक्षाएं पूर्ण हो गई हैं।

25. यहां यह उल्लेख करना उचित है कि **विकास त्रिवेदी** में पूर्ण पीठ के निर्णय में, इस न्यायालय ने उच्चतम न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा करते हुए अविश्वास प्रस्ताव की प्रकृति पर विचार किया। निम्नलिखित अवलोकित किया गया है:-

"68. अविश्वास प्रस्ताव पर विचार के लिए बैठक उस व्यक्ति के विरुद्ध किसी आरोप को सिद्ध करने के लिए बैठक नहीं है जिसके विरुद्ध प्रस्ताव लाया गया है। अविश्वास प्रस्ताव का प्रस्ताव केवल एक पंक्ति का प्रस्ताव हो सकता है जो "हम अविश्वास व्यक्त करते हैं" कहता है या यह उस व्यक्ति के विरुद्ध आरोप लगाने वाला प्रस्ताव हो सकता है। किसी भी अविश्वास प्रस्ताव को पारित करने के लिए किसी आधार या आरोप के प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। यह निर्वाचित सदस्यों का अधिकार है कि वे अध्यक्ष में अविश्वास व्यक्त करें जो अधिकार वैधानिक प्रावधानों के अनुसार निर्वाचित सदस्यों को दिया गया है।"

26. यह दोहराया जाता है कि क्षेत्र पंचायत के 69 सदस्यों द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा दाखिल आपत्तियों के साथ प्रस्तुत शपथ पत्रों में, शपथ पत्रों के हस्ताक्षरकर्ताओं ने प्रमुख में अपना विश्वास व्यक्त किया है और लिखित सूचना पर अपने हस्ताक्षर के साथ-साथ अविश्वास प्रस्ताव के निर्माण के लिए किसी भी बैठक में अपनी भागीदारी से इनकार किया है।

27. इसके अलावा, 20.3.2025 को, क्षेत्र पंचायत के 34 सदस्य, जिन्होंने अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षर किए थे, कलेक्टर के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए और शपथ पत्र दाखिल किए जिसमें कहा गया था कि वे प्रत्यर्थी संख्या 3 के कार्य करने के तरीके और कार्य से पूर्णतः संतुष्ट हैं; कि प्रत्यर्थी संख्या 3 ने क्षेत्र पंचायत के लाभ के लिए कार्य किया है और संपूर्ण क्षेत्र पंचायत के गांवों/वार्डों के विकास के लिए समान रूप से कार्य किया है; कि वे प्रत्यर्थी संख्या 3 में अपना विश्वास व्यक्त करते हैं; कि यदि प्रत्यर्थी संख्या 3 के विरुद्ध नोटरी शपथ पत्र द्वारा कोई बयान प्रस्तुत किया गया है, तो उसे शून्य माना जाए। वे जिलाधिकारी के समक्ष उपस्थित हुए और कहा कि वे बिना किसी दबाव के बयान दे रहे हैं। इसलिए, जिलाधिकारी ने यह धारित किया कि क्षेत्र पंचायत के 34 सदस्यों (जो लिखित सूचना पर हस्ताक्षरकर्ता थे) द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 3 के पक्ष में अपने शपथ पत्र प्रस्तुत करने के दृष्टिगत, केवल 36 सदस्य शेष रह गए, जो दिनांक 7.3.2025 की लिखित सूचना पर

हस्ताक्षरकर्ता थे, जो लिखित सूचना लाने के लिए आवश्यक क्षेत्र पंचायत के सदस्यों की कुल संख्या के आधे से कम हैं। तदनुसार, दिनांक 7.3.2025 की लिखित सूचना को पोषणीय नहीं पाया गया।

28. हमारी राय में, कलेक्टर द्वारा 12.3.2025 और 20.3.2025 के बारम्बार खंडन शपथ पत्रों पर भरोसा करते हुए आपत्तिकर्ता-प्रत्यर्थी संख्या 3 की प्रतिक्रिया पर विचार करने का ऐसा अभ्यास, जहां लिखित सूचना पर हस्ताक्षरों से इनकार किया गया है और क्षेत्र पंचायत के अभिलेख से लिखित सूचना पर हस्ताक्षरों को सत्यापित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है, अनुज्ञेय नहीं होगा। इसलिए, कलेक्टर का आक्षेपित आदेश निर्वहनीय नहीं हो सकता।

29. लिखित सूचना और अविश्वास व्यक्त करने वाले प्रस्ताव के संबंध में ऊपर किए गए अवलोकनों को निम्नलिखित रूप में संक्षेपित किया जा सकता है:-

(i) लिखित सूचना, यदि यह अविश्वास प्रस्ताव लाने का स्पष्ट आशय दर्शाती है, तो यह अनिवार्य नहीं है कि लिखित सूचना विहित प्रारूप में हो।

(ii) लिखित सूचना पर क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या के कम से कम आधे द्वारा हस्ताक्षर किए जाने हैं। लिखित सूचना पर हस्ताक्षर विवादित होने पर, यह कलेक्टर पर है कि वह क्षेत्र पंचायत के अभिलेखों से स्वयं को प्रथम दृष्टया संतुष्ट करे।

(iii) प्रस्तावित अविश्वास प्रस्ताव की प्रति के लिए लिखित सूचना पर किसी भी हस्ताक्षरकर्ता के हस्ताक्षर की आवश्यकता नहीं है।

(iv) अविश्वास के प्रस्तावित प्रस्ताव को तैयार करने और संकल्पित करने के लिए लिखित सूचना पर हस्ताक्षर करने वालों की किसी भी पूर्व बैठक की कार्यवाही या तारीख/ओं का कोई परिणाम नहीं है। कलेक्टर द्वारा लिखित सूचना की वैधता का विचार उस पर आधारित नहीं हो सकता।

(v) लिखित सूचना में दाखिल आपत्तियां एक सीमित उद्देश्य के लिए हैं। कलेक्टर केवल एक संक्षिप्त जांच कर सकता है विस्तृत जांच की प्रक्रिया को अपनाए बिना यह सुनिश्चित करने के लिए कि क्या लिखित सूचना अधिनियम, 1961 की धारा 15 की उप-धारा (2) की अपेक्षाओं को पूर्ण करती है। कलेक्टर को अविश्वास प्रस्ताव की प्रकृति को ध्यान में रखना चाहिए जैसा कि इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा **विकास त्रिवेदी** में अवलोकित किया गया है, जिसे इस निर्णय के पैरा संख्या 25 में उद्धृत किया गया है।

(vi) कलेक्टर के लिए जालसाजी, धोखाधड़ी, बलप्रयोग या दबाव जैसे गंभीर रूप से विवादित प्रश्न के तथ्यों का समाधान करना या निष्कर्ष में प्रवेश करना खुला नहीं है।

30. यहां यह दोहराना उचित होगा कि यद्यपि 7.3.2025, 12.3.2025 और 20.3.2025 को, कलेक्टर ने कथित रूप से सीडीओ/डीपीआरओ को रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया, तथापि उनके द्वारा कोई रिपोर्ट दाखिल नहीं की गई। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि कलेक्टर द्वारा कोई जांच नहीं की गई। लिखित सूचना की वैधता सुनिश्चित करने के लिए एक जांच के लिए जांच स्थापित करने के आदेश और तत्पश्चात् कार्यवाही किए जाने की आवश्यकता नहीं है। जहां साक्ष्य दर्ज किया जाता है, दस्तावेज स्वीकार किए जाते हैं और कलेक्टर

एक निष्कर्ष पर आता है, वही एक जांच का गठन करेगा। तदनुसार और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अंतर्गत, हम पाते हैं कि कलेक्टर ने वर्तमान मामले में बस वही किया है, अर्थात्, उसने एक जांच की। जांच कलेक्टर द्वारा की जानी अधिदेशित है जैसा कि अधिनियम, 1961 की धारा 2(5) में परिभाषित है, जो एक संक्षिप्त जांच होना आवश्यक है। हालांकि, उस जांच में, कलेक्टर ने लिखित सूचना में हस्ताक्षरों के संबंध में खंडन शपथ पत्रों के आधार पर निष्कर्ष दर्ज करने के लिए आगे बढ़ा है जिन्हें नकारा गया था। इस प्रकार जालसाजी, धोखाधड़ी, बलप्रयोग और/या दबाव जैसे विवादित तथ्यात्मक प्रश्नों के सीमांकित और निषिद्ध क्षेत्र पर जांच में अतिक्रमण किया गया है।

31. उपर्युक्त कारणों से, दिनांक 20.03.2025 का आक्षेपित आदेश निर्वहनीय नहीं हो सकता और इसे निरस्त किया जाता है। चूंकि कुछ खंडन शपथ पत्रों में लिखित सूचना पर हस्ताक्षर विवादित हैं, कलेक्टर को क्षेत्र पंचायत के अभिलेखों को देखने के बाद स्वयं को प्रथम दृष्टया संतुष्ट करने का निर्देश दिया जाता है। अपनी संतुष्टि पर, वह अधिनियम, 1961 की धारा 15 (3) के अनुसार क्षेत्र पंचायत की बैठक बुलाने के लिए आगे बढ़ेगा। यह रिट याचिका तदनुसार **अनुज्ञात** की जाती है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1497

मूल अधिकारिता सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव

रिट - सी संख्या - 12360 सन् 2025

अंतराम गोयल ...याचिकाकर्ता

बनाम

पावर ग्रिड ट्रांसमिशन लि. एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: सुश्री श्रेया गुप्ता

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: श्री प्रतीक जे. नागर

सिविल विधि - भारतीय तार अधिनियम, 1885 - धारा 10 एवं 16 - धारा 10 के अंतर्गत तार प्राधिकरण को निजी भूमि पर तार एवं खंभे लगाने का अधिकार है, बशर्ते क्षति हेतु मुआवजा दिया जाए। धारा 16(1) के अंतर्गत यदि इस अधिकार के प्रयोग में बाधा आती है, तो जिलाधिकारी प्राधिकरण को आगे बढ़ने की अनुमति दे सकते हैं।

न्यायालय का निर्णय:

- जिलाधिकारी को हर मामले में धारा 16(1) के अंतर्गत आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं है।
- केवल तब आदेश आवश्यक है जब तार प्राधिकरण स्वयं जिलाधिकारी को संदर्भित करे।
- याचिकाकर्ता ने अपने भू-भाग पर तार लाइन बिछाने पर आपत्ति की।
- न्यायालय ने तार प्राधिकरण को स्वतंत्रता दी कि वे इस मामले को जिलाधिकारी को धारा 16(1) के अंतर्गत भेजें।

अतः, रिट याचिका स्वीकृत। (अनुच्छेद 9, 11) (E-5)

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. साराफ द्वारा प्रदत्त)

अनुवादित

1. यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक रिट याचिका है जिसमें रिट याचिकाकर्ता, पावर ग्रिड नीमराना बरेली ट्रांसमिशन लिमिटेड (जिसे इसके पश्चात् 'पावर ग्रिड कंपनी' के रूप में संदर्भित किया गया है) की कार्रवाई से व्यथित होकर, निम्नलिखित महत्वपूर्ण अनुतोषों के लिए प्रार्थना की है:

"(i) जिलाधिकारी, अलीगढ़ (प्रत्यर्थी संख्या 3) को निर्देशित करते हुए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए कि वे याचिकाकर्ता के दिनांक 28.3.2025 के अभ्यावेदन (अनुलग्नक संख्या 6) का निर्णय, उसे सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात्, अत्यंत शीघ्रता से या इस माननीय न्यायालय द्वारा निर्देशित समय सीमा के भीतर करें;

(ii) प्रत्यर्थियों को निर्देशित करते हुए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए कि वे याचिकाकर्ता के कब्जे में हस्तक्षेप न करें और ग्राम नारायणपुर, परगना चन्दौस, तहसील-खैर, जिला अलीगढ़ में स्थित खसरा संख्या 61/1, क्षेत्रफल .9446 हेक्टेयर में याचिकाकर्ता की भूमि पर उच्च तनाव तारों की स्थापना के लिए कोई टावर खड़ा न करें, जब तक कि याचिकाकर्ता के दिनांक 28.3.2025 के अभ्यावेदन का निस्तारण एक विवेचित और अभिव्यक्त आदेश के माध्यम से नहीं हो जाता।"

2. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित अधिवक्ता सुश्री श्रेया गुप्ता ने प्रस्तुत किया है कि भारतीय तार अधिनियम, 1885 (जिसे इसके पश्चात् 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित किया गया है) की धारा 10 को धारा 16 के साथ पढ़ने पर, जिलाधिकारी को अधिनियम की धारा 16(1) के अधीन एक आदेश पारित करना आवश्यक है। उनका प्रस्तुतीकरण है कि यह प्रावधान अनिवार्य रूप से पावर ग्रिड कंपनी, अर्थात् तार प्राधिकारी को याचिकाकर्ता को सुनवाई प्रदान करने और तत्पश्चात्, याचिकाकर्ता द्वारा किए गए प्रतिरोध/अवरोध के संबंध में एक विवेचित आदेश पारित करने की अपेक्षा करता है। अपने तर्क को पुष्ट करने के लिए, उन्होंने केरल उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय **भारत प्लाईवुड एंड टिम्बर प्रोडक्ट्स लिमिटेड बनाम केरल राज्य विद्युत बोर्ड त्रिवेंद्रम तथा अन्य, एआईआर 1972 केरेल 47 (वी 59 सी 10)** में प्रतिवेदित के पैराग्राफ 23 पर भरोसा किया है। उक्त पैराग्राफ का संगत अंश नीचे अंकित किया गया है:

"23. ... इसलिए हमें अनिवार्य रूप से विधि को इस प्रकार समझना होगा कि यह किसी स्वामी या कब्जाधारी या उस संपत्ति पर नियंत्रण रखने वाले व्यक्ति को, जिस पर लाइन स्थापित की जानी है, प्रतिरोध या अवरोध करने का अधिकार प्रदान करती है। जब तार प्राधिकारी का इस प्रकार प्रतिरोध या अवरोध किया जाता है, तो जिलाधिकारी से संपर्क किया जा सकता है। यदि उनसे संपर्क किया जाता है, तो जिलाधिकारी यह निर्णय करेंगे कि क्या प्राधिकारी को शक्तियों का प्रयोग करने की अनुमति दी जानी चाहिए। जब जिलाधिकारी निर्णय करते हैं कि उसे ऐसी अनुमति दी जानी चाहिए, तो तत्पश्चात् प्रतिरोध को एक अपराध बना दिया जाता है। और स्वामी या कब्जाधारी पर उस शक्ति के प्रयोग के लिए सभी सुविधाएं प्रदान करने का दायित्व डाला जाता है। धाराओं (धारा 16 की उप-धारा (1) और (2)) को केवल इसी प्रकार समझा जा सकता है। संक्षेप में धारा 10 और 16 को एक साथ पढ़ा जाना है, और जब प्रतिरोध या अवरोध होता है, तो धारा 10 के अधीन शक्ति का

प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब जिलाधिकारी धारा 16(1) के अधीन एक आदेश पारित करें कि उन्हें इनका प्रयोग करने की अनुमति दी जाएगी।"

3. उन्होंने आगे इस न्यायालय की समन्वय पीठ के निर्णय **जागीर लाल तथा अन्य बनाम उ.प्र. राज्य तथा अन्य; न्यूट्रल साइटेशन संख्या-2011:एएचसी:120828-डीबी** पर भरोसा किया है। उक्त निर्णय का संगत पैराग्राफ निम्नानुसार है:

"तार अधिनियम की धारा 10 और 16 के प्रावधानों तथा उ.प्र. विद्युत अधिनियम, 2003 के प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि ट्रांसमिशन लाइन बिछाने के लिए संपत्ति के स्वामी से कोई अनुमति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। स्वामी को केवल वही संरक्षण दिया गया है जैसा कि धारा 16 उप-धारा (1) के अधीन परिकल्पित है जहां जिलाधिकारी को अपने विवेक में निर्णय लेने की शक्ति प्रदान की गई है कि क्या तार लाइन बिछाने की अनुमति दी जाए या नहीं। जिलाधिकारी उस शक्ति का प्रयोग या तो स्वप्रेरणा से या तार प्राधिकारी या भूमि के स्वामी द्वारा किए गए अनुरोध पर कर सकते हैं। इसमें कोई विवाद नहीं है कि जब भी किसी व्यक्ति की संपत्ति पर तार लाइन बिछाई जाती है, तो वह प्राधिकारी से प्रतिकर का दावा करने का हकदार है और यदि वह प्रतिकर की राशि से संतुष्ट नहीं है, तो वह तार अधिनियम की धारा 16 (3) के अनुसार जिला न्यायाधीश को आवेदन करने का हकदार है।"

4. उन्होंने आगे इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा अरुण कुमार बनाम उ.प्र. राज्य तथा अन्य (रिट-सी संख्या 1024 सन् 2023, दिनांक 10 फरवरी, 2023 को निर्णीत) में पारित हालिया निर्णय पर भरोसा किया है। उक्त निर्णय के संगत पैराग्राफ नीचे प्रदान किए गए हैं:

"14. जागीर लाल (उपरोक्त) में खंडपीठ ने इस न्यायालय की समन्वय खंडपीठों द्वारा पूर्व में दिए गए सभी निर्णयों पर विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुंची कि भूस्वामी, जिसकी भूमि पर विद्युत लाइन खींची जाती है, प्रतिकर का हकदार है और धारा 16 उप-धारा (1) की कोई विशिष्ट चर्चा नहीं थी, न ही उनमें यह प्रस्थापना स्थापित की गई थी कि भले ही लाइन बिछाने में अवरोध उत्पन्न हो, जिलाधिकारी की अनुमति की आवश्यकता नहीं है। न्यायालय की राय थी कि धारा 16 के अधीन जिलाधिकारी को प्रदत्त शक्ति उन मामलों में विवेक का प्रयोग करने की है जहां ट्रांसमिशन लाइन बिछाने में अवरोध उत्पन्न किया जाता है। ऐसी शक्ति का प्रयोग एक प्रयोजन और उद्देश्य के लिए किया जाना है। उद्देश्य यह है कि जब भी तार प्राधिकारी और संपत्ति के स्वामी के बीच विवाद उत्पन्न होता है, जिसकी भूमि पर ट्रांसमिशन लाइन बिछाई जानी है, तो जिलाधिकारी को उस विशेष मामले के तथ्यों पर विचार करना है और फिर अपने विवेक में निर्णय करना है कि क्या लाइन बिछाने की अनुमति दी जानी चाहिए या नहीं। उपरोक्त में यह अंतर्निहित है कि किसी दिए गए मामले में जिलाधिकारी लाइन बिछाने की अनुमति दे सकते हैं या इसे अनुमति देने से इनकार कर सकते हैं। जो शक्ति प्रदान की गई है वह इस उद्देश्य से है कि जिला प्राधिकारी ऐसे अवरोध या प्रतिरोध पर उठाए गए किसी भी ऐसे मुद्दे का निर्णय और अधिनिर्णय कर सकें। तथापि, तार अधिनियम की धारा 10 और 16 के प्रावधानों तथा उ.प्र. विद्युत

अधिनियम 2003 के प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि ट्रांसमिशन लाइनें बिछाने के लिए संपत्ति के स्वामी से कोई अनुमति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। स्वामी को केवल वही संरक्षण दिया गया है जैसा कि धारा 16 की उप-धारा (1) के अधीन परिकल्पित है, जहां जिलाधिकारी को अपने विवेक में निर्णय लेने की शक्ति प्रदान की गई है कि क्या तार लाइन बिछाने की अनुमति दी जाए या नहीं। जिलाधिकारी ऐसी शक्ति का प्रयोग या तो स्वप्रेरणा से, या तार प्राधिकारी या भूमि के स्वामी द्वारा किए गए अनुरोध पर कर सकते हैं। इसमें कोई विवाद नहीं है कि जब भी किसी व्यक्ति की संपत्ति पर तार लाइन बिछाई जाती है, तो वह प्राधिकारी से प्रतिकर का दावा करने का हकदार है और यदि वह प्रतिकर की राशि से संतुष्ट नहीं है, तो वह तार अधिनियम की धारा 16 (3) के अनुसार जिला न्यायाधीश को आवेदन करने का हकदार है।

15. इस न्यायालय ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सेंचुरी टेक्सटाइल्स (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय को सावधानीपूर्वक देखा है, जिसे प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत किया गया है, और पाता है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने पैरा 18 में अधिनियम 1885 की धारा 16 का विशिष्ट संदर्भ दिया गया है और उच्चतम न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि यदि धारा 10 खंड (d) के अधीन दिए जाने वाले प्रतिकर की पर्याप्तता के संबंध में कोई विवाद उत्पन्न होता है, तो इस प्रयोजन के लिए एक आवेदन विवादित पक्षों में से किसी भी एक द्वारा उस जिला न्यायाधीश को प्रस्तुत किया जा सकता है जिसके अधिकार क्षेत्र में संपत्ति स्थित है और जिला न्यायाधीश का न्यायालय तार प्राधिकारी को जिला न्यायाधीश के न्यायालय में ऐसी राशि जमा करने का निर्देश देगा जैसा कि वह पर्याप्त समझे, यदि विभाजन के संबंध में भी कोई विवाद है।
17. इस न्यायालय ने अधिनियम 1885 की धारा 16 को भी देखा है जिसे विद्वान अधिवक्ता द्वारा अपने तर्क के दौरान संदर्भित किया गया है। अधिनियम 1885 की धारा 16 के अधीन यह प्रावधान किया गया है कि धारा 10 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते समय या प्रतिकर के रूप में विवाद उठने पर, स्थानीय प्राधिकारी के अतिरिक्त अन्य संपत्ति के मामले में, यदि ऐसे प्रयोग का प्रतिरोध या अवरोध किया जाता है, तो जिलाधिकारी अपने विवेक में आदेश देंगे कि तार प्राधिकारी को ऐसी शक्तियों का प्रयोग करने की अनुमति दी जाए। यदि उप धारा (1) के अधीन जिलाधिकारी द्वारा ऐसा आदेश किए जाने के पश्चात्, कोई व्यक्ति अभी भी ऐसी शक्ति के प्रयोग का प्रतिरोध करता है, या संपत्ति पर नियंत्रण रखते हुए, उनके प्रयोग के लिए सभी सुविधाएं नहीं देता है, तो उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 188 के अधीन एक अपराध किया हुआ माना जाएगा। यदि धारा 10(d) के अधीन दिए गए प्रतिकर की पर्याप्तता के संबंध में कोई विवाद उत्पन्न होता है, तो जिला न्यायाधीश ऐसे प्रतिकर के विभाजन सहित ऐसे विवाद का निर्णय करेंगे।"

5. उन्होंने प्रस्तुत किया है कि **अरुण कुमार (उपरोक्त)** में हालिया निर्णय **जागीर लाल (उपरोक्त)** में उद्धृत उपरोक्त निर्णय पर भरोसा करता है और उक्त निर्णय का अभिप्राय यह स्पष्ट करता है कि जिलाधिकारी अधिनियम की धारा 16(1) के अधीन शक्ति का प्रयोग या तो स्वप्रेरणा से या तार प्राधिकारी या भूमि के स्वामी द्वारा किए गए अनुरोध पर कर सकते हैं।

6. इसके विपरीत, पावर ग्रिड कंपनी की ओर से उपस्थित श्री प्रतीक जे. नागर, अधिवक्ता ने पावर ग्रिड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम सेंचुरी टेक्सटाइल्स एंड इंडस्ट्रीज लिमिटेड तथा अन्य, एआईआर 2017 सुप्रीम कोर्ट 1141 में रिपोर्टेड उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है और प्रस्तुत किया है कि अधिनियम की धारा 10 को धारा 16 के साथ पढ़े जाने पर प्रयोग की जाने वाली शक्ति जिलाधिकारी के पास केवल तार प्राधिकारी के अनुरोध पर ही प्रयोग करने की शक्ति है, जो वर्तमान मामले में पावर ग्रिड कंपनी है। उन्होंने अपने तर्क का समर्थन करने के लिए उक्त निर्णय के पैराग्राफ 19 और 20 पर भरोसा किया है। पैराग्राफ 19 और पैराग्राफ 20 का संगत अंश नीचे अंकित किया गया है:

"19) प्रस्तुत मामले में, विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 164 के दृष्टिगत उपरोक्त नियम लागू नहीं है, जो निम्नानुसार है:

"164. कुछ मामलों में तार प्राधिकारी की शक्तियों का प्रयोग.- समुचित सरकार, लिखित आदेश द्वारा, विद्युत के संचरण के लिए विद्युत लाइनों या विद्युत संयंत्र को स्थापित करने के लिए या कार्यों के उचित समन्वय के लिए आवश्यक टेलीफोनिक या टेलीग्राफिक संचार के प्रयोजन के लिए, किसी लोक अधिकारी, अनुज्ञप्तिधारी या इस अधिनियम के अधीन विद्युत की आपूर्ति के कारोबार में लगे किसी अन्य व्यक्ति को, ऐसी शर्तों और निर्बंधनों के अध्यधीन, यदि कोई हों, जो समुचित सरकार उचित समझे और भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) के प्रावधानों के अध्यधीन, कोई भी शक्तियां प्रदान कर सकती है जो तार प्राधिकारी के पास उस अधिनियम के अधीन सरकार द्वारा स्थापित या अनुरक्षित या इस प्रकार स्थापित या अनुरक्षित किए जाने वाले तार के प्रयोजनों के लिए तार लाइनों और डंडों को स्थापित करने के संबंध में हैं।"

20. यह इस तथ्य के साथ मिलकर कि पावर ग्रिड को भारतीय तार अधिनियम, 1885 के अधीन प्राधिकारी के रूप में माना जाता है, वह सभी ऐसी शक्तियां प्राप्त करता है जो भारतीय तार अधिनियम, 1885 के प्रावधानों के अधीन एक तार प्राधिकारी में निहित हैं जिसमें विद्युत संचरण लाइनों को बिछाने में किसी भी अवरोध को समाप्त करने की शक्ति शामिल है। भारतीय तार अधिनियम, 1885 के प्रावधानों के अनुसार, तार और/या विद्युत संचरण लाइनें बिछाने के लिए अबाधित पहुंच व्यापक जन हित में एक अनिवार्यता है। .....विधायिका ने इस उद्देश्य को प्राप्त करने में किसी भी प्रकार की बाधा/अवरोध की अनुमति नहीं दी है और भारतीय तार अधिनियम, 1885 की योजना के माध्यम से अनुज्ञप्तिधारी को तार लाइनें बिछाने का अधिकार देते हुए, वही, जैसा कि है, विद्युत संचरण लाइनें बिछाने के लिए लागू किया। भारतीय तार अधिनियम, 1885 की धारा 10, 15 और 16 द्वारा तार प्राधिकारी को प्रदत्त शक्तियां पावर ग्रिड में निहित हैं और उसके द्वारा उपभोग की जाती हैं।"

7. पावर ग्रिड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय के निर्णय को पढ़ने से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि अधिनियम के प्रावधान तार प्राधिकारी को तार और/या विद्युत संचरण लाइनें बिछाने के लिए अबाधित पहुंच प्रदान करते हैं और उच्चतम न्यायालय स्पष्ट करता है कि यह पहुंच व्यापक जन हित में

अबाधित होनी चाहिए। उच्चतम न्यायालय ने आगे यह अनुपात स्थापित किया है कि विधायिका ने अधिनियम की योजना के माध्यम से इस उद्देश्य को प्राप्त करने में किसी भी प्रकार की बाधा/अवरोध की अनुमति नहीं दी है जो अधिनियम की धारा 10, 15 और 16 के अधीन तार प्राधिकारी को शक्तियां प्रदान करती है।

8. हमारे विचार में, **भारत प्लाईवुड एंड टिम्बर प्रोडक्ट्स लिमिटेड (उपरोक्त)** में केरल उच्च न्यायालय के निर्णय के तथ्य और परिस्थितियां वर्तमान तथ्यों और उसमें स्थापित विधि से भिन्न हैं। यद्यपि एक प्रेरक मूल्य रखते हुए, यह देखना आवश्यक है कि यह निर्णय वर्ष 1972 में पारित किया गया था, जो वर्ष 2017 में पारित उच्चतम न्यायालय के निर्णय से बहुत पूर्व का है। इसी प्रकार, इस न्यायालय की समन्वय पीठ का **जागीर लाल (उपरोक्त)** में निर्णय वर्ष 2011 का निर्णय है और उसमें स्थापित अनुपात को **पावर ग्रिड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (उपरोक्त)** में उच्चतम न्यायालय द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से अधिक्रांत कर दिया गया है। इस न्यायालय के **अरुण कुमार (उपरोक्त)** में समन्वय पीठ के निर्णय के संदर्भ में, संपूर्ण निर्णय के अवलोकन पर, हम उसमें कोई विशिष्ट अनुपात नहीं पाते हैं जो यह स्थापित करता हो कि जिलाधिकारी को प्रत्येक अभ्यावेदन को सुनना आवश्यक है जो लाइनों को बिछाने के लिए अवरोध/प्रतिरोध/आक्षेप की प्रकृति का है। इसी के प्रकाश में, **अरुण कुमार (उपरोक्त)** का निर्णय याचिकाकर्ता के बचाव में नहीं आता है। हम, तद्नुसार, इस विचार के हैं कि **पावर ग्रिड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (उपरोक्त)** में उच्चतम न्यायालय का निर्णय क्षेत्र में बना हुआ है। तद्नुसार, उसमें स्थापित अनुपात का अनुसरण किया जाना आवश्यक है।

9. इस के प्रकाश में, हम अभिनिर्धारित करते हैं कि जिलाधिकारी को अधिनियम की धारा 16(1) के अधीन प्रत्येक मामले में आदेश पारित करना आवश्यक नहीं है जहां कोई व्यक्ति, जिसकी संपत्ति पर संचरण लाइन बिछाई जा रही है, जिलाधिकारी के समक्ष आक्षेप उठाता है या अभ्यावेदन प्रस्तुत करता है। हम इस विचार के हैं कि जिलाधिकारी को केवल धारा 16(1) के अधीन आदेश पारित करना आवश्यक है जब तार प्राधिकारी किसी विशेष मामले को उसमें आदेश पारित करने के लिए जिलाधिकारी को संदर्भित करता है।

10. वर्तमान परिस्थितियों में, यह देखा गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा मार्च 2025 के महीने में एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया गया है और वह अपनी संपत्ति पर संचरण लाइनें बिछाए जाने पर आक्षेप कर रहा है। वास्तव में, कोई यह कह सकता है कि याचिकाकर्ता द्वारा एक प्रकार का प्रतिरोध प्रस्तुत किया जा रहा है। इस विशेष स्थिति को तार प्राधिकारी की बुद्धिमत्ता पर छोड़ा जाना है जो इसमें प्रत्यर्थी संख्या 1 है।

11. हम तार प्राधिकारी को विधि के अनुसार कार्य करने की स्वतंत्रता प्रदान करते हैं जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा किए गए उक्त अवरोध/प्रतिरोध/अभ्यावेदन से निपटने के लिए अधिनियम की धारा 16(1) के अधीन मामले को जिलाधिकारी को संदर्भित करने का उनका अधिकार शामिल है।

12. उपरोक्त निर्देशों के साथ, रिट याचिका का निस्तारण किया जाता है।

(2025) 5 ILRA 1502

मूल अधिकारिता सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव

रिट - सी संख्या - 13012 सन् 2025

अनिल कुमार जायसवाल ...याचिकाकर्ता

बनाम

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया एवं 1 अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: विपुल पांडे

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: अनिल कुमार बाजपेई, आशीष अग्रवाल

सिविल विधि - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - SARFAESI अधिनियम - नियम 9(5), सुरक्षा हित (प्रवर्तन) नियमावली, 2002 -

याचिकाकर्ता ने ₹17.49 लाख की वापसी हेतु रिट दायर की, जो कि ई-नीलामी में बोली राशि का 25% था। शेष 75% राशि समय पर जमा न करने पर बैंक ने नियम 9(5) के अंतर्गत इसे जब्त कर लिया। याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि जब बैंक ने बाद में SARFAESI कार्यवाही वापस लेकर पुनः प्रारंभ की, तो पूर्व जब्ती अमान्य हो गई।

न्यायालय का निर्णय:

- नियम 9(5) के अंतर्गत जब्ती वैधानिक परिणाम है, इसे न्यायसंगत आधार पर शिथिल नहीं किया जा सकता।
- याचिकाकर्ता असाधारण परिस्थितियाँ सिद्ध करने में विफल रहा।
- बैंक द्वारा कार्यवाही वापस लेने एवं पुनः प्रारंभ करने से पूर्व जब्ती अमान्य नहीं होती।
-

अतः, रिट याचिका निरस्त की जाती है। (अनुच्छेद 1-11) (E-6)

उल्लिखित वाद:

प्राधिकृत अधिकारी, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया बनाम शनमुगवेलु, (2024) 6 SCC 641

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. साराफ एवं माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

1. श्री राहुल अग्रवाल, विद्वान अधिवक्ता जो विद्वान अधिवक्ता श्री विपुल पाण्डेय के साथ इस याचिका के समर्थन में उपस्थित हुए, तथा श्री अनिल कुमार बाजपेयी, विद्वान अधिवक्ता जो प्रत्यर्थी बैंक की ओर से उपस्थित हुए, को सुना गया।

2. यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक रिट याचिका है, जिसमें याचिकाकर्ता 25% राशि अर्थात् 17.49 लाख रुपये की वापसी में प्रत्यर्थी प्राधिकारी(यों) की ओर से की गई निष्क्रियता से व्यथित है, जो याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 29.12.2023 की ई-नीलामी के अनुसरण में जमा की गई थी, जिसे प्रत्यर्थी बैंक द्वारा प्रतिभूति हित (प्रवर्तन) नियम, 2002 (इसके पश्चात् "2002 नियम" के रूप में संदर्भित) के नियम 9(5) के प्रयोग में जब्त किया गया है।

3. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि याचिकाकर्ता द्वारा निर्धारित समय के भीतर शेष 75% राशि जमा करने में विफल रहने के पश्चात्, बयाना राशि जब्त कर ली गई। तथापि, याचिकाकर्ता का निवेदन है कि बैंक ने स्वयं बंधक संपत्ति के विरुद्ध पूर्ववर्ती सम्पूर्ण सरफेसी कार्रवाई को दिनांक 18 नवम्बर, 2024 के पत्र द्वारा वापस ले लिया, तथा नई सरफेसी कार्रवाई करने की स्वतंत्रता के साथ, जो पुनः 18 नवम्बर, 2024 को की गई।

4. श्री राहुल अग्रवाल, विद्वान अधिवक्ता जो याचिकाकर्ता के लिए श्री विपुल पाण्डेय के साथ उपस्थित हैं, का निवेदन है कि वर्तमान मामला अपनी प्रकृति में विशिष्ट है क्योंकि असाधारण परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनमें जब्त की गई राशि को न्याय के विधि के आधार पर याचिकाकर्ता को वापस/प्रतिदाय की जानी चाहिए। उनका निवेदन है कि चूंकि बैंक द्वारा की गई सम्पूर्ण सरफेसी कार्रवाई को बाद की तिथि में स्वतः वापस ले लिया गया था, अतः याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई राशि की जब्ती विधि के सिद्धांतों के विपरीत होगी और अन्यायपूर्ण संवर्धन के समान होगी। श्री राहुल अग्रवाल, विद्वान अधिवक्ता, न्यायालय का ध्यान **अधिकृत अधिकारी, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया बनाम शनमुगावेलु (2024) 6 एससीसी 641** में रिपोर्टेड उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुच्छेद 108 से 118 की ओर आकर्षित करते हैं, तथा अपने तर्कों को बल प्रदान करते हुए कहते हैं कि निश्चित असाधारण परिस्थितियों में जब्त की गई राशि प्रतिदाय की जा सकती है।

5. इसके विपरीत, बैंक की ओर से उपस्थित अधिवक्ता का निवेदन है कि **शनमुगावेलु (उपरोक्त)** के उक्त निर्णय में विशिष्ट रूप से कहा गया है कि अन्यायपूर्ण संवर्धन की अवधारणा 2002 नियम के नियम 9(5) के अधीन राशि की जब्ती के मामले में लागू नहीं होगी। उनका निवेदन है कि वास्तव में अनुच्छेद 115 से 118 में चर्चा की गई असाधारण परिस्थितियां केवल उन बाह्य परिस्थितियों से संबंधित होंगी जो विद्यमान रही होंगी जिन्होंने सफल बोलीदाता को शेष राशि जमा करने से रोका था। नीलामी-क्रेता की विफलता के पश्चात् बैंक द्वारा उठाए गए किसी भी कदम का उक्त जब्ती के संबंध में कोई भी प्रासंगिकता नहीं होगी।

6. अभिलेखों के अवलोकन तथा पक्षकारों की ओर से उपस्थित अधिवक्ता को सुनने के पश्चात्, हम **शनमुगावेलु (उपरोक्त)** के निर्णय के अनुच्छेद 112 पर निर्भर कर सकते हैं, जिसे नीचे उल्लिखित किया गया है:

*"**112.** नियम 9(5) सरफेसी नियमों के अधीन 25% जमा राशि की जब्ती का परिणाम एक विधिक परिणाम है जो शेष राशि के भुगतान में व्यतिक्रम की स्थिति में सांविधिक रूप से प्रदान किया गया है। नियम 9(5) के अधीन परिकल्पित परिणाम इस बात की परवाह किए बिना लागू होता है कि बाद की बिक्री अधिक मूल्य पर होती है या नहीं, और यह जब्ती पहले से की गई किसी वसूली या बकाया ऋण की सीमा के अधीन नहीं है। ऐसे मामलों में, किसी भी सीमा तक न्याय न तो सरफेसी नियमों के नियम 9(5) के अधीन 25% जमा राशि की जब्ती के सांविधिक परिणाम का विकल्प बन सकता है और न ही इसे कम कर सकता है।"*

7. न्यायमूर्ति जे.बी. पारदीवाला ने अपनी अनुपम शैली में विधि और न्याय के मध्य अंतःक्रिया को समझने के लिए निर्णयों की श्रृंखला की जांच की है। निर्णय का अनुच्छेद 113 नीचे उद्धृत करना उपयुक्त है:

*"**113.** इस न्यायालय ने नेशनल स्पॉट एक्सचेंज लिमिटेड बनाम दुनार फूड्स लिमिटेड (समाधान व्यवसायी), (2022) 11 एससीसी 761 में अपने अन्य निर्णयों की श्रृंखला का संदर्भ देने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया था कि जहां विधि स्पष्ट है वहां उसका परिणाम अवश्य लागू होना चाहिए। उच्च न्यायालय के पास विधि को लागू करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है। इसमें किए गए प्रासंगिक अवलोकन नीचे पुनरुत्पादित किए जा रहे हैं: (एससीसी पृ. 774-75, अनुच्छेद 15)*

"15. ... 15.1. बीएसएनएल बनाम मिश्री लाल, (2011) 14 एससीसी 739 में यह अवलोकित किया गया है कि यदि कोई विरोध है तो विधि न्याय पर प्रभावी होती है। यह आगे अवलोकित किया गया है कि न्याय केवल विधि का पूरक हो सकता है, उसका विस्थापन नहीं।

15.2. रघुनाथ राय बरेजा बनाम पंजाब नेशनल बैंक, (2007) 2 एससीसी 230 में, अनुच्छेद 30 से 37 में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकित और अभिनिर्धारित किया: (एससीसी पृ. 242-43)

'30. इस प्रकार, मदमंची रामाप्पा बनाम मुथलुरु बोज्जप्पा, 1963 एससीसी ऑनलाइन एससी 36 : (2007) 2 एससीसी 230 (एआईआर अनुच्छेद 12 द्वारा) में इस न्यायालय ने अवलोकित किया: (एआईआर पृ. 1637)

"12. ... [जो] न्यायालयों में प्रशासित किया जाता है वह विधि के अनुसार न्याय है, और निष्पक्ष व्यवहार तथा न्याय के विचार चाहे वे कितने भी महत्वपूर्ण क्यों न हों, विधि के स्पष्ट और व्यक्त प्रावधानों के समक्ष झुकने चाहिए।"
काउंसिल फॉर इंडियन स्कूल सर्टिफिकेट एग्जामिनेशन बनाम ईशा मित्तल, (2000) 7 एससीसी 521 (अनुच्छेद 4 द्वारा) में इस न्यायालय ने अवलोकित किया: (एससीसी पृ. 522)

"4. ... न्याय के विचार प्रभावी नहीं हो सकते और उच्च न्यायालय को विधि के विपरीत आदेश पारित करने की अनुमति नहीं देते।"
इसी प्रकार, पी.एम. लता बनाम केरल राज्य, (2003) 3 एससीसी 541 (अनुच्छेद 13 द्वारा) में इस न्यायालय ने अवलोकित किया: (एससीसी पृ. 546)

"13. न्याय और विधि जुड़वां भाई हैं और विधि को न्यायसंगत रूप से लागू और निर्वचित किया जाना चाहिए किन्तु न्याय लिखित या स्थापित विधि को अध्यारोपित नहीं कर सकता।"

33. लक्ष्मीनारायण आर. भट्टाड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2003) 5 एससीसी 413 (अनुच्छेद 73 द्वारा) में इस न्यायालय ने अवलोकित किया: (एससीसी पृ. 436)

"73. अब यह सुस्थापित है कि जब विधि और न्याय के मध्य विरोध हो तो पूर्व प्रभावी होगा।"
इसी प्रकार, नसीरुद्दीन बनाम सीता राम अग्रवाल, (2003) 2 एससीसी 577 (अनुच्छेद 35 द्वारा) में इस न्यायालय ने अवलोकित किया: (एससीसी पृ. 588)

"35. ऐसे मामले में जहां सांविधिक प्रावधान सरल और स्पष्ट है, न्यायालय केवल कठोर परिणामों के कारण उसी का भिन्न रीति से निर्वचन नहीं करेगा।"
इसी प्रकार, ई. पलानीसामी बनाम पलानीसामी, (2003) 1 एससीसी 123 (अनुच्छेद 5 द्वारा) में इस न्यायालय ने अवलोकित किया: (एससीसी पृ. 127)
न्यायसंगत विचारों का कोई स्थान नहीं है जहां संविधि में व्यक्त प्रावधान निहित हों।

36. इंडिया हाउस बनाम किशन एन. लालवानी, (2003) 9 एससीसी 393 (अनुच्छेद 7 द्वारा) में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि: (एससीसी पृ. 398)

"7. ... सांविधिक रूप से निर्धारित परिसीमा की अवधि का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए तथा न्यायसंगत विचारों के लिए इसे शिथिल या विचलित नहीं किया जा सकता।'"..."
(मूल और प्रदत्त में महत्व सनन्विष्ट)"

8. इसके अतिरिक्त, उच्चतम न्यायालय ने, **शनमुगावेलु (उपरोक्त)** के निर्णय के अनुच्छेद 118 में, विभिन्न उच्चतम न्यायालय के निर्णयों की चर्चा के पश्चात्, निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

"118. इस प्रकार, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जहां बाह्य परिस्थितियां विद्यमान हों जिनके कारण सफल नीलामी-क्रेता अपनी ओर से बिना किसी दोष के सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद शेष राशि जमा करने

में असमर्थ रहा हो, ऐसे मामलों में ऐसे निर्दोष सफल नीलामी-क्रेता द्वारा जमा की गई बयाना राशि को निश्चित रूप से प्रतिदाय करने के लिए कहा जा सकता है।"

9. निर्णय के उपरोक्त अनुच्छेदों के अवलोकन पर, यह स्फटिक रूप से स्पष्ट है कि वर्तमान मामला जिसमें याचिकाकर्ता बैंक द्वारा ऋणी के विरुद्ध सरफेसी कार्रवाई के पुनःप्रारंभ के आधार पर जब्त की गई राशि की वापसी की मांग कर रहा है, 'असाधारण परिस्थिति' की सीमा के भीतर नहीं आएगा, जो 2002 नियम के नियम 9(5) के अधीन जब्ती के सांविधिक परिणाम को कम करने की ओर ले जाए। जैसा कि तथ्यात्मक स्थिति से स्पष्ट है, याचिकाकर्ता ने किसी ऐसी विशिष्ट परिस्थितियों का संकेत नहीं दिया है जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता की ओर से निर्धारित समय के भीतर शेष राशि जमा करने में विफलता हुई हो। तदनुसार, उसके पक्ष में किसी न्याय का प्रश्न नहीं है। बैंक की बाद की कार्रवाइयां जिनमें सरफेसी कार्रवाई का पुनःप्रारंभ किया गया है, किसी भी रीति से याचिकाकर्ता के लाभ के लिए नहीं हो सकतीं, क्योंकि जब्ती 2002 नियम के अधीन एक सांविधिक परिणाम है।

10. इसी के परिप्रेक्ष्य में, याचिकाकर्ता के लिए उपस्थित अधिवक्ता श्री राहुल अग्रवाल द्वारा उठाए गए वाक्पटुता और तीक्ष्ण बिंदुओं के बावजूद, हमारा विचार है कि ये तर्क केवल कुतर्क की प्रकृति के हैं, और इसलिए, इस न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से अस्वीकृत किए जाने चाहिए।

11. अतएव, रिट याचिका खारिज की जाती है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1505

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरिंदम सिन्हा

माननीय न्यायमूर्ति अवनीश सक्सेना

रिट सी संख्या 14892 वर्ष 2025

कमलेश सिंह **....याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्रेयस श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

अनुवादित

(क) रिट क्षेत्राधिकार - दस्तावेजों का पंजीकरण - उप-पंजीयक के आधिकारिक कार्य को चुनौती - पंजीकरण अधिनियम, 1908 - धारा 34 - हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 - धारा 22 - विभाजन अधिनियम, 1893 - धारा 4 - नियम/विनियम - उत्तर प्रदेश पंजीकरण नियमावली में नियम 285 - पंजीकरण अधिकारी का कर्तव्य - अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार - रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को हड़पने के लिए नहीं किया जाना चाहिए - याचिकाकर्ता को सिविल न्यायालय में अपना उपचार खोजना होगा - पंजीकरण प्राधिकरण के आधिकारिक कार्य को चुनौती देने वाले पक्ष के लिए, पंजीकरण हेतु प्रस्तुत दस्तावेजों पर भरोसा करना अनिवार्य है। (पैरा - 10, 11)

याचिकाकर्ता, विरासत में मिली संपत्ति में सह-साझेदार - अपने चचेरे भाइयों द्वारा मुख्तारनामा (power of attorney) के माध्यम से निष्पादित बिक्री विलेख को पंजीकृत करने के उप-पंजीयक के कार्य को चुनौती दी - तर्क दिया कि उप-पंजीयक पंजीकरण अधिनियम की धारा 34 के तहत अपने वैधानिक कर्तव्य का पालन करने में विफल रहा - हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 22 के तहत अधिमान्य अधिकार का उल्लंघन। (पैरा - 1, 2, 7)

निर्धारित: - रिट याचिका विचारणीय नहीं थी क्योंकि पक्षकारों के बीच अंतर्निहित विवाद दीवानी प्रकृति का था। याचिकाकर्ता को दीवानी न्यायालय में अपना उपचार खोजना होगा और उप-पंजीयक के आधिकारिक कार्य में हस्तक्षेप करने के लिए अपने रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर दिया। (पैरा - 10 से 12)

याचिका निस्तारित। (ई-7)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. एसेट रिकंस्ट्रक्शन कंपनी (इंडिया) लिमिटेड बनाम एस.पी. वेलायुथम और अन्य, सिविल अपील संख्या 2752-2753, वर्ष 2022
2. जुगराज सिंह बनाम जसवंत सिंह, (1970) 2 एससीसी 386
3. के. गोपी बनाम उप-पंजीयक एवं अन्य, सिविल अपील संख्या 3954 वर्ष 2025

(माननीय न्यायमूर्ति अरिंदम सिन्हा एवं माननीय न्यायमूर्ति अवनीश सक्सेना द्वारा पारित)

1. श्री श्रेयस श्रीवास्तव, विद्वान अधिवक्ता याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित हुए और प्रस्तुत करते हैं कि उनके मुवक्किल को संपत्ति में आधा हिस्सा विरासत में मिला है। प्रतिवादी संख्या 3 से 5 उनके चचेरे भाई हैं और प्रतिवादी संख्या 6, उनके कुल आधे हिस्से के लगभग संपूर्ण भाग का कथित खरीदार है। वह हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 22 पर भरोसा करते हैं और प्रस्तुत करते हैं कि जब उनके चचेरे भाई अपने हिस्से को बेचने का निर्णय लेते हैं, तो उनके मुवक्किल के पास उस संपत्ति को प्राप्त करने का अग्र-क्रयाधिकार है।

2. रिट याचिका में प्रतिवादी संख्या 2 (उप-पंजीयक) द्वारा 2 अप्रैल, 2025 को निष्पादित बिक्री विलेख को अवैध रूप से पंजीकृत करने के विरुद्ध चुनौती दी गई है। वह विलेख की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं और प्रस्तुत करते हैं कि उसमें वर्णित विक्रेताओं का प्रतिनिधित्व प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा किया गया था। यद्यपि 17 अक्टूबर, 2024 के मुख्तारनामा (Power of Attorney) का उल्लेख है, फिर भी उप-पंजीयक ने पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 34 की उप-धारा (3) द्वारा अनिवार्य अपने कर्तव्य का त्याग किया और पंजीकरण से इनकार नहीं किया। वह उक्त उप-धारा के खंड (सी) पर भरोसा करते हैं। बिक्री विलेख पर अन्य विक्रेताओं के हस्ताक्षर नहीं हैं। इस प्रकार, जैसा कि दस्तावेज के प्रत्यक्ष अवलोकन से प्रतीत होता है, उप-पंजीयक ने स्वयं को इस बात से संतुष्ट नहीं किया कि प्रतिवादी संख्या 4 और 5 के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित होने वाले निष्पादक के पास इस प्रकार उपस्थित होने और पंजीकरण के लिए दस्तावेज प्रस्तुत करने का अधिकार था। वह उत्तर प्रदेश पंजीकरण नियमावली के नियम 285 पर भी भरोसा करते हैं। धारा 34 और संबंधित नियम नीचे दिए गए हैं:

अनुवादित

पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 34

34. पंजीकरण अधिकारी द्वारा पंजीकरण से पूर्व पूछताछ।

(1) इस भाग में और धारा 41, 43, 45, 69, 75, 77, 88 और 89 में निहित प्रावधानों के अधीन, इस अधिनियम के तहत कोई भी दस्तावेज तब तक पंजीकृत नहीं किया जाएगा, जब तक कि ऐसे दस्तावेज को निष्पादित करने वाले व्यक्ति, या उनके प्रतिनिधि, समनुदेशिती या पूर्वोक्त रूप से अधिकृत एजेंट, धारा 23, 24, 25 और 26 के तहत प्रस्तुतीकरण के लिए अनुमत समय के भीतर पंजीकरण अधिकारी के समक्ष उपस्थित न हों:

बशर्ते कि, यदि अनिवार्य आवश्यकता या अपरिहार्य दुर्घटना के कारण ऐसे सभी व्यक्ति उपस्थित नहीं होते हैं, तो रजिस्ट्रार उन मामलों में जहाँ उपस्थित होने में देरी चार महीने से अधिक नहीं है, यह निर्देश दे सकता है कि धारा 25 के तहत देय जुर्माने (यदि कोई हो) के अतिरिक्त, उचित पंजीकरण शुल्क की दस गुना राशि से अधिक का जुर्माना भुगतान करने पर दस्तावेज पंजीकृत किया जा सकता है।

(2) उप-धारा (1) के तहत उपस्थितियाँ एक साथ या अलग-अलग समय पर हो सकती हैं।

(3) तदुपरान्त पंजीकरण अधिकारी:

(क) पूछताछ करेगा कि क्या ऐसा दस्तावेज उन व्यक्तियों द्वारा निष्पादित किया गया था जिनके द्वारा इसका निष्पादित होना तात्पर्यित है;

(ख) अपने समक्ष उपस्थित होने वाले और दस्तावेज निष्पादित करने का दावा करने वाले व्यक्तियों की पहचान के संबंध में स्वयं को संतुष्ट करेगा; और

(ग) प्रतिनिधि, समनुदेशिती या एजेंट के रूप में उपस्थित होने वाले किसी भी व्यक्ति के मामले में, ऐसे व्यक्ति के इस प्रकार उपस्थित होने के अधिकार के बारे में स्वयं को संतुष्ट करेगा।

(4) उप-धारा (1) के परंतुक के तहत निर्देश के लिए कोई भी आवेदन उप-पंजीयक के पास जमा किया जा सकता है, जो उसे तत्काल उस पंजीयक को अग्रेषित करेगा जिसके वह अधीनस्थ है।

(5) इस धारा की कोई भी बात डिक्री या आदेशों की प्रतियों पर लागू नहीं होती है।"

उत्तर प्रदेश पंजीकरण नियमावली का नियम 285

"285. दस्तावेजों का परीक्षण - जब कोई दस्तावेज पंजीकरण के लिए प्रस्तुत किया जाता है, तो पंजीकरण अधिकारी का ध्यान आकर्षित करने वाले बिंदुओं को संक्षेप में निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है:

1. क्या उसके पास दस्तावेज को पंजीकृत करने का क्षेत्राधिकार है?

अनुवादित

2. क्या दस्तावेज समय-सीमा से बाहर है?

3. क्या दस्तावेज धारा 19, 20 और 21 की आपत्तियों से मुक्त है?

4. क्या दस्तावेज पर उचित स्टाम्प शुल्क लगाया गया है?

5. क्या दस्तावेज उचित व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया गया है?

6. क्या दस्तावेज उन व्यक्तियों द्वारा निष्पादित किया गया था जिनके द्वारा इसका निष्पादित होना तात्पर्यित है?"

3. प्रश्न किए जाने पर श्री श्रीवास्तव प्रस्तुत करते हैं कि पंजीकरण को रद्द करना और दस्तावेज को शून्य एवं प्रभावहीन (null and void) घोषित करना एक समान नहीं है। उनके मुवक्किल प्राधिकरण के उस प्रशासनिक कार्य को चुनौती दे रहे हैं, जिसमें धारा 34 के तहत आवश्यक जांच करने में चूक की गई और उस दस्तावेज को पंजीकृत किया गया जिसे पंजीकृत नहीं किया जाना चाहिए था। वह **'एसेट रिकंस्ट्रक्शन कंपनी (इंडिया) लिमिटेड बनाम एस.पी. वेलायुथम और अन्य' में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय दिनांक 4 मई, 2022 (सिविल अपील संख्या 2752-2753/2022)** के लाइव लॉ प्रिंट के पैराग्राफ 53 पर भरोसा करते हैं। वह पैराग्राफ नीचे उद्धृत है:

"53. मालिकाना हक की घोषणा के मुकदमों और/या किसी पंजीकृत दस्तावेज को शून्य एवं प्रभावहीन घोषित करने के मुकदमों में, उपर्युक्त तीनों चरण, जिनमें निष्पादन और पंजीकरण की संपूर्ण प्रक्रिया शामिल है, चुनौती के दायरे में आते हैं। यदि कोई पक्ष किसी दस्तावेज के निष्पादन पर ही सवाल उठाता है या किसी व्यक्ति के दस्तावेज निष्पादित करने और उसे पंजीकरण के लिए प्रस्तुत करने के अधिकार और हक पर सवाल उठाता है, तो उसका उपचार केवल सिविल कोर्ट जाना होगा। लेकिन जहाँ कोई पक्ष केवल तीसरे चरण के दौरान पंजीकरण प्राधिकरण द्वारा अपने वैधानिक कर्तव्यों का पालन करने में विफलता पर सवाल उठाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार पूरी तरह से समाप्त हो गया है। इसका कारण यह है कि उच्च न्यायालय का रिट क्षेत्राधिकार यह सुनिश्चित करने के लिए है कि वैधानिक प्राधिकरण कानून की सीमाओं के भीतर अपने कर्तव्यों का पालन करें। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि जब एक उच्च न्यायालय, अनुच्छेद 226 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए यह पाता है कि पंजीकरण प्राधिकरण की ओर से कानून के अधिदेश का पालन करने में पूर्ण विफलता हुई थी, तो न्यायालय केवल पंजीकरण के कार्य को रद्द करता है, न कि स्वयं दस्तावेज के निष्पादन को शून्य और प्रभावहीन घोषित करता है। किसी दस्तावेज को शून्य और प्रभावहीन घोषित करना विशेष रूप से सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र में है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उच्च न्यायालय इस प्रश्न की जांच नहीं कर सकता कि पंजीकरण प्राधिकरण ने कानून द्वारा निर्धारित तरीके से अपने वैधानिक कर्तव्यों का पालन किया या नहीं। यह सुस्थापित है कि यदि कानून द्वारा किसी कार्य को एक विशेष तरीके से किया जाना आवश्यक है, तो उसे उसी तरीके से किया जाना चाहिए, अन्यथा नहीं। यह जांचना कि क्या पंजीकरण प्राधिकरण ने कानून द्वारा आवश्यक तरीके से कुछ किया या अन्यथा, निश्चित रूप से अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में है। हालांकि, यह कहना अनावश्यक है कि उच्च न्यायालय उन मामलों में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर सकते हैं जहाँ पंजीकरण

प्राधिकरण की ओर से प्रक्रिया का उल्लंघन गंभीर नहीं है या उल्लंघन न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोरने वाला नहीं है। क्षेत्राधिकार का अभाव, क्षेत्राधिकार के प्रयोग से इनकार करने से पूरी तरह अलग है।"
जुगराज सिंह बनाम जसवंत सिंह (1970) 2 एससीसी 386 में उक्त न्यायालय के पूर्व निर्णय के पैराग्राफ 7 पर भरोसा करते हुए वह आगे कहते हैं, जो नीचे उद्धृत है

"7. यह स्पष्ट है कि पंजीकरण के लिए प्रस्तुतीकरण, या तो मूल व्यक्ति द्वारा या विधिवत गठित मुख्तार द्वारा किया जा सकता है। यह समान रूप से स्पष्ट है कि किसी अन्य व्यक्ति को या तो दस्तावेज निष्पादित करने या उसे पंजीकरण के लिए प्रस्तुत करने की शक्ति प्रदान किए जाने से पहले, कानून द्वारा अपेक्षित रूप से विधिवत प्रमाणित एक उचित मुख्तारनामा बनाया जाना था। वास्तव में कानून यही है।"

4. राज्य की ओर से अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री देवेश विक्रम उपस्थित हुए। वह रिट याचिका का विरोध करने के लिए **सिविल अपील संख्या 3954/2025 (के. गोपी बनाम उप-पंजीयक एवं अन्य) में उच्चतम न्यायालय के 7 अप्रैल, 2025 के निर्णय** के पैराग्राफ 11 - 15 पर भरोसा करते हैं। उक्त पैराग्राफ नीचे उद्धृत हैं।

"11. खंड (क) से (ञ) में से कोई भी ऐसा नियम बनाने का प्रावधान नहीं करता है जो पंजीकरण प्राधिकरण को हस्तांतरण के दस्तावेज के पंजीकरण से इनकार करने की शक्ति प्रदान करता हो। 1908 के अधिनियम के तहत कोई भी प्रावधान किसी भी प्राधिकरण को इस आधार पर हस्तांतरण दस्तावेज के पंजीकरण से इनकार करने की शक्ति प्रदान नहीं करता है कि विक्रेता के स्वामित्व से संबंधित दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किए गए हैं, या यदि उसका स्वामित्व स्थापित नहीं होता है। यहाँ तक कि राज्य संशोधन के माध्यम से शामिल की गई धारा 22-ए और 22-बी में भी ऐसा कोई प्रावधान नहीं है।

...

15. पंजीकरण अधिकारी का निष्पादक द्वारा धारित स्वामित्व से कोई सरोकार नहीं है। उसके पास यह तय करने की कोई न्यायनिर्णयन शक्ति नहीं है कि निष्पादक के पास कोई स्वामित्व है या नहीं। यदि कोई निष्पादक ऐसी भूमि के संबंध में बिक्री विलेख या पट्टा निष्पादित करता है जिस पर उसका कोई स्वामित्व नहीं है, तो भी पंजीकरण अधिकारी दस्तावेज को पंजीकृत करने से इनकार नहीं कर सकता है यदि सभी प्रक्रियात्मक अनुपालन किए गए हैं और आवश्यक स्टाम्प शुल्क के साथ-साथ पंजीकरण शुल्क का भुगतान किया गया है। हम यहाँ यह नोट कर सकते हैं कि 1908 के अधिनियम की योजना के तहत, यह उप-पंजीयक या पंजीकरण प्राधिकरण का कार्य नहीं है कि वह यह पता लगाए कि विक्रेता के पास उस संपत्ति का स्वामित्व है या नहीं जिसे वह हस्तांतरित करना चाहता है। एक बार जब पंजीकरण प्राधिकरण संतुष्ट हो जाता है कि दस्तावेज के पक्षकार उसके सामने उपस्थित हैं और पक्षकार उसके सामने उसके निष्पादन को स्वीकार करते हैं, जैसा कि ऊपर बताया गया है प्रक्रियात्मक अनुपालन करने के अधीन, दस्तावेज पंजीकृत किया जाना चाहिए। किसी दस्तावेज के निष्पादन और पंजीकरण का प्रभाव केवल उन्हीं अधिकारों को हस्तांतरित करना होता है, यदि कोई

हो, जो निष्पादक के पास हैं। यदि निष्पादक के पास संपत्ति में कोई अधिकार, स्वामित्व या हित नहीं है, तो पंजीकृत दस्तावेज कोई हस्तांतरण प्रभावी नहीं कर सकता है।"

5. याचिकाकर्ता प्रतिवादी संख्या 2 के आधिकारिक कार्य के विरुद्ध है। राज्य इसका विरोध करता है। धारा 86 प्रावधान करती है कि कोई भी पंजीकरण अधिकारी अपनी आधिकारिक क्षमता में सद्भाव से किए गए या इनकार किए गए किसी भी कार्य के कारण किसी भी मुकदमे, दावे या मांग के लिए उत्तरदायी नहीं होगा। इसी आधार पर, हमें याचिकाकर्ता की चुनौती पर विचार करना चाहिए।

6. हमने दस्तावेज (2 अप्रैल, 2025 का बिक्री विलेख) का अवलोकन किया है। इसमें उल्लेख है कि विक्रेताओं का प्रतिनिधित्व उनमें से एक और एक मुख्तारनामा (power of attorney) द्वारा किया गया था। प्रश्न किए जाने पर श्री श्रीवास्तव प्रस्तुत करते हैं कि मुख्तारनामा प्रकट नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता को सबसे पहले दस्तावेज की वैधता सुनिश्चित करने के लिए मुख्तारनामे का निरीक्षण प्राप्त करना चाहिए था। यह धारणा नहीं बनाई जा सकती कि प्रतिवादी संख्या 2 ने प्रतिवादी संख्या 4 और 5 की ओर से और स्वयं की ओर से दस्तावेज निष्पादित करने वाले प्रतिवादी संख्या 3 के संबंध में उचित पूछताछ नहीं की। धारा 34 में ऐसा कुछ भी नहीं है जो पंजीकरण प्राधिकरण को संतुष्टि के संबंध में आदेश देने की आवश्यकता रखता हो, जबकि इसके विपरीत धारा 76 प्राधिकरण को इनकार का आदेश देने और ऐसे आदेश के कारणों को दर्ज करने का निर्देश देती है। अधिनियम इनकार के आदेश के विरुद्ध अपील का प्रावधान करता है। इसमें किए गए पंजीकरण को चुनौती देने का कोई प्रावधान नहीं है। इससे विधायिका की मंशा का संकेत मिलता है।

7. याचिकाकर्ता का कहना है कि वह संपूर्ण संपत्ति पर काबिज है, जो उसे और उसके चचेरे भाइयों को विरासत में मिली थी। इसलिए, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 22 पर भरोसा किया गया है। उसके सह-साझेदारों द्वारा उसे बेचने के अपने इरादे की सूचना न दिए जाने के कारण, वह उक्त प्रावधान के तहत अपने अग्र-क्रयाधिकार का प्रयोग करने से वंचित रह गया। उसके चचेरे भाइयों की ओर से यह कथित चूक याचिकाकर्ता को उनके विरुद्ध मुकदमा चलाने का आधार देती है। यह उन सभी की ओर से उनमें से एक द्वारा निष्पादित दस्तावेज को पंजीकृत करने के प्रशासनिक कार्य को चुनौती देने में सहायक नहीं हो सकता। इस दृष्टिकोण को अपनाने में हमें **'के. गोपी'** (उपरोक्त) के निर्णय से समर्थन प्राप्त है।

8. प्रश्न किए जाने पर श्री श्रीवास्तव प्रस्तुत करते हैं कि विभाजन अधिनियम, 1893 की धारा 4 वह राहत प्रदान नहीं करती जो उनके मुवक्किल चाह रहे हैं। हम इसके विपरीत सोचते हैं। निजी प्रतिवादी संख्या 6 संपत्ति में लगभग 50% हिस्से का खरीदार है। यदि उक्त प्रतिवादी विभाजन के लिए मुकदमा दायर करता है, तो याचिकाकर्ता कब्जे के दावे का विरोध करते हुए, उसका हिस्सा खरीदने के लिए धारा 4 के तहत दावा कर सकता है।

9. **जुगराज सिंह** (उपरोक्त) कानून की यह घोषणा है कि एक उचित मुख्तारनामा (power of attorney) होना चाहिए, जो कानून की आवश्यकता के अनुसार विधिवत प्रमाणित हो, जैसा कि किसी अन्य व्यक्ति को या तो दस्तावेज निष्पादित करने या उसे

पंजीकरण के लिए प्रस्तुत करने की शक्ति प्रदान किए जाने से पहले बनाया जाना था। हमारे सामने मुख्तारनामा उपलब्ध नहीं है। याचिकाकर्ता यह आरोप लगाने में भी सक्षम नहीं रहा है कि उसके चचेरे भाइयों या उनमें से किसी ने भी बिक्री विलेख पर अपने हिस्सों के लेनदेन के संबंध में कोई विवाद उठाया है, जो कि उक्त शक्ति (power) के प्रयोग में नहीं किया जा सकता था। अत: हम यह मान लेते हैं कि दस्तावेज (बिक्री विलेख) को पंजीकृत करने में उप-पंजीयक का आधिकारिक कार्य इस संतुष्टि के अनुसरण में था कि प्रस्तुत किया गया मुख्तारनामा एक अच्छा और वैध दस्तावेज था, जिससे प्रतिवादी संख्या 3 प्रतिवादी संख्या 4 और 5 के हिस्सों का भी लेनदेन करने में सक्षम हुआ। स्पष्ट रूप से, **जुगराज सिंह** (उपरोक्त) लागू नहीं होता है।

10. **'एस.पी. वेलायुथम'** (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि जहाँ कोई पक्ष केवल तीसरे चरण के दौरान पंजीकरण प्राधिकरण द्वारा अपने वैधानिक कर्तव्यों का पालन करने में विफलता पर सवाल उठाता है, तो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत हस्तक्षेप करने के उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को पूरी तरह से समाप्त नहीं कहा जा सकता है। इस घोषणा को एक 'डेमुरर' (कानूनी आपत्ति) की तरह पढ़ा जाना चाहिए। पंजीकरण प्राधिकरण के कार्य को चुनौती देने के लिए, किसी पक्ष को अन्य बातों के साथ-साथ, मुख्तारनामा (power of attorney) में व्यक्ति को दस्तावेज निष्पादित करने और पंजीकरण के लिए प्रस्तुत करने हेतु सशक्त बनाने वाले बयानों को स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि वह केवल पंजीकरण प्राधिकरण के वैधानिक कर्तव्य के निर्वहन को चुनौती दे रहा है। उस मामले में, एक मुख्तार (attorney) द्वारा उस मुख्तारनामे के आधार पर बिक्री की गई थी जिसमें स्पष्ट रूप से बेचने की शक्ति को वर्जित किया गया था। ऐसे तथ्यों में उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि प्राधिकरण की कार्रवाई रिट क्षेत्राधिकार के अधीन थी। यह हमारे इस दृष्टिकोण को पुष्ट करता है कि आधिकारिक कार्य को चुनौती देने के लिए, पंजीकरण हेतु प्रस्तुत दस्तावेजों पर भरोसा किया जाना चाहिए। जैसा कि ऊपर कहा गया है, याचिकाकर्ता ने मुख्तारनामे का निरीक्षण तक नहीं किया है। यहाँ, याचिकाकर्ता मुख्तारनामे पर विवाद करता है और वह पंजीकरण रद्द होने पर, अनिवार्य रूप से पंजीकरण योग्य बिक्री विलेख को एक महत्वहीन या बिना किसी परिणाम वाले दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत करना चाहता है। हम इस तरह से सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र को हड़पने के लिए अपने रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करेंगे। अत: **'एस.पी. वेलायुथम'** (उपरोक्त) याचिकाकर्ता की सहायता नहीं करता है।

11. हम याचिकाकर्ता और असूचित निजी प्रतिवादियों के बीच अंतर्निहित विवाद को दीवानी प्रकृति का मानते हैं। याचिकाकर्ता को अपना उपचार स्वयं खोजना होगा। जैसा कि ऊपर कहा गया है, हम अपने रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के लिए बाध्य नहीं होंगे।

12. रिट याचिका **निस्तारित** की जाती है।

13. रजिस्ट्री इस आदेश की वेबसाइट प्रति प्रतिवादी संख्या 3 और 6 को संप्रेषित करेगी, क्योंकि हमने रिट याचिका पर विचार करते समय उन्हें नोटिस जारी नहीं किया था।

(2025) 5 ILRA 1510

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव

रिट-सी संख्या 31912 वर्ष 2018

प्रबंध समिति, जनहित माध्यमिक विद्यालय व अन्य ....**याचिकाकर्तागण**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य ....**प्रतिवादीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता), सिद्धार्थ खरे

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मुख्य स्थाई अधिवक्ता, पंकज कुमार सिंह

अनुवादित

दीवानी कानून - उ.प्र. बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 - सहायता अनुदान सूची में समावेशन - शासनादेश दिनांक 07.09.2006 - शासनादेश दिनांक 14.07.2020 - याचिकाकर्ता की संस्था को 1986 में स्थायी मान्यता प्रदान की गई थी - सहायता अनुदान के दावे को पहले 'संदिग्ध हस्ताक्षर' के अस्तित्वहीन आधार पर और उसके बाद 'दो चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की नियुक्ति' सहित अन्य अस्थिर आधारों पर गलत तरीके से खारिज कर दिया गया। याचिकाकर्ता की पिछली रिट याचिका संख्या 66902 वर्ष 2009 को इस स्पष्ट सकारात्मक निर्देश के साथ स्वीकार किया गया था कि यदि कोई इष्टतम सीमा है, तो याचिकाकर्ता को ऐसी संस्था के विरुद्ध समायोजित किया जाएगा या वैकल्पिक व्यवस्था की जाएगी। इसके बावजूद, प्रतिवादियों ने फिर से दावा खारिज कर दिया जिसे रिट याचिका संख्या 48835 वर्ष 2011 में रद्द कर दिया गया और विशेष अपील भी खारिज कर दी गई। अभिनिर्धारित: दावा उन आधारों पर खारिज किया गया था जो कानूनन स्थिर रहने योग्य नहीं थे; याचिकाकर्ता का अधिकार शासनादेश दिनांक 07.09.2006 के तहत स्पष्ट रूप से स्थापित हो चुका था। इसके बाद के शासनादेश दिनांक 14.07.2020 द्वारा, जिसमें यह प्रावधान था कि सहायता अनुदान पर नई संस्था खोलना या स्थापित करना व्यवहार्य नहीं है, ऐसे स्थापित अधिकार को विफल नहीं किया जा सकता था। नई नीति के बहाने दावे को खारिज करना भ्रामक है। एक बार जब राज्य सरकार ने समान स्थिति वाली संस्था को सहायता अनुदान का लाभ दे दिया था, तो याचिकाकर्ता को इससे वंचित करना मनमाना और संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन था। आक्षेपित आदेश अपास्त किया गया; विशेष सचिव, बेसिक शिक्षा, उ.प्र. को

याचिकाकर्ता की संस्था को सहायता अनुदान पर लेने और तत्काल पूर्ण वित्तीय सहायता प्रदान करने का निर्देश दिया गया - रिट याचिका स्वीकार की गई।

स्वीकृत। (E-5)

(माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव द्वारा पारित)

1. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे, जिन्हें याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री आदितेंद्र सिंह द्वारा सहायता प्रदान की गई, तथा राज्य-प्रतिवादियों की ओर से विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री जितेंद्र नारायण राय को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से प्रतिवादी संख्या 1- विशेष सचिव, बेसिक शिक्षा, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.10.2018 को चुनौती दी है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता की संस्था को सहायता अनुदान पर लेने के दावे को खारिज कर दिया गया था।

3. संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि जनपद कानपुर देहात में 'जनहित माध्यमिक विद्यालय माछा' (इसके बाद 'संस्था' के रूप में संदर्भित) के नाम से एक जूनियर हाई स्कूल संचालित है। उक्त संस्था को दिनांक 18.06.1981 के आदेश द्वारा जूनियर हाई स्कूल के रूप में अस्थायी मान्यता प्रदान की गई थी, जिसके बाद सहायक निदेशक (बेसिक), चतुर्थ परिक्षेत्र, इलाहाबाद के एक आदेश द्वारा स्थायी मान्यता प्रदान की गई थी।

4. प्रतिवादी संख्या 2- शिक्षा निदेशक (बेसिक), उत्तर प्रदेश, लखनऊ ने सहायता अनुदान पर 1000 मान्यता प्राप्त जूनियर हाई स्कूलों को लेने के लिए इच्छुक संस्थाओं से आवेदन आमंत्रित करते हुए एक अधिसूचना जारी की। संस्था के प्रबंधन ने भी उपरोक्त अधिसूचना के अनुपालन में आवेदन किया। राज्य सरकार ने 02.12.2006 को एक शासनादेश जारी किया, जिसके द्वारा 1000 जूनियर हाई स्कूलों को सहायता अनुदान पर लिया गया। हालांकि, उक्त शासनादेश के साथ संलग्न सूची में याचिकाकर्ता की संस्था का नाम शामिल नहीं था। याचिकाकर्ता के अनुसार, क्षेत्रीय सहायक शिक्षा निदेशक (बेसिक) ने 04.01.2007 को एक आदेश जारी किया जिसमें याचिकाकर्ता की संस्था को सहायता अनुदान में शामिल न करने के कारणों को निर्दिष्ट किया गया था, जिसमें यह उल्लेख था कि स्थायी मान्यता देने वाले आदेश पर हस्ताक्षर संदिग्ध प्रतीत होते हैं।

5. याचिकाकर्ता का आगे यह कहना है कि दिनांक 04.01.2007 के आदेश में निर्दिष्ट कारण अस्तित्वहीन था, क्योंकि सचिव, बेसिक शिक्षा परिषद, उ.प्र. इलाहाबाद ने दिनांक 17.01.2007 के पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ता की संस्था को स्थायी मान्यता प्रदान करने वाले दिनांक 24.10.1986 के आदेश को सत्यापित कर दिया था।

प्रस्तुत किया। जब संबंधित प्राधिकारी द्वारा उक्त प्रत्यावेदन पर कोई ध्यान नहीं दिया गया, तो याचिकाकर्ता की संस्था ने रिट याचिका संख्या 30719 वर्ष 2008 दायर की, जिसे इस न्यायालय द्वारा दिनांक 04.07.2008

के निर्णय और आदेश के माध्यम से इस निर्देश के साथ निस्तारित किया गया कि शिक्षा निदेशक याचिकाकर्ता के दिनांक 19.01.2007 के प्रत्यावेदन पर निर्णय लें।

7. उपरोक्त निर्णय के अनुपालन में, शिक्षा निदेशक (बेसिक) ने दिनांक 31.12.2008 को एक आदेश पारित किया, जिसमें संस्था को सहायता अनुदान की सूची में शामिल किए जाने का पात्र माना गया और अंतिम आदेश के लिए कागजात राज्य सरकार को भेज दिए।

8. जब मामला बिना किसी आदेश के पारित हुए राज्य सरकार के स्तर पर लंबित रहा, तो याचिकाकर्ता की संस्था ने एक और रिट याचिका संख्या 37081 वर्ष 2009 दायर की, जिसे इस न्यायालय ने 27.07.2009 के निर्णय और आदेश द्वारा निस्तारित करते हुए राज्य सरकार को निर्णय लेने का निर्देश दिया। जब रिट याचिका संख्या 37081 वर्ष 2009 में इस न्यायालय के दिनांक 27.07.2009 के निर्णय का अनुपालन नहीं किया गया, तो याचिकाकर्ता ने सिविल प्रकीर्ण अवमानना याचिका संख्या 3947 वर्ष 2009 दायर की। उक्त अवमानना याचिका को इस न्यायालय ने दिनांक 04.11.2009 के निर्णय द्वारा निस्तारित कर दिया।

9. इसके पश्चात, राज्य सरकार ने दिनांक 13.11.2009 को एक आदेश पारित किया जिसके द्वारा याचिकाकर्ता के सहायता अनुदान पर लिए जाने के दावे को खारिज कर दिया गया। याचिकाकर्ता ने तब 13.11.2009 के आदेश को चुनौती देते हुए सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 66902 वर्ष 2009 दायर की, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 18.02.2011 के निर्णय और आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया। इस न्यायालय ने राज्य सरकार के दिनांक 13.11.2009 के आदेश को अपास्त कर दिया और मामले को नए सिरे से विचार करने के लिए राज्य सरकार को वापस भेज दिया।

10. रिमांड के बाद, राज्य सरकार ने 11.07.2011 को नया आदेश पारित किया और पुनः याचिकाकर्ता के सहायता अनुदान सूची में शामिल किए जाने के दावे को खारिज कर दिया, जिसके कारण याचिकाकर्ता को सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 48835 वर्ष 2011 दायर करनी पड़ी। उक्त रिट याचिका का निर्णय इस न्यायालय द्वारा अन्य रिट याचिकाओं के समूह के साथ दिनांक 27.08.2013 के निर्णय और आदेश द्वारा किया गया था।

11. दिनांक 27.08.2013 के निर्णय के परिशीलन से पता चलता है कि इस न्यायालय ने रिट याचिकाओं को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया था। रिट याचिका संख्या 48835 वर्ष 2011 को पहली श्रेणी में रखा गया था। इस न्यायालय ने कुछ कर्मचारियों की नियुक्ति की वैधता के संबंध में याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्कर्ष दर्ज किया था।

12. दिनांक 27.08.2013 के निर्णय को इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष विशेष अपीलों में चुनौती दी गई थी, जिसमें मुख्य अपील विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 542 वर्ष 2014' थी।

13. याचिकाकर्ता के मामले में रिट याचिका संख्या 48835 वर्ष 2011 में दिए गए निर्णय को विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 542 वर्ष 2014 में चुनौती दी गई थी। सभी विशेष अपीलों पर संयुक्त रूप से सुनवाई की गई और खंडपीठ ने दिनांक 11.09.2014 के निर्णय द्वारा उन्हें खारिज कर दिया।

14. याचिकाकर्ता ने आगे यह बताया कि विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय की पुष्टि करने वाले खंडपीठ के निर्णय के बाद, राज्य सरकार ने दिनांक 03.01.2017 के आदेश द्वारा 'जूनियर हाई स्कूल रूपन छपरा, ग्राम व पोस्ट रूपन छपरा, जिला देवरिया' के नाम से एक अन्य संस्था को सहायता अनुदान पर ले लिया था।

15. जब याचिकाकर्ता की संस्था के संबंध में कोई निर्णय नहीं लिया गया, तो याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार के समक्ष एक प्रत्यावेदन प्रस्तुत किया। हालांकि, याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन पर कोई कार्रवाई नहीं की गई।

16. इसके पश्चात, याचिकाकर्ता ने रिट-सी संख्या 16477 वर्ष 2017 दायर की, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 24.05.2017 के निर्णय और आदेश द्वारा निस्तारित करते हुए राज्य सरकार को आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन पर निर्णय लेने का निर्देश दिया।

17. जब राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन पर निर्णय नहीं लिया, तो याचिकाकर्ता ने अवमानना आवेदन (सिविल) संख्या 3417 वर्ष 2018 दायर किया, जिस पर इस न्यायालय द्वारा 07.08.2018 को नोटिस जारी किए गए।

18. उपरोक्त अवमानना याचिका में नोटिस जारी होने के बाद, राज्य सरकार ने 13.08.2018 को विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 994 वर्ष 2014 के एक निर्णय पर भरोसा करते हुए याचिकाकर्ता के दावे को खारिज कर दिया। दिनांक 13.08.2018 के आदेश में आगे कार्यालय आदेश दिनांक 13.07.2017 द्वारा अधिसूचित राज्य सरकार के एक नीतिगत निर्णय का उल्लेख किया गया और याचिकाकर्ता के दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि वर्तमान नीति के तहत, किसी नई संस्था को स्थापित करना या नई संस्था को सहायता अनुदान पर लेना संभव नहीं था।

19. प्रति-शपथपत्र में, राज्य सरकार ने कहा है कि विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 994 वर्ष 2014 (परिपूर्णानंद त्रिपाठी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य) में पारित आदेश दिनांक 05.12.2014 के आलोक में और रिट-सी संख्या 62182 वर्ष 2015 (ग्राम विकास सेवा समिति और अन्य बनाम भारत संघ व अन्य) में पारित आदेश दिनांक 05.11.2015 के अनुपालन में, आदेश संख्या 1143/79-6-2017-भा.सा-27/2017 दिनांक 13.07.2017 के माध्यम से एक नई नीति निर्धारित की गई है। इसमें आगे कहा गया है कि दिनांक 13.07.2017 की इस नीति को रिट याचिका संख्या 38992 वर्ष 2017 (जयराम सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य) में चुनौती दी गई थी।

20. उपरोक्त रिट याचिका और अन्य रिट याचिकाओं का निर्णय इस न्यायालय द्वारा दिनांक 23.05.2019 के आदेश के माध्यम से किया गया था, और उसके अनुपालन में, उत्तर प्रदेश राज्य में संचालित मान्यता प्राप्त संस्थाओं को सहायता अनुदान सूची में लेने के लिए शासनादेश संख्या 499/अड़सठ-3-2020 लखनऊ, दिनांक 14.07.2020 जारी किया गया था और उक्त नीति के तहत यह प्रावधान किया गया है कि संस्था को सहायता अनुदान पर लेना व्यवहार्य नहीं है।

21. आक्षेपित आदेश को चुनौती देते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता की संस्था दिनांक 07.09.2006 के शासनादेश के तहत सहायता अनुदान पर लिए जाने की हकदार थी। यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता की संस्था को अमान्य आधारों पर सहायता अनुदान पर नहीं लिया गया था, जिसके कारण याचिकाकर्ता को सात बार इस न्यायालय की शरण लेनी पड़ी–पाँच बार रिट याचिकाएँ दायर करके और दो बार अवमानना याचिकाएँ दायर करके। यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी ने पहले दिनांक 13.11.2009 को एक आदेश पारित कर याचिकाकर्ता के दावे को खारिज कर दिया था, जिसके कारण याचिकाकर्ता को रिट याचिका संख्या 66902 वर्ष 2009 दायर करनी पड़ी, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 18.02.2011 के निर्णय और आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया था और मामले को याचिकाकर्ता के दावे पर नए सिरे से विचार करने के लिए राज्य सरकार को वापस भेज दिया गया था।

22. यह तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी ने पुनः दिनांक 11.07.2011 के आदेश द्वारा अमान्य आधारों पर याचिकाकर्ता के सहायता अनुदान पर लिए जाने के दावे को खारिज कर दिया, जिसके कारण याचिकाकर्ता को फिर से रिट याचिका संख्या 48835 वर्ष 2011 दायर करनी पड़ी और इस प्रकार, याचिकाकर्ता दिनांक 07.09.2006 के शासनादेश के तहत सहायता अनुदान प्राप्त करने का पात्र था। यह आगे तर्क दिया गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता के अधिकार इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 66902 वर्ष 2009 में दिनांक 18.02.2011 को पारित पूर्व निर्णय और रिट याचिका संख्या 48835 वर्ष 2011 में दिनांक 27.08.2013 के निर्णय द्वारा शासित होते हैं, इसलिए दिनांक 14.07.2020 के शासनादेश के आधार पर संस्था को सहायता अनुदान पर लेने के याचिकाकर्ता के दावे को खारिज करना विधिक रूप से बरकरार रहने योग्य नहीं है।

23. यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता का सहायता अनुदान प्राप्त करने का अधिकार दिनांक 07.09.2006 के शासनादेश के तहत उत्पन्न हुआ था और प्रतिवादी-राज्य द्वारा याचिकाकर्ता के दावे को तुच्छ आधारों पर खारिज करने की मनमानी कार्रवाई के कारण, याचिकाकर्ता को सात बार इस न्यायालय की शरण लेनी पड़ी–पाँच बार रिट याचिकाएँ और दो बार अवमानना याचिकाएँ दायर करके।

24. अतः, उपरोक्त तथ्यों के आलोक में, यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता के दावे पर दिनांक 07.09.2006 के शासनादेश के तहत विचार किया जाना चाहिए, और प्रतिवादी के लिए दिनांक 14.07.2020 के शासनादेश के आधार पर याचिकाकर्ता के दावे को खारिज करना उचित नहीं है, क्योंकि उक्त शासनादेश याचिकाकर्ता के मामले में लागू नहीं होता है।

25. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि संस्था को सहायता अनुदान पर लेने के याचिकाकर्ता के दावे को अस्वीकार करने वाली प्रतिवादी की कार्रवाई मनमानी और भेदभावपूर्ण है तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है, क्योंकि याचिकाकर्ता की संस्था से कनिष्ठ संस्थाओं को सहायता अनुदान पर ले लिया गया है, जबकि याचिकाकर्ता की संस्था को दिनांक 07.09.2006 के शासनादेश के तहत सहायता अनुदान के लाभ से वंचित रखा गया है।

26. यह भी तर्क दिया गया है कि याचिकाओं के समूह में इस न्यायालय के दिनांक 27.08.2013 के निर्णय के बाद भी, राज्य सरकार ने 'जूनियर हाई स्कूल, रूपन छपरा, ग्राम व पोस्ट रूपन छपरा, जिला देवरिया' नामक एक संस्था को सहायता अनुदान का लाभ प्रदान किया है, इसलिए याचिकाकर्ता के दावे को खारिज करने वाली प्रतिवादी की कार्रवाई मनमानी एवं भेदभावपूर्ण है और विधिक रूप से कायम रखने योग्य नहीं है।

27. इसके विपरीत, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि रिट याचिका संख्या 38992 वर्ष 2017 में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांक 23.05.2019 के अनुपालन में राज्य सरकार ने एक शासनादेश दिनांकित 14.07.2020 जारी कर नीति निर्धारित की है, जिसके तहत सरकार ने यह निर्णय लिया है कि किसी नई संस्था को खोलना या नई संस्था को सहायता अनुदान पर लेना संभव नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि तथ्यों की ऐसी स्थिति में, आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

28. मैंने पक्षों के परस्पर विरोधी तर्कों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

29. मामले के तथ्यों का ऊपर वर्णन किया जा चुका है, इसलिए निर्णय को अनावश्यक रूप से बोझिल न करने के लिए उन्हें दोहराया नहीं जा रहा है।

30. जहाँ तक याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के पहले तर्क का प्रश्न है कि याचिकाकर्ता की संस्था के अधिकार वर्ष 2006 में ही उत्पन्न हो गए थे क्योंकि संस्था को दिनांक 07.09.2006 के शासनादेश के तहत सहायता अनुदान के लाभ से गलत तरीके से वंचित किया गया था, तो इस संबंध में यह ध्यान देना उचित है कि सहायक शिक्षा निदेशक (बेसिक), कानपुर मंडल, कानपुर ने दिनांक 04.01.2007 के पत्र द्वारा याचिकाकर्ता को सूचित किया था कि शासनादेश संख्या-2010/79-6-7(2) 2006 दिनांकित 07.09.2006 के तहत याचिकाकर्ता के दावे को इस आधार पर स्वीकार नहीं किया गया था कि स्थायी मान्यता प्रदान करने वाले आदेश पर हस्ताक्षर संदिग्ध प्रतीत होते हैं। हालांकि, रिकॉर्ड से पता चलता है कि उक्त आधार अस्तित्वहीन था क्योंकि सचिव, बेसिक शिक्षा परिषद, उ.प्र. इलाहाबाद ने दिनांक 17.01.2007 के पत्र के माध्यम से यह सत्यापित किया था कि याचिकाकर्ता की संस्था को क्षेत्रीय सहायक शिक्षा निदेशक (बेसिक), कानपुर मंडल, कानपुर द्वारा स्थायी मान्यता प्रदान की गई थी। दिनांक 17.01.2007 के आदेश का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत किया गया है:-

"उक्त के सम्बंध मे अवगत कराना है कि जनहित माध्यमिक विद्यालय मांचा कानपुर देहात को मान्यता मण्डलीय सहायक शिक्षा निदेशक बेसिक इलाहाबाद द्वारा प्रदान की गयी है। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी कानपुर देहात द्वारा परिषद कार्यालय को प्रस्तुत सूची जो परिषद कार्यालय को मान्यता प्रमाण पत्र निर्गत करने हेतु प्रेषित की गयी है उक्त सूची के कमांक 43 पर जनहित माध्यमिक विद्यालय मांचा कानपुर देहात का नाम अंकित है तथा पत्रांक 4962-96/86-81 दिनांक 24.10.86 को मान्यता निर्गत दिखायी गयी है।
कृपया उक्त के अनुसार आप स्वयं अपने स्तर से मान्यता के सत्यापन के सम्बंध मे नियमानुसार आवश्यक कार्यवाही करे।"

31. सचिव, बेसिक शिक्षा परिषद, उ.प्र. इलाहाबाद द्वारा सत्यापन के बाद, याचिकाकर्ता ने संस्था को सहायता अनुदान पर लेने के लिए अधिकारियों से संपर्क किया और जब कोई ध्यान नहीं दिया गया, तो याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या 30719 वर्ष 2008 दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसे इस न्यायालय द्वारा अधिकारी को याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करने के निर्देश के साथ निस्तारित किया गया था।

32. इसके पश्चात, शिक्षा निदेशक (बेसिक) ने एक आदेश पारित किया जिसमें यह माना गया कि संस्था सहायता अनुदान सूची में शामिल होने की हकदार है और अंतिम निर्णय लेने के लिए कागजात राज्य सरकार को भेज दिए। जब राज्य सरकार ने कोई निर्णय नहीं लिया, तो याचिकाकर्ता ने फिर से रिट याचिका संख्या 37081 वर्ष 2009 दायर करके इस न्यायालय की शरण ली।

33. तत्पश्चात, राज्य सरकार ने दिनांक 13.11.2009 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के दावे पर विचार किया और इसे इस आधार पर खारिज कर दिया कि दिनांक 02.07.1990 के शासनादेश के लागू होने के बाद, जूनियर हाई स्कूल में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी का केवल एक पद हो सकता है और चूंकि नियुक्ति पहले ही की जा चुकी थी, इसलिए 16.07.1992 को की गई बाद की नियुक्ति राज्य सरकार के आदेश का उल्लंघन करती है। अतः, याचिकाकर्ता सहायता अनुदान का हकदार नहीं है क्योंकि यह मान्यता की शर्तों का उल्लंघन करता है और इसमें वित्तीय जटिलताएं शामिल हैं।

34. याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 13.11.2009 के आदेश को रिट याचिका संख्या 66902 वर्ष 2009 में चुनौती दी गई थी। इस न्यायालय ने दिनांक 13.11.2009 के आदेश में अस्वीकृति के आधारों को कानूनन सही नहीं पाया और दिनांक 18.02.2011 के निर्णय द्वारा उक्त आदेश को रद्द कर दिया, साथ ही राज्य सरकार को याचिकाकर्ता के दावे पर पुनः विचार करने का निर्देश दिया। दिनांक 18.02.2011 के आदेश का प्रासंगिक अंश यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"संस्था पिछले लगभग 30 वर्षों से अस्तित्व में है। स्थायी मान्यता की तिथि सत्यापित की जा चुकी है और उस बिंदु पर कोई अवैधता नहीं है। यदि याचिकाकर्ता को सहायता अनुदान देने के लिए विचार किया जाता, तो

याचिकाकर्ता को स्थायी मान्यता प्रदान किए जाने की तिथि के अनुसार शामिल किया जाना चाहिए था और याचिकाकर्ता उक्त लाभ का हकदार था।

यह भी तर्क दिया गया है कि यह भेदभावपूर्ण रवैया अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है, क्योंकि याचिकाकर्ता को एक त्रुटिपूर्ण आधार पर बाहर कर दिया गया था जिसे बाद में हटा लिया गया और फिर बाद में एक नया आधार उठाया गया है।

1992 में दो चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की नियुक्ति से संबंधित मुद्दे को याचिकाकर्ता को बाहर करने के लिए एक बहाने के रूप में लिया गया है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जबकि याचिकाकर्ता की मान्यता 1986 की है जब उक्त शासनादेश अस्तित्व में नहीं था। इसलिए यह मानने का कोई अवसर नहीं है कि मान्यता आदेश का उल्लंघन किया गया है। अधिक से अधिक, 1992 में की गई दो नियुक्तियाँ सहायता अनुदान के लाभ की हकदार नहीं होंगी, लेकिन यह इस तरह के लाभ की उपलब्धता से इनकार करने का आधार नहीं हो सकता। याचिकाकर्ता की मान्यता अभी भी कायम है और यदि संस्था की मान्यता जारी रहती है, तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि याचिकाकर्ता के दावे पर विचार क्यों नहीं किया जा सकता। तदनुसार, रिट याचिका स्वीकार की जाती है और दिनांक 13 नवंबर 2009 के आदेश को रद्द किया जाता है।

विवाद का पुनः निर्णय करते समय, प्रतिवादी संख्या 1 इस तथ्य को ध्यान में रखेगा कि यदि इस तरह के लाभ के हकदार संस्थानों की संख्या के लिए कोई इष्टतम सीमा प्रदान की गई है, तो याचिकाकर्ता को ऐसे संस्थान के विरुद्ध समायोजित करना होगा जिसे याचिकाकर्ता के स्थान पर ऐसा लाभ दिया गया है या कोई वैकल्पिक व्यवस्था की जाएगी।"

35. इसके पश्चात, राज्य सरकार ने फिर से दिनांक 11.07.2011 को एक आदेश पारित किया जिसे याचिकाकर्ता द्वारा पुनः रिट याचिका संख्या 48835 वर्ष 2009 दायर करके चुनौती दी गई। उक्त रिट याचिका को इस न्यायालय ने दिनांक 27.08.2013 के निर्णय और आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया।

36. दिनांक 27.08.2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 546 वर्ष 2014 दायर की गई थी, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 11.09.2014 के निर्णय द्वारा खारिज कर दिया।

37. अब, उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता दिनांक 07.09.2006 के शासनादेश के जारी होने के बाद से ही सहायता अनुदान पर लिए जाने के अपने दावे की पैरवी कर रहा है, और याचिकाकर्ता के दावे को पहली बार इस अमान्य आधार पर खारिज कर दिया गया था कि मान्यता आदेश पर हस्ताक्षर संदिग्ध थे। इसके बाद, सचिव, बेसिक शिक्षा परिषद, उ.प्र., इलाहाबाद ने संस्था को स्थायी मान्यता प्रदान करने वाले दिनांक 24.10.1986 के आदेश को सत्यापित किया और दिनांक 17.01.2007 को एक पत्र जारी किया कि याचिकाकर्ता की संस्था को स्थायी मान्यता प्रदान की गई थी। दिनांक 17.01.2007 के पत्र का प्रासंगिक अंश पहले ही ऊपर उद्धृत किया जा चुका है।

38. इसके पश्चात, दूसरी बार दिनांक 13.11.2009 के आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता के दावे को एक नए आधार पर खारिज कर दिया गया कि चूंकि जूनियर हाई स्कूल में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी का केवल एक ही पद हो सकता है, इसलिए चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी की बाद की नियुक्ति मान्यता आदेश की शर्तों का उल्लंघन करती है और इसमें वित्तीय जटिलताएं भी शामिल हैं। रिट याचिका संख्या 66902 वर्ष 2009 में इस न्यायालय द्वारा उक्त आधार को भी विधिमान्य नहीं पाया गया। तदनुसार, इस न्यायालय ने दिनांक 18.02.2011 के निर्णय और आदेश द्वारा 13.11.2009 के आदेश को रद्द कर दिया।

39. यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि इस न्यायालय ने मामले को प्राधिकारी के पास वापस भेजते समय, ऊपर उद्धृत दिनांक 18.02.2011 के निर्णय के रेखांकित भाग में स्पष्ट रूप से प्राधिकारी को निर्देशित किया था कि यदि इस तरह के लाभ के हकदार संस्थानों की संख्या के लिए कोई इष्टतम सीमा प्रदान की गई है, तो याचिकाकर्ता को ऐसे संस्थान के स्थान पर समायोजित करना होगा जिसे याचिकाकर्ता के बदले यह लाभ दिया गया है, या कोई अन्य वैकल्पिक व्यवस्था की जाएगी।

40. उपरोक्त तथ्य यह प्रकट करते हैं कि दिनांक 18.02.2011 के निर्णय में, इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता के पक्ष में स्पष्ट रूप से एक सकारात्मक निष्कर्ष दर्ज किया था कि याचिकाकर्ता की संस्था को ऐसे संस्थान के विरुद्ध समायोजित किया जाएगा जिसे याचिकाकर्ता के स्थान पर लाभ दिया गया है या कोई अन्य वैकल्पिक व्यवस्था की जाएगी।

41. इस न्यायालय के उपरोक्त सकारात्मक निर्देश के बावजूद, प्रतिवादी ने दिनांक 11.07.2011 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के दावे को फिर से खारिज कर दिया, जिसे याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या 48835 वर्ष 2011 में चुनौती दी। उक्त रिट याचिका स्वीकार की गई और उसके विरुद्ध दायर विशेष अपील भी खारिज कर दी गई।

42. अतः दिनांक 13.11.2018 का आदेश पारित होने से पहले, याचिकाकर्ता के दावे को किसी न किसी ऐसे आधार पर खारिज किया जाता रहा जो विधिक रूप से कायम रहने योग्य नहीं था।

43. यदि याचिकाकर्ता के दावे को उन आधारों पर खारिज नहीं किया गया होता जो कानूनन कायम रहने योग्य नहीं थे, तो याचिकाकर्ता की संस्था पहले ही सहायता अनुदान पर लिए जाने की हकदार थी और इस प्रकार, याचिकाकर्ता को शासनादेश दिनांक 14.07.2020 के माध्यम से आदेश संख्या 1143/79-6-2017-भा.सा-27/2017 द्वारा नई नीति लागू करने के बहाने सहायता अनुदान के दावे से वंचित नहीं किया जा सकता, क्योंकि सहायता अनुदान प्राप्त करने का याचिकाकर्ता का अधिकार शासनादेश दिनांक 07.09.2006 के तहत स्पष्ट रूप से स्थापित हो चुका था।

44. इस संबंध में, इस न्यायालय द्वारा रिट-सी संख्या 44284 वर्ष 2011 (उमा महेश्वर प्राइमरी पाठशाला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य) में दिए गए निर्णय का संदर्भ लेना उपयुक्त होगा। उक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 16 और 17 नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

"16. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों पर विचार करने के साथ-साथ रिकॉर्ड के परिशीलन के बाद, इस न्यायालय का यह मत है कि दो प्रासंगिक पहलू ऐसे हैं जिन पर आक्षेपित आदेश मौन है। पहला पहलू यह है कि क्या वे संस्थाएं जिन्हें पहले दिनांक 31.03.1994 के आदेश द्वारा सहायता अनुदान सूची के तहत लाया गया था, उन्हें दिनांक 05.10.2006 के शासनादेश के अनुसरण में सहायता अनुदान सूची से हटा दिया गया है या नहीं। यदि, दिनांक 05.10.2006 के बाद के शासनादेश द्वारा, सहायता अनुदान के तहत निजी संस्थानों के केवल नए समावेशन को रोका गया था, लेकिन पहले से किए गए समावेशन बने रहे, तो याचिकाकर्ता-संस्था के लिए रिट-सी संख्या 15429 वर्ष 1994 में पारित दिनांक 21.09.2010 के पिछले आदेश के संदर्भ में अपने दावे को आगे बढ़ाने का 'वाद-कारण' जीवित रहता है, क्योंकि यह राज्य अधिकारियों की ओर से उस कथित भेदभाव पर निर्भर था जिसमें याचिकाकर्ता-संस्था को सहायता अनुदान सूची में शामिल नहीं किया गया था, जबकि अन्य संस्थाओं को, जो समान स्थिति में थीं लेकिन याचिकाकर्ता-संस्था के बाद स्थापित हुई थीं, सहायता अनुदान सूची में शामिल कर लिया गया था। दिनांक 05.10.2006 का शासनादेश दिनांक 20.12.2011 के प्रति-शपथपत्र के अनुलग्नक सीए-1 के रूप में रिकॉर्ड पर लाया गया है। इसके परिशीलन से, प्रथम दृष्टया, यह पता चलता है कि यह सहायता अनुदान सूची में पहले से शामिल संस्थानों को सहायता अनुदान देना बंद नहीं करता है, बल्कि केवल सहायता अनुदान सूची के तहत निजी संस्थानों के नए प्रवेश को रोकने का प्रयास करता है। इसलिए, उपरोक्त पहलू एक प्रासंगिक विचारणीय विषय था जिस पर आक्षेपित आदेश पारित करते समय प्रतिवादी संख्या 1 का ध्यान नहीं गया।

17. दूसरा पहलू, जिस पर विचार किया जाना आवश्यक है, पहले पहलू के निर्धारण पर निर्भर है। यदि दिनांक 31.03.1994 के आदेश द्वारा सहायता अनुदान सूची में शामिल की गई संस्थाओं को सहायता अनुदान मिलना जारी है, और यदि यह पाया जाता है कि याचिकाकर्ता की संस्था को सहायता अनुदान के दायरे में आने से गलत तरीके से वंचित किया गया था, भले ही वह पात्र थी और उन संस्थाओं की स्थापना से पहले स्थापित हुई थी जिन्हें सहायता अनुदान के दायरे में लाया गया था, तो प्रतिवादी संख्या 1 को रिट-सी संख्या 15429 वर्ष 1994 में पारित दिनांक 21.09.2010 के आदेश के संदर्भ में याचिकाकर्ता संस्था को लाभ प्रदान करना आवश्यक था। इसलिए, याचिकाकर्ता-संस्था के प्रत्यावेदन को खारिज करते समय एक विशिष्ट निष्कर्ष दिया जाना चाहिए था कि क्या दिनांक 31.03.1994 के आदेश के माध्यम से सहायता अनुदान के तहत लाई गई कोई भी संस्था, याचिकाकर्ता-संस्था के बाद स्थापित हुई थी या नहीं, या यह कि किसी कारणवश उसका दावा उस समय याचिकाकर्ता-संस्था की तुलना में प्राथमिकता में उच्च था जब पिछला शासनादेश दिनांक 31.03.1994 जारी किया गया था। आक्षेपित आदेश ऐसा निष्कर्ष दर्ज करने में विफल रहा है।"

45. इसी प्रकार, रिट याचिका संख्या 17883 वर्ष 2008 में, इस न्यायालय ने समान परिस्थितियों में रिट याचिका को स्वीकार किया था, जहाँ याचिकाकर्ता दिनांक 06.09.2006 के शासनादेश के तहत सहायता अनुदान पर लिए जाने का पात्र था, लेकिन उसे तुच्छ आधारों पर सहायता अनुदान देने से मना कर दिया गया था। इस न्यायालय ने सहायता अनुदान प्राप्त करने के याचिकाकर्ता के अधिकार को अनुमोदित किया और अधिकारियों को नई संस्था को सहायता अनुदान पर लेने का निर्देश दिया। रिट याचिका संख्या 17883 वर्ष 2008 में दिनांक 03.11.2017 को पारित आदेश का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत किया गया है:-

"पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, मेरा यह सुस्पष्ट मत है कि याचिकाकर्ताओं को सहायता अनुदान उपलब्ध कराया जाना चाहिए। रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि वर्ष 2006 से ही, जब कुछ संस्थाओं को सहायता सूची में लाने के लिए अधिसूचना विज्ञापित की गई थी, याचिकाकर्ताओं को लगभग अस्तित्वहीन कारणों से अनुदान देने से मना कर दिया गया था। 04.01.2007 को अनुदान इस आधार पर देने से मना कर दिया गया था क्योंकि याचिकाकर्ता जूनियर हाई स्कूल के अतिरिक्त इंटरमीडिएट की कक्षाएं भी संचालित कर रहे थे। जब यह भ्रम दूर हो गया और 04.01.2007 के आदेश को चुनौती देने वाली रिट याचिका 06.10.2007 को स्वीकार कर ली गई, तब 28.02.2008 को बेसिक शिक्षा अधिकारी की 26.02.2008 की रिपोर्ट, जो याचिकाकर्ताओं के पक्ष में थी, पर विचार किए बिना वित्तीय सहायता देने से मना कर दिया गया। इसी कारण, न्यायालय ने 11.04.2014 को प्रतिवादी संख्या 1 को 26.02.2008 की रिपोर्ट को देखकर नए सिरे से आदेश पारित करने का निर्देश दिया था। जब प्रतिवादियों ने 16.07.2014 को पुनः यह कहते हुए आदेश पारित किया कि याचिकाकर्ताओं को वित्तीय सहायता नहीं दी जा सकती क्योंकि जिन एक हजार स्कूलों को सहायता दी जानी थी उन्हें पहले ही दी जा चुकी है और याचिकाकर्ताओं की संस्था को वित्तीय सहायता देने के लिए आगे कोई बजट उपलब्ध नहीं है, तब उस आदेश को फिर से चुनौती दी गई। यह स्पष्ट है कि जब 16.07.2014 का आदेश पारित किया गया, तब प्रतिवादी संख्या 1 ने अपने ही अधिकारी की 16.04.2012 की उस रिपोर्ट को नहीं देखा था जिसमें कहा गया था कि 7 और संस्थाओं को सहायता अनुदान सूची में लाया जा सकता है।

मामला चाहे जो भी हो, भले ही सभी एक हजार संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान कर दी गई हो, याचिकाकर्ता की संस्था को वित्तीय सहायता से वंचित नहीं किया जा सकता है। वह वर्ष 2006 में ही सहायता प्राप्त करने के लिए पूरी तरह पात्र थी। जिन कारणों का बिल्कुल अस्तित्व नहीं था, उनके आधार पर याचिकाकर्ताओं को 04.01.2007 और 28.02.2008 को सहायता देने से मना किया गया था। अब वर्ष 2014 में प्रतिवादियों के लिए यह कहना उचित नहीं है कि सभी एक हजार संस्थाओं को सहायता दी जा चुकी है और इसलिए याचिकाकर्ता सहायता प्राप्त नहीं कर सकते।

रिकॉर्ड से यह पूरी तरह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ताओं को बिल्कुल अस्तित्वहीन कारणों से परेशान किया गया है। याचिकाकर्ताओं को इस न्यायालय के समक्ष तीन आदेशों, यानी दिनांक 4.1.2007, 28.2.2008 और 11.4.2014 के आदेशों को चुनौती देने के लिए मजबूर किया गया और यह सब इसलिए हुआ क्योंकि प्रतिवादी संख्या 1 बिना किसी विवेक के आदेश पारित कर रहे थे। निश्चित रूप से, प्रतिवादी याचिकाकर्ताओं को सहायता प्रदान करने के दायित्व के अधीन हैं क्योंकि 'नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009', 14

वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिए मुफ्त शिक्षा का वादा करता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21-क ने भी 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार को भारत के संविधान के तहत एक मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी है और इस प्रकार याचिकाकर्ता वित्तीय सहायता प्राप्त करने के पात्र हैं।

ऐसी परिस्थितियों में, मैं दिनांक 26.2.2008 के आदेश और दिनांक 16.7.2014 के आदेश को रद्द करता हूँ और प्रतिवादी संख्या 1 को याचिकाकर्ताओं को तत्काल पूर्ण वित्तीय सहायता प्रदान करने का निर्देश देते हुए एक परमादेश जारी करता हूँ। चूंकि याचिकाकर्ताओं को वर्ष 2006 से ही इस न्यायालय के चक्कर लगाने और मुकदमेबाजी में शामिल होने के लिए मजबूर किया गया है, इसलिए मुझे लगता है कि प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से एक महीने की अवधि के भीतर उन्हें 25,000/- रुपये की राशि का भुगतान करके क्षतिपूर्ति की जानी चाहिए।

यह रिट याचिका वादव्यय के साथ स्वीकार की जाती है।"

46. इसी प्रकार, रिट-ए संख्या 12733 वर्ष 2020 में, इस न्यायालय ने रिट याचिका संख्या 17883 वर्ष 2008 में दिए गए निर्णय पर भरोसा करते हुए रिट याचिका स्वीकार की थी और संस्था को सहायता अनुदान पर लेने का निर्देश दिया था।

47. अतः, उपरोक्त तथ्यों और पूर्व निर्णयों में निर्धारित विधि के आलोक में, यह न्यायालय याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के तर्क में सार पाता है कि चूंकि याचिकाकर्ता का संस्था को सहायता अनुदान पर लेने का अधिकार दिनांक 07.09.2006 के शासनादेश के तहत स्पष्ट रूप से स्थापित हो चुका था, और रिट याचिका संख्या 66902 वर्ष 2009 का निर्णय करते समय इस न्यायालय का एक सकारात्मक निर्देश था कि यदि संस्थाओं की संख्या के लिए कोई इष्टतम सीमा प्रदान की गई है और याचिकाकर्ता ऐसे लाभ का हकदार है, तो याचिकाकर्ता को उस संस्थान के स्थान पर समायोजित करना होगा जिसे याचिकाकर्ता के बदले यह लाभ दिया गया है, इसलिए, इस आधार पर याचिकाकर्ता के दावे को खारिज करना कि दिनांक 14.07.2020 के शासनादेश के आलोक में याचिकाकर्ता को सहायता अनुदान का लाभ नहीं दिया जा सकता, भ्रामक है; विशेष रूप से तब, जब दिनांक 13.10.2018 के आदेश में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है कि याचिकाकर्ता दिनांक 07.09.2006 के शासनादेश के तहत सहायता अनुदान के लिए पात्र नहीं है।

48. जहाँ तक याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अन्य तर्क का प्रश्न है कि प्रतिवादी की कार्रवाई मनमानी और भेदभावपूर्ण है, तो इसके लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 9 और 23 में किए गए कथनों पर भरोसा किया है, जिन्हें नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"9. यह कि दिनांक 02.12.2006 को राज्य सरकार ने एक शासनादेश जारी किया जिसके द्वारा 1000 जूनियर हाई स्कूलों को सहायता अनुदान पर लाया गया। हालांकि, उक्त शासनादेश के साथ संलग्न सूची में वर्तमान

संस्था का नाम शामिल नहीं था। यह इस तथ्य के बावजूद है कि याचिकाकर्ता संस्था की तुलना में बहुत बाद की स्थायी मान्यता तिथि वाली संस्थाओं को शासनादेश में शामिल किया गया था।

23. यह कि उपरोक्त निर्णय की एक प्रमाणित प्रति राज्य अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत की गई थी। हालांकि, आज तक याचिकाकर्ता संस्था के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया गया है। यह इस तथ्य के बावजूद है कि एकल न्यायाधीश के उसी निर्णय के अनुपालन में, जिसकी पुष्टि खंडपीठ द्वारा की गई थी, राज्य सरकार ने दिनांक 03.01.2017 के आदेश द्वारा 'जूनियर हाई स्कूल रूपन छपरा, ग्राम व पोस्ट रूपन छपरा, जिला देवरिया' नाम की एक संस्था को सहायता अनुदान पर ले लिया है।"

49. रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 9 और 23 का उत्तर प्रतिवादियों द्वारा प्रत्युत्तर शपथ पत्र के पैराग्राफ संख्या 10 और 25 में दिया गया है, जिन्हें नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"10. यह कि उपरोक्त रिट याचिका और अन्य रिट याचिकाओं का निर्णय इस माननीय न्यायालय द्वारा दिनांक 23.05.2019 के आदेश के माध्यम से किया गया था, और उसके अनुपालन में, उत्तर प्रदेश राज्य में संचालित मान्यता प्राप्त संस्थाओं को सहायता अनुदान सूची में लेने के लिए, शासनादेश संख्या 499/अड़सठ-3-2020, लखनऊ, दिनांक 14.07.2020 के माध्यम से निम्नलिखित नीति निर्धारित/नियत की गई है:-

"प्रस्तर-8 "प्राथमिक शिक्षा के मान्यता प्राप्त असहायिक विद्यालयों के संबंध में विगत वर्षों की स्थापित नीति का पुर्नावलोकन किया गया। सम्यक् विचारोपरान्त पाया गया कि सम्प्रति प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार किये जाने एवं जो विद्यालय से पूर्व में स्थापित है उन्हें आधारभूत सुविधायें उपलब्ध कराते हुए विकसित किया जाना आवश्यक है जिससे विद्यालयों में शैक्षिक गुणवत्ता में सुधार हो सके। इस हेतु छात्र संख्या के आधार पर अध्यापकों की तैनात (समायोजन), छात्रों एवं अध्यापकों की नियमित उपस्थिति, पठन-पाठन का नियमित अनुश्रवण किया जाये, जिससे छात्र-छात्राओं के अधिगमस्तर में वृद्धि हो सके। यदि नये विद्यालयों को अनुदान पर लिया जायेगा तो निश्चित रूप से राज्य सरकार पर वित्तीय व्यय भार पड़ेगा और पूर्व संचालित विद्यालयों में आधारभूत सुविधाएं व शैक्षिक गुणवत्ता के सुधार हेतु अन्य योजनाएं प्रभावित होंगी। अतः नये निजी विद्यालयों को अनुदान पर लेना उचित नहीं है। अतः प्राथमिक शिक्षा में नवीन परिषदीय विद्यालय स्थापित किया जाना अथवा निजी विद्यालयों को अनुदानित किया जाना समीचीन नहीं पाया गया है।"

25. यह कि रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 23 की सामग्री रिकॉर्ड का विषय है और इसलिए इसके किसी उत्तर की आवश्यकता नहीं है। उत्तर प्रदेश सरकार के विशेष सचिव द्वारा जारी पत्र संख्या 18/79-6-2017, दिनांक 03.01.2017 में स्पष्ट निर्देश है कि उपरोक्त आदेश को अन्य मामलों के लिए उदाहरण (नजीर) नहीं माना जाएगा।"

50. प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 10 और 25 की सामग्री से यह स्पष्ट है कि प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता द्वारा किए गए उन विशिष्ट कथनों का खंडन नहीं किया है कि याचिकाकर्ता से कनिष्ठ संस्थाओं को सहायता अनुदान का लाभ दिया गया है। इसके अलावा, प्रतिवादी प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 25 में यह स्वीकार

करते हैं कि 'जूनियर हाई स्कूल रूपन छपरा, ग्राम व पोस्ट रूपन छपरा, जिला देवरिया' नामक संस्था को मान्यता प्रदान की गई है। हालांकि, उन्होंने केवल यह बहाना बनाया है कि 03.01.2017 के शासनादेश में स्पष्ट शर्त है कि उपरोक्त आदेश को अन्य मामलों के लिए उदाहरण (नजीर) नहीं माना जाएगा।

51. यह न्यायालय यह ध्यान दे सकता है कि दिनांक 03.01.2017 के आदेश में इस तरह का निर्देश विधिक रूप से कायम रहने योग्य नहीं है, क्योंकि राज्य सरकार को दो समान स्थिति वाले व्यक्तियों के बीच भेदभाव करने का कोई अधिकार नहीं है। वर्तमान मामले में, एक बार जब राज्य सरकार ने समान स्थिति वाली संस्था, यानी 'जूनियर हाई स्कूल रूपन छपरा, ग्राम व पोस्ट रूपन छपरा, जिला देवरिया' को सहायता अनुदान का लाभ दे दिया है, तो राज्य सरकार इस बहाने याचिकाकर्ता की संस्था को उक्त लाभ से वंचित नहीं कर सकती कि उत्तर प्रदेश सरकार के विशेष सचिव ने 03.01.2017 के आदेश में यह कहा है कि इसे अन्य मामलों के लिए उदाहरण नहीं माना जाएगा।

52. अतः, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता की संस्था को सहायता अनुदान पर न लेने की प्रतिवादियों की कार्रवाई मनमानी है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है, इसलिए आक्षेपित आदेश इस कारण से भी विधिक रूप से कायम रहने योग्य नहीं है।

53. सामान्यतः यह न्यायालय मामले को नए सिरे से विचार करने के लिए प्राधिकारी को वापस भेज देता, लेकिन वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, याचिकाकर्ता वर्ष 2009 से संघर्ष कर रहा है और वर्तमान रिट याचिका दायर करने से पहले उसे सात बार इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाना पड़ा है, इसलिए यह न्यायालय संबंधित प्राधिकारी को नए सिरे से निर्णय लेने के लिए मामला वापस भेजना उचित नहीं समझता है।

54. यह ध्यान देना भी प्रासंगिक है कि यह न्यायालय ऊपर पहले ही यह व्यवस्था दे चुका है कि याचिकाकर्ता का सहायता अनुदान पर लिए जाने का अधिकार दिनांक 07.09.2006 के शासनादेश के तहत स्पष्ट रूप से स्थापित हो चुका है, और आक्षेपित आदेश इस आधार पर पारित नहीं किया गया है कि याचिकाकर्ता दिनांक 07.09.2006 के शासनादेश के तहत सहायता अनुदान के लिए पात्र नहीं है, बल्कि एक नया आधार बनाया गया है कि दिनांक 14.07.2020 के नए शासनादेश के बहाने याचिकाकर्ता को सहायता अनुदान का लाभ नहीं दिया जा सकता है, अतः तथ्यों के ऐसे परिप्रेक्ष्य में, मामले को संबंधित प्राधिकारी को वापस भेजना उचित नहीं होगा।

55. इस प्रकार, ऊपर दिए गए कारणों से, यह न्यायालय आक्षेपित आदेश को अपास्त करता है और प्रतिवादी संख्या 1-विशेष सचिव, बेसिक शिक्षा, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ को निर्देश देता है कि वे याचिकाकर्ता की संस्था को सहायता अनुदान पर लें और याचिकाकर्ता को तत्काल पूर्ण वित्तीय सहायता प्रदान करें।

56. यह रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है। वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

(2025) 5 ILRA 1521

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट 'सी' संख्या 1000570 वर्ष 2001

लक्ष्मी आपत्ति दाखिल उचित पीठ एवं अन्य **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उप जिलाधिकारी/उप-मंडलीय अधिकारी, मिश्रिख, सीतापुर एवं अन्य **...प्रत्यर्थी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
मोहम्मद अली

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

अनुवादित

(क) प्रशासनिक कानून - एक प्रशासनिक आदेश की न्यायिक समीक्षा - उत्तर प्रदेश ज़मींदारी विनाश एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 132 - क्या एक बाद के अधिकारी के पास सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना अपने पूर्ववर्ती के आदेश को रद्द करने का अधिकार क्षेत्र है - एक बाद के अधिकारी द्वारा पारित प्रशासनिक आदेश, जो अपने पूर्ववर्ती के आदेश को रद्द करता है, अमान्य है और खारिज किए जाने योग्य है यदि वह बिना नोटिस, बिना सुनवाई के अवसर और बिना समीक्षा की निहित शक्ति के किया गया है। (पैराग्राफ - 7 से 10)

याचिकाकर्ता, जो अनुसूचित जाति का एक भूमिहीन खेतिहर मजदूर है और 40 से अधिक वर्षों से भूमि पर काबिज है - ने उप-जिलाधिकारी के उस आदेश को चुनौती दी जिसके द्वारा बिना किसी नोटिस के पूर्व में दिए गए अनुदान को रद्द कर दिया गया था - जो कथित तौर पर सामाजिक वानिकी के दावे के आधार पर पारित किया गया था - याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना। (पैराग्राफ - 3 से 6)

निर्णीत: - आक्षेपित आदेश को इस आधार पर रद्द कर दिया गया कि इसे बिना किसी नोटिस या सुनवाई के अवसर के पारित किया गया था, और अधिकारी के पास अपने पूर्ववर्ती द्वारा पारित पिछले आदेश की समीक्षा करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। (पैराग्राफ - 10, 11, 12)

याचिका स्वीकार की गई। (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादी-राज्य की ओर से विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता विपक्षी संख्या 1 के दिनांक 07.02.2001 के उस आदेश को चुनौती दे रहा है, जिसके द्वारा पूर्ववर्ती आदेश दिनांक 29.12.1997 को याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर दिए बिना रद्द कर दिया गया है।

3. मामले का तथ्यात्मक ढांचा यह है कि याचिकाकर्ता अनुसूचित जाति श्रेणी से संबंधित है और एक भूमिहीन खेतिहर मजदूर है। याचिकाकर्ता पिछले 40 से अधिक वर्षों से प्रश्नगत भूमि पर निरंतर काबिज और दखलकार है। प्रारंभ में, उक्त भूमि ऊसर भूमि थी। याचिकाकर्ता ने अपने कठिन परिश्रम और कौशल से उसे उपजाऊ भूमि में बदलने में सफलता प्राप्त की। क्षेत्र के लेखपाल ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की कि याचिकाकर्ता 03.06.1985 से पूर्व से ही प्रश्नगत भूमि पर काबिज है और वर्तमान में उसने बोया है।

4. तत्कालीन उप जिलाधिकारी ने दिनांक 29.12.1997 के आदेश के माध्यम से तहसीलदार की रिपोर्ट और खसरा नंबर 141 सहित मामले के रिकॉर्ड पर उपलब्ध अन्य दस्तावेजों पर विचार किया, जिसमें यह दर्ज था कि याचिकाकर्ता ने उक्त भूमि पर धान की फसल बोई है। वह भूमि अधिनियम की धारा 132 के तहत आरक्षित नहीं थी।

5. दिनांक 08.12.2000 को वन विभाग के कुछ कर्मचारियों ने प्रश्नगत भूमि पर खाइयां खोदना शुरू कर दिया और याचिकाकर्ता द्वारा विरोध किए जाने पर, उन्हें उनके द्वारा गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी गई। याचिकाकर्ता ने दिनांक 08.12.2000 को आवेदन दाखिल करके उप जिलाधिकारी, मिश्रिख से संपर्क किया। उप जिलाधिकारी ने दिनांक 16.12.2000 के आदेश के माध्यम से वन क्षेत्राधिकारी, मिश्रिख को याचिकाकर्ता की भूमि पर खाइयां खोदने से रोक दिया। जब वन विभाग ने उपरोक्त आदेश का अनुपालन नहीं किया, तो याचिकाकर्ता ने अपर जिला मजिस्ट्रेट, सीतापुर को इससे अवगत कराया, जिन्होंने दिनांक 30.12.2000 के आदेश के माध्यम से वन क्षेत्राधिकारी, मिश्रिख को दिनांक 16.12.2000 के आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करने का निर्देश दिया।

6. आक्षेपित आदेश पर्याप्त समय बीत जाने के बाद एकपक्षीय रूप से पारित किया गया है, जो दिनांक 29.12.1997 के पूर्ववर्ती आदेश की समीक्षा के समान है। आक्षेपित आदेश के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि प्रभारी निदेशक, सामाजिक वानिकी द्वारा भेजे गए पत्र के आधार पर यह आदेश पारित किया गया है।

उक्त पत्र में यह आरोप लगाया गया था कि प्रश्नगत भूमि सामाजिक वानिकी के लिए आरक्षित थी। इसके बाद कथित तौर पर नायब तहसीलदार द्वारा जांच की गई और फिर विवादित आदेश पारित किया गया, जिसके द्वारा उनके पूर्ववर्ती द्वारा पारित दिनांक 29.12.1997 के पूर्ववर्ती आदेश को याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना रद्द कर दिया गया है।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि बाद के अधिकारी के पास अपने पूर्ववर्ती द्वारा पारित पिछले आदेश की समीक्षा करने का अधिकार क्षेत्र नहीं है। उनका अगला तर्क यह है कि आक्षेपित आदेश बिना किसी नोटिस और सुनवाई का अवसर दिए बिना पारित किया गया है। इस संबंध में, रिट याचिका के पैराग्राफ 18 और 19 में तथ्यों का विवरण दिया गया है।

8. दूसरी ओर, प्रतिवादी-राज्य की ओर से विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने तर्क दिया कि आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि या अवैधता नहीं है और यह एक न्यायोचित और वैध आदेश है।

9. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया है।

10. यह पक्षकारों का स्वीकृत मामला है कि आदेश पारित करने से पूर्व याचिकाकर्ता को न तो कोई नोटिस दिया गया और न ही सुनवाई का अवसर प्रदान किया गया। यह भी स्वीकार किया गया है कि आक्षेपित आदेश पारित करने वाले अधिकारी (विपक्षी संख्या 1) के पास समीक्षा करने की शक्ति नहीं है। रिट याचिका के पैराग्राफ 18 और 19 में दिए गए तथ्यों को प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ 20 में स्वीकार किया गया है कि याचिकाकर्ता को न तो कोई नोटिस दिया गया और न ही सुनवाई का अवसर प्रदान किया गया।

11. ऊपर दर्ज किए गए कारणों के दृष्टिगत, रिट याचिका सफल होती है और इसे **स्वीकार** किया जाता है।

12. आक्षेपित आदेश दिनांक 07.02.2001 एतद्द्वारा रद्द किया जाता है।

13. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 5 ILRA 1523

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 16.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट सी संख्या 1002411 वर्ष 1999

मोहम्मद आरिफ खान और अन्य **....याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **....प्रतिवादी**

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:
एम.ए. खान

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

(ए) प्रशासनिक विधि - आग्नेयास्त्र - संसदीय चुनावों के दौरान लाइसेंस प्राप्त आग्नेयास्त्रों को जमा करना - शस्त्र अधिनियम, 1959 - धारा 24-ए और 24-बी - जमा करने की आवश्यकता वाले पुलिस निर्देश की वैधता - लाइसेंस का कोई निलंबन/रद्दीकरण नहीं - वैधानिक आधार का अभाव - चुनाव आयोग - लाइसेंस धारकों को आग्नेयास्त्र जमा करने के लिए तब तक मजबूर नहीं किया जा सकता जब तक कि कानून के अनुसार लाइसेंस निलंबित या रद्द न किया गया हो - प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य और आक्षेपित कार्रवाई के बीच कोई संबंध नहीं - लाइसेंस निलंबित/रद्द करने वाले वैधानिक आदेश की अनुपस्थिति में लाइसेंस प्राप्त आग्नेयास्त्र जमा करने को लागू नहीं किया जा सकता - पुलिस केवल चुनाव प्रक्रिया शुरू होने के आधार पर जमा करने के लिए मजबूर नहीं कर सकती - अधिकारी पूर्व लिखित नोटिस के बिना आग्नेयास्त्र लाइसेंस धारकों को आग्नेयास्त्र जमा करने के लिए मजबूर नहीं करेंगे, विशेष रूप से यदि उनके पास वैध लाइसेंस हैं, कोई आपराधिक इतिहास नहीं है, और सुरक्षा उद्देश्यों के लिए लाइसेंस दिया गया था। (पैरा - 8, 20 से 23)

याचिकाकर्ता, जिनमें अधिवक्ता और कानून का पालन करने वाले नागरिक शामिल हैं, जो अपनी सुरक्षा के लिए वैध और नवीनीकृत आग्नेयास्त्र लाइसेंस रखते हैं - जिनका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है, उन्हें आगामी संसदीय चुनावों के कारण पुलिस अधिकारियों द्वारा अपने आग्नेयास्त्रों को पुलिस स्टेशन में जमा करने का निर्देश दिया गया था - बिना किसी लिखित सूचना के एक सामान्य आदेश के माध्यम से - याचिकाकर्ताओं

ने एक रिट याचिका दायर कर परमादेश की मांग की, जिसमें अधिकारियों को उन्हें अपने आग्नेयास्त्र जमा करने के लिए मजबूर न करने का आदेश देने का अनुरोध किया गया। **(पैरा - 2, 3)**

निर्णय: चुनावों के दौरान शांति और शांतिपूर्ण संचालन सुनिश्चित करने के लिए, संबंधित पुलिस स्टेशन में लिखित नोटिस जारी करके आग्नेयास्त्र जमा कराए जा सकते हैं, लेकिन अधिकारी किसी भी स्थिति में उन आग्नेयास्त्र लाइसेंस धारकों को अपने आग्नेयास्त्र जमा करने के लिए मजबूर नहीं करेंगे जिनके पास वैध लाइसेंस है, जिनका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है, और जिन्हें सुरक्षा के उद्देश्य से लाइसेंस जारी किया गया था। प्रतिवादियों को निर्देश दिया गया कि वे पूर्व लिखित नोटिस के बिना याचिकाकर्ताओं को अपने आग्नेयास्त्र जमा करने के लिए मजबूर न करें। एक सामान्य आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ताओं को परेशान करने के कारण, याचिकाकर्ताओं को छह महीने के भीतर भुगतान किए जाने वाले 25,000/- रुपये का अर्थदंड प्रदान किया गया। **(पैरा - 21 से 24)**

याचिका निस्तारित। (ई-7)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. रवि शंकर तिवारी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, जिलाधिकारी अमेठी एवं अन्य के माध्यम से, 2024: AHC-LKO: 25540

2. मोहम्मद आरिफ खान बनाम जिलाधिकारी, एलसीडी 1994 (12)

3. शहाबुद्दीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उच्च न्यायालय - लखनऊ खंडपीठ), एसीसी 2000 (40)

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा पारित)

1. श्री एम.ए. खान, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिन्हें याचिकाकर्ताओं की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा मोहम्मद असलम खान सहायता प्रदान की गई, को सुना गया तथा राज्य-प्रतिवादियों की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ताओं ने 'परमादेश' की प्रकृति की एक रिट जारी करने की प्रार्थना की है, जिसमें विपक्षी दलों को यह आदेश देने का अनुरोध किया गया है कि वे याचिकाकर्ताओं को अपने आग्नेयास्त्र और लाइसेंस संबंधित पुलिस स्टेशन में जमा करने के लिए मजबूर न करें।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता संख्या 1, 2, 4 और 6 अभ्यास करने वाले अधिवक्ता हैं, जबकि याचिकाकर्ता संख्या 3, 5, 7 से 13 सम्मानित और कानून का पालन करने वाले नागरिक हैं जिनका

पूर्ववृत्त अच्छा है। याचिकाकर्ताओं ने अपने जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के लिए आग्नेयास्त्र लाइसेंस प्रदान करने हेतु आवेदन किया था।

विपक्षी संख्या 2 ने संबंधित पुलिस स्टेशन से उचित जांच के बाद, यह पाते हुए कि याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे पता चले कि उनका कोई आपराधिक इतिहास है, उन्हें आग्नेयास्त्र लाइसेंस प्रदान किए थे, जिन्हें समय-समय पर नवीनीकृत किया गया है और वे आज की तिथि तक वैध हैं। याचिकाकर्ताओं के आग्नेयास्त्र लाइसेंस अब तक न तो निलंबित किए गए हैं और न ही रद्द किए गए हैं, और जिन याचिकाकर्ताओं को उनके जीवन और संपत्ति की रक्षा के लिए आग्नेयास्त्र लाइसेंस प्रदान किए गए हैं, वे उन्हें धारण कर रहे हैं और उनका अपने संबंधित आग्नेयास्त्रों पर कब्ज़ा है।

विपक्षी संख्या 3 से 7 ने अचानक याचिकाकर्ताओं के आवास पर पुलिस अधिकारियों को भेजा और उन्हें अपने आग्नेयास्त्र संबंधित पुलिस स्टेशन में जमा करने का निर्देश दिया क्योंकि संसदीय चुनाव की प्रक्रिया शुरू हो गई है। याचिकाकर्ताओं ने उनके आवास पर आए पुलिस अधिकारियों को सूचित किया कि उनके लाइसेंस वैध हैं। लाइसेंस उन्हें लाइसेंसिंग प्राधिकारी द्वारा प्रदान किए गए थे और उक्त लाइसेंस न तो निलंबित किए गए हैं और न ही रद्द किए गए हैं, ऐसे में याचिकाकर्ताओं को पुलिस स्टेशन में अपने आग्नेयास्त्र जमा करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता क्योंकि ये उनके जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं।

पुलिस अधिकारी यानी विपक्षी संख्या 4 से 7 याचिकाकर्ताओं पर लाइसेंस के साथ अपने आग्नेयास्त्र जमा करने का दबाव बना रहे हैं और ऐसा न करने पर उनके विरुद्ध दंडात्मक कार्रवाई करने तथा उन्हें उनके आग्नेयास्त्रों से वंचित करने की धमकी दे रहे हैं। लाइसेंसिंग प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ताओं को जारी किए गए उपरोक्त लाइसेंसों का समय-समय पर नवीनीकरण किया गया है और उनके विरुद्ध किसी भी प्रकार की कोई शिकायत नहीं है, न ही उनके लाइसेंस अब तक निलंबित या रद्द किए गए हैं, ऐसे में याचिकाकर्ताओं द्वारा आग्नेयास्त्र जमा करने के लिए विपक्षी संख्या 4 से 7 द्वारा जारी किए गए मौखिक निर्देश न केवल अवैध हैं बल्कि क्षेत्राधिकार से बाहर भी हैं।

4. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि उनके सर्वोत्तम ज्ञान के अनुसार, निर्वाचन आयोग द्वारा संबंधित याचिकाकर्ताओं को अपने आग्नेयास्त्र जमा करने के लिए ऐसा कोई निर्देश जारी नहीं किया गया है। चुनाव अवधि के दौरान, संपूर्ण पुलिस प्रशासन और अन्य अधिकारी चुनाव प्रक्रिया में व्यस्त रहेंगे, जिससे लाइसेंस धारकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के लिए कोई अन्य वैकल्पिक व्यवस्था नहीं होगी। अतः, वह आदेश जिसके द्वारा याचिकाकर्ताओं को अपने आग्नेयास्त्र जमा करने की आवश्यकता है, न केवल मनमाना है बल्कि अवैध भी है।

5. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह तर्क दिया कि याचिकाकर्ताओं की जानकारी के अनुसार, अब तक आयुध अधिनियम की धारा 24-ए और धारा 24-बी के तहत ऐसी कोई अधिसूचना जारी नहीं की गई है, जिसमें क्षेत्र में आग्नेयास्त्र रखने पर प्रतिबंध किया गया हो या धारा 24 बी के तहत सार्वजनिक स्थानों पर हथियार ले जाने पर प्रतिबंध हो, इसलिए आग्नेयास्त्र जमा करने के लिए जारी आदेश न केवल अवैध हैं, बल्कि क्षेत्राधिकार विहीन भी हैं।

6. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का यह भी तर्क है कि इसी तरह की परिस्थितियों में, इस माननीय न्यायालय ने प्रतिवादियों को केवल इस आधार पर याचिकाकर्ताओं को अपने आग्नेयास्त्रों को सौंपने के लिए मजबूर करने से रोक दिया है कि लोकसभा चुनाव की घोषणा हो गई है। याचिकाकर्ता विपक्षी संख्या 4 से 7 की उस कार्रवाई से व्यथित हैं, जो उन्हें संबंधित पुलिस स्टेशन में अपने आग्नेयास्त्र जमा करने के लिए मजबूर कर रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप न्याय की भारी विफलता हुई है, याचिकाकर्ताओं के पास वर्तमान रिट याचिका दायर करने के अलावा कोई अन्य वैकल्पिक और प्रभावी उपाय उपलब्ध नहीं है।

7. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि चूंकि प्रतिवादियों द्वारा याचिकाकर्ताओं के लाइसेंस को रद्द करने या निलंबित करने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की गई है और न ही अधिनियम की धारा 24-ए और 24-बी के तहत किसी प्रक्रिया का सहारा लिया गया है, इसलिए याचिकाकर्ताओं को उनके आग्नेयास्त्र जमा करने के लिए मजबूर करने वाली प्रतिवादियों की कार्रवाई न केवल अवैध है, बल्कि क्षेत्राधिकार विहीन भी है।

8. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह तर्क दिया कि विपक्षी दलों द्वारा याचिकाकर्ताओं के आग्नेयास्त्रों को पुलिस स्टेशन में जमा कराने और इसके पीछे प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य के बीच कोई तार्किक संबंध नहीं है, अतः विपक्षी दलों की कार्रवाई न केवल अवैध, मनमानी और अन्यायपूर्ण है, बल्कि तर्कहीन भी है।

9. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का अगला तर्क यह था कि पुलिस अधिकारी याचिकाकर्ताओं को उनके आग्नेयास्त्र और लाइसेंस जमा करने के लिए तब तक मजबूर नहीं कर सकते जब तक कि याचिकाकर्ताओं को जारी किए गए लाइसेंस रद्द या निलंबित न कर दिए गए हों; इस प्रकार विपक्षी दलों की कार्रवाई न केवल अवैध है बल्कि मनमानी भी है।

10. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अंत में यह तर्क दिया कि आयुध अधिनियम में पुलिस अधिकारियों द्वारा आग्नेयास्त्र जमा करने का निर्देश जारी करने का कोई प्रावधान तब तक नहीं है जब तक कि लाइसेंस धारक को जारी किया गया लाइसेंस निलंबित या रद्द न हो जाए, अतः विपक्षी दलों की कार्रवाई अवैध और क्षेत्राधिकार के बिना है।

11. अपनी दलीलों के समर्थन में, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **रवि शंकर तिवारी और 4 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, द्वारा जिला मजिस्ट्रेट अमेठी व 3 अन्य** (न्यूट्रल साइटेशन संख्या: 2024:AHC-LKO:25540) के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा जताया है।

12. विपक्षी दलों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता का तर्क है कि चुनाव के सुचारू और शांतिपूर्ण संचालन तथा चुनाव के दौरान कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए, निर्वाचन आयोग ने दिनांक 6 जुलाई, 1993 को एक परिपत्र जारी किया है जिसमें कहा गया है कि: "अग्न्यास्त्र लाइसेंस धारकों को नामांकन वापसी के अंतिम दिन

के अगले दिन से एक सप्ताह की अवधि के भीतर जिला प्रशासन के पास अपने सभी आग्नेयास्त्र जमा करने का निर्देश दिया जाएगा और इसे कड़ाई से लागू किया जाएगा। आग्नेयास्त्र परिणामों की घोषणा के एक सप्ताह बाद तक जमा रहेंगे। यदि पुलिस महानिदेशक की राय में किसी व्यक्ति की जान या संपत्ति को वास्तविक खतरा है, तो उसे पुलिस द्वारा आवश्यक सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए, लेकिन उसे किसी भी परिस्थिति में अपना व्यक्तिगत आग्नेयास्त्र ले जाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, और न ही उसके साथ कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसके पास लाइसेंस प्राप्त या अन्य कोई हथियार हो। इससे सामान्य रूप से प्रचार अवधि के दौरान (चुनावी सभाओं में गंभीर गड़बड़ी की घटनाओं को कम करने के लिए) और विशेष रूप से मतदान और मतगणना के दिन हथियारों के प्रदर्शन पर रोक सुनिश्चित होगी।

13. विपक्षी दलों के विद्वान अधिवक्ता ने परिपत्र का हवाला देते हुए कहा है कि आयोग ने केंद्र और राज्य सरकारों को उपरोक्त प्रत्येक उपाय को सख्ती से लागू करने का निर्देश दिया है। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे सभी संबंधित अधिकारियों को प्रस्तावित कदम उठाने के लिए विस्तृत और व्यापक निर्देश जारी करें और स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव के शांतिपूर्ण और सुचारू संचालन में निर्वाचन अधिकारियों की सहायता करें।

14. अपने तर्कों के समर्थन में, विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:

(i) मोहम्मद आरिफ खान बनाम जिला मजिस्ट्रेट, एल.सी.डी. 1994 (12) में रिपोर्ट किया गया। (ii) शहाबुद्दीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (एच.सी.-एल.बी.), ए.सी.सी. 2000 (40) में रिपोर्ट किया गया।

15. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के साथ-साथ पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों का अवलोकन किया है।

16. वर्तमान रिट याचिका में शामिल विवाद को सुलझाने के लिए, आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 24A को नीचे उद्धृत किया गया है:

(धारा 24-A: अशांत क्षेत्रों आदि में अधिसूचित हथियारों को रखने पर प्रतिबंध - (1) जहाँ केंद्र सरकार संतुष्ट है कि किसी क्षेत्र में सार्वजनिक शांति और व्यवस्था में व्यापक अशांति व्याप्त है या ऐसी अशांति का आसन्न खतरा है, और उस क्षेत्र में हथियारों के उपयोग से जुड़े अपराधों की रोकथाम के लिए ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है, तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा निम्नलिखित कदम उठा सकती है:

(ए) ऐसे क्षेत्र की सीमाओं को निर्दिष्ट करना;

(b) यह निर्देश दे सकती है कि अधिसूचना में निर्दिष्ट अवधि के प्रारंभ होने से पहले (जो अवधि राजपत्र में अधिसूचना के प्रकाशन की तिथि के चौथे दिन के बाद से पहले की किसी तिथि से प्रारंभ नहीं होगी), उस क्षेत्र

में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के पास अधिसूचना में निर्दिष्ट विवरण वाले जो भी हथियार (जिन्हें इसके बाद इस धारा में 'अधिसूचित हथियार' कहा गया है) हों, उन्हें वह व्यक्ति धारा 21 के प्रावधानों के अनुसार उक्त अवधि प्रारंभ होने से पहले जमा कर देगा; और इस उद्देश्य के लिए, राजपत्र में ऐसी अधिसूचना के प्रकाशन की तिथि से, उस व्यक्ति द्वारा किसी भी अधिसूचित हथियार को अपने पास रखना, इस अधिनियम के किसी अन्य प्रावधान (धारा 4 को छोड़कर) या उस समय लागू किसी अन्य कानून में किसी भी बात के होने के बावजूद, कानूनी नहीं माना जाएगा;

(सी) यह घोषित कर सकती है कि अधिसूचना में निर्दिष्ट अवधि के प्रारंभ होने से लेकर उसकी समाप्ति तक, किसी भी व्यक्ति के लिए उस क्षेत्र में किसी भी अधिसूचित हथियार को अपने कब्जे में रखना कानूनी नहीं होगा;

(डी) केंद्र सरकार या राज्य सरकार के ऐसे किसी अधीनस्थ अधिकारी को, जो अधिसूचना में निर्दिष्ट किया जाए, निम्नलिखित के लिए अधिकृत कर सकती है:

(i) अधिसूचना में निर्दिष्ट अवधि के दौरान किसी भी समय, उस क्षेत्र में मौजूद या वहां से गुजरने वाले किसी भी व्यक्ति, परिसर, पशु, जलयान, वाहन या किसी भी प्रकृति के परिवहन साधन, या किसी भी पात्र या कंटेनर की तलाशी लेना, यदि उस अधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण हो कि उस व्यक्ति द्वारा या उस परिसर, पशु, जलयान, वाहन, परिवहन साधन, पात्र या कंटेनर में कोई अधिसूचित हथियार छिपाया गया है।

(ii) अधिसूचना में निर्दिष्ट अवधि के दौरान किसी भी समय, उस क्षेत्र में किसी व्यक्ति के कब्जे में मौजूद या उप-खंड (i) के तहत तलाशी के दौरान पाए गए किसी भी अधिसूचित हथियार को जब्त करना और अधिसूचना में निर्दिष्ट अवधि तक उसे अपने पास रोके रखना।

(2) उप-धारा (1) के तहत किसी क्षेत्र के संबंध में जारी अधिसूचना में निर्दिष्ट अवधि, प्रथम दृष्टया, नब्बे (90) दिनों से अधिक नहीं होगी, लेकिन यदि केंद्र सरकार की राय में उस क्षेत्र में सार्वजनिक शांति और व्यवस्था की वैसी ही अशांति बनी रहती है जैसा कि उप-धारा (1) में संदर्भित है, या उसका आसन्न खतरा बना रहता है और हथियारों के उपयोग वाले अपराधों को रोकने के लिए ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है, तो सरकार समय-समय पर ऐसी अधिसूचना में संशोधन करके इस अवधि को बढ़ा सकती है, बशर्ते एक बार में यह विस्तार नब्बे दिनों से अधिक का न हो।

(3) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के तलाशी और जब्ती से संबंधित प्रावधान, जहाँ तक संभव हो, उप-धारा (1) के तहत की गई किसी भी तलाशी या जब्ती पर लागू होंगे।

(4) इस धारा के प्रयोजनों के लिए,–

(i) "हथियार" के अंतर्गत गोला-बारूद भी शामिल है;

(ii) जहाँ उप-धारा (1) के तहत मूल रूप से जारी अधिसूचना में निर्दिष्ट अवधि को उप-धारा (2) के तहत बढ़ाया जाता है, वहां ऐसी अधिसूचना के संबंध में, उप-धारा (1) में प्रयुक्त "अधिसूचना में निर्दिष्ट अवधि" के संदर्भों का अर्थ वैसी ही विस्तारित अवधि से लगाया जाएगा।

17. धारा 24-ए के अवलोकन से पता चलता है कि यह केंद्र सरकार को यह शक्ति प्रदान करती है कि यदि वे संतुष्ट हैं कि किसी क्षेत्र में सार्वजनिक शांति और व्यवस्था में व्यापक अशांति है या ऐसी अशांति का आसन्न खतरा है, तो वह यह निर्देश दे सकती है कि उस क्षेत्र में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के पास अधिसूचना में निर्दिष्ट विवरण वाला जो भी हथियार है, वह उसे जमा करेगा। केंद्र सरकार केंद्र या राज्य सरकार के किसी भी अधीनस्थ अधिकारी को आग्नेयास्त्रों की तलाशी लेने या उन्हें जब्त करने के लिए भी अधिकृत कर सकती है।
18. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **रवि शंकर तिवारी (उपरोक्त)** के मामले पर भरोसा किया है। उस निर्णय का पैराग्राफ 12 नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

12. अतः, उपरोक्त निर्णयों में दर्ज कारणों के आधार पर, इस रिट याचिका को अंततः इस निर्देश के साथ निस्तारित किया जाता है कि यदि याचिकाकर्ता के पास अपने आग्नेयास्त्रों के लिए वैध शस्त्र लाइसेंस है और सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसके विरुद्ध हथियार जमा करने के निर्देश के साथ कोई लिखित आदेश जारी नहीं किया गया है, तो याचिकाकर्ता को अपना आग्नेयास्त्र जमा करने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा।
"अत्यधिक सावधानी के तौर पर, यह प्रावधान किया जाता है कि उन व्यक्तिगत मामलों में जहाँ सरकार को लगता है कि किसी व्यक्ति को अपना आग्नेयास्त्र लाइसेंस जमा करने की आवश्यकता है, तो संबंधित व्यक्ति को व्यक्तिगत नोटिस जारी किया जाएगा, जिसमें उसे अपने आग्नेयास्त्र जमा करने की आवश्यकता होगी। यह कार्रवाई इस न्यायालय द्वारा जारी उपरोक्त निर्देशों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना होगी।"
19. विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भी भरोसा किया है:

(i) मोहम्मद आरिफ खान (उपरोक्त):
11. इस मामले के उद्देश्यों के लिए प्रासंगिक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 का मुख्य अंश इस प्रकार है:

"(1) उन मामलों में जहाँ, जिला मजिस्ट्रेट, उप-विभागीय मजिस्ट्रेट या राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में विशेष रूप से सशक्त किसी अन्य कार्यकारी मजिस्ट्रेट की राय में, इस धारा के तहत कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है और तत्काल रोकथाम या त्वरित समाधान वांछनीय है, तो ऐसा मजिस्ट्रेट, मामले के महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख करते हुए एक लिखित आदेश द्वारा, जिसे धारा 134 द्वारा प्रदान की गई रीति से तामील किया जाएगा, किसी भी व्यक्ति को किसी निश्चित कार्य से परहेज करने या उसके कब्जे में या उसके प्रबंधन के तहत किसी निश्चित संपत्ति के संबंध में एक निश्चित व्यवस्था करने का निर्देश दे सकता है, यदि ऐसा मजिस्ट्रेट यह मानता है कि ऐसे निर्देश से विधिपूर्वक नियोजित किसी भी व्यक्ति को बाधा, झुंझलाहट या चोट लगने, या

मानव जीवन, स्वास्थ्य या सुरक्षा को खतरे, या सार्वजनिक शांति में व्यवधान, या दंगे या बलवे को रोकने की संभावना है।

(2) इस धारा के तहत एक आदेश, आपातकालीन मामलों में या उन मामलों में जहाँ परिस्थितियाँ ऐसी हों कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध आदेश निर्देशित है, उस पर समय पर नोटिस की तामील करना संभव न हो, एकपक्षीय रूप से पारित किया जा सकता है।

(3) इस धारा के तहत एक आदेश किसी विशिष्ट पक्ष या व्यक्ति को, या किसी विशेष स्थान या क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों को, या सामान्य रूप से उस जनता को निर्देशित किया जा सकता है जो किसी विशेष स्थान या क्षेत्र में आती-जाती रहती है।"

21. हमारे मन में कोई संदेह नहीं है कि लोकतंत्र हमारे संविधान की मूल विशेषता है, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि स्वतंत्र, निष्पक्ष और शांतिपूर्ण चुनाव आयोजित हों और उस उद्देश्य के लिए संवैधानिक अधिकारियों के साथ-साथ अन्य अधिकारियों के पास संविधान और मौजूदा कानूनों के तहत अपने विवेक के अनुसार अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए उचित कार्रवाई करने का पूर्ण अवसर होना चाहिए। इसलिए, हमने यह स्पष्ट कर दिया है कि 18 अक्टूबर, 1993 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के बाद भी, जिला मजिस्ट्रेट के लिए कानून के अनुसार ऐसी कार्रवाई करना खुला रहेगा, चाहे वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के तहत हो या अन्यथा, जिसे वह मामले की परिस्थितियों में अपने विवेक से आवश्यक और उचित समझता हो।

(ii) **शहाबुद्दीन (उपरोक्त):**

25. हालाँकि, इस मामले में जारी किए गए निर्देश सक्षम अधिकारी/प्राधिकारी को आयुध अधिनियम या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के प्रावधानों के तहत व्यक्तिगत मामलों में या सामान्य रूप से, कानून के अनुसार अपने विवेक का प्रयोग करने के बाद, निषेधाज्ञा आदेश पारित करने से नहीं रोकेंगे।"

20. उपर्युक्त उद्धृत निर्णयों के अवलोकन से यह संकेत मिलता है कि न्यायालय ने विशेष रूप से निर्देशित किया है कि जिन नागरिकों के पास वैध आग्नेयास्त्र लाइसेंस हैं, उन्हें सामान्य रूप से केवल इस आधार पर अपने आग्नेयास्त्र जमा करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता कि निकट भविष्य में लोकसभा चुनाव होने वाले हैं। इसके अलावा, मोहम्मद आरिफ खान (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय का पालन राज्य सरकार और उत्तर प्रदेश राज्य के भीतर जिलों में तैनात उसके अधिकारियों द्वारा किए जाने का निर्देश दिया गया था।

21. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता पर विचार करते हुए, इस न्यायालय का यह मत है कि समाज में शांति सुनिश्चित करने और चुनावों के शांतिपूर्ण संचालन तथा चुनावों के दौरान कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए, संबंधित पुलिस स्टेशन में लिखित नोटिस जारी करके आग्नेयास्त्र लाइसेंस धारकों से आग्नेयास्त्र जमा कराए जा सकते हैं, लेकिन अधिकारी किसी भी स्थिति में उन आग्नेयास्त्र लाइसेंस धारकों को अपने

आग्नेयास्त्र जमा करने के लिए मजबूर नहीं करेंगे जिनके पास वैध लाइसेंस है, जिसका समय-समय पर नवीनीकरण किया गया है, जिनका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और जिन्हें अपनी सुरक्षा के उद्देश्य से आग्नेयास्त्र लाइसेंस जारी किया गया था।

22. तदनुसार, इस रिट याचिका को प्रतिवादियों को यह निर्देश देते हुए **निस्तारित** किया जाता है कि वे याचिकाकर्ताओं को आग्नेयास्त्र लाइसेंस जमा करने के संबंध में पूर्व लिखित नोटिस जारी किए बिना संबंधित पुलिस स्टेशन में अपने आग्नेयास्त्र जमा करने के लिए मजबूर न करें।

23. अत्यधिक सावधानी के तौर पर, यह प्रावधान किया जाता है कि व्यक्तिगत मामलों में जहाँ सरकार को लगता है कि किसी व्यक्ति को अपना आग्नेयास्त्र लाइसेंस जमा करने की आवश्यकता है, तो संबंधित व्यक्ति को अपना आग्नेयास्त्र जमा करने के लिए एक व्यक्तिगत नोटिस जारी किया जाएगा, जो इस न्यायालय द्वारा जारी उपरोक्त निर्देशों के प्रतिकूल प्रभाव के बिना होगा।

24. उपरोक्त के आलोक में, याचिकाकर्ताओं को सामान्य आदेश के माध्यम से आग्नेयास्त्र लाइसेंस जमा करने के लिए मजबूर करके परेशान करने हेतु, प्रतिवादियों पर अर्थदंड लगाया जाता है। यह राशि 25,000/- रुपये निर्धारित की जाती है, जो छह महीने के भीतर याचिकाकर्ताओं को देय होगी।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA.1530

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक : लखनऊ, 30.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

रिट कर संख्या - 71 / 2025

सम्बद्ध

सीमा शुल्क अपील संख्या - 3 / 2024

साथ में

सीमा शुल्क अपील संख्या - 3 / 2025

मैसर्स रॉडर पेट्रोलियम प्राइवेट लिमिटेड .....याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य ....प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता :
रत्नेश चन्द्र, संकल्प मिश्रा

प्रतिवादीगण की ओर से अधिवक्ता :
अपर सॉलिसिटर जनरल ऑफ इंडिया, अनिद्य शास्त्री, दीपक सेठ, पवन कुमार अवस्थी

अनुवादित 2

क. सिविल विधि

इस अंश का पूर्ण एवं शुद्ध हिन्दी कानूनी अनुवाद नीचे दिया गया है– क. सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 - धाराएँ 28एच, 28आई एवं 28जे - सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975 - अध्याय 8 बनाम अध्याय 20 - मैसर्स रॉडर पेट्रोलियम प्राइवेट लिमिटेड ने "भुनी हुई सुपारी" का आयात किया। इसके पश्चात उसने सीमा शुल्क अग्रिम विनिर्णय प्राधिकरण (सीएएआर) से अग्रिम विनिर्णय प्राप्त किया, जिसमें उक्त उत्पाद का वर्गीकरण टैरिफ मद 2008 19 20, अर्थात् सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम के अध्याय 20, के अंतर्गत किया गया था। सीमा शुल्क विभाग ने उक्त वर्गीकरण पर आपत्ति की और दावा किया कि उत्पाद वास्तव में "सूखी सुपारी" है, जो अध्याय 8, विशेष रूप से टैरिफ मद 0802 80, के अंतर्गत आती है। विभाग ने सीमा शुल्क अपीलों के माध्यम से सीएएआर के उक्त विनिर्णय को चुनौती दी तथा केन्द्रीय राजस्व नियंत्रण प्रयोगशाला, नई दिल्ली (सीआरसीएल) की प्रतिकूल परीक्षण रिपोर्टों का हवाला देते हुए आयातित माल को जारी करने से भी इनकार कर दिया। इसके प्रत्युत्तर में आयातक ने माल को जारी करने

तथा अग्रिम विनिर्णय को लागू कराने के लिए एक रिट याचिका दायर की। न्यायालय ने सीएएआर के विनिर्णय को बरकरार रखा। न्यायालय ने कहा कि भूनना, सुखाने से भिन्न प्रक्रिया है, जिसमें उच्च ताप का प्रयोग किया जाता है और जिसके कारण सुपारी के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में परिवर्तन होता है। चूंकि अध्याय 8 मध्यम ताप/सुखाने से संबंधित है, जबकि अध्याय 20 में भुने हुए मेवे सम्मिलित हैं, इसलिए उत्पाद का टैरिफ मद 2008 19 20 के अंतर्गत वर्गीकरण सही था। न्यायालय के समक्ष परस्पर विरोधी प्रयोगशाला रिपोर्टें प्रस्तुत की गईं। निजी प्रयोगशाला ने नमी की मात्रा 4 प्रतिशत से कम पाई और सुपारी को भुनी हुई घोषित किया। दूसरी ओर, सीआरसीएल, नई दिल्ली (सरकारी प्रयोगशाला) ने नमी की मात्रा 7 प्रतिशत से अधिक पाई तथा उसे सूखी एवं मानव उपभोग के लिए अनुपयुक्त घोषित किया। हालाँकि, न्यायालय ने आयातक के दावे तथा मामले की परिस्थितियों में पर्याप्त आधार पाया। अतः न्यायालय ने माना कि केवल विवादित प्रयोगशाला रिपोर्टों के आधार पर आयातक के माल को गलत घोषित किया हुआ नहीं माना जा सकता। फलस्वरूप, दिनांक 27.12.2024 के आक्षेपित पत्र तथा दिनांक 10.03.2025 के जब्ती ज्ञापन को निरस्त कर दिया गया। सीमा शुल्क विभाग को निर्देश दिया गया कि वह माल को तत्काल जारी करे।

(पैरा 1 से 46)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>

1. अल्लादी वेंकटेश्वरलु बनाम आंध्र प्रदेश सरकार - (1978) ए.आई.आर. एस.सी. 945
2. मैसर्स एस.टी. एंटरप्राइजेज बनाम सीमा शुल्क आयुक्त - (2021) 378 ई.एल.टी. ए 142 एस.सी.
3. सीमा शुल्क आयुक्त बनाम शहनाज कमोडिटी इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड - दिनांक 01.08.2023 को निर्णीत।
4. एस.टी.पी. लिमिटेड बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क संग्राहक, पटना - (1998) 1 एस.सी.सी. 297
5. मैसर्स यूनिवर्सल इम्पेक्स बनाम सीमा शुल्क आयुक्त - रिट याचिका संख्या 23836 / 2024, दिनांक 22.11.2024 को निर्णीत।

(निर्णय माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा दिया गया।)

(1) श्री रत्नेश चन्द्र को सुना गया, जिनकी सहायता श्री संकल्प मिश्रा तथा श्री क्रांतिवीर सिंह द्वारा की गई, जो याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता हैं; श्री पावन अवस्थी, विपक्षी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता; तथा श्री धीरज श्रीवास्तव, विद्वान वरिष्ठ स्थायी अधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री अनिन्द्य शास्त्री द्वारा की गई, जो रिट कर संख्या 71 सन् 2025 में सीमा-शुल्क विभाग की ओर से उपस्थित हुए। साथ ही, श्री धीरज श्रीवास्तव, विद्वान वरिष्ठ स्थायी अधिवक्ता, जो कस्टम अपील संख्या 3 सन् 2024 में सीमा-शुल्क विभाग की ओर से उपस्थित हुए तथा श्री रत्नेश चन्द्र, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता, कस्टम अपील संख्या 3 सन् 2024 में

उपस्थित हुए; और श्री धीरज श्रीवास्तव, विद्वान वरिष्ठ स्थायी अधिवक्ता, जो कस्टम अपील संख्या 3 सन् 2025 में सीमा-शुल्क विभाग की ओर से उपस्थित हुए। संबद्ध कस्टम अपील संख्या 3 सन् 2025 में प्रतिवादी की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

(2) चूंकि, विभाग द्वारा दायर सीमा शुल्क अपील के साथ-साथ आयातक (मैसर्स रॉडर पेट्रोलियम प्राइवेट लिमिटेड) द्वारा दायर रिट याचिका में इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करने वाला मुख्य मुद्दा कस्टम टैरिफ प्रविष्टि और एच.एस.एन. कोड से संबंधित तथ्यों और परिस्थितियों के एक सामान्य सेट से विकसित होता है जो "भुनी हुई सुपारी" और भारत में उनके परिणामी आयात पर लागू होता है, दोनों सीमा शुल्क अपील के साथ-साथ रिट याचिका दोनों पर एक साथ सुनवाई की गई है और इस संयुक्त फ़ैसले द्वारा निर्णय लिया जा रहा है।

(3) संक्षेप में बताते हुए, 2025 की रिट टैक्स संख्या 71 (मैसर्स रॉडर पेट्रोलियम प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ) में आयातक/याचिकाकर्ता का दावा इस तथ्य पर आधारित है कि दिनांक 04/06/2024 के एक पत्र के माध्यम से, उन्हें उनके विदेशी आपूर्तिकर्ताओं द्वारा सूचित किया गया था कि 'भुनी हुई सुपारी का उत्पादन और प्रसंस्करण कच्चे पान/सुपारी' को भूसकर और रोस्टी रोस्टिंग ओवन में डालने से पहले सुखाकर किया जाता है, जिसमें इसे बीज भूनने की मशीन के ऊपर आधारित जलाऊ लकड़ी/ताड़ की गिरी का उपयोग करके 130-150 डिग्री की सीमा में 100 डिग्री सेल्सियस से अधिक अच्छी तरह से भुना जाता है और इसका तापमान लगभग 600 डिग्री सेल्सियस होता है। 'भुनी हुई सुपारी' के अस्तित्व में लाने के लिए की गई उक्त प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता ने सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 28 एच के तहत प्रदान किए गए प्रपत्र और तरीके से 'अग्रिम निर्णय' प्राप्त करने के लिए आवेदन किया। उक्त आवेदन दिनांक 04/06/2024 के पत्र में उल्लिखित प्रक्रिया-प्रवाह सहित सभी सहायक दस्तावेजों के साथ दायर किया गया था, जिसमें विभाग द्वारा अग्रिम निर्णय के लिए सीमा शुल्क प्राधिकरण (इसके बाद सी.ए.ए.आर. के रूप में संदर्भित) के समक्ष एक जवाब भी दायर किया गया था।

(4) जाहिरा तौर पर, सी.ए.ए.आर. ने आयातक के दावे पर विचार करते हुए फैसला सुनाया कि दिनांक 04/06/2024 के पत्र में उल्लिखित प्रक्रिया-प्रवाह से प्राप्त 'भुनी हुई सुपारी', 19 सितंबर, 2024 के एक आदेश के माध्यम से सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975 के अध्याय 20 के अंतर्गत आएगी।

(5) यह आयातक का मामला है कि उक्त अग्रिम निर्णय के अनुसार, उन्होंने 'भुनी हुई सुपारी' की आपूर्ति के लिए एक इंडोनेशियाई कंपनी को अपना ऑर्डर दिया, जिसे बिल दिनांक 14/10/2024 के माध्यम से भेजा गया था और उनके अनुसार उक्त मेवों को एच.एस.एन. 2008 19 20 के तहत इंडोनेशिया के सीमा शुल्क अधिकारियों से मंजूरी के बाद 16/10/2024 को शिपमेंट के लिए रखा गया था और माल बिल या प्रविष्टि दिनांक के तहत भारत पहुंचा था 06/11/2024 के माध्यम से पेश किया गया था, जिसमें आई.सी.डी. पनकी, कानपुर को प्रस्तुत करने का बंदरगाह दिखाया गया था।

(6) बीच की अवधि में, विभाग ने सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 28KA के तहत 2024 की एक कस्टम अपील संख्या 3 को प्राथमिकता दी थी, जिसमें सी.ए.ए.आर. द्वारा पारित दिनांक 19.09.2024 के अग्रिम फैसले को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि प्रस्तावित सामान ('भुनी हुई सुपारी') का परीक्षण नहीं किया गया था और न ही आयातक द्वारा जांच/परीक्षण के लिए प्रस्तुत किया गया था और दूसरी बात यह है कि विभाग ने 'भुनी हुई सुपारी को भूनने की प्रक्रिया पर भी विवाद किया। नट्स के रूप में, उनके अनुसार, इन सुपारी को केवल सुखाया जा सकता था और इसे किसी भी समय भूनना नहीं जा सकता था और किसी भी स्थिति में, यदि इसे भूनना था, तो नमी की मात्रा को कम नहीं किया जा सकता था, ताकि भुनी हुई सुपारी को माना जा सके और सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम के अध्याय 20 के तहत शुल्क लगाया जा सके। टैरिफ अधिनियम के अध्याय 8 के अंतर्गत प्रभार्य सूखे सुपारी के स्थान पर 1975 से अधिक मूल्य निर्धारण किया गया है।

(7) उक्त अपीलें विभाग द्वारा 20.11.2024 को या उसके आसपास दायर की गईं और उस समय तक, निर्धारिती ने पहले ही कमोडिटी का आयात कर लिया था, जो उनके अनुसार 'भुनी हुई सुपारी' थी और विभाग के अनुसार 'सूखे सुपारी' थे, विभाग ने उनकी वास्तविक प्रकृति और चरित्र के निर्धारण के लिए आयातित वस्तु के नमूने लिए और प्रयोगशाला, नामत गुड़गांव में मैसर्स फेयर लैब्स प्राइवेट लिमिटेड में परीक्षण के लिए भेजे। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त प्रयोगशाला ने स्पष्ट रूप से 22.11.2024 को एक प्रारंभिक रिपोर्ट प्रस्तुत की है कि आयातित 'सुपारी' में नमी की मात्रा लगभग 3.39 प्रतिशत थी और बाद में, 18.12.2024 को एक विस्तृत रिपोर्ट दी गई, जिससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि नमी की मात्रा 3.9 प्रतिशत थी और यह वस्तु 'भुनी हुई सुपारी' थी और मानव उपभोग के लिए उपयुक्त थी। हालाँकि, बीच की अवधि में, विभाग द्वारा केंद्रीय राजस्व नियंत्रण प्रयोगशाला (CRCL), नई दिल्ली को परीक्षण के लिए भेजे गए नमूनों ने 16.12.2024 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें पाया गया कि नमी की मात्रा 7.09% थी और वस्तु 'सूखी सुपारी' थी, न कि 'भुनी हुई सुपारी', जो मानव उपभोग के लिए उपयुक्त नहीं थी।

(8) जबकि चीजें इस प्रकार थीं, याचिकाकर्ता ने गुड़गांव में मेसर्स फेयर लैब्स प्राइवेट लिमिटेड की प्रारंभिक और अंतिम रिपोर्ट दोनों के साथ विभाग से अनुरोध किया कि वह अपने पत्र दिनांक 20.12.2024 और 24.12.2024 के माध्यम से अपनी वस्तु जारी करे, जिसमें दावा किया गया था कि यह 'भुनी हुई सुपारी' थी और मानव उपभोग के लिए उपयुक्त थी। याचिकाकर्ता ने इस बात पर भी प्रकाश डाला कि आई.सी.डी. पनकी, कानपुर द्वारा भारी विलंब शुल्क लगाया जा रहा था और उन्हें व्यवसाय में नुकसान हो रहा था। हालांकि, विभाग ने केंद्रीय राजस्व नियंत्रण प्रयोगशाला (सी.आर.सी.एल.) की दिनांक 16.12.2024 की परीक्षण रिपोर्ट पर भरोसा करते हुए आयातक को दिनांक 27.12.2024 को एक पत्र जारी किया, जिसमें खाद्य सुरक्षा और मानक विनियम 2011 के विनियमन संख्या 2.33.55 के अनुसार आयोजित केंद्रीय प्रयोगशाला की उक्त परीक्षण रिपोर्ट के मद्देनजर आयातित वस्तु 'सूखे सुपारी' की घोषणा की गई। आयातक द्वारा दिनांक 03.01.2025 और 21.01.2025 के अपने आपत्ति पत्र के माध्यम से विभाग के उक्त रुख पर आपत्ति जताई गई थी और उन्होंने आयातित वस्तु के नमूने और परीक्षण रिपोर्ट भी उन्हें प्रदान करने की मांग की थी।

(9) स्पष्ट रूप से, विभाग ने सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 144 का आश्रय लेते हुए सीलबंद नमूने और परीक्षण ज्ञापन के साथ आयातक को बाध्य करने से इनकार कर दिया और दिनांक 27.12.2024 के आक्षेपित पत्र के माध्यम से भी देखा कि आयातित माल सूखे सुपारी थे जैसा कि सी.आर.सी.एल., नई दिल्ली ने अपनी 16.12.2024 की रिपोर्ट में भुने हुए सुपारी के बजाय इंगित किया था और इस तरह माना गया था कि सीमा शुल्क के तहत माल की गलत घोषणा/गलत वर्गीकरण था अधिनियम, जिसके लिए आवश्यक कार्रवाई प्रस्तावित की गई थी, इस प्रकार आयातक को अन्य राहतों के साथ-साथ निम्नलिखित के लिए 2025 का रिट टैक्स संख्या-71 दाखिल करने के लिए प्रेरित किया गया: -

"i. प्रतिपक्षी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 27/12/2024 के आक्षेपित आदेश को रद्द करते हुए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिसकी एक प्रति इस रिट याचिका के अनुलग्नक सं-1 के अंतर्गत निहित है।

ii. परमादेश के रूप में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें प्रतिपक्षियों को 'भुनी हुई सुपारी' को तुरंत जारी करने का आदेश दिया जाए, जिसे याचिकाकर्ता ने बिल ऑफ एंट्री दिनांक 06/11/2024 के माध्यम से आयात किया है। जिसकी प्रतियां अनुलग्नक संख्या 17 से + उसकी रिट याचिका में निहित हैं। सी.आर.सी.एल., नई दिल्ली की दिनांक 16/12/2024 की परीक्षण रिपोर्ट या किसी अन्य बाद की परीक्षण रिपोर्ट से प्रभावित हुए बिना।

iii. 06/11/2024 से जारी होने की वास्तविक तारीख तक जारी नहीं किए जा रहे माल के संबंध में वेयरहाउसिंग या माफ शुल्क का भुगतान करने के लिए प्रतिपक्षियों को आदेश देने वाले परमादेश के रूप में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

iv. परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें प्रतिपक्षियों को याचिकाकर्ता की आयातित वस्तु यानी 'भुनी हुई सुपारी' को जारी नहीं करने में उनके गैर-पेशेवर रवैये के कारण अनुकरणीय क्षति का भुगतान करने का आदेश दिया जाए।

v. इस रिट याचिका के अनुलग्नक-28 के रूप में निहित सीमा शुल्क अधिकारी द्वारा पारित जब्ती ज्ञापन दिनांक 10/03/2025 को रद्द करते हुए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना; * * उक्त प्रार्थना को आयातक द्वारा अपने आवेदन दिनांक 02.05.2025 के माध्यम से शामिल करने की मांग की गई थी।

(10) इस मोड़ पर और स्पष्टता के लिए, अपीलकर्ता-विभाग द्वारा 2024 की संबंधित सीमा शुल्क अपील संख्या 3 (सीमा शुल्क आयुक्त, लखनऊ बनाम मैसर्स रावडर पेट्रोलियम प्राइवेट लिमिटेड) में सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 28KA के तहत अग्रिम निर्णय संख्या 1962 के विरुद्ध दायर की गई प्रार्थना को नोट करना लाभप्रद होगा। सी.ए.ए.आर./डीईएल/रॉडर/55/2024 दिनांक 19.09.2024 को सीमा शुल्क प्राधिकरण फॉर एडवांस रूलिंग (सी.ए.ए.आर.), नई दिल्ली द्वारा पारित किया गया था। विभाग ने उक्त सीमा शुल्क अपील में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित राहत की मांग की है:

क. कस्टम्स प्राधिकरण अग्रिम निर्णय, नई दिल्ली द्वारा पारित अग्रिम निर्णय संख्या सी ए ए आर/डेल/रॉडर/55/2024 दिनांक 19.09.2024 को निरस्त किया जाए।

ख. यह घोषित किया जाए कि "रोस्टेड एरिया नट्स (संपूर्ण)", "रोस्टेड एरिया नट (विभाजित)" तथा "रोस्टेड एरिया नट (कटे हुए)" के रूप में वर्णित वस्तुएँ कस्टम्स टैरिफ अधिनियम, 1975 के अंतर्गत सीमा-शुल्क टैरिफ शीर्षक 080280 के अधीन वर्गीकृत की जाएँ।

ग. प्रकरण को पुनः कस्टम्स प्राधिकरण अग्रिम निर्णय को इस निर्देश के साथ प्रतिप्रेषित किया जाए कि वह वस्तुओं का समुचित परीक्षण, जिसमें नमूनों की प्रयोगशाला जाँच तथा विदेशी आपूर्तिकर्ताओं द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया-प्रवाह का परीक्षण सम्मिलित हो, करने के उपरांत वर्तमान वाद में वर्गीकरण के प्रश्न पर निर्णय करे।
(11) इस न्यायालय ने पाया कि 2024 की उपरोक्त सीमा शुल्क अपील संख्या 3 को दिनांक 17.12.2024 के आदेश द्वारा स्वीकार किया गया था और पक्षकारों को दलीलों का आदान-प्रदान करने का निर्देश दिया गया था। इसके अलावा, एक अंतरिम उपाय के रूप में, यह भी प्रावधान किया गया था कि विचाराधीन अग्रिम निर्णय को भुनी हुई सुपारी के संबंध में संयुक्त निर्णय के रूप में माना जाएगा और उन उत्पादों के संबंध में जिन्हें प्रतिवादी आयात/निर्यात करने का प्रस्ताव करता है, अपीलकर्ता के लिए प्रतिपक्षियों द्वारा आयात/निर्यात किए जाने वाले वास्तविक नमूने प्राप्त करने के लिए खुला रहेगा। परीक्षण किया जाता है, और यदि इस तरह के परीक्षण पर यह पाया जाता है कि माल वास्तव में भुना हुआ सुपारी नहीं है, तो यह निर्णय प्रतिवादी के लिए फायदेमंद नहीं होगा। हालाँकि, अगर। यह पाया जाता है, अन्यथा, तो, निश्चित रूप से, इस अपील के परिणाम के अधीन, आक्षेपित निर्णय के अनुसार प्रतिवादी को निर्णय का लाभ उपलब्ध होगा।

(12) बीच की अवधि में, 2025 की एक और सीमा शुल्क अपील संख्या 3 कॉमर्शियल विभाग द्वारा इसी तरह की राहत की मांग करते हुए सीमा शुल्क (निवारक) के मामले में दायर किया गया था, सिवाय इसके कि अपील में चुनौती दिए जाने वाले अग्रिम निर्णय को अग्रिम निर्णय संख्या 100 में चुनौती दी गई थी। सीएआरमम/एआरसी/172,173,174,175,176/मुंबई दिनांक 10.12.2024 को आयातक-मैसर्स ऑटो कैंपस के पक्ष में निर्णय दिया गया। इस प्रकार, इन दो अपीलों और संबंधित रिट याचिका को एक साथ सुना गया और निर्णयों के लिए आरक्षित रखा गया।

(13) सीमा शुल्क विभाग के वरिष्ठ स्थायी अधिवक्ता श्री धीरज श्रीवास्तव ने प्रस्तुत किया है कि सी.ए.ए.आर. अग्रिम निर्णय से संबंधित सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 28 एल के साथ पठित धारा 28 आई(4) के तहत प्रदत्त अपनी शक्ति का प्रयोग करने में विफल रहा है और इस प्रकार बिना किसी अनुभवजन्य डेटा के सी.टी.एच. 2008 19 20 के तहत सुपारी को गलत तरीके से वर्गीकृत किया गया है, परीक्षण या प्रयोगशाला रिपोर्ट, नमूना और बिना किसी स्वतंत्र पूछताछ/जांच के। अधिवक्ता का यह कहना है कि अग्रिम निर्णय पूरी तरह से सिंगापुर में स्थित किसी तीसरे पक्ष द्वारा आयातक द्वारा प्रदान की गई प्रक्रिया प्रवाह पर निर्भर करने पर आधारित है, न कि उस आपूर्तिकर्ता द्वारा जिससे सुपारी वास्तव में इंडोनेशिया से आयात की गई थी। उनके

अनुसार, अध्याय 08 के नोट 3 के अनुसार, सूखे मेवे और मेवे भी मध्यम ताप उपचार जैसे उपचारों से गुजर सकते हैं, जो आयातक द्वारा आयातित सुपारी द्वारा किया गया है और केवल इसलिए कि इन मेवों को गर्मी उपचार से गुजरना पड़ा था, जैसा कि प्रक्रिया प्रवाह में आयातक द्वारा तर्क दिया गया था, इन मेवों का वर्गीकरण अध्याय 08 के बजाय अध्याय 20 के तहत नहीं किया जा सकता है। यह जोरदार तर्क दिया गया है कि सीमा शुल्क अधिनियम या टैरिफ के तहत मध्यम गर्मी को परिभाषित नहीं किया गया है ताकि इसे तापमान की तीव्रता/डिग्री से जोड़ा जा सके और इस प्रकार विभाग के वरिष्ठ स्थायी अधिवक्ता के अनुसार, आयातक द्वारा आयात किए गए कथित भुनी हुई सुपारी को केवल मध्यम ताप उपचार के अधीन किया जाना चाहिए था, जिसे सी.टी.एच. 080280 के तहत वर्गीकृत किया जाना चाहिए था। विशेष रूप से जब नमी, अरेकोलिन और टैनिन सामग्री में कमी उबलने या धूप में सुखाने के माध्यम से की जा सकती है और अध्याय 20 के तहत वर्गीकरण के लिए एक अलग कारक नहीं हो सकती है क्योंकि अध्याय 08 के तहत अनुमत मध्यम गर्मी उपचार के दौरान इसी तरह की कमी होती है।

(14) अधिवक्ता ने इस न्यायालय को अध्याय 20 के अध्याय नोट्स में यह दिखाने के लिए ले जाया था कि इसमें अध्याय 8 के तहत निर्दिष्ट प्रक्रिया द्वारा तैयार किए गए मेवों को शामिल नहीं किया गया था और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया था अल्लादी वेंकटेश्वरलू बनाम आंध्र प्रदेश सरकार: ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 945 में यह तर्क देने के लिए कि भूनने की प्रक्रिया से जली हुई शारीरिक उपस्थिति होती है, जो आयातक द्वारा आयात किए गए सुपारी के मामले में नहीं है। उनके अनुसार, आयातक द्वारा वर्णित प्रक्रिया प्रवाह से गुजरने के बाद विचाराधीन नट भौतिक रूप से जले नहीं हैं। इसके अलावा, उन्होंने प्रस्तुत किया कि हार्मोनाइज्ड सिस्टम ऑफ नोमेनक्लेचर (एच.एस.एन.) के अध्याय 20 के व्याख्यात्मक नोट्स में निर्दिष्ट किया गया है कि इसके तहत वर्गीकृत सामान आमतौर पर लंबे समय तक संरक्षण के लिए डिब्बे या जार जैसे एयरटाइट कंटेनरों में प्रस्तुत किए जाते हैं, हालांकि, प्रस्तुत मामले के तथ्यों से यह स्पष्ट है कि आयातक ने जंबो बैग में थोक में माल आयात किया है, जो उनके अनुसार अध्याय के तहत उत्पादों के लिए निर्दिष्ट पैकेजिंग शर्तों को भी पूरा नहीं करता था।

20. उन्होंने इस बात पर भी प्रकाश डाला है कि हार्मोनाइज्ड सिस्टम की व्याख्या के लिए सामान्य नियमों के नियम 3(ए) के अनुसार, विशिष्ट विवरण को सामान्य विवरण पर प्राथमिकता दी जानी चाहिए और इस तरह के रूप में अध्याय 08 विशेष रूप से सुपारी को कवर करता है, जिसमें मध्यम गर्मी उपचार के अधीन हैं, अध्याय 20 को वर्गीकरण के लिए सहारा नहीं लिया जाना चाहिए क्योंकि यह संरक्षित मेवों की एक अधिक सामान्य श्रेणी को कवर करता है। अधिवक्ता ने मेसर्स एसटी एंटरप्राइजेज बनाम सीमा शुल्क आयुक्त के फैसले पर भी भरोसा किया है, जो हालांकि सी.ई.एस.ए.टी. द्वारा दिया गया था, लेकिन बाद में 2021 (378) ई.एल.टी. ए 142(एस.सी.) में उच्चतम न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की गई थी, जिसमें आयातक के समान उत्पादों को सी.टी.एच. 080280 के तहत वर्गीकृत किया गया था क्योंकि उन्हें उबलने या मध्यम गर्मी (जैसे भूनने) की प्रक्रिया द्वारा प्राप्त किया गया था।

(15) इसके विपरीत, आयातक की ओर से पेश अधिवक्ता श्री रत्नेश चंद्र ने प्रस्तुत किया है कि विभाग द्वारा अग्रिम निर्णय प्राप्त करने के सार और उद्देश्य को विकृत कर दिया गया है, जिससे अपील खारिज हो जाती है। उनके अनुसार, अग्रिम निर्णय का अर्थ है आयातक/निर्यातक द्वारा आयात या निर्यात से पहले किसी भी माल के संबंध में अपने आवेदन में पसंद किए गए किसी भी प्रश्न पर लिखित निर्णय और संदर्भित करता है। श्री चंद्रा द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि सी.ए.ए.आर. के समक्ष अग्रिम निर्णय के लिए आवेदन प्रस्तुत करने से पहले, आयातक ने 'भुनी हुई सुपारी' और इसके उत्पादन और प्रसंस्करण के बारे में पूछताछ की थी, जिस पर विदेशी आपूर्तिकर्ता ने सूचित किया था कि वे रोस्ट्री रोस्टिंग ओवन में खिलाने से पहले कच्चे सुपारी की भूसी निकालते हैं और उसे सुखाते हैं। जिसमें इसे जलाऊ लकड़ी/पाम कर्नेल आधारित ओवन का उपयोग करके आमतौर पर 135-150 डिग्री सेल्सियस की सीमा में 100 डिग्री सेल्सियस से अधिक अच्छी तरह से भुना जाता है। इसके बाद इसकी नमी की जांच करने के लिए कमरे के तापमान में शीतलन प्रक्रिया की जाती है और उक्त प्रक्रिया को बार-बार तब तक किया जाता है जब तक कि सुपारी में पानी की मात्रा 6% से अधिक न हो जाए। आपूर्तिकर्ता द्वारा दिनांक 04/06/2024 के पत्र के माध्यम से बताई गई उपरोक्त प्रक्रिया इस न्यायालय के साथ-साथ सी.ए.ए.आर., नई दिल्ली के समक्ष अभिलेखों का एक हिस्सा है।

(16) यह प्रस्तुत किया गया है कि विदेशी आपूतकर्ता द्वारा बताई गई उपर्युक्त प्रक्रिया से प्रभावित आयातक ने यह पता लगाने के लिए सी.ए.ए.आर. से संपर्क किया था कि सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975 के किस शीर्ष/अध्याय के अंतर्गत भुनी हुई सुपारी गिर रही है। श्री चंद्रा के अनुसार, सी.ए.ए.आर. ने आवेदन की सामग्री के साथ-साथ विभाग द्वारा प्रस्तुत उत्तर पर विचार करने के बाद और भुनी हुई सुपारी के लिए उपलब्ध विभिन्न उदाहरणों पर विचार करने के बाद एक निष्कर्ष निकाला कि भुनी हुई सुपारी कस्टम टैरिफ शीर्षक 2008 के अंतर्गत आती है, विशेष रूप से उपशीर्षक 2008 19 20 के तहत 'अन्य भुने हुए मेवे' और सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम 1975 की पहली अनुसूची के बीज को कवर करती है। उक्त अग्रिम निर्णय के परिणामस्वरूप, आयातक ने एक इंडोनेशियाई कंपनी को 'भुनी हुई सुपारी' की आपूर्ति के लिए अपना ऑर्डर दिया, जिसे दिनांक 14.10.2024 के बिल के माध्यम से भारत भेजा गया था, जिसमें फिर से इंडोनेशिया के सीमा शुल्क अधिकारियों ने सुपारी को 'भुनी हुई सुपारी' और एच.एस. 2008 19 20 के तहत आने वाला पाया है और ये सामान बिल ऑफ एंट्री दिनांक 06.11.2024 के तहत भारत आ गए हैं, जिसमें सबमिशन का पोर्ट आई.सी.डी. पनकी कानपुर दिखाया गया है। अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि आयातक के पास संयुक्त राज्य अमेरिका और मलेशिया से विदेशी खरीदार थे और ये सुपारी इन देशों द्वारा क्रमशः 90 और 60 दिनों के भीतर आपूर्ति करने के जनादेश के साथ 25/09/2024 और 22/09/2024 के आदेश के अनुसार निर्यात करने के लिए थे।

(17) श्री चंद्रा के अनुसार, विभाग ने एक गलत सादृश्य के आधार पर कस्टम अपील दायर की है कि 'सुपारी' को कभी भी भुना नहीं जा सकता है और केवल सुखाया जा सकता है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि प्रस्तुत मामला गलत पहचान का एक उत्कृष्ट मामला है, क्योंकि 'भुनी हुई सुपारी' को 'सूखे सुपारी' के रूप में गलत माना जाता है और इसे उक्त टैरिफ अधिनियम के अध्याय 20 के बजाय सीमा शुल्क अधिनियम, 1975 के अध्याय 8 के

तहत वर्गीकृत किया जा रहा है। उन्होंने आगे कहा कि आयातक द्वारा आयात किए गए सामान 'भुनी हुई सुपारी' हैं और अध्याय 20 (एच.एस. 2008: 19, 20) के अंतर्गत आते हैं, जैसा कि मद्रास उच्च न्यायालय ने **आयुक्त सीमा शुल्क बनाम शहनाज कमोडिटी इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड** के मामले में दिनांक 01/08/2023 के अपने आदेश के माध्यम से भी विचार किया है। अधिवक्ता प्रस्तुत करेंगे कि सी.टी.एच. 08 और 20 के तहत प्रविष्टियों के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर है क्योंकि सी.टी.एच. 08 'पूरे, विभाजित, सूखे मेवों सहित पिसे हुए जो सुखाने की प्रक्रिया के अधीन हैं' के लिए है, जबकि सी.टी.एच. 20 में 'भुने हुए मेवे' शामिल हैं। उनका कहना है कि सुखाने की प्रक्रिया भूनने से अलग है और इस तरह उन्हें अलग-अलग टैरिफ प्रविष्टि के तहत जगह मिलती है और दोनों परस्पर अनन्य हैं। यदि सूखे मेवों में भुने हुए मेवे शामिल होते तो 2008 19 20 जैसी किसी भी प्रविष्टि को शामिल करने का कोई अवसर नहीं होता और इसे सी.टी.एच. 08 के तहत कवर किया जा सकता था। अधिवक्ता ने दृढ़ता से तर्क दिया है कि एक बार जब विधायिका ने 2008 19 20 के तहत 'भुने हुए मेव' को वर्गीकृत कर दिया है, जिसके लिए एक निर्दिष्ट शुल्क शामिल किया गया है, तो ऐसी परिस्थितियों में, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सुपारी हैं, जिन्हें भुना भी जाता है और जिन्हें आयात करने पर निर्दिष्ट शुल्क होगा। आयातक के पक्ष में अग्रिम फैसले का समर्थन करने वाले अधिवक्ता ने **एसटीपी लिमिटेड बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क कलेक्टर, पटना, (1998)1 एस.सी.सी. 297** के मामले का हवाला देते हुए तर्क दिया है कि हालांकि पहली जगह में 'सूखी सुपारी' और 'भुनी हुई सुपारी' के बीच कोई भ्रम नहीं है, हालांकि, अगर यह भी माना जाए कि कुछ भ्रम मौजूद था, कर लगाने के क़ानून के मामले में संदेह का लाभ हमेशा निर्धारिती/आयातक के पक्ष में जाता है।

(18) आयातक के अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि 'सुपारी भुने हुए मेवे' को दिनांक 14.10.2024 के बिल के माध्यम से भारत भेजा गया था और इंडोनेशियाई अधिकारियों से मंजूरी मिलने के बाद 16.10.2024 को शिपमेंट के लिए रखा गया था। इसके बाद, आयातक ने इस भुनी हुई सुपारी के लिए बिल ऑफ एंट्री दायर किया, जिसमें इंडोनेशिया सरकार द्वारा जारी किए गए फाइटोसैनिटरी प्रमाण पत्र के बारे में भी उल्लेख किया गया है जो कीटों, बीमारियों और अन्य स्वास्थ्य जोखिमों से पौधे की सुरक्षा के संबंध में है। अधिवक्ता के अनुसार, यह प्रमाण पत्र उत्पाद पर किए गए रासायनिक परीक्षण की भी गवाही देता है और इसके विनिर्देशों को निर्दिष्ट करता है और इंडोनेशिया सरकार द्वारा जारी किया जाता है, जो सभी स्पष्ट रूप से प्रमाणित करते हैं कि आयातित उत्पाद 'भुनी हुई सुपारी' है और कोई अन्य वस्तु नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि "भुनी हुई सुपारी" अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त वस्तु है और इसे सूखे सुपारी के साथ भ्रमित नहीं किया जा सकता है, जो इसके विनिर्देश और प्रकृति में बिल्कुल अलग है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि आयातक को विदेशी खरीदार द्वारा दिनांक 22/09/2024 और 25/09/2024 के आदेश के माध्यम से इन आयातित 'भुनी हुई सुपारी' की आपूर्ति के लिए ऑर्डर दिया गया था, जो आयातक के पक्ष में एक अतिरिक्त आधार भी है क्योंकि इन सुपारी को प्रसंस्करण के बाद विदेशी खरीदारों को निर्यात किया जाना था।

(19) अधिवक्ता ने अपने आधार को आगे बढ़ाते हुए कहा कि विभाग द्वारा दायर सीमा शुल्क अपील एक गलत धारणा के तहत है कि 'भुनी हुई सुपारी' भी अध्याय 8 के अंतर्गत आती है, जो 'सूखी सुपारी' को परिभाषित

करती है क्योंकि दोनों वस्तु एक ही हैं, तथ्य की सही स्थिति नहीं है और साथ ही इस विषय पर कानून भी है और इस तरह उन्होंने माननीय मद्रास द्वारा तय किए गए एक समान मुद्दे पर अपनी निर्भरता पर जोर दिया है मैसर्स यूनिवर्सल इम्पेक्स बनाम सीमा शुल्क आयुक्त (रिट याचिका संख्या 23836/2024, दिनांक 22/11/2024) के मामले में उच्च न्यायालय। उनके अनुसार, मद्रास उच्च न्यायालय ने उक्त फैसले में दर्ज किया है कि 'भुनी हुई सुपारी' इंडोनेशिया से आयात की गई है, उसी तरह प्रस्तुत मामले में आयातक और आगे उस मामले में अग्रिम फैसले में कहा गया है कि यदि नमी की मात्रा 10 से 15% के बीच है तो इसे 'कच्ची सुपारी' माना जाएगा और जहां सामग्री 10% से कम है, इसे 'भुने हुए सुपारी के नट्स' के रूप में माना जाएगा। उक्त निर्णय में, एलडी एकल पीठ ने माना कि 10% से कम नमी की मात्रा वाले सुपारी को भुने हुए सुपारी के रूप में वर्गीकृत किया जाएगा और उक्त निष्कर्षों की पुष्टि उस न्यायालय की खंडपीठ में की गई है।

(20) घटनाओं की श्रृंखला को पूरा करते हुए, श्री चंद्रा ने प्रस्तुत किया है कि अग्रिम निर्णय के खिलाफ विभाग द्वारा सीमा शुल्क अपील दायर करने से पहले, 'भुनी हुई सुपारी' आई.सी.डी. पनकी, कानपुर पहुंची। इसके बाद, विभाग ने 18/11/2024 को आयातित 'भुनी हुई सुपारी' का नमूना एकत्र किया और फेयर लैब्स को भेजा, जिसमें 22/11/2024 को एक प्रारंभिक रिपोर्ट तैयार की गई, जिसमें दिखाया गया कि उक्त "भुनी हुई सुपारी" में नमी की मात्रा 3.39 प्रतिशत है। यह तर्क दिया गया है कि नमूना एकत्र करने में आयातक की कोई भूमिका नहीं थी और न ही यह उनकी उपस्थिति में या उनके प्रतिनिधि या उनके सी.एच.ए. की उपस्थिति में किया गया था। यह उनका तर्क है कि 18/11/2024 को फेयर लैब से फिर से संपर्क किया गया, जिसने फिर से एक रिपोर्ट दी कि आयातित वस्तु की नमी की मात्रा 3.9% थी और उक्त वस्तु भुनी हुई सुपारी थी। उन्होंने कहा कि विभाग द्वारा एकत्र किए गए नमूने भारत सरकार द्वारा 18.07.2017 को जारी किए गए नमूनों के पुन: परीक्षण के लिए मौजूदा दिशानिर्देशों के अनुरूप थे और दिनांक 27/07/2017 के परिपत्र द्वारा स्पष्ट किया गया था, जिसमें स्पष्ट शब्दों में निर्दिष्ट किया गया है कि सबसे पहले, नमूने आयातक की उपस्थिति में और नमूने लेने के बाद लिए जाने चाहिए। आयातक को परीक्षण के परिणामों के बारे में सूचित किया जाना चाहिए और यह केवल तभी होता है जब आयातक परीक्षण के परिणाम प्राप्त होने की तारीख से 10 दिनों के भीतर लिखित रूप में आवेदन करता है, कि पुन: परीक्षण किया जा सकता है। उनके अनुसार, पुन: परीक्षण आयातक के पास निहित एक अधिकार है और विभाग द्वारा अपने गुप्त उद्देश्यों के लिए इसका दुरुपयोग नहीं किया जा सकता है और केवल तभी किया जा सकता है जब रिपोर्ट पहले परीक्षण में आयातक के लिए प्रतिकूल हो। आगे विस्तार से बताते हुए, अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि उक्त दिशानिर्देशों को भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण द्वारा दिनांक 12/07/2022 के अपने पत्र के माध्यम से भी स्पष्ट किया गया है, जिसमें कहा गया है कि खाद्य विश्लेषक, किसी भी आयातित खाद्य पदार्थ की जांच करते समय, यह सुनिश्चित करना चाहिए कि रिपोर्ट अधिसूचित प्रयोगशाला या रेफरल प्रयोगशाला द्वारा नमूना प्राप्त होने के पांच दिनों के भीतर उपलब्ध हो। चूंकि समय बीतने के कारण वस्तु की रासायनिक संरचना बदल सकती है । उन्होंने आगे कहा कि उक्त पत्र में कई शब्दों में यह भी कहा गया है कि यदि किसी विशेष प्रयोगशाला द्वारा नमूने का परीक्षण किया जाता है, तो उसी प्रयोगशाला में रेफरल नहीं किया जाना चाहिए, जबकि प्रस्तुत मामले में, पहली परीक्षण रिपोर्ट मैसर्स फेयर लैब्स से है और दूसरा परीक्षण सी.आर.सी.एल. नई दिल्ली और तीसरा टेस्ट फिर से सी.आर.सी.एल., नई दिल्ली

से है। उनके अनुसार, तीसरा परीक्षण किसी अन्य प्रयोगशाला से होना चाहिए था, न कि सी.आर.सी.एल., नई दिल्ली से।

(21) अधिवक्ता के अनुसार, विभाग ने बिना किसी आधार के और 10/03/2025 की अवैध सी.आर.सी.एल. रिपोर्ट पर भरोसा करते हुए, जिसमें नमी की मात्रा 7.09% दिखाई गई है, सीमा शुल्क अधिकारियों ने इसे सूखी सुपारी माना और आयातक के सामान को जब्त करने का निर्देश दिया। अधिवक्ता द्वारा यह जोरदार तर्क दिया गया है कि विभाग तथ्यों को छिपाने का दोषी है, क्योंकि विभाग ने जानबूझकर मैसर्स फेयर लैब की परीक्षण रिपोर्ट के तथ्य को दबा दिया, जो उनके पक्ष में था और इस न्यायालय के 17/12/2024 के आदेश से बहुत पहले आयोजित किया गया था, जिसमें उपरोक्त तीसरा परीक्षण आयोजित करने का निर्देश दिया गया था। उनके अनुसार, कमोडिटी के पुन: परीक्षण के लिए न तो कोई आवश्यकता थी और न ही कानून का प्रावधान किया गया था और इस तरह सीसी.आर.सी.एल., नई दिल्ली की दूसरी और तीसरी दोनों रिपोर्ट अमान्य थी क्योंकि यह दिनांक 18/07/2007 और 12/07/2022 के दिशानिर्देशों के अनुसार है। उन्होंने आगे कहा कि मूल रूप से विभाग खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम और उसमें बनाए गए विनियमों के तहत प्रदान किए गए सुपारी के विनिर्देश की तुलना अध्याय 8 के तहत प्रदान किए गए और वर्गीकृत "सुपारी" से करके एक गलत धारणा के तहत प्रस्तुत मामले में आगे बढ़ रहा है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि आयातक द्वारा आयात की जाने वाली वस्तु एफ.एस.एस.ए. और सीमा शुल्क टैरिफ़ अधिनियम के अध्याय 8 के तहत परिभाषित सुपारी से पूरी तरह से अलग वस्तु है। उनके अनुसार, आयातक द्वारा वास्तव में आयात की जाने वाली वस्तु "भुनी हुई सुपारी" है, जिसमें माननीय मद्रास उच्च न्यायालय ने कहा है कि नमी की मात्रा 10% तक हो सकती है। उन्होंने कहा कि एफ.एस.एस.ए. नियमों में "भुने हुए सुपारी के नट्स" का कोई विनिर्देश प्रदान नहीं किया गया है, जो अनिवार्य रूप से केवल सुपारी से संबंधित है। इस प्रकार, उन्होंने आयातित "भुनी हुई सुपारी" को जारी करने के लिए प्रार्थना की है और विभाग के इस तर्क के अनुसार कि 6 महीने बीत चुके हैं, जब से इन सुपारी का आयात किया गया था और इस तरह मानव उपभोग के लिए उपयुक्त नहीं थे, अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि 'भुनी हुई सुपारी' को 'गामा विकिरण प्रक्रिया' द्वारा इन मेवों के उपचार के अधीन छोड़ा जा सकता है जिसमें नट्स में फफूंदी और कीटों को कीटाणुरहित/उपचारित किया जा सकता है। उनका कहना है कि उपचार का उक्त प्रस्ताव भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, ट्रॉम्बे, मुंबई द्वारा निर्धारित किया गया है और यह सुपारी के उपचार के लिए एक अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त प्रक्रिया है।

(22) अभिलेखों का अवलोकन करने और पक्षकारों के वकीलों को विस्तार से सुनने के बाद, इस न्यायालय ने पाया कि पक्षों के तर्कों का प्रभाव और इस न्यायालय के लिए निर्धारण का बिंदु दो प्रकार हैं: -

(i) क्या सी.ए.ए.आर. द्वारा सी.टी.एच. 2008-19-20 के अंतर्गत भुनी हुई सुपारी को सही रूप से वर्गीकृत किया गया है;

(ii) क्या रिट याचिका संख्या 71/2025 के याचिकाकर्ता द्वारा आयातित 'सुपारी' "भुनी हुई सुपारी" हैं, ताकि सी.टी.एच. 2008 19 20 के तहत वर्गीकृत किया जा सके या केवल सूखे सुपारी हैं और उन्हें सी.टी.एच. 080280 के तहत वर्गीकृत किया जा सकता है।

(23) मुद्दा संख्या 1 का उत्तर विभाग द्वारा दायर सीमा शुल्क अपील संख्या 3/2024 और 3/2025 दोनों के भाग्य का फैसला करेगा और मुद्दा संख्या 2 का उत्तर तदनुसार आयातक/याचिकाकर्ता-(मैसर्स रॉडर पेट्रोलियम प्राइवेट लिमिटेड) द्वारा दायर रिट याचिका संख्या 71/2025 का निर्णय करेगा।

(24) सबसे पहले, यह समझा जाना चाहिए कि अग्रिम शासन की अवधारणा कराधान कानून में पेश किया गया था, चाहे वह सीमा शुल्क कानून या जीएसटी या उस मामले के लिए आयकर, एक आयातक या निर्यातक द्वारा प्रस्तावित लेनदेन पर कर निहितार्थ में अनिश्चितता और अस्पष्टता के लिए एक शांत लाने के लिए. यह प्रस्तावित लेनदेन में शामिल कर देयता से संबंधित सक्षम प्राधिकारी से लिखित निर्णय लेने के लिए एक तंत्र प्रदान करता है। प्रस्तावित लेनदेन में शामिल कर के प्रभाव को समझने के लिए निर्यात/आयात गतिविधियों में लगे व्यवसायों के लिए अग्रिम निर्णय को एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में मान्यता दी गई है। जाहिर है, एक अग्रिम निर्णय प्राप्त करके, व्यवसाय सही वर्गीकरण, सटीक मूल्यांकन और कर कानूनों के परिणामस्वरूप अनुपालन सुनिश्चित कर सकते हैं, जो अंततः उन्हें एक सूचित निर्णय लेने में मदद करेगा और भविष्य में मुकदमेबाजी से बचने में भी मदद करेगा।

(25) जहां तक सीमा शुल्क अधिनियम का संबंध है, वर्ष 1999 में अधिनियम के अध्याय-VB के रूप में अग्रिम विनिर्णय जोड़ा गया था। सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 28E(b) 'अग्रिम निर्णय' को आयात या निर्यात से पहले किसी भी माल के संबंध में आयातक/निर्यातक द्वारा अपने आवेदन में उठाए गए धारा 28H में उल्लिखित किसी भी प्रश्न पर लिखित निर्णय के रूप में परिभाषित करती है। सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 28H(2) अग्रिम निर्णय के लिए आवेदन का प्रावधान करती है और इस तरह इसमें उन प्रश्नों की एक सूची होती है जिन पर अग्रिम निर्णय मांगा जा सकता है और दूसरों के बीच सूची, धारा 28H(2)(a) में कहा गया है कि सीमा शुल्क अधिनियम 1975 के तहत माल के वर्गीकरण के संबंध में अग्रिम निर्णय मांगा जा सकता है, धारा 28I आवेदन प्राप्त होने की प्रक्रिया से संबंधित है और धारा 28J महत्वपूर्ण रूप से घोषणा करती है कि प्राधिकरण द्वारा सुनाया गया अग्रिम निर्णय केवल निम्नलिखित पर बाध्यकारी होगा
(क) उस आवेदक पर जिसने इसकी मांग की थी;
(ख) धारा 28 एच की उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी भी मामले के संबंध में;
(ग) आवेदक के संबंध में प्रधान सीमा शुल्क आयुक्त या सीमा शुल्क आयुक्त और उसके अधीनस्थ सीमा शुल्क प्राधिकारियों पर।

(26) इसके अलावा, धारा 28J(2) विशेष रूप से प्रदान करती है कि अग्रिम विरूपण बाध्यकारी होगा, जब तक कि कानून या तथ्यों में कोई परिवर्तन न हो जिसके आधार पर अग्रिम निर्णय सुनाया गया हो।

(27) इस न्यायालय ने पाया कि 'अग्रिम निर्णय के लिए सीमा शुल्क प्राधिकरण' नई दिल्ली ने आयातक द्वारा आयात की जाने वाली प्रस्तावित वस्तु की प्रक्रिया-प्रवाह को ध्यान में रखते हुए और अभिलेखों पर लाई गई सामग्री को ध्यान में रखते हुए, दिनांक 12.09.2024 के एक आदेश के माध्यम से फैसला सुनाया है कि 'भुनी

हुई सुपारी दोनों विभाजित और कटी हुई', सीमा शुल्क शीर्षक 2008 के अंतर्गत आती है, विशेष रूप से सीमा शुल्क अधिनियम, 1976 की पहली अनुसूची के उप-शीर्षक 2008 19 20 के तहत 'अन्य भुने हुए मेवे और बीज' शामिल हैं। सी.ए.ए.आर., नई दिल्ली ने उक्त निर्णय पर पहुंचते समय एक विस्तृत निष्कर्ष दिया, जिसे लाभप्रद रूप से नीचे सूचीबद्ध किया जा सकता है:

6. मैंने व्यक्तिगत सुनवाई के दौरान आवेदक द्वारा किए गए प्रस्तुतियों सहित विषय वस्तुओं के संबंध में अभिलेखों पर रखी गई सभी सामग्रियों को ध्यान में रखा है। मैंने तूतीकोरिन, तमिलनाडु के सीमा शुल्क पत्तन आयुक्तालय से प्राप्त प्रतिक्रिया देखी है। इसलिए मैं सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975 की पहली अनुसूची के तहत भुनी हुई सुपारी के वर्गीकरण पर असर डालने वाले मौजूदा कानूनी ढांचे के साथ-साथ अभिलेखों पर दी गई जानकारी के आधार पर भुनी हुई सुपारी के वर्गीकरण के संबंध में वर्तमान आवेदन पर निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ता हूं।

6.1 मुझे लगता है कि संबंधित बंदरगाह आयुक्तालय ने अपनी टिप्पणियों में, मेसर्स एसटी एंटरप्राइजेज के मामले में न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय/आदेश पर भरोसा करते हुए, उबले हुए सुपारी के वर्गीकरण पर भरोसा किया गया है। मुझे लगता है कि प्रस्तुत मामले में, विचाराधीन माल भुना हुआ सुपारी है, जो उपरोक्त मामले में निर्भरता के तहत रखी गई वस्तुओं से पूरी तरह से अलग है, इसलिए, निर्णय/आदेश तत्काल मामले में लागू नहीं हो सकते हैं।

6.2 मैं नोट करता हूं कि अध्याय 8 में उल्लिखित प्रक्रियाओं में ठंडा करना, भाप देना, उबालना, सुखाना और अनंतिम रूप से संरक्षित करना शामिल है। इसमें विशेष रूप से भूनने की प्रक्रिया शामिल नहीं है। यहां, अध्याय 8 में उल्लिखित मध्यम ताप उपचार और निर्जलीकरण/सुखाने की प्रक्रियाओं और अध्याय में संदर्भित ड्राई-रोस्टिंग, ऑयल-रोस्टिंग और फैट-रोस्टिंग की प्रक्रियाओं के बीच अंतर को समझना महत्वपूर्ण है

20. हालांकि ड्राई-रोस्टिंग, ऑयलरोस्टिंग और फैट-रोस्टिंग शब्दों को सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975 में परिभाषित नहीं किया गया है। इसलिए, इन शब्दों को आम तौर पर स्वीकृत अर्थों में समझा जाना चाहिए। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अल्लादी वेंकटेश्वरलू बनाम आंध्र प्रदेश सरकार 1978 ए.आई.आर. 945 के मामले में मामला दर्ज किया था जिसमें माना कि:

"भोजन के एक लेख के विवरण के अर्थ में एक शब्द का आम तौर पर स्वीकृत अर्थ प्रबल होना चाहिए"।

आम व्यापार की भाषा में, "सुखाना" पानी की मात्रा को हटाकर खाद्य संरक्षण की एक विधि है। दूसरी ओर, "रोस्टिंग" का अर्थ है अतिरिक्त या बहुत अधिक गर्मी उपचार जो माल की संरचना और संरचना में मौलिक रासायनिक और भौतिक परिवर्तन पैदा करता है, जिससे एक जली हुई शारीरिक उपस्थिति आती है। इसलिए, सुखाना एक नमी हटाने की प्रक्रिया है जिसमें निर्जलीकरण, वाष्पीकरण आदि जैसे तरीके शामिल हैं, जबकि भूनना एक गंभीर गर्मी उपचार प्रक्रिया है।

6.3 मैं यह भी नोट करता हूं कि टैरिफ के अध्याय 20 में सब्जियों, फलों, मेवों या पौधों के अन्य भागों की तैयारी शामिल है। अध्याय नोट 1(ए) से अध्याय 20 के अनुसार, अध्याय में अध्याय 7, 8 या 11 में निर्दिष्ट प्रक्रियाओं द्वारा तैयार या संरक्षित सब्जियों, फलों या मेवों को शामिल नहीं किया गया है। इसलिए, सब्जी, फल या अखरोट के उत्पाद या अध्याय 7, 8 या 11 में निर्दिष्ट प्रक्रियाओं के अलावा अन्य तैयारी अध्याय 20

में वर्गीकृत हैं। अध्याय 7, 8 या 11 में निर्दिष्ट प्रक्रियाओं में मुख्य रूप से ठंड, भाप बनाना, उबालना, सुखाना, अनंतिम रूप से संरक्षण और मिलिंग शामिल है। इसलिए, किसी पौधे की कोई भी सब्जी, फल, अखरोट या खाद्य भाग जो इनके अलावा किसी अन्य प्रक्रिया द्वारा तैयार या संरक्षित किया जाता है, अध्याय 20 के तहत वर्गीकृत किया जा सकता है। शीर्षक 2008 में फल, नट और पौधों के अन्य खाद्य भागों को शामिल किया गया है, अन्यथा तैयार या संरक्षित किया जाता है, चाहे इसमें अतिरिक्त चीनी या अन्य मीठा पदार्थ या स्पिरिट हो या नहीं, कहीं और नहीं, निर्दिष्ट या शामिल नहीं है। भूनना एक प्रक्रिया है जिसका उपयोग किया जाता है या भुने हुए मेवे अस्तित्व में लाते हैं और मुझे लगता है कि अध्याय 8 में उल्लिखित प्रक्रियाएं भूनने की प्रक्रिया को कवर नहीं करती हैं।

6.4 मैं आवेदक की इन प्रस्तुतियों पर यह भी ध्यान देता हूं कि नोट 3 से अध्याय 8 कुछ उपचारों को निर्दिष्ट करता है जो सूखे मेवों पर अतिरिक्त संरक्षण या स्थिरीकरण के लिए या उनकी उपस्थिति में सुधार या रखरखाव के लिए किए जा सकते हैं। आवेदक ने अपने आवेदन में घोषणा की है कि रोस्टिंग के उद्देश्य उक्त नोट में निर्दिष्ट नहीं हैं। इसके अलावा, उपरोक्त नोट के अनुसार, जो प्रक्रियाएं की जा सकती हैं, वे हैं मध्यम ताप उपचार, सल्फरिंग, और वनस्पति तेल या ग्लूकोज सिरप की थोड़ी मात्रा को मिलाकर सॉर्बिक एसिड या पोटेशियम सोर्बेट मिलाना। भूनना ऊपर बताई गई सभी प्रक्रियाओं से अलग है। आवेदक द्वारा प्रस्तुत किए गए अनुसार रोस्टिंग ओवन का उपयोग करके रोस्टिंग की जाती है, जिसके कारण सुपारी को 150 5 ऑल की रेंज में भुना जाता है। मैसर्स रॉडर पेट्रोलियम प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य 1541 डिग्री सेल्सियस को कमरे के तापमान में ठंडा किया जाता है और नमी की मात्रा 6 प्रतिशत से कम होने तक चक्र दोहराया जाता है। यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि भूनना हल्के गर्मी उपचार से कहीं अधिक है। यहां तक कि शब्दों के आम तौर पर समझे जाने वाले अर्थ में भी, यह समझा जाता है कि भूनने में गंभीर गर्मी उपचार शामिल है और यह मध्यम गर्मी उपचार के साथ-साथ निर्जलीकरण से अलग है। इसलिए, आक्षेपित माल नोट 3 से अध्याय 8 को संतुष्ट नहीं करता है।

6.5 सी.टी.एच. 2008 के दायरे की जांच करते समय, मुझे पता चलता है कि एच.एस.एन. व्याख्यात्मक नोट्स के अनुसार, 2008 शीर्षक में फल, नट्स पौधों के अन्य खाद्य भागों को शामिल किया गया है, चाहे वह पूरे, टुकड़ों में या कुचल दिया गया हो, जिसमें अन्य अध्यायों में निर्दिष्ट किसी भी प्रक्रिया से अन्यथा तैयार या संरक्षित किया गया हो, इस शीर्षक में क्या शामिल है, यह निर्दिष्ट करते हुए, व्याख्यात्मक नोट में कहा गया है कि बादाम, मूंगफली, सुपारी या सुपारी और अन्य मेवे, सूखे-भुने हुए, तेल-भुना हुआ या फैटरोस्टेड, चाहे वनस्पति तेल, नमक, स्वाद, मसाले या अन्य योजक शामिल हों या लेपित हों या नहीं। एच.एस.एन. व्याख्यात्मक नोट्स के आधार पर एक प्रक्रिया के रूप में ड्राई रोस्टिंग, ऑयलरोस्टिंग और फैट-रोस्टिंग अध्याय शीर्षक 2008 का एक हिस्सा हैं। यह भी ध्यान देना उचित है कि सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975 के अध्याय नोट 3 से अध्याय 8 में इनमें से किसी भी प्रक्रिया का उल्लेख नहीं किया गया है।

6.6 इसके अलावा, यह एक स्थापित तथ्य है कि किसी भी संदेह के मामले में एच.एस.एन. टैरिफ अधिनियम में उपयोग की जाने वाली किसी भी अभिव्यक्ति के सही अर्थ का पता लगाने के लिए एक सुरक्षित मार्गदर्शक है। फिल कॉर्पोरेशन का फैसला सुनाते समय माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने वर्गीकरण के मामलों को तय करने में एच.एस.एन. व्याख्यात्मक टिप्पणियों के महत्व को स्पष्ट रूप से स्पष्ट किया है, जो ***केंद्रीय उत्पाद शुल्क,***

शिलांग बनाम वुड क्राफ्ट प्रोडक्ट्स लिमिटेड (1995) 3 एस.सी.सी. 454, *माननीय सर्वोच्च न्यायालय के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए उक्त निर्णय के प्रस्तर-12 में निम्नानुसार है:*

"तदनुसार, टैरिफ वर्गीकरण से संबंधित किसी भी विवाद को हल करने के लिए, एक सुरक्षित गाइड अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत, एच.एस.एन. से उभरने वाला नामकरण है। यह अधिनियम में केंद्रीय उत्पाद शुल्क टैरिफ की संरचना और उसमें किए गए टैरिफ वर्गीकरण का स्पष्ट रूप से स्वीकृत आधार है, किसी भी संदेह के मामले में एच.एस.एन. अधिनियम में उपयोग की जाने वाली किसी भी अभिव्यक्ति के सही अर्थ का पता लगाने के लिए एक सुरक्षित मार्गदर्शक है।

6.7 इसके अलावा, सी.ए.ए.आर., मुंबई विरूढ़ संख्या 10 में सी.ए.ए.आर./मुंबई/एआरसी/39,40,41/2023 के मामले में मैसर्स यूनिवर्सल इम्पेक्स के मामले में, प्राधिकरण ने अपने निष्कर्ष बताए हैं और तदनुसार फैसला सुनाया है।

"विशिष्ट सी.टी.एच. 2008 19 20: सीमा शुल्क टैरिफ की पहली अनुसूची के अध्याय 20 में अन्य भुने हुए मेवे और बीज, सी.टी.एच. 2008 के एच.एस.एन. व्याख्यात्मक नोट, सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975 के तहत वर्गीकरण तय करने के लिए एच.एस.एन. व्याख्यात्मक नोटों के मार्गदर्शक मूल्य को बरकरार रखते हुए उच्चतम न्यायालय के विभिन्न फैसलों और पहले भुने हुए मेवों को वर्गीकृत करने वाले उच्चतम न्यायालय के दो फैसलों का उल्लेख किया गया था, जिसमें बादाम शामिल हैं, अध्याय 20 के तहत टैरिफ शीर्षक 2008 के व्याख्यात्मक नोट का सहारा लेते हुए, मैं नियम देता हूं कि भुनी हुई सुपारी को सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975 की पहली अनुसूची के अध्याय 20 के टैरिफ मद 2008 19 20 के तहत सही ढंग से वर्गीकृत किया जा सकता है।

6.8 इसके अलावा, मद्रास के माननीय उच्च न्यायालय ने सिविल प्रकीर्ण अपील (सीएमए) संख्या 600/2023, संख्या 1206/2023 और संख्या 1750/2023, दिनांक 01.08.2023 पर अपने हालिया फैसले में सी.टी.एच. 2008 19 के तहत भुने हुए सुपारी के वर्गीकरण को बरकरार रखा था।

20. माननीय उच्च न्यायालय ने वर्गीकरण निर्धारित करने में विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण किया और संक्षेप में कहा कि:

(क) सी.टी.एच. के अंतर्गत सुपारी के संबंध में वर्गीकरण निर्धारित करते समय भूनने की प्रक्रिया को उबालने और सुखाने की प्रक्रिया से अलग माना जाता है।

(ख) भुनी हुई सुपारी को सी.टी.एच. 2008-19-20 के अंतर्गत विशेष रूप से वर्गीकृत किया गया है, सी.टी.एच. 08 02 80 के अंतर्गत वर्गीकृत करने का प्रयास निर्माण के इस स्थापित नियम का उल्लंघन होगा कि सामान्य प्रविष्टि पर विशिष्ट प्रविष्टि प्रबल होगी।

(ग) एच.एस.एन. व्याख्यात्मक नोट सामान्यत सी.टी.एच. के अंतर्गत वर्गीकरण निर्धारित करने में एक सुरक्षित मार्गदर्शिका होती है। एच.एस.एन. के अंतर्गत सी.टी.एच. 2008-19-20 में भुनी हुई सुपारी का उल्लेख किया गया है।

(घ) जब किसी उत्पाद/वस्तु को शामिल करने वाली कोई विशिष्ट प्रविष्टि होती है, तो वर्गीकरण का निर्धारण करने में सामान्य भाषा की कसौटी अप्रासंगिक होती है।

(ङ) इस निवेदन में काफी बल है कि जहां तक संभव हो, वर्गीकरण एच.एस.एन. व्याख्यात्मक टिप्पणियों के अनुरूप और अनुरूप होना चाहिए।

7. मुझे लगता है कि मद्रास के माननीय उच्च न्यायालय के फैसले में "भुनी हुई सुपारी" के वर्गीकरण से निपटा गया मुद्दा इस आवेदन में आक्षेपित मुद्दे की प्रकृति के समान है और इसलिए इस मामले पर पूरी तरह से लागू होता है। माननीय न्यायालयों के पूर्वोक्त आदेशों और इस मामले में पूर्व सी.ए.ए.आर. के फैसलों के आधार पर, मेरा विचार है कि

भुनी हुई सुपारी (साबुत), भुनी हुई सुपारी (स्प्लिट) और भुनी हुई सुपारी (कटे हुए) सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975 की प्रथम अनुसूची की उप-शीर्षक 2008-19-20 के अंतर्गत आती हैं, जिसमें विशेष रूप से सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975 की प्रथम अनुसूची के अन्य भुने हुए मेवे और बीज शामिल हैं।

8. मैं तदनुसार नियम पारित करता हूं।

(28) इस न्यायालय ने पाया कि सी.ए.ए.आर., नई दिल्ली ने किसी भी तरह से पेड़ के लिए जंगल को याद नहीं किया है और सभी बिंदुओं को सावधानीपूर्वक संबोधित किया है, जिसमें उन मुद्दों भी शामिल हैं, जिन्हें वर्तमान अपीलों में विभाग द्वारा वर्तमान में उठाया जा रहा है। विभाग द्वारा दायर अपील में, यह प्रस्तुत किया गया है कि 'भुनी हुई सुपारी' के वर्गीकरण का आधार 04.06.2024 का एक पत्र है, जिसमें इन सुपारी पर की गई घटनाओं/गतिविधि की व्याख्या की गई है। विभाग द्वारा यह तर्क दिया गया है कि उक्त पत्र मैसर्स ए.एन.एल. (एस) ट्रेडिंग एंड सर्विसेज पीटीई लिमिटेड, सिंगापुर द्वारा जारी किया गया है, जो उनके अनुसार एक तीसरा पक्ष है क्योंकि विचाराधीन माल का मूल देश इंडोनेशिया है, जिसके लिए उन्होंने आयातक द्वारा दायर बिल ऑफ एंट्री पर भरोसा किया है। उनके द्वारा यह तर्क दिया गया है कि चूंकि माल के मालिक द्वारा भूनने की प्रक्रिया का पत्र जारी नहीं किया गया है, इसलिए भूनने की प्रक्रिया की व्याख्या करने वाला दिनांक 04.06.2024 का पत्र अर्थहीन है और आयातित माल पर की गई वास्तविक प्रक्रिया नहीं हो सकती है। सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण, इस अदालत ने पाया कि बिल ऑफ एंट्री हालांकि इंडोनेशिया के रूप में मूल देश की बात करता है, हालांकि आपूर्तिकर्ता विवरण में सिंगापुर के ए.एन.एल. (एस) ट्रेडिंग एंड सर्विसेज पीटीई लिमिटेड के नाम का उल्लेख है, इसलिए जाहिरा तौर पर हालांकि आयात किए गए सामान इंडोनेशिया से प्राप्त किए गए हैं, हालांकि इसकी आपूर्ति ए.एन.एल. (एस) ट्रेडिंग एंड सर्विसेज पीटीई लिमिटेड द्वारा की गई है और इस तरह विभाग द्वारा उठाया गया तर्क अत्यधिक तकनीकी प्रतीत होता है, जो केवल अस्वीकार करने के लिए दर्ज किए गए हैं। इसके अलावा, यह देखा गया है कि बिल ऑफ एंट्री में "भुनी हुई सुपारी के रूप में आयात की जा रही वस्तुओं" का विवरण है। किसी भी मामले में, यह समझा जाना चाहिए कि सी.ए.ए.आर. दिनांक 04.06.2024 के उक्त पत्र में सुपारी पर बताई गई घटना/गतिविधि की जांच कर रहा था, जिन्हें आयात करने का प्रस्ताव था और वास्तव में आयात नहीं किया गया था, चाहे वह इंडोनेशिया से हो या सिंगापुर से। यह कहना एक बात है कि कमोडिटी "X" के लिए अग्रिम निर्णय प्राप्त किया गया था और वास्तव में आयात की गई वस्तु "Y" थी, जिस स्थिति में कमोडिटी 'X' के लिए प्राप्त अग्रिम निर्णय कमोडिटी 'Y' पर लागू नहीं होगा, क्योंकि यह वास्तव में परिवर्तन होगा और सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 28J(2) के अनुसार पार्टियों पर बाध्यकारी नहीं होगा। तथापि, यह कहना पूर्णत गलत है कि वस्तु 'X' के लिए प्राप्त अग्रिम निर्णय वास्तव में

आयातित वस्तु 'X' के लिए लागू नहीं होगा क्योंकि इस मामले में, अग्रिम निर्णय सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 28J के अनुसार पक्षों के बीच बाध्यकारी होगा।

(29) प्रासंगिक रूप से, विभाग ने अग्रिम विनिर्णय की अवधारणा को मिश्रित किया है, जो आयातक द्वारा वस्तु के वास्तविक आयात के साथ प्रस्तावित आयात से संबंधित है। विभाग ने अग्रिम फैसले को इस आधार पर रोकने की मांग की है कि अग्रिम निर्णय के चरण में आयातक द्वारा आयात की जाने वाली वस्तु को स्वतंत्र परीक्षण या प्रक्रिया के सत्यापन, सहायक दस्तावेजों, परीक्षण रिपोर्ट आदि के लिए नहीं भेजा गया था। हालांकि, इस अदालत ने पाया कि विभाग द्वारा इस तरह का तर्क अग्रिम निर्णय की अवधारणा के लिए पूरी तरह से अलग है। सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 28ई(बी) में अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया है कि 'अग्रिम निर्णय' का अर्थ है आवेदक द्वारा अपने आयात या निर्यात से पहले किसी भी माल के संबंध में अपने आवेदन में धारा 28 एच में उल्लिखित किसी भी प्रश्न पर लिखित निर्णय। इसके अलावा, उक्त अधिनियम की धारा 28(2) में कहा गया है कि प्राधिकरण आदेश द्वारा मांगे गए आवेदन और अभिलेखों की जांच करने के बाद, आवेदन को या तो अनुमति दे सकता है या अस्वीकार कर सकता है और इसके साथ संलग्न प्रावधान है कि अग्रिम निर्णय के लिए आवेदन को दो स्थितियों में अस्वीकार किया जाना है

(क) जब आवेदन में उठाया गया प्रश्न आवेदक के अपने मामले में सीमा शुल्क या अपीलीय प्राधिकारी या किसी न्यायालय के किसी अधिकारी के समक्ष पहले से ही लंबित हो, या

(ख) उठाए गए प्रश्न पर अपीलीय प्राधिकारी अथवा किसी न्यायालय द्वारा पहले ही निर्णय लिया जा चुका है। इसी प्रकार, अधिनियम की धारा 28(4) में कहा गया है कि जहां उप-धारा (2) के तहत किसी आवेदन की अनुमति दी जाती है, प्राधिकरण, ऐसी आगे की सामग्री की जांच करने के बाद, जो आवेदक द्वारा उसके समक्ष रखी जा सकती है या प्राधिकरण द्वारा प्राप्त की जा सकती है, आवेदन में निर्दिष्ट प्रश्न पर अपना अग्रिम निर्णय सुनाएगा। इन धाराओं 28(2) और 28(4) का एक संयुक्त पठन, स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि 28(4) एक ऐसी स्थिति की परिकल्पना करता है जिसमें धारा 28(2) के संदर्भ में पहले से तय किए गए अग्रिम निर्णय की समीक्षा करने की मांग की जाती है, आवेदक द्वारा रखी गई या प्राधिकरण द्वारा प्राप्त की गई सामग्री की जांच करके। इसमें कोई संदेह नहीं है, अग्रिम निर्णय अग्रिम सत्तारूढ़ प्राधिकरण के अभिलेखों पर लाई गई सामग्रियों पर आधारित होना चाहिए, हालांकि यह कहने के लिए कि अग्रिम निर्णय अनिवार्य रूप से एक नमूने के अनुभवजन्य डेटा, परीक्षण या प्रयोगशाला रिपोर्ट के आधार पर होना चाहिए, अग्रिम निर्णय के चरण में, जब ये नमूने, निर्यात या आयात के उद्देश्य से अस्तित्व में भी नहीं हो सकते हैं, यह अग्रिम विनिर्णय की अवधारणा और दायरे के विपरीत है। इस अदालत ने पाया कि अग्रिम निर्णय के चरण में, वस्तु पर आयातक/निर्यातक द्वारा समझाई गई प्रक्रिया, अस्तित्व में एक नई वस्तु को लाने के लिए, कर देयता पर अग्रिम निर्णय के लिए निर्णय लेने में एक महत्वपूर्ण उपकरण है, उन्हें एक विशेष सी.टी.एच. के तहत वर्गीकृत करके। जहां तक प्रस्तुत मामले का सवाल है, इस अदालत ने पाया कि हालांकि, विभाग द्वारा यह अच्छी तरह से तर्क दिया जा सकता है कि परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार अब आयात की जाने वाली वस्तु 'भुनी हुई सुपारी' नहीं है, हालांकि यह तर्क नहीं दिया जा सकता है कि चूंकि अग्रिम निर्णय किसी भी परीक्षण या सत्यापन पर आधारित नहीं है, इसलिए अग्रिम निर्णय के चरण में आयात की जाने वाली वस्तु को रद्द करने के लिए

उत्तरदायी है। केवल इसलिए कि अग्रिम सत्तारूढ़ प्राधिकरण ने आयात/निर्यात की जाने वाली वस्तु के किसी भी परीक्षण या प्रयोगशाला रिपोर्ट की जांच नहीं की। यह समझा जाना चाहिए कि अग्रिम निर्णय के चरण में, कोई वास्तविक वस्तु नहीं है क्योंकि सब कुछ प्रस्तावित है और सी.ए.ए.आर. को इस धारणा पर अग्रिम निर्णय देने के लिए आमंत्रित किया जाता है कि आयात की जाने वाली प्रस्तावित वस्तु पर की गई प्रक्रिया निश्चित शर्तों में पहचाने जा सकती है।

(30) इस न्यायालय ने पाया कि सी.ए.ए.आर. ने 'भुनी हुई सुपारी' को अस्तित्व में लाने के लिए प्रक्रिया-प्रवाह की जांच की है और तथ्यों के साथ-साथ विषय के प्रचलित कानून पर आश्वस्त होने के बाद, एक न्यायसंगत निर्णय पर पहुंचा है कि 'भुनी हुई सुपारी' को सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम के अध्याय 20 के तहत वर्गीकृत किया जाना है। इस अदालत के अनुसार, विभाग आयातक द्वारा की गई प्रक्रिया पर विवाद नहीं कर रहा है, बल्कि उनके द्वारा की गई प्रक्रिया द्वारा प्राप्त अंतिम उत्पाद पर सवाल उठा रहा है। विभाग, जाहिरा तौर पर एक मामला बनाने की कोशिश कर रहा है कि आयातक द्वारा प्रदर्शित प्रक्रिया द्वारा प्राप्त "भुनी हुई सुपारी" को अध्याय 20 के तहत वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है और इसे अध्याय 08 के तहत वर्गीकृत किया जाना चाहिए। ऐसा कहने के बाद, यह इस अदालत के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह दो प्रतिस्पर्धी प्रविष्टियों का उल्लेख करे। सीमा शुल्क टैरिफ के अध्याय 8 में 'खाद्य फल और नट्स' के रूप में वर्णित माल शामिल हैं; छील या खट्टे फल या खरबूजे"। प्रासंगिक टैरिफ आइटम 0802 नीचे दिया गया है:

0802 0802 11 00 अन्य मेवे, ताजा या सूखे, चाहे छिलका या नहीं, छिलका या छिलका 0802 12 00 0802 21 00 0802 22 00 0802 31 00 0802 32 00 0802 41 00 0802 42 00 0802 51 00 0802 52 00 0802 61 00 0802 62 00 0802 70 002 80 0802 80 10 0802 80 20 0802 80 30 0802 80 90 0802 80 0802 • खोल में • छिलके वाले • हेज़लनट्स या फिल्बर्ट्स 9कोरिलस सुप। • खोल में • छिलके वाले • अखरोट • खोल में • छिलके वाले • चेस्टनट (कैस्टेनिया एसपीपी) • खोल में • छिलके वाले • पिस्ता • खोल में • छिलके वाले • मैकाडामिया नट्स • खोल में • छिलके वाले • कोला नट्स (कोला एसपीपी) • सुपारी • पूरे • विभाजित • जमीन • अन्य • अन्य (31)

सीमा शुल्क टैरिफ के अध्याय 20 में सब्जियों, फलों, मेवों या पौधों के अन्य भागों की तैयारी शीर्षक के तहत माल शामिल है।

प्रासंगिक टैरिफ मद नीचे उद्धृत किया गया है:

2008 2008 11 00 2008 19 2008 19 30 2008 19 40 2008 19 90 फल, नट और पौधों के अन्य खाद्य भाग, अन्यथा तैयार या परिरक्षित, चाहे उसमें अतिरिक्त चीनी या अन्य मीठा पदार्थ या स्पिरिट हो, अन्यत्र विनिदष्ट या शामिल न हो। • मेवे, मूंगफली और अन्य बीज, चाहे एक साथ मिलाए गए हों या नहीं; • पिसे हुए मेवे • अन्य, मिश्रण सहित • काजू, भुना हुआ, नमकीन या भुना हुआ और नमकीन • अन्य भुने हुए मेवे और बीज • अन्य मेवे, अन्यथा तैयार या संरक्षित • अन्य भुने और तले हुए सब्जी उत्पाद • अन्य भुने और तले हुए सब्जी उत्पाद • अन्य

(32) इस न्यायालय ने 'भुनी हुई सुपारी' के वर्गीकरण की जांच करते हुए पाया कि वास्तव में, सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम में "भुना हुआ" की कोई परिभाषा नहीं दी गई है। जहां तक अध्याय 08 का संबंध है, इसमें ठंडा करना या भाप देना, उबालना, सुखाना और अनंतिम रूप से परिरक्षित करने जैसी प्रक्रिया की बात की गई है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि हालांकि, उक्त अध्याय में "0802 80" पर सुपारी की प्रविष्टि शामिल है और इसमें पूरे, विभाजित, जमीन और अन्य रूप शामिल हैं, लेकिन इन वस्तुओं के विवरण को उस रूप में समझा जाना चाहिए जो उक्त अध्याय के तहत उल्लिखित प्रक्रिया के बाद ग्रहण करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस अध्याय में उल्लिखित प्रक्रिया द्वारा प्राप्त अंतिम उत्पाद इसके वर्गीकरण के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है। सी.ए.ए.आर. द्वारा यह ठीक ही माना गया है कि अध्याय 8 में संदर्भित मध्यम ताप उपचार और निर्जलीकरण/सुखाने की प्रक्रियाओं और अध्याय 20 में संदर्भित ड्राई-रोस्टिंग, ऑयलरोस्टिंग और फैट-रोस्टिंग की प्रक्रियाओं के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर है। हालांकि, सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975 में ड्राई-रोस्टिंग, ऑयलरोस्टिंग और फैट रोस्टिंग शब्दों को भी परिभाषित नहीं किया गया है, हालांकि, इन शर्तों को आमतौर पर स्वीकृत अर्थों में समझा जाना चाहिए। इसके अलावा, इस अदालत को सीएआरआर के दृष्टिकोण की सदस्यता लेने में कोई संकोच नहीं है कि आम व्यापार की भाषा में, "सुखाना" पानी की मात्रा को हटाकर खाद्य संरक्षण की एक विधि है, जबकि दूसरी ओर, "रोस्टिंग" का अर्थ है अतिरिक्त या बहुत अधिक गर्मी उपचार जो माल की संरचना और संरचना में मौलिक रासायनिक और भौतिक परिवर्तन पैदा करता है, एक जली हुई शारीरिक उपस्थिति के बारे में लाना। इसलिए, जबकि सुखाना एक नमी हटाने की प्रक्रिया है जिसमें निर्जलीकरण, वाष्पीकरण आदि जैसे तरीके शामिल हैं, जबकि भूनना एक गंभीर गर्मी उपचार प्रक्रिया है। अंतिम उत्पाद प्रसंस्करण के समय गर्मी की डिग्री के साथ बदलता है।

(33) इसके अलावा, यह भी समझा जाना चाहिए कि अध्याय 1(ए) से अध्याय 20 के अनुसार, अध्याय अध्याय 7, 8 या 11 में निर्दिष्ट प्रक्रियाओं द्वारा तैयार या संरक्षित सब्जियों, फलों या मेवों को कवर नहीं करता है। इसलिए, सब्जी, फल या अखरोट के उत्पाद या अध्याय 8 में निर्दिष्ट प्रक्रियाओं जैसे फ्रीजिंग, स्टीमिंग, उबालने, सुखाने, अनंतिम रूप से संरक्षित और मिलिंग आदि के अलावा अन्य तैयारी को एक अलग शीर्ष के तहत वर्गीकृत किया जा सकता है, जो कि अध्याय 20 है। यह आसानी से सत्यापित किया जा सकता है कि शीर्षक 2008 में फल, नट और पौधों के अन्य खाद्य भागों को शामिल किया गया है, अन्यथा तैयार या संरक्षित किया जाता है, चाहे इसमें अतिरिक्त चीनी या अन्य मीठा पदार्थ या स्पिरिट हो या नहीं, कहीं और नहीं, निर्दिष्ट या शामिल नहीं है।

(34) यह न्यायालय पाता है कि भूनना एक प्रक्रिया है जिसका उपयोग भुने हुए मेवों को अस्तित्व में लाने के लिए किया जाता है और यह पाता है कि अध्याय 8 में उल्लिखित प्रक्रियाएं भूनने की प्रक्रिया को कवर नहीं करती हैं। इसके अलावा, यह अदालत इस तथ्य से बेखबर नहीं हो सकती है कि ए.एन.एल. (एस) ट्रेडिंग एंड सर्विसेज पीटीई लिमिटेड, सिंगापुर द्वारा जारी दिनांक 04.06.2024 के पत्र के आधार पर आयातक द्वारा प्रस्तुत रोस्टिंग ओवन का उपयोग करके रोस्टिंग की जाती है, जिसके कारण सुपारी को 150 डिग्री सेल्सियस की सीमा में भुना जाता है और फिर कमरे के तापमान में ठंडा किया जाता है और चक्र को तब तक दोहराया जाता है

जब तक कि नमी की मात्रा 6% से कम न हो जाए। यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि भूनना हल्के गर्मी उपचार से कहीं अधिक है। यहां तक कि शब्दों के आम तौर पर समझे जाने वाले अर्थ में भी, यह समझा जाता है कि भूनने में गंभीर गर्मी उपचार शामिल है और यह मध्यम गर्मी उपचार के साथ-साथ निर्जलीकरण से अलग है। इस प्रकार, सुखाने और भूनने की तुलना नहीं की जा सकती है और दोनों प्रक्रिया बिल्कुल भिन्न हैं।

(35) इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय ने पाया कि माननीय मद्रास उच्च न्यायालय ने सिविल प्रकीर्ण अपील (सीएमए) संख्या 600/2023, संख्या 1206/2023 और संख्या 1750/2023, दिनांक 01.08.2023 पर अपने फैसले में सी.टी.एच. 2008 19 20 के तहत 'भुनी हुई सुपारी के वर्गीकरण को बरकरार रखा था। इसके अलावा, यह अदालत हाल के घटनाक्रम पर न्यायिक ध्यान देती है, जिसमें वाणिज्य विभाग, विदेश व्यापार महानिदेशालय द्वारा दिनांक 02.04.2025 को एक अधिसूचना संख्या 02/2025-26 जारी की गई है, जो आई.टी.सी. (एच.एस.) के अध्याय 20 के आई.टी.सी. (एच.एस.) कोड 2008 19 20 के तहत आने वाली आयात नीति और नीतिगत स्थिति में पुनरीक्षण से संबंधित है। अनुसूची I (आयात नीति) उक्त अधिसूचना 2022 का प्रभाव यह है कि आई.टी.सी. (एच.एस.) संहिता 08028090 और 2008-19-20 के अंतर्गत आने वाली भुनी हुई सुपारी की आयात नीति को मुक्त से निषिद्ध कर दिया गया है और विभाग द्वारा एक प्रकार का स्पष्टीकरण देने की मांग की गई है कि जहां तक अन्य भुने हुए मेवों और बीजों से संबंधित टैरिफ प्रविष्टि 2008-19 20 का संबंध है, "भुनी हुई सुपारी" को कवर नहीं किया जाता है क्योंकि वे विशेष रूप से 08028090 के नीचे कवर किए जाते हैं।

(36) उपरोक्त हालिया घटनाक्रम को देखते हुए, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'भुनी हुई सुपारी' की टैरिफ प्रविष्टि के संबंध में विभाग के मन में हमेशा एक संदेह बना रहता है, अन्यथा 02.04.2025 की हालिया अधिसूचना जारी करने का कोई अवसर नहीं था और न ही कोई आवश्यकता थी, जिसमें विभाग को स्पष्ट शब्दों में स्पष्ट करने और निर्दिष्ट करने के लिए मजबूर किया गया था कि 'भुनी हुई सुपारी' आई.टी.सी. (एच.एस.) कोड 2008 19 20 के तहत कवर नहीं की गई है क्योंकि वे विशेष रूप से 08028090 के अंतर्गत आते हैं।

(37) उपर्युक्त चर्चा की अगली कड़ी के रूप में और सी.ए.ए.आर. के निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय यह मानता है कि भुनी हुई सुपारी को टैरिफ प्रविष्टि 2008 19 20 के अंतर्गत सही ढंग से वर्गीकृत किया गया है। विभाग द्वारा 2024 की सीमा शुल्क अपील संख्या 3 में उठाए गए आधार, जिसमें 19/09/2024 के अग्रिम फैसले को चुनौती दी गई थी, वह अयोग्य है और इस तरह, तदनुसार, इसे खारिज कर दिया जाता है। 2024 की कस्टम अपील संख्या 3 की बर्खास्तगी के परिणामस्वरूप, 2025 की कनेक्टेड कस्टम अपील संख्या 3 को भी इसी तरह की शर्तों पर खारिज कर दिया गया है।

(38) जहां तक इस बात से संबंधित दूसरा मुद्दा है कि क्या 2025 की रिट टैक्स संख्या 71 के आयातक/याचिकाकर्ता द्वारा आयातित वस्तु "भुनी हुई सुपारी" है, ताकि सी.टी.एच. 2008 19 20 के तहत वर्गीकृत किया जा सके या केवल सूखे सुपारी हैं और सी.टी.एच. 080280 के तहत वर्गीकृत किया जा सकता

है, परीक्षण रिपोर्ट को प्रमुखता मिलती है। यहां यह उल्लेख करना उचित है कि वस्तु का आयात 06.11.2024 को किया गया था और समय-समय पर उक्त वस्तु से नमूने लिए गए थे। आयातक द्वारा आयातित वस्तु से लिए गए नमूनों से ली गई परीक्षण रिपोर्ट, नमूनों के संग्रह की तारीख और परीक्षण, चाहे मौजूदा दिशानिर्देशों के अनुरूप हो या नहीं, को निम्नलिखित तरीके से सारणीबद्ध चार्ट में प्रदर्शित किया जा सकता है:

नमूना संग्रह की तिथि | नमूना प्राप्ति की तिथि | प्रतिवेदन तैयार करने की तिथि | दिनांक 18/07/2017 के दिशा-निर्देशों के अनुरूपता (प्रतिवेदन 5 दिवस के भीतर होना चाहिए) | वस्तु में आर्द्रता प्रतिशत | परीक्षण अभिकरण

18/11/2024 | 19/11/2024 | 22/11/2024 | हाँ | 3.39% | फर्स्ट लैब, गुड़गाँव

18/11/2024 | 27/11/2024 | 16/12/2024 | नहीं (नमूना 9 दिनों के उपरांत प्राप्त हुआ) | 7.09% | सी आर सी एल, नई दिल्ली

18/11/2024 | 19/11/2024 | 18/12/2024 | हाँ (यह निष्कर्ष निकाला गया कि वस्तु "रोस्टेड अरेका नट्स" है तथा मानव उपभोग के लिए उपयुक्त है) | 3.9% | फर्स्ट लैब, गुड़गाँव

17/01/2025 (इस न्यायालय के दिनांक 17/12/2024 के आदेश के अनुपालन में) | 11/02/2025 | 24/02/2025 | नहीं (नमूना 25 दिनों के उपरांत प्राप्त हुआ) | 7.24% | सी आर सी एल, नई दिल्ली

(39) आयातक के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि केंद्रीय उत्पाद शुल्क और सीमा शुल्क बोर्ड द्वारा जारी दिनांक 18/07/2017 के दिशानिर्देशों का घोर उल्लंघन किया गया था, जिसमें यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि नमूने परीक्षण उद्देश्यों के लिए आयातक। इसके अलावा, खंड 2(ए) में विशेष रूप से यह प्रावधान किया गया है कि परीक्षण रिपोर्ट, यदि प्रतिकूल है या अन्यथा है, तो आयातक को सूचित किया जाएगा और खंड 2(बी) में यह भी कहा गया है कि आयातक पुन: परीक्षण के लिए अतिरिक्त आयुक्त/संयुक्त सीमा शुल्क आयुक्त से अनुरोध कर सकता है। अधिवक्ता के अनुसार, खंड 2(सी) के अनुसार, जब सीमा शुल्क अधिकारी दूसरे परीक्षण का अवसर प्रदान करता है, तो उसे लिखित रूप में स्पष्ट रूप से इंगित करना चाहिए कि दूसरा परीक्षण कहां किया जा सकता है और ऐसी रेफरल प्रयोगशाला जहां वांछित पुन: परीक्षण सुविधा मौजूद है और खंड 2(डी) में यह प्रावधान है कि देरी से बचने के लिए नमूने को तत्काल के रूप में चिह्नित किया जाना चाहिए और सबसे महत्वपूर्ण बात, खंड 2(ई) के अनुसार, यह नमूने लेने के समय आयातक की उपस्थिति प्रदान करता है, और आयातक या प्रतिनिधि को उपस्थित होना चाहिए और निकाले गए नमूने को प्रमाणित करना चाहिए। आयातक के अधिवक्ता का यह तर्क है कि हालांकि नमूने लेने के लिए एक विस्तृत और समय-परीक्षणित प्रक्रिया मौजूद थी और इसमें पार्टियों के अधिकार और कर्तव्य शामिल थे, हालांकि पहली बार में नमूने लेते समय विभाग द्वारा किसी भी दिशानिर्देश का पालन नहीं किया गया है या उस समय, नमूने सी.आर.सी.एल. को पुन: परीक्षण के लिए भेजे गए थे। नई दिल्ली। दूसरी ओर, विभाग की ओर से पेश अधिवक्ता ने हालांकि उक्त दिशानिर्देशों के अस्तित्व पर विवाद नहीं किया और न ही इसके अनुपालन की पुष्टि की, हालांकि तर्क दिया कि यह केवल निर्देशिका है और अनिवार्य नहीं है और वर्तमान याचिका में उठाए गए मुद्दे को प्रभावित नहीं करता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऊपर उल्लिखित और यहां जिन दिशानिर्देशों पर भरोसा किया गया है, वे निर्देशिका हैं, हालांकि इस अदालत ने पाया कि नमूना परीक्षण के लिए उल्लिखित विस्तृत प्रक्रिया प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत की सहायता में है। प्रस्तुत मामले में, आयातक की पीठ के पीछे नमूने लेने और सीमा शुल्क अधिनियम,

1962 की धारा 144 का आश्रय लेकर उन्हें सीलबंद नमूने और परीक्षण मेमो प्रदान नहीं करने में विभाग के आचरण का समर्थन नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा, नियम विशेष रूप से आयातक को पुन: परीक्षण के लिए आवेदन करने के लिए प्रदान करते हैं, यदि वे पहली परीक्षण रिपोर्ट से संतुष्ट नहीं हैं, तो यह अदालत यह समझने में विफल रहती है कि विभाग किसी भी परीक्षण रिपोर्ट से कैसे संतुष्ट नहीं हो सकता है। विभाग का कृत्य स्पष्ट रूप से प्रेरित और संदिग्ध प्रतीत होता है, पहली बार में दिनांक 27.12.2024 को आक्षेपित पत्र प्रदान नहीं करना और फिर पुन: परीक्षण के लिए भेजते समय आयातक को विश्वास में नहीं लेना, यदि राज्य द्वारा नियमों के अनुसार पुन: परीक्षण की अनुमति थी।

(40) बार-बार, इस न्यायालय ने माना है कि एक कल्याणकारी राज्य में, कार्यपालिका की शक्ति और कार्य सीज़र की पत्नी की तरह संदेह से ऊपर होना चाहिए। राज्य से अपेक्षा की जाती है कि वह निष्पक्ष, निष्पक्ष हो और कानूनी और नैतिक मानकों का पालन करने में अग्रणी हो। विश्लेषण और परीक्षण के लिए नमूना ड्राइंग के संदर्भ में, राज्य को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि स्थापित प्रक्रियाओं के अनुसार नमूने एकत्र और विश्लेषण किए जाएं, जिससे उनकी अखंडता और विश्वसनीयता बनी रहे। इसमें इस तरह से नमूने खींचना शामिल है जो छेड़छाड़, संदूषण या परिवर्तन से बचा जा सके, और यह सुनिश्चित करना कि उपयोग की जाने वाली विश्लेषणात्मक विधियां वैध और विश्वसनीय हैं। इसके अलावा, राज्य को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि तैयार किए गए दिशानिर्देशों का पालन किया जाए क्योंकि राज्य की भूमिका और जिम्मेदारी एक विरोधी मुकदमेबाज की नहीं है, बल्कि कानून के अनुयायी के प्रतीक के रूप में है। राज्य को अपने द्वारा सुशासन हेतु निर्धारित दिशा-निर्देशों का पालन न करने की कोई रियायत प्रदान नहीं की जा सकती, चाहे वे अनिवार्य स्वरूप के हों अथवा निदेशात्मक स्वरूप के।

(41) इसके अलावा, यह न्यायालय इस तथ्य से बेखबर नहीं हो सकता है कि आयात खाद्य सुरक्षा और मानक (आयात) विनियम, 2017 द्वारा शासित है, जिसमें विनियम 9(9) और 9(10) विशेष रूप से प्रदान करते हैं कि यदि पहले नमूने के परीक्षण के परिणाम प्रतिकूल हैं, तो यह केवल आयातक है, जो इसके पुन: परीक्षण के लिए आवेदन कर सकता है और उसके बाद ही इसे पुन: परीक्षण के लिए भेजा जा सकता है। हालाँकि, प्रस्तुत मामले में, 19/11/2024 को नमूना भेजने के बाद, विभाग ने स्वयं और बिना किसी कारण के 22/11/2024 की रिपोर्ट प्राप्त होने के 5 दिनों के बाद 27/11/2024 को एक और नमूना दूसरी प्रयोगशाला में भेजा है, जो 2017 के विनियमों के प्रावधानों का पालन करता है। यहां तक कि, भारतीय खाद्य सुरक्षा मानक प्राधिकरण द्वारा जारी दिनांक 12/07/2022 के दिशानिर्देशों को भी नजरअंदाज कर दिया गया है, क्योंकि हालांकि उक्त दिशानिर्देश खंड 2(ii) के तहत नमूने के विश्लेषण के लिए समय-सीमा के अनुपालन के लिए प्रदान करते हैं, जो 'आयात' के मामले में नमूना प्राप्त होने से 5 दिन की है, हालांकि विभाग ने उक्त समय-अवधि का उल्लंघन किया है, जैसा कि ऊपर शामिल सारणीबद्ध चार्ट से स्पष्ट है, जिसमें परीक्षण केंद्र द्वारा नमूने क्रमशः 9 और 25 दिनों के बाद प्राप्त किए जाते हैं।

(42) इस बात का कोई कारण नहीं है कि विभाग द्वारा दूसरा नमूना क्यों और किन परिस्थितियों में लिया गया था और वह भी आयातक द्वारा बिना किसी आवेदन के, नियमों के अनुसार। विभाग द्वारा प्रथम प्रयोगशाला, गुड़गांव की परीक्षण रिपोर्टों के विरुद्ध कोई स्थायी आधार नहीं बनाया गया है और न ही उक्त प्रथम प्रयोगशाला, गुड़गांव के परीक्षण परिणामों पर विवाद करने का कोई कारण सामने आया है। इस न्यायालय ने पाया कि विभाग द्वारा लिए गए नमूनों के लिए फर्स्ट लैब से प्राप्त परीक्षण परिणाम,

इसके आयात के तुरंत बाद, 'भुने हुए सुपारी' की नमी की मात्रा 3.39% दिखाती है। उक्त परीक्षण-रिपोर्ट एक नमूने के लिए प्राप्त की गई है, जिसे 18.11.2024 को एकत्र किया गया था और 19.11.2024 को परीक्षण एजेंसी में प्राप्त किया गया था और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि रिपोर्ट प्राप्त होने के 5 दिनों के भीतर यानी 22.11.2024 को तैयार की गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त रिपोर्ट, जो सबसे पुरानी रिपोर्ट है, एफ.एस.एस.ए. के साथ-साथ सीमा शुल्क विभाग के दिशानिर्देशों को पूरा करने वाली सबसे प्रामाणिक रिपोर्ट प्रतीत होती है और इस अदालत को आयातक को उक्त जल्द और/या पहली रिपोर्ट के लाभ से इनकार करने का कोई बोधगम्य कारण नहीं मिलता है।

(43) नमूने लेने और परीक्षण के लिए भेजने से संबंधित स्थापित दिशानिर्देशों का पालन न करने में विभाग के उदासीन रवैये को किसी भी तरह से रियायत नहीं दी जा सकती है। जाहिर है, ऐसा लगता है कि विभाग ने अंधाधुंध नमूने लिए और अपनी मर्जी से परीक्षण केंद्र को भेजा और 'भुने हुए सुपारी' के वर्गीकरण से संबंधित अग्रिम फैसले के खिलाफ उनके द्वारा दायर अपील के लंबित रहने के दौरान आयातक को दूर रखना चाहता था। एक परीक्षण रिपोर्ट पर भरोसा करने में विभाग का कार्य, जो पहले स्थान पर नहीं किया जा सकता था, भी निराधार प्रतीत होता है। इस प्रकार, कमोडिटी 'भुने हुए सुपारी' की जब्ती स्पष्ट रूप से दुर्भावना से प्रेरित और प्रेरित प्रतीत होती है और इसे बनाए रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

(44) उपरोक्त सभी कारणों से, 2025 की रिट टैक्स संख्या 71 को प्रस्तुत मामले के अजीबोगरीब तथ्यों और परिस्थितियों में अनुमति दी जानी चाहिए। यह न्यायालय प्रचलित नियमों के सामान्य अनुपालन पर सी.टी.एच. 2008 19 20 के तहत वर्गीकृत 'भुनी हुई सुपारी' के रूप में आयातित वस्तु को जारी करने का निर्देश देते हुए, इसके द्वारा दिनांक 10/03/2025 के जब्ती ज्ञापन को **रद्द/खंडित** करता है। यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने केवल सी.टी.एच. 2008 19 20 के तहत याचिकाकर्ता द्वारा आयातित 'भुनी हुई सुपारी' के वर्गीकरण से संबंधित मुद्दे पर विचार किया है और आयात के अन्य तरीकों या इन अपील/याचिकाओं में नहीं उठाए गए किसी भी मुद्दे पर कोई राय व्यक्त नहीं की है। इसके अलावा, यह निर्देश दिया जाता है कि चूंकि, इन 'भुनी हुई सुपारी' का लगभग छह महीने पहले आयात किया गया था, इसलिए रिलीज के लिए उपरोक्त निर्देश इस शर्त के अधीन है कि आयातक इन भुनी हुई सुपारी मेवों में विद्यमान फफूँद तथा कीटों का निर्जीवीकरण/उपचार, प्राधिकरण की पूर्ण संतुष्टि हेतु, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, ट्रॉम्बे, मुंबई द्वारा निर्धारित उपचार प्रस्ताव के अनुसार किया जा सकता है।

(45) प्राथमिकता के रूप में, 2024 की कस्टम अपील संख्या 3 और 2025 की कस्टम अपील संख्या 3 दोनों विफल हो जाती हैं और उपरोक्त शर्तों में 2025 की रिट टैक्स संख्या 71 की **अनुमति** दी जाती है।

(46) लागत के रूप में कोई आदेश नहीं होगा।

(2025) 5 ILRA 1550

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विक्रम डी. चौहान

रिट ए संख्या 10380 वर्ष 2024

अब्दुल वहाब **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य **...प्रतिवादीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
जे.पी. सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता, राकेश कुमार

अनुवादित

मध्यवर्ती शिक्षा अधिनियम, 1921 - बकाया वेतन - 'नो वर्क नो पे' (काम नहीं तो वेतन नहीं) का सिद्धांत - उस स्थिति में लागू नहीं होता जहां नियोक्ता के अवैध आदेश के कारण कर्मचारी को कार्य करने से रोका गया हो - याचिकाकर्ता की नियुक्ति को 20.05.1994 को विधिवत अनुमोदित किया गया था। शिक्षा निदेशक ने 27.02.1998 को अनुमोदन रद्द कर दिया था, जिसे उच्च न्यायालय ने 05.10.2023 को इस निर्देश के साथ रद्द कर दिया कि "आवश्यक परिणाम अनुवर्ती होंगे"। अवमानना कार्यवाही में, अधिकारियों ने अनुपालन शपथ पत्र में कहा कि याचिकाकर्ता को 13.05.1998 से सेवा में माना गया है। हालाँकि, जिला विद्यालय निरीक्षक ने इस आधार पर वेतन देने से इनकार कर दिया कि अनुमोदन रद्द होने के बाद याचिकाकर्ता ने वास्तव में कार्य नहीं किया था। निर्णय: 'नो वर्क नो पे' (काम नहीं तो वेतन नहीं) का सिद्धांत वहां लागू नहीं होता जहां नियोक्ता स्वयं कर्मचारी को कार्य करने से रोकता है। एक बार जब 27.02.1998 का निरस्तीकरण आदेश रद्द हो गया, तो मूल अनुमोदन पुनर्जीवित हो गया, और याचिकाकर्ता को 13.05.1998 से बहाल माना गया। चूंकि उसे कार्य करने की अनुमति न देने में गलती नियोक्ता की थी, इसलिए याचिकाकर्ता 13.05.1998 से सेवानिवृत्ति तक बकाया वेतन और परिणामी लाभों का हकदार है। (पैरा 10, 11, 12)। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति विक्रम डी. चौहान द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री जे.पी. सिंह और राज्य-प्रतिवादियों के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता को प्रतिवादी-संस्थान में क्लर्क के पद पर नियुक्त किया गया था और जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा 28.5.1994 को अनुमोदन प्रदान किया गया था। नियुक्ति पत्र जारी होने के बाद याचिकाकर्ता ने 30.5.1994 को संस्थान में कार्यभार ग्रहण किया। हालाँकि, याचिकाकर्ता को वेतन का भुगतान नहीं किया गया और उसके बाद, 7.6.1994 को जिला विद्यालय निरीक्षक ने याचिकाकर्ता की नियुक्ति को अनुमोदन प्रदान करने वाले 28.5.1994 के आदेश के संचालन को निलंबित करने का आदेश पारित कर दिया। उक्त 7.6.1994 के आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या 24031 वर्ष 1994 दाखिल की। इसी बीच, 7.6.1997 को सुहैल आलम नुमानी नामक एक अन्य कर्मचारी को वेतन भुगतान करने का आदेश पारित किया गया, जिसका चयन भी याचिकाकर्ता के साथ ही हुआ था, इस आधार पर कि उसे उसी पद पर चुना गया था जिस पर याचिकाकर्ता का चयन हुआ था। उपर्युक्त दिनांक 7.6.1997 के आदेश को याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या 20339 वर्ष 1997 में चुनौती दी थी, जिसमें 23.6.1997 को एक अंतरिम आदेश पारित कर दिनांक 29.5.1997 और 9.6.1997 के आदेशों के प्रभाव और संचालन पर रोक लगा दी गई थी। उक्त रिट याचिका को दिनांक 19.9.1997 के निर्णय द्वारा स्वीकार कर लिया गया और शिक्षा निदेशक के दिनांक 29.5.1997 के आदेश को रद्द कर दिया गया तथा नए सिरे से निर्णय लेने का निर्देश जारी किया गया, और यही निर्देश रिट याचिका संख्या 24031 वर्ष 1994 में भी जारी किया गया। प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया गया है:-

"मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, याचिका संख्या 20339 वर्ष 1997 स्वीकार की जाती है। आक्षेपित आदेश दिनांक 29.5.1997 को एतद्द्वारा रद्द किया जाता है और प्रतिवादी संख्या 1 को निर्देशित किया जाता है कि वह कानून के अनुसार एक तर्कसंगत आदेश द्वारा मामले पर नए सिरे से निर्णय ले।"
हालाँकि, पक्षों के लिए यह खुला होगा कि वे इस आदेश की प्रमाणित प्रति और रिट याचिका की एक सत्य प्रति के साथ प्रतिवादी संख्या 1 के समक्ष एक नया अभ्यावेदन प्रस्तुत करें। ऐसा अभ्यावेदन प्रस्तुत किए जाने पर, प्रतिवादी संख्या 1 अभ्यावेदन प्रस्तुत किए जाने की तिथि से दो महीने के भीतर एक तर्कसंगत आदेश द्वारा उसका निस्तारण करेगा। दिए गए निर्देशों के मद्देनजर रिट याचिका संख्या 24031 वर्ष 1994 का निस्तारण किया जाता है। पक्षकार अपना-अपना व्यय स्वयं वहन करेंगे।"

3. दिनांक 19.9.1997 के उक्त निर्णय के अनुपालन में, 27.2.1998 को शिक्षा निदेशक ने एक आदेश पारित किया जिसमें याचिकाकर्ता की नियुक्ति को कानून के अनुसार न मानते हुए उसे गलत ठहराया गया और सुहैल आलम नुमानी के दावे को भी खारिज कर दिया गया। याचिकाकर्ता ने इसके बाद दिनांक 27.2.1998 के आदेश को चुनौती देते हुए रिट याचिका संख्या 9925 वर्ष 1998 दाखिल की। उक्त रिट याचिका दिनांक 5.10.2023 के निर्णय द्वारा स्वीकार कर ली गई। उक्त निर्णय का प्रभावी भाग नीचे उद्धृत किया गया है:-

"13. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, मैं पाता हूँ कि व्यापक रूप से प्रसारित समाचार पत्र में विज्ञापन प्रकाशित करने की वैधानिक आवश्यकता शैक्षिक संस्थान के विभागाध्यक्षों और शिक्षकों की नियुक्तियों के संबंध में है, जैसा कि विनियमों के अध्याय 2 के विनियम 10 के अनुसार है, जबकि न्यायालय को अध्याय 3 के तहत ऐसा कोई प्रावधान नहीं मिलता है जो गैर-शिक्षण कर्मचारियों के पदों को भरने के लिए है।

14. इसके अलावा, यदि भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के तहत निहित संवैधानिक जनादेश को देखा जाए, तो न्यायालय पाता है कि दो समाचार पत्रों में विज्ञापन प्रकाशित किए गए थे, जिनमें से कम से कम एक वाराणसी से प्रकाशित होने वाला व्यापक रूप से प्रसारित समाचार पत्र था, जबकि संस्थान आजमगढ़ में स्थित है और आजमगढ़ से प्रकाशित एक अन्य समाचार पत्र में भी स्थानीय प्रकाशन हुआ था।

15. उपर्युक्त के दृष्टिगत, इस आधार पर याचिकाकर्ता के चयन और नियुक्ति को खारिज नहीं किया जा सकता था और चूंकि आक्षेपित आदेश में कोई अन्य त्रुटि दर्ज नहीं की गई है, इसलिए आक्षेपित आदेश टिकाऊ नहीं है।

16. रिट याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। याचिकाकर्ता के संबंध में शिक्षा निदेशक (माध्यमिक), उत्तर प्रदेश द्वारा पारित दिनांक 27.02.1998 का आक्षेपित आदेश रद्द किया जाता है।

17. आवश्यक परिणाम अनुवर्ती होंगे।"

4. हालाँकि, दिनांक 05.10.2023 के उक्त निर्णय का अनुपालन प्रतिवादियों द्वारा नहीं किया गया, जिसके परिणामस्वरूप अवमानना याचिका (सिविल) संख्या 1033 वर्ष 2024 दाखिल की गई। दिनांक 15.05.2024 को प्रतिवादियों को नोटिस जारी किए गए। प्रतिवादियों ने अनुपालन शपथ पत्र दाखिल किया है, जिसके साथ दिनांक 13.05.2024 के आदेश की प्रति संलग्न है, जिसमें याचिकाकर्ता को दिनांक 13.05.1998 से सेवा में माना गया है। अनुपालन शपथ पत्र का प्रासंगिक पैरा 6 नीचे उद्धृत किया गया है:-

"यह कि चूंकि शपथकर्ता ने दिनांक 13.05.2024 के आदेश के माध्यम से आवेदक के दावे को स्वीकार कर लिया है और आवेदक को 13.05.1998 से सेवा में माना गया है, इसलिए वेतन के एरियर (बकाया) और अन्य लाभों के भुगतान के संबंध में मामले में आगे की कार्यवाही शुरू की जाएगी और उक्त प्रक्रिया को पूरा करने में कुछ और समय लगेगा।"

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि इसके बाद अवमानना याचिका का निस्तारण 15.5.2024 के आदेश द्वारा कर दिया गया था। दिनांक 15.5.2024 का आदेश नीचे उद्धृत है:

"आज जिला विद्यालय निरीक्षक की ओर से अनुपालन शपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसे रिकॉर्ड पर लिया गया है।

श्री पवन कुमार, विद्वान स्थायी अधिवक्ता का कहना है कि संबंधित अधिकारी ने 13.05.2024 को एक आदेश पारित किया है जिसके द्वारा आवेदक को 27.02.1998 से सेवा में माना गया है। जिसकी प्रति अनुपालन शपथ पत्र के अनुलग्नक-1 के रूप में रिकॉर्ड पर लाई गई है।

उक्त तथ्य को देखते हुए, चूंकि रिट न्यायालय के आदेश का अनुपालन कर लिया गया है, इसलिए अवमानना याचिका निष्फल हो गई है और खारिज की जाती है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि एक बार जब विपक्षी दल ने 13.05.2024 को आवेदक को 27.02.1998 से सेवा में मानते हुए आदेश पारित कर दिया है, तो आवश्यक परिणाम अनुवर्ती होंगे।"

6. दिनांक 15.5.2024 के आदेश में विशेष रूप से दर्ज है कि याचिकाकर्ता को 27.2.1998 से सेवा में माना गया है और आवश्यक परिणाम अनुवर्ती होंगे। उसके बाद, याचिकाकर्ता ने सेवानिवृत्ति तक, यानी 27.2.1998 से लेकर सेवानिवृत्ति की तिथि तक के पिछले वेतन के लिए अपना दावा प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता के उक्त दावे को 22.6.2024 के आक्षेपित आदेश द्वारा 'नो वर्क नो पे' (काम नहीं तो वेतन नहीं) के सिद्धांत पर खारिज कर दिया गया है।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि प्रतिवादियों द्वारा 7.6.1994 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता के अनुमोदन को निलंबित करके और उसके बाद 27.2.1998 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता के अनुमोदन को रद्द करके, याचिकाकर्ता को काम करने की अनुमति नहीं दी गई थी। दिनांक 27.2.1998 के उक्त आदेश को 5.10.2023 के आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया था, जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता का दिनांक 28.5.1994 का अनुमोदन स्वतः पुनर्जीवित हो गया। प्रतिवादियों का स्वयं का यह दोष था कि उन्होंने 28.5.1994 के अनुमोदन के बावजूद, जो 27.2.1998 के आदेश द्वारा वापस ले लिया गया था, याचिकाकर्ता को संबंधित पद पर कार्य करने की अनुमति नहीं दी। दिनांक 27.2.1998 के आदेश को इस न्यायालय द्वारा दिनांक 5.10.2023 के आदेश के माध्यम से रद्द कर दिया गया था, इसलिए याचिकाकर्ता वेतन के बकाया का हकदार है। इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **शोभा राम रतूड़ी बनाम हरियाणा विद्युत प्रसारण निगम लिमिटेड और अन्य, 2016 (6) एससीसी 663** के मामले का हवाला देते हुए यह तर्क दिया गया है कि यदि सेवा न लिए जाने में नियोक्ता की गलती है और नियोक्ता द्वारा पारित किसी आदेश के कारण कर्मचारी को ड्यूटी जॉइन करने से रोका गया है, तो याचिकाकर्ता पिछले वेतन का हकदार होगा और ऐसे तथ्यों व परिस्थितियों में 'नो वर्क नो पे' का सिद्धांत लागू नहीं होगा।

8. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने रिट याचिका में की गई प्रार्थना का विरोध किया है और तर्क दिया है कि आक्षेपित आदेश सही ढंग से पारित किया गया है। याचिकाकर्ता 27.2.1998 से अपनी सेवानिवृत्ति की तिथि तक संस्थान में कार्यरत नहीं रहा है, और इस प्रकार 'नो वर्क नो पे' (काम नहीं तो वेतन नहीं) का सिद्धांत लागू होगा और याचिकाकर्ता वेतन के बकाया का हकदार नहीं होगा। इस संबंध में, विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा दाखिल प्रतिशपथ पत्र के पैरा 12, 14 और 15 नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

*"12. यह कि अवमानना याचिका (सिविल) संख्या 1033 वर्ष 2024 में माननीय अवमानना न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 14.03.2024 के आदेश के अनुपालन में, जिला विद्यालय निरीक्षक, आजमगढ़ ने दिनांक 22.06.2024 के आदेश के माध्यम से मामले का निर्णय लिया था, जिसके द्वारा वेतन के भुगतान के लिए याचिकाकर्ता के दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि उसने सहायक क्लर्क के रूप में केवल 1 जुलाई, 1994 से 29 दिसंबर, 1994 तक, यानी छह महीने से कम की अवधि के लिए संस्थान में काम किया था और उसके बाद वह न तो संस्थान में उपस्थित हुआ और न ही कोई काम किया। जिला विद्यालय निरीक्षक, आजमगढ़ द्वारा पारित दिनांक 22.06.2024 के आदेश की प्रति इसके साथ संलग्न है और इस प्रतिशपथ पत्र के **अनुलग्नक संख्या सी.ए.-4** के रूप में चिह्नित है।*

*14. यह कि याचिकाकर्ता की जन्म तिथि 03.02.1964 है और उसने 28 फरवरी, 2024 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली थी और चूंकि उसने मई, 1994 से नवंबर, 1994 तक (अर्थात केवल 06 महीने) राज्य के खजाने से वेतन प्राप्त किया था और कार्य किया था, इसलिए, दिनांक 07.05.2017 के शासनादेश के पैरा-4(1) के दृष्टिगत, वह पेंशन या किसी भी पेंशन संबंधी लाभ का हकदार नहीं है, क्योंकि उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ के शिक्षा (8) अनुभाग द्वारा जारी दिनांक 07.05.2017 के शासनादेश के पैरा-4(1) में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 474 के तहत, केवल वे शिक्षक/गैर-शिक्षण कर्मचारी जिन्होंने 10 वर्ष की अर्हक सेवा पूरी कर ली है, वे ही पेंशन और अन्य पेंशन संबंधी लाभों के हकदार हैं। उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ के शिक्षा (8) अनुभाग द्वारा जारी दिनांक 07.05.2017 के शासनादेश की प्रति इसके साथ संलग्न है और इस प्रतिशपथ पत्र के **अनुलग्नक संख्या सी.ए.-5** के रूप में चिह्नित है।*

15. यह कि जिला विद्यालय निरीक्षक, आजमगढ़ द्वारा पारित दिनांक 22.06.2024 के आदेश से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका दायर की है, जो कि गुण-दोष से रहित है और खारिज होने योग्य है, विशेष रूप से इन तथ्यों के मद्देनजर कि याचिकाकर्ता ने 1 जुलाई, 1994 से 29 दिसंबर, 1994 तक (अर्थात केवल 6 महीने) ही संस्थान में कार्य किया था और उसके बाद उसने संस्थान में कोई कार्य नहीं किया। इसलिए, वह 'नो वर्क नो पे' (काम नहीं तो वेतन नहीं) के सिद्धांत के आधार पर वेतन का दावा करने का हकदार नहीं है और चूंकि उसने 10 वर्ष की अर्हक सेवा पूरी नहीं की है, इसलिए वह पेंशन और अन्य पेंशन संबंधी लाभों का हकदार नहीं है।"

9. विद्वान स्थायी अधिवक्ता का अगला तर्क यह है कि रिट याचिका संख्या 24031 वर्ष 1994 के मुकदमेबाजी के पिछले दौर में, जिसे 19.9.1997 को तय किया गया था, याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को तय करने का निर्देश जारी किया गया था। यद्यपि रिट याचिका स्वीकार कर ली गई थी, फिर भी इस न्यायालय द्वारा बहाली का कोई आवश्यक परिणाम नहीं दिया गया था, जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को बहाल नहीं किया गया और इस न्यायालय के आदेश के अनुपालन में शिक्षा निदेशक द्वारा मामले की फिर से जांच की गई थी, और इसलिए, वेतन के बकाया के भुगतान का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

10. वर्तमान मामले में, यह देखा जाना है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति को 20.5.1994 के आदेश द्वारा विधिवत अनुमोदित किया गया था। तत्पश्चात, 17.6.1994 के आदेश द्वारा इसे निलंबित कर दिया गया था। इसके बाद, शिक्षा निदेशक द्वारा 27.2.1998 को अनुमोदन के उक्त आदेश को रद्द कर दिया गया था। दिनांक 27.2.1998 के आदेश को इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 9925 वर्ष 1998 में दिनांक 5.10.2023 के निर्णय द्वारा इस विशिष्ट निर्देश के साथ रद्द कर दिया गया था कि आवश्यक परिणाम अनुवर्ती होंगे। अवमानना कार्यवाही में प्रतिवादियों ने अपने अनुपालन शपथ पत्र में विशेष रूप से कहा है कि आवेदक को 13.5.1998 से सेवा में माना गया है। इस तथ्य पर विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा कोई विवाद नहीं किया गया है। हालाँकि, विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा उठाई गई एकमात्र आपत्ति यह है कि याचिकाकर्ता ने शिक्षा निदेशक द्वारा याचिकाकर्ता के अनुमोदन को रद्द किए जाने की अवधि के दौरान संस्थान में कार्य नहीं किया है। हालाँकि, यह निर्विवाद है कि याचिकाकर्ता के अनुमोदन को रद्द करने वाले दिनांक 27.2.1998 के आदेश को दिनांक 5.10.2023 के आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया था, जिसमें विशेष रूप से कहा गया है कि याचिकाकर्ता की सेवा के संबंध में आवश्यक परिणाम अनुवर्ती होंगे। अतः, याचिकाकर्ता को 13.05.1998 से सेवा में बहाल कर दिया गया था। 'नो वर्क नो पे' (काम नहीं तो वेतन नहीं) के सिद्धांत से संबंधित प्रश्न वहां लागू नहीं होगा जहां नियोक्ता बिना किसी औचित्य के कर्मचारी को काम करने से रोकने का आदेश पारित करता है। दिनांक 05.10.2023 के आदेश के पारित होने से, शिक्षा निदेशक द्वारा पारित दिनांक 27.02.1998 का आदेश रद्द कर दिया गया था (दिनांक 27.02.1998 का आदेश याचिकाकर्ता के अनुमोदन को रद्द करने से संबंधित है)। उपर्युक्त आदेश के रद्द हो जाने पर, अनुमोदन का मूल आदेश पुनर्जीवित हो गया और इसलिए, प्रतिवादियों के स्वीकृत मामले के अनुसार, याचिकाकर्ता को 13.5.1998 से सेवा में बहाल कर दिया गया। एक बार जब याचिकाकर्ता को 13.5.1998 से बहाल कर दिया गया और याचिकाकर्ता को काम करने की अनुमति न देने में नियोक्ता की गलती है, तो 5.10.2023 के निर्णय के परिणामस्वरूप, जिसने अंतिम रूप ले लिया है, 'नो वर्क नो पे' का उक्त सिद्धांत लागू नहीं होगा।

11. यह भी देखा जाना चाहिए कि निश्चित रूप से मुकदमेबाजी के पिछले दौर में मामले को प्रतिवादी अधिकारियों के पास वापस भेज दिया गया था। हालाँकि, प्रतिवादी अधिकारियों ने फिर से 27.2.1998 का आदेश पारित किया, जिसे इस न्यायालय ने 5.10.2023 के आदेश द्वारा इस निष्कर्ष के साथ रद्द कर दिया कि आवश्यक परिणाम अनुवर्ती होंगे। प्रतिवादी अधिकारियों ने इस न्यायालय के दिनांक 5.10.2023 के निर्णय के परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को 13.5.1998 से सेवा में माना है। एक बार जब प्रतिवादी अधिकारियों ने स्वयं याचिकाकर्ता को 13.5.1998 से सेवा में स्वीकार कर लिया है, तो याचिकाकर्ता बकाया वेतन का हकदार होगा, क्योंकि याचिकाकर्ता को काम करने की अनुमति न देने का कारण, जो दिनांक 27.2.1998 के आदेश से उत्पन्न हुआ था, उसे इस न्यायालय द्वारा दिनांक 5.10.2023 के आदेश के माध्यम से रद्द कर दिया गया है।

12. तदनुसार, प्रतिवादी संख्या 4/5 द्वारा पारित दिनांक 22.6.2024 का आक्षेपित आदेश रद्द किया जाता है। रिट याचिका स्वीकार की जाती है और प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे 13.5.1998 से सेवानिवृत्ति की तिथि तक याचिकाकर्ता का बकाया वेतन तीन महीने की अवधि के भीतर भुगतान करें। चूँकि याचिकाकर्ता पहले ही सेवानिवृत्त हो चुका है, इसलिए उसे नियमानुसार पेंशन संबंधी लाभ भी प्रदान किए जाएँ।

(2025) 5 ILRA 1555

मूल अधिकारिता – सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट ए सं. 5494 सन् **2025**

संघप्रिया गौतम ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: सत्येन्द्र चन्द्र त्रिपाठी, शिव पूजन यादव

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: अर्चना सिंह, सी.एस.सी.

सेवा विधि – सहायक अध्यापक नियुक्ति – D.Ed. एवं D.El.Ed. की समतुल्यता – विचारणीय प्रश्न

याचिकाकर्ता ने एम.पी. बोर्ड से दो वर्षीय शिक्षा में डिप्लोमा (D.Ed.) पूर्ण किया (2014) तथा TET उत्तीर्ण किया (2015) – नियुक्ति आदेश 2024 में जारी हुआ किन्तु विद्यालय आवंटित नहीं हुआ; तत्पश्चात् नियुक्ति इस आधार पर रद्द की गई कि D.Ed., NCTE विनियमों के अधीन अपेक्षित प्रारंभिक शिक्षा में डिप्लोमा (D.El.Ed.) के समतुल्य नहीं है – इसके विरुद्ध चुनौती।

अभिनिर्धारण:

NCTE अधिसूचना (23.08.2010) 'प्रारंभिक शिक्षा में डिप्लोमा (जिस नाम से भी जाना जाए)' को न्यूनतम अर्हता के रूप में निर्धारित करती है। तथापि, पाठ्यक्रम की तुलना से महत्वपूर्ण अंतर स्पष्ट होते हैं: D.El.Ed. बाल मनोविज्ञान, प्राथमिक शिक्षा शिक्षाशास्त्र एवं समावेशी शिक्षा पर केंद्रित है, जबकि D.Ed. अधिक सामान्य प्रकृति का है एवं उच्च प्राथमिक स्तर की ओर उन्मुख है। अतः D.Ed. को D.El.Ed. के समतुल्य नहीं माना जा सकता। नियुक्ति उचित रूप से रद्द की गई। हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं। रिट याचिका खारिज।

उद्धृत मामलों की सूची:

1. हर्ष कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2014 0 Supreme (All) 276 (उच्चतम न्यायालय द्वारा पुष्ट)
2. कु. पल्लवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2018) 6 ADJ 329
3. अंजु कुमारी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट ए सं. 41992/2016, निर्णीत 18.01.2018

अनुवादित

4. श्रीमती माला यादव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, तटस्थ उद्धरण सं. 2024:AHC:26366

5. उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद् बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (खंडपीठ निर्णय)

(न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री सत्येन्द्र चन्द्र त्रिपाठी तथा प्रत्यर्थी संख्या 3 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्रीमती अर्चना सिंह को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता ने यह प्रकरण स्थापित किया है कि उसने शिक्षा में डिप्लोमा (डी.एड.), दो वर्षीय पाठ्यक्रम, वर्ष 2014 में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, म.प्र. भोपाल (श्री स्वामीजी महाराज कॉलेज ऑफ एजुकेशन एंड साइंसेज, हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, दतिया, मध्य प्रदेश) से उत्तीर्ण किया है तथा उसने सितम्बर, 2015 में शिक्षक पात्रता परीक्षा भी उत्तीर्ण की है, अतः वह सहायक शिक्षक बनने के लिए पात्र था। यद्यपि, वह वर्ष 2016 में प्रारम्भ की गई चयन प्रक्रिया के अनुसरण में परामर्श में उपस्थित हुआ और परिणामस्वरूप जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, सीतापुर द्वारा दिनांक 7.1.2024 का एक नियुक्ति पत्र भी उसे जारी किया गया, फिर भी उसे कोई विद्यालय आवंटित नहीं किया गया, कथित रूप से इस आधार पर कि डी.एड. डिप्लोमा इन एलीमेंट्री एजुकेशन (डी.एल.एड.) के समतुल्य नहीं है और दिनांक 15.01.2025 के एक आदेश के द्वारा, उसके नाम के आगे के विचार को स्थगित रखा गया।

3. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उक्त आदेश को इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका-ए संख्या 10126/2024 में चुनौती दी गई थी, जिसे दिनांक 7.8.2024 के आदेश द्वारा सचिव, बेसिक शिक्षा परिषद, प्रयागराज को अंतिम निर्णय लेने के निर्देश के साथ निस्तारित किया गया था, तथापि, तत्पश्चात् दिनांक 8.1.2024 और 7.2.2025 के आदेशों के द्वारा उसके दावे को अस्वीकार कर दिया गया और इस आधार पर कि डी.एड. सहायक शिक्षक के लिए एक अनिवार्य योग्यता नहीं थी और यह (डी.एल.एड.) के समतुल्य नहीं थी, उसकी नियुक्ति को निरस्त कर दिया गया और उसकी नियुक्ति को आदि से शून्य माना गया।

4. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता ने एन.सी.टी.ई. द्वारा जारी दिनांक 23.8.2010 की अधिसूचना के संगत भाग का संदर्भ देते हुए प्रस्तुत किया कि कक्षा 1-5 में शिक्षण प्रदान करने के लिए एक शिक्षक की नियुक्ति हेतु, डिप्लोमा इन एलीमेंट्री एजुकेशन (किसी भी नाम से ज्ञात हो) अनिवार्य है, जिसमें डिप्लोमा इन एलीमेंट्री एजुकेशन (डी.एड.) भी शामिल होगी, एक योग्यता जो याचिकाकर्ता के पास विद्यमान है।

5. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा हर्ष कुमार एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य, 2014 0 सुप्रीम (इला) 276 में पारित निर्णय का भी संदर्भ दिया, कि शिक्षा में दो वर्षीय डिप्लोमा एक विहित योग्यता होगी और उसके विरुद्ध उ.प्र. राज्य के आग्रह पर अपील उच्चतम न्यायालय

द्वारा खारिज कर दी गई थी। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि चूँकि मुद्दा पहले से ही निर्धारित हो चुका था, इसलिए, आक्षेपित आदेशों द्वारा न केवल एक अवैधता संपन्न की गई, बल्कि यह इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय, जिसकी उच्चतम न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई थी, को रौंदने का प्रयास था।

6. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के कुमारी पल्लवी बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य, (2018) 6 एडजे 329 और अंजू कुमारी एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य, (रिट ए संख्या 41992/2016) दिनांक 18.1.2018 को निर्णीत, के निर्णयों का भी संदर्भ दिया, और उन्होंने उसके निम्नलिखित अनुच्छेद का संदर्भ दिया:

"स्वीकार रूप से, वर्तमान मामले के तथ्यों में, नियुक्ति की प्रक्रिया वर्ष 2016 में प्रारम्भ हुई थी, 2009 के अधिनियम के साथ ही उसके अधीन बनाए गए नियमों के अस्तित्व में आने के पश्चात्। एन.सी.टी.ई. को 2009 के अधिनियम के अधीन पहले ही शैक्षणिक प्राधिकरण के रूप में अधिसूचित किया जा चुका था और प्राथमिक संस्थान में शिक्षक के रूप में नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यता अधिसूचित की जा चुकी थी। याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 5.6.2017 का एक शासनादेश भी अभिलेख पर रखा है जिसके द्वारा पूर्व में 'बेसिक टीचर सर्टिफिकेट (बी.टी.सी.)' के रूप में ज्ञात शिक्षण योग्यता को परिवर्तित कर 'डिप्लोमा इन एलीमेंट्री एजुकेशन' के रूप में पुनः नामित किया गया है, ताकि इसे एन.सी.टी.ई. विनियम, 2014 के अनुरूप लाया जा सके। यही स्वीकृत स्थिति होने के कारण, प्राथमिक संस्थान में शिक्षक के पद के लिए भर्ती हेतु योग्यता के धारण पर आग्रह करना अब अनुमेय नहीं होगा, जो एन.सी.टी.ई. विनियमों के साथ भिन्नता रखती हो। याचिकाकर्ता अभिकथन करते हैं कि उन्होंने पहले से ही 'डिप्लोमा इन एजुकेशन' की योग्यता प्राप्त कर ली है जो एक दो वर्षीय पाठ्यक्रम है और एन.सी.टी.ई. विनियम, 2010 के अधीन 'डिप्लोमा इन एलीमेंट्री एजुकेशन' में पहले से ही सम्मिलित किया जा चुका है।

विधि की उपर्युक्त निर्धारित स्थिति के दृष्टिगत, याचिकाकर्ता जो प्राथमिक संस्थान में शिक्षक के रूप में नियुक्त होने के लिए एन.सी.टी.ई. द्वारा अधिसूचित योग्यता धारण करते हैं, उनके द्वारा किए गए परामर्श के अनुसरण में उनके परिणाम को और अधिक रोके जाने की आवश्यकता न्यायोचित नहीं है।"

7. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी संख्या 3 के लिए विद्वान अधिवक्ता ने उक्त प्रस्तुतियों का विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि डिप्लोमा इन एजुकेशन (डी.एड.) और डिप्लोमा इन एलीमेंट्री एजुकेशन (डी.एल.एड.) दो भिन्न अवधारणाएं हैं जिनके पाठ्यक्रम भिन्न हैं।

8. विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि हर्ष कुमार (उपरोक्त) में डी.एड. और डी.एल.एड. की समतुल्यता पर विचार नहीं किया गया था। वह प्राधिकरण जो समतुल्यता के मुद्दे का निर्णय कर सकता है वह एन.सी.टी.ई. होगा, तथापि, वर्तमान रिट याचिका में वह पक्षकार के रूप में नहीं लगाया गया है।

9. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया और अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

10. एक मुद्दा कि क्या 'नर्सरी एजुकेशन सर्टिफिकेट' डिप्लोमा इन एलीमेंट्री एजुकेशन के समतुल्य होगा, इस न्यायालय द्वारा रिट याचिकाओं के समूह (प्रमुख श्रीमती माला यादव और 10 अन्य बनाम उ.प्र. राज्य और 4 अन्य) में निर्णीत किया गया, नूट्रल साइटैशन संख्या 2024:एएचसी:26366, और संदर्भ के लिए, उसका संगत भाग निम्नवत् पुनरुत्पादित किया जाता है:-

*"**15.** इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए मुद्दा यह है कि क्या "नर्सरी ट्रेनिंग सर्टिफिकेट" "डिप्लोमा इन एलीमेंट्री एजुकेशन" (किसी भी नाम से ज्ञात हो) (जैसा कि दिनांक 23.08.2010 की एन.सी.टी.ई. अधिसूचना में उल्लिखित है जिसे दिनांक 29.07.2011 को संशोधित किया गया) और दिनांक 12.09.2014 की तत्पश्चात् अधिसूचना के समतुल्य है और क्या यह बेसिक शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालय (कक्षा I से V) में सहायक शिक्षक के पद के लिए न्यूनतम योग्यता के प्रयोजन हेतु "बेसिक टीचर्स ट्रेनिंग सर्टिफिकेट" के भी समतुल्य है?*

***16.** याचिकाकर्ताओं के तर्क का सार यह है कि एक बार जब एन.सी.टी.ई., राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (संशोधन) अधिनियम, 2011 के अधीन उपयुक्त प्राधिकरण, ने एक अधिसूचना द्वारा 2009 के अधिनियम की शर्तों में न्यूनतम योग्यता प्रदान की है, तो वही शासित होगी, चाहे किसी राज्य द्वारा सहायक शिक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए कोई भी न्यूनतम योग्यता विहित की गई हो।*

***17.** तर्क को प्रमाणित करने के लिए, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने उपर्युक्त संदर्भित अधिनियम, नियमों और परिपत्रों के विभिन्न प्रावधानों का संदर्भ दिया है जिन्हें विस्तृत करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उन पर इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा हर्ष कुमार (उपरोक्त) में, याचिकाकर्ता द्वारा संदर्भित एक निर्णय में विचार किया गया है।*

***18.** हर्ष कुमार (उपरोक्त) का संगत भाग पहले ही इस निर्णय के पूर्व भाग में उद्धृत किया जा चुका है और इस निर्णय के निस्तारण के लिए, हर्ष कुमार (उपरोक्त) में जारी एक सामान्य परमादेश को निम्नवत् दोहराया जाता है -:*

*"14. परिस्थितियों में, विशेष अपीलों को अनुज्ञात किया जाना होगा और तदनुसार, अनुज्ञात की जाती हैं। विद्वान एकल न्यायाधीश का दिनांक 14 नवम्बर 2013 का आक्षेपित निर्णय और आदेश अपास्त किया जाता है। **तदनुसार एक परमादेश जारी होगा जो राज्य को निर्देशित करेगा कि वह अपीलकर्ताओं और ऐसे अन्य व्यक्तियों को, जो उन योग्यताओं को धारण करने का दावा करते हैं जो दिनांक 23 अगस्त 2010 को एन.सी.टी.ई. द्वारा जारी अधिसूचना, जैसा कि दिनांक 29 जुलाई 2011 को संशोधित की गई, के दायरे में हैं, को कक्षा I से V के लिए सहायक शिक्षकों के पद के लिए आवेदन करने की अनुमति दे जो प्रश्नगत विज्ञापन का विषय था।***

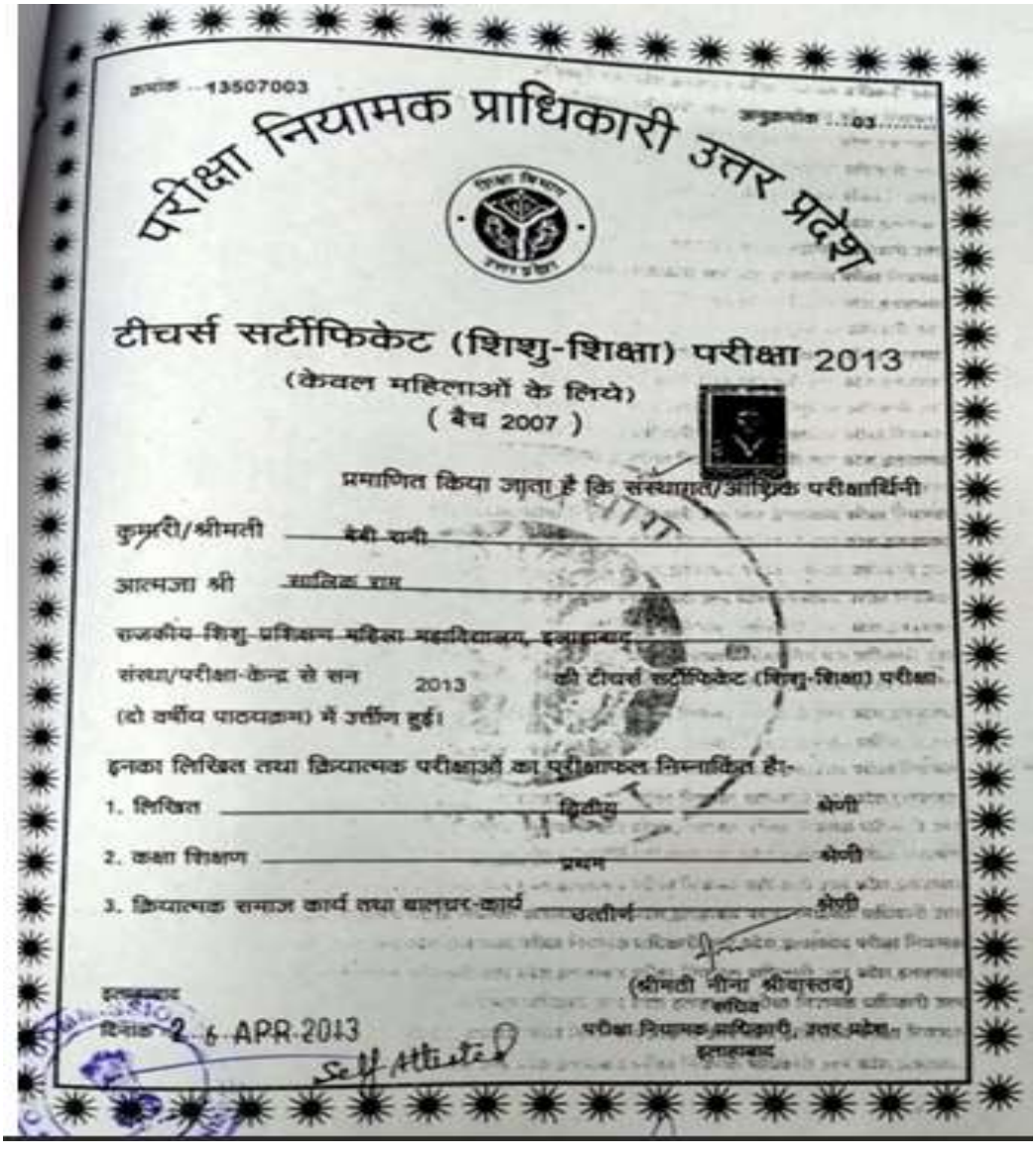
15. चूँकि न्यायालय को सूचित किया गया है कि परामर्श की प्रक्रिया अभी प्रारम्भ होनी है, हम राज्य सरकार को चयन प्रक्रिया को संसाधित करने और पूर्ण करने में उक्त निर्देश के अनुसार कार्य करने का निर्देश देते हैं।
16. हम यह स्पष्ट करते हैं कि यह मुद्दा कि क्या अपीलकर्ता एन.सी.टी.ई. द्वारा जारी अधिसूचना के सख्त अनुसार योग्यताएं धारण करते हैं, हमारे द्वारा निर्णीत नहीं किया गया है क्योंकि यह संबंधित प्राधिकारी द्वारा सत्यापन का विषय है।"

19. *उपरोक्त परमादेश यह था कि दिनांक 23.08.2010 की अधिसूचना में दी गई अनिवार्य योग्यता जैसा कि दिनांक 27.08.2011 की अधिसूचना द्वारा संशोधित की गई, को प्रश्नगत चयन प्रक्रिया में लागू किया जाए, इस सत्यापन के अधीन कि क्या अभ्यर्थी अधिसूचना की शर्तों में योग्यता धारण करता है, इसलिए, खंडपीठ के लिए यह विचार करने का अवसर नहीं था कि क्या "नर्सरी ट्रेनिंग सर्टिफिकेट" बी.टी.सी. पाठ्यक्रम के समतुल्य एक न्यूनतम योग्यता होगी?*

20. *उपरोक्त मुद्दे पर बाद में इस न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ द्वारा उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद (उपरोक्त) में विचार किया गया जिसमें हर्ष कुमार (उपरोक्त) के साथ ही एन.सी.टी.ई. द्वारा जारी दिनांक 12.11.2014 की एक तत्पश्चात् अधिसूचना पर भी विचार किया गया। साथ ही एन.सी.टी.ई. के पक्ष को भी सुना गया।*

21. *उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद (उपरोक्त) में खंडपीठ ने तत्पश्चात् एक विचारित राय पर पहुंची कि -:*
"i. दिनांक 30.06.2010 के शासनादेश में उल्लिखित "नर्सरी ट्रेनिंग प्रोग्राम" एन.सी.टी.ई. (मान्यता मानदंड और प्रक्रिया) विनियम, 2009 के परिशिष्ट I या II के अधीन बिल्कुल मान्यता प्राप्त नहीं है। एन.टी.टी. पाठ्यक्रम को विनियम, 2009 के परिशिष्ट-4 के अनुसार मान्यता प्राप्त है जो प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा के लिए है।
ii. प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा (ई.सी.ई.) केवल पूर्व-विद्यालय और प्राथमिक शिक्षा की कक्षा I और II के लिए है।
iii. प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम का उद्देश्य शिक्षा के प्रारंभिक चरण अर्थात् कक्षा I से VI/VII के लिए शिक्षकों को तैयार करना है।
iv. उ.प्र. की बेसिक शिक्षा परिषद किसी भी नर्सरी स्कूल को अतिरिक्त रूप से कक्षा I और II चलाने के लिए मान्यता प्रदान नहीं करती है। संस्थाओं की तीन श्रेणियाँ हैं (i) नर्सरी स्कूल (ii) जूनियर बेसिक स्कूल (iii) सीनियर बेसिक स्कूल। याचिकाकर्ता-विपक्षी पक्षकारों को अधिकतम नर्सरी स्कूल में नियुक्त किया जा सकता है लेकिन उन्हें जूनियर बेसिक स्कूल/सीनियर बेसिक स्कूल में नियुक्त नहीं किया जा सकता है।
v. एक बार जब याचिकाकर्ता-विपक्षी पक्षकारों के अनुसार एन.टी.टी. पाठ्यक्रम 4-6 आयु वर्ग के बच्चों के लिए डिजाइन किया गया है जिसके बाद औपचारिक स्कूल में प्रथम 2 वर्ष अर्थात् 6-8 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों के लिए है, तो प्रश्नगत उक्त पाठ्यक्रम को कक्षा III से V के छात्रों तक भी आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है क्योंकि यह डिजाइन किए गए एन.टी.टी. पाठ्यक्रम से परे जाना होगा।"

22. *उपरोक्त संदर्भ नर्सरी स्कूल और जूनियर बेसिक स्कूल और उनके शिक्षकों की उनकी न्यूनतम शिक्षा की शर्तों में संबंधित आवश्यकता में स्पष्ट अंतर करता है। प्रश्नगत प्रमाणपत्र "सर्टिफिकेट टीचर (शिशु-शिक्षा) परीक्षा 2013" है। पाठ्यक्रम के विषय हैं शिक्षा सिद्धांत तथा शिक्षालय संगठन, बाल अध्ययन, विशेष पाठन विधि ज्ञानोपकरण, विशेष पाठन विधि विषय और संदर्भ के लिए, एक याचिकाकर्ता का प्रमाणपत्र और परिणाम निम्नवत् स्कैन किया गया है -:*



क्रमांक 13507003

परीक्षा नियामक प्राधिकारी उत्तर प्रदेश

अनुक्रमांक 03

टीचर्स सर्टीफिकेट (शिशु-शिक्षा) परीक्षा 2013

(केवल महिलाओं के लिये)

(बैच 2007)

प्रमाणित किया जाता है कि संस्थागत/औपचारिक परीक्षार्थिनी

कुमारी/श्रीमती [redacted]

आत्मजा श्री [redacted]

राजकीय-शिशु-प्रशिक्षण-महिला-महाविद्यालय, इलाहाबाद

संस्था/परीक्षा-केन्द्र से सन 2013 की टीचर्स सर्टीफिकेट (शिशु-शिक्षा) परीक्षा

(दो वर्षीय पाठ्यक्रम) में उत्तीर्ण हुई।

इनका लिखित तथा क्रियात्मक परीक्षाओं का परीक्षाफल निम्नांकित है:-

1. लिखित द्वितीय श्रेणी

2. कक्षा शिक्षण प्रथम श्रेणी

3. क्रियात्मक समाज कार्य तथा बालघर-कार्य उत्तीर्ण श्रेणी

इलाहाबाद

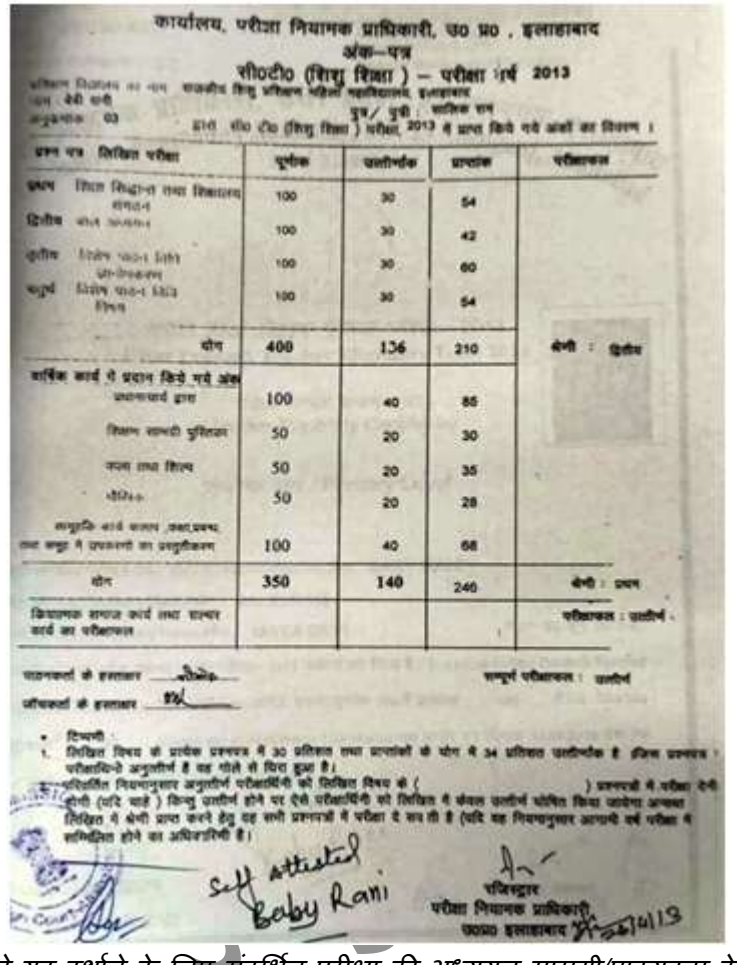
दिनांक 26 APR 2013

(श्रीमती नीना श्रीवास्तव)

परीक्षा नियामक प्राधिकारी, उत्तर प्रदेश

इलाहाबाद

Self Attested



कार्यालय, परीक्षा नियामक प्राधिकारी, उ0 प्र0 , इलाहाबाद

अंक–पत्र

सी0टी0 (शिशु शिक्षा) – परीक्षा वर्ष 2013

प्रश्न पत्र लिखित परीक्षा	पूर्णांक	उत्तीर्णांक	प्राप्तांक	परीक्षाफल
प्रथम शिक्षा सिद्धान्त तथा शिक्षालय संगठन	100	30	54	
द्वितीय	100	30	42	
तृतीय	100	30	60	
चतुर्थ	100	30	54	
योग	400	136	210	श्रेणी : द्वितीय
वार्षिक कार्य में प्रदान किये गये अंक				
प्रयोगकार्य द्वारा	100	40	86	
शिक्षण सामग्री पुस्तिका	50	20	30	
चयन तथा क्रिया	50	20	35	
फीचर्स	50	20	28	
सामुदायिक कार्य कलाप ,स्काउट,प्रबन्ध तथा समूह में उपकरणों का प्रयुक्तीकरण	100	40	68	
योग	350	140	240	श्रेणी : प्रथम
क्रियात्मक समाज कार्य तथा वाचार कार्य का परीक्षाफल				परीक्षाफल : उत्तीर्ण

पाठ्यचर्या के हस्ताक्षर

परीक्षकों के हस्ताक्षर

सम्पूर्ण परीक्षाफल : उत्तीर्ण

टिप्पणी

1. लिखित विषय के प्रायोगिक प्रश्नपत्र में 30 प्रतिशत तथा प्रायोगिकों के योग में 34 प्रतिशत उत्तीर्णांक है जिसमें प्रश्नपत्र परीक्षार्थिनी अनुत्तीर्ण है वह गोले से घिरा हुआ है।

2. परीक्षितीय नियमानुसार अनुत्तीर्ण परीक्षार्थिनी को लिखित विषय के ( ) प्रश्नपत्रों में परीक्षा देनी होगी (यदि चाहे) किन्तु उत्तीर्ण होने पर ऐसे परीक्षार्थिनी को लिखित में संचयन उत्तीर्ण घोषित किया जायेगा अन्यथा लिखित में श्रेणी प्राप्त करने हेतु वह सभी प्रश्नपत्रों में परीक्षा दे सकती है (यदि वह नियमानुसार आगामी वर्ष परीक्षा में सम्मिलित होने का अधिकारिणी है।

Self attested
Baby Rani

रजिस्ट्रार
परीक्षा नियामक प्राधिकारी
उ0प्र0 इलाहाबाद 4/13

23. *याचिकाकर्ताओं ने यह दर्शाने के लिए संदर्भित परीक्षा की अध्ययन सामग्री/पाठ्यक्रम के विवरण को अभिलेख पर नहीं लाया है कि यह कक्षा-V तक भी पर्याप्त होगी, जबकि बेसिक टीचर सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम में सी.टी. (शिशु शिक्षा) से कहीं अधिक विस्तृत अध्ययन सामग्री है। संदर्भ के लिए वही नीचे उल्लिखित है -:*

प्रथम वर्ष
शिक्षा और शिक्षण के सिद्धांत
बाल विकास का मनोवैज्ञानिक आधार
शिक्षण विषय: हिन्दी, पर्यावरण अध्ययन, सामाजिक अध्ययन, गणित, संस्कृत/उर्दू, अंग्रेजी
संज्ञानात्मक पक्ष: नैतिक शिक्षा, शारीरिक शिक्षा और संगीत, कला
मनोगत्यात्मक पक्ष: कक्षा शिक्षण, पाठ्यक्रम विश्लेषण
द्वितीय वर्ष
प्रारंभिक की उभरती प्रवृत्तियाँ: शिक्षा और शिक्षा मूल्यांकन, विद्यालय प्रबंधन, सामुदायिक शिक्षा और स्वास्थ्य शिक्षा

शिक्षण विधियाँ, कार्य अनुभव और संगत व्यावहारिक कार्य: *हिन्दी, पर्यावरण शिक्षा, विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, गणित, SUPW, संस्कृत/उर्दू, अंग्रेजी*
संज्ञानात्मक पक्ष: *शारीरिक शिक्षा और संगीत*
मनोगत्यात्मक पक्ष : *कक्षा शिक्षण, विद्यालय अनुभव (इंटर्नशिप) सामुदायिक कार्य और कार्यवाही अनुसंधान, पाठ्यक्रम और पाठ्य पुस्तक का विश्लेषण*

24. *इस न्यायालय ने उपरोक्त कार्य किया है क्योंकि हर्ष कुमार (उपरोक्त) ने यह सत्यापित करने के लिए स्वतंत्रता भी प्रदान की है कि क्या एक अभ्यर्थी का पाठ्यक्रम एन.सी.टी.ई. द्वारा जारी अधिसूचना की शर्तों में समान होगा, अन्यथा, उ.प्र. बेसिक शिक्षा परिषद (उपरोक्त) पूर्णतः याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध है।*

25. *सर्टिफिकेट ट्रेनिंग (शिशु शिक्षा) और बेसिक टीचर सर्टिफिकेट की पाठ्यक्रम सामग्री के मानकों का एक सामान्य विचार यह अवलोकन करने के लिए पर्याप्त है कि बेसिक ट्रेनिंग सर्टिफिकेट की पाठ्यक्रम सामग्री कक्षा-V तक शिक्षण के प्रयोजन के लिए प्रस्तावित है, जबकि सी.टी. (शिशु शिक्षा) की पाठ्यक्रम सामग्री केवल पूर्व-विद्यालय अर्थात् कक्षा-II तक सीमित होगी।*

26. *उपर्युक्त अवलोकनों के दृष्टिगत, न केवल उ.प्र. बेसिक शिक्षा परिषद (उपरोक्त) याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध है बल्कि सी.टी. (शिशु शिक्षा) की पाठ्यक्रम सामग्री का उपरोक्त विचार सहायक शिक्षकों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता अर्थात् बी.टी.सी. की पाठ्यक्रम सामग्री के समतुल्य नहीं है।*

27. *इसलिए, सभी रिट याचिकाएं गुणहीन होने के कारण* ***खारिज*** *की जाती हैं।"*

11. उपरोक्त निर्णय के विरुद्ध चुनौती इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष (विशेष अपील संख्या- 305/2024), बिन्दू यादव बनाम उ.प्र. राज्य और 3 अन्य में लंबित है।

12. यह सुनिश्चित करने के लिए कि क्या डी.एड. और डी.एल.एड. का पाठ्यक्रम समान है या उनमें प्रारंभिक अंतर है, उनके संबंधित पाठ्यक्रम निम्नवत् उल्लिखित हैं:

"प्रथम वर्ष के लिए डी.एल.एड. पाठ्यक्रम

आधार पाठ्यक्रम	
बच्चों के मनोविज्ञान को समझना	समकालीन भारतीय समाज में शिक्षा
शिक्षा समाज, और पाठ्यक्रम	पाठ्यक्रम में शिक्षाशास्त्र
शिक्षाशास्त्रीय पाठ्यक्रम	
अंग्रेजी भाषा का शिक्षण	हिन्दी भाषा शिक्षण
गणित का शिक्षण	पर्यावरण अध्ययन का शिक्षण

व्यावहारिक पाठ्यक्रम	
बच्चों का शारीरिक और भावनात्मक स्वास्थ्य, विद्यालय स्वास्थ्य और शिक्षा	सृजनात्मक नाटक, ललित कला, और शिक्षा विद्यालय प्रशिक्षुता-I (30 से 35 दिन)
द्वितीय वर्ष के लिए डी.एल.एड. पाठ्यक्रम	
आधार पाठ्यक्रम	
बच्चों के सीखने और संज्ञान को समझना	शिक्षक पहचान, विद्यालय संस्कृति और नेतृत्व
विविधता, लिंग और समावेशी शिक्षा	NA
शिक्षाशास्त्रीय पाठ्यक्रम	
अंग्रेजी शिक्षा	हिन्दी शिक्षा
गणित शिक्षा	विज्ञान शिक्षा
व्यावहारिक पाठ्यक्रम	
बच्चों का शारीरिक और भावनात्मक स्वास्थ्य, विद्यालय स्वास्थ्य और शिक्षा - II	सृजनात्मक नाटक, ललित कला और शिक्षा- II
विद्यालय प्रशिक्षुता-I (50 से 55 दिन)	NA

अनुवादित

<u>डी.एड. पाठ्यक्रम</u>

1. प्रथम भाग सैद्धांतिक

प्रथम वर्ष

प्रश्न पत्र- 1	भारतीय समाज में शिक्षा
प्रश्न पत्र- 2	बाल विकास (पोषण, स्वास्थ्य, शारीरिक शिक्षा, योग और नैतिक विकास)
प्रश्न पत्र- 3	विद्यालय प्रबंधन और योजना
प्रश्न पत्र- 4	हिन्दी भाषा और इसका शिक्षण
प्रश्न पत्र- 5	गणित और इसका शिक्षण

द्वितीय वर्ष

प्रश्न पत्र-6	शैक्षिक मनोविज्ञान
प्रश्न पत्र-7	शैक्षिक प्रौद्योगिकी और अनुसंधान
प्रश्न पत्र-8	अंग्रेजी भाषा और इसका शिक्षण
प्रश्न पत्र-9	सामाजिक विज्ञान और इसका शिक्षण
प्रश्न पत्र-10	विज्ञान और पर्यावरण शिक्षा और उनका शिक्षण

2. भाग II व्यावहारिक

व्यावहारिक अभ्यास (प्रथम और द्वितीय वर्ष)
क. शिक्षण अभ्यास
ख. कार्य अनुभव
i. अनिवार्य गतिविधियाँ
ii. वैकल्पिक गतिविधियाँ
ग. सामाजिक सांस्कृतिक और सृजनात्मक कार्य व्यवहार
i. समाज के साथ कार्य करना
ii. शारीरिक शिक्षा, योग शिक्षा और सांस्कृतिक गतिविधियाँ
iii. चित्रकला और ललित कला शिक्षा
iv. कंप्यूटर शिक्षा

13. उपरोक्त पाठ्यक्रम में अंतर पर्याप्त हैं। डी.एल.एड. बच्चों के मनोविज्ञान को समझने, बाल विकास और बाल्यावस्था, परामर्श और मार्गदर्शन पर्यावरण अध्ययन आदि पर अधिक है; जबकि डी.एड. उच्च प्राथमिक कक्षाओं के लिए केंद्रित सामान्य विषयों पर अधिक है, जिसमें शिक्षण अभ्यास में बाल विकास और कार्य अनुभव शामिल है।

14. यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि डी.एल.एड. का मॉड्यूल जहाँ बाल विकास पर केंद्रण है, प्रारंभिक आयु के बच्चों का है। यह एक बहुत विशिष्ट मॉड्यूल है और पाठ्यक्रम भी बहुत विशिष्ट है और डी.एड. के पाठ्यक्रम से तर्कसंगत अंतर रखता है, इसलिए, डी.एड. डी.एल.एड. के समतुल्य नहीं है। तदनुसार, आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है।

15. वर्तमान रिट याचिका तदनुसार **खारिज** की जाती है।

(2025) 5 ILRA 1561

अपीलीय अधिकारिता – आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.05.2025

माननीय न्यायमूर्ति चन्द्र धारी सिंह, न्यायाधीश के समक्ष

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन सं. 24930 सन् 2024

कमलेश यादव ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपक्षी पक्षकार

आवेदक के अधिवक्ता: हरि नारायण सिंह, पुण्य शील पांडेय

विपक्षी पक्षकार के अधिवक्ता: जी.ए.

आपराधिक विधि – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 439 – भारतीय दंड संहिता, 1860 – धाराएँ 406, 419, 420, 467, 468, 471 एवं 120-B – जमानत – जमानत देने या अस्वीकार करने के सिद्धांत

आवेदक ठगी एवं जालसाजी के 52 आपराधिक मामलों का आदतन अपराधी – FIR दर्ज करने में चार वर्षों की देरी का कोई स्पष्टीकरण नहीं – कपटपूर्ण विक्रय लेनदेन में संपत्ति मध्यस्थ के रूप में आरोपित भूमिका – अपराध की गंभीरता एवं पूर्ववृत्त आवेदक को जमानत का अधिकार नहीं देते – सह-अभियुक्त की जमानत समानता का आधार नहीं – अभिनिर्धारित: जमानत देने के विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायसंगत रूप से पूर्ववृत्त, गंभीरता, साक्ष्य से छेड़छाड़ की संभावना एवं अपराध की पुनरावृत्ति को देखते हुए किया जाना चाहिए – जमानत अस्वीकृत। (पैरा 14, 20, 22, 23 एवं 25)

अभिनिर्धारण:

इस न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार किया है कि आवेदक के विरुद्ध धारा 420 IPC के अधीन लगभग 52 आपराधिक मामले लंबित हैं। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (Cr.P.C.) की अनुसूची 1 के अधीन, धारा 420 IPC के अधीन अपराध संज्ञेय एवं अजमानतीय है तथा प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय है, अतः वर्तमान अपराध गंभीर प्रकृति का है। यह भी उल्लेखनीय है कि वह धारा 420 IPC के दंडनीय समान प्रकृति के अपराध का आदतन अपराधी है। उक्त तथ्यों को देखते हुए, न्यायालय के मन में यह प्रबल आशंका है कि जमानत पर रिहा होने पर आवेदक साक्ष्य से छेड़छाड़ कर सकता है और साक्षियों को प्रभावित कर सकता है। यह भी प्रबल आशंका है कि वह इस न्यायालय द्वारा लगाई गई शर्तों का उल्लंघन कर सकता है और भविष्य में समान प्रकृति का अपराध दोहरा सकता है। उक्त कारणों को दृष्टिगत रखते हुए, यह न्यायालय अपनी विवेकाधिकारी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उदार दृष्टिकोण नहीं अपना सकता। (पैरा 22)

यह उल्लेखनीय है कि इस मामले में सह-अभियुक्त, जिसे जमानत पर रिहा किया गया है, वर्तमान आवेदक से कोई समानता नहीं रखता, क्योंकि वह आदतन अपराधी है और 52 मामलों का आपराधिक इतिहास रखता है। (पैरा 23)

जमानत आवेदन अस्वीकृत। (E-14)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. राम गोविंद उपाध्याय बनाम सुदर्शन सिंह, (2002) 3 SCC 598
2. चमन लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2004) 7 SCC 525
3. प्रशांत कुमार सरकार बनाम आशीष चटर्जी एवं अन्य, (2010) 14 SCC 496
4. Ms. Y. बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, आपराधिक अपील सं. 649/2022, निर्णीत 19.04.2022
5. महीपाल बनाम राजेश कुमार, (2020) 2 SCC 118
6. जगजीत सिंह एवं अन्य बनाम आशीष मिश्रा @ मोनू एवं अन्य, आपराधिक अपील सं. 632/2022, निर्णीत 18.04.2022

(न्यायमूर्ति चन्द्र धारी सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक ने अपने भाई राम बलेश यादव के माध्यम से धारा 439 दं.प्र.सं. के अधीन वर्तमान जमानत आवेदन प्राथमिकृत की है, जिसमें मुकदमा अपराध संख्या 112/2023, धारा 406, 419, 420, 467, 468, 471, 120-ख भारतीय दण्ड संहिता, थाना - एम्स, जनपद - गोरखपुर में नियमित जमानत की मांग की गई है।

<u>संक्षिप्त तथ्य</u>

2. आवेदन के संक्षेप में प्रस्तुत मूल तथ्य निम्नानुसार हैं:

(i) आवेदक 28.7.2023 से जेल में है। प्रथम सूचनाकर्ता पुष्पा प्रजापति ने आवेदक तथा एक अन्य व्यक्ति अजय शर्मा के विरुद्ध दिनांक 7.9.2025 को सायं 6:07 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट (संक्षेप में 'एफ.आई.आर.') दर्ज कराई, जिसे मुकदमा अपराध संख्या 112/2023, धारा 406, 419, 420, 467, 468, 471, 120-ख भारतीय दण्ड संहिता, थाना - एम्स, जनपद - गोरखपुर के रूप में पंजीकृत किया गया।

(ii) एफ.आई.आर. में यह आरोपित किया गया है कि आवेदक एक संपत्ति डीलर है और गाता संख्या 112 की भूमि, जो ग्राम - बहरामपुर, तहसील - चौरी चौरा, जनपद - गोरखपुर में स्थित है, उपलब्ध कराने के एवज में उसने परिवादी पुष्पा प्रजापति से रु. 50,000/- तथा रु. 2,00,000/- की राशि ली। विक्रय विलेख के निष्पादन के समय प्रथम सूचनाकर्ता ने "विन्ध्यवासिनी ट्रेडर्स" के नाम पर रु. 7,00,000/- तथा रु. 2,00,000/- के दो चेक दिए। कुछ समय पश्चात, उसने दोनों चेक वापस कर दिए और कहा कि चेकों पर किए गए हस्ताक्षर मेल

नहीं खाते। तत्पश्चात, उसने एक अजय शर्मा के खाते में रु. 2,00,000/- की राशि हस्तांतरित कर दी, जिससे उक्त संपत्ति के लिए आवेदक को कुल रु. 14,50,000/- का भुगतान किया गया। यह भी आरोपित किया गया है कि उक्त संपत्ति खरीदने के बाद, पुष्पा प्रजापति ने एक आवासीय भवन भी निर्मित किया और परिवार सहित वहां निवास कर रही है। उस अवधि के दौरान उसे यह तथ्य ज्ञात हुआ कि विक्रय विलेख का निष्पादन एक प्रतिरूपक व्यक्ति द्वारा स्वयं को अजय शर्मा, भूमि का वास्तविक स्वामी दर्शाते हुए किया गया था।
आवेदक ने अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 2, गोरखपुर के समक्ष जमानत के लिए आवेदन किया था, जिसे दिनांक 16.6.2024 के आदेश द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि आवेदक द्वारा किए गए अपराध की गंभीरता जघन्य प्रकृति की है।

(iii) सह-अभियुक्त चन्द्र शेखर शाही, उप-रजिस्ट्रार, जिन्होंने कथित विक्रय विलेख पंजीकृत किया था, को अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम) (यू.पी.एस.ई.बी.), गोरखपुर द्वारा दिनांक 7.11.2023 के आदेश द्वारा इस आधार पर जमानत दी गई कि उनका नाम एफ.आई.आर. में नहीं था और उनके द्वारा पंजीकृत उसी विक्रय विलेख को अभी तक किसी विधि न्यायालय द्वारा अवैध घोषित नहीं किया गया है।

(iv) अभियुक्त/आवेदक के विरुद्ध 52 मामलों का आपराधिक इतिहास है और अधिकांश मामले अभियुक्त के विरुद्ध धारा 420 भा.द.सं. के अधीन दर्ज किए गए हैं। इसके अतिरिक्त, वर्तमान मामले सहित 52 आपराधिक मामलों में से, आवेदक को जमानत दी गई है और शेष मामलों में अभियुक्त/आवेदक के विरुद्ध अभी तक कोई आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया है।

<u>आवेदक के अधिवक्ता की ओर से प्रस्तुतियाँ</u>

3. यह प्रस्तुत किया गया है कि कथित विक्रय विलेख 11.11.2019 को निष्पादित किया गया था और एफ.आई.आर. वर्ष 2023 में घटना के 4 वर्ष बीत जाने के बाद दर्ज की गई, जिसमें उक्त एफ.आई.आर. दर्ज कराने में विलम्ब का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया। यह प्रबलता से प्रस्तुत किया गया है कि एफ.आई.आर. द्वेषपूर्ण आशय से पश्चात् चिन्तन के रूप में दर्ज की गई है।

4. एफ.आई.आर. के अनुसार, यह प्रस्तुत किया गया है कि रु. 14,50,000/- की कथित राशि आवेदक के साथ-साथ सह-अभियुक्त अजय शर्मा को भुगतान की गई थी। तथापि, आवेदक ने अपने खाते में कुल रु. 9,60,000/- की राशि प्राप्त की और रु. 2,00,000/- दिनांक 4.12.2019 को आर.टी.जी.एस. के माध्यम से अजय शर्मा के खाते में प्राप्त हुई।

5. यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक ने सम्पूर्ण राशि, जो प्रथम सूचनाकर्ता द्वारा आवेदक के खाते में जमा की गई थी, विक्रय विलेख के निष्पादन के समय सह-अभियुक्त अजय शर्मा के माध्यम से हस्तांतरित कर दी। प्रश्नगत भूमि की राशि का संपूर्ण प्रतिफल लेने के पश्चात, सह-अभियुक्त अजय शर्मा ने प्रथम सूचनाकर्ता

श्रीमती पुष्पा प्रजापति के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किया, जिसमें आवेदक का कोई दोष नहीं है। यह तर्क दिया गया है कि विषयगत संपत्ति का वास्तविक स्वामी अजय शर्मा है, जिसने विक्रय विलेख निष्पादित किया है। उसने उप-रजिस्ट्रार के कार्यालय में अपना आधार कार्ड भी प्रस्तुत किया, इसलिए वह एफ.आई.आर. में आरोपित प्रतिरूपक नहीं था। कोई प्रतिरूपक व्यक्ति नहीं था, जिसने विक्रय विलेख निष्पादित किया हो।

6. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक इस प्रकार के अपराध में संलिप्त नहीं है। प्रथम सूचनाकर्ता ने उसे वर्तमान मामले में मिथ्या रूप से फँसाया है क्योंकि आवेदक मध्यस्थ है और उसने अपने खाते में राशि प्राप्त की, परन्तु आवेदक ने संपूर्ण राशि निकालने के बाद विक्रय विलेख के निष्पादन से पूर्व भूमि स्वामी को दे दी, जिसमें आवेदक का कोई दोष नहीं है।

7. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक ने एफ.आई.आर. में आरोपित अपराध नहीं किया है। प्रथम सूचनाकर्ता ने आवेदक को वर्तमान मामले में अभियुक्त के रूप में मिथ्या रूप से फँसाया है केवल इसलिए कि उसने प्रथम सूचनाकर्ता को अजय शर्मा से परिचित कराया था। यह तर्क दिया गया है कि सह-अभियुक्त चन्द्र शेखर शाही को पहले ही अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम) (यू.पी.एस.ई.बी.), गोरखपुर द्वारा दिनांक 7.11.2023 के आदेश द्वारा इस आधार पर जमानत दी गई है कि उनका नाम एफ.आई.आर. में नहीं था और उनके द्वारा पंजीकृत उसी विक्रय विलेख को किसी विधि न्यायालय द्वारा अवैध घोषित नहीं किया गया है। एफ.आई.आर. के अनुसार, वर्तमान मामले में आवेदक की भूमिका यह है कि उसने कथित विक्रय विलेख के लिए प्रथम सूचनाकर्ता को भूमि स्वामी से परिचित कराया, इसलिए वह भी माननीय न्यायालय से जमानत प्राप्त करने में इच्छुक है।

8. उपरोक्त प्रस्तुतियों के दृष्टिगत, आवेदक की ओर से उपस्थित अधिवक्ता द्वारा यह प्रार्थना की गई है कि आवेदक को उन शर्तों के अधीन जमानत पर रिहा किया जाए, जिन्हें यह न्यायालय जमानत देते समय आवेदक पर आरोपित करना उचित समझे।

<u>राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान शासकीय अधिवक्ता की प्रस्तुतियाँ</u>

9. विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने आवेदक के जमानत आवेदन का इस आधार पर प्रबलता से विरोध किया है कि आवेदक के विरुद्ध 52 आपराधिक मामले पंजीकृत हैं और अधिकतर धारा 420 भा.द.सं. के अधीन पंजीकृत हैं।

10. यह प्रस्तुत किया गया है कि विवेचना के दौरान, विवेचना अधिकारी ने प्रथम सूचनाकर्ता श्रीमती पुष्पा प्रजापति का कथन दिनांक 10.9.2023 को धारा 161 दं.प्र.सं. के अधीन अभिलिखित किया और उसने एफ.आई.आर. में उसी वर्णन का समर्थन किया है।

अनुवादित

11. यह प्रस्तुत किया गया है कि सह-अभियुक्त को जमानत दिया जाना वर्तमान मामले में कोई प्रभाव नहीं डालता, क्योंकि आवेदक इस मामले में मुख्य अभियुक्त है, उसे जमानत नहीं दी जा सकती क्योंकि यह आशंका है कि वह साक्ष्य से छेड़छाड़ कर सकता है या विवेचना या विचारण की प्रक्रिया को लम्बा खींच सकता है क्योंकि वह एक अभ्यस्त अपराधी है।

12. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त प्रस्तुतियों के दृष्टिगत, आवेदक वर्तमान जमानत आवेदन में प्रार्थना के अनुसार उसे जमानत पर रिहा करने का मामला बनाने में असफल रहा है। आवेदक इस न्यायालय से उसे जमानत पर रिहा करने के लिए किसी कोमलता का पात्र नहीं है। आवेदन किसी योग्यता से रहित है और खारिज किए जाने योग्य है।

<u>विश्लेषण और निष्कर्ष</u>

13. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के लिए विद्वान शासकीय अधिवक्ता को सुना गया और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

14. इस स्तर पर, मामले की योग्यता की ओर अग्रसर होने से पूर्व, यह न्यायालय यह उचित समझता है कि जमानत देने से संबंधित विधि को दोहराया जाए जिसमें विभिन्न कारकों को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है।

15. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **राम गोविन्द उपाध्याय बनाम सुदर्शन सिंह 2002(3) एससीसी 598** के मामले में, इस निर्णय के अनुच्छेद संख्या 3 और 4 में, निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

"3. जमानत देना यद्यपि एक विवेकाधीन आदेश है - लेकिन, तथापि, ऐसे विवेक का प्रयोग न्यायिक रीति से किया जाना आवश्यक है न कि यांत्रिक रूप से। कोई सुसंगत कारण रहित जमानत का आदेश पोषणीय नहीं हो सकता। अभिलिखित किए जाने की आवश्यकता नहीं है, तथापि, कि जमानत का दिया जाना न्यायालय द्वारा निपटाए जा रहे मामले के प्रासंगिक तथ्यों पर निर्भर करता है और तथ्य, तथापि, मामले से मामले में भिन्न होते हैं...अपराध की प्रकृति जमानत देने के लिए मूल विचारों में से एक है - अपराध जितना अधिक जघन्य है, जमानत अस्वीकार किए जाने की संभावना उतनी ही अधिक है, यद्यपि, तथापि, मामले के तथ्यात्मक ढांचे पर निर्भर करता है।

4. उपरोक्त के अतिरिक्त, कुछ अन्य जो प्रासंगिक विचार माने जा सकते हैं, उन्हें भी इस स्तर पर नोट किया जा सकता है, यद्यपि तथापि, वे केवल उदाहरणात्मक हैं और संपूर्ण नहीं हैं, न ही कोई हो सकते हैं। विचार निम्नलिखित हैं:

(क) जमानत देते समय न्यायालय को केवल आरोपों की प्रकृति को ही ध्यान में नहीं रखना है, बल्कि दण्ड की गंभीरता को भी, यदि आरोप दोषसिद्धि की ओर ले जाता है और आरोपों के समर्थन में साक्ष्य की प्रकृति को भी।

(ख) साक्षियों से छेड़छाड़ किए जाने की युक्तियुक्त आशंका या परिवादी के लिए धमकी होने की आशंका भी जमानत देने के मामले में न्यायालय को प्रभावित करनी चाहिए।

(ग) यद्यपि युक्तियुक्त संदेह से परे अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने वाले संपूर्ण साक्ष्य की अपेक्षा नहीं की जाती है, परन्तु आरोप के समर्थन में न्यायालय का प्रथम दृष्टया संतुष्टि सदैव होनी चाहिए।

(घ) अभियोजन में तुच्छता पर सदैव विचार किया जाना चाहिए और यह केवल वास्तविकता का तत्व है जिस पर जमानत देने के मामले में विचार किया जाना चाहिए, और यदि अभियोजन की वास्तविकता के बारे में कोई संदेह हो, तो घटनाओं के सामान्य क्रम में, अभियुक्त जमानत के आदेश का हकदार है।"

16. **चमन लाल बनाम उ.प्र. राज्य तथा अन्य (2004) 7 एससीसी 525** के मामले में; माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने अनुच्छेद-9 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

"9: आदेश में कारणों को इंगित करने की आवश्यकता है कि प्रथम दृष्टया यह निष्कर्ष क्यों निकाला जा रहा था कि जमानत क्यों दी जा रही थी, विशेष रूप से जहां एक अभियुक्त पर गंभीर अपराध करने का आरोप लगाया गया था। जमानत के लिए आवेदन से निपटने वाले न्यायालयों के लिए अन्य परिस्थितियों के साथ-साथ, निम्नलिखित कारकों पर भी विचार करना आवश्यक है, वे हैं:

1. आरोप की प्रकृति और दोषसिद्धि की स्थिति में दण्ड की गंभीरता और समर्थक साक्ष्य की प्रकृति।
2.साक्षी से छेड़छाड़ की युक्तियुक्त आशंका या परिवादी को धमकी की आशंका।
3. आरोप के समर्थन में न्यायालय की प्रथम दृष्टया संतुष्टि।

***10.** ऐसे कारणों से रहित कोई भी आदेश मन के अप्रयोग से ग्रस्त होता है जैसा कि इस न्यायालय ने राम गोविन्द उपाध्याय बनाम सुदर्शन सिंह, पूरन बनाम रामबिलास और कल्याण चन्द्र सरकार बनाम राजेश रंजन में नोट किया है।*

***11.** यद्यपि पक्षों द्वारा उठाए गए बिन्दुओं के संबंध में निर्णयात्मक निष्कर्ष की जमानत आवेदन पर विचार करने वाले न्यायालय से अपेक्षा नहीं की जाती है, फिर भी कारण देना योग्यता या अयोग्यता पर चर्चा करने से भिन्न है। जैसा कि ऊपर नोट किया गया है, जमानत देने के स्तर पर साक्ष्य की विस्तृत परीक्षा और मामले की योग्यता के विस्तृत प्रलेखन का कार्य नहीं किया जाना है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि जमानत देते*

समय प्रथम दृष्टया यह निष्कर्ष निकालने के लिए कुछ कारणों को इंगित करना आवश्यक नहीं है कि जमानत क्यों दी जा रही थी।

17. **प्रसान्त कुमार सरकार बनाम आशीष चटर्जी तथा अन्य (2010) 14 एससीसी 496** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

अनुच्छेद 09: *हम इस मत के हैं कि आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अपोषणीय है। यह सुविदित है कि यह न्यायालय सामान्यतया, उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को जमानत देने या अस्वीकार करने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करता है। तथापि, उच्च न्यायालय के लिए यह समान रूप से आवश्यक है कि वह अपने विवेक का प्रयोग न्यायिक रूप से, सावधानीपूर्वक और इस बिन्दु पर इस न्यायालय के असंख्य निर्णयों में निर्धारित मूल सिद्धान्तों के कठोर अनुपालन में करे। यह सुस्थापित है कि, अन्य परिस्थितियों के साथ-साथ, जमानत के लिए आवेदन पर विचार करते समय ध्यान में रखे जाने वाले कारक हैं:*

(i) क्या कोई प्रथम दृष्टया या युक्तियुक्त आधार विश्वास करने के लिए है कि अभियुक्त ने अपराध किया था;
(ii) आरोप की प्रकृति और गंभीरता;
(iii) दोषसिद्धि की स्थिति में दण्ड की गंभीरता;
(iv) यदि जमानत पर रिहा किया जाए तो अभियुक्त के फरार होने या भाग जाने का खतरा;
(v) अभियुक्त का चरित्र, व्यवहार, साधन, स्थिति और प्रतिष्ठा;
(vi) अपराध की पुनरावृत्ति की संभावना;
(vii) साक्षियों को प्रभावित किए जाने की युक्तियुक्त आशंका; और
(viii) न्याय के विफल होने का खतरा, निस्संदेह, जमानत देने से। अन्य परिस्थितियों के साथ-साथ।

18. उपरोक्त निर्णय के अनुसार, माननीय उच्चतम न्यायालय ने अंततः यह अभिनिर्धारित किया कि आवेदक को जमानत देने पर विचार करते समय, न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह कुछ कारकों को ध्यान में रखे जैसे कि दोषसिद्धि की स्थिति में आरोप की प्रकृति और दण्ड की गंभीरता तथा समर्थक साक्ष्य की प्रकृति, साक्षी से छेड़छाड़ की युक्तियुक्त आशंका या परिवादी को धमकी की आशंका और आरोप के समर्थन में न्यायालय की प्रथम दृष्टया संतुष्टि।

19. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **सुश्री वाई. बनाम राजस्थान राज्य तथा अन्य दांडिक अपील संख्या-649/2022 दिनांक 19/04/2022 को निर्णीत** के मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि जमानत देने के लिए कोई निश्चित सूत्र नहीं है और न्यायालय जमानत आवेदन पर अपने समक्ष तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार जमानत देने के लिए अपने विवेक का प्रयोग करेगा। प्रासंगिक अनुच्छेद संख्या 8, 9, 10, 11, 12, 13 और 14 यहां नीचे पुनरुत्पादित किए गए हैं।

अनुवादित

8. *उच्चतम न्यायालय ने निर्णयों की एक श्रृंखला में, उन विचारों की रूपरेखा प्रस्तुत की है जिनके आधार पर दं.प्र.सं. की धारा 439 के अधीन विवेक का प्रयोग जमानत देते समय किया जाना है।* ***गुरचरण सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) (1978) 1 एससीसी 118*** *में, इस माननीय उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न मापदण्डों के बारे में अभिनिर्धारित किया है जिन पर जमानत देते समय विचार किया जाना चाहिए। उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:*

"24. ...फिर भी, उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय को नई संहिता की धारा 439(1) दं.प्र.सं. के अधीन जमानत देने के प्रश्न पर विचार करते समय अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करना होगा। जमानत देने में अधिभावी विचार जिन्हें हमने पूर्व में उल्लिखित किया है और जो नई संहिता की धारा 437(1) और धारा 439(1) दं.प्र.सं. दोनों के मामले में समान हैं, वे परिस्थितियों की प्रकृति और गंभीरता हैं जिनमें अपराध किया गया है; पीड़ित और साक्षियों के संदर्भ में अभियुक्त की स्थिति और प्रतिष्ठा; अभियुक्त के न्याय से भाग जाने की संभावना; अपराध को दोहराने की; मामले में संभावित दोषसिद्धि की गंभीर संभावना का सामना करते हुए अपने स्वयं के जीवन को खतरे में डालने की; साक्षियों से छेड़छाड़ करने की; मामले का इतिहास के साथ-साथ इसकी विवेचना और अन्य प्रासंगिक आधार जो, इतने अनेक मूल्यवान कारकों के दृष्टिगत, संपूर्ण रूप से निर्धारित नहीं किए जा सकते।"

9. *उपरोक्त कारक एक संपूर्ण सूची का गठन नहीं करते। जमानत देने के लिए विभिन्न कारकों पर विचार किए जाने की आवश्यकता होती है जो अंततः न्यायालय के समक्ष मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। कोई निश्चित सूत्र नहीं है जो कभी निर्धारित किया जा सके कि प्रासंगिक कारक क्या हो सकते हैं। तथापि, कुछ महत्वपूर्ण कारक जिन पर सदैव विचार किया जाता है, अन्य बातों के साथ-साथ, अभियुक्त की प्रथम दृष्टया संलिप्तता, आरोप की प्रकृति और गंभीरता, दण्ड की गंभीरता, और अभियुक्त के चरित्र, स्थिति और प्रतिष्ठा से संबंधित हैं* ***[उ.प्र. राज्य बनाम अमरमणि त्रिपाठी (2005) 8 एससीसी 21*** *देखें]।*

10. *जमानत देने के स्तर पर न्यायालय को मामले में साक्ष्य के विस्तृत विश्लेषण में प्रवेश करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा अभ्यास विचारण के स्तर पर किया जा सकता है।*

11. *एक बार जमानत दी जा चुकी हो, तो अपीलीय न्यायालय सामान्यतया उसमें हस्तक्षेप करने में धीमा होता है क्योंकि यह एक व्यक्ति की स्वतंत्रता से संबंधित है। इस न्यायालय की संविधान पीठ ने* ***बिहार लीगल सपोर्ट सोसाइटी बनाम भारत के मुख्य न्यायाधीश (1986) 4 एससीसी 767*** *में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:*
"3. ... यह इस कारण से है कि शीर्ष न्यायालय ने, आत्म-अनुशासन के विषय के रूप में, कुछ मानदण्ड विकसित किए हैं जो उन मामलों में इसके विवेक के प्रयोग में इसका मार्गदर्शन करते हैं जहां जमानत या अग्रिम जमानत देने या अस्वीकार करने के आदेशों के विरुद्ध विशेष अनुमति याचिकाएं दाखिल की जाती हैं। ...हम इस न्यायालय की पीठ द्वारा निर्धारित इस नीति सिद्धान्त को दोहराते हैं और यह अभिनिर्धारित करते हैं कि यह न्यायालय सामान्यतया, असाधारण मामलों को छोड़कर, जमानत या अग्रिम जमानत देने या अस्वीकार करने

के आदेशों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये ऐसे मामले हैं जिनमें उच्च न्यायालय को सामान्यतया अंतिम निर्णायक होना चाहिए।" (बल दिया गया)

***12.** उपरोक्त सिद्धान्त का इस न्यायालय द्वारा निरंतर अनुसरण किया गया है। **प्रसान्त कुमार सरकार बनाम आशीष चटर्जी (2010) 14 एससीसी 496** में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:*

"9. हम इस मत के हैं कि आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अपोषणीय है। यह सुविदित है कि यह न्यायालय, सामान्यतया, उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को जमानत देने या अस्वीकार करने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करता है। तथापि, उच्च न्यायालय के लिए यह समान रूप से आवश्यक है कि वह अपने विवेक का प्रयोग न्यायिक रूप से, सावधानीपूर्वक और इस बिन्दु पर इस न्यायालय के असंख्य निर्णयों में निर्धारित मूल सिद्धान्तों के कठोर अनुपालन में करे। यह सुस्थापित है कि, अन्य परिस्थितियों के साथ-साथ, जमानत के लिए आवेदन पर विचार करते समय ध्यान में रखे जाने वाले कारक हैं:

(i) क्या कोई प्रथम दृष्टया या युक्तियुक्त आधार विश्वास करने के लिए है कि अभियुक्त ने अपराध किया था;
(ii) आरोप की प्रकृति और गंभीरता;
(iii) दोषसिद्धि की स्थिति में दण्ड की गंभीरता;
(iv) यदि जमानत पर रिहा किया जाए तो अभियुक्त के फरार होने या भाग जाने का खतरा;
(v) अभियुक्त का चरित्र, व्यवहार, साधन, स्थिति और प्रतिष्ठा;
(vi) अपराध की पुनरावृत्ति की संभावना;
(vii) साक्षियों को प्रभावित किए जाने की युक्तियुक्त आशंका; और
(viii) न्याय के विफल होने का खतरा, निस्संदेह, जमानत देने से।

xxx xxx xxx

10. यह स्पष्ट है कि यदि उच्च न्यायालय इन प्रासंगिक विचारों पर ध्यान नहीं देता और यांत्रिक रूप से जमानत देता है, तो उक्त आदेश मन के अप्रयोग के दोष से ग्रस्त होगा, जिससे यह अवैध हो जाएगा ..."

13. महिपाल बनाम राजेश कुमार (2020) 2 एससीसी 118 में, इस न्यायालय ने प्रसान्त कुमार सरकार (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय का अनुसरण किया और निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

"17. जहां जमानत के लिए आवेदन पर विचार करने वाला न्यायालय प्रासंगिक कारकों पर विचार करने में असफल रहता है, वहां अपीलीय न्यायालय न्यायसंगत रूप से जमानत देने वाले आदेश को अपास्त कर सकता है। इस प्रकार एक अपीलीय न्यायालय को यह विचार करना आवश्यक है कि क्या जमानत देने वाला आदेश मन के अप्रयोग से ग्रस्त है या अभिलेख पर साक्ष्य के प्रथम दृष्टया दृष्टिकोण से सहन नहीं किया गया है। इस प्रकार इस न्यायालय के लिए यह आकलन करना आवश्यक है कि क्या, साक्ष्य अभिलेख के आधार पर, यह

विश्वास करने के लिए कोई प्रथम दृष्टया या युक्तियुक्त आधार विद्यमान था कि अभियुक्त ने अपराध किया था, अपराध की गंभीरता और दण्ड की गंभीरता को भी ध्यान में रखते हुए ..."

*14. हाल ही में, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने **जगजीत सिंह तथा अन्य बनाम आशीष मिश्रा उर्फ मोनू तथा अन्य (दांडिक अपील संख्या 632/2022)** में, दांडिक अपील संख्या 632/2022 में, उन कारकों को दोहराया है जिन पर न्यायालय को दं.प्र.सं. की धारा 439 के अधीन जमानत देते समय विचार करना चाहिए, और साथ ही उन परिस्थितियों को उजागर किया है जहां यह न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है जब उपरोक्त धारा के अधीन आवश्यकताओं के उल्लंघन में जमानत दी गई हो। उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:*

"28. हम, प्रारंभ में, यह स्पष्ट कर सकते हैं कि दं.प्र.सं. की धारा 439 के अधीन जमानत देने की शक्ति, व्यापक विस्तार की है। एक उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय, जैसा भी मामला हो, को जमानत के लिए आवेदन पर निर्णय लेते समय काफी विवेक प्रदान किया जाता है। लेकिन, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अनेक अवसरों पर अभिनिर्धारित किया गया है, यह विवेक अनियंत्रित नहीं है। इसके विपरीत, उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय को न्यायिक मन के प्रयोग के बाद, सुस्थापित सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए जमानत देनी चाहिए, न कि संक्षिप्त या यांत्रिक तरीके से ..."

20. अब वर्तमान मामले की योग्यता की ओर अग्रसर होते हुए, यह स्वीकृत तथ्य है कि वर्तमान आवेदक समान प्रकृति के 52 आपराधिक मामलों में संलिप्त है। जिसका विवरण आवेदक द्वारा स्वयं जमानत आवेदन के साथ समर्थित शपथपत्र के अनुच्छेद संख्या 17 में स्पष्ट किया गया है और लगभग सभी आपराधिक मामले समान प्रकृति के हैं।

21. आवेदक के पूर्ववृत्तों का विवरण निम्नानुसार है:

क्र.सं.	**प्रा.सू.रि./मुकदमा अपराध संख्या**	**कार्यवाही**
1.	100/2023 धारा 406 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 27.9.2023 को जमानत दी गई
2.	79/2023 धारा 406, 420 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 27.9.2023 को जमानत दी गई
3.	129/2023 धारा 120-ख, 406, 420 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 12.2.2024 को जमानत दी गई
4.	77/2023 धारा 406, 420, 504, 506 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 11.10.2023 को जमानत दी गई
5.	75/2023 धारा 420, 406, 504, 120-ख के अधीन	दिनांक 5.10.2023 को जमानत दी गई

6.	72/2023 धारा 406, 420, 410, 467, 468, 471, 120-ख भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 17.10.2023 को जमानत दी गई
7.	71/2023 धारा 406, 420, 419, 467, 468, 471, 120-ख भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 9.10.2023 को जमानत दी गई
8.	81/2023 धारा 406, 419, 420, 467, 468, 471, 120-ख भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 26.10.2023 को जमानत दी गई
9.	354/2022 धारा 406, 420, 504, 506 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 27.9.2023 को जमानत दी गई
10.	27/2023 धारा 410, 420, 467, 468, 471, 504, 506, 406, 120-ख भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 28.8.2023 को जमानत दी गई
11.	133/2023 धारा 406, 420, 504, 506, 120-ख भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 13.3.2024 को जमानत दी गई
12.	162/2023 धारा 406, 420, 506 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 3.5.2024 को जमानत दी गई
13.	74/2023 धारा 406, 420 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 4.5.2024 को जमानत दी गई
14.	233/2023 धारा 406, 420 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 4.5.2024 को जमानत दी गई
15.	185/2023 धारा 406, 420 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 7.5.2024 को जमानत दी गई
16.	367/2023 धारा 406, 506 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 7.5.2024 को जमानत दी गई
17.	193/2023 धारा 447, 506 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 8.5.2024 को जमानत दी गई
18.	268/2023 धारा 406, 420 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 14.5.2024 को जमानत दी गई
19.	247/2023 धारा 420, 406, 504, 506 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 16.5.2024 को जमानत दी गई
20.	164/2023 धारा 406, 420, 506 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 16.5.2024 को जमानत दी गई
21.	187/2023 धारा 406, 420, 506 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 21.5.2024 को जमानत दी गई

अनुवादित

22.	168/2023 धारा 420, 406, 506 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 18.5.2024 को जमानत दी गई
23.	134/2023 धारा 406, 420, 120-ख भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 14.5.2024 को जमानत दी गई
24.	135/2023 धारा 406, 420, 120-ख भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 23.4.2024 को जमानत दी गई
25.	45/2024 धारा 406, 420, 506, 120-ख भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 7.6.2024 को जमानत दी गई
26.	145/2023 धारा 406, 420, 504, 506 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 10.6.2024 को जमानत दी गई
27.	188/2023 धारा 406, 420 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 11.6.2024 को जमानत दी गई
28.	64/2024 धारा 406, 420 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 11.6.2024 को जमानत दी गई
29.	260/2023 धारा 406, 420, 504, 506, 34 के अधीन	दिनांक 12.6.2024 को जमानत दी गई
30.	261/2023 धारा 406, 420, 504, 506, 34 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 12.6.2024 को जमानत दी गई
31.	189/2023 धारा 420, 406, 506, 34 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 13.6.2024 को जमानत दी गई
32.	196/2023 धारा 406, 420 भा.द.सं. के अधीन	दिनांक 13.6.2024 को जमानत दी गई
33.	130/2023 धारा 420, 406, 504, 506 भा.द.सं. के अधीन	आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।
34.	184/2023 धारा 406, 420, 506 भा.द.सं. के अधीन	आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।
35.	196/2023 धारा 420, 406 भा.द.सं. के अधीन	आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।
36.	250/2023 धारा 406, 420, 506 भा.द.सं. के अधीन	आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।
37.	128/2023 धारा 420, 406, 504, 506 भा.द.सं. के अधीन	आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।

अनुवादित

38.	156/2023 धारा 420, 406, 504, 506 भा.द.सं. के अधीन	आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।
39.	163/2023 धारा 420, 406 भा.द.सं. के अधीन	जमानत आवेदन लंबित।
40.	246/2023 धारा 406, 420 भा.द.सं. के अधीन	आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।
41.	112/2023 धारा 406, 419, 420, 467, 468, 471, 120-ख भा.द.सं. के अधीन	वर्तमान मामला।
42.	448/2022 धारा 406, 506 भा.द.सं. के अधीन	आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।
43.	128/2023 धारा 406, 420, 504, 506 भा.द.सं. के अधीन	आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।
44.	222/2023 धारा 3(1) उ.प्र. गुण्डा अधिनियम के अधीन	आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।
45.	19/2020 धारा 419, 420, 504, 506 भा.द.सं. के अधीन	आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।
46.	154/2023 धारा 406, 420 भा.द.सं. के अधीन	आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।
47.	311/2022 धारा 323, 504, 506 भा.द.सं. के अधीन	आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।
48.	796/2019 धारा 147, 279, 323, 325, 337, 338, 427, 504 भा.द.सं. के अधीन	आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।
49.	54/2023 धारा 406, 420 भा.द.सं. के अधीन	आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।
50.	487/2013 धारा 147, 148, 323, 342, 427, 504, 506 भा.द.सं. के अधीन	आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।
51.	268/2023 धारा 406, 420 भा.द.सं. के अधीन	आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।
52.	361/2023 धारा 419, 420, 406 भा.द.सं. के अधीन	आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।

22. इस न्यायालय ने इस तथ्य को ध्यान में लिया है कि आवेदक के विरुद्ध धारा 420 भा.द.सं. के अधीन लगभग 52 आपराधिक मामले लंबित हैं। दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (दं.प्र.सं.) की अनुसूची 1 के अधीन, भा.द.सं. की धारा 420 के अधीन अपराध संज्ञेय और अजमानतीय है तथा प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा

विचारणीय है, इसलिए, वर्तमान अपराध गंभीर प्रकृति का है। यह भी नोट किया गया है कि वह भा.द.सं. की धारा 420 के अधीन दण्डनीय समान प्रकृति के अपराध करने का अभ्यस्त अपराधी है। उपरोक्त तथ्यों के दृष्टिगत, न्यायालय के मन में यह बड़ी आशंका है कि आवेदक जमानत पर रिहा होने पर साक्ष्य से छेड़छाड़ कर सकता है और साक्षियों को प्रभावित कर सकता है। यह भी बड़ी आशंका है कि वह इस न्यायालय द्वारा आरोपित शर्तों का उल्लंघन कर सकता है और भविष्य में समान प्रकृति के अपराध को दोहरा सकता है। उपरोक्त कारणों पर विचार करते हुए, यह न्यायालय अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय उदार दृष्टिकोण नहीं ले सकता।

23. यह नोट करना उचित है कि मामले में सह-अभियुक्त को जमानत पर रिहा किया गया है, तथापि, वर्तमान आवेदक से कोई समानता नहीं है क्योंकि वह अभ्यस्त अपराधी है और उसका 52 मामलों का आपराधिक इतिहास है।

24. उसके आपराधिक पूर्ववृत्तों को दृष्टिगत रखते हुए, अभिलेख पर विश्वसनीय सामग्री जो इस स्तर पर आवेदक को अपराध से जोड़ती है तथा माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा उपर चर्चा किए गए अनुसार निर्धारित विधि को ध्यान में रखते हुए। मामले की योग्यता पर कोई निष्कर्ष या राय व्यक्त किए बिना, यह न्यायालय इस मत का है कि आवेदक जमानत पर रिहा किए जाने का हकदार नहीं है।

25. तदनुसार, वर्तमान जमानत आवेदन किसी योग्यता से रहित होने के कारण खारिज किया जाता है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1569

अपीलीय अधिकारिता – आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.05.2025

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति मदन पाल सिंह, के समक्ष

आपराधिक अपील सं. 6099 सन् 2019

जुम्मा शाह एवं अन्य ...अपीलार्थीगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रत्युत्तरदाता

अपीलार्थियों के अधिवक्ता: अनिल कुमार यादव, बृज राज वर्मा, राजेश कुमार तिवारी

प्रत्युत्तरदाता के अधिवक्ता: जी.ए.

आपराधिक विधि – भारतीय दंड संहिता, 1860 – धाराएँ 302/34, 304 भाग II/34, 323/34 – हत्या न बनने वाला सदोष मानव वध – अकस्मात लड़ाई – धारा 300 का अपवाद 4 – पूर्व-चिंतन का अभाव – रास्ते पर बने अवरोध को हटाने को लेकर विवाद जो हाथापाई में परिणत हुआ – लाठी एवं डंडे से चोट लगने से मृत्यु – कोई पूर्व दुश्मनी या प्रेरणा नहीं

अभिनिर्धारित: घटना अकस्मात हुई, बिना पूर्व-चिंतन के, आवेश में – अभियुक्तों ने क्रूरता से कार्य नहीं किया और न ही अनुचित लाभ उठाया – मामला धारा 300 के अपवाद 4 के अंतर्गत आता है – धारा 302/34 IPC के अधीन दोषसिद्धि को धारा 304 भाग II/34 IPC में परिवर्तित। (पैरा 25, 26, 30, 31 एवं 34)

अभिनिर्धारण:

वर्तमान मामले में, प्रश्न यह है कि क्या यह कहा जा सकता है कि अपीलार्थियों ने मृतक की मृत्यु कारित करने के आशय से चोटें पहुँचाईं – अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य से यह स्पष्ट हो गया कि घटना क्षण भर में और अकस्मात हुई झगड़े के आवेश में घटी, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलार्थियों का मृतक को चोट पहुँचाने का पूर्व-प्रेरित या पूर्व-चिंतित मन था। (पैरा 25)

मृत्यु परीक्षण प्रतिवेदन में मृतक के शरीर एवं सिर पर कोई अस्थि भंग नहीं पाया गया, जो इस बात का संकेत है कि अपीलार्थियों का मृतक को गंभीर चोट पहुँचाने या उसकी हत्या करने का आशय नहीं था। किसी व्यक्ति का ज्ञान एवं आशय एक मानसिक अवस्था है और इसके लिए प्रत्यक्ष साक्ष्य संभव नहीं है, इसे

केवल परिस्थितियों जैसे प्रयुक्त हथियार, अपराध करने की रीति, हमले की प्रकृति एवं चोटों की संख्या से जाना जा सकता है। ये वे कारक हैं जिन पर आशय एवं ज्ञान को उचित ठहराने के लिए विचार करना होगा। (पैरा 26)

संपूर्ण साक्ष्य का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि धारा 300 IPC के चतुर्थ अपवाद को आकृष्ट करने के लिए आवश्यक तत्व वर्तमान मामले के तथ्यों में स्पष्ट रूप से विद्यमान हैं, क्योंकि मृत्यु हुई है; कोई पूर्व-चिंतन नहीं था; यह अकस्मात लड़ाई थी; अपराधी ने अनुचित लाभ नहीं उठाया और न ही क्रूर या असामान्य तरीके से कार्य किया, अतः वर्तमान मामला स्पष्ट रूप से धारा 300 IPC के चतुर्थ अपवाद के अंतर्गत आता है। (पैरा 30)

जुगत राम बनाम छत्तीसगढ़ राज्य (2020) 9 Supreme Court Cases 520 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 302 IPC से धारा 304-II IPC में आरोप परिवर्तित/संशोधित किया। उस मामले में भी हथियार लाठी था और मामला अकस्मात उत्तेजना का था। उस मामले में लाठी के प्रहार से मृतक के सिर पर दो चोटें पाई गई थीं और वर्तमान मामले में भी लाठी से मृतक के सिर पर दो चोटें पाई गई हैं, इसलिए हमारा यह दृढ़ मत है कि वर्तमान मामले में अपीलार्थियों की दोषसिद्धि धारा 302 सह धारा 34 IPC से धारा 304-II IPC में परिवर्तित की जा सकती है। (पैरा 31)

वर्तमान मामले में अपीलार्थियों का कार्य पूर्व-चिंतित या पूर्व-प्रेरित नहीं है, बल्कि यह आवेश में अकस्मात झगड़े का परिणाम है। अतः विचारण न्यायालय द्वारा धारा 302 सह धारा 34 IPC के अधीन दर्ज दोष के निष्कर्ष को धारा 304-II IPC में परिवर्तित किए जाने योग्य है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि यद्यपि अपीलार्थियों को यह ज्ञान था कि ऐसे कृत्य से मृतक की मृत्यु हो सकती है, किन्तु मृतक को मारने का कोई आशय नहीं था। (पैरा 34)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (E-14)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. गुरमुख सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2009) 15 SCC 635
2. पप्पू बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2006) 7 SCC 391
3. पुलिचेरला नागराजू @ नागराज रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2006) 11 SCC 444 : (2007) 1 SCC (Cri) 500
4. जुगत राम बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2020) 9 SCC 520

(न्यायमूर्ति मदन पाल सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. यह आपराधिक अपील अवर न्यायालय अपर सत्र न्यायाधीश-IV/विशेष न्यायाधीश (आवश्यक वस्तु अधिनियम), पीलीभीत द्वारा सत्र विचारण संख्या 230/2016 (राज्य बनाम जुम्मा शाह एवं दो अन्य) में दिनांक 12.07.2019 को पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध प्राथमिकृत की गई है, जो प्रकरण अपराध संख्या 1020/2016, धारा 302/34, 323/34 भा.द.सं., थाना पुरनपुर, जनपद पीलीभीत से उत्पन्न है, जिसके द्वारा अपीलार्थीगण को निम्नानुसार दोषसिद्ध एवं दण्डादिष्ट किया गया है:

(i). धारा 302/34 भा.द.सं.आजीवन कारावास के साथ प्रत्येक पर रु.5000/- का जुर्माना तथा जुर्माना अदा न करने पर प्रत्येक को 30 दिन का साधारण कारावास।

(ii). धारा 323/34 भा.द.सं.प्रत्येक को एक वर्ष का कारावास।

2. वर्तमान अपील की उत्पत्ति वाले तथ्यों को संक्षेप में निम्नानुसार वर्णित किया जा सकता है:

(i). अभियोजन पक्ष का संक्षेप में कथन यह है कि सूचनादाता परवीन, जो मृतक (गुलफाम) की पत्नी है, निवासिनी आनंदपुर @ भगवंतपुर, थाना पुरनपुर, जनपद पीलीभीत की दिनांक 31.05.2016 की लिखित रिपोर्ट के आधार पर, जिसे प्रदर्श का-2 के रूप में अंकित किया गया है, एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, जिसमें यह आरोप लगाया गया था कि उसके चचेरे ससुर जुम्मा शाह (अपीलार्थी संख्या 1) और हुसैन अली (अपीलार्थी संख्या 2) ने लकड़ी का एक गुट्का रखकर उसके रास्ते में बाधा उत्पन्न कर दी थी, जिसके कारण घर से बाहर जाने का उसका रास्ता अवरुद्ध हो गया था। जब उसके ससुर आलम शाह ने अपीलार्थीगण के पास जाकर उनसे रास्ते से उक्त लकड़ी हटाने के लिए कहा, तो अपीलार्थीगण लाठी और डंडे से सज्जित होकर उसके ससुर को पीटने लगे, और उनकी चीख-पुकार सुनकर सूचनादाता का पति गुलफाम अपने पिता को बचाने के लिए वहां आया। अपीलार्थीगण ने उस पर भी लाठी और डंडे से प्रहार किया और उसे गंभीर प्रहार किए, जिसके कारण वह बेहोश हो गया। उसे एम्बुलेंस द्वारा सरकारी अस्पताल लाया गया और उपचार के दौरान वह अपनी चोटों के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गया।

(ii). चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट के आधार पर, प्रकरण अपराध संख्या 1020/2016, धारा 304, 323 भा.द.सं., थाना पुरनपुर, जनपद पीलीभीत अपीलार्थीगण के विरुद्ध पंजीकृत किया गया।

(iii). मृतक की मृत्यु के पश्चात, पंचायतनामा संचालित किया गया, जिसे प्रदर्श का-1 के रूप में अंकित किया गया और शव को शव परीक्षण के लिए भेजा गया।

(iv). विवेचना पूर्ण करने के पश्चात, अपीलार्थीगण के विरुद्ध मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, पीलीभीत के न्यायालय में धारा 304, 323 भा.द.सं. के अधीन आरोप पत्र दाखिल किया गया। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, पीलीभीत

द्वारा दिनांक 24.08.2016 को अपराध का संज्ञान लिया गया और तत्पश्चात वाद को विचारण के लिए दिनांक 01.11.2018 को सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया।

(v). विवेचना के दौरान एकत्रित साक्ष्य के आधार पर, दिनांक 17.09.2016 के आदेश द्वारा, अपीलार्थीगण के विरुद्ध धारा 323/34 और 304/34 भा.द.सं. के अधीन आरोप विरचित किए गए। अपीलार्थीगण ने आरोपों से इन्कार किया और विचारित किए जाने का दावा किया। दिनांक 03.04.2017 के आदेश द्वारा, तत्कालीन सत्र न्यायाधीश, पीलीभीत ने दिनांक 17.09.2016 के आदेश को संशोधित किया जिसके द्वारा अपीलार्थीगण के विरुद्ध धारा 304/34 भा.द.सं. के अधीन आरोप विरचित किए गए थे और आरोपों को धारा 302/34 भा.द.सं. के अधीन पढ़े जाने के लिए संशोधित किया। अपीलार्थीगण ने आरोपों से इन्कार किया और विचारण का दावा किया।

(vi). अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को सिद्ध करने के लिए पी. डब्ल्यू.1-आलम शाह, पी. डब्ल्यू.2-परवीन (मामले की सूचनादाता), पी. डब्ल्यू.3-हेड कांस्टेबल राजनाथ सिंह, पी. डब्ल्यू.4-अफरोज, पी. डब्ल्यू.5-डॉ. जगदीश प्रसाद, पी. डब्ल्यू.6-जहान शाह, पी. डब्ल्यू.7-श्रीमती जन्नती और पी. डब्ल्यू.8-उप निरीक्षक श्रीराम टम्टा (मामले के विवेचना अधिकारी) की परीक्षा की।

(vii). अभियोजन पक्ष ने अपने मामले के समर्थन में मौखिक और साथ ही दस्तावेजी साक्ष्य भी प्रस्तुत किया, जिन्हें पंचायतनामा प्रदर्श का-1, लिखित रिपोर्ट प्रदर्श का-2, रोजनामचा प्रविष्टि प्रदर्श का-3, चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श का-4, सामान्य डायरी में की गई रोजनामचा प्रविष्टि प्रदर्श का-5, शव परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श का-4क, घटना स्थल का नक्शा प्रदर्श का-5, गिरफ्तारी ज्ञापन प्रदर्श का-6 और आरोप पत्र प्रदर्श का-7 के रूप में अंकित किया गया।

3. श्री अजय कुमार पाण्डेय और श्री राहुल सक्सेना, विद्वान अधिवक्तागण जो अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित हुए, श्री सी.बी. धर दुबे, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता जो राज्य-प्रत्यर्थी के लिए उपस्थित हुए, को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया।

4. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अवर न्यायालय ने साक्ष्य की उचित परिप्रेक्ष्य में सराहना नहीं की है और अपीलार्थीगण को अवैध और गलत तरीके से आजीवन कारावास के लिए दोषसिद्ध और दण्डादिष्ट किया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अवर न्यायालय ने अपीलार्थीगण को दोषी पाते हुए धारा 302/34, 323/34 भा.द.सं. के घटकों के अनुसार दोषसिद्ध नहीं किया था, इसलिए अवर न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश रद्द किए जाने योग्य हैं और आगे अपीलार्थीगण उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से बरी किए जाने के हकदार हैं।

5. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि अभियोजन साक्षियों के साक्ष्यों में महत्वपूर्ण विरोधाभास हैं और इसके बावजूद अपीलार्थीगण को उन अपराधों का दोषी पाया गया है, जो उन्होंने नहीं किए थे। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि घटना का कोई स्वतंत्र साक्षी नहीं है, जो अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करने के लिए आगे आया हो। अवर न्यायालय ने अपीलार्थीगण को धारा 302/34 भा.द.सं. के अधीन दोषसिद्ध करने में कानून की प्रकट त्रुटि की है जबकि अभियोजन पक्ष अपने मामले को सभी युक्तियुक्त संदेहों से परे सिद्ध करने में विफल रहा है। प्रत्यक्ष अभिकथन चिकित्सकीय साक्ष्य के साथ पूर्णतः असंगत है।

6. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि अनुमान और अटकलों पर आधारित है, जो रद्द किए जाने योग्य है।

7. श्री सी.बी. धर दुबे, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता जो राज्य-प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित हुए, ने अपीलार्थीगण की ओर से उठाई गई दलीलों का कड़ा विरोध किया और प्रस्तुत किया कि अवर न्यायालय द्वारा दिनांक 12.07.2019 के निर्णय और आदेश द्वारा दर्ज की गई दोषसिद्धि और दण्डादेश साक्ष्य की उचित सराहना पर आधारित है और इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की मांग नहीं करती है। अभियुक्त-अपीलार्थीगण द्वारा दायर आपराधिक अपील खारिज किए जाने योग्य है।

8. पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने से पूर्व, अवर न्यायालय द्वारा अभिलिखित साक्ष्य पर दृष्टि डालना आवश्यक है।

9. पी. डब्ल्यू.1-आलम शाह, जो मृतक के पिता हैं, ने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि घटना दस महीने पूर्व सायं लगभग 6.00 बजे घटित हुई थी। अभियुक्त अपीलार्थीगण, अर्थात् जुम्मा शाह, हसनैन अली और हाशिम, ने सूचनादाता के रास्ते में बाधा उत्पन्न कर दी थी। जैसे ही उन्हें उक्त बाधाओं के बारे में पता चला, वे वहां गए और उन्हें हटा दिया। परिणामस्वरूप, अभियुक्त व्यक्ति नाराज हो गए और पी. डब्ल्यू.-1 को लाठी और डंडे से पीटना शुरू कर दिया। पी. डब्ल्यू.1 के पोते ने उक्त घटना की सूचना गुलफाम को दी (जो पी. डब्ल्यू.1-आलम शाह के पुत्र हैं)। वह घटनास्थल पर पहुंचा और अपने पिता को बचाने का प्रयास किया। जब गुलफाम घटनास्थल पर पहुंचा, तो अभियुक्त व्यक्तियों ने गुलफाम को भी लाठियों और डंडों से पीटना शुरू कर दिया, जिससे उसे गंभीर चोटें आईं और वह जमीन पर गिर गया। तत्पश्चात सूचनादाता ने एम्बुलेंस बुलाई और गुलफाम को सरकारी अस्पताल ले गए, जहां उसे मृत घोषित कर दिया गया।

10. पी. डब्ल्यू.2-श्रीमती परवीन बेगम, जो मृतक की पत्नी हैं, ने अपनी मुख्य परीक्षा में वही तथ्य दोहराए हैं जो पी. डब्ल्यू.2-आलम शाह द्वारा कहे गए थे।

11. पी. डब्ल्यू.3-हेड कांस्टेबल राज नाथ सिंह ने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि दिनांक 31.05.2016 को, वह एक मुंशी चंद्रेश्वर प्रसाद सिंह और कांस्टेबल मनोज कुमार के साथ पुलिस थाने पुरनपुर में उपस्थित थे। उन्हें सी.एच.सी. पुरनपुर से लगभग 20.40 बजे गुलफाम की मृत्यु और आलम शाह की चोटों के बारे में सूचना प्राप्त हुई थी। रोजनामचा संख्या 54 में 20.40 बजे प्रविष्टि करने के पश्चात, उप निरीक्षक एस.आर. टम्टा अन्य पुलिस बल के साथ सी.एच.सी. पुरनपुर के लिए रवाना हुए। उन्होंने आगे कहा कि उसी दिन अर्थात् दिनांक 31.05.2016 को, सूचनादाता पुलिस थाने आई और घटना के संबंध में आवेदन दिया और उस आवेदन के आधार पर अपीलार्थीगण के विरुद्ध प्रकरण अपराध संख्या 1020/2016, धारा 304, 323 भा.द.सं. पंजीकृत किया गया।

12. पी. डब्ल्यू.4-अफरोज, मृतक के छोटे भाई हैं। अपनी मुख्य परीक्षा में, उन्होंने वही तथ्य दोहराए हैं जो पी. डब्ल्यू.1-आलम शाह द्वारा कहे गए थे। इसलिए, इसे पुनः दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

13. पी. डब्ल्यू. 5-डॉ. जगदीश प्रसाद ने अपनी मुख्य परीक्षा में अवर न्यायालय के समक्ष कहा है कि दिनांक 01.06.2016 को, वह सी.एच.सी., पुरनपुर में चिकित्सा अधिकारी के रूप में तैनात थे। उन्होंने उसी दिन अपराह्न 4.15 बजे मृतक गुलफाम पुत्र मोहम्मद आलम शाह का शव परीक्षण किया। बाहरी परीक्षण पर, चिकित्सक ने मृतक के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाईं:

(i) सिर के दाहिने ओर दाहिने कान के ठीक ऊपर घर्षणयुक्त चोट और आघातज सूजन 10 सेमी x 12 सेमी।
(ii) सिर के बाईं ओर बाएं कान के ठीक ऊपर घर्षणयुक्त चोट और आघातज सूजन आकार 9 सेमी x 11 सेमी।
(iii) बाईं कोहनी के जोड़ के ठीक ऊपर घर्षणयुक्त चोट 9 सेमी x 2 सेमी।
(iv) दाहिनी कोहनी के जोड़ के ठीक ऊपर घर्षणयुक्त चोट 3 सेमी x 1 सेमी।
(v) दाहिने कूल्हे के ऊपर घर्षणयुक्त चोट 4 सेमी x 1.5 सेमी।
मृतक के मृत शरीर की आंतरिक परीक्षा पर, मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व चोटें पाया गया। चोटें कठोर और कुंद वस्तुओं जैसे *लाठी, डंडा और कुण्डला* द्वारा कारित की गई थीं।

14. पी. डब्ल्यू.6-जहान शाह ने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि दिनांक 01.06.2016 को, वह पुरनपुर सरकारी अस्पताल गए थे, जहां उन्होंने गुलफाम का मृत शरीर देखा। उनकी उपस्थिति में पंचायतनामा तैयार किया गया और उन्हें पंचायतनामा का साक्षी बनाया गया और उन्होंने उस पर अपने हस्ताक्षर किए।

15. पी. डब्ल्यू.7-श्रीमती जन्नती, जो मृतक की माता हैं, ने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि घटना साक्ष्य की तारीख से ढाई वर्ष और एक महीने पूर्व सायं 5.00 बजे घटित हुई थी। उस समय वह अपने घर में उपस्थित थीं। अपने पति की चीख-पुकार सुनकर, वह अपनी बहू परवीन और पुत्र गुलफाम के साथ घटनास्थल पर आईं और देखा कि अपीलार्थीगण आलम शाह को पीट रहे थे। जब गुलफाम ने अपने पिता को बचाने का प्रयास किया, तो अपीलार्थीगण ने गुलफाम को भी लाठी और डंडे से प्रहार किया, जिसके कारण उसे गंभीर चोटें आईं

और वह बेहोश हो गया। उन्होंने 108 एम्बुलेंस डायल की और शीघ्र ही गुलफाम को जिला अस्पताल, पुरनपुर में भर्ती कराया गया, जहां उपचार करने वाले चिकित्सकों ने उसे मृत घोषित कर दिया।

16. पी. डब्ल्यू.8- उप निरीक्षक श्रीराम टम्टा (सेवानिवृत्त), विवेचना अधिकारी ने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि दिनांक 31.05.2016 को वह थाना पुरनपुर में उप निरीक्षक के रूप में तैनात थे और इस मामले की विवेचना उन्हें सौंपी गई थी। विचारण के दौरान उन्होंने घटनास्थल का निरीक्षण किया, घटना स्थल का नक्शा नजरी तैयार किया, जिसे प्रदर्श-का-5 के रूप में अंकित किया गया। गिरफ्तारी ज्ञापन प्रदर्श का-6 के रूप में तैयार किया गया और आरोप पत्र प्रदर्श का-7 के रूप में तैयार किया गया।

17. अभियोजन साक्ष्य बंद होने के पश्चात, अभियुक्त व्यक्तियों के कथन दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभिलिखित किए गए। अभियुक्त व्यक्तियों ने अवर न्यायालय के समक्ष कहा कि उन्हें वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। उन्होंने आगे कहा कि साक्षियों ने शत्रुता के कारण उनके विरुद्ध साक्ष्य दिया।

18. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण के तर्कों को सुना है और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का अवलोकन किया है।

19. जहां तक स्वतंत्र साक्षी के गैर-उत्पादन के संबंध में दलील का संबंध है, अवर न्यायालय के अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि सभी अभियोजन साक्षी और अभियुक्त व्यक्ति एक ही परिवार से संबंधित थे, इसलिए अपराध के किए जाने के संबंध में अभियुक्त व्यक्तियों की पहचान के बारे में कोई संदेह नहीं है। आजकल, यह देखा जा रहा है कि गांवों में भी कोई भी घटना का समर्थन करने के लिए आगे नहीं आता है केवल गांव में किसी भी प्रकार की शत्रुता से बचने के दृष्टिकोण से, इसलिए केवल इस तथ्य के आधार पर कि कोई स्वतंत्र साक्षी अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करने के लिए आगे नहीं आया है, अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित अभियोजन कथा को खारिज नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा, ऐसा कोई नियम नहीं है कि परिवार के सदस्यों को किसी भी मामले में विश्वसनीय साक्षी नहीं कहा जा सकता है।

20. विवेचना अधिकारी (पी. डब्ल्यू.8) द्वारा तैयार किए गए नक्शे के अवलोकन से पता चलता है कि अभियुक्त व्यक्ति और साक्षी सटे हुए आवासों में रह रहे थे और घटना मार्च के महीने में लगभग 6.00 बजे सायं घटित होने की बात कही गई थी। सामान्यतः उस समय, सांझ का समय होता है। ग्रामीण अपने कार्यस्थलों से अपने घरों को लौटते हैं, इसलिए, घटना के स्थान पर अभियोजन साक्षियों की उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है।

21. साक्षियों का प्रत्यक्ष अभिकथन भी चिकित्सकीय साक्ष्य की पुष्टि करता है। इसके अलावा प्रतिपरीक्षा के दौरान अभियोजन पक्ष अभियुक्त और मृतक के परिवारों के बीच किसी पूर्व शत्रुता को स्थापित नहीं कर सका, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त व्यक्तियों को पूर्व शत्रुता की आड़ में फंसाया गया था, इस

प्रकार, हमारे विचार में, घटना घटित होने के समय घटनास्थल पर साक्षियों की उपस्थिति के बारे में कोई संदेह नहीं है।

22. जहां तक अभियोजन साक्षियों के साक्ष्यों में विरोधाभास का संबंध है, हमने सभी अभियोजन साक्षियों के साक्ष्यों का अवलोकन किया है और घटना के स्थान, घटना के समय, हमले के तरीके और अपराध में शामिल अभियुक्तों के संबंध में कोई विरोधाभास नहीं पाया है क्योंकि सभी अभियोजन साक्षियों ने वही तथ्य दोहराए हैं कि घटना सायं लगभग 6.00 बजे मृतक के मुख्य रास्ते पर अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा लगाई गई बाधा को हटाने के मामूली मुद्दे के संबंध में घटित हुई थी। इसके अलावा, तथ्य के सभी साक्षियों ने अभियुक्त-अपीलार्थीगण को लगभग समान भूमिका सौंपी थी।

23. तथ्य के सभी साक्षियों की लंबी प्रतिपरीक्षा की गई लेकिन प्रतिरक्षा कुछ भी ऐसा उजागर नहीं कर सकी जो कथा को गलत सिद्ध कर सके।

24. जहां तक प्रतिरक्षा के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस तथ्य के संबंध में प्रस्तुत तर्क का संबंध है कि यदि अभियोजन पक्ष के मामले को उसके अंकित मूल्य पर सत्य माना जाए तो भी धारा 302 सपठित धारा 34 भा.द.सं. के अधीन कोई मामला नहीं बनता है, हमने मृतक के शव परीक्षण रिपोर्ट का अवलोकन किया है और पाया है कि मृतक के शरीर पर पांच चोटें पाई गई थीं, जिनमें से चोट संख्या 3, 4 और 5 शरीर के गैर-महत्वपूर्ण भाग पर थीं और चोट संख्या 1 और 2 मृतक के सिर पर कारित की गई थीं, इसलिए ये तथ्य यह दर्शाते हैं कि घटना घटित हुई थी और मृतक के साथ संघर्ष के दौरान, अभियुक्त व्यक्तियों ने मृतक के व्यक्ति पर लाठी और डंडे से चोटें कारित की थीं।

25. वर्तमान मामले में, यह प्रश्न कि क्या अपीलार्थीगण को मृतक की मृत्यु कारित करने के आशय से चोटें कारित करने वाला कहा जा सकता है, स्वीकार्यतः, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य से यह प्रकाश में आया कि घटना क्षणिक आवेग में और अचानक झगड़े पर उत्तेजना की गर्मी में घटित हुई थी, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थीगण के पास मृतक को चोटें कारित करने की पूर्व-प्रेरित या पूर्व-विचार मन था।

26. शव परीक्षण रिपोर्ट में मृतक के शरीर और सिर पर कोई फ्रैक्चर नहीं पाया गया है, जो यह इंगित करता है कि अपीलार्थीगण का गंभीर चोटें कारित करने या मृतक को मारने का कोई आशय नहीं था।

किसी व्यक्ति का ज्ञान और आशय एक मानसिक स्थिति है और इसके लिए प्रत्यक्ष साक्ष्य संभव नहीं है, इसे केवल परिस्थितियों जैसे प्रयुक्त हथियार, अपराध का किया जाना, हमले का तरीका, चोटों की प्रकृति और संख्या द्वारा एकत्रित किया जा सकता है। ये वे कारक हैं, जिन पर आशय और ज्ञान को न्यायोचित ठहराने के लिए विचार करना होगा।

27. **गुरमुख सिंह बनाम हरियाणा राज्य (2009) 15 एससीसी 635** के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा कि अभियुक्त को उचित दण्डादेश प्रदान करने से पूर्व कुछ तथ्यों पर विचार किया जाना आवश्यक है। ये तथ्य केवल दृष्टांतात्मक स्वरूप के हैं न कि संपूर्ण। प्रत्येक मामले को उसके विशेष परिप्रेक्ष्य से देखना होता है। संगत तथ्य निम्नानुसार हैं :-

(ए) उद्देश्य या पूर्व शत्रुता;

(बी) क्या घटना क्षणिक आवेग में घटित हुई थी;

(सी) प्रहार या चोट कारित करते समय अभियुक्त का आशय/ज्ञान;

(डी) क्या मृत्यु तत्काल हुई थी या पीड़ित कई दिनों के पश्चात मृत्यु को प्राप्त हुआ;

(ई) चोट की गंभीरता, आयाम और प्रकृति;

(एफ) अभियुक्त की आयु और सामान्य स्वास्थ्य स्थिति;

(जी) क्या चोट अचानक लड़ाई में बिना पूर्व-विचार के कारित की गई थी;

(एच) चोट कारित करने के लिए प्रयुक्त हथियार की प्रकृति और आकार और जिस बल से प्रहार किया गया था;

(आई) अभियुक्त की आपराधिक पृष्ठभूमि और प्रतिकूल इतिहास;

(जे) क्या कारित चोट प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त नहीं थी लेकिन मृत्यु आघात के कारण हुई थी;

(के) अभियुक्त के विरुद्ध लंबित अन्य आपराधिक मामलों की संख्या;

(एल) घटना परिवार के सदस्यों या निकट संबंधियों के बीच घटित हुई;

(एम) घटना के पश्चात अभियुक्त का आचरण और व्यवहार। क्या अभियुक्त ने घायल/मृतक को तत्काल अस्पताल ले जाया था ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उसे उचित चिकित्सकीय उपचार प्राप्त हो?

28. **पप्पू बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2006) 7 एससीसी 391** के मामले में, शीर्ष न्यायालय ने पैरा संख्या 13, 14 और 15 में निम्नानुसार कहा है :-

"13.... अपवाद 4 की सहायता ली जा सकती है यदि मृत्यु कारित की जाती है (ए) बिना पूर्व-विचार के; (बी) अचानक लड़ाई में; (सी) अपराधी द्वारा अनुचित लाभ लिए बिना या क्रूर या असामान्य तरीके से कार्य किए बिना; और (डी) लड़ाई मारे गए व्यक्ति के साथ होनी चाहिए। किसी मामले को अपवाद 4 के अंतर्गत लाने के लिए इसमें उल्लिखित सभी घटक पाए जाने चाहिए। यह ध्यान देने योग्य है कि धारा 300 भा.द.सं. के अपवाद 4 में होने वाली लड़ाई भा.द.सं. में परिभाषित नहीं है। लड़ाई करने के लिए दो की आवश्यकता होती है। उत्तेजना की गर्मी के लिए आवश्यक है कि भावनाओं को शांत होने के लिए कोई समय न हो और इस मामले में, पक्षकारों ने आरंभ में मौखिक कलह के कारण अपने आप को क्रोध में काम कर लिया है। लड़ाई दो या अधिक व्यक्तियों के बीच हथियारों के साथ या बिना हथियारों के युद्ध है। यह बताना संभव नहीं है कि किसे अचानक झगड़ा माना जाएगा, इसके लिए कोई सामान्य नियम नहीं बताया जा सकता है। यह तथ्य का प्रश्न है और क्या कोई झगड़ा अचानक है या नहीं यह आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के सिद्ध तथ्यों पर निर्भर करना चाहिए। अपवाद 4 के लागू होने के लिए, यह दिखाना पर्याप्त नहीं है कि अचानक झगड़ा था और कोई पूर्व-विचार नहीं

था। यह आगे दिखाया जाना चाहिए कि अपराधी ने अनुचित लाभ नहीं लिया है या क्रूर या असामान्य तरीके से कार्य नहीं किया है। प्रावधान में प्रयुक्त अभिव्यक्ति असम्यक् लाभ ; का अर्थ अनुचित लाभ है।

14. यह सार्वभौमिक अनुप्रयोग के नियम के रूप में नहीं कहा जा सकता है कि जब भी एक प्रहार दिया जाता है, धारा 302 भा.द.सं. खारिज हो जाती है। यह प्रयुक्त हथियार, कुछ मामलों में इसके आकार, जिस बल से प्रहार दिया गया था, शरीर के जिस भाग पर प्रहार दिया गया था और कई ऐसे संगत कारकों पर निर्भर करेगा।

15. वर्तमान ममले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए यह उचित होगा कि अपीलार्थी को धारा 302 भा.द.सं. के बजाय धारा 304 भाग II भा.द.सं. के अधीन दोषसिद्ध किया जाए, जैसा कि अवर न्यायालय द्वारा किया गया था और उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई थी। आठ वर्ष की हिरासती सजा न्याय के उद्देश्यों को पूरा करेगी।"

29. **पुलिचेरला नागराजू @ नागराजा रेड्डी (2006) 11 एससीसी 444 : (2007) 1 एससीसी (आपराधिक) 500** के मामले में, शीर्ष न्यायालय ने यह राय व्यक्त की है कि न्यायालय को सावधानी और सतर्कता के साथ आशय के महत्वपूर्ण प्रश्न को तय करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए, क्योंकि यह तय करेगा कि मामला धारा 302 या 304 भाग 1 या 304 भाग II के अंतर्गत आता है या नहीं। कई मामूली या महत्वहीन मामलों में, एक फल तोड़ना, मवेशियों का भटकना, बच्चों का झगड़ा, एक असभ्य शब्द का उच्चारण या यहां तक कि एक आपत्तिजनक नजर, झगड़े और समूह टकरावों को जन्म दे सकती है जो मृत्यु में समाप्त होती हैं। बदला, लालच, ईर्ष्या या संदेह जैसे सामान्य उद्देश्य ऐसे मामलों में पूर्णतः अनुपस्थित हो सकते हैं। कोई आशय नहीं हो सकता है। कोई पूर्व-विचार नहीं हो सकता है।

30. अभिलेख पर संपूर्ण साक्ष्य का अवलोकन करने पर, हम पाते हैं कि धारा 300 भा.द.सं. के चौथे अपवाद को आकर्षित करने के लिए आवश्यक घटक वर्तमान मामले के तथ्यों में स्पष्ट रूप से उपस्थित हैं जैसे कि मृत्यु कारित की गई है; कोई पूर्व-विचार विद्यमान नहीं था; यह अचानक लड़ाई थी; अपराधी ने अनुचित लाभ नहीं लिया है या क्रूर या असामान्य तरीके से कार्य नहीं किया है, इसलिए, वर्तमान मामला स्पष्ट रूप से धारा 300 भा.द.सं. के चौथे अपवाद के अंतर्गत आता है।

31. **जुगुत राम बनाम छत्तीसगढ़ राज्य (2020) 9 एससीसी 520** के मामले में, माननीय शीर्ष न्यायालय ने आरोपों को धारा 302 भा.द.सं. से धारा 304-II भा.द.सं. में संशोधित/परिवर्तित किया। उस मामले में भी *लाठी* हथियार का उपयोग किया गया था और मामला अचानक उकसावे का था। उक्त मामले में मृतक के सिर पर लाठी प्रहार से कारित दो चोटें पाई गई थीं और तत्काल मामले में भी मृतक के सिर पर लाठी से कारित दो चोटें पाई गई थीं, इसलिए, हम निश्चित मत के हैं कि तत्काल मामले में अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि को धारा 302 सपठित धारा 34 भा.द.सं. से धारा 304-II भा.द.सं. में परिवर्तित किया जा सकता है।

32. वर्तमान ममले में, यह प्रचुर रूप से स्पष्ट है कि कोई पूर्व-व्यवस्थित योजना नहीं थी या यह कि घटना अभियुक्त व्यक्तियों के पूर्व-विचारित आशय को आगे बढ़ाने में घटित हुई थी। जब इन सभी तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाता है और उनके उचित परिप्रेक्ष्य में, तो धारा 302 सपठित धारा 34 भा.द.सं. के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि को बनाए रखना कठिन हो जाता है।

धारा 304 भा.द.सं. निम्नानुसार पढ़ी जाती है:

"304. हत्या की कोटि में न आने वाली आपराधिक मानव वध के लिए दण्ड।

जो कोई हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध करता है, उसे आजीवन कारावास, या दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और वह जुर्माने का भी दायी होगा, यदि वह कार्य, जिससे मृत्यु कारित की गई है, मृत्यु कारित करने के आशय से, या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से किया गया है, जिससे मृत्यु होनी संभाव्य है;

या दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, यदि वह कार्य इस ज्ञान से किया गया है कि उससे मृत्यु कारित होना संभाव्य है, किन्तु मृत्यु कारित करने के आशय के बिना, या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय के बिना, जिससे मृत्यु होनी संभाव्य है।"

33. अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात, अपीलार्थीगण को सौंपी गई भूमिका, मृतक के व्यक्ति पर कारित चोटों की प्रकृति और उपरोक्त उद्धृत विधि के मामलों पर विचार करते हुए, यह न्यायालय विचारित मत का है कि यह सत्य है कि घटना घटित हुई थी लेकिन मन का कोई पूर्व-विचार नहीं था, घटना क्षणिक आवेग में घटित हुई थी, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त अपीलार्थीगण ने मृतक की हत्या इस आशय से की थी कि मृतक को कारित चोटें घातक होंगी, ऐसी परिस्थितियों में, मामला धारा 304-II भा.द.सं. से आगे नहीं जाएगा।

34. वर्तमान मामले में, अपीलार्थीगण के कार्य पूर्व-विचारित या पूर्व-प्रेरित नहीं हैं, बल्कि उत्तेजना की गर्मी में अचानक लड़ाई और झगड़े का परिणाम हैं। इसलिए, अवर न्यायालय द्वारा धारा 302 सपठित धारा 34 भा.द.सं. के अधीन दर्ज की गई दोषसिद्धि की निष्पत्ति धारा 304-II भा.द.सं. में परिवर्तित किए जाने योग्य है, इसलिए, यह कहा जा सकता है कि यद्यपि अपीलार्थीगण को ज्ञान था कि ऐसा कार्य मृतक की मृत्यु का परिणाम हो सकता है, लेकिन मृतक को मारने का कोई आशय नहीं था।

35. उपरोक्त विवेचनाओं के दृष्टिगत, हम अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि को धारा 302 सपठित धारा 34 भा.द.सं. से धारा 304-II भा.द.सं. में परिवर्तित/संशोधित करते हैं। आगे अपीलार्थीगण की धारा 323 सपठित धारा 34 भा.द.सं. के अधीन दोषसिद्धि को यतद्वारा पुष्ट किया जाता है।

36. तदनुसार, अपील **आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है**। अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि और दण्डादेश को धारा 302 सपठित धारा 34 भा.द.सं. से धारा 304-II भा.द.सं. में परिवर्तित/संशोधित किया जाता है। अपीलार्थीगण को यतद्वारा धारा 304-II भा.द.सं. के अधीन दोषसिद्ध किया जाता है और सात वर्ष के कारावास और प्रत्येक पर रु.10,000/- के जुर्माने से दण्डादिष्ट किया जाता है। सभी दण्डादेश समवर्ती रूप से चलेंगे। अपीलार्थीगण द्वारा पहले से भुगती गई अवधि समायोजित की जाएगी। इस न्यायालय द्वारा संशोधित/परिवर्तित किए गए अनुसार दण्डादेश पूर्ण होने के पश्चात, अपीलार्थीगण को, यदि वे किसी अन्य मामले में वांछित नहीं हैं, उन्मोचित किया जाएगा।

(2025) 5 ILRA 1578

मूल अधिकारिता – सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 09.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार

आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 2588 सन् 2023

कोदई **...**याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: दुर्गा प्रसाद

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: जी.ए., आलोक सिंह चौहान, अनिल कुमार, डॉ. सुरेंद्र सिंह चौहान

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएँ 256 एवं 302 – परिवाद के लंबित रहने के दौरान परिवादी की मृत्यु – क्या परिवाद उपशमित होता है – वसीयत के आधार पर विधिक प्रतिनिधि – अभियोजन जारी रखने की अनुज्ञता

अभिनिर्धारित: परिवादी की मृत्यु से अभियोजन स्वतः समाप्त नहीं होता – मजिस्ट्रेट, धारा 302 Cr.P.C. के अधीन, किसी भी व्यक्ति सहित विधिक वारिस या वसीयत द्वारा उत्तराधिकारी (legatee) को कार्यवाही जारी रखने की अनुमति दे सकता है – जाँच या विचारण का परिवादी की मृत्यु पर कोई उपशमन नहीं होता – वसीयत द्वारा वारिस परिवाद जारी रखने का अधिकारी है – याचिका खारिज। (पैरा 9, 11, 12, 13, 15 एवं 18)

अभिनिर्धारण:

धारा 256(1) Cr.P.C. में प्रावधान है कि यदि समन परिवाद पर जारी किए गए हों, और अभियुक्त की उपस्थिति के लिए नियत तिथि को या उसके बाद किसी तिथि को, परिवादी उपस्थित नहीं होता, तो मजिस्ट्रेट अभियुक्त को दोषमुक्त करेगा, जब तक कि किसी कारण से वह मामले की सुनवाई किसी अन्य दिन तक स्थगित करना उचित न समझे; परंतु जहाँ परिवादी किसी अधिवक्ता द्वारा, या अभियोजन संचालित करने वाले अधिकारी द्वारा प्रतिनिधित्व किया जा रहा हो, या जहाँ मजिस्ट्रेट यह मत रखता हो कि परिवादी की व्यक्तिगत उपस्थिति आवश्यक नहीं है, मजिस्ट्रेट उसकी उपस्थिति माफ कर मामले में कार्यवाही कर सकता है। धारा 256 की उपधारा (2) में यह प्रावधान किया गया है कि उपधारा (1) के प्रावधान उन मामलों में भी, यथासंभव, लागू होंगे जहाँ परिवादी की अनुपस्थिति उसकी मृत्यु के कारण है। (पैरा 9)

अनुवादित

उक्त के आलोक में, परिवादी की मृत्यु पर आपराधिक अभियोजन समाप्त नहीं होता और जिस मजिस्ट्रेट के समक्ष कार्यवाही लंबित है, वह अभियोजन को जारी रखने की अनुमति दे सकता है तथा यह महाधिवक्ता, सरकारी अधिवक्ता, लोक अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक के माध्यम से जारी रखा जा सकता है, क्योंकि परिवादी की अनुपस्थिति में जाँच एवं विचारण के उपशमन का कोई प्रावधान नहीं है, जबकि अभियुक्त की मृत्यु पर अपील या विचारण के उपशमन का प्रावधान है। इसी कारण परिवादी की मृत्यु पर कार्यवाही के उपशमन का प्रावधान नहीं है, बल्कि यदि परिवादी उपस्थित नहीं होता तो मजिस्ट्रेट अभियुक्त को दोषमुक्त करेगा जब तक कि वह मामले की सुनवाई किसी अन्य तिथि तक स्थगित करना उचित न समझे; परंतु यदि मजिस्ट्रेट यह मत रखता हो कि परिवादी की व्यक्तिगत उपस्थिति आवश्यक नहीं है तो उसकी उपस्थिति माफ करके मामले में आगे कार्यवाही कर सकता है। यह परिवादी की मृत्यु के कारण अनुपस्थिति के मामलों में भी लागू होता है। अभियोजन किसी भी व्यक्ति द्वारा स्वयं या अधिवक्ता के माध्यम से संचालित कराया जा सकता है। इस प्रकार परिवादी की मृत्यु पर उसका विधिक प्रतिनिधि मामले के अभियोजन के लिए आवेदन कर सकता है, इसलिए किसी विधिक प्रतिनिधि को केवल इस आधार पर अपात्र नहीं ठहराया जा सकता कि वह उसके पक्ष में निष्पादित वसीयत के आधार पर है। (पैरा 11)

वर्तमान मामले के तथ्यों की ओर आते हुए, परिवाद इस आधार पर दाखिल किया गया है कि याचिकाकर्ता ने, परिवादिनी के पति की मृत्यु के पश्चात् स्वयं को उसका पुत्र बताते हुए, राजस्व अभिलेखों में अपना नाम वारिस के रूप में दर्ज कराया, जबकि उनकी कोई संतान नहीं थी और अभियुक्त/याचिकाकर्ता अपने दो भाइयों सहित बेचई का पुत्र है। यह विवादित नहीं है कि परिवादिनी अटवारी द्वारा संपत्ति के संबंध में प्रतिवादी संख्या 2 के पक्ष में वसीयत निष्पादित की गई थी, जिस संपत्ति पर याचिकाकर्ता ने कथित रूप से कपटपूर्वक अपना नाम, चकबंदी अधिकारी के समक्ष परिवादिनी के नामांतरण आवेदन के लंबन के दौरान और परिवादिनी द्वारा आवेदन दाखिल करने के पश्चात् दर्ज कराया, जबकि चकबंदी में कार्यवाही चल रही है और प्रतिवादी संख्या 2 वसीयत के आधार पर परिवादिनी की विवादित संपत्ति पर काबिज है। इस प्रकार वह उसका विधिक प्रतिनिधि है और वसीयत के आधार पर विवादित संपत्ति का अधिकारी है तथा परिवादिनी की ओर से कार्यवाही जारी रखने का अधिकारी है। (पैरा 18)

आवेदन स्वीकृत। (E-14)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. अश्विन नानुभाई व्यास बनाम महाराष्ट्र राज्य, AIR 1967 Supreme Court 983
2. बालासाहेब के. ठाकरे एवं अन्य बनाम वेंकट @ बाबरू, पुत्र वामनराव देशपांडे चार्थकर एवं अन्य, (2006) 5 Supreme Court Cases 530
3. जिमी जहाँगीर मदन बनाम बोली कैरियाप्पा हिंडले (मृत) विधिक उत्तराधिकारियों के माध्यम से, (2004) 12 Supreme Court Cases 509
4. श्रीमती सरोज गुप्ता एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2006 ADJ 446 (All)

5. हबीब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2013 (8) ADJ 369

6. लाली थॉमस बनाम केरल राज्य एवं अन्य, 2010 SCC Online KER 4988

(न्यायमूर्ति रजनीश कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री दुर्गा प्रसाद, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता तथा प्रत्यर्थी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल कुमार को सुना गया।

2. यह याचिका अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 3, अम्बेडकर नगर द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 24/2022 (कोदई बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य) में दिनांक 31.01.2023 को पारित आदेश तथा सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ प्रभाग)/न्यायिक मजिस्ट्रेट, टाण्डा, अम्बेडकर नगर द्वारा परिवाद संख्या 883/2018 (अतवारी बनाम कोदई) में दिनांक 11.01.2022 को पारित आदेश को चुनौती देते हुए संस्थित की गई है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का निवेदन है कि परिवादी की मृत्यु के पश्चात् उसके पक्ष में वसीयत रखने वाले व्यक्ति द्वारा परिवाद को अभियोजित किए जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि उसे परिवादी का विधिक उत्तराधिकारी नहीं कहा जा सकता, परन्तु इस पर विचार किए बिना विद्वान विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी संख्या 2 के आवेदन को स्वीकार कर लिया और उसे परिवाद को आगे बढ़ाने की अनुमति प्रदान कर दी। उनका यह भी निवेदन है कि याचिकाकर्ता ने उक्त आदेश को पुनरीक्षण में चुनौती दी और पुनरीक्षण न्यायालय ने भी इस पर विचार किए बिना तथा पुनरीक्षण में उठाए गए आधारों पर विचार किए बिना पुनरीक्षण को खारिज कर दिया और विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को बरकरार रखा। अतः आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं हैं और निरस्त किए जाने योग्य हैं।

4. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता का निवेदन है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 परिवादी द्वारा निष्पादित वसीयत के आधार पर परिवादी की समस्त चल एवं अचल संपत्तियों के लिए हकदार है। उनका यह भी निवेदन है कि परिवाद इस आधार पर दायर किया गया था कि याचिकाकर्ता ने अपने को पुत्र दर्शाते हुए परिवादी के पति की मृत्यु के पश्चात् कपट का प्रयोग करके राजस्व अभिलेखों में अपना नाम दर्ज करवाया, जबकि उनकी कोई संतान नहीं थी। उनका यह भी निवेदन है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 को परिवादी के स्थान पर लंबित चकबंदी कार्यवाही में प्रतिस्थापित किया गया है, जो लंबित है। अतः निवेदन है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 वसीयत के आधार पर प्रत्यर्थी संख्या 2 की संपत्तियों को विरासत में लेने वाला एकमात्र व्यक्ति होने के नाते परिवादी की मृत्यु के पश्चात् मामले को अभियोजित करने का हकदार है। विद्वान विचारण न्यायालय ने विधि के अनुसार सही रूप से उसे मामले को अभियोजित करने की अनुमति प्रदान की है। पुनरीक्षण न्यायालय ने भी विधि के अनुसार सही रूप से पुनरीक्षण को खारिज किया है। यह याचिका भ्रमपूर्ण एवं निराधार आधारों पर संस्थित की गई है, जो खारिज किए जाने योग्य है।

5. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के निवेदनों पर विचार करने के पश्चात्, मैंने अभिलेख का अवलोकन किया है।

6. दंड प्रक्रिया संहिता (जिसे इसके पश्चात् 'दं.प्र.सं.' के रूप में संदर्भित किया गया है) की धारा 156(3) के अंतर्गत स्वर्गीय बहाऊ की पत्नी अतवारी द्वारा एक आवेदन संस्थित किया गया था, जिसमें यह अभिकथन किया गया था कि उनकी तथा बहाऊ की कोई संतान नहीं थी। आवेदिका के पति बहाऊ की मृत्यु के पश्चात्, अभियुक्त/याचिकाकर्ता कोदई ने स्वयं को पुत्र दर्शाते हुए तथा तत्कालीन ग्राम प्रधान के कूटरचित कथन एवं हस्ताक्षरों के साथ राजस्व अभिलेखों में अपना नाम दर्ज करवा लिया, जबकि चकबंदी की कार्यवाही चल रही थी। आवेदिका ने अपने पति की मृत्यु के पश्चात्, एकमात्र विधिक उत्तराधिकारी होने के नाते, चकबंदी अधिकारी, जलालपुर के समक्ष नामांतरण हेतु आवेदन किया था। उसके आवेदन के लंबित रहने के दौरान, अभियुक्त/याचिकाकर्ता ने स्वयं को उसका विधिक उत्तराधिकारी माना है, जबकि उसके दो अन्य भाई हैं, अर्थात् राम अवतार और राम प्रताप और तीनों ही बेचई के पुत्र हैं, जो मकरहा, थाना-अतरौलिया, जनपद-आजमगढ़ के निवासी हैं।

7. स्वीकार्यतः, अटवारी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन दाखिल आवेदन को परिवाद प्रकरण के रूप में पंजीकृत किया गया था और उसका कथन अभिलिखित करने के पश्चात्, समन जारी किए गए थे। समन आदेश को इस न्यायालय के समक्ष धारा 482/378/407 संख्या 453 सन् 2019 (कोदई बनाम उ०प्र० राज्य एवं अन्य) में याचिका द्वारा चुनौती दी गई थी। प्रारंभ में, उक्त याचिका में अंतरिम आदेश पारित किया गया था किन्तु तत्पश्चात्, उक्त याचिका का निस्तारण दिनांक 24.08.2022 के आदेश द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के निर्देश के साथ किया गया था। तथापि, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष अग्रिम जमानत हेतु आवेदन किया और उसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1621 सन् 2023 में दिनांक 21.07.2023 को पारित आदेश द्वारा अग्रिम जमानत प्रदान की गई है।

8. विचारण के लंबित रहने के दौरान, परिवादिनी अटवारी की मृत्यु दिनांक 12.03.2019 को हो गई थी, अतः प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा दिनांक 16.05.2019 को अभियोजन जारी रखने हेतु आवेदन दाखिल किया गया था, जिस पर आक्षेप आमंत्रित करने और विचार करने के पश्चात्, आवेदन को इस आधार पर स्वीकार किया गया कि अभियुक्त को समन किए जाने के पश्चात् गुणागुण के आधार पर परिवाद का निर्णय करने हेतु परिवादिनी की उपस्थिति की कोई आवश्यकता नहीं है और प्रतिवादी संख्या-2 को दिनांक 11.01.2022 के आदेश द्वारा मामले को आगे बढ़ाने की अनुमति दी गई थी। उपर्युक्त आदेश को याचिकाकर्ता द्वारा सत्र न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण में चुनौती दी गई थी। पुनरीक्षण न्यायालय ने आवेदपत्रों और याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए आधारों पर विचार करते हुए, दिनांक 31.01.2023 के आदेश द्वारा पुनरीक्षण को खारिज कर दिया था। अतः यह याचिका दाखिल की गई है।

9. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 256(1) यह प्रावधान करती है कि यदि परिवाद पर समन जारी किया गया हो, और अभियुक्त की उपस्थिति के लिए नियत दिन पर, अथवा तत्पश्चात् किसी दिन, परिवादी उपस्थित नहीं होता है, तो मजिस्ट्रेट अभियुक्त को दोषमुक्त कर देगा, जब तक कि किसी कारण से वह मामले की सुनवाई को किसी अन्य दिन के लिए स्थगित करना उचित नहीं समझता है; परन्तु यह कि जहां परिवादी का प्रतिनिधित्व किसी अधिवक्ता द्वारा किया जाता है, अथवा अभियोजन संचालित करने वाले अधिकारी द्वारा, अथवा जहां मजिस्ट्रेट की यह राय है कि परिवादी की व्यक्तिगत उपस्थिति आवश्यक नहीं है, तो मजिस्ट्रेट उसकी उपस्थिति से अभिमुक्ति प्रदान कर सकता है और मामले के साथ आगे बढ़ सकता है। धारा 256 की उप-धारा (2) में यह प्रावधान किया गया है कि धारा 256 की उप-धारा (1) के प्रावधान, जहां तक हो सके, उन मामलों में भी लागू होंगे जहां परिवादी की अनुपस्थिति उसकी मृत्यु के कारण है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 256 को यहां उद्धृत किया गया है:

"256. परिवादी की अनुपस्थिति अथवा मृत्यु- *(1) यदि परिवाद पर समन जारी किया गया हो, और अभियुक्त की उपस्थिति के लिए नियत दिन पर, अथवा तत्पश्चात् किसी अन्य दिन जिस तक सुनवाई स्थगित की जा सकती है, परिवादी उपस्थित नहीं होता है, तो मजिस्ट्रेट, यहां पूर्व में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, अभियुक्त को दोषमुक्त कर देगा, जब तक कि किसी कारण से वह मामले की सुनवाई को किसी अन्य दिन के लिए स्थगित करना उचित नहीं समझता है।*

परन्तु यह कि जहां परिवादी का प्रतिनिधित्व किसी अधिवक्ता द्वारा किया जाता है अथवा अभियोजन संचालित करने वाले अधिकारी द्वारा अथवा जहां मजिस्ट्रेट की यह राय है कि परिवादी की व्यक्तिगत उपस्थिति आवश्यक नहीं है, तो मजिस्ट्रेट उसकी उपस्थिति से अभिमुक्ति प्रदान कर सकता है और मामले के साथ आगे बढ़ सकता है।

(2) उप-धारा (1) के प्रावधान, जहां तक हो सके, उन मामलों में भी लागू होंगे जहां परिवादी की अनुपस्थिति उसकी मृत्यु के कारण है।"

10. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 यह प्रावधान करती है कि मजिस्ट्रेट, अभियोजन को किसी व्यक्ति द्वारा संचालित करने की अनुमति दे सकता है जैसा कि प्रावधानित है और अभियोजन संचालित करने वाला कोई भी व्यक्ति ऐसा व्यक्तिगत रूप से अथवा किसी अधिवक्ता द्वारा कर सकता है। धारा 302 को यहां उद्धृत किया गया है:

"302. अभियोजन संचालित करने की अनुमति- *(1) कोई भी मजिस्ट्रेट जो किसी मामले की जांच कर रहा है अथवा विचारण कर रहा है, अभियोजन को निरीक्षक के पद से नीचे के किसी पुलिस अधिकारी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा संचालित करने की अनुमति दे सकता है;*

बशर्ते महाधिवक्ता अथवा शासकीय अधिवक्ता अथवा लोक अभियोजक अथवा सहायक लोक अभियोजक के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति, ऐसी अनुमति के बिना ऐसा करने का हकदार नहीं होगा। परन्तु यह कि किसी

पुलिस अधिकारी को अभियोजन संचालित करने की अनुमति नहीं दी जाएगी यदि उसने उस अपराध की जांच में भाग लिया है जिसके संबंध में अभियुक्त पर अभियोजन चलाया जा रहा है।

(2) अभियोजन संचालित करने वाला कोई भी व्यक्ति ऐसा व्यक्तिगत रूप से अथवा किसी अधिवक्ता द्वारा कर सकता है।"

11. उपर्युक्त के परिप्रेक्ष्य में, परिवादी की मृत्यु पर, आपराधिक अभियोजन समाप्त नहीं होता है और अभियोजन को मजिस्ट्रेट द्वारा जारी रखने की अनुमति दी जा सकती है, जिसके समक्ष कार्यवाही लंबित है और इसे महाधिवक्ता अथवा शासकीय अधिवक्ता अथवा लोक अभियोजक अथवा सहायक लोक अभियोजक के माध्यम से जारी रखने की अनुमति दी जा सकती है क्योंकि परिवादी की अनुपस्थिति में जांच और विचारण के उपशमन का कोई प्रावधान नहीं है, जबकि अभियुक्त की मृत्यु पर अपील अथवा विचारण के उपशमन का प्रावधान किया गया है। इसी कारण से, यह परिवादी की मृत्यु पर कार्यवाही के उपशमन का प्रावधान नहीं करता है, बल्कि यदि परिवादी उपस्थित नहीं होता है, तो मजिस्ट्रेट अभियुक्त को दोषमुक्त कर देगा जब तक कि किसी कारण से वह मामले की सुनवाई को किसी अन्य तिथि के लिए स्थगित करना उचित नहीं समझता है; परन्तु यह कि मजिस्ट्रेट की यह राय है कि परिवादी की व्यक्तिगत उपस्थिति आवश्यक नहीं है और उसकी उपस्थिति से अभिमुक्ति प्रदान करते हुए मामले के साथ आगे बढ़ सकता है। यह उन मामलों में भी है जहां परिवादी की अनुपस्थिति उसकी मृत्यु के कारण है। अभियोजन को किसी व्यक्ति द्वारा व्यक्तिगत रूप से अथवा किसी अधिवक्ता द्वारा संचालित करने की अनुमति दी जा सकती है। इस प्रकार, परिवादी की मृत्यु पर, उसका विधिक प्रतिनिधि मामले को आगे बढ़ाने हेतु आवेदन कर सकता है, अतः किसी विधिक प्रतिनिधि को केवल इस आधार पर वर्जित नहीं किया जा सकता है कि वह उसके पक्ष में निष्पादित वसीयत के आधार पर है।

12. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **अश्विन नानूभाई व्यास बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1967 सुप्रीम कोर्ट 983** में प्रतिवेदित मामले में, जो तीन माननीय न्यायमूर्तियों की पीठ द्वारा है, यह अभिनिर्धारित किया है कि परिवादी के न्यायालय में उपस्थित होने में असफलता पर अभियुक्त की दोषमुक्ति अथवा उन्मोचन के विषय में कोई प्रावधान नहीं है और ऐसे विचारणों में, परिवादी की अनुपस्थिति में, अभियुक्त को या तो दोषमुक्त किया जाता है अथवा उन्मोचित किया जाता है। यह भी अवलोकित किया गया है कि आशय यह प्रतीत होता है कि मजिस्ट्रेट को जांच के साथ आगे बढ़ना चाहिए क्योंकि यदि ऐसा आशयित नहीं होता, तो संहिता में यह कहा गया होता कि परिवादी के अनुपस्थित रहने पर क्या होगा।

13. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **बालासाहेब के. ठाकरे एवं अन्य बनाम वेंकट उर्फ बाबरू, पुत्र वामनराव देशपांडे चर्थनकर एवं अन्य, (2006) 5 सुप्रीम कोर्ट केसेस 530** में प्रतिवेदित मामले में, यह अभिनिर्धारित किया है कि परिवादी का उत्तराधिकारी संहिता की धारा 302 के अधीन अभियोजन को जारी रखने हेतु याचिका दाखिल कर सकता है और मजिस्ट्रेट को निरीक्षक के पद से नीचे के पुलिस अधिकारी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अभियोजन संचालित करने की अनुमति देने का अधिकार है; किन्तु महाधिवक्ता अथवा शासकीय

अधिवक्ता अथवा लोक अभियोजक अथवा सहायक लोक अभियोजक के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति ऐसी अनुमति के बिना ऐसा करने का हकदार नहीं होगा। इस प्रकार, यदि मृत परिवादी के विधिक उत्तराधिकारियों द्वारा अभियोजन जारी रखने हेतु कोई अनुमति मांगी जाती है, तो मामले से निपट रहे न्यायालय द्वारा इसकी परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाएगा। सुसंगत पैराग्राफ संख्या 4, 6 और 7 को यहां उद्धृत किया गया है:

*"4. इस संधि पर यह ध्यान देना सुसंगत है कि इस न्यायालय द्वारा पूर्व में लागू सिद्धांतों के विषय में क्या कहा गया है। **अश्विन नानूभाई व्यास बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (एआईआर 1967 एससी 983)** में दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (जिसे इसके पश्चात् 'पुरानी संहिता' कहा गया है) की धारा 495 के संदर्भ में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि मजिस्ट्रेट को किसी संबंधी को परिवादी के रूप में कार्य करने और अभियोजन जारी रखने की अनुमति देने का अधिकार था। **जिम्मी जहांगीर मदन बनाम बॉली कारियाप्पा हिंडले (मृत) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा (2004 (12) एससीसी 509)** में **अश्विन के मामले (उपरोक्त)** का संदर्भ देने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया गया कि परिवादी के उत्तराधिकारी को संहिता की धारा 302 के अधीन अभियोजन जारी रखने हेतु याचिका दाखिल करने की अनुमति दी जा सकती है।*

*5. **संहिता की धारा 302 इस प्रकार है:***

.....

6. संहिता की धारा 302 का लागू होना सुनिश्चित करने हेतु, किसी मामले की जांच कर रहे अथवा विचारण कर रहे मजिस्ट्रेट से अभियोजन संचालित करने की अनुमति प्राप्त करनी होगी। मजिस्ट्रेट को निरीक्षक के पद से नीचे के पुलिस अधिकारी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अभियोजन संचालित करने की अनुमति देने का अधिकार है; किन्तु महाधिवक्ता अथवा शासकीय अधिवक्ता अथवा लोक अभियोजक अथवा सहायक लोक अभियोजक के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति ऐसी अनुमति के बिना ऐसा करने का हकदार नहीं होगा।

7. उपर्युक्त स्थिति के परिप्रेक्ष्य में, यदि मृत परिवादी के विधिक उत्तराधिकारियों द्वारा अभियोजन जारी रखने हेतु कोई अनुमति मांगी जाती है, तो मामले से निपट रहे न्यायालय द्वारा इसकी परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाएगा। यह ध्यान में लाया गया है कि दिनांक 13.10.2003 के आदेश द्वारा मजिस्ट्रेट के समक्ष आगे की कार्यवाही पर रोक लगा दी गई है। उस पृष्ठभूमि में, श्री अदसुरे ने प्रस्तुत किया कि आवेदन इस न्यायालय के समक्ष दाखिल किया जाएगा। यदि और जब कोई आवेदन दाखिल किया जाता है तो उसके साथ उचित रूप से निपटा जाएगा। तदनुसार आदेश दिया गया।"

14. माननीय उच्चतम न्यायालय **ने जिम्मी जहांगीर मदन बनाम बॉली कारियाप्पा हिंडले (मृत) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा, (2004) 12 सुप्रीम कोर्ट केसेस 509** में प्रतिवेदित मामले में, जिसमें विचारणीय प्रश्न यह था कि क्या अभियोजन जारी रखने हेतु संहिता की धारा 302 के अधीन आवेदन मुख्तारनामा धारकों अथवा परिवादी के उत्तराधिकारियों द्वारा दाखिल किया जा सकता है, सुसंगत प्रावधानों और विषय पर विधि पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि जैसा कि संहिता की धारा 2(q) के अधीन प्रावधानित है, अभियोजन जारी

रखने का आवेदन पक्षकार स्वयं द्वारा अथवा विधिक रूप से योग्य व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है, जो अधिवक्ता अधिनियम के अधीन न्यायालय में प्रैक्टिस करने हेतु प्राधिकृत है; अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा जिसमें स्पष्ट रूप से मुख्तारनामा धारक शामिल होगा जिस स्थिति में ऐसी अनुमति न्यायालय द्वारा प्रदान की जा सकती है जहां अभियोजन लंबित है केवल तभी यदि यह उस व्यक्ति द्वारा मांगी गई है जो अभियोजन जारी रखने का हकदार है न कि मुख्तारनामा धारक द्वारा।

15. इस न्यायालय ने **श्रीमती सरोज गुप्ता एवं अन्य बनाम उ०प्र० राज्य एवं अन्य, 2006 एडीजे 446 (इला०)** में प्रतिवेदित मामले में, यह अभिनिर्धारित किया है कि परिवादी की अनुपस्थिति में जांच और विचारण के उपशमन का कोई प्रावधान नहीं है। सुसंगत पैराग्राफ 6 और 7 को यहां उद्धृत किया गया है:-

"6. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि परिवादी की मृत्यु स्वतः ही आपराधिक अभियोजन को समाप्त नहीं करती है। "एक्शियो पर्सनालिस मोरिटर कम पर्सोना:- परिवादी की मृत्यु आपराधिक अभियोजन को समाप्त नहीं करती है। उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 306 की उक्ति एक्शियो पर्सनालिस मोरिटर कम पर्सोना आपराधिक अभियोजन पर लागू नहीं होती है।"

7. परिवादी की अनुपस्थिति में जांच और विचारण के उपशमन का कोई प्रावधान नहीं है यद्यपि यह अभियुक्त की मृत्यु पर अपील अथवा विचारण के उपशमन का प्रावधान करता है, इसलिए, परिवाद पर प्रारंभ किए गए मामले में परिवादी की मृत्यु पर क्या होता है, यह संहिता के प्रावधानों से सामान्यतः अनुमानित किया जाना है।"

16. इस न्यायालय ने **हबीब बनाम उ०प्र० राज्य एवं अन्य, 2013 (8) एडीजे 369** में प्रतिवेदित मामले में, उपरोक्त के समान दृष्टिकोण अपनाया है। सुसंगत पैराग्राफ-23 को यहां उद्धृत किया गया है:

"23. शीर्ष न्यायालय के उपर्युक्त निर्णयों के अवलोकन से, यह अब सुस्थापित है कि परिवादी की मृत्यु पर, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 256(2) के अधीन स्वतः ही आपराधिक कार्यवाही की समाप्ति नहीं हो सकती है और उस स्थिति में विद्वान मजिस्ट्रेट को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए किसी व्यक्ति अथवा अभियोजन अभिकरण को आपराधिक मामले के संचालन की अनुमति देने का अधिकार है केवल परिवादी की मृत्यु के आधार पर, उसके द्वारा दाखिल परिवाद को खारिज नहीं किया जा सकता है और न ही अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 256 अथवा 258 के अधीन दोषमुक्त अथवा उन्मोचित किया जा सकता है।"

17. केरल उच्च न्यायालय ने **लाली थॉमस बनाम केरल राज्य एवं अन्य; 2010 एससीसी ऑनलाइन केरल 4988** में प्रतिवेदित मामले में, यह अभिनिर्धारित किया है कि संहिता की धारा 256 को पढ़ने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि परिवादी की मृत्यु के पश्चात् भी मामले के साथ आगे बढ़ा जाता है, केवल इसलिए क्योंकि

अनधिकृत

मजिस्ट्रेट यह राय बनाता है कि परिवादी की उपस्थिति आवश्यक नहीं है और परिवादी की उपस्थिति से अभिमुक्ति प्रदान की जाती है। इसलिए, परिवादी के अनुपस्थित होने के आधार पर संहिता की धारा 256(1) के अधीन अभियुक्त को दोषमुक्त करने का केवल कोई औचित्य नहीं होगा।

18. वर्तमान मामले के तथ्यों की ओर आते हुए, परिवाद इस आधार पर दाखिल किया गया है कि याचिकाकर्ता ने, परिवादिनी के पति की मृत्यु के पश्चात् स्वयं को पुत्र दर्शाते हुए, राजस्व अभिलेखों में उत्तराधिकारी के रूप में अपना नाम अभिलिखित करवा लिया था, जबकि उनकी कोई संतान नहीं थी और अभियुक्त/याचिकाकर्ता अपने दो भाइयों के साथ बेचई का पुत्र है। यह विवाद में नहीं है कि परिवादिनी अटवारी द्वारा प्रतिवादी संख्या-2 के पक्ष में संपत्ति के संबंध में वसीयत निष्पादित की गई थी, जिस पर याचिकाकर्ता द्वारा कथित रूप से कपटपूर्ण तरीके से नाम अभिलिखित करवाया गया था, चकबंदी अधिकारी के समक्ष नामांतरण हेतु परिवादिनी के आवेदन के लंबित रहने के दौरान और परिवादिनी द्वारा आवेदन दाखिल करने के पश्चात्, चकबंदी में कार्यवाही चल रही है और प्रतिवादी संख्या-2 वसीयत के आधार पर परिवादिनी की विवादित संपत्ति के कब्जे में है। इस प्रकार, वह उसका विधिक प्रतिनिधि है और वसीयत के आधार पर विवादित संपत्ति का हकदार है और परिवादिनी की ओर से कार्यवाही को जारी रखने का हकदार है।

19. उपर्युक्त के परिप्रेक्ष्य में, अवर न्यायालयों ने सम्यक् रूप से और विधि के अनुसार आक्षेपित आदेश पारित किए हैं और याचिकाकर्ता को परिवादिनी अटवारी की मृत्यु के पश्चात् परिवाद प्रकरण की कार्यवाही को आगे बढ़ाने/पैरवी करने की अनुमति दी है। आक्षेपित आदेश विधि के अनुसार सकारण और उच्चारित आदेशों द्वारा पारित किए गए हैं, जो इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की अपेक्षा नहीं रखते हैं। याचिका भ्रामक है और योग्यता से रहित है।

20. तदनुसार, याचिका खारिज की जाती है।

अनुमोदित

(2025) 5 ILRA 1584

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 30.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल

चुनाव याचिका संख्या-11 वर्ष 2022

प्रेम पाल सिंह **... याचिकाकर्ता**

बनाम

प्रेम पाल सिंह धनगर और अन्य **... प्रतिपक्षीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: संजय कुमार श्रीवास्तव, वीरेंद्र सिंह

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता: आद्या प्रसाद तिवारी, जय प्रकाश राव, राजेश कुमार तिवारी

चुनाव याचिका - जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951-धारा 80 और 81 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908- आदेश VI नियम 17 - आदेश VII नियम 11 --- चुनाव याचिका में प्रतिपक्षी के चुनाव पर इस आधार पर सवाल उठाया गया है कि वह अनुसूचित जाति समुदाय से संबंधित नहीं है और अन्य पिछड़ी जाति से है--- एक चुनाव याचिका में, धारा 83(1)(a) के तहत याचिका में महत्त्वपूर्ण तथ्यों को निर्धारित किया जाना है और कोई पुनरीक्षण नहीं किया जा सकता है। किया गया। यही बात एक मुकदमे की दलील के साथ भी लागू होती है जहां अपने दावे या बचाव के लिए भरोसा करने वाले पक्ष द्वारा दलील में आदेश VI के नियम 2 के मद्देनजर महत्वपूर्ण तथ्य का खुलासा किया जाना है--- याचिकाकर्ता द्वारा पेश किए गए पुनरीक्षण आवेदन की अनुमति नहीं दी जा सकती है क्योंकि यह पूरी तरह से एक नया मामला पेश करता है--- महत्त्वपूर्ण तथ्य का खुलासा न करना एक लाइलाज दोष है जो एक अपरिहार्य निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि एक चुनाव याचिका सुनवाई योग्य नहीं है--- प्रस्तुत मामला चुनाव याचिका दायर करते समय छोड़े गए भौतिक विवरणों को अभिलेखों पर लाने के लिए नहीं है, बल्कि प्रस्तावित पुनरीक्षण के माध्यम से, महत्त्वपूर्ण तथ्यों को अभिलेखों पर लाया जा रहा है जो मामले की जड़ तक जाते हैं और इस स्तर पर अनुमति नहीं दी जा सकती है--- चूंकि याचिकाकर्ता ने अपनी चुनाव याचिका में महत्वपूर्ण तथ्यों का खुलासा नहीं किया है और बाद में चुनाव याचिका में पुनरीक्षण करने का प्रयास किया था, प्रतिपक्षी संख्या-1 द्वारा आदेश VII नियम 11(ए) सी.पी.सी. के तहत कार्रवाई के कारण का खुलासा न करने के लिए चुनाव याचिका को खारिज करने के लिए दायर किए गए आवेदन की अनुमति दी जाती है।

याचिका खारिज कर दी गई। (ई-15)

<u>संदर्भित वादों / निर्णयज विधियों की सूची</u>-:

1. कनिमोझी करुणानिधि बनाम ए. संथाना कुमार 2023 लाइवलॉ (एस.सी.) 398.
2. अनीता देवी चौरसिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिट-सी संख्या-22128 ऑफ 2023
3. उद्धव सिंह बनाम माधव राव सिंधिया, (1977) 1 एस.सी.सी. 511
4. एलआर शिवरामगौड़ा बनाम टीएम चंद्रशेखर, (1999) 1 एस.सी.सी. 666
5. एच.डी. रेवन्ना बनाम जी. पुट्टास्वामी गौड़ा, (1999) 2 एस.सी.सी. 217
6. वीरेंद्र नाथ गौतम बनाम सतपाल सिंह, (2007) 3 एस.सी.सी. 617
7. जीतू पटनायक बनाम सनातन मोहकुड और अन्य, (2012) 4 एस.सी.सी. 194
8. सामंत एन. बालकृष्ण बनाम जॉर्ज फर्नांडीज, (1969) 3 एस.सी.सी. 238
9. सोपान सुखदेव साबले बनाम सहायक चैरिटी कॉमर्शियल, (2004) 3 एस.सी.सी. 137

<u>(माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल द्वारा पारित)</u>

1. जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 80/81 (इसके बाद "1951 का अधिनियम" कहा जाता है) के तहत दायर यह चुनाव याचिका टुंडला निर्वाचन संख्या-95 (अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित) से उत्तर प्रदेश विधान सभा के लिए प्रतिपक्षी संख्या-1 प्रेम पाल सिंह धनगर के चुनाव पर सवाल उठाती है।

2. इस चुनाव याचिका को माननीय मुख्य न्यायाधीश दिनांक 28.08.2023 के आदेश द्वारा 1951 के अधिनियम की धारा 80-A की उपधारा (2) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय में नामित किया गया था।

3. चुनाव याचिका के लंबित रहने के दौरान, चुनाव याचिकाकर्ता ने एक पुनरीक्षण आवेदन पत्र संख्या-दायर की। ए-34, जबकि प्रतिपक्षी संख्या-1 ने आदेश VII नियम 11 सी.पी.सी. पेपर संख्या-के तहत एक आवेदन दायर किया। चुनाव याचिका को खारिज करने के लिए ए-28 के रूप में यह चुनाव को शून्य घोषित करने के लिए कार्रवाई के कारण का खुलासा नहीं करता है। दोनों आवेदनों पर एक साथ सुनवाई की गई और पक्षों के अधिवक्ता की सहमति से एक सामान्य आदेश द्वारा निर्णय लिया जा रहा है।

4. चुनाव याचिका दायर करने के लिए तथ्य यह है कि उत्तर प्रदेश विधानसभा के चुनाव की घोषणा निर्वाचन आयोग द्वारा जनवरी, 2022 के महीने में की गई थी। नामांकन दाखिल करने की तारीख 25.01.2022 थी। नामांकन दाखिल करने की अंतिम तिथि 01.02.2022 थी। नामांकन पत्रों की जांच 02.01.2022 को आयोजित की गई थी, जबकि उम्मीदवारी वापस लेने की अंतिम तिथि 04.02.2022 थी।

अनुवादित

5. मतदान 20.02.2022 को किया गया था, जबकि मतों की गिनती 10.03.2022 को हुई थी और परिणाम उसी दिन यानी 10.03.2022 को घोषित किया गया था। प्रतिपक्षी संख्या-1, प्रेम पाल सिंह धनगर टूंडला निर्वाचन क्षेत्र संख्या-95 से 47631 मतों के अंतर से निर्वाचित हुए। वर्तमान चुनाव याचिका याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिपक्षी संख्या-1 के चुनाव पर इस आधार पर सवाल उठाते हुए दायर की गई है कि वह अनुसूचित जाति समुदाय से संबंधित नहीं है और गदेरिया/पाल/बघेल है जिसे उत्तर प्रदेश राज्य में अन्य पिछड़ी जाति के रूप में मान्यता प्राप्त है।

6. चुनाव याचिका में किए गए तथ्यों का सार विवरण इस प्रकार है:-
"1. याचिकाकर्ता टूंडला निर्वाचन क्षेत्र संख्या-95 (जो अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित है) और श्री प्रेम पाल सिंह धनगर (प्रतिपक्षी संख्या-1) का सदस्य है, जिसे भारतीय जनता पक्ष के उम्मीदवार से निर्वाचित घोषित किया गया था। कि उक्त विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र संख्या-95 का मतदान 20.02.2022 को हुआ था और मतगणना 10.03.2022 को हुई थी। इस संबंध में, दिनांक 10.03.2022 के अंतिम परिणाम की एक सच्ची प्रति संलग्न की जा रही है और इस याचिका के अनुलग्नक संख्या-1 के रूप में चिह्नित की जा रही है।

2. 2022 के आम चुनावों की विस्तृत योजना इस प्रकार है; - नामांकन तिथि- 25.01.2022 नामांकन करने की अंतिम तिथि -01.02.2022 नामांकन की जांच - 02.01.2022 उम्मीदवारी वापस लेना - 04.02.2022 मतदान की तिथि - 20.02.2022 मतगणना की तिथि - 10.03.2022 परिणाम घोषित करने की तिथि 10.03.2022

3. कि, अंतिम उल्लिखित तिथि 10.03.2022 को, उक्त चुनाव का परिणाम रिटर्निंग अधिकारी द्वारा घोषित किया गया था और प्रतिपक्षी संख्या-1 को टूंडला निर्वाचन क्षेत्र संख्या-95 (अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित) से विधान सभा के लिए 47631 मतों की बढ़त के साथ निर्वाचित घोषित किया गया था।

4. यहां यह उल्लेख करना उचित है कि टूंडला निर्वाचन क्षेत्र संख्या-95 अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित है; और प्रतिपक्षी संख्या-1 जो स्वीकार करता है कि गदेरिया/पाल/बघेल से संबंधित है, जिसे उत्तर प्रदेश राज्य में अन्य पिछड़ी जाति के रूप में मान्यता प्राप्त है।

5. अन्य पिछड़ी जातियों के सदस्य होने के नाते, टुंडला निर्वाचन क्षेत्र संख्या-95 (अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित) के लिए प्रतिपक्षी संख्या-1 की उम्मीदवारी शुरू से ही अमान्य थी।

6. कि, प्रतिपक्षी संख्या-1-श्री का चुनाव। प्रेम पाल सिंह धनगर इस माननीय न्यायालय द्वारा शून्य और निरस्त किए जाने के लिए उत्तरदायी है, क्योंकि टूंडला निर्वाचन क्षेत्र संख्या-95 केवल अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित है, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित आधारों पर-

7. महत्वपूर्ण तथ्यों के बाद याचिकाकर्ता ने चुनाव याचिका दायर करने के लिए आधार उठाया था। चुनाव याचिका के लंबित रहने के दौरान चुनाव याचिका में पुनरीक्षण के लिए एक हलफनामे के साथ एक पुनरीक्षण आवेदन दायर किया गया था और महत्वपूर्ण तथ्यों को जोड़ने के लिए प्रार्थना की गई थी। पुनरीक्षण आवेदन को 03.03.2025 को इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि पुनरीक्षण आवेदन में याचिकाकर्ता द्वारा मांगे गए पुनरीक्षण के बारे में कोई खुलासा नहीं किया गया था, जबकि तथ्यों का पूरा विवरण पुनरीक्षण आवेदन के साथ दिए गए हलफनामे में था।

8. याचिकाकर्ता ने चुनाव याचिका में पुनरीक्षण करने और प्रस्तर-संख्या-5/5 के बाद प्रस्तर-संख्या-5/1 को 5/8 में जोड़ने के लिए दूसरे पुनरीक्षण आवेदन को प्राथमिकता दी है, जो इस प्रकार हैं: -

"5/1- कि प्रतिपक्षी संख्या-1 स्वीकार करता है कि गदेरिया (गडेरिया) जाति से संबंधित है, क्योंकि वह दावा कर रहा है कि उसकी जाति गदेरिया धनगर (गद्देरिया धनगर) है; लेकिन संविधान अनुसूचित जाति आदेश, 1950 में दी गई राष्ट्रपति सूची, 1950 में गादेरिया धनगर (गडेरिया धनगर) नामक कोई भी जाति शामिल नहीं है।

5/2- कि प्रतिपक्षी संख्या-1 गदेरिया (वीटो) जाति से संबंधित है, जिसे उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग का आरक्षण) अधिनियम, 1994 की अनुसूची 1 और क्रम संख्या-19 में अन्य पिछड़ी जातियों की सूची में शामिल किया गया है।

5/3- कि भारत का राजपत्र 23.11.1997 को इस मामले के संबंध में प्रकाशित हुआ, जिसमें अंग्रेजी संस्करण धनगर और हिंदी संस्करण (चगड) का उल्लेख क्रम संख्या-27 में किया गया है।

5/4. कि 25.03.2019 को, सचिव। समाज कल्याण विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ ने अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय के अलावा धनगर, गदेरिया, पाल और हिन्दू जुलाहा, कोली के रूप में एक अधिसूचना जारी की। जाति प्रमाण पत्र जारी करने के लिए कबीरपंथी बंकर, जिसमें यह विशेष रूप से कहा गया है कि धनगर (धनगर) जैसी कोई जाति नहीं है, यह धनगर (धंगड़) के रूप में सही नाम है।

5/5. कि याचिकाकर्ता ने धनगर (धनगर) और धनगर (पंगड) की जाति के प्रश्न में भारत सरकार के समक्ष एक आर.टी.आई. का प्रस्ताव रखा, तब भारत सरकार, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग 20.09.2017 द्वारा एक उत्तर दिया गया था, जिसमें विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि उत्तर प्रदेश सरकार भारत सरकार के आदेश यानी राष्ट्रपति के आदेश का पालन करेगी, (ख) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम, 1976 की अधिसूचना के हिंदी और अंग्रेजी संस्करण में यथा जारी क्रम संख्या-27 पर धनगर (धनगड़) जाति पर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम, 1950 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम, 1976 के संबंध में आदेश (संशोधन) अधिनियम, 1976 के तहत अधिसूचना जारी की गई है।

5/6. कि यह माननीय न्यायालय 2019 की एक जनहित याचिका संख्या-400 में। 19.4.2019 को एक आदेश पारित किया, जिसमें सभी आक्षेपित सरकारी आदेशों दिनांक 24.10.2013, 16.12.2016 और 26.03.2018 पर रोक लगा दी गई।

5/7 यह कि प्रतिवादी संख्या 1 ग्राम-बदरिया मजरा रारपट्टी, तहसील-सदर, जनपद-एटा का स्थायी निवासी है तथा उसने अपनी प्रारंभिक शिक्षा प्राथमिक विद्यालय बदरिया से प्राप्त की, जहाँ अभिलेखों में उसका नाम क्रम संख्या 328 पर अंकित है तथा उपजाति "बघेल" दर्शाई गई है। तत्पश्चात प्रतिवादी संख्या 1 ने वर्ष 1985-87 के दौरान कक्षा 11 एवं 12 की शिक्षा अविनाशी सहाय आर्य इंटर कॉलेज, एटा से प्राप्त की, जहाँ अभिलेखों में उसकी उपजाति "गडरिया" अंकित है।

5/8 कि प्रतिपक्षी संख्या-1 के परिवार रजिस्टर में उसकी उप-जाति जिसे गडरिया के रूप में उल्लिखित किया गया है और प्रतिपक्षी संख्या-1 के अन्य सभी रक्त संबंधी भी बघेल से संबंधित हैं और गडरिया/बघेल अन्य पिछड़ी जाति (ओबीसी) से संबंधित हैं और इस प्रकार प्रतिपक्षी संख्या-1 जो धनगर धनगड़ है, अनुसूचित जाति से संबंधित नहीं है और वह ओबीसी से संबंधित है।

9. प्रतिपक्षी द्वारा इस आवेदन का इस आधार पर विरोध किया गया है कि इससे चुनाव याचिका की प्रकृति बदल जाएगी और चुनाव याचिका दायर होने के बाद कोई महत्त्वपूर्ण तथ्य नहीं जोड़ा जा सकता है और केवल भौतिक विवरण जोड़े जा सकते हैं।

10. एक आवेदन पेपर संख्या-है। ए-28 को प्रतिपक्षी संख्या-1 द्वारा आदेश VII नियम 11 सी.पी.सी. के तहत इस आधार पर चुनाव याचिका को खारिज करने के लिए प्राथमिकता दी गई है कि अपूर्ण महत्त्वपूर्ण तथ्य बताए गए हैं, इस प्रकार, कार्रवाई का कोई कारण नहीं बनाया गया है और चुनाव याचिका खारिज कर दी जानी चाहिए। यह भी कहा जाता है कि चुनाव याचिका में महत्त्वपूर्ण तथ्य का संक्षिप्त विवरण शामिल नहीं है, जिस पर याचिकाकर्ता कार्रवाई का कारण स्थापित करने के लिए भरोसा कर रहा है और इसे आदेश VII सी.पी.सी. के नियम 11 के खंड (ए) के मद्देनजर खारिज किया जाना चाहिए।

11. चुनाव याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री वीरेंद्र सिंह ने प्रस्तुत किया कि प्रस्तावित पुनरीक्षण द्वारा कोई नया तथ्य नहीं जोड़ा जा रहा है और पहले से ही चुनाव याचिका के आधार पर, जो तथ्य अभिलेखों पर लाए जा रहे हैं, वे पहले ही बताए जा चुके हैं। चुनाव याचिका में पुनरीक्षण करने से, चुनाव याचिका की प्रकृति नहीं बदलेगी और यह एक इलाज योग्य दोष है, इसके अलावा 1951 के अधिनियम की धारा 83(1)(ए) की आवश्यकता का अनुपालन न करना घातक नहीं है। इसके अलावा, धारा 86(1) में प्रावधान है कि धारा 81, 82 या 117 का पालन न करने के लिए चुनाव याचिका को खारिज किया जा सकता है। एक चुनाव याचिका में दोष जो धारा 83 का अनुपालन नहीं करता है, को एक इलाज योग्य दोष माना गया है।

अनुवादित

12. **टी. फुंगजाथांग बनाम हांगखानलियान, (2001) 8 एस.सी.सी. 358; उमेश चाल्लीयिल बनाम केपी राजेंद्रन, (2008) 11 एस.सी.सी. 740; पोन्नला लक्ष्मैया बनाम कोमुरी प्रताप रेड्डी, (2012) 7 एस.सी.सी. 788 और ए. मंजू बनाम प्रज्वल रेवन्ना, (2022) 3 एस.सी.सी. 269। राज नारायण बनाम श्रीमती इंदिरा नेहरू गांधी, ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 1302** के मामले में दिए गए निर्णय पर भी भरोसा रखा गया है।

13. प्रतिपक्षी संख्या-1 की ओर से पेश अधिवक्ता श्री ए.पी. तिवारी ने प्रस्तुत किया कि "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "भौतिक विवरणों" के बीच अंतर है। चुनाव याचिका में महत्त्वपूर्ण तथ्यों का संक्षिप्त विवरण होना चाहिए। महत्त्वपूर्ण तथ्यों का खुलासा न करना चुनाव याचिका के लिए घातक है और दोष को ठीक नहीं किया जा सकता है। उनके अनुसार, यदि चुनाव याचिका में महत्त्वपूर्ण तथ्यों का खुलासा नहीं किया गया है, तो याचिका खारिज की जा सकती है।

14. उन्होंने **अनीता देवी चौरसिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2023 की रिट सी संख्या-22128, जिसका निर्णय 17.01.2024 को दिया गया था,; राम सेवक यादव बनाम हुसैन कामिल किदवई, ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 1249 और कनिमोझी करुणानिधि बनाम ए. संथाना कुमार 2023 लाइवलॉ (एस.सी.) 398** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है।

15. मैंने पुनरीक्षण आवेदन के साथ-साथ आदेश VII नियम 11 सी.पी.सी. के तहत आवेदन पर पक्षगण के लिए संबंधित अधिवक्ता को सुना है।

16. संबंधित पक्षों द्वारा पेश किए गए आवेदनों पर निर्णय लेने के लिए विज्ञापन देने से पहले, मामले पर निर्णय लेने के लिए 1951 के अधिनियम के कुछ प्रावधानों पर एक सरसरी नज़र डालना आवश्यक है।

17. 1951 के अधिनियम के भाग VI का अध्याय II उच्च न्यायालय में चुनाव याचिकाओं की प्रस्तुति से संबंधित है। धारा 80 में प्रावधान है कि चुनाव याचिका के अलावा कोई भी चुनाव नहीं बुलाया जाएगा। धारा 80 ए में उच्च न्यायालय को चुनाव याचिकाओं पर सुनवाई करने का प्रावधान है। धारा 81 में धारा 100 की उप-धारा (1) और धारा 101 में विनिर्दिष्ट एक या अधिक आधारों पर ऐसे चुनाव में किसी भी उम्मीदवार या किसी मतदाता द्वारा लौटे उम्मीदवार के निर्वाचन की तारीख से 45 दिनों के भीतर चुनाव याचिका प्रस्तुत करने का प्रावधान है। प्रासंगिक धारा 81 यहां दी गई है:-

"81. याचिकाओं का प्रस्तुति:
(1) किसी चुनाव को प्रश्न में बुलाने वाली चुनाव याचिका ऐसे चुनाव में किसी भी उम्मीदवार या किसी निर्वाचक द्वारा [पैंतालीस दिनों के भीतर, लेकिन लौटे हुए उम्मीदवार के निर्वाचन की तारीख से पहले नहीं] धारा 100 और धारा 101 की [उपधारा (1)] में विनिर्दिष्ट एक या अधिक आधारों पर [उच्च न्यायालय] को प्रस्तुत की जा

सकेगी। या यदि चुनाव में एक से अधिक लौटे हुए उम्मीदवार हैं और उनके चुनाव की तारीखें अलग-अलग हैं, तो उन दो तिथियों में से बाद में]

स्पष्टीकरण- इस उपधारा में, "निर्वाचक " से तात्पर्य एक ऐसे व्यक्ति से है जो उस चुनाव में मतदान करने का हकदार था जिससे चुनाव याचिका संबंधित है, चाहे उसने ऐसे चुनाव में मतदान किया हो या नहीं। [* * * * *]

[(3) प्रत्येक चुनाव याचिका के साथ उसकी उतनी ही प्रतियां होंगी जितनी कि याचिका में उल्लिखित प्रतिपक्षी हैं [***], और ऐसी प्रत्येक प्रति याचिकाकर्ता द्वारा अपने हस्ताक्षर से याचिका की सच्ची प्रति होने के लिए सत्यापित की जाएगी।

18. धारा 82 में व्यक्ति को चुनाव याचिका में पक्षकार के रूप में शामिल होने का प्रावधान है। उपरोक्त खंड यहां निकाला गया है:-

"[82. याचिका के पक्षकार–एक याचिकाकर्ता अपनी याचिका में प्रतिपक्षी के रूप में शामिल होगा-

(क) जहां याचिकाकर्ता, यह घोषणा का दावा करने के अलावा कि सभी या किसी भी लौटे हुए उम्मीदवारों का चुनाव शून्य है, एक और घोषणा का दावा करता है कि वह स्वयं या कोई अन्य उम्मीदवार विधिवत निर्वाचित हो गया है, याचिकाकर्ता के अलावा अन्य सभी चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार, और जहां ऐसी कोई और घोषणा का दावा नहीं किया जाता है, सभी लौटे उम्मीदवार; तथा

(ख) कोई अन्य उम्मीदवार जिसके खिलाफ याचिका में किसी भी तरह के भ्रष्टाचार के आरोप लगाए गए हैं।

19. धारा 83 चुनाव याचिका की सामग्री का प्रावधान करती है और बताती है कि चुनाव पर सवाल उठाने वाली याचिका में किन महत्वपूर्ण तथ्यों और विवरणों का खुलासा किया जाना है। प्रासंगिक धारा 83 यहां निकाली गई है: -

"[83. याचिका की विषय-वस्तुएँ–(1) एक चुनाव याचिका–

(ए) में उन महत्त्वपूर्ण तथ्यों का संक्षिप्त विवरण होगा जिन पर याचिकाकर्ता निर्भर करता है;

(बी) किसी भी भ्रष्ट आचरण का पूरा विवरण प्रस्तुत करेगा जो याचिकाकर्ता आरोप लगाता है, जिसमें इस तरह के भ्रष्ट आचरण को करने के लिए कथित पक्षों के नाम और इस तरह के प्रत्येक अभ्यास के कमीशन की तारीख और स्थान का यथासंभव पूर्ण विवरण शामिल है; तथा

(सी) याचिकाकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा और अभिवचनों के सत्यापन के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (5 वर्ष 1908) में निर्धारित तरीके से सत्यापित किया जाएगा: [बशर्ते कि जहां याचिकाकर्ता किसी भ्रष्ट आचरण का आरोप लगाता है, याचिका के साथ ऐसे भ्रष्ट आचरण के आरोप और उसके विवरण के समर्थन में

निर्धारित प्रपत्र में एक शपथ पत्र भी संलग्न किया जाएगा। (2) याचिका के किसी भी अनुसूची या अनुलग्नक पर भी याचिकाकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे और याचिका के समान ही सत्यापित किए जाएंगे।

20. 1951 के अधिनियम के भाग VI का अध्याय III चुनाव याचिका के विचारण से संबंधित है। चुनाव याचिका दायर होने के बाद ऐसी चुनाव याचिका के विचारण के लिए अध्याय III में प्रक्रिया निर्धारित की जाती है।

21. धारा 86 चुनाव याचिका के विचारण का प्रावधान करती है। उप-धारा (1) एक चुनाव याचिका को खारिज करने का प्रावधान करती है जो धारा 81 या धारा 82 या धारा 117 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं करती है। उपधारा (5) में प्रावधान है कि उच्च न्यायालय, लागत के रूप में ऐसी शर्तों पर और अन्यथा के रूप में जो वह उचित समझे, याचिका में कथित किसी भी भ्रष्ट आचरण के विवरण को संशोधित या बढ़ाने की अनुमति दे सकता है। धारा 86 के प्रासंगिक भाग इस प्रकार हैं: -

"[86. चुनाव याचिकाओं का विचारण--(1) उच्च न्यायालय ऐसी निर्वाचन याचिका को खारिज कर देगा जो धारा 81 या धारा 82 या धारा 117 के उपबंधों का अनुपालन नहीं करती है। स्पष्टीकरण--इस उपधारा के अधीन निर्वाचन याचिका को खारिज करने वाले उच्च न्यायालय के आदेश को धारा 98 के खंड (क) के अधीन किया गया आदेश समझा जाएगा।

(2) *** (3) *** (4)
(5) उच्च न्यायालय, लागत और अन्यथा के रूप में ऐसी शर्तों पर, जो वह उचित समझे, याचिका में कथित किसी भी भ्रष्ट आचरण के विवरण को इस तरह से संशोधित या प्रवर्धित करने की अनुमति दे सकता है जो उसकी राय में याचिका के निष्पक्ष और प्रभावी विचारण को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो सकता है, लेकिन याचिका में किसी भी पुनरीक्षण की अनुमति नहीं देगा जिसका प्रभाव एक भ्रष्ट आचरण के विवरण को पेश करने का होगा जो पहले याचिका में आरोप नहीं लगाया गया था। (6)*** (7)***"

22. धारा 87 न्यायालय के समक्ष प्रक्रिया का प्रावधान करती है। यह निर्धारित करता है कि अधिनियम के प्रावधानों और उसके तहत बनाए गए नियमों के अधीन, प्रत्येक चुनाव याचिका पर न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाया जाएगा, जहां तक हो सके, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के तहत मुकदमों के परीक्षण के लिए लागू प्रक्रिया के अनुसार, जिसका अर्थ है कि सी.पी.सी. के प्रावधान चुनाव याचिका के परीक्षण पर लागू होते हैं।

23. 1951 के अधिनियम के भाग VI के अध्याय II और अध्याय III के पढ़ने से, यह प्रकट रूप से स्पष्ट होता है कि किसी भी उम्मीदवार या किसी मतदाता द्वारा पूछताछ की गई चुनाव याचिका को धारा 100 और 101 के तहत उल्लिखित आधारों पर धारा 81 के तहत प्रस्तुत किया जाना है। धारा 82 याचिकाकर्ता द्वारा चुनाव याचिका में शामिल होने वाले दलों से संबंधित है।

24. धारा 83 का बहुत महत्व है क्योंकि यह स्पष्ट रूप से एक चुनाव याचिका की सामग्री को निर्धारित करता है। उप-धारा (1)(ए) एक अनिवार्य प्रावधान है जिसमें परिकल्पना की गई है कि एक चुनाव याचिका में महत्त्वपूर्ण तथ्यों का एक संक्षिप्त विवरण होगा जिस पर याचिकाकर्ता निर्भर करता है। जबकि उपधारा (1)(बी) याचिकाकर्ता द्वारा लगाए गए किसी भी भ्रष्ट आचरण का पूरा विवरण प्रस्तुत करने का प्रावधान करती है, जिसमें इस तरह के भ्रष्ट आचरण को करने के आरोप वाले पक्षों के नामों का पूरा विवरण शामिल है।

25. इस प्रकार, धारा 83 को दो भागों में विभाजित किया गया है, जिसमें उपधारा (1)(ए) के तहत चुनाव याचिका में प्रकट किए जाने वाले महत्त्वपूर्ण तथ्य शामिल हैं, जबकि उप-धारा (1)(बी) के तहत खुलासा किए जाने वाले भौतिक विवरण शामिल हैं।
दो शब्दों "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "भौतिक विवरण" के बीच एक अंतर है। 26. उद्धव सिंह बनाम माधव राव सिंधिया, (1977) 1 एस.सी.सी. 511 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार आयोजित दो शब्दों के बीच अंतर से निपटते हुए: - "

42. सभी प्राथमिक तथ्य जो कार्रवाई के कारण या उसके बचाव के अस्तित्व को स्थापित करने के लिए एक पक्ष द्वारा मुकदमे में साबित किए जाने चाहिए, "महत्त्वपूर्ण तथ्य" हैं। भ्रष्ट आचरण के आरोप के संदर्भ में, "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" का अर्थ उन सभी बुनियादी तथ्यों से होगा जो कथित रूप से विशेष भ्रष्ट आचरण के अवयवों का गठन करते हैं, जिन्हें याचिकाकर्ता उस आरोप पर सफल होने से पहले प्रमाणित करने के लिए बाध्य है।
चाहे किसी चुनाव-याचिका में, कोई विशेष तथ्य महत्त्वपूर्ण है या नहीं, और इस तरह की वकालत की जानी आवश्यक एक प्रश्न है जो लगाए गए आरोप की प्रकृति, आधार पर भरोसा करने और मामले की विशेष परिस्थितियों पर निर्भर करता है। संक्षेप में, वे सभी तथ्य जो याचिकाकर्ता को कार्रवाई के पूर्ण कारण से अवगत कराने के लिए आवश्यक हैं, वे "महत्त्वपूर्ण तथ्य" हैं जिनकी वकालत की जानी चाहिए, और एक भी महत्त्वपूर्ण तथ्य की वकालत करने में विफलता धारा 83(1)(ए) के जनादेश की अवज्ञा के बराबर है।

43. दूसरी ओर, "विवरण", "पार्टी द्वारा स्थापित मामले का विवरण" है। इसलिए धारा 83(1) के खंड (बी) के चिंतन के भीतर "भौतिक विवरण" का अर्थ उन सभी विवरणों से होगा जो खंड (ए) की आवश्यकताओं के अनुपालन में याचिका में पहले से ही प्रस्तुत महत्त्वपूर्ण तथ्यों को बढ़ाने, परिष्कृत करने और अलंकृत करने के लिए आवश्यक हैं। "विवरण" पहले से खींची गई तस्वीर की मूल आकृति को अंतिम रूप देने के उद्देश्य से काम करते हैं, इसे पूर्ण, अधिक विस्तृत और अधिक जानकारीपूर्ण बनाने के लिए।

44. इस न्यायालय द्वारा कई मामलों में "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "भौतिक विवरणों" के बीच अंतर की ओर इशारा किया गया था, जिनमें से तीन बार में उद्धृत किए गए हैं। उन सभी का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। हरिद्वारी लाल मामले में इस बिंदु पर ए.एन. रे (जैसा कि वह तब थे) ने जो कहा था, उसे निकालकर चर्चा को समाप्त करना पर्याप्त होगा: [एस.सी.सी. पृष्ठ 220, प्रस्तर-20] "इसलिए यह महत्त्वपूर्ण है कि प्रतिपक्षी के खिलाफ आरोपित भ्रष्ट आचरण याचिकाकर्ता को कार्रवाई के पूर्ण कारण के साथ तैयार करने और प्रतिपक्षी को

मिलने के लिए समान और पूर्ण अवसर देने के लिए महत्त्वपूर्ण तथ्यों का एक पूर्ण और पूर्ण विवरण होना चाहिए मामले और आरोपों का बचाव करने के लिए। केवल, यह आरोप लगाते हुए कि प्रतिपक्षी ने सहायता प्राप्त की या प्राप्त की या प्राप्त करने या प्राप्त करने का प्रयास किया, क़ानून से ऐसे शब्द निकाल रहे हैं जिनका कोई अर्थ नहीं होगा जब तक कि तथ्यों को यह दिखाने के लिए नहीं कहा जाता है कि वह सहायता क्या है और इस तरह की सहायता से चुनाव की संभावना कैसे आगे बढ़ती है। प्रस्तुत मामले में, यह आरोप भी नहीं लगाया गया था कि प्राप्त की गई सहायता वोट देने के अलावा अन्य थी। प्रतिपक्षी के अधिवक्ता द्वारा यह कहा गया था कि क्योंकि क़ानून वोट देने को भ्रष्ट आचरण नहीं बनाता है, इसलिए 'कोई भी सहायता' शब्द महत्त्वपूर्ण तथ्य का पूर्ण विवरण था। प्रस्तुत करना इस साधारण कारण से भ्रामक है कि सहायता का तरीका, सहायता का उपाय याचिका को कार्रवाई के कारण के साथ तैयार करने के लिए तथ्य के सभी विभिन्न पहलू हैं जो जवाब के लिए मांग करेगा। महत्त्वपूर्ण तथ्य ऐसे तथ्य हैं जो यदि स्थापित हो जाते हैं तो याचिकाकर्ता को मांगी गई राहत मिल जाएगी। यदि प्रतिपक्षी पेश नहीं हुआ होता, तो क्या अदालत चुनाव याचिकाकर्ता के पक्ष में फैसला दे सकती थी। इसका जवाब नकारात्मक है क्योंकि याचिका में लगाए गए आरोपों में कार्रवाई के किसी भी कारण का खुलासा नहीं किया गया है।

27. **एलआर शिवरामगौड़ा बनाम टीएम चंद्रशेखर, (1999) 1 एस.सी.सी. 666** में, उच्चतम न्यायालय ने फिर से दोहराया कि चुनाव याचिकाकर्ता को चुनाव के परिणाम की वकालत करनी होगी, जहां तक यह बात थी कि लौटा हुआ उम्मीदवार अधिनियम और नियमों के प्रावधानों का कथित रूप से पालन न करने से भौतिक रूप से प्रभावित हुआ था। न्यायालय ने चुनाव याचिका में दलील देने और "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "भौतिक विवरणों" के बीच अंतर करने के महत्व पर भी जोर दिया। प्रासंगिक प्रस्तर-10 और 11 यहां दिए गए हैं: -

"10. इसके अलावा, अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह ठीक ही बताया गया है कि धारा 100(1)(डी)(iv) के तहत चुनाव को शून्य घोषित करने के लिए, चुनाव याचिकाकर्ता के लिए यह दलील देना नितांत आवश्यक है कि चुनाव का परिणाम, जहां तक यह संबंधित है, लौटे हुए उम्मीदवार अधिनियम या नियमों के प्रावधानों के कथित गैर-अनुपालन से भौतिक रूप से प्रभावित हुए थे। हमने पहले ही चुनाव याचिका का प्रस्तर-39 निकाल लिया है जो एकमात्र प्रासंगिक प्रस्तर-है। कोई उस प्रस्तर-में एक कथन के लिए व्यर्थ में खोज करेगा कि अपीलकर्ता ने चुनाव के लिए निर्धारित सीमा से अधिक राशि खर्च की थी या यह कि चुनाव का परिणाम अपीलकर्ता की व्यय का सही और सही लेखा-जोखा देने में विफलता से भौतिक रूप से प्रभावित हुआ था। किसी भी कथन के अभाव में, अपीलकर्ता के लिए उस आशय के साक्ष्य पेश करना खुला नहीं था। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि ऊपर उल्लिखित दो मामले महत्त्वपूर्ण तथ्य हैं जिन्हें चुनाव याचिका में जगह मिलनी चाहिए यदि ऐसे तथ्यों के आधार पर चुनाव को रद्द करने की मांग की जाती है।

11. इस न्यायालय ने बार-बार एक चुनाव याचिका में दलीलों के महत्व पर जोर दिया है और "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "भौतिक विवरणों" के बीच अंतर की ओर इशारा किया है।

हालांकि महत्वपूर्ण तथ्यों की पैरवी करने में विफलता चुनाव याचिका के लिए घातक है और चुनाव याचिका दायर करने के लिए निर्धारित समय-सीमा के बाद ऐसे महत्त्वपूर्ण तथ्यों को पेश करने के लिए दलील में किसी भी पुनरीक्षण की अनुमति नहीं दी जा सकती है, लेकिन बाद के चरण में उचित पुनरीक्षण द्वारा भौतिक विवरणों की अनुपस्थिति को ठीक किया जा सकता है। **बलवान सिंह बनाम लक्ष्मी नारायण [ए.आई.आर. 1960 एस.सी. 770: (1960) 3 एस.सी.आर 91]** में संविधान पीठ ने माना कि एक चुनाव याचिका केवल इसलिए खारिज करने के लिए उत्तरदायी नहीं थी क्योंकि कथित भ्रष्ट आचरण का पूरा विवरण निर्धारित नहीं किया गया था। मामले के तथ्यों पर, न्यायालय ने पाया कि मतदाताओं को मतदान केंद्र तक पहुंचाने के लिए वाहन किराए पर लेने की कथित भ्रष्ट प्रथा को दलील में पर्याप्त रूप से निर्धारित किया गया था। न्यायालय ने बताया कि मतदाताओं के परिवहन के लिए वाहन किराए पर लेना या खरीदना भ्रष्ट आचरण है, यदि मतदाताओं के वाहन द्वारा किसी भी मतदान केंद्र तक या वहां से संदेश देने का पूरा विवरण दिया गया था, तो धारा 83 का विधिवत अनुपालन किया गया था, भले ही भर्ती के अनुबंध का विवरण, जैसा कि भर्ती के तथ्य से अलग था, नहीं दिया गया था।

28. **एच.डी. रेवन्ना बनाम जी. पुट्टास्वामी गौड़ा, (1999) 2 एस.सी.सी. 217** में, सर्वोच्च न्यायालय ने "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "विवरणों" के बीच अंतर की ओर इशारा किया। प्रासंगिक प्रस्तर-23 यहां नीचे दिया गया है: -

*"23. इस न्यायालय ने बार-बार "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "विवरणों" के बीच अंतर की ओर इशारा किया है। जहां तक "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" का संबंध है, इस न्यायालय ने माना है कि उन्हें चुनाव याचिका में पूरी तरह से निर्धारित किया जाना चाहिए और यदि कोई तथ्य निर्धारित नहीं किया गया है, तो याचिकाकर्ता को बाद में उससे संबंधित साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है; न ही उसे चुनाव याचिका के लिए निर्धारित सीमा की अवधि समाप्त होने के बाद याचिका में पुनरीक्षण करने की अनुमति दी जाएगी। विवरण के संबंध में, इस न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया सुसंगत दृष्टिकोण यह है कि विवरण के अभाव में याचिका को खारिज नहीं किया जा सकता है और यदि अदालत को लगता है कि विवरण आवश्यक हैं, तो याचिकाकर्ता को याचिका में पुनरीक्षण करने और विवरणों को शामिल करने का अवसर दिया जाना चाहिए। **बलवान सिंह बनाम लक्ष्मी नारायण [ए.आई.आर. 1960 एस.सी. 770: (1960) 3 एस.सी.आर 91]** में संविधान पीठ ने माना कि एक चुनाव याचिका केवल इसलिए खारिज करने के लिए उत्तरदायी नहीं थी क्योंकि कथित भ्रष्ट आचरण का पूरा विवरण निर्धारित नहीं किया गया था। यह देखा गया कि यदि कोई आपत्ति ली गई थी और न्यायाधिकरण का विचार था कि विवरण निर्धारित नहीं किए गए थे, तो याचिकाकर्ता को विवरणों में पुनरीक्षण या विस्तार करने का अवसर दिया जाना चाहिए और यह केवल विवरण प्रदान करने के आदेश का पालन न करने की स्थिति में ही आरोप को खारिज किया जा सकता है।*

29. **वीरेंद्र नाथ गौतम बनाम सतपाल सिंह, (2007) 3 एस.सी.सी. 617** में, शीर्ष न्यायालय को फिर से "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "विवरणों" के बीच अंतर पर विचार करने का अवसर मिला। माननीय न्यायालय ने आगे माना कि चुनाव याचिका को इस आधार पर खारिज किया जा सकता है क्योंकि यह मामला 1951 के अधिनियम

की धारा 83 की उप-धारा (1) के खंड (ए) द्वारा आच्छादित किया गया है, जिसे आदेश VII सी.पी.सी. के नियम 11 के खंड (ए) के साथ पढ़ा जाता है। प्रासंगिक प्रस्तर-30, 31, 34 और 35 यहां दिए गए हैं: -

"30. इसलिए, अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, सभी महत्त्वपूर्ण तथ्यों को चुनाव याचिका में निर्धारित किया जाना चाहिए। यदि किसी याचिका में महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख नहीं किया गया है, तो इसे उस आधार पर खारिज कर दिया जा सकता है क्योंकि मामला संहिता के आदेश 7 के नियम 11 के खंड (ए) के साथ पठित अधिनियम की धारा 83 की उप-धारा (1) के खंड (ए) द्वारा आच्छादित किया जाएगा।

31. अभिव्यक्ति "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" को न तो अधिनियम में परिभाषित किया गया है और न ही संहिता में। शब्दकोश के अर्थ के अनुसार, "सामग्री" का अर्थ है "मौलिक", "महत्वपूर्ण", "बुनियादी", "कार्डिनल", "केंद्रीय", "महत्वपूर्ण", "निर्णायक", "आवश्यक", "महत्वपूर्ण", "अपरिहार्य", "प्राथमिक" या "प्राथमिक"। [बर्टन का कानूनी थिसॉरस (तीसरा संस्करण), पृष्ठ 349]। वाक्यांश "महत्त्वपूर्ण तथ्य", इसलिए, उन तथ्यों को कहा जा सकता है जिन पर एक पक्ष अपने दावे या बचाव के लिए भरोसा करता है। दूसरे शब्दों में, "महत्त्वपूर्ण तथ्य" ऐसे तथ्य हैं जिन पर वादी की कार्रवाई का कारण या प्रतिपक्षी का बचाव निर्भर करता है। किस विवरण को "महत्त्वपूर्ण तथ्य" कहा जा सकता है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा और सार्वभौमिक अनुप्रयोग का कोई नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है। हालांकि, यह नितांत आवश्यक है कि सभी बुनियादी और प्राथमिक तथ्य जो कार्रवाई या बचाव के कारण के अस्तित्व को स्थापित करने के लिए पक्ष द्वारा मुकदमे में साबित किए जाने चाहिए, महत्त्वपूर्ण तथ्य हैं और पक्ष द्वारा दलील में कहा जाना चाहिए।

34. हालांकि, "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "विवरणों" के बीच अंतर को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए। "महत्त्वपूर्ण तथ्य" प्राथमिक या बुनियादी तथ्य हैं जिन्हें वादी या प्रतिपक्षी द्वारा उसके द्वारा स्थापित मामले के समर्थन में या तो अपनी कार्रवाई या बचाव के कारण को साबित करने के लिए दलील दी जानी चाहिए। दूसरी ओर, "विवरण" पक्ष द्वारा पेश किए गए महत्त्वपूर्ण तथ्यों के समर्थन में विवरण हैं। वे पहले से खींची गई तस्वीर की मूल आकृति को विशिष्ट स्पर्श देकर महत्त्वपूर्ण तथ्यों को बढ़ाते हैं, परिष्कृत करते हैं और अलंकृत करते हैं ताकि इसे पूर्ण, अधिक स्पष्ट और अधिक जानकारीपूर्ण बनाया जा सके। इस प्रकार "विवरण" निष्पक्ष सुनवाई के संचालन को सुनिश्चित करते हैं और प्रतिपक्षी को आश्चर्यचकित नहीं करेंगे।

35. सभी "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" को पक्ष द्वारा उसके द्वारा स्थापित मामले के समर्थन में पेश किया जाना चाहिए। चूंकि उद्देश्य और उद्देश्य प्रतिपक्षी को उस मामले को जानने में सक्षम बनाना है जिससे उसे मिलना है, दलील के अभाव में, किसी पक्ष को सबूत पेश करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इसलिए, एक भी महत्त्वपूर्ण तथ्य बताने में विफलता, वाद या याचिका को खारिज कर दिया जाएगा। दूसरी ओर, विवरण उस मामले का विवरण है जो साक्ष्य की प्रकृति में है कि एक पक्ष मुकदमे के समय नेतृत्व करेगा।

30. **जीतू पटनायक बनाम सनातन मोहकुड और अन्य, (2012)4 एस.सी.सी. 194** में, शीर्ष न्यायालय को फिर से 1951 के अधिनियम की धारा 83(1) और 100(1)(डी) की योग्यता पर विचार करने का अवसर मिला और **सामंत एन. बालकृष्ण बनाम जॉर्ज फर्नांडीज, (1969) 3 एस.सी.सी. 238** के मामले में दिए गए अपने पहले के निर्णय पर भरोसा करते हुए कहा कि चुनाव याचिका में महत्त्वपूर्ण तथ्यों का खुलासा न करने का मामला अधूरा हो जाएगा कार्रवाई का कारण और दावे का बयान बुरा हो जाता है।

31. कनिमोझी करुणानिधि (उपरोक्त) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय को फिर से "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "विवरणों" के बीच अंतर पर विचार करने का अवसर मिला और न्यायालय ने अपने पहले के निर्णय पर भरोसा करते हुए कानूनी स्थिति को प्रतिपादित किया और मामले को सारांशित किया और निम्नानुसार आयोजित किया: -

"28. पूर्वोक्त मामलों में प्रतिपादित कानूनी स्थिति को निम्नानुसार संक्षेपित किया जा सकता है:

i. आरपी अधिनियम, 1951 की धारा 83(1)(a) में कहा गया है कि एक चुनाव याचिका में महत्त्वपूर्ण तथ्यों का एक संक्षिप्त विवरण होगा जिस पर याचिकाकर्ता निर्भर करता है। यदि चुनाव याचिका में महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख नहीं किया गया है, तो इसे केवल उसी आधार पर खारिज किया जा सकता है, क्योंकि मामला संहिता के आदेश 7 के नियम 11 के खंड (ए) द्वारा आच्छादित किया जाएगा।

ii. महत्त्वपूर्ण तथ्य ऐसे तथ्य होने चाहिए जो याचिका में लगाए गए आरोपों के लिए एक आधार प्रदान करें और कार्रवाई का कारण बनें, यह हर तथ्य है जिसे वादी/याचिकाकर्ता के लिए साबित करना आवश्यक होगा, यदि अदालत के फैसले के अपने अधिकार का समर्थन करने के लिए इसका उल्लंघन किया जाता है। एक भी महत्त्वपूर्ण तथ्य को छोड़ने से कार्रवाई का एक अधूरा कारण बन जाएगा और वादपत्र का बयान खराब हो जाएगा।

iii. महत्त्वपूर्ण तथ्यों का अर्थ है तथ्यों का पूरा बंडल जो कार्रवाई का एक पूर्ण कारण होगा। महत्त्वपूर्ण तथ्यों में तथ्यों का सकारात्मक बयान और यदि आवश्यक हो तो । धारा 100 (1)(d) के तहत चुनाव को शून्य घोषित करने के लिए नकारात्मक तथ्य का सकारात्मक कथन भी शामिल होगा।

(iv) के अनुसार, निर्वाचन याचिकाकर्ता को यह कहना होगा कि संविधान या अधिनियम के उपबंधों या अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए किसी नियम या आदेशों का अनुपालन न करने के कारण जहां तक लौटे हुए उम्मीदवार का संबंध है, चुनाव का परिणाम भौतिक रूप से प्रभावित हुआ था।

v. चुनाव याचिका एक गंभीर मामला है और इसे हल्के में या काल्पनिक तरीके से नहीं लिया जा सकता है और न ही इसे किसी ऐसे व्यक्ति को दिया जाता है जो इसे कष्टप्रद उद्देश्य के लिए एक हैंडल के रूप में उपयोग करता है।

vi. एक चुनाव याचिका को कार्रवाई के अधूरे कारण की ओर ले जाने वाले एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की चूक पर सरसरी तौर पर खारिज किया जा सकता है, या महत्त्वपूर्ण तथ्यों का एक संक्षिप्त विवरण शामिल करने के लिए चूक हो सकती है, जिस पर याचिकाकर्ता कार्रवाई का कारण स्थापित करने के लिए निर्भर करता है, आदेश VII सी.पी.सी. के नियम 11 के खंड (ए) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, जिसे आरपी अधिनियम की धारा 83 द्वारा अनिवार्य आवश्यकताओं के साथ पढ़ा जाता है।

32. अनीता देवी चौरसिया (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय ने भी सर्वोच्च न्यायालय के पहले के निर्णय पर भरोसा किया था कि "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "भौतिक विवरणों" के बीच अंतर था। उक्त महत्त्वपूर्ण तथ्य को छोड़ना चुनाव याचिका के लिए घातक था।

33. अब, सी.पी.सी. के आदेश VI की ओर मुड़ते हैं जो आम तौर पर दलीलें होती हैं। आदेश VI का नियम 1 "दलील" को परिभाषित करता है जिसका अर्थ है वादपत्र या लिखित बयान। नियम 2 में महत्त्वपूर्ण तथ्यों को बताने का प्रावधान है, न कि साक्ष्य के लिए। इस प्रकार, प्रत्येक दलील या तो यह एक वादपत्र है या एक लिखित बयान है, जिसमें महत्त्वपूर्ण तथ्यों का खुलासा करना होता है, जिस पर दलील देने वाला पक्ष अपने दावे या बचाव के लिए निर्भर करता है, जैसा कि मामले हो सकते हैं, लेकिन सबूत नहीं जिसके द्वारा उन्हें साबित किया जाता है। नियम 2 यहां निकाला गया है:-

"2. महत्त्वपूर्ण तथ्यों को बताने के लिए दलील देना, न कि साक्ष्य के लिए।

(1) प्रत्येक दलील में महत्त्वपूर्ण तथ्यों के संक्षिप्त रूप में एक बयान शामिल होगा, और इसमें केवल एक बयान शामिल होगा, जिस पर दलील देने वाला पक्ष अपने दावे या बचाव के लिए निर्भर करता है, जैसा भी मामला हो, लेकिन वह सबूत नहीं जिसके द्वारा उन्हें साबित किया जाना है।

(2) प्रत्येक दलील, जब आवश्यक हो, प्रस्तर-में विभाजित किया जाएगा, लगातार क्रमांकित किया जाएगा, प्रत्येक आरोप, जहां तक सुविधाजनक है, एक अलग प्रस्तर-में निहित किया जा रहा है।

(3) तिथियां, योग और संख्याएं आंकड़ों के साथ-साथ शब्दों में भी दलील में व्यक्त की जाएंगी।

34. इसी तरह, नियम 4 प्रदान करता है कि सभी मामलों में जिसमें पक्ष दलील किसी भी गलत बयानी, धोखाधड़ी, विश्वास के उल्लंघन, जानबूझकर चूक, या अनुचित प्रभाव पर निर्भर करती है, और अन्य सभी

मामलों में जिसमें विवरण आवश्यक हो सकते हैं जैसे कि वे पूर्वोक्त प्रपत्रों में उदाहरण दिए गए हैं, विवरण याचिका में बताया जाएगा। नियम 4 यहां निकाला गया है:-

"4. जहां आवश्यक हो, विवरण दिया जाना है- उन सभी मामलों में जिनमें दलील देने वाला पक्ष किसी भी गलत बयानी, धोखाधड़ी, विश्वास भंग, जानबूझकर चूक या अनुचित प्रभाव पर निर्भर करता है, और अन्य सभी मामलों में जिसमें विवरण आवश्यक हो सकते हैं, जैसे कि पूर्वोक्त प्रपत्रों में उदाहरण दिए गए हैं, विवरण (यदि आवश्यक हो तो तिथियों और मदों के साथ) दलील में कहा जाएगा।

35. इस प्रकार, आदेश VI के नियम 2 और नियम 4 को पढ़ने से, यह स्पष्ट है कि "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "विवरण" के बीच अंतर है। एक ओर "महत्त्वपूर्ण तथ्य" शब्द बताते हैं कि कार्रवाई का पूरा कारण तैयार करने के लिए आवश्यक तथ्यों को बताया जाना चाहिए, और एक ही महत्त्वपूर्ण तथ्य की किसी भी चूक से कार्रवाई का अधूरा कारण बन जाएगा या वादपत्र खराब हो जाएगा।

36. इसके विपरीत, विशेष रूप से इस तरह की अधिक जानकारी के साथ कार्रवाई के कारण की पूरी तस्वीर प्रस्तुत करना है ताकि प्रतिपक्षी उस मामले को समझ सके जिसे उसे मिलना होगा। **सोपान सुखदेव साबले बनाम सहायक चैरिटी कॉमर्शियल, (2004) 3 एस.सी.सी. 137**, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश VI नियम 2(1) से निपटते समय "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "भौतिक विवरणों" के बीच अंतर किया और निम्नानुसार आयोजित किया: -

"19. संहिता के आदेश 6 नियम 2(1) में दलीलों के बुनियादी और प्रमुख नियम को बताया गया है और घोषणा की गई है कि दलील में महत्त्वपूर्ण तथ्यों को बताना होगा, न कि साक्ष्य। यह अनिवार्य करता है कि प्रत्येक दलील में महत्त्वपूर्ण तथ्यों के संक्षिप्त रूप में एक बयान शामिल होगा, और इसमें केवल एक बयान शामिल होगा, जिस पर दलील देने वाला पक्ष अपने दावे या बचाव के लिए निर्भर करता है, जैसा भी मामला हो, लेकिन वह सबूत नहीं जिसके द्वारा उन्हें साबित किया जाना है।

20. "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "विवरणों" के बीच अंतर है। शब्द "महत्त्वपूर्ण तथ्य" बताते हैं कि कार्रवाई का पूरा कारण तैयार करने के लिए आवश्यक तथ्यों को बताया जाना चाहिए। एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की चूक कार्रवाई के अधूरे कारण की ओर ले जाती है और कथन या वादपत्र खराब हो जाता है।

"महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "विवरणों" के बीच जो अंतर किया गया है, वह स्कॉट, एलजे द्वारा ब्रूस बनाम ओडम्स प्रेस लिमिटेड [(1936) 1 केबी 697: (1936) 1 ऑल ईआर 287 (सीए)] में निम्नलिखित मार्ग में लाया गया था: (सभी ईआर पी. 294) "नियम 4 में कार्डिनल प्रावधान यह है कि दावे के बयान में महत्त्वपूर्ण तथ्यों को बताया जाना चाहिए। 'सामग्री' शब्द का अर्थ है कार्रवाई का पूरा कारण तैयार करने के उद्देश्य से आवश्यक; और यदि कोई एक 'सामग्री' कथन छोड़ दिया जाता है, तो दावे का कथन खराब है; यह पुराने वाक्यांशविज्ञान

में 'डिमर्रेबल' है, और नए में आरएस.सी. आदेश 25 नियम 4 के तहत 'स्ट्राइक' किया जा सकता है (फिलिप्स बनाम फिलिप्स [(1878) 4 क्यूबीडी 127] देखें); या 'दावे का एक और और बेहतर बयान' नियम के तहत आदेश दिया जा सकता है

7. नियम 6 के तहत 'विवरण' का कार्य काफी अलग है। उनका उपयोग दावे के एक डिमर्रेबल स्टेटमेंट में भौतिक अंतराल को भरने के लिए नहीं किया जाना चाहिए - अंतराल जिन्हें विभिन्न महत्त्वपूर्ण तथ्यों के उचित बयानों द्वारा भरा जाना चाहिए था जो एक साथ वादी की कार्रवाई का कारण बनाते हैं। विवरणों के उपयोग का उद्देश्य प्रतिपक्षी को निष्पक्षता और न्याय में लगाई गई दलील की एक और और काफी अलग आवश्यकता को पूरा करना है। उनका कार्य वादी की कार्रवाई के कारण की तस्वीर को पर्याप्त रूप से विस्तृत जानकारी के साथ भरना है ताकि प्रतिपक्षी को उस मामले के बारे में सतर्क रखा जा सके जिससे उसे मिलना था और उसे मुकदमे की तैयारी करने में सक्षम बनाया जा सके। ब्रूस मामले में स्कॉट, एलजे की कहावत [(1936) 1 केबी 697: (1936) 1 सभी ईआर 287 (सीए)] को इस न्यायालय द्वारा सामंत एन. बालकृष्ण बनाम जॉर्ज फर्नांडीज [(1969) 3 एस.सी.सी. 238] में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया है और "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "विवरणों" के बीच अंतर को निम्नलिखित शब्दों में सामने लाया गया था: (एस.सी.सी. पी. 250, प्रस्तर-29) "'सामग्री' शब्द से पता चलता है कि कार्रवाई का पूरा कारण तैयार करने के लिए आवश्यक तथ्यों को बताया जाना चाहिए। एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की चूक कार्रवाई के अपूर्ण कारण की ओर ले जाती है और दावे का कथन खराब हो जाता है। विवरण का कार्य कार्रवाई के कारण की पूरी तस्वीर के रूप में इस तरह की अधिक जानकारी के साथ विस्तार से प्रस्तुत करना है ताकि प्रतिपक्षी उस मामले को समझ सके जिससे उसे मिलना होगा। आदेश 7 का नियम 11 प्रतिपक्षी को मुकदमे की स्थिरता को चुनौती देने के लिए उपलब्ध कराए गए एक स्वतंत्र उपाय को निर्धारित करता है, भले ही गुण-दोष के आधार पर उसे चुनौती देने का अधिकार कुछ भी हो। कानून जाहिरा तौर पर किसी भी स्तर पर विचार नहीं करता है जब आपत्तियां उठाई जा सकती हैं, और लिखित बयान दाखिल करने के बारे में स्पष्ट शब्दों में भी नहीं कहता है। इसके बजाय, "करेगा" शब्द का उपयोग किया जाता है, जिसका स्पष्ट अर्थ है कि यह अदालत पर एक कर्तव्य डालता है कि वह वादपत्र को अस्वीकार करने में अपने दायित्वों का पालन करे, जब वह नियम 11 के चार खंडों में प्रदान की गई किसी भी दुर्बलता से प्रभावित होती है, यहां तक कि प्रतिपक्षी के हस्तक्षेप के बिना भी। किसी भी स्थिति में, नियम 11 के तहत वादपत्र की अस्वीकृति वादी को नियम 13 के संदर्भ में एक नया वादपत्र प्रस्तुत करने से नहीं रोकती है।

37. इस प्रकार, सी.पी.सी. के आदेश VI के नियम 2 और 4 5 "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "विवरणों" के बीच एक स्पष्ट अंतर प्रदान करते हैं. आदेश VII नियम 11(ए) वादपत्र की अस्वीकृति का प्रावधान करता है जहां यह कार्रवाई के कारण का खुलासा नहीं करता है। 1951 के अधिनियम की धारा 83(1)(a) के प्रावधानों को आदेश VI के नियम 2 और 4 और आदेश VII नियम 11(a) सी.पी.सी. के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

38. धारा 87 (1) में कहा गया है कि 1951 के अधिनियम और उसके तहत नियमों के प्रावधानों के अधीन, सी.पी.सी. के प्रावधान मुकदमों के परीक्षण पर लागू होंगे, जिसका अर्थ है कि धारा 83(1)(ए) पर विचार करते

समय, आदेश VI और आदेश VII नियम 11(ए) के प्रावधानों को उसमें उठाए गए मुद्दे की उचित मूल्यांकन के लिए विचार किया जाना चाहिए।

39. इस मामले में, यह एक स्वीकृत स्थिति है कि महत्वपूर्ण तथ्यों के बयान का कुछ खुलासा करते हुए चुनाव याचिका दायर की गई थी। याचिकाकर्ता द्वारा पेश किए गए पहले पुनरीक्षण आवेदन को खारिज कर दिया गया था क्योंकि इसमें याचिका में किए जाने वाले पुनरीक्षण का खुलासा नहीं किया गया था। इसके बाद, चुनाव याचिका में महत्त्वपूर्ण तथ्यों को जोड़ने के लिए न्यायालय की अनुमति के बिना दूसरा पुनरीक्षण आवेदन दायर किया गया था। यह अच्छी तरह से तय है कि एक चुनाव याचिका में, धारा 83(1)(ए) के तहत याचिका में महत्त्वपूर्ण तथ्यों को निर्धारित किया जाना चाहिए और कोई पुनरीक्षण नहीं किया जा सकता है। यही बात एक मुकदमे की दलील के साथ भी लागू होती है जहां अपने दावे या बचाव के लिए भरोसा करने वाले पक्ष द्वारा दलील में आदेश VI के नियम 2 के मद्देनजर महत्त्वपूर्ण तथ्य का खुलासा किया जाना है।

40. चुनाव याचिका में विवरण प्रदान करने का प्रावधान धारा 83(1)(बी) के तहत प्रदान किया गया है जो आदेश VI के नियम 4 के प्रस्तर-मटेरिया है जहां जहां आवश्यक हो, विवरण दिया जाना है। यह अच्छी तरह से तय है कि "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "विवरणों" के बीच एक बड़ा अंतर है। उस दलील के लिए महत्त्वपूर्ण तथ्य आवश्यक हैं जिस पर पक्ष का पूरा दावा टिका हुआ है। महत्त्वपूर्ण तथ्य का खुलासा न करना कार्यवाही के लिए घातक है जबकि किसी विशेष के मामले में ऐसा नहीं है।

41. आदेश VII नियम 11(ए) स्पष्ट रूप से कार्रवाई के कारण का खुलासा न करने के मामले में एक वादपत्र की अस्वीकृति के लिए प्रदान करता है। इसी तरह, एक चुनाव याचिका में, यदि याचिकाकर्ता महत्त्वपूर्ण तथ्य का खुलासा नहीं करता है, तो यह एक अपरिहार्य निष्कर्ष की ओर जाता है कि कार्रवाई का एक अधूरा कारण स्थापित किया गया है और याचिका खराब हो जाती है और खारिज होने के लिए उत्तरदायी हो जाती है। दोष का इलाज संभव नहीं है क्योंकि यह मामले की जड़ की ओर जाता है, जबकि संपूर्ण सामग्री विवरण का खुलासा न करने के मामले में यह समान नहीं है।

42. इस प्रकार, इस दृष्टिकोण से देखते हुए, याचिकाकर्ता द्वारा पेश किए गए पुनरीक्षण आवेदन की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि यह पूरी तरह से एक नया मामला पेश करता है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दिया गया तर्क कि धारा 86(1) में बर्खास्तगी के मामले की परिकल्पना नहीं की गई है क्योंकि केवल धारा 81, 82 या 117 का पालन न करने से चुनाव याचिका खारिज हो जाएगी, पूरी तरह से गलत है। महत्त्वपूर्ण तथ्य का खुलासा न करना एक लाइलाज दोष है जो एक अपरिहार्य निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि एक चुनाव याचिका सुनवाई योग्य नहीं है।

43. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त उद्धृत मामलों में पहले ही "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" और "भौतिक विवरणों" के बीच अंतर कर दिया था और पहले ही माना था कि एक भी महत्त्वपूर्ण तथ्य की चूक से चुनाव याचिका खारिज हो जाती है और बाद की पुनरीक्षण कार्यवाही में दोष को ठीक नहीं किया जा सकता है।

44. राजनारायण (उपरोक्त) के निर्णय पर रखी गई निर्भरता मामले के वर्तमान सेट में अलग है क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मुद्दा धारा 86(5) के तहत परिकल्पित विवरण प्रदान करने के अवसर के संबंध में था, जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने अनुमति दी थी।

45. प्रस्तुत मामला उन भौतिक विवरणों को अभिलेखों पर लाने के लिए नहीं है जो चुनाव याचिका दायर करते समय छोड़े गए हैं, लेकिन प्रस्तावित पुनरीक्षण के माध्यम से, महत्त्वपूर्ण तथ्यों को अभिलेखों पर लाया जा रहा है जो मामले की जड़ तक जाते हैं और इस स्तर पर अनुमति नहीं दी जा सकती है।

46. धारा 81 परिणाम घोषित होने की तारीख से चुनाव याचिका प्रस्तुत करने के लिए 45 दिनों की समय सीमा निर्धारित करती है। चुनाव याचिका के लंबित रहने के दौरान पुनरीक्षण की मांग की गई है, जिसे धारा 83(1)(ए) के तहत चुनाव याचिका में पेश किए गए महत्त्वपूर्ण तथ्यों के रूप में नहीं दिया जा सकता है और बाद में कमी को भरा नहीं जा सकता है।

47. उक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए, पुनरीक्षण आवेदन पत्र संख्या-10 चुनाव याचिका में पुनरीक्षण के लिए याचिकाकर्ता द्वारा दायर ए-34 को खारिज किया जाता है।

48. चूंकि याचिकाकर्ता ने अपनी चुनाव याचिका में महत्त्वपूर्ण तथ्यों का खुलासा नहीं किया है और बाद में चुनाव याचिका में पुनरीक्षण करने की कोशिश की थी, इसलिए प्रतिपक्षी संख्या-1 द्वारा आदेश VII नियम 11(ए) सी.पी.सी. के तहत दायर किया गया आवेदन पेपर संख्या-1 है। वाद के कारण का खुलासा न करने के लिए चुनाव याचिका को खारिज करने के लिए ए-28 की **अनुमति** दी जाती है।

49. जैसा कि आदेश VII नियम 11(ए) सी.पी.सी. के तहत आवेदन की अनुमति दी गई है, चुनाव याचिका विफल होती है और कार्रवाई के कारण का खुलासा न करने के लिए **खारिज** की जाती है।

50. इस निर्णय के सार की सूचना निर्वाचन आयोग और उत्तर प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष को दी जाए। इस निर्णय की प्रमाणित प्रति भारत निर्वाचन आयोग को तत्काल भेजी जाए।

(2025) 5 ILRA 1598

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन

आदेश से प्रथम अपील संख्या 217 वर्ष 2025

फ्यूचर जनरली इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **...अपीलकर्ता**

बनाम

अजय कुमार सिंह एवं अन्य **...प्रत्यर्थी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
तरुण कुमार मिश्रा

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:
व्यास नारायण शुक्ला

दीवानी कानून - कर्मचारी मुआवजा अधिनियम, 1923 - धारा 3 और 4A - केंद्रीय मोटर वाहन नियम, 1989 - नियम 18 --- केवल लाइसेंस का नवीनीकरण इस तथ्य का सूचक नहीं होगा और न ही हो सकता है कि दावेदार संबंधित मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा विधिवत प्रमाणित 40% स्थायी शारीरिक विकलांगता से ग्रस्त नहीं है --- अधिनियम, 1923 की धारा 3 और 4 (क) तथा उपधारा 3 (क) के संयुक्त संचालन पर, बीमा कंपनी अधिनियम, 1923 के तहत वर्कमैन कमिश्नर द्वारा बीमित नियोक्ता पर लगाए गए ब्याज सहित मुआवजे के दावे को पूरा करने के लिए उत्तरदायी होगी --- मालिक और बीमा कंपनी पंचाट की गई राशि का भुगतान करने के लिए संयुक्त रूप से और व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी हैं।

अपील खारिज। (ई-15)

<u>संदर्भित वादों की सूची:-</u>
वेद प्रकाश गर्ग बनाम प्रेमी देवी और अन्य - एआईआर 1997 एससी 3854

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन द्वारा पारित)

अनुवादित

1. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री तरुण कुमार मिश्रा और साथ ही प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री वी.एन. शुक्ला को सुना गया।

2. कर्मचारी मुआवजा अधिनियम, 1923 (जिसे इसके बाद "अधिनियम, 1923" के रूप में संदर्भित किया गया है) के तहत विद्वान आयुक्त द्वारा पारित दिनांक 05.03.2025 के आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा विद्वान आयुक्त ने दावेदार/प्रत्यर्थी संख्या 1 को 12 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ 13,45,336/- रुपये की राशि प्रदान की है।

3. अनावश्यक विवरणों को छोड़ते हुए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तथ्य यह है कि एक दुर्घटना 08.10.2022 को हुई बताई गई है, जिसमें पेट्रोल टैंक के चालक के रूप में काम कर रहे दावेदार के साथ दुर्घटना हो गई थी। उक्त दुर्घटना के कारण, दावेदार 40 प्रतिशत स्थायी रूप से शारीरिक रूप से विकलांग हो गया। मुख्य चिकित्सा अधिकारी, अमेठी द्वारा दिनांक 02.01.2024 को प्रमाण पत्र जारी किया गया था, जिसकी एक प्रति अंतरिम राहत के आवेदन के अनुलग्नक 2 का हिस्सा है।

4. अधिनियम, 1923 के तहत विद्वान आयुक्त के समक्ष दावा आवेदन दायर किए जाने पर, वर्तमान अपीलकर्ता और अन्य व्यक्ति विद्वान आयुक्त के समक्ष उपस्थित हुए। विद्वान आयुक्त ने अपने समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों के साथ-साथ दावेदार/प्रत्यर्थी संख्या 1 को जारी किए गए शारीरिक विकलांगता प्रमाण पत्र का परीक्षण करने के बाद, और साथ ही मुख्य चिकित्सा अधिकारी, अमेठी द्वारा दिनांक 05.12.2024 को भेजे गए पत्र (जिन्होंने उपरोक्त विकलांगता प्रमाण पत्र जारी किया था) का परीक्षण करने के बाद, जिसमें यह भी संकेत दिया गया था कि दावेदार को 40 प्रतिशत स्थायी विकलांगता है, उपरोक्त राशि प्रदान की है।

5. उपरोक्त पंचाट को चुनौती देते हुए, वर्तमान अपील दायर की गई है।

6. उपरोक्त पंचाट को चुनौती देते हुए अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिए गए आधार निम्नलिखित हैं: (क) यह कि दावेदार ड्राइविंग लाइसेंस धारक था, जिसमें खतरनाक वाहन चलाने का लाइसेंस भी शामिल था। दुर्घटना 08.10.2022 को हुई बताई गई है और उसके बाद, दावेदार ने खतरनाक वाहन चलाने से संबंधित लाइसेंस के नवीनीकरण के लिए आवेदन किया है, जिसे क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी, अमेठी द्वारा 18.01.2024 से 08.07.2025 की अवधि के लिए नवीनीकृत किया गया है। केंद्रीय मोटर वाहन नियम, 1989 (जिसे इसके बाद "नियम, 1989" के रूप में संदर्भित किया गया है) के नियम 18 के प्रावधानों के साथ पठित फॉर्म (2) और फॉर्म 1 (क), जो नियम 1989 के नियम 18 से संबंधित हैं, पर भरोसा करते हुए यह तर्क दिया गया है कि फॉर्म 2 स्पष्ट रूप से शारीरिक फिटनेस के संबंध में एक स्व-घोषणा का प्रावधान करता है, जिसमें पैरा (सी) यह निर्धारित करता है कि क्या लाइसेंस के नवीनीकरण के लिए आवेदन करने वाले व्यक्ति ने अपना हाथ या पैर खो दिया है या वह किसी दोष या मांसपेशियों की शक्ति की कमी से पीड़ित है; नवीनीकरण प्राप्त करने के लिए दावेदार द्वारा इसका उत्तर निश्चित रूप से नकारात्मक दिया गया होगा। इसी प्रकार, फॉर्म 1 (क) के खंड

2 (II) (f) में प्रावधान है, जो डॉक्टर द्वारा जारी किया जाने वाला एक चिकित्सा प्रमाणपत्र है, कि क्या आवेदक में कोई ऐसा दोष या विकृति या अंग की हानि है जो एक चालक के रूप में उसके कर्तव्यों के कुशल प्रदर्शन में हस्तक्षेप करेगी और स्पष्ट रूप से इसका उत्तर भी नकारात्मक दिया गया होगा ताकि दावेदार के खतरनाक वाहन चलाने के लाइसेंस का नवीनीकरण हो सके, मामले के इस पहलू पर विद्वान आयुक्त द्वारा उचित परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया गया है, क्योंकि एक बार जब खतरनाक वाहन के लाइसेंस का नवीनीकरण हो गया है, तो फलस्वरूप यह नहीं कहा जा सकता कि दावेदार किसी शारीरिक विकलांगता से ग्रस्त है, मामले के इस पहलू पर विद्वान आयुक्त द्वारा विचार नहीं किया गया है और इस प्रकार विवादित पंचाट रद्द किए जाने योग्य है; और (ख) यह कि अधिनियम, 1923 की धारा 4-क के संदर्भ में, किसी भी मुआवजे का दायित्व नियोक्ता का होता है, लेकिन विद्वान आयुक्त ने बीमा कंपनी यानी अपीलकर्ता को उपरोक्त राशि का भुगतान करने का निर्देश देकर स्पष्ट रूप से त्रुटि की है।

8. कोई अन्य आधार नहीं दिया गया है।

7. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता श्री वी.के. शुक्ला, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए उपरोक्त दोनों तर्कों का उत्तर देने में असमर्थ हैं, लेकिन फिर भी, उन्होंने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया है।

8. विवाद करने वाले पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया तथा अभिलेखों का परिशीलन किया गया।

9. अभिलेखों के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि एक घटना 08.10.2022 को हुई बताई गई है, जिसमें खतरनाक वाहन के चालक के रूप में कार्यरत दावेदार के साथ दुर्घटना हो गई थी, जिसके परिणामस्वरूप उसे 40 प्रतिशत स्थायी शारीरिक विकलांगता हो गई है। दावेदार को 02.01.2024 को स्थायी शारीरिक विकलांगता प्रमाणपत्र भी जारी किया गया है। उसके बाद, दावेदार ने खतरनाक वाहन चलाने से संबंधित अपने लाइसेंस के नवीनीकरण के लिए आवेदन किया था, जिसे 18.01.2024 से 08.07.2025 की अवधि के लिए नवीनीकृत किया गया है।

10. दावेदार द्वारा झेली गई 40 प्रतिशत शारीरिक विकलांगता के लिए मुआवजे का दावा करते हुए विद्वान आयुक्त के समक्ष दावा आवेदन दायर किए जाने पर, बीमा कंपनी और वाहन मालिक उपस्थित हुए और उन्होंने दावे का विरोध किया।

11. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का मुख्य आधार यह है कि एक बार जब दुर्घटना के बाद दावेदार के खतरनाक वाहन के लाइसेंस का नवीनीकरण हो गया है, यानी 18.01.2024 से 08.07.2025 की अवधि के लिए, जबकि दुर्घटना स्वयं 08.10.2022 को हुई थी और स्थायी शारीरिक विकलांगता प्रमाणपत्र 02.01.2024 को जारी किया गया था, तो नियम 1989 के नियम 18 के साथ पठित फॉर्म 2 और फॉर्म 1

(क) के प्रावधानों पर विचार करते हुए, जो यह संकेत देते हैं कि नवीनीकरण का दावा करने वाला व्यक्ति किसी भी शारीरिक अक्षमता से ग्रस्त नहीं होना चाहिए, जो कि नवीनीकरण चाहने वाले व्यक्ति की ओर से खतरनाक वाहन के लाइसेंस के नवीनीकरण के लिए एक अनिवार्य शर्त भी है, फलस्वरूप खतरनाक वाहन के लाइसेंस का नवीनीकरण स्वयं इस तथ्य का सूचक है कि दावेदार किसी शारीरिक विकलांगता से ग्रस्त नहीं है, मामले के इस पहलू पर विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा विचार नहीं किया गया है।

12. दावेदार के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए अन्य तर्क के अनुसार, अधिनियम, 1923 की धारा 4-क के संदर्भ में, मुआवजे के भुगतान का दायित्व वाहन के मालिक का होता है, लेकिन मनमाने ढंग से बीमा कंपनी को मुआवजा देने का निर्देश दिया गया है।

13. उपरोक्त आधार स्पष्ट रूप से दोषपूर्ण और भ्रामक पाए गए हैं।

14. जहाँ तक 08.10.2022 को घटित दुर्घटना के बाद खतरनाक वाहन के लाइसेंस के नवीनीकरण का प्रश्न है, और 02.01.2024 को जारी शारीरिक विकलांगता प्रमाणपत्र का संबंध है जो 40% शारीरिक अक्षमता दर्शाता है; केवल इसलिए कि संबंधित क्षेत्रीय परिवहन कार्यालय द्वारा दावेदार द्वारा दायर आवेदन के आधार पर खतरनाक वाहन के लाइसेंस का नवीनीकरण कर दिया गया है, और केवल इसलिए कि फॉर्म (2) के साथ फॉर्म 1 (क) यह इंगित करता है कि नवीनीकरण चाहने वाले व्यक्ति को यह प्रमाणित करना होगा कि वह मांसपेशियों की शक्ति के किसी दोष से ग्रस्त नहीं है और संबंधित डॉक्टर को यह दर्शाना होगा कि नवीनीकरण के लिए आवेदन करने वाले व्यक्ति की विकृति उसके कर्तव्यों के कुशल प्रदर्शन में हस्तक्षेप नहीं करेगी, इसका अर्थ यह नहीं होगा कि दावेदार शारीरिक अक्षमता से ग्रस्त नहीं है। विशेष रूप से तब, जब दिनांक 02.01.2024 का शारीरिक विकलांगता प्रमाणपत्र आज की तिथि में भी मान्य है और मुख्य चिकित्सा अधिकारी, अमेठी के कार्यालय द्वारा दिनांक 05.12.2024 को जारी पत्र के माध्यम से इसे वास्तविक प्रमाणित किया गया है, जिसका स्पष्ट उल्लेख विद्वान आयुक्त द्वारा पारित आदेश के आंतरिक पृष्ठ 4 पर मिलता है। यह हो सकता है कि दावेदार के खतरनाक वाहन के लाइसेंस के नवीनीकरण से व्यथित कोई व्यक्ति संबंधित अधिकारियों से यह तर्क देते हुए संपर्क करे कि लाइसेंस गलत तरीके से नवीनीकृत किया गया है, लेकिन केवल लाइसेंस का नवीनीकरण इस तथ्य का सूचक नहीं होगा और न ही हो सकता है कि दावेदार 40% स्थायी शारीरिक विकलांगता से ग्रस्त नहीं है, जैसा कि संबंधित मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा विधिवत प्रमाणित किया गया है।

15. जहाँ तक आधार (ख) का संबंध है, यानी अधिनियम, 1923 की धारा 4-क के संदर्भ में, मुआवजे के भुगतान का दायित्व नियोक्ता का है न कि बीमा कंपनी का, तो यह कहना पर्याप्त होगा कि उपरोक्त आधार पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **'वेद प्रकाश गर्ग बनाम प्रेमी देवी और अन्य - एआईआर 1997 एससी 3854'** के मामले में विचार किया जा चुका है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम, 1923 के साथ-साथ अधिनियम, 1988 के प्रावधानों के संबंध में यह निर्धारित किया है कि बीमा कंपनी, अधिनियम, 1923 की धारा 3 और 4

(क) तथा उप-धारा 3 (क) के संयुक्त संचालन के आधार पर, वर्कमैन कमिश्नर (आयुक्त) द्वारा बीमित नियोक्ता पर लगाए गए ब्याज सहित मुआवजे के दावे को पूरा करने के लिए उत्तरदायी होगी।

16. सुविधा के लिए, **प्रेमी देवी (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की प्रासंगिक टिप्पणियाँ नीचे उद्धृत की गई हैं:-

".....दूसरे शब्दों में, बीमा कंपनी अधिनियम, 1923 की धारा 3 और धारा 4-क के संयुक्त संचालन के आधार पर, वर्कमैन कमिश्नर द्वारा बीमित नियोक्ता पर लगाए गए मुआवजे के दावे के साथ-साथ उस पर आरोपित ब्याज को चुकाने के लिए उत्तरदायी होगी। लेकिन, धारा 4-क(3) के तहत वर्कमैन कमिश्नर द्वारा बीमित नियोक्ता पर लगाए गए दंड के रूप में मुआवजे की अतिरिक्त राशि के लिए बीमा कंपनी उत्तरदायी नहीं होगी।"

17. इस संबंध में, यह इंगित करना उपयुक्त होगा कि विद्वान आयुक्त के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा जारी बीमा पॉलिसी, जो 06.05.2022 से 05.05.2023 तक वैध थी, दाखिल की गई थी, और यह कि प्रत्यर्थी संख्या 1, जिसके पास दावेदार चालक के रूप में कार्य कर रहा था, प्रत्यर्थी संख्या 3 यानी बीमा कंपनी, जो कि वर्तमान अपीलकर्ता है, के पास विधिवत बीमित था। इसके अतिरिक्त, विद्वान आयुक्त ने यह निर्धारित किया है कि वाहन स्वामी और बीमा कंपनी संयुक्त रूप से और व्यक्तिगत रूप से प्रदान की गई राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी हैं।

18. तदनुसार, विद्वान आयुक्त द्वारा दर्ज किए गए उपरोक्त निष्कर्ष के साथ-साथ **'प्रेमी देवी' (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विचार करते हुए, उक्त आधार को भी खारिज किया जाता है।

19. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, आक्षेपित पंचाट में हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है। तदनुसार, अपील खारिज की जाती है।

(2025) 5 ILRA 1602

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 26.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार

आदेश से पहली अपील संख्या - 664 वर्ष 2017

ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ... अपीलकर्ता

बनाम

दयावती गुप्ता और अन्य ... प्रतिपक्षीगण

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: सुभाष चंद्र गुलाटी

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता: प्रियम मिश्रा, अनिल कुमार तिवारी, सदानंद

दीवानी कानून-मोटर वाहन अधिनियम, 1988- धारा 169(2) और 173 - साक्ष्य अधिनियम, 1872-धारा 114(g)--- चश्मदीद गवाह को पेश किया गया है और उससे कुछ भी नहीं निकाला जा सकता है, जिससे उसके साक्ष्य की सत्यता के बारे में कोई संदेह पैदा हो सकता है और यह संकेत मिल सकता है कि उसने दुर्घटना नहीं देखी थी--- एक बार एक चश्मदीद गवाह पेश किया गया है, जिसने दुर्घटना को साबित किया, केवल इसलिए कि कार में मौजूद व्यक्ति को पेश नहीं किया गया है, चश्मदीद गवाह की गवाही पर विश्वास न करने का आधार नहीं हो सकता है--- न्यायाधिकरण ने अपने समक्ष पेश किए गए सबूतों के आधार पर मृतक की आय का निर्धारण किया। चूंकि कोई विपरीत सबूत पेश या दिखाया नहीं जा सकता है, ट्रिब्यूनल द्वारा निर्धारित मृतक की आय में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं है--- दावा न्यायाधिकरण के पास शपथ पर सबूत लेने और गवाहों की उपस्थिति को लागू करने और दस्तावेजों और भौतिक वस्तुओं की खोज और उत्पादन को मजबूर करने और ऐसे अन्य उद्देश्यों के लिए जो निर्धारित किए जा सकते हैं, के उद्देश्य से दीवानी न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी-अपीलकर्ता द्वारा निर्णय की तारीख को आयकर रिटर्न की प्रतियां तलब करने और प्रदान करने के लिए पेश किया गया था, यह नहीं कहा जा सकता है कि न्यायाधिकरण द्वारा शक्ति का प्रयोग नहीं किया गया है क्योंकि न्यायालय को यह भी देखना होगा कि कार्यवाही में देरी या रुकावट के लिए कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग नहीं किया जा सकता है --- याचिका खारिज कर दी गई।

(ई-15)

<u>संदर्भित वादों / निर्णयज विधोंयों की सूची</u>:

1. ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रेमलता शुक्ला और अन्य; 2007 (3) टीएसी 11(एस.सी.)

2. मंगला राम बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य लॉ फाइंडर डॉक्टर आईडी # 999611 (2018 ए.आई.आर. एस.सी. 1900)

3. अनीता शर्मा और अन्य बनाम द न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य लॉ फाइंडर डॉक्टर आईडी # 1779856; (2021 ए.आई.आर. एस.सी. 302)।

4. परशुराम पाल और अन्य बनाम रामलखन और अन्य एफ.ए.एफ.ओ. 2013 की संख्या-956

5. श्रीराम जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती हेम लता और अन्य

6. मलारविज़ी और अन्य बनाम यूनाइटेड इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य 2020 (1) टी.ए.सी. 328 (एस.सी.)

7. गोपाल, कृष्णाजी केतकर बनाम मोहम्मद हाजी लतीफ और अन्य ए.आई.आर. 1968 उच्चतम न्यायालय 1413

(माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार द्वारा पारित)

1. श्रीमती पूजा अरोड़ा, अधिवक्ता श्री सुभाष चंद्र गुलाटी, अपीलकर्ता के अधिवक्ता और श्री प्रियम मिश्रा, दावेदार-प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता को सुना एवं संशोधित सूची में भी अन्य प्रतिपक्षियों की ओर से कोई भी पेश नहीं हुआ और वे पहले की तारीखों में भी उपस्थित नहीं हुए थे।

2. मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 173 के तहत आदेश से प्रस्तुत पहली अपील मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-8, रायबली द्वारा मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या-163/16 (श्रीमती दयावती गुप्ता और अन्य बनाम श्रीमती शशिबाला गुप्ता और अन्य) द्वारा पारित निर्णय और निर्णय दिनांक 06.05.2017 के खिलाफ दायर की गई है।

3. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि न्यायाधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और निर्णय कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है, क्योंकि अ०सा०-2 जो एक कथित चश्मदीद गवाह है, हालांकि जांच रिपोर्ट के एक सदस्य ने जांच के समय आपत्तिजनक वाहन की संख्या की सूचना नहीं दी है, इसलिए, उसे चश्मदीद गवाह नहीं कहा जा सकता है और मौके पर उसकी उपस्थिति संदिग्ध है और मृतक के साथ बैठे व्यक्तियों में से किसी को भी दुर्घटना और लापरवाही और लापरवाही से गाड़ी चलाने को साबित करने के लिए गवाह के रूप में पेश नहीं किया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मृतक के वाहन में बैठा व्यक्ति साक्ष्य अधिनियम की धारा 114(जी) के मद्देनजर दुर्घटना और तेज और लापरवाही से गाड़ी चलाने को साबित करने के लिए सबसे अच्छा गवाह हो सकता था। इस प्रकार दुर्घटना साबित नहीं हुई कही जा सकती। उन्होंने आगे कहा कि मृतक की आय के संबंध में किसी भी ठोस सबूत के बावजूद, आय 50,000 रुपये निर्धारित की गई है, जो नहीं किया जा सकता था। अपीलकर्ता के आयकर रिटर्न को तलब करने और उसकी प्रतियां प्रदान करने के लिए आवेदन को न्यायाधिकरण द्वारा अवैध रूप से खारिज कर दिया गया था, इसलिए, मृतक की आय के निर्धारण के संबंध में अपीलकर्ता को पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया है, जबकि न्यायाधिकरण मोटर वाहन अधिनियम 1988 की धारा 169(2) के तहत साक्ष्य आदि लेने के उद्देश्य से दीवानी न्यायालय की शक्ति का प्रयोग करता है। इसलिए इसे तलब किया जा सकता था। उन्होंने

मलारविज़ी और अन्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य; 2020 (1) टीएसी 328 (एस.सी.), ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रेमलता शुक्ला और अन्य; 2007 (3) टी.ए.सी. 11(एस.सी.), गोपाल, कृष्णाजी केतकर बनाम मोहम्मद हाजी लतीफ और अन्य; ए.आई.आर. 1968 उच्चतम न्यायालय 1413, परशुराम पाल और अन्य बनाम राम लखन और अन्य 2013 के एफ.ए.एफ.ओ. संख्या-956 में इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा पारित किया गया और **श्रीराम जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती हेम लता और अन्य के मामले में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ का निर्णय; 2021 (2) टी.ए.सी. 366 (इला)** पर भरोसा किया।

4. इसके विपरीत, दावेदार-प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित निर्णय और पुरस्कार न्यायाधिकरण द्वारा कानून के अनुसार सही ढंग से पारित किया गया है। इसमें कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है, क्योंकि एक बार एक चश्मदीद गवाह पेश किया गया था, जिसने दुर्घटना को साबित कर दिया था और जिरह में उससे कुछ भी नहीं निकाला जा सकता था, जिससे उसकी सत्यता या मौके पर उपस्थिति पर संदेह हो सकता है, केवल इसलिए कि कार में बैठे व्यक्ति को पेश नहीं किया गया है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि दुर्घटना साबित नहीं हो सकी और चश्मदीद गवाह की उपस्थिति के बारे में संदेह नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि आयकर रिटर्न को तलब करने और प्रतियां प्रदान करने के लिए आवेदन फैसले की तारीख पर पेश किया गया था, जिसे न्यायाधिकरण ने सही तरीके से खारिज कर दिया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि आपत्तिजनक वाहन के चालक की दुर्घटना और लापरवाही से गाड़ी चलाना दावेदार-प्रतिपक्षियों द्वारा साबित हो गया था और इसके विपरीत कुछ भी अभिलेखों पर नहीं लाया जा सकता था। आपत्तिजनक वाहन के चालक का तेज और लापरवाही से वाहन चलाना अपने आप में साबित हो जाता है क्योंकि नक़्शा नज़री के संबंध में कोई विवाद नहीं है, जिसके अनुसार आपत्तिजनक वाहन ने मृतक के वाहन को टक्कर मार दी थी, जब वह डिवाइडर को तोड़ने के बाद विपरीत दिशा से आ रहा था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि मृतक की आय सही ढंग से निर्धारित की गई है क्योंकि फॉर्म 16 की प्रतियां अभिलेखों पर रखी गई थीं, जो दर्शाता है कि मृतक की आय न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित आय से बहुत अधिक थी, जिसे अपीलकर्ताओं द्वारा विवादित नहीं किया जा सकता था या किसी भी विपरीत सबूत को अभिलेखों पर रखा जा सकता था। इस प्रकार, अपील गलत और आधारहीन आधार पर दायर की गई है, जिसे खारिज किया जा सकता है। उन्होंने **मंगला राम बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य पर भरोसा किया; लॉ फाइंडर डॉक्टर आईडी # 999611 (2018 ए.आई.आर. एस.सी. 1900) और अनीता शर्मा और अन्य बनाम द न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य; कानून खोजक डॉक्टर आईडी # 1779856; (2021 ए.आई.आर. एस.सी. 302)** पर अवलंबन किया।

5. पक्षों के अधिवक्ता को सुनने के बाद, मैंने अभिलेखों का अवलोकन किया है।

6. दावा याचिका, दावेदार-प्रतिपक्षी संख्या 1 से 4 द्वारा इस आशय से प्रस्तुत की गई कि दावेदार-प्रतिपक्षी संख्या 1 के पति तथा प्रतिपक्षी संख्या 2 एवं 3 के पिता और प्रतिपक्षी संख्या 4 की माता, स्वर्गीय सुरेश कुमार, श्रीमती दयावती, श्रीमती नीलम, श्रीमती कमला देवी तथा नाती बाबू के साथ अपने स्थायी निवास ग्राम मक्दूमपुर, थाना डलमऊ, जनपद रायबरेली से अपने वर्तमान निवास एम.आई.जी.-5/55, प्रगतिपुरम कॉलोनी, थाना मिल एरिया, जनपद रायबरेली, मारुति वैगन कार संख्या U.P. 33 S 4169 से वापस आ रहे थे। जब वे लखनऊ-रायबरेली मार्ग पर छजलापुर के निकट, माननीय विधायक श्री रामलाल अकेला के आवास के सामने पहुँचे, उसी समय विपरीत दिशा से आ रही फोर्ड इकोस्पोर्ट वाहन संख्या U.P. 33 AA 7077,

जिसे लापरवाही एवं तेज गति से चलाया जा रहा था, डिवाइडर को तोड़ते हुए गलत दिशा में आ गई और स्वर्गीय के वाहन से अत्यधिक वेग एवं बल के साथ टकरा गई, जिसके परिणामस्वरूप उक्त कार में सवार सभी व्यक्तियों को गंभीर चोटें आईं। मृतक को गंभीर चोटें आई थीं, जिससे उसकी मौके पर ही मौत हो गई। वाहन भी बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गया। पुलिस ने शव को कब्जे में लेकर पूछताछ कराई और उसके बाद शव परीक्षण कराया। हादसे की प्राथमिकी मृतक के भाई दिनेश कुमार ने दर्ज कराई थी। मृतक की जन्मतिथि 25.02.1967 थी। दावेदार-प्रतिपक्षी संख्या-1 के पति के पिता की मृत्यु से पहले मृत्यु हो गई थी। मृतक जीवन बीमा कंपनी में मुख्य बीमा सलाहकार के पद पर कार्यरत था। मृत्यु के समय मृतक की आयु 49 वर्ष थी और वह लगभग 1,25,190/- रुपये प्रति माह और तदनुसार 15,02,276/- रुपये वार्षिक कमा रहा था। मृतक अपनी पूरी कमाई अपनी पत्नी, बच्चों और मां पर खर्च करता था। यदि वह जीवित होता, तो उसकी आय में वृद्धि होती, इसलिए, दावेदार-प्रतिपक्षियों द्वारा दावा किया गया मुआवजा दिया जा सकता है।

7. दावा याचिका का विरोध प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 यानी प्रतिपक्षी संख्या-5 और 6 ने दावा याचिका में किए गए कथनों से इनकार करते हुए एक सामान्य लिखित बयान दायर करके किया था, हालांकि, यह स्वीकार किया गया है कि प्रतिपक्षी प्रतिपक्षी संख्या-5 इको स्पोर्ट, वाहन संख्या-यूपी 33 एए 7077 और प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षी संख्या-6 का पंजीकृत मालिक है। जो प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षी संख्या-5 का पोता है, दुर्घटना के समय चालक था। यह भी कहा गया है कि उसके पास एक वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था और वह एक अच्छा ड्राइवर था। दुर्घटना की तारीख पर वाहन का पंजीकरण और फिटनेस मान्य थी। प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षी संख्या-6 के तेज और लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण कभी कोई दुर्घटना नहीं हुई थी। वाहन का ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी से वैध रूप से बीमा किया गया था, जो प्रभावी भी था। वाहन का चालक नं. यू.पी. 33 एस 4169 गाड़ी चलाते हुए, जल्दबाजी और लापरवाही से, विपरीत दिशा से आया और डिवाइडर में घुस गया और प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षियों के वाहन को टक्कर मार दी। प्रतिपक्षी संख्या-6 को कई चोटें आई थीं, जबकि उसकी कोई गलती नहीं थी। मृतक की आय को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया गया है और आयु और आय का कोई प्रमाण पत्र दाखिल नहीं किया गया है। हालांकि, यदि अदालत द्वारा कोई दायित्व निर्धारित किया जाता है, तो वह ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड का होगा। तदनुसार, उन्होंने दावा याचिका को खारिज करने की प्रार्थना की।

8. प्रतिपक्षी संख्या-3/प्रतिपक्षी संख्या-7 न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ने एक लिखित बयान दायर किया जिसमें कहा गया था कि दावेदारों ने दुर्घटना रिपोर्ट, मेडिकल बिल और वाउचर, कैश मेमो, पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट, प्रथम सूचना रिपोर्ट, नक़्शा नज़री, तकनीकी परीक्षा रिपोर्ट, आरोप पत्र आदि दाखिल नहीं किए हैं। दुर्घटना के समय वाहन चालक के पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। यह दुर्घटना दोनों वाहनों के चालक के लापरवाही से चलने के कारण हुई थी। मुआवजे को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करते हुए दावा किया गया है। इस प्रकार दावा याचिका लागत के साथ खारिज की जा सकती है।

9. प्रतिपक्षी संख्या-4/अपीलकर्ता द्वारा लिखित बयान प्रस्तुत करते हुए यह कथन किया गया कि दुर्घटना इकोस्पोर्ट वाहन संख्या U.P. 33 AA 7077 तथा वैगन-आर वाहन संख्या U.P. 33 S 4169 के आमने-सामने की टक्कर के कारण हुई, जिसमें वाहन संख्या U.P. 33 S 4169 का चालक मृत्यु को प्राप्त हुआ। यह भी

अभिकथित किया गया कि दुर्घटना दोनों चालकों की लापरवाही एवं दोष के कारण हुई, अतः प्रतिकर (क्षतिपूर्ति) के भुगतान का दायित्व दोनों बीमा कंपनियों पर है। दुर्घटना की तिथि एवं समय पर वाहन संख्या U.P. 33 AA 7077 के बीमित होने से इंकार किया गया। तथापि यह कहा गया कि यदि साक्ष्य द्वारा बीमा सिद्ध किया जाता है, तभी भुगतान का दायित्व उत्पन्न होगा। यह भी कथित किया गया कि वाहन संख्या U.P. 33 AA 7077 के चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस होने के कारण क्षतिपूर्ति के भुगतान का कोई दायित्व नहीं बनता। यह भी कहा गया था कि वाहन संख्या-उत्तर प्रदेश के पंजीकरण आदि के बाद से 33 एए 7077 वैध नहीं था, इसलिए, प्रतिपक्षी संख्या-4/अपीलकर्ता द्वारा मुआवजे के भुगतान का कोई दायित्व नहीं है। मृतक की आय का कोई कागजात दाखिल नहीं किया गया है और मुआवजे का दावा बढ़ा-चढ़ाकर किया गया है। इस प्रकार दावा याचिका खारिज की जा सकती है।

10. पक्षों की दलीलों के आधार पर, 6 मुद्दे तैयार किए गए थे, जिन्हें नीचे निकाला गया है: -

1- क्या दिनांक 23.10.2015 को समय 10.00 रात्रि को याचिनी का मृतक पति श्रीमती दयावती, श्रीमती नीलम, श्रीमती कमला देवी व नाती बाबू के साथ अपने मूल निवास ग्राम मकदूमपुर थाना डलमऊ जिला रायबरेली से अपनी गाड़ी वैगनआर सं० यू०पी० 33 एस 4169 से अपने वर्तमान निवास एम०आई०जी० 5/55 प्रगतिपुरम कालोनी थाना मिल एरिया जिला रायबरेली वापस आ रहे थे जैसे ही लखनऊ रायबरेली मार्ग पर छजलापुर के पास विधायक श्री राम लाल अकेला के घर के सामने थे कि विपरीत दिशा से एक फोर्ड इको स्पोर्ट संख्या यू०पी० 33 ए ए 7077 का चालक बहुत तेजी व लापरवाहीपूर्वक लहराता हुआ गलत दिशा में आकर उपरोक्त गाडी में जोरदार टक्कर मार दिया जिससे याचिनी के पति को अत्यधिक चोटें आयी और उनकी मौके पर मृत्यु हो गयी?

2. क्या मृतक की दुर्घटना में योगदायी उपेक्षा थी?

3. क्या प्रश्नगत वाहन दुर्घटना की तिथि पर विपक्षी संख्या 4 के पास वैध रूप से बीमित था?

4. क्या दुर्घटना के समय वाहन के सभी प्रपत्र वैध थे?

5 क्या दुर्घटना के समय प्रश्नगत वाहन के बालक के पास वैध एवं प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति थी?

6. क्या याची प्रतिकर के रूप में कोई धनराशि प्राप्त करने के अधिकारी है यदि हां तो कितनी और किस पक्षकार से?

11. इसके बाद दावेदार प्रतिपक्षी संख्या-1 से 4 द्वारा दस्तावेजी साक्ष्य दायर किए गए। हालांकि, प्रतिपक्षियों द्वारा कोई दस्तावेजी सबूत दायर नहीं किया गया था। मौखिक साक्ष्य में अखिलेश कुमार गुप्ता की जांच अ०सा०-1, दिनेश कुमार गुप्ता को अ०सा०-2 और श्री सूरज कुमार को अ०सा०-3 के रूप में किया गया है। प्रतिपक्षियों द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य पेश नहीं किया गया था। पक्षों के वकीलों को सुनने के बाद, न्यायाधिकरण ने दावा याचिका को स्वीकार कर लिया और 7% प्रति वर्ष की साधारण ब्याज की दर से ब्याज के साथ 58,85,000/- रुपये का मुआवजा दिया। यह भी प्रदान किया गया है कि दिए गए मुआवजे में से, श्रीमती दयावती दावेदार प्रतिपक्षी संख्या-1 को 60%, दावेदार प्रतिपक्षी संख्या-2 अखिलेश कुमार गुप्ता और दावीकर्ता-प्रतिपक्षी संख्या-3 विपुल कुमार गुप्ता को 10-10% और दावेदार-प्रतिपक्षी संख्या-4 श्रीमती फूल सुंदरी को 20% मिलेगा। उपरोक्त निर्णय और पंचाट से व्यथित होकर यह अपील दायर की गई है।

12. दुर्घटना 23.10.2015 को रात 10:00 बजे हुई, जब मृतक सुरेश कुमार अपने परिवार के सदस्यों के साथ आ रहे थे, जैसा कि ऊपर बताया गया है कि लखनऊ-रायबली रोड पर छजलापुर के पास विधायक श्री राम लाल अकेला के घर के सामने मारुति वैगन-आर कार द्वारा फोर्ड इको स्पोर्ट विपरीत दिशा से आ रही थी, जिसने डिवाइडर तोड़कर गलत साइड में आने के बाद मृतक के वाहन को टक्कर मार दी। घायल होने के कारण मृतक की मौके पर ही मौत हो गई। हादसे में अन्य लोगों को भी चोटें आई हैं। उन्हें अस्पताल ले जाया गया, जहां मृतक को मृत घोषित कर दिया गया। 23.10.2015 को रात 10:00 बजे उपरोक्त घटना के संबंध में 24.10.2025 को 5:15 बजे थाना औद्योगिक क्षेत्र, जिला रायबरेली में एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आरोपों के साथ दावा याचिका दायर की गई थी।

13. न्यायाधिकरण ने मुद्दा संख्या-1 और 2 को 'एक साथ' तय करते समय, अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के साक्ष्य पर विचार किया। अ०सा०-1 अखिलेश कुमार गुप्ता, जो मृतक के बेटे हैं और अ०सा०-2 दिनेश कुमार गुप्ता, जो मृतक के भाई हैं, ने दुर्घटना को साबित किया। दोनों ने बताया कि यह घटना 23.10.2015 को रात 10:00 बजे विधायक श्री राम लाल अकेला के घर के सामने छजलापुर के पास रायबरेली-लखनऊ रोड पर हुई थी, जबकि मृतक सुरेश कुमार गुप्ता सावधानी से वैगन-आर यू.पी.33 एस 4169 चला रहा था, जो अपने स्थायी घर डलमऊ, रायबले से अपने घर से प्रगतिपुर रायबरेली में वापस आ रहा था। थाना मिल एरिया में श्रीमती दयावती, श्रीमती नीलम, श्रीमती कमला देवी और नाती बाबू के साथ उपस्थित थे। जब वह घटनास्थल पर पहुंचा, तो विपरीत दिशा से आ रही एक फोर्ड इको स्पोर्ट यू.पी.33 एए 7077, जिसे उसके चालक द्वारा लापरवाही से चलाया जा रहा था, डिवाइडर को तोड़कर गलत साइड में चला गया और मृतक के वाहन को टक्कर मार दी। हादसे में मृतक को गंभीर चोटें आई और उसकी मौके पर ही मौत हो गई। अ०सा०-2, जो मकदूमपुर, पी.एस.-डलमऊ, जिला रायबरेली निवासी हैं, ने कहा है कि जब वह उपरोक्त समय और स्थान पर प्रगतिपुर से अपने घर वापस आ रहे थे, तो उन्होंने देखा कि सुरेश कुमार गुप्ता अपने वाहन वैगन-आर यूपी 33 एस 4169 को सावधानी से चलाते हुए सड़क पर अपनी तरफ आ रहे थे। जब वह उपरोक्त स्थान पर पहुंचा, तो विपरीत दिशा से आ रहा इको स्पोर्ट वाहन संख्या-यू.पी.33 एए 7077 और उसके चालक द्वारा लापरवाही से चलाए जा रहे वाहन ने उसे ओवरटेक कर लिया था और डिवाइडर को तोड़कर गलत साइड में चला गया और मृतक के वाहन को सामने से बुरी तरह से टक्कर मार दी, जिसके कारण सुरेश कुमार गुप्ता को बहुत गंभीर चोटें आईं और इको स्पोर्ट वाहन संख्या-यू.पी. 33 एए 7077 के चालक और बैठे लोग वाहन में सवार मृतक को भी गंभीर चोटें आई हैं। उन्होंने पुलिस और एंबुलेंस को फोन कर हादसे की जानकारी दी। सूचना पर पुलिस और एंबुलेंस मौके पर पहुंची और सुरेश कुमार गुप्ता और घायलों को जिला अस्पताल रायबरेली ले जाया गया। पुलिस ने उसका बयान भी दर्ज किया था। उन्होंने प्राथमिकी की जांच दर्ज कराई थी और उनके सामने मृतक का शव परीक्षण किया गया था। जिरह में भी, उन्होंने मुख्य परीक्षा में दिए गए उपरोक्त साक्ष्यों का समर्थन किया और उनसे कुछ भी नहीं निकाला जा सका, जिससे दुर्घटना के समय उनकी गवाही या मौके पर उनकी उपस्थिति के बारे में कोई संदेह पैदा हो सके। अ०सा०-2 यानी चश्मदीद गवाह का साक्ष्य विचारण न्यायालय के अभिलेखों पर रखी गई नक्शा नज़री के अनुरूप है, जो इंगित करता है कि वाहन नं. यू.पी. 33 एस 4169 इसके बाईं ओर आ रहा था और वाहन संख्या यूपी 33 एए 7077 विपरीत दिशा से आ रहा था, डिवाइडर तोड़ने के बाद गलत साइड में आ गया और मृतक के वाहन को टक्कर मार दी। डिवाइडर को नक़्शा नज़री में दिखाया गया है। इस नक्शा नज़री पर किसी भी पक्ष द्वारा विवाद नहीं किया गया है। दोनों वाहनों की तकनीकी जांच रिपोर्ट से भी संकेत मिलता है कि वाहन क्षतिग्रस्त हो गए थे। इस प्रकार, इस न्यायालय को अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के साक्ष्य पर विचार करने के बाद न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं मिलती है, जिन्होंने दुर्घटना को साबित किया है।

14. चश्मदीद गवाह अ०सा०-2 के साक्ष्य को जांच रिपोर्ट में दर्ज एक राय के आधार पर विवादित किया गया है, जिसमें अ०सा०-2 भी एक सदस्य था। दर्ज की गई राय है कि "*सुरेश कुमार गुप्ता की मृत्यु घटना में आई चोटों के कारण होना प्रतीत होता है, फिर भी मृत्यु का सही कारण जानने के लिए पी.एम. करा लिया जाए ठीक रहेगा।*" लेकिन यह एक चश्मदीद गवाह के अविश्वास के लिए एक आधार नहीं हो सकता है क्योंकि सबसे पहले यह केवल एक राय थी और यह केवल शव परीक्षण के लिए सहमति के लिए थी। हालांकि, एक बार जब अपीलकर्ता जांच रिपोर्ट आदि की प्रति में दर्ज राय पर भरोसा करता है, तो वह इस आधार पर अन्य दस्तावेजों पर विवाद नहीं कर सकता है कि वे फोटोकॉपी हैं। वे प्रमाणित प्रतियां प्रतीत होती हैं। बहस के समय नक्शा नज़री पर भी बहुत अधिक भरोसा किया गया था।

15. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114(जी) में प्रावधान है कि न्यायालय किसी भी तथ्य के अस्तित्व को मान सकता है, जो उसे लगता है कि प्राकृतिक घटनाओं, मानव आचरण और सार्वजनिक और निजी व्यवसाय के सामान्य पाठ्यक्रम के संबंध में, विशेष मामले के तथ्यों के संबंध में। इसके बाद प्रस्तर (जी) में दृष्टांतों में, यह प्रदान किया गया है कि न्यायालय यह मान सकता है कि जो साक्ष्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं और प्रस्तुत नहीं किए जाते हैं, यदि प्रस्तुत किए जाते हैं, तो उस व्यक्ति के लिए प्रतिकूल होंगे जो इसे रोकता है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता यह इंगित करने में विफल रहे कि कैसे एक बार एक चश्मदीद गवाह पेश किया गया है, जिसने वाहन के चालक के दुर्घटना, लापरवाही से ड्राइविंग को साबित कर दिया है, जो नक्शा नज़री के अनुरूप है, कैसे कार में बैठे किसी भी व्यक्ति का उत्पादन न करने से अदालत को यह मानने की शक्ति मिलेगी कि उसका गैर-उत्पादन दावेदार-प्रतिपक्षियों के लिए प्रतिकूल है।

16. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रेमलता शुक्ला और अन्य (उपरोक्त) के मामले में माना है कि दुर्घटना के तथ्य को प्रथम सूचना रिपोर्ट से भी साबित किया जा सकता है और एक बार दस्तावेज़ की सामग्री का एक हिस्सा साक्ष्य में स्वीकार कर लिया जाता है, तो इसे अभिलेखों पर लाने वाले पक्ष को पलटने और यह तर्क देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि उसके शेष भाग में निहित अन्य सामग्री साबित नहीं हुआ है। दोनों दलों ने इस पर भरोसा किया है। एक बार जब दोनों पक्षों द्वारा इसके एक हिस्से पर भरोसा किया जाता है, तो न्यायाधिकरण को यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने दूसरे हिस्से पर भरोसा करने में कोई अवैधता की है, भले ही दस्तावेज़ की सामग्री साबित हो गई हो या नहीं। यदि विषय-वस्तु सिद्ध हो गई है, तो उसके केवल एक हिस्से पर निर्भरता का प्रश्न ही उठता है, बाकी पर नहीं, तकनीकी आधार पर कि इसे कानून के अनुसार साबित नहीं किया गया था।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मंगला राम बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त) के मामले में माना है कि दावेदारों द्वारा स्थापित उल्लंघन करने वाले वाहन के चालक की ओर से लापरवाही की कुंजी को ट्रिब्यूनल द्वारा संभाव्यता की प्रबलता के कसौटी पर तय करने की आवश्यकता थी और निश्चित रूप से उचित संदेह से परे सबूत के मानक द्वारा नहीं। यह देखने के लिए पर्याप्त है कि हमारे द्वारा पहले से

ही विज्ञापित निर्णयों में व्याख्या, प्रतिपक्षी संख्या-2 के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल करना प्रथम दृष्टया लापरवाही और जल्दबाजी में वाहन चलाने में उसकी मिलीभगत की ओर इशारा करता है।

18. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनीता शर्मा और अन्य बनाम द न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त) के मामले में माना है कि प्रतिपक्षियों की अकेला चश्मदीद गवाह से जिरह करने या पर्याप्त अवसर के बावजूद उनके धर्मांतरण का सामना करने में विफलता से उनकी ओर से मौन स्वीकृति का अनुमान लगाया जाना चाहिए।

19. इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने परशुराम पाल और अन्य बनाम रामलखन और अन्य (उपरोक्त) के मामले में माना है कि यह पुनर्निहित नहीं है कि मोटर दुर्घटना दावा याचिका में पुलिस द्वारा दायर आरोप पत्र में दुर्घटना की जांच को अपराध के रूप में दर्ज किया गया है, जो ठोस सबूत नहीं है और मुआवजा केवल इस आधार पर नहीं दिया जा सकता है। दावेदार मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के समक्ष उनके द्वारा पेश किए गए ठोस साक्ष्यों के आधार पर ही सफल हो सकते हैं। यह प्रस्तुत मामले में लागू नहीं है क्योंकि प्रस्तुत मामले में दुर्घटना और तेज और लापरवाही से गाड़ी चलाने को एक चश्मदीद गवाह द्वारा साबित किया गया है, जो दस्तावेज द्वारा समर्थित है।

20. श्रीराम जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती हेम लता और अन्य (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने माना है कि कोई अन्य स्वतंत्र गवाह होने के अभाव में और दावेदारों की एक घायल चश्मदीद गवाह की जांच करने में विफलता के कारण, अपील की अनुमति दी जानी चाहिए क्योंकि न्यायालय ने पाया कि चश्मदीद गवाह अ०सा०-2 यह नहीं दिखा सका कि यह गवाह कैसे संपर्क में आया रघुवीर सिंह, मामले का सूचनाकर्ता उक्त गवाह ने स्वीकार किया कि उसने रघुवीर सिंह-सूचनाकर्ता के साथ पुलिस से संपर्क किया था और तथाकथित आपत्तिजनक वाहन को फंसाने वाला एक हलफनामा निष्पादित किया था और उसने स्वीकार किया कि उसने उल्लंघन करने वाले वाहन की संख्या को नोट नहीं किया था और इसे केवल मानसिक रूप से याद किया था और जब इसे उसके निवेदन के साथ पढ़ा गया कि 07.06.2011 को लगभग 8-9 बजे, उनकी मां ने उन्हें विनेश कुमार की मौत की सूचना दी थी, यह स्पष्ट है कि विनेश कुमार परिवार के लिए जानते थे अन्यथा उनकी मां के लिए किसी अजनबी की मौत पर चर्चा करने का कोई अवसर नहीं था। इस प्रकार मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में निर्णय दिया गया। यह प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू नहीं होता है क्योंकि प्रस्तुत मामले में, अ०सा०-2 ने दुर्घटना और अपमानजनक वाहन के चालक की लापरवाही और लापरवाही से ड्राइविंग को साबित कर दिया है, जो निर्विवाद दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा समर्थित है और जिरह में उससे कुछ भी नहीं निकाला जा सकता है, जिससे उसकी सत्यता और दुर्घटना स्थल पर उसकी उपस्थिति के बारे में कोई संदेह पैदा हो सकता है।

21. जहां तक अपीलकर्ता के अधिवक्ता के तर्क का सवाल है कि वाहन में मौजूद किसी भी गवाह को पेश नहीं किया गया है जो सबसे अच्छा गवाह हो सकता था, इस न्यायालय का विचार है कि अपीलकर्ता के अधिवक्ता का तर्क गलत है और तर्कसंगत नहीं है क्योंकि चश्मदीद गवाह पेश किया गया है और उससे कुछ भी नहीं

निकाला जा सकता है, जो उसके साक्ष्य की सत्यता के बारे में कोई संदेह पैदा कर सकता है और संकेत दे सकता है कि उसने दुर्घटना नहीं देखी थी। इसलिए एक बार एक चश्मदीद गवाह पेश किया गया है, जिसने दुर्घटना को साबित कर दिया, केवल इसलिए कि कार में मौजूद व्यक्ति को पेश नहीं किया गया है, चश्मदीद गवाह की गवाही पर विश्वास नहीं करने का आधार नहीं हो सकता है, जो मृतक का भाई था। इस प्रकार, इस न्यायालय का विचार है कि उपरोक्त दुर्घटना 23.10.2015 को रात 10:0 p.m.in 0 बजे उपरोक्त स्थान पर वाहन संख्या-यू.पी. 33 एए 7077 और डैशिंग वाहन नं. यूपी 33 एस 4169 डिवाइडर को तोड़कर गलत साइड में जाने से साबित हो गया है। इस प्रकार इस संबंध में न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष किसी भी अवैधता या त्रुटि से ग्रस्त नहीं है। अन्यथा भी दिनांक 02.01.2019 के आदेश में यह दर्ज किया गया है कि अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया कि न्यायालय के आदेश के अनुपालन में पूरी राशि न्यायाधिकरण के समक्ष जमा कर दी गई है और अपीलकर्ता ने मात्रा के आधार पर न्यायाधिकरण के आदेश को चुनौती दी है।

22. न्यायाधिकरण ने मुआवजे की मात्रा पर विचार करते हुए दर्ज किया है कि मृतक की आय के संबंध में, 2012-13, 13-14, 14-15 और 15-16 के फॉर्म 16 ए की प्रतियां प्रस्तुत की गई हैं। अ०सा०-3 सूरज कुमार ने कहा कि किसी भी एजेंट की आय निश्चित नहीं है। यह काम के अनुसार बढ़ता और घटता था क्योंकि एजेंट का काम कमीशन आधारित होता है और चूंकि मृतक द्वारा आयकर रिटर्न दाखिल नहीं किया गया है, इसलिए फॉर्म 16 के आधार पर मृतक द्वारा दावा की गई आय को 1,25,190/- रुपये मानते हुए, जिसे किसी भी सबूत से साबित नहीं किया जा सका, न्यायाधिकरण ने आय 50,000 रुपये प्रति माह निर्धारित की। अ०सा०-3 के साक्ष्यों के अवलोकन से संकेत मिलता है कि उसकी जिरह में जांच नहीं की गई है कि मृतक के पास कितना काम था और उक्त कार्य पर उसे कितना कमीशन मिल सकता था। इस प्रकार न्यायाधिकरण ने अपने समक्ष पेश किए गए सबूतों के आधार पर मृतक की आय का निर्धारण किया। चूंकि कोई विपरीत सबूत पेश या दिखाया नहीं जा सकता है, इसलिए इस न्यायालय को न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित मृतक की आय में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं मिलती है।

23. न्यायाधिकरण ने आगे दर्ज किया कि उसकी पत्नी, दो बेटे और मां उस पर निर्भर थे, इसलिए वह अपनी आय का 1/4 हिस्सा खुद पर खर्च कर रहा होगा। तदनुसार, इसे घटाने के बाद, आय निर्धारित की गई और मुआवजे की अनुमति दी। इस न्यायालय को न्यायाधिकरण द्वारा गणना किए गए मुआवजे में भी कोई अवैधता या त्रुटि नहीं मिलती है और इसका किसी भी तरह से खंडन भी नहीं किया जा सकता है।

24. मोटर वाहन अधिनियम 1988 की धारा 169(2) में प्रावधान है कि दावा न्यायाधिकरण के पास शपथ पर साक्ष्य लेने और गवाहों की उपस्थिति को लागू करने और दस्तावेजों और भौतिक वस्तुओं की खोज और उत्पादन को मजबूर करने और ऐसे अन्य उद्देश्यों के लिए जो निर्धारित किए जा सकते हैं, दीवानी न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी; और दावा न्यायाधिकरण को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973(1974 का 2) की धारा 195 और अध्याय XXVI के सभी उद्देश्यों के लिए एक दीवानी न्यायालय माना जाएगा। क़ानून के तहत प्रदान की गई

न्यायाधिकरण की शक्ति पर विवाद नहीं किया जा सकता है, लेकिन इसकी जांच कानून के अनुसार की जानी चाहिए और केवल इसलिए कि अपीलकर्ता द्वारा निर्णय की तारीख पर आयकर रिटर्न की प्रतियां सम्मन करने और प्रदान करने के लिए दायर किए गए आवेदन को न्यायाधिकरण द्वारा खारिज कर दिया गया था, यह नहीं कहा जा सकता है कि न्यायाधिकरण द्वारा शक्ति का प्रयोग नहीं किया गया है क्योंकि न्यायालय को भी उस प्रक्रिया को देखना है कार्यवाही में देरी करने या रोकने के लिए कानून का दुरुपयोग नहीं किया जा सकता है।

25. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मलारविज़ी और अन्य बनाम यूनाइटेड इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त) के मामले में माना है कि न्यायाधिकरण ने कृषि भूमि से आय के आयकर रिटर्न में स्पष्ट संकेत के बावजूद कृषि भूमि से आय के संभावित मूल्य को आरोपित किया है। यह मामला प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू नहीं होता है जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है।

26. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **गोपाल कृष्णाजी केतकर बनाम मोहम्मद हाजी लतीफ और अन्य (उपरोक्त**) के मामले में माना है कि भले ही सबूत का बोझ किसी पक्ष पर न हो, न्यायालय एक प्रतिकूल निष्कर्ष निकाल सकता है यदि वह अपने कब्जे में महत्वपूर्ण दस्तावेजों को रोकता है जो इस मुद्दे पर तथ्यों पर प्रकाश डाल सकता है क्योंकि तथ्यों की एक निश्चित स्थिति पर भरोसा करने के इच्छुक लोगों के लिए एक अच्छी प्रथा है न्यायालय से सबसे अच्छा सबूत जो उनके पास है जो विवाद में मुद्दों पर प्रकाश डाल सकता है और सबूत के दायित्व के अमूर्त सिद्धांत पर भरोसा कर सकता है। यह प्रस्तुत मामले में लागू नहीं होता है क्योंकि एक चश्मदीद गवाह पेश किया गया है, जिसने दुर्घटना को साबित कर दिया है और आय भी सही ढंग से निर्धारित की गई है जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है।

27. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय को न्यायाधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं मिलती है। अपील गलत और आधारहीन आधार पर दायर की गई है, जिसे खारिज किया जा सकता है।

28. तदनुसार, अपील **खारिज/रद्द** की जाती है। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2025) 5 ILRA 1610

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 01.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन

आदेश से प्रथम अपील संख्या 895 वर्ष 2016

एवं

आदेश से प्रथम अपील संख्या 896 वर्ष 2016

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **...अपीलकर्ता**

बनाम

शिवा विश्वकर्मा नाबालिग **...प्रत्यर्थी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
सत्यजीत बनर्जी

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:

सिविल कानून- सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908-आदेश XLI नियम 27--- शपथपत्र में कहीं भी यह संकेत नहीं है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने अनुलग्नक को साक्ष्य के रूप में स्वीकार करने से इनकार किया था, या यह कि अपीलकर्ता द्वारा उचित परिश्रम के बावजूद, वह अनुलग्नक 1 को प्राप्त नहीं कर सका था। साथ ही, उक्त अनुलग्नक के साथ आदेश 41, नियम 27 के तहत उसे अतिरिक्त साक्ष्य मानने के लिए कोई आवेदन भी संलग्न नहीं है---अपीलकर्ता यह दर्शाने में भी विफल रहा है कि उक्त सत्यापन का संबंध उस ड्राइविंग लाइसेंस से कैसे जोड़ा जा सकता है जिसे विद्वान अधिकरण के समक्ष दाखिल किया गया था। इस प्रकार, विद्वान अधिकरण के समक्ष श्री होरी लाल के दाखिल किए गए ड्राइविंग लाइसेंस के जाली या कूट रचित होने का कोई साक्ष्य प्रस्तुत न किए जाने और उक्त ड्राइविंग लाइसेंस का किसी भी प्रकार से खंडन न किए जाने के कारण, यह नहीं कहा जा सकता है कि विद्वान अधिकरण ने यह निष्कर्ष निकालने में कोई त्रुटि की है कि दुर्घटना की तिथि पर चालक, श्री होरी लाल, के पास एक वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था।

अपील खारिज। (ई-15)

<u>संदर्भित वादों की सूचीः-</u>

1. संजय कुमार सिंह बनाम झारखंड राज्य (2022) 7 एससीसी 247

अनुवादित

2. शिवाजीराव निलंगेकर पाटिल बनाम डॉ. महेश माधव गोसावी व अन्य (1987) 1 एससीसी 227

3. जगदीश प्रसाद पटेल (मृतक) उनके कानूनी उत्तराधिकारियों के माध्यम से बनाम शिवनाथ (2019) 6 एससीसी 82

4. भारत संघ बनाम इब्राहिम उद्दीन व अन्य (2012) 8 एससीसी 148

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सत्यजीत बनर्जी को सुना गया।

2. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि वर्तमान अपील और आदेश से प्रथम अपील संख्या 896 वर्ष 2016 एक ही दुर्घटना से संबंधित हैं और दोनों अपीलों में समान आधार लिए गए हैं, इसलिए दोनों अपीलों की सुनवाई एक साथ की जा सकती है और इनका निर्णय भी एक साथ किया जा सकता है।

3. तदनुसार, न्यायालय एक साझा निर्णय के माध्यम से दोनों अपीलों की सुनवाई करने और उन्हें तय करने के लिए आगे बढ़ता है। सुविधा के लिए, आदेश से प्रथम अपील संख्या 895 वर्ष 2016 के तथ्यों को लिया जा रहा है।

4. चुनौती, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण / अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 5, उन्नाव द्वारा 'शिव विश्वकर्मा व अन्य बनाम रफीक खान व अन्य' के मामले में दावा आवेदन संख्या 206 वर्ष 2016 में दिनांक 19.05.2016 को पारित निर्णय और अधिनिर्णय के विरुद्ध है, जिसके द्वारा विद्वान अधिकरण ने दावेदारों को 7% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित 4,04,000/- रुपये की राशि प्रदान की है।

5. एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 896 वर्ष 2016 में, विद्वान अधिकरण ने 7% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित 4,52,000/- रुपये की राशि प्रदान की है।

6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि 17.05.2015 को एक दुर्घटना हुई थी, जिसमें श्री सुनील कुमार और उनकी पत्नी श्रीमती माधुरी की मृत्यु हो गई, जो दावेदार संख्या 1 शिव विश्वकर्मा के माता-पिता और दावेदार संख्या 2 व 3 के पुत्र और बहू थे।

7. बताया जाता है कि दुर्घटना तब हुई जब श्री सुनील कुमार अपनी पत्नी के साथ सुबह 09:30 बजे लखनऊ-कानपुर रोड पर मोटरसाइकिल से जा रहे थे और ट्रक संख्या यूपी 78 बीटी 3046 ने उन्हें पीछे से टक्कर मार दी, जिसके परिणामस्वरूप वे दोनों गंभीर रूप से घायल हो गए और उनकी मृत्यु हो गई।

अनुवादित

8. दावा आवेदन दाखिल करने पर, विद्वान अधिकरण ने अधिनिर्णय के माध्यम से दावेदारों को उपर्युक्त राशि प्रदान की है।

9. विशिष्ट निष्कर्ष दिया गया है कि ट्रक के चालक, अर्थात् श्री होरी लाल, के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था और ट्रक का बीमा भी था, और इस प्रकार, यह बीमा कंपनी/अपीलकर्ता है जिसे उक्त अधिनिर्णित राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है।

10. अधिनिर्णय को इस हद तक चुनौती देते हुए कि विद्वान अधिकरण ने यह माना है कि ट्रक के चालक, श्री होरी लाल, के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था, यह तर्क दिया गया है कि श्री होरी लाल के पास परिवहन वाहन (इस मामले में ट्रक) चलाने के लिए वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था और इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि विद्वान अधिकरण ने यह मानने में स्पष्ट त्रुटि की है कि ट्रक चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था तथा परिणामस्वरूप, विद्वान अधिकरण द्वारा की गई उक्त त्रुटि को देखते हुए, यह प्रतिपादित किया गया है कि बीमा कंपनी अधिनिर्णय की उक्त राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं है, बल्कि ट्रक के मालिक को ही इसका भुगतान करना चाहिए।

11. अपने तर्कों के समर्थन में, श्री बनर्जी ने ड्राइविंग लाइसेंस के उद्धरण और फॉर्म 54 के सत्यापन पर भरोसा जताया है, जिसकी एक प्रति स्थगन आवेदन के अनुलग्नक 1 के रूप में दाखिल की गई है।

12. श्री बनर्जी स्पष्ट रूप से कहते हैं कि ड्राइविंग लाइसेंस का उद्धरण और फॉर्म 54 का सत्यापन, जो स्थगन आवेदन के अनुलग्नक 1 के रूप में दाखिल किया गया है, विद्वान अधिकरण के समक्ष कभी दाखिल नहीं किया गया था और इसे पहली बार वर्तमान अपील में दाखिल किया गया है। उनका कहना है कि अपील कार्यवाही की निरंतरता होने के कारण, वह उक्त साक्ष्य को वर्तमान अपील में दाखिल करने के लिए पूरी तरह से सशक्त हैं, जो उन्होंने वास्तव में किया भी है।

13. यह तर्क दिया गया है कि उक्त रिपोर्ट का अवलोकन यह दर्शाता है कि दुर्घटना की तिथि अर्थात 17.05.2015 को, ट्रक चालक श्री होरी लाल के पास परिवहन वाहन के लिए कोई वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था, जैसा कि परिवहन प्राधिकरण, हमीरपुर द्वारा किए गए ड्राइविंग लाइसेंस के सत्यापन से स्पष्ट होता है, जो दर्शाता है कि उनके ड्राइविंग लाइसेंस पर परिवहन वाहन के लिए पृष्ठांकन पहले 30.03.2009 से 19.03.2012 तक था और 30.10.2015 से 29.10.2018 तक के नवीनीकरण के बाद था, जिसका अर्थ यह है कि दुर्घटना की तिथि अर्थात 17.05.2015 को, श्री होरी लाल का ड्राइविंग लाइसेंस परिवहन वाहन चलाने के लिए वैध नहीं था। इस तथ्य की सराहना विद्वान अधिकरण द्वारा नहीं की गई है, जिसके परिणामस्वरूप बीमा कंपनी दावेदारों को अधिनिर्णित राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं है, बल्कि उक्त राशि का भुगतान करने के लिए मालिक ही उत्तरदायी है।

14. कोई अन्य तर्क नहीं दिया गया है।

15. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के उपरांत, यह स्पष्ट होता है कि दावा आवेदन दाखिल होने पर, विद्वान अधिकरण ने विभिन्न मुद्दे निर्धारित किए थे, जिनमें से मुद्दा संख्या 2 यह था कि क्या दुर्घटना की तिथि और समय पर, ट्रक चालक के पास एक वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था? इस संबंध में निष्कर्ष विद्वान अधिकरण द्वारा 26.05.2007 को जारी ड्राइविंग लाइसेंस संख्या 9112003573 की जांच करने के बाद दिया गया है, जिसमें पुराना लाइसेंस संख्या एच-879/हमीरपुर/2007 था, जो 30.10.2012 से 29.10.2015 तक वैध था और यह रिकॉर्ड पर पेपर संख्या 10ग/6 के रूप में भी उपलब्ध है।

16. न्यायालय ने विद्वान विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड से पेपर संख्या 10ग/6 का अवलोकन किया है।

17. उक्त कागजात का अवलोकन यह दर्शाता है कि यह लाइसेंसिंग प्राधिकरण द्वारा विधिवत हस्ताक्षरित ड्राइविंग लाइसेंस का एक प्रपत्र है और ड्राइविंग लाइसेंस संख्या 9112003573 है, जिसे 26.05.2007 को जारी किया गया था और यह 29.10.2015 तक वैध था। लाइसेंस यह भी दर्शाता है कि धारक को संपूर्ण भारत में निम्नलिखित विवरणों वाले वाहनों को चलाने का लाइसेंस प्राप्त है, जिसमें हल्के मोटर वाहन, मध्यम माल वाहन, मध्यम यात्री मोटर वाहन, भारी माल वाहन और भारी यात्री मोटर वाहन भी शामिल हैं। दुर्घटना 17.05.2015 को हुई थी और लाइसेंस 29.10.2015 तक वैध था, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दुर्घटना में शामिल वाहन के चालक के पास दुर्घटना की तिथि को भारी माल वाहन, इस मामले में ट्रक, चलाने के लिए एक प्रभावी और वैध ड्राइविंग लाइसेंस था। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि विद्वान अधिकरण द्वारा तथ्य का एक विशिष्ट निष्कर्ष दिया गया था।

18. संयोगवश, अपीलकर्ता का यह मामला नहीं है कि विद्वान अधिकरण के समक्ष दाखिल किया गया ड्राइविंग लाइसेंस जाली या कूट रचित है और विद्वान अधिकरण के समक्ष बीमा कंपनी द्वारा इस संबंध में कोई मामला भी नहीं उठाया गया था।

19. जहां तक ड्राइविंग लाइसेंस के उद्धरण और फॉर्म 54 के सत्यापन का संबंध है, जिसे वर्तमान अपील में अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में दाखिल करने का प्रयास किया गया है, यह विचार करना होगा कि क्या इसे पहली बार यहाँ दाखिल किया जा सकता है।

20. सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 41, नियम 27 अपीलीय न्यायालय में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने से संबंधित है। उक्त प्रावधान यह निर्धारित करता है कि अपील के पक्षकार अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के हकदार नहीं होंगे, लेकिन यदि:

(क) वह न्यायालय जिसके निर्णय के विरुद्ध अपील की गई है, ने साक्ष्य को स्वीकार करने से इनकार कर दिया हो, या

(कक) जो पक्षकार अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करना चाहता है, वह यह सिद्ध कर दे कि उचित परिश्रम के बावजूद, ऐसा साक्ष्य उसके संज्ञान में नहीं था या उचित परिश्रम के बाद भी, उसे उस समय प्रस्तुत नहीं किया जा सका जब अपील किया गया निर्णय पारित किया गया था, या

(ख) अपीलीय न्यायालय को किसी दस्तावेज को प्रस्तुत किए जाने की आवश्यकता हो, तो अपीलीय न्यायालय ऐसे साक्ष्य या दस्तावेज को प्रस्तुत करने की अनुमति दे सकता है।

21. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 के नियम 27 का उप-नियम (2) यह भी प्रावधान करता है कि जहां भी अपीलीय न्यायालय द्वारा अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाती है, वहां न्यायालय को उक्त स्वीकृति का कारण अभिलिखित करना होगा।

22. हालांकि, अपनी दलीलों में श्री बनर्जी ने जोर देकर कहा है कि स्थगन आवेदन के अनुलग्नक 1 को वर्तमान अपील में अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में दाखिल किया जा रहा है, लेकिन उस शपथपत्र के अवलोकन से, जिसके साथ अनुलग्नक 1 दाखिल किया गया है, यह संकेत मिलता है कि उक्त दस्तावेज को अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में दाखिल नहीं किया गया है, बल्कि इसे केवल स्थगन आवेदन के एक अनुलग्नक के रूप में संलग्न किया गया है। दिलचस्प बात यह है कि स्थगन आवेदन के समर्थन में पूरा शपथपत्र केवल उस ड्राइविंग लाइसेंस के बारे में बात करता है जिसे विद्वान अधिकरण के समक्ष दाखिल किया गया था।

23. यदि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार करते हुए, उक्त अनुलग्नक को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के अंतर्गत "अतिरिक्त साक्ष्य" के रूप में मान भी लिया जाए, तो भी तथ्य यह बना रहेगा कि शपथपत्र कहीं भी यह संकेत नहीं देता है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने अनुलग्नक को साक्ष्य के रूप में स्वीकार करने से इनकार किया था, या यह कि अपीलकर्ता द्वारा उचित परिश्रम के बावजूद, वह अनुलग्नक 1 को प्राप्त नहीं कर सका था, साथ ही, उक्त अनुलग्नक के साथ आदेश 41, नियम 27 के तहत उसे अतिरिक्त साक्ष्य मानने के लिए कोई आवेदन भी संलग्न नहीं है तथा परिणामस्वरूप, यह न्यायालय स्थगन आवेदन के साथ दाखिल अनुलग्नक 1 को अतिरिक्त साक्ष्य मानने के संबंध में अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क से प्रभावित नहीं है।

24. इस संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **संजय कुमार सिंह बनाम झारखंड राज्य 2022 (7) एससीसी 247, शिवाजीराव निलंगेकर पाटिल बनाम डॉ. महेश माधव गोसावी व अन्य 1987 (1) एससीसी 227, जगदीश प्रसाद पटेल (मृतक) उनके कानूनी उत्तराधिकारियों के माध्यम से बनाम शिवनाथ 2019 (6) एससीसी 82 और भारत संघ बनाम इब्राहिम उद्दीन व अन्य 2012 (8) एससीसी 148** के निर्णयों का उल्लेख करना उचित होगा।

25. हालाँकि, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उक्त दस्तावेज पर विचार करने के आग्रह को देखते हुए, न्यायालय उक्त दस्तावेज पर भी विचार करता है।

26. जहाँ तक उस दस्तावेज का संबंध है जिसे अपील के साथ दाखिल किया गया है, जिसके बारे में कहा गया है कि यह परिवहन प्राधिकरण, हमीरपुर से प्राप्त सत्यापन है, तो यह स्पष्ट होता है कि उक्त सत्यापन उस ड्राइविंग लाइसेंस से संबंधित नहीं है जो विद्वान अधिकरण के समक्ष दाखिल किया गया था, अर्थात ड्राइविंग लाइसेंस संख्या 9112003573।

27. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता यह दर्शाने में भी विफल रहे हैं कि उक्त सत्यापन का संबंध उस ड्राइविंग लाइसेंस से कैसे जोड़ा जा सकता है जिसे विद्वान अधिकरण के समक्ष दाखिल किया गया था और इस प्रकार, विद्वान अधिकरण के समक्ष श्री होरी लाल के दाखिल किए गए ड्राइविंग लाइसेंस के जाली या कूट रचित होने का कोई साक्ष्य प्रस्तुत न किए जाने और उक्त ड्राइविंग लाइसेंस का किसी भी प्रकार से खंडन न किए जाने के कारण, यह नहीं कहा जा सकता है कि विद्वान अधिकरण ने यह निष्कर्ष निकालने में कोई त्रुटि की है कि दुर्घटना की तिथि पर चालक, श्री होरी लाल, के पास एक वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था।

28. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, इस मामले में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं बनता है।

29. तदनुसार, अपील **खारिज** की जाती है।

30. अपील के विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड को नियमानुसार वापस भेजा जाए।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1614

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत मामले संख्या 2495 वर्ष 2016

वक्फ मदरसा कासिमुल उलूम **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
अजय कुमार सिंह, आशीष कुमार सिंह, जनार्दन मिश्रा, रजनी कांत चौबे

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

सिविल कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 227 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश VI नियम 17 - वक्फ अधिनियम, 1995 - धारा 3(ए), 3(आर) और 3(एस) --- प्रतिवादियों के लिखित कथन में संशोधन के लिए आवेदन को स्वीकार करने वाले आदेश को चुनौती देने वाली याचिका --- वादी द्वारा किया गया संपूर्ण निर्माण राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या-73 की भूमि पर स्थित है और याचिकाकर्ता वक्फ संपत्ति की आड़ में अपने अधिकारों का दावा कर रहा है। प्रतिवादियों ने अपने लिखित कथन में संशोधन के लिए सही ढंग से आवेदन दायर किया था, इस आधार पर कि विचाराधीन भूमि का स्वामी भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण है, क्योंकि निर्माण राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या-73 पर खड़े हैं जो वादियों का नहीं है---वादी ने राष्ट्रीय राजमार्गों की भूमि पर निर्माण किया है और उस ढांचे को विभिन्न व्यक्तियों को किराए पर दिया हुआ है तथा इसे 'वक्फ मदरसा' की संपत्ति मानकर किराया वसूल रहा है। इसे 'उपयोग द्वारा वक्फ' का मामला नहीं कहा जा सकता क्योंकि विवादित संपत्ति का स्वामी भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण है, जो केंद्र सरकार के सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय के नियंत्रण में है।

याचिका खारिज। (ई-15)

<u>संदर्भित वादों की सूची-:</u>
हीरालाल बनाम कल्याण मल व अन्य, 1998 एआईआर (एससी) 618

(माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल द्वारा पारित)

1. इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी-प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 के विरुद्ध मूल वाद संख्या 9 वर्ष 2011 संस्थित किया था, जिसमें विवादित संपत्ति को गिराने और उस पर नया निर्माण करने से उन्हें रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा का अनुतोष मांगा गया था।

2. वाद पत्र में यह अभिवचन किया गया था कि वादी 'ए', 'बी', 'सी' और 'डी' के रूप में चिह्नित मानचित्र में वर्णित संपत्ति का स्वामी और भूस्वामी है। इसे प्रतिवादी संख्या 1 और 2 को 34 रुपये प्रति माह के किराए पर दिया गया है। वाद पत्र के पैरा 2 में यह कहा गया है कि उक्त मदरसे में एक मस्जिद का निर्माण किया गया है, जहाँ गरीब बच्चों को बुनियादी शिक्षा दी जाती है और मदरसे का संचालन किए गए अंशदान पर निर्भर है। वाद पत्र के पैरा 3 में आगे यह कहा गया है कि उक्त संपत्ति पर थाना गगलहेड़ी की एक पुलिस चौकी स्थित है, और चूंकि पुलिस थाने की नई इमारत का निर्माण हो चुका है, इसलिए उक्त पुलिस चौकी अनुपयोगी हो गई है और उस पर ताला लटका हुआ है। इसके अतिरिक्त, पैरा 4 में यह कहा गया है कि प्रतिवादी पुलिस चौकी की छत को हटा रहे थे और वहां स्थित ढांचे को गिरा रहे थे।

3. प्रतिवादी-प्रत्यर्थी ने वाद का प्रतिवाद किया और 08.03.2011 को अपना लिखित कथन दाखिल किया, जिसमें केवल 34 रुपये प्रति माह की किराएदारी को स्वीकार किया गया, लेकिन वाद पत्र की शेष सामग्री का खंडन किया गया। अतिरिक्त अभिवचनों में, पैरा 7 में विशेष रूप से यह कहा गया था कि वादी ने संपत्ति को वक्फ संपत्ति होने का दावा किया है, लेकिन वक्फ बोर्ड के समक्ष इसे वक्फ के रूप में पंजीकृत नहीं कराया गया है, इसलिए वादी को उक्त वाद को बनाए रखने का कोई अधिकार नहीं है।

4. वाद के लंबित रहने के दौरान, प्रतिवादियों द्वारा 12.11.2014 को अपने लिखित कथन में संशोधन के लिए एक संशोधन आवेदन प्रस्तुत किया गया था। विचारण न्यायालय द्वारा उक्त आवेदन को 22.5.2015 को स्वीकार कर लिया गया था, जिसके विरुद्ध याचिकाकर्ता ने पुनरीक्षण संख्या 107 वर्ष 2015 दायर की थी, जिसे 18.3.2016 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया है; अतः यह वर्तमान रिट याचिका है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्रस्तावित संशोधन के माध्यम से, प्रतिवादी अपने लिखित कथन में किए गए स्वीकारोक्ति से पीछे हटने का प्रयास कर रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप बचाव का आधार बदल जाएगा और यह वाद की कार्यवाही को प्रभावित करेगा। उनके अनुसार, प्रस्तावित संशोधन की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि प्रतिवादियों ने एक नया मामला खड़ा कर दिया है कि वादियों के पास मामले को आगे बढ़ाने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि वे इसके स्वामी नहीं हैं। इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **हीरालाल बनाम कल्याण मल व अन्य, 1998 एआईआर (एससी) 618** के निर्णय पर भरोसा जताया गया है।

6. प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता, श्री संजय कुमार सिंह ने तर्क दिया कि यह मामला प्रतिवादियों द्वारा किसी स्वीकारोक्ति से पीछे हटने का नहीं है। वास्तव में, वर्ष 2011 में प्रतिवादियों द्वारा अपना लिखित कथन दाखिल करने के बाद, प्रतिवादियों को सहायक अभियंता, राष्ट्रीय राजमार्ग, लोक निर्माण विभाग, सहारनपुर से दिनांक 18.9.2014 का एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 73 पर निर्मित पुलिस चौकी को हटाने की मांग की गई थी, और रिकॉर्ड के अनुसार, उक्त राजमार्ग की चौड़ाई 135 फीट है। राजमार्ग को भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण, सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय, भारत सरकार (जिसे आगे "एनएचएआई" कहा गया है) को हस्तांतरित किया जाना था। राष्ट्रीय राजमार्ग विकास कार्यक्रम, चरण-IV बी द्वारा राजमार्गों के चौड़ीकरण का प्रस्ताव दिया गया है। इसके बाद उन्होंने तर्क दिया कि सहायक अभियंता, राष्ट्रीय राजमार्ग खंड, लोक निर्माण विभाग, सहारनपुर के कार्यालय को 26.9.2014 को एक और पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें यह अनुरोध किया गया था कि राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 73 पर स्थित अनाधिकृत निर्माण को तुरंत रोका जाना चाहिए। 13.10.2014 को, अधिशासी अभियंता, राष्ट्रीय राजमार्ग खंड, लोक निर्माण विभाग, सहारनपुर ने प्रतिवादियों को संबोधित करते हुए पुनः एक पत्र लिखा, जिसमें उनसे राष्ट्रीय राजमार्ग की भूमि पर खड़े अनाधिकृत निर्माणों को हटाने की मांग की गई।

7. राष्ट्रीय राजमार्ग प्रभाग के अधिकारियों से प्राप्त पत्रों के आधार पर ही 12.11.2014 को लिखित कथन में संशोधन के लिए संशोधन आवेदन प्रस्तुत किया गया था। उनके अनुसार, वादी-याचिकाकर्ता ने राष्ट्रीय राजमार्ग की भूमि पर अतिक्रमण किया है और यह पुलिस चौकी तथा अन्य दुकानें वहां निर्मित की गई हैं, जिन्हें राष्ट्रीय राजमार्ग प्रभाग के अधिकारियों के पत्रों के अनुपालन में गिराया जाना आवश्यक है। दोनों अवर न्यायालयों ने संशोधन आवेदन को स्वीकार करने की कार्रवाई सही ढंग से की थी।

8. मैंने पक्षकारों के संबंधित अधिवक्ताओं को सुना है और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का अवलोकन किया है।

9. यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है जहाँ वादी द्वारा एनएचएआई की भूमि पर अतिक्रमण किया गया है और मदरसा, मस्जिद व अन्य कुछ निर्माण कार्य किए गए हैं तथा संपत्ति को 'वक्फ' होने का दावा किया जा रहा है।

10. विचाराधीन मुद्दे पर निर्णय लेने से पहले, मामले की बेहतर समझ के लिए वक्फ अधिनियम, 1995 (जिसे इसके बाद "1995 का अधिनियम" कहा गया है) के कुछ प्रावधानों पर सरसरी निगाह डालना प्रासंगिक है।

11. 1995 के अधिनियम की धारा 3(ए) "लाभभोगी" को परिभाषित करती है, जो इस प्रकार है:
"लाभभोगी" का अर्थ वह व्यक्ति या वस्तु है जिसके लाभ के लिए वक्फ बनाया गया है और इसमें धार्मिक, पुण्यार्थ और धर्मार्थ उद्देश्य तथा मुस्लिम कानून द्वारा स्वीकृत सार्वजनिक उपयोगिता के अन्य कोई भी उद्देश्य शामिल हैं।

12. 1995 के अधिनियम की धारा 3(आर) "वक्फ" को परिभाषित करती है, जो इस प्रकार है:
"वक्फ" का अर्थ है किसी व्यक्ति द्वारा किसी जंगम या स्थावर संपत्ति का मुस्लिम कानून द्वारा पुण्यार्थ, धार्मिक या धर्मार्थ कार्यों के लिए मान्यता प्राप्त किसी भी उद्देश्य के लिए किया गया स्थायी समर्पण, और इसमें निम्नलिखित शामिल हैं–

(i) उपयोग द्वारा वक्फ, लेकिन ऐसा वक्फ केवल इस कारण से वक्फ नहीं रह जाएगा कि उपयोग बंद हो गया है, चाहे ऐसी समाप्ति की अवधि कितनी भी हो;

(ii) राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज शमलात पट्टी, शमलात देह, जुमला मालकान या किसी अन्य नाम से दर्ज संपत्ति;

(iii) "अनुदान", जिसमें मुस्लिम कानून द्वारा पुण्यार्थ, धार्मिक या धर्मार्थ के रूप में मान्यता प्राप्त किसी भी उद्देश्य के लिए 'मश्रत-उल-खिदमत' शामिल है; और

(iv) वक्फ-अलल-औलाद, उस सीमा तक जिस तक संपत्ति मुस्लिम कानून द्वारा पुण्यार्थ, धार्मिक या धर्मार्थ के रूप में मान्यता प्राप्त किसी उद्देश्य के लिए समर्पित है, बशर्ते कि जब उत्तराधिकार की श्रृंखला समाप्त हो जाती है, तो वक्फ की आय शिक्षा, विकास, कल्याण और मुस्लिम कानून द्वारा मान्यता प्राप्त ऐसे अन्य उद्देश्यों के लिए खर्च की जाएगी, और "वाकिफ" का अर्थ ऐसा समर्पण करने वाला कोई भी व्यक्ति है;

13. 1995 के अधिनियम की धारा 3(एस) "वक्फ विलेख" को परिभाषित करती है, जो इस प्रकार है:
"वक्फ विलेख" का अर्थ कोई भी विलेख या दस्तावेज है जिसके द्वारा वक्फ का निर्माण किया गया है और इसमें कोई भी वैध बाद का विलेख या दस्तावेज शामिल है जिसके द्वारा मूल समर्पण की शर्तों में से किसी में बदलाव किया गया है।"

14. 1995 के अधिनियम का अध्याय II "औकाफ के सर्वेक्षण" का प्रावधान करता है। धारा 4 औकाफ के प्रारंभिक सर्वेक्षण का प्रावधान करती है। धारा 5 औकाफ की सूची के प्रकाशन का प्रावधान करती है। 1995 के अधिनियम की धारा 4 की उप-धारा (3) के तहत रिपोर्ट प्राप्त होने पर राज्य सरकार उसकी एक प्रति बोर्ड को भेजेगी। बोर्ड उसे भेजी गई रिपोर्ट की जांच करेगा और सरकारी राजपत्र में प्रकाशन के लिए उसे छह महीने के भीतर वापस सरकार को भेज देगा। औकाफ के संबंध में विवाद की स्थिति में, जब यह प्रश्न उठता है कि औकाफ की सूची में वक्फ संपत्ति के रूप में निर्दिष्ट कोई विशेष संपत्ति वक्फ संपत्ति है या नहीं, या क्या ऐसी सूची में निर्दिष्ट वक्फ शिया वक्फ है या सुन्नी वक्फ, तो बोर्ड, वक्फ का मुतवल्ली या कोई भी व्यथित व्यक्ति प्रश्न के निर्णय के लिए ट्रिब्यूनल में वाद दायर कर सकता है और ट्रिब्यूनल का निर्णय अंतिम होगा।

15. 1995 के अधिनियम के प्रारंभ होने से पहले, वक्फ अधिनियम 1954, जिसे 1959, 1964 और 1969 में तीन बार संशोधित किया गया था, इस क्षेत्र को नियंत्रित कर रहा था। 1954 के अधिनियम से पहले, जो अधिनियम इस क्षेत्र को नियंत्रित कर रहे थे, वे थे:

(i) मुसलमान वक्फ वैलिडेटिंग अधिनियम, 1913
(ii) ऑफिशियल ट्रस्टीज अधिनियम, 1913
(iii) चैरिटेबल एंड रिलिजियस ट्रस्ट्स अधिनियम, 1920
(iv) मुसलमान वक्फ अधिनियम, 1923
(v) हैदराबाद एंडोमेंट्स रेगुलेशन, 1349 फसली
(vi) बिहार एंड उड़ीसा मुसलमान वक्फ अधिनियम, 1926
(vii) बॉम्बे मुसलमान वक्फ अधिनियम, 1935
(viii) बंगाल वक्फ अधिनियम, 1934
(ix) दिल्ली मुस्लिम वक्फ अधिनियम, 1943
(x) यूनाइटेड प्रोविंसेस मुस्लिम वक्फ्स अधिनियम, 1936
(xi) बिहार वक्फ अधिनियम, 1947

16. इस प्रकार, वक्फ के विषय पर पूर्ववर्ती अधिनियमों को मिलाकर पढ़ने से यह स्पष्ट है कि 'वक्फ' का अर्थ है किसी व्यक्ति द्वारा किसी जंगम या स्थावर संपत्ति का मुस्लिम कानून द्वारा पुण्यार्थ, धार्मिक या धर्मार्थ कार्यों के लिए मान्यता प्राप्त किसी भी उद्देश्य हेतु किया गया स्थायी समर्पण। 1995 के अधिनियम के अनुसार, इसमें उपयोग द्वारा वक्फ, राजस्व रिकॉर्ड में किसी भी नाम से दर्ज शमलात पट्टी, शमलात देह, जुमला मालकान; मुस्लिम कानून द्वारा पुण्यार्थ, धार्मिक या धर्मार्थ के रूप में मान्यता प्राप्त किसी भी उद्देश्य के लिए 'मश्रत-उल-खिदमत' सहित अनुदान; और वक्फ-अलल-औलाद, उस सीमा तक जहाँ संपत्ति मुस्लिम कानून द्वारा पुण्यार्थ, धार्मिक या धर्मार्थ के रूप में मान्यता प्राप्त किसी उद्देश्य के लिए समर्पित है, शामिल हैं। बशर्ते कि जब उत्तराधिकार की श्रृंखला समाप्त हो जाए, तो वक्फ की आय शिक्षा, विकास, कल्याण और मुस्लिम कानून द्वारा मान्यता प्राप्त ऐसे अन्य उद्देश्यों के लिए खर्च की जाएगी। "वाकिफ" का अर्थ ऐसा समर्पण करने वाला कोई भी व्यक्ति है।

17. "वक्फ विलेख" का अर्थ कोई भी विलेख या दस्तावेज है जिसके द्वारा वक्फ का निर्माण किया गया है और इसमें कोई भी वैध बाद का विलेख या दस्तावेज शामिल है जिसके द्वारा मूल समर्पण की शर्तों में से किसी में बदलाव किया गया है।

18. इस प्रकार, एक वैध वक्फ के लिए जो आवश्यक विशेषता निकलकर आती है, वह यह है कि संपत्ति का समर्पण सर्वशक्तिमान ईश्वर के स्वामित्व में होना चाहिए और मानव जाति के लाभ के लिए मुनाफे का समर्पण होना चाहिए।

19. मुस्लिम विद्वानों में से एक, सैयद अमीर अली ने इस प्रकार कहा है:

"मुस्लिम कानून की उत्पत्ति इस्लाम के पैगंबर द्वारा निर्धारित एक नियम से हुई है; और इसका अर्थ है: संपत्ति को सर्वशक्तिमान ईश्वर के स्वामित्व में बांधना और मानव जाति के लाभ के लिए मुनाफे का समर्पण। वक्फ के निर्माण के परिणामस्वरूप, वाकिफ का अधिकार समाप्त हो जाता है और स्वामित्व सर्वशक्तिमान ईश्वर को हस्तांतरित हो जाता है। वक्फ का प्रबंधक मुतवल्ली होता है, जो कि प्रशासक, अधीक्षक या क्यूरेटर होता है। लेकिन उस हैसियत में, उसे वक्फ की संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता है; संपत्ति उसमें निहित नहीं होती है और वह कानूनी अर्थों में ट्रस्टी (न्यासी) नहीं होता है।"

20. वाद को पढ़ने से यह पता चलता है कि वक्फ मदरसा के ऊपर एक मस्जिद का निर्माण किया गया है, साथ ही कुछ अन्य ढांचों का भी निर्माण किया गया है, जिनमें से एक को प्रतिवादियों को किराए पर दिया गया है। इस बात का कोई खुलासा नहीं है कि विचाराधीन संपत्ति वक्फ कैसे है और इसका पंजीकरण कब हुआ था। प्रतिवादियों ने अपने लिखित कथन में अतिरिक्त दलीलों में स्पष्ट रूप से कहा है कि उक्त वक्फ का कोई पंजीकरण नहीं है और न ही वाद में इसका कोई उल्लेख किया गया है।

21. यह बाद की घटना थी, जो वर्ष 2014 में हुई, जब भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण ने सड़क चौड़ीकरण के लिए कदम उठाए और इसने प्रतिवादियों को राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या-73 की भूमि पर किए जा रहे निर्माण को रोकने और उसे हटाने के लिए कहा, क्योंकि एनएचएआई राष्ट्रीय राजमार्गों के चौड़ीकरण के लिए 'राष्ट्रीय राजमार्ग विकास कार्यक्रम, चरण-IV बी' के तहत कार्रवाई कर रहा था, और वहां मौजूद अवैध निर्माणों, जैसे कि पुलिस चौकी और अन्य दुकानों को गिराया जाना आवश्यक था। इस संबंध में राष्ट्रीय राजमार्ग प्रभाग द्वारा थाना प्रभारी, नागलहेड़ी को 18.09.2014, 26.09.2014 और 13.10.2014 को लिखे गए पत्रों को नीचे उद्धृत किया गया है:

"सेवा में,

थानाध्यक्ष,
थाना गागलहेडी,
जिला- सहारनपुर।

महोदय,

अवगत कराना है कि पुलिस विभाग द्वारा राष्ट्रीय मार्ग सं. 73 (नया रा.मा. सं. 344) के किमी. 36. चैनेज 35.772 पर मार्ग के बांयी तरफ पुलिस चौकी का निर्माण कर लिया गया है। यह पुलिस चौकी का निर्माण राष्ट्रीय मार्ग सं. 73 (नया रा.मा. सं. 344) की भूमि पर स्थित है। अभिलेखों के अनुसार यहां पर "राईड वर्ष वे" (मार्ग की भूमि की चौड़ाई) 135 फीट है।

शीघ्र ही निकट भविष्य में यह मार्ग भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण, सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्रालय, भारत सरकार को हस्तान्तारित किया जाना प्रस्तावित है। भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण, द्वारा

एन.एच.डी.पी. फेज-4 बी (National Highways Development Programme, Phase-IV B) के अन्तर्गत इस मार्ग का चौड़ीकरण व सुदृढ़ीकरण प्रस्तावित है जिसके लिये निविदा शीघ्र ही फ्लोट की जाने वाली है।

उपरोक्त के दृष्टिगत अनुरोध है कि उक्त स्थान पर निर्मित की गयी पुलिस चौकी को शीघ्र ही हटाने की कार्यवाही करने का कष्ट करें। सूचनार्थ व आवश्यक कार्यवाही हेतु प्रेषित है।

सहायक अभियंता
राष्ट्रीय मार्ग खण्ड, लो०नि०वि०
सहारनपुर
दिनांकः 18/09/2014
"दिनांक 26/09/2014

सेवा में

थानाध्यक्ष,
थाना गागलहेडी,
जिला- सहारनपुर।

विषय- राष्ट्रीय मार्ग सं. 73 (नया रा.मा. सं. 344) के चैनेज किमी. 35.800 पर मार्ग के बांयी तरफ गागलहेडी में राष्ट्रीय मार्ग की भूमि पर किये जा रहे अवैध निर्माण को रोकने के सम्बन्ध में !

संदर्भ- इस कार्यालय के नोटिस का पत्रांकः 43/2 सी-कैम्प-2, दिनांक 10.08.2014, पत्रांकः 14/2 सी-कैम्प ए.ई.-11. दिनांक 03.04.2014 एवं पत्रांक: 58/2 सी (कैम्प ए.ई. द्वितीय), दिनांक 26/09/2014

महोदय,

कृपया उपरोक्त विषय के सम्बन्ध में अवगत कराना है राष्ट्रीय नार्ग सं . 73 (नया रा.मा. सं. 344) के चैनेज किमी. 35.800 पर मार्ग के बांयी तरफ मध्य से 53 फीट की दूरी पर श्री मौ. तहसीन, कासिममुलउलूम मदरसा अधिकारी, गागलहेडी, जिला सहारनपुर द्वारा अनाधिकृत निर्माण किया जा रहा है जो कि अतिक्रमण की श्रेणी में आता है। इससे पूर्व इनके द्वारा दुकानों का निर्माण किया गया था जो कि रोड साइड लैन्ड कन्ट्रोल अधिनियम 1945 का उल्लंघन है क्योंकि उनके द्वारा कलेक्टर / जिलाधिकारी की अनुमति नहीं ली गयी है। इस कार्यालय के नोटिस पत्रांक: 43/2 सी-कैम्प 2, दिनांक 10.08.2014, पत्रांकः 14/2 सी-कैम्प ए.ई - 11. दिनांक 03.04.2014 एव पत्राकः 58/2 सी (कैम्प ए.ई-द्वितीय) दिनांक 26.09.2014 द्वारा पूर्व में सम्बन्धित को नोटिस दिया जा चुका है।

अतः अनुरोध है कि राजकीय भूमि पर उक्त अवैध निर्माण को रुकवाने का कष्ट करें। जिसगे राजकीय भूमि पर अतिक्रमण रोका जा सके।

एसडी/-
सहायक अभियन्ता राष्ट्रीय मार्ग खण्ड,
लो0 नि0 वि0
सहारनपुर"
"दिनांक 13/10/2014

अनुवादित

सेवा में,

थानाध्यक्ष,
थाना गागलहेडी,
जिला- सहारनपुर।

विषयः राष्ट्रीय मार्ग संख्या-73 (नया राष्ट्रीय मार्ग संख्या-344) के चैनेज किमी 35.800 पर मार्ग के बांयी तरफ गागलहेडी में राष्ट्रीय मार्ग की भूमि पर किये जा रहे अवैध निर्माण को रोकने के सबन्ध में।
संदर्भः इस कार्यालय के सहायक अभियन्ता का पत्रांक 59/2 सी कैम्प-2, दिनांक 26.09.14
महोदय,

कृपया उपरोक्त संदर्भित पत्र का अवलोकन करने का कष्ट करें जिसके द्वारा सूचित किया गया था कि राष्ट्रीय मार्ग संख्या-73 (नया राष्ट्रीय मार्ग संख्या-344) के चैनेज किमी 35.800 पर (किमी. 35.790 से किमी. 35.826) मार्ग के बांयी तरफ लेपित मार्ग (लेपित मार्ग की कुल चौड़ाई 7.00+5.80= 12.80 मीटर) के किनारे से 13.50 मीटर (44 फीट 3 इंच) की दूरी पर श्री मौहम्मद तहसीन, कासिममुलउलूम मदरसा अधिकारी, गागलहेडी, जिला सहारनपुर द्वारा अनाधिकृत निर्माण किया जा रहा है। अभिलेखों के अनुसार यह निर्माण राष्ट्रीय मार्ग की भूमि पर हो रहा है जो कि अतिक्रमण की श्रेणी में आता है।

[सहारनपुर देहरादून मार्ग, राष्ट्रीय मार्ग सं 73 व 72ए यू.पी. रोड साईड लैण्ड कन्ट्रोल अधिनियम के तहत नोटिफाईड है। राष्ट्रीय, मार्ग 73 के चैनेज 35.800 पर लेपित मार्ग की चौड़ाई 7.00+5.80=12.80 मीटर है तथा मार्ग भूमि "आर.ओ.डब्ल्यू" की कुल चौड़ाई 41.20 मीटर है उक्त स्थान पर 7 मीटर चौड़े लोपित मार्ग के दायीं तरफ 5.80 मीटर चौड़ाई में "वाइडनिंग" काफी समय पूर्व की..... के अनुसार संज्ञान में लाया गया है कि उक्त चैनेज पर लोपित सतह, कुल चौड़ाई 12.80 मीटर, के मध्य से मार्ग के बांयी तरफ राष्ट्रीय मार्ग की भूमि 24.90 मीटर (81 फीट 8 इंच) है व लेपित मार्ग के किनारे से बांयीं तरफ यह 18.50 मीटर (60 फीट 8 इंच) है]

यह भी संज्ञान में लाया गया है कि कई वर्ष पूर्व इनके द्वारा स्वयं की भूमि पर दुकानों का निर्माण किया गया था परन्तु उत्तर प्रदेश रोड साइड लैन्ड कण्ट्रोल अधिनियम 1945 की धारा -5 के अनुसार जिलाधिकारी / कलैक्टर की अनुमति नहीं ली गयी थी। उक्त अधिनियम की धारा 13 के अनुसार, बिना अनुमति कराये गये निर्माण को हटाने / दण्ड लगाने का तथा इस कार्य के लिये लगी धनराशि को " लैण्ड एरियर राजस्व" की तरह रिकवर करने का प्राविधान है।

उपरोक्त के दृष्टिगत अनुरोध है कि श्री मौ. तहसीन द्वारा राष्ट्रीय मार्ग की भूमि पर किये जा रहे निर्माण (अतिक्रमण) को तुरन्त प्रभाव से रूकवाने का कष्ट करें।

एसडी/-
(ओ.पी. सिह)
अधिशासी अभियन्ता
राष्ट्रीय मार्ग खण्ड,
लो.नि.वि.

सहारनपुर"

22. इन पत्राचारों को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि वादी द्वारा किए गए सभी निर्माण राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या-73 की भूमि पर स्थित हैं और याचिकाकर्ता वक्फ संपत्ति की आड़ में अपने अधिकारों का दावा कर रहा है। प्रतिवादियों ने लिखित कथन में संशोधन के लिए इस आधार पर सही ढंग से आवेदन दायर किया था कि विचाराधीन भूमि का स्वामी भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण है, क्योंकि निर्माण राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या-73 पर खड़े हैं जो वादियों का नहीं है। **हीरालाल (उपरोक्त)** मामले में दिए गए निर्णय का संदर्भ इस मामले में लागू नहीं होता है, क्योंकि प्रतिवादियों ने पहले की गई अपनी स्वीकारोक्ति से इनकार नहीं किया है।

23. वास्तव में, प्रतिवादियों को इस तथ्य की जानकारी कभी नहीं थी कि जो पुलिस चौकी संचालित हो रही थी, उसका निर्माण राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या-73 की भूमि पर किया गया था। यह वर्ष 2014 में हुआ जब राष्ट्रीय राजमार्ग प्रभाग के अधिकारियों द्वारा थाना प्रभारी, नागलहेड़ी (प्रतिवादी संख्या-2) के साथ ये पत्राचार किए गए, तब जाकर वास्तविक स्थिति प्रकाश में आई। विचारण न्यायालय ने संशोधन आवेदन को सही ढंग से स्वीकार किया क्योंकि यह प्रतिवादियों की ओर से कोई नया मामला खड़ा नहीं करता है। प्रतिवादी लंबे समय से अनजाने में ₹34 प्रति माह का किराया दे रहे थे, यह स्वीकार करते हुए कि वहां स्थित ढांचा वादी की संपत्ति थी। जब यह पता चला कि निर्माण अनधिकृत हैं और राष्ट्रीय राजमार्ग-73 की भूमि पर स्थित हैं, तब संशोधन की मांग की गई थी।

24. यह न्यायालय यह देखकर आश्चर्यचकित है कि वादी ने राष्ट्रीय राजमार्गों की भूमि पर निर्माण किया है और उस ढांचे को विभिन्न व्यक्तियों को किराए पर दिया हुआ है तथा इसे 'वक्फ मदरसा' की संपत्ति मानकर किराया वसूल रहा है। इसे 'उपयोग द्वारा वक्फ' का मामला नहीं कहा जा सकता क्योंकि विवादित संपत्ति का स्वामी भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण है, जो केंद्र सरकार के सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय के नियंत्रण में है।

25. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मैं पाता हूँ कि प्रतिवादियों-प्रत्यर्थियों द्वारा आदेश VI, नियम 17 सी.पी.सी. के तहत दायर संशोधन आवेदन को स्वीकार करने वाले विचारण न्यायालय के आदेश, और साथ ही पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

26. रिट याचिका विफल रहती है और इसे एतद्द्वारा **खारिज** किया जाता है।

(2025) 5 ILRA 1621

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद **30.05.2025**

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत मामले संख्या - 4107/2024

सम्बद्ध

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत मामले संख्या - 3458/2025

शिव नारायण गुप्ता **...याचिकाकर्ता**

बनाम

गरीब चंद्र **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: हेमंत कुमार

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता: शिव ओम विक्रम सिंह चौहान

सिविल विधि- भारत का संविधान, 1950 अनुच्छेद 227- सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908- धारा 151 --- डिक्री में संशोधन के आवेदन को स्वीकार किया गया था, जिसके विरुद्ध याचिकाकर्ता ने सिविल पुनरीक्षण दायर किया जो खारिज हो गया--- जब इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया कि 1969 का बंदोबस्ती विलेख अस्तित्व में है और वह वादी के कब्जे में नहीं था, तब प्रारंभिक डिक्री के संशोधन का विरोध नहीं किया जा सकता। यदि यह ऐसा मामला होता जहाँ वादी के पास बंदोबस्ती विलेख होता और उसने जानबूझकर उसे रोक कर रखा होता, तब प्रतिवादी प्रारंभिक डिक्री के संशोधन का विरोध कर सकता था और उसके द्वारा प्रस्तुत किया गया निर्णय उसकी सहायता करता। इस बात से भी इनकार नहीं किया गया है कि बंदोबस्त की गई संपत्ति के अधिभोगी के विरुद्ध निष्कासन का वाद वर्ष 2022 में देवता की ओर से संस्थित किया गया है। ऐसी स्थिति होने पर, प्रतिवादी प्रारंभिक डिक्री के संशोधन का विरोध नहीं कर सकता।

याचिका खारिज। (ई-15)

<u>उद्धृत वादों की सूची-:</u>

1. एस. सतनाम सिंह एवं अन्य बनाम सुरेंद्र कौर एवं अन्य (2009) 2 एससीसी 562
2. फूलचंद बनाम गोपाल लाल, 1967 एआईआर (एससी) 1470
3. एस. साई रेड्डी बनाम एस. नारायण रेड्डी, 1991 (3) एससीसी 647

अनुवादित

4. प्रेमा बनाम नान्जे गौड़ा एवं अन्य, 2011 सुप्रीम (एससी) 510

5. बलीराम आत्माराम केलापुरे बनाम इंदिराबाई, 1996 (8) एससीसी 400

(माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल द्वारा सुनाया गया।)

1. ये दोनों रिट याचिकाएं याचिकाकर्ता द्वारा उन आदेशों को चुनौती देते हुए दायर की गई हैं, जो वादी-प्रत्यर्थी द्वारा दायर विभाजन वाद संख्या-62 वर्ष 1995 में दिनांक 31.10.1995 को प्रारंभिक डिक्री तैयार होने के बाद अवर न्यायालय द्वारा पारित किए गए थे।

2. अनुच्छेद 227 के अंतर्गत मामला संख्या-4107 वर्ष 2024, विचारण न्यायालय द्वारा अंतिम डिक्री वाद संख्या-2 वर्ष 2005 में आवेदन 45-ए2 पर पारित आदेश दिनांक 16.02.2024 को चुनौती देता है, जिसके द्वारा वादी-प्रत्यर्थी द्वारा प्रारंभिक डिक्री के संशोधन के लिए दायर आवेदन को स्वीकार किया गया था। साथ ही, यह जिला जज, बांदा द्वारा सिविल पुनरीक्षण संख्या-6 वर्ष 2024 में पारित आदेश दिनांक 11.03.2024 को भी चुनौती देता है, जिसके द्वारा उपरोक्त आदेश के विरुद्ध प्रतिवादी-याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया गया था।

3. अनुच्छेद 227 के अंतर्गत मामला संख्या-3458 वर्ष 2025, सिविल जज (सीनियर डिवीजन), बांदा द्वारा प्रतिवादी-याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए आवेदन (कागज संख्या-171सी-2) पर पारित आदेश दिनांक 29.10.2024 को चुनौती देने के लिए दायर किया गया है। साथ ही, यह अपर जिला जज-प्रथम, बांदा द्वारा सिविल पुनरीक्षण संख्या-33 वर्ष 2024 में पारित आदेश दिनांक 22.01.2025 को भी चुनौती देता है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता की पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया गया और विचारण न्यायालय के आदेश की पुष्टि कर दी गई।

4. वर्तमान रिट याचिकाएं दायर करने से संबंधित तथ्य इस प्रकार हैं कि महदी उर्फ महादेव की दो पुत्रियां थीं, एक श्रीमती सुंदी और दूसरी श्रीमती रामिया। श्रीमती सुंदी कम उम्र में ही विधवा हो गई थीं और उनकी कोई संतान नहीं थी। श्रीमती सुंदी की सगी बहन रामिया के दो पुत्र थे, राम नारायण और मैयादीन। मैयादीन की मृत्यु नि:संतान हो गई थी, जबकि राम नारायण के दो पुत्र थे–शिव नारायण और गरीब चंद्र, जो इस वाद के वर्तमान वादी और प्रतिवादी हैं। राम नारायण की मृत्यु के पश्चात, गरीब चंद्र और शिव नारायण को वाद-पत्र की अनुसूची 'ए', 'बी', 'सी' और 'डी' में दी गई संपत्तियों में समान हिस्सा विरासत में मिला।

5. प्रत्यर्थी, गरीब चंद्र ने वाद संपत्ति में आधे हिस्से के बंटवारे के लिए प्रतिवादी-याचिकाकर्ता, शिव नारायण के विरुद्ध मूल वाद संख्या-62 वर्ष 1995 दायर किया। दिनांक 31.10.1995 को एक प्रारंभिक डिक्री तैयार की गई, जिसमें यह घोषित किया गया कि वाद संपत्ति में वादी और प्रतिवादी, प्रत्येक का आधा हिस्सा है। प्रारंभिक

डिक्री तैयार होने के पश्चात, वादी-प्रत्यर्थी ने अंतिम डिक्री तैयार करने के लिए दिनांक 19.04.2005 को एक आवेदन दिया, जिसे अंतिम डिक्री वाद संख्या-2 वर्ष 2005 के रूप में पंजीकृत किया गया।

6. दिनांक 14.03.2018 को वादी-प्रत्यर्थी ने संबंधित न्यायालय के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के तहत डिक्री में संशोधन के लिए एक आवेदन (45-ए2) दिया। यह संशोधन इस सीमा तक मांगा गया था कि श्रीमती सुंदी ने वाद-पत्र की अनुसूची 'ख' में दी गई संपत्ति के एक भाग को दिनांक 26.02.1969 के एक बंदोबस्ती विलेख के माध्यम से भगवान महावीर स्वामी के पक्ष में समर्पित कर दिया था। दिनांक 16.02.2024 को इस आवेदन को स्वीकार कर लिया गया और डिक्री को उस संपत्ति की सीमा तक संशोधित किया गया, जो दिनांक 26.02.1969 के बंदोबस्ती विलेख का विषय थी। उक्त आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने सिविल पुनरीक्षण संख्या-6 वर्ष 2024 दायर किया, जिसे 11.03.2024 को खारिज कर दिया गया।

7. इसी बीच, याचिकाकर्ता ने विचारण न्यायालय के समक्ष एक आवेदन (कागज संख्या-171सी-2) दायर किया कि दिनांक 26.02.1969 का बंदोबस्ती विलेख शून्य था, क्योंकि श्रीमती सुंदी ने 26.12.1963 को राम नारायण, शिव नारायण और गरीब चंद्र के पक्ष में एक विक्रय विलेख निष्पादित किया था और उसी दिन श्रीमती रामिया ने अपने घर के हिस्से का विक्रय विलेख श्रीमती सुंदी के पक्ष में निष्पादित किया था। अतः, प्रारंभिक डिक्री में संशोधन नहीं किया जा सकता था क्योंकि श्रीमती सुंदी के पास 26.02.1969 के बंदोबस्ती विलेख को निष्पादित करने का कोई अधिकार नहीं था। उक्त आवेदन को 29.10.2024 को खारिज कर दिया गया, जिसके विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा सिविल पुनरीक्षण संख्या-33 वर्ष 2024 प्रस्तुत किया गया, जिसे दिनांक 22.01.2025 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है, अतः वर्तमान रिट याचिका।

8. दोनों रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि प्रारंभिक डिक्री में संशोधन के लिए वादी-प्रत्यर्थी के अनुरोध पर दिया गया आवेदन पोषणीय नहीं था, क्योंकि 1969 के बंदोबस्ती विलेख को प्रभावी नहीं किया जा सकता है, क्योंकि जब प्रारंभिक डिक्री पारित की गई थी, तब इस तथ्य को विचारण न्यायालय के समक्ष कभी नहीं रखा गया था। इसके बाद उन्होंने तर्क दिया कि इस न्यायालय के समक्ष कार्यवाही के दौरान प्रति-शपथ पत्र के माध्यम से पहली बार श्रीमती सुंदी और श्रीमती रामिया द्वारा 26.12.1963 को विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने का तथ्य रिकॉर्ड पर लाया गया था। उनके अनुसार, यदि श्रीमती सुंदी ने वर्ष 1963 में अपने हिस्से के संबंध में विक्रय विलेख निष्पादित कर दिया था, तो उन्हें वर्ष 1969 में बंदोबस्ती विलेख निष्पादित करने का कोई अधिकार नहीं था। उन्होंने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा फूलचंद बनाम गोपाल लाल**, 1967** एआईआर **(**एससी**) 1470,** एस**.** साई रेड्डी बनाम एस**.** नारायण रेड्डी**, 1991 (3)** एससीसी **647,** प्रेमा बनाम नान्जे गौड़ा एवं अन्य**, 2011** सुप्रीम **(**एससी**) 510,** बलीराम आत्माराम केलापुरे बनाम इंदिराबाई**, 1996 (8)** एससीसी **400 वादों में दिए गए निर्णयों पर भरोसा किया है**

9. विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य पर बल दिया कि अंतिम डिक्री के लंबित रहने के दौरान, किसी पक्षकार की मृत्यु या कानून में बदलाव जैसी हस्तक्षेपकारी घटनाओं के कारण हिस्सों में परिवर्तन किया जा सकता है।

उनके अनुसार, पुरानी घटनाएं, जो प्रारंभिक डिक्री पारित होने या वाद दायर किए जाने से पहले घटित हुई थीं, उन्हें संज्ञान में नहीं लिया जा सकता है।

10. प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री विष्णु गुप्ता ने तर्क दिया कि इस तथ्य से कोई इनकार नहीं है कि श्रीमती सुंदी ने 26.02.1969 को भगवान महावीर स्वामी के पक्ष में एक बंदोबस्ती विलेख निष्पादित किया था। उनके अनुसार, जब प्रश्नगत दुकान के संबंध में बंदोबस्त किया गया था, तब वह उस संपत्ति की पूर्ण स्वामी और उस पर काबिज थीं। यह दस्तावेज़ वादी-प्रत्यर्थी के कब्जे में नहीं था और पहली बार 07.09.2017 को एक पुराने किराएदार मोहम्मद अजीज अंसारी से प्रत्यर्थी की जानकारी में आया, जिसके बाद आवेदन (कागज संख्या 45-ए2) प्रस्तुत किया गया। इसके अतिरिक्त, बंदोबस्त की गई संपत्ति के कब्जे के लिए संपत्ति के अधिभोगी के विरुद्ध देवता की ओर से वर्ष 2022 में मूल वाद संख्या-244 पहले ही दायर किया जा चुका है। उनके अनुसार, एक बार बंदोबस्त हो जाने के बाद स्वामित्व देवता को हस्तांतरित हो गया, जो विभाजन की डिक्री का हिस्सा नहीं हो सकता। उन्होंने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा एस. सतनाम सिंह एवं अन्य बनाम सुरेंद्र कौर एवं अन्य **(2009) 2** एससीसी **562** के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा जताया है।

11. मैंने पक्षों के संबंधित अधिवक्ताओं को सुना और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का परिशीलन किया है।

12. दोनों पक्षों के लिए यह एक स्वीकृत तथ्य है कि वे दिवंगत राम नारायण की संपत्ति के उत्तराधिकारी हुए हैं। वादी और प्रतिवादी दोनों ही राम नारायण की संपत्ति में आधे हिस्से के हकदार हैं। इस तथ्य पर भी कोई विवाद नहीं है कि श्रीमती सुंदी और श्रीमती रामिया सगी बहनें थीं। वादी और प्रतिवादी दोनों श्रीमती रामिया के पौत्र हैं। दिनांक 26.12.1963 को, कथित तौर पर दो विक्रय विलेख निष्पादित किए गए थे, एक श्रीमती सुंदी द्वारा राम नारायण, शिव नारायण और गरीब चंद्र के पक्ष में, और दूसरा श्रीमती रामिया द्वारा घर के दक्षिणी भाग के उस हिस्से के लिए जिसमें वह रह रही थीं, श्रीमती सुंदी के पक्ष में। यह भी निर्विवाद है कि श्रीमती सुंदी द्वारा 26.02.1969 को भगवान महावीर स्वामी के पक्ष में एक पंजीकृत बंदोबस्ती विलेख निष्पादित किया गया था। यह विलेख अभी भी प्रभावी है और किसी भी न्यायालय द्वारा इसे रद्द या शून्य घोषित नहीं किया गया है।

13. रिकॉर्ड पर लाए गए बंदोबस्ती विलेख के परिशीलन से यह पता चलता है कि श्रीमती सुंदी ने अपने जीवनकाल के दौरान बांदा शहर में एक मंदिर का निर्माण करवाया था, जहाँ भगवान महावीर स्वामी के साथ अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित की गई थीं। उन्होंने प्रश्नगत दुकान को देवता के नाम इस उद्देश्य से समर्पित किया था कि दुकान से प्राप्त होने वाले किराए से मंदिर के खर्चों को पूरा किया जा सके। अपने जीवनकाल के दौरान, वह स्वयं मंदिर की प्रबंधक भी थीं।

अनुवादित

14. एक बार जब किसी देवता को संपत्ति समर्पित कर दी जाती है, तो उसका स्वामित्व देवता को हस्तांतरित हो जाता है और जब तक उस बंदोबस्त को निरस्त नहीं किया जाता, तब तक वह देवता ही उस समर्पित संपत्ति का स्वामी बना रहता है।

15. वर्तमान मामले में, विभाजन का वाद वर्ष 1995 में दायर किया गया था और 31.10.1995 को एक प्रारंभिक डिक्री तैयार की गई थी, जिसमें यह माना गया था कि वादी और प्रतिवादी प्रत्येक का आधा-आधा हिस्सा है। केवल तभी, जब 1969 का विलेख सामने आया, प्रारंभिक डिक्री में संशोधन की मांग की गई, जिसे विचारण न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया और पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि कर दी गई।

16. प्रश्नाधीन आदेश की वैधानिकता के संबंध में, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा **97** के प्रावधान पर एक सरसरी दृष्टि डालना आवश्यक है, जो प्रारंभिक डिक्री के विरुद्ध अपील का प्रावधान करती है। उक्त प्रावधान डिक्री में संशोधन के लिए किसी भी आवेदन को प्रतिबंधित नहीं करता है। याचिकाकर्ता द्वारा उद्धृत फूलचंद **(**उपरोक्त**)** वाले मामले के निर्णय में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह निर्धारित किया है कि विभाजन के वाद में, यदि कोई घटना घटित होती है, तो प्रारंभिक डिक्री को संशोधित किया जा सकता है। एक नई प्रारंभिक डिक्री तैयार करने पर कोई रोक नहीं थी। उक्त मामले में, एक पक्षकार की मृत्यु हो गई थी और प्रश्न उस हिस्से के बारे में उठा जिसे फिर से निर्धारित किया गया था। सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि हिस्सों में बदलाव किया जा सकता है।

17. इसी तरह, एस**.** साई रेड्डी **(**उपरोक्त**)** मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि हस्तक्षेपकारी घटनाओं के कारण हिस्सों में परिवर्तन किया जा सकता है। इसी मत को प्रेमा **(**उपरोक्त**)** मामले में भी दोहराया गया था, जहाँ सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रावधान दिया कि यदि अंतरिम अवधि के दौरान विभाजन वाद के किसी पक्षकार की मृत्यु हो जाती है, तो उसके हिस्से को जीवित पक्षकारों को आवंटित किया जाना आवश्यक है।

18. बलीराम आत्माराम केलापुरे **(**उपरोक्त**)** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस तथ्य को दर्ज करते हुए कि यद्यपि सी**.**पी**.**सी**.** की धारा **97** प्रारंभिक डिक्री के विरुद्ध अपील का प्रावधान करती है, यह पाया कि डिक्री में संशोधन के आवेदन पर कोई रोक नहीं थी।

19. एस**.** सतनाम सिंह **(**उपरोक्त**)** के मामले में, न्यायालय ने समान दृष्टिकोण अपनाया और निम्नानुसार निर्णय दिया:

"20. निर्विवाद रूप से, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 97 प्रारंभिक डिक्री के विरुद्ध अपील का प्रावधान करती है, लेकिन हमारी राय में, उक्त प्रावधान डिक्री में संशोधन के लिए आवेदन करने में बाधक नहीं होगा।

21. न्यायालय के पास डिक्री में संशोधन करने की स्वतः संज्ञान शक्ति भले ही न हो, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि न्यायालय किसी गलती को सुधार *नहीं सकता। यदि कोई संपत्ति अभिवचनों का विषय थी और न्यायालय ने वह विवादक तय नहीं किया जो उसे करना चाहिए था, तो बाद के चरण में, ध्यान दिलाए जाने पर, वह डिक्री में संशोधन कर सकता है।*

22. इस प्रकृति के मामले में, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, संशोधन की शक्ति न केवल न्यायालय की शक्ति पर निर्भर करेगी, बल्कि इस सिद्धांत पर भी आधारित होगी कि एक न्यायालय को अपनी की गई गलती को सुधारने के लिए हमेशा तत्पर और तैयार रहना चाहिए।"

20. दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत किए गए कानूनी दृष्टांत उन हस्तक्षेपकारी घटनाओं से संबंधित हैं, जो प्रारंभिक डिक्री तैयार होने के बाद और अंतिम डिक्री के लंबित रहने के दौरान घटित हुई थीं, जहाँ न्यायालय ने इस आधार पर प्रारंभिक डिक्री में संशोधन की अनुमति दी थी कि मामले के बीच में कोई नई घटना घटित हुई है।

21. ये न्यायिक निर्णय न्यायालय की उस शक्ति को सीमित नहीं करते हैं जिसके तहत वह प्रारंभिक डिक्री में तब संशोधन कर सकता है जब यह पाया जाए कि पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए ऐसा संशोधन आवश्यक है। वर्तमान मामले में, वर्ष 1969 का पंजीकृत बंदोबस्ती विलेख वर्ष 2017 में सामने आया, जिसे वर्ष 2018 में दायर एक आवेदन के माध्यम से न्यायालय के संज्ञान में लाया गया। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाई गई इस आपत्ति को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि केवल "हस्तक्षेपकारी घटनाओं" को ही संज्ञान में लिया जा सकता है, न कि उन घटनाओं को जो विभाजन वाद दायर करने या प्रारंभिक डिक्री पारित होने से पहले घटित हुई थीं और जो पक्षकारों के नियंत्रण और ज्ञान में नहीं थीं। सी.पी.सी. की धारा 97 का प्रावधान या माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उक्त प्रावधान की व्याख्या, विचारण न्यायालय की प्रारंभिक डिक्री को संशोधित करने की शक्ति को तब प्रतिबंधित नहीं करती है, जब पक्षकारों के बीच न्याय करने के लिए ऐसा करना अनिवार्य हो।

22. उपरोक्त संदर्भित सभी मामलों में, केवल हस्तक्षेपकारी घटनाएँ ही घटित हुई थीं, जिन्हें प्रारंभिक डिक्री में संशोधित करने की मांग की गई थी। उन मामलों में न्यायालय ने इसकी अनुमति दी और यह माना कि ऐसी हस्तक्षेपकारी घटनाओं को संज्ञान में लिया जा सकता है और प्रारंभिक डिक्री को संशोधित किया जा सकता है। न्यायालय ने कभी भी ऐसी किसी घटना के लिए कोई प्रतिबंध नहीं लगाया है जो पक्षकारों के नियंत्रण से बाहर थी और उनके ज्ञान में भी नहीं थी।

23. वर्तमान मामले में, 1969 का पंजीकृत बंदोबस्ती विलेख न तो किसी भी पक्षकार के ज्ञान में था और न ही उनके कब्जे में था। याचिकाकर्ता ने ऐसी कोई आपत्ति नहीं उठाई है कि यह तथ्य वादी-प्रतिवादी के ज्ञान में था और उसने विभाजन वाद दायर करते समय जानबूझकर उक्त तथ्य को छिपाया था।

24. एक बार जब इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया कि 1969 का बंदोबस्ती विलेख अस्तित्व में है और वह वादी-उत्तरदाता के कब्जे में नहीं था, तो प्रारंभिक डिक्री के संशोधन का विरोध नहीं किया जा सकता है। यदि यह ऐसा मामला होता जहाँ वादी-प्रत्यर्थी के पास वह बंदोबस्ती विलेख होता और उसने जानबूझकर उसे छिपाया होता, तो प्रतिवादी-याचिकाकर्ता प्रारंभिक डिक्री में संशोधन का विरोध कर सकता था और उसके द्वारा प्रस्तुत न्यायिक दृष्टांत उसकी सहायता कर सकते थे। यह भी निर्विवाद है कि समर्पित संपत्ति के अधिभोगी के विरुद्ध देवता की ओर से वर्ष 2022 में बेदखली का एक वाद दायर किया गया है। एक बार जब स्थिति ऐसी हो, तो प्रतिवादी-याचिकाकर्ता प्रारंभिक डिक्री के संशोधन का विरोध नहीं कर सकता।

25. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मेरा यह मानना है कि आवेदन कागज संख्या 45-ए2 पर पारित चुनौतीपूर्ण आदेश दिनांक 16.02.2024 और सिविल पुनरीक्षण संख्या 6/2024 में पारित आदेश दिनांक 11.03.2024 में किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।
तदनुसार, रिट याचिका संख्या 4107/2024 निष्फल होती है और एतद्द्वारा **खारिज** की जाती है।

26. चूंकि रिट याचिका संख्या 4107/2024 को खारिज कर दिया गया है, इसलिए उससे जुड़ी रिट याचिका संख्या 3458/2025 भी खारिज की जाती है, क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन कागज संख्या 171सी-2 और पुनरीक्षण को भी अस्वीकार कर दिया गया है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1625

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

प्रकरण अन्तर्गत अनुच्छेद 227 संख्या- 9547/2019

यूपीपीसीएल **... याचिकाकर्ता**

बनाम

सुनीता वर्मा और अन्य **... प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
वाशु देव मिश्रा, अभिनव सिंह

प्रत्यर्थीगण के लिए अधिवक्ता:
सी.एस.सी., मधुलिका यादव

सिविल विधि-भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 227 - विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987-धारा 22सी--- अधिनिर्णय को चुनौती देने वाली याचिका दायर की गई है, जिसके तहत स्थायी लोक अदालत ने दावेदारों को 13,15,000/- रुपये की राशि प्रदान की है--- मृतक एक संविदा कर्मचारी था, उसे एक निश्चित वेतन पर माना जाएगा, इस प्रकार, स्थापित आय का 40% जोड़ा जाना है क्योंकि मृतक की आयु 40 वर्ष से कम थी जो मृतक की आय को 9,800/- रुपये (आय 7,000/- रुपये प्लस 40%) बनाता है--- प्रत्यर्थी आगे ईएसटी के नुकसान के हकदार होंगे। 16,500/- रुपये और अंतिम संस्कार का खर्च 16,500 रुपये प्रति --- प्रत्यर्थी दावा याचिका में सभी छह दावेदारों के संबंध में 40,000/- रुपये की दर से पति-पत्नी कंसोर्टियम, माता-पिता के कंसोर्टियम और फिरियल कंसोर्टियम के हकदार होंगे--- याचिका निरस्त की जाती है, इस निर्देश के साथ कि याचिकाकर्तागण/निगम, दावा की तिथि से वास्तविक भुगतान/वसूली की तिथि तक 9% प्रतिवर्ष की दर से ब्याज सहित कुल ₹23,78,000/- (रुपये तेईस लाख अठहत्तर हजार मात्र) की प्रतिकर राशि का भुगतान करें। इसके अतिरिक्त, निर्धन व्यक्ति को उसके वैध प्रतिकर से वंचित किए जाने के कारण याचिकाकर्तागण/निगम पर ₹50,000/- (रुपये पचास हजार मात्र) की अतिरिक्त लागत आरोपित की जाती है। (ई-15)

<u>संदर्भित प्रकरण की सूची-:</u>

1. हरियाणा राज्य बनाम जसबीर कौर; (2003) 7 एससीसी 484
2. केनरा बैंक बनाम जी.एस. जयरामा; (2022) 7 एससीसी 776

अनुवादित

3. मध्यांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड बनाम श्रीमती अलका पांडे; तटस्थ उद्धरण संख्या 2024: एएचसी-एलकेओ:14527

4. मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम उर्फ चुहरू राम और अन्य; (2018) 18 एससीसी 130

5. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य; (2017) 16 एससीसी 680

6. यास पाल सिंह (नाबालिग) और अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य और अन्य; 2017 (5) एडीजे 696

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिनव सिंह और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता सुश्री मधुलिका यादव को सुना।

2. यह एक बहुत ही दुखद प्रकरण है जिसमें एक सार्वजनिक उपयोगिता सेवा ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है और इस तरह से बहस कर रही है जो उस सार्वजनिक कल्याण के लिए अच्छा नहीं है जिसके लिए याचिकाकर्ता की स्थापना की गई थी।

3. वर्तमान याचिका दिनांक 11.10.2018 के फैसले को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके तहत स्थायी लोक अदालत ने 13,15,000/- रुपये के मुआवजे का निर्णय दिया है।

4. यहां प्रत्यर्थी जो दावेदार हैं, ने एक आवेदन दायर किया था जिसमें आरोप लगाया गया था कि प्रत्यर्थी संख्या 1 का पति निगम (यहां याचिकाकर्तागण) के साथ एक संविदात्मक कर्मचारी के रूप में काम कर रहा था और एक ट्रांसफार्मर की मरम्मत के दौरान उसकी मृत्यु हो गई। यह कहा गया था कि पति अपनी मृत्यु के समय काम कर रहा था और उसकी आयु लगभग 35 वर्ष थी और वह प्रति माह 7,000/- रुपये का पारिश्रमिक प्राप्त कर रहा था, इस प्रकार, यह दावा किया गया था कि प्रत्यर्थी/निगम को मुआवजे की राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया जाना चाहिए। यह भी कहा गया कि दावेदार के पति की मृत्यु के कारण 1,00,000/- रुपये की राशि का भुगतान किया गया है।

5. प्रत्यर्थी/निगम ने अपना लिखित बयान दायर किया जो रिकॉर्ड पर है जिसमें उन्होंने स्वीकार किया कि दावेदार का पति निगम के साथ एक संविदात्मक कर्मचारी के रूप में काम कर रहा था। यह भी स्वीकार किया गया कि काम के दौरान एक दुर्घटना के कारण उनकी मृत्यु हो गई। यह भी स्वीकार किया गया कि यहां प्रत्यर्थी दावेदार हैं, हालांकि, दावा की गई राशि को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था कि 1,00,000/- रुपये के अंतरिम मुआवजे का भुगतान चेक के माध्यम से किया गया है।

6. क्षेत्राधिकार के संबंध में, कोई उत्तर नहीं दिया गया था जैसा कि लिखित बयान के पैरा 6 से स्पष्ट है। पैरा 8 में यह भी कहा गया था कि किए गए सभी दावे विधिक रूप से मान्य नहीं थे।

7. स्थायी लोक अदालत में दर्ज किया गया कि लिखित बयान दाखिल करने के बाद प्रत्यर्थी/निगम उपस्थित नहीं हुए। यह भी दर्ज किया गया कि स्थायी लोक अदालत द्वारा पारित दिनांक 26.04.2018 के आदेश से, यह स्पष्ट था कि प्रत्यर्थी सुलह के लिए उपस्थित होने में विफल रहे थे और गैर-उपस्थित होने के लिए कोई कारण निर्दिष्ट नहीं किया गया था और उसके बाद, यह दर्ज किया गया था कि 06.05.2018 को, प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता उपस्थित हुए, जिनकी उपस्थिति में निर्धारण के बिंदु तैयार किए गए थे और उसके बाद छह तारीखों पर, प्रत्यर्थीगण की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। इसके बाद, स्थायी लोक अदालत ने हरियाणा राज्य बनाम जसबीर कौर (2003) 7 एससीसी 484 के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को दर्ज किया; जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यह न्यायालय और न्यायाधिकरण का कर्तव्य है कि वह 'न्यायसंगत और उचित' मुआवजा दे। इसके बाद, स्थायी लोक अदालत में उन सभी तथ्यों को स्वीकार करते हुए, जिन्हें सही होने से इनकार नहीं किया गया था, दावेदार के पति को 7,000/- रुपये प्रति माह की दर से भुगतान किए गए मासिक पारिश्रमिक की राशि को ध्यान में रखते हुए मुआवजे की गणना करने के लिए आगे बढ़े, जिसमें से 1/3 व्यक्तिगत खर्चों के कारण काट लिया गया था और निर्भरता 56 रुपये आंकी गई थी। 000/- यानी दावेदार के पति को भुगतान की गई पारिश्रमिक की राशि का 2/3। चूंकि मृत्यु के समय मृतक की आयु 35 वर्ष थी, इसलिए मुआवजा 56,000 रुपये (निर्भरता के रूप में मूल्यांकन) को 25 यानी सेवानिवृत्ति की आयु से गुणा करके दिया गया था। इसके अलावा, स्थायी लोक अदालत ने साहचर्य के नुकसान के लिए 5,000/- रुपये, अंतिम संस्कार के खर्च के लिए 5,000/- रुपये और मुकदमेबाजी की लागत के लिए अन्य 5,000/- रुपये की राशि प्रदान की, इस प्रकार, प्रत्यर्थी/निगम द्वारा देय कुल राशि 14,15,000/- रुपये आंकी गई क्योंकि प्रत्यर्थी/निगम ने पहले ही 1 रुपये की राशि का भुगतान कर दिया था। 00,000/- रुपये की राशि के तहत प्रत्यर्थीगण/निगम के विरुद्ध दी गई कुल राशि 13,15,000/- रुपये थी जिसे निर्णय की तारीख से वास्तविक भुगतान/प्राप्ति तक 7% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित भुगतान करने का निर्देश दिया गया था।

8. याचिकाकर्तागण/निगम के विद्वान अधिवक्ता का पहला तर्क यह है कि विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम की धारा 22 सी के जनादेश के संदर्भ में, स्थायी लोक अदालत एक निर्णय पारित नहीं कर सकती थी जैसा कि किया गया है। **केनरा बैंक बनाम जीएस जयराम (2022) 7 एससीसी 776 पैराग्राफ 36 और 37** के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया है; पर जोर देने के साथ, जिन्हें यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

***"36.** हालांकि, अपीलकर्ता का तर्क यह है कि यदि विरोधी पक्ष स्थायी लोक अदालत के समक्ष पेश नहीं होता है, तो वह सुलह की कार्यवाही को समाप्त कर सकता है और धारा 22-सी (8) के तहत विवाद का सीधे फैसला कर सकता है। हम इस निवेदन को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। यहां तक कि अगर विपरीत पक्ष उपस्थित नहीं होता है, तब भी स्थायी लोक अदालत धारा 22-सी द्वारा निर्धारित चरण-दर-चरण प्रक्रिया का पालन करने*

के लिए बाध्य है। धारा 22-सी(3) के तहत, इससे पहले पार्टी को अपनी प्रस्तुतियाँ और दस्तावेज़ दाखिल करने होंगे, और उनकी प्रतिक्रिया के लिए उन्हें विपरीत पक्ष को सूचित करने का सर्वोत्तम प्रयास करना होगा। यदि यह संतुष्ट है कि अनुपस्थित विरोधी पक्ष से कोई प्रतिक्रिया नहीं आ रही है, तो स्थायी लोक अदालत अभी भी धारा 22-सी (4) के तहत समझौते के माध्यम से विवाद को निपटाने का प्रयास करेगी। यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि धारा 22-सी(5) स्थायी लोक अदालत पर विवाद को सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटाने के प्रयास में स्वतंत्र और निष्पक्ष होने का कर्तव्य लगाती है, जबकि धारा 22-सी(6) स्थायी लोक अदालत के समक्ष उपस्थित पक्ष पर सद्भावना से सहयोग करने और स्थायी लोक अदालत की सहायता करने का कर्तव्य लगाती है। इसके बाद, स्थायी लोक अदालत, इसके समक्ष मौजूद सामग्रियों के आधार पर, निस्तारण की शर्तों का प्रस्ताव करेगी और उन्हें दोनों पक्षों को सूचित करेगी, भले ही उन्होंने कार्यवाही में भाग लिया हो या नहीं। यदि स्थायी लोक अदालत के समक्ष उपस्थित पक्ष सहमत नहीं होता है या यदि अनुपस्थित पक्ष पर्याप्त समय में जवाब नहीं देता है, तभी स्थायी लोक अदालत धारा 22-सी (8) के तहत विवाद का गुण-दोष के आधार पर निर्णय दे सकती है। धारा 22-डी में निहित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, स्थायी लोक अदालत एक बार फिर अनुपस्थित पक्ष को विवाद पर उसके गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेने के अपने निर्णय के बारे में सूचित करेगी, यदि वह उस स्तर पर कार्यवाही में शामिल होना चाहता है।

***37.** धारा 22-सी (8) पूरी तरह से स्पष्ट है कि यह केवल तभी लागू होता है जब धारा 22-सी (7) के तहत एक समझौता विफल हो जाता है। इसका परिणाम यह है कि धारा 22-सी(7) के तहत निस्तारण की प्रस्तावित शर्तें, और इससे पहले की सुलह की कार्यवाही अनिवार्य है। यदि स्थायी लोक न्यायालयों को केवल इसलिए इस कदम को दरकिनार करने की अनुमति दी जाती है क्योंकि कोई पक्ष अनुपस्थित है, तो यह विवादों को उनके गुण-दोष के आधार पर तय करने और ऐसे निर्णय जारी करने के समान होगा जो अंतिम, बाध्यकारी होंगे और सिविल न्यायालयों के डिक्री माने जाएंगे। यह संसद की मंशा नहीं थी जब उसने एलएसए संशोधन अधिनियम पेश किया था। इसका मुख्य लक्ष्य अभी भी सार्वजनिक उपयोगिताओं के संबंध में विवादों का सुलह और निस्तारण था, जिसमें योग्यता पर निर्णय हमेशा अंतिम उपाय होता है। इसलिए, हम मानते हैं कि एलएसए अधिनियम की धारा 22-सी के तहत सुलह की कार्यवाही प्रकृति में अनिवार्य है।*

9. ***मध्यांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड बनाम श्रीमती अलका पांडेय, तटस्थ उद्धरण संख्या 2024: एएचसी-एलकेओ:14527*** के प्रकरण में निर्णय पर भी भरोसा किया जाता है;, जो अनिवार्य रूप से ***केनरा बैंक (पूर्वोक्त)*** के प्रकरण में निर्णय का पालन करता है।

10. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि दी गई राशि याचिकाकर्तागण द्वारा भुगतान किए गए मुआवजे पर आधारित है। पूरी रिट याचिका में यह दलील देने का कोई अंश नहीं है कि मृतक को उसकी मृत्यु के समय भुगतान की गई राशि या तो गलत तरीके से दी गई थी या वास्तव में उसे भुगतान की गई राशि से अधिक थी। वह आगे तर्क देती है कि ***नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य (2017) 16 एससीसी 680 और मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम उर्फ चुहरू राम***

और अन्य के प्रकरण में; (2018) 18 एससीसी 130 के प्रकरण में निर्धारित विधि को ध्यान में रखते हुए;, यह काफी अच्छी तरह से तय है कि भले ही कोई दावा न किया जाए, यह सुनिश्चित करना न्यायालय और न्यायाधिकरण का कर्तव्य है कि एक न्यायसंगत और उचित मुआवजे का भुगतान किया जाए।

11. वह आगे तर्क देती है कि कंसोर्टियम के नुकसान, अंतिम संस्कार के खर्च और मुकदमेबाजी की लागत के लिए भुगतान की गई 5,000/- रुपये की राशि बहुत कम है और प्रार्थना करती है कि इसे इस न्यायालय द्वारा बढ़ाया जा सकता है जैसा कि उचित समझा जा सकता है। आगे यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्तागण द्वारा अपनाया गया रुख उस भावना के खिलाफ है जिसके लिए विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम बनाया गया था। आगे यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्तागण ने पेश होने के बाद, एक कर्मचारी के संबंध में भी बहुत कम सम्मान दिखाया, जिसकी ट्रांसफार्मर की मरम्मत के दौरान दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी और केवल 1,00,000/- रुपये की मामूली राशि का भुगतान किया गया था। आगे यह तर्क दिया गया है कि कमाने वाले की मृत्यु के कारण, प्रत्यर्थीगण के पूरे परिवार को बुरी तरह से नुकसान हुआ है और वर्ष 2018 में अधिनिर्णय पारित होने के बावजूद याचिकाकर्तागण द्वारा कोई राशि का भुगतान नहीं किया गया है।

12. बार में की गई प्रस्तुतियों और ऊपर दर्ज की गई प्रस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय को यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि याचिकाकर्ता विधि के एक लाभकारी टुकड़े के जनादेश की अवधारणा को नहीं समझने में बिल्कुल अनुचित रहे हैं। एक ओर, याचिकाकर्तागण ने अपने लिखित बयान में सब कुछ स्वीकार किया है जैसा कि ऊपर दर्ज किया गया है, दूसरी ओर, याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता ने लिखित बयान में बिना किसी आधार के रिट याचिका में सभी प्रकरण को उठाया है। याचिकाकर्तागण के इस आचरण को निंदा की जानी चाहिए और तदनुसार इसे कड़े शब्दों में खारिज कर दिया जाता है।

13. ***केनरा बैंक (पूर्वोक्त)*** के प्रकरण में निर्णय में याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि स्थायी लोक अदालत का पहला प्रयास सुलह सुनिश्चित करना होना चाहिए, भले ही कोई लिखित बयान दायर न किया गया हो और उसके बाद, विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम की धारा 22 सी (1) के तहत शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि पहले सुलह के लिए प्रयास किया जाना चाहिए, हालांकि, लिखित बयान में लिए गए रुख को देखते हुए, जहां लगभग सब कुछ स्वीकार किया गया था, सुलह का एकमात्र हिस्सा क्वांटम था।

14. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि स्थायी लोक अदालत ने मुआवजा दिया है और उक्त मुआवजे को चुनौती देते हुए याचिका दायर की गई है, मुझे उक्त निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखता है।

15. अब, स्थायी लोक अदालत द्वारा प्रदान की गई मात्रा के मुद्दे पर आते हुए, यह निर्णयों की एक श्रेणी में काफी अच्छी तरह से तय हो गया है कि यह न्यायाधिकरणों और न्यायालयों के लिए यह सुनिश्चित करने के लिए बाध्य है कि 'उचित मुआवजा' दिया जाए, भले ही इसका दावा किया गया हो या नहीं। **यश पाल सिंह**

(नाबालिग) और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2017 (5) एडीजे 696, प्रणय सेठी (पूर्वोक्त), साथ ही मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (पूर्वोक्त) के प्रकरण का संदर्भ दिया जा सकता है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

***"21.** प्रणय सेठी [नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी, (2017) 16 एससीसी 680: (2018) 3 एससीसी (सीआईवी) 248: (2018) 2 एससीसी (सीआरआई) 205] में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने विभिन्न मदों से निपटा जिनके तहत मृत्यु के प्रकरण में मुआवजा दिया जाना है। इन्हीं प्रमुखों में से एक है कंसोर्टियम का नुकसान। विधिक बोलचाल में, "कंसोर्टियम" एक व्यापक शब्द है जिसमें "पति-पत्नी कंसोर्टियम", "पैरेंटल कंसोर्टियम" और "फिलियल कंसोर्टियम" शामिल हैं। कंसोर्टियम के अधिकार में कंपनी, देखभाल, मदद, आराम, मार्गदर्शन, सांत्वना और मृतक का स्नेह शामिल होगा, जो उसके परिवार के लिए नुकसान है। पति या पत्नी के संबंध में, इसमें मृत पति या पत्नी के साथ यौन संबंध शामिल होंगे: [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सीआईवी) 179: (2013) 3 एससीसी (सीआरआई) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149]*

***21.1.** पति-पत्नी कंसोर्टियम को आम तौर पर पति-पत्नी के रिश्ते से संबंधित अधिकारों के रूप में परिभाषित किया जाता है जो जीवित पति या पत्नी को "कंपनी, समाज, सहयोग, स्नेह और हर वैवाहिक संबंध में दूसरे की सहायता" के नुकसान के लिए मुआवजे की अनुमति देता है। [ब्लैक लॉ डिक्शनरी (5वां संस्करण, 1979)।*

***21.2.** माता-पिता की असामयिक मृत्यु पर बच्चे को माता-पिता की सहायता, सुरक्षा, स्नेह, समाज, अनुशासन, मार्गदर्शन और प्रशिक्षण" के नुकसान के लिए माता-पिता का कंसोर्टियम प्रदान किया जाता है।*

***21.3.** संतानोचित संघ किसी बच्चे की आकस्मिक मृत्यु के प्रकरण में मुआवजे के लिए माता-पिता का अधिकार है। एक बच्चे की मौत के कारण होने वाली दुर्घटना मृतक के माता-पिता और परिवार के लिए बहुत सदमा और पीड़ा का कारण बनती है। माता-पिता के लिए सबसे बड़ी पीड़ा अपने जीवनकाल के दौरान अपने बच्चे को खोना है। बच्चों को उनके प्यार, स्नेह, साहचर्य और परिवार इकाई में उनकी भूमिका के लिए महत्व दिया जाता है।"*

16. उक्त निर्णय के आलोक में, इस न्यायालय को यह निर्धारित करना है कि 'उचित मुआवजा' क्या होगा। माना जाता है कि याचिकाकर्ता याचिकाकर्तागण/निगम के साथ एक संविदात्मक श्रमिक के रूप में काम कर रहा था और प्रति माह 7,000 रुपये का वेतन ले रहा था। **प्रणय सेठी के प्रकरण (पूर्वोक्त)** में, निम्नलिखित देखा गया है:

***"59.** उपरोक्त विश्लेषण को देखते हुए, हम अपने निष्कर्षों को रिकॉर्ड करने के लिए आगे बढ़ते हैं:*

59.1. *संतोष देवी [संतोष देवी बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2012) 6 एससीसी 421: (2012) 3 एससीसी (सीआईवी) 726: (2012) 3 एससीसी (सीआरआई) 160: (2012) 2 एससीसी (एलएंडएस) 167] में दो-न्यायाधीशों की पीठ को प्रकरण को एक बड़ी पीठ को भेजने की सलाह दी जानी चाहिए थी क्योंकि यह सरला वर्मा [सरला वर्मा बनाम डीटीसी, (2009) 6 एससीसी 121: (2009) 2 एससीसी (सीआईवी) 770: (2009) 2 एससीसी (सीआरआई) 1002], एक समन्वय पीठ द्वारा एक निर्णय। ऐसा इसलिए है क्योंकि समान संख्या की एक समन्वय पीठ एक अन्य समन्वय पीठ द्वारा आयोजित किए गए दृष्टिकोण से विपरीत दृष्टिकोण नहीं ले सकती है।*

59.2. *जैसा कि राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सीआईवी) 179: (2013) 3 एससीसी (सीआरआई) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] ने रेशमा कुमारी [रेशमा कुमारी बनाम मदन मोहन, (2013) 9 एससीसी 65: (2013) 4 एससीसी (सीआईवी) 191: (2013) 3 एससीसी (सीआरआई) 826] में निर्णय पर ध्यान नहीं दिया है, राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सीआईवी) 179: (2013) 3 एससीसी (सीआरआई) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] में निर्णय एक बाध्यकारी मिसाल नहीं है।*

59.3. *आय का निर्धारण करते समय, भविष्य की संभावनाओं के लिए मृतक की आय में वास्तविक वेतन का 50% जोड़ा जाना चाहिए, जहां मृतक के पास स्थायी नौकरी थी और उसकी आयु 40 वर्ष से कम थी। जोड़ 30% होना चाहिए, यदि मृतक की आयु 40 से 50 वर्ष के बीच थी। यदि मृतक की आयु 50 से 60 वर्ष के बीच थी, तो जोड़ 15% होना चाहिए। वास्तविक वेतन को वास्तविक वेतन कम कर के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।*

59.4. *यदि मृतक स्व-नियोजित था या एक निश्चित वेतन पर था, तो स्थापित आय का 40% का अतिरिक्त वारंट होना चाहिए जहां मृतक की आयु 40 वर्ष से कम थी। 25% का जोड़ जहां मृतक की आयु 40 से 50 वर्ष के बीच थी और 10% जहां मृतक की आयु 50 से 60 वर्ष के बीच थी, को गणना की आवश्यक विधि के रूप में माना जाना चाहिए। स्थापित आय का अर्थ है कर घटक घटाकर आय।*

59.5. *गुणक के निर्धारण के लिए, व्यक्तिगत और रहने के खर्चों के लिए कटौती, न्यायाधिकरणों और न्यायालयों को सरला वर्मा के पैरा 30 से 32 द्वारा निर्देशित किया जाएगा [सरला वर्मा बनाम डीटीसी, (2009) 6 एससीसी 121: (2009) 2 एससीसी (सीआईवी) 770: (2009) 2 एससीसी (सीआरआई) 1002] जो हमने यहां पहले पुन: प्रस्तुत किया है।*

59.6. *गुणक का चयन सरला वर्मा [सरला वर्मा बनाम डीटीसी, (2009) 6 एससीसी 121: (2009) 2 एससीसी (सीआईवी) 770: (2009) 2 एससीसी (सीआरआई) 1002] में तालिका में दर्शाया गया है।*

59.7. *मृतक की आयु गुणक लगाने का आधार होनी चाहिए।*

59.8. *पारंपरिक शीर्षों पर उचित आंकड़े, अर्थात्, संपत्ति की हानि, कंसोर्टियम की हानि और अंतिम संस्कार के खर्च क्रमशः 15,000 रुपये, 40,000 रुपये और 15,000 रुपये होने चाहिए। उपरोक्त राशि को हर तीन साल में 10% की दर से बढ़ाया जाना चाहिए।*

17. उक्त के आलोक में, चूंकि मृतक एक संविदात्मक कर्मचारी था, इसलिए उसे एक निश्चित वेतन पर माना जाएगा, इस प्रकार, स्थापित आय का 40% जोड़ा जाना चाहिए क्योंकि मृतक की आयु 40 वर्ष से कम थी जो मृतक की आय 9 रुपये बनाती है, 800/- (आय 7,000/- रुपये प्लस 40%)।

18. प्रत्यर्थी 16,500/- रुपये की संपत्ति के नुकसान और 16,500 रुपये के अंतिम संस्कार के खर्च के हकदार होंगे।

19. इसके अलावा, **मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में निर्णय के आलोक में, प्रत्यर्थी 2017 की दावा याचिका संख्या 46 में सभी छह दावेदारों के संबंध में 40,000/- रुपये की दर से पति-पत्नी कंसोर्टियम, माता-पिता कंसोर्टियम और फिरियल कंसोर्टियम के हकदार होंगे।

20. उपर्युक्त चर्चा के आलोक में, गणना के रूप में कुल मुआवजा, जिसके प्रतिवादी हकदार हैं, निम्नानुसार हैं:

क्रम सं0	**मद**	**मुआवजा अधिनिर्णीत**
1.	मृतक की मासिक आय	**रु.7,000/- प्रति माह**
2.	प्रणय सेठी के प्रकरण में फैसले के आलोक में 40% जोड़ना (पूर्वोक्त)	रु.7,000/- + रु.2,800/- = **रु.9,800/- प्रति माह**
3.	शुद्ध वार्षिक आय	**रु.1,17,600/-**
4.	व्यक्तिगत खर्चों के लिए 1/4 की कटौती	रु.1,17,600 x 25% = रु.29,400/- **कटौती के बाद :** **रु.1,17,600 - रु.29,400/- = रु.88,200/-**
5.	स्थायी लोक अदालत द्वारा लागू आयु में '25' का गुणक लागू करना	रु. 88,200 x 25 = **रु. 22,05,000/-**
6.	पारंपरिक शीर्षों के तहत राशि: (i) संपत्ति का नुकसान 16,500/- रु.,	रु.16,500/- +रु.16,500/- +रु.2,40,000/-

	(ii) प्रणय सेठी के प्रकरण (पूर्वोक्त) के अनुसार अंतिम संस्कार का व्यय 16,500/- रु (iii) कंसोटियम की हानि 40,000/- रुपये (प्रत्येक आश्रित); रु.40,000/- x 6 = रु.2,40,000/-.	**= रु.2,73,000/-**
7.	**मुआवजे की कुल राशि** (क्रम संख्या 5 + क्रम संख्या 6)	रु. 22,05,000 + रु. 2,73,000 **= रु.24,78,000/-**
8.	मुआवजे के रूप में पहले से ही भुगतान की गई राशि	रु.1,00,000/-
	प्रत्यर्थीगण को देय मुआवजे की कुल राशि (क्रम संख्या 7 - क्रम संख्या 8)	रु.24,78,100/- - रु. 1,00,000/- **= रु.23,78,000/-**

21. इसके मद्देनजर, वर्तमान याचिका याचिकाकर्तागण/निगम को दावे की तारीख से वास्तविक भुगतान/प्राप्ति तक 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ 23,78,000/- रुपये की मुआवजे की कुल राशि का भुगतान करने के निर्देश के साथ ***खारिज*** की जाती है।

22. गरीब व्यक्ति को वैध मुआवजे से वंचित करने के लिए याचिकाकर्तागण/निगम पर 50,000/- रुपये का अतिरिक्त जुर्माना लगाया जाता है।

23. याचिकाकर्ता/निगम आज से तीन महीने की अवधि के भीतर स्थायी लोक अदालत के समक्ष लागत के साथ दी गई उपरोक्त राशि जमा करेंगे, जिसका भुगतान विधि अनुसार स्थायी लोक अदालत द्वारा दावेदारों को किया जाएगा।

24. इस आदेश की एक प्रति याचिकाकर्तागण/निगम के अध्यक्ष को प्रेषित की जाए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि भविष्य में इस तरह का तुच्छ मुकदमा दायर न किया जाए।

(2025) 5 ILRA 1632

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव

प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 529 बीएनएसएस संख्या- 285/2025

सुधा शुक्ला **... आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **... विपक्षी**

आवेदक की ओर से अधिवक्ता:
बृज भूषण प्रसाद श्रीवास्तव

विपक्षी की ओर से अधिवक्ता:
जी.ए.

आपराधिक विधि-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 483 और 145- (भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023-धारा 529--- उच्च न्यायालय को ऐसे मजिस्ट्रेट द्वारा प्रकरण के शीघ्र और उचित निस्तारण को सुनिश्चित करने के लिए अपने अधीनस्थ न्यायिक मजिस्ट्रेटों की न्यायालय पर अपने अधीक्षण का प्रयोग करने का अधिकार है, लेकिन जब एक कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा कोई आदेश पारित किया जाता है या किसी भी निर्देश को शीघ्र और उचित निस्तारण के लिए जारी करने की आवश्यकता होती है। जो प्रकरण कार्यकारी मजिस्ट्रेट के समक्ष लंबित है, उच्च न्यायालय कार्यकारी मजिस्ट्रेटों की न्यायालयों पर अपने अधीक्षण का प्रयोग नहीं कर सकता है--- धारा 529 बीएनएसएस (धारा 483 द0प्र0सं0) के तहत उच्च न्यायालय को कार्यकारी मजिस्ट्रेट के कामकाज पर कोई अधीक्षण करने की आवश्यकता नहीं है और धारा 483 द0प्र0सं0 (बीएनएसएस की धारा 529) के तहत कार्यकारी मजिस्ट्रेटों को कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है, जहां द0प्र0सं0 की धारा 145 के तहत एक प्रकरण उसके समक्ष लंबित है। धारा 483 द0प्र0सं0 (बीएनएसएस की धारा 529) में निर्धारित है।

प्रार्थना पत्र स्वीकृत। (ई-15)

<u>संदर्भित प्रकरण की सूची-:</u>

1. डच ऑप्थैल्मिक रिसर्च सेंटर इंटरनेशनल बी.वी.एस. बनाम अल्ट्रामैड प्राइवेट लिमिटेड और अन्य 1997 एससीसी ऑनलाइन राज 941

अनुवादित

2. सरजू और अन्य बनाम बाबादीन और अन्य 1975 सीआरएलजे 1562 (इलाहाबाद)

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव द्वारा पारित)

1. वर्तमान आवेदन धारा 529 बीएनएसएस के तहत दायर किया गया है, जिसमें अतिरिक्त एसडीएम, देवरिया की न्यायालय को 20008/2009 की धारा 145 द0प्र0सं0 के तहत 20008/2009 के प्रकरण संख्या 36 पर निर्णय लेने का निर्देश देने की मांग की गई है, जो निर्धारित समय के भीतर उक्त न्यायालय में लंबित है।

2. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के साथ-साथ राज्य के लिए विद्वान एजीए को सुना।

3. वर्तमान प्रकरण का तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि आवेदक और विपक्षी संख्या 2 और 3 के बीच एक संपत्ति विवाद उत्पन्न हुआ था, जिसमें धारा 145 (1) के तहत एसडीएम, देवरिया की न्यायालय द्वारा दिनांक 01/12/2005 के आदेश द्वारा नोटिस जारी करने का आदेश दिया गया था। इस प्रकरण में दोनों पक्षों ने दलील दी और सबूतों के बाद न्यायालय ने प्रकरण की सुनवाई की। हालांकि, इस बीच विपक्षीसंख्या 3 के खिलाफ कुछ प्रतिकूल आदेश पारित किए गए और प्रकरण जिला एवं सत्र न्यायाधीश, देवरिया की न्यायालय में लाया गया और 2021 में एसडीएम न्यायालय के समक्ष कार्यवाही पर रोक लगा दी गई। हालाँकि, प्रकरण का रिकॉर्ड 12/12/2024 को एसडीएम, देवरिया की न्यायालय को वापस भेज दिया गया था। इस प्रकरण को अतिरिक्त एसडीएम, देवरिया की न्यायालय द्वारा निपटाया गया था, लेकिन प्रकरण के गंभीर रूप से पुराने होने के बावजूद उक्त न्यायालय ने प्रकरण को लंबित रखा है और यह अनावश्यक रूप से लटका हुआ है।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि उक्त प्रकरण बहुत पुराना है, लेकिन चूंकि संबंधित न्यायालय प्रकरण के निस्तारण से बच रही है। अतिरिक्त एसडीएम, देवरिया के न्यायालय के उक्त आकस्मिक दृष्टिकोण ने आवेदक को उच्च न्यायालय की शरण लेने के लिए मजबूर कर दिया, जिसमें अतिरिक्त उप मंडल मजिस्ट्रेट, देवरिया के न्यायालय को धारा 145 द0प्र0सं0 (धारा 164 बीएनएसएस) के तहत उपरोक्त 20008/2009 के प्रकरण संख्या 36 के शीघ्र निस्तारण के लिए निर्देश देने की प्रार्थना की गई।

5. विद्वान एजीए ने प्रार्थना का विरोध किया।

6. मैंने प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

7. इस न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि आवेदन धारा 529 बीएनएसएस (धारा 483 द0प्र0सं0) के तहत स्थानांतरित किया गया है, इसलिए, इस स्तर पर इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान आवेदन की मनोरंजन क्षमता का पता लगाने के लिए धारा 529 बीएनएसएस के प्रावधानों पर एक नज़र डालना उचित

होगा। धारा 529 बीएनएसएस के प्रावधान, जो दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 483 के अनुरूप प्रावधान हैं, नीचे दिए गए हैं:

"धारा 529. न्यायालयों पर निरंतर पर्यवेक्षण करने के लिए उच्च न्यायालय का कर्तव्य - प्रत्येक उच्च न्यायालय सत्र न्यायालयों और उसके अधीनस्थ न्यायिक मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों पर अपने अधीक्षण का प्रयोग करेगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि न्यायाधीशों और मजिस्ट्रेटों द्वारा प्रकरण का शीघ्र और उचित निस्तारण हो।

8. दूसरी ओर, द0प्र0सं0 की धारा 483 में प्रावधान है कि-

"धारा 483. न्यायिक मजिस्ट्रेटों की न्यायालयों पर निरंतर पर्यवेक्षण का प्रयोग करने के लिए उच्च न्यायालय का कर्तव्य - प्रत्येक उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायिक मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों पर अपने अधीक्षण का प्रयोग करेगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ऐसे मजिस्ट्रेटों द्वारा प्रकरण का शीघ्र और उचित निस्तारण किया जाए।

9. धारा 529 बीएनएसएस (धारा 483 द0प्र0सं0) में निहित प्रावधानों की भाषा तत्काल आवेदन पर विचार करने के लिए इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का पता लगाने के लिए बहुत स्पष्ट है क्योंकि यह प्रदान करता है कि उच्च न्यायालय न्यायिक मजिस्ट्रेटों की न्यायालयों और उसके अधीनस्थ सत्र न्यायालय पर अपने अधीक्षण का प्रयोग करेगा। निश्चित रूप से, शीघ्र निस्तारण के लिए आवेदक का प्रकरण, जिसका वर्तमान आवेदन प्रस्तुत किया गया है, अतिरिक्त उप-मंडल मजिस्ट्रेट, देवरिया के न्यायालय के समक्ष लंबित है, जो एक 'कार्यकारी मजिस्ट्रेट' है और 'न्यायिक मजिस्ट्रेट' की श्रेणी में नहीं आता है।

10. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने बहुत विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत किया कि चूंकि एसडीएम न्यायिक कार्य कर रहे हैं, इसलिए उन्हें न्यायिक मजिस्ट्रेट के रूप में माना जा सकता है और यह न्यायालय एसडीएम के न्यायालयों पर भी अपने अधीक्षण का प्रयोग कर सकता है।

11. उपरोक्त याचिका इस न्यायालय को विधिक स्थिति का पता लगाने के लिए प्रेरित करती है कि क्या एसडीएम के न्यायालय को न्यायिक मजिस्ट्रेट की न्यायालय कहा जा सकता है।

12. **सरजू और अन्य बनाम बाबादीन और अन्य 1975 सीआरएलजे 1562** (इलाहाबाद) वर्तमान विवाद पर एक अधिकार है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग इस प्रकार उद्धृत किया गया है:

"हालांकि, धारा 483 पर आधारित तर्क पूरी तरह से गलत है। उस धारा में कहा गया है कि प्रत्येक उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायिक मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों पर इस प्रकार अपने अधीक्षण का प्रयोग करेगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ऐसे मजिस्ट्रेट द्वारा प्रकरण का शीघ्र और उचित निस्तारण किया जाए।

किसी भी लंबित प्रकरण के शीघ्र निस्तारण का कोई प्रश्न ही नहीं है, क्योंकि प्रकरण पर पहले ही निर्णय हो चुका है। प्रकरण के उचित निस्तारण के लिए अधीक्षण के प्रयोग के संबंध में, इस धारणा पर आगे बढ़ते हुए कि पर्यवेक्षी शक्ति न्यायिक और प्रशासनिक दोनों है, यह स्पष्ट है कि इसका प्रयोग केवल न्यायिक मजिस्ट्रेट पर किया जा सकता है, न कि कार्यकारी मजिस्ट्रेटों पर। संहिता की धारा 6 के तहत, कार्यकारी मजिस्ट्रेट आपराधिक न्यायालयों के एक वर्ग का गठन करते हैं जो न्यायिक मजिस्ट्रेटों द्वारा संचालित आपराधिक न्यायालयों के वर्ग से अलग होते हैं। धारा 11 से 15 न्यायिक मजिस्ट्रेटों से संबंधित है, जबकि कार्यकारी मजिस्ट्रेटों को धारा 20 से 23 द्वारा निपटाया गया है। धारा 145 के तहत कार्यवाही कार्यकारी मजिस्ट्रेटों के अधिकार क्षेत्र में आती है, न कि न्यायिक मजिस्ट्रेटों के अधिकार क्षेत्र में। आक्षेपित आदेश एक कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किया गया था और इस प्रकार ऐसे मजिस्ट्रेट द्वारा की गई गलती को सुधारने के लिए कोई पर्यवेक्षी शक्ति नहीं है।

13. 'कार्यकारी मजिस्ट्रेट' शब्द को द0प्र0सं0 की धारा 20 के तहत परिभाषित किया गया है, जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि राज्य सरकार को उतने व्यक्तियों को नियुक्त करने का अधिकार है जो वह कार्यकारी मजिस्ट्रेट बनने के लिए उचित समझती है और उनमें से एक को जिला मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्त किया जाता है और जिला मजिस्ट्रेट की सहायता के लिए अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट हैं और इसके अलावा राज्य सरकार को एक कार्यकारी मजिस्ट्रेट को एक के प्रभारी के रूप में नियुक्त करने का अधिकार है। उप-मंडल और ऐसे मजिस्ट्रेटों को उप-विभागीय मजिस्ट्रेट कहा जाता है और कुछ परिस्थितियों में राज्य सरकार एक महानगरीय क्षेत्र में पुलिस आयुक्त को एक कार्यकारी मजिस्ट्रेट की शक्तियां प्रदान कर सकती है। बीएनएसएस की धारा 14 के प्रावधान द0प्र0सं0 की धारा 20 में निहित प्रावधान के अनुरूप हैं।

14. द0प्र0सं0 की धारा 20 का एक सादा पठन इस बात में कोई संदेह नहीं छोड़ता है कि एसडीएम जो एक कार्यकारी मजिस्ट्रेट है और आगे द0प्र0सं0 की धारा 23 (बीएनएसएस की धारा 17) के तहत यह प्रदान किया गया है कि अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट के अलावा सभी कार्यकारी मजिस्ट्रेट, जिला मजिस्ट्रेट के अधीनस्थ होंगे, और प्रत्येक कार्यकारी मजिस्ट्रेट (एसडीएम के अलावा) एक उपखंड में शक्तियों का प्रयोग करने वाले भी उप-मंडल मजिस्ट्रेट, हालांकि, जिला मजिस्ट्रेट के सामान्य नियंत्रण के अधीन। जिला मजिस्ट्रेट को अपने अधीनस्थ कार्यकारी मजिस्ट्रेटों के बीच व्यवसाय वितरित करने का अधिकार है। उपरोक्त अधीक्षण आगे स्पष्ट करता है कि जहां तक अन्य कार्यकारी मजिस्ट्रेट की अधीनता का संबंध है, यह जिला मजिस्ट्रेट है जो किसी जिले में सर्वोच्च है। अब बीएनएसएस की धारा 529 इस बात पर जोर देती है कि उच्च न्यायालय के पास सत्र न्यायालयों और उसके अधीनस्थ न्यायिक मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों पर निरंतर पर्यवेक्षण की शक्ति होगी। चूंकि निस्संदेह एसडीएम न्यायिक मजिस्ट्रेट की श्रेणी में नहीं आता है, इसलिए यह उच्च न्यायालय का कर्तव्य नहीं है कि वह एसडीएम के न्यायालयों पर अधीक्षण का प्रयोग करे।

15. **डच ऑप्थैल्मिक रिसर्च सेंटर इंटरनेशनल बीवी बनाम अल्ट्रामैड प्राइवेट लिमिटेड और अन्य 1997 एससीसी ऑनलाइन राज 941** में राजस्थान उच्च न्यायालय ने न्याय वितरण प्रणाली को स्पष्ट और परिभाषित करके

इस मुद्दे पर चर्चा की है और वर्तमान मुद्दे को कवर करने वाला प्रासंगिक हिस्सा निर्णय के पैरा 7 में पाया गया है जिसमें कहा गया है कि:

"इसके अलावा, द0प्र0सं0 के अलावा किसी भी विधि के तहत गठित उच्च न्यायालय और अदालतें, धारा 6 आपराधिक न्यायालयों को चार श्रेणियों में वर्गीकृत करती है, अर्थात (i) सत्र न्यायालय (ii) प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट और मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट (iii) द्वितीय श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट और (iv) कार्यकारी मजिस्ट्रेट। जहां तक उच्च न्यायालय का संबंध है, यह द0प्र0सं0 का प्राणी नहीं है। यह संविधान का प्राणी है जिसे उन सभी क्षेत्रों में सभी न्यायालयों और न्यायाधिकरणों पर अधीक्षण की शक्ति प्रदान की गई है, जिनके संबंध में यह अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है। (भारत के संविधान के अनुच्छेद 214, 215 और 227)। आपराधिक न्याय के प्रशासन में द0प्र0सं0 द्वारा और उसके तहत बनाई गई न्यायालयों पर उच्च न्यायालय के अधीक्षण की यह शक्ति द0प्र0सं0 397, 398, 482 और 483 द0प्र0सं0 जैसे प्रावधानों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। राज्य न्यायपालिका में न्यायालयों के पदानुक्रम में उच्च न्यायालय की स्थिति होने के नाते, यह ध्यान दिया जा सकता है कि न्यायालयों की अधीनता का सिद्धांत आपराधिक न्याय के प्रशासन में न्यायालयों के प्रक्रियात्मक प्रशासन को नियंत्रित करता प्रतीत होता है। प्रत्येक मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, सत्र न्यायाधीश के सामान्य नियंत्रण के अधीन, मुख्य महानगर के अधीनस्थ होता है और मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट सत्र न्यायाधीश (धारा, 19) के अधीनस्थ होता है। इसी तरह, प्रत्येक न्यायिक मजिस्ट्रेट, सत्र न्यायाधीश के सामान्य नियंत्रण के अधीन, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के अधीनस्थ होता है और प्रत्येक मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट/अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट सत्र न्यायाधीश (धारा 15) के अधीनस्थ होता है। सहायक सत्र न्यायाधीश सत्र न्यायाधीश (धारा 10) के अधीनस्थ होता है। इसी प्रकार प्रत्येक कार्यपालक मजिस्ट्रेट (एसडीएम के अलावा) एक एसडीएम में शक्तियों का प्रयोग करते हुए, एसडीएम और प्रत्येक कार्यकारी मजिस्ट्रेट के अधीनस्थ होगा, जिसमें एसडीएम भी शामिल है, लेकिन अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट को छोड़कर। मजिस्ट्रेट, जिला के अधीनस्थ हैं। मजिस्ट्रेट। यह ध्यान दिया जा सकता है कि द0प्र0सं0 के अध्याय II में बनाई गई अधीनता की योजना में कार्यकारी मजिस्ट्रेटी को सत्र न्यायाधीश के अधीन नहीं बनाया गया है। यह स्पष्ट रूप से इस कारण से है कि अध्याय II धारा 6 के तहत वर्गीकृत न्यायालयों के पदानुक्रम के प्रशासनिक नियंत्रण और अधीनता की बात करता है। अध्याय XXIX, XXX और XXXI अपील, संदर्भ और "क्रमशः संशोधन, आपराधिक प्रकरण के हस्तांतरण और दंड प्रक्रिया संहिता में कुछ अन्य प्रावधान आपराधिक न्यायालयों की न्यायिक अधीनता से संबंधित हैं।"

16. इस मुद्दे को इस प्रकार संक्षेपित किया जा सकता है कि चूंकि उच्च न्यायालय को ऐसे मजिस्ट्रेट द्वारा प्रकरण के शीघ्र और उचित निस्तारण को सुनिश्चित करने के लिए अपने अधीनस्थ न्यायिक मजिस्ट्रेटों की न्यायालय पर अपने अधीक्षण का प्रयोग करने का अधिकार है, लेकिन जब एक कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा एक आदेश पारित किया जाता है या कार्यकारी मजिस्ट्रेट के समक्ष लंबित प्रकरण के शीघ्र और उचित निस्तारण के लिए कोई निर्देश जारी करने की आवश्यकता होती है, उच्च न्यायालय कार्यकारी मजिस्ट्रेटों की न्यायालयों पर अपने अधीक्षण का प्रयोग नहीं कर सकता है।

17. इसके अलावा, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 6 (बीएनएसएस की धारा 6 भी) आपराधिक न्यायालयों के वर्गों को निम्नलिखित तरीके से परिभाषित करती है:

"आपराधिक न्यायालयों के वर्ग -

इस संहिता के अलावा किसी अन्य विधि के अधीन गठित उच्च न्यायालयों और न्यायालयों के अलावा, प्रत्येक राज्य में आपराधिक न्यायालयों के निम्नलिखित वर्ग होंगे, अर्थात् -

(i) सत्र न्यायालय;

(ii) प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट और, किसी भी महानगरीय क्षेत्र में, मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट;

(iii) द्वितीय श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट; तथा

(iv) कार्यकारी मजिस्ट्रेट।

18. उपरोक्त परिभाषा स्पष्ट रूप से न्यायिक मजिस्ट्रेटों और कार्यकारी मजिस्ट्रेटों के बीच अंतर प्रदान करती है और चूंकि धारा 483 द0प्र0सं0 (बीएनएसएस की धारा 529) के प्रावधानों को न्यायिक मजिस्ट्रेटों पर लागू किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप वे एक कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेशों पर लागू नहीं होते हैं, इसलिए उपरोक्त प्रावधानों और केस लॉ पर भरोसा करते हुए, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि धारा 529 बीएनएसएस (धारा 483 द0प्र0सं0) के तहत उच्च न्यायालय को कार्यकारी मजिस्ट्रेट के कामकाज पर कोई अधीक्षण करने की आवश्यकता नहीं है और धारा 483 द0प्र0सं0 (बीएनएसएस की धारा 529) के तहत कोई निर्देश कार्यकारी मजिस्ट्रेटों को जारी नहीं किया जा सकता है, जहां धारा 145 द0प्र0सं0 के तहत एक प्रकरण उसके समक्ष लंबित है, जैसा कि धारा 483 द0प्र0सं0 (बीएनएसएस की धारा 529) में निर्धारित वर्तमान प्रकरण है।

19. इसलिए, वर्तमान प्रार्थना पत्र इस न्यायालय के समक्ष विचारणीय नहीं है, और रद्द किये जाने योग्य है और तदनुसार, **रद्द** कर दिया जाता है।

(2025) 5 ILRA 1636

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 30.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लावनिया

धारा-483 के तहत आवेदन संख्या-49 वर्ष 2025

सम्बद्ध

धारा-483 के तहत आवेद संख्या-116 वर्ष 2025

अब्दुल रकीब @ पेहतूल **... उम्मीदवार**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **... प्रतिपक्षी**

आवेदक के लिए अधिवक्ता: सुखवीर सिंह

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून-भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023-धारा-529 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा-483-- क्या धारा-483 आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (अब निरसित) या धारा-529 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 के तहत उपाय, जैसा भी मामला हो, उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम 1986 की धारा-16 के तहत मामले के शीघ्र निपटान की प्रार्थना करने के लिए संबंधित लोगों के लिए उपलब्ध होगा -- अधिनियम 1986 की धारा-16 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, अधिनियम 1986 की धारा-14 और 15 से संबंधित मामलों से संबंधित, अधिनियम 1986 के तहत एक प्राधिकरण होने के नाते, उच्च न्यायालय के संबंध में अवर आपराधिक न्यायालय होगा। इसलिए, अधिनियम 1986 की धारा-16 के तहत कार्यवाही के शीघ्र निपटान के लिए आवेदन धारा-483 भ०द०वि० या धारा-529 बी.एन.एस.एस. के तहत सुनवाई योग्य होगा -- याचिका का निपटारा संबंधित न्यायालय को मामले की कार्यवाही को सबसे तेजी से समाप्त करने के निर्देश के साथ किया जाएगा।

याचिका का निपटारा किया गया। (ई-15)

संदर्भित वादों / निर्णयज विधियों की सूची-:

1. अशोक कुमार दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1987 (34) ए.सी.सी. 164: 1987 एसीआर 230: ए.आई.आर. 1987 (इला) 235 (सभी एचसी, एफबी)

अनुवादित

2. कैलाश सहकारी आवास समिति लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2012 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला० 5288

3. जंगली पासी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2015 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला० 8748

4. शासकीय अपील संख्या-6042 वर्ष 2010 (उत्तर प्रदेश बनाम नसीम खान और अन्य)

5. सहायक निदेशक बनाम कन्हैया प्रसाद के माध्यम से यू.ओ.आई.; 2025 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 306

6. राज्य (भारत संघ) बनाम राम शरण; (2003) 12 एस.सी.सी. 578

7. मारू राम बनाम भारत संघ; (1981)1 एस.सी.सी. 107

8. कौशल्या रानी बनाम गोपाल सिंह; ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 260,

9. ठाकुर दास (मृत) एलआर बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य; (1978) 1 एस.सी.सी. 27.

10. एलआईसी बनाम नादिनी जे. शाह; (2018) 15 एस.सी.सी. 356

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया द्वारा उद्घोषित)

1. न्यायालय द्वारा श्री अविनाश सिंह विशेन, अधिवक्ता, जिन्हें न्यायालय के अनुरोध पर सहायता हेतु सुना गया; श्री सुखवीर सिंह, अधिवक्ता, जो आवेदन संख्या 49 सन् 2025, धारा-483 के अंतर्गत, आवेदक/अब्दुल रकीब उर्फ पेहतुल की ओर से उपस्थित हुए; श्री सुख देव सिंह, अधिवक्ता, जो आवेदन संख्या 116 सन् 2025, धारा-483 के अंतर्गत, आवेदक/राशिद ख़ान की ओर से उपस्थित हुए; तथा राज्य उत्तर प्रदेश की ओर से उपस्थित श्री अजय कुमार श्रीवास्तव, विद्वान सहायक शासकीय अधिवक्ता, एवं श्री बदरुल हसन, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता-I को सुना गया।

2. निम्नलिखित मुख्य राहत (राहें) के लिए आवेदनों को दायर की दी गई है: -

2.1. धारा-483 संख्या-49 वर्ष 2025 के तहत आवेदन में मांगी गई मुख्य राहत।

"इसलिए, यह सबसे सम्मानपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि यूपी गैंगस्टर अधिनियम, 1986 की धारा-16(1) के तहत मामला अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक सेकेंड/स्पेशल न्यायाधीश गैंगस्टर एक्ट, अंबेडकर नगर के समक्ष लंबित है, क्योंकि 01.06.2023 से विविध केस संख्या-195 वर्ष 2023 (सरकार बनाम अब्दुल रकीब @ पेहतुल) पर निर्धारित समय के भीतर तेजी से फैसला किया जा सकता है।

इसके अलावा, यह माननीय न्यायालय राज्य के अधिकारियों को यह भी निर्देश दे सकता है कि वे कड़ाके की ठंड में रहने के लिए कुछ आश्रय गृह प्रदान करें, जिससे आवेदक की संपत्ति जारी नहीं होने तक बच्चों के साथ आवेदक के परिवार का जीवन बच सके।

2.2 धारा-483 संख्या-116 वर्ष 2025 के तहत आवेदन में मांगी गई मुख्य राहत।

"1- धारा-16(1) यूपी गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधि अधिनियम के तहत कार्यवाही का फैसला करने के लिए नीचे एक उपयुक्त, आदेश या निर्देश जारी करें, जिसमें आपराधिक प्रकीर्ण केस संख्या-4/2023, 'डॉ. राशिद

खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य', वर्तमान में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-2, सुल्तानपुर के समक्ष लंबित है, ऐसी अवधि के भीतर जो इस माननीय न्यायालय द्वारा, न्याय के हित में निर्धारित की जा सकती है;"

3. विचाराधीन धारा-483 भ०द०वि० के तहत आवेदनों की रखरखाव के संबंध में आपत्ति पर, इस न्यायालय को निम्नलिखित प्रश्न का उत्तर देना होगा।
क्या धारा-483 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में "भ०द०वि०") के तहत उपाय (अब निरसित) या धारा-529 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 (संक्षेप में "बी.एन.एस.एस."), जैसा भी मामला हो, उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 (संक्षेप में "अधिनियम 1986") की धारा-16 के तहत मामले के शीघ्र निपटान की प्रार्थना करने के लिए संबंधित के लिए उपलब्ध होगा।

4. आवेदकगण की ओर से पेश अधिवक्ता ने संक्षेप में प्रस्तुत किया कि अधिनियम 1986 की धारा-16 के तहत मामले के शीघ्र निपटान के लिए निर्देश मांगने के लिए धारा-483 भ०द०वि० (अब निरसित)/धारा-529 बी.एन.एस.एस. का उपाय उपलब्ध होगा, जैसा कि अधिनियम 1986 की धारा-16 के तहत "संपत्ति की कुर्की उचित है या नहीं", धारा-14 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए जिला मजिस्ट्रेट द्वारा कुर्क की गई संपत्ति के संबंध में अधिनियम 1986 के तहत किसी अपराध का विचारण करने के अधिकार क्षेत्र वाले 'न्यायालय' द्वारा लिया जाना है।

5. इसके विपरीत, अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि मामला विशेष अधिनियम यानी अधिनियम 1986 से संबंधित है और तदनुसार, धारा-482 भ०द०वि० या धारा-529 बी.एन.एस.एस. के तहत उपाय, जैसा भी मामला हो, उपलब्ध नहीं होगा। इस प्रकार के मामलों में एकमात्र उपाय जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत उपलब्ध होगा।

6. उपरोक्त पर विचार किया और अभिलेखों का अवलोकन किया।

7. इन मामलों में शामिल विवाद का फैसला करने के लिए, यह न्यायालय धारा-483 भ०द०वि० (अब निरसित), धारा-529 बी.एन.एस.एस., अधिनियम 1986 के कुछ प्रावधानों और इस मुद्दे पर घोषणाओं को संदर्भित करना उचित समझता है, जो ऊपर बताए गए प्रस्तुत मामले में शामिल मुद्दे को तय करने में सहायक हो सकता है।

8. धारा-483 भ०द०वि० (अब निरसित), धारा-529 बी.एन.एस.एस., अधिनियम 1986 के 'उद्देश्य और कारण', 'अधिनियम 1986 की प्रस्तावना' और अधिनियम 1986 की धारा-4, 7, 8, 10, 14, 15, 16, 17, 18, 19 और 20 सुलभ संदर्भ के लिए यहां उद्धृत किए गए हैं: -

8(ए) धारा-483 भ०द०वि०

483. न्यायिक मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों पर निरंतर पर्यवेक्षण करने के लिए उच्च न्यायालय का कर्तव्य- *प्रत्येक उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायिक मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों पर इस प्रकार अपने पर्यवेक्षण का प्रयोग करेगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ऐसे मजिस्ट्रेटों द्वारा मामलों का शीघ्र और उचित निपटान किया जाए।*

8(बी) धारा-529 बी.एन.एस.एस.

529. न्यायालयों पर निरंतर पर्यवेक्षण करने के लिए उच्च न्यायालय का कर्तव्य- *प्रत्येक उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायिक मजिस्ट्रेटों के सत्र न्यायालयों और न्यायालयों पर इस प्रकार अपने अधीक्षण का प्रयोग करेगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि न्यायाधीशों और मजिस्ट्रेटों द्वारा मामलों का शीघ्र और उचित निपटान हो।*

8(सी) अधिनियम 1986 के उद्देश्य और कारण जैसा कि अशोक कुमार दीक्षित बनाम अशोक कुमार दीक्षित के मामले में देखा गया है। उत्तर प्रदेश राज्य, 1987 (34) ए.सी.सी. 164: 1987 एसीआर 230: ए.आई.आर. 1987 (इला) 235 (सभी एचसी, एफबी)

अधिनियम का उद्देश्य और कारण- *गैंगस्टरवाद और असामाजिक गतिविधियों ने इस तरह के अधिनियम को पेश करने में राज्य विधानमंडल को प्रभावित किया। अधिनियम का उद्देश्य और कारण यह है कि राज्य में गैंगस्टरवाद और असामाजिक गतिविधियां बढ़ रही थीं, जिससे नागरिकों के जीवन और संपत्ति के लिए खतरा पैदा हो रहा था। मौजूदा उपायों को नए खतरे से निपटने के लिए पर्याप्त रूप से प्रभावी नहीं पाया गया। गैंगस्टरों को दंडित करके गिरोहों को तोड़ने और उनके विशिष्ट मंसूबों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से राज्य में गैंगस्टरों और असामाजिक गतिविधियों की रोकथाम और उनसे निपटने के लिए विशेष प्रावधान करना आवश्यक समझा गया।*

8(डी) अधिनियम 1986 की प्रस्तावना के रूप में अशोक कुमार दीक्षित बनाम अशोक कुमार दीक्षित के मामले में देखा गया है। उत्तर प्रदेश राज्य, 1987 (34) ए.सी.सी. 164: 1987 एसीआर 230: ए.आई.आर. 1987 (इला) 235 (सभी एचसी, एफबी)

अधिनियम की प्रस्तावना- *यह अधिनियम उन घोषित अपराधियों को दंडित करने का प्रयास करता है जिन्होंने जानबूझकर अपराध का जीवन चुना है। संगठित अपराधों, हिंसा और तांडव के इन पेशेवर अपराधियों की गतिविधियों का समाज और उसके लोगों के स्वास्थ्य और नैतिकता पर कहीं अधिक हानिकारक प्रभाव पड़ता है। यदि इस तरह के पुनरावृत्ति की गतिविधियों को अन्य सामान्य अपराधियों के समान सजा के अधीन किया जाता है, तो राज्य प्रशासन की प्रभावकारिता और दक्षता में जनता का विश्वास डगमगाना तय है।*

8(ई) ***अधिनियम 1986 की धारा-4***

4. साक्ष्य के विशेष नियम-*इस अधिनियम या संबंधित अपराधों के लिए परीक्षण और सजा के प्रयोजनों के लिए संहिता या भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1 वर्ष 1872) में निहित किसी भी विपरीत बात के बावजूद-*

(क) न्यायालय इस तथ्य को ध्यान में रख सकता है कि अभियुक्त निम्नलिखित था-

(i) संहिता की धारा-107 या धारा-108 या धारा-109 या धारा-110 के तहत बंधे किसी भी पिछले अवसर पर; नहीं तो

(ii) निवारक निरोध से संबंधित किसी भी कानून के तहत हिरासत में लिया गया; नहीं तो

(iii) उत्तर प्रदेश नियंत्रण अधिनियम, 1970 (अधिनियम संख्या-8 वर्ष 1971) या ऐसे किसी अन्य कानून के तहत बहिष्कृत;

(ख) जहां यह सिद्ध हो जाता है कि कोई गैंगस्टर या उसकी ओर से कोई व्यक्ति किसी भी समय चल या अचल संपत्ति के कब्जे में है या रहा है, जिसका वह संतोषजनक ढंग से हिसाब नहीं दे सकता है, या जहां उसके आर्थिक संसाधन उसकी आय के ज्ञात स्रोतों से अनुपातहीन हैं, न्यायालय यह मान लेगा कि ऐसी संपत्ति या आर्थिक संसाधन एक गैंगस्टर के रूप में उसकी गतिविधियों द्वारा अर्जित या प्राप्त किए गए हैं;

(ग) जहां यह साबित हो जाता है कि अभियुक्त ने किसी व्यक्ति का अपहरण या अपहरण किया है, न्यायालय यह मान लेगा कि यह फिरौती के लिए था;

(घ) जहां यह साबित हो जाता है कि एक गैंगस्टर ने किसी अपहृत या अपहृत व्यक्ति को गलत तरीके से छिपाया या कैद कर लिया है, तो न्यायालय यह मान लेगा कि गैंगस्टर जानता था कि ऐसे व्यक्ति का अपहरण या अपहरण किया गया था, जैसा भी मामला हो;

(ङ) यदि अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से न्यायालय अभियुक्त की अनुपस्थिति में विचारण को आगे बढ़ाने और किसी गवाह के साक्ष्य को अभिलिखित करने के लिए उचित समझे,

बशर्ते कि गवाह को जिरह के लिए वापस बुलाया जा सकता है यदि अभियुक्त ऐसा चाहता है, लेकिन अभियुक्त की उपस्थिति में नए सिरे से उसकी मुख्य परीक्षा दर्ज करना आवश्यक नहीं होगा।

8(एफ) अधिनियम की धारा-7 वर्ष 1986

***7. विशेष न्यायालयों की अधिकारिता** - (1) संहिता में किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी स्थानीय क्षेत्र के लिए एक विशेष न्यायालय का गठन किया गया है, इस अधिनियम के किसी उपबंध या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन दंडनीय प्रत्येक अपराध केवल उस विशेष न्यायालय के द्वारा विचारणीय होगा जिसके स्थानीय क्षेत्राधिकार के भीतर वह किया गया था, चाहे वह ऐसे विशेष न्यायालय के गठन से पूर्व हो या बाद में।*

(2) विशेष न्यायालय द्वारा विचारण किए जाने वाले सभी मामले, जो ऐसे विशेष न्यायालय के गठन से ठीक पहले किसी न्यायालय के समक्ष लंबित थे, ऐसे मामलों पर अधिकारिता वाले ऐसे विशेष न्यायालय के सृजन पर उसे अंतरित कर दिए जाएंगे।

(3) जहां किसी अपराध के संबंध में किसी जांच या विचारण के दौरान किसी न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि वह मामला वह है जिस पर इस अधिनियम के अधीन गठित विशेष न्यायालय द्वारा उस क्षेत्र के लिए

विचारण किया जाना चाहिए जिसमें ऐसा मामला उत्पन्न हुआ है, तो वह ऐसे मामले को ऐसे विशेष न्यायालय को अंतरित करेगा और उसके बाद ऐसे मामले का विचारण और निपटान विशेष न्यायालय द्वारा यह अधिनियम: परन्तु विशेष न्यायालय के लिए इस धारा-के अधीन मामले के अंतरण से पहले अभियुक्त की उपस्थिति में मामले में न्यायालय द्वारा दर्ज साक्ष्य, यदि कोई हो, पर कार्य करना विधिसम्मत होगा:

परन्तु आगे यह कि यदि विशेष न्यायालय की यह राय है कि किसी गवाह की आगे की परीक्षा, जिसके साक्ष्य मामले में पहले से ही दर्ज किए जा चुके हैं, न्याय के हित में आवश्यक है, तो वह ऐसे किसी भी गवाह को फिर से बुला सकता है और इस तरह की आगे की जांच के बाद, जिरह और पुनर्परीक्षा, यदि कोई हो, जैसा कि वह अनुमति दे सकता है, गवाह को मुक्त कर दिया जाएगा।

(4) राज्य सरकार, यदि इस बात से संतुष्ट हो जाती है कि ऐसा करना लोकहित में आवश्यक या समीचीन है, तो विशेष न्यायालय के समक्ष लंबित किसी मामले को किसी अन्य विशेष न्यायालय को अंतरित कर सकेगी

8(जी) अधिनियम की धारा-8 वर्ष 1986

***8. अन्य अपराधों के संबंध में विशेष न्यायालयों की शक्ति** (1) इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध का विचारण करते समय विशेष न्यायालय किसी अन्य अपराध का भी विचारण कर सकेगा जिसके साथ अभियुक्त, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन उसी विचारण में अभियोग लगाया जा सकेगा।*

(2) यदि किसी अपराध के इस अधिनियम के अधीन किसी विचारण के दौरान, यह पाया जाता है कि अभियुक्त ने इस अधिनियम या उसके अधीन किसी नियम के अधीन या किसी अन्य कानून के अधीन कोई अन्य अपराध किया है, तो विशेष न्यायालय ऐसे व्यक्ति को ऐसे अन्य अपराध के लिए दोषी ठहरा सकेगा और इस अधिनियम या ऐसे नियम द्वारा प्राधिकृत कोई सजा पारित कर सकेगा या, जैसा भी मामला हो, ऐसे अन्य कानून, उसकी सजा के लिए।

*8(एच) **अधिनियम 1986 की धारा-10***

***10. विशेष न्यायालयों की प्रक्रिया और शक्तियां** (1) कोई विशेष न्यायालय अपने द्वारा विचारणीय किसी अपराध का संज्ञान ले सकेगा, अभियुक्त को ऐसे अपराधों की शिकायत प्राप्त होने पर या ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर विचारण के लिए अभियुक्त को उसके प्रति प्रतिबद्ध किए बिना।*

(2) जहां किसी विशेष न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध तीन वर्ष से अनधिक कारावास या जुर्माने या दोनों से दंडनीय है, वहां विशेष न्यायालय, धारा-260 की उपधारा-(1) या संहिता की धारा-262 में किसी बात के होते हुए भी, संहिता में विहित प्रक्रिया और संहिता की धारा-263 से 265 के उपबंधों के अनुसार संक्षिप्त तरीके से अपराध का विचारण कर सकेगा, जहां तक हो सके, इस तरह के परीक्षण पर लागू होगा:

बशर्ते कि जब इस उपधारा-के तहत एक लघु विचारण के दौरान, विशेष न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि मामले की प्रकृति ऐसी है कि सारांश तरीके से प्रयास करना अवांछनीय है, तो विशेष न्यायालय किसी भी गवाह को वापस बुला लेगा जिनकी जांच की गई हो और ऐसे अपराध के विचारण के लिए संहिता के प्रावधानों और

उक्त प्रावधानों द्वारा प्रदान किए गए तरीके से मामले की सुनवाई करने के लिए आगे बढ़ेगा एक विशेष न्यायालय के संबंध में और उसके संबंध में लागू होगा जैसा कि वे लागू होते हैं और एक मजिस्ट्रेट के संबंध में:

परन्तु यह भी कि इस उपधारा-के अधीन लघु विचारण में किसी दोषसिद्धि के मामले में, विशेष न्यायालय के लिए दो वर्ष से अनधिक अवधि के लिए कारावास की सजा पारित करना विधिसम्मत होगा।

(3) कोई विशेष न्यायालय, किसी ऐसे व्यक्ति का साक्ष्य प्राप्त करने की दृष्टि से, जो किसी अपराध में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संबंधित माना जाता है, या किसी अपराध की जानकारी में रहा हो, या उसकी जानकारी में पूरी परिस्थितियों का पूर्ण और सही प्रकटन करने की शर्त पर और आयोग में प्रधान या दुष्प्रेरक के रूप में संबंधित प्रत्येक अन्य व्यक्ति को, उसके बाद, और इस प्रकार की गई कोई भी क्षमा, संहिता की धारा-308 के प्रयोजनों के लिए, उसकी धारा-307 के तहत प्रस्तुत की गई मानी जाएगी।

(4) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी अपराध के विचारण के प्रयोजन के लिए एक विशेष न्यायालय के पास सत्र न्यायालय की सभी शक्तियां हैं और वह मजिस्ट्रेट द्वारा वारंट मामलों के विचारण के लिए संहिता में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करेगा।

(5) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, धारा-7 की उपधारा-(3) के अधीन विशेष न्यायालय को अंतरित किए गए प्रत्येक मामले पर इस तरह से कार्रवाई की जाएगी जैसे कि ऐसा मामला संहिता की धारा-406 के अधीन ऐसे विशेष न्यायालय में अंतरित कर दिया गया हो।

*8(i) **अधिनियम 1986 की धारा-14***

***14. संपत्ति की कुर्की** (1) यदि जिला मजिस्ट्रेट के पास यह मानने का कारण है कि किसी व्यक्ति के कब्जे में कोई संपत्ति, चाहे वह चल हो या अचल, इस अधिनियम के अधीन विचारणीय अपराध के परिणामस्वरूप किसी गैंगस्टर द्वारा अर्जित की गई है, तो वह ऐसी संपत्ति की कुर्की का आदेश दे सकेगा चाहे किसी न्यायालय द्वारा ऐसे अपराध का संज्ञान लिया गया हो या नहीं।*

(2) संहिता के प्रावधान ऐसे प्रत्येक अनुरोधों पर उत्परिवर्तित रूप से लागू होंगे।

(3) संहिता के उपबंधों के होते हुए भी, जिला मजिस्ट्रेट उपधारा-(1) के अधीन संलग्न किसी संपत्ति का प्रशासक नियुक्त कर सकेगा और प्रशासक को ऐसी संपत्ति के सर्वोत्तम हित में प्रशासित करने की सभी शक्तियां होंगी।

(4) जिला मजिस्ट्रेट ऐसी संपत्ति के उचित और प्रभावी प्रशासन के लिए प्रशासक को पुलिस सहायता प्रदान कर सकता है।

8(जे) अधिनियम 1986 की धारा-15

15. संपत्ति की रिहाई *(1) जहां धारा-14 के तहत कोई संपत्ति कुर्क की जाती है, वहां उसका दावेदार ऐसी कुर्की की जानकारी की तारीख से तीन महीने के भीतर जिला मजिस्ट्रेट को एक अभ्यावेदन दे सकता है जिसमें परिस्थितियों और उन स्रोतों को दर्शाया गया हो जिनके द्वारा उसके द्वारा ऐसी संपत्ति अर्जित की गई थी।*

(2) यदि जिला मजिस्ट्रेट उपधारा-(1) के अधीन किए गए दावे की सत्यता के बारे में संतुष्ट हो जाता है, तो वह संपत्ति को कुर्की से तत्काल मुक्त कर देगा और उसके बाद ऐसी संपत्ति दावेदार को दे दी जाएगी।

8(के) ***अधिनियम 1986 की धारा-16***

16. न्यायालय द्वारा संपत्ति के अधिग्रहण के चरित्र की जांच *(1) जहां धारा-15 की उपधारा-(1) में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर कोई अभ्यावेदन नहीं किया जाता है या जिला मजिस्ट्रेट धारा-15 की उपधारा-(2) के अधीन संपत्ति को मुक्त नहीं करता है, तो वह इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का विचारण करने के लिए अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय को अपनी रिपोर्ट के साथ मामले को भेजेगा।*

(2) जहां जिला मजिस्ट्रेट ने धारा-14 की उपधारा-(1) के अधीन किसी संपत्ति को कुर्क करने से मना कर दिया है या धारा-15 की उपधारा-(2) के अधीन किसी संपत्ति को जारी करने का आदेश दिया है, वहां राज्य सरकार या ऐसे इनकार या रिहाई से व्यथित कोई व्यक्ति उपधारा-(1) में निर्दिष्ट न्यायालय में इस बात की जांच के लिए आवेदन कर सकेगा कि क्या संपत्ति किसी अपराध के कमीशन (गठन) द्वारा या उसके परिणामस्वरूप अर्जित की गई थी जो इस अधिनियम के तहत विचारणीय है। ऐसा न्यायालय, यदि न्याय के हित में आवश्यक या समीचीन समझता है, तो ऐसी संपत्ति की कुर्की का आदेश दे सकता है।

(3)(क) उपधारा-(1) के अधीन संदर्भ प्राप्त होने पर अथवा उपधारा-(2) के अधीन आवेदन प्राप्त होने पर, न्यायालय जांच की तारीख नियत करेगा और उपधारा-(2) के अधीन आवेदन करने वाले व्यक्ति को अथवा यथास्थिति, धारा-15 के अधीन अभ्यावेदन देने वाले व्यक्ति को और राज्य सरकार को उसके नोटिस देगा और किसी अन्य व्यक्ति के लिए भी जिसका हित मामले में शामिल प्रतीत होता है।

(ख) इस प्रकार निर्धारित तिथि या किसी अनुवर्ती तिथि पर, जिस पर जांच स्थगित की जा सकती है, न्यायालय पक्षकारों को सुनेगा, उनके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य प्राप्त करेगा, ऐसे और साक्ष्य लेगा जो वह आवश्यक समझे, यह निर्णय करेगा कि क्या संपत्ति किसी गैंगस्टर द्वारा इस अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के परिणामस्वरूप अर्जित की गई थी और धारा-17 के तहत ऐसा आदेश पारित करेगा जो मामले का परिस्थितियों में न्यायसंगत और आवश्यक हो सकता है।

(4) उपधारा-(3) के अधीन जांच के प्रयोजनार्थ न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (अधिनियम संख्या-V वर्ष 1908) के अधीन वाद का विचारण करते समय निम्नलिखित विषयों के संबंध में सिविल न्यायालय की शक्ति होगी, अर्थात्:

(क) किसी व्यक्ति को बुलाना और उसकी उपस्थिति को लागू करना और शपथ पर उसकी जांच करना;
(बी) दस्तावेजों की खोज और उत्पादन की आवश्यकता है;
(ग) शपथ पत्रों पर साक्ष्य प्राप्त करना;
(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी सार्वजनिक अभिलेख या उसकी प्रति प्राप्त करना;
(ई) गवाह या दस्तावेजों की जांच के लिए कमीशन जारी करना;
(च) डिफ़ॉल्ट के लिए एक संदर्भ को खारिज करना या इसे एकपक्षीय निर्णय लेना;
(छ) चूक या एकपक्षीय निर्णय के लिए बर्खास्तगी के आदेश को अलग करना।

(5) इस धारा-के अधीन किसी कार्यवाही में, यह साबित करने का भार कि प्रश्नगत संपत्ति या उसके किसी भाग को इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध के कमीशन (गठन) के परिणामस्वरूप किसी गैंगस्टर द्वारा अर्जित नहीं किया गया था, संपत्ति का दावा करने वाले व्यक्ति पर होगा, जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 में निहित कुछ भी है, (अधिनियम संख्या-1 वर्ष 1872) के बावजूद;

8(एल) ***अधिनियम 1986 की धारा-17***

17. जांच के बाद आदेश-*यदि इस तरह की जांच करने पर न्यायालय को पता चलता है कि संपत्ति किसी गैंगस्टर द्वारा इस अधिनियम के तहत विचारणीय किसी भी अपराध के कमीशन (गठन) के परिणामस्वरूप अर्जित नहीं की गई थी, तो वह उस व्यक्ति की संपत्ति को मुक्त करने का आदेश देगा जिसके कब्जे से इसे कुर्क किया गया था। किसी अन्य मामले में न्यायालय ऐसा आदेश दे सकता है जो वह संपत्ति के कब्जे के हकदार किसी भी व्यक्ति को कुर्की, जब्ती या सुपुर्दगी द्वारा संपत्ति के निपटान के लिए उचित समझे, या अन्यथा।*

8(एम) ***अधिनियम की धारा-18 वर्ष 1986***

18. अपील-संहिता के अध्याय XXIX के प्रावधान, उत्परिवर्तन के साथ, इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत पारित न्यायालय के आदेश पर किसी भी निर्णय के खिलाफ अपील पर लागू होंगे।

8(एन) अधिनियम की धारा-19 वर्ष 1986

19. संहिता के कुछ प्रावधानों का संशोधित अनुप्रयोग (*1) संहिता में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन दंडनीय प्रत्येक अपराध संहिता की धारा-2 के खंड (ग) के अर्थ के भीतर संज्ञेय अपराध समझा जाएगा और उस खंड में यथा परिभाषित संज्ञेय मामले का तदनुसार अर्थ लगाया जाएगा।*

(2) संहिता की धारा-167 इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन दंडनीय अपराध से जुड़े मामले के संबंध में लागू होगी, अध्यधीन इन संशोधनों के अध्यधीन-

(क) उपधारा-(1) में "न्यायिक मजिस्ट्रेट" के संदर्भ का अर्थ "न्यायिक मजिस्ट्रेट या कार्यपालक मजिस्ट्रेट" के संदर्भ के रूप में लगाया जाएगा;

(ख) उपधारा-(2) में "पंद्रह दिन", "नब्बे दिन" और "साठ दिन" के संदर्भ, जहां कहीं भी वे होते हैं, क्रमशः "साठ दिनों" , "एक वर्ष" और "एक वर्ष" के संदर्भों के रूप में समझा जाएगा;

(ग) उसकी उपधारा-(2क) को लोप किया गया समझा जाएगा।

(3) संहिता की धारा-366, 367, 368 और 371 एक विशेष न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध से जुड़े मामले के संबंध में लागू होगी, इस संशोधन के अधीन कि "सत्र न्यायालय" का संदर्भ, जहां कहीं भी यहां होता है, "विशेष न्यायालय" के संदर्भ के रूप में समझा जाएगा।

(4) संहिता में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन दंडनीय अपराध का अभियुक्त कोई व्यक्ति, यदि हिरासत में है, तो जमानत पर या अपने स्वयं के मुचलके पर तब तक रिहा नहीं किया जाएगा जब तक कि:-

(क) लोक अभियोजक को ऐसी रिहाई के लिए आवेदन का विरोध करने का अवसर दिया गया है, और

(ख) जहां लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है, न्यायालय इस बात से संतुष्ट है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध करने की संभावना नहीं है।

(5) उपधारा-(4) में निर्दिष्ट जमानत देने की सीमाएं संहिता के तहत सीमाओं के अतिरिक्त हैं।

*8(ओ) **अधिनियम 1986 की धारा-20***

***20. ओवरराइडिंग प्रभाव-**इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम के उपबंध किसी अन्य अधिनियम में निहित किसी असंगत बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे।*

9. उपर्युक्त संदर्भित 1986 के अधिनियम के प्रावधानों से यह स्पष्ट होता है कि यह अधिनियम एक विशेष विधि है, जिसे गैंगस्टरवाद एवं असामाजिक गतिविधियों की रोकथाम तथा उनसे निपटने के उद्देश्य से अधिनियमित किया गया है; यह एक दंडात्मक अधिनियम है, जिसमें धारा-3 के अंतर्गत गैंगस्टर के साथ-साथ गैंगस्टर को अवैध सहायता या समर्थन प्रदान करने वाले लोक सेवक के लिए भी दंड का प्रावधान किया गया है; तथा 1986 का अधिनियम एक स्वयंपूर्ण संहिता है, जिसका निष्कर्ष कैलाश सहकारी आवास समिति लिमिटेड बनाम राज्य उत्तर प्रदेश एवं अन्य, 2012 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला० 5288 में दिए गए निर्णय में की गई टिप्पणियों से भी निकाला जा सकता है, जिसे इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा जंगली पासी बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, 2015 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला० 8748 में अनुमोदित किया गया है।

10. जंगली पासी (उपरोक्त) के मामले में पारित निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर 18, 29 और 31 इस प्रकार हैं: -

"***18.*** *उक्त निर्णय को एकल न्यायाधीश के समक्ष उद्धृत किया गया था, जिसमें उपरोक्त टिप्पणियों के बल पर अपील की स्थिरता पर प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई थी। इस मामले पर आपराधिक अपील संख्या-3000 वर्ष 2003, कैलाश सहकारी आवास सरनीति बनाम कैलाश में विचार किया गया। उत्तर प्रदेश राज्य के एकल न्यायाधीश ने अधिनियम के सभी संगत उपबंधों के साथ-साथ दंड प्रक्रिया संहिता के दिनांक 2-2-2010 के आदेश के तहत निम्नलिखित प्रभाव से निर्णय सुनाया है -*

"xxx xxx xxx

मैंने दोनों पक्षों को सुना है और प्रतिद्वंद्वियों की दलीलों पर विचार किया है। चूंकि प्रतिद्वंद्वी पक्षों के बीच विवाद की जड़ के लिए एक अधिनियमित क़ानून के वैधानिक प्रावधान की व्याख्या की आवश्यकता होती है, इसलिए उक्त पूरे क़ानून पर विचार करने से इस धारा-के विधायी इरादे की व्याख्या की जा सकती है और इसका प्रयोग करते समय अधिनियम की एक झलक इंगित करती है कि अधिनियम को उत्तर प्रदेश राज्य के भीतर गैंगस्टरवाद और असामाजिक गतिविधियों को रोकने के लिए अधिनियमित किया गया था, जिसने खतरनाक आयाम प्राप्त कर लिए हैं। इस अधिनियम को 19.3.1986 को जीवन में लाया गया था, जिस तारीख को इसे उत्तर प्रदेश राजपत्र भाग एक में प्रकाशित किया गया था। अधिनियम की धारा-1 में इसके शीर्षक और आवेदन की सीमा का उल्लेख है, धारा-2 अधिनियम के तहत होने वाले विभिन्न शब्दों की परिभाषा और अर्थ प्रदान करती है। धारा-2(एफ) जो वर्तमान विवाद के लिए कुछ महत्व की है, यह प्रदान करती है कि अधिनियम में उपयोग किए गए शब्दों और वाक्यांशों का उपयोग किया गया है, लेकिन दंड प्रक्रिया संहिता 1973 के तहत परिभाषित नहीं किया गया है, या दंड संहिता, 1860 के संबंधित अर्थ उन क़ानूनों में उन्हें दिए गए होंगे। अधिनियम की धारा-3 अधिनियम के तहत अपराधों के लिए दंड का प्रावधान करती है, जबकि धारा-4 अधिनियम के तहत अपराधों के विचारण में लागू किए जाने वाले साक्ष्य के विशेष नियम को निर्धारित करती है। धारा-5 से 10 अधिनियम के तहत अपराधों की सुनवाई के लिए विशेष न्यायालयों के निर्माण, पीठासीन न्यायाधीश की योग्यता, विशेष न्यायालयों की बैठक का स्थान और विचारण किए जाने वाले अपराधों की प्रकृति और इसके द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया पर विचार करती है। बिना किसी वॉल्यूम के, यह अभिलिखित किया गया है कि अधिनियम की धारा-10 के अनुसार विशेष न्यायाधीश के पास सत्र न्यायाधीश की शक्ति होगी और वह उसी वारंट विचारण प्रक्रिया का पालन करेगा जिसका पालन मजिस्ट्रेट द्वारा किया जाना है, जब तक कि अपराध तीन वर्ष से अधिक के कारावास से दंडनीय न हो, जिस स्थिति में वह संहिता की धारा-263 से 265 के अनुरूप संक्षिप्त तरीके से अपराध का विचारण कर सकता है। धारा-11 गवाहों को सुरक्षा प्रदान करती है जबकि धारा-12 में उल्लेख किया गया है कि अधिनियम के तहत मुकदमे को अन्य मामलों के मुकदमे पर दायर की दी जाएगी। धारा-13 विशेष न्यायालय द्वारा मामलों को नियमित न्यायालयों में स्थानांतरित करने की शक्ति दर्ज करती है यदि यह पाता है कि उसके द्वारा विचारण किए जा रहे अपराधों पर उसके द्वारा विचारणीय नहीं है। धारा-14 से धारा-17 तक, अधिनियम संपत्ति की कुर्की और उसे जारी करने का प्रावधान करता है। धारा-14 में कहा गया है कि यदि जिला मजिस्ट्रेट के पास यह मानने का कारण है कि किसी भी व्यक्ति के पास कोई चल या अचल, संपत्ति अधिनियम के तहत किसी भी अपराध के परिणामस्वरूप गैंगस्टरिज्म द्वारा अर्जित की गई है, तो जिला मजिस्ट्रेट इस तथ्य पर ध्यान दिए बिना ऐसी संपत्ति की कुर्की का आदेश दे सकता है कि इस

तरह के अपराध का संज्ञान किसी न्यायालय द्वारा लिया गया है या नहीं। उप-धारा-14(2) में प्रावधान है कि भ०द०वि० के प्रावधान अधिनियम के तहत किए गए प्रत्येक कुर्की पर उत्परिवर्तन के साथ लागू होंगे। धारा-14(3) और (4) जिला मजिस्ट्रेट द्वारा कुर्क की गई संपत्ति पर एक प्रशासक की नियुक्ति और ऐसी संपत्ति के प्रशासन के लिए पुलिस की मदद का प्रावधान करती है। अधिनियम की धारा-15 में किसी भी दावेदार द्वारा कुर्की की जानकारी की तारीख से तीन महीने के भीतर जिला मजिस्ट्रेट को दिए गए आवेदन के माध्यम से संपत्ति की रिहाई के लिए आवेदन करने का प्रावधान है। धारा-15(2) में कहा गया है कि यदि जिला मजिस्ट्रेट दावेदार के मामले से संतुष्ट है तो वह संपत्ति को कुर्की से मुक्त करने का निर्देश दे सकता है और उसके बाद संपत्ति दावेदार को सौंप दी जाएगी। अधिनियम की धारा-16 के विवरण से संकेत मिलता है कि यदि कुर्की की जानकारी की तारीख से तीन महीने की निर्दिष्ट अवधि के भीतर कोई प्रतिनिधित्व नहीं किया जाता है या जिला मजिस्ट्रेट दावेदार को संपत्ति जारी नहीं करता है जैसा कि अधिनियम की धारा-15(2) के तहत प्रदान किया गया है, तो वह (जिला मजिस्ट्रेट) अपनी रिपोर्ट के साथ मामले को अधिनियम के तहत अपराधों की सुनवाई करने के लिए अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय को भेजेगा। धारा-16(2) में कहा गया है कि यदि जिला मजिस्ट्रेट अधिनियम की धारा-14(1) के तहत संपत्ति कुर्क करने के लिए कार्य नहीं करता है, या अधिनियम की धारा-15(2) के तहत संपत्ति को मुक्त नहीं करता है, तो राज्य सरकार या इस तरह के इनकार या रिहाई से व्यथित कोई भी व्यक्ति इस अधिनियम के तहत किसी अपराध का विचारण करने के लिए अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय में आवेदन कर सकता है, ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि क्या कोई संपत्ति गैंगस्टरवाद द्वारा अधिग्रहित किया गया है या नहीं? इस तरह की जांच के बाद, अदालत को ऐसी संपत्ति की कुर्की के लिए आदेश देने की शक्ति प्रदान की गई है जैसा कि इस मामले में किया गया था। अधिनियम की धारा-16(3), जो दो भागों में है, उप-धारा-(ए) में विचार करती है कि धारा-16 की उप-धारा-(1) के तहत या उक्त धारा-की उप-धारा-(2) के तहत एक आवेदन पर न्यायालय एक जांच करेगा और उप-धारा-(बी) में प्रावधान है कि इस तरह से निर्धारित तिथि पर न्यायालय पक्षों को सुनेगा, उनके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य प्राप्त करना, ऐसे और साक्ष्य लेना जो आवश्यक समझे और यह तय करना कि अधिनियम के तहत अपराध करने के परिणामस्वरूप संपत्ति एक गैंगस्टर द्वारा अर्जित की गई थी या नहीं और फिर धारा-17 के तहत एक आदेश पारित करेगा, जैसा भी मामला हो सकता है जो उसकी राय में आवश्यक है। धारा-16(4) अधिनियम के तहत न्यायालय को वही शक्ति प्रदान करती है जो जांच के मामलों में सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के तहत एक सिविल न्यायालय के पास है। अधिनियम की धारा-16(5) में कहा गया है कि यह साबित करने का भार कि संपत्ति या उसके किसी भी हिस्से को गैंगस्टरिज्म द्वारा या अधिनियम के तहत किसी भी अपराध के कमीशन (गठन) द्वारा अर्जित नहीं किया गया है, भारतीय साक्ष्य अधिनियम में निहित किसी भी प्रावधान के बावजूद संपत्ति की रिहाई का दावा करने वाले व्यक्ति पर होगा। अधिनियम की धारा-17 में प्रावधान है कि ऐसी जांच पर यदि न्यायालय को पता चलता है कि अधिनियम के तहत किसी अपराध के परिणामस्वरूप गैंगस्टर द्वारा संपत्ति अर्जित नहीं की गई थी, तो न्यायालय ऐसी संपत्ति को उस व्यक्ति को जारी करने का आदेश देगा जिसके कब्जे से इसे कुर्क किया गया था। किसी अन्य मामले में, न्यायालय ऐसे आदेश दे सकता है जो वह ऐसी संपत्ति के निपटान के लिए उपयुक्त समझे, या तो कुर्की, जब्ती या उसके कब्जे के हकदार किसी भी व्यक्ति को सुपुर्दगी या अन्यथा। धारा-18, जो प्रतिद्वंद्वी पक्षों के बीच त्याग का सेब है, अधिनियम के तहत पसंद की गई अपील में संहिता के अध्याय

XXIX को लागू करने के लिए कानून बनाती है और प्रदान करती है। विधायी आशय की स्पष्ट समझ के लिए, अधिनियम की धारा-17 और 18 नीचे पुन: प्रस्तुत की गई है: -

"17. जांच के बाद आदेश- यदि ऐसी जांच पर न्यायालय को यह पता चलता है कि इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध के परिणामस्वरूप किसी गैंगस्टर द्वारा संपत्ति का अधिग्रहण नहीं किया गया था, तो वह उस व्यक्ति की संपत्ति को मुक्त करने का आदेश देगा जिसके कब्जे से उसे कुर्क किया गया था। किसी अन्य मामले में न्यायालय ऐसा आदेश दे सकता है जो वह संपत्ति के कब्जे के हकदार किसी भी व्यक्ति को कुर्की, जब्ती या सुपुर्दगी द्वारा संपत्ति के निपटान के लिए उचित समझे, या अन्यथा।

18. अपील- संहिता के अध्याय XXIX के प्रावधान इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत पारित न्यायालय के किसी भी निर्णय या आदेश के खिलाफ अपील पर लागू होंगे।
दो संदर्भित वैधानिक प्रावधानों से यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा-14 से 17, जो किसी भी संपत्ति की कुर्की/गैर-कुर्की या रिलीज से संबंधित है, संहिता की धारा-451, 452 और 457 के अनुरूप है। सुलभ संदर्भ के लिए, भ०द०वि० के उपरोक्त प्रावधान नीचे दर्ज किए गए हैं: -

"451. कुछ मामलों में विचारण लंबित संपत्ति की अभिरक्षा और निपटान के लिए आदेश-जब किसी जांच या विचारण के दौरान किसी आपराधिक न्यायालय के समक्ष कोई संपत्ति पेश की जाती है, तो न्यायालय ऐसा आदेश दे सकता है जो वह जांच या विचारण के समापन तक ऐसी संपत्ति की उचित अभिरक्षा के लिए उपयुक्त समझे, और, यदि संपत्ति त्वरित और प्राकृतिक क्षय के अधीन है, या यदि ऐसा करना अन्यथा समीचीन है, तो न्यायालय ऐसे सबूतों को दर्ज करने के बाद जैसा कि वह आवश्यक समझता है, इसे बेचने या अन्यथा निपटान करने का आदेश दे सकता है।
स्पष्टीकरण-इस खंड के प्रयोजनों के लिए, "संपत्ति" में शामिल हैं-
(क) किसी प्रकार की संपत्ति या दस्तावेज जो न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है या जो उसकी अभिरक्षा में है।

(ख) कोई भी संपत्ति जिसके संबंध में बाड़ का एक प्रतिबद्ध प्रतीत होता है या जो किसी अपराध के मिशन के लिए इस्तेमाल किया गया प्रतीत होता है।

452. विचारण के समापन पर संपत्ति के निपटान के लिए आदेश - (1) जब किसी आपराधिक न्यायालय में कोई जांच या विचारण समाप्त हो जाता है, तो न्यायालय ऐसा आदेश दे सकेगा जो वह अपने समक्ष या उसकी अभिरक्षा में प्रस्तुत किसी संपत्ति या दस्तावेज के कब्जे या अन्यथा के हकदार होने का दावा करने वाले किसी व्यक्ति को उसके कब्जे का हकदार होने का दावा करता है, उसे नष्ट करने, जब्त करने या सुपुर्दगी करने के लिए उपयुक्त समझे, या जिसके संबंध में कोई अपराध किया गया प्रतीत होता है, या जिसका उपयोग किसी अपराध के कमीशन (गठन) के लिए किया गया है।

(2) उपधारा-(1) के अधीन किसी ऐसे व्यक्ति को किसी संपत्ति की सुपुर्दगी के लिए आदेश दिया जा सकेगा जो उसके कब्जे का हकदार होने का दावा करता है, बिना किसी शर्त के या इस शर्त पर कि वह न्यायालय की संतुष्टि के लिए जमानतदार के साथ या उसके बिना बांड निष्पादित करता है, ऐसी संपत्ति को न्यायालय को बहाल करने के लिए संलग्न होता है, यदि आदेश दिया जाता है; उप-धारा-(1) के तहत अपील या संशोधन पर संशोधित या अलग रखा गया है।

(3) सत्र न्यायालय, उपधारा-(1) के अधीन स्वयं आदेश देने के बजाय, संपत्ति को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को सुपुर्द करने का निदेश दे सकेगा, जो उसके बाद धारा-457, 458 और 459 में उपबंधित रीति से उस पर कार्रवाई करेगा।

(4) सिवाय इसके कि जहां संपत्ति पशुधन है या त्वरित और प्राकृतिक क्षय के अधीन है, या जहां उपधारा-(2) के अनुसरण में एक बांड निष्पादित किया गया है, उपधारा-(1) के तहत किया गया आदेश दो महीने के लिए नहीं किया जाएगा, या जब एक अपील प्रस्तुत की जाती है, जब तक कि ऐसी अपील का निपटारा नहीं किया जाता है।

(5) इस धारा-में, "संपत्ति" शब्द में शामिल है, संपत्ति के मामले में जिसके संबंध में कोई अपराध किया गया प्रतीत होता है, न केवल ऐसी संपत्ति जो मूल रूप से किसी पक्ष के कब्जे में या नियंत्रण में रही है, बल्कि कोई संपत्ति भी जिसमें या जिसके लिए उसे परिवर्तित या विनिमय किया जा सकता है, और इस तरह के रूपांतरण या विनिमय द्वारा प्राप्त कुछ भी, चाहे तुरंत या अन्यथा।

457. संपत्ति की जब्ती पर पुलिस द्वारा प्रक्रिया-
(1) जब भी किसी पुलिस अधिकारी द्वारा संपत्ति की जब्ती की जाती है; इस संहिता के प्रावधानों के तहत एक मजिस्ट्रेट को सूचित किया जाता है, और ऐसी संपत्ति को जांच या परीक्षण के दौरान आपराधिक न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जाता है, मजिस्ट्रेट ऐसा आदेश दे सकता है जो वह ऐसी संपत्ति के निपटान या ऐसी संपत्ति के कब्जे के हकदार व्यक्ति को ऐसी संपत्ति के वितरण के संबंध में उचित समझे, या यदि ऐसे व्यक्ति का पता नहीं लगाया जा सकता है, तो ऐसी संपत्ति की अभिरक्षा और उत्पादन का सम्मान करते हुए।

(2) यदि इस प्रकार हकदार व्यक्ति को ज्ञात है, तो मजिस्ट्रेट संपत्ति को ऐसी शर्तों (यदि कोई हो) पर उसे सौंपने का आदेश दे सकेगा जो मजिस्ट्रेट उचित समझे और यदि ऐसा व्यक्ति अज्ञात है, तो मजिस्ट्रेट उसे हिरासत में ले सकेगा और ऐसे मामले में, उन लेखों को विनिर्दिष्ट करते हुए एक उद्घोषणा जारी करेगा जिनमें ऐसी संपत्ति शामिल है, और किसी भी व्यक्ति की आवश्यकता है जिसका उस पर दावा हो सकता है, उसके सामने पेश होने और ऐसी उद्घोषणा की तारीख से छह महीने के भीतर अपना दावा स्थापित करने के लिए।
यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि संहिता की धारा-452 और 453 के तहत एक आदेश उसकी धारा-454 के तहत अपील योग्य है। अधिनियम के तहत विशेष प्रावधान अधिनियम के तहत अपराध करके किसी व्यक्ति

अनुवादित

और/या जनता को संपत्ति अर्जित करने से रोकने और इस तरह गैंगस्टरवाद की गतिविधियों पर अंकुश लगाने के लिए एक गंभीर उद्देश्य के लिए अधिनियमित किया गया है। संपत्ति की कुर्की और रिलीज या अदालत द्वारा किसी भी संपत्ति के निपटान से संबंधित इस तरह के किसी भी आदेश के दूरगामी प्रभाव के गंभीर परिणाम होते हैं और यह किसी व्यक्ति की संपत्ति के अधिकार पर अतिक्रमण करता है और परिणामस्वरूप, संहिता के तहत इस प्रकार के आदेशों को धारा-454 के तहत अपील योग्य बनाया जाता है। सुलभ संदर्भ धारा-454 के लिए, भ०द०वि० नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"454. धारा-452 या धारा-453 के अधीन आदेशों के विरुद्ध अपील- (1) धारा-452 या धारा-453 के अधीन न्यायालय द्वारा दिए गए आदेश से व्यथित कोई भी व्यक्ति, उसके विरुद्ध उस न्यायालय में अपील कर सकेगा जिसमें पूर्व न्यायालय द्वारा सामान्यतः दोषसिद्धि से अपील की जाती है।

(2) ऐसी अपील पर, अपीलीय न्यायालय अपील के निपटान तक आदेश पर रोक लगाने का निर्देश दे सकता है, या आदेश को संशोधित, परिवर्तित या रद्द कर सकता है और कोई और आदेश दे सकता है जो न्यायसंगत हो सकता है।

(3) उपधारा-(2) में निर्दिष्ट शक्तियों का प्रयोग भी किया जा सकता है; अपील की अदालत द्वारा, उस मामले से निपटने के दौरान पुष्टि या संशोधन जिसमें उप-धारा-(1) में निर्दिष्ट आदेश दिया गया था।

अब, अधिनियम की ओर मुड़ते हुए, यह अभिलिखित किया गया है कि यह अधिनियम एक स्व-निहित संहिता नहीं है। परीक्षण प्रक्रिया के असंख्य पहलुओं और कई वार्तात्मक मामलों के लिए यह संहिता पर वापस आ जाता है। यहां महत्वपूर्ण बात यह है कि अधिनियम कहीं भी यह नहीं बताता है कि कौन से आदेश अपील योग्य हैं और क्या नहीं? धारा-18 के तहत केवल इतना ही कानून बनाया गया है कि संहिता का अध्याय XXIX इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत पारित किसी भी निर्णय और न्यायालय के आदेश के खिलाफ अपील पर लागू होगा। इस प्रकार अधिनियम इसके तहत अदालत के सभी आदेशों और निर्णय के खिलाफ अपील करने का अधिकार प्रदान करता है क्योंकि धारा-18 में होने वाले "अपील" और "कोई भी निर्णय और आदेश" शब्द बहुत बड़े हैं। क़ानून की व्याख्या और विभिन्न क़ानूनों के सामंजस्यपूर्ण निर्माण के सिद्धांतों के अनुरूप, संहिता के तहत प्रदान की गई सभी अपीलों को संरक्षित करने के लिए इन शब्दों को लिया जाना चाहिए। इन शब्दों से जुड़े अर्थ को इसके दायरे में सीमित नहीं किया जा सकता है, केवल अधिनियम के तहत पारित दोषसिद्धि और वाक्यों को अपने दायरे में लेने के लिए। एक बार संपत्ति के विभाजन को भारी हानिकारक नागरिक परिणाम मिले हैं जिन्हें भविष्य में भी वापस नहीं किया जा सकता है और ऐसे मामलों में अपील के उपचारात्मक उपाय को अदालतों द्वारा एक पीड़ित व्यक्ति से निचोड़ा जा सकता है और नहीं किया जाना चाहिए जब उन्हें बचे हुए क्षेत्रों को भरने के लिए कहा जाता है एक वैधानिक प्रावधान की व्याख्या के मामलों में विधायिका द्वारा। ऐसा लगता है कि इस कारण से संहिता में धारा-454 अधिनियमित की गई है और इसलिए किसी व्यक्ति को अधिनियम के तहत उक्त अधिकार के लाभ को परिणामी समान आदेशों के खिलाफ वंचित नहीं किया जाना

चाहिए, खासकर जब इसके विपरीत कोई विधायी इरादा नहीं है, क्योंकि अधिनियम उन पहलुओं पर चुप है कि कौन से आदेश अपील योग्य हैं और कौन से नहीं?

शामिल मुद्दे का एक और आयामी पहलू यह है कि अदालतों को एक आरोपी पर मुकदमा चलाते समय वारंट विचारण या सारांश परीक्षण प्रक्रियाओं को अपनाने की आवश्यकता होती है, जैसा कि अधिनियम की धारा-10 के तहत अनिवार्य है। उन परीक्षण प्रक्रियाओं में विभिन्न आदेश अपील योग्य हैं। एक बार जब अधिनियम उन परीक्षण प्रक्रियाओं में अपील के मामलों में कोई अपवाद नहीं बनाता है, तो उन्हें एक क़ानून (अधिनियम) में पढ़ना बहुत ही विवेकपूर्ण होगा, क्योंकि ऐसा करना कानून बनाने के समान होगा, जो अदालतें करने में सक्षम नहीं हैं। 454 के अलावा, अन्य अनुकरणीय अपील योग्य धाराएं संहिता की 86, 341, 351 और 449 हैं।

इसके अलावा, दो परीक्षण प्रक्रियाओं के अलावा, अधिनियम के तहत अपराधों और भ०द०वि० और अन्य कानूनों के लिए लागू होने के बाद, दो में विभाजित नहीं किया जा सकता है। यदि परीक्षण प्रक्रिया में मुकदमे के दौरान पारित किसी भी आदेश के खिलाफ अपील दायर करने का प्रावधान है, तो वे आदेश अधिनियम के तहत भी अपील योग्य होंगे। इस तरह की राय को संहिता की धारा-372 में प्रयुक्त शब्दों के आधार पर भी स्वीकार किया जा सकता है जो उसके अध्याय XXIX के अंतर्गत आता है। संहिता की धारा-372 में कहा गया है कि कोई भी अपील किसी आपराधिक न्यायालय के किसी भी निर्णय या आदेश से नहीं होगी, सिवाय इसके कि संहिता में या किसी अन्य कानून में इस समय लागू होने का प्रावधान है। उक्त धारा स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि एक अपील एक आपराधिक अदालत के निर्णय और आदेश से होगी, यदि यह संहिता के तहत या प्रचलित किसी अन्य क़ानून के तहत प्रदान की गई है। इसलिए, यह धारा संहिता की धारा-86, 341, 351, 454 और 449 के तहत सभी अपीलों को अपने आप में आत्मसात करती है। इस संबंध में, धारा-386(डी) भी ध्यान देने योग्य है और बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह निम्नानुसार प्रदान करती है: -

"386. अपीलीय न्यायालय की शक्तियां। इस तरह के अभिलेखों को देखने और अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता को सुनने के बाद, यदि वह उपस्थित होता है, और लोक अभियोजक, यदि वह उपस्थित होता है, और धारा-377 या धारा-378 के तहत अपील के मामले में, अभियुक्त, यदि वह उपस्थित होता है, तो अपीलीय न्यायालय, यदि वह मानता है कि हस्तक्षेप करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, अपील को खारिज कर सकता है, या हो सकता है-

(क) से (ग).....

(घ) किसी अन्य आदेश से अपील में, ऐसे आदेश को बदलना या उलटना;

(ङ) .....

इस प्रकार संहिता की धारा-372 और 386(डी) का सह-संयुक्त पठन स्पष्ट रूप से संहिता के तहत प्रदान की गई सभी अपीलों की रखरखाव को निर्धारित करता है। चूंकि अधिनियम की धारा-17 भ०द०वि० की धारा-451, 452 और 457 का एक समान प्रावधान है, इसलिए यह संहिता के अध्याय XXIX के तहत अपील योग्य होगा क्योंकि अधिनियम के तहत सभी अपीलों को उस अध्याय के तहत निपटाया जाना है। मैं अधिनियम की धारा-18 की वाक्यांशावली से भी अपने विचार में मजबूत हूं, जो प्रदान करता है कि अध्याय XXIX के तहत अपील

के प्रावधान अधिनियम के तहत अपील पर लागू होंगे। धारा-18 को एक सामान्य वाक्यांशविज्ञान में समाहित किया गया है और इसलिए, इसे संहिता के अध्याय XXIX के साथ जोड़ा जाना चाहिए। अधिनियम की धारा-15 के तहत अपील के मामलों में भ०द०वि० भी लागू होगा क्योंकि अधिनियम की धारा-2 विशेष रूप से इसके आवेदन के लिए प्रदान करती है। यह कहना बेतुका होगा कि गैंगस्टर अधिनियम के तहत अपराध, जो दंड संहिता और अन्य कानूनों के तहत उल्लिखित विभिन्न अपराधों से अलग है, को अलग-अलग तरीके से चलाया जाएगा और भ०द०वि० की तुलना में अलग-अलग अपील योग्य धाराएं होंगी। यदि विधायी इरादा यह था कि अधिनियम के तहत पारित केवल एक दोषसिद्धि और सजा को अपील योग्य बनाया जाए, तो विधायिका ने ऐसी घटना का प्रावधान किया होगा जो उसने जानबूझकर नहीं किया है क्योंकि वह इस तथ्य से अवगत थी कि किसी भी तरह से संपत्ति की कुर्की, जब्ती या निपटान के गंभीर परिणाम हुए हैं क्योंकि यह इस देश के नागरिक की संपत्ति के अधिकार पर भी अतिक्रमण करता है। प्रतिवादियों के अधिवक्ता के तर्क को स्वीकार करने के लिए, इस संबंध में खतरनाक परिणाम होंगे। यदि किसी व्यक्ति को अपील के किसी भी अधिकार के बिना अपनी संपत्ति से वंचित किया जाता है, तो यह दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के साथ सीधे विरोधाभास होगा। ऐसे में अधिनियम की धारा-18 के तहत प्रदान की गई अपील अपने दायरे में उन सभी अपीलों को लेती है जो दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रदान की जाती हैं।

प्रतिवादियों के अधिवक्ता द्वारा दिए गए निर्णय की ओर मुड़ते हुए, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि उक्त निर्णय में माननीय न्यायमूर्ति श्री एकल न्यायाधीश ने स्वयं इस प्रकार अवलोकन किया है: -

"अधिनियम के अध्याय XXIX, द०प्र०स० और धारा-3 और 18 की शक्ति का प्रयोग करते हुए विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित दोषसिद्धि या बरी करने के आदेश को चुनौती देने के लिए कोई अलग प्रक्रिया निर्धारित नहीं की गई है, जो प्रतीत होता है कि अपील अधिनियम के तहत दोषसिद्धि या बरी करने के आदेश के खिलाफ होगी, न कि जिला मजिस्ट्रेट के कुर्की के आदेश या विशेष न्यायालय के आदेश के खिलाफ जिला मजिस्ट्रेट। यहां तक कि यह मानते हुए कि धारा-18 में जिला मजिस्ट्रेट और विशेष न्यायालय के आवेदन और आदेश हैं, फिर भी मैं यह मानूंगा कि संविधान के अनुच्छेद 2-26 के तहत रिट याचिका सुनवाई योग्य है जब जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित कुर्की का आदेश अवैध, मनमाना और अधिकार क्षेत्र से बाहर है। (महत्व सन्निविष्ट)

इस प्रकार उपरोक्त निर्णय बदन सिंह, (2001 एएलजे 2852)(उपरोक्त), अधिनियम की धारा-17 के तहत पारित आदेश के खिलाफ अपील की रखरखाव से इंकार नहीं करता है।

इसके अलावा, मुझे लगता है कि इस न्यायालय द्वारा दिनांक 10.7.2003 के आदेश के तहत अपील स्वीकार की गई थी। राज्य ने उस स्तर पर अपील की रखरखाव पर आपत्ति नहीं की और इसलिए, मेरा यह भी विचार है कि अधिनियम की धारा-17 के तहत पारित आदेश को चुनौती देने के लिए प्रस्तुत अपील सुनवाई योग्य है और इसलिए मैं प्रतिपक्षी 1 से 18 के अधिवक्ताओं द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति को अस्वीकार करता हूं। इस अपील को अब 8-2-2010 को सूचीबद्ध किया जाएगा ताकि सुनवाई के भाग के रूप में गुण-दोष के आधार पर आगे अंतिम सुनवाई की जा सके।

xxx xxx xxx xxx

29. कैलाश सहकारी आवास समिति (उपरोक्त) के मामले में एकल न्यायाधीश द्वारा दिया गया तर्क सही और ठोस प्रतीत होता है, जबकि दिनांक 28.1.2015 के संदर्भ आदेश में व्यक्त की गई आशंका पर इस पर ध्यान नहीं दिया गया है। यहां ऊपर दिए गए सभी कारणों से और एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए कारणों से, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, हम कैलाश सहकारी आवास समिति (उपरोक्त) के मामले में निर्णय के अनुपात को मंजूरी देते हैं।

xxx xxx xxx xxx

31. उपरोक्त पर विचार करने के बाद, इसलिए हम खुद को कैलाश सहकारी आवास समिति (उपरोक्त) के मामले में एकल न्यायाधीश के फैसले से पूरी तरह सहमत पाते हैं, जो कानून को सही ढंग से निर्धारित करता है और अधिनियम 1986 की धारा-17 के तहत कुर्की जारी करने से इनकार करने वाले आदेश के खिलाफ अपील उसी अधिनियम की धारा-18 के तहत बनाए रखने योग्य होगी।

11. जंगली पासी (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की पुष्टि इस न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ ने शासकीय अपील संख्या-6042 वर्ष 2010 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नसीम खान और अन्य) में पारित दिनांक 06.12.2016 के फैसले में की थी। दिनांक 06.12.2016 के निर्णय का प्रासंगिक भाग यहां दिया गया है: -

"यह मुद्दा अब पुन: एकीकृत नहीं है और आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-8053 वर्ष 2015 (सचिव और अन्य के माध्यम से जंगली पासी बनाम यूपी राज्य) में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित 16.4.2005 के फैसले द्वारा पूरी तरह से आच्छादित किया गया है। सुलभ संदर्भ के लिए, इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 16.4.2015 के उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत किया गया है;

"हमें सूचित किया गया है कि उक्त संदर्भ अभी भी खंडपीठ के समक्ष लंबित है और अभी तक इसका जवाब नहीं दिया गया है।

चूंकि यह मुद्दा अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा हमारे सामने उठाया गया है, इसलिए हम यहां ऊपर बताए गए तथ्यों के आलोक में इससे निपटने के लिए आगे बढ़ते हैं। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि 28.1.2015 को संदर्भ देने वाले एकल न्यायाधीश ने कैलाश सहकारी आवास समिति (उपरोक्त) के मामले में दिए गए फैसले पर ध्यान नहीं दिया है। अन्य दो निर्णय जिन पर भी ध्यान नहीं दिया गया है, वे हैं कृष्ण मुरारी अग्रवाल (उपरोक्त) के मामले में खंडपीठ का फैसला और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मनोज कुमार पांडे (उपरोक्त) के मामले में एकल न्यायाधीश का निर्णय। हम यह भी पाते हैं कि संदर्भ देते समय एकल न्यायाधीश ने विशेष रूप से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा-5, 451, 452 और 457 का उल्लेख नहीं किया है, जिनकी तुलना कैलाश सहकारी आवास समिति (उपरोक्त) के मामले में 1986 के अधिनियम की धारा-18 सपठित संहिता की धारा-454 के तहत अपील के प्रावधानों के साथ की गई है। हमारी राय में, कैलाश सहकारी आवास समिति (उपरोक्त) के मामले में एकल न्यायाधीश ने बदन सिंह (उपरोक्त) के मामले को यह देखते हुए सही ढंग से अलग किया है कि यह अधिनियम की धारा-17 के तहत पारित आदेश के खिलाफ अपील की स्थिरता से इंकार नहीं करता है। कैलाश सहकारी आवास समिति (उपरोक्त) के मामले में निकाले गए निष्कर्ष में दिए गए सभी कारणों से हमारी

स्वीकृति मिलती है, भले ही कोई अपील क़ानून का प्राणी हो, फिर भी दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XXIX सपठित 1986 के अधिनियम की धारा-18 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए हम पाते हैं कि अपील का एक प्रावधान आवश्यक है और इसकी व्याख्या इस तरह की जानी चाहिए क्योंकि संपत्ति इस तरह की कार्यवाही को 1986 के अधिनियम की धारा-17 के तहत भी जब्त किया जा सकता है। इसलिए, यह प्रावधान प्रकृति में पूर्ण और स्थायी है, जिससे कानून के संचालन द्वारा किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित किया जा सकता है। जब्ती की शक्ति सकारात्मक रूप से अनिवार्य है, भले ही जिला मजिस्ट्रेट या संबंधित न्यायालय का आदेश जिसके समक्ष संदर्भ दिया गया है, अंतिम प्रतीत नहीं होता है। परिस्थितियों में वे वापस बुलाने या अन्यथा अपील के अधीन हैं।

ऐसी स्थिति में, जहां अनुच्छेद 300-ए के तहत एक संवैधानिक जनादेश है कि किसी भी व्यक्ति को कानून के प्राधिकार के अलावा संपत्ति से वंचित नहीं किया जाना चाहिए, तो जब्ती के आदेश के खिलाफ अपील का प्रावधान आवश्यक है, क्योंकि संपत्ति की जब्ती के मामले में अदालत के आदेश को अंतिम होने की अनुमति देने के लिए किसी व्यक्ति को इस मामले पर सवाल उठाने और उच्च मंच के समक्ष चुनौती देने से वंचित करना होगा। विधानमंडल द्वारा जानबूझकर क़ानून में बनाया गया है। हम ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि किसी व्यक्ति के लिए रिट याचिका के अलावा किसी अन्य तरीके या कानून के स्रोत के माध्यम से विचाराधीन संपत्ति का दावा करना संभव नहीं होगा। इसमें कोई संदेह नहीं है कि गैरकानूनी तरीकों से अर्जित संपत्ति और अपराध का परिणाम होने के नाते अधिकार के मामले के रूप में दावा नहीं किया जा सकता है, लेकिन साथ ही एक कानून जो ऐसी संपत्ति की कुर्की, रिहाई या जब्ती का प्रावधान करता है, उसे एक प्रक्रिया के साथ सक्षम होना चाहिए, और एक प्रक्रिया के साथ दौरा किया जाना चाहिए, ताकि उससे उत्पन्न होने वाले किसी भी दावे को निष्पक्ष और उचित तरीके से न्यायनिर्णयित किया जा सके।

इसलिए 1986 के अधिनियम को अपने आप में एक पूर्ण संहिता के रूप में पढ़ा जाना चाहिए ताकि अपील का ऐसा लाभ प्रदान किया जा सके जो विधायिका ने धारा-18 के तहत इरादा किया है। व्याख्यात्मक उपकरण को लागू करते हुए, धारा-18 स्पष्ट रूप से किसी भी निर्णय या आदेश के खिलाफ अपील प्रदान करती है और फिर उत्परिवर्ती परिवर्तन इस तरह की अपील पर भ०द०वि० के अध्याय XXIX को लागू करता है। न्यायाधीशों को इस तरह के प्रावधानों की व्याख्या करते समय कानूनी पद्धति के साथ-साथ व्यावहारिक पद्धति को अपनाना पड़ता है क्योंकि उन्हें दो टोपी पहनने के लिए कहा जाता है। यह उन्हें केवल अंपायरों से अलग करता है और वे वैधानिक निर्माण की तोपों की व्याख्या और व्याख्या करने के लिए सादृश्य के माध्यम से तर्क को लागू करके अधिक निश्चित व्याख्यात्मक स्वतंत्रता का आनंद लेते हैं। उक्त सिद्धांतों को लागू करते हुए, हमारी यह भी राय है कि धारा-18 में कोई निषेधात्मक भाषा नहीं है और न ही यह अधिनियम के तहत किसी भी निर्णय या आदेश के खिलाफ अपील के अधिकार को प्रतिबंधात्मक अर्थ देती है जो एक विशेष अधिनियम है। इसलिए इसमें संलग्न संपत्ति को जारी करने से इनकार करने वाले आदेश के खिलाफ अपील का अधिकार शामिल है। व्याख्या सार्थक होनी चाहिए और वह जो न्याय के कारण को आगे बढ़ाती है। यह अचूकता को भी रोकता है और न्याय की विफलता या गर्भपात की किसी भी संभावना को खारिज करता है। विचार करने के लिए अभी भी एक आयाम है। यदि अंततः अभियोजन बरी हो जाता है या बरी होने की संभावना होती है तो कुर्क की गई संपत्ति को जारी करने का फैसला किया जाना चाहिए। एक और ग्रे एरिया है, अर्थात् गैंगस्टर अधिनियम के

तहत एक विचाराधीन कैदी की मृत्यु के कारण कार्यवाही कम होने पर कुर्क की गई संपत्ति का क्या होता है। क्या संपत्ति को स्वचालित रूप से जारी करने या मृतक के उत्तराधिकारियों को जारी करने से इनकार कर दिया जाना चाहिए। पहले मामले में यदि विचारण किसी विचारणाधीन कैदी की मृत्यु के कारण ऐसी आकस्मिकता में दोषसिद्धि में विफल रहता है, तो रिहाई का प्रश्न निर्धारित किया जाना चाहिए, लेकिन बाद के मामले में कुर्क की गई संपत्ति को स्वचालित रूप से जारी किया जा सकता है, भले ही संपत्ति के अधिग्रहण के तरीके का उत्तराधिकारियों द्वारा कोई सबूत प्रदान न किया गया हो। दोनों ही मामलों में राज्य सरकार या किसी इच्छुक व्यक्ति के कहने पर निर्णय दिया जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में यदि रिहाई से इनकार कर दिया जाता है, तो सह-व्यापक शक्तियों के साथ एक अपीलीय मंच उपलब्ध होना चाहिए और धारा-18 का तात्पर्य यही है जब वह किसी आदेश या निर्णय को शब्दों का पाठ करती है। यह भ०द०वि० की धारा-452 के अनुरूप है और इसलिए विधायिका यह प्रावधान करने के प्रति भी सचेत थी कि अध्याय XXIX उत्परिवर्तन लागू होगा।

भले ही रिट क्षेत्राधिकार को उपयुक्त मामलों में प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है, जैसा कि बदन सिंह के मामले (उपरोक्त) में अवधारित किया गया है, लेकिन यदि अपील का वैधानिक उपाय उपलब्ध है, तो रिट याचिकाओं को दायर करना कम से कम दो कारणों से समाप्त हो जाता है। सबसे पहले, एक अपील में तथ्य और कानून के सभी सवालों की पैरवी की जा सकती है, सबूतों का नेतृत्व किया जा सकता है और निर्णय लिया जा सकता है। दूसरे, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में आमतौर पर विवादित तथ्य के प्रश्न पर विचार नहीं किया जा सकता है। यह कृष्ण मुरारी अग्रवाल बनाम जिला मजिस्ट्रेट, झांसी और अन्य, 2000 सीआरएलजे पृष्ठ 949 के मामले में एक संक्षिप्त निर्णय में अवधारित किया गया है, जिसे यहां निकाला गया है: -

"1. जिला मजिस्ट्रेट, झांसी के आदेश से उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक (गतिविधियां) रोकथाम अधिनियम, 1986 की धारा-14 (1) के तहत याचिकाकर्ता की संपत्ति कुर्क की गई थी।

2. याचिकाकर्ता ने उक्त अधिनियम की धारा-16(1) के तहत कुर्की के आदेश के खिलाफ एक अभ्यावेदन दिया। जिला मजिस्ट्रेट ने दिनांक 12-10-2000 के अपने आदेश द्वारा अभ्यावेदन को खारिज कर दिया और अधिनियम की धारा-16(1) के अनुसार अपनी रिपोर्ट के साथ मामले को विशेष न्यायाधीश (गैंगस्टर अधिनियम) को भेज दिया। यह वह आदेश है जो प्रस्तुत रिट याचिका में चुनौती का विषय है।

3. हमने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री यूके सक्सेना को काफी विस्तार से सुना है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

4. यह प्रश्न कि क्या कुर्क की गई संपत्ति को एक गैंगस्टर द्वारा उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 के तहत अपराध करने के परिणामस्वरूप अर्जित किया गया है, यह तथ्य का एक शुद्ध प्रश्न है। याचिकाकर्ता का दावा है कि संपत्ति किसी अपराध के कमीशन (गठन) द्वारा अर्जित नहीं की गई है या यह एक पैतृक संपत्ति है, केवल सबूतों के मूल्यांकन द्वारा स्थापित किया जा सकता

है। याचिकाकर्ता के लिए यह खुला होगा कि वह विशेष न्यायाधीश (गैंगस्टर अधिनियम) के समक्ष अपने दावे के समर्थन में मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पेश करे, जहां मामले को संदर्भित किया गया है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत वर्तमान कार्यवाही में साक्ष्य का ऐसा मूल्यांकन संभव नहीं है। अधिनियम एक पूर्ण तंत्र प्रदान करता है क्योंकि न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अधिनियम की धारा-18 के तहत अपील की जाती है।

5. इन परिस्थितियों में हम इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत हस्तक्षेप के लिए उपयुक्त मामला नहीं मानते हैं।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता का घर कुर्क कर दिया गया है और उसे बहुत कठिनाई हो रही है और इसलिए, संबंधित विशेष न्यायाधीश को जल्द से जल्द कार्यवाही तय करने का निर्देश जारी किया जा सकता है।

7. मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह निर्देश दिया जाता है कि अधिनियम की धारा-16(1) के तहत जिला मजिस्ट्रेट द्वारा विशेष न्यायाधीश को भेजी गई कार्यवाही को संबंधित न्यायालय के समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति दाखिल करने के तीन महीने के भीतर यथासंभव शीघ्रता से समाप्त किया जाएगा। यह समझा जाता है कि याचिकाकर्ता जांच में सहयोग करेगा और जब तक बिल्कुल आवश्यक न हो तब तक स्थगन की मांग नहीं करेगा।

8. ऊपर की गई टिप्पणियों के अधीन, रिट याचिका खारिज की जाती है।
कैलाश सहकारी आवास समिति (उपरोक्त) के मामले में एकल न्यायाधीश द्वारा दिया गया तर्क सही और ठोस प्रतीत होता है, जबकि दिनांक 28.1.2015 के संदर्भ आदेश में व्यक्त की गई आशंका पर ऐसा प्रतीत नहीं होता है। यहां ऊपर दिए गए सभी कारणों से और एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए कारणों से, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, हम कैलाश सहकारी आवास समिति (उपरोक्त) के मामले में निर्णय के अनुपात को मंजूरी देते हैं।
एक वैधानिक अपील क्यों आवश्यक है और अपील प्रदान करने का उद्देश्य क्या है, इस पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बहुत विस्तार से विचार किया गया है, जिसमें ***सीता राम और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1979) 2 एस.सी.सी. पृष्ठ 656*** *के प्रसिद्ध निर्णय में अपने दर्शन की व्याख्या की गई है। इस प्रकार, अपील के प्रावधान के महत्व को कम नहीं किया जा सकता है और कैलाश सहकारी आवास समिति (उपरोक्त) के मामले में एकल न्यायाधीश इस तरह के उद्देश्य के लिए उपलब्ध होने के लिए धारा-18 की व्याख्या करने में पूरी तरह से उचित था। संपत्ति का प्रतिधारण एक गारंटीकृत मौलिक अधिकार नहीं हो सकता है, लेकिन यह मानना उचित है कि कानून के अधिकार के बिना संपत्ति से वंचित करना असंवैधानिक है और स्थायी प्रकृति के नागरिक परिणामों की ओर ले जाता है। इसलिए, हम सीता राम के मामले (उपरोक्त) के प्रस्तर-31 के प्रस्तर-25, प्रस्तर-41, 42 और 45 को निम्नलिखित प्रभाव से पढ़ते हैं: -*

25. दहलीज पर, हमें अपील के आयाम को अमूर्त शब्दों में नहीं बल्कि अनुच्छेद 134 सपठित अनुच्छेद 145 के ठोस संदर्भ में और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के आदेश XXI नियम 15 और धारा-384 के ठोस संदर्भ में चित्रित करना होगा। अपील प्रक्रिया की प्रकृति को एक कठोर सांचे में नहीं डाला जा सकता क्योंकि यह न्यायशास्त्र के क्षेत्राधिकार और प्रणालियों के साथ भिन्न होता है। इस बात को अंतिम अपील में तेजी से सामने लाया गया है। लेखक पूछते हैं:

लेकिन 'अपील' का वास्तव में क्या अर्थ है: वास्तव में, क्या यह किसी भी सार्वभौमिक अर्थ में एक सार्थक शब्द है? यह शब्द वास्तव में केवल सुविधाजनक उपयोग का एक शब्द है, भाषाई आशुलिपि की एक प्रणाली का हिस्सा है जो सटीकता के बहुत कम स्तर पर सार्वभौमिक समझ प्राप्त करने के लिए अनिश्चितता के एक पेनम्ब्रा की आवश्यकता को स्वीकार करता है। इस प्रकार, जबकि 'अपील' कानूनी प्रणालियों की एक विस्तृत श्रृंखला के लिए सामान्य विशेषता का वर्णन करने में सभी अधिवक्ताओं के लिए व्यापक रूप से सार्थक है, यह शब्द के लिए एक सटीक अर्थ लगाने के लिए भ्रामक होगा, या इस आधार पर मानने के लिए कि शब्द (या इसके अनुवादित समकक्ष) में अंतरराष्ट्रीय मुद्रा है, कि अपील की अवधारणा का मतलब प्रणालियों की एक विस्तृत श्रृंखला में एक ही बात है।

किसी भी रूढ़िवादी परिभाषा पर, एक अपील में तीन बुनियादी तत्व शामिल होते हैं: एक निर्णय (आमतौर पर एक अदालत का निर्णय या एक प्रशासनिक निकाय का निर्णय) जिससे एक अपील की जाती है; निर्णय से व्यथित एक व्यक्ति या व्यक्ति (जो अक्सर, हालांकि किसी भी तरह से मूल कार्यवाही के लिए आवश्यक रूप से पक्षकार नहीं होता है) और एक समीक्षा निकाय अपील पर विचार करने के लिए तैयार और इच्छुक है।

विचार की लोच अभी तक एक और मार्ग द्वारा प्रकाशित की जाती है जो उद्धरण देता है:

'अपील' को तेजी से औपचारिक प्रक्रिया की निरंतरता के साथ व्यवस्थित किया जा सकता है, जिसमें एक निंदा किए गए व्यक्ति से लेकर अपने आदिवासी प्रमुख के समक्ष प्रार्थना करने से लेकर संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय में उत्प्रेषण द्वारा अपील के रूप में न्यायिक रूप से परिष्कृत कुछ भी शामिल है। एन्यूरिन बेवन के हाथी की तरह, एक अपील का वर्णन केवल तभी किया जा सकता है जब वह अदालत कक्ष के दरवाजे से गुजरता है ..... एक विशेष अपीलीय प्रक्रिया की प्रकृति-वास्तव में एक संपूर्ण कानूनी प्रणाली का चरित्र-सिस्टम के भीतर काम करने वाले परस्पर संबंधित (हालांकि काफी हद तक अकल्पनीय) कारकों की बहुलता पर निर्भर करता है। अदालतों की संरचना; न्यायाधीशों और अधिवक्ताओं की स्थिति और नियम (निष्पक्ष और व्यक्तिपरक रूप से माना जाता है), कानून का रूप ही - क्या, उदाहरण के लिए, यह एक कोड से लिया गया है या क़ानून द्वारा संशोधित न्यायिक मिसाल से; तय किए गए मामलों के अधिकार के प्रति अदालतों का रवैया; संबंधित देश की राजनीतिक और प्रशासनिक संरचना-चाहे उदाहरण के लिए, इसकी आंतरिक संप्रभुता एक उपनिवेशवादी शक्ति के प्रति इसकी निष्ठा से सीमित हो। संभावित कारकों की सूची अंतहीन है, और सामाजिक समीकरण में उनका वजन और कार्य सटीक विश्लेषण की अवहेलना करते हैं।

संक्षेप में, हम लेखक द्वारा बनाई गई अवधारणा के योग से सिद्धांत रूप में सहमत हैं:

अपील, जैसा कि हमने जोर दिया है, न्यायशास्त्रीय विचारों की एक भीड़ को शामिल करता है। अपील की आम आदमी की उम्मीद अक्सर अधिवक्ता से काफी अलग होती है और कई पीड़ित वादी ने न्यायाधीश या जूरी द्वारा अपने 'उचित' उपाय से इनकार कर दिया है, यह परेशान करने वाली वास्तविकता पर आया है कि इंग्लैंड

में तथ्य की एक विवादित खोज शायद ही कभी, यदि कभी भी, अपील का आधार बन सकती है। इसी तरह, एक फ्रांसीसी जो एक संकीर्ण रूप से कानूनी अपील की समाप्ति का आदी है, जो निचली अदालत में बाद में पुनर्विचार के अधीन है, हाउस ऑफ लॉर्ड्स के फैसले की गहन अंतिमता में बहुत कम परिचितता पाएगा। और सत्रहवीं शताब्दी का एक अधिवक्ता, जो अदालत के अभिलेखों में तुच्छ गलतियों के लिए एक श्रमसाध्य खोज का आदी था, जिसने त्रुटि की रिट द्वारा अपील का आधार बनाया, एक न्यायशास्त्रीय तर्क के महान लचीलेपन और बढ़े हुए परिष्कार से चकित हो जाएगा जो एक आधुनिक अपील की विशेषता है।

31. x x x x x अपील का एक एकल अधिकार कमोबेश जीवन और स्वतंत्रता की गारंटी की एक सार्वभौमिक आवश्यकता है जो इस धारणा में निहित है कि पुरुष त्रुटिपूर्ण हैं, कि न्यायाधीश पुरुष हैं और यह आश्वासन दोगुना सुनिश्चित करना है, इससे पहले कि जीवन या स्वतंत्रता का अपरिवर्तनीय अभाव पारित हो, तथ्यों की पूर्ण पैमाने पर पुन: परीक्षा और कानून को मौलिक निष्पक्षता या प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग बना दिया जाता है।

*41. बुनियादी बातों पर जाने पर, एक अपील एक उच्च न्यायालय में प्रवेश करने और निचली अदालत की त्रुटि को दूर करने के लिए इसकी सहायता और हस्तक्षेप का आह्वान करने का अधिकार है। एक अपील, जिसे सख्ती से तथाकथित कहा जाता है, वह है "जिसमें सवाल यह है कि जिस अदालत से अपील लाई गई है, उसका आदेश उस अदालत के सामने मौजूद सामग्री पर सही था या नहीं" (लॉर्ड डेवी, पोनम्मा बनाम अरुमोगाम, (1905) ए.सी. पृष्ठ 390 पर) .... अपील का अधिकार, जहां यह मौजूद है, पदार्थ का मामला है, न कि प्रक्रिया का (**कोलोनियल शुगर रिफाइनिंग कंपनी बनाम इरविंग, (1905) एसी 369 और न्यूमैन बनाम क्लॉसनर, (1922) 1 केबी 228**) इस प्रकार, अपील का अधिकार पैरामाउंट है, सुनवाई की प्रक्रिया को चैनालाइज़ किया जाता है ताकि असाधारण बहुलता या प्रक्रिया के दुरुपयोग से बचा जा सके और एक उचित कार्यशीलता प्रदान की जा सके। विच्छेदन प्रक्रिया नहीं है जबकि छंटाई हो सकती है।*

42. बेशक, प्रक्रिया न्यायालय की शक्ति के भीतर है, लेकिन जहां यह पूर्वाग्रहपूर्ण रूप से बहुत अधिकार को कम करता है, जिसको तराशते हुए, यह अधिकार बनाने वाले प्रावधान का उल्लंघन करता है। अपील एक उपचारात्मक अधिकार है और यदि प्रक्रियात्मक अधिकता से उपाय को भूसी में बदल दिया जाता है, तो अधिकार एक दुर्घटना बन जाता है। ऐसा नहीं हो सकता।

45. एक अपील एक पुन: सुनवाई है, और जैसा कि विस्काउंट गुफा ने निर्धारित किया है, यह अकेले बैठे न्यायाधीश से अपील की अदालत का कर्तव्य था कि वह अपना मन बना सके, अपील किए गए फैसले की अवहेलना न करे और उस फैसले को विशेष महत्व दे रहा है जहां गवाहों की विश्वसनीयता पर सवाल उठता है, लेकिन साबित किए गए या स्वीकार किए गए तथ्यों से अपने स्वयं के निष्कर्ष निकालने और तदनुसार निर्णय लेने की पूरी स्वतंत्रता के साथ।

उपरोक्त पर विचार करने के बाद, हम खुद को कैलाश सहकारी आवास समिति (उपरोक्त) के मामले में एकल न्यायाधीश के फैसले से पूरी तरह सहमत पाते हैं, जो कानून को सही ढंग से निर्धारित करता है और 1986 के अधिनियम की धारा-17 के तहत कुर्की जारी करने से इनकार करने वाले आदेश के खिलाफ अपील उसी अधिनियम की धारा-18 के तहत बनाए रखने योग्य होगी।

यह कहने के बाद, हम आंशिक रूप से इस याचिका को जिला मजिस्ट्रेट को इस निर्देश के साथ अनुमति देते हैं कि वह मामले को संबंधित न्यायालय में भेजने के लिए आगे बढ़े और उस सीमा तक दिनांक 18.12.2014 के आक्षेपित आदेश को संशोधित किया गया है। जिला मजिस्ट्रेट को 1986 के अधिनियम की धारा-15 और 16 के प्रावधानों पर ध्यान से विचार करना चाहिए था, लेकिन ऐसी त्रुटियां बार-बार होती रह सकती हैं क्योंकि अकबर के मामले (उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा उठाए गए प्रश्न के बावजूद नियम तैयार नहीं किए गए हैं। एक बार जब संबंधित न्यायालय को संदर्भ दिया जाता है, जैसा कि ऊपर बताया गया है, तो मामले का निपटारा अदालत द्वारा ऊपर उद्धृत प्रावधानों और इस संबंध में इंगित कानून के अनुसार किया जाएगा। उपर्युक्त प्रक्रिया को शीघ्रता से पूरा किया जाए और जिला मजिस्ट्रेट अपने समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से अधिमानतः चार सप्ताह के भीतर उचित आदेश पारित करेगा। एक बार जब मामला अदालत में पहुंच जाता है, तो अदालत दंड प्रक्रिया संहिता सपठित 1986 के अधिनियम के प्रावधानों के तहत अधिमानतः तीन महीने के भीतर इसका निपटान करने का प्रयास करेगी।

इस निर्णय की एक प्रति सूचना के लिए शासकीय अपील संख्या-6042 वर्ष 2010 के अभिलेखों पर भी रखी जा सकती है और उच्च न्यायालय का रिपोर्टिंग अनुभाग भी 1986 के अधिनियम की धारा-18 के तहत दायर ऐसी अपीलों की रिपोर्ट करने के लिए आगे बढ़ने के लिए इस निर्णय का संज्ञान लेगा। विद्वान सरकारी अधिवक्ता राज्य सरकार के साथ-साथ महाधिवक्ता को भी इस निर्णय से अवगत करा सकते हैं ताकि उपयुक्त नियमों को तैयार करने पर विचार करने में तेजी लाई जा सके जैसा कि ऊपर देखा गया है।

उपरोक्त निर्णय जंगली पासी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि इस न्यायालय की खंडपीठ ने अधिनियम 1986 के विभिन्न प्रावधानों, आपराधिक प्रक्रिया संहिता और इस विषय पर प्रासंगिक मामला कानूनों पर चर्चा करने के बाद माना है कि 1986 के अधिनियम की धारा-17 के तहत पारित आदेश के खिलाफ अपील उसी अधिनियम की धारा-18 के तहत बनाए रखने योग्य होगी।

हम उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम की धारा-18 के तहत अपील की रखरखाव के संबंध में आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-8053 वर्ष 2015 (जंगली पासी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सचिव और अन्य के माध्यम से) में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय और आदेश से पूरी तरह सहमत हैं। उसी अधिनियम की धारा-17 के तहत पारित आदेश के खिलाफ दायर 1986 को दायर किया गया था, इस प्रकार, आक्षेपित निर्णय और दिनांक 23.7.2010 के आदेश के खिलाफ दायर प्रस्तुत अपील सुनवाई योग्य है।

12. इस स्तर पर, यह इंगित करना उचित होगा कि यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि विशेष कानून सामान्य कानून पर प्रबल होगा। इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **भारत संघ के सहायक निदेशक**

बनाम कन्हैया प्रसाद 2025 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 306 के माध्यम से पारित निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है।

13. संहिता की धारा-5 के तहत बचत खंड के संदर्भ में एक विशेष या स्थानीय कानून द्वारा आच्छादित किए गए क्षेत्र में संहिता के प्रावधानों की प्रयोज्यता पर **मारू राम बनाम भारत संघ (1981)1 एस.सी.सी. 107 और राज्य (भारत संघ) बनाम राम शरण में भी; (2003) 12 एस.सी.सी. 578** के मामले में संविधान पीठ के फैसले में विचार किया गया था और यह माना गया था कि धारा-में तीन घटक शामिल हैं: (i) संहिता इसके द्वारा आच्छादित किए गए मामलों को आच्छादित करती है; (ii) यदि एक ही क्षेत्र को आच्छादित करने वाला कोई विशेष या स्थानीय कानून मौजूद है, तो उक्त कानून बच जाता है और प्रबल होगा; (iii) यदि इसके विपरीत कोई विशेष प्रावधान है, तो वह विशेष या स्थानीय कानून को ओवरराइड करेगा।

14. **कौशल्या रानी बनाम गोपाल सिंह ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 260** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के अनुसार; एक "विशेष कानून", का अर्थ है विशेष परिस्थितियों में विशेष मामलों के लिए अधिनियमित कानून, जो सामान्य कानून द्वारा निपटाए गए सभी मामलों पर लागू होने के रूप में निर्धारित कानून के सामान्य नियमों से अलग है।

15. यह इंगित करना भी प्रासंगिक होगा कि विभिन्न अधिकारियों के अनुसार, अधिनियम 1986 की धारा-16 के तहत मामले से निपटने वाला न्यायालय 'व्यक्तित्व पदनाम' अभिव्यक्ति के अंतर्गत नहीं आएगा। इस संबंध में निम्नलिखित निर्णयों का संदर्भ दिया जा सकता है: -

(A). ठाकुर दास (मृत) एलआर बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य; (1978)1 एस.सी.सी. 27.
(B). एलआईसी बनाम नादिनी जे. शाह; (2018) 15 एस.सी.सी. 356।
(C). राधा किशन यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला० 822।

16. ठाकुर दास (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने निम्नानुसार अवलोकन किया और कहा कि -

"7. यदि सत्र न्यायालय की अध्यक्षता करने वाला सत्र न्यायाधीश न्यायिक प्राधिकारी है, तो प्रश्न यह है कि क्या यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा-435 और 439 के प्रयोजनों के लिए उच्च न्यायालय के अधीनस्थ एक अवर आपराधिक न्यायालय होगा? स्पेक्ट्रम के एक छोर पर प्रस्तुत किया गया है कि धारा-6-सी के तहत नियुक्त न्यायिक प्राधिकरण व्यक्ति पदनाम होगा और यदि किसी आकस्मिक परिस्थिति से नियुक्त न्यायिक प्राधिकारी सत्र न्यायाधीश होता है, तो धारा-6-सी के तहत अपील पर विचार और सुनवाई करते समय यह उच्च न्यायालय के अधीनस्थ एक अवर आपराधिक न्यायालय नहीं होगा और, इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा उनके आदेश के खिलाफ किसी भी पुनरीक्षण आवेदन पर विचार नहीं किया जा सकता है। अपीलीय मंच नियुक्त करने

के लिए राज्य सरकार को शक्ति प्रदान करते समय, संसद ने स्पष्ट रूप से अपनी मंशा प्रकट की कि ऐसा अपीलीय प्राधिकारी कौन होना चाहिए। "अधिकार" को अर्हता देने वाली अभिव्यक्ति "न्यायिक" स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि धारा-6-सी के तहत अपीलों पर विचार करने और सुनवाई के लिए अकेले उस प्राधिकरण को नियुक्त किया जा सकता है, जिस पर राज्य की न्यायिक शक्ति प्रदान की गई थी। "राज्य की न्यायिक शक्ति" अभिव्यक्ति को कार्यकारी शक्ति के विपरीत समझा जाना चाहिए। संविधान निर्माताओं ने स्पष्ट रूप से अदालतों को राज्य की न्यायिक शक्ति का भंडार माना था। धारा-6-सी के तहत अपीलीय प्राधिकारी एक न्यायिक प्राधिकरण होना चाहिए। "न्यायिक प्राधिकरण" अभिव्यक्ति का उपयोग करके यह स्पष्ट रूप से इंगित किया गया था कि अपीलीय प्राधिकरण एक ऐसा पूर्व-विद्यमान प्राधिकरण होना चाहिए जो राज्य की न्यायिक शक्ति का प्रयोग कर रहा था। यदि व्यक्तित्व पदनाम के रूप में किसी अन्य प्राधिकरण का गठन किया जाना था, तो विशिष्ट विशेषण "न्यायिक" द्वारा "प्राधिकरण" शब्द को योग्य बनाने का कोई उद्देश्य नहीं था। राज्य की न्यायिक शक्ति का प्रयोग करने वाला न्यायिक प्राधिकरण एक ऐसा प्राधिकरण होता है जिसका अपना पदानुक्रम उच्च और निम्न न्यायालय होता है, प्रक्रिया का कानून जिसके अनुसार वह न्यायिक तरीके से कार्य करते हुए अपने द्वारा प्रयोग किए जाने वाले क्षेत्राधिकार की प्रकृति के आधार पर अपने समक्ष आने वाले मामलों का निपटान करेगा। "न्यायिक प्राधिकरण" की संक्षिप्त अभिव्यक्ति का उपयोग करने में विधायी मंशा स्पष्ट रूप से प्रकट होती है कि राज्य की न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करने और न्यायिक कार्यों का निर्वहन करने वाले कई पूर्व-मौजूदा प्राधिकरणों में से, एक ऐसे को नियुक्त किया जा सकता है जो धारा-6-सी द्वारा परिकल्पित अपीलीय कार्यों का निर्वहन करने में सक्षम होगा। एक अंतर्निहित सुझाव है जो दर्शाता है कि किसे नियुक्त किया जा सकता है। अपील की अवधारणा में पदानुक्रम निहित है और अपीलीय प्राधिकारी मोटे तौर पर उस प्राधिकरण से अधिक होगा जिसके आदेश के खिलाफ अपील पर विचार किया जा सकता है। यहां अपीलीय प्राधिकारी जिले के सर्वोच्च राजस्व अधिकारी कलेक्टर के आदेश के खिलाफ अपील पर विचार करेगा। सत्र न्यायाधीश जिले का सर्वोच्च न्यायिक अधिकारी होता है और यह स्थिति अपीलीय प्राधिकारी के निर्धारण के लिए सामग्री प्रदान करेगी। इस संबंध में, विधायी इतिहास "न्यायिक प्राधिकरण" अभिव्यक्ति का उपयोग करके विधायिका का इरादा क्या था, इस पर कुछ प्रकाश डाल सकता है। भारत रक्षा नियम, 1962 ने कुछ अधिकारियों को कुछ परिस्थितियों में आवश्यक वस्तुओं को जब्त करने की शक्ति प्रदान की। जब्ती के विरुद्ध राज्य सरकार को अपील प्रदान की गई थी जिसका आदेश अंतिम बना दिया गया था। संशोधन अधिनियम 25 वर्ष 1966 द्वारा अधिनियम में धारा-6-ए से 6-डी को पेश किया गया था। इसने एक मामले में एक बुनियादी परिवर्तन की शुरुआत की, अर्थात्, जब्ती का आदेश दंड का चरित्र है, जिस व्यक्ति पर जुर्माना लगाया जाता है, उसे न्यायिक प्राधिकरण से संपर्क करने का अवसर दिया जाता है। पहले कार्यकारी अधिकारी की अपील किसी अन्य कार्यकारी मंच पर होगी। परिवर्तन न्यायिक प्राधिकरण से अपील है। इसलिए, अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से परिकल्पना करती है कि पहले से मौजूद न्यायिक प्राधिकरण को धारा-6-सी के तहत अपीलीय प्राधिकारी नियुक्त किया जाना चाहिए। जब धारा-6-सी में निहित प्रावधान की जांच आदेश में किए गए एक अन्य प्रावधान की पृष्ठभूमि में की जाती है, तो यह और स्पष्ट रूप से स्पष्ट हो जाएगा कि पहले से मौजूद न्यायिक प्राधिकरण को धारा-6-सी के तहत अपीलीय प्राधिकरण के रूप में नामित किया जाना था। इस आरोप पर कि प्रासंगिक लाइसेंसिंग आदेश का उल्लंघन किया गया है, आवश्यक वस्तु की जब्ती पर तीन दंड लगेंगे: (1) लाइसेंस रद्द करना; (2) सुरक्षा जमा

की जब्ती; और (3) धारा-7 के तहत शुरू किए जा सकने वाले किसी भी अभियोजन के अलावा, जब्त की गई आवश्यक वस्तु की जब्ती। पहले दो दंडों के संबंध में एक अपील राज्य सरकार के पास होती है, लेकिन तीसरे के संबंध में, हालांकि धारा-6-सी के लागू होने से पहले राज्य सरकार के पास एक अपील होगी, एक अपीलीय मंच प्रदान करने में एक अलग प्रस्थान किया जाता है जिसे विवरण के लिए अर्हता प्राप्त करनी चाहिए और न्यायिक प्राधिकारी की कसौटी को पूरा करना चाहिए। इसलिए, जब सत्र न्यायाधीश को न्यायिक प्राधिकारी नियुक्त किया गया था तो यह नहीं कहा जा सकता था कि वह पदनामित व्यक्ति थे और न्यायालय के रूप में कार्य नहीं कर रहे थे।

8. दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा-7 और 9 में राज्य को विभिन्न सत्र प्रभागों में विभाजित करने और ऐसे प्रत्येक प्रभाग के लिए सत्र न्यायालय की स्थापना की परिकल्पना की गई है, और आगे उस न्यायालय की अध्यक्षता करने के लिए एक न्यायाधीश की नियुक्ति का प्रावधान है। सत्र न्यायाधीश को सत्र न्यायाधीश के रूप में पदनाम मिलता है क्योंकि वह सत्र न्यायालय की अध्यक्षता करता है और इस तरह वह शक्तियों का आनंद लेता है और संहिता द्वारा प्रदत्त कार्यों का निर्वहन करता है। इसलिए, भले ही धारा-6-सी के तहत नियुक्त न्यायिक प्राधिकारी सत्र न्यायाधीश हो, इसका मतलब केवल सत्र न्यायालय की अध्यक्षता करने वाला न्यायाधीश होगा और उस न्यायालय के कार्यों का निर्वहन करेगा। यदि सत्र न्यायाधीश का तात्पर्य सत्र न्यायालय की अध्यक्षता करने वाले न्यायाधीश से है और वह नियुक्त अपीलीय प्राधिकारी है, तो निष्कर्ष अपरिहार्य है कि वह व्यक्ति पदनाम नहीं था, जिसकी अभिव्यक्ति का अर्थ एक व्यक्ति के रूप में इंगित या वर्णित व्यक्ति के रूप में समझा जाता है, जो एक वर्ग के सदस्य के रूप में या किसी विशेष चरित्र को भरने वाले व्यक्ति के विपरीत है ***(देखें: सेंट्रल टॉकीज लिमिटेड बनाम द्वारका प्रसाद [ए.आई.आर. 1961 एस.सी. 606: (1961)3 एस.सी.आर. 495: (1961)1 क्रि एलजे 740] और राम चंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [ए.आई.आर. 1966 एस.सी. 1888: 1966 पूरक एस.सी.आर. 393: 1966 क्रिएलजे 1514])***

9. *धारा-6-सी में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "न्यायिक प्राधिकरण" के निर्माण पर उच्च न्यायालयों के बीच राय की दरार की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया था।* ***मैसूर राज्य बनाम पांडुरंग पी. नाइक [(1971) 1 माईस एलजे 401]*** *में, मैसूर उच्च न्यायालय की राय थी कि हालांकि एक जिला और सत्र न्यायाधीश को राज्य सरकार द्वारा उस क्षमता में अधिनियम की धारा-6-सी द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए एक न्यायिक प्राधिकरण के रूप में नियुक्त किया गया था, यह धारा-435 के अर्थ के भीतर एक अवर आपराधिक न्यायालय नहीं होगा। गुजरात उच्च न्यायालय ने* ***गुजरात राज्य बनाम सीएम शाह [1974 क्रि एलजे 716 (गुजरात एचसी)]*** *में भी यही दृष्टिकोण अपनाया था। अधिसूचना द्वारा गठित अपीलीय प्राधिकारी के सटीक विनिर्देश को निर्णय से एकत्र नहीं किया जा सका है, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि अपील की सुनवाई अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा की गई थी, जो यह संकेत देगा कि भले ही एक जिला और सत्र न्यायाधीश को "न्यायिक प्राधिकरण" के रूप में नियुक्त किया गया हो, तो भी वह अभिव्यक्ति अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश को भी समझेगी या सत्र न्यायाधीश अपने समक्ष लंबित ऐसी अपील को अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश को स्थानांतरित कर सकता है जो एक सूचक था कि वह एक व्यक्तित्व पदनाम नहीं था। दंड प्रक्रिया संहिता की कुछ धाराओं का उल्लेख करने के बाद यह माना*

*गया है कि धारा-6-सी के तहत अपील की सुनवाई करने वाला अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश धारा-435(1) के अर्थ के भीतर एक अवर आपराधिक अदालत नहीं है। हमारा ध्यान **मध्य प्रदेश राज्य बनाम वसंत कुमार [1972 जब एलजे 80]** की ओर भी आकर्षित किया गया था। इस निर्णय पर केवल एक संक्षिप्त टिप्पणी 1972 जबलपुर लॉ जर्नल 80 में दिखाई देती है, लेकिन यह स्पष्ट रूप से बताता है कि चर्चा के तहत बिंदु पर न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया है।*

***10.** इसके विपरीत, इस प्रश्न की जांच आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा **लोक अभियोजक (एपी) बनाम एल रामय्या [1975 क्रि एलजे 144: 1975 एमएलजे (क्रि) 155: 1974 एलजे 372]** में की गई थी। दो प्रश्न पूर्ण पीठ के पास भेजे गए थे। पहला था क्या जिला और सत्र न्यायाधीश, जिसे धारा-6-ग के अंतर्गत अपीलों की सुनवाई के लिए न्यायिक प्राधिकारी नियुक्त किया गया है, एक व्यक्ति पदनामित है या एक अवर आपराधिक न्यायालय है, और दूसरा यह था कि क्या यदि यह एक अवर आपराधिक न्यायालय है, तो भी अपीलीय प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध एक पुनरीक्षण आवेदन उच्च न्यायालय में होगा? पूर्ण पीठ ने पहले प्रश्न का उत्तर हां में दिया। अपने निष्कर्षों को सारांशित करते हुए, न्यायालय ने माना कि जब एक न्यायिक प्राधिकरण जैसे एक अधिकारी जो एक अदालत की अध्यक्षता करता है, उसे कार्य करने, कानून के अनुसार न्याय करने और निर्णय लेने के लिए नियुक्त किया जाता है और जैसा कि उस प्राधिकरण द्वारा किए गए निर्णयों की अंतिमता या अन्यथा के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया है, तो यह एक संकेत है कि प्राधिकरण एक अदालत के रूप में कार्य करना है, जिस मामले में इसका उल्लेख करना आवश्यक नहीं है चाहे वे अंतिम हों या नहीं, क्योंकि अदालत के रूप में अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने की सभी घटनाएं आवश्यक रूप से पालन करेंगी। हम इस निष्कर्ष से व्यापक रूप से सहमत हैं।*

11. तदनुसार हमारी राय है कि भले ही राज्य सरकार धारा-6-सी के तहत एक अपीलीय प्राधिकारी नियुक्त करने के लिए अधिकृत है, विधायिका ने स्पष्ट रूप से संकेत दिया है कि इस तरह के अपीलीय प्राधिकरण को एक न्यायिक प्राधिकरण होना चाहिए। चूंकि संविधान के तहत अदालतें न्यायिक शक्ति का भंडार हैं और अदालत की अध्यक्षता करने वाला अधिकारी न्यायालय के नामकरण से अपना पदनाम प्राप्त करता है, भले ही नियुक्ति न्यायिक अधिकारी के पदनाम द्वारा की गई हो, अपीलीय प्राधिकारी ने संकेत दिया है कि वह न्यायालय है जिस पर वह संबंधित संहिता के तहत कार्यों का निर्वहन करता है और अपील और पुनरीक्षण के प्रयोजनों के लिए अदालतों के पदानुक्रम में रखा जाता है। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो, सत्र न्यायाधीश, हालांकि अधिसूचना द्वारा नियुक्त और अपीलीय प्राधिकारी थे, राज्य सरकार ने सत्र न्यायालय में एक अपीलीय प्राधिकारी का गठन किया, जिसकी अध्यक्षता सत्र न्यायाधीश करते हैं। सत्र न्यायालय का गठन दंड प्रक्रिया संहिता के तहत किया गया है और निर्विवाद रूप से यह उच्च न्यायालय के संबंध में एक अवर आपराधिक न्यायालय है। इसलिए, धारा-6-सी द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए किए गए आदेश के खिलाफ एक पुनरीक्षण आवेदन उच्च न्यायालय के पास होगा और उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा-435 और 439 के तहत एक पुनरीक्षण आवेदन पर विचार करने का हकदार होगा, जो प्रासंगिक समय पर लागू था और इस तरह का पुनरीक्षण आवेदन सक्षम होगा।

17. नंदिनी जे. शाह (उपरोक्त) **के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की अन्य तीन न्यायाधीशों की पीठ** ने निम्नानुसार टिप्पणी की: -

"34. *हमें इस प्रश्न पर विचार करने के लिए नहीं कहा जाता है कि क्या संपदा अधिकारी, उसमें निवेश की गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए, एक अदालत के रूप में कार्य करता है या उसके पास अदालत का जाल है। एकमात्र प्रश्न जिसका उत्तर हमने देने का प्रयास किया है, वह यह है कि क्या अधिनियम की धारा-9 में संदर्भित अपीलीय अधिकारी की नियुक्ति, जिसके समक्ष अपील की जाएगी, व्यक्ति पदनाम की क्षमता में है या अदालत के रूप में।*

35. धारा-9 की उप-धारा-(1) मुद्दे में बिंदु का उत्तर देने के लिए ध्यान में रखा जाने वाला मुख्य प्रावधान है। यह मानता है कि अधिनियम के तहत पारित संपदा अधिकारी के प्रत्येक आदेश से अपीलीय अधिकारी को अपील की जाएगी। अपीलीय अधिकारी कौन होगा, इस बारे में भी उसी प्रावधान में विनिर्दिष्ट किया गया है। यह उस जिले के जिला न्यायाधीश को निर्धारित करता है जिसमें सार्वजनिक परिसर स्थित है या उस जिले में ऐसे अन्य न्यायिक अधिकारी को जिला न्यायाधीश के रूप में कम से कम 10 वर्ष का दर्जा नहीं दिया गया है, जिसे उस उद्देश्य के लिए नामित किया जाना है। प्रावधान के पहले भाग में यह सुझाव दिया गया है कि अपील एक अपीलीय अधिकारी से संबंधित होगी, हालांकि, यह इसका पालन नहीं करता है कि अपीलीय अधिकारी व्यक्ति पदनाम है। इसे धारण करने के लिए कुछ और आवश्यक है। यदि किसी व्यक्ति को नाम से अपीलीय अधिकारी के रूप में नामित करने का मामला होता, तो सहवर्ती पूरी तरह से अलग होता। हालांकि, जब अपीलीय अधिकारी या तो जिले का जिला न्यायाधीश होता है या उस जिले में कोई अन्य न्यायिक अधिकारी होता है जिसके पास आवश्यक योग्यता होती है, जिसे जिला न्यायाधीश द्वारा नामित किया जा सकता है, तो जिला न्यायाधीश या नामित न्यायाधीश में एक अपीलीय प्राधिकारी की शक्ति के इस तरह के अलंकरण का प्रश्न किसी भी मानक से रंग प्राप्त नहीं करेगा या उस मामले के लिए व्यक्तित्व पदनाम के जाल को प्राप्त नहीं करेगा। सबसे पहले, धारा-9 के संदर्भ में अपीलीय अधिकारी द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति राज्य की न्यायिक शक्ति है जो राज्य की कार्यकारी शक्ति से काफी अलग है। दूसरे, जिला न्यायाधीश या नामित न्यायिक अधिकारी अपने अधिकार क्षेत्र में न्यायिक अधिकार का प्रयोग करता है। तीसरा, जैसा कि अधिनियम में कहा गया है कि अपीलीय अधिकारी को जिला न्यायाधीश या न्यायिक अधिकारी होना चाहिए, यह राज्य की न्यायिक शक्ति का प्रयोग करने वाले पहले से मौजूद प्राधिकारी के तथ्य का संकेत है। चौथा, जिला न्यायाधीश महाराष्ट्र सिविल न्यायालय अधिनियम, 1869 की धारा-5 का निर्माता है, जो एक जिला न्यायालय की अध्यक्षता करता है जिसमें संबंधित जिले में एक से अधिक न्यायाधीश होते हैं। जिला न्यायालय 1869 के अधिनियम की धारा-7 और 8 के आधार पर क्रमशः मूल और अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है और उस अधिनियम की धारा-7 के अनुसार, सीपीसी के अर्थ के भीतर जिले में मूल नागरिक क्षेत्राधिकार का प्रमुख न्यायालय है। अधिनियम वर्ष 1869 की धारा-8 के अनुसार, जिला न्यायालय अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा पारित सभी फरमानों और आदेशों से अपील का न्यायालय है, जहां से अपील किसी भी कानून के तहत लागू होती है।

***

39. वास्तव में, धारा-9 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'अपीलीय अधिकारी' है और 'अपीलीय प्राधिकारी' नहीं है जैसा कि आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा-6-सी में उपयोग किया गया है, जिसे ठाकुर दास [ठाकुर दास बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1978)1 एस.सी.सी. 27: 1978 एस.सी.सी.(क्रि) 21] में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा

माना गया है। हालांकि, इससे न तो कोई फर्क पड़ेगा और न ही जिला न्यायाधीश या नामित न्यायिक अधिकारी की स्थिति को कमजोर किया जा सकेगा ताकि उनकी नियुक्ति को व्यक्तित्व के रूप में माना जा सके। धारा-9(1) का जोर जिला न्यायाधीश के समक्ष संपदा अधिकारी के आदेश के खिलाफ अपील के समाधान का प्रावधान करना है, जो निस्संदेह जिले के भीतर पहले से मौजूद प्राधिकरण और न्यायपालिका का प्रमुख है, जो अपील दायर करने में देरी को माफ करने और अपील के लंबित रहने के दौरान अंतरिम राहत प्रदान करने की शक्ति सहित राज्य की न्यायिक शक्ति का निर्वहन करता है। हालांकि एक अपीलीय अधिकारी के रूप में वर्णित किया गया है, जिला न्यायाधीश, धारा-9 के तहत अपील का निर्णय लेने के लिए, सिविल अदालत की शक्तियों का प्रयोग कर सकता है और उससे अपेक्षा की जाती है।

***

59. प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर लौटते हुए, प्रतिवादियों ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत रिट याचिका के उपाय का सहारा लिया था। हमारे इस निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए कि जिला न्यायाधीश (इस मामले में, न्यायाधीश, मुंबई में बॉम्बे सिटी सिविल न्यायालय) द्वारा अपीलीय अधिकारी के रूप में पारित आदेश अधीनस्थ न्यायालय का एक आदेश है, इसकी चुनौती आमतौर पर केवल भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत आगे बढ़नी चाहिए, न कि अनुच्छेद 226 के तहत।

(महत्व सन्निविष्ट)

18. उपर्युक्त तथ्यों पर सम्यक् विचार किए जाने के उपरांत, तथा वर्ष 1986 के अधिनियम की धारा 16 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "इस अधिनियम के अधीन अपराध का विचारण करने का अधिकार रखने वाला न्यायालय" को सम्मिलित रूप से देखते हुए, यह न्यायालय इस दृढ़ मत पर पहुँचा है कि वर्ष 1986 के अधिनियम की धारा 16 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते समय, जो कि उक्त अधिनियम की धाराओं 14 एवं 15 से संबद्ध विषयों से संबंधित है, वर्ष 1986 के अधिनियम के अधीन एक प्राधिकरण के रूप में कार्यरत 'न्यायालय', उच्च न्यायालय की दृष्टि में एक अधीनस्थ आपराधिक न्यायालय होगा। अतः वर्ष 1986 के अधिनियम की धारा 16 के अधीन कार्यवाहियों के शीघ्र निस्तारण हेतु प्रस्तुत आवेदन, दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 483 (अब निरस्त) अथवा, यथास्थिति, भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 529 के अधीन विचारणीय एवं संधारणीय होगा।

19. उपर्युक्तानुसार निर्णय दिए जाने के पश्चात, प्रकरण/प्रकरणों की लंबित अवधि तथा संबंधित पक्षकारों को उपलब्ध संपत्ति के उपभोग के अधिकार पर भी विचार करते हुए, विचाराधीन आवेदन/आवेदनों का **निस्तारण** इस निर्देश के साथ किया जाता है कि प्रार्थनाओं में, जैसा कि उपर्युक्त उद्धृत है, निर्दिष्ट संबंधित न्यायालय/न्यायालयों द्वारा, यदि प्रकरण पहले से समाप्त नहीं किए गए हों, तो उनकी कार्यवाहियों को यथाशीघ्र संपन्न किया जाए।

20. न्यायालय इस निर्णय का मसौदा तैयार करने और प्रस्तुत मामले में लागू मामले के कानूनों का पता लगाने में, मेरे साथ संलग्न रिसर्च एसोसिएट सुश्री उर्मिश शंकर द्वारा दी गई बहुमूल्य सहायता को दर्ज करता है।

(2025) 5 ILRA 1662

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन अंतर्गत धारा 482 बी.एन.एस.एस.

संख्या 487 वर्ष 2025

नफीस अहमद **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **... प्रतिपक्षी**

आवेदक के अधिवक्ता:

ब्रजेश कुमार यादव, बालकेश्वर श्रीवास्तव

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

अनुवादित

आपराधिक कानून - भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 - धारा 482 --- मुकदमा अपराध संख्या 34 वर्ष 2025, अंतर्गत धाराओं 110, 191(2), 191(3), 115(2), 352, 351(2), 351(3), 109, 103(1), 118(1) बी.एन.एस., में अग्रिम जमानत की मांग करने वाला आवेदन --- यह कि किसी सह-अभियुक्त को हिरासत में लिया जाना और उसे नियमित जमानत पर रिहा किया जाना, आवेदक के अग्रिम जमानत मांगने के अधिकार को प्रभावित नहीं करता है और उसे पहले हिरासत में आत्मसमर्पण करने और उसके बाद जमानत पर रिहाई के लिए आवेदन करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है--- मृतक की मृत्यु घटना के दो महीने और अठारह दिन बाद हुई और मृत्यु का कारण 'क्रोनिक फेफड़ों की बीमारी के कारण कार्डियोपल्मोनरी अरेस्ट' बताया गया है; आवेदक 55 वर्षीय व्यक्ति है और जिस व्यक्ति पर कुल्हाड़ी से हमला करने का आरोप लगाया गया है, उसे सत्र न्यायालय द्वारा पहले ही जमानत दी जा चुकी है, जबकि आवेदक के खिलाफ केवल उकसाने का आरोप है और अन्य व्यक्तियों को सामान्य चोटें आई हैं--- आवेदक अग्रिम जमानत का हकदार है।

आवेदन स्वीकार किया गया। (ई-15)

<u>संदर्भित वादों की सूचीः-</u>

1. सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो एवं अन्य, (2022) 10 एससीसी 51

2. सुशीला अग्रवाल बनाम राज्य (एनसीटी ऑफ दिल्ली), (2020) 5 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा पारित)

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री बाल केश्वर श्रीवास्तव और श्री त्रिदीप नारायण पांडे, तथा राज्य की ओर से अपर शासकीय अधिवक्ता श्री आलोक कुमार तिवारी को सुना।

2. यह प्रस्तुत आवेदन आवेदक द्वारा थाना- कुड़वार, जिला- सुल्तानपुर में दर्ज मुकदमा अपराध संख्या 34 वर्ष 2025, अंतर्गत धारा 110, 191(2), 191(3), 115(2), 352, 351(2), 351(3), 109, 103(1), 118(1), भारतीय न्याय संहिता, में अग्रिम जमानत की मांग के लिए दायर किया गया है।

3. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने एक प्रारंभिक आपत्ति उठाई है कि एक सह-अभियुक्त को सत्र न्यायाधीश द्वारा नियमित जमानत दे दी गई है, और इसलिए, आवेदक को भी नियमित जमानत के लिए आवेदन करना चाहिए।

4. उपर्युक्त प्रारंभिक आपत्ति का उत्तर देते हुए, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **सतेंदर कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो व अन्य**, (2022) 10 एस.सी.सी. 51 और **सुशीला अग्रवाल बनाम राज्य (एन.सी.टी. दिल्ली)**, (2020) 5 एस.सी.सी. 1 के मामलों में दिए गए निर्णयों का हवाला दिया है।
5. **सतेंदर कुमार अंतिल (उपरोक्त)** मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि :-

"93. भारत में आपराधिक मामलों में दोषसिद्धि की दर बेहद कम है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि जमानत आवेदनों पर निर्णय लेते समय यह कारक न्यायालय के मन पर नकारात्मक रूप से हावी रहता है। न्यायालयों की यह सोच रहती है कि चूँकि दोषसिद्धि की संभावना बहुत कम है, इसलिए जमानत आवेदनों पर कानूनी सिद्धांतों के विपरीत सख्ती से निर्णय लिया जाना चाहिए। हम जमानत आवेदन पर विचार करने की प्रक्रिया को, जो कि दंडात्मक नहीं है, मुकदमे के माध्यम से होने वाले अंतिम न्यायनिर्णयन के साथ नहीं जोड़ सकते। इसके विपरीत, निरंतर हिरासत के साथ अंततः दोषमुक्ति गंभीर अन्याय का मामला होगा।

94. सामान्य रूप से आपराधिक न्यायालय, और विशेष रूप से विचारण न्यायालय, स्वतंत्रता के संरक्षक देवदूत हैं। संहिता में निहित स्वतंत्रता को आपराधिक न्यायालयों द्वारा संरक्षित, सुरक्षित और प्रवर्तित किया जाना चाहिए। आपराधिक न्यायालयों द्वारा कोई भी सचेत विफलता स्वतंत्रता का अपमान होगी। संवैधानिक मूल्यों और लोकाचार की रक्षा करने में सतर्क रहना और एक सुसंगत दृष्टिकोण रखना आपराधिक न्यायालय का पवित्र कर्तव्य है। एक आपराधिक न्यायालय को एक मुख्य पुजारी की तरह कार्य करके उस पर सौंपी गई जिम्मेदारी के साथ संवैधानिक जोर को बनाए रखना चाहिए।

95. इस न्यायालय ने अर्णब मनोरंजन गोस्वामी बनाम महाराष्ट्र राज्य [अर्णब मनोरंजन गोस्वामी बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2021) 2 एस.सी.सी. 427 : (2021) 1 एस.सी.सी. (क्रिमिनल) 834] के मामले में यह टिप्पणी की है कि : (एस.सी.सी. पृष्ठ 471-72, पैरा 67)

"67. मानवीय स्वतंत्रता एक बहुमूल्य संवैधानिक मूल्य है, जो निस्संदेह विधिवत अधिनियमित कानूनों द्वारा विनियमन के अधीन है। इस प्रकार, नागरिक आपराधिक कानून और प्रक्रिया के आदेशों के अधीन है। धारा 482 सीआरपीसी के प्रावधानों को प्रभावी बनाने के लिए 'या किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए' आवश्यक आदेश पारित करने की उच्च न्यायालय की निहित शक्ति को मान्यता देती है। इस न्यायालय के निर्णय यह अपेक्षा करते हैं कि उच्च न्यायालय, धारा 482 के तहत उन्हें सौंपी गई अधिकारिता का प्रयोग करते समय, सावधानी और विवेक के साथ कार्य करें। इस बात पर जोर देते हुए कि उच्च न्यायालय को इस शक्ति का प्रयोग संयम के साथ करना चाहिए, इस न्यायालय के निर्णय इस मूल सिद्धांत पर आधारित हैं कि आपराधिक कानून के उचित प्रवर्तन में अभियुक्तों द्वारा चालबाज़ियों और रणनीतियों का सहारा लेने से बाधा नहीं आनी चाहिए। अपराध की उचित जांच सुनिश्चित करने में जनहित की रक्षा इस बात को सुनिश्चित करके की जाती है कि उच्च न्यायालय की निहित शक्ति का प्रयोग सावधानी से किया जाए। वास्तव में यह स्पेक्ट्रम (दायरे) का एक–और महत्वपूर्ण–सिरा है। स्पेक्ट्रम का दूसरा सिरा भी उतना ही महत्वपूर्ण है: धारा 482 द्वारा उच्च न्यायालय में निहित उस शक्ति को मान्यता देना जो प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए है, स्वतंत्रता की रक्षा के लिए एक मूल्यवान सुरक्षा कवच है। दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 एक ऐसे विधानमंडल द्वारा अधिनियमित की गई थी जो संवैधानिक अधिकारों और सीमाओं के अधीन नहीं था; फिर भी इसने धारा 561-ए में निहित शक्ति को मान्यता दी थी। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात, संसद द्वारा [धारा 482 सीआरपीसी, 1973] उच्च न्यायालय की निहित शक्ति की मान्यता को स्वतंत्रता के संवैधानिक मूल्य को संरक्षित करने में एक सहायक के रूप में देखा जाना चाहिए। स्वतंत्रता की रिट संविधान के ताने-बाने में व्याप्त है। अपराध की निष्पक्ष जांच सुनिश्चित करने की आवश्यकता अपने आप में निस्संदेह महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह एक स्तर पर पीड़ित के अधिकारों की रक्षा करती है और, अधिक मौलिक स्तर पर, यह सुनिश्चित करने में सामाजिक हित की रक्षा करती है कि अपराध की जांच कानून के अनुसार की जाए और उससे उसी अनुरूप निपटा जाए। दूसरी ओर, आपराधिक कानून का दुरुपयोग एक ऐसा विषय है जिसके प्रति इस देश के उच्च न्यायालय और अवर न्यायालयों को सतर्क रहना चाहिए। वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय को उस विशिष्ट आधार के प्रति सचेत होना चाहिए था जिसे अपीलकर्ता द्वारा उसके समक्ष उठाया गया था कि अप्रैल 2020 से हो रही घटनाओं की एक श्रृंखला के हिस्से के रूप में उसे निशाना बनाया जा रहा है। अपीलकर्ता का विशिष्ट मामला यह है कि उसे इसलिए निशाना बनाया गया है क्योंकि उसके टेलीविजन चैनल पर उसकी राय सत्ता के लिए अप्रिय है। क्या अपीलकर्ता ने एफआईआर रद्द करने का मामला स्थापित किया है, यह वह विषय है जिस पर उच्च न्यायालय अंतिम विचार करेगा जब मामले की सुनवाई उसके समक्ष सूचीबद्ध होगी, लेकिन हम स्पष्ट रूप से इस विचार के हैं कि एफआईआर का प्रथम दृष्टया मूल्यांकन करने में भी विफल रहकर, उच्च न्यायालय ने स्वतंत्रता के संरक्षक के रूप में अपने संवैधानिक कर्तव्य और कार्य का त्याग किया है। न्यायालयों को यह सुनिश्चित करने में जनहित

की रक्षा करने की आवश्यकता के प्रति सचेत रहना चाहिए कि आपराधिक कानून के उचित प्रवर्तन में बाधा न आए। अपराध की निष्पक्ष जांच इसमें एक सहायक है। समान रूप से, संपूर्ण न्यायपालिका–जिला न्यायपालिका, उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय–का यह कर्तव्य है कि वे सुनिश्चित करें कि आपराधिक कानून नागरिकों के चयनात्मक उत्पीड़न का हथियार न बन जाए। न्यायालयों को स्पेक्ट्रम के दोनों सिरों के प्रति सचेत रहना चाहिए–एक ओर आपराधिक कानून के उचित प्रवर्तन को सुनिश्चित करने की आवश्यकता, और दूसरी ओर यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता कि कानून लक्षित उत्पीड़न का बहाना न बन जाए। मानवीय युगों में स्वतंत्रता उतनी ही नाजुक है जितनी हो सकती है। स्वतंत्रता नागरिकों की सतर्कता, मीडिया के शोर और विधि के शासन – न कि विधि द्वारा शासन – के प्रति सचेत अदालतों के धूल भरे गलियारों में जीवित रहती है। फिर भी, अक्सर स्वतंत्रता तब हताहत हो जाती है जब इनमें से कोई भी घटक कमज़ोर पाया जाता है।"

(जोर दिया गया)

96. हम यूनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य अमेरिका के विभिन्न राज्यों में प्रचलित 'जमानत अधिनियम' के रूप में मौजूद विशेष अधिनियमों का उल्लेख करना चाहते हैं। ये अधिनियम जांच एजेंसियों और अदालतों दोनों के लिए पर्याप्त दिशा-निर्देश निर्धारित करते हैं। अब हम यूनाइटेड किंगडम से संबंधित 1976 के जमानत अधिनियम की धारा 4(1) पर ध्यान देंगे

:

"अभियुक्त व्यक्तियों और अन्य लोगों के लिए जमानत का सामान्य अधिकार.–

4. (1) जिस व्यक्ति पर यह धारा लागू होती है, उसे इस अधिनियम की अनुसूची 1 में प्रावधानों के सिवाय जमानत दी जाएगी।"

97. उपर्युक्त प्रावधान के अलावा भी, यह अधिनियम कानून के उन सिद्धांतों पर विचार करता है जिनकी हमने 'निर्दोषता की धारणा' और 'जमानत को अधिकार के रूप में दिए जाने' के संबंध में चर्चा की है।

98. न्यायालय के निर्णयों में एकरूपता और निश्चितता न्यायिक व्यवस्था की नींव हैं। एक ही अपराध के आरोपी व्यक्तियों के साथ न तो एक ही न्यायालय द्वारा और न ही समान या विभिन्न अदालतों द्वारा अलग-अलग व्यवहार किया जाना चाहिए। ऐसा कार्य, भले ही वह विवेकाधीन हो और न्यायिक प्रकृति का ही क्यों न हो, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 का गंभीर अपमान होगा।"

6. **सुशीला अग्रवाल** (उपरोक्त) मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि :-

"47. धारा 438 सीआरपीसी गिरफ्तारी की आशंका वाले व्यक्ति को जमानत देने के लिए निर्देश जारी करने का प्रावधान करती है। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 ने पुरानी 1898 की संहिता का स्थान लिया। पुरानी संहिता में 1973 की संहिता की धारा 438 के अनुरूप कोई प्रावधान नहीं था। पुरानी संहिता के तहत, इस प्रश्न पर विभिन्न उच्च न्यायालयों के बीच तीखे मतभेद थे कि क्या अदालतों के पास गिरफ्तारी की आशंका में जमानत का आदेश पारित करने की निहित शक्ति थी। प्रमुख स्थिति यह थी कि अदालतों के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं

थी। बाद में, संहिता को अधिक व्यापक बनाने के लिए विभिन्न संशोधनों की आवश्यकता के परिणामस्वरूप 1973 में दंड प्रक्रिया संहिता का अधिनियमन हुआ। दिलचस्प बात यह है कि धारा 438 स्पष्ट रूप से "अग्रिम जमानत" शब्द का उपयोग नहीं करती है; बल्कि इसकी भाषा संबंधित न्यायालय को जमानत देने के लिए निर्देश जारी करने का अधिकार देती है।

48. भारत के विधि आयोग ने अपनी 1969 की 41वीं रिपोर्ट में यह उल्लेख किया है कि अग्रिम जमानत देने की आवश्यकता मुख्य रूप से इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि प्रभावशाली व्यक्ति अपने प्रतिद्वंद्वियों को झूठे मामलों में फंसाने या उन्हें जेल में डलवाकर अपमानित करने का प्रयास करते हैं। रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि झूठे मामलों के अलावा, **<u>जहां यह मानने के लिए उचित आधार हों कि किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति के फरार होने की संभावना नहीं है, या जमानत पर रहने के दौरान वह अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा, वहां उसे पहले हिरासत में जाने, कुछ दिनों तक जेल में रहने और फिर जमानत के लिए आवेदन करने के लिए मजबूर करने का कोई औचित्य नहीं जान पड़ता है।</u>** *रिपोर्ट ने सिफारिश की कि ऐसे मामलों में जमानत देने के निर्देश के लिए एक प्रावधान शामिल किया जाना चाहिए, और यह शक्ति केवल उच्च न्यायालयों और सत्र न्यायालयों में निहित होनी चाहिए। हालाँकि, रिपोर्ट ने प्रस्तावित प्रावधान की भाषा में अग्रिम जमानत देने की शर्तें शामिल नहीं की थीं। फिर भी, कुछ शर्तें जिन्हें अदालतें शामिल कर सकती हैं, उन्हें उस प्रावधान में शामिल किया गया जिसे धारा 438 सीआरपीसी, 1973 के रूप में अधिनियमित किया गया था।"*

(जोर दिया गया)

7. उपर्युक्त चर्चा को देखते हुए, मेरा यह विचार है कि केवल यह तथ्य कि किसी सह-अभियुक्त को हिरासत में लिया गया था और उसे नियमित जमानत पर रिहा कर दिया गया है, आवेदक के अग्रिम जमानत मांगने के अधिकार को प्रभावित नहीं करता है और उसे पहले हिरासत में आत्मसमर्पण करने और उसके बाद जमानत पर रिहाई के लिए आवेदन करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है।

8. तदनुसार, मैं उपरोक्त प्रारंभिक आपत्ति को खारिज करता हूं और यह मानता हूं कि अग्रिम जमानत के लिए आवेदन विचारणीय है।

9. उपरोक्त मामला 23.01.2025 को दर्ज की गई एक एफ.आई.आर. के आधार पर आठ व्यक्तियों के खिलाफ पंजीकृत किया गया है, जिसमें आवेदक भी शामिल है। इसमें कहा गया है कि पूर्व में, सूचनाकर्ता के पिता ने आवेदक के खिलाफ उसकी उचित मूल्य की दुकान से कम मात्रा में राशन देने के संबंध में शिकायत की थी, जिसके कारण सभी आरोपी व्यक्तियों ने उसके प्रति दुश्मनी पाल रखी थी। जबकि सूचनाकर्ता का भाई 23.01.2025 को सुबह लगभग 11:30 बजे अपने खेतों की ओर जा रहा था, उन्होंने उसे गाली देना शुरू कर दिया। उसके विरोध करने पर, सह-अभियुक्त परवेज़ ने आवेदक के उकसावे पर उसके सिर पर प्रहार किया। जब एक रिश्तेदार गुफरान उसे बचाने के लिए दौड़ा, तो आरोपी व्यक्तियों ने उसके साथ भी मारपीट की।

10. 23.01.2025 को तैयार की गई मोहम्मद नज़र की चोट की रिपोर्ट में माथे के बीच में 6 सेमी X 1 सेमी का कटा हुआ घाव, बाएं माथे पर एक चोट और पीठ के निचले हिस्से के बाईं ओर एक चोट का उल्लेख है। चोटें ताज़ा थीं और किसी कठोर तथा धारदार वस्तु के कारण लगी थीं। एक्स-रे जांच रिपोर्ट में कोई असामान्यता नहीं पाई गई। उपचार के दौरान 11.04.2025 को मोहम्मद नज़र की मृत्यु हो गई। पोस्टमार्टम परीक्षा रिपोर्ट में ट्रेकियोस्टोमी का एक ठीक होता हुआ पंचर घाव और पीठ पर बेड सोर का उल्लेख है। मृत्यु का कारण 'क्रोनिक फेफड़ों की बीमारी के कारण कार्डियोपल्मोनरी अरेस्ट' (हृदय और फेफड़ों का कार्य रुकना) बताया गया है।

11. मोहम्मद अतहर के सिर के बाईं ओर एक फटा हुआ घाव, बाएं माथे पर एक चोट और दाएं अंगूठे के जोड़ में दर्द की शिकायत थी। उनकी एक्स-रे जांच रिपोर्ट में भी कोई असामान्यता नहीं पाई गई और चोटें सामान्य प्रकृति की थीं। एक अन्य व्यक्ति गुफरान अहमद को भी सामान्य चोटें आईं।

12. जमानत आवेदन के समर्थन में दायर शपथ पत्र में कहा गया है कि आवेदक 55 वर्षीय एक निर्दोष व्यक्ति है और उसे वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने एक अन्य आपराधिक मामले में आवेदक की संलिप्तता की ओर इशारा किया है और एक पूरक शपथ पत्र दायर किया गया है जिसमें कहा गया है कि जांच अधिकारी ने उस मामले में आवेदक के खिलाफ क्लोजर रिपोर्ट (अंतिम रिपोर्ट) दाखिल कर दी है।

13. सह-अभियुक्त परवेज़ खान को सत्र न्यायाधीश, सुल्तानपुर द्वारा 25.04.2025 को पारित एक आदेश के माध्यम से जमानत पर रिहा किया जा चुका है।

14. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने उस डॉक्टर के बयान की एक प्रति प्रस्तुत की है जिसने शव का पोस्टमार्टम किया था। डॉक्टर ने अपने बयान में कहा कि उन्होंने पोस्टमार्टम परीक्षण किया था और उन्होंने पोस्टमार्टम रिपोर्ट में उल्लेख किया है कि मृत्यु का कारण 'क्रोनिक फेफड़ों की बीमारी के कारण कार्डियोपल्मोनरी अरेस्ट' था। हालाँकि, उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें फेफड़ों का संक्रमण हो गया था क्योंकि उन्हें लगी चोटों के कारण लंबे समय तक अस्पताल में भर्ती रहना पड़ा था।

15. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने न्यायालय के समक्ष तीनों घायल व्यक्तियों के बयान प्रस्तुत किए हैं। घायल मोहम्मद अतहर ने कहा कि आवेदक के उकसावे पर अन्य अभियुक्तों ने उस पर हमला किया था। मोहम्मद नज़र (मृतक) ने कहा कि सभी अभियुक्तों ने उनके बेटे और उन्हें पीटा था।

16. यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि परवेज़ खान, जिस पर कुल्हाड़ी से हमला करने का आरोप लगाया गया है, उसे सत्र न्यायालय द्वारा पहले ही जमानत दी जा चुकी है।

17. मामले के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि मृतक की मृत्यु घटना के दो महीने और अठारह दिन बाद हुई और मृत्यु का कारण 'क्रोनिक फेफड़ों की बीमारी के कारण कार्डियोपल्मोनरी अरेस्ट' बताया गया है; कि आवेदक 55 वर्षीय व्यक्ति है और जिस व्यक्ति पर कुल्हाड़ी से हमला करने का आरोप लगाया गया है, उसे सत्र न्यायालय द्वारा पहले ही जमानत दी जा चुकी है, जबकि आवेदक के खिलाफ केवल उकसाने का आरोप है और अन्य व्यक्तियों को सामान्य चोटें आई हैं, मेरा यह विचार है कि आवेदक अग्रिम जमानत का हकदार है।

18. तदनुसार, यह अग्रिम जमानत आवेदन **स्वीकार** किया जाता है।

19. उपरोक्त मुकदमा अपराध में आवेदक- **नफीस अहमद** की गिरफ्तारी/विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थिति होने पर, उसे निम्नलिखित शर्तों और विचारण न्यायालय द्वारा निर्धारित की जा सकने वाली किन्हीं अन्य शर्तों के अधीन, संबंधित एस.एच.ओ./न्यायालय की संतुष्टि के लिए व्यक्तिगत बांड और उतनी ही राशि की दो सॉल्वेंट जमानतें प्रस्तुत करने पर अग्रिम जमानत पर रिहा किया जाएगा:

(i) कि आवेदक आवश्यकता पड़ने पर पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए स्वयं को उपलब्ध कराएगा;

(ii) कि आवेदक मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के सामने ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोकने के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा/करेगी, और न ही साक्ष्यों के साथ कोई छेड़छाड़ करेगा;

(iii) कि आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा।

(iv) कि आवेदक प्रत्येक निर्धारित तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा, जब तक कि व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट न दी गई हो; और

(v) कि आवेदक अभियोजन पक्ष के गवाहों पर दबाव नहीं डालेगा/डालेगा या उन्हें डराएगा/धमकाएगा नहीं।

(2025) 5 ILRA 1667

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 40954 वर्ष 2023

रजनीकांत शुक्ला **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...प्रतिपक्षी**

आवेदक के अधिवक्ता:
अभिषेक कुमार मिश्रा, चंद्रकेश मिश्रा, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता, घनश्याम दास मिश्रा

आपराधिक कानून – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 439 – भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 406, 419, 420, 467, 468, 471 एवं 120-बी – जमानत – प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में देरी – पूर्व शिकायत के प्रतिशोध में प्रथम सूचना रिपोर्ट – आवेदक पर शिक्षण पद की कथित बिक्री में धोखाधड़ी और जालसाजी का आरोप – छह साल की देरी का कोई स्पष्टीकरण नहीं – आपराधिक इतिहास का दोषसिद्धि में न बदलना – विचारण-पूर्व कारावास और अनुच्छेद 21 – जमानत पर मौद्रिक शर्त लगाने की निंदा – निर्णय – विचारण के बिना लंबी हिरासत अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है – प्रथम सूचना रिपोर्ट में देरी और दोषसिद्धि का अभाव आवेदक को जमानत का हकदार बनाता है – न्यायालयों को रिकवरी एजेंट के रूप में कार्य नहीं करना चाहिए और न ही जमानत के लिए जमा राशि की शर्तें लगानी चाहिए। (पैरा 5, 12, 15, 16, 17 और 19)

अभिनिर्धारितः

यह प्राकृतिक न्याय का एक मौलिक सिद्धांत है कि किसी अपराध के आरोपी को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि उसे दोषी न ठहरा दिया जाए। इस प्रकार, यद्यपि यहाँ आवेदक विभिन्न मामलों में शामिल रहा है, लेकिन उसे आज तक किसी भी मामले में दोषी नहीं ठहराया गया है। इसलिए, उसके पक्ष में निर्दोषता की धारणा बनी हुई है। विचारण-पूर्व कारावास एक गंभीर मामला है, जो एक आरोपी के मौलिक अधिकार का उल्लंघन है। (पैरा 15)

अनुवादित

सर्वोच्च न्यायालय ने जमानत पर रिहाई की शर्त के रूप में धनराशि के भुगतान की शर्त लगाने की प्रथा की निंदा की है, विशेष रूप से विचारण-पूर्व चरण में। इस स्तर पर यह नहीं कहा जा सकता है कि शिकायतकर्ता द्वारा भुगतान की गई कथित राशि वास्तव में आरोपी को दी गई थी। ऐसी परिस्थितियों में, आवेदक को जमानत देते समय भुगतान का निर्देश नहीं दिया जा सकता है। (पैरा 16)

मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, विशेष रूप से प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में हुई देरी, जो कि सूचनाकर्ता के रिश्तेदारों के खिलाफ आवेदक द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम सूचना रिपोर्ट के प्रतिशोध के रूप में थी, और यह तथ्य कि यद्यपि आपराधिक इतिहास है, लेकिन उन मामलों में से किसी में भी आवेदक को अब तक दोषी नहीं ठहराया गया है, तथा 34 मामलों में से 11 मामले एन.आई. एक्ट की धारा 138 के तहत हैं, जो कि पक्षों के बीच सिविल लेनदेन से उत्पन्न होते हैं और जिन्हें कड़ाई से आपराधिक मामला नहीं कहा जा सकता है। (पैरा 18)

जमानत आवेदन स्वीकार। (ई-14)

<u>उद्धृत वादों की सूचीः-</u>

1. आर.डी. उपाध्याय बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 1996 0 सुप्रीम कोर्ट (एससी) 624
2. राम गोपाल गौतम बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य (आपराधिक अपील संख्या 95/2021 में 01.02.2021 को पारित निर्णय, जो एस.एल.पी. (आपराधिक) 4166/2020 से उत्पन्न हुई)
3. रबी प्रकाश बनाम ओडिशा राज्य, एस.एल.पी. (आपराधिक) संख्या 4169/2023, निर्णय दिनांक 13.07.2023
4. दाताराम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2018) 3 एससीसी 22
5. श्रीकांत कुमार उर्फ श्रीकांत कुमार बनाम बिहार राज्य एवं अन्य (एस.एल.पी. (आपराधिक) संख्या 13083/2023 से उत्पन्न आपराधिक अपील में 06.01.2025 को पारित निर्णय)
6. मोती राम एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1978 4 एससीसी 47
7. यू.एन. गुप्ता बनाम बिहार राज्य, आपराधिक अपील संख्या 3067/2024, निर्णय दिनांक 22.07.2024
8. रमेश कुमार बनाम दिल्ली एनसीटी राज्य, (2023) 7 एससीसी 461

(माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता द्वारा पारित)

1. आवेदक की ओर से श्री चंद्रकेश मिश्रा द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री दया शंकर मिश्रा, सूचनाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री घनश्याम दास मिश्रा और राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री डी.पी.एस. चौहान को सुना गया।

2. यह वर्तमान जमानत आवेदन आवेदक द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 292 वर्ष 2022, धारा 406, 419, 420, 467, 468, 471 और 120-बी, भारतीय दंड संहिता, थाना जॉर्ज टाउन, प्रयागराज, में जमानत पर रिहाई की मांग के लिए दायर किया गया है।

3. इस मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 08.08.2022 को सूचनाकर्ता श्रीमती शिखा मिश्रा ने यह प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई कि श्री शक्ति विद्यापीठ, जूनियर हाई स्कूल, बेंडो करछना, इलाहाबाद में सहायक अध्यापक (अंग्रेजी) का पद भरने के लिए एक विज्ञापन जारी किया गया था। उस समय आवेदक उक्त संस्थान/विद्यालय का प्रबंधक था। उक्त विज्ञापन के क्रम में वह विद्यालय गई और आवेदक से मिली। इसके बाद आवेदक उसे अपने घर ले गया जहाँ उन्होंने आपस में और आवेदक के परिवार के अन्य सदस्यों के साथ बातचीत की। इसके बाद उसने उक्त पद के लिए आवेदन किया और उक्त पद पर नियुक्ति के संबंध में आवेदक और उसकी पत्नी ने 20,00,000/- रुपये की मांग की। सौदा 15,00,000/- रुपये में तय हुआ और सूचनाकर्ता ने आवेदक के परिवार के सदस्यों की उपस्थिति में 15,00,000/- रुपये नकद दिए। तदनंतर, यद्यपि उनके पक्ष में नियुक्ति पत्र जारी कर दिया गया था। हालाँकि, यह कहते हुए 5,00,000/- रुपये की अतिरिक्त मांग की गई कि 5,00,000/- रुपये का भुगतान करने के बाद ही उन्हें विद्यालय में कार्यभार ग्रहण करने दिया जाएगा। वह 5,00,000/- रुपये की मांग पूरी नहीं कर सकीं, इसलिए उन्हें विद्यालय में कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति नहीं दी गई। उसके बाद न तो उन्हें विद्यालय में कार्यभार ग्रहण करने दिया गया और न ही उनके द्वारा भुगतान की गई 15,00,000/- रुपये की राशि वापस की गई। इसलिए, घटना के लगभग 6 वर्ष बाद सूचनाकर्ता द्वारा आवेदक और आवेदक के परिवार के अन्य सदस्यों के विरुद्ध यह प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई है।

4. आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने में लगभग 6 वर्षों की लंबी देरी का कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं है। आवेदक ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों के अनुसार कोई राशि नहीं ली है। आपसी रंजिश के कारण आवेदक को उक्त मामले में झूठा फंसाया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि सूचनाकर्ता के रिश्तेदारों ने 17.06.2021 को आवेदक का अपहरण कर लिया था और उक्त अपराध के संबंध में आवेदक द्वारा सूचनाकर्ता के रिश्तेदारों के विरुद्ध धारा 364 भारतीय दंड संहिता के तहत मुकदमा अपराध संख्या 322 वर्ष 2021 के रूप में एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी, जिसमें सूचनाकर्ता के उक्त रिश्तेदारों को गिरफ्तार किया गया था। अतः, उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट के प्रतिशोध के रूप में, सूचनाकर्ता द्वारा आवेदक के विरुद्ध झूठे आरोपों पर यह वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई है। यह भी तर्क दिया गया है कि सूचनाकर्ता द्वारा आवेदक को किए गए कथित भुगतान के संबंध में कोई प्रत्यक्षदर्शी नहीं है। सूचनाकर्ता द्वारा स्वयं लगाए गए आरोप, सूचनाकर्ता के विरुद्ध ही एक अपराध है जिसके लिए वह स्वयं भी अभियोजन के लिए उत्तरदायी है।

5. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि इस मामले में 18.03.2023 को आरोप-पत्र दाखिल कर दिया गया है और न्यायालय द्वारा संज्ञान ले लिया गया है। हालाँकि, आज तक किसी भी गवाह का परीक्षण नहीं किया गया है। इसलिए, निकट भविष्य में इस मामले के विचारण के समापन की कोई संभावना नहीं है।

अतः, विचारण के दौरान आवेदक को लंबी अवधि तक जेल में बंद रखना भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित मामलों के निर्णयों का हवाला दिया है: ***आर.डी. उपाध्याय बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 1996 0 सुप्रीम (एससी) 624; राम गोपाल गौतम बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य (सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक अपील संख्या 95 वर्ष 2021, जो एसएलपी (आपराधिक) 4166 वर्ष 2020 से उत्पन्न हुई, में 01.02.2021 को पारित निर्णय); और रबी प्रकाश बनाम ओडिशा राज्य (एसएलपी (आपराधिक) संख्या 4169 वर्ष 2023 में 13.07.2023 को पारित निर्णय)।***

6. आवेदक के आपराधिक इतिहास के संबंध में यह स्पष्ट किया गया है कि विपक्षी द्वारा जिन मामलों का हवाला दिया गया है, वे वर्तमान मामले के पंजीकरण के बाद के हैं, इसलिए उन्हें आवेदक का आपराधिक इतिहास नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त यह तर्क दिया गया है कि आज तक आवेदक किसी भी मामले में दोषी नहीं ठहराया गया है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के ***'दाताराम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य' (2018) 3 एससीसी 22*** के निर्णय पर भरोसा करते हुए तर्क दिया है कि जमानत नियम है और जमानत की अस्वीकृति अपवाद है।

7. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने ***प्रभाकर तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2020) 11 एससीसी 648*** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का भी हवाला दिया है और तर्क दिया है कि केवल इसलिए कि आवेदक का आपराधिक इतिहास है, उसे जमानत देने से इनकार नहीं किया जा सकता। उन्होंने आगे तर्क दिया कि यद्यपि दो मामलों में आवेदक को उन मामलों में शामिल राशि का 25% जमा करने की शर्त पर जमानत दी गई है, हालाँकि, ***श्रीकांत कुमार उर्फ श्रीकांत कुमार बनाम बिहार राज्य एवं अन्य (एस.एल.पी. (आपराधिक) संख्या 13083/2023 से उत्पन्न आपराधिक अपील में 06.01.2025 को पारित निर्णय) और मोती राम एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1978) 4 एससीसी 47*** के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों का हवाला देते हुए, यह तर्क दिया गया है कि किसी आरोपी को जमानत पर रिहा करने के लिए अनुचित शर्तें नहीं लगाई जा सकतीं।

8. ***रमेश कुमार बनाम दिल्ली एनसीटी राज्य (2023) 7 एससीसी 461*** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला देते हुए, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि न्यायालय जमानत की शर्त के रूप में भारी धनराशि जमा करने की शर्त नहीं लगा सकता है।

9. इसके विपरीत, सूचनाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री घनश्याम दास मिश्रा ने तर्क दिया कि शुरुआत में प्रथम सूचना रिपोर्ट धारा 419, 420 और 406 भारतीय दंड संहिता के तहत दर्ज की गई थी। हालाँकि, विवेचना के दौरान यह पता चला कि आवेदक द्वारा दिया गया उक्त नियुक्ति पत्र एक फर्जी और जाली दस्तावेज था, इसलिए धारा 467, 468, 471 और 120-बी भी इसमें जोड़ दी गई हैं। उन्होंने आगे तर्क दिया कि सूचनाकर्ता ने आवेदक द्वारा नियुक्ति पत्र दिए जाने की तारीख से ठीक चार दिन पहले 15,00,000/- रुपये नकद दिए थे। इस प्रकार आवेदक के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है। यह भी तर्क दिया गया है

कि इसी तरह की प्रकृति के अपराध के लिए आवेदक को उन मामलों में शामिल राशि का 25% जमा करने पर जमानत दी गई है। आवेदक का 34 मामलों का आपराधिक इतिहास भी है, इसलिए वह एक आदतन अपराधी है और यदि उसे जमानत पर रिहा किया जाता है तो वह अन्य अपराधों में शामिल हो जाएगा। इस प्रकार, सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जमानत याचिका को खारिज करने का अनुरोध किया है।

10. राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आवेदक के विरुद्ध दाखिल चार्जशीट का हवाला देते हुए जमानत याचिका का विरोध किया है।

11. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत विरोधाभासी तर्कों को सुनने के बाद, इस न्यायालय ने मामले के रिकॉर्ड का सावधानीपूर्वक अवलोकन किया है।

12. ***आर.डी. उपाध्याय (उपरोक्त)*** मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक अधिकार के रूप में त्वरित सुनवाई की गारंटी दी गई है और निम्नलिखित निर्देश जारी किए गए हैं:

"जहाँ तक हत्या के प्रयास से संबंधित मामलों का संबंध है, हम निर्देश देते हैं कि जो मामले 2 साल से अधिक समय से लंबित हैं, उनमें विचाराधीन कैदियों को संबंधित विचारण न्यायालयों की संतुष्टि पर तत्काल जमानत पर रिहा किया जाए। अपहरण, चोरी, धोखाधड़ी, आर्म्स एक्ट, जालसाजी, कस्टम, धारा 326 भारतीय दंड संहिता, धारा 324 भारतीय दंड संहिता के तहत, दंगा और धारा 354 भारतीय दंड संहिता के तहत मुकदमे का सामना कर रहे व्यक्ति, जो एक वर्ष से अधिक की अवधि से जेल में हैं, उन्हें संबंधित विचारण न्यायालयों की संतुष्टि पर तत्काल जमानत पर रिहा किया जाए। ऐसे मामले हो सकते हैं जहाँ विचाराधीन कैदी जमानतदार आदि प्रस्तुत करने की स्थिति में न हों। उन मामलों में, विचारण न्यायालय प्रत्येक मामले के तथ्यों, विशेष रूप से जेल में बिताई गई अवधि को ध्यान में रखते हुए, उन्हें व्यक्तिगत मुचलके भरने पर जमानत पर रिहा करने पर विचार कर सकते हैं।

हम स्पष्ट करते हैं कि किसी भी विचाराधीन कैदी के लिए जमानत के लिए आवेदन करना आवश्यक नहीं होगा। न्यायालय इस न्यायालय के आदेश के अधिकार पर स्वतः संज्ञान लेकर जमानत के मामलों पर विचार करेगा। यह कार्य सभी संबंधित न्यायालयों द्वारा यह आदेश प्राप्त होने के दो सप्ताह के भीतर किया जाएगा। हम सभी संबंधितों को स्वतंत्रता देते हैं कि यदि आवश्यक हो, तो आगे के निर्देशों के लिए इस न्यायालय में संपर्क करें।

13. ***रबी प्रकाश (उपरोक्त)*** मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि लंबी हिरासत सामान्य तौर पर संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत सबसे मूल्यवान मौलिक अधिकार के खिलाफ है और ऐसी स्थिति में, सशर्त स्वतंत्रता को वैधानिक बाधाओं पर प्राथमिकता मिलनी चाहिए। उक्त निर्णय लेते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने आरोपी को रिहा करने का निर्देश दिया है।

14. दाताराम (उपरोक्त) मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 6 और 7 में इस प्रकार माना है:

"जमानत के प्रावधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को निकेश ताराचंद शाह बनाम भारत संघ, 2017 (13) स्केल 609 में दिए गए हालिया फैसले में मैग्ना कार्टा के दिनों तक जाकर विस्तार से और स्पष्ट रूप से समझाया गया है। उस निर्णय में, गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 565 का उल्लेख किया गया था, जिसमें यह देखा गया कि बहुत पहले नगेंद्र बनाम किंग-एम्परर, एआईआर 1924 कलकत्ता 476 में यह माना गया था कि जमानत को सजा के तौर पर नहीं रोका जाना चाहिए। एम्परर बनाम हचिंसन, एआईआर 1931 इलाहाबाद 356 का भी उल्लेख किया गया था, जिसमें यह देखा गया था कि जमानत देना नियम है और इनकार करना अपवाद। इसलिए जमानत का प्रावधान सदियों पुराना है और जमानत के प्रावधान की उदार व्याख्या लगभग एक सदी पुरानी है, जो औपनिवेशिक काल तक जाती है।"

15. यह प्राकृतिक न्याय का एक मौलिक सिद्धांत है कि किसी अपराध के आरोपी को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि उसे दोषी न ठहरा दिया जाए। इस प्रकार, यद्यपि यहाँ आवेदक विभिन्न मामलों में शामिल रहा है, लेकिन उसे आज तक किसी भी मामले में दोषी नहीं ठहराया गया है। इसलिए, उसके पक्ष में निर्दोषता की धारणा बनी हुई है। विचारण-पूर्व कारावास एक गंभीर मामला है, जो एक आरोपी के मौलिक अधिकार का उल्लंघन है।

16. सर्वोच्च न्यायालय ने विचारण से पूर्व चरण में जमानत पर रिहाई की शर्त के रूप में धनराशि के भुगतान की शर्त लगाने की प्रथा की निंदा की है। इस स्तर पर यह नहीं कहा जा सकता है कि शिकायतकर्ता द्वारा भुगतान की गई कथित राशि वास्तव में आरोपी को दी गई थी। ऐसी परिस्थितियों में, आवेदक को जमानत देते समय भुगतान का निर्देश नहीं दिया जा सकता है।

17. ***यू.एन. गुप्ता बनाम बिहार राज्य (आपराधिक अपील संख्या 3067 वर्ष 2024, जो एसएलपी (आपराधिक) संख्या 5916 वर्ष 2024 से उत्पन्न हुई, में 22.07.2024 को पारित निर्णय)*** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 3, 4 और 5 में निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"3. जमा करने का निर्देश इस न्यायालय के ढेर सारे निर्णयों के विपरीत है। हम उनमें से कुछ का लाभप्रद संदर्भ ले सकते हैं, जैसे रमेश कुमार बनाम दिल्ली एनसीटी राज्य, (2023) 7 एससीसी 461; सेंट जॉर्ज डिसूजा बनाम दिल्ली एनसीटी राज्य, (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 1940 और दिलीप सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य व अन्य, (2021) 2 एससीसी 779।

4. प्रतिवादी संख्या 2-शिकायतकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि चूंकि उच्च न्यायालय को स्वयं अपीलकर्ताओं द्वारा 20,00,000/- रुपये (बीस लाख रुपये मात्र) का 25% जमा करने की शर्त लगाने के लिए आमंत्रित किया गया था, इसलिए विवादित आदेश हस्तक्षेप के योग्य नहीं है।

5. हमारी सुविचारित राय में, उच्च न्यायालय को अपीलकर्ताओं की ओर से दी गई दलीलों से प्रभावित हुए बिना जमानत देने के प्रश्न की जांच करनी चाहिए थी। उपर्युक्त निर्णयों में प्रतिपादित कानून के स्थापित

सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, जिनमें अन्य बातों के अलावा यह कहा गया है कि जमानत/अग्रिम जमानत देने के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाले न्यायालयों से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वे आरोपी से शिकायतकर्ता के बकाया की वसूली के लिए रिकवरी एजेंट के रूप में कार्य करें, उच्च न्यायालय को स्वतंत्र रूप से अपना दिमाग लगाना चाहिए था और यह निष्कर्ष निकालना चाहिए था कि क्या स्थापित मानकों के आधार पर जमानत देने का मामला बनता है या नहीं, चाहे अपीलकर्ताओं की ओर से कोई भी दलील क्यों न दी गई हो।"

18. मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, और विशेष रूप से प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में हुई देरी पर विचार करते हुए, जो कि सूचनाकर्ता के रिश्तेदारों के खिलाफ आवेदक द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम सूचना रिपोर्ट के प्रतिशोध के रूप में थी, तथा यह तथ्य कि यद्यपि आपराधिक इतिहास है, लेकिन उन मामलों में से किसी में भी आवेदक को अब तक दोषी नहीं ठहराया गया है, और 34 मामलों में से 11 मामले एन.आई. एक्ट की धारा 138 के तहत हैं, जो पक्षों के बीच सिविल लेनदेन से उत्पन्न होते हैं और जिन्हें कड़ाई से आपराधिक मामला नहीं कहा जा सकता है।

19. उपरोक्त कारणों से और आर.डी. उपाध्याय (उपरोक्त), रबी प्रकाश (उपरोक्त), दताराम (उपरोक्त) और यू.एन. गुप्ता (उपरोक्त) के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को देखते हुए, तथा मामले के गुण-दोष पर कोई टिप्पणी किए बिना, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, यहाँ उपस्थित आवेदक जमानत पर रिहा होने का हकदार है। तदनुसार, जमानत आवेदन **स्वीकार** किया जाता है।

20. आवेदक **रजनीकांत शुक्ला**, जो मुकदमा अपराध संख्या 292/2022, धारा 406, 419, 420, 467, 468, 471 और 120-बी भारतीय दंड संहिता, थाना जार्ज टाउन, प्रयागराज, में संलिप्त हैं, को संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए व्यक्तिगत मुचलका और उतनी ही राशि की दो जमानतें प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्तों के अधीन जमानत पर रिहा किया जाए:

(i) आवेदक विचारण के दौरान साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा।
(ii) आवेदक अभियोजन पक्ष के गवाहों पर दबाव नहीं डालेगा/उन्हें डराएगा-धमकाएगा नहीं।
(iii) आवेदक निर्धारित प्रत्येक तारीख पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा, जब तक कि व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट न दी गई हो।
(iv) आवेदक शिकायतकर्ता या मामले के किसी भी गवाह से संपर्क करने, धमकी देने या अन्यथा प्रभावित करने का प्रयास नहीं करेगा।

21. उपरोक्त शर्तों में से किसी का भी उल्लंघन होने की स्थिति में, संबंधित न्यायालय विधि के अनुसार आवेदक की जमानत रद्द करने के लिए स्वतंत्र होगा।

(2025) 5 ILRA 1673

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल

सिविल पुनरीक्षण संख्या-4 वर्ष 2025

प्रबंधन समिति, जामी मस्जिद संभल अहमद मार्ग कोट संभल ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

हरि शंकर जैन और अन्य ... प्रतिपक्षी

पुनरीक्षणकर्ता के लिए अधिवक्ता: श्री सैयद अहमद फैजान, श्री एस.एफ.ए. नकवी, श्री जहीर असगर

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता: श्री ए.एस.जी.आई., मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री मनोज कुमार सिंह, श्री प्रभाष पांडे

सिविल कानून- सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908-धारा -115 और 80(2) - आदेश XXVI नियम 9-- धारा 80(2) सी.पी.सी. के तहत नोटिस की अवधि समाप्त होने से पहले वाद स्थापित करने के लिए अनुमति देने के आदेशों के खिलाफ धारा 115 के तहत दायर पुनरीक्षण, और आदेश XXVI नियम 9 और 10 सी.पी.सी. के तहत स्थानीय जांच आयोग की नियुक्ति के लिए आदेश-- पुनरीक्षणकर्ता एक निजी व्यक्ति होने के कारण धारा 80 के तहत नोटिस के अभाव में आपत्ति नहीं कर सकता है, जो सरकार और उसके अधिकारियों के लाभ के लिए है-- यह आदेश आदेश XXVI सी.पी.सी. के नियम 9 के प्रावधानों के अनुरूप सख्ती से पारित किया गया था, जिसे सामान्य सिविल नियमावली के नियम 68 और 69 के साथ पढ़ा गया था, क्योंकि अदालत ने एक अधिवक्ता कमिश्नर की नियुक्ति करते समय पुलिस बल की मदद से सर्वेक्षण करने का निर्देश दिया था और निरीक्षण किए जाने वाले स्थल से आवश्यक फोटोग्राफी और वीडियोग्राफी की जानी थी और सर्वेक्षण किया गया -- प्रस्तुत वाद प्रथम दृष्टया पूजा स्थल (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1991 के उपबंधों द्वारा वर्जित नहीं है; वास्तव में, यह प्राचीन स्मारक और पुरातत्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम, 1958 की धारा 18 के तहत विवादित संपत्ति तक पहुंच के अधिकार की मांग करते हुए दायर किया गया है।

पुनरीक्षण खारिज कर दिया गया। (ई-15)

संदर्भित मामलों की सूची-:

1. मो. सिद्दीक बनाम महंत सुरेश दास, 2020(1) एस.सी.सी. 1
2. गोपाल सिंह विशारद बनाम जहूर अहमद, 2010 एस.सी.सी. ऑनलाइन (सभी) पृष्ठ 1927

3. सिविल अपील संख्या-16899 वर्ष 1996, कर्नाटक वक्फ बोर्ड बनाम भारत सरकार और अन्य

4. रघुनाथ दास बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1969 एस.सी. 674

5. घनश्याम दास बनाम डोमिनियन ऑफ इंडिया, (1984) 3 एस.सी.सी. 46,

6. बिहारी चौधरी और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, (1984) 2 एस.सी.सी. 627

7. आंध्र प्रदेश बनाम पायनियर बिल्डर्स की स्थिति, (2006) 12 एस.सी.सी. 119

8. बजाज हिंदुस्तान शुगर एंड इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम बलरामपुर चीनी मिल्स लिमिटेड, (2007) 9 एस.सी.सी. 43

9. श्रीमती जनक राजी देवी बनाम चंद्रावती देवी, ए.आई.आर. 2002 सीएएल 11

10. टी.वी.एस. परांगोदान बनाम जिला कलेक्टर, त्रिचूर एवं अन्य, ए.आई.आर. 1989 केरल 276

11. हिमाचल स्टील रिरोलर्स एंड फैब्रिकेटर बनाम यू.ओ.आई. और अन्य, ए.आई.आर. 1988 इला 191

12. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जमन सिंह एवं अन्य, ए.आई.आर. 2007 यूटीटी 10

13. केके शर्मा बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1989 पी एंड एच 7

14. कर्नाटक राज्य बनाम एम. मुनिराजू, ए.आई.आर. 2002 कर 287

15. केरल राज्य और अन्य बनाम सुधीर कुमार शर्मा और अन्य, (2013) 10 एस.सी.सी. 178

16. धीरेंद्र नाथ गोरी, सुबल चंद्र नाथ साहा और अन्य बनाम सुधीर चंद्र घोष और अन्य, ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 1300।

17. राजिंदर एंड कंपनी बनाम यू.ओ.आई. और अन्य, 2000(6) एस.सी.सी. 506

(माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल द्वारा उद्घोषित)

1. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 (इसके बाद 'सी.पी.सी.' के रूप में जाना जाता है) के तहत दायर प्रस्तुत पुनरीक्षण धारा 80(2) सी.पी.सी. के तहत नोटिस की अवधि समाप्त होने से पहले वाद दायर करने के लिए वादी प्रतिपक्षी संख्या-1 से 8 द्वारा दायर आवेदन पत्र संख्या-3 सी पर पारित आदेश पर सवाल उठाता है, और आदेश XXVI नियम 9 और 10 सी.पी.सी. के तहत स्थानीय जांच पत्र संख्या-8सी के लिए आयोग की नियुक्ति के लिए दिनांक 19.11.2024 का आदेश।

2. प्रस्तुत पुनरीक्षण दाखिल करने के लिए अग्रणी तथ्य यह हैं कि वादी प्रतिपक्षी संख्या-1 से 8 ने एक दीवानी वाद संख्या-166 वर्ष 2024 की स्थापना की, जिसे बाद में मूल वाद संख्या-182 वर्ष 2024 के रूप में गिना गया, जिसमें पुनरीक्षणकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-6 और प्रतिपक्षी संख्या-9 से 13 के खिलाफ घोषणा और स्थायी निषेधाज्ञा की राहत का दावा किया गया।

3. राहत 'ए' इस आशय की घोषणा के लिए थी कि वादी को वादी को संभल शहर में स्थित श्री हरिहर मंदिर/कथित जामी मस्जिद में प्रवेश करने का अधिकार है, जैसा कि वादपत्र के प्रस्तर-1 और 2 में वर्णित है और प्राचीन स्मारक संरक्षण अधिनियम, 1904 की धारा 3 के तहत 18.11.1920 को संरक्षित स्मारक के रूप में घोषित किया गया है (इसके बाद 'अधिनियम वर्ष 1904' के रूप में संदर्भित) राहत 'बी' इस आशय की घोषणा के लिए थी कि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (इसके बाद ए.एस.आई. के रूप में संदर्भित) दिनांक 18.11.1920 की अधिसूचना के मद्देनजर श्री हरिहर मंदिर/कथित जामी मस्जिद का प्रबंधन और पूर्ण नियंत्रण रखने के लिए कानूनी दायित्व के अधीन है। शहर संभल में स्थित श्री हरिहर मंदिर/कथित जामी मस्जिद के भीतर जनता के सदस्यों को प्रवेश प्रदान करने के लिए उचित प्रावधान करने के लिए मुकदमे के प्रतिपक्षी संख्या-1 से 5 को अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए राहत 'सी' मांगी गई थी, और अंत में प्रतिपक्षियों, उनके अधिकारियों, श्रमिकों और उनके अधीन काम करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को वादी और जनता के सदस्यों को विवादित जगह में प्रवेश करने में कोई बाधा पैदा करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा के लिए राहत 'डी' मांगी गई थी।

4. वादपत्र के अनुसार, संभल शहर के बीचों-बीच भगवान कल्कि को समर्पित एक सदियों पुराना श्री हरिहर मंदिर है, जिसे जामी मस्जिद कमेटी, संभल के नाम से जानी जाने वाली समिति द्वारा जबरन और अवैध रूप से इस्तेमाल किया जा रहा है। संभल एक ऐतिहासिक शहर है और हिंदू शास्त्रों में अद्वितीय संकेत रखता है, जिसके अनुसार यह एक पवित्र स्थल है जिसमें भगवान विष्णु के अवतार को कल्कि के रूप में जाना जाता है, जो भविष्य में प्रकट होता है, एक दिव्य व्यक्ति जो अभी तक प्रकट नहीं हुआ है। कल्कि को भगवान विष्णु का 10वां और अंतिम अवतार माना जाता है, जिनका कलयुग में आगमन होना तय था।

5. संभल का पुराना शहर महिस्मित नदी के तट पर बसा हुआ है। सतयुग में इसे सब्रित या सबरत और संबलेश्वर, त्रेतायुग में महादगिरी, द्वापर में पिंगला और कलयुग में इसे संभल नाम दिया गया है। यह भी आरोप लगाया जाता है कि प्राचीन काल में भगवान विष्णु और भगवान शिव का एक अनोखा विग्रह उभरा और इस कारण से इसे 'श्री हरिहर मंदिर' कहा जाता था।

6. वादी संस्करण के अनुसार संभल के श्री हरिहर मंदिर का निर्माण स्वयं भगवान विश्वकर्मा ने सृष्टि की शुरुआत में किया था। इसके अलावा, यह आरोप लगाया जाता है कि 1526 ईस्वी में बाबर पर आक्रमण के दौरान, उसने कई हिंदू मंदिरों को नष्ट कर दिया था। 1527-28 में बाबर के एक हिंदू बेग लेफ्टिनेंट ने संभल में श्री हरिहर मंदिर को आंशिक रूप से ध्वस्त कर दिया, जिस पर मस्जिद के रूप में उपयोग करने के लिए मुसलमानों द्वारा कब्जा कर लिया गया था।

7. बाबरनामा को बाबर द्वारा तुर्की भाषा में लिखी गई डायरी कहा जाता है जिसका अनुवाद एनेट सुसन्ना बेवरिज ने किया था जिसमें जुलाई 1529 में बाबर के संभल आने का उल्लेख है। इसके अलावा, यह कहा गया है कि हिंदुओं ने बाद में मुसलमानों से मंदिर पर कब्जा कर लिया था और मंदिर का जीर्णोद्धार किया गया था, जो अकबर के शासनकाल के दौरान फारसी भाषा में अबुल फजल द्वारा 1589 से 1600 के बीच रचित अपनी

पुस्तक आईन-ए-अकबरी में लिखे गए इतिहास से साबित होता है। इसके अलावा, वादपत्र से पता चलता है कि ए.एस.आई. के तत्कालीन महानिदेशक मेजर जनरल ए. कनिंघम द्वारा क्षेत्र का सर्वेक्षण करने के बाद संभल शहर के प्राचीन पुरावशेषों के बारे में ए.एस.आई. द्वारा एक रिपोर्ट तैयार की गई थी और इसे 'टूर्स इन सेंट्रल देवब-गोरखपुर, 1874-75 और 1875-76' नामक पुस्तक में प्रकाशित किया गया था।

8. अधिनियम वर्ष 1904 की धारा 3(1) के तहत आगरा और अवध के संयुक्त प्रांत के उपराज्यपाल द्वारा जारी एक अधिसूचना संख्या-1412-एम द्वारा प्राचीन स्मारकों को संरक्षित स्मारक घोषित किया गया। क्रम संख्या-3 में मुरादाबाद जिले के संभल में जुमा मस्जिद का उल्लेख किया गया था। वादी प्राचीन स्मारक और पुरातत्व स्थल और अवशेष अधिनियम, 1958 (इसके बाद 'अधिनियम वर्ष 1958' के रूप में संदर्भित) की धारा 18 के तहत संरक्षित स्मारक तक पहुंच के अधिकार का दावा कर रहे हैं, जो अब अधिनियम वर्ष 1904 के निरसन के बाद क्षेत्र को नियंत्रित कर रहा है।

9. 21.7.2024 को कुछ वादी विवादित संपत्ति का दौरा करने गए, लेकिन उन्हें स्मारक में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी गई, और चूंकि ए.एस.आई. कोई कार्रवाई नहीं कर रहा है और मूक दर्शक है, इसलिए प्रस्तुत मुकदमा 19.11.2024 को दायर किया गया था। वादी ने 21.10.2024 को दिए गए नोटिस की अवधि समाप्त होने से पहले वाद दायर करने के लिए अनुमति देने के लिए धारा 80(2) सी.पी.सी. के तहत एक आवेदन पत्र संख्या-3 सी दायर किया था और आदेश XXVI नियम 9 और 10 सी.पी.सी. के तहत आयोग की नियुक्ति के लिए आवेदन 8 सी भी दायर किया था। मुकदमा 19.11.2024 को पंजीकृत किया गया था और आवेदन पत्र संख्या-3सी को मुकदमा दायर करने के लिए मंज़ूरी देने की अनुमति दी गई थी। आयोग के लिए आवेदन 8 सी पर विचार करने के लिए मामले को दोपहर के भोजन के बाद मंज़ूर किया गया था, जिसे अनुमति दी गई थी और एक अधिवक्ता आयुक्त से रिपोर्ट मांगी गई थी। इसलिए, प्रस्तुत पुनरीक्षण।

10. श्री एस.एफ.ए. नकवी, वरिष्ठ अधिवक्ता ने आवेदन पत्र संख्या-3सी पर दिनांक 19.11.2024 के आदेश को पारित करने में निचली अदालत की कार्रवाई पर सवाल उठाया है, जिसमें नोटिस की अवधि समाप्त होने से पहले वाद दायर करने के लिए अनुमति दी गई थी और आदेश XXVI नियम 9 और 10 सी.पी.सी. के तहत दायर आयोग के लिए आवेदन 8 सी की अनुमति दी गई थी, इस आधार पर कि न्यायालय के समक्ष 19.11.2024 को अनुमति प्रदान करने तथा उसी दिन कमीशन नियुक्त किए जाने हेतु आवेदन को स्वीकार करने की कोई तात्कालिक आवश्यकता उत्पन्न नहीं हुई थी।

11. उन्होंने प्रस्तुत किया कि धारा 80 सी.पी.सी. मुकदमे की स्थापना से दो महीने पहले नोटिस देने के लिए अनिवार्य है। वादपत्र के अनुसार नोटिस 21.10.2024 को दिया गया था और मुकदमा दायर किया गया था और 19.11.2024 को अनुमति दी गई थी, क्योंकि अनुमति देने में कोई तात्कालिकता नहीं थी, यह आक्षेपित आदेश से स्पष्ट है।

उनके अनुसार, अदालत ने इस बात का कोई निष्कर्ष नहीं निकाला है कि नोटिस की अवधि में छूट देने के लिए अनुमति क्यों दी गई क्योंकि दो महीने की अवधि समाप्त नहीं हुई है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षियों की ओर से कैविएट दाखिल नहीं करना स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि मामले में कोई तात्कालिकता नहीं थी और धारा 80(1) सी.पी.सी. के तहत वैधानिक अवधि की समाप्ति के बाद वादपत्र को नए सिरे से प्रस्तुत करने के लिए वापस कर दिया जाना चाहिए था।

12. उन्होंने आगे तर्क दिया कि विचारण न्यायालय ने आयोग के लिए आदेश XXVI नियम 9 और 10 सी.पी.सी. के तहत आवेदन की अनुमति देने में एक और गंभीर गलती की, जिसे उसी तारीख को स्थानांतरित किया गया था और दोपहर के भोजन के सत्र के बाद लिया गया था। अदालत की कार्रवाई पक्षों के बीच कुछ मिलीभगत के बारे में बताती है और अधिवक्ता कमिश्नर के लिए आदेश देने के मामले में कोई तात्कालिकता नहीं थी, जिस तारीख को मुकदमा दायर किया गया था और वैधानिक अवधि को छूट देते हुए अनुमति दी गई थी।

13. उन्होंने यह भी तर्क दिया कि सर्वेक्षण 19.11.2024 को और उसके बाद फिर से 24.11.2024 को अवधारित किया गया था। दूसरा सर्वेक्षण वर्ष 24.11.2024 अवैध है क्योंकि निचली अदालत ने कभी भी इस तरह के सर्वेक्षण का आदेश नहीं दिया था और अधिवक्ता आयुक्त ने अदालत की अनुमति के बाद ही ऐसा सर्वेक्षण किया होगा। उनके अनुसार, एक बार 19.11.2024 को सर्वेक्षण हो जाने के बाद मामला समाप्त हो गया और रिपोर्ट अदालत में प्रस्तुत की जानी चाहिए थी, लेकिन अधिवक्ता आयुक्त ने अवैध रूप से 24.11.2024 को दूसरा सर्वेक्षण किया जो 19.11.2024 के आदेश के अनुरूप है।

14. तब उन्होंने तर्क दिया कि सामान्य सिविल नियमावली, 1957 के नियम 68 और 69 में स्थानीय जांच के लिए आदेश में दिए जाने वाले विवरण का प्रावधान है। दिनांक 19.11.2024 के आदेश में न्यायालय ने उस बिंदु को परिभाषित नहीं किया है जिस पर अधिवक्ता आयुक्त को रिपोर्ट करनी है। इसके अलावा, आयोग के निष्पादन के लिए कोई समय निर्धारित नहीं किया गया है और जब तक समय नहीं बढ़ाया जाता है, तब तक आयोग को लागू नहीं किया जा सकता है।

15. श्री नकवी ने यह भी तर्क दिया कि विचाराधीन स्मारक जिसे जामी मस्जिद या जुमा मस्जिद कहा जाता है, अधिनियम वर्ष 1904 के तहत एक संरक्षित स्मारक है। वर्ष 1927 में मुरादाबाद के कलेक्टर ने परिषद में भारत के राज्य सचिव और जुमा मस्जिद के मुतवल्ली की ओर से कार्य करते हुए एक समझौता किया था, और इस प्रकार निष्पादित किया गया समझौता इस क्षेत्र को नियंत्रित करता है। उन्होंने मो. अफजलयार बनाम छेदा सिंह और इस न्यायालय द्वारा 1.5.1878 को प्रथम अपील संख्या-112 वर्ष 1878 में दिया गया निर्णय (छेदा सिंह बनाम मो. अफ़ज़ल्यार) उक्त मस्जिद के संबंध में विवाद पहले से ही वर्ष 1878 में सुलझा लिया गया था और वादी संख्या-1 से 8 द्वारा स्थापित प्रस्तुत मुकदमे में निर्णय नहीं लिया जा सकता है। इसके अलावा, पूजा स्थल (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1991(इसके बाद 'अधिनियम वर्ष 1991' के रूप में संदर्भित) के लागू होने के बाद किसी भी पूजा स्थल के परिवर्तन पर प्रतिबंध है और पूजा स्थल के धार्मिक चरित्र, जैसा कि यह

15.8.1947 को अस्तित्व में था, को बनाए रखा जाना चाहिए। इस प्रकार, प्रस्तुत वाद अधिनियम वर्ष 1991 के प्रावधानों द्वारा वर्जित है।

16. श्री नकवी ने अधिनियम वर्ष 1958 की धारा 5 और 6 पर बहुत जोर दिया है, जिसके अनुसार संरक्षित स्मारक ए.एस.आई. की संरक्षकता में है, जबकि स्वामित्व पुनरीक्षणकर्ता का है। वर्ष 1927 में निष्पादित समझौता प्राचीन स्मारक और पुरातत्व स्थल और अवशेष नियम, 1959 (इसके बाद 'नियम वर्ष 1959' के रूप में संदर्भित) के नियम 3 द्वारा संरक्षित है। सिविल पुनरीक्षण संख्या-47 वर्ष 2022 (**ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती भाषा विश्वविद्यालय रजिस्ट्रार और अन्य बनाम डॉ. आरिफ अब्बास और अन्य), रिट-सी संख्या-41940 वर्ष 2013 (लालती देवी और अन्य बनाम बिंदु बिहारी वर्मा और 10 अन्य), रमा शंकर तिवारी बनाम महादेव और अन्य, कानून (सभी)-1967-12-21 और आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय का निर्णय दुर्गम मंगम्मा बनाम पी. मोहन और अन्य, 1991(1) एएलटी 269** के मामले में दिया गया।

17. श्री हरि शंकर जैन, वादी प्रतिपक्षी संख्या-1, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए हैं और प्रस्तुत किया है कि वादी ने प्रतिपक्षी संख्या-1 से 4 को ई-मेल और पंजीकृत डाक के माध्यम से 29.7.2024 को एक आवेदन भेजा था, जिसमें मांग की गई थी कि ए.एस.आई. का विषय संपत्ति पर पूर्ण नियंत्रण हो और स्मारक के भीतर जनता के सदस्यों को पहुंच प्रदान करने के लिए उचित प्रावधान किया जाए, जो आगरा सर्कल की सूची में क्रम संख्या-250 पर है अधिनियम वर्ष 1958 द्वारा शासित। नोटिस प्रतिपक्षी संख्या-1 से 3 के कार्यालय में 2.8.2024 को प्राप्त हुआ था, जबकि यह 1.8.2024 को प्रतिपक्षी संख्या-4 के कार्यालय में प्राप्त हुआ था। जब अधिनियम वर्ष 1958 की धारा 18 के प्रावधानों को लागू करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया, तो धारा 80 सी.पी.सी. के तहत नोटिस 21.10.2024 को पंजीकृत डाक के माध्यम से प्रतिपक्षी संख्या-1 से 5 को भेजा गया।

18. मुकदमा दायर करने में तात्कालिकता उत्पन्न हुई और धारा 80(2) के तहत आवेदन सी.पी.सी. को अवधि समाप्त होने से पहले वाद स्थापित करने के लिए अनुमति देने के लिए पेश किया गया था, क्योंकि वादी के पास यह मानने का कारण था कि पुनरीक्षणकर्ता को दिनांक 29.7.2024 के आवेदन के बारे में पता चल गया था और वे हिंदू मंदिर की कलाकृतियों, संकेतों और प्रतीकों को जल्दबाजी में हटाने का इरादा कर रहे थे। नोटिस अवधि को छूट देने के आदेश को किसी भी निजी पक्ष द्वारा चुनौती नहीं दी जा सकती है क्योंकि उसके पास नोटिस की शेष अवधि की छूट को चुनौती देने का अधिकार नहीं है। इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा **गोपाल सिंह विशारद बनाम ज़हूर अहमद, 2010 एससीसी ऑनलाइन (एएलएल) पृष्ठ 1927** में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया गया है, जिसे उच्चतम न्यायालय द्वारा **मोहम्मद सिद्दीक बनाम महंत सुरेश दास, 2020 (1) एससीसी1** में पुष्टि प्रदान की गई है।

19. तब उन्होंने तर्क दिया कि वादी के पास यह मानने का कारण था कि प्रबंधन समिति को दिनांक 29.7.2024 के आवेदन और दिनांक 21.10.2024 के नोटिस के बारे में पता चलने के बाद, वे हिंदू मंदिर की कलाकृतियों,

संकेतों और प्रतीकों को जल्दबाजी में हटाने का इरादा कर रहे थे, जबकि विवादित संपत्ति प्रतिपक्षी संख्या-6 के कब्जे में थी और उन्होंने संपत्ति के एक हिस्से को बंद कर दिया था, जिसके लिए अधिवक्ता कमिश्नर की नियुक्ति के लिए आवश्यक था। दोनों पक्षों को नोटिस देने के बाद पूरी विषय संपत्ति और अंदर और बाहर से मौजूदा स्थिति के संबंध में रिपोर्ट प्रस्तुत करना।

20. आदेश XXVI नियम 9 और 10 सी.पी.सी. के तहत आवेदन पर पारित आदेश को धारा 115 सी.पी.सी. के तहत कार्यवाही में चुनौती नहीं दी जा सकती है क्योंकि यह पक्षगण के बीच किसी भी एलआई.ए.स या मुद्दे का फैसला नहीं करता है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि 19.11.2024 को अधिवक्ता कमिश्नर ने लगभग 6 बजे पुनरीक्षणकर्ता के प्रतिनिधियों को नोटिस देने के बाद निरीक्षण शुरू किया, एक बड़ी भीड़ जमा हो गई, जिन्होंने विवाद में संपत्ति में प्रवेश किया था और अधिवक्ता कमिश्नर को आयोग का काम रोकने के लिए कहा था। मस्जिद कमेटी के अधिवक्ता जफर अली ने इस आधार पर निरीक्षण रोक दिया कि यह नमाज का समय है और इस प्रकार, आयोग की कार्यवाही शाम लगभग 7.15 बजे रोक दी गई। चूंकि आयोग का काम पूरा नहीं हो सका, इसलिए अधिवक्ता कमिश्नर ने 23.11.2024 को संबंधित पक्षों को नोटिस भेजा था कि शेष सर्वेक्षण 24.11.2024 को सुबह 7 बजे से 11 बजे तक पूरा हो जाएगा।

21. उनके अनुसार, शेष सर्वेक्षण कार्य 24.11.2024 को सुबह 7 बजे से 11 बजे तक किया गया था। उनके अनुसार, 19.11.2024 को न्यायालय द्वारा नियुक्त अधिवक्ता आयुक्त द्वारा केवल एक सर्वेक्षण किया गया है। चूंकि आयोग का काम 19.11.2024 को पूरा नहीं हो सका, इसलिए यह 24.11.2024 को पूरा हो गया और यह कहना गलत है कि अधिवक्ता आयुक्त द्वारा दो सर्वेक्षण किए गए हैं। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि दिनांक 19.11.2024 का आदेश स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि सामान्य सिविल नियमावली के नियम 68 और 69 के प्रावधान का अनुपालन किया गया था और अदालत ने आयोग को उन बिंदुओं को परिभाषित करने का निर्देश दिया था जिन पर उसे रिपोर्ट करनी है। आवेदन 8 सी को इस शर्त पर अनुमति दी गई थी कि इस प्रकार नियुक्त अधिवक्ता आयुक्त सर्वेक्षण करते समय फोटोग्राफी और वीडियोग्राफी करेंगे।

22. तत्पश्चात् उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया कि वर्तमान विवाद 1904 के अधिनियम के अंतर्गत आच्छादित है, जिसे अब 1958 के अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है, तथा यह 1991 के अधिनियम के प्रावधानों द्वारा शासित नहीं होगा, क्योंकि केवल 1958 के अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत प्रवेश के अधिकार का ही दावा किया गया है। यह भी कहा गया कि संबंधित स्मारक एक संरक्षित स्मारक है, जिसे भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा 1904 के अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत वर्ष 1920 में घोषित किया गया था, जो कि 1991 के अधिनियम के प्रवर्तन तथा उसमें उल्लिखित कट-ऑफ तिथि से बहुत पूर्व का है।

23. राज्य की ओर से पेश मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री राजेश्वर त्रिपाठी ने प्रस्तुत किया है कि वर्ष 1927 का कथित समझौता जिला मजिस्ट्रेट, संभल की कस्टडी में नहीं है, और 10.3.2025 को जिला मजिस्ट्रेट, मुरादाबाद को एक पत्र लिखा गया था जिसमें उक्त कथित समझौते को प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी। उनके अनुसार,

संभल शहर शुरू में मुरादाबाद जिले का हिस्सा था और बाद में समय के साथ नया जिला संभल बनाया गया। विवादित संपत्ति अधिनियम वर्ष 1904 के तहत एक संरक्षित स्मारक है और इसे दिनांक 22.12.1920 की राजपत्र अधिसूचना में स्थान दिया गया है। अधिनियम वर्ष 1958 की धारा 4 और 5 पर भरोसा किया गया है।

24. आगे यह भी निवेदित किया गया है कि राजस्व अभिलेखों के अनुसार जिस भूमि पर भवन स्थित होने का आरोप है, वह सरकारी भूमि है, जो अभिलेखों में गाटा संख्या 33, श्रेणी 15(2), गैर-कृषि भूमि के रूप में दर्ज है। खेवट में इसे "मिल्कियत सही मुंदरजा" के रूप में अंकित किया गया है। उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 के प्रवर्तन के पश्चात् उक्त श्रेणी के अंतर्गत दर्ज भूमि राज्य सरकार में निहित हो गई है। अतः अब कोई भी व्यक्ति अथवा संस्था उक्त भूमि पर किसी प्रकार का अधिकार दावा नहीं कर सकती है।

25. अधिवक्ता आयुक्त द्वारा किए गए सर्वेक्षण के प्रश्न पर, उन्होंने प्रस्तुत किया कि सर्वेक्षण की कार्यवाही 19.11.2024 को पूरी नहीं की जा सकी और दिनांक 20.11.2024 के पत्र के अनुसरण में, पुलिस अधीक्षक, संभल ने सूचित किया है कि चूंकि 20.11.2024 को होने वाले कुंडरकी निर्वाचन क्षेत्र के उप-विधानसभा चुनाव में बड़ी संख्या में बल तैनात किया गया है, इसलिए सर्वेक्षण कार्य के लिए पुलिस बल उपलब्ध नहीं कराया जा सकता है और एक और तारीख तय करने का अनुरोध किया गया था। 22.11.2024 शुक्रवार है और नमाज इस सर्वेक्षण को उस तारीख के लिए भी स्थगित कर दिया गया था। कुंडरकी उपचुनाव की मतगणना के लिए 23.11.2024 निर्धारित किया गया था और वहां पुलिस बल तैनात किया गया था, इसलिए उक्त तिथि पर सर्वेक्षण नहीं किया जा सका। इसलिए, अधिवक्ता कमिश्नर द्वारा सुबह 7 बजे से 11 बजे तक का समय तय करने वाले पत्र के आधार पर सर्वेक्षण के लिए 24.11.2024 तय किया गया था। उनके अनुसार यह दूसरा सर्वेक्षण नहीं है, बल्कि 19.11.2024 को शुरू की गई कार्यवाही की निरंतरता है। अंत में उन्होंने तर्क दिया कि राज्य को सी.पी.सी. की धारा 80(2) के तहत नोटिस की अवधि को माफ करने में कोई आपत्ति नहीं है।

26. ए.एस.जी.आई. ने प्रस्तुत किया है कि विवादित संपत्ति अधिनियम वर्ष 1904 की धारा 3 के तहत एक संरक्षित स्मारक है, जिसे अधिनियम वर्ष 1958 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। यह ए.एस.आई. के नियंत्रण में है, लेकिन मस्जिद प्रबंधन ने स्मारक में अधिकारियों के प्रवेश पर आपत्ति जताई है। इस न्यायालय के निर्देशों से पहले, जिला प्रशासन की मदद से 25.6.2024 को एक निरीक्षण किया गया था, जिसकी रिपोर्ट अभिलेखों में लाई गई है। इसके बाद उन्होंने तर्क दिया कि प्रतिपक्षी संख्या-1 से 4, वर्तमान प्रतिपक्षी संख्या-9 से 12 ने पहले ही विचारण न्यायालय के समक्ष अपना लिखित बयान दायर कर दिया है। उनके अनुसार, इस न्यायालय के निर्देश पर सर्वेक्षण 27.2.2025 को किया गया था और इस न्यायालय के समक्ष एक रिपोर्ट पहले ही प्रस्तुत की जा चुकी है, जो वीडियोग्राफी के पेन-ड्राइव के साथ अभिलेखों का हिस्सा है। रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से पता चलता है कि मस्जिद के आंतरिक भाग को सुनहरे, लाल, हरे और पीले जैसे तेज रंगों के तामचीनी पेंट की मोटी परत के साथ चित्रित किया गया है, जो स्मारक की मूल सतह को छुपाता है। इसी रिपोर्ट से आगे पता

चलता है कि स्मारक के बाहरी हिस्से में पेंट के झड़ने के कुछ संकेत हैं, लेकिन इस स्थिति में फिलहाल तत्काल उपचार की आवश्यकता नहीं है।

27. उन्होंने स्वीकार किया कि अधिनियम वर्ष 1958 की धारा 18 स्मारक तक सार्वजनिक पहुंच का प्रावधान करती है, लेकिन मस्जिद समिति की ओर से बाधाएं हैं। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि केंद्रीय संरक्षित स्मारक को पूजा स्थल के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता है क्योंकि राजपत्र अधिसूचना संख्या-1645/1133-एम दिनांक 22.12.1920 में कोई उल्लेख नहीं पाया गया था। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि ए.एस.आई. द्वारा 17.10.2024 के पत्र के माध्यम से शिया सेंट्रल वक्फ बोर्ड और सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड से केंद्रीय संरक्षित स्मारक को वक्फ संपत्ति के रूप में सूचीबद्ध करने के संबंध में जानकारी मांगी गई है, जिस पर आज तक ध्यान नहीं दिया गया है। सिविल अपील संख्या-16899 वर्ष 1996, कर्नाटक वक्फ बोर्ड बनाम भारत सरकार और अन्य में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया गया है, जिसमें यह माना गया था कि वाद संपत्ति एक सरकारी संपत्ति है और वक्फ चरित्र की नहीं है। सी.पी.सी. की धारा 80(2) पर, उन्होंने प्रस्तुत किया कि जवाब देने वाले प्रतिपक्षी प्रतिपक्षियों द्वारा दायर लिखित बयान में ऐसी कोई आपत्ति नहीं ली गई थी और इस प्रकार, यह छूट के बराबर है।

28. मैंने पक्षों के लिए संबंधित अधिवक्ता को सुना है और अभिलेखों पर सामग्री का अवलोकन किया है। न्यायालय के समक्ष विचारार्थ रखे गए प्रश्न हैं:-

I. क्या निचली अदालत ने सी.पी.सी. की धारा 80(2) के तहत नोटिस की अवधि समाप्त होने से पहले मुकदमा दायर करने की अनुमति देने में सही था?

II. क्या नीचे दी गई अदालत स्थानीय जांच के लिए निर्देश देने और आदेश XXVI नियम 9 और 10 सी.पी.सी. के तहत शक्ति का प्रयोग करने वाले आयोग को नियुक्त करने के लिए सही थी, और सामान्य सिविल नियमावली के नियम 68 और 69 का आवश्यक अनुपालन किया गया था या नहीं?

III. क्या अधिनियम वर्ष 1958 के तहत निचली अदालत इस मामले को आगे बढ़ा सकती थी, जब अधिनियम वर्ष 1991 द्वारा मुकदमे की संस्था पर रोक लगा दी गई थी?"

<u>प्रश्न संख्या-I</u>

29. पुनरीक्षणकर्ता ने मुख्य रूप से दिनांक 19.11.2024 के आदेश पर इस आधार पर सवाल उठाया है कि विचारण न्यायालय धारा 80(2) सी.पी.सी. के तहत नोटिस की अवधि समाप्त होने से पहले वाद दायर करने की अनुमति नहीं दे सकता था क्योंकि ऐसा करने की कोई आकस्मिक आवश्यकता नहीं थी।

30. इस प्रश्न पर विचार करने से पहले, मामले की बेहतर समझ के लिए धारा 80 सी.पी.सी. का संक्षिप्त इतिहास और विधायी परिवर्तन आवश्यक है।

31. अधिनियम संख्या-V वर्ष 1908 (सी.पी.सी.) को 21.03.1908 को गवर्नर जनरल की सहमति प्राप्त हुई। उक्त अधिनियम संख्या-V को सिविल न्यायिक न्यायालयों की प्रक्रिया से संबंधित कानूनों को समेकित और संशोधित करने के लिए अधिनियमित किया गया था। धारा 1(1) में प्रावधान किया गया है कि "इस अधिनियम को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के रूप में उद्धृत किया जा सकता है"। उपधारा (2) में प्रावधान है कि "यह जनवरी, 1909 के पहले दिन से लागू होगा"।

32. 1 जनवरी 1937 तक संशोधित धारा 80 निम्नानुसार थी: -

"80. *परिषद में भारत के राज्य सचिव के विरुद्ध या ऐसे लोक अधिकारी द्वारा अपनी आधिकारिक क्षमता में किए जाने वाले किसी भी कार्य के संबंध में किसी लोक अधिकारी के विरुद्ध कोई मुकदमा दायर नहीं किया जाएगा, जब तक कि परिषद में राज्य सचिव के मामले में लिखित रूप में सूचना दिए जाने के बाद अगले दो महीने की समाप्ति न हो जाए। स्थानीय सरकार के सचिव या जिले के कलेक्टर के कार्यालय में दिया गया, या छोड़ दिया गया, और, एक सार्वजनिक अधिकारी के मामले में, उसे दिया गया या उसके कार्यालय में छोड़ दिया गया, कार्रवाई का कारण, वादी का नाम, विवरण और निवास स्थान और राहत जो वह दावा करता है; और वादपत्र में एक बयान होगा कि ऐसा नोटिस इस तरह दिया गया है या छोड़ दिया गया है।*

33. 1937 में, "द क्राउन" शब्दों को ए.ओ. 1937 द्वारा "परिषद में भारत के लिए राज्य सचिव" शब्दों के लिए प्रतिस्थापित किया गया था।

34. वर्ष 1948 में किए गए पुनरीक्षण द्वारा, धारा 80 को फिर से संशोधित किया गया था और निम्नानुसार प्रतिस्थापित किया गया था: -

"80. *ऐसे लोक अधिकारी द्वारा अपनी आधिकारिक क्षमता में किए जाने वाले किसी भी कार्य के संबंध में सरकार के खिलाफ या किसी लोक अधिकारी के खिलाफ कोई मुकदमा नहीं किया जाएगा, जब तक कि लिखित रूप में नोटिस दिए जाने के बाद अगले दो महीने की समाप्ति नहीं हो जाती है [के कार्यालय में दिया गया है, या छोड़ दिया गया है -*

(क) केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध वाद के मामले में, [सिवाय जहां यह रेलवे से संबंधित हो], उस सरकार का एक सचिव;

[(ख)] केन्द्र सरकार के विरुद्ध वाद के मामले में, जहां यह किसी रेलवे से संबंधित है, उस रेलवे के महाप्रबंधक;]

** * ********

*(ग) किसी [राज्य] सरकार, उस सरकार के सचिव या जिले के कलेक्टर, ***] के विरुद्ध वाद के मामले में।*

और, एक सार्वजनिक अधिकारी के मामले में, उसे दिया गया या उसके कार्यालय में छोड़ दिया गया, कार्रवाई का कारण, वादी का नाम, विवरण और निवास स्थान और राहत जो वह दावा करता है; और वादपत्र में एक बयान होगा कि ऐसा नोटिस इस तरह दिया गया है या छोड़ दिया गया है।

35. सिविल प्रक्रिया (पुनरीक्षण) अधिनियम, 1963 द्वारा: (i) शब्द 'जम्मू और कश्मीर राज्य की सरकार सहित' (ii) खंड (ख) अंतःस्थापित किए गए थे; और (iii) खंड (ग) में, 'कोई अन्य' शब्द 'क' के लिए प्रतिस्थापित किए गए थे। इस प्रकार, पुनरीक्षण अधिनियम वर्ष 1963 के बाद, धारा 80 निम्नानुसार थी: -

***"80.** सरकार (जम्मू और कश्मीर राज्य की सरकार सहित) या ऐसे लोक अधिकारी द्वारा अपनी आधिकारिक क्षमता में किए जाने वाले किसी कार्य के संबंध में किसी लोक अधिकारी के विरुद्ध कोई मुकदमा दायर नहीं किया जाएगा, जब तक कि लिखित रूप में सूचना दिए जाने के बाद अगले दो महीने की समाप्ति न हो जाए, या निम्नलिखित के कार्यालय में छोड़ न दिया जाए-*

(क) केन्द्र सरकार के विरुद्ध वाद के मामले में, सिवाय इसके कि जहां वह रेलवे से संबंधित हो, उस सरकार का एक सचिव;
(ख) केन्द्र सरकार के विरुद्ध किसी वाद के मामले में, जहां वह किसी रेलवे से संबंधित है, उस रेलवे के महाप्रबंधक।

** * **

(ख) जम्मू और कश्मीर राज्य की सरकार के विरुद्ध वाद के मामले में, उस सरकार के सचिव या इस संबंध में उस सरकार द्वारा प्राधिकृत कोई अन्य अधिकारी;
(ग) किसी अन्य सरकार के विरुद्ध वाद के मामले में, उस सरकार के सचिव या जिले के कलेक्टर;

** * **

और, एक सार्वजनिक अधिकारी के मामले में, उसे दिया गया या उसके कार्यालय में छोड़ दिया गया, कार्रवाई का कारण, वादी का नाम, विवरण और निवास स्थान और राहत जो वह दावा करता है; और वादपत्र में एक बयान होगा कि ऐसा नोटिस इस तरह दिया गया है या छोड़ दिया गया है।

36. संशोधित प्रावधान से, वांछित परिणाम प्राप्त नहीं किया गया था और शायद ही कोई मामला सरकार या संबंधित लोक अधिकारी द्वारा प्रदान किए गए अवसर का उपयोग करके निपटाया गया था, और ज्यादातर मामलों में, नोटिस अनुत्तरित रहा। विधि आयोग ने अपनी 14वीं रिपोर्ट में कहा है कि धारा 80 के प्रावधान ने बड़ी संख्या में मामलों में बड़ी कठिनाई का सामना किया है। न्याय के हित में सरकार या किसी लोक अधिकारी के खिलाफ निषेधाज्ञा के माध्यम से तत्काल राहत आवश्यक थी, इसने धारा को हटाने की सिफारिश की। संसद की संयुक्त समिति विधि आयोग के सुझाव से सहमत नहीं थी और आवश्यक पुनरीक्षण/छूट के साथ धारा 80 को बनाए रखने की सिफारिश की थी और धारा 80 को अधिनियम 104 वर्ष 1976 में पुनरीक्षण करके संशोधित

किया गया था जो 01.02.1977 से लागू हुआ था और धारा 80 को धारा 80(1) और उप-धारा (2) और (3) के रूप में पुन क्रमांकित किया गया था जो इस प्रकार हैं:-

*"**80. सूचना।** - [(1)] [उपधारा (2) में अन्यथा उपबंधित के अलावा, सरकार (जम्मू और कश्मीर राज्य की सरकार सहित) या ऐसे लोक अधिकारी द्वारा अपनी आधिकारिक क्षमता में किए जाने वाले किसी कार्य के संबंध में किसी लोक अधिकारी के विरुद्ध कोई वाद दायर नहीं किया जाएगा, जब तक कि लिखित रूप में सूचना दिए जाने के बाद अगले दो महीने की समाप्ति न हो जाए, या के कार्यालय में छोड़ दिया गया -*

(क) केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध वाद के मामले में, [सिवाय जहां यह रेलवे से संबंधित हो], उस सरकार का एक सचिव;

[(ख)] केन्द्र सरकार के विरुद्ध किसी वाद के मामले में, जहां वह किसी रेलवे से संबंधित है, उस रेलवे के महाप्रबंधक;]

[(ख) जम्मू और कश्मीर राज्य की सरकार के विरुद्ध वाद के मामले में, उस सरकार के मुख्य सचिव या इस संबंध में उस सरकार द्वारा प्राधिकृत कोई अन्य अधिकारी;]

(ग) [किसी अन्य राज्य सरकार] के विरुद्ध वाद के मामले में, उस सरकार के सचिव या जिले के कलेक्टर;

[* *]*

और, एक सार्वजनिक अधिकारी के मामले में, उसे दिया गया या उसके कार्यालय में छोड़ दिया गया, कार्रवाई का कारण, वादी का नाम, विवरण और निवास स्थान और राहत जो वह दावा करता है; और वादपत्र में एक बयान होगा कि ऐसा नोटिस इस तरह दिया गया है या छोड़ दिया गया है।

[(2) ऐसे लोक अधिकारी द्वारा अपनी शासकीय क्षमता में किए जाने वाले किसी कार्य के संबंध में सरकार (जम्मू और कश्मीर राज्य की सरकार सहित) या किसी लोक अधिकारी के विरुद्ध तत्काल या तात्कालिक राहत प्राप्त करने के लिए कोई वाद न्यायालय की अनुमति से उपधारा (1) द्वारा अपेक्षित कोई सूचना दिए बिना स्थापित किया जा सकेगा; परन्तु न्यायालय वाद में राहत प्रदान नहीं करेगा, चाहे अंतरिम हो या अन्यथा, सरकार या लोक अधिकारी को देने के अलावा, जैसा भी मामला हो, वाद में प्रार्थना की गई राहत के संबंध में कारण दिखाने का एक उचित अवसर:

परन्तु यदि न्यायालय पक्षों को सुनने के बाद संतुष्ट हो जाता है कि वाद में कोई तत्काल राहत देने की आवश्यकता नहीं है, तो उपधारा (1) की आवश्यकताओं का अनुपालन करने के बाद वादपत्र को प्रस्तुत करने के लिए उसे वापस कर देगा।

(3) ऐसे लोक अधिकारी द्वारा अपनी शासकीय क्षमता में किए जाने वाले किसी कृत्य के संबंध में सरकार के विरुद्ध या लोक अधिकारी के विरुद्ध दायर किया गया कोई वाद केवल उपधारा (I) में निर्दिष्ट सूचना में किसी त्रुटि या दोष के कारण खारिज नहीं किया जाएगा, यदि ऐसी सूचना में-

(क) वादी का नाम, विवरण और निवास इस प्रकार दिया गया था कि उपयुक्त प्राधिकारी या लोक अधिकारी नोटिस देने वाले व्यक्ति की पहचान कर सके और ऐसी सूचना उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट उपयुक्त प्राधिकारी के कार्यालय में सुपुर्द कर दी गई थी या छोड़ दी गई थी, और

(ख) वादी द्वारा कार्रवाई का कारण और दावा की गई राहत का काफी हद तक संकेत दिया गया था।

37. किसी धारा की प्रयोज्यता का निर्धारण वाद की तिथि पर विद्यमान विधि के अनुसार किया जाना चाहिए। उक्त धारा के अंतर्गत अपेक्षित नोटिस का उद्देश्य सरकार अथवा संबंधित लोक अधिकारी को विधिक स्थिति पर पुनर्विचार करने तथा, यदि उचित समझा जाए, तो वाद-विवाद में प्रवृत्त हुए बिना त्रुटि-सुधार करने या दावे का निस्तारण करने का अवसर प्रदान करना है। यह सिद्धांत माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **रघुनाथ दास बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1969 एस.सी. 674** में प्रतिपादित किया गया है।

38. जब किसी सार्वजनिक प्राधिकरण को वैधानिक नोटिस जारी किया जाता है, तो उन्हें नोटिस को पूरी गंभीरता से लेना चाहिए, और इसके साथ नहीं बैठना चाहिए और नागरिक को मुकदमेबाजी के कारखानों में मजबूर नहीं करना चाहिए। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे दावेदार (जिसने नोटिस दिया है) को बताएं, कि वे वैधानिक अवधि के भीतर क्या रुख अपनाते हैं, या किसी भी मामले में वादी के मुकदमेबाजी शुरू करने से पहले। धारा 80 के तहत नोटिस देने का पूरा उद्देश्य प्रस्तावित मामले की पर्याप्त चेतावनी देना है ताकि सरकार यदि चाहे तो मुकदमेबाजी के बिना दावे का निपटान कर सके या न्यायालय का सहारा लिए बिना क्षतिपूर्ति का खर्च उठा सके। **घनश्याम दास बनाम भारत अधिराज्य, (1984)3 एस.सी.सी. 46** में सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त टिप्पणी की।

39. धारा 80 को लोक नीति के एक उपाय के रूप में इस उद्देश्य से अधिनियमित किया गया है कि सरकार अथवा किसी लोक अधिकारी के विरुद्ध वाद संस्थित किए जाने से पूर्व, सरकार या संबंधित अधिकारी को दावे की जाँच-परख करने का अवसर प्राप्त हो तथा यदि वह दावा न्यायोचित पाया जाए, तो तत्काल आवश्यक कार्रवाई की जा सके। इसका उद्देश्य अनावश्यक वाद-विवाद से बचना तथा नोटिस जारी करने वाले व्यक्ति को भारी व्यय एवं विलंब से युक्त वाद संस्थित करने के लिए विवश किए बिना, दावे का निस्तारण कर सार्वजनिक समय और धन की बचत करना है।

40. धारा 80 के प्रावधान में अंतर्निहित सार्वजनिक उद्देश्य न्याय की उन्नति और अनावश्यक मुकदमेबाजी से बचकर सार्वजनिक भलाई की सुरक्षा करना है। वर्ष 1976 के पुनरीक्षण से पहले, धारा 80 में स्पष्ट रूप से अनिवार्य किया गया था कि सरकार के खिलाफ या किसी सार्वजनिक अधिकारी के खिलाफ कोई मुकदमा दायर नहीं किया जाएगा, जब तक कि लिखित रूप में नोटिस दिए जाने के बाद अगले दो महीने की समाप्ति नहीं हो जाती, या कार्यालय में छोड़ दिया जाता है।

41. यह प्रावधान बिना किसी अपवाद के अनिवार्य था। न्यायालय विधायिका के जनादेश को ईमानदारी से लागू करने वाले उक्त प्रावधान को स्पष्ट और सरल अर्थ देने के लिए बाध्य थे। **बिहारी चौधरी और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, (1984) 2 एस.सी.सी. 627 में,** माननीय सर्वोच्च न्यायालय को धारा 80 सी.पी.सी. पर विचार करने का अवसर मिला क्योंकि यह अपने पुनरीक्षण वर्ष 1976 से पहले था और निम्नानुसार अवधारित किया गया था: -

*"**4.** जब क़ानून में प्रयुक्त भाषा स्पष्ट है, तो इसे प्रभावी करना न्यायालय का स्पष्ट कर्तव्य है और कठिनाई के विचार विधायिका के जनादेश को ईमानदारी से लागू नहीं करने के लिए एक वैध आधार नहीं होंगे।*

***5.** प्रिवी काउंसिल की न्यायिक समिति के पास भागचंद दगाडुसा बनाम राज्य सचिव [ए.आई.आर. 1927 पीसी 176: 54 आई.ए. 338, 357] में लगभग इसी तरह की स्थिति में धारा 80 सी.पी.सी. के दायरे और प्रभाव पर विचार करने का अवसर था। उस मामले में हालांकि वादी द्वारा 26 जून, 1922 को धारा 80 सी.पी.सी. के तहत एक नोटिस जारी किया गया था, यथा उक्त तिथि से दो महीने की अवधि समाप्त होने से पहले मुकदमा दायर किया गया था। बॉम्बे उच्च न्यायालय के कुछ शुरुआती फैसलों पर भरोसा करते हुए, प्रिवी काउंसिल के समक्ष यह तर्क दिया गया था कि क्योंकि मुकदमे में दावा की गई राहतों में से एक स्थायी निषेधाज्ञा का अनुदान था और उक्त राहत के लिए दावा निरर्थक हो गया होगा यदि वादी को मुकदमा दायर करने से पहले धारा 80 सी.पी.सी. में निर्धारित दो महीने की वैधानिक अवधि की प्रतीक्षा करनी पड़ती, धारा की कठोरता को एक उपयुक्त अपवाद या आकस्मिक राहत के लिए एक मुकदमे के संबंध में योग्यता के निहितार्थ से शिथिल किया जाना चाहिए, जैसे कि निषेधाज्ञा के लिए। उस विवाद को प्रिवी काउंसिल का समर्थन नहीं मिला और यह माना गया कि धारा 80 स्पष्ट, स्पष्ट और अनिवार्य है और यह कोई निहितार्थ या अपवाद स्वीकार नहीं करती है। न्यायिक समिति ने कहा:*
"जैसा कि अपीलकर्ताओं ने किया था, यह तर्क देने के लिए कि वादी को तत्काल एक उपाय की मांग करने का अधिकार था, जबकि धारा 80 केवल प्रक्रिया है, भ्रामक है, क्योंकि धारा 80 न्यायालय पर एक वैधानिक और अयोग्य दायित्व लगाती है।

इस निर्णय के बाद न्यायिक समिति द्वारा वेल्लायन बनाम मद्रास प्रांत [ए.आई.आर. 1947 पीसी 197: (1946-47) 74 आई.ए. 223] में किया गया था। भागचंद दगदुसा बनाम न्यायिक समिति द्वारा निर्धारित डिक्टम। भारत के राज्य सचिव [ए.आई.आर. 1927 पीसी 176 : 54 आई.ए. 338, 357] को अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था और इसके बाद सवाई सिंघई निर्मल चंद बनाम भारत संघ [ए.आई.आर. 1966 एस.सी. 1068: (1966) 1 एस.सी.आर. 986: 1966 एमएएच एलजे 371] में इस न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की पीठ द्वारा उद्धृत किया गया था।

***6.** अब यह स्थापित कानून के रूप में माना जाना चाहिए कि सरकार या एक लोक अधिकारी के खिलाफ एक मुकदमा, जिसके लिए धारा 80 सी.पी.सी. के तहत एक पूर्व नोटिस की आवश्यकता आकर्षित होती है, को वैध*

रूप से तब तक स्थापित नहीं किया जा सकता है जब तक कि धारा में निर्धारित तरीके से संबंधित अधिकारियों को लिखित रूप में नोटिस दिए जाने के बाद अगले दो महीने की अवधि की समाप्ति तक और यदि धारा की समाप्ति से पहले दायर किया गया है। उक्त अवधि, मुकदमे को सुनवाई योग्य नहीं होने के रूप में खारिज किया जाना चाहिए।

42. पुनरीक्षण वर्ष 1976 के बाद, उप-धारा (2) और (3) 01.02.1977 से प्रभावी डाला गया था। उप-धारा (2) अनिवार्य प्रावधान का अपवाद है कि जब तक सरकार या उसके अधिकारी को दो महीने से पहले नोटिस नहीं दिया जाता है, तब तक मुकदमा दायर नहीं किया जा सकता है। इसने धारा 80 की उप-धारा (1) की कठोरता को कम कर दिया है। अब न्यायालय की अनुमति से सरकार या उसके अधिकारी के विरुद्ध मुकदमा दायर किया जा सकता है। इसके अलावा, उप-धारा (2) के परंतुक में प्रावधान है कि यदि न्यायालय पक्षों को सुनने के बाद संतुष्ट नहीं होता है कि किसी मुकदमे में कोई तत्काल राहत देने की आवश्यकता नहीं है, तो उप-धारा (1) की आवश्यकताओं का अनुपालन करने के बाद वादपत्र को प्रस्तुत करने के लिए वापस कर दिया जाए।

43. इस प्रकार, न्यायालय की अनुमति वाद की संस्था के लिए एक शर्त मिसाल है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास **आंध्र प्रदेश राज्य बनाम पायनियर बिल्डर्स, (2006)12 एस.सी.सी. 119** के मामले में धारा 80(1) और उप-धारा (2) की योग्यता पर विचार करने का अवसर था। न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी: -

***"17.** इस प्रकार, धारा 80 की उप-धारा (1) और (2) के संयुक्त रूप से पढ़ने से, विधायी इरादा स्पष्ट है, अर्थात्, उप-धारा (1) के तहत नोटिस की तामील अनिवार्य है, सिवाय इसके कि जहां अदालत द्वारा तत्काल और तत्काल राहत दी जानी है, जिस स्थिति में सरकार या लोक अधिकारी के खिलाफ मुकदमा दायर किया जा सकता है, लेकिन अदालत की अनुमति से। अदालत की अनुमति एक शर्त मिसाल है। इस तरह की अनुमति नोटिस दिए बिना एक वाद की स्थापना से पहले होनी चाहिए। भले ही धारा 80(2) यह निर्दिष्ट नहीं करती है कि अनुमति कैसे मांगी जानी है या दी जानी है, फिर भी अनुमति देने वाले आदेश में अनुरोध किए गए आधार और उस पर विचार करने का संकेत होना चाहिए। न्यायालय द्वारा शक्ति के प्रयोग पर एक प्रतिबंध लगाया गया है, अर्थात्, न्यायालय राहत नहीं दे सकता है, चाहे वह अंतरिम हो या अन्यथा, सरकार या लोक अधिकारी को मुकदमे में मांगी गई राहत के संबंध में कारण दिखाने का उचित अवसर देने के अलावा।*

***18.** ऊपर देखे गए विधायी इरादे को ध्यान में रखते हुए, इस बात पर बहुत कम जोर देने की आवश्यकता है कि उप-धारा (2) के तहत न्यायालय को प्रदत्त शक्ति वास्तविक कठिनाई से बचने के लिए है और इसलिए, उप-धारा (1) की आवश्यकताओं का अनुपालन किए बिना एक वाद दायर करने के लिए अनुमति देने के कर्तव्य के साथ युग्मित है, केवल राहत की तात्कालिकता को ध्यान में रखते हुए, न कि मामले के गुण-दोष को। इसके अलावा, जब उप-धारा (1) के तहत नोटिस की कमी को भी यह प्रावधान करके ठीक किया जाता है कि इस प्रावधान के तहत राहत सरकार या लोक अधिकारी को अनुरोध की गई राहत के संबंध में कारण बताने का उचित अवसर दिए बिना इस प्रावधान के तहत राहत प्रदान नहीं की जाएगी। प्रावधान यह भी अनिवार्य करता*

है कि यदि अदालत की राय है कि कोई तत्काल राहत नहीं दी जानी चाहिए, तो उसे उप-धारा (1) में परिकल्पित आवश्यकताओं का पालन करने के बाद वादपत्र को प्रस्तुत करने के लिए वापस कर देना चाहिए।

44. बजाज हिंदुस्तान शुगर एंड इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम बलरामपुर चीनी मिल्स लिमिटेड, (2007)9 एस.सी.सी. 43 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय को फिर से धारा 80(2) के उद्देश्य पर विचार करने का अवसर मिला। यह पायनियर बिल्डर्स (उपरोक्त) के पहले के निर्णय का पालन करता है और निम्नानुसार अवधारित किया गया है: -

***"31.** उपरोक्त से, यह स्पष्ट होगा कि न्यायालय की अनुमति से उप-धारा (1) द्वारा अपेक्षित नोटिस दिए बिना सरकार या लोक अधिकारी के खिलाफ मुकदमा दायर किया जा सकता है। जब ऐसी अनुमति से इनकार कर दिया जाता है, तो वाद की स्थापना का प्रश्न ही नहीं उठता है और तदनुसार, उस स्तर पर कोई अंतरिम राहत भी नहीं दी जा सकती है।*

***33.** निहित अवकाश के प्रश्न पर श्री शांति भूषण द्वारा उद्धृत निर्णयों का श्री मुकुल रोहतगी ने आंध्र प्रदेश बनाम पायनियर बिल्डर्स, एपी [(2006) 12 एस.सी.सी. 119: (2006) 9 स्केल 520] में इस न्यायालय के निर्णय के साथ प्रतिवाद किया, जिसमें प्रस्तर-16 में यह निम्नानुसार देखा गया है: (एस.सी.सी. पी. 126, प्रस्तर-17)*

"17. इस प्रकार, धारा 80 की उपधारा (1) और (2) के संयुक्त पठन से, विधायी आशय स्पष्ट है, अर्थात्, उपधारा (1) के तहत नोटिस की तामील अनिवार्य है, सिवाय इसके कि जहां न्यायालय द्वारा तत्काल और तत्काल राहत दी जानी है, जिस स्थिति में सरकार या लोक अधिकारी के खिलाफ मुकदमा दायर किया जा सकता है, लेकिन अदालत की अनुमति के साथ। अदालत की अनुमति एक शर्त मिसाल है। इस तरह की अनुमति नोटिस दिए बिना एक वाद की स्थापना से पहले होनी चाहिए। भले ही धारा 80(2) यह निर्दिष्ट नहीं करती है कि अनुमति कैसे मांगी जानी है या दी जानी है, फिर भी अनुमति देने वाले आदेश में अनुरोध किए गए आधार और उस पर विचार करने का संकेत होना चाहिए। अदालत द्वारा शक्ति के प्रयोग पर एक प्रतिबंध लगाया गया है, अर्थात्, अदालत राहत नहीं दे सकती है, चाहे वह अंतरिम हो या अन्यथा, सरकार या एक लोक अधिकारी को मुकदमे में मांगी गई राहत के संबंध में कारण दिखाने का उचित अवसर देने के अलावा।

***34.** कानून, हमारे विचार में, उपरोक्त निर्णय में संक्षेप में व्यक्त किया गया है। संहिता की धारा 80(2) की भाषा हमें यह मानने के लिए प्रेरित करती है कि यदि मूल अदालत द्वारा अनुमति से इनकार कर दिया जाता है, तो यह उच्च न्यायालयों के लिए इस तरह की अनुमति देने के लिए खुला है क्योंकि अन्यथा एक आकस्मिक स्थिति में एक वादी को ऐसी अनुमति से इनकार करने के बाद बिना उपाय के छोड़ दिया जा सकता है और उसे नोटिस देने के बाद दो महीने की वैधानिक अवधि का इंतजार करना पड़ता है।*

45. श्रीमती जनक राजी देवी बनाम चंद्रबती देवी, ए.आई.आर. 2002 सीएएल11 में, कलकत्ता उच्च न्यायालय ने धारा 80(2) सी.पी.सी. की व्याख्या करते हुए माना कि अलग आवेदन और एक एक्सप्रेस आदेश की कोई आवश्यकता नहीं थी। न्यायालय जो करता है उससे अनुमति का अनुमान लगाया जा सकता है और निहित किया जा सकता है। प्रासंगिक प्रस्तर-20 यहां निकाला गया है: -

"20. हालांकि, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 की उप-धारा (2) का मेरा अध्ययन यह है कि कोई अलग आवेदन और एक स्पष्ट आदेश आवश्यक आवश्यकताएं नहीं हैं; ऐसी अनुमति को माना जा सकता है; औपचारिक आदेश पारित करके अनुमति देने की आवश्यकता नहीं है। धारा 80 की उप-धारा (2) के तहत अनुमति निहित हो सकती है और न्यायालय जो करता है उससे प्राप्त किया जा सकता है। अनुमति के लिए प्रार्थना किसी भी रूप में हो सकती है। वादपत्र के पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि वादी ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 की उप-धारा (2) के तहत वादपत्र प्रस्तुत करने की अनुमति के लिए स्पष्ट रूप से प्रार्थना की है और ऐसी प्रार्थनाओं के समर्थन में उचित स्पष्टीकरण दिया है। मेरा मानना है कि विचारण न्यायालय ने वादी को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 की उप-धारा (2) के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए वादपत्र प्रस्तुत करने की अनुमति दी है। इसके अलावा, मैं मानता हूं कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80(2) की आवश्यकताओं का काफी हद तक अनुपालन किया गया था।

46. टी.वी. परांगोदान बनाम जिला कलेक्टर, त्रिचूर और अन्य, ए.आई.आर. 1989 केर 276 में, केरल उच्च न्यायालय ने भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया और माना कि धारा 80 की उप-धारा (2) किसी भी रूप या पुनरीक्षण को निर्धारित नहीं करती है जिसमें अनुमति दी जानी है। यह जो कहता है वह केवल न्यायालय की अनुमति के साथ है, उप-धारा (1) द्वारा अपेक्षित किसी भी नोटिस के बिना। अनुमति एक औपचारिक आदेश द्वारा नहीं होनी चाहिए। यह निहित भी हो सकता है और न्यायालय जो करता है उससे इसे प्राप्त किया जा सकता है।

47. हिमाचल स्टील रिरोलर्स एंड फैब्रिकेटर्स बनाम भारत संघ और अन्य, ए.आई.आर. 1988 इला 191 इस बात पर विचार करते हुए कि मुकदमा खराब है या नहीं, धारा 80 के तहत नोटिस के साथ निम्नानुसार अवधारित किया गया है: -

"13. संशोधित धारा 80 में अब दो भाग हैं। धारा 80 का उपखंड (1) प्रकृति में अनिवार्य है और यह आवश्यक है कि सरकार के खिलाफ दायर प्रत्येक वाद धारा 80 सी.पी.सी. के तहत नोटिस देने के बाद निर्धारित तरीके से दायर किया जाना चाहिए। धारा 80 का उपखंड (2) खंड (1) का अपवाद है और कुछ सीमित वर्ग के मामलों में जहां सरकार या लोक अधिकारी के खिलाफ कुछ तत्काल राहत की आवश्यकता होती है, नोटिस की सेवा को न्यायालय की अनुमति से समाप्त किया जा सकता है। धारा 80 का उपखंड (2) नीचे निकाला गया है:

"सरकार (जम्मू और कश्मीर राज्य की सरकार सहित) या किसी लोक अधिकारी के खिलाफ ऐसे लोक अधिकारी द्वारा अपनी आधिकारिक क्षमता में किए जाने वाले किसी भी कार्य के संबंध में तत्काल राहत प्राप्त करने के लिए एक वाद न्यायालय की अनुमति से, उप-धारा (1) द्वारा अपेक्षित कोई नोटिस दिए बिना, दायर किया जा सकता है, लेकिन न्यायालय वाद में राहत प्रदान नहीं करेगा, चाहे अंतरिम हो या अन्यथा, सरकार या लोक अधिकारी को देने के अलावा, जैसा भी मामला हो, मुकदमे में प्रार्थना की गई राहत के संबंध में कारण दिखाने का एक उचित अवसर:

परन्तु यदि न्यायालय पक्षों को सुनने के बाद संतुष्ट हो जाता है कि वाद में कोई तत्काल राहत देने की आवश्यकता नहीं है, तो उपधारा (1) की आवश्यकताओं का अनुपालन करने के बाद वादपत्र को प्रस्तुत करने के लिए उसे वापस कर देगा।

***14.** उपरोक्त प्रावधान के एक महज़ अवलोकन से यह पता चलेगा कि मामलों के अपवाद वर्ग में भी मुकदमा केवल न्यायालय की अनुमति से दायर किया जाना है। इस तरह की अनुमति मुकदमे की संस्था से पहले होनी चाहिए। उपरोक्त प्रावधान की भाषा में पढ़ना संभव नहीं है कि वादी को वाद की संस्था के बाद भी ऐसी अनुमति प्राप्त करने की अनुमति दी जा सकती है। धारा 80(1) के तहत नोटिस की पट्टी को केवल तभी हटाया जा सकता है जब वाद दायर करने के लिए वादपत्र दायर करते समय अदालत की अपेक्षित अनुमति प्राप्त की गई हो।*

***15.** अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उप-खंड (1) में 'होगा' शब्द का उपयोग और धारा 80 के उप-खंड (2) में 'हो सकता है' शब्द इंगित करता है कि यह अनुमति बाद में प्राप्त की जा सकती है। हमें इस पर सहमत होना मुश्किल लगता है। सरकार के खिलाफ मुकदमा दायर करने के इच्छुक वादी के सामने दो विकल्प होते हैं, या तो वह धारा 80 सी.पी.सी. के तहत दो महीने का नोटिस देने के बाद मुकदमा दायर कर सकता है या वह नोटिस दिए बिना मुकदमा दायर कर सकता है, लेकिन उस स्थिति में उसे अदालत को संतुष्ट करना होगा कि तत्काल और तत्काल राहत की आवश्यकता है और अदालत की पूर्व अनुमति भी प्राप्त करनी चाहिए। (महत्व सन्निविष्ट)*
पहले प्रविधि को अपनाए जाने की स्थिति में, नोटिस देने के दो महीने की समाप्ति से पहले मुकदमा दायर नहीं किया जा सकता है और यह संसद द्वारा धारा 80 सी.पी.सी. के उप-खंड (1) में 'करेगा' शब्द का उपयोग करने का कारण बताता है। हालांकि, दूसरे मामले में उसके पास अपेक्षित नोटिस दिए बिना मुकदमा दायर करने का विकल्प है, लेकिन केवल अदालत की अनुमति प्राप्त करने के बाद और यह इस उद्देश्य के लिए है कि धारा 80 सी.पी.सी. की धारा (2) में 'हो सकता है' शब्द का उपयोग किया गया है।

48. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जमन सिंह और अन्य, ए.आई.आर. 2007 यूटीटी 10 में, न्यायालय ने निर्णय और डिक्री के खिलाफ मामले पर विचार करने से इनकार कर दिया, जहां धारा 80 की उप-धारा (2) के तहत अनुमति दी गई थी। प्रासंगिक प्रस्तर-11 यहां नीचे दिया गया है: -

"11. प्रतिपक्षी/अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुत तीसरा निवेदन यह है कि संहिता की धारा 80 के तहत आवश्यक नोटिस की सेवा के बिना मुकदमा दायर किया गया था। यदि विचारण न्यायालय द्वारा कोई छूट नहीं दी गई होती, तो मैं प्रतिपक्षी/अपीलकर्ता के लिए स्थायी अधिवक्ता की प्रस्तुति को स्वीकार कर लेता, लेकिन मूल वाद संख्या-26 वर्ष 1983 की आदेश पत्र, जिसमें आक्षेपित डिक्री पारित की गई है, से पता चलता है कि धारा 80 के तहत नोटिस की तामील किए बिना मुकदमा दायर करने की अनुमति विचारण न्यायालय द्वारा 1-7-1983 को दी गई थी, यानी मुकदमे की स्थापना के दिन। चूंकि, उक्त अनुमति संहिता की धारा 80 की उप-धारा (2) के तहत दी गई थी, इस तरह, आक्षेपित निर्णय और डिक्री को उक्त आधार पर हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

49. केके शर्मा बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1989 पी एंड एच 7 में, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने माना कि न्यायालय को मामले की प्रकृति पर विचार करने और इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए आवेदन पर विशिष्ट आदेश पारित करना चाहिए कि तत्काल राहत की आवश्यकता है या नहीं।

50. कर्नाटक राज्य बनाम एम. मुनिराजू ए.आई.आर. 2002 कर 287 में, न्यायालय ने माना कि व्यक्ति के पते पर नोटिस भेजना पर्याप्त नहीं है, इसे वास्तव में या तो उस व्यक्ति को दिया जाना चाहिए जिसे उन्हें धारा 80(1) सी.पी.सी. के तहत दिया जाना आवश्यक है।

51. केरल राज्य और अन्य बनाम सुधीर कुमार शर्मा और अन्य, (2013) 10 एस.सी.सी. 178 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 80(2) के दायरे पर विचार करते हुए माना कि उपरोक्त प्रावधान के तहत केवल आवेदन दाखिल करने से मुकदमे की कार्यवाही नियमित नहीं होगी और अनुमति देने के लिए प्रभावी आदेश पारित किया जाना चाहिए। इसके बाद, न्यायालय ने माना कि केवल धारा 80(2) सी.पी.सी. के तहत एक आवेदन दायर करने का मतलब यह नहीं होगा कि उक्त आवेदन विचारण न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया था। उसे इस पर प्रभावी आदेश पारित करना होगा।

52. अब, इस मामले पर आते हुए, यह विवाद में नहीं है कि नोटिस की अवधि समाप्त होने से पहले मुकदमा दायर करने के लिए अनुमति देने के लिए धारा 80(2) सी.पी.सी. के तहत आवेदन दायर किया गया था। वादी द्वारा 19.11.2024 को दायर आवेदन के प्रस्तर-5 में, यह कहा गया है कि धारा 80 के तहत नोटिस 21.10.2024 को प्रतिपक्षी संख्या-1 से 5 को सरकार और उसके अधिकारियों के होने के नाते भेजा गया था। उक्त नोटिस से इनकार नहीं किया गया है। वास्तव में, प्रतिपक्षी संख्या-2 से 4 (वर्तमान प्रतिपक्षी संख्या-10 से 12) द्वारा दायर लिखित बयान में, धारा 80 सी.पी.सी. के तहत नोटिस के रूप में कोई आपत्ति नहीं ली गई है।

53. जिला मजिस्ट्रेट, प्रतिपक्षी संख्या-5 (वर्तमान प्रतिपक्षी संख्या-13), जिसका प्रतिनिधित्व मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा किया जाता है, ने धारा 80 सी.पी.सी. के आधार पर वाद की स्थिरता पर आपत्ति नहीं की है,

जिसका अर्थ है कि सरकार और उसके अधिकारियों ने नोटिस की समाप्ति के लिए छूट दी है और वाद स्थापित करने के लिए अनुमति देने पर आपत्ति नहीं की है।

54. धारा 80 की उपधारा (1) में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि ऐसे लोक अधिकारी द्वारा अपनी आधिकारिक क्षमता में किए जाने वाले किसी भी कार्य के संबंध में सरकार के खिलाफ या किसी लोक अधिकारी के विरुद्ध कोई मुकदमा तब तक दायर नहीं किया जाएगा जब तक कि लिखित रूप में नोटिस दिए जाने के बाद अगले दो महीने की समाप्ति न हो जाए।

55. उपधारा (2) उपधारा (1) की कठोरता को कम करती है और इस हद तक लाभ प्रदान करती है कि उप-धारा (1) द्वारा अपेक्षित किसी भी नोटिस की सेवा किए बिना न्यायालय की अनुमति से मुकदमा दायर किया जा सकता है। यह स्वीकार किया जाता है कि 21.10.2024 को प्रतिपक्षी संख्या-1 से 5 को नोटिस भेजा गया था। केवल भेजे गए नोटिस की अवधि समाप्त नहीं हुई है और न्यायालय से अनुमति मांगी गई है, जिस पर प्रतिपक्षी संख्या-1 से 5 द्वारा आपत्ति नहीं की गई थी।

56. पूरी आपत्ति प्रतिपक्षी संख्या-6/पुनरीक्षणकर्ता की है, जिस पर धारा 80 लागू नहीं है। धारा 80 का उद्देश्य एकपक्षीय आदेशों के खिलाफ सरकार और उसके अधिकारियों को सुरक्षा प्रदान करना है। यदि किसी विशेष मामले में उस व्यक्ति को सुरक्षा की आवश्यकता नहीं है, तो वह कानूनी रूप से अपने अधिकार को छोड़ सकता है। यह **धीरेंद्र नाथ गोरी, सुबल चंद्र नाथ साहा और अन्य बनाम सुधीर चंद्र घोष और अन्य, ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 1300** के मामले में अवधारित किया गया था।

57. गोपाल सिंह विशारद (उपरोक्त) में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने माना कि धारा 80 के तहत नोटिस की कमी की याचिका एक निजी व्यक्ति द्वारा नहीं ली जा सकती है क्योंकि यह सरकार और उसके अधिकारियों के लाभ के लिए है। प्रासंगिक प्रस्तर-639 से 644 यहां निकाले गए हैं: -

***"639.** इस तरह के अधिनियमन के उद्देश्य और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि संबंधित पक्ष इसे माफ कर सकता है, हमारा विचार है कि धारा 80 के तहत नोटिस की कमी की दलील किसी निजी व्यक्ति द्वारा नहीं ली जा सकती है क्योंकि यह सरकार और उसके अधिकारियों के लाभ के लिए है।*

***640.** हीराचंद हिमतलाल मारवाड़ी बनाम काशीनाथ ठाकुरजी जाधव ए.आई.आर. (29) 1942 बॉम्बे 339 में माननीय बॉम्बे उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने कहा, "पहली जगह में प्रतिपक्षी 3 इसे उठाने के लिए उचित पक्ष नहीं है, और दूसरे स्थान पर हमारी राय में रिसीवर को नोटिस करने के अपने अधिकार को माफ कर दिया जाना चाहिए। यह धारा 80 द्वारा संरक्षित पार्टी के लिए अपने अधिकारों को माफ करने के लिए खुला है, और उसकी छूट बाकी पक्षगण को बाध्य करती है। लेकिन केवल वह ही नोटिस माफ कर सकता है, और यदि ऐसा है, तो इस स्थिति के लिए कोई तार्किक आधार देखना मुश्किल है कि एक पक्ष जिसे खुद को नोटिस देने का*

कोई अधिकार नहीं है, वह इसे प्राप्त करने के हकदार एकमात्र पक्ष को नोटिस की कमी के आधार पर मुकदमे को चुनौती दे सकता है। इसलिए हमें लगता है कि हमले का यह आधार प्रतिपक्षी 3 के लिए खुला नहीं है; और इस बिंदु पर हमारे दृष्टिकोण के लिए 32 कैल 1130 से प्रत्यक्ष समर्थन प्राप्त किया जा सकता है।

***641.** केरल उच्च न्यायालय द्वारा **कनकू बनाम नीलकांता, ए.आई.आर. 1969 (केरल) 280** में भी यही दृष्टिकोण लिया गया है, जिसमें कहा गया है कि नोटिस की कमी की याचिका निजी व्यक्तियों द्वारा नहीं ली जा सकती है।*

***642. इश्तियाक हुसैन अब्बास हुसैन बनाम जफरुल इस्लाम अफजल हुसैन और अन्य ए.आई.आर. 1969 इला 161** में इस न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने भी यही विचार व्यक्त किया है:*
पीठ ने कहा, "मुझे ऐसा लगता है कि नोटिस की कमी की याचिका केवल सरकार और धारा 80 में उल्लिखित अधिकारियों के लिए खुली है और यह किसी निजी व्यक्ति के लिए खुली नहीं है। इस विशेष मामले में राज्य सरकार ने उपस्थिति भी नहीं दी। इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि नोटिस को इसके द्वारा माफ कर दिया गया है।

***643.** हम सम्मानपूर्वक माननीय न्यायमूर्ति श्री एकल न्यायाधीश के उपरोक्त दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं।*

***644**. पूरे मुद्दे 10(ए) और 10(बी)(वाद -3) के अनुसार, वादी (वाद -3) के पक्ष में फैसला किया जाता है। हम मानते हैं कि एक निजी प्रतिपक्षी धारा 80 सी.पी.सी. के तहत नोटिस के अभाव में मुकदमे की रखरखाव के संबंध में आपत्ति नहीं उठा सकता है।*

58. विचारण न्यायालय द्वारा मुकदमा दायर करने की अनुमति देने के लिए श्री नकवी की आशंका प्रस्तुत मामले के तथ्यों में पूरी तरह से गलत है। अधिनियम, 1958 की धारा 18 के तहत स्मारक तक पहुंच का अधिकार देने के लिए सरकारी अधिकारियों को 29.07.2024 को अच्छी तरह से सूचित किया गया था। इसके बाद, धारा 80(2) के तहत 21.10.2024 को प्रतिपक्षी संख्या-1 से 5 को नोटिस दिया गया जो निर्विरोध रहा। निचली अदालत ने आवेदन पर उचित विचार करने और कारण दर्ज करने के बाद आवेदन की अनुमति दी थी और मुकदमा दायर करने की अनुमति दी थी।

59. इस प्रकार, सी.पी.सी. की धारा 80(2) के प्रावधानों और ऊपर उद्धृत मामले के कानूनों पर समग्र विचार करने पर, मुझे लगता है कि नोटिस की अवधि समाप्त होने से पहले वाद दायर करने के लिए अनुमति देने के दिनांक 19.11.2024 के आदेश में कोई खामी नहीं है। इसके अलावा, धारा 80 के तहत नोटिस वादी द्वारा 21.10.2024 को पहले ही भेजा गया था, जिस पर प्रतिपक्षी संख्या-1 से 5 ने अपने लिखित बयान में या इस न्यायालय के समक्ष कभी आपत्ति नहीं जताई थी। एक निजी व्यक्ति होने के नाते पुनरीक्षणकर्ता धारा 80 के तहत नोटिस के अभाव में आपत्ति नहीं कर सकता है जो सरकार और उसके अधिकारियों के लाभ के लिए है।

अनुमोदित

60. ऊपर तैयार किए गए प्रश्न का उत्तर वादी के पक्ष में और प्रतिपक्षी संख्या-6/पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ दिया गया है।

प्रश्न संख्या-II

61. यह प्रश्न पुनरीक्षणकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-6 द्वारा इस आधार पर पूछा गया है कि आदेश XXVI नियम 9 और 10 सी.पी.सी. के तहत आयोग की नियुक्ति के लिए आवेदन 8C की अनुमति देने के लिए 19.11.2024 को कोई आवश्यकता उत्पन्न नहीं हुई। इसके अलावा, सामान्य सिविल नियमावली के नियम 68 और 69 का पालन नहीं किया गया था।

62. यह एक स्वीकृत तथ्य है कि संस्थान की अनुमति के बाद वाद को दोपहर के भोजन से पहले सत्र प्रदान किया गया था। मामला दोपहर के भोजन के बाद तय किया गया था और दो आवेदन, एक आवेदन 6 सी अस्थायी निषेधाज्ञा प्रदान करने के लिए और दूसरा आवेदन 8 सी अधिवक्ता कमिश्नर की नियुक्ति के लिए विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया था। आवेदन 6C पर, अदालत ने प्रतिपक्षियों को नोटिस जारी किया था और आगे के विचार के लिए 29.11.2024 की तारीख तय की थी।

63. आवेदन 8 सी पर, अदालत ने अपने निष्कर्ष को दर्ज करने के बाद इसकी अनुमति दी और अधिवक्ता आयुक्त को नियुक्त किया और उन्हें आयोग को पूरा करने और सर्वेक्षण किए जाने वाले स्थान की फोटोग्राफी और वीडियोग्राफी करने और रिपोर्ट को निर्धारित अगली तारीख पर रखने का निर्देश दिया।

64. आदेश XXVI सी.पी.सी. कमीशन के लिए प्रदान करता है। नियम 9 में स्थानीय जांच के लिए कमीशन का प्रावधान है। नियम 10 में आयोगों द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का प्रावधान है, जिसे इस प्रकार नियुक्त किया गया है। आदेश XXVI सी.पी.सी. के प्रासंगिक नियम 9 और 10 को निम्नानुसार यहां निकाला गया है;

"9. स्थानीय जांच करने के लिए कमीशन *– किसी भी मुकदमे में जिसमें न्यायालय विवाद में किसी भी मामले को स्पष्ट करने के उद्देश्य से स्थानीय जांच को अपेक्षित या उचित समझता है, या किसी भी संपत्ति के बाजार-मूल्य का पता लगाने के लिए, या किसी भी साधारण लाभ या क्षति या वार्षिक शुद्ध लाभ की राशि, न्यायालय ऐसे व्यक्ति को एक कमीशन जारी कर सकता है जैसा कि वह उचित समझता है उसे ऐसी जांच करने और उस पर न्यायालय को रिपोर्ट करने का निर्देश देता है:*

परन्तु जहां राज्य सरकार ने उन व्यक्तियों के संबंध में नियम बनाए हैं जिन्हें ऐसा कमीशन जारी किया जाएगा, न्यायालय ऐसे नियमों से बाध्य होगा।

10. आयुक्त की प्रक्रिया*–(1) आयुक्त, ऐसे स्थानीय निरीक्षण के बाद, जैसा कि वह आवश्यक समझे और उसके द्वारा लिए गए साक्ष्य को लिखने के बाद, ऐसे साक्ष्य, उसके द्वारा हस्ताक्षरित लिखित रूप में अपनी रिपोर्ट के साथ, न्यायालय को वापस कर देगा।*

*(2) **मुकदमे में सबूत होने के लिए रिपोर्ट और बयान** -आयुक्त की रिपोर्ट और उसके द्वारा लिए गए साक्ष्य (लेकिन रिपोर्ट के बिना साक्ष्य नहीं) मुकदमे में साक्ष्य होंगे और अभिलेखों का हिस्सा होंगे; लेकिन न्यायालय या, न्यायालय की अनुमति से, वाद का कोई भी पक्षकार आयुक्त को व्यक्तिगत रूप से खुली अदालत में उसके द्वारा संदर्भित या उसकी रिपोर्ट में उल्लिखित किसी भी मामले को छूते हुए जांच कर सकता है, या उसकी रिपोर्ट के रूप में, या जिस तरह से उसने जांच की है।*

*(3) **आयुक्त की व्यक्तिगत रूप से जांच की जा सकती है** - जहां न्यायालय किसी भी कारण से आयुक्त की कार्यवाही से असंतुष्ट है, वह इस तरह की आगे की जांच करने का निर्देश दे सकता है जो वह उचित समझे।*

65. नियम 9 के महज़ पढ़ने से, यह स्पष्ट है कि किसी भी मुकदमे में यदि अदालत को लगता है कि विवाद में किसी भी मामले को स्पष्ट करने के उद्देश्य से एक स्थानीय जांच अपेक्षित या उचित है, या किसी भी संपत्ति के बाजार मूल्य का पता लगाने, या किसी भी साधारण लाभ या क्षति या वार्षिक शुद्ध लाभ की राशि, यह ऐसे व्यक्तियों को एक आयोग जारी कर सकता है जो वह इस तरह की जांच करने और अदालत को वापस रिपोर्ट करने के लिए उचित निर्देश देता है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि जहां अदालत को यह प्रतीत होता है कि किसी भी विवाद पर निर्णय लेने के लिए स्थानीय जांच की आवश्यकता है या उचित है, तो वह इसके लिए आदेश दे सकता है। आदेश XXVI के नियम 9 का उद्देश्य किसी पक्ष को सबूत इकट्ठा करने में सहायता करना नहीं है जहां पक्ष स्वयं सबूत प्राप्त कर सकता है, लेकिन साथ ही अदालत किसी पक्ष को सर्वोत्तम सबूत पेश करने से नहीं रोक सकती है यदि ऐसे सबूत आयोग की मदद से एकत्र किए जा सकते हैं।

66. इस प्रकार, स्थानीय जांच का उद्देश्य उन सबूतों को इकट्ठा करना नहीं है जिन्हें अदालत में लिया जा सकता है, बल्कि ऐसी सामग्री प्राप्त करना है, जो इसकी विशेष प्रकृति से केवल मौके पर ही प्राप्त हो सकती है। यह आवश्यक नहीं है कि कोई भी पक्ष आयोग जारी करने के लिए आवेदन कर सकता है, और अदालत के पास स्वत: संज्ञान लेते हुए आदेश XXVI नियम 9 सी.पी.सी. के प्रावधानों को लागू करने की शक्ति है।

67. प्रस्तुत मामले में, वादी ने अपने आवेदन 8 सी में आरोप लगाया था कि प्रतिपक्षी हिंदू मंदिर की कलाकृतियों, संकेतों और प्रतीकों को जल्दबाजी में हटाने की कोशिश कर रहे हैं, इसलिए स्थानीय जांच आवश्यक थी। अदालत ने केवल आदेश XXVI नियम 9 के तहत अपनी शक्ति के संदर्भ में अधिवक्ता आयुक्त को नियुक्त किया था और स्थानीय जांच करने के लिए आवेदन की अनुमति दी थी। अधिवक्ता कमिश्नर की नियुक्ति का आदेश किसी भी तरह से किसी भी पक्ष को प्रभावित नहीं करता है। अदालत ने सबूतों की अजीबोगरीब प्रकृति को ध्यान में रखते हुए स्थानीय जांच का आदेश दिया था, जिसे केवल मौके पर ही एकत्र किया जा सकता है।

68. अधिवक्ता आयुक्त की नियुक्ति के आदेश से किसी भी पक्ष के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं होता है क्योंकि कोई निर्णय नहीं लिया जाता है। किसी भी पक्ष को बिना किसी सूचना के उपयुक्त मामलों में एक आयोग की

नियुक्ति की जा सकती है। आयोग की नियुक्ति का आदेश दिए जाने पर नियम में दोनों पक्षों की उपस्थिति का प्रावधान नहीं है। जब आयोग अपनी जांच शुरू करता है तभी पक्षगण को नोटिस देना आवश्यक होता है।

69. आदेश XXVI नियम 9 सी.पी.सी. के तहत विवाद में संपत्ति में पाए जाने वाले तथ्यों या अन्य सामग्रियों की जांच करने और अदालत को उस संबंध में एक रिपोर्ट बनाने के लिए स्थानीय जांच करने के लिए एक आयोग नियुक्त किया जा सकता है।

70. राजिंदर एंड कंपनी बनाम भारत संघ और अन्य, 2000(6) एस.सी.सी. 506 में, शीर्ष न्यायालय ने कहा कि आयुक्त की नियुक्ति के आदेश को चुनौती नहीं दी जा सकती है, क्योंकि रिपोर्ट अंततः स्वीकार्य है या नहीं, अदालत द्वारा तय किया जाएगा। सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया;

*"**1.** अनुमति दी गई।*

***2.** हम इस बात की मूल्यांकन नहीं कर सकते हैं कि उच्च न्यायालय ने साइट का निरीक्षण करने और एक रिपोर्ट दाखिल करने और प्रतिपक्षी द्वारा किए गए कार्य को मापने के लिए एक आयोग नियुक्त करने वाले विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश के उस हिस्से में हस्तक्षेप क्यों किया था। अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षी को उस लागत या खर्चों के लिए जिम्मेदार नहीं बनाया जाएगा जो रिपोर्ट दाखिल करने के लिए आयोग में शामिल हो सकते हैं। यह प्रश्न कि आयुक्त की रिपोर्ट अंतिम रूप से स्वीकार्य है या नहीं, इसका निर्णय न्यायालय द्वारा किया जाएगा, संबंधित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश का निर्धारण करता है। उक्त अहानिकर स्थिति के आलोक में उच्च न्यायालय के लिए निचली अदालत के आदेश में बदलाव करना आवश्यक नहीं था। इसलिए, हम उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश को रद्द करते हैं और विचारण न्यायालय के आदेश को पूरी तरह से बहाल करते हैं, इस राइडर के साथ कि यह कार्रवाई आयुक्त की रिपोर्ट और उसके निष्कर्षों की स्थिरता या अस्थिरता के बारे में संबंधित तर्कों को प्रमाणित करने के लिए पक्षगण के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना होगी।*

3. अपील का निपटारा किया जाता है।

71. आदेश XXVI सी.पी.सी. के नियम 10 पर आते हुए, यह स्पष्ट है कि अदालत द्वारा नियुक्त एक आयुक्त, स्थानीय जांच करने और इसे लिखित रूप में जोड़ने के बाद, उसके द्वारा ली गई साक्ष्य को अपनी रिपोर्ट के साथ संबंधित न्यायालय के समक्ष दायर करेगा। इस प्रकार दायर की गई रिपोर्ट, और उसके द्वारा लिए गए साक्ष्य मुकदमे में साक्ष्य होंगे और अभिलेखों का हिस्सा होंगे। नियम 10 के उप-नियम (2) में प्रावधान है कि इस प्रकार दायर की गई रिपोर्ट की जांच साक्ष्य के साथ न्यायालय द्वारा स्वतः संज्ञान से या न्यायालय की अनुमति से किसी भी पक्ष द्वारा की जाएगी। इस प्रकार, रिपोर्ट और साक्ष्य को अभिलेखों का हिस्सा बनाने से पहले उसे नियम 10 के उप-नियम (2) में प्रदान किए गए परीक्षण से गुजरना होगा। नियम 10 के उप-नियम (3) में आगे प्रावधान है कि यदि न्यायालय आयोग की कार्यवाही से संतुष्ट नहीं है तो वह आगे की जांच का निर्देश दे सकता है।

72. आदेश XXVI के नियम 9 और 10 के समग्र पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस अदालत में मुकदमे की सुनवाई की जाती है, उसे स्थानीय जांच के लिए सीधे मामले के उचित निर्णय की आवश्यकता होती है। इस प्रकार नियुक्त आयुक्त को जांच के दौरान पक्षकारों को नोटिस देना होता है। जांच पूरी करने के बाद आयुक्त को अदालत के समक्ष इस प्रकार एकत्र किए गए साक्ष्यों के साथ रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होती है। साक्ष्य के साथ रिपोर्ट को या तो अदालत द्वारा या पक्षों के आवेदन पर परीक्षण के लिए रखा जाता है। इसके अलावा, यदि न्यायालय आयुक्त की कार्यवाही से संतुष्ट नहीं है तो वह आगे की जांच के लिए निर्देश दे सकता है।

73. इस प्रकार, स्थानीय जांच आयोग के लिए आदेश XXVI सी.पी.सी. के नियम 9 और 10 के तहत एक पूर्ण तंत्र प्रदान किया गया है। प्रस्तुत मामले में आवेदन 8 सी पर विचार करना पहला कदम था जिसे विचारण न्यायालय ने लिया और विवाद में संपत्ति की स्थानीय जांच करने के लिए एक अधिवक्ता आयुक्त नियुक्त किया।

74. इसके अलावा, सामान्य सिविल नियमावली, 1957 के नियम 68 और 69 केवल आदेश XXVI सी.पी.सी. के प्रावधानों की तारीफ करते हैं। यह प्रक्रिया के लिए प्रदान करता है जब कोई अदालत स्थानीय जांच करने के लिए एक आयोग जारी करती है और उन बिंदुओं को परिभाषित करेगी जिन पर आयुक्त को रिपोर्ट करनी है। इसके अलावा, न्यायालय आयोग के निष्पादन के लिए उचित समय भी निर्धारित करेगा। सामान्य सिविल नियमावली के नियम 68 और 69 यहां निम्नानुसार निकाले गए हैं;

"68. स्थानीय जांच के लिए आदेश में दिए जाने वाले विवरण - आदेश XXVI, नियम 9 के तहत स्थानीय जांच करने के लिए एक आयोग जारी करते समय न्यायालय उन बिंदुओं को परिभाषित करेगा जिन पर आयुक्त को रिपोर्ट करना है। अधिवक्ता कमिश्नर या दीवानी न्यायालय अमीन द्वारा की गई स्पॉट निरीक्षण कार्यवाही संबंधित पक्ष की कीमत पर वीडियोग्राफी की जाएगी और इसे अधिवक्ता कमिश्नर या दीवानी न्यायालय अमीन द्वारा असंपादित न्यायालय को प्रदान किया जाएगा, जैसा भी मामला हो। कोई भी बिंदु जो मुकदमे में पक्षकारों द्वारा साक्ष्य द्वारा आसानी से प्रमाणित किया जा सकता है और किया जाना चाहिए, आयुक्त को संदर्भित नहीं किया जाएगा।

69. आयोगों को निष्पादित करने का समय - प्रत्येक आयोग के निष्पादन के लिए एक उचित समय निर्धारित किया जाएगा और न्यायालय यह देखेगा कि इसे ऐसे समय के भीतर निष्पादित किया जाता है जब तक कि न्यायालय पर्याप्त कारण के लिए समय का विस्तार नहीं करता है।

75. इस प्रकार, यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि दिनांक 19.11.2024 का आदेश जनरल रूल्स सिविल के नियम 68 और 69 सपठित आदेश XXVI सी.पी.सी. के नियम 9 के प्रावधानों के अनुरूप सख्ती से पारित किया गया था, क्योंकि अदालत ने एक अधिवक्ता कमिश्नर की नियुक्ति करते समय पुलिस बल की मदद से सर्वेक्षण करने का निर्देश दिया था और निरीक्षण किए जाने वाले स्थल से आवश्यक फोटोग्राफी और वीडियोग्राफी की

जानी थी और सर्वेक्षण किया। इसके अलावा, अदालत ने निर्धारित अगली तारीख यानी 29.11.2024 तक रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया था। इस प्रकार, नियम 68 और 69 की सामग्री को चुनौती के तहत आदेश में अनुपालन किया गया। अभिलेखों से, यह अदालत के संज्ञान में लाया गया है कि अधिवक्ता कमिश्नर ने नियम 9 के आवश्यक प्रावधानों का पालन करते हुए स्थानीय जांच करने से पहले प्रतिपक्षियों को नोटिस दिया था।

76. श्री नकवी, वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क, कि सर्वेक्षण में दो बार लिया गया, जबकि 19.11.2024 को केवल एक आदेश था, तथ्यात्मक रूप से गलत है। मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने स्पष्ट किया है कि आंशिक सर्वेक्षण 19.11.2024 को शाम 6 बजे से शाम 7.15 बजे तक किया जा सकता है और जब भीड़ जमा हो गई, तो अधिवक्ता कमिश्नर को आयोग का काम रोकने और साइट छोड़ने के लिए कहा गया। उपचुनाव के कारण 20 तारीख को आयोग का कार्य नहीं हो सका और उसके बाद 22 तारीख को शुक्रवार की नमाज और उसके बाद 23 तारीख को उपचुनाव के मतों की गिनती के कारण आयोग का कार्य नहीं किया जा सका। सभी संबंधित पक्षों को 23.11.2024 को नोटिस दिए जाने के बाद आयोग का काम 24.11.2024 को जारी रहा और इसे 24.11.2024 को सुबह 7 बजे से 11 बजे के बीच पूरा किया गया।

77. अभिलेखों से, यह स्पष्ट है कि अधिवक्ता कमिश्नर द्वारा 19.11.2024 को जो जांच शुरू की गई थी, वह 24.11.2024 को सुबह 7 बजे से 11 बजे के बीच पूरी हुई थी। राज्य द्वारा बताए गए कारणों से इसे 20, 21, 22 और 23 नवंबर 2024 को नहीं किया गया था। अधिवक्ता आयुक्त को आयोग के काम को जारी रखने के लिए अदालत से अनुमति मांगने की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि दिनांक 19.11.2024 का आदेश स्वयं दर्शाता है कि आयोग की रिपोर्ट अधिवक्ता आयुक्त द्वारा निर्धारित अगली तारीख यानी 29.11.2024 तक प्रस्तुत की जानी थी।

78. दो आयोगों के होने के बारे में श्री नकवी का तर्क इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए सपाट है कि 19.11.2024 को शुरू हुआ आयोग 24.11.2024 तक जारी रहा और बीच में चार दिनों का अवकाश रहा। हालाँकि, यह दोनों पक्षों के लिए एक स्वीकृत मामला है कि स्थानीय जांच पूरी हो गई है और जब मामला 29.11.2024 को तय किया गया था, तो अधिवक्ता कमिश्नर ने उनके द्वारा एकत्र किए गए सबूतों के साथ रिपोर्ट दाखिल करने के लिए समय मांगा था, जिसे विचारण न्यायालय ने अनुमति दे दी थी।

79. राजिंदर एंड कंपनी (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहले ही यह तय किया जा चुका है कि आयोग की नियुक्ति के आदेश को चुनौती नहीं दी जा सकती है क्योंकि यह केवल एक प्रारंभिक चरण है जहां एक रिपोर्ट बुलाई जाती है और संबंधित न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की जानी होती है, जिसे साबित करने की आवश्यकता है, आदेश XXVI नियम 10(2) के चरण में केवल अभिलेखों का हिस्सा बनने वाले मुकदमे में एक सबूत के रूप में माना जाना चाहिए सी.पी.सी.। जिसका स्टेज अभी तक नहीं आया है।

80. इसके अलावा, इस पुनरीक्षण के लंबित रहने के दौरान, पुनरीक्षणकर्ता ने एक प्रकीर्ण आवेदन संख्या-4 वर्ष 2025 दायर किया था, जिसमें कथित मस्जिद की सफेदी और सफाई की अनुमति मांगी गई थी क्योंकि पवित्र रमजान का महीना शुरू होने वाला था। उक्त आवेदन पर वादी संख्या-1 से 8 द्वारा आपत्ति जताई गई थी।
81. इस न्यायालय ने 25.2.2025 को ए.एस.आई. को इस मामले में निर्देश लेने का निर्देश दिया था और मामले को 27.2.2025 के लिए पोस्ट किया गया था। उक्त तारीख को पुनरीक्षणकर्ता ने 13/19.1927 को कथित रूप से निष्पादित किए जाने वाले एक समझौते पर भरोसा किया था, जो 1.3.1927 को जामी मस्जिद संभल के मुतवल्लियों और भारतीय परिषद के राज्य सचिव के बीच पंजीकृत था।

82. उक्त समझौते के अनुसार, यह ए.एस.आई. था जिसे विवादित संरचना बनाए रखने की आवश्यकता थी, जिसे वर्ष 1920 में संरक्षित स्मारक के रूप में पंजीकृत किया गया था। न्यायालय ने ए.एस.आई. के तीन अधिकारियों श्री मदन सिंह चौहान, संयुक्त महानिदेशक, श्री जुल्फेक्वार अली, निदेशक (स्मारक) और श्री विनोद सिंह रावत, अधीक्षण पुरातत्वविद्, ए.एस.आई., मेरठ सर्कल के साथ-साथ मस्जिद के मुतवल्लियों को सर्वेक्षण करने और 28.2.2025 को इस न्यायालय को रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए नियुक्त किया कि क्या प्रश्न में साइट की सफेदी और रखरखाव की कोई आवश्यकता थी।

83. 28.2.2025 को ए.एस.आई. टीम द्वारा 27.2.2025 को अवधारित निरीक्षण रिपोर्ट को रंगीन तस्वीरों और वीडियोग्राफी के एक पेनड्राइव के साथ न्यायालय के समक्ष रखा गया था, जो इस प्रकार अवधारित की गई थी। उक्त पेनड्राइव को इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल के पास एक सीलबंद लिफाफे में रखा गया है। दिनांक 27.2.2025 की निरीक्षण रिपोर्ट यहां निम्नानुसार है;

"27.02.2025 को ए.एस.आई. टीम द्वारा जामा मस्जिद संभल, यूपी की निरीक्षण रिपोर्ट की गई।
माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने सिविल पुनरीक्षण संख्या-4 वर्ष 2025 में दिनांक 27/02/2025 के आदेश के माध्यम से ए.एस.आई. को निर्देश दिया है कि वह तीन अधिकारियों की एक टीम को प्रतिनियुक्त करके जामा मस्जिद, संभल, एक केंद्रीय संरक्षित स्मारक का निरीक्षण करे, जिसमें श्री मदन सिंह चौहान, संयुक्त महानिदेशक, ए.एस.आई. श्री जुल्फेकार अली, निदेशक (स्मारक) ए.एस.आई. और श्री विनोद सिंह रावत, अधीक्षण पुरातत्वविद्, ए.एस.आई., मेरठ सर्कल के साथ मस्जिद की मुतवल्लियों के साथ 27/02/2025 को। न्यायालय के निर्देश के अनुसार निरीक्षण का उद्देश्य यह देखना था कि मस्जिद के रखरखाव/मरम्मत के हिस्से के रूप में सफेदी की कोई आवश्यकता है या नहीं। इसे निरीक्षण रिपोर्ट में निर्दिष्ट किया जाएगा और 28.02.2025 को सुबह 10 बजे तक माननीय न्यायमूर्ति श्री न्यायालय में प्रस्तुत किया जाएगा। उपरोक्त आदेश के अनुपालन में, उक्त अधिकारियों के साथ ए.एस.आई. की टीम 27.02.2025 को स्थल पर पहुंची और स्मारक का निरीक्षण किया।

जामी मस्जिद, संभल को प्राचीन स्मारक संरक्षण अधिनियम 1904, प्राचीन स्मारक और पुरातत्व स्थल और अवशेष अधिनियम, 1958 के प्रावधानों के तहत अधिसूचना संख्या-1645/1133-एम दिनांक 22/12/1920 के

तहत संरक्षित स्मारक के रूप में घोषित किया गया है। आंगन से घिरे केंद्रीय गुंबदों वाली मस्जिद से प्रवेश द्वार से संपर्क किया जा सकता है, जिसके बाद मस्जिद के पूर्व की ओर स्थित सीढ़ियों की उड़ान होती है। मस्जिद के केंद्र में एक स्नान टैंक स्थित है।

इससे पहले मस्जिद समिति ने मस्जिद में मरम्मत और नवीनीकरण के कई कार्य किए थे, जिसके परिणामस्वरूप ऐतिहासिक संरचना में वृद्धि और परिवर्तन हुआ। स्मारक के फर्श को पूरी तरह से टाइलों और पत्थरों से बदल दिया गया है। मस्जिद के इंटीरियर को सुनहरे, लाल, हरे और पीले जैसे तेज रंगों के तामचीनी पेंट की मोटी परतों से रंगा गया है, जो स्मारक की मूल सतह को छुपाता है। टीम के अवलोकन के अनुसार, उक्त आधुनिक तामचीनी पेंट अभी भी अच्छी स्थिति में है और इसे फिर से रंगने की कोई आवश्यकता नहीं है। हालांकि, स्मारक के बाहरी हिस्से में पेंट के झड़ने के कुछ संकेत हैं, लेकिन इस स्थिति को फिलहाल तत्काल उपचार की आवश्यकता नहीं है।

स्मारक पूरी तरह से अच्छी स्थिति में है, हालांकि प्रवेश द्वार के साथ-साथ प्रार्थना कक्ष के पीछे और उत्तर की ओर स्थित कक्षों में भी गिरावट के कुछ संकेत प्रतीत होते हैं। मस्जिद का मुख्य प्रवेश द्वार पूर्व की ओर से है जो एक बड़े लकड़ी के दरवाजे के साथ एक विस्तृत द्वार के माध्यम से खुलता है। द्वार का लिंटेल बुरी तरह से सड़ गया है जिसे बदलने की आवश्यकता है।

इसी तरह, मस्जिद के पीछे (पश्चिम की ओर) और उत्तर की ओर कई छोटे कक्ष हैं जिनका उपयोग मस्जिद प्राधिकरण द्वारा स्टोर के उद्देश्य से किया गया है। ये कक्ष जीर्ण-शीर्ण स्थिति में हैं, विशेष रूप से छत, जो लकड़ी के दाद द्वारा समर्थित हैं, कमजोर हैं। इसके अलावा, मस्जिद परिसर में हुए अन्य आधुनिक कार्यों/हस्तक्षेपों को स्मारक को उसके मूल ताने-बाने में लाने के लिए ए.एस.आई. के संरक्षण और विज्ञान विंग द्वारा अच्छी तरह से पहचाने जाने की आवश्यकता है।

इस बीच, अनुमान तैयार करने के लिए ए.एस.आई. मेरठ सर्कल द्वारा कार्य की एक विस्तृत मदों की पहचान की जाएगी और उनका दस्तावेजीकरण किया जाएगा ताकि तत्काल संरक्षण और मरम्मत कार्य किया जा सके। जहां तक दिन-प्रतिदिन के रखरखाव जैसे सफाई, धूल हटाने और स्मारक में और उसके आसपास की वनस्पतियों को हटाने आदि का संबंध है, ए.एस.आई. उक्त कार्य करेगा, बशर्ते मस्जिद समिति कोई बाधा न डाले और ऐसा करने में ए.एस.आई. का सहयोग करे।

84. ए.एस.आई. द्वारा 27.2.2025 को दायर की गई रिपोर्ट प्रथम दृष्टया वादी की आशंका और आदेश XXVI नियम 9 और 10 सी.पी.सी. के तहत आवेदन दाखिल करने को साबित करती है, क्योंकि रिपोर्ट में कहा गया है कि मस्जिद के आंतरिक भाग को सुनहरे, लाल जैसे तेज रंगों के तामचीनी पेंट की मोटी परत से रंगा गया है। हरे और पीले रंग से स्मारक की मूल सतह छुपाती है। रिपोर्ट में आगे पता चलता है कि टीम के अवलोकन के अनुसार उक्त आधुनिक तामचीनी पेंट अच्छी स्थिति में है और इसे फिर से रंगने की कोई आवश्यकता नहीं है।

85. इस प्रकार, स्थानीय जांच की अनुमति किसी भी तरह से पुनरीक्षणकर्ता के अधिकार को प्रभावित नहीं करती है, केवल जमीनी वास्तविकता जो मौजूद है, उसे अधिवक्ता आयोग द्वारा अपनी रिपोर्ट के माध्यम से

अभिलेखों पर लाया जाएगा, जिसे स्वीकार करने से पहले पुनरीक्षणकर्ता द्वारा आपत्ति की जा सकती है और आदेश XXVI सी.पी.सी. के नियम 10(2) के तहत अभिलेखों का हिस्सा बनाया जा सकता है।

86. इस न्यायालय के समक्ष ए.एस.आई. द्वारा दायर रिपोर्ट और पेनड्राइव दोनों को विचारण न्यायालय को प्रेषित किया जाए, जो कि विवादित कथित संपत्ति की सफेदी की अनुमति के लिए पुनरीक्षणकर्ता के आवेदन पर की गई जांच है, जो 27.2.2025 को ए.एस.आई. और पुनरीक्षणकर्ता मस्जिद के मुतवलिस के अधिकारियों की उपस्थिति में अवधारित की गई थी।

87. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, मुझे लगता है कि निचली अदालत ने दिनांक 19.11.2024 के आदेश को पारित करने में कोई अवैधता या अनियमितता नहीं की क्योंकि सामान्य सिविल नियमावली के नियम 68 और 69 सपठित आदेश XXVI नियम 9 के तहत पूरे प्रावधान का अनुपालन किया गया था और अदालत ने संतुष्टि दर्ज करने के बाद उसमें किए गए कथन के आधार पर आवेदन 8C की अनुमति दी और अधिवक्ता आयोग के लिए आदेश दिया।

88. इस प्रकार, ऊपर के रूप में तैयार किए गए प्रश्न संख्या-II, प्रतिपक्षियों के खिलाफ और वादी प्रतिपक्षी संख्या-1 से 8 के पक्ष में नकारात्मक उत्तर दिया गया है।

प्रश्न संख्या-III

89. सुनवाई के दौरान, पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने वादी-प्रतिपक्षी संख्या-1 से 8 द्वारा इस आधार पर स्थापित वाद की स्थिरता के बारे में आपत्ति जताई थी कि इसे अधिनियम वर्ष 1991 द्वारा प्रतिबंधित किया गया था और अधिनियम वर्ष 1958 के प्रावधान आकर्षित नहीं होंगे। हालांकि यह पुनरीक्षण केवल आवेदन 3सी और 8सी पर पारित आदेश पर सवाल उठाता है, जो मुकदमे की स्थापना और अधिवक्ता आयोग की नियुक्ति के संबंध में हैं।

90. इस प्रश्न को तय करने के लिए, अधिनियम वर्ष 1904, अधिनियम वर्ष 1958 और अधिनियम वर्ष 1991 के प्रावधानों को अधिनियम वर्ष 1958 की धारा 18 के तहत राहत की मांग करते हुए दायर किए गए मुकदमे की स्थिरता के संबंध में स्कैन करना होगा।

91. प्राचीन स्मारक संरक्षण अधिनियम, 1904 ब्रिटिश शासन के दौरान प्राचीन स्मारकों और पुरातात्विक, ऐतिहासिक या कलात्मक रुचि की वस्तुओं के संरक्षण के उद्देश्य से अधिनियमित किया गया था। इसमें प्राचीन स्मारकों के संरक्षण के साथ-साथ तस्करी पुरावशेषों पर नियंत्रण और कुछ स्थानों पर उत्खनन और प्राचीन स्मारकों के कुछ मामलों में सुरक्षा और अधिग्रहण का भी प्रावधान किया गया है। यह 18.03.1904 को लागू हुआ।

92. धारा 2(1) में "प्राचीन स्मारक" को परिभाषित किया गया है जो निम्नानुसार है: -

"(1) "प्राचीन स्मारक" से कोई संरचना, निर्माण या स्मारक, या कोई तुमुलस या अंतःकरण का स्थान, या कोई गुफा, चट्टान-मूर्तिकला, शिलालेख या मोनोलिथ, जो ऐतिहासिक, पुरातात्विक या कलात्मक रुचि का है, या उसके किसी भी अवशेष का अर्थ है, और इसमें शामिल हैं-

(क) किसी प्राचीन स्मारक का स्थान क्या है;

(ख) किसी प्राचीन स्मारक के स्थल से सटी भूमि का वह भाग जो ऐसे स्मारक में बाड़ लगाने या ढकने या अन्यथा संरक्षित करने के लिए अपेक्षित हो; और

(ग) किसी प्राचीन स्मारक तक पहुंच और उसके सुविधाजनक निरीक्षण के साधन कौन-कौन से हैं;

93. धारा 3 में "संरक्षित स्मारकों" का प्रावधान है, जो निम्नानुसार है: -

"3. संरक्षित स्मारक–(1) स्थानीय सरकार, [राजपत्र] में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के अर्थ के भीतर एक प्राचीन स्मारक को संरक्षित स्मारक घोषित कर सकेगी।

(2) उपधारा (1) के अधीन प्रकाशित प्रत्येक अधिसूचना की एक प्रति स्मारक पर या उसके आस-पास एक विशिष्ट स्थान पर लगाई जाएगी, साथ ही इस सूचना के साथ कि स्थानीय सरकार द्वारा प्राप्त अधिसूचना के जारी करने पर किसी भी आपत्ति को उस तारीख से एक महीने के भीतर विचार किया जाएगा जब इसे इस प्रकार निर्धारित किया गया है।

(3) एक महीने की उक्त अवधि की समाप्ति पर, स्थानीय सरकार, आपत्तियों, यदि कोई हो, पर विचार करने के बाद, अधिसूचना की पुष्टि करेगी या वापस ले लेगी।

(4) इस धारा के अधीन प्रकाशित अधिसूचना, जब तक कि इसे वापस नहीं ले लिया जाता है, इस तथ्य का निर्णायक प्रमाण होगा कि जिस स्मारक से वह संबंधित है वह इस अधिनियम के अर्थ में एक प्राचीन स्मारक है।

94. धारा 5 में "समझौते द्वारा प्राचीन स्मारक के संरक्षण" का प्रावधान है, जो निम्नानुसार है:

"5. समझौते द्वारा प्राचीन स्मारक का संरक्षण – (1) कलेक्टर स्थानीय सरकार की पूर्व स्वीकृति से स्वामी को अपने जिले में किसी संरक्षित स्मारक के संरक्षण के लिए स्थानीय सरकार के साथ एक समझौता करने का प्रस्ताव कर सकेगा।

(2) इस धारा के तहत एक समझौता निम्नलिखित मामलों के लिए प्रदान कर सकता है, या उनमें से ऐसे के लिए जो समझौते को शामिल करने के लिए समीचीन पाया जा सकता है: -

अनुवादित

(क) स्मारक का रख-रखाव कितना है;

(ख) स्मारक की अभिरक्षा और किसी भी व्यक्ति के कर्तव्य क्या हैं जो इसे देखने के लिए नियोजित किया जा सकता है;

(ग) स्मारक को नष्ट करने, हटाने, बदलने या विरूपित करने या स्मारक की साइट पर या उसके आस-पास निर्माण करने के मालिक के अधिकार का प्रतिबंध;

(घ) स्मारक का निरीक्षण या रखरखाव करने के लिए जनता या जनता के किसी हिस्से और मालिक या कलेक्टर द्वारा प्रतिनियुक्त व्यक्तियों को पहुंच की अनुमति दी जाने वाली सुविधाएं;

(ङ) यदि जिस भूमि पर स्मारक स्थित है, उसके मालिक द्वारा बिक्री के लिए पेशकश की जाती है तो स्थानीय सरकार को क्या नोटिस दिया जाएगा और ऐसी भूमि या ऐसी भूमि के किसी विनिर्दिष्ट हिस्से को उसके बाजार-मूल्य पर खरीदने के लिए स्थानीय सरकार को आरक्षित किए जाने का अधिकार क्या है;

(च) स्मारक के संरक्षण के संबंध में मालिक या स्थानीय सरकार द्वारा किए गए किसी भी खर्च का भुगतान;

(छ) स्मारक के संरक्षण के संबंध में स्थानीय सरकार द्वारा किसी व्यय का बीमा किए जाने पर स्मारक के संबंध में सरकार को कौन-कौन से स्वामित्व या अन्य अधिकार दिए जाने हैं;

(ज) समझौते से उत्पन्न होने वाले किसी भी विवाद को तय करने के लिए एक प्राधिकरण की नियुक्ति; और

(i) स्मारक के परिरक्षण से संबंधित कोई भी मामला जो स्वामी और स्थानीय सरकार के बीच समझौते का उचित विषय है।

[* * *]

(4) इस धारा के तहत एक समझौते की शर्तों को समय-समय पर स्थानीय सरकार की मंजूरी से और मालिक की सहमति से बदला जा सकता है।

(5) स्थानीय शासन की पूर्व स्वीकृति से कलेक्टर इस धारा के तहत मालिक को लिखित रूप में छह महीने का नोटिस देने पर एक करार को समाप्त कर सकता है।

(6) मालिक कलेक्टर को छह महीने का नोटिस देने पर इस धारा के तहत एक समझौते को समाप्त कर सकता है।

(7) इस धारा के तहत एक समझौता उस स्मारक के मालिक होने का दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति पर बाध्यकारी होगा जिससे वह संबंधित है, किसी पार्टी के माध्यम से या जिसके द्वारा या जिसकी ओर से समझौता निष्पादित किया गया था।

(8) किसी स्मारक की रक्षा या संरक्षण में किए गए खर्चों के संबंध में स्थानीय सरकार द्वारा प्राप्त कोई भी अधिकार इस धारा के तहत एक समझौते की समाप्ति से प्रभावित नहीं होगा।

अनुवादित

95. अधिनियम वर्ष 1904 के प्रवर्तन के बाद, विचाराधीन संपत्ति को अधिसूचना संख्या-1412-एम दिनांक 18.11.1920 द्वारा अधिनियम की धारा 3(3) के तहत संरक्षित स्मारक के रूप में घोषित किया गया था और संयुक्त प्रांत राजपत्र के भाग-I में प्रकाशित किया गया था। 22 दिसंबर 1920 को उपराज्यपाल ने अधिसूचना की पुष्टि की और संभल में स्थित जुमा मस्जिद, जिला-मुरादाबाद अधिनियम वर्ष 1904 के तहत एक संरक्षित स्मारक बन गया। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा अपने जवाबी हलफनामे में अधिसूचना वर्ष 1920 की प्रति अभिलेखों पर लाई गई है।

96. वर्ष 1920 की अधिसूचना के अनुसार, संभल में जुमा मस्जिद के मुतवल्ली ने 13/19.01.1927 को परिषद में भारत के राज्य सचिव की ओर से कार्य करते हुए मुरादाबाद के कलेक्टर के साथ एक समझौता किया, जिसे 01.03.1927 को पंजीकृत किया गया था, निम्नानुसार है: -

"समझौते की प्रति:
यह गिरमिटिया प्राचीन स्मारक संरक्षण अधिनियम VII वर्ष 1904 के 13 वें दिन, एक हिस्से के जुमा मस्जिद संभल (इसके बाद मुतवल्ली कहा जाता है) के मुतवल्ली और दूसरे हिस्से के भारत के राज्य सचिव (इसके बाद राज्य सचिव कहा जाता है) की ओर से मुरादाबाद के कलेक्टर के बीच के प्रावधान के अधीन किया गया था। जबकि जुमा मस्जिद (इसके बाद उक्त मस्जिद के रूप में संदर्भित) को आगरा और अवध संयुक्त प्रांत की सरकार की अधिसूचना द्वारा उक्त अधिनियम की धारा (3) के उपबंध के तहत विधिवत संरक्षित स्मारक घोषित किया गया है। दिनांक और जबकि उक्त अधिनियम की धारा V के तहत निष्पादित इस करार की शर्तों को आगरा और अवध संयुक्त प्रांत की सरकार द्वारा अनुमोदित किया गया है। गवाह इस प्रकार है, अर्थात्:-

1. उक्त मस्जिद का रखरखाव राज्य सचिव की ओर से कार्य करने वाले पुरातत्व विभाग द्वारा मरम्मत में किया जाएगा, बशर्ते कि यह पूरी तरह से पुरातत्व विभाग के विवेक के अधीन होगा कि यदि कोई मरम्मत हो, तो क्या समय-समय पर इस शर्त के तहत मरम्मत की जाएगी। इस तरह की मरम्मत की लागत किसी भी बंदोबस्ती से पूरी की जाएगी जो उक्त मस्जिद को मरम्मत में रखने के उद्देश्य से या उस उद्देश्य के लिए बनाई गई हो सकती है, और राज्य सचिव द्वारा प्रदान की गई अतिरिक्त धनराशि केवल तभी होगी जब उक्त मस्जिद से जुड़ी बंदोबस्ती निधि आवश्यक मरम्मत के लिए अपर्याप्त साबित होती है।

2. मुतवल्ली मुरादाबाद के कलेक्टर की लिखित अनुमति के बिना उक्त मस्जिद की कोई मरम्मत नहीं करेंगे।

3. कि मुतवल्ली उक्त मस्जिद को नष्ट नहीं करेंगे, हटाए नहीं, बदलेंगे, विकृत नहीं करेंगे या खतरे में नहीं डालेंगे।

4. मुतवल्ली कलेक्टर, मुरादाबाद की लिखित अनुमति के बिना उक्त मस्जिद के स्थल पर या उसके आस-पास निर्माण नहीं करेंगे।

5. राज्य सचिव उक्त मस्जिद में इस्लाम के सिद्धांतों के अनुसार धार्मिक अनुष्ठानों के प्रदर्शन में किसी भी तरह से हस्तक्षेप या बाधा नहीं डालेगा।

6. यह कि आगंतुकों को उक्त मस्जिद तक मुफ्त पहुंच होगी, लेकिन मुतवल्ली और मुस्लिम जनता की धार्मिक संवेदनशीलता को ध्यान में रखते हुए।

7. कि मुतवल्ली पुरातत्व अधिकारियों या ऐसे अन्य व्यक्तियों को अनुमति देंगे जिन्हें कलेक्टर मुरादाबाद द्वारा उक्त मस्जिद की मरम्मत या निरीक्षण करने की अनुमति दी जाए।

8. कि मुतवल्ली उक्त मस्जिद का संरक्षक होगा और इसे साफ-सुथरा रखने के लिए जिम्मेदार होगा।

9. यह समझौता उक्त मस्जिद के मुतवल्ली होने का दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए बाध्यकारी होगा।

10. कि आगरा और अवध के संयुक्त प्रांत की सरकार की मंजूरी और मुतवल्ली की सहमति से अवसर उत्पन्न होने पर समझौते की शर्तों को समय-समय पर बदला जा सकता है।

11. कि कलेक्टर, मुरादाबाद आगरा और अवध संयुक्त प्रांत की सरकार की पूर्व मंजूरी से मुतवल्लियों को लिखित रूप में छह महीने का नोटिस देने के समझौते को समाप्त कर सकता है।

12. कि इसी तरह मुतवल्ली राज्य सचिव को छह महीने का नोटिस देने पर समझौते को समाप्त कर सकते हैं, बशर्ते कि मुतवल्ली को राज्य सचिव को भुगतान करना होगा, यदि राज्य सचिव ने उक्त समझौते की समाप्ति से पहले या ऐसे हिस्से के दौरान उक्त मस्जिद के भवन, रखरखाव और रखरखाव में राज्य सचिव द्वारा किए गए सभी खर्चों का दावा किया है इसके रूप में समझौते लागू हो सकता है.

13. रुहेलखंड मंडल के आयुक्त को समझौते से उत्पन्न होने वाले किसी भी विवाद पर निर्णय लेने का अधिकार होगा।

14. कि मुतवल्ली कलेक्टर मुरादाबाद को लिखित रूप में छह महीने का नोटिस देंगे यदि उक्त मस्जिद या उसके किसी भी हिस्से को बिक्री के लिए पेश किया जाता है।

15. राज्य सचिव अपने लिए उक्त मस्जिद या उसके किसी भी हिस्से को उसके बाजार मूल्य पर खरीदने का अधिकार सुरक्षित रखता है, यदि इसे सह-शेयरर के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को मुतवल्ली द्वारा बिक्री के लिए पेश किया जाता है। एन.बी. धार्मिक उद्देश्य के लिए उपयोग किए जाने वाले स्मारकों के मामले में शर्त

संख्या-14 और 15 आवश्यक नहीं होगी, चूंकि इस तरह के स्मारक सार्वजनिक संपत्ति होने के कारण बिक्री के लिए पेश नहीं किए जा सकते हैं।

इस बात की गवाही में कि मुतवल्ली को यहां अपना हाथ रखना है और मुरादाबाद के कलेक्टर ने राज्य सचिव की ओर से यहां अपना हाथ और अपने कार्यालय की मुहर लगाई है।

मोहम्मद फैगिलुर रहमान
एसडी/एपी कलेक्टर, ईएसक्यूआर आई.सी.एस.
कलेक्टर, मुरादाबाद
19.1.1927
(1 मार्च 1927 को पंजीकृत)"

97. कथित समझौते में यह प्रावधान किया गया था कि राज्य सचिव की ओर से भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा संरचना का रखरखाव और मरम्मत की जाएगी और यह निर्धारित करना पुरातत्व विभाग के पूरे विवेक पर था कि समय-समय पर किसी मरम्मत की आवश्यकता है या नहीं। मरम्मत की लागत मस्जिद को मरम्मत में रखने के उद्देश्य से बनाई गई बंदोबस्ती द्वारा वहन की जानी थी और यदि धन अपर्याप्त साबित होता है तो राज्य को प्रदान करना था। मुतवल्लियों को मुरादाबाद के कलेक्टर की अनुमति के बिना उक्त मस्जिद में कोई भी मरम्मत करने से रोका गया था। कथित समझौते से जुड़ी तीसरी शर्त में मुतवल्ली को उक्त मस्जिद को नष्ट करने, हटाने, बदलने, विरूपित करने या खतरे में डालने से रोकने का प्रावधान किया गया था। मुरादाबाद के कलेक्टरी की अनुमति के बिना स्थल के निकट कोई निर्माण कार्य नहीं किया जाना था। इसके अतिरिक्त, शर्त संख्या 6 में यह उपबंध किया गया था कि आगंतुकों को उक्त मस्जिद में स्वतंत्र प्रवेश की अनुमति होगी, किंतु मुतवल्लियों की भावनाओं/संवेदनशीलताओं का यथोचित ध्यान रखा जाएगा। कथित अनुबंध द्वारा पुरातत्त्व विभाग तथा उसके अधिकारियों को स्थल की मरम्मत एवं निरीक्षण करने की भी अनुमति प्रदान की गई थी। शर्त संख्या 8 में यह प्रावधान किया गया था कि मुतवल्ली मस्जिद के संरक्षक होंगे।

98. इस प्रकार, यह स्पष्ट रूप से कथित समझौते के पढ़ने से बाहर निकलता है कि मुतवल्ली उसमें खड़ी संरचना का संरक्षक होगा। इस प्रकार निष्पादित समझौता उस समय किसी भी पक्ष के प्रश्न में संपत्ति के स्वामित्व को परिभाषित नहीं करता है जब कथित समझौता किया गया था।

99. स्वतंत्रता के बाद, प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक और पुरातत्व स्थल और अवशेष (राष्ट्रीय महत्व की घोषणा) अधिनियम, 1951(इसके बाद "अधिनियम वर्ष 1951" कहा जाता है) अधिनियमित किया गया था। अधिनियम वर्ष 1951 ने केवल कुछ स्मारकों आदि को राष्ट्रीय महत्व का घोषित किया और अधिनियम वर्ष 1904 भी ऐसे स्मारकों पर लागू होता है।

100. भारत के संविधान के लागू होने के बाद, उक्त "प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारकों, पुरातात्विक स्मारकों, पुरातात्विक स्थलों और अवशेषों" को तीन शीर्षों के तहत विभाजित किया गया था और संघ सूची, राज्य सूची

और समवर्ती सूची के तहत 7 वीं अनुसूची में स्थान दिया गया था। संघ सूची के तहत, प्रविष्टि 67 प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारकों और अभिलेखों और पुरातात्विक स्थलों और अवशेषों को संसद द्वारा घोषित या संसद द्वारा बनाए गए कानून को राष्ट्रीय महत्व का प्रदान करती है। सूची II-राज्य सूची के तहत, प्रविष्टि 12 के तहत, प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारकों और अभिलेखों को संसद द्वारा या उसके तहत राष्ट्रीय महत्व के लिए घोषित किए गए कानून के अलावा अन्य अभिलेखों को स्थान मिलता है।

101. इसी प्रकार, सूची III-समवर्ती सूची के अंतर्गत, प्रविष्टि 40 में संसद द्वारा बनाए गए कानून द्वारा या उसके अधीन घोषित पुरातात्विक स्थलों और अवशेषों के अलावा अन्य अवशेषों का राष्ट्रीय महत्व का प्रावधान है।

102. अधिनियम वर्ष 1904 सभी प्राचीन स्मारकों को नियंत्रित करता है चाहे वे केंद्रीय क्षेत्र या राज्य क्षेत्र के अंतर्गत आते हों। कार्यकारी शक्ति केंद्र सरकार में निहित है।

103. केंद्र में एक स्व-निहित कानून बनाने की आवश्यकता महसूस की गई जो सूची-I की प्रविष्टि 67 के अंतर्गत आने वाले राष्ट्रीय महत्व के प्राचीन स्मारकों और समवर्ती सूची प्रविष्टि 40 के अंतर्गत आने वाले पुरातात्विक स्थलों और अवशेषों पर निर्णायक रूप से लागू होगा। इसके साथ ही, राज्य सरकारों को राज्य सूची में प्रविष्टि 12 के अंतर्गत आने वाले प्राचीन स्मारकों के संबंध में भी इसी प्रकार का कानून अधिनियमित करने की सलाह दी जानी थी।

104. अधिनियम संख्या-24 वर्ष 1958 को इस उद्देश्य के साथ अधिनियमित किया गया था और 28.08.1958 को धारा 39 के साथ निरसन और बचत खंड के लिए लागू किया गया था। पहले के अधिनियमों को निरस्त कर दिया गया था, जबकि अधिनियम वर्ष 1904 के अनुसार किए गए या किए जाने के लिए छोड़ी गई सभी चीजें सहेजी गई थीं।

105. अधिनियम वर्ष 1958 के तहत, "प्राचीन स्मारक" को धारा 2(ए) में निम्नानुसार परिभाषित किया गया था: -

"2(ए) "प्राचीन स्मारक" का अर्थ है कोई भी संरचना, निर्माण या स्मारक, या कोई भी तुमुलस या इंटरमेंट का स्थान, या कोई गुफा, चट्टान-मूर्तिकला, शिलालेख या मोनोलिथ, जो ऐतिहासिक, पुरातात्विक या कलात्मक रुचि का है और जो कम से कम एक सौ वर्षों से अस्तित्व में है, और इसमें शामिल हैं-

(i) एक प्राचीन स्मारक के अवशेष,

(ii) एक प्राचीन स्मारक का स्थल,

(iii) किसी प्राचीन स्मारक के स्थल से सटी भूमि का ऐसा भाग जो ऐसे स्मारक में बाड़ लगाने या ढकने या अन्यथा परिरक्षण के लिए अपेक्षित हो, और

(iv) एक प्राचीन स्मारक तक पहुंच और सुविधाजनक निरीक्षण के साधन;

106. धारा 2(i) "संरक्षित क्षेत्र" को परिभाषित करती है जो निम्नानुसार है: -

"2 (i) "संरक्षित क्षेत्र" का अर्थ है कोई भी पुरातात्विक स्थल और अवशेष जो इस अधिनियम द्वारा या उसके तहत राष्ट्रीय महत्व का घोषित किया गया है;"

107. धारा 3 में प्रावधान है कि सभी प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक और सभी पुरातात्विक स्थल और अवशेष जिन्हें राष्ट्रीय महत्व का घोषित किया गया है, उन्हें प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक माना जाएगा। धारा 4 ने केंद्र सरकार को किसी भी प्राचीन स्मारक या पुरातात्विक स्थल को घोषित करने की शक्ति प्रदान की, जिसे आज तक घोषित नहीं किया गया है, उसे राष्ट्रीय महत्व के रूप में घोषित किया जा सकता है। धारा 5 एक संरक्षित स्मारक में अधिकारों के अधिग्रहण का प्रावधान करती है जबकि धारा 6 समझौते द्वारा संरक्षित स्मारक के संरक्षण की बात करती है। धारा 5 और 6 दोनों को यहां नीचे निकाला गया है: -

"5. संरक्षित स्मारक में अधिकारों का अधिग्रहण-(1) महानिदेशक, केंद्र सरकार की मंजूरी से, किसी संरक्षित स्मारक की खरीद कर सकता है, या पट्टा ले सकता है, या उपहार या वसीयत स्वीकार कर सकता है।

2) जहां एक संरक्षित स्मारक एक मालिक के बिना है, महानिदेशक, आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, स्मारक की संरक्षकता ग्रहण कर सकता है।
(3) किसी संरक्षित स्मारक का स्वामी लिखित लिखत द्वारा महानिदेशक को स्मारक का संरक्षक बना सकेगा और महानिदेशक, केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति से, ऐसी संरक्षकता स्वीकार कर सकेगा।
(4) जब महानिदेशक ने उपधारा (3) के अधीन किसी स्मारक की संरक्षकता स्वीकार कर ली है, तो स्वामी के पास इस अधिनियम में स्पष्ट रूप से उपबंधित किए जाने को छोड़कर, स्मारक में और उसके प्रति समान सम्पत्ति, अधिका और हित होगा मानो महानिदेशक को उसका संरक्षक गठित नहीं किया गया हो।
(5) जब महानिदेशक ने उपधारा (3) के अधीन किसी स्मारक की संरक्षकता स्वीकार कर ली है, तो धारा 6 के अधीन निष्पादित करारों से संबंधित इस अधिनियम के उपबंध उक्त उपधारा के अधीन निष्पादित करारों पर लिखित रूप में लागू होंगे। (6) इस धारा की कोई बात प्रथागत धार्मिक अनुष्ठानों के लिए किसी संरक्षित स्मारक के उपयोग को प्रभावित नहीं करेगी।

6. समझौते द्वारा संरक्षित स्मारक का संरक्षण(1) कलेक्टर, जब केंद्र सरकार द्वारा ऐसा निदेश दिया जाता है, तो स्मारक के रखरखाव के लिए एक निर्दिष्ट अवधि के भीतर केंद्र सरकार के साथ एक समझौता करने के लिए संरक्षित स्मारक के मालिक को प्रस्ताव करेगा।

(2) इस धारा के तहत एक समझौता निम्नलिखित सभी या किसी भी मामले के लिए प्रदान कर सकता है, अर्थात्: -

(क) स्मारक का रख-रखाव कितना है;

(ख) स्मारक की अभिरक्षा और इसकी देखभाल के लिए नियुक्त किए जाने वाले किसी व्यक्ति के कर्तव्य क्या हैं;

(c) मालिक के अधिकार का प्रतिबंध-

(i) किसी भी प्रयोजन के लिए स्मारक का उपयोग करना,

(ii) स्मारक में प्रवेश या निरीक्षण के लिए कोई शुल्क वसूलना,

(iii) स्मारक को नष्ट करना, हटाना, बदलना या विरूपित करना, या (iv) स्मारक की साइट पर या उसके पास निर्माण करना;

(घ) स्मारक का निरीक्षण या रख-रखाव करने के लिए जनता या उसके किसी खंड या पुरातत्वीय अधिकारियों या स्वामी या किसी पुरातत्वीय अधिकारी या कलेक्टर द्वारा प्रतिनियुक्त व्यक्तियों को पहुंच की अनुमति दी जाने वाली सुविधाएं क्या हैं;

(ङ) यदि स्मारक जिस भूमि पर स्थित है या उसके आस-पास की कोई भूमि स्वामी द्वारा बिक्री के लिए प्रस्तावित की जाती है उसके संबंध में केन्द्र सरकार को क्या नोटिस दिया जाएगा और ऐसी भूमि अथवा ऐसी भूमि के किसी विनिर्दिष्ट भाग को उसके बाजार मूल्य पर खरीदने के लिए केन्द्रीय सरकार को क्या अधिकार दिया जाएगा;

(च) स्मारक के रख-रखाव के संबंध में स्वामी अथवा केन्द्र सरकार द्वारा किए गए किसी व्यय का भुगतान;

(छ) स्मारक के रख-रखाव के संबंध में केन्द्र सरकार द्वारा कोई व्यय किए जाने पर स्मारक के संबंध में केन्द्र सरकार को कौन-कौन से स्वामित्व या अन्य अधिकार दिए जाते हैं;

(ज) समझौते से उत्पन्न होने वाले किसी भी विवाद का निर्णय लेने के लिए एक प्राधिकरण की नियुक्ति; और

(i) स्मारक के अनुरक्षण से संबंधित कोई भी मामला जो स्वामी और केन्द्र सरकार के बीच समझौते का उचित विषय है।

(3) केन्द्र सरकार या स्वामी इस धारा के अधीन करार के निष्पादन की तारीख से तीन वर्ष की समाप्ति के पश्चात् किसी भी समय, दूसरे पक्ष को लिखित रूप में छह माह का नोटिस देने पर उसे समाप्त कर सकेगा: बशर्ते कि जहां मालिक द्वारा करार समाप्त कर दिया जाता है, वह केंद्र सरकार को समझौते की समाप्ति से ठीक पहले पांच वर्षों के दौरान स्मारक के रखरखाव पर उसके द्वारा किए गए व्यय, यदि कोई हो, का भुगतान करेगा या, यदि समझौता उस अवधि के दौरान कम अवधि के लिए लागू रहा है, जिस अवधि के दौरान समझौता लागू था।

(4) इस धारा के तहत एक समझौता किसी भी व्यक्ति पर बाध्यकारी होगा जो उस स्मारक का मालिक होने का दावा करता है जिससे वह संबंधित है, किसी पार्टी के माध्यम से या उसके तहत जिसके द्वारा या जिसकी ओर से समझौता निष्पादित किया गया था।

108. इसी प्रकार, धारा 18 संरक्षित स्मारक तक पहुंच के अधिकार की बात करती है। इसके अनुसार, जनता को किसी भी संरक्षित स्मारक तक पहुंचने का अधिकार होगा। प्रासंगिक प्रावधान यहां दिए गए हैं:-

"18. संरक्षित स्मारकों तक पहुंच का अधिकार "इस अधिनियम के तहत बनाए गए किसी भी नियम के अधीन, जनता को किसी भी संरक्षित स्मारक तक पहुंच का अधिकार होगा"

109. इसके बाद केन्द्र सरकार ने ऐसे नियम बनाए जिन्हें प्राचीन संस्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष नियम, 1959 कहा जाता है।

110. नियम 3 पुनरीक्षणकर्ता द्वारा भरोसा किया गया है, जिसे यहां नीचे निकाला गया है:

"3. समझौते द्वारा शासित स्मारक–(1) संरक्षित स्मारकों तक पहुँच, जिसके संबंध में धारा 6 के अधीन स्वामी और केन्द्र सरकार के बीच कोई करार किया गया है, या जिसके संबंध में धारा 9 के अधीन उस सरकार द्वारा आदेश दिया गया है, करार के उपबंधों द्वारा शासित होगा या, यथास्थिति, आदेश; और नियम 4, 5, 6 या 7 में कुछ भी ऐसे किसी भी समझौते या आदेश को प्रभावित करने के रूप में नहीं माना जाएगा।

(2) ऐसे प्रत्येक समझौते या आदेश के प्रासंगिक प्रावधानों की एक प्रति संबंधित स्मारक के एक विशिष्ट भाग में प्रदर्शित की जाएगी।

111. पूर्वोक्त नियम के पढ़ने से, यह स्पष्ट है कि धारा 6 के तहत मालिक और केंद्र सरकार के बीच संरक्षित स्मारक के संबंध में निष्पादित करार, या धारा 9 के तहत सरकार द्वारा किए गए किसी भी आदेश, समझौते के प्रावधानों द्वारा शासित होगा, जैसा भी मामला हो। 1927 में किए गए कथित समझौते से प्रथम दृष्टया पता चलता है कि मुतवल्ली विवादित संरचना के संरक्षक हैं। कथित समझौता कहीं भी पुनरीक्षणकर्ता के स्वामित्व को अभिलेखों नहीं करता है। यह साक्ष्य का मामला है जिसे मुकदमे की सुनवाई के दौरान निचली अदालत द्वारा देखा जाएगा।

112. इस प्रकार, अधिनियम वर्ष 1904 के पढ़ने से, उसके बाद, वर्ष 1920 की अधिसूचना और बाद में वर्ष 1927 और अधिनियम वर्ष 1958 के कथित समझौते से, यह स्पष्ट है कि विवाद में संरचना वर्ष 1920 में अधिसूचित एक संरक्षित प्राचीन स्मारक है। अधिसूचना के बाद यह कहा गया था कि संरक्षित स्मारक के संरक्षण के लिए तत्कालीन कलेक्टर, मुरादाबाद द्वारा भारत के राज्य सचिव और जुमा मस्जिद के मुतवल्ली की ओर से कार्य करते हुए एक समझौता किया गया था। 1920 में तत्कालीन सरकार द्वारा की गई घोषणा को पुनरीक्षणकर्ता द्वारा किसी भी न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई थी और यह अंतिम हो गई थी। वास्तव में, पुनरीक्षणकर्ता ने वर्ष 1927 में इस तथ्य को स्वीकार करते हुए एक समझौता किया था कि यह अधिनियम वर्ष 1904 द्वारा शासित एक संरक्षित स्मारक है।

113. श्री नकवी द्वारा स्थापित तर्क कि मस्जिद के संबंध में विवाद पहले से ही 1877 में सुलझा लिया गया था और इस न्यायालय द्वारा डिक्री की पुष्टि की गई थी, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि निर्णय वर्ष 1877 एक पुरानी इमारत की बात करता है, जबकि 1920 में जुमा मस्जिद को अधिनियम वर्ष 1904 के तहत संरक्षित स्मारक के रूप में घोषित किया गया था। यदि वर्ष 1877 में पुनरीक्षणकर्ता के पक्ष में शीर्षक वाद का निर्णय किया गया था, तो यह सवाल उठता है कि पुनरीक्षणकर्ता ने वर्ष 1927 में विवाद में संरचना को अधिनियम वर्ष 1904 के अधीन करते हुए एक समझौता क्यों किया था। कथित समझौता पुनरीक्षणकर्ता के स्वामित्व को प्रकट नहीं करता है और स्पष्ट रूप से कहता है कि पुरातत्व विभाग द्वारा अधिनियम वर्ष 1904 के अनुसरण में संरचना को संरक्षित करने की आवश्यकता है।

114. कथित समझौते वर्ष 1927 को स्वयं पुनरीक्षणकर्ता द्वारा अभिलेखों पर लाया गया है। यह पुनरीक्षण की कागजी किताब का हिस्सा है और सफेदी के लिए आवेदन पर विचार करने के दौरान उनका पूरा जोर उक्त करार पर था।

115. इसके विपरीत, मामले की सुनवाई के दौरान, श्री नकवी ने जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया कि अधिनियम वर्ष 1991 वादी द्वारा दायर मुकदमे पर रोक लगाता है क्योंकि यह किसी भी पूजा स्थल के रूपांतरण को प्रतिबंधित करता है और 15.08.1947 को मौजूद किसी भी पूजा स्थल के धार्मिक चरित्र को बनाए रखने का प्रावधान करता है।

116. प्रस्तुत मामले में, वादी ने शुरू में जुलाई, 2024 के महीने में, अधिनियम वर्ष 1958 की धारा 18 के तहत सार्वजनिक पहुंच के अधिकार के लिए ए.एस.आई. को नोटिस दिया था। वादपत्र में की गई प्रार्थना अधिनियम वर्ष 1904 के तहत वर्ष 1920 में धारा 3 के तहत जारी अधिसूचना के मद्देनजर विवादित ढांचे तक पहुंच के अधिकार की मांग करने के लिए है और यह भी घोषणा करने की मांग करती है कि ए.एस.आई. का उस पर पूर्ण नियंत्रण है।

117. पुनरीक्षणकर्ता द्वारा स्थापित पूरा मामला वर्ष 1927 में तत्कालीन कलेक्टर, मुरादाबाद और पुनरीक्षणकर्ता के बीच हुए कथित समझौते के आधार पर है। एक बार जब पुनरीक्षणकर्ता ने स्वयं कथित समझौते के निष्पादन को स्वीकार कर लिया जो अधिनियम वर्ष 1904 के अनुसरण में था, अधिनियम वर्ष 1991 के प्रवर्तन से पहले और उसमें उल्लिखित कट ऑफ तिथि से पहले, वह इस स्तर पर यह नहीं कह सकता है कि मुकदमा अधिनियम वर्ष 1991 के प्रावधानों द्वारा वर्जित है।

118. यह ऐसा मामला नहीं है जहां पूजा स्थल का कोई रूपांतरण हो रहा हो या पूजा स्थल के किसी भी धार्मिक चरित्र को बदला जा रहा हो। वादी ने केवल अधिनियम वर्ष 1958 की धारा 18 के तहत वर्ष 1920 में घोषित संरक्षित स्मारक तक पहुंच का अधिकार मांगा है। एक बार यह स्वीकार की गई स्थिति है कि विचाराधीन संरचना को 1920 में संरक्षित स्मारक के रूप में घोषित किया गया था और इसे आज तक चुनौती नहीं दी गई

है, यह उस विधि के प्रावधानों द्वारा शासित किया जाना अनिवार्य है, जो अधिसूचना जारी किए जाने के समय विद्यमान थी, तथा तत्पश्चात् ऐसे संरक्षित स्मारक को शासित करने हेतु अधिनियमित की गई विधियों के प्रावधानों द्वारा।

119. अधिनियम वर्ष 1904 और 1951 को निरस्त कर दिया गया और वर्ष 1958 में नया कानून बनाया गया, जिसमें पहले हुई सभी कार्रवाइयों को बचाया गया। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि 1920 में संरक्षित स्मारक के रूप में घोषित संरचना की स्थिति अभी भी अधिनियम वर्ष 1958 के तहत संरक्षित स्मारक के रूप में मौजूद है। पुनरीक्षणकर्ता के अनुसार, वर्ष 1927 में निष्पादित कथित समझौता अभी भी जमीन पर कायम है और पुनरीक्षणकर्ता और राज्य के बीच संबंधों को नियंत्रित करता है।

120. एक बार, पुनरीक्षणकर्ता ने स्वयं को अधिनियम वर्ष 1904 के अधीन कर लिया है और उसके बाद, 1958 तक, वह अधिनियम वर्ष 1991 का आश्रय नहीं ले सकता है। वादपत्र वर्ष 2024 में पूजा स्थल के रूपांतरण या किसी भी स्थान के धार्मिक चरित्र को बदलने का कोई दावा नहीं है। वादी को अर्जित अधिकार अधिनियम वर्ष 1958 की धारा 18 के तहत दावा किया गया है।

121. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, मुझे लगता है कि अधिनियम वर्ष 1991 द्वारा प्रतिबंधित किए जाने वाले वादी द्वारा दायर मुकदमे को बाहर करने के संबंध में पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दिया गया तर्क इस स्तर पर पूरी तरह से गलत है। यह पुनरीक्षणकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-6 के लिए खुला है कि वह मुद्दे को तैयार करते समय, या आदेश VII नियम 11 सी.पी.सी. के तहत आवेदन पेश करके इस तरह के मुद्दे को उठाए।

122. तैयार किए गए प्रश्न का उत्तर पुनरीक्षणकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-6 के विरुद्ध और वादी के पक्ष में दिया गया है।

समाप्ति/निष्कर्ष

123. इस प्रकार, संक्षेप में, मुझे लगता है कि निचली अदालत ने धारा 80(2) सी.पी.सी. के तहत नोटिस की अवधि समाप्त होने से पहले वाद दायर करने के लिए अनुमति देने में कोई त्रुटि, अनियमितता या अवैधता नहीं की थी, क्योंकि सरकार या उसके अधिकारियों द्वारा प्रतिपक्षी संख्या-1 से 5 तक इस पर कभी आपत्ति नहीं की गई थी और पुनरीक्षणकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-6 एक निजी व्यक्ति होने के कारण धारा 80 के तहत आच्छादित नहीं किया गया है।

124. इसके अलावा, स्थानीय जांच के लिए आदेश XXVI नियम 9 के तहत आवेदन की अनुमति देने और अधिवक्ता आयोग की नियुक्ति करने के कार्य से पुनरीक्षणकर्ता के लिए कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ है क्योंकि रिपोर्ट की पुष्टि होने और सबूत के रूप में स्वीकार किए जाने और अभिलेखों का हिस्सा बनने से पहले उसे आदेश

XXVI नियम 10(2) सी.पी.सी. के चरण में उसी पर सवाल उठाने का अधिकार है। केवल एक आयोग हुआ था जिसका सर्वेक्षण 19.11.2024 को शुरू हुआ और 24.11.2024 को सुबह 11:00 बजे पूरा हुआ।

125. अंत में, ऊपर दर्ज किए गए निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत वाद प्रथम दृष्टया अधिनियम वर्ष 1991 के प्रावधानों द्वारा वर्जित नहीं है, वास्तव में, यह अधिनियम वर्ष 1958 की धारा 18 के तहत विवाद में संपत्ति तक पहुंच के अधिकार की मांग करते हुए दायर किया गया है।

126. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, मुझे लगता है कि अदालत द्वारा पारित दिनांक 19.11.2024 के आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है, जिसमें आवेदन पत्र संख्या-3 सी को अनुमति दी गई है, जिसमें स्थानीय जांच के लिए आयोग की नियुक्ति के लिए आवेदन पत्र संख्या-3 सी और आवेदन 8 सी को अनुमति दी गई है।

127. पुनरीक्षण विफल रहता है और इसे एतद्द्वारा **खारिज** किया जाता है। अंतरिम आदेश निरस्त होता है। मुकदमा आगे बढ़े। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1705

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल

प्रकरण अन्तर्गत अनुच्छेद 227 संख्या- 4101/2025 (सिविल)

कामता प्रसाद ... याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ और अन्य ... प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता:
श्री केशव हरि दीक्षित

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता:
ए.एस.जी.आई., सी.एस.सी., श्री राजेश कुमार जायसवाल, सुश्री सुष्मिता मुखर्जी, श्री श्वेताश्व अग्रवाल

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 227 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908-आदेश XLI नियम 27 - मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996-धारा 34--- अवर न्यायालय ने आदेश XLI नियम 27 के प्रावधानों की गलत व्याख्या की थी क्योंकि यह अपील के प्रकरण में लागू होता है जहां अपील का पक्ष अपीलीय चरण में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए आवेदन करता है। धारा 34 सारांश कार्यवाही है और यह अपील नहीं है जैसा कि अवर न्यायालय ने कहा है। याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज करने में अवर न्यायालय द्वारा आदेश XLI नियम 27 के प्रावधानों का आह्वान पूरी तरह से गलत है। ऐसा लगता है कि संबंधित न्यायालय आदेश XLI नियम 27 सीपीसी के साथ-साथ 1996 के अधिनियम की धारा 34 के दायरे को नहीं जानती है--- गलत धारणा पर अवर न्यायालय ने आदेश XLI नियम 27 सीपीसी के आधार पर आवेदन को खारिज करने के लिए आगे बढ़ाया है--- याचिकाकर्ता के आवेदन पर नए सिरे से विचार करने के लिए प्रकरण को अवर न्यायालय में वापस भेजा जाता है। (ई-15)

<u>संदर्भित प्रकरण की सूची-:</u>

1. एमके ग्लोबल फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड बनाम गिरधर सोंधी, एआईआर 2018 एससी 3894
2. अल्पाइन हाउसिंग डेवलपमेंट कॉर्प. प्राइवेट लिमिटेड बनाम अशोक एस. धारीवाल और अन्य, एआईआर 2023 एससी 558

अनुवादित

3. फिजा डेवलपर्स एंड इंटर-ट्रेड प्राइवेट लिमिटेड बनाम एएमसीआई इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, (2009) 17 एससीसी 796

(माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता की भूमि को भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (एनएचएआई) द्वारा वर्ष 2017 में राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम, 1956 की धारा 3 ए *(इसके बाद "1956 का अधिनियम" कहा जायेगा)* का उपयोग करते हुए सड़क चौड़ीकरण के लिए अधिग्रहित किया गया था। सक्षम प्राधिकारी/अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट ने 29.05.2018 को एक निर्णय दिया। उक्त अधिनिर्णय के खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा एक आपत्ति दर्ज की गई थी जिसे 15.12.2021 को खारिज कर दिया गया था और 29.05.2018 के फैसले की पुष्टि की गई थी।

2. याचिकाकर्ता ने मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 (इसके बाद "1996 का अधिनियम" कहा जाता है) के तहत 29.05.2018 और 15.12.2021 के मध्यस्थ निर्णय को रद्द करने के लिए आवेदन दायर किया। उक्त आवेदन के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ता ने कुछ दस्तावेजों को दाखिल करने के लिए एक आवेदन दायर किया, जो किसी बॉक्स में रखे गए थे और 20.10.2024 को उसके संज्ञान में आए, जिसके कारण 22.10.2024 को एक आवेदन दायर किया गया। दिनांक 09.12.2024 के आदेश द्वारा न्यायालय ने उक्त आवेदन को आदेश XLI नियम 27 सीपीसी के तहत मानते हुए इसे खारिज कर दिया है। इसलिए, वर्तमान रिट याचिका।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अवर न्यायालय ने आवेदन को गलत तरीके से खारिज कर दिया था, यह मानते हुए कि यह आदेश XLI नियम 27 सीपीसी के तहत एक आवेदन है क्योंकि यह अपीलीय कार्यवाही के दौरान दायर नहीं किया गया था। इसके अलावा, चूंकि निर्णय 29.05.2018 को दिया गया था, इसलिए धारा 34(2)(ए) का असंशोधित प्रावधान लागू होगा और आवेदन करने वाला पक्ष अपने दावे के समर्थन में दस्तावेज दाखिल कर सकता है। उन्होंने **एमके ग्लोबल फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड बनाम गिरधर सोंधी, एआईआर 2018 एससी 3894; एमएमटीसी लिमिटेड बनाम वेदांता लिमिटेड, एआईआर 2019 एससी 1168 और अल्पाइन हाउसिंग डेवलपमेंट कॉरपोरेशन प्राइवेट लिमिटेड बनाम अशोक एस. धारीवाल और अन्य, एआईआर 2023 एससी 558** के प्रकरण में दिए गए शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

4. एनएचएआई की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अतिरिक्त साक्ष्य के लिए दायर किया गया आवेदन सुनवाई योग्य नहीं था और आवेदन को रिकॉर्ड के आधार पर तय किया जाना चाहिए जो मध्यस्थ के समक्ष मौजूद था। अल्पाइन हाउसिंग डेवलपमेंट कारपोरेशन प्राइवेट लिमिटेड (पूर्वोक्त) के प्रकरण में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा रखा गया है।

5. मैंने पक्षकारगण की ओर से संबंधित अधिवक्तागण को सुना और अभिलेख पर मौजूद सामग्री का अवलोकन किया है।

6. इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए छोटा विवाद यह है कि क्या अवर न्यायालय ने याचिकाकर्ता द्वारा दायर आवेदन को खारिज करने के लिए सही तरीके से आगे बढ़ाया था, यह मानते हुए कि यह आदेश XLI नियम 27 सीपीसी के तहत एक आवेदन है या नहीं, और यह भी कि क्या धारा 34 (2) (ए) के असंशोधित अधिनियम के प्रावधान तत्काल विवाद में लागू होंगे या नहीं।

7. 1996 के अधिनियम की धारा 34 मध्यस्थ अधिनिर्णय के खिलाफ सहारा का प्रावधान करती है। 2019 के संशोधन अधिनियम 33 द्वारा, धारा 34 की उप-धारा (2)(ए) से "सबूत प्रस्तुत करता है" शब्द हटा दिए गए थे और शब्द "मध्यस्थ न्यायाधिकरण के रिकॉर्ड के आधार पर स्थापित होते हैं" को 30.08.2019 से जोड़ा गया था।

8. 2019 के संशोधन से पहले, मध्यस्थ अधिनिर्णय को रद्द करने के लिए आवेदन करने वाली पक्ष हलफनामे के माध्यम से धारा 34 के तहत उत्पन्न होने वाले मुद्दों के निर्धारण के लिए प्रासंगिक दस्तावेजों को रिकॉर्ड पर लाने के लिए एक आवेदन रख सकती थी, लेकिन संशोधन के बाद मध्यस्थ अधिनिर्णय को केवल मध्यस्थ न्यायाधिकरण के रिकॉर्ड के आधार पर आवेदन करने वाले पक्ष द्वारा रद्द किया जा सकता है और कोई नई सामग्री रिकॉर्ड पर नहीं लाई जा सकती है। **एमके ग्लोबल फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड (पूर्वोक्त)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संशोधन-पूर्व चरण से निपटने के दौरान निम्नानुसार निर्णय लिया: -

"21. इस प्रकार यह देखा जाएगा कि मध्यस्थ विवादों का त्वरित समाधान 1996 के अधिनियम को अधिनियमित करने का कारण रहा है, और उपरोक्त उद्देश्य को मजबूत करने के लिए उक्त अधिनियम में संशोधन जोड़ने का कारण बना हुआ है। स्पष्ट रूप से, यदि मुद्दों को तैयार किया जाना है और धारा 34 के तहत सारांश कार्यवाही में मौखिक साक्ष्य लिया जाना है, तो यह उद्देश्य विफल हो जाएगा। यह भी कार्ड पर है कि यदि 2018 का बिल नंबर 100 पारित हो जाता है, तो धारा 34 आवेदन के चरण में साक्ष्य पूरी तरह से समाप्त हो जाएंगे। विधि की वर्तमान स्थिति को देखते हुए, हमारा विचार है कि दिल्ली उच्च न्यायालय के दो प्रारंभिक निर्णय [संदीप कुमार बनाम अशोक हंस, 2004 एससीसी ऑनलाइन डेल 106: (2004) 3 अरब एलआर 306], [सियाल बायोएनर्जी बनाम एसबीईसी सिस्टम्स, 2004 एससीसी ऑनलाइन डेल 863: एआईआर 2005 डेल 95], जो हमारे द्वारा ऊपर उद्धृत किया गया है, धारा 34 (2) (ए) के तहत सबूत प्रस्तुत करने के रूप में विधि की स्थिति को सही ढंग से दर्शाता है। तो कलकत्ता उच्च न्यायालय का निर्णय [डब्लूईबी टेक्नीक्स एण्ड नेट सॉल्यूशन्स (प्रा0) लिमिटेड बनाम गति लिमिटेड, 2012 एससीसी ऑनलाईन कलकत्ता 4271] है। हम यह जोड़ने में जल्दबाजी कर सकते हैं कि यदि पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के फैसले [पंजाब एसआईडीसी लिमिटेड बनाम सुनील के. कंसल, 2012 एससीसी ऑनलाइन पी एंड एच 19641] द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का पालन किया जाता है, तो उल्लंघन के अधिकांश प्रकरण में केवल एक वर्ष की समय-सीमा का पालन किया

जाएगा। इसलिए हम उक्त निर्णय को खारिज कर देते हैं। हम यह देखने के लिए विवश हैं कि फिजा डेवलपर्स [फिजा डेवलपर्स एंड इंटर-ट्रेड (पी) लिमिटेड बनाम एएमसीआई (इंडिया) (पी) लिमिटेड, (2009) 17 एससीसी 796: (2011) 2 एससीसी (सीआईवी) 637] सही दिशा में एक कदम था क्योंकि इसका अंतिम अनुपात यह है कि धारा 34 आवेदन की सुनवाई के चरण में मुद्दों को हल करने की आवश्यकता नहीं है, जो एक सारांश प्रक्रिया है। हालाँकि, इस निर्णय को अब धारा 34(5) और 34(6) में किए गए संशोधन के आलोक में पढ़ा जाना चाहिए। तो पढ़ें, हम यह कहकर विधिक स्थिति को स्पष्ट करते हैं कि मध्यस्थ अधिनिर्णय को अलग करने के लिए एक आवेदन को आमतौर पर मध्यस्थ के सामने मौजूद रिकॉर्ड से परे कुछ भी आवश्यक नहीं होगा. हालाँकि, यदि ऐसे प्रकरण हैं जो इस तरह के रिकॉर्ड में निहित नहीं हैं, और धारा 34(2)(a) के तहत उत्पन्न होने वाले मुद्दों के निर्धारण के लिए प्रासंगिक हैं, तो उन्हें दोनों पक्षों द्वारा दायर हलफनामों के माध्यम से न्यायालय के ध्यान में लाया जा सकता है। शपथ पत्र की शपथ लेने वाले व्यक्तियों की जिरह की अनुमति तब तक नहीं दी जानी चाहिए जब तक कि बिल्कुल आवश्यक न हो, क्योंकि दोनों पक्षों द्वारा दायर हलफनामों को पढ़ने पर सच्चाई सामने आएगी। इसलिए, हम दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले [गिरधर सोंधी बनाम एमके ग्लोबल फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड, 2017 एससीसी ऑनलाइन डेल 12758] को रद्द करते हैं और 22-9-2016 के विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के फैसले को बहाल करते हैं। तदनुसार अपील की अनुमति दी जाती है, जिसमें लागत के बारे में कोई आदेश नहीं होता है।

9. **अल्पाइन हाउसिंग डेवलपमेंट कॉरपोरेशन प्राइवेट लिमिटेड (पूर्वोक्त)** में, सर्वोच्च न्यायालय एक संशोधन-पूर्व प्रकरण पर भी विचार कर रहा था और **एमके ग्लोबल फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड (पूर्वोक्त) और फिजा डेवलपर्स एंड इंटर-ट्रेड प्राइवेट लिमिटेड बनाम एएमसीआई (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, (2009) 17 एससीसी 796** के पहले के फैसले पर ध्यान देते हुए कहा गया था कि धारा 34(2)(ए) में संशोधन से पहले, एक मध्यस्थ अधिनिर्णय को न्यायालय द्वारा रद्द किया जा सकता है यदि आवेदन करने वाला पक्ष धारा 34(2)(ए) और 34(2)(बी) में निर्धारित सबूत और आधार प्रस्तुत करता है। हालाँकि, धारा 34(2)(a) में संशोधन के बाद, "सबूत प्रस्तुत करता है" शब्दों को "मध्यस्थ न्यायाधिकरण के रिकॉर्ड के आधार पर स्थापित करता है" शब्दों से प्रतिस्थापित किया गया है। न्यायालय ने आगे कहा कि अधिनियम की धारा 34 के तहत आवेदन सारांश कार्यवाही है और एक अधिनिर्णय को केवल धारा 34(2)(ए) और 34(2)(बी) में निर्धारित आधारों को रद्द किया जा सकता है। चूंकि 1996 के अधिनियम के अधिनियमन का उद्देश्य और कारण मध्यस्थ विवादों का त्वरित समाधान था, इसलिए अधिनियम में किया गया संशोधन उपरोक्त उद्देश्य को मजबूत करने के लिए था। इस प्रकार, मुद्दों को तैयार करने के लिए धारा 34 के तहत कोई आवश्यकता नहीं है। यदि मुद्दों को तैयार किया जाता है और मौखिक साक्ष्य को सारांश कार्यवाही में लिया जाता है, तो उद्देश्य पराजित हो जाएगा। न्यायालय के अनुसार, मध्यस्थ अधिनिर्णय को रद्द करने के लिए एक आवेदन के लिए आमतौर पर मध्यस्थ के समक्ष मौजूद रिकॉर्ड से परे किसी भी चीज़ की आवश्यकता नहीं होगी, हालांकि, यदि ऐसे प्रकरण हैं जिनमें ऐसे रिकॉर्ड नहीं हैं और धारा 34(2)(ए) के तहत उत्पन्न होने वाले मुद्दों का प्रासंगिक निर्धारण है, तो उन्हें दोनों पक्षों द्वारा दायर हलफनामे के माध्यम से न्यायालय के ध्यान में लाया जा सकता है। शपथ पत्र में शपथ लेने वाले व्यक्तियों की जिरह की अनुमति तब तक नहीं दी जानी चाहिए जब तक कि बिल्कुल आवश्यक न हो क्योंकि

दोनों पक्षों द्वारा दायर हलफनामों को पढ़ने से सच्चाई सामने आएगी। न्यायालय ने कहा कि एक असाधारण प्रकरण में और यदि मध्यस्थ के रिकॉर्ड में नहीं होने वाले प्रकरण पर न्यायालय के संज्ञान में लाया जाता है कि धारा 34(2)(a) के तहत उत्पन्न होने वाले मुद्दों के निर्धारण के लिए कुछ चीजें प्रासंगिक हैं, तो जिस पक्ष ने धारा 34(2)(a) में निर्धारित आधारों पर अधिनिर्णय का उल्लंघन किया है, उसे फॉर्म में हलफनामा दाखिल करने की अनुमति दी जा सकती है सबूतों का। प्रासंगिक पैरा 24 यहां दिया गया है: -

"24. धारा 34 (2) (ए) पूर्व-संशोधन के दायरे और दायरे पर उपरोक्त तीन निर्णयों का अनुपात यह होगा कि अधिनियम की धारा 34 के तहत आवेदन सारांश कार्यवाही हैं; एक अधिनिर्णय को केवल धारा 34(2)(ए) और धारा 34(2)(बी) में निर्धारित आधारों पर अलग रखा जा सकता है; मध्यस्थ विवादों का त्वरित समाधान 1996 के अधिनियम के अधिनियमन का कारण रहा है और उपरोक्त उद्देश्य को मजबूत करने के लिए उक्त अधिनियम में संशोधन जोड़ने का एक कारण बना हुआ है; इसलिए मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34 के तहत कार्यवाही में, मुद्दों को तैयार करने की आवश्यकता नहीं है, अन्यथा यदि मुद्दों को तैयार किया जाना है और मौखिक साक्ष्य को सारांश कार्यवाही में लिया जाता है, तो उक्त उद्देश्य पराजित हो जाएगा; मध्यस्थ अधिनिर्णय को अलग करने के लिए एक आवेदन के लिए आमतौर पर मध्यस्थ के समक्ष रिकॉर्ड से परे कुछ भी आवश्यक नहीं होगा, हालांकि, यदि ऐसे रिकॉर्ड नहीं हैं और धारा 34(2)(ए) के तहत उत्पन्न होने वाले मुद्दों के लिए प्रासंगिक निर्धारण नहीं है, तो उन्हें दोनों पक्षों द्वारा दायर हलफनामों के माध्यम से न्यायालय के ध्यान में लाया जा सकता है। शपथ पत्र में शपथ लेने वाले व्यक्तियों की जिरह नहीं होनी चाहिए जब तक बिल्कुल आवश्यक न हो तब तक अनुमति दी जाए क्योंकि दोनों पक्षों द्वारा दायर हलफनामों को पढ़ने पर सच्चाई सामने आएगी। इसलिए, एक असाधारण प्रकरण में और यदि मध्यस्थ के रिकॉर्ड में शामिल नहीं होने वाले प्रकरण पर न्यायालय में लाया जाता है कि धारा 34(2)(a) के तहत उत्पन्न होने वाले मुद्दों के निर्धारण के लिए कुछ चीजें प्रासंगिक हैं, तो जिस पक्ष ने धारा 34(2)(a) में निर्धारित आधारों पर अधिनिर्णय पर हमला किया है, उसे साक्ष्य के रूप में हलफनामा दायर करने की अनुमति दी जा सकती है। हालांकि, जब तक बहुत जरूरी न हो, इसकी अनुमति दी जाएगी।"

10. वर्तमान प्रकरण में, यह दोनों पक्षों के लिए एक स्वीकृत स्थिति है कि निर्णय 29.05.2018 को दिया गया था, यानी धारा 34(2)(ए) में किए गए संशोधन से पहले जो 30.08.2019 से प्रभावी हुआ था। याचिकाकर्ता द्वारा 22.10.2024 को पेश किए गए आवेदन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता द्वारा जिन दस्तावेजों को रिकॉर्ड पर रखने का प्रयास किया जा रहा है, उन्हें 20.10.2024 को खोजा गया था। इस तथ्य के अलावा, उक्त आवेदन के साथ संलग्न दस्तावेजों की सूची को स्वीकार करने के लिए कोई अन्य बाध्यकारी कारण नहीं दिया गया है।

11. हालांकि, अवर न्यायालय ने गलत तरीके से आवेदन को आदेश XLI नियम 27 सीपीसी के तहत एक आवेदन माना है।

12. इस न्यायालय ने पाया कि अवर न्यायालय ने आदेश XLI नियम 27 के प्रावधानों की गलत व्याख्या की थी क्योंकि यह एक अपील के प्रकरण में लागू होता है जहां अपील का पक्ष अपीलीय चरण में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए आवेदन करता है। धारा 34 सारांश कार्यवाही है और यह अपील नहीं है जैसा कि अवर न्यायालय ने कहा है। याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज करने में अवर न्यायालय द्वारा आदेश XLI नियम 27 के प्रावधानों का आह्वान पूरी तरह से गलत है। ऐसा लगता है कि संबंधित न्यायालय आदेश XLI नियम 27 सीपीसी के साथ-साथ 1996 के अधिनियम की धारा 34 के दायरे को नहीं जानती है।

13. गलत धारणा पर अवर न्यायालय ने आदेश XLI नियम 27 सीपीसी के आधार पर आवेदन को खारिज करने के लिए आगे बढ़े हैं।

14. प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, आदेश 09.12.2024 को रद्द कर दिया जाता है। रिट याचिका को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है।

15. इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर, **अल्पाइन हाउसिंग डेवलपमेंट कॉरपोरेशन (पूर्वोक्त)** और **एमके ग्लोबल फाइनेंशियल सर्विसेज़ लिमिटेड (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में शीर्ष न्यायालय के निर्णय के आलोक में याचिकाकर्ता के आवेदन पर नए सिरे से विचार करने के लिए प्रकरण को सख्ती से विधि अनुसार अवर न्यायालय में वापस भेजा जाता है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1709

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल

प्रकरण अन्तर्गत अनुच्छेद 227 संख्या 11867/2024 (सिविल)

के साथ अन्य वाद सम्बद्ध।

सुखदेव सिंह मजीठिया और अन्य **... याचिकाकर्ता**

बनाम

भवनेश कुमार जिंदल और अन्य **... प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता:

श्री आद्या प्रसाद तिवारी, श्री शुभम द्विवेदी

प्रत्यर्थीगण के लिए अधिवक्ता:

श्री आर.एस. दुबे, सुश्री सविता दुबे

अनुवादित

सिविल विधि-भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 227 - पंजीकरण अधिनियम, 1908- धारा 17(1), 23 और 32 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908-आदेश XII, नियम 6--- "क्या वर्ष 1988 के निर्णय और डिक्री को 1908 के अधिनियम की धारा 17(1) के तहत पंजीकरण की आवश्यकता है, जो समझौता डिक्री है या अन्यथा?" --- समझौता डिक्री दिनांक 30.05.1988 और आदेश XII, नियम 6 दिनांक 12.08.1988 के तहत प्रवेश के आधार पर डिक्री को धारा 17 (2) (vi) के बहिष्करण खंड को ध्यान में रखते हुए पंजीकरण की आवश्यकता नहीं है --- धारा 23 स्पष्ट रूप से एक आदेश या डिक्री के पंजीकरण के लिए समय सीमा प्रदान करती है, जो कि अंतिम होने पर चार महीने है। वर्तमान मामले में, आवेदन पैंतीस वर्षों के बाद स्थानांतरित किया गया है, जो धारा 23 के प्रावधानों द्वारा वर्जित है--- धारा 32 स्पष्ट रूप से उस व्यक्ति के लिए प्रदान करती है जो पंजीकरण के लिए दस्तावेज प्रस्तुत करेगा। अधिनियम में ऐसे किसी प्रावधान की परिकल्पना नहीं की गई है जिसमें न्यायालय को आदेश या डिक्री पंजीकृत कराने की आवश्यकता हो--- वादी द्वारा दायर किया गया आवेदन दोषपूर्ण था और आवश्यक पक्षों के गैर-शामिल न होने के कारण पोषणीय नहीं था।

याचिका स्वीकृत। (ई-15)

<u>संदर्भित मामलों की सूची-:</u>

1. सिविल अपील संख्या 14808/2024 (मुकेश बनाम मध्य प्रदेश और अन्य)
2. मो. यूसुफ बनाम राजकुमार (2020) 10 एससीसी 264
3. खुशी राम बनाम नवल सिंह (2021)16 एससीसी 279
4. रिपुदमन सिंह बनाम टिक्का महेश्वर चंद (2021) 7 एससी 446
5. भूप सिंह बनाम राम सिंह (1995) 5 एससीसी 709

(माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल द्वारा पारित)

1. ये पांच संबंधित रिट याचिकाएं सिविल जज (सीनियर डिवीजन), गोरखपुर द्वारा पारित दिनांक 01.05.2024 के सामान्य आदेश से उत्पन्न होती हैं, जिसमें मूल वाद संख्या 316/1988, 318/1988, 323/1988, 324/1988 और 325/1988 से उत्पन्न वाद संख्या संख्या 292/2023, 293/2023, 294/2023, 295/2023 और 296/2023 को पंजीकरण अधिनियम, 1908 (इसके बाद "1908 का अधिनियम" कहा जाता है) की धारा 17(1) के तहत दिनांक 30.05.1988 और 12.08.1988 की डिक्री के पंजीकरण के लिए निदेश देते हुए अनुमति दी गई है।

2. इन रिट याचिकाओं को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि भारत भूषण जिंदल ने सरदार दलीप सिंह, सुरजीत सिंह और ब्रह्म ज्ञान सिंह के खिलाफ मूल वाद संख्या 316/1988 दायर किया था, जिसमें 3.15 एकड़ की भूखंड संख्या 51एम के संबंध में घोषणा की राहत का दावा किया गया था और प्रत्यर्थीगण को उसके शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा की डिक्री की भी मांग की थी।

3. इसी तरह, भवनेश कुमार जिंदल ने सरदार दलीप सिंह, सुरजीत सिंह और ब्रह्म ज्ञान सिंह के खिलाफ इसी राहत के लिए 1988 का मूल वाद संख्या 318 स्थापित किया। 1988 का वाद संख्या 323 विनोद कुमार जिंदल द्वारा उपरोक्त तीन प्रत्यर्थीगण के खिलाफ उसी राहत के लिए स्थापित किया गया था।

4. रमेश कुमार जिंदल ने सरदार दलीप सिंह, सुरजीत सिंह और ब्रह्म ज्ञान सिंह के खिलाफ इसी राहत के लिए 1988 का वाद संख्या 324 स्थापित किया था। जबकि लछमन दास जिंदल ने उपरोक्त तीन व्यक्तियों के खिलाफ सिविल जज, गोरखपुर की अदालत में घोषणा और निषेधात्मक स्थायी निषेधाज्ञा की समान राहत के लिए 1988 का वाद संख्या 325 दायर किया।

5. सभी पांच वादों का प्रत्यर्थीगण द्वारा विरोध किया गया था और उन्होंने वादपत्र के कथन को स्वीकार करते हुए अपना लिखित बयान दायर किया था। हालांकि, वाद संख्या 316/1988 में, 30.05.1988 को एक समझौता आवेदन दायर किया गया था और उक्त वाद को 30.05.1988 को पक्षों के बीच किए गए समझौते के आधार पर घोषित किया गया था, जबकि 1988 के अन्य वाद संख्या 318, 1988 के 323, 1988 के 324 और 1988 के 325 को प्रत्यर्थीगण द्वारा आदेश XII नियम 6 सी.पी.सी. के तहत अपने लिखित बयान में की गई स्वीकारण के आधार पर 12.08.1988 को डिक्री दी गई थी।

6. दिनांक 30.05.1988 और 12.08.1988 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध, प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई अपील नहीं की गई और निर्णय पक्षों के बीच अंतिम हो गया।

7. उपरोक्त वादों के वादी ने 25.09.2023 को सिविल जज (सीनियर डिवीजन) गोरखपुर के न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर किया, जिसे 1908 के अधिनियम की धारा 17 के तहत डिक्री के पंजीकरण के लिए जिला मजिस्ट्रेट/अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त और राजस्व) गोरखपुर को फाइल भेजने के लिए 2023 का विविध मामला संख्या 292, 2023 का 293, 2023 का 295 और 296 के रूप में दर्ज किया गया था। वादी द्वारा दायर आवेदन को सिविल जज (सीनियर डिवीजन) गोरखपुर द्वारा दिनांक 01.05.2024 के आदेशों द्वारा अनुमति दी गई है, इसलिए ये रिट याचिकाएं दायर की गई हैं।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि न तो सहमति डिक्री और न ही पक्ष की स्वीकृति के आधार पर पारित न्यायालय का कोई निर्णय या डिक्री 1908 के अधिनियम की धारा 17(1) के तहत पंजीकृत होना आवश्यक है। उनके अनुसार, 1908 के अधिनियम की धारा 17 (2) (vi) एक बहिष्करण खंड है, जो प्रदान करता है कि न्यायालय के किसी भी डिक्री या आदेश को पंजीकृत करने की आवश्यकता नहीं है। यह भी तर्क दिया गया है कि वादी द्वारा दस्तावेज के पंजीकरण के लिए दायर किए गए आवेदन में, सुरजीत सिंह के कानूनी उत्तराधिकारियों, जो मुकदमे में प्रत्यर्थी संख्या 2 थे, को एक पक्षकार के रूप में शामिल नहीं किया गया है और इस प्रकार आवश्यक पक्षों को शामिल किए बिना आदेश पारित किया गया है।

9. इसके बाद उन्होंने तर्क दिया कि 1908 के अधिनियम की धारा 23 पंजीकरण के लिए दस्तावेज प्रस्तुत करने का समय प्रदान करती है, जो इस तरह की डिक्री या आदेश की तारीख से चार महीने है। 1908 के अधिनियम की धारा 32 के प्रावधान पर भी भरोसा रखा गया है, यानी वह व्यक्ति जो पंजीकरण के लिए दस्तावेज प्रस्तुत करेगा। यह न्यायालय नहीं है जो पंजीकरण के लिए दस्तावेज भेजेगा। **सिविल अपील संख्या 14808/2024 (मुकेश बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य)** में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 20.12.2024 के फैसले पर भरोसा किया गया है।

10. प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 1908 के अधिनियम की धारा 17(1)(ई) के लिए गैर-वसीयतनामा उपकरणों के पंजीकरण की आवश्यकता होती है जो न्यायालय के आदेश, डिक्री या पुरस्कार को स्थानांतरित या असाइन करते हैं। इसमें ऐसे मामले शामिल हैं जहां डिक्री, आदेश या पुरस्कार चल संपत्ति में किसी भी अधिकार, शीर्षक या हित को बनाता है, घोषित करता है, असाइन करता है, सीमित करता है या समाप्त कर देता है। उनके अनुसार, वाद संख्या 316/1988 में पारित समझौता डिक्री को छोड़कर, शेष वादों को आदेश XII, नियम 6 सीपीसी के तहत प्रत्यर्थीगण के प्रवेश के आधार पर डिक्री दी गई थी। उनके अनुसार, धारा 17 (2) (vi) का प्रावधान लागू नहीं होगा और पंजीकरण अनिवार्य है। यह भी तर्क दिया गया है कि चूंकि वादी का नाम राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज नहीं किया जा रहा था, इस तथ्य के बावजूद कि डिक्री वर्ष 1988 की है, इसलिए डिक्री को पंजीकृत कराने के लिए संबंधित न्यायालय के समक्ष आवेदन किया गया था।

11. मैंने पक्षकारगण की ओर से संबंधित अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख पर सामग्री का अवलोकन किया है।

12. इस न्यायालय के समक्ष विचार करने का विवाद्यक यह है, "क्या वर्ष 1988 के निर्णय और डिक्री को 1908 के अधिनियम की धारा 17(1) के तहत पंजीकरण की आवश्यकता है, जो समझौता डिक्री है या अन्यथा?"

13. हाथ में विवाद्यक पर निर्णय लेने के लिए विज्ञापन देने से पहले, धारा 17 (1) (ई), 17 (2) (vi), 1908 के अधिनियम की धारा 23 और 32 की एक नज़र उस मामले की बेहतर सराहना के लिए आवश्यक होगी जो यहां नीचे निकाले गए हैं:

"17. दस्तावेज जिनका पंजीकरण अनिवार्य है- (1) निम्नलिखित दस्तावेज पंजीकृत किए जाएंगे, यदि वह संपत्ति जिससे वे संबंधित हैं, किसी ऐसे जिले में स्थित है, जिसमें और यदि उन्हें उस तारीख को या उसके बाद निष्पादित किया गया है, जिस पर 1864 का अधिनियम संख्या XVI, या भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1866, या भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1871 या भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1877 या यह अधिनियम आया या लागू हुआ, अर्थात् -

.....

(ई) गैर-वसीयतनामा लिखत जो किसी न्यायालय या किसी पुरस्कार के किसी डिक्री या आदेश को स्थानांतरित या असाइन करते हैं, जब इस तरह की डिक्री या आदेश या पुरस्कार एक सौ रुपये और उससे अधिक के मूल्य के किसी भी अधिकार, शीर्षक या हित, चाहे निहित या आकस्मिक, को बनाने, घोषित करने, असाइन करने, सीमित करने या बुझाने के लिए संचालित होता है, अचल संपत्ति में या में:
बशर्ते राज्य सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा, किसी जिले या किसी जिले के भाग में निष्पादित किसी भी पट्टे को इस उपधारा के प्रचालन से छूट दे सकेगी, जिसके द्वारा दी गई शर्तें पांच वर्ष से अधिक न हों और वार्षिक किराया जिसके द्वारा आरक्षित किया गया हो, पचास रुपये से अधिक न हो।

.....

(2) उपधारा (1) के खंड (ख) और (ग) में कुछ भी इस पर लागू नहीं होता है-

....

(vi) किसी न्यायालय की कोई डिक्री या आदेश सिवाय किसी समझौते पर किए जाने के लिए व्यक्त की गई डिक्री या आदेश और जिसमें वाद या कार्यवाही की विषय-वस्तु के अलावा अन्य अचल संपत्ति शामिल है;

"23. दस्तावेज प्रस्तुत करने का समय--*धारा 24, 25 और 26 में निहित उपबंधों के अधीन, वसीयत के अलावा कोई अन्य दस्तावेज पंजीकरण के लिए स्वीकार नहीं किया जाएगा जब तक कि उस प्रयोजन के लिए उसके निष्पादन की तारीख से चार महीने के भीतर उचित अधिकारी को प्रस्तुत न किया जाए:*

बशर्ते कि डिक्री या आदेश की एक प्रति उस दिन से चार महीने के भीतर प्रस्तुत की जा सकती है जिस दिन डिक्री या आदेश किया गया था, या, जहां यह अपील योग्य है, उस दिन से चार महीने के भीतर जिस दिन यह अंतिम हो जाता है।

"32. पंजीकरण के लिए दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए व्यक्ति--*धारा 31, 88 और 89 में उल्लिखित मामलों को छोड़कर, इस अधिनियम के अधीन पंजीकृत किए जाने वाले प्रत्येक दस्तावेज, चाहे ऐसा पंजीकरण अनिवार्य हो या वैकल्पिक, उचित पंजीकरण-कार्यालय में प्रस्तुत किया जाएगा, -*

(ए) किसी व्यक्ति द्वारा उसी के तहत निष्पादित या दावा करना, या, डिक्री या आदेश की एक प्रति के मामले में, डिक्री या आदेश के तहत दावा करना, या
(ख) ऐसे व्यक्ति के प्रतिनिधि या असाइन द्वारा, या
(ग) ऐसे व्यक्ति के एजेंट, प्रतिनिधि या समनुदेशित, जिसे पावर-ऑफ-अटॉर्नी द्वारा विधिवत अधिकृत किया गया है, जिसे इसके बाद उल्लिखित तरीके से निष्पादित और प्रमाणित किया गया है।

14. 1908 के अधिनियम के भाग III में 'पंजीकरण योग्य दस्तावेजों' का प्रावधान है। धारा 17 में इसके तहत सूचीबद्ध दस्तावेजों के अनिवार्य पंजीकरण का प्रावधान है। धारा 17 की उप-धारा (1)(ई) गैर-वसीयतनामा लिखतों के पंजीकरण के लिए प्रदान करती है, जो किसी न्यायालय या किसी भी पुरस्कार के किसी भी डिक्री या आदेश को स्थानांतरित या असाइन करती है, जब इस तरह की डिक्री या आदेश या पुरस्कार वर्तमान या भविष्य में, किसी भी अधिकार, शीर्षक या हित, चाहे निहित या आकस्मिक, को बनाने, घोषित करने, असाइन करने, सीमित करने या बुझाने के लिए संचालित होता है, एक सौ रुपये और उससे अधिक के मूल्य का।

15. प्रत्यर्थीगण के प्रवेश के आधार पर 30.5.1988 की समझौता डिक्री के साथ-साथ 12.08.1988 की डिक्री उपरोक्त प्रावधान के तहत कवर नहीं की गई है।

16. धारा 17 की उप-धारा (2) बहिष्करण खंड है, जिसके लिए कुछ दस्तावेजों के पंजीकरण की आवश्यकता नहीं है। 1908 के अधिनियम की उप-धारा (2)(vi) में प्रावधान है कि समझौता डिक्री सहित न्यायालय की कोई भी डिक्री या आदेश, जो मुकदमे की विषय-वस्तु है, को पंजीकरण की आवश्यकता नहीं है। यह केवल समझौता डिक्री के मामले में है जहां संपत्ति मुकदमे की विषय वस्तु नहीं है, लेकिन पक्षों के बीच समझौता हो गया है, डिक्री को पंजीकृत करने की आवश्यकता है।

17. यह दोनों पक्षों के लिए एक स्वीकृत मामला है कि 30.05.1988 को पार्टियों के बीच किया गया समझौता उस संपत्ति के संबंध में था जो मुकदमे की विषय-वस्तु है। जबकि वादी द्वारा दायर अन्य चार वादों को 12.08.1988 को आदेश XII, नियम 6 सीपीसी के तहत प्रत्यर्थीगण द्वारा लिखित बयान में की गई स्वीकृति

के आधार पर डिक्री दी गई थी। 30.05.1988 और 12.08.1988 दोनों की डिक्री को 1908 के अधिनियम की धारा 17(2)(vi) के बहिष्करण खंड के तहत पंजीकरण से छूट दी गई है।

18. सर्वोच्च न्यायालय ने **मो. यूसुफ बनाम राजकुमार (2020) 10 एससीसी 264** ने पहले ही माना था कि "एक समझौता डिक्री जिसमें अचल संपत्ति शामिल है, जिसके अलावा मुकदमे या कार्यवाही की विषय वस्तु है, पंजीकरण की आवश्यकता होती है, हालांकि अदालत के किसी भी डिक्री या आदेश को पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 (2) (vi) के आधार पर पंजीकरण से छूट दी गई है।

19. **खुशी राम बनाम नवल सिंह (2021)16 SCC 279** में, सर्वोच्च न्यायालय ने **अभिनिर्धारित** किया कि धारा 17(2)(vi) के बहिष्करण खंड को डिक्री के पंजीकरण की आवश्यकता नहीं है।

20. **रिपुदमन सिंह बनाम टिक्का महेश्वर चंद (2021) 7 एससीसी 446** में, शीर्ष न्यायालय ने **भूप सिंह बनाम राम सिंह (1995) 5 एससीसी 709** में दिए गए पहले के फैसले पर भरोसा करते हुए कहा कि डिक्री के अनिवार्य पंजीकरण की कोई आवश्यकता नहीं थी।

21. पहले के निर्णयों पर भरोसा करते हुए, **मुकेश (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:

"इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि अधिनियम, 1908 की धारा 17(2)(vi) के अपवाद के तहत आने के लिए, निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए:

(i) बिना किसी मिलीभगत के समझौते की शर्तों के अनुसार एक समझौता डिक्री होनी चाहिए;

(ii). समझौता डिक्री मुकदमे में विषय संपत्ति से संबंधित होनी चाहिए; तथा

(iii) विषय संपत्ति पर पहले से मौजूद अधिकार होना चाहिए, और समझौता डिक्री को नए सिरे से अधिकार नहीं बनाना चाहिए।

22. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि समझौता डिक्री दिनांक 30.05.1988 के साथ-साथ आदेश XII, नियम 6 सीपीसी के तहत प्रत्यर्थीगण के प्रवेश पर पारित डिक्री को 1908 के अधिनियम की धारा 17 (2) (vi) के बहिष्करण खंड को देखते हुए पंजीकरण की आवश्यकता नहीं है।

23. इसके अलावा, 1908 के अधिनियम की धारा 23 पंजीकरण के लिए एक दस्तावेज की प्रस्तुति के लिए समय सीमा प्रदान करती है। प्रदान की गई समय-सीमा उक्त दस्तावेज के निष्पादन की तारीख से चार महीने है। धारा 23 के परंतुक में प्रावधान है कि डिक्री या आदेश की एक प्रति उस दिन से चार महीने के भीतर प्रस्तुत की जा सकती है जिस दिन डिक्री या आदेश किया गया था, या, जहां यह अपील योग्य है, उस दिन से चार महीने के भीतर जिस दिन यह अंतिम हो जाता है।

24. यह दोनों पक्षों के लिए एक स्वीकृत मामला है कि 30.5.1988 और 12.08.1988 की समझौता डिक्री को कभी भी किसी भी न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई थी और यह पक्षों के बीच अंतिम हस्तक्षेप बन गया। यह पहली बार था कि 25.09.2023 को यानी 35 साल बाद डिक्री को पंजीकृत करने के लिए आवेदन किया गया था। वादी-डिक्री धारक द्वारा पेश किया गया आवेदन धारा 17(2)(vi) के तहत सुनवाई योग्य नहीं होने के बावजूद, 1908 के अधिनियम की धारा 23 के परंतुक को ध्यान में रखते हुए संबंधित न्यायालय द्वारा नहीं देखा जा सकता है क्योंकि यह उस तारीख से चार महीने की समय सीमा प्रदान करता है जब उक्त आदेश, या डिक्री अंतिम हो जाती है।

25. अब, धारा 32 का विज्ञापन करते हुए, मुझे लगता है कि यह व्यक्तियों को पंजीकरण के लिए दस्तावेज प्रस्तुत करने का प्रावधान करता है। इस मामले में, सिविल जज (सीनियर डिवीजन) के समक्ष आवेदन दायर किया गया था, जिसमें 1908 के अधिनियम की धारा 17 के तहत जिला मजिस्ट्रेट/अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त और राजस्व) द्वारा 1988 की डिक्री दर्ज कराने का निर्देश देने की मांग की गई थी। धारा 32 (ए) स्पष्ट रूप से प्रदान करती है कि पंजीकरण के लिए दस्तावेज किसी व्यक्ति द्वारा उसी के तहत निष्पादित या दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जाना चाहिए, या, डिक्री या आदेश की एक प्रति के मामले में, डिक्री या आदेश के तहत दावा करना होगा। इस प्रकार, धारा 32 की उप-धारा (ए) स्पष्ट रूप से प्रदान करती है कि यह डिक्री धारक है, जिसे पंजीकरण के लिए दस्तावेज प्रस्तुत करना है और इसे पंजीकृत कराने के लिए न्यायालय के समक्ष आवेदन करने का कोई प्रावधान नहीं है।

26. नीचे के न्यायालय ने अपने अधिकार क्षेत्र को पार कर लिया और 1988 की डिक्री के पंजीकरण के लिए निर्देश दिया जो 1908 के अधिनियम की धारा 32 के प्रावधान के खिलाफ है।

27. अंत में, यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्तागण के पूर्ववर्ती सुरजीत सिंह मुकदमे में प्रत्यर्थी संख्या 2 थे, लेकिन सिविल जज (सीनियर डिवीजन) गोरखपुर के समक्ष पेश किए गए आवेदन में उन्हें पक्षकार नहीं बनाया गया था।

28. संबंधित न्यायालय के समक्ष वादी द्वारा पेश किए गए आवेदन के अवलोकन से, मुझे लगता है कि याचिकाकर्तागण, जो आवश्यक पक्ष थे, को जानबूझकर बाहर रखा गया है और इस प्रकार वादी द्वारा दायर आवेदन आवश्यक पक्ष के गैर-जोइंडर को देखते हुए सुनवाई योग्य नहीं था।

29. इस प्रकार, संक्षेप में, मैं निम्नानुसार मानता हूं: -

(i) दिनांक 30.05.1988 की समझौता डिक्री और आदेश XII, नियम 6 सीपीसी दिनांक 12.08.1988 के तहत प्रवेश के आधार पर डिक्री को 1908 के अधिनियम की धारा 17 (2) (vi) के बहिष्करण खंड को ध्यान में रखते हुए पंजीकरण की आवश्यकता नहीं है।

(ii) 1908 के अधिनियम की धारा 23 में स्पष्ट रूप से किसी आदेश या डिक्री के पंजीकरण के लिए समय-सीमा का प्रावधान है, जो अंतिम होने पर चार महीने है। वर्तमान मामले में, आवेदन पैंतीस वर्षों के बाद स्थानांतरित किया गया है, जो 1908 के अधिनियम की धारा 23 के प्रावधानों द्वारा वर्जित है।

(iii) 1908 के अधिनियम की धारा 32 में स्पष्ट रूप से उस व्यक्ति के लिए प्रावधान है जो पंजीकरण के लिए दस्तावेज प्रस्तुत करेगा। अधिनियम में ऐसे किसी प्रावधान की परिकल्पना नहीं की गई है जिसके लिए न्यायालय को आदेश या डिक्री पंजीकृत कराने की आवश्यकता हो।

(iv) वादी द्वारा दायर किया गया आवेदन दोषपूर्ण था और आवश्यक पक्षों के गैर-जोइंडर के कारण बनाए रखने योग्य नहीं था।

30. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मुझे लगता है कि सिविल जज (सीनियर डिवीजन), गोरखपुर द्वारा पारित दिनांक 01.05.2024 का आदेश जिसमें मूल वाद संख्या 316/1988, 318/1988, 323/1988, 324/1988 और 325/1988 से उत्पन्न वाद संख्या संख्या 292/2023, 293/2023, 294/2023, 295/2023 और 296/2023 को स्वीकृत किया गया है, पूरी तरह से अवैध हैं और इसलिए इन्हें रद्द किया जाता है।

31. सभी रिट याचिकाओं को **स्वीकृत** किया जाता है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1715

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति संदीप जैन

आपराधिक अपील संख्या- 7898/2017

सम्बद्ध

आपराधिक अपील संख्या- 243/2018

शैलेंद्र कुशवाहा ... अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अनुवादित

अपीलकर्ता की ओर से अधिवक्ता:

श्री अमर बहादुर मौर्य, श्री जितेन्द्र कुमार, श्री कमलेश कुमार त्रिपाठी, श्री लक्ष्मी नारायण राठौर, श्री राजेन्द्र कुमार पांडे, श्री रंजीत कुमार यादव, श्री सुशील कुमार, श्री विनय कुमार निगम, श्री अशोक कुमार त्रिपाठी

प्रतिवादी की ओर से अधिवक्ता:

जी.ए.

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 363, 366 और 376-डी - यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012, धारा 4 - साक्ष्य - अभियोजन पक्ष की एकमात्र गवाही - द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत विरोधाभासी रुख - पुष्टि का अभाव - पीड़ित का पहला बयान अभियुक्तों को दोषमुक्त करना और दूसरा बयान - अभियोजन प्रकरण में अस्पष्टीकृत देरी, भौतिक सुधार और असंभवताएं - एफआईआर दर्ज करने के सूचनाकर्ता द्वारा इनकार - अभिनिर्धारित, दोषसिद्धि अभियोक्ता की असंगत, अपुष्ट और अविश्वसनीय गवाही पर निर्भर नहीं हो सकती है - संदेह का लाभ - आरोपी बरी हो गया। (पैरा 28, 33, 34, 37, 39, और 41)

अभिनिर्धारितः

फिर भी सूचनाकर्ता 'एम' पीडब्ल्यू-2 ने एक साथ स्वीकार किया है कि तहरीर पेपर संख्या 5 क पर उसके हस्ताक्षर नहीं हैं और उसने इसे पुलिस को भी जमा नहीं किया था। यहां यह उल्लेख करना उचित है कि घटना के संबंध में सूचनाकर्ता के आवेदन (पेपर संख्या 5 क) के आधार पर 08.04.2014 को सुबह 11:30 बजे

एफआईआर दर्ज की गई है। चूंकि सूचनाकर्ता ने इस बात से इनकार किया है कि एफआईआर का आधार यानी उसके कथित आवेदन (पेपर संख्या 5 क) ने उसके द्वारा नहीं दिया गया था, इसलिए अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी संदिग्ध हो जाती है। यह सच है कि एफआईआर सबूत का एक ठोस टुकड़ा नहीं है, लेकिन इसकी सामग्री को विधि के अनुसार साबित करने की आवश्यकता है, जिसे अभियोजन पक्ष इस प्रकरण में उचित संदेह से परे साबित करने में विफल रहा है। यह हमारे बाद के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाएगा। (पैरा 28)

द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत दर्ज पीड़िता 'एक्स' के पहले चरण के अवलोकन से, जिसे आरोपी ने एक्स खा-1 के रूप में साबित किया था, यह स्पष्ट है कि वह अपनी इच्छा से आरोपी मलिक चंद्रा के साथ गई थी। इस प्रकार वह उसके साथ भाग गई और गुजरात चली गई, जहां वह उसके साथ रहती थी और उनके बीच कोई शारीरिक संबंध स्थापित नहीं हुआ था। पीड़िता ने अपने सेंट में बताया है कि आरोपी मलिक चंद्रा ने उसके साथ रेप नहीं किया था और वह उसके साथ रहना चाहती थी। पीड़िता 'एक्स' ने अपनी मेडिकल विवेचना के समय डॉक्टर पी.डब्ल्यू.-3 को भी बताया था, (पी.डब्ल्यू.-3 ने अपनी परीक्षा-इन-चीफ में भी साबित किया है) कि 31.03.2014 को सुबह 05:00 बजे वह एक लड़के के साथ अपने घर से निकली थी और एक ट्रक से औरैया गई थी, जिसने उसे रास्ते में छोड़ दिया था, और फिर उसकी चाची का दामाद उसे गुजरात ले गया था, जहां उसने उसके साथ एक मंदिर में शादी की थी। उपरोक्त दोनों बातें विधि के अनुसार साबित हुई हैं, जिसके अनुसार, आरोपी शैलेंद्र कुशवाहा, मानवेंद्र सिंह @ झम्मन पाल और मलिक चंद्रा, न तो प्रलोभन में शामिल थे और न ही उन्होंने पीड़िता के साथ बलात्कार किया था। दरअसल, पीड़िता ने कहा है कि उसके साथ किसी ने बलात्कार नहीं किया था। (पैरा 33)

न्यायालय में पीड़िता 'एक्स' पी.डब्ल्यू.-1 की गवाही से यह स्पष्ट है कि तीनों आरोपियों ने उसे जबरन उसके घर से अपहरण कर लिया था और उसे गुजरात, हैदराबाद, दिल्ली ले गए थे, लेकिन वह मोहल्ले का नाम, शहर, मकान मालिक का नाम नहीं बता सकी, जो उस घर में रहता था, पहले बलात्कार की तारीख और महीना, उसके साथ कितनी बार बलात्कार किया गया। उसने बयान दिया है कि उसने शोर मचाया था लेकिन आस-पास रहने वाला कोई भी व्यक्ति उसकी मदद के लिए नहीं आया। यह विश्वसनीय नहीं है। उसने यह भी बताया है कि वह अपनी विभिन्न यात्राओं के दौरान बेहोश रही, जो पूरी तरह से अविश्वसनीय है। पीड़िता ने अपनी जिरह में यह भी उल्लेख किया है कि उसने गुजरात से 100 संख्या पर पुलिस को फोन किया था। और दिल्ली, लेकिन कोई भी उसके बचाव में नहीं आया, जो असंभव भी है। पीड़िता यह बताने में असमर्थ है कि उसे कार, या बस, या ट्रेन से ले जाया गया था या नहीं। यह अत्यधिक असंभव है कि 31.3.2014 से 19.5.2014 तक, 49 दिनों की अवधि में, पीड़िता बेहोश रही, और अभियुक्त का विरोध करने के लिए शारीरिक और मानसिक स्थिति में नहीं थी, इसके अलावा, जब वह सार्वजनिक स्थान पर रह रही थी और सार्वजनिक परिवहन में यात्रा कर रही थी। (पैरा 37)

यह भी स्पष्ट है कि द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत पहला चरण दर्ज करने के बाद, पीड़िता की कस्टडी उसकी मां पी.डब्ल्यू.-2 को सौंप दी गई थी और उसके बाद लगभग 40 दिन बाद, धारा 164 द0प्र0सं0 (प्रदर्श क-1) के तहत उसका दूसरा सेंट 03.7.2014 को दर्ज किया गया था। एस.आई. सत्तार बेग, पी.डब्ल्यू.-5 ने अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि उन्होंने द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत पीड़िता की दूसरी विवेचना दर्ज करने के लिए कोई आवेदन नहीं दिया था और न्यायालय ने स्वत: आदेश दिया है। यह बहुत आश्चर्य की बात है कि विवेचना अधिकारी की ओर से किसी भी आवेदन के अभाव में, न्यायालय द्वारा द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत पीड़िता की दूसरी स्थिति क्यों दर्ज की गई है। पीड़िता द्वारा द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत उसके बाद के सत्र में और मुकदमे के दौरान न्यायालय में दी गई गवाही में किए गए सभी सुधार आरोपी द्वारा विधि के अनुसार साबित किए गए हैं, जो पीड़िता की गवाही को अत्यधिक अविश्वसनीय बनाता है और पुष्टि के अभाव में, इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। (पैरा 39)

प्रार्थना पत्र स्वीकृत। (ई-14)

<u>उद्धृत प्रकरण की सूची:</u>

1. सुरेश एन. भुसरे और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1999) 1 एससीसी 220
2. तमीजुद्दीन @ तम्मू बनाम राज्य (दिल्ली का राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र), (2009) 15 एससीसी 566
3. नरेंद्र कुमार बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), एआईआर 2012 एससी 2281
4. अलामेलु और अन्य बनाम राज्य जरिए पुलिस निरीक्षक, (2011) 2 एससीसी 385

(माननीय न्यायमूर्ति संदीप जैन द्वारा पारित)

1. आपराधिक अपील संख्या 243/2018 में अपीलकर्ता संख्या 2 की ओर से श्री अशोक कुमार त्रिपाठी और श्री गोपाल खरे तथा राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री विकास गोस्वामी को सुना तथा अभिलेख का अवलोकन किया।

2. ये दोनों आपराधिक अपील मुकदमा अपराध संख्या 629/2014, थाना जालौन, जनपद जालौन में सत्र परीक्षण संख्या 22/2014 (राज्य बनाम मानवेंद्र सिंह @ झम्मन पाल, मलिक चंद्र और शैलेंद्र कुशवाहा) के प्रकरण में अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 2, जालौन द्वारा पारित सामान्य निर्णय और आदेश दिनांक 23.11.2017 से उत्पन्न होती हैं, जिसके तहत अभियुक्तगण मनवेन्द्र सिंह @ झम्मन पाल, मलिक चन्द्र तथा शैलेन्द्र कुशवाहा को धारा 363 भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत दोषसिद्ध किया गया है तथा उन्हें तीन वर्ष का साधारण कारावास एवं ₹10,000/- के अर्थदण्ड से दण्डित किया गया है, अर्थदण्ड अदा न करने की स्थिति में छह माह का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा। इसके अतिरिक्त अभियुक्तगण को धारा 366 भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत दोषसिद्ध करते हुए सात वर्ष का साधारण कारावास एवं ₹20,000/- के अर्थदण्ड से

दण्डित किया गया है, अर्थदण्ड अदा न करने पर एक वर्ष का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा। तत्पश्चात अभियुक्तगण को धारा 376-डी भारतीय दण्ड संहिता सहपठित धारा 3/4 पॉक्सो अधिनियम के अन्तर्गत दोषसिद्ध करते हुए आजीवन कारावास तथा ₹1,00,000/- के अर्थदण्ड से दण्डित किया गया है, अर्थदण्ड अदा न करने की दशा में दो वर्ष का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा।
सभी दण्ड एक साथ (सहकालिक रूप से) चलाए जाने का आदेश दिया गया है।

3. तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि सूचनाकर्ता 'एम' पीडब्ल्यू -2 ने 05.04.2014 को सर्कल अधिकारी, जालौन को एक टाइप किया हुआ लिखित आवेदन इस कथन के साथ दिया था कि उसकी नाबालिग बेटी 'एक्स', जो दसवीं कक्षा की छात्रा थी, को 31.03.2014 को सुबह लगभग 04:00 बजे आरोपी शैलेंद्र कुशवाहा द्वारा भागने के लिए लुभाया गया था। सुबह 'एम' ने आरोपी शैलेंद्र कुशवाहा के घर जाकर उसे फोन किया, उसके बाद उसने 'एक्स' को फोन किया और फिर 'एक्स' ने उसे बताया कि वह औरैया बस स्टैंड पर मौजूद है, फिर 'एम' और अन्य औरैया बस स्टैंड पर गए, लेकिन उसके बस स्टैंड पहुंचने से पहले ही आरोपी मानवेंद्र सिंह वहां पहुंच गया और फिर आरोपी शैलेंद्र कुशवाहा ने आरोपी मानवेंद्र सिंह को 'एक्स' पास कर दिया। मानवेंद्र सिंह ने उन्हें बताया कि 'एक्स' मिल गया है और वे उसे वापस लाएंगे, लेकिन मानवेंद्र 'एक्स' को उसके घर वापस नहीं लाया और इसके बजाय 'एक्स' को अपने पड़ोसी के बेटे मानवेंद्र पाल के साथ भागने के लिए मजबूर किया। शाम को जब मानवेंद्र सिंह 'एम' के घर आए तो उनसे 'एक्स' के बारे में पूछा गया तो मानवेंद्र सिंह ने बताया कि 'एक्स' भाग गया है। उन्होंने इस घटना की जानकारी 01.04.2014 को थाना कोतवाली जालौन को दी थी, लेकिन अभी तक कोई कार्रवाई नहीं की गई है। उसके संज्ञान में आया है कि 'एक्स' गुजरात में मानवेंद्र सिंह के रिश्तेदार (मौसा) राजू के साथ मोहल्ला मोदरसा में रह रहा है। मानवेंद्र का मोबाइल संख्या 9586435089 है।

4. 05.04.2014 को सर्किल ऑफिसर, जालौन ने एस.एच.ओ को प्रकरण की विवेचना कराने और विधिक कार्रवाई शुरू करने का आदेश दिया। इसके बाद, 2014 की धारा 363 और 366 भा0द0सं0 के तहत अपराध संख्या 629 08.04.2014 को सुबह 11:30 बजे पीएस कोतवाली, जालौन में आरोपी शैलेंद्र कुशवाहा, मानवेंद्र सिंह और मानवेंद्र पाल के खिलाफ दर्ज किया गया। चेक प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श क-8 रिकॉर्ड पर है।

5. पीड़ित 'एक्स' (विचारण न्यायालय में पीडब्ल्यू-1 के रूप में विवेचना की गई), 19.05.2014 को बरामद की गई थी। फर्द बरामदगी प्रदर्श क-6 है।

6. धारा 164 द0प्र0सं0 (प्रदर्श ख-1) के तहत पीड़ित 'X' पी.डब्लू.-1 का पहला बयान 22.05.2014 को दर्ज किया गया था, जो इस आशय का है:
मैं मलिक चंद्र के साथ अपनी इच्छा से घर से भाग गया था और गुजरात चला गया था, जहां मैं उनके साथ रहता था। किराए के घर में। मेरे और मलिक चंद्रा के बीच कोई शारीरिक संबंध स्थापित नहीं हुआ। उसने मेरे साथ कोई गलत काम नहीं किया। मैं उसके साथ रहना चाहता हूं।

7. पीड़ित 'एक्स' की विवेचना 19.05.2014 को दोपहर 12:50 बजे डॉ. संध्या गुप्ता, पी.डब्ल्यू.-3 द्वारा की गई थी। पीड़ित की मेडिकल विवेचना रिपोर्ट प्रदर्श क-2 है। पीड़िता ने डॉक्टर को बताया कि एक लड़का उसे 31.03.2014 को सुबह 05:00 बजे उसके घर से ट्रक से औरैया ले गया और उसे वहीं छोड़ दिया। वह रो रही थी, तभी एक और लड़का, उसकी चाची का दामाद (बुआ का दामाद) उसे गुजरात ले गया, जहां उसने एक मंदिर में उसके साथ शादी की। विवेचना के दौरान उसके शरीर या उसके निजी अंगों पर कोई चोट नहीं पाई गई, लेकिन उसका हाइमन 3 बजे की स्थिति में फटा हुआ पाया गया। उसकी योनि ने दो अंगुलियों को आसानी से स्वीकार कर लिया। योनि स्मीयर में शुक्राणुजोज़ा की उपस्थिति का पता लगाने के लिए दो स्लाइड तैयार की गई थीं। पीड़ित एक्स की दिनांक 23-05-2014 की पैथोलॉजिकल विवेचना रिपोर्ट में, दो योनि स्मीयर में से एक को शुक्राणुजोजा के लिए सकारात्मक पाया गया था।

8. पीड़ित 'एक्स' पीडब्ल्यू-1 का बयान, 03.07.2014 को द0प्र0सं0 की धारा 164 (प्रदर्श क-1) के तहत फिर से दर्ज किया गया था। यह प्रभाव के लिए है:

"मैंने मथुरा देवी गर्ल्स इंटर कॉलेज, जालौन जिला जालौन से दसवीं कक्षा पास की। मेरी जन्मतिथि 10.05.1998 है। मुझे मानवेंद्र, शैलेंद्र और मलिक चंद्रा ने धोखे और झांसे से फुसलाया था कि वे उसके साथ 'रानी' की तरह व्यवहार करेंगे, उन्होंने उसे धमकी भी दी कि अगर वह उनके साथ नहीं गई, तो वे उसके माता-पिता और उसके भाई को मार देंगे। यह घटना 31.03.2014 को सुबह 04:00 बजे हुई। आरोपी मलिक चंद्रा और शैलेंद्र ने उसके हाथ-पैर पकड़ लिए और मानवेंद्र ने उसे कुछ सूंघने लगा, जिससे वह बेहोश हो गई। वह औरैया में सुबह 10:00 बजे होश में आई और फिर वे उसे औरैया से गुजरात, हरियाणा में किराए के कमरे में ले गए, जहां तीनों लोगों ने उसके साथ बलात्कार किया। उसके कपड़े खराब हो गए और वह बेहोश हो गई। जब उसे होश आया, तो उपरोक्त सभी तीन व्यक्तियों ने उसे कपड़े उतारने का आदेश दिया। उसने मना कर दिया। उनके द्वारा उस पर हमला किया गया और 10-15 दिनों तक रखा गया और इन सभी व्यक्तियों द्वारा हर दिन बार-बार बलात्कार किया गया। उसे बेहोश कर दिया गया और फिर दिल्ली ले जाया गया, जहां उसे 10-15 दिनों तक किराए के कमरे में रखा गया और हर दिन उसके साथ बलात्कार किया गया। इन तीनों व्यक्तियों ने उसकी सहमति के बिना अन्य स्थानों पर भी उसके साथ बलात्कार किया। इन लोगों ने उसे डराने-धमकाने के बाद जबरन और बार-बार उसके साथ बलात्कार किया।

9. प्रारंभिक विवेचना एस.आई. सत्तार बेग, पीडब्ल्यू -5, जिन्होंने साइट प्लान प्रदर्श क -5 तैयार किया। उसकी उपस्थिति में, पीड़ित एक्स को 19.05.2014 को बरामद किया गया था। उन्होंने आरोपी मानवेंद्र सिंह @ झम्मन पाल और मलिक चंद्रा के खिलाफ भा0द0सं0 की धारा 363, 366 और 376 और धारा 3/4 पॉक्सो अधिनियम के तहत आरोप पत्र प्रदर्श क-7 भी प्रस्तुत किया। इसके बाद, एस.आई. विक्रम सिंह (पी.डब्ल्यू.-7) द्वारा विवेचना पूरी की गई, जिन्होंने आरोपी शैलेंद्र कुशवाहा के खिलाफ धारा 363, 366, 376 भा0द0सं0 और धारा 3/4 पॉक्सो अधिनियम, (प्रदर्श क-10) के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया। आरोपी मानवेंद्र सिंह @ झम्मन पाल और मलिक चंद्रा के खिलाफ 20.08.2014 को धारा 363, 366, 376 डी भा0द0सं0 और धारा 4 पॉक्सो अधिनियम

के तहत आरोप तय किए गए थे। आरोपी शैलेंद्र कुशवाहा के खिलाफ 16.12.2015 को धारा 363, 366, 376 डी भा0द0सं0 और 3/4 पॉक्सो अधिनियम के तहत आरोप तय किया गया था, जिसमें सभी आरोपी व्यक्तियों ने दोषी नहीं होने का अनुरोध किया था और मुकदमे का दावा किया था।

10. अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित गवाहों से पूछताछ की है, जिन्होंने निम्नलिखित दस्तावेजों को साबित किया है: -

क्रम सं0	**गवाह**	**साबित दस्तावेज**
1.	पी.डब्लू.-1- पीड़ित-एक्स	धारा 164 द0प्र0सं0 दिनांक 03.07.2014 के तहत दर्ज किए गए अपने दूसरे बयान को प्रदर्श क-1 के रूप में साबित किया, जो उसकी मुख्य परीक्षण के दौरान और धारा 164 द0प्र0सं0 के तहत उसका पहला बयान उसकी जिरह के दौरान प्रदर्श ख-1 के रूप में साबित हुआ।
2.	पी.डब्लू.2- सूचनाकर्ता 'M'	उसने कोई दस्तावेज साबित नहीं किया है।
3.	पी.डब्ल्यू-3 डॉ. संध्या गुप्ता।	पीड़ित की चिकित्सा विवेचना रिपोर्ट को प्रदर्श क-2 के रूप में साबित किया।
4.	पी.डब्ल्यू.-4- सुमन देवी, प्रिंसिपल, मथुरा देवी गर्ल्स इंटर कॉलेज, जालौन।	स्कॉलर रजिस्टर एवं पीड़ित का स्थानांतरण प्रमाण पत्र प्रदर्श क-3 & हाई स्कूल परीक्षा - 2014 प्रदर्श क -4 के रूप में पीड़ित का रिकॉर्ड/मार्कशीट।
5.	पी.डब्ल्यू.-5-एस.आई. मो. सत्तार बेग। (प्रकरण का पहला आई.ओ.)	नक्शा नजरी को प्रदर्श क-5 के रूप में साबित किया & प्रदर्श क-6 के रूप में पीड़ित का फर्द बरामदगी & आरोपी- मानवेंद्र सिंह @ झम्मन पाल और मलिक चंद्रा के खिलाफ प्रदर्श क-7 के रूप में आरोप पत्र दायर किया गया।
6.	पी.डब्ल्यू-6- बलराम प्रसाद।	चेक एफआईआर को प्रदर्श क-8 के रूप में साबित किया & जीडी प्रविष्टि संख्या 18/11.30 घंटे प्रदर्श क-9 के रूप में।
7.	पी.डब्ल्यू.-7 एस.आई. विक्रम सिंह	अभियुक्त- शैलेंद्र कुशवाहा के खिलाफ आरोप पत्र को पूर्व का-10 के रूप में साबित किया।

11. पीड़िता 'एक्स' पीडब्ल्यू-1 ने अपनी मुख्य परीक्षण में उल्लेख किया है कि उसकी जन्मतिथि 10.05.1998 है। उसने हाई स्कूल की परीक्षा पास की है। 31.03.2014 को सुबह 04:00 बजे, वह शौचालय जाने के लिए उठी। तब मानवेंद्र ने उसे बचाने के लिए बुलाया। इसके बाद उसने दरवाजा खोला, तो देखा कि मानवेंद्र, शैलेंद्र और मलिक चंद्रा बाहर खड़े हैं। शैलेंद्र ने उसका हाथ पकड़ लिया, मलिक चंद्रा ने उसके पैर पकड़ लिए, मानवेंद्र ने उसे कुछ सूंघने लगा, जिससे वह बेहोश हो गई। उसे औरैया में होश आ गया। उस समय सुबह के 10:00 बज रहे थे। जालौन में मानवेंद्र सिंह अपने घर के सामने रहते थे। 'एक्स' ने न्यायालय में आरोपी मानवेंद्र, मलिक चंद्रा और शैलेंद्र की पहचान की है। 'एक्स' ने आगे उल्लेख किया है कि उसके बेहोश होने के बाद, सभी आरोपी उसे औरैया से गुजरात ले गए, हरियाणा रोड नामक स्थान पर, जहां तीनों आरोपियों ने उसके साथ बलात्कार किया था। उसे खून बह रहा था। उसे वहां 10-15 दिनों तक रखा गया और तीनों आरोपियों ने लगातार उसके साथ बलात्कार किया। इसके बाद उसे बादली दिल्ली ले जाया गया, जहां तीनों आरोपी उसके साथ बलात्कार करते रहे। उसे वहां 10-12 दिन तक रखा गया। इसके बाद तीनों आरोपी उसे हैदराबाद के मोहल्ला धरमपुरी ले गए, जहां तीनों आरोपियों ने उसके साथ बलात्कार किया। इसके बाद मानवेंद्र अपने घर के लिए रवाना हो गया। मानवेंद्र को छानी से गिरफ्तार किया गया था। इसके बाद मानवेंद्र के परिजनों ने मलिक चंद्रा को घर लौटने की सूचना दी थी। इसके बाद, मलिक चंद्र और शैलेंद्र उसे साथ ले गए, लेकिन उसे और मलिक चंद्रा को पुलिस ने 19.05.2014 को झांसी रेलवे स्टेशन पर पकड़ लिया। शैलेंद्र भाग गया। इसके बाद पुलिस उन्हें जालौन पुलिस स्टेशन ले आई, जहां करीब 3-4 दिन बाद मजिस्ट्रेट के सामने उसका बयान दर्ज किया गया और एक महीने बाद फिर मजिस्ट्रेट के सामने उसका बयान दर्ज किया गया। पीड़िता 'एक्स' ने 03.07.2014 को दर्ज द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत अपने बाद के बयान को प्रदर्श क-1 के रूप में साबित कर दिया है। पीड़िता ने गवाही दी कि मजिस्ट्रेट के सामने दिया गया उसका पहला बयान सही नहीं है, क्योंकि आरोपी ने उसे धमकी दी थी और वह बयान आरोपी के दबाव में दिया गया था।

12. पीड़िता 'एक्स' ने अपनी जिरह में उल्लेख किया है कि उसने रिपोर्ट पेपर संख्या नहीं पढ़ा है। '5 का' उसकी मां पी.डब्ल्यू.-2 द्वारा दर्ज कराई गई। वह यह नहीं बता सकती कि उसकी मां द्वारा दर्ज कराई गई रिपोर्ट '5 का' सही है या नहीं? उसने इस बात से इनकार किया है कि इस घटना से दस दिन पहले, वह अपने घर से भाग गई थी और उसके सगे भाई 'जे' ने हरिश्चंद्र के गेहूं के खेत में उसे पकड़ लिया था, आरोपी मानवेंद्र @ झम्मन और अन्य। आरोपी मानवेंद्र @ झम्मन अपने घर के सामने रहता है, जो शादीशुदा है और उसके बच्चे हैं। वह उसके समुदाय से ताल्लुक रखता है। 'एक्स' ने इस बात से इनकार किया है कि इस घटना से दो दिन पहले, वह औरैया जिले के गांव कफूंद में आरोपी मानवेंद्र के साथ पकड़ी गई थी। वह घटना से पहले से ही सभी आरोपियों को जानती थी। इस घटना से पहले न तो मलिक चंद्रा और शैलेंद्र के साथ उनका प्रेम संबंध था और न ही उनके साथ दोस्ती थी। घटना के समय उसका छोटा भाई और मां उसके घर पर मौजूद थे जब मानवेंद्र आया और उसे बुलाया। उस समय, केवल वह जाग रही थी। घटना के समय, अंधेरा था, वह यह नहीं देख सकती थी कि वे सशस्त्र थे या नहीं। वह यह भी नहीं देख सकती थी कि वे पैदल चल रहे थे या उनके पास कोई वाहन था। वह उस वाहन को नहीं बता सकती थी जिसमें उसे ले जाया गया था, क्योंकि वह बेहोश थी। उसी दिन सुबह 10:00 बजे औरैया में उन्हें होश आया। तब भी उसने उस वाहन को नहीं देखा था, जिसमें उसने

यात्रा की थी। उसने इस बात से इनकार किया कि वह पूरी तरह से होश में थी और अपनी मर्जी से आरोपी शैलेंद्र के साथ गई थी। उसे जालौन पुलिस द्वारा 19.05.2014 को झांसी रेलवे स्टेशन पर बरामद किया गया था। उस समय उनके घर से कोई भी मौजूद नहीं था। पुलिस ने उसका बयान नहीं लिया था। वह तीन दिनों तक पुलिस कर्मियों के साथ रहीं लेकिन इस दौरान उन्होंने घटना के संबंध में, पुलिस कर्मियों से कोई बात नहीं की। डॉक्टर ने भी उससे घटना के बारे में पूछताछ नहीं की थी। उसने विवेचना के समय डॉक्टर को नहीं बताया था कि एक लड़का उसे 31.03.2014 को सुबह 05:00 बजे उसके घर से ट्रक से औरैया ले गया और उसे वहीं छोड़ दिया। वह रो रही थी, तभी उसकी चाची (बुआ) का दामाद एक और लड़का उसे गुजरात ले गया। वे वहां रहते थे और गुजरात के एक मंदिर में शादी की थी। पीड़िता ने स्वीकार किया कि उसका डॉक्टर से कोई झगड़ा नहीं हुआ है और उसने इनकार कर दिया कि डॉक्टर ने उसके बयान को सही ढंग से नोट किया था। पीड़िता ने इस बात से भी इनकार किया कि गिरफ्तारी के दिन पुलिस ने उसका बयान दर्ज किया था। उसने आईओ को यह नहीं बताया था कि 31.03.2014 को सुबह लगभग 04:00 बजे शैलेंद्र कुशवाहा आए और उसे औरैया ले गए। वह यह नहीं बता सकी कि आईओ ने ऐसा क्यों लिखा था। उसने आईओ को यह नहीं बताया था कि- मलिक चंद्रा उसका दूर का रिश्तेदार है, और वह वापस नहीं जाना चाहती थी और इस वजह से मानवेंद्र @ झम्मन ने मलिक चंद्रा के साथ भागने में उसकी सहायता की। उसने आईओ को यह नहीं बताया था कि मलिक चंद्रा आदि ने उसके साथ बलात्कार किया है।

13. पीड़िता 'एक्स' पीडब्ल्यू-1 ने अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि उसका बयान पकड़े जाने के 2-3 दिन बाद मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किया गया था और उस समय, उसके और मजिस्ट्रेट के अलावा कोई भी मौजूद नहीं था। 'एक्स' ने स्वीकार किया है कि मजिस्ट्रेट ने उनके द्वारा लिखे गए बयान को पढ़ा था और फिर उन्होंने उस बयान पर हस्ताक्षर किए थे। 'एक्स' ने द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत दर्ज किए गए अपने पहले बयान पर अपने हस्ताक्षर की पहचान की है, जो रिकॉर्ड पर पेपर संख्या 42-का है, और स्वीकार किया है कि यह बयान मजिस्ट्रेट द्वारा उसके कथन पर दर्ज किया गया था, जिसे आरोपी द्वारा एक्स.खा-1 के रूप में साबित किया गया है। उसने द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत फिर से अपना बयान दर्ज करने के लिए न तो मजिस्ट्रेट को और न ही किसी पुलिस अधिकारी या जिला मजिस्ट्रेट को आवेदन दिया था। उसने किसी अधिकारी से शिकायत नहीं की थी कि उसका पहला बयान गलत तरीके से दर्ज किया गया था। आरोपियों ने उसे कभी भी अपने साथ जाने के लिए मजबूर नहीं किया या वे उसके साथ रानी की तरह व्यवहार करेंगे। घटना की तारीख तक, आरोपियों ने उसे शादी करने के लिए नहीं कहा था या वे उसे रानी के रूप में मानेंगे। उसने मजिस्ट्रेट को दिनांक 3.07.2014 के अपने बयान में यह नहीं बताया कि आरोपी मानवेंद्र, शैलेंद्र और मलिक चंद्रा ने उसे धोखा दिया था और उसे धोखा दिया था कि वे उसके साथ रानी के रूप में व्यवहार करेंगे। उसने मजिस्ट्रेट को यह भी नहीं बताया कि आरोपी ने उसके माता-पिता और भाई को धमकी दी थी, अगर वह उनके साथ नहीं जाती है तो वह जान से मार देगी। वह इसका कारण नहीं बता सकी कि मजिस्ट्रेट द्वारा ऐसा बयान क्यों दर्ज किया गया। उसका दूसरा बयान द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा कैमरे में दर्ज किया गया था। मजिस्ट्रेट ने उसे लिखने के बाद उसका दिनांक 03.07.2014 का बयान पढ़ा था। उसने मजिस्ट्रेट से यह शिकायत नहीं की थी कि कैसे उसके बयान में यह गलत तरीके से लिखा गया है कि "आरोपी मानवेंद्र, शैलेंद्र

और मलिक चंद्रा ने उसे धोखा दिया था और उसे धोखा दिया था कि वे उसके साथ रानी के रूप में व्यवहार करेंगे, और उसे धमकी दी थी, अगर वह उनके साथ नहीं गई, तो उसके माता-पिता और भाई को मार दिया जाएगा"।

14. पीड़िता 'एक्स' ने अपनी जिरह में आगे उल्लेख किया है कि पहली बार गुजरात के एक घर में उसके साथ बलात्कार किया गया था। वह मोहल्ला, शहर, मकान मालिक का नाम, उस घर में रहने वाले मकान मालिक का नाम, तारीख और महीना नहीं बता सकी जब उस पर पहली बार बलात्कार किया गया था। वह यह नहीं बता सकी कि उसके साथ कितनी बार बलात्कार किया गया। लेकिन हर बार, एक के बाद एक तीनों व्यक्तियों द्वारा उसके साथ बलात्कार किया गया। उसने कभी भी किसी व्यक्ति या पुलिसकर्मी को बलात्कार के बारे में नहीं बताया था क्योंकि उसे एक कमरे में बंद कर दिया गया था। अंत में, हैदराबाद में उसके साथ बलात्कार किया गया था, लेकिन वह मोहल्ला का दिन, तारीख, महीना और नाम नहीं जानती थी। घर से निकलने से लेकर पकड़े जाने तक वह बेहोश रही, इसलिए वह यह नहीं बता सकी कि वह कार से गई या बस या ट्रेन से। उसे बेहोशी की हालत में झांसी लाया गया। उसके साथ लगातार बलात्कार किया गया। वह यह नहीं बता सकी कि 19.05.2014 को बरामद होने से पहले उसके साथ आखिरी बार कब बलात्कार किया गया था। लेकिन अंत में, तीनों व्यक्तियों ने उसके साथ बलात्कार किया था। शैलेंद्र और मलिक चंद्रा उसके साथ झांसी गए थे, लेकिन मानवेंद्र उसकी गिरफ्तारी से 3-4 दिन पहले ही आ गया था। पीड़िता 'एक्स' ने इस बात से इनकार किया कि उसे न तो भागने के लिए लुभाया गया था और न ही आरोपी मलिक चंद्रा और मानवेंद्र ने उसके साथ बलात्कार किया था। पीड़िता 'एक्स' ने अपनी जिरह में आगे उल्लेख किया है कि वह गुजरात, हैदराबाद और दिल्ली गई थी। गुजरात में वह हरियाणा रोड में रहती थी। वह दिल्ली से गुजरात गई थी, फिर भी उसे नहीं पता था कि वह दिल्ली से गुजरात गई थी या दिल्ली से हैदराबाद बस से गई थी या ट्रेन से। वह उस घर को भी नहीं जानती थी जिसमें वह रहती थी, या यदि वह टेम्पो से या पैदल जाती थी और जहां वह रहती थी, या आस-पास रहने वाले लोग। उसने जिस घर में वह रहती थी, वहां शोर मचा दिया था, लेकिन आस-पास रहने वाले लोगों ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने घर से बाहर आकर तीनों जगहों पर मदद मांगी थी लेकिन कोई भी उसकी मदद के लिए नहीं आया। वह अपनी यात्रा के दौरान बेहोश रही। उसे शामक दवा दी गई। उसने बेहोशी की दवा लेने से इनकार कर दिया था, लेकिन उसे पानी में मिलाकर दिया गया। उसने पानी पीने से मना नहीं किया था। उसने यह बात न तो पुलिस को बताई और न ही मजिस्ट्रेट को। उसने 100 संख्या पर गुजरात, हैदराबाद और दिल्ली से पुलिस को फोन किया था, लेकिन कोई नहीं आया। वह यह नहीं बता सकी कि उसने किस फोन संख्या से फोन किया था, तारीख और समय कब उसने पुलिस को फोन किया था। झांसी स्टेशन पर वह बेहोश थी, लेकिन उसने यह बात पुलिस या मजिस्ट्रेट को नहीं बताई थी। झांसी स्टेशन पर उसका इलाज नहीं हुआ। उरई अस्पताल में उसे होश आ गया। मजिस्ट्रेट ने उसके पहले बयान के करीब एक महीने बाद उसका दूसरा बयान दर्ज किया और इस दौरान वह अपनी मां के साथ रही। इस बीच, उसके पिता एक सप्ताह के लिए आए। पीड़िता 'एक्स' ने इस बात से इनकार किया कि घटना से पहले वह दूसरे व्यक्ति के साथ

2-3 बार भाग गई थी, जिसके कारण उसके इलाके में उसकी प्रतिष्ठा धूमिल हुई थी। इससे निपटने के लिए उसने झूठा प्रकरण दर्ज कराया था।

15. मुकदमे में सूचनाकर्ता 'एम' की पी.डब्ल्यू.-2 के रूप में विवेचना की गई है। उसने अपनी मुख्य परीक्षण में कहा कि यह घटना 31.03.2014 को हुई थी, जब वह सुबह उठी, तो उसने देखा कि घर में 'एक्स' मौजूद नहीं था। उसने अपने पड़ोसियों से पूछताछ की। उसे पता चला कि शैलेंद्र, मानवेंद्र और मलिक चंद्रा ने उसका अपहरण कर लिया है। वह थाना जालौन में रिपोर्ट दर्ज कराने गई, लेकिन उसकी रिपोर्ट दर्ज नहीं हुई। मानवेंद्र का घर उसके घर के सामने था। वह घटना से पहले से ही मानवेंद्र को जानती थी। घटना के चालीस (40) दिनों के बाद पुलिस ने 'एक्स' को बरामद कर लिया था। उसे आरोपी मलिक चंद्रा के साथ पकड़ा गया था। 'एक्स' ने उसे बताया था कि उसे दिल्ली, हरियाणा और गुजरात ले जाया गया था और सभी जगहों पर उसके साथ बलात्कार किया गया था। 'एक्स' को जबरन ले जाया गया और उसके साथ बलात्कार किया गया। फिर भी सूचनाकर्ता 'एम' ने कहा, उसने तहरीर पेपर संख्या पर हस्ताक्षर नहीं किए थे या जमा नहीं किए थे। '5 का' दिनांक 05.04.2014.

16. सूचनाकर्ता 'एम'- पी.डब्ल्यू.-2 ने अपनी जिरह में कहा है कि वह अनपढ़ है लेकिन वह हस्ताक्षर करने में सफल हो जाती है, फिर भी वह अपनी शादी की तारीख, महीना और साल नहीं बता सकी, क्योंकि कई दिन बीत चुके थे। उसे याद नहीं था, जब उसकी शादी हुई थी। वह अनुमान नहीं लगा सकती थी कि उसकी शादी 30 साल पहले हुई थी या 40 साल पहले। उसे अपने बच्चों की जन्म तिथि याद नहीं थी। वह केवल यह बताती है कि 'एक्स' का जन्म शादी के दो साल बाद हुआ था। वह उसकी पहली संतान है। पीड़िता सुबह 04:00 बजे अपने घर से निकली थी और उस समय 'एम' सो रही थी। वह सुबह 4:30 बजे उठी। वह घटना के दिन 10:00 - 11:00 बजे सो गई थी। वह 4:30 बजे से पहले नहीं उठी। पूर्वाह्न। उस समय उसका पति मौजूद नहीं था। उसने करीब एक-दो दिन बाद अपने पति को फोन पर घटना की जानकारी दी थी। उसने 10:00 से 11:00 बजे तक पड़ोस में 'X' की खोज की थी। इसके बाद वह थाने गई। वह शाम 04:00 बजे पुलिस स्टेशन पहुंची थी। न तो कोई पड़ोसी और न ही कोई रिश्तेदार उसके साथ थाने गया था। थाने जाने से पहले उसने अपने परिजनों से पूछताछ की थी। सूचनाकर्ता ने इस बात से इनकार किया था कि 'एक्स' पहले भी एक-दो बार भाग चुका था और इस वजह से उसने अपने रिश्तेदारों से कोई पूछताछ नहीं की थी। उसने इस बात से भी इनकार किया कि 'एक्स' उसके प्रेम संबंध के कारण भाग गया था और इस ज्ञान के कारण वह सीधे पुलिस स्टेशन नहीं गई थी। थाने के पुलिस कर्मियों ने उसके आवेदन को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। इसके बाद उन्होंने किसी भी उच्च अधिकारी को कोई आवेदन नहीं दिया। उसकी सूचना मिलने पर उसका पति तीन-चार महीने बाद आया था। 'एक्स' को जालौन कोतवाली पुलिस ने 11/2 महीने बाद ढूंढ निकाला। 'एक्स' को उसके पति ने स्कूल में दाखिला कराया था। पुलिस ने घटना के संबंध में उससे कोई पूछताछ नहीं की है। उसका पुलिस से कोई मुकाबला नहीं हुआ है। सूचनाकर्ता ने द0प्र0सं0 की धारा 161 के तहत उसके बयान से इनकार किया है। सूचनाकर्ता ने आगे स्वीकार किया है कि उसने पीड़िता को जाते नहीं देखा है। उसे पड़ोसियों से सूचना मिली थी

कि 'एक्स' चला गया है। यह सच है कि मानवेंद्र सिंह और मलिक चंद्रा उनके समुदाय से हैं। उसने अपनी बेटी के भागने के संबंध में पुलिस स्टेशन या पुलिस अधीक्षक को कोई आवेदन नहीं दिया था।

17. अभियोजन पक्ष ने विचारण न्यायालय में डॉ. संध्या गुप्ता से पी.डब्ल्यू.-3 के रूप में पूछताछ की है, जिन्होंने अपनी परीक्षा-इन-चीफ के दौरान कहा है कि पीड़िता ने पूछताछ में उसे बताया था कि एक लड़का उसे 31.03.2014 को सुबह 05:00 बजे ट्रक से औरैया ले गया था और उसे रास्ते में छोड़ दिया था। वह रो रही थी। फिर उसकी चाची का दामाद (बुआ का दामाद) आया और उसे गुजरात ले गया, जहां वह रहती थी और एक मंदिर में शादी की थी। इस गवाह के अनुसार, पीड़ित के शरीर पर कोई बाहरी या आंतरिक चोट नहीं पाई गई। उसका हाइमन 3'ओ' घड़ी की स्थिति में पुराना फटा हुआ था, लेकिन कोई रक्तस्राव या निर्वहन नहीं था। इस गवाह ने 'X' दिनांक 19.05.2014 की मेडिकल विवेचना रिपोर्ट को प्रदर्श क-2 के रूप में साबित किया है। जिरह में उसने कहा कि उसने पूरक रिपोर्ट तैयार नहीं की है, क्योंकि उसके पास कोई नहीं आया था। उसे पीड़िता का हाइमन फटा हुआ मिला था, लेकिन वह पैथोलॉजी रिपोर्ट देखने के बाद ही बलात्कार के बारे में राय दे सकती थी। मेडिकल विवेचना के समय, उसने यह सुनिश्चित किया था कि पीड़िता किसी भी दबाव में नहीं थी।

18. अभियोजन पक्ष ने विचारण न्यायालय में पी.डब्ल्यू.-4 के रूप में सुमन देवी की विवेचना की है। उन्होंने अपनी परीक्षा में बताया कि वह 2009 से मथुरा देवी गर्ल्स इंटर कॉलेज, जालौन की प्रिंसिपल हैं। 'एक्स' इस कॉलेज का छात्र रहा है। प्रवेश रजिस्टर के अनुसार, 'X' की जन्म तिथि 10.05.1998 है और उसने 21.07.2012 को कक्षा-IX में प्रवेश लिया था और हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद अपने अभिभावक की सहमति से 23.07.2014 को अपना नाम हटा दिया था। इस गवाह ने उपरोक्त कॉलेज के स्कॉलर रजिस्टर और ट्रांसफर सर्टिफिकेट के उद्धरण को प्रदर्श क-3 के रूप में साबित किया है और हाई स्कूल परीक्षा, 2014 के उद्धरण को उसके कॉलेज से संबंधित कारण सूची और 'X' के रूप में उपरोक्त दस्तावेजों के प्रदर्श क-4.In में पीड़ित की जन्मतिथि 10.05.1998 दर्ज की गई है। जिरह में उसने कहा है कि वह यह नहीं बता सकती कि पीड़िता का जन्म प्रमाण पत्र कॉलेज के रिकॉर्ड में उपलब्ध है या नहीं? प्रदर्श क.3 में प्रविष्टियाँ उसके हाथ से लिखी हुई नहीं हैं। वह यह नहीं बता सकी कि किस दस्तावेज के आधार पर 'X' की जन्मतिथि प्रदर्श क.3 में दर्ज की गई है।

19. अभियोजन पक्ष ने एस.आई. सत्तार बेग को विचारण न्यायालय में पीडब्ल्यू-5 के रूप में नियुक्त किया गया है। उन्होंने प्रारंभिक विवेचना की। इस गवाह ने साइट प्लान को प्रदर्श क-5 के रूप में साबित किया है और 10.05.2014 को अभियुक्त-मानवेंद्र सिंह @ झम्मन पाल की गिरफ्तारी की है। इस गवाह के अनुसार- मलिक चंद्रा को 19.05.2014 को गिरफ्तार किया गया था और पीड़ित को बरामद किया गया था। इस गवाह ने पीड़ित के फर्द बरामदगी को प्रदर्श क-6 के रूप में भी साबित किया है। इस गवाह ने 22.05.2014 को द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत पीड़िता का बयान दर्ज कराया था और उसके बाद 23.05.2014 को उसकी मां को उसकी हिरासत सौंपने के लिए न्यायालय में एक आवेदन दायर किया था, लेकिन न्यायालय ने उसे 27.06.2014 को

पेश करने का आदेश दिया था। इस गवाह ने यह भी उल्लेख किया है कि 03.07.2014 को द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत पीड़िता का एक और बयान दर्ज किया गया था। इस गवाह ने आरोपी मानवेंद्र सिंह @ झम्मन पाल और मलिक चंद्रा के खिलाफ आरोप पत्र को प्रदर्श क-7 के रूप में साबित कर दिया है।

20. जिरह में पीडब्ल्यू-5 ने स्वीकार किया है कि पीड़िता का बयान (द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत) दो बार दर्ज किया गया था, पहली बार 22.05.2014 को और फिर 3.7.2014 को। इसी तरह, द0प्र0सं0 की धारा 161 के तहत पीड़िता का बयान दो बार दर्ज किया गया था, पहली बार 19.05.2014 को और फिर 21.05.2014 को। उन्होंने पीड़िता का दूसरा बयान दर्ज करने के लिए कोई आवेदन नहीं दिया था। न्यायालय ने स्वत: संज्ञान लेते हुए आदेश दिया था। इस गवाह ने स्वीकार किया है कि पहले बयान में, पीड़िता ने आरोपी शैलेंद्र का नाम नहीं लिया था, या शैलेंद्र ने उसका हाथ पकड़ लिया था, मलिक चंद्रा ने उसके पैर पकड़ लिए थे और मानवेंद्र ने उसे कुछ सूंघने के लिए मजबूर किया था, और वह सुबह 10:00 बजे औरैया में होश में आ गई। पीड़िता ने उसे बताया कि वह गुजरात गई थी। पीड़ित ने उसे यह भी नहीं बताया था कि शैलेंद्र गुजरात गया था और वे गुजरात में रहते थे। पीड़िता ने यह भी नहीं बताया था कि शैलेंद्र ने उसके साथ बलात्कार किया है। पीड़िता को मलिक चंद्रा के साथ पकड़ा गया था। इस गवाह ने स्वीकार किया है कि डॉक्टर को दिए गए बयान में पीड़िता ने किसी आरोपी का नाम नहीं लिया था, बल्कि बताया था कि उसकी चाची (बुआ) का दामाद उसे गुजरात ले गया था, जहां उसने एक मंदिर में शादी की थी। उसने सबसे पहले 19.05.2014 को पीड़िता का बयान दर्ज किया था, जिसमें उसने यह खुलासा नहीं किया था कि मलिक चंद्रा और अन्य ने उसके साथ बलात्कार किया था। द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत पीड़िता के पहले बयान के अवलोकन पर, किसी भी आरोपी द्वारा कोई अपराध नहीं पाया गया। पीड़िता ने उसे यह नहीं बताया था कि उसके माता-पिता ने जानबूझकर उसे स्कूल के रिकॉर्ड में नाबालिग दिखाया था। करीब 12 दिन बाद पीड़िता के पिता घर लौटे थे।

21. अभियोजन पक्ष ने बलराम प्रसाद की पी.डब्ल्यू.-6 के रूप में विवेचना की है, जिसने अपनी मुख्य परीक्षण में उल्लेख किया है कि उसने 08.04.2014 को 11:30 बजे सूचनाकर्ता के टाइप किए गए आवेदन के आधार पर एफआईआर दर्ज किया था, जो कि 2014 का मुकदमा अपराध संख्या 629 है, धारा 363, 366 भा0द0सं0 के तहत इस गवाह ने चेक एफआईआर को प्रदर्श क-8 के रूप में और जीडी प्रविष्टि संख्या 18 की कार्बन कॉपी को 11:30 बजे प्रदर्श क-9 के रूप में साबित किया है।

22. अभियोजन पक्ष ने एसआई विक्रम सिंह की पीडब्ल्यू-7 के रूप में विवेचना की, जिन्होंने इस प्रकरण की विवेचना पूरी की। उन्होंने आरोपी शैलेंद्र कुशवाहा के खिलाफ आरोप पत्र को प्रदर्श क-10 के रूप में साबित किया।

23. अभियुक्तों ने द0प्र0सं0 की धारा 313 के तहत दर्ज किए गए अपने बयान में अभियोजन पक्ष की कहानी से इनकार किया है और प्रस्तुत किया है कि उन्हें दुश्मनी के कारण प्रकरण में झूठा फंसाया गया है।

24. अभियुक्त, शैलेंद्र कुशवाहा ने राजा राम की डी.डब्ल्यू.1 के रूप में विवेचना की है, जिसने अपनी परीक्षा-इन-चीफ में उल्लेख किया है कि 31.03.2014 की सुबह से, शैलेंद्र गांव में या आसपास के गांव में मौजूद रहा और उसने घटना की तारीख को पुलिस को यह भी बताया था कि वह गांव में मौजूद था, और उसने पीड़ित का अपहरण नहीं किया था।

25. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि पीड़िता ने द0प्र0सं0 की धारा 161 और द0प्र0सं0 के तहत अपने पहले बयान में उल्लेख किया है कि वह आरोपी मलिक चंद्रा के साथ अपनी मीठी वसीयत से भाग गई थी, और गुजरात गई थी, जहां उसने मलिक चंद्रा के साथ शादी की थी, लेकिन उनके बीच कोई शारीरिक संबंध स्थापित नहीं हुआ था। इसके बाद, द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत अपने दूसरे बयान में, उसने तीनों आरोपियों- शैलेंद्र कुशवाहा, मानवेंद्र सिंह @ झम्मन पाल और मलिक चंद्रा को अपराध में फंसाया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि पीड़िता के पहले बयान और दूसरे बयान और उसके बाद विचारण न्यायालय में उसकी विवेचना के बीच महत्वपूर्ण सुधार हुआ है, क्योंकि पीड़िता का सबूत भरोसेमंद नहीं है। पीड़िता बालिग थी, जो अपनी मर्जी से गई थी, इसलिए अवर न्यायालय ने सभी आरोपियों को दोषी ठहराने में अवैध काम किया था। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि सूचनाकर्ता 'एम' पीडब्ल्यू-2 चश्मदीद गवाह नहीं है। अपनी मुख्य परीक्षण में उसने कहा था कि उसने न तो तहरीर पर हस्ताक्षर किए थे और न ही इसे एफआईआर के पंजीकरण के लिए पुलिस को सौंपा था। सूचनाकर्ता पी.डब्ल्यू.-2 के इस बयान को देखते हुए, अभियोजन पक्ष की कहानी साबित नहीं हुई है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि पीड़िता ने डॉक्टर पी.डब्ल्यू.-3 को यह भी बताया था कि वह अपनी चाची के दामाद के साथ गुजरात गई थी, जहां उसने उसके साथ शादी की थी। विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि चूंकि पीड़िता अपनी मर्जी से अपने घर से गई थी, इसलिए सभी आरोपियों के खिलाफ प्रलोभन, भागने और बलात्कार का अपराध उचित संदेह से परे साबित नहीं हुआ है और इसके अलावा बलात्कार का कोई चिकित्सा साक्ष्य रिकॉर्ड पर उपलब्ध नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि पीड़ित की एकमात्र गवाही की पुष्टि किसी अन्य गवाह द्वारा नहीं की गई है, इसलिए केवल पीड़ित की असंगत और अविश्वसनीय गवाही के आधार पर, आरोपी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। अवर न्यायालय ने आरोपी को दोषी ठहराने में गलती की है। इन प्रस्तुतियों के साथ, यह प्रार्थना की गई है कि दोनों आपराधिक अपीलों की अनुमति दी जाए और सभी आरोपियों को उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों से बरी कर दिया जाए।

26. राज्य के विद्वान एजीए ने प्रस्तुत किया है कि पीड़ित की गवाही भरोसेमंद है। द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत दर्ज किए गए अपने दूसरे बयान में और न्यायालय में मुख्य परीक्षण में उन्होंने तीनों आरोपियों का नाम लिया, जिस पर अवर न्यायालय ने विश्वास किया है। विद्वान ए.जी.ए. ने आगे प्रस्तुत किया है कि सूचनाकर्ता पी.डब्ल्यू.-2 एक अनपढ़ महिला है और इस तरह प्रथम सूचना रिपोर्ट के संबंध में उसके साक्ष्य को अनुचित महत्व नहीं दिया जाना चाहिए। विद्वान एजीए ने आगे प्रस्तुत किया है कि पीड़ित की गवाही भरोसेमंद है, जिसके लिए किसी भी पुष्टि की आवश्यकता नहीं है। घटना के समय पीड़िता नाबालिग थी और इस तरह

उसकी सहमति महत्वहीन है। इन प्रस्तुतियों के साथ, यह प्रार्थना की गई है कि इस आपराधिक अपील में कोई गुण नहीं है और इसे अस्वीकार किया जा सकता है।

27. पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने के बाद, सूचनाकर्ता 'एम' पीडब्ल्यू -2 के साक्ष्य के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि वह घटना की चश्मदीद गवाह नहीं है। घटना के दिन, वह सुबह उठी और पाया कि पीड़िता 'एक्स' उसके घर में मौजूद नहीं थी। उसने पड़ोस में उसकी तलाश की थी, लेकिन 'एक्स' का पता नहीं चल सका। करीब 40 दिनों के बाद आरोपी मलिक चंद्रा के साथ पुलिस ने 'एक्स' को पकड़ लिया और फिर 'एक्स' ने उसे बताया कि तीनों आरोपी उसे जबरन गुजरात ले गए और उनके साथ जबरन बलात्कार भी किया गया।

28. फिर भी सूचनाकर्ता 'एम' पीडब्ल्यू -2 ने एक साथ स्वीकार किया है कि तहरीर पेपर संख्या 5 क पर उसके हस्ताक्षर नहीं हैं और उसने इसे पुलिस को भी प्रस्तुत नहीं किया था। यहां यह उल्लेख करना उचित है कि घटना के संबंध में सूचनाकर्ता के आवेदन (पेपर संख्या 5 क) के आधार पर 08.04.2014 को सुबह 11:30 बजे एफआईआर दर्ज की गई है। चूंकि सूचनाकर्ता ने इस बात से इनकार किया है कि एफआईआर का आधार यानी उसके कथित आवेदन (पेपर संख्या 5 क) ने उसके द्वारा नहीं दिया गया था, इसलिए अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी संदिग्ध हो जाती है। यह सच है कि एफआईआर सबूत का एक ठोस टुकड़ा नहीं है, लेकिन इसकी सामग्री को विधि के अनुसार साबित करने की आवश्यकता है, जिसे अभियोजन पक्ष इस प्रकरण में उचित संदेह से परे साबित करने में विफल रहा है। यह हमारे बाद के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाएगा।

29. **सुरेश एन. भुसरे और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (1999) 1 एससीसी 220** के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि जहां अभियोक्ता के साक्ष्य गंभीर कमजोरियों और अन्य सामग्री के साथ विसंगतियों से पीड़ित पाए जाते हैं, अभियोक्ता ने अपनी ओर से सहमति को खारिज करने के लिए भौतिक बिंदु पर जानबूझकर सुधार किया और उसके व्यक्ति को कोई चोट नहीं पहुंचाई, भले ही उसका संस्करण अन्यथा हो, उसके साक्ष्य पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है।

30. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **तमीजुद्दीन @ तम्मू बनाम राज्य (दिल्ली का राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) (2009) 15 एससीसी 566** के प्रकरण में अभिनिर्धारित किया है कि यह सच है कि बलात्कार के प्रकरण में अभियोक्ता के साक्ष्य पर प्रमुख विचार किया जाना चाहिए, लेकिन यह मानने के लिए कि इस सबूत को स्वीकार किया जाना चाहिए, भले ही कहानी असंभव हो और तर्क को झुठलाती हो, उन सिद्धांतों के लिए हिंसा करना होगा जो एक आपराधिक प्रकरण में साक्ष्य की सराहना को नियंत्रित करते हैं।

31. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **नरेंद्र कुमार बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) एआईआर 2012 एससी 2281** के प्रकरण में अभिनिर्धारित किया है कि अभियोजन पक्ष को उचित संदेह से परे अपने प्रकरण को साबित करना होगा और बचाव के प्रकरण की कमजोरी से समर्थन नहीं ले सकता है। अभियुक्त की दोषसिद्धि को रिकॉर्ड करने के लिए रिकॉर्ड पर उचित विधिक साक्ष्य और सामग्री होनी चाहिए। दोषसिद्धि अभियोक्ता की

एकमात्र गवाही पर आधारित हो सकती है बशर्ते वह उसकी गवाही को आश्वासन दे। हालांकि, यदि न्यायालय के पास अभियोक्ता के संस्करण को उसके अंकित मूल्य पर स्वीकार नहीं करने का कारण है, तो वह पुष्टि की तलाश कर सकती है। यदि साक्ष्य को उसकी समग्रता में पढ़ा जाता है और अभियोजन पक्ष द्वारा पेश की गई कहानी असंभव पाई जाती है, तो अभियोजन पक्ष का प्रकरण खारिज किए जाने के लिए उत्तरदायी हो जाता है।

32. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त सिद्धांतों से, यह स्पष्ट है कि जहां 'एक्स' अभियोक्ता का साक्ष्य भरोसेमंद, विश्वसनीय है और विश्वास को प्रेरित करता है, तो दोषसिद्धि उसकी एकमात्र गवाही पर आधारित हो सकती है, हालांकि प्रकरण में, न्यायालय के पास अभियोक्ता के संस्करण को उसके अंकित मूल्य पर स्वीकार नहीं करने का कारण है, यह पुष्टि की तलाश कर सकता है और यदि साक्ष्य को समग्रता में पढ़ा जाता है और यदि अभियोजन पक्ष द्वारा पेश की गई कहानी असंभव पाई जाती है, तो अभियोक्ता का प्रकरण खारिज होने के लिए उत्तरदायी हो जाता है।

33. धारा 164 द0प्र0सं0 के तहत दर्ज पीड़िता 'एक्स' के पहले बयान के अवलोकन से, जिसे आरोपी ने एक्स खा-1 के रूप में साबित किया था, यह स्पष्ट है कि वह अपनी इच्छा से आरोपी मलिक चंद्रा के साथ गई थी। इस प्रकार वह उसके साथ भाग गई और गुजरात चली गई, जहां वह उसके साथ रहती थी और उनके बीच कोई शारीरिक संबंध स्थापित नहीं हुआ था। पीड़िता ने अपने बयान में उल्लेख किया है कि आरोपी मलिक चंद्रा ने उसके साथ बलात्कार नहीं किया था और वह उसके साथ रहना चाहती थी। पीड़िता 'एक्स' ने अपनी मेडिकल विवेचना के समय डॉक्टर पी.डब्ल्यू.-3 को भी बताया था, (पी.डब्ल्यू.-3 ने अपनी परीक्षा-इन-चीफ में भी साबित किया है) कि 31.03.2014 को सुबह 05:00 बजे वह एक लड़के के साथ अपने घर से निकली थी और एक ट्रक से औरैया गई थी, जिसने उसे रास्ते में छोड़ दिया था, और फिर उसकी चाची का दामाद उसे गुजरात ले गया था, जहां उसने उसके साथ एक मंदिर में शादी की थी। उपरोक्त दोनों बयान विधि के अनुसार साबित हुए हैं, जिसके अनुसार, आरोपी शैलेंद्र कुशवाहा, मानवेंद्र सिंह @ झम्मन पाल और मलिक चंद्रा, न तो प्रलोभन में शामिल थे और न ही उन्होंने पीड़िता के साथ बलात्कार किया था। दरअसल, पीड़िता ने कहा है कि उसके साथ किसी ने बलात्कार नहीं किया था।

34. पीड़िता 'एक्स' पीडब्ल्यू-1 ने द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत दिए गए अपने बाद के दूसरे बयान दिनांक 03.07.2014 में, जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा मुकदमे के दौरान प्रदर्श क-1 के रूप में साबित किया गया है, ने 'यू' मोड़ ले लिया है और उल्लेख किया है कि तीनों आरोपियों ने 31.03.2014 को सुबह 04:00 बजे उसके घर से उसका जबरन अपहरण कर लिया और उसे गुजरात ले गए, दिल्ली और कई अन्य स्थानों पर, जहां उन्होंने 10-15 दिनों तक जबरन बलात्कार किया और बार-बार बलात्कार किया। पीड़िता ने इस घटना को भी दोहराया है, जैसा कि उसने विचारण न्यायालय में अपनी मुख्य परीक्षण के दौरान द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत दर्ज अपने दूसरे बयान में बताया है, जो कि पुलिस को दिए गए द0प्र0सं0 की धारा 161 के तहत उसके पहले बयान से एक महत्वपूर्ण सुधार है और 22.05.2014 को द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किया

गया है। इस तरह के भौतिक सुधार को देखते हुए, पीड़िता पर भरोसा नहीं किया जा सकता है और उसके साक्ष्य को सावधानीपूर्वक विवेचना और पुष्टि की आवश्यकता होती है, जो इस प्रकरण में अनुपस्थित है।

35. पी.डब्ल्यू.-4, सुमन देवी के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि हाई स्कूल परीक्षा, 2014 के रिकॉर्ड में, पीड़ित की जन्मतिथि 10.05.1998 दर्ज की गई है, जो इस गवाह द्वारा साबित की गई है, जिसके अनुसार पीड़िता घटना की तारीख को लगभग 15 वर्ष और दस महीने की थी। यह सच है कि पीड़िता के शैक्षिक रिकॉर्ड के अनुसार, वह घटना की तारीख को नाबालिग थी, लेकिन फिर भी दोषसिद्धि दर्ज करने के लिए, अभियोजन पक्ष की कहानी भरोसेमंद होनी चाहिए और पीड़िता की एकमात्र गवाही से आत्मविश्वास पैदा होना चाहिए।

36. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **अलामेलु और एक अन्य बनाम राज्य पुलिस निरीक्षक (2011) 2 एससीसी 385** के प्रकरण में विचारण न्यायालय और अपीलकर्ताओं की उच्च न्यायालय की दोषसिद्धि को रद्द करते हुए अभिनिर्धारित किया है कि भले ही अभियोक्ता के पास विरोध करने और अलार्म उठाने के कई अवसर थे, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। कथित तौर पर अपहरण किए जाने के बाद किसी भी चरण में किसी से शिकायत नहीं करने का उसका व्यवहार पूरी तरह से अप्राकृतिक है, इसलिए अभियोक्ता की एकमात्र गवाही पर दोषसिद्धि टिकाऊ नहीं है।

37. न्यायालय में पीड़िता 'एक्स' पी.डब्ल्यू.-1 की गवाही से यह स्पष्ट है कि तीनों आरोपियों ने उसे जबरन उसके घर से अपहरण कर लिया था और उसे गुजरात, हैदराबाद, दिल्ली ले गए थे, लेकिन वह मोहल्ला, शहर, मकान मालिक का नाम नहीं बता सकी, जो उस घर में रहता था, पहले बलात्कार की तारीख और महीना, उसके साथ कितनी बार बलात्कार किया गया। उसने बयान दिया है कि उसने शोर मचाया था लेकिन आस-पास रहने वाला कोई भी व्यक्ति उसकी मदद के लिए नहीं आया। यह विश्वसनीय नहीं है। उसने यह भी कहा है कि वह अपनी विभिन्न यात्राओं के दौरान बेहोश रही, जो पूरी तरह से अविश्वसनीय है। पीड़िता ने अपनी जिरह में यह भी उल्लेख किया है कि उसने गुजरात, हरियाणा और दिल्ली से संख्या 100 पर पुलिस को फोन किया था, लेकिन कोई भी उसे बचाने के लिए नहीं आया, जो कि असंभव भी है। पीड़िता यह बताने में असमर्थ है कि उसे कार, या बस, या ट्रेन से ले जाया गया था या नहीं। यह अत्यधिक असंभव है कि 31.3.2014 से 19.5.2014 तक, 49 दिनों की अवधि में, पीड़िता बेहोश रही, और अभियुक्त का विरोध करने के लिए शारीरिक और मानसिक स्थिति में नहीं थी, इसके अलावा, जब वह सार्वजनिक स्थान पर रह रही थी और सार्वजनिक परिवहन में यात्रा कर रही थी।

38. पीड़िता ने स्वीकार किया है कि द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत उसका पहला बयान मजिस्ट्रेट द्वारा उसे पढ़ा गया था और उसके बाद ही उसने उस पर हस्ताक्षर किए थे। पीड़िता ने यह भी स्वीकार किया है कि उसका पहला बयान मजिस्ट्रेट द्वारा उसके बयान पर दर्ज किया गया था और उसने किसी भी अधिकारी से शिकायत नहीं की थी, कि द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत उसका पहला बयान गलत तरीके से दर्ज किया गया था। द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत दूसरे बयान में पीड़िता ने उल्लेख किया कि आरोपी ने उसे धोखे से बहकाया

था और धोखा दिया था कि वे उसे रानी के रूप में मानेंगे, लेकिन पीड़िता ने इस बात से इनकार किया है कि उसने मजिस्ट्रेट को यह बताया था। पीड़िता ने इस बात से भी इनकार किया है कि उसने डॉक्टर पीडब्ल्यू-3 को बताया था कि वह अपनी चाची के दामाद के साथ गुजरात गई थी और उसके साथ एक मंदिर में शादी की थी। यह अविश्वसनीय है, कि मजिस्ट्रेट ने द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत दर्ज पीड़िता के पहले बयान में और डॉक्टर पीडब्ल्यू -3 ने स्वयं उपरोक्त तथ्यों को गलत तरीके से दर्ज किया है।

39. यह भी स्पष्ट है कि द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत पहला बयान दर्ज करने के बाद, पीड़िता की कस्टडी उसकी मां पी.डब्ल्यू.-2 को सौंप दी गई थी और उसके बाद लगभग 40 दिन बाद, धारा 164 द0प्र0सं0 (प्रदर्श क-1) के तहत उसका दूसरा बयान 03.7.2014 को दर्ज किया गया था। एस.आई. सत्तार बेग, पी.डब्ल्यू.-5 ने अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि उन्होंने द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत पीड़िता का दूसरा बयान दर्ज करने के लिए कोई आवेदन नहीं दिया था और न्यायालय ने स्वत: ही आदेश दिया है। यह बहुत आश्चर्य की बात है कि विवेचना अधिकारी की ओर से कोई आवेदन नहीं होने के कारण न्यायालय द्वारा द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत पीड़िता का दूसरा बयान क्यों दर्ज किया गया है। पीड़िता द्वारा द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत अपने बाद के बयान में और मुकदमे के दौरान न्यायालय में दी गई गवाही में किए गए सभी सुधार आरोपी द्वारा विधि के अनुसार साबित किए गए हैं, जो पीड़ित की गवाही को अत्यधिक अविश्वसनीय बनाता है और पुष्टि के अभाव में, इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

40. हम इस तथ्य से अवगत हैं कि पीड़िता के शैक्षिक रिकॉर्ड के अनुसार, विशेष रूप से उसकी उम्र के बारे में पूरक चिकित्सा रिपोर्ट के अभाव में, वह कथित घटना की तारीख को नाबालिग थी, लेकिन, फिर भी अभियोजन पक्ष को उचित संदेह से परे अपने प्रकरण को साबित करना होगा, जिसे वह साबित करने में पूरी तरह से विफल रहा है। वर्तमान प्रकरण में पीड़ित 'एक्स' की गवाही विश्वास को प्रेरित करने में विफल रही है। अवर न्यायालय में पीड़िता के दिए गए सबूत कि वह गुजरात, हैदराबाद और दिल्ली में बेहोश रही, उसने इन जगहों पर शोर मचाया, लेकिन कोई उसकी मदद के लिए नहीं आया, उसने 100 संख्या पर पुलिस को फोन किया, लेकिन किसी ने उसकी मदद नहीं की, वह पूरी तरह से बेहोश रही, पूरी तरह से असंभव है। द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत दिए गए उसके पहले बयान और द0प्र0सं0 की धारा 161 के तहत पुलिस को दिए गए उसके पहले बयान को ध्यान में रखते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि पीड़िता ने द0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत अपना दूसरा बयान दिया और अपने माता-पिता के दबाव में न्यायालय में सबूत दिए, जो विश्वास को प्रेरित नहीं करता है। 'एक्स' द्वारा उसकी गवाही में किए गए भौतिक सुधार उसकी विश्वसनीयता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं, जो भौतिक विवरणों में किसी भी पुष्टि से रहित है।

41. इसे देखते हुए, विचारण न्यायालय ने पीड़ित की एकमात्र गवाही पर भरोसा करने और आरोपी व्यक्तियों को दोषी ठहराने में अवैधता की है। अवर न्यायालय द्वारा पारित 23.11.2017 का आक्षेपित निर्णय और आदेश पूरी तरह से विकृत है और इसे रद्द किया जा सकता है। नतीजतन, दोनों आपराधिक अपीलों की अनुमति दी जा सकती है।

42. तदनुसार, दिनांक 23.11.2017 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द किया जाता है। दोनों अपीलों को स्वीकृत किया जाता है। सत्र परीक्षण संख्या 22 वर्ष 2014 में अभियुक्त शैलेन्द्र कुशवाहा, मनवेन्द्र सिंह @ झम्मन पाल तथा मलिक चन्द्र के विरुद्ध धारा 363, 366, 376-डी भारतीय दण्ड संहिता एवं धारा 3/4 पॉक्सो अधिनियम के अंतर्गत पारित दोषसिद्धि एवं दण्डादेश को निरस्त किया जाता है। सभी अभियुक्तगण को उनके विरुद्ध लगाए गए समस्त आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है।

43. अपीलकर्ता जेल में हैं। उन्हें किसी अन्य प्रकरण में वांछित नहीं होने पर तत्काल रिहा करने का निर्देश दिया जाता है।

44. रजिस्ट्रार (अनुपालन) को निर्देश दिया जाता है कि वह इस आदेश को विचारण न्यायालय और संबंधित जेल प्राधिकरण को अनुपालन के लिए सूचित करे। विचारण न्यायालय द्वारा अनुपालन रिपोर्ट भी प्रस्तुत की जाए।

45. कार्यालय को विचारण न्यायालय रिकॉर्ड वापस भेजने का निर्देश दिया जाता है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1729

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति संदीप जैन

आपराधिक अपील संख्या 10492/2024

के साथ

आपराधिक अपील संख्या 10576/2024

राजेंद्र और अन्य **... अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **... प्रतिवादी**

अनुवादित

अपीलकर्तागण की ओर से अधिवक्ता:

श्री राजर्षि गुप्ता, श्री संतोष कुमार शुक्ला, श्री दिलीप कुमार (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादी की ओर से अधिवक्ता:

श्री आदित्य कश्यप, श्री अंशुल कुमार सिंघल, जी.ए., श्री विनोद कुमार त्रिपाठी

आपराधिक विधि – आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 386 – प्रतिवाद – सामान्य निर्णय – अवैधता – प्रतिवादों में स्वतंत्र रूप से विचार किए जाने वाले अलग-अलग साक्ष्य – अलग-अलग प्रकरण के अपराधों में संयुक्त साक्ष्य की सराहना पर सामान्य निर्णय पारित करना – नाथी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य का सिद्धांत, (1990 पूरक एससीसी 145) की पुष्टि की गई – दोषसिद्धि के आदेश को रद्द कर दिया गया और प्रकरण को नए निर्णय के लिए भेज दिया गया – अपीलकर्ता, जो मुकदमे के दौरान जमानत पर थे, उन्हें फिर से सुनवाई होने तक जमानत पर रिहा करने का निर्देश दिया गया। (पैरा 6, 9, 11 और 12)

अभिनिर्धारित:

अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण तथा विधि की दृष्टि से पूर्णतः अस्वीकार्य बताया गया है। इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय नाथी लाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1990 पूरक एससीसी 145 पर भरोसा किया गया है, जिसका निरंतर अनुसरण सुधीर एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2001) 2 एससीसी 688 तथा मध्य प्रदेश राज्य बनाम मिश्रीलाल (मृत) एवं अन्य, (2003) 9 एससीसी 426 में किया गया है, तथा जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन-न्यायाधीश

पीठ द्वारा ए.टी. मैदीन एवं अन्य बनाम सहायक आयुक्त, सीमा शुल्क विभाग, (2022) 14 एससीसी 392 में विचारित एवं लागू किया गया है। इन अपीलों के इस समूह में जिस विधि सिद्धांत का आह्वान किया गया है, वह किसी भी प्रकार के संदेह की छाया से परे है। इसे आपराधिक न्यायशास्त्र में एक पूर्ण प्रतिपादन के रूप में वर्णित किया गया है। (पैरा 6)

अपील स्वीकृत। (ई-14)

<u>उद्धृत प्रकरण की सूची:</u>

1. नाथी लाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1990 पूरक एससीसी 145
2. सुधीर और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2001) 2 एससीसी 688
3. म0प्र0 राज्य बनाम मिश्रीलाल (मृत) और अन्य, (2003) 9 एससीसी 426
4. ए.टी. मैडीन और अन्य बनाम सहायक आयुक्त, सीमा शुल्क विभाग, (2022) 14 एससीसी 392

(माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह
और
माननीय न्यायमूर्ति संदीप जैन द्वारा पारित)

1. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री संतोष कुमार शुक्ला की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री दिलीप कुमार, राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री पंकज कुमार त्रिपाठी तथा सूचनाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री विनोद कुमार त्रिपाठी को सुना।

2. वर्तमान अपील 10.10.2024 को पारित एक समान निर्णय एवं आदेश से उत्पन्न हुई है, जिसे श्रीमती इन्दु द्विवेदी, माननीय अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-6, गाज़ियाबाद द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 1148 वर्ष 2015 (राज्य बनाम रघुराग, चहताराम, बिजेन्द्र एवं राजेन्द्र) में पारित किया गया। उक्त सत्र परीक्षण, मुकदमा अपराध संख्या 1118A वर्ष 2006, धारा 302/34 भारतीय दण्ड संहिता, थाना लोनी, जनपद गाज़ियाबाद से उत्पन्न हुआ था। उक्त निर्णय एवं आदेश दो अन्य सत्र परीक्षणों में भी समान रूप से लागू है, अर्थात् सत्र परीक्षण संख्या 387 वर्ष 2007 (राज्य बनाम राकेश) तथा सत्र परीक्षण संख्या 810 वर्ष 2013 (राज्य बनाम ऋषि), जो दोनों ही मुकदमा अपराध संख्या 1118 वर्ष 2006 से उत्पन्न हुए थे–पहला धारा 307 एवं 385 भारतीय दण्ड संहिता, थाना लोनी, जनपद गाज़ियाबाद (अभियुक्त-राकेश के विरुद्ध) तथा दूसरा धारा 307, 384 एवं 385 भारतीय दण्ड संहिता (अभियुक्त-ऋषि के विरुद्ध)। अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अपीलार्थीगण–रघुराग, चहताराम, बिजेन्द्र एवं राजेन्द्र (सत्र परीक्षण संख्या 1148 वर्ष 2015 में) को दोषसिद्ध ठहराया गया है। वहीं, सत्र परीक्षण संख्या 387 वर्ष 2007 (राज्य बनाम राकेश) एवं सत्र परीक्षण संख्या 810 वर्ष 2013 (राज्य बनाम ऋषि) में अभियुक्तगण राकेश एवं ऋषि को क्रमशः दोषमुक्त किया गया है।

3. उपरोक्त सामान्य निर्णय और आदेश ने चार अपील की कार्यवाही को जन्म दिया है, तीन दोषी अभियुक्त की ओर से और एक मुकदमा अपराध संख्या 1118/2006 में सूचनाकर्ता की ओर से, जिसके तहत आरोपी व्यक्तियों राकेश और ऋषि को बरी कर दिया गया है। दायर अपील का विवरण इस प्रकार है:

क्रम सं0	अपील संख्या	पक्षकार नाम	सत्र परीक्षण
1.	आपराधिक अपील संख्या 10492/2024	(राजेन्द्र और चाहतराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)	एस.टी. संख्या 1148/2015 (राज्य बनाम रघुराग, चहतराम, बिजेंद्र और राजेंद्र)
2.	आपराधिक अपील संख्या 10576/2024	(रघुराज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)	तदैव
3.	आपराधिक अपील संख्या 10731/2024	(बिजेंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)	तदैव
4.	आपराधिक अपील अन्तर्गत धारा 372 द0प्र0सं0 संख्या 668/2024	(राजेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, राकेश और ऋषि)	एस.टी. संख्या 387/2007 (राज्य बनाम राकेश) और एसटी संख्या 810/2013 (राज्य बनाम ऋषि)।

अनुवादित

4. जहां तक विद्वान अवर न्यायालय द्वारा की गई कार्यवाही का सवाल है, निस्संदेह सत्र परीक्षण संख्या 1148/2015 (राज्य बनाम रघुराज और 3 अन्य) में अलग से साक्ष्य प्राप्त हुए थे। दूसरी ओर, प्रारंभ में, 2007 के सत्र परीक्षण संख्या 387 (राज्य बनाम राकेश) और 2013 के सत्र परीक्षण संख्या 810 (राज्य बनाम ऋषि), दोनों 2006 के केस अपराध संख्या 1118 से उत्पन्न होने वाले स्वतंत्र रूप से अभिनिर्धारित किए गए थे। बाद में, दो सत्रों के विचारण को समेकित किया गया और सत्र परीक्षण संख्या 810/2013 को प्रमुख प्रकरण बनाया गया। उसमें साक्ष्य प्राप्त हुए थे। उपरोक्त सीमा तक, कार्यवाही पर संदेह करने की कोई बात नहीं है। सबूत पेश किए जाने के बाद क्या हुआ, यह इन अपीलों में कोई चिंता का विषय नहीं है।

5. प्रस्तुत तर्क यह है कि अधीनस्थ न्यायालय ने तीनों सत्र परीक्षणों में एक समान निर्णय एवं आदेश पारित करते समय विधिक त्रुटि की है, अर्थात् सत्र परीक्षण संख्या 1148 वर्ष 2015 (राज्य बनाम रघुराज एवं 3 अन्य), जो मुकदमा अपराध संख्या 1118A वर्ष 2006 से उत्पन्न हुआ, अभियुक्तगण रघुराज, चहताराम, बिजेन्द्र एवं राजेन्द्र के विरुद्ध; तथा दो अन्य सत्र परीक्षण, अर्थात् सत्र परीक्षण संख्या 387 वर्ष 2007 एवं 810 वर्ष 2013, जो मुकदमा अपराध संख्या 1118 वर्ष 2006 से उत्पन्न हुए, अभियुक्तगण राकेश एवं ऋषि के विरुद्ध।

6. अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया को प्रत्यक्ष रूप से त्रुटिपूर्ण तथा विधि की दृष्टि से पूर्णतः अस्वीकार्य बताया गया है। इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय **नाथी लाल एवं अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य, 1990 पूरक एससीसी 145** पर भरोसा किया गया है, जिसका निरंतर अनुसरण **सुधीर एवं अन्य बनाम म0प्र0 राज्य, (2001) 2 एससीसी 688 तथा म0प्र0 राज्य बनाम मिश्रीलाल (मृत) एवं अन्य, (2003) 9 एससीसी 426** में किया गया है, और जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा **ए.टी. मैदीन एवं अन्य बनाम सहायक आयुक्त, कस्टम विभाग, (2022) 14 एससीसी 392** में विचारित एवं लागू किया गया है। इन अपीलों में उद्धृत विधि-सिद्धांत संदेह की किसी भी छाया से परे है। इसे आपराधिक न्यायशास्त्र में एक निरपेक्ष विधि-प्रस्ताव के रूप में वर्णित किया गया है।

7. राज्य के विद्वान अधिवक्ता और सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को अवसर दिए जाने पर, कोई अलग सिद्धांत नहीं बताया जा सकता है।

8. इस प्रकार, यह प्रार्थना की गई है कि ऊपर उल्लिखित दोषों को ध्यान में रखते हुए, निर्णय और आदेश को रद्द किया जाए और प्रकरण को समयबद्ध तरीके से विधि के अनुसार सख्ती से उचित आदेश पारित करने के लिए विद्वान अवर न्यायालय को भेज दिया जाए।

9. इस प्रकार पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, हम केवल वही रिकॉर्ड कर सकते हैं जो सुप्रीम कोर्ट ने 36 साल पहले **नाथी लाल (पूर्वोक्त)** में नोट किया था। सर्वोच्च न्यायालय का एक संक्षिप्त लेकिन स्पष्ट आदेश इस प्रकार है:

"1. विशेष अनुमति दी गई।

2. दोनों पक्षों को सुना।

3. हमारा मानना है कि वर्तमान जैसे प्रकरण में जहां क्रॉस-केस हैं, वहां अपनाने की उचित प्रक्रिया यह है कि एक ही विद्वान न्यायाधीश को एक के बाद एक दोनों क्रॉस-केस की सुनवाई करनी चाहिए। एक प्रकरण में साक्ष्य दर्ज करने का काम पूरा होने के बाद, उसे दलीलें सुननी चाहिए लेकिन उसे निर्णय सुरक्षित रखना होगा। इसके बाद उसे क्रॉस केस की सुनवाई के लिए आगे बढ़ना चाहिए और सभी सबूतों को रिकॉर्ड करने के बाद उसे दलीलें सुननी चाहिए लेकिन उस प्रकरण में निर्णय सुरक्षित रखना चाहिए। इसके बाद उसी विद्वान न्यायाधीश को दो अलग-अलग निर्णयों द्वारा प्रकरण का निस्तारण करना चाहिए।

4. प्रत्येक प्रकरण को तय करने में, वह केवल उस विशेष प्रकरण में दर्ज किए गए सबूतों पर भरोसा कर सकता है। क्रॉस केस में दर्ज सबूतों की जांच नहीं की जा सकती। न ही न्यायाधीश क्रॉस प्रकरण में जो कुछ भी तर्क दिया जाता है, उससे प्रभावित हो सकता है। प्रत्येक प्रकरण का निर्णय उन सबूतों के आधार पर किया जाना चाहिए जो उस विशेष प्रकरण में रिकॉर्ड पर रखे गए हैं, बिना किसी भी तरह से क्रॉस केस में आग्रह किए गए सबूतों या तर्कों से प्रभावित हुए। लेकिन दोनों निर्णय एक के बाद एक एक विद्वान न्यायाधीश द्वारा सुनाए जाने चाहिए।

5. हम इस अपील को आंशिक रूप से उपरोक्त सीमा तक अनुमति देते हैं और विद्वान न्यायाधीश को निर्देश देते हैं कि वह पुलिस प्रकरण और प्रतिवादी-शिकायतकर्ता द्वारा एक निजी शिकायत के माध्यम से स्थापित क्रॉस केस को आगे बढ़ाए और यहां दिए गए निर्देशों के आलोक में दोनों प्रकरण में मुकदमा चलाए। विद्वान न्यायाधीश इन क्रॉस प्रकरण को प्राथमिकता देंगे और दोनों प्रकरण को तेजी से निपटाएगा।

10. ऊपर उल्लिखित बाद के निर्णयों में जो कहा गया है, वह आपराधिक न्यायशास्त्र में उस बुनियादी/मौलिक सिद्धांत की पुनरावृत्ति है।

11. इस सीमा तक, हम यह समझने में असमर्थ हैं कि अधीनस्थ न्यायालय के आदेश में ऐसी मौलिक त्रुटि किस प्रकार प्रविष्ट हो गई। साथ ही, हमारे पास पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प शेष नहीं रह जाता। तदनुसार, इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में कि आक्षेपित आदेश में एक असाध्य दोष (incurable defect) विद्यमान है, क्योंकि अधीनस्थ न्यायालय ने दो अलग-अलग आपराधिक विचारणों– एक जो मुकदमा अपराध संख्या 1118 सन् 2006 से उत्पन्न हुआ है तथा दूसरा जो प्रतिवादी (cross case) मुकदमा अपराध संख्या 1118A सन् 2006 से उत्पन्न हुआ है–में समान साक्ष्य के एक ही मूल्यांकन के आधार पर एक संयुक्त निर्णय एवं आदेश पारित कर दिया है, उक्त निर्णय एवं आदेश असाध्य दोष से ग्रस्त है। अतः उसे **अपास्त** किया जाता है। अपील संख्या 10492 सन् 2024 तथा 10576 सन् 2024 **स्वीकार** की जाती हैं।

12. यह भी ध्यान दिया जाता है कि इस स्तर पर कोई अन्य तर्क आगे नहीं बढ़ाया गया है। दोनों पक्ष इस बात से सहमत हैं कि सबूत पूरे हो गए हैं। तदनुसार, विधि के अनुसार सख्ती से एक नया आदेश पारित करने के लिए प्रकरण को विद्वान अवर न्यायालय को **प्रेषित** किया जाता है।

13. इस आदेश की एक प्रति विद्वान जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद के साथ-साथ संबंधित विद्वान न्यायाधीश को **निबंधक (अनुपालन)** द्वारा उसकी वर्तमान तैनाती के स्थान पर सूचित की जाए।

14. अपील की लंबित अवधि के दौरान, अपीलकर्ता-बिजेन्द्र का निधन हो गया। उनकी अपील, जो कि आपराधिक अपील संख्या 10731 सन् 2024 थी, दिनांक 29.04.2025 को समाप्त घोषित कर दी गई। जहाँ तक अन्य अपीलकर्ताओं– रघुराज, छतराम एवं राजेन्द्र–का संबंध है, वे विचारण के दौरान जमानत पर थे। दोषसिद्धि के पश्चात वे कारागार में हैं। चूँकि दोषसिद्धि का आदेश निरस्त किया जा चुका है, अतः वे इस आधार पर जमानत पर रिहा किए जाने के हकदार हैं कि वे विचारण के दौरान जमानत पर थे। तदनुसार, विचारण न्यायालय को निर्देशित किया जाता है कि वह अपीलकर्ताओं को उन्हीं शर्तों पर जमानत पर रिहा करे, जिन शर्तों पर वे आक्षेपित निर्णय एवं आदेश पारित होने से पूर्व विचारण के दौरान जमानत पर थे। उक्त स्थिति विचारण की समाप्ति तक बनी रहेगी।

15. कार्यालय को मूल विचारण न्यायालय अभिलेख वापस प्रेषित करने का निर्देश दिया जाता है।

(2025) 5 ILRA 1733

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमुर्ति सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति संदीप जैन

आपराधिक अपील संख्या- 11357/2024

सुखलाल **... अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **... प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री ए.के. सिंह सोलंकी, पशाली सोलंकी

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

जी.ए.

अनुवादित

आपराधिक विधि- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374-परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि--- अभियोजन की कहानी इस कथन पर निर्भर करती है कि मृतक की 10.01.2023 को मृत्यु हो गई थी--- स्पष्ट चिकित्सा राय के सामने सिद्धांत अविश्वसनीय है कि मृत्यु 21.01.2023 को हुई थी--- अंतिम बार देखे गए साक्ष्य और 21.01.2023 को हुई घटना, समय में इतना दूर है कि यह इसे पूरी तरह से अविश्वसनीय और बिना भरोसे का बना देता है कि अभियोजन पक्ष द्वारा साबित करने के लिए निर्धारित आवश्यक तथ्यों से बाहरी है--- मृत्यु की घटना/तरीका कभी भी किसी भी परिस्थितिजन्य साक्ष्य के बल पर साबित नहीं हुआ था। वास्तव में, उस घटना की हत्या की प्रकृति स्वयं स्थापित नहीं की गई थी--- पूरी तरह से इस तरह के परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर अभियोजन की कहानी पूरी तरह से असंबद्ध है, सबूतों की श्रृंखला पूरी तरह से टूट गई है जो अभियोजन पक्ष द्वारा अस्पष्टीकृत रही --- केवल इसलिए कि घटना का कारण हो सकता है और केवल इसलिए कि एक अभियुक्त का नाम प्रकट किए गए मकसद के कारण रखा गया हो, अभियोजन पक्ष के लिए यह दावा करना पर्याप्त नहीं हो सकता है कि उसके पास ऐसे अभियुक्त के कारण हुई घटना का प्रमाण था। उचित संदेह से परे सबूत का परीक्षण अभियोजन पक्ष द्वारा निर्भर परिस्थितियों की श्रृंखला में प्रत्येक परिस्थिति को साबित करके संतुष्ट किया जाएगा, मकसद एक है लेकिन एकमात्र भौतिक परिस्थिति नहीं है। दोषसिद्धि का निर्णय अपास्त किया जाता है।

अपील स्वीकृत। (ई-15)

<u>संदर्भित प्रकरण की सूची-:</u>

1. शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एससीसी 116
2. बोधराज उर्फ बोधा और अन्य बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य, (2002) 8 एससीसी 45
3. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश, (2005) 3 एससीसी 114
4. राम नारायण सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1975) 4 एससीसी 497
5. मणि राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1994 पूरक (2) एससीसी 289
6. शैलेंद्र राजदेव पासवान बनाम गुजरात राज्य, (2020) 14 एससीसी 750
7. म0प्र0 राज्य बनाम पलटन मल्लाह, (2005) 3 एससीसी 169
8. सुनील राय बनाम केन्द्र शासित प्रदेश चंडीगढ़, (2011) 12 एससीसी 258
9. रुकिया बेगम बनाम कर्नाटक राज्य (2011) 4 एससीसी 779

(माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह
और
माननीय न्यायमूर्ति संदीप जैन द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ए.के. सिंह सोलंकी को सुना, श्री विकास गोस्वामी, राज्य के लिए ए.जी.ए.

2. शुरुआत में, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह कहा गया है कि वर्तमान में कोई सबूत नहीं है। विद्वान अवर न्यायालय का निर्णय और आदेश पोषणीय नहीं है क्योंकि यह पूरी तरह से वर्तमान अपीलकर्ता के इकबालिया बयान के बल पर पारित किया गया है। इसके अलावा, यह कहा गया है कि अपीलकर्ता-सुखलाल मृत लड़की का पिता है। वह दो साल से अधिक समय से कैद में है। वह कैंसर से पीड़ित हैं। इस प्रकार, यह दबाव डाला गया है कि पेपर बुक की आवश्यकता को समाप्त किया जा सकता है और अपील को इसके गुण-दोष के आधार पर सुना जा सकता है।

3. विद्वान ए.जी.ए., पूरी निष्पक्षता के साथ, प्रार्थना का विरोध नहीं करता है। पक्षकारों के विद्वान वकीलों ने अवर न्यायालय के रिकॉर्ड को देखने के अवसर का लाभ उठाया है। इसके बाद, हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की सहमति से अपील पर उनकी दलीलें सुनी हैं।

4. वर्तमान अपील, श्री नरेन्द्र नाथ पाण्डेय, अपर सत्र न्यायाधीश / फास्ट ट्रैक कोर्ट-II, न्यायालय संख्या-24, शाहजहाँपुर द्वारा सत्र वाद संख्या 762 सन् 2023 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सुखलाल), जो मुकदमा अपराध संख्या 47 सन् 2023, अंतर्गत धारा 302 एवं 201 भा.दं.सं., थाना-सिंधौली, जनपद शाहजहाँपुर से उद्भूत है,

में दिनांक 27.09.2024 एवं 30.09.2024 को पारित निर्णय एवं आदेश से उत्पन्न हुई है, जिसके द्वारा वर्तमान अपीलकर्ता को धारा 302 एवं 201 भा.दं.सं. के अंतर्गत दोषसिद्ध किया गया है। अपीलकर्ता को धारा 302 भा.दं.सं. के अपराध में आजीवन कारावास तथा ₹50,000/- के अर्थदण्ड से दण्डित किया गया है। अर्थदण्ड अदा न किए जाने की दशा में उसे अतिरिक्त दो वर्ष का कारावास भोगना होगा। अपीलकर्ता को धारा 201 भा.दं.सं. के अपराध में सात वर्ष का सश्रम कारावास तथा ₹10,000/- के अर्थदण्ड से भी दण्डित किया गया है तथा अर्थदण्ड अदा न किए जाने की दशा में उसे अतिरिक्त दो माह का कारावास भोगना होगा। समस्त दण्डादेशों को समवर्ती रूप से चलाए जाने का आदेश दिया गया है।

5. अभियोजन पक्ष की कहानी वर्तमान अपीलकर्ता द्वारा 24.01.2023 को प्रस्तुत की गई लिखित रिपोर्ट पर दर्ज प्राथमिकी पर सामने आई। इस प्रकार, 2023 के अपराध संख्या 47 के प्रकरण में 24.01.2023 को रात लगभग 10:06 बजे पुलिस स्टेशन- सिंधौली, जिला- शाहजहांपुर में प्राथमिकी दर्ज की गई, जिसमें यह खुलासा किया गया कि अपीलकर्ता की बेटी, अर्थात् लगभग 18 वर्ष की अर्चना, जो बारहवीं कक्षा की छात्रा थी, 10.01.2023 को स्कूल के लिए घर से निकलने के बाद लापता हो गई थी। कई कोशिशों के बावजूद उसका पता नहीं चल सका। 24.01.2023 को सुबह लगभग 09:00 बजे, कल्याणपुर के एक अन्य गांव देउरिया में तालाब के पास अर्चना का शव मिला। इस तरह की खोज पर, अपीलकर्ता ने आशंका व्यक्त की कि अर्चना को मौत के घाट उतार दिया गया था।

6. एफआईआर दर्ज होने से पहले, अर्चना का शव मिलने पर 24.01.2023 को दोपहर 01:09 बजे से दोपहर 02:15 बजे के बीच 'पंचायतनामा' तैयार की गई थी। यह मुकदमे में प्रदर्श क-3 है।

7. संक्षेप में, यह ध्यान दिया जा सकता है कि 'पंच' गवाहों के अनुसार, मौत डूबने के कारण हुई होगी। 24.01.2023 को ही शाम लगभग 05:00-06:00 बजे डॉ. मुश्ताक अली, डॉ. विमलेंद्र कुमार और डॉ. रितु रस्तोगी ने पोस्टमार्टम किया। पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में उन्होंने निम्नलिखित मृत्यु पूर्व चोटों का उल्लेख किया:
"सिर / खोपड़ी के मध्य में 18x15 सेमी मौजूद है। दाहिने कान पिन्ना से 5 सेमी।

8. मृत्यु के समय के रूप में, यह दर्ज किया गया था कि "लगभग दो-तीन दिन पहले लगभग" पर भी ऐसा ही हुआ होगा। मौत के तत्काल कारण के रूप में, यह दर्ज किया गया था, "मृत्यु पूर्व डूबने के कारण दम घुटना"। उक्त शव परीक्षण रिपोर्ट मुकदमे में प्रदर्श क-4 है।

9. विवेचना के दौरान, विवेचना अधिकारी, महेंद्र सिंह (पी.डब्ल्यू.-8) ने एफआईआर कथन की सत्यता पर संदेह किया है। उन्होंने राकेश चंद्र (पी.डब्ल्यू.-1), गंगा सिंह (पी.डब्ल्यू.-2), अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) और मंजीत (पी.डब्ल्यू.-4) के बयान दर्ज किए और निष्कर्ष निकाला कि यह घटना स्वयं अपीलकर्ता के कारण हुई थी। तदनुसार, उनके खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया गया।

10. प्रकरण को मुकदमे के लिए किए जाने पर, अपीलकर्ता पर आईपीसी की धारा 302 और 201 आईपीसी के तहत अपराधों के लिए आरोप लगाया गया था। मुकदमे में राकेश चंद्रा (पी.डब्ल्यू.-1) से पूछताछ की गई। उन्होंने बताया कि यह घटना लगभग 6-7 महीने पहले हुई थी जब अर्चना का शव गांव के तालाब से बरामद किया गया था। उन्होंने आगे खुलासा किया कि मृतक ने अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) के साथ प्रेम संबंध बनाए थे। यह रिश्ता बहुत लंबे समय से अस्तित्व में था। अन्य लोगों के अलावा, वर्तमान अपीलकर्ता और उसकी पत्नी, बहू और बेटों सहित उसके परिवार के सदस्यों को भी इसकी जानकारी थी। घटना से कुछ दिन पहले, अर्चना (मृतक) की मां ने अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) के परिवार से इसकी शिकायत की थी, लेकिन उसने कोई ध्यान नहीं दिया और मृतक के साथ अपने रिश्ते को जारी रखा। उन्होंने आगे कहा कि अपीलकर्ता ने कबूल किया था कि उसने मृतक को ईंट से मारकर घटना का कारण बनाया था। विवेचना के दौरान उसे बरामद किया गया। अपनी जिरह के दौरान, उसने स्वीकार किया कि अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) के साथ मृतक का प्रेम संबंध गांव में एक आम तौर पर ज्ञात तथ्य था। उसे उक्त अवनीश और मृतक के बीच शारीरिक अंतरंगता का ज्ञान था, लेकिन उसने शादी करने के लिए उसकी ओर से किसी भी दबाव की जानकारी से इनकार किया।

11. इसके बाद, गंगा सिंह (पी.डब्ल्यू.-2) की विवेचना की गई। उसने मृतक और अवनीश (P.W.-3) के बीच प्रेम संबंध को साबित नहीं किया है। उन्होंने यह भी खुलासा किया कि अर्चना का शव उसकी साइकिल और स्कूल बैग के साथ बरामद किया गया है। अपनी जिरह के दौरान, वह घटना की तारीख, दिन, महीना या वर्ष को याद नहीं कर सका।

12. इसके बाद, अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) की विवेचना की गई। उन्होंने बताया कि घटना (शव की बरामदगी) से 10-12 दिन पहले, 10.01.2023 को सुबह लगभग 08:30-09:15 बजे, उन्हें अर्चना (मृतक) का फोन आया था, जिसमें उन्हें बताया गया था कि वह अपनी साइकिल से स्कूल जा रही हैं। उसने उसे गांव के बाहर सिंचाई नहर के पास मिलने के लिए कहा। वह वहां उससे मिला और गन्ने के खेत में कुछ देर तक उससे बात की। जब दोनों इस प्रकार बात कर रहे थे, अपीलकर्ता उस स्थान पर पहुंचा और गुस्से में पुकारा। इस पर उक्त गवाह मौके से फरार हो गया। वह अपने घर वापस भागा और अपना फोन बंद कर दिया। उन्होंने यह जानकारी किसी के साथ साझा नहीं की। उन्होंने कहा कि आखिरी में वह शव मिलने से 6-7 दिन पहले इंदौर के लिए रवाना हो गए थे। उन्होंने यह भी बताया कि उन्हें अजीब लगा कि अपीलकर्ता उनकी बेटी की तलाश कर रहा था, हालांकि वह हमेशा से जानता था कि मृतक उसके (अपीलकर्ता) साथ था। हालांकि, उन्होंने न तो इस बात का खुलासा किया कि उन्होंने उसके बाद कभी मृतक से बात की और न ही विवेचना के दौरान मृतक द्वारा इस्तेमाल किए गए मोबाइल फोन के सीडीआर विवरण प्राप्त किए गए।

13. अपनी जिरह के दौरान, अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) ने स्वीकार किया कि उसने मृतक के साथ प्रेम संबंध बनाए थे। इसे अपीलकर्ता, उसके भाई और ग्रामीणों की मंजूरी नहीं मिली। उन्होंने घटना से पहले मृतक के साथ अंतरंग शारीरिक संबंध होने से इनकार किया, हालांकि दोनों पिछले दो वर्षों से रिश्ते में हैं। उसने यह भी कहा कि मृतक उससे शादी करना चाहता था, लेकिन उसने उसे पूरा करने के लिए उस पर कोई दबाव नहीं डाला।

इसके अलावा, हालांकि उसकी सगाई किसी और से हुई थी, लेकिन वह भी मृतक से शादी करने में दिलचस्पी रखता था। मृतक के माता-पिता द्वारा मृतक के साथ उक्त गवाह द्वारा बनाए गए प्रेम संबंध के संबंध में उसके परिवार को दी गई शिकायत के संबंध में, उन्होंने दावा किया कि इस तरह की शिकायत पर उन पक्षों के बीच कोई विवाद नहीं हुआ, हालांकि, यह एक स्वीकृत तथ्य था कि मृतक "धोबी" जाति से था, जबकि उक्त गवाह एक अन्य जाति "वर्मा" से था। उसने मृतक पर बलात्कार करने से इनकार किया या मृतक द्वारा उसके प्रस्तावों का विरोध करने पर, उसने उसकी हत्या कर दी थी। साथ ही उसने मृतक द्वारा इस्तेमाल किए गए मोबाइल संख्या का खुलासा किया, जिससे मृतक ने उसे दो बार फोन किया था, जब वह उससे आखिरी बार मिला था।

14. उन्होंने इस बात से इनकार किया कि 10.01.2023 को उन्हें दीपू, बबलू, राम सरन और अर्चना के साथ सुबह लगभग 10:00 बजे कल्याणपुर दीरिया में कृषि क्षेत्र में एक साथ देखा गया था, या फारुख या सलीम ने उन्हें देखा था। इसके विपरीत, उन्होंने जोर देकर कहा कि 10.01.2023 को अंतिम बार देखे जाने के समय और स्थान पर वह मृतक के साथ अकेले थे। उन्होंने अभियोजन से बचने के लिए विवेचना में हेरफेर करने में किसी भी भूमिका से इनकार किया।

15. इसके बाद, मंजीत की पी.डब्ल्यू.-4 के रूप में विवेचना की गई। उन्होंने बताया कि मृतक का शव गांव के तालाब से बरामद किया गया था। उन्होंने कहा, शव की खोज करने पर, अपीलकर्ता, उसकी पत्नी और अन्य व्यक्ति परेशान हो गए। उन्होंने गवाही दी कि, अपीलकर्ता ने अवनीश और अर्चना को गन्ने के खेत में देखा था। इसके बाद भी अवनीश और अर्चना की अक्सर मुलाकात होती थी। लगभग अचानक, इसके बाद, उसने कहा- इज्जत जाने और प्रतिष्ठा खोने के डर से, अपीलकर्ता ने अपनी बेटी-अर्चना की हत्या कर दी। उन्होंने अपने बयान में यह भी बताया कि घटना के बाद, अपीलकर्ता अवनीश को बहुत देर तक आंखों में नहीं देख सका। अपनी जिरह के दौरान, उसने विशेष रूप से कहा कि उसने अपीलकर्ता को अपनी बेटी की हत्या करते हुए नहीं देखा था।

16. इसके बाद, हेड कांस्टेबल मित्रा पाल सिंह (पी.डब्ल्यू.-5) की विवेचना की गई। उन्होंने एफआईआर दर्ज करने को साबित कर दिया। एस.आई. सुरेश कुमार की विवेचना पी.डब्ल्यू.-6 के रूप में की गई थी। उन्होंने 'पंचायतनामा' की तैयारी को साबित कर दिया।

17. इसके बाद, डॉ. मुश्ताक अली की विवेचना पी.डब्ल्यू.-7 के रूप में की गई। उन्होंने पोस्टमार्टम रिपोर्ट को साबित किया। मौत के कारण के बारे में उन्होंने कहा कि डूबने के कारण दम घुटने से मौत हुई है। उन्होंने आगे कहा कि मृत्यु शव परीक्षण से 2-3 दिन पहले हुई थी, निश्चित रूप से यह साबित करता है कि मृत्यु 21.01.2023 से पहले नहीं हुई होगी। अपनी जिरह करने पर, उन्होंने पुष्टि की कि मृतक के सिर पर दर्ज मृत्यु पूर्व चोटों में फ्रैक्चर की चोट शामिल नहीं थी, लेकिन खोपड़ी के नीचे केवल रक्त का थक्का पाया गया था। उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि हो सकता है कि मौत पोस्टमार्टम से 48-72 घंटे पहले हुई हो।

18. ऊपर उल्लिखित मृत्यु पूर्व और सिर की चोटों के संबंध में, उन्होंने विशेष रूप से कहा कि, प्रथम दृष्टया, ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि इन चोटों के कारण मृत्यु हो गई थी। वास्तव में, उन्होंने कहा कि मौत डूबने के कारण हुई थी, क्योंकि मृतक के फेफड़ों में पानी भर गया था, जिससे सांस लेने में विफलता हुई थी।

19. अंतिम, विवेचना अधिकारी महेंद्र सिंह की पी.डब्ल्यू.-8 के रूप में विवेचना की गई। उन्होंने विवेचना को साबित कर दिया।

20. इसके बाद, आरोपी अपीलकर्ता का बयान द0प्र0सं0 की धारा 313 के तहत दर्ज किया गया था। उन्हें दिखाई गई प्रतिकूल परिस्थितियों से इनकार करने के अलावा, उन्होंने आगे कहा, यह घटना अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) के कारण हुई थी।

21. बचाव पक्ष के साक्ष्य के माध्यम से, सुख लाल की विवेचना डीडब्ल्यू-1 के रूप में की गई और उनकी पत्नी सत्यवती की डीडब्ल्यू-2 के रूप में विवेचना की गई, जबकि सुरजीत कुमार की विवेचना डीडब्ल्यू-3 के रूप में की गई। इसके अलावा, सलीम की विवेचना डीडब्ल्यू-4 के रूप में की गई और फारुख की डीडब्ल्यू-5 के रूप में विवेचना की गई।

22. डीडब्ल्यू-1, डीडब्ल्यू-2 और डीडब्ल्यू-3 के नेतृत्व में बचाव पक्ष के साक्ष्य के माध्यम से, अपीलकर्ता के खिलाफ अभियोजन पक्ष द्वारा लगाए गए आरोपों को खारिज कर दिया गया। यह आगे जोर दिया गया कि यह घटना अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) और अन्य के कारण हो सकती है। इस संबंध में आगे कहा गया कि सलीम और फारुख ने मृतक को अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3), दीपू, बबलू और राम सरन के साथ देखा था। अपनी ओर से, सलीम और फारुख, अर्थात् डी.डब्ल्यू.-4 और डी.डब्ल्यू.-5 ने यह स्थापित करने का प्रयास किया कि उन्होंने मृतक को आखिरी बार 21.01.2023 को अवनीश, दीपू, बबलू, राम सरन और अर्चना के साथ गांव के तालाब के पास बैठे देखा था।

23. सुनवाई के बाद, विद्वान अवर न्यायालय ने वर्तमान अपीलकर्ता को दोषी ठहराया है और उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाई है।

24. अपीलकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता का प्रस्तुतीकरण है, कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है। पूरा प्रकरण परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित है। इसमें अपीलकर्ता द्वारा मृतक-अर्चना के लापता होने के 14 दिन बाद एफआईआर दर्ज की गई थी, और वह भी गांव के तालाब में उसका शव मिलने के बाद। इस प्रकार, अंतिम बार देखे गए (10.01.2023 को) के साक्ष्य को घटना से समय पर हटा दिया जाता है, जिससे कोई भी विश्वास पैदा हो जाता है कि घटना अपीलकर्ता के कारण हुई थी। दूसरा, अभियोजन पक्ष द्वारा उद्धृत प्रतिकूल परिस्थिति एक ईंट थी जिसका दावा किया गया था कि अपीलकर्ता की ओर इशारा करते हुए उसे बरामद किया गया था। न तो फोरेंसिक रिपोर्ट ने उस ईंट पर मानव रक्त की उपस्थिति को स्थापित किया, न ही डॉ. मुश्ताक अली

(पीडब्ल्यू -7) ने कहा कि मौत उस ईंट के साथ हमले के रूप में वर्णित मृत्यु पूर्व चोट के कारण हो सकती है। तथ्य यह है कि मृतक की मृत्यु डूबने के कारण दम घुटने से हुई, स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गया। अभियोजन पक्ष के उद्देश्य पर भरोसा करने वाली तीसरी परिस्थिति न तो साबित हुई थी और न ही यह अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त हो सकती है कि अपीलकर्ता ने घटना को अंजाम दिया था।

25. यहां, राकेश चंद्र (पी.डब्ल्यू.-1), गंगा सिंह (पी.डब्ल्यू.-2), और अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) (जिन्होंने मृतक के साथ प्रेम संबंध बनाया था) के नेतृत्व में अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के बल पर ही यह स्पष्ट रूप से साबित हो गया था कि वह रिश्ता पिछले 2-3 वर्षों से अस्तित्व में था और दोनों खुले में अक्सर मिल रहे थे और एक-दूसरे को फोन कर रहे थे। इन तथ्यों से मृतक के परिवार को पता था, जिसमें वर्तमान अपीलकर्ता और उसके परिवार के अन्य सदस्य भी शामिल थे। किसी भी परिस्थिति या तथ्य का हवाला नहीं दिया गया या साबित नहीं किया गया जिससे यह संकेत मिले कि अपीलकर्ता ने अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) और मृतक के बीच इस संबंध का कड़ा विरोध किया था। इस संबंध में अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा साबित की गई एकमात्र परिस्थिति यह थी कि 10.01.2023 को, जब मृतक और अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) एक कृषि क्षेत्र में मिले थे, वर्तमान अपीलकर्ता ने उन्हें देखा था और गुस्से में पूछताछ की थी कि मृतक अपने स्कूल के समय के दौरान किसके साथ मिल रही थी। उस पर उक्त अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) मौके से भाग गया और अपने घर की ओर भागा। उन्होंने यह दावा नहीं किया कि अपीलकर्ता द्वारा उन पर हमला करने या उनके खिलाफ या उनके परिवार के खिलाफ कोई शिकायत दर्ज करने का कोई प्रयास किया गया था। वास्तव में, उसने दावा किया कि अपीलकर्ता के आने पर वह अपने घर भाग गया। उसने अपना फोन बंद कर दिया और 5-6 दिनों तक वहीं रुका रहा। इसके बाद वह इंदौर के लिए रवाना हो गए। उन्होंने यह भी दावा किया कि उस दौरान वह कुछ समय के लिए अपने फोन को स्विच ऑन करते थे और फिर उसे फिर से स्विच ऑफ कर देते थे। हालाँकि उसने दावा किया कि उसने 10.01.2023 के बाद मृतक को नहीं देखा, लेकिन उसने कभी यह खुलासा नहीं किया कि उस तारीख के बाद उसने उससे अपने मोबाइल फोन पर बात की या नहीं। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष का प्रकरण उचित संदेह से परे साबित नहीं हुआ। वास्तव में, यह बिल्कुल भी साबित नहीं हुआ था।

26. यद्यपि एक जघन्य अपराध के लिए दोषसिद्धि केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित हो सकती है, इससे पहले कि इस तरह की दोषसिद्धि कभी भी उत्पन्न हो सके, साक्ष्य की श्रृंखला पूर्ण और अटूट होनी चाहिए। भले ही मकसद के मुद्दे को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, लेकिन डॉ. मुश्ताक अली (पी.डब्ल्यू.-7) के अनुसार 21.01.2023 के आसपास हुई घटना और अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में अंतिम बार देखे गए साक्ष्य के बीच समय में कोई निकटता नहीं है। 11 दिनों की लंबी अवधि के लिए, यह दिखाने के लिए कोई सबूत मौजूद नहीं है कि मृतक को कभी अपीलकर्ता के साथ देखा गया था या नहीं। केवल इसलिए कि अपीलकर्ता 10.01.2023 को मृतक के लापता होने के तुरंत बाद तत्काल प्राथमिकी या लापता व्यक्ति की रिपोर्ट दर्ज करने में विफल रहा होगा, यह आवश्यक रूप से अपराध की स्वीकृति या घटना का प्रमाण नहीं है। वास्तव में, ऐसा प्रतीत होता है कि पी.डब्ल्यू.-4 ने यह साबित कर दिया है कि मृतक 10.01.2023 के बाद के दिनों तक जीवित था। उनके अनुसार, मृतक और अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) इसके बाद भी मिलते रहे। यह कथन स्वयं अंतिम बार

देखे गए साक्ष्य की विश्वसनीयता पर भौतिक रूप से संदेह करता है। अभियोजन पक्ष द्वारा घटना के किसी अन्य तरीके का वर्णन/सिद्ध नहीं किया गया है।

27. इसके अलावा, विवेचना के दौरान दर्ज किए गए इकबालिया बयान के आधार पर वर्तमान अपीलकर्ता को घटना के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। इस तरह के बयान आम तौर पर ठोस सबूत के रूप में अस्वीकार्य होते हैं।

28. दूसरी ओर, विद्वान ए.जी.ए. प्रस्तुत करेगा कि अपीलकर्ता का घटना का कारण बनना था और वह और उसके करीबी परिवार के सदस्य अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) के साथ मृतक द्वारा बनाए गए प्रेम संबंध के विरोध में थे। उस प्रेम संबंध का अस्तित्व और परिवार का विरोध दोनों अभियोजन पक्ष द्वारा साबित किए गए थे। किसी भी प्रकरण में, यह बचाव पक्ष के लिए स्वीकार किया जाता है। उस सिद्ध परिस्थिति में, अपीलकर्ता की ओर से 10.01.2023 को यह रिपोर्ट नहीं करना पूरी तरह से अप्राकृतिक था कि मृतक लापता हो गया था। उन्होंने मृतक (उनकी बेटी) की तलाश करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया। उसने उस स्कूल में कोई पूछताछ नहीं की थी जिसमें मृतक पढ़ता था। बचाव पक्ष के गवाहों अर्थात् डी.डब्ल्यू.-1, डी.डब्ल्यू.-2 और डी.डब्ल्यू.-3 ने मृतक और अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) के बीच प्रेम संबंध के अस्तित्व को स्वीकार किया। इसका विरोध करने के कारण और चूंकि मृतक ने उस रिश्ते से परहेज नहीं किया या पीछे नहीं हटने के कारण, अपीलकर्ता द्वारा उसे मौत के घाट उतार दिया गया।

29. पक्षकारगण के लिए विद्वान अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, सबसे पहले, हम ध्यान दे सकते हैं कि घटना का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। जहां तक घटना का सवाल है, यह चिकित्सकीय साक्ष्य के माध्यम से साबित हुआ था और अभियोजन पक्ष का अपना प्रकरण है कि मृतक की मौत डूबने के कारण दम घुटने से हुई थी। नोट की गई एकान्त मृत्यु पूर्व चोट ने घटना का कारण नहीं बना। इस तथ्य की पुष्टि डॉ. मुश्ताक अली (पी.डब्ल्यू.-7) ने की थी। इसके अलावा, यह ध्यान दिया जा सकता है कि मृत्यु के समय के रूप में, अभियोजन पक्ष ने स्वयं एक प्रकरण लाया था कि मृत्यु शव परीक्षण से 2-3 दिन पहले हुई थी। यह 24.01.2023 को लगभग 05.00-6.00 बजे आयोजित किया गया था। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष द्वारा सुनाई गई कहानी के अनुसार, मौत 21.01.2023 से पहले नहीं हुई थी। इस तथ्य को डॉ. मुश्ताक अली (पी.डब्ल्यू.-7) ने घंटे के संदर्भ में भी विधिवत सिद्ध किया था। इसमें उन्होंने खुलासा किया कि हो सकता है कि मौत पोस्टमार्टम से 48-72 घंटे पहले हुई हो। मृत्यु के समय के संबंध में कोई अन्य साक्ष्य मौजूद नहीं है।

30. अभियोजन पक्ष द्वारा सिद्ध इन तथ्यों में, अपीलकर्ता द्वारा घटना का कारण बनने वाले आगे के प्रकरण का परीक्षण किया जाना है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, कोई प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद नहीं है। जहां तक परिस्थितिजन्य साक्ष्य का सवाल है, अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) के रूप में अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में अंतिम बार देखे गए साक्ष्य सुबह के समय 10.01.2023 के हैं। उन्होंने विस्तार से बताया कि उन्हें मृतक का फोन आया था जिसमें उन्हें गांव के बाहर एक सिंचाई नहर के पास मिलने के लिए कहा गया था। उस कॉल का जवाब देते

हुए वह मृतक से मिलने गया था। रास्ते में, उसे मृतक का एक और फोन आया और सुबह 08:30-09:15 बजे के बीच एक कृषि क्षेत्र में उससे मुलाकात की।

31. जब दोनों बात कर रहे थे, अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) के अनुसार, अपीलकर्ता उस स्थान पर पहुंचा और बुलाया कि कौन मौजूद था। इसे सच मानते हुए, अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) ने सुझाव दिया कि अपीलकर्ता तुरंत यह नहीं देख सकता कि मृतक किससे बात कर रहा था। तथ्य यह है कि वह दावा करता है कि अपीलकर्ता उस समय गुस्से में दिख रहा था, यह भी बताता है कि अपीलकर्ता इस बात से अनजान था कि मृतक अवनीश को देख रहा था क्योंकि अपीलकर्ता उनके बीच प्रेम संबंध से अच्छी तरह वाकिफ था। ऐसी घटना पर, उक्त गवाह अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) ने दावा किया कि वह बिना कुछ देखे उस स्थान से भाग गया था। वह अपने घर वापस भागा और अपना मोबाइल फोन बंद कर दिया। वह अपने घर पर रहा और अगले कुछ दिनों तक बाहर नहीं आया, इस दौरान उसने दावा किया कि वह कुछ समय के लिए अपने फोन को स्विच ऑन करता था और उसे फिर से बंद कर देता था। उन्होंने यह खुलासा नहीं किया कि उन्होंने 10.01.2023 के बाद, कृषि क्षेत्र से भागने के बाद (जहां वह मृतक से आखिरी बार 6-7 दिन मिले थे), कुछ काम की तलाश में इंदौर जाने से पहले मृतक से कभी बात की थी या नहीं। बाद में उन्हें पता चला कि मृतक का शव बरामद किया जा रहा है। इस तरह की जानकारी मिलने पर उसने पुलिस को अपना खुलासा करने का दावा किया है।

32. यह मानते हुए, अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) द्वारा बताए गए सभी तथ्य सच हैं और यह कि ऐसी घटना वास्तव में हुई थी, यह संदेह नहीं किया जा सकता है कि मृतक को घटना होने से लगभग 11 दिन पहले अपीलकर्ता (उसके पिता) के साथ आखिरी बार देखा गया था। अंतिम बार देखे गए सबूत ने केवल एक युवा लड़की के पिता द्वारा अपनी युवा बेटी के लिए चिंता व्यक्त करने की पूरी तरह से स्वाभाविक घटना साबित की, जो स्कूल नहीं गई होगी, लेकिन स्कूल जाने के झूठे बहाने पर अपने दोस्त से मिलने गई होगी। इससे किसी भी आपराधिक अपराध का कोई सबूत नहीं मिल सकता है, हत्या के जघन्य अपराध के लिए, इसलिए मृतक के पिता यानी वर्तमान अपीलकर्ता द्वारा किया जाता है।

33. किसी भी प्रकरण में, अभियोजन पक्ष की कहानी में पूरी तरह से गैर-समझाया गया विराम है। अभियोजन पक्ष ने जिन परिस्थितियों को साबित करने के लिए निर्धारित किया है, वह उस बिंदु पर टूट गई है और असंबद्ध है। जबकि न्यायालय यह मान सकता है कि मृतक को अवनीश (पी.डब्ल्यू.-3) के साथ ऐसे समय में पकड़ा गया जब मृतक को उसके स्कूल में जाना था, वह नाराज महसूस कर सकता था और उसे डांटा हो सकता था और उसे घर वापस ले गया होगा या इस तरह का कोई कार्य किया था, अभियोजन पक्ष यह बताने में विफल रहा कि उसके बाद क्या हुआ। 21.01.2023 को हुई घटना की ओर ले जाने वाले साक्ष्यों की श्रृंखला की अगली कड़ी मौजूद नहीं है। अभियोजन पक्ष यह साबित करने में विफल रहा है कि अपीलकर्ता ने उस समय यानी 10.01.2023 को गुस्से में घटना का कारण बना।

34. फिर, अभियोजन पक्ष के सभी गवाह राकेश चंद्र, गंगा सिंह और अवनीश ने इस आशय का कोई सबूत नहीं दिया कि अपीलकर्ता मृतक के साथ पी.डब्ल्यू.-3 द्वारा बनाए गए प्रेम संबंध का पूरी तरह से विरोध करता था। इसके विपरीत, उस साक्ष्य का तात्पर्य न केवल मृतक का परिवार है, बल्कि पूरे गांव को पता था कि पिछले 1-2 वर्षों से प्रेम संबंध अस्तित्व में है और वे इस तथ्य से सहमत थे कि ऐसा संबंध मौजूद था। इसलिए, यह अभिमानपूर्ण है और यह निष्कर्ष निकालना पूरी तरह से काल्पनिक होगा कि अभियोजन पक्ष द्वारा साबित की गई ऐसी परिस्थितियों में, अपीलकर्ता को क्रोध या ऐसी भावना का सामना करना पड़ सकता है जैसा कि उसे उकसाया हो सकता है या उसे अपनी ही बेटी की हत्या के जघन्य अपराध का कारण बनाने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। एक पिता जिसे पिछले 1-2 वर्षों से अपनी बेटी द्वारा बनाए गए प्रेम संबंध का ज्ञान है, लेकिन उसने उस लंबे समय तक उस पर कोई गंभीर आपत्ति नहीं उठाई है, और जो यह भी जानता है कि उसका समाज भी इस तरह के रिश्ते की जानकारी में था, वह उस तरह से कार्य नहीं कर सकता है। ऐसी परिस्थितियों में, घटना का कारण बनने का कोई कारण उत्पन्न नहीं हो सकता है।

35. इस प्रकार, समान रूप से गंभीर रूप से, अभियोजन पक्ष की कहानी में, परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर टिकी हुई, अंतिम बार देखे गए साक्ष्य और घटना/मृत्यु के समय के बीच समय की निकटता होनी चाहिए। तर्क और आधार सिद्धांत पर आधारित है यदि समय का एक लंबा अंतराल मौजूद है, तो अन्य घटनाएं या घटनाएं हस्तक्षेप कर सकती हैं क्योंकि एक उचित संदेह पैदा हो सकता है कि घटना किसी अन्य व्यक्ति के कारण या किसी अन्य तरीके से हो सकती है। इसके विपरीत, यदि अंतिम बार देखे गए साक्ष्य और घटना के बीच बहुत कम समय का अंतर है, तो अभियोजन पक्ष पर यह स्थापित करने के लिए प्रारंभिक बोझ कि घटना अभियुक्त द्वारा की गई थी, संतुष्ट पाया जा सकता है। यह स्थापित करने के लिए बचाव पक्ष पर जिम्मेदारी बदल सकती है कि घटना किसी अन्य तरीके से हुई हो सकती है।

36. हालांकि, यदि समय की निकटता, मानव प्रकरण और दैनिक दिनचर्या के सामान्य/प्राकृतिक प्रवाह में अनुचित रूप से या अनावश्यक रूप से लंबी है, तो उचित संदेह से परे घटना को साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष पर जो बोझ पड़ता है, उसे कभी भी निर्वहन नहीं किया जा सकता है। यहां, न केवल 10.01.2023 का दिन बीत गया, बल्कि 10-11 और बीच की रातें बीत गईं जब मृतक अर्चना जीवित थीं और इसलिए, हो सकता है कि वह अपने दैनिक कार्यों को करने और जीवन की सामान्य गतिविधियों में भाग लेने के लिए चली गई हों। सामान्य रूप से उसने कई लोगों के साथ बातचीत की होगी। अभियोजन पक्ष द्वारा उन संभावनाओं को बंद करने के लिए कोई खुलासा नहीं किया गया था।

37. एक आपराधिक मुकदमे में, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के बल पर उत्पन्न होने पर, अंतिम बार देखे गए (आरोपी और पीड़ित के) के साक्ष्य के बीच समय की निकटता एक प्रासंगिक परिस्थिति है। यह एक सामान्य ज्ञान सिद्धांत पर आधारित है कि कोई भी मनुष्य अपनी सामान्य और प्राकृतिक गतिविधियों के दौरान कई व्यक्तियों के साथ जुड़ सकता है और समय की अवधि में विभिन्न परिस्थितियों में, विभिन्न उद्देश्यों के लिए शामिल हो सकता है या अनुभव कर सकता है। वे विभिन्न संभावनाओं और परिणामों को जन्म दे सकते हैं।

इसलिए, जब तक अंतिम बार देखे गए साक्ष्य और पीड़ित द्वारा झेली गई घटना के बीच समय की निकटता मौजूद न हो, तब तक न्यायालय आसानी से यह निष्कर्ष निकालने में सक्षम नहीं हो सकता है कि घटना उस अभियुक्त के कारण हुई थी जिसे आखिरी बार पीड़ित, अक्सर मृतक के साथ देखा गया था। चूंकि, ऐसे प्रकरण में, पीड़ित उपलब्ध नहीं होता है। उनकी मृत्यु हो गई है या अन्यथा उनका पता नहीं लगाया गया है या बरामद नहीं किया जा रहा है, बचाव पक्ष गंभीर रूप से पूर्वाग्रहग्रस्त/विकलांग हो सकता है यदि उस पर निर्दोषता स्थापित करने का बोझ है, पहले न्यायालय को बाद की घटनाओं और लेन-देन के बारे में समझाते हुए, जिसमें पीड़ित/मृतक ने भाग लिया हो सकता है या ऐसे पीड़ित/मृतक को आरोपी के साथ आखिरी बार देखे जाने के बाद लंबे समय तक अनुभव किया हो। यह बचाव पक्ष पर उल्टा बोझ डालने के समान हो सकता है - अपनी बेगुनाही साबित करने के लिए। यह एक अत्यधिक असंभव हो सकता है, यदि संतुष्ट करने के लिए असंभव परीक्षण नहीं है। असंभवता या असंभवता का तत्व व्यक्तिगत प्रकरण के तथ्यों पर निर्भर हो सकता है। साथ ही, अदालतें अभियोजन पक्ष को यह दावा करने की अनुमति न देने के लिए सतर्क रह सकती हैं कि उसने एक महत्वपूर्ण परिस्थिति को साबित करने के लिए अपने बोझ का निर्वहन किया है कि अभियुक्त ने केवल यह साबित करके घटना का कारण बना था कि उन्हें अंतिम बार पीड़ित/मृतक के साथ देखा गया था, यदि अंतिम बार देखे गए और घटना के साक्ष्य को अलग कर दिया जाता है, समय के एक लंबे अंतराल से।

38. **शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एससीसी 116** में, अंतिम बार देखे गए साक्ष्य के आधार पर परीक्षणों के संदर्भ में, यह नीचे देखा गया था:

"159. यह देखा जाएगा कि इस न्यायालय ने स्पष्टीकरण के अभाव या गलत स्पष्टीकरण को ध्यान में रखते हुए यह माना कि यह श्रृंखला को पूरा करने के लिए एक अतिरिक्त कड़ी होगी, लेकिन इन टिप्पणियों को इस न्यायालय ने पहले जो कहा था, उसके आलोक में पढ़ा जाना चाहिए अर्थात इससे पहले कि गलत स्पष्टीकरण को अतिरिक्त लिंक के रूप में इस्तेमाल किया जा सके, निम्नलिखित आवश्यक शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए:

(1) अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में साक्ष्य की श्रृंखला में विभिन्न लिंक संतोषजनक ढंग से साबित हुए हैं;
(2) उक्त परिस्थिति उचित निश्चितता के साथ अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करती है; और
(3) परिस्थिति समय और स्थिति के निकट है।

39. फिर से, **बोधराज उर्फ बोधा और अन्य बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य, (2002) 8 एससीसी 45**, उस संदर्भ में, यह निम्नानुसार देखा गया था:

"31. अंतिम बार देखा गया सिद्धांत चलन में आता है जहां उस समय के बीच का समय-अंतराल जब आरोपी और मृतक को आखिरी बार जीवित देखा गया था और जब मृतक मृत पाया जाता है, तो यह संभावना है कि आरोपी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के अपराध का लेखक होने की संभावना असंभव हो जाती है। कुछ प्रकरण में यह सकारात्मक रूप से स्थापित करना मुश्किल होगा कि मृतक को आखिरी बार आरोपी के साथ देखा गया था जब एक लंबा अंतराल है और बीच में अन्य व्यक्तियों के आने की संभावना मौजूद है। यह निष्कर्ष निकालने के लिए किसी अन्य सकारात्मक सबूत के अभाव में कि आरोपी और मृतक को आखिरी बार एक साथ देखा

गया था, उन प्रकरण में अपराध के निष्कर्ष पर पहुंचना खतरनाक होगा। इस प्रकरण में इस बात के सकारात्मक सबूत हैं कि मृतक, ए-1 और ए-2 को गवाहों यानी पीडब्लू 14, 15 और 18 द्वारा एक साथ देखा गया था; पीडब्लू 1 और 2 के साक्ष्य के अलावा।

40. फिर, **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश, (2005) 3 एससीसी 114** में, इसे नीचे के रूप में और विस्तृत किया गया था:
"22. अंतिम बार देखा गया सिद्धांत चलन में आता है जहां उस समय के बीच का समय-अंतराल जब आरोपी और मृतक को आखिरी बार जीवित देखा गया था और जब मृतक मृत पाया जाता है, तो यह संभावना है कि आरोपी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के अपराध का लेखक होने की संभावना असंभव हो जाती है। कुछ प्रकरण में यह सकारात्मक रूप से स्थापित करना मुश्किल होगा कि मृतक को आखिरी बार आरोपी के साथ देखा गया था जब एक लंबा अंतराल है और बीच में अन्य व्यक्तियों के आने की संभावना मौजूद है। यह निष्कर्ष निकालने के लिए किसी अन्य सकारात्मक सबूत के अभाव में कि आरोपी और मृतक को आखिरी बार एक साथ देखा गया था, उन प्रकरण में अपराध के निष्कर्ष पर पहुंचना खतरनाक होगा। इस प्रकरण में इस बात के सकारात्मक सबूत हैं कि मृतक और आरोपी को पीडब्लू 2 के साक्ष्य के अलावा गवाह पीडब्लू 3 और 5 द्वारा एक साथ देखा गया था।"

41. शुरू करने के लिए, यह अभियोजन पक्ष की कहानी नहीं थी कि अपीलकर्ता ने मृतक को दस दिनों तक कैद कर लिया और उसके बाद उसकी हत्या कर दी। इसके विपरीत, हालांकि विशेष रूप से दावा नहीं किया गया है, अभियोजन पक्ष की कहानी इस कथन पर निर्भर करती है कि मृतक की 10.01.2023 को मौत हो गई थी। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, स्पष्ट चिकित्सा राय के सामने यह सिद्धांत अविश्वसनीय है कि मृत्यु 21.01.2023 को हुई थी।

42. इस प्रकार, समय की निकटता मौजूद नहीं है। वास्तव में, अंतिम बार देखे गए और 21.01.2023 को हुई घटना के साक्ष्य समय में इतने दूर हैं कि यह इसे पूरी तरह से अविश्वसनीय और अविश्वसनीय बना देता है कि अभियोजन पक्ष द्वारा साबित किए गए आवश्यक तथ्यों से बाहरी है।

43. जहां तक मौत के कारण का सवाल है, अभियोजन पक्ष की कहानी भी उतनी ही संदिग्ध है। एक ईंट की बरामदगी से, अभियोजन पक्ष ने यह साबित करने की कोशिश की कि मौत इस तरह की ईंट से लगी चोट के परिणामस्वरूप हुई थी। अभियोजन पक्ष ने कभी भी वर्णन नहीं किया और यह कभी साबित नहीं हुआ कि घटना किसी अन्य तरीके से हुई थी। अभियोजन पक्ष के दावे के विपरीत, अभियोजन पक्ष द्वारा लाई गई चिकित्सा राय ने स्वयं स्थापित किया कि यह घटना उसके सिर/खोपड़ी पर हुए एक भी प्रहार के कारण नहीं हुई थी और मृतक की मृत्यु शव परीक्षण से पहले डूबने के कारण दम घुटने से हुई थी। मृत्यु की वह घटना/तरीका कभी भी किसी भी परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर साबित नहीं हुआ। वास्तव में, उस घटना की हत्या की प्रकृति स्वयं स्थापित नहीं की गई थी। इस तरह की मौत क्या हो सकती है और कैसे हो सकती है, इस तरह के तथ्यों में न्यायालय को इस समय पता लगाने का काम नहीं है।

44. यह ध्यान रखना पर्याप्त है कि अभियोजन पक्ष पर यह स्थापित करने का बोझ कि घटना अपीलकर्ता के कारण हुई थी, बरकरार रही। हमने फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला दिनांक 18.04.2023 (प्रदर्श क-11) की रिपोर्ट भी देखी है। यह खुलासा करता है

कि योनि स्मीयर के नमूने और ईंट (अभियोजन पक्ष द्वारा बरामद किए गए) को परीक्षण के लिए भेजा गया था। न तो योनि के धब्बे से बलात्कार आदि की कोई घटना स्थापित हो सकी और न ही ईंट पर कोई खून पाया गया।

45. इस प्रकार, पूरी तरह से इस तरह के परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर अभियोजन पक्ष की कहानी पूरी तरह से असंबद्ध है। एकमात्र परिस्थिति जो साबित हुई वह यह थी कि अपीलकर्ता को अंतिम बार 10.01.2023 को मृतक के साथ देखा गया था। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वह घटना पूरी तरह से स्वाभाविक थी। अभियोजन पक्ष द्वारा साबित की गई अन्य परिस्थितियों में कि मृत्यु 21.01.2023 को हुई थी, 10.01.2023 से 21.01.2023 के बीच साक्ष्यों की श्रृंखला पूरी तरह से टूट गई है। यह अभियोजन पक्ष द्वारा अस्पष्ट रहा।

46. प्रत्यक्ष साक्ष्य के प्रकरण में, समय का कुछ अंतर जब घटना के कारण साबित हो सकता है और जैसा कि चिकित्सा राय के बल पर संकेत दिया जा सकता है, महत्वपूर्ण नहीं हो सकता है। साथ ही, जहां समय का लंबा अंतर मौजूद है, इस मुद्दे को सावधानीपूर्वक विवेचना की आवश्यकता हो सकती है। चिकित्सा राय में मृत्यु के समय कुछ घंटों का अंतर और जैसा कि नेत्र साक्ष्य के माध्यम से साबित होता है, न्यायालयों को बहुत कठिनाई नहीं हो सकती है। हालांकि, जहां मृत्यु के समय में भारी अंतर है जैसा कि चिकित्सा राय में कहा गया है और जहां यह स्पष्ट हो सकता है कि मृत्यु नेत्र साक्ष्य के माध्यम से साबित होने की तुलना में बहुत बाद में या पहले हुई थी, सावधानीपूर्वक विवेचना की मांग की जा सकती है। साथ ही, परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर आपराधिक मुकदमों में अभियोजन पक्ष के साक्ष्यों की सावधानीपूर्वक विवेचना की आवश्यकता होगी, यानी अंतिम बार देखे गए साक्ष्य।

47. **राम नारायण सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1975) 4 एससीसी 497** में, यह निम्नानुसार कहा गया था:
"14. जहां अभियोजन पक्ष के लिए गवाहों के साक्ष्य चिकित्सा साक्ष्य या बैलिस्टिक विशेषज्ञ के साक्ष्य के साथ पूरी तरह से असंगत हैं, यह अभियोजन पक्ष के प्रकरण में एक सबसे मौलिक दोष है और जब तक उचित रूप से समझाया न जाए तो यह पूरे प्रकरण को बदनाम करने के लिए पर्याप्त है।

48. इसी तरह का विचार **मणिराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1994 पूरक (2) एससीसी 289** में व्यक्त किया गया था। वहां यह नीचे दिया गया:
"9. ..... इस न्यायालय के फैसलों की लंबी श्रृंखला से यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि जहां प्रत्यक्ष साक्ष्य विशेषज्ञ साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है, वहां अभियोजन पक्ष के प्रकरण के सबसे महत्वपूर्ण हिस्से में साक्ष्य की कमी है और इसलिए, ऐसे सबूतों के आधार पर आरोपी को दोषी ठहराना मुश्किल होगा। यदि अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य चिकित्सा साक्ष्य के साथ पूरी तरह से असंगत हैं, तो यह अभियोजन पक्ष के प्रकरण में एक सबसे मौलिक दोष है, और जब तक इस असंगति को यथोचित रूप से समझाया नहीं जाता है, तब तक यह न केवल सबूतों को बल्कि पूरे प्रकरण को बदनाम करने के लिए पर्याप्त है। ..."

49. **शैलेंद्र राजदेव पासवान बनाम गुजरात राज्य, (2020) 14 एससीसी 750** में, यह निम्नानुसार देखा गया है:

"16. मौजूदा प्रकरण में, पीडब्ल्यू 28 और पीडब्ल्यू 29 के साक्ष्य, जो अभियोजन पक्ष के प्रकरण में यह स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण थे कि मृतक को अंतिम बार अपीलकर्ता-अभियुक्त 1 के साथ देखा गया था, अस्पष्टीकृत विरोधाभासों से भरा हुआ है और इस प्रकार विचारण न्यायालय द्वारा सही रूप से अविश्वास किया गया था। उच्च न्यायालय ने उपरोक्त दो गवाहों के साक्ष्य पर भरोसा करने में विधि की गलती की। उच्च न्यायालय उस बिंदु के बीच के समय के अंतराल को भी ध्यान में रखने में विफल रहा जब अपीलकर्ता-आरोपी 1 और मृतक को एक साथ देखा गया था और जब मौत कथित तौर पर हुई थी। अभियोजन पक्ष के साक्ष्यों के अनुसार, दोनों को 4-2-2001 को सुबह लगभग 10.30 बजे एक साथ देखा गया था। शव 13-2-2001 को बरामद किया गया था। 14-2-2001 को पोस्टमॉर्टम किया गया था। हालांकि पोस्टमार्टम रिपोर्ट में मौत के संभावित समय का संकेत नहीं दिया गया है, लेकिन पोस्टमार्टम करने वाले डॉक्टर ने बयान में कहा कि मौत का समय पोस्टमार्टम से 36 से 48 घंटे पहले आंका जा सकता है। इससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि उस बिंदु के बीच एक बड़ा समय अंतराल था जब आरोपी और मृतक को आखिरी बार एक साथ देखा गया था और मृत्यु का समय था। इस महत्वपूर्ण तथ्य को उच्च न्यायालय द्वारा बुरी तरह नजरअंदाज कर दिया गया है। अपीलकर्ता-अभियुक्त 1 द्वारा न्यायेतर स्वीकारोक्ति के अलावा, अभियोजन पक्ष द्वारा कथित अपराध में अभियुक्त की संलिप्तता स्थापित करने के लिए कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं दिया गया था। अभियोजन पक्ष का पूरा प्रकरण परिस्थितिजन्य साक्ष्य और अंतिम बार एक साथ देखे जाने के सिद्धांत पर आधारित था। शिकायतकर्ता और अन्य रिश्तेदारों के समक्ष अपीलकर्ता 1 की गैर-न्यायिक स्वीकारोक्ति और शव की बरामदगी को अभियोजन पक्ष द्वारा एक श्रृंखला बनाने के लिए एक साथ जोड़ा गया था।

17. अब तक यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक प्रकरण में न्यायालयों को एक कर्तव्यनिष्ठ दृष्टिकोण होना चाहिए और दोषसिद्धि केवल तभी दर्ज की जानी चाहिए जब श्रृंखला के सभी लिंक अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करते हुए पूर्ण हों। प्रत्येक लिंक जब तक एक श्रृंखला बनाने के लिए एक साथ नहीं जोड़ा जाता है, संदेह का संकेत दे सकता है, लेकिन यह अपने आप में सबूत की जगह नहीं ले सकता है और आरोपी को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं होगा।"

(प्रभाव वर्द्धित)

50. घटना के तरीके के रूप में, अभियोजन पक्ष की कहानी के रूप में लाया गया, साबित नहीं किया गया था. जहां तक मकसद का सवाल है, यह भी स्थापित नहीं हुआ था क्योंकि अभियोजन पक्ष के गवाहों ने खुद बताया था कि मृतक अर्चना द्वारा बनाया गया प्रेम संबंध अच्छी तरह से जाना जाता था और इससे भी अधिक, यह गांव में और मृतक के परिवार के साथ भी एक अच्छी तरह से स्वीकृत तथ्य था।

51. हालांकि प्रत्यक्ष साक्ष्य के प्रकरण में, अभियोजन पक्ष के लिए मकसद स्थापित करना प्राथमिक नहीं हो सकता है, यह मुद्दा परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर आपराधिक मुकदमे में अधिक प्रासंगिक रह सकता है। फिर भी, अकेले मकसद का अस्तित्व यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है कि इसलिए घटना एक आरोपी के कारण हुई थी। सीधे शब्दों में कहें, दिए गए तथ्यों में, एक से अधिक व्यक्तियों के पास पीड़ित के लिए एक घटना का कारण बन सकता है और ऐसा प्रत्येक मकसद समान रूप से मजबूत हो सकता है, फिर भी दूसरे के लिए स्वतंत्र हो सकता है। इसलिए, केवल इसलिए कि घटना हुई हो सकती है और केवल इसलिए कि एक अभियुक्त का नाम प्रकट किए गए मकसद के कारण किया गया हो सकता है, अभियोजन पक्ष के लिए यह दावा

करना पर्याप्त नहीं हो सकता है कि उसके पास ऐसे अभियुक्त के कारण हुई घटना का प्रमाण था। उचित संदेह से परे सबूत का परीक्षण अभियोजन पक्ष द्वारा निर्भर परिस्थितियों की श्रृंखला में प्रत्येक परिस्थिति को साबित करके संतुष्ट किया जाएगा, मकसद एक है लेकिन एकमात्र भौतिक परिस्थिति नहीं है।

52. **मध्य प्रदेश बनाम पलटन मल्लाह, (2005) 3 एससीसी 169** में, यह निम्नानुसार देखा गया था:
"9. ... अभियुक्त के अपराध को साबित करने के लिए अपने आप में मकसद पर्याप्त नहीं है। ..."

53. फिर **सुनील राय बनाम यूटी चंडीगढ़, (2011) 12 एससीसी 258** में, यह निम्नानुसार देखा गया था:
"31. .... किसी भी घटना में, अकेले मकसद शायद ही दोषसिद्धि का आधार हो सकता है।

54. इसके अलावा, **रुकिया बेगम बनाम कर्नाटक राज्य (2011) 4 एससीसी 779** में, यह निम्नानुसार कहा गया था:
"12. .... हमारी राय में, किसी भी अन्य परिस्थितिजन्य साक्ष्य के अभाव में अकेले मकसद इन दो अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि को बनाए रखने के लिए पर्याप्त नहीं होगा।

55. हम यह देखने के लिए विवश हैं कि विद्वान अवर न्यायालय ने ऐसे महत्वपूर्ण तथ्यों की अनदेखी करने में पूरी तरह से गलती की है। दोषसिद्धि के क्रम में दर्ज किए गए इसके निष्कर्ष शायद अनुमानों और संयोजनों से प्रेरित होते हैं, लेकिन मुकदमे में नेतृत्व किए गए विश्वसनीय सबूतों पर आधारित नहीं होते हैं। विद्वान अवर न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए इस तरह के निष्कर्ष को विधि की नजर में विकृत और पूरी तरह से अस्थिर के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

56. परिणामस्वरूप, अपील सफल होती है और **स्वीकृत** किया जाता है।

57. अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट- II, न्यायालय संख्या 24, शाहजहांपुर द्वारा सत्र प्रकरण संख्या 762/2023 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सुखलाल) द्वारा धारा 302 और 201 आईपीसी, पुलिस स्टेशन- सिंधौली, जिला- शाहजहांपुर के तहत 2023 के मुकदमा अपराध संख्या 47 से उत्पन्न होने वाले मुकदमा अपराध संख्या 47/2023 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 30.09.2024 को **अपास्त** किया जाता है।

58. अपीलकर्ता को अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में सबूतों की कमी के लिए आरोपों से बरी कर दिया जाता है। चूंकि अपीलकर्ता-सुखलाल जेल में है। उसे इस शर्त के अधीन तुरंत रिहा कर दिया जाए कि वह किसी अन्य प्रकरण में वांछित नहीं है और द0प्र0सं0 की धारा 437 ए के अनुपालन के अधीन है।

59. इस आदेश की एक प्रति के साथ विचारण न्यायालय के अभिलेख को रजिस्ट्रार (अनुपालन) के माध्यम से संबंधित न्यायालय को प्रेषित किया जाए और इस आदेश की एक प्रति संबंधित जेल अधिकारियों को भी प्रेषित की जाए।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1745

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 09.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 478 वर्ष 2025

एवं

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 479 वर्ष 2025

प्रवीण प्रताप सिंह एवं अन्य ... पुनरीक्षणवादी

बनाम

सी.बी.आई. ... विपक्षी

पुनरीक्षणवादी के अधिवक्ता:
पूर्णेंदु चक्रवर्ती, अनुज टंडन

विपक्षी के अधिवक्ता:
अनुराग कुमार सिंह

अनुवादित

आपराधिक विधि – भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 120-बी एवं 420 – भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988, धाराएँ 13(1)(डी), 13(2) – उन्मोचन – कार्यक्षेत्र – सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी द्वारा निविदा-पूर्व गठबंधन के माध्यम से सरकारी अनुबंध का उप-पट्टा – सार्वजनिक राजकोष को हानि पहुँचाने वाले षड्यंत्र का आरोप – यह तर्क कि किसी व्यक्ति के साथ छल नहीं हुआ और अपराध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 के तहत शमनीय है – निर्धारित किया गया, सरकार के साथ छल भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत अपराध है क्योंकि भारतीय दंड संहिता की धारा 11 के अंतर्गत 'राज्य' 'व्यक्ति' की परिभाषा में आता है – आरोप केवल इसलिए काल्पनिक नहीं है क्योंकि सटीक हानि की गणना नहीं की गई है – भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(डी), 13(2) के तहत अपराध अशमनीय हैं – उन्मोचन का कोई आधार नहीं – पुनरीक्षण याचिकाएं खारिज। (पैरा 27, 28, 32, 37, 39 एवं 41)

निर्धारित:

पुनरीक्षणवादियों के विद्वान अधिवक्ता का दूसरा तर्क यह है कि हानि की राशि की गणना नहीं की गई है और आरोप केवल काल्पनिक है। जब रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री से यह स्पष्ट है कि सरकार ने एन.पी.सी.सी. को ₹14,60,62,604/- का अनुबंध दिया था, एन.पी.सी.सी. ने वह अनुबंध यू.सी.सी. को ₹13.82 करोड़ में उप-पट्टे

पर दे दिया और यू.सी.सी. ने आगे वह अनुबंध सत साई अर्थ वर्क्स को ₹7.16 करोड़ में उप-पट्टे पर दे दिया, जो कि एन.पी.सी.सी. के अनुबंध मूल्य की लगभग आधी राशि है, और अनुबंध को सर्वोत्तम दरों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए निविदाएं आमंत्रित करने की सामान्य प्रक्रिया का पालन किए बिना दिया गया है, तो प्रथम दृष्टया सार्वजनिक राजकोष को अनुचित हानि पहुँचाने का मामला बनता है, जिसका विचारण न्यायालय द्वारा विचारण किया जाना आवश्यक है। (पैरा 28)

दंड संहिता की धारा 11 में दी गई 'व्यक्ति' शब्द की परिभाषा इतनी व्यापक है कि इसमें व्यक्तियों का कोई भी संघ या निकाय सम्मिलित हो सकता है, चाहे वह निगमित हो या न हो। इसमें निश्चित रूप से राज्य सरकार भी इसके दायरे में आएगी, जो व्यक्तियों का एक निकाय है। यदि अभियुक्त व्यक्तियों ने सरकार को छलपूर्वक या बेईमानी से एन.पी.सी.सी. के साथ अनुबंध करने के लिए प्रेरित करके धोखा दिया है, जिस अनुबंध को पहले यू.सी.सी. को उप-पट्टे पर दिया गया था और उसके बाद उसे मेसर्स सत साई अर्थ वर्क्स को लगभग आधे अनुबंध मूल्य पर पुन: उप-पट्टे पर दे दिया गया था और इस प्रकार एन.पी.सी.सी. को अत्यधिक राशि का भुगतान किया गया, जिस कृत्य से सरकार को वित्तीय हानि हुई है, तो अभियुक्त व्यक्तियों ने छल का अपराध किया है। यदि कोई व्यक्ति छल का अपराध करने के आपराधिक षड्यंत्र में शामिल था, तो वह अभियोजन का पात्र है। इसलिए, मुझे पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता के उपरोक्त तर्क में कोई बल नहीं दिखता। (पैरा 32)

पुनरीक्षणवादी पर भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत दंडनीय अपराध करने के लिए आपराधिक षड्यंत्र रचने का आरोप लगाया गया है। पुनरीक्षणवादी पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) और 13(1)(डी) के तहत अपराध करने का भी आरोप लगाया गया है, जो कि अशमनीय अपराध हैं। इसलिए, पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता का उपरोक्त तर्क गलत है। (पैरा 37)

जब भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) एवं 13(1)(डी) के तहत अपराध अशमनीय हैं, तो किसी प्राकृतिक व्यक्ति के साथ छल न होने के कारण शमन के अवसर के कथित अभाव का तर्क, जिसकी सहमति से अपराध का शमन किया जा सकता था, आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का आधार नहीं बनता है। (पैरा 39)

आवेदन स्वीकार किया गया। (ई-14)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

प्रभात चंद्र मोहंती बनाम ओडिशा राज्य, (2021) 3 एस.सी.सी. 529

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा पारित)

1. पुनरीक्षणवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री पूर्णेंदु चक्रवर्ती और विपक्षी दल- केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सी.बी.आई.), नई दिल्ली के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुराग कुमार सिंह को सुना गया।

2. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रति-शपथ पत्र दाखिल किए हैं और पुनरीक्षणवादियों ने दोनों मामलों में प्रत्युत्तर-शपथ पत्र दाखिल किए हैं, जिन्हें रिकॉर्ड पर ले लिया गया है।

3. आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 478 वर्ष 2025, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397/401 के तहत दायर किया गया है, जिसमें आपराधिक वाद संख्या 1600002/2014, जो आर.सी.-ए.सी.1-2007ए0002 अन्तर्गत भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी के साथ पठित धारा 420 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2), 13(1)(डी), थाना- सी.बी.आई./ए.सी.बी., लखनऊ से उत्पन्न है, में विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, सी.बी.आई., न्यायालय संख्या 4, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 04.04.2025 की वैधता को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं के आरोपमुक्ति के आवेदन को खारिज कर दिया है।

4. आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 479 वर्ष 2025, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397/401 के तहत दायर किया गया है, जिसमें आपराधिक वाद संख्या 1600003/2014, जो आर.सी.-ए.सी.1-2008ए0003 अन्तर्गत भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी के साथ पठित धारा 420 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2), 13(1)(डी), थाना- सी.बी.आई./ए.सी.बी., लखनऊ से उत्पन्न है, में विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, सी.बी.आई., न्यायालय संख्या 4, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.04.2025 की वैधता को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं के आरोपमुक्ति के आवेदन को खारिज कर दिया है।

5. संक्षेप में, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 478 वर्ष 2025 को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि सी.बी.आई. ने 23.02.2007 को (i) एन.पी.सी.सी. लिमिटेड (नेशनल प्रोजेक्ट्स कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड) दिल्ली और फरीदाबाद के अज्ञात अधिकारियों, (ii) मेसर्स यू.सी.सी., 29, पीतांबर नगर, उन्नाव, उत्तर प्रदेश और (iii) अन्य अज्ञात के विरुद्ध उपरोक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की थी, जिसमें कहा गया था कि उत्तर प्रदेश के उन्नाव क्षेत्र में अदवा-मेजा लिंक चैनल, बाणसागर नहर परियोजना के निर्माण में भ्रष्टाचार के बारे में एक स्रोत से सूचना प्राप्त हुई थी। जिससे पता चला कि नेशनल प्रोजेक्ट्स कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड (जिसे इसके बाद 'एन.पी.सी.सी.' कहा जाएगा) भारत सरकार के जल संसाधन मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन एक सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी है। यह मुख्य रूप से नागरिक कार्यों और नहर प्रणालियों आदि के निर्माण के लिए जिम्मेदार है। दिनांक 27.05.2005 को, उत्तर प्रदेश सरकार के सिंचाई विभाग ने एन.पी.सी.सी. को ₹14,60,62,604/- की लागत से उपरोक्त नहर के निर्माण का अनुबंध दिया था। एन.पी.सी.सी. के कुछ अधिकारियों ने एक निजी निर्माण कंपनी, मेसर्स उन्नाव कंस्ट्रक्शन कंपनी, उन्नाव, उत्तर प्रदेश (जिसे इसके बाद 'यू.सी.सी.' कहा जाएगा) के साथ एक आपराधिक षड्यंत्र रचा और उन्होंने ₹13.82 करोड़ में अनुबंध यू.सी.सी. को उप-पट्टे पर दे दिया। यू.सी.सी. ने

आगे वह अनुबंध एक अन्य निजी कंपनी, मेसर्स सत साई अर्थ वर्क्स, नई दिल्ली को ₹7.16 करोड़ में उप-पट्टे पर दे दिया, जो एन.पी.सी.सी. के अनुबंध मूल्य की लगभग आधी राशि है, और इस प्रकार मेसर्स यू.सी.सी. को भारी अनुचित लाभ पहुँचाया और सार्वजनिक राजकोष को तदनुरूप हानि पहुँचाई।

6. प्रथम सूचना रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि यूनिट अधिकारी, एन.पी.सी.सी., कानपुर ने 23.04.2005 को स्थल निरीक्षण किया और उत्तर प्रदेश सरकार के सिंचाई विभाग को एन.पी.सी.सी. द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली बोली तैयार करने के लिए खुदाई कार्य हेतु ₹300/- से ₹340/- प्रति घन मीटर की दरें प्रस्तुत कीं। एन.पी.सी.सी. ने उक्त कार्य हेतु निविदा-पूर्व गठबंधन (प्री-टेंडर टाई-अप) के लिए 21.04.2005 को यू.सी.सी. सहित आठ फर्मों से सीमित निविदाएं आमंत्रित कीं। उन आठ फर्मों में से केवल यू.सी.सी. ने 27.04.2025 को अपनी निविदा प्रस्तुत की, जिसमें खुदाई कार्य के लिए 97.5 प्रति घन मीटर से 266 प्रति घन मीटर तक की दरें उद्धृत की गई थीं।

7. यू.सी.सी. द्वारा उद्धृत कार्य की कुल लागत पर 5.3% के लाभ मार्जिन की सिफारिश करने वाले एक नोट को एन.पी.सी.सी. के अधिकारियों द्वारा संसाधित किया गया था और इसे 02.05.2005 को एन.पी.सी.सी. के अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक द्वारा अनुमोदित किया गया था। तदनुसार, 06.05.2005 को एन.पी.सी.सी. द्वारा ₹13,82,38,248/- के लिए यू.सी.सी. की बोली को मंजूरी दे दी गई। एन.पी.सी.सी. ने यू.सी.सी. द्वारा उद्धृत दरों में 5.3% का लाभ मार्जिन जोड़कर ₹14,60,52,604/- पर अपनी बोली प्रस्तुत की, जिसे स्वीकार कर लिया गया। उत्तर प्रदेश सरकार और एन.पी.सी.सी. के बीच एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए थे, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रावधान था कि अनुबंध को उप-पट्टे पर नहीं दिया जाएगा। हालांकि, एन.पी.सी.सी. ने 01.06.2005 को ₹13,82,38,248/- की राशि के लिए पूरा कार्य यू.सी.सी. को आवंटित कर दिया। यू.सी.सी. ने बदले में वह कार्य ₹7.16 करोड़ की राशि के लिए मेसर्स सत साई अर्थ वर्क को उप-पट्टे पर दे दिया।

8. प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि यू.सी.सी. एक बिल्कुल नई फर्म है जिसे सीमित प्रस्ताव के आधार पर केवल 19.04.2005 को एन.पी.सी.सी. के साथ पंजीकृत किया गया था। यहाँ तक कि बयाना राशि का भी एन.पी.सी.सी. को पूर्ण भुगतान नहीं किया गया था। यद्यपि यू.सी.सी. ने दावा किया था कि उसके पास नहर और जल संसाधन कार्यों के क्षेत्र में 10 वर्षों का अनुभव है, लेकिन कर्मचारी भविष्य निधि संगठन के साथ इसका पंजीकरण केवल 15.04.2005 को हुआ था। एन.पी.सी.सी. ने नियमों के अनुसार यू.सी.सी. की साख और क्षमता के सत्यापन के बिना ही उसे पंजीकृत कर लिया। यह भी आरोप है कि यू.सी.सी. को एन.पी.सी.सी. के साथ केवल ₹5 करोड़ तक के नहर और जल संसाधन कार्यों के लिए पंजीकृत किया गया था और वह इस अनुबंध के लिए पात्र नहीं थी। इस प्रकार, सरकार ने एन.पी.सी.सी. को जो अनुबंध ₹14,60,52,604/- में दिया था, उसे ₹13,82,38,248/- में यू.सी.सी. को उप-पट्टे पर दे दिया गया, जिसे बदले में मेसर्स सत साई अर्थ वर्क्स को ₹7.16 करोड़ में उप-पट्टे पर दे दिया गया। उत्तर प्रदेश सरकार को परियोजना कार्य के लिए बढ़ा-चढ़ाकर अनुमान प्रस्तुत करके और बढ़ी हुई दरों पर अनुबंध प्राप्त करके, और उसके बाद उसे एक निजी फर्म को उप-पट्टे पर देकर, जिसने आगे इसे दूसरी फर्म को लगभग आधी दर पर उप-पट्टे पर दे दिया, एन.पी.सी.सी.

के अधिकारियों ने यू.सी.सी. और अन्य व्यक्तियों के साथ आपराधिक षड्यंत्र को आगे बढ़ाते हुए, अपने आधिकारिक पद का दुरुपयोग किया, सरकार के साथ छल किया, अपने और दूसरों के लिए आर्थिक लाभ प्राप्त किया और सार्वजनिक राजकोष को तदनुरूप हानि पहुँचाई।

9. जाँच के पश्चात, सी.बी.आई. ने 23.12.2009 को पुनरीक्षणवादियों सहित सात व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया है।

10. आरोप-पत्र में यह उल्लेख किया गया है कि यह षड्यंत्र रचा गया था कि उत्तर प्रदेश सरकार का सिंचाई विभाग एन.पी.सी.सी. को कार्य आवंटित करेगा और एन.पी.सी.सी. इसे सीमित निविदा प्रक्रिया के माध्यम से किए जाने वाले निविदा-पूर्व गठबंधन के द्वारा यू.सी.सी. को सौंप देगा, जिसे इस तरह से हेरफेर किया जाएगा ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि अंततः कार्य यू.सी.सी. को ही दिया जाए। निविदा-पूर्व गठबंधन एक ऐसी व्यवस्था है जिसके माध्यम से एन.पी.सी.सी. अपनी पंजीकृत एजेंसियों से सीमित निविदाएं आमंत्रित करता है और न्यूनतम बोली लगाने वाले के साथ समझौता ज्ञापन निष्पादित करता है और फिर गठबंधन वाली एजेंसी की दरों पर अपना प्रतिशत मार्जिन जोड़कर ग्राहक को अपनी दरें प्रस्तुत करता है और ग्राहक से कार्य मिलने पर, उसे गठबंधन वाली एजेंसी को सौंप देता है।

11. आरोप-पत्र में उल्लेख है कि श्री राजेंद्र सिंह, एन.पी.सी.सी. के उत्तर क्षेत्र के क्षेत्रीय प्रबंधक थे और उन्होंने 03.05.2005 को यू.सी.सी. के एकल प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए सिफारिश की थी। उन्होंने यह उल्लेख करते हुए कि दरें 05.05.2005 तक सिंचाई विभाग को प्रस्तुत की जानी हैं, जल्दबाजी का एक गलत प्रभाव पैदा किया था, जबकि सिंचाई विभाग की ओर से ऐसा कोई संचार नहीं हुआ था। इसके बाद पी.के. भार्गव, सहायक महाप्रबंधक द्वारा 03.05.2005 को ही प्रस्ताव एन.पी.सी.सी. के अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक को भेज दिया गया था। पी.के. भार्गव ने उल्लेख किया है कि एन.पी.सी.सी. के मार्जिन के संबंध में निर्णय लिया जा सकता है ताकि सिंचाई विभाग को निविदा प्रस्तुत करने के लिए कोटेशन पर उसे जोड़ा जा सके। इस प्रकार, तथ्यों को गलत तरीके से प्रस्तुत करके, एन.पी.सी.सी. के अधिकारियों ने सी.एम.डी. का अनुमोदन प्राप्त किया और सी.एम.डी. ने 06.05.2005 को प्रस्ताव को मंजूरी दे दी। 06.05.2005 को ही राजेंद्र सिंह ने मुख्य अभियंता, बाणसागर परियोजना, सिंचाई विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार को एन.पी.सी.सी. की दरें भेज दीं।

12. आरोप-पत्र में आगे उल्लेख है कि (i) प्रवीण प्रताप सिंह, (ii) अखिलेश बहादुर सिंह (पुनरीक्षणवादी), (iii) बाल किशन, (iv) राजेंद्र सिंह, (v) सुनील गुप्ता, (vi) आर.सी. शर्मा और (vii) अनिल विजय ने आपराधिक षड्यंत्र के अनुसरण में प्रासंगिक नियमों और दिशानिर्देशों का उल्लंघन किया और इस प्रकार यू.सी.सी. को कार्य आवंटित कर दिया, जबकि वह कार्य निष्पादित करने के लिए पात्र नहीं थी। यदि कार्य खुली निविदा के माध्यम से आवंटित किया गया होता, तो दरों की प्रतिस्पर्धा होती, जिसके परिणामस्वरूप सिंचाई विभाग को बेहतर दरें प्राप्त होतीं। यदि एन.पी.सी.सी. लिमिटेड ने उचित निविदा प्रक्रिया के माध्यम से निविदा-पूर्व गठबंधन में कार्य आवंटित किया होता, तो उन्हें बेहतर दरें प्राप्त होतीं और इस प्रकार एन.पी.सी.सी. लिमिटेड के लिए उच्च

मार्जिन सुनिश्चित होता। अतः, लोप और कृत्य के उपरोक्त चर्चित कार्यों द्वारा, अभियुक्त व्यक्तियों ने यू.सी.सी. को अनुचित आर्थिक लाभ और सार्वजनिक राजकोष को तदनुरूप हानि पहुँचाई है।

13. आरोपमुक्ति के आवेदन को खारिज करते हुए, विचारण न्यायालय ने दिनांक 04.04.2025 के आदेश में यह निर्धारित किया है कि रिकॉर्ड पर ऐसे पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध हैं जो दर्शाते हैं कि यू.सी.सी. का गठन कार्य आवंटन से ठीक पहले किया गया था और उसने कार्य के लिए मेसर्स सत साई अर्थ वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड से संपर्क किया था, जिससे पता चलता है कि अभियुक्त व्यक्तियों को यह विश्वास था कि उन्हें करोड़ों रुपये के कार्य आवंटित किए जाएंगे। अभियुक्त व्यक्तियों के पास प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड से कोई लाइसेंस या अनापत्ति प्रमाण-पत्र नहीं था। यद्यपि अभियुक्त व्यक्तियों ने दावा किया कि मेसर्स सत साई अर्थ वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड को केवल उपकरण और जनशक्ति प्रदान करने के लिए लगाया गया था, अभियोजन पक्ष का दावा है कि अनुबंध को आधी प्रतिफल राशि पर उप-पट्टे पर दे दिया गया था। अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी के साथ पठित धारा 420 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) एवं 13(1)(डी) के तहत आरोप तय करने के लिए रिकॉर्ड पर पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध हैं और तदनुसार, न्यायालय ने आरोपमुक्ति के आवेदन को खारिज कर दिया।

14. आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 479 वर्ष 2025 को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि सी.बी.आई. ने दिनांक 30.04.2008 को थाना- सी.बी.आई./ए.सी.बी., लखनऊ में (i) एन.पी.सी.सी. लिमिटेड (नेशनल प्रोजेक्ट्स कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड) दिल्ली और फरीदाबाद के अज्ञात अधिकारियों, (ii) मेसर्स यू.सी.सी., 29, पीतांबर नगर, उन्नाव, उत्तर प्रदेश, (iii) मेसर्स उमाशंकर शर्मा, ओल्ड निर्मल स्कूल, सिविल लाइन्स, उन्नाव, उत्तर प्रदेश और (iv) अन्य अज्ञात के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी के साथ पठित धारा 420 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2), 13(1)(डी) के अंतर्गत उपरोक्त आर.सी.-ए.सी.1-2008ए0003 दर्ज की थी। जिसमें उल्लेख किया गया था कि दिनांक 30.08.2005 को उत्तर प्रदेश सरकार के सिंचाई विभाग ने मेजा-जिरगो-लिंक-चैनल के निर्माण के लिए क्रमशः ₹31,81,52,777/-, ₹4,12,87,922/- और ₹3,62,72,370/- की लागत के तीन अलग-अलग कार्य एन.पी.सी.सी. को आवंटित किए थे। एन.पी.सी.सी. के कुछ अधिकारियों ने यू.सी.सी. और मेसर्स उमाशंकर शर्मा, उन्नाव (एक एकल स्वामित्व वाली फर्म) तथा अन्य के साथ मिलकर एक आपराधिक षड्यंत्र रचा, जिसके अनुसरण में उन्होंने अपने आधिकारिक पद का दुरुपयोग किया और उन्हें अत्यधिक दरों पर अनुबंध आवंटित किए। इनमें से एक परियोजना यू.सी.सी. को ₹28,20,05,378.50/- में दी गई और दो छोटे कार्य मेसर्स उमाशंकर शर्मा, उन्नाव को ₹3,83,78,597.80/- और ₹3,36,76,105.71/- में दिए गए। मेसर्स यू.सी.सी. उन्नाव ने आगे वह कार्य श्री सत साई अर्थवर्क्स प्राइवेट लिमिटेड को ₹14,05,28,334.60/- में उप-पट्टे पर दे दिया, जो एन.पी.सी.सी. के अनुबंध मूल्य की लगभग आधी राशि है, और इस प्रकार मेसर्स यू.सी.सी. और मेसर्स उमाशंकर शर्मा, उन्नाव को भारी अनुचित लाभ पहुँचाया और सार्वजनिक राजकोष को तदनुरूप हानि पहुँचाई।

15. जाँच के पश्चात, सी.बी.आई. ने 23.12.2009 को पुनरीक्षणवादियों सहित सात व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया है, जिसमें मुख्य रूप से वे ही आरोप लगाए गए हैं जो आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 478 वर्ष 2025 का विषय रहे आरोप-पत्र के समान हैं। समान आधारों पर आरोपमुक्ति के लिए एक आवेदन दायर किया गया था, जिसे विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 05.04.2025 के एक समान आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है।

16. पुनरीक्षणवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 478 वर्ष 2025 के समर्थन में तर्क प्रस्तुत किए हैं और उन्होंने यह निवेदन किया है कि आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 479 वर्ष 2025 में भी समान आधार और प्रश्न शामिल हैं। इसलिए, दोनों पुनरीक्षणों का निर्णय इस साझा निर्णय के माध्यम से किया जा रहा है।

17. दोनों उपरोक्त आरोप-पत्रों की वैधता को चुनौती देते हुए, पुनरीक्षणवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री पूर्णेंदु चक्रवर्ती ने यह तर्क दिया है कि आरोप-पत्र के अवलोकन मात्र से ही स्पष्ट होता है कि यू.सी.सी. को अनुबंध आवंटित करने के लिए सक्षम प्राधिकारियों द्वारा आवश्यक स्वीकृतियां प्रदान की गई थीं। यह आरोप कि यदि निविदा खुली निविदा प्रक्रिया के माध्यम से दी गई होती, तो एन.पी.सी.सी. को बेहतर दरें प्राप्त होतीं, केवल अनुमान आधारित है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि यह आरोप सटीक नहीं है क्योंकि इसमें उन दरों का उल्लेख नहीं है जिन पर खुली निविदा प्रक्रिया के माध्यम से कार्य किया जा सकता था और न ही इसके कारण सरकार को हुई तदनुरूप हानि का विवरण दिया गया है।

18. अनुबंध 01.06.2005 को यू.सी.सी. को आवंटित किया गया था। इससे काफी पहले, 02.05.2005 को एन.पी.सी.सी. ने यू.सी.सी. के साथ एक समझौता ज्ञापन किया था, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा गया था कि एन.पी.सी.सी. ने मेजा लिंक चैनल की नहरों की खुदाई के कार्य की निविदा में भाग लेने का निर्णय लिया है और यदि एन.पी.सी.सी. कार्य प्राप्त करने में सफल रहता है, तो वह इसे यू.सी.सी. द्वारा उनके प्रस्ताव पत्र दिनांक 27.04.2005 में उद्धृत दरों पर 'बैक टू बैक' आधार पर आवंटित करेगा। इसमें उस सीमा तक आनुपातिक कटौती की जाएगी, जिस सीमा तक एन.पी.सी.सी. को यह कार्य प्राप्त करने के लिए यू.सी.सी. के परामर्श से अपनी दरों में कमी करनी पड़ सकती है, और यह क्लाइंट द्वारा एन.पी.सी.सी. लिमिटेड को जारी किए गए मूल दस्तावेज में निहित नियमों और शर्तों पर होगा। प्रस्ताव के लिए बयाना राशि की व्यवस्था यू.सी.सी. द्वारा की जाएगी और इसे एन.पी.सी.सी. के पास जमा किया जाएगा। यदि एन.पी.सी.सी. लिमिटेड को कार्य आवंटित नहीं किया जाता है, तो ई.एम.डी. यू.सी.सी. को वापस कर दी जाएगी। यह समझौता ज्ञापन एन.पी.सी.सी. को कार्य आवंटित होने तक वैध रहना था। समझौता ज्ञापन में आगे यह भी कहा गया था कि क्लाइंट और एन.पी.सी.सी. के बीच सहमत सभी नियम और शर्तें 'बैक टू बैक' आधार पर यू.सी.सी. पर बाध्यकारी होंगी। आवश्यकता पड़ने पर, यू.सी.सी. ऑपरेटरों के साथ एन.पी.सी.सी. के उपकरण/मशीनरी को निगम के प्रचलित किराया शुल्क पर किराए पर लेगा, यदि एन.पी.सी.सी. लिमिटेड द्वारा उन्हें अलग से उपलब्ध कराया जा सके।

19. 04.07.2005 को, एन.पी.सी.सी. और यू.सी.सी. के बीच एक "कार्य हेतु अनुबंध" निष्पादित किया गया था, जिसमें यह दर्ज है कि एन.पी.सी.सी. ने क्लाइंट (सिंचाई विभाग) द्वारा जारी समझौता ज्ञापन को स्वीकार कर लिया था और 'बैक टू बैक' आधार पर दिनांक 01.06.2005 को एक आवंटन पत्र जारी किया था, और यू.सी.सी. ने एन.पी.सी.सी. लिमिटेड को अपनी बिना शर्त स्वीकृति प्रदान कर दी थी। अनुबंध की शर्तों में से एक यह थी कि यू.सी.सी. बाजार से किराए पर लेकर या खरीदकर स्थल पर पर्याप्त निर्माण संयंत्र और उपकरण लगाएगा, हालांकि वह एन.पी.सी.सी. की पूर्व लिखित सहमति के बिना उन्हें आवंटित कार्यों को आगे उप-पट्टे (सब-लेट) पर नहीं देगा।

20. पुनरीक्षणवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने यू.सी.सी. द्वारा मेसर्स सत साई अर्थ वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड को लिखे गए दिनांक 01.06.2005 के एक पत्र की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जिसके द्वारा मेसर्स सत साई अर्थ वर्क्स को अदवा-मेजा लिंक चैनल के निर्माण हेतु कार्य आदेश जारी किया गया था। इसमें यह दर्ज है कि उप-ठेकेदार कार्य को पूरा करने के लिए आवश्यक सभी उपकरण, सामग्री और जनशक्ति की व्यवस्था करेगा। 06.06.2005 को, मेसर्स सत साई अर्थ वर्क्स लिमिटेड ने यू.सी.सी. को एक पत्र जारी किया था जिसके माध्यम से उसने अदवा-मेजा लिंक चैनल पर खुदाई के लिए अपने उपकरण किराए के आधार पर देने का प्रस्ताव दिया था।

21. पुनरीक्षणवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया है कि उपरोक्त समझौता स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि यू.सी.सी. ने अनुबंध को उप-पट्टे पर नहीं दिया था, बल्कि उसने केवल जनशक्ति और उपकरणों की आपूर्ति के लिए एक ठेकेदार को नियुक्त किया था। उन्होंने आगे यह भी प्रस्तुत किया कि एन.पी.सी.सी. द्वारा आवंटित अनुबंध में एक मध्यस्थता खंड शामिल था और यदि अनुबंध के किसी भी नियम या शर्त का उल्लंघन हुआ था, तो यह केवल अनुबंध के उल्लंघन का मामला होगा, जिसके लिए मध्यस्थ के समक्ष दीवानी उपचार उपलब्ध है और इस संबंध में कोई भी आपराधिक कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है।

22. अनुबंध आवंटित होने से पहले ही, एन.पी.सी.सी. और यू.सी.सी. ने अदवा-मेजा लिंक चैनल की खुदाई के लिए दिनांक 02.05.2005 को एक समझौता ज्ञापन किया था, जिसमें यह सहमति बनी थी कि यदि एन.पी.सी.सी. लिमिटेड कार्य प्राप्त करने में सफल रहता है, तो वह इसे यू.सी.सी. को 'बैक टू बैक' आधार पर आवंटित करेगा। क्लाइंट और एन.पी.सी.सी. लिमिटेड के बीच के सभी नियम और शर्तें 'बैक टू बैक' आधार पर यू.सी.सी. पर बाध्यकारी होंगी। आवश्यकता पड़ने पर, यू.सी.सी. ऑपरेटरों के साथ एन.पी.सी.सी. के उपकरण/मशीनरी को निगम के प्रचलित किराया शुल्क पर किराए पर लेगा। यू.सी.सी. निविदा सूचना के अनुसार साइट पर पर्याप्त निर्माण संयंत्र और उपकरण लगाएगा, जो या तो उनके अपने स्टॉक से होंगे या बाजार से किराए पर लेकर/खरीदकर जुटाए जाएंगे।

23. 04.07.2005 को, एन.पी.सी.सी. ने यू.सी.सी. के साथ 'बैक टू बैक' आधार पर कार्य के लिए एक अनुबंध किया, जो पूरे अनुबंध को उप-पट्टे पर देने के अलावा और कुछ नहीं है।

24. उपरोक्त दिनांक 04.07.2005 के अनुबंध की शर्त संख्या 22 यह प्रावधान करती है कि "क्लाइंट और एन.पी.सी.सी. लिमिटेड के बीच सहमत सभी नियम और शर्तें 'बैक टू बैक' आधार पर मेसर्स यू.सी.सी. पर बाध्यकारी होंगी। शर्त संख्या 27 यह प्रावधान करती है कि "यू.सी.सी. निविदा सूचना के अनुसार साइट पर पर्याप्त निर्माण संयंत्र और उपकरण लगाएगा, जो या तो उनके अपने स्टॉक से होंगे या बाजार से किराए पर लेकर/खरीदकर जुटाए जाएंगे। शर्त संख्या 31 यह प्रावधान करती है कि "यू.सी.सी. एन.पी.सी.सी. की पूर्व लिखित सहमति के बिना उन्हें आवंटित कार्यों को उप-पट्टे पर नहीं देगा।

25. 01.06.2005 को, यू.सी.सी. ने मेसर्स सत साई अर्थ वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड को एक कार्य आदेश जारी किया, जो इन शब्दों के साथ शुरू होता है: "आपके उपरोक्त उल्लिखित प्रस्ताव और उसके बाद हुई चर्चा के संदर्भ में, हमें 2.300 किमी से 9.000 किमी तक अदवा-मेजा लिंक चैनल के निर्माण का आदेश देते हुए प्रसन्नता हो रही है, जो एन.पी.सी.सी. द्वारा संदर्भ संख्या एनजेड/सीओएनटी/404 दिनांक 01.06.2005 के माध्यम से आपके द्वारा प्रस्तावित और नीचे दी गई दरों पर हमें आवंटित किया गया है।

26. यू.सी.सी. द्वारा जारी पत्र में उपरोक्त लेख के अवलोकन मात्र से ही यह संकेत मिलता है कि यू.सी.सी. ने एन.पी.सी.सी. द्वारा आवंटित कार्य को मेसर्स सत साई अर्थ वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड को सौंप दिया था, और यह केवल जनशक्ति और मशीनरी किराए पर लेने का अनुबंध नहीं था। समझौते में यह प्रावधान था कि सभी उपकरण, सामग्री और जनशक्ति की व्यवस्था यू.सी.सी. द्वारा की जानी थी। इस समझौते के निम्नलिखित खंड संज्ञान लेने योग्य हैं: -

"29. उप-ठेकेदार को ठेकेदार के लिए चल भुगतान (रनिंग पेमेंट) निम्नलिखित आधार पर किया जाएगा -

i)	*प्रत्येक किलोमीटर की लंबाई में मिट्टी के कार्य (अर्थ वर्क) की कुल मात्रा के 25% तक निष्पादित मात्रा के लिए*	*अनुबंध दर का 65%*
ii)	*प्रत्येक किलोमीटर की लंबाई में मिट्टी के कार्य (अर्थ वर्क) की कुल मात्रा के 50% तक निष्पादित मात्रा के लिए*	*अनुबंध दर का 75%*
Iii)	*प्रत्येक किलोमीटर की लंबाई में मिट्टी के कार्य (अर्थ वर्क) की कुल मात्रा के 90% तक निष्पादित मात्रा के लिए*	*अनुबंध दर का 90%*
iv)	*जब निष्पादित मात्रा प्रत्येक किलोमीटर की पहुंच (रीच) में निष्पादित की जाने वाली कुल मात्रा के 90% से अधिक हो जाए*	*अनुबंध दर का 95%*

*30. उप-ठेकेदार को एन.पी.सी.सी. अधिकारियों की पूर्ण संतुष्टि के अनुसार सभी प्रकार से **6 महीने** की अवधि के भीतर कार्य पूरा करना होगा। (जैसा कि ऊपर पैरा 25 में उल्लेख किया गया है)।*

31. कार्यों को समय पर पूरा करना सुनिश्चित करने के लिए, निर्माण अनुसूची के सख्त अनुसार, प्रत्येक किलोमीटर पत्थर पर देरी के लिए पूर्व-निर्धारित परिनिर्धारित हर्जाना लगाया जाएगा, जैसा कि निर्माण अनुसूची

में निर्दिष्ट है। यह प्रत्येक मध्यवर्ती किलोमीटर पत्थर के लिए ₹10,000 प्रति दिन और कार्य के अंतिम समापन के लिए ₹20,000 प्रति दिन की दर से होगा, जो अधिकतम 25 दिनों की देरी और ₹3.00 लाख की राशि के अधीन होगा।

32. निर्माण अनुसूची में निर्दिष्ट अनुसार प्रत्येक किलोमीटर पत्थर पर समय से पहले कार्य पूरा करने के लिए उप-ठेकेदार को प्रोत्साहन राशि देय होगी। यह प्रत्येक मध्यवर्ती किलोमीटर पत्थर के लिए ₹10,000 प्रति दिन और कार्य के अंतिम समापन के लिए ₹20,000 प्रति दिन की दर से होगा, जो अधिकतम ₹3.00 लाख के अधीन होगा।

33. उप-ठेकेदार एन.पी.सी.सी. अधिकारियों द्वारा लिखित रूप में निर्देशित रेखाचित्रों, विशिष्टताओं और/या परिवर्तनों के अनुसार कार्यों को निष्पादित करेगा।"

27. उपरोक्त शर्तों के अवलोकन मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि यू.सी.सी. ने मेसर्स सत साई अर्थ वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड को उसके द्वारा किए गए कार्य के लिए भुगतान करने की सहमति दी थी, न कि उसके द्वारा आपूर्ति की गई जनशक्ति और उपकरणों के लिए। अतः, पुनरीक्षणवादियों के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि यू.सी.सी. ने अनुबंध को उप-पट्टे पर नहीं दिया था, सारहीन है और इसे खारिज किया जाता है।

28. पुनरीक्षणवादियों के विद्वान अधिवक्ता का दूसरा तर्क यह है कि हानि की राशि का निर्धारण नहीं किया गया है और आरोप मात्र अनुमान पर आधारित है। जब रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री से यह स्पष्ट है कि सरकार ने एन.पी.सी.सी. को ₹14,60,62,604/- का अनुबंध आवंटित किया था, एन.पी.सी.सी. ने वह अनुबंध यू.सी.सी. को ₹13.82 करोड़ में उप-पट्टे पर दिया और यू.सी.सी. ने आगे उसे सत साई अर्थ वर्क्स को ₹7.16 करोड़ में उप-पट्टे पर दे दिया–जो कि एन.पी.सी.सी. के अनुबंध मूल्य की लगभग आधी राशि है–और यह अनुबंध सर्वोत्तम दरें सुनिश्चित करने के लिए निविदाएं आमंत्रित करने की सामान्य प्रक्रिया का पालन किए बिना आवंटित किया गया था, तो प्रथम दृष्टया सरकारी खजाने को अनुचित हानि पहुँचाने का मामला बनता है, जिसका विचारण न्यायालय द्वारा किया जाना आवश्यक है।

29. पुनरीक्षणवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया है कि वर्तमान मामले में किसी भी "व्यक्ति" के साथ धोखाधड़ी नहीं की गई है और इसी कारण कोई भी व्यक्ति प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए आगे नहीं आया है। सी.बी.आई. द्वारा यह प्रथम सूचना रिपोर्ट स्वयं दर्ज की गई है। पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, जब तक कोई व्यक्ति इस आरोप के साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं कराता कि पुनरीक्षणवादी ने उसके साथ धोखाधड़ी की है, तब तक पुनरीक्षणवादी पर धोखाधड़ी के अपराध के लिए मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।

30. भारतीय दंड संहिता की धारा 415 में 'छल' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है: -

415. छल– जो कोई किसी व्यक्ति को धोखा देकर, उस व्यक्ति को जिसे इस प्रकार धोखा दिया गया है, कपटपूर्वक या बेईमानी से उत्प्रेरित करेगा कि वह कोई संपत्ति किसी व्यक्ति को परिदत्त कर दे, या यह सहमति दे दे कि कोई व्यक्ति किसी संपत्ति को रखे रखे, अथवा साशय उस व्यक्ति को जिसे इस प्रकार धोखा दिया गया है, कोई ऐसा कार्य करने या करने से लोप करने के लिए उत्प्रेरित करेगा जिसे वह यदि उसे उस प्रकार धोखा न दिया गया होता, तो न करता या करने का लोप न करता, और जिस कार्य या लोप से उस व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक, ख्याति संबंधी या संपत्ति संबंधी क्षति या हानि कारित होती है या कारित होनी संभाव्य है, वह "छल" करता है, यह कहा जाता है।

स्पष्टीकरण– तथ्यों का बेईमानी से छिपाना, इस धारा के अर्थ के अंतर्गत प्रवंचना है।

दृष्टांत

***

31. भारतीय दंड संहिता की धारा 11 में "व्यक्ति" शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:-

"11. "व्यक्ति"–"व्यक्ति" शब्द के अंतर्गत कोई कंपनी या संगम या व्यक्तियों का निकाय आता है, चाहे वह निगमित हो या नहीं।"

32. दण्ड संहिता की धारा 11 में दी गई 'व्यक्ति' शब्द की परिभाषा इतनी व्यापक है कि इसमें व्यक्तियों का कोई भी संघ या निकाय शामिल हो सकता है, चाहे वह निगमित हो या नहीं। इसके दायरे में निश्चित रूप से राज्य सरकार भी शामिल होगी, जो व्यक्तियों का एक निकाय है। यदि अभियुक्त व्यक्तियों ने कपटपूर्वक या बेईमानी से सरकार को एन.पी.सी.सी. के साथ अनुबंध करने के लिए प्रेरित करके उसे धोखा दिया है, जिस अनुबंध को पहले यू.सी.सी. को उप-पट्टे पर दिया गया था और उसके बाद इसे मेसर्स सत साई अर्थ वर्क्स को अनुबंध मूल्य की लगभग आधी राशि पर फिर से उप-पट्टे पर दे दिया गया, और इस प्रकार एन.पी.सी.सी. को अत्यधिक राशि का भुगतान किया गया, जिस कृत्य से सरकार को वित्तीय हानि हुई है, तो अभियुक्त व्यक्तियों ने छल (Cheating) का अपराध किया है। यदि कोई व्यक्ति छल का अपराध करने के आपराधिक षड्यंत्र में शामिल था, तो वह अभियोजित किए जाने का पात्र है। इसलिए, मुझे पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता के उपरोक्त तर्क में कोई बल नहीं दिखता है।

33. पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह तर्क दिया है कि छल का अपराध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 के तहत एक शमनीय अपराध है। वर्तमान मामले में कोई भी "व्यक्ति" प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए आगे नहीं आया है और सी.बी.आई. ने स्वयं ही प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की है। यदि पुनरीक्षणवादी अपराध का शमन करना चाहता है, तो वह धोखा खाए हुए व्यक्ति के शिकायत दर्ज कराने के लिए आगे न आने की स्थिति में ऐसा नहीं कर पाएगा। इसलिए, पुनरीक्षणवादी दोषमुक्त होने के योग्य है।

34. शमन के लिए वैधानिक प्रावधान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 में निहित हैं, जिसका प्रासंगिक भाग नीचे पुनरुत्पादित किया जा रहा है: -

320. अपराधों का शमन *– (1) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की उन धाराओं के अधीन दंडनीय अपराध, जो इसके ठीक बाद आने वाली तालिका के पहले दो स्तंभों में विनिर्दिष्ट हैं, उस तालिका के तीसरे स्तंभ में वर्णित व्यक्तियों द्वारा शमित किए जा सकते हैं:–*

तालिका

अपराध	*भारतीय दंड संहिता की प्रयोज्य धारा*	*व्यक्ति जिसके द्वारा अपराध का शमन किया जा सकता है*
1	*2*	*3*
*****	*****	*****
छल	*417*	*वह व्यक्ति जिसके साथ छल किया गया है*
प्रतिरूपण द्वारा छल	*419*	*यथावत् (वह व्यक्ति जिसके साथ छल किया गया है)*
*****	*****	*****

(2) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की उन धाराओं के अधीन दंडनीय अपराध, जो इसके ठीक बाद आने वाली तालिका के पहले दो स्तंभों में विनिर्दिष्ट हैं, उस न्यायालय की अनुमति से, जिसके समक्ष ऐसे अपराध के लिए कोई अभियोजन लंबित है, उस तालिका के तीसरे स्तंभ में वर्णित व्यक्तियों द्वारा शमित किए जा सकते हैं:–

तालिका

अपराध	*भारतीय दंड संहिता की प्रयोज्य धारा*	*व्यक्ति जिसके द्वारा अपराध का शमन किया जा सकता है*
*****	*****	*****
उस व्यक्ति के साथ छल करना, जिसके हितों की रक्षा करने के लिए अपराधी कानून द्वारा या कानूनी अनुबंध द्वारा बाध्य था	*418*	*वह व्यक्ति जिसके साथ छल किया गया है*
छल करना और संपत्ति परिदत्त करने के लिए या मूल्यवान प्रतिभूति बनाने,	*420*	*वह व्यक्ति जिसके साथ छल किया गया है*

अनधिकृत

परिवर्तित करने या विनाश करने के लिए बेईमानी से उत्प्रेरित करना		
***	***	***

(3) जब इस धारा के अधीन कोई अपराध शमनीय है, तब ऐसे अपराध का दुष्प्रेरण या ऐसा अपराध करने का प्रयास (जब ऐसा प्रयास स्वयं में एक अपराध हो) या जहाँ अभियुक्त भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 34 या 149 के अधीन उत्तरदायी है, उसी रीति से शमित किया जा सकता है।

(4)(ए) जब वह व्यक्ति, जो इस धारा के अधीन किसी अपराध का शमन करने के लिए अन्यथा सक्षम होता, अठारह वर्ष से कम आयु का है या जड़ या विकृतचित्त है, तब उसकी ओर से संविदा करने के लिए सक्षम कोई भी व्यक्ति, न्यायालय की अनुमति से, ऐसे अपराध का शमन कर सकता है।
(बी) जब वह व्यक्ति, जो इस धारा के अधीन किसी अपराध का शमन करने के लिए अन्यथा सक्षम होता, मर चुका है, तब सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में यथापरिभाषित ऐसे व्यक्ति का विधिक प्रतिनिधि, न्यायालय की सहमति से, ऐसे अपराध का शमन कर सकता है।

(5) जब अभियुक्त को विचारण के लिए सुपुर्द कर दिया गया है या जब उसे दोषसिद्ध किया जा चुका है और अपील लंबित है, तब अपराध के लिए कोई भी शमन उस न्यायालय की अनुमति के बिना अनुज्ञात नहीं किया जाएगा, जिसे वह सुपुर्द किया गया है, या यथास्थिति, जिसके समक्ष अपील सुनी जानी है।

(6) धारा 401 के अधीन पुनरीक्षण की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय किसी भी ऐसे व्यक्ति को किसी ऐसे अपराध का शमन करने की अनुमति दे सकता है, जिसे शमित करने के लिए वह व्यक्ति इस धारा के अधीन सक्षम है।

(7) किसी भी अपराध का शमन तब नहीं किया जाएगा यदि अभियुक्त, पूर्व दोषसिद्धि के कारण, उस अपराध के लिए या तो वर्धित दंड या भिन्न प्रकार के दंड का भागी है।

(8) इस धारा के अधीन किसी अपराध के शमन का प्रभाव उस अभियुक्त की दोषमुक्ति होगा, जिसके साथ अपराध का शमन किया गया है।

(9) इस धारा द्वारा यथा प्रावधानित के सिवाय कोई भी अपराध शमित नहीं किया जाएगा।"

35. यद्यपि भारतीय दंड संहिता की धारा 417 के तहत दंडनीय अपराध, जिसमें तीन वर्ष तक के कारावास या जुर्माने, अथवा दोनों से दंडित करने का प्रावधान है, और धारा 419 के तहत दंडनीय अपराध, जिसमें तीन वर्ष

तक के कारावास या जुर्माने का प्रावधान है, उस व्यक्ति द्वारा शमित किए जा सकते हैं जिसके साथ छल किया गया है; किंतु धारा 420 के तहत दंडनीय अपराध, जिसमें सात वर्ष तक के कारावास और (न कि अथवा) जुर्माने का उच्चतर दंड निर्धारित है, केवल न्यायालय की अनुमति से ही उस व्यक्ति द्वारा शमित किया जा सकता है जिसके साथ छल किया गया है।

36. इसके अतिरिक्त, धारा 320 की उप-धारा (3) यह प्रावधान करती है कि जब कोई अपराध इस धारा के तहत शमनीय होता है, तो ऐसे अपराध का दुष्प्रेरण या ऐसा अपराध करने का प्रयास (जब ऐसा प्रयास स्वयं में एक अपराध हो) या जहाँ अभियुक्त भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 34 या 149 के तहत उत्तरदायी हो, उसी रीति से शमित किया जा सकता है। लेकिन ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि किसी शमनीय अपराध को करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी के तहत दंडनीय आपराधिक षड्यंत्र का अपराध भी शमनीय होगा।

37. पुनरीक्षणवादी पर भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत दंडनीय अपराध करने के लिए आपराधिक षड्यंत्र के अपराध का आरोप लगाया गया है। पुनरीक्षणवादी पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) और 13(1)(डी) के तहत भी अपराध करने के आरोप लगाए गए हैं, जो कि अशमनीय अपराध हैं। इसलिए, पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता का उपरोक्त तर्क गलत और भ्रामक है।

38. इसके अतिरिक्त, शमनीय अपराधों का शमन करना भी कोई अपरिहार्य अधिकार नहीं है और इसे केवल न्यायालय की अनुमति से ही उस व्यक्ति द्वारा शमित किया जा सकता है जिसके साथ छल किया गया है। **प्रभात चंद्र मोहंती बनाम ओडिशा राज्य**: (2021) 3 एससीसी 529 के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि: -

"30. धारा 320 की उप-धारा (5) द्वारा परिकल्पित अनुमति प्रदान करना न तो स्वचालित है और न ही अपीलकर्ता द्वारा अनुरोध प्राप्त होने पर यह यांत्रिक होनी चाहिए, भले ही पीड़ित उस पर सहमत हो। वैधानिक आवश्यकता इसे न्यायालय का स्पष्ट कर्तव्य बनाती है कि वह अपराध की प्रकृति और साक्ष्य की जांच करे और स्वयं को संतुष्ट करे कि अनुमति दी जानी चाहिए या नहीं। आपराधिक न्याय के प्रशासन के लिए राज्य द्वारा सभी अपराधियों का अभियोजन आवश्यक है।

31. राज्य द्वारा अभियोजन कानून की नीति है क्योंकि सभी अपराध समाज के विरुद्ध होते हैं। समाज में शांति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए अपराधियों को न्यायालयों में लाया जाना चाहिए और उनके अपराधों के लिए दंडित किया जाना चाहिए। यह अभियोजन का कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि कोई भी अपराधी किसी अपराध के लिए दंडित हुए बिना बचकर न निकल जाए। यह कानून का स्थापित सिद्धांत भी है कि निर्दोष को दंडित नहीं किया जाना चाहिए।

32. प्रश्न यह उठता है कि अपराध के शमन के लिए न्यायालय की अनुमति देते समय, अनुमति देने या इनकार करने के लिए न्यायालय के लिए मार्गदर्शक कारक क्या है। अपराध के शमन की अनुमति देते समय अपराध की प्रकृति और समाज पर उसका प्रभाव प्रासंगिक विचार हैं। वे अपराध जो सामान्य रूप से जनता को प्रभावित करते हैं और सामान्य रूप से जनता में भय पैदा करते हैं, वे गंभीर अपराध हैं, जिनकी प्रकृति न्यायालय के लिए अनुमति देने या इनकार करने हेतु एक प्रासंगिक विचार हो सकती है..."

39. जब भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) एवं 13(1)(डी) के तहत अपराध शमनीय नहीं हैं, तो किसी प्राकृतिक व्यक्ति के साथ छल न होने के कारण शमन के अवसर का कथित अभाव, जिसकी सहमति से अपराध का शमन किया जा सकता था, आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का आधार नहीं बनता है।

40. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि पुनरीक्षणवादियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए किसी भी तर्क में कोई सार नहीं है।

41. दोनों पुनरीक्षण, अर्थात् आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 478 वर्ष 2025 और आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 479 वर्ष 2025, सारहीन हैं और उन्हें एतद्द्वारा **खारिज** किया जाता है।

अनवधि

(2025) 5 ILRA 1756

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 08.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन

आदेश से प्रथम अपील संख्या 37 वर्ष 2022

साथ में अन्य संबंधित वाद

द नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **...अपीलकर्ता**

बनाम

रीतू देवी एवं अन्य **...प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
सत्यजीत बनर्जी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
सत्येन्द्र नाथ राय

अनुवादित

दीवानी विधि - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 147 --- दुर्घटना 08.01.2016 को घटित होना बताया गया है और 28.11.2014 को जारी की गई पॉलिसी 09.01.2015 को रद्द कर दी गई थी तथा बीमित व्यक्ति को इसकी सूचना 11.02.2015 को भेज दी गई थी। अर्थात, पॉलिसी का रद्द होना और धारक को सूचित किया जाना, ये सभी घटनाएँ दुर्घटना से पहले की हैं। परिणामस्वरूप, दुर्घटना की तिथि यानी 08.01.2016 पर बीमा पॉलिसी के अस्तित्व में रहने का कोई अवसर नहीं हो सकता है और इस प्रकार, बीमा कंपनी को प्रथम दृष्टया राशि का भुगतान करने और मालिक से उसकी वसूली करने के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। मामला वापस भेजा गया। (ई-15)

<u>संदर्भित वादों की सूची-:</u>

1.यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम लक्ष्मम्मा एवं अन्य - एआईआर 2012 एससी 2817

2.नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम जितेंद्र कुमार - 2009 (2) टी.ए.सी. 407 इलाहाबाद

3.ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी बनाम मोहम्मद वसीम एवं अन्य - 2009 ए.आई.सी.सी. 949

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन द्वारा पारित)

1. आदेश से प्रथम अपील संख्या 37 और 39 वर्ष 2022, विद्वान मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, लखीमपुर खीरी द्वारा पारित आक्षेपित पंचाट दिनांक 21.10.2021 के विरुद्ध दायर की गई हैं।

2. चूँकि उपरोक्त सभी अपीलों में कानून और तथ्यों के समान प्रश्न शामिल हैं, इसलिए उन्हें एक ही आदेश द्वारा निर्णीत किया जा रहा है। हालांकि, अपीलों का निर्णय करने के लिए आदेश से प्रथम अपील संख्या 37 वर्ष 2022 के तथ्यों को विचार में लिया जा रहा है।

3. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता सत्यजीत बनर्जी और प्रतिवादी संख्या 1 से 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री सत्येन्द्र नाथ राय को सुना गया।

4. प्रतिवादी संख्या 6 और 7 को नोटिस तामील होने के बावजूद, उनकी ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है। तदनुसार, न्यायालय मामले की सुनवाई और निर्णय करने के लिए आगे बढ़ता है।

5. विद्वान अधिकरण द्वारा मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या 54/2016 (रीतू देवी और अन्य बनाम बस मालिक कमलजीत सिंह और अन्य) में पारित निर्णय और पंचाट दिनांक 21.10.2021 चुनौती के अधीन है, जिसके द्वारा विद्वान अधिकरण ने अपीलकर्ता बीमा कंपनी के विरुद्ध 12,85,000/- रुपये की राशि प्रदान की है।

6. दावेदारों द्वारा आदेश से प्रथम अपील संख्या 125 और 126 वर्ष 2022 दायर की गई हैं, जिनमें विद्वान अधिकरण द्वारा उक्त अपील में दिए गए पंचाट की राशि में वृद्धि की प्रार्थना की गई है। प्रतिवादियों पर तामील होने के बावजूद कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है, यद्यपि विद्वान अधिवक्ता श्री सत्यजीत बनर्जी संबंधित अपीलों में भी बीमा कंपनी की ओर से उपस्थित हुए हैं।

7. अनावश्यक विवरणों को छोड़कर, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तथ्य यह है कि एक दुर्घटना 08.01.2016 को घटित होना बताया गया है, जिसके परिणामस्वरूप श्री विजय प्रकाश शुक्ला और एक राम सूरत की मृत्यु हो गई थी। दुर्घटना तब हुई जब वे दोनों एक मोटरसाइकिल पर जा रहे थे और उन्हें पंजीकरण संख्या यूपी 31 टी 3800 वाली बस ने टक्कर मार दी थी, जिसे लापरवाही और उपेक्षा से चलाया जा रहा था।

8. विद्वान अधिकरण ने विभिन्न वाद-बिंदु विरचित किए थे, जिनमें से वाद-बिंदु संख्या 3 यह था कि क्या दुर्घटना की तिथि पर उक्त बस किसी बीमा कंपनी के पास बीमित थी।

9. विद्वान अधिकरण ने उन तथ्यों का परीक्षण किया जो यह थे कि वाहन के स्वामी द्वारा बीमा पॉलिसी जारी करने के लिए 20.11.2014 को बीमा कंपनी को एक चेक जारी किया गया था। पॉलिसी 28.11.2014 को जारी की गई थी। पॉलिसी की वैधता 27.01.2015 से 26.01.2016 तक थी। संयोगवश, बस स्वामी द्वारा दिया गया चेक अनादरित हो गया, जैसा कि 07.01.2015 को बीमा कंपनी की प्रणाली में प्रकट हुआ। पॉलिसी को

अनुवादित

09.01.2015 को रद्द कर दिया गया था। पॉलिसी रद्द करने के संबंध में नोटिस 11.02.2015 को पॉलिसी धारक को जारी किया गया था।

10. तत्पश्चात, विद्वान अधिकरण का यह मत था कि मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 147 की शर्तों के अनुसार, बीमा कंपनी द्वारा पॉलिसी के रद्दीकरण के संबंध में सात दिनों की अवधि के भीतर सूचना भेजी जानी थी और ऐसा न किए जाने के कारण यह माना जाना चाहिए कि दुर्घटना की तिथि पर वाहन बीमित था। बीमा कंपनी को पंचाट की गई राशि का भुगतान करने और मालिक से उसकी वसूली करने के लिए उत्तरदायी ठहराया गया था।

11. श्री बनर्जी का तर्क यह है कि एक बार जब बीमा पॉलिसी ही प्रभावी नहीं हुई, तो परिणामस्वरूप बीमा कंपनी के लिए पहले दावेदारों को राशि का भुगतान करने और उसके बाद मालिक से उसकी वसूली करने का कोई अवसर ही नहीं बचता है।

12. इस संबंध में, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम लक्ष्मम्मा और अन्य - एआईआर 2012 एससी 2817** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा जताया है और यह तर्क दिया है कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने समान परिस्थितियों पर विचार करते हुए यह निर्धारित किया है कि जहाँ चेक अनादरित हो गया हो और वाहन की दुर्घटना होने से पहले बीमा कंपनी बीमा पॉलिसी रद्द कर देती है तथा उसकी सूचना मालिक को भेज देती है, तो तीसरे पक्ष को क्षतिपूर्ति करने का बीमा कंपनी का दायित्व समाप्त हो जाएगा।

13. तर्क यह है कि विद्वान अधिकरण **लक्ष्मम्मा (उपरोक्त)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर विचार करने में विफल रहा है, बल्कि इसके विपरीत निर्णय देने के लिए दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा **ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी बनाम मोहम्मद वसीम और अन्य - 2009 ए.आई.सी.सी. 949** के मामले में पारित निर्णय के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम जितेंद्र कुमार - 2009 (2) टी.ए.सी. 407 इलाहाबाद** के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है।

14. अतः यह तर्क दिया गया है कि **लक्ष्मम्मा (उपरोक्त)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि विद्वान अधिकरण द्वारा पारित वह पंचाट, जहाँ तक वह बीमा कंपनी को भुगतान करने और उसके बाद मालिक से वसूली करने का निर्देश देता है, रद्द किए जाने योग्य है और बीमा कंपनी का कोई भी राशि भुगतान करने का कोई दायित्व नहीं होगा।

15. दूसरी ओर, प्रतिवादियों/दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता श्री राय, **लक्ष्मम्मा (उपरोक्त)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के उक्त कानूनी सिद्धांत का विरोध नहीं करते हैं। हालांकि, उनका कहना है कि चूंकि दावेदारों ने भी वृद्धि के लिए प्रार्थना की है, इसलिए यह न्यायालय पंचाट की गई राशि में वृद्धि पर विचार कर सकता है।

16. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, यह तथ्य सामने आता है कि एक दुर्घटना 08.01.2016 को घटित होना बताया गया है, जिसके परिणामस्वरूप बस की टक्कर से श्री विजय प्रकाश शुक्ला और श्री राम सूरत की मृत्यु हो गई थी। दावा याचिका दायर होने पर, विद्वान अधिकरण ने वाद-बिंदु संख्या 3 विरचित किया था कि क्या दुर्घटना की तिथि पर बस बीमित थी।

17. इस संबंध में, बीमा कंपनी ने इंगित किया कि मालिक द्वारा बीमा पॉलिसी जारी करने के लिए 20.11.2014 को एक चेक दिया गया था। पॉलिसी 28.11.2014 को जारी की गई थी। पॉलिसी की वैधता 27.01.2015 से 26.01.2016 तक थी। संयोगवश, पॉलिसी जारी करने के लिए मालिक द्वारा जारी किया गया चेक अनादरित हो गया था, जिसे 07.01.2015 को बीमा कंपनी की प्रणाली (system) में दर्शाया गया था। इसके तुरंत बाद 09.01.2015 को पॉलिसी रद्द कर दी गई और इस संबंध में 11.02.2015 को बीमा पॉलिसी धारक/बीमित व्यक्ति को सूचना भेज दी गई थी।

18. चूंकि दुर्घटना पॉलिसी के रद्दीकरण और बीमित व्यक्ति को सूचना भेजे जाने के बाद हुई थी, इसलिए बीमा कंपनी का कोई दायित्व नहीं होगा, जैसा कि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है।

19. इस संबंध में, **लक्ष्मम्मा (उपरोक्त)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय का संदर्भ देना पर्याप्त होगा, जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार निर्धारित किया है:-

"हमारी राय में, विधिक स्थिति यह है: जहाँ प्रीमियम के भुगतान के बदले चेक प्राप्त होने पर अधिकृत बीमाकर्ता द्वारा बीमा पॉलिसी जारी की जाती है और ऐसा चेक अनादरित होकर वापस आ जाता है, तो उस पॉलिसी द्वारा कवर किए गए दायित्व के संबंध में तृतीय पक्षों की क्षतिपूर्ति करने का अधिकृत बीमाकर्ता का दायित्व बना रहता है और उसे मोटर वाहन अधिनियम की धारा 147(5) और 149(1) के प्रावधानों के कारण मुआवजे के पंचाट को संतुष्ट करना होगा, जब तक कि अधिकृत बीमाकर्ता द्वारा बीमा पॉलिसी रद्द न कर दी गई हो और ऐसे रद्दीकरण की सूचना दुर्घटना से पहले बीमित व्यक्ति तक न पहुँच गई हो। ***दूसरे शब्दों में, जहाँ प्रीमियम के भुगतान के लिए प्राप्त चेक के आधार पर अधिकृत बीमाकर्ता द्वारा किसी वाहन को कवर करने वाली बीमा पॉलिसी जारी की जाती है और चेक अनादरित हो जाता है तथा वाहन की दुर्घटना होने से पहले, ऐसी बीमा कंपनी बीमा पॉलिसी को रद्द कर देती है और उसकी सूचना मालिक को भेज देती है, तो उस पॉलिसी द्वारा कवर किए गए तृतीय पक्षों की क्षतिपूर्ति करने का बीमा कंपनी का दायित्व समाप्त हो जाता है और बीमा कंपनी उसके संबंध में मुआवजे के पंचाटों को संतुष्ट करने के लिए उत्तरदायी नहीं होती है।"***

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

20. **लक्ष्मम्मा (उपरोक्त)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया है कि जहाँ प्रीमियम के भुगतान के लिए प्राप्त चेक के आधार पर एक अधिकृत बीमाकर्ता द्वारा किसी वाहन को कवर करने के लिए बीमा पॉलिसी जारी की जाती है और वह चेक अनादरित हो जाता है, तथा **वाहन की दुर्घटना होने से पहले** ऐसी बीमा कंपनी बीमा पॉलिसी को रद्द कर देती है और इसकी सूचना मालिक को भेज देती है, तो उस पॉलिसी के तहत आने वाले तृतीय

पक्षों की क्षतिपूर्ति करने का बीमा कंपनी का दायित्व समाप्त हो जाता है और बीमा कंपनी उसके संबंध में मुआवजे के पंचाटों को संतुष्ट करने के लिए उत्तरदायी नहीं होती है।

21. माननीय उच्चतम न्यायालय के **लक्ष्मम्मा (उपरोक्त)** वाले निर्णय के परिशीलन से यह स्पष्ट रूप से उभर कर आता है कि वर्तमान मामले में भी दुर्घटना 08.01.2016 को घटित होना बताया गया है, जबकि 28.11.2014 को जारी की गई पॉलिसी को 09.01.2015 को ही रद्द कर दिया गया था और बीमित व्यक्ति को इसकी सूचना 11.02.2015 को भेज दी गई थी, अर्थात, पॉलिसी का रद्द होना और धारक को सूचित किया जाना, ये सभी घटनाएँ दुर्घटना से पहले की हैं। परिणामस्वरूप, दुर्घटना की तिथि अर्थात् 08.01.2016 को बीमा पॉलिसी के अस्तित्व में रहने का कोई अवसर ही नहीं बचता है और इस प्रकार, बीमा कंपनी को प्रथम दृष्टया राशि का भुगतान करने और बाद में मालिक से वसूली करने के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।

22. हालांकि, विद्वान अधिकरण द्वारा दिनांक 21.10.2021 का आक्षेपित पंचाट पारित करते समय मामले के इस पहलू पर विचार नहीं किया गया है।

23. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, अपील स्वीकार की जाती है। विद्वान अधिकरण द्वारा एम.ए.सी.पी. संख्या 54/2016 (रीतू देवी और अन्य बनाम बस मालिक कमलजीत सिंह और अन्य) में पारित दिनांक 21.10.2021 का आक्षेपित पंचाट अपास्त किया जाता है। मामले को विद्वान अधिकरण को वापस भेजा जाता है ताकि ऊपर की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए मामले का नए सिरे से निर्णय किया जा सके।

24. विद्वान अधिकरण इस आदेश की प्रमाणित प्रति रिकॉर्ड पर रखे जाने की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर, बिना किसी अनावश्यक स्थगन के, दावा याचिका पर निर्णय करने का प्रयास करेगा।

25. यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि विद्वान अधिकरण के समक्ष सभी पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान किया जाएगा।

26. जहाँ तक दावेदारों द्वारा मुआवजे में वृद्धि के लिए दायर अपीलों, अर्थात् आदेश से प्रथम अपील संख्या 125 और 126 वर्ष 2022 का प्रश्न है, उन्हें भी इस निर्देश के साथ निस्तारित किया जाता है कि दावेदार मुआवजे में वृद्धि से संबंधित कोई भी तर्क या अभिवचन प्रस्तुत करने के लिए स्वतंत्र हैं, जिस पर विद्वान अधिकरण द्वारा विधि के अनुसार विचार किया जाएगा।

27. इस न्यायालय के समक्ष जमा की गई वैधानिक धनराशि के साथ-साथ विद्वान अधिकरण के समक्ष जमा की गई राशि भी चार सप्ताह के भीतर बीमा कंपनी को वापस कर दी जाएगी।

28. विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड को प्रक्रिया के अनुसार वापस भेज दिया जाए।

(2025) 5 ILRA 1759

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 08.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र

सिविल प्रकीर्ण पुनर्विचार आवेदन संख्या 27 वर्ष 2025

प्रेमवती एवं अन्य **...आवेदक**

बनाम

मिहीलाल शर्मा एवं अन्य **...विपक्षी**

आवेदकों के अधिवक्ता:
श्री अर्पित अग्रवाल

विपक्षियों के अधिवक्ता:
श्री भानु भूषण जौहरी

अनुवादित

दीवानी कानून – नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 114 - आदेश XLVII नियम 1 – विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 - धाराएँ 31 एवं 34 – पुनर्विलोकन – कानून के महत्वपूर्ण प्रश्नों में से किसी एक का उत्तर देने में चूक – रिकॉर्ड के प्रत्यक्ष स्वरूप पर त्रुटि – विक्रय विलेख (बैनामा) रद्द करने के वाद की सीमा और पोषणीयता – धारा 31 और 34 के तहत वादों के बीच अंतर – विक्रय विलेख रद्द होने का कब्जे पर प्रभाव – निर्धारित किया गया कि, कानून के एक तयशुदा महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देने में चूक, रिकॉर्ड पर एक प्रत्यक्ष त्रुटि मानी जाएगी जो पुनर्विलोकन की आवश्यकता को पुष्ट करती है – धारा 31 के तहत विक्रय विलेख रद्द करने का वाद उस व्यक्ति (गैर-निष्पादक) द्वारा भी पोषणीय है, जिसके लिए वह दस्तावेज, यदि अस्तित्व में बना रहता है, तो गंभीर क्षति का कारण बन सकता है – एक बार जब विक्रय विलेख को शून्य घोषित कर दिया जाता है, तो इसके कानूनी परिणामों में उससे उत्पन्न होने वाले सभी अधिकारों का अंत शामिल होता है, जिसमें कब्जा भी सम्मिलित है। (पैरा 4, 13, 14, 17 और 18)

निर्धारित किया गया:

विशेष रूप से, यह विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (संक्षेप में 'अधिनियम, 1963') की धारा 34 के तहत घोषणात्मक डिक्री की मांग करने वाला वाद नहीं था, और इसलिए धारा 34 के साथ जुड़ा वह परंतुक, जो यह प्रावधान करता है कि कोई भी न्यायालय ऐसी कोई घोषणा नहीं करेगा जहाँ वादी, स्वामित्व की केवल घोषणा के बजाय आगे का अनुतोष मांगने में सक्षम होने के बावजूद ऐसा करने में चूक करता है, वर्तमान मामले में

लागू नहीं होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वादी न तो घोषणा और न ही कब्जे के किसी आगे के अनुतोष का दावा करने के लिए बाध्य था, क्योंकि वाद दायर करने का कारण प्रतिवादियों के पक्ष में एक अमान्य विक्रय विलेख (बैनामा) के निष्पादन और वादी के कब्जे में उनके द्वारा उत्पन्न हस्तक्षेप के कारण उत्पन्न हुआ था। यह वाद अधिनियम, 1963 की धारा 31 के तहत दायर किया गया था, जिसमें धारा 34 के विपरीत, आगे के अनुतोष के दावे की आवश्यकता वाला ऐसा कोई परंतुक शामिल नहीं है। इसका अर्थ यह है कि एक बार जब सिविल न्यायालय द्वारा किसी विक्रय विलेख को शून्य या शून्यकरणीय घोषित कर दिया जाता है या रद्द कर दिया जाता है, तो किसी और अनुतोष के दावे की आवश्यकता नहीं होगी और ऐसे न्यायनिर्णयन/रद्दीकरण के आवश्यक परिणाम स्वतः लागू होंगे। जहाँ तक आवेदकों के इस तर्क का प्रश्न है कि किसी विलेख के गैर-निष्पादक (जिसने हस्ताक्षर न किए हों) को घोषणा के लिए वाद दायर करना होगा, न्यायालय यह देख सकता है कि धारा 31 "किसी भी व्यक्ति" पर लागू होती है, जिसके विरुद्ध लिखित दस्तावेज शून्य या शून्यकरणीय है और जिसे उचित आशंका है कि ऐसा दस्तावेज, यदि अस्तित्व में बना रहता है, तो उसे गंभीर क्षति पहुँचा सकता है, वह उसे शून्य या शून्यकरणीय घोषित करवाने के लिए आवेदन कर सकता है। धारा 31 केवल निष्पादक के बारे में बात नहीं करती है। (पैरा 13)

अधिनियम, 1963 की धारा 31 की उपधारा (2) में रद्दीकरण के परिणाम स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं, जहाँ संबंधित न्यायालय द्वारा उस अधिकारी को डिक्री की एक प्रति भेजकर रद्दीकरण की सूचना भेजी जाती है, जिसके कार्यालय में वह दस्तावेज पंजीकृत किया गया है। अतः, इसका अर्थ यह है कि न्यायालय द्वारा किसी विक्रय विलेख (बैनामा) या किसी अन्य दस्तावेज के संबंध में किया गया रद्दीकरण न केवल घोषित किया जाता है, बल्कि उसे "प्रभावी" भी बनाया जाता है और सार्वजनिक अभिलेखों में दर्ज किया जाता है। यह उस शून्य/शून्यकरणीय दस्तावेज के तहत प्रदत्त किसी भी अधिकार या पात्रता को निष्प्रभावी कर देगा। इसलिए, एक बार जब कोई विक्रय विलेख रद्द कर दिया जाता है या उसे अमान्य और शून्य या निष्प्रभावी घोषित कर दिया जाता है, तो उस विक्रय विलेख के बल पर क्रेता द्वारा प्राप्त किया गया कब्जा, या उसके द्वारा बनाए रखा गया कब्जा, या उस आधार पर कब्जा लेने का कोई प्रयास भी कानूनी रूप से मान्य नहीं होगा और कानून की अदालत द्वारा उसे नजरअंदाज कर निरस्त किया जाना चाहिए। इसका न तो कोई तार्किक औचित्य हो सकता है और न ही यह तर्कसंगत लगता है कि एक दस्तावेज कानून की अदालत द्वारा रद्द कर दिया जाए, लेकिन उस दस्तावेज का लाभार्थी उससे मिलने वाले लाभों का आनंद लेना जारी रखे। यह उस न्याय प्रणाली का उपहास उड़ाने जैसा होगा जिसे न्याय देने के लिए बनाया गया है, न कि किसी न्याय चाहने वाले को ऐसी स्थिति में छोड़ने के लिए जहाँ वह कानूनी लड़ाई जीतने के बावजूद हमेशा पराजित बना रहे। (पैरा 14)

उपरोक्त चर्चा के आलोक में, प्रश्न संख्या **(ई)** का उत्तर इस प्रकार दिया जाता है कि भले ही वादी अपने पक्ष में किसी पूर्व विक्रय अनुबंध को स्थापित नहीं कर सका, लेकिन निश्चित रूप से उसके पक्ष में समय के बिंदु पर पहले, यानी 23.11.1981 को एक विक्रय विलेख (बैनामा) निष्पादित किया गया था, जबकि अपीलकर्ताओं के पक्ष में विक्रय विलेख बाद में, यानी 25.11.1981 को निष्पादित किया गया था। चूंकि प्रथम विक्रय विलेख को वैध रूप से निष्पादित और विधिवत प्रमाणित पाया गया है, इसलिए अवर न्यायालय द्वारा कब्जे पर दर्ज

किया गया निष्कर्ष रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों के विपरीत और विकृत माना जाएगा। भले ही किसी गवाह द्वारा प्रतिवादी के कब्जे के संबंध में कोई बयान दिया गया हो, वह कानून के अनुसार अप्रासंगिक होगा। साथ ही, वाद की प्रकृति को देखते हुए, जिसमें स्थायी निषेधाज्ञा की डिक्री के लिए प्रार्थना शामिल थी और वाद का कारण उस स्थिति से उत्पन्न हुआ था जहाँ एक ऐसे विक्रय विलेख के आधार पर कब्जे में हस्तक्षेप किया जा रहा था जिसे अंततः निष्प्रभावी पाया गया है। रिकॉर्ड से पता चलता है कि, एक ओर प्रतिवादियों के पक्ष में विक्रय विलेख में उन्हें कब्जा सौंपने का उल्लेख था, तो दूसरी ओर राजस्व प्रविष्टियों को अलग-अलग तरीके से पढ़ा गया। इसके अलावा, गवाह कब्जे के संबंध में कुछ कहता है, जबकि वर्ष 1999 में दायर निष्पादन आवेदन में 05.07.1998 को अपीलकर्ताओं द्वारा जबरन कब्जा करने की बात कही गई है, हालांकि वाद 1982 में वादी के कब्जे में हस्तक्षेप से उत्पन्न वाद-कारण के आधार पर दायर किया गया था। इन परिस्थितियों में, वादी को इस आधार पर न्याय से वंचित करना कि कब्जे के अनुतोष का दावा नहीं किया गया था, जबकि यह न तो तथ्यात्मक और न ही कानूनी आवश्यकता थी, उस वादी के प्रति पूरी तरह से अन्यायपूर्ण और अनुचित होगा जो प्रतिवादियों के विक्रय विलेख को रद्द कराकर अपने पक्ष में स्वामित्व स्थापित करने में सफल रहा। इसलिए, प्रश्न संख्या (ई) का उत्तर प्रतिवादियों के पक्ष में और आवेदकों के विरुद्ध दिया जाता है। (पैरा 17)

फलस्वरूप, पूर्व में प्रश्न संख्या (ई) का उत्तर देने में हुई चूक की सीमा तक पुनर्विलोकन आवेदन को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए, जिसका उत्तर अब प्रतिवादियों के पक्ष में दिया गया है, इस न्यायालय द्वारा दिए गए अंतिम निर्णय में कोई परिवर्तन नहीं होगा, अर्थात, द्वितीय अपील संख्या 2565 वर्ष 1984 का खारिज होना यथावत रहेगा। (पैरा 18)

पुनर्विलोकन आवेदन आंशिक रूप से स्वीकार। (ई-14)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. डेक्कन पेपर मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम रीजेंसी महावीर प्रॉपर्टीज एवं अन्य, (2021) 4 एससीसी 786
2. सुहृद सिंह बनाम रणधीर सिंह, (2010) 12 एससीसी 112

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र द्वारा पारित)

1. पुनर्विलोकन के आवेदकों और निर्णीत द्वितीय अपील में प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री अर्पित अग्रवाल को सुना गया, तथा पुनर्विलोकन के विपक्षियों और निर्णीत द्वितीय अपील में वादी/प्रतिवादियों की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री भानु भूषण जौहरी को सुना गया।

<u>पुनर्विलोकन के अधीन निर्णय/आदेश</u>

2. वर्तमान आवेदन प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 114 के साथ पठित आदेश 47 नियम 1 के तहत मेरे अंतिम निर्णय और आदेश दिनांक 16.12.2024 के पुनर्विलोकन की मांग करते हुए दायर किया गया है, जिसके द्वारा मैंने द्वितीय अपील संख्या 2565 वर्ष 1984 (प्रेमवती एवं अन्य बनाम मिहीलाल शर्मा एवं अन्य) को गुण-दोष के आधार पर खारिज कर दिया था।

<u>पुनर्विलोकन में आवेदकों के तर्क</u>

3. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता यह तर्क देते हैं कि रिकॉर्ड के प्रत्यक्ष स्वरूप पर एक त्रुटि है, क्योंकि इस न्यायालय ने दिनांक 16.12.2024 के निर्णय के छठे पैराग्राफ में, यद्यपि प्रवेश आदेश दिनांक 19.10.1984 में निहित कानून के 5 महत्वपूर्ण प्रश्नों, जो कि प्रश्न संख्या (ए) से (ई) तक हैं, का संदर्भ दिया था, फिर भी जब इस न्यायालय ने प्रश्न संख्या (ए), (बी), (सी) और (डी) का उत्तर दिया, तो वह प्रश्न संख्या (ई) का उत्तर देने में चूक गया जो कब्जे के पहलू से संबंधित है और इसलिए, निर्णय के पुनर्विलोकन की आवश्यकता है। उक्त प्रश्न संख्या (ई) के संदर्भ में दोनों पक्षों द्वारा विस्तृत तर्क प्रस्तुत किए गए हैं और आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा यह भी आग्रह किया गया है कि अपील की सुनवाई के दौरान भी तर्क दिए गए थे, हालांकि, इस न्यायालय ने निर्णय में उन्हें अंकित नहीं किया है।

4. पुनर्विलोकन के अधीन निर्णय के अवलोकन से, यह न्यायालय प्रस्तुत किए गए तर्कों में सार पाता है और रिकॉर्ड के प्रत्यक्ष स्वरूप पर इस आशय की एक त्रुटि पाता है कि मेरे द्वारा प्रश्न संख्या (ई) का उत्तर देने में चूक हुई थी। इसलिए, यह न्यायालय छूटे हुए प्रश्न संख्या (ई) का उत्तर देकर अपने निर्णय का पुनर्विलोकन करने के लिए इच्छुक है। सुविधा के लिए, उक्त प्रश्न को नीचे पुनरुत्पादित किया गया है:-

"(ई) क्या प्रतिवादियों के निर्विवाद कब्जे और वादी द्वारा अपने पक्ष में विक्रय विलेख तथा पूर्व विक्रय अनुबंध को सिद्ध करने में विफल रहने के आलोक में, वाद उसके पक्ष में डिक्री किया जा सकता था?"

5. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि चूंकि विवादित संपत्ति पर प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं का कब्जा था और वाद संस्थित करते समय उनके नाम भी दर्ज थे, इसलिए कब्जे के अनुतोष की मांग किए बिना विक्रय विलेख को रद्द करने का वाद पोषणीय नहीं था। तर्क यह है कि निष्पादन आवेदन में भी डिक्री धारक ने कब्जा सौंपने की प्रार्थना की है और इसलिए, डिक्री धारक के प्रारंभ से ही कब्जे से बाहर होने के कारण, केवल विक्रय विलेख का रद्दीकरण पर्याप्त नहीं होगा और अतः, यह वाद केवल इसी आधार पर विफल होने योग्य था। आगे यह आग्रह किया गया है कि जब प्रारंभ में वाद खारिज कर दिया गया था और वादी द्वारा जिला न्यायालय के समक्ष दीवानी अपील दायर की गई थी, तब वास्तविक और भौतिक कब्जे के संबंध में अवर न्यायालय द्वारा प्रतिवादियों के पक्ष में दर्ज किए गए निष्कर्ष को न तो चुनौती दी गई थी और न ही प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा उक्त निष्कर्ष को उलट दिया गया था, और इसलिए, वह निष्कर्ष आज भी प्रतिवादियों के विरुद्ध खड़ा है और अतः, वाद विफल होना निश्चित है। यह भी तर्क दिया गया है कि कब्जे का दावा करने वाला बाद का वाद सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 2 नियम 2 द्वारा वर्जित होगा और इसलिए, न तो वर्तमान कार्यवाही में

और न ही किसी आगामी कार्यवाही में प्रतिवादी कब्जे का अनुतोष प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त तर्क यह है कि यद्यपि इस न्यायालय ने माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय **डेक्कन पेपर मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम रीजेंसी महावीर प्रॉपर्टीज एवं अन्य: (2021) 4 एससीसी 786** का संज्ञान लिया था, किंतु उस पर विचार नहीं किया गया था, और इसलिए, उक्त प्राधिकारी द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत पर विचार करने में हुई चूक भी "रिकॉर्ड के प्रत्यक्ष स्वरूप पर एक त्रुटि" के अर्थ और दायरे में आती है। और यदि इसे लागू किया जाता है, तो उक्त निर्णय को अपीलकर्ताओं के पक्ष में पढ़ा जाएगा और फलस्वरूप, अपील स्वीकार किए जाने योग्य होगी, न कि खारिज किए जाने योग्य।

पुनर्विलोकन में विपक्षियों के तर्क

6. इसके विपरीत, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि पक्षों के बीच आपसी विवाद दो विक्रय विलेखों (बैनामों) से उत्पन्न हुआ था, जो दोनों अलग-अलग समय पर निष्पादित और पंजीकृत किए गए थे। कब्जे का पहलू विक्रय विलेखों के तहत प्रदत्त अधिकारों पर निर्भर है और एक बार जब इस न्यायालय ने यह पाया है कि श्याम देव शर्मा द्वारा प्रतिवादियों के पक्ष में किया गया विक्रय विलेख वैध रूप से निष्पादित था और अपीलकर्ताओं के पक्ष में किया गया विक्रय विलेख बिना किसी अधिकार (स्वामित्व) के था, तो उसके सभी परिणाम लागू होंगे। उनमें से एक परिणाम यह है कि प्रतिवादी अपना कब्जा प्राप्त करने, सुरक्षित करने और उसकी रक्षा करने के हकदार होंगे। निष्पादन आवेदन के संबंध में, यह तर्क दिया गया है कि उसके 7वें पैराग्राफ में डिक्री धारक का विशिष्ट कथन है कि 05.07.1998 को अपीलकर्ताओं ने अवैध रूप से कृषि भूमि पर जबरन कब्जा कर लिया और प्रतिवादियों को जान से मारने की धमकी दी। इसलिए, यह तर्क दिया गया है कि अपीलकर्ताओं द्वारा प्राप्त किया गया अवैध कब्जा उन्हें कोई लाभ प्रदान नहीं करेगा। चूंकि अपीलकर्ताओं के पक्ष में विक्रय विलेख बिना किसी अधिकार के पाया गया है, इसलिए प्रतिवादी कब्जे के और उसे बनाए रखने के हकदार हैं। कब्जे पर निष्कर्ष को चुनौती देने के संबंध में, यह तर्क दिया गया है कि यद्यपि अवर न्यायालय ने विवाद्यक संख्या 2 का निर्णय करते समय प्रतिवादियों को संपत्ति पर कब्जे में पाया था, लेकिन अवर न्यायालय के संपूर्ण निर्णय और डिक्री को इस विशिष्ट कथन के साथ जिला न्यायालय के समक्ष अपील के माध्यम से चुनौती दी गई थी कि निष्कर्ष विकृत थे। जब प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अवर न्यायालय के सभी निष्कर्षों को रद्द कर दिया, तो इसका अर्थ यह होगा कि कब्जे पर निष्कर्ष भी रद्द कर दिया गया है। फलस्वरूप, आवेदकों द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्क में कोई बल नहीं है।

चर्चा एवं विश्लेषण

7. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात, मैं यह पाता हूँ कि इस विवाद के दोनों प्रतिस्पर्धी पक्षों ने एक ही विक्रेता श्याम देव शर्मा द्वारा अपने-अपने पक्ष में निष्पादित संबंधित विक्रय विलेखों (बैनामों) के बल पर परस्पर अधिकार, स्वामित्व और कब्जे का दावा किया था। अवर न्यायालय ने वाद को खारिज कर दिया था, हालांकि, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने दीवानी अपील को स्वीकार किया और वाद को डिक्री कर दिया। उक्त डिक्री को इस न्यायालय द्वारा पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 47 की व्याख्या करते हुए और मामले के अन्य सभी प्रासंगिक पहलुओं पर चर्चा करते हुए बरकरार रखा गया है, तथा प्रतिवादियों के पक्ष में समय के

बिंदु पर पूर्व में निष्पादित दिनांक 23.11.1981 के विक्रय विलेख को विधिवत निष्पादित और सिद्ध पाया गया है।

8. जहाँ तक अवर न्यायालय के निष्कर्षों को चुनौती देने का प्रश्न है, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपने निर्णय के आंतरिक पृष्ठ 6 पर निम्नानुसार अंकित किया है:-

"विद्वान मुंसिफ के निर्णय से व्यथित होकर, वादी द्वारा वर्तमान अपील इन आधारों पर दायर की गई है कि **अवर न्यायालय का निर्णय और डिक्री कानून तथा रिकॉर्ड पर मौजूद तथ्यों के विरुद्ध है और विद्वान मुंसिफ के निष्कर्ष विकृत एवं रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्यों के विपरीत हैं**.....।"

9. अतः, यह स्पष्ट है कि वादीगण ने प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष संपूर्ण निर्णय और डिक्री को तथा विद्वान मुंसिफ द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को विकृत बताते हुए विशिष्ट चुनौती दी थी। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि कब्जे पर दिए गए निष्कर्ष को उनके द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी या उसे चुनौती नहीं दिया गया माना जाएगा। प्रथम अपील उस डिक्री के विरुद्ध एक अपील होती है जो निर्णय के अनुसरण में आती है और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(2), 2(9) और 96 में शामिल भाषा के आलोक में, इस संबंध में आवेदकों द्वारा दिया गया तर्क अत्यधिक तकनीकी पाया गया है और वह ठोस नहीं है।

10. इसके अतिरिक्त, प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय का समापन भाग, उसके आंतरिक पृष्ठ 18 पर, निम्नानुसार दर्ज है:-
"गवाह श्री कृष्ण, जो उपरोक्त दोनों दस्तावेजों के गवाह भी हैं, प्रतिवादी प्रेम शंकर शर्मा के निकटतम पड़ोसी रहे हैं। ऐसे बयानों से यह प्रकट हुआ है कि श्याम देव ने प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 से 4 के साथ निकटता से संबंधित होने के कारण ऐसे दस्तावेजों को निष्पादित करके उन पर उपकार किया और उनका उपस्थित न होना अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया है तथा मुझे यह निष्कर्ष निकालने के लिए विवश करता है कि उनमें वादी का सामना करने का साहस नहीं है और उन्होंने प्रतिवादी-प्रतिवादियों के पक्ष में दस्तावेजों को अवैध रूप से निष्पादित किया जिन्हें कोई प्रभाव नहीं दिया जा सकता। **उपरोक्त चर्चा के आलोक में, मैं पाता हूँ कि विद्वान मुंसिफ के निष्कर्ष कायम रखने योग्य नहीं हैं, अतः अपील स्वीकार किए जाने योग्य है और वाद डिक्री किया जाना चाहिए।"**

11. प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय का उपरोक्त संदर्भित भाग यह दर्शाता है कि प्रतिवादियों के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख को प्रभावहीन पाया गया और विद्वान मुंसिफ द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को कायम रखने योग्य नहीं माना गया। इसलिए, यह न्यायालय अपीलकर्ताओं के इस तर्क को स्वीकार करने का इच्छुक नहीं है कि कब्जे पर निष्कर्ष को चुनौती नहीं दी गई थी या उसे रद्द नहीं किया गया था।

वाद की प्रकृति:

12. अब वाद में मांगे गए अनुतोषों पर आते हुए, यह पंजीकृत विक्रय विलेख (बैनामा) को रद्द करने की डिक्री के साथ-साथ स्थायी निषेधाज्ञा की मांग करते हुए इस आरोप पर दायर किया गया था कि प्रतिवादी, वादी-प्रतिवादियों के कब्जे में हस्तक्षेप करने का प्रयास कर रहे थे। वादी द्वारा दिनांक 23.11.1981 के विक्रय विलेख के बल पर स्वयं के स्वामित्व का दावा किया गया था।

13. विशेष रूप से, यह विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (संक्षेप में 'अधिनियम, 1963') की धारा 34 के तहत घोषणात्मक डिक्री की मांग करने वाला वाद नहीं था और इसलिए, धारा 34 के साथ संलग्न वह परंतुक, जो यह प्रावधान करता है कि कोई भी न्यायालय ऐसी कोई घोषणा नहीं करेगा जहाँ वादी, स्वामित्व की मात्र घोषणा के बजाय आगे का अनुतोष मांगने में सक्षम होने के बावजूद ऐसा करने में चूक करता है, वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वादी न तो घोषणा और न ही कब्जे के किसी आगे के अनुतोष का दावा करने के लिए बाध्य था क्योंकि वाद दायर करने का कारण प्रतिवादियों के पक्ष में एक अमान्य विक्रय विलेख (बैनामा) के निष्पादन और वादी के कब्जे में उनके द्वारा उत्पन्न हस्तक्षेप के कारण उत्पन्न हुआ था। यह वाद अधिनियम, 1963 की धारा 31 के तहत दायर किया गया था, जिसमें धारा 34 के विपरीत, आगे के अनुतोष के दावे की आवश्यकता वाला ऐसा कोई परंतुक शामिल नहीं है। इसका अर्थ यह है कि एक बार जब सिविल न्यायालय द्वारा किसी विक्रय विलेख को शून्य या शून्यकरणीय घोषित कर दिया जाता है या रद्द कर दिया जाता है, तो किसी और अनुतोष के दावे की आवश्यकता नहीं होगी और ऐसे न्यायनिर्णयन/रद्दीकरण के आवश्यक परिणाम स्वतः ही प्राप्त होंगे। जहाँ तक आवेदकों के इस तर्क का प्रश्न है कि किसी विलेख के गैर-निष्पादक (जिसने हस्ताक्षर न किए हों) को घोषणा के लिए वाद दायर करना होगा, न्यायालय यह टिप्पणी कर सकता है कि धारा 31 **"किसी भी व्यक्ति"** पर लागू होती है जिसके विरुद्ध लिखित दस्तावेज शून्य या शून्यकरणीय है और जिसे उचित आशंका है कि ऐसा दस्तावेज, यदि अस्तित्व में बना रहता है, तो उसे गंभीर क्षति पहुँचा सकता है, वह उसे शून्य या शून्यकरणीय घोषित करवाने के लिए आवेदन कर सकता है। धारा 31 केवल निष्पादक के बारे में बात नहीं करती है।

विक्रय विलेख के रद्दीकरण के परिणाम:

14. अधिनियम, 1963 की धारा 31 की उपधारा (2) से रद्दीकरण के परिणाम प्रतिबिंबित होते हैं, जहाँ संबंधित न्यायालय द्वारा उस अधिकारी को डिक्री की एक प्रति भेजकर रद्दीकरण की सूचना भेजी जाती है जिसके कार्यालय में वह दस्तावेज पंजीकृत किया गया है। इसलिए, यह निष्कर्ष निकलता है कि न्यायालय द्वारा किसी विक्रय विलेख या किसी अन्य दस्तावेज का किया गया रद्दीकरण न केवल किया जाता है, बल्कि उसे **"प्रभावी"** भी बनाया जाता है और सार्वजनिक अभिलेखों में दर्ज किया जाता है, और यह उस शून्य/शून्यकरणीय दस्तावेज के तहत प्रदत्त किसी भी अधिकार या पात्रता को निष्प्रभावी कर देगा। अतः, एक बार जब कोई विक्रय विलेख रद्द कर दिया जाता है/शून्य या निष्प्रभावी घोषित कर दिया जाता है, तो उक्त क्रेता द्वारा उस विक्रय विलेख के बल पर प्राप्त किया गया कब्जा, या उसके द्वारा बनाए रखा गया कब्जा, या उस आधार पर कब्जा लेने का प्रयास भी, किसी कानूनी पवित्रता का नहीं होगा और कानून की अदालत द्वारा उसे नजरअंदाज कर दिया जाना चाहिए तथा शून्य माना जाना चाहिए। न तो इसका कोई तार्किक औचित्य हो सकता है और न ही यह तर्कसंगत

लगता है कि एक दस्तावेज कानून की अदालत द्वारा रद्द कर दिया जाए लेकिन उस दस्तावेज का लाभार्थी उससे मिलने वाले लाभों का आनंद लेना जारी रखे। यह उस न्याय प्रणाली का उपहास होगा जिसे न्याय प्रदान करने के लिए बनाया गया है, न कि किसी न्याय-साधक को ऐसी स्थिति में छोड़ने के लिए जहाँ वह कानूनी लड़ाई जीतने के बावजूद हमेशा पराजित बना रहे।

डेक्कन पेपर मिल्स (उपरोक्त) के संबंध में:

15. जहाँ तक **डेक्कन पेपर मिल्स (उपरोक्त)** के निर्णय का प्रश्न है, उसे अन्य निर्णयों के साथ दिनांक **16.12.2024** के मेरे निर्णय के पैराग्राफ संख्या 22 में संदर्भित किया गया था, जिसका संबंध अधिनियम, 1963 की धारा 31 के तहत वाद की पोषणीयता और वादी के विक्रय विलेख का निष्पादक न होने से था। अपने निर्णय के पैराग्राफ संख्या 23 में, मैंने उसमें बताए गए कई कारणों से वाद की अपोषणीयता के संबंध में दिए गए तर्क को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। त्वरित संदर्भ के लिए, मेरे निर्णय का पैराग्राफ संख्या 23 यहाँ नीचे पुनरुत्पादित किया गया है:-

"23. यह न्यायालय कई कारणों से उक्त तर्कों को स्वीकार करने का इच्छुक नहीं है। प्रथम यह कि, इस संबंध में कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं बनाया गया था और यदि इस आशय का प्रश्न बनाने के लिए मौखिक प्रार्थना की भी गई थी, तो सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 की उपधारा (5) के साथ संलग्न परंतुक और आदेश 42 के नियम 2 के प्रावधानों के आधार पर, अपीलकर्ता के लिए न्यायालय की अनुमति के बिना अपील में कोई अन्य आधार प्रस्तुत करना संभव नहीं है। ऐसी अनुमति दर्ज किए जाने वाले कारणों के आधार पर दी जा सकती है, बशर्ते न्यायालय संतुष्ट हो कि मामले में ऐसा प्रश्न शामिल है। वर्तमान मामले में, वाद की अपोषणीयता निचली दोनों अदालतों के समक्ष कभी भी विवाद का विषय या निर्धारण का बिंदु नहीं थी, और न ही अपील के ज्ञापन में या किसी आवेदन के माध्यम से ऐसा आधार या प्रश्न उठाया गया है। इसलिए, न्यायालय इस नए प्रश्न पर अपील की सुनवाई नहीं कर सकता जो रिकॉर्ड से उत्पन्न नहीं होता है और न्यायालय संतुष्ट नहीं है कि मामले में ऐसा प्रश्न शामिल है। इसके अलावा, धारा 31 ऐसे किसी भी व्यक्ति पर लागू होती है जिसके विरुद्ध कोई लिखित दस्तावेज शून्य या शून्यकरणीय है और जिसे उचित आशंका है कि ऐसा दस्तावेज, यदि अस्तित्व में बना रहता है, तो उसे गंभीर क्षति पहुँचा सकता है, वह उसे शून्य या शून्यकरणीय घोषित कराने के लिए आवेदन कर सकता है। धारा 31 केवल निष्पादक के बारे में बात नहीं करती है और विक्रय विलेख को रद्द कराने या शून्य घोषित कराने के वाद के अभाव में धारा 34 के तहत घोषणा पोषणीय नहीं होगी। जहाँ तक **सुहृद सिंह (उपरोक्त)** के निर्णय का प्रश्न है, वह पंजाब राज्य से उत्पन्न हुआ था और कोर्ट फीस (न्यायालय शुल्क) के मुद्दे से संबंधित था, और पूरे सम्मान के साथ, वह वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है, विशेषकर तब जब वाद को दी गई चुनौती को स्वीकार करने का कोई आधार ही मौजूद नहीं है। इसी प्रकार, **अनाथुला सुधाकर (उपरोक्त)** का निर्णय उस स्थिति से संबंधित है जहाँ घोषणा और/या कब्जे के वाद में परिणामी अनुतोष के रूप में निषेधाज्ञा के दावे का परीक्षण किया गया था। वह प्राधिकारी विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 31 के बिंदु पर नहीं है। **श्री राम (उपरोक्त)** का निर्णय इस मुद्दे पर है कि क्या एक गैर-पंजीकृत पट्टेदार धोखाधड़ी या प्रतिरूपण के आधार पर विक्रय विलेख के रद्दीकरण के लिए वाद दायर

कर सकता है। यह वर्तमान मामले के तथ्यों से स्पष्ट रूप से भिन्न है जहाँ शामिल प्रश्न दो विक्रय विलेखों में से एक को प्राथमिकता देने के संबंध में है। जहाँ तक विक्रय विलेख के प्रमाण का प्रश्न है, पीडब्ल्यू-1 की मौखिक गवाही यह मानने के लिए पर्याप्त है कि विक्रय विलेख विधिवत निष्पादित किया गया था और उस बयान में कोई कमी नहीं पाई गई है।"

16. न्यायालय ने **डेक्कन पेपर मिल्स (उपरोक्त)** के निर्णय का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया है और यह पाया है कि उक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या **25** में यह टिप्पणी कि–दस्तावेज का निष्पादक धारा 31 के तहत न्यायालय की शरण ले सकता है, लेकिन एक गैर-निष्पादक को अधिनियम, 1963 की धारा 34 के तहत आना चाहिए–माननीय उच्चतम न्यायालय के एक पूर्व निर्णय **सुहृद सिंह बनाम रणधीर सिंह: (2010) 12 एससीसी 112** के संदर्भ में की गई थी। उस मामले में दो सगे भाइयों का उदाहरण दिया गया था जो संपत्ति के स्वामी थे, किंतु उनमें से केवल एक ने विक्रय विलेख निष्पादित किया और बाद में उन दोनों ने ही उसे निष्प्रभावी करने की मांग की। **सुहृद सिंह (उपरोक्त)** का मामला न्यायालय शुल्क के भुगतान से संबंधित विवाद से उत्पन्न हुआ था और वह चर्चा पंजाब राज्य में लागू कानून के संबंध में थी। **डेक्कन पेपर मिल्स (उपरोक्त)** के पैराग्राफ संख्या 25 में की गई टिप्पणियां **सुहृद सिंह (उपरोक्त)** में प्रतिपादित सिद्धांतों के संबंध में थीं, जिसमें 'कोर्ट फीस एक्ट' की दूसरी अनुसूची के अनुच्छेद 17 (iii) और 'एड वैलोरम' (मूल्यानुसार) न्यायालय शुल्क के भुगतान या गैर-भुगतान की अन्य आवश्यकताओं पर चर्चा की गई थी। इसके अतिरिक्त, दिए गए उदाहरण में ऐसा मामला शामिल नहीं था जहाँ वैध स्वामित्व धारक से संपत्ति प्राप्त करने वाले अंतरिती (Transferee) ने वाद दायर किया हो। संपूर्ण चर्चा एक अलग संदर्भ में की गई थी, जो ऐसी स्थिति से उत्पन्न नहीं हुई थी जहाँ वैध और निर्विवाद स्वामित्व वाले एक ही व्यक्ति ने एक के बाद एक समय के अल्प अंतराल में दो विक्रय विलेख निष्पादित किए हों, जैसा कि वर्तमान मामले में विक्रेता श्याम देव शर्मा द्वारा दो खरीदारों के पक्ष में किया गया है। इसलिए, **डेक्कन पेपर मिल्स (उपरोक्त)** का निर्णय, पूरे सम्मान के साथ, वर्तमान मामले के दिए गए तथ्यों पर सीधे लागू नहीं होता है, क्योंकि वादी ने निष्पादक के साथ-साथ दूसरे अंतरिती (अपीलकर्ताओं) के विरुद्ध विक्रय विलेख की शून्यता स्थापित करने की मांग की थी, और उक्त विक्रय को उसी विक्रेता द्वारा वादी के पक्ष में किए गए प्रथम निष्पादन के बाद बिना किसी अधिकार के किया गया बताया था। अतः, विक्रय विलेख के रद्दीकरण का वाद पोषणीय था।

<u>निष्कर्ष</u>

17. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, **प्रश्न संख्या (ई) का उत्तर इस प्रकार दिया जाता है** कि भले ही वादी अपने पक्ष में किसी पूर्व विक्रय अनुबंध को सिद्ध नहीं कर सका हो, किंतु निश्चित रूप से उसके पक्ष में समय के बिंदु पर पहले, अर्थात 23.11.1981 को एक विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था, जबकि अपीलकर्ताओं के पक्ष में विक्रय विलेख बाद में, अर्थात 25.11.1981 को निष्पादित किया गया था। चूंकि प्रथम विक्रय विलेख को वैध रूप से निष्पादित और विधिवत सिद्ध पाया गया है, इसलिए अवर न्यायालय द्वारा कब्जे पर दर्ज किया गया निष्कर्ष रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्यों के विपरीत और विकृत माना जाएगा। भले ही किसी गवाह द्वारा प्रतिवादी के कब्जे के संबंध में कोई बयान दिया गया हो, कानून के अनुसार और वाद की प्रकृति को देखते हुए

उसका कोई महत्व नहीं होगा, क्योंकि इस वाद में स्थायी निषेधाज्ञा की डिक्री के लिए प्रार्थना शामिल थी और वाद-कारण उस स्थिति से उत्पन्न हुआ था जहाँ एक ऐसे विक्रय विलेख के आधार पर कब्जे में हस्तक्षेप किया जा रहा था जिसे अंततः निष्प्रभावी पाया गया है। रिकॉर्ड यह दर्शाता है कि एक ओर प्रतिवादियों के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख में उन्हें कब्जा सौंपने का विवरण अंकित था, तो दूसरी ओर राजस्व प्रविष्टियाँ अलग-अलग संकेत दे रही थीं। इसके अतिरिक्त, गवाह कब्जे के संबंध में कुछ कहते हैं, जबकि वर्ष 1999 में दायर निष्पादन आवेदन 05.07.1998 को अपीलकर्ताओं द्वारा जबरन कब्जा किए जाने की बात करता है, यद्यपि वाद वर्ष 1982 में वादी के कब्जे में हस्तक्षेप से उत्पन्न वाद-कारण के आधार पर दायर किया गया था। इन परिस्थितियों में, वादी को इस आधार पर वाद से बाहर करना कि कब्जे का अनुतोष नहीं मांगा गया था–जबकि यह न तो तथ्यात्मक और न ही कानूनी आवश्यकता थी–उस वादी के प्रति पूर्णतः अन्यायपूर्ण और अनुचित होगा जिसने प्रतिवादियों के विक्रय विलेख के रद्दीकरण से उत्पन्न अपने पक्ष में स्वामित्व स्थापित करने में सफलता प्राप्त की है। इसलिए, **प्रश्न संख्या (ई) का उत्तर प्रतिवादियों के पक्ष में और आवेदकों के विरुद्ध दिया जाता है।**

18. तदनुसार, प्रश्न संख्या (ई) का उत्तर देने में हुई पूर्ववर्ती चूक की सीमा तक **पुनर्विलोकन आवेदन को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए,** जिसका उत्तर अब प्रतिवादियों के पक्ष में दिया गया है, इस न्यायालय द्वारा दिए गए अंतिम निर्णय में कोई परिवर्तन नहीं होगा, अर्थात **द्वितीय अपील संख्या 2565 वर्ष 1984 का खारिज होना यथावत रहेगा।**

19. चूँकि, दिसंबर 2024 में द्वितीय अपील खारिज होने के बावजूद, निष्पादन कार्यवाही लगभग पांच महीनों से समाप्त नहीं हुई है, जिसका कारण संभवतः बिना किसी अंतरिम आदेश के इस पुनर्विलोकन आवेदन का लंबित होना हो सकता है और, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि वाद 43 वर्ष पूर्व वर्ष 1982 में संस्थित किया गया था, यह निर्देशित किया जाता है कि निष्पादन कार्यवाही संबंधित न्यायालय द्वारा **निश्चित रूप से 15.07.2025 को या उससे पहले** अंतिम रूप से पूर्ण की जाएगी और किसी भी पक्ष को आगे कोई नोटिस जारी नहीं किया जाएगा, क्योंकि दोनों पक्षों ने निष्पादन कार्यवाही का संदर्भ देते हुए द्वितीय अपील के साथ-साथ इस पुनर्विलोकन आवेदन का भी पुरजोर विरोध किया है और उन्हें इसकी पूरी जानकारी तथा इसमें पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

असत्यापित

(2025) 5 ILRA 1767

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह

सिविल पुनरीक्षण संख्या 80 वर्ष 2011

जुगेश्वर प्रसाद **...पुनरीक्षणवादी**

बनाम

हनुमान प्रसाद **...विपक्षी दल**

पुनरीक्षणवादी के अधिवक्ता:
आफ़ताब अहमद, आफ़ताब अहमद

विपक्षी दल के अधिवक्ता:
श्याम मोहन, अंकित मिश्रा, मोहम्मद रज़ा खान, मोहम्मद अली

दीवानी कानून - प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम 1887-धारा 23 और 25---लघु वाद न्यायालय अपने समक्ष आए किसी वाद में आकस्मिक रूप से उत्पन्न होने वाले स्वामित्व के प्रश्न पर विचार करने के अधिकार से वंचित नहीं है। धारा 23 पीएससीसी के तहत आवेदन पर विचार करते समय, लघु वाद न्यायालय (एससीसी न्यायालय) किसी नियमित न्यायालय द्वारा निर्णय लिए जाने हेतु वाद को यांत्रिक रूप से संदर्भित करने के लिए बाध्य नहीं है। उन सभी मामलों में जहाँ स्वामित्व का प्रश्न उठाया जाता है, न्यायालय को मामले पर विचार करना आवश्यक है और केवल तभी जब वह पाता है कि स्वामित्व के जटिल प्रश्न शामिल हैं, वह वाद पत्र को नियमित न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए संदर्भित और वापस कर सकता है। धारा 23 के तहत प्रदत्त शक्ति प्रकृति में विवेकाधीन है, लेकिन जिस विवेक का प्रयोग किया जाना है, वह भी कानून की सीमाओं के भीतर होना चाहिए--- किराए के बकाया और बेदखली के वाद को पक्षों के बीच मकान मालिक और किरायेदार के संबंध की निरंतरता के मानकों पर देखा जाता है। स्वामित्व के प्रश्न का निर्णय कभी भी लघु वाद न्यायालय द्वारा नहीं किया जाना चाहिए और यदि किसी पक्ष द्वारा आकस्मिक रूप से इसे उठाया जाता है, तो न्यायालय लघु वाद के अधिनिर्णयन के उद्देश्यों के लिए, प्रथम दृष्टया, उसका निर्णय करने हेतु सक्षम है और किसी भी स्थिति में ऐसा कोई भी आकस्मिक निष्कर्ष हमेशा नियमित न्यायालयों द्वारा दायर और तय किए गए वाद के निर्णय के अधीन होता है।

याचिका खारिज। (ई-15)

संदर्भित वादों की सूची:

1. 2019 (12) एडीजे 281 (एलबी), ज़ुबैर अहमद खान बनाम न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय/अपर जिला जज, न्यायालय संख्या 4, लखीमपुर खीरी और अन्य

2. शमीम अख्तर बनाम इकबाल अहमद एवं अन्य, 2000 (2) एआरसी एससी पृष्ठ 770

3. बुधू मल बनाम महावीर प्रसाद एवं अन्य, एआईआर 1987 एससी पृष्ठ 1772

4. श्रीमती मुन्नी देवी एवं अन्य बनाम दशम अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, आगरा एवं अन्य, 1990 (16) एएलआर पृष्ठ 555

5. शाहिद अहमद एवं अन्य बनाम अपर जिला न्यायाधीश III, सहारनपुर एवं अन्य, 2002 (2) एआरसी पृष्ठ 303

6. संगम लाल यादव बनाम ब्रह्म स्वरूप तिवारी, 2012 एसीजे 2376

7. फजलुर रहमान बनाम गोपाल साहू, 2016 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 2643

(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह द्वारा पारित)

1. पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री आफ़ताब अहमद के प्राधिकार के तहत उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री यूसुफ सैफी और प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री श्याम मोहन को सुना गया।

2. वर्तमान लघु वाद न्यायालय पुनरीक्षण, पुनरीक्षणवादी-प्रतिवादी द्वारा अपर जिला न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 2, बलरामपुर (लघु वाद न्यायाधीश के रूप में कार्यरत) द्वारा लघु वाद संख्या 3/2001/1995 में पारित आदेश दिनांक 26.07.2011 के विरुद्ध दायर किया गया है, जिसके माध्यम से प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम 1887 (इसके बाद पीएससीसी के रूप में संदर्भित) की धारा 23 के तहत पुनरीक्षणवादी द्वारा प्रस्तुत आवेदन पत्र संख्या 170-ग को खारिज कर दिया गया था।

3. वर्तमान पुनरीक्षण में निहित विवाद को समझने के लिए, संक्षिप्त तथ्यों को इसके बाद संज्ञान में लिया जा रहा है।

4. श्रीमती संपता देवी, मूल वादिनी ने पुनरीक्षणवादी जुगेश्वर प्रसाद के विरुद्ध लघुवाद न्यायालय वाद संख्या 3/2001/1995 संस्थित किया। वाद पत्र में यह कहा गया था कि श्रीमती संपता देवी, जिला बलरामपुर के पुरनिया तालाब में स्थित मकान संख्या 135 की स्वामिनी/मकान मालिक थीं। संपत्ति को प्रतिवादी जुगेश्वर प्रसाद को 750/- रुपये मासिक किराए पर दिया गया था। चूँकि प्रतिवादी ने जून 1995 से किराए के भुगतान में चूक की थी, इसलिए श्रीमती संपता देवी द्वारा अधिवक्ता के माध्यम से दिनांक 02.07.1995 को संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 के तहत मांग और बेदखली का एक संयुक्त नोटिस जारी किया गया था।

चूँकि प्रतिवादी ने नोटिस का अनुपालन नहीं किया, इसलिए श्रीमती संपता देवी द्वारा किराए के बकाया और बेदखली की डिक्री के साथ-साथ दोषपूर्ण उपयोग और अधिभोग के लिए हर्जाने की मांग करते हुए लघु वाद दायर किया गया था।

5. मूल प्रतिवादी जुगेश्वर प्रसाद ने अपना लिखित कथन दाखिल किया और इस आधार पर वाद का विरोध किया कि प्रश्नगत संपत्ति पैतृक थी। यह महादेव की संपत्ति थी, जो पुनरीक्षणवादी-प्रतिवादी के पिता और श्रीमती संपता देवी के पति थे। यह कहा गया था कि महादेव की मृत्यु के बाद, संपत्ति पैतृक होने के कारण प्रतिवादी का स्वयं अपने दो अन्य भाइयों, भगवान प्रसाद और हनुमान प्रसाद के साथ संपत्ति में अधिकार था। यह भी तर्क दिया गया कि वादिनी और प्रतिवादी के बीच मकान मालिक और किरायेदार का कोई संबंध नहीं था और यह बात वादिनी को तब भी बता दी गई थी जब प्रतिवादी ने संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 के तहत वादिनी द्वारा जारी दिनांक 02.07.1995 के नोटिस के जवाब में अपना उत्तर दिनांक 06.08.1995 भेजा था।

6. वाद के लंबित रहने के दौरान कई उत्तरवर्ती घटनाएँ घटीं, जिसके परिणामस्वरूप वाद पत्र में संशोधन किए गए और उसके उत्तर में, प्रतिवादी ने संशोधित दलीलों के जवाब में एक अतिरिक्त लिखित कथन दाखिल किया।

7. वाद में एक महत्वपूर्ण चरण तब आया जब मूल वादिनी, श्रीमती संपता देवी का स्वर्गवास हो गया। उनकी मृत्यु पर, प्रतिवादी के दूसरे भाई, हनुमान प्रसाद ने श्रीमती संपता देवी द्वारा दिनांक 30.11.1979 को अपने पक्ष में निष्पादित बताई गई एक वसीयत के आधार पर प्रतिस्थापन के अधिकार का दावा किया, जिसे रिकॉर्ड पर लाया गया और प्रदर्श-26 क के रूप में अंकित किया गया। इस मामले में तब विवाद उत्पन्न हुआ जब एक अन्य व्यक्ति, संतोष चंद्र गुप्ता (मूल प्रतिवादी जुगेश्वर प्रसाद के पुत्र) ने भी संपत्ति पर अधिकार का दावा करते हुए कहा कि श्रीमती संपता (संतोष चंद्र गुप्ता की दादी) ने उनके पक्ष में दिनांक 03.11.1996 को एक अपंजीकृत वसीयत निष्पादित की थी। विचारण न्यायालय ने पाया कि हनुमान प्रसाद पंजीकृत वसीयत के आधार पर दावा कर रहे थे, जिसे न्यायालय ने स्वीकार कर लिया और उनका नाम प्रतिस्थापित कर दिया गया। इसे संतोष चंद्र गुप्ता ने इस न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण संख्या 264 वर्ष 2003 के माध्यम से चुनौती दी, जिसे दिनांक 17.09.2007 के आदेश द्वारा निस्तारित किया गया। इसमें विचारण न्यायालय को हनुमान प्रसाद (संतोष चंद्र गुप्ता के चाचा) और स्वयं संतोष चंद्र गुप्ता के प्रतिस्पर्धी दावों पर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया। उच्च न्यायालय के निर्देशों के अनुपालन में, विचारण न्यायालय ने पक्षों को अपनी-अपनी वसीयत पर साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दी और उसके बाद मामले का पुन: निर्णय किया गया, जिसमें यह पाया गया कि श्रीमती संपता के स्थान पर हनुमान प्रसाद का नाम शामिल किया जाए।

8. इस समय, प्रतिस्थापन के उक्त आदेश को संतोष चंद्र गुप्ता द्वारा चुनौती नहीं दी गई और मामला आगे बढ़ा। हालाँकि, चूंकि मामले में देरी हो रही थी, इसलिए हनुमान प्रसाद ने इसके बाद भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका संख्या 3794 (एम/एस) वर्ष 2011 दायर की, जिसे दिनांक 07.07.2011

के आदेश द्वारा निस्तारित कर दिया गया। इस आदेश में विचारण न्यायालय को निर्देश दिया गया कि वह लघुवाद न्यायालय वाद का निर्णय अधिमानतः छह महीने की अवधि के भीतर करे।

9. इस स्तर पर, मूल प्रतिवादी जुगेश्वर प्रसाद ने प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम 1887 की धारा 23 के तहत एक आवेदन पत्र संख्या 170-ग दाखिल किया, जिसमें यह कहा गया कि वर्तमान लघुवाद न्यायालय वाद में स्वामित्व और कब्जे, दोनों के जटिल प्रश्न निहित हैं और ऐसी परिस्थितियों में, स्वामित्व के मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए लघु वाद को नियमित न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु संदर्भित किया जाना चाहिए।

10. इसका विरोध वाद के वादी द्वारा अपनी आपत्तियाँ (कागज संख्या 171-ग) दाखिल करके किया गया। आपत्तियों में यह कहा गया कि इसमें स्वामित्व का कोई प्रश्न शामिल नहीं था; क्योंकि प्रतिवादी की ओर से स्पष्ट स्वीकारोक्ति थी कि संपत्ति श्रीमती संपता देवी की थी और उनकी मृत्यु के बाद, उनकी वसीयत के आधार पर संपत्ति हनुमान प्रसाद को हस्तांतरित हो गई और उन्हें श्रीमती संपता देवी के स्थान पर प्रतिस्थापित भी किया जा चुका है। अतः, केवल कार्यवाही में देरी करने और उच्च न्यायालय द्वारा छह महीने की अवधि के भीतर वाद तय करने के निर्देश से बचने के लिए उक्त आवेदन दिया गया है, जो खारिज किए जाने योग्य है।

11. विचारण न्यायालय ने पक्षों को सुनने के बाद दिनांक 26.07.2011 के आदेश द्वारा आवेदन को खारिज कर दिया और उस खारिज करने के आदेश को इस न्यायालय के समक्ष इस पुनरीक्षण में चुनौती दी गई है। रिकॉर्ड यह भी दर्शाता है कि इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने दिनांक 25.08.2011 के आदेश के माध्यम से 26.07.2011 के आदेश के संचालन और कार्यान्वयन पर रोक लगा दी थी।

12. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, पुनरीक्षणवादी के अधिवक्ता ने इस आधार पर विवादित आदेश को चुनौती दी है कि विचारण न्यायालय ने पीएससीसी की धारा 23 के तहत आवेदन को गलत तरीके से खारिज कर दिया। यह तर्क दिया गया कि वाद में स्वामित्व के जटिल प्रश्न शामिल थे, जिन पर ध्यान नहीं दिया गया है, तदनुसार, विवादित आदेश त्रुटिपूर्ण है।

13. पुनरीक्षणवादी के अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया कि संपत्ति की प्रकृति पैतृक थी जो प्रतिवादी जुगेश्वर प्रसाद के पिता और श्रीमती संपता के पति महादेव के पास आई थी। यह तर्क दिया गया कि संपत्ति को गिरवी रखा गया था जिसे महादेव के सबसे बड़े बेटे ने अन्य भाइयों की ओर से ऋणमुक्त कराया था, जिनमें हनुमान प्रसाद के साथ-साथ जुगेश्वर प्रसाद भी शामिल थे। कई ऐसे दस्तावेजों का संदर्भ दिया गया जो दर्शाते हैं कि स्वामित्व का स्पष्ट विवाद था और न ही पिछली मुकदमेबाजी से संबंधित तथ्यों का उल्लेख किया गया था, इसलिए महत्वपूर्ण तथ्यों की अनदेखी करते हुए विचारण न्यायालय ने आवेदन को खारिज कर दिया है, जो क्षेत्राधिकार का उचित प्रयोग नहीं है।

14. यह तर्क दिया गया है कि विचारण न्यायालय ने यह कहकर गलती की है कि यह मुद्दा पुनरीक्षणवादी की स्वीकारोक्ति से समाप्त हो गया था, जो कि गलत था; क्योंकि यह दलीलों और बयानों को गलत तरीके से पढ़ने का मामला था और यह किसी भी प्रकार की स्वीकारोक्ति के दायरे में नहीं आता था। यह भी तर्क दिया गया कि नगर पालिका प्राधिकरण द्वारा जारी स्वामित्व प्रमाण पत्र पर विचारण न्यायालय द्वारा भरोसा किया जाना आधार नहीं हो सकता था, और न ही ऐसा कोई प्रमाण पत्र श्रीमती संपता को स्वामित्व प्रदान कर सकता था।

15. यह आगे तर्क दिया गया कि भले ही वादी/प्रतिवादी ने कर के भुगतान के संबंध में नगरपालिका की रसीदें दाखिल की थीं, लेकिन उन्हें भी स्वामित्व के दस्तावेज के रूप में नहीं माना जा सकता था। टैक्स की रसीदें अधिक से अधिक केवल वित्तीय उद्देश्यों के लिए थीं और उनसे न तो कोई स्वामित्व प्राप्त होता था और न ही वे स्वामित्व सिद्ध करने के लिए महत्वपूर्ण हो सकती थीं। अतः, वह संपूर्ण आधार, जिस पर विचारण न्यायालय ने दिनांक 26.07.2011 का आदेश पारित किया था, त्रुटिपूर्ण और प्रत्यक्ष रूप से दोषपूर्ण था, इसलिए लघु वाद न्यायालय पुनरीक्षण को स्वीकार करते हुए उसे रद्द किया जाना चाहिए।

16. पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा जताया है: **'श्रीमती सुघरा बेगम बनाम अपर जिला न्यायाधीश XII, लखनऊ एवं अन्य, 1999 (1) एआरसी, पृष्ठ 582'; 'राम किशोर बनाम द्वितीय अपर जिला न्यायाधीश, मिर्जापुर एवं अन्य, 2005 (3) एआरसी, पृष्ठ 599'; और 'मुंशी खान बनाम जिला न्यायाधीश गाज़ियाबाद एवं अन्य, 2002 (2) एआरसी, पृष्ठ 393'।**

17. जहाँ तक पुनरीक्षणवादी के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों का प्रश्न है, वे उन मामलों के विशिष्ट तथ्यों पर पारित किए गए हैं जो वर्तमान मामले से काफी भिन्न हैं, विशेष रूप से पेश की गई सामग्री के संदर्भ में; अतः उक्त निर्णय पुनरीक्षणवादी की सहायता नहीं करते हैं।

18. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री श्याम मोहन ने तर्क दिया है कि पुनरीक्षणवादी द्वारा पीएससीसी की धारा 23 के तहत प्रस्तुत आवेदन स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण था। वाद वर्ष 1995 में संस्थित किया गया था और इसका पूरी तत्परता से विरोध किया जा रहा था। मामला पहले भी एक अवसर पर उच्च न्यायालय के समक्ष आ चुका था, जहाँ प्रतिवादी के पुत्र ने श्रीमती संपता की मृत्यु के बाद प्रतिवादी द्वारा दिए गए प्रतिस्थापन आवेदन का विरोध किया था।

19. यह आगे बताया गया कि उच्च न्यायालय द्वारा मामला वापस भेजे जाने के बाद ही प्रतिवादी द्वारा आवेदन संख्या 170-ग पेश किया गया था, जिसका एकमात्र उद्देश्य कार्यवाही में देरी करना था। जब उक्त आवेदन दिया गया, तब तक दस वर्ष से अधिक का समय बीत चुका था और उससे पूर्व प्रतिवादी ने कभी भी श्रीमती संपता के स्वामित्व पर न तो कोई विवाद खड़ा किया और न ही ऐसी कोई आपत्ति उठाई थी।

20. यह आगे तर्क दिया गया कि वादी ने कुछ ऐसे दस्तावेज़ दाखिल किए थे जो दर्शाते थे कि पूर्व में वर्ष 1979 में मेसर्स शांति क्लॉथ हाउस द्वारा पुनरीक्षणवादी के विरुद्ध धन वसूली का एक वाद दायर किया गया था और उक्त वाद में प्रतिवादी ने स्वीकार किया था कि वह प्रश्नगत परिसर का किरायेदार था और वह परिसर श्रीमती संपता देवी का था। उक्त वाद में साक्ष्य प्रस्तुत किए गए थे, जिसमें प्रतिवादी जुगेश्वर प्रसाद ने अपना बयान दिया था और स्वीकार किया था कि प्रश्नगत संपत्ति श्रीमती संपता देवी की थी और उन्होंने यह भी स्वीकार किया था कि वह इसके किरायेदार थे। यह बहुत बाद के चरण में हुआ कि प्रतिवादी ने श्रीमती संपता के स्वामित्व पर विवाद करने का मामला विकसित करने का प्रयास किया और इस प्रकार, वादी द्वारा दाखिल दस्तावेज़ श्रीमती संपता के स्वामित्व को दर्शाते हैं और उक्त दस्तावेजों ने इसे स्पष्ट रूप से स्थापित किया है, जिसमें प्रतिवादी के पुत्र, संतोष चंद्र गुप्ता का पक्ष भी शामिल था, जिन्होंने श्रीमती संपता द्वारा संतोष चंद्र गुप्ता के पक्ष में निष्पादित एक वसीयत के आधार पर वर्तमान वाद में प्रतिस्थापन के अधिकार का दावा किया था।

21. यह तर्क दिया गया कि उपरोक्त सभी दस्तावेजों को संज्ञान में लिया गया और यह पाया गया कि पुनरीक्षणवादी द्वारा पीएससीसी की धारा 23 के तहत दायर आवेदन दुर्भावनापूर्ण था, इसलिए इसे खारिज कर दिया गया। ऐसी परिस्थितियों में, यह पुनरीक्षण भी खारिज किए जाने योग्य है।

22. न्यायालय ने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का अवलोकन भी किया है।

23. इस स्तर पर, प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम 1887 की धारा 25 के तहत पुनरीक्षण के दायरे पर विचार करना उचित होगा तथा इस न्यायालय ने **2019 (12) एडीजे 281 (एलबी), जुबैर अहमद खान बनाम न्यायालय, लघु वाद न्यायालय/ए.डी.जे., न्यायालय संख्या 4, लखीमपुर खीरी एवं अन्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की सहायता से इस पर ध्यान दिया था। पैरा-12 से 14 के प्रासंगिक अंश इसके बाद उद्धृत किए जा रहे हैं:-

12. शुरुआत में, प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 25 के तहत पुनरीक्षण के दायरे पर ध्यान देना आवश्यक होगा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राम मूर्ति देवी बनाम पुष्पा देवी एवं अन्य, 2017 (15) एससीसी 230 के मामले में, अधिनियम की धारा 25 के तहत पुनरीक्षण के दायरे पर विचार करते हुए निम्नलिखित शब्दों में उल्लेख किया है:

"29. उच्च न्यायालय 1887 के अधिनियम की धारा 25 के तहत एक पुनरीक्षण पर सुनवाई कर रहा था। 1887 के अधिनियम की धारा 25 का दायरा क्या है, यह इस न्यायालय के समक्ष हरि शंकर बनाम राव गिरधारी लाल चौधरी [हरि शंकर बनाम राव गिरधारी लाल चौधरी एआईआर 1963 एससी 698] के मामले में विचार के लिए

आया था, जहाँ इस न्यायालय ने पैरा 9 में निम्नलिखित सिद्धांत प्रतिपादित किए थे: (हरि शंकर वाद, [हरि शंकर बनाम राव गिरधारी लाल चौधरी एआईआर 1963 एससी 698] एआईआर पृष्ठ 701)

"9. हम जिस धारा पर विचार कर रहे हैं, वह प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 25 के लगभग समान है। इस धारा पर उच्च न्यायालयों द्वारा अनेक मामलों में विचार किया गया है और इसकी विभिन्न व्याख्याएँ दी गई हैं। इसके द्वारा प्रदान की जाने वाली शक्तियों का दायरा एक व्यापक स्पेक्ट्रम (विस्तार) बनाता है, जिसके एक छोर पर यह विचार है कि इसके तहत केवल कानून की सारभूत त्रुटियों को सुधारा जा सकता है, और दूसरे छोर पर हस्तक्षेप की वह शक्ति है जो एक 'अपील' से कुछ ही बेहतर है। उन मामलों पर चर्चा करना व्यर्थ है जिनमें से कुछ में टिप्पणियाँ संभवतः कुछ असामान्य तथ्यों की विवशता के तहत की गई थीं। यह कहना पर्याप्त है कि हम मानते हैं कि ऐसी धाराओं के अर्थ की सबसे सटीक व्याख्या मुख्य न्यायाधीश ब्यूमोंट (जैसा कि वे तब थे) द्वारा बेल एंड कंपनी लिमिटेड बनाम वामन हेमराज [बेल एंड कंपनी लिमिटेड बनाम वामन हेमराज 1937 एससीसी ऑनलाइन बॉम्बे 99 : एआईआर 1938 बॉम्बे 223] में दी गई है, जहाँ विद्वान मुख्य न्यायाधीश ने प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 25 के संबंध में टिप्पणी की थी: (एससीसी ऑनलाइन बॉम्बे पैरा 3-4)

'3. धारा 25 का उद्देश्य उच्च न्यायालय को यह देखने में सक्षम बनाना है कि न्याय की विफलता न हुई हो, और निर्णय कानून के अनुसार दिया गया हो।

4. यह धारा उन मामलों की गणना नहीं करती है जिनमें न्यायालय पुनरीक्षण में हस्तक्षेप कर सकता है, जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 करती है। मैं निश्चित रूप से उन परिस्थितियों की एक विस्तृत परिभाषा देने का प्रस्ताव नहीं करता जो ऐसे हस्तक्षेप को उचित ठहरा सकती हैं; लेकिन जो उदाहरण तुरंत मन में आते हैं वे ऐसे मामले हैं जिनमें आदेश देने वाले न्यायालय के पास क्षेत्राधिकार नहीं था, या जिसमें न्यायालय ने अपना निर्णय ऐसे साक्ष्यों पर आधारित किया है जिन्हें स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था, या ऐसे मामले जहाँ असफल पक्ष को सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया गया है, या प्रमाण का भार गलत कंधों पर डाल दिया गया है। जहाँ कहीं भी न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि असफल पक्ष को कानून के अनुसार उचित विचारण का अवसर नहीं मिला है, वहाँ न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है। लेकिन, मेरी राय में, न्यायालय को केवल इसलिए हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए क्योंकि उसे लगता है कि संभवतः जिस न्यायाधीश ने मामले की सुनवाई की है, वह ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचा हो जिस पर उच्च न्यायालय नहीं पहुँचता।
"इस टिप्पणी से हमारी पूर्ण सहमति है।

"30. इसके अतिरिक्त, मुंदरी लाल बनाम सुशीला रानी [मुंदरी लाल बनाम सुशीला रानी (2007) 8 एससीसी 609] के मामले में, जो 1972 के अधिनियम 13 और 1887 के अधिनियम की धारा 25 के तहत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार से उत्पन्न हुआ था, इस न्यायालय ने पैरा 22 और 23 में यह माना कि प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 25 के तहत क्षेत्राधिकार, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 से अधिक व्यापक है। इसमें

आगे यह भी कहा गया कि यद्यपि साक्ष्यों के मूल्यांकन पर आधारित शुद्ध तथ्यात्मक निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता, फिर भी ऐसी कई परिस्थितियाँ हैं जिनमें पुनरीक्षण न्यायालय तथ्यात्मक निष्कर्षों में हस्तक्षेप कर सकता है। पैरा 22 और 23 में निम्नलिखित बातें कही गई थीं: (एससीसी पृष्ठ 617-18)'

"22. इसमें रत्ती भर भी संदेह नहीं हो सकता कि प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 25 के तहत उच्च न्यायालय का पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 से अधिक व्यापक है। लेकिन यह तथ्य कि कानून द्वारा 'पुनरीक्षण' का प्रावधान किया गया है, न कि 'अपील' का, स्वयं इस बात का संकेत है कि सामान्यतः पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब कानून का कोई प्रश्न उत्पन्न हो।

23. हालाँकि, हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि किसी भी परिस्थिति में तथ्यात्मक निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। साक्ष्यों के मूल्यांकन पर आधारित एक शुद्ध तथ्यात्मक निष्कर्ष में भले ही हस्तक्षेप न किया जाए, लेकिन यदि ऐसा निष्कर्ष अप्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखकर निकाला गया है या उसके लिए किसी प्रासंगिक तथ्य की अनदेखी की गई है, तो पुनरीक्षण न्यायालय के पास उस तथ्यात्मक निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का आवश्यक क्षेत्राधिकार होगा। अधिनियम की धारा 2(2) के प्रावधानों की प्रयोज्यता, उस अर्थ में, कानून और तथ्य के मिश्रित प्रश्न का निर्धारण शामिल कर सकती है।"

13. इसी प्रकार, त्रिलोक सिंह चौहान बनाम राम लाल, 2018 (2) एससीसी 566 के मामले में, एक बार फिर प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 25 के तहत पुनरीक्षण के दायरे पर विचार करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है और उसका प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:

"14. उच्च न्यायालय 1887 के अधिनियम की धारा 25 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहा था, जिसका प्रावधान इस प्रकार है:

"25. लघु वाद न्यायालयों की डिक्री और आदेशों का पुनरीक्षण - उच्च न्यायालय, किसी लघु वाद न्यायालय द्वारा तय किए गए किसी भी मामले में दी गई डिक्री या आदेश के कानून के अनुसार होने के संबंध में स्वयं को संतुष्ट करने के उद्देश्य से, मामले को मंगवा सकता है और उसके संबंध में ऐसा आदेश पारित कर सकता है जैसा वह उचित समझे।"

15. 1887 के अधिनियम की धारा 25 का दायरा कई अवसरों पर इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया है। हरि शंकर बनाम राव गिरधारी लाल चौधरी [हरि शंकर बनाम राव गिरधारी लाल चौधरी एआईआर 1963 एससी 698] के मामले में, पैरा 9 और 10 में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित सिद्धांत प्रतिपादित किए थे: (एआईआर पृष्ठ 701)

"9. हम जिस धारा पर विचार कर रहे हैं, वह प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 25 के लगभग समान है। इस धारा पर उच्च न्यायालयों द्वारा अनेक मामलों में विचार किया गया है और इसकी विभिन्न व्याख्याएँ दी गई हैं। इसके द्वारा प्रदान की जाने वाली शक्तियों का दायरा एक व्यापक स्पेक्ट्रम (विस्तार) बनाता है, जिसके एक छोर पर यह विचार है कि इसके तहत केवल कानून की सारभूत त्रुटियों को सुधारा जा सकता है, और दूसरे छोर पर हस्तक्षेप की वह शक्ति है जो एक 'अपील' से कुछ ही बेहतर है। उन मामलों पर चर्चा करना व्यर्थ है जिनमें से कुछ में टिप्पणियाँ संभवतः कुछ असामान्य तथ्यों की विवशता के तहत की गई थीं। यह कहना पर्याप्त है कि हम मानते हैं कि ऐसी धाराओं के अर्थ की सबसे सटीक व्याख्या मुख्य न्यायाधीश ब्यूमोंट (जैसा कि वे तब थे) द्वारा बेल एंड कंपनी लिमिटेड बनाम वामन हेमराज [बेल एंड कंपनी लिमिटेड बनाम वामन हेमराज 1937 एससीसी ऑनलाइन बॉम्बे 99 : एआईआर 1938 बॉम्बे 223] में दी गई है, जहाँ विद्वान मुख्य न्यायाधीश ने प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 25 के संबंध में टिप्पणी की थी: (एससीसी ऑनलाइन बॉम्बे पैरा 3-4)

'3. धारा 25 का उद्देश्य उच्च न्यायालय को यह देखने में सक्षम बनाना है कि न्याय की विफलता न हुई हो, और निर्णय कानून के अनुसार दिया गया हो।

4. यह धारा उन मामलों की गणना नहीं करती है जिनमें न्यायालय पुनरीक्षण में हस्तक्षेप कर सकता है, जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 करती है। मैं निश्चित रूप से उन परिस्थितियों की एक विस्तृत परिभाषा देने का प्रस्ताव नहीं करता जो ऐसे हस्तक्षेप को उचित ठहरा सकती हैं; लेकिन जो उदाहरण तुरंत मन में आते हैं वे ऐसे मामले हैं जिनमें आदेश देने वाले न्यायालय के पास क्षेत्राधिकार नहीं था, या जिसमें न्यायालय ने अपना निर्णय ऐसे साक्ष्यों पर आधारित किया है जिन्हें स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था, या ऐसे मामले जहाँ असफल पक्ष को सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया गया है, या प्रमाण का भार गलत कंधों पर डाल दिया गया है। जहाँ कहीं भी न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि असफल पक्ष को कानून के अनुसार उचित विचारण का अवसर नहीं मिला है, वहाँ न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है। लेकिन, मेरी राय में, न्यायालय को केवल इसलिए हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए क्योंकि उसे लगता है कि संभवतः जिस न्यायाधीश ने मामले की सुनवाई की है, वह ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचा हो जिस पर उच्च न्यायालय नहीं पहुँचता।
"इस टिप्पणी से हमारी पूर्ण सहमति है।

10. विद्वान मुख्य न्यायाधीश ने जो कहा है, वह अधिनियम की धारा 35 पर लागू होता है, जिससे हमारा सरोकार है। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो, विद्वान एकल न्यायाधीश का तथ्य के स्पष्ट निष्कर्ष में हस्तक्षेप करना उचित नहीं था, और विशेष रूप से इसलिए भी, क्योंकि उन्होंने स्वयं एक गलत धारणा के आधार पर कार्यवाही की थी।"

16. एक अन्य निर्णय जिसे नोट किया जाना आवश्यक है, वह इस न्यायालय का मुंदरी लाल बनाम सुशीला रानी [मुंदरी लाल बनाम सुशीला रानी (2007) 8 एससीसी 609] में दिया गया निर्णय है। इस न्यायालय ने यह

माना कि 1887 के अधिनियम की धारा 25 के तहत क्षेत्राधिकार, सीपीसी की धारा 115 के तहत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार की तुलना में अधिक व्यापक है। लेकिन साक्ष्यों के मूल्यांकन पर आधारित शुद्ध तथ्यात्मक निष्कर्ष में, 1887 के अधिनियम की धारा 25 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। न्यायालय ने उन परिस्थितियों को भी स्पष्ट किया जिनके तहत धारा 25 के क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए निष्कर्षों में हस्तक्षेप किया जा सकता है। वे बहुत ही सीमित आधार हैं जिन पर धारा 25 के तहत हस्तक्षेप किया जा सकता है; वे तब हैं जब: (i) निष्कर्ष विकृत हों या (ii) किसी सामग्री (साक्ष्य) पर आधारित न हों या (iii) निष्कर्ष अस्वीकार्य साक्ष्य को ध्यान में रखकर निकाले गए हों या (iv) निष्कर्ष प्रासंगिक साक्ष्यों पर विचार किए बिना निकाले गए हों।"

14. प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 25 के दायरे पर इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा सुरेश चंद्र बनाम राधे श्याम अग्रवाल एवं अन्य, 2015(5) एडीजे 449 के मामले में भी विचार किया गया था। इसके प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं:

"76. धारा 25 की भाषा, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के तहत सिविल न्यायालय को प्रदान की गई पुनरीक्षण शक्तियों से भिन्न है।

77. अधिनियम, 1887 लघु वाद न्यायालयों का गठन करता है जिनका क्षेत्राधिकार अनन्य नहीं बल्कि अधिमान्य और सीमित है। लघु वाद न्यायालयों द्वारा संज्ञान न लिए जाने वाले वादों की श्रेणी अधिनियम, 1887 के साथ संलग्न अनुसूची में सूचीबद्ध है। सिविल प्रक्रिया संहिता के वे प्रावधान जो लघु वाद न्यायालय पर लागू नहीं होते, वे सी.पी.सी. की धारा 7 में दिए गए हैं। बंगाल, आगरा और असम सिविल कोर्ट अधिनियम, 1887 की धारा 40 के माध्यम से इसके कुछ प्रावधान, जैसे धारा 15, 32, 37, 38 और 39 लघु वाद न्यायालयों पर लागू किए गए हैं। धारा 7 के अनुसार, सी.पी.सी. की धारा 96, 112 और 115 की प्रयोज्यता को लघु वाद न्यायालय के लिए वर्जित किया गया है, जिसका अर्थ यह है कि इसके निर्णय को 'अपील के अयोग्य' बनाया गया है। लघु वाद न्यायालय में विचारण संक्षिप्त होता है और इसका निर्णय केवल धारा 25 के तहत पुनरीक्षण के अधीन अंतिम होता है। इन्ही परिस्थितियों में, धारा 25 के तहत पुनरीक्षण न्यायालय की शक्ति और सी.पी.सी. या प्रक्रियात्मक कानूनों के अन्य प्रावधानों के तहत अन्य अपीलीय एवं पुनरीक्षण शक्तियों के बीच अंतर करना आवश्यक है।

78. वे परिस्थितियाँ जिनमें पुनरीक्षण न्यायालय यह पता लगाने के लिए कि क्या लघु वाद न्यायालय का निर्णय कानून के अनुसार है, बिना मूल्यांकन के तथ्यों को देख सकता है, उन्हें लक्ष्मी किशोर एवं अन्य बनाम हर प्रसाद शुक्ला, 1981 एआरसी 545 में खंडपीठ के निर्णय के पैरा 19 और 20 में स्पष्ट किया गया है, जो कहता है:

"19. यदि न्यायालय यह पाता है कि तथ्य के किसी विशेष मुद्दे पर निष्कर्ष को बनाए रखने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है, तो वह उस निष्कर्ष की अनदेखी कर सकता है। यही स्थिति तब भी होगी जहाँ निष्कर्ष केवल अस्वीकार्य साक्ष्य पर आधारित हो। ऐसे मामले में, न्यायालय स्वयं तथ्य के प्रश्न पर निर्णय लेने में न्यायसंगत होगा, क्योंकि साक्ष्य पूरी तरह से एक ही पक्ष में हैं। वहां किसी (पुनः) मूल्यांकन की आवश्यकता नहीं है। न्यायालय पुनरीक्षण का निर्णय तब भी कर सकता है यदि केवल कानून का कोई प्रश्न या कानून का कोई प्रारंभिक बिंदु, जैसे कि नोटिस की वैधता, इसके निर्णय के लिए पर्याप्त हो।

20. लेकिन, यदि न्यायालय यह पाता है कि तथ्य का कोई विशेष निष्कर्ष कानून की त्रुटि से दूषित है, तो उसके पास ऐसा आदेश पारित करने की शक्ति है, जो मामले के न्याय के लिए आवश्यक हो; परंतु उसके पास स्वयं तथ्य के किसी मुद्दे को निर्धारित करने के लिए साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन या पुनरीक्षण करने का क्षेत्राधिकार नहीं है। यदि वह तथ्य के किसी विशेष मुद्दे पर निष्कर्ष के बिना मामले का पर्याप्त रूप से निपटारा नहीं कर सकता है, तो उसे उचित दिशा-निर्देश निर्धारित करने के बाद मामले को वापस (रिमांड पर) भेज देना चाहिए। वह साक्ष्यों में प्रवेश नहीं कर सकता, उनका मूल्यांकन नहीं कर सकता और तथ्य के मुद्दे का निर्धारण नहीं कर सकता।"

79. प्रभावी रूप से, रोक साक्ष्यों के पुनर्मूल्यांकन और अपने स्वयं के तथ्यात्मक निष्कर्ष को प्रतिस्थापित करने के संबंध में है, लेकिन वहां नहीं जहां प्रासंगिक साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया है या निष्कर्ष अस्वीकार्य साक्ष्य पर आधारित है या निष्कर्ष बिना किसी साक्ष्य के है आदि। डॉ. डी. शंकरनारायणन बनाम पंजाब नेशनल बैंक, 1995 सप्लीमेंट (4) एससीसी 675 में, सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया कि अपने स्वयं के निष्कर्ष को प्रतिस्थापित करने के लिए साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन अनुमत नहीं है, लेकिन वहां यह लागू नहीं होता जहां निर्णय कानून के अनुसार नहीं है। यदि पुनरीक्षण न्यायालय निष्कर्ष से सहमत नहीं है, तो वह अपने आप में आधार नहीं हो सकता क्योंकि यह साक्ष्य के मूल्यांकन के दायरे में आता है। यही बात सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित मामलों में कही गई है: रफत अली बनाम सुगनी बाई एवं अन्य, जेटी 1998(8) एससी 157; श्री राज लक्ष्मी डाइंग वर्क्स बनाम रंगास्वामी, जेटी 1998(4) एससी 46; सरला आहूजा बनाम यूनाइटेड इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, जेटी 1998 (7) एससी 297; और, रामदास बनाम के. थंगवेलु, जेटी 1999(10) एससी 51।"

24. अब प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 23 के प्रावधान पर विचार करने का समय है, जो इस प्रकार है:-

23. स्वामित्व के प्रश्न वाले वादों में वाद-पत्र की वापसी।– (1) इस अधिनियम के पूर्ववर्ती हिस्से में किसी भी बात के होते हुए भी, जब एक लघु वाद न्यायालय में वादी का अधिकार और उसके द्वारा मांगा गया अनुतोष, अचल संपत्ति के स्वामित्व या अन्य ऐसे स्वामित्व के प्रमाण या अप्रमाण पर निर्भर करता है जिसे ऐसा न्यायालय अंतिम रूप से निर्धारित नहीं कर सकता है, तो न्यायालय कार्यवाही के किसी भी चरण में वाद-पत्र

को उस न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिए वापस कर सकता है जिसके पास स्वामित्व निर्धारित करने का क्षेत्राधिकार है।

(2) जब कोई न्यायालय उप-धारा (1) के तहत वाद-पत्र वापस करता है, तो वह सिविल प्रक्रिया संहिता, 1882 (1882 का 14) की धारा 57 के दूसरे पैराग्राफ के प्रावधानों का पालन करेगा और खर्चों के संबंध में ऐसा आदेश देगा जैसा वह उचित समझे; और भारतीय सीमा अधिनियम, 1877 (1877 का 15) के उद्देश्यों के लिए, यह माना जाएगा कि न्यायालय क्षेत्राधिकार की कमी जैसी प्रकृति के कारण वाद को ग्रहण करने में असमर्थ रहा है।

25. उपरोक्त पीएससीसी की धारा 23 को इस न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी विचार का विषय बनाया गया है और इस बिंदु पर कुछ प्रासंगिक निर्णयों को आगे उद्धृत किया जा रहा है:- **शमीम अख्तर बनाम इकबाल अहमद एवं अन्य, 2000 (2) एआरसी एससी पृष्ठ 770** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय को प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 23 के दायरे पर विचार करने का अवसर मिला और न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि यह लघु वाद न्यायालय की शक्तियों के भीतर है कि वह अचल संपत्ति के स्वामित्व के प्रमाण या अप्रमाण पर विचार करे; और यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि उक्त न्यायालय द्वारा स्वामित्व का निर्धारण नहीं किया जा सकता है, तो न्यायालय के लिए यह विकल्प खुला है कि वह वाद-पत्र को उस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए वापस कर दे जिसके पास स्वामित्व निर्धारित करने का क्षेत्राधिकार है। हालाँकि, प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 23 के तहत प्रयोग की जाने वाली शक्ति विवेकाधीन है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ-12 का प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:-

"12. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, विचारण न्यायालय ने लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 23 के तहत वादी-अपीलकर्ता को वाद-पत्र वापस करके स्पष्ट रूप से त्रुटि की है। धारा 23(1) यह प्रावधान करती है कि जब लघु वाद न्यायालय में वादी का अधिकार और उसके द्वारा मांगा गया अनुतोष, अचल संपत्ति के स्वामित्व या अन्य ऐसे स्वामित्व के प्रमाण या अप्रमाण पर निर्भर करता है जिसे ऐसा न्यायालय अंतिम रूप से निर्धारित नहीं कर सकता है, तो न्यायालय कार्यवाही के किसी भी चरण में वाद-पत्र को उस न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिए वापस कर सकता है जिसके पास स्वामित्व निर्धारित करने का क्षेत्राधिकार है। उप-धारा (1) के तहत न्यायालय में निहित शक्ति विवेकाधीन है। इसका प्रयोग केवल तभी किया जाना चाहिए जब लघु वाद न्यायालय के समक्ष कार्यवाही में वादी द्वारा मांगा गया अनुतोष, अचल संपत्ति के स्वामित्व के प्रमाण या अप्रमाण पर निर्भर हो और प्रश्न के निर्धारण के बिना मांगा गया अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता हो। वर्तमान मामले में, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, वादी ने धारा 20(2)(एफ) के तहत बेदखली के लिए एक याचिका दायर की थी जिसमें आरोप लगाया गया था कि वह घर की मकान मालकिन थी और उसने प्रतिवादी संख्या 1 को परिसर के किरायेदार के रूप में रखा था। प्रश्न यह था कि क्या उस मामले को स्वीकार किया जाना चाहिए या नहीं। वास्तव में विचारण न्यायालय ने, प्रथम दृष्टया, वादी के मामले को यह मानते हुए स्वीकार कर लिया था कि उसे श्रीमती खैरुननिसा बीबी से एक पंजीकृत उपहार विलेख के माध्यम से संपत्ति मिली थी, जिन्हें बदले में उनकी मां फकिया बीबी द्वारा संपत्ति उपहार में दी गई थी, जो निर्विवाद

रूप से संपत्ति की मूल मालिक थीं। लघु वाद न्यायालय द्वारा कार्यवाही में वादी के वाद-घर के स्वामित्व के प्रश्न पर एक प्रासंगिक प्रश्न के रूप में विचार किया जा सकता था और स्वामित्व का अंतिम निर्धारण सक्षम न्यायालय के निर्णय के लिए छोड़ा जा सकता था। ऐसी परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता था कि वादी द्वारा मांगे गए अनुतोष को प्रदान करने के उद्देश्य से लघु वाद न्यायालय के लिए संपत्ति के स्वामित्व को अंतिम रूप से निर्धारित करना पूरी तरह से आवश्यक था। प्रतिवादी किरायेदार स्वयं और वादी के बीच मकान मालिक और किरायेदार के संबंध से केवल इनकार करके किराया नियंत्रण अधिनियम के तहत बेदखली की कार्यवाही से नहीं बच सकता था। लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 23(1) के प्रावधानों की न तो यह भाषा है और न ही उद्देश्य।"

सर्वोच्च न्यायालय ने **बुधू मल बनाम महाबीर प्रसाद एवं अन्य, एआईआर 1987 एससी पृष्ठ 1772** के मामले में, पीएससीसी अधिनियम की धारा 23 के तहत शक्तियों का पुनः संज्ञान लेते हुए पैराग्राफ-9 में निम्नलिखित व्यवस्था दी है:-

"9. यह सच है कि धारा 23 लघु वाद न्यायालय के लिए यह अनिवार्य नहीं बनाती है कि किरायेदार द्वारा स्वामित्व का प्रश्न उठाए जाने पर वह अनिवार्य रूप से वाद-पत्र वापस कर दे। यह भी सच है कि किरायेदारी के अनुबंध के आधार पर मकान मालिक द्वारा अपने किरायेदार के खिलाफ दायर वाद में, स्वामित्व के प्रश्न की प्रासंगिक रूप से जांच की जा सकती है और इस संबंध में लघु वाद न्यायाधीश द्वारा दर्ज किया गया कोई भी निष्कर्ष, स्वामित्व पर आधारित वाद में 'प्राइन्याय' नहीं होगा। हालांकि, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि धारा 23 को अधिनियमित करने में विधायिका के मन में कुछ ऐसे मामले अवश्य रहे होंगे जिनमें पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए वाद-पत्र वापस करने के विवेक का प्रयोग किया जाना चाहिए। वर्तमान मामलों के तथ्यों पर, हमें लगता है कि ये ऐसे मामले हैं जिनमें पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए वाद-पत्रों को उस न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिए वापस किया जाना चाहिए था जिसके पास स्वामित्व निर्धारित करने का क्षेत्राधिकार है। यदि अपीलकर्ताओं द्वारा लिया गया यह पक्ष स्वीकार कर लिया जाता है कि 8 दिसंबर, 1966 के विलेख द्वारा अचल संपत्ति से उत्पन्न होने वाला लाभ (जो स्वयं अचल संपत्ति है) हस्तांतरित किया गया था, और महाबीर प्रसाद द्वारा इस संबंध में दी गई सूचना के अनुसरण में अपीलकर्ताओं ने श्रीमती सुलोचना देवी को किराया देना शुरू कर दिया था तथा उक्त विलेख को एकतरफा रद्द नहीं किया जा सकता था, तो इससे न केवल महाबीर प्रसाद के किराया वसूलने के स्वामित्व पर असर पड़ने की संभावना है, बल्कि इसका प्रभाव महाबीर प्रसाद और अपीलकर्ताओं के बीच मकान मालिक और किरायेदार के संबंध को भी खत्म करने वाला होगा, जिसे महाबीर प्रसाद द्वारा 8 दिसंबर, 1966 के उक्त विलेख को बाद में एकतरफा रद्द करके पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता था। ऐसी स्थिति में, महाबीर प्रसाद द्वारा अपीलकर्ताओं के खिलाफ दायर वादों को केवल किरायेदारी के अनुबंध पर आधारित मकान मालिक और किरायेदार के बीच का साधारण वाद मानना संभव नहीं हो सकता है जिसमें स्वामित्व का मुद्दा प्रासंगिक रूप से उठाया गया था। यदि वादों को मकान मालिक और किरायेदार के बीच का वाद नहीं माना जा सकता है, तो वे लघु वाद न्यायालय द्वारा संज्ञान लेने

योग्य नहीं होंगे और इन्हीं कारणों से हमारी यह राय है कि ये ऐसे मामले हैं जहाँ वाद-पत्रों को उचित न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिए वापस किया जाना चाहिए था ताकि किसी भी पक्षकार के हितों को नुकसान न पहुँचे।'

इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने **श्रीमती मुन्नी देवी एवं अन्य बनाम 10वें अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, आगरा एवं अन्य, 1990 (16) एएलआर पृष्ठ 555** के मामले में, धारा 23 के प्रावधानों पर विचार करते हुए और सर्वोच्च न्यायालय के बुधू मल वाले पिछले निर्णय पर भरोसा करते हुए निम्नलिखित व्यवस्था दी है:

"10. (1988) 4 एससीसी 194 : एआईआर 1988 एससी 1772 बुधू मल बनाम महाबीर प्रसाद में रिपोर्ट किए गए एक हालिया मामले में, यह माना गया है:

"लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 23 लघु वाद न्यायालय के लिए यह अनिवार्य नहीं बनाती है कि बेदखली के वाद में किरायेदार द्वारा स्वामित्व का प्रश्न उठाए जाने पर वह अनिवार्य रूप से वाद-पत्र वापस कर दे। साथ ही, किरायेदारी के अनुबंध के आधार पर मकान मालिक द्वारा अपने किरायेदार के खिलाफ दायर वाद में, स्वामित्व के प्रश्न की प्रासंगिक रूप से जांच की जा सकती है और इस संबंध में लघु वाद न्यायाधीश द्वारा दर्ज किया गया कोई भी निष्कर्ष, स्वामित्व पर आधारित वाद में 'प्राड्न्याय' (Res Judicata) नहीं होगा।"

11. मेरी राय में, लघु वाद न्यायाधीश के पास मामले में प्रासंगिक रूप से शामिल स्वामित्व के प्रश्न को तय करने का क्षेत्राधिकार था। याचिकाकर्ताओं के वकील द्वारा मामले को लघु वाद न्यायाधीश के पास वापस भेजने का प्रयास, ताकि एक नया मुद्दा तय कर उसका निर्णय लिया जा सके, रिकॉर्ड पर किसी भी सामग्री के अभाव में केवल एक निरर्थक कवायद होगी। इसके अलावा, याचिकाकर्ताओं द्वारा भेजे गए दिनांक 31-1-1967 के जवाब में यह कहा गया है कि उनके द्वारा 31-1-1967 तक का किराया वादी-मकान मालिक को भुगतान कर दिया गया है। यह मकान मालिक और किरायेदार के संबंध की स्वीकृति के समान है। इस प्रश्न पर याचिकाकर्ताओं की आपत्ति सद्भावनापूर्ण प्रतीत नहीं होती है।"

इस न्यायालय की एक अन्य समन्वय पीठ ने **साहिद अहमद एवं अन्य बनाम अपर जिला न्यायाधीश III, सहारनपुर एवं अन्य, 2002 (2) एआरसी पृष्ठ 303** के मामले में पिछले निर्णयों पर विचार किया है और पैराग्राफ-4 में निम्नलिखित व्यवस्था दी है:

"4. मेरी राय में, प्रतिपादित कानून को देखते हुए, विचारण न्यायालय और पुनरीक्षण न्यायालय ने कानून की कोई त्रुटि नहीं की है। इस न्यायालय ने 1987 वाल्यूम (1) एआरसी पृष्ठ 89, पैरा 10 में रिपोर्ट किए गए मामले में, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है, यह माना है कि:

"10. इस उप-धारा (1) को पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि न्यायालय को वाद-पत्र वापस करने का विवेक प्रदान किया गया है, यदि वह संतुष्ट हो कि वाद में स्वामित्व का ऐसा प्रश्न शामिल है जिसे वह अंतिम रूप से निर्धारित नहीं कर सकता। केवल ऐसी स्थिति में ही लघु वाद न्यायाधीश के न्यायालय के लिए यह विकल्प खुला है कि वह अपने विवेक का प्रयोग करे कि वाद-पत्र वापस किया जाए या नहीं। बेदखली और किराए के बकाया के लिए दायर वाद में लिखित कथन में केवल यह आरोप लगा देना कि स्वामित्व प्रतिवादी में निहित है, अपने आप में यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि वाद में स्वामित्व का प्रश्न शामिल है। केवल साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के बाद और न्यायालय की यह राय बनने पर कि वाद में स्वामित्व का प्रश्न शामिल है, जिसे लघु वाद न्यायाधीश का न्यायालय अंतिम रूप से निर्धारित नहीं कर सकता, न्यायालय के लिए वाद-पत्र वापस करना संभव है। वर्तमान मामले में, केवल एक लिखित कथन दायर किया गया था जिसमें स्वामित्व का दावा किया गया था। केवल लिखित कथन दायर कर देने मात्र से प्रतिवादी-याचिकाकर्ता उचित न्यायालय में वाद-पत्र वापस करने के लिए आवेदन करने का हकदार नहीं हो जाता। उपरोक्त के आलोक में, मेरी राय है कि अवर न्यायालय इस स्तर पर अधिनियम की धारा 23 के तहत विवेक का प्रयोग करने से इनकार करने में सही थी।"

संगम लाल यादव बनाम ब्रह्म स्वरूप तिवारी, 2012 एसीजे 2376 के मामले में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने पैराग्राफ 10 से 18 में निम्नलिखित व्यवस्था दी है:

"10. इस प्रावधान को पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट होता है कि यह न्यायालय को वाद-पत्र वापस करने का एक विकल्प देता है ताकि उसे स्वामित्व निर्धारित करने वाले क्षेत्राधिकार युक्त न्यायालय में प्रस्तुत किया जा सके; लेकिन ऐसा करने से पहले न्यायालय को यह संतुष्ट होना चाहिए कि वादी का अधिकार और उसके द्वारा मांगा गया अनुतोष, अचल संपत्ति के स्वामित्व के प्रमाण या अप्रमाण पर निर्भर करता है।

11. अतः, 1887 के अधिनियम की धारा 23, लघु वाद न्यायालय के स्वामित्व के प्रश्न पर निर्णय लेने के क्षेत्राधिकार को पूरी तरह से समाप्त नहीं करती है। यह बार-बार दोहराया गया है कि लघु वाद के मामले में स्वामित्व के प्रश्न को 'अंतिम रूप' से तय नहीं किया जा सकता, लेकिन मुख्य मुद्दे का निर्णय करने के उद्देश्य से इसे प्रासंगिक रूप से तय किया जा सकता है, बशर्ते वह मामला अन्य प्रकार से लघु वाद न्यायालय के क्षेत्राधिकार के भीतर हो।

12. 1887 के अधिनियम की धारा 23 की व्याख्या सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने बुधू मल बनाम महाबीर प्रसाद (1988) 4 एससीसी 194 में की है और न्यायालय ने कहा:'

"यह सच है कि धारा 23 लघु वाद न्यायालय के लिए यह अनिवार्य नहीं बनाती है कि किरायेदार द्वारा स्वामित्व का प्रश्न उठाए जाने पर वह अनिवार्य रूप से वाद-पत्र वापस कर दे। यह भी सच है कि किरायेदारी के अनुबंध के आधार पर मकान मालिक द्वारा अपने किरायेदार के खिलाफ दायर वाद में, स्वामित्व के प्रश्न

की प्रासंगिक रूप से जांच की जा सकती है और इस संबंध में लघु वाद न्यायाधीश द्वारा दर्ज किया गया कोई भी निष्कर्ष, स्वामित्व पर आधारित वाद में 'प्राड्न्याय' (Res Judicata) नहीं होगा। हालांकि, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि धारा 23 को अधिनियमित करने में विधायिका के मन में कुछ ऐसे मामले अवश्य रहे होंगे जिनमें पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए वाद-पत्र वापस करने के विवेक का प्रयोग किया जाना चाहिए। वर्तमान मामलों के तथ्यों पर हमें लगता है कि ये ऐसे मामले हैं जिनमें पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए वाद-पत्रों को उस न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिए वापस किया जाना चाहिए था जिसके पास स्वामित्व निर्धारित करने का क्षेत्राधिकार है।"

13. न्यायालय ने आगे कहा है कि, यदि वाद को मकान मालिक और किरायेदार के बीच का वाद नहीं माना जा सकता है, तो वह लघु वाद न्यायालय द्वारा संज्ञान लेने योग्य नहीं होगा।

14. पुनः शमीम अख्तर बनाम इकबाल अहमद (2000) 8 एससीसी 123 में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि लघु वाद न्यायालय केवल प्रासंगिक रूप से और कथित मकान मालिक तथा कथित किरायेदार के बीच के वाद के प्रयोजनों के लिए स्वामित्व के प्रश्न को तय करने का हकदार है, लेकिन ऐसा निर्णय नियमित सिविल न्यायालय के निर्णय के अधीन होता है।

15. इसी आशय का निर्णय इस न्यायालय द्वारा शील चंद बनाम द्वितीय ए.डी.जे., झांसी 2006 (1) एआरसी 359 में भी दिया गया है।

16. याचिकाकर्ता द्वारा उद्धृत वाद में भी उसी विचार की गूँज है, जो ऊपर मेरे द्वारा संदर्भित विचारों के अनुरूप है। हरनाम सिंह (उपरोक्त) के पैरा 4 में न्यायालय ने कहा, "कानून में यह अच्छी तरह से स्थापित है कि यदि मकान मालिक और किरायेदार के संबंधों के आधार पर कोई वाद दायर किया जाता है और स्वामित्व का प्रश्न प्रासंगिक रूप से उत्पन्न होता है, तो लघु वाद न्यायाधीश को उक्त प्रश्न का निर्णय करना चाहिए।"

17. इसी प्रकार इकबाल अहमद (उपरोक्त) में निर्णय के पैरा 5 में न्यायालय ने कहा:

"लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 23 के अवलोकन मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसे लागू करने के लिए, न्यायालय को इस निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि वाद में वादी द्वारा मांगा गया अनुतोष, संबंधित अचल संपत्ति के स्वामित्व के प्रमाण या अप्रमाण पर निर्भर करता है, जिसका ऐसा न्यायालय अंतिम रूप से न्यायनिर्णयन नहीं कर सकता; क्योंकि लघु वाद न्यायालय के समक्ष कार्यवाही संक्षिप्त प्रकृति की होती है और स्वामित्व के प्रश्न को निर्धारित करने के लिए एक विस्तृत जांच की आवश्यकता होती है, जिसे उक्त प्रश्न का निर्धारण करने के लिए क्षेत्राधिकार रखने वाले सक्षम न्यायालय द्वारा किए जाने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए। यह कानून का सही प्रस्ताव नहीं होगा कि लघु वाद न्यायालय के पास स्वामित्व के प्रश्न में जाने का बिल्कुल भी क्षेत्राधिकार नहीं है, इसलिए, जब भी वादी के स्वामित्व पर विवाद किया जाता है, तो लघु वाद न्यायाधीश वाद को उचित न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए वापस करने हेतु बाध्य है। इसके पास

अपने सामने वास्तविक मुद्दे को निर्धारित करने के लिए ऐसे प्रश्न में प्रासंगिक रूप से जाने की शक्ति भी है। इस विचार के समर्थन में रिट याचिका संख्या 22390 वर्ष 1991, राकेश कुमार बनाम VIवें अपर जिला न्यायाधीश, 7.4.1998 को निर्णीत, (1998 (2) एआरसी 178) के निर्णय से मदद ली जा सकती है।"

18. उपरोक्त नजीरें स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं कि केवल स्वामित्व का विवाद उठाए जाने मात्र से, लघु वाद न्यायालय के समक्ष दायर वाद का निर्णय करने का क्षेत्राधिकार समाप्त नहीं होगा और वह ऐसे विवाद पर वाद-पत्र वापस करने के लिए बाध्य नहीं है। धारा 23 स्पष्ट रूप से कहती है कि केवल तभी जब न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वह वादी के अधिकार और उसके द्वारा मांगे गए अनुतोष का निर्णय नहीं कर सकता क्योंकि वह अचल संपत्ति के स्वामित्व के प्रमाण या अप्रमाण पर निर्भर करेगा, तो वह वाद-पत्र वापस कर सकता है, अन्यथा नहीं।

फ़ज़लुर रहमान बनाम गोपाल साहू 2016 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 2643 के मामले में, इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने पैराग्राफ-8 और 9 में निम्नलिखित व्यवस्था दी है:

8. इस मामले में, मुकदमे वाली संपत्ति के उत्तराधिकार के संबंध में तत्कालीन मकान मालिक के वारिसों के बीच कोई विवाद प्रतीत नहीं होता है और यह भी विवाद में नहीं है कि तत्कालीन मालिक/मकान मालिक वादी के दादा थे, जिनकी वसीयत को वादी ने उनकी मृत्यु के बाद प्रस्तुत किया है। लिखित कथन के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि प्रतिवादी ने न तो स्वयं में और न ही किसी अन्य व्यक्ति में स्वामित्व का दावा किया है, हालांकि उसने यह दावा किया है कि वसीयत को साबित करने का भार वादी पर है जिसने इसे पेश किया है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 23 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय को वाद-पत्र वापस करने के तर्क पर विचार करते समय, लघु वाद न्यायाधीश के पास इसे वापस करने या न करने का विवेक निहित है। किरायेदार द्वारा स्वामित्व का प्रश्न उठाए जाने पर न्यायालय के लिए वाद-पत्र वापस करना अनिवार्य नहीं है क्योंकि वादी और प्रतिवादी के बीच मकान मालिक-किरायेदार संबंध के प्रश्न का निर्णय करते समय स्वामित्व के ऐसे प्रश्नों की प्रासंगिक रूप से जांच की जा सकती है। शमीम अख्तर बनाम इकबाल अहमद में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया कि प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 23(1) के तहत न्यायालय में निहित शक्ति विवेकाधीन है। यह देखा गया कि वाद-घर पर वादी के स्वामित्व के प्रश्न पर लघु वाद न्यायालय द्वारा कार्यवाही में एक प्रासंगिक प्रश्न के रूप में विचार किया जा सकता है और स्वामित्व का अंतिम निर्धारण सक्षम न्यायालय के निर्णय के लिए छोड़ा जा सकता है। राम सेवक बनाम प्रमोद कुमार के मामले में उक्त निर्णय का अनुसरण करते हुए, इस न्यायालय ने तत्कालीन मकान मालिक द्वारा वादी के पक्ष में वसीयत के वैध निष्पादन से संबंधित प्रश्न की लघु वाद न्यायाधीश द्वारा जांच को यह कहते हुए मंजूरी दी कि वादी और प्रतिवादी के बीच मकान मालिक-किरायेदार संबंध के प्रश्न का निर्णय करते समय ऐसे प्रश्नों की प्रासंगिक जांच की जा सकती है। वास्तव में, राम सेवक के मामले (उपरोक्त) के निर्णय की शुद्धता पर संदेह नहीं किया गया है, बल्कि इसे

श्रीमती भगवती देवी (उपरोक्त) के निर्णय में रिपोर्ट के पैराग्राफ 32 के माध्यम से स्वीकार किया गया है, जिस पर पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया है।

9. वर्तमान मामले में, तत्कालीन मकान मालिक के वारिसों के बीच कोई विवाद नहीं है, इसलिए अवर न्यायालय के लिए वादी के पक्ष में वसीयत के निष्पादन से संबंधित प्रश्न की प्रासंगिक रूप से जांच करना संभव है, विशेष रूप से इस तथ्य को देखते हुए कि उत्तर प्रदेश राज्य के भीतर स्थित संपत्ति के संबंध में वसीयत पेश करने के लिए उसका प्रोबेट प्राप्त करना अनिवार्य नहीं है। (देखें: नोबत राम बनाम गायत्री देवी)।

26. उपरोक्त निर्णयों के सूक्ष्म अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि लघु वाद न्यायालय को अपने समक्ष आए किसी वाद में 'स्वामित्व' के उस मुद्दे पर विचार करने से वंचित नहीं किया गया है जो 'प्रासंगिक' रूप से उत्पन्न होता है। पीएससीसी की धारा 23 के तहत आवेदन पर विचार करते समय, लघु वाद न्यायालय किसी वाद को नियमित न्यायालय द्वारा तय किए जाने के लिए यांत्रिक रूप से संदर्भित करने के लिए बाध्य नहीं है। उन सभी मामलों में जहाँ स्वामित्व का मुद्दा उठाया जाता है, न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह मामले पर विचार करे और केवल तभी, जब उसे लगे कि स्वामित्व के जटिल प्रश्न शामिल हैं, वह वाद-पत्र को नियमित न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए संदर्भित और वापस कर सकता है। पीएससीसी की धारा 23 के तहत प्रदत्त शक्ति प्रकृति में विवेकाधीन है, लेकिन जिस विवेक का प्रयोग किया जाना है, वह भी कानून की सीमाओं के भीतर होना चाहिए।

27. उपरोक्त सिद्धांतों को वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू करने से यह स्पष्ट होता है कि वर्ष 1995 में वाद की शुरुआत से लेकर आज तक, प्रतिवादी (जुगेश्वर प्रसाद) ने न तो कभी स्वामित्व पाने के लिए और न ही इसके आधार पर कोई कानूनी कार्यवाही शुरू की है। यह तथ्य इसलिए महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि भले ही प्रतिवादी यह दावा करता है कि संपत्ति 'पैतृक' थी, लेकिन वास्तविकता यह है कि वाद की कार्यवाही वर्ष 1995 में शुरू हुई थी और यदि प्रतिवादी के मन में कोई आशंका थी, तो वह अपने अधिकारों के लिए स्वामित्व/घोषणा/विभाजन का वाद दायर कर सकता था। हालांकि, ऐसा कभी नहीं किया गया। संपत्ति के पैतृक होने का एक कमजोर तर्क दिया गया था, लेकिन न तो प्रतिवादी ने और न ही किसी अन्य व्यक्ति ने श्रीमती संपता देवी के अधिकार के विपरीत किसी अधिकार या स्वामित्व का दावा किया, और न ही इस संबंध में कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया गया।

28. जहाँ तक मकान संख्या 135, पुरनिया तालाब, जनपद बलरामपुर स्थित संपत्ति का संबंध है, यह दशकों से श्रीमती संपता देवी के नाम पर दर्ज है। रिकॉर्ड से यह भी स्पष्ट होता है कि यद्यपि नगर पालिका की रसीदें और नगर पालिका द्वारा जारी स्वामित्व प्रमाण पत्र अंतिम रूप से 'स्वामित्व' तय नहीं करते, लेकिन तथ्य यह है कि ये सभी दस्तावेज श्रीमती संपता देवी द्वारा और उनके बाद हनुमान प्रसाद (प्रतिवादी के भाई) द्वारा रिकॉर्ड पर रखे गए थे। इसके बावजूद, जुगेश्वर प्रसाद ने अपने जीवनकाल में इन्हें कभी चुनौती देने के लिए

कोई वाद दायर नहीं किया, जबकि वह भली-भांति जानते थे कि उनका भाई हनुमान प्रसाद, श्रीमती संपता द्वारा निष्पादित वसीयत के आधार पर संपत्ति में अधिकार का दावा कर रहा था।

29. यहाँ सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि श्रीमती संपता द्वारा 30.11.1979 को हनुमान प्रसाद के पक्ष में निष्पादित वसीयत (प्रदर्श संख्या 25 क) के साक्षी स्वयं जुगेश्वर प्रसाद थे। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि जुगेश्वर प्रसाद को इसकी जानकारी नहीं थी, और जब लिखित कथन रिकॉर्ड पर दायर किया गया, तब भी उन्होंने इसे कोई चुनौती नहीं दी।

30. रिकॉर्ड से जो एक और पहलू सामने आता है, वह यह तथ्य है कि श्रीमती संपता की मृत्यु के बाद, जहाँ हनुमान प्रसाद ने वसीयत के आधार पर संपत्ति में अधिकारों का दावा किया, वहीं स्वयं जुगेश्वर प्रसाद ने कभी इसका विरोध नहीं किया। इसके विपरीत, जुगेश्वर प्रसाद के पुत्र, यानी संतोष चंद्र गुप्ता ने, श्रीमती संपता द्वारा अपने पक्ष में निष्पादित एक कथित वसीयत के आधार पर अधिकार का दावा करते हुए वाद में अपना पक्षकार बनाने/प्रतिस्थापन हेतु आवेदन दायर किया।

31. यहाँ यह ध्यान देना प्रासंगिक होगा कि जिस क्षण संतोष चंद्र गुप्ता ने श्रीमती संपता देवी द्वारा निष्पादित एक कथित वसीयत के आधार पर संपत्ति में अधिकारों का दावा किया, उससे यह प्रदर्शित होता है कि संतोष चंद्र गुप्ता ने यह स्वीकार कर लिया कि संपत्ति श्रीमती संपता की थी और उनके पास उक्त वसीयत निष्पादित करने का अधिकार था। यह इंगित करता है कि जुगेश्वर प्रसाद के पुत्र ने स्वीकार किया कि संपत्ति श्रीमती संपता देवी की थी और संतोष चंद्र गुप्ता के पिता यानी जुगेश्वर प्रसाद ने न तो उक्त कथन को चुनौती दी और न ही कोई ऐसा वाद दायर किया जिसमें यह कहा गया हो कि ये तथ्य सही नहीं हैं, और न ही जुगेश्वर प्रसाद द्वारा श्रीमती संपता की वसीयत को कभी चुनौती दी गई, चाहे वह वसीयत श्रीमती संपता देवी द्वारा हनुमान प्रसाद के पक्ष में की गई हो या संतोष चंद्र गुप्ता के पक्ष में।

32. रिकॉर्ड से आगे यह तथ्य भी प्रकट होता है कि संतोष चंद्र गुप्ता ने ही सिविल जज (सीनियर डिवीजन), बलरामपुर के समक्ष वाद संख्या 59 वर्ष 2011 दायर किया था, जिसमें उन्होंने श्रीमती संपता देवी द्वारा 03.11.1996 को उनके पक्ष में निष्पादित एक 'अपुंजीकृत वसीयत' के आधार पर घोषणा की मांग की थी। यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि भले ही जुगेश्वर प्रसाद के पुत्र ने वसीयत के आधार पर स्वामित्व का दावा करते हुए वाद दायर किया हो, लेकिन तथ्य यह है कि संतोष चंद्र गुप्ता ने, श्रीमती संपता देवी द्वारा निष्पादित वसीयत के आधार पर अपने अधिकार की घोषणा की मांग करते हुए, परोक्ष और स्पष्ट रूप से श्रीमती संपता देवी के स्वामित्व और मालिकाना हक को स्वीकार कर लिया है।

33. रिकॉर्ड यह भी इंगित करता है कि मेसर्स शांति क्लॉथ हाउस द्वारा दायर एक वाद, जिसका नियमित वाद संख्या 106 वर्ष 1979 था और जिसमें जुगेश्वर प्रसाद के विरुद्ध धन वसूली की डिक्री मांगी गई थी; उस वाद में जुगेश्वर प्रसाद ने अपने अभिवचनों और अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा था कि प्रश्नगत संपत्ति श्रीमती

संपता देवी की थी। नियमित वाद संख्या 106 वर्ष 1979 में जुगेश्वर प्रसाद का वह बयान और लिखित कथन रिकॉर्ड पर रखा गया है, जिसके अवलोकन से इस संबंध में उनकी स्पष्ट स्वीकृति प्रकट होती है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि इस संबंध में जुगेश्वर प्रसाद की कोई स्वीकृति नहीं थी या विचारण न्यायालय ने उक्त स्वीकृति का गलत मूल्यांकन किया था। यह कहना कुछ हद तक सही हो सकता है कि नगर पालिका द्वारा जारी हाउस टैक्स की रसीदें या प्रमाण पत्र, जिनमें संपत्ति को श्रीमती संपता देवी का बताया गया है, स्वामित्व का निर्णायक प्रमाण नहीं हो सकते; लेकिन तथ्यों, परिस्थितियों और जिस प्रकार से ये प्रविष्टियाँ कई दशकों से जारी हैं और जिन्हें प्रतिवादी के किसी भी भाई द्वारा चुनौती नहीं दी गई है, उसे देखते हुए इस तथ्य को बल मिलता है कि बकाया किराए और बेदखली के लिए श्रीमती संपता देवी द्वारा दायर वाद को केवल इसलिए दरकिनार नहीं किया जा सकता क्योंकि वाद के अंतिम चरण में प्रतिवादी द्वारा कथित स्वामित्व का मुद्दा उठाया गया है।

34. पुनरीक्षणवादी की ओर से इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया कि जब वाद का पहली बार विरोध किया गया था, तब उन्हें स्वामित्व का मुद्दा उठाने से किसने रोका था। इस बात का भी कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया कि किन परिस्थितियों में पुनरीक्षणवादी के पुत्र ने स्वयं संपत्ति में अधिकारों का दावा किया, जिससे परोक्ष रूप से श्रीमती संपता देवी के स्वामित्व को स्वीकार कर लिया गया था। इन सभी तथ्यों की जानकारी होने के बावजूद, पुनरीक्षणवादी ने अपने अधिकारों की घोषणा कराने या अपने अधिकारों को सिद्ध करने के लिए कोई भी सार्थक कार्यवाही शुरू करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया।

35. रिकॉर्ड से एक और ऐसा तथ्य सामने आया है जिसे पुनरीक्षणवादी झुठला नहीं सका, वह यह था कि मेसर्स शांति क्लॉथ हाउस द्वारा एक वाद दायर किया गया था जिसमें जुगेश्वर प्रसाद ने अपने लिखित कथन में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था कि संपत्ति श्रीमती संपता देवी की थी और वह वहां किरायेदार थे। यह भी देखने योग्य है कि भले ही पुनरीक्षणवादी ने श्रीमती संपता देवी के मालिकाना हक पर विवाद खड़ा करने का प्रयास किया है, लेकिन उन्होंने यह संकेत नहीं दिया कि स्वामित्व वास्तव में किसमें निहित है–क्या वह उनके पास था या किसी अन्य व्यक्ति के पास।

36. बकाया किराए और बेदखली के वाद को केवल पक्षकारों के बीच मकान मालिक और किरायेदार के रूप में संबंधों के अस्तित्व के मापदंडों पर देखा जाता है। स्वामित्व का प्रश्न लघु वाद न्यायालय द्वारा कभी भी 'अंतिम रूप' से तय नहीं किया जाना चाहिए। यदि किसी पक्ष द्वारा यह प्रासंगिक रूप से उठाया जाता है, तो लघुवाद न्यायालय वाद के न्यायनिर्णयन के प्रयोजनों के लिए प्रथम दृष्टया इसे तय करने के लिए सक्षम है। किसी भी स्थिति में, ऐसा कोई भी प्रासंगिक निष्कर्ष हमेशा नियमित न्यायालयों द्वारा तय किए गए वाद के निर्णय के अधीन होता है।

37. 'ऐसा कहने के बाद, यह न्यायालय पाता है कि न तो पुनरीक्षणवादी ने स्वयं में स्वामित्व का दावा किया है, और न ही 1995 में शुरू हुए पूरे मुकदमे के दौरान पुनरीक्षणवादी ने अपने अधिकारों की घोषणा कराने का

कोई प्रयास किया; बल्कि उनका प्रयास केवल तर्क खड़ा करने का रहा है, उसे उसके तार्किक निष्कर्ष तक पहुँचाने का नहीं। उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, यह न्यायालय यह नहीं पाता कि लघु वाद न्यायालय द्वारा दिनांक 26.07.2011 को दिए गए निर्णय में कोई ऐसी प्रत्यक्ष त्रुटि है जो इस न्यायालय को हस्तक्षेप करने के लिए प्रेरित करे।

38. यह पुनरीक्षण 2011 से इस न्यायालय के समक्ष लंबित है और चौदह वर्ष से अधिक का समय बीत चुका है। विचारण न्यायालय के लिए कार्यवाही को छह महीने की अवधि के भीतर तय करने का पहले से ही एक आदेश मौजूद है, इसलिए यह न्यायालय इस निर्णय की तारीख से छह महीने की अवधि की गणना करने के अलावा कोई और निर्देश देना नहीं चाहता है, ताकि कार्यवाही को विचारण न्यायालय द्वारा साप्ताहिक आधार पर तारीखें तय करके यथाशीघ्र अंतिम रूप से तय किया जा सके। पक्षकार 27 मई, 2025 को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे।

39. उपरोक्त निर्देशों और टिप्पणियों के साथ, यह न्यायालय पाता है कि पुनरीक्षण में कोई गुण (मेरिट) नहीं है और तदनुसार, इसे **खारिज** किया जाता है। विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 26.07.2011 के आदेश को बरकरार रखा जाता है। वाद-व्यय आसान किया जाता है।

40. विचारण न्यायालय का रिकॉर्ड आज से एक सप्ताह के भीतर विशेष संदेशवाहक भेजकर संबंधित न्यायालय को यथाशीघ्र वापस भेज दिया जाएगा।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1783

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.05.2025

समक्ष

माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 39316 वर्ष 2023

डॉ. नीरज कुमार **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...विपक्षी गण**

आवेदक के अधिवक्ता:

श्री शेखर चौधरी, श्री विशाल कश्यप, श्री जी.एस. चतुर्वेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री अनिरुद्ध चतुर्वेदी, श्री दिनेश कुमार शर्मा, शासकीय अधिवक्ता

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 – भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 304 एवं 304ए – चिकित्सीय लापरवाही – चिकित्सक का अभियोजन – आपराधिक दायित्व का दायरा – पुलिस के समक्ष संस्वीकृति कथन – अग्राह्यता – मेडिकल बोर्ड द्वारा आवेदक को दोषमुक्त करना – समन जारी करने से पूर्व विशेषज्ञ की राय पर विचार करने में मजिस्ट्रेट की विफलता – अभिनिर्धारित, धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज संस्वीकृति कथन अग्राह्य – चिकित्सा व्यवसायी पर धारा 304, 304ए भारतीय दंड संहिता के तहत तब तक मुकदमा नहीं चलाया जा सकता जब तक कि बहुत उच्च स्तर की घोर या लापरवाही सिद्ध न हो जाए– कार्यवाही रद्द की गई।

(पैरा 29, 48, 55, 59, 66 और 69)

निर्णय:

मामले के गुण-दोषों पर आते हुए, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दो मुद्दों पर प्रकाश डाला गया है। विचारणीय प्राथमिक मुद्दा यह है कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत विवेचना अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया बयान आवेदक के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही शुरू करने का आधार बन सकता है, और क्या ऐसा बयान उस उद्देश्य के लिए साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य है। (पैरा 29)

जैकब मैथ्यू (उपरोक्त) मामले में स्थापित कानूनी सिद्धांतों के आलोक में, चिकित्सा लापरवाही के लिए एक डॉक्टर के दायित्व का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन किया जाना चाहिए। एक डॉक्टर जो लगन से रोगी का उपचार और उसे ठीक करता है, उसे केवल निर्णय की त्रुटियों या छोटी चूकों के लिए आपराधिक रूप से उत्तरदायी नहीं ठहराया जाना चाहिए। हालांकि, वे डॉक्टर जो घोर लापरवाही के साथ कार्य करते हैं, और मानक चिकित्सा पद्धतियों की घोर अवहेलना प्रदर्शित करते हैं, उन्हें आपराधिक कानून के तहत जवाबदेह ठहराया जा सकता है। (पैरा 48)

जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के पैरा 12 में यह माना कि केवल देखभाल की कमी या लापरवाही का कार्य, जो नागरिक दायित्व (सिविल लायबिलिटी) को जन्म दे सकता है, आपराधिक दायित्व को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि आपराधिक अपराध स्थापित करने के उद्देश्य से लापरवाही घोर या बहुत उच्च स्तर की होनी चाहिए। केवल ऐसी गंभीर लापरवाही ही दंडात्मक परिणामों की वारंटी देने वाला एक आपराधिक कृत्य हो सकती है। (पैरा 55)

यह एक स्वीकृत स्थिति है कि आवेदक एक योग्य चिकित्सक था। पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों की पूरी प्रचुरता में आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ चूक या कार्य के किसी भी विशिष्ट आरोप का अभाव है। चिकित्सक द्वारा इंजेक्शन देने का कार्य, जैसा कि उन पर आरोपित किया गया है, यदि इसे सत्य भी मान लिया जाए, तो इसे लापरवाही का कार्य कहा जा सकता है क्योंकि इंजेक्शन देने से पहले उचित देखभाल और सावधानी की कमी रही होगी। लेकिन, न्यायालय इस लापरवाही के कृत्य के लिए आवेदक को स्पष्ट रूप से आपराधिक रूप से उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता क्योंकि यह उसकी असावधानी या उचित ध्यान की कमी हो सकती है। जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एस.वी.एस. नारायण राव (उपरोक्त) के मामले में पहले ही चर्चा और अवलोकन किया गया है कि वर्तमान मामले की तरह ही, परिणामतः पाँच इंजेक्शन देने में निर्णय की त्रुटि आपराधिक लापरवाही के समान नहीं है। (पैरा 59)

डॉ. मोहन बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि टेलीफोन पर स्टाफ नर्स को इंजेक्शन लगाने का निर्देश देने के आरोप को पढ़ने के बाद, जिस इंजेक्शन को रोगी को लगाने पर स्पष्ट रूप से प्रतिक्रिया हुई और उसकी मृत्यु हो गई, वह भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-I के तहत अपराध नहीं होगा और धारा 304ए के अंतर्गत आ सकता है। (पैरा 66)

आवेदन स्वीकार किया गया। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. दीपकभाई जगदीश चंद्र पटेल बनाम गुजरात राज्य, (2019) 16 एससीसी 547
2. अग्नू नगेशिया बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1966 एससी 119

3. जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य, (2005) 6 एससीसी 1

4. डॉ. सुरेश गुप्ता बनाम एनसीटी दिल्ली सरकार, एआईआर 2004 एससी 4091

5. एस.वी.एस. नारायण राव बनाम रत्नमाला, (2013) 10 एससीसी 741

6. डॉ. मोहन बनाम तमिलनाडु राज्य, आपराधिक अपील संख्या 720-722, वर्ष 2025 (एससी)

7. पंजाब राज्य बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर, (2011) 14 एससीसी 771

8. मार्टिन एफ. डिसूजा बनाम मोहम्मद इशफाक, एआईआर 2009 एससी 2049

9. पंजाब राज्य बनाम शिव राम एवं अन्य

10. आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1960 एससी 866, हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल 1992 एससीसी (आपराधिक) 426, (2005) 7 एससीसी 1

11. बिहार राज्य बनाम पी.पी. शर्मा 1992 एससीसी (आपराधिक) 192

12. झंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम मोहम्मद सराफुल हक एवं अन्य (पैरा-10) 2005 एससीसी (आपराधिक) 283

13. बद्रीनाथ बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य, एआईआर 2000 एससी 3243

14. केरल राज्य बनाम पुथनकावु एन.एस.एस. करयोगम एवं अन्य, (2001) 10 एससीसी 191

15. मंगल प्रसाद तमोली (मृत) कानूनी वारिसों के माध्यम से बनाम नरवदेश्वर मिश्रा (मृत) कानूनी वारिसों एवं अन्य के माध्यम से, (2005) 3 एससीसी 422

(माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान द्वारा पारित)

1. श्री जी.एस. चतुर्वेदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता विद्वान अधिवक्ताओं श्री विशाल कश्यप और श्री शेखर चौधरी ने की, आवेदकों का प्रतिनिधित्व करने के लिए उपस्थित हुए; श्री अनुरुद्ध चतुर्वेदी और श्री दिनेश कुमार शर्मा, विद्वान अधिवक्ता विपक्षी संख्या 2 की ओर से उपस्थित हुए और श्री अमित सिंह चौहान, विद्वान ए.जी.ए.-I राज्य की ओर से उपस्थित हुए। अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

2. वर्तमान धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता का आवेदन आरोप पत्र संख्या 593 वर्ष 2023, दिनांक 25.08.2023 और संज्ञान/समन आदेश दिनांक 19.09.2023 के साथ-साथ आपराधिक वाद संख्या 7991 वर्ष 2023 (राज्य बनाम डॉ. नीरज कुमार) की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने के लिए दायर किया गया है, जो मुकदमा अपराध संख्या 376 वर्ष 2023, भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के तहत, थाना- खुर्जा नगर, जिला- बुलंदशहर से उत्पन्न हुआ है और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर की अदालत में लंबित है।

अनुवादित

3. इससे पहले 27.10.2023 को, धारा 482 द.प्र.स. के तहत वर्तमान आवेदन का निस्तारण किया गया था, जिसमें आवेदक को उस तिथि से एक महीने की अवधि के भीतर संबंधित अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण करने और जमानत के लिए आवेदन करने का निर्देश दिया गया था, जिसे अवर न्यायालय द्वारा कानून के अनुसार शीघ्रता से निर्णीत किया जाना था।

4. ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदक ने अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1431 वर्ष 2024 दायर किया था जिसमें 29.02.2024 को कोई आदेश पारित किया गया था। आदेश दिनांक 27.10.2023 को वापस लेने (रिकॉल) के लिए एक आवेदन संख्या 3 वर्ष 2023 दायर किया गया था, जिसमें 12.03.2024 को इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

"संदर्भ:- आपराधिक विविध वापसी (रिकॉल) आवेदन संख्या 3, वर्ष 2023

1. दिनांक 29.02.2024 के आदेश के माध्यम से समन्वय पीठ द्वारा आदेश पारित किया गया था। आदेश का पैरा 9 नीचे उद्धृत है:-

"9. इसे आपराधिक विविध आवेदन 482 संख्या 39316, वर्ष 2023 (डॉ. नीरज कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) के साथ संबद्ध करें और दोनों मामलों की सुनवाई के लिए पीठ नामित करने हेतु मामले को माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत करें और यदि संभव हो, तो इसे 06.03.2024 को उपयुक्त पीठ के समक्ष सूचीबद्ध करें।"

2. कार्यालय को निर्देशित किया जाता है कि दिनांक 29.02.2024 के आदेश के अनुपालन में नामांकन हेतु रिकॉर्ड माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया जाए। रिकॉर्ड के अवलोकन के अनुसार माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा कोई नामांकन नहीं किया गया है।

3. इस न्यायालय का यह विचार है कि आवेदक की ओर से प्रस्तुत आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1431 वर्ष 2024 की सुनवाई क्षेत्राधिकार रखने वाली अदालत द्वारा की जानी चाहिए और धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 39316, वर्ष 2023 एक अलग कारण पर आधारित है जिसमें वापसी (रिकॉल) आवेदन लंबित है।

4. चूँकि धारा 482 आवेदन के अधिवक्ता, जिन्होंने वापसी आवेदन प्रस्तुत किया है, उपस्थित नहीं हैं, इसलिए मामले को टाल दिया जाता है और आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1431 वर्ष 2024 की सुनवाई के लिए इसे नामांकन हेतु माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

अनुवादित

5. न्यायालय की राय में, अग्रिम जमानत आवेदन को धारा 482 के आवेदन के साथ जोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि दोनों कार्यवाहियाँ अलग-अलग कार्यवाहियाँ हैं और अग्रिम जमानत आवेदन को धारा 482 के आवेदन से अलग कर दिया जाए।"

5. आवेदक ने विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 14974 वर्ष 2023 दायर करके सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसमें 24.11.2023 को सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:

"विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत दलीलों को ध्यान में रखते हुए और उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादित आदेश का अवलोकन करने के बाद, हम इस मोड़ पर वर्तमान याचिका पर विचार करने के इच्छुक नहीं हैं। हालांकि, संबंधित अधिवक्ता- श्री शेखर चौधरी द्वारा इस न्यायालय के समक्ष दायर हलफनामे पर विचार करते हुए, याचिकाकर्ता के लिए उक्त हलफनामे पर विचार करने के अनुरोध के साथ उच्च न्यायालय जाने का विकल्प खुला रहेगा।
उच्च न्यायालय, ऐसा अनुरोध किए जाने पर, उस पर विचार कर सकता है और वर्तमान विशेष अनुमति याचिका के खारिज होने से प्रभावित हुए बिना, कानून के अनुसार उचित आदेश पारित कर सकता है।
उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, विशेष अनुमति याचिका खारिज की जाती है। लंबित आवेदन, यदि कोई हों, निस्तारित माने जाएंगे।"

6. उपरोक्त आदेश के आलोक में, वापसी (रिकॉल) आवेदन संख्या 3 वर्ष 2023 पर आवेदक के अधिवक्ता को सुना गया और इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 04.04.2024 के आदेश के माध्यम से आवेदन को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि दंड प्रक्रिया संहिता (द.प्र.स.) की धारा 362 के प्रावधानों के तहत यह विचारणीय नहीं है।

7. तत्पश्चात, आवेदक ने आपराधिक अपील संख्या 3929 वर्ष 2024 (विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 5059 वर्ष 2024) दायर करके पुनः सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 23.09.2024 के आदेश के माध्यम से उच्च न्यायालय से इस मामले को यथासंभव शीघ्र गुण-दोष के आधार पर तय करने का अनुरोध किया। उक्त कार्यवाही के अंतिम निस्तारण तक, सत्र न्यायाधीश, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश की अदालत में लंबित सत्र मामला संख्या 854 वर्ष 2024 के विचारण पर रोक लगा दी गई थी।
8. मामले को पुनः माननीय न्यायमूर्ति दीपक वर्मा के समक्ष रखा गया, जिन्होंने पहले 27.10.2023 को मामले का फैसला किया था और 04.04.2024 को वापसी (रिकॉल) आवेदन को भी खारिज कर दिया था। इसके बाद, 23.11.2024 को इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

1. माननीय मुख्य न्यायाधीश ने दिनांक 17.11.2024 के आदेश के माध्यम से इस मामले को इस पीठ को नामित किया।

2. इस न्यायालय ने दिनांक 27.10.2023 के आदेश के माध्यम से, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद धारा 482 द.प्र.स. के तहत वर्तमान आवेदन का निस्तारण किया था। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के इस आश्वासन पर कि यदि आवेदक को कुछ संरक्षण प्रदान किया जाता है तो वह जमानत के लिए आवेदन करेगा, मामले का निस्तारण कर दिया गया था। तत्पश्चात, आवेदक ने एक हलफनामा दायर करके माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष इस न्यायालय के दिनांक 27.10.2023 के आदेश को चुनौती दी कि उसके अधिवक्ता ने धारा 482 द.प्र.स. के तहत वर्तमान आवेदन को निस्तारित करने के लिए कभी भी कोई तर्क नहीं दिया था, जैसा कि दिनांक 27.10.2023 के आदेश में उल्लेखित है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दायर हलफनामे का पैराग्राफ संख्या 3 नीचे उद्धृत है:-

"पूरे सम्मान के साथ, मैं यह कहता हूँ कि मैंने ऐसा कोई बयान नहीं दिया जो मामले को उसके गुण-दोष के आधार पर आगे न बढ़ाने के इरादे को दर्शाता हो। मैं इस बात पर जोर देना चाहूँगा कि वर्तमान मामले की परिस्थितियों को देखते हुए, जहाँ मैं एक अत्यंत सम्मानित डॉक्टर का प्रतिनिधित्व कर रहा हूँ, और मेडिकल बोर्ड की रिपोर्ट के आलोक में, जो डॉक्टर को किसी भी लापरवाही से दोषमुक्त करती है, मेरे पास मामले को गुण-दोष के आधार पर बहस न करने का कोई कारण नहीं था। इसके अलावा, माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष याचिका में मांगी गई प्रार्थनाओं को विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया जा सकता है, और इसलिए मेरे लिए ऐसी कोई मौखिक प्रार्थना करने का कोई अवसर नहीं था जैसा कि विवादित आदेश में दर्ज किया गया है।"

3. चूँकि, इस न्यायालय का दिनांक 27.10.2023 का आदेश पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद पारित किया गया था, लेकिन आवेदक ने इस न्यायालय पर पूर्णतः अविश्वास व्यक्त किया है, ऐसी स्थिति में, यह न्यायालय इस मामले को दोबारा सुनने का इच्छुक नहीं है। तदनुसार, इस मामले को (सुनवाई से) मुक्त किया जाता है।

4. यह आदेश आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री विशाल कश्यप और सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिरुद्ध चौधरी की उपस्थिति में पारित किया गया है।

5. मामले को माननीय मुख्य न्यायाधीश से नामांकन प्राप्त करने के बाद उपयुक्त पीठ के समक्ष रखा जाए, यदि संभव हो तो दिनांक 27.11.2024 को, जिसमें सूचनाकर्ता के अधिवक्ता के रूप में श्री अनिरुद्ध चौधरी का नाम प्रदर्शित हो।

9. माननीय मुख्य न्यायाधीश के दिनांक 26.11.2024 के आदेश और दिनांक 27.11.2024 की कार्यालय रिपोर्ट के आलोक में, इस मामले को गुण-दोष के आधार पर सुनवाई के लिए इस न्यायालय के समक्ष रखा गया। अतः, 06.01.2025 को निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:-

असंशोधित

"पूर्व में इस मामले में उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री विशाल कश्यप (एडवोकेट रोल नंबर A/V 0830/13) को निर्देशित किया जाता है कि वे आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री शेखर चौधरी (एडवोकेट रोल नंबर A/S 0965/12) के साथ इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहें।

अभिलेखों से, इस न्यायालय ने उपरोक्त अधिवक्ताओं के आचरण पर ध्यान दिया है, जिन्हें मामले में उपस्थित होने वाले अधिवक्ता के साथ अगली निर्धारित तिथि पर इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहने का निर्देश दिया जाता है।

विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुरुद्ध चतुर्वेदी और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री अमित सिंह चौहान उपस्थित हैं।

इस मामले को 21.01.2025 को दोपहर 2:00 बजे सूचीबद्ध करें।"

10. तत्पश्चात, 21.01.2025 को निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:-

"आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जी.एस. चतुर्वेदी, जिनकी सहायता विद्वान अधिवक्ता श्री शेखर चौधरी और श्री विशाल कश्यप ने की, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुरुद्ध चतुर्वेदी और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री अमित सिंह चौहान को सुना गया।

आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जी.एस. चतुर्वेदी ने तर्क दिया कि दिनांक 23.09.2024 के आदेश के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय ने इस न्यायालय को वर्तमान आवेदन पर कानून के अनुसार गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेने का निर्देश दिया है, हालांकि, विचारण न्यायालय द्वारा आरोप विरचित किए जाने के तथ्य को सर्वोच्च न्यायालय ने वहां उत्तरदाताओं द्वारा उठाई गई आपत्ति पर संज्ञान में लिया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि मामले का गुण-दोष के आधार पर निर्णय करते समय, इस न्यायालय को बाद के घटनाक्रमों पर भी विचार करना होगा।

उपरोक्त के आलोक में, आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने संशोधन आवेदन दायर करने के लिए दस दिन के समय की प्रार्थना की है और उन्हें अनुमति दी जाती है।

आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जी.एस. चतुर्वेदी की प्रार्थना के अनुसार, इस मामले को 06.02.2025 को दोपहर 2:00 बजे सूचीबद्ध करें।"

11. पुनः 17.02.2025 को, इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

"आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री विशाल कश्यप, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री दिनेश कुमार शर्मा और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री अमित सिंह चौहान उपस्थित हैं।

21.01.2025 को, आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जी.एस. चतुर्वेदी ने संशोधन आवेदन दायर करने के लिए समय का अनुरोध किया था।

आवेदक की ओर से संशोधन आवेदन दायर नहीं किया गया है।

मामला पेश होने पर, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री विशाल कश्यप ने कहा कि आवेदक ने मामले में बहस करने के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता को नियुक्त किया है और वे (स्वयं) इस मामले में बहस करने की स्थिति में नहीं हैं।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के अनुरोध पर, इस मामले को 24.02.2025 को दोपहर 12:00 बजे सूचीबद्ध करें।"

12. 24.02.2025 को, निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:-
"आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आज न्यायालय में संशोधन आवेदन दाखिल किया है, जिसे रिकॉर्ड पर लिया जाता है। कार्यालय को इसे पंजीकृत करने का निर्देश दिया जाता है।
विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि मामले के उचित निर्णय के लिए कुछ दस्तावेजों को रिकॉर्ड पर लाया जाना आवश्यक है।
इस मामले को 5 मार्च, 2025 को दोपहर 12 बजे सूचीबद्ध करें।
इस बीच, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता सभी आवश्यक दस्तावेजों को संलग्न करते हुए एक हलफनामा दाखिल कर सकते हैं।"

13. 05.03.2025 को, इस न्यायालय ने निर्णय सुरक्षित रखते हुए निम्नलिखित आदेश पारित किया:-
"विपक्षी संख्या 2 की ओर से आज न्यायालय में दाखिल संक्षिप्त प्रति-शपथपत्र रिकॉर्ड पर लिया जाता है। कार्यालय को इसे पंजीकृत करने का निर्देश दिया जाता है।
आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता प्रत्युत्तर हलफनामा दाखिल करना नहीं चाहते हैं।
आवेदकों के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जी.एस. चतुर्वेदी, जिनकी सहायता विद्वान अधिवक्ता श्री विशाल कश्यप और श्री शेखर चौधरी ने की; विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुरुद्ध चतुर्वेदी, जिनकी सहायता विद्वान अधिवक्ता श्री दिनेश कुमार शर्मा ने की और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री अमित सिंह चौहान को सुना गया।
निर्णय सुरक्षित।
दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को एक सप्ताह के भीतर अपना लिखित तर्क (रिटेन सबमिशन) दाखिल करने का निर्देश दिया जाता है।"

14. मामले में आगे बढ़ने से पहले, मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 13.02.2023 की घटना के लिए, विपक्षी संख्या 2 ने 27.02.2023 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर के समक्ष आवेदक के विरुद्ध धारा 156(3) द.प्र.स. के तहत एक आवेदन दिया। तत्पश्चात, विपक्षी संख्या 2 द्वारा मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर के समक्ष धारा 156(3) द.प्र.स. के तहत एक और आवेदन दिया गया, जिसमें एक अन्य व्यक्ति, प्रेम प्रकाश अरोरा (प्रशासनिक प्रबंधक, कैलाश अस्पताल, खुर्जा) को फंसाया गया और आवेदक डॉ. नीरज कुमार तथा एक अन्य सह-आरोपी के विरुद्ध चिकित्सा लापरवाही के अतिरिक्त आरोप लगाए गए।

15. उपरोक्त आवेदन पर, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर ने दिनांक 20.03.2023 के अपने पत्र के माध्यम से मुख्य चिकित्सा अधिकारी, बुलंदशहर को एक मेडिकल बोर्ड गठित करने का निर्देश दिया। तदनुसार, मुख्य चिकित्सा अधिकारी, बुलंदशहर ने दिनांक 25.03.2023 के अपने पत्र के माध्यम से पांच डॉक्टरों की सदस्यता

अनुवादित

वाला एक मेडिकल बोर्ड गठित किया। मेडिकल बोर्ड ने 08.04.2023 को अवर न्यायालय के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और आवेदक को सभी आरोपों से मुक्त कर दिया।

16. उक्त रिपोर्ट का उल्लेख करते हुए, जिसमें आवेदक को सभी आरोपों से मुक्त कर दिया गया था, विपक्षी संख्या 2 द्वारा धारा 156(3) द.प्र.स. के तहत दिए गए आवेदन को अवर न्यायालय ने दिनांक 10.05.2023 के आदेश के माध्यम से स्वीकार कर लिया और पुलिस को आवेदक तथा अन्य सह-आरोपी व्यक्तियों के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का निर्देश दिया। तदनुसार, दिनांक 12.05.2023 को प्रथम सूचना रिपोर्ट, मुकदमा अपराध संख्या 370 वर्ष 2023, भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के तहत, थाना-खुर्जा, जिला-बुलंदशहर में दर्ज की गई।

17. उपरोक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट को आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 8295 वर्ष 2023 दायर करके चुनौती दी गई थी और इस न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 30.05.2023 के आदेश के माध्यम से पुलिस रिपोर्ट जमा होने तक आवेदक को संरक्षण प्रदान किया था।

18. जांच के बाद, 25.08.2023 को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है। जिसके अनुपालन में, संबंधित न्यायालय द्वारा दिनांक 19.09.2023 के आदेश के माध्यम से आवेदक को तलब (समन) किया गया है। अतः वर्तमान आवेदन दायर किया गया है।

19. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित दलीलें पेश की हैं:-

(i) आवेदक के विरुद्ध शिकायत दर्ज करने में देरी हुई है, क्योंकि विपक्षी संख्या 2 के पुत्र की मृत्यु 14.02.2023 को हुई थी और धारा 156(3) द.प्र.स. के तहत आवेदन 27.02.2023 को दिया गया था, और पुनः कुछ सुधार के बाद 17.03.2023 को दिया गया।

(ii) आवेदक पेशे से एक डॉक्टर है और उसके पास एम.बी.बी.एस., एम.डी. की डिग्री है तथा वह खुर्जा, जिला-बुलंदशहर में एक निजी क्लिनिक चलाता है।

(iii) मेडिकल बोर्ड द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट में "कहीं भी" यह उल्लेख नहीं है कि मृतक के इलाज के दौरान आवेदक द्वारा कोई लापरवाही बरती गई थी।

(iv) धारा 304 आईपीसी के तहत आरोप पत्र 25.08.2023 को प्रस्तुत किया गया था, जिस पर विवेचना अधिकारी ने धारा 161 द.प्र.स. के तहत आवेदक का दूसरा बयान दर्ज किया था।

(v) 25.08.2023 को धारा 161 द.प्र.स. के तहत दर्ज आवेदक का दूसरा बयान, जिस पर विवेचना अधिकारी ने आरोप पत्र प्रस्तुत करने के लिए भरोसा किया है, उसका उपयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि वह एक संस्वीकृति कथन है। इसे भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 25 और 26 के प्रावधानों के अनुसार साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य नहीं माना जा सकता, जो पुलिस के सामने आरोपी द्वारा दिए गए ऐसे बयानों और इकबालिया बयानों के उपयोग को प्रतिबंधित करती है। अपनी दलीलों के समर्थन में, उन्होंने दीपकभाई जगदीश चंद्र पटेल बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:-

"6.....आरोप विरचित करने के प्रश्न पर विचार करते समय, उस स्तर पर न्यायालय को अपना ध्यान केवल जांच के दौरान एकत्र की गई उन सामग्रियों तक सीमित रखना आवश्यक है जिन्हें कानूनी रूप से साक्ष्य में परिवर्तित किया जा सकता है, न कि उन अतिरिक्त साक्ष्यों पर (उन सामग्रियों से इतर) जिन्हें अभियोजन पक्ष उस विचारण के दौरान प्रस्तुत कर सकता है जो केवल आरोप विरचित होने और आरोपी द्वारा आरोपों से इनकार करने के बाद शुरू होगा। इसलिए, नामित न्यायालय संस्वीकृति कथन को संज्ञान में लेने के लिए बिल्कुल भी न्यायोचित नहीं था।"

(vi) उपरोक्त निर्णय के पैरा 21 में पुनः सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार माना है:-

"21. इस न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के अनुसार आरोप विरचित करने के स्तर पर, न्यायालय से जो करने की अपेक्षा की जाती है वह यह है कि वह केवल एक डाकघर के रूप में कार्य न करे। न्यायालय को वास्तव में अपने समक्ष मौजूद सामग्री की छँटनी करनी चाहिए। जिस सामग्री की छँटनी की जानी है, वह वह सामग्री होगी जो अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत की गई है और जिस पर भरोसा किया गया है। यह छँटनी इस अर्थ में सूक्ष्म नहीं होनी चाहिए कि न्यायालय उस विचारण न्यायाधीश की भूमिका धारण कर ले जो पूर्ण विचारण के बाद सभी साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के बाद दलीलें सुनता है, और प्रश्न यह नहीं है कि क्या अभियोजन पक्ष ने आरोपी की दोषसिद्धि के लिए मामला बना लिया है। केवल इतनी आवश्यकता है कि न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो कि उपलब्ध सामग्री के साथ आरोपी पर विचारण चलाने के लिए मामला बनता है। एक मजबूत संदेह पर्याप्त है। हालांकि, एक मजबूत संदेह किसी सामग्री पर आधारित होना चाहिए। सामग्री ऐसी होनी चाहिए जिसे विचारण के स्तर पर साक्ष्य में परिवर्तित किया जा सके। मजबूत संदेह न्यायाधीश की नैतिक धारणाओं पर आधारित विशुद्ध व्यक्तिपरक संतुष्टि नहीं हो सकता कि यहाँ एक ऐसा मामला है जहाँ यह संभव है कि आरोपी ने अपराध किया है। मजबूत संदेह वह संदेह होना चाहिए जो किसी ऐसी सामग्री पर आधारित हो जो न्यायालय को यह प्रथम दृष्टया विचार रखने के लिए पर्याप्त लगे कि आरोपी ने अपराध किया है।"

असंशोधित

(vii) उन्होंने आगे यह तर्क दिया कि कानूनन, पुलिस अधिकारी के समक्ष दिए गए आरोपी के बयान की स्वीकार्यता धारा 162 द.प्र.स. के तहत वर्जित है। उन्होंने उपरोक्त निर्णय के पैरा 37 से 41 पर भरोसा किया है, जो इस प्रकार हैं:-

"37. इस प्रकार, स्पष्ट रूप से, वह व्यक्ति जो प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामजद होने के कारण आरोपी की श्रेणी में आता है, उसकी जांच पुलिस अधिकारी द्वारा धारा 161 द.प्र.स. के तहत की जा सकती है। हालांकि, अगला प्रश्न यह है कि क्या वह व्यक्ति जो आरोपी की श्रेणी में है और जो बयान देता है, क्या उसका वह बयान कानून में स्वीकार्य है? यहीं पर संहिता की धारा 162 प्रभावी होती है:

"162. पुलिस से किए गए कथनों का हस्ताक्षरित न किया जाना: साक्ष्य में कथनों का उपयोग।

(1) इस अध्याय के अधीन किसी विवेचना के दौरान किसी व्यक्ति द्वारा किसी पुलिस अधिकारी से किया गया कोई भी कथन, यदि लेखबद्ध किया जाता है, तो उसे करने वाले व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित नहीं किया जाएगा; और न ही ऐसा कोई कथन या उसका कोई रिकॉर्ड, चाहे वह पुलिस डायरी में हो या अन्यथा, या ऐसे कथन या रिकॉर्ड का कोई भाग, किसी भी उद्देश्य के लिए उपयोग किया जाएगा, सिवाय इसके कि जैसा आगे प्रावधान किया गया है, उस अपराध के संबंध में किसी भी जांच या विचारण में जिसका विवेचना उस समय चल रहा था जब वह कथन किया गया था: परन्तु यह कि जब ऐसी जांच या विचारण में अभियोजन पक्ष की ओर से किसी ऐसे साक्षी को बुलाया जाता है जिसका कथन पूर्वोक्त रूप में लेखबद्ध किया गया है, तो उसके कथन का कोई भी भाग, यदि विधिवत सिद्ध हो जाता है, तो आरोपी द्वारा, और न्यायालय की अनुमति से अभियोजन पक्ष द्वारा, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) की धारा 145 द्वारा प्रदान की गई रीति से उस साक्षी का खंडन करने के लिए उपयोग किया जा सकता है; और जब ऐसे कथन के किसी भाग का इस प्रकार उपयोग किया जाता है, तो उसके किसी भी भाग का उपयोग उस साक्षी की पुनः परीक्षा में भी किया जा सकता है, किन्तु केवल उसकी प्रतिपरीक्षा में संदर्भित किसी मामले को स्पष्ट करने के उद्देश्य से।"

(2) इस धारा की कोई भी बात भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) की धारा 32 के खंड (1) के प्रावधानों के अंतर्गत आने वाले किसी भी कथन पर लागू नहीं मानी जाएगी, और न ही उस अधिनियम की धारा 27 के प्रावधानों को प्रभावित करेगी। **स्पष्टीकरण-** उपधारा (1) में संदर्भित कथन में किसी तथ्य या परिस्थिति का उल्लेख न करना विरोधाभास माना जा सकता है, यदि वह महत्वपूर्ण प्रतीत होता है और उस संदर्भ के आधार पर अन्यथा प्रासंगिक है जिसमें ऐसा लोप हुआ है; और क्या कोई लोप किसी विशेष संदर्भ में विरोधाभास की श्रेणी में आता है, यह तथ्य का प्रश्न होगा।

38. इस न्यायालय की तीन विद्वान न्यायाधीशों की पीठ ने **महाबीर मंडल और अन्य बनाम बिहार राज्य** के मामले में निम्नलिखित कहा था:

"39. कासिम के मामले पर आते हुए, हम पाते हैं कि ऐसा कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है जो यह दिखा सके कि घटना की रात कासिम महाबीर के घर पर मौजूद था और उसने इंदिरा के शव के निस्तारण में भाग लिया था। अभियोजन पक्ष द्वारा कासिम और आरोपी महादेव द्वारा बैजनाथ (अभियोजन साक्षी) द्वारा पुलिस स्टेशन में रिपोर्ट दर्ज कराने के बाद, उसकी उपस्थिति में पुलिस स्टेशन में दिए गए कथित बयानों पर भरोसा किया गया था। ऐसे बयान कानूनी रूप से साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं हैं और उन्हें मुख्य साक्ष्य के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 के अनुसार, विवेचना के दौरान किसी व्यक्ति द्वारा पुलिस अधिकारी को दिया गया कोई भी कथन, उसे देने वाले व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित नहीं किया जाएगा और न ही उसका उपयोग उस अपराध के संबंध में किसी भी जाँच या विचारण में किसी भी उद्देश्य के लिए किया जाएगा, जिसका विवेचना उस समय चल रहा था जब वह कथन किया गया था। उपरोक्त नियम का एकमात्र अपवाद उस धारा के परंतुक में उल्लिखित है। परंतुक के अनुसार, जब जाँच या विचारण में अभियोजन पक्ष की ओर से किसी साक्षी को बुलाया जाता है, तो उसके कथन का कोई भी भाग, यदि विधिवत सिद्ध हो जाता है, तो आरोपी द्वारा, और न्यायालय की अनुमति से अभियोजन पक्ष द्वारा, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 में दिए गए तरीके से उस साक्षी का खंडन करने के लिए उपयोग किया जा सकता है; और जब ऐसे कथन के किसी भाग का इस प्रकार उपयोग किया जाता है, तो उसका कोई भी भाग उस साक्षी की पुनः परीक्षा में भी उपयोग किया जा सकता है, लेकिन केवल उसकी प्रतिपरीक्षा में संदर्भित किसी मामले को स्पष्ट करने के उद्देश्य से। हालांकि, उपरोक्त नियम भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के खंड 1 के प्रावधानों के अंतर्गत आने वाले कथनों पर लागू नहीं होता है और न ही उस अधिनियम की धारा 27 के प्रावधानों को प्रभावित करता है। यह भी भली-भांति स्थापित है कि **अस्वीकार्यता की यह रोक न केवल साक्षियों के बयानों पर बल्कि आरोपी के बयानों पर भी लागू होती है** (देखें: नारायण स्वामी बनाम एम्परर [एआईआर 1939 पीसी 47])। उस मामले में लॉर्ड एटकिन ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 पर विचार करते हुए टिप्पणी की थी:

"इसके बाद संबंधित धारा आती है जिसे 'किसी भी व्यक्ति' के संबंध में उसी सामान्य तरीके से तैयार किया गया है। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अपने सामान्य अर्थ में ये शब्द 'किसी भी व्यक्ति' को शामिल करेंगे, भले ही वह बाद में आरोपी बनाया जाए। अपराध की जाँच में अक्सर कई व्यक्तियों की पूछताछ शामिल होती है, जिनमें से उस समय किसी पर भी संदेह नहीं हो सकता है या सभी पर संदेह हो सकता है। धारा के शुरुआती शब्द, जो दर्ज किए गए बयान पर हस्ताक्षर करने को प्रतिबंधित करते हैं, उस समय दिए गए सभी बयानों पर लागू होने चाहिए और इसलिए उस व्यक्ति द्वारा दिए गए बयान पर भी लागू होने चाहिए जिस पर संभवतः उस समय संदेह भी न हो, लेकिन अंततः उसे आरोपी बनाया गया हो।" भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 26 का भी संदर्भ लिया जा सकता है, जिसके अनुसार किसी भी व्यक्ति द्वारा पुलिस अधिकारी की हिरासत में रहते हुए किया गया कोई भी संस्वीकृति कथन, जब तक कि वह मजिस्ट्रेट की तत्काल उपस्थिति में न किया गया हो, उस व्यक्ति के विरुद्ध सिद्ध नहीं किया जाएगा। वर्तमान मामले में ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह दर्शा सके कि 18 सितंबर, 1963 को पुलिस स्टेशन में बैजनाथ की उपस्थिति में आरोपी कासिम और महादेव द्वारा दिए गए बयानों के परिणामस्वरूप किसी ऐसी आपत्तिजनक सामग्री की खोज हुई हो जो उन्हें भारतीय साक्ष्य

अधिनियम की धारा 27 के तहत स्वीकार्य बना सके। अतः, उपरोक्त बयानों को विचार से बाहर रखा जाना चाहिए।"
(जोर दिया गया है)

39. अतः, इन प्रावधानों के सम्मिलित प्रभाव का सार इस प्रकार दिया जा सकता है:
जब तक कोई व्यक्ति किसी अपराध का आरोपी न हो, वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3) के संरक्षण का दावा नहीं कर सकता।

40. ऐसा व्यक्ति, अर्थात वह व्यक्ति जिसका नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में है और जो कानून की दृष्टि में आरोपी है, उससे वास्तव में पूछताछ की जा सकती है और पुलिस अधिकारी द्वारा उसका बयान लिया जा सकता है। पुलिस अधिकारी के समक्ष किया गया संस्वीकृति कथन, साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के कारण अस्वीकार्य होगा। साक्ष्य अधिनियम की धारा 24 के तहत दूषित कोई भी संस्वीकृति कथन भी अस्वीकार्य होगा। कोई संस्वीकृति कथन जब तक पाकला नारायण स्वामी (उपरोक्त) में निर्धारित और इस न्यायालय द्वारा स्वीकृत परीक्षण को पूरा नहीं करता, तब तक उसे साक्ष्य अधिनियम की धारा 21 के तहत 'स्वीकृति' के रूप में उपयोग किया जा सकता है। हालाँकि, यह धारा 161 द.प्र.स. के तहत बयान की स्वीकार्यता पर लगी रोक के अधीन है। इसलिए, भले ही किसी बयान में कोई 'स्वीकृति' शामिल हो, यदि वह बयान धारा 161 के तहत है, तो उस पर तुरंत धारा 162 द.प्र.स. की रोक लागू हो जाएगी।

41. धारा 162 द.प्र.स. के तहत यह रोक, निस्संदेह, दो समय सीमाओं के बीच पुलिस अधिकारी को दिए गए बयान पर लागू होती है, अर्थात विवेचना के प्रारंभ से लेकर उसके समापन तक। ऐसे मामले में जहाँ बयान में संस्वीकृति कथन नहीं बल्कि केवल 'स्वीकृति' शामिल है, जो अन्यथा प्रासंगिक है और जो जांच शुरू होने से पहले दी गई है, वह स्वीकार्य हो सकती है। हमें इससे अधिक कुछ और कहने की आवश्यकता नहीं है।

(viii) उन्होंने आगे यह तर्क दिया कि पुलिस अधिकारी के समक्ष किया गया कोई भी संस्वीकृति कथन अपराध के आरोपी व्यक्ति के विरुद्ध सिद्ध नहीं किया जाएगा। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 विवेचना के दौरान किसी भी व्यक्ति द्वारा पुलिस अधिकारी को दिए गए किसी भी बयान का उपयोग, उस अपराध के संबंध में किसी भी जांच या विचारण में किसी भी उद्देश्य के लिए करने से प्रतिबंधित करती है। उपरोक्त सिद्धांत को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **अगनू नगेसिया बनाम बिहार राज्य** के मामले में प्रतिपादित किया गया है।

(ix) वर्तमान मामला काफी सोच-विचार और परामर्श के बाद दर्ज किया गया है, क्योंकि विपक्षी संख्या 2 के पुत्र की मृत्यु 14.02.2023 को हुई थी और धारा 156(3) द.प्र.स. के तहत पहला आवेदन 27.02.2023 को दायर किया गया था; उसके बाद, एक बेहतर संस्करण के साथ दूसरा आवेदन 17.03.2023 को दायर किया गया, जो काफी अधिक और अस्पष्टीकृत देरी को दर्शाता है।

(x) माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों में यह माना है कि जिम्मेदार पाए गए चिकित्सा व्यवसायी (डॉक्टर) को सीधे आपराधिक अभियोजन के दायरे में नहीं लाया जा सकता। सर्वोच्च न्यायालय ने **जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य** के मामले में आरोपी अपीलकर्ता के अभियोजन को रद्द करते हुए "लापरवाही" शब्द की विस्तार से व्याख्या की थी, लेकिन अवर न्यायालय ने दिनांक 19.09.2023 का आदेश पारित करते समय बिना न्यायिक विवेक का उपयोग किए, यांत्रिक तरीके से इसका पालन नहीं किया है।

(xi) उपरोक्त निर्णय में, सर्वोच्च न्यायालय ने यहाँ तक कहा है कि एक निजी शिकायत तब तक स्वीकार नहीं की जा सकती जब तक कि शिकायतकर्ता ने आरोपी डॉक्टर की ओर से उतावलेपन या लापरवाही के आरोपों के समर्थन में किसी अन्य सक्षम डॉक्टर द्वारा दी गई विश्वसनीय राय के रूप में न्यायालय के समक्ष प्रथम दृष्टया साक्ष्य प्रस्तुत न किया हो। विवेचना अधिकारी को उतावलेपन या लापरवाहीपूर्ण कार्य या चूक के आरोपी डॉक्टर के विरुद्ध कार्यवाही करने से पहले, एक स्वतंत्र और पूर्ण चिकित्सा राय प्राप्त करनी चाहिए; अधिमानतः सरकारी सेवा में कार्यरत उस चिकित्सा शाखा के योग्य डॉक्टर से, जिससे यह सामान्य अपेक्षा की जा सके कि वह जाँच में एकत्रित तथ्यों पर 'बोलम टेस्ट' लागू करते हुए एक निष्पक्ष और तटस्थ राय देगा। उतावलेपन या लापरवाही के आरोपी डॉक्टर को केवल इस आधार पर नियमित तरीके से गिरफ्तार नहीं किया जाना चाहिए कि उस पर कोई आरोप लगाया गया है।

(xii) माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मार्टिन एफ. डिसूजा बनाम मोहम्मद इशफाक** के मामले में **जैकब मैथ्यू** (उपरोक्त) के मामले को बरकरार रखा और पैरा 117 में कुछ निर्देश दिए, जो इस प्रकार हैं:-

“117. इसलिए, हम यह निर्देश देते हैं कि जब भी उपभोक्ता मंच (चाहे जिला, राज्य या राष्ट्रीय) या आपराधिक न्यायालय द्वारा किसी डॉक्टर या अस्पताल के विरुद्ध कोई शिकायत प्राप्त होती है, तो संबंधित डॉक्टर या अस्पताल को नोटिस जारी करने से पहले उपभोक्ता मंच या आपराधिक न्यायालय को मामले को सबसे पहले एक सक्षम डॉक्टर या डॉक्टरों की समिति के पास भेजना चाहिए, जो उस क्षेत्र के विशेषज्ञ हों जिससे संबंधित चिकित्सा लापरवाही का आरोप लगाया गया है। और केवल तभी, जब वह डॉक्टर या समिति यह रिपोर्ट दे कि चिकित्सा लापरवाही का प्रथम दृष्टया मामला बनता है, संबंधित डॉक्टर/अस्पताल को नोटिस जारी किया जाना चाहिए। यह उन डॉक्टरों के उत्पीड़न से बचने के लिए आवश्यक है जो अंततः लापरवाह नहीं पाए जा सकते हैं। हम पुलिस अधिकारियों को भी चेतावनी देते हैं कि वे डॉक्टरों को तब तक गिरफ्तार या प्रताड़ित न करें जब तक कि तथ्य स्पष्ट रूप से जैकब मैथ्यू मामले (उपरोक्त) में निर्धारित मानदंडों के भीतर न आते हों, अन्यथा पुलिसकर्मियों को स्वयं कानूनी कार्रवाई का सामना करना पड़ेगा।”

(xiii) अवर न्यायालय ने 10.05.2023 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का निर्देश देते समय और 19.09.2023 के आदेश के माध्यम से समन जारी करते समय मेडिकल बोर्ड द्वारा दी गई विशेषज्ञ रिपोर्ट पर विचार नहीं किया है, जो पूरी तरह से अवैध है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों के विरुद्ध है।

(xiv) अतः उपरोक्त आधारों पर, यह कार्यवाही कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग मात्र है और इसलिए, आवेदक के विरुद्ध अभियोजन पूरी तरह से अनुचित है और रद्द किए जाने योग्य है।

20. दूसरी ओर, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि:-

(i) मृतक के पिता द्वारा 27.02.2023 को धारा 156(3) द.प्र.स. के तहत एक आवेदन दायर किया गया था, लेकिन विपक्षी संख्या 2 द्वारा उक्त आवेदन पर जोर नहीं दिया गया क्योंकि उस आवेदन में कुछ प्रासंगिक तथ्यों का उल्लेख नहीं किया गया था। धारा 156(3) द.प्र.स. के तहत दूसरा आवेदन 17.03.2023 को दिया गया था, जिस पर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर ने मुख्य चिकित्सा अधिकारी, बुलंदशहर को जाँच करने और न्यायालय के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए पांच डॉक्टरों का एक मेडिकल बोर्ड गठित करने का निर्देश दिया था।

(ii) संबंधित न्यायालय के निर्देशानुसार, बी.बी.डी. जिला अस्पताल, बुलंदशहर के पांच डॉक्टरों को मिलाकर एक मेडिकल बोर्ड का गठन किया गया था, जबकि आवेदक स्वयं नवंबर 2006 से 2015 तक एस.एस.एम.जे. अस्पताल, खुर्जा, जिला बुलंदशहर में सरकारी डॉक्टर (चेस्ट फिजिशियन) के रूप में कार्यरत रहा था।

(iii) मेडिकल बोर्ड ने 08.04.2023 को संबंधित न्यायालय के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें उचित जांच किए बिना और इस तथ्य पर विचार किए बिना आवेदक को दोषमुक्त कर दिया गया कि खाली पेट वाले मरीज को एंटीबायोटिक और एंटी-मलेरिया के इंजेक्शन की उच्च खुराक दी गई थी। जो इंजेक्शन दिए गए वे मेरो एसबी 1.5 मिलीग्राम की 2 खुराक और इंजेक्शन आर्टेसुनेट फाल्सीगो (60 मिलीग्राम की 3 खुराक थे। ये इंजेक्शन आवेदक द्वारा अपने हाथ से लिखे गए दवा के पर्चे (पर्ची) में निर्धारित किए गए थे और सूचनाकर्ता ने उक्त दवा के पर्चे को बिल के साथ प्रस्तुत किया था, जो विवेचना अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए साक्ष्यों का हिस्सा है। उपरोक्त 5 इंजेक्शन अंतःशिरा थे और केवल 10-15 मिनट में लगाए गए थे, और यही वह कारण था जहाँ से मरीज की स्थिति बिगड़ने लगी थी। इस बात पर मेडिकल बोर्ड द्वारा विचार नहीं किया गया, जबकि इसके साक्ष्य रिकॉर्ड पर मौजूद थे और धारा 156(3) द.प्र.स. के तहत आवेदन में विशेष रूप से इसका तर्क दिया गया था।

(iv) मेडिकल रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने के बाद, विचारण न्यायालय ने दिनांक 10.05.2023 के आदेश के माध्यम से स्पष्ट रूप से यह दर्ज किया कि प्रथम दृष्टया एक संज्ञेय अपराध बनता है और सही तथ्यों का निर्धारण केवल जांच के माध्यम से ही किया जा सकता है, अतः न्यायालय ने जांच के निर्देश दिए।

(v) उन्होंने आगे यह दलील दी कि मजिस्ट्रेट के लिए आरोपी डॉक्टर को दोषमुक्त करने हेतु मेडिकल बोर्ड द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट निर्णायक नहीं है। मजिस्ट्रेट रिपोर्ट का अवलोकन करने के बाद और उस पर विचार करने के उपरांत पुलिस द्वारा जांच का आदेश देने के लिए स्वतंत्र है। इसके अलावा, आवेदक द्वारा 10.05.2023 के

आदेश को कभी चुनौती नहीं दी गई और इस प्रकार 12.05.2023 को थाना-खुर्जा नगर, जिला-बुलंदशहर में भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के तहत वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई।

(vi) उपरोक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट को इस न्यायालय के समक्ष आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 8295 वर्ष 2023 के माध्यम से चुनौती दी गई थी, जिसमें इस न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 30.05.2023 के आदेश द्वारा जांच के दौरान आवेदक की गिरफ्तारी पर रोक लगा दी थी।

(vii) प्रारंभ में जांच निरीक्षक श्री धीरज सिंह द्वारा की जा रही थी, जिसे बाद में अपर पुलिस अधीक्षक, बुलंदशहर के आदेश पर 25.07.2023 को निरीक्षक, अपराध शाखा को स्थानांतरित कर दिया गया था।

(viii) अपराध शाखा के निरीक्षक ने दिनांक 04.08.2023 को, पिछले विवेचना अधिकारी द्वारा की गई जांच और उसके द्वारा एकत्र किए गए साक्ष्यों का अवलोकन करने के साथ-साथ मेडिकल बोर्ड की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि मेडिकल बोर्ड ने अपने कर्तव्य का उचित तरीके से पालन नहीं किया था और तथ्यों को छिपाया था तथा उन्हें धोखाधड़ीपूर्ण तरीके से प्रस्तुत किया था।

(ix) दिनांक 22.08.2023 को, विवेचना अधिकारी ने आवेदक के बयानों और सामग्री की सत्यता की पुष्टि करने के साथ-साथ मेडिकल बोर्ड के निष्कर्षों को सत्यापित करने के लिए डॉ. नीरज कुमार (आवेदक) से उन पहलुओं पर पूछताछ की जिन्हें विवेचना अधिकारी द्वारा 04.08.2023 को नोट किया गया था। आवेदक ने धारा 482 द.प्र.स. के तहत आवेदन के समर्थन में दायर शपथ पत्र में कभी यह दावा नहीं किया कि ऐसा कोई बयान नहीं दिया गया था या विवेचना अधिकारी द्वारा उनका परीक्षण नहीं किया गया था। वास्तव में, आवेदक द्वारा उपरोक्त बयानों को छिपाया गया और उन्हें रिकॉर्ड पर प्रस्तुत नहीं किया गया।

(x) दिनांक 25.08.2023 को, विवेचना अधिकारी द्वारा आरोप पत्र दाखिल किया गया, जिसमें पूरी जांच का विवरण और जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य दिए गए थे। यह आरोप पत्र प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों के साथ-साथ जांच के दौरान दर्ज किए गए गवाहों के बयानों के आधार पर तैयार किया गया था।

(xi) प्रारंभ में, वर्तमान आवेदन को इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 27.10.2023 के आदेश के माध्यम से आवेदक के अधिवक्ता की सहमति के आधार पर खारिज कर दिया गया था। उपरोक्त सहमति वर्तमान अधिवक्ता द्वारा ही दी गई थी और मौखिक रूप से एक वैकल्पिक प्रार्थना की गई थी जिसे इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने स्वीकार कर लिया था। लेकिन माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दिनांक 27.10.2023 के आदेश को चुनौती देते समय, आवेदक के अधिवक्ता द्वारा एक झूठा शपथ पत्र दायर किया गया, जिसमें यह कहा गया कि उनके द्वारा माननीय न्यायालय के समक्ष ऐसी कोई सहमति नहीं दी गई थी जैसा कि आदेश में दर्ज किया गया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 24.11.2023 के आदेश द्वारा, इस न्यायालय की समन्वय पीठ के आदेश को रद्द किए बिना, मामले को वापस भेज दिया (remand) और

आवेदक को निर्देश दिया कि वह सर्वोच्च न्यायालय में दाखिल शपथ पत्र के कथनों के साथ 'रिकॉल' (आदेश वापस लेने हेतु) आवेदन दायर करे। दिनांक 24.11.2023 का उपरोक्त आदेश एकपक्षीय आदेश था।

(xii) माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 24.11.2023 के आदेश के अनुपालन में, आवेदक द्वारा 01.12.2023 को 'आपराधिक विविध रिकॉल आवेदन संख्या 03/2023' दायर किया गया था। जब शपथ पत्र में किए गए कथनों का सामना कराया गया, तो आवेदक ने स्वयं स्वीकार किया कि सहमति उनके द्वारा दी गई थी। चूंकि धारा 362 द.प्र.स. के तहत वर्तमान रिकॉल आवेदन विचारणीय नहीं था, इसलिए इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 04.04.2024 के आदेश द्वारा उक्त रिकॉल आवेदन को इसी आधार पर खारिज कर दिया।

(xiii) इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित उपरोक्त दिनांक 04.04.2024 के आदेश को पुनः माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष यह कहते हुए चुनौती दी गई कि समन्वय पीठ ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दायर शपथ पत्र पर विचार करते हुए आवेदन का निर्णय नहीं किया है, जैसा कि माननीय शीर्ष अदालत ने दिनांक 24.11.2023 के आदेश द्वारा निर्देशित किया था।

(xiv) अंततः, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 23.09.2024 के आदेश द्वारा, इस न्यायालय की समन्वय पीठ के पिछले दो आदेशों को रद्द किए बिना, मामले को फिर से वापस भेज दिया और इस न्यायालय को निर्देश दिया कि धारा 482 द.प्र.स. के तहत आवेदन पर कानून के अनुसार गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया जाए।

(xv) माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित उपरोक्त दिनांक 23.09.2024 के आदेश को आवेदक द्वारा 23.10.2024 को दायर आवेदन संख्या 'आई.ए. 6 वर्ष 2024' के माध्यम से रिकॉर्ड पर लाया गया।

(xvi) जब उपरोक्त आवेदन संख्या आई.ए. 6/2024 इस न्यायालय के समक्ष सुनवाई के लिए आया, तो एक आपत्ति उठाई गई कि चूंकि आरोप विरचित किए जा चुके हैं और आवेदक द्वारा दायर आरोपमुक्ति आवेदन को दिनांक 16.07.2024 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है, इसलिए वर्तमान आवेदन केवल इसी आधार पर खारिज किए जाने योग्य है। इसके बाद, आवेदक की ओर से धारा 482 द.प्र.स. के तहत आवेदन में की गई प्रार्थना को संशोधित करने का अनुरोध किया गया, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 21.01.2025 के आदेश से स्पष्ट है।

(xvii) तत्पश्चात, दिनांक 10.02.2025 का संशोधन आवेदन 20.02.2025 को सूचनाकर्ता के अधिवक्ता को तामील कराया गया और इस न्यायालय के समक्ष दायर किया गया। उपरोक्त संशोधन आवेदन में, आवेदक के अधिवक्ता द्वारा अन्य प्रासंगिक दस्तावेजों को रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया था, इसलिए मामले के उचित

अनधिकृत

अधिनिर्णय के लिए उन दस्तावेजों को रिकॉर्ड पर लाने हेतु समय मांगा गया था, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 24.02.2025 के आदेश द्वारा अनुमति प्रदान की थी।

(xviii) दिनांक 24.02.2025 के शपथ पत्र के पैराग्राफ संख्या 4 में स्पष्ट रूप से यह तर्क दिया गया है कि आरोप विरचित करने वाला आदेश (दिनांक 16.07.2024) और आरोपमुक्ति आवेदन को खारिज करने वाला आदेश (दिनांक 16.07.2024), धारा 482 द.प्र.स. के तहत संशोधन योग्य नहीं हैं। अतः संशोधन आवेदन खारिज किए जाने योग्य है, और यहाँ तक कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी अपने दिनांक 23.09.2024 के आदेश में इन आदेशों का संज्ञान लेने के बावजूद, आरोप विरचित करने के आदेश को चुनौती देने हेतु संशोधन आवेदन दाखिल करने की अनुमति नहीं दी थी। इसलिए इस स्तर पर, संशोधन आवेदन के साथ यह याचिका खारिज किए जाने योग्य थी।

(xix) विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने आवेदक के उस तर्क का उत्तर देते हुए, जिसमें कहा गया था कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का आदेश देते समय मजिस्ट्रेट द्वारा जांच रिपोर्ट पर विचार नहीं किया गया था, यह दलील दी कि यह तर्क भ्रामक है। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने मेडिकल बोर्ड की रिपोर्ट का संज्ञान लिया था और उसके बाद ही इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि मामले में जांच की आवश्यकता है, और इसी आधार पर उन्होंने आवेदक के विरुद्ध एफआईआर दर्ज करने और जांच को आगे बढ़ाने का निर्देश दिया था।

(xx) उन्होंने आगे यह दलील दी कि आवेदक का यह तर्क कि मेडिकल बोर्ड की रिपोर्ट में आवेदक की ओर से किसी भी लापरवाही का उल्लेख नहीं किया गया था, गलत धारणा पर आधारित है। मेडिकल बोर्ड की रिपोर्ट कोई ऐसा सारवान या अंतिम दस्तावेज नहीं है जिससे मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट कानूनी रूप से बाध्य हों और जिसके आधार पर उन्हें सूचनाकर्ता के आवेदन को खारिज कर देना चाहिए था। इसके विपरीत, यह एक ऐसी औपचारिकता है जिसे केवल सूचनाकर्ता द्वारा लगाए गए आरोपों की सत्यता सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है। यदि गठित मेडिकल बोर्ड ने निष्पक्ष तरीके से जाँच नहीं की है, तो मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को यह अधिकार प्राप्त है कि वह प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का आदेश दें और जाँच करवाएं, जैसा कि वर्तमान मामले में किया गया है। मेडिकल बोर्ड द्वारा की गई जाँच पक्षपाती थी, जो इस तथ्य से स्पष्ट है कि सूचनाकर्ता ने अपने आवेदन में विशेष रूप से आरोप लगाया था कि पाँच अंतःशिरा इंजेक्शन दिए गए थे, जो एंटी-मलेरिया और एंटीबायोटिक थे; यह जानकारी होने के बावजूद कि मरीज खाली पेट था, ये इंजेक्शन जानलेवा साबित हुए और मरीज की स्थिति बिगड़ गई, जिसके परिणामस्वरूप 24 घंटे के भीतर उसकी मृत्यु हो गई।

(xxi) मेडिकल बोर्ड ने उपरोक्त पहलू पर विचार नहीं किया था। विवेचना अधिकारी ने आरोप पत्र दाखिल करते समय इस बिंदु पर अपनी टिप्पणी दर्ज की है। विवेचना अधिकारी ने आगे यह भी पाया कि आवेदक द्वारा मरीज को मलेरिया का उपचार तब दिया गया जब उसमें मलेरिया का कोई लक्षण नहीं था और न ही इस संबंध में कोई रिपोर्ट मौजूद थी; इसके बावजूद मरीज को खाली पेट मलेरिया के इंजेक्शन लगाए गए। ये एंटी-मलेरिया और एंटीबायोटिक इंजेक्शन उचित समयांतराल पर नहीं दिए गए थे, और मरीज की स्थिति बिगड़ने पर भी उसे

कोई एंटी-डोट (विषनाशक/प्रतिकारक) नहीं दिया गया। यहाँ यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि कैलाश अस्पताल, नोएडा के डॉ. नरेंद्र गुप्ता के बयान के अनुसार, जिसे मेडिकल बोर्ड ने दर्ज किया था, मृत्यु का कारण 'एक्यूट सबाराकनॉइड हैमरेज' (मस्तिष्क के भीतर रक्तस्राव), 'सेरेब्रल ओडिमा' (मस्तिष्क की सूजन), 'सेप्सिस', 'रिफ्रैक्टरी शॉक', 'एक्यूट किडनी इंजरी' और 'रेस्पिरेटरी फेल्योर' (श्वसन विफलता) था। आवेदक द्वारा वे पाँच इंजेक्शन दिए जाने के बाद 24 घंटे के भीतर, यानी 14.02.2023 को शाम 05:19 बजे मरीज की मृत्यु हो गई।

(xxii) आवेदक के अधिवक्ता द्वारा दिया गया यह तर्क कि आरोप पत्र 25.08.2023 को आवेदक का दूसरा बयान दर्ज करने के बाद उसी दिन दाखिल किया गया था, रिकॉर्ड के विरुद्ध है। आवेदक का दूसरा बयान, जो प्रश्न-उत्तर के रूप में था, केवल मेडिकल बोर्ड की रिपोर्ट और जांच के दौरान दर्ज किए गए सूचनाकर्ता एवं अन्य गवाहों के बयानों को सत्यापित करने के लिए दर्ज किया गया था। उपरोक्त बयान 22.08.2023 को दर्ज किया गया था, न कि 25.08.2023 को, जैसा कि आवेदक के अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है।

(xxiii) आवेदक के अधिवक्ता का यह तर्क कि विवेचना अधिकारी ने आरोप पत्र दाखिल करने के लिए 25.08.2023 (विपक्षी संख्या 2 के अनुसार 22.08.2023) को दर्ज आवेदक के संस्वीकृति कथन पर भरोसा किया, पूरी तरह से गलत धारणा पर आधारित है। तथ्य का यह प्रश्न अनुलग्नक संख्या सी.ए..2 से स्पष्ट है, जिसमें आरोप पत्र जमा करने से पहले, विवेचना अधिकारी ने गवाहों के बयानों के साथ-साथ जाँच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्यों के आधार पर अपने निष्कर्ष दिए थे। इन निष्कर्षों को धारा 482 द.प्र.स. के तहत आवेदन के इस स्तर पर चुनौती नहीं दी जा सकती, क्योंकि उक्त निष्कर्ष विवेचना अधिकारी द्वारा आवेदक के विरुद्ध एकत्र किए गए उन प्रथम दृष्टया साक्ष्यों पर आधारित हैं, जो दर्शाते हैं कि आवेदक ने ऐसा अपराध किया है जिसके लिए वह न्यायालय द्वारा अभियोजित किए जाने योग्य है।

(xxiv) उन्होंने आगे यह दलील दी कि आवेदक के अधिवक्ता द्वारा दिया गया यह तर्क कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में देरी हुई और इसे सोच-विचार एवं परामर्श के बाद दर्ज कराया गया, गलत है, क्योंकि इस संबंध में उत्तर धारा 156(3) द.प्र.स. के तहत दिए गए दूसरे आवेदन से स्पष्ट रूप से स्वतः सिद्ध है।

(xxv) जहाँ तक आवेदक के अधिवक्ता द्वारा दिए गए इस तर्क का संबंध है कि उचित देखभाल और सावधानी बरतने वाले चिकित्सा पेशेवरों को आपराधिक अभियोजन के दायरे में नहीं लाया जा सकता, और जिसके लिए उन्होंने माननीय शीर्ष अदालत के **जैकब मैथ्यू** (उपरोक्त) और **मार्टिन एफ. डिसूजा** (उपरोक्त) के निर्णयों पर भारी भरोसा जताया है; उस पर विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि वर्तमान मामले के तथ्य भिन्न हैं। वर्तमान मामले में, मेडिकल बोर्ड ने उन आरोपों का उत्तर दिए बिना ही एक पक्षपाती रिपोर्ट प्रस्तुत की थी जो आवेदक द्वारा एक साथ दिए गए 5 इंजेक्शनों के संबंध में लगाए गए थे, और जिनके विवरण विवेचना अधिकारी द्वारा जाँच के दौरान एकत्र किए गए हैं।

(xxvi) यह आगे तर्क दिया गया है कि जिस आदेश (दिनांक 10.05.2023) के द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, उसे आवेदक द्वारा एफआईआर को चुनौती देने वाली आपराधिक विविध रिट याचिका दायर करते समय चुनौती नहीं दी गई थी। चूंकि इसे पहली बार में चुनौती नहीं दी गई थी, इसलिए अब बाद में आरोप पत्र को चुनौती देते समय दिनांक 10.05.2023 के आदेश पर सवाल नहीं उठाया जा सकता। यह भी दलील दी गई है कि विचारण न्यायालय द्वारा पूरी जांच का अवलोकन करने के बाद, चिकित्सा लापरवाही का प्रथम दृष्टया मामला पाए जाने पर आरोप पत्र पर संज्ञान लिया गया और दिनांक 19.09.2023 के आदेश के माध्यम से आवेदक को मुकदमे का सामना करने के लिए नोटिस जारी किए गए।

(xxvii) पूरी जाँच से, विवेचना अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए साक्ष्यों और मेडिकल बोर्ड के समक्ष डॉक्टरों द्वारा दिए गए बयानों पर विचार करने के बाद, डॉक्टर की 'प्रथम दृष्टया' चिकित्सा लापरवाही स्थापित हो चुकी है। ऐसे में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **पंजाब राज्य बनाम शिव राम एवं अन्य** के मामले में पारित निर्णय आवेदक के लिए सहायक सिद्ध नहीं होगा।

(xxviii) सूचनाकर्ता के अधिवक्ता होने के नाते उन पर कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने का जो आरोप लगाया गया है, वह पूरी तरह से गलत है। वास्तव में, सूचनाकर्ता ने अपने उस बेटे के लिए न्याय पाने हेतु कानून द्वारा स्थापित कानूनी प्रक्रिया को अपनाया है, जिसकी एक डॉक्टर की चिकित्सा लापरवाही के कारण कम उम्र में असामयिक मृत्यु हो गई। वह डॉक्टर न केवल सूचनाकर्ता के परिवार से परिचित था, बल्कि समाज में उसे भगवान का दर्जा दिया जाता है।

(xxix) जाँच के दौरान विवेचना अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए साक्ष्यों में वर्णित तथ्यों के अनुसार, डॉक्टर की ओर से की गई चिकित्सा लापरवाही प्रथम दृष्टया सिद्ध होती है। वर्तमान मामले में आरोप विरचित किए जा चुके हैं और आरोपमुक्ति के आवेदन को भी खारिज कर दिया गया है। अतः, इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा **राम शंकर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** (धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 27288 वर्ष 2016) के मामले में प्रतिपादित कानून के आलोक में, यह संशोधन आवेदन और धारा 482 द.प्र.स. के तहत मूल आवेदन, दोनों ही खारिज किए जाने योग्य हैं। आवेदक ने विचारण-पूर्व (pre-trial) स्तर पर ही मुकदमेबाजी को लंबा खींचने का प्रयास किया है, जो न केवल न्याय को अप्रभावी बनाता है बल्कि निराधार भी है क्योंकि इससे साक्ष्यों के नष्ट होने की संभावना बढ़ती है।

(xxx) रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के अवलोकन और मामले के तथ्यों को देखते हुए, इस स्तर पर यह नहीं कहा जा सकता कि आवेदक के विरुद्ध कोई अपराध नहीं बनता है। अदालत में की गई सभी दलीलें तथ्यों के विवादित प्रश्नों से संबंधित हैं, जिनका निर्णय इस न्यायालय द्वारा धारा 482 द.प्र.स. के तहत नहीं किया जा सकता है। इस चरण पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य**, **हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल**, **बिहार राज्य बनाम पी.पी. शर्मा** और अंत में **ज़ैंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम**

अनुवादित

मोहम्मद सराफुल हक एवं अन्य (पैरा-10) के मामलों में प्रतिपादित कानून के आलोक में केवल 'प्रथम दृष्टया' मामले को देखा जाना चाहिए।

21. न्यायालय की सहायता करते हुए, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि आवेदक एक योग्य चिकित्सक है और उसके विरुद्ध आरोप यह है कि उसने मरीज को ऐसे इंजेक्शन लगाए, जिनकी संभवतः प्रतिक्रिया हुई, जिससे उसकी स्थिति बिगड़ गई और अंततः उसकी मृत्यु हो गई। उपरोक्त आरोप भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-I (गैर-इरादतन हत्या जो हत्या की श्रेणी में नहीं आती) के तहत अपराध नहीं माना जाएगा, बल्कि अधिकतम इसे धारा 304-ए (लापरवाही के कारण मृत्यु कारित करना) के अंतर्गत कवर किया जा सकता है। अपने इस तर्क के समर्थन में उन्होंने 'जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य' के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा जताया है।

22. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है और वर्तमान आवेदन के रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

23. मामले का गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेने से पहले, इस न्यायालय के लिए सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 23.09.2024 के आदेश के प्रभावी अंश पर विचार करना उचित होगा, जिसके कारण इस मामले को सुनवाई के लिए सूचीबद्ध करना आवश्यक हुआ। आदेश का प्रभावी अंश इस प्रकार है:-

“8. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दी गई दलीलों और तिथियों एवं घटनाओं के क्रम को ध्यान में रखते हुए, हमारी यह राय है कि जब मामला इस न्यायालय (सर्वोच्च न्यायालय) के समक्ष विचाराधीन था, तब विचारण न्यायालय को वर्तमान कार्यवाही के परिणाम की प्रतीक्षा करनी चाहिए थी। चूंकि उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता द्वारा धारा 482 द.प्र.स. के तहत दायर आवेदन पर न तो पहले दौर में और न ही दूसरे दौर में गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया है, इसलिए हम इस मामले को उच्च न्यायालय को वापस भेजना उचित समझते हैं ताकि अपीलकर्ता द्वारा दायर आवेदन संख्या 39316/2023 (धारा 482 द.प्र.स.) पर गुण-दोष के आधार पर और कानून के अनुसार निर्णय लिया जा सके।

9. उच्च न्यायालय से अनुरोध किया जाता है कि वह उक्त आवेदन का यथासंभव शीघ्रता से निर्णय करे। उक्त कार्यवाही के अंतिम निपटारे तक, सत्र न्यायाधीश, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश की अदालत में लंबित सत्र मामला संख्या 854 वर्ष 2024 (विचारण) स्थगित रहेगा।”

10. इस आदेश को समाप्त करने से पहले, हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमने मामले के **गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं की है।**

11. अपील को तदनुसार निस्तारित किया जाता है।"

24. अतः, इस न्यायालय की समझ के अनुसार, उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि शीर्ष अदालत (सर्वोच्च न्यायालय) ने मामले, अर्थात् धारा 482 द.प्र.स. के तहत आवेदन को उसके गुण-दोष के आधार पर तय करने का निर्देश दिया है। यहाँ यह उल्लेख करना भी उचित होगा कि आवेदक के अधिवक्ता द्वारा दायर संशोधन आवेदन पर कोई आदेश पारित नहीं किया गया है, क्योंकि शीर्ष अदालत ने बाद के घटनाक्रमों, जैसे कि आरोपमुक्ति आवेदन की अस्वीकृति और आवेदक के विरुद्ध आरोप विरचित किए जाने को संज्ञान में लेने के संबंध में कोई विचार व्यक्त नहीं किया था। जैसा कि शीर्ष अदालत ने पहले ही अपनी राय दी है कि जब मामला उसके समक्ष विचाराधीन था, तब विचारण न्यायालय को लंबित कार्यवाही के परिणाम की प्रतीक्षा करनी चाहिए थी।

25. मामले में आगे बढ़ने से पहले, यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि माननीय शीर्ष अदालत के निर्देशानुसार मामले का निर्णय इसके गुण-दोष पर किया जा रहा है। यह अधिनिर्णय उस संशोधन आवेदन को ध्यान में रखे बिना किया जा रहा है जो उन्मोचन याचिका की अस्वीकृति और आरोपों को तय करने की प्रक्रिया को चुनौती देता है, क्योंकि इस न्यायालय की सर्वोत्तम समझ के अनुसार, माननीय शीर्ष अदालत द्वारा इस संबंध में ऐसे कोई निर्देश जारी नहीं किए गए हैं।

26. जो भी हो, यदि इस मामले में समन जारी करने का आदेश, अर्थात विचाराधीन कार्यवाही में पारित प्रारंभिक आदेश ही दोषपूर्ण पाया जाता है, तो उसके परिणामी आदेश, जैसे कि आरोपमुक्ति आवेदन की अस्वीकृति और आरोपों का तय किया जाना, स्वतः ही निष्प्रभावी हो जाएंगे। इस संबंध में, यह एक स्थापित कानूनी सिद्धांत है कि यदि कोई प्रारंभिक कार्यवाही कानून के अनुरूप नहीं है, तो उसके बाद की सभी परिणामी कार्यवाहियां दूषित मानी जाएंगी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **पंजाब राज्य बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर** के मामले में यह निर्धारित किया है कि यदि प्रारंभिक कार्यवाही ही अवैध है, तो उस कार्य से उत्पन्न होने वाली अन्य सभी आगामी कार्यवाहियां भी शून्य होती हैं।

27. **बद्रीनाथ बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य** तथा **केरल राज्य बनाम पुथेंकावु एन.एस.एस. करयोगम एवं अन्य** के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की थी कि एक बार जब किसी कार्यवाही का आधार ही समाप्त हो जाता है, तो उसके सभी परिणामी कार्य, आदेश और निर्णय स्वतः ही निरस्त हो जाते हैं। यह सिद्धांत न्यायिक, अर्ध-न्यायिक और प्रशासनिक, सभी कार्यवाहियों पर समान रूप से लागू होता है।

28. इसी प्रकार, **मंगल प्रसाद तमोली (मृत) कानूनी वारिसों के माध्यम से बनाम नर्मदेश्वर मिश्रा (मृत) कानूनी वारिसों के माध्यम से एवं अन्य** के मामले में, शीर्ष अदालत ने यह निर्धारित किया कि यदि प्रारंभिक चरण का कोई आदेश कानूनन दोषपूर्ण है, तो उसके परिणामस्वरूप होने वाली सभी आगे की कार्यवाहियां अस्तित्वहीन मानी जाएंगी और उन्हें अनिवार्य रूप से रद्द करना होगा।

असंशोधित

29. मामले के गुण-दोष पर आते हुए, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने दो मुख्य मुद्दों पर प्रकाश डाला है। विचार के लिए प्राथमिक मुद्दा यह है कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत विवेचना अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया बयान आवेदक के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही शुरू करने का आधार बन सकता है, और क्या ऐसा बयान उस उद्देश्य के लिए साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य है।

30. दूसरे, यह विचार करना भी प्रासंगिक है कि क्या माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य** के ऐतिहासिक निर्णय के आलोक में अभियुक्त पर भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है। वर्तमान तथ्यों के संदर्भ में धारा 304 आईपीसी की प्रयोज्यता की जाँच की जानी आवश्यक है।

31. पहले मुद्दे को संबोधित करने के लिए, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 25 पर विचार करना उचित है। यह धारा किसी अभियुक्त द्वारा पुलिस अधिकारी के समक्ष किए गए संस्वीकृति कथन से संबंधित है। इस प्रावधान के अनुसार, ऐसे संस्वीकृति कथन न्यायालय में अस्वीकार्य हैं और इनका उपयोग अभियुक्त के विरुद्ध साक्ष्य के रूप में नहीं किया जा सकता है।

32. पुलिस अधिकारी को दिया गया बयान" माने जाने के लिए, शब्द का अर्थ अनिवार्य रूप से यह है कि वह संचार सीधे अधिकारी को संबोधित था। दूसरे शब्दों में, केवल शब्द बोलना ही पर्याप्त नहीं है; उन्हें सूचना पहुँचाने के इरादे या प्रभाव के साथ अधिकारी को संप्रेषित किया जाना चाहिए। "किसी भी व्यक्ति द्वारा" वाक्यांश आगे यह संकेत देता है कि संचार का मूल सीमित नहीं है, लेकिन आवश्यक तत्व यह बना रहता है कि सूचना देने या अर्थ व्यक्त करने के उद्देश्य से पुलिस अधिकारी को किसी प्रकार की अभिव्यक्ति या प्रकटीकरण किया जाना चाहिए। इस प्रकार, कोई कथन तभी 'बयान' माना जाता है जब वह प्रभावी रूप से किसी पुलिस अधिकारी को संप्रेषित किया गया हो।

33. **भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 26**–"पुलिस अभिरक्षा में रहते हुए अभियुक्त द्वारा की गई स्वीकारोक्ति"। यह धारा स्पष्ट करती है कि पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा (कस्टडी) में रहते हुए अभियुक्त द्वारा की गई कोई भी स्वीकारोक्ति उसके विरुद्ध साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं होगी, जब तक कि वह किसी मजिस्ट्रेट की तत्काल उपस्थिति में न की गई हो। इसका उद्देश्य पुलिस द्वारा दबाव या अनुचित प्रभाव की संभावना को रोकना है, जिससे अभियुक्त के अधिकारों की रक्षा की जा सके।

34. **भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27** यह प्रावधान करती है कि जब किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप किसी तथ्य की खोज की जाती है, जो पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में है, तो उस जानकारी का उतना हिस्सा जो स्पष्ट रूप से खोजी गई वस्तु या तथ्य से संबंधित है, साबित किया जा सकता है। यह प्रावधान इस बात पर ध्यान दिए बिना लागू होता है कि वह जानकारी स्वीकारोक्ति की श्रेणी में आती है या नहीं।

35. सारतः, उपरोक्त धारा साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 और 26 के लिए एक 'परंतुक' के रूप में कार्य करती है, जो सामान्यतः पुलिस अधिकारियों को दी गई स्वीकारोक्ति को अस्वीकार्य बनाती हैं। हालाँकि, धारा 27 एक अपवाद पेश करती है, जो अभियुक्त के बयान के उस हिस्से की स्वीकार्यता की अनुमति देती है जो सीधे किसी प्रासंगिक तथ्य की खोज की ओर ले जाता है, जिससे उसे साक्ष्यात्मक मूल्य प्राप्त होता है।

36. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 जाँच के दौरान किसी अभियुक्त द्वारा पुलिस अधिकारी को दिए गए बयानों के उपयोग पर रोक लगाती है, सिवाय उस सीमित उद्देश्य के जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के तहत 'विरोधाभास' प्रकट करने के लिए प्रदान किया गया है। हालाँकि, यह निषेध अभियुक्त के आचरण तक विस्तारित नहीं है, विशेष रूप से तब जब ऐसा आचरण अपराध में संलिप्तता या दोष का संकेत देता हो, चाहे वह कथित अपराध की घटना से पहले, दौरान या बाद में देखा गया हो।

37. अभियोजन पक्ष को अभियुक्त के आचरण पर भरोसा करने से नहीं रोका गया है, विशेष रूप से तब जब पुलिस पूछताछ या बातचीत के दौरान ऐसा व्यवहार संदिग्ध, टालमटोल वाला या स्वयं को दोषी ठहराने वाला प्रतीत होता है। ऐसा आचरण भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के तहत प्रासंगिक हो सकता है, जो कार्यवाही में शामिल किसी भी पक्ष के उद्देश्य, तैयारी, और पूर्व या बाद के आचरण की स्वीकार्यता की अनुमति देती है, यदि ऐसा आचरण 'विवाद्यक तथ्य' या प्रासंगिक तथ्य से सीधे संबंधित हो।

38. इसके अलावा, यदि विवेचना अधिकारी ऐसे आचरण का अवलोकन करता है और उस पर गवाही देता है, तो किसी निष्पक्ष या सार्वजनिक गवाह द्वारा स्वतंत्र पुष्टि इसके साक्ष्यात्मक मूल्य को बढ़ा देती है। यह पुष्टि साक्ष्य की विश्वसनीयता को मजबूत करती है और अभियुक्त के उस व्यवहार का समर्थन करती है जो दोष या गलत कार्य की चेतना का संकेत देता है।

39. इस प्रकार, जबकि द.प्र.स. की धारा 162 अभियुक्त को 'अस्वीकार्य बयानों' के माध्यम से स्वयं को दोषी ठहराने से बचाती है, यह अभियुक्त को उनके स्वयं के आचरण के साक्ष्यात्मक परिणामों से मुक्त नहीं करती है, विशेष रूप से तब जब उस आचरण का उचित अवलोकन, दस्तावेजीकरण और पुष्टि की गई हो।

40. धारा 161 द.प्र.स. पुलिस द्वारा गवाहों के परीक्षण का प्रावधान करती है। यह कहती है:-
पुलिस मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति का परीक्षण कर सकती है।
व्यक्ति जवाब देने के लिए कानूनी रूप से बाध्य है (स्वयं को अपराधी ठहराने वाले प्रश्नों को छोड़कर)।
बयानों पर गवाह द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए जाते हैं।
जाँच के चरण के दौरान दर्ज किए जाते हैं।

41. धारा 162 द.प्र.स. पुलिस बयानों के उपयोग पर रोक की परिकल्पना करती है। यह प्रावधान करती है:-
सामान्य नियम: पुलिस को दिए गए बयानों का उपयोग साक्ष्य के रूप में नहीं किया जा सकता है।

अपवाद: न्यायालय में गवाह का खंडन करने के लिए उपयोग किया जा सकता है (भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के अनुसार)।
यह मुकदमे के दौरान दबाव, झूठे इकबालिया बयानों या दुरुपयोग को रोकता है।
यह अभियोजन और बचाव दोनों पक्षों के गवाहों पर लागू होता है।

42. धारा 162 द.प्र.स. के तहत केवल बयान के उसी वास्तविक हिस्से का उपयोग किया जा सकता है जो गवाह का खंडन करता हो। संपूर्ण बयान का उपयोग सारवान साक्ष्य के रूप में नहीं किया जा सकता है। धारा 162 द.प्र.स. के उद्देश्य को पुलिस दुरुपयोग के खिलाफ एक सुरक्षा कवच के रूप में सुदृढ़ किया गया।

43. जब कोई अभियुक्त व्यक्ति विवेचना अधिकारी को ऐसी जानकारी प्रदान करता है जिससे उन भौतिक तथ्यों की खोज होती है जो जाँच के लिए पहले अज्ञात थे, तो ऐसी जानकारी भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 के दायरे में आ सकती है। यह प्रावधान पुलिस अधिकारियों को दिए गए इकबालिया बयानों की अस्वीकार्यता के सामान्य नियम (जैसा कि अधिनियम की धारा 25 और 26 में उल्लिखित है) के अपवाद के रूप में कार्य करता है।

44. यदि अभियुक्त के प्रकटीकरण के माध्यम से खोजे गए तथ्यों की पुष्टि किसी सार्वजनिक गवाह द्वारा की जाती है और वे तथ्य अभियुक्त की जानकारी के बिना खोजे नहीं जा सकते थे, तो ऐसा साक्ष्य स्वीकार्य और प्रासंगिक हो जाता है। धारा 27 के तहत "खोजा गया तथ्य" अभिव्यक्ति में न केवल बरामद की गई भौतिक वस्तु शामिल है, बल्कि वह स्थान और उससे संबंधित ज्ञान भी शामिल है जो विशिष्ट रूप से केवल अभियुक्त के पास था।

45. हालाँकि, ऐसे साक्ष्य का प्रमाणिक मूल्य और महत्व प्रत्येक मामले के तथ्यात्मक ढांचे पर निर्भर करता है। केवल इसलिए कि एक प्रकटीकरण बयान दर्ज किया गया है, वह स्वतः ही स्वीकार्य नहीं हो जाता। अभियुक्त का आचरण, यदि प्रासंगिक हो, तो साक्ष्य की विश्वसनीयता को बढ़ाता है और आसपास की परिस्थितियों के आलोक में उसका सावधानीपूर्वक मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

46. इस प्रकार, जबकि धारा 27 जाँच के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण प्रदान करती है, अदालतों को अभियुक्त की संलिप्तता स्थापित करने के लिए उस पर भरोसा करने से पहले प्रकटीकरण की स्वैच्छिकता, विश्वसनीयता और पुष्टि का आकलन करना चाहिए।

47. दूसरे मुद्दे पर आते हुए, कुछ प्रावधानों को समझना आवश्यक है, जो निम्नलिखित हैं:-
(ए) **भारतीय दंड संहिता की धारा 300** हत्या को परिभाषित करती है। यह उन विशिष्ट स्थितियों को निर्धारित करती है जिनके तहत 'आपराधिक मानव वध' हत्या बन जाता है। हालाँकि, यह धारा पाँच अपवाद भी प्रदान

करती है, जिनके अंतर्गत किया गया कार्य, यद्यपि हत्या की सामान्य परिभाषा के दायरे में आता है, फिर भी उसे 'हत्या की श्रेणी में न आने वाला आपराधिक मानव वध' माना जाता है।

(बी) **धारा 304 आईपीसी - हत्या की श्रेणी में न आने वाले आपराधिक मानव वध के लिए दंड:**

धारा 304 आईपीसी हत्या की श्रेणी में न आने वाले आपराधिक मानव वध के लिए सजा निर्धारित करती है और इसे दो भागों में विभाजित किया गया है:

भाग I : यह तब लागू होता है जब कार्य मृत्यु कारित करने के इरादे से किया गया हो, या ऐसी शारीरिक चोट पहुँचाने के इरादे से किया गया हो जिससे मृत्यु होने की संभावना हो।

भाग II: यह तब लागू होता है जब कार्य इस जानकारी के साथ किया जाता है कि इससे मृत्यु होने की संभावना है, लेकिन मृत्यु कारित करने या वैसी शारीरिक चोट पहुँचाने के इरादे के बिना किया गया हो।

दंड: 10 वर्ष तक का कारावास, या जुर्माना, या दोनों।

(सी). **धारा 304 आईपीसी का दायरा:** भारतीय दंड संहिता की धारा 304 का दायरा तब उत्पन्न होता है जब मृत्यु कारित करने का कार्य 'हत्या' (जैसा कि धारा 300 आईपीसी के तहत परिभाषित है) की श्रेणी में नहीं आता है। किसी अभियुक्त को इस धारा के तहत दोषी ठहराने के लिए, अभियोजन पक्ष को यह स्थापित करना होगा कि अभियुक्त वास्तव में दोषी है, लेकिन मामला धारा 300 आईपीसी के पांच अपवादों में से किसी एक के अंतर्गत आता है।

(i). **धारा 304 का प्रथम भाग:** धारा 304 का पहला भाग तब लागू होता है जब कार्य मृत्यु कारित करने के इरादे से या ऐसी शारीरिक चोट पहुँचाने के इरादे से किया गया हो जिससे मृत्यु होने की संभावना हो। इस भाग के तहत सजा आजीवन कारावास, या दस साल तक के कारावास और संभावित जुर्माने तक हो सकती है।

(ii). **धारा 304 का द्वितीय भाग:** दूसरा भाग तब लागू होता है जब कार्य इस जानकारी के साथ किया जाता है कि इससे मृत्यु होने की संभावना है, लेकिन मृत्यु कारित करने या मृत्यु की संभावना वाली शारीरिक चोट पहुँचाने के किसी इरादे के बिना किया गया हो। इस भाग के लागू होने के लिए, हमलावर द्वारा मृत्यु उन परिस्थितियों में कारित की गई होनी चाहिए जो धारा 300 आईपीसी के पांच अपवादों में से किसी एक के अंतर्गत आती हों। इसकी सजा दस साल तक का कारावास, या जुर्माना, या दोनों है।

48. जैकब मैथ्यू (उपरोक्त) मामले में स्थापित कानूनी सिद्धांतों के आलोक में, चिकित्सा लापरवाही के लिए एक चिकित्सक के दायित्व का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन किया जाना चाहिए। एक चिकित्सक जो लगन से रोगी का उपचार और उसे ठीक करता है, उसे निर्णय की सामान्य त्रुटियों या मामूली चूक के लिए आपराधिक रूप से उत्तरदायी नहीं ठहराया जाना चाहिए। हालांकि, वे डॉक्टर जो घोर लापरवाही के साथ कार्य करते हैं, जो मानक चिकित्सा पद्धतियों की घोर अवहेलना प्रदर्शित करता है, उन्हें आपराधिक कानून के तहत जवाबदेह ठहराया जा सकता है।

49. उपरोक्त निर्णय साधारण लापरवाही, जो नागरिक दायित्व को आकर्षित कर सकती है, और घोर लापरवाही, जो आपराधिक अभियोजन को आमंत्रित कर सकती है, के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर रेखांकित करता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि आपराधिक दायित्व केवल तभी लगाया जाना चाहिए जब

लापरवाही इतने उच्च स्तर की हो कि वह राज्य के विरुद्ध अपराध के समान हो। **जैकब मैथ्यू (उपरोक्त)** मामले में, शीर्ष अदालत ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:-

i) **मुद्दा:** क्या किसी डॉक्टर को भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) की धारा 304ए के तहत लापरवाही के लिए आपराधिक रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

ii) **निर्णय:** सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि आपराधिक लापरवाही के लिए एक डॉक्टर पर मुकदमा चलाने के लिए, यह दिखाया जाना चाहिए कि डॉक्टर का आचरण घोर लापरवाही वाला या लापरवाह था।

iii) **निर्धारित सिद्धांत:** एक चिकित्सा पेशेवर को लापरवाही के लिए आपराधिक रूप से उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता, जब तक कि यह साबित न हो जाए कि वे उचित सक्षमता का प्रयोग करने में विफल रहे या उन्होंने घोर लापरवाही के साथ कार्य किया।

iv) **अभियोजन के लिए आवश्यकता:** आपराधिक कार्यवाही शुरू करने से पहले, घोर लापरवाही के आरोप का समर्थन करने के लिए एक स्वतंत्र और सक्षम चिकित्सा राय होनी चाहिए।

50. भारत में कानूनी संदर्भ के आधार पर लापरवाही की अलग-अलग व्याख्याएं होती हैं, विशेष रूप से तब जब नागरिक और आपराधिक दायित्व के बीच अंतर करना हो। यहाँ आपराधिक लापरवाही पर चर्चा करना उपयुक्त होगा। आपराधिक लापरवाही में मानवीय जीवन और सुरक्षा के प्रति एक घोर और दोषपूर्ण अवहेलना शामिल है, जो मात्र असावधानी से कहीं परे है। उन मामलों में जहाँ लापरवाही के परिणामस्वरूप मृत्यु हो जाती है, प्रासंगिक प्रावधान भारतीय दंड संहिता की धारा 304ए है, जो लापरवाही से मृत्यु कारित करने से संबंधित है। यह धारा तब लागू होती है जब मृत्यु किसी ऐसे उतावलेपन या उपेक्षापूर्ण कार्य के कारण होती है जो पूर्व नियोजित या इरादतन नहीं था, प्रभावी रूप से, यह लापरवाह आचरण से उत्पन्न मानव वध का एक रूप है।

51. अधिक गंभीर दृष्टांतों में, जहाँ लापरवाही 'इरादतन' या 'जानबूझकर' किए गए आचरण की सीमा तक पहुँच जाती है, वहाँ आईपीसी की धारा 304 लागू हो सकती है। यह धारा हत्या की श्रेणी में न आने वाले आपराधिक मानव वध से संबंधित है, और इसे तब लागू किया जा सकता है जब लापरवाही उतावलेपन के उच्च स्तर या घोर उदासीनता को प्रकट करती हो।

52. जब लापरवाहीपूर्ण कार्य क्षति पहुँचाता है या मानव जीवन को खतरे में डालता है लेकिन उसके परिणामस्वरूप मृत्यु नहीं होती है, तो अन्य प्रासंगिक प्रावधानों में शामिल हैं:-

a) धारा 336 आईपीसी - दूसरों के जीवन या व्यक्तिगत सुरक्षा को खतरे में डालने वाले कार्य,

b) धारा 337 आईपीसी - दूसरों के जीवन या व्यक्तिगत सुरक्षा को खतरे में डालने वाले कार्य द्वारा उपहति (चोट) पहुँचाना,

c) धारा 338 आईपीसी - दूसरों के जीवन या व्यक्तिगत सुरक्षा को खतरे में डालने वाले कार्य द्वारा घोर उपहति (गंभीर चोट) पहुँचाना।

53. **चिकित्सा लापरवाही:** चिकित्सा के संदर्भ में, आपराधिक लापरवाही तब स्थापित होती है जब कोई चिकित्सा पेशेवर सक्षमता या देखभाल की भारी कमी प्रदर्शित करता है, अनिवार्य रूप से, रोगी के जीवन या सुरक्षा के प्रति लापरवाह अवहेलना। यह मेन्स रिया (अपराधिक इरादा) के समान हो सकता है, जो **ऐक्टस रियस** (दोषपूर्ण कार्य) के साथ, आपराधिक दायित्व स्थापित करने के लिए आवश्यक तत्वों में से एक है।

54. भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार इस बात पर जोर दिया है कि किसी चिकित्सा पेशेवर को लापरवाही के लिए आपराधिक रूप से उत्तरदायी ठहराने के लिए, लापरवाही 'घोर' या 'लापरवाह' प्रकृति की होनी चाहिए, न कि केवल निर्णय की त्रुटि या कोई दुर्घटना।

55. **जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य** में, माननीय शीर्ष अदालत ने निर्णय के पैरा 12 में यह निर्धारित किया कि केवल देखभाल की कमी या लापरवाही का कार्य, जो नागरिक दायित्व को जन्म दे सकता है, आपराधिक दायित्व को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि आपराधिक अपराध स्थापित करने के उद्देश्य से लापरवाही 'घोर' या बहुत उच्च स्तर की होनी चाहिए। केवल ऐसी गंभीर लापरवाही ही दंडनीय परिणामों वाले आपराधिक कृत्य के समान हो सकती है।

56. लापरवाही के उच्च स्तर की अवधारणा को अक्सर आपराधिक लापरवाही के मामलों में एक मिसाल के रूप में उद्धृत किया गया है, जिसमें न्यायालयों ने यह निर्धारित किया है कि मामले की परिस्थितियों से 'घोर लापरवाही' स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष थी।

57. **एस.वी. नारायण राव बनाम रत्नमाला एवं अन्य** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि किसी कार्य को आपराधिक लापरवाही मानने के लिए, लापरवाही का स्तर बहुत उच्च श्रेणी का होना चाहिए, इसे घोर या अत्यंत उच्च स्तर का होना चाहिए। न्यायालय ने जोर दिया कि केवल अनवधानता या निर्णय की त्रुटि आपराधिक लापरवाही के समान नहीं होती है।

58. इसी प्रकार, **डॉ. सुरेश गुप्ता बनाम एनसीटी दिल्ली सरकार** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 304ए के तहत अभियोजन को बनाए रखने के लिए, अभियोजन पक्ष को चिकित्सा व्यवसायी की ओर से लापरवाही के बहुत उच्च स्तर को स्थापित करना होगा। न्यायालय ने टिप्पणी की कि आपराधिक दायित्व केवल तभी उत्पन्न होगा जब लापरवाही इतनी घोर हो कि उसे उतावलापन या मानव जीवन और सुरक्षा के प्रति पूर्ण अवहेलना कहा जा सके।

59. यह एक स्वीकृत स्थिति है कि आवेदक एक योग्य चिकित्सक था। पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों के संपूर्ण अंबार में अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध चूक या कृत्य का कोई विशिष्ट आरोप नहीं है। डॉक्टर द्वारा इंजेक्शन लगाने का कार्य, जिसे उन पर आरोपित किया गया है, यदि सत्य भी मान लिया जाए, तो उसे लापरवाही के कार्य के रूप में वर्णित किया जा सकता है क्योंकि इंजेक्शन देने से पहले उचित देखभाल और सावधानी की कमी रही

होगी। लेकिन, न्यायालय इस लापरवाही के कार्य के लिए आवेदक को स्पष्ट रूप से आपराधिक रूप से उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता क्योंकि यह उसकी असावधानी या उचित ध्यान की कमी हो सकती है। जैसा कि माननीय शीर्ष अदालत द्वारा **एस.वी. नारायण राव (उपरोक्त)** के मामले में पहले ही चर्चा और अवलोकन किया जा चुका है कि वर्तमान मामले की तरह ही, लगातार पांच इंजेक्शन देने में निर्णय की त्रुटि आपराधिक लापरवाही के समान नहीं है।

60. आपातकालीन स्थिति का सामना करने वाला एक चिकित्सा व्यवसायी सामान्यतः रोगी को उसकी पीड़ा से मुक्त करने का अपना सर्वोत्तम प्रयास करता है। लापरवाही से कार्य करने या किसी कार्य को करने में चूक करने से उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। स्पष्ट रूप से, इसलिए, किसी चिकित्सा व्यवसायी पर आपराधिक आरोप लगाने या कार्यवाही करने से पहले शिकायतकर्ता को लापरवाही का मामला स्पष्ट रूप से सिद्ध करना होगा। कानूनी कार्रवाई के डर से कांपते हाथों वाला सर्जन सफल ऑपरेशन नहीं कर सकता और डर से कांपता हुआ चिकित्सक अपने रोगी को दवा की अंतिम खुराक नहीं दे सकता।

61. आपराधिक कानून के तहत आवेदक पर लापरवाही के लिए मुकदमा चलाने हेतु, यह दिखाया और सिद्ध किया जाना चाहिए कि अभियुक्त ने कुछ ऐसा किया या कुछ ऐसा करने में विफल रहा, जिसे मामले के वर्तमान तथ्यों में, अपनी सामान्य बुद्धि और विवेक वाला कोई भी चिकित्सा व्यवसायी नहीं करता या करने में विफल नहीं होता। कथित अभियुक्त आवेदक द्वारा किया गया ऐसा कार्य इस प्रकृति का होना चाहिए कि जिसके परिणामस्वरूप होने वाली क्षति स्पष्ट रूप से संभावित थी।

62. सूचनाकर्ता का यह मामला नहीं है कि आवेदक एक डॉक्टर नहीं था, या वह उसके बेटे के इलाज के लिए योग्य नहीं था, जिसका उसने इलाज करना स्वीकार किया हो। यह भी ऐसा मामला नहीं है कि इंजेक्शन जानबूझकर या यह जानते हुए दिए गए थे कि इससे बच्चे की स्थिति बिगड़ जाएगी। यह काफी स्वाभाविक था कि गंभीर स्थिति को देखते हुए, सूचनाकर्ता के बेटे को सर्वोत्तम संभव उपचार प्रदान किया गया था।

63. पक्षकारों के अधिवक्ताओं के तर्कों पर विचार करते हुए, यह न्यायालय यह भी पाता है कि किसी भी अभियुक्त के विरुद्ध केवल उसके द्वारा दिए गए बयान के आधार पर कार्यवाही नहीं की जा सकती, जब उस बयान के अतिरिक्त कोई अन्य सामग्री उपलब्ध न हो। प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित किसी भी कथित अभियुक्त व्यक्ति का ऐसा कोई बयान उसके विरुद्ध नहीं पढ़ा जा सकता और न ही उसे साक्ष्य के एक स्वीकार्य अंश के रूप में लिया जा सकता है। इस प्रकार, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, विवेचना अधिकारी के समक्ष दिए गए बयान के आधार पर आवेदक को दंडित करना उचित नहीं होगा।

64. **भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3)** पर विचार करना भी उचित होगा, जो यह अधिदेश देता है कि किसी भी अपराध के आरोपी व्यक्ति को स्वयं के विरुद्ध गवाह बनने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद 20(3) में दी गई गारंटी 'प्रशंसात्मक मजबूरी' के विरुद्ध है, लेकिन इसे केवल उस व्यक्ति के मौखिक साक्ष्य तक सीमित रखने का कोई कारण नहीं है जो मुकदमे के दौरान गवाह के रूप में बुलाया गया हो। 'गवाह बनने' के वाक्यांश के संबंध में एक

अभियुक्त को दी गई सुरक्षा न केवल अदालत कक्ष में प्रशंसात्मक मजबूरी के संबंध में है, बल्कि उससे पहले प्राप्त किए गए साक्ष्य तक भी विस्तारित हो सकती है। इसलिए, यह सुरक्षा उस व्यक्ति के लिए उपलब्ध है जिसके विरुद्ध अपराध करने का औपचारिक आरोप लगाया गया है, जिसका सामान्य परिणाम अभियोजन हो सकता है।

65. इस परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर, **अनुच्छेद 20(3)** के तहत दी गई गारंटी उन व्यक्तियों को उपलब्ध होगी जिनके विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट में अभियुक्त के रूप में नाम दर्ज किया गया है। यह साक्ष्य संबंधी दस्तावेजों को प्रस्तुत करने के लिए किसी भी ऐसी अनिवार्य प्रक्रिया तक विस्तृत होगा, जिसके द्वारा उनके विरुद्ध अभियोजन का समर्थन होने की उचित संभावना हो।

66. **डॉ. मोहन बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य** के मामले में, शीर्ष अदालत ने यह निर्धारित किया है कि टेलीफोन पर स्टाफ नर्स को एक इंजेक्शन लगाने का निर्देश देने के आरोप को पढ़ने के बाद–जिस इंजेक्शन को लगाने पर स्पष्ट रूप से रोगी पर विपरीत प्रतिक्रिया हुई और परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई–वह धारा 304 भाग-I आईपीसी के तहत अपराध नहीं होगा और उसे धारा 304ए आईपीसी के अंतर्गत कवर किया जा सकता है।

67. पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों और राज्य की ओर से दी गई दलीलों से यह प्रतीत होता है कि चिकित्सा रिपोर्ट पर भरोसा किया गया था। हालाँकि, संबंधित न्यायालय इस मामले का संज्ञान लेते समय कोई तर्कसंगत आदेश देने में विफल रहा कि चिकित्सा रिपोर्ट पर विचार क्यों नहीं किया गया।

68. न तो मेडिकल बोर्ड द्वारा जारी चिकित्सा रिपोर्ट को कभी चुनौती दी गई है, और न ही संबंधित न्यायालय ने इस रिपोर्ट और विवेचना अधिकारी द्वारा आवेदक (जो प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित अभियुक्त है) द्वारा उठाए गए प्रश्नों के जवाबों के बीच के अंतर्विरोधों को संबोधित किया है। चूँकि मजिस्ट्रेट ने आवेदक को तलब करते हुए मामले में पहले ही कार्यवाही शुरू कर दी है, ऐसी परिस्थितियों में मामले के गुणों की जाँच करना उचित होता। यह तथ्यों और लागू कानूनी प्रावधानों पर गहन विचार करने के बाद किया जाना चाहिए था। अधिकतम, मजिस्ट्रेट आवेदक को आईपीसी की धारा 304ए के तहत समन जारी कर सकते थे। लेकिन उस मामले के लिए भी बहुत उच्च स्तर की लापरवाही सिद्ध नहीं होती है।

69. उपरोक्त चर्चाओं के साथ-साथ **जैकब मैथ्यू (उपरोक्त)** के मामले में की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, मुकदमा अपराध संख्या 376 वर्ष 2023, अंतर्गत धारा 304 आईपीसी, थाना- खुर्जा नगर, जिला- बुलंदशहर से उत्पन्न आरोप पत्र संख्या 593 वर्ष 2023 और संज्ञान/समन आदेश दिनांक 19.09.2023 के साथ-साथ अपराध संख्या 7991 वर्ष 2023 (राज्य बनाम डॉ. नीरज कुमार) की संपूर्ण कार्यवाही को एतद्द्वारा **रद्द** किया जाता है।

70. धारा 482 द.प्र.स. के तहत वर्तमान आवेदन तदनुसार **स्वीकार** किया जाता है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

71. इस आदेश की एक प्रति तत्काल अवर न्यायालय को भेजी जाए।

(2025) 5 ILRA 1805

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक : लखनऊ 22.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया,

कंपनी याचिका संख्या - 6 सन् 2012

ज़ाइटेक पॉलीब्लेंड्स प्रा० लि० ...याचिकाकर्ता

बनाम

श्री दुर्गा बंसल फ़र्टिलाइज़र लि० ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता :

अमरेंद्र नाथ त्रिपाठी, राहुल एस. सहाय, राजेश कुमार वर्मा, शोभित मोहन शुक्ला, श्रद्धा अग्रवाल, स्तुति मित्तल

प्रतिवादी की ओर से अधिवक्ता :

शैलेन्द्र श्रीवास्तव, अमल रस्तोगी, अनुराग वर्मा, बसंत अग्रवाल, देवेंद्र मोहन शुक्ला, नलिनी जैन, प्रितिश कुमार, तुषार हिरवानी

सिविल विधि – कंपनी अधिनियम, 1956 – धारा 439(1)(b), 433(e) (f) एवं 434(1)(a) – सिक औद्योगिक कंपनियाँ (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1985 – धारा 20(1) –प्रतिवादी/कंपनी के परिसमापन हेतु याचिका, मुख्यतः इस आधार पर कि उसने स्वीकृत राशि ₹21,55,52,263/- का भुगतान करने में विफलता प्रदर्शित की है- कंपनी अधिनियम की धारा 433(c) के अंतर्गत कंपनी के परिसमापन हेतु प्रार्थना के अभाव में ऐसी याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता – 'असाइनमेंट डीड' पर आधारित याचिकाकर्ता/कंपनी का दावा, परिसमापन की मांग का आधार नहीं बन सकता- किसी कंपनी के परिसमापन का मामला इस आधार पर कि ऐसा करना न्यायसंगत एवं उचित है, स्वीकार किए जाने के लिए यह आवश्यक है कि न्यायालय कंपनी की स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए यह दृष्टिकोण बनाए कि यदि कंपनी का परिसमापन नहीं किया जाता है, तो वही वाणिज्यिक जगत के लिए एक खतरा होगा तथा कंपनी का अस्तित्व वाणिज्यिक जगत के लिए वांछनीय नहीं रहेगा। वर्तमान मामले में ऐसा कोई भी सामग्री उपलब्ध नहीं है, जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि यदि कंपनी का परिसमापन नहीं किया गया तो वह वाणिज्यिक जगत के लिए खतरा उत्पन्न करेगी और/अथवा लेनदारों के साथ और अधिक धोखाधड़ी का कारण बनेगी, विशेष रूप से तब, जब प्रतिवादी/कंपनी ने स्पष्ट रूप से यह प्रतिज्ञा की है कि वह वर्तमान वाद के निर्णय की तिथि से तीन सप्ताह की अवधि के भीतर भविष्य निधि (Provident Fund) की समस्त देय राशि का निस्तारण करेगी, साथ ही किसी अन्य लेनदार को देय किसी भी अन्य बकाया राशि का भी भुगतान करेगी।

अनुवादित

याचिका निरस्त की जाती है। (E-15)

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया, द्वारा)

1. याचिकाकर्ता की ओर से श्रीमती श्रद्धा अग्रवाल, विद्वान अधिवक्ता, जिन्हें श्री शोभित मोहन शुक्ला तथा सुश्री गुरसिमरन कौर, विद्वान अधिवक्ता द्वारा सहायता प्रदान की गई; प्रतिवादी संख्या-1 की ओर से श्री एन.के. सेठ, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिन्हें श्री प्रितिश कुमार, श्री तुषार हिरवानी तथा श्री अमल रस्तोगी, विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा सहायता प्रदान की गई; प्रतिवादी संख्या-2 की ओर से श्री आर.के. वर्मा, विद्वान अधिवक्ता तथा आधिकारिक परिसमापक की ओर से श्री अनुराग वर्मा, विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता/कंपनी द्वारा कंपनी अधिनियम की धारा 439(1)(b), धारा 433(e) एवं (f) तथा धारा 434(1)(a) के अंतर्गत, साथ ही सिक औद्योगिक कंपनियाँ (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1985 की धारा 20(1) के अंतर्गत प्रस्तुत की गई है, जिसमें प्रतिवादी/कंपनी के परिसमापन की प्रार्थना मुख्यतः इस आधार पर की गई है कि उसने नोटिस के पैरा 19(iii) में वर्णित अनुसार, असुरक्षित ऋण पर ब्याज को छोड़कर, स्वीकृत राशि ₹21,55,52,263/- (रुपये इक्कीस करोड़ पचपन लाख बावन हजार दो सौ तिरसठ मात्र) का भुगतान करने में विफलता प्रदर्शित की है।

3. यह भी कहा गया है कि औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (संक्षेप में "बी.आई.एफ.आर.") ने दिनांक 26.07.1996 को कंपनी के परिसमापन की संस्तुति की थी तथा उक्त आदेश की पुष्टि औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण के लिए अपीलीय प्राधिकरण (संक्षेप में "ए.ए.आई.एफ.आर.") एवं माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा की गई थी। इस प्रकार यह तर्क प्रस्तुत किए जाने का प्रस्ताव है कि प्रतिवादी/कंपनी अपने ऋणों का भुगतान करने में असमर्थ है। यह भी कहा गया है कि प्रतिवादी/कंपनी तथा उसके निदेशक एवं अधिकारी, याचिकाकर्ता सहित अपने लेनदारों के साथ धोखाधड़ी करने के उद्देश्य से मशीनरी आदि का निस्तारण करने का प्रयास कर रहे हैं। प्रतिवादी/कंपनी के कार्यकलापों में सत्यनिष्ठा के अभाव से संबंधित आरोप भी किए गए हैं।

4. यह भी कहा गया है कि प्रतिवादी/कंपनी की अधिकृत शेयर पूंजी ₹4,00,00,000/- (रुपये चार करोड़ मात्र) थी, जो ₹10/- प्रत्येक के 40,00,000 इक्विटी शेयरों में विभाजित थी, तथा बैलेंस शीट के अनुसार जारी, चुकता एवं अभिदत्त (सब्सक्राइब्ड) पूंजी ₹3,46,49,530/- (रुपये तीन करोड़ छियालीस लाख उनचास हजार पाँच सौ तीस मात्र) थी।

5. यह प्रतिपादित किया गया है कि प्रतिवादी/कंपनी की स्थापना मुख्यतः जैविक एवं अकार्बनिक रसायनों से संबंधित सभी प्रकार के उर्वरकों के निर्माण एवं उनके व्यापार के उद्देश्य से की गई थी, जैसा कि प्रतिवादी/कंपनी के स्मारक (मेमोरेंडम) एवं उपविधियों (आर्टिकल्स ऑफ़ एसोसिएशन) में उल्लिखित है, जो परिशिष्ट संख्या-1

एवं 2 में संलग्न हैं। यह भी प्रतिपादित किया गया है कि याचिका के पैरा-8 में कहा गया है कि प्रतिवादी/कंपनी विगत दस वर्षों से कार्यरत नहीं है और बंद अवस्था में पड़ी हुई है।

6यह कहा गया एवं प्रतिपादित किया गया है कि प्रतिवादी/कंपनी ने वित्तीय संस्थानों, अर्थात् आईडीबीआई बैंक, आईसीआईसीआई बैंक एवं आईएफसीआई लिमिटेड से वित्तीय सुविधाएँ प्राप्त की थीं तथा ₹486 लाख तक का ऋण लिया था, जिसके संबंध में कंपनी के निदेशकों द्वारा अपनी बिना शर्त एवं अपरिवर्तनीय व्यक्तिगत गारंटियाँ प्रदान की गई थीं। आगे यह भी कहा गया है कि उक्त वित्तीय संस्थानों द्वारा ₹63.30 लाख का अतिरिक्त ऋण स्वीकृत किया गया था, जिसके अनुपात याचिका के पैरा-9 एवं 10 में प्रकट किए गए हैं।

7. यह कहा गया है कि वित्तीय संस्थानों से लिए गए बकाया ऋण को सुरक्षित करने हेतु दिनांक 10.09.1987 एवं 15.11.1989 को ऋण अनुबंध निष्पादित किए गए तथा सुरक्षा संबंधी दस्तावेज भी वित्तीय संस्थानों के पक्ष में निष्पादित किए गए और उत्तर प्रदेश के जिला फैज़ाबाद में स्थित प्रतिवादी/कंपनी की अचल संपत्तियों के संबंध में समन्यायिक बंधक (Equitable Mortgage) भी सृजित किया गया।

8. यह प्रतिपादित किया गया है कि प्रतिवादी/कंपनी ने वर्ष 1994 में औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (संक्षेप में "सिका अधिनियम") के अंतर्गत बी.आई.एफ.आर. के समक्ष वाद संख्या-33 सन् 1994 के माध्यम से एक संदर्भ प्रस्तुत किया था। उक्त कार्यवाही में बी.आई.एफ.आर. ने यह घोषित किया कि पुनर्वास के सभी प्रयास विफल हो चुके हैं तथा दिनांक 26.07.1996 के आदेश (परिशिष्ट-3) द्वारा सिका अधिनियम की धारा 20(1) के अंतर्गत कंपनी को परिसमापन हेतु संदर्भित किया था। यह भी कहा गया है कि बी.आई.एफ.आर. के रजिस्ट्रार ने उक्त आदेश का अनुपालन करते हुए इस न्यायालय के रजिस्ट्रार को विधिवत सूचना दी थी, तथापि उसके उपरांत कोई कार्रवाई नहीं की गई।

9. आगे यह भी कहा गया है कि बी.आई.एफ.आर. के दिनांक 26.07.1996 के आदेश के विरुद्ध ए.ए.आई.एफ.आर. के समक्ष अपील प्रस्तुत की गई थी, तथापि उक्त अपील बाद में निरस्त कर दी गई। इसके पश्चात प्रतिवादी/कंपनी ने रिट याचिका (सिविल) संख्या-968 सन् 1999 के माध्यम से माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, किंतु उक्त रिट याचिका भी दिनांक 07.03.2000 को प्रतिवादी/कंपनी के विरुद्ध प्रतिकूल टिप्पणियों के साथ निरस्त कर दी गई (परिशिष्ट-5)। यह भी कहा गया है कि जब प्रतिवादी/कंपनी वित्तीय संस्थानों से लिए गए अपने बकायों का परिसमापन करने में विफल रही, तब वित्तीय संस्थानों ने बैंकों एवं वित्तीय संस्थानों को देय ऋण की वसूली अधिनियम, 1993 (संक्षेप में "डी.आर.टी. अधिनियम") के अंतर्गत वसूली हेतु ऋण वसूली अधिकरण-I, दिल्ली के समक्ष ओ.ए. संख्या-201 सन् 1999 प्रस्तुत की। उक्त O.A. को दिनांक 17.09.2004 को प्रतिवादी/कंपनी के विरुद्ध निर्णीत किया गया तथा ₹8,79,01,479/- (आठ करोड़ उन्यासी लाख एक हजार चार सौ उन्नासी रुपये) की धनराशि के लिए, O.A. के दायर किए जाने की तिथि अर्थात् 24.03.1999 से 11% की दर से लंबित अवधि का ब्याज (पेंडेंटेलाइट) एवं भविष्य का ब्याज सहित, वसूली प्रमाणपत्र जारी किया गया तथा व्यय भी आरोपित किया गया। डी.आर.टी. ने यह भी उपबंधित किया

कि यदि उक्त धनराशि का भुगतान नहीं किया जाता है, तो उसकी वसूली आक्षेपित संपत्तियों तथा बंधक रखी गई संपत्तियों की नीलामी/विक्रय के माध्यम से तथा उक्त मूल आवेदन में प्रतिवादियों की व्यक्तिगत संपत्तियों से की जाएगी। तत्पश्चात्, डी.आर.टी.-I, दिल्ली द्वारा जारी वसूली प्रमाणपत्र को निष्पादन हेतु डी.आर.टी., लखनऊ को स्थानांतरित किया गया, क्योंकि उनकी संपत्तियाँ जनपद फैजाबाद में स्थित थीं, जो डी.आर.टी., लखनऊ के क्षेत्राधिकार में आता है।

10. यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता/कंपनी तथा आई.डी.बी.आई. बैंक (जो कि ऋणदाता बैंकों में से एक है) के मध्य दिनांक 07.11.2006 को एक असाइनमेंट विलेख निष्पादित किया गया (जिसे "डीड ऑफ असाइनमेंट" के नाम से जाना जाता है), जिसे दिनांक 07.11.2006 को ही उप-पंजीयक कार्यालय VII, नई दिल्ली में पंजीकृत भी कराया गया। उक्त असाइनमेंट विलेख की शर्तों के अनुसार, प्रतिवादी/कंपनी द्वारा आई.डी.बी.आई. बैंक के प्रति देय ऋण पोर्टफोलियो को याचिकाकर्ता/कंपनी के पक्ष में अंतरण कर दिया गया। यह भी दावा किया गया है कि प्रतिवादी/कंपनी द्वारा आई.सी.आई.सी.आई. बैंक तथा स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के प्रति देय ऋणों को दिनांक 31.03.2005 एवं 16.01.2006 के असाइनमेंट विलेखों के माध्यम से कोटक महिंद्रा बैंक लिमिटेड के पक्ष में असाइन कर दिया गया था। यह भी अभिकथित किया गया है कि प्रतिवादी/कंपनी ने कोटक महिंद्रा बैंक लिमिटेड तथा आई.एफ.सी.आई. लिमिटेड के बकाया देयों का निस्तारण करने हेतु याचिकाकर्ता/कंपनी से असुरक्षित ऋण के रूप में धनराशि उधार ली थी तथा उक्त धनराशि से प्रतिवादी/कंपनी द्वारा बकाया देयों का भुगतान कर दिया गया था, तथापि, वार्ताओं के एक भाग के रूप में वित्तीय साधन याचिकाकर्ता/कंपनी को सौंप दिए गए थे और इस आशय की स्वीकृति प्रतिवादी/कंपनी की दिनांक 31.03.2010 की बैलेंस शीट में ₹96,80,632.67/- (छियानवे लाख अस्सी हजार छह सौ बत्तीस रुपये सड़सठ पैसे) के अंतर-निगम ऋण के रूप में भी परिलक्षित होती है, जिसमें से ₹64,30,000/- (चौंसठ लाख तीस हजार रुपये) याचिकाकर्ता/कंपनी के हैं।

11. यह भी कहा गया है कि सहायक भविष्य निधि आयुक्त द्वारा भी कुछ देयों का आकलन किया गया था, जिसके अंतर्गत प्रतिवादी/कंपनी के विरुद्ध ₹25,24,091/- (पच्चीस लाख चौबीस हजार इक्यानवे रुपये) की देयता का दावा किया गया था।

12. यह कहा गया है कि प्रतिवादी/कंपनी द्वारा की गई एक संप्रेषण के माध्यम से प्रारंभ में यह रुख अपनाया गया कि कंपनी को बी.आई.एफ.आर. द्वारा परिसमापन हेतु अनुशंसित किया गया है, तथा तत्पश्चात् एक अन्य पत्र लिखा गया, जिसमें यह कहा गया कि सभी ऋणदाताओं के बकाया देयों का निस्तारण कर दिया गया है, किंतु आई.डी.बी.आई. बैंक के बकाया देयों को याचिकाकर्ता/कंपनी के पक्ष में असाइन कर दिया गया है, जिसके संबंध में निस्तारण हेतु वार्ताएँ जारी हैं।

13. आगे यह भी कहा गया है कि तत्पश्चात् प्रतिवादी/कंपनी के पास उपलब्ध निधियों में से प्रतिवादी/कंपनी के प्रबंधन द्वारा अवैध रूप से ₹6,75,000/- (छह लाख पचहत्तर हजार रुपये) की धनराशि आहरित की गई तथा ₹6,20,000/- (छह लाख बीस हजार रुपये) की धनराशि भविष्य निधि खाते में जमा की गई। यह दावा किया

गया है कि इसके उपरांत प्रतिवादी/कंपनी, याचिकाकर्ता/कंपनी के प्रतिकूल, कंपनी की अचल संपत्तियों को अवैध रूप से विक्रय करने का प्रयास कर रही थी।

14. यह अभिकथित किया गया है कि प्रतिवादी/कंपनी ने ₹2,24,30,000/- (दो करोड़ चौबीस लाख तीस हजार रुपये) के सुरक्षित ऋण तथा ₹64,30,000/- (चौंसठ लाख तीस हजार रुपये) के असुरक्षित ऋण को दर्शाकर ऋण को स्वीकार किया है। यह भी अभिकथित किया गया है कि प्रतिवादी/कंपनी द्वारा ₹2,24,30,000/- की धनराशि के लिए याचिकाकर्ता/कंपनी के पक्ष में एक प्रभार भी सृजित किया गया, जिसे अधिनियम की धारा 125 के अंतर्गत रजिस्ट्रार ऑफ कंपनीज़ (संक्षेप में 'आर.ओ.सी.') के समक्ष पंजीकृत भी कराया गया।

15. यह कहा गया है कि बार-बार किए गए अनुरोधों एवं स्मरण पत्रों के बावजूद प्रतिवादी/कंपनी द्वारा याचिकाकर्ता/कंपनी के प्रति अपनी देयता का निर्वहन नहीं किया गया, जिसके परिणामस्वरूप कंपनी अधिनियम, 1956 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 433 एवं धारा 434 के अंतर्गत दिनांक 10.10.2011 को परिसमापन का नोटिस प्रेषित किया गया, जिसके द्वारा प्रतिवादी/कंपनी से ₹21,55,52,263/- (इक्कीस करोड़ पचपन लाख बावन हजार दो सौ तिरसठ रुपये मात्र) की धनराशि, असुरक्षित ऋण पर देय ब्याज को अपवर्जित करते हुए, भुगतान करने की मांग की गई। तथापि, उक्त नोटिस कंपनी के पंजीकृत कार्यालय के पते सहित प्रतिवादी/कंपनी के अन्य सभी ज्ञात पतों से यह टिप्पणी करते हुए अप्राप्त लौट आए कि "ऐसा कोई व्यक्ति निवास नहीं करता है।" यह कहा गया है कि यद्यपि उक्त नोटिस अप्राप्त लौट आए, तथापि याचिकाकर्ता द्वारा उक्त नोटिसों के प्रकाशन हेतु दो स्थानीय दैनिक समाचार पत्रों, अर्थात् हिंदी दैनिक 'आज' तथा अंग्रेज़ी दैनिक 'द पायनियर', जो दोनों लखनऊ से प्रकाशित होते हैं, में दिनांक 08.12.2011 को प्रकाशन कराया गया (अनुबंध-16)।

16. उक्त अभिकथनों के आधार पर यह कहा गया है कि नोटिस दिए जाने के बावजूद भी प्रतिवादी/कंपनी द्वारा याचिकाकर्ता/कंपनी के प्रति देय ऋणों का परिसमापन नहीं किया गया, और इस प्रकार प्रतिवादी/कंपनी परिसमापन हेतु उत्तरदायी है।

17. प्रतिवादी/कंपनी ने अपने प्रति-शपथपत्र में समस्त आरोपों का खंडन किया है। प्रतिवादी/कंपनी द्वारा लिए गए मुख्य प्रतिरक्षा यह हैं कि रजिस्ट्रार ऑफ कंपनीज़ को पक्षकार न बनाए जाने के कारण याचिका दोषपूर्ण है; याचिकाकर्ता ने स्वच्छ हाथों के साथ इस न्यायालय का रुख नहीं किया है तथा महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाया है।

18. याचिकाकर्ता/कंपनी के दावों के संबंध में यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता/कंपनी का मामला दिनांक 07.11.2006 के असाइनमेंट विलेख पर आधारित है, जो अवैध है, क्योंकि याचिकाकर्ता न तो धारा 2(1)(v) के अंतर्गत परिभाषित 'पुनर्निर्माण कंपनी' है और न ही धारा 2(1)(za) के अंतर्गत परिभाषित 'सिक्यूरिटाइजेशन कंपनी' है, जैसा कि प्रतिभूतिकरण एवं वित्तीय परिसंपत्तियों के पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम,

2002 (संक्षेप में 'सारफेसी अधिनियम') में परिभाषित है, तथा याचिकाकर्ता/कंपनी न तो डी.आर.टी. अधिनियम के अंतर्गत परिभाषित बैंक है और न ही बैंकिंग कंपनी है; अतः असाइनमेंट विलेख पर आधारित दावा शून्य है।

19. आगे यह भी तर्क दिया गया है कि असाइनमेंट विलेख का पंजीकरण दिल्ली में कराया गया है, जबकि संबंधित संपत्तियाँ फैजाबाद में स्थित हैं; अतः पंजीकरण अधिनियम की धारा 28 से आक्रांत होने के कारण उक्त असाइनमेंट विलेख के आधार पर किसी भी प्रकार का हित/अधिकार दावा नहीं किया जा सकता है।

20. यह कहा गया है कि अधिनियम की धारा 434 के अंतर्गत विधिक नोटिस कंपनी के पंजीकृत कार्यालयों पर न तो कभी प्रस्तुत किया गया और न ही तामील किया गया; इस प्रकार, अधिनियम की धारा 434(1)(a) के अंतर्गत दायर याचिका पोषणीय नहीं है। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता/कंपनी का कथित दावा परिसीमा द्वारा बाधित है। इसके अतिरिक्त यह आपत्ति भी उठाई गई है कि याचिकाकर्ता/कंपनी का दावा आई.डी.बी.आई. बैंक के कथित बकाया देयों पर आधारित है, जिन्हें कथित रूप से याचिकाकर्ता/कंपनी के पक्ष में असाइन किया गया है, तथा याचिकाकर्ता वसूली हेतु वाद दायर करने के स्थान पर परिसमापन की कार्यवाही का सहारा लेकर न्यायालय शुल्क के भुगतान से बचना चाहता है; अतः याचिका खारिज किए जाने योग्य है। आगे यह भी कहा गया है कि याचिकाकर्ता की कोई भी स्वीकार्य धनराशि उत्तरदायी प्रतिवादी के विरुद्ध देय नहीं है। यह भी तर्क दिया गया है कि डी.आर.टी. द्वारा पारित डिक्री की वसूली कार्यवाही में पूर्ति कर दी गई है और इस प्रकार याचिकाकर्ता का दावा पोषणीय नहीं है।

21. आगे यह भी कहा गया है कि ₹44.60 लाख की एकमुश्त निपटान (ओ.टी.एस.) के संदर्भ में, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा ₹27 लाख से भी कम की राशि का भुगतान किया गया है, उसके बावजूद ₹21 करोड़ से अधिक की धनराशि का दावा किया जाना धोखाधड़ी तथा मिथ्या प्रतिरूपण पर आधारित है और इस कारण खारिज किए जाने योग्य है, तथा दावा की गई धनराशि अत्यधिक बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत की गई है।

22. आगे यह भी कहा गया है कि याचिकाकर्ता/कंपनी द्वारा दावा की गई देयताएँ bona fide रूप से विवादित हैं तथा उनका निर्णय परिसमापन की कार्यवाही में नहीं किया जा सकता है। यह भी अस्वीकार किया गया है कि प्रतिवादी/कंपनी की निवल संपत्ति (नेट वर्थ) का क्षरण हुआ है। आगे यह भी कहा गया है कि परिसमापन याचिका इस आधार पर भी खारिज किए जाने योग्य है कि श्री नीरज तुलसियान एवं याचिकाकर्ता वास्तव में प्रतिवादी/कंपनी के ऋणदाता नहीं थे, बल्कि वे रणनीतिक निवेशक थे, जिन्होंने प्रतिवादी/कंपनी की देयताओं का निस्तारण करने का दायित्व लिया था और उसके पश्चात् अपनी निवेशित राशि के अनुपात में प्रतिवादी/कंपनी के संचालन से लाभ अर्जित करना था।

23. प्रति-शपथपत्र में प्रतिवादी/कंपनी को वित्तीय संस्थानों के संघ, अर्थात् आई.डी.बी.आई. बैंक, आई.सी.आई.सी.आई. बैंक तथा आई.एफ.सी.आई. लिमिटेड द्वारा प्रदान की गई वित्तीय सुविधाओं को स्वीकार किया गया है तथा स्टेट बैंक ऑफ इंडिया से वित्तीय सहायता प्राप्त किए जाने को भी स्वीकार किया गया है।

24. यह कहा गया है कि वर्ष 1992 में सरकार द्वारा सिंगल सुपर फॉस्फेट उर्वरक (एस.एस.पी.) के डी-कंट्रोल किए जाने के कारण प्रतिवादी/कंपनी प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुई तथा कृषकों द्वारा नाइट्रोजन आधारित उर्वरों की ओर रुख कर लिया गया, जिसके परिणामस्वरूप कंपनी की वित्तीय स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और तत्पश्चात् प्रयासों के बावजूद कंपनी उत्पादन जारी नहीं रख सकी। प्रतिवादी/कंपनी द्वारा बी.आई.एफ.आर. एवं ए.ए.आई.एफ.आर. के समक्ष जाने के तथ्य को भी स्वीकार किया गया है।

25. यह कहा गया है कि वर्ष 2003 में बी.आई.एफ.आर. अथवा ए.ए.आई.एफ.आर. के समक्ष की गई कार्यवाहियों में कंपनी के पुनर्जीवन में विफल रहने के उपरांत, प्रतिवादी/कंपनी को एम/एस खैतान फर्टिलाइजर्स लिमिटेड से कारखाना चलाने हेतु एक प्रस्ताव प्राप्त हुआ। उक्त कंपनी के प्रस्ताव को आई.सी.आई.सी.आई. बैंक को अग्रेषित किया गया तथा आई.सी.आई.सी.आई. बैंक ने प्रारंभ में मर्चेंट बैंकर के रूप में उक्त प्रस्ताव को स्वीकार किया, तथापि यह कहा गया है कि तत्पश्चात् एम/एस खैतान फर्टिलाइजर्स लिमिटेड अपने प्रस्ताव से पीछे हट गई।

26. यह कहा गया है कि वर्ष 2005 में श्री नीरज तुलसियान, जो कंपनी के प्रवर्तकों के परिचित थे, ने प्रतिवादी/कंपनी के साथ एक समझ विकसित की और उनके आग्रह पर एक तकनीकी-आर्थिक व्यवहार्यता रिपोर्ट भी तैयार की गई तथा उसके अनुसरण में श्री नीरज तुलसियान ने बैंकों, वित्तीय संस्थानों तथा अन्य वैधानिक प्राधिकरणों एवं लेनदारों के प्रति प्रतिवादी/कंपनी की समस्त देयताओं के निस्तारण का दायित्व लिया तथा आवश्यक धनराशि निवेश करने का आश्वासन दिया–यद्यपि पक्षकारों के मध्य कोई औपचारिक समझौता ज्ञापन (एम.ओ.यू.) निष्पादित नहीं किया गया, तथापि उक्त कथन श्री नीरज तुलसियान द्वारा प्रतिवादी/कंपनी को लिखे गए दिनांक 13.11.2007 के पत्र (अनुबंध 'सी.ए.-3') पर आधारित है।

यह कहा गया है कि वर्ष 2005 में श्री नीरज तुलसियान, जो कंपनी के प्रवर्तकों के परिचित थे, ने प्रतिवादी/कंपनी के साथ एक समझ विकसित की और उनके आग्रह पर एक तकनीकी-आर्थिक व्यवहार्यता रिपोर्ट भी तैयार की गई तथा उसके अनुसरण में श्री नीरज तुलसियान ने बैंकों, वित्तीय संस्थानों तथा अन्य वैधानिक प्राधिकरणों एवं लेनदारों के प्रति प्रतिवादी/कंपनी की समस्त देयताओं के निस्तारण का दायित्व लिया तथा आवश्यक धनराशि निवेश करने का आश्वासन दिया–यद्यपि पक्षकारों के मध्य कोई औपचारिक समझौता ज्ञापन (एम.ओ.यू.) निष्पादित नहीं किया गया, तथापि उक्त कथन श्री नीरज तुलसियान द्वारा प्रतिवादी/कंपनी को लिखे गए दिनांक 13.11.2007 के पत्र (अनुबंध 'सी.ए.-3') पर आधारित है।

27. यह कहा गया है कि उक्त समझ के अनुसरण में प्रतिवादी/कंपनी के निदेशक मंडल ने अपनी दिनांक 02.08.2005 की बैठक में एम/एस नीरज तुलसियान एंड एसोसिएट्स को प्रतिवादी/कंपनी के समस्त बकाया देयों के निस्तारण हेतु आवश्यक कदम उठाने के लिए अधिकृत किया। यह कहा गया है कि उक्त प्राधिकरण के अनुसरण में श्री नीरज तुलसियान एवं प्रतिवादी/कंपनी के निदेशक मंडल ने आई.डी.बी.आई. बैंक के साथ ₹54,66,920/- की धनराशि के लिए एकमुश्त निपटान (ओ.टी.एस.) के अंतर्गत देयों का निस्तारण किया, जिसकी सूचना आई.डी.बी.आई. बैंक द्वारा दिनांक 19.12.2005 को श्री नीरज तुलसियान को दी गई। आगे यह भी कहा गया है कि कंपनी के पुनर्जीवन एवं विवाद के निस्तारण हेतु, कुल ओ.टी.एस. राशि में से ₹15,00,000/- की

धनराशि प्रतिवादी/कंपनी द्वारा अपने पारिवारिक सदस्यों के माध्यम से योगदान की गई, जबकि ₹39,70,000/- की धनराशि श्री नीरज तुलसियान द्वारा प्रदान की गई। यह कहा गया है कि ओ.टी.एस. की धनराशियाँ दिनांक 26.11.2005 एवं 10.12.2005 को भुगतान की गईं तथा तत्पश्चात् ओ.टी.एस. निपटान के कारण डी.आर.टी. की कार्यवाही में वसूली प्रमाणपत्र (डी.आर.सी.) की कार्यवाही को दिनांक 28.09.2007 के आदेश द्वारा समाप्त कर दिया गया (अनुबंध 'सी.ए.-7')। यह कहा गया है कि आई.डी.बी.आई. बैंक के साथ राशि का निस्तारण किए जाने के उपरांत, आई.सी.आई.सी.आई. बैंक के वे बकाया देय, जो कोटक महिंद्रा बैंक लिमिटेड के पक्ष में असाइन किए गए थे, को उठाया गया और ₹52 लाख की धनराशि में उनका निस्तारण किया गया, जिसमें से एम/एस नीरज तुलसियान एंड एसोसिएट्स द्वारा ₹42 लाख तथा प्रतिवादी/कंपनी के प्रवर्तकों द्वारा ₹10 लाख का योगदान किया गया। आगे यह भी कहा गया है कि तत्पश्चात् आई.एफ.सी.आई. लिमिटेड के बकाया देयों के निस्तारण हेतु कदम उठाए गए, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा ₹22 लाख तथा प्रतिवादी/कंपनी के प्रवर्तकों द्वारा ₹28 लाख का योगदान किया गया और निस्तारण कराया गया। यह कहा गया है कि दिनांक 07.11.2006 को याचिकाकर्ता/कंपनी द्वारा प्रतिवादी/कंपनी को गुमराह कर असाइनमेंट विलेख प्राप्त किया गया; प्रतिवादी के अनुसार, उक्त विलेख आई.डी.बी.आई. बैंक के साथ ओ.टी.एस. के अंतिम रूप से तय हो जाने एवं ओ.टी.एस. की धनराशि का भुगतान किए जाने के लगभग 11 माह पश्चात् निष्पादित कराया गया।

28. यह कहा गया है कि कथित असाइनमेंट विलेख दिनांक 07.11.2006 को बनाया गया, जबकि एकमुश्त निपटान (ओ.टी.एस.) का प्रस्ताव वर्ष 2005 में स्वीकार कर लिया गया था तथा उसकी धनराशियाँ भी उसी वर्ष भुगतान कर दी गई थीं; इस प्रकार आई.डी.बी.आई. बैंक का प्रतिवादी/कंपनी के विरुद्ध कोई भी बकाया देय शेष नहीं था और इसलिए वह प्रतिवादी/कंपनी के संबंध में किसी कथित ऋण का असाइनमेंट विलेख निष्पादित नहीं कर सकता था।

29. यह भी अभिलेख पर लाया गया है कि तत्पश्चात् एम/एस नीरज तुलसियान एंड एसोसिएट्स ने अपने वचन के अनुपालन में कोई रुचि नहीं दिखाई तथा प्रतिवादी/कंपनी ने स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के साथ अपने बकाया देयों का निस्तारण स्वयं कर लिया।

30. यह भी कहा गया है कि वचन दिए जाने के बावजूद श्री नीरज तुलसियान द्वारा भविष्य निधि विभाग के बकाया देयों का भुगतान नहीं किया गया तथा वास्तव में उन्होंने ₹66 लाख से अधिक मूल्य की कुछ मशीनरी की चोरी भी की।

31. यह भी कहा गया है कि दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश स्टॉक एक्सचेंज के गैर-कार्यात्मक हो जाने के उपरांत प्रतिवादी/कंपनी ने उनसे निर्गमन किया और तत्पश्चात् पुनः मूल्यांकन कराया गया, जिसमें प्रतिवादी/कंपनी की भूमि एवं भवन तथा कुल परिसंपत्तियों का मूल्य ₹11,92,89,038/- आँका गया तथा समस्त देयताओं को अपवर्जित करने के पश्चात् प्रतिवादी/कंपनी की निवल संपत्ति (नेट वर्थ) ₹3,91,00,271/- आंकी गई। आगे यह

भी कहा गया है कि वर्ष 2005 में एक तकनीकी-आर्थिक सर्वेक्षण किया गया, जिसमें संयंत्र का मूल्य ₹22 करोड़ आंका गया।

32. प्रति-शपथपत्र के अनुच्छेद 31 में यह कहा गया है कि प्रतिवादी/कंपनी पर शेष बकाया देयताएँ भविष्य निधि विभाग (लगभग ₹40 लाख), राजस्थान स्टेट माइनिंग एंड मिनरल लिमिटेड (लगभग ₹40 से 45 लाख) तथा याचिकाकर्ता की धनराशि की हैं, जिन्हें प्रतिवादियों के अनुसार विवादित बताया गया है। यह भी स्वीकार किया गया है कि विद्युत देयों के संबंध में कुछ मांगें लंबित थीं, जिनका निस्तारण कर दिया गया है। यह भी अस्वीकार किया गया है कि कंपनी ने अपना सब्सट्रेटम (मूल आधार) खो दिया है।

33. यह भी कहा गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिवादी/कंपनी की परिसंपत्तियों को हड़पने की मंशा से ही सारफेसी अधिनियम की धारा 13(2) के अंतर्गत दिनांक 23.02.2009 को एक नोटिस पूर्व में तामील कराया गया था, जिसे रिट याचिका संख्या 8117 (एम/बी) सन् 2009 में चुनौती दी गई थी, जिसमें दिनांक 31.08.2009 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था। प्रतिवादी/कंपनी द्वारा उपर्युक्त के पश्चात् आने वाले अनुच्छेदों में किए गए समस्त कथनों का भी विशेष रूप से खंडन किया गया है।

34. बी.आई.एफ.आर. एवं ए.ए.आई.एफ.आर. के समक्ष लंबित कार्यवाहियों के संबंध में यह कहा गया है कि कंपनी वित्तीय कठिनाइयों में थी तथा तत्पश्चात् उसमें व्यापक परिवर्तन हुए हैं। याचिकाकर्ता/कंपनी के पक्ष में प्रभार सृजित किए जाने तथा उसके आर.ओ.सी. के समक्ष पंजीकरण के संबंध में यह कहा गया है कि उक्त कार्यवाही श्री नीरज तुलसियान द्वारा धनराशियों को सुरक्षित करने के लिए किए गए वचन के कारण उनके आग्रह पर की गई थी, तथापि बाद में वे अपने दायित्वों का पालन करने में विफल रहे और देयों के निर्वहन के पश्चात् आई.डी.बी.आई. बैंक के पक्ष में कोई भी प्रभार शेष नहीं था, और इस प्रकार उसका पंजीकरण कराया जाना संभव नहीं था।

35. प्रतिवादी/कंपनी की बैलेंस शीट में दर्शाई गई धनराशियों के संबंध में यह कहा गया है कि वर्ष 2006 से दिनांक 31.03.2018 तक की बैलेंस शीटों में याचिकाकर्ता/कंपनी के प्रति ₹64.30 लाख के असुरक्षित ऋण को देय दर्शाया गया है। यह भी कहा गया है कि प्रतिवादी/कंपनी की बैलेंस शीट में ₹2,24,30,000/- की जो प्रविष्टि सुरक्षित ऋण के रूप में दर्शाई गई थी, वह त्रुटिवश प्रदर्शित की गई थी तथा उक्त प्रविष्टि को वित्तीय वर्ष 2018-19 में तत्पश्चात् निरस्त कर दिया गया।

36. याचिकाकर्ता/कंपनी की बैलेंस शीट के संबंध में यह अभिकथित किया गया है कि दिनांक 31.03.2018 तक की बैलेंस शीट में न तो किसी प्रकार का निवेश परिलक्षित होता है और न ही किसी व्यक्ति को दिए गए किसी सुरक्षित ऋण का कोई विवरण उपलब्ध है; तथापि याचिकाकर्ता/कंपनी द्वारा ₹119.80 लाख (उचित माने गए) के असुरक्षित ऋण दिए जाने का उल्लेख अवश्य किया गया है। इस प्रकार, अपनी ही बैलेंस शीट के अनुसार भी

याचिकाकर्ता/कंपनी ने कभी कोई सुरक्षित ऋण प्रदान नहीं किया है और अब याचिकाकर्ता/कंपनी प्रतिवादी/कंपनी की परिसंपत्तियों पर किसी भी प्रकार की सुरक्षा/प्रभार का दावा नहीं कर सकती है।

37. यह भी कहा गया है कि अपनी बैलेंस शीट में याचिकाकर्ता/कंपनी ने यह दर्शाया है कि याचिकाकर्ता/कंपनी के संबंध में कोई भी वाद-विवाद लंबित नहीं है।

38. यह विशेष रूप से अस्वीकार किया गया है कि दिनांक 10.10.2011 का कोई भी नोटिस कभी प्रतिवादी/कंपनी को प्रस्तुत किया गया अथवा दिया गया हो तथा कंपनी के पंजीकृत पते पर तामील के संबंध में कोई भी प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया गया है। आगे यह भी कहा गया है कि समाचार पत्रों में नोटिस का प्रकाशन अधिनियम की धारा 434 के अंतर्गत निर्दिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करता है तथा इसके अतिरिक्त उक्त दोनों समाचार पत्रों का फैजाबाद में कोई प्रसार नहीं है, क्योंकि वे लखनऊ से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र हैं।

39. यह भी कहा गया है कि अधिनियम की धारा 433(ई) के अंतर्गत यह याचिका पोषणीय नहीं है।

40. यह विशेष रूप से अभिकथित किया गया है कि प्रतिवादी/कंपनी याचिकाकर्ता/कंपनी को ₹64.30 लाख की धनराशि का भुगतान करने के लिए तत्पर एवं इच्छुक है तथा सुनवाई के दौरान एवं प्रस्तुत किए गए एक शपथपत्र में भी प्रतिवादी/कंपनी द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि वह याचिकाकर्ता/कंपनी को ₹64.30 लाख की धनराशि का भुगतान करने के लिए तैयार एवं इच्छुक है और अपनी प्रामाणिक नीयत प्रदर्शित करने हेतु ₹1 करोड़ की धनराशि प्रस्तुत करने का प्रस्ताव भी किया गया था।

41. प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एन.के. सेठ ने सुनवाई के दौरान यह विषय न्यायालय के विवेक पर छोड़ दिया कि वह ₹64.30 लाख की धनराशि के संबंध में प्रतिवादी/कंपनी पर कोई भी राशि निर्धारित कर दे, जिसे प्रतिवादी पालन करेंगे।

42. दोनों पक्षकारों द्वारा निम्नलिखित निर्णयों का संदर्भ प्रस्तुत किया गया है:
याचिकाकर्ता की ओर से:
कंपनी न्यायालय द्वारा प्रयोग की जा सकने वाली शक्तियों के दायरे को स्पष्ट करने हेतु:
(i) *क्रेडिट सुइस एजी बनाम स्पाइसजेट लिमिटेड*; कंपनी याचिका संख्या 363 सन् 2015, निर्णय दिनांक 06.12.2021, जिसमें *मधुसूदन गोरधनदास एंड कंपनी बनाम मधु वूलन इंडस्ट्रीज (पी) लिमिटेड*; (1971) 3 SCC 632 के प्रकरण में प्रतिपादित सिद्धांतों की पुनः पुष्टि की गई है;
(ii) *एम/एस क्लासिक डायमंड्स (इंडिया) लिमिटेड बनाम आई.सी.आई.सी.आई. बैंक लिमिटेड*; 2016 SCC ऑनलाइन बॉम्बे 15573;
संधि के दायरे और उसकी व्याख्या पर तर्क प्रस्तुत करने हेतु:

(i) *डेक्कन पेपर मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम रीजेंसी महावीर प्रॉपर्टीज एंड अन्य*; सिविल अपील संख्या 5147 सन् 2016, निर्णय दिनांक 19.08.2020;

(ii) *बैंक ऑफ इंडिया बनाम कस्टोडियन एंड अन्य*; (1997) 10 SCC 488;

परिसमापन याचिका में bona fide विवाद और यह विवाद bona fide है या नहीं, के संबंध में:

(i) *स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम एम/एस शिव महिमा इस्पात प्राइवेट लिमिटेड*; 2016 SCC ऑनलाइन राजस्थान 3842

(ii) *एम/एस शीतल फाइबर्स लिमिटेड बनाम इंडियन एक्रिलिक्स लिमिटेड*; सिविल अपील संख्या 1105 सन् 2021, निर्णय दिनांक 06.04.2021

परिसीमा के भीतर दावा होने के संबंध में:

(i) *एसेट रिकंस्ट्रक्शन कंपनी (इंडिया) लिमिटेड बनाम बिशाल जयसवाल और अन्य*; (2021) 6 SCC 366

(ii) *बैंगुर फाउंडेशन लिमिटेड बनाम एसजे कॉर्प*; 2003 SCC ऑनलाइन कोलकाता 113

(iii) *शाही एक्सपोर्ट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम सी.एम.डी. वाइल्डटेक प्राइवेट लिमिटेड*; 2013 SCC ऑनलाइन दिल्ली 2535

(iv) *बंगाल सिल्क मिल्स कंपनी बनाम इस्माइल गोलाम हुसैन अरिफ़*; 1961 SCC ऑनलाइन कोलकाता 128

बैलेंस शीट में प्रविष्टि के प्रभाव के संबंध में:

(i) *इलेक्ट्रॉन इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम सोहम पॉलिमर्स (पी) लिमिटेड*; (2005) 13 SCC 86

नोटिस तामील करने की पद्धति के संबंध में:

(i) *एवरग्रीन प्लायवुड इंडस्ट्रीज बनाम सर्कुलर लीज़िंग एंड रिसोर्सेज प्राइवेट लिमिटेड*; 2004 SCC ऑनलाइन कोलकाता 698

(ii) *एवरग्रीन प्लायवुड इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम सर्कुलर लीज़िंग एंड रिसोर्सेज प्राइवेट लिमिटेड*; 2004 SCC ऑनलाइन कोलकाता 699

(iii) *वी. राजा कुमारी बनाम पी. सुब्बारामा नायडू और अन्य*; (2004) 8 SCC 774

(iv) *दीपक मशीनरीज़ प्राइवेट लिमिटेड बनाम इस्पात इंडस्ट्रीज लिमिटेड*; 2005 (2) बॉम्बे CR 94

(v) *ग्रेडर कलेक्शन बनाम शाही फैशन्स प्राइवेट लिमिटेड*; ILR (2013) V दिल्ली 3644, कंपनी याचिका

(vi) *श्रीराम सिटी यूनियन फाइनेंस लिमिटेड बनाम सुपर रबर इंजीनियरिंग कंपनी प्राइवेट लिमिटेड*; 2018 SCC ऑनलाइन बॉम्बे 12483

प्रतिवादी/कंपनी को निष्क्रिय (डिफंक्ट) कंपनी ठहराने के तर्क के संबंध में:

(i) *एम/एस एलाइड इंटरनेशनल प्रोडक्ट्स लिमिटेड बनाम अपीलीय प्राधिकरण फॉर इंडस्ट्रियल एंड फाइनेंशियल रिकंस्ट्रक्शन और अन्य*; 2000 SCC ऑनलाइन दिल्ली 993

(ii) *मध्य प्रदेश स्टेट इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट कॉरपोरेशन बनाम एम.पी. टोल रोड्स लिमिटेड*; 2018 SCC ऑनलाइन बॉम्बे 15301

याचिका के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करने हेतु:

अनुबंध का लाभ लेने के पश्चात् प्रतिवादी/कंपनी द्वारा approbate और reprobate नहीं किया जा सकता, अर्थात् लाभ लेकर उसके विरुद्ध वापस नहीं हट सकता:

अनुवादित

(i) *श्याम टेली लिंक लिमिटेड (अब सिस्टेमा श्याम टेलीसर्विसेज लिमिटेड) बनाम भारत संघ*; सिविल अपील संख्या 7236 सन् 2003, निर्णय दिनांक 05.10.2020

बैलेंस शीट में प्रविष्टियों की व्याख्या के संबंध में:

(i) *पदम टी कंपनी लिमिटेड बनाम दार्जीलिंग कमर्शियल कंपनी लिमिटेड*; 1975 SCC ऑनलाइन कोलकाता 140

धारा 340 के अंतर्गत दायर आवेदन को खारिज किए जाने के तर्क हेतु:

(i) *अमरसंग नाथाजी बनाम हार्दिक हर्षदभाई पटेल और अन्य*; (2017) 1 SCC 113

प्रतिवादी की ओर से:

याचिकाकर्ता न तो पुनर्निर्माण कंपनी है और न ही सुरक्षा साधन (सेक्यूरिटाइजेशन) कंपनी होने के तर्क हेतु:

(i) *एम/एस गोरखपुर स्टील मेटल्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम द प्रेसिडिंग ऑफिसर, डी.आर.टी. एवं अन्य*; 2017 (121) ALR 817

(ii) *एम/एस गोरखपुर स्टील मेटल्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम द प्रेसिडिंग ऑफिसर, डी.आर.टी. एवं अन्य*; 2017 (125) ALR 115

(iii) *सुझुकी परसरमपुरिया सूटिंग्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम ऑफिसियल लिक्विडेटर महेंद्र पेट्रोकेमिकल्स लिमिटेड (इन लिक्विडेशन) एवं अन्य*; 2015 SCC ऑनलाइन गुजरात 1017

(iv) *सुझुकी परसरमपुरिया सूटिंग्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम ऑफिसियल लिक्विडेटर महेंद्र पेट्रोकेमिकल्स लिमिटेड (इन लिक्विडेशन) एवं अन्य*; (2019) 212 CompCas 480 (GUJ) : MANU/GJ/1812/2016

याचिका समय-सीमा (अवधि) द्वारा प्रतिबंधित है, इस तर्क हेतु:

(i) *गौरव हरगोविंदभाटी डेव बनाम एसेट रिकंस्ट्रक्शन कंपनी (इंडिया) लिमिटेड एवं अन्य*; 2020 SAR (Civ) 21

(ii) *जिग्नेश शाह एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य*; AIR 2019 SC 4758

(iii) *संपूरन सिंह एवं अन्य बनाम निरंजन कौर (श्रीमती) एवं अन्य*; (1999) 2 SCC 679

(iv) *बाबुलाल वर्धरजी गुर्जर बनाम वीर गुर्जर एल्युमिनियम इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य*; (2020) 15 SCC 1

(v) *राम प्रकाश बनाम उप निदेशक, समेकन एवं अन्य*; 2022 SCC ऑनलाइन अल्लाहाबाद 107

(vi) *सत्रोहन एवं अन्य बनाम द सेटलमेंट ऑफिसर, समेकन, लखनऊ एवं अन्य*; रिट - बी संख्या 357 सन् 2022, निर्णय दिनांक 03.06.2022

अधिनियम की धारा 434 के अंतर्गत statutory notice कंपनी के पंजीकृत कार्यालय पर प्राप्त नहीं होने के संबंध में प्रस्तुत तर्क हेतु:

(i) *एलायंस क्रेडिट एंड इन्वेस्टमेंट्स लिमिटेड बनाम खैतान होस्टॉम्बे स्पिनेल्स लिमिटेड*; 1996 SCC ऑनलाइन अल्लाहाबाद 782

(ii) *स्टेट ब्लैक सी शिपिंग कंपनी एवं अन्य बनाम विराज ओवरसीज प्राइवेट लिमिटेड*; 2003 SCC ऑनलाइन दिल्ली 597

(iii) *नीरज रियल्टर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम जंग्लू (मृत) उनके कानूनी प्रतिनिधि के माध्यम से*; (2018) 2 SCC 649

(iv) *कॉर्पोरेट इस्पात अलॉयज लिमिटेड बनाम जी.बी. ट्रांसपोर्ट (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड*; 2015 CJ (कोलकाता) 716

(v) *एन.एल. मेहता सिनेमा एंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड बनाम पर्वीचंद्र पी. मेहता*; 1989 SCC ऑनलाइन बॉम्बे 11

प्रतिवादी/कंपनी द्वारा देयता को वास्तविक रूप से विवादित किए जाने और इसे परिसमापन (विंडिंग अप) याचिका में निपटाया नहीं जा सकता, इस तर्क हेतु:

प्रतिवादी/कंपनी द्वारा देयता को वास्तविक रूप से विवादित किए जाने और परिसमापन याचिका में निपटाया न जा सकने के संदर्भ में:

(i) *आईबीए हेल्थ (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड बनाम इन्फोर-ड्राइव सिस्टम्स SDN.BHD*; (2010) 10 SCC 553

(ii) *स्वराज इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम कोटक महिंद्रा बैंक लिमिटेड*; (2019) 3 SCC 620

(iii) *मेडिक्विप सिस्टम्स (पी) लिमिटेड बनाम प्रोक्षिमा मेडिकल सिस्टम GMBH*; (2005) 7 SCC 42

तर्क कि याचिकाकर्ता ने न्यायालय के समक्ष ईमानदारी से (clean hands) प्रस्तुत नहीं किया:

(i) *किशोर सम्प्रिते बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य*; (2013) 2 SCC 398

(ii) *जगदीश चंद्र एवं अन्य बनाम कृष्ण मोहन अग्रवाल एवं अन्य*; दूसरी अपील संख्या 37 सन् 2020, निर्णय दिनांक 06.02.2020

तर्क कि असाइनमेंट डीड पंजीकरण अधिनियम की धारा 28 के अंतर्गत शून्य (void) है:

(i) *वीणा टेक्सटाइल्स लिमिटेड बनाम अधिकृत अधिकारी, आईएफसीआई लिमिटेड*; 2014 (5) CTC 209

अग्रिम आपत्तियों सहित याचिका की पोषणीयता (maintainability) को पहले निपटाने के तर्क हेतु:

(i) *मनुभाई जे. पटेल एवं अन्य बनाम बैंक ऑफ़ बड़ौदा एवं अन्य*; (2000) 10 SCC 253

(ii) *यूनियन बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य बनाम रणबीर सिंह राठौर एवं अन्य*; (2006) 11 SCC 696

(iii) *टी.के. लथिका बनाम सेठ करसंदास जमनदास*; (1999) 6 SCC 632

तर्क कि धारा 340 Cr.P.C. के तहत प्रतिवादी द्वारा दायर आवेदन को पहले निपटाया जाना चाहिए:

(i) *प्रमोद कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य*; Neutral Citation No.2024:AHC;96456

(ii) *सैयद नजीम हुसैन बनाम अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, फैमिली कोर्ट एवं अन्य*; 2003 SCC ऑनलाइन अल्लाहाबाद 2358

43. प्रतिवादियों के प्रयास पर **पूरक प्रतिवादी शपथपत्र (Supplementary Counter Affidavits)** भी दायर किए गए हैं।

44. यह भी अवलोकन करना आवश्यक है कि **प्रॉविडेंट फंड विभाग** ने भी अपनी देयताओं का दावा पेश करके कार्यवाही में सम्मिलित किया है, हालाँकि अन्य देयताओं पर प्रतिवादी/कंपनी द्वारा कोई विवाद नहीं किया गया है और उन्होंने उन्हें चुकाने का दायित्व स्वीकार किया है।

45. वर्तमान प्रकरण में, जब यह याचिका दायर की गई थी, इस न्यायालय ने अपनी प्रथम सुनवाई तिथि अर्थात् **23.02.2012** को नोटिस जारी किए और समाचार पत्रों में प्रकाशन का निर्देश दिया। इसके पश्चात्, कार्यवाही की लंबितता के दौरान, **अधिकारी तरलकर्ता (Official Liquidator)** नियुक्त करने के आदेश पारित किए गए तथा तरलकर्ता को संपत्ति के अधिग्रहण और उसके बाद कुछ परिसंपत्तियों को हटाने की अनुमति देने के विभिन्न आदेश दिए गए। यह भी ध्यान देने योग्य है कि **30.03.2018** को याचिका **प्रॉसिक्यूशन की अनुपस्थिति** के कारण खारिज कर दी गई और अधिकारी तरलकर्ता को मुक्त कर दिया गया। इसके बाद **रिकॉल आवेदन** दायर किया गया और **20.04.2018** के आदेश द्वारा 30.03.2018 के आदेश को रद्द किया गया। रिकॉर्ड से यह भी स्पष्ट होता है कि **13.07.2018** को पक्षकारों की सहमति से, याचिका को **कंपनी (न्यायालय) नियम, 1959 के नियम 24** के अनुसार समाचार पत्रों में प्रकाशित करने का निर्देश दिया गया। **13.07.2018 के आदेश के रिकॉल के लिए आवेदन** भी लंबित है। यह भी प्रासंगिक है कि प्रतिवादी/कंपनी की ओर से धारा 340 Cr.P.C. के अंतर्गत कार्यवाही शुरू करने के लिए दायर आवेदन भी लंबित हैं। हालाँकि, इस तथ्य को देखते हुए कि मैं मुख्य **परिसमापन याचिका** का निर्णय करने जा रहा हूँ, ऐसे आवेदन पर अलग आदेश पारित करने से कोई उपयोगी परिणाम नहीं निकलने वाला है।

46. उपरोक्त प्रस्तुत तर्कों को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान याचिका **कंपनी अधिनियम की धारा 433(e) एवं (f) के अनुसार, धारा 434(1)(a) एवं धारा 439(1)(b) के साथ** दायर की गई है, तथा साथ ही यह याचिका **सिक इंडस्ट्रियल कंपनियों (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1985 की धारा 20(1) के अंतर्गत** भी प्रस्तुत की गई है।

कंपनी अधिनियम की धारा 433(e) एवं (f) पढ़कर धारा 434(1)(a) एवं धारा 439(1)(b) के अर्थ निम्नानुसार हैं:

धारा 433 - वे परिस्थितियाँ जिनमें कंपनी को न्यायाधिकरण (Tribunal) द्वारा परिसमापित (Wound Up) किया जा सकता है:

"किसी कंपनी को न्यायाधिकरण द्वारा परिसमापित किया जा सकता है,"

(e) यदि कंपनी अपने कर्ज का भुगतान करने में असमर्थ हो;

(f) यदि न्यायाधिकरण का मत हो कि यह उचित और न्यायसंगत है कि कंपनी का परिसमापन किया जाए;

धारा 434 - जब कंपनी को अपने कर्ज का भुगतान करने में असमर्थ माना जाएगा:

(1) किसी कंपनी को अपने कर्ज का भुगतान करने में असमर्थ माना जाएगा...

(a) यदि कोई **लेनदार**, चाहे असाइनमेंट के माध्यम से हो या अन्यथा, जिसे कंपनी पर **एक लाख रुपये से अधिक की राशि** देय है, ने कंपनी को यह राशि चुकाने के लिए अपने हस्ताक्षर सहित **मांग पत्र** (Demand) भेजा हो–चाहे वह **कंपनी के पंजीकृत कार्यालय पर पहुँचाया गया हो, पंजीकृत डाक द्वारा भेजा गया हो या अन्य किसी तरीके से**–और उसके तीन सप्ताह पश्चात् कंपनी ने उस राशि का भुगतान करने, या उसे सुरक्षित करने अथवा लेनदार की **यथोचित संतोषजनक व्यवस्था** के अनुसार समझौता करने में लापरवाही की हो;

439. **परिसमापन के लिए याचिकाओं के संबंध में प्रावधान:**

(1) किसी कंपनी के परिसमापन के लिए न्यायाधिकरण (Tribunal) के समक्ष प्रस्तुत की जाने वाली याचिका **इस अनुभाग के प्रावधानों के अधीन, याचिका द्वारा दायर की जाएगी।**

(b) **किसी भी लेनदार या लेनदारों द्वारा, जिसमें कोई संभावित या भविष्य के लेनदार भी शामिल हैं; या**

सिक इंडस्ट्रियल कंपनियों (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1985 की धारा 20(1) के अनुसार:

धारा 20 - बीमारू औद्योगिक कंपनी का परिसमापन:

(1) जहाँ बोर्ड ने **धारा 16 के तहत जांच** करने के पश्चात और सभी संबंधित तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, सभी संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात यह राय बनाए कि **अस्वस्थ औद्योगिक कंपनी अपनी शुद्ध संपत्ति (Net Worth) को संचित घाटे (Accumulated Losses) से अधिक करने में उचित समय में सक्षम नहीं होगी**, और इस कारण कंपनी भविष्य में **सार्थक (Viable) नहीं बनने की संभावना** रखती है, तथा यह उचित और न्यायसंगत है कि कंपनी का परिसमापन किया जाए, तो बोर्ड अपनी राय रिकॉर्ड कर संबंधित **उच्च न्यायालय (High Court)** को अग्रेषित कर सकता है।

47. वादों के दौरान, याचिकाकर्ता की ओर से व्यापकता से बहस करने वाली अधिवक्ता **श्रीमती श्रद्धा अग्रवाल** को यह इंगित किया गया कि याचिका **कंपनी अधिनियम की धारा 433(c) के अंतर्गत दायर नहीं की गई है** और इसी आधार पर राहत मांगी गई है। इस पर याचिकाकर्ता की अधिवक्ता ने यह कथन दिया कि न्यायालय के क्षेत्राधिकार में यह आता है कि वह आदेश पारित कर सकता है, भले ही उस प्रभाव के लिए कोई विशेष याचिका या प्रार्थना नहीं की गई हो। यह तर्क **स्वीकार्य नहीं** किया जा सकता, इसका सरल कारण यह है कि यह पर्याप्त रूप से स्थापित है कि **परिसमापन (Winding Up) के लिए दायर याचिकाओं में प्लीडिंग्स (Pleadings) का सख्त नियम लागू होता है**, जैसा कि **कंपनी (न्यायालय) नियम, 1959 के नियम 6 और नियम 11** में उल्लेखित है। अतः, **धारा 433(c) के अंतर्गत कंपनी के परिसमापन के लिए प्रार्थना रहित याचिका** को प्रार्थना के अभाव के कारण विचार में नहीं लिया जा सकता।

48. याचिका को प्रस्तुत आधार और प्रार्थना के अनुसार विचार करते हुए, इस न्यायालय द्वारा विचारणीय मुद्दा यह है कि–

क्या कंपनी अपने देयताओं का भुगतान करने में असमर्थ है, और क्या यह न्यायसंगत (Equitable) है कि कंपनी का परिसमापन (Winding Up) किया जाए?

49. कंपनी के **अपने देयताओं का भुगतान करने में असमर्थ होने** का मामला प्रस्तुत करने के लिए तर्क दिया गया कि, **कंपनी अधिनियम की धारा 434(1)(a) के प्रावधानों** के अनुसार, यह स्पष्ट है कि यदि कंपनी पर **एक लाख रुपये से अधिक का कर्ज** है और नोटिस भेजा गया है, तो प्रतिवादी/कंपनी के **परिसमापन (Winding Up) का स्पष्ट मामला** बन जाता है। यह तर्क **याचिकाकर्ता/कंपनी** के दावे पर आधारित है कि उन्हें **लगभग ₹64.30 लाख** की राशि, जो उनके **बैलेंस शीट में दर्शाई गई है**, के साथ-साथ **IDBI बैंक से कर्ज के असाइनमेंट के आधार पर शेष राशि** प्राप्त करने का अधिकार है, जिसे **धारा 434(1)(a) के प्रावधानों में भी अनुमति प्राप्त और परिलक्षित किया गया है।

50. उक्त दावे का खंडन करते हुए, **प्रतिवादी/कंपनी ने ₹64.30 लाख की राशि चुकाने की अपनी देयता स्वीकार की है**, और जैसा कि आदेश के पूर्व भाग में दर्ज है, **एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया था और यह न्यायालय पर छोड़ा गया था कि वह उस राशि को निर्धारित करे जिसे प्रतिवादी/कंपनी ₹64.30 लाख के ऋण के संबंध में चुकाएगा**, जो **बैलेंस शीट में भी परिलक्षित है**। अतः, इस हद तक **प्रतिवादी/कंपनी द्वारा कोई विवाद नहीं है**।

51. याचिकाकर्ता/कंपनी के दूसरे आधार से संबंधित दावा, जो IDBI बैंक द्वारा उसके पक्ष में किए गए असाइनमेंट डीड पर आधारित है और जिसे प्रतिवादी/कंपनी ने अस्वीकार किया है, के संबंध में यह ध्यान देना आवश्यक है कि असाइनमेंट डीड एक क्रियान्वयन योग्य दावा होगा, जैसा कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 3 में परिभाषित है, और इसे याचिकाकर्ता द्वारा क्रियान्वयन योग्य दावा के रूप में लागू किया जा सकता है। हालाँकि, तथ्य यह है कि असाइनमेंट डीड में असाइन की गई देयताएँ वास्तविक रूप में अस्तित्व में नहीं थीं, क्योंकि IDBI बैंक द्वारा ओटीएस प्रस्ताव पहले ही हस्ताक्षरित किया जा चुका था, और उसके आधार पर किए गए भुगतानों के कारण रिकवरी कार्यवाही को भी रिकॉर्ड में समाहित कर लिया गया था।

52. संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 3 में परिभाषित 'क्रियान्वयन योग्य दावा' से यह स्पष्ट होता है कि इसके आधार पर, दावेदार को न्यायालय के दरवाजे पर जाने का अधिकार होना चाहिए और न्यायालय **वसूली योग्य और देय ऋण का आदेश** पारित कर सकता है। हालाँकि, IDBI बैंक को देय ऋण **असाइनमेंट से पहले ही समाप्त** हो चुका था, इसलिए यदि याचिकाकर्ता ने ऋण के असाइनमेंट के आधार पर प्रतिवादी/कंपनी के खिलाफ वसूली के लिए मुकदमा दायर भी किया होता, तो वह **प्रारंभिक दृष्टि से विफल** रहता, क्योंकि OTS समझौते से अधिक IDBI बैंक को देय ऋण का हिस्सा माफ़ कर दिया गया था।

53. यह स्पष्ट है कि असाइन की गई देयता केवल कानून के अनुसार वसूली योग्य ऋण होनी चाहिए और इसमें माफ की गई ऋण शामिल नहीं हो सकती, जब तक कि असाइनमेंट डीड की धाराओं में स्पष्ट रूप से ऐसा उल्लेख न हो और असाइनर एवं उधारकर्ता के बीच किए गए समझौते का विवरण विशेष रूप से न दिया गया हो। यह पक्ष स्पष्ट करता है कि किसी भी स्थिति में, असाइनमेंट डीड के आधार पर याचिकाकर्ता/कंपनी का दावा स्पष्ट और अविवादित दावा नहीं है और यह एक विवादित विषय है। अतः मुझे इसमें कोई संकोच नहीं कि याचिकाकर्ता/कंपनी का असाइनमेंट डीड पर आधारित दावा परिसमापन के लिए आधार नहीं बन सकता।

54. प्रतिवादी/कंपनी द्वारा अपने बैलेंस शीट में बनाए गए चार्ज के संबंध में किए गए स्वीकारोक्ति का स्थिति पर कोई भौतिक प्रभाव नहीं पड़ेगा, जैसा कि ऊपर वर्णित किया गया है, और इसका कारण सरल है कि अधिनियम की धारा 124 के प्रावधानों के अनुसार, यद्यपि चार्ज में बंधक शामिल है और चार्ज का पंजीकरण उस व्यक्ति के पक्ष में काम करता है जिसके पक्ष में चार्ज पंजीकृत है, यह अन्य सभी को अपवाद करता है, तथापि चार्ज या बंधक केवल तभी भुनाया जा सकता है जब कोई कानूनी रूप से वसूली योग्य ऋण हो। एक माफ़ की गई ऋण, ऋणदाता के पास कोई ऐसा ऋण नहीं छोड़ती जिसे असाइन किया गया कहा जा सके, और इसलिए केवल इसलिए कि चार्ज पंजीकृत है, इससे याचिकाकर्ता/कंपनी को कोई लाभ नहीं मिलेगा जैसा कि वे दावा कर रहे हैं।

55. जहाँ तक लगभग 64.30 लाख रुपये की स्वीकृत राशि का संबंध है, याचिकाकर्ता/कंपनी का एक दावा है और चूंकि अधिनियम की धारा 434 के अंतर्गत आवश्यक नोटिस कंपनी के पंजीकृत पते पर सही ढंग से नहीं दिया गया था और इसके अतिरिक्त इस न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी/कंपनी द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि वे उक्त राशि का भुगतान करने के लिए तैयार और इच्छुक हैं, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि कंपनी ने राशि का भुगतान करने में असफल और लापरवाह रही है, जो कि धारा 433(c) और 434(1)(a) को लागू करने के लिए अनिवार्य शर्त है। अतः, इस स्वीकृति और सुनवाई के दौरान प्रतिवादी के अधिवक्ता द्वारा किए गए स्पष्ट प्रस्तुतिकरण के दृष्टिगत, मैं उपयुक्त मानता हूँ कि प्रतिवादी/कंपनी को आदेश दिया जाए कि वह 64.30 लाख रुपये की राशि 11% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित, भुगतान की तिथि से वास्तविक भुगतान/प्राप्ति तक, अदायगी करे। 11% ब्याज इसलिए लगाया जा रहा है क्योंकि यही वह ब्याज दर थी जिस पर वित्तीय संस्थाओं के साथ राशि का निपटान हुआ था। उक्त राशि प्रतिवादी कंपनी द्वारा आदेश की तिथि से दो माह के भीतर अदा की जानी चाहिए।

56. जहाँ तक अधिनियम की धारा 433(f) के अंतर्गत परिसमापन के लिए याचिका दायर करने से संबंधित दलीलों का संबंध है:

57. कंपनी को "न्यायसंगत और उचित" आधार पर परिसमापन के लिए याचिका दायर करने के दावे को समझने के लिए यह आवश्यक है कि न्यायालय यह दृष्टिकोण बनाए कि कंपनी की वर्तमान स्थिति को देखते हुए, यदि कंपनी को परिसमापित नहीं किया गया, तो यह वाणिज्यिक जगत के लिए एक खतरा होगा और कंपनी का अस्तित्व वाणिज्यिक जगत के लिए वांछनीय नहीं होगा। ऐसा कोई भी तथ्यात्मक प्रमाण मौजूद नहीं है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि यदि कंपनी का परिसमापन नहीं किया गया, तो यह वाणिज्यिक जगत के लिए खतरा होगा और/या ऋणदाताओं को और अधिक धोखाधड़ी का सामना करना पड़ेगा, विशेष रूप से तब जब प्रतिवादी/कंपनी ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि वह प्रोविडेंट फंड के बकाया भुगतान का निपटान करेगी, जिसे श्री एन.के. सेठ के अनुसार, वर्तमान मामले के निर्णय की तारीख से तीन सप्ताह के भीतर अन्य किसी भी ऋणदाता को देय किसी भी राशि के साथ अदा किया जाएगा।

58. मैं पहले ही यह स्पष्ट कर चुका हूँ कि अधिनियम की धारा 433(c) के अंतर्गत परिसमापन की याचिका को केवल इसलिए नहीं माना जा सकता क्योंकि इस संबंध में कोई प्रार्थना याचिका में नहीं की गई है।

59. अतः, उपरोक्त सभी कारणों के आधार पर, वर्तमान परिसमापन याचिका को खारिज किया जाना उचित है और इसे खारिज किया जाता है तथा प्रतिवादी/कंपनी के लिए यह निर्देश जारी किया जाता है कि:

(1) प्रतिवादी/कंपनी को आदेश दिया जाता है कि वह 64.30 लाख रुपये की राशि 11% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित, राशि के भुगतान की तिथि से वास्तविक भुगतान/प्राप्ति तक, दो माह के भीतर अदा करे;

(2) प्रतिवादी/कंपनी को आदेश दिया जाता है कि वह प्रोविडेंट फंड के बकाया भुगतान को आज की तारीख से चार सप्ताह के भीतर अदा करे;

(3) प्रतिवादी/कंपनी को आदेश दिया जाता है कि वह किसी अन्य ऋणदाता के बकाया दायित्वों का निस्तारण करे।

(2025) 5 ILRA 1818

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 26.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 17325/2025

आवेदक : प्रदीप सोनी

प्रतिवादी: उत्तर प्रदेश राज्य

आवेदक के अधिवक्ता: श्री अमित दगा, श्री विकास तिवारी

प्रतिवादी के अधिवक्ता: जी.ए.

अपराधिक कानून – भारतीय दंड संहिता, 1860 – धारा 376, 354 एवं 506 – जमानत – पिता और संरक्षक द्वारा बेटी व भतीजी के साथ बलात्कार और छेड़छाड़ का आरोप – प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में एक वर्ष की देरी – पीड़ितों के असंगत बयान – चिकित्सीय या फोरेंसिक पुष्टि का अभाव – परिवारों के बीच पूर्व विवाद और प्रतिवाद – संरक्षकता का कथित दुरुपयोग – आपराधिक पृष्ठभूमि स्पष्ट – निस्तारण : जहां अभियोजन साक्ष्य में विरोधाभास, अनिर्दिष्ट देरी और पुष्टि का अभाव हो, वहां केवल **नैतिक विचारों** के आधार पर जमानत अस्वीकार नहीं की जा सकती – **जमानत स्वीकृत।** (पैराग्राफ 14, 52, 54, 57 और 58)

अपराधिक कानून – भारतीय दंड संहिता, 1860 – धारा 376, 354 एवं 506 – जमानत – पिता एवं संरक्षक द्वारा बेटी और भतीजी के साथ बलात्कार तथा छेड़छाड़ का आरोप – प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में एक वर्ष की देरी – पीड़ितों के असंगत बयान – चिकित्सीय या फोरेंसिक पुष्टि का अभाव – परिवारों के बीच पूर्व विवाद एवं प्रतिवाद – संरक्षकता के कथित दुरुपयोग – आपराधिक पृष्ठभूमि स्पष्ट – **निर्णय:** जहां अभियोजन साक्ष्य में विरोधाभास, अनिर्दिष्ट देरी और पुष्टि का अभाव हो, वहां केवल **नैतिक दृष्टिकोण** के आधार पर जमानत अस्वीकार नहीं की जा सकती – **जमानत स्वीकृत।** (पैराग्राफ 14, 52, 54, 57 और 58)

निर्णय: यदि ये आरोप सत्य पाए जाते हैं तो ये अत्यंत मानसिक पात्यता वाले हैं और इन्हें **कठोर दंडात्मक हस्तक्षेप** के साथ निपटाया जाना चाहिए। तथापि, वर्तमान मामले में **आवेदक को 'बालव्यभिचारी'** के रूप में लेबल करना **असमय और कानूनी दृष्टि से असंवैधानिक** है, विशेषकर तब जब प्रथम सूचना रिपोर्ट में इस प्रकार के पूर्व आचरण या पूर्व आरोपों का कोई समर्थन न हो। (पैराग्राफ 54)

वर्तमान मामले में, दोनों पीड़ितों ने अपने बयान बार-बार बदले हैं, जिससे उनके बयान **पेंडुलम की भाँति असंगत** प्रतीत होते हैं। यह भी महत्वपूर्ण है कि **प्रथम सूचना रिपोर्ट (FIRs)** केवल तब दर्ज की गईं जब ये दोनों पीड़ित **अल्पवयस्क थीं**। उक्त FIRs पीड़ितों के कथित प्रेमियों और उनके परिवार के सदस्यों के खिलाफ दर्ज की गई थीं। इसके अतिरिक्त, **वर्तमान FIR लगभग एक वर्ष की देरी के पश्चात दर्ज की गई है**। साथ ही, **आरोपों की पुष्टि के लिए किसी फोरेंसिक साक्ष्य का अभाव** है। कोई वीडियो भी बरामद नहीं हुआ। (पैराग्राफ 57)

इन तथ्यों, गवाहों के **अस्थिर बयानों**, FIR दर्ज करने में हुई **देरी**, **फोरेंसिक पुष्टि के अभाव**, और पूर्व FIRs की प्रकृति के संदर्भ में, साथ ही यह तथ्य कि **आपराधिक पृष्ठभूमि स्पष्ट की जा चुकी है**, तथा स्थिर निर्णय के अनुसार कि **'जमानत नियम है और जेल अपवाद'**, इस न्यायालय ने **आवेदक को जमानत देने योग्य** पाया। (पैराग्राफ 58)

जमानत आवेदन स्वीकृत। (E-14)

संदर्भित मामले:
प्रभाकर तिवारी बनाम राज्य उत्तर प्रदेश एवं अन्य, (2020) 11 SCC 648

(प्रस्तुत निर्णय: माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल)

[1] **आवेदक के पक्ष में** श्री अमित दंगा और श्री विकास तिवारी, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता; **सूचनाकर्ता के पक्ष में** श्री अच्युत जी और श्री रंजीत सिंह, अधिवक्ता; तथा **श्री अरुण कुमार मिश्रा, अधिवक्ता ए.जी.ए.** के बहसों को सुना गया और अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

[2] आवेदक **मुकदमा अपराध संख्या 387/2024**, भारतीय दंड संहिता की धारा 376, 354 एवं 506 के अंतर्गत, थाना कोतवाली, जिला झांसी में **मुकदमे की सुनवाई के दौरान** जमानत की मांग करता है।

अभियोजन की कहानी:

[3] **अभियोजन की कहानी:**

दोनों पीड़ितों द्वारा **06.12.2024** को एक सामान्य **प्रथम सूचना रिपोर्ट (FIR)** दर्ज कराई गई, जिसमें आरोप लगाया गया कि पीड़ित V1 (आवेदक की भतीजी) और V2 (आवेदक की बेटी) **आवेदक के साथ रहते थे**, जो झांसी में अभ्यासरत अधिवक्ता है। आवेदक ने कई बार पीड़ितों के साथ **शारीरिक संबंध बनाने का प्रयास** किया। लगभग एक वर्ष पूर्व, जब वे घर पर सो रही थीं, तब रात के 2 बजे आवेदक ने V1 से कहा कि यदि वह उसके साथ संबंध नहीं बनाएगी, तो उसे घर से बाहर फेंक दिया जाएगा। V1 **अनाथ होने के कारण** उसके **धमकियों से डर गई।** अपने इस स्थिति का लाभ उठाकर आवेदक ने **बलपूर्वक V1 के साथ दो बार शारीरिक संबंध स्थापित** किए। जब V1 ने यह बात अन्य आरोपियों **अंकित सोनी, प्रशांत सोनी और अंजू सोनी** को बताई, तो उन्होंने

उस पर **दबाव डाला और कहा कि यदि उसने किसी को बताया तो वे उसे मार देंगे।** इससे V1 भयभीत हो गई। जब आवेदक ने यह बात V2 को बताई, तो उसने कहा कि एक बार वह रात में सो रही थी और **आवेदक (उसका पिता) ने उसके सीने को दबाया और अपनी अंगुली उसके सलवार में डालकर उसकी संवेदनशील हिस्सों को छेड़ा।** जब V2 ने चिल्लाया, तो आवेदक ने माफी मांगी और कहा कि इसे किसी को नहीं बताना, अन्यथा वह आत्महत्या कर देगा। डर गई V2 ने यह बात किसी को नहीं बताई। आवेदक ने **V2 की चुप्पी का लाभ उठाकर** यह कृत्य दोहराया और समय-समय पर वही अश्लील कार्य किए। परेशान V1, जो **नाबालिग नहीं थी**, **अपने आप घर से भाग गई।** आवेदक ने अपने **प्रभाव और सत्ता का दुरुपयोग** किया और कई लोगों के खिलाफ लगभग **10 मामले दर्ज कराए**, तथा आरोपियों से लगभग **70 लाख रुपए वसूले।** इस प्रकार उसने **पीड़ितों का उपयोग करके धन कमाना जारी रखा।**

FIRs का विवरण:

(i) FIR संख्या 32/2018, भारतीय दंड संहिता की धारा 354A/506 एवं POCSO अधिनियम की धारा 7/8 के अंतर्गत, **सुरेश** के विरुद्ध, दिनांक 19.01.2018।

(ii) **प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 41/2022**, भारतीय दंड संहिता की धारा 342/354/3547/506 एवं POCSO अधिनियम की धारा 7/8 के अंतर्गत, **विशाल** के विरुद्ध, दिनांक 22.01.2022।

(iii) **प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 390/2022**, भारतीय दंड संहिता की धारा 354/342/504/506 के अंतर्गत, **अभिषेक, श्रीमती हीरा देवी और जीतम प्रजापति** के विरुद्ध, दिनांक 08.09.2022।

(iv) इसी क्रम में, आवेदक के पुत्र **प्रशांत सोनी** के माध्यम से उनकी पत्नी **आकांक्षा सोनी** द्वारा **प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 4454/2020**, भारतीय दंड संहिता की धारा 354/342/504/506 के अंतर्गत, **गौरव** के विरुद्ध, दिनांक 20.09.2022 दर्ज कराई गई।

(v) V1 द्वारा **प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 206/2023**, भारतीय दंड संहिता की धारा 354(a)/323/504/506 एवं POCSO अधिनियम की धारा 7/8 के अंतर्गत, **आवेदक** के विरुद्ध दर्ज कराई गई।

[4] आवेदक अपने **सहयोगियों के साथ एक गिरोह बनाकर** पीड़ितों और अन्य व्यक्तियों का **शोषण** कर रहा है। आवेदक और उसके गिरोह के सदस्य **किसी भी समय गंभीर घटना को अंजाम देने की संभावना** रखते हैं। V1 ने **उच्च न्यायालय में एक याचिका** दायर की थी, जिसमें आदेश दिया गया कि **CJM धारा 164 Cr.P.C के अंतर्गत उसका बयान दर्ज करें**, जब वह थाना में आवेदन प्रस्तुत करे। V1 **थाना कोतवाली झांसी** में उपस्थित हुई और वहां आवेदन दिया, लेकिन पुलिस ने **आवेदक के भय के कारण कोई FIR दर्ज नहीं की।**

अतः, **FIR V1 और V2 की संयुक्त याचिका पर दर्ज कराई गई।**

जांच:

[5] **जांच में यह तथ्य सामने आया कि** हाई स्कूल प्रमाणपत्र के अनुसार, V1 की **जन्मतिथि 02.04.2006** और V2 की **जन्मतिथि 24.09.2005** है।

[6] **पीड़ितों ने अपने धारा 180 और 183 B.N.S.S. के तहत दर्ज बयानों में FIR में किए गए आरोपों की पुनरावृत्ति की** और बताया कि V1 ने **विशाल प्रजापति** से विवाह किया था। आवेदक ने अपनी बेटी V2 का विवाह अपने **किरायेदार नितिन सक्सेना** से कराने का प्रयास किया था, जिसने V2 के **बयान दर्ज कराने के लिए न्यायालय आने पर उसकी शील भंग करने का प्रयास किया।** इसलिए, **विवेचना अधिकारी (I.O.) ने मामले में धारा 354 IPC जोड़ दी।**

आवेदक के पक्ष में तर्क:

[7] **विवेचना अधिकारी द्वारा धारा 180 B.N.S.S. के तहत दर्ज स्वतंत्र गवाहों** श्री महेंद्र कुमार, चंदन अग्रवाल, शबीर मोहम्मद मंसूरी, श्रीमती कुश्मा देवी, तनीष्क सोनी, रजोल कुमार और प्रवीण बानो के बयानों से यह पता चला कि **पड़ोसी विशाल प्रजापति ने V1 को बहलाकर ले जाने का प्रयास किया**, इस कारण आवेदक ने **प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 41/2022, भारतीय दंड संहिता की धारा 342, 354, 354-C, 506 एवं POCSO अधिनियम की धारा 7/8 के अंतर्गत, थाना कोतवाली, झांसी में दर्ज कराई।**

[8] V1 के साथ अन्याय करने के कारण, प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 390/2022, भारतीय दंड संहिता की धारा 354, 352, 504, 506 एवं POCSO अधिनियम की धारा 7/8 के अंतर्गत, थाना कोतवाली, झांसी में अभिषेक, श्रीमती हीरा देवी और जीतू प्रजापति (विशाल प्रजापति के परिवारिक सदस्य) के खिलाफ दर्ज कराई गई।

[9] इसके बाद, **सोहिल अली** ने आवेदक की नाबालिग बेटी V2 को बहलाकर ले जाने का प्रयास किया, जिस कारण आवेदक ने **प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 221/2023**, भारतीय दंड संहिता की धारा 363, 366, 342 एवं 368 के अंतर्गत, थाना कोतवाली, झांसी में सोहिल अली, आशद अली सहित छह व्यक्तियों के खिलाफ दर्ज कराई। इसके परिणामस्वरूप, विशाल प्रजापति, सोहिल अली और उनके परिवारिक सदस्य आवेदक के प्रति शत्रुतापूर्ण हो गए।

[10] गवाहों ने आगे बताया कि, **V1 की पूर्णवयस्क होने के बाद**, उसने **विशाल प्रजापति** के साथ भागकर विवाह किया, जिसके संबंध में आवेदक ने **प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 301/2024**, थाना कोतवाली, जिला झांसी में, **भारतीय दंड संहिता की धारा 87, 352, 351(2) B.N.S. के अंतर्गत**, विशाल प्रजापति, उसके सहयोगियों, सोहिल अली और उनके परिवारिक सदस्यों के खिलाफ दर्ज कराई। इसके बाद, V1 ने विशाल प्रजापति से विवाह कर लिया और आवेदक की बेटी V2 भी उनके साथ रह रही है।

[11] उक्त गवाहों ने यह भी आरोप लगाया कि **V2 ने विशाल प्रजापति और सोहिल के निर्देश पर**, आवेदक और उसके परिवार के सदस्यों के खिलाफ **झूठा मामला दर्ज कराया**, ताकि वह उनके विरुद्ध दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्टें (FIRs) से बच सके।

[12] पीड़ितों ने **चिकित्सीय परीक्षण से इनकार किया**, इस प्रकार अभियोजन की कहानी किसी भी **फोरेंसिक साक्ष्य द्वारा पुष्टि नहीं की गई**।

[13] पीड़ितों V1 और V2 के बयानों तथा **विस्तृत जांच** के आधार पर, जांच अधिकारी ने **सह-आरोपियों अंकित सोनी, प्रशांत सोनी और श्रीमती अंजू सोनी** के संबंध में **समापन रिपोर्ट (Closure Report)** प्रस्तुत की। इस प्रकार, अभियोजन की कहानी **सत्यापित नहीं हो सकी** और यह अपने पैरों पर टिक नहीं पाई। अंततः **अंतिम रिपोर्ट (चार्जशीट)** केवल आवेदक के विरुद्ध ही प्रस्तुत की गई।

[14] चूँकि प्रथम सूचना रिपोर्ट (FIR) लगभग एक वर्ष की देरी से दर्ज की गई है और इस अत्यधिक देरी का कोई उचित कारण नहीं बताया गया, इसलिए इसे कानूनी परामर्श और विचार-विमर्श के पश्चात बाद में दर्ज किया गया माना जाता है।

[15] यह ध्यान देने योग्य है कि पीड़ितों ने अपराध की कोई विशिष्ट तिथि या समय निर्दिष्ट नहीं किया है।

[16] V1 के बयान से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान FIR कथित बलात्कार की घटना का परिणाम नहीं है, बल्कि यह विशाल प्रजापति से उसके विवाह के खिलाफ आवेदक द्वारा उठाए गए आपत्तियों का परिणाम है।

[17] उक्त पीड़ितों के धारा 183 B.N.S.S. के तहत दर्ज बयानों में विभिन्न असंगतियाँ और छोड़-छाड़ पाई गई हैं, जो एक-दूसरे और प्रथम सूचना रिपोर्ट के साथ मेल नहीं खातीं। इस प्रकार, अभियोजन की कहानी सत्यापित नहीं हो पाई।

[18] V2 आवेदक की वास्तविक बेटी है और V1 उसकी भतीजी है (आवेदक की असली बहन की बेटी), लेकिन यह अत्यंत आश्चर्यजनक है कि उन्होंने अन्य आरोपियों (प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित परिवारिक सदस्य) अंकित सोनी, प्रशांत सोनी और अंजू सोनी के सही वंश का उल्लेख नहीं किया, बल्कि उन्हें अज्ञात बताया। यह अपराध की गंभीरता बढ़ाने के लिए कानूनी परामर्श का एक और उदाहरण है।

[19] V1 ने आरोप लगाया है कि उसने आवेदक द्वारा V2 के साथ किए गए उक्त अभद्र कृत्य का **वीडियो रिकॉर्ड किया था** और उसे अग्रेषित किया था, लेकिन अभिलेखों में ऐसा कोई वीडियो नहीं है और जांच पहले ही पूरी हो चुकी है। इस प्रकार, इस अंक पर भी अभियोजन की कहानी **सत्यापित नहीं हो पाई**।

[20] V1 आवेदक की असली बहन की बेटी है, जिसकी माता का निधन वर्ष 2016 में कैंसर के कारण हो गया था। उसका पिता **तपेदिक (T.B.) का गंभीर मरीज** था, इस प्रकार उसकी माता के निधन के बाद, V1 अपने पिता के साथ आवेदक और उसके परिवार के यहाँ रहने लगी। आवेदक, **परिजन संरक्षक और परिवार के मुखिया**

होने के नाते, पिता-पुत्री दोनों की उचित देखभाल करता रहा। दुर्भाग्यवश, उसका पिता भी वर्ष 2019 में उक्त तपेदिक के कारण निधन हो गया, और इस प्रकार आवेदक ने V1 की **संरक्षक के रूप में उचित देखभाल** की।

[21] जहाँ तक प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों का संबंध है कि कथित पीड़ितों ने **प्रदीप सोनी (आवेदक) के निर्देश पर झूठी FIR संख्या 32/2018**, भारतीय दंड संहिता की धारा 354(A)(1)(iv), 506 एवं POCSO अधिनियम की धारा 7/8, थाना कोतवाली, झांसी दर्ज कराई, यह ध्यान देने योग्य है कि V1 के पिता के **चिकित्सीय उपचार के दौरान**, अस्पताल के एक कर्मचारी **सुरेश** ने 19.01.2018 को उसकी शील भंग की और उसके होंठ पर चोट पहुँचाई। आवेदक, संरक्षक होने के नाते, उक्त FIR दर्ज कराई। V1 की 19.01.2018 को की गई **चिकित्सीय जांच** में निचले होंठ पर घर्षण (abrasion) पाया गया। उक्त चोट की रिपोर्ट **जमानत याचिका के साथ प्रस्तुत हलफनामे में परिशिष्ट संख्या 13** के रूप में संलग्न है।

[22] V1 के बयान की पुष्टि अस्पताल में कार्यरत एक **नर्स श्रीमती प्रवीण करीम** ने की। V1 के पिता के **जिला अस्पताल, झांसी** में 18.01.2018 से 24.01.2018 तक किए गए उपचार के संबंध में **सूचना का अधिकार अधिनियम** के तहत प्राप्त जानकारी भी **जमानत याचिका के साथ प्रस्तुत हलफनामे में परिशिष्ट संख्या 15** के रूप में संलग्न की गई है।

[23] यह उल्लेखनीय है कि **विशेष मुकदमा संख्या 226/2018, 'उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सुरेश'** के दौरान, V1 को **प्रथम साक्षी (PW-2)** के रूप में सम्मिलित किया गया और उसके बयान दर्ज किए गए। उसने कहा कि उक्त FIR **उसके चाचा (फूफा) द्वारा दर्ज कराई गई थी।** विशेष मुकदमा संख्या 226/2018 में PW-2 के बयान की प्रति **जमानत याचिका के साथ प्रस्तुत हलफनामे में परिशिष्ट संख्या 16** के रूप में संलग्न की गई है।

[24] V1 ने 18.09.2024 को विशाल प्रजापति से विवाह संपन्न किया था, जिसका निवास आवेदक के घर के समीप है। विशाल ने V1 पर **अनैतिक दृष्टि** डाली और उसका पीछा किया तथा उसे जबरदस्ती एक मोबाइल फोन भी दिया। इस कारण आवेदक ने **थाना कोतवाली, झांसी में विशाल के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई।** उक्त शिकायत के आधार पर पुलिस ने विशाल और उसके परिवार के सदस्यों को थाना बुलाया और उन्हें चेतावनी दी, जिसके पश्चात विशाल ने **थाना प्रभारी के समक्ष लिखित माफी पत्र** प्रस्तुत किया कि वह भविष्य में उक्त कृत्य को दोहराएगा नहीं। विशाल द्वारा अपने परिवार और मित्र की उपस्थिति में प्रस्तुत लिखित माफी पत्र की प्रति **जमानत याचिका के साथ प्रस्तुत हलफनामे में परिशिष्ट संख्या 17** के रूप में संलग्न की गई है।

[25] उक्त लिखित माफी के बावजूद, विशाल प्रजापति ने 19.01.2022 को V1 को जबरदस्ती ले जाकर उसकी शील भंग की। कोई विकल्प न होने के कारण, आवेदक ने **प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 41/2022**, भारतीय दंड संहिता की धारा 342, 354, 354-C, 506 एवं POCSO अधिनियम की धारा 7/8, थाना कोतवाली, झांसी में 22.01.2022 को उसके खिलाफ दर्ज कराई। V1 ने अपने बयान में, जो क्रमशः धारा 161 और 164 Cr.P.C. के तहत दर्ज किए गए, अभियोजन की कहानी का समर्थन किया। उक्त मामले में चार्जशीट दायर की गई और

यह **सत्र मुकदमा संख्या 274/2022, "State of U.P. बनाम विशाल प्रजापति"**, POCSO अधिनियम के तहत झांसी में विशेष न्यायाधीश की अदालत में चल रहा है। मुकदमे के दौरान V1 को **प्रथम साक्षी (PW-2)** के रूप में प्रस्तुत किया गया और उसका बयान दर्ज किया गया। परीक्षा के दौरान, V1 ने कहा कि उसने आवेदक के खिलाफ **वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट विशाल प्रजापति के दबाव में दर्ज कराई थी।**

[26] V2 के साथ किए गए अपराध के संबंध में, आवेदक ने विशाल प्रजापति के परिवारिक सदस्यों अभिषेक, श्रीमती हीरा देवी और जीतू प्रजापति के खिलाफ थाना कोतवाली, जिला झांसी में प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 390/2022, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 354, 352, 504, 506 और POCSO अधिनियम की धाराओं 7/8 के अंतर्गत दर्ज कराई। V2 ने उक्त FIR में अपने बयान, जो धारा 161 और 164 Cr.P.C. के तहत दर्ज किए गए, में अभियोजन पक्ष का समर्थन किया।

[27] एक सोहिल अली, जो विशाल प्रजापति का मित्र है, भी आवेदक की बेटी (V2) का पीछा कर रहा था। आवेदक ने संबंधित थाना में शिकायत दर्ज कराई। पुलिस ने सोहिल अली को संबंधित थाना में बुलाया और चेतावनी दी, जिसके पश्चात उसने लिखित माफी दी और V2 का पीछा न करने का वचन दिया। लेकिन उक्त वचन के बावजूद उसने पीछा जारी रखा और अंततः उसे अपने प्रेम जाल में फँसा लिया। सोहिल द्वारा 15.10.2022 को थाना कोतवाली, जिला झांसी में प्रस्तुत लिखित माफी पत्र की सही प्रति जमानत याचिका के साथ प्रस्तुत हलफनामे में परिशिष्ट संख्या 23 के रूप में संलग्न की गई है।

[28] आरोपी विशाल को इस न्यायालय द्वारा FIR संख्या 41/2022 में जमानत प्रदान की गई है, जैसा कि **आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 24934/2022** में 21.12.2022 के आदेश में उल्लेखित है।

[29] विषय यह है कि जेल से रिहाई के बाद विशाल प्रजापति ने पुनः V2 के पास संपर्क किया, जबकि सोहिल अली पहले से ही आवेदक की बेटी V2 के साथ सहमति आधारित संबंध में था। सोहिल अली और V2 के बीच इस सहमति आधारित संबंध से अनभिज्ञ, आवेदक ने V2 की शादी तय की, जो 28.11.2023 को संपन्न होने वाली थी, और उसकी रिंग सेरेमनी 16.05.2023 को प्रयागराज में आयोजित की गई। रिंग सेरेमनी की कुछ तस्वीरें जमानत याचिका के साथ प्रस्तुत हलफनामे में परिशिष्ट संख्या 25 के रूप में संलग्न की गई हैं।

[30] दोनों पीड़ितों ने भारी मात्रा में नकदी और आभूषण लेकर घर छोड़ दिया और किसी होटल में ठहर गईं। आवेदक मामले की शिकायत करने गया, लेकिन पीड़ितों को उनके मित्रों के साथ देखकर पाया, जिसके परिणामस्वरूप आवेदक को **थाना कोतवाली, पुलिस आउटपोस्ट उनना गेट** में अवैध रूप से रोका गया। आवेदक के पुत्र **प्रशांत सोनी** द्वारा 26.05.2023 को **जन सुनवाई पोर्टल** पर शिकायत दर्ज कराई गई, जिसका संदर्भ संख्या 400100623011763 है। 25.05.2023 की शिकायत की सत्य प्रति और 26.05.2023 को "जन सुनवाई पोर्टल" से जारी रसीद को संयुक्त रूप से जमानत याचिका के साथ प्रस्तुत हलफनामे में **परिशिष्ट संख्या 28** के रूप में संलग्न किया गया है।

[31] इसके पश्चात 27.05.2023 की एक **समझौता पत्र** तैयार की गई, जिसे सोहिल और V2 के बीच कहा गया कि संपन्न किया गया, उक्त थाना में संबंधित थाना प्रभारी की देखरेख में तैयार किया गया।

[32] सोहिल अली और V2 के बीच एक **अवैध समारोह** आयोजित किया गया, क्योंकि उक्त विवाह के समय पीड़िता नाबालिग थी और उसकी सहमति कानून की दृष्टि से कोई वैधता नहीं रखती, क्योंकि उसे सोहिल अली के घर में अवैध रूप से बंद किया गया था। इस कारण, आवेदक ने पिता होने के नाते सोहिल अली और उसके परिवार के सदस्यों के खिलाफ थाना कोतवाली, झांसी में **प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 221/2023**, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 342, 366 एवं 363 के अंतर्गत 06.06.2023 को दर्ज कराई।

[33] उक्त मामले में V2 का बयान **धारा 164 Cr.P.C. के तहत** दर्ज किया गया, जिसमें उसने कथित रूप से समझौते और "जैमल सेरेमनी" की घटना को सत्यापित किया और आगे यह आरोप लगाया कि चार माह बाद, जब वह वयस्क हो जाएगी अर्थात् 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेगी, तब वह सोहिल अली से विवाह संपन्न करेगी और अपने माता-पिता के साथ जाने की सहमति व्यक्त की। इसके परिणामस्वरूप, उसने आवेदक और उसके परिवार के साथ रहने का निर्णय लिया, और सोहिल अली तथा उसके पिता असद को जेल भेजा गया।
[34] चूँकि V2 सोहिल से विवाह करने पर अड़ी हुई थी, इसलिए उसकी खुशी के लिए आवेदक ने सोहिल अली और उसके पिता द्वारा दायर जमानत आवेदन पर आपत्ति नहीं की। इसके परिणामस्वरूप, संबंधित न्यायालय द्वारा दोनों को जमानत दे दी गई।

[35] जांच अधिकारी ने सोहिल अली और उसके पिता के खिलाफ मामले में **चार्जशीट** 28.07.2023 को अदालत में प्रस्तुत की, जो भारतीय दंड संहिता की धाराओं 363, 366 एवं 368 के अंतर्गत दंडनीय अपराधों से संबंधित है, और शेष अभियुक्तों अर्थात् श्रीमती शबाना, शारुख, मुस्कान और अफ़सर के खिलाफ जांच लंबित रखी। **सत्र मुकदमा संख्या 1017/2023, "State of U.P. बनाम सोहिल अली एवं अन्य"** संबंधित न्यायालय, सत्र न्यायाधीश, झांसी में अभियुक्तों के खिलाफ चल रहा है। आगे की जांच के दौरान, उक्त आपराधिक मामले के अन्य अभियुक्तों श्रीमती शबाना, शारुख, मुस्कान और अफ़सर को इस न्यायालय द्वारा **अग्रिम जमानत** प्रदान की गई। अन्य **सत्र मुकदमा संख्या 619/2025, "उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मुस्कान एवं अन्य"** भी संबंधित न्यायालय, सत्र न्यायाधीश, झांसी में अन्य अभियुक्तों के खिलाफ चल रहा है।

[36] कहानी यहीं समाप्त नहीं हुई, बल्कि सोहिल अली ने V2 से विवाह करने से इनकार कर दिया। मुकदमे के दौरान उसने 09.04.2024 को ट्रायल कोर्ट में अपने मुख्य परीक्षण (Examination-in-Chief) में अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन किया और सोहिल अली के खिलाफ गवाही दी। इसके बाद, उसने 17.09.2024 को पुनः सोहिल अली के साथ घर छोड़ दिया और 12.02.2025 को दर्ज क्रॉस-एग्ज़ामिनेशन में उसकी पक्ष में गवाही दी। दोनों सत्र मुकदमों की कार्यवाही अभी भी संबंधित ट्रायल कोर्ट में लंबित है।

असंवादित

[37] विशाल प्रजापति ने भी V1 से विवाह संपन्न करने से इनकार कर दिया और उस पर आवेदक के खिलाफ FIR दर्ज कराने का दबाव डाला। इसके प्रभाव में, V1 ने 26.05.2023 को थाना कोतवाली, झांसी में **प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 206/2023**, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 354(A), 323, 504, 506 और POCSO अधिनियम की धाराओं 7/8 के अंतर्गत दर्ज कराई। उक्त FIR दर्ज होने के बावजूद विशाल प्रजापति ने V1 से विवाह संपन्न नहीं किया। इसके बाद V1 ने अपने गलती का एहसास किया और 27.05.2023 को **धारा 164 Cr.P.C. के तहत** दर्ज अपने बयान में अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया तथा कहा कि किसी वाद-विवाद के कारण उसने आवेदक के खिलाफ अपने सम्मान को भंग करने के झूठे आरोप लगाकर FIR दर्ज कराई थी।
[38] इसके पश्चात V1 ने 01.06.2023 को पंजीकृत डाक द्वारा वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, झांसी को एक आवेदन भेजा, जिसमें उल्लेख किया कि चूंकि वह विशाल प्रजापति के साथ प्रेम संबंध में थी और उसका चाचा (फूफा) उसके खिलाफ FIR दर्ज करवा चुका था, इसलिए वह खीज गई और आवेदक के खिलाफ झूठा मामला दर्ज करवा दिया। उक्त आवेदन का समर्थन V1 के नोटरी हलफनामे द्वारा भी किया गया। आवेदन और नोटरी हलफनामे की 01.06.2023 तिथि की सत्य प्रति तथा डाक रसीद को जमानत याचिका के साथ प्रस्तुत हलफनामे में परिशिष्ट संख्या 35 के रूप में संलग्न किया गया है।

[39] उक्त तथ्य को जानते हुए भी जांच अधिकारी ने आवेदक के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धाराओं 323, 354(A), 504, 506 और POCSO अधिनियम की धाराओं 7/8 के अंतर्गत **चार्जशीट** दायर की। **विशेष ट्रायल संख्या 1035/2023, "State of U.P. बनाम प्रदीप सोनी"** आवेदक के खिलाफ अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/FTC (OAW), झांसी की अदालत में लंबित है। आवेदक और V1 के बीच 23.05.2024 को एक समझौता संपन्न हुआ, जिसे जमानत याचिका के साथ प्रस्तुत हलफनामे में **परिशिष्ट संख्या 37** के रूप में संलग्न किया गया है।

[40] उक्त समझौते के आधार पर आवेदक ने इस न्यायालय से संपर्क किया और **आपराधिक विविध आवेदन (धारा 482 Cr.P.C. के तहत) संख्या 21032/2024** दायर किया। उक्त आवेदन में V1 ने अपने अधिवक्ता के माध्यम से इस न्यायालय में उपस्थित होकर पक्षकारों के बीच समझौते के तथ्य की पुष्टि करते हुए संक्षिप्त प्रतिवाद हलफनामा दायर किया। V1 द्वारा दायर संक्षिप्त प्रतिवाद हलफनामे की सत्य प्रति जमानत याचिका के साथ प्रस्तुत हलफनामे में परिशिष्ट संख्या 38 के रूप में संलग्न की गई है।

[41] दिनांक 28.08.2024 को V1 ने इस न्यायालय में **धारा 482 Cr.P.C. के तहत याचिका संख्या 21032/2024** की लंबितता तक आवेदक के खिलाफ किसी भी बाध्यकारी कार्रवाई न करने हेतु संबंधित ट्रायल कोर्ट में आवेदन प्रस्तुत किया।

[42] इसी बीच, विशाल प्रजापति और सोहिल अली ने पुनः दोनों पीड़ितों V1 और V2 का विश्वास अर्जित किया और उनके साथ विवाह संपन्न करने का वचन दिया। उक्त प्रलोभन के तहत उन्होंने आवेदक की पत्नी को कोई नशीला पदार्थ देकर बेहोश किया, आवेदक के निवास स्थान से लगभग 5,00,000/- रुपये के गहने और

3,75,000/- रुपये नकद चोरी किए, और उसके पश्चात V1 ने 18.09.2024 को आर्य समाज मंदिर, सिविल लाइन्स, प्रयागराज में विशाल प्रजापति के साथ विवाह संपन्न किया।

[43] परिवर्तित परिस्थितियों में, उक्त धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रार्थना-पत्र को इस न्यायालय द्वारा दिनांक 16.10.2024 के आदेश के माध्यम से वापस ली गई मानते हुए निरस्त कर दिया गया। तत्पश्चात आवेदक पुनः इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ तथा समन आदेश दिनांक 22.08.2023, आरोप पत्र दिनांक 24.07.2023 एवं सत्र परीक्षण संख्या 1035 / 2023, "उत्तर प्रदेश राज्य बनाम प्रदीप सोनी", जो अपराध क्रमांक 206 / 2023, धारा 354(ए), 323, 504, 506 भारतीय दण्ड संहिता तथा धारा 7/8 लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, थाना-कोतवाली, जिला-झांसी से उत्पन्न हुआ है एवं विद्वान अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/सीएडब्ल्यू, झांसी के न्यायालय में लंबित है, की संपूर्ण कार्यवाही को निरस्त किए जाने हेतु आपराधिक विविध प्रार्थना-पत्र (धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत) संख्या 4157641 / 2024 प्रस्तुत किया। उक्त कार्यवाही इस न्यायालय द्वारा दिनांक 04.12.2024 के आदेश के माध्यम से स्थगित की गई है।

[44] आवेदक द्वारा दिनांक 19.09.2024 को थाना-कोतवाली, झांसी में प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 301 / 2024, धारा 87, 352, 351(2) भारतीय न्याय संहिता के अंतर्गत, विशाल प्रजापति, उसके परिवार के सदस्यों तथा सोहिल अली, उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध दर्ज कराई गई। उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसरण में वी-1 एवं विशाल प्रजापति द्वारा इस न्यायालय के समक्ष आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 17738 / 2024, दिनांक 19.09.2024 की प्रथम सूचना रिपोर्ट को निरस्त किए जाने हेतु प्रस्तुत की गई। उक्त प्रकरण में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की जा चुकी है।

[45] यह आरोप कि आवेदक ने धन उगाही करने के उद्देश्य से विभिन्न व्यक्तियों के विरुद्ध 10 प्रकरण स्थापित किए हैं, असत्य है। वस्तुतः पीड़िताों के उक्त मित्रों के विरुद्ध केवल 5 प्रथम सूचना रिपोर्ट ही दर्ज कराई गई हैं, वह भी आवेदक द्वारा उनके अभिभावक होने के नाते अपने दायित्व के निर्वहन के रूप में।

[46] चूँकि पीड़िता वी-1 एवं वी-2 वर्तमान में क्रमशः विशाल प्रजापति तथा उसके मित्र सोहिल अली के साथ निवास कर रही हैं, अतः वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट आवेदक एवं उसके अन्य परिवारजनों के विरुद्ध एक मिथ्या कथा गढ़कर, उनके कहने पर इस उद्देश्य से दर्ज कराई गई है कि आवेदक पर विशाल प्रजापति, सोहिल अली एवं उनके परिवारजनों के विरुद्ध लंबित समस्त आपराधिक प्रकरणों को वापस लेने के लिए दबाव डाला जा सके।

[47] वर्तमान प्रकरण के अतिरिक्त उसके विरुद्ध दो अन्य प्रकरण भी लंबित हैं, जो निम्नलिखित हैं :-

(i) अपराध क्रमांक 458 / 2022 (एन.सी.आर. संख्या 95 / 2022 से उत्पन्न), धारा 323, 504, 325 भारतीय दण्ड संहिता, थाना-कोतवाली, जिला-झांसी। उक्त प्रकरण में आवेदक को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, झांसी के

न्यायालय द्वारा दिनांक 10.10.2023 के आदेश से दोषमुक्त किया जा चुका है, जिसकी प्रति जमानत प्रार्थना-पत्र के साथ दाखिल शपथपत्र के अनुलग्नक संख्या-46 के रूप में संलग्न की गई है।

(ii) अपराध क्रमांक 206 / 2023, धारा 354(ए), 323, 504, 506 भारतीय दण्ड संहिता एवं धारा 7/8 लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, थाना-कोतवाली, जिला-झांसी। उक्त प्रकरण की कार्यवाही इस न्यायालय द्वारा आपराधिक विविध प्रार्थना-पत्र (धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत) संख्या 41576 / 2024 में पारित आदेश दिनांक 04.12.2024 के माध्यम से स्थगित की गई है।

[48] आवेदक दिनांक 21.02.2025 से कारागार में निरुद्ध है। आवेदक के फरार होने अथवा अभियोजन साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने की कोई आशंका नहीं है तथा वह इस न्यायालय की संतुष्टि हेतु पर्याप्त जमानतदार प्रस्तुत करने के लिए तैयार है।

सूचक/राज्य की ओर से प्रस्तुत तर्क :

[49] आवेदक जनपद झांसी के जिला न्यायालयों में प्रैक्टिस करने वाला एक वरिष्ठ अधिवक्ता है तथा जनपद में प्रभावशाली व्यक्ति है। उसने अपने प्रभाव का दुरुपयोग करते हुए अपनी पुत्री एवं भांजी, जो कि दो पीड़िताएँ हैं, के कथनों का दुरुपयोग कर अनेक व्यक्तियों को मिथ्या रूप से फँसाया है, ताकि उक्त अभियुक्त व्यक्तियों से धन की उगाही की जा सके।

[50] पीड़िता वी-1 एवं वी-2 ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में वर्णित आरोपों को पुनः दोहराया है तथा भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 180 एवं 183 के अंतर्गत अभिलिखित उनके-उनके कथनों का पूरक समर्थन एवं पुष्टिकरण किया है।

[51] पीड़िता वी-1 एवं वी-2 की जन्मतिथियाँ क्रमशः 02.04.2006 एवं 24.09.2005 हैं, अतः आवेदक द्वारा कथित अपराध किए जाने के समय वे अल्पवयस्क थीं। उसके कृत्य अत्यधिक मानसिक विकृति की श्रेणी में आते हैं, अतः वह जमानत का अधिकारी नहीं है, क्योंकि उसके विरुद्ध दो आपराधिक प्रकरणों का आपराधिक इतिहास अंकित है।

विश्लेषण :

[52] वर्तमान जमानत प्रार्थना-पत्र के निस्तारण हेतु निम्नलिखित बिंदु विचारणीय हैं :-

(i) आपराधिक इतिहास :

आवेदक के विरुद्ध अंकित दो प्रकरणों के आपराधिक इतिहास का स्पष्टीकरण **प्रभाकर तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य**, (2020) 11 SCC 648 के निर्णय के आलोक में किया गया है, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने

अवलोकित किया है कि किसी अभियुक्त के विरुद्ध अनेक आपराधिक प्रकरणों का लंबित होना मात्र, जमानत अस्वीकार किए जाने का आधार नहीं हो सकता।

(ii) पीड़िताओं की आयु : यह दोनों पक्षों द्वारा स्वीकार किया गया है कि दोनों पीड़िताओं की जन्मतिथियाँ क्रमशः 02.04.2006 एवं 24.09.2005 हैं। अतः कथित घटना के समय दोनों व्यक्तियाँ वयस्कता की आयु से अल्प अंतर से कम थीं।

(iii) पीड़िताओं का आचरण एवं कथन : पीड़िताओं के बयान कार्यवाही के विभिन्न चरणों में असंगत पाए गए हैं, जिनमें परिवर्तनशीलता के संकेत परिलक्षित होते हैं। यह स्पष्ट है कि पीड़िताओं ने अपने अभिभावक/परिवार की इच्छा के विपरीत विवाह किया, जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान विवाद उत्पन्न हुआ है। इसके अतिरिक्त, पक्षकारों के मध्य एकाधिक प्रथम सूचना प्रतिवेदन (एफ.आई.आर.) दर्ज किए गए हैं, जो परस्पर अविश्वास की स्थिति को दर्शाते हैं।

(iv) प्रथम सूचना प्रतिवेदन दर्ज करने में विलंब: वर्तमान प्रकरण में प्रथम सूचना प्रतिवेदन लगभग एक वर्ष के अत्यधिक एवं अप्रतिवेदित विलंब के उपरांत दर्ज किया गया, जिससे आरोपों की विश्वसनीयता पर गंभीर संदेह उत्पन्न होता है।

(v) पुष्टिकरण साक्ष्य का अभाव: अभिलेख पर ऐसा कोई वैज्ञानिक/न्यायालयिक (फॉरेंसिक) साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जो पीड़िताओं द्वारा किए गए आरोपों की पुष्टि कर सके। इसके अतिरिक्त, पीड़िताएँ स्वेच्छा से आवेदक के निवास स्थान से गईं तथा वर्तमान में वयस्कता प्राप्त कर चुकी हैं।

(vi) वर्तमान एफ.आई.आर. में उल्लिखित पाँचों एफ.आई.आर. का आधार : वर्तमान एफ.आई.आर. में उल्लिखित पाँचों एफ.आई.आर. का मूल आधार दोनों पीड़िताओं के कथन पर ही आधारित है तथा उनमें आवेदक के विरुद्ध कोई स्वतंत्र ठोस सामग्री उपलब्ध नहीं है।

(vii) पीड़िताओं का परिवर्तित रुख : पीड़िताओं द्वारा समय-समय पर अपनाया गया परिवर्तित रुख, तथा यह तथ्य कि आवेदक के पूर्व आपराधिक इतिहास का समुचित रूप से स्पष्टीकरण किया जा चुका है और वह वर्तमान प्रकरण से संबंधित किसी आवर्ती आचरण के पैटर्न को प्रदर्शित नहीं करता, अभियोजन की कथावस्तु को और अधिक कमजोर करता है।

निष्कर्ष :

[53] यह स्थापित विधिक सिद्धांत है कि प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व एवं देहगत स्वतंत्रता पर अविच्छेद्य अधिकार प्राप्त है, और विधि सम्मत कारण के अभाव में उस स्वायत्तता में किसी भी प्रकार का बाह्य हस्तक्षेप औचित्यपूर्ण नहीं ठहराया जा सकता।

[54] यदि आरोप सत्य सिद्ध होते हैं तो वे अत्यंत घोर मानसिक विकृति की श्रेणी में आएंगे और उनके साथ कठोरता से निपटा जाना आवश्यक होगा। तथापि, वर्तमान प्रकरण में आवेदक को 'पेडोफाइल' के रूप में चिह्नित करना समयपूर्व एवं विधिसम्मत आधार से रहित है, विशेषकर तब जबकि प्रथम सूचना प्रतिवेदन में ऐसे किसी पूर्व आचरण अथवा पूर्ववृत्त का उल्लेख नहीं है जो इस प्रकार की संज्ञा को समर्थित करता हो।

[55] यह न्यायालय स्वयं को ऐसे मोड़ पर पाता है जहाँ पारंपरिक भारतीय मूल्य तीव्र गति से आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर समाज की विकसित होती मान्यताओं, जो प्रायः पाश्चात्य प्रतिमानों से प्रभावित हैं, के साथ आमने-सामने खड़े हैं। इस परिप्रेक्ष्य में, आवेदक, जो कथित पीड़िताओं के प्रति अभिभावकत्व की स्थिति में था, पारिवारिक परंपराओं के संरक्षण एवं पर्यवेक्षी अधिकार के निर्वहन की कथित अनिवार्यता के अधीन कार्य करता हुआ प्रतीत होता है, यद्यपि अब उसके इस आचरण को विधिक सीमाओं का अतिक्रमण करने के रूप में विवादित किया जा रहा है।

[56] अभिलेख पर यह तथ्य उपलब्ध है तथा दोनों पक्षों द्वारा परस्पर स्वीकार किया गया है कि समय के साथ आवेदक एवं दोनों पीड़िताओं के मध्य पारस्परिक संबंधों में उल्लेखनीय गिरावट आई। दोनों व्यक्तियों ने अपनी स्वेच्छा से विवाह संपन्न कर अपनी स्वायत्तता का प्रयोग किया, जिस पर आवेदक द्वारा तीव्र असहमति एवं अप्रसन्नता व्यक्त की गई। प्रस्तुत प्रकरण का समुचित निर्णय केवल विचारण न्यायालय द्वारा, प्रस्तुत साक्ष्यों के परीक्षण एवं मूल्यांकन के उपरांत ही किया जा सकता है। इस चरण पर इस न्यायालय द्वारा वाद के गुण-दोष पर कोई अभिमत व्यक्त करना उपयुक्त नहीं होगा।

[57] वर्तमान प्रकरण में दोनों पीड़िताओं ने समय-समय पर अपने कथनों में परिवर्तन किया है, जिससे उनके बयानों में दोलनशीलता परिलक्षित होती है। यह भी उल्लेखनीय है कि दोनों पीड़िताओं के संबंध में आवेदक द्वारा प्रथम सूचना प्रतिवेदन (एफ.आई.आर.) केवल उसी समय दर्ज कराए गए थे जब वे अल्पवयस्क थीं। उक्त एफ.आई.आर. पीड़िताओं के कथित प्रेमियों तथा उनके परिवारजनों के विरुद्ध दर्ज कराए गए थे। इसके अतिरिक्त, वर्तमान एफ.आई.आर. लगभग एक वर्ष के पर्याप्त विलंब के पश्चात दर्ज की गई है। साथ ही, आरोपों की पुष्टि हेतु कोई फॉरेंसिक साक्ष्य अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है। किसी भी प्रकार की वीडियो सामग्री की बरामदगी भी नहीं हुई है।

[58] उपर्युक्त तथ्यों पर विचार करते हुए, साक्षियों के डगमगाते बयानों, प्रथम सूचना रिपोर्ट के विलंब से दर्ज होने, फोरेंसिक पुष्टि के अभाव तथा पूर्व में दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्टों की प्रकृति, तथा इस तथ्य के साथ कि आपराधिक पूर्ववृत्त का स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया जा चुका है, और इस स्थापित सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए कि 'जमानत नियम है और कारावास अपवाद', यह न्यायालय आवेदक को जमानत प्रदान करना उपयुक्त समझता है।

[59] तदनुसार, जमानत आवेदन अनुमन्य किया जाता है।

[60] अतः आवेदक- प्रदीप सोनी, जो उपर्युक्त अपराध संख्या से संबंधित है, को व्यक्तिगत बंधपत्र तथा समान धनराशि के दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर, संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के अधीन, निम्नलिखित शर्तों के

अधीन जमानत पर रिहा किया जाए। साथ ही, रिहाई आदेश जारी करने से पूर्व जमानतदारों का सत्यापन किया जाए।

i) आवेदक विचारण के दौरान साक्ष्यों के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं करेगा।
ii) आवेदक अभियोजन पक्ष के साक्षियों पर कोई दबाव नहीं डालेगा / उन्हें भयभीत नहीं करेगा।
iii) आवेदक नियत तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा।

[61] उपर्युक्त किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में, यह जमानत निरस्तीकरण का आधार होगा।

[62] यह स्पष्ट किया जाता है कि आवेदक को जमानत प्रदान करते समय की गई टिप्पणियाँ किसी भी प्रकार से माननीय विचारण न्यायाधीश को साक्षियों के कथनों के आधार पर अपना स्वतंत्र मत निर्मित करने में प्रभावित नहीं करेंगी।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1828

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक : इलाहाबाद, 06.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति महेश चन्द्र त्रिपाठी

माननीय न्यायमूर्ति अनिल कुमार-x

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या - 8881 सन् 2025

याचिकाकर्ता :- जितेंद्र पासवान

प्रतिवादी :- उत्तर प्रदेश राज्य एवं 3 अन्य

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :- अजीत नारायण मिश्रा

प्रतिवादी के अधिवक्ता :- शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि – उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स एवं असामाजिक गतिविधियाँ (निवारण) अधिनियम, 1986 – धाराएँ 2 एवं 3(1) – उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स एवं असामाजिक गतिविधियाँ (निवारण) नियमावली, 2021 – नियम 5(3)(क)यह विवादित नहीं है कि पूर्ववर्ती रिट याचिका प्रक्रियात्मक आधारों पर स्वीकार की गई थी तथा विधि के अनुसार नवीन कार्यवाही प्रारम्भ करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई थी। अभिलेख से परिलक्षित होता है कि प्राधिकरणों द्वारा अब आवश्यक प्रक्रियात्मक औपचारिकताओं का अनुपालन कर लिया गया है, जिसमें आधार प्रकरणों की विवेचना की पूर्णता, गैंग-चार्ट की तैयारी, संयुक्त बैठक का आयोजन तथा जिला मजिस्ट्रेट द्वारा विचारपूर्वक अनुमोदन सम्मिलित है। याची का आपराधिक इतिहास दीर्घकालिक है तथा आरोप विभिन्न जनपदों में संगठित अपराध से संबंधित हैं। अधिनियम, 1986 के अंतर्गत वर्तमान कार्यवाही की प्रारम्भिक प्रक्रिया में किसी प्रकार की प्रक्रियात्मक अनियमितता अथवा मनमानी प्रदर्शित नहीं की गई है।

अतः याचिका निरस्त की जाती है। (ई-15)

उद्धृत प्रकरणों की सूची :

1. धर्मेन्द्र किर्थल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2013 INSC 510

2. अशोक कुमार दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1987 इलाहाबाद 235

3. विनोद बिहारी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2023 SCC Online All 143

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति महेश चन्द्र त्रिपाठी
एवं
माननीय न्यायमूर्ति अनिल कुमार-एक्स द्वारा सुनाया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ए.एन. मिश्रा और राज्य-प्रतिवादियों की ओर से विद्वान प्रथम श्रेणी शासकीय अधिवक्ता श्री परितोष मालवीय को सुना गया।

2.वर्तमान रिट याचिका याचिकाकर्ता के संबंध में थाना चिलुआताल, जनपद गोरखपुर में दर्ज विवादित प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 13.04.2025 को निरस्त करने की मांग हेतु दायर की गई है, जिसे उत्तर प्रदेश गिरोहबंद और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986(अधिनियम, 1986) की धारा 3(1), 2(b)(i), 2(b)(xi), और 2(b)(xxv) के अंतर्गत अपराध संख्या 0244 वर्ष 2025 के रूप में पंजीकृत किया गया है। इसके अतिरिक्त, उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसरण में प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता को गिरफ्तार करने से रोकने हेतु निर्देश जारी करने की प्रार्थना की गई है।

3. अभियोजन पक्ष के अनुसार संक्षिप्त तथ्य यह है कि चतुर्थ प्रतिवादी ने याचिकाकर्ता और छह अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध विवादित प्राथमिकी (FIR) इस आरोप के साथ दर्ज कराई है कि राम प्रवेश राजभर गिरोह का सरगना है और याचिकाकर्ता उक्त गिरोह का सदस्य है। गिरोह के सदस्यों ने एक संगठित आपराधिक गिरोह बना लिया है और वे जिला स्तर पर सक्रिय रूप से कार्य कर रहे हैं। इस गिरोह ने अपने आर्थिक और भौतिक लाभ के लिए, 16.05.2022 को डीपीएस स्कूल, मनीराम के पास एक व्यक्ति पर हमला किया और ₹7 लाख लूट लिए, जिसके परिणामस्वरूप स्थानीय थाने में भारतीय दंड संहिता की धारा 394 के तहत अपराध संख्या 230/2022 दर्ज की गई। विवेचना के दौरान, अभियुक्त की गिरफ्तारी और सहायक साक्ष्यों के आधार पर, धारा 394 के स्थान पर धारा 395 (डकैती) लगाई गई, और 14.09.2022 तथा 31.03.2023 को आरोप-पत्र (चार्जशीट) दाखिल किए गए। प्राथमिकी आगे यह प्रकट करती है कि अभियुक्त के आपराधिक कृत्यों के कारण आम जनता के बीच भय का माहौल व्याप्त है और समाज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। रिकॉर्ड और गिरोह द्वारा किए गए अपराधों के उचित परीक्षण के बाद, तत्कालीन प्रभारी अधिकारी संजय मिश्रा द्वारा सभी दस्तावेज तैयार कर नोडल अधिकारी को भेजे गए। नोडल अधिकारी ने गैंग चार्ट तैयार किया और उसे आगे की कार्रवाई और अनुमोदन के लिए प्रेषित किया। उक्त गैंग चार्ट को वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक और जिलाधिकारी की संयुक्त बैठक में अनुमोदित किया गया था। गैंग चार्ट में सूचीबद्ध अपराधों में आरोप-पत्र दाखिल किए जा चुके हैं जो सक्षम न्यायालय के समक्ष विचाराधीन हैं। इस गिरोह का मुक्त घूमना समाज के हित में नहीं है। गिरोह के विरुद्ध अधिनियम, 1986 के तहत कार्रवाई करना अत्यंत आवश्यक है।

4. विवादित प्राथमिकी को मुख्य रूप से इस आधार पर चुनौती दी गई है कि प्राथमिकी में निहित आरोप पूरी तरह से झूठे और निराधार हैं। इससे पहले, इन्हीं आरोपों के लिए याचिकाकर्ता और अन्य सह-अभियुक्तों के विरुद्ध गैंगस्टर की कार्यवाही शुरू की गई थी, जिसके परिणामस्वरूप उसी थाने में अधिनियम, 1986 की धारा

3(1) के तहत दिनांक 28.12.2023 को अपराध संख्या 0752/2023 दर्ज की गई थी। उस प्राथमिकी को आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 4991/2024 में चुनौती दी गई थी, जिसे इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा इस आधार पर स्वीकार कर लिया गया था कि सक्षम प्राधिकारी ने गैंग-चार्ट की सिफारिश और अनुमोदन करते समय अपने स्वतंत्र विवेक का प्रयोग करने में विफलता दिखाई थी, जो उत्तर प्रदेश गिरोहबंद और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) नियमावली, 2021 के नियम 5 (3) (A) का उल्लंघन था। गैंग-चार्ट को जिलाधिकारी, गोरखपुर द्वारा बिना संयुक्त बैठक बुलाए, संक्षिप्त तरीके से अग्रेषित और अनुमोदित किया गया था।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि वर्तमान कार्यवाही में भी वैसी ही प्रक्रियात्मक खामियाँ मौजूद हैं, जो इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने का आधार बनती हैं। उनका कहना है कि गैंग-चार्ट की सिफारिश और अनुमोदन करते समय, सक्षम प्राधिकारी अपना स्वतंत्र विवेक लगाने में पूरी तरह विफल रहे हैं। अधिकारी एक बार फिर नियमावली, 2021 में उल्लिखित प्रावधानों का पालन करने में विफल रहे हैं, जिससे याचिकाकर्ता के विरुद्ध अधिनियम, 1986 का प्रयोग कानूनन टिकने योग्य नहीं रह गया है। उन्होंने नियमावली, 2021 के नियम 5(3)(a) पर भरोसा जताया है, जो यह प्रावधान करता है कि गैंग-चार्ट को संक्षिप्त रूप से अनुमोदित नहीं किया जाएगा, बल्कि पुलिस आयुक्त/जिलाधिकारी/वरिष्ट पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक की संयुक्त बैठक में उचित चर्चा के बाद ही किया जाएगा। उनका तर्क है कि नियमावली, 2021 का नियम 17 यह प्रावधान करता है कि गैंग-चार्ट को आगे बढ़ाते समय सक्षम प्राधिकारी अपना स्वयं का स्वतंत्र विवेक लगाने के लिए बाध्य होगा, लेकिन वर्तमान मामले में, उन्होंने अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया है।

6. इसके विपरीत, विद्वान प्रथम श्रेणी शासकीय अधिवक्ता ने रिट याचिका का कड़ा विरोध किया है और कहा है कि खंडपीठ ने पिछली प्राथमिकी को निरस्त करते समय राज्य को कानून के अनुसार कड़ाई से नई कार्यवाही शुरू करने की स्वतंत्रता दी थी। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अधिकारियों ने अब नियमावली, 2021 का पूर्णतः पालन किया है। 12.03.2025 को विधिवत एक संयुक्त बैठक बुलाई गई थी, जिसमें जिलाधिकारी ने यह राय व्यक्त की कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध गैंगस्टर की कार्यवाही शुरू करने के लिए पर्याप्त सामग्री मौजूद थी। तदनुसार प्रासंगिक आधार मामलों पर विचार करने के बाद एक गैंग-चार्ट तैयार किया गया। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता का छह मामलों का आपराधिक इतिहास है और उसके गोरखपुर, सिद्धार्थ नगर और महाराजगंज सहित कई जिलों में सक्रिय एक गिरोह का सदस्य होने का आरोप है।

7. दोनों पक्षों के तर्कों को सुना गया और रिकॉर्ड का अवलोकन किया गया।

8. इस मामले के तथ्यों पर विचार करने से पूर्व, अधिनियम, 1986 की धारा 2 (b) के तहत दी गई "गिरोह" की प्रासंगिक परिभाषा पर विचार करना उचित है, जो इस प्रकार है:

"2(b)"गैंग" से अभिप्राय ऐसे व्यक्तियों के समूह से है, जो एकल रूप से अथवा सामूहिक रूप से, हिंसा द्वारा, या हिंसा की धमकी देकर, या हिंसा का प्रदर्शन करके, या भयादोहन, या बलपूर्वक दबाव डालकर अथवा अन्य

किसी प्रकार से, लोक व्यवस्था को भंग करने के उद्देश्य से या अपने अथवा किसी अन्य व्यक्ति के लिए किसी अनुचित सांसारिक, आर्थिक, भौतिक या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से असामाजिक गतिविधियों में संलग्न हों, अर्थात्–

(i) भारतीय दण्ड संहिता के अध्याय XVI, अध्याय XVII अथवा अध्याय XXII के अंतर्गत दण्डनीय अपराध; अथवा ...

(ii) उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1910 या नारकोटिक ड्रग्स एवं साइकोट्रॉपिक पदार्थ अधिनियम, 1985 अथवा तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के प्रावधानों के उल्लंघन में किसी मदिरा, मादक अथवा घातक औषधि, अन्य मादक द्रव्य या नशीले पदार्थ का आसवन, निर्माण, भंडारण, परिवहन, आयात, निर्यात, विक्रय या वितरण करना, अथवा किसी पौधे की अवैध खेती करना; या

(iii) विधि के अनुरूप न होकर किसी अचल संपत्ति पर कब्जा करना या उसका अधिग्रहण करना, अथवा अपने या किसी अन्य व्यक्ति के नाम से अचल संपत्ति के स्वामित्व या कब्जे के संबंध में मिथ्या दावा स्थापित करना; या

(iv) किसी लोक सेवक अथवा साक्षी को उसके विधिसम्मत कर्तव्यों के निर्वहन से रोकना या रोकने का प्रयास करना; या

(v) स्त्रियों एवं बालिकाओं के अनैतिक व्यापार (दमन) अधिनियम, 1956 के अंतर्गत दण्डनीय अपराध करना; या

(vi) सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 की धारा 3 के अंतर्गत दण्डनीय अपराध करना; या

(vii) किसी सरकारी विभाग, स्थानीय निकाय या किसी सार्वजनिक अथवा निजी उपक्रम द्वारा विधिपूर्वक आयोजित नीलामी या आमंत्रित निविदा में किसी पट्टे, अधिकार, वस्तुओं की आपूर्ति अथवा कार्य निष्पादन के संबंध में किसी व्यक्ति को बोली लगाने से रोकना; या

(viii) किसी व्यक्ति के वैध व्यवसाय, पेशा, व्यापार, रोजगार या उससे संबंधित किसी अन्य वैध गतिविधि के सुचारु संचालन में बाधा उत्पन्न करना या उसे रोकना; या

(ix) भारतीय दण्ड संहिता की धारा 171-ई के अंतर्गत दण्डनीय अपराध करना, अथवा किसी वैध रूप से आयोजित सार्वजनिक निर्वाचन में मतदाता को उसके निर्वाचन अधिकारों के प्रयोग से शारीरिक रूप से रोककर या बाधा उत्पन्न कर चुनाव प्रक्रिया में व्यवधान डालना; या

(x) सांप्रदायिक सौहार्द भंग करने के उद्देश्य से अन्य व्यक्तियों को हिंसा के लिए उकसाना; या

(xi) जनसामान्य में भय, आतंक या दहशत उत्पन्न करना; या

(xii) किसी सार्वजनिक या निजी उपक्रम अथवा कारखाने के कर्मचारियों, स्वामियों या अधिभोगियों को आतंकित करना या उन पर आक्रमण करना तथा उनकी संपत्ति को क्षति पहुँचाना; या

(xiii) किसी व्यक्ति को मिथ्या आश्वासन देकर कि उसे किसी विदेशी देश में रोजगार, व्यापार या पेशा उपलब्ध कराया जाएगा, विदेश जाने के लिए प्रेरित करना या ऐसा करने का प्रयास करना; या

(xiv) फिरौती वसूलने के आशय से किसी व्यक्ति का अपहरण या अभिवहन करना; या

(xv) किसी विमान या सार्वजनिक परिवहन वाहन को उसके निर्धारित मार्ग से भटकाना या उसके निर्धारित मार्ग पर चलने से रोकना;

(xvi) विनियमन धन उधार अधिनियम, 1976 के अंतर्गत दण्डनीय अपराध करना;

(xvii) गौ-तस्करी अथवा अवैध रूप से गोवंश का परिवहन करना तथा गोवध निवारण अधिनियम, 1955 और पशु क्रूरता निवारण अधिनियम, 1960 के प्रावधानों के उल्लंघन में कृत्य करना;

(xviii) वाणिज्यिक शोषण, बंधुआ मजदूरी, बाल श्रम, यौन शोषण, अंग-अपहरण एवं तस्करी, भिक्षावृत्ति आदि उद्देश्यों के लिए मानव तस्करी करना;

(xix) गैरकानूनी गतिविधियाँ (निवारण) अधिनियम, 1966 के अंतर्गत दण्डनीय अपराध करना;

(xx) जाली भारतीय मुद्रा नोटों का मुद्रण, परिवहन अथवा प्रचलन करना;

(xxi) नकली/मिलावटी औषधियों के उत्पादन, विक्रय एवं वितरण में संलिप्त होना।

(xxii) आयुध अधिनियम, 1959 की धाराएँ 5, 7 एवं 12 के उल्लंघन में शस्त्र एवं गोला-बारूद का निर्माण, विक्रय या परिवहन करना;

(xxiii) आर्थिक लाभ के लिए वृक्षों की अवैध कटाई या वन्यजीवों का शिकार/हत्या करना तथा भारतीय वन अधिनियम, 1927 एवं वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972 के प्रावधानों के उल्लंघन में वन उत्पादों की तस्करी करना;

(xxiv) मनोरंजन एवं सट्टा कर अधिनियम, 1979 के अंतर्गत दण्डनीय अपराध करना;

(xxv) ऐसे अपराधों में संलिप्त होना जो राज्य की सुरक्षा, लोक व्यवस्था तथा सामान्य जनजीवन की गति को प्रभावित करते हों।

9. अधिनियम, 1986 की उत्पत्ति 'विपरीत समय में कठोर उपायों की आवश्यकता' की पृष्ठभूमि में हुई। इसे राज्य में संगठित अपराध एवं असामाजिक आचरण की बढ़ती प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने तथा पुनरावर्ती अपराधियों एवं आपराधिक गिरोहों के विरुद्ध निवारक कार्यवाही सुनिश्चित करने के उद्देश्य से अधिनियमित किया गया। वर्ष 2021 के नियम, अधिनियम, 1986 के अधीन अधिसूचित किए गए, जिनमें गैंग-चार्ट तैयार करने की विस्तृत प्रक्रिया निर्धारित की गई है, जिसमें नामित अधिकारियों से अनुमोदन प्राप्त करना तथा यह सुनिश्चित करना शामिल है कि आधार प्रकरण आरोप-पत्र एवं बरामदगी मेमो से समर्थित हों। नियम 5(3)(क) के अनुसार, गैंग-चार्ट को जिला मजिस्ट्रेट अथवा पुलिस आयुक्त द्वारा अनुमोदित किए जाने से पूर्व एक संयुक्त बैठक आहूत किया जाना अनिवार्य है।

10.अधिनियम, 1986 का प्रमुख उद्देश्य उत्तर प्रदेश राज्य में संगठित अपराध एवं गैंगस्टर गतिविधियों की रोकथाम करना है। इसका लक्ष्य आपराधिक नेटवर्कों को ध्वस्त करना तथा अवैध गतिविधियों की वृद्धि को रोकना है। यह अधिनियम विधि-प्रवर्तन एजेंसियों एवं राज्य प्राधिकारियों को गैंगस्टरों के विरुद्ध आवश्यक कदम उठाने हेतु सशक्त बनाता है, ताकि नागरिकों की सुरक्षा एवं संरक्षा सुनिश्चित की जा सके। इसमें पुनरावर्ती अपराधियों की पहचान, निगरानी तथा निवारक निरोध संबंधी प्रावधान निहित हैं, जिससे पुनरावृत्ति को रोका जा सके।

11. अधिनियम, 1986 की धारा 14 के अंतर्गत ऐसे उपबंध भी निहित हैं, जो अवैध रूप से अथवा आपराधिक गतिविधियों से अर्जित संपत्ति की जब्ती एवं राजसात की अनुमति प्रदान करते हैं। इन प्रावधानों का उद्देश्य गैंगस्टरों के आर्थिक लाभ को लक्ष्य बनाना, उनकी गतिविधियों को कमजोर करना तथा अन्य व्यक्तियों को समान असामाजिक गतिविधियों में संलग्न होने से निरुत्साहित करना है। धारा 5 के अंतर्गत इस अधिनियम के अधीन अपराधों के त्वरित विचारण हेतु विशेष न्यायालयों के गठन का प्रावधान भी किया गया है, जिससे पीड़ितों को शीघ्र न्याय सुनिश्चित किया जा सके। यह अधिनियम उत्तर प्रदेश में सुरक्षित एवं शांतिपूर्ण वातावरण स्थापित करने की दिशा में उन्मुख है।

12. अधिनियम, 1986 ने संवैधानिक वैधता की कसौटी को *धर्मेन्द्र किर्थल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य(2013 INSC 510)* के प्रकरण में पार किया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रश्न विचारित किया कि क्या अधिनियम, 1986 (अधिनियम संख्या 7, 1986) के प्रावधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 21, 22(4) एवं 300A का उल्लंघन करते हैं। उक्त निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया कि-

"44. यह एक भिन्न प्रकृति का अपराध है। सामान्य आपराधिकता से इतर, अभियुक्त संगठित अपराध में एक विशिष्ट उद्देश्य एवं प्रेरणा से संलिप्त होता है। अधिनियम के अंतर्गत अभियुक्त व्यक्तियों की श्रेणी सर्वथा भिन्न है। विधायिका ने यह अनुभव किया है कि उनके साथ पृथक प्रकार से व्यवहार किया जाना आवश्यक है और इसी कारण ऐसे मामलों का विचारण विशेष न्यायालयों द्वारा शीघ्रता से किए जाने का प्रावधान किया गया है। विधायिका का उद्देश्य ऐसे संगठित अपराधों पर अंकुश लगाना है, जो समाज में महामारी के समान फैल चुके हैं।'कार्तार सिंह' (उपर्युक्त) प्रकरण में बहुमत ने कहा है– "विधि निर्माण वहीं से आरम्भ होता है जहाँ से दुष्प्रवृत्ति प्रारम्भ होती है।" विधायिका, जो अपने पवित्र दायित्व के प्रति सजग है कि समाज के प्रत्येक सदस्य को भयमुक्त होकर अपने अधिकारों का उपभोग करने का अवसर मिले तथा कोई व्यक्ति एकल या सामूहिक रूप से समाज के लिए संकट का कारण न बने, ने ऐसे उपबंधों का निर्माण किया है। इस संदर्भ में हम 'वर्क्स मैनेजर, सेंट्रल रेलवे वर्कशॉप, झांसी बनाम विश्वनाथ एवं अन्य' (1969) 3 SCC 95 के निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें तीन-न्यायाधीशीय पीठ ने, यद्यपि भिन्न प्रसंग में, यह प्रतिपादित किया कि कुछ प्रकार के अधिनियम तात्कालिक सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं तथा सामाजिक कुप्रवृत्तियों पर सीधा प्रभाव डालते हुए सामाजिक सुधार हेतु अधिक त्वरित एवं दृष्टिगोचर परिणाम उत्पन्न करते हैं। हमने उक्त अवलोकनों का उल्लेख केवल इस तथ्य को रेखांकित करने के लिए किया है कि एक कल्याणकारी राज्य में विधायिका सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन हेतु तत्परता से हस्तक्षेप करती है। इसी प्रकार, कभी-कभी वह कुछ असामाजिक तत्वों की उन्मत्त आपराधिक गतिविधियों पर नियंत्रण हेतु कठोर कदम उठाने के लिए बाध्य होती है। वर्तमान मामले में निःसंदेह कहा जा सकता है कि विधायिका ने यह अनुभव किया कि गैंगस्टरों की गतिविधियों पर नियंत्रण आवश्यक है और इसी उद्देश्य से उनके विरुद्ध कठोर प्रावधानों का विन्यास किया गया है, ताकि समाज में स्थिरता स्थापित हो सके और नागरिक शांतिपूर्ण एवं सुरक्षित जीवन व्यतीत कर सकें। यह सदैव स्मरणीय है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में अपराध-नियंत्रण हेतु उपयुक्त विधि निर्माण करना विधायिका

का अत्यंत महत्वपूर्ण दायित्व है, क्योंकि नागरिकों की सुरक्षा को गंभीर खतरों से बचाना आवश्यक है। अतः विधायिका ने वस्तुतः समाज की सामूहिक भावना एवं आवश्यकता के अनुरूप प्रत्युत्तर दिया है।"

13. ***अशोक कुमार दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*** *(AIR 1987 All 235)* के प्रकरण में इस न्यायालय द्वारा यह प्रतिपादित किया गया कि अधिनियम, 1986 के अंतर्गत कार्यवाही प्रारम्भ करने हेतु सक्षम प्राधिकारी का अभियुक्त की संलिप्तता के संबंध में प्रथमदृष्टया संतुष्ट होना आवश्यक है। प्रत्येक मामले में किसी विशिष्ट प्रत्यक्ष कृत्य का आरोप अनिवार्य नहीं है; अपितु घटना और जिस व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही प्रस्तावित है, उसकी गतिविधियों के मध्य युक्तिसंगत एवं निकट स्थापित होना पर्याप्त है, जिससे उसकी सक्रिय सहभागिता सिद्ध हो सके। सुविधा हेतु निर्णय का प्रासंगिक अंश निम्नवत् उद्धृत किया जाता है–

"किसी व्यक्ति को अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत अभियोजित (बुक) करने हेतु प्राधिकारी को प्रथमदृष्टया इस बात से संतुष्ट होना आवश्यक है कि उस व्यक्ति ने कोई कृत्य किया है। प्राधिकारी को यह संतोष होना चाहिए कि घटना और जिस व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही प्रस्तावित है, उसकी गतिविधियों के मध्य युक्तिसंगत एवं निकट संबंध विद्यमान है तथा ऐसी गतिविधियाँ किसी अनुचित सांसारिक, शारीरिक, आर्थिक अथवा अन्य लाभ की प्राप्ति के उद्देश्य से की गई थीं। जिस व्यक्ति को गिरफ्तार/अभियोजित किया जाना है, उसके द्वारा घटनास्थल पर किसी प्रत्यक्ष या सकारात्मक कृत्य का होना अनिवार्य नहीं है। यह पर्याप्त है कि उसकी सक्रिय सहभागिता सिद्ध हो, जिसका अपराध से प्रत्यक्ष संबंध हो।"

14. ***विनोद बिहारी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*** (2023 SCC Online All 143) में हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह प्रतिपादित किया गया कि धारा 2(ख) के अंतर्गत किसी समूह को "गैंग" के रूप में मान्यता देने हेतु लोक व्यवस्था का वास्तविक रूप से भंग होना अनिवार्य नहीं है, बशर्ते कि उस समूह का उद्देश्य असामाजिक कृत्यों के माध्यम से अनुचित लाभ प्राप्त करना हो। सुविधार्थ निर्णय का प्रासंगिक अंश निम्नवत् उद्धृत है–

"जहाँ तक लोक व्यवस्था में व्यवधान का संबंध है, जैसा कि ऊपर पहले ही उल्लेख किया गया है, व्यक्तियों के एक समूह के पास 1986 के अधिनियम की धारा 2(b) के तहत 'गिरोह' के रूप में अर्हता प्राप्त करने के लिए दो वैकल्पिक उद्देश्य हो सकते हैं: उनका उद्देश्य लोक व्यवस्था में व्यवधान डालना हो सकता है या समूह के किसी सदस्य या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अनुचित सांसारिक, आर्थिक, भौतिक या अन्य लाभ प्राप्त करना हो सकता है। अधिनियम के प्रावधानों के तहत किसी व्यक्ति को बुक करने के लिए अधिकारियों को प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना चाहिए कि उस व्यक्ति ने कार्य किया है। प्राधिकरण को इस बात से संतुष्ट होना चाहिए कि घटना और पकड़े जाने वाले व्यक्ति की गतिविधि के बीच एक उचित और निकटतम संबंध है और ऐसी गतिविधियाँ अनुचित सांसारिक, शारीरिक, आर्थिक या अन्य लाभ प्राप्त करने के लिए थीं। यह आवश्यक नहीं है कि पकड़े जाने वाले व्यक्ति का उस स्थान पर कोई प्रत्यक्ष या सकारात्मक कार्य हो। सक्रिय संलिप्तता साबित करना ही पर्याप्त है जिसका अपराध पर प्रभाव पड़ता हो। बस इतना आवश्यक है कि दोनों में से किसी

भी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, व्यक्तियों का समूह, अकेले या मिलकर, 1986 के अधिनियम की धारा 2 की उप-धारा (b) के विभिन्न खंडों के तहत परिकल्पित सूचीबद्ध असामाजिक गतिविधियों में से किसी एक में लिप्त हो।"

15. तथापि, इस विवादित प्रश्न का उत्तर अधिनियम, 1986 के उद्देश्य एवं आशय के अनुरूप उपर्युक्त परिभाषाओं की व्याख्या में निहित है, और इसका परीक्षण प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफ.आई.आर.) के संदर्भ में तुलनात्मक रूप से किया जाना आवश्यक होगा।

16. वर्तमान प्रकरण में यह विवादित नहीं है कि पूर्ववर्ती रिट याचिका प्रक्रियात्मक आधारों पर स्वीकार की गई थी तथा विधि के अनुसार नवीन कार्यवाही प्रारम्भ करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई थी। अभिलेख से प्रतीत होता है कि प्राधिकारियों द्वारा अब आवश्यक प्रक्रियात्मक औपचारिकताओं का अनुपालन कर लिया गया है, जिसमें आधार प्रकरणों की विवेचना पूर्ण करना, गैंग-चार्ट की तैयारी, संयुक्त बैठक का आयोजन तथा जिला मजिस्ट्रेट द्वारा विचारपूर्वक अनुमोदन सम्मिलित है। याची का आपराधिक इतिहास दीर्घकालिक है तथा आरोप विभिन्न जनपदों में संगठित अपराध से संबंधित हैं।

17. उपर्युक्त के परिप्रेक्ष्य में याची के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि उसे राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के कारण सभी प्रकरणों में मिथ्या रूप से फँसाया गया है, ग्राह्य नहीं है, क्योंकि उसके दीर्घ आपराधिक इतिहास का अंग बनने वाले अधिकांश आपराधिक प्रकरण समान प्रकृति के हैं तथा उनमें आपराधिकता के आवश्यक तत्व विद्यमान हैं। इतना कहना पर्याप्त है कि बिना आग के धुआँ नहीं उठता।

18. अभिलेख, विधिक उपबंधों तथा बाध्यकारी नज़ीरों के सावधानीपूर्वक परीक्षण के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अधिनियम, 1986 के अंतर्गत वर्तमान कार्यवाही के प्रारम्भ में किसी प्रकार की प्रक्रियात्मक अनियमितता अथवा मनमानी प्रदर्शित नहीं की गई है। चुनौती दी गई प्राथमिकी भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत हस्तक्षेप की अपेक्षा नहीं करती।

19. अतः रिट याचिका, निराधार होने के कारण, **निरस्त** की जाती है।

20. व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 5 ILRA 1834

मूल क्षेत्राधिकार

अपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 30.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव

भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 528 के अंतर्गत आवेदन संख्या - 2024 की 36693

सीतम @ प्रिंस (अल्पवयस्क) ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी गण

आवेदक के अधिवक्ता: अमित कुमार श्रीवास्तव

विपक्षी गण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता (G.A.)

दंड प्रक्रिया – भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023, धारा 210 एवं 213 – यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012, धारा 31, 33 एवं 42A – संज्ञान – विशेष न्यायालय की शक्ति – क्या पॉक्सो अधिनियम के तहत विशेष न्यायाधीश, धारा 183 BNSS के अंतर्गत पीड़ित के बयान के आधार पर उस अभियुक्त को समन (तलब) कर सकते हैं जिसका नाम आरोप-पत्र में शामिल नहीं है – निर्धारित, विशेष न्यायालय संज्ञान की शक्ति विशेष रूप से पॉक्सो अधिनियम की धारा 33 से प्राप्त करता है; यह केवल शिकायत या पुलिस रिपोर्ट पर ही संज्ञान ले सकता है, अपने स्वयं के "ज्ञान" के आधार पर नहीं – पॉक्सो अधिनियम की धारा 42A के आलोक में धारा 210 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता लागू नहीं है – धारा 183 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता के तहत पीड़ित के बयान पर आधारित समन आदेश पोषणीय नहीं है – मामले को नए सिरे से आदेश पारित करने हेतु प्रेषित किया गया। (पैरा 4, 5, 7, 8 और 9)

निर्धारित:

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत किए गए विरोधी तर्कों को सुनने के पश्चात, एक बात पूरी तरह से स्पष्ट है कि बी.एन.एस.एस., 2023 के तहत उपलब्ध सामान्य प्रक्रिया और पॉक्सो अधिनियम, 2012 के तहत उपलब्ध प्रक्रिया के बीच मामूली अंतर है। यद्यपि, यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 31 में यह उल्लेख किया गया है कि विशेष न्यायालय के समक्ष कार्यवाही के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के प्रावधान लागू होंगे, लेकिन यह विचारण (ट्रायल) शुरू करने की प्रक्रिया से संबंधित है। जहाँ तक अपराध का संज्ञान लेने की प्रक्रिया का प्रश्न है, इसका विशेष रूप से पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 33 में उल्लेख किया गया है। पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 33 में निहित शक्ति का संबंध पॉक्सो अधिनियम

की धारा 42(A) से है, जिसमें विशेष रूप से यह उल्लेख किया गया है कि इस अधिनियम के प्रावधान तत्कालीन लागू किसी भी अन्य कानून के अतिरिक्त होंगे न कि उसके अल्पीकरण में, और किसी भी विसंगति की स्थिति में, इस अधिनियम के प्रावधान उस विसंगति की सीमा तक किसी भी ऐसे कानून के प्रावधानों पर अधिभावी प्रभाव रखेंगे। धारा 42(A) के कड़े अनुपालन में, यदि पॉक्सो अधिनियम के तहत बनने वाले अपराधों के संबंध में संज्ञान लिया जा रहा है, तो विद्वान सत्र न्यायालय के समक्ष अपराध का संज्ञान लेने के लिए पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 33 ही लागू होगी। **(पैरा 7)**

उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, दिनांक 07.10.2024 का विवादित संज्ञान/समन आदेश कानून की दृष्टि में पोषणीय नहीं है, क्योंकि उक्त आदेश पुलिस रिपोर्ट या शिकायत के आधार पर पारित नहीं किया गया था जिससे आवेदक द्वारा किया गया अपराध आकर्षित होता, बल्कि यह आदेश धारा 183 बी.एन.एस.एस. 2023 के तहत पीड़ित के दर्ज बयान के आधार पर पारित किया गया था। **(पैरा 8)**

आवेदन स्वीकार किया जाता है। (ई-14)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव द्वारा निर्णय सुनाया गया)

1. आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आर्यन श्रीवास्तव तथा राज्य की ओर से विद्वान शासकीय अधिवक्ता (AGA) को सुना गया।

2. वर्तमान आवेदन दिनांक 07.10.2024 को विद्वान विशेष न्यायाधीश, पॉक्सो अधिनियम/अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, बरेली द्वारा पारित विवादित संज्ञान/समन आदेश के साथ-साथ अपराध संख्या 375 वर्ष 2024 (राज्य बनाम अरुण एवं अन्य), धारा 70(2), 89, 123, 351(3) बी.एन.एस. (BNS) एवं धारा 4(2), 5(j)(ii)/6 और 5(l)/6 पॉक्सो अधिनियम, 2012, थाना-आंवला, जनपद-बरेली से उत्पन्न संपूर्ण कार्यवाही, जो विशेष न्यायाधीश, पॉक्सो अधिनियम/अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, बरेली के न्यायालय में लंबित है, को रद्द करने की प्रार्थना के साथ प्रस्तुत किया गया है।

3. आवेदक का पक्ष यह है कि अपराध संख्या 375 वर्ष 2024 के दर्ज होने के पश्चात, संबंधित विवेचना अधिकारी द्वारा विस्तृत विवेचना की गई, जिसके परिणामस्वरूप केवल एक अभियुक्त अरुण पुत्र महेश के विरुद्ध भारतीय न्याय संहिता 2023 की धारा 123/65(1)/351(3)/89 और पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 4(2) के तहत आरोप-पत्र प्रेषित किया गया तथा आरोप-पत्र दाखिल करते समय आवेदक को दोषमुक्त कर दिया गया था। किंतु बाद में, जब आरोप-पत्र और संपूर्ण केस डायरी विद्वान विशेष न्यायाधीश, पॉक्सो अधिनियम, 2012 के समक्ष रखी गई, तो न्यायालय ने अपराध का संज्ञान लेते हुए आवेदक को धारा 183 बी.एन.एस. (BNS), 2023 के अंतर्गत स्वयं पीड़िता द्वारा दर्ज कराए गए बयान के आधार पर, बी.एन.एस. की धारा 70(2),

89, 123, 351(3) और पॉक्सो अधिनियम की धारा 4(2), 5(j)(ii)/6, 5(l)/6 के क्रम में समन (तलब) कर लिया।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि एक बार जब आवेदक को आरोप-पत्र में अभियुक्त नहीं बनाया गया, तो उसे तलब करना कानून की दृष्टि में गलत है। बी.एन.एस.एस., 2023 की धारा 210 के प्रावधान, धारा 213 के तहत सत्र न्यायालय द्वारा संज्ञान लेते समय यथावश्यक परिवर्तनों सहित लागू होते हैं। किंतु साथ ही, विशेष अधिनियम यानी पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 33 में विशेष न्यायालय की संज्ञान लेने की प्रक्रियात्मक शक्ति का उल्लेख है। इसमें कहा गया है कि विशेष न्यायालय, अभियुक्त को विचारण हेतु सुपुर्द किए बिना भी, अपराध गठित करने वाले तथ्यों की शिकायत मिलने पर या ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट मिलने पर संज्ञान ले सकता है। इस प्रकार, बी.एन.एस.एस. की धारा 210(1)(c) के तहत उपलब्ध वह दायरा, जिसमें पुलिस अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त जानकारी या "स्वयं के ज्ञान" के आधार पर संज्ञान लिया जा सकता है, पॉक्सो अधिनियम के मामलों में उपलब्ध नहीं है।

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस मामले में 'ज्ञान' शब्द का आधार धारा 183 बी.एन.एस.एस., 2023 के तहत दर्ज बयान को बनाया गया है। पॉक्सो अधिनियम के तहत अपराध का संज्ञान लेते समय विद्वान सत्र न्यायालय ने एक विशेष न्यायालय के रूप में संभवतः न्यायिक विवेक का प्रयोग किया हो, लेकिन यह रिकॉर्ड पर कानून की स्पष्ट त्रुटि है। पॉक्सो अधिनियम की धारा 33 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय, बी.एन.एस.एस. की धारा 210 (जो धारा 213 के तहत भी लागू है) का प्रयोग करने की कोई गुंजाइश नहीं है। इसका कारण यह है कि पॉक्सो की धारा 33 केवल 'शिकायत' या 'पुलिस रिपोर्ट' पर संज्ञान लेने की बात करती है, और इसमें **"स्वयं के ज्ञान"** जैसा कोई शब्द उपलब्ध नहीं है, जो कि बी.एन.एस.एस. की धारा 210 में दिया गया है।

6. इसके विपरीत **(**Per contra**),** विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने आवेदन में की गई प्रार्थना का कड़ा विरोध किया और आवेदक के अधिवक्ता के पक्ष का खंडन किया। उन्होंने तर्क दिया कि विद्वान विशेष न्यायालय ने दिनांक 07.10.2024 के आदेश में उल्लिखित बी.एन.एस. , 2023 की धाराओं के क्रम में आवेदक को तलब किया है, और इसमें किसी भी प्रकार की अवैधता शामिल नहीं है, अतः वर्तमान आवेदन खारिज किए जाने योग्य है।

7. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत विरोधी तर्कों को सुनने के पश्चात, एक बात पूरी तरह से स्पष्ट है कि बी.एन.एस.एस., 2023 के तहत उपलब्ध सामान्य प्रक्रिया और पॉक्सो अधिनियम, 2012 की प्रक्रिया के बीच मामूली अंतर है। यद्यपि, पॉक्सो अधिनियम की धारा 31 में यह उल्लेख है कि विशेष न्यायालय की कार्यवाही में दंड प्रक्रिया संहिता (अब BNSS) के प्रावधान लागू होंगे, लेकिन यह विचारण शुरू करने की प्रक्रिया से संबंधित है। जहाँ तक अपराध का संज्ञान लेने की प्रक्रिया का प्रश्न है, इसका विशेष रूप से पॉक्सो अधिनियम की धारा 33 में उल्लेख किया गया है। धारा 33 की शक्ति का संबंध पॉक्सो अधिनियम की धारा

42(A) से है, जिसमें स्पष्ट है कि इस अधिनियम के प्रावधान अन्य कानूनों के अतिरिक्त होंगे, और किसी भी विसंगति की स्थिति में पॉक्सो अधिनियम के प्रावधानों का अधिभावी प्रभाव होगा। अतः, पॉक्सो अधिनियम के अपराधों में संज्ञान लेने हेतु धारा 33 ही प्रभावी होगी।

8. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, दिनांक 07.10.2024 का विवादित संज्ञान/समन आदेश कानून की दृष्टि में पोषणीय नहीं है, क्योंकि यह आदेश ऐसी पुलिस रिपोर्ट या शिकायत के अनुपालन में पारित नहीं किया गया है जो आवेदक द्वारा किए गए अपराध को आकर्षित करती हो, बल्कि इसे धारा 183 बी.एन.एस.एस. (BNSS), 2023 के तहत पीड़िता द्वारा दर्ज कराए गए बयान के आधार पर पारित किया गया है।

9. दिनांक 07.10.2024 के विवादित आदेश को रद्द किया जाता है। मामले को विद्वान विशेष न्यायाधीश, पॉक्सो अधिनियम/अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, बरेली को इस निर्देश के साथ वापस भेजा जाता है कि वे यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 33 के कड़े अनुपालन में नए सिरे से आदेश पारित करें।

10. तदनुसार, वर्तमान आवेदन **स्वीकार** किया जाता है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1837

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 30.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 41453 वर्ष 2024

सौम्या सजीव कुमार शर्मा एवं अन्य **...आवेदकगण**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...विपक्षीगण**

आवेदकगण के अधिवक्ता: महेंद्र बहादुर सिंह, विजेता सिंह

विपक्षीगण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता (G.A.)

पारिवारिक कानून – घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005, धाराएँ 12, 21 एवं 23 – हिंदू अल्पसंख्यकता और संरक्षकता अधिनियम, 1956, धारा 6 – संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 – नाबालिग कन्या की कस्टडी (अभिरक्षा) – बच्चे का कल्याण – सर्वोपरि विचार – यौवन अवस्था में प्रवेश करती कन्या – माता को कस्टडी देना प्राथमिकता – पिता द्वारा हेरफेर के माध्यम से छलपूर्वक कस्टडी लेना – डिजिटल साक्ष्य (एसएमएस, व्हाट्सएप चैट, गूगल मैप्स टाइमलाइन) द्वारा माता के पक्ष की पुष्टि – कस्टडी तीन दिनों के भीतर माता को सौंपने का निर्देश – बच्चे का कल्याण हिंदू अल्पसंख्यकता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 6 के तहत पितृसत्तात्मक धारणा के अधीन नहीं है – पिता के मुलाकात के अधिकार सुरक्षित। (पैरा 15, 18, 19, 20, 21, 23, 24, 26 और 28)

निर्णीत (HELD):

यह सिद्धांत कि पिता नाबालिग बालक या अविवाहित कन्या का प्राकृतिक संरक्षक है, और उसके बाद माता, मुख्य रूप से हिंदू अल्पसंख्यकता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 6 से लिया गया है, जो अपने समय में मौलिक था। अब यह पितृसत्तात्मक पूर्वाग्रह की गंध देता है, इसलिए, 21वीं सदी के भारत की प्रगतिशील वास्तविकताओं में अप्रचलित हो गया है। न्यायिक व्याख्याओं ने सराहनीय रूप से विधायी शून्यता को भरा है, विशेष रूप से कन्याओं की माताओं के अधिमान्य कस्टडी अधिकारों को मान्यता देने में। हालाँकि, सच्ची प्रगति की मांग है कि विधायिका इन विकसित होते मानकों को संहिताबद्ध करे ताकि पूरे देश में एक सुसंगत और लिंग-तटस्थ दृष्टिकोण सुनिश्चित किया जा सके। **(पैरा 15)**

बाल कस्टडी की कार्यवाही में, विशेष रूप से यौवन अवस्था में प्रवेश करने वाली नाबालिग लड़की से जुड़े मामलों में, फैमिली कोर्ट जज की भूमिका केवल निर्णयात्मक नहीं बल्कि गहराई से सुरक्षात्मक और सहायक होती है। किशोरावस्था में संक्रमण एक संवेदनशील अवधि है जो गहरे भावनात्मक और शारीरिक परिवर्तनों द्वारा चिह्नित होती है, और कानून न्यायपालिका द्वारा सावधानीपूर्वक, बाल-केंद्रित जुड़ाव की आवश्यकता को मान्यता देता है। न्यायाधीश को न केवल वैधानिक अधिकारों को बनाए रखने का कार्य सौंपा गया है, बल्कि बच्चे की गरिमा, सुरक्षा, भावनात्मक कल्याण और विकसित होती स्वायत्तता की रक्षा करना भी उनका उत्तरदायित्व है। **(पैरा 19)**

यौवन अवस्था में प्रवेश करने वाली लड़की की कस्टडी तय करते समय, न्यायालयों को निम्नलिखित पर विचार करना चाहिए: (i) प्राथमिक देखभालकर्ता कौन रहा है, (ii) लड़की की स्कूली शिक्षा, सामुदायिक संबंध और स्थिरता, (iii) दुर्व्यवहार, उपेक्षा या अनुचित व्यवहार के आरोप, और (iv) मुकदमेबाजी के दौरान पक्षों का व्यवहार और आचरण। यौवन अवस्था में प्रवेश करने वाली नाबालिग लड़कियों से जुड़े कस्टडी के मामलों में न्यायिक भूमिका एक प्रक्रियात्मक कार्य से कहीं अधिक है–यह एक संवैधानिक, नैतिक और सहानुभूतिपूर्ण जिम्मेदारी है। एक न्यायाधीश को प्रतिपक्षी ढांचे से ऊपर उठकर बच्चे के कल्याण के ट्रस्टी (अमानतदार) के रूप में कार्य करना चाहिए। इसके लिए लिंग-संवेदनशील, भावनात्मक रूप से बुद्धिमान और बाल-केंद्रित न्यायिक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है, जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि बच्चे की गरिमा, सुरक्षा और कल्याण कस्टडी के निर्णयों का अडिग केंद्र बना रहे। **(पैरा 20)**

कन्या की कस्टडी के मामले में माता की स्थिति अद्वितीय होती है। अधिकांश मामलों में, साझा जैविक अनुभव के कारण, यौवन अवस्था से गुजरने वाली बेटी को समझने और समर्थन देने के लिए माता स्वाभाविक रूप से बेहतर स्थिति में होती है। माता ने स्वयं मासिक धर्म, अन्य महिला-विशिष्ट परिवर्तनों और ऐसे मुद्दों पर चर्चा करने में सहजता का अनुभव किया होता है। लड़कियां अक्सर शारीरिक परिवर्तनों, मासिक धर्म स्वच्छता आदि के बारे में अपनी माताओं से बात करने में अधिक सहज महसूस करती हैं। माता अक्सर भावनात्मक तालमेल बिठाने और स्वाभाविक देखभालकर्ता होने के नाते अधिक प्रभावी भूमिका निभाती है, और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक बदलावों को पहचानने की अधिक संभावना रखती है। समाज और पारिवारिक गतिशीलता अक्सर माता और पुत्री के बीच घनिष्ठ भावनात्मक बंधन को प्रोत्साहित करती है, विशेष रूप से किशोरावस्था के दौरान। **(पैरा 21)**

आवेदन स्वीकार किया जाता है। (E-14)

न्यायालय द्वारा उद्धृत मामलों की सूची (List of Cases cited):

1. रजनीश बनाम नेहा एवं अन्य, (2021) 2 SCC 324
2. देवनाथ रात्रे बनाम मालती रात्रे, (2022) SCC OnLine Chh 2721
3. विवेक सिंह बनाम रोमानी सिंह, (2017) 3 SCC 231
4. रोहित थम्मना गौड़ा बनाम कर्नाटक राज्य, (2022) 20 SCC 550

5. वेदबाई उर्फ वैजयंतीबाई बाबूराव पाटिल बनाम शांताराम बाबूराव पाटिल एवं अन्य, (2001) 9 SCC 106

6. अरुण गांगुली बनाम अमरेश गांगुली, 2015 SCC OnLine Del 13012

7. डॉ. पारिजात विनोद कानेटकर एवं अन्य बनाम श्रीमती मलिका पारिजात कानेटकर, आपराधिक रिट याचिका संख्या 750 वर्ष 2016, माननीय बॉम्बे उच्च न्यायालय

8. कुमार बनाम जहाँगीरदार बनाम चेथरा रामतीर्थ, (2004) 2 SCC 688

9. बलराम बनाम सुषमा, छत्तीसगढ़, बिलासपुर FAM संख्या 9 वर्ष 2014

10. तेजस्विनी गौड़ एवं अन्य बनाम शेखर जगदीश प्रसाद तिवारी एवं अन्य, (2019) 7 SCC 42

11. निल रतन कुंडू एवं अन्य बनाम अभिजीत कुंडू, (2008) 9 SCC 413

12. गोवर्धन लाल बनाम गजेंद्र कुमार 17; सरस्वतीबाई श्रीपाद वद बनाम श्रीपाद वसंतजी वद, 1940 SCC Online Bom 77

13. रोजी जैकब बनाम जैकब ए. चक्रमाकल 1973 1 SCC 840; X बनाम Y, रिट याचिका संख्या 2048 वर्ष 2023

14. रमनीश पाल सिंह बनाम सुगंधी अग्रवाल, 2024 (259) AIC 34

15. सेलवराज बनाम रेवती, 2023 SCC OnLine SC 1644

16. मौसमी मैत्रा गांगुली बनाम जयंत गांगुली, (2008) 7 SCC 673

17. शाज़िया अमान खान एवं अन्य बनाम उड़ीसा राज्य एवं अन्य, (2024) 7 SCC 564

18. सर्वोच्च न्यायालय ABC बनाम राज्य (NCT दिल्ली) में, (2015) 10 SCC 1

19. राजेश बाबू सक्सेना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2024) SCC OnLine All 2260

20. श्रीमती पारुल त्यागी बनाम गौरव त्यागी, (2023) SCC OnLine All 2684

(माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा सुनाया गया)

1. आवेदक संख्या 1 की विद्वान अधिवक्ता सुश्री विजेता सिंह, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री चंदन शर्मा और उनके सहायक श्री शुभम त्रिपाठी, राज्य-प्रतिवादी की ओर से विद्वान ए.जी.ए. (A.G.A.) को सुना गया तथा रिकॉर्ड का अवलोकन किया गया।

2. वर्तमान आवेदन विद्वान अपर सिविल जज (जूनियर डिवीजन)/न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 28.08.2023 और 09.10.2023, तथा विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (MP/MLA), प्रयागराज द्वारा क्रिमिनल अपील संख्या 107 वर्ष 2024 (सौम्या सजीव कुमार शर्मा एवं अन्य बनाम सुमित वत्स) में पारित आदेश दिनांक 10.09.2024 को निरस्त करने हेतु प्रस्तुत किया गया

है, जो जनपद प्रयागराज में घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 की धारा 12 के अंतर्गत कार्यवाही से उत्पन्न हुआ है।

3. संक्षेप में, वर्तमान कार्यवाही को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि आवेदक संख्या 1 (इसके बाद "पत्नी" के रूप में संदर्भित) और प्रतिवादी संख्या 2 (इसके बाद "पति" के रूप में संदर्भित) का विवाह 18.01.2013 को संपन्न हुआ था। विवाह के समय, पत्नी के माता-पिता द्वारा आभूषण, नकद और अन्य मूल्यवान वस्तुओं के रूप में पर्याप्त दहेज दिया गया था। इसके बावजूद, पत्नी के ससुराल वालों ने दहेज के प्रति असंतोष व्यक्त किया और लगातार अतिरिक्त राशि की मांग करते रहे, जिससे उसे निरंतर शारीरिक प्रताड़ना और मानसिक क्रूरता का सामना करना पड़ा। इस वैवाहिक गठबंधन से समृद्धि नामक एक बालिका का जन्म हुआ, जिसे आवेदक संख्या 2 (इसके बाद "बच्ची" के रूप में संदर्भित) के रूप में नामित किया गया है। वह वर्तमान में लोरेटो कॉन्वेंट इंटरमीडिएट कॉलेज, लखनऊ में कक्षा-VI (छठी) में पढ़ रही है।

4. विवाह के बाद, पति की पोस्टिंग के अनुसार पति-पत्नी दिल्ली, पटना और लखनऊ सहित विभिन्न स्थानों पर रहे। पति वर्तमान में भारतीय रेलवे में उप मुख्य अभियंता के रूप में कार्यरत है। हालाँकि, अपरिहार्य मतभेदों के कारण, उनके वैवाहिक संबंधों में कड़वाहट आ गई, जिसका परिणाम अधिनियम (घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005) की धारा 12 के तहत आवेदन दाखिल करने के रूप में हुआ। यह आवेदन पत्नी द्वारा 02.11.2022 को विद्वान अपर सिविल जज (जूनियर डिवीजन)/न्यायिक मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद के समक्ष दायर किया गया था। उक्त कार्यवाही में, पत्नी ने - नाबालिग बच्ची की माँ होने के नाते - नाबालिग बच्ची की अंतरिम कस्टडी की मांग करते हुए एक आवेदन भी दायर किया।

5. जिला प्रोबेशन अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट और विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज नाबालिग बच्ची के बयान पर उचित विचार करने के उपरांत, अंतरिम कस्टडी की प्रार्थना को आदेश दिनांक 28.08.2023 द्वारा खारिज कर दिया गया था। हालाँकि, विद्वान ट्रायल कोर्ट ने माँ को सप्ताह में दो बार, विशेष रूप से प्रत्येक शनिवार और रविवार को अपनी नाबालिग बच्ची से मिलने की स्वतंत्रता दी थी। इसके पश्चात, एक बाद के आदेश दिनांक 09.10.2023 द्वारा, मुलाकात को नियंत्रित करने वाली शर्तों में संशोधन किया गया। संशोधित आदेश ने माँ को प्रत्येक शनिवार और रविवार को शाम 04:00 बजे से 06:00 बजे के बीच किसी नजदीकी पार्क में या पति के निवास पर एक अनुकूल और स्वस्थ वातावरण में बच्ची से मिलने की अनुमति प्रदान की।

6. उपरोक्त आदेशों से व्यथित होकर, पत्नी ने विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, प्रयागराज के समक्ष आपराधिक अपील संख्या 107 वर्ष 2024 प्रस्तुत की। हालाँकि, उक्त अपील को आदेश दिनांक 10.09.2024 के माध्यम से खारिज कर दिया गया। अपील खारिज करते समय, अपीलीय अदालत ने यह निष्कर्ष दर्ज किया कि कस्टडी के मामलों में प्राथमिक विचार नाबालिग बच्चे का कल्याण है, जो वर्तमान मामले में पिता के पास बेहतर सुरक्षित पाया गया। विशेष रूप से यह नोट किया गया कि नाबालिग बच्ची ने अपने

पिता के साथ रहने की स्पष्ट इच्छा व्यक्त की थी, और इसलिए, यह माना गया कि पिता के पास कस्टडी बच्चे के सर्वोत्तम हित में होगी। इसके अतिरिक्त, अपीलीय अदालत ने गौर किया कि बच्चे के दादा-दादी पिता के साथ रह रहे थे, जिससे पिता के निवास पर एक स्थिर और पोषणकारी वातावरण बनाने में मदद मिल रही थी।

7. दिनांक 10.09.2024 के विवादित आदेश को वर्तमान आवेदन के माध्यम से चुनौती दी गई है, जिसमें पत्नी नाबालिग कन्या की कस्टडी की मांग कर रही है।

8. सुनवाई के दौरान, पत्नी की विद्वान अधिवक्ता सुश्री विजेता सिंह, और पति के विद्वान अधिवक्ता श्री चंदन शर्मा व श्री शुभम त्रिपाठी को विस्तार से सुना गया। पति व्यक्तिगत रूप से न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए, जबकि पत्नी ने संक्षिप्त सूचना पर बुलाए जाने के कारण वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से भाग लिया।

9. पक्षों के साथ बातचीत करने पर, न्यायालय ने **रजनीश बनाम नेहा और अन्य (2021) 2 SCC 324** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित दिशा-निर्देशों के अनुसार दोनों पक्षों को अपनी संपत्ति और देनदारियों के हलफनामे दाखिल करने का निर्देश देना उचित समझा। यह निर्देश बहस के दौरान भरण-पोषण का मुद्दा उभरने के कारण आवश्यक हो गया था, विशेष रूप से यह निर्धारित करने के संदर्भ में कि नाबालिग बच्चे को आर्थिक रूप से सहायता देने के लिए कौन सा अभिभावक बेहतर स्थिति में होगा। न्यायालय के निर्देश के अनुपालन में, दोनों पक्षों ने लिखित तर्कों के साथ अपने संबंधित हलफनामे प्रस्तुत किए। इसके अतिरिक्त, पत्नी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा एक प्रत्युत्तर हलफनामा दाखिल किया गया, जिसमें पति द्वारा प्रस्तुत जवाबी हलफनामे के बयानों के जवाब में कुछ अतिरिक्त तथ्य रिकॉर्ड पर लाए गए।

10. पत्नी की विद्वान अधिवक्ता सुश्री विजेता सिंह ने तर्क दिया कि विवादित आदेश घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 के उद्देश्य और भावना पर उचित विचार किए बिना पारित किए गए हैं। यह अधिनियम संविधान के तहत गारंटीकृत महिलाओं के अधिकारों की पर्याप्त सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए बनाया गया है, विशेष रूप से उन महिलाओं के लिए जो परिवार के भीतर होने वाली किसी भी प्रकार की हिंसा की शिकार हैं। उन्होंने आगे तर्क दिया कि रिकॉर्ड पर रखे गए महत्वपूर्ण तथ्यों और साक्ष्यों की अनदेखी करते हुए आदेश पारित किए गए। संक्षेप में, पत्नी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों की रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत है:

10.1 उन्होंने तर्क दिया कि हिंदू अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम, 1956 में नाबालिग बच्चे की कस्टडी के संबंध में वैधानिक प्रावधानों और संविधान में निहित निर्देशक सिद्धांतों के साथ-साथ, 1992 में भारत द्वारा अनुसमर्थित 'बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन' पर विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा वस्तुनिष्ठ रूप से विचार नहीं किया गया है।

10.2 संवैधानिक न्यायालयों ने हिंदू अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम, 1956 के वैधानिक प्रावधानों के बावजूद, बच्चे की व्यक्तिगत देखभाल, भावनात्मक समर्थन और समग्र कल्याण को निरंतर प्राथमिकता दी है, जैसा कि कई निर्णयों में दोहराया गया है।

10.3 यौवन अवस्था में प्रवेश करने वाली एक नाबालिग लड़की विकास के एक महत्वपूर्ण चरण से गुजरती है, जिसमें महत्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तन और भावनात्मक बदलाव होते हैं। इन कारकों के आलोक में, विद्वान ट्रायल कोर्ट निम्नलिखित पर पर्याप्त विचार करने में विफल रहा है: (i) बालिका की सुरक्षा, गोपनीयता और भावनात्मक कल्याण; (ii) देखभाल करने वाली और विश्वासपात्र के रूप में माँ की महत्वपूर्ण भूमिका; (iii) संवेदनशील और व्यक्तिगत मामलों पर चर्चा करने में बच्चे की सहजता; और (iv) एक गैर-सहायक या अनुपयुक्त वातावरण से उत्पन्न होने वाले संभावित आघात का जोखिम।

10.4 विद्वान न्यायाधीश द्वारा प्रमुख और दखल देने वाले प्रश्न पूछे गए, जिससे बच्चे पर अपने माता-पिता के बीच चयन करने का अनुचित बोझ पड़ा। विद्वान न्यायाधीश यह समझने में विफल रहे कि प्राथमिक उद्देश्य बच्चे के सर्वोत्तम हितों का पता लगाना था, न कि उन माता-पिता के बीच दोष निर्धारित करना या आरोप-प्रत्यारोप की प्रतियोगिता का फैसला करना जिनके वैवाहिक संबंध पहले से ही व्यक्तिगत कठिनाइयों के कारण अलगाव का शिकार हो चुके थे। ऐसे मामलों में न्यायाधीश की भूमिका प्रतिपक्षी के बजाय जांचकर्ता की होती है। बच्चे की शिक्षा और वित्तीय जरूरतों का समर्थन करने के लिए माता-पिता की इच्छा का आकलन करने के अलावा, विद्वान न्यायाधीश को बच्चे के पालन-पोषण पर उनके नैतिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव का भी मूल्यांकन करना चाहिए था।

10.5 दिनांक 28.08.2023 के विवादित आदेश में की गई यह टिप्पणी गलत है कि बच्चे के साथ घरेलू हिंसा नहीं हुई है और बच्चे के बयान से माँ को कस्टडी हस्तांतरित करने की कोई आवश्यक आवश्यकता नहीं झलकती है।

10.6 विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 के विधायी इरादे और उद्देश्यों के विपरीत हैं। इसके अलावा, विद्वान अपीलीय अदालत ने यह मानने में गलती की कि अखिल भारतीय रेलवे सेवाओं में पति की नौकरी, जिसमें बार-बार स्थानांतरण होता है और लखनऊ में स्थायी पोस्टिंग का अभाव है, बच्चे के कल्याण को प्रभावित नहीं करती है। इस बात की प्रबल संभावना है कि पति को भारत के दूरदराज या आंतरिक स्थानों पर तैनात किया जा सकता है, जो नाबालिग बच्चे के कल्याण और स्थिरता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।

10.7 विद्वान मजिस्ट्रेट और विद्वान अपीलीय अदालत यह पर्याप्त रूप से समझने में विफल रहे कि बच्ची की दादी उच्च रक्तचाप (हाइपरटेंशन) और मधुमेह की रोगी हैं, और वे स्टेज-3 कैंसर सर्वाइवर हैं जिन्हें नियमित चिकित्सा जाँच और निरंतर दवा की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त, बच्ची के दादा उच्च रक्तचाप और

टाइप-2 मधुमेह से पीड़ित हैं और उन्हें तीन बार सेरेब्रल हैमरेज (मस्तिष्क रक्तस्राव) हो चुका है। परिणामस्वरूप, घर का कामकाज रेलवे द्वारा उपलब्ध कराए गए तीन पुरुष नौकरों–श्री मुन्ना, श्री खेपन और श्री नितेश–द्वारा प्रबंधित किया जाता है।

10.8 विद्वान अपीलीय अदालत ने यह अवलोकन करते हुए एक तथ्यात्मक रूप से गलत निष्कर्ष दर्ज किया है कि पत्नी ने स्वेच्छा से वैवाहिक घर छोड़ दिया था। सच तो यह है कि पति ने अपनी पत्नी का विश्वास जीतकर उसे सरकारी आवास खाली करने के लिए छलपूर्वक राजी किया। इसके बाद, नाबालिग बच्ची को पास के मॉल में ले जाने के बहाने पूर्व-नियोजित तरीके से कस्टडी से हटा दिया गया, लेकिन इसके बजाय, उसे गोरखपुर में पति के पैतृक घर ले जाया गया। विद्वान ट्रायल कोर्ट एक महत्वपूर्ण साक्ष्य पर विचार करने में विफल रहा–पत्नी द्वारा पति को दिनांक 26.10.2022 को दोपहर 01:23 बजे भेजा गया एक SMS संदेश, जो स्पष्ट रूप से कहता है: "चूंकि तुम मुझ पर जोर दे रहे हो, इसलिए मैं बहुत भारी मन से यह घर खाली कर रही हूं क्योंकि तुम कह रहे हो कि तुम किसी दूसरे घर में शिफ्ट हो जाओगे। मैं अपना सामान यानी कपड़े, किताबें और दैनिक जरूरत की कुछ चीजें ले जा रही हूं। मेरा अनुरोध है कि जब मैं तुम्हें घर सौंपूं, तो तुम आज व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहो। यदि तुम दोपहर 02:15 बजे तक यहाँ पहुँच जाओ तो बहुत अच्छा होगा।" यह संदेश इस तथ्य का प्रमाण है कि पत्नी ने पति के आग्रह पर परिसर खाली किया था न कि अपनी मर्जी से।

10.9 पत्नी के पूर्व अनुरोध के बावजूद पति उस सरकारी आवास पर नहीं पहुँचा जहाँ दोनों पक्ष अंतिम बार साथ रहे थे। उसके बाद, पत्नी ने उसी दिन दोपहर 02:34 बजे एक और SMS भेजा, जिसमें कहा गया: "सुमित, चूंकि पहले ही दोपहर के 2:30 बज चुके हैं और मुझे तत्काल आधार पर निकलना है और तुम्हारी ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली है, इसलिए मैं जा रही हूं और चाबियां ऊपर दे रही हूं। ख्याल रखना। अलविदा।"

10.10 यह संवाद स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि पत्नी ने पति के आग्रह के कारण मजबूर परिस्थितियों में परिसर खाली किया था। इसके अलावा, विद्वान ट्रायल कोर्ट 11 नवंबर 2022 को पत्नी द्वारा भेजे गए एक अन्य महत्वपूर्ण SMS पर विचार करने में विफल रहा, जिसमें लिखा है: "मैं लगातार माँ के फोन पर रिंग कर रही हूँ लेकिन वह 7-8 दिनों से मेरी कुशा से बात नहीं करा रही हैं और मैं उन्हें मैसेज भी कर रही हूँ लेकिन उनकी तरफ से कोई जवाब नहीं मिल रहा है। कृपया देखें ताकि मैं कुशा से बात कर सकूँ।"

10.11 यह संदेश नाबालिग बच्ची के संपर्क में रहने के माँ के निरंतर प्रयासों को रेखांकित करता है और पति के परिवार द्वारा संचार में डाली गई बाधा को दर्शाता है। इन संवादों पर विचार करने में ट्रायल कोर्ट की विफलता एक गंभीर चूक है।

10.12 दिनांक 04.10.2022, 05.10.2022, 07.10.2022 और 25.10.2022 के गूगल मैप्स (Google Maps) टाइमलाइन रिकॉर्ड स्पष्ट रूप से स्थापित करते हैं कि प्रासंगिक अवधि के दौरान पत्नी लखनऊ में मौजूद थी।

इसके अलावा, 26.10.2022 को दोपहर 02:34 बजे, वह मजबूर और दुखद परिस्थितियों में सरकारी आवास खाली करने के बाद दिल्ली के लिए रवाना हुई। इस तथ्यात्मक स्थिति के विपरीत, पति ने अपने जवाबी हलफनामे में गलत और भ्रामक कथन दिए हैं, जिसमें आरोप लगाया गया है कि पत्नी ने 22.10.2022 को स्वेच्छा से वैवाहिक घर छोड़ दिया, बिना किसी कारण या उकसावे के नाबालिग बच्ची को छोड़ दिया और 6.8.2022 को हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13-बी के तहत तलाक की याचिका दायर की गई थी। पति द्वारा किए गए ये झूठे दावे वस्तुनिष्ठ डिजिटल साक्ष्य और समसामयिक संचार द्वारा स्पष्ट रूप से खंडित होते हैं।

10.13 दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र सरकार द्वारा जारी नाबालिग बच्ची का जन्म प्रमाण पत्र यह स्थापित करता है कि बच्ची का जन्म आर्टेमिस अस्पताल, द्वारका, नई दिल्ली में हुआ था। इसके अतिरिक्त, पत्नी के पिता श्री सजीव कुमार शर्मा के क्रेडिट कार्ड का विवरण दर्शाता है कि प्रसव से संबंधित चिकित्सा का पूरा खर्च उनके द्वारा वहन किया गया था। इस दावे की पुष्टि के लिए उक्त क्रेडिट कार्ड के खाते के विवरण (statement) पर भरोसा किया गया है।

10.14 पति के घर में पत्नी की वृद्ध और बीमार सास के अलावा कोई अन्य महिला सदस्य नहीं है, जो स्वयं अपनी दैनिक गतिविधियों के प्रबंधन के लिए घरेलू सहायकों पर निर्भर हैं। ऐसी परिस्थितियों में, वह उस बच्ची की पर्याप्त देखभाल करने की स्थिति में नहीं हैं जो यौवन की कोमल और संवेदनशील अवस्था में है। विकास के इस महत्वपूर्ण चरण में, बच्ची को माँ की देखभाल, मार्गदर्शन और भावनात्मक समर्थन की आवश्यकता होती है। यह एक सुस्थापित सिद्धांत है कि कस्टडी के मामलों में बच्चे का कल्याण सर्वोपरि होता है। कस्टडी का निर्धारण करते समय, बच्चे के समग्र कल्याण पर उचित ध्यान दिया जाना चाहिए, जिसमें उसकी सुविधा, भावनात्मक संतोष, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य, शिक्षा, बौद्धिक विकास और व्यक्तिगत स्वच्छता शामिल है।

10.15 पति ने झूठे कथनों के आधार पर तलाक की याचिका दायर की है, जिसमें कहा गया है कि दोनों पक्ष हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13-बी के तहत आपसी सहमति से तलाक के लिए सहमत हुए हैं, जबकि पत्नी को तलाक की याचिका के बारे में अदालत का नोटिस मिलने पर ही पता चला। उन्होंने आगे तर्क दिया कि प्रतिवादी-पति एक साधन संपन्न व्यक्ति है और न्याय के उद्देश्य को विफल करने के लिए अपने संसाधनों का उपयोग कर रहा है।

10.16 विद्वान न्यायाधीश ने **देबनाथ रात्रे बनाम मालती रात्रे ((2022) SCC OnLine Chh 2721), विवेक सिंह बनाम रोमानी सिंह ((2017) 3 SCC 231), और रोहित थम्मना गौड़ा बनाम कर्नाटक राज्य ((2022) 20 SCC 550)** में स्थापित कानूनी सिद्धांतों की अनदेखी की और उन्हें गलत तरीके से लागू किया। यह तर्क दिया गया कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने आवेदक द्वारा उद्धृत निर्णयों को इस आधार पर अलग करने में गलती की कि वे 'गार्जियन एंड वार्ड्स एक्ट, 1890' और 'हिंदू माइनॉरिटी एंड गार्जियनशिप एक्ट, 1956' से संबंधित

हैं, और इसलिए, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 की धारा 21 के तहत अंतरिम कस्टडी के मुद्दे पर सीधे लागू नहीं होते हैं। यह अंतर गलत है, क्योंकि इन सभी कानूनों में केंद्रीय और सर्वोपरि सिद्धांत एक ही रहता है–**बच्चे का कल्याण और सर्वोत्तम हित।** चाहे किसी भी विशिष्ट कानून का सहारा लिया गया हो, कस्टडी के मामलों का फैसला करते समय बच्चे के समग्र कल्याण को प्राथमिकता देना ही सुसंगत न्यायिक दृष्टिकोण रहा है।

10.17 विद्वान अपीलीय अदालत ने यहाँ उल्लिखित निर्णयों में निर्धारित कानूनी सिद्धांतों की त्रुटिपूर्ण अनदेखी की है; *वेदबाई उर्फ वैजयंतीबाई बाबूराव पाटिल बनाम शांताराम बाबूराव पाटिल एवं अन्य ((2001) 9 SCC 106), अरुण गांगुली बनाम अमरेश गांगुली (2015 SCC OnLine Del 13012), डॉ. पारिजात विनोद कानेटकर एवं अन्य बनाम श्रीमती मलिका पारिजात कानेटकर (आपराधिक रिट याचिका संख्या 750 वर्ष 2016 माननीय बॉम्बे उच्च न्यायालय), कुमार वी. जहाँगीरदार बनाम चेथरा रामतीर्थ ((2004) 2 SCC 688), बलराम बनाम सुषमा (छत्तीसगढ़, बिलासपुर FAM संख्या 9 वर्ष 2014)।*

10.18 इस बात पर और जोर दिया गया है कि, अंतरिम कस्टडी के मुद्दे का फैसला करते समय, सर्वोपरि विचार बच्चे का कल्याण होना चाहिए। कल्याण की अवधारणा व्यापक है और इसमें बच्चे की शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक और चिकित्सा संबंधी ज़रूरतें शामिल होनी चाहिए। हालाँकि, विद्वान ट्रायल कोर्ट वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में इस सिद्धांत को उचित रूप से लागू करने में विफल रहा। इसके बजाय, इसने त्रुटिपूर्ण रूप से विपरीत दृष्टिकोण अपनाया और पर्याप्त आधार के बिना निष्कर्ष निकाला कि पिता की कस्टडी में बच्चे के हितों की सबसे अच्छी पूर्ति होगी। यह निष्कर्ष पितृसत्तात्मक पूर्वाग्रह को दर्शाता है, जो लैंगिक समानता के प्रगतिशील संवैधानिक मूल्यों और संवैधानिक न्यायालयों द्वारा समर्थित विकसित होती बाल-केंद्रित न्यायशास्त्र के साथ असंगत है।

10.19 पत्नी एक सुयोग्य पेशेवर है, जो वर्तमान में संतोष डीम्ड यूनिवर्सिटी में अस्पताल प्रशासन विभाग में सहायक प्रोफेसर के रूप में कार्यरत है, जिसका कुल मासिक वेतन ₹50,000/- है। वह नाबालिग बच्चे के पालन-पोषण से जुड़ी जिम्मेदारियों को निभाने के लिए आर्थिक रूप से सक्षम है। हालाँकि, यह कानून के लागू प्रावधानों के तहत मान्यता प्राप्त भरण-पोषण का दावा करने के उसके कानूनी अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना है।

11. पत्नी की विद्वान अधिवक्ता सुश्री विजेता सिंह ने *तेजस्विनी गौड़ एवं अन्य बनाम शेखर जगदीश प्रसाद तिवारी एवं अन्य ((2019) 7 SCC 42); निल रतन कुंडू एवं अन्य बनाम अभिजीत कुंडू ((2008) 9 SCC 413); गोवर्धन लाल बनाम गजेंद्र कुमार (AIR 2002 Raj 148); सरस्वतीबाई श्रीपाद वद बनाम श्रीपाद वसंतजी वद (1940 SCC Online Bom 77); रोजी जैकब बनाम जैकब ए. चक्रमाकल 1973 1 SCC 840; X बनाम Y (रिट याचिका संख्या 2048 वर्ष 2023)* में प्रतिपादित विधि पर भी भरोसा जताया है।

12. उपरोक्त निर्णयों का हवाला देते हुए, विद्वान अधिवक्ता ने इस बात पर जोर देते हुए अपने तर्क समाप्त किए कि नाबालिग बालिका, जो वर्तमान में लगभग बारह वर्ष की आयु की है, यौवन से जुड़े शारीरिक और हार्मोनल विकास के एक महत्वपूर्ण चरण में प्रवेश कर रही है। यह संवेदनशील चरण उन्नत भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक और शारीरिक देखभाल-समर्थन की मांग करता है जो जैविक माँ द्वारा सबसे उचित और प्रभावी ढंग से प्रदान किया जा सकता है। वर्तमान मामले में, माँ स्वयं एक योग्य चिकित्सा पेशेवर होने के नाते, आवश्यक विशेष देखभाल और मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए विशिष्ट रूप से सुसज्जित है। सम्मानपूर्वक यह निवेदन किया जाता है कि न तो दादी और न ही बुआ माँ की भूमिका को पर्याप्त रूप से निभा सकती हैं या उसका विकल्प हो सकती हैं, विशेष रूप से इस विकासात्मक अवधि के दौरान आवश्यक समर्थन की सूक्ष्म और आत्मीय प्रकृति को देखते हुए।

12.1 आगे यह तर्क दिया गया कि यौवन से जुड़े महत्वपूर्ण जैविक और विकासात्मक कारकों, जिसमें बच्ची की निजता और समग्र कल्याण शामिल है, जो आमतौर पर 10 से 15 वर्ष की आयु के बीच उत्पन्न होते हैं, पर उचित विचार किया जाना चाहिए। इस महत्वपूर्ण और निर्माणात्मक चरण के दौरान, बालिका द्वारा अनुभव किए जाने वाले अद्वितीय शारीरिक और भावनात्मक परिवर्तनों को उचित रूप से संबोधित करने के लिए माँ की उपस्थिति और सक्रिय भागीदारी अपरिहार्य है। इसके अलावा, यह तर्क दिया गया है कि पिता, जैविक और व्यावहारिक दोनों सीमाओं के कारण, वह विशेष देखभाल, समझ और समर्थन प्रदान करने के लिए उपयुक्त स्थिति में नहीं है, जिसे माँ इस संवेदनशील संक्रमण काल के दौरान देने के लिए स्वाभाविक रूप से बेहतर रूप से सुसज्जित है।

13. इसके विपरीत, पति के विद्वान अधिवक्ता ने सम्मानपूर्वक निवेदन किया कि पत्नी द्वारा उठाए गए तर्क गलत और कानून में टिकने योग्य नहीं हैं। यह तर्क दिया गया कि वैधानिक ढांचा, साथ ही पत्नी द्वारा भरोसा किए गए न्यायिक मिसालें, वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होती हैं। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने पूरी तरह से कानून की सीमाओं के भीतर कार्य किया है, और पत्नी के कानूनी या प्रक्रियात्मक अधिकारों का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है। इस तर्क के समर्थन में, *रमनीश पाल सिंह बनाम सुगंधी अग्रवाल (2024 (259) AIC 34); सेलवराज बनाम रेवती (2023 SCC OnLine SC 1644); मौसमी मैत्रा गांगुली बनाम जयंत गांगुली ((2008) 7 SCC 673); शाज़िया अमान खान एवं अन्य बनाम उड़ीसा राज्य एवं अन्य ((2024) 7 SCC 564)* पर भरोसा किया गया और तर्क दिया गया कि बच्ची अपनी राय बनाने में सक्षम है कि वह किसके साथ रहना चाहती है। बच्ची ने स्पष्ट रूप से कहा है कि वह अपने पिता के साथ खुश है और उन्हीं के साथ रहेगी। इस बात पर भी जोर दिया गया कि पत्नी कोई भी ऐसी ठोस क्षति या न्याय की विफलता साबित करने में विफल रही है जो इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की मांग करती हो।

13.1 विवाह के समय, न तो आभूषण, नकद या अन्य कीमती सामानों के रूप में दहेज की कोई मांग की गई थी, और न ही पत्नी के परिवार द्वारा स्वेच्छा से ऐसी वस्तुएं दी गई थीं। पत्नी द्वारा लगाए गए क्रूरता के आरोप निराधार, अप्रमाणित और मामले के वास्तविक तथ्यों के विपरीत हैं। इसके विपरीत, पत्नी ही थी जिसने

लगातार पति और उसके परिवार के सदस्यों को मानसिक और भावनात्मक उत्पीड़न का शिकार बनाया, जिससे वैवाहिक घर की शांति और सद्भाव भंग हुआ। इसके अलावा, यह प्रस्तुत किया गया है कि यहाँ तक कि नाबालिग बेटी को भी, जिसकी कस्टडी के लिए पत्नी अब न्यायिक हस्तक्षेप चाहती है, पत्नी द्वारा कथित रूप से उत्पन्न मनोवैज्ञानिक संकट के बार-बार होने वाले प्रसंगों से नहीं बख्शा गया। ये तथ्य संचयी रूप से पत्नी के आचरण के एक ऐसे स्वरूप को प्रदर्शित करते हैं जो बच्चे के कल्याण और सर्वोत्तम हितों के प्रतिकूल है, जो किसी भी कस्टडी निर्धारण में सर्वोपरि रहना चाहिए।

13.2 घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम की धारा 12 के तहत आवेदन मनगढ़ंत और काल्पनिक आधारों पर दायर किया गया है, जिसका समर्थन करने के लिए कोई आपत्तिजनक सामग्री नहीं है। तदनुसार, ट्रायल और अपीलीय दोनों अदालतों ने बालिका की अंतरिम कस्टडी की प्रार्थना को सही ढंग से खारिज कर दिया है।

13.3 पत्नी ने झूठा आरोप लगाया है कि उसके पति ने उसे तलाक के दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया और अपनी बेटी तक पहुंच से वंचित करने की धमकी दी।

13.4 यह प्रस्तुत किया गया है कि पत्नी ने 22.08.2024 को स्वेच्छा से अपनी बेटी को अपने पति की कस्टडी में छोड़ दिया और अपनी मर्जी से अपने मायके चली गई।

13.5 पत्नी ने अपने पति और परिवार के अन्य सदस्यों के विरुद्ध थाना सिविल लाइन्स, प्रयागराज में अपराध संख्या 0608 वर्ष 2022 के अंतर्गत धारा 498-ए, 323, 504, 506, 354 आईपीसी (IPC) और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के तहत एक झूठी प्राथमिकी (FIR) दर्ज कराई है।

13.6 दिनांक 01.07.2023 को विद्वान ट्रायल कोर्ट के समक्ष बच्ची का बयान दर्ज किया गया, जिसमें उसने कहा कि वह अपने पिता और परिवार के साथ रहने का आनंद लेती है। उसने अपने पिता और दादा-दादी के साथ रहने के प्रति सहजता और प्राथमिकता व्यक्त की, और पुष्टि की कि वह अक्टूबर 2022 से अपनी माँ के साथ नहीं रही है।

13.7 पत्नी ने गलत तथ्यों के आधार पर कई याचिकाएं दायर की हैं, जिनमें पति को झूठा फँसाया गया है। धारा 125 सीआर.पी.सी. (Cr.P.C.) के तहत आवेदन संख्या 1132 वर्ष 2022 विद्वान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, इलाहाबाद के समक्ष लंबित है, साथ ही घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम की धारा 12 के तहत एक शिकायत भी है, जिससे वर्तमान विवादित आदेश उत्पन्न हुआ है।

13.8 पति अकेले ही अपनी बेटी की देखभाल कर रहा है, और दादा-दादी के सहयोग से माता-पिता दोनों की भूमिकाएं निभा रहा है। बच्ची लखनऊ के एक प्रतिष्ठित स्कूल में भी नामांकित है।

13.9 यह आगे प्रस्तुत किया गया कि आज के डिजिटल युग में, बच्चे के पास आवश्यक जानकारी तक पहुँच है और जैसे-जैसे वह परिपक्व होगी, वह अपने स्वयं के भावनात्मक और शारीरिक विकास को समझ लेगी। वह एक स्वस्थ और पोषणकारी वातावरण में रहती है और अपने पिता के साथ एक खुला और संवादात्मक संबंध साझा करती है।

13.10 पत्नी ने स्वेच्छा से वैवाहिक घर और बच्चे के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को छोड़ दिया। इसलिए, वह अप्रमाणित और निराधार दावों के आधार पर कस्टडी का दावा नहीं कर सकती।

13.11 दिनांक 28.08.2023 के विवादित आदेश के अनुसार, पत्नी अपनी बेटी से मिलने कभी लखनऊ नहीं आई। यह उसके भावनात्मक लगाव या स्नेह की कमी का अनुमान पैदा करता है। विशेष रूप से, पिछले दो वर्षों में उसने अपनी बेटी का जन्मदिन मनाने के लिए केवल एक बार लखनऊ का दौरा किया है।

13.12 संपत्ति और देनदारियों का हलफनामा प्रकट करता है कि बच्ची के दादा उच्च रक्तचाप, टाइप-2 मधुमेह से पीड़ित हैं और उन्हें तीन बार सेरेब्रल हैमरेज हो चुका है, जबकि दादी उच्च रक्तचाप, मधुमेह और स्टेज-3 कैंसर की रोगी हैं। उत्तरदाता (पति) प्रतिमाह ₹1,53,000/- कमाता है और सरकारी आवास में रहता है। देनदारियों के अन्य विवरण वर्तमान आवेदन के उद्देश्य के लिए अप्रासंगिक हैं।

13.13 यह आगे बताया गया है कि पत्नी एक उच्च योग्य पेशेवर है, जिसने किंग जॉर्ज मेडिकल यूनिवर्सिटी (KGMU) से बी.डी.एस. (B.D.S.) की डिग्री और अस्पताल प्रशासन में मास्टर्स पूरा किया है। वह 1 मार्च 2012 से अक्टूबर 2022 तक डेंटिस्ट और अस्पताल प्रबंधक के रूप में कार्यरत रही है, और आनंद निकेतन सोसाइटी हेल्थ केयर, आइडियल डेंटल क्लिनिक (पटना), ऑर्थो डेंटल क्लिनिक (पटना), भारतीय रेलवे, हेरिटेज हॉस्पिटल (लखनऊ), डिवाइन हार्ट हॉस्पिटल (लखनऊ) और के.के. हॉस्पिटल (लखनऊ) सहित कई प्रतिष्ठित संस्थानों में सेवा दे चुकी है। इस अवधि के दौरान उसकी व्यापक व्यावसायिक प्रतिबद्धताओं को देखते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि यदि कस्टडी उसे दी जाती है, तो उसके पास व्यक्तिगत रूप से बच्चे की देखभाल करने के लिए सीमित समय होगा।

13.14 यह तर्क दिया गया है कि पत्नी का स्वभाव अत्यधिक संदिग्ध है और उसने बच्चे की उपस्थिति में काले जादू सहित अंधविश्वासी और तांत्रिक प्रथाओं में भाग लिया है। कथित तौर पर ऐसे आचरण में इन प्रथाओं के लिए बच्चे के व्यक्तिगत सामान, जैसे खिलौने, किताबें और कपड़ों का उपयोग शामिल था। इन गतिविधियों को देखकर नाबालिग बच्ची में अपनी माँ की उपस्थिति में गंभीर भावनात्मक संकट और आशंका विकसित हो गई है। यह प्रस्तुत किया गया है कि इन अनुभवों के परिणामस्वरूप जब भी बच्चे को माँ के साथ रहने के लिए मजबूर किया जाता है, तो उसमें मनोवैज्ञानिक आघात और अस्थिरता पैदा होती है।

14. 'गार्जियन एंड वार्ड्स एक्ट, 1890' औपनिवेशिक काल का कानून है जो भारत में नाबालिगों की नियुक्ति और विनियमन को नियंत्रित करता है। यद्यपि यह अधिनियम नाबालिगों की संरक्षकता से संबंधित कानूनी ढांचे को औपचारिक रूप देने में एक आधारभूत कदम था, इसे ऐसे समय में तैयार किया गया था जब पितृसत्तात्मक मानदंडों ने सामाजिक और कानूनी सोच को भारी रूप से प्रभावित किया था। समय के साथ, न्यायिक व्याख्याओं और सामाजिक परिवर्तनों ने महत्वपूर्ण प्रगति की है, विशेष रूप से माँ के अधिमान्य कस्टडी अधिकारों को पहचानने में, विशेष रूप से कन्या के मामले में।

15. यह सिद्धांत कि पिता नाबालिग बच्चे (बालक या अविवाहित कन्या) का प्राकृतिक संरक्षक है, और उसके बाद माता, मुख्य रूप से हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 6 से लिया गया है, जो अपने समय में मौलिक था। अब यह पितृसत्तात्मक पूर्वाग्रह की गंध देता है, इसलिए, 21वीं सदी के भारत की प्रगतिशील वास्तविकताओं में अप्रचलित हो गया है। न्यायिक व्याख्याओं ने सराहनीय रूप से विधायी शून्यता को भरा है, विशेष रूप से कन्याओं की माताओं के अधिमान्य कस्टडी अधिकारों को मान्यता देने में। हालाँकि, सच्ची प्रगति की मांग है कि विधायिका इन विकसित होते मानकों को संहिताबद्ध करे ताकि पूरे देश में एक सुसंगत और लिंग-तटस्थ दृष्टिकोण सुनिश्चित किया जा सके।

16. सर्वोच्च न्यायालय ने 'निल रतन कुंडू' मामले (उपरोक्त) में यह माना है कि बच्चा कोई "संपत्ति" या "वस्तु" नहीं है। नाबालिगों और कोमल आयु के बच्चों की कस्टडी से संबंधित मुद्दों को प्यार, स्नेह, भावनाओं और समस्या के प्रति मानवीय स्पर्श के साथ निपटाया जाना चाहिए।

17. सर्वोच्च न्यायालय ने **ABC बनाम राज्य (NCT दिल्ली) ((2015) 10 SCC 1)** में आगे यह स्पष्ट किया है कि एक बच्चा, जैसा कि विभिन्न कानूनी मंचों पर सर्वत्र व्यक्त किया गया है, कोई चल संपत्ति (chattel) या गेंद नहीं है जिसे एक माता-पिता से दूसरे माता-पिता के पास फेंका या धकेला जाए। कस्टडी या संरक्षकता के विवादों में न्यायालय 'पेरेंस पेट्रिए' (parens patriae - माता-पिता के समान संरक्षक) क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है; वह उन दो वयस्कों के असहाय बच्चे के कल्याण को सुरक्षित करने के लिए हस्तक्षेप करता है जिनके व्यक्तिगत मतभेदों और शत्रुता ने उनके बच्चे के भविष्य पर प्राथमिकता ले ली है। न्यायालय ने इसे और विस्तृत करते हुए कहा कि एक अविवाहित माँ अपने बच्चे की एकमात्र संरक्षक है और उसे ऐसा घोषित होने के लिए पिता की सहमति की आवश्यकता नहीं है।

18. पुनः, सर्वोच्च न्यायालय ने **कुमार वी. जहाँगीरदार मामले (उपरोक्त)** में यह सूचीबद्ध किया कि माँ हमेशा अपनी बेटी की कस्टडी के बेहतर अधिकारों का दावा नहीं कर सकती। हालाँकि, यौवन के आगमन पर एक बालिका को माँ की देखभाल और ध्यान की आवश्यकता होती है, जिसे पिता के घर में महिला साथ की अनुपस्थिति में प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, बच्चे के हित की रक्षा के लिए, उसकी विशेष कस्टडी माँ को दी जा सकती है और प्राकृतिक पिता को मुलाकात के अधिकार दिए जा सकते हैं।

असंपादित

19. बाल कस्टडी की कार्यवाही में, विशेष रूप से यौवन अवस्था में प्रवेश करने वाली एक नाबालिग लड़की से जुड़े मामलों में, फैमिली कोर्ट जज की भूमिका केवल निर्णयात्मक नहीं बल्कि गहराई से सुरक्षात्मक और सहायक होती है। किशोरावस्था में संक्रमण एक संवेदनशील अवधि है जो गहरे भावनात्मक और शारीरिक परिवर्तनों द्वारा चिह्नित होती है, और कानून न्यायपालिका द्वारा सावधानीपूर्वक, बाल-केंद्रित जुड़ाव की आवश्यकता को मान्यता देता है। न्यायाधीश को न केवल वैधानिक अधिकारों को बनाए रखने का कार्य सौंपा गया है, बल्कि बच्चे की गरिमा, सुरक्षा, भावनात्मक कल्याण और विकसित होती स्वायत्तता की रक्षा करना भी उनका उत्तरदायित्व है।

20. यौवन अवस्था में प्रवेश करने वाली लड़की की कस्टडी तय करते समय, न्यायालयों को निम्नलिखित पर विचार करना चाहिए: (i) प्राथमिक देखभालकर्ता कौन रहा है, (ii) लड़की की स्कूली शिक्षा, सामुदायिक संबंध और स्थिरता, (iii) दुर्व्यवहार, उपेक्षा या अनुचित व्यवहार के आरोप, और (iv) मुकदमेबाजी के दौरान पक्षों का व्यवहार और आचरण। यौवन अवस्था में प्रवेश करने वाली नाबालिग लड़कियों से जुड़े कस्टडी के मामलों में न्यायिक भूमिका एक प्रक्रियात्मक कार्य से कहीं अधिक है–यह एक संवैधानिक, नैतिक और सहानुभूतिपूर्ण जिम्मेदारी है। एक न्यायाधीश को प्रतिपक्षी ढांचे से ऊपर उठकर बच्चे के कल्याण के ट्रस्टी के रूप में कार्य करना चाहिए। इसके लिए लिंग-संवेदनशील, भावनात्मक रूप से बुद्धिमान और बाल-केंद्रित न्यायिक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है, जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि बच्चे की गरिमा, सुरक्षा और कल्याण कस्टडी के निर्णयों का अडिग केंद्र बना रहे।

21. कन्या की कस्टडी के मामले में माँ की स्थिति अद्वितीय होती है। अधिकांश मामलों में, साझा जैविक अनुभव के कारण माँ स्वाभाविक रूप से यौवन से गुजरने वाली बेटी को समझने और उसका समर्थन करने के लिए बेहतर स्थिति में होती है। माँ ने स्वयं मासिक धर्म, अन्य महिला-विशिष्ट परिवर्तनों और ऐसे मुद्दों पर चर्चा करने में सहजता का अनुभव किया होता है। लड़कियाँ अक्सर शारीरिक परिवर्तनों, मासिक धर्म स्वच्छता आदि के बारे में अपनी माताओं से बात करने में अधिक सहज महसूस करती हैं। माँ अक्सर भावनात्मक तालमेल बिठाने और स्वाभाविक देखभालकर्ता होने के नाते अधिक प्रभावी भूमिका निभाती है, और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक बदलावों को पहचानने की अधिक संभावना रखती है। समाज और पारिवारिक गतिशीलता अक्सर माँ और पुत्री के बीच घनिष्ठ भावनात्मक बंधन को प्रोत्साहित करती है, विशेष रूप से किशोरावस्था के दौरान।

22. जबकि भावनात्मक समर्थन और लैंगिक समानता को मजबूत करने में पिता की भूमिका समान रूप से आवश्यक है, वह साझा जैविक अनुभव और अन्य महिला-विशिष्ट परिवर्तनों से संबंधित मुद्दों को समझने और स्वच्छता संबंधी मामलों में शारीरिक सहायता प्रदान करने में सीमाओं का सामना कर सकता है, जब तक कि वह असाधारण रूप से संवेदनशील और प्रशिक्षित न हो।

23. अब, वर्तमान मामले के तथ्यों पर लौटते हुए, यह देखा गया है कि पति ने गलत और भ्रामक तथ्यों के आधार पर बच्चे की अंतरिम कस्टडी का विरोध किया है। पत्नी द्वारा 26.10.2022 और 11.11.2022 को पति को भेजे गए SMS संवादों का सूक्ष्म परीक्षण स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि वह पति ही था जिसने नए निवास पर स्थानांतरित होने के बहाने

पत्नी को सरकारी आवास खाली करने के लिए विवश किया था। इसके अलावा, पति ने पूर्व-नियोजित तरीके से, बच्चे को पास के मॉल में ले जाने के बहाने छलपूर्वक माँ से नाबालिग बच्ची की कस्टडी ले ली और बाद में उसे लंबे समय तक गाजीपुर में अपने पैतृक घर में रखा, जबकि बच्चा सामान्यतः लखनऊ में रहता था और अपनी पढ़ाई कर रहा था।

24. पत्नी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों के परीक्षण से यह स्पष्ट होता है कि नाबालिग बच्ची का जन्म दिल्ली में पत्नी के मायके में हुआ था, और उससे संबंधित सभी चिकित्सा व्यय पत्नी के पिता श्री सजीव कुमार शर्मा द्वारा वहन किए गए थे। इसके अतिरिक्त, व्हाट्सएप बातचीत के स्क्रीनशॉट पति और पत्नी के बीच 3.5 करोड़ रुपये मूल्य की एक संपत्ति की खरीद के संबंध में आदान-प्रदान को प्रकट करते हैं, जिसमें पूरी तरह से सुसज्जित अपार्टमेंट शामिल हैं, जिसमें एक ड्राइंग रूम, दो लॉबी, छह विशाल बेडरूम, सात बाथरूम, एक पूरी तरह से मॉडुलर किचन और एक छत का बगीचा है। यह न्यायालय पति–जो एक योग्य इंजीनियर है–द्वारा अपनी पत्नी–जो एक मेडिकल डॉक्टर है–के विरुद्ध रची गई एक कपटपूर्ण योजना के संकेत देखता है, जिसमें उसने पत्नी का विश्वास जीतकर उसे सरकारी फ्लैट खाली करने के लिए प्रेरित किया।

25. हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1) के तहत दायर याचिका से यह भी पता चलता है कि पत्नी ने कथित तौर पर 06.08.2022 को झगड़े के बाद पति को छोड़ दिया था, और वह अपने साथ कपड़े और गहनों सहित पूरा स्त्रीधन ले गई थी। पति का दावा है कि उसने वैवाहिक विवाद को सुलझाने के लिए गंभीर प्रयास किए। हालाँकि, इन कथनों का खंडन 26.10.2022 के व्हाट्सएप चैट की सामग्री से होता है, जो स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि पत्नी ने 26.10.2022 को ही वैवाहिक घर छोड़ा था। इसकी पुष्टि गूगल मैप्स टाइमलाइन के स्क्रीनशॉट से भी होती है, जो 04.10.2022 को पूरे दिन मॉल रोड, बंदरिया बाग रेलवे कॉलोनी, लखनऊ में पत्नी की उपस्थिति दर्शाते हैं, इसी तरह 05.10.2022 और 07.10.2022 को भी, जिसमें क्रमशः रात 08:58 बजे और रात 09:16 बजे के विशिष्ट टाइम स्टैम्प (समय विवरण) हैं (पत्नी द्वारा दायर प्रत्युत्तर हलफनामे के पृष्ठ 99 से 103)। 26.10.2022 की गूगल मैप्स टाइमलाइन पत्नी को दोपहर 3:34 बजे बंदरिया बाग रेलवे कॉलोनी, लखनऊ में और उसके बाद शाम 4:15 बजे लखनऊ रोड स्थित बटोही रिसॉर्ट, रायबरेली में दिखाती है।

26. उपरोक्त व्हाट्सएप चैट के स्क्रीनशॉट और गूगल मैप्स टाइमलाइन निर्णायक रूप से यह सिद्ध करते हैं कि पत्नी 26.10.2022 को दोपहर 3:34 बजे तक बंदरिया बाग रेलवे कॉलोनी में ही रह रही थी, जिसके बाद वह दिल्ली के लिए रवाना हुई। ये विवरण सीधे तौर पर उन कथनों का खंडन करते हैं जो पति द्वारा घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 की धारा 12 के तहत दायर आवेदन और बालिका की अंतरिम कस्टडी की मांग करने वाले उक्त अधिनियम की धारा 23 के आवेदन के जवाब में दिए गए थे।

27. मूलतः, बालिका की कस्टडी अपने पास रखने के लिए, पति ने पहले उसे माँ की देखभाल से दूर करने के लिए एक मनगढ़ंत कहानी रची। तत्पश्चात, अपनी पत्नी का विश्वास छलपूर्वक जीतकर, उसने निजी फ्लैट खरीदने के बहाने उसे सरकारी आवास खाली करने के लिए विवश किया। इस योजना के माध्यम से, उसने प्रभावी रूप से पत्नी को बच्चे के साथ से अलग कर दिया और लगभग दो वर्षों तक बच्चे की कस्टडी अपने

पास बनाए रखी। यद्यपि, उस विशेष समय पर, पति ने विवाह को बचाने के लिए ईमानदारी से प्रयास करने वाले एक विवेकपूर्ण व्यक्ति के बजाय, एक साजिशकर्ता और जालसाज के रूप में अधिक कार्य किया।

28. पूर्वगामी विचार-विमर्श, प्रासंगिक कानूनों की योजना, पति के आचरण और व्यवहार, तथा कन्या की कस्टडी में माँ की अद्वितीय और महत्वपूर्ण भूमिका–साझा जैविक अनुभव (जिसमें मासिक धर्म और अन्य महिला-विशिष्ट परिवर्तन शामिल हैं) के कारण यौवन अवस्था से गुजरने वाली बेटी को समझने और उसका समर्थन करने तथा ऐसे संवेदनशील मामलों पर चर्चा करने में सहजता प्रदान करने के लिए स्वाभाविक रूप से बेहतर स्थिति में होना–के आधार पर, यह न्यायालय एतद्द्वारा निर्देश देता है कि सुश्री समृद्धि की कस्टडी आवेदक संख्या 1-माता को निम्नलिखित रीति से सौंपी जाए:

(i) इस आदेश की प्रति प्राप्त होने के तीन दिनों के भीतर, पिता-विपक्षी संख्या 2- शांतिपूर्ण और सौहार्दपूर्ण ढंग से नाबालिग लड़की, समृद्धि की कस्टडी, दिल्ली स्थित आवेदक संख्या 1-पत्नी के निवास पर उसे सौंपेगा।

(ii) अनुपालन न होने की स्थिति में, आवेदक-पत्नी अध्यक्ष, बाल कल्याण समिति, लखनऊ से संपर्क करेगी। इस प्रकार के अनुरोध पर, अध्यक्ष एक महिला पुलिस अधिकारी और एक योग्य बाल परामर्शदाता की सहायता से, बच्ची की सुरक्षित वापसी और माँ को कस्टडी हस्तांतरण सुनिश्चित करेंगे।

(iii) प्रथम दृष्टया, ऐसा प्रतीत होता है कि पति एक जालसाज है जो कार्यवाही को प्रभावित करने और आवेदक-पत्नी के कानूनी अधिकारों में बाधा डालने के लिए अपने आधिकारिक पद का दुरुपयोग कर सकता है, इसलिए, पुलिस आयुक्त, लखनऊ यह सुनिश्चित करेंगे कि विपक्षी संख्या 2-पति इस आदेश के अनुपालन तक निगरानी में रहे, ताकि वह इस आदेश की शर्तों को विफल न कर सके।

29. जहाँ तक पिता के मुलाकात के अधिकारों का प्रश्न है, विपक्षी संख्या 2 कानून के तहत उपलब्ध उपचारात्मक उपायों का सहारा लेने के लिए स्वतंत्र होगा।

29.1 बहस के दौरान भरण-पोषण का मुद्दा भी उठाया गया है, आवेदक-पत्नी कानून के अनुसार सक्षम न्यायालय के समक्ष अपने सभी दावों को उठाने के लिए स्वतंत्र होगी। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इसका निस्तारण **रजनीश बनाम नेहा एवं अन्य (उपरोक्त); राजेश बाबू सक्सेना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ((2024) SCC Online All 2260) के पैराग्राफ-38; और श्रीमती पारुल त्यागी बनाम गौरव त्यागी ((2023) SCC Online All 2684)** के आलोक में किया जाएगा।

30. इस आदेश की एक प्रति अध्यक्ष, बाल कल्याण समिति, लखनऊ को सूचना एवं आवश्यकता पड़ने पर अनुपालन हेतु, तथा पुलिस आयुक्त, लखनऊ को सूचना एवं अनुपालन हेतु प्रेषित की जाएगी।

31. ऊपर दर्ज की गई टिप्पणियां और निष्कर्ष मामले के गुण-दोष या आवेदक-पत्नी और प्रतिवादी-पति के बीच लंबित किसी भी मामले के न्यायिक निर्णय पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेंगे।

32. तदनुसार, वर्तमान आवेदन उपरोक्त शर्तों के साथ स्वीकार किया जाता है।

(2025) 5 ILRA 1849

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 27.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

धारा 482 के अन्तर्गत आवेदन संख्या 12048 सन् 2023

श्री सुशान्त गुप्ता एवं अन्य ...आवेदकगण

बनाम

केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो एस.सी.बी. लखनऊ ...विपक्षी पक्ष

आवेदकगण के अधिवक्ता: रिशाद मुर्तज़ा, ऐश्वर्या मिश्रा, अर्नव प्रकाश टिक्कू, सैयद अली जफ़र रिज़वी
विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता: अनुराग कुमार सिंह

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988, धारा 19 - अभियोजन की स्वीकृति - वैधता - बैंक अधिकारियों पर षड्यंत्र एवं गबन के आरोप - भारतीय दण्ड संहिता के अधीन अपराधों को भी शामिल करने का आभास देते हुए पी.सी. अधिनियम की धारा 19 के अन्तर्गत स्वीकृति प्रदान की गई - सक्षमता तथा मानसिक प्रयोग - अभिनिर्धारित, पी.सी. अधिनियम की धारा 19 के अन्तर्गत स्वीकृति आई.पी.सी. के अपराधों तक विस्तारित नहीं हो सकती - प्राधिकारी पी.सी. अधिनियम से परे अपराधों के अभियोजन की स्वीकृति देने हेतु सक्षम नहीं था - "उक्त अपराधों के लिए तथा किसी अन्य विधि के किसी भी अन्य उपबन्ध के अन्तर्गत दण्डनीय किसी अन्य अपराध के लिए" अभियोजन की स्वीकृति, मन का पूर्ण अप्रयोग इंगित करती है - स्वीकृति और संज्ञान आदेश को दूषित करती है - उन्मोचन स्वीकृत। (पैरा 41, 43, 44 एवं 45)

अभिनिर्धारित: आवेदकगण एक्सिस बैंक में कार्यरत थे, जो राष्ट्रीयकृत बैंक भी नहीं है, और यह विवादित नहीं है कि आवेदकगण ऐसे पद पर आसीन नहीं थे जिससे उन्हें सरकार की स्वीकृति के बिना या उसके द्वारा ही सेवा से नहीं हटाया जा सकता था।

इस दृष्टिकोण से धारा 197 के उपबन्ध आवेदकगण के मामले में आकर्षित नहीं होते। एक्सिस बैंक, मुम्बई के अध्यक्ष एवं प्रमुख, कॉर्पोरेट मामले द्वारा दिनांक 02.02.2022 को जारी अभियोजन स्वीकृति आदेश में यह कहा गया है कि आवेदकगण सहित 20 व्यक्तियों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की पुष्टि धारा 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत अभिलिखित कथनों तथा मामले की जाँच के दौरान संकलित दस्तावेजों से होती है। दस्तावेजों एवं साक्षियों के कथनों के सावधानीपूर्वक परीक्षण एवं अवलोकन के पश्चात् यह पाया गया है कि

आवेदकगण सहित 20 व्यक्तियों के विरुद्ध आई.पी.सी. की धारा 120-B सपठित 409, 418, 419, 420, 467, 468, 471, 477(A) तथा पी.सी. अधिनियम की धारा 13(2) सपठित 13(1)(d) और उससे सम्बन्धित मूल अपराध के अपराध बनते हैं। स्वीकृति प्राधिकारी ने यह अभिकथन किया कि धारा 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत साक्षियों के कथनों की प्रतियों, दस्तावेजों तथा उसके समक्ष प्रस्तुत अन्य सामग्री का पूर्ण और सावधानीपूर्वक परीक्षण करने तथा उक्त आरोपों और मामले की परिस्थितियों के सम्बन्ध में अपने मन का उचित प्रयोग करने के पश्चात्, यह विचार किया कि आवेदकगण और अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध आई.पी.सी. की धारा 120-B सपठित 409, 418, 419, 420, 467, 468, 471, 477(A) तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1998 की धारा 13(2) सपठित 13(1)(d) और उससे सम्बन्धित मूल अपराध के अपराध बनते हैं, और इसलिए प्राधिकारी ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19 के अन्तर्गत आवेदकगण और अन्य व्यक्तियों के अभियोजन के लिए 'उक्त अपराधों के लिए तथा उक्त कृत्यों के सम्बन्ध में किसी अन्य विधि के किसी भी अन्य उपबन्ध के अन्तर्गत दण्डनीय किसी अन्य अपराध(ों) के लिए और सक्षम अधिकारिता के न्यायालय द्वारा उक्त अपराधों का संज्ञान लिए जाने के लिए' स्वीकृति प्रदान की। (पैरा 41)

उक्त कारण अभिलिखित करते समय, विद्वान विचारण न्यायालय यह सराहना करने में विफल रहा कि न तो आवेदकगण के विरुद्ध दण्ड संहिता के अन्तर्गत अपराधों के अभियोजन की कोई स्वीकृति माँगी गई थी और न ही प्राधिकारी दण्ड संहिता के अन्तर्गत अपराधों के अभियोजन की स्वीकृति देने हेतु सक्षम था। अभियोजन की स्वीकृति 'उक्त अपराधों के लिए तथा उक्त कृत्यों के सम्बन्ध में किसी अन्य विधि के किसी भी अन्य उपबन्ध के अन्तर्गत दण्डनीय किसी अन्य अपराध(ों) के लिए', जिसके लिए कोई स्वीकृति प्राप्त नहीं की गई थी, मामले के तथ्यों और लागू विधि के प्रति मन के पूर्ण अप्रयोग को इंगित करती है।

यह इंगित करता है कि स्वीकृति प्राधिकारी ने एक मात्र रबड़ स्टाम्प की भाँति कार्य किया। स्वीकृति प्राधिकारी द्वारा मन का अप्रयोग, स्वीकृति आदेश दिनांक 02.02.2023 को तथा विचारण न्यायालय द्वारा उन्मोचन आवेदन अस्वीकृत करते हुए दिनांक 28.07.2023 को पारित आदेश को भी दूषित कर देता है। (पैरा 43)

मामले के सुसंगत तथ्यों एवं परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर मन का उचित प्रयोग करने के पश्चात् पारित स्वीकृति आदेश, किसी लोक सेवक के अभियोजन के लिए एक पूर्वापेक्षा है, क्योंकि इसका उद्देश्य लोक सेवक को तुच्छ और तंग करने वाले वादकारियों से सुरक्षा प्रदान करना है। इस सुरक्षा से आकस्मिक और यांत्रिक रीति से व्यवहार नहीं किया जा सकता। (पैरा 45)

आवेदन स्वीकृत।
(E-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. एस.के. मिगलानी बनाम राज्य (एन.सी.टी. दिल्ली), (2019) 6 SCC 111।

2. ए. श्रीनिवास रेड्डी बनाम राकेश शर्मा एवं अन्य, (2023) 8 SCC 711।

3. रामसागर पण्डित बनाम बिहार राज्य, 1960 SCC OnLine Pat 213।

4. रामसागर पण्डित बनाम बिहार राज्य, 1962 SCC OnLine SC 101।

5. महाराष्ट्र राज्य बनाम महेश जी. जैन, (2013) 8 SCC 119।

6. विनोद कुमार गर्ग बनाम राज्य (एन.सी.टी. दिल्ली), (2020) 2 SCC 88।

7. मध्य प्रदेश राज्य बनाम वीरेन्द्र कुमार त्रिपाठी, (2009) 15 SCC 533।

8. प्रकाश सिंह बादल बनाम पंजाब राज्य, (2007) 1 SCC 1।

9. दिनेश कुमार बनाम एयरपोर्ट अथॉरिटी ऑफ इण्डिया, (2012) 1 SCC 532।

10. सी.एस. कृष्णमूर्ति बनाम कर्नाटक राज्य, (2005) 4 SCC 81।

11. कर्नाटक राज्य बनाम अमीरजान, (2007) 11 SCC 273।

12. गिरीश कुमार सुनेजा बनाम सी.बी.आई., (2017) 14 SCC 809।

13. सी.बी.आई. बनाम अशोक कुमार अग्रवाल: (2014) 14 SCC 295।

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत्त)

1. श्री रिशाद मुर्तजा और सुश्री ऐश्वर्या मिश्रा अधिवक्ता, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता तथा श्री अनुराग कुमार सिंह, प्रतिवादी - सी.बी.आई. के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन प्रस्तुत वर्तमान आवेदन द्वारा आवेदकों ने विद्वान विशेष न्यायाधीश, सी.बी.आई.-प्रथम, लखनऊ द्वारा सत्र वाद संख्या 341/2022 में दिनांक 28.07.2023 को पारित आदेश की वैधता को चुनौती दी है, जो आर.सी. संख्या 053202150002 से उत्पन्न हुआ है, जो धारा 120-ख भारतीय दंड संहिता की धारा 409, 418, 419, 420, 467, 468, 471, 477(क) के साथ पठित तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2), धारा 13(1)(घ) के साथ पठित, पुलिस थाना सी.बी.आई. एस.सी.बी., लखनऊ के अधीन है, जिसके द्वारा उनके उन्मोचन आवेदन को खारिज कर दिया गया है।

3. संक्षेप में, वाद के तथ्य यह हैं कि दिनांक 03.02.2021 को - (1) कमाल अहसान और (2) राजेश कुमार के विरुद्ध एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, जिसमें यह कहा गया था कि कमाल अहसान एक्सिस बैंक के कर्मचारी थे और SHIATS (सैम हिग्गिनबॉटम इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नोलॉजी एंड साइंसेज) नामक संस्था के बैंक खाते को संभालते थे, और उन्होंने सह-अभियुक्त राजेश कुमार, जो SHIATS में लेखाकार थे, के साथ मिलकर रु.22,39,64,118/- का कपटपूर्ण लेनदेन किया था। सह-अभियुक्त कमाल अहसान जनवरी 2017 से निलंबन के अधीन थे। प्रथम सूचना रिपोर्ट में अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 409, 418, 419, 420, 467, 468, 471, 477-क के अधीन अपराधों के किए जाने का आरोप लगाया गया है।

4. विवेचना के पश्चात् सी.बी.आई. ने दिनांक 30.12.2021 को 26 व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप-पत्र प्रस्तुत किया, जिनमें आवेदक भी सम्मिलित थे, जो एक्सिस बैंक में प्रबंधकीय पदों पर नियुक्त थे।

5. विद्वान विचारण न्यायालय ने दिनांक 08.03.2022 के आदेश द्वारा वाद का संज्ञान लिया था और आवेदकों को धारा 120-ख भारतीय दंड संहिता की धारा 409, 418, 419, 420, 467, 468, 471, 477(क) के साथ पठित तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2), धारा 13(1)(घ) के साथ पठित, पुलिस थाना सी.बी.आई./एस.सी.बी. लखनऊ के अधीन अपराधों के लिए समन किया था।

6. आवेदकों ने उपरोक्त दिनांक 08.03.2022 के आदेश की वैधता को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन आवेदन संख्या 2071/2023 दाखिल करके चुनौती दी थी, जिसका निस्तारण इस न्यायालय द्वारा दिनांक 28.02.2023 को पारित आदेश द्वारा यह टिप्पणी करते हुए किया गया था कि दिनांक 08.03.2022 के आदेश को पारित करने के समय भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के संदर्भ में कोई अभियोजन स्वीकृति नहीं थी और दिनांक 08.03.2022 का आदेश विधि में त्रुटिपूर्ण था। इस न्यायालय ने दिनांक 08.03.2022 के आदेश को अपास्त किया और विद्वान विचारण न्यायालय को विधि के सख्त अनुपालन में नवीन आदेश पारित करने का निर्देश दिया।

7. उपरोक्त दिनांक 28.02.2023 के आदेश के पारित होने के पश्चात्, एक्सिस बैंक, मुंबई के अध्यक्ष एवं मुख्य कॉर्पोरेट मामलों के प्रमुख द्वारा जारी दिनांक 02.02.2022 का आदेश विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया, जिसमें कहा गया है कि आवेदकों सहित 20 व्यक्तियों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की पुष्टि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन अभिलिखित कथनों और वाद की विवेचना के दौरान एकत्रित दस्तावेजों द्वारा की गई है। दस्तावेजों और साक्षियों के कथनों की सावधानीपूर्वक जांच और अवलोकन के पश्चात् यह पाया गया है कि आवेदकों सहित 20 व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख, धारा 409, 418, 419, 420, 467, 468, 471, 477(क) के साथ पठित तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2), धारा 13(1)(घ) के साथ पठित और उसके मूल अपराध के अधीन अपराध बनते हैं।

8. स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी ने यह कहना जारी रखा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन साक्षियों के कथनों की प्रतियों, दस्तावेजों और उसके समक्ष रखी गई अन्य सामग्री का पूर्ण और सावधानीपूर्वक परीक्षण करने के पश्चात् तथा उक्त आरोपों और वाद की परिस्थितियों के संबंध में अपने मन को उचित रूप से लगाने के बाद, यह विचार किया कि आवेदकों और अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख, धारा 409, 418, 419, 420, 467, 468, 471, 477(क) के साथ पठित तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1998 की धारा 13(2), धारा 13(1)(घ) के साथ पठित और उसके मूल अपराध के अधीन अपराध बनते हैं और इसलिए प्राधिकारी ने आवेदकों और अन्य व्यक्तियों के अभियोजन के लिए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19 के अधीन 'उक्त अपराधों के लिए और उक्त कृत्यों के संबंध में विधि के किसी

अन्य उपबंध के अधीन दंडनीय किसी अन्य अपराध (अपराधों) के लिए तथा सक्षम अधिकारिता के न्यायालय द्वारा उक्त अपराधों का संज्ञान लेने के लिए' स्वीकृति प्रदान की है।

9 .आवेदकों ने इस आधार पर उन्मोचन के लिए आवेदन दाखिल किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन कोई अभियोजन स्वीकृति प्रदान नहीं की गई है और यह केवल भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 के अधीन प्रदान की गई थी।

10 विद्वान विचारण न्यायालय ने आक्षेपित दिनांक 28.07.2023 के आदेश द्वारा उन्मोचन आवेदन को यह धारित करते हुए खारिज कर दिया है कि आवेदकों ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन स्वीकृति की अनुपस्थिति के आधार पर अपना उन्मोचन मांगा है, जबकि पत्र पुस्तक पर ग्यारह पृष्ठों तक चलने वाला विस्तृत स्वीकृति आदेश उपलब्ध है, जिसके अवलोकन से यह स्थापित होता है कि स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी ने भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख, धारा 409, 418, 419, 420, 467, 468, 471, 477-क के साथ पठित तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1998 की धारा 13(2), धारा 13(1)(घ) के साथ पठित के अधीन अपराधों के लिए स्वीकृति प्रदान की है, जिसके लिए वह सक्षम प्राधिकारी था। विद्वान विचारण न्यायालय ने यह भी धारित किया है कि स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी ने अपने स्वतंत्र मन को लगाकर स्वीकृति प्रदान की है और स्वीकृति आदेश आरोप-पत्र का मात्र पुनरुत्पादन नहीं है।

11. प्रारंभ में इस आवेदन को इस न्यायालय द्वारा दिनांक 12.12.2023 को पारित निर्णय और आदेश द्वारा अनुज्ञात कर दिया गया था, जो आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के साथ-साथ प्रतिवादी - सी.बी.आई. के विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुतियों को सुनने के पश्चात् किया गया था, जिन्होंने अपनी प्रस्तुतियां प्रस्तुत की थीं और जिन्होंने प्रत्युत्तर शपथ-पत्र दाखिल करने का अवसर नहीं मांगा था और ठीक भी था, क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन आवेदन का निर्णय करते समय, इस न्यायालय ने केवल अभियोजन पक्ष को ही ध्यान में रखा था और यह किसी तथ्य के प्रश्न में नहीं गया था। इस न्यायालय ने यह धारित किया था कि अभियोजन स्वीकृति आदेश वाद के तथ्यों और लागू विधि पर मन के अनुप्रयोग न होने के दोष से ग्रस्त है, जो दिनांक 02.02.2023 के स्वीकृति आदेश के साथ-साथ विचारण न्यायालय द्वारा उन्मोचन आवेदन को खारिज करते हुए पारित दिनांक 28.07.2023 के आदेश को दूषित करता है। प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने यह अनुरोध किया था कि अभियोजन को आवेदकों के अभियोजन के लिए नवीन स्वीकृति प्राप्त करने की स्वतंत्रता प्रदान की जाए, जिस अनुरोध को स्वीकार कर लिया गया और अभियोजन को एक माह की अवधि के भीतर नवीन स्वीकृति आदेश मांगने की स्वतंत्रता प्रदान की गई। स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी को उसके पश्चात् एक माह की अवधि के भीतर विधि के सख्त अनुपालन में नवीन आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया।

12. सी.बी.आई. ने मा0 उच्चतम न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका (दां.) संख्या 9233/2024 दाखिल की, जिसमें इस न्यायालय द्वारा दिनांक 12.12.2023 को पारित आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई कि आदेश पर्याप्त समय दिए बिना और सी.बी.आई. को सहायक दस्तावेजों के साथ प्रत्युत्तर शपथ-पत्र दाखिल करने

का अवसर दिए बिना पारित किया गया था। विशेष अनुमति याचिका को दिनांक 22.11.2024 के आदेश द्वारा अनुज्ञात कर दिया गया है और मामले को सी.बी.आई. द्वारा अपना प्रत्युत्तर शपथ-पत्र दाखिल करने के पश्चात् पुनः निर्णय के लिए प्रतिप्रेषित किया गया है।

13. जब सी.बी.आई. ने प्रत्युत्तर शपथ-पत्र दाखिल करने के अवसर के लिए अनुरोध नहीं किया था जब यह आवेदन दिनांक 12.12.2023 को पूर्व में सुना और निर्णीत किया गया था, तो यह इस आधार पर दिनांक 12.12.2023 के आदेश को चुनौती देना उसकी ओर से उचित नहीं था कि इस न्यायालय ने सी.बी.आई. को प्रत्युत्तर शपथ-पत्र दाखिल करने का अवसर प्रदान नहीं किया था।

14. यद्यपि सी.बी.आई. ने मा0 उच्चतम न्यायालय से सहायक दस्तावेजों के साथ प्रत्युत्तर शपथ-पत्र दाखिल करने की स्वतंत्रता मांगी थी, दिनांक 03.01.2015 को दाखिल प्रत्युत्तर शपथ-पत्र के साथ संलग्न कोई दस्तावेज नहीं है, मा0 उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 22.11.2024 के आदेश की एक प्रति के अतिरिक्त। प्रत्युत्तर शपथ-पत्र में **एस.के. मिगलानी बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली),** (2019) 6 एससीसी 111, **ए. श्रीनिवास रेड्डी बनाम राकेश शर्मा और अन्य,** (2023) 8 एससीसी 711**, रामसागर पंडित बनाम बिहार राज्य,** 1960 एससीसी ऑनलाइन पटना 213, **रामसागर पंडित बनाम बिहार राज्य**, 1962 एससीसी ऑनलाइन एससी 101, **महाराष्ट्र राज्य बनाम महेश जी. जैन,** (2013) 8 एससीसी 119, **विनोद कुमार गर्ग बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली**), (2020) 2 एससीसी 88, **मध्य प्रदेश राज्य बनाम विरेंद्र कुमार त्रिपाठी**, (2009) 15 एससीसी 533, **प्रकाश सिंह बादल बनाम पंजाब राज्य**, (2007) 1 एससीसी 1, **दिनेश कुमार बनाम एयरपोर्ट अथॉरिटी ऑफ इंडिया**, (2012) 1 एससीसी 532 और **सी.एस. कृष्णमूर्ति बनाम कर्नाटक राज्य**, (2005) 4 एससीसी 81 के मामलों में निर्णयों का संदर्भ दिया गया है।

15. यह उल्लेख करना समीचीन है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली का अध्याय चतुर्थ "शपथ-पत्र और शपथ आयुक्त" से संबंधित है। उपरोक्त अध्याय का नियम 8 निम्नानुसार उपबंधित करता है:-

"8. न्यायालय में दाखिल या प्रस्तुत किए गए शपथ-पत्र:- अध्याय नौवें के नियम 5, 6 और 11 के उपबंध, जहां तक हो सके, न्यायालय में दाखिल या प्रस्तुत किए गए शपथ-पत्र पर लागू होंगे। यह न्यायालय की भाषा में होगा और इस पर सामान्य शीर्षक होगा:

"इलाहाबाद उच्च न्यायालय में।"

शपथ-पत्र और उससे संलग्न प्रत्येक प्रदर्श पर उस वाद या कार्यवाही का विवरण अंकित किया जाएगा जिसमें इसे शपथबद्ध किया गया है।

शपथ-पत्र में कोई ऐसा कथन नहीं होगा जो राय या तर्क की अभिव्यक्ति की प्रकृति का हो।"

16. सी.बी.आई. द्वारा दाखिल प्रत्युत्तर शपथ-पत्र में तथ्य का कोई ऐसा कथन नहीं है जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन आवेदन का निर्णय करने के लिए संगत होगा। बल्कि इसमें दंड प्रक्रिया संहिता की

धारा 482 के अधीन आवेदन के विरोध में तर्क निहित हैं। इस प्रकार प्रत्युत्तर शपथ-पत्र इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली के अध्याय चतुर्थ के नियम 8 के उपबंधों के विपरीत तैयार किया गया है।

17. शपथ-पत्र का सत्यापन खंड यह पढ़ता है: *"मैं, उपर्युक्त नामित, शपथग्राही, एतद्द्वारा सत्यापित करता हूं कि इस प्रत्युत्तर शपथ-पत्र के पैराग्राफ 1 से 35 की विषयवस्तु मेरे व्यक्तिगत ज्ञान और विश्वास के अनुसार सत्य है। इसका कोई भाग असत्य नहीं है और इसमें कोई भी महत्वपूर्ण बात छिपाई नहीं गई है। ईश्वर मेरी सहायता करे।"*

18. इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली के अध्याय चतुर्थ में आने वाला नियम 12 निम्नानुसार उपबंधित करता है:-

"12. तथ्य शपथग्राही के ज्ञान में होने चाहिए या स्रोत बताया जाना चाहिए:- अंतरिम आवेदनों को छोड़कर, एक शपथ-पत्र ऐसे तथ्यों तक सीमित होगा जिन्हें शपथग्राही अपने स्वयं के ज्ञान से सिद्ध करने में सक्षम है।

एक अंतरिम आवेदन पर जब कोई विशेष तथ्य शपथग्राही के स्वयं के ज्ञान में नहीं है, लेकिन उसके विश्वास या अन्य से प्राप्त सूचना पर आधारित है जिसे वह सत्य मानता है, तो शपथग्राही को अभिव्यक्ति "मुझे सूचित किया गया है और मैं सचमुच विश्वास करता हूं कि ऐसी सूचना सत्य है," या उस आशय के शब्दों का उपयोग करना चाहिए, और पहचान के उद्देश्य से उस व्यक्ति या व्यक्तियों का पर्याप्त रूप से वर्णन करना चाहिए जिनसे उसकी सूचना प्राप्त हुई थी।

जब किसी दस्तावेज से प्राप्त सूचना के आधार पर कोई तथ्य कहा जाता है, तो उस दस्तावेज का पूर्ण विवरण दिया जाना चाहिए और शपथग्राही को सत्यापित करना चाहिए कि वह ऐसी सूचना को सत्य मानता है।"

19. प्रत्युत्तर शपथ-पत्र किसी अंतरिम आवेदन के विरुद्ध आपत्तियों के रूप में दाखिल नहीं किया गया है और, इसलिए, इसमें शपथग्राही के स्वयं के ज्ञान के भीतर कथन होने चाहिए थे। शपथग्राही ने प्रत्युत्तर शपथ-पत्र की संपूर्ण विषयवस्तु को *"मेरे व्यक्तिगत ज्ञान और विश्वास के अनुसार सत्य"* सत्यापित किया है बिना यह विनिर्दिष्ट किए कि प्रत्युत्तर शपथ-पत्र का कौन सा भाग उसके ज्ञान के अनुसार सत्य है और कौन सा भाग उसके द्वारा सत्य माना जाता है, और शपथग्राही ने अपने ज्ञान के स्रोत को प्रकट नहीं किया है जिस पर वे कथन आधारित हैं जिन्हें वह सत्य मानता है।

20. न्यायालय के नियमों का पालन सभी द्वारा किया जाना अपेक्षित है, लेकिन जब कोई विशेषीकृत अभियोजन एजेंसी वादी हो, तो यह अपेक्षित है कि एजेंसी निश्चित रूप से नियमों का पालन करेगी। सी.बी.आई. द्वारा अपने प्रत्युत्तर शपथ-पत्र की तैयारी में इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली के उपबंधों के उल्लंघन की सराहना नहीं की जा सकती। तथापि, न्यायालयों को न्याय के वितरण के दो मूल सिद्धांतों के अनुप्रयोग में न्यायसंगत संतुलन स्थापित करना होता है - पहला सिद्धांत यह है कि जहां विधि किसी कार्य को करने के लिए कोई तरीका निर्धारित करती है, वह कार्य केवल उसी तरीके से किया जाना है या बिल्कुल नहीं, दूसरा सिद्धांत यह है कि प्रक्रिया न्याय की सहायिका है। वर्तमान मामले में, सी.बी.आई. को इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली

के उपबंधों के अनुसार नवीन शपथ-पत्र दाखिल करने का निर्देश देने से वाद के निस्तारण में अनुचित विलंब होगा और, इसलिए, मैं प्रत्युत्तर शपथ-पत्र में दोषों को अनदेखा करने के लिए आगे बढ़ता हूं और न्याय के हित में मैं अपने प्रत्युत्तर में सी.बी.आई. द्वारा उठाए गए तर्कों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ता हूं।

21. श्री रिशाद मुर्तजा, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अभियोजन के लिए स्वीकृति भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 के अधीन मांगी गई थी और स्वीकृति प्रदान करने वाला प्राधिकारी केवल भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध के लिए ही स्वीकृति प्रदान कर सकता था और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 के अधीन अभियोजन के लिए स्वीकृति प्रदान करते समय स्वीकृति प्रदान करने वाला प्राधिकारी दंड संहिता की विभिन्न धाराओं के अधीन अपराधों के अभियोजन के लिए स्वीकृति प्रदान नहीं कर सकता था। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि दंड संहिता के अधीन अपराधों के लिए स्वीकृति प्रदान करने के अतिरिक्त, स्वीकृति प्रदान करने वाला प्राधिकारी किसी अन्य विधि के अधीन किसी अन्य अपराध की स्वीकृति प्रदान करने की सीमा तक भी आगे बढ़ गया है, जिसके संबंध में न तो कोई स्वीकृति मांगी गई थी और न ही अधिकारी के पास स्वीकृति देने की कोई शक्ति थी।

22. श्री मुर्तजा ने **ए. श्रीनिवास रेड्डी बनाम राकेश शर्मा और अन्य**, (2023) 8 एससीसी 711 और **कर्नाटक राज्य बनाम अमीरजान**: (2007) 11 एससीसी 273 के मामले में मा0 शीर्ष न्यायालय के निर्णयों पर भी भरोसा किया है।

23. इसके विपरीत, श्री अनुराग कुमार सिंह, प्रतिवादी-सी.बी.आई. के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी ने अपने स्वतंत्र मन को लगाकर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराधों के लिए स्वीकृति प्रदान की है। श्री सिंह के अनुसार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध के अतिरिक्त दंड संहिता के अधीन अपराध का मात्र उल्लेख स्वीकृति आदेश की वैधता को प्रभावित नहीं करेगा जहां तक यह भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराधों से संबंधित है।

24. **एस.के. मिगलानी बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली)**, (2019) 6 एससीसी 111 में, अपीलकर्ता एक राष्ट्रीयकृत बैंक में प्रबंधक था जिसे सरकार की स्वीकृति के बिना उसके पद से हटाया जा सकता था और, इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 अपीलकर्ता के संबंध में आकर्षित नहीं होती थी।

25. **ए. श्रीनिवास रेड्डी बनाम राकेश शर्मा**, (2023) 8 एससीसी 711 में, मा0 उच्चतम न्यायालय ने यह धारित किया कि:-

"49. यह उल्लेख करना समीचीन है कि बैंकिंग क्षेत्र भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा शासित होने और संविधान के अनुच्छेद 12 के अधीन राज्य के एक अंग के रूप में माना जाने तथा बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46-क के आधार पर, यहां अपीलकर्ता को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के उपबंधों के प्रयोजन के लिए "लोक सेवक" समझा जाता है। तथापि, यही बात भारतीय दंड संहिता तक विस्तारित नहीं की जा सकती।

एक क्षण के लिए यह मान लेने पर कि यहां अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की स्वीकृति के लिए भी "लोक सेवक" माना जाना चाहिए, धारा 197 दं.प्र.संहिता के अधीन उपलब्ध संरक्षण यहां अपीलकर्ता के लिए उपलब्ध नहीं है क्योंकि धारा 197 दं.प्र.संहिता के अधीन अंतर्निर्मित शर्तें पूरी नहीं होती हैं।"

26. **रामसागर पंडित बनाम बिहार राज्य**: 1960 एससीसी ऑनलाइन पटना 213 में पुलिस अधीक्षक ने सरकार को एक पत्र भेजा था जिसमें भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 6 और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन अपीलकर्ता के भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(2) और (3) के अधीन अभियोजन के लिए स्वीकृति का अनुरोध किया गया था। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5 के खंड (2), खंड (3) के साथ पठित के अधीन अपराधों के लिए स्वीकृति प्रदान की गई थी। विचारण न्यायालय ने उसे दोषी पाया और दोषसिद्ध किया। दोषसिद्धि आदेश को अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि अधिनियम संख्या II, 1947 की धारा 5(2) और (3) के अधीन अपीलकर्ता के अभियोजन के लिए स्वीकृति मांगी गई थी और वास्तव में बिहार सरकार ने धारा 5 के खंड (2), खंड (3) के साथ पठित के अधीन अपीलकर्ता के अभियोजन के लिए स्वीकृति दी थी। यद्यपि आपराधिक दुराचरण का गठन करने वाले तथ्य स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी के समक्ष थे, लेकिन प्राधिकारी ने स्वीकृति को धारा 5 के खंड (2), खंड (3) के साथ पठित के अधीन अपराध तक सीमित कर दिया और उप-धारा (1) के विभिन्न खंडों में विनिर्दिष्ट आपराधिक दुराचरण के संबंध में अभियोजन के लिए स्वीकृति नहीं दी और इस प्रकार स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी ने धारा 5 की उप-धारा (I) के अधीन आपराधिक दुराचरण का गठन करने वाले आरोप के संबंध में अभियोजन के लिए स्वीकृति देने से इनकार कर दिया। विवाद को खारिज करते हुए, पटना उच्च न्यायालय ने यह धारित किया कि:-

"43. इन मामलों में प्रतिपादित सिद्धांतों को देखते हुए, स्वीकृति के प्रभाव को निर्धारित करने के लिए वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करना होगा। पुलिस अधीक्षक ने निस्संदेह अपने पत्र में आरोप लगाया था कि अपीलकर्ता ने अनुचित पक्षपात दिखाया, भ्रष्ट या अवैध साधनों से धन प्राप्त किया और एक फर्म के स्वामी से अवैध परितोषण के रूप में रु. 400/- की राशि प्राप्त की और ये तथ्य स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखे गए थे। यह सत्य है कि स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी ने स्वीकृति प्रदान करते समय खंड (3) का उल्लेख किया, लेकिन चूंकि उप-धारा (3) कोई पृथक अपराध सृजित नहीं करती है, इसे अधिशेष समझा जाना चाहिए।

45. स्वीकृति में उप-धारा (1) के एक खंड या दूसरे खंड का उल्लेख करना बिल्कुल भी आवश्यक नहीं था। इसलिए, मैं अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस विवाद को खारिज करूंगा कि स्वीकृति का प्रभाव अपीलकर्ता द्वारा किए गए अपराध को केवल धारा 5 के खंड (3) के अधीन तक सीमित करना था। मेरी राय में, स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी ने धारा 5 की उप-धारा (2) के अधीन अपराध के संबंध में अपीलकर्ता के अभियोजन के लिए स्वीकृति दी थी और तैयार किया गया आरोप किसी भी तरह से अवैध नहीं है, या जो स्वीकृत किया गया था उससे अधिक नहीं है। आरोप वास्तव में आपराधिक दुराचरण के लिए था जिसमें अवैध परितोषण की अभ्यासिक स्वीकृति सम्मिलित थी। अपीलकर्ता को कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ क्योंकि वह आरोपित दुराचरण से

अवगत था और उसने काफी लंबा लिखित कथन दाखिल किया। उसने आरोपों का खंडन करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत किया और उससे महत्वपूर्ण तथ्यों के बारे में प्रश्न किए गए।"

27. उपरोक्त निर्णय की पुष्टि करते हुए, **रामसागर पंडित बनाम बिहार राज्य**, 1962 एससीसी ऑनलाइन एससी 101 में, मा0 उच्चतम न्यायालय ने यह धारित किया कि:-

"11. ... वर्तमान मामले में दुराचरण के अपराध का गठन करने वाले सभी तथ्य जिसके साथ अपीलकर्ता पर आरोप लगाया गया था, सरकार के समक्ष रखे गए थे। दूसरा सिद्धांत, अर्थात् तथ्यों को स्वीकृति के मुख पर संदर्भित किया जाना चाहिए और यदि वे प्रकट नहीं होते हैं, तो अभियोजन को उन्हें बाह्य साक्ष्य द्वारा सिद्ध करना चाहिए, निश्चित रूप से स्वीकृति की आवश्यकताओं के उद्देश्य को देखते हुए उचित है। वर्तमान मामले में यद्यपि स्वीकृति मुख रूप से तथ्यों को प्रकट नहीं करती है, वाद में प्रदर्शित किए गए दस्तावेज आपराधिक दुराचरण के अपराध का गठन करने वाले सभी आवश्यक संगत तथ्य देते हैं। इस न्यायालय ने बिस्वभूषण नाइक बनाम उड़ीसा राज्य [एआईआर 1954 एससी 359] में हमारे समक्ष अब उठाए गए विवाद के समान एक विवाद को खारिज कर दिया। वहां अधिनियम की धारा 6 के अधीन दी गई स्वीकृति में केवल अधिनियम की धारा 5 की उप-धारा (2) का संदर्भ दिया गया था और इसमें यह विनिर्दिष्ट नहीं किया गया था कि धारा 5(1) में उल्लिखित चार अपराधों में से कौन सा अपराध अभिप्रेत था। इस न्यायालय ने समान विवाद पर टिप्पणी करते हुए यह अवलोकन किया "यह साक्ष्य से स्पष्ट था कि सरकार के समक्ष रखे गए तथ्य केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 161 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(1) के खंड (क) के अधीन अपराधों से संबंधित हो सकते थे। वे खंड (ख) या (ग) से संबंधित नहीं हो सकते थे। जब स्वीकृति को धारा 5(2) तक सीमित किया गया था तो वह, मामले की परिस्थितियों में, धारा 5 की उप-धारा (1) के खंड (क) के अलावा किसी अन्य से संबंधित नहीं हो सकती थी। इसलिए स्वीकृति में खंड (क) का उल्लेख न करना इसे अमान्य नहीं करता।"

16. इसके अलावा, अपीलीय न्यायालय दोषसिद्धि को रद्द कर सकता था यदि आरोप में दोष ने न्याय की विफलता को जन्म दिया होता लेकिन अपीलकर्ता ने न तो विशेष न्यायाधीश के समक्ष और न ही उच्च न्यायालय में इस आधार पर कोई आपत्ति उठाई कि आरोप दोषपूर्ण था और वह अपने बचाव में इस आधार पर भ्रमित हुआ था कि जिन व्यक्तियों से रिश्वत ली गई थी उनका कोई विवरण उल्लेखित नहीं था। न ही ऐसी कोई आपत्ति विशेष अनुमति याचिका में ली गई है, और न ही वाद के कथन में। यह आपत्ति पश्चात् विचार है और कार्यवाही के इस चरण में इसे उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।"

28. **रामसागर पंडित (उपर्युक्त)** का निर्णय उस मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए किया गया था जो किसी भी तरह से वर्तमान मामले के तथ्यों के समान नहीं है और, इसलिए, **रामसागर पंडित (उपर्युक्त)** का अनुपात वर्तमान मामले पर लागू नहीं होगा।

29. **सी.एस. कृष्णमूर्ति बनाम कर्नाटक राज्य** (2005) 4 एससीसी 81 में, यह धारित किया गया है कि:-

"9. ... स्वीकृति आदेश को स्वयं के लिए बोलना चाहिए और यदि तथ्य प्रकट नहीं होते हैं, तो यह साक्ष्य देकर सिद्ध किया जाना चाहिए कि मन के उचित अनुप्रयोग के लिए सभी विवरण स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखे गए थे। यदि स्वीकृति स्वयं के लिए बोलती है तो आदेश को पढ़कर स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी की संतुष्टि स्पष्ट होती है।"

30. **महाराष्ट्र राज्य बनाम महेश जी. जैन**, (2013) 8 एससीसी 119 में, मा0 उच्चतम न्यायालय ने इस बिंदु पर विभिन्न पूर्व निर्णयों का संदर्भ दिया और निम्नलिखित सिद्धांत निकाले:-

***"14.1.** यह अभियोजन पर है कि वह सिद्ध करे कि वैध स्वीकृति, स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी द्वारा यह संतुष्ट होने के पश्चात् प्रदान की गई है कि स्वीकृति के लिए मामला बनता है।*

***14.2.** स्वीकृति आदेश स्पष्ट रूप से दर्शा सकता है कि स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी ने उसके समक्ष रखी गई सामग्री का अवलोकन किया है और, परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात्, अभियोजन के लिए स्वीकृति प्रदान की है।*

***14.3.** अभियोजन साक्ष्य प्रस्तुत करके यह सिद्ध कर सकता है कि सामग्री स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखी गई थी और उसकी संतुष्टि उसके समक्ष रखी गई सामग्री के अवलोकन पर आधारित थी।*

***14.4.** स्वीकृति का प्रदान किया जाना केवल एक प्रशासनिक कार्य है और स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी को प्रथम दृष्टया यह संतुष्टि प्राप्त करना अपेक्षित है कि संगत तथ्य अपराध का गठन करेंगे।*

***14.5.** स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखी गई सामग्री की पर्याप्तता की जांच न्यायालय द्वारा नहीं की जा सकती क्योंकि वह स्वीकृति आदेश पर अपील में नहीं बैठता है।*

***14.6.** यदि स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी ने उसके समक्ष रखी गई सभी सामग्रियों का अवलोकन किया है और उनमें से कुछ सिद्ध नहीं की गई हैं तो वह स्वीकृति के आदेश को दूषित नहीं करेगा।*

14.7. स्वीकृति का आदेश एक पूर्वापेक्षा है क्योंकि यह एक लोक सेवक को तुच्छ और कष्टकारी वादकारियों के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने के लिए अभिप्रेत है, लेकिन साथ ही स्वीकृति के आदेश की व्याख्या पांडित्यपूर्ण तरीके से नहीं की जानी चाहिए और इसकी वैधता की जांच के लिए अति-तकनीकी दृष्टिकोण नहीं होना चाहिए।"

(महत्व सनन्विष्ट)

31. **विनोद कुमार गर्ग बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली)**, (2020) 2 एससीसी 88 में, उच्चतम न्यायालय ने **महेश जी. जैन** (उपर्युक्त) में निकाले गए उपरोक्त सिद्धांतों को अनुमोदन के साथ उद्धृत किया और आगे यह धारित किया कि:-

"28. ...जहां वाद का संज्ञान पहले ही ले लिया गया है और वाद समापन तक आगे बढ़ा है, पूर्ववर्ती विवेचना की अमान्यता परिणाम को दूषित नहीं करती है, जब तक कि इसके द्वारा न्याय की विफलता नहीं हुई हो। स्वीकृति की वैधता के संबंध में भी यही स्थिति है। स्वीकृति में मात्र त्रुटि, लोप या अनियमितता को घातक नहीं माना जाता है जब तक कि इससे न्याय की विफलता न हुई हो या इसके द्वारा जन्म न दिया गया हो। अधिनियम की धारा 19(1) प्रक्रिया का विषय है और अधिकारिता की जड़ तक नहीं जाती है और एक बार संहिता के अधीन

न्यायालय द्वारा संज्ञान ले लिया जाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि एक अवैध पुलिस रिपोर्ट संज्ञान लेने और उस मामले के लिए विचारण की अधिकारिता की न्यायालय की नींव है।"

32. **मध्य प्रदेश राज्य बनाम विरेंद्र कुमार त्रिपाठी**, (2009) 15 एससीसी 533 में, दोषसिद्धि आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि सरकार के विधि विभाग ने संबंधित विभाग की सलाह लिए बिना अभियोजन के लिए स्वीकृति प्रदान की थी। उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या सलाह की अनुपस्थिति स्वीकृति को निष्प्रभावी बनाती है। उच्चतम न्यायालय ने यह धारित किया कि:-

"8 ...निस्संदेह स्वीकृति विधि और विधायी मामलों के विभाग द्वारा दी गई है। राज्य सरकार ने अभियोजन की स्वीकृति प्रदान की थी। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, विधि और विधायी मामलों के विभाग के अपर सचिव द्वारा राज्य के राज्यपाल के नाम पर स्वीकृति प्रदान की गई थी। सलाह अधिकतम एक अंतर-विभागीय मामला है।

9. *इसके अलावा, उच्च न्यायालय अधिनियम की धारा 19(3) के प्रभाव पर विचार करने में विफल रहा है। उक्त उपबंध यह स्पष्ट करता है कि विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित कोई भी निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश, अपील के न्यायालय द्वारा धारा 19 की उप-धारा (1) के अधीन अपेक्षित स्वीकृति की अनुपस्थिति/या किसी त्रुटि, लोप या अनियमितता के आधार पर उलटा या बदला नहीं जाएगा, जब तक कि न्यायालय की राय में वास्तव में इससे न्याय की विफलता नहीं हुई हो।*

10. *तत्काल मामले में न्याय की किसी विफलता के बारे में एक फुसफुसाहट या याचिका भी नहीं थी। जिस चरण पर इस विफलता को स्थापित किया जाना था वह अभी तक पहुंचना था क्योंकि मामला आरोप के प्रारूपण के चरण पर है कि क्या वास्तव में विफलता हुई है या नहीं यह निर्धारित किया जाना था एक बार विचारण शुरू हुआ और साक्ष्य प्रस्तुत किया गया। इस संबंध में इस न्यायालय के राज्य बनाम टी. वेंकटेश मूर्ति [(2004) 7 एससीसी 763 : 2004 एससीसी (दां.) 2140] और प्रकाश सिंह बादल बनाम पंजाब राज्य [(2007) 1 एससीसी 1 : (2007) 1 एससीसी (दां.) 193] में निर्णयों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। ऐसा होने के कारण, कार्यवाही को रद्द करने वाला उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण पोषणीय नहीं है और राज्य की अपील अनुज्ञात किए जाने योग्य है जिसे हम निर्देशित करते हैं।"*

33. **प्रकाश सिंह बादल बनाम पंजाब राज्य, (2007)** 1 एससीसी 1 में, मा0 उच्चतम न्यायालय ने यह धारित किया कि *"स्वीकृति की अनुपस्थिता और मन के अनुप्रयोग न होने के कारण कथित अमान्यता के बीच अंतर है। पूर्व प्रश्न को प्रारंभ में ही उठाया जा सकता है लेकिन उत्तरार्द्ध एक ऐसा प्रश्न है जिसे विचारण के दौरान उठाया जाना है।"*

34. **दिनेश कुमार बनाम एयरपोर्ट अथॉरिटी ऑफ इंडिया**, (2012) 1 एससीसी 532 में, मा0 उच्चतम न्यायालय ने **प्रकाश सिंह बादल** (उपर्युक्त) में निर्णय का अनुसरण किया और यह धारित किया कि:-

"10. हमारे विचार में, स्वीकृति की अमान्यता, जहां स्वीकृति आदेश विद्यमान है, विभिन्न आधारों पर उठाई जा सकती है जैसे स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी के समक्ष सामग्री की अनुपलब्धता या स्वीकृति प्रदान

करने वाले प्राधिकारी का पूर्वाग्रह या स्वीकृति का आदेश किसी ऐसे प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया हो जो ऐसी स्वीकृति प्रदान करने के लिए प्राधिकृत या सक्षम नहीं था। उपरोक्त आधार केवल उदाहरणात्मक हैं और संपूर्ण नहीं हैं। स्वीकृति की अमान्यता या अवैधता के ऐसे सभी आधार उसी श्रेणी में आएंगे जैसे मन के अनुप्रयोग न होने के कारण स्वीकृति की अमान्यता का आधार–एक श्रेणी जो इस न्यायालय द्वारा प्रकाश सिंह बादल में निर्मित की गई है, जिसे विचारण के दौरान हमेशा उठाया जा सकता है।

11. *एक बाद के निर्णय में, अमीरजान [(2007) 11 एससीसी 273] में, इस न्यायालय को प्रकाश सिंह बादल [(2007) 1 एससीसी 1] में इस न्यायालय के निर्णय सहित इस न्यायालय के पूर्व निर्णयों पर विचार करने का अवसर मिला। अमीरजान एक ऐसा मामला था जहां विचारण न्यायाधीश ने, स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी के साक्ष्य सहित संपूर्ण साक्ष्य पर विचार करने पर, यह धारित किया कि अभियुक्त अमीरजान भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 और 13(1)(घ), धारा 13(2) के साथ पठित के अधीन दंडनीय अपराधों के किए जाने का दोषी है। तथापि, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय को पलट दिया और यह धारित किया कि स्वीकृति का आदेश अवैध था और दोषसिद्धि का निर्णय पोषणीय नहीं हो सकता।*

12. *मामले की स्थिति से निपटने में जिसमें उच्च न्यायालय ने स्वीकृति आदेश की अमान्यता के आधार पर अभियुक्त की दोषसिद्धि के निर्णय को उलट दिया, प्रकाश सिंह बादल के संदर्भ में, इस न्यायालय ने अमीरजान में रिपोर्ट के पैरा 17 में निम्नानुसार कहा:*

"17. इसलिए प्रकाश सिंह बादल, इस प्रस्ताव के लिए एक प्राधिकरण नहीं है कि जब स्वीकृति का आदेश पूर्ण रूप से अमान्य माना जाता है तो भी अन्य बातों के साथ इस आधार पर कि आदेश पूर्ण मन के अनुप्रयोग न होने के दोष से ग्रस्त होने के कारण एक शून्य है। इसलिए, हम इस राय के हैं कि उक्त निर्णय का तत्काल मामले में कोई अनुप्रयोग नहीं हो सकता।"

13*. हमारे विचार में, वर्तमान मामले के तथ्यों को देखते हुए, अब चूंकि विचारण न्यायाधीश द्वारा अपीलकर्ता के विरुद्ध पहले ही संज्ञान ले लिया गया है, यह नहीं कहा जा सकता कि उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा विचार के लिए स्वीकृति की वैधता के प्रश्न को खुला छोड़ने और अपीलकर्ता को विचारण के दौरान स्वीकृति आदेश की वैधता से संबंधित मुद्दे को उठाने की स्वतंत्रता देने में त्रुटि की है। ऐसा मार्ग इस न्यायालय के प्रकाश सिंह बादल में निर्णय के अनुरूप है और अनुचित नहीं है।"*

35. तथापि, **कर्नाटक राज्य बनाम अमीरजान**: (2007) 11 एससीसी 273 में, मा0 उच्चतम न्यायालय ने यह धारित किया कि:-

"9. हम सहमत हैं कि स्वीकृति के आदेश की व्याख्या पांडित्यपूर्ण तरीके से नहीं की जानी चाहिए। लेकिन, यह भी सुस्थापित है कि जिस उद्देश्य के लिए स्वीकृति का आदेश पारित किए जाने की आवश्यकता है उसे हमेशा ध्यान में रखा जाना चाहिए। सामान्यतः, स्वीकृति प्रदान करने वाला प्राधिकारी यह निर्णय लेने के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति है कि क्या संबंधित लोक सेवक को उसके अभियोजन के लिए स्वीकृति देने से इनकार करके अधिनियम के अधीन संरक्षण प्राप्त करना चाहिए या नहीं।

16. प्रकाश सिंह बादल [(2007) 1 एससीसी 1] में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए उठने वाला प्रश्न यह था कि क्या एक अभियुक्त के संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के संदर्भ में स्वीकृति का आदेश

पारित किया जाना अपेक्षित है जो लोक सेवक नहीं रह गया है। यह उस संदर्भ में था कि इस न्यायालय के समक्ष एक प्रश्न उठा कि क्या पद के रंग के अधीन किया गया कथित कृत्य अधिकारी के लाभ के लिए है या उसके अपने सुख के लिए। इस प्रश्न के संदर्भ में कि क्या संबंधित लोक सेवक को निरंतर संरक्षण प्राप्त करना चाहिए, यह राय व्यक्त की गई: (एससीसी पृ. 25, पैरा 29)

"29. धारा 19 की उप-धारा (3) और (4) के प्रभाव काफी महत्वपूर्ण हैं। उप-धारा (3) में 'न्याय की विफलता' पर बल है और वह भी 'न्यायालय की राय में'। उप-धारा (4) में, उपयुक्त समय पर याचिका उठाने पर बल है। महत्वपूर्ण रूप से, 'न्याय की विफलता' स्वीकृति में त्रुटि, लोप या अनियमितता से संबंधित है। इसलिए, स्वीकृति में मात्र त्रुटि, लोप या अनियमितता को घातक नहीं माना जाता है जब तक कि इससे न्याय की विफलता न हुई हो या इसके द्वारा जन्म न दिया गया हो। धारा 19(1) प्रक्रिया का विषय है और नरसिम्हा राव मामले [पी.वी. नरसिम्हा राव बनाम राज्य (सी.बी.आई./एस.पी.ई.), (1998) 4 एससीसी 626 : 1998 एससीसी (दां.) 1108] के पैरा 95 में अवलोकित अनुसार अधिकारिता की जड़ तक नहीं जाती है। धारा 19 की उप-धारा (3)(ग) निषेध की कठोरता को कम करती है। पुराने अधिनियम [अधिनियम की धारा 19(2)] की धारा 6(2) में प्रश्न स्वीकृति प्रदान करने के लिए प्राधिकार की शंका से संबंधित है न कि यह कि क्या स्वीकृति आवश्यक है।"

17. इसलिए प्रकाश सिंह बादल, इस प्रस्ताव के लिए एक प्राधिकरण नहीं है कि जब स्वीकृति का आदेश पूर्ण रूप से अमान्य माना जाता है तो भी अन्य बातों के साथ इस आधार पर कि आदेश पूर्ण मन के अनुप्रयोग न होने के दोष से ग्रस्त होने के कारण एक शून्य है। इसलिए, हम इस राय के हैं कि उक्त निर्णय का तत्काल मामले में कोई अनुप्रयोग नहीं हो सकता।

18. हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि संकरन मोइत्रा बनाम साधना दास [(2006) 4 एससीसी 584] में बहुमत ने, यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के संदर्भ में, यह राय व्यक्त की:

"22. शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि संहिता की धारा 197(1) के अधीन स्वीकृति की कमी ने आगे बढ़ने के लिए न्यायालय की अधिकारिता को प्रभावित नहीं किया, लेकिन यह केवल अभियुक्त के लिए उपलब्ध बचावों में से एक था और अभियुक्त उपयुक्त समय पर बचाव उठा सकता है। हम इस प्रस्तुति को स्वीकार करने की स्थिति में नहीं हैं। धारा 197(1), इसके प्रारंभिक शब्द और इसके द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य, और इस न्यायालय के पूर्व उद्धृत निर्णय, स्पष्ट रूप से यह संकेत करते हैं कि उस उपबंध से प्रभावित अभियोजन को संकल्पित स्वीकृति के बिना प्रारंभ नहीं किया जा सकता। यह एक पूर्व शर्त है, ***जैसे कि, एक लोक सेवक के सफल अभियोजन के लिए जब उपबंध आकर्षित होता है, यद्यपि प्रश्न आवश्यक रूप से प्रारंभ में नहीं, बल्कि बाद के चरण में भी उठ सकता है। इसलिए हम इस प्रश्न पर निर्णय को स्थगित करने के अनुरोध को स्वीकार नहीं कर सकते।"***

(महत्व सनन्विष्ट)

36. **सी.एस. कृष्णमूर्ति बनाम कर्नाटक राज्य,** (2005) 4 एससीसी 81 में, यह धारित किया गया था कि:-

"9. ... अनुपात यह है कि स्वीकृति आदेश को स्वयं के लिए बोलना चाहिए और यदि तथ्य प्रकट नहीं होते हैं, तो यह साक्ष्य देकर सिद्ध किया जाना चाहिए कि मन के उचित अनुप्रयोग के लिए सभी विवरण स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखे गए थे। यदि स्वीकृति स्वयं के लिए बोलती है तो आदेश को पढ़कर स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी की संतुष्टि स्पष्ट होती है। वर्तमान मामले में, स्वीकृति आदेश स्वयं के

लिए बोलता है कि पदधारी को अपने ज्ञात आय स्रोत के अनुपातहीन संपत्तियों के लिए लेखा देना है। यह स्वयं स्वीकृति आदेश में निहित है। इससे अधिक, जैसा कि बताया गया है, स्वीकृति प्रदान करने वाला प्राधिकारी साक्षी बॉक्स में साक्षी 40 के रूप में आया है और उसने अपने मन के अनुप्रयोग के बारे में और पुलिस अधीक्षक, सी.बी.आई. की रिपोर्ट से गुजरने के पश्चात् और अपने विधि विभाग के साथ मामले पर चर्चा करने के पश्चात्, उसने स्वीकृति प्रदान की है, के बारे में बयान दिया है। यह ऐसा मामला नहीं है कि वर्तमान मामले में स्वीकृति की कमी है। अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा लिया गया दृष्टिकोण सही नहीं है और उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लिया गया दृष्टिकोण न्यायसंगत है।"

37. **सी.एस. कृष्णमूर्ति** (उपर्युक्त) का निर्णय भी मामले के विशेष तथ्यों को ध्यान में रखते हुए किया गया था कि स्वीकृति आदेश एक बोलता हुआ आदेश था और स्वीकृति प्रदान करने वाला प्राधिकारी साक्षी बॉक्स में आया था और उसने अपने मन के अनुप्रयोग के बारे में और पुलिस अधीक्षक, सी.बी.आई. की रिपोर्ट से गुजरने के पश्चात् और अपने विधि विभाग के साथ मामले पर चर्चा करने के पश्चात्, उसने स्वीकृति प्रदान की थी, के बारे में बयान दिया था, जो तथ्य किसी भी तरह से तत्काल मामले के तथ्यों के समान नहीं हैं और, इसलिए, **सी.एस. कृष्णमूर्ति** (उपर्युक्त) में प्रतिपादित अनुपात वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा।

38. प्रत्युत्तर शपथ-पत्र में उल्लिखित उपरोक्त मामलों के अतिरिक्त, सी.बी.आई. के विद्वान अधिवक्ता ने **गिरीश कुमार सुनेजा बनाम सी.बी.आई**.: (2017) 14 एससीसी 809 और **सी.बी.आई. बनाम अशोक कुमार अग्रवाल**: (2014) 14 एससीसी 295 के मामलों में निर्णयों पर भी भरोसा किया है।

39. **गिरीश कुमार सुनेजा** (उपर्युक्त) में, मा0 उच्चतम न्यायालय ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19(3)(ग) की व्याख्या की। अधिनियम की धारा 19 निम्नानुसार पढ़ती है:-

***"19. अभियोजन के लिए पूर्व स्वीकृति आवश्यक**–(1) कोई भी न्यायालय एक लोक सेवक द्वारा किए गए आरोपित धारा 7, 10, 11, 13 और 15 के अधीन दंडनीय अपराध का संज्ञान नहीं लेगा, पूर्व स्वीकृति के बिना, लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013 में अन्यथा उपबंधित के अतिरिक्त–*

(क) किसी ऐसे व्यक्ति के मामले में जो संघ के मामलों के संबंध में नियोजित है और जो केंद्र सरकार की या केंद्र सरकार की स्वीकृति से अतिरिक्त अपने पद से हटाया जा सकता है, उस सरकार की;

(ख) किसी ऐसे व्यक्ति के मामले में जो किसी राज्य के मामलों के संबंध में नियोजित है और जो राज्य सरकार की या राज्य सरकार की स्वीकृति से अतिरिक्त अपने पद से हटाया जा सकता है, उस सरकार की;

(ग) किसी अन्य व्यक्ति के मामले में, उसे अपने पद से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी की।

(2) जहां किसी भी कारण से कोई संदेह उत्पन्न होता है कि क्या उप-धारा (1) के अधीन अपेक्षित पूर्व स्वीकृति केंद्र सरकार या राज्य सरकार या किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा दी जानी चाहिए, ऐसी स्वीकृति उस सरकार या प्राधिकारी द्वारा दी जाएगी जो उस समय जब अपराध किया गया आरोपित किया गया था, लोक सेवक को उसके पद से हटाने के लिए सक्षम होती।

(3) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में निहित किसी बात के होते हुए भी–

(क) विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित कोई भी निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश, अपील, पुष्टि या पुनरीक्षण में न्यायालय द्वारा उप-धारा (1) के अधीन अपेक्षित स्वीकृति की अनुपस्थिति, या किसी त्रुटि, लोप या अनियमितता के आधार पर उलटा या बदला नहीं जाएगा, जब तक कि उस न्यायालय की राय में, वास्तव में इससे न्याय की विफलता नहीं हुई हो;

(ख) कोई भी न्यायालय प्राधिकारी द्वारा प्रदान की गई स्वीकृति में किसी त्रुटि, लोप या अनियमितता के आधार पर इस अधिनियम के अधीन कार्यवाही को स्थगित नहीं करेगा, जब तक कि वह संतुष्ट न हो कि ऐसी त्रुटि, लोप या अनियमितता से न्याय की विफलता हुई है;

(ग) कोई भी न्यायालय किसी अन्य आधार पर इस अधिनियम के अधीन कार्यवाही को स्थगित नहीं करेगा और कोई भी न्यायालय किसी जांच, विचारण, अपील या अन्य कार्यवाही में पारित किसी अंतरिम आदेश के संबंध में पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग नहीं करेगा।

(4) उप-धारा (3) के अधीन यह निर्धारित करने में कि क्या ऐसी स्वीकृति की अनुपस्थिति, या किसी त्रुटि, लोप या अनियमितता ने न्याय की विफलता को जन्म दिया है या परिणामस्वरूप हुई है, न्यायालय इस तथ्य को ध्यान में रखेगा कि क्या आपत्ति कार्यवाही के किसी पूर्व चरण में उठाई जा सकती थी और उठाई जानी चाहिए थी।

स्पष्टीकरण।–इस धारा के प्रयोजनों के लिए–

(क) त्रुटि में स्वीकृति प्रदान करने के लिए प्राधिकारी की क्षमता सम्मिलित है;

(ख) अभियोजन के लिए अपेक्षित स्वीकृति में यह आवश्यकता सम्मिलित है कि अभियोजन किसी विनिर्दिष्ट प्राधिकारी के उदाहरण पर हो या किसी विनिर्दिष्ट व्यक्ति की स्वीकृति से हो या समान प्रकृति की कोई आवश्यकता।"

मा0 उच्चतम न्यायालय ने यह धारित किया कि:-

*"**66**. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 की उप-धारा (4) भी इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है क्योंकि न्याय की विफलता के परिणामस्वरूप स्वीकृति में त्रुटि, लोप या अनियमितता को चुनौती देने में समय का व्यतीत होना काफी महत्वपूर्ण है। जब तक विचारण के प्रारंभिक चरणों में और उचित समय की अवधि के भीतर चुनौती नहीं दी जाती है, न्यायालय अभियोजन के लिए स्वीकृति की अनुपस्थिति, या किसी त्रुटि, लोप या अनियमितता पर विचार करने के लिए बाध्य नहीं होगा। इसलिए, यह ऐसा नहीं है कि अभियुक्त अनुचित विलंब के पश्चात् स्वीकृति के बारे में कोई मुद्दा उठा सकता है; लेकिन यदि वह अभियुक्त ऐसा करता है, तो न्यायालय उस मुद्दे का निर्णय अपीलीय चरण पर के साथ-साथ कार्यवाही के स्थगन के प्रयोजनों के लिए नहीं कर सकता है।*

***77.** "न्याय की विफलता" का आरोप एक बहुत मजबूत आरोप है और समान रूप से मजबूत अभिव्यक्ति का उपयोग है और न्याय के गर्भपात या विधि के उल्लंघन या प्रक्रिया में अनियमितता के बराबर नहीं हो सकता है–यह बहुत अधिक है। यदि अभिव्यक्ति को सामान्य बोलचाल में समझा जाना है, तो परिणाम यह होगा कि शायद ही कभी कोई विचारण निष्कर्ष तक पहुंचेगा क्योंकि किसी भी चरण पर अनियमितता हो सकती है, अस्वीकार्य साक्ष्य गलती से स्वीकार किया जा सकता है, स्थगन गलत तरीके से अस्वीकार किया जा सकता है, आदि। निष्कर्ष निकालने के लिए, इसलिए, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19(3)(ग) को बहुत प्रतिबंधित*

व्याख्या दी जानी चाहिए और हम अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत अति-व्यापक व्याख्या को स्वीकार नहीं कर सकते।"

40. **सी.बी.आई. बनाम अशोक कुमार अग्रवाल** (उपर्युक्त) में, यह धारित किया गया था कि:-

"14. यह ध्यान में रखा जाना है कि स्वीकृति अभियोजन के लिए बाधा को हटाती है। इसलिए, यह एक विवादास्पद अभ्यास नहीं है बल्कि एक गंभीर और पवित्र कृत्य है जो सरकारी सेवक को तुच्छ अभियोजन के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करता है। इसके अलावा, यह कष्टकारी अभियोजन को हतोत्साहित करने का एक हथियार है और निर्दोष के लिए एक सुरक्षा है, यद्यपि दोषी के लिए एक ढाल नहीं।

15. सामग्री का विचार मन के अनुप्रयोग का अर्थ है। इसलिए, स्वीकृति के आदेश को मुख रूप से यह प्रकट करना चाहिए कि स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी ने उसके समक्ष रखे गए साक्ष्य और अन्य सामग्री पर विचार किया था। *प्रत्येक व्यक्तिगत मामले में, अभियोजन को यह स्थापित करना और न्यायालय को साक्ष्य देकर संतुष्ट करना होता है कि वे तथ्य स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखे गए थे और प्राधिकारी ने उस पर अपना मन लगाया था। यदि स्वीकृति आदेश मुख रूप से यह इंगित करता है कि सभी संगत सामग्री अर्थात् प्रथम सूचना रिपोर्ट, प्रकटीकरण कथन, बरामदगी ज्ञापन, आरोप-पत्र का प्रारूप और अभिलेख पर अन्य सामग्री स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखी गई थी और यदि यह स्वीकृति आदेश के पाठ से आगे विवेचनीय है कि स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी ने सभी सामग्री का अवलोकन किया था, तो एक अनुमान लगाया जा सकता है कि स्वीकृति विधि के अनुसार प्रदान की गई थी। यह आवश्यक हो जाता है यदि न्यायालय को स्वीकृति के आदेश की वैधता की जांच करनी है अन्य बातों के साथ इस आधार पर कि आदेश पूर्ण मन के अनुप्रयोग न होने के दोष से ग्रस्त है। (देखें गोकुलचंद द्वारकादास मोरारका बनाम आर. [एआईआर 1948 पीसी 82]; जसवंत सिंह बनाम पंजाब राज्य [एआईआर 1958 एससी 124], मोहम्मद इकबाल अहमद बनाम आंध्र प्रदेश राज्य [(1979) 4 एससीसी 172], राज्य बनाम कृष्णचंद खुशालचंद जगतियानी [(1996) 4 एससीसी 472], पंजाब राज्य बनाम मोहम्मद इकबाल भट्टी [(2009) 17 एससीसी 92], सत्यवीर सिंह राठी, एसीपी बनाम राज्य [(2011) 6 एससीसी 1] और महाराष्ट्र राज्य बनाम महेश जी. जैन [(2013) 8 एससीसी 119])*

16. *उपरोक्त के दृष्टिगत, विधिक प्रस्तावों को निम्नानुसार संक्षेपित किया जा सकता है:*

16.1. *अभियोजन को स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी को प्रथम सूचना रिपोर्ट, प्रकटीकरण कथन, साक्षियों के कथन, बरामदगी ज्ञापन, आरोप-पत्र का प्रारूप और सभी अन्य संगत सामग्री सहित संपूर्ण संगत अभिलेख भेजना चाहिए। इस प्रकार भेजे गए अभिलेख में वह सामग्री/दस्तावेज भी होना चाहिए, यदि कोई हो, जो संतुलन को अभियुक्त के पक्ष में झुका सकता है और जिसके आधार पर, सक्षम प्राधिकारी स्वीकृति से इनकार कर सकता है।*

16.2. प्राधिकारी को स्वयं संपूर्ण अभिलेख की पूर्ण और सचेत जांच करनी होती है जो अभियोजन द्वारा स्वतंत्र रूप से अपने मन को लगाते हुए और स्वीकृति देने या रोकने का अपना कर्तव्य निर्वहन करते समय सभी संगत तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत की गई है।

16.3. स्वीकृति प्रदान करने की शक्ति का प्रयोग सख्ती से सार्वजनिक हित और अभियुक्त को उपलब्ध संरक्षण को ध्यान में रखते हुए किया जाना है जिसके विरुद्ध स्वीकृति मांगी गई है।

16.4. स्वीकृति के आदेश को यह स्पष्ट करना चाहिए कि प्राधिकारी सभी संगत तथ्यों/सामग्रियों से अवगत था और उसने सभी संगत सामग्री पर अपना मन लगाया था।

16.5. *प्रत्येक व्यक्तिगत मामले में, अभियोजन को यह स्थापित करना और न्यायालय को साक्ष्य देकर संतुष्ट करना होता है कि संपूर्ण संगत तथ्य स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखे गए थे और प्राधिकारी ने उस पर अपना मन लगाया था और स्वीकृति विधि के अनुसार प्रदान की गई थी।*

58. *यहां शामिल सबसे संगत मुद्दा यह है कि स्वीकृति आदेश की वैधता किस चरण पर उठाई जा सकती है। यह मुद्दा अब न्यायिक विचार से परे नहीं है। दिनेश कुमार बनाम एयरपोर्ट अथॉरिटी ऑफ इंडिया में इस न्यायालय ने मुद्दे से निपटा और प्रकाश सिंह बादल बनाम पंजाब राज्य में निर्णय पर भरोसा करते हुए, निम्नानुसार निष्कर्ष पर पहुंचा: (दिनेश कुमार मामला, एससीसी पैरा 13)*

"13. हमारे विचार में, वर्तमान मामले के तथ्यों को देखते हुए, अब चूंकि विचारण न्यायाधीश द्वारा अपीलकर्ता के विरुद्ध पहले ही संज्ञान ले लिया गया है, यह नहीं कहा जा सकता कि उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा विचार के लिए स्वीकृति की वैधता के प्रश्न को खुला छोड़ने और अपीलकर्ता को विचारण के दौरान स्वीकृति आदेश की वैधता से संबंधित मुद्दे को उठाने की स्वतंत्रता देने में त्रुटि की है। ऐसा मार्ग इस न्यायालय के प्रकाश सिंह बादल में निर्णय के अनुरूप है ...।"

(महत्व समन्विष्ट)

59. *निस्संदेह, स्वीकृति की वैधता की जांच का चरण विचारण के दौरान है और हम यह कहने का प्रस्ताव नहीं करते हैं कि वैधता की जांच जांच या विचारण-पूर्व चरण के दौरान की जानी चाहिए।"*

41. आवेदक एक्सिस बैंक में काम कर रहे थे, जो एक राष्ट्रीयकृत बैंक भी नहीं है, और यह विवादित नहीं है कि आवेदक ऐसे पद पर नहीं थे जहां उन्हें सरकार की स्वीकृति के बिना या सरकार की स्वीकृति से अतिरिक्त सेवा से नहीं हटाया जा सकता था। इस दृष्टिकोण में धारा 197 के उपबंध आवेदकों के मामले पर आकर्षित नहीं होते हैं। एक्सिस बैंक, मुंबई के अध्यक्ष एवं मुख्य कॉर्पोरेट मामलों के प्रमुख द्वारा जारी दिनांक 02.02.2022 का अभियोजन स्वीकृति आदेश, यह बताता है कि आवेदकों सहित 20 व्यक्तियों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की पुष्टि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन अभिलिखित कथनों और वाद की विवेचना के दौरान एकत्रित दस्तावेजों द्वारा की गई है। दस्तावेजों और साक्षियों के कथनों की सावधानीपूर्वक जांच और अवलोकन के पश्चात् यह पाया गया है कि आवेदकों सहित 20 व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख, धारा 409, 418, 419, 420, 467, 468, 471, 477(क) के साथ पठित तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2), धारा 13(1)(घ) के साथ पठित और उसके मूल अपराध के अधीन अपराध बनते हैं। स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी ने यह कहना जारी रखा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन साक्षियों के कथनों की प्रतियों, दस्तावेजों और उसके समक्ष रखी गई अन्य सामग्री का पूर्ण और सावधानीपूर्वक परीक्षण करने के पश्चात् तथा उक्त आरोपों और वाद की परिस्थितियों के संबंध में अपने मन को उचित रूप से लगाने के बाद, यह विचार किया कि आवेदकों और अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख, धारा 409, 418, 419, 420, 467, 468, 471, 477(क) के साथ पठित तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1998 की धारा 13(2), धारा 13(1)(घ) के

साथ पठित और उसके मूल अपराध के अधीन अपराध बनते हैं और इसलिए प्राधिकारी ने आवेदकों और अन्य व्यक्तियों के अभियोजन के लिए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19 के अधीन 'उक्त अपराधों के लिए और उक्त कृत्यों के संबंध में विधि के किसी अन्य उपबंध के अधीन दंडनीय किसी अन्य अपराध (अपराधों) के लिए तथा सक्षम अधिकारिता के न्यायालय द्वारा उक्त अपराधों का संज्ञान लेने के लिए' स्वीकृति प्रदान की है।

42. विद्वान विचारण न्यायालय ने इस कारण से उन्मोचन आवेदन को खारिज कर दिया है कि स्वीकृति आदेश बहुत विस्तृत है और यह ग्यारह पृष्ठों में चलता है जो यह दर्शाता है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख, धारा 409, 418, 419, 420, 467, 468, 471, 477(क) के साथ पठित तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1998 की धारा 13(2), धारा 13(1)(घ) के साथ पठित के अधीन अभियोजन के लिए स्वीकृति उस प्राधिकारी द्वारा प्रदान की गई है जो उपरोक्त अपराधों के अभियोजन के लिए स्वीकृति प्रदान करने के लिए सक्षम था।

43. उपरोक्त कारण को अभिलिखित करते समय, विद्वान विचारण न्यायालय यह समझने में विफल रहा कि न तो दंड संहिता के अधीन अपराधों के अभियोजन के लिए आवेदकों के लिए कोई स्वीकृति मांगी गई थी और न ही प्राधिकारी दंड संहिता के अधीन अपराधों के अभियोजन के लिए स्वीकृति प्रदान करने के लिए सक्षम था। "उक्त अपराधों के लिए और उक्त कृत्यों के संबंध में विधि के किसी अन्य उपबंध के अधीन दंडनीय किसी अन्य अपराध (अपराधों) के लिए" अभियोजन की स्वीकृति, जिसके लिए कोई स्वीकृति प्राप्त नहीं की गई थी, वाद के तथ्यों और लागू विधि पर मन के पूर्ण अनुप्रयोग न होने को इंगित करती है। यह इंगित करता है कि स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी ने मात्र रबर स्टाम्प के रूप में कार्य किया है। स्वीकृति प्रदान करने वाले प्राधिकारी द्वारा मन का अनुप्रयोग न होना दिनांक 02.02.2023 के स्वीकृति आदेश के साथ-साथ विचारण न्यायालय द्वारा उन्मोचन आवेदन को खारिज करते हुए पारित दिनांक 28.07.2023 के आदेश को दूषित करता है।

44. संगत तथ्यों और वाद की परिस्थितियों तथा अभिलेख पर सामग्री पर मन के उचित अनुप्रयोग के पश्चात् स्वीकृति का आदेश एक लोक सेवक के अभियोजन के लिए एक पूर्वापेक्षा है, क्योंकि यह एक लोक सेवक को तुच्छ और कष्टकारी वादकारियों के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने के लिए अभिप्रेत है। इस सुरक्षा को आकस्मिक और यांत्रिक तरीके से नहीं निपटाया जा सकता है।

45. उपरोक्त विचार-विमर्श के दृष्टिगत, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन आवेदन **अनुज्ञात (अनुमत)** होता है। दिनांक 02.02.2023 का स्वीकृति आदेश और विद्वान विशेष न्यायाधीश, सी.बी.आई.-प्रथम, लखनऊ द्वारा सत्र वाद संख्या 341/2022 में दिनांक 28.07.2023 को पारित आदेश, जो आर.सी. संख्या 053202150002 से उत्पन्न हुआ है, जो धारा 120-ख भारतीय दंड संहिता की धारा 409, 418, 419, 420, 467, 468, 471, 477(क) के साथ पठित तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2), धारा 13(1)(घ) के साथ पठित, पुलिस थाना सी.बी.आई. एस.सी.बी., लखनऊ के अधीन है, जिसके द्वारा उनके उन्मोचन आवेदन को खारिज कर दिया गया है, रद्द किए जाते हैं और आवेदकों के उन्मोचन आवेदन को दिनांक 02.02.2023 के स्वीकृति आदेश में उपरोक्त दोष के लिए अनुज्ञात किया जाता है।

(2025) 5 ILRA 1865

पुनरीक्षणाधिकारिता आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अवनीश सक्सेना

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या- 3355 सन् 2018

चन्द्रधर गौड़ ...पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता: श्री आलोक रंजन मिश्रा, श्रीमती अमृता राय मिश्रा, श्री गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएँ 345, 346, 352 एवं 195 – भारतीय दंड संहिता, 1860 – धाराएँ 188 एवं 228

न्यायालय की विवेचना:

- न्यायालय के समक्ष अवमानना – अधीनस्थ आपराधिक न्यायालयों की शक्ति का क्षेत्र।
- धारा 345 Cr.P.C. की प्रक्रिया – विशेष POCSO न्यायाधीश द्वारा विवेचना अधिकारी को न्यायिक आदेश की अवज्ञा हेतु दोषसिद्धि।
- निर्णय: धारा 188 IPC के अंतर्गत दोषसिद्धि, धारा 345 एवं 195 Cr.P.C. की प्रक्रिया का पालन किए बिना, अवैध है।
- अपराध न्यायालय के समक्ष या उसकी उपस्थिति में नहीं किया गया था।
- अवर न्यायालय ने अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर कार्य किया।
- दोषसिद्धि एवं दंड निरस्त। (अनुच्छेद 18, 20, 24, 25, 27 एवं 28)

न्यायालय की टिप्पणियाँ

धारा 345 Cr.P.C. का स्पष्ट पठन: यह धारा तब लागू होती है जब IPC की धारा 175, 178, 179, 180 या 228 के अंतर्गत अपराध न्यायालय के समक्ष या उसकी उपस्थिति में किया जाता है।

वर्तमान मामले में:

- कथित अपराध न्यायालय के समक्ष या उसकी उपस्थिति में नहीं किया गया।
- शो-कॉज नोटिस केवल यह दर्शाता है कि न्यायालय ने विवेचना के दौरान दिए गए आदेश की अवज्ञा पर कार्यवाही प्रारंभ की। (अनुच्छेद 18)

अनुवादित

न्यायालय का निष्कर्ष:

- कार्यवाही धारा 345 Cr.P.C. के अंतर्गत नहीं, बल्कि केवल धारा 188 IPC के अंतर्गत की गई।
- धारा 346 Cr.P.C. कहती है कि यदि न्यायालय धारा 345 Cr.P.C. के अंतर्गत मामला निपटाने योग्य न पाए तो उसे सक्षम मजिस्ट्रेट को भेजना चाहिए।
- धारा 352 Cr.P.C. ने उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को छोड़कर अन्य आपराधिक न्यायालयों से अवमानना की शक्ति हटा दी है। (अनुच्छेद 20)

गंभीर चिंताएँ:

- 19 सितम्बर 2018 को संज्ञान लिया गया और 20 सितम्बर 2018 को दोषसिद्धि एवं दंडादेश पारित कर दिया गया।
- एक ही दिन में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया।
- पुनरीक्षणकर्ता/अभियुक्त को अपना पक्ष रखने का उचित अवसर नहीं दिया गया।
- न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि कथित अवज्ञा मानव जीवन, स्वास्थ्य या सुरक्षा के लिए खतरा है और छह माह का कठोर दंड एवं ₹1000 का जुर्माना दिया, जिसका कोई तार्किक आधार नहीं था। (अनुच्छेद 24)

अहिलमद एवं कोर्ट मोहरिर की रिपोर्ट:

- रिकॉर्ड मौन है कि इन अधिकारियों को विवेचना अधिकारी के विरुद्ध रिपोर्ट प्रस्तुत करने का अधिकार कैसे था।
- ऐसी रिपोर्ट को धारा 195 Cr.P.C. के अंतर्गत 'शिकायत' नहीं माना जा सकता।
- आदेश समयबद्ध था या नहीं, इस पर भी निर्णय मौन है।

धारा 188 IPC के अंतर्गत आरोप तय नहीं किया गया।

- आरोप तय किए बिना कार्यवाही, दोषसिद्धि एवं दंड विधिक रूप से पोषणीय नहीं हैं। (अनुच्छेद 27)

अतः, पुनरीक्षण स्वीकृत किया जाता है। (E-14)

उद्धृत वाद

1. चिनुभाई केशवलाल नानावटी बनाम के.जे. मेहता, [1978 Cr.L.J.1040 (DB) 447]
2. सी. मुनियप्पन एवं अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य, AIR 2010 SC 3718
3. एम.एस. अहलावत बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, (2001) 1 SCC 278
4. सी.आर. राजेशकरण बनाम न्यायिक मजिस्ट्रेट, नागपट्टिनम, 2003 SCC OnLine Mad 128
5. एस. राजनिकांत बनाम टी.सी. थिरुमगल, 2011 SCC OnLine Mad 793
6. मध्यप्रदेश राज्य बनाम रेवाशंकर, AIR 1959 SC 102

(माननीय न्यायमूर्ति अवनीश सक्सेना द्वारा प्रदत्त)

1. यह पुनरीक्षण धारा 397 सहपठित धारा 401 दं०प्र०सं० के अंतर्गत पुनरीक्षणकर्ता/अभियुक्त-चन्द्रधर गौड़ (मुकदमा अपराध संख्या 508/2018 जो धारा 354 भा०द०सं० तथा यौन अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 *(पाक्सो) की धाराओं 7, 8 के अंतर्गत पुलिस थाना-छाता, जिला मथुरा में पंजीकृत है, के विवेचना अधिकारी)* द्वारा, दिनांक 20 सितम्बर, 2018 को विशेष न्यायाधीश *(पाक्सो अधिनियम),* मथुरा के न्यायालय द्वारा दाण्डिक प्रकीर्ण वाद संख्या 429/2018 में पारित दोषसिद्धि तथा दण्डादेश के अधिनिर्णय से व्यथित होकर प्राथमिकृत की गई है, जिसके द्वारा धारा 345 दं०प्र०सं० का आह्वान करते हुए पुनरीक्षणकर्ता/अभियुक्त को धारा 188 भा०द०सं० के अंतर्गत दोषसिद्ध किया तथा छह मास के कारावास के साथ-साथ 1000 रुपये के जुर्माने तथा जुर्माना अदा न करने पर 10 दिन के सादा कारावास का दण्ड दिया।

<u>अपील या पुनरीक्षण :-</u>

2. यद्यपि धारा 351 दं०प्र०सं० अन्य बातों के साथ-साथ धारा 345 दं०प्र०सं० के अंतर्गत अभिलिखित दोषसिद्धि के लिए अपील का उपचार प्रदान करती है, किन्तु पुनरीक्षण प्राथमिकृत की गई है, क्योंकि विद्वान अवर न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्ता/अभियुक्त को धारा 188 भा०द०सं० के अंतर्गत एक अपराध के लिए दोषसिद्ध तथा दण्डित किया है, जो धारा 345 दं०प्र०सं० के अंतर्गत प्रदत्त नहीं है, इसलिए कार्यवाही की शुद्धता, वैधता तथा नियमितता, अवर न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों की औचित्यता को अपील के स्थान पर पुनरीक्षण में चुनौती दी गई है। गुजरात उच्च न्यायालय की खण्डपीठ ने ***चिनुभाई केशवलाल नानावती बनाम के०जे०मेहता*** [1978 क्रि.एल.जे. 1040 (डीबी) 447] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि अन्यायपूर्ण दोषसिद्धि के मामले में, दाण्डिक न्यायालय में अपील या पुनरीक्षण में जाना कार्रवाई का सही तरीका है। इसलिए, यह पुनरीक्षण।

3. वर्तमान मामले में प्रवेश करने से पूर्व, इसके उद्गम पर विचार करना समीचीन होगा, जो मुकदमा अपराध संख्या 508/2018, थाना छाता, जिला मथुरा से उत्पन्न हुआ।

<u>मुकदमा अपराध संख्या 508/2018 का अभियोजन पक्ष का मामला :-</u>

4. सूचनकर्ता - देवकी नन्दन ने दिनांक 28 अगस्त, 2018 को 11:51 बजे थाना छाता, जिला मथुरा में धारा 354 भा०द०सं० तथा पाक्सो अधिनियम की धाराओं 7, 8 के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई, जो अपराध उसकी बड़ी पुत्री 'X' के साथ अभियुक्त ईश्वर दयाल द्वारा दिनांक 7 जुलाई, 2018 को 16:00 बजे नगला धर्मपुर रोड, थाना छाता, जिला मथुरा पर किया गया था, जब सूचनकर्ता की बड़ी पुत्री जिसकी आयु लगभग 10 वर्ष थी, अपनी छोटी बहन जिसकी आयु लगभग 3 वर्ष थी, के साथ शौच के लिए गई, उस समय अभियुक्त जिसकी आयु लगभग 40 वर्ष थी, वहां पहुंचा और पीड़िता को 10 रुपये दिये तथा उसे 10 रुपये लेने के लिए अपने निवास पर आने का प्रलोभन दिया। जब पीड़िता ने 10 रुपये स्वीकार करने से इंकार किया, तो अभियुक्त ने उसके गाल पकड़ लिए और अपने कपड़े उतार कर अश्लील कृत्य करने लगा। इस समय, सूचनकर्ता की माता-श्रीमती सुमित्रा, पत्नी-शिमला, राम स्वरूप का पुत्र सुन्दर तथा पप्पू का पुत्र मनो, सभी निवासी खैरा, थाना

छाता, जिला मथुरा वहां आये, घटना देखी और पीड़िता को बचाया। मामले की विवेचना उप-निरीक्षक-विपिन शर्मा को सौंपी गई, जैसा कि उपरोक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट (अनुलग्नक-3 के रूप में संलग्न) से प्रकट होता है।

दाण्डिक प्रकीर्ण वाद संख्या 429/2018 (राज्य बनाम चन्द्रधर गौड़) का उद्गम :-

5. आक्षेपित अधिनिर्णय से यह प्रकट होता है कि पीठासीन विशेष न्यायाधीश, पाक्सो अधिनियम ने कुछ निर्देश जारी किये थे कि कौन विवेचना अधिकारी होगा तथा मामले की विवेचना के सम्बन्ध में आगे के निर्देश, जिनका कथित रूप से विवेचना अधिकारी द्वारा अनुपालन नहीं किया गया। विशेष न्यायाधीश द्वारा जारी एक निर्देश के कारण न्यायालय के अहलमद श्री नागेन्द्र तथा न्यायालय मुहर्रिर श्री भरत सिंह द्वारा दिनांक 19 सितम्बर, 2018 को पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध रिपोर्ट दायर की गई कि उन्होंने न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों का अनुपालन नहीं किया है। अतः, दिनांक 19 सितम्बर, 2018 को धारा 345 दं०प्र०सं० सहपठित धाराओं 228 तथा 188 भा०द०सं० के अंतर्गत प्रकीर्ण वाद संख्या 429/2018 का पंजीकरण हुआ। उसी दिन, उक्त मामले के पंजीकरण के पश्चात्, पुनरीक्षणकर्ता को दिनांक 20 सितम्बर, 2018 के लिए उत्तर प्रस्तुत करने हेतु कारण बताओ नोटिस जारी किया गया। आक्षेपित अधिनिर्णय से यह प्रकट होता है कि उत्तर दाखिल नहीं किया गया और पुनरीक्षणकर्ता की अनुपस्थिति में दोषसिद्धि अभिलिखित की गई, जिसे तदनुसार दण्डित किया गया।

6. चूंकि आक्षेपित अधिनिर्णय से चर्चा के बाद के चरण में निपटा जा रहा है, अतः इस शीर्ष के अंतर्गत इस पर विचार नहीं किया गया है।

<u>पुनरीक्षणकर्ता द्वारा लिया गया आधार :-</u>

7. पुनरीक्षणकर्ता ने दोषसिद्धि तथा दण्डादेश के अधिनिर्णय तथा आदेश को चुनौती देते हुए अन्य बातों के साथ-साथ यह आधार लिए हैं कि पीड़िता का कथन धारा 164 दं०प्र०सं० के अंतर्गत दिनांक 20 सितम्बर, 2018 को अपर सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ प्रभाग), न्यायालय संख्या 8, मथुरा द्वारा अभिलिखित कराया गया और उसके द्वारा पुलिस कर्मियों के विरुद्ध कोई आरोप नहीं लगाया गया है; आक्षेपित अधिनिर्णय अवैध है, विधि के विपरीत है तथा दं०प्र०सं० के प्रावधानों के विरुद्ध है; पुनरीक्षणकर्ता ने मामले की उचित विवेचना की है तथा सम्बन्धित न्यायालय के सभी आदेशों का अनुपालन किया है; दोषसिद्धि का आक्षेपित अधिनिर्णय तथा आदेश धारा 345 दं०प्र०सं० सहपठित धाराओं 228 तथा 188 भा०द०सं० के अंतर्गत अपराध का संज्ञान लेने के पश्चात् धारा 352 दं०प्र०सं० के प्रावधान के उल्लंघन में किया गया है; धारा 195 दं०प्र०सं० को दृष्टिगत रखते हुए सम्बन्धित न्यायालय को अपने स्वयं के प्राधिकार के अवमान में किसी व्यक्ति को दण्डित करने के लिए मामले के साथ आगे बढ़ने का अधिकार क्षेत्र प्राप्त नहीं है; जिस मामले में पुनरीक्षणकर्ता को दोषसिद्ध तथा दण्डित किया गया है, उसके अभिलेख में पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध कोई सामग्री नहीं है, जिसके आधार पर आक्षेपित अधिनिर्णय पारित किया गया है; आक्षेपित अधिनिर्णय तथा आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में पारित किया गया है; दोषसिद्धि का अधिनिर्णय तथा तत्पश्चात् दण्ड पुनरीक्षणकर्ता की अनुपस्थिति में, सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना किया गया है; विवेचना के दौरान पारित आदेश प्रक्रिया तथा अधिकार क्षेत्र की वैधता की कसौटी पर खरे नहीं उतरते; तथा सम्बन्धित न्यायालय ने सदाशयता की अनुपस्थिति में आक्षेपित

अधिनिर्णय पारित किया है, क्योंकि दिनांक 17 सितम्बर, 2018 की अधिसूचना द्वारा पीठासीन न्यायाधीश का सम्बन्धित न्यायालय से स्थानांतरण कर दिया गया था और दिनांक 20 सितम्बर, 2018 को प्रभार छोड़ने से पूर्व, शीघ्रता में आक्षेपित अधिनिर्णय पारित कर दिया। अतः, यह प्रार्थना की गई है कि आक्षेपित अधिनिर्णय तथा दण्डादेश का आदेश अपास्त किये जाने योग्य है।

<u>पक्षकारों के तर्क:-</u>

8. श्री जी०एस० चतुर्वेदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता जिन्हें श्री आलोक रंजन, पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा सहायता प्रदान की गई, ने लिखित प्रस्तुतीकरण के अतिरिक्त यह प्रस्तुत किया है कि आक्षेपित अधिनिर्णय तथा आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध पारित किया गया है; दं०प्र०सं० के प्रावधान, विशेषकर धारा 352 दं०प्र०सं० के विरुद्ध; धारा 345 दं०प्र०सं० का गलत आह्वान करते हुए; पुनरीक्षणकर्ता को धारा 188 भा०द०सं० के अंतर्गत दोषसिद्ध किया, न्यायालय के अवमान के लिए दण्डित करने की आड़ में, जो उच्च न्यायालय का विशेष अधिकार क्षेत्र है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान न्यायालय ने दुर्भावनापूर्ण कार्य किया है, क्योंकि दाण्डिक प्रकीर्ण मामला दिनांक 19 सितम्बर, 2018 को पंजीकृत किया गया, कारण बताओ नोटिस उसी दिन रात्रि के दौरान पुनरीक्षणकर्ता को दिनांक 20 सितम्बर, 2018 के लिए भेजा गया, पुनरीक्षणकर्ता का स्पष्टीकरण मांगा गया तथा साक्ष्य प्रस्तुत किए बिना, मामले के प्रारम्भ के अगले ही दिन दोषसिद्धि का आदेश अभिलिखित कर दिया गया। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि पुनरीक्षणकर्ता को न तो स्पष्टीकरण का अवसर दिया गया और न ही धारा 313 दं०प्र०सं० के अंतर्गत उसका कथन अभिलिखित किया गया। इसके अतिरिक्त, धारा 188 भा०द०सं० का अपराध जिसमें पुनरीक्षणकर्ता को दोषसिद्ध किया गया है, मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय है। अंततः प्रस्तुत किया गया कि सम्बन्धित न्यायालय द्वारा अधिकार क्षेत्र का प्रयोग विधि की प्रक्रिया का स्पष्ट दुरुपयोग है, अतः, प्रार्थना की गई कि पुनरीक्षण स्वीकार किये जाने योग्य है। उन्होंने **सी० मुनिअप्पन एवं अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य [एआईआर 2010 एससी 3718]**, **एम०एस० अहलावत बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य [(2001) 1 एससीसी 278]**, **सी० आर० राजशेखरन बनाम न्यायिक मजिस्ट्रेट नागापट्टिनम [2003 एससीसी ऑनलाइन 128] [स्वतः संज्ञान आपराधिक पुनरीक्षण याचिका संख्या 1072 सन 1999 मे मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 19 फरवरी, 2003]** तथा **एस० रजनीकांत बनाम श्रीमती सी० थिरुमगल, विद्वान सप्तम मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, जॉर्ज टाउन, चेन्नई-6000015 [2011 एससीसी ऑनलाइन 793] [आपराधिक मूल याचिका संख्या 4003 सन 2008 मे मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक आदेश दिनांक 27 जून, 2011]** के मामलों पर निर्भरता रखी है।

9. श्री आलोक शर्मा, विद्वान सहायक सरकारी अधिवक्ता-I ने प्रस्तुत किया है कि दोषसिद्धि तथा दण्डादेश का अधिनिर्णय विद्वान न्यायालय द्वारा अभिलेख पर उपलब्ध समस्त सामग्री तथा साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात्, अपने न्यायिक विवेक को लागू करते हुए पारित किया गया है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि पाक्सो अधिनियम के न्यायाधीश को यह विचार करने का अधिकार तथा कर्तव्य प्राप्त है कि पाक्सो अधिनियम के मामलों में विवेचना अधिकारी द्वारा विवेचना सही ढंग से की गई है या नहीं। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि जब विद्वान न्यायालय को यह ज्ञात हुआ कि पीड़िता की प्रथम सूचना रिपोर्ट थानाध्यक्ष, थाना छाता,

जिला मथुरा द्वारा पंजीकृत नहीं की गई है और विवेचना में त्रुटियां पाई गईं, तो पुलिस अधिकारी के विरुद्ध विवेचना का निर्देश दिया, जो न्यायालय द्वारा सही दिशा में नहीं की जा रही पाई गई, जिसने न्यायालय को न्याय तथा निष्पक्ष विवेचना के हित में पश्चातवर्ती आदेश पारित करने के लिए प्रेरित किया। केवल तभी न्यायालय ने यह पाया कि मामले की विवेचना के लिए विवेचना अधिकारी को दिए गए न्यायालय के विशिष्ट निर्देश का अनुपालन नहीं किया गया है, अतः, पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध मामला पंजीकृत किया गया। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान अवर न्यायालय ने यह अवलोकन किया कि कारण बताओ नोटिस भेजने के बावजूद, पुनरीक्षणकर्ता न तो उपस्थित हुआ और न ही उसका उत्तर दिया, जिसने पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध दोषसिद्धि तथा दण्डादेश के आक्षेपित अधिनिर्णय को पारित करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि पुनरीक्षण खारिज किये जाने योग्य है तथा अवर न्यायालय का आक्षेपित अधिनिर्णय पुष्ट किये जाने योग्य है।

<u>विचारणीय बिन्दु तथा चर्चा:-</u>

10. इस न्यायालय ने पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वन्द्वी प्रस्तुतीकरण को ध्यान में लिया है तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है। न्यायालय इस समय अवर न्यायालय के अभिलेख को मंगाना उचित नहीं समझता है क्योंकि इस न्यायालय ने तर्कों की समीक्षा करते समय अभिलेख की अपेक्षा करना उचित नहीं पाया, क्योंकि सभी सुसंगत अभिलेख न्यायालय के समक्ष हैं, जो पक्षकारों द्वारा दाखिल किये गये हैं।

11. वर्तमान पुनरीक्षण में विचारणीय बिन्दु निम्नलिखित हैं:-

(i) क्या विद्वान अवर न्यायालय ने धारा 345 दं०प्र०सं० का आह्वान करते हुए पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध मामले को सही ढंग से लिया है?

(ii) क्या विद्वान अवर न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध धारा 188 भा०द०सं० के अंतर्गत अपराध का संज्ञान सही ढंग से लिया है, विचारण के साथ आगे बढ़ा है तथा पुनरीक्षणकर्ता को दोषसिद्ध किया है?

12. चूंकि वर्तमान पुनरीक्षण में उत्पन्न दोनों विचारणीय बिन्दु परस्पर सम्बद्ध हैं, अतः चर्चा तथा अधिनिर्णयन के लिए एक साथ लिए गए हैं।

13. आक्षेपित अधिनिर्णय निम्नलिखित तथ्य प्रकट करता है जिनसे निपटा जाना आवश्यक है:- (ए) दिनांक 7 जुलाई, 2018, घटना की तारीख को, सूचनकर्ता कोतवाली छाता, मथुरा गया किन्तु उसकी रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई, परिणामस्वरूप, सूचनकर्ता ने दिनांक 31 जुलाई, 2018 को एस०एस०पी०, मथुरा को घटना के साथ-साथ थानाधिकारी, थाना छाता, जिला मथुरा के विरुद्ध शिकायत के बारे में आवेदन दिया।

(बी) दिनांक 23 अगस्त, 2018 को एस०एस०पी०, मथुरा के मुख्य मुहर्रिर को दिए गए निर्देश पर, मामले में धारा 354 भा०द०सं० तथा पाक्सो अधिनियम की धाराओं 7, 8 के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 508/2018 में प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत की गई, किन्तु प्रथम सूचना रिपोर्ट के पंजीकरण से पूर्व, सूचनकर्ता ने दिनांक

17 जुलाई, 2018 को शिकायत पोर्टल पर श्री प्रमोद पवार, थानाधिकारी, पुलिस थाना-छाता, जिला-मथुरा के विरुद्ध यौन अपराध की प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत न करने के लिए शिकायत दर्ज की।

(सी) दिनांक 29 अगस्त, 2018 को पाक्सो अधिनियम के विशेष न्यायालय ने पाक्सो अधिनियम की धारा 21 तथा भा०द०सं० की धारा 166-ए (अधिनियम संख्या 13/2013 द्वारा दिनांक 3 फरवरी, 2013 से प्रभावी) को दृष्टिगत रखते हुए निर्देश जारी किया कि विवेचना सम्बन्धित पुलिस थाने के थाना प्रभारी द्वारा संचालित की जाएगी, जो वर्तमान मामले से निपटने में श्री प्रमोद पवार, थानाधिकारी, थाना छाता के आचरण की भी विवेचना करेंगे।

(डी) दिनांक 12 सितम्बर, 2018 को विशेष न्यायालय, पाक्सो अधिनियम ने मुकदमा अपराध संख्या 508/2018 में प्रतिकर प्रदान करने के लिए सूचनकर्ता तथा पीड़िता को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्देश जारी किया।

(ई) दिनांक 13 सितम्बर, 2018 को पीड़िता तथा सूचनकर्ता को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया, विशेष न्यायालय द्वारा यह अवलोकित किया गया कि पीड़िता का कथन अभिलिखित नहीं किया गया है तथा विवेचना अधिकारी द्वारा धारा 161 दं०प्र०सं० के अंतर्गत अभिलिखित सूचनकर्ता का कथन सही कथन नहीं है और न्यायालय की अनुमति के बिना, सूचनकर्ता तथा पीड़िता को न्यायालय से ले जाया गया।

(एफ) दिनांक 18 सितम्बर, 2018 को विवेचना अधिकारी द्वारा पीड़िता को धारा 164 दं०प्र०सं० के अंतर्गत पीड़िता के कथन के लिए विशेष न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया, जिसे मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित करने का निर्देश दिया गया। विशेष न्यायालय ने यह भी पाया कि मुकदमा डायरी में धारा 161 दं०प्र०सं० के अंतर्गत अभिलिखित सूचनकर्ता का गलत कथन है, जिसका प्रभाव श्री प्रमोद पवार, थानाधिकारी, थाना छाता को दोषमुक्त करने का है, क्योंकि न्यायालय ने सूचनकर्ता से पूछताछ की कि उसने ऐसा कोई कथन नहीं दिया है। उसी तारीख को, विशेष न्यायालय ने विवेचना अधिकारी को अभियुक्त ईश्वर दयाल को गिरफ्तार करने तथा साक्षियों, अर्थात् सुन्दर तथा मनो के विरुद्ध धारा 195-ए भा०द०सं० के अंतर्गत अपराध के लिए विवेचना प्रारम्भ करने का निर्देश दिया कि उन्होंने मामले में समझौते के लिए सूचनकर्ता पर दबाव डाला।

(जी) दिनांक 19 सितम्बर, 2018 को विशेष न्यायालय के अहलमद श्री नरेन्द्र कुमार तथा न्यायालय के मुहर्रिर श्री भरत सिंह ने विशेष न्यायालय को आवेदन दिया कि मुकदमा अपराध संख्या 508/2018 में अभियुक्त को गिरफ्तार नहीं किया गया है तथा विवेचना अधिकारी-चन्द्रधर गौड़ (वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता), न्यायालय के आदेशों की जानबूझकर अवज्ञा कर रहे हैं। उक्त आवेदन के आधार पर, पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध धारा 345 दं०प्र०सं० सहपठित धाराओं 228 तथा 188 भा०द०सं० के अंतर्गत दाण्डिक प्रकीर्ण वाद संख्या 429/2018 पंजीकृत किया गया, परिणामस्वरूप, पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध कारण बताओ नोटिस जारी किया गया कि वह दिनांक 20 सितम्बर, 2018 को उपस्थित हो तथा आचरण का स्पष्टीकरण दे। कारण बताओ नोटिस में निम्नलिखित स्पष्टीकरण की अपेक्षा की गई थी:-

(i) पीड़िता का कथन क्यों अभिलिखित नहीं किया गया;

(ii) निरीक्षक-प्रमोद पवार, थानाधिकारी, थाना छाता को त्रुटिपूर्वक क्यों बचाया गया;

(iii) अभियुक्त ईश्वर दयाल को क्यों गिरफ्तार नहीं किया गया, जिसके कारण मुकदमा अपराध संख्या 508/2018 के सूचनकर्ता तथा पीड़िता पर अनुचित दबाव पड़ा।

14. विशेष न्यायालय ने अवलोकित किया कि पुनरीक्षणकर्ता ने स्पष्टीकरण नहीं दिया और इसलिए, धारा 188 भा०द०सं० सहपठित धारा 345 दं०प्र०सं० के अंतर्गत पुनरीक्षणकर्ता को दोषसिद्ध किया।

15. अधिनिर्णय अपने मुख पर यह प्रकट करता है कि पुनरीक्षणकर्ता को धारा 345 दं०प्र०सं० सहपठित धारा 228 भा०द०सं० के अंतर्गत दोषसिद्ध तथा दण्डित नहीं किया गया है जैसा कि प्रदत्त है, बल्कि धारा 188 भा०द०सं० के अंतर्गत दोषसिद्धि है, धाराओं 190 तथा 195 दं०प्र०सं० के अंतर्गत प्रदत्त प्रक्रिया का अनुपालन किए बिना। धारा 190 दं०प्र०सं० के अनुसार मजिस्ट्रेट तथा विशेष न्यायालय अपराध का संज्ञान ले सकते हैं, "(a) ऐसे तथ्यों की शिकायत प्राप्त करने पर जो ऐसे अपराध का गठन करते हैं; (b) ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर; (c) पुलिस अधिकारी के अलावा किसी व्यक्ति से प्राप्त सूचना पर, या अपने स्वयं के ज्ञान पर, कि ऐसा अपराध किया गया है।" जबकि, धारा 195 दं०प्र०सं० कुछ अपराधों के अभियोजन से सम्बन्धित है, जिसमें लोक न्याय के विरुद्ध, वैध प्राधिकार के अवमान तथा साक्ष्य में दिए गए दस्तावेजों से सम्बन्धित अपराध सम्मिलित हैं। वर्तमान मामले में, कार्यवाही प्रारम्भ करने का आधार न्यायालय के अहलमद तथा न्यायालय मुहर्रिर द्वारा की गई रिपोर्ट है।

16. यह न्यायालय मामले की विवेचना के दौरान विशेष न्यायालय पाक्सो अधिनियम द्वारा जारी निर्देशों की वैधता के बारे में कोई राय दिए बिना, प्रक्रिया की वैधता तथा आक्षेपित अधिनिर्णय की पोषणीयता पर स्वयं को केन्द्रित करता है।

17. दं०प्र०सं० का अध्याय XXVI न्याय प्रशासन को प्रभावित करने वाले अपराधों के बारे में प्रावधान करता है तथा दं०प्र०सं० का अध्याय XIV ऐसी कार्यवाही के प्रारम्भ के लिए अपेक्षित शर्तों से सम्बन्धित है। न्याय प्रशासन को प्रभावित करने वाले अपराधों को पांच श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है, जो दं०प्र०सं० की धाराओं 340, 344, 345, 349 तथा 350 के अंतर्गत प्रदत्त हैं। चूंकि वर्तमान मामले में धारा 345 दं०प्र०सं० का आह्वान किया गया है, अतः केवल इस प्रावधान पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया है। धारा 345 दं०प्र०सं० का प्रावधान नीचे पुनः दोहराया गया है:-

"345. अवमान के कुछ मामलों में प्रक्रिया.- (1) जब भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) की धारा 175, धारा 178, धारा 179, धारा 180, या धारा 228 में वर्णित कोई ऐसा अपराध, किसी सिविल, दाण्डिक या राजस्व न्यायालय के दृष्टिगोचर या उपस्थिति में किया जाता है, तो न्यायालय अपराधी को अभिरक्षा में निरुद्ध करवा सकता है तथा उसी दिन न्यायालय की समाप्ति से पूर्व किसी भी समय, अपराध का संज्ञान ले सकता है तथा अपराधी को उचित अवसर देने के पश्चात् कि वह कारण बताए कि उसे इस धारा के अंतर्गत क्यों दण्डित नहीं किया जाना चाहिए, अपराधी को दो सौ रुपये से अनधिक जुर्माने का दण्डादेश दे सकता है, तथा जुर्माने का भुगतान न करने की स्थिति में, सादा कारावास जो एक मास तक का हो सकता है, जब तक कि ऐसा जुर्माना शीघ्र अदा न कर दिया जाए। (2) ऐसे प्रत्येक मामले में न्यायालय अपराध का गठन करने वाले तथ्यों को, अपराधी के कथन (यदि कोई हो) के साथ, साथ ही साथ निष्कर्ष तथा दण्डादेश को अभिलिखित करेगा। (3)

यदि अपराध भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) की धारा 228 के अंतर्गत है, तो अभिलेख न्यायिक कार्यवाही की प्रकृति तथा अवस्था को दर्शाएगा जिसमें न्यायालय बैठा था जिसमें बाधा या अपमान किया गया, तथा बाधा या अपमान की प्रकृति को दर्शाएगा।"

18. धारा 345 दं०प्र०सं० का सामान्य अवलोकन यह प्रकट करता है कि सम्बद्ध प्रावधान तब आकृष्ट होता है जब भारतीय दण्ड संहिता का अपराध जो धारा 175 (दस्तावेज या इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख को लोक सेवक के समक्ष प्रस्तुत करने में चूक जिसे वैधानिक रूप से इसे प्रस्तुत करना अपेक्षित है), धारा 178 **(शपथ या प्रतिज्ञान देने से इंकार जब लोक सेवक द्वारा इसे लेने के लिए विधिवत् अपेक्षित किया गया हो)**, धारा 179 (**लोक सेवक के प्रश्न का उत्तर देने से इंकार जो प्रश्न पूछने के लिए प्राधिकृत हो**), धारा 180 (**कथन पर हस्ताक्षर करने से इंकार**); या धारा 228 (**न्यायिक कार्यवाही में बैठे लोक सेवक को जानबूझकर अपमानित करना या बाधा डालना**) के अंतर्गत वर्णित है, किया जाता है, किन्तु धारा 345 दं०प्र०सं० के प्रयोग में पूर्वापेक्षित शर्त यह है कि अपराध(धों) **'किसी सिविल, दाण्डिक या राजस्व न्यायालय के दृष्टिगोचर या उपस्थिति में'** किया जाता है। वर्तमान मामले में कथित अपराध को विद्वान अवर न्यायालय के दृष्टिगोचर या उपस्थिति में किया गया नहीं माना गया है क्योंकि कारण बताओ नोटिस का सार केवल यह दर्शाता है कि न्यायालय ने मामले की विवेचना के दौरान पारित अपने आदेश की अवज्ञा में आगे बढ़ना प्रारम्भ किया है।

19. यह आगे विचार किये जाने की आवश्यकता है कि धारा 345 दं०प्र०सं० के अंतर्गत कार्यवाही धाराओं 346 तथा 352 दं०प्र०सं० के अंतर्गत प्रदत्त प्रक्रिया के प्रकाश में संचालित की जानी है, जो नीचे पुनः दोहराई गई हैं:-

"346. वह प्रक्रिया जहां न्यायालय यह विचार करता है कि मामले को धारा 345 के अंतर्गत निस्तारित नहीं किया जाना चाहिए।

(1) यदि न्यायालय किसी मामले में यह विचार करता है कि धारा 345 में निर्दिष्ट किसी अपराध का अभियुक्त व्यक्ति जो उसके दृष्टिगोचर या उपस्थिति में किया गया है, जुर्माने के भुगतान में चूक के अतिरिक्त अन्यथा कारावासित किया जाना चाहिए, या उस पर दो सौ रुपये से अधिक का जुर्माना अधिरोपित किया जाना चाहिए, या ऐसा न्यायालय किसी अन्य कारण से इस राय का है कि मामले का धारा 345 के अंतर्गत निस्तारण नहीं किया जाना चाहिए, तो ऐसा न्यायालय, अपराध का गठन करने वाले तथ्यों तथा अभियुक्त के कथन को अभिलिखित करने के पश्चात् जैसा कि पूर्व में प्रदत्त है, मामले को उसी को विचारण करने के लिए अधिकार क्षेत्र रखने वाले मजिस्ट्रेट को अग्रेषित कर सकता है, तथा ऐसे व्यक्ति से ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थिति के लिए प्रतिभूति देने की अपेक्षा कर सकता है, या यदि पर्याप्त प्रतिभूति नहीं दी जाती है तो ऐसे व्यक्ति को अभिरक्षा में ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष अग्रेषित करेगा।

(2) मजिस्ट्रेट जिसे इस धारा के अंतर्गत कोई मामला अग्रेषित किया जाता है, उस पर आगे बढ़ेगा, जहां तक हो सके, जैसे कि यह पुलिस रिपोर्ट पर संस्थित किया गया हो।"

.....

.....

"352. कुछ न्यायाधीशों तथा मजिस्ट्रेटों द्वारा कुछ अपराधों का विचारण नहीं किया जाना जब उनके समक्ष किये गये हों.- धाराओं 344, 345, 349 तथा 350 में प्रदत्त के अतिरिक्त, कोई भी दाण्डिक न्यायालय का न्यायाधीश (उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के अतिरिक्त) या मजिस्ट्रेट धारा 195 में निर्दिष्ट किसी अपराध के लिए किसी व्यक्ति का विचारण नहीं करेगा, जब ऐसा अपराध उसके समक्ष या उसके प्राधिकार के अवमान में किया जाता है, या ऐसे न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट के रूप में न्यायिक कार्यवाही के दौरान उसकी सूचना में लाया जाता है।"

20. इस न्यायालय ने पाया है कि विद्वान अवर न्यायालय द्वारा कार्यवाही धारा 345 दं०प्र०सं० के अंतर्गत संचालित नहीं की गई है, बल्कि यह वह है जो शुद्ध रूप से तथा स्पष्ट रूप से धारा 188 भा०द०सं० के अंतर्गत संचालित की गई है। यह विचार किये जाने की आवश्यकता है, कि क्या विद्वान अवर न्यायालय ने धारा 188 भा०द०सं० के अंतर्गत पुनरीक्षणकर्ता को सही ढंग से दोषसिद्ध किया है, यद्यपि, धारा 346 दं०प्र०सं० यह प्रावधान करती है कि यदि न्यायालय इस राय का है कि मामले का धारा 345 दं०प्र०सं० के अंतर्गत निस्तारण नहीं किया जाना चाहिए तो मामले को उसी को विचारण करने के लिए अधिकार क्षेत्र रखने वाले मजिस्ट्रेट को अग्रेषित किया जाएगा; तथा धारा 352 दं०प्र०सं० ने दाण्डिक न्यायालय से उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के अतिरिक्त अवमान की शक्ति छीन ली है।

21. ***सी० आर० राजशेखरन बनाम न्यायिक मजिस्ट्रेट नागापट्टिनम (उपरोक्त)*** के मामले में, मद्रास उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने पैराग्राफ 6, 7 तथा 10 से 12 में धारा 345 दं०प्र०सं० तथा धारा 228 भा०द०सं० के अंतर्गत सम्बन्धित न्यायालय द्वारा दं०प्र०सं० के प्रावधानों के उल्लंघन में लिए गए अपराध के संज्ञान के बारे में अवलोकन किया है, सुसंगत उद्धरण यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

"6. धारा 228 भा०द०सं० निम्नप्रकार है:-

"जो कोई जानबूझकर किसी लोक सेवक को कोई अपमान करता है, या कोई बाधा डालता है, जबकि ऐसा लोक सेवक न्यायिक कार्यवाही की किसी अवस्था में बैठा है, वह सादा कारावास से, जो छह मास तक का हो सकता है, या जुर्माने से, जो एक हजार रुपये तक हो सकता है, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा।"

xxxx

7. उच्चतम न्यायालय को <u>मध्य प्रदेश राज्य बनाम रेवाशंकर</u> एआईआर 1959 एससी 102 में किए गए निर्णय में इस धारा का विश्लेषण करने का अवसर मिला था जिसमें उनके आदरणीय न्यायमूर्तियों ने कहा है कि धारा 228 भा०द०सं० को आकृष्ट करने के लिए तीन घटक आवश्यक हैं वे हैं, (1) आशय, (2) लोक सेवक का अपमान या बाधा और (3) अपमानित या बाधा डाला गया लोक सेवक न्यायिक कार्यवाही की किसी अवस्था में बैठा होना चाहिए।

xxx

10. वर्तमान मामले में एक और विचलित करने वाली विशेषता यह है कि जब मजिस्ट्रेट अभियुक्त को कारावास या 1000 रुपये के जुर्माने का दण्डादेश देने का प्रस्ताव करता है तो उसे आवश्यक रूप से धारा 346 दं०प्र०सं० के प्रावधानों का अनुपालन करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, धारा 345 तथा 346 सुसंगत प्रक्रियाएं हैं जिनके

अंतर्गत धारा 228 भा०द०सं० के अंतर्गत अपराध के साथ आगे बढ़ना है। धारा 345 दं०प्र०सं० यह प्रकल्पित करती है कि जब धारा 228 भा०द०सं० के अंतर्गत अपराध किसी सिविल, दाण्डिक या राजस्व न्यायालय की उपस्थिति में किया जाता है, तो न्यायालय अपराधी को अभिरक्षा में निरुद्ध करवा सकता है तथा समाप्ति से पूर्व, अपराधी को उचित अवसर दे सकता है कि वह कारण बताए कि उसे इस धारा के अंतर्गत क्यों दण्डित नहीं किया जाना चाहिए और तत्पश्चात्, अपराधी को 200 रुपये से अनधिक जुर्माने का दण्डादेश दे सकता है तथा जुर्माने में चूक पर एक मास तक का सादा कारावास और खण्ड (2) यह निर्दिष्ट करता है कि ऐसे मामले में, न्यायालय को अपराध का गठन करने वाले तथ्यों को अभिलिखित करना चाहिए। खण्ड (3) विशिष्ट रूप से कहता है कि मजिस्ट्रेट का अभिलेख न्यायिक कार्यवाही की प्रकृति तथा अवस्था को दर्शाएगा जिसमें न्यायालय बैठा था जिसमें बाधा या अपमान किया गया तथा बाधा या अपमान की प्रकृति।

11. मेरे विचार से, वर्तमान मामले में 345(3) दं०प्र०सं० पूर्णतः अनुपस्थित है। किन्तु जो अधिक निराशाजनक है वह यह है कि मजिस्ट्रेट ने धारा 345 दं०प्र०सं० का अनुपालन नहीं किया है क्योंकि यह स्पष्ट करता है कि इस धारा के अंतर्गत जो दण्डादेश दिया जा सकता है वह केवल 200 रुपये का जुर्माना है तथा यद्यपि धारा 228 भा०द०सं० छह मास के कारावास की प्रकल्पना करती है, वही केवल तब किया जा सकता है जब धारा 346 भा०द०सं० में उल्लिखित प्रक्रिया का अनुपालन किया जाता है।

12. धारा 346 दं०प्र०सं० यह प्रकल्पित करती है कि जब मजिस्ट्रेट जिसके समक्ष ऐसा अपराध किया गया है यह अनुभव करता है कि ऐसे अभियुक्त के लिए दण्ड, जिसने धारा 228 के अंतर्गत अपराध किया है, 200 रुपये के जुर्माने से अधिक होना चाहिए, तो उसे आवश्यक रूप से अपराध का गठन करने वाले तथ्यों तथा अभियुक्त के कथन को अभिलिखित करने के पश्चात्, मामले को उसी को विचारण करने के लिए अधिकार क्षेत्र रखने वाले मजिस्ट्रेट को अग्रेषित करना चाहिए और वह मजिस्ट्रेट ही मामले के साथ आगे बढ़ेगा तथा विचारण करेगा तथा उस पर निर्णय करेगा जैसे कि यह पुलिस रिपोर्ट पर संस्थित किया गया हो।"

22. **एस० रजनीकांत बनाम श्रीमती सी० थिरुमगल, विद्वान सप्तम मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, जॉर्ज टाउन, चेन्नई-600001** (उपरोक्त) के एक अन्य मामले में, मद्रास उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने धारा 345 दं०प्र०सं० के अंतर्गत संचालित कार्यवाही की अनियमितता पर विचार किया है, पैराग्राफ 9 तथा 25 के सुसंगत उद्धरण यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

"9. इस मामले में, कथित रूप से अपराध दिनांक 28.01.2008 को किया गया था। याचिकाकर्ता को निरुद्ध नहीं कराया गया और धारा 345(1) के अंतर्गत कार्यवाही उसी दिन प्रारम्भ नहीं की गई। दूसरी ओर, इसे अगले दिन, अर्थात् 29.01.2008 को कारण बताओ नोटिस जारी करके प्रारम्भ करने का प्रयास किया गया। वही, जैसा कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा सही ढंग से इंगित किया गया, धारा 345(1) दं०प्र०सं० के दायरे से बाहर है। इसलिए धारा 345(1) दं०प्र०सं० के अंतर्गत दाण्डिक कार्यवाही की शुरुआत, अपराध के किए जाने के उसी दिन नहीं बल्कि अगले दिन, एक सारवान अनियमितता है जो कार्यवाही को दोषपूर्ण बना देगी। एक बार जब न्यायालय अपराध का संज्ञान उसी दिन लेने में चूक करता है या लेने में असमर्थ हो जाता है, तो वह धारा 345(1) दं०प्र०सं० के अंतर्गत संक्षिप्त कार्यवाही प्रारम्भ करने का अधिकार क्षेत्र खो देता है। ऐसी स्थिति में, एकमात्र विकल्प जो उपलब्ध है वह है निजी शिकायत प्रक्रिया के अंतर्गत शिकायत प्रस्तुत करने या पुलिस के पास शिकायत दर्ज कराने के नियमित मार्ग में दाण्डिक विधि को गति में लाना। इसलिए धारा 345(1)

दं०प्र०सं० के अंतर्गत दाण्डिक कार्यवाही की शुरुआत ही प्रावधान के विरुद्ध है और इस प्रकार शुरू की गई कार्यवाही में पारित आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं है और वही अपास्त किये जाने योग्य है।

xxx

25. इसके अतिरिक्त, जैसा कि उपरोक्त में इंगित किया गया है, प्रतिवादी ने धारा 345(1) दं०प्र०सं० के अंतर्गत प्रारम्भ की गई कार्यवाही के अलावा, सुधरे हुए संस्करण के साथ एक पुलिस शिकायत प्राथमिकृत की प्रतीत होती है, एक पूर्वव्यापी उपाय के रूप में क्योंकि उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल तथा मा० मुख्य न्यायमूर्ति, मद्रास उच्च न्यायालय को प्रतिवादी के आचरण के सम्बन्ध में अभ्यावेदन किया गया था। यदि प्रतिवादी ने उच्चतम न्यायालय द्वारा चेतक कंस्ट्रक्शंस लिमिटेड बनाम ओम प्रकाश एवं अन्य में निर्धारित मामलों के निस्तारण के समय न्यायिक अधिकारी से अपेक्षित आचरण को प्रदर्शित करने के लिए थोड़ी सावधानी बरती होती, तो वह ऐसे तरीके से व्यवहार नहीं करती जिससे दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम होते। किसी भी स्थिति में प्रतिवादी का सप्तम मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, जॉर्ज टाउन, चेन्नई के रूप में आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं है और वही न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग में अपास्त किये जाने योग्य है क्योंकि याचिकाकर्ता ने पक्षपात, तथा न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को सिद्ध कर दिया है। यह भी सिद्ध हो गया है कि आक्षेपित आदेश प्राकृतिक विधि के सिद्धांत ऑडी अलटेरम पारटेम (सुनवाई के अवसर) के उल्लंघन में पारित किया गया था, जो धारा 345(1) दं०प्र०सं० में प्रकल्पित प्रक्रिया में भी सम्मिलित है। यह न्यायालय सुविचारित राय का है कि दोषसिद्धि को बने रहने देना न्याय की विफलता में परिणत होगा और यही धारा 482 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करके आक्षेपित आदेश को अपास्त करने के लिए पर्याप्त कारण होगा।"

23. पुनरीक्षणकर्ता द्वारा उद्धृत उपरोक्त दो अधिनिर्णय धारा 345 दं०प्र०सं० के अंतर्गत मामला प्रारम्भ करते समय प्रक्रिया के अनुपालन की आवश्यकता के बिन्दु पर हैं तथा कारित होने की तारीख पर अभियुक्त के निरोध की आवश्यकता तथा विचारण दोषपूर्ण हो जाता है यदि कोई निरोध नहीं है तथा पश्चातवर्ती दिन पर कारण बताओ नोटिस जारी किया गया है। वर्तमान मामले में धारा 345 दं०प्र०सं० का आह्वान आंखों में धूल झोंकना है क्योंकि कोई अपराध न्यायालय के दृष्टिगोचर या उपस्थिति में नहीं किया गया है बल्कि जो निगमित किया जा सकता है वह है न्यायालय के आदेशों की कथित अवज्ञा। आगे, धारा 188 भा०द०सं० एक सरल अपराध है, उन अपराधों के अतिरिक्त अन्यथा, जो न्याय प्रशासन को प्रभावित करने वाले अपराध के रूप में प्रदत्त हैं, किन्तु लोक सेवक के वैध प्राधिकार के अवमान से सम्बन्धित है, जिसे धारा 195 दं०प्र०सं० के अंतर्गत प्रदत्त कार्यवाही के प्रारम्भ के प्रावधानों के अनुसार निपटाया जाना आवश्यक है, जो एक नॉन-ऑब्सटांटे खण्ड है। उप-धारा 1(a)(i) 'यह प्रावधान करती है कि कोई न्यायालय भारतीय दण्ड संहिता की धाराओं 172 से 188 (दोनों सम्मिलित) के अंतर्गत दण्डनीय किसी अपराध का संज्ञान नहीं लेगा', सिवाय लोक सेवक की लिखित शिकायत पर या किसी अन्य लोक सेवक की जो प्रशासनिक रूप से उसके अधीनस्थ है। धारा 188 भा०द०सं० तथा धारा 195 दं०प्र०सं० के सम्बन्धित प्रावधान नीचे पुनः दोहराए गए हैं:-

"188. लोक सेवक द्वारा विधिवत् प्रख्यापित आदेश की अवज्ञा।–

जो कोई, यह जानते हुए कि, लोक सेवक द्वारा प्रख्यापित आदेश द्वारा जो ऐसे आदेश को प्रख्यापित करने के लिए वैधानिक रूप से सशक्त है, उसे किसी निश्चित कृत्य से विरत रहने के लिए, या अपने कब्जे में या अपने प्रबंधन के अंतर्गत किसी निश्चित सम्पत्ति के साथ निश्चित आदेश लेने के लिए निर्देशित किया गया है, ऐसे निर्देश की अवज्ञा करता है, यदि ऐसी अवज्ञा अवरोध, क्लेश या क्षति, या अवरोध, क्लेश या क्षति के जोखिम

का कारण बनती है या बनने की प्रवृत्ति रखती है, किसी व्यक्ति के लिए जो वैधानिक रूप से नियोजित है, तो वह सादा कारावास से, जो एक मास तक का हो सकता है या जुर्माने से जो दो सौ रुपये तक हो सकता है, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा; और यदि ऐसी अवज्ञा मानव जीवन, स्वास्थ्य या सुरक्षा के लिए संकट का कारण बनती है या बनने की प्रवृत्ति रखती है, या दंगा या मारपीट का कारण बनती है या बनने की प्रवृत्ति रखती है, तो वह किसी भी प्रकार के कारावास से, जो छह मास तक का हो सकता है, या जुर्माने से जो एक हजार रुपये तक हो सकता है, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा।

स्पष्टीकरण।– यह आवश्यक नहीं है कि अपराधी को हानि उत्पन्न करने का आशय हो, या अपने अवज्ञा को हानि उत्पन्न करने की सम्भावना वाली के रूप में प्रकल्पित करे। यह पर्याप्त है कि वह उस आदेश को जानता है जिसकी वह अवज्ञा करता है, तथा उसकी अवज्ञा हानि उत्पन्न करती है, या हानि उत्पन्न करने की सम्भावना रखती है।"

.....

"195. लोक सेवकों के वैध प्राधिकार के अवमान के लिए, लोक न्याय के विरुद्ध अपराधों के लिए तथा साक्ष्य में दिए गए दस्तावेजों से सम्बन्धित अपराधों के लिए अभियोजन।

(1) कोई न्यायालय संज्ञान नहीं लेगा -(ए)(i) भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) की धाराओं 172 से 188 (दोनों सम्मिलित) के अंतर्गत दण्डनीय किसी अपराध का, या (ii) ऐसे अपराध को कारित करने के दुष्प्रेरण, या प्रयत्न का, या (iii) ऐसे अपराध को कारित करने के आपराधिक षड्यंत्र का, सिवाय सम्बन्धित लोक सेवक की लिखित शिकायत पर या अन्य लोक सेवक की जो प्रशासनिक रूप से उसके अधीनस्थ है; (बी)(i) भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) की निम्नलिखित धाराओं में से किसी के अंतर्गत दण्डनीय किसी अपराध का, अर्थात्, धाराएं 193 से 196 (दोनों सम्मिलित), 199, 200, 205 से 211 (दोनों सम्मिलित) तथा 228, जब ऐसा अपराध किसी न्यायालय में, या किसी न्यायालय से सम्बन्धित किसी कार्यवाही में कथित रूप से किया गया हो, या (ii) धारा 463 में वर्णित, या धारा 471, धारा 475 या धारा 476 उक्त संहिता के अंतर्गत दण्डनीय किसी अपराध का, जब ऐसा अपराध किसी न्यायालय में कार्यवाही में प्रस्तुत या साक्ष्य में दिए गए दस्तावेज के सम्बन्ध में कथित रूप से किया गया हो, या (iii) उप-खण्ड (i) या उप-खण्ड (ii) में निर्दिष्ट किसी अपराध को कारित करने के आपराधिक षड्यंत्र, प्रयत्न, या दुष्प्रेरण का, [सिवाय उस न्यायालय की लिखित शिकायत पर या न्यायालय के ऐसे अधिकारी द्वारा जिसे न्यायालय इस निमित्त लिखित रूप में प्राधिकृत कर सकता है, या किसी अन्य न्यायालय द्वारा जिसे वह न्यायालय अधीनस्थ है।

(2) जहां उप-धारा (1) के खण्ड (ए) के अंतर्गत लोक सेवक द्वारा शिकायत की गई है, कोई प्राधिकारी जिसे वह प्रशासनिक रूप से अधीनस्थ है, शिकायत को वापस लेने का आदेश दे सकता है तथा ऐसे आदेश की प्रतिलिपि न्यायालय को भेज सकता है; तथा न्यायालय द्वारा इसकी प्राप्ति पर, शिकायत पर कोई आगे की कार्यवाही नहीं की जाएगी: परन्तु कि ऐसी कोई वापसी आदेशित नहीं की जाएगी यदि प्रथम दृष्टया न्यायालय में विचारण समाप्त हो चुका हो।

(3) उप-धारा (1) के खण्ड (बी) में, शब्द "न्यायालय" से सिविल, राजस्व या दाण्डिक न्यायालय अभिप्रेत है तथा इसमें केन्द्रीय, प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अंतर्गत गठित न्यायाधिकरण सम्मिलित है, यदि उस अधिनियम द्वारा इस धारा के प्रयोजनों के लिए न्यायालय घोषित किया गया हो।

(4) उप-धारा (1) के खण्ड (बी) के प्रयोजनों के लिए, एक न्यायालय को उस न्यायालय के अधीनस्थ समझा जाएगा जिसको ऐसे पूर्ववर्ती न्यायालय के अपीलनीय डिक्रियों या दण्डादेशों से सामान्यतः अपीलें होती हैं, या सिविल न्यायालय के मामले में जिसकी डिक्रियों से कोई अपील सामान्यतः नहीं होती है, मूल सिविल अधिकार क्षेत्र रखने वाले मुख्य न्यायालय के जिसके स्थानीय अधिकार क्षेत्र में ऐसा सिविल न्यायालय स्थित है:

परन्तु कि -

(ए) जहां एक से अधिक न्यायालयों को अपीलें होती हैं, अवर अधिकार क्षेत्र का अपीलीय न्यायालय वह न्यायालय होगा जिसके अधीनस्थ ऐसा न्यायालय समझा जाएगा;

(बी) जहां सिविल तथा राजस्व न्यायालय दोनों को अपीलें होती हैं, ऐसा न्यायालय सिविल या राजस्व न्यायालय के अधीनस्थ समझा जाएगा मामले या कार्यवाही की प्रकृति के अनुसार जिसके सम्बन्ध में अपराध कथित रूप से किया गया है।"

24. यहां तक कि यदि यह विचार किया जाता है कि विद्वान अवर न्यायालय ने विशेष न्यायालय के अहलमद, नरेन्द्र कुमार तथा न्यायालय मुहर्रिर, भरत सिंह के आवेदन के आधार पर पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध धारा 188 भा०द०सं० के अंतर्गत अपराध के लिए मामला, एक शिकायत के रूप में, पंजीकृत किया है, तो विद्वान अवर न्यायालय को धाराओं 345 तथा 346 दं०प्र०सं० को दृष्टिगत रखते हुए मामले का विचारण करने का अधिकार क्षेत्र प्राप्त नहीं है। यहां यह इंगित करना भी आवश्यक है कि विद्वान अवर न्यायालय द्वारा उक्त कथित संज्ञान दिनांक 19 सितम्बर, 2018 को लिया गया है तथा दिनांक 20 सितम्बर, 2018 को पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध दोषसिद्धि का आक्षेपित अधिनिर्णय अभिलिखित किया गया तथा दण्डादेश प्रदान किया गया। यह भी गम्भीर चिन्ता का विषय है कि एक दिन में अवर न्यायालय के समक्ष कोई सामग्री तथा साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किए गए, जो पुनरीक्षणकर्ता की दोषसिद्धि का आधार बना। यह आगे गम्भीर चिन्ता का विषय है कि पुनरीक्षणकर्ता/अभियुक्त को अपना स्पष्टीकरण देने या अपने मामले का बचाव करने का उचित अवसर नहीं दिया गया है तथा अवर न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है, कि पुनरीक्षणकर्ता/अभियुक्त की ओर से कथित अवज्ञा ने मानव जीवन, स्वास्थ्य या सुरक्षा के लिए संकट उत्पन्न किया है या दंगा या मारपीट का कारण बनी है और इसलिए छह मास के गम्भीर दण्ड तथा 1,000 रुपये के जुर्माने से दण्डित किया, जिसका कोई तर्कसंगत आधार नहीं है।

25. **सी० मुनिअप्पन एवं अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य (उपरोक्त)** के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने धारा 188 भा०द०सं० के अंतर्गत अपराध के लिए दोषसिद्ध करने में धारा 195 दं०प्र०सं० के प्रावधान की अनिवार्य प्रकृति पर विचार किया तथा अभिनिर्धारित किया, सुसंगत उद्धरण यहां नीचे उद्धृत किया गया है:-

"20. धारा 195(a)(i) दं०प्र०सं० न्यायालय को धारा 188 भा०द०सं० के अंतर्गत दण्डनीय किसी अपराध या उसी के दुष्प्रेरण या प्रयत्न का संज्ञान लेने से प्रतिबंधित करती है, जब तक कि उसके वैध आदेश के अवमान के लिए सम्बन्धित लोक सेवक द्वारा लिखित शिकायत न हो। इस प्रावधान का उद्देश्य लोक सेवक के वैध प्राधिकार के अवमान के मामले में एक विशेष प्रक्रिया प्रदान करना है। न्यायालय को उसमें गणित कुछ प्रकार के अपराधों का संज्ञान लेने की क्षमता का अभाव है। ऐसे प्रावधान के पीछे विधायी आशय यह रहा है कि एक व्यक्ति को द्वेष, दुर्भावना या स्वभाव की तुच्छता से प्रेरित

व्यक्तियों द्वारा अपर्याप्त आधारों पर संस्थित दाण्डिक अभियोजन का सामना नहीं करना पड़े तथा दाण्डिक न्यायालयों का समय अंतहीन अभियोजनों द्वारा बर्बाद होने से बचाया जा सके। यह प्रावधान सामान्य नियम के अपवाद के रूप में तैयार किया गया है जो धारा 190 दं०प्र०सं० में निहित है कि कोई भी व्यक्ति शिकायत करके विधि को गति में ला सकता है, क्योंकि यह न्यायालय को कुछ अपराधों का संज्ञान लेने से प्रतिबंधित करता है जब तक कि किसी विशेष प्राधिकारी या व्यक्ति द्वारा शिकायत न की गई हो। दं०प्र०सं० में अन्य प्रावधान जैसे धाराएं 196 तथा 198 प्रक्रिया का कोई नियम निर्धारित नहीं करते, बल्कि, वे केवल एक प्रतिबंध उत्पन्न करते हैं कि जब तक कुछ अपेक्षाओं का अनुपालन नहीं किया जाता, न्यायालय उन धाराओं में वर्णित अपराध का संज्ञान नहीं लेगा। (गोविंद मेहता बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1971 एससी 1708; पटेल लालजीभाई सोमाभाई बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 1971 एससी 1935; सुरजीत सिंह एवं अन्य बनाम बलबीर सिंह, (1996) 3 एससीसी 533; पंजाब राज्य बनाम राज सिंह एवं अन्य, (1998) 2 एससीसी 391; के० वेंगदाचलम बनाम के०सी० पलानीस्वामी एवं अन्य, (2005) 7 एससीसी 352; तथा इकबाल सिंह मारवाह एवं अन्य बनाम मीनाक्षी मारवाह एवं अन्य, एआईआर 2005 एससी 2119 देखें)।

21. धारा 195 दं०प्र०सं० की चोरी या अननुपालन है या नहीं, इसकी कसौटी यह है कि क्या तथ्य प्राथमिक रूप से तथा अनिवार्य रूप से ऐसे अपराध को प्रकट करते हैं जिसके लिए न्यायालय या लोक सेवक की शिकायत अपेक्षित है। बसीर-उल-हक एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 1953 एससी 293; तथा दुर्गाचरण नाइक एवं अन्य बनाम उड़ीसा राज्य, एआईआर 1966 एससी 1775 में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि इस धारा के प्रावधानों को अपराध को भा०द०सं० की कुछ अन्य धाराओं के अंतर्गत दण्डनीय बताकर चोरी नहीं की जा सकती, यद्यपि सत्य तथा सार में, अपराध धारा 195 दं०प्र०सं० में उल्लिखित श्रेणी में आता है। इस प्रकार, ऐसे अपराध का संज्ञान इसे गलत वर्णित करके या इस पर गलत लेबल लगाकर नहीं लिया जा सकता।

Xxxxx

25. इस प्रकार, उपरोक्त को दृष्टिगत रखते हुए, विधि को इस प्रभाव तक संक्षेपित किया जा सकता है कि उस लोक सेवक द्वारा शिकायत होनी चाहिए जिसके वैध आदेश का अनुपालन नहीं किया गया है। शिकायत लिखित में होनी चाहिए। धारा 195 दं०प्र०सं० के प्रावधान अनिवार्य हैं। इसके अननुपालन से अभियोजन तथा सभी अन्य परिणामी आदेश दोषपूर्ण हो जाएंगे। न्यायालय ऐसी शिकायत के बिना मामले का संज्ञान ग्रहण नहीं कर सकता। ऐसी शिकायत के अभाव में, विचारण तथा दोषसिद्धि अधिकार क्षेत्र के बिना शून्याधार होगी।"

26. इसी प्रकार, **एम०एस० अहलावत बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य (उपरोक्त)** के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने धारा 195 दं०प्र०सं० के प्रावधान की अनिवार्य प्रकृति का भी अवलोकन किया है। सुसंगत पैराग्राफ 5, यहां नीचे उद्धृत किया गया है:-

"5. दंड प्रक्रिया संहिता (दं०प्र०सं०) की धारा 195 यह प्रावधान करती है कि जहां कोई कृत्य लोक सेवकों के वैध प्राधिकार के अवमान के अपराध की राशि है या लोक न्याय के विरुद्ध अपराध जैसे धारा 193 भा०द०सं० के अंतर्गत मिथ्या साक्ष्य देना, इत्यादि या न्यायालय में वास्तव में प्रयुक्त दस्तावेजों से सम्बन्धित अपराध की राशि है, तो निजी अभियोजन

पूर्णतः प्रतिबंधित हैं तथा केवल वह न्यायालय जिसके सम्बन्ध में अपराध किया गया था, कार्यवाही प्रारम्भ कर सकता है। धारा 195 दं०प्र०सं० के प्रावधान अनिवार्य हैं तथा किसी भी न्यायालय को उसमें उल्लिखित किसी अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार क्षेत्र नहीं है जब तक कि उस धारा के अंतर्गत अपेक्षित लिखित शिकायत न हो। यह स्थापित विधि है कि प्रत्येक गलत या मिथ्या कथन न्यायालय पर अभियोजन का आदेश करना अनिवार्य नहीं बनाता, बल्कि न्याय प्रशासन के व्यापक हित में केवल अभियोजन का आदेश करने के लिए न्यायिक विवेक का प्रयोग करना है।"

27. वर्तमान मामले का उद्गम न्यायालय के अहलमद तथा न्यायालय मुहर्रिर की रिपोर्ट पर है। अभिलेख इस बारे में मौन है कि न्यायालय के दो अधिकारियों को मामले के विवेचना अधिकारी के विरुद्ध रिपोर्ट प्रस्तुत करने का प्राधिकार क्या है तथा ऐसी रिपोर्ट ने धारा 195 दं०प्र०सं० के अंतर्गत प्रदत्त 'शिकायत' शब्द को कैसे योग्य ठहराया, किन्तु यह न्यायालय इस राय का है कि न्यायालय के अहलमद तथा न्यायालय मुहर्रिर की स्वप्रेरित रिपोर्ट को 'शिकायत' नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त, अभिलेख इस बिन्दु पर भी मौन है कि विशेष पाक्सो न्यायाधीश द्वारा मुक्दमा अपराध संख्या 508/2018 के विवेचना अधिकारी को जारी आदेश तथा निर्देश समयबद्ध आदेश हैं। अधिनिर्णय इस बिन्दु पर भी मौन है कि क्या उक्त आदेश के अनुपालन के लिए कोई तारीख निर्धारित की गई थी। आगे, कार्यवाही यह प्रतिबिम्बित करती है कि पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध धारा 188 भाव्द०सं० के अंतर्गत कोई आरोप विरचित नहीं किया गया है, जिसके अभाव में कार्यवाही, दोषसिद्धि तथा दण्डादेश अनुचित तथा विधितः पोषणीय नहीं हो गए तथा अपास्त किये जाने योग्य हैं।

28. तथ्यों के सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री, यहां उपर चर्चित विधिक प्रावधानों पर विचार करने के पश्चात्, यह न्यायालय इस राय का है कि विद्वान अवर न्यायालय ने दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत विहित प्रक्रिया से परे मामले के साथ आगे बढ़ा है तथा उस अपराध में दोषसिद्धि अभिलिखित की है जिसके लिए न्यायालय को आगे बढ़ने का अधिकार क्षेत्र प्राप्त नहीं है।

29. वर्तमान दाण्डिक पुनरीक्षण **स्वीकार** किया जाता है। दिनांक 20 सितम्बर, 2018 का आक्षेपित अधिनिर्णय तथा दण्डादेश एतद्द्वारा **अपास्त** किया जाता है।

30. व्यय के बारे में कोई आदेश नहीं।

31. इस अधिनिर्णय से विदा लेने से पूर्व, न्याज यालय करुणामय राय का है कि पुनरीक्षणकर्ता को स्वतंत्रता प्रदान की जाए कि वह इस अधिनिर्णय की वेबसाइट प्रतिलिपि के साथ अपने पेंशन प्राधिकारी के पास जाए, अपने सेवानिवृत्ति लाभों की रिहाई के लिए, जो उसे पिछले छह वर्षों से अधिक समय से प्राप्त नहीं हो रहे हैं, जैसा कि लिखित तर्क से प्रतिबिम्बित होता है।

(2025) 5 ILRA 1879

मूल अधिकारिता आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

धारा 482 के अंतर्गत आपराधिक विविध आवेदन संख्या: 12482 सन् 2024

सुभाष चन्द्र एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

आवेदकों के अधिवक्ता: श्री गौरव पुंडीर, श्री एन.आई. ज़ाफरी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, श्री हितेश कुमार मिश्रा, श्री एस.के. मिश्रा, श्री आयुष मिश्रा

आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 482 – पुलिस विवेचना – विवेचना की गुणवत्ता

- समापन रिपोर्ट बिना फॉरेंसिक परीक्षण के दाखिल की गई।
- विरोध याचिका स्वीकार की गई।
- आक्षेपित समन आदेश को चुनौती दी गई।
- न्यायालय ने प्रणालीगत सुधार हेतु निर्देश दिए:
- अभियोजन द्वारा आरोपपत्रों की अनिवार्य समीक्षा।
- वैज्ञानिक विवेचना एवं आधुनिक पुलिस प्रशिक्षण का क्रियान्वयन।
- परिपत्र संख्या DG/Circular-06/2018 की पुनः पुष्टि।

निर्णय:

- विवेचना निष्पक्ष, वैज्ञानिक एवं साक्ष्य आधारित होनी चाहिए।
- यांत्रिक, सतही या पक्षपातपूर्ण विवेचना भारतीय संविधान के अनुच्छेद 20 एवं 21 का उल्लंघन करती है।
- अस्तित्वहीन जाली दस्तावेज़ पर आधारित समन आदेश पोषणीय नहीं है।
- कार्यवाही निरस्त की जाती है।
- पुलिस विवेचना एवं प्रशिक्षण के आधुनिकीकरण हेतु व्यापक निर्देश जारी किए गए। (अनुच्छेद 8, 9, 12, 13, 25, 33, 38 एवं 39)

न्यायालय की टिप्पणियाँ

अनुवादित

- हाल ही में *सनुज बंसल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य* में पुलिस महानिदेशक ने आश्वासन दिया था कि आरोपपत्र केवल इकबालिया बयान पर आधारित नहीं होंगे।
- परंतु न्यायालय ने पाया कि व्यवहार में आरोपपत्र प्रायः सह-अभियुक्तों के इकबालिया बयानों पर आधारित होते हैं, बिना पुष्टिकारी साक्ष्य के। यह विधि के प्रतिकूल है। (अनुच्छेद 12)
- धारा 173 Cr.P.C. के अंतर्गत दाखिल रिपोर्ट प्रायः टेम्पलेट प्रारूप में होती हैं, जिनमें पर्याप्त सामग्री नहीं होती।
- विवेचना अधिकारी द्वारा उठाए गए कदमों एवं संकलित साक्ष्यों का विस्तृत विवरण कॉलम-16 में होना चाहिए। (अनुच्छेद 13)

18.09.2024 के आदेशानुसार आरोपपत्र की प्रति अतिरिक्त मुख्य सचिव (गृह), पुलिस महानिदेशक एवं महानिदेशक (प्रशिक्षण) को भेजी गई। उन्हें निर्देश दिया गया कि वे आरोपपत्रों की समीक्षा करें और सर्वोच्च न्यायालय के डबलू कुजूर एवं शरीफ अहमद मामलों में दिए गए सिद्धांतों के अनुरूपता का आकलन करें। इसके पश्चात उन्हें उपाय सुझाने थे, जिनमें सिपाही से लेकर वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक तक के लिए व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम सम्मिलित था।

न्यायालय का निष्कर्ष

न्यायालय ने पाया कि आपराधिक कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण थी और निजी द्वेष के कारण संस्थित की गई थी।

- अंतिम दोषसिद्धि की संभावना क्षीण थी।
- न्यायालय का उपयोग किसी अप्रत्यक्ष उद्देश्य हेतु नहीं किया जा सकता।

अतः, आक्षेपित समन आदेश निरस्त किया जाता है। एफ.आई.आर. अपराध संख्या 8/2024, धारा 420, 467, 468, 471, 341, 504 एवं 506 IPC, थाना सिविल लाइन्स, जनपद अलीगढ़ से उत्पन्न कार्यवाही निरस्त की जाती है।

हालाँकि, यदि भविष्य में कोई आपत्तिजनक सामग्री सामने आती है, तो शिकायतकर्ता/प्रतिवादी संख्या 2 को विधि अनुसार पुलिस से संपर्क करने की स्वतंत्रता दी जाती है। (अनुच्छेद 39)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (E-14)

उद्धृत वाद

1. पक्खंडू एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य
2. हरकेश सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य
3. अनवर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य
4. जगुत राम बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2020) 9 SCC 520
5. सनुज बंसल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, SLP (Crl.) संख्या 10536/2023
6. डब्लू कुजुर बनाम झारखंड राज्य, (2024) 6 SCC 758

7. आर.के. डालमिया बनाम दिल्ली प्रशासन, 1962 SCC OnLine SC 83

8. शरीफ अहमद एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2024 SCC OnLine SC 726

9. पेरुमल बनाम जानकी, (2014) 5 SCC 377

10. हरियाणा राज्य बनाम भजनलाल, 1992 (1) Suppl. SCC 335

11. माधवराव जीवाजीराव सिंधिया एवं अन्य बनाम संभाजीराव चंद्रोजीराव आंग्रे एवं अन्य, (1988) 1 SCC 692

(माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा प्रदत्त)

1. श्री एन.आई. जाफरी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जो श्री गौरव पुंडीर, विद्वान अधिवक्ता द्वारा सहायित हैं, आवेदकों के लिए, श्री एस.के. मिश्रा, विद्वान अधिवक्ता, परिवादी के लिए, और विद्वान अपर महाधिवक्ता, जो श्री जे.के. उपाध्याय, विद्वान ए.जी.ए. द्वारा सहायित हैं, राज्य-प्रतिवादी के लिए, को सुना।

2. संक्षेप में, आरोपों का सार यह है कि परिवादी के पिता के नाम पर रामगंज, सराय हकीम बन्नादेरी, जिला अलीगढ़ में स्थित चार दुकानें संख्या 7/11, 7/1, 7/2, 7/8 थीं, और उसकी माता के नाम पर दो दुकानें क्रमशः संख्या 7/11 और 7/4 थीं। याचिकाकर्ता संख्या 3, जो परिवादी के पिता का बड़ा भाई है, अन्य आवेदकों के साथ मिलीभगत में, दिनांक 06.04.2023 की दो कूटरचित मुख्तारनामे निष्पादित किए जिसमें, प्रत्यक्षतः, अमिता रानी - परिवादी की माता ने गौरव और उसकी पत्नी प्रियंका को विक्रय विलेख निष्पादित करने और अधिवक्ता नियुक्त करने, और उसकी ओर से और उसके लिए मृत संपत्ति की देखभाल करने के लिए प्राधिकृत किया, और प्रदीप कुमार - परिवादी के पिता ने सुभाष चंद्र, अपने छोटे भाई को विक्रय विलेख निष्पादित करने और अधिवक्ता नियुक्त करने, और उसकी ओर से और उसके लिए मृत संपत्ति की देखभाल करने के लिए प्राधिकृत किया, इसके अतिरिक्त, परिवादी को रोकने, गाली देने और जीवन और संपत्ति को धमकी देने के अन्य आरोप।

3. उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर, विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने, दिनांक 10.01.2024 के आदेश द्वारा थाना प्रभारी, थाना सिविल लाइन्स अलीगढ़ को आवेदकों के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत करने का निर्देश दिया और उसके परिणामस्वरूप, प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 8/2024, धारा 420, 467, 468, 471, 341, 504, 506 भा.द.सं. के अंतर्गत निम्नलिखित के विरुद्ध पंजीकृत की गई; (i) गौरव पुत्र सुभाष चंद्र, (ii) प्रियंका पत्नी गौरव, (iii) सुभाष चंद्र पुत्र स्व. श्री कृष्ण मुरारी लाल, (iv) सौरभ पुत्र सुभाष चंद्र, (v) अंकुर पुत्र सुभाष चंद्र, (vi) ऋचा पत्नी सौरभ, और (vii) प्रिया पत्नी अंकुर, सभी निवासी रामघाट रोड, महुआ खेड़ा, अलीगढ़, थाना सिविल लाइन्स, जिला अलीगढ़।

4. विवेचना 18 दिनों के भीतर पूर्ण हो गई और पुलिस ने परिवादी के कथन, अपराध स्थल की निरीक्षण रिपोर्ट, साक्षियों के कथन, सी.सी.टी.वी. फुटेज और सार्वजनिक कर्तव्य पर पुलिस अधिकारियों के कथन, कुछ फल विक्रेताओं, और एक स्टाम्प विक्रेता के कथन के साथ-साथ नोटरी पब्लिक के कथन पर निर्भर करते हुए निस्तारण रिपोर्ट दाखिल करना चुना। निस्तारण रिपोर्ट से व्यथित होकर, परिवादी ने आवेदकों के विरुद्ध प्रतिवाद याचिका प्राथमिकृत की। प्रतिवाद याचिका को आक्षेपित दिनांक 03.04.2024 के समन आदेश द्वारा स्वीकार किया गया और इस प्रकार, आवेदक इस न्यायालय के समक्ष हैं।

5. श्री एन.आई. जाफरी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, आवेदकों के लिए, ने प्रस्तुत किया कि; (i) आक्षेपित समन आदेश पखंडु एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2001 एससीसीऑनलाइन इलाहाबाद 967), हरकेश सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य(2001 (43) इलाहाबाद क्रि 720), और अनवर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (विधि (इलाहाबाद)-2016-5-560) के विपरीत है, (ii) विद्वान विचारण न्यायालय ने त्रुटिपूर्वक एक शपथपत्र पर निर्भरता रखी है जिसमें कुछ दस्तावेज थे - जो निश्चित रूप से निस्तारण रिपोर्ट का भाग नहीं थे - जो परिवादी द्वारा प्रतिवाद याचिका के समर्थन में दाखिल किए गए, (iii) पक्षकारों के बीच मूल वाद संख्या 567/2016 और 568/2016 की एक सिविल वाद लंबित है, (iv) विवेचना अधिकारी ने सही ढंग से विवेचना पूर्ण की और निस्तारण रिपोर्ट दाखिल की, और (v) दिनांक 06.04.2023 के दोनों मुख्तारनामे पंजीकृत दस्तावेज नहीं हैं और उचित मुहर, हस्ताक्षर और स्टाम्प द्वारा समर्थित नहीं हैं, और ऐसे दस्तावेजों से कोई अवैध लाभ प्राप्त नहीं हुआ है, और परिवादी का संपूर्ण मामला कथित मुख्तारनामे की फोटोकॉपी पर आधारित है।

6. इसके विपरीत, श्री अजय सिंह, श्री हितेश कुमार मिश्रा, विद्वान अधिवक्ता, परिवादी/प्रतिवादी संख्या 2 के लिए संक्षिप्त धारण करते हुए, प्रस्तुत करते हैं कि विवेचना अधिकारी ने कलंकित और पक्षपातपूर्ण विवेचना की है जिसने भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 और 21 के अंतर्गत गारंटीकृत संवैधानिक अधिकारों के भाग के रूप में निहित निष्पक्ष विवेचना की परिवादी की वैध अपेक्षा को कम किया है और इस प्रकार तर्क करते हैं कि; (i) विवेचना अधिकारी ने जानबूझकर अभियुक्त-याचिकाकर्ताओं को अनुचित लाभ देने के उद्देश्य से, दिनांक 06.04.2023 के कूटरचित मुख्तारनामे को वैज्ञानिक परीक्षण के लिए नहीं भेजा; एक पर परिवादी के पिता द्वारा कथित रूप से हस्ताक्षर किए गए थे और उसकी माता ने दूसरे पर हस्ताक्षर किए, (ii) श्रीमती अमिता रानी और श्री प्रदीप कुमार, मुख्तारनामे के कथित निष्पादकों और साक्षी गौरव गोयल, अंकिता अग्रवाल पत्नी गौरव गोयल; नोटरी पब्लिक, स्टाम्प विक्रेता और अन्य व्यक्ति जो कूटरचित दस्तावेजों के हस्ताक्षरकर्ता थे, के नमूना हस्ताक्षर आई.ओ. द्वारा नहीं लिए गए हैं, (iii) सी.सी.टी.वी. फुटेज, जिस पर आई.ओ. ने निर्भरता रखी है, एफ.एस.एल. को नहीं भेजा गया है, (iv) विवेचना अपराध की सामग्री को उचित ठहराने के लिए नहीं की गई है, (v) आई.ओ. ने मामले की सच्चाई निकालने के लिए कोई प्रयास नहीं किया, (vi) विवेचना निष्पक्ष नहीं थी और गुप्त उद्देश्य से की गई थी, और (vii) विवेचना अभियुक्त व्यक्तियों के साथ मिलीभगत में की गई थी।

अनुवादित

7. दोनों पक्षकारों को सुनने के बाद, इस न्यायालय ने दिनांक 22.04.2024 के आदेश द्वारा विद्वान ए.जी.ए. को यह स्पष्ट करने के लिए कहा कि विवेचना अधिकारी ने थाना प्रभारी, थाना सिविल लाइन्स के शपथपत्र के माध्यम से दिनांक 06.04.2023 के मुख्तारनामों की वास्तविकता निर्धारित करने के लिए फोरेंसिक और वैज्ञानिक सहायता क्यों नहीं ली, जिसमें स्पष्ट किया जाए, (i) विवेचना अधिकारी को श्रीमती अमिता रानी, श्री प्रदीप कुमार, श्री गौरव गोयल, श्रीमती अंकिता अग्रवाल, नोटरी पब्लिक जिन्होंने दिनांक 06.04.2023 के मुख्तारनामे को नोटरीकृत किया था और अन्य संबंधित व्यक्तियों जिन्हें वह दिनांक 06.04.2023 के दस्तावेजों के निष्पादन की सच्चाई निकालने के लिए उचित और उपयुक्त समझ सकते थे, के नमूना हस्ताक्षर लेने से क्या रोका, (ii) थाना सिविल लाइन्स में उनकी तैनाती से एस.आई. राजेश कुमार को विवेचना के लिए सौंपे गए मामलों की सूची, सूची में प्रत्येक मामले के संक्षिप्त विवरण के साथ मामले(मामलों) की सौंपने की तिथि, विवेचना की स्थिति, आरोपपत्र दाखिल करने की तिथि, यदि कोई हो, और अन्य प्रासंगिक जानकारी शामिल होगी जो प्रथम सूचना रिपोर्ट की पंजीकरण की तिथि से प्रत्येक मामले की विवेचना की लंबितता और प्रगति के बारे में विवरण प्रकट करती है (सौंपे गए मामलों की कुल संख्या), (iii) अन्य मामलों पर लंबे समय से लंबित विवेचना के ऊपर और आगे, केवल 18 दिनों की अवधि के भीतर विवेचना समाप्त करने में वर्तमान मामले को वरीयता क्यों दी गई है, और (iv) थाना प्रभारी, थाना सिविल लाइन को उन प्रथम सूचना रिपोर्टों की सूची (थाना सिविल लाइन्स में पंजीकृत सभी प्रथम सूचना रिपोर्ट) भी दाखिल करनी होगी जिनमें विवेचना अभी भी प्रगति में है, सारणीबद्ध रूप में, जिसमें प्रथम सूचना रिपोर्ट की पंजीकरण की तिथि और आज तक विवेचना की स्थिति शामिल है। थाना प्रभारी, थाना सिविल लाइन्स को एस.एस.पी. अलीगढ़ के समर्थन के साथ एक शपथपत्र दाखिल करने का निर्देश दिया गया था कि दिनांक 22.04.2024 के आदेश की शर्तों का शब्दशः और भावना में अनुपालन किया गया है।

8. सार में, संपूर्ण व्यर्थ अभ्यास पहले अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा और बाद में पुलिस द्वारा किया गया था। विद्वान मजिस्ट्रेट ने, कथित कूटरचित दस्तावेज की प्रामाणिकता की प्रथमदृष्ट्या सत्यापन किए बिना या इसकी सामग्री की उचित रूप से परीक्षा किए बिना, प्रथम सूचना रिपोर्ट की पंजीकरण का निर्देश दिया और बाद में प्रतिवाद याचिका को स्वीकार किया। उल्लेखनीय रूप से, कथित कूटरचित मुख्तारनामे की मूल प्रति - जो विवाद में मूल मुद्दा है - कभी सामने नहीं आई, न ही इसे किसी भी पक्षकार द्वारा कभी कार्यान्वित किया गया। इस कथित कूटरचित दस्तावेज के आधार पर कोई संपत्ति कभी हस्तांतरित नहीं की गई या हस्तांतरित करने का प्रयास भी नहीं किया गया, फिर भी आवेदकों को समन जारी किया गया।

9. उपर्युक्त आदेश के अनुपालन में, थाना सिविल लाइन्स के थाना प्रभारी ने एक शपथपत्र दाखिल किया; हालांकि, यह इस न्यायालय द्वारा निर्धारित शर्तों की पूर्ण उपेक्षा में था। बाद में, एस.एस.पी. को एक व्यक्तिगत शपथपत्र प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया, और उनका शपथपत्र थाना प्रभारी के शपथपत्र से भी अधिक कमी वाला था। तत्पश्चात्, अपर मुख्य सचिव (गृह) को यह स्पष्ट करने के लिए कहा गया कि इस न्यायालय द्वारा दो बार निर्देश जारी किए जाने के बावजूद, एस.एस.पी. न्यायालय के आदेश की सच्ची भावना और शब्द में अनुपालन शपथपत्र दाखिल करने में विफल क्यों रहे, बाद में न्यायालय के निर्देश के अनुसार अनुपालन शपथपत्र

दाखिल किए गए हैं। पुलिस के पास कोई उत्तर नहीं था कि मानक प्रक्रिया से विचलित होकर परिवादी के मामले को वरीयता क्यों दी गई थी। प्रत्युत्तर शपथपत्र सुझाव देता है कि थाना सिविल लाइन्स में सैकड़ों मामले विवेचना लंबित हैं, फिर भी, वर्तमान मामले में विवेचना 18 दिनों के भीतर समाप्त हो गई, जिसने परिवादी को प्रतिवाद याचिका दाखिल करने के लिए प्रेरित किया। परिपत्र संख्या डी.जी./परिपत्र-06/2018 दिनांक 19.02.2018 की शर्तों का विवेचना अधिकारी द्वारा अनुपालन नहीं किया गया है।

10. यह एक मामले की कहानी नहीं है, इस न्यायालय का बोर्ड ऐसी याचिकाओं से भरा हुआ है जिसमें विवेचना अधिकारी, छलकपट द्वारा प्रतिरूपण, शरारत, कूटरचित दस्तावेज बनाने, न्यायालय के अभिलेख या सार्वजनिक रजिस्टर की कूटरचना, मूल्यवान प्रतिभूति की कूटरचना, प्रतिष्ठा को हानि पहुंचाने के उद्देश्य से कूटरचना, कूटरचित दस्तावेज या इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख बनाना, कूटरचित दस्तावेज या इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख को वास्तविक के रूप में उपयोग करना, कूटरचना करने के आशय से नकली बनाना या रखना, कूटरचित ट्रेड मार्क का उपयोग करना, कूटरचित या नकली मुद्रा-नोटों या बैंक नोटों को वास्तविक के रूप में उपयोग करना, कपटपूर्ण संपत्ति दस्तावेजों की पंजीकरण और सृजन और इलेक्ट्रॉनिक रूप में यौन स्पष्ट सामग्री का प्रकाशन, वीडियो वॉयरिज्म, और गोपनीयता का उल्लंघन, और मध्यस्थ द्वारा डेटा का रिसाव, ई-कॉमर्स धोखाधड़ी जैसे प्रतिरूपण जिसे सामान्यतः फिशिंग के रूप में जाना जाता है, पहचान की चोरी और संचार सेवाओं के माध्यम से आक्रामक संदेश के आरोप होने के बावजूद, पुलिस पुरानी फैशन तरीके से धारा 161 दं.प्र.सं. के अंतर्गत कथन दर्ज करके विवेचना करती है और आमतौर पर सह-अभियुक्त के प्रकटीकरण कथन के आधार पर आरोपपत्र दाखिल करती है।

11. जैसे-जैसे समय बीता, अपराध करने के तरीके और साधन काफी बदल गए हैं लेकिन पुलिस का कार्य, जहां तक अभियुक्त को पकड़ना और विवेचना का संचालन पुरानी फैशन दिनों की तकनीकों द्वारा अभी भी किया जाता है। सबसे खराब बात यह है कि यह पुलिस में भ्रष्टाचार को बढ़ाता है, झूठे आरोप लगाने की संभावना अधिक होती है, वास्तविक अभियुक्त हमेशा पुलिस के चंगुल से बाहर होते हैं, अपराध को न्याय नहीं दिया जा सकता, वास्तविक अपराधियों को न्याय का सामना करने के लिए न्यायालय के समक्ष नहीं लाया जा सकता। यह न्यायालय के बहुत समय को बर्बाद करता है और अंततः न्याय की विफलता में परिणत होता है।

12. हाल ही में, ***सनुज बंसल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य*** (एसएलपी (क्रि.) संख्या. 10536/2023) में, पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश ने एक वचनबद्धता दी कि राज्य में आरोपपत्र केवल स्वीकारोक्ति कथनों के आधार पर दाखिल नहीं किए जाते हैं। हालांकि, इस न्यायालय ने देखा है कि व्यवहार में, आरोपपत्र नियमित रूप से दैनिक आधार पर मुख्य रूप से सह-अभियुक्तों के स्वीकारोक्ति कथनों पर निर्भर करते हुए दाखिल किए जाते हैं, किसी पुष्टिकारक साक्ष्य की खोज के बिना - एक दृष्टिकोण जो विधि के स्पष्ट अवमानना में है।

13. यह चर्चा करना भी रोचक है कि धारा 173 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दाखिल की गई रिपोर्टें नियमित रूप से टेम्पलेट प्रारूपों में पर्याप्त सामग्री के बिना दाखिल की जाती हैं जो न्यायालयों को यह युक्तियुक्त निष्कर्ष पर

पहुंचने में सक्षम बनाती हैं कि आरोपपत्र में उल्लिखित अपराध प्रथमदृष्ट्या बनते हैं। सी.डी. घटनाओं के अनुक्रम का सुझाव दे सकती है लेकिन सी.डी. विवेचना अधिकारी द्वारा विवेचना के दौरान एकत्र किए गए प्रासंगिक तथ्यों और साक्ष्य के साथ उठाए गए कदमों के विस्तृत विवरण की आवश्यकता को धारा 173 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दाखिल की गई पुलिस रिपोर्ट के स्तंभ-16 में प्रतिस्थापित नहीं कर सकती।

14. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **डब्लू कुजुर बनाम झारखंड राज्य** ((2024) 6 एससीसी758)में धारित किया है कि विवेचना अधिकारियों ने आरोपपत्र/पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय धारा 173(2) दं.प्र.सं. की आवश्यकताओं का अनुपालन नहीं किया। धारा 173 दं.प्र.सं. में निर्धारित पुलिस रिपोर्ट/आरोपपत्र में विवेचना अधिकारी द्वारा अनुपालन की जाने वाली अनिवार्य आवश्यकता, अधिक विशेष रूप से इसकी उप-धारा (2)। आरोपपत्र धारा 173(2) दं.प्र.सं. के अंतर्गत पुलिस अधिकारी की अंतिम रिपोर्ट के अलावा कुछ नहीं है। यह विवेचना अधिकारी की संबंधित न्यायालय को राय या सूचना है कि विवेचना के दौरान एकत्र की गई सामग्री पर, एक अपराध विशेष व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा किया गया प्रतीत होता है, या कोई अपराध नहीं किया गया प्रतीत होता है। डब्लू कुजुर के मामले (उपर्युक्त) का प्रासंगिक भाग यहां नीचे पुनरुत्पादित किया गया है:

"19. उपर्युक्त संदर्भित चर्चा धारा 173(2) दं.प्र.सं. में निहित प्रावधानों की आवश्यकताओं के अनुपालन के महत्व को उजागर करने के लिए आवश्यक की गई है।

20. इसलिए, धारा 173 में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए यह निर्देश दिया जाता है कि विवेचना पूर्ण होने पर पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट में निम्नलिखित शामिल होंगे:

20.1. राज्य सरकार द्वारा निर्धारित प्रपत्र में एक रिपोर्ट जिसमें बताया गया हो -

(क) पक्षकारों के नाम;

(ख) सूचना की प्रकृति;

(ग) उन व्यक्तियों के नाम जो मामले की परिस्थितियों से परिचित प्रतीत होते हैं;

(घ) क्या कोई अपराध किया गया प्रतीत होता है और, यदि हां, किसके द्वारा;

(ङ) क्या अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया है;

(च) क्या उसे उसके बंधपत्र पर रिहा किया गया है और, यदि हां, जमानतदारों के साथ या बिना;

(छ) क्या उसे धारा 170 के अंतर्गत हिरासत में भेजा गया है।

(ज) क्या महिला की चिकित्सा परीक्षण की रिपोर्ट संलग्न की गई है जहां विवेचना [भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 376, 376ए, 376एबी, 376बी, 376सी, 376डी, 376डीए, 376डीबी या धारा 376ई] के अंतर्गत अपराध से संबंधित है

20.2 यदि विवेचना पूर्ण होने पर, अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के पास भेजने को उचित ठहराने के लिए पर्याप्त साक्ष्य या युक्तियुक्त संदेह का आधार नहीं है, तो प्रभारी पुलिस अधिकारी रिपोर्ट में धारा 169 दं.प्र.सं. के अनुपालन के बारे में स्पष्ट रूप से बताएगा। 20.3. जब धारा 170 लागू होने वाले मामले के संबंध में रिपोर्ट हो, तो पुलिस अधिकारी रिपोर्ट के साथ मजिस्ट्रेट को सभी दस्तावेज या उसके प्रासंगिक उद्धरण अग्रेषित करेगा जिन पर अभियोजन निर्भर करने का प्रस्ताव करता है जो विवेचना के दौरान मजिस्ट्रेट को पहले से नहीं भेजे

गए हैं; और धारा 161 के अंतर्गत दर्ज किए गए सभी व्यक्तियों के कथन जिन्हें अभियोजन अपने साक्षियों के रूप में परीक्षा करने का प्रस्ताव करता है। 20.4. आगे की विवेचना के मामले में, प्रभारी पुलिस अधिकारी मजिस्ट्रेट को ऐसे साक्ष्य के संबंध में निर्धारित प्रपत्र में एक आगे की रिपोर्ट या रिपोर्टें अग्रेषित करेगा और उपर्युक्त उप-पैरा 20.1 से 20.3 में उल्लिखित विवरणों का भी अनुपालन करेगा।

21. यह आगे निर्देश दिया जाता है कि प्रत्येक राज्य में थानों के प्रभारी अधिकारी उपर्युक्त निर्देशों का सख्ती से अनुपालन करेंगे, और उनके गैर-अनुपालन को संबंधित न्यायालयों द्वारा सख्ती से देखा जाएगा जिनमें पुलिस रिपोर्टें प्रस्तुत की जाती हैं।"

15. स्पष्टता के लिए, संहिता, 1973 की धारा 173 को यहां पुनरुत्पादित किया गया है:
"173. विवेचना पूर्ण होने पर पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट।

(1) इस अध्याय के अंतर्गत प्रत्येक विवेचना अनावश्यक विलंब के बिना पूर्ण की जाएगी।
(1-क) [भारतीय दंड संहिता की धारा 376, 376ए, 376एबी, 376बी, 376सी , धारा 376डी, धारा 376डीए, धारा 376डीबी या धारा 376ई के अंतर्गत अपराध से संबंधित विवेचना दो माह के भीतर पूर्ण की जाएगी।] [दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2008 (2009 का 5), धारा 16 (क) द्वारा प्रविष्ट।] उस तिथि से जब थाने के प्रभारी अधिकारी द्वारा सूचना अभिलिखित की गई थी।

(2) (i) जैसे ही यह पूर्ण हो जाती है, थाने का प्रभारी अधिकारी पुलिस रिपोर्ट पर अपराध का संज्ञान लेने के लिए सशक्त मजिस्ट्रेट को राज्य सरकार द्वारा निर्धारित प्रपत्र में एक रिपोर्ट अग्रेषित करेगा, जिसमें बताया गया हो -
(क) पक्षकारों के नाम;
(ख) सूचना की प्रकृति;
(ग) उन व्यक्तियों के नाम जो मामले की परिस्थितियों से परिचित प्रतीत होते हैं;
(घ) क्या कोई अपराध किया गया प्रतीत होता है और, यदि हां, किसके द्वारा;
(ङ) क्या अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया है; (च) क्या उसे उसके बंधपत्र पर रिहा किया गया है और, यदि हां, जमानतदारों के साथ या बिना; (छ) क्या उसे धारा 170 के अंतर्गत हिरासत में भेजा गया है।
(ज) क्या महिला की चिकित्सा परीक्षण की रिपोर्ट संलग्न की गई है जहां विवेचना [भारतीय दंड संहिता की धारा 376, 376ए, 376एबी, 376बी, 376सी, 376डी, 376डीए, 376डीबी] [दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2008 (2009 का 5), धारा 16 (ख) द्वारा प्रविष्ट।]] [या भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 376ई] से संबंधित है। [आपराधिक विधि (संशोधन) अधिनियम, 2013 द्वारा "या भारतीय दंड संहिता की धारा 376डी" शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित।
(ii) अधिकारी ऐसे तरीके से भी संप्रेषित करेगा जैसा राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किया जा सकता है, उसके

द्वारा की गई कार्रवाई को उस व्यक्ति को, यदि कोई हो, जिसके द्वारा अपराध के किए जाने से संबंधित सूचना पहली बार दी गई थी।

(3) जहां धारा 158 के अंतर्गत पुलिस का एक वरिष्ठ अधिकारी नियुक्त किया गया है, रिपोर्ट, किसी भी मामले में जिसमें राज्य सरकार सामान्य या विशेष आदेश द्वारा ऐसा निर्देश देती है, उस अधिकारी के माध्यम से प्रस्तुत की जाएगी, और वह, मजिस्ट्रेट के आदेशों के लंबित रहते हुए, थाने के प्रभारी अधिकारी को आगे की विवेचना करने का निर्देश दे सकता है।

(4) जब भी इस धारा के अंतर्गत अग्रेषित रिपोर्ट से यह प्रकट होता है कि अभियुक्त को उसके बंधपत्र पर रिहा किया गया है, मजिस्ट्रेट ऐसे बंधपत्र के निर्वहन के लिए या अन्यथा ऐसा आदेश करेगा जैसा वह उचित समझे।

(5) जब ऐसी रिपोर्ट ऐसे मामले के संबंध में हो जिस पर धारा 170 लागू होती है, तो पुलिस अधिकारी रिपोर्ट के साथ मजिस्ट्रेट को अग्रेषित करेगा -
(क) सभी दस्तावेज या उनके प्रासंगिक उद्धरण जिन पर अभियोजन निर्भर करने का प्रस्ताव करता है जो विवेचना के दौरान मजिस्ट्रेट को पहले से नहीं भेजे गए हैं;
(ख) धारा 161 के अंतर्गत दर्ज किए गए सभी व्यक्तियों के कथन जिन्हें अभियोजन अपने साक्षियों के रूप में परीक्षा करने का प्रस्ताव करता है।

(6) यदि पुलिस अधिकारी की राय है कि ऐसे किसी कथन का कोई भाग कार्यवाही की विषय-वस्तु से प्रासंगिक नहीं है या अभियुक्त को इसका प्रकटीकरण न्याय के हित में आवश्यक नहीं है और सार्वजनिक हित में अयुक्तियुक्त है, तो वह कथन के उस भाग को इंगित करेगा और मजिस्ट्रेट से अनुरोध करते हुए एक नोट संलग्न करेगा कि उस भाग को अभियुक्त को दी जाने वाली प्रतियों से बाहर रखा जाए और ऐसा अनुरोध करने के अपने कारण बताएगा।

(7) जहां मामले की विवेचना करने वाला पुलिस अधिकारी ऐसा करना सुविधाजनक पाता है, वह अभियुक्त को उप-धारा (5) में संदर्भित सभी या किसी भी दस्तावेज की प्रतियां प्रस्तुत कर सकता है।

(8) इस धारा में कुछ भी उप-धारा (2) के अंतर्गत एक रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को अग्रेषित किए जाने के बाद अपराध के संबंध में आगे की विवेचना को रोकने के लिए नहीं समझा जाएगा और, जहां ऐसी विवेचना पर, थाने का प्रभारी अधिकारी आगे का साक्ष्य, मौखिक या दस्तावेजी प्राप्त करता है, वह मजिस्ट्रेट को ऐसे साक्ष्य के संबंध में निर्धारित प्रपत्र में एक आगे की रिपोर्ट या रिपोर्टें अग्रेषित करेगा; और उप-धाराएं (2) से (6) के प्रावधान, जहां तक हो सके, ऐसी रिपोर्ट या रिपोर्टों के संबंध में उसी तरह लागू होंगे जैसे वे उप-धारा (2) के अंतर्गत अग्रेषित रिपोर्ट के संबंध में लागू होते हैं।"

अनुवादित

16. ***आर.के. डालमिया इत्यादि बनाम दिल्ली प्रशासन*** (1962 एससीसीऑनलाइन एससी 83) में माननीय उच्चतम न्यायालय ने धारित किया कि आरोपपत्र शायद ही अभियोजन मामले की एक संपूर्ण या सटीक थीसिस है। हालांकि, धारा 173 की उप-धारा (1) के खंड (क) की आवश्यकता है कि थाने का प्रभारी अधिकारी निर्धारित प्रपत्र में रिपोर्ट अग्रेषित करेगा जिसमें पक्षकारों के नाम, सूचना की प्रकृति, और उन व्यक्तियों के नाम जो मामले की परिस्थितियों से परिचित प्रतीत होते हैं, निर्धारित किए जाएंगे।

17. माननीय उच्चतम न्यायालय ने ***शरीफ अहमद और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य*** (2024 एससीसीऑनलाइन एससी 726) में धारित किया कि आरोपपत्र में विवेचना अधिकारी द्वारा उठाए गए विस्तृत कदम शामिल होने चाहिए। प्रासंगिक भाग यहां नीचे निकाला गया है:

"22. हाल ही में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने जाकिया अहसान जाफरी बनाम गुजरात राज्य (2022) 6 SCR 1: 2022 INSC 653 में टिप्पणी की है:

"11. इस न्यायालय ने दयाल सिंह में नोट किया कि विवेचना अधिकारी पुलिस मैनुअल और अपने दृष्टिकोण और विवेचना में मेहनती, सच्चे और निष्पक्ष होते हुए ज्ञात व्यवहार के सिद्धांतों के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य है। रिपोर्ट किए गए निर्णय में यह नोट किया गया है कि एक विवेचना अधिकारी अपनी विवेचना पूर्ण करने में अपनाई गई रीति और पद्धति के लिए पूरी तरह से जिम्मेदार और उत्तरदायी है। निस्संदेह, विवेचना पूर्ण होने पर, विवेचना अधिकारी अनावश्यक विलंब के बिना, अपराध का संज्ञान लेने के लिए सशक्त मजिस्ट्रेट को उसमें संदर्भित निर्धारित विवरण निर्धारित करते हुए रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए बाध्य है। इस प्रकार प्रस्तुत रिपोर्ट विवेचना के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर विवेचना अधिकारी द्वारा पहुंचा गया निष्कर्ष है। विवेचना अधिकारी का कर्तव्य है कि वह विवेचना के दौरान प्रत्येक प्रासंगिक सूचना/सामग्री एकत्र करे, जो उसे घटनाओं का वास्तविक क्रम और कथित अपराध के किए जाने और उसी को करने में शामिल व्यक्ति को उजागर करने वाले सच्चे तथ्य होने का विश्वास होना चाहिए। उससे अपेक्षा की जाती है कि वह सामग्री की सभी कोणों से परीक्षा करे। घटना में, यदि पर्याप्त साक्ष्य या युक्तियुक्त आधार है कि एक अपराध किया गया प्रतीत होता है और अपराध करने वाले व्यक्ति की पहचान की गई है, तो विवेचना अधिकारी इस संबंध में अपनी राय दर्ज करने के लिए बाध्य है, जैसा कि संहिता की धारा 173(2)(i)(घ) द्वारा अपेक्षित है। दूसरे शब्दों में, यदि विवेचना अधिकारी अभियुक्त को विचारण के लिए भेजने का इरादा रखता है, तो वह न केवल अपराध के किए जाने के बारे में, बल्कि अपराध के किए जाने में ऐसे व्यक्ति की संलिप्तता के बारे में भी एक दृढ़ राय बनाने के लिए बाध्य है।

12. ऐसी राय विवेचना के दौरान एकत्र की गई सामग्री के विश्लेषण की परिणति है - कि अभियुक्त के विरुद्ध "प्रबल संदेह" है, जो अंततः संबंधित न्यायालय को यह सोचने के लिए प्रेरित करेगा कि यह "अनुमान लगाने" का आधार है कि अभियुक्त "ने" कथित अपराध किया "है"; और न कि मात्र संदेह का मामला। प्रबल संदेह का मामला होने के लिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की पुष्टि करने के लिए पर्याप्त सामग्री विद्यमान होनी चाहिए; और ऐसे भार की होनी चाहिए कि यह संबंधित न्यायालय को अपराध का संज्ञान लेने और अंततः

यह सोचने (राय बनाने) के लिए सुविधाजनक बनाए कि "अनुमान लगाने" का आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया "है", जैसा कि आरोपित है - ताकि संहिता की धारा 228(1) या 246(1) के संदर्भ में उसके विरुद्ध आरोप तय किया जा सके, जैसा भी मामला हो। अपराध का संज्ञान लेने या अभियुक्त के विरुद्ध आरोप तय करने के लिए, न्यायालय को विवेचना अधिकारी द्वारा दाखिल रिपोर्ट और उससे संलग्न सभी सामग्री का विश्लेषण करना चाहिए और फिर एक स्वतंत्र प्रथमदृष्ट्या राय बनानी चाहिए कि क्या यह "अनुमान लगाने" का आधार है कि अभियुक्त "ने" अपराध किया "है", जैसा कि आरोपित है। (यह नहीं है, "हो सकता है" या "संभावना है" कि अपराध किया है, बल्कि यह अनुमान लगाने का आधार है कि उसने अपराध किया है)। मजिस्ट्रेट इस प्रक्रिया में विवेचना अधिकारी की राय को उचित महत्व दे सकता है। यदि विवेचना अधिकारी द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट का यह अंतिम परिणाम होना है, तो यदि वह विवेचना के दौरान एकत्र की गई सामग्री के बारे में राय बनाने के लिए समान मानक लागू करता है और इसे धारा 173 के अंतर्गत प्रस्तुत रिपोर्ट में व्यक्त करता है तो इसमें कुछ भी गलत नहीं है। अफरोज मोहम्मद हसनफता में संदर्भित निर्णयों, रमेश सिंह और आई.के. नांगिया के मामले सहित, को संदर्भित करना उपयोगी हो सकता है।

xx xx xx

63. यह रेखांकित करने की आवश्यकता नहीं है कि विवेचना एजेंसी के पास आने वाली प्रत्येक सूचना को प्रासंगिक माना जाना चाहिए। हालांकि, विवेचना एजेंसी से अपेक्षा की जाती है कि वह ऐसी सूचना की प्रामाणिकता के बारे में पूछताछ करे और ऐसा करने के बाद उसके समर्थन में पुष्टिकारक साक्ष्य एकत्र करे। पुष्टिकारक साक्ष्य की अनुपस्थिति में, यह केवल संदेह का मामला होगा और गंभीर संदेह के परीक्षण को पास नहीं करेगा, जो संदिग्ध को विचारण के लिए भेजने के लिए पूर्व-आवश्यकता है। यह संहिता की धारा 173(2)(i)(घ) में जनादेश है, जो यह मानता है कि विवेचना अधिकारी को अपनी रिपोर्ट में यह इंगित करना चाहिए कि क्या कोई अपराध किया गया प्रतीत होता है और यदि हां, तो किसके द्वारा। विवेचना/पूछताछ के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर बनी विवेचना अधिकारी की राय को उचित महत्व दिया जाना चाहिए। यह केवल सीमा होगी, संबंधित न्यायालय को अपराध का संज्ञान लेने और फिर आरोप तय करने के लिए सुविधाजनक बनाने के लिए यदि यह राय है कि यह अनुमान लगाने का आधार है कि अभियुक्त ने संहिता के अध्याय XIX के अंतर्गत विचारणीय अपराध किया है।"

23. के. वीरास्वामी बनाम भारत संघ और अन्य (1991) 3 एससीसी655 में, के. जगन्नाथ शेट्टी, न्या.मू. ने स्वयं और एम.एन. वेंकटचलैया, न्या.मू. (जैसा कि उनकी विद्वता तब थी) के लिए आरोपपत्र की सामग्री के प्रश्न पर निर्णय उच्चारित किया और टिप्पणी की:

"75. खंड (ङ) के अंतर्गत बनाए गए अपराध की प्रकृति के बारे में हमने जो दृष्टिकोण लिया है, उसे देखते हुए, अपराध के घटक से संबंधित तर्क की परीक्षा करना आवश्यक नहीं हो सकता है। लेकिन चूंकि आरोपपत्र की वैधता पर सवाल उठाया गया है, हम उस तर्क से भी निपटेंगे। अधिवक्ता ने अधिनियम की धारा 5(1) के खंड (ङ) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "जिसके लिए वह संतोषजनक रूप से लेखा नहीं दे सकता" पर बहुत जोर दिया।

उन्होंने तर्क दिया कि उस शब्द का अर्थ है कि लोक सेवक विवेचना अधिकारी के समक्ष संपत्ति और आय के ज्ञात स्रोतों के बीच कथित असमानता को स्पष्ट करने के अवसर का हकदार है। विवेचना अधिकारी को उसकी व्याख्या पर विचार करना आवश्यक है और उसके द्वारा दाखिल आरोपपत्र में ऐसा कथन होना चाहिए। उस आवश्यकता का उल्लेख करने में विफलता आरोपपत्र को दोषपूर्ण बना देगी और इसे अवैध प्रस्तुत करेगी। यह प्रस्तुतीकरण, यदि हम कह सकते हैं, विवेचना अधिकारी की शक्तियों को पूरी तरह से नजरअंदाज करता है। विवेचना अधिकारी को केवल यह पता लगाने के लिए सामग्री एकत्र करना आवश्यक है कि आरोपित अपराध किया गया प्रतीत होता है या नहीं। विवेचना के दौरान, वह अभियुक्त की परीक्षा कर सकता है। वह उसका स्पष्टीकरण मांग सकता है और यदि आवश्यक हो तो वह उसकी आय के ज्ञात स्रोतों और उसके पास की संपत्ति के बारे में उससे क्रॉस चेक कर सकता है। वास्तव में, निष्पक्ष विवेचना की आवश्यकता है, जैसा कि श्री ए.डी. गिरि, विद्वान सॉलिसिटर जनरल ने सही कहा है, कि अभियुक्त को अंधेरे में नहीं रखा जाना चाहिए। यदि वह सहयोग करने के लिए तैयार है तो उसे विश्वास में लिया जाना चाहिए। लेकिन यह कहना कि सभी सामग्री एकत्र करने के बाद विवेचना अधिकारी को अभियुक्त को अवसर देना चाहिए और उसे आय के ज्ञात स्रोतों पर संपत्ति की अधिकता का लेखा देने के लिए कहना चाहिए और फिर यह तय करना चाहिए कि लेखांकन संतोषजनक है या नहीं, विवेचना अधिकारी को एक पूछताछ अधिकारी या न्यायाधीश की स्थिति में ऊपर उठाना होगा। विवेचना अधिकारी लोक सेवक के आचरण के विरुद्ध पूछताछ नहीं कर रहा है या अभियुक्त की संपत्ति और आय के बीच असमानता के संबंध में विवादित मुद्दों का निर्धारण नहीं कर रहा है। वह केवल सभी पक्षों से सामग्री एकत्र करता है और एक रिपोर्ट तैयार करता है जिसे वह न्यायालय में आरोपपत्र के रूप में दाखिल करता है।"

उपर्युक्त पैराग्राफ का उत्तरार्द्ध भाग, अपराध के विवरणों और बाद के चरण (विचारण के चरण) में स्वीकार्य साक्ष्य प्रस्तुत करके अभियुक्त के अपराध को घर लाने के लिए उन्हें सिद्ध करने की आवश्यकता का संदर्भ देते हुए, इस संदर्भ में समझा जाना चाहिए कि आरोपपत्र को विस्तार से साक्ष्य का मूल्यांकन करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मूल्यांकन की प्रक्रिया विचारण का विषय है। इसका अर्थ यह नहीं है कि आरोपपत्र को धारा 173(2) संहिता की आवश्यकताओं और राज्य नियमों के जनादेश को पूरा करने के लिए तथ्यों का खुलासा या संदर्भ नहीं देना चाहिए। इसके अलावा, उसी पैराग्राफ का पूर्व भाग, विवेचना अधिकारी की राय का संदर्भ देते हुए, इस चरण पर विवेचना अधिकारी की राय के महत्व को प्रदर्शित करने के लिए ऐसा करता है। हालांकि, यह मजिस्ट्रेट को ऐसी राय से स्वतंत्र दृष्टिकोण अपनाने में अपनी शक्तियों का प्रयोग करने से नहीं रोकता है, जैसा कि इस न्यायालय ने भगवंत सिंह (उपर्युक्त) और मीनू कुमारी (उपर्युक्त) में धारित किया है।

24. यह पुलिस रिपोर्ट है जो मजिस्ट्रेट को उसके लिए उपलब्ध विकल्पों में से कार्रवाई का एक क्रम तय करने में सक्षम बनाएगी। अपराध और विवेचना के विवरण अभियोजन मामले की एक व्यापक थीसिस होने वाले नहीं हैं, लेकिन उसी समय, कथित अपराध की संपूर्ण विवेचना को प्रतिबिंबित करना चाहिए। यह इस अभिलेख के आधार पर है कि न्यायालय संहिता की धारा 190(1)(ख) और धारा 204 के संदर्भ में अपराध का प्रभावी संज्ञान ले सकता है और प्रक्रिया जारी करने के लिए आगे बढ़ सकता है। संदेह या बहस के मामले में, या यदि कोई

अपराध नहीं बनता है, तो मजिस्ट्रेट के लिए अन्य विकल्पों का प्रयोग करना खुला है जो उसके लिए उपलब्ध हैं।

25. हमारे तर्क के समर्थन में, हम के. वीरास्वामी (उपर्युक्त) में शेट्टी, न्या.मू. के निर्णय में अगले पैराग्राफ का संदर्भ देंगे जो इस प्रकार पढ़ता है:

"76. आरोपपत्र दं.प्र.सं. की धारा 173(2) के अंतर्गत पुलिस अधिकारी की अंतिम रिपोर्ट के अलावा कुछ नहीं है। धारा 173(2) प्रावधान करती है कि विवेचना पूर्ण होने पर संज्ञेय अपराध की विवेचना करने वाला पुलिस अधिकारी एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। रिपोर्ट राज्य सरकार द्वारा निर्धारित प्रपत्र में होनी चाहिए और उसमें बताया जाना चाहिए (क) पक्षकारों के नाम; (ख) सूचना की प्रकृति; (ग) उन व्यक्तियों के नाम जो मामले की परिस्थितियों से परिचित प्रतीत होते हैं; (घ) क्या कोई अपराध किया गया प्रतीत होता है और, यदि हां, किसके द्वारा (ङ) क्या अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया है; (च) क्या उसे उसके बंधपत्र पर रिहा किया गया है और, यदि हां, जमानतदारों के साथ या बिना; और (छ) क्या उसे धारा 170 के अंतर्गत हिरासत में भेजा गया है। जैसा कि इस न्यायालय ने सत्य नारायण मुसाड़ी बनाम बिहार राज्य में टिप्पणी की है कि धारा 173(2) के अंतर्गत रिपोर्ट की वैधानिक आवश्यकता का अनुपालन किया जाएगा यदि उसमें निर्धारित विभिन्न विवरण रिपोर्ट में शामिल किए गए हैं। यह रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को एक सूचना है कि संज्ञेय अपराध की विवेचना पर विवेचना अधिकारी न्यायालय द्वारा अपराध की पूछताछ करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य प्राप्त करने में सक्षम हुआ है और आवश्यक सूचना न्यायालय को भेजी जा रही है। वास्तव में, धारा 173(2) के अंतर्गत रिपोर्ट विवेचना अधिकारी की एक राय होती है कि जहां तक उसका संबंध है वह न्यायालय द्वारा अभियुक्त के विचारण के लिए पर्याप्त सामग्री प्राप्त करने में सक्षम हुआ है। यदि यह धारा 175(5) द्वारा अपेक्षित सभी दस्तावेजों और साक्षियों के कथनों के साथ है तो रिपोर्ट पूर्ण है। विवेचना अधिकारी की रिपोर्ट में कुछ और बताने की आवश्यकता नहीं है। यह भी आवश्यक नहीं है कि अपराध के सभी विवरण बताए जाने चाहिए। अपराध के विवरणों को बाद के चरण यानी मामले के विचारण के दौरान स्वीकार्य साक्ष्य प्रस्तुत करके अभियुक्त के अपराध को घर लाने के लिए सिद्ध करने की आवश्यकता होती है। यह पैराग्राफ आरोपपत्र की सामग्री की परीक्षा करता है और विस्तार से यह धारित करता है कि यह संहिता की धारा 173(2) की शर्तों के साथ-साथ दंडात्मक अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार है। इसके आगे, सत्य नारायण मुसाड़ी बनाम बिहार राज्य (1980) 3 एससीसी152 का संदर्भ दिया गया है, यह कहते हुए कि आरोपपत्र को वैधानिक आवश्यकताओं का अनुपालन करना चाहिए, और उसमें निर्धारित विभिन्न विवरण रिपोर्ट में शामिल किए जाने चाहिए।

26. पुलिस विवेचना का उद्देश्य और प्रयोजन बहुआयामी है। इसमें तथ्यों का पता लगाने के लिए पारदर्शी और स्वतंत्र विवेचना सुनिश्चित करने की आवश्यकता शामिल है, यह जांचना कि अपराध किया गया है या नहीं, यदि अपराध किया गया है तो अपराधी की पहचान करना, और न्यायालय के समक्ष एकत्र किए गए साक्ष्य को रखना, जिसकी सच्चाई और शुद्धता तत्पश्चात् न्यायालय द्वारा तय की जाती है।

27. एच.एन. ऋषभुद और इंदर सिंह बनाम दिल्ली राज्य (1954) 2 एससीसी934 में, यह न्यायालय नोट करता है कि विवेचना की प्रक्रिया में आम तौर पर शामिल हैं: 1) संबंधित स्थान पर जाना, 2) तथ्यों और परिस्थितियों का पता लगाना, 3) खोज और गिरफ्तारी, 4) साक्ष्य का संग्रहण जिसमें विभिन्न व्यक्तियों की परीक्षा, स्थानों की तलाशी और चीजों की जब्ती शामिल है, और 5) राय का निर्माण कि क्या अपराध बनता है, और तदनुसार आरोपपत्र दाखिल करना। इसलिए राय का निर्माण एक विवेचना से गुजरने वाले कई चरणों की परिणति है। इस न्यायालय ने अपने निर्णय अभिनंदन झा बनाम दिनेश मिश्रा AIR 1968 SC 117 में कहा है कि आरोपपत्र या अंतिम रिपोर्ट की प्रस्तुति बनी राय की प्रकृति पर निर्भर करती है, जो विवेचना में अंतिम कदम है।

30. हमारा ध्यान उत्तर प्रदेश राज्य के लिए निर्धारित प्रारूप की ओर आकर्षित किया गया है, जो स्तंभ 16 द्वारा विवेचना अधिकारी को मामले के संक्षिप्त तथ्य बताने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, उत्तर प्रदेश राज्य ने दिनांक 19.09.2023 का एक परिपत्र जारी किया है, जो दिनांक 20.10.2016 के पूर्व परिपत्र संख्या 59/2016 का संदर्भ देता है, और कहता है कि संहिता की धारा 173 के संदर्भ में संहिता में निहित विवेचना प्रावधानों और पुलिस विनियमों का विवेचना अधिकारियों और पर्यवेक्षण अधिकारियों द्वारा लगातार अनुपालन और पालन नहीं किया जा रहा है। आरोपपत्र में अपराध के मुख्य विवरण प्रदान करने की आवश्यकता अनिवार्य है क्योंकि यह पुलिस विनियमों के पैराग्राफ 122 के अनुसार है। दिनांक 09.09.2022 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्देश के बाद समान निर्देश जारी किए गए थे कि विवेचना के दौरान एकत्र की गई सामग्री का संक्षिप्त विवरण, जो विवेचना अधिकारी की राय बनाता है, आरोपपत्र में उल्लेख किया जाना चाहिए।

31. इसलिए, विवेचना अधिकारी को आरोपपत्र में सभी स्तंभों की स्पष्ट और पूर्ण प्रविष्टियां करनी चाहिए ताकि न्यायालय स्पष्ट रूप से समझ सके कि किस अभियुक्त द्वारा कौन सा अपराध किया गया है और फाइल पर कौन सा भौतिक साक्ष्य उपलब्ध है। संहिता की धारा 161 के अंतर्गत कथन और संबंधित दस्तावेज साक्षियों की सूची के साथ संलग्न किए जाने हैं। अपराध में अभियुक्त द्वारा निभाई गई भूमिका को प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति के लिए आरोपपत्र में अलग और स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए।"

18. भारत में आपराधिक विवेचना का लंबा और जटिल इतिहास है, जो देश के सामाजिक-राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास से गहराई से प्रभावित है। पारंपरिक तरीके भौतिक साक्ष्य, साक्षी की गवाही, और कई बार जबरदस्ती और धमकी के तरीकों पर भारी निर्भर रहे हैं। भारत में आपराधिक विवेचना मुख्य रूप से औपनिवेशिक विरासत द्वारा आकार दिया गया था, जहां पुलिसिंग को निष्पक्ष रूप से न्याय की सेवा करने के बजाय नियंत्रण करने के लिए नामित किया गया था। जबकि ये तरीके अपने समय में प्रभावी हो सकते थे, उनमें अक्सर निष्पक्षता, पारदर्शिता और दक्षता की कमी थी जो लोकतांत्रिक समाज में न्यायपूर्ण कानून प्रवर्तन के लिए आवश्यक है। विचार यह था कि कानून के उद्देश्य की सेवा करने के बजाय ब्रिटिश प्रशासन के लिए प्रभावी रूप से कानून और व्यवस्था बनाए रखना। विवेचना अक्सर गुप्त सूचना और भौतिक साक्ष्य पर निर्भर करती थी, वैज्ञानिक तरीकों के समर्थन के बिना। सामुदायिक पुलिसिंग, या सूचनादाताओं के स्थानीय नेटवर्क पर निर्भर रहना (जिन्हें आमतौर पर चौकीदारों के रूप में जाना जाता है), इस प्रणाली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था, विशेष

रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, विवेचना की समय-परीक्षित पद्धति पर निर्भर रहने में कोई बुराई नहीं है लेकिन, जैसे-जैसे अपराध करने की पद्धति विकसित हुई है इसलिए, पुलिस को आज के समय में प्रभावी और कुशलता से अपने कौशल को उन्नत करने की आवश्यकता है।

19. आधुनिक फोरेंसिक विज्ञान तकनीकों की अनुपस्थिति में, पुलिस विवेचना अपराध के दृश्य पर पाए गए भौतिक साक्ष्य पर भारी निर्भर करती है। इसमें हथियारों, व्यक्तिगत सामानों, रक्त के धब्बों और उंगलियों के निशान जैसी वस्तुओं की जब्ती शामिल है। हालांकि, वैज्ञानिक रूप से संरक्षित और विश्लेषण करने की क्षमता सीमित थी, जो अक्सर चश्मदीदों की गवाही पर भारी निर्भरता की ओर ले जाती थी। हालांकि, चश्मदीदों की गवाही की विश्वसनीयता हमेशा चिंता का विषय रही है, क्योंकि यह डर, पूर्वाग्रह या बाहरी दबाव से प्रभावित हो सकती है। स्वीकारोक्ति को अक्सर साक्ष्य के सबसे निर्णायक रूप के रूप में माना जाता है, हालांकि, दुर्भाग्य से, इस प्रथा ने पुलिस हिरासत में जबरदस्ती और यातना के व्यापक उपयोग को जन्म दिया। गांव के मुखिया (चौकीदार) पर भारी निर्भरता पूर्वाग्रह और हेरफेर की संभावना है। स्थानीय सूचनादाता अपने प्रभाव का उपयोग व्यक्तिगत स्कोर निपटाने या सीमांत समुदायों को लक्षित करने के लिए कर सकते हैं।

20. पुराने शैली की विवेचना प्रणाली की कमियां हैं; **(i)** जबरदस्ती और बल पर निर्भरता, **(ii)** वैज्ञानिक कठोरता की कमी - विवेचना में वैज्ञानिक तरीकों की कमी जो कमजोर अभियोजन की ओर ले जाती है और कई मामलों में वास्तविक अपराधियों की बरी के परिणामस्वरूप होती है, **(iii)** स्थानीय अभिजात वर्ग के प्रभाव से पूर्वाग्रह और भ्रष्टाचार पनपता है, और (iv) पुरानी तरीकों पर निर्भरता, नौकरशाही अक्षमता के साथ मिलकर, विवेचना और न्यायिक प्रक्रिया में लंबे विलंब की ओर ले जाती है जो पीड़ित को समय पर न्याय से वंचित करती है।

21. वैज्ञानिक उपकरणों, डिजिटल फोरेंसिक, और कानूनी सुधारों की शुरूआत एक साथ आपराधिक विवेचना की अधिक पारदर्शी, प्रभावी और जवाबदेह प्रणाली लाएगी। 2023 में, भारतीय संसद ने भारतीय दंड संहिता, 1860 को भारतीय न्याय संहिता, 2023 द्वारा प्रतिस्थापित करते हुए; दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 को भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 द्वारा; भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 को भारतीय साक्ष्य अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित करते हुए तीन ऐतिहासिक विधेयक पारित किए। ये कानून 1 जुलाई, 2024 को प्रभावी हुए। ये कानून आपराधिक न्याय प्रणाली को आधुनिक बनाने, कानूनी प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित करने, और समाज की विकसित आवश्यकताओं को अपनाने के सरकार के इरादे को प्रतिबिंबित करते हैं। हालांकि, जबकि ये विधायी परिवर्तन अधिक कुशल कानूनी ढांचा प्रदान करने का लक्ष्य रखते हैं, उनकी सफलता काफी हद तक कानून प्रवर्तन एजेंसियों की इन कानूनों को प्रभावी ढंग से लागू करने की क्षमता पर निर्भर करती है। यहीं पर पुलिस सुधार की आवश्यकता स्पष्ट हो जाती है।

22. उत्तर प्रदेश में थाना स्तर पर पुलिस अधिकारी अक्सर जटिल आपराधिक मामलों, डिजिटल साक्ष्य, और नए युग के अपराध जैसे साइबर-अपराध से निपटने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण की कमी रखते हैं, और विशेष प्रशिक्षण की कमी के कारण जटिल आपराधिक मामलों को प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने में अक्सर चुनौतियों

का सामना करते हैं। जैसे-जैसे अपराध विकसित होता है, विशेष रूप से डिजिटल साक्ष्य और साइबर अपराध के उदय के साथ, पारंपरिक पुलिसिंग तकनीक अक्सर कम पड़ जाती है। कई अधिकारी प्रौद्योगिकी से जुड़े अपराधों, जैसे हैकिंग, ऑनलाइन धोखाधड़ी, और पहचान की चोरी की विवेचना करने के लिए पर्याप्त रूप से सुसज्जित नहीं हैं। प्रशिक्षण में यह अंतर डिजिटल साक्ष्य को प्रभावी ढंग से एकत्र करने, उनका विश्लेषण करने और व्याख्या करने की उनकी क्षमता को बाधित कर सकता है। परिणामस्वरूप, आधुनिक विवेचना तकनीकों, डिजिटल फोरेंसिक, और साइबर कानून की बारीकियों पर ध्यान केंद्रित करने वाले उन्नत प्रशिक्षण कार्यक्रमों की तत्काल आवश्यकता है ताकि पुलिस अधिकारियों को समकालीन आपराधिक चुनौतियों से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए सशक्त बनाया जा सके।

23. प्रशिक्षण कार्यक्रम के प्रमुख लाभों में शामिल हो सकते हैं; (i) अधिक लचीलेपन और स्वतंत्रता के साथ जिम्मेदारी और आत्म-अनुशासन की भावना को बढ़ावा दे सकता है, (ii) समय सीमा के दबाव के बिना और गहरी समझ के साथ अधिकारी स्वतंत्र रूप से परिणाम-उन्मुख और अनुसंधान-संचालित अवधारणाओं के साथ जुड़ सकते हैं, (iii) यह आलोचनात्मक सोच लागू करता है और समस्या-समाधान कौशल विकसित करता है, (iv) यह विभिन्न स्रोतों से जानकारी का विश्लेषण, संश्लेषण और मूल्यांकन करने की अधिकारियों की क्षमता को बढ़ाता है, (v) रुचि के क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित करना या मुद्दे की पहचान करना, जो अधिक कुशल और प्रभावी समाधान की ओर ले जाता है, (vi) यह आत्म-प्रेरणा को मजबूत करता है और समाज की तेजी से बदलती मांगों और नौकरी की आवश्यकता की अपेक्षाओं को पूरा करने के अनुकूल होने में मदद करता है, (vii) यह पेशेवर विकास को बढ़ावा देता है और चुनौतीपूर्ण कैरियर के अवसरों में प्रासंगिक और सूचित रहने में पेशेवर कौशल को बढ़ाता है, और (viii) समस्या-समाधान और अनुसंधान कौशल को बढ़ाता है और ज्ञान प्रतिधारण को बढ़ाता है।

24. इन परिवर्तनों के साथ संरेखित करने के लिए पुलिस प्रशिक्षण को बढ़ाने की तत्काल आवश्यकता है। प्रशिक्षण कार्यक्रम में पीड़ित और अभियुक्त के अधिकारों, लिंग संवेदीकरण, और अपराध विवेचना के लिए तकनीकी उपकरणों पर मॉड्यूल शामिल होने चाहिए। तेजी से विकसित हो रहे डिजिटल परिदृश्य में अपराध समाधान की दक्षता में सुधार के लिए आधुनिक फोरेंसिक प्रयोगशालाओं, डिजिटल अपराध विवेचना इकाइयों और वास्तविक समय संचार नेटवर्क की आवश्यकता आवश्यक है। पुलिस के लिए प्रशिक्षण कार्यशालाएं न केवल सैद्धांतिक ज्ञान प्रदान करने के बारे में होंगी, बल्कि विवेचना कौशल को भी बढ़ाएंगी। संवादात्मक सत्रों, केस स्टडीज और प्रायोगिक अभ्यासों के माध्यम से, पुलिस विवेचकों की विशेषज्ञ टीम द्वारा विवेचना की बारीकियों को सीखेगी।

25. उपर्युक्त विचार-विमर्शों को ध्यान में रखते हुए, दिनांक 18.9.2024 के आदेश द्वारा आरोपपत्र की एक प्रति अपर मुख्य सचिव (गृह), उत्तर प्रदेश; पुलिस महानिदेशक; और महानिदेशक (प्रशिक्षण), मुख्यालय को अग्रेषित की गई, यह निर्देश के साथ कि वे इसकी समीक्षा करें और मूल्यांकन करें कि क्या पुलिस द्वारा दाखिल आरोपपत्र ***डब्लू कुजुर*** (उपर्युक्त) और ***शरीफ अहमद*** (उपर्युक्त) में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित

कानूनी सिद्धांतों के अनुरूप हैं। ऐसे मूल्यांकन के बाद, उन्हें उपायों का प्रस्ताव करने का निर्देश दिया गया था, जिसमें पुलिस कर्मियों के लिए एक व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम शामिल है - कांस्टेबलों से लेकर पुलिस अधीक्षक (एस.एस.पी.) तक - जिसका उद्देश्य उनकी पेशेवर दक्षताओं को बढ़ाना है। डी.जी. (प्रशिक्षण) से उत्तर प्रदेश भर के विभिन्न पुलिस प्रशिक्षण केंद्रों में तैनात ए.डी.जी., आई.जी., डी.आई.जी., एस.पी., अपर एस.पी., और डी.एस.पी. के साथ व्यापक परामर्श करने की अपेक्षा की गई थी। इसके अतिरिक्त, सचिव (विधि), ए.डी.जी. (अभियोजन), और निदेशक (अभियोजन), उत्तर प्रदेश से भी इस प्रक्रिया में परामर्श किए जाने की अपेक्षा थी।

25.1 यह भी निर्देश दिया गया था कि डी.जी. प्रशिक्षण मुख्यालय विवेचना के मूल सिद्धांतों के संबंध में पुलिस अधिकारियों के लिए बुनियादी प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए वर्तमान प्रशिक्षण पाठ्यक्रम और अनुसूची दाखिल करेंगे; **(i)** प्रथम सूचना रिपोर्ट की पंजीकरण**, (ii)** अभियुक्त की गिरफ्तारी, **(iii)** अपराधकारी सामग्री की जब्ती (मानव शरीर और संपत्ति के विरुद्ध अपराधों, और साइबर अपराध से संबंधित अपराधों सहित), **(iv)** विवेचना के चिकित्सा-कानूनी पहलू के बारे में बुनियादी ज्ञान**, (v)** अभियुक्त के अपराध की ओर ले जाने वाले तथ्यों की खोज, **(vi)** धारा 161 और 164 दं.प्र.सं. के अंतर्गत कथन की रिकॉर्डिंग - साक्ष्य में प्रासंगिकता और दं.प्र.सं. की प्रक्रिया सहित**, (vii)** वैज्ञानिक साक्ष्य का महत्व जैसे उंगलियों के निशान की भूमिका, फोरेंसिक रिपोर्ट, हथियार की जब्ती, बैलिस्टिक रिपोर्ट, रक्त नमूना, डी.एन.ए., सी.डी.आर., सी.सी.टी.वी. फुटेज, **(viii)** पेन ड्राइव, हार्ड डिस्क पर साक्ष्य की पुनर्प्राप्ति, सोशल मीडिया से साक्ष्य डाउनलोड करना, ऐसे साक्ष्य की प्राप्ति और जब्ती, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 2023 की धारा 63 के अनुपालन की आवश्यकता, रक्त नमूना लेने का ज्ञान आदि, और **(ix)** विवेचना की निगरानी में एस.एस.पी./एस.पी. की भूमिका और जवाबदेही के साथ आरोपपत्र की तैयारी। यहां ऊपर उल्लिखित सूची केवल उदाहरण के लिए थी और संपूर्ण नहीं थी। विवेचना अधिकारी द्वारा उठाए जाने वाले कदमों का उल्लेख करने का उद्देश्य केवल अधिकारियों को न्यायालय के इरादे को समझने के लिए एक विचार देना था जिसके लिए संपूर्ण अभ्यास किया जाना था।

26. न्यायालय के दिनांक 18.09.2024 और 16.10.2024 के आदेशों के अनुपालन में, पुलिस महानिदेशक (प्रशिक्षण), उत्तर प्रदेश, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से वस्तुतः उपस्थित हुईं और पुलिस अधिकारियों के लिए डिज़ाइन किए गए प्रशिक्षण मॉड्यूल पर एक व्यापक अपडेट प्रस्तुत किया। उन्होंने न्यायालय को उन अधिकारियों की संख्या के बारे में सूचित किया जिन्होंने प्रशिक्षण प्राप्त किया है और उनकी पेशेवर क्षमताओं को बढ़ाने के लिए किए गए विभिन्न पहलों को रेखांकित किया, विशेष रूप से आधुनिक विवेचना तकनीकों पर जोर देते हुए, जिसमें फोरेंसिक विज्ञान और साइबर अपराध विवेचना शामिल है। उन्होंने आगे पुष्टि की कि दिनांक 18.09.2024 के आदेश के अनुसरण में, इन उपायों के कार्यान्वयन पर चर्चा करने के लिए विभागीय अधिकारियों और अन्य प्रासंगिक हितधारकों के साथ एक बैठक आयोजित की गई थी।

26.1 ***शरीफ अहमद मामले (उपर्युक्त)*** के पैराग्राफ 30 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने नोट किया कि सरकार ने दिनांक 19.09.2023 का एक परिपत्र जारी किया था, जो दिनांक 20.10.2016 के पूर्व परिपत्र संख्या 59/2016 का संदर्भ देता था, जो विवेचना अधिकारियों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अंतर्गत दाखिल की गई

पुलिस रिपोर्ट के स्तंभ 16 में संक्षिप्त तथ्य शामिल करने का निर्देश देता था। हालांकि, इन निर्देशों का विवेचना अधिकारियों द्वारा बार-बार उल्लंघन किया गया है।

27. पुलिस महानिदेशक (प्रशिक्षण) की प्रस्तुतियों को सुनने के बाद, न्यायालय ने उन्हें कार्यवाही के दौरान प्रस्तुत तथ्यों का विवरण देते हुए एक शपथपत्र प्रस्तुत करने का निर्देश दिया। उन्हें आगे निर्देश दिया गया कि वे समान अपराधों की प्रत्येक श्रेणी के लिए एक व्यापक चेकलिस्ट तैयार करें ताकि पुलिस अधिकारियों को विवेचना करने में सहायता मिल सके। इस चेकलिस्ट का उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि विवेचना निष्पक्ष, निष्पक्ष और प्रभावी तरीके से की जाए, इसके लिए आवश्यक आवश्यक कदम।

27.1 पुलिस महानिदेशक (प्रशिक्षण) को आगे निर्देश दिया गया कि वे उन मामलों में विवेचना अधिकारियों और उनके पर्यवेक्षी अधिकारियों की जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी तंत्र प्रस्तावित करें जहां विवेचना की गुणवत्ता प्रस्तावित चेकलिस्ट में निर्धारित मानकों से कम हो। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि वास्तविक अपराधियों को न्याय के कटघरे में लाया जाए जबकि निर्दोष व्यक्तियों को बाहरी कारणों या त्रुटिपूर्ण विवेचनाओं के कारण गलत तरीके से फंसाया जाने से रोका जाए।

28. इसके जवाब में, पुलिस महानिदेशक (प्रशिक्षण) ने दिनांक 25.11.2024 के शपथपत्र द्वारा, पांच संकलनों का एक व्यापक सेट प्रस्तुत किया, जिनमें से प्रत्येक में दो सौ से अधिक पृष्ठ हैं, कुल मिलाकर 1,282 पृष्ठ। इन संकलनों में निम्नलिखित प्रशिक्षण पाठ्यक्रम सामग्री शामिल थी; उप निरीक्षक, डी.एस.पी. (विधि एवं विवेचना); एस.आई. (विधि एवं विवेचना), कांस्टेबल (विधि एवं विवेचना); नए आपराधिक कानूनों से संबंधित प्रशिक्षण का उद्देश्य और विषय; कांस्टेबल से हेड कांस्टेबल-विधि और विवेचना के पदोन्नति पाठ्यक्रम पाठ्यक्रम; हेड कांस्टेबल से उप निरीक्षक के लिए पदोन्नति पाठ्यक्रम पाठ्यक्रम; उप निरीक्षक से निरीक्षक के लिए पदोन्नति पाठ्यक्रम पाठ्यक्रम; विवेचना में सुधार के लिए डी.जी.पी. यू.पी. द्वारा समय-समय पर जारी परिपत्र/निर्देश; विवेचना के लिए अपराध एसओपी हैंडबुक; अपराध दृश्य विवेचना के विकसित एसओपी; वेबसाइट पृष्ठ के डिजिटल लाइब्रेरी प्रिंटआउट की एक प्रति; एजेंसियों द्वारा राज्य के बाहर प्रशिक्षित अधिकारियों की सूची; राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक और प्रौद्योगिकी संस्थान के साथ समझौता ज्ञापन की एक प्रति; राष्ट्रीय रक्षा विश्वविद्यालय के साथ समझौता ज्ञापन की एक प्रति; यू.पी. राज्य फोरेंसिक विज्ञान संस्थान से फोरेंसिक विवेचना से संबंधित एक पत्र; ए.डी.जी. अपराध द्वारा प्रदान की गई जघन्य अपराध चेकलिस्ट की सही प्रति, जिले की श्रेणी/रेंज को विवेचना के लिए कार्य योजना परिपत्र की सही प्रति; अद्यतन विवेचना हैंडबुक 2021; विवेचना के लिए एसओपी युक्त डी.जी.पी., यू.पी., लखनऊ द्वारा जारी निर्देश की एक प्रति; निदेशालय अभियोजन द्वारा जारी एसओपी की एक प्रति; विभिन्न इकाइयों (संग्रह) द्वारा विद्यमान अपराध की विद्यमान चेकलिस्ट की प्रति, और गलत विवेचना अधिकारियों के लिए विभागीय जांच का सुझाव देने वाले पुलिस महानिदेशक द्वारा जारी परिपत्रों की अनेक प्रतियां।

29. पांच खंडों की सामग्री की समीक्षा करने पर, न्यायालय ने देखा कि पुलिस अधिकारी - कांस्टेबल से लेकर निरीक्षकों तक - रोजमर्रा की भाषा में दिए गए सुसंगत और प्रभावी प्रशिक्षण के बिना परिपत्रों की सामग्री को पूरी तरह से समझने में सक्षम नहीं हो सकते हैं। परिणामस्वरूप, पुलिस महानिदेशक (प्रशिक्षण) को एक अध्याय-वार चेकलिस्ट तैयार करने का निर्देश दिया गया, जो पुलिस बल के सभी स्तरों पर बेहतर समझ और कार्यान्वयन की सुविधा के लिए सरलीकृत तरीके से अपराधों को वर्गीकृत करती है।

30. उपरोक्त के दृष्टिगत, पुलिस महानिदेशक द्वारा पुलिस महानिदेशक (अभियोजन) की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया गया, जो विभिन्न हितधारकों से प्राप्त सुझावों पर विचार-विमर्श करे। पुलिस विभाग की कई शाखाओं से भी इनपुट मांगे गए। अभियोजन निदेशालय ने विभिन्न विभागीय इकाइयों, जिला संयुक्त निदेशकों और अभियोजन अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत चेकलिस्टों की व्यापक समीक्षा की। इस विस्तृत मूल्यांकन के बाद, समिति ने विभिन्न प्रकार के अपराधों को वर्गीकृत किया और विवेचना की गुणवत्ता और स्थिरता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से एक मानकीकृत चेकलिस्ट तैयार की। 2023 में शुरू किए गए नए आपराधिक प्रावधानों के साथ विवेचना प्रक्रियाओं को संरेखित करने पर विशेष जोर दिया गया, विशेष रूप से अपराध की प्रत्येक श्रेणी के लिए फोरेंसिक और डिजिटल साक्ष्य से संबंधित।

31. पुलिस अपर महानिदेशक (अपराध) द्वारा जारी दिनांक 11.04.2025 का एक पत्र, विद्वान अपर सरकारी अधिवक्ता द्वारा अभिलेख पर रखा गया था। पुलिस महानिदेशक (अभियोजन) को संबोधित पत्र में, अन्य बातों के साथ-साथ, यह कहा गया था कि वर्तमान कार्यवाही में पारित विभिन्न आदेशों के अनुपालन में तैयार की गई चेकलिस्ट को पुलिस महानिदेशक द्वारा विधिवत अनुमोदित किया गया है। यह आगे नोट किया गया कि अनुमोदित चेकलिस्ट को उचित कार्यान्वयन और अनुपालन के लिए संबंधित जिला-स्तरीय अधिकारियों को अग्रेषित की गई है।

32. उपरोक्त विचार-विमर्शों से उत्पन्न होने के बाद, और विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार करने के बाद, साथ ही पुलिस महानिदेशक (अभियोजन) के कार्यालय द्वारा तैयार की गई चेकलिस्ट की परीक्षा करने के बाद, पुलिस महानिदेशक (प्रशिक्षण) द्वारा प्रस्तुत कुल 1,282 पृष्ठों में निहित पांच खंडों में प्रस्तुत कई परिपत्रों और प्रशिक्षण पाठ्यक्रम सामग्री के साथ, अभियोजन निदेशालय ने व्यापक रूप से अपराधों को 41 अध्यायों में वर्गीकृत किया है और प्रत्येक अध्याय के लिए एक अलग चेकलिस्ट तैयार की है। संकलित चेकलिस्ट सामूहिक रूप से कुल 390 पृष्ठों तक फैली हुई है।

33. यह एक उपयुक्त चरण है जहां यह न्यायालय न्यायिक प्रक्रिया की गरिमा को बनाए रखने और विवेचना करने की पुलिस की बेलगाम शक्ति और कानूनी प्रणाली की पवित्रता बनाए रखने की आवश्यकता के बीच संतुलन बनाने के लिए अपने में निहित शक्तियों का स्वतः संज्ञान प्रयोग करता है। तदनुसार, न्यायालय पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश को यह सुनिश्चित करने का निर्देश देता है;

33.1 कांस्टेबल, हेड कांस्टेबल, उप निरीक्षक और निरीक्षक - आपराधिक विवेचना में शामिल प्रमुख अधिकारियों के लिए विशेष रूप से तैयार एक आवश्यकता-आधारित, अनुकूलित प्रशिक्षण कार्यक्रम विकसित करें। 1282 पृष्ठों में निहित पाठ्यक्रम सामग्री को पांच खंडों में संकलित किया जाएगा और इसे छोटी, स्व-निहित पुस्तिकाओं में विभाजित किया जाएगा - प्रत्येक विशिष्ट विषय क्षेत्र को कवर करते हुए, आसान समझ और लचीली शिक्षा के लिए अपराध की विशिष्ट प्रकृति पर ध्यान केंद्रित करते हुए। कार्यक्रम का उद्देश्य थाना स्तर पर विवेचकों की पेशेवर क्षमताओं को बढ़ाना है ताकि पहुंच और व्यावहारिक प्रासंगिकता सुनिश्चित की जा सके।

33.2 पुलिस रिपोर्ट के ***स्तंभ-16*** में स्पष्ट और पूर्ण प्रविष्टियां होनी चाहिए, **(i)** प्रथम सूचना रिपोर्ट की संक्षिप्त सामग्री**, (ii)** प्रथम सूचना रिपोर्ट में संदिग्धों के नाम, **(iii)** आरोपपत्र में उल्लिखित अभियुक्तों के नाम, **(iv)** उस संदिग्ध का नाम जिसके विरुद्ध विवेचना लंबित है और उसका कारण, **(v)** विवेचना के दौरान सामने आए अपराध के किए जाने में प्रत्येक अभियुक्त की भूमिका निर्दिष्ट करें, **(vi)** की गई जब्ती का विवरण - तारीख, समय और बरामदगी का विवरण, **(vii)** अभियोजन साक्षियों का संक्षिप्त कथन - सार्वजनिक, पुलिस, और औपचारिक - किसने क्या कहा?, **(viii)** वैज्ञानिक और फोरेंसिक साक्ष्य का विवरण, **(ix)** सी.डी.आर. या सी.सी.टी.वी. का विवरण, **(x)** विवेचना के दौरान गिरफ्तार अभियुक्तों के नाम, **(xi)** विवेचना के दौरान अग्रिम जमानत प्रदान किए गए अभियुक्तों के नाम, **(xii)** वे अभियुक्तों के नाम जिनकी गिरफ्तारी को उच्च न्यायालय/माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा स्थगित किया गया है, **(xiii)** उन अभियुक्तों के नाम जिनके विरुद्ध गिरफ्तारी के बिना आरोपपत्र दाखिल किया गया है, **(xiv)** उन व्यक्तियों के नाम जिनके विरुद्ध धारा 94 बी.एन.एस.एस., 2023 जारी किया गया है कि वे कौन सा दस्तावेज या अन्य चीज प्रस्तुत करें, **(xv)** उन व्यक्तियों के नाम जिनके विरुद्ध धारा 84 और 85 बी.एन.एस.एस., 2023 के अंतर्गत कार्यवाही शुरू की गई है, **(xvi)** विवरण - विवेचना अधिकारी द्वारा अभियुक्तों को विवेचना में शामिल होने के लिए जारी की गई नोटिसों की संख्या, **(xvii)** विवेचना के दौरान अभियुक्तों के परिसर पर की गई छापेमारी की तारीख की संख्या, **(xviii)** विवेचना के दौरान उच्च न्यायालय/माननीय उच्चतम न्यायालय से अभियुक्तों द्वारा प्राप्त आदेश(आदेशों) का विवरण, **(xix)** विवेचना अधिकारी द्वारा एकत्र किया गया कोई अन्य अपराधकारी साक्ष्य जो केस डायरी के ***स्तंभ-4*** का हिस्सा बनता है, और **(xx)** विवेचना अधिकारी द्वारा कोई अतिरिक्त जानकारी।

33.3 यहां ऊपर उल्लिखित विवरण केवल उदाहरण के उद्देश्यों के लिए हैं। विवेचना अधिकारी का यह एकमात्र विशेषाधिकार है कि वह विवेक का प्रयोग करे और प्रत्येक व्यक्तिगत मामले की आवश्यकताओं के आधार पर निर्णय ले कि क्या कोई अन्य विवरण पुलिस रिपोर्ट में शामिल किए जाने की आवश्यकता है।

33.4 पुलिस महानिदेशक, पुलिस आयुक्त और वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक के माध्यम से, विवेचना अधिकारियों के लिए एक प्रशिक्षण अभियान शुरू करेंगे ताकि उन्हें विधि के अनुसार आरोपपत्र तैयार करने के लिए आवश्यक कौशल से लैस किया जा सके।

33.5 पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश पुलिस महानिदेशक द्वारा जारी परिपत्र संख्या डी.जी./परिपत्र संख्या-06/2018 दिनांक 19.02.2018 के सख्त कार्यान्वयन को सुनिश्चित करेंगे, जिसके द्वारा प्रत्येक विवेचना अधिकारी के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि विवेचना पूर्ण होने पर, आरोपपत्र/अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पूर्व, विवेचना अधिकारी को केस डायरी के साथ आरोपपत्र का मसौदा वृत्त अधिकारी के माध्यम से अभियोजन अधिकारी को अग्रेषित करना होगा। अभियोजन अधिकारी केस डायरी की समीक्षा करेगा और विवेचना के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य का मूल्यांकन करेगा। यदि कोई कमी या असंगतता पाई जाती है, तो उन्हें इंगित किया जाएगा, और उन मुद्दों को संबोधित करने के लिए आगे की विवेचना का निर्देश दिया जाएगा। अभियोजन अधिकारी की समीक्षा के बाद केस डायरी उसी चैनल के माध्यम से विवेचना अधिकारी को वापस की जाएगी, और उसके बाद ही, आरोपपत्र या अंतिम रिपोर्ट न्यायालय को प्रस्तुत की जाएगी। उपरोक्त परिपत्र माननीय उच्चतम न्यायालय के शीर्षक वाले निर्णय "***पेरुमल बनाम जानकी" [***(2014) 5 एससीसी377)] के अनुसार जारी किया गया है। परिपत्र की सही टाइप की गई प्रति ***अनुलग्नक-I*** के रूप में यहां संलग्न की गई है।

33.6 यदि उन अपराधों के लिए आरोपपत्र दाखिल किया जाता है जहां आजीवन कारावास निर्धारित सजा है, तो विवेचना अधिकारी को पुलिस आयुक्त या वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक के माध्यम से केस डायरी के साथ आरोपपत्र का मसौदा अभियोजन अधिकारी को अग्रेषित करना होगा, जैसा लागू हो। ***अनुलग्नक-I*** में निहित अन्य निर्देश समान रहेंगे। इस आदेश के अनुसरण में और उपरोक्त उद्देश्य के लिए, उपर्युक्त पुलिस अधिकारियों को एतद्द्वारा निर्देश दिया जाता है कि वे इस जिम्मेदारी को किसी भी अधीनस्थ अधिकारियों को सौंपें नहीं।

33.7 महानिदेशक (अभियोजन) सभी अभियोजन अधिकारियों को समयबद्ध तरीके से केस डायरी के साथ आरोपपत्र की समीक्षा करने के लिए सामान्य दिशानिर्देश जारी करेंगे। उक्त अभ्यास को पूरा करने के लिए दिनों की संख्या अभियोजन विभाग द्वारा तय की जाएगी।

33.8 आरोपपत्र विधिवत पृष्ठांकित **<u>अनुक्रमणिका</u>** के साथ दाखिल किया जाएगा जिसमें; (क) क्रम संख्या, (ख) क्रमानुसार विवेचना का तिथि-वार संक्षिप्त विवरण - सी.डी. वार विवरण, (ग) विवेचना के दौरान एकत्र किए गए दस्तावेज का विवरण, (घ) विवेचना अधिकारी द्वारा उठाए गए कदमों का संक्षिप्त विवरण, (ङ) धारा 94 बी.एन.एस.एस., 2023 का विवरण नोटिस, "किसी भी व्यक्ति" को दस्तावेज और अन्य चीज प्रस्तुत करने के लिए जारी किया गया, और (च) या विवेचना अधिकारी द्वारा उचित समझे गए कोई अन्य विवरण शामिल होंगे।

33.9 प्रत्येक विवेचना अधिकारी को विवेचना पूर्ण होने पर, आरोपपत्र/अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पूर्व, केस डायरी में एक दिन पहले या न्यायालय को आरोपपत्र प्रस्तुत करने की तारीख को एक समर्थन करना होगा कि ***चेकलिस्ट में उल्लिखित कदमों और पुलिस महानिदेशक द्वारा जारी परिपत्र संख्या डी.जी./परिपत्र संख्या-06/2018 दिनांक 19.02.2018 के जनादेश, और यहां 33.5 और 33.8 में जारी निर्देशों का शब्दशः और भावना***

में अनुपालन किया गया है। उपरोक्त विवरण युक्त केस डायरी की प्रति धारा 193 बी.एन.एस.एस., 2023 के अंतर्गत रिपोर्ट के बाद न्यायालय को अग्रेषित की जाएगी।

33.10 यदि पूर्ववर्ती ***निर्देश संख्या 33.5 और 33.8*** का विवेचना अधिकारी द्वारा अनुपालन नहीं किया गया है, तो विद्वान विशेष न्यायाधीश, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, या विद्वान मजिस्ट्रेट, जैसा भी मामला हो, अविलंब गैर-अनुपालन को पुलिस आयुक्त या वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक को सूचित करेंगे और निर्देश देंगे कि विवेचना अधिकारी के विरुद्ध उचित विभागीय कार्रवाई शुरू की जाए। संवैधानिक न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों को प्राधिकारियों द्वारा शब्द और भावना दोनों में सख्ती से लागू किया जाना सुनिश्चित करना, विधि के शासन को बनाए रखते हुए, न्यायालय का समान रूप से कर्तव्य है।

33.11 यदि पूर्ववर्ती ***निर्देश संख्या 33.6*** का विवेचना अधिकारी, और पुलिस आयुक्त या वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक या पुलिस अधीक्षक द्वारा, जैसा लागू हो, अनुपालन नहीं किया गया है, तो विद्वान विशेष न्यायाधीश, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, या विद्वान मजिस्ट्रेट, जैसा भी मामला हो, अविलंब गैर-अनुपालन को ए.सी.एस. (गृह) को सूचित करेंगे और आवश्यक कार्रवाई के लिए इसकी एक प्रति पुलिस महानिदेशक को भेजेंगे।

33.12 संबंधित थाना प्रभारी (एस.एच.ओ.) को कर्तव्य की उपेक्षा के लिए प्राथमिक रूप से जवाबदेह ठहराया जाएगा यदि विवेचना पूर्ण होने पर और न्यायालय के समक्ष आरोपपत्र या अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पूर्व, पुलिस रिपोर्ट वृत्त अधिकारी या पुलिस आयुक्त/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक (एस.एस.पी.) के माध्यम से अभियोजन अधिकारी को अग्रेषित नहीं की जाती है, जैसा लागू हो। उन मामलों में जहां पुलिस आयुक्त या एस.एस.पी. आजीवन कारावास की निर्धारित सजा वाले मामलों में आरोपपत्र को समीक्षा के लिए अभियोजन अधिकारी को अग्रेषित करने से इनकार करते हैं, एस.एच.ओ. केस डायरी में एक संबंधित समर्थन करेगा और वरिष्ठ अधिकारियों को इसका विवरण देते हुए एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

33.13 पुलिस आयुक्त/एस.एस.पी./एस.पी. पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश को महानिदेशक (अभियोजन) की एक प्रति के साथ, बिना किसी असफलता के, डी.जी./परिपत्र-06/2018 दिनांक 19.02.2018 के अनुपालन के बारे में मासिक रिपोर्ट दाखिल करेंगे।

33.14 गृह विभाग द्वारा एक नया कार्यालय ज्ञापन/परिपत्र तदनुसार जारी किया जाना चाहिए, जो पुलिस महानिदेशक और निदेशालय (अभियोजन) को उपरोक्त निर्देशों के आधार पर अपने संबंधित अधिकारियों को एक नया परिपत्र/कार्यालय ज्ञापन जारी करने का **निर्देश** शीघ्रातिशीघ्र दे।

34. मामले के तथ्यों पर वापस आते हुए, सचिव (गृह) द्वारा दाखिल शपथपत्र की परीक्षा पर, महानिरीक्षक, अलीगढ़ रेंज द्वारा प्रदान की गई जानकारी के आधार पर, यह नोट किया गया है कि परिवादी ने बी.एन.एस.एस., 2023 की धारा 94 के अंतर्गत जारी बार-बार नोटिस और अनुस्मारक के बावजूद, कथित मुख्तारनामे की मूल

प्रति पुलिस को प्रस्तुत करने में विफल रहा है। इसके अलावा, परिवादी और उसके रिश्तेदार ने विवेचना अधिकारी के साथ सहयोग नहीं किया है।

35. उल्लेखनीय रूप से, मामले के तथ्यात्मक पहलुओं और कथित अपराध की पहले ही वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा गहन रूप से जांच की जा चुकी है। सुनवाई के दौरान, न्यायालय ने परिवादी के साथ भी बातचीत की और विशेष रूप से पूछा कि आवेदकों द्वारा कूटरचित मुख्तारनामे का उपयोग करके कौन सी संपत्ति कथित रूप से हस्तांतरित की गई थी। जवाब में, परिवादी पूरी तरह से चुप रहा।

36. मूल मुख्तारनामे की अनुपस्थिति में, फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला द्वारा कोई फोरेंसिक परीक्षा नहीं की जा सकती थी।

37. यह नोट करना प्रासंगिक है कि परिवादी ने न तो प्रत्युत्तर-शपथपत्र दाखिल किया और न ही पुलिस विवेचना में सक्रिय रूप से भाग लिया, इस तथ्य के बावजूद कि वह व्यक्तिगत रूप से और अधिवक्ता के माध्यम से दोनों तरीके से न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ था।

38. तथ्यों और कानूनी प्रस्तुतियों पर विचार करने पर, यह न्यायालय यह मानता है कि आपराधिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से सद्भाव के साथ की गई है और याचिकाकर्ताओं पर बदला लेने के लिए गुप्त उद्देश्य से और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उन्हें परेशान करने के दृष्टिकोण से दुर्भावनापूर्ण रूप से संस्थित की गई है ***(हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 (1) सपली एससीसी 335)***। न्यायालय का किसी भी तिरछे उद्देश्य के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता है और जहां, न्यायालय की राय में, अंतिम दोषसिद्धि की संभावनाएं धूमिल हैं और इसलिए, आपराधिक अभियोजन को जारी रखने की अनुमति देने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा होने की संभावना नहीं है। ***(माधावराव जीवाजीराव सिंधिया एवं अन्य बनाम संभाजीराव चंदोंजीराव आंग्रे एवं अन्य (1988) 1 एससीसी 692)***

39. तदनुसार, मैं श्री एन.आई. जाफरी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा आवेदकों के लिए की गई प्रस्तुतियों में योग्यता पाता हूं। आक्षेपित समन आदेश को एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरूप, प्रथम सूचना रिपोर्ट केस अपराध संख्या 8/2024, भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467, 468, 471, 341, 504, और 506 के अंतर्गत, थाना सिविल लाइन्स, जिला अलीगढ़ में पंजीकृत, से उत्पन्न कार्यवाही को रद्द किया जाता है। हालांकि, परिवादी/प्रतिवादी संख्या 2 को विधि के अनुसार पुलिस से संपर्क करने की स्वतंत्रता प्रदान की जाती है, इस घटना में कि कोई अपराधकारी सामग्री सामने आती है जो आवेदकों के विरुद्ध धोखाधड़ी या कूटरचना के आवश्यक तत्वों को स्थापित करती है।

40. निर्णय से विदाई लेने से पहले, मैं इसे उपयुक्त समझता हूं कि पुलिस महानिदेशक (अभियोजन) और उनकी टीम द्वारा विवेचना अधिकारियों की सहायता के लिए एक व्यापक चेकलिस्ट तैयार करने में किए गए

सावधानीपूर्वक और समर्पित प्रयासों के लिए अभिलेख पर अपनी सराहना दर्ज करूं। यह सावधानीपूर्वक अभ्यास आपराधिक विवेचनाओं की गुणवत्ता और स्थिरता को बढ़ाने के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है। मुझे विश्वास है कि अभियोजन निदेशालय चेकलिस्ट की समय-समय पर समीक्षा और अद्यतन करने के लिए अपने समर्पित प्रयास जारी रखेगा, यह सुनिश्चित करते हुए कि यह गतिशील और विवेचना अधिकारियों द्वारा सामना की जाने वाली विकसित चुनौतियों के प्रति उत्तरदायी बनी रहे, विशेष रूप से नए कानूनी ढांचे के संदर्भ में फोरेंसिक, वैज्ञानिक और साइबर विवेचनाओं के संदर्भ में।

41. रजिस्ट्रार (अनुपालन) को एतद्द्वारा निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश की एक प्रति अविलंब पुलिस महानिदेशक, और महानिदेशक (अभियोजन) को प्रभावी अनुपालन के लिए प्रेषित करें।

41.1 इस **आदेश** की एक प्रति समय पर अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार के गृह विभाग के कार्यालय को भेजी जाए।

41.2 इस आदेश की एक प्रति इस न्यायालय के महारजिस्ट्रार के माध्यम से उत्तर प्रदेश के सभी विद्वान जिला न्यायाधीशों को प्रेषित की जाए, यह निर्देश के साथ कि **निर्देश संख्या 33.5, 33.6 और 33.8** के सख्त अनुपालन के लिए निर्णय को सभी न्यायिक अधिकारियों के बीच विधिवत परिचालित किया जाए सुनिश्चित किया जाए।

42. तदनुसार, आवेदन को उपर्युक्त शर्तों में ***स्वीकार*** किया जाता है।

अनुवादित

<u>संलग्नक -I</u>

<u>डी०जी०परिपत्र संख्या -06/2018</u>

ओ०पी०सिंह
आई०पी०एस०

पुलिस महानिदेशक
उत्तर प्रदेश
1,तिलक मार्ग, लखनऊ-226001
दिनांक फरवरी 19, 2018

<u>विषय:-</u> गुणवत्तापूर्ण विवेचना सुनिश्चित करने हेतु अभियोजन अधिकारियों से अभिमत प्राप्त किये जाने के सम्बन्ध में।

प्रिय महोदय

यह मेरे संज्ञान में आया है कि शासन तथा इस मुख्यालय द्वारा निर्गत स्पष्ट निर्देशों के बावजूद कतिपय मामलों में अभियोजन अधिकारियों से विधिक परामर्श प्राप्त किये बिना विवेचनाधिकारियों द्वारा आरोप पत्र एवं अन्तिम रिपोर्ट न्यायालय में प्रेषित की जा रही है, जिससे विवेचना के मध्य हुई त्रुटियों का निवारण नहीं हो पाता और महत्वपूर्ण साक्ष्य का संकलन उचित ढ़ग से नहीं हो पा रहा है, जिसका लाभ विचारण के दौरान

अभियुक्तों को प्राप्त होता है। परिणामस्वरूप दोषी व्यक्ति को दोषसिद्ध किया जाना सम्भव नहीं हो पाता है। अतः निम्न निर्देश आपके संज्ञान में लाते हुए तदनुसार कार्यवाही सुनिश्चित कराने की अपेक्षा की जाती है।

1- शासनादेश संख्या-7202/आठ-9-31(91)-79 दिनांक 27.11.1980 के अनुलग्नक-5 के अनुसार अभियोजन विभाग के विभिन्न स्तर के अधिकारी पुलिस विभाग के विभिन्न स्तर के अधिकारियों के विधिक सलाहकार भी है और उन्हें फौजदारी कार्यवाही के किसी प्रक्रम पर (विवेचना के प्रक्रम को सम्मिलित करते हुए) आवश्यकतानुसार विधिक बिन्दुओं पर परामर्श देंगे।

2- मा० सर्वोच्च न्यायालय द्वारा क्रिमि० अपील संख्या: 1485/2008 गुजरात राज्य बनाम किशनभाई आदि में पारित आदेश दिनांकित 07.01.2014 में आपराधिक प्रकरणों की विवेचना एवं अभियोजन कार्यों में गुणवत्ता की कमी पर चिन्ता व्यक्त करते हुए क्रिमि०अपील संख्या:169/2014 में स्पष्ट निर्देश दिये है:-

'On the completion of a criminal case, the prosecuting agency should independently apply its mind and ensure that all shortcomings are rectified, if necessary by ordering further investigation;' जिसके सम्बन्ध में शासनादेश संख्या: जी. आई-26/छः-पु०-9-14-31(36)/2014/दिनांक 22.04.2014 द्वारा दिशा निर्देश निर्गत किये जा चुके हैं।

3- मा० उच्चतम न्यायालय द्वारा क्रिमिनल अपील संख्या: 169/2014 में पारित आदेश के क्रम में शासनादेश संख्या-1909/छः-9-2015-31(36)/2014 दिनांक 05.08.2015 द्वारा भी निर्देशित किया गया है कि प्रत्येक विवेचना पूर्ण होने के उपरान्त आरोप पत्र/अन्तिम रिपोर्ट प्रेषित करने से पूर्व विवेचक द्वारा क्षेत्राधिकारी के माध्यम से केस डायरी अभियोजन अधिकारियों को प्रेषित की जाएगी। जहां पर अभियोजन अधिकारी द्वारा केस डायरी के अवलोकनोपरान्त/परीक्षणोपरान्त विवेचना के मध्य संकलित साक्ष्य आदि की समीक्षा की जाएगी और यदि उसमें कोई कमी या विसंगति पायी जाती है तो उसको इंगित करते हुए उसकी पूर्ति हेतु अग्रेतर विवेचना हेतु प्रेषित की जाएगी। इस कार्यवाही में केस डायरी जिस माध्यम से अभियोजक के पास परीक्षण हेतु प्रेषित की जाए उसी माध्यम से अभियोजक द्वारा पुनः परीक्षणोपरान्त ही यथा स्थिति आरोप पत्र या अन्तिम रिपोर्ट मा० न्यायालय में प्रेषित की जाएगी।

अभि०निदे० का पत्रांकःपांच-3-3-2000/2603/2012 दिनांकित 23.05.2012
संख्याःडीजी-दस-विप्र-रिट-378/2012 दिनांकित 07.08.2012
संख्याःडीजी-सात-एस-3(15)/2013 दिनांकित 04.06.2013
अभि०निदे० का पत्रांकःपांच-3-3-2000/3476/2013 दिनांकित 18.07.2013
अभि०निदे० का पत्रांकःपांच-दो-7-2014/1933/2015 दिनांकित 30.04.2015
संख्याःडीजी-सात-एस-14(06)/2015 दिनांकित 11.08.2015
अभि०निदे० का पत्रांकःपांच-3-3-2014/3745/2015 दिनांकित 13.08.2015
संख्याःडीजी परिपत्र-45/2016 दिनांकित 21.07.2016

4- उ0प्र0 शासन के उपरोक्त दिशा निर्देशों के अतिरिक्त पार्श्वांकित परिपत्र अभियोजन निदेशालय, उ०प्र० लखनऊ एवं इस मुख्यालय स्तर से निर्गत किये गये है

परन्तु अभियोजन अधिकारियों से अभिमत प्राप्त न किये जाने के कारण विवेचनाओं में अनेक बिन्दु अस्पष्ट एवं अनुत्तरित रह जाते है जिनका अभियोग की सफलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

5- विधिक अभिमत को किसी भी दशा में विवेचना/केस डायरी का भाग नहीं बनाया जाएगा और न ही उद्धरण या संदर्भ ही केस डायरी में अंकित किया जाएगा। यदि कोई विवेचक/पर्यवेक्षण अधिकारी निर्देशों का अनुपालन नहीं करता है तो उसके विरूद्ध समुचित विभागीय कार्यवाही करायी जाये।

6- मासिक अपराध गोष्ठी में गोष्ठी की विषयवस्तु में यह समीक्षा की जानी चाहिए कि कितने मामले विधिक अभिमत हेतु संदर्भित किये गये, कितने मामलों में अभियोजन अधिकारी द्वारा विधिक अभिमत दिया गया तथा कितने मामलों में बिना विधिक अभिमत के आरोप पत्र/अन्तिम रिपोर्ट प्रेषित की गयी। इसी प्रकार इस गोष्ठी की विषयवस्तु में विवेचना में कमी अथवा त्रुटिपूर्ण विवेचना के कारण दोषमुक्त मामलो को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए तथा अधीनस्थ अधिकारियों को यह निर्देश दिया जाना चाहिए कि ऐसी त्रुटि कमी आगामी विवेचना में न होने पाये।अतः गुणवत्तापूर्ण विवेचना सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि समस्त विवेचनाओं में विधिक अभिमत प्राप्त कर उनकी कमियों का निवारण कराने के उपरान्त ही आरोप पत्र/अन्तिम आख्या मा० न्यायालय को प्रेषित किया जाय।

अनुवादित

भवदीय,

(ओ०पी० सिंह)

पुलिस महानिदेशक

उत्तर प्रदेश

1- **समस्त जोनल अपर पुलिस महानिदेशक, (नाम से)** उत्तर प्रदेश।

2- **समस्त परिक्षेत्रीय पुलिस महानिरीक्षक/पुलिस उपमहानिरीक्षक, (नाम से)** उत्तर प्रदेश।

3- **समस्त वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक प्रभारी जनपद, (नाम से)** उत्तर प्रदेश।

प्रतिलिपिः समस्त पुलिस महानिदेशक/अपर पुलिस महानिदेशक, इकाई, उत्तर प्रदेश को कृपया सूचनार्थ एवं आवश्यक कार्यवाही हेतु प्रेषित।

(2025) 5 ILRA 1899

अपीलाधिकारिता

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 30.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति मदन पाल सिंह

आपराधिक अपील संख्या- 74 सन् 2000

विनोद पटेल ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: आलोक कुमार कुशवाहा, अमित कुमार पांडे, रवीन्द्र बहादुर सिंह

प्रतिवादी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

A. आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 374(2) - दोषसिद्धि को चुनौती

मृतका अपने वैवाहिक घर में जलने से मृत्यु को प्राप्त हुई। मृतका का आरोपी के साथ प्रेम विवाह हुआ था। अभियोजन पक्ष कोई उद्देश्य या पूर्व विवाद सिद्ध करने में असफल रहा।

- कोई प्रत्यक्षदर्शी या दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया।
- PW1, PW2, PW3, PW4, PW5 ने अभियोजन का समर्थन नहीं किया क्योंकि सभी मृतका के रिश्तेदार थे और उन्होंने घटना स्वयं नहीं देखी थी।
- मुख्य गवाह रीता (जेठानी) का परीक्षण नहीं किया गया।
- चिकित्सीय रिपोर्ट अभियोजन के कथन का समर्थन नहीं करती थी, मृत्यु का कारण शॉक एवं व्यापक जलन बताया गया।

न्यायालय ने **शरद बिरदीचन्द शारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य** के निर्णय पर भरोसा किया, जिसमें कहा गया था कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामलों में सभी परिस्थितियाँ निर्णायक रूप से सिद्ध होनी चाहिए। यहाँ अभियोजन दोषसिद्धि हेतु संदेह से परे मामला सिद्ध करने में विफल रहा। (अनुच्छेद 1 से 38)

B. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, धारा 106

न्यायालय ने कहा कि–

अनुवादित

- धारा 106 पति या पत्नी पर सीधे लागू नहीं होती, भले ही वे एक ही छत के नीचे रहते हों और मृतका के साथ अंतिम बार देखे गए हों।
- धारा 106 अभियोजन को उसके प्राथमिक भार से मुक्त नहीं करती।
- केवल तब जब अभियोजन ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत करता है जो दोषसिद्धि को पोषणीय बनाता है या prima facie मामला सिद्ध करता है, तभी अभियुक्त पर भार स्थानांतरित होता है। (अनुच्छेद 27)

अतः, अपील स्वीकृत की जाती है। (E-6)

उद्धृत वाद

1. शरद बिरदीचन्द शारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 SCC 116
2. मध्यप्रदेश राज्य बनाम बलवीर सिंह, (2025) SCC Online SC 390
3. नागेन्द्र शाह बनाम बिहार राज्य
4. शिवाजी चिंतप्पा पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2021) AIR SC 1249
5. मंगत राम बनाम हरियाणा राज्य, (2014) AIR SC 1782

(माननीय न्यायमूर्ति मदन पाल सिंह द्वारा प्रदत्त)

असंपादित

<u>प्रारम्भिकः-</u>

1- वर्तमान अपील अपीलार्थी विनोद पटेल द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 36/2018 में अपर सत्र न्यायाधीश, कक्ष संख्या-7, वाराणसी द्वारा पारित आदेश दिनाँकित 14.11.2019 के विरूद्ध योजित की गयी है, जिसके द्वारा विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को मु०अ०सं० 604/2017, अन्तर्गत धारा 302 भा०दं०सं०, थाना चोलापुर, जनपद वाराणसी में दोषसिद्ध करते हुए आजीवन कारावास व 25,000/- रूपए अर्थदण्ड से दण्डित किया है तथा जुर्माना न अदा करने की स्थिति में अभियुक्त को एक वर्ष का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतने का आदेश दिया है।

<u>अभियोजन केसः-</u>

2- संक्षेप में इस अपील के निस्तारण के लिए ससुंगत तथ्य इस प्रकार हैं कि इस मुकदमें के वादी कैलाश द्वारा दिनाँक 04.08.2017 को एक लिखित तहरीर प्रदर्श क-1 थानाध्यक्ष चोलापुर, वाराणसी को इस आशय के साथ प्रस्तुत की थी कि प्रार्थी ने अपनी लड़की अंजू की शादी करीब 5-6 वर्ष पहले विनोद पटेल पुत्र स्वर्गीय प्यारेलाल ग्राम दशनीपुर थाना चोलापुर, वाराणसी के साथ की थी। शादी के बाद विवाहिता मृतका को अतिरिक्त दहेज के लिए वह बहुत मारता-पीटता था। दिनाँक 03.08.2017 को उसकी बेटी को जान से मारने की नीयत से आग लगा दी जिससे उसकी बेटी की हालत गम्भीर होने पर कबीर चौराहा अस्पताल ले गए जहां उसकी मृत्यु हो गयी, विनोद घर से फरार है। सायं 4.00 बजे जब पता चला तो दिनाँक 04.08.2017 को रिपोर्ट लिखवाने आए हैं।

3- वादी की उपरोक्त तहरीर प्रदर्श क-1 के आधार पर अपीलार्थी/अभियुक्त के विरूद्ध धारा 498-ए, 304-बी भा०दं०सं० तथा धारा ¾ दहेज प्रतिषेध अधिनियम1961 के अधीन मुकदमा पंजीकृत हुआ जिसकी चिक एफ०आइ०आर० प्रदर्श क-2 के रूप में पत्रावली पर उपलब्ध है। मामले के विवेचक ने घटनास्थल का निरीक्षण किया तथा पंचायतनामा की कार्यवाही करते हुए मृतका शव को पोस्टमार्टम के लिए भेजा गया। नक्शा-नजरी, पंचनामा व पोस्टमार्टम पत्रावली पर क्रमशः क-10, क-4 व क-9 के रूप में उपलब्ध है। विवेचक ने गवाहों के बयान दर्ज करके व अन्य औपचारिकताएं पूरी करते हुए अभियुक्त विनोद पटेल के विरूद्ध पर्याप्त साक्ष्य पाते हुए आरोप-पत्र अन्तर्गत धारा 498-ए, 302 भा०दं०सं व धारा ¾ दहेज प्रतिषेध अधिनिमय में प्रेषित किया। सम्बन्धित मजिस्ट्रेट द्वारा विवेचक द्वारा प्रस्तुत आरोप पत्र पर दिनाँक 12.01.2018 को संज्ञान लिया तथा धारा 207 दं०प्र०सं० की सभी औपचारिकताएं पूरी करते हुए पत्रावली दिनांक 25.01.2018 को सत्र न्यायालय को विचारण हेतु सुपूर्द कर दिया। विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 20.03.2018 को अभियुक्त/अपीलार्थी विनोद पटेल के विरूद्ध धारा 498-ए, 302 भा०दं०सं एवं धारा 4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम का आरोप विरचित किया। आरोप अभियुक्त को पढ़कर सुनाये गये जिस पर अभियुक्त ने आरोपों का खण्डन करते हुए विचारण की माँग की।

<u>अभियोजन साक्षीः-</u>

4- अभियुक्त के विरूद्ध लगाए गए आरोपों को साबित करने के लिए अभियोजन के द्वारा तथ्य के साक्षी के रूप में पी०डब्ल्यू०-1 वादी कैलाश, पी०डब्ल्यू०-2 मृतका की माँ विमला देवी, पी०डब्ल्य०-03 मृतका का भाई गुड्डू पटेल तथा पी०डब्ल्यू०-04 के रूप में प्रीती (मृतका की बहन) तथा औपचारिक साक्षी के रूप में पी०डब्ल्यू०-05 कांस्टेबल प्रमोद कुमार मौर्य, पी०डब्ल्यू०-06 नायब तहसीलदार आनन्द कुमार कन्नौजिया, पी०डब्लू०-07 ड़ॉ० पी०के० भारती, पी०डब्लयू०-8 क्षेत्राधिकारी अभिनव यादव, पी०डब्ल्यू०-9 इस घटना के विवेचक विनय प्रकाश सिंह को परीक्षित कराया गया।

5- विचारण के दौरान अभियोजन में निम्न दस्तावेजी साक्ष्यों को निम्न प्रदर्शों के रूप में साबित कराया गयाः-

साक्ष्य	प्रदर्श
लिखित तहरीर	क-1
चिक एफ०आइ०आर०	क-2
जी०डी० मुकदमा कायमी	क-3
पंचायतनामा	क-4
चिट्ठी आर०आई० सी०एम०ओ०	क-5
चिट्ठी मुख्य चिकित्साधिकारी	क-6
पुलिस प्रपत्र फार्म	क-7
पुलिस प्रपत्र सं०-**13**	क-8

पोस्टमार्टम	क-9
नक्शा-नजरी	क-10
आरोप-पत्र	क-11

6- अभियोजन साक्ष्य समाप्त होने के उपरान्त अभियुक्त के बयान अन्तर्गत धारा 313 दं०प्र०सं० अंकित किये गये जिसमें अभियुक्त ने स्वयं को निर्दोष बताया एवं विशेष रूप से यह कहा है कि घटना के समय वह काम पर गया था, उसकी भाभी ने फोन करके सूचना दी थी, तब मैं कबीर चौराहा अस्पताल गया और दवा करायी जहाँ उसकी पत्नी की मृत्यु हो गयी।

7- हमने अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना तथा पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्यों का अवलोकन किया।

8- हमारे विचार में साक्ष्य का मूल्याँकन करके किसी निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले, अभियोजन के द्वारा प्रस्तुत साक्षियों के साक्ष्य का उल्लेख किया जाना उचित प्रतीत होता है।

9- पी०डब्ल्यू०-01 के रूप में इस घटना के वादी कैलाश को परीक्षित कराया गया जिसने अपनी मुख्य परीक्षा के रूप में मुख्य रूप से यह कहा है कि उसने अपनी लड़की की शादी विनोद पटेल के साथ वर्ष 2009 में की थी। शादी में कोई दहेज की माँग नहीं की गयी थी। विनोद पटेल मेरी लड़की को मारता-पीटता नहीं था बाद में मारता-पीटता था। मेरी लड़की के ऊपर मिट्टी का तेल छिड़के थे मैं नहीं बता सकता क्योंकि मैं बहुत दूर था। उसकी लड़की को मारने-पीटने से गम्भीर चोटें आई हैं। विनोद के घरवाले उसकी लड़की को अस्पताल ले जाकर भर्ती कराये हैं। विनोद घर से भाग गया। अस्पताल में अगले दिन उसकी लड़की की मृत्यु हो गयी। इस साक्षी ने अपने द्वारा प्रस्तुत तहरीर पर अपने हस्ताक्षर की शिनाख्त की तथा तहरीर को प्रदर्श क-1 के रूप में साबित किया है।

10- पी०डब्ल्यू०-2 के रूप में अभियोजन द्वारा साक्षी विमला देवी को परीक्षित कराया है जिसमें उसने अपनी मुख्य परीक्षा में यह कहा है कि मेरी लड़की अंजू की शादी विनोद पटेल के साथ 8-9 वर्ष पहले हुई थी, शादी के बाद विनोद उसकी लड़की को मारता-पीटता था, विनोद दूसरी लड़की से प्यार करता था एवं अंजू के मना करने पर उसे मारता-पीटता था और उसे प्रताड़ित करता था। साक्षी ने यह भी कहा है कि मेरी लड़की को विनोद ने जलाकर मार डाला, विनोद दूसरी शादी करने की धमकी दे रहा था, विनोद पटेल मेरी लड़की को 8-9-10 वर्ष पहले भगाकर ले गया था, मेरी लड़की के दो बच्चे हैं। जब मेरी लड़की जल गई तब वह कबीर चौराहा अस्पताल गया जहां पर उसकी लड़की की मृत्यु हो गयी।

11- पी०डब्लयू०-03 के रूप में अभियोजन के द्वारा गुड्डू पटेल को परीक्षित कराया गया है जिसने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि उसकी बड़ी बहन अंजू की मृत्यु हो गयी है। अंजू की शादी अभियुक्त विनोद पटेल के

साथ 10 वर्ष पहले हुई थी। वह नहीं बता सकती कि उसकी बहन किस तरह से मरी, विनोद पटेल ने उसकी हत्या की या नहीं उसे जानकारी नहीं है।

12- पी०डब्ल्यू०-4 के रूप में अभियोजन द्वारा प्रीती को परीक्षित कराया है उसने भी लगभग ऐसा ही बयान अपनी मुख्य परीक्षा में दिया है जैसाकि उसके भाई (पी०डब्ल्यू०-03) ने दिया है। उसने मुख्य रूप से अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि उसकी बहन विनोद पटेल के साथ बाहर चली गयी थी जब वह लौटी तो उसने शादी कर ली, उसकी बहन के दो बच्चे पैदा हुए जिसमें से एक लड़की आठ वर्ष एवं लड़का पाँच वर्ष का है, उसकी बहन कैसे मरी उसे इसकी जानकारी नहीं है, उसे बाद में पता चला कि विनोद पटेल अंजू को किसी दूसरी लड़की के चक्कर में मारता-पीटता था इसलिए उसने उसे जलाकर मार दिया है।

13- पी०डब्ल्यू०-05 के रूप में कांस्टेबल 3995 प्रमोद कुमार मौर्य को परीक्षित कराया गया है जिसने अपने साक्ष्य के रूप में कहा है कि दिनाँक 04.08.2017 को थाना चोलापुर में कांस्टेबल मुहर्रिर के पद पर तैनात था, उस दिन वादी द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना पत्र उसके द्वारा बोल-बोल कर सी०सी०टी०एन०एस० कांस्टेबल रत्नेश कुमार पाण्डेय द्वारा कम्प्यूटर में फीड कराया गया। इस साक्षी ने चिक एफ०आइ०आर कागज संख्या 4अ/1 लगायत 4अ/3 मार्क करते हुए प्रदर्श क-2 के रूप में साबित किया तथा जी०डी० मुकदमा कायमी कागज सं० 6अ/3 को प्रदर्श क-3 के रूप में साबित किया है।

14- पी०डब्ल्यू-06 के रूप में अभियोजन द्वारा आनन्द कन्नौजिया जोकि नायब तहसीलदार के रूप में सदर तहसील में उपस्थित थे, उन्होंने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि उनके द्वारा पंचायतनामा व नकल रपट संख्या 20 समय 10.25 बजे दिनाँक 04.08.2017 को करीब 5.45 पर उन्हें सूचना प्राप्त हुई। सूचना पर वह, आरक्षी 2144 धर्मेन्द्र के साथ मौके पर गये और उन्होंने पंचान नियुक्त करके मृतका का पंचायतनामा तैयार किया और पंचान की राय के अनुसार मृतका के शरीर पर आई चोटों का उल्लेख करते हुए पंचान राय लिखी गयी तथा पंचायतनामा तैयार किया गया जोकि कागज संख्या 10अ/1 लगायत 10अ/2 पत्रावली पर मौजूद है जिसे उसने प्रदर्श क-4 के रूप में साबित किया है तथा शव को पोस्टमार्टम हेतु भेजा गया। साक्षी ने चिट्ठी थाना प्रभारी को प्रदर्श क-5, मुख्य चिकित्साधिकारी क-6 तथा मृतका की फोटो लाश क-7के रूप में साबित किया है।

15- पी०डब्ल्यू०-07 के रूप डॉ० पी०के० भारती को परीक्षित कराया गया जिसने अपने बयान में कहा है कि मुख्य चिकित्साधिकारी के आदेश से उनकी ड्यूटी पोस्टमार्टम के लिए हुई थी। उक्त दिनांक को सायं 4.00 बजे मृतका अंजू देवी पत्नी विनोद पटेल निवासी ग्राम सोनखे, थाना चोलापुर बनारस के शव का पोस्टमार्टम किया। पोस्टमार्टम के दौरान बाह्य परीक्षण किया- मृतका के पूरे शरीर पर अकड़न मौजूद थी, आंखे बन्द थी, मुंह अधखुला था, जीभ तथा नाखून एन०ए०डी० व प्राकृति द्वार भी एन०ए०डी०, मृत्यु-पूर्व इंजरी त्वचाधर्म अपरूपीय व्यापक दाह इंजरी पूरे शरीर पर थी सिवाय सिर के ऊपरी हिस्से एवं दोनों पैरों के निचले हिस्से को छोड़कर। आन्तिरक परीक्षण- ब्रेन की झिल्लियाँ कन्जेस्टेड थी, वजन 1203 ग्राम। दाँत 16-16 मौजूद थे। सांस की नली

में कार्बन के पार्टीकल्स मौजूद पाए गए। दोनों साइड के फेफड़े वजन क्रमशः 435 ग्राम व 410 ग्राम प्लूरा कन्जेस्टेड पाए गए। पेरीकार्डियम कन्जेस्टेड था हृदय का वजन 250 ग्राम एवं चैम्बर फुल था। पेरीटोनिअम कन्जेस्टेड था। आमाशय में 200 मिली. पानी था एवं अधपचा चावल पाया गया। म्यूकस मेम्ब्रेन नार्मल थी। छोटी आँत में पचा हुआ भोजन एवं गैस थी। लीवर कन्जेस्टेड था जिसका वजन 1195 ग्राम था। गालब्लैडर आधा भरा था। स्पलीन कन्जेस्टेड था जिसका वजन 102 ग्राम था। किडनी कन्जेस्टेड पायी गयी। यूट्रस खाली था। इस साक्षी ने मृतका की मृत्यु का कारण सदमे एवं अधिक जल जाने से आई चोटों के कारण बताया तथा पोस्टमार्टम को प्रदर्श क-9 के रूप में साबित किया है।

16- पी०डब्ल्यू०-8 के रूप में अभियोजन में साक्षी अभिनव यादव को परीक्षित कराया है जिसने शुरुआती जाँच करने के उपरान्त अभियुक्त के विरूद्ध धारा 304-बी, 498-ए व धारा ¾ दहेज प्रतिषेध अधिनियम के तहत कोई साक्ष्य नहीं पाते हुए, मृतका की मृत्यु जलने के कारण मामले को मृतका की हत्या के रूप में पाते हुए विवेचना एस०एच०ओ० चोलापुर को दे दी थी। इस साक्षी ने नक्शा-नजरी प्रदर्श क-10 के रूप में साबित किया है।

17- पी०डब्ल्यू०-09 के रूप में अभियोजन साक्षी विनय प्रकाश सिंह जो इस मामले के विवेचक है को परीक्षित कराया है, उन्होंने अपने बयानों में अपने द्वारा भिन्न-भिन्न तिथियों में जो विवेचना की है उसका ब्यौरा बताया है तथा अभियुक्त के विरूद्ध धारा 498-ए, 302 भा०दं०सं एवं धारा ¾ दहेज प्रतिषेध अधिनियम का आरोप-पत्र प्रेषित किया है जिसे उन्होंने प्रदर्श क-11 के रूप में साबित किया है।

<u>प्रतिरक्षा साक्ष्यः-</u>

18- अभियोजन की ओर से न तो कोई साक्षी मौखिक रूप से परीक्षित कराया गया है न ही कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है।

19- अपीलार्थी की ओर से मुख्य रूप से तर्क प्रस्तुत किये गये कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश विधि के विरूद्ध था, प्राकृतिक न्याय के विरूद्ध है। पी०डब्ल्यू०-05 ने घटना का समर्थन नहीं किया है न ही चिकित्सीय आख्या ने घटना का समर्थन किया है। घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है जिससे यह साबित हो सके कि मृतका की हत्या की गयी है। अतः याचना की गयी कि अभियुक्त की अपील को स्वीकार करते हुए विचारण न्यायालय के आदेश एवं निर्णय दिनांक 14.11.2019 को अपास्त किया जाए।

<u>तर्क अभियोजनः-</u>

20- विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा मुख्य रूप से यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि मृतका की मृत्यु जलने से उसके ससुराल वाले घर में अपने पति की अभिरक्षा में हुई है, अतः धारा 106 भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अनुसार अभियुक्त को यह बताना होगा कि मृतका की मृत्यु कैसे हुई, अतः अवर न्यायालय द्वारा लिया गया निष्कर्ष भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के प्रावधानों के परिप्रेक्ष्य में के अनुसार

पूर्णतः सही है जिसमें अपीलीय हस्तक्षेप किये जाने की आवश्यकता नहीं है। अतः अपीलार्थी की निरस्त की जाए।

<u>विश्लेषणः-</u>

21- उपरोक्त तर्कों के समर्थन में हमने पत्रावली पर आए साक्ष्यों का सूक्ष्मतः से अवलोकन किया। यह स्वीकृत तथ्य है कि इस घटना का कोई चश्मदीद साक्षी नहीं है जो भी तथ्य के साक्षी के कैलाश, विमला देवी गुड्डु पटेल व प्रीती को क्रमशः पी०डब्ल्यू० 01, 02, 03, 04 के रूप में परीक्षित कराया गया है उन्होंने घटना अपनी आंखों से नहीं देखी है क्योंकि वे मृतका के मायके वाले परिवार से सम्बन्धित हैं इसलिए उनका घटना के समय मृतका के ससुराल वाले घर में रहकर घटना को देखना स्वाभाविक भी नहीं है। साक्षियों ने खुद भी अपने साक्ष्यों में स्वीकार किया है कि वे घटनास्थल पर नहीं थे। अतः हमारे विचार में वर्तमान मामला पूर्णतः परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है। पी०डब्ल्यू०-3 व 4 पक्षद्रोही हो गये हैं, अतः उनके साक्ष्य का विश्लेषण किये जाने का कोई औचित्य नहीं है।

22- परिस्थितिजन्य साक्ष्य के रूप में विधि-व्यवस्था **शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एससीसी 116** में प्रतिवेदित में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पाँच स्वर्णिम सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए यह कहा है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में निम्न शर्तें आवश्यक रूप से पूरी हो जानी चाहिएः-

"1. वे परिस्थितियां जिनसे दोष का निष्कर्ष निकाला जाना है, पूर्णतः स्थापित होनी चाहिए।
2. स्थापित तथ्य अभियुक्त के दोष की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए।
3. परिस्थितियां निर्णायक प्रकृति और प्रवृति की होनी चाहिए।
4. उन्हें सिद्ध की जाने वाली परिकल्पना के अतिरिक्त प्रत्येक संभव परिकल्पना को अपवर्जित करना चाहिए।
5. साक्ष्य की ऐसी पूर्ण श्रृंखला होनी चाहिए जो अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई युक्तियुक्त आधार न छोड़े और यह प्रदर्शित करनी चाहिए कि समस्त मानवीय प्रायिकता के भीतर, यह कृत्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।"

23- यदि वर्तमान मामले में आए साक्ष्य का अवलोकन किया जाए तो अवर न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि अवर न्यायालय ने अभियुक्त को मात्र धारा 106 भारतीय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों के परिप्रेक्ष्य में ही धारा 302 भा०दं०सं के अपराध में दोषसिद्ध किया है। अतः सर्वप्रथम हमारे विचार से धारा 106 भारतीय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान तथा धारा 106 से सम्बन्धित विधि व्यवस्थाओं का उल्लेख करना समीचीन होगा जो इस प्रकार हैः

24- विशेषतः ज्ञात तथ्यों को साबित करने का भार-- जबकि कोई तथ्य विशेषतः किसी व्यक्ति के ज्ञान में है, तब उस तथ्य को साबित करने का भार उस पर है।

<u>दृष्टान्त</u>

ख पर रेल से बिना टिकट यात्रा करने का आरोप है यह साबित करने का भार कि उसके पास टिकट था उस पर है।

25- विधि व्यवस्था **मध्य प्रदेश राज्य बनाम बलवीर सिंह 2025 एस०सी०सी० आनलाइन एस०सी० 390** में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा धारा 106 भारतीय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों के सम्बन्ध में यह अभिमत व्यक्त किया है कि इस धारा का सहारा दोषसिद्ध करने के लिए तब तक नहीं लिया जा सकता जब तक कि अभियोजन ने तथ्यों को साबित करने के अपने प्रारम्भिक भार के दायित्व का उन्मोचन न कर दिया हो।

"इस धारा का उपयोग दोषसिद्धि का समर्थन करने के लिए तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि अभियोजन पक्ष ने अपराध को स्थापित करने के लिए आवश्यक समस्त तत्वों को सिद्ध करके भार का निर्वहन नहीं किया हो। यह अभियोजन पक्ष को यह सिद्ध करने के कर्तव्य से मुक्त नहीं करती कि कोई अपराध किया गया था, भले ही यह विशेष रूप से अभियुक्त की जानकारी में हो और यह अभियुक्त पर यह प्रदर्शित करने का भार नहीं डालती कि कोई अपराध नहीं किया गया था।"

26- एक अन्य विधि व्यवस्था **नागेन्द्र शाह बनाम बिहार राज्य निर्णीत दिनांकित 14.9.2021** में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह भी अभिमत दिया है कि

"धारा 106, धारा 101 का अपवाद है। धारा 101 साक्ष्य के भार के विषय में सामान्य नियम निर्धारित करती है। "जो कोई भी न्यायालय से किसी विधिक अधिकार या दायित्व के संबंध में निर्णय चाहता है जो उसके द्वारा प्रतिपादित तथ्यों के अस्तित्व पर निर्भर है, उसे यह सिद्ध करना होगा कि वे तथ्य विद्यमान हैं"। दृष्टांत (क) कहता है- "क न्यायालय से यह निर्णय चाहता है कि ख को उस अपराध के लिए दंडित किया जाए जो क कहता है कि ख ने किया है। क को यह सिद्ध करना होगा कि ख ने अपराध किया है"। यह सामान्य नियम निर्धारित करता है कि आपराधिक मामले में साक्ष्य का भार अभियोजन पक्ष पर है और धारा 106 निश्चित रूप से उसे उस कर्तव्य से मुक्त करने के लिए अभिप्रेत नहीं है। इसके विपरीत, यह कुछ असाधारण मामलों से निपटने के लिए निर्मित है जिनमें अभियोजन पक्ष के लिए उन तथ्यों को स्थापित करना असंभव, या किसी भी दशा में असमानुपातिक रूप से कठिन होगा, जो "विशेष रूप से" अभियुक्त की जानकारी में हैं और जिन्हें वह कठिनाई या असुविधा के बिना सिद्ध कर सकता है। "विशेष रूप से" शब्द इस पर बल देता है। इसका अर्थ है वे तथ्य जो मुख्य रूप से या असाधारण रूप से उसकी जानकारी में हैं।"

27- एक अन्य विधि-व्यवस्था **शिवाजी चिंतप्पा पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य ए०आई०आर० 2021 सुप्रीम कोर्ट 1249 ए०आई०आर० ऑनलाइन 2021 एस०सी० 97** में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह भी अभिमत दिया है कि

"इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि यह सुस्थापित है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 किसी पति या पत्नी के विरुद्ध प्रत्यक्ष रूप से प्रवर्तित नहीं होती जो एक ही छत के नीचे रह रहे हों और मृतक के साथ अंतिम बार देखे गए व्यक्ति हों। साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 अभियोजन पक्ष को अभियोजन मामले को युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध करने के अपने प्राथमिक भार के निर्वहन से मुक्त नहीं करती। यह केवल तभी है जब अभियोजन पक्ष ने साक्ष्य प्रस्तुत की हो जो, यदि विश्वास की जाए, तो दोषसिद्धि को पोषित करेगी, या जो प्रथमदृष्ट्या मामला बनाती है, कि उन तथ्यों पर विचार करने का प्रश्न उत्पन्न होता है जिनके साक्स्य का भार अभियुक्त पर होगा"।

28- उपरोक्त विधि व्यवस्थाओं के प्रकाश में वर्तमान मामले के तथ्यों और साक्ष्यों का अवलोकन किया जाए तो अभियोजन को अपने ऊपर सबूत के प्रारम्भिक भार के दायित्व के उन्मोचन से छूट प्राप्त नहीं होगी। यानी अभियोजन को उन सभी साक्ष्यों को न्यायालय में प्रस्तुत करना होगा जो अभियुक्त के दोषी होने का इशारा करते हों और उन साक्ष्यों को अभियोजन आसानी से प्रस्तुत कर सकता हो। वर्तमान मामले में अभियोजन द्वारा ऐसा कोई साक्षी प्रस्तुत नहीं किया गया जिसने अपने साक्ष्य में इस तथ्य का कथन किया हो कि घटना वाले दिन घटनास्थल पर घटना के समय अभियुक्त मौजूद था अथवा अभियुक्त/अपीलार्थी विनोद पटेल को घटना करने के कुछ समय पूर्व अथवा पश्चात घटनास्थल पर देखा गया हो, इस तथ्य को साबित करने के लिए भी कि, अभियुक्त घटना कारित करके घटनास्थल से भागते हुए देखा गया था, कोई साक्षी अभियोजन की ओर से प्रस्तुत नहीं किया गया है ताकि इस बात का निष्कर्ष निकाला जा सके कि घटना के समय घर में अभियुक्त ही एकमात्र व्यक्ति मौजूद था और घटना को उसी के द्वारा अंजाम दिया गया हो।

29- उपरोक्त विधि व्यवस्थाओं में जो विधिक अभिमत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया है उसके अनुसार धारा 106 भारतीय साक्ष्य अधिनियम का सहारा केवल उन मामलों में अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए लिया जा सकता है जिनमें कोई तथ्य अपवादिक रूप से अभियुक्त के ज्ञान में हो और सिवाय अभियुक्त के किसी अन्य के ज्ञान में उस तथ्य के होने की कल्पना भी न रही हो।

30- पी०डब्लयू०-01 जोकि घटना का वादी है तथा पी0डब्ल्यू0-02 जो मृतका की माँ है ने भी अपने साक्ष्य में यह कहा है कि मृतका को विनोद पटेल के परिवारवालों ने अस्पताल में भर्ती कराया था, पी0डबल्यू0-01 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह बात भी कही है कि उसे घटना की सूचना विनोद पटेल की माँ ने सुबह 5.00 बजे दी थी, घटनास्थल पोखरे के पास था जहाँ वे लोग रहते थे। पंचायतनामे के अवलोकन से भी यह स्पष्ट होता है कि मृतका की जेठानी रीता द्वारा मृतका को जली अवस्था में कबीर चौराहा अस्पताल में भर्ती कराया गया था। अतः अभियोजन साक्षियों के उपरोक्त साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि मृतका के ससुराल वाले अन्य लोग भी उस घर में निवास करते थे अतः ऐसी स्थिति में जहां मृतका, उसका पति, उसके बच्चे, सास तथा जेठानी व अन्य परिवारजन रहते हों और घटना को कोई चक्षुदर्शी साक्षी न हो तो भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के आधार पर मात्र अभियुक्त के विरूद्ध मृतका की हत्या किये जाने की उपधारणा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गयी उपरोक्त विधि व्यवस्थाओं में दिये गये अभिमत के विरूद्ध होगी। यह सामान्य प्रज्ञा का प्रश्न

है कि घर में कोई घटना हो जाने पर उस घर के पुरुष सदस्य घटना में घायल व्यक्ति को अस्पताल ले जाते हैं तथा उस घटना के सम्बन्ध में समस्त कार्यवाहियाँ भी लगभग भारतीय परिवेश में पुरुष सदस्यों द्वारा ही की जाती हैं परन्तु वर्तमान मामले में मृतका को जली हालत में उसकी जेठानी रीता द्वारा कबीर चौराहा अस्पताल में भर्ती कराया गया जैसाकि पत्रावली पर मौजूद पंचायतनामे के अवलोकन से स्पष्ट होता है। अभियुक्त विनोद पटेल ने अपने बयान अंतर्गत धारा 313 दं0प्र0सं0 में अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए यह कहा है कि वह घटना के समय अपने काम पर था उसकी भाभी ने उसे फोन पर सूचना दी थी तब वह कबीर चौराहा अस्पताल गया और दवा कराया जहाँ उसकी पत्नी की मृत्यु हो गयी। अभियुक्त के उपरोक्त स्पष्टीकरण से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि वह वास्तव में घटना के समय घटनास्थल पर मौजूद ही नहीं था क्योंकि यदि वह वहाँ मौजूद होता तो या तो स्वयं उसके द्वारा या परिवार के किसी अन्य पुरुष सदस्य द्वारा मृतका को अस्पताल में भर्ती कराया जाता और घर की किसी स्त्री को, मृतका को अस्पताल में ले जाने की आवश्यकता न होती। अतः मृतका की जेठानी के द्वारा मृतका को अस्पताल में भर्ती कराया जाना, अभियुक्त के इस स्पष्टीकरण को समर्थन देता है कि वह घटना के समय घटनास्थल पर मौजूद नहीं था बल्कि उसे घटना की जानकारी उसकी भाभी के द्वारा फोन के माध्यम से प्राप्त हुई।

31- यहाँ यह भी उल्लेखनीय होगा कि घटनास्थल से कोई मिट्टी के तेल की कैन अथवा माचिस अथवा जल जाने का सामान बरामद नहीं हुआ है जैसाकि इस वाद के प्राथमिक विवेचक अभिनव यादव द्वारा अपनी परीक्षा में स्वीकार किया गया है जिससे घटनास्थल के बारे में भी संदेह उत्पन्न होता है। विद्वान अवर न्यायालय ने अपने निर्णय ने निर्णय के पृष्ठ संख्या 5 पर यह अभिमत व्यक्त किया है **"क्योंकि यदि एक महिला के साथ ऐसी घटना घटती है तो घटना में स्वाभाविक प्रयुक्त होने वाला मिट्टी के तेल का पात्र, माचिस की तिल्ली या आग लगाए जाने का सामान किन परिस्थितियों में वहाँ नहीं था इसको स्पष्ट करने की एकमात्र जिम्मेदारी अभियुक्त पर थी"** जैसाकि विवेचक ने अपने साक्ष्य में स्वीकार किया है कि घटनास्थल पर कोई मिट्टी के तेल का पात्र, माचिस अथवा आग लगाए जाने का सामान नहीं मिला उससे हमारे विचार में अभियोजन द्वारा कथित घटनास्थल के सम्बन्ध में संदेह उत्पन्न होता है न कि आग लगाए जाने वाले सामान का मौके पर न मिलने से इस बात का निष्कर्ष निकलता है कि अगर ऐसा सामान मौके पर नहीं पाया गया तो उसके सम्बन्ध में स्थिति स्पष्ट करने की जिम्मेदारी अभियुक्त की होगी। हमारे विचार में विद्वान अवर न्यायालय ने स्थापित विधिक सिद्धान्तों के विरूद्ध जाकर अभियुक्त पर अपनी निर्दोषिता साबित करने का भार डाल दिया है जो स्थापित आपराधिक विधिक सिद्धान्तों के विपरीत है बल्कि अभियुक्त के विरूद्ध समस्त आरोपों को युक्तियुक्त संदेह से परे साबित करने का भार अभियोजन का है और संदेह की स्थिति में इसका लाभ अभियुक्त के पक्ष में जाएगा।

32- मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है अतः ऐसे मामलों में हेतुक एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है जहां तक पत्रावली पर आए साक्ष्य के अवलोकन से हेतुक के सम्बन्ध में आए साक्ष्य का प्रश्न है तो हेतुक के सम्बन्ध में वादी ने ऐसा कोई कथन अपनी तहरीर में उल्लिखित नहीं किया है कि अभियुक्त के द्वारा मृतका की हत्या करने का कोई अमुक हेतुक रहा था और न ही उसने अपने सशपथ में दिये गए बयानों में ऐसा कोई

हेतुक बताया है। हांलाकि पी०डब्लयू०-2 जो मृतका की माँ है ने अपनी मुख्य परीक्षा में यह कथन किया है कि विनोद पटेल दूसरी लड़की से प्यार करता था इसलिए वह मृतका के साथ मार-पीट करता था और वह दूसरी लड़की के साथ शादी करने की धमकी दे रहा था इसलिए उसने मृतका को जलाकर मार डाला।

33- जहाँ तक अभियोजन के द्वारा हेतुक साबित करने का प्रश्न है तो, हेतुक के सम्बन्ध में अभियोजन की ओर से ऐसा कोई साक्ष्य पत्रावली पर दाखिल नहीं किया गया जिससे अभियुक्त का किसी अन्य महिला के साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध साबित होता हो जैसेकि उस कथित महिला के साथ अभियुक्त का कोई पत्राचार, कथित महिला के द्वारा अथवा अभियुक्त के द्वारा एक-दूसरे को लिखे गए कोई पत्र आदि या मोबाइल के माध्यम से अभियुक्त तथा कथित महिला के साथ की गयी किसी बातचीत के अंश या अभियुक्त के उस महिला के साथ कोई फोटोग्राफ आदि पत्रावली पर दाखिल नहीं किये गये हैं, जिससे प्रथमदृष्टया इस बात का निष्कर्ष निकाला जा सके कि वास्तव में अभियुक्त किसी अन्य महिला के सम्पर्क में था और इसी कारण अपीलार्थी अपनी पत्नी से छुटकारा पाना चाहता था और उसने अपनी पत्नी को रास्ते से हटाने के लिए उसे जलाकर मार डाला। यहां इस बात का उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण प्रतीत होता है कि यदि अभियुक्त का किसी अन्य महिला के साथ प्रेम सम्बन्ध था और उसकी पत्नी इस बात का विरोध करती थी तो इस तथ्य की जानकारी निश्चित रूप से मृतका के माता-पिता या करीबी परिवारवालों को हो गई होती और इस बात का उल्लेख वादी ने अपनी तहरीर में इस आशय से किया होता कि अभियुक्त किसी अन्य महिला से सम्बन्ध रखता था और इसी कारण उसने मृतका की जलाकर हत्या कर दी। अभियुक्त का किसी महिला से सम्बन्ध होना एक महत्वपूर्ण तथ्य है जिसका तहरीर में लिखा जाना आवश्यक था क्योंकि यही तथ्य मृतका की हत्या करने का एक मात्र आधार था और यदि वह तथ्य वादी ने तहरीर में भी नहीं लिखा था तो कम-से-कम वादी को अपने सशपथ बयान में न्यायालय के समक्ष यह बात बतानी थी कि अभियुक्त के द्वारा मृतका की हत्या किये जाने का एकमात्र कारण उसका किसी अन्य महिला के साथ अनैतिक सम्बन्ध था, परन्तु ऐसा कोई कथन वादी ने अपनी मुख्य परीक्षा में भी न्यायालय के समक्ष नहीं किया है। अतः हमारे विचार में पी०डब्लयू०-2 विमला देवी के द्वारा अपने सशपथ साक्ष्य में अभियुक्त का किसी महिला के साथ सम्बन्ध होने का जो कथन किया गया है वह आधारहीन है और इम्प्रूवमेंट (सुधार) की श्रेणी में आता है जो किसी भी दृष्टिकोण से विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। अतः विद्वान अवर न्यायालय द्वारा अपने निष्कर्ष में प्रेम प्रसंग के बावत आए साक्ष्य को विश्वसनीय माना जाना तथ्यों के विपरीत था, जबकि अभियुक्त का किसी अन्य महिला के साथ किसी भी प्रकार के सम्बन्ध का कोई साक्ष्य पत्रावली पर नहीं था। अतः हमारे विचार में अभियोजन अभियुक्त के विरूद्ध हेतुक साबित करने में भी पूर्णतः विफल रहा है।

34- यह सामान्य प्रज्ञा का तथ्य है कि किसी भी अपराधी का यह स्वाभाविक आचरण रहता है कि वह अपराध को खुले तौर पर नहीं करता बल्कि सामान्यतः वह उसे छिपाकर करने का प्रयास करता है ताकि वह अपने आप को उस अपराध में संलिप्त होने से बचा सके। वर्तमान मामले में भी अभियुक्त के पास अनेको अवसर या तरीके हो सकते थे जहाँ वह अपनी पत्नी की हत्या कर सकता था जैसेकि जब वह किसी काम से घर के बाहर जा रही होती या गला दबाकर या जहर देकर या अन्य तरीके से उसकी हत्या की जा सकती थी ताकि उसके द्वारा

किया गया आपराधिक कृत्य किसी की जानकारी में न आ सके, जबकि अभियुक्त के द्वारा अपनी पत्नी को खुले तौर पर जलाकर मारे जाने से उसका आपराधिक कृत्य आसपास के लोगों द्वारा आसानी से जाना जा सकता था। अतः अभियुक्त के द्वारा अपनी पत्नी को जलाकर मारा जाना भी हमारे विचार में विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता है। इसके अलावा जब भी किसी व्यक्ति की जान जोखिम में रहती है या उसे इस बात का अंदेशा होता है कि उसकी जान को खतरा है, तो यह सामान्य मानवीय आचरण है कि वह अपनी जान बचाने की हर सम्भव कोशिश करता है, अतः इस मामले में भी यदि तर्क के लिए अभियोजन का सारा केस सही मान लिया जाए तो भी मृतका के पास इस बात का पर्याप्त अवसर रहा होगा कि वह अभियोजन के द्वारा घटना कारित करते समय उस स्थान से भागकर अपने प्राणों की रक्षा करती जब उसके ऊपर तेल डाला जा रहा था और अपने बचाव के लिए संघर्ष करती या आसपास के लोगों से मदद की गुहार लगाती, ऐसा सम्भव नहीं है कि वह चुप-चाप अपने ऊपर अपने पति से तेल डलवाती रहेगी और इस बात का इंतजार करती रहेगी कि उसका पति तेल डालकर उसे आग लगा दे। इस दृष्टिकोण से भी मृतका की अभियुक्त के द्वारा हत्या किये जाने का विश्वास से परे प्रतीत होता है।

35- वादी पी०डब्लयू०-1 तथा मृतका की माँ ने इस बात को स्वीकार किया है कि उनकी पुत्री ने अभियुक्त के साथ प्रेमविवाह किया था। अतः सामान्यतः प्रेमविवाह वाले मामलों में यह बात विश्वास से परे है कि जिस व्यक्ति ने अपनी पत्नी से प्रेमविवाह किया हो वह उसे प्रताड़ित करे या जलाकर उसकी हत्या करे दे। हालाँकि इस बात की सम्भावना अवश्य हो सकती है कि विवाह हो जाने के पश्चात मृतका को अपने पति से उस तरह का प्यार अथवा सम्मान न मिला हो जिसकी अपेक्षा के अधीन उसने विवाह किया था। विधि व्यवस्था **मंगतराम बनाम हरियाणा राज्य ए०आइ०आर० 2014 सुप्रीम कोर्ट 1782** में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह विधिक अभिमत दिया है कि

"कोई महिला विभिन्न कारणों से आत्महत्या का प्रयास कर सकती है, जैसे कि अवसाद, वित्तीय कठिनाइयां, प्रेम में निराशा, घरेलू चिंताओं से थकी हुई, तीव्र या दीर्घकालिक रोग इत्यादि"

अतः इस बात की सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता कि मृतका ने उपरोक्त किन्हीं कारणों में से परेशान होकर अपनी आत्महत्या न कर ली हो।

36- पत्रावली के अवलोकन से एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी प्रदर्शित होता है कि मृतका ने अभियुक्त से प्रेमविवाह किया था, उसके दो बच्चे हैं जिनमें से एक घटना के समय लड़की 6 वर्ष की और एक लड़का 5 वर्ष का था। अभियुक्त मजदूर वर्ग का है, जो पेण्टर का काम करता है। अभियोजन अभियुक्त के विरूद्ध हेतुक भी साबित नहीं कर पाया है। मृतका के साथ की गयी घटना के पूर्व कथित रूप से की गयी मारपीट की कोई शिकायत अथवा पारिवारिक पंचायत का कोई सबूत पत्रावली पर नहीं है, अतः हमारे विचार में ऐसा कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि अभियुक्त मृतका को बिना किसी कारण के जलाकर उसकी हत्या करेगा। इस बिन्दु पर विधि स्थापित हो चुकी है कि संदेह चाहे जितना भी मजबूत हो वह सबूत का स्थान नहीं ले सकता। अतः मात्र शक के आधार पर अभियुक्त को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

37- हमारे विचार से यहाँ यह उल्लेखनीय होगा कि इस मामले में सबसे महत्वपूर्ण साक्षी मृतका की जेठानी रीता थी जो इस बिन्दु पर प्रकाश डाल सकती थी कि जब वह पहली बार मृतका से घायल अवस्था में मिली तो मृतका ने उसे अपने जलने का क्या कारण बताया परन्तु अभियोजन द्वारा मृतका की जेठानी रीता को अभियोजन साक्षी ही नहीं बनाया, इस दृष्टिकोण से भी अभियोजन की कहानी संदेहास्पद हो जाती है और इसका लाभ निश्चित रूप से अभियुक्त के पक्ष में जायेगा।

38- अतः हमारे विचार में विधि-व्यवस्था **शरद बिरदीचन्द शारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य (1984) 4 एस0सी0सी0 116** में दिये गये विधिक अभिमत के प्रकाश में अभियोजन अभियुक्त के विरूद्ध परिस्थितियों की श्रंखला को पूर्ण करने तथा अपने द्वारा सबूत के प्रारम्भिक दायित्व को उन्मोचित करने में विफल रहा है, अतः हमारे विचार में विद्वान अवर न्यायालय के द्वारा मात्र धारा 106 भारतीय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान के आधार पर अभियुक्त को हत्या के अपराध में दोषसिद्ध किये जाने का निष्कर्ष विधि अथवा तथ्यों के विपरीत है। अतः अभियुक्त विनोद पटेल द्वारा योजित अपील स्वीकार किये जाने योग्य है एवं अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश एवं निर्णय दिनाँकित 14.11.2019 अपास्त किये जाने योग्य है।

<u>आदेश</u>

अतः अभियुक्त विनोद पटेल द्वारा योजित अपील संख्या 74/2020, अन्तर्गत धारा 302 भा०दं०सं० स्वीकार की जाती है और विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनाँकित 14.11.2019 अपास्त किया जाता है। अभियुक्त को उस पर लगाए गये आरोप अन्तर्गत धारा 302 भा०दं०सं०, मु०अ०सं० 604/2017, थाना चोलापुर, जिला वाराणसी से दोषमुक्त किया जाता है। अभियुक्त न्यायिक अभिरक्षा में है, यदि वह किसी अन्य मामले में वांछित न हो तो अविलम्ब रिहा किया जाए। धारा 437-ए दं०प्र०सं० का अनुपालन सुनिश्चित किया जाए।

पत्रावली मय अपीलीय आदेश/निर्णय अवर न्यायालय को अविलम्ब आवश्यक कार्यवाही हेतु प्रेषित की जाए।

(2025) 5 ILRA 1907

अपीलाधिकारिता आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या - 13376 सन् 2025

जहिद बेग @ जहिद जमाल बेग ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

आवेदक के अधिवक्ता: वरिष्ठ अधिवक्ता, ज़ीशान मज़हर

प्रतिवादी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि – भारतीय दंड संहिता (भारतीय न्याय संहिता, 2023 के अनुरूप) – धारा 108 (पूर्व धारा 306 IPC) – आत्महत्या के लिए उकसावा

तथ्य:

- मृतका (नौकरानी) अपने नियोक्ता के घर में मृत पाई गई।
- आरोप: कार्यस्थल पर उत्पीड़न के कारण आत्महत्या।
- कोई आत्महत्या नोट नहीं मिला।
- उकसावे, साजिश या सहायता का कोई साक्ष्य नहीं।
- सहकर्मी एवं मृतका के माता-पिता के बयान उकसावे पर मौन।
- एफ.आई.आर. दर्ज करने में पाँच दिन का विलंब।
- मृतका की अंतिम कॉल्स उसके मित्र (प्रेमी) से थीं, जो निजी कारण दर्शाती हैं।
- *Mens rea* अनुपस्थित।
- प्रथम दृष्टया मामला सिद्ध नहीं हुआ।

निर्णय:

- धारा 108 BNS, 2023 (धारा 306 IPC के अनुरूप) के अंतर्गत मामला तभी बनता है जब आत्महत्या हो और अभियुक्त ने सक्रिय भूमिका निभाई हो – जैसे उकसावा, साजिश या आत्महत्या में सहायता। (अनुच्छेद 7.1)
- "उकसावे" की परिभाषा: आवश्यक नहीं कि स्पष्ट शब्द प्रयोग हों, परंतु परिस्थितियाँ ऐसी हों कि मृतक के पास आत्महत्या के अतिरिक्त कोई विकल्प न बचे। (अनुच्छेद 7.2)

अनुवादित

- यदि अभियुक्त ने मृतक को आत्महत्या के लिए उकसाया, साजिश की या जानबूझकर सहायता की, तभी दायित्व बनता है। (अनुच्छेद 7.4)

अतः, जमानत प्रार्थना पत्र स्वीकृत किया जाता है। (E-14)

उद्धृत वाद

1. मोहित सिंघल एवं अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य एवं अन्य, (2024) 1 SCC 417
2. जयदीपसिंह प्रविनसिंह चावड़ा एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य, (2025) 2 SCC 116
3. अय्यूब एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2025 Supreme (SC) 289
4. रमेश कुमार बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2001) 9 SCC 618
5. राजेश बनाम हरियाणा राज्य, (2020) 15 SCC 359
6. कमरुद्दीन दस्तगीर सनादी बनाम कर्नाटक राज्य, (2024) SCC OnLine SC 3541
7. पटेल बाबुभाई मनोहरदास एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य, 2025 Live Law (SC) 288
8. थंगावेल बनाम राज्य, पुलिस निरीक्षक एवं अन्य, 2025 Live Law (SC) 659

(माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह द्वारा प्रदत्त)

1- इस आवेदन के माध्यम से, आवेदक-जाहिद बेग उर्फ जाहिद जमाल बेग, जो मामला अपराध संख्या 188/2024, भारतीय न्याय संहिता की धारा 108 के अंतर्गत, थाना भदोही, जिला भदोही में संलिप्त है, विचारण की लंबितता के दौरान जमानत पर बड़ी मांगता है।

2- श्री गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री जीशान मजहर, विद्वान अधिवक्ता द्वारा सहायता प्राप्त, आवेदक के लिए और श्री रूपक चौबे, विद्वान ए.जी.ए. प्रथम, श्री दीपक मिश्रा, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा सहायता प्राप्त, राज्य का प्रतिनिधित्व करते हुए, को सुना गया। 3-अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार संक्षेप में, उप-निरीक्षक हर दत्त पांडे ने दिनांक 14.9.2024 को भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 108 के अंतर्गत जाहिद बेग उर्फ जाहिद जमाल बेग (आवेदक) और श्रीमती सीमा बेग के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा गया कि:-

3.1- दिनांक 09.09.2024 को जाहिद बेग उर्फ जाहिद जमाल बेग और श्रीमती सीमा बेग के निवास पर, एक किशोर नाजिया पुत्री इमरान, जो आवेदक के घर में नौकरानी के रूप में कार्य कर रही थी, संदिग्ध परिस्थितियों में मृत पाई गई और एक अन्य लड़की मोनी उर्फ सानिया भी घरेलू नौकरानी के रूप में कार्य कर रही थी। जिला

मजिस्ट्रेट, भदोही ने उक्त तथ्य का संज्ञान लेते हुए, बाल कल्याण समिति, जिला परिवीक्षा अधिकारी, श्रम प्रवर्तन अधिकारी और पुलिस अधिकारियों को मामले में आवश्यक कार्रवाई करने का निर्देश दिया।

3.2- तदनुसार, एक संयुक्त दल दिनांक 10.9.2024 को सायं 6:00 बजे आवेदक के निवास पर पहुंचा और स्थल निरीक्षण किया, जहां मोनी उर्फ सानिया, जिसकी आयु लगभग 15 वर्ष थी, उपस्थित पाई गई और वहां कार्य कर रही थी। विवेचना दल द्वारा पूछताछ के पश्चात् उसे कार्यस्थल से बचाया गया और उसे बाल कल्याण समिति भदोही के समक्ष प्रस्तुत किया गया। तत्पश्चात् अध्यक्ष, बाल कल्याण समिति के आदेश के अनुसार, मोनी उर्फ सानिया को सरकारी बाल गृह भेज दिया गया।

3.3- नाजिया के संबंध में, जो रात्रि 8/9.9.2024 की मध्यरात्रि में आवेदक के घर पर मृत पाई गई थी, नाजिया के परिवार के सदस्यों, उसके पिता इमरान, मोनी के चचेरे भाई जुबैर से पूछताछ की गई और उनके बयान दर्ज किए गए। जिसके अनुसार निम्नलिखित तथ्य प्रकट हुए:

i- नाजिया वहां मोनी के साथ रहती थी और घरेलू नौकरानी के रूप में काम करती थी। मोनी उर्फ सानिया ने बताया कि उन दोनों को कभी-कभी काम के लिए डांटा जाता था और उसे (मोनी) को पीटना पड़ता था। नाजिया भी जाहिद बेग उर्फ जाहिद जमाल बेग और श्रीमती सीमा बेग के घर पर घरेलू नौकरानी के रूप में काम करती थी। नाजिया घरेलू कार्यों के अतिरिक्त भोजन भी पकाती थी। मोनी द्वारा किए गए प्रकटीकरण के अनुसार, घटना से 2-3 दिन पूर्व नाजिया ने उससे (मोनी) से वहां से भाग जाने के लिए कहा था क्योंकि वह श्री जाहिद बेग उर्फ जाहिद जमाल बेग के घरेलू काम से ऊब गई थी लेकिन उसने (मोनी) ने मना कर दिया।

ii-नाजिया के पिता द्वारा दिए गए बयान के अनुसार, नाजिया लगभग नौ वर्षों से जाहिद बेग उर्फ जाहिद जमाल बेग और सीमा बेग के घर में रह रही थी और काम कर रही थी और उसे प्रति माह रु. 1000/- पारिश्रमिक के रूप में मिलते थे, जो नाजिया की मां नूर जहां लेती थी। नाजिया रात्रि 8/9.9.2024 की मध्यरात्रि में जाहिद बेग उर्फ जाहिद जमाल बेग और सीमा बेग के घर पर मृत पाई गई थी। इस प्रकार नाजिया की आयु और उसके लगभग 8-9 वर्षों के कार्य काल को ध्यान में रखते हुए, यह पुष्ट होता है कि मृतक नाजिया को भी बाल श्रम के रूप में काम कराया जा रहा था।

iii-प्रारंभिक जांच में यह पाया गया कि नाजिया कार्य की स्थिति से तंग आ गई थी, इसलिए उसने रात्रि 8/9.09.2024 को जाहिद बेग उर्फ जाहिद जमाल बेग के घर की तीसरी मंजिल पर स्थित भंडार कक्ष की छत पर हुक से अपने दुपट्टे की सहायता से स्वयं को लटकाकर आत्महत्या कर ली।

4- आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का मुख्य आधार यह है कि आवेदक भदोही निर्वाचन क्षेत्र, जिला भदोही से विद्यमान विधायक है। मृतक-नाजिया और मोनी पिछले 8-9 वर्षों से आवेदक के घर पर काम कर रही थीं। इस अवधि के दौरान नाजिया का एक अभिषेक सरोज, जो आवेदक के घर के पास रहता था, से संपर्क

हुआ और उनका परिचय धीरे-धीरे प्रेम प्रसंग में बदल गया और वह अभिषेक सरोज के साथ बहुत मित्रवत हो गई और जब भी उसे मौका मिलता था उससे बात करने लगी। आत्महत्या करने से पूर्व, मृतक ने मोबाइल नंबर 9696326994 से अभिषेक सरोज को उसके मोबाइल नंबर 8004138470 पर कई कॉल किए। इस बात पर बहुत बल दिया गया है कि मृतक की मां ने दिनांक 03.10.2024 को भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 की धारा 173(4) के अंतर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह आरोप लगाया गया कि प्रेम प्रसंग के कारण, अभिषेक ने उसकी बेटी के साथ शारीरिक संबंध बनाए और उसकी अनुचित तस्वीरें भी लीं और इस प्रकार उसे ब्लैकमेल करना शुरू कर दिया, इसलिए, उसने आत्महत्या कर ली। उक्त आवेदन का दिनांक 14.10.2024 के आदेश द्वारा विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा इस टिप्पणी के साथ निस्तारण किया गया कि चूंकि आत्महत्या की उक्त घटना के संबंध में, मामला अपराध संख्या 188/2024 के रूप में प्रथम सूचना रिपोर्ट पहले ही दिनांक 14.09.2024 को पंजीकृत हो चुकी है, इसलिए मृतक की मां द्वारा भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 173(4) के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन में उल्लिखित तथ्यों की जांच मामला अपराध संख्या 188/2024 की जांच में करना उचित होगा। मोनी उर्फ सानिया के बयान का उल्लेख करते हुए, यह तर्क दिया गया है कि उसने अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा है कि चूंकि अभियुक्त जाहिद बेग उर्फ जाहिद जमाल बेग के घर में बहुत काम था, इसलिए कभी-कभी वे उसे डांटते थे और उसे थप्पड़ भी मारते थे। उसने यह भी खुलासा किया है कि घटना से 2-3 दिन पूर्व, मृतक ने उसे वहां से भाग जाने के लिए कहा था, लेकिन उसने मना कर दिया। उक्त साक्ष्य भारतीय दंड संहिता की धारा 107 के अंतर्गत परिभाषित 'उकसाने' की सामग्री का गठन नहीं करेगा। मृतक के पिता के बयान का उल्लेख करते हुए, वे प्रस्तुत करते हैं कि उन्होंने आवेदक के विरुद्ध दुष्प्रेरण का कोई आरोप नहीं लगाया। मृतक की मां ने भी आवेदक के विरुद्ध उकसाने या दुष्प्रेरण का आरोप नहीं लगाया। यह बार-बार प्रस्तुत किया गया है कि विवेचना अधिकारी ने निष्पक्ष तरीके से जांच नहीं की है और राजनीतिक कारणों से, आवेदक और उसके परिवार के सदस्यों को झूठे तरीके से फंसाने के लिए गलत निष्कर्ष निकाला कि मृतक-नाजिया ने आवेदक और सह-अभियुक्त द्वारा उकसाने और दुष्प्रेरण के कारण आत्महत्या की। अंत में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक के न्यायिक प्रक्रिया से भागने या अभियोजन साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने की कोई संभावना नहीं है। आवेदक दिनांक 19.09.2024 से जेल में बंद है और यदि उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा और विचारण में सहयोग करेगा।

5- आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने अपने प्रस्तुतीकरण के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया:-
i-मोहित सिंघल और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य, (2024) 1 एससीसी 417
ii-जयदीपसिंह प्रवीणसिंह चावड़ा और अन्य बनाम गुजरात राज्य, (2025) 2 एससीसी 116
iii-अय्यूब और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2025 सुप्रीम (एससी) 289

6- दूसरी ओर, राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने यह तर्क देते हुए आवेदक की जमानत की प्रार्थना का विरोध किया कि:-

i-मोनी उर्फ सानिया, जो आवेदक के घर पर नाजिया के साथ काम कर रही थी, ने अपने बयान में अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा है कि विधायक के घर में बहुत काम था। इसलिए हम दोनों को डांट पड़ती थी और कभी-कभी पीटा भी जाता था। घटना से दो-तीन दिन पूर्व, नाजिया (मृतक) ने उसे वहां से भाग जाने के लिए कहा था, लेकिन उसने ऐसा करने से मना कर दिया।

ii-अभिषेक सरोज के बयान का उल्लेख करते हुए, यह आगे तर्क दिया गया है कि अभिषेक आवेदक के घर के पास रहता था, इसलिए उसकी नाजिया से जान-पहचान हो गई और धीरे-धीरे वे दोनों दोस्त बन गए और जब भी उन्हें मौका मिलता था बात करने लगे। वह विधायक के घर के किसी भी नंबर से उसके मोबाइल नंबर पर कॉल करती थी और फोन पर अपने बारे में बताती थी। पिछले कुछ दिनों से, वह उससे परेशान अवस्था में बात करती थी। पूछे जाने पर, वह कहती थी कि उसे आवश्यकता से अधिक काम करना पड़ता है। अभियुक्त व्यक्तियों के व्यवहार के कारण उसका जीवन दयनीय हो गया है। रात्रि 08/09.09.2024 को आत्महत्या करने से पूर्व, नाजिया ने उसे कई बार फोन किया और वह मानसिक रूप से बहुत परेशान लग रही थी और कह रही थी कि चूंकि वह यहां से भाग नहीं सकती, इसलिए वह अपना जीवन समाप्त करना चाहती है।

iii- अभिषेक सरोज का बयान मोनी के बयान से समर्थित है और मामले के तथ्यों के अंतर्गत अभिषेक सरोज के बयान को मृतक-नाजिया की मृत्यु-पूर्व घोषणा के रूप में माना जा सकता है।

iv-जहां तक भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 173(4) (दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के संगत) के अंतर्गत दिनांक 03.10.2024 को मृतक की मां द्वारा अभिषेक सरोज के विरुद्ध प्रस्तुत आवेदन का संबंध है, यह प्रस्तुत किया गया है कि जब विवेचना अधिकारी को उक्त आवेदन और मजिस्ट्रेट द्वारा उस पर पारित आदेश के बारे में पता चला, तो उसने मृतक के पिता से संपर्क करने का प्रयास किया, लेकिन उसका फोन बंद था। तब उसने मृतक की मां से उसके मोबाइल नंबर पर संपर्क किया। जब आवेदन के बारे में पूछा गया, तो उसने कहा कि उसने न्यायालय के समक्ष कोई आवेदन नहीं दिया है। जब विवेचना अधिकारी ने उसका बयान दर्ज कराने के लिए कहा, तो उसने मना कर दिया।

v- तत्पश्चात्, मृतक के पिता और मां के दूसरे बयान दर्ज किए गए, जिसमें उन्होंने कहा है कि वे अपना कोई अन्य बयान दर्ज नहीं कराना चाहते हैं। हालांकि, उन्होंने बताया है कि न्यायालय को जो भी आवेदन दिया गया है, उन्होंने न्यायालय में प्रस्तुत आवेदन को नहीं पढ़ा है और अधिवक्ता की सलाह पर इस पर हस्ताक्षर किए हैं। उक्त बयान का उल्लेख करते हुए, यह तर्क दिया गया है कि मृतक की मां भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 की धारा 173(4) के अंतर्गत आवेदन की सामग्री से अवगत नहीं थी।

vi- यद्यपि मृतक की मृत्यु आवेदक के घर में हुई थी, लेकिन मृत्यु-पूर्व परीक्षण की कार्यवाही में, न तो आवेदक और न ही उसके परिवार का कोई सदस्य मृत्यु-पूर्व परीक्षण का साक्षी था।

v- अंत में, यह प्रस्तुत किया गया है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, केवल यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नाजिया ने अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा उत्पीड़न के कारण आत्महत्या की, अतः आवेदक का जमानत आवेदन खारिज किए जाने योग्य है।

7- यहां आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरण के सुस्थापित कानून/सामग्री का उल्लेख करना उचित होगा, जो निम्नानुसार हैं:-

7.1- किसी मामले को भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 108 (भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के संगत) के दायरे में लाने के लिए, आत्महत्या का मामला होना चाहिए और उक्त अपराध के किए जाने में, जिस व्यक्ति को आत्महत्या के किए जाने में दुष्प्रेरित करने वाला कहा जाता है, उसे उकसाने के कार्य द्वारा या आत्महत्या के किए जाने को सुविधाजनक बनाने के लिए कुछ कार्य करके एक सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए।

7.2 -"उकसाने" की आवश्यकता को पूरा करने के लिए, यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि वास्तविक शब्दों का उस प्रभाव के लिए उपयोग किया जाना चाहिए या जो "उकसाने" का गठन करता है वह आवश्यक रूप से और विशेष रूप से परिणाम का सुझाव देने वाला होना चाहिए। फिर भी परिणाम को उकसाने के लिए एक उचित निश्चितता को व्यक्त किया जाना चाहिए। जहां अभियुक्त ने, अपने कृत्यों या चूक द्वारा या निरंतर आचरण के पाठ्यक्रम द्वारा, ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की हैं कि मृतक के पास आत्महत्या करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं था, ऐसे मामले में, एक "उकसाने" का अनुमान लगाया जा सकता है।

7.3 -भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 45 (भारतीय दंड संहिता की धारा 107 के संगत) के अनुसार, एक व्यक्ति किसी बात के किए जाने का दुष्प्रेरण करता है, जो किसी व्यक्ति को उस बात को करने के लिए उकसाता है या उस बात के किए जाने के लिए किसी षड्यंत्र में एक या अधिक व्यक्तियों के साथ संलग्न होता है या किसी कार्य या अवैध चूक द्वारा जानबूझकर उस बात के किए जाने में सहायता करता है।

7.4- उपर्युक्त सुस्थापित कानून के प्रकाश में, आत्महत्या के मामले में, एक व्यक्ति दुष्प्रेरण के लिए उत्तरदायी है यदि उस व्यक्ति ने अन्य बातों के साथ-साथ मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाया है या आत्महत्या करने के लिए किसी षड्यंत्र में संलग्न हुआ है या जानबूझकर आत्महत्या के किए जाने में सहायता की है।

8- अब आवेदक की ओर से भरोसा किए गए न्यायिक पूर्ववृत्तों का उल्लेख करना उचित होगा, जो निम्नानुसार हैं:

8.1- **मोहित सिंघल और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य, 2024(1) एससीसी 417** में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि उकसाने का कार्य ऐसी तीव्रता का होना चाहिए कि यह मृतक को ऐसी स्थिति में धकेलने का इरादा हो जिसके अंतर्गत उसके पास आत्महत्या करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है और ऐसा उकसाना आत्महत्या करने के कार्य के निकट होना चाहिए। न्यायालय ने आगे इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

"मामले के तथ्य में, धारा 107 में दूसरे और तीसरे का कोई अनुप्रयोग नहीं होगा। अतः, प्रश्न यह है कि क्या अपीलकर्ताओं ने मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाया। पहले खंड को आकर्षित करने के लिए, अभियुक्त की ओर से मृतक को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करने के लिए किसी न किसी रूप में उकसाना होना

चाहिए। अतः, अभियुक्त में मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाने का आपराधिक इरादा होना चाहिए। उकसाने का कार्य ऐसी तीव्रता का होना चाहिए कि यह मृतक को ऐसी स्थिति में धकेलने का इरादा हो जिसके अंतर्गत उसके या उसकी पास आत्महत्या करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। ऐसा उकसाना आत्महत्या करने के कार्य के निकट होना चाहिए।"

8.2- **माननीय उच्चतम न्यायालय ने जयदीपसिंह प्रवीणसिंह चावड़ा और अन्य बनाम गुजरात राज्य, 2025(2) एससीसी 116** में अभिनिर्धारित किया है कि यह पता लगाने के उद्देश्य से कि क्या किसी व्यक्ति ने दूसरे द्वारा आत्महत्या के किए जाने का दुष्प्रेरण किया है, विचार यह होगा कि क्या अभियुक्त आत्महत्या के कार्य को उकसाने के कार्य का दोषी है। जैसा कि उपर्युक्त निर्णय में इस न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया गया है और दोहराया गया है, उकसाने का अर्थ है उत्तेजित करना, आगे बढ़ाना, भड़काना, उकसाना या कोई कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना। यदि जिन व्यक्तियों ने आत्महत्या की है वे अतिसंवेदनशील थे और अभियुक्त की कार्रवाई अन्यथा सामान्य रूप से समान परिस्थितियों वाले व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करने की अपेक्षा नहीं है, तो अभियुक्त को आत्महत्या के दुष्प्रेरण का दोषी ठहराना सुरक्षित नहीं हो सकता है।

8.3- **अय्यूब और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2025 सुप्रीम (एससी) 289** में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णयों की एक श्रृंखला पर विचार करने के पश्चात्, यह अभिनिर्धारित किया है कि निर्णयों की एक लंबी श्रृंखला द्वारा, इस न्यायालय ने दोहराया है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अंतर्गत अपराध बनाने के लिए, अभियुक्त की ओर से भारतीय दंड संहिता की धारा 107 द्वारा विचारित विशिष्ट दुष्प्रेरण की आवश्यकता है जिसका इरादा उस दुष्प्रेरण के परिणामस्वरूप संबंधित व्यक्ति की आत्महत्या को लाना है। यह आगे अभिनिर्धारित किया गया है कि मृतक को आत्महत्या करने के लिए सहायता करने या उकसाने या दुष्प्रेरण करने का अभियुक्त का इरादा भारतीय दंड संहिता की धारा 306 को आकर्षित करने के लिए आवश्यक है। इसके अलावा, कथित उत्पीड़न ऐसा होना चाहिए था कि पीड़ित के पास अपने जीवन को समाप्त करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं रह गया हो और यह कि आत्महत्या के दुष्प्रेरण के मामलों में आत्महत्या करने के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष उकसाने के कृत्यों का प्रमाण होना चाहिए।

9- उपरोक्त निर्णयों के अतिरिक्त, इस मुद्दे पर कुछ अन्य निर्णयों का उल्लेख करना भी प्रासंगिक है, जो निम्नानुसार हैं:-

9.1- **रमेश कुमार बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2001) 9 एससीसी 618** में, माननीय शीर्ष न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि 'उकसाने' का अर्थ है 'एक कार्य' करने के लिए उत्तेजित करना, आग्रह करना, भड़काना, उकसाना या प्रोत्साहित करना। 'उकसाने' की आवश्यकता को पूरा करने के लिए, यह आवश्यक नहीं है कि वास्तविक शब्दों का उस प्रभाव के लिए उपयोग किया जाना चाहिए या शब्दों या कार्य को आवश्यक रूप से और विशेष रूप से परिणाम का सुझाव देने वाला होना चाहिए। जहां अभियुक्त ने अपने कार्य या चूक द्वारा या अपने निरंतर आचरण के पाठ्यक्रम द्वारा ऐसी स्थिति उत्पन्न की है कि मृतक के पास आत्महत्या करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है, तो 'उकसाने' का अनुमान लगाया जा सकता है। क्रोध या भावना के आवेश में बोले गए शब्द जिनका वास्तव में परिणाम का अनुसरण करने का इरादा नहीं है, 'उकसाना' नहीं कहा जा सकता है।

9.2- माननीय उच्चतम न्यायालय ने **ए.पी. बनाम एम. मधुसूधन राव, (2008) 15 एससीसी 582** में अभिनिर्धारित किया कि हर प्रकार का उत्पीड़न प्रावधान के अर्थ के भीतर 'क्रूरता' की राशि नहीं होगा, जो वहां दंडनीय अपराध का गठन करता है। प्रत्येक मामले का उसके व्यक्तिगत तथ्यों पर विश्लेषण किया जाना चाहिए ताकि यह आकलन किया जा सके कि क्या अभियुक्त व्यक्तियों का कार्य क्रूरता का गठन करता है। इसके अलावा, क्रूरता या तो मानसिक या शारीरिक हो सकती है, और इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों पर देखना होता है।

9.3- भारतीय दंड संहिता की धारा 306 और 107 के प्रावधानों पर विचार करने के पश्चात्, माननीय शीर्ष न्यायालय ने **राजेश बनाम हरियाणा राज्य (2020) 15 एससीसी 359** के मामले में अभिनिर्धारित किया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अंतर्गत सिद्धदोष उत्पीड़न के आरोप पर पोषणीय नहीं है जब तक कि घटना के समय के निकट अभियुक्त की ओर से कोई सकारात्मक कार्रवाई न हो जिसने व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित किया या मजबूर किया।

9.4- पुनः, माननीय शीर्ष न्यायालय ने **कमरुद्दीन दस्तगीर सनाडी बनाम कर्नाटक राज्य (2024) एससीसी ऑनलाइन एससी 3541** के मामले में टिप्पणी की कि घरेलू जीवन में कलह और मतभेद समाज में काफी सामान्य हैं। आत्महत्या का किया जाना काफी हद तक पीड़ित की मानसिक स्थिति पर निर्भर करता है। जब तक अभियुक्त की ओर से कुछ दोषी इरादा स्थापित नहीं होता है, तब तक सामान्य रूप से अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अंतर्गत अपराध के लिए सिद्धदोष करना संभव नहीं है।

9.5- माननीय उच्चतम न्यायालय ने **पटेल बाबूभाई मनोहरदास और अन्य बनाम गुजरात राज्य, 2025 लाइव लॉ (एससी)288** में, विषय पर निर्णयों की एक श्रृंखला पर विचार करने के पश्चात्, यह अभिनिर्धारित किया है कि आत्महत्या को मजबूर करने वाले प्रत्यक्ष उकसावे या निकटवर्ती कृत्यों के बिना केवल उत्पीड़न या ब्लैकमेल, भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अंतर्गत सिद्धदोषी को बनाए रखने के लिए अपर्याप्त है।"

9.6- हाल ही में **थंगावेल बनाम पुलिस निरीक्षक के माध्यम से राज्य और अन्य, 2025 लाइव लॉ (एससी) 659** में दिए गए निर्णय में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अंतर्गत अभियुक्त को दोषमुक्त करते हुए इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

"कोई भी सामान्य व्यक्ति कल्पना नहीं कर सकता था कि एक डांट, वह भी एक छात्र द्वारा शिकायत के आधार पर, ऐसी त्रासदी का परिणाम होगा क्योंकि इस प्रकार डांटे गए छात्र ने अपनी जान ले ली। इसके अलावा, जैसा कि प्रस्तुत किया गया है, ऐसी डांट कम से कम थी, एक संवाददाता को यह सुनिश्चित करने के लिए करना आवश्यक था कि किसी अन्य छात्र द्वारा मृतक के खिलाफ की गई शिकायत पर ध्यान दिया गया और सुधारात्मक उपाय किए गए। इस न्यायालय की विचारित राय में ऐसी अंगीकृत तथ्यात्मक स्थिति के अंतर्गत, अपीलकर्ता को कोई आपराधिक इरादा नहीं दिया जा सकता है और न ही मृतक द्वारा की गई आत्महत्या के दुष्प्रेरण के संबंध में।"

9.7- इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यह पता लगाने के लिए कोई निश्चित सूत्र निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि किसी विशेष मामले में ऐसा उकसाना हुआ है या नहीं जिसने व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए मजबूर किया। इसलिए, ऐसे मामले में, परिस्थितियों से एक अनुमान लगाया जाना है और यह निर्धारित किया जाना

है कि क्या परिस्थितियां ऐसी थीं जिन्होंने वास्तव में ऐसी स्थिति उत्पन्न की थी कि एक व्यक्ति ने पूरी तरह से निराश महसूस किया और आत्महत्या कर ली।

10- पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और संपूर्ण अभिलेख की परीक्षा करने के साथ-साथ विषय पर प्रासंगिक कानूनी प्रावधानों और उपरोक्त मामले के कानूनों का सर्वेक्षण करने के पश्चात्, यह न्यायालय इस विचार का है कि प्रत्येक मामला अपने स्वयं के तथ्यों पर निर्भर करता है। यहां तक कि एक अतिरिक्त या भिन्न तथ्य दो मामलों में निष्कर्ष के बीच एक बड़ा अंतर बना सकता है, क्योंकि एक भी महत्वपूर्ण विवरण पूरे पहलू को बदल सकता है।

11- <u>वर्तमान मामले में, मैं पाता हूं कि:-</u>

11.1- रात्रि 8/9.09.2024 की मध्यरात्रि में नाजिया द्वारा की गई आत्महत्या की घटना के पश्चात्, आवेदक की पत्नी सीमा बेग ने तुरंत मृतक की दादी को सूचना दी। तत्पश्चात् मृतक के पिता-इमरान शेख ने दिनांक 09.09.2024 को लगभग 1:17 अपराह्न पुलिस को सूचित किया।

11.2- मृतक का कोई आत्महत्या नोट नहीं है।

11.3- मृतक की मृत्यु-पूर्व परीक्षण की कार्यवाही दिनांक 09.09.2024 को लगभग 1:30 अपराह्न आयोजित की गई थी और नियुक्त पंच साक्षियों की राय के अनुसार, मृतक की आत्महत्या करने से मृत्यु हुई। मृतक के परिवार के सदस्य उस समय उपस्थित थे, लेकिन उन्होंने आवेदक या उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध कोई आरोप नहीं लगाया।

11.4- मृतक का शव परीक्षण दिनांक 09.09.2024 को लगभग 4.45 अपराह्न आयोजित किया गया था जिसमें मृतक की कंठिका अस्थि अक्षुण्ण पाई गई और मृतक के शरीर पर निम्नलिखित चार चोटें पाई गईं:

i. गले के सामने तिरछे रूप से रखा गया 23.5 सेमी x 2.3 सेमी आकार का बंधन चिह्न थायरॉयड कार्टिलेज के ऊपर से दाहिने मास्टॉयड प्रक्रिया तक गुजरते हुए गर्दन के पीछे 5.0 सेमी के अंतराल के साथ। बाएं मास्टॉयड प्रक्रिया से दूरी 3.4 सेमी है जबकि ठोड़ी के मध्य से दूरी 3.8 सेमी है।

ii. बंधन चिह्न का रंग भूरा और घर्षित है।

iii. बाएं अंगूठे के पार्श्व पहलू पर 0.5 सेमी x 0.5 सेमी आकार का घर्षण।

iv. लेबिया मेजोरा के निचले भाग और दाहिनी जांघ के मध्य पहलू पर सूखे रक्त की एकल धारी उपस्थित है और लेबिया मेजोरा, लेबिया माइनोरा, क्लिटोरिस और पेरिनियम पर कोई ताजा चोट नहीं दिखाई दी।

11.5- चिकित्सक की राय में, मृत्यु का कारण मृत्यु-पूर्व फांसी के कारण श्वासावरोध पाया गया। मृत्यु के बाद के संभावित समय का चिकित्सक द्वारा 12 से 24 घंटे के भीतर आकलन किया गया।

11.6- मृतक के जननांग अंगों की स्थिति गैर-गर्भवती गर्भाशय और योनिमुख विशाल पाई गई, अतः उपरोक्त चोट संख्या 4 और मृतक के जननांग अंगों की स्थिति को ध्यान में रखते हुए, मृतक की मां द्वारा भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 की धारा 173(4) के अंतर्गत अपने आवेदन में अभिषेक सरोज के विरुद्ध लगाए

गए आरोप कि अभिषेक सरोज के उत्पीड़न, ब्लैकमेल और शारीरिक संबंध बनाने के दबाव से निराश होकर, उसकी बेटी नाजिया ने आत्महत्या कर ली, समर्थन और समर्थन प्राप्त करता है।

11.7- स्थल निरीक्षण दिनांक 10.09.2024 को अधिकारियों की टीम द्वारा किया गया था, लेकिन उसके तुरंत बाद प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने का कोई प्रयास नहीं किया गया।

11.8- प्रथम सूचना रिपोर्ट 5 दिन की देरी के पश्चात् दिनांक 14.09.2024 को लगभग 14:05 बजे दर्ज की गई। विद्वान राज्य अधिवक्ता प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने में ऐसी देरी का कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं दे सके।

11.9- जब मृतक के परिवार के सदस्यों को मृतक-नाजिया द्वारा की गई आत्महत्या के कारण के बारे में पता चला, तो उसकी मां ने दिनांक 03.10.2024 को भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 173(4) के अंतर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें अभिषेक के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए निर्देश मांगा गया। चूंकि इस मामले की प्रथम सूचना रिपोर्ट पहले ही दिनांक 14.09.2024 को पंजीकृत हो चुकी थी, इसलिए मजिस्ट्रेट ने कोई आदेश पारित नहीं किया और विवेचना अधिकारी को इस मामले की जांच के दौरान आवेदन की सामग्री की जांच करने के निर्देश के साथ इसका निस्तारण कर दिया, लेकिन विवेचना अधिकारी ने अपने दिनांक 03.10.2024 के आवेदन में मृतक की मां द्वारा लगाए गए आरोपों की जांच करने का कष्ट नहीं उठाया।

11.10- जांच के दौरान, मोबाइल नंबर 9696326994 का सीडीआर भी एकत्र किया गया था, जिससे नाजिया अभिषेक सरोज से बात करती थी। नाजिया और अभिषेक द्वारा उपयोग किए गए मोबाइल के सीडीआर से, यह पाया गया कि आत्महत्या करने से ठीक पहले, उसने अभिषेक सरोज को कई कॉल किए। विवरण निम्नानुसार हैं:-

कॉलर का मोबाइल नंबर (मृतक-नाजिया)	कॉल प्राप्तकर्ता का मोबाइल नंबर (अभिषेक सरोज)	तिथि	कॉल समय और अवधि
9696326994	8004138470	8.9.24	18:15:08 बजे (9 सेकंड)
			21:47:50 बजे (1940 सेकंड)
			22:21:32 बजे (35 सेकंड)
			22:34:39 बजे (1477 सेकंड)
			23:58:04 बजे (3827 सेकंड)
		9.9.24	01:05:07 बजे (2748 सेकंड)
			02:14:17 बजे (33 सेकंड)

			02:15:02 बजे (120 सेकंड)
			02:18:29 बजे (174 सेकंड)
			02:31:36 बजे (11 सेकंड)
			02:22:23 बजे (159 सेकंड)
			02:25:22 बजे (147 सेकंड)

11.11- उपर्युक्त कॉल विवरण यह भी इंगित करते हैं कि मृतक ने अभिषेक सरोज के साथ टेलीफोनिक बातचीत के पश्चात् आत्महत्या की, अतः मृतक द्वारा आत्महत्या के किए जाने के पीछे अभिषेक सरोज की संलिप्तता की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है।

11.12- मोबाइल फोन, जिसका उपयोग मृतक द्वारा किया जा रहा था, मोहम्मद कैफ के नाम पर पंजीकृत पाया गया था, लेकिन वही आयेशा द्वारा उपयोग किया जा रहा था, जबकि मोबाइल नंबर 8004138470, जिसका उपयोग अभिषेक द्वारा किया जा रहा था, मंजू देवी के नाम पर पंजीकृत था, लेकिन यह अंगीकृत तथ्य है कि विवेचना अधिकारी ने मोहम्मद कैफ, आयेशा और मंजू देवी का बयान दर्ज नहीं किया।

11.13- मोनी के बयान के अनुसार, जिसके साथ मृतक-नाजिया आवेदक के घर पर काम कर रही थी, कि कभी-कभी आवेदक मृतक को काम के लिए डांटता था। इस स्तर पर इसे सही मानते हुए भी, इसे आत्महत्या करने के लिए उकसाने या दुष्प्रेरण के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है।

11.14- प्रथम दृष्टया, यह सुझाव देने के लिए कुछ भी नहीं है कि अभियुक्त-आवेदक ने मृतक द्वारा आत्महत्या के किए जाने में उकसाया, षड्यंत्र किया या सहायता की।

11.15- आवेदक के विरुद्ध कोई आरोप नहीं है कि उसने मृतक को आत्महत्या करने के लिए प्रोत्साहित किया।

11.16- पिता और मां ने अपने बयानों में आवेदक को अपनी बेटी-नाजिया द्वारा की गई आत्महत्या के लिए दोषी नहीं ठहराया, जिसकी आयु लगभग 18 वर्ष थी।

11.17- जांच पूरी हो चुकी है और आवेदक और अन्य सह-अभियुक्त अर्थात् सीमा बेग और जईम @ सैफी के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत कर दिया गया है, अतः साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ की कोई संभावना नहीं है।

12- उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ अपराध की प्रकृति, साक्ष्य, अभियुक्त की संलिप्तता और पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा भरोसा किए गए प्रस्तुतीकरण और निर्णय को ध्यान में रखते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आवेदक के न्यायिक कार्यवाही से फरार होने की कोई संभावना नहीं है, यह न्यायालय इस विचार का है कि आवेदक ने जमानत के लिए एक मामला बनाया है। अतः आवेदक का जमानत आवेदन स्वीकार किया जाता है।

13- आवेदक- **जाहिद बेग उर्फ जाहिद जमाल बेग** को उपरोक्त मुकदमा अपराध संख्या में, संबंधित न्यायालय के संतोष के अनुसार व्यक्तिगत बंधपत्र और प्रत्येक समान राशि में दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्तों के साथ जमानत पर रिहा किया जाए:

(i) कि आवेदक विचारण के शीघ्र निस्तारण में सहयोग करेगा और अपरिहार्य न होने पर नियमित रूप से न्यायालय में उपस्थित होगा।

(ii) कि आवेदक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा ताकि उसे न्यायालय के समक्ष ऐसे तथ्यों को प्रकट करने से रोका जा सके या साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ की जा सके।

(iii) कि उसकी रिहाई के पश्चात्, आवेदक किसी भी आपराधिक गतिविधि में शामिल नहीं होगा।

(iv) आवेदक अपने विचारण के दौरान देश नहीं छोड़ेगा।

(v) जमानतदारों की पहचान, स्थिति और आवासीय प्रमाण का आवेदक को जमानत पर रिहा करने से पूर्व संबंधित न्यायालय द्वारा सत्यापन किया जाएगा।

14- यह स्पष्ट किया जाता है कि तत्काल आदेश में निहित टिप्पणियां केवल जमानत के मुद्दे तक सीमित हैं और इन्हें मामले की गुणवत्ता पर किसी भी अभिव्यक्ति के रूप में नहीं माना जाएगा।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1916

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

आवेदन धारा 528 बी.एन.एस.एस. के तहत संख्या-41554 वर्ष 2024

वीरेंद्र सिंह और अन्य **... आवेदकगण**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य **... प्रतिपक्षीगण**

आवेदकगण के अधिवक्ता: मनोज कुमार सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता: इमरान उल्लाह, विनीत विक्रम, शासकीय अधिवक्ता, इशिर श्रीपत

आपराधिक कानून - भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 (धारा 482 भ०द०वि० के अनुरूप) - दहेज निषेध अधिनियम, 1961, धारा 3 और 4 - भारतीय दंड संहिता, 1860, धारा 498-ए, 323 और 307 - वैवाहिक विवाद - कार्यवाही रद्द करना - पति के परिवार के सदस्यों के खिलाफ आरोप - सामान्य और सर्वव्यापी आरोप - विशिष्ट कृत्यों के बिना दहेज की मांग और क्रूरता का अस्पष्ट आरोप - प्राथमिकी और गवाहों के बयानों के बीच विरोधाभास - प्रयास के लिए कोई चोट या चिकित्सा पुष्टि नहीं हत्या के आरोप के लिए - जांच अधिकारियों का बार-बार परिवर्तन और प्रक्रियात्मक अनियमितताएं - इस तरह के सर्वव्यापी आरोपों पर ससुर, सास और विवाहित भाभी पर आपराधिक मुकदमा चलाया जाना प्रक्रिया का दुरुपयोग है - मामला हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल की श्रेणियों (1), (5) और (7) के अंतर्गत आता है - कार्यवाही रद्द कर दी गई। (प्रस्तर-24, 25, 26, 34, 45, 48, 50 और 61)

अवधारित: शीर्ष अदालत ने कई फैसलों में इस बात को रेखांकित किया है कि वैवाहिक विवादों में, पति के रिश्तेदारों के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही को रद्द किया जा सकता है जहां आरोप अस्पष्ट, सर्वव्यापी या विशिष्टता में कमी है। यह न्यायिक रुख दंडात्मक प्रावधानों, विशेष रूप से धारा 498-ए भ०द०वि० के दुरुपयोग को रोकने का प्रयास करता है, जो पति या उसके रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता को संबोधित करता है। हालांकि, न्यायालय ने अनिवार्य किया है कि प्रत्येक सह-अभियुक्त के खिलाफ आरोप स्पष्ट, विस्तृत और ठोस तथ्यों द्वारा समर्थित होने चाहिए। सामान्य आरोप आपराधिक दायित्व को बनाए नहीं रख सकते हैं। (प्रस्तर-24)

शीर्ष न्यायालय ने कई फैसलों में धारा 307 भ०द०वि० के अवयवों पर विचार किया है, जो इस इरादे या ज्ञान के साथ किए गए कार्यों के लिए सजा निर्धारित करता है कि, यदि मृत्यु हुई थी, तो अपराध हत्या के समान होगा। (प्रस्तर-26)

प्रस्तुत मामले के तथ्यों की जांच करने पर, यह स्पष्ट है कि प्राथमिकी में बताए गए संस्करण में विसंगतियां और विचलन हैं, और समग्र स्पष्टता का अभाव है। पति के परिवार के सदस्यों, यानी ससुर, सास और भाभी पर लगाए गए आरोप निराधार प्रतीत होते हैं। इस न्यायालय का सुविचारित विचार है कि, अधिक से अधिक, यह पति है जिसे कथित अपराधों के लिए जवाबदेह ठहराया जा सकता है। हालांकि, उनके परिवार के सदस्यों की संलिप्तता विश्वसनीय सबूतों द्वारा समर्थित प्रतीत नहीं होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें इस मामले में अनावश्यक रूप से पति पर दबाव डालने के इरादे से फंसाया गया है, जो वर्तमान में कनाडा के नागरिक के रूप में भारत से बाहर रह रहा है। (प्रस्तर-45)

प्रस्तुत मामले में, यह अति-निहितार्थ का मामला प्रतीत होता है, जिसमें अभियुक्त के पूरे परिवार को अनावश्यक रूप से शामिल किया गया है, संभवतः व्यक्तिगत स्कोर को निपटाने के इरादे से या अन्य गुप्त उद्देश्यों के कारण। इसी तरह के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत मामले में विशिष्ट और विश्वसनीय आरोपों के संदर्भ में सार का अभाव है। (प्रस्तर-48)

इसके अलावा, सूचनाकर्ता ने स्पष्टता के साथ उत्पीड़न के किसी विशेष उदाहरण का उल्लेख नहीं किया है। धारा 161 भ०द०वि० और 164 के तहत दर्ज किए गए बयान भी प्राथमिकी की तुलना में उल्लेखनीय विसंगतियां दिखाते हैं। ये विसंगतियां अभियोजन पक्ष के मामले को और कमजोर करती हैं और संकेत देती हैं कि आरोप भरोसेमंद या विश्वसनीय नहीं हो सकते हैं। (प्रस्तर-50)

आवेदन की अनुमति है। (ई-14)

उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची:

1. पेप्सी फूड्स लिमिटेड बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट, (1998) 5 एस.सी.सी. 749
2. सुनील भारती मित्तल बनाम सीबीटी, (2015) 4 एस.सी.सी. 609
3. हर की स्थिति। बनाम भजन लाल, 1992 सप्प (1) एस.सी.सी. 335
4. सुशील कुमार शर्मा बनाम यू.ओ.आई., (2005) 6 एस.सी.सी. 281
5. प्रीति गुप्ता बनाम झारखंड राज्य, (2010) 7 एस.सी.सी. 667
6. गीता मेहरोत्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 10 एस.सी.सी. 741
7. श्रीमती रुचि तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला० 1026

अनुवादित

8. कैलाश चंद्र अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2014) 16 एस.सी.सी. 551

9. प्रीतम अशोक सदाफुले बनाम महाराष्ट्र और अन्य, (2015) 11 एस.सी.सी. 769

10. वरला भरत कुमार बनाम दूरभाष राज्य, (2017) 9 एस.सी.सी. 413

11. कार्तिक चंद माजी बनाम झारखंड राज्य और अन्य, (2018) 13 एस.सी.सी. 747

12. राजेश शर्मा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2018) 10 एस.सी.सी. 472

13. के. सुब्बाराव और अन्य बनाम दूरभाष राज्य, (2018) 14 एस.सी.सी. 452

14. रश्मि चोपड़ा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2019) 15 एस.सी.सी. 357

15. सीनिवासन बनाम सेंट, (2019) 8 एस.सी.सी. 642

16. कहकशां कौसर बनाम बीह राज्य, (2022) 6 एस.सी.सी. 599

17. मानव अधिकार और अन्य बनाम यू.ओ.आई., कानून और न्याय मंत्रालय और अन्य के लिए सोशल एक्शन फोरम, (2018) 10 एस.सी.सी. 443

18. मो. अकरम सिद्दीकी बनाम बीह का राज्य। और अन्य, (2019) 13 एस.सी.सी. 350

19. मो. अलाउद्दीन खान बनाम बीह का राज्य। एवं अन्य, 2019 0 सर्वोच्च (एस.सी.) 454

20. राजीव कौरव बनाम बालासाहब एवं अन्य, 2020 0 उच्चतम (एस.सी.) 143

21. अलुरी वेंकट रमना बनाम अलुरी तिरुपति राव और अन्य, (एस.एल.पी.) (सीआरएल) संख्या-9243 वर्ष 2024)

22. प्रियंका जायसवाल बनाम राज्य झारखंड और अन्य, 2024 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 685 : आपराधिक अपील संख्या-2344 वर्ष 2024 @ एस.एल.पी. (सीआरएल) संख्या-10668 वर्ष 2022)

23. निहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र आपराधिक अपील संख्या-330 वर्ष 2021

24. सी.बी.आई. बनाम आर्यन सिंह, आपराधिक अपील संख्या-1025-1026 वर्ष 2023 @ एस.एल.पी. (सीआरएल) संख्या-12794-12795 वर्ष 2022

25. राजेंद्र सिंह बनाम पुणे राज्य, (2015) 6 एस.सी.सी. 477

26. विपिन जायसवाल बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2013) 3 एस.सी.सी. 684

27. अप्पासाहेब बनाम मह राज्य, (2007) 9 एस.सी.सी. 721

28. राजेश अग्रवाल और अन्य बनाम राज्य राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली और अन्य, 2024 एस.सी.सी. ऑनलाइन डेल 1828

29. संजीत कुमार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, धारा 482 के तहत आवेदन संख्या-28622 वर्ष 2023

30. सतबीर सिंह बनाम हर राज्य, (2021) 6 एस.सी.सी. 1

अनुवादित

31. राजिंदर सिंह बनाम पुन राज्य, (2015) 6 एस.सी.सी. 477

32. माह का राज्य। बनाम काशीराओ, (2003) 10 एस.सी.सी. 434

33. कुलदीप सिंह बनाम पुन राज्य, 1989 सप्लीकेट (2) एस.सी.सी. 36

34. आर. प्रकाश बनाम कार राज्य, (2004) 9 एस.सी.सी. 27

35. आरपी कपूर बनाम पुन राज्य, ए.आई.आर. 1960 एस.सी. 866

36. झंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम मो. शराफुल हक, (2005)1 एस.सी.सी. 122

37. इंद्र मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य, (2007) 12 एस.सी.सी. 1

38. ज्ञान सिंह बनाम पुन राज्य, (2012) 10 एस.सी.सी. 303

39. अभिषेक बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2023) 16 एस.सी.सी. 666

40. मिर्जा इकबाल @ गोलू और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, आपराधिक अपील संख्या-1628 वर्ष 2021 (एस.एल.पी. (सीआरएल) संख्या-2786 वर्ष 2019 से उत्पन्न)

41. महमूद अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2023) 15 एस.सी.सी. 488

42. कमल और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य, निर्णय तिथि: 16.04.2025: एस.एल.पी. (सीआरएल) संख्या-9167/2024 : 2025 आईएनएससी 504 से उत्पन्न

43. दारा लक्ष्मी नारायण और अन्य बनाम दूरभाष और अन्य, 2024 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 3682

44. जी.वी. राव बनाम एल.एच.वी. प्रसाद, (2000) 3 एस.सी.सी. 693

45. अर्नेश कुमार बनाम बीह राज्य और अन्य, (2014) 8 एस.सी.सी. 273

46. प्रीति गुप्ता और अन्य बनाम झारखंड और अन्य राज्य, (2010) 7 एस.सी.सी. 667

47. के. सुब्बा राव बनाम दूरभाष राज्य, (2018) 14 एस.सी.सी. 452

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान द्वारा उद्घोषित)

1. आवेदकों ने धारा 528 बी.एन.एस.एस.1 के तहत दिनांक 29.10.2024 के आदेश को चुनौती देने वाले आदेश के साथ-साथ आरोप पत्र दिनांक 19.08.2024 और केस अपराध संख्या-191 वर्ष 2024, थाना-हापुड़ नगर, जिला-हापुड़ से उद्भूत होने वाले केस संख्या-14793 वर्ष 20242 (?) की पूरी कार्यवाही को धारा 498-ए के तहत आवेदक संख्या-1 को तलब करने की सीमा तक, धारा 323 भ०द०वि० और धारा 3/4 डीपी अधिनियम और आवेदक संख्या-2 और 3 धारा 498-ए, 323, 307 भ०द०वि० और धारा 3/4 डीपी अधिनियम के तहत मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, हापुड़ की अदालत में लंबित हैं।

2. श्री अनिल तिवारी, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री मनोज कुमार की सहायता से, आवेदकों की ओर से उपस्थित हुए, श्री इमरान उल्लाह, श्री विनीत विक्रम और श्री इशिर श्रीपत, अधिवक्ताओं ने प्रतिपक्षी संख्या-2 और श्री सत्येंद्र

तिवारी, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता पक्षों की ओर से पेश अधिवक्ता की सहमति से मामले की सुनवाई की जा रही है और बिना जवाबी हलफनामा बुलाए अंतिम रूप से फैसला किया जा रहा है।

3. आवेदकों के अधिवक्ता ने मामले के संक्षिप्त तथ्य प्रस्तुत किए, कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, हापुड़ द्वारा धारा 156(3) भ०द०वि० के तहत मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर एक आवेदन पर पारित एक आदेश के आधार पर, 16.03.2024 को 06:49 बजे एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। सूचनाकर्ता के ससुर वीरेंद्र सिंह (आवेदक संख्या-1), सास मीनाक्षी सिंह (आवेदक संख्या-2), नंद स्वाति सिंह (आवेदक संख्या-3) और अर्जुन सिंह के पति अर्जुन सिंह के खिलाफ सूचनाकर्ता के खिलाफ यह कहते हुए कि सूचनाकर्ता एक कानून का पालन करने वाली और भरोसेमंद महिला है, जो वर्तमान में हापुड़ में रहती है और उसका स्थायी पता मध्य प्रदेश का है। उन्होंने प्राथमिकी में नामित आरोपियों के बारे में विस्तार से बताया है, जिसमें उनके साथ उनके संबंध दिखाए गए हैं। प्राथमिकी में सूचनाकर्ता का बयान यह है कि उसकी शादी 25.06.2023 को मध्य प्रदेश के उज्जैन में आरोपी अर्जुन सिंह के साथ हुई थी। इसके बाद, विवाह रजिस्ट्रार, विवाह, सदर-1, हापुड़ के समक्ष 27.06.2023 को एक आवेदन संख्या-202314100302 के माध्यम से पंजीकृत किया गया। उक्त विवाह की मध्यस्थता मध्य प्रदेश के उज्जैन निवासी श्री उमेश सिंह चौहान +91-8770894052 द्वारा की गई थी, जिसमें सूचनाकर्ता के पति अर्जुन सिंह, जिसकी आयु लगभग 34 वर्ष थी, को टोरंटो, कनाडा (425-221 बैलिओल स्ट्रीट, M4S1C8, टोरंटो) का निवासी बताया गया था और यह भी सूचित किया गया था कि अर्जुन सिंह कनाडा का नागरिक है और पहले उसने कोई शादी नहीं की थी। कनाडाई पासपोर्ट संख्या-की प्रति। अर्जुन सिंह की A1887019 संलग्न कर दी गई है।

3.1 प्राथमिकी में आगे कहा गया है कि सूचनाकर्ता और अर्जुन सिंह का 'रोका'/सगाई समारोह 11.12.2022 को किया गया था, जिसमें सूचनाकर्ता के पिता ने उसके पति को एक सोने की चेन (3.5 तोला), ससुर और सास को 11,000/- रुपये और नानाद और उसके पति को 3100/- रुपये उपहार में दिए थे। सगाई समारोह के बाद, अर्जुन सिंह कनाडा वापस चले गए और शादी की कोई तारीख तय नहीं की गई क्योंकि यह कनाडा से अर्जुन सिंह के वापसी कार्यक्रम के अनुसार तय की जानी थी। कुछ समय बाद, शादी 25.06.2023 को निर्धारित की गई। प्राथमिकी में सूचनाकर्ता ने आगे आरोप लगाया है कि शादी की व्यवस्था उसके पिता ने की थी, लेकिन उसके ससुर ने उसके पिता को फोन किया और शादी समारोह में कम से कम 1 करोड़ रुपये खर्च करने के लिए कहा और उन मेहमानों को निर्दिष्ट किया जिन्हें होटल की बुकिंग और अन्य व्यवस्थाओं सहित नकद लिफाफे या उपहार भेंट किए जाने थे। सूचनाकर्ता के पिता ने उसके ससुर द्वारा उठाए गए मांगों पर आपत्ति जताई, उन्होंने कहा कि उनका बेटा कनाडा का नागरिक है और कई लोग शादी में 4 से 5 करोड़ रुपये खर्च करने को तैयार हैं। इस तरह की मजबूरी में उसके पिता को शादी की व्यवस्था सुनिश्चित करनी थी।

3.2 प्राथमिकी के अनुसार, शादी उज्जैन के मेघदूत रिज़ॉर्ट में संपन्न हुई थी, जिसमें लगभग 55 लाख रुपये खर्च किए गए थे और 8 लाख रुपये के गहने भी उसके पिता द्वारा दिए गए थे। सूचनाकर्ता के पिता ने उसे 95 लाख रुपये मूल्य के सोने-चांदी के गहने भी दिए। विदाई के बाद वह 26.06.2023 को रात लगभग 12 बजे

हापुड़ आईं। अगली सुबह अपनी पोशाक बदलने के लिए, जब उसने उस बैग को खोजने की कोशिश की जिसमें उसके पिता द्वारा उपहार में दिए गए सोने और चांदी के गहने और उसके ससुराल वालों द्वारा उसे दिए गए गहने रखे गए थे, तो वह वहां नहीं था। उक्त बैग के बारे में पूछे जाने पर, उसके ससुराल वालों ने बताया कि सभी कीमती सामान उनके कब्ज़े में हैं और परिवार में शादी के कारण उन्हें सुरक्षित स्थान पर रखा गया है।

3.3 प्राथमिकी में और आरोप यह है कि 28.6.2023 को सूर्या होटल, न्यू फ्रेंड्स कॉलोनी, दिल्ली में आयोजित शादी के रिसेप्शन के बाद, वे 01.07.2023 को लंदन गए। वे वहां करीब एक महीने तक रहे, जहां अर्जुन सिंह ने जबरन अप्राकृतिक सेक्स किया और कंडोम नहीं लगाया और कहा कि आदमी का मकसद अपने जीन को फैलाना है और वह प्रोटेक्शन का इस्तेमाल करने में विश्वास नहीं करता है। इसके अलावा, उन्होंने उससे 10,000 पाउंड खर्च किए। सूचनाकर्ता को पता चला कि उसका पति नास्तिक है और हिंदू धर्म से ताल्लुक रखने के बावजूद गोमांस खाता है। सूचनाकर्ता ने अपने पति के व्यवहार में बदलाव का एहसास किया और देखा कि वह कभी भी अपना मोबाइल नहीं छोड़ता था और संदेश भेजने के लिए इस्तेमाल करता था और किसी के साथ लगातार बातचीत करता था।

3.4 इसके बाद सूचनाकर्ता ने आरोप लगाया कि वह 30.07.2023 को लंदन से भारत वापस आई थी, जबकि उसका पति कनाडा गया था। सूचनाकर्ता को उसके पति द्वारा साझा किए गए स्थान के माध्यम से पता चला कि उसका पति अपने घर में रहने के बजाय पास की इमारत में दूसरे पते पर रहता था। उसके सूत्रों के माध्यम से पूछताछ करने पर, सूचनाकर्ता को पता चला कि अर्जुन सिंह एक महिला के साथ रह रहा है, जिसका नाम अल्फिया शहीद हसन निवासी वर्ष 265 बैलिओल स्ट्रीट, M4S1C9 टोरंटो है, जो पिछले 13 वर्षों से एक घर में पति-पत्नी के रूप में रह रहा है। हैरानी की बात यह है कि उसके ससुर और सास भी इस बात से अच्छी तरह वाकिफ थे। उक्त स्थिति के बारे में जानने पर, परिवार द्वारा पूछे जाने पर, अर्जुन सिंह 16.12.2023 को भारत आए, जिसके बाद आरोपी व्यक्तियों सहित दोनों पक्षों के कुछ परिवार के सदस्यों ने कुछ बातचीत की, जिसमें अर्जुन सिंह, उसके पिता और मां ने पिछले 18 वर्षों से अल्फिया शहीद हसन के साथ अर्जुन के संबंधों के बारे में स्वीकार किया, हालांकि, सूचनाकर्ता के ससुराल वालों ने उसे माफ करने और अर्जुन सिंह के साथ एक नया जीवन शुरू करने के लिए कहा। हालांकि, अर्जुन सिंह ने स्पष्ट रूप से कहा कि वह अल्फिया से अलग नहीं हो सकता है और सूचनाकर्ता उसके साथ कनाडा जा सकता है यदि वह उसकी दूसरी पत्नी के रूप में रहना चाहती है। उक्त शब्द सुनकर, सूचनाकर्ता, उसके माता-पिता और ताऊ हैरान रह गए, हालांकि, उसके ससुर और सास ने एक शब्द भी नहीं कहा, जिससे पता चला कि वे पहले से ही अपने बेटे के अवैध संबंधों के बारे में जानते थे।

3.5 सूचनाकर्ता ने यह भी आरोप लगाया कि जब वह अपने सास-ससुर से अपने माता-पिता के साथ जाने के लिए अपना सामान पैक करने लगी, तो उसके पति, ससुर और सास ने एकजुट होकर उसे कोई भी सामान ले जाने से रोक दिया और यहां तक कि सूचनाकर्ता को भी कोई निजी सामान ले जाने से रोक दिया गया। यह भी आरोप लगाया गया है कि आरोपी व्यक्ति सूचनाकर्ता पर दबाव डाल रहे हैं और उसे मौजूदा परिदृश्य के साथ

रहने के लिए कह रहे हैं और यहां तक कि अल्फिया शहीद हसन भी कनाडा से सूचनाकर्ता को फोन कर और संदेश भेज रहे हैं, और अर्जुन सिंह को जल्द ही कनाडा भेजने के लिए कह रहे हैं। अल्फिया शहीद हसन द्वारा भेजे गए टेक्स्ट संदेशों की प्रति संलग्न है। प्राथमिकी में आगे के आरोप हैं कि आरोपी व्यक्तियों ने दहेज लेने के लिए सूचनाकर्ता और उसके माता-पिता के साथ धोखाधड़ी की है, और 14 लाख रुपये के कपड़े, उपहार आदि सहित 1.20 करोड़ रुपये भी जब्त किए गए हैं। सूचनाकर्ता ने उपरोक्त कथनों के संबंध में साक्ष्य अभिलेखों पर लाए हैं।

3.6 प्राथमिकी में, सूचनाकर्ता ने कहा है कि उपर्युक्त तथ्यों के संबंध में, उसने आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ उचित कार्रवाई करने के लिए 07.01.2024 को महिला थाना, हापुड़ में और 12.01.2024 को वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को शिकायत की थी, हालांकि, कुछ भी नहीं किया गया है, इस प्रकार, उसने पति - अर्जुन सिंह के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष एक आवेदन दायर किया। ससुर - वीरेंद्र सिंह, सास मीनाक्षी सिंह और भाभी स्वाति सिंह को 1.20 करोड़ रुपये अवैध रूप से रखने, आपराधिक धमकी, दहेज की मांग, पति के खिलाफ अप्राकृतिक यौन संबंध, जालसाजी और विश्वासघात के आरोप में मामला दर्ज किया गया है। वह मानसिक और सामाजिक रूप से पीड़ित है, इस प्रकार, संबंधित धाराओं के तहत अपराध दर्ज किया जाए। इसलिए प्रस्तुत आवेदन। उक्त आवेदन को प्रस्तुत करने के बाद, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के आदेश पर, प्राथमिकी दर्ज की गई थी।

4. जांच के बाद आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है और आवेदकों को दिनांक 29.10.2024 के आदेश द्वारा तलब किया गया है।

5. पक्षकारों के अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा अनुमति के अनुसार अपनी लिखित प्रस्तुतियाँ प्रस्तुत की हैं, जबकि निर्णय सुरक्षित रखा गया था। इसे अभिलिखित किया जाता है।

6. आवेदकों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदक संख्या-1 और 2 वरिष्ठ नागरिक (सूचनाकर्ता के ससुर और सास) हैं। आवेदक संख्या-3 शादीशुदा भाभी है और एक अलग शहर, अर्थात् गाजियाबाद में रह रही है। उन्हें सूचनाकर्ता (प्रतिपक्षी संख्या-2) और उसके पति अर्जुन सिंह के बीच वैवाहिक कलह से उपजी आपराधिक कार्यवाही में घसीटा गया है। कोई भूमिका नहीं होने के बावजूद, वे अब धारा 498-ए, 307 भ०द०वि०, 3/4 डीपी अधिनियम आदि सहित गंभीर दंडात्मक प्रावधानों के तहत कार्यवाही का सामना कर रहे हैं। पूरे परिवार के खिलाफ केवल अस्पष्ट और सामान्य आरोप लगाए जाते हैं। चूंकि पति कनाडाई नागरिक है, इसलिए सूचनाकर्ता पति के परिवार के सदस्यों को परेशान कर रहा है।

6.1 इस निरंतर उत्पीड़न में, सूचनाकर्ता ने 29.11.2024 को एक और प्राथमिकी दर्ज की है, जिसमें पूरे परिवार को धारा 406 भ०द०वि० के तहत फंसाया गया है। उक्त मामले में स्वाति सिंह के पति (आवेदक संख्या-3) को

भी फंसाया गया है। उक्त प्राथमिकी की प्रति दिनांक 16.03.2025 के दूसरे पूरक हलफनामे में अनुलग्नक संख्या-एसए-1 के रूप में अभिलेखों पर लाई गई है।

6.2. मामले के तथ्यों को न्यायालय के समक्ष लाते हुए, आवेदकों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 28.11.2022 को आवेदक संख्या-3 स्वाति सिंह की शादी अथर्व शर्मा से हुई थी। उसकी शादी में शामिल होने के लिए सूचनाकर्ता अर्जुन सिंह का पति भारत में था। 11.12.2022 को, दूर के रिश्तेदार और सूचनाकर्ता के पड़ोसी उमेश सिंह चौहान के निमंत्रण पर, आवेदक अर्जुन सिंह (पति) के साथ सूचनाकर्ता के परिवार के साथ पहली मुलाकात के लिए उज्जैन गए। हैरानी की बात यह है कि सूचनाकर्ता के परिवार ने 'रोका' के लिए जोर दिया और आवेदकों के परिवार की अनिच्छा के बावजूद ऐसा ही किया। 25.06.2023 को बहुत ही जल्दबाजी में शादी तय हो गई। आवेदक और अन्य (कुल 40 व्यक्ति) 24.06.2023 को उज्जैन पहुंचे और शादी के बाद 26.06.2023 को वापस आए।

6.3 28.06.2023 को दिल्ली में स्वागत समारोह आयोजित किया गया। वहीं, अर्जुन सिंह ने सूचनाकर्ता के पक्ष में कनाडा के जीवनसाथी वीजा की प्रक्रिया शुरू कर दी है। यहां यह उल्लेख करना उचित है कि यह एक स्वीकृत मामला है कि कनाडा के लिए सूचनाकर्ता के परिवार के वीजा अनुरोध को शादी से पहले ही दो बार खारिज कर दिया गया था। सूचनाकर्ता का छोटा भाई पहले से ही कनाडा में रह रहा है।

6.4 01.07.2023 को सूचनाकर्ता और पति हनीमून के लिए लंदन गए। 31.07.2023 को सूचनाकर्ता भारत वापस लौट आई क्योंकि उसके पास कनाडाई वीजा नहीं था, जबकि उसका पति कनाडा वापस चला गया। 01.08.2023 से 22.12.2023 के बीच, सूचनाकर्ता केवल 20 दिनों के लिए हापुड़ हाउस में रही और वह अज्ञात कारणों से अक्सर मुंबई के लिए उड़ान भरती थी। हालांकि, परिवार ने कभी आपत्ति नहीं जताई।

6.5 16.12.2023 को पति अर्जुन सिंह भारत वापस आया और सीधे मुंबई में सूचनाकर्ता के घर गया क्योंकि उस समय सूचनाकर्ता मुंबई में रह रहा था। वहां से दोनों गोवा गए और 20.12.2023 को वे गोवा से हापुड़ आए। तब आवेदकों को पता चला कि सूचनाकर्ता की धमकी के तहत पत्नी के लिए टूरिस्ट वीजा भी अप्लाई किया गया था। इस बार सूचनाकर्ता के साथ 5 अंगरक्षक भी थे।

6.6 22.12.2023 को, सूचनाकर्ता ने अपने माता-पिता के साथ स्थायी रूप से ससुराल छोड़ दिया और मुंबई चली गई। 24.12.2023 को, सूचनाकर्ता का पति उसके साथ मुद्दों को हल करने के लिए मुंबई गया, हालांकि, यह अमल में नहीं आया। 28.12.2023 को, अर्जुन सिंह अकेले भारत में अपने घर वापस आए और 18.01.2024 तक हापुड़ में रहे। 07.01.2024 को सूचनाकर्ता द्वारा पुलिस के समक्ष पहली शिकायत दर्ज की गई, जो दर्ज नहीं की गई। 12.01.2024 को उन्होंने वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, हापुड़ के समक्ष दूसरी शिकायत दर्ज की, वह भी दर्ज नहीं की गई। इसके बाद, 23.01.2024 को धारा 156(3) भ०द०वि० के तहत एक आवेदन दायर किया गया।

6.7 इसके बाद, धारा 156(3) भ०द०वि० के तहत प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा दायर आवेदन पर संबंधित अदालत के आदेश के अनुसार, केस अपराध संख्या-191 वर्ष 2024 वाली प्रथम सूचना रिपोर्ट 16.03.2024 को धारा 498ए, 323, 377, 494, 420 भ०द०वि० और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4 के तहत पति और उसके पूरे परिवार के खिलाफ बिना किसी विशेष प्रत्यक्ष, या विश्वसनीय आरोप के दर्ज की गई थी।

6.8 दिनांक 09.04.2024 को, चिकित्सा परीक्षण आयोजित किया गया जिसमें कोई बाहरी चोट नहीं पाई गई और सूचनाकर्ता ने आंतरिक जांच से इनकार कर दिया। 09.04.2024 को, धारा 161 भ०द०वि० के तहत सूचनाकर्ता के बयान दर्ज किए गए, जिसमें उसने धारा 307 भ०द०वि० के तहत अपराध करने के लिए सास और विवाहित भाभी के खिलाफ एक और कहानी पेश की। 12.04.2024 को, धारा 164 भ०द०वि० के तहत बयान दर्ज किए गए जिनमें धारा 307 भ०द०वि० के तहत कोई आरोप नहीं है। विवेचनाधिकारी ने अन्य व्यक्तियों के बयान भी दर्ज किए हैं, यानी सूचनाकर्ता के माता-पिता, जिन्होंने केवल सुनी-सुनाई बातों के साक्ष्य के आधार पर आवेदक संख्या-2 और 3 के खिलाफ धारा 307 भ०द०वि० की कहानी पेश करने का प्रयास किया है। 20.04.2024 को, उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर, विवेचनाधिकारी ने स्वाति सिंह का नाम निकाल दिया और धारा 377, 394 और 420 भ०द०वि० के तहत कथित अपराध को भी हटा दिया और केवल आवेदक संख्या-1 और 2 के खिलाफ विवेचना के लिए आगे बढ़े। और धारा 307 भ०द०वि० के तहत अपराध को कभी नहीं जोड़ा।

6.9 सूचनाकर्ता की शिकायत पर, 15.05.2024 को विवेचनाधिकारी को बदल दिया गया और एक नए अधिकारी ने विवेचना का प्रभार संभाला। 31.05.2024 को, नए विवेचनाधिकारी ने धारा 161 भ०द०वि० के तहत सूचनाकर्ता के पिता, सूचनाकर्ता की मां, विवाह के मध्यस्थ, उमेश सिंह चौहान का दूसरा बयान दर्ज किया, जिन्होंने धारा 161 भ०द०वि० के तहत दिए गए सूचनाकर्ता के संस्करण को दोहराया है। कोई नया सबूत अभिलेखों पर नहीं आया। इस विवेचनाधिकारी का फिर से तबादला कर दिया गया। 11.06.2024 को, फिर से तीसरे विवेचनाधिकारी, रघुराज सिंह ने विवेचना शुरू की और नीरज कुमार द्वारा एकत्र किए गए सबूतों के आधार पर, जैसा कि पर्चा संख्या-10 में निहित है, धारा 307 भ०द०वि० को जोड़ा और भ०द०वि० की धारा 377, 394 और 420 के तहत अपराध को भी बहाल किया। स्वाति सिंह (आवेदक संख्या-3) का नाम फिर से (परचा संख्या-11) जोड़ा गया। दिनांक 11.06.2024 से 19.08.2024 तक, विवेचनाधिकारी रघुराज सिंह ने विवेचना की और इसे पर्चा संख्या-11 से घटाकर परचा संख्या-19 कर दिया है। उन्होंने नीचे दी गई सामग्री एकत्र की:

i. वीरेंद्र सिंह - आवेदक संख्या-1 का बयान 17.08.2024 को दर्ज किया गया था, जिसने आरोपों से इनकार किया था।
ii. मीनाक्षी सिंह - आवेदक संख्या-2 का बयान 17.08.2024 को दर्ज किया गया था, जिसने आरोपों से इनकार किया था।
iii. स्वाति सिंह का बयान - आवेदक संख्या-3 17.08.2024 को दर्ज किया गया था जिसने आरोपों से इनकार किया था।
iv. चिकित्सा अधिकारी का बयान 17.08.2024 को दर्ज किया गया जिन्होंने आरोपों से इनकार किया।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि विवेचना में कोई और सबूत एकत्र नहीं किया गया था।

6.10 दिनांक 19.08.2024 को, विवेचनाधिकारी ने उपलब्ध सामग्री के आधार पर नीचे दिए गए विवरण के अनुसार आरोप पत्र प्रस्तुत किया:

1. आवेदक संख्या-1 (ससुर) के खिलाफ धारा 498-ए, 323 भ०द०वि० और 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत मामला दर्ज किया गया है।
2. आवेदक संख्या-2 (सास) के खिलाफ धारा 498ए, 323, 307 भ०द०वि० और 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत मामला दर्ज किया गया है।
3. आवेदक संख्या-3 (विवाहित भाभी) के खिलाफ धारा 498-ए, 323, 307 भ०द०वि० और 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत मामला दर्ज किया गया।

6.11 हालाँकि, सर्कल अधिकारी ने 23.08.2024 को आरोप पत्र वापस कर दिया, जिसमें विशिष्ट मुद्दा उठाया गया कि किस आधार पर, धारा 307 भ०द०वि० जोड़ी गई और स्वाति सिंह का नाम शामिल किया गया, जिसे पहले ही हटा दिया गया था। उक्त आपत्ति को दिनांक 02.02.2025 के पूरक हलफनामे के पृष्ठ 11 पर अभिलेखों में लाया गया है।

6.12 दिनांक 13.09.2024 को सर्किल अधिकारी के उपरोक्त आदेश के अनुसार और चूंकि रघुराज सिंह, जो पहले के विवेचनाधिकारी थे, का तबादला कर दिया गया था, इसलिए 13.09.2024 को नए विवेचनाधिकारी द्वारा विवेचना का कार्यभार संभाला गया। उन्होंने 16.10.2024 तक विवेचना की जो पर्चा संख्या-20, 21 और 22 में निहित है। हालांकि, उन्होंने कोई सबूत नहीं जुटाया। 29.10.2024 को बिना कोई नया सबूत एकत्र किए वही आरोप पत्र दिनांक 19.08.2024 दायर किया गया।

7. आवेदकों के अधिवक्ता ने अभिलेखों पर साक्ष्यों में कमजोरियों पर जोर दिया है, जिसमें उनकी प्रस्तुतियों को निम्नलिखित तरीके से सारांशित किया गया है:

7.1 विवेचना प्रक्रिया असंगति, मनमानी और पूर्वाग्रह से दूषित थी। विवेचनाधिकारियों के बार-बार तबादले ने विवेचना की एक खंडित और असंगत श्रृंखला का निर्माण किया। गिराए गए आरोपों के पुनरुद्धार को सही ठहराने के लिए कोई नया सबूत इकट्ठा नहीं किया गया था और बयान में सुधार भी स्पष्ट है।

7.2 सर्किल ऑफिसर, हापुड़ ने दिनांक 23.08.2024 की अपनी आपत्ति में स्पष्ट रूप से कहा है, जिसे याचिका के अनुलग्नक-12 के रूप में अभिलेखों में लाया गया है कि आरोप पत्र बिना किसी परिश्रम के और सबूतों पर विचार किए बिना दायर की गई थी। पूर्व निष्कर्षों से विचलन के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया था।

7.3 आवेदक संख्या-1 और 2, पति के बुजुर्ग माता-पिता होने के कारण और आवेदक संख्या-3 विवाहित भाभी होने के कारण, केवल उनके संबंध के कारण प्रस्तुत मामले में घसीटा गया था। सूचनाकर्ता द्वारा धारा 161

अनुवादित

भ०द०वि० और 164 के तहत दर्ज किए गए बयानों में सामान्य और अपुष्ट दावे शामिल हैं। कोई भी स्वतंत्र गवाह उसके दावों का समर्थन नहीं करता है।

7.4 तटस्थ गवाहों के पड़ोसियों, अर्थात् संजय गर्ग और शैली गर्ग के बयानों ने पुष्टि की कि आवेदक कभी भी किसी भी कदाचार या क्रूरता में शामिल नहीं थे, हालांकि, अंतिम आरोप पत्र में इन महत्वपूर्ण बयानों को नजरअंदाज कर दिया गया था।

7.5 जांच अधिकारियों को बार-बार बदला जाता था। विवेचनाधिकारी - अनीश अहमद ने एक मेहनती जांच की और गंभीर आरोप हटा दिए, लेकिन उत्तराधिकारी विवेचनाधिकारी नीरज कुमार ने बिना किसी औचित्य के धारा 377 और 307 भ०द०वि० जोड़ दी। विवेचनाधिकारी रघुराज सिंह ने लापरवाही के संबंध में दिनांक 23.08.2024 को सर्किल ऑफिसर की स्पष्ट आपत्तियों के बावजूद आरोप पत्र दायर की।

8. आवेदकों के अधिवक्ता का तर्क है कि एकत्र किए गए सबूतों के अवलोकन से पता चलता है कि आवेदकों के खिलाफ कोई अपराध नहीं किया गया है। उन्होंने कानूनी आधार पर अपने तर्क इस प्रकार तैयार किए हैं:

वीरेंद्र सिंह पर भ०द०वि० की धारा 498ए, 323 और दहेज निषेध अधिनियम 3/4 के तहत आरोप पत्र दाखिल किया गया:

(i) वीरेंद्र सिंह के खिलाफ दहेज की किसी भी प्रकार की मांग के संबंध में कोई दावा नहीं है, बल्कि दावा केवल विवाह और विवाह से पहले के पारंपरिक खर्चों और व्यवस्थाओं के बारे में है, यानी रोका समारोह और विवाह समारोह जो सांस्कृतिक प्रथा है और दहेज की कोई मांग नहीं है। दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 को लागू करने के लिए अपेक्षित सामग्री अनुपस्थित है।

(ii) जहां तक धारा 498क का संबंध है, आवश्यक सामग्री का उल्लेख नहीं किया जाता है क्योंकि वीरेन्द्र सिंह के विरुद्ध किसी क्रूरता से संबंधित कोई कथन नहीं है। वीरेंद्र सिंह के खिलाफ कोई खुला हरकत नहीं दिख रही है

(iii) भारतीय दंड संहिता की धारा 323 का गठन नहीं किया गया है क्योंकि भारतीय दंड संहिता की धारा 319 में किए गए प्रावधान के अनुसार शारीरिक पीड़ा, बीमारी या दुर्बलता के परिणामस्वरूप कोई चोट पहुंचाने के संबंध में कोई आरोप नहीं लगाया गया है।

बी. मीनाक्षी सिंह पर धारा 498ए, 323, 307 भ०द०वि० और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4 के तहत आरोप पत्र दायर किया गया:

(i) दहेज की किसी भी प्रकार की मांग के संबंध में मीनाक्षी सिंह के खिलाफ कोई दावा नहीं है, बल्कि दावा केवल शादी और शादी से पहले के पारंपरिक खर्चों और व्यवस्थाओं के बारे में है, यानी रोका समारोह और शादी समारोह जो सांस्कृतिक प्रथा है और दहेज की कोई मांग नहीं है। दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 को लागू करने के लिए अपेक्षित सामग्री अनुपस्थित है।

(ii) जहां तक भारतीय दंड संहिता की धारा 498क का संबंध है, आवश्यक सामग्री का उल्लेख नहीं किया जाता है क्योंकि मीनाक्षी सिंह के विरुद्ध किसी क्रूरता से संबंधित कोई कथन नहीं है। उसके खिलाफ कोई खुला कृत्य नहीं दिखाया गया है।

(iii) भारतीय दंड संहिता की धारा 323 का गठन नहीं किया गया है क्योंकि भारतीय दंड संहिता की धारा 319 में किए गए प्रावधान के अनुसार शारीरिक पीड़ा, बीमारी या दुर्बलता के परिणामस्वरूप कोई चोट पहुंचाने के संबंध में कोई आरोप नहीं लगाया गया है।

(iv) जहां तक भारतीय दंड संहिता की धारा 307 का संबंध है, प्रथम सूचना रिपोर्ट में कोई आरोप नहीं है। धारा 161 भ०द०वि० के तहत दर्ज किए गए बयानों में केवल एक अस्पष्ट आरोप लगाया गया है, हालांकि, धारा 164 भ०द०वि० के तहत बयान में फिर से कोई आरोप नहीं लगाया गया है। मेडिकल रिपोर्ट में कोई बाहरी चोट नहीं पाई गई है।

सी. स्वाति सिंह पर भ०द०वि० की धारा 498ए, 323, 307 और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4 के तहत आरोप पत्र दायर किया गया:

(i) दहेज की किसी भी प्रकार की मांग के संबंध में स्वाति सिंह के विरुद्ध कोई दावा नहीं है, बल्कि दावा केवल विवाह और विवाह से पहले के प्रथागत खर्चों और व्यवस्थाओं के बारे में है। रोका समारोह और विवाह समारोह जो सांस्कृतिक प्रथा है और दहेज की कोई मांग नहीं है। दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 को लागू करने के लिए अपेक्षित सामग्री अनुपस्थित है।

(ii) जहां तक भारतीय दंड संहिता की धारा 498क का संबंध है, आवश्यक तत्व नहीं बताए गए हैं क्योंकि स्वाति सिंह के विरुद्ध किसी क्रूरता से संबंधित कोई कथन नहीं है और साथ ही उनके विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष कार्य नहीं किया गया है।

(iii) भारतीय दंड संहिता की धारा 323 का गठन नहीं किया गया है क्योंकि भारतीय दंड संहिता की धारा 319 में किए गए प्रावधान के अनुसार शारीरिक पीड़ा, बीमारी या दुर्बलता के परिणामस्वरूप कोई चोट पहुंचाने के संबंध में कोई आरोप नहीं लगाया गया है।

(iv) जहां तक भारतीय दंड संहिता की धारा 307 का संबंध है, प्रथम सूचना रिपोर्ट में कोई आरोप नहीं है। धारा 161 भ०द०वि० के तहत दर्ज किए गए बयानों में केवल एक अस्पष्ट आरोप लगाया गया है। हालांकि, धारा 164 के तहत बयानों में, फिर से कोई आरोप नहीं लगाया गया है और मेडिकल रिपोर्ट में कोई बाहरी चोट नहीं पाई गई है।

9. आवेदकों के अधिवक्ता ने दृढ़ता से तर्क दिया है कि निचली अदालत ने प्रक्रियात्मक खामियों और प्रथम दृष्टया मामले की स्पष्ट कमी के बावजूद यांत्रिक रूप से संज्ञान लिया है, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने विवेचना में विरोधाभासों को संबोधित किए बिना 29.10.2024 को संज्ञान लिया। अपनी दलील के समर्थन में उन्होंने 'पेप्सी फूड्स लिमिटेड बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट 5' के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि मजिस्ट्रेटों को न्यायिक दिमाग लगाना चाहिए और डाकघर के रूप में कार्य नहीं करना चाहिए। हालांकि, संबंधित अदालत ने इस सिद्धांत को नजरअंदाज कर दिया। सुनील भारती मित्तल बनाम सीबीटी के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया है कि संज्ञान पर्याप्त सामग्री पर आधारित होना चाहिए न कि अस्पष्ट या सर्वव्यापी आरोपों पर।

10. अपनी प्रस्तुतियों को मजबूत करने के लिए आवेदकों के अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:

A. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल:

प्रस्तर 108: "जहां एक आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना से भाग लिया जाता है और/या जहां अभियुक्त से बदला लेने के लिए और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने के उद्देश्य से दुर्भावनापूर्ण तरीके से कार्यवाही शुरू की जाती है।

B. सुशील कुमार शर्मा बनाम भारत संघ:

प्रस्तर-19: "प्रावधान का उद्देश्य दहेज की धमकी को रोकना है। लेकिन जैसा कि याचिकाकर्ता द्वारा सही तर्क दिया गया है, ऐसे कई उदाहरण सामने आए हैं जहां शिकायतें वास्तविक नहीं हैं और तिरछे उद्देश्य से दायर की गई हैं। ऐसे मामलों में, अभियुक्त को बरी करने से सभी मामलों में मुकदमे के दौरान और उससे पहले हुई बदनामी का सफाया नहीं होता है। कभी-कभी प्रतिकूल मीडिया कवरेज दुख को बढ़ाता है।

सी. प्रीति गुप्ता बनाम झारखंड राज्य:

प्रस्तर-30: "यह सामान्य ज्ञान का विषय है कि घटना के अतिरंजित संस्करण बड़ी संख्या में शिकायतों में परिलक्षित होते हैं। अति-निहितार्थ की प्रवृत्ति भी बहुत बड़ी संख्या में मामलों में परिलक्षित होती है।
डी. गीता मेहरोत्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य

प्रस्तर-20: गीता मेहरोत्रा (उपरोक्त) में पारित उच्चतम न्यायालय के फैसले के प्रस्तर-20 पर भरोसा करते हुए, आवेदकों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि मामले में सक्रिय भागीदारी के आरोप के बिना वैवाहिक विवाद में परिवार के सदस्यों के नामों का केवल आकस्मिक संदर्भ उनके खिलाफ संज्ञान लेने को उचित नहीं ठहराएगा कि वे इस तथ्य से बेखबर हैं कि वे अलग-अलग रहते हैं।

ई. श्रीमती रुचि तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश:

प्रस्तर-15: "शादी के बाद किए गए दहेज की मांग के विशिष्ट आरोपों के अभाव में, और बिना किसी समकालीन सबूत के, यह नहीं कहा जा सकता है कि दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4 के तहत प्रथम दृष्टया मामला बनता है। इस तरह के सामान्य दावे वैधानिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं करते हैं।

एफ. आवेदकों के अधिवक्ता ने कैलाश चंद्र अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में फैसलों पर भी भरोसा किया है; (प्रस्तर-8-10); प्रीतम अशोक सदाफुले बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य; (प्रस्तर-17 और 18); वरला भरत कुमार बनाम तेलंगाना राज्य; (प्रस्तर-6-9); कार्तिक चंद माझी बनाम झारखंड राज्य और अन्य; (प्रस्तर-9-11); राजेश शर्मा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (प्रस्तर-14 और 15); रश्मि चोपड़ा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (प्रस्तर-24, 25, 27, 28 और 31) सीनिवासन बनाम राज्य (प्रस्तर-6-8); कहकशां कौसर बनाम बिहार राज्य (प्रस्तर-10-18); मानव अधिकार और अन्य बनाम भारत संघ, कानून और न्याय मंत्रालय और अन्य21 के लिए सोशल एक्शन फोरम, और मो. अकरम सिद्दुकी बनाम बिहार राज्य और अन्य।

11. उपरोक्त प्रस्तुतियों की संचयी ताकत पर, आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि आवेदकों के खिलाफ लंबित आपराधिक मामले की कार्यवाही इस न्यायालय द्वारा रद्द की जा सकती है।

12. प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रस्तुत आवेदक जो ससुर, सास और भाभी हैं, शादी से पहले सूचनाकर्ता और उसके परिवार से मिले हैं और उन्होंने लालच दिया है कि अर्जुन सिंह अविवाहित है और हालांकि एक कनाडाई नागरिक होने के नाते, वह एक भारतीय हिंदू लड़की से शादी करना चाहता है, हालांकि यह उनकी जानकारी में था कि वह पहले से ही कनाडा में अल्फिया शहीद हसन के साथ विवाहित है।

12.1 आवेदकों द्वारा उक्त गलत बयानी केवल दहेज की प्यास को संतुष्ट करने के लिए की गई थी, जो वे जानते थे कि वे प्राप्त करेंगे यदि सूचनाकर्ता शादी करने के लिए सहमत है, और यह भी समाज में अपने बेटे के लिए सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करने के लिए कि उनके बेटे की शादी एक भारतीय हिंदू लड़की से हुई है.

12.2 प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने तथ्यों को सामने रखा है जिसमें कहा गया है कि शादी से 10 दिन पहले, आवेदक संख्या-1 ने सूचनाकर्ता के पिता को फोन किया और शादी में 1 करोड़ रुपये खर्च करने के लिए कहा, इसके बाद शादी 25.06.2023 को मेघदूत रिज़ॉर्ट, उज्जैन में हुई जिसमें 55 लाख की व्यवस्था पर खर्च की गई और 95 लाख आभूषणों पर खर्च किए गए।

12.3 सूचनाकर्ता को अल्फिया और उसके पति के बीच संबंधों के बारे में पता चलने के बाद, उसने आवेदकों का सामना किया, लेकिन चूंकि वे पहले से ही इसे जानते थे, इसलिए उन्होंने कुछ नहीं किया। 22.12.2023 को जब सूचनाकर्ता ने अपना ससुराल छोड़ने का फैसला किया, तो आवेदकों ने उसका कोई भी सामान देने से इनकार कर दिया। शादी से पहले आवेदकों को पता था कि अर्जुन शादीशुदा है और कनाडा में बस गया है और दहेज पाने के लिए ही आवेदकों ने साजिश के जरिए सूचनाकर्ता को धोखा दिया है।

12.4 प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि प्रस्तुत याचिका दायर करते समय आवेदकों द्वारा कुछ प्रासंगिक बयानों को संलग्न नहीं किया गया है। उन्होंने केस डेयरी पर्चा संख्या-10 दिनांक 31.05.2024 को दर्ज किए गए केस डेयरी पर्चा संख्या-10, सूचनाकर्ता के पिता अजय हुरिया, मां योगिता हुरिया और मध्यस्थ

उमेश सिंह चौहान के बयान की ओर अदालत का ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें आवेदक संख्या-2 और 3 यानी सास और भाभी के खिलाफ क्रमशः विशिष्ट आरोप लगाए गए हैं कि उन्होंने सूचनाकर्ता का गला घोंटने की कोशिश की है और सूचनाकर्ता से दहेज की मांग कर रहे थे और जिसके बाद विवेचनाधिकारी द्वारा धारा 307 भ०द०वि० जोड़ी गई थी प्रस्तुत मामले में। घटना के 110 दिनों के बाद सूचनाकर्ता की मेडिकल जांच की गई क्योंकि पुलिस ने समय पर सूचनाकर्ता की प्राथमिकी दर्ज करने की जहमत नहीं उठाई।

13. कानूनी आधार, जिस पर प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने अपनी प्रस्तुतियाँ यह कहते हुए आगे बढ़ाया है कि याचिका योग्यता से रहित है, इस प्रकार हैं:

13.1 केवल राहत पाने के लिए आवेदकों ने इस न्यायालय से साफ हाथों से संपर्क नहीं किया है, क्योंकि सीडी पर्चा संख्या-10 में निहित 3 बयान जिनके आधार पर प्रस्तुत मामले के विवेचनाधिकारी ने प्रस्तुत मामले में आवेदक संख्या-2 और 3 के खिलाफ धारा 307 भ०द०वि० जोड़ी है, जानबूझकर प्रस्तुत याचिका का हिस्सा नहीं बनाया गया है।

13.2 प्रथम सूचना रिपोर्ट में फरार पति, अर्थात् अर्जुन सिंह के खिलाफ लगाए गए आरोपों के अलावा, आवेदकों यानी ससुर, सास और भाभी के खिलाफ विशिष्ट आरोप हैं जो प्रस्तुत मामले में मुख्य साजिशकर्ता हैं।

13.3 आवेदकों ने केवल दहेज और उपहार प्राप्त करने के लिए सूचनाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों को धोखा दिया है, इस तथ्य को जानने के बावजूद कि उनका बेटा अर्जुन सिंह यानी सूचनाकर्ता का पति पहले से ही शादीशुदा है और कनाडा में बस गया है। एक पूर्व-मध्यस्थ दिमाग के माध्यम से और एक-दूसरे के साथ साजिश करके, आवेदकों ने पहले उसे धोखा दिया है, फिर सूचनाकर्ता को मानसिक और शारीरिक रूप से परेशान किया है। केवल पैसे की वजह से आवेदकों ने असहाय सूचनाकर्ता का जीवन बर्बाद कर दिया है जो एक युवा महिला है, और अब वह अपने माता-पिता की दया पर जी रही है। न केवल पति बल्कि आवेदकों ने दहेज के लालच को पूरा करने के लिए सूचनाकर्ता को भी परेशान किया है

13.4 गवाहों के बयानों अर्थात् संजय गर्ग और शैली गर्ग के अवलोकन से पता चलता है कि गवाह विशेष रूप से कह रहे हैं कि अल्फिया अर्जुन सिंह का दोस्त है और उन दोनों ने एक साथ अध्ययन और काम किया है, और इस तरह सूचनाकर्ता द्वारा उसके पति के खिलाफ उठाई गई आशंका निराधार नहीं थी, बल्कि ठोस सबूतों पर आधारित थी।

13.5 आवेदक संख्या-1 और 2 ने जानबूझकर अपने बेटे अर्जुन सिंह की सूचनाकर्ता के साथ शादी की है, केवल भारत में सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करने और सूचनाकर्ता के परिवार से दहेज के रूप में पैसे हड़पने के लिए, धारा 161 भ०द०वि० के तहत दर्ज सूचनाकर्ता के बयान में विशेष रूप से आवेदकों के खिलाफ आरोप शामिल

हैं कि शादी के बाद जब सूचनाकर्ता ने उसके गहनों की मांग की, तो आवेदक संख्या-2 ने उसे धक्का दिया और दहेज के बहाने भाभी और सास (आवेदक संख्या-3 और 2) दोनों ने सूचनाकर्ता का गला घोंटने की कोशिश की।

13.6 धारा 164 भ०द०वि० के तहत दर्ज सूचनाकर्ता का बयान विशेष रूप से आवेदकों के खिलाफ आरोप लगाता है कि आवेदक संख्या-1 हमेशा सूचनाकर्ता के पिता से दहेज की मांग कर रहा था, आवेदक संख्या-2 ने सूचनाकर्ता के साथ दुर्व्यवहार किया जब उसने अपने पति के बारे में शिकायत की, अर्थात्, अर्जुन सिंह, आवेदक संख्या-2 और 3 भी सूचनाकर्ता को उनकी अपेक्षाओं से कम दहेज लाने के लिए शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न का कारण बन रहे थे। सूचनाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों के बयानों का अवलोकन स्पष्ट रूप से संज्ञेय अपराधों के घटित होने को प्रदर्शित करता है और गवाहों के बयानों में मामूली विसंगतियों का कोई लाभ इस स्तर पर नहीं उठाया जा सकता है, क्योंकि प्रस्तुत मामले के तथ्यात्मक पहलुओं की देखभाल करने के लिए उपयुक्त मंच विचारण न्यायालय होगा।

13.7 सूचनाकर्ता का पति अर्थात् अर्जुन सिंह भारत से फरार हो गया है, जिसके खिलाफ लुक आउट सर्कुलर (एलओसी), गैर-जमानती वारंट विचारण न्यायालय द्वारा जारी किए जाते हैं और इस बात की बहुत अधिक संभावना है कि आवेदक भी इस न्यायालय से राहत मिलते ही भारत से भाग जाएंगे। पूरी याचिका में आवेदक यह प्रदर्शित करने में विफल रहे हैं कि उनका सूचनाकर्ता के पति से कोई लेना-देना नहीं है, जो स्वयं प्रस्तुत मामले में उनकी मिलीभगत को साबित करता है।

13.8 प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने आगे तर्क प्रस्तुत किया कि विवेचना के दौरान एकत्रित कथनों एवं सामग्री के अवलोकन से आवेदकों के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है। आवेदक जिस आधार पर वर्तमान वाद को खंडित किए जाने की प्रार्थना कर रहे हैं, वह आधार भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 की धारा 528 के अंतर्गत प्रस्तुत वर्तमान आवेदन के माध्यम से विचारणीय नहीं है, क्योंकि आवेदकों के पास विचारण न्यायालय के समक्ष बी.एन.एस.एस. की धारा 250 के अंतर्गत उन्मोचन का आवेदन प्रस्तुत करने का वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है। सर्वोच्च न्यायालय तथा यह न्यायालय भी अनेक अवसरों पर यह स्पष्ट कर चुके हैं कि वर्तमान क्षेत्राधिकार, अर्थात् बी.एन.एस.एस. की धारा 528 (पूर्व में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482) के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते समय यह न्यायालय लघु विचारण नहीं कर सकता।

13.9 एक विस्तृत जांच के बाद, आवेदकों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया है और इस तरह यह केवल विचारण न्यायालय है जो सबूतों को देख सकता है और आरोपों के रूप में अपराधों के लिए आवेदकों पर मुकदमा चला सकता है। यह न्यायालय अभियोजन पक्ष द्वारा लगाए गए आरोपों के गुण-दोष में प्रवेश नहीं कर सकता है, क्योंकि यह एक मिनी विचारण करने के समान होगा। प्राथमिकी के साथ-साथ गवाहों के बयानों के अवलोकन से पता चलता है कि, आवेदकों के खिलाफ कथित अपराध के लिए प्रथम दृष्टया मामला बनाया गया है।

अनुवादित

13.10 प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि यह न्यायालय वर्तमान क्षेत्राधिकार धारा यानी धारा 528 बी.एन.एस.एस. (जिसे पहले 482 भ०द०वि० के रूप में जाना जाता था) के तहत पूर्व-परीक्षण चरण में पूरी आपराधिक कार्यवाही को रद्द नहीं कर सकता है, जैसा कि **मो. अलाउद्दीन खान बनाम बिहार राज्य और अन्य**, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि उच्च न्यायालय के पास धारा 482 भ०द०वि० के तहत कार्यवाही के साक्ष्य की मूल्यांकन करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, क्योंकि क्या गवाहों के बयानों में विरोधाभास या/और विसंगतियां हैं, यह साक्ष्य की मूल्यांकन से संबंधित एक आवश्यक मुद्दा है और जब पूरे सबूत पेश किए जाते हैं तो न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा मुकदमे के दौरान इस पर विचार किया जा सकता है पक्षगण द्वारा। तथापि, प्रस्तुत मामले में उक्त चरण अभी आना बाकी है।

13.11 प्रतिपक्षी संख्या-2 की ओर से पेश अधिवक्ता ने **राजीव कौरव बनाम बालासाहब और अन्य** के मामले में शीर्ष न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें यह माना गया है कि यह अब कोई वास्तविक नहीं है कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए धारा 482 भ०द०वि० के तहत शक्ति का प्रयोग केवल तभी होता है जब प्राथमिकी या आरोप पत्र में लगाए गए आरोप कथित अपराध/अपराधों के तत्व होते हैं। धारा 482 भ०द०वि० के तहत उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किसी भी कानून या न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए है। यह स्थापित कानून है कि अभियुक्त द्वारा अपने बचाव में पेश किए गए सबूतों को बहुत ही असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, न्यायालय द्वारा नहीं देखा जा सकता है।

14. प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने **अलुरी वेंकट रमना बनाम अलुरी तिरुपति राव और अन्य**, दिनांक 12.12.2024 के मामले में शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार कहा है:

"13. इस न्यायालय द्वारा दोहराई गई उपरोक्त सामग्री से, यह स्पष्ट है कि दहेज की गैरकानूनी मांग "धारा 498A भ०द०वि० के तहत क्रूरता" का गठन करने के लिए एक शर्त तत्व नहीं है। यह पर्याप्त है कि आचरण प्रावधान के खंड (ए) या (बी) में उल्लिखित दो व्यापक श्रेणियों में से किसी एक के भीतर आता है, अर्थात्, जानबूझकर आचरण जिससे गंभीर चोट या मानसिक नुकसान होने की संभावना है (खंड ए), या किसी भी गैरकानूनी मांग को पूरा करने के लिए महिला या उसके परिवार को मजबूर करने के उद्देश्य से उत्पीड़न (खंड बी)। इसलिए, क्रूरता का कोई भी रूप। दहेज की मांग से स्वतंत्र, धारा 498-ए भ०द०वि० के प्रावधानों को आकर्षित करने और अपराध को कानून के तहत दंडनीय बनाने के लिए पर्याप्त है।

*** *** ***

16. इस न्यायालय के सामने, प्रतिवादियों ने तर्क दिया है कि धारा 498A भ०द०वि० के स्पष्टीकरण के खंड (ए) में वर्णित जानबूझकर आचरण को केवल क्रूरता के रूप में माना जाना चाहिए यदि यह खंड (बी) में उल्लिखित दहेज की मांग के साथ हो, या यह कि संपत्ति या मूल्यवान सुरक्षा के लिए एक गैरकानूनी मांग, अकेले खड़े होकर, धारा 498-ए के तहत क्रूरता का गठन करता है। हालाँकि, उपरोक्त चर्चा के आलोक में, यह

स्पष्ट है कि यह सबमिशन योग्यता के बिना है और इसलिए, इस न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है।

15. प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने प्रियंका जायसवाल बनाम झारखंड राज्य और अन्य के मामले में तीन-न्यायाधीशों की पीठ के फैसले के निम्नलिखित प्रस्तर पर भरोसा किया है, दिनांक 30.04.2024, जिसमें न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

"13. हम ऐसा एक से अधिक कारणों से कहते हैं। इस न्यायालय ने लगातार माना है कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए प्रार्थना की जांच करते समय, असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाली अदालत न तो एक मिनी विचारण करने का उपक्रम कर सकती है और न ही किसी विशेष मामले के साक्ष्य की मूल्यांकन कर सकती है। शिकायत में लगाए गए आरोपों की सत्यता या अन्यथा की जांच संभावित बचाव की कसौटी पर नहीं की जा सकती है जो अभियुक्त अभियोजन पक्ष को रोकने के लिए उठा सकता है और न्यायालयों द्वारा इस तरह के किसी भी दुस्साहस के परिणामस्वरूप कार्यवाही को रद्द कर दिया जाएगा

16. प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने **निहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, दिनांक 13.04.2021** के मामले में शीर्ष न्यायालय के तीन-न्यायाधीशों की पीठ के फैसले के निम्नलिखित प्रस्तर की ओर भी न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें न्यायालय ने कहा है कि:

"7. अंतिम श्रेणी से निपटने में, ऐसे मामले के बीच अंतर को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है जहां कोई कानूनी सबूत नहीं है या जहां सबूत हैं जो लगाए गए आरोपों के साथ स्पष्ट रूप से असंगत हैं, और एक ऐसा मामला जहां कानूनी सबूत हैं, जो मूल्यांकन पर, आरोपों का समर्थन कर सकते हैं या नहीं भी कर सकते हैं। संहिता की धारा 482 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय, उच्च न्यायालय आमतौर पर इस बात की जांच नहीं करेगा कि क्या विचाराधीन साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं या क्या इसकी उचित मूल्यांकन पर आरोप कायम नहीं रहेगा। विचारण न्यायाधीश का यही कार्य है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि न्यायिक प्रक्रिया उत्पीड़न या अनावश्यक उत्पीड़न का साधन नहीं होनी चाहिए। न्यायालय को विवेक का प्रयोग करने में सतर्क और विवेकपूर्ण होना चाहिए और प्रक्रिया जारी करने से पहले सभी प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए, ऐसा न हो कि किसी भी व्यक्ति को अनावश्यक रूप से परेशान करने के लिए प्रतिशोध को बढ़ावा देना एक निजी शिकायतकर्ता के हाथों में एक साधन बन जाए। साथ ही, यह धारा अभियोजन पक्ष को शॉर्ट-सर्किट करने और उसकी अचानक मृत्यु के लिए अभियुक्त को सौंपी गई कोई लिखत नहीं है.....

17. प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने **सी.बी.आई. बनाम आर्यन सिंह के** मामले में शीर्ष न्यायालय के एक फैसले पर भी भरोसा किया है, जिसमें दिनांक 10.04.2023 के निर्णय और आदेश के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है:

"3.1 संबंधित आरोपी की ओर से पेश दोनों अधिवक्ताओं ने प्रत्येक आरोपी के खिलाफ लगाए गए आरोपों के गुण-दोष के आधार पर दलीलें दी हैं। तथापि, वे सभी प्रस्तुतियाँ बचाव हैं, जिन पर परीक्षण के दौरान विचार किया जाना अपेक्षित है। इसलिए, हम सी.बी.आई. के साथ-साथ अभियुक्तों की ओर से अभियुक्तों के खिलाफ आरोपों के गुण-दोष के आधार पर की गई प्रस्तुतियों पर विस्तार से विचार नहीं कर रहे हैं क्योंकि इस न्यायालय की कोई भी टिप्पणी मुकदमे के दौरान किसी भी पक्ष को प्रभावित कर सकती है।

*** *** ***

4. आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने और अभियुक्त को आरोपमुक्त करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित सामान्य निर्णय और आदेश को पढ़ने के बाद, हमारी राय है कि उच्च न्यायालय ने धारा 482 भ०द०वि० के तहत सीमित शक्तियों का प्रयोग करते हुए और/या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए पूरी आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने में अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन किया है।

18. न्यायालय की सहायता करते हुए श्री सत्येंद्र तिवारी, राज्य के अपर शासकीय अधिवक्ता ने मामले को खारिज करने के लिए निम्नलिखित आधार रखे:

18.1 प्राथमिकी 16.03.2024 को दर्ज की गई है जिसमें आरोप लगाया गया है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 की शादी, श्रीमती सिमरन हुरिया का 25.06.2023 को मेघदूत रिज़ॉर्ट, उज्जैन, मध्य प्रदेश में संपन्न हुई और शादी के बाद आवेदकों द्वारा उनके साथ क्रूरता और दहेज की मांग की गई।

18.2 आवेदक संख्या-1 - ससुर, वीरेंद्र सिंह के खिलाफ प्रतिपक्षी संख्या-2 के माता-पिता से शादी के लिए निर्धारित तारीख 25.06.2023 से 10 दिन पहले फोन के माध्यम से दहेज मांगने का विशिष्ट आरोप लगाया गया है। उन्होंने यह भी जानकारी देने की मांग की है कि रिश्तेदारों को उपहार के रूप में लिफाफे में कितनी राशि दी जाएगी और दहेज की कौन सी वस्तुएं उपहार के रूप में दी जाएंगी। ससुराल वालों और उनके रिश्तेदारों के लिए बुक किए जा रहे होटल के बारे में अन्य जानकारी लिखित में देने के लिए कहा गया था। जब प्रतिपक्षी संख्या-2 के पिता ने कठिनाई व्यक्त की और आवेदक संख्या-1 द्वारा उठाई गई मांगों पर आपत्ति जताई, तो उन्होंने कहा कि उनका बेटा कनाडा का नागरिक है और उनके लिए बहुत सारे प्रस्ताव हैं जो उनके बेटे की शादी में 4-5 करोड़ रुपये खर्च करने को तैयार हैं। प्रतिपक्षी संख्या-2 के पिता के पास आवेदक संख्या-1 की इच्छानुसार व्यवस्था करने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा था।

18.3 विवाह मेघदूत रिज़ॉर्ट, उज्जैन, मध्य प्रदेश में संपन्न हुआ, जहां प्रतिपक्षी संख्या-2 के ससुराल वालों द्वारा की गई मांग के अनुसार 55 लाख रुपये की राशि खर्च की गई, 8 लाख रुपये के सोने और चांदी के गहने भी दिए गए। सूचनाकर्ता के पिता ने अपनी बेटी के लिए 95 लाख रुपये के अतिरिक्त सोने-चांदी के गहने प्रदान किए।

अनुवादित

18.4 विवाह के बाद, सूचनाकर्ता 26.06.2023 को हापुड़ आया, जहां ससुराल वालों ने सभी सोने-चांदी के गहने अपने कब्जे में ले लिए।

18.5 प्रतिपक्षी संख्या-2 के पति सहित आवेदकों ने वर्तमान परिस्थितियों में खुद को समायोजित करने के लिए उस पर दबाव डाला, और उसे और उसके माता-पिता को धोखा दिया और उन्होंने 1.20 करोड़ रुपये का सामान और 14 लाख रुपये के अन्य उपहारों को छोड़कर गहने अपने पास रखे। सभी उपहार आइटम आवेदकों के कब्जे में थे।

18.6 सूचनाकर्ता के पति के अल्फिया शहीद हसन के साथ लिव-इन रिलेशनशिप में होने के आरोप, जिसके बारे में आवेदक जानते थे, प्राथमिकी में भी आरोप लगाए गए हैं। धारा 161 भ०द०वि० के तहत दर्ज पीड़िता के बयानों के अनुसार, उसके ससुराल वालों ने शादी से 10 दिन पहले 4-5 करोड़ रुपये की मांग की थी। सूचनाकर्ता की सास और ससुर ने रिश्तेदारों के लिए सोने-चांदी के गहनों की मांग की है। सूचनाकर्ता के पिता ने नकद, सोने और चांदी के गहने के रूप में 1.20 करोड़ रुपये प्रदान किए हैं। उसने आगे कहा है कि सूचनाकर्ता हापुड़ चली गई जहां उसे उसके पति द्वारा भी परेशान किया गया।

18.7 जहां तक उसकी सास मीनाक्षी सिंह का संबंध है, उसने कहा है कि जब उसने अपने गहने वापस करने का अनुरोध किया जो उसकी सास द्वारा रखे गए थे, तो उसने सूचनाकर्ता को एक तरफ धकेल दिया और उसके अनुरोध को अस्वीकार कर दिया गया। इसके बाद, 01.07.2023 को, उन्होंने अपने पति अर्जुन के साथ लंदन की यात्रा की और 30.07.2023 को अकेले लौटीं, जबकि उनके पति लंदन से कनाडा चले गए। ससुराल लौटने पर, उसकी सास द्वारा लगातार उसकी निगरानी की जाती थी, जो उसके स्थान को भी ट्रैक करती थी। हापुड़ में ससुराल में रहने के दौरान, सूचनाकर्ता को व्हाट्सएप ग्रुप से अपने पति के लिव-इन रिलेशनशिप के बारे में भी पता चला, जो पिछले 13 वर्षों से चल रहा था।

18.8 प्रतिपक्षी नं.2 ने अपने बयानों में कहा है कि उसकी सास और भाभी द्वारा दहेज की मांग की जा रही है और उसने यह भी कहा है कि उन्होंने उसका गला घोंटने का प्रयास किया था। उनके पति 16.12.2023 को भारत लौट आए। यह भी कहा गया है कि उसके ससुराल वालों को उसके पति के विवाहेतर संबंधों के बारे में पता था। सूचनाकर्ता के बयानों से यह स्पष्ट है कि सूचनाकर्ता को मानसिक और शारीरिक रूप से प्रताड़ित किया गया था और शादी से पहले और बाद में दहेज की मांग करते हुए क्रूरता का शिकार किया गया था।

18.9 धारा 164 भ०द०वि० के तहत सूचनाकर्ता के बयान दर्ज किए गए, जिसमें उसने 25.06.2023 को अपनी शादी पूरी होने, शादी से 10 दिन पहले उसके ससुराल वालों द्वारा दहेज की मांग करने और उनके बेटे के कनाडा के नागरिक होने के बारे में दावा, अच्छे दिखने और उसकी शादी के लिए 4-5 करोड़ रुपये का भुगतान करने के लिए कई लोगों की इच्छा के बारे में दोहराया है। सूचनाकर्ता के पिता द्वारा मांगों को यथासंभव पूरा करने का आश्वासन दिया गया था। सूचनाकर्ता के पिता ने उपहार की वस्तुओं के साथ-साथ दहेज की राशि

1.20 करोड़ रुपये दी और 55 लाख रुपये उज्जैन में शादी में खर्च किए। हापुड़ पहुंचने पर पति के अंत में क्रूरता के कई उदाहरण धारा 164 भ०द०वि० के तहत दर्ज किए गए बयानों में बताए गए हैं। आवेदक संख्या-2 और 3 ने भी अपर्याप्त दहेज के कारण उसे शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ा।

18.10 संजय गर्ग और शाली गर्ग, जो आवेदकों के पड़ोसी हैं, के बयान भी विवेचनाधिकारी द्वारा धारा 161 भ०द०वि० के तहत दर्ज किए गए थे और उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है और आवेदकों के खिलाफ प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा लगाए गए आरोपों की पुष्टि की है।

18.11 प्रथम सूचना रिपोर्ट की सामग्री, विवेचनाधिकारी द्वारा एकत्र किए गए अन्य साक्ष्य, आरोप-पत्र गवाहों के बयानों के साथ-साथ धारा 161 और 164 भ०द०वि० के तहत प्रतिपक्षी संख्या-2 के बयानों से पता चलता है कि धारा 3/4 डीपी अधिनियम के तहत अपराध किया गया है।

19. राज्य के अधिवक्ता, दहेज निषेध अधिनियम की धारा 2 की परिभाषा और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसकी व्याख्या पर जोर देते हुए, जैसा कि **राजेंद्र सिंह बनाम पंजाब राज्य, विपिन जायसवाल बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, अप्पासाहेब बनाम महाराष्ट्र राज्य** के मामलों में चर्चा की गई है, प्रस्तुत करता है कि डीपी अधिनियम की धारा 3 और 4 के तहत अपराध आवेदकों के खिलाफ बनाया गया है।

20. विवेचनाधिकारी ने यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त सबूत एकत्र किए हैं कि धारा 498-ए भ०द०वि० के तहत क्रूरता का अपराध भी बनाया गया है। सूचना देने वाली को उसके पति और आवेदकों द्वारा शारीरिक और मानसिक दोनों तरह के अत्याचार किए गए हैं। आवेदक संख्या-2 और 3 द्वारा उसका गला घोंटने के प्रयास का विशिष्ट आरोप है, जो प्रथम दृष्टया धारा 307 भ०द०वि० के तहत अपराध बनाता है।

21. प्राथमिकी के संस्करण, गवाहों के बयानों से यह पता चला है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 को आवेदकों द्वारा शारीरिक रूप से हमला किया गया था, जिससे धारा 323 भ०द०वि० के तहत अपराध का गठन किया गया था। प्राथमिकी दर्ज करने में देरी को अच्छी तरह से समझाया गया है। घटना के बाद, सूचनाकर्ता ने 07.01.2024 को महिला थाने के समक्ष शिकायत दर्ज कराई। इसके बाद, 12.01.2024 को आवेदकों के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए एस.एस.पी. हापुड़ के समक्ष एक आवेदन दायर किया गया, लेकिन जब कुछ नहीं किया गया, तो 23.01.2024 को धारा 156(3) भ०द०वि० के तहत एक आवेदन दायर किया गया, जिसके बाद प्राथमिकी दर्ज की गई।

22. उपरोक्त प्रस्तुतियों के आधार पर, अपर शासकीय अधिवक्ता के साथ-साथ प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता में कहा गया है कि यह न्यायालय प्रस्तुत मामले में धारा 528 बी.एन.एस.एस. के तहत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता है और प्रस्तुत आवेदन खारिज किए जाने के लिए उत्तरदायी है।

23. मैंने पक्षगण के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

24. सर्वोच्च न्यायालय ने कई फैसलों में इस बात को रेखांकित किया है कि वैवाहिक विवादों में, पति के रिश्तेदारों के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही को रद्द किया जा सकता है जहां आरोप अस्पष्ट, सर्वव्यापी या विशिष्टता में कमी है। यह न्यायिक रुख दंडात्मक प्रावधानों, विशेष रूप से धारा 498-ए भ०द०वि० के दुरुपयोग को रोकने का प्रयास करता है, जो पति या उसके रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता को संबोधित करता है। हालांकि, न्यायालय ने अनिवार्य किया है कि प्रत्येक सह-अभियुक्त के खिलाफ आरोप स्पष्ट, विस्तृत और ठोस तथ्यों द्वारा समर्थित होने चाहिए। सामान्य आरोप आपराधिक दायित्व को बनाए नहीं रख सकते हैं।

24.1 इस मुद्दे से निपटते समय, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह भी तय किया गया है कि न्यायपालिका दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 (अब धारा 528 बी.एन.एस.एस.) के तहत दुर्भावनापूर्ण या परेशान करने के इरादे से कार्यवाही को रद्द करने के लिए अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करती है। न्यायालय ने उन रिश्तेदारों के अधिकारों की भी रक्षा की है जो दंपति के साथ नहीं रहते हैं या जिनका कथित अपराधों से कोई स्पष्ट संबंध नहीं है।

24.2 **कहकशां कौसर @ सोनम और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया है कि क्रूरता या उत्पीड़न के किसी विशिष्ट उदाहरण के बिना सामान्य और व्यापक आरोप ससुराल वालों पर मुकदमा चलाने के लिए अपर्याप्त हैं। न्यायालय ने सुरक्षा के बजाय उत्पीड़न के उपकरण के रूप में धारा 498-ए के दुरुपयोग के खिलाफ आगाह किया।

24.3 गीता मेहरोत्रा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि विशिष्ट आरोपों से रहित प्राथमिकी व्यक्तियों, विशेष रूप से पति के रिश्तेदारों को आपराधिक मुकदमे के अधीन करने के लिए आवश्यक सीमा को पूरा करने में विफल रहती है। न्यायालय ने स्पष्ट और व्यक्तिगत आरोपों की आवश्यकता को दोहराया।

24.4 दिल्ली उच्च न्यायालय ने **राजेश अग्रवाल और अन्य बनाम दिल्ली राज्य एनसीटी और अन्य** के मामले में प्राथमिकी को इस आधार पर रद्द कर दिया है कि आरोप केवल सामान्य प्रकृति के थे और प्रत्येक आरोपी की विशिष्ट भूमिका को अलग करने में विफल रहे। न्यायालय ने आगे कहा है कि इस तरह की कार्यवाही कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

24.5 इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने **संजीत कुमार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** के मामले में कहा है कि अस्थायी या तथ्यात्मक सटीकता के बिना लगाए गए महज़ और निराधार आरोप, पति के विस्तारित परिवार के खिलाफ वैध आपराधिक अभियोजन का आधार नहीं बन सकते हैं।

24.6 वैवाहिक मुकदमेबाजी में, विशेष रूप से धारा 498A भ०द०वि० के तहत, अदालतों ने वास्तविक शिकायतों और प्रतिशोधी मुकदमेबाजी के बीच अंतर करने के लिए एक सैद्धांतिक ढांचा तैयार किया है। जब पति के रिश्तेदारों के खिलाफ आरोप सामान्य, निराधार या स्पष्ट रूप से अतिरंजित होते हैं, तो अदालतें न्याय को बनाए रखने और आपराधिक न्याय प्रणाली के दुरुपयोग को रोकने के लिए आरोप पत्र को रद्द करने के लिए इच्छुक होती हैं।

25. प्रस्तुत मामले को संबोधित करने से पहले, पहले आरोपपत्र में उद्धृत धाराओं के तहत उल्लिखित अपराधों को समझना उचित है।

25.1 समाज में व्यापक रूप से व्याप्त 'दहेज' के खतरे से निपटने के दौरान, अदालत ने इस मुद्दे पर मामलों पर निर्णय देते हुए कहा कि दहेज निषेध अधिनियम, 1961 की धारा 2 के तहत परिभाषित 'दहेज' शब्द की सटीक और न्यायिक रूप से ठोस समझ स्थापित करना आवश्यक है। न्यायालय ने आगे कहा है कि इस परिभाषा का सार केवल लेन-देन में ही नहीं है, बल्कि हस्तांतरण के उद्देश्य और संदर्भ में भी है। जहां इस तरह के हस्तांतरण किसी भी प्रकार की मजबूरी, अपेक्षा, मांग या विवाह से उत्पन्न होने वाले सामाजिक दबाव के तहत किए जाते हैं, वे पूरी तरह से दहेज के कानूनी दायरे में आते हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों में दहेज की परिभाषा का निम्नलिखित शब्दों में पता लगाया है:

(i) एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष से विवाह के लिए, या
(ii) माता-पिता या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा विवाह में किसी भी पक्ष के लिए,
(iii) विवाह से पहले, दौरान या बाद में किसी भी समय,
(iv) बशर्ते कि ऐसा देने या देने का समझौता विवाह के संबंध में या उसके परिणामस्वरूप किया गया हो।

25.2 सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा है कि दहेज की बुराई केवल विवाह से पहले की अवधि तक ही सीमित नहीं है। विभिन्न निर्णयों में यह माना गया है कि संपत्ति या मूल्यवान सुरक्षा की कोई भी मांग, यदि विवाह के संबंध में की जाती है, यहां तक कि समारोह के बाद भी, दहेज का गठन किया जाएगा।

25.3 **सतबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य के मामले** में, 'दहेज' शब्द को परिभाषित करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि शादी के बाद की गई मांगों को शामिल करने के लिए इसकी व्यापक रूप से व्याख्या की जानी चाहिए, बशर्ते कि उनका विवाह के साथ ही संबंध हो।

25.4 सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि विवाह के विचार से असंबंधित धन की मांग को दहेज निषेध अधिनियम, 1961 की धारा 2 के तहत 'दहेज' के रूप में नहीं माना जा सकता है। **अप्पासाहेब बनाम महाराष्ट्र राज्य** के मामले में निर्णय का संदर्भ दिया गया है।

25.5 **राजिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि दहेज की बुराई कई रूप लेती है और विवाह के संदर्भ में जबरदस्ती उपहार के स्पष्ट और सूक्ष्म दोनों रूपों को संबोधित करने के लिए कानून विकसित होना चाहिए।

25.6 इसलिए, वैधानिक भाषा और न्यायिक घोषणाओं दोनों के अनुरूप, यह न्यायालय पुष्टि करता है कि विवाह से जुड़ी किसी भी प्रकार की संपत्ति या मूल्यवान हस्तांतरण, चाहे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, व्यक्त या निहित, मांग या अपेक्षित, और विवाह के आसपास के किसी भी समय होने वाली हो, दहेज का गठन करती है यदि वह विवाह लेनदेन से जुड़ा हुआ है। तदनुसार, कानून को अंतर्निहित जबरदस्ती और दमनकारी प्रथाओं के प्रति संवेदनशीलता के साथ लागू किया जाना चाहिए जो अक्सर परंपरा या रिवाज के रूप में दिखावा करते हैं।

25.7 दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 दहेज लेने और मांगने से संबंधित दंड से संबंधित है, इस प्रकार, यदि कोई व्यक्ति दहेज देता है या लेता है या यहां तक कि दहेज देने या लेने के लिए उकसाता है, तो वे अपराध कर रहे हैं। शादी के समय दूल्हा या दुल्हन को दिए गए उपहार (बिना मांग के) दहेज नहीं माने जाते हैं।

26. सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों में धारा 307 भ०द०वि० के अवयवों पर विचार किया है, जो इस इरादे या ज्ञान के साथ किए गए कार्यों के लिए सजा निर्धारित करता है कि, यदि मृत्यु हुई थी, तो अपराध हत्या के बराबर होगा।

26.1 घटक 'मेन्स री' (इरादा या ज्ञान) से निपटते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अभियुक्त के पास मौत का कारण बनने के लिए आवश्यक मेन्स रीया (इरादा / आशय) होना चाहिए। इस इरादे का आकलन आसपास की परिस्थितियों, कार्य की प्रकृति और इस्तेमाल किए गए हथियार से किया जाता है।
26.2 घटक 'एक्टस रीस' (प्रत्यक्ष अधिनियम) पर विचार करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अभियुक्त द्वारा किया गया एक प्रत्यक्ष कार्य होना चाहिए, जो सफल होने पर मृत्यु हो सकती है।
26.3 उच्चतम न्यायालय ने घटक 'हत्या के अपराध से निकटता' पर भी विचार किया है और माना है कि यह कार्य हत्या के अपराध के निकट होना चाहिए, हालांकि यह मौत का कारण बनने से कम हो सकता है।
26.4 सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों में धारा 307 भ०द०वि० के अवयवों पर विचार किया है और निष्कर्ष निकाला है कि उक्त धारा के तहत अपराध परिणाम से आकर्षित नहीं होता है, बल्कि इच्छित परिणाम और कार्य की प्रकृति से आकर्षित होता है।
26.5 **सरजू प्रसाद बनाम बिहार राज्य** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि केवल तैयारी पर्याप्त नहीं है, हत्या के कमीशन की दिशा में एक सीधा और स्पष्ट कार्य होना चाहिए।
26.6 **महाराष्ट्र राज्य बनाम काशिराओ** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि भले ही चोट घातक न हो, अगर मारने का इरादा स्पष्ट हो, तो धारा 307 भ०द०वि० आकर्षित होती है। न्यायालय को हमले के तरीके, हथियार की प्रकृति और लक्षित शरीर के हिस्से की जांच करनी चाहिए।

अनुवादित

26.7 **कुलदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि चोट का स्थान और घातक हथियारों का उपयोग इरादे का आकलन करने में महत्वपूर्ण है। एक महत्वपूर्ण अंग के उद्देश्य से एक झटका हत्या के इरादे को इंगित करता है, भले ही वास्तविक चोट लगी हो।

26.8 **आर. प्रकाश बनाम कर्नाटक** राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आगे यह देखा गया है कि पीड़ित का अस्तित्व महत्वहीन है और क्या मायने रखता है कि क्या अधिनियम, यदि विफल नहीं किया गया होता, तो मृत्यु का कारण बनता।

27. प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर आते हुए, अभिलेखों से पता चलता है कि आवेदकों सहित चार नामित अभियुक्तों के खिलाफ धारा 156(3) भ०द०वि० के तहत एक आवेदन के माध्यम से कार्यवाही शुरू की गई थी, जिसमें प्राथमिकी दर्ज की गई थी जिसमें आरोप लगाया गया था कि प्रतिपक्षी संख्या-2 की शादी 25.06.2023 को मध्य प्रदेश के उज्जैन में अर्जुन सिंह के साथ हुई थी, जहां उमेश सिंह चौहान ने गठबंधन के लिए मध्यस्थ के रूप में काम किया था। उक्त विवाह का पंजीकरण 27.06.2023 को किया गया था। यह भी कहा गया है कि अर्जुन सिंह एक कनाडाई हैं, जो वर्तमान में टोरंटो, कनाडा में रह रहे हैं।

27.1 आरोपों के अनुसार, रोका समारोह 11.12.2022 को हुआ, जिसके दौरान आभूषणों सहित उपहारों का विवरण साझा किया गया। समारोह के बाद, दूल्हा 18.12.2022 को कनाडा लौट आया क्योंकि उस समय शादी की अंतिम तारीख तय नहीं की गई थी। हालाँकि, बाद में तारीख 25.06.2023 निर्धारित की गई। यह आरोप लगाया गया है कि शादी से लगभग दस दिन पहले, प्रतिपक्षी संख्या-2 के ससुर ने उसके पिता से संपर्क किया और कुछ अपेक्षाओं से अवगत कराया। उन्होंने मांग की कि शादी पर एक करोड़ रुपये की राशि खर्च की जाए। इसके अतिरिक्त, उन्होंने रिश्तेदारों के लिए लिफाफे में रखी जाने वाली राशि, प्रस्तुत किए जाने वाले आभूषणों और होटल बुकिंग और अन्य संबंधित खर्चों के बारे में पूछताछ की। प्रतिपक्षी संख्या-2 के पिता ने ससुर द्वारा की गई ऐसी मांगों पर आपत्ति जताई। उस समय यह कहा गया था कि अन्य लोग 4 से 5 करोड़ रुपये खर्च करने को तैयार थे, क्योंकि उनका बेटा कनाडा का नागरिक है। ऐसे दबाव में उनके पास प्रतिपक्षी संख्या-2 के ससुर की इच्छाओं और मांगों पर चलने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। नतीजतन, उज्जैन में एक रिसॉर्ट पर 55 लाख रुपये की राशि खर्च की गई। इसके अलावा, ससुराल वालों की उम्मीदों और इच्छाओं के अनुसार कई अन्य महंगे उपहार और आभूषण दिए गए। शादी के बाद, दुल्हन 26 जून 2023 को मध्यरात्रि लगभग 12:00 बजे हापुड़ पहुंची। अगले दिन, उसने देखा कि उसका एक बैग जिसमें आभूषण थे, गायब थे। ससुराल वालों से पूछने पर उसे बताया गया कि उन्होंने इसे अपने पास सुरक्षित रूप से रखा है। 28 जून 2023 को सूर्या होटल, न्यू फ्रेंड्स कॉलोनी, दिल्ली में एक शादी का रिसेप्शन आयोजित किया गया।

27.2 नवविवाहित जोड़ा 1 जुलाई 2023 को लंदन के लिए रवाना हुआ, जहां वे एक महीने तक रहे। अपने प्रवास के दौरान, उसके पति अर्जुन सिंह ने अपनी पत्नी की आपत्तियों के बावजूद, उसके साथ शारीरिक संबंध बनाए और कभी भी किसी भी प्रकार के गर्भनिरोधक का इस्तेमाल नहीं किया। उपरोक्त मुद्दों के अलावा, यह दावा किया गया है कि उसके पति ने उसे 10,000 पाउंड खर्च करने के लिए मजबूर किया। इसके अलावा, यह

आरोप लगाया जाता है कि वह भगवान में विश्वास नहीं करता है और अक्सर केवल एक ही देवता की बात करता है। हिंदू होने के बावजूद वह गोमांस का सेवन करते हैं। प्रतिपक्षी संख्या-2 ने अपने पति के स्वभाव और रवैये में बदलाव देखा। वह अक्सर अपने मोबाइल फोन का इस्तेमाल किसी के साथ संदेश भेजने और बात करने के लिए करता था, और वह इसे कभी भी लावारिस नहीं छोड़ता था। 30 जुलाई, 2023 को, प्रतिपक्षी संख्या-2 को लंदन से अकेले भारत लौटना पड़ा, जबकि उनके पति ने कनाडा की यात्रा की।

27.3 उसके पति के मोबाइल लाइव लोकेशन डेटा के आधार पर, यह पता चला कि वह टोरंटो में अपने पंजीकृत निवास पर कभी नहीं रहा। इसके बजाय, हर शाम अपने कार्यस्थल से लौटने के बाद, वह पास की समानांतर इमारत में जाता था और एक अलग स्थान पर रहता था। यह भी आरोप लगाया गया कि पति पिछले 13 वर्षों से अल्फिया शहीद हसन नाम की महिला के साथ पति-पत्नी के रूप में रह रहा था। चौंकाने वाली बात यह है कि यह तथ्य उनके माता-पिता को भी पता था।

27.4 सच्चाई जानने के बाद पति को 16 दिसंबर 2023 को भारत बुलाया गया। 21 दिसंबर 2023 को, लड़की के माता-पिता उसके चाचा और अन्य रिश्तेदारों के साथ मध्यस्थता के उद्देश्य से हापुड़ गए। इस मुलाकात के दौरान, लड़के और उसके माता-पिता ने अल्फिया के साथ अपने लंबे समय से चले आ रहे संबंधों के बारे में जानकारी होने की बात स्वीकार की। हालाँकि, उन सभी ने उपरोक्त घटनाओं के लिए खेद व्यक्त किया और जोड़े के लिए एक नई शुरुआत का अनुरोध किया। उन्होंने अर्जुन और सिमरन से सुलह करने और एक साथ एक नया जीवन शुरू करने का आग्रह किया। हालांकि, अर्जुन ने साफ मना कर दिया। उन्होंने कहा कि वह अल्फिया को नहीं छोड़ सकते हैं, और चौंकाने वाली बात यह है कि सिमरन उनकी दूसरी पत्नी की भूमिका स्वीकार कर सकती है यदि वह उनके साथ कनाडा जाना चाहती है। यह सुनकर सिमरन के परिजन बहुत सदमे में और परेशान हो गए। इसके विपरीत, अर्जुन के माता-पिता पूरी तरह से चुप रहे, जिससे यह स्पष्ट हो गया कि वे अल्फिया के साथ अपने बेटे के रिश्ते से पूरी तरह वाकिफ थे। 22 दिसंबर, 2023 को, जब प्रतिपक्षी संख्या-2 ने उसके माता-पिता के साथ रहने का फैसला किया, तो पति सहित ससुराल वालों ने उसे अपने कपड़े और अन्य निजी सामान ले जाने की अनुमति नहीं दी।

27.5 जब से प्रतिपक्षी संख्या-2 कनाडा से लौटा है, अल्फिया सहित सभी आरोपी व्यक्ति लगातार उस पर उसी वातावरण, वातावरण और परिस्थितियों में रहने के लिए दबाव डाल रहे हैं। वे उनसे जल्द से जल्द कनाडा लौटने का आग्रह भी कर रहे हैं। अल्फिया ने इस रुख को मजबूत करते हुए कई संदेश भेजे हैं। प्रतिपक्षी संख्या-2 के पति सहित आवेदकों के पास दहेज मांगने की एक पूर्व नियोजित योजना और इरादा था। उन्होंने धोखा देने के इरादे से प्रतिपक्षी संख्या-2 और अर्जुन सिंह के बीच शादी की। उनका मकसद प्रतिपक्षी संख्या-2 और उसके माता-पिता दोनों को धोखा देना था, जिससे धोखाधड़ी से लगभग 1.20 करोड़ रुपये की नकद राशि प्राप्त की गई, साथ ही आभूषण और अन्य मूल्यवान उपहार भी प्राप्त हुए, जो अभी भी आवेदकों के पास हैं। आरोपों को साबित करने के लिए, अर्जुन सिंह और अल्फिया के बीच संबंधों को प्रदर्शित करने वाले ऑडियो और वीडियो रिकॉर्डिंग, मेडिकल बिल और कई अन्य दस्तावेज भी जमा किए गए हैं। दोनों पक्षों द्वारा प्रदान की गई वस्तुओं

की एक सूची को प्रलेखित किया गया है और विधिवत अभिलेखों पर रखा गया है। एक आवेदन/शिकायत शुरू में 7 जनवरी 2024 को महिला थाना-हापुड़ में संबंधित प्राधिकारी के समक्ष और बाद में 12 जनवरी 2024 को एसएसपी के समक्ष प्रस्तुत की गई थी, जिसमें कथित आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ उचित कार्रवाई का अनुरोध किया गया था। तथापि, जब कोई कार्रवाई नहीं की गई तो बाद में शिकायत को आगे विचार करने के लिए पंजीकृत डाक और स्पीड पोस्ट के माध्यम से भेज दिया गया।

28. धारा 161 भ०द०वि० के तहत दर्ज किए गए अपने बयानों में, सिमरन (प्रतिपक्षी संख्या-2) ने कुछ अतिरिक्त विवरण और संशोधनों के साथ प्राथमिकी की सामग्री की काफी हद तक पुष्टि की:

(i) शादी की निर्धारित तारीख से लगभग दस दिन पहले, उसके ससुराल वालों ने 4 से 5 करोड़ रुपये की दहेज की मांग की। वर्ष 26.06.2023 की रात में, उसके पति ने कथित तौर पर उसकी सहमति के बिना शारीरिक संबंध स्थापित करने का प्रयास किया। अगले दिन, ससुराल के घर पहुंचने पर, जब उसने अपने गहनों के लिए अनुरोध किया, तो उसे उसकी सास मीनाक्षी सिंह ने शारीरिक रूप से धक्का दिया।
(ii) कनाडा से उसके लौटने और ससुराल के निवास पर फिर से रहने के बाद, उसकी सास ने लगातार उसकी गतिविधियों की निगरानी की। इसके अतिरिक्त, सिमरन ने आरोप लगाया कि उसकी लोकेशन को ट्रैक करने के लिए एक संचार समूह बनाया गया था। इसके अलावा, सास और भाभी दोनों के खिलाफ गंभीर आरोप हैं, उन पर उसे मारने के प्रयास में उसका गला घोंटने का प्रयास करने का आरोप लगाया गया है।
(iii) इसी प्रकार, सिमरन के बयान में विसंगतियां हैं, जैसा कि धारा 164 भ०द०वि० के तहत दर्ज किया गया है। उसने बताया कि उसकी सास और ससुर दोनों ने दहेज की मांग की थी। खासतौर पर उसकी सास ने शादी से दस दिन पहले दहेज की मांग की थी, जिसे सिमरन ने फोन स्पीकर चालू होने के दौरान सुना। अगले दिन, रिसेप्शन के दौरान, सिमरन को उसकी सास ने डांटा, जो उसे अप्रत्याशित और परेशान करने वाला लगा। सिमरन को अपने पति अर्जुन सिंह पर अल्फिया नाम की लड़की के साथ विवाहेतर संबंध रखने का भी संदेह था। उसने कनाडा के टोरंटो में रहने वाले अपने भाई से इस मामले को देखने और अल्फिया शहीद हसन नाम की एक महिला के साथ अर्जुन के कथित दीर्घकालिक संबंधों के बारे में जानकारी इकट्ठा करने का अनुरोध किया, जिसके साथ वह कथित तौर पर पिछले 13 वर्षों से लिव-इन रिलेशनशिप में था। सिमरन ने आगे कहा कि उसकी सास मीनाक्षी सिंह ने उसका मानसिक और शारीरिक शोषण किया।

28.1 विवेचनाधिकारी ने जांच के दौरान एकत्र किए गए सबूतों के आधार पर कहा कि भारतीय दंड संहिता की धारा 377, 494 और 420 के तहत कोई अपराध नहीं पाया गया था। यह भी दर्ज किया गया कि सुश्री स्वाति सिंह के खिलाफ आरोप निराधार पाए गए और परिणामस्वरूप, उनका नाम मामले से बरी कर दिया गया। हालांकि, पति, ससुर और सास के खिलाफ धारा 498ए, 323, भ०द०वि० और 3/4 डीपी अधिनियम के साथ-साथ दहेज निषेध अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत जांच जारी रही।

28.2 ऐसा प्रतीत होता है कि स्थानांतरण जांच के बाद, 31 मई 2024 की जनरल डायरी (रोज़नामचा) प्रविष्टि में धारा 307 भ०द०वि० को जोड़ने का उल्लेख है। यह समावेशन उस तारीख तक एकत्र किए गए सबूतों पर आधारित है।

28.3 सिमरन की 9 अप्रैल 2024 को मेडिकल जांच की गई, जिसमें उसके शरीर पर कोई बाहरी चोट नहीं मिली। इसके अलावा, उसने आंतरिक चिकित्सा परीक्षा से गुजरने से इनकार कर दिया।

29. पक्षों के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार करते हुए और अभिलेखों देखने के बाद, यह स्वीकार की जाती है कि तीन मुख्य आरोप हैं, जिनके लिए प्रस्तुत मामला दर्ज किया गया है। सबसे पहले, शादी की व्यवस्था में भव्य और अत्यधिक खर्च की प्रत्याशा जो समृद्धि और भव्यता के प्रति सामाजिक झुकाव को दर्शाती है। कई शब्दों में इस मामले को दहेज की गैरकानूनी मांग के बराबर कर दिया गया है। दूसरे, अल्फिया के साथ अर्जुन के रिश्ते के बारे में जानने के बावजूद, आवेदक इसका खुलासा करने में विफल रहे और तब भी दहेज लेने के उद्देश्य से शादी की गई थी। तीसरा, दहेज के प्रयोजनों के लिए आवेदकों द्वारा मानसिक और शारीरिक उत्पीड़न।

30. यह कानून का एक अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि अदालत की अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग संयम से किया जाना है, और उच्च न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप को स्थापित कानूनी मानकों द्वारा सीमित किया जाता है। विशेष रूप से धारा 482 भ०द०वि० के तहत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते समय अदालतों द्वारा हस्तक्षेप के पहलू से संबंधित निर्णय न्यायिक हस्तक्षेप के दायरे, सीमाओं और मार्गदर्शक सिद्धांतों को स्थापित करने के लिए विकसित हुए हैं। कुछ महत्वपूर्ण निर्णय इस प्रकार हैं:

(i) हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल: उच्चतम न्यायालय ने सात श्रेणियां निर्धारित की हैं जहां उच्च न्यायालय धारा 482 भ०द०वि० के तहत कार्यवाही को रद्द कर सकता है। यह मामला इस बात पर एक मील का पत्थर है कि अदालतें कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए जांच और कार्यवाही में किस हद तक हस्तक्षेप कर सकती हैं।

(ii) आरपी कपूर बनाम पंजाब राज्य: यह कुछ असाधारण स्थितियों में आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को मान्यता देने वाले शुरुआती मामलों में से एक है। इसने इस बात पर जोर दिया कि अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग संयम से और केवल असाधारण मामलों में ही किया जाना चाहिए जहां न्याय का हित इसकी मांग करता है।

(iii) झंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लि बनाम मोहम्मद अली अफेयर्स लिमिटेड (मो. शरफुल हक: न्यायालयों को यांत्रिक रूप से या केवल इसलिए कार्यवाही में हस्तक्षेप या रद्द नहीं करना चाहिए क्योंकि अभियुक्त के पास एक बोधगम्य बचाव है। निर्णय इस बात को रेखांकित करता है कि धारा 482 भ०द०वि० को लागू करने से पहले प्रक्रिया का स्पष्ट दुरुपयोग स्पष्ट होना चाहिए।

(iv) इंदर मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य: सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया कि अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते समय, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि ऐसी शक्तियों का उपयोग अन्याय को रोकने के लिए किया जाए न कि वैध अभियोजन को दबाने के लिए। न्यायालय ने धारा 482 भ०द०वि० को लागू करते हुए न्यायिक संयम की आवश्यकता पर जोर दिया है।

(v) ज्ञान सिंह बनाम पंजाब राज्य: उक्त निर्णय गैर-शमनीय अपराधों में भी कार्यवाही को रद्द करने की अनुमति देता है जहां विवाद मुख्य रूप से निजी प्रकृति का है और पक्षों के बीच समझौता हो गया है। न्यायालय ने विशेष रूप से वैवाहिक और वाणिज्यिक विवादों को रद्द करने के लिए अंतर्निहित शक्तियों के दायरे को बढ़ा दिया है।

31. न्यायालयों के पास न्याय सुनिश्चित करने की अंतर्निहित शक्तियां हैं, लेकिन ये शक्तियां प्रकृति में असाधारण हैं। हस्तक्षेप की अनुमति केवल प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए है; न्याय के सुरक्षित अंत; न्याय के गर्भपात से बचें। ऐसी शक्तियों को कानून के विशिष्ट प्रावधानों को ओवरराइड नहीं करना चाहिए और सावधानी और विवेकपूर्ण तरीके से प्रयोग किया जाना चाहिए। लेकिन, वैवाहिक विवादों में जहां आरोप तुच्छ या कष्टप्रद प्रतीत होते हैं या प्रतिशोध लेने के गुप्त उद्देश्य से लगाए गए होते हैं, ऐसी परिस्थितियों में, उच्च न्यायालयों का कर्तव्य है कि वे प्राथमिकी को सावधानी से और थोड़ा और बारीकी से देखें। ऐसे मामले में, अदालत के लिए यह पर्याप्त नहीं होगा कि वह केवल प्राथमिकी/शिकायत में किए गए बयानों को देखे, ताकि यह पता लगाया जा सके कि कथित अपराध का गठन करने के लिए आवश्यक अवयवों का खुलासा किया गया है या नहीं, क्योंकि तुच्छ या कष्टप्रद कार्यवाही में, अदालत का कर्तव्य है कि वह मामले के अभिलेखों से उभरने वाली कई अन्य परिस्थितियों को देखे। और यदि आवश्यक हो, तो उचित देखभाल और सावधानी के साथ, पंक्तियों के बीच पढ़ने की कोशिश करें। **अभिषेक बनाम मध्य प्रदेश राज्य** के मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा यह टिप्पणी की गई है। उक्त निर्णय के प्रस्तर-15 और 16 इस प्रकार हैं:

"15. धारा 482 भ०द०वि० के तहत आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति की रूपरेखा अच्छी तरह से परिभाषित है। वी. रवि कुमार बनाम राज्य में, इस न्यायालय ने पुष्टि की कि जहां कोई अभियुक्त उच्च न्यायालय के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का आह्वान करते हुए प्राथमिकी को रद्द करने की मांग करता है, उच्च न्यायालय के लिए शिकायत में आरोपों की शुद्धता का निर्णय लेने के लिए तथ्यात्मक क्षेत्र में प्रवेश करना पूरी तरह से अस्वीकार्य है। महाराष्ट्र राज्य 51, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने धारा 482 भ०द०वि० के तहत शक्ति के दायरे और सीमा पर विस्तार से विचार किया। यह देखा गया कि रद्द करने की शक्ति का प्रयोग संयम से, सावधानी के साथ और दुर्लभतम मामलों में, इस तरह के मानक को मृत्युदंड के संदर्भ में तैयार किए गए मानदंड के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए। यह भी देखा गया कि प्राथमिकी/शिकायत की जांच करते समय, जिसे रद्द करने की मांग की गई है, अदालत उसमें लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा के बारे में जांच नहीं कर सकती है, लेकिन यदि अदालत उचित समझती है, तो कानून द्वारा लगाए गए आत्म-संयम और विशेष रूप से इस न्यायालय द्वारा आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य और

हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल के मामले में न्यायालय को प्राथमिकी/शिकायत को रद्द करने का अधिकार होगा।

16. वैवाहिक विवादों के बीच पति के परिवार के सदस्यों द्वारा उनकी पत्नी द्वारा उनके खिलाफ शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए याचिका दायर करने के उदाहरण न तो दुर्लभ हैं और न ही हाल ही में उत्पन्न हुए हैं। इस स्कोर पर मिसालें बहुत हैं। अब हम विशेष प्रासंगिकता के कुछ निर्णयों पर ध्यान दे सकते हैं। हाल ही में, कहकशां कौसर बनाम बिहार राज्य [कहकशां कौसर बनाम बिहार राज्य में, इस न्यायालय को इसी तरह की स्थिति से निपटने का अवसर मिला था, जहां उच्च न्यायालय ने धारा 498-ए भ०द०वि० सहित विभिन्न अपराधों के लिए दर्ज प्राथमिकी को रद्द करने से इनकार कर दिया था। यह देखते हुए कि सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा जिसके निर्धारण की आवश्यकता थी, वह यह था कि क्या ससुराल वालों के खिलाफ लगाए गए आरोप सामान्य सर्वव्यापी आरोप थे जिन्हें रद्द किया जा सकता था, इस न्यायालय ने पहले के फैसलों का उल्लेख किया जिसमें धारा 498-ए भ०द०वि० के दुरुपयोग और वैवाहिक विवादों में पति के रिश्तेदारों को फंसाने की बढ़ती प्रवृत्ति पर चिंता व्यक्त की गई थी। इस न्यायालय ने कहा कि वैवाहिक विवादों के दौरान लगाए गए सामान्य सर्वव्यापी आरोपों के माध्यम से झूठे निहितार्थ, यदि अनियंत्रित छोड़ दिए जाते हैं, तो इसके परिणामस्वरूप कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। उस मामले के तथ्यों पर, यह पाया गया कि पत्नी द्वारा ससुराल वालों के खिलाफ कोई विशिष्ट आरोप नहीं लगाया गया था और यह माना गया था कि ससुराल वालों के खिलाफ स्पष्ट आरोपों के अभाव में उनके अभियोजन की अनुमति देने से कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। यह भी नोट किया गया कि एक आपराधिक मुकदमा, जिससे अंततः बरी हो जाता है, आरोपी पर गंभीर घाव डालेगा और इस तरह की कवायद को हतोत्साहित किया जाना चाहिए।

32. **मिर्जा इकबाल @ गोलू और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** के मामले में, शीर्ष न्यायालय ने लड़की की देवर और सास के संबंध में आरोप-पत्र को रद्द करने के लिए आगे बढ़ी, यह देखते हुए कि पति के परिवार के सदस्यों को आकस्मिक संदर्भ देकर आरोपी के रूप में दिखाया गया था। यह भी देखा गया है कि प्राथमिकी में बड़ी संख्या में परिवार के सदस्यों को उनके नाम का उल्लेख करके दिखाया गया है और सामग्री में उनकी सक्रिय भागीदारी का खुलासा नहीं किया गया है।

33. **महमूद अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** के मामले में, धारा 482 भ०द०वि० के अनुसार लागू कानूनी सिद्धांतों पर विचार किया गया है और शीर्ष न्यायालय ने कहा है कि जब कोई अभियुक्त उच्च न्यायालय के समक्ष आता है, तो धारा 482 भ०द०वि० के तहत अंतर्निहित शक्ति या संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण अधिकार क्षेत्र का उपयोग करता है, प्राथमिकी या आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए, अनिवार्य रूप से इस आधार पर कि इस तरह की कार्यवाही स्पष्ट रूप से तुच्छ या कष्टप्रद है या प्रतिशोध लेने के गुप्त उद्देश्य से स्थापित की गई है, तो ऐसी परिस्थितियों में, न्यायालय का कर्तव्य है कि वह प्राथमिकी को सावधानी से और थोड़ा और बारीकी से देखे।

34. मामले में उपयोजित आदेशों को लागू करते हुए, यह न्यायालय कुछ स्पष्ट विसंगतियों और विसंगतियों पर ध्यान देता है। **हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने उन मामलों की व्यापक श्रेणियां निर्धारित की थीं जिनमें धारा 482 भ०द०वि० (अब धारा 528 बी.एन.एस.एस.) के तहत अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। हाथ में मामले के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक श्रेणियां, जैसा कि **भजन लाल (उपरोक्त)** में शामिल किया गया है, इस प्रकार हैं:

"102. अध्याय XIV के तहत संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या और अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में या संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों जिसे हमने ऊपर निकाला और पुन: प्रस्तुत किया है, हमने उदाहरण के माध्यम से मामलों की निम्नलिखित श्रेणियां दी हैं जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग या तो किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालांकि किसी भी सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से चैनलाइज्ड और अनम्य दिशा-निर्देशों या कठोर सूत्रों को निर्धारित करना और असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं हो सकता है जिसमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और पूरी तरह से स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या अभियुक्त के खिलाफ मामला नहीं बनता है।
(2) जहां प्राथमिकी के साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट और अन्य सामग्री, यदि कोई हो, में आरोप संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, संहिता की धारा 155(2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश को छोड़कर, संहिता की धारा 156(1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराते हैं।
(3) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी भी अपराध के कमीशन का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते हैं।
(4) जहां, प्राथमिकी में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते हैं, लेकिन केवल एक गैर-संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, संहिता की धारा 155(2) के तहत मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी जांच की अनुमति नहीं दी जाती है।
(5) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं जिसके आधार पर कोई भी विवेकपूर्ण व्यक्ति कभी भी इस उचित निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।
(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी उपबंध में संस्था के लिए एक स्पष्ट कानूनी रोक लगाई गई है और कार्यवाही जारी है और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में कोई विशिष्ट प्रावधान है, जो पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां एक आपराधिक कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से भाग ली जाती है और/या जहां अभियुक्त से प्रतिशोध लेने के लिए एक गुप्त उद्देश्य के साथ दुर्भावनापूर्ण रूप से कार्यवाही शुरू की जाती है और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे नाराज करने की दृष्टि से की जाती है।

35. यह तय हो गया है कि धारा 482 भ०द०वि० (अब धारा 528 बी.एन.एस.एस.) के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय सामान्य प्रविधि में कोई संदेह नहीं है, न्यायालय को आरोपों की शुद्धता का परीक्षण करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन वैवाहिक विवादों से उत्पन्न होने वाले मामलों में, न्यायालय को आरोपों को उनके अंकित मूल्य पर लेने में सावधानी बरतनी चाहिए और यह जांचना चाहिए कि दुर्भावनापूर्ण आरोप कहां हैं, क्या उन आरोपों को परोक्ष उद्देश्य से लगाया गया है। पति के रिश्तेदारों की प्रार्थना पर विचार करते समय न्यायालय को बहुत सावधान रहना होगा। यह टिप्पणी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **कमल और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य** के मामले में की गई है।

36. **दारा लक्ष्मी नारायण और अन्य बनाम तेलंगाना राज्य और अन्य** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय का यह मत था कि जहाँ पति के पारिवारिक सदस्यों के विरुद्ध इस प्रकार के आरोप लगाए गए हों, जिनमें पति के विरुद्ध व्यक्तिगत रंजिश एवं दुर्भावना से प्रेरित होकर कार्यवाही प्रारंभ की गई हो, वहाँ उच्च न्यायालय ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत उपलब्ध अपनी शक्तियों का प्रयोग न करके त्रुटि की तथा पति के पारिवारिक सदस्यों के विरुद्ध आपराधिक अभियोजन को जारी रहने देकर न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने में विफल रहा। **दारा लक्ष्मी नारायण (उपरोक्त)** में निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर नीचे दिए जा रहे हैं:

"25. वैवाहिक विवाद से उत्पन्न होने वाले आपराधिक मामले में परिवार के सदस्यों के नामों का केवल संदर्भ, बिना किसी विशिष्ट आरोपों के उनकी सक्रिय भागीदारी को इंगित करते हुए शुरुआत में ही कुचल दिया जाना चाहिए। यह एक अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त तथ्य है, जो न्यायिक अनुभव से उत्पन्न होता है, कि अक्सर पति के परिवार के सभी सदस्यों को फंसाने की प्रवृत्ति होती है जब घरेलू विवाद वैवाहिक कलह से उत्पन्न होते हैं। ठोस सबूतों या विशेष आरोपों से असमर्थित इस तरह के सामान्यीकृत और व्यापक आरोप आपराधिक अभियोजन का आधार नहीं बन सकते हैं। अदालतों को ऐसे मामलों में सावधानी बरतनी चाहिए ताकि कानूनी प्रावधानों और कानूनी प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोका जा सके और निर्दोष परिवार के सदस्यों के अनावश्यक उत्पीड़न से बचा जा सके।

...

28. एक संशोधन के माध्यम से धारा 498-ए भ०द०वि० को शामिल करने का उद्देश्य एक महिला को उसके पति और उसके परिवार द्वारा दी गई क्रूरता पर अंकुश लगाना था, जिससे राज्य द्वारा त्वरित हस्तक्षेप सुनिश्चित किया जा सके। हालांकि, हाल के वर्षों में, जैसा कि देश भर में वैवाहिक विवादों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, साथ ही विवाह की संस्था के भीतर बढ़ती कलह और तनाव भी बढ़ रहा है, परिणामस्वरूप, एक पत्नी द्वारा पति और उसके परिवार के खिलाफ व्यक्तिगत प्रतिशोध को बढ़ावा देने के लिए एक उपकरण के रूप में धारा 498-ए भ०द०वि० जैसे प्रावधानों का दुरुपयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। वैवाहिक संघर्षों के दौरान

अस्पष्ट और सामान्यीकृत आरोप लगाने से, यदि जांच नहीं की जाती है, तो कानूनी प्रक्रियाओं का दुरुपयोग होगा और पत्नी और/या उसके परिवार द्वारा हाथ घुमाने की रणनीति के उपयोग के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। कभी-कभी, पत्नी की अनुचित मांगों के अनुपालन के लिए पति और उसके परिवार के खिलाफ धारा 498-ए भ०द०वि० लगाने का सहारा लिया जाता है। नतीजतन, इस न्यायालय ने बार-बार पति और उसके परिवार के खिलाफ स्पष्ट प्रथम दृष्टया मामले के अभाव में मुकदमा चलाने के खिलाफ चेतावनी दी है।

31. इसके अलावा, प्रीति गुप्ता बनाम झारखंड राज्य में इस न्यायालय ने माना कि अदालतों को इन शिकायतों से निपटने में बेहद सावधान और सतर्क रहना चाहिए और वैवाहिक मामलों से निपटने के दौरान व्यावहारिक वास्तविकताओं को ध्यान में रखना चाहिए। पति के करीबी रिश्तेदारों द्वारा उत्पीड़न के आरोप, जो अलग-अलग शहरों में रह रहे थे और कभी उस स्थान पर नहीं गए या शायद ही कभी उस स्थान पर गए जहां शिकायतकर्ता रहता था, का रंग पूरी तरह से अलग होगा। शिकायतकर्ता के आरोपों की बहुत सावधानी और सतर्कता से जांच करने की आवश्यकता है।

37. **जी.वी. राव बनाम एल.एच.वी. प्रसाद** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"12. हाल के दिनों में वैवाहिक विवादों का प्रकोप हुआ है। विवाह एक पवित्र समारोह है, जिसका मुख्य उद्देश्य युवा जोड़े को जीवन में बसने और शांति से रहने में सक्षम बनाना है। लेकिन वैवाहिक संबंध में छोटी-छोटी झड़पें अचानक भड़क उठती हैं, जो अक्सर गंभीर रूप से गंभीर रूप से होती हैं, जिसके परिणामस्वरूप जघन्य अपराध होते हैं, जिसमें परिवार के बुजुर्ग भी शामिल होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप जो लोग परामर्श दे सकते थे और मेल-मिलाप कर सकते थे, वे आपराधिक मामले में आरोपी के रूप में पेश किए जाने पर असहाय हो जाते हैं। वैवाहिक मुकदमेबाजी को प्रोत्साहित नहीं करने के लिए कई अन्य कारण हैं जिनका यहां उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है ताकि पक्ष अपनी चूक पर विचार कर सकें और कानून की अदालत में लड़ने के बजाय आपसी समझौते से अपने विवादों को सौहार्दपूर्ण ढंग से समाप्त कर सकें, जहां इसे समाप्त करने में वर्षों और वर्षों लगते हैं और उस प्रक्रिया में पक्षगण अलग-अलग अदालतों में अपने "मामलों" का पीछा करने में अपने "युवा" दिन खो देती हैं।

38. **गीता मेहरोत्रा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"19. जहां तक क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार की दलील का संबंध है, यह निस्संदेह सच है कि उच्च न्यायालय इस हद तक सही था कि क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार के प्रश्न का निर्णय विचारण न्यायालय द्वारा ही किया जा सकता था। लेकिन यह आधार धारा 482 भ०द०वि० के तहत अपीलकर्ताओं के खिलाफ शुरू की गई कार्यवाही को रद्द करने के लिए सिर्फ एक आधार था, जिसमें यह भी आरोप लगाया गया था कि दहेज निषेध अधिनियम और भ०द०वि० के अन्य प्रावधानों के तहत कार्यवाही शुरू करने के लिए अपीलकर्ताओं के खिलाफ प्रथम दृष्टया कोई मामला नहीं बनाया गया था। जहां तक अपीलकर्ताओं के मामले पर विचार करने का संबंध है, उच्च न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में विफल रहा है, जो शिकायतकर्ता के पति के केवल भाई और बहन हैं और शिकायतकर्ता द्वारा भी उन पर दहेज की मांग करने का आरोप नहीं लगाया गया है। इसलिए, उच्च न्यायालय

को इस बात पर विचार करना चाहिए था कि भले ही इलाहाबाद की निचली अदालत के पास मुकदमा चलाने का अधिकार क्षेत्र हो, फिर भी यह सवाल बना हुआ है कि क्या पति के भाई और बहन के खिलाफ मुकदमा जारी रखने के लिए उपयुक्त था और क्या यह अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा।

**** *** ****

25. हालांकि, हम सावधानी के माध्यम से यह जोड़ना उचित समझते हैं कि हमें गलत नहीं समझा जा सकता है ताकि यह अनुमान लगाया जा सके कि भले ही किसी दिए गए मामले में प्राथमिकी में नामित परिवार के सदस्यों की मिलीभगत को इंगित करने वाले प्रत्यक्ष कार्य के आरोप हों, संज्ञान अनुचित होगा, लेकिन हम इस बात पर प्रकाश डालकर जोर देना चाहते हैं कि यदि प्राथमिकी में अभियुक्तों के खिलाफ विशेष रूप से वैवाहिक कलह से उत्पन्न मामले में सह-अभियुक्त के खिलाफ विशिष्ट आरोपों का खुलासा नहीं किया गया है, तो प्राथमिकी में नामित अभियुक्त को मुकदमे से गुजरने के लिए यांत्रिक रूप से भेजने के लिए कानूनी और न्यायिक प्रक्रिया का स्पष्ट दुरुपयोग होगा, जब तक कि निश्चित रूप से प्राथमिकी विशिष्ट आरोपों का खुलासा नहीं करती है जो अदालत को रिश्तेदारों के खिलाफ कथित अपराध का संज्ञान लेने के लिए राजी करेगी मुख्य अभियुक्तों में से जो प्रथम दृष्टया शिकायतकर्ता पत्नी की शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना में लिप्त नहीं पाए गए हैं। यह उल्लेख करने के लिए बहुत सारे मामलों में निर्धारित एक अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है, कि यदि प्राथमिकी में किसी अपराध के कमीशन का खुलासा नहीं किया गया है, तो अदालत कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने वाली कार्यवाही को रद्द करने में उचित होगी। इसके साथ ही, अदालतों से अपेक्षा की जाती है कि वे रद्द करने के मामलों में सतर्क दृष्टिकोण अपनाएं, विशेष रूप से वैवाहिक विवादों के मामलों में, चाहे प्राथमिकी वास्तव में मुख्य आरोपी के रिश्तेदारों द्वारा अपराध करने का खुलासा करती हो या प्राथमिकी प्रथम दृष्टया शिकायतकर्ता के कहने पर आरोपी के पूरे परिवार को शामिल करके अतिरंजित के मामले का खुलासा करती हो। जो अपने नए वैवाहिक परिवेश में बसने के दौरान घरेलू कलह की समस्या या झड़प से उत्पन्न होने वाले अपने स्कोर को निपटाने के लिए बाहर है।

39. वैवाहिक विवादों से निपटने के दौरान न्यायालय को लगाए गए आरोपों की प्रकृति और सामग्री पर अधिक विस्तार से विचार करना होगा, यह उल्लेख करना उचित हो जाता है कि धारा 498-ए भ०द०वि० को शामिल करने का उद्देश्य एक महिला पर उसके पति और उसके ससुराल वालों द्वारा की गई निवारक क्रूरता को रोकना था, जिससे राज्य के तेजी से हस्तक्षेप की सुविधा मिलती है। हालांकि, यह भी उतना ही सच है, कि हाल के दिनों में, देश में वैवाहिक मुकदमेबाजी भी काफी बढ़ गई है और विवाह की संस्था के आसपास एक अधिक असंतोष और घर्षण है, अब, पहले से कहीं अधिक। इसके परिणामस्वरूप पति, उसके परिवार के सदस्यों और रिश्तेदारों के खिलाफ व्यक्तिगत हिसाब चुकाने के लिए धारा 498-ए भ०द०वि० जैसे प्रावधानों को एक साधन के रूप में नियोजित करने की प्रवृत्ति बढ़ी है।

40. वैवाहिक विवाद से निपटते समय सर्वोच्च न्यायालय ने **राजेश शर्मा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** के मामले में निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"14. धारा 498-ए को एक पत्नी के खिलाफ पति या उसके रिश्तेदारों के हाथों क्रूरता को दंडित करने के बोधगम्य उद्देश्य के साथ क़ानून में डाला गया था, खासकर जब इस तरह की क्रूरता के परिणामस्वरूप एक महिला की आत्महत्या या हत्या होने की संभावना थी, जैसा कि अधिनियम 46 वर्ष 1983 के उद्देश्यों और कारणों के कथन में उल्लिखित है। धारा 498-ए में "क्रूरता" शब्द में ऐसे आचरण को शामिल किया गया है जो महिलाओं को आत्महत्या करने या गंभीर चोट (मानसिक या शारीरिक) या जीवन के लिए खतरा या उत्पीड़न का कारण बन सकता है ताकि उसे गैरकानूनी मांग को पूरा करने के लिए मजबूर किया जा सके। यह गंभीर चिंता का विषय है कि विवाहित महिलाओं के उत्पीड़न के आरोप में धारा 498-ए के तहत बड़ी संख्या में मामले दर्ज किए जा रहे हैं। हम पहले ही अपराध अभिलेखों ब्यूरो के कुछ आंकड़ों का उल्लेख कर चुके हैं। इस न्यायालय ने पहले इस तथ्य पर ध्यान दिया था कि ऐसी अधिकांश शिकायतें छोटी-छोटी बातों पर ही दर्ज की जाती हैं। ऐसी कई शिकायतें वास्तविक नहीं हैं। शिकायत दर्ज करते समय, निहितार्थ और परिणामों की कल्पना नहीं की जाती है। कभी-कभी ऐसी शिकायतों से न केवल अभियुक्त बल्कि शिकायतकर्ता को भी अनावश्यक रूप से प्रताड़ित किया जाता है। गिरफ्तारी के लिए अवांछित निपटान की संभावना को बर्बाद कर सकता है।

41. **अर्नेश कुमार बनाम बिहार राज्य और अन्य** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियां दी हैं:

"4. हाल के वर्षों में वैवाहिक विवादों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। इस देश में विवाह की संस्था को बहुत सम्मानित किया जाता है। धारा 498-ए भ०द०वि० को एक महिला को उसके पति और उसके रिश्तेदारों के हाथों उत्पीड़न के खतरे से निपटने के उद्देश्य से पेश किया गया था। तथ्य यह है कि धारा 498-ए भ०द०वि० एक संज्ञेय और गैर-जमानती अपराध है, जिसने इसे उन प्रावधानों के बीच गर्व का एक संदिग्ध स्थान दिया है जो असंतुष्ट पत्नियों द्वारा ढाल के बजाय हथियार के रूप में उपयोग किए जाते हैं। परेशान करने का सबसे आसान तरीका है कि पति और उसके रिश्तेदारों को इस प्रावधान के तहत गिरफ्तार किया जाए। कई मामलों में, पतियों के बिस्तर पर पड़े दादा-दादी, दशकों से विदेश में रह रही उनकी बहनों को गिरफ्तार किया जाता है।

42. **प्रीति गुप्ता और अन्य बनाम झारखंड राज्य और अन्य** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"32. यह सामान्य अनुभव का विषय है कि धारा 498-ए भ०द०वि० के तहत इनमें से अधिकांश शिकायतें उचित विचार-विमर्श के बिना तुच्छ मुद्दों पर बहुत कम समय में दर्ज की जाती हैं। हमारे सामने बड़ी संख्या में ऐसी शिकायतें आती हैं जो वास्तविक भी नहीं हैं और तिरछी मंशा से दायर की जाती हैं। साथ ही, दहेज उत्पीड़न के वास्तविक मामलों की संख्या में तेजी से वृद्धि भी गंभीर चिंता का विषय है।

33. बार के विद्वान सदस्यों की यह सुनिश्चित करने की भारी सामाजिक जिम्मेदारी और दायित्व है कि पारिवारिक जीवन का सामाजिक ताने-बाना नष्ट या ध्वस्त न हो। उन्हें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आपराधिक शिकायतों में छोटी घटनाओं के अतिरंजित संस्करण परिलक्षित नहीं होने चाहिए। अधिकांश शिकायतें या तो उनकी सलाह पर या उनकी सहमति से दर्ज की जाती हैं। बार के विद्वान सदस्य, जो एक महान पेशे से संबंधित हैं, को अपनी महान परंपराओं को बनाए रखना चाहिए और धारा 498-ए के तहत प्रत्येक शिकायत को

एक बुनियादी मानवीय समस्या के रूप में मानना चाहिए और उस मानवीय समस्या के सौहार्दपूर्ण समाधान तक पहुंचने में पक्षकारों की मदद करने के लिए गंभीर प्रयास करना चाहिए। उन्हें अपनी क्षमताओं के अनुसार अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि समाज का सामाजिक ताना, शांति और स्थिरता बनी रहे। बार के सदस्यों को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि एक शिकायत से कई मामले सामने न आएं।

34. दुर्भाग्य से, शिकायत दर्ज करते समय शिकायतकर्ता द्वारा निहितार्थ और परिणामों की ठीक से कल्पना नहीं की जाती है कि इस तरह की शिकायत शिकायतकर्ता, आरोपी और उसके करीबी रिश्तेदारों को दुर्गम उत्पीड़न, पीड़ा और दर्द का कारण बन सकती है।

35. न्याय का अंतिम उद्देश्य सत्य का पता लगाना और दोषियों को दंडित करना और निर्दोषों की रक्षा करना है। इनमें से अधिकांश शिकायतों में सच्चाई का पता लगाना एक कठिन कार्य है। पति और उसके सभी तात्कालिक संबंधों को फंसाने की प्रवृत्ति भी असामान्य नहीं है। कई बार आपराधिक मुकदमे के समापन के बाद भी वास्तविक सच्चाई का पता लगाना मुश्किल होता है। अदालतों को इन शिकायतों से निपटने में बेहद सावधान और सतर्क रहना होगा और वैवाहिक मामलों से निपटने के दौरान व्यावहारिक वास्तविकताओं को ध्यान में रखना चाहिए। पति के करीबी रिश्तेदारों के उत्पीड़न के आरोप जो अलग-अलग शहरों में रह रहे थे और कभी उस स्थान पर नहीं गए या शायद ही कभी उस स्थान पर गए जहां शिकायतकर्ता रहता था, उसका रंग पूरी तरह से अलग होगा। शिकायतकर्ता के आरोपों की बहुत सावधानी और सतर्कता से जांच करने की आवश्यकता है।

36. अनुभव से पता चलता है कि लंबे और लंबे आपराधिक मुकदमे पक्षगण के बीच संबंधों में विद्वेष, कटुता और कड़वाहट पैदा करते हैं। यह भी सामान्य ज्ञान का विषय है कि शिकायतकर्ता द्वारा दायर मामलों में यदि पति या पति के रिश्तेदारों को कुछ दिनों के लिए भी जेल में रहना पड़ता है, तो यह एक सौहार्दपूर्ण समझौते की संभावना को पूरी तरह से बर्बाद कर देगा। दुख की प्रक्रिया बहुत लंबी और दर्दनाक होती है।

43. के**. सुब्बा राव बनाम के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने तेलंगाना राज्य** ने इस प्रकार निर्णय दिया है:

"6. ... वैवाहिक विवादों और दहेज हत्या से संबंधित अपराधों में दूर के रिश्तेदारों के खिलाफ कार्रवाई में अदालतों को सावधानी बरतनी चाहिए। पति के रिश्तेदारों को आरोपों के आधार पर तब तक शामिल नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि अपराध में उनकी संलिप्तता के विशिष्ट उदाहरण सामने नहीं आ जाते।

44. उपरोक्त निर्णयों से यह स्पष्ट है कि अदालतों ने धारा 498-ए भ०द०वि० के दुरुपयोग और सूचनाकर्ता के साथ-साथ आरोपी पर मुकदमे के दीर्घकालिक प्रभावों का विश्लेषण किए बिना, वैवाहिक विवादों में पति के रिश्तेदारों को फंसाने की प्रवृत्ति में वृद्धि पर चिंता व्यक्त की है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि शीर्ष अदालत ने अपने कई फैसलों के माध्यम से अदालतों को पति के रिश्तेदारों और ससुराल वालों के खिलाफ कार्रवाई करने की चेतावनी दी है, जब उनके खिलाफ प्रथम दृष्टया कोई मामला नहीं बनता है

45. प्रस्तुत मामले के तथ्यों की जांच करने पर, यह स्पष्ट है कि प्राथमिकी में बताए गए संस्करण में विसंगतियां और विचलन हैं, और समग्र स्पष्टता का अभाव है। पति के परिवार के सदस्यों, यानी ससुर, सास और भाभी पर लगाए गए आरोप निराधार प्रतीत होते हैं। इस न्यायालय का सुविचारित विचार है कि, अधिक से अधिक, यह पति है जिसे कथित अपराधों के लिए जवाबदेह ठहराया जा सकता है। हालांकि, उनके परिवार के सदस्यों की संलिप्तता विश्वसनीय सबूतों द्वारा समर्थित प्रतीत नहीं होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें इस मामले में अनावश्यक रूप से पति पर दबाव डालने के इरादे से फंसाया गया है, जो वर्तमान में कनाडा के नागरिक के रूप में भारत से बाहर रह रहा है।

46. प्रस्तुत मामले में, इस न्यायालय ने पाया कि प्राथमिकी के संस्करण और धारा 161 भ०द०वि० के तहत दर्ज किए गए बयानों में ससुराल वालों द्वारा उठाए गए विवाह की तैयारी के लिए खर्च के संबंध में बड़े विरोधाभास हैं। दूसरे, किसी भी आरोप की कोई फुसफुसाहट नहीं है कि लड़की के पिता को कभी धमकी दी गई थी या मजबूर किया गया था, या तो स्पष्ट रूप से या परोक्ष रूप से, रिश्तेदारों को उपहार देने, किसी और की पसंद के अनुसार विवाह स्थल का चयन करने या शादी के खर्च को वहन करने के संबंध में कथित मांगों को पूरा करने के लिए। इसके अलावा, इस बात पर कोई दावा नहीं किया गया है कि ऐसी मांगों को पूरा न करने की स्थिति में विवाह को रद्द करने की धमकी दी गई थी। इसलिए, यह उचित रूप से निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि आवेदक किसी भी तरह से दहेज की मांग करने में शामिल थे।

47. जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में लगातार कहा गया है, अदालतों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे वैवाहिक मामलों में सतर्क दृष्टिकोण अपनाएं, विशेष रूप से यह जांच करते समय कि क्या प्राथमिकी पति के परिवार के सदस्यों द्वारा संज्ञेय अपराध के कमीशन का खुलासा करती है।

48. प्रस्तुत मामले में, यह अति-निहितार्थ का मामला प्रतीत होता है, जिसमें अभियुक्त के पूरे परिवार को अनावश्यक रूप से शामिल किया गया है, संभवतः व्यक्तिगत स्कोर को निपटाने के इरादे से या अन्य गुप्त उद्देश्यों के कारण। इसी तरह के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत मामले में विशिष्ट और विश्वसनीय आरोपों के संदर्भ में सार का अभाव है।

49. लगाए गए आरोप, किसी भी वास्तविक शिकायत की तुलना में प्रतिशोध की इच्छा से अधिक प्रेरित प्रतीत होते हैं। प्राथमिकी में पति के परिवार के सदस्यों के खिलाफ किसी भी ठोस या सटीक आरोप का खुलासा नहीं किया गया है। विशिष्ट विवरणों का अभाव है, जैसे कि समय, स्थान, या जिस तरह से कथित उत्पीड़न हुआ था।

50. इसके अलावा, सूचनाकर्ता ने स्पष्टता के साथ उत्पीड़न के किसी विशेष उदाहरण का उल्लेख नहीं किया है। धारा 161 और 164 भ०द०वि० के तहत दर्ज किए गए बयान भी प्राथमिकी की तुलना में उल्लेखनीय विसंगतियां

दिखाते हैं। ये विसंगतियां अभियोजन पक्ष के मामले को और कमजोर करती हैं और संकेत देती हैं कि आरोप भरोसेमंद या विश्वसनीय नहीं भी हो सकते हैं।

51. यह एक निर्विवाद तथ्य है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 और उसके माता-पिता को पता था कि प्रतिपक्षी संख्या-2 का पति कनाडा का नागरिक है। इसके अलावा, सूचनाकर्ता का भाई भी संबंधित समय पर कनाडा में रह रहा था। इसलिए, अर्जुन सिंह और अल्फिया के बीच किसी भी संभावित संबंध का पता शादी के लिए जल्दबाजी में लेने के निर्णय से पहले लगाया जा सकता था। अर्जुन सिंह और अल्फिया के बीच संबंध के अस्तित्व का कोई सबूत नहीं है, न ही इस बात का कोई संकेत है कि आवेदकों को इस तरह के रिश्ते के बारे में पता था। यहां तक कि सूचनाकर्ता ने खुद किसी भी उदाहरण का उल्लेख नहीं किया है जहां आवेदकों ने इस तरह के रिश्ते का समर्थन या सुविधा प्रदान की हो, अगर यह बिल्कुल भी मौजूद था।

52. आवेदकों की ओर से शादी पर फिजूलखर्ची करने की कोई बाध्यता नहीं है। यह केवल ससुराल वालों द्वारा अनुरोध की जाने वाली कुछ व्यवस्थाओं के लिए प्रथागत है, जिसे कानून की स्थापित स्थिति के तहत दहेज के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है।

53. दोनों पक्षों के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत लिखित प्रस्तुतियों से, यह स्पष्ट है कि दंपति ने 16.12.2023 से 20.12.2023 तक उत्पीड़न की किसी भी घटना की रिपोर्ट किए बिना गोवा में चार दिन एक साथ बिताए। इस अवधि के बाद आवेदकों के खिलाफ किसी भी आरोप का उल्लेख नहीं किया गया है, जिसके कारण अंततः प्रस्तुत मामला दायर किया गया।

54. वैवाहिक विवादों से जुड़े मामलों में, जिन्हें प्रायः कीचड़ उछालने वाले या आपसी दुर्भावना से प्रेरित मामले कहा जा सकता है, न्याय की स्थापना हेतु न्यायपालिका तथा विधि प्रवर्तन एजेंसियों दोनों को अत्यंत सतर्कता एवं विवेक से कार्य करना आवश्यक है। जैसा कि अभिषेक (उपर्युक्त) के प्रकरण में प्रतिपादित किया गया है, ऐसे मामलों में केवल सतही आरोपों पर नहीं, बल्कि उनके पीछे छिपे वास्तविक उद्देश्य को समझने के लिए बात की तह तक जाना और आरोपों के बीच की सच्चाई को परखना अनिवार्य है।

55. जब पति के परिवार के सदस्यों के खिलाफ आरोप लगाए जाते हैं, तो यह आकलन करना महत्वपूर्ण है कि क्या ये आरोप वास्तविक हैं या केवल अस्पष्ट, सर्वव्यापी दावों में तारीखों, समय या ठोस घटनाओं जैसे विशिष्ट विवरण की कमी है। ऐसे आरोप जो प्रकृति में सामान्य हैं और स्पष्ट सबूतों द्वारा समर्थित नहीं हैं, उनकी सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए, खासकर जब प्राथमिकी और महिला के बाद के बयानों के बीच विसंगतियां हों।

अनुवादित

56. 01.07.2023 से 30.07.2023 की अवधि के बीच, जब प्रतिपक्षी संख्या-2 अपने पति के साथ एक महीने तक मौज-मस्ती कर रही थी, उसने आवेदकों के संबंध में कोई आरोप नहीं लगाया है, जिससे यह भी स्पष्ट है कि आवेदकों के अनावश्यक उत्पीड़न के लिए मामला दर्ज किया गया है जो पति के परिवार के सदस्य हैं।

57. विवेचना में खामी के मुद्दे को भी पक्षों के अधिवक्ता द्वारा छुआ गया है। इस संबंध में, आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि शुरू में कुछ धाराओं को बाहर रखा गया था और भाभी के खिलाफ आरोप निराधार पाए गए थे। हालांकि, विवेचनाधिकारी के परिवर्तन के बाद, विश्वसनीय सबूतों के अभाव में धारा 307 भ०द०वि० जैसी धाराओं को आरोपपत्र में फिर से पेश किया गया था।

58. उपरोक्त सबमिशन के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि धारा 307 भ०द०वि० को फिर से शुरू करने के लिए कोई विश्वसनीय सबूत नहीं है और प्राथमिकी के संस्करण और लड़की/सूचनाकर्ता के बयानों के अवलोकन से, इस न्यायालय ने पाया कि धारा 307 भ०द०वि० नहीं बनाई गई है क्योंकि मेडिकल रिपोर्ट भी लड़की/सूचनाकर्ता के संस्करण का समर्थन नहीं करती है। इस प्रकार, जांच में एक दोष संभावित रूप से आरोप पत्र को रद्द करने का एक आधार हो सकता है, लेकिन यह दोष की प्रकृति और गंभीरता पर निर्भर करता है। सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालयों ने विशिष्ट सिद्धांत निर्धारित किए हैं जिनके तहत धारा 482 भ०द०वि० (अब धारा 528 बी.एन.एस.एस.) के तहत आरोप पत्र को रद्द किया जा सकता है।

59. **भजन लाल (उपरोक्त)** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने उन स्थितियों को सूचीबद्ध किया है जहां प्राथमिकी या आरोप-पत्र को रद्द किया जा सकता है, हालांकि, इस टिप्पणी के साथ कि न्यायालय को अपनी शक्ति का प्रयोग शायद ही कभी और सावधानी से करना चाहिए। इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि जांच में समस्या इतनी गंभीर न हो और अभियुक्त को अनुचित रूप से नुकसान न पहुंचाए। यदि जांच पक्षपातपूर्ण या दुर्भावनापूर्ण है, तो आवेदकों को घसीटने और परेशान करने के लिए जो पति के परिवार के सदस्य हैं और अपराध का कोई स्पष्ट सबूत नहीं है, जिसमें आरोप पत्र दायर किया गया है, तो न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है और आरोप-पत्र को रद्द करने के लिए आगे बढ़ सकता है।

60. जैसा कि पहले चर्चा की गई है, आरोप-पत्र में भाभी/ननद (सिस्टर-इन-लॉ) का नाम अभियुक्त के रूप में सम्मिलित किया जाना तथा आरोप-पत्र दाखिल करते समय भारतीय दण्ड संहिता की धारा 307 के अंतर्गत अपराध को जोड़ा जाना, विवेचना में गंभीर त्रुटि को दर्शाता है, जो आरोप-पत्र को निरस्त (क्वैश) किए जाने के लिए पर्याप्त आधार प्रदान करता है।

61. प्रकरण के समस्त तथ्यों एवं परिस्थितियों, निर्भर किए गए निर्णयों, पक्षकारों के learned अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत मौखिक एवं लिखित तर्कों तथा वैवाहिक मामलों में स्थापित विधिक स्थिति पर सम्यक विचार करने के उपरांत, यह न्यायालय इस सुविचारित मत पर पहुँचा है कि पति के पारिवारिक सदस्यों, जो कि

वर्तमान आवेदक हैं, के विरुद्ध लगाए गए आरोप अपर्याप्त हैं तथा प्रथम दृष्टया आवेदकों के विरुद्ध किसी अपराध का गठन नहीं करते। इसके अलावा, वे इतने दूर और असंभव हैं कि कोई भी विवेकपूर्ण व्यक्ति यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकता है कि उनके खिलाफ कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त आधार हैं। वास्तव में, मामला हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल के मामले में निर्धारित श्रेणियों (1), (5) और (7) के अंतर्गत आता **है**, इस प्रकार, यह धारा 528 बी.एन.एस.एस. (482 भ०द०वि०) के तहत अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करने के लिए एक उपयुक्त मामला है। अतः दिनांक 29.10.2024 का आपत्तित आदेश, जिस सीमा तक आवेदक संख्या-1 को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 498-ए, 323 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अंतर्गत तथा आवेदक संख्या-2 एवं 3 को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 498-ए, 323, 307 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अंतर्गत तलब किया गया है; साथ ही दिनांक 19.08.2024 का आरोप-पत्र तथा वाद संख्या-14793 सन् 2024 की संपूर्ण कार्यवाही, जो कि केस अपराध संख्या-191 सन् 2024, थाना-हापुड़ नगर, जनपद-हापुड़ से उद्भूत है, आवेदकों के विरुद्ध, जो कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, हापुड़ के न्यायालय में लंबित है– उसे तदनुसार **खंडित** किया जाता है।

62. कहने की जरूरत नहीं है कि इस न्यायालय ने पति पर टिप्पणी नहीं की है, जो एक कनाडाई नागरिक है और, अगर वह उचित समझती है, यह प्रतिपक्षी संख्या-2 के लिए उसके खिलाफ आगे बढ़ने के लिए खुला है।

63. प्रस्तुत आवेदन तदनुसार **अनुमति** दी जाती है।

अनुवादित

(2025) 5 ILRA 1947

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.05.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या - 4171 वर्ष 2024

निर्मल कुमार फुकन ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... प्रतिपक्षी

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता: श्री अरविंद कुमार पांडे, श्री बीरेंद्र सिंह पाल, श्री गिरि राम रावत, श्री राजेश कुमार, श्री सुनील कुमार

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, श्री मुकेश कुमार पांडे, श्री सुधीर मेहरोत्रा

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 125 - पत्नी को भरण-पोषण - उच्चतम न्यायालय के निर्देशों का अनुपालन - संपत्ति और देनदारियों का शपथपत्र दाखिल करना - राजनेश बनाम राजनेश बनाम राजनेश नेहा, (2021) 2 एससीसी 324 – अदिति @ मीठी बनाम जितेश शर्मा, 2023 की आपराधिक अपील संख्या 3446 – श्रीमती पारुल त्यागी बनाम गौरव त्यागी, 2023 एससीसी ऑनलाइन सभी 2684 – परिवार न्यायालयों द्वारा लगातार गैर-अनुपालन – बार-बार परिपत्रों और न्यायिक प्रशिक्षण की अनदेखी – अंतरिम रखरखाव का निर्णय लेने में पुरानी देरी – प्रणालीगत न्यायिक जड़ता – राज्यव्यापी अनुपालन और जवाबदेही के लिए जारी किए गए निर्देश – माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष आदेश देने के लिए महानिबंधक। (प्रस्तर-4, 6, 10, 11, 13, 16, 22-24, 27-34)

अवधारित:

उदाहरण मामले के तथ्यों को छोड़ते हुए, यह पहला मामला नहीं है जिसमें इस न्यायालय ने उपरोक्त संदर्भित निर्णयों का अनुपालन नहीं देखा है। इस न्यायालय ने कहा है कि इस न्यायालय द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश पर निर्णयों के प्रसार का विचारण न्यायालय, 1948 के कामकाज पर थोड़ा प्रभाव पड़ता है। न्यायिक प्रशिक्षण और अनुसंधान संस्थान, लखनऊ द्वारा नियमित प्रशिक्षण और संवेदीकरण कार्यक्रमों के बावजूद, यह इस न्यायालय की समझ से बाहर है कि न्यायिक अधिकारी आदेशों का पालन न करने के परिणामों को समझने में विफल क्यों हैं, संवैधानिक न्यायालयों द्वारा पारित किए जाने के बावजूद, अभी किसी भी निष्कर्ष पर पहुंचना जल्दबाजी होगी। इसलिए, इस न्यायालय ने इस न्यायालय के क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार के तहत

स्थापित सभी विद्वान प्रधान न्यायाधीशों, पारिवारिक न्यायालयों को राजनेश बनाम राजनेश बनाम राजनेश के मामले में अनुपालन रिपोर्ट दायर करने का निर्देश दिया। नेहा वाद (उपरोक्त) और श्रीमती पारुल त्यागी बनाम गौरव त्यागी वाद (उपरोक्त) उनके अपने न्यायालय के सीलबंद लिफाफे में, उनकी देखरेख और नियंत्रण में काम करने वाले सभी परिवार न्यायालय के साथ। (प्रस्तर-10)

यह न्यायालय न्यायिक पक्ष पर इस तरह की रिपोर्ट बुलाने के बारे में अपनी चिंता व्यक्त करने के लिए मजबूर महसूस करता है। यह न्यायालय जानता है कि यह कार्रवाई न्यायिक अधिकारियों के मनोबल को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती है। हालांकि, उच्चतम न्यायालय के निर्देशों के प्रभावी और सुसंगत कार्यान्वयन के लिए, जहां तक फैसलों के कार्यान्वयन का संबंध है, इस न्यायालय के पास परिवार न्यायालय की निगरानी करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। परिवार न्यायालयों के विद्वान प्रधान न्यायाधीश को व्यक्तिगत रूप से कई आदेश जारी करने, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को व्यापक रूप से प्रसारित करने, और लखनऊ में जेटीआरआई द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने के साथ-साथ परिवार न्यायालय समिति के संवेदीकरण द्वारा परिवार न्यायालय संवेदीकरण पर सेमिनारों के बावजूद, इस न्यायालय ने व्यवहार में न्यूनतम प्रभाव देखा है (प्रस्तर-11)

त्वरित राहत के लिए कानून के स्पष्ट जनादेश के बावजूद, अंतरिम रखरखाव में अंतहीन देरी होती है- जिसमें अक्सर लगभग एक दशक में 70 से 90 स्थगन शामिल होते हैं। इस तरह के नियमित स्थगन उन हजारों महिलाओं की दुर्दशा का उदाहरण हैं जो सुस्त और उदासीन न्यायिक प्रणाली से फिर से पीड़ित हैं। रखरखाव कानूनों का उद्देश्य सामाजिक कल्याण कानून के रूप में है, जिसे निराश्रितता को रोकने के लिए डिज़ाइन किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय, रजनीश बनाम नेहा (उपरोक्त) ने रखरखाव आवेदनों के निपटान के लिए स्पष्ट समयसीमा निर्धारित की है, जिसमें संपत्ति और देनदारियों के हलफनामे और समयबद्ध निर्णयों की आवश्यकता को रेखांकित किया गया है। फिर भी, बुनियादी निर्वाह के लिए एक महिला की दलील अक्सर स्थगन, न्यायिक अनुपस्थिति और प्रक्रियात्मक देरी के बोझ तले दबी होती है। (प्रस्तर-27)

पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984 को वैवाहिक और पारिवारिक विवादों के शीघ्र समाधान के लिए विशेष अदालतें स्थापित करने के लिए अधिनियमित किया गया था - विशेष रूप से भरण-पोषण, हिरासत और घरेलू हिंसा के मामले, जिनके लिए तत्काल निर्णय की आवश्यकता होती है। हालांकि, खराब बुनियादी ढांचे, मामलों के भारी बैकलॉग, बार-बार स्थगन, गैर-कार्यात्मक अदालतों और अनुचित देरी के कारण अलग परिवार न्यायालय बनाने का उद्देश्य विफल प्रतीत होता है - जैसे कि एक दशक से अधिक समय तक इंतजार करना और अंतरिम रखरखाव के लिए भी 70 से 90 स्थगन का सामना करना पड़ा। (प्रस्तर-29)

राजनेश बनाम राजनेश में निर्धारित स्पष्ट और विशिष्ट निर्देशों के बावजूद नेहा (उपरोक्त) और उसके बाद आधिकारिक घोषणाओं के बाद, एक परेशान करने वाली प्रवृत्ति सामने आई है जिसमें विद्वान परिवार न्यायालय के न्यायाधीश नियमित रूप से इन अधिदेशों को लागू करने में विफल रहते हैं। न्यायाधीश अक्सर दोनों पक्षों

से "संपत्ति और देनदारियों के हलफनाम" को अनिवार्य रूप से दाखिल करने की आवश्यकता की उपेक्षा करते हैं - शपथ पत्र जिसका उद्देश्य छिपाने को रोकना, पारदर्शिता को बढ़ावा देना और निष्पक्ष रखरखाव आदेशों को सुविधाजनक बनाना है। न्यायालयों द्वारा कोई निश्चित समय-सीमा लागू नहीं की जाती है, और पर्याप्त औचित्य के बिना नियमित स्थगन दिए जाते हैं। गैर-सहकारी पार्टियों को कार्यवाही से बचने के लिए उचित लागत लगाने से दंडित नहीं किया जाता है। नतीजतन, अंतरिम रखरखाव आवेदन प्रकृति में संक्षिप्त कार्यवाही होने के बावजूद वर्षों तक अनिर्णीत रहते हैं, और उच्च न्यायालय के आदेशों का पालन न करने के लिए कोई प्रभावी या व्यावहारिक परिणाम नहीं हैं। (प्रस्तर-31)

इस मामले के तथ्यों पर लौटते हुए, किसी भी पक्ष ने संपत्ति और देनदारियों का हलफनामा दाखिल करने का विकल्प नहीं चुना है, जैसा कि रजनीश बनाम में अनिवार्य है। नेहा और अन्य (उपरोक्त), दिनांक 23.5.2024 के आदेश के अनुपालन में आय के सभी स्रोतों का खुलासा करते हुए। दिनांक 11.12.2024 की कार्यालय रिपोर्ट दर्शाती है कि प्रतिवादी को विधिवत नोटिस प्राप्त हुआ था, और उसकी ओर से वकालतनामा दायर किया गया है। अवलोकन करने पर, आक्षेपित आदेश इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की गारंटी नहीं देता है, क्योंकि रिकॉर्ड इंगित करता है कि पुनरीक्षणकर्ता-पति गेल इंडिया लिमिटेड में एक वरिष्ठ पद पर हैं। यह स्पष्ट किया जाता है कि, यदि पुनरीक्षणकर्ता पति भरण-पोषण का भुगतान करने में विफल रहता है, तो राजेश बाबू सक्सेना बनाम में निर्धारित निर्देशों के अनुसार वसूली प्रभावित होगी जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [2023 का आपराधिक पुनरीक्षण दोषपूर्ण संख्या 1789]। (प्रस्तर-35) में अवधारित किया गया है।

याचिका खारिज कर दी गई। (ई-14)

<u>उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची</u>:

1. रजनीश बनाम नेहा और अन्य, (2021) 2 एससीसी 324
2. रजनीश बनाम नेहा मामला (उपरोक्त) और श्रीमती पारुल त्यागी बनाम गौरव त्यागी, (2023) एससीसी ऑनलाइन सभी 2684
3. 2023 की आपराधिक अपील संख्या 3446 में, एसएलपी सीआरएल संख्या-11954 से उद्भूत हुई, जिसका शीर्षक अदिति @ मीठी बनाम जितेश शर्मा है।
4. राजेश बाबू सक्सेना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [2023 का आपराधिक पुनरीक्षण दोषपूर्ण संख्या 1789]

<u>(माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा पारित)</u>

1. पुनरीक्षणकर्ता-पति, श्री सुधीर मेहरोत्रा, राज्य-प्रतिवादी के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

अनुवादित

2. पुनरीक्षणकर्ता पति ने धारा 125 द०प्र०स० के तहत 2023 के मामले संख्या 172 में विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, औरैया द्वारा पारित दिनांक 19.01.2024 के आक्षेपित आदेश की वैधता पर हमला करते हुए प्रस्तुत पुनरीक्षण दायर किया है।

3. पुनरीक्षणकर्ता-पति और प्रतिवादी-पत्नी दोनों को राजनेश बनाम राजनेश बनाम संपत्ति और देनदारियों का एक हलफनामा दायर करने का निर्देश दिया गया था। नेहा और अन्य, आय के सभी स्रोतों का खुलासा करते हुए।

4. प्रारंभ में, अन्य तर्कों के अतिरिक्त, पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने यह प्रतिपादित किया कि प्रतिवादी पत्नी द्वारा आरंभ की गई संपूर्ण कार्यवाही तथा माननीय प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, औरैया द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया, राजनेश बनाम नेहा प्रकरण (उपर्युक्त) तथा श्रीमती पारुल त्यागी बनाम गौरव त्यागी में प्रतिपादित निर्णयों के प्रतिकूल है। अधिवक्ता ने आगे जोर देकर कहा कि परिवार न्यायालय के विद्वान प्रधान न्यायाधीश इन निर्णयों में उल्लिखित अनिवार्य प्रक्रियाओं का पालन करने में विफल रहे, जिससे पूरी कार्यवाही प्रक्रियात्मक रूप से त्रुटिपूर्ण और कानूनी रूप से अस्थिर हो गई।

5. अपर शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि परिवार न्यायालय के विद्वान प्रधान न्यायाधीश ने न केवल राजनेश बनाम राज्य उच्चतम न्यायालय के जनादेश की जानबूझकर अवहेलना करके अपने ही न्यायालय की अवमानना की है। नेहा वाद (उपरोक्त) और इस न्यायालय ने श्रीमती पारुल त्यागी बनाम गौरव त्यागी वाद (उपरोक्त) में भी न्यायिक औचित्य को कम किया है। यह कानून के शासन के खिलाफ है। अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे कहा कि अनुपालन और जागरूकता सुनिश्चित करने के लिए दोनों निर्णयों को उत्तर प्रदेश के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के भीतर सभी परिवार न्यायालयों में व्यापक रूप से प्रसारित किया गया था, फिर भी उनका पालन नहीं किया गया है।

6. यह न्यायालय, भारत के सर्वोच्च न्यायालय के महासचिव द्वारा प्रेषित दिनांक 10.11.2023 के पत्र की प्राप्ति पर, जो कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 06.11.2023 के निर्देश के अनुपालन में प्रेषित किया गया था, राजनेश बनाम नेहा प्रकरण (उपर्युक्त) का पुनः परिसंचारण किया गया। उक्त निर्णय को जागरूकता तथा अनुपालन सुनिश्चित करने हेतु समस्त जिला न्यायालयों/परिवार न्यायालयों/न्यायिक मजिस्ट्रेट न्यायालयों की वेबसाइटों पर भी प्रदर्शित किया जाएगा।

7. तदनुसार, न्यायालय के नियम, 1952 के अध्याय III के नियम 4(सी)(10) के प्रावधान के अनुसार, इस न्यायालय की प्रशासनिक समिति ने एक परिपत्र और रजनीश बनाम राजनेश बनाम राजनेश की एक प्रति जारी की। नेहा वाद (उपरोक्त) और अदिति @ मीठी बनाम जितेश शर्मा वाद (उपरोक्त) को सभी जिला न्यायाधीशों, परिवार न्यायालयों के प्रधान न्यायाधीशों, एम.ए.सी.टी., एल.ए.आर.आर.ए. के पीठासीन अधिकारियों और

वाणिज्यिक न्यायालयों को सूचना और आवश्यक अनुपालन के लिए उनके नियंत्रण में काम करने वाले सभी न्यायिक अधिकारियों के बीच आगे के प्रसार के लिए भेजा गया था।

8. पूर्वगामी चर्चाओं के आलोक में, विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, औरैया को सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा पारित उपर्युक्त निर्णयों के अनुपालन के बारे में एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था; विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, औरैया को भी यह स्पष्ट करने का निदेश दिया गया था कि रजनीश बनाम औरैया के अधिदेश को क्यों लागू किया गया है। धारा 125 द०प्र०स० के तहत 2023 के वाद संख्या-172 पर फैसला करते समय नेहा वाद (उपरोक्त) और श्रीमती पारुल त्यागी बनाम गौरव त्यागी वाद (उपरोक्त) का पालन नहीं किया गया था; और आगे धारा 125 द०प्र०स० के तहत आवेदन में पारित पिछले 25 निर्णयों/आदेशों की एक प्रति दाखिल करने का निर्देश दिया गया था, यह कहने की जरूरत नहीं है कि आदेश या तो अंतरिम भरण-पोषण या भरण-पोषण के अंतिम निर्णय को एक सीलबंद लिफाफे में इस न्यायालय के महानिबंधक के माध्यम से तय करेंगे।

9. इस न्यायालय के आदेश को ध्यान में रखते हुए, न्यायाधीश ने 25 निर्णयों की प्रतियां प्रस्तुत कीं। अवलोकन करने पर, निर्णय संतोषजनक पाए गए। ऐसा प्रतीत होता है कि, इस न्यायालय के आदेश के बाद, न्यायाधीश पर औचित्य की भावना प्रबल हो सकती है।

10. उदाहरण मामले के तथ्यों को अलग करते हुए, यह पहला मामला नहीं है जिसमें इस न्यायालय ने उपर्युक्त निर्णयों का अनुपालन नहीं देखा है। इस न्यायालय ने कहा है कि न्यायिक प्रशिक्षण और अनुसंधान संस्थान, लखनऊ द्वारा नियमित प्रशिक्षण और संवेदीकरण कार्यक्रमों के बावजूद, इस न्यायालय द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश पर निर्णयों के प्रसार का विचारण न्यायालयों के कामकाज पर थोड़ा प्रभाव पड़ता है, यह इस न्यायालय की समझ से बाहर है कि न्यायिक अधिकारी आदेशों का पालन न करने के परिणामों को समझने में विफल क्यों हैं। संवैधानिक न्यायालयों द्वारा पारित किए जाने के बावजूद, अभी किसी भी निष्कर्ष पर पहुंचना जल्दबाजी होगी। इसलिए, इस न्यायालय ने इस न्यायालय के क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार के तहत स्थापित सभी विद्वान प्रधान न्यायाधीशों, पारिवारिक न्यायालयों को राजनेश बनाम राज्य के मामले में अनुपालन रिपोर्ट दायर करने का निर्देश दिया। नेहा वाद (उपरोक्त) और श्रीमती पारुल त्यागी बनाम गौरव त्यागी वाद (उपरोक्त) उनके अपने न्यायालय के सीलबंद लिफाफे में, उनकी देखरेख और नियंत्रण में काम करने वाले सभी परिवार न्यायालय के साथ।

11. यह न्यायालय न्यायिक पक्ष पर इस तरह की रिपोर्ट बुलाने के बारे में अपनी चिंता व्यक्त करने के लिए मजबूर महसूस करता है। यह न्यायालय जानता है कि यह कार्रवाई न्यायिक अधिकारियों के मनोबल को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती है। हालांकि, उच्चतम न्यायालय के निर्देशों के प्रभावी और सुसंगत कार्यान्वयन के लिए, जहां तक फैसलों के कार्यान्वयन का संबंध है, इस न्यायालय के पास परिवार न्यायालय की निगरानी करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। परिवार न्यायालयों के विद्वान प्रधान न्यायाधीश को

व्यक्तिगत रूप से कई आदेश जारी करने, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसलों को व्यापक रूप से प्रसारित करने और लखनऊ में जेटीआरआई द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने के बावजूद, साथ ही 5 सभी द्वारा परिवार न्यायालय संवेदीकरण पर सेमिनार आयोजित किए और परिवार न्यायालय समिति को संवेदनशील बनाने के मामले में इस न्यायालय ने व्यवहार में न्यूनतम प्रभाव देखा है।

12. निबंधक (अनुपालन) को आदेश की एक प्रति उत्तर प्रदेश के सभी प्रधान न्यायाधीशों, परिवार न्यायालय को प्रभावी और त्वरित अनुपालन के लिए प्रेषित करने का निर्देश दिया गया था। रिपोर्ट विद्वान महानिबंधक के माध्यम से इस न्यायालय को एक सीलबंद लिफाफे में प्रस्तुत की जाएगी।

13. दिनांक 23.05.2024 के आदेश के अनुपालन में, 74 परिवार न्यायालयों में से 48 विद्वान प्रधान परिवार न्यायालय के न्यायाधीशों के कार्यालय से अनुपालन रिपोर्ट प्राप्त हुई है। सभी रिपोर्टों का सार कमोबेश एक ही है कि विद्वान परिवार न्यायालय राजनेश बनाम राजनेश बनाम राजनेश के अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए प्रयास कर रहे हैं। नेहा और अन्य (उपरोक्त), अदिति @ मीठी बनाम जितेश शर्मा (उपरोक्त) और श्रीमती पारुल त्यागी बनाम गौरव त्यागी (उपरोक्त)। अनुपालन रिपोर्टें यहां ऊपर उल्लिखित निर्णयों के अनुरूप नहीं पाई गई हैं।

14. इस न्यायालय के महानिबंधक ने फिर से निर्देश दिया कि अनुपालन रिपोर्ट यहां ऊपर उल्लिखित निर्णयों की शर्तों का अनुपालन सुनिश्चित करेगी, दोनों पत्र और भावना में, विशेष रूप से श्रीमती पारुल त्यागी मामले (उपरोक्त) के प्रस्तर-87 से 90 में। इसमें उत्तर प्रदेश के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के भीतर स्थित सभी विद्वान परिवार न्यायालयों से सारणीबद्ध रूप में धारा 125 द०प्र०स० के तहत निपटान के लिए लंबित प्रत्येक मामले का विवरण निम्नलिखित प्रारूप में शामिल होगा। एस.आर.एन.ओ. आवेदन दाखिल करने की तिथि कई बार मामले की संख्या अंतरिम रखरखाव आदेश की तिथि, यदि अंतिम रखरखाव आदेश की तिथि, यदि धारा 125 द०प्र०स० के तहत हमें राज्य का पता चलता है। किसी भी मामले में किसी भी मामले में सूचीबद्ध किया गया है ------- ------ --- -------- --------- -----

15. पूर्ववर्ती अवसरों पर भी, इस न्यायालय ने अपने प्रादेशिक अधिकार-क्षेत्र के अंतर्गत न्यायिक कार्य संपादित कर रहे समस्त माननीय प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालयों को निर्देशित किया था कि वे **राजनेश बनाम नेहा एवं अन्य प्रकरण (उपर्युक्त) तथा श्रीमती पारुल त्यागी बनाम गौरव त्यागी** प्रकरण (उपर्युक्त) के परिप्रेक्ष्य में अनुपालन प्रतिवेदन प्रस्तुत करें।

16. दिनांक 23.05.2024 के आदेश के अनुपालन से असंतुष्ट होकर, इस न्यायालय ने 10.06.2024 को एक नया आदेश जारी किया और इस न्यायालय के महानिबंधक को निर्देश दिया कि वह यहां उल्लिखित निर्णयों की शर्तों का अक्षरश: अनुपालन सुनिश्चित करें, विशेष रूप से श्रीमती पारुल तायगी के मामले (उपरोक्त) के प्रस्तर-87 से 90 को सारणीबद्ध रूप में जैसा कि दिनांक 10.06.2024 के निर्णय में विस्तृत है।

17. दिनांक 06.07.2024 की कार्यालय रिपोर्ट के अवलोकन से, यह पता चला कि 74 विद्वान प्रधान न्यायाधीशों, पारिवारिक न्यायालयों में से 47 ने दिनांक 10.06.2024 के आदेश के अनुपालन में रिकॉर्ड भेजे, दो को छोड़कर, जिन्होंने दिनांक 10.06.2024 के आदेश की शर्तों का पालन करने के लिए समय मांगा, संवैधानिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश का पालन करने के लिए समय मांगने की भी जहमत नहीं उठाई। यह अपेक्षा की गई थी कि परिवार न्यायालयों के सभी विद्वान प्रधान न्यायाधीश प्रत्येक न्यायालय के क्रमबद्ध रूप से अलग-अलग एक रिपोर्ट भेजेंगे, लेकिन वही दृष्टिकोण नहीं अपनाया गया है, जिसके कारण वे सबसे अच्छी तरह से जानते हैं। उनके कार्य-निष्पादन, उद्देश्य के प्रति उनकी संवेदनशीलता तथा विधि के शासन के प्रति उनके सम्मान के संबंध में इस अवस्था में कोई टिप्पणी करना समयपूर्व होगा।

18. इस पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय ने उत्तर प्रदेश के परिवार न्यायालयों के सभी प्रधान न्यायाधीशों को फिर से निर्देश दिया कि वे दिनांक 10.6.2024 के आदेश की शर्तों का अक्षरश: पालन करें। यह भी निर्देश दिया गया कि परिवार न्यायालयों के विद्वान प्रधान न्यायाधीश यह सुनिश्चित करेंगे कि विवरण एक क्रमबद्ध (नवीनतम मामले के लिए सबसे पुराने मामले) में अदालत-वार अलग से भेजे जाएं।

19. न्यायालय के एमिकस क्यूरी / न्याय मित्र श्री मेहरोत्रा ने सुझाव दिया कि संबंधित प्रमुख न्यायाधीशों, परिवार न्यायालयों से स्पष्टीकरण मांगा जाए, जिन्हें पर्याप्त समय होने के बावजूद अभी भी दिनांक 10.06.2024 के आदेश की शर्तों का पालन करने की आवश्यकता है। इस न्यायालय ने सोचा कि पहली बार में स्पष्टीकरण मांगने से रिकॉर्ड मांगने का उद्देश्य पूरा नहीं होगा। इसलिए, सभी विद्वान प्रधान न्यायाधीशों, परिवार न्यायालयों को संवैधानिक जनादेश को पूरा करने के लिए अपने कर्तव्य, भूमिका और उस कुर्सी के प्रति सौंपी गई जिम्मेदारी के बारे में सोचने और आत्मनिरीक्षण करने और दिनांक 10.06.2024 के आदेश की शर्तों का पालन करने का एक और अवसर दिया गया।

20. संक्षेप में, विद्वान पारिवारिक न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा प्रस्तुत अनुभवजन्य डेटा को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है: [सबसे पुराने से अगस्त 2024 तक]

(1) जिला आगरा से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण कुटुम्ब न्यायालय के विद्वान प्रधान न्यायाधीश द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में 1433 मामले लंबित हैं। इनमें से 84 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 1 मामले पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला 2013 का है।

(2) जिला अलीगढ़ से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 1019 मामले लंबित हैं। इनमें से 93 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 110 मामलों

पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। गौरतलब है कि साल 2014, 2015 और 2016 का एक-एक मामला लंबित है। वर्ष 2017 में दर्ज किए गए एक मामले को औसतन लगभग 70 बार सूचीबद्ध किया गया है। इसी तरह, वर्ष 2022 में दर्ज एक मामले को लगभग 20 बार सूचीबद्ध किया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2015 का है।

(2) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-01 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 460 मामले लंबित हैं। इनमें से 14 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 28 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। वर्ष 2017 में दर्ज किए गए एक मामले को औसतन लगभग 80 बार सूचीबद्ध किया गया है। इसी तरह, वर्ष 2022 में दर्ज एक मामले को लगभग 20 बार सूचीबद्ध किया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2017 का है।

(3) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-02 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 495 मामले लंबित हैं। इनमें से 63 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 46 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2017 का है।

(4) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-03 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 580 मामले लंबित हैं। इनमें से 51 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 81 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2017 का है।

(5) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-04 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 387 मामले लंबित हैं। इनमें से 59 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 50 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया जा चुका है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2017 का है।

(3) जिला अम्बेडकर नगर से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण परिवार न्यायालय के विद्वान प्रधान न्यायाधीश द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में 1273 मामले लंबित हैं। इनमें से 14 को अंतरिम भरण-पोषण दिया गया है, और 263 पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला 2018 का है।

(4) जिला अमरोहा से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण परिवार न्यायालय के विद्वान प्रधान न्यायाधीश द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में 937 मामले लंबित हैं। इनमें से न तो अंतरिम भरण-पोषण दिया गया है और न ही किसी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला 2018 का है।

(5) जिला आजमगढ़ से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रभारी प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 998 मामले लंबित हैं। इनमें से 104 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2015 का है।

(2) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-01 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 770 मामले लंबित हैं। इनमें से 104 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2014 का है।

(3) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-02 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 813 मामले लंबित हैं। इनमें से 126 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2015 का है।

(4) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-03 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 633 मामले लंबित हैं। इनमें से 42 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2017 का है।

(6) जिला बागपत से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 901 मामले लंबित हैं। इनमें से 134 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 38 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2013 का है।

(7) जिला बहराइच से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 1071 मामले लंबित हैं। इनमें से 110 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2012 का है।

(8) जिला बलरामपुर से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 851 मामले लंबित हैं। इनमें से 109 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 18 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2010 का है।

(9) जिला बांदा से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 1202 मामले लंबित हैं। इनमें से 28 मामलों में अंतरिम

भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2009 का है।

(10) बाराबंकी जिले से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 441 मामले लंबित हैं। इनमें से 46 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2018 का है।

(2) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-1 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 544 मामले लंबित हैं। इनमें से 44 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2018 का है।

(3) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-2 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 773 मामले लंबित हैं। इनमें से 49 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2014 का है।

(11) जिला बरेली से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 500 मामले लंबित हैं। इनमें से 90 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 1 मामले पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2018 का है।

(2) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-1 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 649 मामले लंबित हैं। इनमें से 233 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2015 का है।

(3) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-2 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 836 मामले लंबित हैं। इनमें से 127 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2011 का है।

(4) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-3 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 549 मामले लंबित हैं। इनमें से 69 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2017 का है।

अनुपालित

(12) जिला बस्ती से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 649 मामले लंबित हैं। इनमें से 9 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 1 मामले पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2016 का है।

(2) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 735 मामले लंबित हैं। इनमें से 53 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 1 मामले पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2015 का है।

13) बिजनौर जिले से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 731 मामले लंबित हैं। इनमें से 16 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 4 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2016 का है।

(2) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 606 मामले लंबित हैं। इनमें से 17 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 16 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया जा चुका है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2017 का है।

(14) जिला बदायूं से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण (1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 763 मामले लंबित हैं। इन मामलों में से न तो अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और न ही किसी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2015 का है।

(2) अपर प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 823 मामले लंबित हैं। इन मामलों में से न तो अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और न ही किसी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2018 का है।

(15) जिला चंदौली से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 1048 मामले लंबित हैं। इनमें से 162 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2017 का है।

(16) जिला चित्रकूट से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 396 मामले लंबित हैं। इनमें से 81 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2019 का है।

(17) जिला देवरिया से प्राप्त अनुपालन प्रतिवेदन का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 774 मामले लंबित हैं। इनमें से 34 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 2 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2022 का है।

(2) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-2 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 100 मामले लंबित हैं। इनमें से 15 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2005 का है।

(18) जिला एटा से अनुपालन रिपोर्ट का एक संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 1162 मामले लंबित हैं। इनमें से 4 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 133 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2013 का है।

(19) जिला अयोध्या से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि कुल 914 मामले वर्तमान में लंबित हैं। इनमें से 81 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2012 का है।

(20) जिला फर्रुखाबाद से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण (1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 670 मामले लंबित हैं। इनमें से 14 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 38 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2018 का है। (2) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-1 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 536 मामले लंबित हैं। इनमें से 15 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 51 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2012 का है।

अनुपालित

(21) जिला फतेहपुर से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 1207 मामले लंबित हैं। इनमें से 9 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2017 का है।

(22) फिरोजाबाद जिले से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 553 मामले लंबित हैं। इनमें से 21 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2015 का है।

(2) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 648 मामले लंबित हैं। इनमें से 73 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2014 का है।

(3) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय-2 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 919 मामले लंबित हैं। इनमें से 45 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2017 का है।

(23) जिला हरदोई से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 731 मामले लंबित हैं। इनमें से 14 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2014 का है।

(2) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय-1 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 457 मामले लंबित हैं। इनमें से 6 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2014 का है।

(3) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय-2 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 526 मामले लंबित हैं। इनमें से 21 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2007 का है।

(24) जिला हाथरस से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि कुल 1077 मामले 5 हैं। इनमें से 87 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2019 का है।

(25) जिला जौनपुर से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय-1 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 603 मामले लंबित हैं। इनमें से 7 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 3 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2013 का है।

(2) परिवार न्यायालय-3 के अपर प्रधान न्यायाधीश द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 635 मामले लंबित हैं। इनमें से 13 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 47 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2019 का है।

(26) जिला झांसी से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 43 मामले लंबित हैं। इनमें से 21 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2023 का है।

(27) जिला कन्नौज से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 1884 मामले लंबित हैं। इनमें से 135 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 484 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2014 का है।

(28) जिला कानपुर नगर से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 3044 मामले लंबित हैं। इनमें से 325 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 40 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2000 का है।

(29) जिला कासगंज से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 760 मामले लंबित हैं। इनमें से 22 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 43 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2018 का है।

अनुपस्थित

(30) जिला कौशाम्बी से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 1232 मामले लंबित हैं। इनमें से 45 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 72 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया जा चुका है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2014 का है।

(31) जिला ललितपुर से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 880 मामले लंबित हैं। इनमें से 321 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2019 का है।

(32) जिला लखनऊ से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 650 मामले लंबित हैं। इनमें से 145 मामलों में, अंतिम रूप से निर्णय दिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2017 का है।

(2) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय-1 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 515 मामले लंबित हैं। इनमें से 375 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 23 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2009 का है।

(3) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय-2 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 508 मामले लंबित हैं। इनमें से 220 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 18 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2012 का है।

(4) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय-3 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 479 मामले लंबित हैं। इनमें से 149 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 3 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2012 का है।

(5) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय-4 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 499 मामले लंबित हैं। इनमें से 318 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और सभी 499 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया जा चुका है।

(6) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय-5 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 546 मामले लंबित हैं। इनमें से 200 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2013 का है।

(7) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय-6 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 500 मामले लंबित हैं। इनमें से 227 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 17 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2013 का है।

(8) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय-7 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 700 मामले लंबित हैं। इनमें से 232 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 14 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2013 का है।

(33) जिला महाराजगंज से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 2416 मामले लंबित हैं। इनमें से 22 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2014 का है।

(34) जिला महोबा से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 583 मामले लंबित हैं। इनमें से 178 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 9 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2019 का है।

(35) जिला मैनपुरी से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय-I द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 976 मामले लंबित हैं। इनमें से 12 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2016 का है।

(2) अपर प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि कुल 585 मामले हैं। निर्मल कुमार फुकान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1959 वर्तमान में लंबित इनमें से 25 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2014 का है।

(36) मेरठ जिले से अनुपालन रिपोर्ट का एक संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 1437 मामले लंबित हैं। इनमें से 25 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 62 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2017 का है।

(2) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-1 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में 1067 मामले लंबित हैं। इनमें से 93 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 467 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला 2014 का है।

(3) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-2 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 923 मामले लंबित हैं। इनमें से 20 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 182 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2012 का है।

(37) जिला मिर्जापुर से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 1553 मामले लंबित हैं। इनमें से 62 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2003 का है।

(38) मुरादाबाद जिले से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 631 मामले लंबित हैं। इनमें से 23 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 28 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2019 का है।

(2) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 587 मामले लंबित हैं। इनमें से 46 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 9 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2017 का है।

(39) जिला पीलीभीत से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रभारी प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 887 मामले लंबित हैं। इनमें से 16 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2020 का है।

(2) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 439 मामले लंबित हैं। इनमें से 28 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2020 का है।

(40) जिला प्रतापगढ़ से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-1 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 901 मामले लंबित हैं। इनमें से 8 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2021 का है।

(2) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-2 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि कुल 429 मामले वर्तमान में लंबित हैं। इनमें से 20 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2010 का है।

(41) प्रयागराज जिले से प्राप्त अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 42 मामले लंबित हैं। इनमें से सभी 42 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान कर दिया गया है और सभी मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय ले लिया गया है।

(2) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-2 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 56 मामले लंबित हैं। इनमें से सभी 56 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान कर दिया गया है और सभी मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है।

(3) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-3 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 869 मामले लंबित हैं। इनमें से 46 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2007 का है।

(4) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय-4 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 920 मामले लंबित हैं। इनमें से 23 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2012 का है।

(5) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय-5 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 692 मामले लंबित हैं। इनमें से 28 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2015 का है।

(42) जिला रायबरेली से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रभारी प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 728 मामले लंबित हैं। इनमें से 36 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2019 का है।

(2) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या 1 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 506 मामले लंबित हैं। इनमें से 27 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2011 का है।

(3) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या 2 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 564 मामले लंबित हैं। इनमें से 18 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2017 का है।

(43) जिला कानपुर देहात से प्राप्त अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 729 मामले लंबित हैं। इनमें से 46 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 15 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2017 का है।

(2) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 1275 मामले लंबित हैं। इनमें से 47 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 65 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया जा चुका है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2015 का है।

(44) जिला रामपुर से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 759 मामले लंबित हैं। इनमें से 38 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 56 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2017 का है।

(45) सहारनपुर जिले से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 1057 मामले लंबित हैं। इनमें से 314 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 18 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2021 का है।

(2) अपर प्रधान न्यायाधीश-I, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 582 मामले लंबित हैं। इनमें से 174 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 5 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2013 का है।

(46) चंदौसी में जिला संभल से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 644 मामले लंबित हैं। इनमें से 17 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2020 का है।

(47) जिला संत कबीर नगर से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 387 मामले लंबित हैं। इनमें से 14 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2015 का है।

(48) जिला शाहजहांपुर से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 1087 मामले लंबित हैं। इनमें से 42 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2014 का है।

(2) अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 372 मामले लंबित हैं। इनमें से 76 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2014 का है।

(49) जिला श्रावस्ती से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रभारी प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 637 मामले लंबित हैं। इनमें से 81 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2015 का है।

अनुवादित

(50) जिला सिद्धार्थ नगर से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 387 मामले लंबित हैं। इनमें से 14 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2015 का है।

(51) जिला सीतापुर से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 549 मामले लंबित हैं। इनमें से 41 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 45 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2021 का है।

(2) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-1 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 609 मामले लंबित हैं। इनमें से 33 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 14 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2018 का है।

(3) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-2 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 618 मामले लंबित हैं। इनमें से 36 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 44 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2019 का है।

(52) जिला सोनभद्र से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रभारी प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 826 मामले लंबित हैं। इनमें से 95 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और किसी भी मामले पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2018 का है।

(53) जिला सुल्तानपुर से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 868 मामले लंबित हैं। इनमें से 34 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 17 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2019 का है।

(54) जिला वाराणसी से अनुपालन रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण

(1) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 1328 मामले लंबित हैं। इनमें से 49 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 35 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2013 का है।

अनुवादित

(2) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-1 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 533 मामले लंबित हैं। इनमें से 55 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 25 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2003 का है।

(3) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-2 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि वर्तमान में कुल 249 मामले लंबित हैं। इनमें से 33 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 10 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2004 का है।

(4) विद्वान प्रभारी अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय संख्या-3 द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में कुल 421 मामले लंबित हैं। इनमें से 44 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया है और 14 मामलों पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है। सबसे पुराना लंबित मामला वर्ष 2002 का है। 21. इस न्यायालय के महानिबंधक द्वारा बार-बार याद दिलाने पर, परिवार न्यायालयों के सभी विद्वान प्रधान न्यायाधीशों ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की; हालांकि, इसने दिनांक 08.07.2024 के आदेश का पालन नहीं किया, जिसमें विशेष रूप से निर्देश दिया गया था कि विद्वान प्रधान न्यायाधीश यह सुनिश्चित करेंगे कि विवरण न्यायालय-वार, अलग से और क्रमिक रूप से प्रस्तुत किए जाएं - सबसे पुराने मामले से लेकर नवीनतम तक। विद्वान प्रधान न्यायाधीशों, परिवार न्यायालय ने उपरोक्त निर्देशों में अनुपालन रिपोर्ट दायर की है, जबकि बाकी लोगों को बिना क्रमबद्धता और निर्देश के विवरण के अपनी सुविधा के अनुसार रिपोर्ट दाखिल करने का विकल्प चुना गया है।

22. संबंधित परिवार न्यायाधीशों द्वारा प्रस्तुत रिपोर्टों की समग्र समीक्षा से संकेत मिलता है कि धारा 125 द०प्र०स० के तहत कुछ मामले 2013 और 2014 की शुरुआत से लंबित हैं। हालांकि ऐसे मामले संख्या में कम हैं, लेकिन यह ध्यान रखना उचित है कि कानून धारा 125 द०प्र०स० के तहत आवेदनों को संक्षिप्त कार्यवाही के माध्यम से शीघ्रता से निपटाने का आदेश देता है। इसके अलावा, वर्ष 2017, 2018 और 2019 में दायर किए गए मामलों को औसतन 60 से 80 बार सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया गया है। यहां तक कि 90 से अधिक बार मामलों को सूचीबद्ध किया गया है। न्यायालय ने आगे कहा कि, मेरठ, आगरा, इलाहाबाद और महाराजगंज में प्रधान न्यायाधीशों, परिवार न्यायालयों के समक्ष धारा 125 द०प्र०स० के तहत औसतन 1500-2000 मामले लंबित हैं, जबकि अतिरिक्त न्यायाधीशों, परिवार न्यायालयों के समक्ष लंबित ऐसे मामलों की संख्या 500-600 के बीच है।

23. यह आगे पता चला है कि, ज्यादातर मामलों में, साल में लगभग 12 से 15 बार तारीखें दी जा रही हैं, फिर भी अंतरिम रखरखाव आदेश शायद ही कभी पारित किए जाते हैं। उदाहरण के लिए, विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, आगरा ने 1,433 लंबित मामलों में से केवल 84 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया, और 2013-2014 के बीच केवल एक मामले का फैसला किया गया। इसी तरह, अलीगढ़ में, 1,019 मामलों में से, केवल 93 मामलों में अंतरिम भरण-पोषण दिया गया था, और 2014-2024 के बीच केवल 110

मामलों का अंतिम रूप से निपटारा किया गया था। अंबेडकर नगर में, परिवार न्यायालय के विद्वान प्रधान न्यायाधीश ने 1,273 मामलों में से केवल 14 में अंतरिम गुजारा भत्ता दिया, और इसी अवधि के दौरान 263 मामलों का अंतिम निर्णय लिया गया।

23.1 अमरोहा में, 2018-2024 के बीच 937 मामले दर्ज किए गए; हालांकि, विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय ने न तो अंतरिम गुजारा भत्ता दिया और न ही इनमें से किसी भी मामले का फैसला किया। इसके विपरीत, लखनऊ में, अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय-4 के समक्ष 499 मामले स्थापित किए गए थे, और उनमें से 318 में अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया था। विशेष रूप से, इन सभी मामलों को अंततः निपटा दिया गया था।

23.2 अधिकांश अन्य जिलों में स्थिति मोटे तौर पर समान है। ऐसा प्रतीत होता है कि पारिवारिक न्यायालयों में अंतरिम भरण-पोषण देने में अभ्यास की प्रणालीगत कमी है। इसके बजाय, मामलों को बार-बार स्थगित कर दिया जाता है, और अंतिम निर्णय केवल तभी दिए जाते हैं जब परिस्थितियां संयोग से अनुमति देती हैं, न कि एक संरचित या समयबद्ध न्यायिक प्रक्रिया के माध्यम से।

23.3 यह न्यायालय यह समझने में असमर्थ है कि समय-समय पर स्पष्ट और विशिष्ट निर्देश दिए जाने के बावजूद, विद्वान परिवार न्यायालय संवैधानिक न्यायालयों द्वारा जारी निर्देशों का पालन करने में लगातार विफल क्यों रहते हैं। रजनीश बनाम नेहा और एक अन्य (उपरोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने व्यापक दिशा-निर्देश प्रदान किए हैं और तब से परिपत्रों और अन्य संचारों के माध्यम से परिवार न्यायालयों को संवेदनशील बनाना जारी रखा है। इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय ने श्रीमती पारुल त्यागी बनाम गौरव त्यागी (उपरोक्त) में 2023 की शुरुआत में परिवार न्यायालयों के लिए संरचित दिशानिर्देश जारी किए। अफसोस की बात है कि हालांकि रिपोर्टों में दावा किया गया है कि दिशानिर्देशों का पालन किया जा रहा है, इस तरह का अनुपालन परिवार न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों में परिलक्षित नहीं होता है, खासकर जब इन आदेशों को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जाती है।

23.4 यहां तक कि संपत्ति और देनदारियों के हलफनामे दायर करने के लिए पार्टियों को निर्देशित करने की बुनियादी आवश्यकता का पालन नहीं किया गया है; अंतरिम भरण-पोषण-जो, आदर्श रूप से, कार्यवाही की स्थापना के तुरंत बाद एक निराश्रित पत्नी को दिया जाना चाहिए - 5 से 6 साल के अंतराल के बाद भी प्रदान नहीं किया गया है, जिसके दौरान ऐसे मामलों को 60 से 70 से अधिक बार सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया गया है। यह न्यायालय एक महिला के दर्द और पीड़ा से बेखबर नहीं है, जिसे एक तरफ, उसके पति ने छोड़ दिया है, और दूसरी तरफ, अदालतों की निष्क्रियता के कारण सम्मान के साथ जीने के अपने अधिकार को और अधिक उपेक्षित पाता है।

24. यह पुरानी देरी आंशिक रूप से, एक बार समर्थक न्यायिक दृष्टिकोण के लिए जिम्मेदार है- लिस्टिंग और निर्णय लेने की प्रथाओं द्वारा चिह्नित है जो कानूनी सलाहकार की लंबे समय तक सगाई के पक्ष में होती है। मामलों को बिना किसी ठोस प्रगति के बार-बार सूचीबद्ध किया जाता है; पर्याप्त औचित्य के बिना अधिवक्ताओं के अनुरोध पर स्थगन नियमित रूप से दिए जाते हैं; उत्तर हलफनामा दाखिल करने की समय-सीमा लागू नहीं की जाती है; और आवश्यकता पड़ने पर पार्टियों की उपस्थिति पर जोर देने की कमी है। जबकि इस तरह की प्रथाओं का बचाव अक्सर 'निष्पक्ष सुनवाई' सुनिश्चित करने की आड़ में किया जाता है, उनका संचयी प्रभाव बहुत हानिकारक होता है - खासकर उन गरीब पत्नियों के लिए जिनके पास लंबे समय तक मुकदमेबाजी को सहन करने की वित्तीय क्षमता नहीं होती है।

25. भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर सभी न्यायालयों और प्राधिकरणों के लिए बाध्यकारी है। इसी तरह, उच्च न्यायालयों के पास अनुच्छेद 226 के तहत अपनी संवैधानिक स्थिति के आधार पर, रिट और निर्देश जारी करने की शक्ति है जो उनके संबंधित क्षेत्राधिकारों में लागू करने योग्य हैं।

26. जब अधीनस्थ अदालतें और अधिकारी न्यायिक आदेशों का उल्लंघन करते हैं, तो वे न केवल प्रक्रियात्मक मानदंडों का उल्लंघन करते हैं - वे संवैधानिक सर्वोच्चता की नींव को कमजोर करते हैं। न्यायिक निर्देश प्रकृति में सलाहकार नहीं हैं; वे बाध्यकारी आदेश हैं जिनका सभी संबंधितों द्वारा पालन किया जाना चाहिए। माननीय सर्वोच्च न्यायालय, अर्नेश कुमार बनाम बिहार राज्य में आगाह किया कि न्यायिक निर्देशों की अवहेलना करने से अराजकता और संस्थागत पक्षाघात का गंभीर खतरा है। यह चिंता तब और भी गंभीर हो जाती है जब न्यायिक जड़ता और प्रणालीगत देरी एक साथ हो जाती है, जो नियमित स्थगन, प्रक्रियात्मक कुप्रबंधन और अंततः, न्याय से इनकार में प्रकट होती है।

27. त्वरित राहत के लिए कानून के स्पष्ट जनादेश के बावजूद, अंतरिम रखरखाव अंतहीन देरी के अधीन है- अक्सर लगभग एक दशक में 70 से 90 स्थगन शामिल होते हैं। इस तरह के नियमित स्थगन उन हजारों महिलाओं की दुर्दशा का उदाहरण हैं जो सुस्त और उदासीन न्यायिक प्रणाली से फिर से पीड़ित हैं। रखरखाव कानूनों का उद्देश्य सामाजिक कल्याण कानून के रूप में है, जिसे निराश्रितता को रोकने के लिए डिज़ाइन किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय, रजनीश बनाम नेहा (उपरोक्त) ने रखरखाव आवेदनों के निपटान के लिए स्पष्ट समयसीमा निर्धारित की है, जिसमें संपत्ति और देनदारियों के हलफनामे और समयबद्ध निर्णयों की आवश्यकता को रेखांकित किया गया है। फिर भी, बुनियादी निर्वाह के लिए एक महिला की दलील अक्सर स्थगन, न्यायिक अनुपस्थिति और प्रक्रियात्मक देरी के बोझ तले दबी होती है।

28. न्यायपालिका को न्याय के क्षरण में निष्क्रियता या उदासीनता के माध्यम से - मिलीभगत के रूप में माना जाने का जोखिम नहीं उठाया जा सकता है। जब अपने स्वयं के निर्देशों की अवहेलना की जाती है, और जब

सबसे कमजोर नागरिक, जैसे कि निराश्रित पत्नियां, अंतहीन न्यायिक देरी के कारण पीड़ित होती हैं, तो न्यायालय मानता है कि मौजूदा संकट केवल कानूनी नहीं है, बल्कि मौलिक रूप से नैतिक है।

29. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984 को वैवाहिक और पारिवारिक विवादों के शीघ्र समाधान के लिए विशेष अदालतों की स्थापना के लिए अधिनियमित किया गया था - विशेष रूप से भरण-पोषण, हिरासत और घरेलू हिंसा के मामले, जिनके लिए तत्काल निर्णय की आवश्यकता होती है। हालांकि, खराब बुनियादी ढांचे, मामलों के भारी बैकलॉग, बार-बार स्थगन, गैर-कार्यात्मक अदालतों और अनुचित देरी के कारण अलग परिवार न्यायालय बनाने का उद्देश्य विफल प्रतीत होता है - जैसे कि एक दशक से अधिक समय तक इंतजार करना और अंतरिम रखरखाव के लिए भी 70 से 90 स्थगन का सामना करना पड़ा।

30. कुटुम्ब न्यायालयों की स्थापना और रखरखाव राज्य सरकार की जिम्मेदारी के अंतर्गत आता है, जबकि उनकी स्थापना, प्रशासनिक पर्यवेक्षण के साथ-साथ न्यायाधीशों की तैनाती, पदोन्नति और प्रशिक्षण के संबंध में परामर्श उच्च न्यायालय के पास है। पर्याप्त बुनियादी ढांचा प्रदान करने में विफलता केवल एक प्रशासनिक चूक नहीं है - यह एक संवैधानिक विफलता है जो करोड़ों लोगों के लिए न्याय तक पहुंच पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। यदि न्याय को सार्थक होना है, तो यह सुलभ, समय पर और मानवीय होना चाहिए - और यह अनिवार्यता उचित बुनियादी ढांचे के प्रावधान से शुरू होती है।

31. राजनेश बनाम में निर्धारित स्पष्ट और विशिष्ट निर्देशों के बावजूद। नेहा (उपरोक्त) और उसके बाद आधिकारिक घोषणाओं के बाद, एक परेशान करने वाली प्रवृत्ति सामने आई है जिसमें विद्वान परिवार न्यायालय के न्यायाधीश नियमित रूप से इन अधिदेशों को लागू करने में विफल रहते हैं। न्यायाधीश अक्सर दोनों पक्षों से "संपत्ति और देनदारियों के हलफनामा" को अनिवार्य रूप से दाखिल करने की आवश्यकता की उपेक्षा करते हैं - शपथ पत्र जिसका उद्देश्य छिपाने को रोकना, पारदर्शिता को बढ़ावा देना और निष्पक्ष रखरखाव आदेशों को सुविधाजनक बनाना है। न्यायालयों द्वारा कोई निश्चित समय-सीमा लागू नहीं की जाती है, और पर्याप्त औचित्य के बिना नियमित स्थगन दिए जाते हैं। गैर-सहकारी पक्षों को कार्यवाही से बचने के लिए उचित लागत लगाने से दंडित नहीं किया जाता है। नतीजतन, अंतरिम रखरखाव आवेदन प्रकृति में संक्षिप्त कार्यवाही होने के बावजूद वर्षों तक अनिर्णीत रहते हैं, और उच्च न्यायालय के आदेशों का पालन न करने के लिए कोई प्रभावी या व्यावहारिक परिणाम नहीं हैं।

32. न्यायिक प्रणाली में संरचनात्मक कमियों को केवल सार्थक संस्थागत सुधारों और स्पष्ट जवाबदेही स्थापित करके ही दूर किया जा सकता है। संवैधानिक अदालतों के लिए न्यायिक दृष्टि और जमीनी स्तर की जड़ता के बीच बढ़ती असंगति का सामना करने का समय आ गया है। जब अदालतें अपने स्वयं के निर्णयों को लागू करने में विफल रहती हैं - विशेष रूप से संवैधानिक महत्व के - वे मूल सिद्धांतों को कमजोर करती हैं:

(i) कानून का शासन, क्योंकि अदालतें न केवल व्याख्या करने के लिए बाध्य हैं, बल्कि कानून को लागू करने के लिए भी बाध्य हैं; तथा
(ii) न्यायिक जवाबदेही, चूंकि न्यायाधीश संविधान को बनाए रखने की शपथ लेते हैं, न कि केवल औपचारिक न्यायनिर्णयन करने के लिए। संवैधानिक न्यायालयों द्वारा जारी निर्देशों का अनुपालन न करना केवल एक प्रशासनिक निरीक्षण नहीं है - यह न्यायिक त्याग का गठन करता है।

33. अगली पीढ़ी हमें इस बात से नहीं आंकेगी कि हमने कितनी वाक्पटुता से निर्णय लिखे, हमने प्रति दिन कितने मामलों को सूचीबद्ध किया, हमने कितने समय तक संवैधानिक पद पर कब्जा किया, या हमने किस पद से पद छोड़ा। वे हमें इस बात से आंकेंगे कि क्या हमने न्याय दिया है जहां यह सबसे ज्यादा मायने रखता है, और क्या हमने साहस और निरंतरता के साथ अपने स्वयं के आदेशों को लागू किया। विचारण न्यायाधीश ने आत्मनिरीक्षण के एक आवश्यक क्षण को प्रेरित किया है: क्या हम अपनी अप्रासंगिकता के संरक्षक बन रहे हैं? यदि न्यायपालिका को अंतिम शरणस्थली बने रहना है, तो उसे न केवल नैतिक अधिकार के साथ बोलना चाहिए - बल्कि इसे संस्थागत संकल्प के साथ कार्य करना चाहिए।

34. उपरोक्त विचार-विमर्श के आधार पर, मैं इस न्यायालय के महानिबंधक को निर्देश देता हूं कि वे इस आदेश की एक प्रति माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखें, जिसमें यहां बताए गए मुद्दों का संज्ञान लेने का अनुरोध किया गया है। माननीय मुख्य न्यायाधीश के न्यायिक ज्ञान में कमांडिंग प्राधिकार और संवैधानिक दायित्व दोनों हैं।

35. इस प्रकरण के तथ्यों की ओर पुनः अवलोकन करने पर यह प्रतित होता है कि किसी भी पक्षकार द्वारा दिनांक 23.5.2024 के आदेश के अनुपालन में, राजनेश बनाम नेहा एवं अन्य (उपर्युक्त) में अनिवार्य किए गए अनुसार आय के समस्त स्रोतों का प्रकटीकरण करते हुए परिसंपत्तियों एवं देनदारियों का शपथपत्र प्रस्तुत करना उपयुक्त नहीं समझा गया। कार्यालय प्रतिवेदन दिनांक 11.12.2024 से यह परिलक्षित होता है कि प्रतिवादी-पत्नी को विधिवत नोटिस प्राप्त हुआ तथा उसकी ओर से वकालतनामा भी प्रस्तुत किया गया है। अभिलेखों के अवलोकन उपरांत, विवादित आदेश में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जाना अपेक्षित नहीं है, क्योंकि अभिलेख से यह इंगित होता है कि पुनरीक्षणकर्ता-पति गैस अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड में वरिष्ठ पद पर आसीन है। यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि पुनरीक्षणकर्ता-पति भरण-पोषण राशि का भुगतान करने में विफल रहता है, तो वसूली की कार्यवाही राजेश बाबू सक्सेना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य [आपराधिक पुनरीक्षण दोषपूर्ण संख्या 1789 of 2023] में निर्धारित निर्देशों के अनुरूप संपादित की जाएगी।

36. तदनुसार, उपरोक्त विचार-विमर्श के संदर्भ में याचिका **खारिज** की जाती है।
